35

श्रीहरिः

श्रीमन्महर्षि वेदव्यासप्रणीत

महाभारत

(चतुर्थ खण्ड)

[द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक और स्त्रीपर्व]

(सचित्र, सरल हिंदी-अनुवादसहित)

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीमन्महर्षि वेदव्यासप्रणीत

महाभारत

(चतुर्थ खण्ड)

[द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक और स्त्रीपर्व]

(सचित्र, सरल हिंदी-अनुवादसहित)

अनुवादक—

साहित्याचार्य पण्डित रामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम'

प्रकाशक—गोविन्दभवन-कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०१२से २०५१ तक	५४,०००
सं० २०५३ सातवाँ संस्करण	२,६००
	योग ५६,६००

मूल्य— { खण्ड एकसे खण्ड छ:तक } छः खण्डोंका सम्पूर्ण सात सौ बीस रुपये

मुद्रक—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

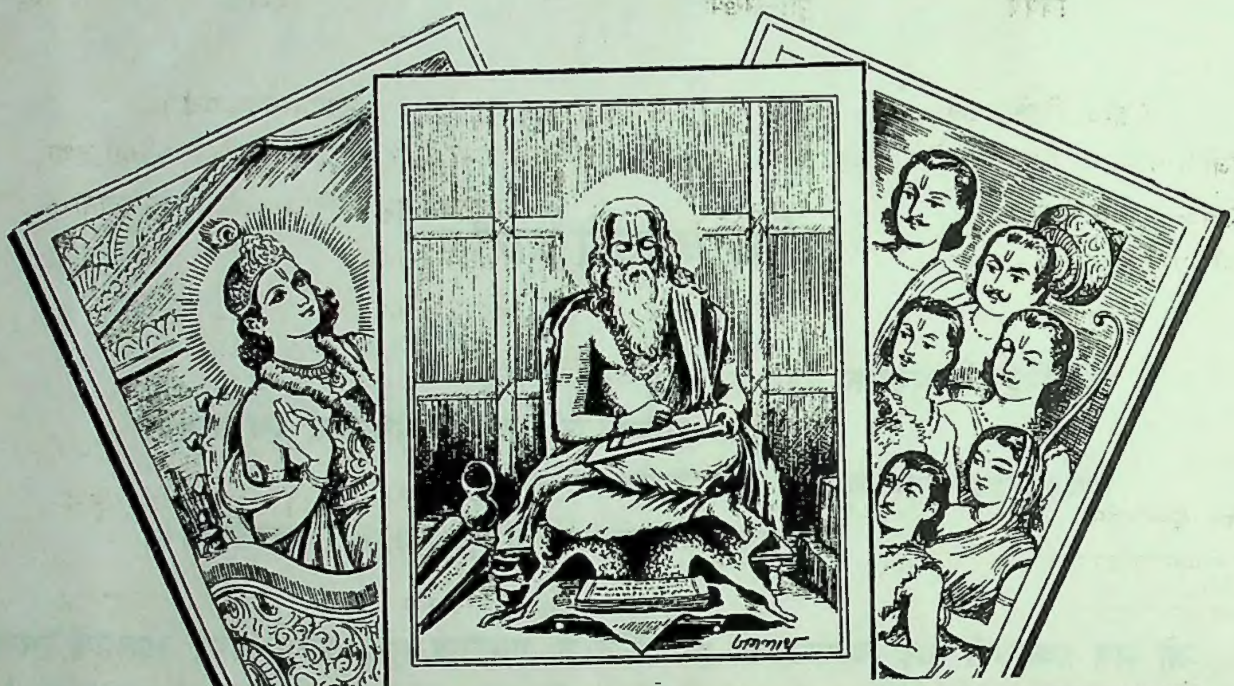
फोन : ३३४७२१

श्रीकृष्णकी शरण

सर्वारिष्टहरं सुखैकरमणं शान्त्यास्पदं भक्तिदं
स्मृत्वा ब्रह्मपदप्रदं स्वरसदं प्रेमास्पदं शाश्वतम्।
मेघश्यामशरीरमच्युतपदं पीताम्बरं सुन्दरं
श्रीकृष्णं सततं व्रजामि शरणं कायेन वाचा धिया॥

जो सब प्रकारकी विघ्न-बाधाओंको हर लेनेवाले, एकमात्र सुखस्वरूप अपने आत्मामें रमण करनेवाले, शान्तिके अधिष्ठान, अपनी भक्ति देनेवाले, चिन्तन करनेसे ब्रह्मपद प्रदान करनेमें समर्थ, अपना रस प्रदान करनेवाले, प्रेमके अधिष्ठान, सनातन पुरुष, मेघके समान श्यामसुन्दर विग्रहवाले, अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले, पीताम्बरधारी और सुन्दर हैं, उन श्रीकृष्णकी मैं सदा मन, वाणी और शरीरसे शरण लेता हूँ।

ॐ श्रीपरमात्मने नमः



महाभारत

श्रीकृष्ण ही परमार्थपद हैं

श्रीकृष्ण एव परमार्थपदं न चान्यत्
तज्ज्ञास्त एव जगतामिह कीर्तनीयाः।
तद्ध्यानतः परममङ्गलमस्ति पुंसां
तज्ज्ञानमेव परमार्थपदैकलाभः॥

भगवान् श्रीकृष्ण ही परमार्थपद हैं, उनके सिवा दूसरी कोई वस्तु परमार्थ नहीं है। जो उनके तत्त्वको जाननेवाले हैं, वे ही यहाँ सम्पूर्ण जगत्‌के लिये कीर्तनीय हैं—सब लोग उन्हींकी महिमाका बखान करते हैं। भगवान् श्रीकृष्णके ध्यानसे ही मनुष्योंका परम मङ्गल होता है तथा उनका ज्ञान ही एकमात्र परमार्थपदकी प्राप्ति है।

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

द्रोणपर्व

कर्णपर्व

शल्यपर्व

सौप्तिकपर्व

स्त्रीपर्व

चित्र-सूची

सादा



व्यासजी अर्जुन को शंकरजी की महिमा कह रहे है

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमहाभारतम्

द्रोणपर्व

(द्रोणाभिषेकपर्व)

प्रथमोऽध्यायः

भीष्मजीके धराशायी होनेसे कौरवोंका शोक तथा उनके द्वारा कर्णका स्मरण

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उन लीलाओंका संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय (महाभारत) का पाठ करना चाहिये ॥

जनमेजय उवाच

तमप्रतिमसत्त्वौजोबलवीर्यसमन्वितम् ।
हतं देवव्रतं श्रुत्वा पाञ्चाल्येन शिखण्डिना ॥ १ ॥
धृतराष्ट्रस्ततो राजा शोकव्याकुललोचनः ।
किमचेष्टत विप्रर्षे हते पितरि वीर्यवान् ॥ २ ॥

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन् ! अनुप सत्त्व, ओज, बल और पराक्रमसे सम्पन्न देवव्रत भीष्मको पाञ्चालराज शिखण्डीके हाथसे मारा गया सुनकर राजा धृतराष्ट्रके नेत्र शोकसे व्याकुल हो उठे होंगे । ब्रह्मर्षे ! अपने ज्येष्ठ पिताके मारे जानेपर पराक्रमी धृतराष्ट्रने कैसी चेष्टा की ? ॥ १-२ ॥

तस्य पुत्रो हि भगवन् भीष्मद्रोणमुखै रथैः ।
पराजित्य महेष्वासान् पाण्डवान् राज्यमिच्छति ॥ ३ ॥

भगवन् ! उनका पुत्र दुर्योधन भीष्म, द्रोण आदि महारथियोंके द्वारा महाधनुर्धर पाण्डवोंको पराजित करके स्वयं राज्य हथिया लेना चाहता था ॥ ३ ॥

तस्मिन् हते तु भगवन् केतौ सर्वधनुष्मताम् ।
यदचेष्टत कौरव्यस्तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥ ४ ॥

भगवन् ! तपोधन ! सम्पूर्ण धनुर्धरोंके ध्वजस्वरूप भीष्मजीके मारे जानेपर कुरुवंशी दुर्योधनने जो प्रयत्न किया हो, वह सब मुझे बताइये ॥ ४ ॥

वैशम्पायन उवाच

निहतं पितरं श्रुत्वा धृतराष्ट्रो जनाधिपः ।
लेभे न शान्तिं कौरव्यश्चिन्ताशोकपरायणः ॥ ५ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय ! ज्येष्ठ पिताको मारा गया सुनकर कुरुवंशी राजा धृतराष्ट्र चिन्ता और शोकमें डूब गये । उन्हें क्षणभरको भी शान्ति नहीं मिल रही थी ॥

तस्य चिन्तयतो दुःखमनिशं पार्थिवस्य तत् ।
आजगाम विशुद्धात्मा पुनर्गावल्गणिस्तदा ॥ ६ ॥

वे भूपाल निरन्तर उस दुःखदायिनी घटनाका ही चिन्तन करते रहे । उसी समय विशुद्ध अन्तःकरणवाला गवल्गणपुत्र संजय पुनः उनके पास आया ॥ ६ ॥

शिबिरात् संजयं प्राप्तं निशि नागाह्वयं पुरम् ।
आम्बिकेयो महाराज धृतराष्ट्रोऽन्वपृच्छत ॥ ७ ॥

महाराज ! रातके समय कुरुक्षेत्रके शिबिरसे हस्तिनापुरमें आये हुए संजयसे अम्बिकानन्दन धृतराष्ट्रने वहाँका समाचार पूछा ॥ ७ ॥

श्रुत्वा भीष्मस्य निधनमप्रहृष्टमना भृशम् ।
पुत्राणां जयमाकाङ्क्षन् विललापातुरो यथा ॥ ८ ॥

भीष्मकी मृत्युका वृत्तान्त सुनकर उनका मन सर्वथा अप्रसन्न एवं उत्साहशून्य हो गया था । वे अपने पुत्रोंकी विजय चाहते हुए आतुरकी भाँति विलाप कर रहे थे ॥ ८ ॥



धृतराष्ट्र उवाच

संशोच्य तु महात्मानं भीष्मं भीमपराक्रमम्।
किमकार्षुः परं तात कुरवः कालचोदिताः ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—तात ! संजय ! भयंकर पराक्रमी महात्मा भीष्मके लिये अत्यन्त शोक करके कालप्रेरित कौरवोंने आगे कौन-सा कार्य किया ॥ ९ ॥

तस्मिन् विनिहते शूरे दुराधर्षे महात्मनि ।
किं नु स्वित् कुरवोऽकार्षुर्निमग्नाः शोकसागरे ॥ १० ॥

उन दुर्धर्ष वीर महात्मा भीष्मके मारे जानेपर तो समस्त कुरुवंशी शोकके समुद्रमें डूब गये होंगे; फिर उन्होंने कौन-सा कार्य किया ? ॥ १० ॥

तदुदीर्णं महत् सैन्यं त्रैलोक्यस्यापि संजय ।
भयमुत्पादयेत् तीव्रं पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ ११ ॥

संजय ! महात्मा पाण्डवोंकी वह विशाल एवं प्रचण्ड सेना तो तीनों लोकोंके हृदयमें तीव्र भय उत्पन्न कर सकती है ॥

को हि दौर्योधने सैन्ये पुमानासीन्महारथः ।
यं प्राप्य समरे वीरा न त्रस्यन्ति महाभये ॥ १२ ॥

उस महान् भयके अवसरपर दुर्योधनकी सेनामें कौन ऐसा वीर महारथी पुरुष था, जिसका आश्रय पाकर समराङ्गणमें वीर कौरव भयभीत नहीं हुए हैं ॥ १२ ॥

देवव्रते तु निहते कुरूणामृषभे तदा ।
किमकार्षुर्नृपतयस्तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ १३ ॥

संजय ! कुरुश्रेष्ठ देवव्रतके मारे जानेपर उस समय सब राजाओंने कौन-सा कार्य किया ? यह मुझे बताओ ॥ १३ ॥

संजय उवाच

शृणु राजन्नेकमना वचनं ब्रुवतो मम ।
यत् ते पुत्रास्तदाकार्षुर्हते देवव्रते मृधे ॥ १४ ॥

संजयने कहा—राजन् ! उस युद्धमें देवव्रत भीष्मके मारे जानेपर उस समय आपके पुत्रोंने जो कार्य किया, वह सब मैं बता रहा हूँ । मेरे इस कथनको आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये ॥ १४ ॥

निहते तु तदा भीष्मे राजन् सत्यपराक्रमे ।
तावकाः पाण्डवेयाश्च प्राध्यायन्त पृथक् पृथक् ॥ १५ ॥

राजन् ! जब सत्यपराक्रमी भीष्म मार दिये गये, उस समय आपके पुत्र और पाण्डव अलग-अलग चिन्ता करने लगे ॥ १५ ॥

विस्मिताश्च प्रहृष्टाश्च क्षत्रधर्मं निशम्य ते ।
स्वधर्मं निन्दमानास्ते प्रणिपत्य महात्मने ॥ १६ ॥
शयनं कल्पयामासुर्भीष्मायामितकर्मणे ।
सोपधानं नरव्याघ्र शरैः संनतपर्वभिः ॥ १७ ॥

पुरुषसिंह ! वे क्षत्रिय-धर्मका विचार करके अत्यन्त विस्मित और प्रसन्न हुए । फिर अपने कठोरतापूर्ण धर्मकी निन्दा करते हुए उन्होंने महात्मा भीष्मको प्रणाम किया और उन अमित पराक्रमी भीष्मके लिये झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा तकिये और शय्याकी रचना की ॥ १६-१७ ॥

विधाय रक्षां भीष्माय समाभाष्य परस्परम् ।
अनुमान्य च गाङ्गेयं कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥ १८ ॥
क्रोधसंरक्तनयनाः समवेत्य परस्परम् ।
पुनर्युद्धाय निर्जग्मुः क्षत्रियाः कालचोदिताः ॥ १९ ॥

इसी प्रकार परस्पर वार्तालाप करके भीष्मजीकी रक्षाकी व्यवस्था कर दी और उन गङ्गानन्दन देवव्रतकी अनुमति ले उनकी परिक्रमा करके आपसमें मिलकर वे कालप्रेरित क्षत्रिय क्रोधसे लाल आँखें किये पुनः युद्धके लिये निकले ॥ १८-१९ ॥

ततस्तूर्यनिनादैश्च भेरीणां निनदेन च ।
तावकानामनीकानि परेषां च विनिर्ययुः ॥ २० ॥

तदनन्तर बाजोंकी ध्वनि और नगाड़ोंकी गड़गड़ाहटके साथ आपकी तथा पाण्डवोंकी भी सेनाएँ युद्धके लिये निकलीं ॥

व्यावृत्तेऽर्यम्णि राजेन्द्र पतिते जाह्नवीसुते ।
अमर्षवशमापन्नाः कालोपहतचेतसः ॥ २१ ॥
अनादृत्य वचः पथ्यं गाङ्गेयस्य महात्मनः ।
निर्ययुर्भरतश्रेष्ठाः शस्त्राण्यादाय सत्वराः ॥ २२ ॥

राजेन्द्र ! जिस समय गङ्गानन्दन भीष्म रथसे गिरे थे, उस समय सूर्य पश्चिम दिशामें ढल चुके थे । यद्यपि महात्मा गङ्गानन्दन भीष्मने उन सबको युद्ध बंद कर देनेकी सलाह दी थी, तथापि कालसे विवेकशक्ति नष्ट हो जानेके कारण वे भरतश्रेष्ठ क्षत्रिय उनके हितकर वचनकी अवहेलना करके

अमर्षके वशीभूत हो हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र लिये तुरंत ही युद्धके लिये निकल पड़े ॥ २१-२२ ॥

मोहात् तत्र सपुत्रस्य वधाच्छान्तनवस्य च ।
कौरव्या मृत्युसाद्भूताः सहिताः सर्वराजभिः ॥ २३ ॥

पुत्रसहित आपके मोह (अविवेक) से और शान्तनुनन्दन भीष्मका वध हो जानेसे समस्त राजाओंसहित सम्पूर्ण कुरुवंशी मृत्युके अधीन हो गये हैं ॥ २३ ॥

अजावय इवागोपा वने श्वापदसंकुले ।
भृशमुद्विग्नमनसो हीना देवव्रतेन ते ॥ २४ ॥

जैसे हिंसक जन्तुओंसे भरे हुए वनमें बिना रक्षककी भेड़ और बकरियाँ भयसे उद्विग्न रहती हैं, उसी प्रकार आपके पुत्र और सैनिक देवव्रतसे रहित हो मन-ही-मन अत्यन्त उद्विग्न हो उठे थे ॥ २४ ॥

पतिते भरतश्रेष्ठे बभूव कुरुवाहिनी ।
द्यौरिवापेतनक्षत्रा हीनं खमिव वायुना ॥ २५ ॥
विपन्नसस्येव मही वाक् चैवासंस्कृता तथा ।
आसुरीव यथा सेना निगृहीते नृपे बलौ ॥ २६ ॥

भरतशिरोमणि भीष्मके धराशायी हो जानेपर कौरव-सेना नक्षत्ररहित आकाश, वायुशून्य अन्तरिक्ष, नष्ट हुई खेतीवाली भूमि, असंस्कृत वाणी तथा राजा बलिके बाँध लिये जानेपर नायकविहीन हुई असुरोंकी सेनाके समान उद्विग्न, असमर्थ और श्रीहीन हो गयी ॥ २५-२६ ॥

विधवेव वरारोहा शुष्कतोयेव निम्नगा ।
वृकैरिव वने रुद्धा पृषती हतयूथपा ॥ २७ ॥
शरभाहतसिंहेव महती गिरिकन्दरा ।
भारती भरतश्रेष्ठे पतिते जाह्नवीसुते ॥ २८ ॥

गङ्गानन्दन भरतश्रेष्ठ भीष्मके धराशायी होनेपर भरतवंशियोंकी सेना विधवा सुन्दरीके समान, जिसका पानी सूख गया हो, उस नदीके समान, जिसे भेड़ियोंने वनमें घेर रक्खा हो और जिसका साथी यूथप मार डाला गया हो, उस चितकबरी मृगीके समान तथा शरभने जिसमें रहनेवाले सिंहको मार डाला हो, उस विशाल कन्दराके समान भयभीत, विचलित और श्रीहीन जान पड़ती थी ॥ २७-२८ ॥

विष्वग्वाताहता रुग्णा नौरिवासीन्महार्णवे ।
बलिभिः पाण्डवैर्वीरैर्लब्धलक्षैर्भृशार्दिता ॥ २९ ॥

वीर और बलवान् पाण्डव अपने लक्ष्यको सफलतापूर्वक मार गिरानेवाले थे, उनके द्वारा अत्यन्त पीड़ित होकर आपकी सेना महासागरमें चारों ओरसे वायुके थपेड़े खाकर टूटी हुई नौकाके समान बड़ी विपत्तिमें फँस गयी ॥ २९ ॥

सा तदाऽऽसीद् भृशं सेना व्याकुलाश्वरथद्विपा ।
विपन्नभूयिष्ठनरा कृपणा ध्वस्तमानसा ॥ ३० ॥

उस समय आपकी सेनाके घोड़े, रथ और हाथी सब अत्यन्त व्याकुल हो उठे थे । उसके अधिकांश सैनिक अपने प्राण खो चुके थे । उसका दिल बैठ गया था और वह अत्यन्त दीन हो रही थी ॥ ३० ॥

तस्यां त्रस्ता नृपतयः सैनिकाश्च पृथग्विधाः ।
पाताल इव मज्जन्तो हीना देवव्रतेन ते ॥ ३१ ॥

उस सेनाके भिन्न-भिन्न सैनिक, नरेशगण अत्यन्त भयभीत हो देवव्रत भीष्मके बिना मानो पातालमें डूब रहे थे ॥ ३१ ॥

कर्णं हि कुरवोऽस्मार्षुः स हि देवव्रतोपमः ।
सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठं रोचमानमिवातिथिम् ॥ ३२ ॥
बन्धुमापद्गतस्येव तमेवोपागमन्मनः ।
चुक्रुशुः कर्ण कर्णेति तत्र भारत पार्थिवाः ॥ ३३ ॥

उस समय कौरवोंने कर्णका स्मरण किया । जैसे गृहस्थका मन अतिथिकी ओर तथा आपत्तिमें पड़े हुए मनुष्यका मन अपने मित्र या भाई-बन्धुकी ओर जाता है, उसी प्रकार कौरवोंका मन समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ एवं तेजस्वी वीर कर्णकी ओर गया; क्योंकि वही भीष्मके समान पराक्रमी समझा जाता था । भारत ! वहाँ सब राजा 'कर्ण ! कर्ण !' की पुकार करने लगे ॥ ३२-३३ ॥

राधेयं हितमस्माकं सूतपुत्रं तनुत्यजम् ।
स हि नायुध्यत तदा दशाहानि महायशाः ॥ ३४ ॥
सामात्यबन्धुः कर्णो वै तमानयत मा चिरम् ।

वे कहने लगे कि 'राधानन्दन सूतपुत्र कर्ण हमारा हितैषी है । हमारे लिये अपना शरीर निछावर किये हुए है । अपने मन्त्रियों और बन्धुओंके साथ महायशस्वी कर्णने दस दिनोंतक युद्ध नहीं किया है । उसे शीघ्र बुलाओ । देर न करो ॥

भीष्मेण हि महाबाहुः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥ ३५ ॥
रथेषु गण्यमानेषु बलविक्रमशालिषु ।
संख्यातोऽर्धरथः कर्णो द्विगुणः सन् नरर्षभः ॥ ३६ ॥

राजन् ! बात यह हुई थी कि जब बल और पराक्रमसे सुशोभित रथियोंकी गणना की जा रही थी, उस समय समस्त क्षत्रियोंके देखते-देखते भीष्मजीने महाबाहु नरश्रेष्ठ कर्णको अर्धरथी बता दिया । यद्यपि वह दो रथियोंके समान है ॥

रथातिरथसंख्यायां योऽग्रणीः शूरसम्मतः ।
सासुरानपि देवेशान् रणे यो योद्धुमुत्सहेत् ॥ ३७ ॥

रथियों और अतिरथियोंकी संख्यामें वह अग्रगण्य और शूरवीरके सम्मानका पात्र है । रणक्षेत्रमें असुरोंसहित सम्पूर्ण देवेश्वरोंके साथ भी वह युद्ध करनेका उत्साह रखता है ॥

स तु तेनैव कोपेन राजन् गाङ्गेयमुक्तवान् ।
त्वयि जीवति कौरव्य नाहं योत्स्ये कदाचन ॥ ३८ ॥
त्वया तु पाण्डवेयेषु निहतेषु महामृधे ।
दुर्योधनमनुज्ञाप्य वनं यास्यामि कौरव ॥ ३९ ॥

राजन्! अर्धरथी बतानेके कारण ही क्रोधवश उसने गङ्गानन्दन भीष्मसे कहा—'कुरुनन्दन! आपके जीते-जी मैं कदापि युद्ध नहीं करूँगा। कौरव! यदि आप उस महासमरमें पाण्डुपुत्रोंको मार डालेंगे तो मैं दुर्योधनकी अनुमति लेकर वनको चला जाऊँगा ॥ ३८-३९ ॥

पाण्डवैर्वा हते भीष्मे त्वयि स्वर्गमुपेयुषि।
हन्तास्म्येकरथेनैव कृत्स्नान् यान् मन्यसे रथान् ॥ ४०॥

'अथवा यदि पाण्डवोंके द्वारा मारे जाकर आप स्वर्गलोकमें पहुँच गये तो मैं एकमात्र रथकी सहायतासे उन सबको मार डालूँगा, जिन्हें आप रथी मानते हैं' ॥ ४० ॥

एवमुक्त्वा महाबाहुर्दशाहानि महायशाः।
नायुध्यत ततः कर्णः पुत्रस्य तव सम्मते ॥ ४१ ॥

ऐसा कहकर महाबाहु महायशस्वी कर्ण आपके पुत्रकी सम्मति ले दस दिनोंतक युद्धमें सम्मिलित नहीं हुआ ॥४१॥

भीष्मः समरविक्रान्तः पाण्डवेयस्य भारत।
जघान समरे योधानसंख्येयपराक्रमः ॥ ४२ ॥

भारत! समरभूमिमें पराक्रम प्रकट करनेवाले अनन्त पराक्रमी भीष्मने युद्धस्थलमें पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरके बहुत-से योद्धाओंको मार डाला ॥ ४२ ॥

तस्मिंस्तु निहते शूरे सत्यसंधे महौजसि।
त्वत्सुताः कर्णमस्मार्षुस्तर्तुकामा इव प्लवम् ॥ ४३ ॥

उन महापराक्रमी सत्यप्रतिज्ञ शूरवीर भीष्मके मारे जानेपर आपके पुत्रोंने कर्णका उसी प्रकार स्मरण किया, जैसे पार जानेकी इच्छावाले पुरुष नावकी इच्छा करते हैं ॥ ४३ ॥

तावकास्तव पुत्राश्च सहिताः सर्वराजभिः।
हा कर्ण इति चाक्रन्दन् कालोऽयमिति चाब्रुवन् ॥ ४४ ॥

समस्त राजाओंसहित आपके पुत्र और सैनिक 'हा कर्ण' कहकर विलाप करने लगे और बोले—'कर्ण! तुम्हारे पराक्रमका यह अवसर आया है' ॥ ४४ ॥

एवं ते स्म हि राधेयं सूतपुत्रं तनुत्यजम्।
चुक्रुशुः सहिता योधास्तत्र तत्र महाबलाः ॥ ४५ ॥

इस प्रकार आपके महाबली योद्धालोग राधानन्दन सूतपुत्र कर्णको, जो दुर्योधनके लिये अपना शरीर निछावर किये बैठा था, एक साथ पुकारने लगे ॥ ४५ ॥

जामदग्न्याभ्यनुज्ञातमस्त्रे दुर्वारपौरुषम्।
अगमन्नो मनः कर्णं बन्धुमात्ययिकेष्विव ॥ ४६ ॥

राजन्! कर्णने जमदग्निनन्दन परशुरामजीसे अस्त्रविद्याकी शिक्षा प्राप्त की है और उसका पराक्रम दुर्निवार्य है। इसीलिये हमलोगोंका मन कर्णकी ओर गया, ठीक वैसे ही, जैसे बड़ी भारी आपत्तिके समय मनुष्यका मन अपने मित्रों तथा सगे-सम्बन्धियोंकी ओर जाता है ॥ ४६ ॥

स हि शक्तो रणे राजंस्त्रातुमस्मान् महाभयात्।
त्रिदशानिव गोविन्दः सततं सुमहाभयात् ॥ ४७ ॥

राजन्! जैसे भगवान् विष्णु देवताओंकी सदा अत्यन्त महान् भयसे रक्षा करते हैं, उसी प्रकार कर्ण हमें भारी भयसे उबारनेमें समर्थ है ॥ ४७ ॥

वैशम्पायन उवाच

तथा तु संजयं कर्णं कीर्तयन्तं पुनः पुनः।
आशीविषवदुच्छ्वस्य धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम् ॥ ४८ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जब संजय इस प्रकार बार-बार कर्णका नाम ले रहा था, उस समय राजा धृतराष्ट्रने विषधर सर्पके समान उच्छ्वास लेकर इस प्रकार कहा ॥ ४८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

यत् तद्वैकर्तनं कर्णमगमद् वो मनस्तदा।
अप्यपश्यत राधेयं सूतपुत्रं तनुत्यजम् ॥ ४९ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय! जब तुमलोगोंका मन विकर्तनपुत्र कर्णकी ओर गया, तब क्या तुमने शरीर निछावर करनेवाले सूतपुत्र राधानन्दन कर्णको वहाँ देखा? ॥ ४९ ॥

अपि तन्न मृषाकार्षीत् कच्चित् सत्यपराक्रमः।
सम्भ्रान्तानां तदार्तानां त्रस्तानां त्राणमिच्छताम् ॥ ५० ॥

कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि संकटमें पड़कर घबराये हुए और भयभीत होकर अपनी रक्षा चाहते हुए कौरवोंकी प्रार्थनाको सत्यपराक्रमी कर्णने निष्फल कर दिया हो? ॥५०॥

अपि तत् पूरयांचक्रे धनुर्धरवरो युधि।
यत्तद् विनिहते भीष्मे कौरवाणामपाकृतम् ॥ ५१ ॥

भीष्मके मारे जानेपर युद्धस्थलमें कौरवोंके पक्षमें जो कमी आ गयी थी, क्या उसे धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ कर्णने पूरा कर दिया? ॥ ५१ ॥

तत् खण्डं पूरयन् कर्णः परेषामादधद् भयम्।
स हि वै पुरुषव्याघ्रो लोके संजय कथ्यते ॥ ५२ ॥

क्या उस खण्डित अंशकी पूर्ति करके कर्णने शत्रुओंके मनमें भय उत्पन्न किया? संजय! जगत्में कर्णको 'पुरुषसिंह' कहा जाता है ॥ ५२ ॥

आर्तानां बान्धवानां च क्रन्दतां च विशेषतः।
परित्यज्य रणे प्राणांस्तत्त्राणार्थं च शर्म च।
कृतवान् मम पुत्राणां जयाशां सफलामपि ॥ ५३ ॥

क्या उसने रणभूमिमें शोकार्त होकर विशेषरूपसे क्रन्दन करनेवाले अपने उन बन्धुजनोंकी रक्षा एवं कल्याणके लिये अपने प्राणोंका परित्याग करके मेरे पुत्रोंकी विजयाभिलाषाको सफल किया ? ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि धृतराष्ट्रप्रश्ने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणाभिषेकपर्वमें धृतराष्ट्र-प्रश्नविषयक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

कर्णकी रणयात्रा

संजय उवाच

हतं भीष्ममथाधिरथिर्विदित्वा
भिन्नां नावमिवात्यगाधे कुरूणाम्।
सोदर्यवद् व्यसनात् सूतपुत्रः
संतारयिष्यंस्तव पुत्रस्य सेनाम्॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! अधिरथनन्दन सूतपुत्र कर्ण यह जानकर कि भीष्मजीके मारे जानेपर कौरवोंकी सेना अगाध महासागरमें टूटी हुई नौकाके समान संकटमें पड़ गयी है, सगे भाईके समान आपके पुत्रकी सेनाको संकटसे उबारनेके लिये चला ॥ १ ॥

श्रुत्वा तु कर्णः पुरुषेन्द्रमच्युतं
निपातितं शान्तनवं महारथम् ।
अथोपयायात् सहसारिकर्षणो
धनुर्धराणां प्रवरस्तदा नृप ॥ २ ॥

राजन् ! तत्पश्चात् योद्धाओंके मुखसे अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले पुरुषप्रवर शान्तनुनन्दन महारथी भीष्मके मारे जानेका विस्तृत वृत्तान्त सुनकर धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ शत्रुसूदन कर्ण सहसा दुर्योधनके समीप चल दिया ॥ २ ॥

हते तु भीष्मे रथसत्तमे परै-
र्निमज्जतीं नावमिवार्णवे कुरून् ।
पितेव पुत्रांस्त्वरितोऽभ्ययात् ततः
संतारयिष्यंस्तव पुत्रस्य सेनाम्॥ ३ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ भीष्मके शत्रुओंद्वारा मारे जानेपर, जैसे पिता अपने पुत्रोंको संकटसे बचानेके लिये जाता हो, उसी प्रकार सूतपुत्र कर्ण डूबती हुई नौकाके समान आपके पुत्रकी सेनाको संकटसे उबारनेके लिये बड़ी उतावलीके साथ दुर्योधनके निकट आ पहुँचा ॥ ३ ॥

(सम्मृज्य दिव्यं धनुराततज्यं
स रामदत्तं रिपुसंघहन्ता ।
बाणांश्च कालानलवायुकल्पा-
नुल्लालयन् वाक्यमिदं बभाषे ॥)

शत्रुसमूहका विनाश करनेवाले कर्णने परशुरामजीके दिये हुए दिव्य धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ा ली और उसपर हाथ फेरकर कालाग्नि तथा वायुके समान शक्तिशाली बाणोंको ऊपर उठाते हुए इस प्रकार कहा ॥

कर्ण उवाच

यस्मिन् धृतिर्बुद्धिपराक्रमौजः
सत्यं स्मृतिर्वीरगुणाश्च सर्वे ।
अस्त्राणि दिव्यान्यथ संनतिर्ह्रीः
प्रिया च वागनसूया च भीष्मे ॥ ४ ॥
सदा कृतज्ञे द्विजशत्रुघातके
सनातनं चन्द्रमसीव लक्ष्म ।
स चेत् प्रशान्तः परवीरहन्ता
मन्ये हतानेव च सर्ववीरान् ॥ ५ ॥

कर्ण बोला—ब्राह्मणोंके शत्रुओंका विनाश करनेवाले तथा अपने ऊपर किये हुए उपकारोंका आभार माननेवाले जिन वीरशिरोमणि भीष्मजीमें चन्द्रमामें सदा सुशोभित होनेवाले शशचिह्नके समान सदा धृति, बुद्धि, पराक्रम, ओज, सत्य, स्मृति, विनय, लज्जा, प्रिय वाणी तथा अनसूया (दोषदृष्टिका अभाव)—ये सभी वीरोचित गुण तथा दिव्यास्त्र शोभा पाते थे, वे शत्रुवीरोंके हन्ता देवव्रत यदि सदाके लिये शान्त हो गये तो मैं सम्पूर्ण वीरोंको मारा गया ही मानता हूँ ॥ ४-५ ॥

नेह ध्रुवं किंचन जातु विद्यते
लोके ह्यस्मिन् कर्मणोऽनित्ययोगात्।
सूर्योदये को हि विमुक्तसंशयो
भावं कुर्वीतार्यमहाव्रते हते ॥ ६ ॥

निश्चय ही इस संसारमें कर्मोंके अनित्य सम्बन्धसे कभी कोई वस्तु स्थिर नहीं रहती है। श्रेष्ठ एवं महान् व्रतधारी भीष्मजीके मारे जानेपर कौन संशयरहित होकर कह सकता है कि कल सूर्योदय होगा ही (अर्थात् जीवन अनित्य होनेके कारण हममेंसे कौन कलका सूर्योदय देख सकेगा, यह कहना कठिन है। जब मृत्युंजयी भीष्मजी भी मारे गये, तब हमारे जीवनकी क्या आशा है !) ॥ ६ ॥

वसुप्रभावे वसुवीर्यसम्भवे
गते वसूनेव वसुन्धराधिपे ।
वसूनि पुत्रांश्च वसुन्धरां तथा
कुरूंश्च शोचध्वमिमां च वाहिनीम् ॥ ७ ॥

भीष्मजीमें वसु देवताओंके समान प्रभाव था। वसुओंके

समान शक्तिशाली महाराज शान्तनुसे उनकी उत्पत्ति हुई थी। ये वसुधाके स्वामी भीष्म अब वसु देवताओंको ही प्राप्त हो गये हैं; अतः उनके अभावमें तुम सभी लोग अपने धन, पुत्र, वसुन्धरा, कुरुवंश, कुरुदेशकी प्रजा तथा इस कौरव सेनाके लिये शोक करो ॥ ७ ॥

संजय उवाच

महाप्रभावे वरदे निपातिते
लोकेश्वरे शास्तरि चामितौजसि।
पराजितेषु भरतेषु दुर्मनाः
कर्णो भृशं न्यश्वसदश्रु वर्तयन् ॥ ८ ॥

संजय कहते हैं—महान् प्रभावशाली वर देनेमें समर्थ लोकेश्वर शासक तथा अमित तेजस्वी भीष्मके मारे जानेपर भरतवंशियोंकी पराजय होनेसे कर्ण मन-ही-मन बहुत दुखी हो नेत्रोंसे आँसू बहाता हुआ लंबी साँस खींचने लगा॥

इदं च राधेयवचो निशम्य
सुताश्च राजंस्तव सैनिकाश्च ह।
परस्परं चुक्रुशुरार्तिजं मुहु-
स्तदाश्रु नेत्रैर्मुमुचुश्च शब्दवत् ॥ ९ ॥

राजन्! राधानन्दन कर्णकी यह बात सुनकर आपके पुत्र और सैनिक एक दूसरेकी ओर देखकर शोकवश बारंबार फूट-फूटकर रोने तथा नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे ॥ ९ ॥



प्रवर्तमाने तु पुनर्महाहवे
विगाह्यमानासु चमूषु पार्थिवैः।
अथाब्रवीद्धर्षकरं तदा वचो
रथर्षभान् सर्वमहारथर्षभः ॥ १० ॥

पाण्डवसेनाके राजालोगोंद्वारा जब कौरव-सेनाका ध्वंस होने लगा और बड़ा भारी संग्राम आरम्भ हो गया, तब सम्पूर्ण महारथियोंमें श्रेष्ठ कर्ण समस्त श्रेष्ठ रथियोंका हर्ष और उत्साह बढ़ाता हुआ इस प्रकार बोला—॥ १० ॥

जगत्यनित्ये सततं प्रधावति
प्रचिन्तयन्नस्थिरमद्य लक्षये।
भवत्सु तिष्ठत्स्विह पातितो मृधे
गिरिप्रकाशः कुरुपुङ्गवः कथम् ॥ ११ ॥

'सदा मृत्युकी ओर दौड़ लगानेवाले इस अनित्य संसारमें आज मुझे बहुत चिन्तन करनेपर भी कोई वस्तु स्थिर नहीं दिखायी देती; अन्यथा युद्धमें आप-जैसे शूर-वीरोंके रहते हुए पर्वतके समान प्रकाशित होनेवाले कुरुश्रेष्ठ भीष्म कैसे मार गिराये गये?॥ ११ ॥

निपातिते शान्तनवे महारथे
दिवाकरे भूतलमास्थिते यथा।
न पार्थिवाः सोढुमलं धनंजयं
गिरिप्रवोढारमिवानिलं द्रुमाः ॥ १२ ॥

'महारथी शान्तनुनन्दन भीष्मका रणमें गिराया जाना सूर्यके आकाशसे गिरकर पृथ्वीपर आ पड़नेके समान है। यह हो जानेपर समस्त भूपाल अर्जुनका वेग सहन करनेमें असमर्थ हैं, जैसे पर्वतोंको भी ढोनेवाले वायुका वेग साधारण वृक्ष नहीं सह सकते हैं ॥ १२ ॥

हतप्रधानं त्विदमार्तरूपं
परैर्हतोत्साहमनाथमद्य वै।
मया कुरूणां परिपाल्यमाहवे
बलं यथा तेन महात्मना तथा ॥ १३ ॥

'आज यह कौरवदल अपने प्रधान सेनापतिके मारे जानेसे अनाथ एवं अत्यन्त पीड़ित हो रहा है। शत्रुओंने इसके उत्साहको नष्ट कर दिया है। इस समय संग्रामभूमिमें मुझे इस कौरवसेनाकी उसी प्रकार रक्षा करनी है, जैसे महात्मा भीष्म किया करते थे ॥ १३ ॥

समाहितं चात्मनि भारमीदृशं
जगत् तथानित्यमिदं च लक्षये।
निपातितं चाहवशौण्डमाहवे
कथं नु कुर्यामहमीदृशे भयम् ॥ १४ ॥

'मैंने यह भार अपने ऊपर ले लिया। जब मैं यह देखता हूँ कि सारा जगत् अनित्य है तथा युद्धकुशल भीष्म भी युद्धमें मारे गये हैं, तब ऐसे अवसरपर मैं भय किस लिये करूँ?॥ १४ ॥

अहं तु तान् कुरुवृषभानजिह्मगैः
प्रवेशयन् यमसदनं चरन् रणे।

यशः परं जगति विभाव्य वर्तिता
परैर्हतो भुवि शयिताथवा पुनः ॥ १५ ॥

'मैं उन कुरुप्रवर पाण्डवोंको अपने सीधे जानेवाले बाणों-द्वारा यमलोकमें पहुँचाकर रणभूमिमें विचरूँगा और संसारमें उत्तम यशका विस्तार करके रहूँगा अथवा शत्रुओंके हाथसे मारा जाकर युद्धभूमिमें सदाके लिये सो जाऊँगा ॥ १५ ॥

युधिष्ठिरो धृतिमतिसत्यसत्त्ववान्
वृकोदरो गजशततुल्यविक्रमः ।
तथार्जुनस्त्रिदशवरात्मजो युवा
न तद्बलं सुजयमिहामरैरपि ॥ १६ ॥

'युधिष्ठिर धैर्य, बुद्धि, सत्य और सत्त्वगुणसे सम्पन्न हैं । भीमसेनका पराक्रम सैकड़ों हाथियोंके समान है तथा अर्जुन भी देवराज इन्द्रके पुत्र एवं तरुण हैं । अतः पाण्डवोंकी सेनाको सम्पूर्ण देवता भी सुगमतापूर्वक नहीं जीत सकते ॥

यमौ रणे यत्र यमोपमौ बले
ससात्यकिर्यत्र च देवकीसुतः ।
न तद्बलं कापुरुषोऽभ्युपेयिवान्
निवर्तते मृत्युमुखान्न चासुभृत् ॥ १७ ॥

'जहाँ रणभूमिमें यमराजके समान नकुल और सहदेव विद्यमान हैं, जहाँ सात्यकि तथा देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण हैं, उस सेनामें कोई कायर मनुष्य प्रवेश कर जाय तो वह मौतके मुखसे जीवित नहीं निकल सकता ॥ १७ ॥

तपोऽभ्युदीर्णं तपसैव बाध्यते
बलं बलेनैव तथा मनस्विभिः ।
मनश्च मे शत्रुनिवारणे ध्रुवं
स्वरक्षणे चाचलवद् व्यवस्थितम् ॥ १८ ॥

'मनस्वी पुरुष बढ़े हुए तपका तपसे और प्रचण्ड बलका बलसे ही निवारण करते हैं । यह सोचकर मेरा मन भी शत्रुओंको रोकनेके लिये दृढ़ निश्चय किये हुए है तथा अपनी रक्षाके लिये भी पर्वतकी भाँति अविचल भावसे स्थित है ॥

एवं चैषां बाधमानः प्रभावं
गत्वैवाहं ताञ्जयाम्यद्य सूत ।
मित्रद्रोहो मर्षणीयो न मेऽयं
भग्ने सैन्ये यः समेयात् स मित्रम् ॥ १९ ॥

फिर कर्ण अपने सारथिसे कहने लगा—'सूत ! इस प्रकार मैं युद्धमें जाकर इन शत्रुओंके बढ़ते हुए प्रभावको नष्ट करते हुए आज इन्हें जीत लूँगा । मेरे मित्रोंके साथ कोई द्रोह करे, यह मुझे सह्य नहीं । जो सेनाके भाग जानेपर भी साथ देता है, वही मित्र है ॥

कर्तास्म्येतत् सत्पुरुषार्यकर्म
त्यक्त्वा प्राणाननुयास्यामि भीष्मम् ।
सर्वान् संख्ये शत्रुसंघान् हनिष्ये
हतस्तैर्वा वीरलोकं प्रपत्स्ये ॥ २० ॥

'या तो मैं सत्पुरुषोंके करनेयोग्य इस श्रेष्ठ कार्यको सम्पन्न करूँगा अथवा अपने प्राणोंका परित्याग करके भीष्मजीके ही पथपर चला जाऊँगा । मैं संग्रामभूमिमें शत्रुओंके समस्त समुदायोंका संहार कर डालूँगा अथवा उन्हींके हाथसे मारा जाकर वीर-लोक प्राप्त कर लूँगा ॥ २० ॥

सम्प्राकुष्टे रुदितस्त्रीकुमारे
पराहते पौरुषे धार्तराष्ट्रे ।
मया कृत्यमिति जानामि सूत
तस्माद् राज्ञस्त्वद्य शत्रून् विजेष्ये ॥ २१ ॥

'सूत ! दुर्योधनका पुरुषार्थ प्रतिहत हो गया है । उसके स्त्री-बच्चे रो-रोकर 'त्राहि-त्राहि' पुकार रहे हैं । ऐसे अवसर-पर मुझे क्या करना चाहिये, यह मैं जानता हूँ । अतः आज मैं राजा दुर्योधनके शत्रुओंको अवश्य जीतूँगा ॥ २१ ॥

कुरून् रक्षन् पाण्डुपुत्राञ्जिघांसं-
स्त्यक्त्वा प्राणान् घोररूपे रणेऽस्मिन् ।
सर्वान् संख्ये शत्रुसंघान् निहत्य
दास्याम्यहं धार्तराष्ट्राय राज्यम् ॥ २२ ॥

'कौरवोंकी रक्षा और पाण्डवोंके वधकी इच्छा करके मैं प्राणोंकी भी परवा न कर इस महाभयंकर युद्धमें समस्त शत्रुओंका संहार कर डालूँगा और दुर्योधनको सारा राज्य सौंप दूँगा ॥ २२ ॥

निबध्यतां मे कवचं विचित्रं
हैमं शुभ्रं मणिरत्नावभासि ।
शिरस्त्राणं चार्कसमानभासं
धनुः शरांश्चाग्निविषाहिकल्पान् ॥ २३ ॥

'तुम मेरे शरीरमें मणियों तथा रत्नोंसे प्रकाशित सुन्दर एवं विचित्र सुवर्णमय कवच बाँध दो और मस्तकपर सूर्यके समान तेजस्वी शिरस्त्राण रख दो । अग्नि, विष तथा सर्पके समान भयंकर बाण एवं धनुष ले आओ ॥ २३ ॥

उपासङ्गान् षोडश योजयन्तु
धनूंषि दिव्यानि तथाऽऽहरन्तु ।
असींश्च शक्तीश्च गदाश्च गुर्वीः
शङ्खं च जाम्बूनदचित्रनालम् ॥ २४ ॥

'मेरे सेवक बाणोंसे भरे हुए सोलह तरकस रख दें, दिव्य धनुष ले आ दें, बहुत-से खड्गों, शक्तियों, भारी गदाओं तथा सुवर्णजटित विचित्र नालवाले शङ्खको भी ले आकर रख दें ॥

इमां रौक्मीं नागकक्ष्यां विचित्रां
ध्वजं चित्रं दिव्यमिन्दीवराङ्कम् ।
श्लक्ष्णैर्वस्त्रैर्विप्रमृज्यानयन्तु
चित्रां मालां चारुबद्धां सलाजाम् ॥ २५ ॥

हाथीको बाँधनेके लिये बनी हुई इस विचित्र सुनहरी

रस्सीको तथा कमलके चिह्नसे युक्त दिव्य एवं अद्भुत ध्वजको स्वच्छ सुन्दर वस्त्रोंसे पोंछकर ले आवें। इसके सिवा सुन्दर ढंगसे गुँथी हुई विचित्र माला और खील आदि माङ्गलिक वस्तुएँ प्रस्तुत करें ॥ २५ ॥

अश्वानग्र्यान् पाण्डुराभ्रप्रकाशान्
पुष्टान् स्नातान् मन्त्रपूताभिरद्भिः।
तप्तैर्भाण्डैः काञ्चनैरभ्युपेता-
ञ्शीघ्राञ्छीघ्रं सूतपुत्रानयस्व ॥ २६ ॥

'सूतपुत्र! तुम शीघ्र ही मेरे लिये श्रेष्ठ एवं शीघ्रगामी घोड़े ले आओ, जो श्वेत बादलोंके समान उज्ज्वल तथा मन्त्रपूत जलसे नहाये हुए हों, शरीरसे हृष्टपुष्ट हों और जिन्हें सोनेके आभूषणोंसे सजाया गया हो ॥ २६ ॥

रथं चाग्र्यं हेममालावनद्धं
रत्नैश्चित्रं सूर्यचन्द्रप्रकाशैः।
द्रव्यैर्युक्तं सम्प्रहारोपपन्नै-
र्वाहैर्युक्तं तूर्णमावर्तयस्व ॥ २७ ॥

'उन्हीं घोड़ोंसे जुता हुआ सुन्दर रथ शीघ्र ले आओ, जो सोनेकी मालाओंसे अलंकृत, सूर्य और चन्द्रमाके समान प्रकाशित होनेवाले विचित्र रत्नोंसे जटित तथा युद्धोपयोगी सामग्रियोंसे सम्पन्न हो ॥ २७ ॥

चित्राणि चापानि च वेगवन्ति
ज्याश्चोत्तमाः संनहनोपपन्नाः।
तूणांश्च पूर्णान् महतः शराणा-
मासाद्य गात्रावरणानि चैव ॥ २८ ॥

'विचित्र एवं वेगशाली धनुष, उत्तम प्रत्यञ्चा, कवच, बाणोंसे भरे हुए विशाल तरकस और शरीरके आवरण—इन सबको लेकर शीघ्र तैयार हो जाओ ॥ २८ ॥

प्रायात्रिकं चानयताशु सर्वं
दध्ना पूर्णं वीर कांस्यं च हैमम्।
आनीय मालामवबध्य चाङ्गे
प्रवादयन्त्वाशु जयाय भेरीः ॥ २९ ॥

'वीर! रणयात्राकी सारी आवश्यक सामग्री, दहीसे भरे हुए कांस्य और सुवर्णके पात्र आदि सब कुछ शीघ्र ले आओ। यह सब लानेके पश्चात् मेरे गलेमें माला पहनाकर विजय-यात्राके लिये तुमलोग तुरंत नगाड़े बजवा दो ॥ २९ ॥

प्रयाहि सूताशु यतः किरीटी
वृकोदरो धर्मसुतो यमौ च।
तान् वा हनिष्यामि समेत्य संख्ये
भीष्माय गच्छामि हतो द्विषद्भिः ॥ ३० ॥

'सूत! यह सब कार्य करके तुम शीघ्र ही रथ लेकर उस स्थानपर चलो, जहाँ किरीटधारी अर्जुन, भीमसेन, धर्मपुत्र युधिष्ठिर तथा नकुल-सहदेव खड़े हैं। वहाँ युद्धस्थलमें उनसे भिड़कर या तो उन्हींको मार डालूँगा या स्वयं ही शत्रुओंके हाथसे मारा जाकर भीष्मके पास चला जाऊँगा ॥ ३० ॥

यस्मिन् राजा सत्यधृतिर्युधिष्ठिरः
समास्थितो भीमसेनार्जुनौ च।
वासुदेवः सात्यकिः सृंजयाश्च
मन्ये बलं तदजय्यं महीपैः ॥ ३१ ॥

'जिस सेनामें सत्यधृति राजा युधिष्ठिर खड़े हों, भीमसेन, अर्जुन, वासुदेव, सात्यकि तथा सृञ्जय मौजूद हों, उस सेनाको मैं राजाओंके लिये अजेय मानता हूँ ॥ ३१ ॥

तं चेन्मृत्युः सर्वहरोऽभिरक्षेत्
सदाप्रमत्तः समरे किरीटिनम्।
तथापि हन्तास्मि समेत्य संख्ये
यास्यामि वा भीष्मपथा यमाय ॥ ३२ ॥

'तथापि मैं समरभूमिमें सावधान रहकर युद्ध करूँगा और यदि सबका संहार करनेवाली मृत्यु स्वयं आकर अर्जुनकी रक्षा करे तो भी मैं युद्धके मैदानमें उनका सामना करके उन्हें मार डालूँगा अथवा स्वयं ही भीष्मके मार्गसे यमराजका दर्शन करनेके लिये चला जाऊँगा ॥ ३२ ॥

न त्वेवाहं न गमिष्यामि तेषां
मध्ये शूराणां तत्र चाहं ब्रवीमि।
मित्रद्रुहो दुर्बलभक्तयो ये
पापात्मानो न ममैते सहायाः ॥ ३३ ॥

'अब ऐसा तो नहीं हो सकता कि मैं उन शूरवीरोंके बीचमें न जाऊँ। इस विषयमें मैं इतना ही कहता हूँ कि जो मित्रद्रोही हों, जिनकी स्वामिभक्ति दुर्बल हो तथा जिनके मनमें पाप भरा हो; ऐसे लोग मेरे साथ न रहें' ॥ ३३ ॥

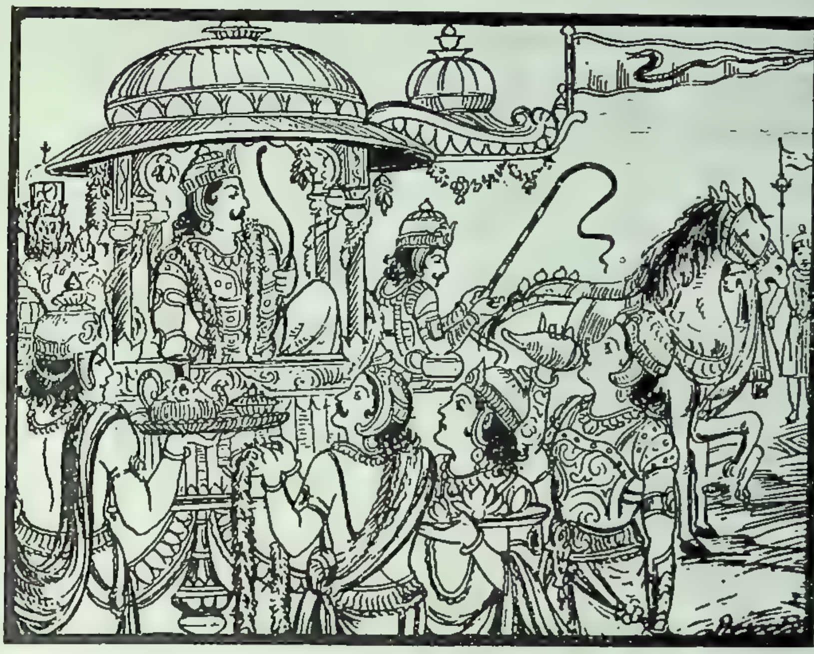
संजय उवाच

समृद्धिमन्तं रथमुत्तमं दृढं
सकूबरं हेमपरिष्कृतं शुभम्।
पताकिनं वातजवैर्हयोत्तमै-
र्युक्तं समास्थाय ययौ जयाय ॥ ३४ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! ऐसा कहकर कर्ण वायुके समान वेगशाली उत्तम घोड़ोंसे जुते हुए, कूबर और पताकासे युक्त, सुवर्णभूषित, सुन्दर, समृद्धिशाली, सुदृढ़ तथा श्रेष्ठ रथपर आरूढ़ हो युद्धमें विजय पानेके लिये चल दिया ॥

सम्पूज्यमानः कुरुभिर्महात्मा
रथर्षभो देवगणैर्यथेन्द्रः।
ययौ तदायोधनमुग्रधन्वा
यत्रावसानं भरतर्षभस्य ॥ ३५ ॥

उस समय देवगणोंसे इन्द्रकी भाँति समस्त कौरवोंसे



वरूथिना महता सध्वजेन
सुवर्णमुक्तामणिरत्नमालिना ।
सदश्वयुक्तेन रथेन कर्णो
मेघस्वनेनार्क इवामितौजाः ॥ ३६ ॥

सुवर्ण, मुक्ता, मणि तथा रत्नोंकी मालासे अलंकृत सुन्दर ध्वजासे सुशोभित, उत्तम घोड़ोंसे जुते हुए तथा मेघके समान गम्भीर घोष करनेवाले रथके द्वारा अमित तेजस्वी कर्ण विशाल सेना साथ लिये युद्धभूमिकी ओर चल दिया ॥ ३६ ॥

हुताशनाभः स हुताशनप्रभे
शुभः शुभे वै स्वरथे धनुर्धरः ।
स्थितो रराजाधिरथिर्महारथः
स्वयं विमाने सुरराडिवास्थितः ॥ ३७ ॥

पूजित हो रथियोंमें श्रेष्ठ, भयंकर धनुर्धर, महामनस्वी कर्ण युद्धके उस मैदानमें गया, जहाँ भरतशिरोमणि भीष्मका देहावसान हुआ था ॥ ३५ ॥

अग्निके समान तेजस्वी अपने सुन्दर रथपर बैठा हुआ अग्नि-सदृश कान्तिमान्, सुन्दर एवं धनुर्धर महारथी अधिरथपुत्र कर्ण विमानमें विराजमान देवराज इन्द्रके समान सुशोभित हुआ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि कर्णनिर्याणे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणाभिषेकपर्वमें कर्णकी रणयात्राविषयक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ३८ श्लोक हैं)

तृतीयोऽध्यायः

भीष्मजीके प्रति कर्णका कथन

संजय उवाच

शरतल्पे महात्मानं शयानममितौजसम् ।
महावातसमूहेन समुद्रमिव शोषितम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! अमित तेजस्वी महात्मा भीष्म बाण-शय्यापर सो रहे थे । उस समय वे प्रलयकालीन महावायुसमूहसे सोख लिये गये समुद्रके समान जान पड़ते थे ॥ १ ॥

दृष्ट्वा पितामहं भीष्मं सर्वक्षत्रान्तकं गुरुम् ।
दिव्यैरस्त्रैर्महेष्वासं पातितं सव्यसाचिना ॥ २ ॥
जयाशा तव पुत्राणां सम्भग्ना शर्म वर्म च ।
अपाराणामिव द्वीपमगाधे गाधमिच्छताम् ॥ ३ ॥

समस्त क्षत्रियोंका अन्त करनेमें समर्थ गुरु एवं पितामह महाधनुर्धर भीष्मको सव्यसाची अर्जुनने अपने दिव्यास्त्रोंके द्वारा मार गिराया था । उन्हें उस अवस्थामें देखकर आपके पुत्रोंकी विजयकी आशा भंग हो गयी । उन्हें अपने कल्याणकी भी आशा नहीं रही । उनके रक्षाकवच भी छिन्न-भिन्न हो गये । कहीं पार न पानेवाले तथा अथाह समुद्रमें थाह चाहनेवाले कौरवोंके लिये भीष्मजी द्वीपके समान आश्रय थे, जो पार्थद्वारा धराशायी कर दिये गये थे ॥ २-३ ॥

स्रोतसा यामुनेनेव शरौघेण परिप्लुतम् ।
महेन्द्रेणेव मैनाकमसह्यं भुवि पातितम् ॥ ४ ॥

वे यमुनाके जलप्रवाहके समान बाणसमूहसे व्याप्त हो रहे थे । उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो महेन्द्रने असह्य मैनाक पर्वतको धरतीपर गिरा दिया हो ॥ ४ ॥

नभश्च्युतमिवादित्यं पतितं धरणीतले ।
शतक्रतुमिवाचिन्त्यं पुरा वृत्रेण निर्जितम् ॥ ५ ॥

वे आकाशसे च्युत होकर पृथ्वीपर पड़े हुए सूर्यके समान तथा पूर्वकालमें वृत्रासुरसे पराजित हुए अचिन्त्य देवराज इन्द्रके सदृश प्रतीत होते थे ॥ ५ ॥

मोहनं सर्वसैन्यस्य युधि भीष्मस्य पातनम् ।
ककुदं सर्वसैन्यानां लक्ष्म सर्वधनुष्मताम् ॥ ६ ॥
धनंजयशरैर्व्याप्तं पितरं ते महाव्रतम् ।
तं वीरशयने वीरं शयानं पुरुषर्षभम् ॥ ७ ॥
भीष्ममाधिरथिर्दृष्ट्वा भरतानां महाद्युतिः ।
अवतीर्य रथादार्तो बाष्पव्याकुलिताक्षरम् ॥ ८ ॥
अभिवाद्याञ्जलिं बद्ध्वा वन्दमानोऽभ्यभाषत ।

उस युद्धस्थलमें भीष्मका गिराया जाना समस्त सैनिकोंको मोहमें डालनेवाला था । आपके ज्येष्ठ पिता महान् व्रतधारी

भीष्म समस्त सैनिकोंमें श्रेष्ठ तथा सम्पूर्ण धनुर्धरोंके शिरोमणि थे । वे अर्जुनके बाणोंसे व्याप्त होकर वीरशय्यापर सो रहे थे । उन भरतवंशी वीर पुरुषप्रवर भीष्मको उस अवस्थामें देखकर अधिरथपुत्र महातेजस्वी कर्ण अत्यन्त आर्त होकर रथसे उतर पड़ा और अञ्जलि बाँध अभिवादनपूर्वक प्रणाम करके आँसूसे गद्गद वाणीमें इस प्रकार बोला—॥ ६–८½ ॥



कर्णोऽहमस्मि भद्रं ते वद मामभि भारत ॥ ९ ॥
पुण्यया क्षेम्यया वाचा चक्षुषा चावलोकय ।

'भारत ! आपका कल्याण हो । मैं कर्ण हूँ । आप अपनी पवित्र एवं मङ्गलमयी वाणीद्वारा मुझसे कुछ कहिये और कल्याणमयी दृष्टिद्वारा मेरी ओर देखिये ॥ ९½ ॥

न नूनं सुकृतस्येह फलं कश्चित् समश्नुते ॥ १० ॥
यत्र धर्मपरो वृद्धः शेते भुवि भवानिह ।

'निश्चय ही इस लोकमें कोई भी अपने पुण्यकर्मोंका फल यहाँ नहीं भोगता है; क्योंकि आप वृद्धावस्थातक सदा धर्ममें ही तत्पर रहे हैं, तो भी यहाँ इस दशामें धरतीपर सो रहे हैं ॥ १०½ ॥

कोशसंचयने मन्त्रे व्यूहे प्रहरणेषु च ॥ ११ ॥
नाहमन्यं प्रपश्यामि कुरूणां कुरुपुङ्गव ।
बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो यः कुरूंस्तारयेद् भयात् ॥ १२ ॥
योधांस्तु बहुधा हत्वा पितृलोकं गमिष्यति ।

'कुरुश्रेष्ठ ! कोश-संग्रह, मन्त्रणा, व्यूह-रचना तथा अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहारमें आपके समान कौरववंशमें दूसरा कोई मुझे नहीं दिखायी देता, जो अपनी विशुद्ध बुद्धिसे युक्त हो समस्त कौरवोंको भयसे उबार सके तथा यहाँ बहुत-से योद्धाओंका वध करके अन्तमें पितृ-लोकको प्राप्त हो ॥ ११-१२½ ॥

अद्यप्रभृति संक्रुद्धा व्याघ्रा इव मृगक्षयम् ॥ १३ ॥
पाण्डवा भरतश्रेष्ठ करिष्यन्ति कुरुक्षयम् ।

'भरतश्रेष्ठ ! आजसे क्रोधमें भरे हुए पाण्डव उसी प्रकार कौरवोंका विनाश करेंगे, जैसे व्याघ्र हिरनोंका ॥ १३½ ॥

अद्य गाण्डीवघोषस्य वीर्यज्ञाः सव्यसाचिनः ॥ १४ ॥
कुरवः संत्रसिष्यन्ति वज्रपाणेरिवासुराः ।

'आज गाण्डीवकी टंकार करनेवाले सव्यसाची अर्जुनके पराक्रमको जाननेवाले कौरव उनसे उसी प्रकार डरेंगे, जैसे वज्रधारी इन्द्रसे असुर भयभीत होते हैं ॥ १४½ ॥

अद्य गाण्डीवमुक्ताना-
मशनीनामिव स्वनः ॥ १५ ॥
त्रासयिष्यति बाणानां
कुरूनन्यांश्च पार्थिवान् ।

'आज गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंका वज्रपातके समान शब्द कौरवों तथा अन्य राजाओंको भयभीत कर देगा ॥ १५½ ॥

समिद्धोऽग्निर्यथा वीर
महाज्वालो द्रुमान् दहेत् ॥ १६ ॥
धार्तराष्ट्रान् प्रधक्ष्यन्ति
तथा बाणाः किरीटिनः ।

'वीर ! जैसे बड़ी-बड़ी लपटोंसे युक्त प्रज्वलित हुई आग वृक्षोंको जलाकर भस्म कर देती है, उसी प्रकार अर्जुनके बाण धृतराष्ट्रके पुत्रों तथा उनके सैनिकोंको जला डालेंगे ॥ १६½ ॥

येन येन प्रसरतो वाय्वग्नी सहितौ वने ॥ १७ ॥
तेन तेन प्रदहतो भूरिगुल्मतृणद्रुमान् ।

'वायु और अग्निदेव—ये दोनों एक साथ वनमें जिस-जिस मार्गसे फैलते हैं, उसी-उसीके द्वारा बहुत-से तृण, वृक्ष और लताओंको भस्म करते जाते हैं ॥ १७½ ॥

यादृशोऽग्निः समुद्भूतस्तादृक् पार्थो न संशयः ॥ १८ ॥
यथा वायुर्नरव्याघ्र तथा कृष्णो न संशयः ।

'पुरुषसिंह ! जैसी प्रज्वलित अग्नि होती है, वैसे ही कुन्तीकुमार अर्जुन हैं—इसमें संशय नहीं है और जैसी वायु होती है, वैसे ही श्रीकृष्ण हैं, इसमें भी संशय नहीं है ॥ १८½ ॥

नदतः पाञ्चजन्यस्य रसतो गाण्डिवस्य च ॥ १९ ॥
श्रुत्वा सर्वाणि सैन्यानि त्रासं यास्यन्ति भारत ।

'भारत ! बजते हुए पाञ्चजन्य और टंकारते हुए गाण्डीव धनुषकी भयंकर ध्वनि सुनकर आज सारी कौरव सेनाएँ भयभीत हो उठेंगी ॥ १९½ ॥

कपिध्वजस्योत्पततो रथस्यामित्रकर्षिणः ॥ २० ॥
शब्दं सोढुं न शक्ष्यन्ति त्वामृते वीर पार्थिवाः ।

'वीर ! शत्रुसूदन कपिध्वज अर्जुनके उड़ते हुए रथकी घरघराहटको आपके सिवा दूसरे राजा नहीं सह सकेंगे ॥ २०½ ॥

को ह्यर्जुनं योधयितुं त्वदन्यः पार्थिवोऽर्हति ॥ २१ ॥
यस्य दिव्यानि कर्माणि प्रवदन्ति मनीषिणः ।
अमानुषैश्च संग्रामस्त्र्यम्बकेण महात्मना ॥ २२ ॥
तस्माच्चैव वरं प्राप्तो दुष्प्रापमकृतात्मभिः ।
कोऽन्यः शक्तो रणे जेतुं पूर्वं यो न जितस्त्वया॥ २३ ॥

'आपके सिवा दूसरा कौन राजा अर्जुनसे युद्ध कर सकता है ? मनीषी पुरुष जिनके दिव्य कर्मोंका बखान करते हैं, जो मानवेतर प्राणियों--असुरों तथा दैत्योंसे भी संग्राम कर चुके हैं, त्रिनेत्रधारी महात्मा भगवान् शङ्करके साथ भी जिन्होंने युद्ध किया है और उनसे वह उत्तम वर प्राप्त किया है, जो अजितेन्द्रिय पुरुषोंके लिये सर्वथा दुर्लभ है, जिन्हें पहले आप भी जीत नहीं सके हैं, उन्हें आज दूसरा कौन युद्धमें जीत सकता है ? ॥ २१-२३ ॥

जितो येन रणे रामो भवता वीर्यशालिना ।
क्षत्रियान्तकरो घोरो देवदानवदर्पहा ॥ २४ ॥

'आप अपने पराक्रमसे शोभा पानेवाले वीर थे । आपने देवताओं तथा दानवोंका दर्प दलन करनेवाले क्षत्रियहन्ता घोर परशुरामजीको भी युद्धमें जीत लिया है ॥ २४ ॥

तमद्याहं पाण्डवं युद्धशौण्ड-
ममृष्यमाणो भवता चानुशिष्टः ।
आशीविषं दृष्टिहरं सुघोरं
शूरं शक्ष्याम्यस्त्रबलान्निहन्तुम् ॥ २५ ॥

'आज यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं अमर्षमें भरकर दृष्टि हर लेनेवाले विषधर सर्पके समान अत्यन्त भयंकर युद्ध-कुशल शूरवीर पाण्डुपुत्र अर्जुनको अपने अस्त्रबलसे मार सकूँगा' ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि कर्णवाक्ये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणाभिषेक पर्वमें कर्णवाक्यविषयक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

भीष्मजीका कर्णको प्रोत्साहन देकर युद्धके लिये भेजना तथा कर्णके आगमनसे कौरवोंका हर्षोल्लास

संजय उवाच

तस्य लालप्यतः श्रुत्वा कुरुवृद्धः पितामहः ।
देशकालोचितं वाक्यमब्रवीत् प्रीतमानसः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं--राजन् ! इस प्रकार बहुत कुछ बोलते हुए कर्णकी बात सुनकर कुरुकुलके वृद्ध पितामह भीष्मने प्रसन्न-चित्त होकर देश और कालके अनुसार यह बात कही--॥ १ ॥

समुद्र इव सिन्धूनां ज्योतिषामिव भास्करः ।
सत्यस्य च यथा सन्तो बीजानामिव चोर्वरा ॥ २ ॥
पर्जन्य इव भूतानां प्रतिष्ठा सुहृदां भव ।
बान्धवास्त्वानुजीवन्तु सहस्राक्षमिवामराः ॥ ३ ॥

'कर्ण ! जैसे सरिताओंका आश्रय समुद्र, ज्योतिर्मय पदार्थोंका सूर्य, सत्यका साधु पुरुष, बीजोंका उर्वरा भूमि और प्राणियोंकी जीविकाका आधार मेघ है, उसी प्रकार तुम भी अपने सुहृदोंके आश्रयदाता बनो । जैसे देवता सहस्रलोचन इन्द्रका आश्रय लेकर जीवन-निर्वाह करते हैं, उसी प्रकार समस्त बन्धु-बान्धव तुम्हारा आश्रय लेकर जीवन धारण करें ॥

मानहा भव शत्रूणां मित्राणां नन्दिवर्धनः ।
कौरवाणां भव गतिर्यथा विष्णुर्दिवौकसाम् ॥ ४ ॥

'तुम शत्रुओंका मान मर्दन करनेवाले और मित्रोंका आनन्द बढ़ानेवाले होओ । जैसे भगवान् विष्णु देवताओंके आश्रय हैं, उसी प्रकार तुम कौरवोंके आधार बनो ॥ ४ ॥

स्वबाहुबलवीर्येण धार्तराष्ट्रजयैषिणा ।
कर्ण राजपुरं गत्वा काम्बोजा निर्जितास्त्वया ॥ ५ ॥

'कर्ण ! तुमने दुर्योधनके लिये विजयकी इच्छा रखकर अपनी भुजाओंके बल और पराक्रमसे राजपुरमें जाकर समस्त काम्बोजोंपर विजय पायी है ॥ ५ ॥

गिरिव्रजगताश्चापि नग्नजित्प्रमुखा नृपाः ।
अम्बष्ठाश्च विदेहाश्च गान्धाराश्च जितास्त्वया ॥ ६ ॥

'गिरिव्रजके निवासी नग्नजित् आदि नरेश, अम्बष्ठ, विदेह और गान्धारदेशीय क्षत्रियोंको भी तुमने परास्त किया है ॥ ६ ॥

हिमवद्दुर्गनिलयाः किराता रणकर्कशाः ।
दुर्योधनस्य वशगास्त्वया कर्ण पुरा कृताः ॥ ७ ॥

'कर्ण ! पूर्वकालमें तुमने हिमालयके दुर्गमें निवास करने-वाले रणकर्कश किरातोंको भी जीतकर दुर्योधनके अधीन कर दिया था ॥ ७ ॥

उत्कला मेकलाः पौण्ड्राः कलिङ्गान्ध्राश्च संयुगे ।
निषादाश्च त्रिगर्ताश्च बाह्लीकाश्च जितास्त्वया ॥ ८ ॥

'उत्कल, मेकल, पौण्ड्र, कलिंग, अंध्र, निषाद, त्रिगर्त और बाह्लीक आदि देशोंके राजाओंको भी तुमने परास्त किया है ॥ ८ ॥

तत्र तत्र च संग्रामे दुर्योधनहितैषिणा ।
बहवश्च जिताः कर्ण त्वया वीरा महौजसा ॥ ९ ॥

'कर्ण ! इनके सिवा और भी जहाँ-तहाँ संग्राम-भूमिमें दुर्योधनका हित चाहनेवाले तुम महापराक्रमी शूरवीरने बहुत-से वीरोंपर विजय पायी है ॥ ९ ॥

यथा दुर्योधनस्तात सज्ञातिकुलबान्धवः।
तथा त्वमपि सर्वेषां कौरवाणां गतिर्भव ॥ १० ॥

'तात ! कुटुम्बी, कुल और बन्धु-बान्धवोंसहित दुर्योधन जैसे सब कौरवोंका आधार है, उसी प्रकार तुम भी कौरवोंके आश्रयदाता बनो ॥ १० ॥

शिवेनाभिवदामि त्वां गच्छ युध्यस्व शत्रुभिः।
अनुशाधि कुरून् संख्ये धत्स्व दुर्योधने जयम् ॥ ११ ॥

'मैं तुम्हारा कल्याणचिन्तन करते हुए तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ, जाओ, शत्रुओंके साथ युद्ध करो। रणक्षेत्रमें कौरव सैनिकोंको कर्तव्यका आदेश दो और दुर्योधनको विजय प्राप्त कराओ ॥ ११ ॥

भवान् पौत्रसमोऽस्माकं यथा दुर्योधनस्तथा।
तवापि धर्मतः सर्वे यथा तस्य वयं तथा ॥ १२ ॥

'दुर्योधनकी तरह तुम भी मेरे पौत्रके समान हो। धर्मतः जैसे मैं उसका हितैषी हूँ, उसी प्रकार तुम्हारा भी हूँ ॥ १२ ॥

यौनात् सम्बन्धकाल्लोके विशिष्टं संगतं सताम्।
सद्भिः सह नरश्रेष्ठ प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ १३ ॥

'नरश्रेष्ठ ! संसारमें यौन (कौटुम्बिक) सम्बन्धकी अपेक्षा साधु पुरुषोंके साथ की हुई मैत्रीका सम्बन्ध श्रेष्ठ है; यह मनीषी महात्मा कहते हैं ॥ १३ ॥

स सत्यसंगतो भूत्वा ममेदमिति निश्चितः।
कुरूणां पालय बलं यथा दुर्योधनस्तथा ॥ १४ ॥

'तुम सच्चे मित्र होकर और यह सब कुछ मेरा ही है, ऐसा निश्चित विचार रखकर दुर्योधनके ही समान समस्त कौरवदलकी रक्षा करो' ॥ १४ ॥

निशम्य वचनं तस्य चरणावभिवाद्य च।
ययौ वैकर्तनः कर्णः समीपं सर्वधन्विनाम् ॥ १५ ॥

भीष्मजीका यह वचन सुनकर विकर्तनपुत्र कर्णने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और वह फिर सम्पूर्ण धनुर्धर सैनिकोंके समीप चला गया ॥ १५ ॥

सोऽभिवीक्ष्य नरौघाणां स्थानमप्रतिमं महत्।
व्यूढप्रहरणोरस्कं सैन्यं तत् समबृंहयत् ॥ १६ ॥

वहाँ कर्णने कौरव सैनिकोंका वह अनुपम एवं विशाल स्थान देखा। समस्त सैनिक व्यूहाकारमें खड़े थे और अपने वक्षःस्थलके समीप अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंको बाँधे हुए थे। कर्णने उस समय सारी कौरव-सेनाको उत्साहित किया ॥

हृषिताः कुरवः सर्वे दुर्योधनपुरोगमाः।
उपागतं महाबाहुं सर्वानीकपुरःसरम् ॥ १७ ॥
कर्णं दृष्ट्वा महात्मानं युद्धाय समुपस्थितम्।

समस्त सेनाओंके आगे चलनेवाले महाबाहु, महामनस्वी कर्णको आया और युद्धके लिये उपस्थित हुआ देख दुर्योधन आदि समस्त कौरव हर्षसे खिल उठे ॥ १७½ ॥

क्ष्वेडितास्फोटितरवैः सिंहनादरवैरपि।
धनुःशब्दैश्च विविधैः कुरवः समपूजयन् ॥ १८ ॥

उन समस्त कौरवोंने उस समय गर्जने, ताल ठोकने, सिंहनाद करने तथा नाना प्रकारसे धनुषकी टंकार फैलाने आदिके द्वारा कर्णका स्वागत-सत्कार किया ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि कर्णाश्वासे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणाभिषेकपर्वमें कर्णका आश्वासनविषयक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

कर्णका दुर्योधनके समक्ष सेनापति-पदके लिये द्रोणाचार्यका नाम प्रस्तावित करना

संजय उवाच

रथस्थं पुरुषव्याघ्रं दृष्ट्वा कर्णमवस्थितम्।
हृष्टो दुर्योधनो राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! पुरुषसिंह कर्णको रथपर बैठा देख दुर्योधनने प्रसन्न होकर इस प्रकार कहा— ॥ १ ॥

सनाथमिव मन्येऽहं भवता पालितं बलम्।
अत्र किं नु समर्थं यद्धितं तत् सम्प्रधार्यताम् ॥ २ ॥

'कर्ण ! तुम्हारे द्वारा इस सेनाका संरक्षण हो रहा है, इससे मैं इसे सनाथ हुई-सी मानता हूँ। अब यहाँ हमारे लिये क्या करना उपयोगी और हितकर है, इसका निश्चय करो' ॥ २ ॥

कर्ण उवाच

ब्रूहि नः पुरुषव्याघ्र त्वं हि प्राज्ञतमो नृप।
यथा चार्थपतिः कृत्यं पश्यते न तथेतरः ॥ ३ ॥

कर्णने कहा—पुरुषसिंह नरेश्वर ! तुम तो बड़े बुद्धिमान् हो। स्वयं ही अपना विचार हमें बताओ; क्योंकि धनका स्वामी उसके सम्बन्धमें आवश्यक कर्तव्यका जैसा विचार करता है, वैसा दूसरा कोई नहीं कर सकता ॥ ३ ॥

ते स्म सर्वे तव वचः श्रोतुकामा नरेश्वर।
नान्याय्यं हि भवान् वाक्यं ब्रूयादिति मतिर्मम ॥ ४ ॥

अतः नरेश्वर ! हम सब लोग तुम्हारी ही बात सुनना चाहते हैं। मेरा विश्वास है कि तुम कोई ऐसी बात नहीं कहोगे, जो न्यायसंगत न हो ॥ ४ ॥

दुर्योधन उवाच

भीष्मः सेनाप्रणेताऽऽसीद् वयसा विक्रमेण च ।
श्रुतेन चोपसम्पन्नः सर्वैर्योधगणैस्तथा ॥ ५ ॥
तेनातियशसा कर्ण घ्नता शत्रुगणान् मम ।
सुयुद्धेन दशाहानि पालिताः स्मो महात्मना ॥ ६ ॥

दुर्योधनने कहा—कर्ण ! पहले आयु, बल-पराक्रम और विद्यामें सबसे बढ़े-चढ़े पितामह भीष्म हमारे सेनापति थे । वे अत्यन्त यशस्वी महात्मा पितामह समस्त योद्धाओंको साथ ले उत्तम युद्ध-प्रणालीद्वारा मेरे शत्रुओंका संहार करते हुए दस दिनोंतक हमारा पालन करते आये हैं ॥ ५-६ ॥

तस्मिन्नसुकरं कर्म कृतवत्यास्थिते दिवम् ।
कं नु सेनाप्रणेतारं मन्यसे तदनन्तरम् ॥ ७ ॥

वे तो अत्यन्त दुष्कर कर्म करके अब स्वर्गलोकके पथपर आरूढ़ हो गये हैं । ऐसी दशामें उनके बाद तुम किसे सेनापति बनाये जाने योग्य मानते हो ? ॥ ७ ॥

न विना नायकं सेना मुहूर्तमपि तिष्ठति ।
आहवेष्वाहवश्रेष्ठ नेतृहीनेव नौर्जले ॥ ८ ॥

समराङ्गणके श्रेष्ठ वीर ! सेनापतिके बिना कोई सेना दो घड़ी भी संग्राममें टिक नहीं सकती है । ठीक उसी तरह, जैसे मल्लाहके बिना नाव जलमें स्थिर नहीं रह सकती है ॥

यथा ह्यकर्णधारा नौ रथश्चासारथिर्यथा ।
द्रवेद् यथेष्टं तद्वत् स्यादृते सेनापतिं बलम् ॥ ९ ॥

जैसे बिना नाविककी नाव जहाँ-कहीं भी जलमें बह जाती है और बिना सारथिका रथ चाहे जहाँ भटक जाता है, उसी प्रकार सेनापतिके बिना सेना भी जहाँ चाहे भाग सकती है ॥ ९ ॥

अदेशिको यथा सार्थः सर्वः कृच्छ्रं समृच्छति ।
अनायका तथा सेना सर्वान् दोषान् समर्छति ॥ १० ॥

जैसे कोई मार्गदर्शक न होनेपर यात्रियोंका सारा दल भारी संकटमें पड़ जाता है, उसी प्रकार सेनानायकके बिना सेनाको सब प्रकारकी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है ॥

स भवान् वीक्ष्य सर्वेषु मामकेषु महात्मसु ।
पश्य सेनापतिं युक्तमनु शान्तनवादिह ॥ ११ ॥

अतः तुम मेरे पक्षके सब महामनस्वी वीरोंपर दृष्टि डालकर यह देखो कि भीष्मजीके बाद अब कौन उपयुक्त सेनापति हो सकता है ॥ ११ ॥

यं हि सेनाप्रणेतारं भवान् वक्ष्यति संयुगे ।
तं वयं सहिताः सर्वे करिष्यामो न संशयः ॥ १२ ॥

इस युद्धस्थलमें तुम जिसे सेनापतिपदके योग्य बताओगे, निःसंदेह हम सब लोग मिलकर उसीको सेनानायक बनायेंगे ॥ १२ ॥

कर्ण उवाच

सर्व एव महात्मान इमे पुरुषसत्तमाः ।
सेनापतित्वमर्हन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥ १३ ॥

कर्णने कहा—राजन् ! ये सभी महामनस्वी पुरुषप्रवर नरेश सेनापति होनेके योग्य हैं । इस विषयमें कोई अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ १३ ॥

कुलसंहननज्ञानैर्बलविक्रमबुद्धिभिः ।
युक्ताः श्रुतज्ञा धीमन्त आहवेष्वनिवर्तिनः ॥ १४ ॥

जो राजा यहाँ मौजूद हैं, वे सभी अपने कुल, शरीर, ज्ञान, बल, पराक्रम और बुद्धिकी दृष्टिसे सेनापति-पदके योग्य हैं । ये सब-के-सब वेदज्ञ, बुद्धिमान् और युद्धसे कभी पीछे न हटनेवाले हैं ॥ १४ ॥

युगपन्न तु ते शक्याः कर्तुं सर्वे पुरःसराः ।
एक एव तु कर्तव्यो यस्मिन् वैशेषिका गुणाः ॥ १५ ॥

परंतु सब-के-सब एक ही समय सेनापति नहीं बनाये जा सकते, इसलिये जिस एकमें सभी विशिष्ट गुण हों, उसीको अपनी सेनाका प्रधान बनाना चाहिये ॥ १५ ॥

अन्योन्यस्पर्धिनां ह्येषां यद्येकं यं करिष्यसि ।
शेषा विमनसो व्यक्तं न योत्स्यन्ति हितास्तव ॥ १६ ॥

किंतु ये सभी नरेश परस्पर एक दूसरेसे स्पर्धा रखनेवाले हैं । यदि इनमेंसे किसी एकको सेनापति बना लोगे तो शेष सब लोग मन-ही-मन अप्रसन्न हो तुम्हारे हितकी भावनासे युद्ध नहीं करेंगे, यह बात बिल्कुल स्पष्ट है ॥ १६ ॥

अयं च सर्वयोधानामाचार्यः स्थविरो गुरुः ।
युक्तः सेनापतिः कर्तुं द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ॥ १७ ॥

इसलिये जो इन समस्त योद्धाओंके आचार्य, वयोवृद्ध गुरु तथा शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ हैं, वे आचार्य द्रोण ही इस समय सेनापति बनाये जानेके योग्य हैं ॥ १७ ॥

को हि तिष्ठति दुर्धर्षे द्रोणे शस्त्रभृतां वरे ।
सेनापतिः स्यादन्योऽस्माच्छुक्राङ्गिरसदर्शनात् ॥ १८ ॥

सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ, दुर्जय वीर द्रोणाचार्यके रहते हुए इन शुक्राचार्य और बृहस्पतिके समान महानुभावको छोड़कर दूसरा कौन सेनापति हो सकता है ? ॥ १८ ॥

न च सोऽप्यस्ति ते योधः सर्वराजसु भारत ।
द्रोणं यः समरे यान्तं नानुयास्यति संयुगे ॥ १९ ॥

भारत ! समस्त राजाओंमें तुम्हारा कोई भी ऐसा योद्धा नहीं है, जो समरभूमिमें आगे जानेवाले द्रोणाचार्यके पीछे-पीछे न जाय ॥ १९ ॥

एष सेनाप्रणेतॄणामेष शस्त्रभृतामपि ।
एष बुद्धिमतां चैव श्रेष्ठो राजन् गुरुस्तव ॥ २० ॥

राजन् ! तुम्हारे ये गुरुदेव समस्त सेनापतियों, शस्त्रधारियों और बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ हैं ॥ २० ॥

एवं दुर्योधनाचार्यमाशु सेनापतिं कुरु ।
जिगीषन्तोऽसुरान् संख्ये कार्तिकेयमिवामराः॥ २१ ॥

अतः दुर्योधन ! जैसे असुरोंपर विजयकी इच्छा रखनेवाले देवताओंने रणक्षेत्रमें कार्तिकेयको अपना सेनापति बनाया था, इसी प्रकार तुम भी आचार्य द्रोणको शीघ्र सेनापति बनाओ ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि कर्णवाक्ये पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणाभिषेकपर्वमें कर्णवाक्यविषयक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

दुर्योधनका द्रोणाचार्यसे सेनापति होनेके लिये प्रार्थना करना

संजय उवाच

कर्णस्य वचनं श्रुत्वा राजा दुर्योधनस्तदा ।
सेनामध्यगतं द्रोणमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं-राजन् ! कर्णका यह कथन सुनकर उस समय राजा दुर्योधनने सेनाके मध्यभागमें स्थित हुए आचार्य द्रोणसे इस प्रकार कहा ॥ १ ॥

दुर्योधन उवाच

वर्णश्रैष्ठ्यात् कुलोत्पत्त्या श्रुतेन वयसा धिया ।
वीर्याद् दाक्ष्यादधृष्यत्वादर्थज्ञानान्नयाज्जयात् ॥ २ ॥
तपसा च कृतज्ञत्वाद् वृद्धः सर्वगुणैरपि ।
युक्तो भवत्समो गोप्ता राज्ञामन्यो न विद्यते ॥ ३ ॥
स भवान् पातु नः सर्वान् देवानिव शतक्रतुः ।
भवन्नेत्राः पराञ्जेतुमिच्छामो द्विजसत्तम ॥ ४ ॥

दुर्योधन बोला—द्विजश्रेष्ठ ! आप उत्तम वर्ण, श्रेष्ठ कुलमें जन्म, शास्त्रज्ञान, अवस्था, बुद्धि, पराक्रम, युद्धकौशल, अजेयता, अर्थज्ञान, नीति, विजय, तपस्या तथा कृतज्ञता आदि समस्त गुणोंके द्वारा सबसे बढ़े-चढ़े हैं । आपके समान योग्य संरक्षक इन राजाओंमें भी दूसरा नहीं है । अतः जैसे इन्द्र सम्पूर्ण देवताओंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप हमलोगोंकी रक्षा करें । हम आपके नेतृत्वमें रहकर शत्रुओंपर विजय पाना चाहते हैं ॥ २–४ ॥



रुद्राणामिव कापाली वसूनामिव पावकः ।
कुबेर इव यक्षाणां मरुतामिव वासवः ॥ ५ ॥
वसिष्ठ इव विप्राणां तेजसामिव भास्करः ।
पितृणामिव धर्मेन्द्रो यादसामिव चाम्बुराट् ॥ ६ ॥
नक्षत्राणामिव शशी दितिजानामिवोशनाः ।
श्रेष्ठः सेनाप्रणेतॄणां स नः सेनापतिर्भव ॥ ७ ॥

रुद्रोंमें शंकर, वसुओंमें पावक, यक्षोंमें कुबेर, देवताओंमें इन्द्र, ब्राह्मणोंमें वसिष्ठ, तेजोमय पदार्थोंमें भगवान् सूर्य, पितरोंमें धर्मराज, जलचरोंमें वरुणदेव, नक्षत्रोंमें चन्द्रमा और दैत्योंमें शुक्राचार्यके समान आप समस्त सेनानायकोंमें श्रेष्ठ हैं; अतः हमारे सेनापति होइये ॥ ५–७ ॥

अक्षौहिण्यो दशैका च वशगाः सन्तु तेऽनघ ।
ताभिः शत्रून् प्रतिव्यूह्य जहीन्द्रो दानवानिव ॥ ८ ॥

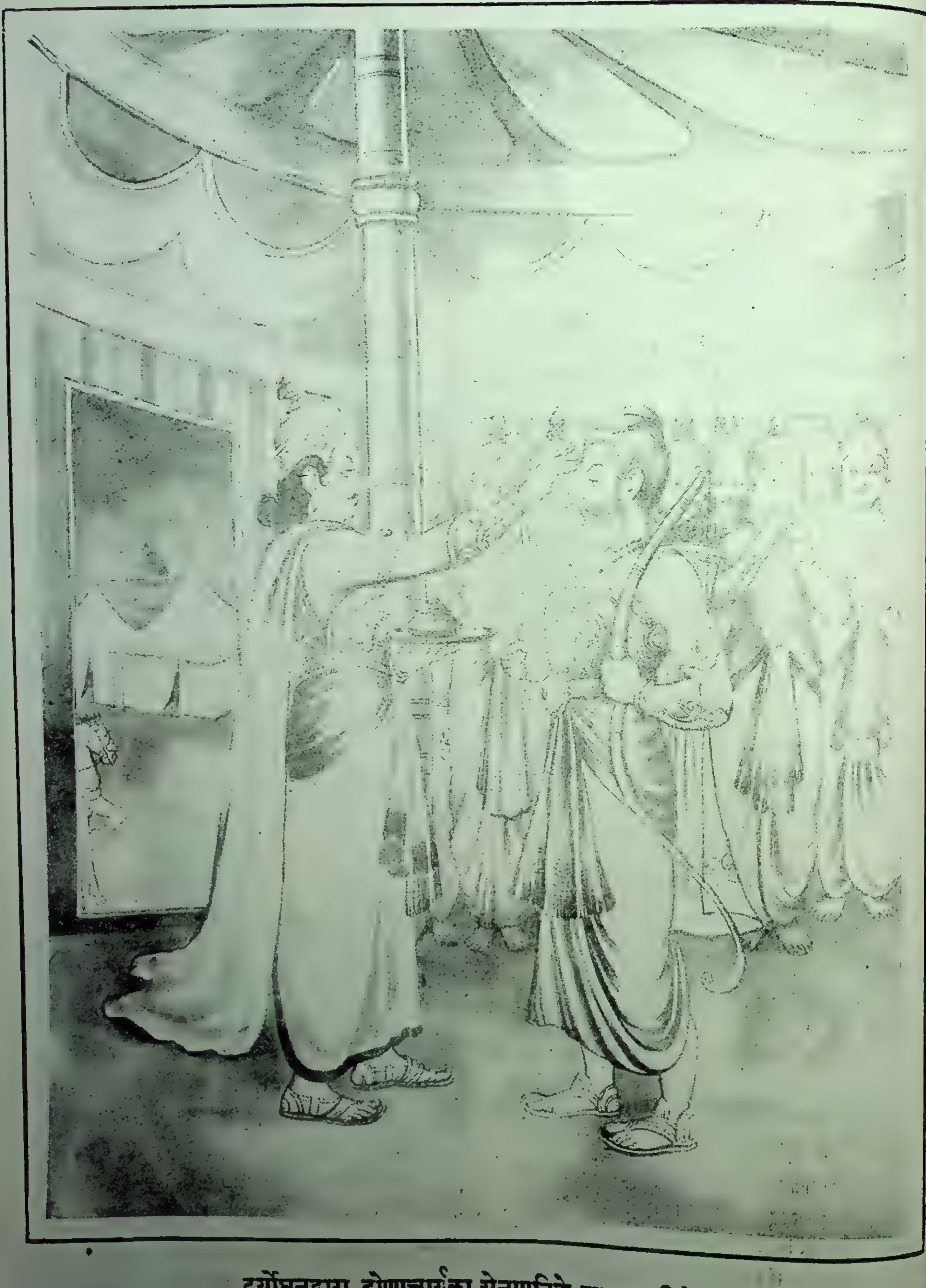
अनघ ! मेरी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ आपके अधीन रहें । उन सबके द्वारा शत्रुओंके मुकाबलेमें व्यूह बनाकर आप मेरे विरोधियोंका उसी प्रकार नाश कीजिये, जैसे इन्द्र दैत्योंका नाश करते हैं ॥ ८ ॥

प्रयातु नो भवानग्रे देवानामिव पावकिः ।
अनुयास्यामहे त्वाजौ सौरभेया इवर्षभम् ॥ ९ ॥

जैसे कार्तिकेय देवताओंके आगे चलते हैं, उसी प्रकार आप हमलोगोंके आगे चलिये । जैसे बछड़े साँड़के पीछे चलते हैं, उसी प्रकार युद्धमें हम सब लोग आपके पीछे चलेंगे ॥

उग्रधन्वा महेष्वासो दिव्यं विस्फारयन् धनुः ।
अग्रेभवं त्वां तु दृष्ट्वा नार्जुनः प्रहरिष्यति ॥ १० ॥

आपको अग्रगामी सेनापतिके रूपमें देखकर भयंकर



दुर्योधनद्वारा द्रोणाचार्यका सेनापतिके पदपर अभिषेक

धनुष धारण करनेवाले महाधनुर्धर अर्जुन अपने दिव्य धनुषकी टंकार फैलाते हुए भी प्रहार नहीं करेंगे ॥ १० ॥

ध्रुवं युधिष्ठिरं संख्ये सानुबन्धं सबान्धवम् ।
जेष्यामि पुरुषव्याघ्र भवान् सेनापतिर्यदि ॥ ११ ॥

पुरुषसिंह ! यदि आप मेरे सेनापति हो जायँ तो मैं युद्धमें निश्चय ही भाइयों तथा सगे-सम्बन्धियोंसहित युधिष्ठिरको जीत लूँगा ॥ ११ ॥

संजय उवाच

एवमुक्ते ततो द्रोणं जयेत्यूचुर्नराधिपाः ।
सिंहनादेन महता हर्षयन्तस्तवात्मजम् ॥ १२ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! दुर्योधनके ऐसा कहनेपर सब राजा अपने महान् सिंहनादसे आपके पुत्रका हर्ष बढ़ाते हुए द्रोणसे बोले—'आचार्य ! आपकी जय हो' ॥ १२ ॥

सैनिकाश्च मुदा युक्ता वर्धयन्ति द्विजोत्तमम् ।
दुर्योधनं पुरस्कृत्य प्रार्थयन्तो महद् यशः ।
दुर्योधनं ततो राजन् द्रोणो वचनमब्रवीत् ॥ १३ ॥

दूसरे सैनिक भी प्रसन्न होकर दुर्योधनको आगे करके महान् यशकी अभिलाषा रखते हुए द्रोणाचार्यकी प्रशंसा करके उनका उत्साह बढ़ाने लगे । राजन् ! उस समय द्रोणाचार्यने दुर्योधनसे कहा ॥ १३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि द्रोणप्रोत्साहने षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणाभिषेकपर्वमें द्रोणको उत्साह-प्रदानविषयक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

द्रोणाचार्यका सेनापतिके पदपर अभिषेक, कौरव-पाण्डव-सेनाओंका युद्ध और द्रोणका पराक्रम

द्रोण उवाच

वेदं षडङ्गं वेदाहमर्थविद्यां च मानवीम् ।
त्रैयम्बकमथेष्वस्त्रं शस्त्राणि विविधानि च ॥ १ ॥

द्रोणाचार्यने कहा—राजन् ! मैं छहों अङ्गोंसहित वेद, मनुजीका कहा हुआ अर्थशास्त्र, भगवान् शंकरकी दी हुई बाण-विद्या और अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र भी जानता हूँ ॥ १ ॥

ये चाप्युक्ता मयि गुणा भवद्भिर्जयकाङ्क्षिभिः ।
चिकीर्षुस्तानहं सर्वान् योधयिष्यामि पाण्डवान् ॥२॥

विजयकी अभिलाषा रखनेवाले तुमलोगोंने मुझमें जो-जो गुण बताये हैं, उन सबको प्राप्त करनेकी इच्छासे मैं पाण्डवोंके साथ युद्ध करूँगा ॥ २ ॥

पार्षतं तु रणे राजन् न हनिष्ये कथंचन ।
स हि सृष्टो वधार्थाय ममैव पुरुषर्षभः ॥ ३ ॥

राजन् ! मैं द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नको युद्धस्थलमें किसी प्रकार भी नहीं मारूँगा; क्योंकि वह पुरुषप्रवर धृष्टद्युम्न मेरे ही वधके लिये उत्पन्न हुआ है ॥ ३ ॥

योधयिष्यामि सैन्यानि नाशयन् सर्वसोमकान् ।
न च मां पाण्डवा युद्धे योधयिष्यन्ति हर्षिताः ॥ ४ ॥

मैं समस्त सोमकोंका संहार करते हुए पाण्डव-सेनाओंके साथ युद्ध करूँगा; परंतु पाण्डवलोग युद्धमें प्रसन्नतापूर्वक मेरा सामना नहीं करेंगे ॥ ४ ॥

संजय उवाच

स एवमभ्यनुज्ञातश्चक्रे सेनापतिं ततः ।
द्रोणं तव सुतो राजन् विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ५ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार आचार्य द्रोणकी अनुमति मिल जानेपर आपके पुत्र दुर्योधनने उन्हें शास्त्रीय विधिके अनुसार सेनापतिके पदपर अभिषिक्त किया ॥

अथाभिषिषिचुर्द्रोणं दुर्योधनमुखा नृपाः ।
सैनापत्ये यथा स्कन्दं पुरा शक्रमुखाः सुराः ॥ ६ ॥

तदनन्तर जैसे पूर्वकालमें इन्द्र आदि देवताओंने स्कन्दको सेनापतिके पदपर अभिषिक्त किया था, उसी प्रकार दुर्योधन आदि राजाओंने भी द्रोणाचार्यका अभिषेक किया।६।

ततो वादित्रघोषेण शङ्खानां च महास्वनैः ।
प्रादुरासीत् कृते द्रोणे हर्षः सेनापतौ तदा ॥ ७ ॥

उस समय वाद्योंके घोष तथा शङ्खोंकी गम्भीर ध्वनिके साथ द्रोणाचार्यके सेनापति बना लिये जानेपर सब लोगोंके हृदयमें महान् हर्ष प्रकट हुआ ॥ ७ ॥

ततः पुण्याहघोषेण स्वस्तिवादस्वनेन च ।
संस्तवैर्गीतशब्दैश्च सूतमागधवन्दिनाम् ॥ ८ ॥
जयशब्दैर्द्विजाग्र्याणां सुभगानर्तितैस्तथा ।
सत्कृत्य विधिना द्रोणं मेनिरे पाण्डवाञ्जितान् ॥ ९ ॥

पुण्याहवाचन, स्वस्तिवाचन, सूत, मागध और वन्दीजनोंके स्तोत्र, गीत तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके जय-जयकारके शब्दसे एवं नाचनेवाली स्त्रियोंके नृत्यसे द्रोणाचार्यका विधिवत् सत्कार करके कौरवोंने यह मान लिया कि अब पाण्डव पराजित हो गये ॥ ८-९ ॥

सैनापत्यं तु सम्प्राप्य भारद्वाजो महारथः ।
युयुत्सुर्व्यूह्य सैन्यानि प्रायात् तव सुतैः सह ॥ १० ॥

राजन् ! महारथी द्रोणाचार्य सेनापतिका पद पाकर अपनी सेनाकी व्यूह-रचना करके आपके

पुत्रोंको साथ ले युद्धके लिये उत्सुक हो आगे बढ़े ॥ १० ॥

सैन्धवश्च कलिङ्गश्च विकर्णश्च तवात्मजः ।
दक्षिणं पार्श्वमास्थाय समतिष्ठन्त दंशिताः ॥ ११ ॥

सिन्धुराज जयद्रथ, कलिङ्गनरेश और आपके पुत्र विकर्ण—ये तीनों उनके दक्षिण पार्श्वका आश्रय ले कवच बाँधकर खड़े हुए ॥ ११ ॥

प्रपक्षः शकुनिस्तेषां प्रवरैर्हयसादिभिः ।
ययौ गान्धारकैः सार्धं विमलप्रासयोधिभिः ॥ १२ ॥

गान्धार देशके प्रधान-प्रधान घुड़सवारोंके साथ, जो चमकीले प्रासोंद्वारा युद्ध करनेवाले थे, गान्धारराज शकुनि उन दक्षिण पार्श्वके योद्धाओंका प्रपक्ष (सहायक) बनकर चला ॥

कृपश्च कृतवर्मा च चित्रसेनो विविंशतिः ।
दुःशासनमुखा यत्ताः सव्यं पक्षमपालयन् ॥ १३ ॥

कृपाचार्य, कृतवर्मा, चित्रसेन, विविंशति और दुःशासन आदि वीर योद्धा बड़ी सावधानीके साथ द्रोणाचार्यके वाम पार्श्वकी रक्षा करने लगे ॥ १३ ॥

तेषां प्रपक्षाः काम्बोजाः सुदक्षिणपुरःसराः ।
ययुरश्वैर्महावेगैः शकाश्च यवनैः सह ॥ १४ ॥

उनके सहायक या प्रपक्ष थे सुदक्षिण आदि काम्बोज-देशीय सैनिक । ये सब लोग शकों और यवनोंके साथ महान् वेगशाली घोड़ोंपर सवार हो युद्धके लिये आगे बढ़े ॥१४॥

मद्रास्त्रिगर्ताः साम्बष्ठाः प्रतीच्योदीच्यमालवाः ।
शिबयः शूरसेनाश्च शूद्राश्च मलदैः सह ॥ १५ ॥
सौवीराः कितवाः प्राच्या दाक्षिणात्याश्च सर्वशः ।
तवात्मजं पुरस्कृत्य सूतपुत्रस्य पृष्ठतः ॥ १६ ॥
हर्षयन्तः स्वसैन्यानि ययुस्तव सुतैः सह ।

मद्र, त्रिगर्त, अम्बष्ठ, प्रतीच्य, उदीच्य, मालव, शिवि, शूरसेन, शूद्र, मलद, सौवीर, कितव, प्राच्य तथा दाक्षिणात्य वीर—ये सबके सब आपके पुत्र दुर्योधनको आगे करके सूतपुत्र कर्णके पृष्ठभागमें रहकर अपनी सेनाओंको हर्ष प्रदान करते हुए आपके पुत्रोंके साथ चले ॥ १५-१६½ ॥

प्रवरः सर्वयोधानां बलेषु बलमादधत् ॥ १७ ॥
ययौ वैकर्तनः कर्णः प्रमुखे सर्वधन्विनाम् ।

समस्त योद्धाओंमें श्रेष्ठ विकर्तनपुत्र कर्ण सारी सेनाओंमें नूतन शक्ति और उत्साहका संचार करता हुआ सम्पूर्ण धनुर्धरोंके आगे-आगे चला ॥ १७½ ॥

तस्य दीप्तो महाकायः स्वान्यनीकानि हर्षयन् ॥ १८ ॥
हस्तिकक्ष्यो महाकेतुर्बभौ सूर्यसमद्युतिः ।

उसका अत्यन्त कान्तिमान् विशाल ध्वज बहुत ऊँचा था । उसमें हाथीको बाँधनेवाली साँकलका चिह्न सुशोभित था । वह ध्वज अपने सैनिकोंका हर्ष बढ़ाता हुआ सूर्यके समान देदीप्यमान हो रहा था ॥ १८½ ॥

न भीष्मव्यसनं कश्चिद् दृष्ट्वा कर्णममन्यत ॥ १९ ॥
विशोकाश्चाभवन् सर्वे राजानः कुरुभिः सह ।

कर्णको देखकर किसीको भी भीष्मजीके मारे जानेका दुःख नहीं रह गया । कौरवोंसहित सब राजा शोकरहित हो गये ॥ १९½ ॥

हृष्टाश्च बहवो योधास्तत्राजल्पन्त वेगतः ॥ २० ॥
न हि कर्णं रणे दृष्ट्वा युधि स्थास्यन्ति पाण्डवाः ।

हर्षमें भरे हुए बहुत-से योद्धा वहाँ वेगपूर्वक बोल उठे—'इस रणक्षेत्रमें कर्णको उपस्थित देख पाण्डवलोग ठहर नहीं सकेंगे ॥ २०½ ॥

कर्णो हि समरे शक्तो जेतुं देवान् सवासवान् ॥ २१ ॥
किमु पाण्डुसुतान् युद्धे हीनवीर्यपराक्रमान् ।

'क्योंकि कर्ण समराङ्गणमें इन्द्रके सहित देवताओंको भी जीतनेमें समर्थ है । फिर, जो बल और पराक्रममें कर्णकी अपेक्षा निम्न श्रेणीके हैं, उन पाण्डवोंको युद्धमें पराजित करना उसके लिये कौन बड़ी बात है ॥ २१½ ॥

भीष्मेण तु रणे पार्थाः पालिता बाहुशालिना ॥ २२ ॥
तांस्तु कर्णः शरैस्तीक्ष्णैर्नाशयिष्यति संयुगे ।

'अपनी भुजाओंसे सुशोभित होनेवाले भीष्मने तो युद्धमें कुन्तीकुमारोंकी रक्षा की है; परंतु कर्ण अपने तीखे बाणोंद्वारा उनका विनाश कर डालेगा' ॥ २२½ ॥

एवं ब्रुवन्तस्तेऽन्योन्यं हृष्टरूपा विशाम्पते ॥ २३ ॥
राधेयं पूजयन्तश्च प्रशंसन्तश्च निर्ययुः ।
अस्माकं शकटव्यूहो द्रोणेन विहितोऽभवत् ॥ २४ ॥

प्रजानाथ ! इस प्रकार प्रसन्न होकर परस्पर बात करते तथा राधानन्दन कर्णकी प्रशंसा और आदर करते हुए आपके सैनिक युद्धके लिये चले । उस समय द्रोणाचार्यने हमारी सेनाके द्वारा शकटव्यूहका निर्माण किया था ॥ २३-२४ ॥

परेषां क्रौञ्च एवासीद् व्यूहो राजन् महात्मनाम् ।
प्रीयमाणेन विहितो धर्मराजेन भारत ॥ २५ ॥

राजन् ! हमारे महामनस्वी शत्रुओंकी सेनाका क्रौञ्चव्यूह दिखायी देता था । भारत ! धर्मराज युधिष्ठिरने स्वयं ही प्रसन्नतापूर्वक उस व्यूहकी रचना की थी ॥ २५ ॥

व्यूहप्रमुखतस्तेषां तस्थतुः पुरुषर्षभौ ।
वानरध्वजमुच्छ्रित्य विष्वक्सेनधनंजयौ ॥ २६ ॥

पाण्डवोंके उस व्यूहके अग्रभागमें अपनी वानरध्वजाको बहुत ऊँचेतक फहराते हुए पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन खड़े हुए थे ॥ २६ ॥

ककुदं सर्वसैन्यानां धाम सर्वधनुष्मताम् ।
आदित्यपथगः केतुः पार्थस्यामिततेजसः ॥ २७ ॥
दीपयामास तत् सैन्यं पाण्डवस्य महात्मनः ।

अमित तेजस्वी अर्जुनका वह ध्वज सूर्यके मार्गतक फैला हुआ था। वह सम्पूर्ण सेनाओंके लिये श्रेष्ठ आश्रय तथा समस्त धनुर्धरोंके तेजका पुञ्ज था। वह ध्वज पाण्डुनन्दन महात्मा युधिष्ठिरकी सेनाको अपनी दिव्य प्रभासे उद्भासित कर रहा था ॥ २७½ ॥

यथा प्रज्वलितः सूर्यो युगान्ते वै वसुंधराम् ॥ २८ ॥
दीप्यन् दृश्येत हि तथा केतुः सर्वत्र धीमतः।

जैसे प्रलयकालमें प्रज्वलित सूर्य सारी वसुधाको देदीप्यमान करते दिखायी देते हैं, उसी प्रकार बुद्धिमान् अर्जुनका वह विशाल ध्वज सर्वत्र प्रकाशमान दिखायी देता था ॥

योधानामर्जुनः श्रेष्ठो गाण्डीवं धनुषां वरम् ॥ २९ ॥
वासुदेवश्च भूतानां चक्राणां च सुदर्शनम्।

समस्त योद्धाओंमें अर्जुन श्रेष्ठ है, धनुषोंमें गाण्डीव श्रेष्ठ है, सम्पूर्ण चेतन सत्ताओंमें सच्चिदानन्दघन वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण श्रेष्ठ हैं और चक्रोंमें सुदर्शन श्रेष्ठ है ॥ २९½ ॥

चत्वार्येतानि तेजांसि वहञ्श्वेतहयो रथः ॥ ३० ॥
परेषामग्रतस्तस्थौ कालचक्रमिवोद्यतम्।
एवं तौ सुमहात्मानौ बलसेनाग्रगावुभौ ॥ ३१ ॥

श्वेत घोड़ोंसे सुशोभित वह रथ इन चार तेजोंको धारण करता हुआ शत्रुओंके सामने उठे हुए कालचक्रके समान खड़ा हुआ। इस प्रकार वे दोनों महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन अपनी सेनाके अग्रभागमें सुशोभित हो रहे थे ॥

तावकानां मुखे कर्णः परेषां च धनंजयः।
ततो जयाभिसंरब्धौ परस्परवधैषिणौ ॥ ३२ ॥
अवेक्षेतां तदान्योन्यं समरे कर्णपाण्डवौ।

राजन्! आपकी सेनाके प्रमुख भागमें कर्ण और शत्रुओंकी सेनाके अग्रभागमें अर्जुन खड़े थे। वे दोनों उस समय विजयके लिये रोषावेशमें भरकर एक-दूसरेका वध करनेकी इच्छासे रणक्षेत्रमें परस्पर दृष्टिपात करने लगे ॥ ३२½ ॥

ततः प्रयाते सहसा भारद्वाजे महारथे ॥ ३३ ॥
आर्तनादेन घोरेण वसुधा समकम्पत।

तदनन्तर सहसा महारथी द्रोणाचार्य आगे बढ़े। फिर तो भयंकर आर्तनादके साथ सारी पृथ्वी काँप उठी ॥ ३३½ ॥

ततस्तुमुलमाकाशमावृणोत् सदिवाकरम् ॥ ३४ ॥
वातोद्धूतं रजस्तीव्रं कौशेयनिकरोपमम्।
ववर्ष द्यौरनभ्रापि मांसास्थिरुधिराण्युत ॥ ३५ ॥

इसके बाद प्रचण्ड वायुके वेगसे बड़े जोरकी धूल उठी, जो रेशमी वस्त्रोंके समुदाय-सी प्रतीत होती थी। उस तीव्र एवं भयंकर धूलने सूर्यसहित समूचे आकाशको ढक लिया। आकाशमें मेघोंकी घटा नहीं थी, तो भी वहाँसे मांस, रक्त तथा हड्डियोंकी वर्षा होने लगी ॥ ३४-३५ ॥

गृध्राः श्येना बकाः कङ्का वायसाश्च सहस्रशः।
उपर्युपरि सेनां ते तदा पर्यपतन् नृप ॥ ३६ ॥

नरेश्वर! उस समय गीध, बाज, बगले, कंक और हजारों कौवे आपकी सेनाके ऊपर-ऊपर उड़ने लगे ॥ ३६ ॥

गोमायवश्च प्राक्रोशन् भयदान् दारुणान् रवान्।
अकार्षुरपसव्यं च बहुशः पृतनां तव ॥ ३७ ॥
चिखादिषन्तो मांसानि पिपासन्तश्च शोणितम्।

गीदड़ जोर-जोरसे दारुण एवं भयदायक बोली बोलने लगे और मांस खाने तथा रक्त पीनेकी इच्छासे बारंबार आपकी सेनाको दाहिने करके घूमने लगे ॥ ३७½ ॥

अपतद् दीप्यमाना च सनिर्घाता सकम्पना ॥ ३८ ॥
उल्का ज्वलन्ती संग्रामे पुच्छेनावृत्य सर्वशः।

उस समय एक प्रज्वलित एवं देदीप्यमान उल्का युद्धस्थलमें अपने पुच्छभागद्वारा सबको घेरकर भारी गर्जना और कम्पनके साथ पृथ्वीपर गिरी ॥ ३८½ ॥

परिवेषो महांश्चापि सविद्युत्स्तनयित्नुमान् ॥ ३९ ॥
भास्करस्याभवद् राजन् प्रयाते वाहिनीपतौ।

राजन्! सेनापति द्रोणके युद्धके लिये प्रस्थान करते ही सूर्यके चारों ओर बहुत बड़ा घेरा पड़ गया और बिजली चमकनेके साथ ही मेघ-गर्जना सुनायी देने लगी ॥ ३९½ ॥

एते चान्ये च बहवः प्रादुरासन् सुदारुणाः ॥ ४० ॥
उत्पाता युधि वीराणां जीवितक्षयकारिणः।

ये तथा और भी बहुत-से भयंकर उत्पात प्रकट हुए, जो युद्धमें वीरोंकी जीवन-लीलाके विनाशकी सूचना देनेवाले थे ॥

ततः प्रववृते युद्धं परस्परवधैषिणाम् ॥ ४१ ॥
कुरुपाण्डवसैन्यानां शब्देनापूरयज्जगत्।

तदनन्तर एक-दूसरेके वधकी इच्छावाले कौरवों तथा पाण्डवोंकी सेनाओंमें भयंकर युद्ध होने लगा और उनके कोलाहलसे सारा जगत् व्याप्त हो गया ॥ ४१½ ॥

ते त्वन्योन्यं सुसंरब्धाः पाण्डवाः कौरवैः सह ॥ ४२ ॥
अभ्यघ्नन् निशितैः शस्त्रैर्जयगृद्धाः प्रहारिणः।

क्रोधमें भरे हुए पाण्डव तथा कौरव विजयकी अभिलाषा लेकर एक-दूसरेको तीखे अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा मारने लगे। वे सभी योद्धा प्रहार करनेमें कुशल थे ॥ ४२½ ॥

स पाण्डवानां महतीं महेष्वासो महाद्युतिः ॥ ४३ ॥
वेगेनाभ्यद्रवत् सेनां किरञ्छरशतैः शितैः।

महाधनुर्धर महातेजस्वी द्रोणाचार्यने पाण्डवोंकी विशाल सेनापर सैकड़ों पैने बाणोंकी वर्षा करते हुए बड़े वेगसे आक्रमण किया ॥ ४३½ ॥

द्रोणमभ्युद्यतं दृष्ट्वा पाण्डवाः सह सृञ्जयैः ॥ ४४ ॥
प्रत्यगृह्णंस्तदा राजञ्छरवर्षैः पृथक् पृथक्।

राजन् ! उस समय द्रोणाचार्यको युद्धके लिये उद्यत देख सृंजयोंसहित पाण्डवोंने पृथक्-पृथक् बाणोंकी वर्षा करते हुए उनका सामना किया ॥ ४४½ ॥

विक्षोभ्यमाणा द्रोणेन भिद्यमाना महाचमूः ॥ ४५ ॥
व्यशीर्यत सपाञ्चाला वातेनेव बलाहकाः ।

जैसे वायु बादलोंको उड़ाकर छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार द्रोणाचार्यके द्वारा क्षत-विक्षत हुई पाञ्चालोंसहित पाण्डवोंकी विशाल सेना तितर-बितर हो गयी ॥ ४५½ ॥

बहूनीह विकुर्वाणो दिव्यान्यस्त्राणि संयुगे ॥ ४६ ॥
अपीडयत् क्षणेनैव द्रोणः पाण्डवसृञ्जयान् ।

द्रोणने युद्धमें बहुत-से दिव्यास्त्रोंका प्रयोग करके क्षण-भरमें पाण्डवों तथा सृञ्जयोंको पीड़ित कर दिया ॥ ४६½ ॥

ते वध्यमाना द्रोणेन वासवेनेव दानवाः ॥ ४७ ॥
पञ्चालाः समकम्पन्त धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।

जैसे इन्द्र दानवोंको पीड़ा देते हैं, उसी प्रकार द्रोणाचार्य-से पीड़ित हो धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चाल योद्धा भयसे काँपने लगे॥

ततो दिव्यास्त्रविच्छूरो याज्ञसेनिर्महारथः ॥ ४८ ॥
अभिनच्छरवर्षेण द्रोणानीकमनेकधा ।

तब दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता यज्ञसेनकुमार शूरवीर महारथी धृष्टद्युम्नने अपने बाणोंकी वर्षासे द्रोणाचार्यकी सेनाको बारंबार घायल किया ॥ ४८½ ॥

द्रोणस्य शरवर्षाणि शरवर्षेण पार्षतः ॥ ४९ ॥
संनिवार्य ततः सर्वान् कुरूनप्यवधीद् बली ।

बलवान् द्रुपदपुत्रने अपने बाणोंकी वर्षासे द्रोणाचार्यकी बाणवृष्टिको रोककर समस्त कौरव सैनिकोंको मारना आरम्भ किया ॥ ४९½ ॥

संयम्य तु ततो द्रोणः समवस्थाप्य चाहवे ॥ ५० ॥
स्वमनीकं महेष्वासः पार्षतं समुपाद्रवत् ।

तब महाधनुर्धर द्रोणाचार्यने अपनी सेनाको काबूमें करके उसे युद्धस्थलमें स्थिर भावसे खड़ा कर दिया और द्रुपद-कुमारपर धावा किया ॥ ५०½ ॥

स बाणवर्षं सुमहदसृजत् पार्षतं प्रति ॥ ५१ ॥
मघवान् समभिक्रुद्धः सहसा दानवानिव ।

जैसे क्रोधमें भरे हुए इन्द्र सहसा दानवोंपर बाणोंकी बौछार करते हैं, उसी प्रकार द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नपर बाणोंकी बड़ी भारी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ५१½ ॥

ते कम्प्यमाना द्रोणेन बाणैः पाण्डवसृञ्जयाः ॥ ५२ ॥
पुनः पुनरभज्यन्त सिंहेनेवेतरे मृगाः ।

जैसे सिंह दूसरे मृगोंको भगा देता है, उसी प्रकार द्रोणाचार्यके बाणोंसे विकम्पित हुए पाण्डव तथा सृंजय बार-बार युद्धका मैदान छोड़कर भागने लगे ॥ ५२½ ॥

तथा पर्यचरद् द्रोणः पाण्डवानां बले बली ।
अलातचक्रवद् राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ५३ ॥

राजन् ! बलवान् द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी सेनामें अलात-चक्रकी भाँति चारों ओर चक्कर लगाने लगे । यह एक अद्भुत-सी बात हुई ॥ ५३ ॥

खचरनगरकल्पं कल्पितं शास्त्रदृष्ट्या
चलदनिलपताकं ह्लादनं वल्गिताश्वम् ।
स्फटिकविमलकेतुं त्रासनं शात्रवाणां
रथवरमधिरूढः संजहारारिसेनाम् ॥५४॥

शास्त्रोक्त विधिसे निर्मित हुआ आचार्य द्रोणका वह श्रेष्ठ रथ आकाशचारी गन्धर्वनगरके समान जान पड़ता था। वायुके वेगसे उसकी पताका फहरा रही थी । वह रथीके मनको आह्लाद प्रदान करनेवाला था । उसके घोड़े उछल-उछलकर चल रहे थे । उसका ध्वज-दण्ड स्फटिक मणिके समान स्वच्छ एवं उज्ज्वल था। वह शत्रुओंको भयभीत करनेवाला था । उस श्रेष्ठ रथपर आरूढ़ होकर द्रोणाचार्य शत्रु-सेनाका संहार कर रहे थे ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि द्रोणपराक्रमे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणाभिषेकपर्वमें द्रोणपराक्रमविषयक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

द्रोणाचार्यके पराक्रम और वधका संक्षिप्त समाचार

संजय उवाच

तथा द्रोणमभिघ्नन्तं साश्वसूतरथद्विपान् ।
व्यथिताः पाण्डवा दृष्ट्वा न चैनं पर्यवारयन् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! द्रोणाचार्यको इस प्रकार घोड़े, सारथि, रथ और हाथियोंका संहार करते देखकर भी व्यथित हुए पाण्डव-सैनिक उन्हें रोक न सके ॥ १ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा धृष्टद्युम्नधनंजयौ ।
अब्रवीत् सर्वतो यत्तैः कुम्भयोनिर्निवार्यताम् ॥ २ ॥

तब राजा युधिष्ठिरने धृष्टद्युम्न और अर्जुनसे कहा—'वीरो ! मेरे सैनिकोंको सब ओरसे प्रयत्नशील होकर द्रोणाचार्यको रोकना चाहिये' ॥ २ ॥

तत्रैनमर्जुनश्चैव पार्षतश्च सहानुगः ।
प्रत्यगृह्णात् ततः सर्वे समापेतुर्महारथाः ॥ ३ ॥

यह सुनकर वहाँ अर्जुन और सेवकोंसहित धृष्टद्युम्ने

द्रोणाचार्यको रोका। फिर तो सभी महारथी उनपर टूट पड़े॥

केकया भीमसेनश्च सौभद्रोऽथ घटोत्कचः।
युधिष्ठिरो यमौ मत्स्या द्रुपदस्यात्मजास्तथा ॥ ४ ॥
द्रौपदेयाश्च संहृष्टा धृष्टकेतुः ससात्यकिः।
चेकितानश्च संक्रुद्धो युयुत्सुश्च महारथः ॥ ५ ॥
ये चान्ये पार्थिवा राजन् पाण्डवस्यानुयायिनः।
कुलवीर्यानुरूपाणि चक्रुः कर्माण्यनेकशः ॥ ६ ॥

राजन्! केकयराजकुमार, भीमसेन, अभिमन्यु, घटोत्कच, युधिष्ठिर, नकुल-सहदेव, मत्स्यदेशीय सैनिक, द्रुपदके सभी पुत्र, हर्ष और उत्साहमें भरे हुए द्रौपदीके पाँचों पुत्र, धृष्टकेतु, सात्यकि, कुपित चेकितान और महारथी युयुत्सु—ये तथा और भी जो भूमिपाल पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके अनुयायी थे, वे सब अपने कुल और पराक्रमके अनुकूल अनेक प्रकारके वीरोचित कार्य करने लगे ॥ ४–६ ॥

संरक्ष्यमाणां तां दृष्ट्वा पाण्डवैर्वाहिनीं रणे।
व्यावृत्य चक्षुषी कोपाद् भारद्वाजोऽन्ववैक्षत ॥ ७ ॥

उस रणक्षेत्रमें पाण्डवोंद्वारा सुरक्षित हुई उनकी सेनाकी ओर द्रोणाचार्यने क्रोधपूर्वक आँखें फाड़-फाड़कर देखा ॥७॥

स तीव्रं कोपमास्थाय रथे समरदुर्जयः।
व्यधमत् पाण्डवानीकमभ्राणीव सदागतिः ॥ ८ ॥

जैसे वायु बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार रथपर बैठे हुए रणदुर्जय वीर द्रोणाचार्य प्रचण्ड कोप धारण करके पाण्डवसेनाका संहार करने लगे ॥ ८ ॥

रथानश्वान् नरान् नागानभिधावन्नितस्ततः।
चचारोन्मत्तवद् द्रोणो वृद्धोऽपि तरुणो यथा ॥ ९ ॥

वे बूढ़े होकर भी जवानके समान फुर्तीले थे। द्रोणाचार्य उन्मत्तकी भाँति युद्धस्थलमें इधर-उधर चारों ओर विचरते और रथों, घोड़ों, पैदल मनुष्यों तथा हाथियोंपर धावा करते थे ॥ ९ ॥

तस्य शोणितदिग्धाङ्गाः शोणास्ते वातरंहसः।
आजानेया हया राजन्नविश्रान्ता ध्रुवं ययुः ॥ १० ॥

उनके घोड़े स्वभावतः लाल रंगके थे। उसपर भी उनके सारे अंग खूनसे लथपथ होनेके कारण वे और भी लाल दिखायी देते थे। उनका वेग वायुके समान तीव्र था। राजन्! उन घोड़ोंकी नस्ल अच्छी थी और वे बिना विश्राम किये निरन्तर दौड़ लगाते रहते थे ॥ १० ॥

तमन्तकमिव क्रुद्धमापतन्तं यतव्रतम्।
दृष्ट्वा सम्प्राद्रवन् योधाः पाण्डवस्य ततस्ततः ॥ ११ ॥

नियमपूर्वक व्रतका पालन करनेवाले द्रोणाचार्यको क्रोधमें भरे हुए कालके समान आते देख पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरके सारे सैनिक इधर-उधर भाग चले ॥ ११ ॥

तेषां प्राद्रवतां भीमः पुनरावर्ततामपि।
पश्यतां तिष्ठतां चासीच्छब्दः परमदारुणः ॥ १२ ॥

वे कभी भागते, कभी पुनः लौटते और कभी चुपचाप खड़े होकर युद्ध देखते थे; इस प्रकारकी हलचलमें पड़े हुए उन योद्धाओंका अत्यन्त दारुण भयंकर कोलाहल चारों ओर गूँज उठा ॥ १२ ॥

शूराणां हर्षजननो भीरूणां भयवर्धनः।
द्यावापृथिव्योर्विवरं पूरयामास सर्वतः ॥ १३ ॥

वह कोलाहल शूरवीरोंका हर्ष और कायरोंका भय बढ़ानेवाला था। वह आकाश और पृथ्वीके बीचमें सब ओर व्याप्त हो गया ॥ १३ ॥

ततः पुनरपि द्रोणो नाम विश्रावयन् युधि।
अकरोद् रौद्रमात्मानं किरञ्छरशतैः परान् ॥ १४ ॥

तब द्रोणाचार्यने पुनः रणभूमिमें अपना नाम सुना-सुनाकर शत्रुओंपर सैकड़ों बाणोंकी वर्षा करते हुए अपने भयंकर स्वरूपको प्रकट किया ॥ १४ ॥

स तथा तेष्वनीकेषु पाण्डुपुत्रस्य मारिष।
कालवद् व्यचरद् द्रोणो युवेव स्थविरो बली ॥ १५ ॥

आर्य! बलवान् द्रोणाचार्य वृद्ध होकर भी तरुणके समान फुर्ती दिखाते हुए पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरकी सेनाओंमें कालके समान विचरने लगे ॥ १५ ॥

उत्कृत्य च शिरांस्युग्रान् बाहूनपि सुभूषणान्।
कृत्वा शून्यान् रथोपस्थानुदक्रोशन्महारथान् ॥ १६ ॥

वे योद्धाओंके मस्तकों और आभूषणोंसे भूषित भयंकर भुजाओंको भी काटकर रथकी बैठकोंको सूनी कर देते और महारथियोंकी ओर देख-देखकर दहाड़ते थे ॥ १६ ॥

तस्य हर्षप्रणादेन बाणवेगेन वा विभो।
प्राकम्पन्त रणे योधा गावः शीतार्दिता इव ॥ १७ ॥

प्रभो! उनके हर्षपूर्वक किये हुए सिंहनाद अथवा बाणोंके वेगसे उस रणक्षेत्रमें समस्त योद्धा सर्दीसे पीड़ित हुई गायोंकी भाँति थर-थर काँपने लगे ॥ १७ ॥

द्रोणस्य रथघोषेण मौर्वीनिष्पेषणेन च।
धनुःशब्देन चाकाशे शब्दः समभवन्महान् ॥ १८ ॥

द्रोणाचार्यके रथकी घरघराहट, प्रत्यञ्चाको दबा-दबाकर खींचनेके शब्द और धनुषकी टंकारसे आकाशमें महान् कोलाहल होने लगा ॥ १८ ॥

अथास्य धनुषो बाणा निश्चरन्तः सहस्रशः।
व्याप्य सर्वा दिशः पेतुर्नागाश्वरथपत्तिषु ॥ १९ ॥

द्रोणाचार्यके धनुषसे सहस्रों बाण निकलकर सम्पूर्ण दिशाओंमें व्याप्त हो हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकोंपर बड़े वेगसे गिरने लगे ॥ १९ ॥

तं कार्मुकमहावेगमस्त्रज्वलितपावकम्।

द्रोणमासादयांचक्रुः पञ्चालाः पाण्डवैः सह ॥ २० ॥

द्रोणाचार्यके धनुषका वेग महान् था। उन्होंने अस्त्रोंद्वारा आग-सी प्रज्वलित कर दी थी। पाण्डव और पाञ्चाल सैनिक उनके पास पहुँचकर उन्हें रोकनेकी चेष्टा करने लगे॥

तान् सकुञ्जरपत्त्यश्वान् प्राहिणोद् यमसादनम्।
चक्रेऽचिरेण च द्रोणो महीं शोणितकर्दमाम्॥ २१ ॥

द्रोणाचार्यने हाथी, घोड़े और पैदलोंसहित उन समस्त योद्धाओंको यमलोक पहुँचा दिया और थोड़ी ही देरमें भूतलपर रक्तकी कीच मचा दी ॥ २१ ॥

तन्वता परमास्त्राणि शरान् सततमस्यता।
द्रोणेन विहितं दिक्षु शरजालमदृश्यत ॥ २२ ॥

द्रोणाचार्यने निरन्तर बाणोंकी वर्षा और उत्तम अस्त्रोंका विस्तार करके सम्पूर्ण दिशाओंमें बाणोंका जाल-सा बुन दिया, जो स्पष्ट दिखलायी दे रहा था ॥ २२ ॥

पदातिषु रथाश्वेषु वारणेषु च सर्वशः।
तस्य विद्युदिवाभ्रेषु चरन् केतुरदृश्यत ॥ २३ ॥

पैदल सैनिकों, रथियों, घुड़सवारों तथा हाथीसवारोंमें सब ओर विचरता हुआ उनका ध्वज बादलोंमें विद्युत्-सा दृष्टिगोचर हो रहा था ॥ २३ ॥

स केकयानां प्रवरांश्च पञ्च
पञ्चालराजं च शरैः प्रमथ्य।
युधिष्ठिरानीकमदीनसत्त्वो
द्रोणोऽभ्ययात् कार्मुकबाणपाणिः॥ २४॥

पाँचों श्रेष्ठ केकय राजकुमारों तथा पाञ्चालराज द्रुपदको अपने बाणोंसे मथकर उदार हृदयवाले द्रोणाचार्यने हाथोंमें धनुषबाण लेकर युधिष्ठिरकी सेनापर आक्रमण किया ॥ २४ ॥

तं भीमसेनश्च धनंजयश्च
शिनेश्च नप्ता द्रुपदात्मजश्च।
शैब्यात्मजः काशिपतिः शिबिश्च
हृष्टा नदन्तो व्यकिरञ्छरौघैः ॥ २५ ॥

यह देख भीमसेन, अर्जुन, सात्यकि, धृष्टद्युम्न, शैब्यकुमार, काशिराज तथा शिबि गर्जना करते हुए उनके ऊपर बाण-समूहोंकी वर्षा करने लगे ॥ २५ ॥

(तेषां शरा द्रोणशरैर्निकृत्ता
भूमावदृश्यन्त विवर्तमानाः।
श्रेणीकृताः संयति मोघवेगा
द्वीपे नदीनामिव काशरोहाः ॥)

इन सबके बाण द्रोणाचार्यके सायकोंद्वारा छिन्न-भिन्न एवं निष्फल हो युद्धस्थलमें धरतीपर लोटते दिखायी देने लगे, मानो नदियोंके द्वीपमें ढेर-के-ढेर कास अथवा सरकण्डे काटकर बिछा दिये गये हों ॥

तेषामथ द्रोणधनुर्विमुक्ताः
पतत्रिणः काञ्चनचित्रपुङ्खाः।
भित्त्वा शरीराणि गजाश्वयूनां
जग्मुर्महीं शोणितदिग्धवाजाः ॥ २६ ॥

द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए सुवर्णमय विचित्र पंखोंसे युक्त बाण हाथी, घोड़े और युवकोंके शरीरोंको छेदकर धरतीमें घुस गये। उस समय उनके पंख रक्तसे रँग गये थे ॥ २६ ॥

सा योधसंघैश्च रथैश्च भूमिः
शरैर्विभिन्नैर्गजवाजिभिश्च ।
प्रच्छाद्यमाना पतितैर्बभूव
समावृता द्यौरिव कालमेघैः ॥ २७॥

जैसे वर्षाकालके मेघोंकी घटासे आकाश आच्छादित हो जाता है, उसी प्रकार वहाँ बाणोंसे विदीर्ण होकर गिरे हुए योद्धाओंके समूहों, रथों, हाथियों और घोड़ोंसे सारी रणभूमि पट गयी थी ॥ २७ ॥

शैनेयभीमार्जुनवाहिनीशं
सौभद्रपाञ्चालसकाशिराजम् ।
अन्यांश्च वीरान् समरे ममर्द
द्रोणः सुतानां तव भूतिकामः ॥ २८ ॥

सात्यकि, भीमसेन और अर्जुन जिसमें सेनापति थे तथा जिसके भीतर अभिमन्यु, द्रुपद एवं काशिराज-जैसे योद्धा मौजूद थे, उस सेनाको तथा अन्यान्य महावीरोंको भी द्रोणाचार्यने समराङ्गणमें रौंद डाला; क्योंकि वे आपके पुत्रोंको ऐश्वर्यकी प्राप्ति कराना चाहते थे ॥ २८॥

एतानि चान्यानि च कौरवेन्द्र
कर्माणि कृत्वा समरे महात्मा।
प्रताप्य लोकानिव कालसूर्यो
द्रोणो गतः स्वर्गमितो हि राजन्॥ २९ ॥

राजन्! कौरवेन्द्र! युद्धस्थलमें ये तथा और भी बहुत-से वीरोचित कर्म करके महात्मा द्रोणाचार्य प्रलयकालके सूर्यकी भाँति सम्पूर्ण लोकोंको तपाकर यहाँसे स्वर्गमें चले गये॥२९॥

एवं रुक्मरथः शूरो हत्वा शतसहस्रशः।
पाण्डवानां रणे योधान् पार्षतेन निपातितः ॥ ३० ॥

इस प्रकार सुवर्णमय रथवाले शूरवीर द्रोणाचार्य रणक्षेत्रमें पाण्डवपक्षके लाखों योद्धाओंका संहार करके अन्तमें धृष्टद्युम्नके द्वारा मार गिराये गये ॥ ३० ॥

अक्षौहिणीमभ्यधिकां शूराणामनिवर्तिनाम्।
निहत्य पश्चाद् धृतिमानगच्छत् परमां गतिम्॥ ३१ ॥

धैर्यशाली द्रोणाचार्यने युद्धमें पीठ न दिखानेवाले शूरवीरोंकी एक अक्षौहिणीसे भी अधिक सेनाका संहार करके पीछे स्वयं भी परम गति प्राप्त कर ली ॥ ३१ ॥

पाण्डवैः सह पञ्चालैरशिवैः क्रूरकर्मभिः।
हतो रुक्मरथो राजन् कृत्वा कर्म सुदुष्करम्॥ ३२ ॥

राजन्! सुवर्णमय रथवाले द्रोणाचार्य अत्यन्त दुष्कर पराक्रम करके अन्तमें पाण्डवोंसहित अमङ्गलकारी क्रूरकर्मा पाञ्चालोंके हाथसे मारे गये ॥ ३२ ॥

ततो निनादो भूतानामाकाशे समजायत।
सैन्यानां च ततो राजन्नाचार्ये निहते युधि॥ ३३ ॥

नरेश्वर! युद्धस्थलमें आचार्य द्रोणके मारे जानेपर आकाशमें स्थित अदृश्य भूतोंका तथा कौरव-सैनिकोंका आर्तनाद सुनायी देने लगा ॥ ३३ ॥

द्यां धरां खं दिशो वापि प्रदिशश्चानुनादयन्।
अहो धिगिति भूतानां शब्दः समभवद् भृशम्॥ ३४ ॥

उस समय स्वर्गलोक, भूलोक, अन्तरिक्षलोक, दिशाओं तथा विदिशाओंको भी प्रतिध्वनित करता हुआ समस्त प्राणियोंका 'अहो! धिक्कार है!' यह शब्द वहाँ जोर-जोरसे गूँजने लगा ॥ ३४ ॥

देवताः पितरश्चैव पूर्वे ये चास्य बान्धवाः।
ददृशुर्निहतं तत्र भारद्वाजं महारथम्॥ ३५ ॥

देवता, पितर तथा जो इनके पूर्ववर्ती भाई-बन्धु थे, उन्होंने भी वहाँ भरद्वाजनन्दन महारथी द्रोणाचार्यको मारा गया देखा ॥

पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा सिंहनादान् प्रचक्रिरे।
सिंहनादेन महता समकम्पत मेदिनी॥ ३६ ॥

पाण्डव विजय पाकर सिंहनाद करने लगे। उनके उस महान् सिंहनादसे पृथ्वी काँप उठी ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि द्रोणवधश्रवणे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणाभिषेकपर्वमें द्रोणवधश्रवणविषयक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ३७ श्लोक हैं)

नवमोऽध्यायः

द्रोणाचार्यकी मृत्युका समाचार सुनकर धृतराष्ट्रका शोक करना

धृतराष्ट्र उवाच

किं कुर्वाणं रणे द्रोणं जघ्नुः पाण्डवसृंजयाः।
तथा निपुणमस्त्रेषु सर्वशस्त्रभृतामपि॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय! रणक्षेत्रमें द्रोणाचार्य क्या कर रहे थे कि पाण्डव तथा सृंजय उनपर चोट कर सके? वे तो सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ और अस्त्र-विद्यामें निपुण थे ॥१॥

रथभङ्गो बभूवास्य धनुर्वाशीर्यतास्यतः।
प्रमत्तो वाभवद् द्रोणस्ततो मृत्युमुपेयिवान्॥ २ ॥

उनका रथ टूट गया था या बाणोंका प्रहार करते समय धनुष ही खण्डित हो गया था अथवा द्रोणाचार्य असावधान थे, जिससे उनकी मृत्यु हो गयी? ॥ २ ॥

कथं नु पार्षतस्तात शत्रुभिर्दुष्प्रधर्षणम्।
किरन्तमिषुसंघातान् रुक्मपुङ्खाननेकशः॥ ३ ॥
क्षिप्रहस्तं द्विजश्रेष्ठं कृतिनं चित्रयोधिनम्।
दूरेषुपातिनं दान्तमस्त्रयुद्धेषु पारगम्॥ ४ ॥
पाञ्चालपुत्रो न्यवधीद् दिव्यास्त्रधरमच्युतम्।
कुर्वाणं दारुणं कर्म रणे यत्तं महारथम्॥ ५ ॥

तात! द्रोणाचार्य तो शत्रुओंके लिये सर्वथा दुर्जय थे। वे सुवर्णमय पंखवाले बाणसमूहोंकी बारंबार वर्षा करते थे। उनके हाथोंमें फुर्ती थी। वे विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले और विद्वान् थे। दूरतक बाण मारनेवाले और अस्त्र-युद्धमें पारंगत थे। फिर उन जितेन्द्रिय दिव्यास्त्रधारी और अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले द्विजश्रेष्ठ द्रोणाचार्यको पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नने कैसे मार दिया? वे तो रणक्षेत्रमें कठोर कर्म करनेवाले, विजयके लिये प्रयत्नशील और महारथी वीर थे ॥ ३–५ ॥

व्यक्तं हि दैवं बलवत् पौरुषादिति मे मतिः।
यद् द्रोणो निहतः शूरः पार्षतेन महात्मना॥ ६ ॥

निश्चय ही पुरुषार्थकी अपेक्षा दैव ही प्रबल है, ऐसा मेरा विश्वास है; क्योंकि द्रोणाचार्य-जैसे शूरवीर महामना धृष्टद्युम्नके हाथसे मारे गये ॥ ६ ॥

अस्त्रं चतुर्विधं वीरे यस्मिन्नासीत् प्रतिष्ठितम्।
तमिष्वस्त्रधराचार्यं द्रोणं शंससि मे हतम्॥ ७ ॥

जिन वीर सेनापतिमें चार प्रकारके अस्त्र प्रतिष्ठित थे, उन धनुर्धरोंके आचार्य द्रोणको तुम मुझे मारा गया बता रहे हो ॥ ७ ॥

श्रुत्वा हतं रुक्मरथं वैयाघ्रपरिवारितम्।
जातरूपशिरस्त्राणं नाद्य शोकमपानुदे॥ ८ ॥

व्याघ्रचर्मसे आच्छादित सुवर्णमय रथपर आरूढ़ हो सुनहरा शिरस्त्राण (टोप या पगड़ी) धारण करनेवाले द्रोणाचार्यको मारा गया सुनकर आज मैं अपने शोकको किसी प्रकार दूर नहीं कर पाता हूँ ॥ ८ ॥

न नूनं परदुःखेन म्रियते कोऽपि संजय।
यत्र द्रोणमहं श्रुत्वा हतं जीवामि मन्दधीः॥ ९ ॥

संजय! निश्चय ही कोई भी दूसरेके दुःखसे नहीं मरता है, तभी तो मैं मन्दबुद्धि मनुष्य द्रोणाचार्यको मारा गया सुनकर भी जी रहा हूँ ॥ ९ ॥

दैवमेव परं मन्ये नन्वनर्थं हि पौरुषम् ।
अश्मसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम ॥ १० ॥
यच्छ्रुत्वा निहतं द्रोणं शतधा न विदीर्यते ।

मैं तो दैवको ही श्रेष्ठ मानता हूँ । पुरुषार्थ तो अनर्थका ही कारण है । निश्चय ही मेरा यह अत्यन्त सुदृढ़ हृदय लोहेका बना हुआ है, जिससे द्रोणाचार्यको मारा गया सुनकर भी इसके सौ टुकड़े नहीं हो जाते ॥ १०½ ॥

ब्राह्मे दैवे तथेष्वस्त्रे यमुपासन् गुणार्थिनः ॥ ११ ॥
ब्राह्मणा राजपुत्राश्च स कथं मृत्युना हृतः ।

गुणार्थी ब्राह्मण तथा राजकुमार ब्राह्म और दैव अस्त्रोंके लिये जिनकी उपासना करते थे, उन्हें मृत्यु कैसे हर ले गयी ? ॥ ११½ ॥

शोषणं सागरस्येव मेरोरिव विसर्पणम् ॥ १२ ॥
पतनं भास्करस्येव न मृष्ये द्रोणपातनम् ।

द्रोणका रणभूमिमें गिराया जाना समुद्रके सूखने, मेरु पर्वतके चलने-फिरने और सूर्यके आकाशसे टूटकर गिरनेके समान है । मैं इसे किसी प्रकार सहन नहीं कर पाता ॥ १२½ ॥

दुष्टानां प्रतिषेद्धाऽऽसीद् धार्मिकाणां च रक्षिता ॥ १३ ॥
योऽहासीत् कृपणस्यार्थे प्राणानपि परंतपः ।

शत्रुओंको संताप देनेवाले द्रोणाचार्य दुष्टोंको दण्ड देनेवाले और धार्मिकोंके रक्षक थे । उन्होंने मुझ कृपणके लिये अपने प्राणतक दे दिये ॥ १३½ ॥

मन्दानां मम पुत्राणां जयाशा यस्य विक्रमे ॥ १४ ॥
बृहस्पत्युशनस्तुल्यो बुद्ध्या स निहतः कथम् ।

मेरे मूर्ख पुत्रोंको जिनके ही पराक्रमके भरोसे विजयकी आशा बनी हुई थी तथा जो बुद्धिमें बृहस्पति और शुक्राचार्यके समान थे, वे द्रोणाचार्य कैसे मारे गये ? ॥ १४½ ॥

ते च शोणा बृहन्तोऽश्वाश्छन्ना जालैर्हिरण्मयैः ॥ १५ ॥
रथे वातजवा युक्ताः सर्वशस्त्रातिगा रणे ।
बलिनो ह्वेषिणो दान्ताः सैन्धवाः साधुवाहिनः ॥ १६ ॥
दृढाः संग्राममध्येषु कच्चिदासन्नविह्वलाः ।
करिणां बृंहतां युद्धे शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ १७ ॥
ज्याक्षेपशरवर्षाणां शस्त्राणां च सहिष्णवः ।
आशंसन्तः पराञ्जेतुं जितश्वासा जितव्यथाः ॥ १८ ॥

जिनके रंग लाल थे, जो विशाल एवं दृढ़ शरीरवाले थे, जिन्हें सोनेकी जालियोंसे आच्छादित किया जाता था, जो रथमें जोते जानेपर वायुके समान वेगसे चलते थे, संग्राममें सब प्रकारके शस्त्रोंद्वारा किये जानेवाले प्रहारको बचा जाते थे, जो बलवान्, सुशिक्षित और रथको अच्छी तरह वहन करनेवाले थे, रणभूमिमें जो दृढ़तापूर्वक डटे रहते और जोर-जोरसे हिनहिनाते थे, धनुषोंकी टंकारके साथ होनेवाली बाणवर्षा तथा अस्त्र-शस्त्रोंके आघातको सहन करनेमें समर्थ एवं शत्रुओंको जीतनेका उत्साह रखनेवाले थे, जो पीडा तथा श्वासको जीत चुके थे, वे सिन्धुदेशीय घोड़े युद्ध-स्थलमें चिग्घाड़ते हुए हाथियों और शङ्खों एवं नगाड़ोंकी आवाजसे घबराये तो नहीं थे ? ॥ १५–१८ ॥

हयाः पराजिताः शीघ्रा भारद्वाजरथोद्वहाः ।
ते स्म रुक्मरथे युक्ता नरवीरसमास्थिताः ॥ १९ ॥
कथं नाभ्यतरंस्तात पाण्डवानामनीकिनीम् ।

क्या द्रोणाचार्यके रथको वहन करनेवाले वे शीघ्रगामी अश्व पराजित हो गये थे ? तात ! द्रोणाचार्यके सुवर्णमय रथमें जुते हुए और उन्हीं नरवीर आचार्यकी सवारीमें काम आनेवाले वे घोड़े पाण्डवसेनाको पार कैसे नहीं कर सके ? १९½

जातरूपपरिष्कारमास्थाय रथमुत्तमम् ॥ २० ॥
भारद्वाजः किमकरोद् युधि सत्यपराक्रमः ।

उस सुवर्णभूषित उत्तम रथपर आरूढ़ हो सत्यपराक्रमी द्रोणाचार्यने युद्धस्थलमें क्या किया ? ॥ २०½ ॥

विद्यां यस्योपजीवन्ति सर्वलोकधनुर्धराः ॥ २१ ॥
स सत्यसंधो बलवान् द्रोणः किमकरोद् युधि ।

समस्त जगत्‌के धनुर्धर जिनकी विद्याका आश्रय लेकर जीवननिर्वाह करते हैं, उन सत्यपराक्रमी बलवान् द्रोणाचार्यने युद्धमें क्या किया ? ॥ २१½ ॥

दिवि शक्रमिव श्रेष्ठं महामात्रं धनुर्भृताम् ॥ २२ ॥
के नु तं रौद्रकर्माणं युद्धे प्रत्युद्ययू रथाः ।

स्वर्गमें देवराज इन्द्रके समान जो इस लोकमें श्रेष्ठ और समस्त धनुर्धरोंमें महान् थे, उन भयंकर कर्म करनेवाले द्रोणाचार्यका सामना करनेके लिये उस रणक्षेत्रमें कौन-कौनसे रथी गये थे ? ॥ २२½ ॥

ननु रुक्मरथं दृष्ट्वा प्राद्रवन्ति स्म पाण्डवाः ॥ २३ ॥
दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणं रणे तस्मिन् महाबलम् ।

उस समराङ्गणमें दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग करनेवाले तथा सुवर्णमय रथपर आरूढ़ हुए महाबली द्रोणाचार्यको देखकर तो समस्त पाण्डव योद्धा भाग खड़े होते थे ॥ २३½ ॥

उताहो सर्वसैन्येन धर्मराजः सहानुजः ॥ २४ ॥
पाञ्चाल्यप्रग्रहो द्रोणं सर्वतः समवारयत् ।

भाइयोंसहित धर्मराज युधिष्ठिरने अपनी सारी सेनाके साथ जाकर धृष्टद्युम्नरूपी डोरीकी सहायतासे द्रोणाचार्यको घेर तो नहीं लिया था ? ॥ २४½ ॥

नूनमावारयत् पार्थो रथिनोऽन्यानजिह्मगैः ॥ २५ ॥
ततो द्रोणं समारोहत् पार्षतः पापकर्मकृत् ।

निश्चय ही अर्जुनने अपने सीधे जानेवाले बाणोंके द्वारा अन्य रथियोंको आगे बढ़नेसे रोक दिया था । इसीलिये पापकर्मा धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यपर चढ़ाई कर सका ॥ २५½ ॥

न ह्यहं परिपश्यामि वधे कंचन शुष्मिणः ॥ २६ ॥
धृष्टद्युम्नादृते रौद्रात् पाल्यमानात् किरीटिना।

किरीटधारी अर्जुनके द्वारा सुरक्षित भयंकर स्वभाववाले धृष्टद्युम्नको छोड़कर दूसरे किसीको मैं ऐसा नहीं देखता, जो अत्यन्त तेजस्वी द्रोणाचार्यके वधमें समर्थ हो ॥ २६½ ॥

तैर्वृतः सर्वतः शूरः पाञ्चाल्यापसदस्ततः ॥ २७ ॥
केकयैश्चेदिकारूषैर्मत्स्यैरन्यैश्च भूमिपैः।
व्याकुलीकृतमाचार्यं पिपीलैरुरगं यथा ॥ २८ ॥
कर्मण्यसुकरे सक्तं जघानेति मतिर्मम।

केकय, चेदि, कारूष, मत्स्यदेशीय सैनिकों तथा अन्य भूमिपालोंने आचार्यको उसी प्रकार व्याकुल कर दिया होगा, जैसे बहुत-सी चींटियाँ सर्पको विह्वल कर देती हैं; उसी अवस्थामें उन पाण्डव सैनिकोंद्वारा सब ओरसे घिरे हुए नीच धृष्टद्युम्नने दुष्कर कर्ममें लगे हुए द्रोणाचार्यको मार डाला होगा, यही बात मेरे मनमें आती है ॥ २७–२८½ ॥

योऽधीत्य चतुरो वेदान् साङ्गानाख्यानपञ्चमान् ।२९।
ब्राह्मणानां प्रतिष्ठाऽऽसीत् स्रोतसामिव सागरः।
क्षत्रं च ब्रह्म चैवेह योऽभ्यतिष्ठत् परंतपः ॥ ३० ॥
स कथं ब्राह्मणो वृद्धः शस्त्रेण वधमाप्तवान्।

जो छहों अङ्गों तथा पञ्चम वेदस्थानीय इतिहास-पुराणोंसहित चारों वेदोंका अध्ययन करके ब्राह्मणोंके लिये उसी प्रकार आश्रय बने हुए थे, जैसे नदियोंके लिये समुद्र है। जो शत्रुओंको संताप देनेवाले तथा ब्राह्मण एवं क्षत्रिय दोनोंके धर्मोंका अनुष्ठान करनेवाले थे, वे वृद्ध ब्राह्मण द्रोणाचार्य शस्त्रद्वारा कैसे मारे गये ? ॥ २९-३०½ ॥

अमर्षिणा मर्षितवान् क्लिश्यमानान् सदा मया॥ ३१ ॥
अनर्हमाणान् कौन्तेयान् कर्मणस्तस्य तत् फलम्।

मैंने अमर्षमें भरकर सदा कष्ट भोगनेके अयोग्य कुन्तीकुमारोंको क्लेश ही दिया है; परंतु मेरे इस बर्तावको द्रोणाचार्यने चुपचाप सह लिया था। उनके उसी कर्मका यह वधरूपी फल प्राप्त हुआ है ॥ ३१½ ॥

यस्य कर्मानुजीवन्ति लोके सर्वधनुर्भृतः ॥ ३२ ॥
स सत्यसंधः सुकृती श्रीकामैर्निहतः कथम्।

जगत्के सम्पूर्ण धनुर्धर जिनके शिक्षणरूपी कर्मका आश्रय लेकर जीवन-निर्वाह करते हैं, उन सत्यप्रतिज्ञ पुण्यात्मा द्रोणाचार्यको राजलक्ष्मीके लोभियोंने कैसे मार डाला ? ॥ ३२½॥

दिवि शक्र इव श्रेष्ठो महासत्त्वो महाबलः ॥ ३३ ॥
स कथं निहतः पार्थैः क्षुद्रमत्स्यैर्यथा तिमिः।

स्वर्गलोकमें इन्द्रके समान जो इस लोकमें सबसे श्रेष्ठ थे, उन महान् सत्त्वशाली, महाबली द्रोणाचार्यको कुन्तीके पुत्रोंने उसी प्रकार मार डाला, जैसे छोटे मत्स्योंने मिलकर तिमि नामक महामत्स्यको मार डाला हो। यह कैसे सम्भव हुआ ? ॥ ३३½ ॥

क्षिप्रहस्तश्च बलवान् दृढधन्वारिमर्दनः ॥ ३४ ॥
न यस्य विजयाकाङ्क्षी विषयं प्राप्य जीवति।
यं द्वौ न जहतः शब्दौ जीवमानं कदाचन ॥ ३५ ॥
ब्राह्मश्च वेदकामानां ज्याघोषश्च धनुष्मताम्।

जो शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले, बलवान्, दृढधन्वा तथा शत्रुओंका मर्दन करनेवाले थे, कोई भी विजयाभिलाषी वीर जिनके बाणोंका लक्ष्य बन जानेपर जीवित नहीं रह सकता था, जिन्हें जीते-जी दो शब्दोंने कभी नहीं छोड़ा था—एक तो वेदाध्ययनकी इच्छावाले लोगोंके समक्ष वेदध्वनिका शब्द और दूसरा धनुर्धारियोंके बीचमें प्रत्यञ्चाकी टकारका शब्द ॥ ३४-३५½ ॥

अदीनं पुरुषव्याघ्रं ह्रीमन्तमपराजितम् ॥ ३६ ॥
नाहं मृष्ये हतं द्रोणं सिंहद्विरदविक्रमम्।

सिंह और हाथीके समान पराक्रमी, उदार, लज्जाशील और किसीसे पराजित न होनेवाले पुरुषसिंह द्रोणका वध मैं नहीं सहन कर सकता ॥ ३६½ ॥

कथं संजय दुर्धर्षमनाधृष्ययशोबलम् ॥ ३७ ॥
पश्यतां पुरुषेन्द्राणां समरे पार्षतोऽवधीत्।

संजय ! जिनके यश और बलका तिरस्कार होना असम्भव था, उन दुर्धर्ष वीर द्रोणाचार्यको समरभूमिमें सम्पूर्ण नरेशोंके देखते-देखते धृष्टद्युम्नने कैसे मार डाला ? ॥ ३७½ ॥

के पुरस्तादयुध्यन्त रक्षन्तो द्रोणमन्तिकात् ॥ ३८ ॥
के नु पश्चादवर्तन्त गच्छन्तो दुर्गमां गतिम्।

कौन-कौनसे वीर उस समय निकटसे द्रोणाचार्यकी रक्षा करते हुए उनके आगे रहकर युद्ध करते थे और कौन-कौन योद्धा दुर्गम मार्गपर पैर बढ़ाते हुए उनके पीछे रहकर रक्षा करते थे ? ॥ ३८½ ॥

केऽरक्षन् दक्षिणं चक्रं सव्यं के च महात्मनः ॥ ३९ ॥
पुरस्तात् के च वीरस्य युध्यमानस्य संयुगे।
के च तस्मिंस्तनूंस्त्यक्त्वा प्रतीपं मृत्युमाव्रजन्॥४०॥

कौन वीर उन महात्माके दाहिने पहियेकी और कौन बायें पहियेकी रक्षा करते थे ? कौन उस युद्धस्थलमें युद्धपरायण वीरवर द्रोणाचार्यके आगे थे और किन लोगोंने अपने शरीरका मोह छोड़कर विपक्षियोंका सामना करते हुए उस रणक्षेत्रमें मृत्युका वरण किया था ॥ ३९-४० ॥

द्रोणस्य समरे वीराः केऽकुर्वन्त परां धृतिम्।
कच्चिन्नैनं भयान्मन्दाः क्षत्रिया व्यजहन् रणे ॥ ४१ ॥
रक्षितारस्ततः शून्ये कच्चित् तैर्न हतः परैः।

किन वीरोंने युद्धमें द्रोणाचार्यको उत्तम धैर्य प्रदान

किया ? उनकी रक्षा करनेवाले मूर्ख क्षत्रियोंने भयभीत होकर युद्धस्थलमें उन्हें अकेला तो नहीं छोड़ दिया ? और इस प्रकार शत्रुओंने सूनेमें तो उन्हें नहीं मार डाला ? ॥४१½॥

न स पृष्ठमरेस्त्रासाद् रणे शौर्यात् प्रदर्शयेत् ॥ ४२ ॥
परामप्यापदं प्राप्य स कथं निहतः परैः ।

जो बड़ी-से-बड़ी आपत्ति पड़नेपर भी रणमें अपने शौर्यके कारण शत्रुको भयवश पीठ नहीं दिखा सकते थे, वे विपक्षियोंद्वारा किस प्रकार मारे गये ? ॥ ४२½ ॥

एतदार्येण कर्तव्यं कृच्छ्रास्वापत्सु संजय ॥ ४३ ॥
पराक्रमेद् यथाशक्त्या तच्च तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ।

संजय ! बड़े भारी संकटमें पड़नेपर श्रेष्ठ पुरुषको यही करना चाहिये कि वह यथाशक्ति पराक्रम दिखावे; यह बात द्रोणाचार्यमें पूर्णरूपसे प्रतिष्ठित थी ॥ ४३½ ॥

मुह्यते मे मनस्तात कथा तावन्निवार्यताम् ।
भूयस्तु लब्धसंज्ञस्त्वां परिपृच्छामि संजय ॥ ४४ ॥

तात ! इस समय मेरा मन मोहित हो रहा है; अतः तुम यह कथा बंद करो ! संजय ! फिर होशमें आनेपर तुमसे यह समाचार पूछूँगा ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि धृतराष्ट्रशोके नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणाभिषेकपर्वमें धृतराष्ट्रका शोकविषयक नवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

राजा धृतराष्ट्रका शोकसे व्याकुल होना और संजयसे युद्धविषयक प्रश्न

वैशम्पायन उवाच

एतत् पृष्ट्वा सूतपुत्रं हृच्छोकेनार्दितो भृशम् ।
जये निराशः पुत्राणां धृतराष्ट्रोऽपतत् क्षितौ ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! सूतपुत्र संजयसे इस प्रकार प्रश्न करते-करते हार्दिक शोकसे अत्यन्त पीड़ित हो अपने पुत्रोंकी विजयकी आशा टूट जानेके कारण राजा धृतराष्ट्र अचेत-से होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १ ॥

तं विसंज्ञं निपतितं सिषिचुः परिचारिकाः ।
जलेनात्यर्थशीतेन वीजन्त्यः पुण्यगन्धिना ॥ २ ॥

उस समय अचेत पड़े हुए राजा धृतराष्ट्रको उनकी दासियाँ पंखा झलने लगीं और उनके ऊपर परम सुगन्धित एवं अत्यन्त शीतल जल छिड़कने लगीं ॥ २ ॥

पतितं चैनमालोक्य समन्ताद् भरतस्त्रियः ।
परिवव्रुर्महाराजमस्पृशंश्चैव पाणिभिः ॥ ३ ॥

महाराजको गिरा देख धृतराष्ट्रकी बहुत-सी स्त्रियाँ उन्हें चारों ओरसे घेरकर बैठ गयीं और उन्हें हाथोंसे सहलाने लगीं ॥

उत्थाप्य चैनं शनकै राजानं पृथिवीतलात् ।
आसनं प्रापयामासुर्बाष्पकण्ठ्यो वराननाः ॥ ४ ॥

फिर उन सुमुखी स्त्रियोंने राजाको धीरे-धीरे धरतीसे उठाकर सिंहासनपर बिठाया । उस समय उनके नेत्रोंसे आँसू झर रहे थे और कण्ठ गद्गद हो रहे थे ॥ ४ ॥

आसनं प्राप्य राजा तु मूर्छयाभिपरिप्लुतः ।
निश्चेष्टोऽतिष्ठत तदा वीज्यमानः समन्ततः ॥ ५ ॥

सिंहासनपर पहुँचकर भी राजा धृतराष्ट्र मूर्छासे पीड़ित हो निश्चेष्ट हो गये । उस समय सब ओरसे उनके ऊपर व्यजन डुलाया जा रहा था ॥ ५ ॥

स लब्ध्वा शनकैः संज्ञां वेपमानो महीपतिः ।
पुनर्गावल्गणिं सूतं पर्यपृच्छद् यथातथम् ॥ ६ ॥

फिर धीरे-धीरे होशमें आनेपर काँपते हुए राजा धृतराष्ट्रने पुनः सूतजातीय संजयसे युद्धका यथावत् समाचार पूछा ॥६॥

धृतराष्ट्र उवाच

यः स उद्यन्निवादित्यो ज्योतिषा प्रणुदंस्तमः ।
अजातशत्रुमायान्तं कस्तं द्रोणादवारयत् ॥ ७ ॥

धृतराष्ट्र बोले—जो उगते हुए सूर्यकी भाँति अपनी प्रभासे अन्धकार दूर कर देते हैं, उन अजातशत्रु युधिष्ठिरको द्रोणके समीप आनेसे किसने रोका था ? ॥ ७ ॥

प्रभिन्नमिव मातङ्गं यथा क्रुद्धं तरस्विनम् ।
प्रसन्नवदनं दृष्ट्वा प्रतिद्विरदगामिनम् ॥ ८ ॥
वासितासंगमे यद्वदजय्यं प्रति यूथपैः ।
निजघान रणे वीरान् वीरः पुरुषसत्तमः ॥ ९ ॥
यो ह्येको हि महावीर्यो निर्दहेद् घोरचक्षुषा ।
कृत्स्नं दुर्योधनबलं धृतिमान् सत्यसंगरः ॥ १० ॥
चक्षुर्हणं जये सक्तमिष्वासधरमच्युतम् ।
दान्तं बहुमतं लोके के शूराः पर्यवारयन् ॥ ११ ॥

जो मदकी धारा बहानेवाले, हथिनीके साथ समागमके समय आये हुए विपक्षी हाथीपर आक्रमण करनेवाले तथा गजयूथपतियोंके लिये अजेय मतवाले गजराजके समान वेगशाली और पराक्रमी हैं, कौरवोंके प्रति जिनका क्रोध बढ़ा हुआ है, जिन पुरुषप्रवर वीरने रणक्षेत्रमें बहुत-से वीरोंका संहार किया है, जो महापराक्रमी, धैर्यवान् एवं सत्यप्रतिज्ञ हैं और अपनी भयंकर दृष्टिसे अकेले ही दुर्योधनकी सम्पूर्ण सेनाको भस्म कर सकते हैं, जो क्रोधभरी दृष्टिसे ही शत्रुका संहार करनेमें समर्थ हैं, विजयके लिये प्रयत्नशील, अपनी

मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले, जितेन्द्रिय तथा लोकमें विशेष सम्मानित हैं, उन प्रसन्नवदन धनुर्धर युधिष्ठिरको द्रोणाचार्यके सामने आते देख मेरे पक्षके किन शूरवीरोंने रोका था ? ॥ ८—११ ॥

के दुष्प्रधर्षं राजानमिष्वासधरमच्युतम् ।
समासेदुर्नरव्याघ्रं कौन्तेयं तत्र मामकाः ॥ १२ ॥

जो धर्मसे कभी विचलित नहीं होते हैं, उन महाधनुर्धर दुर्धर्ष वीर पुरुषसिंह कुन्तीकुमार राजा युधिष्ठिरपर मेरे किन योद्धाओंने आक्रमण किया था ? ॥ १२ ॥

तरसैवाभिपद्याथ यो वै द्रोणमुपाद्रवत् ।
यः करोति महत् कर्म शत्रूणां वै महाबलः ॥ १३ ॥
महाकायो महोत्साहो नागायुतसमो बले ।
तं भीमसेनमायान्तं के शूराः पर्यवारयन् ॥ १४ ॥

जिन्होंने वेगसे ही पहुँचकर द्रोणाचार्यपर आक्रमण किया था, जो शत्रुके समक्ष महान् पराक्रम प्रकट करते हैं, जो महाबली, महाकाय और महान् उत्साही हैं तथा जिनमें दस हजार हाथियोंके समान बल है, उन भीमसेनको आते देख किन वीरोंने रोका था ? ॥ १३-१४ ॥

यदाऽऽयाज्जलदप्रख्यो रथः परमवीर्यवान् ।
पर्जन्य इव बीभत्सुस्तुमुलामशनीं सृजन् ॥ १५ ॥
विसृजञ्छरजालानि वर्षाणि मघवानिव ।
अवस्फूर्जन् दिशः सर्वास्तलनेमिस्वनेन च ॥ १६ ॥
चापविद्युत्प्रभो घोरो रथगुल्मबलाहकः ।
स नेमिघोषस्तनितः शरशब्दातिबन्धुरः ॥ १७ ॥
रोषानिलसमुद्धूतो मनोऽभिप्रायशीघ्रगः ।
मर्मातिगो बाणधरस्तुमुलः शोणितोदकैः ॥ १८ ॥
सम्प्लावयन् दिशः सर्वा मानवैरास्तरन् महीम् ।

जो मेघके समान श्यामवर्णवाले परम पराक्रमी महारथी अर्जुन विद्युत्की उत्पत्ति करते हुए बादलोंके समान भयंकर वज्रास्त्रका प्रयोग करते हैं, जो जलकी वर्षा करनेवाले इन्द्रके समान बाणसमूहोंकी वृष्टि करते हैं तथा जो अपने धनुषकी टंकार और रथके पहियेकी घरघराहटसे सम्पूर्ण दिशाओंको शब्दायमान कर देते हैं, वे स्वयं भयंकर मेघस्वरूप जान पड़ते हैं । धनुष ही उनके समीप विद्युत्प्रभाके समान प्रकाशित होता है । रथियोंकी सेना उनकी फैली हुई घटाएँ जान पड़ती हैं । रथके पहियोंकी घरघराहट मेघ-गर्जनाके समान प्रतीत होती है । उनके बाणोंकी सनसनाहट वर्षाके शब्दकी भाँति अत्यन्त मनोहर लगती है। क्रोधरूपी वायु उन्हें आगे बढ़नेकी प्रेरणा देती है । वे मनोरथकी भाँति शीघ्रगामी और विपक्षियोंके मर्मस्थलोंको विदीर्ण कर डालनेवाले हैं । बाण धारण करके वे बड़े भयानक प्रतीत होते और रक्तरूपी जलसे सम्पूर्ण दिशाओंको आप्लावित करते हुए मनुष्योंकी लाशोंसे धरतीको पाट देते हैं ॥ १५–१८½ ॥

भीमनिःस्वनितो रौद्रो दुर्योधनपुरोगमान् ॥ १९ ॥
युद्धेऽभ्यषिञ्चद् विजयो गार्ध्रपत्रैः शिलाशितैः ।
गाण्डीवं धारयन् धीमान् कीदृशं वो मनस्तदा ॥ २० ॥

जिस समय भयंकर गर्जना करनेवाले रौद्ररूपधारी बुद्धिमान् अर्जुनने युद्धमें गाण्डीव धारण करके सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए गृध्रपंखयुक्त बाणोंद्वारा दुर्योधन आदि मेरे पुत्रों और सैनिकोंको घायल करना आरम्भ किया, उस समय तुमलोगोंके मनकी कैसी अवस्था हुई थी ? ॥ १९-२० ॥

इषुसम्बाधमाकाशं कुर्वन् कपिवरध्वजः ।
यदाऽऽयात् कथमासीत् तु तदा पार्थं समीक्षताम् ॥ २१ ॥

वानरके चिह्नसे युक्त श्रेष्ठ ध्वजावाले अर्जुन जब आकाशको अपने बाणोंसे ठसाठस भरते हुए तुमलोगोंपर चढ़ आये थे, उस समय उन्हें देखकर तुम्हारे मनकी कैसी दशा हुई थी ? ॥ २१ ॥

कच्चिद् गाण्डीवशब्देन न प्रणश्यति वै बलम् ।
यद्वः सभैरवं कुर्वन्नर्जुनो भृशमन्वयात् ॥ २२ ॥

जिस समय अर्जुनने अत्यन्त भयंकर सिंहनाद करते हुए तुमलोगोंका पीछा किया था, उस समय गाण्डीवकी टंकार सुनकर हमारी सेना भाग तो नहीं गयी थी ? ॥ २२ ॥

कच्चिन्नापानुदत् प्राणानिषुभिर्वो धनंजयः ।
वातो वेगादिवाविध्यन्मेघाञ्शरगणैर्नृपान् ॥ २३ ॥

उस अवसरपर पार्थने अपने बाणोंद्वारा तुम्हारे सैनिकोंके प्राण तो नहीं ले लिये थे ? जैसे वायु वेगपूर्वक चलकर मेघोंकी घटाको छिन्न-छिन्न कर देती है, उसी प्रकार अर्जुनने वेगसे चलाये हुए बाण-समूहोंद्वारा विपक्षी नरेशोंको घायल कर दिया होगा ॥ २३ ॥

को हि गाण्डीवधन्वानं रणे सोढुं नरोऽर्हति ।
यमुपश्रुत्य सेनाग्रे जनः सर्वो विदीर्यते ॥ २४ ॥

सेनाके प्रमुख भागमें जिनका नाम सुनकर ही सारे सैनिक विदीर्ण हो जाते (भाग निकलते) हैं, उन्हीं गाण्डीवधारी अर्जुनका वेग रणक्षेत्रमें कौन मनुष्य सह सकता है ? ॥

यत्सेनाः समकम्पन्त यद्वीरानस्पृशद् भयम् ।
के तत्र नाजहुर्द्रोणं के क्षुद्राः प्राद्रवन् भयात् ॥ २५ ॥

जहाँ सारी सेनाएँ काँप उठीं, समस्त वीरोंके मनमें भय समा गया, वहाँ किन वीरोंने द्रोणाचार्यका साथ नहीं छोड़ा और कौन-कौनसे अधम सैनिक भयके मारे मैदान छोड़कर भाग गये ? ॥ २५ ॥

के वा तत्र तनूंस्त्यक्त्वा प्रतीपं मृत्युमाव्रजन् ।
अमानुषाणां जेतारं युद्धेष्वपि धनंजयम् ॥ २६ ॥

मानवेतर प्राणियों (देवताओं और दैत्यों) पर भी विजय पानेवाले वीर अर्जुनको युद्धमें अपने प्रतिकूल पाकर किन वीरोंने वहाँ अपने शरीरोंको निछावर करके मृत्युको स्वीकार किया ? ॥ २६ ॥

न च वेगं सिताश्वस्य विसहिष्यन्ति मामकाः ।
गाण्डीवस्य च निर्घोषं प्रावृड्जलदनिःस्वनम् ॥ २७ ॥

मेरे सैनिक श्वेतवाहन अर्जुनके वेग और वर्षाकालके मेघकी गम्भीर गर्जना की भाँति गाण्डीव धनुषकी टंकारध्वनिको नहीं सह सकेंगे ॥ २७ ॥

विष्वक्सेनो यस्य यन्ता यस्य योद्धा धनंजयः ।
अशक्यः स रथो जेतुं मन्ये देवासुरैरपि ॥ २८ ॥

जिसके सारथि भगवान् श्रीकृष्ण और योद्धा वीर धनंजय हैं, उस रथको जीतना मैं देवताओं तथा असुरोंके लिये भी असम्भव मानता हूँ ॥ २८ ॥

सुकुमारो युवा शूरो दर्शनीयश्च पाण्डवः ।
मेधावी निपुणो धीमान् युधि सत्यपराक्रमः ॥ २९ ॥
आरावं विपुलं कुर्वन् व्यथयन् सर्वसैनिकान् ।
यदाऽऽयान्नकुलो द्रोणं के शूराः पर्यवारयन् ॥ ३० ॥

सुकुमार, तरुण, शूरवीर, दर्शनीय (सुन्दर), मेधावी, युद्धकुशल, बुद्धिमान् और सत्यपराक्रमी पाण्डुपुत्र नकुल जब युद्धमें जोर-जोरसे गर्जना करके समस्त सैनिकोंको पीडित करते हुए द्रोणाचार्यपर चढ़ आये, उस समय किन वीरोंने उन्हें रोका था ? ॥ २९-३० ॥

आशीविष इव क्रुद्धः सहदेवो यदाभ्ययात् ।
कदनं करिष्यञ्छत्रूणां तेजसा दुर्जयो युधि ॥ ३१ ॥
आर्यव्रतममोघेषुं ह्रीमन्तमपराजितम् ।
सहदेवं तमायान्तं के शूराः पर्यवारयन् ॥ ३२ ॥

विषधर सर्पके समान क्रोधमें भरे हुए तथा तेजसे दुर्जय सहदेव जब युद्धमें शत्रुओंका संहार करते हुए द्रोणाचार्यके सामने आये, उस समय श्रेष्ठ व्रतधारी अमोघ बाणोंवाले लज्जाशील और अपराजित वीर सहदेवको आते देख किन शूरवीरोंने उन्हें रोका था ? ॥ ३१-३२ ॥

यस्तु सौवीरराजस्य प्रमथ्य महतीं चमूम् ।
आदत्त महिषीं भोजां काम्यां सर्वाङ्गशोभनाम् ॥ ३३ ॥
सत्यं धृतिश्च शौर्यं च ब्रह्मचर्यं च केवलम् ।
सर्वाणि युयुधानेऽस्मिन् नित्यानि पुरुषर्षभे ॥ ३४ ॥

जिन्होंने सौवीरराजकी विशाल सेनाको मथकर उनकी सर्वाङ्गसुन्दरी कमनीय कन्या भोजाको अपनी रानी बनानेके लिये हर लिया था, उन पुरुषशिरोमणि सात्यकिमें सत्य, धैर्य, शौर्य और विशुद्ध ब्रह्मचर्य आदि सारे सद्गुण सदा विद्यमान रहते हैं ॥

बलिनं सत्यकर्माणमदीनमपराजितम् ।
वासुदेवसमं युद्धे वासुदेवादनन्तरम् ॥ ३५ ॥
धनंजयोपदेशेन श्रेष्ठमिष्वस्त्रकर्मणि ।
पार्थेन सममस्त्रेषु कस्तं द्रोणादवारयत् ॥ ३६ ॥

वे सात्यकि बलवान्, सत्यपराक्रमी, उदार, अपराजित, युद्धमें वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके समान शक्तिशाली, अवस्थामें उनसे कुछ छोटे, अर्जुनसे ही शिक्षा पाकर बाणविद्यामें श्रेष्ठ तथा अस्त्रोंके संचालनमें कुन्तीकुमार अर्जुनके तुल्य यशस्वी हैं। उन वीरवर सात्यकिको किसने द्रोणाचार्यके पास आनेसे रोका ? ॥ ३५-३६ ॥

वृष्णीनां प्रवरं वीरं शूरं सर्वधनुष्मताम् ।
रामेण सममस्त्रेषु यशसा विक्रमेण च ॥ ३७ ॥

वृष्णिवंशके श्रेष्ठ शूरवीर सात्यकि सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें उत्तम हैं। वे अस्त्र-विद्या, यश तथा पराक्रममें परशुरामजीके समान हैं ॥ ३७ ॥

सत्यं धृतिर्मतिः शौर्यं ब्राह्मं चास्त्रमनुत्तमम् ।
सात्वते तानि सर्वाणि त्रैलोक्यमिव केशवे ॥ ३८ ॥

जैसे भगवान् श्रीकृष्णमें तीनों लोक स्थित हैं, उसी प्रकार सात्वतवंशी सात्यकिमें सत्य, धैर्य, बुद्धि, शौर्य तथा परम उत्तम ब्रह्मास्त्र विद्यमान हैं ॥ ३८ ॥

तमेवंगुणसम्पन्नं दुर्वारमपि दैवतैः ।
समासाद्य महेष्वासं के शूराः पर्यवारयन् ॥ ३९ ॥

इस प्रकार सर्वसद्गुणसम्पन्न महाधनुर्धर सात्यकिको रोकना देवताओंके लिये भी अत्यन्त कठिन है। उनके पास पहुँचकर किन शूरवीरोंने उन्हें आगे बढ़नेसे रोका ? ॥ ३९ ॥

पञ्चालेषूत्तमं वीरमुत्तमाभिजनप्रियम् ।
नित्यमुत्तमकर्माणमुत्तमौजसमाहवे ॥ ४० ॥
युक्तं धनंजयहिते ममानर्थार्थमुत्थितम् ।
यमवैश्रवणादित्यमहेन्द्रवरुणोपमम् ॥ ४१ ॥
महारथं समाख्यातं द्रोणायोद्यतमाहवे ।
त्यजन्तं तुमुले प्राणान् के शूराः समवारयन् ॥ ४२ ॥

पाञ्चालोंमें उत्तम, श्रेष्ठ कुल एवं ख्यातिके प्रेमी, सदा सत्कर्म करनेवाले, संग्राममें उत्तम आत्मबलका परिचय देनेवाले, अर्जुनके हितसाधनमें तत्पर, मेरा अनर्थ करनेके लिये उद्यत रहनेवाले, यमराज, कुबेर, सूर्य, इन्द्र और वरुणके समान तेजस्वी, विख्यात महारथी तथा भयंकर युद्धमें अपने प्राणोंको निछावर करके द्रोणाचार्यसे भिड़नेके लिये सदा तैयार रहनेवाले वीर धृष्टद्युम्नको किन शूरवीरोंने रोका ? ॥

एकोऽपसृत्य चेदिभ्यः पाण्डवान् यः समाश्रितः।
धृष्टकेतुं समायान्तं द्रोणं कस्तं न्यवारयत् ॥ ४३ ॥

जिसने अकेले ही चेदिदेशसे आकर पाण्डव-पक्षका आश्रय लिया है, उस धृष्टकेतुको द्रोणके पास आनेसे किसने रोका ? ॥ ४३ ॥

योऽवधीत् केतुमान् वीरो राजपुत्रं दुरासदम्।
अपरान्तगिरिद्वारे द्रोणात् कस्तं न्यवारयत् ॥ ४४ ॥

जिस वीरने अपरान्त पर्वतके द्वारदेशमें स्थित दुर्जय राजकुमारका वध किया, उस केतुमान्को द्रोणाचार्यके पास आनेसे किसने रोका ? ॥ ४४ ॥

स्त्रीपुंसयोर्नरव्याघ्रो यः स वेद गुणागुणान् ।
शिखण्डिनं याज्ञसेनिमम्लानमनसं युधि ॥ ४५ ॥
देवव्रतस्य समरे हेतुं मृत्योर्महात्मनः ।
द्रोणायाभिमुखं यान्तं के शूराः पर्यवारयन् ॥ ४६ ॥

जो पुरुषसिंह स्त्री और पुरुष दोनों शरीरोंके गुण-अवगुणको अपने अनुभवद्वारा जानता है, युद्धस्थलमें जिसका मन कभी म्लान (उत्साहशून्य) नहीं होता, जो समराङ्गणमें महात्मा भीष्मकी मृत्युमें हेतु बन चुका है, उस द्रुपदपुत्र शिखण्डीको द्रोणाचार्यके सम्मुख आनेसे किन वीरोंने रोका था?॥

यस्मिन्नभ्यधिका वीरे गुणाः सर्वे धनंजयात् ।
यस्मिन्नस्त्राणि सत्यं च ब्रह्मचर्यं च सर्वदा ॥ ४७ ॥
वासुदेवसमं वीर्ये धनंजयसमं बले ।
तेजसाऽऽदित्यसदृशं बृहस्पतिसमं मतौ ॥ ४८ ॥
अभिमन्युं महात्मानं व्यात्ताननमिवान्तकम् ।
द्रोणायाभिमुखं यान्तं के शूराः समवारयन् ॥ ४९ ॥

जिस वीरमें अर्जुनसे भी अधिक मात्रामें समस्त गुण मौजूद हैं, जिसमें अस्त्र, सत्य तथा ब्रह्मचर्य सदा प्रतिष्ठित हैं, जो पराक्रममें भगवान् श्रीकृष्ण, बलमें अर्जुन, तेजमें सूर्य और बुद्धिमें बृहस्पतिके समान है, वह महामना अभिमन्यु जब मुँह फैलाये हुए कालके समान द्रोणाचार्यके सम्मुख जा रहा था, उस समय किन शूरवीरोंने उसे रोका था ? ॥४७-४९॥

तरुणस्तरुणप्रज्ञः सौभद्रः परवीरहा ।
यदाभ्यधावद् वै द्रोणं तदाऽऽसीद् वो मनः कथम्॥५०॥

तरुण अवस्था और तरुण बुद्धिवाले शत्रुवीरोंके हन्ता सुभद्राकुमारने जब द्रोणाचार्यपर धावा किया था, उस समय तुमलोगोंका मन कैसा हो रहा था ? ॥ ५० ॥

द्रौपदेया नरव्याघ्राः समुद्रमिव सिन्धवः ।
यद् द्रोणमाद्रवन् संख्ये के शूरास्तान् न्यवारयन्॥५१॥

पुरुषसिंह द्रौपदीकुमार समुद्रकी ओर जानेवाली नदियोंकी भाँति जब द्रोणाचार्यपर धावा कर रहे थे, उस समय युद्धमें किन शूरवीरोंने उनको रोका था ? ॥ ५१ ॥

एते द्वादश वर्षाणि क्रीडामुत्सृज्य बालकाः ।
अस्त्रार्थमवसन् भीष्मे बिभ्रतो व्रतमुत्तमम् ॥ ५२ ॥

इन द्रौपदीकुमारोंने बारह वर्षोंतक खेल-कूद छोड़कर अस्त्रोंकी शिक्षा पानेके लिये उत्तम ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करते हुए भीष्मके समीप निवास किया था ॥ ५२ ॥

क्षत्रंजयः क्षत्रदेवः क्षत्रवर्मा च मानदः ।
धृष्टद्युम्नात्मजा वीराः के तान् द्रोणादवारयन् ॥ ५३ ॥

क्षत्रंजय, क्षत्रदेव तथा दूसरोंको मान देनेवाले क्षत्रवर्मा— ये धृष्टद्युम्नके तीन वीर पुत्र हैं । उन्हें द्रोणके पास आनेसे किन वीरोंने रोका था ? ॥ ५३ ॥

शताद् विशिष्टं यं युद्धे समनन्यन्त वृष्णयः ।
चेकितानं महेष्वासं कस्तं द्रोणादवारयत् ॥ ५४ ॥

जिन्हें युद्धके मैदानमें वृष्णिवंशियोंने सौ वीरोंसे भी अधिक माना है, उन महाधनुर्धर चेकितानको द्रोणके पास आनेसे किसने रोका ? ॥ ५४ ॥

वार्धक्षेमिः कलिङ्गानां यः कन्यामाहरद् युधि ।
अनाधृष्टिरदीनात्मा कस्तं द्रोणादवारयत् ॥ ५५ ॥

वृद्धक्षेमके पुत्र उदारचित्त अनाधृष्टिने युद्धस्थलमें कलिंग-राजकी कन्याका अपहरण किया था । उन्हें द्रोणके पास आनेसे किसने रोका ? ॥ ५५ ॥

भ्रातरः पञ्च कैकेया धार्मिकाः सत्यविक्रमाः ।
इन्द्रगोपकसंकाशा रक्तवर्मायुधध्वजाः ॥ ५६ ॥
मातृष्वसुः सुता वीराः पाण्डवानां जयार्थिनः ।
तान् द्रोणं हन्तुमायातान् के वीराः पर्यवारयन् ॥ ५७ ॥

केकय देशके सत्यपराक्रमी, धर्मात्मा पाँच वीर राज-कुमार लाल रंगके कवच, आयुध और ध्वज धारण करनेवाले हैं तथा उनके शरीरकी कान्ति भी इन्द्रगोपके समान लाल रंगकी ही है; वे पाण्डवोंकी मौसीके बेटे हैं । वे जब पाण्डवों-की विजयके लिये द्रोणाचार्यको मारनेके लिये उनपर चढ़ आये, उस समय किन वीरोंने उन्हें रोका था ? ॥५६-५७॥

यं योधयन्तो राजानो नाजयन् वारणावते ।
षण्मासानपि संरब्धा जिघांसन्तो युधाम्पतिम्॥ ५८ ॥
धनुष्मतां वरं शूरं सत्यसंधं महाबलम् ।
द्रोणात् कस्तं नरव्याघ्रं युयुत्सुं पर्यवारयत् ॥ ५९ ॥

वारणावत नगरमें सब राजालोग मार डालनेकी इच्छासे क्रोधमें भरकर छः महीनोंतक युद्ध करते रहनेपर भी योद्धाओं-में श्रेष्ठ जिस वीरको परास्त न कर सके, धनुर्धरोंमें उत्तम, शौर्यसम्पन्न, सत्यप्रतिज्ञ, महाबली, उस पुरुषसिंह युयुत्सुको द्रोणाचार्यके पास आनेसे किसने रोका ? ॥ ५८-५९ ॥

यः पुत्रं काशिराजस्य वाराणस्यां महारथम् ।
समरे स्त्रीषु गृध्यन्तं भल्लेनापाहरद् रथात् ॥ ६० ॥
धृष्टद्युम्नं महेष्वासं पार्थानां मन्त्रधारिणम् ।
युक्तं दुर्योधनानर्थे सृष्टं द्रोणवधाय च ॥ ६१ ॥
निर्दहन्तं रणे योधान् दारयन्तं च सर्वतः ।
द्रोणाभिमुखमायान्तं के शूराः पर्यवारयन् ॥ ६२ ॥

जिसने काशीपुरीमें काशिराजके महारथी पुत्रको, जो

स्त्रियोंके प्रति आसक्त था, समरभूमिमें भल्ल नामक बाणद्वारा रथसे मार गिराया; जो कुन्तीकुमारोंकी गुप्त मन्त्रणाको सुरक्षित रखनेवाला तथा दुर्योधनका अनर्थ करनेके लिये उद्यत रहनेवाला है तथा जिसकी उत्पत्ति द्रोणाचार्यके वधके लिये हुई है; वह महाधनुर्धर धृष्टद्युम्न जब रणक्षेत्रमें योद्धाओंको अपने बाणोंकी अग्निसे जलाता और सब ओरसे सारी सेनाको विदीर्ण करता हुआ द्रोणाचार्यके सम्मुख आ रहा था, उस समय किन शूरवीरोंने उसे रोका था ? ॥ ६०--६२ ॥

उत्सङ्ग इव संवृद्धं द्रुपदस्यास्त्रवित्तमम् ।
शैखण्डिनं शस्त्रगुप्तं के च द्रोणादवारयन् ॥ ६३ ॥

जो द्रुपदकी गोदमें पला हुआ था और शस्त्रोंद्वारा सुरक्षित था, अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ उस शिखण्डीपुत्रको द्रोणाचार्यके पास आनेसे किन वीरोंने रोका ? ॥ ६३ ॥

य इमां पृथिवीं कृत्स्नां चर्मवत् समवेष्टयत् ।
महता रथघोषेण मुख्यारिघ्नो महारथः ॥ ६४ ॥
दशाश्वमेधानाजह्रे स्वन्नपानाप्तदक्षिणान् ।
निरर्गलान् सर्वमेधान् पुत्रवत् पालयन् प्रजाः ॥ ६५ ॥
गङ्गास्रोतसि यावन्त्यः सिकता अप्यशेषतः ।
तावतीर्गा ददौ वीर उशीनरसुतोऽध्वरे ॥ ६६ ॥

जैसे चमड़ेको अंगोंमें लपेट लिया जाता है, उसी प्रकार जिन्होंने अपने रथके महान् घोषद्वारा इस सारी पृथ्वीको व्याप्त कर लिया था, जो प्रधान-प्रधान शत्रुओंका वध करनेवाले और महारथी वीर थे, जिन्होंने प्रजाका पुत्रकी भाँति पालन करते हुए सुन्दर अन्न, पान तथा प्रचुर दक्षिणासे युक्त एवं विघ्नरहित दस अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान किया और कितने ही सर्वमेध यज्ञ सम्पन्न किये, वे राजा उशीनरके वीर पुत्र सर्वत्र विख्यात हैं, गङ्गाजीके स्रोतमें जितने सिकता-कण बहते हैं, उतनी ही अर्थात् असंख्य गौएँ उशीनरकुमारने अपने यज्ञमें ब्राह्मणोंको दी थीं ॥ ६४--६६ ॥

न पूर्वे नापरे चक्रुरिदं केचन मानवाः ।
इतीदं चुक्रुशुर्देवाः कृते कर्मणि दुष्करे ॥ ६७ ॥

राजा जब उस दुष्कर यज्ञका अनुष्ठान पूर्ण कर चुके, तब सम्पूर्ण देवताओंने यह पुकार-पुकारकर कहा कि 'ऐसा यज्ञ पहलेके और बादके भी मनुष्योंने कभी नहीं किया था'॥

पश्यामस्त्रिषु लोकेषु न तं संस्थास्नुचारिषु।
जातं चापि जनिष्यन्तं द्वितीयं चापि साम्प्रतम्॥ ६८ ॥
अन्यमौशीनराच्छैब्याद् धुरो वोढारमित्युत ।
गतिं यस्य न यास्यन्ति मानुषा लोकवासिनः ॥ ६९ ॥

स्थावर-जंगमरूप तीनों लोकोंमें एकमात्र उशीनरपौत्र शैब्यको छोड़कर दूसरे किसी ऐसे राजाको न तो हम इस समय उत्पन्न हुआ देखते हैं और न भविष्यमें किसीके उत्पन्न होनेका लक्षण ही देख पाते हैं, जो इस महान् भारको वहन करनेवाला हो । इस मर्त्यलोकके निवासी मनुष्य उनकी गतिको नहीं पा सकेंगे ॥ ६८-६९ ॥

तस्य नप्तारमायान्तं शैब्यं कः समवारयत् ।
द्रोणायाभिमुखं यत्तं व्यात्ताननमिवान्तकम् ॥ ७० ॥

उन्हीं उशीनरका पौत्र शैब्य सावधान हो जब द्रोणाचार्यके सम्मुख आ रहा था, उस समय मुँह फैलाये हुए कालके समान उस वीरको किसने रोका ? ॥ ७० ॥

विराटस्य रथानीकं मत्स्यस्यामित्रघातिनः ।
प्रेप्सन्तं समरे द्रोणं के वीराः पर्यवारयन् ॥ ७१ ॥

शत्रुघाती मत्स्यराज विराटकी रथसेनाको, जो द्रोणाचार्यको नष्ट करनेकी इच्छासे खोजती हुई आ रही थी, किन वीरोंने रोका था ? ॥ ७१ ॥

सद्यो वृकोदराज्जातो महाबलपराक्रमः ।
मायावी राक्षसो वीरो यस्मान्मम महद् भयम् ॥ ७२ ॥
पार्थानां जयकामं तं पुत्राणां मम कण्टकम् ।
घटोत्कचं महात्मानं कस्तं द्रोणादवारयत् ॥ ७३ ॥

जो भीमसेनसे तत्काल प्रकट हुआ तथा जिससे मुझे महान् भय बना रहता है, वह महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न मायावी राक्षस वीर घटोत्कच कुन्तीकुमारोंकी विजय चाहता है और मेरे पुत्रोंके लिये कंटक बना हुआ है, उस महाकाय घटोत्कचको द्रोणाचार्यके पास आनेसे किसने रोका ? ॥ ७२-७३ ॥

एते चान्ये च बहवो येषामर्थाय संजय ।
त्यक्तारः संयुगे प्राणान् किं तेषामजितं युधि ॥ ७४ ॥

संजय ! ये तथा और भी बहुत-से वीर जिनके लिये युद्धमें प्राण त्याग करनेको तैयार हैं, उनके लिये कौन-सी ऐसी वस्तु होगी, जो जीती न जा सके ॥ ७४ ॥

येषां च पुरुषव्याघ्रः शार्ङ्गधन्वा व्यपाश्रयः ।
हितार्थी चापि पार्थानां कथं तेषां पराजयः ॥ ७५ ॥

शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले पुरुषसिंह भगवान् श्रीकृष्ण जिनके आश्रय तथा हित चाहनेवाले हैं, उन कुन्तीकुमारोंकी पराजय कैसे हो सकती है ? ॥ ७५ ॥

लोकानां गुरुरत्यर्थं लोकनाथः सनातनः ।
नारायणो रणे नाथो दिव्यो दिव्यात्मकः प्रभुः ॥ ७६ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण जगत्के परम गुरु हैं, समस्त लोकोंके सनातन स्वामी हैं, संग्रामभूमिमें सबकी रक्षा करनेवाले दिव्य स्वरूप, सामर्थ्यशाली, दिव्य नारायण हैं ॥ ७६ ॥

यस्य दिव्यानि कर्माणि प्रवदन्ति मनीषिणः ।

तान्यहं कीर्तयिष्यामि भक्त्या स्थैर्यार्थमात्मनः॥ ७७ ॥

मनीषी पुरुष जिनके दिव्य कर्मोंका वर्णन करते हैं, उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका अपने मनकी स्थिरताके लिये भक्तिपूर्वक वर्णन करूँगा ॥ ७७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणाभिषेकपर्वमें धृतराष्ट्रवाक्यविषयक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका भगवान् श्रीकृष्णकी संक्षिप्त लीलाओंका वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनकी महिमा बताना

धृतराष्ट्र उवाच

शृणु दिव्यानि कर्माणि वासुदेवस्य संजय ।
कृतवान् यानि गोविन्दो यथा नान्यः पुमान् क्वचित्॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णके दिव्य कर्मोंका वर्णन सुनो । भगवान् गोविन्दने जो-जो कार्य किये हैं, वैसा दूसरा कोई पुरुष कदापि नहीं कर सकता ॥ १ ॥

संवर्धता गोपकुले बालेनैव महात्मना ।
विख्यापितं बलं बाह्वोस्त्रिषु लोकेषु संजय ॥ २ ॥

संजय ! बाल्यावस्थामें ही जब कि वे गोपकुलमें पल रहे थे, महात्मा श्रीकृष्णने अपनी भुजाओंके बल और पराक्रमको तीनों लोकोंमें विख्यात कर दिया ॥ २ ॥

उच्चैःश्रवस्तुल्यबलं वायुवेगसमं जवे ।
जघान हयराजं तं यमुनावनवासिनम् ॥ ३ ॥

यमुनाके तटवर्ती वनमें उच्चैःश्रवाके समान बलशाली और वायुके समान वेगवान् अश्वराज केशी रहता था । उसे श्रीकृष्णने मार डाला ॥ ३ ॥

दानवं घोरकर्माणं गवां मृत्युमिवोत्थितम् ।
वृषरूपधरं बाल्ये भुजाभ्यां निजघान ह ॥ ४ ॥

इसी प्रकार एक भयंकर कर्म करनेवाला दानव वहाँ बैलका रूप धारण करके रहता था, जो गौओंके लिये मृत्युके समान प्रकट हुआ था । उसे भी श्रीकृष्णने बाल्यावस्थामें अपने हाथोंसे ही मार डाला ॥ ४ ॥

प्रलम्बं नरकं जम्भं पीठं चापि महासुरम् ।
मुरं चान्तकसंकाशमवधीत् पुष्करेक्षणः ॥ ५ ॥

तत्पश्चात् कमलनयन श्रीकृष्णने प्रलम्ब, नरकासुर, जम्भासुर, पीठ नामक महान् असुर और यमराजसदृश मुरका भी संहार किया ॥ ५ ॥

तथा कंसो महातेजा जरासंधेन पालितः ।
विक्रमेणैव कृष्णेन सगणः पातितो रणे ॥ ६ ॥

इसी प्रकार श्रीकृष्णने पराक्रम करके ही जरासंघके द्वारा सुरक्षित महातेजस्वी कंसको उसके गणोंसहित रणभूमिमें मार गिराया ॥ ६ ॥

सुनामा रणविक्रान्तः समग्राक्षौहिणीपतिः ।
भोजराजस्य मध्यस्थो भ्राता कंसस्य वीर्यवान्॥ ७ ॥
बलदेवद्वितीयेन कृष्णेनामित्रघातिना ।
तरस्वी समरे दग्धः ससैन्यः शूरसेनराट् ॥ ८ ॥

शत्रुहन्ता श्रीकृष्णने बलरामजीके साथ जाकर युद्धमें पराक्रम दिखानेवाले, बलवान्, वेगवान्, सम्पूर्ण अक्षौहिणी सेनाओंके अधिपति, भोजराज कंसके मझले भाई शूरसेन देशके राजा सुनामाको समरमें सेनासहित दग्ध कर डाला ॥

दुर्वासा नाम विप्रर्षिस्तथा परमकोपनः ।
आराधितः सदारेण स चास्मै प्रददौ वरान् ॥ ९ ॥

पत्नीसहित श्रीकृष्णने परम क्रोधी ब्रह्मर्षि दुर्वासाकी आराधना की । अतः उन्होंने प्रसन्न होकर उन्हें बहुत-से वर दिये ॥ ९ ॥

तथा गान्धारराजस्य सुतां वीरः स्वयंवरे ।
निर्जित्य पृथिवीपालानावहत् पुष्करेक्षणः ॥ १० ॥
अमृष्यमाणा राजानो यस्य जात्या हया इव ।
रथे वैवाहिके युक्ताः प्रतोदेन कृतव्रणाः ॥ ११ ॥

कमलनयन वीर श्रीकृष्णने स्वयंवरमें गान्धारराजकी पुत्रीको प्राप्त करके समस्त राजाओंको जीतकर उसके साथ विवाह किया । उस समय अच्छी जातिके घोड़ोंकी भाँति श्रीकृष्णके वैवाहिक रथमें जुते हुए वे असहिष्णु राजालोग कोड़ोंकी मारसे घायल कर दिये गये थे ॥ १०-११ ॥

जरासंधं महाबाहुमुपायेन जनार्दनः ।
परेण घातयामास समग्राक्षौहिणीपतिम् ॥ १२ ॥

जनार्दन श्रीकृष्णने समस्त अक्षौहिणी सेनाओंके अधिपति महाबाहु जरासंधको उपायपूर्वक दूसरे योद्धा (भीमसेन) के द्वारा मरवा दिया ॥ १२ ॥

चेदिराजं च विक्रान्तं राजसेनापतिं बली ।
अर्घ्ये विवदमानं च जघान पशुवत् तदा ॥ १३ ॥

बलवान् श्रीकृष्णने राजाओंकी सेनाके अधिपति पराक्रमी चेदिराज शिशुपालको अग्रपूजनके समय विवाद करनेके कारण पशुकी भाँति मार डाला ॥ १३ ॥

सौभं दैत्यपुरं स्वस्थं शाल्वगुप्तं दुरासदम् ।

समुद्रकुक्षौ विक्रम्य पातयामास माधवः ॥ १४ ॥

तत्पश्चात् माधवने आकाशमें स्थित रहनेवाले सौभ नामक दुर्धर्ष दैत्य-नगरको, जो राजा शाल्वद्वारा सुरक्षित था, समुद्रके बीच पराक्रम करके मार गिराया ॥ १४ ॥

अङ्गान् वङ्गान् कलिङ्गांश्च मागधान् काशिकोसलान्।
वात्स्यगार्ग्यकरूषांश्च पौण्ड्रांश्चाप्यजयद् रणे ॥ १५ ॥

उन्होंने रणक्षेत्रमें अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, मगध, काशि, कोसल, वत्स, गर्ग, करूष तथा पौण्ड्र आदि देशोंपर विजय पायी थी ॥ १५ ॥

आवन्त्यान् दाक्षिणात्यांश्च पर्वतीयान् दशेरकान् ।
काश्मीरकानौरसिकान् पिशाचांश्च समुद्गलान्॥ १६॥
काम्बोजान् वाटधानांश्च चोलान् पाण्ड्यांश्च संजय।
त्रिगर्तान् मालवांश्चैव दरदांश्च सुदुर्जयान् ॥ १७ ॥
नानादिग्भ्यश्च सम्प्राप्तान् खशांश्चैव शकांस्तथा।
जितवान् पुण्डरीकाक्षो यवनं च सहानुगम् ॥ १८ ॥

संजय ! इसी प्रकार कमलनयन श्रीकृष्णने अवन्ती, दक्षिण प्रान्त, पर्वतीय देश, दशेरक, काश्मीर, औरसिक, पिशाच, मुद्गल, काम्बोज, वाटधान, चोल, पाण्ड्य, त्रिगर्त, मालव, अत्यन्त दुर्जय दरद आदि देशोंके योद्धाओंको तथा नाना दिशाओंसे आये हुए खशों, शकों और अनुयायियोंसहित कालयवनको भी जीत लिया ॥ १६–१८ ॥

प्रविश्य मकरावासं यादोगणनिषेवितम् ।
जिगाय वरुणं संख्ये सलिलान्तर्गतं पुरा ॥ १९ ॥

पूर्वकालमें श्रीकृष्णने जल-जन्तुओंसे भरे हुए समुद्रमें प्रवेश करके जलके भीतर निवास करनेवाले वरुण देवताको युद्धमें परास्त किया ॥ १९ ॥

युधि पञ्चजनं हत्वा दैत्यं पातालवासिनम् ।
पाञ्चजन्यं हृषीकेशो दिव्यं शङ्खमवाप्तवान् ॥ २० ॥

इसी प्रकार हृषीकेशने पाताल-निवासी पञ्चजन नामक दैत्यको युद्धमें मारकर दिव्य पाञ्चजन्य शङ्ख प्राप्त किया ॥

खाण्डवे पार्थसहितस्तोषयित्वा हुताशनम् ।
आग्नेयमस्त्रं दुर्धर्षं चक्रं लेभे महाबलः ॥ २१ ॥

खाण्डव वनमें अर्जुनके साथ अग्निदेवको संतुष्ट करके महाबली श्रीकृष्णने दुर्धर्ष आग्नेय अस्त्र चक्रको प्राप्त किया था॥

वैनतेयं समारुह्य त्रासयित्वामरावतीम् ।
महेन्द्रभवनाद् वीरः पारिजातमुपानयत् ॥ २२ ॥

वीर श्रीकृष्ण गरुड़पर आरूढ़ हो अमरावती पुरीमें जाकर वहाँके निवासियोंको भयभीत करके महेन्द्रभवनसे पारिजात वृक्ष उठा ले आये ॥ २२ ॥

तच्च मर्षितवाञ्शक्रो जानंस्तस्य पराक्रमम् ।
राज्ञां चाप्यजितं कञ्चित् कृष्णेनेह न शुश्रुम ॥ २३ ॥

उनके पराक्रमको इन्द्र अच्छी तरह जानते थे, इसलिये उन्होंने वह सब चुपचाप सह लिया । राजाओंमेंसे किसीको भी मैंने ऐसा नहीं सुना है, जिसे श्रीकृष्णने जीत न लिया हो॥

यच्च तन्महदाश्चर्यं सभायां मम संजय ।
कृतवान् पुण्डरीकाक्षः कस्तदन्य इहार्हति ॥ २४ ॥

संजय ! उस दिन मेरी सभामें कमलनयन श्रीकृष्णने जो महान् आश्चर्य प्रकट किया था, उसे इस संसारमें उनके सिवा दूसरा कौन कर सकता है ? ॥ २४ ॥

यच्च भक्त्या प्रसन्नोऽहमद्राक्षं कृष्णमीश्वरम् ।
तन्मे सुविदितं सर्वं प्रत्यक्षमिव चागमम् ॥ २५ ॥

मैंने प्रसन्न होकर भक्तिभावसे भगवान् श्रीकृष्णके उस ईश्वरीय रूपका जो दर्शन किया, वह सब मुझे आज भी अच्छी तरह स्मरण है । मैंने उन्हें प्रत्यक्षकी भाँति जान लिया था ॥ २५ ॥

नान्तो विक्रमयुक्तस्य बुद्ध्या युक्तस्य वा पुनः ।
कर्मणां शक्यते गन्तुं हृषीकेशस्य संजय ॥ २६ ॥

संजय ! बुद्धि और पराक्रमसे युक्त भगवान् हृषीकेशके कर्मोंका अन्त नहीं जाना जा सकता ॥ २६ ॥

तथा गदश्च साम्बश्च प्रद्युम्नोऽथ विदूरथः ।
अगावहोऽनिरुद्धश्च चारुदेष्णः ससारणः ॥ २७ ॥
उल्मुको निशठश्चैव झिल्ली बभ्रुश्च वीर्यवान् ।
पृथुश्च विपृथुश्चैव शमीकोऽथारिमेजयः ॥ २८ ॥
एतेऽन्ये बलवन्तश्च वृष्णिवीराः प्रहारिणः ।
कथंचित् पाण्डवानीकं श्रयेयुः समरे स्थिताः॥ २९ ॥
आहूता वृष्णिवीरेण केशवेन महात्मना ।
ततः संशयितं सर्वं भवेदिति मतिर्मम ॥ ३० ॥

यदि गद, साम्ब, प्रद्युम्न, विदूरथ, अगावह, अनिरुद्ध, चारुदेष्ण, सारण, उल्मुक, निशठ, झिल्ली, पराक्रमी बभ्रु, पृथु, विपृथु, शमीक तथा अरिमेजय—ये तथा दूसरे भी बलवान् एवं प्रहारकुशल वृष्णिवंशी योद्धा वृष्णिवंशके प्रमुख वीर महात्मा केशवके बुलानेपर पाण्डव-सेनामें आ जायँ और समर-भूमिमें खड़े हो जायँ तो हमारा सारा उद्योग संशयमें पड़ जाय; ऐसा मेरा विश्वास है ॥ २७–३० ॥

नागायुतबलो वीरः कैलासशिखरोपमः ।
वनमाली हली रामस्तत्र यत्र जनार्दनः ॥ ३१ ॥

वनमाला और हल धारण करनेवाले वीर बलराम कैलास-शिखरके समान गौरवर्ण हैं । उनमें दस हजार हाथियोंका बल है । वे भी उसी पक्षमें रहेंगे, जहाँ श्रीकृष्ण हैं ॥

यमाहुः सर्वपितरं वासुदेवं द्विजातयः ।
अपि वा ह्येष पाण्डूनां योत्स्यतेऽर्थाय संजय ॥ ३२ ॥

संजय ! जिन भगवान् वासुदेवको द्विजगण सबका पिता बताते हैं, क्या वे पाण्डवोंके लिये स्वयं युद्ध करेंगे ? ॥ ३२ ॥

स यदा तात संनह्येत् पाण्डवार्थाय संजय।
न तदा प्रतिसंयोद्धा भविता तत्र कश्चन ॥ ३३ ॥

तात ! संजय ! जब पाण्डवोंके लिये श्रीकृष्ण कवच बाँधकर युद्धके लिये तैयार हो जायँ, उस समय वहाँ कोई भी योद्धा उनका सामना करनेको तैयार न होगा ॥ ३३ ॥

यदि स्म कुरवः सर्वे जयेयुर्नाम पाण्डवान्।
वार्ष्णेयोऽर्थाय तेषां वै गृह्णीयाच्छस्त्रमुत्तमम्॥ ३४ ॥

यदि सब कौरव पाण्डवोंको जीत लें तो वृष्णिवंशभूषण भगवान् श्रीकृष्ण उनके हितके लिये अवश्य उत्तम शस्त्र ग्रहण कर लेंगे ॥ ३४ ॥

ततः सर्वान् नरव्याघ्रो हत्वा नरपतीन् रणे।
कौरवांश्च महाबाहुः कुन्त्यै दद्यात् स मेदिनीम्॥ ३५ ॥

उस दशामें पुरुषसिंह महाबाहु श्रीकृष्ण सब राजाओं तथा कौरवोंको रणभूमिमें मारकर सारी पृथ्वी कुन्तीको दे देंगे ॥ ३५ ॥

यस्य यन्ता हृषीकेशो योद्धा यस्य धनंजयः।
रथस्य तस्य कः संख्ये प्रत्यनीको भवेद् रथः ॥ ३६ ॥

जिसके सारथि सम्पूर्ण इन्द्रियोंके नियन्ता श्रीकृष्ण तथा योद्धा अर्जुन हैं, रणभूमिमें उस रथका सामना करनेवाला दूसरा कौन रथ होगा ? ॥ ३६ ॥

न केनचिदुपायेन कुरूणां दृश्यते जयः।
तस्मान्मे सर्वमाचक्ष्व यथा युद्धमवर्तत ॥ ३७ ॥

किसी भी उपायसे कौरवोंकी जय होती नहीं दिखायी देती। इसलिये तुम मुझसे सब समाचार कहो। वह युद्ध किस प्रकार हुआ ? ॥ ३७ ॥

अर्जुनः केशवस्यात्मा कृष्णोऽप्यात्मा किरीटिनः।
अर्जुने विजयो नित्यं कृष्णे कीर्तिश्च शाश्वती ॥ ३८ ॥

अर्जुन श्रीकृष्णके आत्मा हैं और श्रीकृष्ण किरीटधारी अर्जुनके आत्मा हैं। अर्जुनमें विजय नित्य विद्यमान है और श्रीकृष्णमें कीर्तिका सनातन निवास है ॥ ३८ ॥

सर्वेष्वपि च लोकेषु बीभत्सुरपराजितः।
प्राधान्येनैव भूयिष्ठममेयाः केशवे गुणाः ॥ ३९ ॥

अर्जुन सम्पूर्ण लोकोंमें कभी कहीं भी पराजित नहीं हुए हैं। श्रीकृष्णमें असंख्य गुण हैं। यहाँ प्रायः प्रधान गुणके नाम लिये गये हैं ॥ ३९ ॥

मोहाद् दुर्योधनः कृष्णं यो न वेत्तीह केशवम्।
मोहितो दैवयोगेन मृत्युपाशपुरस्कृतः ॥ ४० ॥

दुर्योधन मोहवश सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् केशवको नहीं जानता है, वह दैवयोगसे मोहित हो मौतके फंदेमें फँस गया ॥ ४० ॥

न वेद कृष्णं दाशार्हमर्जुनं चैव पाण्डवम्।
पूर्वदेवौ महात्मानौ नरनारायणावुभौ ॥ ४१ ॥

यह दशार्हकुलभूषण श्रीकृष्ण और पाण्डुपुत्र अर्जुनको नहीं जानता है, वे दोनों पूर्वदेवता महात्मा नर और नारायण हैं ॥ ४१ ॥

एकात्मानौ द्विधाभूतौ दृश्येते मानवैर्भुवि।
मनसाऽपि हि दुर्धर्षौ सेनामेतां यशस्विनौ ॥ ४२ ॥
नाशयेतामिहेच्छन्तौ मानुषत्वाच्च नेच्छतः।

उनकी आत्मा तो एक है; परंतु इस भूतलके मनुष्योंको वे शरीरसे दो होकर दिखायी देते हैं। उन्हें मनसे भी पराजित नहीं किया जा सकता। वे यशस्वी श्रीकृष्ण और अर्जुन यदि इच्छा करें तो मेरी सेनाको तत्काल नष्ट कर सकते हैं; परंतु मानव-भावका अनुसरण करनेके कारण ये वैसी इच्छा नहीं करते हैं ॥ ४२½ ॥

युगस्येव विपर्यासो लोकानामिव मोहनम् ॥ ४३ ॥
भीष्मस्य च वधस्तात द्रोणस्य च महात्मनः।

तात ! भीष्म तथा महात्मा द्रोणका वध युगके उलट जानेकी-सी बात है। सम्पूर्ण लोकोंको यह घटना मानो मोहमें डालनेवाली है ॥ ४३½ ॥

न ह्येव ब्रह्मचर्येण न वेदाध्ययनेन च ॥ ४४ ॥
न क्रियाभिर्न चास्त्रेण मृत्योः कश्चिन्निवार्यते।

जान पड़ता है, कोई भी न तो ब्रह्मचर्यके पालनसे, न वेदोंके स्वाध्यायसे, न कर्मोंके अनुष्ठानसे और न अस्त्रोंके प्रयोगसे ही अपनेको मृत्युसे बचा सकता है ॥ ४४½ ॥

लोकसम्भावितौ वीरौ कृतास्त्रौ युद्धदुर्मदौ ॥ ४५ ॥
भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा किं नु जीवामि संजय।

संजय ! लोकसम्मानित, अस्त्रविद्याके ज्ञाता तथा युद्ध-दुर्मद वीरवर भीष्म और द्रोणाचार्यके मारे जानेका समाचार सुनकर मैं किसलिये जीवित रहूँ ? ॥ ४५½ ॥

यां तां श्रियमसूयामः पुरा दृष्ट्वा युधिष्ठिरे ॥ ४६ ॥
अद्य तामनुजानीमो भीष्मद्रोणवधेन ह।

पूर्वकालमें राजा युधिष्ठिरके पास जिस प्रसिद्ध राजलक्ष्मीको देखकर हमलोग उनसे डाह करने लगे थे, आज भीष्म और द्रोणाचार्यके वधसे हम उसके कटु फलका अनुभव कर रहे हैं ॥ ४६½ ॥

मत्कृते चाप्यनुप्राप्तः कुरूणामेष संक्षयः ॥ ४७ ॥
पक्वानां हि वधे सूत वज्रायन्ते तृणान्युत।

सूत ! मेरे ही कारण यह कौरवोंका विनाश प्राप्त हुआ

है। जो कालसे परिपक्व हो गये हैं, उनके वधके लिये तिनके भी वज्रका काम करते हैं ॥ ४७½ ॥

अनन्तमिदमैश्वर्यं लोके प्राप्तो युधिष्ठिरः ॥ ४८ ॥
यस्य कोपान्महात्मानौ भीष्मद्रोणौ निपातितौ ।

युधिष्ठिर इस संसारमें अनन्त ऐश्वर्यके भागी हुए हैं। जिनके कोपसे महात्मा भीष्म और द्रोण मार गिराये गये ॥४८½॥

प्राप्तः प्रकृतितो धर्मो न धर्मो मामकान् प्रति ॥ ४९ ॥
क्रूरः सर्वविनाशाय कालोऽसौ नातिवर्तते ।

युधिष्ठिरको धर्मका स्वाभाविक फल प्राप्त हुआ है, किंतु मेरे पुत्रोंको उसका फल नहीं मिल रहा है। सबका विनाश करनेके लिये प्राप्त हुआ यह क्रूर काल बीत नहीं रहा है ॥ ४९½ ॥

अन्यथा चिन्तिता ह्यर्था नरैस्तात मनस्विभिः ॥ ५० ॥
अन्यथैव प्रपद्यन्ते दैवादिति मतिर्मम ।

तात ! मनस्वी पुरुषोंद्वारा अन्य प्रकारसे सोचे हुए कार्य भी दैवयोगसे कुछ और ही प्रकारके हो जाते हैं; ऐसा मेरा अनुभव है ॥ ५०½ ॥

तस्मादपरिहार्येऽर्थे सम्प्राप्ते कृच्छ्र उत्तमे ।
अपारणीये दुश्चिन्त्ये यथाभूतं प्रचक्ष्व मे ॥ ५१ ॥

अतः इस अनिवार्य अपार दुश्चिन्त्य एवं महान् संकटके प्राप्त होनेपर जो घटना जिस प्रकार हुई हो, वह मुझे बताओ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि धृतराष्ट्रविलापे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणाभिषेकपर्वमें धृतराष्ट्रविलापविषयक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

दुर्योधनका वर माँगना और द्रोणाचार्यका युधिष्ठिरको अर्जुनकी अनुपस्थितिमें जीवित पकड़ लानेकी प्रतिज्ञा करना

संजय उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् ।
यथा स न्यपतद् द्रोणः सूदितः पाण्डुसृञ्जयैः ॥ १ ॥

संजयने कहा—महाराज ! मैं बड़े दुःखके साथ आपसे उन सब घटनाओंका वर्णन करूँगा। द्रोणाचार्य किस प्रकार गिरे हैं और पाण्डवों तथा सृञ्जयोंने कैसे उनका वध किया है ? इन सब बातोंको मैंने प्रत्यक्ष देखा था ॥ १ ॥

सेनापतित्वं सम्प्राप्य भारद्वाजो महारथः ।
मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य पुत्रं ते वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥

सेनापतिका पद प्राप्त करके महारथी द्रोणाचार्यने सारी सेनाके बीचमें आपके पुत्र दुर्योधनसे इस प्रकार कहा—॥२॥

यत् कौरवाणामृषभादापगेयादनन्तरम् ।
सैनापत्येन यद् राजन् मामद्य कृतवानसि ॥ ३ ॥
सदृशं कर्मणस्तस्य फलं प्राप्नुहि भारत ।
करोमि कामं कं तेऽद्य प्रवृणीष्व यमिच्छसि ॥ ४ ॥

'राजन् ! तुमने कौरवश्रेष्ठ गङ्गापुत्र भीष्मके बाद जो आज मुझे सेनापति बनाया है, भरतनन्दन ! इस कार्यके अनुरूप कोई फल मुझसे प्राप्त करो। आज तुम्हारा कौन-सा मनोरथ पूर्ण करूँ ? तुम्हें जिस वस्तुकी इच्छा हो, उसे ही माँग लो' ॥ ३-४ ॥

ततो दुर्योधनो राजा कर्णदुःशासनादिभिः ।
सम्मन्त्र्योवाच दुर्धर्षमाचार्यं जयतां वरम् ॥ ५ ॥

तब राजा दुर्योधनने कर्ण, दुःशासन आदिके साथ सलाह करके विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ एवं दुर्जय आचार्य द्रोणसे इस प्रकार कहा—॥ ५ ॥

ददासि चेद् वरं मह्यं जीवग्राहं युधिष्ठिरम् ।
गृहीत्वा रथिनां श्रेष्ठं मत्समीपमिहानय ॥ ६ ॥

आचार्य ! यदि आप मुझे वर दे रहे हैं तो रथियोंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरको जीवित पकड़कर यहाँ मेरे पास ले आइये' ॥ ६ ॥

ततः कुरूणामाचार्यः श्रुत्वा पुत्रस्य ते वचः ।
सेनां प्रहर्षयन् सर्वामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥

आपके पुत्रकी वह बात सुनकर कुरुकुलके आचार्य द्रोण सारी सेनाको प्रसन्न करते हुए इस प्रकार बोले—॥७॥

धन्यः कुन्तीसुतो राजन् यस्य ग्रहणमिच्छसि।
न वधार्थं सुदुर्धर्ष वरमद्य प्रयाचसे ॥ ८ ॥

'राजन् ! कुन्तीकुमार युधिष्ठिर धन्य हैं, जिन्हें तुम जीवित पकड़ना चाहते हो। उन दुर्धर्ष वीरके वधके लिये आज तुम मुझसे याचना नहीं कर रहे हो ॥ ८ ॥

किमर्थं च नरव्याघ्र न वधं तस्य काङ्क्षसे ।
नाशंससि क्रियामेतां मत्तो दुर्योधन ध्रुवम् ॥ ९ ॥

'पुरुषसिंह ! तुम्हें उनके वधकी इच्छा क्यों नहीं हो रही है ? दुर्योधन ! तुम मेरे द्वारा निश्चितरूपसे युधिष्ठिरका वध कराना क्यों नहीं चाहते हो ? ॥ ९ ॥

आहोस्विद् धर्मराजस्य द्वेष्टा तस्य न विद्यते ।
यदीच्छसि त्वं जीवन्तं कुलं रक्षसि चात्मनः ॥ १० ॥

'अथवा इसका कारण यह तो नहीं है कि धर्मराज युधिष्ठिरसे द्वेष रखनेवाला इस संसारमें कोई है ही नहीं। इसीलिये तुम उन्हें जीवित देखना और अपने कुलकी रक्षा करना चाहते हो ॥ १० ॥

अथवा भरतश्रेष्ठ निर्जित्य युधि पाण्डवान्।
राज्यं सम्प्रति दत्त्वा च सौभ्रात्रं कर्तुमिच्छसि॥ ११ ॥

'अथवा भरतश्रेष्ठ! तुम युद्धमें पाण्डवोंको जीतकर इस समय उनका राज्य वापस दे सुन्दर भ्रातृभावका आदर्श उपस्थित करना चाहते हो ॥ ११ ॥

धन्यः कुन्तीसुतो राजा सुजातं चास्य धीमतः।
अजातशत्रुता सत्या तस्य यत् स्निह्यते भवान्॥१२ ॥

'कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर धन्य हैं। उन बुद्धिमान् नरेशका जन्म बहुत ही उत्तम है और वे जो अजातशत्रु कहलाते हैं, वह भी ठीक है; क्योंकि तुम भी उनपर स्नेह रखते हो' ॥ १२ ॥

द्रोणेन चैवमुक्तस्य तव पुत्रस्य भारत।
सहसा निःसृतो भावो योऽस्य नित्यं हृदि स्थितः॥ १३ ॥

भारत! द्रोणाचार्यके ऐसा कहनेपर तुम्हारे पुत्रके मनका भाव जो सदा उसके हृदयमें बना रहता था, सहसा प्रकट हो गया ॥ १३ ॥

नाकारो गूहितुं शक्यो बृहस्पतिसमैरपि।
तस्मात्तव सुतो राजन् प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत् ॥ १४ ॥

बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् पुरुष भी अपने आकारको छिपा नहीं सकते। राजन्! इसीलिये आपका पुत्र अत्यन्त प्रसन्न होकर इस प्रकार बोला—॥ १४ ॥

वधे कुन्तिसुतस्याजौ नाचार्य विजयो मम।
हते युधिष्ठिरे पार्था हन्युः सर्वान् हि नो ध्रुवम्॥१५ ॥

'आचार्य! युद्धके मैदानमें कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरके मारे जानेसे मेरी विजय नहीं हो सकती; क्योंकि युधिष्ठिरका वध होनेपर कुन्तीके पुत्र हम सब लोगोंको अवश्य ही मार डालेंगे ॥ १५ ॥

न च शक्या रणे सर्वे निहन्तुममरैरपि।
(यदि सर्वे हनिष्यन्ते पाण्डवाःससुता मृधे।
ततः कृत्स्नं वशे कृत्वा निःशेषं नृपमण्डलम्॥
ससागरवनां स्फीतां विजित्य वसुधामिमाम्।
विष्णुर्दास्यति कृष्णायै कुन्त्यै वा पुरुषोत्तमः ॥)
य एव तेषां शेषः स्यात् स एवास्मान् न शेषयेत्॥ १६ ॥

'सम्पूर्ण देवता भी समस्त पाण्डवोंको रणक्षेत्रमें नहीं मार सकते। यदि सारे पाण्डव अपने पुत्रोंसहित युद्धमें मार डाले जायँगे तो भी पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण नरेशमण्डलको अपने वशमें करके समुद्र और वनोंसहित इस सारी समृद्धिशालिनी वसुधाको जीतकर द्रौपदी अथवा कुन्तीको दे डालेंगे। अथवा पाण्डवोंमेंसे जो भी शेष रह जायगा, वही हमलोगोंको शेष नहीं रहने देगा ॥ १६ ॥

सत्यप्रतिज्ञे त्वानीते पुनर्द्यूतेन निर्जिते।
पुनर्यास्यन्त्यरण्याय पाण्डवास्तमनुव्रताः ॥ १७ ॥

'सत्यप्रतिज्ञ राजा युधिष्ठिरको जीते-जी पकड़ ले आनेपर यदि उन्हें पुनः जूएमें जीत लिया जाय तो उनमें भक्ति रखनेवाले पाण्डव पुनः वनमें चले जायँगे ॥ १७ ॥

सोऽयं मम जयो व्यक्तं दीर्घकालं भविष्यति।
अतो न वधमिच्छामि धर्मराजस्य कर्हिचित् ॥ १८ ॥

'इस प्रकार निश्चय ही मेरी विजय दीर्घकालतक बनी रहेगी। इसीलिये मैं कभी धर्मराज युधिष्ठिरका वध करना नहीं चाहता' ॥ १८ ॥

तस्य जिह्ममभिप्रायं ज्ञात्वा द्रोणोऽथ तत्त्ववित्।
तं वरं सान्तरं तस्मै ददौ संचिन्त्य बुद्धिमान्॥ १९ ॥

राजन्! द्रोणाचार्य प्रत्येक बातके वास्तविक तात्पर्यको तत्काल समझ लेनेवाले थे। दुर्योधनके उस कुटिल मनोभावको जानकर बुद्धिमान् द्रोणने मन-ही-मन कुछ विचार किया और अन्तर रखकर उसे वर दिया ॥ १९ ॥

द्रोण उवाच

न चेद् युधिष्ठिरं वीरः पालयत्यर्जुनो युधि।
मन्यस्व पाण्डवश्रेष्ठमानीतं वशमात्मनः ॥ २० ॥

द्रोणाचार्य बोले—राजन्! यदि वीरवर अर्जुन युद्धमें युधिष्ठिरकी रक्षा न करते हों, तब तुम पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिरको अपने वशमें आया हुआ ही समझो ॥ २० ॥

न हि शक्यो रणे पार्थः सेन्द्रैर्देवासुरैरपि।
प्रत्युद्यातुमतस्तात नैतदामर्षयाम्यहम् ॥ २१ ॥

तात! रणक्षेत्रमें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता और असुर भी अर्जुनका सामना नहीं कर सकते हैं। अतः मुझमें भी उन्हें जीतनेका उत्साह नहीं है ॥ २१ ॥

असंशयं स मे शिष्यो मत्पूर्वश्चास्त्रकर्मणि।
तरुणः सुकृतैर्युक्त एकायनगतश्च ह ॥ २२ ॥
अस्त्राणीन्द्राच्च रुद्राच्च भूयः स समवाप्तवान्।
अमर्षितश्च ते राजंस्ततो नामर्षयाम्यहम् ॥ २३ ॥

इसमें संदेह नहीं कि अर्जुन मेरा शिष्य है और उसने पहले मुझसे ही अस्त्रविद्या सीखी है, तथापि वह तरुण है। अनेक प्रकारके पुण्य कर्मोंसे युक्त है। विजय अथवा मृत्यु—इन दोनोंमेंसे एकका वरण करनेका दृढ़ निश्चय कर चुका है। इन्द्र और रुद्र आदि देवताओंसे पुनः बहुत-से दिव्यास्त्रोंकी शिक्षा पा चुका है और तुम्हारे प्रति उसका अमर्ष बढ़ा हुआ है। इसलिये राजन्! मैं अर्जुनसे लड़नेका उत्साह नहीं रखता हूँ ॥ २२-२३ ॥

स चापक्रम्यतां युद्धाद् येनोपायेन शक्यते।
अपनीते ततः पार्थे धर्मराजो जितस्त्वया ॥ २४ ॥

अतः जिस उपायसे भी सम्भव हो, तुम उन्हें युद्धसे दूर हटा दो। कुन्तीकुमार अर्जुनके रणक्षेत्रसे हट जानेपर समझ लो कि तुमने धर्मराजको जीत लिया ॥ २४ ॥

ग्रहणे हि जयस्तस्य न वधे पुरुषर्षभ ।
एतेन चाप्युपायेन ग्रहणं समुपैष्यसि ॥ २५ ॥

नरश्रेष्ठ ! उनको पकड़ लेनेमें ही तुम्हारी विजय है, उनके वधमें नहीं; परंतु इसी उपायसे तुम उन्हें पकड़ पाओगे ॥ २५ ॥

अहं गृहीत्वा राजानं सत्यधर्मपरायणम् ।
आनयिष्यामि ते राजन् वशमद्य न संशयः ॥ २६ ॥
यदि स्थास्यति संग्रामे मुहूर्तमपि मेऽग्रतः ।
अपनीते नरव्याघ्रे कुन्तीपुत्रे धनंजये ॥ २७ ॥

राजन् ! पुरुषसिंह कुन्तीपुत्र अर्जुनके युद्धसे हट जानेपर यदि वे दो घड़ी भी मेरे सामने संग्राममें खड़े रहेंगे तो मैं आज सत्यधर्मपरायण राजा युधिष्ठिरको पकड़कर तुम्हारे वशमें ला दूँगा, इसमें संशय नहीं है ॥ २६-२७ ॥

फाल्गुनस्य समीपे तु न हि शक्यो युधिष्ठिरः ।
ग्रहीतुं समरे राजन् सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥ २८ ॥

राजन् ! अर्जुनके समीप तो समरभूमिमें इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता और असुर भी युधिष्ठिरको नहीं पकड़ सकते हैं ॥ २८ ॥

संजय उवाच

सान्तरं तु प्रतिज्ञाते राज्ञो द्रोणेन निग्रहे ।
गृहीतं तममन्यन्त तव पुत्राः सुबालिशाः ॥ २९ ॥

संजय कहते हैं--राजन् ! द्रोणाचार्यने कुछ अन्तर रखकर जब राजा युधिष्ठिरको पकड़ लानेकी प्रतिज्ञा कर ली, तब आपके मूर्ख पुत्र उन्हें कैद हुआ ही मानने लगे ॥ २९ ॥

पाण्डवेयेषु सापेक्षं द्रोणं जानाति ते सुतः ।
ततः प्रतिज्ञास्थैर्यार्थं स मन्त्रो बहुलीकृतः ॥ ३० ॥

आपका पुत्र दुर्योधन यह जानता था कि द्रोणाचार्य पाण्डवोंके प्रति पक्षपात रखते हैं, अतः उसने उनकी प्रतिज्ञाको स्थिर रखनेके लिये उस गुप्त बातको भी बहुत लोगोंमें फैला दिया ॥ ३० ॥

ततो दुर्योधनेनापि ग्रहणं पाण्डवस्य तत् ।
(स्कन्धावारेषु सर्वेषु यथास्थानेषु मारिष ।)
सैन्यस्थानेषु सर्वेषु सुघोषितमरिंदम ॥ ३१ ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले आर्य धृतराष्ट्र ! तदनन्तर दुर्योधनने युद्धकी सारी छावनियोंमें तथा सेनाके विश्राम करनेके प्रायः सभी स्थानोंपर द्रोणाचार्यकी युधिष्ठिरको पकड़ लानेकी उस प्रतिज्ञाको घोषित करवा दिया ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि द्रोणप्रतिज्ञायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणाभिषेकपर्वमें द्रोणप्रतिज्ञाविषयक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २½ श्लोक मिलाकर कुल ३३½ श्लोक हैं)

त्रयोदशोऽध्यायः

अर्जुनका युधिष्ठिरको आश्वासन देना तथा युद्धमें द्रोणाचार्यका पराक्रम

संजय उवाच

सान्तरे तु प्रतिज्ञाते राज्ञो द्रोणेन निग्रहे ।
ततस्ते सैनिकाः श्रुत्वा तं युधिष्ठिरनिग्रहम् ॥ १ ॥
सिंहनादरवांश्चक्रुर्बाहुशब्दांश्च कृत्स्नशः ।
तच्च सर्वं यथान्यायं धर्मराजेन भारत ॥ २ ॥
आप्तैराशु परिज्ञातं भारद्वाजचिकीर्षितम् ।

संजय कहते हैं--राजन् ! जब द्रोणाचार्यने कुछ अन्तर रखकर राजा युधिष्ठिरको कैद करनेकी प्रतिज्ञा कर ली, तब आपके सैनिकोंने युधिष्ठिरके पकड़े जानेका उद्योग सुनकर जोर-जोरसे सिंहनाद करना और भुजाओंपर ताल ठोकना आरम्भ किया । भरतनन्दन ! उस समय धर्मराज युधिष्ठिरने शीघ्र ही अपने विश्वसनीय गुप्तचरोंद्वारा यथायोग्य सारी बातें पूर्णरूपसे जान लीं कि द्रोणाचार्य क्या करना चाहते हैं ॥ १-२½ ॥

ततः सर्वान् समानाय्य भ्रातॄनन्यांश्च सर्वशः ॥ ३ ॥
अब्रवीद् धर्मराजस्तु धनंजयमिदं वचः ।
श्रुतं ते पुरुषव्याघ्र द्रोणस्याद्य चिकीर्षितम् ॥ ४ ॥

तब धर्मराज युधिष्ठिरने अपने सब भाइयोंको और दूसरे राजाओंको सब ओरसे बुलवाकर धनंजय अर्जुनसे कहा— 'पुरुषसिंह ! आज द्रोण क्या करना चाहते हैं, यह तुमने सुना ही होगा ? ॥ ३-४ ॥

यथा तन्न भवेत् सत्यं तथा नीतिर्विधीयताम् ।
सान्तरं हि प्रतिज्ञातं द्रोणेनामित्रकर्षिणा ॥ ५ ॥

'अतः तुम ऐसी नीति बताओ, जिससे उनकी इच्छा सफल न हो । शत्रुसूदन द्रोणने कुछ अन्तर रखकर प्रतिज्ञा की है ॥ ५ ॥

तच्चान्तरं महेष्वास त्वयि तेन समाहितम् ।
स त्वमद्य महाबाहो युध्यस्व मदनन्तरम् ॥ ६ ॥
यथा दुर्योधनः कामं नेमं द्रोणादवाप्नुयात् ।

'महाधनुर्धर अर्जुन ! वह अन्तर उन्होंने तुम्हींपर डाल रक्खा है । अतः महाबाहो ! आज तुम मेरे समीप रहकर ही युद्ध करो, जिससे दुर्योधन द्रोणाचार्यसे अपने इस मनोरथको पूर्ण न करा सके' ॥ ६½ ॥

अर्जुन उवाच

यथा मे न वधः कार्य आचार्यस्य कदाचन ॥ ७ ॥

तथा तव परित्यागो न मे राजंश्चिकीर्षितः ।

अर्जुन बोले—राजन् ! जिस प्रकार मेरे लिये आचार्यका कभी वध न करना कर्तव्य है, उसी प्रकार किसी भी दशामें आपका परित्याग करना मुझे अभीष्ट नहीं है ॥ ७½ ॥

अप्येवं पाण्डव प्राणानुत्सृजेयमहं युधि ॥ ८ ॥
प्रतीपो नाहमाचार्ये भवेयं वै कथंचन ।

पाण्डुनन्दन ! इस नीतिके अनुसार बर्ताव करते हुए मैं युद्धमें अपने प्राणोंका परित्याग कर दूँगा; परंतु किसी प्रकार भी आचार्यका शत्रु नहीं बनूँगा ॥ ८½ ॥

त्वां निगृह्याहवे राज्यं धार्तराष्ट्रोऽयमिच्छति ॥ ९ ॥
न स तं जीवलोकेऽस्मिन् कामं प्राप्येत् कथंचन ।

महाराज ! यह धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन जो आपको युद्धमें कैद करके सारा राज्य हथिया लेना चाहता है, वह इस जगत्में अपने उस मनोरथको किसी प्रकार पूर्ण नहीं कर सकता ॥

प्रपतेद् द्यौः सनक्षत्रा पृथिवी शकलीभवेत् ॥ १० ॥
न त्वां द्रोणो निगृह्णीयाज्जीवमाने मयि ध्रुवम् ।

नक्षत्रोंसहित आकाश फट पड़े और पृथ्वीके टुकड़े-टुकड़े हो जायँ, तो भी मेरे जीते-जी द्रोणाचार्य आपको पकड़ नहीं सकते; यह ध्रुव सत्य है ॥ १०½ ॥

यदि तस्य रणे साह्यं कुरुते वज्रभृत् स्वयम् ॥ ११ ॥
विष्णुर्वा सहितो देवैर्न त्वां प्राप्स्यत्यसौ मृधे ।
मयि जीवति राजेन्द्र न भयं कर्तुमर्हसि ॥ १२ ॥
द्रोणादस्त्रभृतां श्रेष्ठात् सर्वशस्त्रभृतामपि ।

राजेन्द्र ! यदि रणक्षेत्रमें साक्षात् वज्रधारी इन्द्र अथवा भगवान् विष्णु सम्पूर्ण देवताओंके साथ आकर दुर्योधनकी सहायता करें, तो भी मेरे जीते-जी वह आपको पकड़ नहीं सकेगा; अतः आपको सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यसे भय नहीं करना चाहिये ॥ ११-१२½ ॥

अन्यच्च ब्रूयां राजेन्द्र प्रतिज्ञां मम निश्चलाम् ॥ १३ ॥
न स्मराम्यनृतं तावन्न स्मरामि पराजयम् ।
न स्मरामि प्रतिश्रुत्य किंचिदप्यनृतं कृतम् ॥ १४ ॥

महाराज ! मैं अपनी दूसरी भी निश्चल प्रतिज्ञा आपको सुनाता हूँ । मैंने कभी झूठ कहा हो, इसका स्मरण नहीं है । मेरी कहीं पराजय हुई हो, इसकी भी याद नहीं है और मैंने प्रतिज्ञा करके उसे तनिक भी झूठी कर दिया हो, इसका भी मुझे स्मरण नहीं है ॥ १३-१४ ॥

संजय उवाच

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च मृदङ्गाश्चानकैः सह ।
प्रावाद्यन्त महाराज पाण्डवानां निवेशने ॥ १५ ॥
सिंहनादश्च संजज्ञे पाण्डवानां महात्मनाम् ।
धनुर्ज्यातलशब्दश्च गगनस्पृक् सुभैरवः ॥ १६ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! तदनन्तर पाण्डवोंके शिविरमें शङ्ख, भेरी, मृदंग और आनक आदि बाजे बजने लगे । महात्मा पाण्डवोंका सिंहनाद सहसा प्रकट हुआ । धनुषकी टंकारका भयंकर शब्द आकाशमें गूँजने लगा ॥

श्रुत्वा शङ्खस्य निर्घोषं पाण्डवस्य महौजसः ।
त्वदीयेष्वप्यनीकेषु वादित्राण्यभिजघ्निरे ॥ १७ ॥

महातेजस्वी पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरकी सेनामें वह शङ्खध्वनि सुनकर आपकी सेनाओंमें भी भाँति-भाँतिके बाजे बजने लगे॥

ततो व्यूढान्यनीकानि तव तेषां च भारत ।
शनैरुपेयुरन्योन्यं योध्यमानानि संयुगे ॥ १८ ॥

भारत ! तदनन्तर आपकी और उनकी भी सेनाएँ व्यूहबद्ध होकर धीरे-धीरे युद्धके लिये एक-दूसरीके समीप आने लगीं ॥ १८ ॥

ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
पाण्डवानां कुरूणां च द्रोणपाञ्चालयोरपि ॥ १९ ॥

तदनन्तर कौरवों तथा पाण्डवोंमें और द्रोणाचार्य तथा धृष्टद्युम्नमें रोमाञ्चकारी भयंकर युद्ध होने लगा ॥ १९ ॥

यतमानाः प्रयत्नेन द्रोणानीकविशातने ।
न शेकुः सृञ्जया युद्धे तद्धि द्रोणेन पालितम् ॥ २० ॥

संजय योद्धा उस युद्धमें द्रोणाचार्यकी सेनाका विनाश करनेके लिये बड़े यत्नके साथ चेष्टा करने लगे, परंतु सफल न हो सके; क्योंकि वह सेना आचार्य द्रोणके द्वारा भलीभाँति सुरक्षित थी ॥ २० ॥

तथैव तव पुत्रस्य रथोदाराः प्रहारिणः ।
न शेकुः पाण्डवीं सेनां पाल्यमानां किरीटिना ॥ २१ ॥

इसी प्रकार आपके पुत्रकी सेनाके उदार महारथी, जो प्रहार करनेमें कुशल थे, पाण्डवसेनाको परास्त न कर सके; क्योंकि किरीटधारी अर्जुन उसकी रक्षा कर रहे थे ॥ २१ ॥

आस्तां ते स्तिमिते सेने रक्ष्यमाणे परस्परम् ।
सम्प्रसुप्ते यथा नक्तं वनराज्यौ सुपुष्पिते ॥ २२ ॥

जैसे रातमें सुन्दर पुष्पोंसे सुशोभित दो वनश्रेणियाँ प्रसुप्त (सिकुड़े हुए पत्तोंसे युक्त) देखी जाती हैं, उसी प्रकार वे सुरक्षित हुई दोनों सेनाएँ आमने-सामने निश्चलभावसे खड़ी थीं ॥ २२ ॥

ततो रुक्मरथो राजन्नर्केणेव विराजता ।
वरूथिना विनिष्पत्य व्यचरत् पृतनामुखे ॥ २३ ॥

राजन् ! तदनन्तर सुवर्णमय रथवाले द्रोणाचार्य सूर्यके समान प्रकाशमान आवरणयुक्त रथके द्वारा आगे बढ़कर सेनाके प्रमुख भागमें विचरने लगे ॥ २३ ॥

तमुद्यतं रथेनैकमाशुकारिणमाहवे ।
अनेकमिव संत्रासान्मेनिरे पाण्डुसृञ्जयाः ॥ २४ ॥

द्रोणाचार्य युद्धस्थलमें केवल रथके द्वारा उद्यत होकर अकेले ही शीघ्रतापूर्वक अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग कर रहे थे। उस समय पाण्डव तथा संजय भयके मारे उन्हें अनेक-सा मान रहे थे ॥ २४ ॥

तेन मुक्ताः शरा घोरा विचेरुः सर्वतोदिशम्।
त्रासयन्तो महाराज पाण्डवेयस्य वाहिनीम् ॥ २५ ॥

महाराज ! उनके द्वारा छोड़े हुए भयंकर बाण पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरकी सेनाको भयभीत करते हुए चारों ओर विचर रहे थे ॥ २५ ॥

मध्यंदिनमनुप्राप्तो गभस्तिशतसंवृतः।
यथा दृश्येत घर्मांशुस्तथा द्रोणोऽप्यदृश्यत ॥ २६ ॥

दोपहरके समय सहस्रों किरणोंसे व्याप्त प्रचण्ड तेजवाले भगवान् सूर्य जैसे दिखायी देते हैं, उसी प्रकार द्रोणाचार्य भी दृष्टिगोचर हो रहे थे ॥ २६ ॥

न चैनं पाण्डवेयानां कश्चिच्छक्नोति भारत।
वीक्षितुं समरे क्रुद्धं महेन्द्रमिव दानवाः ॥ २७ ॥

भरतनन्दन ! जैसे दानवदल क्रोधमें भरे हुए देवराज इन्द्रकी ओर देखनेका साहस नहीं करता है, उसी प्रकार पाण्डवसेनाका कोई भी वीर समरभूमिमें द्रोणाचार्यकी ओर आँख उठाकर देख न सका ॥ २७ ॥

मोहयित्वा ततः सैन्यं भारद्वाजः प्रतापवान्।
धृष्टद्युम्नबलं तूर्णं व्यधमन्निशितैः शरैः ॥ २८ ॥

इस प्रकार प्रतापी द्रोणाचार्यने पाण्डव-सेनाको मोहित करके पैने बाणोंद्वारा तुरंत ही धृष्टद्युम्नकी सेनाका संहार आरम्भ कर दिया ॥ २८ ॥

स दिशः सर्वतो रुद्ध्वा संवृत्य खमजिह्मगैः।
पार्षतो यत्र तत्रैव ममृदे पाण्डुवाहिनीम् ॥ २९ ॥

उन्होंने अपने सीधे जानेवाले बाणोंद्वारा सम्पूर्ण दिशाओंको अवरुद्ध करके आकाशको भी आच्छादित कर दिया और जहाँ धृष्टद्युम्न खड़ा था, वहीं वे पाण्डव-सेनाका मर्दन करने लगे ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि अर्जुनकृतयुधिष्ठिराश्वासने त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणाभिषेकपर्वमें अर्जुनके द्वारा युधिष्ठिरको आश्वासनविषयक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

द्रोणका पराक्रम, कौरव-पाण्डववीरोंका द्वन्द्वयुद्ध, रणनदीका वर्णन तथा अभिमन्युकी वीरता

संजय उवाच

ततः स पाण्डवानीके जनयन् सुमहद् भयम्।
व्यचरत् पृतनां द्रोणो दहन् कक्षमिवानलः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! जैसे आग घास-फूसके समूहको जला देती है, उसी प्रकार द्रोणाचार्य पाण्डव-दलमें महान् भय उत्पन्न करते और सारी सेनाको जलाते हुए सब ओर विचरने लगे ॥ १ ॥

निर्दहन्तमनीकानि साक्षादग्निमिवोत्थितम्।
दृष्ट्वा रुक्मरथं क्रुद्धं समकम्पन्त सृञ्जयाः ॥ २ ॥

सुवर्णमय रथवाले द्रोणको वहाँ प्रकट हुए साक्षात् अग्निदेवके समान क्रोधमें भरकर सम्पूर्ण सेनाओंको दग्ध करते देख समस्त संजय वीर काँप उठे ॥ २ ॥

सततं कृष्यतः संख्ये धनुषोऽस्याशुकारिणः।
ज्याघोषः शुश्रुवेऽत्यर्थं विस्फूर्जितमिवाशनेः ॥ ३ ॥

बाण चलानेमें शीघ्रता करनेवाले द्रोणाचार्यके युद्धमें निरन्तर खींचे जाते हुए धनुषकी प्रत्यञ्चाका टंकार-घोष वज्रकी गड़गड़ाहटके समान बड़े जोर-जोरसे सुनायी दे रहा था ॥ ३ ॥

रथिनः सादिनश्चैव नागानश्वान् पदातिनः।
रौद्रा हस्तवता मुक्ताः सम्मृद्नन्ति स्म सायकाः ॥ ४ ॥

शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले द्रोणाचार्यके छोड़े हुए भयंकर बाण पाण्डव-सेनाके रथियों, घुड़सवारों, हाथियों, घोड़ों और पैदल योद्धाओंको गर्दमें मिला रहे थे ॥ ४ ॥

नानद्यमानः पर्जन्यः प्रवृद्धः शुचिसंक्षये।
अश्मवर्षमिवावर्षत् परेषामावहद् भयम् ॥ ५ ॥

आषाढ़ मास बीत जानेपर वर्षाके प्रारम्भमें जैसे मेघ अत्यन्त गर्जन-तर्जनके साथ फैलकर आकाशमें छा जाता और पत्थरोंकी वर्षा करने लगता है, उसी प्रकार द्रोणाचार्य भी बाणोंकी वर्षा करके शत्रुओंके मनमें भय उत्पन्न करने लगे ॥ ५ ॥

विचरन् स तदा राजन् सेनां संक्षोभयन् प्रभुः।
वर्धयामास संत्रासं शात्रवाणाममानुषम् ॥ ६ ॥

राजन् ! शक्तिशाली द्रोणाचार्य उस समय रणभूमिमें विचरते और पाण्डव-सेनाको क्षुब्ध करते हुए शत्रुओंके मनमें लोकोत्तर भयकी वृद्धि करने लगे ॥ ६ ॥

तस्य विद्युदिवाभ्रेषु चापं हेमपरिष्कृतम्।
भ्रमद्रथाम्बुदे चास्मिन् दृश्यते स्म पुनः पुनः ॥ ७ ॥

उनके घूमते हुए रथरूपी मेघमण्डलमें सुवर्णभूषित धनुष विद्युत्के समान बारंबार प्रकाशित दिखायी देता था ॥ ७ ॥

स वीरः सत्यवान् प्राज्ञो धर्मनित्यः सदा पुनः।
युगान्तकालवद् घोरां रौद्रां प्रावर्तयन्नदीम् ॥ ८ ॥

उन सत्यपरायण परम बुद्धिमान् तथा नित्य धर्ममें तत्पर रहनेवाले वीर द्रोणाचार्यने उस रणक्षेत्रमें प्रलयकालके समान अत्यन्त भयंकर रक्तकी नदी प्रवाहित कर दी ॥ ८ ॥

अमर्षवेगप्रभवां क्रव्यादगणसंकुलाम् ।
बलौघैः सर्वतः पूर्णां ध्वजवृक्षापहारिणीम् ॥ ९ ॥

उस नदीका प्राकट्य क्रोधके आवेगसे हुआ था । मांस-भक्षी जन्तुओंसे वह घिरी हुई थी । सेनारूपी प्रवाहद्वारा वह सब ओरसे परिपूर्ण थी और ध्वजरूपी वृक्षोंको तोड़-फोड़कर बहा रही थी ॥ ९ ॥

शोणितोदां रथावर्तां हस्त्यश्वकृतरोधसम् ।
कवचोडुपसंयुक्तां मांसपङ्कसमाकुलाम् ॥ १० ॥

उस नदीमें जलकी जगह रक्तराशि भरी हुई थी, रथोंकी भँवरें उठ रही थीं; हाथी और घोड़ोंकी ऊँची-ऊँची लाशें उस नदीके ऊँचे किनारोंके समान प्रतीत होती थीं । उसमें कवच नावकी भाँति तैर रहे थे तथा वह मांसरूपी कीचड़से भरी हुई थी ॥ १० ॥

मेदोमज्जास्थिसिकतामुष्णीषचयफेनिलाम् ।
संग्रामजलदापूर्णां प्रासमत्स्यसमाकुलाम् ॥ ११ ॥

मेद, मज्जा और हड्डियाँ वहाँ बालुकाराशिके समान प्रतीत होती थीं । पगड़ियोंका समूह उसमें फेनके समान जान पड़ता था । संग्रामरूपी मेघ उस नदीको रक्तकी वर्षाद्वारा भर रहा था । वह नदी प्रासरूपी मत्स्योंसे भरी हुई थी ॥

नरनागाश्वकलिलां शरवेगौघवाहिनीम् ।
शरीरदारुसंघट्टां रथकच्छपसंकुलाम् ॥ १२ ॥

वहाँ पैदल, हाथी और घोड़े ढेर-के-ढेर पड़े हुए थे । बाणोंका वेग ही उस नदीका प्रखर प्रवाह था, जिसके द्वारा वह प्रवाहित हो रही थी । शरीररूपी काष्ठसे ही मानो उसका घाट बनाया गया था । रथरूपी कछुओंसे वह नदी व्याप्त हो रही थी ॥ १२ ॥

उत्तमाङ्गैः पङ्कजिनीं निस्त्रिंशझषसंकुलाम् ।
रथनागह्रदोपेतां नानाभरणभूषिताम् ॥ १३ ॥

योद्धाओंके कटे हुए मस्तक कमल-पुष्पके समान जान पड़ते थे, जिनके कारण वह कमलवनसे सम्पन्न दिखायी देती थी । उसके भीतर असंख्य डूबती-बहती तलवारोंके कारण वह नदी मछलियोंसे भरी हुई-सी जान पड़ती थी । रथ और हाथियोंसे यत्र-तत्र घिरकर वह नदी गहरे कुण्डके रूपमें परिणत हो गयी थी । वह भाँति-भाँतिके आभूषणोंसे विभूषित-सी प्रतीत होती थी ॥ १३ ॥

महारथशतावर्तां भूमिरेणूर्मिमालिनीम् ।
महावीर्यवतां संख्ये सुतरां भीरुदुस्तराम् ॥ १४ ॥

सैकड़ों विशाल रथ उसके भीतर उठती हुई भँवरोंके समान प्रतीत होते थे । वह धरतीकी धूल और तरंगमालाओंसे व्याप्त हो रही थी । उस युद्धस्थलमें वह नदी महापराक्रमी वीरोंके लिये सुगमतासे पार करने योग्य और कायरोंके लिये दुस्तर थी ॥ १४ ॥

शरीरशतसम्बाधां गृध्रकङ्कनिषेविताम् ।
महारथसहस्राणि नयन्तीं यमसादनम् ॥ १५ ॥

उसके भीतर सैकड़ों लाशें पड़ी हुई थीं । गीध और कङ्क उस नदीका सेवन करते थे । वह सहस्रों महारथियोंको यमराजके लोकमें ले जा रही थी ॥ १५ ॥

शूलव्यालसमाकीर्णां प्राणिवाजिनिषेविताम् ।
छिन्नक्षत्रमहाहंसां मुकुटाण्डजसेविताम् ॥ १६ ॥

उसके भीतर शूल सर्पोंके समान व्याप्त हो रहे थे । विभिन्न प्राणी ही वहाँ जल-पक्षीके रूपमें निवास करते थे । कटे हुए क्षत्रिय-समुदाय उसमें विचरनेवाले बड़े-बड़े हंसोंके समान प्रतीत होते थे । वह नदी राजाओंके मुकुटरूपी जल-पक्षियोंसे सेवित दिखायी देती थी ॥ १६ ॥

चक्रकूर्मां गदानक्रां शरक्षुद्रझषाकुलाम् ।
बकगृध्रसृगालानां घोरसंघैर्निषेविताम् ॥ १७ ॥

उसमें रथोंके पहिये कछुओंके समान, गदाएँ नाकोंके समान और बाण छोटी-छोटी मछलियोंके समान भरे हुए थे । बगलों, गीधों और गीदड़ोंके भयानक समुदाय उसके तटपर निवास करते थे ॥ १७ ॥

निहतान् प्राणिनः संख्ये द्रोणेन बलिना रणे ।
वहन्तीं पितृलोकाय शतशो राजसत्तम ॥ १८ ॥

नृपश्रेष्ठ ! बलवान् द्रोणाचार्यके द्वारा रणभूमिमें मारे गये सैकड़ों प्राणियोंको वह पितृलोकमें पहुँचा रही थी ॥ १८ ॥

शरीरशतसम्बाधां केशशैवलशाद्वलाम् ।
नदीं प्रावर्तयद् राजन् भीरूणां भयवर्धिनीम् ॥ १९ ॥

उसके भीतर सैकड़ों लाशें बह रही थीं । केश सेवार तथा घासोंके समान प्रतीत होते थे । राजन् ! इस प्रकार द्रोणाचार्यने वहाँ खूनकी नदी बहायी थी, जो कायरोंका भय बढ़ानेवाली थी॥

तर्जयन्तमनीकानि तानि तानि महारथम् ।
सर्वतोऽभ्यद्रवन् द्रोणं युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ २० ॥

उस समय समस्त सेनाओंको अपने गर्जन-तर्जनसे डराते हुए महारथी द्रोणाचार्यपर युधिष्ठिर आदि योद्धा सब ओरसे टूट पड़े ॥ २० ॥

तानभिद्रवतः शूरांस्तावका दृढविक्रमाः ।
सर्वतः प्रत्यगृह्णन्त तदभूल्लोमहर्षणम् ॥ २१ ॥

उन आक्रमणकारी पाण्डव वीरोंको आपके सुदृढ़ पराक्रमी सैनिकोंने सब ओरसे रोक दिया । उस समय दोनों दलोंमें रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा ॥ २१ ॥

शतमायस्तु शकुनिः सहदेवं समाद्रवत् ।
सनियन्तृध्वजरथं विव्याध निशितैः शरैः ॥ २२ ॥

सैकड़ों मायाओंको जाननेवाले शकुनिने सहदेवपर धावा किया और उनके सारथि, ध्वज एवं रथसहित उन्हें अपने पैने बाणोंसे घायल कर दिया ॥ २२ ॥

तस्य माद्रीसुतः केतुं धनुः सूतं हयानपि ।
नातिक्रुद्धः शरैश्छित्त्वा षष्ट्या विव्याध सौबलम्॥२३॥

तब माद्रीकुमार सहदेवने अधिक कुपित न होकर शकुनिके ध्वज, धनुष, सारथि और घोड़ोंको अपने बाणोंद्वारा छिन्न-भिन्न करके साठ बाणोंसे सुबलपुत्र शकुनिको भी बींध डाला ॥ २३ ॥

सौबलस्तु गदां गृह्य प्रचस्कन्द रथोत्तमात् ।
स तस्य गदया राजन् रथात् सूतमपातयत् ॥ २४ ॥

यह देख सुबलपुत्र शकुनि गदा हाथमें लेकर उस श्रेष्ठ रथसे कूद पड़ा । राजन् ! उसने अपनी गदाद्वारा सहदेवके रथसे उनके सारथिको मार गिराया ॥ २४ ॥

ततस्तौ विरथौ राजन् गदाहस्तौ महाबलौ ।
चिक्रीडतू रणे शूरौ सश्रृङ्गाविव पर्वतौ ॥ २५ ॥

महाराज ! उस समय वे दोनों महाबली शूरवीर रथहीन हो गदा हाथमें लेकर रणक्षेत्रमें खेल-सा करने लगे, मानो शिखरवाले दो पर्वत परस्पर टकरा रहे हों ॥ २५ ॥

द्रोणः पाञ्चालराजानं विद्ध्वा दशभिराशुगैः ।
बहुभिस्तेन चाभ्यस्तस्तं विव्याध ततोऽधिकैः॥ २६ ॥

द्रोणाचार्यने पाञ्चालराज द्रुपदको दस शीघ्रगामी बाणोंसे बींध डाला । फिर द्रुपदने भी बहुत-से बाणोंद्वारा उन्हें घायल कर दिया । तब द्रोणने भी और अधिक सायकोंद्वारा द्रुपदको क्षत-विक्षत कर दिया ॥ २६ ॥

विविंशतिं भीमसेनो विंशत्या निशितैः शरैः ।
विद्ध्वा नाकम्पयद् वीरस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २७ ॥

वीर भीमसेन बीस तीखे बाणोंद्वारा विविंशतिको घायल करके भी उन्हें विचलित न कर सके । यह एक अद्भुत-सी बात हुई ।२७।

विविंशतिस्तु सहसा व्यश्वकेतुशरासनम् ।
भीमं चक्रे महाराज ततः सैन्यान्यपूजयन् ॥ २८ ॥

महाराज ! फिर विविंशतिने भी सहसा आक्रमण करके भीमसेनके घोड़े, ध्वज और धनुष काट डाले; यह देख सारी सेनाओंने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ २८ ॥

स तन्न ममृषे वीरः शत्रोर्विक्रममाहवे ।
ततोऽस्य गदया दान्तान् हयान् सर्वानपातयत् ॥२९॥

वीर भीमसेन युद्धमें शत्रुके इस पराक्रमको न सह सके । उन्होंने अपनी गदाद्वारा उसके समस्त सुशिक्षित घोड़ोंको मार डाला ॥ २९ ॥

हताश्वात् सरथाद् राजन् गृह्य चर्म महाबलः ।
अभ्यायाद् भीमसेनं तु मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ३० ॥

राजन् ! घोड़ोंके मारे जानेपर महाबली विविंशति ढाल और तलवार लिये रथसे कूद पड़ा और जैसे एक मतवाला हाथी दूसरे मदोन्मत्त गजराजपर आक्रमण करता है, उसी प्रकार उसने भीमसेनपर चढ़ाई की ॥ ३० ॥

शल्यस्तु नकुलं वीरः स्वस्रीयं प्रियमात्मनः ।
विव्याध प्रहसन् बाणैर्लालयन् कोपयन्निव ॥ ३१ ॥

वीर राजा शल्यने अपने प्यारे भानजे नकुलको हँसकर लाड़ लड़ाते और कुपित करते हुए-से अनेक बाणोंद्वारा बींध डाला ॥ ३१ ॥

तस्याश्वानातपत्रं च ध्वजं सूतमथो धनुः ।
निपात्य नकुलः संख्ये शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥ ३२ ॥

तब प्रतापी नकुलने उस युद्धस्थलमें शल्यके घोड़ों, छत्र, ध्वज, सारथि और धनुषको काट गिराया और विजयी होकर अपना शङ्ख बजाया ॥ ३२ ॥

धृष्टकेतुः कृपेणास्तान् छित्वा बहुविधाञ्छरान् ।
कृपं विव्याध सप्तत्या लक्ष्म चास्याहरत् त्रिभिः॥३३॥

धृष्टकेतुने कृपाचार्यके चलाये हुए अनेक बाणोंको काटकर उन्हें सत्तर बाणोंसे घायल कर दिया और तीन बाणोंद्वारा उनके चिह्नस्वरूप ध्वजको भी काट गिराया ॥ ३३ ॥

तं कृपः शरवर्षेण महता समवारयत् ।
विव्याध च रणे विप्रो धृष्टकेतुममर्षणम् ॥ ३४ ॥

तब ब्राह्मण कृपाचार्यने भारी बाण-वर्षाके द्वारा अमर्षशील धृष्टकेतुको युद्धमें आगे बढ़नेसे रोका और घायल कर दिया ॥ ३४ ॥

सात्यकिः कृतवर्माणं नाराचेन स्तनान्तरे ।
विद्ध्वा विव्याध सप्तत्या पुनरन्यैः स्मयन्निव ॥ ३५ ॥

सात्यकिने मुसकराते हुए-से एक नाराचद्वारा कृतवर्माकी छातीमें चोट की और पुनः अन्य सत्तर बाणोंद्वारा उसे क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ३५ ॥

तं भोजः सप्तसप्तत्या विद्ध्वाऽऽशु निशितैः शरैः ।
नाकम्पयत शैनेयं शीघ्रो वायुरिवाचलम् ॥ ३६ ॥

तब भोजवंशी कृतवर्माने तुरंत ही सतहत्तर पैने बाणोंद्वारा सात्यकिको बींध डाला, तथापि वह उन्हें विचलित न कर सका । जैसे तेज चलनेवाली वायु पर्वतको नहीं हिला पाती है ॥ ३६ ॥

सेनापतिः सुशर्माणं भृशं मर्मस्वताडयत् ।
स चापि तं तोमरेण जत्रुदेशेऽभ्यताडयत् ॥ ३७ ॥

दूसरी ओर सेनापति धृष्टद्युम्नने त्रिगर्तराज सुशर्माको उसके मर्मस्थानोंमें अत्यन्त चोट पहुँचायी । यह देख सुशर्माने भी तोमरद्वारा धृष्टद्युम्नके गलेकी हँसलीपर प्रहार किया ३७

वैकर्तनं तु समरे विराटः प्रत्यवारयत् ।
सह मत्स्यैर्महावीर्यैस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३८ ॥

समर-भूमिमें महापराक्रमी मत्स्यदेशीय वीरोंके साथ विराटने विकर्तनपुत्र कर्णको रोका । वह अद्भुत-सी बात थी ॥

तत् पौरुषमभूत् तत्र सूतपुत्रस्य दारुणम्।
यत् सैन्यं वारयामास शरैः संनतपर्वभिः ॥ ३९ ॥

वहाँ सूतपुत्र कर्णका भयंकर पुरुषार्थ प्रकट हुआ। उसने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा उनकी समस्त सेनाकी प्रगति रोक दी ॥ ३९ ॥

द्रुपदस्तु स्वयं राजा भगदत्तेन संगतः।
तयोर्युद्धं महाराज चित्ररूपमिवाभवत् ॥ ४० ॥

महाराज! तदनन्तर राजा द्रुपद स्वयं जाकर भगदत्तसे भिड़ गये। महाराज! फिर उन दोनोंमें विचित्र-सा युद्ध होने लगा ॥ ४० ॥

भगदत्तस्तु राजानं द्रुपदं नतपर्वभिः।
सनियन्तृध्वजरथं विव्याध पुरुषर्षभः ॥ ४१ ॥

पुरुषश्रेष्ठ भगदत्तने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे राजा द्रुपदको उनके सारथि, रथ और ध्वजसहित बींध डाला ॥४१॥

द्रुपदस्तु ततः क्रुद्धो भगदत्तं महारथम्।
आजघानोरसि क्षिप्रं शरेणानतपर्वणा ॥ ४२ ॥

यह देख द्रुपदने कुपित हो शीघ्र ही झुकी हुई गाँठवाले बाणके द्वारा महारथी भगदत्तकी छातीमें प्रहार किया ॥४२॥

युद्धं योधवरौ लोके सौमदत्तिशिखण्डिनौ।
भूतानां त्रासजननं चक्रातेऽस्त्रविशारदौ ॥ ४३ ॥

भूरिश्रवा और शिखण्डी—ये दोनों संसारके श्रेष्ठ योद्धा और अस्त्रविद्याके विशेषज्ञ थे। उन दोनोंने सम्पूर्ण भूतोंको त्रास देनेवाला युद्ध किया ॥ ४३ ॥

भूरिश्रवा रणे राजन् याज्ञसेनिं महारथम्।
महता सायकौघेन छादयामास वीर्यवान् ॥ ४४ ॥

राजन्! पराक्रमी भूरिश्रवाने रणक्षेत्रमें द्रुपदपुत्र महारथी शिखण्डीको सायकसमूहोंकी भारी वर्षा करके आच्छादित कर दिया ॥ ४४ ॥

शिखण्डी तु ततः क्रुद्धः सौमदत्तिं विशाम्पते।
नवत्या सायकानां तु कम्पयामास भारत ॥ ४५ ॥

प्रजानाथ! भरतनन्दन! तब क्रोधमें भरे हुए शिखण्डीने नब्बे बाण मारकर सोमदत्तकुमार भूरिश्रवाको कम्पित कर दिया ॥ ४५ ॥

राक्षसौ रौद्रकर्माणौ हैडिम्बालम्बुषावुभौ।
चक्रातेऽत्यद्भुतं युद्धं परस्परजयैषिणौ ॥ ४६ ॥

भयंकर कर्म करनेवाले राक्षस घटोत्कच और अलम्बुष—ये दोनों एक दूसरेको जीतनेकी इच्छासे अत्यन्त अद्भुत युद्ध करने लगे ॥ ४६ ॥

मायाशतसृजौ दृप्तौ मायाभिरितरेतरम्।
अन्तर्हितौ चेरतुस्तौ भृशं विस्मयकारिणौ ॥ ४७ ॥

वे घमंडमें भरे हुए निशाचर सैकड़ों मायाओंकी सृष्टि करते और मायाद्वारा ही एक-दूसरेको परास्त करना चाहते थे। वे लोगोंको अत्यन्त आश्चर्यमें डालते हुए अदृश्यभावसे विचर रहे थे ॥ ४७ ॥

चेकितानोऽनुविन्देन युयुधे चातिभैरवम्।
यथा देवासुरे युद्धे बलशक्रौ महाबलौ ॥ ४८ ॥

चेकितान अनुविन्दके साथ अत्यन्त भयंकर युद्ध करने लगे, मानो देवासुर—संग्राममें महाबली बल और इन्द्र लड़ रहे हों ॥ ४८ ॥

लक्ष्मणः क्षत्रदेवेन विमर्दमकरोद् भृशम्।
यथा विष्णुः पुरा राजन् हिरण्याक्षेण संयुगे ॥ ४९ ॥

राजन्! जैसे पूर्वकालमें भगवान् विष्णु हिरण्याक्षके साथ युद्ध करते थे, उसी प्रकार उस रणक्षेत्रमें लक्ष्मण क्षत्रदेवके साथ भारी संग्राम कर रहा था ॥ ४९ ॥

ततः प्रचलिताश्वेन विधिवत्कल्पितेन च।
रथेनाभ्यपतद् राजन् सौभद्रं पौरवो नदन् ॥ ५० ॥

राजन्! तदनन्तर विधिपूर्वक सजाये हुए चञ्चल घोड़ोंवाले रथपर आरूढ़ हो गर्जना करते हुए राजा पौरवने सुभद्राकुमार अभिमन्युपर आक्रमण किया ॥ ५० ॥

ततोऽभ्ययात् सत्वरितो युद्धाकाङ्क्षी महाबलः।
तेन चक्रे महद् युद्धमभिमन्युररिंदमः ॥ ५१ ॥

तब शत्रुओंका दमन और युद्धकी अभिलाषा करनेवाले महाबली अभिमन्यु भी तुरंत सामने आया और उनके साथ महान् युद्ध करने लगा ॥ ५१ ॥

पौरवस्त्वथ सौभद्रं शरव्रातैरवाकिरत्।
तस्यार्जुनिर्ध्वजं छत्रं धनुश्चोर्व्यामपातयत् ॥ ५२ ॥

पौरवने सुभद्राकुमारपर बाणसमूहोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी। यह देख अर्जुनपुत्र अभिमन्युने उनके ध्वज, छत्र और धनुषको काटकर धरतीपर गिरा दिया ॥ ५२ ॥

सौभद्रः पौरवं त्वन्यैर्विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः।
पञ्चभिस्तस्य विव्याध हयान् सूतं च सायकैः ॥ ५३ ॥

फिर अन्य सात शीघ्रगामी बाणोंद्वारा पौरवको घायल करके अभिमन्युने पाँच बाणोंसे उनके घोड़ों और सारथिको भी क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ५३ ॥

ततः प्रहर्षयन् सेनां सिंहवद् विनदन् मुहुः।
समादत्तार्जुनिस्तूर्णं पौरवान्तकरं शरम् ॥ ५४ ॥

तत्पश्चात् अपनी सेनाका हर्ष बढ़ाते और बारंबार सिंह-

के समान गर्जना करते हुए अर्जुनकुमार अभिमन्युने तुरंत ही एक ऐसा बाण हाथमें लिया, जो राजा पौरवका अन्त कर डालनेमें समर्थ था ॥ ५४ ॥

तं तु संधितमाज्ञाय सायकं घोरदर्शनम् ।
द्वाभ्यां शराभ्यां हार्दिक्यश्चिच्छेद सशरं धनुः ॥५५॥

उस भयानक दिखायी देनेवाले सायकको धनुषपर चढ़ाया हुआ जान कृतवर्माने दो बाणोंद्वारा अभिमन्युके सायकसहित धनुषको काट डाला ॥ ५५ ॥

तदुत्सृज्य धनुश्छिन्नं सौभद्रः परवीरहा ।
उद्ववर्ह सितं खड्गमाददानः शरावरम् ॥ ५६ ॥

तब शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले सुभद्राकुमारने उस कटे हुए धनुषको फेंककर चमचमाती हुई तलवार खींच ली और ढाल हाथमें ले ली ॥ ५६ ॥

स तेनानेकतारेण चर्मणा कृतहस्तवत् ।
भ्रान्तासिर्व्यचरन्मार्गान् दर्शयन् वीर्यमात्मनः॥५७॥

उसने अपनी शक्तिका परिचय देते हुए सुशिक्षित हाथोंवाले पुरुषकी भाँति अनेक ताराओंके चिह्नोंसे युक्त ढालके साथ अपनी तलवारको घुमाते और अनेक पैंतरे दिखाते हुए रणभूमिमें विचरना आरम्भ किया ॥ ५७ ॥

भ्रामितं पुनरुद्भ्रान्तमाधूतं पुनरुत्थितम् ।
चर्मनिस्त्रिंशयो राजन् निर्विशेषमदृश्यत ॥ ५८ ॥

राजन् ! उस समय नीचे घुमाने, ऊपर घुमाने, अगल-बगलमें चारों ओर घुमाने और फिर ऊपर उठानेकी क्रियाएँ इतनी तेजीसे हो रही थीं कि ढाल और तलवारमें कोई अन्तर ही नहीं दिखायी देता था ॥ ५८ ॥

स पौरवरथस्येषामाप्लुत्य सहसा नदन् ।
पौरवं रथमास्थाय केशपक्षे परामृशत् ॥ ५९ ॥

तब अभिमन्यु सहसा गर्जता हुआ उछलकर पौरवके रथके ईषादण्डपर चढ़ गया। फिर उसने पौरवकी चुटिया पकड़ ली ५९

जघानास्य पदा सूतमसिनापातयद् ध्वजम् ।
विक्षोभ्याम्भोनिधिं तार्क्ष्यस्तं नागमिव चाक्षिपत् ६०

उसने पैरोंके आघातसे पौरवके सारथिको मार डाला और तलवारसे उनके ध्वजको काट गिराया। फिर जैसे गरुड़ समुद्रको क्षुब्ध करके नागको पकड़कर दे मारते हैं, उसी प्रकार उसने भी पौरवको रथसे नीचे पटक दिया ॥ ६० ॥

तमागलितकेशान्तं ददृशुः सर्वपार्थिवाः ।
उक्षाणमिव सिंहेन पात्यमानमचेतसम् ॥ ६१ ॥

उस समय सम्पूर्ण राजाओंने देखा, जैसे सिंहने किसी बैलको गिराकर अचेत कर दिया हो, उसी प्रकार अभिमन्युने पौरवको गिरा दिया है। वे अचेत पड़े हैं और उनके सिरके बाल कुछ उखड़ गये हैं ॥ ६१ ॥

तमार्जुनिवशं प्राप्तं कृष्यमाणमनाथवत् ।
पौरवं पातितं दृष्ट्वा नामृष्यत जयद्रथः ॥ ६२ ॥

पौरव अभिमन्युके वशमें पड़कर अनाथकी भाँति खींचे जा रहे हैं और गिरा दिये गये हैं। यह देखकर जयद्रथ सहन न कर सका ॥ ६२ ॥

स बर्हिबर्हावततं किंकिणीशतजालवत् ।
चर्म चादाय खड्गं च नदन् पर्यपतद् रथात् ॥ ६३ ॥

वह मोरकी पाँखसे आच्छादित और सैकड़ों क्षुद्र घंटिकाओंके समूहसे अलंकृत ढाल और खड्ग लेकर गर्जता हुआ अपने रथसे कूद पड़ा ॥ ६३ ॥

ततः सैन्धवमालोक्य कार्ष्णिरुत्सृज्य पौरवम् ।
उत्पपात रथात् तूर्णं श्येनवन्निपपात च ॥ ६४ ॥

तब अर्जुनपुत्र अभिमन्यु जयद्रथको आते देख पौरवको छोड़कर तुरंत ही पौरवके रथसे कूद पड़ा और बाजके समान जयद्रथपर झपटा ॥ ६४ ॥

प्रासपट्टिशनिस्त्रिंशाञ्छत्रुभिः सम्प्रचोदितान् ।
चिच्छेद चासिना कार्ष्णिश्चर्मणा संरुरोध च॥ ६५ ॥

अभिमन्यु शत्रुओंके चलाये हुए प्रास, पट्टिश और तलवारोंको अपनी तलवारसे काट देते और अपनी ढालपर भी रोक लेते थे ॥

स दर्शयित्वा सैन्यानां स्वबाहुबलमात्मनः ।
तमुद्यम्य महाखड्गं चर्म चाथ पुनर्बली ॥ ६६ ॥
वृद्धक्षत्रस्य दायादं पितुरत्यन्तवैरिणम् ।
ससाराभिमुखः शूरः शार्दूल इव कुञ्जरम् ॥ ६७ ॥

शूर एवं बलवान् अभिमन्यु सैनिकोंको अपना बाहुबल दिखाकर पुनः विशाल खड्ग और ढाल हाथमें ले अपने पिताके अत्यन्त वैरी वृद्धक्षत्रके पुत्र जयद्रथके सम्मुख उसी प्रकार चला, जैसे सिंह हाथीपर आक्रमण करता है ॥ ६६-६७ ॥

तौ परस्परमासाद्य खड्गदन्तनखायुधौ ।
हृष्टवत् सम्प्रजह्राते व्याघ्रकेसरिणाविव ॥ ६८ ॥

वे दोनों खड्ग, दन्त और नखका आयुधके रूपमें उपयोग करते थे और बाघ तथा सिंहोंके समान एक-दूसरेसे भिड़कर बड़े हर्ष और उत्साहके साथ परस्पर प्रहार कर रहे थे।६८।

सम्पातेष्वभिघातेषु निपातेष्वसिचर्मणोः ।
न तयोरन्तरं कश्चिद् ददर्श नरसिंहयोः ॥ ६९ ॥

ढाल और तलवारके सम्पात (प्रहार), अविघात (बदलेके लिये प्रहार) और निपात (ऊपर-नीचे तलवार चलाने) की कलामें उन दोनों पुरुषसिंह अभिमन्यु और जयद्रथमें किसीको कोई अन्तर नहीं दिखायी देता था ॥ ६९ ॥

अवक्षेपोऽसिनिर्ह्रादः शस्त्रान्तरनिदर्शनम् ।
बाह्यान्तरनिपातश्च निर्विशेषमदृश्यत ॥ ७० ॥

खड्गका प्रहार, खड्ग-संचालनके शब्द, अन्यान्य शस्त्रोंके

प्रदर्शन तथा बाहर-भीतरकी चोटें करनेमें उन दोनों वीरों-की समान योग्यता दिखायी देती थी ॥ ७० ॥

बाह्यमाभ्यन्तरं चैव चरन्तौ मार्गमुत्तमम् ।
ददृशाते महात्मानौ सपक्षाविव पर्वतौ ॥ ७१ ॥

वे दोनों महामनस्वी वीर बाहर और भीतर चोट करने-के उत्तम पैंतरे बदलते हुए पंखयुक्त दो पर्वतोंके समान दृष्टि-गोचर हो रहे थे ॥ ७१ ॥

ततो विक्षिपतः खड्गं सौभद्रस्य यशस्विनः ।
शरावरणपक्षान्ते प्रजहार जयद्रथः ॥ ७२ ॥

इसी समय तलवार चलाते हुए यशस्वी सुभद्राकुमारकी ढालपर जयद्रथने प्रहार किया ॥ ७२ ॥

रुक्मपत्रान्तरे सक्तस्तस्मिश्चर्मणि भास्वरे ।
सिन्धुराजबलोद्धूतः सोऽभज्यत महानसिः ॥ ७३ ॥

उस चमकीली ढालपर सोनेका पत्र जड़ा हुआ था। उसके ऊपर जयद्रथने जब बलपूर्वक प्रहार किया, तब उससे टकराकर उसका वह विशाल खड्ग टूट गया ॥ ७३ ॥

भग्नमाज्ञाय निस्त्रिंशमवप्लुत्य पदानि षट् ।
अदृश्यत निमेषेण स्वरथं पुनरास्थितः ॥ ७४ ॥

अपनी तलवार टूटी हुई जानकर जयद्रथ छः पग उछल पड़ा और पलक मारते-मारते पुनः अपने रथपर बैठा हुआ दिखायी दिया ॥ ७४ ॥

तं कार्ष्णिं समरान्मुक्तमास्थितं रथमुत्तमम् ।
सहिताः सर्वराजानः परिवव्रुः समन्ततः ॥ ७५ ॥

उस समय अर्जुनपुत्र अभिमन्यु युद्धसे मुक्त होकर अपने उत्तम रथपर जा बैठा। इतनेहीमें सब राजाओंने एक साथ आकर उसे सब ओरसे घेर लिया ॥ ७५ ॥

ततश्चर्म च खड्गं च समुत्क्षिप्य महाबलः ।
ननादार्जुनदायादः प्रेक्षमाणो जयद्रथम् ॥ ७६ ॥

तब महाबली अर्जुनकुमारने ढाल और तलवार ऊपर उठाकर जयद्रथकी ओर देखते हुए बड़े जोरसे सिंहनाद किया ॥

सिन्धुराजं परित्यज्य सौभद्रः परवीरहा ।
तापयामास तत् सैन्यं भुवनं भास्करो यथा ॥ ७७ ॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले सुभद्राकुमारने सिन्धुराज जयद्रथको छोड़कर, जैसे सूर्य सम्पूर्ण जगत्‌को तपाते हैं, उसी प्रकार उस सेनाको संताप देना आरम्भ किया ॥ ७७ ॥

तस्य सर्वायसीं शक्तिं शल्यः कनकभूषणाम् ।
चिक्षेप समरे घोरां दीप्तामग्निशिखामिव ॥ ७८ ॥

तब शल्यने समरभूमिमें अभिमन्युपर सम्पूर्णतः लोहेकी बनी हुई एक स्वर्णभूषित भयंकर शक्ति छोड़ी, जो अग्नि-शिखाके समान प्रज्वलित हो रही थी ॥ ७८ ॥

तामवप्लुत्य जग्राह विकोशं चाकरोदसिम् ।
वैनतेयो यथा कार्ष्णिः पतन्तमुरगोत्तमम् ॥ ७९ ॥

जैसे गरुड़ उड़ते हुए श्रेष्ठ नागको पकड़ लेते हैं, उसी प्रकार अभिमन्युने उछलकर उस शक्तिको पकड़ लिया और म्यानसे तलवार खींच ली ॥ ७९ ॥

तस्य लाघवमाज्ञाय सत्त्वं चामिततेजसः ।
सहिताः सर्वराजानः सिंहनादमथानदन् ॥ ८० ॥

अमिततेजस्वी अभिमन्युकी वह फुर्ती और शक्ति देखकर सब राजा एक साथ सिंहनाद करने लगे ॥ ८० ॥

ततस्तामेव शल्यस्य सौभद्रः परवीरहा ।
मुमोच भुजवीर्येण वैदूर्यविकृतां शिताम् ॥ ८१ ॥

उस समय शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले सुभद्राकुमारने वैदूर्यमणिकी बनी हुई तीखी धारवाली उसी शक्तिको अपने बाहुबलसे शल्यपर चला दिया ॥ ८१ ॥

सा तस्य रथमासाद्य निर्मुक्तभुजगोपमा ।
जघान सूतं शल्यस्य रथाच्चैनमपातयत् ॥ ८२ ॥

केंचुलसे छूटकर निकले हुए सर्पके समान प्रतीत होने-वाली उस शक्तिने शल्यके रथपर पहुँचकर उनके सारथिको मार डाला और उसे रथसे नीचे गिरा दिया ॥ ८२ ॥

ततो विराटद्रुपदौ धृष्टकेतुर्युधिष्ठिरः ।
सात्यकिः केकया भीमो धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ॥ ८३ ॥
यमौ च द्रौपदेयाश्च साधु साध्विति चुक्रुशुः ।

यह देखकर विराट, द्रुपद, धृष्टकेतु, युधिष्ठिर, सात्यकि, केकयराजकुमार, भीमसेन, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, नकुल, सहदेव तथा द्रौपदीके पाँचों पुत्र 'साधु, साधु' (बहुत अच्छा, बहुत अच्छा) कहकर कोलाहल करने लगे ॥ ८३½ ॥

बाणशब्दाश्च विविधाः सिंहनादाश्च पुष्कलाः॥ ८४ ॥
प्रादुरासन् हर्षयन्तः सौभद्रमपलायिनम् ।

उस समय युद्धभूमिमें पीठ न दिखानेवाले सुभद्राकुमार अभिमन्युका हर्ष बढ़ाते हुए नाना प्रकारके बाण-संचालन-जनित शब्द और महान् सिंहनाद प्रकट होने लगे ॥ ८४½ ॥

तन्नामृष्यन्त पुत्रास्ते शत्रोर्विजयलक्षणम् ॥ ८५ ॥
अथैनं सहसा सर्वे समन्तान्निशितैः शरैः ।
अभ्याकिरन् महाराज जलदा इव पर्वतम् ॥ ८६ ॥

महाराज! उस समय आपके पुत्र शत्रुकी विजयकी सूचना देनेवाले उस सिंहनादको नहीं सह सके। वे सब-के-सब सहसा सब ओरसे अभिमन्युपर पैने बाणोंकी वर्षा करने लगे, मानो मेघ पर्वतपर जलकी धाराएँ बरसा रहे हों ॥ ८५-८६ ॥

तेषां च प्रियमन्विच्छन् सूतस्य च पराभवम् ।
आर्तायनिरमित्रघ्नः क्रुद्धः सौभद्रमभ्ययात् ॥ ८७ ॥

अपने सारथिको मारा गया देख कौरवोंका प्रिय करने-की इच्छावाले शत्रुसूदन शल्यने कुपित होकर सुभद्राकुमार-पर पुनः आक्रमण किया ॥ ८७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणाभिषेकपर्वमें अभिमन्युका पराक्रमविषयक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

शल्यके साथ भीमसेनका युद्ध तथा शल्यकी पराजय

धृतराष्ट्र उवाच

बहूनि सुविचित्राणि द्वन्द्वयुद्धानि संजय।
त्वयोक्तानि निशम्याहं स्पृहयामि सचक्षुषाम्॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! तुमने बहुत-से अत्यन्त विचित्र द्वन्द्वयुद्धोंका वर्णन किया है, उनकी कथा सुनकर मैं नेत्रवाले लोगोंके सौभाग्यकी स्पृहा करता हूँ ॥ १ ॥

आश्चर्यभूतं लोकेषु कथयिष्यन्ति मानवाः।
कुरूणां पाण्डवानां च युद्धं देवासुरोपमम्॥ २ ॥

देवताओं और असुरोंके समान इस कौरव-पाण्डव-युद्धको संसारके मनुष्य अत्यन्त आश्चर्यकी वस्तु बतायेंगे ॥ २ ॥

न हि मे तृप्तिरस्तीह शृण्वतो युद्धमुत्तमम्।
तस्मादार्तायनेर्युद्धं सौभद्रस्य च शंस मे॥ ३ ॥

इस समय इस उत्तम युद्ध-वृत्तान्तको सुनकर मुझे तृप्ति नहीं हो रही है; अतः शल्य और सुभद्राकुमारके युद्धका वृत्तान्त मुझसे कहो ॥ ३ ॥

संजय उवाच

सादितं प्रेक्ष्य यन्तारं शल्यः सर्वायसीं गदाम्।
समुत्क्षिप्य नदन् क्रुद्धः प्रचस्कन्द रथोत्तमात्॥ ४ ॥

संजयने कहा—राजन् ! राजा शल्य अपने सारथिको मारा गया देख कुपित हो उठे और पूर्णतः लोहेकी बनी हुई गदा उठाकर गर्जते हुए अपने उत्तम रथसे कूद पड़े ॥ ४ ॥

तं दीप्तमिव कालाग्निं दण्डहस्तमिवान्तकम्।
जवेनाभ्यपतद् भीमः प्रगृह्य महतीं गदाम्॥ ५ ॥

उन्हें प्रलयकालकी प्रज्वलित अग्नि तथा दण्डधारी यमराजके समान आते देख भीमसेन विशाल गदा हाथमें लेकर बड़े वेगसे उनकी ओर दौड़े ॥ ५ ॥

सौभद्रोऽप्यशनिप्रख्यां प्रगृह्य महतीं गदाम्।
एह्येहीत्यब्रवीच्छल्यं यत्नाद् भीमेन वारितः॥ ६ ॥

उधरसे अभिमन्यु भी वज्रके समान विशाल गदा हाथमें लेकर आ पहुँचा और 'आओ, आओ' कहकर शल्यको ललकारने लगा। उस समय भीमसेनने बड़े प्रयत्नसे उसको रोका ॥ ६ ॥

वारयित्वा तु सौभद्रं भीमसेनः प्रतापवान्।
शल्यमासाद्य समरे तस्थौ गिरिरिवाचलः॥ ७ ॥

सुभद्राकुमार अभिमन्युको रोककर प्रतापी भीमसेन राजा शल्यके पास जा पहुँचे और समरभूमिमें पर्वतके समान अविचल भावसे खड़े हो गये ॥ ७ ॥

तथैव मद्रराजोऽपि भीमं दृष्ट्वा महाबलम्।
ससाराभिमुखस्तूर्णं शार्दूल इव कुञ्जरम्॥ ८ ॥

इसी प्रकार मद्रराज शल्य भी महाबली भीमसेनको देखकर तुरंत उन्हींकी ओर बढ़े, मानो सिंह किसी गजराज पर आक्रमण कर रहा हो ॥ ८ ॥

ततस्तूर्यनिनादाश्च शङ्खानां च सहस्रशः।
सिंहनादाश्च संजज्ञुर्भेरीणां च महास्वनाः॥ ९ ॥

उस समय सहस्रों रणवाद्यों और शङ्खोंके शब्द वहाँ गूँज उठे। वीरोंके सिंहनाद प्रकट होने लगे और नगाड़ोंके गम्भीर घोष सर्वत्र व्याप्त हो गये ॥ ९ ॥

पश्यतां शतशो ह्यासीदन्योन्यमभिधावताम्।
पाण्डवानां कुरूणां च साधु साध्विति निःस्वनः॥ १० ॥

एक दूसरेकी ओर दौड़ते हुए सैकड़ों दर्शकों, कौरवों और पाण्डवोंके साधुवादका महान् शब्द वहाँ सब ओर गूँजने लगा ॥ १० ॥

न हि मद्राधिपादन्यः सर्वराजसु भारत।
सोढुमुत्सहते वेगं भीमसेनस्य संयुगे॥ ११ ॥

भरतनन्दन ! समस्त राजाओंमें मद्रराज शल्यके सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं था, जो युद्धमें भीमसेनके वेगको सहनेका साहस कर सके ॥ ११ ॥

तथा मद्राधिपस्यापि गदावेगं महात्मनः।
सोढुमुत्सहते लोके युधि कोऽन्यो वृकोदरात्॥ १२ ॥

इसी प्रकार संसारमें भीमसेनके सिवा दूसरा कौन ऐसा वीर है, जो युद्धमें महामनस्वी मद्रराज शल्यकी गदाके वेगको सह सकता है ॥ १२ ॥

पट्टैर्जाम्बूनदैर्बद्धा बभूव जनहर्षणी।
प्रजज्वाल तदाऽऽविद्धा भीमेन महती गदा॥ १३ ॥

उस समय भीमसेनके द्वारा घुमायी गयी विशाल गदा सुवर्ण-पत्रसे जटित होनेके कारण अग्निके समान प्रज्वलित हो रही थी। वह वीरजनोंके हृदयमें हर्ष और उत्साहकी वृद्धि करनेवाली थी ॥

तथैव चरतो मार्गान् मण्डलानि च सर्वशः।
महाविद्युत्प्रतीकाशा शल्यस्य शुशुभे गदा॥ १४ ॥

इसी प्रकार गदायुद्धके विभिन्न मार्गों और मण्डलोंमें विचरते हुए महाराज शल्यकी महाविद्युत्के समान प्रकाशमान गदा बड़ी शोभा पा रही थी ॥ १४ ॥

तौ वृषाविव नर्दन्तौ मण्डलानि विचेरतुः।
आवर्तितगदाशृङ्गावुभौ शल्यवृकोदरौ॥ १५ ॥

वे शल्य और भीमसेन दोनों गदारूप सींगोंको घुमा-घुमाकर साँड़ोंकी भाँति गरजते हुए पैंतरे बदल रहे थे ॥ १५ ॥

मण्डलावर्तमार्गेषु गदाविहरणेषु च।
निर्विशेषमभूद् युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः॥ १६ ॥

मण्डलाकार घूमनेके मार्गों (पैंतरों) और गदाके

प्रहारोंमें उन दोनों पुरुषसिंहोंकी योग्यता एक-सी जान पड़ती थी ॥ १६ ॥

ताडिता भीमसेनेन शल्यस्य महती गदा ।
साग्निज्वाला महारौद्रा तदा तूर्णमशीर्यत ॥ १७ ॥

उस समय भीमसेनकी गदासे टकराकर शल्यकी विशाल एवं महाभयंकर गदा आगकी चिनगारियाँ छोड़ती हुई तत्काल छिन्न-भिन्न होकर बिखर गयी ॥ १७ ॥

तथैव भीमसेनस्य द्विषताभिहता गदा ।
वर्षाप्रदोषे खद्योतैर्वृतो वृक्ष इवावभौ ॥ १८ ॥

इसी प्रकार शत्रुके आघात करनेपर भीमसेनकी गदा भी चिनगारियाँ छोड़ती हुई वर्षाकालकी संध्याके समय जुगनुओंसे जगमगाते हुए वृक्षकी भाँति शोभा पाने लगी ॥

गदा क्षिप्ता तु समरे मद्रराजेन भारत ।
व्योम दीपयमाना सा ससृजे पावकं मुहुः ॥ १९ ॥

भारत ! तब मद्रराज शल्यने समरभूमिमें दूसरी गदा चलायी, जो आकाशको प्रकाशित करती हुई बारंबार अंगारोंकी वर्षा कर रही थी ॥ १९ ॥

तथैव भीमसेनेन द्विषते प्रेषिता गदा ।
तापयामास तत् सैन्यं महोल्का पतती यथा ॥ २० ॥

इसी प्रकार भीमसेनने शत्रुको लक्ष्य करके जो गदा चलायी थी, वह आकाशसे गिरती हुई बड़ी भारी उल्काके समान कौरव-सेनाको संतप्त करने लगी ॥ २० ॥

ते गदे गदिनां श्रेष्ठौ समासाद्य परस्परम् ।
श्वसन्त्यौ नागकन्ये वा ससृजाते विभावसुम् ॥ २१ ॥

वे दोनों गदाएँ गदाधारियोंमें श्रेष्ठ भीमसेन और शल्यको पाकर परस्पर टकराती हुई फुफकारती नागकन्याओं-की भाँति अग्निकी सृष्टि करती थीं ॥ २१ ॥

नखैरिव महाव्याघ्रौ दन्तैरिव महागजौ ।
तौ विचेरतुरासाद्य गदाग्र्याभ्यां परस्परम् ॥ २२ ॥

जैसे दो बड़े व्याघ्र पंजोंसे और दो विशाल हाथी दाँतोंसे आपसमें प्रहार करते हैं, उसी प्रकार भीमसेन और शल्य गदाओंके अग्रभागसे एक-दूसरेपर प्रहार करते हुए विचर रहे थे ॥ २२ ॥

ततो गदाग्राभिहतौ क्षणेन रुधिरोक्षितौ ।
ददृशाते महात्मानौ किंशुकाविव पुष्पितौ ॥ २३ ॥

एक ही क्षणमें गदाके अग्रभागसे घायल होकर वे दोनों महामनस्वी वीर खूनसे लथपथ हो फूलोंसे भरे हुए दो पलाश वृक्षोंके समान दिखायी देने लगे ॥ २३ ॥

शुश्रुवे दिक्षु सर्वासु तयोः पुरुषसिंहयोः ।
गदाभिघातसंह्रादः शक्राशनिरवोपमः ॥ २४ ॥

उन दोनों पुरुषसिंहोंकी गदाओंके टकरानेका शब्द इन्द्रके वज्रकी गड़गड़ाहटके समान सम्पूर्ण दिशाओंमें सुनायी देता था ॥ २४ ॥

गदया मद्रराजेन सव्यदक्षिणमाहतः ।
नाकम्पत तदा भीमो भिद्यमान इवाचलः ॥ २५ ॥

उस समय मद्रराजकी गदासे बायें-दायें चोट खाकर भी भीमसेन विचलित नहीं हुए। जैसे पर्वत वज्रका आघात सहकर भी अविचल भावसे खड़ा रहता है ॥ २५ ॥

तथा भीमगदावेगैस्ताड्यमानो महाबलः ।
धैर्यान्मद्राधिपस्तस्थौ वज्रैर्गिरिरिवाहतः ॥ २६ ॥

इसी प्रकार भीमसेनकी गदाके वेगसे आहत होकर महाबली मद्रराज वज्राघातसे पीड़ित पर्वतकी भाँति धैर्यपूर्वक खड़े रहे ॥ २६ ॥

आपेततुर्महावेगौ समुच्छ्रितगदावुभौ ।
पुनरन्तरमार्गस्थौ मण्डलानि विचेरतुः ॥ २७ ॥

वे दोनों महावेगशाली वीर गदा उठाये एक-दूसरेपर टूट पड़े । फिर अन्तर्मार्गमें स्थित हो मण्डलाकार गतिसे विचरने लगे ॥ २७ ॥

अथाप्लुत्य पदान्यष्टौ संनिपत्य गजाविव ।
सहसा लोहदण्डाभ्यामन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ २८ ॥

तत्पश्चात् आठ पग चलकर दोनों दो हाथियोंकी भाँति परस्पर टूट पड़े और सहसा लोहेके डंडोंसे एक-दूसरेको मारने लगे ॥ २८ ॥

तौ परस्परवेगाच्च गदाभ्यां च भृशाहतौ ।
युगपत् पेततुर्वीरौ क्षिताविन्द्रध्वजाविव ॥ २९ ॥

वे दोनों वीर परस्परके वेगसे और गदाओंद्वारा अत्यन्त घायल हो दो इन्द्रध्वजोंके समान एक ही समय पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २९ ॥

ततो विह्वलमानं तं निःश्वसन्तं पुनः पुनः ।
शल्यमभ्यपतत् तूर्णं कृतवर्मा महारथः ॥ ३० ॥

उस समय शल्य अत्यन्त विह्वल होकर बारबार लम्बी साँस खींच रहे थे । इतनेहीमें महारथी कृतवर्मा तुरंत राजा शल्यके पास आ पहुँचा ॥ ३० ॥

दृष्ट्वा चैनं महाराज गदयाभिनिपीडितम् ।
विचेष्टन्तं यथा नागं मूर्च्छयाभिपरिप्लुतम् ॥ ३१ ॥

महाराज ! आकर उसने देखा कि राजा शल्य गदासे पीड़ित एवं मूर्छासे अचेत हो आहत हुए नागकी भाँति छटपटा रहे हैं ॥ ३१ ॥

ततः स्वरथमारोप्य मद्राणामधिपं रणे ।
अपोवाह रणात् तूर्णं कृतवर्मा महारथः ॥ ३२ ॥

यह देख महारथी कृतवर्मा युद्धस्थलमें मद्रराज शल्यको अपने रथपर बिठाकर तुरंत ही रणभूमिसे बाहर हटा ले गया ॥

क्षीबवद् विह्वलो वीरो निमेषात् पुनरुत्थितः ।
भीमोऽपि सुमहाबाहुर्गदापाणिरदृश्यत ॥ ३३ ॥

तदनन्तर महाबाहु वीर भीमसेन भी मदोन्मत्तकी भाँति

विह्वल हो पलक मारते-मारते उठकर खड़े हो गये और हाथमें गदा लिये दिखायी देने लगे ॥ ३३ ॥

ततो मद्राधिपं दृष्ट्वा तव पुत्राः पराङ्मुखम्।
सनागपत्त्यश्वरथाः समकम्पन्त मारिष ॥ ३४ ॥

आर्य ! उस समय मद्रराज शल्यको युद्धसे विमुख हुआ देख हाथी, घोड़े, रथ और पैदल-सेनाओंसहित आपके सारे पुत्र भयसे काँप उठे ॥ ३४ ॥

ते पाण्डवैरर्द्यमानास्तावका जितकाशिभिः।
भीता दिशोऽन्वपद्यन्त वातनुन्ना घना इव ॥ ३५ ॥

विजयसे सुशोभित होनेवाले पाण्डवोंद्वारा पीड़ित हो आपके सभी सैनिक भयभीत हो हवाके उड़ाये हुए बादलोंकी भाँति चारों दिशाओंमें भाग गये ॥ ३५ ॥

निर्जित्य धार्तराष्ट्रांस्तु पाण्डवेया महारथाः।
व्यरोचन्त रणे राजन् दीप्यमाना इवाग्नयः ॥ ३६ ॥

राजन् ! इस प्रकार आपके पुत्रोंको जीतकर महारथी पाण्डव प्रज्वलित अग्नियोंकी भाँति रणक्षेत्रमें प्रकाशित होने लगे ॥ ३६ ॥

सिंहनादान् भृशं चक्रुः शङ्खान् दध्मुश्च हर्षिताः।
भेरीश्च वादयामासुर्मृदङ्गांश्चानकैः सह ॥ ३७ ॥

उन्होंने हर्षित होकर बारंबार सिंहनाद किये और बहुत-से शङ्ख बजाये; साथ ही उन्होंने भेरी, मृदङ्ग और आनक आदि वाद्योंको भी बजवाया ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि शल्यापयाने पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणाभिषेकपर्वमें शल्यका पलायनविषयक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

वृषसेनका पराक्रम, कौरव-पाण्डव वीरोंका तुमुल युद्ध, द्रोणाचार्यके द्वारा पाण्डवपक्षके अनेक वीरोंका वध तथा अर्जुनकी विजय

संजय उवाच

तद् बलं सुमहद् दीर्णं त्वदीयं प्रेक्ष्य वीर्यवान्।
दधारैको रणे राजन् वृषसेनोऽस्त्रमायया ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! आपकी विशाल सेनाको तितर-बितर हुई देख एकमात्र पराक्रमी वृषसेनने अपने अस्त्रोंकी मायासे रणक्षेत्रमें उसे धारण किया (भागनेसे रोका)॥

शरा दश दिशो मुक्ता वृषसेनेन संयुगे।
विचेरुस्ते विनिर्भिद्य नरवाजिरथद्विपान् ॥ २ ॥

उस युद्धस्थलमें वृषसेनके छोड़े हुए बाण हाथी, घोड़े, रथ और मनुष्योंको विदीर्ण करते हुए दसों दिशाओंमें विचरने लगे ॥ २ ॥

तस्य दीप्ता महाबाणा विनिश्चेरुः सहस्रशः।
भानोरिव महाराज घर्मकाले मरीचयः ॥ ३ ॥

महाराज ! जैसे ग्रीष्म-ऋतुमें सूर्यसे निकलकर सहस्रों किरणें सब ओर फैलती हैं, उसी प्रकार वृषसेनके धनुषसे सहस्रों तेजस्वी महाबाण निकलने लगे ॥ ३ ॥

तेनार्दिता महाराज रथिनः सादिनस्तथा।
निपेतुरुर्व्यां सहसा वातभग्ना इव द्रुमाः ॥ ४ ॥

राजन् ! जैसे प्रचण्ड आँधीसे सहसा बड़े-बड़े वृक्ष टूटकर गिर जाते हैं, उसी प्रकार वृषसेनके द्वारा पीड़ित हुए रथी और अन्य योद्धागण सहसा धरतीपर गिरने लगे ॥ ४ ॥

हयौघांश्च रथौघांश्च गजौघांश्च महारथः।
अपातयद् रणे राजञ्शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५ ॥

नरेश्वर ! उस महारथी वीरने रणभूमिमें घोड़ों, रथों और हाथियोंके सैकड़ों-हजारों समूहोंको मार गिराया ॥ ५ ॥

दृष्ट्वा तमेकं समरे विचरन्तमभीतवत्।
सहिताः सर्वराजानः परिवव्रुः समन्ततः ॥ ६ ॥

उसे अकेले ही समरभूमिमें निर्भय विचरते देख सब राजाओंने एक साथ आकर सब ओरसे घेर लिया ॥ ६ ॥

नाकुलिस्तु शतानीको वृषसेनं समभ्ययात्।
विव्याध चैनं दशभिर्नाराचैर्मर्मभेदिभिः ॥ ७ ॥

इसी समय नकुलके पुत्र शतानीकने वृषसेनपर आक्रमण किया और दस मर्मभेदी नाराचोंद्वारा उसे बींध डाला ॥ ७ ॥

तस्य कर्णात्मजश्चापं छित्त्वा केतुमपातयत्।
तं भ्रातरं परीप्सन्तो द्रौपदेयाः समभ्ययुः ॥ ८ ॥

तब कर्णके पुत्रने शतानीकके धनुषको काटकर उनके ध्वजको भी गिरा दिया। यह देख अपने भाईकी रक्षा करनेके लिये द्रौपदीके दूसरे पुत्र भी वहाँ आ पहुँचे ॥ ८ ॥

कर्णात्मजं शरव्रातैरदृश्यं चक्रुरञ्जसा।
तान् नदन्तोऽभ्यधावन्त द्रोणपुत्रमुखा रथाः ॥ ९ ॥
छादयन्तो महाराज द्रौपदेयान् महारथान्।
शरैर्नानाविधैस्तूर्णं पर्वताञ्जलदा इव ॥ १० ॥

उन्होंने अपने बाण-समूहोंकी वर्षासे कर्णकुमार वृषसेनको अनायास ही आच्छादित करके अदृश्य कर दिया। महाराज ! यह देख अश्वत्थामा आदि महारथी सिंहनाद करते हुए उनपर टूट पड़े और जैसे मेघ पर्वतोंपर जलकी धारा गिराते हैं, उसी प्रकार वे नाना प्रकारके बाणोंकी वर्षा करते हुए तुरंत ही महारथी द्रौपदीपुत्रोंको आच्छादित करने लगे ॥

तान् पाण्डवाः प्रत्यगृह्णंस्त्वरिताः पुत्रगृद्धिनः।
पञ्चालाः केकया मत्स्याः सृञ्जयाश्चोद्यतायुधाः ॥ ११ ॥

तब पुत्रोंकी प्राणरक्षा चाहनेवाले पाण्डवोंने तुरंत आकर उन कौरव महारथियोंको रोका। पाण्डवोंके साथ पाञ्चाल, केकय, मत्स्य और सृंजयदेशीय योद्धा भी अस्त्र-शस्त्र लिये उपस्थित थे ॥ ११ ॥

तद् युद्धमभवद् घोरं सुमहल्लोमहर्षणम्।
त्वदीयैः पाण्डुपुत्राणां देवानामिव दानवैः ॥ १२ ॥

राजन्! फिर तो दानवोंके साथ देवताओंकी भाँति आपके सैनिकोंके साथ पाण्डवोंका अत्यन्त भयंकर युद्ध छिड़ गया, जो रोंगटे खड़े कर देनेवाला था ॥ १२ ॥

एवं युयुधिरे वीराः संरब्धाः कुरुपाण्डवाः।
परस्परमुदीक्षन्तः परस्परकृतागसः ॥ १३ ॥

इस प्रकार एक-दूसरेके अपराध करनेवाले कौरव-पाण्डव वीर परस्पर क्रोधपूर्ण दृष्टिसे देखते हुए युद्ध करने लगे ॥ १३ ॥

तेषां ददृशिरे कोपाद् वपूंष्यमिततेजसाम्।
युयुत्सूनामिवाकाशे पतत्त्रिवरभोगिनाम् ॥ १४ ॥

क्रोधवश युद्ध करते हुए उन अमित तेजस्वी राजाओंके शरीर आकाशमें युद्धकी इच्छासे एकत्र हुए पक्षिराज गरुड़ तथा नागोंके समान दिखायी देते थे ॥ १४ ॥

भीमकर्णकृपद्रोणद्रौणिपार्षतसात्यकैः।
बभासे स रणोद्देशः कालसूर्य इवोदितः ॥ १५ ॥

भीम, कर्ण, कृपाचार्य, द्रोण, अश्वत्थामा, धृष्टद्युम्न तथा सात्यकि आदि वीरोंसे वह रणक्षेत्र ऐसी शोभा पा रहा था, मानो वहाँ प्रलयकालके सूर्यका उदय हुआ हो ॥ १५ ॥

तदाऽऽसीत् तुमुलं युद्धं निघ्नतामितरेतरम्।
महाबलानां बलिभिर्दानवानां यथा सुरैः ॥ १६ ॥

उस समय एक दूसरेपर प्रहार करनेवाले उन महाबली वीरोंमें वैसा ही भयंकर युद्ध हो रहा था, जैसे पूर्वकालमें बलवान् देवताओंके साथ महाबली दानवोंका संग्राम हुआ था ॥

ततो युधिष्ठिरानीकमुद्धतार्णवनिःस्वनम्।
त्वदीयमवधीत् सैन्यं सम्प्रद्रुतमहारथम् ॥ १७ ॥

तदनन्तर उत्ताल तरंगोंसे युक्त महासागरकी भाँति गर्जना करती हुई युधिष्ठिरकी सेना आपकी सेनाका संहार करने लगी। इससे कौरवसेनाके बड़े-बड़े रथी भाग खड़े हुए ॥

तत् प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा शत्रुभिर्भृशमर्दितम्।
अलं द्रुतेन वः शूरा इति द्रोणोऽभ्यभाषत ॥ १८ ॥

शत्रुओंके द्वारा अच्छी तरह रौंदी गयी आपकी सेनाको भागती देख द्रोणाचार्यने कहा—'शूरवीरो! तुम भागो मत, इससे कोई लाभ न होगा' ॥ १८ ॥

(भारद्वाजममर्षश्च विक्रमश्च समाविशत्।
समुद्धृत्य निषङ्गाच्च धनुर्ज्यामवमृज्य च ॥
महाशरधनुष्पाणिर्यन्तारमिदमब्रवीत्।

उस समय द्रोणाचार्यमें अमर्ष और पराक्रम दोनोंका समावेश हुआ। उन्होंने धनुषकी प्रत्यञ्चाको पोंछकर तूणीरसे बाण निकाला और उस महान् बाण एवं धनुषको हाथमें लेकर सारथिसे इस प्रकार कहा ॥

द्रोण उवाच

सारथे याहि यत्रैव पाण्डरेण विराजता ॥
ध्रियमाणेन छत्रेण राजा तिष्ठति धर्मराट्।

द्रोणाचार्य बोले—सारथे! वहीं चलो, जहाँ सुन्दर श्वेत छत्र धारण किये धर्मराज राजा युधिष्ठिर खड़े हैं ॥

तदेतद् दीर्यते सैन्यं धार्तराष्ट्रमनेकधा ॥
एतत् संस्तम्भयिष्यामि प्रतिवार्य युधिष्ठिरम्।

यह धृतराष्ट्रकी सेना तितर-बितर हो अनेक भागोंमें बँटी जा रही है। मैं युधिष्ठिरको रोककर इस सेनाको स्थिर करूँगा (भागनेसे रोकूँगा) ॥

न हि मामभिवर्षन्ति संयुगे तात पाण्डवाः ॥
मात्स्याः पाञ्चालराजानः सर्वे च ससोमकाः।

तात! ये पाण्डव, मत्स्य, पाञ्चाल और समस्त सोमक वीर मुझपर बाण-वर्षा नहीं कर सकते ॥

अर्जुनो मत्प्रसादाद्धि महास्त्राणि समाप्तवान् ॥
न मामुत्सहते तात न भीमो न च सात्यकिः।

अर्जुनने भी मेरी ही कृपासे बड़े-बड़े अस्त्रोंको प्राप्त किया है। तात! वे भीमसेन और सात्यकि भी मुझसे लड़नेका साहस नहीं कर सकते ॥

मत्प्रसादाद्धि बीभत्सुः परमेष्वासतां गतः ॥
ममैवास्त्रं विजानाति धृष्टद्युम्नोऽपि पार्षतः।

अर्जुन मेरे ही प्रसादसे महान् धनुर्धर हो गये हैं। धृष्टद्युम्न भी मेरे ही दिये हुए अस्त्रोंका ज्ञान रखता है ॥

नायं संरक्षितुं कालः प्राणांस्तात जयैषिणा ॥
याहि स्वर्गं पुरस्कृत्य यशसे च जयाय च।

तात सारथे! विजयकी अभिलाषा रखनेवाले वीरके लिये यह प्राणोंकी रक्षा करनेका अवसर नहीं है। तुम स्वर्ग-प्राप्तिका उद्देश्य लेकर यश और विजयके लिये आगे बढ़ो ॥

संजय उवाच

एवं संचोदितो यन्ता द्रोणमभ्यवहत् ततः ॥
तदाश्वहृदयेनाश्वानभिमन्त्र्याशु हर्षयन्।
रथेन सवरूथेन भास्वरेण विराजता ॥

संजय कहते हैं—राजन्! इस प्रकार प्रेरित होकर सारथि अश्वहृदय नामक मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके घोड़ोंका हर्ष बढ़ाता हुआ आवरणयुक्त प्रकाशमान एवं तेजस्वी रथके द्वारा शीघ्रतापूर्वक द्रोणाचार्यको आगे ले चला ॥

तं करूषाश्च मत्स्याश्च चेदयश्च ससात्वताः।
पाण्डवाश्च सपञ्चालाः सहिताः पर्यवारयन् ॥)

उस समय करूष, मत्स्य, चेदि, सत्वत, पाण्डव

तथा पाञ्चाल वीरोंने एक साथ आकर द्रोणाचार्यको रोका ॥

ततः शोणहयः क्रुद्धश्चतुर्दन्त इव द्विपः ।
प्रविश्य पाण्डवानीकं युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ १९ ॥

तब लाल घोड़ोंवाले द्रोणाचार्यने कुपित हो चार दाँतोंवाले गजराजके समान पाण्डवसेनामें घुसकर युधिष्ठिरपर आक्रमण किया ॥ १२ ॥

तमाविध्यच्छितैर्बाणैः कङ्कपत्रैर्युधिष्ठिरः ।
तस्य द्रोणो धनुश्छित्त्वा तं द्रुतं समुपाद्रवत् ॥ २० ॥

युधिष्ठिरने गीधकी पाँखोंसे युक्त पैने बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यको बींध डाला । तब द्रोणाचार्यने उनका धनुष काटकर बड़े वेगसे उनपर आक्रमण किया ॥ २० ॥

चक्ररक्षः कुमारस्तु पञ्चालानां यशस्करः ।
दधार द्रोणमायान्तं वेलेव सरितां पतिम् ॥ २१ ॥

उस समय पाञ्चालोंके यशको बढ़ानेवाले कुमारने, जो युधिष्ठिरके रथ-चक्रकी रक्षा कर रहे थे, आते हुए द्रोणाचार्यको उसी प्रकार रोक दिया, जैसे तटभूमि समुद्रको रोकती है ॥ २१ ॥

द्रोणं निवारितं दृष्ट्वा कुमारेण द्विजर्षभम् ।
सिंहनादरवो ह्यासीत् साधु साध्विति भाषितम् ॥ २२ ॥

कुमारके द्वारा द्विजश्रेष्ठ द्रोणाचार्यको रोका गया देख पाण्डव-सेनामें जोर-जोरसे सिंहनाद होने लगा और सब लोग कहने लगे 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' ॥ २२ ॥

कुमारस्तु ततो द्रोणं सायकेन महाहवे ।
विव्याधोरसि संक्रुद्धः सिंहवच्च नदन् मुहुः ॥ २३ ॥

कुमारने उस महायुद्धमें कुपित हो बारंबार सिंहनाद करते हुए एक बाणद्वारा द्रोणाचार्यकी छातीमें चोट पहुँचायी ॥

संवार्य च रणे द्रोणं कुमारस्तु महाबलः ।
शरैरनेकसाहस्रैः कृतहस्तो जितश्रमः ॥ २४ ॥

इतना ही नहीं, उस महाबली कुमारने कई हजार बाणोंद्वारा रणक्षेत्रमें द्रोणाचार्यको रोक दिया; क्योंकि उनके हाथ अस्त्र-संचालनकी कलामें दक्ष थे और उन्होंने परिश्रमको जीत लिया था ॥ २४ ॥

तं शूरमार्यव्रतिनं मन्त्रास्त्रेषु कृतश्रमम् ।
चक्ररक्षं परामृद्नात् कुमारं द्विजपुङ्गवः ॥ २५ ॥

परंतु द्विजश्रेष्ठ द्रोणाचार्यने शूर, आर्यव्रती एवं मन्त्रास्त्रविद्यामें परिश्रम किये हुए चक्र-रक्षक कुमारको परास्त कर दिया ॥ २५ ॥

स मध्यं प्राप्य सैन्यानां सर्वाःप्रविचरन् दिशः ।
तव सैन्यस्य गोप्ताऽऽसीद् भारद्वाजो द्विजर्षभः ॥ २६ ॥

राजन् ! भरद्वाजनन्दन विप्रवर द्रोणाचार्य आपकी सेनाके संरक्षक थे । वे पाण्डव-सेनाके बीचमें घुसकर सम्पूर्ण दिशाओंमें विचरने लगे ॥ २६ ॥

शिखण्डिनं द्वादशभिर्विंशत्या चोत्तमौजसम् ।
नकुलं पञ्चभिर्विद्ध्वा सहदेवं च सप्तभिः ॥ २७ ॥
युधिष्ठिरं द्वादशभिर्द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः ।
सात्यकिं पञ्चभिर्विद्ध्वा मत्स्यं च दशभिः शरैः ॥ २८ ॥

उन्होंने शिखण्डीको बारह, उत्तमौजाको बीस, नकुलको पाँच और सहदेवको सात बाणोंसे घायल करके युधिष्ठिरको बारह, द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंको तीन-तीन, सात्यकिको पाँच और विराटको दस बाणोंसे बींध डाला ॥ २७-२८ ॥

व्यक्षोभयद् रणे योधान् यथा मुख्यमभिद्रवन् ।
अभ्यवर्तत सम्प्रेप्सुः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ २९ ॥

राजन् ! उन्होंने रणक्षेत्रमें मुख्य-मुख्य योद्धाओंपर धावा करके उन सबको क्षोभमें डाल दिया और कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरको पकड़नेके लिये उनपर वेगसे आक्रमण किया ॥

युगन्धरस्ततो राजन् भारद्वाजं महारथम् ।
वारयामास संक्रुद्धं वातोद्धतमिवार्णवम् ॥ ३० ॥

राजन् ! उस समय वायुके थपेड़ोंसे विक्षुब्ध हुए महासागरके समान क्रोधमें भरे हुए महारथी द्रोणाचार्यको राजा युगन्धरने रोक दिया ॥ ३० ॥

युधिष्ठिरं स विद्ध्वा तु शरैः संनतपर्वभिः ।
युगन्धरं तु भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ३१ ॥

तब झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा युधिष्ठिरको घायल करके द्रोणाचार्यने एक भल्ल नामक बाणद्वारा मारकर युगन्धरको रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया ॥ ३१ ॥

ततो विराटद्रुपदौ केकयाः सात्यकिः शिबिः ।
व्याघ्रदत्तश्च पाञ्चाल्यः सिंहसेनश्च वीर्यवान् ॥ ३२ ॥
एते चान्ये च बहवः परीप्सन्तो युधिष्ठिरम् ।
आवव्रुस्तस्य पन्थानं किरन्तः सायकान् बहून् ॥ ३३ ॥

यह देख विराट, द्रुपद, केकय, सात्यकि, शिबि, पाञ्चालदेशीय व्याघ्रदत्त तथा पराक्रमी सिंहसेन—ये तथा और भी बहुत-से नरेश राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करनेके लिये बहुत-से सायकोंकी वर्षा करते हुए द्रोणाचार्यकी राह रोककर खड़े हो गये ॥ ३२-३३ ॥

व्याघ्रदत्तस्तु पाञ्चाल्यो द्रोणं विव्याध मार्गणैः ।
पञ्चाशता शितै राजंस्तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ ३४ ॥

राजन् ! पाञ्चालदेशीय व्याघ्रदत्तने पचास तीखे बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यको घायल कर दिया । तब सब लोग जोर-जोरसे हर्षनाद करने लगे ॥ ३४ ॥

त्वरितं सिंहसेनस्तु द्रोणं विद्ध्वा महारथम् ।
प्राहसत् सहसा हृष्टस्त्रासयन् वै महारथान् ॥ ३५ ॥

हर्षमें भरे हुए सिंहसेनने तुरंत ही महारथी द्रोणाचार्यको घायल करके अन्य महारथियोंके मनमें त्रास उत्पन्न करते हुए सहसा जोरसे अट्टहास किया ॥ ३५ ॥

ततो विस्फार्य नयने धनुर्ज्यामवमृज्य च ।
तलशब्दं महत् कृत्वा द्रोणस्तं समुपाद्रवत् ॥ ३६ ॥

तब द्रोणाचार्यने आँखें फाड़-फाड़कर देखते हुए धनुषकी डोरी साफ कर महान् टंकारघोष करके सिंहसेनपर आक्रमण किया ॥ ३६ ॥

ततस्तु सिंहसेनस्य शिरः कायात् सकुण्डलम् ।
व्याघ्रदत्तस्य चाक्रम्य भल्लाभ्यामाहरद् बली ॥ ३७ ॥

फिर बलवान् द्रोणने आक्रमणके साथ ही भल्ल नामक दो बाणोंद्वारा सिंहसेन और व्याघ्रदत्तके शरीरसे उनके कुण्डलमण्डित मस्तक काट डाले ॥ ३७ ॥

तान् प्रमथ्य शरव्रातैः पाण्डवानां महारथान् ।
युधिष्ठिररथाभ्याशे तस्थौ मृत्युरिवान्तकः ॥ ३८ ॥

इसके बाद पाण्डवोंके उन अन्य महारथियोंको भी अपने बाणसमूहोंसे मथित करके विनाशकारी यमराजके समान वे युधिष्ठिरके रथके समीप खड़े हो गये ॥ ३८ ॥

ततोऽभवन्महाशब्दो राजन् यौधिष्ठिरे बले ।
हतो राजेति योधानां समीपस्थे यतव्रते ॥ ३९ ॥

राजन् ! नियम एवं व्रतका पालन करनेवाले द्रोणाचार्य युधिष्ठिरके बहुत निकट आ गये । तब उनकी सेनाके सैनिकोंमें महान् हाहाकार मच गया । सब लोग कहने लगे 'हाय, राजा मारे गये' ॥ ३९ ॥

अब्रुवन् सैनिकास्तत्र दृष्ट्वा द्रोणस्य विक्रमम् ।
अद्य राजा धार्तराष्ट्रः कृतार्थो वै भविष्यति ॥ ४० ॥

वहाँ द्रोणाचार्यका पराक्रम देख कौरव-सैनिक कहने लगे, 'आज राजा दुर्योधन अवश्य कृतार्थ हो जायँगे ॥ ४० ॥

अस्मिन् मुहूर्ते द्रोणस्तु पाण्डवं गृह्य हर्षितः ।
आगमिष्यति नो नूनं धार्तराष्ट्रस्य संयुगे ॥ ४१ ॥

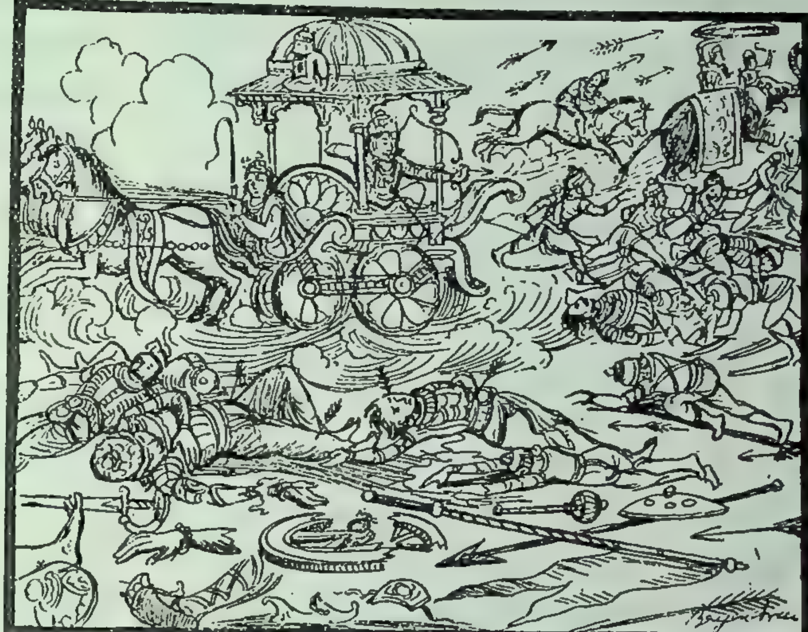
'इस मुहूर्तमें द्रोणाचार्य रणक्षेत्रमें निश्चय ही राजा युधिष्ठिरको पकड़कर बड़े हर्षके साथ हमारे राजा दुर्योधनके समीप ले आयेंगे' ॥ ४१ ॥

एवं संजल्पतां तेषां तावकानां महारथः ।
आयाज्जवेन कौन्तेयो रथघोषेण नादयन् ॥ ४२ ॥

राजन् ! जब आपके सैनिक ऐसी बातें कह रहे थे, उसी समय उनके समक्ष कुन्तीनन्दन महारथी अर्जुन अपने रथकी घरघराहटसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करते हुए बड़े वेगसे आ पहुँचे ॥ ४२ ॥

शोणितोदां रथावर्तां कृत्वा विशसने नदीम् ।
शूरास्थिचयसंकीर्णां प्रेतकूलापहारिणीम् ॥ ४३ ॥
तां शरौघमहाफेनां प्रासमत्स्यसमाकुलाम् ।
नदीमुत्तीर्य वेगेन कुरून् विद्राव्य पाण्डवः ॥ ४४ ॥
ततः किरीटी सहसा द्रोणानीकमुपाद्रवत् ।

वे उस मार-काटसे भरे हुए संग्राममें रक्तकी नदी बहा-



कर आये थे । उसमें शोणित ही जल था । रथकी भँवरें उठ रही थीं । शूरवीरोंकी हड्डियाँ उसमें शिलाखण्डोंके समान बिखरी हुई थीं । प्रेतोंके कंकाल उस नदीके कूल-किनारे जान पड़ते थे, जिन्हें वह अपने वेगसे तोड़-फोड़कर बहाये लिये जाती थी । बाणोंके समुदाय उसमें फेनोंके बहुत बड़े ढेरके समान जान पड़ते थे । प्रास आदि शस्त्र उसमें मत्स्यके समान छाये हुए थे । उस नदीको वेगपूर्वक पार करके कौरव-सैनिकोंको भगाकर पाण्डुनन्दन किरीटधारी अर्जुनने सहसा द्रोणाचार्यकी सेनापर आक्रमण किया ॥ ४३-४४½ ॥

छादयन्निषुजालेन महता मोहयन्निव ॥ ४५ ॥
शीघ्रमभ्यस्यतो बाणान् संदधानस्य चानिशम् ।
नान्तरं ददृशे कश्चित् कौन्तेयस्य यशस्विनः ॥ ४६ ॥

वे अपने बाणोंके महान् समुदायसे द्रोणाचार्यको मोहमें डालते हुए-से आच्छादित करने लगे । यशस्वी कुन्तीकुमार अर्जुन इतनी शीघ्रताके साथ निरन्तर बाणोंको धनुषपर रखते और छोड़ते थे कि किसीको इन दोनों क्रियाओंमें तनिक भी अन्तर नहीं दिखायी देता था ॥ ४५-४६ ॥

न दिशो नान्तरिक्षं च न द्यौर्नैव च मेदिनी ।
अदृश्यन्त महाराज बाणभूता इवाभवन् ॥ ४७ ॥

महाराज ! न दिशाएँ, न अन्तरिक्ष, न आकाश और न पृथिवी ही दिखायी देती थी । सम्पूर्ण दिशाएँ बाणमय हो रही थीं ॥ ४७ ॥

नादृश्यत तदा राजंस्तत्र किंचन संयुगे ।
बाणान्धकारे महति कृते गाण्डीवधन्वना ॥ ४८ ॥

राजन् ! उस रणक्षेत्रमें गाण्डीवधारी अर्जुनने बाणोंके

द्वारा महान् अन्धकार फैला दिया था । उसमें कुछ भी दिखायी नहीं देता था ॥ ४८ ॥

सूर्ये चास्तमनुप्राप्ते तमसा चाभिसंवृते ।
नाज्ञायत तदा शत्रुर्न सुहृन्न च कश्चन ॥ ४९ ॥

सूर्यदेव अस्ताचलको चले गये, सम्पूर्ण जगत् अन्धकारसे व्याप्त हो गया, उस समय न कोई शत्रु पहचाना जाता था न मित्र ॥ ४९ ॥

ततोऽवहारं चक्रुस्ते द्रोणदुर्योधनादयः ।
तान् विदित्वा पुनस्त्रस्तानयुद्धमनसः परान् ॥ ५० ॥
स्वान्यनीकानि बीभत्सुः शनकैरवहारयत् ।

तब द्रोणाचार्य और दुर्योधन आदिने अपनी सेनाको पीछे लौटा लिया । शत्रुओंका मन अब युद्धसे हट गया है और वे बहुत डर गये हैं, यह जानकर अर्जुनने भी धीरे-धीरे अपनी सेनाओंको युद्धभूमिसे हटा लिया ॥ ५०½ ॥

ततोऽभितुष्टुवुः पार्थं प्रहृष्टाः पाण्डुसृंजयाः ॥ ५१ ॥
पञ्चालाश्च मनोज्ञाभिर्वाग्भिः सूर्यमिवर्षयः ।

उस समय हर्षमें भरे हुए पाण्डव, सृंजय और पाञ्चाल वीर जैसे ऋषिगण सूर्यदेवकी स्तुति करते हैं, उसी प्रकार मनोहर वाणीसे कुन्तीकुमार अर्जुनके गुणगान करने लगे ॥ ५१½ ॥

एवं स्वशिबिरं प्रायाज्जित्वा शत्रून् धनंजयः ॥ ५२ ॥
पृष्ठतः सर्वसैन्यानां मुदितो वै सकेशवः ॥ ५३ ॥

इस प्रकार शत्रुओंको जीतकर सब सेनाओंके पीछे श्रीकृष्णसहित अर्जुन बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने शिबिरको गये ॥ ५२-५३ ॥

मसारगल्वर्कसुवर्णरूपै-
र्वज्रप्रवालस्फटिकैश्च मुख्यैः ।
चित्रे रथे पाण्डुसुतो बभासे
नक्षत्रचित्रे वियतीव चन्द्रः ॥ ५४ ॥

जैसे नक्षत्रोंद्वारा चितकबरे प्रतीत होनेवाले आकाशमें चन्द्रमा सुशोभित होते हैं, उसी प्रकार इन्द्रनील, पद्मराग, सुवर्ण, वज्रमणि, मूँगे तथा स्फटिक आदि प्रधान-प्रधान मणि-रत्नोंसे विभूषित विचित्र रथमें बैठे हुए पाण्डुनन्दन अर्जुन शोभा पा रहे थे ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणाभिषेकपर्वणि प्रथमदिवसावहारे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणाभिषेकपर्वमें द्रोणके प्रथम दिनके युद्धमें सेनाको पीछे लौटानेसे सम्बन्ध रखनेवाला सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १० श्लोक मिलाकर कुल ६४ श्लोक हैं)

(संशप्तकवधपर्व)

सप्तदशोऽध्यायः

सुशर्मा आदि संशप्तक वीरोंकी प्रतिज्ञा तथा अर्जुनका युद्धके लिये उनके निकट जाना

संजय उवाच

ते सेने शिबिरं गत्वा न्यविशेतां विशाम्पते ।
यथाभागं यथान्यायं यथागुल्मं च सर्वशः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—प्रजानाथ ! वे दोनों सेनाएँ अपने शिबिरमें जाकर ठहर गयीं । जो सैनिक जिस विभाग और जिस सैन्यदलमें नियुक्त थे, उसीमें यथायोग्य स्थानपर जाकर सब ओर ठहर गये ॥ १ ॥

कृत्वावहारं सैन्यानां द्रोणः परमदुर्मनाः ।
दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य सव्रीडमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥

सेनाओंको युद्धसे लौटाकर द्रोणाचार्य मन-ही-मन अत्यन्त दुखी हो दुर्योधनकी ओर देखते हुए लज्जित होकर बोले—॥ २ ॥

उक्तमेतन्मया पूर्वं न तिष्ठति धनंजये ।
शक्यो ग्रहीतुं संग्रामे देवैरपि युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥

'राजन् ! मैंने पहले ही कह दिया था कि अर्जुनके रहते हुए सम्पूर्ण देवता भी युद्धमें युधिष्ठिरको पकड़ नहीं सकते हैं ॥ ३ ॥

इति तद् वः प्रयततां कृतं पार्थेन संयुगे ।
मा विशङ्कीर्वचो मह्यमजेयौ कृष्णपाण्डवौ ॥ ४ ॥

'तुम सब लोगोंके प्रयत्न करनेपर भी उस युद्धस्थलमें अर्जुनने मेरे पूर्वोक्त कथनको सत्य कर दिखाया है । तुम मेरी बातपर संदेह न करना । वास्तवमें श्रीकृष्ण और अर्जुन मेरे लिये अजेय हैं ॥ ४ ॥

अपनीते तु योगेन केनचिच्छ्वेतवाहने ।
तत एष्यति मे राजन् वशमेव युधिष्ठिरः ॥ ५ ॥

'राजन् ! यदि किसी उपायसे श्वेतवाहन अर्जुन दूर हटा दिये जायँ तो ये राजा युधिष्ठिर मेरे वशमें आ जायँगे ॥

कश्चिदाहूय तं संख्ये देशमन्यं प्रकर्षतु ।
तमजित्वा न कौन्तेयो निवर्तेत कथंचन ॥ ६ ॥

'यदि कोई वीर अर्जुनको युद्धके लिये ललकारकर दूसरे स्थानमें खींच ले जाय तो वह कुन्तीकुमार उसे परास्त किये बिना किसी प्रकार नहीं लौट सकता ॥ ६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे शून्ये धर्मराजमहं नृप ।
ग्रहीष्यामि चमूं भित्त्वा धृष्टद्युम्नस्य पश्यतः ॥ ७ ॥

'नरेश्वर ! इस सूने अवसरमें मैं धृष्टद्युम्नके देखते-देखते पाण्डव-सेनाको विदीर्ण करके धर्मराज युधिष्ठिरको अवश्य पकड़ लूँगा ॥ ७ ॥

अर्जुनेन विहीनस्तु यदि नोत्सृजते रणम् ।
मामुपायान्तमालोक्य गृहीतं विद्धि पाण्डवम् ॥ ८ ॥

'अर्जुनसे अलग रहनेपर यदि पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर मुझे निकट आते देख युद्धस्थलका परित्याग नहीं कर देंगे तो तुम निश्चय समझो, वे मेरी पकड़में आ जायँगे ॥ ८ ॥

एवं तेऽहं महाराज धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
समानेष्यामि सगणं वशमद्य न संशयः ॥ ९ ॥
यदि तिष्ठति संग्रामे मुहूर्तमपि पाण्डवः ।
अथापयाति संग्रामाद् विजयात् तद् विशिष्यते॥ १० ॥

'महाराज ! यदि अर्जुनके बिना दो घड़ी भी युद्धभूमिमें खड़े रहे तो मैं तुम्हारे लिये धर्मपुत्र पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरको आज उनके गणोंसहित अवश्य पकड़ लाऊँगा; इसमें संदेह नहीं है और यदि वे संग्रामसे भाग जाते हैं तो यह हमारी विजयसे भी बढ़कर है' ॥ ९-१० ॥

संजय उवाच

द्रोणस्य तद् वचः श्रुत्वा त्रिगर्ताधिपतिस्तदा ।
भ्रातृभिः सहितो राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ ११ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! द्रोणाचार्यका यह वचन सुनकर उस समय भाइयोंसहित त्रिगर्तराज सुशर्माने इस प्रकार कहा—॥ ११ ॥

वयं विनिकृता राजन् सदा गाण्डीवधन्वना ।
अनागःस्वपि चागस्तत् कृतमस्मासु तेन वै ॥ १२ ॥

'महाराज ! गाण्डीवधारी अर्जुनने हमेशा हमलोगोंका अपमान किया है । यद्यपि हम सदा निरपराध रहे हैं तो भी उनके द्वारा सर्वदा हमारे प्रति अपराध किया गया है ॥ १२ ॥

ते वयं स्मरमाणास्तान् विनिकारान् पृथग्विधान् ।
क्रोधाग्निना दह्यमाना न शेमहि सदा निशि ॥ १३ ॥

'हम पृथक्-पृथक् किये गये उन अपराधोंको याद करके क्रोधाग्निसे दग्ध होते रहते हैं तथा रातमें हमें कभी नींद नहीं आती है ॥ १३ ॥

स नो दिष्ट्यास्त्रसम्पन्नश्चक्षुर्विषयमागतः ।
कर्तारः स्म वयं कर्म यच्चिकीर्षाम हृद्गतम् ॥ १४ ॥

'अब हमारे सौभाग्यसे अर्जुन स्वयं ही अस्त्र-शस्त्र धारण करके आँखोंके सामने आ गये हैं । इस दशामें हम मन-ही-मन जो कुछ करना चाहते थे, वह प्रतिशोधात्मक कार्य अवश्य करेंगे ॥ १४ ॥

भवतश्च प्रियं यत् स्यादस्माकं च यशस्करम् ।
वयमेनं हनिष्यामो निकृष्यायोधनाद् बहिः ॥ १५ ॥

'उससे आपका तो प्रिय होगा ही, हमलोगोंके सुयशकी भी वृद्धि होगी । हम इन्हें युद्धस्थलसे बाहर खींच ले जायँगे और मार डालेंगे ॥ १५ ॥

अद्यास्त्वनर्जुना भूमिरत्रिगर्ताथ वा पुनः ।
सत्यं ते प्रतिजानीमो नैतन्मिथ्या भविष्यति ॥ १६ ॥

'आज हम आपके सामने यह सत्य प्रतिज्ञापूर्वक कहते हैं कि यह भूमि या तो अर्जुनसे सूनी हो जायगी या त्रिगर्तोंमेंसे कोई इस भूतलपर नहीं रह जायगा । मेरा यह कथन कभी मिथ्या नहीं होगा' ॥ १६ ॥

एवं सत्यरथश्चोक्त्वा सत्यवर्मा च भारत ।
सत्यव्रतश्च सत्येषुः सत्यकर्मा तथैव च ॥ १७ ॥
सहिता भ्रातरः पञ्च रथानामयुतेन च ।
न्यवर्तन्त महाराज कृत्वा शपथमाहवे ॥ १८ ॥

भरतनन्दन ! सुशर्माके ऐसा कहनेपर सत्यरथ, सत्यवर्मा, सत्यव्रत, सत्येषु तथा सत्यकर्मा नामवाले उसके पाँच भाइयोंने भी इसी प्रतिज्ञाको दुहराया । उनके साथ दस हजार रथियोंकी सेना भी थी । महाराज ! ये लोग युद्धके लिये शपथ खाकर लौटे थे ॥

मालवास्तुण्डिकेराश्च रथानामयुतैस्त्रिभिः ।
सुशर्मा च नरव्याघ्रस्त्रिगर्तः प्रस्थलाधिपः ॥ १९ ॥
मावेल्लकैर्ललित्थैश्च सहितो मद्रकैरपि ।
रथानामयुतेनैव सोऽगमद् भ्रातृभिः सह ॥ २० ॥

महाराज ! ऐसी प्रतिज्ञा करके प्रस्थलाधिपति पुरुषसिंह त्रिगर्तराज सुशर्मा तीस हजार रथियोंसहित मालव, तुण्डिकेर, मावेल्लक, ललित्थ, मद्रकगण तथा दस हजार रथियोंसे युक्त अपने भाइयोंके साथ युद्धके लिये (शपथ ग्रहण करनेको) गया ॥ १९-२० ॥

नानाजनपदेभ्यश्च रथानामयुतं पुनः ।
समुत्थितं विशिष्टानां शपथार्थमुपागमत् ॥ २१ ॥

विभिन्न देशोंसे आये हुए दस हजार श्रेष्ठ महारथी भी वहाँ शपथ लेनेके लिये उठकर गये ॥ २१ ॥

ततो ज्वलनमानर्च्य हुत्वा सर्वे पृथक् पृथक् ।
जगृहुः कुशचीराणि चित्राणि कवचानि च ॥ २२ ॥

उन सबने पृथक्-पृथक् अग्निदेवकी पूजा करके हवन किया तथा कुशके चीर और विचित्र कवच धारण कर लिये ॥ २२ ॥

ते च बद्धतनुत्राणा घृताक्ताः कुशचीरिणः ।
मौर्वीमेखलिनो वीराः सहस्रशतदक्षिणाः ॥ २३ ॥

कवच बाँधकर कुश-चीर धारण कर लेनेके पश्चात् उन्होंने अपने अङ्गोंमें घी लगाया और 'मौर्वी' नामक तृणविशेषकी बनी हुई मेखला धारण की । वे सभी वीर पहले यज्ञ करके लाखों स्वर्ण-मुद्राएँ दक्षिणामें बाँट चुके थे ॥

यज्वानः पुत्रिणो लोक्याः कृतकृत्यास्तनुत्यजः ।
योक्ष्यमाणास्तदाऽऽत्मानं यशसा विजयेन च ॥ २४ ॥

उन सबने पूर्वकालमें यज्ञोंका अनुष्ठान किया था, वे

सभी पुत्रवान् तथा पुण्यलोकोंमें जानेके अधिकारी थे, उन्होंने अपने कर्तव्यको पूरा कर लिया था। वे हर्षपूर्वक युद्धमें अपने शरीरका त्याग करनेको उद्यत थे और अपने आपको यश एवं विजयसे संयुक्त करने जा रहे थे ॥ २४ ॥

ब्रह्मचर्यश्रुतिमुखैः क्रतुभिश्चाप्तदक्षिणैः ।
प्राप्याँल्लोकान् सुयुद्धेन क्षिप्रमेव यियासवः ॥ २५ ॥

ब्रह्मचर्यपालन, वेदोंके स्वाध्याय तथा पर्याप्त दक्षिणा-वाले यज्ञोंके अनुष्ठान आदि साधनोंसे जिन पुण्यलोकोंकी प्राप्ति होती है, उन सबमें वे उत्तम युद्धके द्वारा ही शीघ्र पहुँचनेकी इच्छा रखते थे ॥ २५ ॥

ब्राह्मणांस्तर्पयित्वा च निष्कान् दत्त्वा पृथक् पृथक् ।
गाश्च वासांसि च पुनः समाभाष्य परस्परम् ॥ २६ ॥
(द्विजमुख्यैः समुदितैः कृतस्वस्त्ययनाशिषः ।
मुदिताश्च प्रहृष्टाश्च जलं संस्पृश्य निर्मलम् ॥)
प्रज्वाल्य कृष्णवर्त्मानमुपागम्य रणव्रतम् ।
तस्मिन्नग्नौ तदा चक्रुः प्रतिज्ञां दृढनिश्चयाः ॥ २७ ॥

ब्राह्मणोंको भोजन आदिसे तृप्त करके उन्हें अलग-अलग स्वर्णमुद्राओं, गौओं तथा वस्त्रोंकी दक्षिणा देकर परस्पर बात-चीत करके उन्होंने वहाँ एकत्र हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्ति-वाचन कराया, आशीर्वाद प्राप्त किया और हर्षोल्लासपूर्वक निर्मल जलका स्पर्श करके अग्निको प्रज्वलित किया। फिर समीप आकर युद्धका व्रत ले अग्निके सामने ही दृढ़ निश्चय-पूर्वक प्रतिज्ञा की ॥ २६-२७ ॥

शृण्वतां सर्वभूतानामुच्चैर्वाचो बभाषिरे ।
सर्वे धनंजयवधे प्रतिज्ञां चापि चक्रिरे ॥ २८ ॥

उन सभीने समस्त प्राणियोंके सुनते हुए अर्जुनका वध करनेके लिये प्रतिज्ञा की और उच्च स्वरसे यह बात कही—॥

ये वै लोकाश्चाव्रतिनां ये चैव ब्रह्मघातिनाम् ।
मद्यपस्य च ये लोका गुरुदाररतस्य च ॥ २९ ॥
ब्रह्मस्वहारिणश्चैव राजपिण्डापहारिणः ।
शरणागतं च त्यजतो याचमानं तथा घ्नतः ॥ ३० ॥
अगारदाहिनां चैव ये च गां निघ्नतामपि ।
अपकारिणां च ये लोका ये च ब्रह्मद्विषामपि ॥ ३१ ॥
स्वभार्यामृतुकालेषु मोहाद् वै नाभिगच्छताम् ।
श्राद्धमैथुनिकानां च ये चाप्यात्मापहारिणाम् ॥ ३२ ॥
न्यासापहारिणां ये च श्रुतं नाशयतां च ये ।
क्लीबेन युध्यमानानां ये च नीचानुसारिणाम् ॥ ३३ ॥
नास्तिकानां च ये लोका येऽग्निमातृपितृत्यजाम् ।
(सस्यमाक्रमतां ये च प्रत्यादित्यं प्रमेहताम् ।)
तानाप्नुयामहे लोकान् ये च पापकृतामपि ॥ ३४ ॥
यद्यहत्वा वयं युद्धे निवर्तेम धनंजयम् ।
तेन चाभ्यर्दितास्त्रासाद् भवेम हि पराङ्मुखाः ॥ ३५ ॥

'यदि हमलोग अर्जुनको युद्धमें मारे बिना लौट आवें अथवा उनके बाणोंसे पीड़ित हो भयके कारण युद्धसे पराङ्मुख हो जायँ तो हमें वे ही पापमय लोक प्राप्त हों, जो व्रतका पालन न करनेवाले, ब्रह्महत्यारे, मद्य पीनेवाले, गुरुस्त्री-गामी, ब्राह्मणके धनका अपहरण करनेवाले, राजाकी दी हुई जीविकाको छीन लेनेवाले, शरणागतको त्याग देनेवाले, याचकको मारनेवाले, घरमें आग लगानेवाले, गोवध करनेवाले, दूसरोंकी बुराईमें लगे रहनेवाले, ब्राह्मणोंसे द्वेष रखनेवाले, ऋतुकालमें भी मोहवश अपनी पत्नीके साथ समागम न करनेवाले, श्राद्धके दिन मैथुन करनेवाले, अपनी जाति छिपानेवाले, धरोहर-को हड़प लेनेवाले, अपनी प्रतिज्ञा तोड़नेवाले, नपुंसकके साथ युद्ध करनेवाले, नीच पुरुषोंका सङ्ग करनेवाले, ईश्वर और परलोकपर विश्वास न करनेवाले, अग्नि, माता और पिताकी सेवाका परित्याग करनेवाले, खेतीको पैरोंसे कुचलकर नष्ट कर देनेवाले, सूर्यकी ओर मुँह करके मूत्रत्याग करनेवाले तथा पापपरायण पुरुषोंको प्राप्त होते हैं ॥ २९–३५ ॥

यदि त्वसुकरं लोके कर्म कुर्याम संयुगे ।
इष्टाँल्लोकान् प्राप्नुयामो वयमद्य न संशयः ॥ ३६ ॥

'यदि आज हम युद्धमें अर्जुनको मारकर लोकमें असम्भव माने जानेवाले कर्मको भी कर लेंगे तो मनोवाञ्छित पुण्यलोकोंको प्राप्त करेंगे, इसमें संशय नहीं है' ॥ ३६ ॥

एवमुक्त्वा तदा राजंस्तेऽभ्यवर्तन्त संयुगे ।
आह्वयन्तोऽर्जुनं वीराः पितृजुष्टां दिशं प्रति ॥ ३७ ॥

राजन्! ऐसा कहकर वे वीर संशप्तकगण उस समय अर्जुनको ललकारते हुए युद्धस्थलमें दक्षिण दिशाकी ओर जाकर खड़े हो गये ॥ ३७ ॥

आहूतस्तैर्नरव्याघ्रैः पार्थः परपुरंजयः ।
धर्मराजमिदं वाक्यमपदान्तरमब्रवीत् ॥ ३८ ॥

उन पुरुषसिंह संशप्तकोंद्वारा ललकारे जानेपर शत्रु-नगरीपर विजय पानेवाले कुन्तीकुमार अर्जुन तुरंत ही धर्मराज युधिष्ठिरसे इस प्रकार बोले– ॥ ३८ ॥

आहूतो न निवर्तेयमिति मे व्रतमाहितम् ।
संशप्तकाश्च मां राजन्नाह्वयन्ति महामृधे ॥ ३९ ॥

'राजन्! मेरा यह निश्चित व्रत है कि यदि कोई मुझे युद्धके लिये बुलाये तो मैं पीछे नहीं हटूँगा। ये संशप्तक मुझे महायुद्धमें बुला रहे हैं ॥ ३९ ॥

एष च भ्रातृभिः सार्धं सुशर्माऽऽह्वयते रणे ।
वधाय सगणस्यास्य मामनुज्ञातुमर्हसि ॥ ४० ॥

'यह सुशर्मा अपने भाइयोंके साथ आकर मुझे युद्धके लिये ललकार रहा है, अतः गणोंसहित इस सुशर्माके

वध करनेके लिये मुझे आज्ञा देनेकी कृपा करें ॥ ४० ॥

नैतच्छक्नोमि संसोढुमाह्वानं पुरुषर्षभ।
सत्यं ते प्रतिजानामि हतान् विद्धि परान् युधि ॥ ४१ ॥

'पुरुषप्रवर! मैं शत्रुओंकी यह ललकार नहीं सह सकता। आपसे सच्ची प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि इन शत्रुओंको युद्धमें मारा गया ही समझिये' ॥ ४१ ॥

युधिष्ठिर उवाच

श्रुतं ते तत्त्वतस्तात यद् द्रोणस्य चिकीर्षितम्।
यथा तदनृतं तस्य भवेत् तत् त्वं समाचर ॥ ४२ ॥

युधिष्ठिर बोले—तात! द्रोणाचार्य क्या करना चाहते हैं, यह तो तुमने अच्छी तरह सुन ही लिया होगा। उनका वह संकल्प जैसे भी झूठा हो जाय, वही तुम करो ॥ ४२ ॥

द्रोणो हि बलवाञ्छूरः कृतास्त्रश्च जितश्रमः।
प्रतिज्ञातं च तेनैतद् ग्रहणं मे महारथ ॥ ४३ ॥

महारथी वीर! आचार्य द्रोण बलवान्, शौर्यसम्पन्न और अस्त्रविद्यामें निपुण हैं, उन्होंने परिश्रमको जीत लिया है तथा वे मुझे पकड़कर दुर्योधनके पास ले जानेकी प्रतिज्ञा कर चुके हैं ॥ ४३ ॥

अर्जुन उवाच

अयं वै सत्यजिद् राजन्नद्य त्वां रक्षिता युधि।
ध्रियमाणे च पाञ्चाल्ये नाचार्यः काममाप्स्यति ॥ ४४ ॥

अर्जुन बोले—राजन्! ये पाञ्चालराजकुमार सत्यजित् आज युद्धस्थलमें आपकी रक्षा करेंगे। इनके जीते-जी आचार्य अपनी इच्छा पूरी नहीं कर सकेंगे ॥ ४४ ॥

हते तु पुरुषव्याघ्रे रणे सत्यजिति प्रभो।
सर्वैरपि समेतैर्वा न स्थातव्यं कथंचन ॥ ४५ ॥

प्रभो! यदि पुरुषसिंह सत्यजित् रणभूमिमें वीरगतिको प्राप्त हो जायँ तो आप सब लोगोंके साथ होनेपर भी किसी तरह युद्धभूमिमें न ठहरियेगा ॥ ४५ ॥

संजय उवाच

अनुज्ञातस्ततो राज्ञा परिष्वक्तश्च फाल्गुनः।
प्रेम्णा दृष्टश्च बहुधा ह्याशिषश्चास्य योजिताः ॥ ४६ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तब राजा युधिष्ठिरने अर्जुनको जानेकी आज्ञा दे दी और उनको हृदयसे लगा लिया। प्रेमपूर्वक उन्हें बार-बार देखा और आशीर्वाद दिया ॥ ४६ ॥

विहायैनं ततः पार्थस्त्रिगर्तान् प्रत्ययाद् बली।
क्षुधितः क्षुद्विघातार्थं सिंहो मृगगणानिव ॥ ४७ ॥

तदनन्तर बलवान् कुन्तीकुमार अर्जुन राजा युधिष्ठिरको वहीं छोड़कर त्रिगर्तोंकी ओर बढ़े, मानो भूखा सिंह अपनी भूख मिटानेके लिये मृगोंके झुंडकी ओर जा रहा हो ॥४७॥

ततो दौर्योधनं सैन्यं मुदा परमया युतम्।
ऋतेऽर्जुनं भृशं क्रुद्धं धर्मराजस्य निग्रहे ॥ ४८ ॥

तब दुर्योधनकी सेना बड़ी प्रसन्नताके साथ अर्जुनके बिना राजा युधिष्ठिरको कैद करनेके लिये अत्यन्त क्रोधपूर्वक प्रयत्न करने लगी ॥ ४८ ॥

ततोऽन्योन्येन ते सैन्ये समाजग्मतुरोजसा।
गङ्गासरय्वौ वेगेन प्रावृषीवोल्बणोदके ॥ ४९ ॥

तत्पश्चात् दोनों सेनाएँ बड़े वेगसे परस्पर भिड़ गयीं, मानो वर्षा ऋतुमें जलसे लबालब भरी हुई गङ्गा और सरयू वेगपूर्वक आपसमें मिल रही हों ॥ ४९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि धनंजययाने सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत संशप्तकवधपर्वमें अर्जुनकी रणयात्राविषयक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १½ श्लोक मिलाकर कुल ५०½ श्लोक हैं)

अष्टादशोऽध्यायः

संशप्तक-सेनाओंके साथ अर्जुनका युद्ध और सुधन्वाका वध

संजय उवाच

ततः संशप्तका राजन् समे देशे व्यवस्थिताः।
व्यूह्यानीकं रथैरेव चन्द्राकारं मुदा युताः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर संशप्तक योद्धा रथोंद्वारा ही सेनाका चन्द्राकार व्यूह बनाकर समतल प्रदेशमें प्रसन्नतापूर्वक खड़े हो गये ॥ १ ॥

ते किरीटिनमायान्तं दृष्ट्वा हर्षेण मारिष।
उदक्रोशन् नरव्याघ्राः शब्देन महता तदा ॥ २ ॥

आर्य! किरीटधारी अर्जुनको आते देख पुरुषसिंह संशप्तक हर्षपूर्वक बड़े जोर-जोरसे गर्जना करने लगे ॥

स शब्दः प्रदिशः सर्वा दिशः खं च समावृणोत्।
आवृतत्वाच्च लोकस्य नासीत् तत्र प्रतिस्वनः ॥ ३ ॥

उस सिंहनादने सम्पूर्ण दिशाओं, विदिशाओं तथा आकाशको व्याप्त कर लिया। इस प्रकार सम्पूर्ण लोक व्याप्त हो जानेसे वहाँ दूसरी कोई प्रतिध्वनि नहीं होती थी ॥ ३ ॥

सोऽतीव सम्प्रहृष्टांस्तानुपलभ्य धनंजयः।
किंचिदभ्युत्स्मयन् कृष्णमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ४ ॥

अर्जुनने उन सबको अत्यन्त हर्षमें भरा हुआ देख किंचित् मुसकराते हुए भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा—॥

पश्यैतान् देवकीमातर्मुमूर्षूनद्य संयुगे।

भ्रातॄंस्त्रैगर्तकानेवं रोदितव्ये प्रहर्षितान् ॥ ५ ॥

'देवकीनन्दन ! देखिये तो सही, ये त्रिगर्तदेशीय सुशर्मा आदि सब भाई मृत्युके निकट पहुँचे हुए हैं। आज युद्धस्थलमें जहाँ इन्हें रोना चाहिये, वहाँ ये हर्षसे उछल रहे हैं ॥ ५ ॥

अथवा हर्षकालोऽयं त्रैगर्तानामसंशयम् ।
कुनरैर्दुरवापान् हि लोकान् प्राप्स्यन्त्यनुत्तमान् ॥ ६ ॥

'अथवा इसमें संदेह नहीं कि यह इन त्रिगर्तोंके लिये हर्षका ही अवसर है; क्योंकि ये उन परम उत्तम लोकोंमें जायँगे, जो दुष्ट मनुष्योंके लिये दुर्लभ हैं' ॥ ६ ॥

एवमुक्त्वा महाबाहुर्हृषीकेशं ततोऽर्जुनः ।
आससाद रणे व्यूढां त्रिगर्तानामनीकिनीम् ॥ ७ ॥

भगवान् हृषीकेशसे ऐसा कहकर महाबाहु अर्जुनने युद्धमें त्रिगर्तोंकी व्यूहाकार खड़ी हुई सेनापर आक्रमण किया ॥ ७ ॥

स देवदत्तमादाय शङ्खं हेमपरिष्कृतम् ।
दध्मौ वेगेन महता घोषेणापूरयन् दिशः ॥ ८ ॥

उन्होंने सुवर्णजटित देवदत्त नामक शङ्ख लेकर उसकी ध्वनिसे सम्पूर्ण दिशाओंको परिपूर्ण करते हुए उसे बड़े वेगसे बजाया ॥ ८ ॥

तेन शब्देन वित्रस्ता संशप्तकवरूथिनी ।
विचेष्टावस्थिता संख्ये ह्यश्मसारमयी यथा ॥ ९ ॥

उस शङ्खनादसे भयभीत हो वह संशप्तक-सेना युद्धभूमिमें लोहेकी प्रतिमाके समान निश्चेष्ट खड़ी हो गयी ॥ ९ ॥

(सा सेना भरतश्रेष्ठ निश्चेष्टा शुशुभे तदा ।
चित्रे पटे यथा न्यस्ता कुशलैः शिल्पिभिर्नरैः ॥

भरतश्रेष्ठ ! वह निश्चेष्ट हुई सेना ऐसी सुशोभित हुई, मानो कुशल कलाकारोंद्वारा चित्रपटमें अङ्कित की गयी हो ॥

स्वनेन तेन सैन्यानां दिवमावृण्वता तदा ।
सस्वना पृथिवी सर्वा तथैव च महोदधिः ॥
स्वनेन सर्वसैन्यानां कर्णास्तु बधिरीकृताः ।)

सम्पूर्ण आकाशमें फैले हुए उस शङ्खनादने समूची पृथ्वी और महासागरको भी प्रतिध्वनित कर दिया। उस ध्वनिसे सम्पूर्ण सैनिकोंके कान बहरे हो गये ॥

वाहास्तेषां विवृत्ताक्षाः स्तब्धकर्णशिरोधराः ।
विष्टब्धचरणा मूत्रं रुधिरं च प्रसुस्रुवुः ॥ १० ॥

उनके घोड़े आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगे। उनके कान और गर्दन स्तब्ध हो गये, चारों पैर अकड़ गये और वे मूत्रके साथ-साथ रुधिरका भी त्याग करने लगे ॥ १० ॥

उपलभ्य ततः संज्ञामवस्थाप्य च वाहिनीम् ।
युगपत् पाण्डुपुत्राय चिक्षिपुः कङ्कपत्रिणः ॥ ११ ॥

थोड़ी देरमें चेत होनेपर संशप्तकोंने अपनी सेनाको स्थिर किया और एक साथ ही पाण्डुपुत्र अर्जुनपर कंकपक्षीकी पाँखवाले बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ११ ॥

तान्यर्जुनः सहस्राणि दशपञ्चभिराशुगैः ।
अनागतान्येव शरैश्चिच्छेदाशु पराक्रमी ॥ १२ ॥

परंतु पराक्रमी अर्जुनने पंद्रह शीघ्रगामी बाणोंद्वारा उनके सहस्रों बाणोंको अपने पास आनेसे पहले ही शीघ्रतापूर्वक काट डाला ॥

ततोऽर्जुनं शितैर्बाणैर्दशभिर्दशभिः पुनः ।
प्राविध्यन्त ततः पार्थस्तानविध्यत् त्रिभिस्त्रिभिः ॥ १३ ॥

तदनन्तर संशप्तकोंने दस-दस तीखे बाणोंसे पुनः अर्जुनको बींध डाला, यह देख उन कुन्तीकुमारने भी तीन-तीन बाणोंसे संशप्तकोंको घायल कर दिया ॥ १३ ॥

एकैकस्तु ततः पार्थं राजन् विव्याध पञ्चभिः ।
स च तान् प्रतिविव्याध द्वाभ्यां द्वाभ्यां पराक्रमी ॥ १४ ॥

राजन् ! फिर उनमेंसे एक-एक योद्धाने अर्जुनको पाँच-पाँच बाणोंसे बींध डाला और पराक्रमी अर्जुनने भी दो-दो बाणोंद्वारा उन सबको घायल करके तुरंत बदला चुकाया ॥ १४ ॥

भूय एव तु संक्रुद्धास्त्वर्जुनं सहकेशवम् ।
आपूरयञ्छरैस्तीक्ष्णैस्तडागमिव वृष्टिभिः ॥ १५ ॥

तत्पश्चात् अत्यन्त कुपित हो संशप्तकोंने पुनः श्रीकृष्णसहित अर्जुनको पैने बाणोंद्वारा उसी प्रकार परिपूर्ण करना आरम्भ किया, जैसे मेघ वर्षाद्वारा सरोवरको पूर्ण करते हैं ॥ १५ ॥

ततः शरसहस्राणि प्रापतन्नर्जुनं प्रति ।
भ्रमराणामिव व्राताः फुल्लं द्रुमगणं वने ॥ १६ ॥

तत्पश्चात् अर्जुनपर एक ही साथ हजारों बाण गिरे, मानो वनमें फूले हुए वृक्षपर भौंरोंके समूह आ गिरे हों ॥

ततः सुबाहुस्त्रिंशद्भिरद्रिसारमयैः शरैः ।
अविध्यदिषुभिर्गाढं किरीटे सव्यसाचिनम् ॥ १७ ॥

तदनन्तर सुबाहुने लोहेके बने हुए तीस बाणोंद्वारा अर्जुनके किरीटमें गहरा आघात किया ॥ १७ ॥

तैः किरीटी किरीटस्थैर्हेमपुङ्खैरजिह्मगैः ।
शातकुम्भमयापीडो बभौ सूर्य इवोत्थितः ॥ १८ ॥

सोनेके पंखोंसे युक्त सीधे जानेवाले वे बाण उनके किरीटमें चारों ओरसे धँस गये। उन बाणोंद्वारा किरीटधारी अर्जुनकी वैसी ही शोभा हुई जैसे स्वर्णमय मुकुटसे मण्डित भगवान् सूर्य उदित एवं प्रकाशित हो रहे हों ॥ १८ ॥

हस्तावापं सुबाहोस्तु भल्लेन युधि पाण्डवः ।
चिच्छेद तं चैव पुनः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १९ ॥

तब पाण्डुनन्दन अर्जुनने भल्लका प्रहार करके युद्धमें सुबाहुके दस्तानेको काट दिया और उसके ऊपर पुनः बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ १९ ॥

ततः सुशर्मा दशभिः सुरथस्तु किरीटिनम्।
सुधर्मा सुधनुश्चैव सुबाहुश्च समार्पयत्॥ २०॥

यह देख सुशर्मा, सुरथ, सुधर्मा, सुधन्वा और सुबाहुने दस-दस बाणोंसे किरीटधारी अर्जुनको घायल कर दिया॥ २०॥

तांस्तु सर्वान् पृथग्बाणैर्वानरप्रवरध्वजः।
प्रत्यविध्यद् ध्वजांश्चैषां भल्लैश्चिच्छेद सायकान्॥ २१॥

फिर कपिध्वज अर्जुनने भी पृथक्-पृथक् बाण मारकर उन सबको घायल कर दिया। भल्लोंद्वारा उनकी ध्वजाओं तथा सायकोंको भी काट गिराया॥ २१॥

सुधन्वनो धनुश्छित्त्वा हयांश्चास्यावधीच्छरैः।
अथास्य सशिरस्त्राणं शिरः कायादपातयत्॥ २२॥

सुधन्वाका धनुष काटकर उसके घोड़ोंको भी बाणोंसे मार डाला। फिर शिरस्त्राणसहित उसके मस्तकको भी काटकर धड़से नीचे गिरा दिया॥ २२॥

तस्मिन्निपतिते वीरे त्रस्तास्तस्य पदानुगाः।
व्यद्रवन्त भयाद् भीता यत्र दौर्योधनं बलम्॥ २३॥

वीरवर सुधन्वाके धराशायी हो जानेपर उसके अनुगामी सैनिक भयभीत हो गये, वे भयके मारे वहीं भाग गये, जहाँ दुर्योधनकी सेना थी॥ २३॥



ततो जघान संक्रुद्धो वासविस्तां महाचमूम्।
शरजालैरविच्छिन्नैस्तमः सूर्य इवांशुभिः॥ २४॥

तब क्रोधमें भरे हुए इन्द्रकुमार अर्जुनने बाण-समूहोंकी अविच्छिन्न वर्षा करके उस विशाल वाहिनीका उसी प्रकार संहार आरम्भ किया, जैसे सूर्यदेव अपनी किरणोंद्वारा महान् अन्धकारका नाश करते हैं॥ २४॥

ततो भग्ने बले तस्मिन् विप्रलीने समन्ततः।
सव्यसाचिनि संक्रुद्धे त्रैगर्तान् भयमाविशत्॥ २५॥

तदनन्तर जब संशप्तकोंकी सारी सेना भागकर चारों ओर छिप गयी और सव्यसाची अर्जुन अत्यन्त क्रोधमें भर गये, तब उन त्रिगर्तदेशीय योद्धाओंके मनमें भारी भय समा गया॥ २५॥

ते वध्यमानाः पार्थेन शरैः संनतपर्वभिः।
अमुह्यंस्तत्र तत्रैव त्रस्ता मृगगणा इव॥ २६॥

अर्जुनके झुकी हुई गाँठवाले बाणोंकी मार खाकर वे सभी सैनिक वहाँ भयभीत मृगोंकी भाँति मोहित हो गये॥ २६॥

ततस्त्रिगर्तराट् क्रुद्धस्तानुवाच महारथान्।
अलं द्रुतेन वः शूरा न भयं कर्तुमर्हथ॥ २७॥

तब क्रोधमें भरे हुए त्रिगर्तराजने अपने उन महारथियोंसे कहा—'शूरवीरो! भागनेसे कोई लाभ नहीं है। तुम भय न करो॥ २७॥

शप्त्वाथ शपथान् घोरान् सर्वसैन्यस्य पश्यतः।
गत्वा दौर्योधनं सैन्यं किं वै वक्ष्यथ मुख्यशः॥ २८॥

'सारी सेनाके सामने भयंकर शपथ खाकर अब यदि दुर्योधनकी सेनामें जाओगे तो तुम सभी श्रेष्ठ महारथी क्या जवाब दोगे?॥ २८॥

नावहास्याः कथं लोके
कर्मणानेन संयुगे।
भवेम सहिताः सर्वे
निवर्तध्वं यथाबलम्॥ २९॥

'हमें युद्धमें ऐसा कर्म करके किसी प्रकार संसारमें उपहासका पात्र नहीं बनना चाहिये। अतः तुम सब लोग लौट आओ। हमें यथाशक्ति एक साथ संगठित होकर युद्धभूमिमें डटे रहना चाहिये'॥ २९॥

एवमुक्तास्तु ते राज-
न्नुदक्रोशन् मुहुर्मुहुः।
शङ्खांश्च दध्मिरे वीरा हर्षयन्तः परस्परम्॥ ३०॥

राजन्! त्रिगर्तराजके ऐसा कहनेपर वे सभी वीर बारंबार गर्जना करने और एक दूसरेमें हर्ष एवं उत्साह भरते हुए शङ्ख बजाने लगे॥ ३०॥

ततस्ते संन्यवर्तन्त संशप्तकगणाः पुनः।

नारायणाश्च गोपाला मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ३१ ॥

तब वे समस्त संशप्तकगण और नारायणी सेनाके ग्वाले मृत्युको ही युद्धसे निवृत्तिका अवसर मानकर पुन: लौट आये ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि सुधन्ववधे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत संशप्तकवधपर्वमें सुधन्वाका वधविषयक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २½ श्लोक मिलाकर कुल ३३½ श्लोक हैं)

एकोनविंशोऽध्यायः

संशप्तकगणोंके साथ अर्जुनका घोर युद्ध

संजय उवाच

दृष्ट्वा तु संनिवृत्तांस्तान् संशप्तकगणान् पुनः।
वासुदेवं महात्मानमर्जुनः समभाषत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! उन संशप्तकगणोंको पुनः लौटा हुआ देख अर्जुनने महात्मा श्रीकृष्णसे कहा—॥ १ ॥

चोदयाश्वान् हृषीकेश संशप्तकगणान् प्रति।
नैते हास्यन्ति संग्रामं जीवन्त इति मे मतिः ॥ २ ॥

'हृषीकेश ! घोड़ोंको इन संशप्तकगणोंकी ओर ही बढ़ाइये। मुझे ऐसा जान पड़ता है, ये जीते-जी रणभूमिका परित्याग नहीं करेंगे ॥ २ ॥

पश्य मेऽस्त्रबलं घोरं बाह्वोरिष्वसनस्य च।
अद्यैतान् पातयिष्यामि क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ॥ ३ ॥

'आज आप मेरे अस्त्र, भुजाओं और धनुषका बल देखिये। क्रोधमें भरे हुए रुद्रदेव जैसे पशुओं (जगत्‌के जीवों) का संहार करते हैं, उसी प्रकार मैं भी इन्हें मार गिराऊँगा' ॥

ततः कृष्णः स्मितं कृत्वा प्रतिनन्द्य शिवेन तम्।
प्रावेशयत दुर्धर्षो यत्र यत्रैच्छदर्जुनः ॥ ४ ॥

तब श्रीकृष्णने मुसकराकर अर्जुनकी मङ्गलकामना करते हुए उनका अभिनन्दन किया और दुर्धर्ष वीर अर्जुनने जहाँ-जहाँ जानेकी इच्छा की, वहीं-वहीं उस रथको पहुँचाया ॥

स रथो भ्राजतेऽत्यर्थमुह्यमानो रणे तदा।
उह्यमानमिवाकाशे विमानं पाण्डुरैर्हयैः ॥ ५ ॥

रणभूमिमें श्वेत घोड़ोंद्वारा खींचा जाता हुआ वह रथ उस समय आकाशमें उड़नेवाले विमानके समान अत्यन्त शोभा पा रहा था ॥ ५ ॥

मण्डलानि ततश्चक्रे गतप्रत्यागतानि च।
यथा शक्ररथो राजन् युद्धे देवासुरे पुरा ॥ ६ ॥

राजन् ! पूर्वकालमें देवताओं और असुरोंके संग्राममें इन्द्रका रथ जिस प्रकार चलता था, उसी प्रकार अर्जुनका रथ भी कभी आगे बढ़कर और कभी पीछे हटकर मण्डलाकार गतिसे घूमने लगा ॥ ६ ॥

अथ नारायणाः क्रुद्धा विविधायुधपाणयः।
छादयन्तः शरव्रातैः परिवव्रुर्धनंजयम् ॥ ७ ॥

तब क्रोधमें भरे हुए नारायणी सेनाके गोपोंने हाथोंमें नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्र लेकर अर्जुनको अपने बाण-समूहोंसे आच्छादित करते हुए उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ॥ ७ ॥

अदृश्यं च मुहूर्तेन चक्रुस्ते भरतर्षभ।
कृष्णेन सहितं युद्धे कुन्तीपुत्रं धनंजयम् ॥ ८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उन्होंने दो ही घड़ीमें श्रीकृष्णसहित कुन्तीकुमार अर्जुनको युद्धमें अदृश्य कर दिया ॥ ८ ॥

क्रुद्धस्तु फाल्गुनः संख्ये द्विगुणीकृतविक्रमः।
गाण्डीवं धनुरामृज्य तूर्णं जग्राह संयुगे ॥ ९ ॥

तब अर्जुनने कुपित होकर युद्धमें अपना द्विगुण पराक्रम प्रकट करते हुए गाण्डीव धनुषको सब ओरसे पोंछकर उसे तुरंत हाथमें लिया ॥ ९ ॥

बद्ध्वा च भ्रुकुटिं वक्त्रे क्रोधस्य प्रतिलक्षणम्।
देवदत्तं महाशङ्खं पूरयामास पाण्डवः ॥ १० ॥

फिर पाण्डुकुमारने भौंहें टेढ़ी करके क्रोधको सूचित करनेवाले अपने महान् शङ्ख देवदत्तको बजाया ॥ १० ॥

अथास्त्रमरिसंघघ्नं त्वाष्ट्रमभ्यस्यदर्जुनः।
ततो रूपसहस्राणि प्रादुरासन् पृथक् पृथक् ॥ ११ ॥

तदनन्तर अर्जुनने शत्रु-समूहोंका नाश करनेवाले त्वाष्ट्र नामक अस्त्रका प्रयोग किया। फिर तो उस अस्त्रसे सहस्रों रूप पृथक्-पृथक् प्रकट होने लगे ॥ ११ ॥

आत्मनः प्रतिरूपैस्तैर्नानारूपैर्विमोहिताः।
अन्योन्येनार्जुनं मत्वा स्वमात्मानं च जघ्निरे ॥ १२ ॥

अपने ही समान आकृतिवाले उन नाना रूपोंसे मोहित हो वे एक दूसरेको अर्जुन मानकर अपने तथा अपने ही सैनिकोंपर प्रहार करने लगे ॥ १२ ॥

अयमर्जुनोऽयं गोविन्द इमौ पाण्डवयादवौ।
इति ब्रुवाणाः सम्मूढा जघ्नुरन्योन्यमाहवे ॥ १३ ॥

ये अर्जुन हैं, ये श्रीकृष्ण हैं, ये दोनों अर्जुन और श्रीकृष्ण हैं—इस प्रकार बोलते हुए वे मोहाच्छन्न हो युद्धमें एक दूसरेपर आघात करने लगे ॥ १३ ॥

मोहिताः परमास्त्रेण क्षयं जग्मुः परस्परम्।
अशोभन्त रणे योधाः पुष्पिता इव किंशुकाः ॥ १४ ॥

उस दिव्यास्त्रसे मोहित हो वे परस्परके आघातसे क्षीण होने लगे। उस रणक्षेत्रमें समस्त योद्धा फूले हुए पलाश वृक्षोंके समान शोभा पा रहे थे ॥ १४ ॥

ततः शरसहस्राणि तैर्विमुक्तानि भस्मसात्।

कृत्वा तदस्त्रं तान् वीराननयद् यमसादनम् ॥ १५ ॥

तत्पश्चात् उस दिव्यास्त्रने संशप्तकोंके छोड़े हुए सहस्रों बाणोंको भस्म करके बहुसंख्यक वीरोंको यमलोक पहुँचा दिया॥

अथ प्रहस्य बीभत्सुर्ललित्थान् मालवानपि ।
मावेल्लकांस्त्रिगर्तांश्च यौधेयांश्चार्दयच्छरैः ॥ १६ ॥

इसके बाद अर्जुनने हँसकर ललित्थ, मालव, मावेल्लक, त्रिगर्त तथा यौधेय सैनिकोंको बाणोंद्वारा गहरी पीड़ा पहुँचायी॥

हन्यमाना वीरेण क्षत्रियाः कालचोदिताः ।
व्यसृजञ्छरजालानि पार्थे नानाविधानि च ॥ १७ ॥

वीर अर्जुनके द्वारा मारे जाते हुए क्षत्रियगण कालसे प्रेरित हो अर्जुनके ऊपर नाना प्रकारके बाण-समूहोंकी वर्षा करने लगे ॥ १७ ॥

न ध्वजो नार्जुनस्तत्र न रथो न च केशवः ।
प्रत्यदृश्यत घोरेण शरवर्षेण संवृतः ॥ १८ ॥

उस भयकर बाण-वर्षासे ढक जानेके कारण वहाँ न ध्वज दिखायी देता था ;न रथ; न अर्जुन दृष्टिगोचर हो रहे थे, न भगवान् श्रीकृष्ण ॥ १८ ॥

ततस्ते लब्धलक्षत्वादन्योन्यमभिचुक्रुशुः ।
हतौ कृष्णाविति प्रीत्या वासांस्यादुधुवुस्तदा ॥ १९ ॥

उस समय 'हमने अपने लक्ष्यको मार लिया' ऐसा समझकर वे एक दूसरेकी ओर देखते हुए जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन मारे गये—ऐसा सोचकर बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने कपड़े हिलाने लगे ॥ १९ ॥

भेरीमृदङ्गशङ्खांश्च दध्मुर्वीराः सहस्रशः ।
सिंहनादरवांश्चोग्रांश्चक्रिरे तत्र मारिष ॥ २० ॥

आर्य ! वे सहस्रों वीर वहाँ भेरी, मृदङ्ग और शङ्ख बजाने तथा भयानक सिंहनाद करने लगे ॥ २० ॥

ततः प्रसिष्विदे कृष्णः खिन्नश्चार्जुनमब्रवीत् ।
क्वासि पार्थ न पश्ये त्वां कच्चिज्जीवसि शत्रुहन् ॥ २१ ॥

उस समय श्रीकृष्ण पसीने-पसीने हो गये और खिन्न होकर अर्जुनसे बोले—'पार्थ ! कहाँ हो । मैं तुम्हें देख नहीं पाता हूँ । शत्रुओंका नाश करनेवाले वीर ! क्या तुम जीवित हो ?' ॥ २१ ॥

तस्य तद् भाषितं श्रुत्वा त्वरमाणो धनंजयः ।
वायव्यास्त्रेण तैरस्तां शरवृष्टिमपाहरत् ॥ २२ ॥

श्रीकृष्णका वह वचन सुनकर अर्जुनने बड़ी उतावलीके साथ वायव्यास्त्रका प्रयोग करके शत्रुओंद्वारा की हुई उस बाण-वर्षाको नष्ट कर दिया ॥ २२ ॥

ततः संशप्तकव्रातान् साश्वद्विपरथायुधान् ।
उवाह भगवान् वायुः शुष्कपर्णचयानिव ॥ २३ ॥

तदनन्तर भगवान् वायुदेवने घोड़े, हाथी, रथ और आयुधोंसहित संशप्तक-समूहोंको वहाँसे सूखे पत्तोंके ढेरकी भाँति उड़ाना आरम्भ किया ॥ २३ ॥



उह्यमानास्तु ते राजन् बह्वशोभन्त वायुना ।
प्रडीनाः पक्षिणः काले वृक्षेभ्य इव मारिष ॥ २४ ॥

माननीय महाराज ! वायुके द्वारा उड़ाये जाते हुए वे सैनिक समय-समयपर वृक्षोंसे उड़नेवाले पक्षियोंके समान शोभा पा रहे थे ॥ २४ ॥

तांस्तथा व्याकुलीकृत्य त्वरमाणो धनंजयः ।
जघान निशितैर्बाणैः सहस्राणि शतानि च ॥ २५ ॥

उन सबको व्याकुल करके अर्जुन अपने पैने बाणोंसे शीघ्रतापूर्वक उनके सौ-सौ और हजार-हजार योद्धाओंका एक साथ संहार करने लगे ॥ २५ ॥

शिरांसि भल्लैरहरद् बाहूनपि च सायुधान् ।
हस्तिहस्तोपमांश्चोरूञ्शरैरुर्व्यामपातयत् ॥ २६ ॥

उन्होंने भल्लोंद्वारा उनके सिर उड़ा दिये, आयुधोंसहित भुजाएँ काट डालीं और हाथीकी सूँड़के समान मोटी जाँघोंको भी बाणोंद्वारा पृथ्वीपर काट गिराया ॥ २६ ॥

पृष्ठच्छिन्नान् विचरणान् बाहुपार्श्वेक्षणाकुलान् ।
नानाङ्गावयवैर्हीनांश्चकारारीन् धनंजयः ॥ २७ ॥

धनंजयने शत्रुओंको शरीरके अनेक अङ्गोंसे विहीन कर दिया । किन्हींकी पीठ काट ली तो किन्हींके पैर उड़ा दिये । कितने ही सैनिक बाहु, पसली और नेत्रोंसे वञ्चित होकर व्याकुल हो रहे थे ॥ २७ ॥

गन्धर्वनगराकारान् विधिवत्कल्पितान् रथान् ।
शरैर्विशकलीकुर्वंश्चक्रे व्यश्वरथद्विपान् ॥ २८ ॥

उन्होंने गन्धर्वनगरोंके समान प्रतीत होनेवाले और विधिवत् सजे हुए रथोंके अपने बाणोंद्वारा टुकड़े-टुकड़े कर दिये और शत्रुओंको हाथी, घोड़े एवं रथोंसे वञ्चित कर दिये॥

मुण्डतालवनानीव तत्र तत्र चकाशिरे ।
छिन्ना रथध्वजव्राताः केचित्तत्र क्वचित् क्वचित् ॥ २९ ॥

वहाँ कहीं-कहीं रथवर्ती ध्वजोंके समूह ऊपरसे कट जानेके कारण मुण्डित तालवनोंके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥२९॥

सोत्तरायुधिनो नागाः सपताकांकुशध्वजाः।
पेतुः शक्राशनिहता द्रुमवन्त इवाचलाः ॥ ३० ॥

पताका, अङ्कुश और ध्वजोंसे विभूषित गजराज वहाँ इन्द्रके वज्रसे मारे हुए वृक्षयुक्त पर्वतोंके समान ऊपर चढ़े हुए योद्धाओंसहित धराशायी हो गये ॥ ३० ॥

चामरापीडकवचाः स्रस्तान्त्रनयनास्तथा।
सारोहास्तुरगाः पेतुः पार्थबाणहताः क्षितौ ॥ ३१ ॥

चामर, माला और कवचोंसे युक्त बहुत-से घोड़े अर्जुनके बाणोंसे मारे जाकर सवारोंसहित धरतीपर पड़े थे। उनकी आँतें और आँखें बाहर निकल आयी थीं ॥ ३१ ॥

विप्रविद्धासिनखराश्छिन्नवर्मर्ष्टिशक्तयः ।
पत्तयश्छिन्नवर्माणः कृपणाः शेरते हताः ॥ ३२ ॥

पैदल सैनिकोंके खड्ग एवं नखर कटकर गिरे हुए थे। कवच, ऋृष्टि और शक्तियोंके टुकड़े-टुकड़े हो गये थे। कवच कट जानेसे अत्यन्त दीन हो वे मरकर पृथ्वीपर पड़े थे ॥ ३२ ॥

तैर्हतैर्हन्यमानैश्च पतद्भिः पतितैरपि।
भ्रमद्भिर्निष्टनद्भिश्च क्रूरमायोधनं बभौ ॥ ३३ ॥

कितने ही वीर मारे गये थे और कितने ही मारे जा रहे थे। कुछ गिर गये थे और कुछ गिर रहे थे। कितने ही चक्कर काटते और आघात करते थे। इन सबके द्वारा वह युद्ध-स्थल अत्यन्त क्रूरतापूर्ण जान पड़ता था ॥ ३३ ॥

रजश्च सुमहज्जातं शान्तं रुधिरवृष्टिभिः।
मही चाप्यभवद् दुर्गा कबन्धशतसंकुला ॥ ३४ ॥

रक्तकी वर्षासे वहाँकी उड़ती हुई भारी धूलराशि शान्त हो गयी और सैकड़ों कबन्धों (बिना सिरकी लाशों) से आच्छादित होनेके कारण उस भूमिपर चलना कठिन हो गया ॥

तद् बभौ रौद्रबीभत्सं बीभत्सोर्यानमाहवे।
आक्रीडमिव रुद्रस्य घ्नतः कालात्यये पशून् ॥ ३५ ॥

रणक्षेत्रमें अर्जुनका वह भयंकर एवं बीभत्स रथ प्रलयकालमें पशुओं (जगत्के जीवों) का संहार करनेवाले रुद्रदेवके क्रीडास्थल-सा प्रतीत हो रहा था ॥ ३५ ॥

ते वध्यमानाः पार्थेन व्याकुलाश्च रथद्विपाः।
तमेवाभिमुखाः क्षीणाः शक्रस्यातिथितां गताः ॥ ३६ ॥

अर्जुनके द्वारा मारे जाते हुए रथ और हाथी व्याकुल होकर उन्हींकी ओर मुँह करके प्राणत्याग करनेके कारण इन्द्रलोकके अतिथि हो गये ॥ ३६ ॥

सा भूमिर्भरतश्रेष्ठ निहतैस्तैर्महारथैः।
आस्तीर्णा सम्बभौ सर्वा प्रेतीभूतैः समन्ततः ॥ ३७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! वहाँ मारे गये महारथियोंसे आच्छादित हुई वह सारी भूमि सब ओरसे प्रेतोंद्वारा घिरी हुई-सी जान पड़ती थी ॥ ३७ ॥

एतस्मिन्नन्तरे चैव प्रमत्ते सव्यसाचिनि।
व्यूढानीकस्ततो द्रोणो युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ३८ ॥

जब इधर सव्यसाची अर्जुन उस युद्धमें भली प्रकार लगे हुए थे, उसी समय अपनी सेनाका व्यूह बनाकर द्रोणाचार्यने युधिष्ठिरपर आक्रमण किया ॥ ३८ ॥

तं प्रत्यगृह्णंस्त्वरिता व्यूढानीकाः प्रहारिणः।
युधिष्ठिरं परीप्सन्तस्तदासीत् तुमुलं महत् ॥ ३९ ॥

व्यूह-रचनापूर्वक प्रहार करनेमें कुशल योद्धाओंने युधिष्ठिरको पकड़नेकी इच्छासे तुरंत ही उनपर चढ़ाई कर दी, वह युद्ध बड़ा भयानक हुआ ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि अर्जुनसंशप्तकयुद्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत संशप्तकवधपर्वमें अर्जुन-संशप्तक-युद्धविषयक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः

द्रोणाचार्यके द्वारा गरुड़व्यूहका निर्माण, युधिष्ठिरका भय, धृष्टद्युम्नका आश्वासन, धृष्टद्युम्न और दुर्मुखका युद्ध तथा संकुल युद्धमें गजसेनाका संहार

संजय उवाच

परिणाम्य निशां तां तु भारद्वाजो महारथः।
उक्त्वा सुबहु राजेन्द्र वचनं वै सुयोधनम् ॥ १ ॥
विधाय योगं पार्थेन संशप्तकगणैः सह।
निष्क्रान्ते च तदा पार्थे संशप्तकवधं प्रति ॥ २ ॥
व्यूढानीकस्ततो द्रोणः पाण्डवानां महाचमूम्।
अभ्ययाद् भरतश्रेष्ठ धर्मराजजिघृक्षया ॥ ३ ॥

संजय कहते हैं—राजेन्द्र ! महारथी द्रोणाचार्यने वह रात बिताकर दुर्योधनसे बहुत कुछ बातें कहीं और संशप्तकोंके साथ अर्जुनके युद्धका योग लगा दिया। भरतश्रेष्ठ ! फिर संशप्तकोंका वध करनेके लिये अर्जुन जब दूर निकल गये, तब सेनाकी व्यूहरचना करके धर्मराज युधिष्ठिरको पकड़नेके लिये द्रोणाचार्यने पाण्डवोंकी विशाल सेनापर आक्रमण किया ॥ १–३ ॥

व्यूढं दृष्ट्वा सुपर्णं तु भारद्वाजकृतं तदा।
व्यूहेन मण्डलार्धेन प्रत्यव्यूहद् युधिष्ठिरः ॥ ४ ॥

द्रोणाचार्यके बनाये हुए गरुड़व्यूहको देखकर युधिष्ठिर

ने अपनी सेनाका मण्डलार्धव्यूह बनाया ॥ ४ ॥

मुखं त्वासीत् सुपर्णस्य भारद्वाजो महारथः ।
शिरो दुर्योधनो राजा सोदर्यैः सानुगैर्वृतः ।
चक्षुषी कृतवर्माऽऽसीद् गौतमश्चास्यतां वरः ॥ ५ ॥

गरुड़व्यूहमें गरुड़के मुँहके स्थानपर महारथी द्रोणाचार्य खड़े थे । शिरोभागमें भाइयों तथा अनुगामी सैनिकोंसहित राजा दुर्योधन उपस्थित हुआ । बाण चलानेवालोंमें श्रेष्ठ कृपाचार्य और कृतवर्मा उस व्यूहकी आँखके स्थानमें स्थित हुए ॥ ५ ॥

भूतशर्मा क्षेमशर्मा करकाशश्च वीर्यवान् ।
कलिङ्गाः सिंहलाः प्राच्याः शूराभीरा दशेरकाः ॥ ६ ॥
शका यवनकाम्बोजास्तथा हंसपथाश्च ये ।
ग्रीवायां शूरसेनाश्च दरदा मद्रकेकयाः ॥ ७ ॥
गजाश्वरथपत्त्योघास्तस्थुः परमदंशिताः ।

भूतशर्मा, क्षेमशर्मा, पराक्रमी करकाश, कलिङ्ग, सिंहल, पूर्वदिशाके सैनिक, शूर आभीरगण, दाशेरकगण, शक, यवन, काम्बोज, शूरसेन, दरद, मद्र, केकय तथा हंसपथ नामवाले देशोंके निवासी शूरवीर एवं हाथीसवार, घुड़सवार, रथी और पैदल सैनिकोंके समूह उत्तम कवच धारण करके उस गरुड़के ग्रीवाभागमें खड़े थे ॥ ६-७½ ॥

भूरिश्रवास्तथा शल्यः सोमदत्तश्च बाह्लिकः ॥ ८ ॥
अक्षौहिण्या वृता वीरा दक्षिणं पार्श्वमास्थिताः ।

भूरिश्रवा, शल्य, सोमदत्त तथा बाह्लिक—ये वीरगण अक्षौहिणी सेनाके साथ व्यूहके दाहिने पार्श्वमें स्थित थे ।८½।

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजश्च सुदक्षिणः ॥ ९ ॥
वामं पार्श्वं समाश्रित्य द्रोणपुत्राग्रतः स्थिताः ।

अवन्तीके विन्द और अनुविन्द तथा काम्बोजराज सुदक्षिण—ये बायें पार्श्वका आश्रय लेकर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके आगे खड़े हुए ॥ ९½ ॥

पृष्ठे कलिङ्गाः साम्बष्ठा मागधाः पौण्ड्रमद्रकाः ॥ १० ॥
गान्धाराः शकुनाः प्राच्याः पर्वतीया वसातयः ।

पृष्ठभागमें कलिङ्ग, अम्बष्ठ, मगध, पौण्ड्र, मद्रक, गन्धार, शकुन, पूर्व देश, पर्वतीय प्रदेश और वसाति आदि देशोंके वीर थे ॥ १०½ ॥

पुच्छे वैकर्तनः कर्णः सपुत्रज्ञातिबान्धवः ॥ ११ ॥
महत्या सेनया तस्थौ नानाजनपदोत्थया ।

पुच्छभागमें अपने पुत्र, जाति-भाई तथा कुटुम्बके बन्धु-बान्धवोंसहित भिन्न-भिन्न देशोंकी विशाल सेना साथ लिये विकर्तनपुत्र कर्ण खड़ा था ॥ ११½ ॥

जयद्रथो भीमरथः सम्पातिर्ऋषभो जयः ॥ १२ ॥
भूमिंजयो वृषक्राथो नैषधश्च महाबलः ।
वृता बलेन महता ब्रह्मलोकपुरस्कृताः ॥ १३ ॥
व्यूहस्योरसि ते राजन् स्थिता युद्धविशारदाः ।

राजन् ! उस व्यूहके हृदयस्थानमें जयद्रथ, भीमरथ, सम्पाति, ऋषभ, जय, भूमिंजय, वृषक्राथ तथा महाबली निषधराज बहुत बड़ी सेनाके साथ खड़े थे । ये सब-के-सब ब्रह्मलोककी प्राप्तिको लक्ष्य बनाकर लड़नेवाले तथा युद्धकी कलामें अत्यन्त निपुण थे ॥ १२-१३½ ॥

द्रोणेन विहितो व्यूहः पदात्यश्वरथद्विपैः ॥ १४ ॥
वातोद्धूतार्णवाकारः प्रवृत्त इव लक्ष्यते ।

इस प्रकार पैदल, अश्वारोही, गजारोही तथा रथियोंद्वारा आचार्य द्रोणका बनाया हुआ वह व्यूह वायुके झकोरोंसे उछलते हुए समुद्रके समान दिखायी देता था ॥ १४½ ॥

तस्य पक्षप्रपक्षेभ्यो निष्पतन्ति युयुत्सवः ॥ १५ ॥
सविद्युत्स्तनिता मेघाः सर्वदिग्भ्य इवोष्णगे ।

उसके पक्ष और प्रपक्ष भागोंसे युद्धकी इच्छा रखनेवाले योद्धा उसी प्रकार निकलने लगे, जैसे वर्षाकालमें विद्युत्से प्रकाशित गर्जते हुए मेघ सम्पूर्ण दिशाओंसे प्रकट होने लगते हैं ॥ १५½ ॥

तस्य प्राग्ज्योतिषो मध्ये विधिवत् कल्पितं गजम् ॥ १६॥
आस्थितः शुशुभे राजन्नंशुमानुदये यथा ।

राजन् ! उस व्यूहके मध्यभागमें विधिपूर्वक सजाये हुए हाथीपर आरूढ़ हो प्राग्ज्योतिषपुरके राजा भगदत्त उदयाचलपर प्रकाशित होनेवाले सूर्यदेवके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ १६½ ॥

माल्यदामवता राजन् श्वेतच्छत्रेण धार्यता ॥ १७ ॥
कृत्तिकायोगयुक्तेन पौर्णमास्यामिवेन्दुना ।

राजन् ! सेवकोंने राजा भगदत्तके ऊपर मुक्तामालाओंसे अलंकृत श्वेत छत्र लगा रक्खा था । उनका वह छत्र कृत्तिका नक्षत्रके योगसे युक्त पूर्णिमाके चन्द्रमाकी भाँति शोभा दे रहा था ॥ १७½ ॥

नीलाञ्जनचयप्रख्यो मदान्धो द्विरदो बभौ ॥ १८ ॥
अतिवृष्टो महामेघैर्यथा स्यात् पर्वतो महान् ।

राजाका काली कज्जल-राशिके समान मदान्ध गजराज अपने मस्तककी मदवर्षाके कारण महान् मेघोंकी अतिवृष्टिसे आर्द्र हुए विशाल पर्वतके समान शोभा पा रहा था ॥१८½॥

नानानृपतिभिर्वीरैर्विविधायुधभूषणैः ॥ १९ ॥
समन्वितः पर्वतीयैः शक्रो देवगणैरिव ।

जैसे इन्द्र देवगणोंसे घिरकर सुशोभित होते हैं, उसी प्रकार भाँति-भाँतिके आयुधों और आभूषणोंसे विभूषित, वीर एवं बहुसंख्यक पर्वतीय नृपतियोंसे घिरे हुए भगदत्तकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ १९½ ॥

ततो युधिष्ठिरः प्रेक्ष्य व्यूहं तमतिमानुषम् ॥ २० ॥
अजय्यमरिभिः संख्ये पार्षतं वाक्यमब्रवीत् ।
ब्राह्मणस्य वशं नाहमियामद्य यथा प्रभो ।
पारावतसवर्णाश्व तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ २१ ॥

राजा युधिष्ठिरने द्रोणाचार्यके रचे हुए उस अलौकिक तथा शत्रुओंके लिये अजेय व्यूहको देखकर युद्धस्थलमें धृष्टद्युम्नसे इस प्रकार कहा—'कबूतरके समान रंगवाले घोड़ों-पर चलनेवाले वीर ! आज तुम ऐसी नीतिका प्रयोग करो, जिससे मैं उस ब्राह्मणके वशमें न होऊँ' ॥ २०-२१ ॥

धृष्टद्युम्न उवाच

द्रोणस्य यतमानस्य वशं नैष्यसि सुव्रत ।
अहमावारयिष्यामि द्रोणमद्य सहानुगम् ॥ २२ ॥

धृष्टद्युम्न बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले नरेश ! द्रोणाचार्य कितना ही प्रयत्न क्यों न करें, आप उनके वशमें नहीं होंगे। आज मैं सेवकोंसहित द्रोणाचार्यको रोकूँगा ॥

मयि जीवति कौरव्य नोद्वेगं कर्तुमर्हसि ।
न हि शक्तो रणे द्रोणो विजेतुं मां कथंचन ॥ २३ ॥

कुरुनन्दन ! मेरे जीते-जी आपको किसी प्रकार भय नहीं करना चाहिये। द्रोणाचार्य रणक्षेत्रमें मुझे किसी प्रकार जीत नहीं सकते ॥ २३ ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा किरन् बाणान् द्रुपदस्य सुतो बली ।
पारावतसवर्णाश्वः स्वयं द्रोणमुपाद्रवत् ॥ २४ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! ऐसा कहकर कबूतरके समान रंगवाले घोड़े रखनेवाले महाबली द्रुपदपुत्रने बाणोंका जाल-सा बिछाते हुए स्वयं द्रोणाचार्यपर धावा किया ॥२४॥

अनिष्टदर्शनं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नमवस्थितम् ।
क्षणेनैवाभवद् द्रोणो नातिहृष्टमना इव ॥ २५ ॥

जिसका दर्शन अनिष्टका सूचक था, उस धृष्टद्युम्नको सामने खड़ा देख द्रोणाचार्य क्षणभरमें अत्यन्त अप्रसन्न और उदास हो गये ॥ २५ ॥

(स हि जातो महाराज द्रोणस्य निधनं प्रति ।
मर्त्यधर्मतया तस्माद् भारद्वाजो व्यमुह्यत ॥)

महाराज ! वह द्रोणाचार्यका वध करनेके लिये पैदा हुआ था; इसलिये उसे देखकर मर्त्यभावका आश्रय ले द्रोणाचार्य मोहित हो गये ॥

तं तु सम्प्रेक्ष्य पुत्रस्ते दुर्मुखः शत्रुकर्षणः ।
प्रियं चिकीर्षुर्द्रोणस्य धृष्टद्युम्नमवारयत् ॥ २६ ॥

राजन् ! शत्रुओंका संहार करनेवाले आपके पुत्र दुर्मुख-ने द्रोणाचार्यको उदास देख धृष्टद्युम्नको आगे बढ़नेसे रोक दिया। वह द्रोणाचार्यका प्रिय करना चाहता था ॥ २६ ॥

स सम्प्रहारस्तुमुलः सुघोरः समपद्यत ।
पार्षतस्य च शूरस्य दुर्मुखस्य च भारत ॥ २७ ॥

भरतनन्दन ! उस समय शूरवीर धृष्टद्युम्न तथा दुर्मुखमें तुमुल युद्ध होने लगा, धीरे-धीरे उसने अत्यन्त भयंकर रूप धारण कर लिया ॥ २७ ॥

पार्षतः शरजालेन क्षिप्रं प्रच्छाद्य दुर्मुखम् ।
भारद्वाजं शरौघेण महता समवारयत् ॥ २८ ॥

धृष्टद्युम्नने शीघ्र ही अपने बाणोंके जालसे दुर्मुखको आच्छादित करके महान् बाणसमूहद्वारा द्रोणाचार्यको भी आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ २८ ॥

द्रोणमावारितं दृष्ट्वा भृशायस्तस्तवात्मजः ।
नानालिङ्गैः शरव्रातैः पार्षतं सममोहयत् ॥ २९ ॥

द्रोणाचार्यको रोका गया देख आपका पुत्र अत्यन्त प्रयत्न करके नाना प्रकारके बाण-समूहोंद्वारा धृष्टद्युम्नको मोहित करने लगा ॥ २९ ॥

तयोर्विषक्तयोः संख्ये पाञ्चाल्यकुरुमुख्ययोः ।
द्रोणो यौधिष्ठिरं सैन्यं बहुधा व्यधमच्छरैः ॥ ३० ॥

वे दोनों पाञ्चालराजकुमार और कुरुकुलके प्रधान वीर जब युद्धमें पूर्णतः आसक्त हो रहे थे, उसी समय द्रोणाचार्यने युधिष्ठिरकी सेनाको अपनी बाण-वर्षाद्वारा अनेक प्रकारसे तहस-नहस कर डाला ॥ ३० ॥

अनिलेन यथाभ्राणि विच्छिन्नानि समन्ततः ।
तथा पार्थस्य सैन्यानि विच्छिन्नानि क्वचित् क्वचित् ॥ ३१ ॥

जैसे वायुके वेगसे बादल सब ओरसे फट जाते हैं, उसी प्रकार युधिष्ठिरकी सेनाएँ भी कहीं-कहींसे छिन्न-भिन्न हो गयीं ॥ ३१ ॥

मुहूर्तमिव तद् युद्धमासीन्मधुरदर्शनम् ।
तत उन्मत्तवद् राजन् निर्मर्यादमवर्तत ॥ ३२ ॥

राजन् ! दो घड़ीतक तो वह युद्ध देखनेमें बड़ा मनोहर लगा; परंतु आगे चलकर उनमें पागलोंकी तरह मर्यादा-शून्य मारकाट होने लगी ॥ ३२ ॥

नैव स्वे न परे राजन्नाज्ञायन्त परस्परम् ।
अनुमानेन संज्ञाभिर्युद्धं तत् समवर्तत ॥ ३३ ॥

नरेश्वर ! उस समय वहाँ आपसमें अपने-परायेकी पहचान नहीं हो पाती थी। केवल अनुमान अथवा नाम बतानेसे ही शत्रु-मित्रका विचार करके युद्ध हो रहा था ॥ ३३ ॥

चूडामणिषु निष्केषु भूषणेष्वपि वर्मसु ।
तेषामादित्यवर्णाभा रश्मयः प्रचकाशिरे ॥ ३४ ॥

उन वीरोंके मुकुटों, हारों, आभूषणों तथा कवचोंमें सूर्यके समान प्रभामयी रश्मियाँ प्रकाशित हो रही थीं ॥ ३४ ॥

तत्प्रकीर्णपताकानां रथवारणवाजिनाम् ।
बलाकाशबलाभ्राभं ददृशे रूपमाहवे ॥ ३५ ॥

उस युद्धस्थलमें फहराती हुई पताकाओंसे युक्त रथों, हाथियों और घोड़ोंका रूप बकपंक्तियोंसे चितकबरे प्रतीत होनेवाले मेघोंके समान दिखायी देता था ॥ ३५ ॥

नरानेव नरा जघ्नुरुदग्राश्च हया हयान् ।
रथांश्च रथिनो जघ्नुर्वारणा वरवारणान् ॥ ३६ ॥

पैदल पैदलोंको मार रहे थे, प्रचण्ड घोड़े घोड़ोंका संहार कर रहे थे, रथी रथियोंका वध करते थे और हाथी बड़े-बड़े हाथियोंको चोट पहुँचा रहे थे ॥ ३६ ॥

समुच्छ्रितपताकानां गजानां परमद्विपैः ।
क्षणेन तुमुलो घोरः संग्रामः समपद्यत ॥ ३७ ॥

जिनके ऊपर ऊँची पताकाएँ फहरा रही थीं, उन गजराजोंका शत्रुपक्षके बड़े-बड़े हाथियोंके साथ क्षणभरमें अत्यन्त भयंकर संग्राम छिड़ गया ॥ ३७ ॥

तेषां संसक्तगात्राणां कर्षतामितरेतरम् ।
दन्तसंघातसंघर्षात् सधूमोऽग्निरजायत ॥ ३८ ॥

वे एक दूसरेसे अपने शरीरोंको सटाकर आपसमें खींचातानी करते थे । दाँतोंसे दाँतोंपर टक्कर लगनेसे धूमसहित आग-सी उठने लगती थी ॥ ३८ ॥

विप्रकीर्णपताकास्ते विषाणजनिताग्नयः ।
बभूवुः खं समासाद्य सविद्युत इवाम्बुदाः ॥ ३९ ॥

उन हाथियोंकी पीठपर फहराती हुई पताकाएँ वहाँसे टूट-टूटकर गिरने लगीं । उनके दाँतोंके आपसमें टकरानेसे आग प्रकट होने लगी । इससे वे आकाशमें छाये हुए बिजलीसहित मेघोंके समान जान पड़ते थे ॥ ३९ ॥

विक्षिपद्भिर्नदद्भिश्च निपतद्भिश्च वारणैः ।
सम्बभूव मही कीर्णा मेघैर्द्यौरिव शारदी ॥ ४० ॥

कोई हाथी दूसरे योद्धाओंको उठाकर फेंकते थे, कोई गरज रहे थे और कुछ हाथी मरकर धराशायी हो रहे थे । उनकी लाशोंसे आच्छादित हुई भूमि शरद्‌ऋतुके आरम्भमें मेघोंसे आच्छादित आकाशके समान प्रतीत होती थी ॥ ४० ॥

तेषामाहन्यमानानां बाणतोमरऋष्टिभिः ।
वारणानां रवो जज्ञे मेघानामिव सम्प्लवे ॥ ४१ ॥

बाण, तोमर तथा ऋष्टि आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे मारे जाते हुए गजराजोंका चीत्कार प्रलयकालके मेघोंकी गर्जनाके समान जान पड़ता था ॥ ४१ ॥

तोमराभिहताः केचिद् बाणैश्च परमद्विपाः ।
वित्रेसुः सर्वनागानां शब्दमेवापरेऽव्रजन् ॥ ४२ ॥

कुछ बड़े हाथी तोमरोंकी मारसे घायल हो रहे थे, कुछ बाणोंकी चोटसे क्षत-विक्षत हो अत्यन्त भयभीत हो गये थे और कुछ सम्पूर्ण हाथियोंके शब्दका अनुसरण करते हुए उन्हींकी ओर बढ़े जा रहे थे ॥ ४२ ॥

विषाणाभिहताश्चापि केचित् तत्र गजा गजैः ।
चक्रुरार्तस्वनं घोरमुत्पातजलदा इव ॥ ४३ ॥

कुछ हाथी वहाँ हाथियोंद्वारा दाँतोंसे घायल किये जानेपर उत्पातकालके मेघोंके समान भयंकर आर्तनाद कर रहे थे ॥

प्रतीपाः क्रियमाणाश्च वारणा वरवारणैः ।
उन्मथ्य पुनराजग्मुः प्रेरिताः परमाङ्कुशैः ॥ ४४ ॥

कितने ही हाथी शत्रुपक्षके श्रेष्ठ हाथियोंद्वारा घायल हो युद्धभूमिसे विमुख कर दिये गये थे । वे पुनः महावतोंद्वारा उत्तम अङ्कुशोंसे हाँके जानेपर अपनी ही सेनाको रौंदते हुए पुनः लौट आये ॥ ४४ ॥

महामात्रैर्महामात्रास्ताडिताः शरतोमरैः ।
गजेभ्यः पृथिवीं जग्मुर्मुक्तप्रहरणाङ्कुशाः ॥ ४५ ॥

महावतोंने बाणों और तोमरोंसे महावतोंको भी घायल कर दिया था । अतः वे हाथियोंसे पृथ्वीपर गिर पड़े और उनके आयुध एवं अङ्कुश हाथोंसे छूटकर इधर-उधर जा गिरे ॥ ४५ ॥

निर्मनुष्याश्च मातङ्गा विनदन्तस्ततस्ततः ।
छिन्नाभ्राणीव सम्पेतुः सम्प्रविश्य परस्परम् ॥ ४६ ॥

कितने ही गजराज मनुष्योंसे शून्य हो इधर-उधर चीत्कार करते हुए फिर रहे थे । वे एक दूसरेकी सेनामें घुसकर फटे हुए बादलोंके समान छिन्न-भिन्न हो धरतीपर गिर पड़े ॥ ४६ ॥

हतान् परिवहन्तश्च पतितान् पतितायुधान् ।
दिशो जग्मुर्महानागाः केचिदेकचरा इव ॥ ४७ ॥

कितने ही बड़े-बड़े हाथी अपनी पीठपर मरकर गिरे हुए आयुधशून्य सवारोंको ढोते हुए अकेले विचरनेवाले गजराजोंके समान सम्पूर्ण दिशाओंमें चक्कर लगा रहे थे ॥

ताडितास्ताड्यमानाश्च तोमरर्ष्टिपरश्वधैः ।
पेतुरार्तस्वनं कृत्वा तदा विशसने गजाः ॥ ४८ ॥

उस समय बहुतसे हाथी उस युद्धस्थलमें तोमर, ऋष्टि तथा फरसोंकी मार खाकर घायल हो आर्तनाद करके धरतीपर गिर जाते थे ॥ ४८ ॥

तेषां शैलोपमैः कायैर्निपतद्भिः समन्ततः ।
आहता सहसा भूमिश्चकम्पे च ननाद च ॥ ४९ ॥

उनके पर्वताकार शरीरोंके गिरनेसे सब ओरसे आहत हुई भूमि सहसा काँपने और आर्तनाद करने लगी ॥ ४९ ॥

सादितैः सगजारोहैः सपताकैः समन्ततः ।
मातङ्गैः शुशुभे भूमिर्विकीर्णैरिव पर्वतैः ॥ ५० ॥

वहाँ मारे जाकर पताकाओं तथा गजारोहियोंसहित सब ओर गिरे हुए हाथियोंसे आच्छादित हुई वह भूमि ऐसी शोभा पा रही थी, मानो इधर-उधर बिखरे हुए पर्वत-खण्डोंसे व्याप्त हो रही हो ॥ ५० ॥

गजस्थाश्च महामात्रा निर्भिन्नहृदया रणे ।
रथिभिः पातिता भल्लैर्विकीर्णाङ्कुशतोमराः ॥ ५१ ॥

उस रणक्षेत्रमें कितने ही रथियोंने अपने भल्लोंद्वारा हाथीपर बैठे हुए महावतोंकी छाती छेदकर उन्हें सहसा मार गिराया । उन महावतोंके अङ्कुश और तोमर इधर-उधर बिखर गये थे ॥ ५१ ॥

क्रौञ्चवद् विनदन्तोऽन्ये नाराचाभिहता गजाः ।
परान् स्वांश्चापि मृद्नन्तः परिपेतुर्दिशो दश ॥ ५२ ॥

कितने ही हाथी नाराचोंसे घायल हो क्रौञ्च पक्षीकी भाँति चिग्घाड़ रहे थे और अपने तथा शत्रुपक्षके सैनिकोंको भी रौंदते हुए दसों दिशाओंमें भाग रहे थे ॥ ५२ ॥

गजाश्वरथयोधानां शरीरौघसमावृता ।
बभूव पृथिवी राजन् मांसशोणितकर्दमा ॥ ५३ ॥

राजन् ! हाथी, घोड़े तथा रथ-योद्धाओंकी लाशोंसे ढकी हुई वहाँकी भूमिपर रक्त और मांसकी कीच जम गयी थी॥

प्रमथ्य च विषाणाग्रैः समुत्क्षिप्ताश्च वारणैः ।
सचक्राश्च विचक्राश्च रथैरेव महारथाः ॥ ५४ ॥

कितने ही हाथियोंने अपने दाँतोंके अग्रभागसे पहियेवाले तथा बिना पहियेके बड़े-बड़े रथोंको रथियोंसहित चकनाचूर करके अपनी सूँड़ोंसे उछालकर फेंक दिया ॥ ५४ ॥

रथाश्च रथिभिर्हीना निर्मनुष्याश्च वाजिनः ।
हतारोहाश्च मातङ्गा दिशो जग्मुर्भयातुराः ॥ ५५ ॥

रथियोंसे रहित रथ, सवारोंसे शून्य घोड़े और जिनके सवार मार डाले गये हैं ऐसे हाथी भयसे व्याकुल हो सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग रहे थे ॥ ५५ ॥

जघानात्र पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं तथा ।
इत्यासीत् तुमुलं युद्धं न प्राज्ञायत किंचन ॥ ५६ ॥

वहाँ पिताने पुत्रको और पुत्रने पिताको मार डाला । ऐसा भयंकर युद्ध हो रहा था कि किसीको कुछ भी ज्ञात नहीं होता था ॥ ५६ ॥

आगुल्फेभ्योऽवसीदन्ते नरा लोहितकर्दमैः ।
दीप्यमानैः परिक्षिप्ता दावैरिव महाद्रुमाः ॥ ५७ ॥

मनुष्योंके पैर रक्तकी कीचमें टखनोंतक धँस जाते थे । उस समय वे दहकते हुए दावानलसे घिरे हुए बड़े-बड़े वृक्षोंके समान जान पड़ते थे ॥ ५७ ॥

शोणितैः सिच्यमानानि वस्त्राणि कवचानि च ।
छत्राणि च पताकाश्च सर्वं रक्तमदृश्यत ॥ ५८ ॥

योद्धाओंके वस्त्र, कवच, ध्वज और पताकाएँ रक्तसे सींच उठी थीं । वहाँ सब कुछ रक्तसे रँगकर लाल-ही-लाल दिखायी देता था ॥ ५८ ॥

हयौघाश्च रथौघाश्च नरौघाश्च निपातिताः ।
संक्षुण्णाः पुनरावृत्य बहुधा रथनेमिभिः ॥ ५९ ॥

रणभूमिमें गिराये हुए घोड़ों, रथों और पैदलोंके समुदाय बारंबार आते-जाते रथोंके पहियोंसे कुचलकर टुकड़े-टुकड़े हो जाते थे ॥ ५९ ॥

सगजौघमहावेगः परासुनरशैवलः ।
रथौघतुमुलावर्तः प्रबभौ सैन्यसागरः ॥ ६० ॥

वह सेनाका समुद्र हाथियोंके समूहरूपी महान् वेग, मरे हुए मनुष्यरूपी सेवार तथा रथसमूहरूपी भयंकर भँवरोंके कारण अद्भुत शोभा पा रहा था ॥ ६० ॥

तं वाहनमहानौभिर्योधा जयधनैषिणः ।
अवगाह्याथ मज्जन्तो नैव मोहं प्रचक्रिरे ॥ ६१ ॥

विजयरूपी धनकी इच्छा रखनेवाले योद्धारूपी व्यापारी वाहनरूपी बड़ी-बड़ी नौकाओंद्वारा उस सैन्य-समुद्रमें उतरकर डूबते हुए भी प्राणोंका मोह नहीं करते थे ॥ ६१ ॥

शरवर्षाभिवृष्टेषु योधेष्वञ्चितलक्ष्मसु ।
न तेष्वचित्ततां लेभे कश्चिदाहतलक्षणः ॥ ६२ ॥

वहाँ समस्त योद्धाओंपर बाणोंकी वर्षा हो रही थी । कहीं उनके चिह्न लुप्त नहीं थे । उनमेंसे कोई भी योद्धा अपनी ध्वज आदि चिह्नोंके नष्ट हो जानेपर भी मोहको नहीं प्राप्त हुआ ॥ ६२ ॥

वर्तमाने तथा युद्धे घोररूपे भयंकरे ।
मोहयित्वा परान् द्रोणो युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ६३ ॥

इस प्रकार जब अत्यन्त भयंकर घोर युद्ध चल रहा था, उस समय शत्रुओंको मोहित करके द्रोणाचार्यने युधिष्ठिरपर आक्रमण किया ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि संकुलयुद्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत संशप्तकवधपर्वमें संकुलयुद्धविषयक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ६४ श्लोक हैं)

एकविंशोऽध्यायः

द्रोणाचार्यके द्वारा सत्यजित्, शतानीक, दृढसेन, क्षेम, वसुदान तथा पाञ्चालराजकुमार आदिका वध और पाण्डव-सेनाकी पराजय

संजय उवाच

ततो युधिष्ठिरो द्रोणं दृष्ट्वान्तिकमुपागतम् ।
महता शरवर्षेण प्रत्यगृह्णादभीतवत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर युधिष्ठिरने द्रोणको अपने समीप आया देख एक निर्भय वीरकी भाँति बाणोंकी बड़ी भारी वर्षा करके उन्हें रोक दिया ॥ १ ॥

ततो हलहलाशब्द आसीद् यौधिष्ठिरे बले ।
जिघृक्षति महासिंहे गजानामिव यूथपम् ॥ २ ॥

उस समय युधिष्ठिरकी सेनामें महान् कोलाहल मच गया। जैसे विशाल सिंह हाथियोंके यूथपतियोंको पकड़ना चाहता हो,

उसी प्रकार द्रोणाचार्य युधिष्ठिरको अपने काबूमें करना चाहते थे ॥ २ ॥

दृष्ट्वा द्रोणं ततः शूरः सत्यजित् सत्यविक्रमः ।
युधिष्ठिरमभिप्रेप्सुराचार्यं समुपाद्रवत् ॥ ३ ॥

यह देख सत्यपराक्रमी शूरवीर सत्यजित् युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये द्रोणाचार्यपर टूट पड़ा ॥ ३ ॥

तत आचार्यपाञ्चाल्यौ युयुधाते महाबलौ ।
विक्षोभयन्तौ तत् सैन्यमिन्द्रवैरोचनाविव ॥ ४ ॥

फिर तो आचार्य और पाञ्चालराजकुमार दोनों महाबली वीर इन्द्र और बलिकी भाँति उस सेनाको विक्षुब्ध करते हुए आपसमें जूझने लगे ॥ ४ ॥

ततो द्रोणं महेष्वासः सत्यजित् सत्यविक्रमः ।
अविध्यन्निशिताग्रेण परमास्त्रं विदर्शयन् ॥ ५ ॥

सत्यपराक्रमी महाधनुर्धर सत्यजित्ने अपने उत्तम अस्त्रका प्रदर्शन करते हुए तेज धारवाले एक बाणसे द्रोणाचार्यको घायल कर दिया ॥ ५ ॥

तथास्य सारथेः पञ्च शरान् सर्पविषोपमान् ।
अमुञ्चदन्तकप्रख्यान् सम्मुमोहास्य सारथिः ॥ ६ ॥

फिर उनके सारथिपर सर्पविष एवं यमराजके समान भयंकर पाँच बाणोंका प्रहार किया । उन बाणोंकी चोटसे द्रोणाचार्यका सारथि मूर्च्छित हो गया ॥ ६ ॥

अथास्य सहसाविध्यद्धयान् दशभिराशुगैः ।
दशभिर्दशभिः क्रुद्ध उभौ च पार्ष्णिसारथी ॥ ७ ॥

इसके बाद सत्यजित्ने सहसा दस शीघ्रगामी बाणोंद्वारा उनके घोड़ोंको बींध डाला और कुपित होकर दोनों पृष्ठरक्षकोंको भी दस-दस बाण मारे ॥ ७ ॥

मण्डलं तु समावृत्य विचरन् पृतनामुखे ।
ध्वजं चिच्छेद च क्रुद्धो द्रोणस्यामित्रकर्षणः ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् शत्रुसूदन सत्यजित्ने अत्यन्त कुपित हो सेनाके प्रमुख भागमें मण्डलाकार विचरते हुए अपने बाणद्वारा द्रोणाचार्यके ध्वजको भी काट डाला ॥ ८ ॥

द्रोणस्तु तत् समालोक्य चरितं तस्य संयुगे ।
मनसा चिन्तयामास प्राप्तकालमरिंदमः ॥ ९ ॥

तब शत्रुओंका दमन करनेवाले द्रोणाचार्यने युद्धस्थलमें उसका वह पराक्रम देख मन-ही-मन समयोचित कर्तव्यका चिन्तन किया ॥ ९ ॥

ततः सत्यजितं तीक्ष्णैर्दशभिर्मर्मभेदिभिः ।
अविध्यच्छीघ्रमाचार्यश्छित्त्वास्य सशरं धनुः ॥ १० ॥

तदनन्तर आचार्यने सत्यजित्के बाणसहित धनुषको काटकर मर्मस्थलको विदीर्ण करनेवाले दस पैने बाणोंद्वारा उसे शीघ्र ही घायल कर दिया ॥ १० ॥

स शीघ्रतरमादाय धनुरन्यत् प्रतापवान् ।
द्रोणमभ्यहनद् राजंस्त्रिंशता कङ्कपत्रिभिः ॥ ११ ॥

राजन् ! धनुष कट जानेपर प्रतापी वीर सत्यजित्ने शीघ्र ही दूसरा धनुष लेकर कंककी पाँखसे युक्त तीस बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यको गहरी चोट पहुँचायी ॥ ११ ॥

दृष्ट्वा सत्यजिता द्रोणं ग्रस्यमानमिवाहवे ।
वृकः शरशतैस्तीक्ष्णैः पाञ्चाल्यो द्रोणमार्दयत् ॥ १२ ॥

उस युद्धस्थलमें द्रोणाचार्यको सत्यजित्के बाणोंका ग्रास बनते देख पाञ्चाल वीर वृकने भी सैकड़ों पैने बाण मारकर द्रोणाचार्यको अत्यन्त पीड़ित कर दिया ॥ १२ ॥

संछाद्यमानं समरे द्रोणं दृष्ट्वा महारथम् ।
चुक्रुशुः पाण्डवा राजन् वस्त्राणि दुधुवुश्च ह ॥ १३ ॥

राजन् ! महारथी द्रोणाचार्यको समरभूमिमें बाणोंद्वारा आच्छादित होते देख समस्त पाण्डव-सैनिक गर्जने और वस्त्र हिलाने लगे ॥ १३ ॥

वृकस्तु परमक्रुद्धो द्रोणं षष्ट्या स्तनान्तरे ।
विव्याध बलवान् राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १४ ॥

नरेश्वर ! बलवान् वृकने अत्यन्त कुपित होकर द्रोणाचार्यकी छातीमें साठ बाण मारे । वह अद्भुत-सी बात थी ॥

द्रोणस्तु शरवर्षेण च्छाद्यमानो महारथः ।
वेगं चक्रे महावेगः क्रोधादुद्वृत्य चक्षुषी ॥ १५ ॥

इस प्रकार बाण-वर्षासे आच्छादित होनेपर महान् वेगशाली महारथी द्रोणने क्रोधसे आँखें फाड़कर देखते हुए अपना विशेष वेग प्रकट किया ॥ १५ ॥

ततः सत्यजितश्चापं छित्त्वा द्रोणो वृकस्य च ।
षड्भिःससूतं सहयं शरैर्द्रोणोऽवधीद् वृकम् ॥ १६ ॥

आचार्य द्रोणने सत्यजित् और वृक दोनोंके धनुष काटकर छः बाणोंद्वारा उन्होंने सारथि और घोड़ोंसहित वृकको मार डाला ॥ १६ ॥

अथान्यद् धनुरादाय सत्यजिद् वेगवत्तरम् ।
साश्वं ससूतं विशिखैर्द्रोणं विव्याध सध्वजम् ॥ १७ ॥

इतनेहीमें अत्यन्त वेगशाली दूसरा धनुष लेकर सत्यजित्ने अपने बाणोंद्वारा घोड़े, सारथि और ध्वजसहित द्रोणाचार्यको बींध डाला ॥ १७ ॥

स तन्न ममृषे द्रोणः पाञ्चाल्येनार्दितो मृधे ।
ततस्तस्य विनाशाय सत्वरं व्यसृजच्छरान् ॥ १८ ॥

संग्राममें पाञ्चालराजकुमार सत्यजित्से पीड़ित होकर द्रोणाचार्य उसके पराक्रमको न सह सके । इसलिये तुरंत ही उसके विनाशके लिये उन्होंने बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥

हयान् ध्वजं धनुर्मुष्टिमुभौ च पार्ष्णिसारथी ।
अवाकिरत् ततो द्रोणः शरवर्षैः सहस्रशः ॥ १९ ॥

द्रोणने सत्यजित्के घोड़ों, ध्वज, धनुषकी मुष्टि तथा दोनों पार्श्वरक्षकोंपर सहस्रों बाणोंकी वर्षा की ॥ १९ ॥

तथा संछिद्यमानेषु कार्मुकेषु पुनः पुनः ।

पाञ्चाल्यः परमास्त्रज्ञः शोणाश्वं समयोधयत् ॥ २० ॥

इस प्रकार बारंबार धनुषोंके काटे जानेपर भी उत्तम अस्त्रोंका ज्ञाता पाञ्चालवीर सत्यजित् लाल घोड़ोंवाले द्रोणाचार्यसे युद्ध करता ही रहा ॥ २० ॥

स सत्यजितमालोक्य तथोदीर्णं महाहवे।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद शिरस्तस्य महात्मनः ॥ २१ ॥

उस महासमरमें सत्यजित्को प्रचण्ड होते देख द्रोणाचार्यने अर्धचन्द्राकार बाणके द्वारा उस महामनस्वी वीरका मस्तक काट डाला ॥ २१ ॥

तस्मिन् हते महामात्रे पञ्चालानां महारथे।
अपायाज्जवनैरश्वैर्द्रोणात् त्रस्तो युधिष्ठिरः ॥ २२ ॥

उस महाबली महारथी पाञ्चाल वीरके मारे जानेपर युधिष्ठिर द्रोणाचार्यसे अत्यन्त भयभीत हो गये और वेगशाली घोड़ोंसे जुते हुए रथके द्वारा युद्धस्थलसे दूर चले गये ॥ २२ ॥

पञ्चालाः केकया मत्स्याश्चेदिकारूषकोसलाः।
युधिष्ठिरमभीप्सन्तो दृष्ट्वा द्रोणमुपाद्रवन् ॥ २३ ॥

उस समय युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये पाञ्चाल, केकय, मत्स्य, चेदि, कारूष और कोसल देशोंके योद्धा द्रोणाचार्यको देखते ही उनपर टूट पड़े ॥ २३ ॥

ततो युधिष्ठिरं प्रेप्सुराचार्यः शत्रुपूगहा।
व्यधमत् तान्यनीकानि तूलराशिमिवानलः ॥ २४ ॥

तब शत्रुसमूहोंका नाश करनेवाले द्रोणाचार्यने युधिष्ठिरको पकड़नेके लिये उन समस्त सैनिकोंका उसी प्रकार संहार कर डाला, जैसे आग रूईके ढेरको जला देती है ॥ २४ ॥

निर्दहन्तमनीकानि तानि तानि पुनः पुनः।
द्रोणं मत्स्यादवरजः शतानीकोऽभ्यवर्तत ॥ २५ ॥

उन समस्त सैनिकोंको बार-बार बाणोंकी आगसे दग्ध करते देख विराटके छोटे भाई शतानीक द्रोणाचार्यपर चढ़ आये ॥ २५ ॥

सूर्यरश्मिप्रतीकाशैः कर्मारपरिमार्जितैः।
षड्भिः ससूतं सहयं द्रोणं विद्ध्वानदद् भृशम् ॥ २६ ॥

उन्होंने कारीगरके द्वारा स्वच्छ किये हुए सूर्यकी किरणोंके समान चमकीले छः बाणोंद्वारा सारथि और घोड़ोंसहित द्रोणाचार्यको घायल करके बड़े जोरसे गर्जना की ॥ २६ ॥

क्रूराय कर्मणे युक्तश्चिकीर्षुः कर्म दुष्करम्।
अवाकिरच्छरशतैर्भारद्वाजं महारथम् ॥ २७ ॥

तत्पश्चात् दुष्कर पराक्रम करनेकी इच्छासे क्रूरतापूर्ण कर्म करनेके लिये तत्पर हो उन्होंने महारथी द्रोणाचार्यपर सौ बाणोंकी वर्षा की ॥ २७ ॥

तस्य चानदतो द्रोणः शिरः कायात् सकुण्डलम्।
क्षुरेणापाहरत् तूर्णं ततो मत्स्याः प्रदुद्रुवुः ॥ २८ ॥

तब द्रोणाचार्यने वहाँ गर्जना करते हुए शतानीकके कुण्डलसहित मस्तकको क्षुर नामक बाणद्वारा तुरंत ही धड़से काट गिराया। यह देख मत्स्यदेशके सैनिक भाग खड़े हुए ॥

मत्स्याञ्जित्वाऽजयच्चेदीन् करूषान् केकयानपि।
पञ्चालान् सृञ्जयान् पाण्डून् भारद्वाजः पुनः पुनः ॥ २९ ॥

इस प्रकार भरद्वाजनन्दन द्रोणाचार्यने मत्स्यदेशीय योद्धाओंको जीतकर चेदि, करूष, केकय, पाञ्चाल, सृंजय तथा पाण्डवसैनिकोंको भी बारंबार परास्त किया ॥ २९ ॥

तं दहन्तमनीकानि क्रुद्धमग्निं यथा वनम्।
दृष्ट्वा रुक्मरथं वीरं समकम्पन्त सृंजयाः ॥ ३० ॥

जैसे प्रज्वलित अग्नि सारे वनको जला देती है, उसी प्रकार क्रोधमें भरकर शत्रुकी सेनाओंको दग्ध करते हुए सुवर्णमय रथवाले वीर द्रोणाचार्यको देखकर सृंजयवंशी क्षत्रिय काँपने लगे ॥ ३० ॥

उत्तमं ह्याददानस्य धनुरस्याशुकारिणः।
ज्याघोषो निघ्नतोऽमित्रान् दिक्षु सर्वासु शुश्रुवे ॥ ३१ ॥

उत्तम धनुष लेकर शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलाने और शत्रुओंका वध करनेवाले द्रोणाचार्यकी प्रत्यञ्चाका शब्द सम्पूर्ण दिशाओंमें सुनायी पड़ता था ॥ ३१ ॥

नागानश्वान् पदातींश्च रथिनो गजसादिनः।
रौद्रा हस्तवता मुक्ताः प्रमथ्नन्ति स्म सायकाः ॥ ३२ ॥

शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले द्रोणाचार्यके छोड़े हुए भयंकर सायक हाथियों, घोड़ों, पैदलों, रथियों और गजारोहियोंको मथे डालते थे ॥ ३२ ॥

नानद्यमानः पर्जन्यो मिश्रवातो हिमात्यये।
अश्मवर्षमिवावर्षत् परेषां भयमादधत् ॥ ३३ ॥

जैसे हेमन्त ऋतुके अन्तमें अत्यन्त गर्जना करता हुआ वायुयुक्त मेघ पत्थरोंकी वर्षा करता है, उसी प्रकार द्रोणाचार्य शत्रुओंको भयभीत करते हुए उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करते थे ॥ ३३ ॥

सर्वा दिशः समचरत् सैन्यं विक्षोभयन्निव।
बली शूरो महेष्वासो मित्राणामभयंकरः ॥ ३४ ॥

बलवान्, शूरवीर, महाधनुर्धर और मित्रोंको अभय प्रदान करनेवाले द्रोणाचार्य सारी सेनामें हलचल मचाते हुए सम्पूर्ण दिशाओंमें विचर रहे थे ॥ ३४ ॥

तस्य विद्युदिवाभ्रेषु चापं हेमपरिष्कृतम्।
दिक्षु सर्वासु पश्यामो द्रोणस्यामिततेजसः ॥ ३५ ॥

जैसे बादलोंमें बिजली चमकती है, उसी प्रकार अमित तेजस्वी द्रोणाचार्यके सुवर्णभूषित धनुषको हम सम्पूर्ण दिशाओंमें चमकता हुआ देखते थे ॥ ३५ ॥

शोभमानां ध्वजे चास्य वेदीमद्राक्ष्म भारत।
हिमवच्छिखराकारां चरतः संयुगे भृशम् ॥ ३६ ॥

भरतनन्दन! युद्धमें तीव्रवेगसे विचरते हुए आचार्यके ध्वजमें जो

वेदीका चिह्न बना हुआ था, वह हमें हिमालयके शिखरकी भाँति शोभायमान दिखायी देता था ॥ ३६ ॥

द्रोणस्तु पाण्डवानीके चकार कदनं महत्।
यथा दैत्यगणे विष्णुः सुरासुरनमस्कृतः ॥ ३७ ॥

जैसे देव-दानववन्दित भगवान् विष्णु दैत्योंकी सेनामें भयानक संहार मचाते हैं, उसी प्रकार द्रोणाचार्यने पाण्डव सेनामें भारी मारकाट मचा रक्खी थी ॥ ३७ ॥

स शूरः सत्यवाक् प्राज्ञो बलवान् सत्यविक्रमः।
महानुभावः कल्पान्ते रौद्रां भीरुविभीषणाम् ॥ ३८ ॥
कवचोर्मिध्वजावर्तां मर्त्यकूलापहारिणीम्।
गजवाजिमहाग्राहामसिमीनां दुरासदाम् ॥ ३९ ॥
वीरास्थिशर्करां रौद्रां भेरीमुरजकच्छपाम्।
चर्मवर्मप्लवां घोरां केशशैवलशाद्वलाम् ॥ ४० ॥
शरौघिणीं धनुःस्रोतां बाहुपन्नगसंकुलाम्।
रणभूमिवहां तीव्रां कुरुसृञ्जयवाहिनीम् ॥ ४१ ॥
मनुष्यशीर्षपाषाणां शक्तिमीनां गदोडुपाम्।
उष्णीषफेनवसनां विकीर्णान्त्रसरीसृपाम् ॥ ४२ ॥
वीरापहारिणीमुग्रां मांसशोणितकर्दमाम्।
हस्तिग्राहां केतुवृक्षां क्षत्रियाणां निमज्जनीम् ॥ ४३ ॥
क्रूरां शरीरसंघट्टां सादिनक्रां दुरत्ययाम्।
द्रोणः प्रावर्तयत् तत्र नदीमन्तकगामिनीम् ॥ ४४ ॥
क्रव्यादगणसंजुष्टां श्वशृगालगणायुताम्।
निषेवितां महारौद्रैः पिशिताशैः समन्ततः ॥ ४५ ॥

उन शौर्य-सम्पन्न, सत्यवादी, विद्वान्, बलवान् और सत्य-पराक्रमी महानुभाव द्रोणने उस युद्धस्थलमें रक्तकी भयंकर नदी बहा दी, जो प्रलयकालकी जलराशिके समान जान पड़ती थी। वह नदी भीरु पुरुषोंको भयभीत करनेवाली थी। उसमें कवच लहरें और ध्वजाएँ भँवरें थीं। वह मनुष्यरूपी तटोंको गिरा रही थी। हाथी और घोड़े उसके भीतर बड़े-बड़े ग्राहोंके समान थे। तलवारें मछलियाँ थीं। उसे पार करना अत्यन्त कठिन था। वीरोंकी हड्डियाँ बालू और कंकड़-सी जान पड़ती थीं। वह देखनेमें बड़ी भयानक थी। ढोल और नगाड़े उसके भीतर कछुए-से प्रतीत होते थे। ढाल और कवच उसमें डोंगियोंके समान तैर रहे थे। वह घोर नदी केशरूपी सेवार और घाससे युक्त थी। बाण ही उसके प्रवाह थे। धनुष स्रोतके समान प्रतीत होते थे। कटी हुई भुजाएँ पानीके सर्पोंके समान वहाँ भरी हुई थीं। वह रणभूमिके भीतर तीव्र वेगसे प्रवाहित हो रही थी। कौरव और संजय दोनोंको वह नदी बहाये लिये जाती थी। मनुष्योंके मस्तक उसमें प्रस्तर-खण्डका भ्रम उत्पन्न करते थे। शक्तियाँ मीनके समान थीं। गदाएँ नाक थीं। उष्णीष-वस्त्र (पगड़ी) फेनके तुल्य चमक रहे थे। बिखरी हुई आँतें सर्पाकार प्रतीत होती थीं। वीरोंका अपहरण करनेवाली वह उग्र नदी मांस तथा रक्तरूपी कीचड़से भरी थी। हाथी उसके भीतर ग्राह थे। ध्वजाएँ वृक्षके तुल्य थीं। वह नदी क्षत्रियोंको अपने भीतर डुबोनेवाली थी। वहाँ क्रूरता छा रही थी। शरीर (लाशें) ही उसमें उतरनेके लिये घाट थे। योद्धागण मगर-जैसे जान पड़ते थे। उसको पार करना बहुत कठिन था। वह नदी लोगोंको यमलोकमें ले जानेवाली थी। मांसाहारी जन्तु उसके आस-पास डेरा डाले हुए थे। वहाँ कुत्ते और सियारोंके झुंड जुटे हुए थे। उसके सब ओर महाभयंकर मांसभक्षी पिशाच निवास करते थे ॥ ३८–४५ ॥

तं दहन्तमनीकानि रथोदारं कृतान्तवत्।
सर्वतोऽभ्यद्रवन् द्रोणं कुन्तीपुत्रपुरोगमाः ॥ ४६ ॥

समस्त सेनाओंको दग्ध करनेवाले यमराजके समान भयंकर उदार महारथी द्रोणाचार्यपर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर आदि सब वीर सब ओरसे टूट पड़े ॥ ४६ ॥

ते द्रोणं सहिताः शूराः सर्वतः प्रत्यवारयन्।
गभस्तिभिरिवादित्यं तपन्तं भुवनं यथा ॥ ४७ ॥

उन सभी शूरवीरोंने एक साथ आकर द्रोणाचार्यको सब ओरसे उसी प्रकार घेर लिया, जैसे जगत्को तपानेवाले भगवान् सूर्य अपनी किरणोंसे घिरे रहते हैं ॥ ४७ ॥

तं तु शूरं महेष्वासं तावकाऽभ्युद्यतायुधाः।
राजानो राजपुत्राश्च समन्तात् पर्यवारयन् ॥ ४८ ॥

आपकी सेनाके राजा और राजकुमारोंने अस्त्र-शस्त्र लेकर उन शौर्यसम्पन्न महाधनुर्धर द्रोणाचार्यको उनकी रक्षाके लिये सब ओरसे घेर रक्खा था ॥ ४८ ॥

शिखण्डी तु ततो द्रोणं पञ्चभिर्नतपर्वभिः।
क्षत्रवर्मा च विंशत्या वसुदानश्च पञ्चभिः ॥ ४९ ॥
उत्तमौजास्त्रिभिर्बाणैः क्षत्रदेवश्च सप्तभिः।
सात्यकिश्च शतेनाजौ युधामन्युस्तथाष्टभिः ॥ ५० ॥
युधिष्ठिरो द्वादशभिर्द्रोणं विव्याध सायकैः।
धृष्टद्युम्नश्च दशभिश्चेकितानस्त्रिभिः शरैः ॥ ५१ ॥

उस समय शिखण्डीने झुकी हुई गाँठवाले पाँच बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यको बींध डाला। तत्पश्चात् क्षत्रवर्माने बीस, वसुदानने पाँच, उत्तमौजाने तीन, क्षत्रदेवने सात, सात्यकिने सौ, युधामन्युने आठ और युधिष्ठिरने बारह बाणोंद्वारा युद्धस्थलमें द्रोणाचार्यको घायल कर दिया। धृष्टद्युम्नने दस और चेकितानने उन्हें तीन बाण मारे ॥ ४९–५१ ॥

ततो द्रोणः सत्यसंधः प्रभिन्न इव कुञ्जरः।
अभ्यतीत्य रथानीकं दृढसेनमपातयत् ॥ ५२ ॥

तदनन्तर सत्यप्रतिज्ञ द्रोणने मदकी धारा बहानेवाले गजराजकी भाँति रथ-सेनाको लाँघकर दृढसेनको मार गिराया ॥

ततो राजानमासाद्य प्रहरन्तमभीतवत्।
अविध्यन्नवभिः क्षेमं स हतः प्रापतद् रथात् ॥ ५३ ॥

फिर निर्भय-से प्रहार करते हुए राजा क्षेमके पास पहुँचकर उन्हें नौ बाणोंसे बींध डाला। उन बाणोंसे मारे जाकर वे रथसे नीचे गिर गये ॥ ५३ ॥

स मध्यं प्राप्य सैन्यानां सर्वाः प्रविचरन् दिशः।
त्राता ह्यभवदन्येषां न त्रातव्यः कथञ्चन ॥ ५४ ॥

यद्यपि वे शत्रुसेनाके भीतर घुसकर सम्पूर्ण दिशाओंमें विचर रहे थे, तथापि वे ही दूसरोंके रक्षक थे, स्वयं किसी प्रकार किसीके रक्षणीय नहीं हुए ॥ ५४ ॥

शिखण्डिनं द्वादशभिर्विंशत्या चोत्तमौजसम्।
वसुदानं च भल्लेन प्रैषयद् यमसादनम् ॥ ५५ ॥

उन्होंने शिखण्डीको बारह और उत्तमौजाको बीस बाणोंसे घायल करके वसुदानको एक ही भल्लसे मारकर यमलोक भेज दिया ॥ ५५ ॥

अशीत्या क्षत्रवर्माणं षडविंशत्या सुदक्षिणम्।
क्षत्रदेवं तु भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ५६ ॥

तत्पश्चात् क्षत्रवर्माको अस्सी और सुदक्षिणको छब्बीस बाणोंसे आहत करके क्षत्रदेवको भल्लसे घायलकर रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया ॥ ५६ ॥

युधामन्युं चतुःषष्ट्या त्रिंशता चैव सात्यकिम्।
विद्ध्वा रुक्मरथस्तूर्णं युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ५७ ॥

युधामन्युको चौसठ तथा सात्यकिको तीस बाणोंसे घायल करके सुवर्णमय रथवाले द्रोणाचार्य राजा युधिष्ठिरकी ओर दौड़े॥

ततो युधिष्ठिरः क्षिप्रं गुरुतो राजसत्तमः।
अपायाज्जवनैरश्वैः पाञ्चाल्यो द्रोणमभ्ययात् ॥ ५८ ॥

तब राजाओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर गुरुके निकटसे तीव्रगामी अश्वोंद्वारा शीघ्र ही दूर चले गये और पाञ्चाल देशका एक राजकुमार द्रोणका सामना करनेके लिये आगे बढ़ आया ॥

तं द्रोणः सधनुष्कं तु साश्वयन्तारमाक्षिणोत्।
स हतः प्रापतद् भूमौ रथाज्ज्योतिरिवाम्बरात्॥ ५९ ॥

परंतु द्रोणने धनुष, घोड़े और सारथिसहित उसे क्षत-विक्षत कर दिया। उनके द्वारा मारा गया वह राजकुमार आकाशसे उल्काकी भाँति रथसे भूमिपर गिर पड़ा ॥५९॥

तस्मिन् हते राजपुत्रे पञ्चालानां यशस्करे।
हत द्रोणं हत द्रोणमित्यासीन्निःस्वनो महान् ॥ ६० ॥

पाञ्चालोंका यश बढ़ानेवाले उस राजकुमारके मारे जानेपर वहाँ 'द्रोणको मार डालो, द्रोणको मार डालो' इस प्रकार महान् कोलाहल होने लगा ॥ ६० ॥

तांस्तथा भृशसंरब्धान् पञ्चालान् मत्स्यकेकयान्।
सृञ्जयान् पाण्डवांश्चैव द्रोणो व्यक्षोभयद् बली ॥६१॥

इस प्रकार अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए पाञ्चाल, मत्स्य, केकय, सृंजय और पाण्डव योद्धाओंको बलवान् द्रोणाचार्यने क्षोभमें डाल दिया ॥ ६१ ॥

सात्यकिं चेकितानं च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ।
वार्धक्षेमिं चैत्रसेनिं सेनाबिन्दुं सुवर्चसम् ॥ ६२ ॥
एतांश्चान्यांश्च सुबहून् नानाजनपदेश्वरान्।
सर्वान् द्रोणोऽजयद् युद्धे कुरुभिः परिवारितः॥६३॥

कौरवोंसे घिरे हुए द्रोणाचार्यने युद्धमें सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, वृद्धक्षेमके पुत्र, चित्रसेनकुमार, सेनाबिन्दु तथा सुवर्चा—इन सबको तथा अन्य बहुत-से विभिन्न देशोंके राजाओंको परास्त कर दिया ॥ ६२-६३ ॥

तावकाश्च महाराज जयं लब्ध्वा महाहवे।
पाण्डवेयान् रणे जघ्नुर्द्रवमाणान् समन्ततः ॥ ६४ ॥

महाराज! आपके पुत्रोंने उस महासमरमें विजय प्राप्त करके सब ओर भागते हुए पाण्डव-योद्धाओंको मारना आरम्भ किया ॥ ६४ ॥

ते दानवा इवेन्द्रेण वध्यमाना महात्मना।
पञ्चालाः केकया मत्स्याः समकम्पन्त भारत ॥ ६५ ॥

भरतनन्दन! इन्द्रके द्वारा मारे जानेवाले दानवोंकी भाँति महामना द्रोणकी मार खाकर पाञ्चाल, केकय और मत्स्यदेशके सैनिक काँपने लगे ॥ ६५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि द्रोणयुद्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत संशप्तकवधपर्वमें द्रोणाचार्यका युद्धविषयक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

द्रोणके युद्धके विषयमें दुर्योधन और कर्णका संवाद

धृतराष्ट्र उवाच

भारद्वाजेन भग्नेषु पाण्डवेषु महामृधे।
पञ्चालेषु च सर्वेषु कश्चिदन्योऽभ्यवर्तत ॥ १ ॥
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा क्षत्रियाणां यशस्करीम्।
असेवितां कापुरुषैः सेवितां पुरुषर्षभैः ॥ २ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! द्रोणाचार्यने उस महासमरमें जब पाण्डवों तथा समस्त पाञ्चालोंको मार भगाया, तब क्षत्रियोंके लिये यशका विस्तार करनेवाली, कायरोंद्वारा न अपनायी जानेवाली और श्रेष्ठ पुरुषोंद्वारा सेवित युद्धविषयक उत्तम बुद्धिका आश्रय लेकर क्या कोई दूसरा वीर भी उनके सामने आया?

स हि वीरोन्नतः शूरो यो भग्नेषु निवर्तते।
अहो नासीत् पुमान् कश्चिद् दृष्ट्वा द्रोणं व्यवस्थितम्॥३॥

वही वीरोंमें उन्नतिशील और शौर्यसम्पन्न है, जो सैनिकोंके भाग जानेपर भी स्वयं युद्धक्षेत्रमें लौटकर आ जाय। अहो! क्या उस समय द्रोणाचार्यको डटा हुआ देखकर पाण्डवोंमें कोई भी वीर पुरुष नहीं था (जो द्रोणाचार्यका सामना कर सके)३

जृम्भमाणमिव व्याघ्रं प्रभिन्नमिव कुञ्जरम्।
त्यजन्तमाहवे प्राणान् संनद्धं चित्रयोधिनम्॥ ४॥
महेष्वासं नरव्याघ्रं द्विषतां भयवर्धनम्।
कृतज्ञं सत्यनिरतं दुर्योधनहितैषिणम्॥ ५॥
भारद्वाजं तथानीके दृष्ट्वा शूरमवस्थितम्।
के शूराः संन्यवर्तन्त तन्ममाचक्ष्व संजय॥ ६॥

जँभाई लेते हुए व्याघ्र तथा मदकी धारा बहानेवाले गजराजकी भाँति पराक्रमी, युद्धमें प्राणोंका विसर्जन करनेके लिये उद्यत, कवच आदिसे सुसज्जित, विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले, शत्रुओंका भय बढ़ानेवाले, कृतज्ञ, सत्यपरायण, दुर्योधनके हितैषी तथा शूरवीर, भरद्वाज-नन्दन महाधनुर्धर पुरुषसिंह द्रोणाचार्यको युद्धमें डटा हुआ देख किन शूरवीरोंने लौटकर उनका सामना किया? संजय! यह वृत्तान्त मुझसे कहो॥ ४–६॥

संजय उवाच

तान् दृष्ट्वा चलितान् संख्ये प्रणुन्नान् द्रोणसायकैः।
पञ्चालान् पाण्डवान् मत्स्यान् सृञ्जयांश्चेदिकेकयान्॥ ७
द्रोणचापविमुक्तेन शरौघेणाशुहारिणा।
सिन्धोरिव महौघेन ह्रियमाणान् यथा प्लवान्॥ ८॥
कौरवाः सिंहनादेन नानावाद्यस्वनेन च।
रथद्विपनरांश्चैव सर्वतः समवारयन्॥ ९॥

संजयने कहा—महाराज! कौरवोंने देखा कि पाञ्चाल, पाण्डव, मत्स्य, सृंजय, चेदि और केकयदेशीय योद्धा युद्धमें द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीड़ित हो विचलित हो उठे हैं तथा जैसे समुद्रकी महान् जलराशि बहुत-से नावोंको बहा ले जाती है, उसी प्रकार द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटकर शीघ्र ही प्राण हर लेनेवाले बाण-समुदायने पाण्डव-सैनिकोंको मार भगाया है। तब वे सिंहनाद एवं नाना प्रकारके रणवाद्योंका गम्भीर घोष करते हुए शत्रुओंके रथारोहियों, हाथीसवारों तथा पैदल सैनिकोंको सब ओरसे रोकने लगे॥ ७–९॥

तान् पश्यन् सैन्यमध्यस्थो राजा स्वजनसंवृतः।
दुर्योधनोऽब्रवीत् कर्णं प्रहृष्टः प्रहसन्निव॥ १०॥

सेनाके बीचमें खड़े हो स्वजनोंसे घिरे हुए राजा दुर्योधनने पाण्डव-सैनिकोंकी ओर देखते हुए अत्यन्त प्रसन्न होकर कर्णसे हँसते हुए-से कहा॥ १०॥

दुर्योधन उवाच

पश्य राधेय पञ्चालान् प्रणुन्नान् द्रोणसायकैः।
सिंहेनेव मृगान् वन्यांस्त्रासितान् दृढधन्वना॥ ११॥

दुर्योधन बोला—राधानन्दन! देखो, सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले द्रोणाचार्यके बाणोंसे ये पाञ्चाल सैनिक उसी प्रकार पीड़ित हो रहे हैं, जैसे सिंह वनवासी मृगोंको त्रस्त कर देता है ११

नैते जातु पुनर्युद्धमीहेयुरिति मे मतिः।
यथा तु भग्ना द्रोणेन वातेनेव महाद्रुमाः॥ १२॥

मेरा तो ऐसा विश्वास है कि ये फिर कभी युद्धकी इच्छा नहीं करेंगे। जैसे वायु बड़े-बड़े वृक्षोंको उखाड़ देती है, उसी प्रकार द्रोणाचार्यने युद्धसे इनके पाँव उखाड़ दिये हैं॥१२॥

अर्द्यमानाः शरैरेते रुक्मपुङ्खैर्महात्मना।
पथा नैकेन गच्छन्ति घूर्णमानास्ततस्ततः॥ १३॥

महामना द्रोणके सुवर्णमय पंखयुक्त बाणोंद्वारा पीड़ित होकर ये इधर-उधर चक्कर काटते हुए एक ही मार्गसे नहीं भाग रहे हैं॥ १३॥

संनिरुद्धाश्च कौरव्यैर्द्रोणेन च महात्मना।
एतेऽन्ये मण्डलीभूताः पावकेनेव कुञ्जराः॥ १४॥

कौरव सैनिकों तथा महामना द्रोणने इनकी गति रोक दी है। जैसे दावानलसे हाथी घिर जाते हैं, उसी प्रकार ये तथा अन्य पाण्डव-योद्धा कौरवोंसे घिर गये हैं॥ १४॥

भ्रमरैरिव चाविष्टा द्रोणस्य निशितैः शरैः।
अन्योन्यं समलीयन्त पलायनपरायणाः॥ १५॥

भ्रमरोंके समान द्रोणके पैने बाणोंसे घायल होकर ये रणभूमिसे पलायन करते हुए एक दूसरेकी आड़में छिप रहे हैं १५

एष भीमो महाक्रोधी हीनः पाण्डवसृञ्जयैः।
मदीयैरावृतो योधैः कर्ण नन्दयतीव माम्॥ १६॥

यह महाक्रोधी भीमसेन पाण्डव तथा सृञ्जयोंसे रहित हो मेरे योद्धाओंसे घिर गया है। कर्ण! इस अवस्थामें भीमसेन मुझे आनन्दित-सा कर रहा है॥ १६॥

व्यक्तं द्रोणमयं लोकमद्य पश्यति दुर्मतिः।
निराशो जीवितान्नूनमद्य राज्याच्च पाण्डवः॥ १७॥

निश्चय ही आज जीवन और राज्यसे निराश हो यह दुर्बुद्धि पाण्डुकुमार सारे संसारको द्रोणमय ही देख रहा होगा १७

कर्ण उवाच

नैष जातु महाबाहुर्जीवन्नाहवमुत्सृजेत्।
न चेमान् पुरुषव्याघ्र सिंहनादान् सहिष्यति॥ १८॥

कर्ण बोला—राजन्! यह महाबाहु भीमसेन जीते-जी कभी युद्ध नहीं छोड़ सकता है। पुरुषसिंह! तुम्हारे सैनिक जो ये सिंहनाद कर रहे हैं, इन्हें भीमसेन कभी नहीं सहेगा १८

न चापि पाण्डवा युद्धे भज्येरन्निति मे मतिः।
शूराश्च बलवन्तश्च कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः॥ १९॥

पाण्डव शूरवीर, बलवान्, अस्त्र-विद्यामें निपुण तथा युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले हैं। ये रणभूमिसे कभी भाग नहीं सकते हैं। मेरा यही विश्वास है॥ १९॥

विषाग्निद्यूतसंक्लेशान् वनवासं च पाण्डवाः।
स्मरमाणा न हास्यन्ति संग्राममिति मे मतिः ॥ २० ॥

मैं ऐसा मानता हूँ कि पाण्डव तुम्हारे द्वारा दिये हुए विष, अग्निदाह और द्यूतके क्लेशों तथा वनवासको याद करके कभी युद्धभूमि नहीं छोड़ेंगे ॥ २० ॥

निवृत्तो हि महाबाहुरमितौजा वृकोदरः।
वरान् वरान् हि कौन्तेयो रथोदारान् हनिष्यति ॥ २१ ॥

अमिततेजस्वी महाबाहु कुन्तीपुत्र वृकोदर इधरकी ओर लौटे हैं। वे बड़े-बड़े उदार महारथियोंको चुन-चुनकर मारेंगे ॥ २१ ॥

असिना धनुषा शक्त्या हयैर्नागैर्नरै रथैः।
आयसेन च दण्डेन व्रातान् व्रातान् हनिष्यति ॥२२॥

वे खड्ग, धनुष, शक्ति, घोड़े, हाथी, मनुष्य एवं रथोंद्वारा और लोहेके डंडेसे समूह-के-समूह सैनिकोंका संहार कर डालेंगे ॥ २२ ॥

तमेनमनुवर्तन्ते सात्यकिप्रमुखा रथाः।
पञ्चालाः केकया मत्स्याः पाण्डवाश्च विशेषतः ॥ २३ ॥

देखो, भीमसेनके पीछे सात्यकि आदि महारथी तथा पाञ्चाल, केकय, मत्स्य और विशेषतः पाण्डव योद्धा भी आ रहे हैं ॥ २३ ॥

शूराश्च बलवन्तश्च विक्रान्ताश्च महारथाः।
विनिघ्नन्तश्च भीमेन संरब्धेनाभिचोदिताः ॥ २४ ॥

क्रोधमें भरे हुए भीमसेनसे प्रेरित हो वे शूरवीर,बलवान् पराक्रमी महारथी सैनिक हमारे सैनिकोंको मारते आ रहे हैं२४

ते द्रोणमभिवर्तन्ते सर्वतः कुरुपुङ्गवाः।
वृकोदरं परीप्सन्तः सूर्यमभ्रगणा इव ॥ २५ ॥

वे कुरुश्रेष्ठ पाण्डव भीमसेनकी रक्षाके लिये द्रोणाचार्यको सब ओरसे उसी प्रकार घेर रहे हैं, जैसे बादल सूर्यको ढक लेते हैं२५

(समरेषु तु निर्दिष्टाः पाण्डवाः कृष्णबान्धवाः।
ह्रीमन्तः शत्रुमरणे निपुणाः पुण्यलक्षणाः ॥
बहवः पार्थिवा राजंस्तेषां वशगता रणे।
मावमंस्थाः पाण्डवांस्त्वं नारायणपुरोगमान् ॥)

राजन्! पाण्डवोंके सहायक बन्धु श्रीकृष्ण हैं। वे उन्हें युद्धविषयक कर्तव्यका निर्देश किया करते हैं। वे लज्जाशील, शत्रुओंको मारनेकी कलामें निपुण तथा पवित्र लक्षणोंसे युक्त हैं। रणभूमिमें बहुत-से भूपाल उनके वशमें आ चुके हैं। अतः भगवान् नारायण जिनके अगुआ हैं, उन पाण्डवोंकी तुम अवहेलना न करो ॥

एकायनगता ह्येते पीडयेयुर्यतव्रतम्।
अरक्ष्यमाणं शलभा यथा दीपं मुमूर्षवः ॥ २६ ॥

ये सब एक रास्तेपर चल रहे हैं। यदि व्रत और नियमका पालन करनेवाले द्रोणाचार्यकी रक्षा न की गयी तो ये उन्हें उसी प्रकार पीड़ा देंगे, जैसे मरनेकी इच्छावाले पतङ्ग दीपकको बुझा देनेकी चेष्टा करते हैं ॥ २६ ॥

असंशयं कृतास्त्राश्च पर्याप्ताश्चापि वारणे।
अतिभारमहं मन्ये भारद्वाजे समाहितम् ॥ २७ ॥

इसमें संदेह नहीं कि वे पाण्डव योद्धा अस्त्र-विद्यामें निपुण तथा द्रोणाचार्यकी गतिको रोकनेमें समर्थ हैं। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि इस समय भरद्वाजनन्दन द्रोणाचार्यपर बहुत बड़ा भार आ पहुँचा है ॥ २७ ॥

शीघ्रमनुगमिष्यामो यत्र द्रोणो व्यवस्थितः।
कोका इव महानागं मा वै हन्युर्यतव्रतम् ॥ २८ ॥

अतः हमलोग शीघ्र वहीं चलें, जहाँ द्रोणाचार्य खड़े हैं। कहीं ऐसा न हो कि कुछ भेड़िये (-जैसे पाण्डव सैनिक) महान् गजराज-जैसे व्रतधारी द्रोणाचार्यका वध कर डालें २८

संजय उवाच

राधेयस्य वचः श्रुत्वा राजा दुर्योधनस्ततः।
भ्रातृभिः सहितो राजन् प्रायाद् द्रोणरथं प्रति ॥ २९ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! राधानन्दन कर्णकी बात सुनकर राजा दुर्योधन अपने भाइयोंके साथ द्रोणाचार्यके रथकी ओर चल दिया ॥ २९ ॥

तत्रारावो महानासीदेकं द्रोणं जिघांसताम्।
पाण्डवानां निवृत्तानां नानावर्णैर्हयोत्तमैः ॥ ३० ॥

वहाँ अनेक प्रकारके रंगवाले उत्तम घोड़ोंसे जुते हुए रथोंद्वारा एकमात्र द्रोणाचार्यको मार डालनेकी इच्छासे लौटे हुए पाण्डव-सैनिकोंका महान् कोलाहल प्रकट हो रहा था ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि द्रोणयुद्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत संशप्तकवधपर्वमें द्रोणाचार्यका युद्धविषयक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २२ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २ श्लोक मिलाकर कुल ३२ श्लोक हैं)

त्रयोविंशोऽध्यायः

पाण्डवसेनाके महारथियोंके रथ, घोड़े, ध्वज तथा धनुषोंका विवरण

धृतराष्ट्र उवाच

सर्वेषामेव मे ब्रूहि रथचिह्नानि संजय।
ये द्रोणमभ्यवर्तन्त क्रुद्धा भीमपुरोगमाः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! क्रोधमें भरे हुए भीमसेन

आदि जो योद्धा द्रोणाचार्यपर चढ़ाई कर रहे थे, उन सबके रथोंके (घोड़े-ध्वजा आदि) चिह्न कैसे थे ? यह मुझे बताओ॥

संजय उवाच

ऋक्षवर्णैर्हयैर्दृष्ट्वा व्यायच्छन्तं वृकोदरम्।
रजताश्वस्ततः शूरः शैनेयः संन्यवर्तत॥ २॥

संजय कहते हैं—राजन्! रीछके समान रंगवाले घोड़ोंसे जुते हुए रथपर बैठकर भीमसेनको आते देख चाँदीके समान श्वेत घोड़ोंवाले शूरवीर सात्यकि भी लौट पड़े॥

सारङ्गाश्वो युधामन्युः स्वयं प्रत्वरयन् हयान्।
पर्यवर्तत दुर्धर्षः क्रुद्धो द्रोणरथं प्रति॥ ३॥

सारंगके[1] समान (सफेद, नीले और लाल) रंगके घोड़ोंसे युक्त युधामन्यु, स्वय ही अपने घोड़ोंको शीघ्रतापूर्वक हाँकता हुआ द्रोणाचार्यके रथकी ओर लौट पड़ा। वह दुर्जय वीर क्रोधमें भरा हुआ था॥ ३॥

पारावतसवर्णैस्तु हेमभाण्डैर्महाजवैः।
पाञ्चालराजस्य सुतो धृष्टद्युम्नो न्यवर्तत॥ ४॥

पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न कबूतरके[2] समान (सफेद और नीले) रंगवाले सुवर्णभूषित एवं अत्यन्त वेगशाली घोड़ोंके द्वारा लौट आया॥ ४॥

पितरं तु परिप्रेप्सुः क्षत्रधर्मा यतव्रतः।
सिद्धिं चास्य परां काङ्क्षन् शोणाश्वः संन्यवर्तत॥ ५॥

नियमपूर्वक व्रतका पालन करनेवाला क्षत्रधर्मा अपने पिता धृष्टद्युम्नकी रक्षा और उनके अभीष्ट मनोरथकी उत्तम सिद्धि चाहता हुआ लाल रंगके घोड़ोंसे युक्त रथपर आरूढ़ हो लौट आया॥ ५॥

पद्मपत्रनिभांश्चाश्वान् मल्लिकाक्षान् स्वलंकृतान्।
शैखण्डिः क्षत्रदेवस्तु स्वयं प्रत्वरयन् ययौ॥ ६॥

शिखण्डीका पुत्र क्षत्रदेव, कमलपत्रके समान रंग तथा निर्मल नेत्रोंवाले सजे सजाये घोड़ोंको स्वयं ही शीघ्रतापूर्वक हाँकता हुआ वहाँ आया॥ ६॥

दर्शनीयास्तु काम्बोजाः शुकपत्रपरिच्छदाः।
वहन्तो नकुलं शीघ्रं तावकानभिदुद्रुवुः॥ ७॥

तोतेकी पाँखके समान रोमवाले दर्शनीय काम्बोजदेशीय[3] घोड़े नकुलको वहन करते हुए बड़ी शीघ्रताके साथ आपके सैनिकोंकी ओर दौड़े॥ ७॥

कृष्णास्तु मेघसंकाशा अवहन्नुत्तमौजसम्।
दुर्धर्षायाभिसंधाय क्रुद्धं युद्धाय भारत॥ ८॥

भरतनन्दन! दुर्धर्ष युद्धका संकल्प लेकर क्रोधमें भरे हुए उत्तमौजाको मेघके समान श्याम वर्णवाले घोड़े युद्धस्थलकी ओर ले जा रहे थे॥ ८॥

तथा तित्तिरिकल्माषा हया वातसमा जवे।
अवहंस्तुमुले युद्धे सहदेवमुदायुधम्॥ ९॥

इसी प्रकार अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न सहदेवको तीतरके समान चितकबरे रंगवाले तथा वायुके समान वेगशाली घोड़े उस भयंकर युद्धमें ले गये॥ ९॥

दन्तवर्णास्तु राजानं कालवाला युधिष्ठिरम्।
भीमवेगा नरव्याघ्रमवहन् वातरंहसः॥ १०॥

हाथीके दाँतके समान सफेद रंग, काली पूँछ तथा वायुके समान तीव्र एवं भयंकर वेगवाले घोड़े नरश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरको रणक्षेत्रमें ले गये॥ १०॥

हेमोत्तमप्रतिच्छन्नैर्हयैर्वातसमैर्जवे।
अभ्यवर्तन्त सैन्यानि सर्वाण्येव युधिष्ठिरम्॥ ११॥

सोनेके उत्तम आवरणोंसे ढके हुए, वायुके समान वेगशाली घोड़ोंद्वारा सारी सेनाओंने महाराज युधिष्ठिरको सब ओरसे घेर रक्खा था॥ ११॥

राज्ञस्त्वनन्तरो राजा पाञ्चाल्यो द्रुपदोऽभवत्।
जातरूपमयच्छत्रः सर्वैस्तैरभिरक्षितः॥ १२॥

राजा युधिष्ठिरके पीछे पाञ्चालराज द्रुपद चल रहे थे। उनका छत्र सोनेका बना हुआ था। वे भी समस्त सैनिकोंद्वारा सुरक्षित थे॥ १२॥

ललामैर्हरिभिर्युक्तः सर्वशब्दक्षमैर्युधि।
राज्ञां मध्ये महेष्वासः शान्तभीरभ्यवर्तत॥ १३॥

वे 'ललाम'[1] और 'हरि'[2] संज्ञावाले घोड़ोंसे, जो सब

---

१. नीलकण्ठी टीकामें अश्व-शास्त्रके अनुसार घोड़ोंके रंग और लक्षण आदिका परिचय दिया गया है। उसमेंसे कुछ आवश्यक बातें यहाँ यथास्थान उद्धृत की जाती हैं। सारंगका रंग सूचित करनेवाला रंग इस प्रकार है—

सितनीलारुणो वर्णः सारंगसदृशश्च सः।

२. कबूतरका रंग बतानेवाला वचन यों मिलता है—

पारावतकपोताभः सितनीलसमन्वयात्।

३. काम्बोज (काबुल) के घोड़ोंका लक्षण—

महाललाटजघनस्कन्धवक्षोजवाः हयाः।
दीर्घग्रीवायता ह्रस्वमुष्काः काम्बोजकाः स्मृताः॥

जिनके ललाट, जाँघें, कंधे, छाती और वेग महान् होते हैं, गर्दन लम्बी और चौड़ी होती है तथा अण्डकोष बहुत छोटे होते हैं, वे काबुली घोड़े माने गये हैं।

१. जिस घोड़ेके ललाटके मध्यभागमें ताराके समान श्वेत चिह्न हो, उसके उस चिह्नका नाम ललाम है। उससे युक्त अश्व भी ललाम ही कहलाता है। यथा—

श्वेतं ललाटमध्यस्थं तारारूपं हयस्य यत्।
ललामं चापि तत्प्राहुर्ललामोऽश्वस्तदन्वितः॥

२. 'हरि'का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

सकेशराणि रोमाणि सुवर्णाभानि यस्य तु।
हरिः स वर्णतोऽश्वस्तु पीतकौशेयसंनिभः॥

जिसकी गर्दनके बड़े-बड़े बाल और शरीरके रोएँ सुनहरे रंगके हों, जो रंगमें रेशमी पीताम्बरके समान जान पड़ता हो, वह घोड़ा 'हरि' कहलाता है।

प्रकारके शब्दोंको सुनकर उन्हें सहन करनेमें समर्थ थे, सुशोभित हो रहे थे। उस युद्धस्थलमें समस्त राजाओंके मध्यभागमें महाधनुर्धर राजा द्रुपद निर्भय होकर द्रोणाचार्यका सामना करनेके लिये आये ॥ १३ ॥

तं विराटोऽन्वयाच्छीघ्रं सह सर्वैर्महारथैः।
केकयाश्च शिखण्डी च धृष्टकेतुस्तथैव च ॥ १४ ॥
स्वैः स्वैः सैन्यैः परिवृता मत्स्यराजानमन्वयुः।

द्रुपदके पीछे सम्पूर्ण महारथियोंके साथ राजा विराट शीघ्रतापूर्वक चल रहे थे। केकयराजकुमार, शिखण्डी तथा धृष्टकेतु—ये अपनी-अपनी सेनाओंसे घिरकर मत्स्यराज विराटके पीछे चल रहे थे ॥ १४½ ॥

तं तु पाटलिपुष्पाणां समवर्णा हयोत्तमाः ॥ १५ ॥
वहमाना व्यराजन्त मत्स्यस्यामित्रघातिनः।

—शत्रुसूदन मत्स्यराज विराटके रथको जो वहन करते हुए शोभा पा रहे थे, वे उत्तम घोड़े पाडरके फूलोंके समान लाल और सफेद रंगवाले थे ॥ १५½ ॥

हरिद्रासमवर्णास्तु जवना हेममालिनः ॥ १६ ॥
पुत्रं विराटराजस्य सत्वरं समुदावहन्।

हल्दीके समान पीले रंगवाले तथा सुवर्णमय माला धारण करनेवाले वेगशाली घोड़े विराटराजके पुत्रको शीघ्रतापूर्वक रणभूमिकी ओर ले जा रहे थे ॥ १६½ ॥

इन्द्रगोपकवर्णैश्च भ्रातरः पञ्च केकयाः ॥ १७ ॥
जातरूपसमाभासाः सर्वे लोहितकध्वजाः।

पाँच भाई केकय-राजकुमार इन्द्रगोप (वीरबहूटी) के समान रंगवाले घोड़ोंद्वारा रणभूमिमें लौट रहे थे। उन पाँचों भाइयोंकी कान्ति सुवर्णके समान थी तथा वे सबके सब लाल रंगकी ध्वजा-पताका धारण किये हुए थे ॥ १७½ ॥

ते हेममालिनः शूराः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ १८ ॥
वर्षन्त इव जीमूताः प्रत्यदृश्यन्त दंशिताः।

सुवर्णकी मालाओंसे विभूषित वे सभी युद्धविशारद शूरवीर मेघोंके समान बाणवर्षा करते हुए कवच आदिसे सुसज्जित दिखायी देते थे ॥ १८½ ॥

आमपात्रनिकाशास्तु पाञ्चाल्यममितौजसम् ॥ १९ ॥
दत्तास्तुम्बुरुणा दिव्याः शिखण्डिनमुदावहन्।

अमित तेजस्वी पाञ्चालराजकुमार शिखण्डीको तुम्बुरुके दिये हुए मिट्टीके कच्चे बर्तनके समान रंगवाले दिव्य अश्व वहन करते थे ॥ १९½ ॥

तथा द्वादश साहस्राः पञ्चालानां महारथाः ॥ २० ॥
तेषां तु षट् सहस्राणि ये शिखण्डिनमन्वयुः।

पाञ्चालोंके जो बारह हजार महारथी युद्धमें लड़ रहे थे, उनमेंसे छः हजार इस समय शिखण्डीके पीछे चलते थे ॥

पुत्रं तु शिशुपालस्य नरसिंहस्य मारिष ॥ २१ ॥
आक्रीडन्तो वहन्ति स्म सारङ्गशबला हयाः।

आर्य! पुरुषसिंह शिशुपालके पुत्रको सारंगके समान चितकबरे अश्व खेल करते हुए-से वहन कर रहे थे ॥ २१½ ॥

धृष्टकेतुस्तु चेदीनामृषभोऽतिबलोदितः ॥ २२ ॥
काम्बोजैः शबलैरश्वैरभ्यवर्तत दुर्जयः।

चेदिदेशका श्रेष्ठ राजा अत्यन्त बलवान् दुर्जय वीर धृष्टकेतु काम्बोजदेशीय चितकबरे घोड़ोंद्वारा युद्धभूमिकी ओर लौट रहा था ॥ २२½ ॥

बृहत्क्षत्रं तु कैकेयं सुकुमारं हयोत्तमाः ॥ २३ ॥
पलालधूमसंकाशाः सैन्धवाः शीघ्रमावहन्।

केकयदेशके सुकुमार राजकुमार बृहत्क्षत्रको पुआलके धूएँके समान उज्ज्वलनील वर्णवाले सिन्धु[1]देशीय अच्छी जातिके घोड़ोंने शीघ्रतापूर्वक रणभूमिमें पहुँचाया ॥ २३½ ॥

मल्लिकाक्षाः पद्मवर्णा बाह्लिजाताः स्वलंकृताः ॥ २४ ॥
शूरं शिखण्डिनः पुत्रमृक्षदेवमुदावहन्।

शिखण्डीके शूरवीर पुत्र ऋक्षदेवको पद्म[2]के समान वर्ण और निर्मल नेत्रवाले बाह्लिक[3] देशके सजे-सजाये घोड़ोंने रणभूमिमें पहुँचाया ॥ २४½ ॥

रुक्मभाण्डप्रतिच्छन्नाः कौशेयसदृशा हयाः ॥ २५ ॥
क्षमावन्तोऽवहन् संख्ये सेनाबिन्दुमरिंदमम्।

सोनेके आभूषणों तथा कवचोंसे सुशोभित रेशमके समान श्वेतपीत रोमवाले सहनशील घोड़ोंने शत्रुओंका दमन करनेवाले सेनाबिन्दुको युद्धभूमिमें पहुँचाया ॥ २५½ ॥

युवानमवहन् युद्धे क्रौञ्चवर्णा हयोत्तमाः ॥ २६ ॥
काश्यस्याभिभुवः पुत्रं सुकुमारं महारथम्।

क्रौञ्च[4] वर्णके उत्तम घोड़ोंने काशिराज अभिभूके सुकुमार एवं युवा पुत्रको, जो महारथी वीर था, युद्धभूमिमें पहुँचाया

---

१. सिंधु देशके घोड़ोंकी गर्दन लम्बी, मूत्रेन्द्रिय मुँहतक पहुँचनेवाली, आँखें बड़ी-बड़ी, कद ऊँचा तथा रोएँ सूक्ष्म होते हैं। सिंधी घोड़े बड़े बलिष्ठ होते हैं, जैसा कि बताया गया है—

दीर्घग्रीवा मुखालम्बमेहना: पृथुलोचनाः।
महान्तस्तनुरोमाणो बलिनः सैन्धवा हयाः ॥

२. पद्मवर्णका परिचय इस प्रकार दिया गया है—

'सितरक्तसमायोगात् पद्मवर्णः प्रकीर्त्यते।

सफेद और लाल रंगोंके सम्मिश्रणसे जो रंग होता है, वह पद्मवर्ण कहलाता है।

३. बाह्लिक देशके घोड़े भी प्रायः काबुली घोड़ोंके समान ही होते हैं। उनमें विशेषता इतनी ही है कि उनका पीठभाग काम्बोजदेशीय घोड़ोंकी अपेक्षा बड़ा होता है।

जैसा कि निम्नाङ्कित वचनसे स्पष्ट है—

काम्बोजसमसंस्थाना बाह्लिजाताश्च वाजिनः।
विशेषः पुनरेतेषां दीर्घपृष्ठाङ्गतोच्यते ॥

४. जिनके रोएँ तथा केसर (गर्दनके बाल) सफेद होते हैं

श्वेतास्तु प्रतिविन्ध्यं तं कृष्णग्रीवा मनोजवाः।
यन्तुः प्रेष्यकरा राजन् राजपुत्रमुदावहन् ॥ २७॥

राजन्! मनके समान वेगशाली तथा काली गर्दनवाले श्वेतवर्णके घोड़े, जो सारथिकी आज्ञा माननेवाले थे, राजकुमार प्रतिविन्ध्यको रणमें ले गये ॥ २७ ॥

सुतसोमं तु यः सौम्यं पार्थः पुत्रमजीजनत्।
माषपुष्पसवर्णास्तमवहन् वाजिनो रणे ॥ २८॥

कुन्तीकुमार भीमसेनने जिस सौम्यरूपवाले पुत्र सुतसोमको जन्म दिया था, उसे उड़दके फूलकी भाँति सफेद और पीले रंगवाले घोड़ोंने रणक्षेत्रमें पहुँचाया ॥ २८ ॥

सहस्रसोमप्रतिमो बभूव
पुरे कुरूणामुदयेन्दुनाम्नि।
तस्मिञ्जातः सोमसंक्रन्दमध्ये
यस्मात् तस्मात् सुतसोमोऽभवत् सः ॥२९॥

कौरवोंके उदयेन्दु नामक पुर (इन्द्रप्रस्थ) में सोमाभिषव (सोमरस निकालने) के दिन सहस्रों चन्द्रमाओंके समान कान्तिमान् वह बालक उत्पन्न हुआ था, इसलिये उसका नाम सुतसोम रक्खा गया था ॥ २९ ॥

नाकुलिं तु शतानीकं शालपुष्पनिभा हयाः।
आदित्यतरुणप्रख्याः श्लाघनीयमुदावहन् ॥ ३० ॥

नकुलके स्पृहणीय पुत्र शतानीकको शालपुष्पके समान रक्त-पीत वर्णवाले और बालसूर्यके समान कान्तिमान् अश्व रणभूमिमें ले गये ॥ ३० ॥

काञ्चनापिहितैर्योक्त्रैर्मयूरग्रीवसंनिभाः ।
द्रौपदेयं नरव्याघ्रं श्रुतकर्माणमाहवे ॥ ३१ ॥

मोरकी गर्दनके समान नीले रंगवाले घोड़ोंने सुनहरी रस्सियोंसे आबद्ध हो द्रौपदीपुत्र सहदेवकुमार पुरुषसिंह श्रुतकर्माको युद्धभूमिमें पहुँचाया ॥ ३१ ॥

श्रुतकीर्तिं श्रुतनिधिं द्रौपदेयं हयोत्तमाः।
ऊहुः पार्थसमं युद्धे चाषपत्रनिभा हयाः ॥ ३२ ॥

इसी प्रकार युद्धमें अर्जुनकी समानता करनेवाले, शास्त्रज्ञानके भण्डार द्रौपदीनन्दन अर्जुनकुमार श्रुतकीर्तिको नीलकण्ठकी पाँखके समान रंगवाले उत्तम घोड़े रणक्षेत्रमें ले गये ॥

यमाहुरध्यर्धगुणं कृष्णात् पार्थाच्च संयुगे।
अभिमन्युं पिशङ्गास्तं कुमारमवहन् रणे ॥ ३३ ॥

जिसे युद्धमें श्रीकृष्ण और अर्जुनसे ड्योढ़ा बताया गया है, उस सुभद्राकुमार अभिमन्युको रणक्षेत्रमें कपिलवर्णवाले घोड़े ले गये ॥ ३३ ॥

एकस्तु धार्तराष्ट्रेभ्यः पाण्डवान् यः समाश्रितः।
तं बृहन्तो महाकाया युयुत्सुमवहन् रणे ॥ ३४ ॥
पलालकाण्डवर्णास्तु वार्धक्षेमिं तरस्विनम्।
ऊहुः सुतुमुले युद्धे हयाः कृष्णाः स्वलंकृताः ॥ ३५ ॥

आपके पुत्रोंमेंसे जो एक युयुत्सु पाण्डवोंकी शरणमें जा चुके हैं, उन्हें पुआलके डंठलके समान रंगवाले, विशालकाय एवं बृहद् अश्वोंने युद्धभूमिमें पहुँचाया। उस भयंकर युद्धमें काले रंगके सजे-सजाये घोड़ोंने वृद्धक्षेमके वेगशाली पुत्रको युद्धभूमिमें पहुँचाया ॥ ३४–३५ ॥

कुमारं शितिपादास्तु रुक्मचित्रैरुरश्छदैः।
सौचित्तिमवहन् युद्धे यन्तुः प्रेष्यकरा हयाः ॥ ३६ ॥

सुचित्तके पुत्र कुमार सत्यधृतिको सुवर्णमय विचित्र कवचोंसे सुसज्जित और काले रंगके पैरोंवाले, सारथिकी इच्छाके अनुसार चलनेवाले उत्तम घोड़ोंने युद्धक्षेत्रमें उपस्थित किया ॥ ३६ ॥

रुक्मपीठावकीर्णास्तु कौशेयसदृशा हयाः।
सुवर्णमालिनः क्षान्ताः श्रेणिमन्तमुदावहन् ॥ ३७ ॥

सुनहरी पीठसे युक्त, रेशमके समान रोमवाले, सुवर्णमालाधारी तथा सहनशक्तिसे सम्पन्न घोड़ोंने श्रेणिमान्को युद्धमें पहुँचाया ॥ ३७ ॥

रुक्ममालाधराः शूरा हेमपृष्ठाः स्वलंकृताः।
काशिराजं नरश्रेष्ठं श्लाघनीयमुदावहन् ॥ ३८ ॥

सुवर्णमाला धारण करनेवाले शूरवीर और सुवर्ण रंगके पृष्ठभागवाले सजे-सजाये घोड़े स्पृहणीय नरश्रेष्ठ काशिराजको रणभूमिमें ले गये ॥ ३८ ॥

अस्त्राणां च धनुर्वेदे ब्राह्मे वेदे च पारगम्।
तं सत्यधृतिमायान्तमरुणाः समुदावहन् ॥ ३९ ॥

अस्त्रोंके ज्ञानमें, धनुर्वेदमें तथा ब्राह्मवेदमें भी पारङ्गत पूर्वोक्त सत्यधृतिको अरुणवर्णके अश्वोंने युद्धक्षेत्रमें उपस्थित किया ॥

यः स पाञ्चालसेनानीर्द्रोणमंशमकल्पयत्।
पारावतसवर्णास्तं धृष्टद्युम्नमुदावहन् ॥ ४० ॥

जो पाञ्चालोंके सेनापति हैं, जिन्होंने द्रोणाचार्यको अपना भाग निश्चित कर रक्खा था, उन धृष्टद्युम्नको कबूतरके समान रंगवाले घोड़ोंने युद्धभूमिमें पहुँचाया ॥ ४० ॥

तमन्वयात् सत्यधृतिः सौचित्तियुद्धदुर्मदः।
श्रेणिमान् वसुदानश्च पुत्रः काश्यस्य चाभिभूः॥ ४१ ॥

उनके पीछे सुचित्तके पुत्र युद्धदुर्मद सत्यधृति, श्रेणिमान्, वसुदान और काशिराजके पुत्र अभिभू चल रहे थे ॥ ४१ ॥

युक्तैः परमकाम्बोजैर्जवनैर्हेममालिभिः।
भीषयन्तो द्विषत्सैन्यं यमवैश्रवणोपमाः ॥ ४२ ॥

त्वचा, गुह्यभाग, नेत्र, ओठ और खुर काले होते हैं, ऐसे घोड़ोंको महर्षियोंने क्रौञ्चवर्णका बताया है। यथा—

सितलोमकेसराढ्याः कृष्णत्वग्गुह्यलोचनोष्ठखुराः।
ये स्युर्मुनिभिर्वाश्च निर्दिष्टाः क्रौञ्चवर्णास्ते ॥

१–ये वसुदान २१। ५५ में मारे गये वसुदानसे भिन्न हैं। इन्हें कहीं-कहीं 'काश्य' बताया गया है। सम्भव है, ये ही काशिराज हों।

ये सबके सब यम और कुबेरके समान पराक्रमी योद्धा वेगशाली, सुवर्णमालाओंसे अलंकृत एवं सुशिक्षित, उत्तम काबुली घोड़ोंद्वारा शत्रुसेनाको भयभीत करते हुए धृष्टद्युम्न-का अनुसरण कर रहे थे ॥ ४२ ॥

प्रभद्रकास्तु काम्बोजाः षट्सहस्राण्युदायुधाः।
नानावर्णैर्हयैः श्रेष्ठैर्हेमवर्णरथध्वजाः ॥ ४३ ॥
शरव्रातैर्विधुन्वन्तः शत्रून् विततकार्मुकाः।
समानमृत्यवो भूत्वा धृष्टद्युम्नं समन्वयुः ॥ ४४ ॥

इनके सिवा छः हजार काम्बोजदेशीय प्रभद्रक नाम-वाले योद्धा हथियार उठाये, भाँति-भाँतिके श्रेष्ठ घोड़ोंसे जुते हुए सुनहरे रंगके रथ और ध्वजासे सम्पन्न हो धनुष फैलाये अपने बाण-समूहोंद्वारा शत्रुओंको भयसे कम्पित करते हुए सब समानरूपसे मृत्युको स्वीकार करनेके लिये उद्यत हो धृष्टद्युम्नके पीछे-पीछे जा रहे थे ॥ ४३–४४ ॥

बभ्रुकौशेयवर्णास्तु सुवर्णवरमालिनः।
ऊहुरम्लानमनसश्चेकितानं हयोत्तमाः ॥ ४५ ॥

नेवले तथा रेशमके समान रंगवाले (पिङ्गल-गौर वर्णके) उत्तम अश्व, जो सुन्दर सुवर्णकी मालासे विभूषित तथा प्रसन्न चित्तवाले थे, चेकितानको युद्धस्थलमें ले गये ॥ ४५ ॥

इन्द्रायुधसवर्णैस्तु कुन्तिभोजो हयोत्तमैः।
आयात् सदश्वैः पुरुजिन्मातुलः सव्यसाचिनः ॥ ४६ ॥

अर्जुनके मामा पुरुजित् कुन्तिभोज इन्द्रधनुषके समान रंगवाले उत्तम श्रेणीके सुन्दर अश्वोंद्वारा उस युद्धभूमिमें आये ॥

अन्तरिक्षसवर्णास्तु तारकाचित्रिता इव।
राजानं रोचमानं ते हयाः संख्ये समावहन् ॥ ४७ ॥

राजा रोचमानको ताराओंसे चित्रित अन्तरिक्षके समान चितकबरे घोड़ोंने युद्धभूमिमें पहुँचाया ॥ ४७ ॥

कर्बुराः शितिपादास्तु स्वर्णजालपरिच्छदाः।
जारासंधिं हयाः श्रेष्ठाः सहदेवमुदावहन् ॥ ४८ ॥

जरासंधके पुत्र सहदेवको काले पैरोंवाले चितकबरे श्रेष्ठ घोड़े, जो सोनेकी जालीसे विभूषित थे, रणभूमिमें ले गये॥४८॥

ये तु पुष्करनालस्य समवर्णा हयोत्तमाः।
जवे श्येनसमाश्चित्राः सुदामानमुदावहन् ॥ ४९ ॥

कमलके नालकी भाँति श्वेतवर्णवाले और श्येन पक्षीके समान वेगशाली उत्तम एवं विचित्र अश्व सुदामाको लेकर रणक्षेत्रमें उपस्थित हुए ॥ ४९ ॥

शशलोहितवर्णास्तु पाण्डुरोद्गतराजयः।
पाञ्चाल्यं गोपतेः पुत्रं सिंहसेनमुदावहन् ॥ ५० ॥

जिनके रंग खरगोशके समान और लोहित हैं तथा जिनके अंगोंमें श्वेतपीत रोमावलियाँ सुशोभित होती हैं, वे घोड़े उन गोपतिपुत्र पाञ्चालराजकुमार सिंहसेनको युद्धस्थलमें ले गये॥५०

पञ्चालानां नरव्याघ्रो यः ख्यातो जनमेजयः।
तस्य सर्षपपुष्पाणां तुल्यवर्णा हयोत्तमाः ॥ ५१ ॥

पाञ्चालोंमें विख्यात जो पुरुषसिंह जनमेजय हैं, उनके उत्तम घोड़े सरसोंके फूलोंके समान पीले रंगके थे ॥ ५१ ॥

माषवर्णाश्च जवना बृहन्तो हेममालिनः।
दधिपृष्ठाश्चित्रमुखाः पाञ्चाल्यमवहन् द्रुतम् ॥ ५२ ॥

उड़दके समान रंगवाले, स्वर्णमालाविभूषित, दधिके समान श्वेत पृष्ठभागसे युक्त और चितकबरे मुखवाले वेगशाली विशाल अश्व पाञ्चालराजकुमारको संग्रामभूमिमें शीघ्रतापूर्वक ले गये॥५२॥

शूराश्च भद्रकाश्चैव शरकाण्डनिभा हयाः।
पद्मकिञ्जल्कवर्णाभा दण्डधारमुदावहन् ॥ ५३ ॥

शूर, सुन्दर मस्तकवाले, सरकण्डेके पोरुओंके समान श्वेत-गौर तथा कमलके केसरकी भाँति कान्तिमान् घोड़े दण्डधारको रणभूमिमें ले गये ॥ ५३ ॥

रासभारुणवर्णाभाः पृष्ठतो मूषिकप्रभाः।
वलगन्त इव संयत्ता व्याघ्रदत्तमुदावहन् ॥ ५४ ॥

गदहेके समान मलिन एवं अरुण वर्णवाले, पृष्ठभागमें चूहेके समान श्याम-मलिन कान्ति धारण करनेवाले तथा विनीत घोड़े व्याघ्रदत्तको युद्धमें उछलते-कूदते हुए-से ले गये॥

हरयः कालकाश्चित्राश्चित्रमाल्यविभूषिताः।
सुधन्वानं नरव्याघ्रं पाञ्चाल्यं समुदावहन् ॥ ५५ ॥

काले मस्तकवाले, विचित्र वर्ण तथा विचित्र मालाओंसे विभूषित घोड़े पाञ्चालदेशीय पुरुषसिंह सुधन्वाको लेकर रणभूमिमें उपस्थित हुए ॥ ५५ ॥

इन्द्राशनिसमस्पर्शा इन्द्रगोपकसंनिभाः।
काये चित्रान्तराश्चित्राश्चित्रायुधमुदावहन् ॥ ५६ ॥

इन्द्रके वज्रके समान जिनका स्पर्श अत्यन्त दुःसह है, जो वीरबहूटीके समान लाल रंगवाले हैं, जिनके शरीरमें विचित्र चिह्न शोभा पाते हैं तथा जो देखनेमें भी अद्भुत हैं, वे घोड़े चित्रायुधको युद्धभूमिमें ले गये ॥ ५६ ॥

बिभ्रतो हेममालास्तु चक्रवाकोदरा हयाः।
कोसलाधिपतेः पुत्रं सुक्षत्रं वाजिनोऽवहन् ॥ ५७ ॥

सुवर्णकी माला धारण किये चक्रवाकके उदरके समान कुछ-कुछ श्वेतवर्णवाले घोड़े कोसलनरेशके पुत्र सुक्षत्रको युद्धमें ले गये ॥ ५७ ॥

शबलास्तु बृहन्तोऽश्वा दान्ता जाम्बूनदस्रजः।
युद्धे सत्यधृतिं क्षैमिमवहन् प्रांशवः शुभाः ॥ ५८ ॥

चितकबरे, विशालकाय, वशमें किये हुए, सुवर्णकी मालासे विभूषित तथा ऊँचे कदवाले सुन्दर अश्वोंने क्षेमकुमार सत्यधृतिको युद्धभूमिमें पहुँचाया ॥ ५८ ॥

---

१. यद्यपि सिंहसेन और व्याघ्रदत्तके मारे जानेका वर्णन (१६ । ३७ में) आ चुका है। तथापि यहाँ घोड़ोंके वर्णनके प्रसंगमें संजयने सामान्यतः सबके घोड़ोंका उल्लेख कर दिया है। मृत्युसे पहले वे दोनों वैसे ही घोड़ोंपर आरूढ हो रणभूमिमें पधारे थे।

एकवर्णेन सर्वेण ध्वजेन कवचेन च।
अश्वैश्च धनुषा चैव शुक्लैः शुक्लो न्यवर्तत ॥ ५९ ॥

जिनके ध्वज, कवच और धनुष ये सब कुछ एक ही रंगके थे, वे राजा शुक्ल शुक्लवर्णके अश्वोंद्वारा युद्धके मैदानमें लौट आये ॥ ५९ ॥

समुद्रसेनपुत्रं तु सामुद्रा रुद्रतेजसम्।
अश्वाः शशाङ्कसदृशाश्चन्द्रसेनमुदावहन् ॥ ६० ॥

समुद्रसेनके पुत्र, भयानक तेजसे युक्त चन्द्रसेनको चन्द्रमाके समान सफेद रंगवाले समुद्री घोड़ोंने युद्धभूमिमें पहुँचाया ॥ ६० ॥

नीलोत्पलसवर्णास्तु तपनीयविभूषिताः।
शैब्यं चित्ररथं संख्ये चित्रमाल्याऽवहन् हयाः ॥ ६१ ॥

नील-कमलके समान रंगवाले, सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित विचित्र मालाओंवाले अश्व विचित्र रथसे युक्त राजा शैब्यको युद्धस्थलमें ले गये ॥ ६१ ॥

कलायपुष्पवर्णास्तु श्वेतलोहितराजयः।
रथसेनं हयश्रेष्ठाः समूहुर्युद्धदुर्मदम् ॥ ६२ ॥

जिनके रंग केरावके फूलके समान हैं, जिनकी रोमराजि श्वेतलोहित वर्णकी है, ऐसे श्रेष्ठ घोड़ोंने रणदुर्मद रथसेनको संग्रामभूमिमें पहुँचाया ॥ ६२ ॥

यं तु सर्वमनुष्येभ्यः प्राहुः शूरतरं नृपम्।
तं पटच्चरहन्तारं शुकवर्णाऽवहन् हयाः ॥ ६३ ॥

जिन्हें सब मनुष्योंसे अधिक शूरवीर नरेश कहा जाता है, जो चोरों और लुटेरोंका नाश करनेवाले हैं, उन समुद्रप्रान्तके अधिपतिको तोतेके समान रंगवाले घोड़े रणभूमिमें ले गये ॥

चित्रायुधं चित्रमाल्यं चित्रवर्मायुधध्वजम्।
ऊहुः किंशुकपुष्पाणां समवर्णा हयोत्तमाः ॥ ६४ ॥

जिनके माला, कवच, अस्त्र-शस्त्र और ध्वज सब कुछ विचित्र हैं, उन राजा चित्रायुधको पलाशके फूलोंके समान लाल रंगवाले उत्तम घोड़े संग्राममें ले गये ॥ ६४ ॥

एकवर्णेन सर्वेण ध्वजेन कवचेन च।
धनुषा रथवाहैश्च नीलैर्नीलोऽभ्यवर्तत ॥ ६५ ॥

जिनके ध्वज, कवच और धनुष सब एक रंगके थे, वे राजा नील अपने रथमें जुते हुए नील रंगके घोड़ोंद्वारा रणक्षेत्रमें उपस्थित हुए ॥ ६५ ॥

नानारूपै रत्नचित्रैर्वरूथरथकार्मुकैः।
वाजिध्वजपताकाभिश्चित्रैश्चित्रोऽभ्यवर्तत ॥ ६६ ॥

जिनके रथका आवरण, रथ तथा धनुष नाना प्रकारके रत्नोंसे जटित एवं अनेक रूपवाले थे, जिनके घोड़े, ध्वजा और पताकाएँ भी विचित्र प्रकारकी थीं, वे राजा चित्र चितकबरे घोड़ोंद्वारा युद्धके मैदानमें आये ॥ ६६ ॥

१. इन्हींका वर्णन पहले श्लोक ५६ में भी आ चुका है।

ये तु पुष्करपर्णस्य तुल्यवर्णा हयोत्तमाः।
ते रोचमानस्य सुतं हेमवर्णमुदावहन् ॥ ६७ ॥

जिनके रंग कमलपत्रके समान थे, वे उत्तम घोड़े रोचमानके पुत्र हेमवर्णको रणभूमिमें ले गये ॥ ६७ ॥

योधाश्च भद्रकाराश्च शरदण्डानुदण्डयः।
श्वेताण्डाः कुक्कुटाण्डाभा दण्डकेतुं हयाऽवहन् ॥ ६८ ॥

युद्ध करनेमें समर्थ, कल्याणमय कार्य करनेवाले, सरकण्डेके समान श्वेतगौर पीठवाले, श्वेत अण्डकोशधारी तथा मुर्गीके अण्डेके समान सफेद घोड़े दण्डकेतुको युद्धस्थलमें ले गये ॥ ६८ ॥

केशवेन हते संख्ये पितर्यथ नराधिपे।
भिन्ने कपाटे पाण्ड्यानां विद्रुतेषु च बन्धुषु ॥ ६९ ॥
भीष्मादवाप्य चास्त्राणि दोणाद् रामात् कृपात् तथा।
अस्त्रैः समत्वं सम्प्राप्य रुक्मिकर्णार्जुनाच्युतैः ॥ ७० ॥
इयेष द्वारकां हन्तुं कृत्स्नां जेतुं च मेदिनीम्।
निवारितस्ततः प्राज्ञैः सुहृद्भिर्हितकाम्यया ॥ ७१ ॥
वैरानुबन्धमुत्सृज्य स्वराज्यमनुशास्ति यः।
स सागरध्वजः पाण्ड्यश्चन्द्ररश्मिनिभैर्हयैः ॥ ७२ ॥
वैडूर्यजालसंछन्नैर्वीर्यद्रविणमाश्रितः ।
दिव्यं विस्फारयंश्चापं द्रोणमभ्यद्रवद् बली ॥ ७३ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके हाथोंसे जब युद्धमें पाण्ड्यदेशके राजा तथा वर्तमान नरेशके पिता मारे गये, पाड्यराजधानीका फाटक तोड़-फोड़ दिया गया और सारे बन्धु-बान्धव भाग गये, उस समय जिसने भीष्म, द्रोण, परशुराम तथा कृपाचार्यसे अस्त्र-विद्या सीखकर उसमें रुक्मी, कर्ण, अर्जुन और श्रीकृष्णकी समानता प्राप्त कर ली; फिर द्वारकाको नष्ट करने और सारी पृथ्वीपर विजय पानेका संकल्प किया; यह देख विद्वान् सुहृदोंने हितकी कामना रखकर जिसे वैसा दुःसाहस करनेसे रोक दिया और अब जो वैरभाव छोड़कर अपने राज्यका शासन कर रहा है और जिसके रथपर सागरके चिह्नसे युक्त ध्वजा फहराती है, पराक्रमरूपी धनका आश्रय लेनेवाले उस बलवान् राजा पाण्ड्यने अपने दिव्य धनुषकी टंकार करते हुए वैदूर्यमणिकी जालीसे आच्छादित तथा चन्द्र-किरणोंके समान श्वेत घोड़ोंद्वारा द्रोणाचार्यपर धावा किया ॥

आटरूषकवर्णाभा हयाः पाण्ड्यानुयायिनाम्।
अवहन् रथमुख्यानामयुतानि चतुर्दश ॥ ७४ ॥

वासक पुष्पोंके समान रंगवाले घोड़े राजा पाण्ड्यके पीछे चलनेवाले एक लाख चालीस हजार श्रेष्ठ रथोंका भार वहन कर रहे थे ॥ ७४ ॥

नानावर्णेन रूपेण नानाकृतिमुखा हयाः।
रथचक्रध्वजं वीरं घटोत्कचमुदावहन् ॥ ७५ ॥

अनेक प्रकारके रंग-रूपसे युक्त विभिन्न आकृति और मुखवाले घोड़े रथके पहियेके चिह्नसे युक्त ध्वजावाले वीर घटोत्कचको रणभूमिमें ले गये ॥ ७५ ॥

भारतानां समेतानामुत्सृज्यैको मतानि यः।
गतो युधिष्ठिरं भक्त्या त्यक्त्वा सर्वमभीप्सितम्॥ ७६॥
लोहिताक्षं महाबाहुं बृहन्तं तमरट्टजाः।
महासत्त्वा महाकायाः सौवर्णस्यन्दने स्थितम्॥ ७७॥

जो एकत्र हुए सम्पूर्ण भरतवंशियोंके मतोंका परित्याग करके अपने सम्पूर्ण मनोरथोंको छोड़कर केवल भक्तिभावसे युधिष्ठिरके पक्षमें चले गये, उन लाल नेत्र और विशाल भुजावाले राजा बृहन्तको, जो सुवर्णमय रथपर बैठे हुए थे, अरट्टदेशके महापराक्रमी, विशालकाय और सुनहरे रंगवाले घोड़े रणभूमिमें ले गये ॥ ७६-७७ ॥

सुवर्णवर्णा धर्मज्ञमनीकस्थं युधिष्ठिरम्।
राजश्रेष्ठं हयश्रेष्ठाः सर्वतः पृष्ठतोऽन्वयुः॥ ७८॥

धर्मके ज्ञाता तथा सेनाके मध्यभागमें विद्यमान नृपश्रेष्ठ युधिष्ठिरको चारों ओरसे घेरकर सुवर्णके समान रंगवाले श्रेष्ठ घोड़े उनके साथ-साथ चल रहे थे ॥ ७८ ॥

वर्णैरुच्चावचैरन्यैः सदश्वानां प्रभद्रकाः।
संन्यवर्तन्त युद्धाय बहवो देवरूपिणः॥ ७९॥

अन्य भिन्न-भिन्न प्रकारके वर्णोंसे युक्त सुन्दर अश्वोंका आश्रय ले प्रभद्रक नामवाले देवताओं-जैसे रूपवान् बहुसंख्यक प्रभद्रकगण युद्धके लिये लौट पड़े ॥ ७९ ॥

ते यत्ता भीमसेनेन सहिताः काञ्चनध्वजाः।
प्रत्यदृश्यन्त राजेन्द्र सेन्द्रा इव दिवौकसः॥ ८०॥

राजेन्द्र! भीमसेनसहित पूरी सावधानीसे युद्धके लिये उद्यत हुए ये सुवर्णमय ध्वजवाले राजालोग इन्द्रसहित देवताओंके समान दृष्टिगोचर होते थे ॥ ८० ॥

अत्यरोचत तान् सर्वान् धृष्टद्युम्नः समागतान्।
सर्वाण्यति च सैन्यानि भारद्वाजो व्यरोचत॥ ८१॥

वहाँ एकत्र हुए उन सब राजाओंकी अपेक्षा धृष्टद्युम्नकी अधिक शोभा हो रही थी और समस्त सेनाओंसे ऊपर उठकर भरद्वाजनन्दन द्रोणाचार्य सुशोभित हो रहे थे ॥ ८१ ॥

अतीव शुशुभे तस्य ध्वजः कृष्णाजिनोत्तरः।
कमण्डलुर्महाराज जातरूपमयः शुभः॥ ८२॥

महाराज! काले मृगचर्म और कमण्डलुके चिह्नसे युक्त उनका सुवर्णमय सुन्दर ध्वज अत्यन्त शोभा पा रहा था ॥

ध्वजं तु भीमसेनस्य वैदूर्यमणिलोचनम्।
भ्राजमानं महासिंहं राजन्तं दृष्टवानहम्॥ ८३॥

वैदूर्यमणिमय नेत्रोंसे सुशोभित महासिंहके चिह्नसे युक्त भीमसेनकी चमकीली ध्वजा फहराती हुई बड़ी शोभा पा रही थी। उसे मैंने देखा था ॥ ८३ ॥

ध्वजं तु कुरुराजस्य पाण्डवस्य महौजसः।
दृष्टवानस्मि सौवर्णं सोमं ग्रहगणान्वितम्॥ ८४॥

महातेजस्वी कुरुराज पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरकी सुवर्णमयी ध्वजाको मैंने चन्द्रमा तथा ग्रहगणोंके चिह्नसे सुशोभित देखा है ॥ ८४ ॥

मृदङ्गौ चात्र विपुलौ दिव्यौ नन्दोपनन्दकौ।
यन्त्रेणाहन्यमानौ च सुस्वनौ हर्षवर्धनौ॥ ८५॥

इस ध्वजामें नन्द-उपनन्द नामक दो विशाल एवं दिव्य मृदंग लगे हुए हैं। वे यन्त्रके द्वारा बिना बजाये बजते हैं और सुन्दर शब्दका विस्तार करके सबका हर्ष बढ़ाते हैं॥

शरभं पृष्ठसौवर्णं नकुलस्य महाध्वजम्।
अपश्याम रथेऽत्युग्रं भीषयाणमवस्थितम्॥ ८६॥

नकुलकी विशाल ध्वजा शरभके चिह्नसे युक्त तथा पृष्ठभागमें सुवर्णमयी है। हमने देखा, वह अत्यन्त भयंकर रूपसे उनके रथपर फहराती और सबको भयभीत करती थी ॥ ८६ ॥

हंसस्तु राजतः श्रीमान् ध्वजे घण्टापताकवान्।
सहदेवस्य दुर्धर्षो द्विषतां शोकवर्धनः॥ ८७॥

सहदेवकी ध्वजामें घंटा और पताकाके साथ चाँदीके बने सुन्दर हंसका चिह्न था। वह दुर्धर्ष ध्वज शत्रुओंका शोक बढ़ानेवाला था ॥ ८७ ॥

पञ्चानां द्रौपदेयानां प्रतिमा ध्वजभूषणम्।
धर्ममारुतशक्राणामश्विनोश्च महात्मनोः॥ ८८॥

क्रमशः धर्म, वायु, इन्द्र तथा महात्मा अश्विनीकुमारोंकी प्रतिमाएँ पाँचों द्रौपदीपुत्रोंके ध्वजोंकी शोभा बढ़ाती थीं॥

अभिमन्योः कुमारस्य शार्ङ्गपक्षी हिरण्मयः।
रथे ध्वजवरो राजंस्तप्तचामीकरोज्ज्वलः॥ ८९॥

राजन्! कुमार अभिमन्युके रथका श्रेष्ठ ध्वज तपाये हुए सुवर्णसे निर्मित होनेके कारण अत्यन्त प्रकाशमान था। उसमें सुवर्णमय शार्ङ्गपक्षीका चिह्न था ॥ ८९ ॥

घटोत्कचस्य राजेन्द्र ध्वजे गृध्रो व्यरोचत।
अश्वाश्च कामगास्तस्य रावणस्य पुरा यथा॥ ९०॥

राजेन्द्र! राक्षस घटोत्कचकी ध्वजामें गीध शोभा पाता था। पूर्वकालमें रावणके रथकी भाँति उसके रथमें भी इच्छानुसार चलनेवाले घोड़े जुते हुए थे ॥ ९० ॥

माहेन्द्रं च धनुर्दिव्यं धर्मराजे युधिष्ठिरे।
वायव्यं भीमसेनस्य धनुर्दिव्यमभून्नृप॥ ९१॥

राजन्! धर्मराज युधिष्ठिरके पास महेन्द्रका दिया हुआ दिव्य धनुष शोभा पाता था। इसी प्रकार भीमसेनके पास वायु देवताका दिया हुआ दिव्य धनुष था ॥ ९१ ॥

त्रैलोक्यरक्षणार्थाय ब्रह्मणा सृष्टमायुधम्।
तद् दिव्यमजरं चैव फाल्गुनार्थाय वै धनुः॥ ९२॥

तीनों लोकोंकी रक्षाके लिये ब्रह्माजीने जिस आयुधकी सृष्टि की थी, वह कभी जीर्ण न होनेवाला दिव्य गाण्डीव धनुष अर्जुनको प्राप्त हुआ था ॥ ९२ ॥

वैष्णवं नकुलायाथ सहदेवाय चाश्विजम् ।
घटोत्कचाय पौलस्त्यं धनुर्दिव्यं भयानकम् ॥ ९३ ॥

नकुलको वैष्णव तथा सहदेवको अश्विनीकुमार-सम्बन्धी धनुष प्राप्त था तथा घटोत्कचके पास पौलस्त्य नामक भयानक दिव्य धनुष विद्यमान था ॥ ९३ ॥

रौद्रमाग्नेयकौबेरं याम्यं गिरिशमेव च ।
पञ्चानां द्रौपदेयानां धनूरत्नानि भारत ॥ ९४ ॥

भरतनन्दन ! पाँचों द्रौपदीपुत्रोंके दिव्य धनुषरत्न क्रमशः रुद्र, अग्नि, कुबेर, यम तथा भगवान् शङ्करसे सम्बन्ध रखनेवाले थे ॥ ९४ ॥

रौद्रं धनुर्वरं श्रेष्ठं लेभे यद् रोहिणीसुतः ।
तत् तुष्टः प्रददौ रामः सौभद्राय महात्मने ॥ ९५ ॥

रोहिणीनन्दन बलरामने जो रुद्रसम्बन्धी श्रेष्ठ धनुष प्राप्त किया था, उसे उन्होंने संतुष्ट होकर महामना सुभद्राकुमार अभिमन्युको दे दिया था ॥ ९५ ॥

एते चान्ये च बहवो ध्वजा हेमविभूषिताः ।
तत्रादृश्यन्त शूराणां द्विषतां शोकवर्धनाः ॥ ९६ ॥

ये तथा और भी बहुत-सी राजाओंकी सुवर्णभूषित ध्वजाएँ वहाँ दिखायी देती थीं, जो शत्रुओंका शोक बढ़ानेवाली थीं ॥

तदभूद् ध्वजसम्बाधमकापुरुषसेवितम् ।
द्रोणानीकं महाराज पटे चित्रमिवार्पितम् ॥ ९७ ॥

महाराज ! उस समय वीर पुरुषोंसे भरी हुई द्रोणाचार्यकी वह ध्वजविशिष्ट सेना पटमें अङ्कित किये हुए चित्रके समान प्रतीत होती थी ॥ ९७ ॥

शुश्रुवुर्नामगोत्राणि वीराणां संयुगे तदा ।
द्रोणमाद्रवतां राजन् स्वयंवर इवाहवे ॥ ९८ ॥

राजन् ! उस समय युद्धस्थलमें द्रोणाचार्यपर आक्रमण करनेवाले वीरोंके नाम और गोत्र उसी प्रकार सुनायी पड़ते थे, जैसे स्वयंवरमें सुने जाते हैं ॥ ९८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि हयध्वजादिकथने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत संशप्तकवधपर्वमें अश्व और ध्वज आदिका वर्णन विषयक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका अपना खेद प्रकाशित करते हुए युद्धके समाचार पूछना

धृतराष्ट्र उवाच

व्यथयेयुरिमे सेनां देवानामपि संजय ।
आहवे ये न्यवर्तन्त वृकोदरमुखा नृपाः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय ! भीमसेन आदि जो-जो नरेश युद्धमें लौटकर आये थे, ये तो देवताओंकी सेनाको भी पीड़ित कर सकते हैं ॥ १ ॥

सम्प्रयुक्तः किलैवायं दिष्टैर्भवति पूरुषः ।
तस्मिन्नेव च सर्वार्थाः प्रदृश्यन्ते पृथग्विधाः ॥ २ ॥

निश्चय ही यह मनुष्य दैवसे प्रेरित होता है । सबके पृथक्-पृथक् सम्पूर्ण मनोरथ दैवपर ही अवलम्बित दिखायी देते हैं ॥ २ ॥

दीर्घं विप्रोषितः कालमरण्ये जटिलोऽजिनी ।
अज्ञातश्चैव लोकस्य विजहार युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥
स एव महतीं सेनां समावर्तयदाहवे ।
किमन्यद् दैवसंयोगान्मम पुत्रस्य चाभवत् ॥ ४ ॥

जो राजा युधिष्ठिर दीर्घकालतक जटा और मृगचर्म धारण करके वनमें रहे और कुछ कालतक लोगोंसे अज्ञात रहकर भी विचरे हैं, वे ही आज रणभूमिमें विशाल सेना जुटाकर चढ़ आये हैं; इसमें मेरे तथा पुत्रोंके दैवयोगके सिवा दूसरा क्या कारण हो सकता है ? ॥ ३-४ ॥

युक्त एव हि भाग्येन ध्रुवमुत्पद्यते नरः ।
स तथाऽऽकृष्यते तेन न यथा स्वयमिच्छति ॥ ५ ॥

निश्चय ही मनुष्य भाग्यसे युक्त होकर ही जन्म ग्रहण करता है । भाग्य उसे उस अवस्थामें भी खींच ले जाता है, जिसमें वह स्वयं नहीं जाना चाहता ॥ ५ ॥

द्यूतव्यसनमासाद्य क्लेशितो हि युधिष्ठिरः ।
स पुनर्भागधेयेन सहायानुपलब्धवान् ॥ ६ ॥

हमने द्यूतके संकटमें डालकर युधिष्ठिरको भारी क्लेश पहुँचाया था, परंतु उन्होंने भाग्यसे पुनः बहुतेरे सहायकोंको प्राप्त कर लिया है ॥ ६ ॥

अद्य मे केकया लब्धाः काशिकाःकोसलाश्च ये ।
चेदयश्चापरे वङ्गा मामेव समुपाश्रिताः ॥ ७ ॥
पृथिवी भूयसी तात मम पार्थस्य नो तथा ।
इति मामब्रवीत् सूत मन्दो दुर्योधनः पुरा ॥ ८ ॥

सूत संजय ! आजसे बहुत पहलेकी बात है, मूर्ख दुर्योधनने मुझसे कहा था कि 'पिताजी ! इस समय केकय, काशी, कोसल तथा चेदिदेशके लोग मेरी सहायताके लिये आ गये हैं । दूसरे वंगवासियोंने भी मेरा ही आश्रय लिया है । तात ! इस भूमण्डलका बहुत बड़ा भाग मेरे साथ है, अर्जुनके साथ नहीं है' ॥ ७-८ ॥

तस्य सेनासमूहस्य मध्ये द्रोणः सुरक्षितः ।
निहतः पार्षतेनाजौ किमन्यद् भागधेयतः ॥ ९ ॥

उसी विशाल सेनासमूहके मध्य सुरक्षित हुए द्रोणाचार्य-

को युद्धस्थलमें धृष्टद्युम्नने मार डाला, इसमें भाग्यके सिवा दूसरा क्या कारण हो सकता है ? ॥ ९ ॥

मध्ये राज्ञां महाबाहुं सदा युद्धाभिनन्दिनम् ।
सर्वास्त्रपारगं द्रोणं कथं मृत्युरुपेयिवान् ॥ १० ॥

राजाओंके बीचमें सदा युद्धका अभिनन्दन करनेवाले सम्पूर्ण अस्त्र-विद्याके पारंगत विद्वान् महाबाहु द्रोणाचार्यको कैसे मृत्यु प्राप्त हुई ? ॥ १० ॥

समनुप्राप्तकृच्छ्रोऽहं मोहं परममागतः ।
भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ ११ ॥

मुझपर महान् संकट आ पहुँचा है । मेरी बुद्धिपर अत्यन्त मोह छा गया है । मैं भीष्म और द्रोणाचार्यको मारा गया सुनकर जीवित नहीं रह सकता ॥ ११ ॥

यन्मां क्षत्ताब्रवीत् तात प्रपश्यन् पुत्रगृद्धिनम् ।
दुर्योधनेन तत् सर्वं प्राप्तं सूत मया सह ॥ १२ ॥

तात ! मुझे अपने पुत्रोंके प्रति अत्यन्त आसक्त देखकर विदुरने मुझसे जो कुछ कहा था, मेरे साथ दुर्योधनको वह सब प्राप्त हो रहा है ॥ १२ ॥

नृशंसं तु परं नु स्यात् त्यक्त्वा दुर्योधनं यदि ।
पुत्रशेषं चिकीर्षेयं कृत्स्नं न मरणं व्रजेत् ॥ १३ ॥

यदि मैं दुर्योधनको त्यागकर शेष पुत्रोंकी रक्षा करना चाहूँ तो यह अत्यन्त निष्ठुरताका कार्य अवश्य होगा, परंतु मेरे सारे पुत्रोंकी तथा अन्य सब लोगोंकी भी मृत्यु नहीं होगी ॥ १३ ॥

यो हि धर्मं परित्यज्य भवत्यर्थपरो नरः ।
सोऽस्माच्च हीयते लोकात् क्षुद्रभावं च गच्छति ॥१४॥

जो मनुष्य धर्मका परित्याग करके अर्थपरायण हो जाता है, वह इस लोकसे (लौकिक स्वार्थसे) भ्रष्ट हो जाता है और नीच गतिको प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

अद्य चाप्यस्य राष्ट्रस्य हतोत्साहस्य संजय ।
अवशेषं न पश्यामि ककुदे मृदिते सति ॥ १५ ॥

संजय ! आज इस राष्ट्रका उत्साह भंग हो गया । प्रधानके मारे जानेसे अब मुझे किसीका जीवन शेष रहता नहीं दिखायी देता ॥ १५ ॥

कथं स्यादवशेषो हि धुर्ययोरभ्यतीतयोः ।
यौ नित्यमुपजीवामः क्षमिणौ पुरुषर्षभौ ॥ १६ ॥

हमलोग सदा जिन सर्वसमर्थ पुरुषसिंहोंका आश्रय लेकर जीवन धारण करते थे, उन धुरंधर वीरोंके इस लोकसे चले जानेपर अब हमारी सेनाका कोई भी सैनिक कैसे जीवित बच सकता है ॥ १६ ॥

व्यक्तमेव च मे शंस यथा युद्धमवर्तत ।
केऽयुध्यन् के व्यपाकुर्वन् के क्षुद्राः प्राद्रवन् भयात् ॥१७॥

संजय ! वह युद्ध जिस प्रकार हुआ था, सब साफ-साफ मुझसे बताओ । कौन-कौन वीर युद्ध करते थे, कौन किसको परास्त करते थे और कौन-कौनसे क्षुद्र सैनिक भयके कारण युद्धके मैदानसे भाग गये थे ॥ १७ ॥

धनंजयं च मे शंस यद् यच्चक्रे रथर्षभः ।
तस्माद् भयं नो भूयिष्ठं भ्रातृव्याच्च वृकोदरात् ॥१८॥

धनंजय अर्जुनके विषयमें भी मुझे बताओ । रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने क्या-क्या किया था । मुझे उनसे तथा शत्रुस्वरूप भीमसेनसे अधिक भय लगता है ॥ १८ ॥

यथाऽऽसीच्च निवृत्तेषु पाण्डवेयेषु संजय ।
मम सैन्यावशेषस्य संनिपातः सुदारुणः ॥ १९ ॥

संजय ! पाण्डव-सैनिकोंके पुनः युद्धभूमिमें लौट आनेपर मेरी शेष सेनाके साथ जिस प्रकार उनका अत्यन्त भयंकर संग्राम हुआ था, वह कहो ॥ १९ ॥

कथं च वो मनस्तात निवृत्तेष्वभवत् तदा ।
मामकानां च ये शूराः के कांस्तत्र न्यवारयन् ॥ २० ॥

तात ! पाण्डव-सैनिकोंके लौटनेपर तुमलोगोंके मनकी कैसी दशा हुई ? मेरे पुत्रोंकी सेनामें जो शूरवीर थे, उनमेंसे किन लोगोंने शत्रुपक्षके किन वीरोंको रोका था ? ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत संशप्तकवधपर्वमें धृतराष्ट्रवाक्यविषयक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

कौरव-पाण्डव सैनिकोंके द्वन्द्व-युद्ध

संजय उवाच

महद् भैरवमासीन्नः संनिवृत्तेषु पाण्डुषु ।
दृष्ट्वा द्रोणं छाद्यमानं तैर्भास्करमिवाम्बुदैः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! पाण्डव-सैनिकोंके लौटनेपर जैसे बादलोंसे सूर्य ढक जाते हैं, उसी प्रकार उनके बाणोंसे द्रोणाचार्य आच्छादित होने लगे । यह देखकर हमलोगोंने उनके साथ बड़ा भयंकर संग्राम किया ॥ १ ॥

तैश्चोद्धूतं रजस्तीव्रमवचक्रे चमूं तव ।
ततो हतममंस्याम द्रोणं दृष्टिपथे हते ॥ २ ॥

उन सैनिकोंद्वारा उड़ायी हुई तीव्र धूलने आपकी सारी सेनाको ढक दिया । फिर तो हमारी दृष्टिका मार्ग अवरुद्ध हो गया और हमने समझ लिया कि द्रोण मारे गये ॥ २ ॥

तांस्तु शूरान् महेष्वासान् क्रूरं कर्म चिकीर्षतः ।
दृष्ट्वा दुर्योधनस्तूर्णं स्वसैन्यं समचूचुदत् ॥ ३ ॥

उन महाधनुर्धर-शूरवीरोंको क्रूर कर्म करनेके लिये उत्सुक देख दुर्योधनने तुरंत ही अपनी सेनाको इस प्रकार आज्ञा दी—॥

यथाशक्ति यथोत्साहं यथासत्त्वं नराधिपाः ।
वारयध्वं यथायोगं पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ ४ ॥

'नरेश्वरो ! तुम सब लोग अपनी शक्ति, उत्साह और बलके अनुसार यथोचित उपायद्वारा पाण्डवोंकी सेनाको रोको'॥

ततो दुर्मर्षणो भीममभ्यगच्छत् सुतस्तव ।
आराद् दृष्ट्वा किरन् बाणैर्जिघृक्षुस्तस्य जीवितम्॥ ५ ॥

तब आपके पुत्र दुर्मर्षणने भीमसेनको अपने पास ही देखकर उनके प्राण लेनेकी इच्छासे बाणोंकी वर्षा करते हुए उनपर आक्रमण किया ॥ ५ ॥

तं बाणैरवतस्तार क्रुद्धो मृत्युरिवाहवे ।
तं च भीमोऽतुदद् बाणैस्तदाऽऽसीत् तुमुलं महत्॥६॥

उसने क्रोधमें भरी हुई मृत्युके समान युद्धस्थलमें बाणों-द्वारा भीमसेनको ढक दिया । साथ ही भीमसेनने भी अपने बाणोंद्वारा उसे गहरी चोट पहुँचायी । इस प्रकार उन दोनों-में महाभयंकर युद्ध होने लगा ॥ ६ ॥

त ईश्वरसमादिष्टाः प्राज्ञाः शूराः प्रहारिणः ।
राज्यं मृत्युभयं त्यक्त्वा प्रत्यतिष्ठन् परान् युधि॥७॥

अपने स्वामी राजा दुर्योधनकी आज्ञा पाकर वे प्रहार करनेमें कुशल बुद्धिमान् शूरवीर राज्यको और मृत्युके भयको छोड़कर युद्धस्थलमें शत्रुओंका सामना करने लगे ॥ ७ ॥

कृतवर्मा शिनेः पौत्रं द्रोणं प्रेप्सुं विशाम्पते ।
पर्यवारयदायान्तं शूरं समरशोभिनम् ॥ ८ ॥

प्रजानाथ ! द्रोणको अपने वशमें करनेकी इच्छासे आगे बढ़ते हुए संग्राममें शोभा पानेवाले शूरवीर सात्यकिको कृतवर्माने रोक दिया ॥ ८ ॥

तं शैनेयः शरव्रातैः क्रुद्धः क्रुद्धमवारयत् ।
कृतवर्मा च शैनेयं मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ९ ॥

तब क्रोधमें भरे हुए सात्यकिने कुपित हुए कृतवर्माको अपने बाणसमूहोंद्वारा आगे बढ़नेसे रोका और कृतवर्माने सात्यकिको। ठीक उसी तरह, जैसे एक मतवाला हाथी दूसरे मतवाले गजराजको रोक देता है ॥ ९ ॥

सैन्धवः क्षत्रवर्माणमायान्तं निशितैः शरैः ।
उग्रधन्वा महेष्वासं यत्तो द्रोणादवारयत् ॥ १० ॥

भयंकर धनुष धारण करनेवाले सिंधुराज जयद्रथने महा-धनुर्धर क्षत्रवर्माको अपने तीखे बाणोंद्वारा प्रयत्नपूर्वक द्रोणा-चार्यकी ओर आनेसे रोक दिया ॥ १० ॥

क्षत्रवर्मा सिन्धुपतेश्छित्त्वा केतनकार्मुके ।
नाराचैर्दशभिः क्रुद्धः सर्वमर्मस्वताडयत् ॥ ११ ॥

क्षत्रवर्माने कुपित हो सिंधुराज जयद्रथके ध्वज और धनुष काटकर दस नाराचोंद्वारा उसके सभी मर्मस्थानोंमें चोट पहुँचायी ॥ ११ ॥

अथान्यद् धनुरादाय सैन्धवः कृतहस्तवत् ।
विव्याध क्षत्रवर्माणं रणे सर्वायसैः शरैः ॥ १२ ॥

तब सिंधुराजने दूसरा धनुष लेकर सिद्धहस्त पुरुषकी भाँति सम्पूर्णतः लोहेके बने हुए बाणोंद्वारा रणक्षेत्रमें क्षत्रवर्मा-को घायल कर दिया ॥ १२ ॥

युयुत्सुं पाण्डवार्थाय यतमानं महारथम् ।
सुबाहुर्भारतं शूरं यत्तो द्रोणादवारयत् ॥ १३ ॥

पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरके हितके लिये प्रयत्न करनेवाले भरतवंशी महारथी शूरवीर युयुत्सुको सुबाहुने प्रयत्नपूर्वक द्रोणाचार्यकी ओर आनेसे रोक दिया ॥ १३ ॥

सुबाहोः सधनुर्बाणावस्यतः परिघोपमौ ।
युयुत्सुः शितपीताभ्यां क्षुराभ्यामच्छिनद् भुजौ॥१४॥

तब युयुत्सुने प्रहार करते हुए सुबाहुकी परिघके समान मोटी एवं धनुष बाणोंसे युक्त दोनों भुजाओंको अपने तीखे और पानीदार दो छुरों-द्वारा काट गिराया ॥ १४ ॥

राजानं पाण्डवश्रेष्ठं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।
वेलेव सागरं क्षुब्धं मद्रराट् समवारयत् ॥ १५ ॥

पाण्डवश्रेष्ठ धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरको मद्रराज शल्यने उसी प्रकार रोक दिया, जैसे क्षुब्ध महासागरको तटकी भूमि रोक देती है ॥ १५ ॥

तं धर्मराजो बहुभिर्मर्मभिद्भिरवाकिरत् ।
मद्रेशस्तं चतुःषष्ट्या शरैर्विद्ध्वानदद् भृशम् ॥१६॥

धर्मराज युधिष्ठिरने शल्यपर बहुत-से मर्मभेदी बाणोंकी वर्षा की । तब मद्रराज भी चौंसठ बाणोंद्वारा युधिष्ठिरको घायल करके जोर-जोरसे गर्जना करने लगे ॥ १६ ॥

तस्य नानदतः केतुमुच्चकर्त च कार्मुकम् ।
क्षुराभ्यां पाण्डवो ज्येष्ठस्तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ १७ ॥

तब ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिरने दो छुरोंद्वारा गर्जना करते हुए राजा शल्यके ध्वज और धनुषको काट डाला । यह देख सब लोग हर्षसे कोलाहल कर उठे ॥ १७ ॥

तथैव राजा बाह्लीको राजानं द्रुपदं शरैः ।
आद्रवन्तं सहानीकः सहानीकं न्यवारयत् ॥ १८ ॥

इसी प्रकार अपनी सेनासहित राजा बाह्लिकने सैनिकोंके साथ धावा करते हुए राजा द्रुपदको अपने बाणोंद्वारा रोक दिया ॥

तद् युद्धमभवद् घोरं वृद्धयोः सहसेनयोः ।
यथा महायूथपयोर्द्विपयोः सम्प्रभिन्नयोः ॥ १९ ॥

जैसे मदकी धारा बहानेवाले दो विशाल गजयूथपतियों-में लड़ाई होती है, उसी प्रकार सेनासहित उन दोनों वृद्ध नरेशोंमें बड़ा भयंकर युद्ध होने लगा ॥ १९ ॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ विराटं मत्स्यमार्च्छताम् ।
सहसैन्यौ सहानीकं यथेन्द्राग्नी पुरा बलिम् ॥ २० ॥

अवन्तीके राजकुमार विन्द और अनुविन्दने अपनी सेनाओंको साथ लेकर विशाल वाहिनीसहित मत्स्यराज विराटपर उसी प्रकार धावा किया, जैसे पूर्वकालमें अग्नि और इन्द्रने राजा बलिपर आक्रमण किया था ॥ २० ॥

तदुत्पिञ्जलकं युद्धमासीद् देवासुरोपमम्।
मत्स्यानां केकयैः सार्धमभीताश्वरथद्विपम् ॥ २१ ॥

उस समय मत्स्यदेशीय सैनिकोंका केकयदेशीय योद्धाओंके साथ देवासुर-संग्रामके समान अत्यन्त घमासान युद्ध हुआ। उसमें हाथी, घोड़े और रथ सभी निर्भय होकर एक-दूसरेसे लड़ रहे थे ॥ २१ ॥

नाकुलिं तु शतानीकं भूतकर्मा सभापतिः।
अस्यन्तमिषुजालानि यान्तं द्रोणादवारयत् ॥ २२ ॥

नकुलका पुत्र शतानीक बाण-समूहोंकी वर्षा करता हुआ द्रोणाचार्यकी ओर बढ़ रहा था। उस समय भूतकर्मा सभापतिने उसे द्रोणकी ओर आनेसे रोक दिया ॥ २२ ॥

ततो नकुलदायादस्त्रिभिर्भल्लैः सुसंशितैः।
चक्रे विबाहुशिरसं भूतकर्माणमाहवे ॥ २३ ॥

तदनन्तर नकुलके पुत्रने तीन तीखे भल्लोंद्वारा युद्धमें भूतकर्माकी बाहु तथा मस्तक काट डाले ॥ २३ ॥

सुतसोमं तु विक्रान्तमायान्तं तं शरौघिणम्।
द्रोणायाभिमुखं वीरं विविंशतिरवारयत् ॥ २४ ॥

पराक्रमी वीर सुतसोम बाण-समूहोंकी बौछार करता हुआ द्रोणाचार्यके सम्मुख आ रहा था। उसे विविंशतिने रोक दिया ॥ २४ ॥

सुतसोमस्तु संक्रुद्धः स्वपितृव्यमजिह्मगैः।
विविंशतिं शरैर्भित्त्वा नाभ्यवर्तत दंशितः ॥ २५ ॥

तब सुतसोमने अत्यन्त कुपित हो अपने चाचा विविंशतिको सीधे जानेवाले बाणोंद्वारा घायल कर दिया और स्वयं एक वीर पुरुषकी भाँति कवच बाँधे सामने खड़ा रहा ॥

अथ भीमरथः शाल्वमाशुगैरायसैः शितैः।
षड्भिः साश्वनियन्तारमनयद् यमसादनम् ॥ २६ ॥

तदनन्तर भीमरथने छः तीखे लोहमय शीघ्रगामी बाणोंद्वारा सारथिसहित शाल्वको यमलोक पहुँचा दिया ॥ २६ ॥

श्रुतकर्माणमायान्तं मयूरसदृशैर्हयैः।
चैत्रसेनिर्महाराज तव पौत्रं न्यवारयत् ॥ २७ ॥

महाराज ! श्रुतकर्मा मोरके समान रंगवाले घोड़ोंपर आ रहा था। उस आपके पौत्र श्रुतकर्माको चित्रसेनके पुत्रने रोका ॥ २७ ॥

तौ पौत्रौ तव दुर्धर्षौ परस्परवधैषिणौ।
पितॄणामर्थसिद्ध्यर्थे चक्रतुर्युद्धमुत्तमम् ॥ २८ ॥

आपके दोनों दुर्जय पौत्र एक-दूसरेके वधकी इच्छा रखकर अपने पितृगणोंका मनोरथ सिद्ध करनेके लिये अच्छी तरह युद्ध करने लगे ॥ २८ ॥

तिष्ठन्तमग्रे तं दृष्ट्वा प्रतिविन्ध्यं महाहवे।
द्रौणिर्मानं पितुः कुर्वन् मार्गणैः समवारयत् ॥ २९ ॥

उस महासमरमें प्रतिविन्ध्यको द्रोणाचार्यके सामने खड़ा देख पिताका सम्मान करते हुए अश्वत्थामाने बाणोंद्वारा रोक दिया ॥ २९ ॥

तं क्रुद्धं प्रतिविव्याध प्रतिविन्ध्यः शितैः शरैः।
सिंहलाङ्गूललक्ष्माणं पितुरर्थे व्यवस्थितम् ॥ ३० ॥

जिसके ध्वजमें सिंहके पूँछका चिह्न था और जो पिताकी इष्ट सिद्धिके लिये खड़ा था, उस क्रोधमें भरे हुए अश्वत्थामाको प्रतिविन्ध्यने अपने पैने बाणोंद्वारा बींध डाला ॥ ३० ॥

प्रवपन्निव बीजानि बीजकाले नरर्षभ।
द्रौणायनिर्द्रौपदेयं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३१ ॥

नरश्रेष्ठ ! तब द्रोणपुत्र भी द्रौपदीकुमार प्रतिविन्ध्यपर बाणोंकी वर्षा करने लगा, मानो किसान बीज बोनेके समयपर खेतमें बीज डाल रहा हो ॥ ३१ ॥

आर्जुनिं श्रुतकीर्तिं तु द्रौपदेयं महारथम्।
द्रोणायाभिमुखं यान्तं दौःशासनिरवारयत् ॥ ३२ ॥

तदनन्तर अर्जुन-पुत्र द्रौपदीकुमार महारथी श्रुतकीर्तिको द्रोणाचार्यके सामने जाते देख दुःशासनके पुत्रने रोका ॥३२॥

तस्य कृष्णसमः कार्ष्णिस्त्रिभिर्भल्लैः सुसंशितैः।
धनुर्ध्वजं च सूतं च छित्त्वा द्रोणान्तिकं ययौ॥ ३३ ॥

तब अर्जुनके समान पराक्रमी अर्जुनकुमार तीन अत्यन्त तीखे भल्लोंद्वारा दुःशासनपुत्रके धनुष, ध्वज और सारथिके टुकड़े-टुकड़े करके द्रोणाचार्यके समीप जा पहुँचा ॥ ३३ ॥

यस्तु शूरतमो राजन्नुभयोः सेनयोर्मतः।
तं पटच्चरहन्तारं लक्ष्मणः समवारयत् ॥ ३४ ॥

राजन् ! जो दोनों सेनाओंमें सबसे अधिक शूरवीर माना जाता था, डाकू और लुटेरोंको मारनेवाले उस समुद्री प्रान्तोंके अधिपतिको दुर्योधनपुत्र लक्ष्मणने रोका ॥ ३४ ॥

स लक्ष्मणस्येष्वसनं छित्त्वा लक्ष्म च भारत।
लक्ष्मणे शरजालानि विसृजन् बह्वशोभत ॥ ३५ ॥

भारत ! तब वह लक्ष्मणके धनुष और ध्वजचिह्नको काटकर उसके ऊपर बाणसमूहोंकी वर्षा करता हुआ बहुत शोभा पाने लगा ॥ ३५ ॥

विकर्णस्तु महाप्राज्ञो याज्ञसेनिं शिखण्डिनम्।
पर्यवारयदायान्तं युवानं समरे युवा ॥ ३६ ॥

परम बुद्धिमान् नवयुवक विकर्णने युवावस्थासे सम्पन्न द्रुपदकुमार शिखण्डीको युद्धमें आगे बढ़नेसे रोका ॥ ३६ ॥

ततस्तमिषुजालेन याज्ञसेनिः समावृणोत् ।
विधूय तद् बाणजालं बभौ तव सुतो बली ॥ ३७ ॥

तब शिखण्डीने अपने बाणसमूहसे विकर्णको आच्छादित कर दिया । आपका बलवान् पुत्र उस सायक-जालको छिन्न-भिन्न करके बड़ी शोभा पाने लगा ॥ ३७ ॥

अङ्गदोऽभिमुखं वीरमुत्तमौजसमाहवे ।
द्रोणायाभिमुखं यान्तं शरौघेण न्यवारयत् ॥ ३८ ॥

अङ्गदने वीर उत्तमौजाको अपने और द्रोणाचार्यके सामने आते देख युद्धस्थलमें अपने बाण-समुदायकी वर्षासे रोक दिया ॥

स सम्प्रहारस्तुमुलस्तयोः पुरुषसिंहयोः ।
सैनिकानां च सर्वेषां तयोश्च प्रीतिवर्धनः ॥ ३९ ॥

उन दोनों पुरुषसिंहोंमें बड़ा भयंकर युद्ध छिड़ गया । वह संग्राम समस्त सैनिकोंकी तथा उन दोनोंकी भी प्रसन्नताको बढ़ा रहा था ॥ ३९ ॥

दुर्मुखस्तु महेष्वासो वीरं पुरुजितं बली ।
द्रोणायाभिमुखं यान्तं वत्सदन्तैरवारयत् ॥ ४० ॥

महाधनुर्धर बलवान् दुर्मुखने द्रोणाचार्यके सामने जाते हुए वीर पुरुजित्को वत्सदन्तोंके प्रहारद्वारा रोक दिया ॥

स दुर्मुखं भ्रुवोर्मध्ये नाराचेनाभ्यताडयत् ।
तस्य तद् विबभौ वक्त्रं सनालमिव पङ्कजम् ॥ ४१ ॥

तब पुरुजित्ने एक नाराचद्वारा दुर्मुखपर उसकी दोनों भौंहोंके मध्यभागमें प्रहार किया । उस समय दुर्मुखका मुख मृणालयुक्त कमलके समान सुशोभित हुआ ॥ ४१ ॥

कर्णस्तु केकयान् भ्रातॄन् पञ्च लोहितकध्वजान् ।
द्रोणायाभिमुखं यातान्शरवर्षैरवारयत् ॥ ४२ ॥

कर्णने लाल रंगकी ध्वजासे सुशोभित पाँचों भाई केकय-राजकुमारोंको द्रोणाचार्यके सम्मुख जाते देख उन्हें बाणोंकी वर्षासे रोक दिया ॥ ४२ ॥

ते चैनं भृशसंतप्ताः शरवर्षैरवाकिरन् ।
स च तांश्छादयामास शरजालैः पुनः पुनः ॥ ४३ ॥

तब वे अत्यन्त संतप्त हो कर्णपर बाणोंकी झड़ी लगाने लगे और कर्णने भी अपने बाणोंके समूहसे उन्हें बार-बार आच्छादित कर दिया ॥ ४३ ॥

नैव कर्णो न ते पञ्च ददृशुर्बाणसंवृताः ।
साश्वसूतध्वजरथाः परस्परशराचिताः ॥ ४४ ॥

कर्ण तथा वे पाँचों राजकुमार एक-दूसरेके बरसाये हुए बाण-समूहोंसे व्याप्त एवं आच्छादित होकर घोड़े, सारथि, ध्वज तथा रथसहित अदृश्य हो गये थे ॥ ४४ ॥

पुत्रास्ते दुर्जयश्चैव जयश्च विजयश्च ह ।
नीलकाश्यजयत्सेनांस्त्रयस्त्रीन् प्रत्यवारयन् ॥ ४५ ॥

राजन् ! आपके तीन पुत्र दुर्जय, जय और विजयने नील, काश्य तथा जयत्सेन—इन तीनोंको रोक दिया ॥ ४५ ॥

तद् युद्धमभवद् घोरमीक्षितृप्रीतिवर्धनम् ।
सिंहव्याघ्रतरक्षूणां यथर्क्षमहिषर्षभैः ॥ ४६ ॥

उन सबमें भयंकर युद्ध छिड़ गया, जो सिंह, व्याघ्र और तेंदुओं (जरखों) का रीछों, भैंसों तथा साँड़ोंके साथ होनेवाले युद्धके समान दर्शकोंके हर्षको बढ़ानेवाला था ॥ ४६ ॥

क्षेमधूर्तिबृहन्तौ तु भ्रातरौ सात्वतं युधि ।
द्रोणायाभिमुखं यान्तं शरैस्तीक्ष्णैस्ततक्षतुः ॥ ४७ ॥

क्षेमधूर्ति और बृहन्त—ये दोनों भाई युद्धमें द्रोणाचार्यके सामने जाते हुए सात्यकिको अपने पैने बाणोंद्वारा घायल करने लगे ॥ ॥ ४७ ॥

तयोस्तस्य च तद् युद्धमत्यद्भुतमिवाभवत् ।
सिंहस्य द्विपमुख्याभ्यां प्रभिन्नाभ्यां यथा वने ॥ ४८ ॥

जैसे वनमें दो मदस्रावी गजराजोंके साथ एक सिंहका युद्ध हो रहा हो, उसी प्रकार उन दोनों भाइयों तथा सात्यकिका युद्ध अत्यन्त अद्भुत-सा हो रहा था ॥ ४८ ॥

राजानं तु तथाम्बष्ठमेकं युद्धाभिनन्दिनम् ।
चेदिराजः शरानस्यन् क्रुद्धो द्रोणादवारयत् ॥ ४९ ॥

युद्धका अभिनन्दन करनेवाले राजा अम्बष्ठको क्रोधमें भरे हुए चेदिराजने बाणोंकी वर्षा करते हुए द्रोणाचार्यके पास आनेसे रोक दिया ॥ ४९ ॥

ततोऽम्बष्ठोऽस्थिभेदिन्या निरभिद्यच्छलाकया ।
स त्यक्त्वा सशरं चापं रथाद् भूमिमुपागमत् ॥ ५० ॥

तब अम्बष्ठने हड्डियोंको छेद देनेवाली शलाकाद्वारा चेदिराजको विदीर्ण कर दिया । वे बाणसहित धनुषको त्यागकर रथसे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ५० ॥

वार्धक्षेमिं तु वार्ष्णेयं कृपः शारद्वतः शरैः ।
अक्षुद्रः क्षुद्रकैर्द्रोणात् क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ५१ ॥

शरद्वान्के पुत्र श्रेष्ठ कृपाचार्यने क्रोधमें भरे हुए वृष्णिवंशी वार्धक्षेमिको अपने बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यके पास आनेसे रोका ॥

युध्यन्तौ कृपवार्ष्णेयौ येऽपश्यंश्चित्रयोधिनौ ।
ते युद्धासक्तमनसो नान्यां बुबुधिरे क्रियाम् ॥ ५२ ॥

कृपाचार्य और वृष्णिवंशी वीर वार्धक्षेमि विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले थे । जिन लोगोंने उन दोनोंको युद्ध करते देखा, उनका मन उसीमें आसक्त हो गया । उन्हें दूसरी किसी क्रियाका भान नहीं रहा ॥ ५२ ॥

सौमदत्तिस्तु राजानं मणिमन्तमतन्द्रितम् ।
पर्यवारयदायान्तं यशो द्रोणस्य वर्धयन् ॥ ५३ ॥

सोमदत्तकुमार भूरिश्रवाने द्रोणाचार्यका यश बढ़ाते हुए उनपर आक्रमण करनेवाले आलस्यरहित राजा मणिमान्को रोक दिया ॥ ५३ ॥

स सौमदत्तेस्त्वरितश्चित्रेष्वसनकेतने ।
पुनः पताकां सूतं च छत्रं चापातयद् रथात् ॥ ५४ ॥

तब उन्होंने तुरंत ही भूरिश्रवाके विचित्र धनुष, ध्वजा-पताका, सारथि और छत्रको रथसे काट गिराया ॥ ५४ ॥

अथाप्लुत्य रथात् तूर्णं यूपकेतुरमित्रहा ।
साश्वसूतध्वजरथं तं चकर्त वरासिना ॥ ५५ ॥

यह देख यूपके चिह्नसे सुशोभित ध्वजवाले शत्रुसूदन भूरिश्रवाने तुरंत ही रथसे कूदकर लंबी तलवारसे घोड़े, सारथि, ध्वज एवं रथसहित राजा मणिमान्‌को काट डाला ॥

रथं च स्वं समास्थाय धनुरादाय चापरम् ।
स्वयं यच्छन् हयान् राजन् व्यधमत् पाण्डवीं चमूम् ५६

राजन् ! तत्पश्चात् भूरिश्रवा अपने रथपर बैठकर स्वयं ही घोड़ोंको काबूमें रखता हुआ दूसरा धनुष हाथमें ले पाण्डव-सेनाका संहार करने लगा ॥ ५६ ॥

पाण्ड्यमिन्द्रमिवायान्तमसुरान् प्रति दुर्जयम् ।
समर्थः सायकौघेन वृषसेनो न्यवारयत् ॥ ५७ ॥

जैसे इन्द्र असुरोंपर आक्रमण करते हैं, उसी प्रकार द्रोणाचार्यपर धावा करनेवाले दुर्जय वीर पाण्ड्यको शक्तिशाली वीर वृषसेनने अपने सायक-समूहसे रोक दिया ॥ ५७ ॥

गदापरिघनिस्त्रिंशपट्टिशायोघनोपलैः ।
कडङ्गरैर्भुशुण्डीभिः प्रासैस्तोमरसायकैः ॥ ५८ ॥
मुसलैर्मुद्गरैश्चक्रैर्भिन्दिपालपरश्वधैः ।
पांसुवाताग्निसलिलैर्भस्मलोष्टतृणद्रुमैः ॥ ५९ ॥
आतुदन् प्ररुजन् भञ्जन् निघ्नन् विद्रावयन् क्षिपन् ।
सेनां विभीषयन्नायाद् द्रौणिप्रेप्सुर्घटोत्कचः ॥ ६० ॥

तत्पश्चात् गदा, परिघ, खड्ग, पट्टिश, लोहेके घन, पत्थर, कडङ्गर, भुशुण्डि, प्रास, तोमर, सायक, मुसल, मुद्गर, चक्र, भिन्दिपाल, फरसा, धूल, हवा, अग्नि, जल, भस्म, मिट्टीके ढेले, तिनके तथा वृक्षोंसे कौरव-सेनाको पीडा देता, शत्रुओं-का अङ्ग-भङ्ग करता, तोड़ता-फोड़ता, मारता-भगाता, फेंकता एवं सारी सेनाको भयभीत करता हुआ घटोत्कच वहाँ द्रोणाचार्यको पकड़नेके लिये आया ॥ ५८—६० ॥

तं तु नानाप्रहरणैर्नानायुद्धविशेषणैः ।
राक्षसं राक्षसः क्रुद्धः समाजघ्ने ह्यलम्बुषः ॥ ६१ ॥

उस समय उस राक्षसको क्रोधमें भरे हुए अलम्बुष नामक राक्षसने ही अनेकानेक युद्धोंमें उपयोगी नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥ ६१ ॥

तयोस्तदभवद् युद्धं रक्षोग्रामणिमुख्ययोः ।
तादृग् यादृक् पुरावृत्तं शम्बरामरराजयोः ॥ ६२ ॥

उन दोनों श्रेष्ठ राक्षसयूथपतियोंमें वैसा ही युद्ध हुआ, जैसा कि पूर्वकालमें शम्बरासुर तथा देवराज इन्द्रमें हुआ था ॥ ६२ ॥

(भारद्वाजस्तु सेनान्यं धृष्टद्युम्नं महारथम् ।
तमेव राजन्नायान्तमतिक्रम्य परान् रिपून् ॥
महता शरजालेन किरन्तं शत्रुवाहिनीम् ।
अवारयन्महाराज सामात्यं सपदानुगम् ॥

महाराज ! भरद्वाजनन्दन द्रोणाचार्यने देखा कि पाण्डव-सेनापति महारथी धृष्टद्युम्न दूसरे शत्रुओंको लाँघकर अपने मन्त्रियों तथा सेवकोंसहित मेरी ही ओर आ रहा है और शत्रुसेनापर बाणोंका भारी जाल-सा बिखेर रहा है, तब उन्होंने स्वयं आगे बढ़कर उसे रोका ॥

अथान्ये पार्थिवा राजन् बहुत्वान्नातिकीर्तिताः ।
समसज्जन्त सर्वे ते यथायोगं यथाबलम् ॥

राजन् ! इसी प्रकार अन्य सब राजा भी अपने बल और साधनोंके अनुसार शत्रुओंके साथ भिड़ गये । उनकी संख्या बहुत होनेके कारण सबके नामोंका उल्लेख नहीं किया गया है ॥

हयैर्हयास्तथा जग्मुः कुञ्जरैरेव कुञ्जराः ।
पदातयः पदातीभी रथैरेव महारथाः ॥
अकुर्वन्नार्यकर्माणि तत्रैव पुरुषर्षभाः ।
कुलवीर्यानुरूपाणि संसृष्टाश्च परस्परम् ॥)

घोड़ोंसे घोड़े, हाथियोंसे हाथी, पैदलोंसे पैदल तथा बड़े-बड़े रथोंसे महान् रथ जूझ रहे थे । उस युद्धमें पुरुष-शिरोमणि वीर अपने कुल और पराक्रमके अनुरूप एक-दूसरेसे भिड़कर आर्यजनोचित कर्म कर रहे थे ॥

एवं द्वन्द्वशतान्यासन् रथवारणवाजिनाम् ।
पदातीनां च भद्रं ते तव तेषां च संकुले ॥ ६३ ॥

महाराज ! आपका कल्याण हो । इस प्रकार आपके और पाण्डवोंके उस भयंकर संग्राममें रथ, हाथी, घोड़ों और पैदल सैनिकोंके सैकड़ों द्वन्द्व आपसमें युद्ध कर रहे थे ॥ ६३ ॥

नैतादृशो दृष्टपूर्वः संग्रामो नैव च श्रुतः ।
द्रोणस्याभावभावे तु प्रसक्तानां यथाभवत् ॥ ६४ ॥

द्रोणाचार्यके वध और संरक्षणमें लगे हुए पाण्डव तथा कौरव सैनिकोंमें जैसा संग्राम हुआ था, ऐसा पहले कभी न तो देखा गया है और न सुना ही गया है ॥ ६४ ॥

इदं घोरमिदं चित्रमिदं रौद्रमिति प्रभो ।
तत्र युद्धान्यदृश्यन्त प्रततानि बहूनि च ॥ ६५ ॥

प्रभो ! वहाँ भिन्न-भिन्न दलोंमें बहुत-से विस्तृत युद्ध दृष्टिगोचर हो रहे थे, जिन्हें देखकर दर्शक कहते थे 'यह घोर युद्ध हो रहा है, यह विचित्र संग्राम दिखायी देता है और यह अत्यन्त भयंकर मारकाट हो रही है' ॥ ६५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत संशप्तकवधपर्वमें द्वन्द्वयुद्धविषयक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २५ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ५ श्लोक मिलाकर कुल ७० श्लोक हैं)

षड्विंशोऽध्यायः

भीमसेनका भगदत्तके हाथीके साथ युद्ध, हाथी और भगदत्तका भयानक पराक्रम

धृतराष्ट्र उवाच

तेष्वेवं संनिवृत्तेषु प्रत्युद्यातेषु भागशः।
कथं युयुधिरे पार्था मामकाश्च तरस्विनः॥ १॥
किमर्जुनश्चाप्यकरोत् संशप्तकबलं प्रति।
संशप्तका वा पार्थस्य किमकुर्वत संजय॥ २॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! इस प्रकार जब सैनिक पृथक्-पृथक् युद्धके लिये लौटे और कौरव-योद्धा आगे बढ़कर सामना करनेके लिये उद्यत हुए, उस समय मेरे तथा कुन्तीके वेगशाली पुत्रोंने आपसमें किस प्रकार युद्ध किया? संशप्तकोंकी सेनापर चढ़ाई करके अर्जुनने क्या किया? अथवा संशप्तकोंने अर्जुनका क्या कर लिया?॥१-२॥

संजय उवाच

तथा तेषु निवृत्तेषु प्रत्युद्यातेषु भागशः।
स्वयमभ्यद्रवद् भीमं नागानीकेन ते सुतः॥ ३॥

संजयने कहा—राजन्! इस प्रकार जब पाण्डव-सैनिक पृथक्-पृथक् युद्धके लिये लौटे और कौरव-योद्धा आगे बढ़कर सामना करनेके लिये उद्यत हुए, उस समय आपके पुत्र दुर्योधनने हाथियोंकी सेना साथ लेकर स्वयं ही भीमसेनपर आक्रमण किया॥ ३॥

स नाग इव नागेन गोवृषेणेव गोवृषः।
समाहूतः स्वयं राज्ञा नागानीकमुपाद्रवत्॥ ४॥

जैसे हाथीसे हाथी और साँड़से साँड़ भिड़ जाता है, उसी प्रकार राजा दुर्योधनके ललकारनेपर भीमसेन स्वयं ही हाथियोंकी सेनापर टूट पड़े॥ ४॥

स युद्धकुशलः पार्थो बाहुवीर्येण चान्वितः।
अभिनत् कुञ्जरानीकमचिरेणैव मारिष॥ ५॥

आदरणीय नरेश! कुन्तीकुमार भीमसेन युद्धमें कुशल तथा बाहुबलसे सम्पन्न हैं। उन्होंने थोड़ी ही देरमें हाथियोंकी उस सेनाको विदीर्ण कर डाला॥ ५॥

ते गजा गिरिसंकाशाः क्षरन्तः सर्वतो मदम्।
भीमसेनस्य नाराचैर्विमुखा विमदीकृताः॥ ६॥

वे पर्वतके समान विशालकाय हाथी सब ओर मदकी धारा बहा रहे थे; परंतु भीमसेनके नाराचोंसे विद्ध होनेपर उनका सारा मद उतर गया। वे युद्धसे विमुख होकर भाग चले॥ ६॥

विधमेदभ्रजालानि यथा वायुः समुद्धतः।
व्यधमत् तान्यनीकानि तथैव पवनात्मजः॥ ७॥

जैसे जोरसे उठी हुई वायु मेघोंकी घटाको छिन्न-भिन्न कर डालती है, उसी प्रकार पवनपुत्र भीमसेनने उन समस्त गजसेनाओंको तहस-नहस कर डाला॥ ७॥



स तेषु विसृजन् बाणान् भीमो नागेष्वशोभत।
भुवनेष्विव सर्वेषु गभस्तीनुदितो रविः॥ ८॥

जैसे उदित हुए सूर्य समस्त भुवनोंमें अपनी किरणोंका विस्तार करते हैं, उसी प्रकार भीमसेन उन हाथियोंपर बाणोंकी वर्षा करते हुए शोभा पा रहे थे॥ ८॥

ते भीमबाणाभिहताः संस्यूता विबभुर्गजाः।
गभस्तिभिरिवार्कस्य व्योम्नि नानाबलाहकाः॥ ९॥

वे भीमके बाणोंसे मारे जाकर परस्पर सटे हुए हाथी आकाशमें सूर्यकी किरणोंसे गुँथे हुए नाना प्रकारके मेघोंकी भाँति शोभा पा रहे थे॥ ९॥

तथा गजानां कदनं कुर्वाणमनिलात्मजम्।
क्रुद्धो दुर्योधनोऽभ्येत्य प्रत्यविध्यच्छितैः शरैः॥ १०॥

इस प्रकार गजसेनाका संहार करते हुए पवनपुत्र भीमसेनके पास आकर क्रोधमें भरे हुए दुर्योधनने उन्हें पैने बाणोंसे बींध डाला॥ १०॥

ततः क्षणेन क्षितिपं क्षतजप्रतिमेक्षणः।
क्षयं निनीषुर्निशितैर्भीमो विव्याध पत्रिभिः॥ ११॥

यह देख भीमसेनकी आँखें खूनके समान लाल हो गयीं। उन्होंने क्षणभरमें राजा दुर्योधनका नाश करनेकी इच्छासे पंखयुक्त पैने बाणोंद्वारा उसे बींध डाला॥ ११॥

स शराचितसर्वाङ्गः क्रुद्धो विव्याध पाण्डवम्।
नाराचैरर्करश्म्याभैर्भीमसेनं स्मयन्निव॥ १२॥

दुर्योधनके सारे अङ्ग बाणोंसे व्याप्त हो गये थे। अतः उसने कुपित होकर सूर्यकी किरणोंके समान तेजस्वी नाराचोंद्वारा पाण्डुनन्दन भीमसेनको मुसकराते हुए-से घायल कर दिया॥ १२॥

तस्य नागं मणिमयं रत्नचित्रध्वजे स्थितम्।
भल्लाभ्यां कार्मुकं चैव क्षिप्रं चिच्छेद पाण्डवः॥ १३॥

राजन्! उसके रत्ननिर्मित विचित्र ध्वजके ऊपर मणि-

मय नाग विराजमान था। उसे पाण्डुनन्दन भीमने शीघ्र ही दो भल्लोंसे काट गिराया और उसके धनुषके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥ १३ ॥

दुर्योधनं पीड्यमानं दृष्ट्वा भीमेन मारिष ।
चुक्षोभयिषुरभ्यागादङ्गो मातङ्गमास्थितः ॥ १४ ॥

आर्य ! भीमसेनके द्वारा दुर्योधनको पीड़ित होते देख क्षोभमें डालनेकी इच्छासे मतवाले हाथीपर बैठे हुए राजा अंग उनका सामना करनेके लिये आ गये ॥ १४ ॥

तमापतन्तं नागेन्द्रमम्बुदप्रतिमस्वनम् ।
कुम्भान्तरे भीमसेनो नाराचैरार्दयद् भृशम् ॥ १५ ॥

वह गजराज मेघके समान गर्जना करनेवाला था। उसे अपनी ओर आते देख भीमसेनने उसके कुम्भस्थलमें नाराचोंद्वारा बड़ी चोट पहुँचायी ॥ १५ ॥

तस्य कायं विनिर्भिद्य न्यमज्जद् धरणीतले ।
ततः पपात द्विरदो वज्राहत इवाचलः ॥ १६ ॥

भीमसेनका नाराच उस हाथीके शरीरको विदीर्ण करके धरतीमें समा गया, इससे वह गजराज वज्रके मारे हुए पर्वतकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ १६ ॥

तस्यावर्जितनागस्य म्लेच्छस्याधः पतिष्यतः ।
शिरश्चिच्छेद भल्लेन क्षिप्रकारी वृकोदरः ॥ १७ ॥

वह म्लेच्छजातीय अंग हाथीसे अलग नहीं हुआ था। उस हाथीके साथ-साथ वह नीचे गिरना ही चाहता था कि शीघ्रकारी भीमसेनने एक भल्लके द्वारा उसका सिर काट दिया ॥ १७ ॥

तस्मिन् निपतिते वीरे सम्प्राद्रवत् सा चमूः ।
सम्भ्रान्ताश्वद्विपरथा पदातानवमृद्नती ॥ १८ ॥

उस वीरके धराशायी होते ही उसकी वह सारी सेना भागने लगी। घोड़े, हाथी तथा रथ सभी घबराहटमें पड़कर इधर-उधर चक्कर काटने लगे। वह सेना अपने ही पैदल सिपाहियोंको रौंदती हुई भाग रही थी ॥ १८ ॥

तेष्वनीकेषु भग्नेषु विद्रवत्सु समन्ततः ।
प्राग्ज्योतिषस्ततो भीमं कुञ्जरेण समाद्रवत् ॥ १९ ॥

इस प्रकार उन सेनाओंके व्यूह भंग होने तथा चारों ओर भागनेपर प्राग्ज्योतिषपुरके राजा भगदत्तने अपने हाथीके द्वारा भीमसेनपर धावा किया ॥ १९ ॥

येन नागेन मघवानजयद् दैत्यदानवान् ।
तदन्वयेन नागेन भीमसेनमुपाद्रवत् ॥ २० ॥

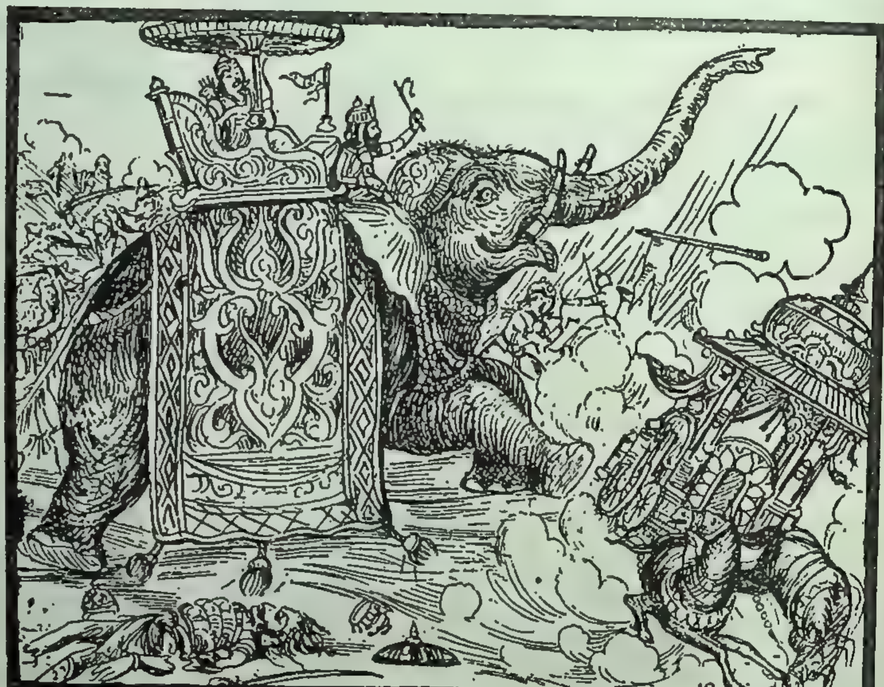
इन्द्रने जिस ऐरावत हाथीके द्वारा दैत्यों और दानवोंपर विजय पायी थी, उसीके वंशमें उत्पन्न हुए गजराजपर आरूढ़ हो भगदत्तने भीमसेनपर चढ़ाई की थी ॥ २० ॥

स नागप्रवरो भीमं सहसा समुपाद्रवत् ।
चरणाभ्यामथो द्वाभ्यां संहतेन करेण च ॥ २१ ॥

वह गजराज अपने दो पैरों तथा सिकोड़ी हुई सूँड़के द्वारा सहसा भीमसेनपर टूट पड़ा ॥ २१ ॥

व्यावृत्तनयनः क्रुद्धः प्रमथन्निव पाण्डवम् ।
वृकोदररथं साश्वमविशेषमचूर्णयत् ॥ २२ ॥

उसके नेत्र सब ओर घूम रहे थे। वह क्रोधमें भरकर पाण्डुनन्दन भीमसेनको मानो मथ डालेगा, इस भावसे भीमसेनके रथकी ओर दौड़ा और उसे घोड़ोंसहित सामान्यतः चूर्ण कर दिया ॥ २२ ॥



पद्भ्यां भीमोऽप्यथो धावंस्तस्य गात्रेष्वलीयत ।
जानन्नञ्जलिकावेधं नापाक्रामत पाण्डवः ॥ २३ ॥

भीमसेन पैदल दौड़कर उस हाथीके शरीरमें छिप गये। पाण्डुपुत्र भीम अञ्जलिकावेध[1] जानते थे। इसलिये वहाँसे भागे नहीं ॥ २३ ॥

गात्राभ्यन्तरगो भूत्वा करेणाताडयन्मुहुः ।
लालयामास तं नागं वधाकाङ्क्षिणमव्ययम् ॥ २४ ॥

वे उसके शरीरके नीचे होकर हाथसे बारंबार थपथपाते हुए वधकी आकांक्षा रखनेवाले उस अविनाशी गजराजको लाड़-प्यार करने लगे ॥ २४ ॥

कुलालचक्रवन्नागस्तदा तूर्णमथाभ्रमत् ।
नागायुतबलः श्रीमान् कालयानो वृकोदरम् ॥ २५ ॥

१. हाथीके निचले भागमें कोई ऐसा स्थान होता है, जिसमें दोनों हाथोंके द्वारा थपथपानेसे हाथीको सुख मिलता है। इस अवस्थामें वह महावतके मारनेपर भी टस-से-मस नहीं होता। भीमसेन इस कलाको जानते थे। इसीका नाम 'अञ्जलिकावेध' है।

उस समय वह हाथी तुरंत ही कुम्हारके चाकके समान सब ओर घूमने लगा । उसमें दस हजार हाथियोंका बल था । वह शोभायमान गजराज भीमसेनको मार डालनेका प्रयत्न कर रहा था ॥ २५ ॥

भीमोऽपि निष्क्रम्य ततः सुप्रतीकाग्रतोऽभवत्।
भीमं करेणावनम्य जानुभ्यामभ्यताडयत् ॥ २६ ॥

भीमसेन भी उसके शरीरके नीचेसे निकलकर उस हाथीके सामने खड़े हो गये । उस समय हाथीने अपनी सूँड़से गिराकर उन्हें दोनों घुटनोंसे कुचल डालनेका प्रयत्न किया ॥२६॥

ग्रीवायां वेष्टयित्वैनं स गजो हन्तुमैहत ।
करवेष्टं भीमसेनो भ्रमं दत्त्वा व्यमोचयत् ॥ २७ ॥

इतना ही नहीं, उस हाथीने उन्हें गलेमें लपेटकर मार डालनेकी चेष्टा की । तब भीमसेन उसे भ्रममें डालकर उसकी सूँड़के लपेटसे अपने आपको छुड़ा लिया ॥ २७ ॥

पुनर्गात्राणि नागस्य प्रविवेश वृकोदरः ।
यावत् प्रतिगजायातं स्वबले प्रत्यवैक्षत ॥ २८ ॥

तदनन्तर भीमसेन पुनः उस हाथीके शरीरमें ही छिप गये और अपनी सेनाकी ओरसे उस हाथीका सामना करनेके लिये किसी दूसरे हाथीके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे ॥

भीमोऽपि नागगात्रेभ्यो विनिःसृत्यापयाज्जवात् ।
ततः सर्वस्य सैन्यस्य नादः समभवन्महान् ॥ २९ ॥

थोड़ी देर बाद भीम हाथीके शरीरसे निकलकर बड़े वेगसे भाग गये । उस समय सारी सेनामें बड़े जोरसे कोलाहल होने लगा ॥ २९ ॥

अहो धिङ् निहतो भीमः कुञ्जरेणेति मारिष ।
तेन नागेन संत्रस्ता पाण्डवानामनीकिनी ॥ ३० ॥
सहसाभ्यद्रवद् राजन् यत्र तस्थौ वृकोदरः ।

आर्य ! उस समय सबके मुँहसे यही बात निकल रही थी—'अहो ! इस हाथीने भीमसेनको मार डाला, यह कितनी बुरी बात है !' राजन् ! उस हाथीसे भयभीत हो पाण्डवोंकी सारी सेना सहसा वहीं भाग गयी, जहाँ भीमसेन खड़े थे ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा हतं मत्वा वृकोदरम् ॥ ३१ ॥
भगदत्तं सपाञ्चाल्यः सर्वतः समवारयत् ।

तब राजा युधिष्ठिरने भीमसेनको मारा गया जानकर पाञ्चालदेशीय सैनिकोंको साथ ले भगदत्तको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ३१½ ॥

तं रथं रथिनां श्रेष्ठाः परिवार्य परंतपाः ॥ ३२ ॥
अवाकिरञ्शरैस्तीक्ष्णैः शतशोऽथ सहस्रशः ।

शत्रुओंको संताप देनेवाले वे श्रेष्ठ रथी उन महारथी भगदत्तको सब ओरसे घेरकर उनके ऊपर सैकड़ों और हजारों पैने बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३२½ ॥

स विघातं पृषत्कानामङ्कुशेन समाहरन् ॥ ३३ ॥
गजेन पाण्डुपञ्चालान् व्यधमत् पर्वतेश्वरः ।

पर्वतराज भगदत्तने उन बाणोंके प्रहारका अङ्कुशद्वारा निवारण किया और हाथीको आगे बढ़ाकर पाण्डव तथा पाञ्चाल योद्धाओंको कुचल डाला ॥ ३३½ ॥

तदद्भुतमपश्याम भगदत्तस्य संयुगे ॥ ३४ ॥
तथा वृद्धस्य चरितं कुञ्जरेण विशाम्पते ।

प्रजानाथ ! उस युद्धस्थलमें हाथीके द्वारा बूढ़े राजा भगदत्तका हमलोगोंने अद्भुत पराक्रम देखा ॥ ३४½ ॥

ततो राजा दशार्णानां प्राग्ज्योतिषमुपाद्रवत् ॥ ३५ ॥
तिर्यग्यातेन नागेन समदेनाशुगामिना ।

तत्पश्चात् दशार्णराजने मदस्रावी, शीघ्रगामी तथा तिरछी दिशा (पार्श्वभाग) की ओरसे आक्रमण करनेवाले गजराजके द्वारा भगदत्तपर धावा किया ॥ ३५½ ॥

तयोर्युद्धं समभवन्नागयोर्भीमरूपयोः ॥ ३६ ॥
सपक्षयोः पर्वतयोर्यथा सद्रुमयोः पुरा ।

वे दोनों हाथी बड़े भयंकर रूपवाले थे । उन दोनोंका युद्ध वैसा ही प्रतीत हुआ, जैसा कि पूर्वकालमें पंखयुक्त एवं वृक्षावलीसे विभूषित दो पर्वतोंमें युद्ध हुआ करता था ॥

प्राग्ज्योतिषपतेर्नागः संनिवृत्यापसृत्य च ॥ ३७ ॥
पार्श्वे दशार्णाधिपतेर्भित्त्वा नागमपातयत् ।

प्राग्ज्योतिषनरेशके हाथीने लौटकर और पीछे हटकर दशार्णराजके हाथीके पार्श्वभागमें गहरा आघात किया और उसे विदीर्ण करके मार गिराया ॥ ३७½ ॥

तोमरैः सूर्यरश्म्याभैर्भगदत्तोऽथ सप्तभिः ॥ ३८ ॥
जघान द्विरदस्थं तं शत्रुं प्रचलितासनम् ।

तत्पश्चात् राजा भगदत्तने सूर्यकी किरणोंके समान चमकीले सात तोमरोंद्वारा हाथीपर बैठे हुए शत्रु दशार्णराजको, जिसका आसन विचलित हो गया था, मार डाला ॥ ३८½॥

व्यवच्छिद्य तु राजानं भगदत्तं युधिष्ठिरः ॥ ३९ ॥
रथानीकेन महता सर्वतः पर्यवारयत् ।

तब युधिष्ठिरने राजा भगदत्तको अपने बाणोंसे घायल करके विशाल रथसेनाके द्वारा सब ओरसे घेर लिया ॥

स कुञ्जरस्थो रथिभिः शुशुभे सर्वतो वृतः ॥ ४० ॥
पर्वते वनमध्यस्थो ज्वलन्निव हुताशनः ।

जैसे वनके भीतर पर्वतके शिखरपर दावानल प्रज्वलित हो रहा हो, उसी प्रकार सब ओर रथियोंसे घिरकर हाथीकी पीठपर बैठे हुए राजा भगदत्त सुशोभित हो रहे थे ॥४०½॥

मण्डलं सर्वतः श्लिष्टं रथिनामुग्रधन्विनाम् ॥ ४१ ॥
किरतां शरवर्षाणि स नागः पर्यवर्तत ।

बाणोंकी वर्षा करते हुए भयंकर धनुर्धर रथियोंका मण्डल उस हाथीपर सब ओरसे आक्रमण कर रहा था और वह हाथी चारों ओर चक्कर काट रहा था ॥ ४१½ ॥

ततः प्राग्ज्योतिषो राजा परिगृह्य महागजम् ॥ ४२ ॥
प्रेषयामास सहसा युयुधानरथं प्रति ।

उस समय प्राग्ज्योतिषपुरके राजाने उस महान् गजराजको सब ओरसे काबूमें करके सहसा सात्यकिके रथकी ओर बढ़ाया ॥ ४२½ ॥

शिनेः पौत्रस्य तु रथं परिगृह्य महाद्विपः ॥ ४३ ॥
अभिचिक्षेप वेगेन युयुधानस्त्वपाक्रमत् ।

युयुधान (सात्यकि) अपने रथको छोड़कर दूर हट गये और उस महान् गजराजने शिनि-पौत्र सात्यकिके उस रथको सूँड़से पकड़कर बड़े वेगसे फेंक दिया ॥ ४३½ ॥

बृहतः सैन्धवानश्वान् समुत्थाप्याथ सारथिः ॥ ४४ ॥
तस्थौ सात्यकिमासाद्य सम्प्लुतस्तं रथं प्रति ।

तदनन्तर सारथिने अपने रथके विशाल सिंधी घोड़ोंको उठाकर खड़ा किया और कूदकर रथपर जा चढ़ा । फिर रथसहित सात्यकिके पास जाकर खड़ा हो गया ॥ ४४½ ॥

स तु लब्ध्वान्तरं नागस्त्वरितो रथमण्डलात् ॥ ४५ ॥
निश्चक्राम ततः सर्वान् परिचिक्षेप पार्थिवान् ।

इसी बीचमें अवसर पाकर वह गजराज बड़ी उतावलीके साथ रथोंके घेरेसे पार निकल गया और समस्त राजाओंको उठा-उठाकर फेंकने लगा ॥ ४५½ ॥

ते त्वाशुगतिना तेन त्रास्यमाना नरर्षभाः ॥ ४६ ॥
तमेकं द्विरदं संख्ये मेनिरे शतशो द्विपान् ।

उस शीघ्रगामी गजराजसे डराये हुए नरश्रेष्ठ नरेश युद्धस्थलमें उस एकको ही सैकड़ों हाथियोंके समान मानने लगे॥

ते गजस्थेन काल्यन्ते भगदत्तेन पाण्डवाः ॥ ४७ ॥
ऐरावतस्थेन यथा देवराजेन दानवाः ।

जैसे देवराज इन्द्र ऐरावत हाथीपर बैठकर दानवोंका नाश करते हैं, उसी प्रकार अपने हाथीकी पीठपर बैठे हुए राजा भगदत्त पाण्डव-सैनिकोंका संहार कर रहे थे ॥ ४७½ ॥

तेषां प्रद्रवतां भीमः पञ्चालानामितस्ततः ॥ ४८ ॥
गजवाजिकृतः शब्दः सुमहान् समजायत ।

उस समय इधर-उधर भागते हुए पाञ्चाल-सैनिकोंके हाथी-घोड़ोंका महान् भयंकर चीत्कार शब्द प्रकट हुआ॥४८½॥

भगदत्तेन समरे काल्यमानेषु पाण्डुषु ॥ ४९ ॥
प्राग्ज्योतिषमभिक्रुद्धः पुनर्भीमः समभ्ययात् ।

भगदत्तके द्वारा समरभूमिमें पाण्डव-सैनिकोंके खदेड़े जानेपर भीमसेन कुपित हो पुनः प्राग्ज्योतिषके स्वामी भगदत्तपर चढ़ आये ॥ ४९½ ॥

तस्याभिद्रवतो वाहान् हस्तमुक्तेन वारिणा ॥ ५० ॥
सिक्त्वा व्यत्रासयन्नागस्ते पार्थमहरंस्ततः ।

उस समय आक्रमण करनेवाले भीमसेनके घोड़ोंपर उस हाथीने सूँड़से जल छोड़कर उन्हें भयभीत कर दिया । फिर तो वे घोड़े भीमसेनको लेकर दूर भाग गये ॥ ५०½ ॥

ततस्तमभ्ययात् तूर्णं रुचिपर्वाऽऽकृतीसुतः ॥ ५१ ॥
समघ्नञ्छरवर्षेण रथस्थोऽन्तकसंनिभः ।

तब आकृतीपुत्र रुचिपर्वाने तुरंत ही उस हाथीपर आक्रमण किया । वह रथपर बैठकर साक्षात् यमराजके समान जान पड़ता था । उसने बाणोंकी वर्षासे उस हाथीको गहरी चोट पहुँचायी ॥ ५१½ ॥

ततः स रुचिपर्वाणं शरेणानतपर्वणा ॥ ५२ ॥
सुपर्वा पर्वतपतिर्निन्ये वैवस्वतक्षयम् ।

यह देख जिनके अङ्गोंकी जोड़ सुन्दर है उन पर्वतराज भगदत्तने झुकी हुई गाँठवाले बाणके द्वारा रुचिपर्वाको यमलोक पहुँचा दिया ॥ ५२½ ॥

तस्मिन् निपतिते वीरे सौभद्रो द्रौपदीसुतः ॥ ५३ ॥
चेकितानो धृष्टकेतुर्युयुत्सुश्चार्दयन् द्विपम् ।
त एनं शरधाराभिर्धाराभिरिव तोयदाः ॥ ५४ ॥
सिषिचुर्भैरवान् नादान् विनदन्तो जिघांसवः ।

उस वीरके मारे जानेपर अभिमन्यु, द्रौपदीकुमार, चेकितान, धृष्टकेतु तथा युयुत्सुने भी उस हाथीको पीडा देना आरम्भ किया । ये सब लोग उस हाथीको मार डालनेकी इच्छासे विकट गर्जना करते हुए अपने बाणोंकी धारासे सींचनेलगे, मानो मेघ पर्वतको जलकी धारासे नहला रहे हों ॥ ५३-५४½ ॥

ततः पार्ष्ण्यङ्कुशाङ्गुष्ठैः कृतिना चोदितो द्विपः । ५५ ।
प्रसारितकरः प्रायात् स्तब्धकर्णेक्षणो द्रुतम् ।
सोऽधिष्ठाय पदा वाहान् युयुत्सोः सूतमारुजत् ॥ ५६ ॥

तदनन्तर विद्वान् राजा भगदत्तने अपने पैरोंकी ऍड़ी, अङ्कुश एवं अङ्गुष्ठसे प्रेरित करके हाथीको आगे बढ़ाया । फिर तो अपने कानोंको खड़े करके एकटक आँखोंसे देखते हुए सूँड़ फैलाकर उस हाथीने शीघ्रतापूर्वक धावा किया और युयुत्सुके घोड़ोंको पैरोंसे दबाकर उनके सारथिको मार डाला ॥ ५५ ५६ ॥

युयुत्सुस्तु रथाद् राजन्नपाक्रामत् त्वरान्वितः ।
ततः पाण्डवयोधास्ते नागराजं शरैर्द्रुतम् ॥ ५७ ॥
सिषिचुर्भैरवान् नादान् विनदन्तो जिघांसवः ।

राजन् ! युयुत्सु बड़ी उतावलीके साथ रथसे उतरकर दूर चले गये थे । तत्पश्चात् पाण्डव योद्धा उस गजराजको शीघ्रतापूर्वक मार डालनेकी इच्छासे भैरव-गर्जना करते हुए अपने बाणोंकी वर्षाद्वारा उसे सींचने लगे ॥ ५७½ ॥

पुत्रस्तु तव सम्भ्रान्तः सौभद्रस्याप्लुतो रथम् ॥ ५८ ॥
स कुञ्जरस्थो विसृजन्निषूनरिषु पार्थिवः ।
बभौ रश्मीनिवादित्यो भुवनेषु समुत्सृजन् ॥ ५९ ॥

उस समय घबराये हुए आपके पुत्र युयुत्सु अभिमन्युके रथपर जा बैठे । हाथीकी पीठपर बैठे हुए राजा भगदत्त शत्रुओंपर बाण-वर्षा करते हुए सम्पूर्ण लोकोंमें अपनी

किरणोंका विस्तार करनेवाले सूर्यके समान शोभा पा रहे थे ॥ ५८-५९ ॥

तमर्जुनिर्द्वादशभिर्युयुत्सुर्दशभिः शरैः ।
त्रिभिस्त्रिभिर्द्रौपदेया धृष्टकेतुश्च विव्यधुः ॥ ६० ॥

अर्जुनकुमार अभिमन्युने बारह, युयुत्सुने दस और द्रौपदीके पुत्रों तथा धृष्टकेतुने तीन-तीन बाणोंसे भगदत्तके उस हाथीको घायल कर दिया ॥ ६० ॥

सोऽतियत्नार्पितैर्बाणैराचितो द्विरदो बभौ ।
संस्यूत इव सूर्यस्य रश्मिभिर्जलदो महान् ॥ ६१ ॥

अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक चलाये हुए उन बाणोंसे हाथीका सारा शरीर व्याप्त हो रहा था । उस अवस्थामें वह सूर्यकी किरणोंमें पिरोये हुए महामेघके समान शोभा पा रहा था ॥

नियन्तुः शिल्पयत्नाभ्यां प्रेरितोऽरिशरार्दितः ।
परिचिक्षेप तान् नागः स रिपून् सव्यदक्षिणम् ॥ ६२॥

महावतके कौशल और प्रयत्नसे प्रेरित होकर वह हाथी शत्रुओंके बाणोंसे पीड़ित होनेपर भी उन विपक्षियोंको दायें-बायें उठाकर फेंकने लगा ॥ ६२ ॥

गोपाल इव दण्डेन यथा पशुगणान् वने ।
आवेष्टयत तां सेनां भगदत्तस्तथा मुहुः ॥ ६३ ॥

जैसे ग्वाला जंगलमें पशुओंको डंडेसे हाँकता है, उसी प्रकार भगदत्तने पाण्डवसेनाको बार-बार घेर लिया ॥ ६३ ॥

क्षिप्रं श्येनाभिपन्नानां वायसानामिव स्वनः ।
बभूव पाण्डवेयानां भृशं विद्रवतां स्वनः ॥ ६४ ॥

जैसे बाज पक्षीके चंगुलमें फँसे हुए अथवा उसके आक्रमणसे त्रस्त हुए कौओंमें शीघ्र ही काँव-काँवका कोलाहल होने लगता है, उसी प्रकार भागते हुए पाण्डव योद्धाओंका आर्तनाद जोर-जोरसे सुनायी दे रहा था ॥ ६४ ॥

स नागराजः प्रवराङ्कुशाहतः
पुरा सपक्षोऽद्रिवरो यथा नृप ।
भयं तदा रिपुषु समादधद् भृशं
वणिग्जनानां क्षुभितो यथार्णवः ॥ ६५ ॥

नरेश्वर ! उस समय विशाल अङ्कुशकी मार खाकर वह गजराज पूर्वकालके पंखधारी श्रेष्ठ पर्वतकी भाँति शत्रुओंको उसी प्रकार अत्यन्त भयभीत करने लगा, जैसे विक्षुब्ध महासागर व्यापारियोंको भयमें डाल देता है ॥ ६५ ॥

ततो ध्वनिर्द्विरदरथाश्वपार्थिवै-
र्भयाद् द्रवद्भिर्जनितोऽतिभैरवः ।
क्षितिं वियद् द्यां विदिशो दिशस्तथा
समावृणोत् पार्थिव संयुगे ततः ॥ ६६॥

महाराज ! तदनन्तर भयसे भागते हुए हाथी, रथ, घोड़े तथा राजाओंने वहाँ अत्यन्त भयंकर आर्तनाद फैला दिया । उनके उस भयंकर शब्दने युद्धस्थलमें पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग तथा दिशा-विदिशाओंको सब ओरसे आच्छादित कर दिया ॥ ६६ ॥

स तेन नागप्रवरेण पार्थिवो
भृशं जगाहे द्विषतामनीकिनीम् ।
पुरा सुगुप्तां विबुधैरिवाहवे
विरोचनो देववरूथिनीमिव ॥६७॥

उस गजराजके द्वारा राजा भगदत्तने शत्रुओंकी सेनामें अच्छी तरह प्रवेश किया । जैसे पूर्वकालमें देवासुर-संग्रामके समय देवताओंद्वारा सुरक्षित देवसेनामें विरोचनने प्रवेश किया था ॥ ६७ ॥

भृशं ववौ ज्वलनसखो वियद् रजः
समावृणोन्मुहुरपि चैव सैनिकान् ।
तमेकनागं गणशो यथा गजान्
समन्ततो द्रुतमथ मेनिरे जनाः ॥६८॥

उस समय वहाँ बड़े जोरसे वायु चलने लगी । आकाशमें धूल छा गयी । उस धूलने समस्त सैनिकोंको ढक दिया । उस समय सब लोग चारों ओर दौड़ लगानेवाले उस एकमात्र हाथीको हाथियोंके झुंड-सा मानने लगे ॥ ६८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि भगदत्तयुद्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत संशप्तकवधपर्वमें भगदत्तका युद्धविषयक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः

अर्जुनका संशप्तक-सेनाके साथ भयंकर युद्ध और उसके अधिकांश भागका वध

संजय उवाच

यन्मां पार्थस्य संग्रामे कर्माणि परिपृच्छसि ।
तच्छृणुष्व महाबाहो पार्थो यदकरोद् रणे ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाबाहो ! आप जो मुझसे युद्धमें अर्जुनके पराक्रम पूछ रहे हैं, उन्हें बताता हूँ । अर्जुनने रणक्षेत्रमें जो कुछ किया था, वह सुनिये ॥ १ ॥

रजो दृष्ट्वा समुद्भूतं श्रुत्वा च गजनिःस्वनम् ।
भगदत्ते विकुर्वाणे कौन्तेयः कृष्णमब्रवीत् ॥ २ ॥

भगदत्तके विचित्र रूपसे युद्ध करते समय वहाँ धूल उड़ती देखकर और हाथीके चिग्घाड़नेका शब्द सुनकर कुन्तीनन्दन अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा—॥ २ ॥

यथा प्राग्ज्योतिषो राजा गजेन मधुसूदन ।
त्वरमाणो विनिष्क्रान्तो ध्रुवं तस्यैष निःस्वनः ॥ ३ ॥

'मधुसूदन ! राजा भगदत्त अपने हाथीपर सवार

जिस प्रकार उतावलीके साथ युद्धके लिये निकले थे, उससे जान पड़ता है निश्चय ही यह महान् कोलाहल उन्हींका है ॥

इन्द्रादनवरः संख्ये गजयानविशारदः।
प्रथमो गजयोधानां पृथिव्यामिति मे मतिः ॥ ४ ॥

'मेरा तो यह विश्वास है कि वे युद्धमें इन्द्रसे कम नहीं हैं। भगदत्त हाथीकी सवारीमें कुशल और गजारोही योद्धाओंमें इस पृथ्वीपर सबसे प्रधान हैं ॥ ४ ॥

स चापि द्विरदश्रेष्ठः सदाऽप्रतिगजो युधि।
सर्वशस्त्रातिगः संख्ये कृतकर्मा जितक्लमः ॥ ५ ॥

'और उनका वह गजश्रेष्ठ सुप्रतीक भी युद्धमें अपना शानी नहीं रखता है। वह सब शस्त्रोंका उल्लङ्घन करके युद्धमें अनेक बार पराक्रम प्रकट कर चुका है। उसने परिश्रमको जीत लिया है ॥ ५ ॥

सहः शस्त्रनिपातानामग्निस्पर्शस्य चानघ।
स पाण्डवबलं सर्वमद्यैको नाशयिष्यति ॥ ६ ॥

'अनघ ! वह सम्पूर्ण शस्त्रोंके आघात तथा अग्निके स्पर्शको भी सह सकनेवाला है। आज वह अकेला ही समस्त पाण्डवसेनाका विनाश कर डालेगा ॥ ६ ॥

न चावाभ्यामृतेऽन्योऽस्ति शक्तस्तं प्रतिबाधितुम्।
त्वरमाणस्ततो याहि यतः प्राग्ज्योतिषाधिपः ॥ ७ ॥

'हम दोनोंके सिवा दूसरा कोई नहीं है, जो उसे बाधा देनेमें समर्थ हो। अतः आप शीघ्रतापूर्वक वहीं चलिये, जहाँ प्राग्ज्योतिषनरेश भगदत्त विद्यमान हैं ॥ ७ ॥

दृप्तं संख्ये द्विपबलाद् वयसा चापि विस्मितम्।
अद्यैनं प्रेषयिष्यामि बलहन्तुः प्रियातिथिम् ॥ ८ ॥

'अपने हाथीके बलसे युद्धमें घमंड दिखानेवाले और अवस्थामें भी बड़े होनेका अहंकार रखनेवाले इन राजा भगदत्तको मैं देवराज इन्द्रका प्रिय अतिथि बनाकर स्वर्गलोक भेज दूँगा' ॥ ८ ॥

वचनादथ कृष्णस्तु प्रययौ सव्यसाचिनः।
दीर्यते भगदत्तेन यत्र पाण्डववाहिनी ॥ ९ ॥

सव्यसाची अर्जुनके इस वचनसे प्रेरित हो श्रीकृष्ण उस स्थानपर रथ लेकर गये, जहाँ भगदत्त पाण्डवसेनाका संहार कर रहे थे ॥ ९ ॥

तं प्रयान्तं ततः पश्चादाह्वयन्तो महारथाः।
संशप्तकाः समारोहन् सहस्राणि चतुर्दश ॥ १० ॥

अर्जुनको जाते देख पीछेसे चौदह हजार संशप्तक महारथी उन्हें ललकारते हुए चढ़ आये ॥ १० ॥

दशैव तु सहस्राणि त्रिगर्तानां महारथाः।
चत्वारि च सहस्राणि वासुदेवस्य चानुगाः ॥ ११ ॥

उनमें दस हजार महारथी तो त्रिगर्तदेशके थे और चार हजार भगवान् श्रीकृष्णके सेवक (नारायणी सेनाके सैनिक) थे ॥ ११ ॥

दीर्यमाणां चमूं दृष्ट्वा भगदत्तेन मारिष।
आहूयमानस्य च तैरभवद्धृदयं द्विधा ॥ १२ ॥

आर्य ! राजा भगदत्तके द्वारा अपनी सेनाको विदीर्ण होती देखकर तथा पीछेसे संशप्तकोंकी ललकार सुनकर उनका हृदय दुविधेमें पड़ गया ॥ १२ ॥

किं नु श्रेयस्करं कर्म भवेदद्येति चिन्तयन्।
इह वा विनिवर्तेयं गच्छेयं वा युधिष्ठिरम् ॥ १३ ॥

वे सोचने लगे—आज मेरे लिये कौन-सा कार्य श्रेयस्कर होगा। यहाँसे संशप्तकोंकी ओर लौट चलूँ अथवा युधिष्ठिरके पास जाऊँ ॥ १३ ॥

तस्य बुद्ध्या विचार्यैवमर्जुनस्य कुरूद्वह।
अभवद् भूयसी बुद्धिः संशप्तकवधे स्थिरा ॥ १४ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! बुद्धिसे इस प्रकार विचार करनेपर अर्जुनके मनमें यह भाव अत्यन्त दृढ़ हुआ कि संशप्तकोंके वधका ही प्रयत्न करना चाहिये ॥ १४ ॥

स संनिवृत्तः सहसा कपिप्रवरकेतनः।
एको रथसहस्राणि निहन्तुं वासवी रणे ॥ १५ ॥

श्रेष्ठ वानरचिह्नसे सुशोभित ध्वजावाले इन्द्रकुमार अर्जुन उपर्युक्त बात सोचकर सहसा लौट पड़े। वे रणक्षेत्रमें अकेले ही हजारों रथियोंका संहार करनेको उद्यत थे ॥ १५ ॥

सा हि दुर्योधनस्यासीन्मतिः कर्णस्य चोभयोः।
अर्जुनस्य वधोपाये तेन द्वैधमकल्पयत् ॥ १६ ॥

अर्जुनके वधका उपाय सोचते हुए दुर्योधन और कर्ण दोनोंके मनमें यही विचार उत्पन्न हुआ था। इसीलिये उसने युद्धको दो भागोंमें बाँट दिया ॥ १६ ॥

स तु दोलायमानोऽभूद् द्वैधीभावेन पाण्डवः।
वधेन तु नराग्र्याणामकरोत् तां मृषा तदा ॥ १७ ॥

पाण्डुनन्दन अर्जुन एक बार दुविधामें पड़कर चञ्चल हो गये थे, तथापि नरश्रेष्ठ संशप्तक वीरोंके वधका निश्चय करके उन्होंने उस दुविधाको मिथ्या कर दिया था ॥ १७ ॥

ततः शतसहस्राणि शराणां नतपर्वणाम्।
असृजन्नर्जुने राजन् संशप्तकमहारथाः ॥ १८ ॥

राजन् ! तदनन्तर संशप्तक महारथियोंने अर्जुनपर झुकी हुई गाँठवाले एक लाख बाणोंकी वर्षा की ॥ १८ ॥

नैव कुन्तीसुतः पार्थो नैव कृष्णो जनार्दनः।
न हया न रथो राजन् दृश्यन्ते स्म शरैश्चिताः ॥ १९ ॥

महाराज ! उस समय न तो कुन्तीकुमार अर्जुन, न जनार्दन श्रीकृष्ण, न घोड़े और न रथ ही दिखायी देते थे। सब-के-सब वहाँ बाणोंके ढेरसे आच्छादित हो गये थे ॥ १९ ॥

तदा मोहमनुप्राप्तः सिष्विदे हि जनार्दनः।
ततस्तान् प्रायशः पार्थो ब्रह्मास्त्रेण निजघ्निवान् ॥ २० ॥

उस अवस्थामें भगवान् जनार्दन पसीने-पसीने हो गये। उनपर मोह-सा छा गया। यह देख अर्जुनने ब्रह्मास्त्रसे उन

सबको अधिकांशमें नष्ट कर दिया ॥ २० ॥

शतशः पाणयश्छिन्नाः सेषुज्यातलकार्मुकाः ।
केतवो वाजिनः सूता रथिनश्चापतन् क्षितौ ॥ २१॥

सैकड़ों भुजाएँ बाण, प्रत्यञ्चा और धनुषसहित कट गयीं । ध्वज, घोड़े, सारथि और रथी सभी धराशायी हो गये ॥

द्रुमाचलाग्राम्बुधरैः समकायाः सुकल्पिताः ।
हतारोहाः क्षितौ पेतुर्द्विपाः पार्थशराहताः ॥ २२ ॥

वृक्ष, पर्वत-शिखर और मेघोंके समान विशाल एवं ऊँचे शरीरवाले, सजे-सजाये हाथी, जिनके सवार पहले ही मार दिये गये थे, अर्जुनके बाणोंसे आहत होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥

विप्रविद्धकुथा नागाश्छिन्नभाण्डाः परासवः ।
सारोहास्तु रणे पेतुर्मथिता मार्गणैर्भृशम् ॥ २३ ॥

उस रणक्षेत्रमें बहुत-से हाथी अर्जुनके बाणोंसे मथित होकर सवारोंसहित प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़े । उस समय उनके झूल चिथड़े-चिथड़े होकर दूर जा पड़े थे और उनके आभूषणोंके भी टुकड़े-टुकड़े हो गये थे ॥ २३ ॥

सर्ष्टिप्रासासिनखराः समुद्गरपरश्वधाः ।
विच्छिन्ना बाहवः पेतुर्नृणां भल्लैः किरीटिना॥ २४॥

किरीटधारी अर्जुनके भल्लनामक बाणोंसे ऋष्टि, प्रास, खड्ग, नखर, मुद्गर और फरसोंसहित वीरोंकी भुजाएँ कट-कर गिर गयीं ॥ २४ ॥

बालादित्याम्बुजेन्दूनां तुल्यरूपाणि मारिष ।
संच्छिन्नान्यर्जुनशरैः शिरांस्युर्व्यां प्रपेदिरे ॥ २५ ॥

आर्य ! योद्धाओंके मस्तक, जो बालसूर्य, कमल और चन्द्रमाके समान सुन्दर थे, अर्जुनके बाणोंसे छिन्न-भिन्न हो पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २५ ॥

जज्वालालंकृता सेना पत्रिभिः प्राणिभोजनैः ।
नानारूपैस्तदामित्रान् क्रुद्धे निघ्नति फाल्गुने ॥२६॥

जब क्रोधमें भरे हुए अर्जुन नाना प्रकारके प्राणनाशक बाणोंद्वारा शत्रुओंका नाश करने लगे, उस समय आभूषणों-से विभूषित हुई संशप्तकोंकी सारी सेना जलने लगी ॥ २६ ॥

क्षोभयन्तं तदा सेनां द्विरदं नलिनीमिव ।
धनंजयं भूतगणाः साधु साध्वित्यपूजयन् ॥ २७ ॥

जैसे हाथी कमलोंसे भरे हुए सरोवरको मथ डालता है, उसी प्रकार अर्जुनको सारी सेनाका विनाश करते देख सब प्राणी 'साधु-साधु' कहकर अर्जुनकी प्रशंसा करने लगे ॥

दृष्ट्वा तत् कर्म पार्थस्य वासवस्येव माधवः ।
विस्मयं परमं गत्वा प्राञ्जलिस्तमुवाच ह ॥ २८ ॥

इन्द्रके समान अर्जुनका वह पराक्रम देख भगवान् श्रीकृष्ण अत्यन्त आश्चर्यमें पड़कर हाथ जोड़े हुए बोले—॥२८॥

कर्मैतत् पार्थ शक्रेण यमेन धनदेन च ।
दुष्करं समरे यत् ते कृतमद्येति मे मतिः ॥ २९ ॥

'पार्थ ! मेरा ऐसा विश्वास है कि आज समर-भूमिमें तुमने जो कार्य किया है, यह इन्द्र, यम और कुबेरके लिये भी दुष्कर है ॥ २९ ॥

युगपच्चैव संग्रामे शतशोऽथ सहस्रशः ।
पतिता एव मे दृष्टाः संशप्तकमहारथाः ॥ ३० ॥

'इस संग्राममें मैंने सैकड़ों और हजारों संशप्तक महारथियों-को एक साथ ही गिरते देखा है' ॥ ३० ॥

संशप्तकांस्ततो हत्वा भूयिष्ठा ये व्यवस्थिताः ।
भगदत्ताय याहीति कृष्णं पार्थोऽभ्यनोदयत् ॥ ३१ ॥

इस प्रकार वहाँ खड़े हुए संशप्तक योद्धाओंमेंसे अधिकांशका वध करके अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'अब भगदत्तके पास चलिये' ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि संशप्तकवधे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत संशप्तकवधपर्वमें संशप्तकोंका वधविषयक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

संशप्तकोंका संहार करके अर्जुनका कौरव-सेनापर आक्रमण तथा भगदत्त और उनके हाथीका पराक्रम

संजय उवाच

यियासतस्ततः कृष्णः पार्थस्याश्वान् मनोजवान् ।
सम्प्रैषीद्धेमसंछन्नान् द्रोणानीकाय सत्वरन् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! तदनन्तर द्रोणकी सेना-के समीप जानेकी इच्छावाले अर्जुनके सुवर्णभूषित एवं मनके समान वेगशाली अश्वोंको भगवान् श्रीकृष्णने बड़ी उतावली-के साथ द्रोणाचार्यकी सेनातक पहुँचनेके लिये हाँका ॥ १ ॥

तं प्रयान्तं कुरुश्रेष्ठं स्वान् भ्रातॄन् द्रोणतापितान् ।
सुशर्मा भ्रातृभिः सार्धं युद्धार्थी पृष्ठतोऽन्वयात् ॥२॥

द्रोणाचार्यके सताये हुए अपने भाइयोंके पास जाते हुए कुरुश्रेष्ठ अर्जुनको भाइयोंसहित सुशर्माने युद्धकी इच्छासे ललकारा और पीछेसे उनपर आक्रमण किया ॥ २ ॥

ततः श्वेतहयः कृष्णमब्रवीदजितं जयः ।
एष मां भ्रातृभिः सार्धं सुशर्माऽऽह्वयतेऽच्युत ॥ ३ ॥

तब श्वेतवाहन अर्जुनने अपराजित श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा, 'अच्युत ! यह भाइयोंसहित सुशर्मा मुझे पुनः युद्धके लिये बुला रहा है ॥ ३ ॥

दीर्यते चोत्तरेणैव तत् सैन्यं मधुसूदन ।

द्वैधीभूतं मनो मेऽद्य कृतं संशप्तकैरिदम् ॥ ४ ॥

'उधर उत्तर दिशाकी ओर अपनी सेनाका नाश किया जा रहा है। मधुसूदन ! इन संशप्तकोंने आज मेरे मनको दुविधामें डाल दिया है ॥ ४ ॥

किं नु संशप्तकान् हन्मि स्वान् रक्षाम्यहितार्दितान्।
इति मे त्वं मतं वेत्सि तत्र किं सुकृतं भवेत् ॥ ५ ॥

'क्या मैं संशप्तकोंका वध करूँ अथवा शत्रुओंद्वारा पीड़ित हुए अपने सैनिकोंकी रक्षा करूँ। इस प्रकार मेरा मन संकल्प-विकल्पमें पड़ा है, सो आप जानते ही हैं। बताइये, अब मेरे लिये क्या करना अच्छा होगा' ॥ ५ ॥

एवमुक्तस्तु दाशार्हः स्यन्दनं प्रत्यवर्तयत्।
येन त्रिगर्ताधिपतिः पाण्डवं समुपाह्वयत् ॥ ६ ॥

अर्जुनके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने अपने रथको उसी ओर लौटाया, जिस ओरसे त्रिगर्तराज सुशर्मा उन पाण्डुकुमारको युद्धके लिये ललकार रहा था ॥ ६ ॥

ततोऽर्जुनः सुशर्माणं विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः।
ध्वजं धनुश्चास्य तथा क्षुराभ्यां समकृन्तत ॥ ७ ॥

तत्पश्चात् अर्जुनने सुशर्माको सात बाणोंसे घायल करके दो छुरोंद्वारा उसके ध्वज और धनुषको काट डाला ॥ ७ ॥

त्रिगर्ताधिपतेश्चापि भ्रातरं षड्भिराशुगैः।
साश्वं ससूतं त्वरितः पार्थः प्रैषीद् यमक्षयम् ॥ ८ ॥

साथ ही त्रिगर्तराजके भाईको भी छः बाण मारकर अर्जुनने उसे घोड़े और सारथिसहित तुरंत यमलोक भेज दिया ॥

ततो भुजगसंकाशां सुशर्मा शक्तिमायसीम्।
चिक्षेपार्जुनमादिश्य वासुदेवाय तोमरम् ॥ ९ ॥

तदनन्तर सुशर्माने सर्पके समान आकृतिवाली लोहेकी बनी हुई एक शक्तिको अर्जुनके ऊपर चलाया और वसुदेव-नन्दन श्रीकृष्णपर तोमरसे प्रहार किया ॥ ९ ॥

शक्तिं त्रिभिः शरैश्छित्त्वा तोमरं त्रिभिरर्जुनः।
सुशर्माणं शरव्रातैर्मोहयित्वा न्यवर्तयत् ॥ १० ॥

अर्जुनने तीन बाणोंद्वारा शक्ति तथा तीन बाणोंद्वारा तोमरको काटकर सुशर्माको अपने बाण-समूहोंद्वारा मोहित करके पीछे लौटा दिया ॥ १० ॥

तं वासवमिवायान्तं भूरिवर्षं शरौघिणम्।
राजंस्तावकसैन्यानां नोग्रं कश्चिदवारयत् ॥ ११ ॥

राजन् ! इसके बाद वे इन्द्रके समान बाण-समूहोंकी भारी वर्षा करते हुए जब आपकी सेनापर आक्रमण करने लगे, उस समय आपके सैनिकोंमेंसे कोई भी उन उग्ररूप-धारी अर्जुनको रोक न सका ॥ ११ ॥

ततो धनंजयो बाणैः सर्वानेव महारथान्।
आयाद् विनिघ्नन् कौरव्यान् दहन् कक्षमिवानलः ॥ १२ ॥

तत्पश्चात् जैसे अग्नि घास-फूँसके समूहको जला डालती है, उसी प्रकार अर्जुन अपने बाणोंद्वारा समस्त कौरव महारथियोंको क्षत-विक्षत करते हुए वहाँ आ पहुँचे ॥ १२ ॥

तस्य वेगमसह्यं तं कुन्तीपुत्रस्य धीमतः।
नाशक्नुवंस्ते संसोढुं स्पर्शमग्नेरिव प्रजाः ॥ १३ ॥

परम बुद्धिमान् कुन्तीपुत्रके उस असह्य वेगको कौरव सैनिक उसी प्रकार नहीं सह सके, जैसे प्रजा अग्निका स्पर्श नहीं सहन कर पाती ॥ १३ ॥

संवेष्टयन्ननीकानि शरवर्षेण पाण्डवः।
सुपर्णपातवद् राजन्नायात् प्राग्ज्योतिषं प्रति ॥ १४ ॥

राजन् ! अर्जुनने बाणोंकी वर्षासे कौरव सेनाओंको आच्छादित करते हुए गरुड़के समान वेगसे भगदत्तपर आक्रमण किया ॥ १४ ॥

यत् तदानामयज्जिष्णुर्भरतानामपापिनाम्।
धनुः क्षेमकरं संख्ये द्विषतामश्रुवर्धनम् ॥ १५ ॥
तदेव तव पुत्रस्य राजन् दुर्द्यूतदेविनः।
कृते क्षत्रविनाशाय धनुरायच्छदर्जुनः ॥ १६ ॥

महाराज ! विजयी अर्जुनने युद्धमें शत्रुओंकी अश्रुधाराको बढ़ानेवाले जिस धनुषको कभी निष्पाप भरतवंशियोंका कल्याण करनेके लिये नवाया था, उसीको कपटद्यूत खेलनेवाले आपके पुत्रके अपराधके कारण सम्पूर्ण क्षत्रियोंका विनाश करनेके लिये हाथमें लिया ॥ १५-१६ ॥

तथा विक्षोभ्यमाणा सा पार्थेन तव वाहिनी।
व्यशीर्यत महाराज नौरिवासाद्य पर्वतम् ॥ १७ ॥

नरेश्वर ! कुन्तीकुमार अर्जुनके द्वारा मथी जाती हुई आपकी वाहिनी उसी प्रकार छिन्न-भिन्न होकर बिखर गयी, जैसे नाव किसी पर्वतसे टकराकर टूक-टूक हो जाती है ॥

ततो दशसहस्राणि न्यवर्तन्त धनुष्मताम्।
मतिं कृत्वा रणे क्रूरां वीरा जयपराजये ॥ १८ ॥

तदनन्तर दस हजार धनुर्धर वीर जय अथवा पराजयके हेतुभूत युद्धका क्रूरतापूर्ण निश्चय करके लौट आये ॥ १८ ॥

व्यपेतहृदयत्रासा आवव्रुस्तं महारथाः।
आर्च्छत् पार्थो गुरुं भारं सर्वभारसहो युधि ॥ १९ ॥

उन महारथियोंने अपने हृदयसे भयको निकालकर अर्जुनको वहाँ घेर लिया। युद्धमें समस्त भारोंको सहन करनेवाले अर्जुनने उनसे लड़नेका भारी भार भी अपने ही ऊपर ले लिया ॥ १९ ॥

यथा नलवनं क्रुद्धः प्रभिन्नः षष्टिहायनः।
मृद्नीयात् तद्वदायस्तः पार्थोऽमृद्नाच्चमूं तव ॥ २० ॥

जैसे साठ वर्षका मदस्रावी हाथी क्रोधमें भरकर नरकुलोंके जंगलको रौंदकर धूलमें मिला देता है, उसी प्रकार प्रयत्नशील पार्थने आपकी सेनाको मटियामेट कर दिया ॥

तस्मिन् प्रमथिते सैन्ये भगदत्तो नराधिपः।

तेन नागेन सहसा धनंजयमुपाद्रवत् ॥ २१ ॥

उस सेनाके मथ डाले जानेपर राजा भगदत्तने उसी सुप्रतीक हाथीके द्वारा सहसा धनंजयपर धावा किया ॥२१॥

तं रथेन नरव्याघ्रः प्रत्यगृह्णाद् धनंजयः ।
स संनिपातस्तुमुलो बभूव रथनागयोः ॥ २२ ॥

नरश्रेष्ठ अर्जुनने रथके द्वारा ही उस हाथीका सामना किया। रथ और हाथीका वह संघर्ष बड़ा भयंकर था ॥२२॥

कल्पिताभ्यां यथाशास्त्रं रथेन च गजेन च ।
संग्रामे चेरतुर्वीरौ भगदत्तधनंजयौ ॥ २३ ॥

शास्त्रीय विधिके अनुसार निर्मित और सुसज्जित रथ तथा सुशिक्षित हाथीके द्वारा वीरवर अर्जुन और भगदत्त संग्रामभूमिमें विचरने लगे ॥ २३ ॥

ततो जीमूतसंकाशान्नागादिन्द्र इव प्रभुः ।
अभ्यवर्षच्छरौघेण भगदत्तो धनंजयम् ॥ २४ ॥

तदनन्तर इन्द्रके समान शक्तिशाली राजा भगदत्त अर्जुनपर मेघ-सदृश हाथीसे बाणसमूहरूपी जलराशिकी वर्षा करने लगे ॥ २४ ॥

स चापि शरवर्षं तं शरवर्षेण वासविः ।
अप्राप्तमेव चिच्छेद भगदत्तस्य वीर्यवान् ॥ २५ ॥

इधर पराक्रमी इन्द्रकुमार अर्जुनने अपने बाणोंकी वृष्टिसे भगदत्तकी बाण-वर्षाको अपने पासतक पहुँचनेके पहले ही छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ २५ ॥

ततः प्राग्ज्योतिषो राजा शरवर्षं निवार्य तत् ।
शरैर्जघ्ने महाबाहुं पार्थं कृष्णं च मारिष ॥ २६ ॥

आर्य ! तदनन्तर प्राग्ज्योतिषनरेश राजा भगदत्तने भी विपक्षीकी उस बाण-वर्षाका निवारण करके महाबाहु अर्जुन और श्रीकृष्णको अपने बाणोंसे घायल कर दिया ॥ २६ ॥

ततस्तु शरजालेन महताभ्यवकीर्य तौ ।
चोदयामास तं नागं वधायाच्युतपार्थयोः ॥ २७ ॥

फिर उनके ऊपर बाणोंका महान् जाल-सा बिछाकर श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंके वधके लिये उस गजराजको आगे बढ़ाया॥

तमापतन्तं द्विरदं दृष्ट्वा क्रुद्धमिवान्तकम् ।
चक्रेऽपसव्यं त्वरितः स्यन्दनेन जनार्दनः ॥ २८ ॥

क्रोधमें भरे हुए यमराजके समान उस हाथीको आक्रमण करते देख भगवान् श्रीकृष्णने तुरंत ही रथद्वारा उसे अपने दाहिने कर दिया ॥ २८ ॥

तं प्राप्तमपि नेयेष परावृत्तं महाद्विपम् ।
सारोहं मृत्युसात्कर्तुं स्मरन् धर्मं धनंजयः ॥ २९ ॥

यद्यपि वह महान् गजराज आक्रमण करते समय अपने बहुत निकट आ गया था, तो भी अर्जुनने धर्मका स्मरण करके सवारोंसहित उस हाथीको मृत्युके अधीन करनेकी इच्छा नहीं की* ॥ २९ ॥

स तु नागो द्विपरथान् हयांश्चामृद्य मारिष ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय ततः क्रुद्धो धनंजयः ॥ ३० ॥

आदरणीय महाराज ! उस हाथीने बहुत-से हाथियों, रथों और घोड़ोंको कुचलकर यमलोक भेज दिया। यह देख अर्जुनको बड़ा क्रोध हुआ ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि भगदत्तयुद्धे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत संशप्तकवधपर्वमें भगदत्तका युद्धविषयक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

अर्जुन और भगदत्तका युद्ध, श्रीकृष्णद्वारा भगदत्तके वैष्णवास्त्रसे अर्जुनकी रक्षा तथा अर्जुनद्वारा हाथीसहित भगदत्तका वध

धृतराष्ट्र उवाच

तथा क्रुद्धः किमकरोद् भगदत्तस्य पाण्डवः ।
प्राग्ज्योतिषो वा पार्थस्य तन्मे शंस यथातथम्॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! उस समय क्रोधमें भरे हुए पाण्डुकुमार अर्जुनने भगदत्तका और भगदत्तने अर्जुनका क्या किया ? यह मुझे ठीक-ठीक बताओ ॥ १ ॥

संजय उवाच

प्राग्ज्योतिषेण संसक्तावुभौ दाशार्हपाण्डवौ ।
मृत्युदंष्ट्रान्तिकं प्राप्तौ सर्वभूतानि मेनिरे ॥ २ ॥

संजयने कहा—राजन् ! भगदत्तसे युद्धमें उलझे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंको समस्त प्राणियोंने मौतकी दाढ़ोंमें पहुँचा हुआ ही माना ॥ २ ॥

तथा तु शरवर्षाणि पातयत्यनिशं प्रभो ।
गजस्कन्धान्महाराज कृष्णयोः स्यन्दनस्थयोः ॥ ३ ॥

शक्तिशाली महाराज ! हाथीकी पीठसे भगदत्त रथपर बैठे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनपर निरन्तर बाणोंकी वर्षा कर रहे थे ॥

अथ कार्ष्णायसैर्बाणैः पूर्णकार्मुकनिःसृतैः ।
अविध्यद् देवकीपुत्रं हेमपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ ४ ॥

* भगदत्तके हाथीने जब आक्रमण किया, उस समय श्रीकृष्ण रथको बगलमें हटाकर उसके आघातसे बच गये। अर्जुनने हाथीके सवारोंको सचेत नहीं किया था; उस दशामें हाथीको मारना युद्धके लिये स्वीकृत नियमके विरुद्ध होता। उसमें नियम था—'समाभाष्य प्रहर्तव्यम्'—'विपक्षीको सावधान करके उसके ऊपर प्रहार करना चाहिये।' इसीलिये अर्जुनने धर्मका विचार करके उसे उस समय नहीं मारा।

उन्होंने धनुषको पूर्णरूपसे खींचकर छोड़े हुए लोहेके बने और शानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पंख-युक्त बाणोंसे देवकीपुत्र श्रीकृष्णको घायल कर दिया ॥ ४ ॥

अग्निस्पर्शसमास्तीक्ष्णा भगदत्तेन चोदिताः ।
निर्भिद्य देवकीपुत्रं क्षितिं जग्मुः सुवाससः ॥ ५ ॥

भगदत्तके चलाये हुए अग्निके स्पर्शके समान तीक्ष्ण और सुन्दर पंखवाले बाण देवकीपुत्र श्रीकृष्णके शरीरको छेदकर धरतीमें समा गये ॥ ५ ॥

तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा परिवारं निहत्य च ।
लालयन्निव राजानं भगदत्तमयोधयत् ॥ ६ ॥

तब अर्जुनने राजा भगदत्तका धनुष काटकर उनके परिवारको मार डाला और उन्हें लाड़ लड़ाते हुए-से उनके साथ युद्ध आरम्भ किया ॥ ६ ॥

सोऽर्करश्मिनिभांस्तीक्ष्णांस्तोमरान् वै चतुर्दश ।
अप्रेषयत् सव्यसाची द्विधैकैकमथाच्छिनत् ॥ ७ ॥

भगदत्तने सूर्यकी किरणोंके समान तीखे चौदह तोमर चलाये, परंतु सव्यसाची अर्जुनने उनमेंसे प्रत्येकके दो-दो टुकड़े कर डाले ॥ ७ ॥

ततो नागस्य तद् वर्म व्यधमत् पाकशासनिः ।
शरजालेन महता तद् व्यशीर्यत भूतले ॥ ८ ॥

तब इन्द्रकुमारने भारी बाण-वर्षाके द्वारा उस हाथीके कवचको काट डाला, जिससे कवच जीर्ण-शीर्ण होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ८ ॥

शीर्णवर्मा स तु गजः शरैः सुभृशमर्दितः ।
बभौ धारानिपाताक्तो व्यभ्रः पर्वतराडिव ॥ ९ ॥

कवच कट जानेपर हाथीको बाणोंके आघातसे बड़ी पीड़ा होने लगी। वह खूनकी धारासे नहा उठा और बादलोंसे रहित एवं (गैरिकमिश्रित) जलधारासे भीगे हुए गिरिराजके समान शोभा पाने लगा ॥ ९ ॥

ततः प्राग्ज्योतिषः शक्तिं हेमदण्डामयस्मयीम् ।
व्यसृजद् वासुदेवाय द्विधा तामर्जुनोऽच्छिनत् ॥ १० ॥

तब भगदत्तने वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णको लक्ष्य करके सुवर्णमय दण्डसे युक्त लोहमयी शक्ति चलायी। परंतु अर्जुनने उसके दो टुकड़े कर डाले ॥ १० ॥

ततश्छत्रं ध्वजं चैव छित्त्वा राज्ञोऽर्जुनः शरैः ।
विव्याध दशभिस्तूर्णमुत्स्मयन् पर्वतेश्वरम् ॥ ११ ॥

तदनन्तर अर्जुनने अपने बाणोंद्वारा राजा भगदत्तके छत्र और ध्वजको काटकर मुसकराते हुए दस बाणोंद्वारा तुरंत ही उन पर्वतेश्वरको बींध डाला ॥ ११ ॥

सोऽतिविद्धोऽर्जुनशरैः सुपुङ्खैः कङ्कपत्रिभिः ।
भगदत्तस्ततः क्रुद्धः पाण्डवस्य जनाधिपः ॥ १२ ॥

अर्जुनके कङ्कपत्रयुक्त सुन्दर पाँखवाले बाणोंद्वारा अत्यन्त घायल हो राजा भगदत्त उन पाण्डुपुत्रपर कुपित हो उठे ॥ १२ ॥

व्यसृजत् तोमरान् मूर्ध्नि श्वेताश्वस्योन्ननाद च ।
तैरर्जुनस्य समरे किरीटं परिवर्तितम् ॥ १३ ॥

उन्होंने श्वेतवाहन अर्जुनके मस्तकपर तोमरोंका प्रहार किया और जोरसे गर्जना की। उन तोमरोंने समरभूमिमें अर्जुनके किरीटको उलट दिया ॥ १३ ॥

परिवृत्तं किरीटं तद् यमयन्नेव पाण्डवः ।
सुदृष्टः क्रियतां लोक इति राजानमब्रवीत् ॥ १४ ॥

उलटे हुए किरीटको ठीक करते हुए पाण्डुपुत्र अर्जुनने भगदत्तसे कहा—'राजन्! अब इस संसारको अच्छी तरह देख लो' ॥ १४ ॥

एवमुक्तस्तु संक्रुद्धः शरवर्षेण पाण्डवम् ।
अभ्यवर्षत् सगोविन्दं धनुरादाय भास्वरम् ॥ १५ ॥

अर्जुनके ऐसा कहनेपर भगदत्तने अत्यन्त कुपित हो एक तेजस्वी धनुष हाथमें लेकर श्रीकृष्णसहित अर्जुनपर बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ १५ ॥

तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा तूणीरान् संनिकृत्य च ।
त्वरमाणो द्विसप्तत्या सर्वमर्मस्वताडयत् ॥ १६ ॥

अर्जुनने उनके धनुषको काटकर उनके तूणीरोंके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये। फिर तुरत ही बहत्तर बाणोंसे उनके सम्पूर्ण मर्मस्थानोंमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ १६ ॥

विद्धस्ततोऽतिव्यथितो वैष्णवास्त्रमुदीरयन् ।
अभिमन्त्र्याङ्कुशं क्रुद्धो व्यसृजत् पाण्डवोरसि ॥ १७ ॥

उन बाणोंसे घायल हो अत्यन्त पीड़ित होकर भगदत्तने वैष्णवास्त्र प्रकट किया। उसने कुपित हो अपने अङ्कुशको ही वैष्णवास्त्रसे अभिमन्त्रित करके पाण्डुनन्दन अर्जुनकी छातीपर छोड़ दिया ॥ १७ ॥



विसृष्टं भगदत्तेन तदस्त्रं सर्वघाति वै ।
उरसा प्रतिजग्राह पार्थं संच्छाद्य केशवः ॥ १८ ॥

भगदत्तका छोड़ा हुआ वह अस्त्र सबका विनाश करनेवाला था। भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको ओटमें करके स्वयं ही अपनी छातीपर उसकी चोट सह ली ॥ १८ ॥

वैजयन्त्यभवन्माला तदस्त्रं केशवोरसि ।
पद्मकोशविचित्राढ्या सर्वर्तुकुसुमोत्कटा ॥ १९ ॥
ज्वलनार्केन्दुवर्णाभा पावकोज्ज्वलपल्लवा ।
तया पद्मपलाशिन्या वातकम्पितपत्रया ॥ २० ॥
शुशुभेऽभ्यधिकं शौरिरतसीपुष्पसंनिभः ।
(केशवः केशिमथनः शार्ङ्गधन्वारिमर्दनः ।
संध्याभ्रैरिव संछन्नः प्रावृट्काले नगोत्तमः ॥)

भगवान् श्रीकृष्णकी छातीपर आकर वह अस्त्र वैजयन्ती मालाके रूपमें परिणत हो गया। वह माला कमलकोशकी विचित्र शोभासे युक्त तथा सभी ऋतुओंके पुष्पोंसे सम्पन्न थी। उससे अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाके समान प्रभा फैल रही थी। उसका एक-एक दल अग्निके समान प्रकाशित हो रहा था। कमलदलोंसे सुशोभित तथा हवासे हिलते हुए दलोंवाली उस वैजयन्ती मालासे तीसीके फूलोंके समान श्यामवर्णवाले केशिहन्ता, शूरसेननन्दन, शार्ङ्गधन्वा, शत्रुसूदन भगवान् केशव अधिकाधिक शोभा पाने लगे, मानो वर्षाकालमें संध्याके मेघोंसे आच्छादित श्रेष्ठ पर्वत सुशोभित हो रहा हो ॥ १९-२०½ ॥

ततोऽर्जुनः क्लान्तमनाः केशवं प्रत्यभाषत ॥ २१ ॥
अयुध्यमानस्तुरगान् संयन्तास्मीति चानघ ।
इत्युक्त्वा पुण्डरीकाक्ष प्रतिज्ञां स्वां न रक्षसि ॥ २२ ॥
यद्यहं व्यसनी वा स्यामशक्तो वा निवारणे ।
ततस्त्वयैवं कार्यं स्यान्न तत्कार्यं मयि स्थिते ॥ २३ ॥

उस समय अर्जुनके मनमें बड़ा क्लेश हुआ। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा—'अनघ ! आपने तो प्रतिज्ञा की है कि मैं युद्ध न करके घोड़ोंको काबूमें रखूँगा—केवल सारथिका काम करूँगा; किंतु कमलनयन ! आप वैसी बात कहकर भी अपनी प्रतिज्ञाका पालन नहीं कर रहे हैं। यदि मैं संकटमें पड़ जाता अथवा अस्त्रका निवारण करनेमें असमर्थ हो जाता तो उस समय आपका ऐसा करना उचित होता। जब मैं युद्धके लिये तैयार खड़ा हूँ, तब आपको ऐसा नहीं करना चाहिये ॥ २१—२३ ॥

सबाणः सधनुश्चाहं ससुरासुरमानुषान् ।
शक्तो लोकानिमाञ्जेतुं तच्चापि विदितं तव ॥ २४ ॥

'आपको तो यह भी विदित है कि यदि मेरे हाथमें धनुष और बाण हो तो मैं देवता, असुर और मनुष्योंसहित इन सम्पूर्ण लोकोंपर विजय पा सकता हूँ' ॥ २४ ॥

ततोऽर्जुनं वासुदेवः प्रत्युवाचार्थवद् वचः ।
शृणु गुह्यमिदं पार्थ पुरा वृत्तं यथानघ ॥ २५ ॥

तब वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे ये रहस्यपूर्ण वचन कहे—'अनघ ! कुन्तीनन्दन ! इस विषयमें यह गोपनीय रहस्यकी बात सुनो, जो पूर्वकालमें घटित हो चुकी है ॥ २५ ॥

चतुर्मूर्तिरहं शश्वल्लोकत्राणार्थमुद्यतः ।
आत्मानं प्रविभज्येह लोकानां हितमादधे ॥ २६ ॥

'मैं चार स्वरूप धारण करके सदा सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षाके लिये उद्यत रहता हूँ। अपनेको ही यहाँ अनेक रूपोंमें विभक्त करके समस्त संसारका हित साधन करता हूँ ॥ २६ ॥

एका मूर्तिस्तपश्चर्यां कुरुते मे भुवि स्थिता ।
अपरा पश्यति जगत् कुर्वाणं साध्वसाधुनी ॥ २७ ॥

'मेरी एक मूर्ति इस भूमण्डलपर (बदरिकाश्रममें नर-नारायणके रूपमें) स्थित हो तपश्चर्या करती है। दूसरी (परमात्मस्वरूपा) मूर्ति शुभाशुभकर्म करनेवाले जगत्को साक्षीरूपसे देखती रहती है ॥ २७ ॥

अपरा कुरुते कर्म मानुषं लोकमाश्रिता ।
शेते चतुर्थी त्वपरा निद्रां वर्षसहस्रिकम् ॥ २८ ॥

'तीसरी मूर्ति (मैं स्वयं जो) मनुष्यलोकका आश्रय ले नाना प्रकारके कर्म करती है और चौथी मूर्ति वह है, जो सहस्र युगोंतक एकार्णवके जलमें शयन करती है ॥ २८ ॥

यासौ वर्षसहस्रान्ते मूर्तिरुत्तिष्ठते मम ।
वरार्हेभ्यो वराञ्श्रेष्ठांस्तस्मिन् काले ददाति सा ॥ २९ ॥

'सहस्र-युगके पश्चात् मेरा वह चौथा स्वरूप जब योग-निद्रासे उठता है, उस समय वर पानेके योग्य श्रेष्ठ भक्तोंको उत्तम वर प्रदान करता है ॥ २९ ॥

तं तु कालमनुप्राप्तं विदित्वा पृथिवी तदा ।
अयाचत वरं यन्मां नरकार्थाय तच्छृणु ॥ ३० ॥

'एक बार जब कि वही समय प्राप्त था, पृथ्वीदेवीने अपने पुत्र नरकासुरके लिये मुझसे जो वर माँगा, उसे सुनो ॥ ३० ॥

देवानां दानवानां च अवध्यस्तनयोऽस्तु मे ।
उपेतो वैष्णवास्त्रेण तन्मे त्वं दातुमर्हसि ॥ ३१ ॥

'मेरा पुत्र वैष्णवास्त्रसे सम्पन्न होकर देवताओं और दानवोंके लिये अवध्य हो जाय, इसलिये आप कृपापूर्वक मुझे वह अपना अस्त्र प्रदान करें' ॥ ३१ ॥

एवं वरमहं श्रुत्वा जगत्यास्तनये तदा ।
अमोघमस्त्रं प्रायच्छं वैष्णवं परमं पुरा ॥ ३२ ॥

'उस समय पृथ्वीके मुँहसे अपने पुत्रके लिये इस प्रकार याचना सुनकर मैंने पूर्वकालमें अपना परम उत्तम अमोघ वैष्णव-अस्त्र उसे दे दिया ॥ ३२ ॥

अवोचं चैतदस्त्रं वै ह्यमोघं भवतु क्षमे ।
नरकस्याभिरक्षार्थं नैनं कश्चिद् वधिष्यति ॥ ३३ ॥

'उसे देते समय मैंने कहा—'वसुधे ! यह अमोघ वैष्णवास्त्र नरकासुरकी रक्षाके लिये उसके पास रहे। फिर उसे कोई भी नष्ट नहीं कर सकेगा ॥ ३३ ॥

अनेनास्त्रेण ते गुप्तः सुतः परबलार्दनः ।
भविष्यति दुराधर्षः सर्वलोकेषु सर्वदा ॥ ३४ ॥

'इस अस्त्रसे सुरक्षित रहकर तुम्हारा पुत्र शत्रुओंकी सेनाको पीड़ित करनेवाला और सदा सम्पूर्ण लोकोंमें दुर्धर्ष बना रहेगा' ॥ ३४ ॥

तथेत्युक्त्वा गता देवी कृतकामा मनस्विनी।
स चाप्यासीद् दुराधर्षो नरकः शत्रुतापनः ॥ ३५ ॥

'तब 'जो आज्ञा' कहकर मनस्विनी पृथ्वीदेवी कृतार्थ होकर चली गयी। वह नरकासुर भी (उस अस्त्रको पाकर) शत्रुओंको संताप देनेवाला तथा अत्यन्त दुर्जय हो गया ॥३५॥

तस्मात् प्राग्ज्योतिषं प्राप्तं तदस्त्रं पार्थ मामकम्।
नास्यावध्योऽस्ति लोकेषु सेन्द्ररुद्रेषु मारिष ॥ ३६ ॥

'पार्थ ! नरकासुरसे वह मेरा अस्त्र इस प्राग्ज्योतिषनरेश भगदत्तको प्राप्त हुआ। आर्य ! इन्द्र तथा रुद्रसहित तीनों लोकोंमें कोई भी ऐसा वीर नहीं है, जो इस अस्त्रके लिये अवध्य हो ॥ ३६ ॥

तन्मया त्वत्कृते चैतदन्यथा व्यपनामितम्।
विमुक्तं परमास्त्रेण जहि पार्थ महासुरम् ॥ ३७ ॥

'अतः मैंने तुम्हारी रक्षाके लिये उस अस्त्रको दूसरे प्रकारसे उसके पाससे हटा दिया है। पार्थ ! अब वह महान् असुर उस उत्कृष्ट अस्त्रसे वञ्चित हो गया है। अतः तुम उसे मार डालो ॥ ३७ ॥

वैरिणं जहि दुर्धर्षं भगदत्तं सुरद्विषम्।
यथाहं जघ्निवान् पूर्वं हितार्थं नरकं तथा ॥ ३८ ॥

'दुर्जय वीर भगदत्त तुम्हारा वैरी और देवताओंका द्रोही है। अतः तुम उसका वध कर डालो; जैसे कि मैंने पूर्वकालमें लोकहितके लिये नरकासुरका संहार किया था' ॥

एवमुक्तस्तदा पार्थः केशवेन महात्मना।
भगदत्तं शितैर्बाणैः सहसा समवाकिरत् ॥ ३९ ॥

महात्मा केशवके ऐसा कहनेपर कुन्तीकुमार अर्जुन उसी समय भगदत्तपर सहसा पैने बाणोंकी वर्षा करने लगे। ३९।

ततः पार्थो महाबाहुरसम्भ्रान्तो महामनाः।
कुम्भयोरन्तरे नागं नाराचेन समार्पयत् ॥ ४० ॥

तत्पश्चात् महाबाहु महामना पार्थने बिना किसी घबराहटके हाथीके कुम्भस्थलमें एक नाराचका प्रहार किया ॥ ४० ॥

स समासाद्य तं नागं बाणो वज्र इवाचलम्।
अभ्यगात् सह पुङ्खेन वल्मीकमिव पन्नगः ॥ ४१ ॥

वह नाराच उस हाथीके मस्तकपर पहुँचकर उसी प्रकार लगा, जैसे वज्र पर्वतपर चोट करता है। जैसे सर्प बाँबीमें समा जाता है, उसी प्रकार वह बाण हाथीके कुम्भस्थलमें पंखसहित घुस गया ॥ ४१ ॥

स करी भगदत्तेन प्रेर्यमाणो मुहुर्मुहुः।
न करोति वचस्तस्य दरिद्रस्येव योषिता ॥ ४२ ॥

वह हाथी बारंबार भगदत्तके हाँकनेपर भी उनकी आज्ञाका पालन नहीं करता था, जैसे दुष्टा स्त्री अपने दरिद्र स्वामीकी बात नहीं मानती है ॥ ४२ ॥

स तु विष्टभ्य गात्राणि दन्ताभ्यामवनिं ययौ।
नदन्नार्तस्वनं प्राणानुत्ससर्ज महाद्विपः ॥ ४३ ॥

उस महान् गजराजने अपने अंगोंको निश्चेष्ट करके दोनों दाँत धरतीपर टेक दिये और आर्तस्वरसे चीत्कार करके प्राण त्याग दिये ॥ ४३ ॥

ततो गाण्डीवधन्वानमभ्यभाषत केशवः।
अयं महत्तरः पार्थ पलितेन समावृतः ॥ ४४ ॥
वलीसंछन्ननयनः शूरः परमदुर्जयः।
अक्ष्णोरुन्मीलनार्थाय बद्धपट्टो ह्यसौ नृपः ॥ ४५ ॥

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने गाण्डीवधारी अर्जुनसे कहा—'कुन्तीनन्दन ! यह भगदत्त बहुत बड़ी अवस्थाका है। इसके सारे बाल पक गये हैं और ललाट आदि अंगोंमें झुर्रियाँ पड़ जानेके कारण पलकें झपी रहनेसे इसके नेत्र प्रायः बंद-से रहते हैं। यह शूर-वीर तथा अत्यन्त दुर्जय है। इस राजाने अपने दोनों नेत्रोंको खुले रखनेके लिये पलकोंको कपड़ेकी पट्टीसे ललाटमें बाँध रक्खा है' ॥ ४४-४५ ॥

देववाक्यात् प्रचिच्छेद शरेण भृशमर्जुनः।
छिन्नमात्रेंऽशुके तस्मिन् रुद्धनेत्रो बभूव सः ॥ ४६ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके कहनेसे अर्जुनने बाण मारकर भगदत्तके शिरकी पट्टी अत्यन्त छिन्न-भिन्न कर दी। उस पट्टीके कटते ही भगदत्तकी आँखें बंद हो गयीं ॥ ४६ ॥

तमोमयं जगन्मेने भगदत्तः प्रतापवान्।
ततश्चन्द्रार्धविम्बेन बाणेन नतपर्वणा ॥ ४७ ॥
बिभेद हृदयं राज्ञो भगदत्तस्य पाण्डवः।

फिर तो प्रतापी भगदत्तको सारा जगत् अन्धकारमय प्रतीत होने लगा। उस समय झुकी हुई गाँठवाले एक अर्धचन्द्राकार बाणके द्वारा पाण्डुनन्दन अर्जुनने राजा भगदत्तके वक्षःस्थलको विदीर्ण कर दिया ॥ ४७½ ॥

स भिन्नहृदयो राजा भगदत्तः किरीटिना ॥ ४८ ॥
शरासनं शरांश्चैव गतासुः प्रमुमोच ह।
शिरसस्तस्य विभ्रष्टं पपात च वरांशुकम्।
नालताडनविभ्रष्टं पलाशं नलिनादिव ॥ ४९ ॥

किरीटधारी अर्जुनके द्वारा हृदय विदीर्ण कर दिये जानेपर राजा भगदत्तने प्राणशून्य हो अपने धनुष-बाण त्याग दिये। उनके सिरसे पगड़ी और पट्टीका वह सुन्दर वस्त्र खिसककर गिर गया, जैसे कमलनालके ताडनसे उसका पत्ता टूटकर गिर जाता है ॥ ४८-४९ ॥

स हेममाली तपनीयभाण्डात्
पपात नागाद् गिरिसंनिकाशात्।



अर्जुनके द्वारा भगदत्तका वध

सुपुष्पितो मारुतवेगरुग्णो
महीधराग्रादिव कर्णिकारः ॥ ५० ॥

सोनेके आभूषणोंसे विभूषित उस पर्वताकार हाथीसे सुवर्णमालाधारी भगदत्त पृथ्वीपर गिर पड़े, मानो सुन्दर पुष्पोंसे सुशोभित कनेरका वृक्ष हवाके वेगसे टूटकर पर्वतके शिखरसे नीचे गिर पड़ा हो ॥ ५० ॥

निहत्य तं नरपतिमिन्द्रविक्रमं
सखायमिन्द्रस्य तदैन्द्रिराहवे ।
ततोऽपरांस्तव जयकाङ्क्षिणो नरान्
बभञ्ज वायुर्बलवान् द्रुमानिव ॥ ५१ ॥

राजन्! इस प्रकार इन्द्रकुमार अर्जुनने इन्द्रके सखा तथा इन्द्रके समान ही पराक्रमी राजा भगदत्तको युद्धमें मारकर आपकी सेनाके अन्य विजयाभिलाषी वीर पुरुषोंको भी उसी प्रकार मार गिराया, जैसे प्रबल वायु वृक्षोंको उखाड़ फेंकती है ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि भगदत्तवधे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत संशप्तकवधपर्वमें भगदत्तवधविषयक उनतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २९ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ५२ श्लोक हैं)

त्रिंशोऽध्यायः

अर्जुनके द्वारा वृषक और अचलका वध, शकुनिकी माया और उसकी पराजय तथा कौरव, सेनाका पलायन

संजय उवाच

प्रियमिन्द्रस्य सततं सखायममितौजसम् ।
हत्वा प्राग्ज्योतिषं पार्थः प्रदक्षिणमवर्तत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! जो सदा इन्द्रके प्रिय सखा रहे हैं, उन अमित तेजस्वी प्राग्ज्योतिषपुरनरेश भगदत्तको मारकर अर्जुन दाहिनी ओर घूमे ॥ १ ॥

ततो गान्धारराजस्य सुतौ परपुरंजयौ ।
अर्देतामर्जुनं संख्ये भ्रातरौ वृषकाचलौ ॥ २ ॥

उधरसे गान्धारराज सुबलके दो पुत्र शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले वृषक और अचल दोनों भाई आ पहुँचे और युद्धमें अर्जुनको पीड़ित करने लगे ॥ २ ॥

तौ समेत्यार्जुनं वीरौ पुरः पश्चाच्च धन्विनौ ।
अविध्येतां महावेगैर्निशितैराशुगैर्भृशम् ॥ ३ ॥

उन दोनों धनुर्धर वीरोंने अर्जुनपर आगे और पीछेसे भी आक्रमण करके अत्यन्त वेगशाली पैने बाणोंद्वारा उन्हें बहुत घायल कर दिया ॥ ३ ॥

वृषकस्य हयान् सूतं धनुश्छत्रं रथं ध्वजम् ।
तिलशो व्यधमत् पार्थः सौबलस्य शितैः शरैः ॥ ४ ॥

तब कुन्तीकुमार अर्जुनने अपने तीखे बाणोंद्वारा सुबलपुत्र वृषकके घोड़ों, सारथि, रथ, धनुष, छत्र और ध्वजाको तिल-तिल करके काट डाला ॥ ४ ॥

ततोऽर्जुनः शरव्रातैर्नानाप्रहरणैरपि ।
गान्धारानाकुलांश्चक्रे सौबलप्रमुखान् पुनः ॥ ५ ॥

तत्पश्चात् अर्जुनने अपने बाणसमूहों तथा नाना प्रकारके आयुधोंद्वारा सुबलपुत्र आदि समस्त गान्धारोंको पुनः व्याकुल कर दिया ॥ ५ ॥

ततः पञ्चशतान् वीरान् गान्धारानुद्यतायुधान् ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय क्रुद्धो बाणैर्धनंजयः ॥ ६ ॥

फिर क्रोधमें भरे हुए धनंजयने हथियार उठाये हुए पाँच सौ गान्धारदेशीय वीरोंको अपने बाणोंसे मारकर यमलोक भेज दिया ॥ ६ ॥

हताश्वात् तु रथात् तूर्णमवतीर्य महाभुजः ।
आरुरोह रथं भ्रातुरन्यच्च धनुराददे ॥ ७ ॥

महाबाहु वृषक उस अश्वहीन रथसे शीघ्र उतरकर अपने भाई अचलके रथपर जा चढ़ा। फिर उसने अपने हाथमें दूसरा धनुष ले लिया ॥ ७ ॥

तावेकरथमारूढौ भ्रातरौ वृषकाचलौ ।
शरवर्षेण बीभत्सुमविध्येतां मुहुर्मुहुः ॥ ८ ॥

इस प्रकार एक रथपर बैठे हुए वे दोनों भाई वृषक और अचल बारंबार बाणोंकी वर्षासे अर्जुनको घायल करने लगे ॥ ८ ॥

स्यालौ तव महात्मानौ राजानौ वृषकाचलौ ।
भृशं विजघ्नतुः पार्थमिन्द्रं वृत्रबलाविव ॥ ९ ॥

महाराज! आपके दोनों साले महामनस्वी राजकुमार वृषक और अचल, इन्द्रको वृत्रासुर तथा बलासुरके समान, अर्जुनको अत्यन्त घायल करने लगे ॥ ९ ॥

लब्धलक्ष्यौ तु गान्धारावहतां पाण्डवं पुनः ।
निदाघवार्षिकौ मासौ लोकं घर्मांशुभिर्यथा ॥ १० ॥

जैसे गर्मीके दो महीने सूर्यकी उष्ण किरणोंद्वारा सम्पूर्ण लोकोंको संतप्त करते रहते हैं, उसी प्रकार वे दोनों भाई गान्धारराजकुमार लक्ष्य वेधनेमें सफल होकर पाण्डुपुत्र अर्जुनपर बारंबार आघात करने लगे ॥ १० ॥

तौ रथस्थौ नरव्याघ्रौ राजानौ वृषकाचलौ ।
संश्लिष्टाङ्गौ स्थितौ राजञ्जघानैकेषुणार्जुनः ॥ ११ ॥

राजन्! वे नरश्रेष्ठ राजकुमार वृषक और अचल रथपर एक दूसरेसे सटकर खड़े थे। उसी अवस्थामें अर्जुनने एक ही बाणसे उन दोनोंको मार डाला ॥ ११ ॥

तौ रथात् सिंहसंकाशौ लोहिताक्षौ महाभुजौ ।
राजन् सम्पेततुर्वीरौ सोदर्यावेकलक्षणौ ॥ १२ ॥

महाराज ! वे दोनों वीर परस्पर सगे भाई होनेके कारण एक-जैसे लक्षणोंसे युक्त थे । दोनों ही सिंहके समान पराक्रमी, लाल नेत्रोंवाले तथा विशाल भुजाओंसे सुशोभित थे । वे दोनों एक ही साथ रथसे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १२ ॥

तयोर्भूमिं गतौ देहौ रथाद् बन्धुजनप्रियौ ।
यशो दश दिशः पुण्यं गमयित्वा व्यवस्थितौ ॥ १३ ॥

उन दोनों भाइयोंके शरीर उनके बन्धुजनोंके लिये अत्यन्त प्रिय थे । वे अपने पवित्र यशको दसों दिशाओंमें फैलाकर रथसे भूतलपर गिरे और वहीं स्थिर हो गये ॥ १३ ॥

दृष्ट्वा विनिहतौ संख्ये मातुलावपलायिनौ ।
भृशं मुमुचुरश्रूणि पुत्रास्तव विशाम्पते ॥ १४ ॥

प्रजानाथ ! युद्धसे पीठ न दिखानेवाले अपने दोनों मामाओंको युद्धमें मारा गया देख आपके सभी पुत्र अपने नेत्रोंसे आँसुओंकी अत्यन्त वर्षा करने लगे ॥ १४ ॥

निहतौ भ्रातरौ दृष्ट्वा मायाशतविशारदः ।
कृष्णौ सम्मोहयन् मायां विदधे शकुनिस्ततः ॥ १५ ॥

अपने दोनों भाइयोंको मारा गया देख सैकड़ों मायाओंके प्रयोगमें निपुण शकुनिने श्रीकृष्ण और अर्जुनको मोहित करते हुए उनके प्रति मायाका प्रयोग किया ॥ १५ ॥

लगुडायोगुडाश्मानः शतघ्न्यश्च सशक्तयः ।
गदापरिघनिस्त्रिंशशूलमुद्गरपट्टिशाः ॥ १६ ॥
सकम्पनर्ष्टिनखरा मुसलानि परश्वधाः ।
क्षुराः क्षुरप्रनालीका वत्सदन्तास्थिसन्धयः ॥ १७ ॥
चक्राणि विशिखाः प्रासा विविधान्यायुधानि च ।
प्रपेतुः शतशो दिग्भ्यः प्रदिग्भ्यश्चार्जुनं प्रति ॥ १८ ॥

फिर तो अर्जुनके ऊपर डंडे, लोहेके गोले, पत्थर, शतघ्नी, शक्ति, गदा, परिघ, खड्ग, शूल, मुद्गर, पट्टिश, कम्पन, ऋष्टि, नखर, मुसल, फरसे, छूरे, क्षुरप्र, नालीक, वत्सदन्त, अस्थिसंधि, चक्र, बाण, प्रास तथा अन्य नाना प्रकारके सैकड़ों अस्त्र-शस्त्र सम्पूर्ण दिशाओं और विदिशाओंसे आ-आकर पड़ने लगे ॥ १६–१८ ॥

खरोष्ट्रमहिषाः सिंहा व्याघ्राः सृमरचित्रकाः ।
ऋक्षाः शालावृका गृध्राः कपयश्च सरीसृपाः ॥ १९ ॥
विविधानि च रक्षांसि क्षुधितान्यर्जुनं प्रति ।
संक्रुद्धान्यभ्यधावन्त विविधानि वयांसि च ॥ २० ॥

गदहे, ऊँट, भैंसे, सिंह, व्याघ्र, रोझ, चीते, रीछ, कुत्ते, गीध, बन्दर, साँप तथा नाना प्रकारके भूखे राक्षस एवं भाँति-भाँतिके पक्षी अत्यन्त कुपित हो अर्जुनपर धावा करने लगे ॥ १९-२० ॥

ततो दिव्यास्त्रविच्छूरः कुन्तीपुत्रो धनंजयः ।
विसृजन्निषुजालानि सहसा तान्यताडयत् ॥ २१ ॥

तदनन्तर दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता शूरवीर कुन्तीपुत्र धनंजय सहसा बाणसमूहोंकी वर्षा करते हुए उन सबको मारने लगे ॥

ते हन्यमानाः शूरेण प्रवरैः सायकैर्दृढैः ।
विरुवन्तो महारावान् विनेशुः सर्वतो हताः ॥ २२ ॥

शूरवीर अर्जुनके सुदृढ़ एवं श्रेष्ठ सायकोंद्वारा मारे जाते हुए वे समस्त हिंसक पशु सब ओरसे घायल हो घोर चीत्कार करते हुए वहीं नष्ट हो गये ॥ २२ ॥

ततस्तमः प्रादुरभूदर्जुनस्य रथं प्रति ।
तस्माच्च तमसो वाचः क्रूराः पार्थमभर्त्सयन् ॥ २३ ॥

तदनन्तर अर्जुनके रथके समीप अन्धकार प्रकट हुआ और उस अन्धकारसे क्रूरतापूर्ण बातें कानोंमें, पड़कर अर्जुनको डाँट बताने लगीं ॥ २३ ॥

तत् तमो भैरवं घोरं भयकर्तृ महाहवे ।
उत्तमास्त्रेण महता ज्यौतिषेणार्जुनोऽवधीत् ॥ २४ ॥

उस महासमरमें प्रकट हुए उस भयदायक घोर एवं भयानक अंधकारको अर्जुनने अपने विशाल उत्तम ज्योतिर्मय अस्त्रद्वारा नष्ट कर दिया ॥ २४ ॥

हते तस्मिञ्जलौघास्तु प्रादुरासन् भयानकाः ।
अम्भसस्तस्य नाशार्थमादित्यास्त्रमथार्जुनः ॥ २५ ॥
प्रायुङ्क्ताम्भस्ततस्तेन प्रायशोऽस्त्रेण शोषितम् ।

उस अंधकारका निवारण हो जानेपर बड़े भयंकर जलप्रवाह प्रकट होने लगे । तब अर्जुनने उस जलके निवारणके लिये आदित्यास्त्रका प्रयोग किया । उस अस्त्रने वहाँका सारा जल सोख लिया ॥ २५½ ॥

एवं बहुविधा मायाः सौबलस्य कृताः कृताः ॥ २६ ॥
जघानास्त्रबलेनाशु प्रहसन्नर्जुनस्तदा ।

इस प्रकार सुबलपुत्र शकुनिके द्वारा बारंबार प्रयुक्त हुई नाना प्रकारकी मायाओंको उस समय अर्जुनने अपने अस्त्रबलसे हँसते-हँसते शीघ्र ही नष्ट कर दिया ॥ २६½ ॥

तदा हतासु मायासु त्रस्तोऽर्जुनशराहतः ॥ २७ ॥
अपायाज्जवनैरश्वैः शकुनिः प्राकृतो यथा ।

तब मायाओंका नाश हो जानेपर अर्जुनके बाणोंसे आहत एवं भयभीत होकर शकुनि अधम मनुष्योंकी भाँति तेज चलनेवाले घोड़ोंके द्वारा भाग खड़ा हुआ ॥ २७½ ॥

ततोऽर्जुनोऽस्त्रविच्छ्रैष्ठ्यं दर्शयन्नात्मनोऽरिषु ॥ २८ ॥
अभ्यवर्षच्छरौघेण कौरवाणामनीकिनीम् ।

तदनन्तर अस्त्रोंके ज्ञाता अर्जुन शत्रुओंको अपनी फुर्ती दिखाते हुए कौरव-सेनापर बाण-समूहोंकी वर्षा करने लगे ॥

सा हन्यमाना पार्थेन तव पुत्रस्य वाहिनी ॥ २९ ॥
द्वैधीभूता महाराज गङ्गेवासाद्य पर्वतम् ।

महाराज ! अर्जुनके द्वारा मारी जाती हुई आपके पुत्रकी विशाल सेना उसी प्रकार दो भागोंमें बट गयी, मानो गङ्गा किसी विशाल पर्वतके पास पहुँचकर दो धाराओंमें विभक्त हो गयी हों ॥ २९½ ॥

द्रोणमेवान्वपद्यन्त केचित् तत्र नरर्षभाः ॥ ३० ॥
केचिद् दुर्योधनं राजन्नर्द्यमानाः किरीटिना ।

राजन् ! किरीटधारी अर्जुनसे पीडित हो आपकी सेनाके कितने ही नरश्रेष्ठ द्रोणाचार्यके पीछे जा छिपे और कितने ही सैनिक राजा दुर्योधनके पास भाग गये ॥ ३०½ ॥

नापश्याम ततस्त्वेनं सैन्ये वै रजसावृते ॥ ३१ ॥
गाण्डीवस्य च निर्घोषः श्रुतो दक्षिणतो मया ।

महाराज ! उस समय हमलोग उड़ती हुई धूलराशिसे व्याप्त हुई सेनामें कहीं अर्जुनको देख नहीं पाते थे । मुझे तो दक्षिण दिशाकी ओर केवल उनके धनुषकी टंकार सुनायी देती थी ॥ ३१½ ॥

शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषं वादित्राणां च निःस्वनम् ॥ ३२ ॥
गाण्डीवस्य तु निर्घोषो व्यतिक्रम्यास्पृशद् दिवम् ।

शङ्ख और दुन्दुभियोंकी ध्वनि, वाद्योंके शब्द तथा गाण्डीव धनुषके गम्भीर घोष आकाशको लाँघकर स्वर्गतक जा पहुँचे ॥ ३२½ ॥

ततः पुनर्दक्षिणतः संग्राममश्चित्रयोधिनाम् ॥ ३३ ॥
सुयुद्धं चार्जुनस्यासीदहं तु द्रोणमन्वियाम् ।

तत्पश्चात् पुनः दक्षिण दिशामें विचित्र युद्ध करनेवाले योद्धाओंका अर्जुनके साथ बड़ा भारी युद्ध होने लगा और मैं द्रोणाचार्यके पास चला गया ॥ ३३½ ॥

यौधिष्ठिराण्यनीकानि प्रहरन्ति ततस्ततः ॥ ३४ ॥
नानाविधान्यनीकानि पुत्राणां तव भारत ।
अर्जुनो व्यधमत् काले दिवीवाभ्राणि मारुतः ॥ ३५ ॥

भरतनन्दन ! युधिष्ठिरकी सेनाके सैनिक इधर-उधरसे घातक प्रहार कर रहे थे। जैसे वायु आकाशमें बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार उस समय अर्जुन आपके पुत्रोंकी विभिन्न सेनाओंका विनाश करने लगे ॥ ३४-३५ ॥

तं वासवमिवायान्तं भूरिवर्षं शरौघिणम् ।
महेष्वासा नरव्याघ्रा नोग्रं केचिदवारयन् ॥ ३६ ॥

इन्द्रकी भाँति बाणरूपी जलराशिकी अत्यन्त वर्षा करनेवाले भयंकर वीर अर्जुनको आते देख कोई भी महाधनुर्धर पुरुषसिंह कौरव योद्धा उन्हें रोक न सके ॥ ३६ ॥

ते हन्यमानाः पार्थेन त्वदीया व्यथिता भृशम् ।
स्वानेव बहवो जघ्नुर्विद्रवन्तस्ततस्ततः ॥ ३७ ॥

अर्जुनकी मार खाकर आपके सैनिक अत्यन्त पीड़ित हो रहे थे । उनमेंसे बहुतेरे तो इधर-उधर भागते समय अपने ही पक्षके योद्धाओंको मार डालते थे ॥ ३७ ॥

तेऽर्जुनेन शरा मुक्ताः कङ्कपत्रास्तनुच्छिदः ।
शलभा इव सम्पेतुः संवृण्वाना दिशो दश ॥ ३८ ॥

अर्जुनके द्वारा छोड़े हुए कंकपक्षसे युक्त बाण विपक्षी वीरोंके शरीरोंको छेद डालनेवाले थे । वे सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित करते हुए टिड्डीदलके समान वहाँ सब ओर गिरने लगे ॥ ३८॥

तुरगं रथिनं नागं पदातिमपि मारिष ।
विनिर्भिद्य क्षितिं जग्मुर्वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ ३९ ॥

आर्य ! वे बाण घोड़े, रथी, हाथी और पैदल सैनिकोंको भी विदीर्ण करके उसी प्रकार धरतीमें समा जाते थे, जैसे सर्प बाँबीमें प्रवेश कर जाते हैं ॥ ३९ ॥

न च द्वितीयं व्यसृजत् कुञ्जराश्वनरेषु सः ।
पृथगेकशरारुग्णा निपेतुस्ते गतासवः ॥ ४० ॥

हाथी, घोड़े और मनुष्योंपर अर्जुन दूसरा बाण नहीं छोड़ते थे । वे सब-के-सब पृथक्-पृथक् एक ही बाणसे घायल हो प्राणशून्य होकर धरतीपर गिर पड़ते थे ॥ ४० ॥

हतैर्मनुष्यैर्द्विरदैश्च सर्वतः
शराभिसृष्टैश्च हयैर्निपातितैः ।
तदा श्वगोमायुबलाभिनादितं
विचित्रमायोधशिरो बभूव तत् ॥ ४१ ॥

बाणोंके आघातसे घायल होकर ढेर-के-ढेर मनुष्य मरे पड़े थे । चारों ओर हाथी धराशायी हो रहे थे और बहुत-से घोड़े मार डाले गये थे । उस समय कुत्तों और गीदड़ोंके समूहसे कोलाहलपूर्ण होकर वह युद्धका प्रमुख भाग अद्भुत प्रतीत हो रहा था ॥ ४१ ॥

पिता सुतं त्यजति सुहृद्वरं सुहृत्
तथैव पुत्रः पितरं शरातुरः ।
स्वरक्षणे कृतमतयस्तदा जना-
स्त्यजन्ति वाहानपि पार्थपीडिताः ॥४२॥

वहाँ पिता पुत्रको त्याग देता था, सुहृद् अपने श्रेष्ठ सुहृद्को छोड़ देता था तथा पुत्र बाणोंके आघातसे आतुर होकर अपने पिताको भी छोड़कर चल देता था। उस समय अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित हुए सब लोग अपने-अपने प्राण बचानेकी ओर ध्यान देकर सवारियोंको भी छोड़कर भाग जाते थे ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि शकुनिपलायने त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत संशप्तकवधपर्वमें शकुनिका पलायनविषयक तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

कौरव-पाण्डव सेनाओंका घमासान युद्ध तथा अश्वत्थामाके द्वारा राजा नीलका वध

धृतराष्ट्र उवाच

तेष्वनीकेषु भग्नेषु पाण्डुपुत्रेण संजय।
चलितानां द्रुतानां च कथमासीन्मनो हि वः॥ १॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! पाण्डुपुत्र अर्जुनके द्वारा पराजित हो जब सारी सेनाएँ भाग खड़ी हुईं, उस समय विचलित हो पलायन करते हुए तुमलोगोंके मनकी कैसी अवस्था हो रही थी? ॥ १॥

अनीकानां प्रभग्नानामवस्थानमपश्यताम्।
दुष्करं प्रतिसंधानं तन्ममाचक्ष्व संजय॥ २॥

भागती हुई सेनाओंको जब अपने ठहरनेके लिये कोई स्थान नहीं दिखायी देता हो, उस समय उन सबको संगठित करके एक स्थानपर ले आना बड़ा कठिन काम होता है। अतः संजय! तुम मुझे वह सब समाचार ठीक-ठीक बताओ॥

संजय उवाच

तथापि तव पुत्रस्य प्रियकामा विशाम्पते।
यशः प्रवीरा लोकेषु रक्षन्तो द्रोणमन्वयुः॥ ३॥

संजयने कहा—प्रजानाथ! यद्यपि सेनाओंमें भगदड़ पड़ गयी थी, तथापि बहुत-से विश्वविख्यात वीरोंने आपके पुत्रका प्रिय करनेकी इच्छा रखकर अपने यशकी रक्षा करते हुए उस समय द्रोणाचार्यका साथ दिया॥ ३॥

समुद्यतेषु चास्त्रेषु सम्प्राप्ते च युधिष्ठिरे।
अकुर्वन्नार्यकर्माणि भैरवे सत्यभीतवत्॥ ४॥
अन्तरं भीमसेनस्य प्रापतन्नमितौजसः।
सात्यकेश्चैव वीरस्य धृष्टद्युम्नस्य वा विभो॥ ५॥

प्रभो! वह भयंकर संग्राम छिड़ जानेपर समस्त योद्धा निर्भय-से होकर आर्यजनोचित्त पुरुषार्थ प्रकट करने लगे। जब सब ओरसे हथियार उठे हुए थे और राजा युधिष्ठिर सामने आ पहुँचे थे, उस दशामें भीमसेन, सात्यकि अथवा वीर धृष्टद्युम्नकी असावधानीका लाभ उठाकर अमिततेजस्वी कौरव-योद्धा पाण्डव-सेनापर टूट पड़े॥ ४-५॥

द्रोणं द्रोणमिति क्रूराः पञ्चालाः समचोदयन्।
मा द्रोणमिति पुत्रास्ते कुरून् सर्वानचोदयन्॥ ६॥

क्रूर स्वभाववाले पाञ्चालसैनिक एक-दूसरेको प्रेरित करने लगे, अरे! द्रोणाचार्यको पकड़ लो, द्रोणाचार्यको बंदी बना लो और आपके पुत्र समस्त कौरवोंको आदेश दे रहे थे कि देखना, द्रोणाचार्यको शत्रु पकड़ न पावें॥ ६॥

द्रोणं द्रोणमिति ह्येके मा द्रोणमिति चापरे।
कुरूणां पाण्डवानां च द्रोणद्यूतमवर्तत॥ ७॥

एक ओरसे आवाज आती थी 'द्रोणको पकड़ो, द्रोणको पकड़ो!' दूसरी ओरसे उत्तर मिलता, 'द्रोणाचार्यको कोई नहीं पकड़ सकता!' इस प्रकार द्रोणाचार्यको दाँवपर रखकर कौरव और पाण्डवोंमें युद्धका जूआ आरम्भ हो गया था॥

यं यं प्रमथते द्रोणः पञ्चालानां रथव्रजम्।
तत्र तत्र तु पाञ्चाल्यो धृष्टद्युम्नोऽभ्यवर्तत॥ ८॥

पाञ्चालोंके जिस-जिस रथसमुदायको द्रोणाचार्य मथ डालनेका प्रयत्न करते, वहाँ-वहाँ पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न उनका सामना करनेके लिये आ जाता था॥ ८॥

तथा भागविपर्यासैः संग्रामे भैरवे सति।
वीराः समासदन् वीरान् कुर्वन्तो भैरवं रवम्॥ ९॥

इस प्रकार भागविपर्ययद्वारा भयंकर संग्राम आरम्भ होनेपर भैरव-गर्जना करते हुए उभय पक्षके वीरोंने विपक्षी वीरोंपर आक्रमण किया॥ ९॥

अकम्पनीयाः शत्रूणां बभूवुस्तत्र पाण्डवाः।
अकम्पयन्ननीकानि स्मरन्तः क्लेशमात्मनः॥ १०॥

उस समय पाण्डवोंको शत्रुदलके लोग विचलित न कर सके। वे अपनेको दिये गये क्लेशोंको याद करके आपके सैनिकोंको कँपा रहे थे॥ १०॥

ते त्वमर्षवशं प्राप्ता ह्रीमन्तः सत्त्वचोदिताः।
त्यक्त्वा प्राणान् न्यवर्तन्त घ्नन्तो द्रोणं महाहवे॥ ११॥

पाण्डव लज्जाशील, सत्त्वगुणसे प्रेरित और अमर्षके अधीन हो रहे थे। वे प्राणोंकी परवा न करके उस महान समरमें द्रोणाचार्यका वध करनेके लिये लौट रहे थे॥ ११॥

अयसामिव सम्पातः शिलानामिव चाभवत्।
दीव्यतां तुमुले युद्धे प्राणैरमिततेजसाम्॥ १२॥

उस भयंकर युद्धमें प्राणोंकी बाजी लगाकर खेलनेवाले अमिततेजस्वी वीरोंका संघर्ष लोहों तथा पत्थरोंके परस्पर टकरानेके समान भयंकर शब्द करता था॥ १२॥

न तु स्मरन्ति संग्राममपि वृद्धास्तथाविधम्।
दृष्टपूर्वं महाराज श्रुतपूर्वमथापि वा॥ १३॥

महाराज! बड़े-बूढ़े लोग भी पहलेके देखे अथवा सुने हुए किसी भी वैसे संग्रामका स्मरण नहीं करते हैं॥ १३॥

प्राकम्पतेव पृथिवी तस्मिन् वीरावसादने।
निवर्तता बलौघेन महता भारपीडिता॥ १४॥

वीरोंका विनाश करनेवाले उस युद्धमें लौटते हुए विशाल सैनिक-समूहके महान् भारसे पीडित हो यह पृथ्वी काँपने-सी लगी॥ १४॥

घूर्णतोऽपि बलौघस्य दिवं स्तब्ध्वेव निःस्वनः।
अजातशत्रोस्तत्सैन्यमाविवेश सुभैरवः॥ १५॥

वहाँ सब ओर चक्कर काटते हुए सैन्य-समूहका अत्यन्त भयंकर कोलाहल आकाशको स्तब्ध-सा करके अजातशत्रु युधिष्ठिरकी सेनामें व्याप्त हो गया॥ १५॥

समासाद्य तु पाण्डूनामनीकानि सहस्रशः ।
द्रोणेन चरता संख्ये प्रभग्नानि शितैः शरैः ॥ १६ ॥

रणभूमिमें विचरते हुए द्रोणाचार्यने पाण्डव-सेनामें प्रवेश करके अपने तीखे बाणोंद्वारा सहस्रों सैनिकोंके पाँव उखाड़ दिये ॥

तेषु प्रमथ्यमानेषु द्रोणेनाद्भुतकर्मणा ।
पर्यवारयदासाद्य द्रोणं सेनापतिः स्वयम् ॥ १७ ॥

अद्भुत पराक्रम करनेवाले द्रोणाचार्यके द्वारा जब उन सेनाओंका मन्थन होने लगा, उस समय स्वयं सेनापति धृष्टद्युम्नने द्रोणके पास पहुँचकर उन्हें रोका ॥ १७ ॥

तदद्भुतमभूद् युद्धं द्रोणपाञ्चालयोस्तथा ।
नैव तस्योपमा काचिदिति मे निश्चिता मतिः ॥ १८ ॥

वहाँ द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नमें अद्भुत युद्ध होने लगा, जिसकी कहीं कोई तुलना नहीं थी, यह मेरा निश्चित मत है ॥

ततो नीलोऽनलप्रख्यो ददाह कुरुवाहिनीम् ।
शरस्फुलिङ्गश्चापार्चिर्दहन् कक्षमिवानलः ॥ १९ ॥

तदनन्तर अग्निके समान कान्तिमान् नील बाणरूपी चिनगारियों तथा धनुषरूपी लपटोंका विस्तार करते हुए कौरव-सेनाको दग्ध करने लगे, मानो आग घास-फूसके ढेरको जला रही हो ॥ १९ ॥

तं दहन्तमनीकानि द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ।
पूर्वाभिभाषी सुश्लक्ष्णं स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ २० ॥

राजा नीलको कौरव-सेनाका दहन करते देख प्रतापी द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने, जो पहले स्वयं ही वार्तालाप आरम्भ करनेवाला था, मुसकराते हुए मधुर वचनोंमें कहा—॥ २० ॥

नील किं बहुभिर्दग्धैस्तव योधैः शरार्चिषा ।
मयैकेन हि युध्यस्व क्रुद्धः प्रहर चाशु माम् ॥ २१ ॥

'नील ! तुमको बाणोंकी ज्वालासे इन बहुत-से योद्धाओंको दग्ध करनेसे क्या लाभ ? तुम अकेले मुझसे ही युद्ध करो और कुपित होकर मेरे ऊपर शीघ्र प्रहार करो' ॥ २१ ॥

तं पद्मनिकराकारं पद्मपत्रनिभेक्षणम् ।
व्याकोशपद्माभमुखो नीलो विव्याध सायकैः ॥ २२ ॥

नीलका मुख विकसित कमलके समान कान्तिमान् था । उन्होंने पद्म-समूहकी-सी आकृति तथा कमल-दलके सदृश नेत्रोंवाले अश्वत्थामाको अपने बाणोंसे बींध डाला ॥ २२ ॥

तेनापि विद्धः सहसा द्रौणिर्भल्लैः शितैस्त्रिभिः ।
धनुर्ध्वजं च छत्रं च द्विषतः स न्यकृन्तत ॥ २३ ॥

उनके द्वारा घायल होकर अश्वत्थामाने सहसा तीन तीखे भल्लोंद्वारा अपने शत्रु नीलके धनुष, ध्वज तथा छत्रको काट डाला ।

स प्लुतः स्यन्दनात्तस्मान्नीलश्चर्मवरासिभृत् ।
द्रौणायनेः शिरः कायाद्धर्तुमैच्छत् पतत्रिवत् ॥ २४ ॥

तब नील ढाल और सुन्दर तलवार हाथमें लेकर उस रथसे कूद पड़े । जैसे पक्षी किसी मनचाही वस्तुको लेनेके लिये झपट्टा मारता है, उसी प्रकार नीलने भी अश्वत्थामाके धड़से उसका सिर उतार लेनेका विचार किया ॥ २४ ॥

तस्योन्नतांसं सुनसं शिरः कायात् सकुण्डलम् ।
भल्लेनापाहरद् द्रौणिः स्मयमान इवानघ ॥ २५ ॥

निष्पाप नरेश ! उस समय अश्वत्थामाने मुसकराते हुए-से भल्ल मारकर उसके द्वारा नीलके ऊँचे कंधों, सुन्दर नासिकाओं तथा कुण्डलोंसहित मस्तकको धड़से काट गिराया ॥ २५ ॥

सम्पूर्णचन्द्राभमुखः पद्मपत्रनिभेक्षणः ।
प्रांशुरुत्पलपत्राभो निहतो न्यपतद् भुवि ॥ २६ ॥

पूर्णचन्द्रमाके समान कान्तिमान् मुख और कमल-दलके समान सुन्दर नेत्रवाले राजा नील बड़े ऊँचे कदके थे । उनकी अङ्गकान्ति नील-कमल-दलके समान श्याम थी । वे अश्वत्थामाद्वारा मारे जाकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २६ ॥

ततः प्रविव्यथे सेना पाण्डवी भृशमाकुला ।
आचार्यपुत्रेण हते नीले ज्वलिततेजसि ॥ २७ ॥

आचार्यपुत्रके द्वारा प्रज्वलित तेजवाले राजा नीलके मारे जानेपर पाण्डवसेना अत्यन्त व्याकुल और व्यथित हो उठी ॥ २७ ॥

अचिन्तयंश्च ते सर्वे पाण्डवानां महारथाः ।
कथं नो वासविस्त्रायाच्छत्रुभ्य इति मारिष ॥ २८ ॥

आर्य ! उस समय समस्त पाण्डव महारथी यह सोचने लगे कि इन्द्रकुमार अर्जुन शत्रुओंके हाथसे हमारी रक्षा कैसे कर सकते हैं ? ॥ २८ ॥

दक्षिणेन तु सेनायाः कुरुते कदनं बली ।
संशप्तकावशेषस्य नारायणबलस्य च ॥ २९ ॥

वे बलवान् अर्जुन तो इस सेनाके दक्षिण भागमें बचे-खुचे संशप्तकों और नारायणी सेनाके सैनिकोंका संहार कर रहे हैं ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि नीलवधे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत संशप्तकवधपर्वमें नीलवधविषयक इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

कौरव-पाण्डव सेनाओंका घमासान युद्ध, भीमसेनका कौरव महारथियोंके साथ संग्राम, भयंकर संहार, पाण्डवोंका द्रोणाचार्यपर आक्रमण, अर्जुन और कर्णका युद्ध, कर्णके भाइयोंका वध तथा कर्ण और सात्यकिका संग्राम

संजय उवाच

प्रतिघातं तु सैन्यस्य नामृष्यत वृकोदरः ।
सोऽभ्याहनद् गुरुं षष्ट्या कर्णं च दशभिः शरैः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! अपनी सेनाका वह विनाश भीमसेनसे नहीं सहा गया । उन्होंने गुरुदेवको साठ और कर्णको दस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ १ ॥

तस्य द्रोणः शितैर्बाणैस्तीक्ष्णधारैरजिह्मगैः ।
जीवितान्तमभिप्रेप्सुर्मर्माण्याशु जघान ह ॥ २ ॥

तब द्रोणाचार्यने सीधे जानेवाले, तीखी धारसे युक्त पैने बाणोंद्वारा शीघ्रतापूर्वक भीमसेनके मर्मस्थानोंपर आघात किया। वे भीमसेनके प्राणोंका अन्त कर देना चाहते थे॥२॥

आनन्तर्यमभिप्रेप्सुः षड्विंशत्या समार्पयत् ।
कर्णो द्वादशभिर्बाणैरश्वत्थामा च सप्तभिः ॥ ३ ॥

इस आघात-प्रतिघातको निरन्तर जारी रखनेकी इच्छासे द्रोणाचार्यने भीमसेनको छब्बीस, कर्णने बारह और अश्वत्थामाने सात बाण मारे ॥ ३ ॥

षड्भिर्दुर्योधनो राजा तत एनमथाकिरत् ।
भीमसेनोऽपि तान् सर्वान् प्रत्यविध्यन्महाबलः॥ ४ ॥

तदनन्तर राजा दुर्योधनने उनके ऊपर छः बाणोंद्वारा प्रहार किया। फिर महाबली भीमसेनने उन सबको अपने बाणोंद्वारा घायल कर दिया ॥ ४ ॥

द्रोणं पञ्चाशतेषूणां कर्णं च दशभिः शरैः ।
दुर्योधनं द्वादशभिर्द्रौणिमष्टाभिराशुगैः ॥ ५ ॥

उन्होंने द्रोणको पचास, कर्णको दस, दुर्योधनको बारह और अश्वत्थामाको आठ बाण मारे ॥ ५ ॥

आरावं तुमुलं कुर्वन्नभ्यवर्तत तान् रणे ।
तस्मिन् संत्यजति प्राणान् मृत्युसाधारणीकृते ॥ ६ ॥
अजातशत्रुस्तान् योधान् भीमं त्रातेत्यचोदयत् ।
ते ययुर्भीमसेनस्य समीपममितौजसः ॥ ७ ॥

तत्पश्चात् भयंकर गर्जना करते हुए भीमने रणक्षेत्रमें उन सबका सामना किया। भीमसेन मृत्युके तुल्य अवस्थामें पहुँच गये थे और अपने प्राणोंका परित्याग करना चाहते थे। उसी समय अजातशत्रु युधिष्ठिरने अपने योद्धाओंको यह कहकर आगे बढ़नेकी आज्ञा दी कि 'तुम सब लोग भीमसेनकी रक्षा करो।' यह सुनकर वे अमित तेजस्वी वीर भीमसेनके समीप चले ॥ ६-७ ॥

युयुधानप्रभृतयो माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
ते समेत्य सुसंरब्धाः सहिताः पुरुषर्षभाः ॥ ८ ॥
महेष्वासवरैर्गुप्ता द्रोणानीकं बिभित्सवः ।
समापेतुर्महावीर्या भीमप्रभृतयो रथाः ॥ ९ ॥

सात्यकि आदि महारथी तथा पाण्डुकुमार माद्रीपुत्र नकुल-सहदेव—ये सभी पुरुषश्रेष्ठ वीर परस्पर मिलकर एक साथ अत्यन्त क्रोधमें भरकर बड़े-बड़े धनुर्धरोंसे सुरक्षित हो द्रोणाचार्यकी सेनाको विदीर्ण कर डालनेकी इच्छासे उसपर टूट पड़े। वे भीम आदि सभी महारथी अत्यन्त पराक्रमी थे॥

तान् प्रत्यगृह्णादव्यग्रो द्रोणोऽपि रथिनां वरः ।
महारथानतिबलान् वीरान् समरयोधिनः ॥ १० ॥

उस समय रथियोंमें श्रेष्ठ आचार्य द्रोणने घबराहट छोड़कर उन अत्यन्त बलवान् समरभूमिमें युद्ध करनेवाले महारथी वीरोंको रोक दिया ॥ १० ॥

बाह्यं मृत्युभयं कृत्वा तावकान् पाण्डवा ययुः ।
सादिनः सादिनोऽभ्यघ्नंस्तथैव रथिनो रथान् ॥ ११ ॥

परंतु पाण्डववीर मौतके भयको बाहर छोड़कर आपके सैनिकोंपर चढ़ आये। घुड़सवार घुड़सवारोंको तथा रथारोही योद्धा रथियोंको मारने लगे ॥ ११ ॥

आसीच्छक्त्यासिसम्पातो युद्धमासीत् परश्वधैः ।
प्रकृष्टमसियुद्धं च बभूव कटुकोदयम् ॥ १२ ॥

उस युद्धमें शक्ति और खड्गोंके घातक प्रहार हो रहे थे। फरसोंसे मार-काट हो रही थी। तलवार खींचकर उसके द्वारा ऐसा भयंकर युद्ध हो रहा था कि उसका कटु परिणाम प्रत्यक्ष सामने आ रहा था ॥ १२ ॥

कुञ्जराणां च सम्पाते युद्धमासीत् सुदारुणम् ।
अपतत् कुञ्जरादन्यो हयादन्यस्त्ववाक्शिराः ॥ १३ ॥

हाथियोंके संघर्षमें अत्यन्त दारुण संग्राम होने लगा। कोई हाथीसे गिरता था तो कोई घोड़ेसे ही औंधे सिर धराशायी हो रहा था ॥ १३ ॥

नरो बाणविनिर्भिन्नो रथादन्यश्च मारिष ।
तत्रान्यस्य च सम्मर्दे पतितस्य विवर्मणः ॥ १४ ॥
शिरः प्रध्वंसयामास वक्षस्याक्रम्य कुञ्जरः ।

आर्य! उस युद्धमें कितने मनुष्य बाणोंसे विदीर्ण होकर रथसे नीचे गिर जाते थे। कितने ही योद्धा कवचशून्य हो धरतीपर गिर पड़ते थे और सहसा कोई हाथी उनकी छातीपर पैर रखकर उनके मस्तकको भी कुचल देता था ॥ १४½ ॥

अपरांश्चापरेऽमृद्नन् वारणाः पतितान् नरान् ॥ १५ ॥
विषाणैश्चावनिं गत्वा व्यभिन्दन् रथिनो बहून् ।

दूसरे हाथियोंने भी दूसरे बहुत-से गिरे हुए मनुष्योंको अपने पैरोंसे रौंद डाला। अपने दाँतोंसे धरतीपर आघात करके बहुत-से रथियोंको चीर डाला ॥ १५½ ॥

नरान्त्रैः केचिदपरे विषाणालग्नसंश्रयैः ॥ १६ ॥
बभ्रमुः समरे नागा मृद्नन्तः शतशो नरान् ।

कितने ही गजराज अपने दाँतोंमें लगी हुई मनुष्योंकी आँतें लिये समर-भूमिमें सैकड़ों योद्धाओंको कुचलते हुए चक्कर लगा रहे थे ॥ १६½ ॥

कार्ष्णायसतनुत्राणान् नराश्वरथकुञ्जरान् ॥ १७ ॥
पतितान् पोथयाञ्चक्रुर्द्विपाः स्थूलनलानिव ।

काले रंगके लोहमय कवच धारण करके रणभूमिमें गिरे हुए कितने ही मनुष्यों, रथों, घोड़ों और हाथियोंको बड़े-बड़े गजराजोंने मोटे नरकुलोंके समान रौंद डाला ॥ १७½ ॥

गृध्रपत्राधिवासांसि शयनानि नराधिपाः ॥ १८ ॥
ह्रीमन्तः कालसम्पर्कात् सुदुःखान्यनुशेरते ।

बड़े-बड़े राजा कालसंयोगसे अत्यन्त दुःखदायिनी तथा गीधकी पाँखरूपी बिछौनोंसे युक्त शय्याओंपर लज्जापूर्वक सो रहे थे ॥ १८½ ॥

हन्ति स्मात्र पिता पुत्रं रथेनाभ्येत्य संयुगे ॥ १९ ॥
पुत्रश्च पितरं मोहान्निर्मर्यादमवर्तत ।

वहाँ पिता रथके द्वारा युद्धके मैदानमें आकर पुत्रका ही वध कर डालता था और पुत्र भी मोहवश पिताके प्राण ले रहा था । इस प्रकार वहाँ मर्यादाशून्य युद्ध हो रहा था ॥

रथो भग्नो ध्वजश्छिन्नश्छत्रमुर्व्यां निपातितम् ॥ २० ॥
युगार्धं छिन्नमादाय प्रदुद्राव तथा हयः ।

कितने ही रथ टूट गये, ध्वज कट गये, छत्र पृथ्वीपर गिरा दिये गये और जूए खण्डित हो गये । उन खण्डित हुए आधे जूओंको ही लेकर घोड़े तेजीसे भाग रहे थे ॥ २०½ ॥

सासिर्बाहुर्निपतितः शिरश्छिन्नं सकुण्डलम् ॥ २१ ॥
गजेनाक्षिप्य बलिना रथः संचूर्णितः क्षितौ ।

कितने ही वीरोंकी भुजाएँ तलवारसहित काट गिरायी गयीं, कितनोंके कुण्डलमण्डित मस्तक धड़से अलग कर दिये गये । कहीं किसी बलवान् हाथीने रथको उठाकर फेंक दिया और वह पृथ्वीपर गिरकर चूर-चूर हो गया ॥ २१½ ॥

रथिना ताडितो नागो नाराचेनापतत् क्षितौ ॥ २२ ॥
सारोहश्चापतद् वाजी गजेनाभ्याहतो भृशम् ।
निर्मर्यादं महद् युद्धमवर्तत सुदारुणम् ॥ २३ ॥

किसी रथीने नाराचके द्वारा गजराजपर आघात किया और वह धराशायी हो गया । किसी हाथीके वेगपूर्वक आघात करनेपर सवारसहित घोड़ा धरतीपर ढेर हो गया । इस प्रकार वहाँ मर्यादाशून्य अत्यन्त भयंकर एवं महान् युद्ध होने लगा ॥ २२-२३ ॥

हा तात हा पुत्र सखे क्वासि तिष्ठ क्व धावसि ।
प्रहराहर जह्येनं स्मितक्ष्वेडितगर्जितैः ॥ २४ ॥
इत्येवमुच्चरन्ति स्म श्रूयन्ते विविधा गिरः ।

उस समय सभी सैनिक 'हा तात ! हा पुत्र ! सखे ! तुम कहाँ हो ? ठहरो, कहाँ भागे जा रहे हो ? मारो, लाओ, इसका वध कर डालो'—इस प्रकारकी बातें कह रहे थे । हास्य, उछल-कूद और गर्जनाके साथ उनके मुखसे नाना प्रकारकी बातें सुनायी देती थीं ॥ २४½ ॥

नरस्याश्वस्य नागस्य समसज्जत शोणितम् ॥ २५ ॥
उपाशाम्यद् रजो भौमं भीरून् कश्मलमाविशत् ।

मनुष्य, घोड़े और हाथीके रक्त एक-दूसरेसे मिल रहे थे । उस रक्तप्रवाहसे वहाँकी उड़ती हुई भयंकर धूल शान्त हो गयी । उस रक्तराशिको देखकर भीरु पुरुषोंपर मोह छा जाता था ॥ २५½ ॥

चक्रेण चक्रमासाद्य वीरो वीरस्य संयुगे ॥ २६ ॥
अतीतेषुपथे काले जहार गदया शिरः ।

किसी वीरने अपने चक्रके द्वारा शत्रुपक्षीय वीरके चक्रका निवारण करके युद्धमें बाणप्रहारके योग्य अवसर न होनेके कारण गदासे ही उसका सिर उड़ा दिया ॥ २६½ ॥

आसीत् केशपरामर्शो मुष्टियुद्धं च दारुणम् ॥ २७ ॥
नखैर्दन्तैश्च शूराणामद्वीपे द्वीपमिच्छताम् ।

कुछ लोगोंमें एक-दूसरेके केश पकड़कर युद्ध होने लगा । कितने ही योद्धाओंमें अत्यन्त भयंकर मुक्कोंकी मार होने लगी । कितने ही शूरवीर उस निराश्रय स्थानमें आश्रय ढूँढ़ रहे थे और नखों तथा दाँतोंसे एक-दूसरेको चोट पहुँचा रहे थे ॥ २७½ ॥

तत्राच्छिद्यत शूरस्य सखड्गो बाहुरुद्यतः ॥ २८ ॥
सधनुश्चापरस्यापि सशरः साङ्कुशस्तथा ।
आक्रोशदन्यमन्योऽत्र तथान्यो विमुखोऽद्रवत् ॥ २९ ॥

उस युद्धमें एक शूरवीरकी खड्गसहित ऊपर उठी हुई भुजा काट डाली गयी । दूसरेकी भी धनुष-बाण और अङ्कुश-सहित बाँह खण्डित हो गयी । वहाँ एक सैनिक दूसरेको पुकारता था और दूसरा युद्धसे विमुख होकर भागा जा रहा था ॥ २८-२९ ॥

अन्यः प्राप्तस्य चान्यस्य शिरः कायादपाहरत् ।
सशब्दमद्रवच्चान्यः शब्दादन्योऽत्रसद् भृशम् ॥ ३० ॥

किसी दूसरे वीरने सामने आये हुए अन्य योद्धाके मस्तक-को धड़से अलग कर दिया । यह देख कोई तीसरा वीर बड़े जोरसे कोलाहल करता हुआ भागा । उसके उस आर्तनादसे एक अन्य योद्धा अत्यन्त डर गया ॥ ३० ॥

स्वानन्योऽथ परानन्यो जघान निशितैः शरैः ।
गिरिशृङ्गोपमश्चात्र नाराचेन निपातितः ॥ ३१ ॥
मातङ्गो न्यपतद् भूमौ नदीरोध इवोष्णगे ।

कोई अपने ही सैनिकोंको और कोई शत्रु-योद्धाओंको अपने तीखे बाणोंसे मार रहा था । उस युद्धमें पर्वतशिखरके समान विशालकाय हाथी नाराचसे मारा जाकर वर्षाकालमें नदीके तटकी भाँति धरतीपर गिरा और ढेर हो गया ।३१½।

तथैव रथिनं नागः क्षरन् गिरिरिवारुजन् ॥ ३२ ॥
अभ्यतिष्ठत् पदा भूमौ सहाश्वं सहसारथिम् ।

झरने बहानेवाले पर्वतकी भाँति किसी मदस्रावी गजराजने सारथि और अश्वोंसहित रथीको पैरोंसे भूमिपर दबाकर उन सबको कुचल डाला ॥ ३२½ ॥

शूरान् प्रहरतो दृष्ट्वा कृतास्त्रान् रुधिरोक्षितान् ॥ ३३ ॥
बहूनप्याविशन्मोहो भीरून् हृदयदुर्बलान् ।

अस्त्र-विद्यामें निपुण और खूनसे लथपथ हुए शूरवीरोंको परस्पर प्रहार करते देख बहुत-से दुर्बल हृदयवाले भीरु मनुष्योंके मनमें मोहका संचार होने लगा ॥ ३३½ ॥

सर्वमाविग्नमभवन्न प्राज्ञायत किंचन ॥ ३४ ॥
सैन्येन रजसा ध्वस्तं निर्मर्यादमवर्तत ।

उस समय सेनाद्वारा उड़ायी हुई धूलसे व्याप्त होकर सारा जन-समूह उद्विग्न हो रहा था, किसीको कुछ नहीं

सूझता था । उस युद्धमें किसी भी नियम या मर्यादाका पालन नहीं हो रहा था ॥ ३४½ ॥

ततः सेनापतिः शीघ्रमयं काल इति ब्रुवन् ॥ ३५ ॥
नित्याभित्वरितानेव त्वरयामास पाण्डवान् ।

तब सेनापति धृष्टद्युम्नने यही उपयुक्त अवसर है, ऐसा कहते हुए सदा शीघ्रता करनेवाले पाण्डवोंको और भी जल्दी करनेके लिये प्रेरित किया ॥ ३५½ ॥

कुर्वन्तः शासनं तस्य पाण्डवा बाहुशालिनः ॥ ३६ ॥
सरो हंसा इवापेतुर्घ्नन्तो द्रोणरथं प्रति ।

तदनन्तर अपनी भुजाओंसे सुशोभित होनेवाले पाण्डव सेनापतिकी आज्ञाका पालन करनेके लिये वहाँ द्रोणाचार्यके रथ-पर प्रहार करते हुए उसी प्रकार टूट पड़े, जैसे बहुत-से हंस किसी सरोवरपर सब ओरसे उड़कर आते हैं ॥ ३६½ ॥

गृह्णीताद्रवतान्योन्यं विभीता विनिकृन्तत ॥ ३७ ॥
इत्यासीत् तुमुलः शब्दो दुर्धर्षस्य रथं प्रति ।

उस समय दुर्धर्ष वीर द्रोणाचार्यके रथके समीप सब ओरसे यही भयानक आवाज आने लगी कि 'दौड़ो, पकड़ो और निर्भय होकर शत्रुओंको काट डालो' ॥ ३७½ ॥

ततो द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणी राजा जयद्रथः ॥ ३८ ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ शल्यश्चैतान् न्यवारयन् ।

तब द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, राजा जयद्रथ, अवन्तीके राजकुमार विन्द और अनुविन्द तथा राजा शल्यने मिलकर इन आक्रमणकारियोंको रोका ।३८½।

ते त्वार्यधर्मसंरब्धा दुर्निवारा दुरासदाः ॥ ३९ ॥
शरार्ता न जहुर्द्रोणं पञ्चालाः पाण्डवैः सह ।

वे पाण्डवोंसहित पाञ्चालवीर आर्यधर्मके अनुसार विजय-के लिये प्रयत्नशील थे । उन्हें रोकना या पराजित करना बहुत कठिन था । वे बाणोंसे पीड़ित होनेपर भी द्रोणाचार्य-को छोड़ न सके ॥ ३९½ ॥

ततो द्रोणोऽतिसंक्रुद्धो विसृजञ्छतशः शरान्॥ ४० ॥
चेदिपञ्चालपाण्डूनामकरोत् कदनं महत् ।

यह देख अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए द्रोणाचार्यने सैकड़ों बाणोंकी वर्षा करके चेदि, पाञ्चाल तथा पाण्डव-योद्धाओंका महान् संहार आरम्भ किया ॥ ४०½ ॥

तस्य ज्यातलनिर्घोषः शुश्रुवे दिक्षु मारिष ॥ ४१ ॥
वज्रसंह्रादसंकाशस्त्रासयन् मानवान् बहून् ।

आर्य ! उनके धनुषकी प्रत्यञ्चाका गम्भीर घोष सम्पूर्ण दिशाओंमें सुनायी देता था । वह वज्रकी गर्जनाके समान घोर शब्द बहुसंख्यक मनुष्योंको भयभीत कर रहा था ॥ ४१½ ॥

एतस्मिन्नन्तरे जिष्णुर्जित्वा संशप्तकान् बहून् ॥ ४२ ॥
अभ्ययात् तत्र यत्रासौ द्रोणः पाण्डून् प्रमर्दति ।

इसी समय अर्जुन बहुत-से संशप्तकोंपर विजय प्राप्त करके उस स्थानपर आये, जहाँ आचार्य द्रोण पाण्डव-सैनिकोंका मर्दन कर रहे थे ॥ ४२½ ॥

ताञ्छरौघान् महावर्तान् शोणितोदान् महाह्रदान्॥४३॥
तीर्णः संशप्तकान् हत्वा प्रत्यदृश्यत फाल्गुनः ।

संशप्तक योद्धा महान् सरोवरोंके समान थे, बाणोंके समूह ही उनके जल-प्रवाह थे, धनुष ही उनमें उठी हुई बड़ी-बड़ी भँवरोंके समान जान पड़ते थे तथा प्रवाहित होनेवाला रक्त ही उन सरोवरोंका जल था । अर्जुन संशप्तकोंका वध करके उन महान् सरोवरोंके पार होकर वहाँ आते दिखायी दिये थे॥

तस्य कीर्तिमतो लक्ष्म सूर्यप्रतिमतेजसः ॥ ४४ ॥
दीप्यमानमपश्याम तेजसा वानरध्वजम् ।

सूर्यके समान तेजस्वी एवं यशस्वी अर्जुनके चिह्नस्वरूप वानरध्वजको हमने दूरसे ही देखा, जो अपने दिव्य तेजसे उद्भासित हो रहा था ॥ ४४½ ॥

संशप्तकसमुद्रं तमुच्छोष्यास्त्रगभस्तिभिः ॥ ४५ ॥
स पाण्डवयुगान्तार्कः कुरूनप्यभ्यतीतपत् ।

वे पाण्डुवंशके प्रलयकालीन सूर्य अपनी अस्त्रमयी किरणों-से उस संशप्तकरूपी समुद्रको सोखकर कौरव-सैनिकोंको भी संतप्त करने लगे ॥ ४५½ ॥

प्रददाह कुरून् सर्वानर्जुनः शस्त्रतेजसा ॥ ४६ ॥
युगान्ते सर्वभूतानि धूमकेतुरिवोत्थितः ।

जैसे प्रलयकालमें प्रकट हुई अग्नि सम्पूर्ण भूतोंको दग्ध कर देती है, उसी प्रकार अर्जुनने अपने अस्त्र-शस्त्रोंके तेजसे समस्त कौरव-सैनिकोंको जलाना आरम्भ किया ॥ ४६½ ॥

तेन बाणसहस्रौघैर्गजाश्वरथयोधिनः ॥ ४७ ॥
ताड्यमानाः क्षितिं जग्मुर्मुक्तकेशाः शरार्दिताः ।

हाथी, घोड़े तथा रथपर आरूढ़ होकर युद्ध करनेवाले बहुत-से योद्धा अर्जुनके सहस्रों बाण-समूहोंसे आहत एवं पीड़ित हो बाल खोले हुए पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ४७½ ॥

केचिदार्तस्वनं चक्रुर्विनेशुरपरे पुनः ॥ ४८ ॥
पार्थबाणहताः केचिन्निपेतुर्विगतासवः ।

कोई आर्तनाद करने लगे, कोई नष्ट हो गये, कोई अर्जुनके बाणोंसे मारे जाकर प्राणशून्य हो पृथ्वीपर गिर पड़े॥

तेषामुत्पतितान् कांश्चित् पतितांश्च पराङ्मुखान् ॥४९॥
न जघानार्जुनो योधान् योधव्रतमनुस्मरन् ।

उन योद्धाओंमेंसे जो लोग रथसे कूद पड़े थे या धरती-पर गिर गये थे अथवा युद्धसे विमुख होकर भाग चले थे, उन सबको एक वीर सैनिकके लिये निश्चित नियमका निरन्तर स्मरण रखते हुए अर्जुनने नहीं मारा ॥ ४९½ ॥

ते विकीर्णरथाश्चित्राः प्रायशश्च पराङ्मुखाः ॥ ५० ॥
कुरवः कर्ण कर्णेति हाहेति च विचुक्रुशुः ।

कौरव-सैनिकोंके रथ टूट-फूटकर बिखर गये । उनकी

विचित्र अवस्था हो गयी । वे प्रायः युद्धसे विमुख हो गये और 'हा कर्ण, हा कर्ण' कहकर पुकारने लगे ॥ ५०½ ॥

तमाधिरथिराक्रन्दं विज्ञाय शरणैषिणाम् ॥ ५१ ॥
मा भैष्टेति प्रतिश्रुत्य ययावभिमुखोऽर्जुनम् ।

तब अधिरथपुत्र कर्णने उन शरणार्थी सैनिकोंकी करुण पुकार सुनकर 'डरो मत' इस प्रकार उन्हें आश्वासन देकर अर्जुनका सामना करनेके लिये प्रस्थान किया ॥५१½॥

स भारतरथश्रेष्ठः सर्वभारतहर्षणः ॥ ५२ ॥
प्रादुश्चक्रे तदाग्नेयमस्त्रमस्त्रविदां वरः ।

उस समय अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, भरतवंशियोंके श्रेष्ठ महारथी तथा सम्पूर्ण भारतीय सेनाका हर्ष बढ़ानेवाले कर्णने आग्नेयास्त्र प्रकट किया ॥ ५२½ ॥

तस्य दीप्तशरौघस्य दीप्तचापधरस्य च ॥ ५३ ॥
शरौघाञ्छरजालेन विदुधाव धनंजयः ।

प्रज्वलित बाणसमूह तथा देदीप्यमान धनुष धारण करनेवाले कर्णके उन बाण-समूहोंको अर्जुनने अपने बाणोंके समुदायद्वारा छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ ५३½ ॥

तथैवाधिरथिस्तस्य बाणाञ्ज्वलिततेजसः ॥ ५४ ॥
अस्त्रमस्त्रेण संवार्य प्राणदद् विसृजञ्छरान् ।

उसी प्रकार अधिरथकुमार कर्णने भी प्रज्वलित तेजवाले अर्जुनके बाणोंका तथा उनके प्रत्येक अस्त्रका अपने अस्त्रोंद्वारा निवारण करके बाणोंकी वर्षा करते हुए बड़े जोरसे सिंहनाद किया ॥ ५४½ ॥

धृष्टद्युम्नश्च भीमश्च सात्यकिश्च महारथः ॥ ५५ ॥
विव्यधुः कर्णमासाद्य त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ।

इसी समय धृष्टद्युम्न, भीम तथा महारथी सात्यकिने भी कर्णके पास पहुँचकर उसे तीन-तीन बाणोंसे घायल कर दिया॥

अर्जुनास्त्रं तु राधेयः संवार्य शरवृष्टिभिः ॥ ५६ ॥
तेषां त्रयाणां चापानि चिच्छेद विशिखैस्त्रिभिः ।

तब राधानन्दन कर्णने अपने बाणोंकी वर्षाद्वारा अर्जुनके बाणोंका निवारण करके अपने तीन बाणोंद्वारा धृष्टद्युम्न आदि तीनों वीरोंके धनुषोंको भी काट दिया ॥ ५६½ ॥

ते निकृत्तायुधाः शूरा निर्विषा भुजगा इव ॥ ५७ ॥
रथशक्तीः समुत्क्षिप्य भृशं सिंहा इवानदन् ।

अपने धनुष कट जानेपर विषहीन भुजङ्गमोंके समान उन शूरवीरोंने रथ-शक्तियोंको ऊपर उठाकर सिंहोंके समान भयंकर गर्जना की ॥ ५७½ ॥

ता भुजाग्रैर्महावेगा निसृष्टा भुजगोपमाः ॥ ५८ ॥
दीप्यमाना महाशक्त्यो जग्मुराधिरथिं प्रति ।

उनके हाथोंसे छूटी हुई वे अत्यन्त वेगशालिनी सर्पाकार महाशक्तियाँ अपनी प्रभासे प्रकाशित होती हुई कर्णकी ओर चलीं ॥ ५८½ ॥

ता निकृत्य शरव्रातैस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ॥ ५९ ॥
ननाद बलवान् कर्णः पार्थाय विसृजञ्छरान् ।

परंतु बलवान् कर्णने सीधे जानेवाले तीन-तीन बाणसमूहोंद्वारा उन शक्तियोंके टुकड़े-टुकड़े करके अर्जुनपर बाणोंकी वर्षा करते हुए सिंहनाद किया ॥ ५९½ ॥

अर्जुनश्चापि राधेयं विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः ॥ ६० ॥
कर्णादवरजं बाणैर्जघान निशितैः शरैः ।

अर्जुनने भी राधानन्दन कर्णको सात शीघ्रगामी बाणोंद्वारा बींधकर अपने पैने बाणोंसे उसके छोटे भाईको मार डाला ॥ ६०½ ॥

ततः शत्रुंजयं हत्वा पार्थः षड्भिरजिह्मगैः ॥ ६१ ॥
जहार सद्यो भल्लेन विपाटस्य शिरो रथात् ।

तत्पश्चात् सीधे जानेवाले छः सायकोंद्वारा शत्रुञ्जयका संहार करके एक भल्लद्वारा रथपर बैठे हुए विपाटका मस्तक तत्काल काट गिराया ॥ ६१½ ॥

पश्यतां धार्तराष्ट्राणामेकेनैव किरीटिना ॥ ६२ ॥
प्रमुखे सूतपुत्रस्य सोदर्या निहतास्त्रयः ।

इस प्रकार धृतराष्ट्रपुत्रोंके देखते-देखते एकमात्र अर्जुनने युद्धके मुहानेपर सूतपुत्र कर्णके तीन भाइयोंका वध कर डाला॥

ततो भीमः समुत्पत्य स्वरथाद् वैनतेयवत् ॥ ६३ ॥
वरासिना कर्णपक्षान् जघान दश पञ्च च ।

तदनन्तर भीमसेनने गरुड़की भाँति अपने रथसे उछलकर उत्तम खड्गद्वारा कर्णपक्षके पंद्रह योद्धाओंको मार डाला॥

पुनस्तु रथमास्थाय धनुरादाय चापरम् ॥ ६४ ॥
विव्याध दशभिः कर्णं सूतमश्वांश्च पञ्चभिः ।

फिर भी उन्होंने अपने रथपर बैठकर दूसरा धनुष हाथमें ले लिया और दस बाणोंद्वारा कर्णको तथा पाँच बाणोंसे उसके सारथि और घोड़ोंको भी घायल कर दिया ॥ ६४½ ॥

धृष्टद्युम्नोऽप्यसिवरं चर्म चादाय भास्वरम् ॥ ६५ ॥
जघान चन्द्रवर्माणं बृहत्क्षत्रं च नैषधम् ।

धृष्टद्युम्नने भी श्रेष्ठ खड्ग और चमकीली ढाल लेकर चन्द्रवर्मा तथा निषधराज बृहत्क्षत्रका काम तमाम कर दिया॥

ततः स्वरथमास्थाय पाञ्चाल्योऽन्यच्च कार्मुकम् ॥ ६६ ॥
आदाय कर्णं विव्याध त्रिसप्तत्या नदन् रणे ।

तदनन्तर पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नने अपने रथपर बैठकर दूसरा धनुष ले रणक्षेत्रमें गर्जना करते हुए तिहत्तर बाणोंद्वारा कर्णको बींध डाला ॥ ६६½ ॥

शैनेयोऽप्यन्यदादाय धनुरिन्दुसमद्युतिः ॥ ६७ ॥
सूतपुत्रं चतुःषष्ट्या विद्ध्वा सिंह इवानदत् ।

तत्पश्चात् चन्द्रमाके समान कान्तिमान् सात्यकिने भी दूसरा धनुष हाथमें लेकर सूतपुत्र कर्णको चौसठ बाणोंसे घायल करके सिंहके समान गर्जना की ॥ ६७½ ॥

भल्लाभ्यां साधुमुक्ताभ्यां छित्त्वा कर्णस्य कार्मुकम् ॥ ६८ ॥
पुनः कर्णं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ।

इसके बाद उन्होंने अच्छी तरह छोड़े हुए दो भल्लोंद्वारा कर्णके धनुषको काटकर पुनः तीन बाणोंद्वारा कर्णकी दोनों भुजाओं तथा छातीमें भी चोट पहुँचायी ॥ ६८½ ॥

ततो दुर्योधनो द्रोणो राजा चैव जयद्रथः ॥ ६९ ॥
निमज्जमानं राधेयमुज्जह्रुः सात्यकार्णवात् ।

तत्पश्चात् दुर्योधन, द्रोणाचार्य तथा राजा जयद्रथने डूबते हुए राधानन्दन कर्णका सात्यकिरूपी समुद्रसे उद्धार किया ॥

पत्त्यश्वरथमातङ्गास्त्वदीयाः शतशोऽपरे ॥ ७० ॥
कर्णमेवाभ्यधावन्त त्रास्यमानाः प्रहारिणः ।

उस समय आपकी सेनाके अन्य सैकड़ों पैदल, घुड़सवार, रथी और गजारोही योद्धा सात्यकिसे संत्रस्त होकर कर्णके ही पीछे दौड़े गये ॥ ७०½ ॥

धृष्टद्युम्नश्च भीमश्च सौभद्रोऽर्जुन एव च ॥ ७१ ॥
नकुलः सहदेवश्च सात्यकिं जुगुपू रणे ।

उधर धृष्टद्युम्न, भीमसेन, अभिमन्यु, अर्जुन, नकुल तथा सहदेवने रणक्षेत्रमें सात्यकिका संरक्षण आरम्भ किया ।७१½।

एवमेष महारौद्रः क्षयार्थं सर्वधन्विनाम् ॥ ७२ ॥
तावकानां परेषां च त्यक्त्वा प्राणानभूद् रणः ।

महाराज ! इस प्रकार आपके तथा शत्रुपक्षके सम्पूर्ण धनुर्धरोंके विनाशके लिये उनमें परस्पर प्राणोंकी परवा न करके अत्यन्त भयंकर युद्ध होने लगा ॥ ७२½ ॥

पदातिरथनागाश्वा गजाश्वरथपत्तिभिः ॥ ७३ ॥
रथिनो नागपत्त्यश्वै रथपत्ती रथद्विपैः ।

पैदल, रथ, हाथी और घोड़े क्रमशः हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंके साथ युद्ध करने लगे । रथी हाथियों, पैदलों और घोड़ोंके साथ भिड़ गये । रथी और पैदल सैनिक रथियों और हाथियोंका सामना करने लगे ॥ ७३½ ॥

अश्वैरश्वा गजैर्नागा रथिनो रथिभिः सह ॥ ७४ ॥
संयुक्ताः समदृश्यन्त पत्तयश्चापि पत्तिभिः ।

घोड़ोंसे घोड़े, हाथियोंसे हाथी, रथियोंसे रथी और पैदलोंसे पैदल जूझते दिखायी दे रहे थे ॥ ७४½ ॥

एवं सुकलिलं युद्धमासीत् क्रव्यादहर्षणम् ।
महद्भिस्तैरभीतानां यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ ७५ ॥

इस प्रकार उन निर्भीक सैनिकोंका महान् शक्तिशाली विपक्षी योद्धाओंके साथ अत्यन्त घमासान युद्ध हो रहा था, जो कच्चा मांस खानेवाले पशु-पक्षियों तथा पिशाचोंके हर्षकी वृद्धि और यमराजके राष्ट्रकी समृद्धि करनेवाला था ॥ ७५ ॥

ततो हता नररथवाजिकुञ्जरै-
रनेकशो द्विपरथपत्तिवाजिनः ।
गजैर्गजा रथिभिरुदायुधा रथा
हयैर्हयाः पत्तिगणैश्च पत्तयः ॥ ७६ ॥

उस समय पैदल, रथी, घुड़सवार और हाथीसवारोंके द्वारा बहुत-से हाथीसवार, रथी, पैदल और घुड़सवार मारे गये । हाथियोंने हाथियोंको, रथियोंने शस्त्र उठाये हुए रथियोंको, घुड़सवारोंने घुड़सवारोंको और पैदल योद्धाओंने पैदल योद्धाओंको मार गिराया ॥ ७६ ॥

रथैर्द्विपा द्विरदवरैर्महाहया
हयैर्नरा वररथिभिश्च वाजिनः ।
निरस्तजिह्वादशनेक्षणाः क्षितौ
क्षयं गताः प्रमथितवर्मभूषणाः ॥ ७७ ॥

रथियोंने हाथियोंको, गजराजोंने बड़े-बड़े घोड़ोंको, घुड़सवारोंने पैदलोंको तथा श्रेष्ठ रथियोंने घुड़सवारोंको धराशायी कर दिया । उनकी जिह्वा, दाँत और नेत्र—ये सब बाहर निकल आये थे । कवच और आभूषण टुकड़े-टुकड़े होकर पड़े थे । ऐसी अवस्थामें वे सब योद्धा पृथ्वीपर गिरकर नष्ट हो गये थे ॥ ७७ ॥

तथा परैर्बहुकरणैर्वरायुधै-
र्हता गताः प्रतिभयदर्शनाः क्षितिम् ।
विपोथिता हयगजपादताडिता
भृशाकुला रथमुखनेमिभिः क्षताः ॥ ७८ ॥

शत्रुओंके पास बहुत-से साधन थे । उनके हाथमें उत्तम अस्त्र-शस्त्र थे । उनके द्वारा मारे जाकर पृथ्वीपर पड़े हुए सैनिक बड़े भयंकर दिखायी देते थे । कितने ही योद्धा हाथियों और घोड़ोंके पैरोंसे आहत होकर धरतीपर गिर पड़ते थे । कितने ही बड़े-बड़े रथोंके पहियोंसे कुचलकर क्षत-विक्षत हो अत्यन्त व्याकुल हो रहे थे ॥ ७८ ॥

प्रमोदने श्वापदपक्षिरक्षसां
जनक्षये वर्तति तत्र दारुणे ।
महाबलास्ते कुपिताः परस्परं
निषूदयन्तः प्रविचेरुरोजसा ॥ ७९ ॥

वहाँ वह भयंकर जनसंहार हिंसक जन्तुओं, पक्षियों तथा राक्षसोंको आनन्द प्रदान करनेवाला था । उसमें कुपित हुए वे महाबली शूरवीर एक दूसरेको मारते हुए बलपूर्वक विचरण कर रहे थे ॥ ७९ ॥

ततो बले भृशलुलिते परस्परं
निरीक्षमाणे रुधिरौघसम्प्लुते ।
दिवाकरेऽस्तंगिरिमास्थिते शनै-
रुभे प्रयाते शिबिराय भारत ॥ ८० ॥

भरतनन्दन ! दोनों ओरकी सेनाएँ अत्यन्त आहत होकर खूनसे लथपथ हो एक दूसरीकी ओर देख रही थीं, इतनेहीमें सूर्यदेव अस्ताचलको जा पहुँचे। फिर तो वे दोनों ही धीरे-धीरे अपने-अपने शिविरकी ओर चल दीं ॥ ८० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि संशप्तकवधपर्वणि द्वादशदिवसावहारे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत संशप्तकवधपर्वमें बारहवें दिनके युद्धमें सेनाका युद्धसे विरत हो अपने शिविरको प्रस्थानविषयक बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३२ ॥

(अभिमन्युवधपर्व)

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

दुर्योधनका उपालम्भ, द्रोणाचार्यकी प्रतिज्ञा और अभिमन्युवधके वृत्तान्तका संक्षेपसे वर्णन

संजय उवाच

पूर्वमस्मासु भग्नेषु फाल्गुनेनामितौजसा।
द्रोणे च मोघसंकल्पे रक्षिते च युधिष्ठिरे ॥ १ ॥
सर्वे विध्वस्तकवचास्तावका युधि निर्जिताः।
रजस्वला भृशोद्विग्ना वीक्षमाणा दिशो दश ॥ २ ॥
अवहारं ततः कृत्वा भारद्वाजस्य सम्मते।
लब्धलक्ष्यैः शरैर्भिन्ना भृशावहसिता रणे ॥ ३ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! जब अमित तेजस्वी अर्जुनने पहले ही हम सब लोगोंको भगा दिया, द्रोणाचार्यका संकल्प व्यर्थ हो गया तथा राजा युधिष्ठिर सर्वथा सुरक्षित रह गये, तब आपके समस्त सैनिक द्रोणाचार्यकी सम्मतिसे युद्ध बंद करके भयसे अत्यन्त उद्विग्न हो दसों दिशाओंकी ओर देखते हुए शिविरकी ओर चल दिये। वे सब-के सब युद्धमें पराजित होकर धूलमें भर गये थे। उनके कवच छिन्न-भिन्न हो गये थे तथा कभी न चूकनेवाले अर्जुनके बाणोंसे विदीर्ण होकर वे रणक्षेत्रमें अत्यन्त उपहासके पात्र बन गये ॥ १–३ ॥

श्लाघमानेषु भूतेषु फाल्गुनस्यामितान् गुणान्।
केशवस्य च सौहार्दे कीर्त्यमानेऽर्जुनं प्रति ॥ ४ ॥

समस्त प्राणी अर्जुनके असंख्य गुणोंकी प्रशंसा तथा उनके प्रति भगवान् श्रीकृष्णके सौहार्दका बखान कर रहे थे॥

अभिशस्ता इवाभूवन् ध्यानमूकत्वमास्थिताः।
ततः प्रभातसमये द्रोणं दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥

उस समय आपके महारथीगण कलङ्कित-से हो रहे थे। वे ध्यानस्थसे होकर मूक हो गये थे। तदनन्तर प्रातःकाल दुर्योधन द्रोणाचार्यके पास जाकर उनसे कुछ कहनेको उद्यत हुआ ॥ ५ ॥

प्रणयादभिमानाच्च द्विषद्वृद्ध्या च दुर्मनाः।
शृण्वतां सर्वयोधानां संरब्धो वाक्यकोविदः ॥ ६ ॥

शत्रुओंके अभ्युदयसे वह मन-ही-मन बहुत दुखी हो गया था। द्रोणाचार्यके प्रति उसके हृदयमें प्रेम था। उसे अपने शौर्यपर अभिमान भी था। अतः अत्यन्त कुपित हो बातचीतमें कुशल राजा दुर्योधनने समस्त योद्धाओंके सुनते हुए इस प्रकार कहा—॥ ६ ॥

नूनं वयं वध्यपक्षे भवतो द्विजसत्तम।
तथा हि नाग्रहीः प्राप्तं समीपेऽद्य युधिष्ठिरम् ॥ ७ ॥

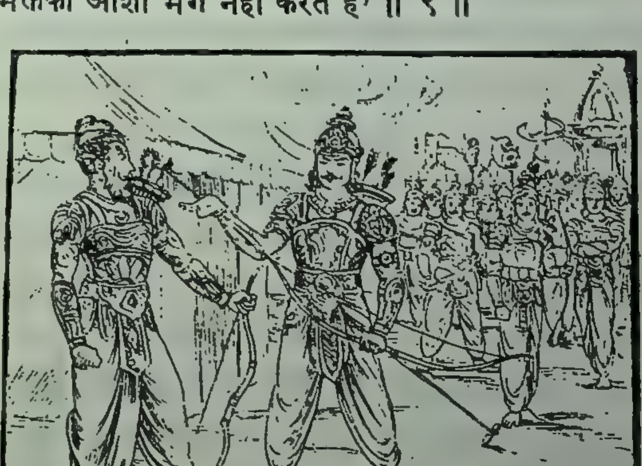
'द्विजश्रेष्ठ ! निश्चय ही हमलोग आपकी दृष्टिमें शत्रुवर्गके अन्तर्गत हैं। यही कारण है कि आज आपने अत्यन्त निकट आनेपर भी राजा युधिष्ठिरको नहीं पकड़ा है ॥ ७ ॥

इच्छतस्ते न मुच्येत चक्षुःप्राप्तो रणे रिपुः।
जिघृक्षतो रक्ष्यमाणः सामरैरपि पाण्डवैः ॥ ८ ॥

'रणक्षेत्रमें कोई शत्रु आपके नेत्रोंके समक्ष आ जाय और उसे आप पकड़ना चाहें तो सम्पूर्ण देवताओंके साथ सारे पाण्डव उसकी रक्षा क्यों न कर रहे हों, निश्चय ही वह आपसे छूटकर नहीं जा सकता ॥ ८ ॥

वरं दत्त्वा मम प्रीतः पश्चाद् विकृतवानसि।
आशाभङ्गं न कुर्वन्ति भक्तस्यार्याः कथंचन ॥ ९ ॥

'आपने प्रसन्न होकर पहले तो मुझे वर दिया और पीछे उसे उलट दिया; परंतु श्रेष्ठ पुरुष किसी प्रकार भी अपने भक्तकी आशा भंग नहीं करते हैं' ॥ ९ ॥



ततोऽप्रीतस्तथोक्तः सन् भारद्वाजोऽब्रवीन्नृपम्।
नार्हसे मां तथा ज्ञातुं घटमानं तव प्रिये ॥ १० ॥

दुर्योधनके ऐसा कहनेपर द्रोणाचार्यको तनिक भी प्रसन्नता नहीं हुई। वे दुखी होकर राजासे इस प्रकार बोले—'राजन् ! तुमको मुझे इस प्रकार प्रतिज्ञा भङ्ग करने-

वाला नहीं समझना चाहिये। मैं अपनी पूरी शक्ति लगाकर तुम्हारा प्रिय करनेकी चेष्टा कर रहा हूँ ॥ १० ॥

ससुरासुरगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः।
नालं लोका रणे जेतुं पाल्यमानं किरीटिना ॥ ११ ॥

'परंतु एक बात याद रक्खो, किरीटधारी अर्जुन रणक्षेत्रमें जिसकी रक्षा कर रहे हों, उसे देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, नाग तथा राक्षसोंसहित सम्पूर्ण लोक भी नहीं जीत सकते ॥ ११ ॥

विश्वसृग् यत्र गोविन्दः पृतनानीस्तथार्जुनः।
तत्र कस्य बलं क्रामेदन्यत्र त्र्यम्बकात् प्रभोः ॥ १२ ॥

'जहाँ जगत्स्रष्टा भगवान् श्रीकृष्ण तथा अर्जुन सेनानायक हों, वहाँ भगवान् शंकरके सिवा दूसरे किस पुरुषका बल काम कर सकता है ॥ १२ ॥

सत्यं तात ब्रवीम्यद्य नैतज्जात्वन्यथा भवेत्।
अद्यैकं प्रवरं कंचित् पातयिष्ये महारथम् ॥ १३ ॥

'तात ! आज मैं एक सच्ची बात कहता हूँ, यह कभी झूठी नहीं हो सकती। आज मैं पाण्डवपक्षके किसी श्रेष्ठ महारथीको अवश्य मार गिराऊँगा ॥ १३ ॥

तं च व्यूहं विधास्यामि योऽभेद्यस्त्रिदशैरपि।
योगेन केनचिद् राजन्नर्जुनस्त्वपनीयताम् ॥ १४ ॥

'राजन्! आज उस व्यूहका निर्माण करूँगा, जिसे देवता भी तोड़ नहीं सकते; परंतु किसी उपायसे अर्जुनको यहाँसे दूर हटा दो ॥ १४ ॥

न ह्यज्ञातमसाध्यं वा तस्य संख्येऽस्ति किंचन।
तेन ह्युपात्तं सकलं सर्वज्ञानमितस्ततः ॥ १५ ॥

'युद्धके सम्बन्धमें कोई ऐसी बात नहीं है, जो अर्जुनके लिये अज्ञात अथवा असाध्य हो। उन्होंने इधर-उधरसे युद्धविषयक सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है' ॥ १५॥

द्रोणेन व्याहृते त्वेवं संशप्तकगणाः पुनः।
आह्वयन्नर्जुनं संख्ये दक्षिणामभितो दिशम् ॥ १६ ॥

द्रोणाचार्यके ऐसा कहनेपर पुनः संशप्तकगणोंने दक्षिण दिशामें जा अर्जुनको युद्धके लिये ललकारा ॥ १६ ॥

ततोऽर्जुनस्याथ परैः सार्धं समभवद् रणः।
तादृशो यादृशो नान्यः श्रुतो दृष्टोऽपि वा क्वचित् ॥ १७॥

वहाँ अर्जुनका शत्रुओंके साथ ऐसा घोर संग्राम हुआ, जैसा दूसरा कोई कहीं न तो देखा गया है और न सुना ही गया है ॥ १७ ॥

तत्र द्रोणेन विहितो व्यूहो राजन् व्यरोचत।
चरन् मध्यंदिने सूर्यः प्रतपन्निव दुर्दृशः ॥ १८ ॥

राजन्! उस समय वहाँ द्रोणाचार्यने जिस व्यूहका निर्माण किया, वह मध्याह्नकालमें विचरते हुए सूर्यकी भाँति शत्रुओंको संताप देता-सा सुशोभित हो रहा था। उसे जीतना तो दूर रहा, उसकी ओर आँख उठाकर देखना भी अत्यन्त कठिन था ॥ १८ ॥

तं चाभिमन्युर्वचनात् पितुर्ज्येष्ठस्य भारत।
बिभेद दुर्भिदं संख्ये चक्रव्यूहमनेकधा ॥ १९ ॥

भारत ! यद्यपि उस चक्रव्यूहका भेदन करना अत्यन्त दुष्कर कार्य था तो भी वीर अभिमन्युने अपने ताऊ युधिष्ठिरकी आज्ञासे उस व्यूहका बारंबार भेदन किया ॥१९॥

स कृत्वा दुष्करं कर्म हत्वा वीरान् सहस्रशः।
षट्सु वीरेषु संसक्तो दौःशासनिवशं गतः ॥ २० ॥

अभिमन्युने वह दुष्कर कर्म करके सहस्रों वीरोंका वध किया और अन्तमें छः वीरोंके साथ अकेला ही उलझकर दुःशासनपुत्रके हाथसे मारा गाया ॥ २० ॥

सौभद्रः पृथिवीपाल जहौ प्राणान् परंतपः।
वयं परमसंहृष्टाः पाण्डवाः शोककर्शिताः।
सौभद्रे निहते राजन्नवहारमकुर्महि ॥ २१ ॥

भूपाल ! शत्रुओंको संताप देनेवाले सुभद्राकुमारने जब प्राण त्याग दिये, उस समय हमलोगोंको बड़ा हर्ष हुआ और पाण्डव शोकसे व्याकुल हो गये। राजन्! सुभद्राकुमारके मारे जानेपर हमलोगोंने युद्ध बंद कर दिया ॥ २१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

पुत्रं पुरुषसिंहस्य संजयाप्राप्तयौवनम्।
रणे विनिहतं श्रुत्वा भृशं मे दीर्यते मनः ॥ २२ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! पुरुषसिंह अर्जुनका वह पुत्र अभी युवावस्थामें भी नहीं पहुँचा था। उसे युद्धमें मारा गया सुनकर मेरा हृदय अत्यन्त विदीर्ण हो रहा है ॥ २२ ॥

दारुणः क्षत्रधर्मोऽयं विहितो धर्मकर्तृभिः।
यत्र राज्येप्सवः शूरा बाले शस्त्रमपातयन् ॥ २३ ॥

धर्मशास्त्रके निर्माताओंने यह क्षत्रिय-धर्म अत्यन्त कठोर बनाया है, जिसमें स्थित होकर राज्यके लोभी शूर-वीरोंने एक बालकपर अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार किया ॥ २३ ॥

बालमत्यन्तसुखिनं विचरन्तमभीतवत्।
कृतास्त्रा बहवो जघ्नुर्ब्रूहि गावल्गणे कथम् ॥ २४ ॥

संजय ! वह अत्यन्त प्रसन्न रहनेवाला बालक जब निर्भय-सा होकर युद्धमें विचर रहा था, उस समय अस्त्रविद्याके पारंगत बहुसंख्यक शूरवीरोंने उसका वध कैसे किया? यह मुझे बताओ ॥ २४ ॥

बिभित्सता रथानीकं सौभद्रेणामितौजसा।
विक्रीडितं यथा संख्ये तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ २५ ॥

संजय ! अमित तेजस्वी सुभद्राकुमारने युद्धके मैदानमें रथियोंकी सेनाको विदीर्ण करनेकी इच्छासे जिस प्रकार युद्धका खेल किया था, वह सब मुझे बताओ ॥ २५ ॥

संजय उवाच

यन्मां पृच्छसि राजेन्द्र सौभद्रस्य निपातनम्।
तत् ते कार्त्स्न्येन वक्ष्यामि शृणु राजन् समाहितः ॥ २६॥

संजयने कहा—राजेन्द्र ! आप जो मुझसे सुभद्राकुमारके मारे जानेका वृत्तान्त पूछ रहे हैं, वह सब मैं आपको पूर्णरूपसे बताऊँगा । राजन् ! आप एकाग्रचित्त होकर सुनें ॥

विक्रीडितं कुमारेण यथानीकं बिभित्सता ।
आरुग्णाश्च यथा वीरा दुःसाध्याश्चापि विप्लवे ॥ २७ ॥

आपकी सेनाके व्यूहका भेदन करनेकी इच्छासे कुमार अभिमन्युने जिस प्रकार रणक्रीड़ा की थी और उस प्रलयंकर संग्राममें जैसे-जैसे दुर्जय वीरोंके भी पाँव उखाड़ दिये थे, वह सब बता रहा हूँ ॥ २७ ॥

दावाग्न्यभिपरीतानां भूरिगुल्मतृणद्रुमे ।
वनौकसामिवारण्ये त्वदीयानामभूद् भयम् ॥ २८ ॥

जैसे प्रचुर लता-गुल्म, घास-पात और वृक्षोंसे भरे हुए वनमें दावानलसे घिरे हुए वनवासियोंको महान् भयका सामना करना पड़ता है, उसी प्रकार अभिमन्युसे आपके सैनिकोंको अत्यन्त भय प्राप्त हुआ था ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युवधसंक्षेपकथने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें अभिमन्युवधका संक्षेपसे वर्णनविषयक तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥३३॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

संजयके द्वारा अभिमन्युकी प्रशंसा, द्रोणाचार्यद्वारा चक्रव्यूहका निर्माण

संजय उवाच

समरेऽत्युग्रकर्माणः कर्मभिर्व्यञ्जितश्रमाः ।
सकृष्णाः पाण्डवाः पञ्च देवैरपि दुरासदाः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! श्रीकृष्णसहित पाँचों पाण्डव देवताओंके लिये भी दुर्जय हैं । वे समरभूमिमें अत्यन्त भयंकर कर्म करनेवाले हैं । उनके कर्मोंद्वारा ही उनका परिश्रम अभिव्यक्त होता है ॥ १ ॥

सत्त्वकर्मान्वयैर्बुद्ध्या कीर्त्या च यशसा श्रिया ।
नैव भूतो न भविता नैव तुल्यगुणः पुमान् ॥ २ ॥

सत्त्वगुण, कर्म, कुल, बुद्धि, कीर्ति, यश और श्रीके द्वारा युधिष्ठिरके समान पुरुष दूसरा कोई न तो हुआ है और न होनेवाला ही है ॥ २ ॥

सत्यधर्मरतो दान्तो विप्रपूजादिभिर्गुणैः ।
सदैव त्रिदिवं प्राप्तो राजा किल युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥

कहते हैं, राजा युधिष्ठिर सत्यधर्मपरायण और जितेन्द्रिय होनेके साथ ही ब्राह्मण-पूजन आदि सद्गुणोंके द्वारा सदा ही स्वर्गलोकको प्राप्त हैं ॥ ३ ॥

युगान्ते चान्तको राजन् जामदग्न्यश्च वीर्यवान् ।
रथस्थो भीमसेनश्च कथ्यन्ते सदृशास्त्रयः ॥ ४ ॥

राजन् ! प्रलयकालके यमराज, पराक्रमी परशुराम और रथपर बैठे हुए भीमसेन—ये तीनों एक समान कहे जाते हैं ॥

प्रतिज्ञाकर्मदक्षस्य रणे गाण्डीवधन्वनः ।
उपमां नाधिगच्छामि पार्थस्य सदृशीं क्षितौ ॥ ५ ॥

रणभूमिमें प्रतिज्ञापूर्वक कर्म करनेमें कुशल, गाण्डीवधारी कुन्तीकुमार अर्जुनके लिये तो मुझे इस पृथ्वीपर कोई उनके योग्य उपमा ही नहीं मिलती है ॥ ५ ॥

गुरुवात्सल्यमत्यन्तं नैभृत्यं विनयो दमः ।
नकुलेऽप्रातिरूप्यं च शौर्यं च नियतानि षट् ॥ ६ ॥

बड़े भाईके प्रति अत्यन्त भक्ति, अपने पराक्रमको प्रकाशित न करना, विनयशीलता, इन्द्रिय-संयम, उपमारहित रूप तथा शौर्य—ये नकुलमें छः गुण निश्चितरूपसे निवास करते हैं ॥ ६ ॥

श्रुतगाम्भीर्यमाधुर्यसत्यरूपपराक्रमैः ।
सदृशो देवयोर्वीरः सहदेवः किलाश्विनोः ॥ ७ ॥

वेदाध्ययन, गम्भीरता, मधुरता, सत्य, रूप और पराक्रमकी दृष्टिसे वीर सहदेव सर्वथा अश्विनीकुमारोंके समान हैं, यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध है ॥ ७ ॥

ये च कृष्णे गुणाः स्फीताः पाण्डवेषु च ये गुणाः ।
अभिमन्यौ किलैकस्था दृश्यन्ते गुणसंचयाः ॥ ८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णमें जो उज्ज्वल गुण हैं तथा पाण्डवोंमें जो उज्ज्वल गुण विद्यमान हैं, वे समस्त गुणसमुदाय अभिमन्युमें निश्चय ही एकत्र हुए दिखायी देते थे ॥ ८ ॥

युधिष्ठिरस्य वीर्येण कृष्णस्य चरितेन च ।
कर्मभिर्भीमसेनस्य सदृशो भीमकर्मणः ॥ ९ ॥

युधिष्ठिरके पराक्रम, श्रीकृष्णके उत्तम चरित्र एवं भयंकर कर्म करनेवाले भीमसेनके वीरोचित कर्मोंके समान ही अभिमन्युके भी पराक्रम, चरित्र और कर्म थे ॥ ९ ॥

धनंजयस्य रूपेण विक्रमेण श्रुतेन च ।
विनयात् सहदेवस्य सदृशो नकुलस्य च ॥ १० ॥

वह रूप, पराक्रम और शास्त्रज्ञानमें अर्जुनके समान तथा विनयशीलतामें नकुल और सहदेवके तुल्य था ॥१०॥

धृतराष्ट्र उवाच

अभिमन्युमहं सूत सौभद्रमपराजितम् ।
श्रोतुमिच्छामि कार्त्स्न्येन कथमायोधने हतः ॥ ११ ॥

धृतराष्ट्र बोले—सूत ! मैं किसीसे भी पराजित न होनेवाले सुभद्राकुमार अभिमन्युके विषयमें सारा वृत्तान्त सुनना चाहता हूँ । वह युद्धमें कैसे मारा गया ? ॥ ११ ॥

संजय उवाच

स्थिरो भव महाराज शोकं धारय दुर्धरम्।
महान्तं बन्धुनाशं ते कथयिष्यामि तच्छृणु ॥ १२ ॥

संजयने कहा—महाराज ! स्थिर हो जाइये और जिसे धारण करना कठिन है, उस शोकको अपने हृदयमें ही रोके रखिये। मैं आपसे बन्धु-बान्धवोंके महान् विनाशका वर्णन करूँगा, उसे सुनिये ॥ १२ ॥

चक्रव्यूहो महाराज आचार्येणाभिकल्पितः।
तत्र शक्रोपमाः सर्वे राजानो विनिवेशिताः ॥ १३ ॥

राजन् ! आचार्य द्रोणने जिस चक्रव्यूहका निर्माण किया था, उसमें इन्द्रके समान पराक्रम प्रकट करनेवाले समस्त राजाओंका समावेश कर रक्खा था ॥ १३ ॥

अरास्थानेषु विन्यस्ताः कुमाराः सूर्यवर्चसः।
संघातो राजपुत्राणां सर्वेषामभवत् तदा ॥ १४ ॥

उसमें आरोंके स्थानमें सूर्यके समान तेजस्वी राजकुमार खड़े किये गये थे। उस समय वहाँ समस्त राजकुमारोंका समुदाय उपस्थित हो गया था ॥ १४ ॥

कृताभिसमयाः सर्वे सुवर्णविकृतध्वजाः।
रक्ताम्बरधराः सर्वे सर्वे रक्तविभूषणाः ॥ १५ ॥

उन सबने प्राणोंके रहते युद्धसे विमुख न होनेकी प्रतिज्ञा कर ली थी। उन सबकी ध्वजाएँ सुवर्णमयी थीं, सबने लाल वस्त्र धारण कर रक्खे थे और सबके आभूषण भी लाल रंगके ही थे ॥ १५ ॥

सर्वे रक्तपताकाश्च सर्वे वै हेममालिनः।
चन्दनागुरुदिग्धाङ्गाः स्रग्विणः सूक्ष्मवाससः ॥ १६ ॥

सबके रथोंपर लाल रंगकी पताकाएँ फहरा रही थीं, सबने सोनेकी मालाएँ पहन रक्खी थीं, सबके अङ्गोंमें चन्दन और अगुरुका लेप किया गया था और सभी फूलोंके गजरों तथा महीन वस्त्रोंसे सुशोभित थे ॥ १६ ॥

सहिताः पर्यधावन्त कार्ष्णिं प्रति युयुत्सवः।
तेषां दश सहस्राणि बभूवुर्दृढधन्विनाम् ॥ १७ ॥

वे सब एक साथ युद्धके लिये उत्सुक होकर अर्जुन-पुत्र अभिमन्युकी ओर दौड़े। सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले उन आक्रमणकारी वीरोंकी संख्या दस हजार थी ॥ १७ ॥

पौत्रं तव पुरस्कृत्य लक्ष्मणं प्रियदर्शनम्।
अन्योन्यसमदुःखास्ते अन्योन्यसमसाहसाः ॥ १८ ॥

उन्होंने आपके प्रियदर्शन पौत्र लक्ष्मणको आगे करके धावा किया था। उन सबने एक दूसरेके दुःखको समान समझा था और वे परस्पर समानभावसे साहसी थे ॥ १८ ॥

अन्योन्यं स्पर्धमानाश्च अन्योन्यस्य हिते रताः।
दुर्योधनस्तु राजेन्द्र सैन्यमध्ये व्यवस्थितः ॥ १९ ॥

वे एक दूसरेसे होड़ लगाये रखते थे और आपसमें एक दूसरेके हित-साधनमें तत्पर रहते थे। राजेन्द्र ! राजा दुर्योधन सेनाके मध्यभागमें विराजमान था ॥ १९ ॥

कर्णदुःशासनकृपैर्वृतो राजा महारथैः।
देवराजोपमः श्रीमाञ्छ्वेतच्छत्राभिसंवृतः ॥ २० ॥

उसके ऊपर श्वेतछत्र तना हुआ था। वह कर्ण, दुःशासन तथा कृपाचार्य आदि महारथियोंसे घिरकर देवराज इन्द्रके समान शोभा पा रहा था ॥ २० ॥

चामरव्यजनाक्षेपैरुदयन्निव भास्करः।
प्रमुखे तस्य सैन्यस्य द्रोणोऽवस्थितनायकः ॥ २१ ॥

उसके दोनों ओर चँवर और व्यजन डुलाये जा रहे थे। वह उदयकालके सूर्यकी भाँति प्रकाशित हो रहा था। उस सेनाके अग्रभागमें सेनापति द्रोणाचार्य खड़े थे ॥ २१ ॥

सिन्धुराजस्तथातिष्ठच्छ्रीमान् मेरुरिवाचलः।
सिन्धुराजस्य पार्श्वस्था अश्वत्थामपुरोगमाः ॥ २२ ॥

वहीं सिंधुराज श्रीमान् राजा जयद्रथ भी मेरु पर्वतकी भाँति खड़ा था। उसके पार्श्व भागमें अश्वत्थामा आदि महारथी विद्यमान थे ॥ २२ ॥

सुतास्तव महाराज त्रिंशत्त्रिदशसंनिभाः।
गान्धारराजः कितवः शल्यो भूरिश्रवास्तथा ॥ २३ ॥
पार्श्वतः सिन्धुराजस्य व्यराजन्त महारथाः।

महाराज ! देवताओंके समान शोभा पानेवाले आपके तीस पुत्र, जुआरी गान्धारराज शकुनि, शल्य तथा भूरिश्रवा—ये महारथी वीर सिंधुराज जयद्रथके पार्श्वभागमें सुशोभित हो रहे थे ॥

ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ २४ ॥
तावकानां परेषां च मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ २५ ॥

तदनन्तर 'मरनेपर ही युद्धसे निवृत्त होंगे' ऐसा निश्चय करके आपके और शत्रुपक्षके योद्धाओंमें अत्यन्त भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ, जो रोंगटे खड़े कर देनेवाला था ॥ २४-२५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि चक्रव्यूहनिर्माणे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें चक्रव्यूहका निर्माणविषयक चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३४ ॥

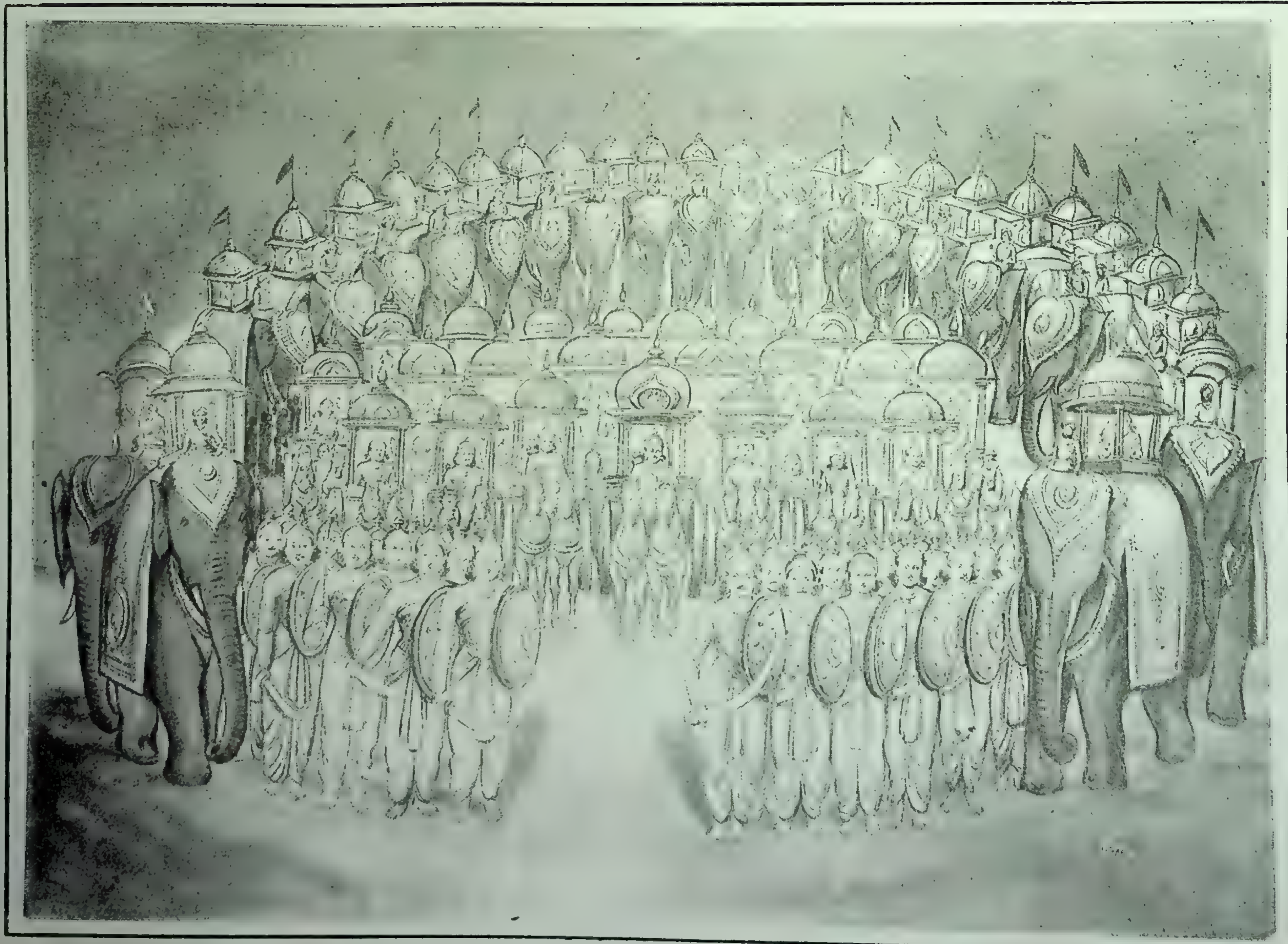
पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

युधिष्ठिर और अभिमन्युका संवाद तथा व्यूहभेदनके लिये अभिमन्युकी प्रतिज्ञा

संजय उवाच

तदनीकमनाधृष्यं भारद्वाजेन रक्षितम्।
पार्थाः समभ्यवर्तन्त भीमसेनपुरोगमाः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! द्रोणाचार्यके द्वारा सुरक्षित उस दुर्धर्ष सेनाका भीमसेन आदि कुन्तीपुत्रोंने डटकर सामना किया ॥ १ ॥



चक्रव्यूह

सात्यकिश्चेकितानश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
कुन्तिभोजश्च विक्रान्तो द्रुपदश्च महारथः॥ २ ॥
आर्जुनिः क्षत्रधर्मा च बृहत्क्षत्रश्च वीर्यवान्।
चेदिपो धृष्टकेतुश्च माद्रीपुत्रौ घटोत्कचः॥ ३ ॥
युधामन्युश्च विक्रान्तः शिखण्डी चापराजितः।
उत्तमौजाश्च दुर्धर्षो विराटश्च महारथः॥ ४ ॥
द्रौपदेयाश्च संरब्धाः शैशुपालिश्च वीर्यवान्।
केकयाश्च महावीर्याः सृञ्जयाश्च सहस्रशः॥ ५ ॥
एते चान्ये च सगणाः कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः।
समभ्यधावन् सहसा भारद्वाजं युयुत्सवः॥ ६ ॥

सात्यकि, चेकितान, द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न, पराक्रमी कुन्तिभोज, महारथी द्रुपद, अभिमन्यु, क्षत्रधर्मा, शक्तिशाली बृहत्क्षत्र, चेदिराज धृष्टकेतु, माद्रीकुमार नकुल-सहदेव, घटोत्कच, पराक्रमी युधामन्यु, किसीसे परास्त न होनेवाला वीर शिखण्डी, दुर्धर्षवीर उत्तमौजा, महारथी विराट, क्रोधमें भरे हुए द्रौपदीपुत्र, बलवान् शिशुपालकुमार, महापराक्रमी केकयराजकुमार तथा सहस्रों सृंजयवंशी क्षत्रिय—ये तथा और भी अस्त्रविद्यामें पारंगत एवं रणदुर्मद बहुत-से शूर-वीर अपने दलबलके साथ वहाँ उपस्थित थे। इन सबने युद्धकी अभिलाषासे द्रोणाचार्यपर सहसा धावा किया॥२–६॥

समीपे वर्तमानांस्तान् भारद्वाजोऽतिवीर्यवान्।
असम्भ्रान्तः शरौघेण महता समवारयत्॥ ७ ॥

भरद्वाजनन्दन द्रोणाचार्य बड़े पराक्रमी थे। शत्रुओंके आक्रमणसे उन्हें तनिक भी घबराहट नहीं हुई। उन्होंने अपने समीप आये हुए पाण्डव-वीरोंको बाणसमूहोंकी भारी वृष्टि करके आगे बढ़नेसे रोक दिया॥ ७ ॥

महौघः सलिलस्येव गिरिमासाद्य दुर्भिदम्।
द्रोणं ते नाभ्यवर्तन्त वेलामिव जलाशयाः॥ ८ ॥

जैसे दुर्भेद्य पर्वतके पास पहुँचकर जलका महान् प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है तथा जिस प्रकार सम्पूर्ण जलाशय (समुद्र) अपनी तटभूमिको नहीं लाँघ पाते, उसी प्रकार वे पाण्डव-सैनिक द्रोणाचायके अत्यन्त निकट न पहुँच सके॥ ८ ॥

पीड्यमानाः शरै राजन् द्रोणचापविनिःसृतैः।
न शेकुः प्रमुखे स्थातुं भारद्वाजस्य पाण्डवाः॥ ९ ॥

राजन्! द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित होकर पाण्डववीर उनके सामने नहीं ठहर सके॥९॥

तदद्भुतमपश्याम द्रोणस्य भुजयोर्बलम्।
यदेनं नाभ्यवर्तन्त पञ्चालाः सृञ्जयैः सह॥ १० ॥

उस समय हमलोगोंने द्रोणाचार्यकी भुजाओंका वह अद्भुत बल देखा, जिससे कि संजयोंसहित सम्पूर्ण पाञ्चालवीर उनके सामने टिक न सके॥ १० ॥

तमायान्तमभिक्रुद्धं द्रोणं दृष्ट्वा युधिष्ठिरः।
बहुधा चिन्तयामास द्रोणस्य प्रतिवारणम्॥ ११ ॥

क्रोधमें भरे हुए उन्हीं द्रोणाचार्यको आते देख राजा युधिष्ठिरने उन्हें रोकनेके उपायपर बारंबार विचार किया॥

अशक्यं तु तमन्येन द्रोणं मत्वा युधिष्ठिरः।
अविषह्यं गुरुं भारं सौभद्रे समवासृजत्॥ १२ ॥

इस समय द्रोणाचार्यका सामना करना दूसरेके लिये असम्भव जानकर युधिष्ठिरने वह दुःसह एवं महान् भार सुभद्राकुमार अभिमन्युपर रख दिया॥ १२ ॥

वासुदेवादनवरं फाल्गुनाच्चामितौजसम्।
अब्रवीत् परवीरघ्नमभिमन्युमिदं वचः॥ १३ ॥

अमिततेजस्वी अभिमन्यु वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण तथा अर्जुनसे किसी बातमें कम नहीं था, वह शत्रुवीरोंका संहार करनेमें समर्थ था; अतः उससे युधिष्ठिरने इस प्रकार कहा—॥

एत्य नो नार्जुनो गर्हेद् यथा तात तथा कुरु।
चक्रव्यूहस्य न वयं विद्मो भेदं कथंचन॥ १४ ॥

'तात! संशप्तकोंके साथ युद्ध करके लौटनेपर अर्जुन जिस प्रकार हमलोगोंकी निन्दा न करें (हमें असमर्थ न बतावें), वैसा कार्य करो। हमलोग तो किसी तरह भी चक्रव्यूहके भेदनकी प्रक्रियाको नहीं जानते हैं॥ १४ ॥

त्वं वार्जुनो वा कृष्णो वा भिन्द्यात् प्रद्युम्न एव वा।
चक्रव्यूहं महाबाहो पञ्चमो नोपपद्यते॥ १५ ॥

'महाबाहो! तुम, अर्जुन, श्रीकृष्ण अथवा प्रद्युम्न—ये चार पुरुष ही चक्रव्यूहका भेदन कर सकते हो। पाँचवाँ कोई योद्धा इस कार्यके योग्य नहीं है॥ १५ ॥

अभिमन्यो वरं तात याचतां दातुमर्हसि।
पितॄणां मातुलानां च सैन्यानां चैव सर्वशः॥ १६ ॥

'तात अभिमन्यु! तुम्हारे पिता और मामाके पक्षके समस्त योद्धा तथा सम्पूर्ण सैनिक तुमसे याचना कर रहे हैं। तुम्हीं इन्हें वर देनेके योग्य हो॥ १६ ॥

धनंजयो हि नस्तात गर्हयेदेत्य संयुगात्।
क्षिप्रमस्त्रं समादाय द्रोणानीकं विशातय॥ १७ ॥

'तात! यदि हम विजयी नहीं हुए तो युद्धसे लौटनेपर अर्जुन निश्चय ही हमलोगोंको कोसेंगे, अतः शीघ्र अस्त्र लेकर तुम द्रोणाचार्यकी सेनाका विनाश कर डालो'॥ १७ ॥



अभिमन्युरुवाच

द्रोणस्य दृढमत्युग्रमनीकप्रवरं युधि।
पितॄणां जयमाकाङ्क्षन्नवगाहेऽविलम्बितम् ॥ १८ ॥

अभिमन्युने कहा—महाराज ! मैं अपने पितृवर्गकी विजयकी अभिलाषासे युद्धस्थलमें द्रोणाचार्यकी अत्यन्त भयंकर, सुदृढ़ एवं श्रेष्ठ सेनामें शीघ्र ही प्रवेश करता हूँ ॥ १८ ॥

उपदिष्टो हि मे पित्रा योगोऽनीकविशातने।
नोत्सहे हि विनिर्गन्तुमहं कस्यांचिदापदि ॥ १९ ॥

पिताजीने मुझे चक्रव्यूहके भेदनकी विधि तो बतायी है; परंतु किसी आपत्तिमें पड़ जानेपर मैं उस व्यूहसे बाहर नहीं निकल सकता ॥ १९ ॥

युधिष्ठिर उवाच

भिन्ध्यनीकं युधां श्रेष्ठ द्वारं संजनयस्व नः।
वयं त्वानुगमिष्यामो येन त्वं तात यास्यसि ॥ २० ॥

युधिष्ठिर बोले—योद्धाओंमें श्रेष्ठ वीर ! तुम व्यूहका भेदन करो और हमारे लिये द्वार बना दो ! तात ! फिर तुम जिस मार्गसे जाओगे, उसीके द्वारा हम भी तुम्हारे पीछे-पीछे चले चलेंगे ॥ २० ॥

धनंजयसमं युद्धे त्वां वयं तात संयुगे।
प्रणिधायानुयास्यामो रक्षन्तः सर्वतोमुखाः ॥ २१ ॥

बेटा ! हमलोग युद्धस्थलमें तुम्हें अर्जुनके समान मानते हैं। हम अपना ध्यान तुम्हारी ही ओर रखकर सब ओरसे तुम्हारी रक्षा करते हुए तुम्हारे साथ ही चलेंगे ॥ २१ ॥

भीम उवाच

अहं त्वानुगमिष्यामि धृष्टद्युम्नोऽथ सात्यकिः।
पञ्चालाः केकया मत्स्यास्तथा सर्वे प्रभद्रकाः ॥ २२ ॥

भीमसेन बोले—बेटा ! मैं तुम्हारे साथ चलूँगा। धृष्टद्युम्न, सात्यकि, पाञ्चालदेशीय योद्धा, केकयराजकुमार, मत्स्य देशके सैनिक तथा समस्त प्रभद्रकगण भी तुम्हारा अनुसरण करेंगे ॥ २२ ॥

सकृद् भिन्नं त्वया व्यूहं तत्र तत्र पुनः पुनः।
वयं प्रध्वंसयिष्यामो निघ्नमाना वरान् वरान् ॥ २३ ॥

तुम जहाँ-जहाँ एक बार भी व्यूह तोड़ दोगे, वहाँ-वहाँ हमलोग मुख्य-मुख्य योद्धाओंका वध करके उस व्यूहको बारंबार नष्ट करते रहेंगे ॥ २३ ॥

अभिमन्युरुवाच

अहमेतत् प्रवेक्ष्यामि द्रोणानीकं दुरासदम्।
पतङ्ग इव संक्रुद्धो ज्वलितं जातवेदसम् ॥ २४ ॥

अभिमन्युने कहा—जैसे पतङ्ग जलती हुई आगमें कूद पड़ता है, उसी प्रकार मैं भी कुपित हो द्रोणाचार्यके दुर्गम सैन्य-व्यूहमें प्रवेश करूँगा ॥ २४ ॥

तत् कर्माद्य करिष्यामि हितं यद् वंशयोर्द्वयोः।
मातुलस्य च यत् प्रीतिं करिष्यति पितुश्च मे ॥ २५ ॥

आज मैं वह पराक्रम करूँगा, जो पिता और माता दोनोंके कुलोंके लिये हितकर होगा तथा वह मामा श्रीकृष्ण तथा पिता अर्जुन दोनोंको प्रसन्न करेगा ॥ २५ ॥

शिशुनैकेन संग्रामे काल्यमानानि संघशः।
द्रक्ष्यन्ति सर्वभूतानि द्विषत्सैन्यानि वै मया ॥ २६ ॥

यद्यपि मैं अभी बालक हूँ तो भी आज समस्त प्राणी देखेंगे कि मैंने अकेले ही समूह-के-समूह शत्रुसैनिकोंका युद्धमें संहार कर डाला है ॥ २६ ॥

नाहं पार्थेन जातः स्यां न च जातः सुभद्रया।
यदि मे संयुगे कश्चिज्जीवितो नाद्य मुच्यते ॥ २७ ॥

यदि आज मेरे साथ युद्ध करके कोई भी सैनिक जीवित बच जाय तो मैं अर्जुनका पुत्र नहीं और सुभद्राकी कोखसे मेरा जन्म नहीं ॥ २७ ॥

यदि चैकरथेनाहं समग्रं क्षत्रमण्डलम्।
न करोम्यष्टधा युद्धे न भवाम्यर्जुनात्मजः ॥ २८ ॥

यदि मैं युद्धमें एकमात्र रथकी सहायतासे सम्पूर्ण क्षत्रियमण्डलके आठ टुकड़े न कर दूँ तो अर्जुनका पुत्र नहीं ॥

युधिष्ठिर उवाच

एवं ते भाषमाणस्य बलं सौभद्र वर्धताम्।
यत् समुत्सहसे भेत्तुं द्रोणानीकं दुरासदम् ॥ २९ ॥

युधिष्ठिरने कहा—सुभद्रानन्दन ! ऐसी ओजस्वी बातें कहते हुए तुम्हारा बल निरन्तर बढ़ता रहे; क्योंकि तुम द्रोणाचार्यके दुर्गम सैन्यमें प्रवेश करनेका उत्साह रखते हो ॥

रक्षितं पुरुषव्याघ्रैर्महेष्वासैर्महाबलैः।
साध्यरुद्रमरुत्तुल्यैर्वस्वग्न्यादित्यविक्रमैः ॥ ३० ॥

द्रोणाचार्यकी सेना उन महाबली महाधनुर्धर पुरुषसिंह वीरों द्वारा सुरक्षित है, जो कि साध्य, रुद्र तथा मरुद्गणोंके समान बलवान् और वसु, अग्नि एवं सूर्यके समान पराक्रमी हैं ॥

संजय उवाच

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा स यन्तारमचोदयत्।
सुमित्राश्वान् रणे क्षिप्रं द्रोणानीकाय चोदय ॥ ३१ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! महाराज युधिष्ठिरका यह वचन सुनकर अभिमन्युने अपने सारथिको यह आज्ञा दी—'सुमित्र ! तुम शीघ्र ही घोड़ोंको रणक्षेत्रमें द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर हाँक ले चलो ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युप्रतिज्ञायां पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें अभिमन्युकी प्रतिज्ञाविषयक पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

अभिमन्युका उत्साह तथा उसके द्वारा कौरवोंकी चतुरङ्गिणी सेनाका संहार

संजय उवाच

सौभद्रस्तद् वचः श्रुत्वा धर्मराजस्य धीमतः।
अचोदयत यन्तारं द्रोणानीकाय भारत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—भारत ! बुद्धिमान् युधिष्ठिरका पूर्वोक्त वचन सुनकर सुभद्राकुमार अभिमन्युने अपने सारथिको द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर चलनेका आदेश दिया ॥ १ ॥

तेन संचोद्यमानस्तु याहि याहीति सारथिः।
प्रत्युवाच ततो राजन्नभिमन्युमिदं वचः ॥ २ ॥

राजन् ! 'चलो, चलो' ऐसा कहकर अभिमन्युके बारं-बार प्रेरित करनेपर सारथिने उससे इस प्रकार कहा—॥२॥

अतिभारोऽयमायुष्मन्नाहितस्त्वयि पाण्डवैः।
सम्प्रधार्य क्षणं बुद्ध्या ततस्त्वं योद्धुमर्हसि ॥ ३ ॥

'आयुष्मन् ! पाण्डवोंने आपके ऊपर यह बहुत बड़ा भार रख दिया है। पहले आप क्षणभर रुककर बुद्धिपूर्वक अपने कर्तव्यका निश्चय कर लीजिये। उसके बाद युद्ध कीजिये ॥

आचार्यो हि कृती द्रोणः परमास्त्रे कृतश्रमः।
अत्यन्तसुखसंवृद्धस्त्वं चायुद्धविशारदः ॥ ४ ॥

'द्रोणाचार्य अस्त्रविद्याके विद्वान् हैं और उत्तम अस्त्रोंके अभ्यासके लिये उन्होंने विशेष परिश्रम किया है। इधर आप अत्यन्त सुख एवं लाड़-प्यारमें पले हैं। युद्धकी कलामें आप उनके-जैसे विज्ञ नहीं हैं' ॥ ४ ॥



ततोऽभिमन्युः प्रहसन् सारथिं वाक्यमब्रवीत्।
सारथे को न्वयं द्रोणः समग्रं क्षत्रमेव वा ॥ ५ ॥
ऐरावतगतं शक्रं सहामरगणैरहम्।
अथवा रुद्रमीशानं सर्वभूतगणार्चितम्।
योधयेयं रणमुखे न मे क्षत्रेऽद्य विस्मयः ॥ ६ ॥

तब अभिमन्युने हँसते-हँसते सारथिसे इस प्रकार कहा—'सारथे ! इन द्रोणाचार्य अथवा सम्पूर्ण क्षत्रियमण्डलकी तो बात ही क्या, मैं तो ऐरावतपर चढ़े हुए सम्पूर्ण देवगणों-सहित इन्द्रके अथवा समस्त प्राणियोंद्वारा पूजित एवं सबके ईश्वर रुद्रदेवके साथ भी सामने खड़ा होकर युद्ध कर सकता हूँ। अतः इस समय इस क्षत्रियसमूहके साथ युद्ध करनेमें मुझे आज कोई आश्चर्य नहीं हो रहा है ॥ ५-६ ॥

न ममैतद् द्विषत्सैन्यं कलामर्हति षोडशीम्।
अपि विश्वजितं विष्णुं मातुलं प्राप्य सूतज ॥ ७ ॥
पितरं चार्जुनं युद्धे न भीर्मामुपयास्यति।

'शत्रुओंकी यह सारी सेना मेरी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं है। सूतनन्दन ! विश्वविजयी विष्णुस्वरूप मामा श्रीकृष्णको तथा पिता अर्जुनको भी युद्धमें विपक्षीके रूपमें सामने पाकर मुझे भय नहीं होगा' ॥ ७½ ॥

अभिमन्युश्च तां वाचं कदर्थीकृत्य सारथेः ॥ ८ ॥
याहीत्येवाब्रवीदेनं द्रोणानीकाय मा चिरम्।

अभिमन्युने सारथिके पूर्वोक्त कथनकी अवहेलना करके उससे यही कहा—'तुम शीघ्र द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर चलो'॥

ततः संनोदयामास हयानाशु त्रिहायनान् ॥ ९ ॥
नातिहृष्टमनाः सूतो हेमभाण्डपरिच्छदान्।

तब सारथिने सुवर्णमय आभूषणोंसे भूषित तथा तीन वर्षकी अवस्थावाले घोड़ोंको शीघ्र आगे बढ़ाया। उस समय उसका मन अधिक प्रसन्न नहीं था ॥ ९½ ॥

ते प्रेषिताः सुमित्रेण द्रोणानीकाय वाजिनः ॥ १० ॥
द्रोणमभ्यद्रवन् राजन् महावेगपराक्रमम्।

राजन् ! सारथि सुमित्रद्वारा द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर हाँके हुए वे घोड़े महान् वेगशाली और पराक्रमी द्रोणकी ओर दौड़े ॥ १०½ ॥

तमुदीक्ष्य तथाऽऽयान्तं सर्वे द्रोणपुरोगमाः।
अभ्यवर्तन्त कौरव्याः पाण्डवाश्च तमन्वयुः ॥ ११ ॥

अभिमन्युको इस प्रकार आते देख द्रोणाचार्य आदि कौरव-वीर उनके सामने आकर खड़े हो गये और पाण्डव-योद्धा उनका अनुसरण करने लगे ॥ ११ ॥

स कर्णिकारप्रवरोच्छ्रितध्वजः
सुवर्णवर्मार्जुनिरर्जुनाद् वरः।
युयुत्सया द्रोणमुखान् महारथान्
समासदत् सिंहशिशुर्यथा द्विपान् ॥१२॥

अभिमन्युके ऊँचे एवं श्रेष्ठ ध्वजपर कर्णिकारका चिह्न बना हुआ था। उसने सुवर्णका कवच धारण कर रक्खा था। वह अर्जुनकुमार अपने पिता अर्जुनसे भी श्रेष्ठ वीर था। जैसे सिंहका बच्चा हाथियोंपर आक्रमण करता है, उसी प्रकार

अभिमन्युने युद्धकी इच्छासे द्रोण आदि महारथियोंपर धावा किया ॥ १२ ॥

ते विंशतिपदे यत्ताः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे।
आसीद् गाङ्ग इवावर्तो मुहूर्तमुदधाविव ॥ १३ ॥

अभिमन्यु बीस पग ही आगे बढ़े थे कि सामना करनेके लिये उद्यत हुए द्रोणाचार्य आदि योद्धा उनपर प्रहार करने लगे। उस समय उस सैन्यसागरमें अभिमन्युके प्रवेश करनेसे दो घड़ीतक सेनाकी वही दशा रही, जैसी कि समुद्रमें गङ्गाकी भँवरोंसे युक्त जलराशिके मिलनेसे होती है ॥ १३ ॥

शूराणां युध्यमानानां निघ्नतामितरेतरम्।
संग्रामस्तुमुलो राजन् प्रावर्तत सुदारुणः ॥ १४ ॥

राजन्! युद्धमें तत्पर हो एक-दूसरेपर घातक प्रहार करते हुए उन शूरवीरोंमें अत्यन्त दारुण एवं भयंकर संघर्ष होने लगा ॥ १४ ॥

प्रवर्तमाने संग्रामे तस्मिन्नतिभयंकरे।
द्रोणस्य मिषतो व्यूहं भित्त्वा प्राविशदार्जुनिः ॥ १५ ॥

वह अति भयंकर संग्राम चल ही रहा था कि द्रोणाचार्यके देखते-देखते अर्जुनकुमार अभिमन्यु व्यूह तोड़कर भीतर घुस गया ॥ १५ ॥

(तदभेद्यमनाधृष्यं द्रोणानीकं सुदुर्जयम्।
भित्त्वाऽऽर्जुनिरसम्भ्रान्तो विवेशाचिन्त्यविक्रमः ॥)

अभिमन्युका पराक्रम अचिन्त्य था। उसने बिना किसी घबराहटके द्रोणाचार्यके अत्यन्त दुर्जय एवं दुर्धर्ष सैन्य-व्यूहको भंग करके उसके भीतर प्रवेश किया ॥

तं प्रविष्टं विनिघ्नन्तं शत्रुसंघान् महाबलम्।
हस्त्यश्वरथपत्त्यौघाः परिवव्रुरुदायुधाः ॥ १६ ॥

व्यूहके भीतर घुसकर शत्रुसमूहोंका विनाश करते हुए महाबली अभिमन्युको हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र लिये गजारोही, अश्वारोही, रथी और पैदल योद्धाओंके भिन्न-भिन्न दलोंने चारों ओरसे घेर लिया ॥ १६ ॥

नानावादित्रनिनदैः क्ष्वेडितोत्क्रुष्टगर्जितैः।
हुंकारैः सिंहनादैश्च तिष्ठ तिष्ठेति निःस्वनैः ॥ १७ ॥
घोरैर्हलहलाशब्दैर्मा गास्तिष्ठैहि मामिति।
असावहममुत्रेति प्रवदन्तो मुहुर्मुहुः ॥ १८ ॥
बृंहितैः सिञ्जितैर्हासैः करनेमिस्वनैरपि।
संनादयन्तो वसुधामभिदुद्रुवुरार्जुनिम् ॥ १९ ॥

नाना प्रकारके वाद्योंकी ध्वनि, कोलाहल, ललकार, गर्जना, हुंकार, सिंहनाद, 'ठहरो, ठहरो'की आवाज और घोर हलहला शब्दके साथ 'न जाओ, खड़े रहो, मेरे पास आओ, तुम्हारा शत्रु मैं तो यहाँ हूँ' इत्यादि बातें बारंबार कहते हुए वीर सैनिक हाथियोंके चिग्घाड़, घुँघुरुओंकी रुनझुन, अट्टहास, हाथोंकी तालीके शब्द तथा पहियोंकी घर्घराहटसे सारी वसुधाको गुँजाते हुए अर्जुनकुमारपर टूट पड़े ॥ १७-१९ ॥

तेषामापततां वीरः शीघ्रयोधी महाबलः।
क्षिप्रास्त्रो न्यवधीद् राजन् मर्मज्ञो मर्मभेदिभिः ॥ २० ॥

राजन्! महाबली वीर अभिमन्यु शीघ्रतापूर्वक युद्ध करनेमें कुशल, जल्दी-जल्दी अस्त्र चलानेवाला और शत्रुओंके मर्म-स्थानोंको जाननेवाला था। वह अपनी ओर आते हुए शत्रु-सैनिकोंका मर्मभेदी बाणोंद्वारा वध करने लगा ॥ २० ॥

ते हन्यमाना विवशा नानालिङ्गैः शितैः शरैः।
अभिपेतुः सुबहुशः शलभा इव पावकम् ॥ २१ ॥

नाना प्रकारके चिह्नोंसे सुशोभित पैने बाणोंकी मार खाकर वे बहुसंख्यक कौरववीर विवश हो धरतीपर गिर पड़े, मानो ढेर-के-ढेर फतिंगे जलती आगमें पड़ गये हों ॥ २१ ॥

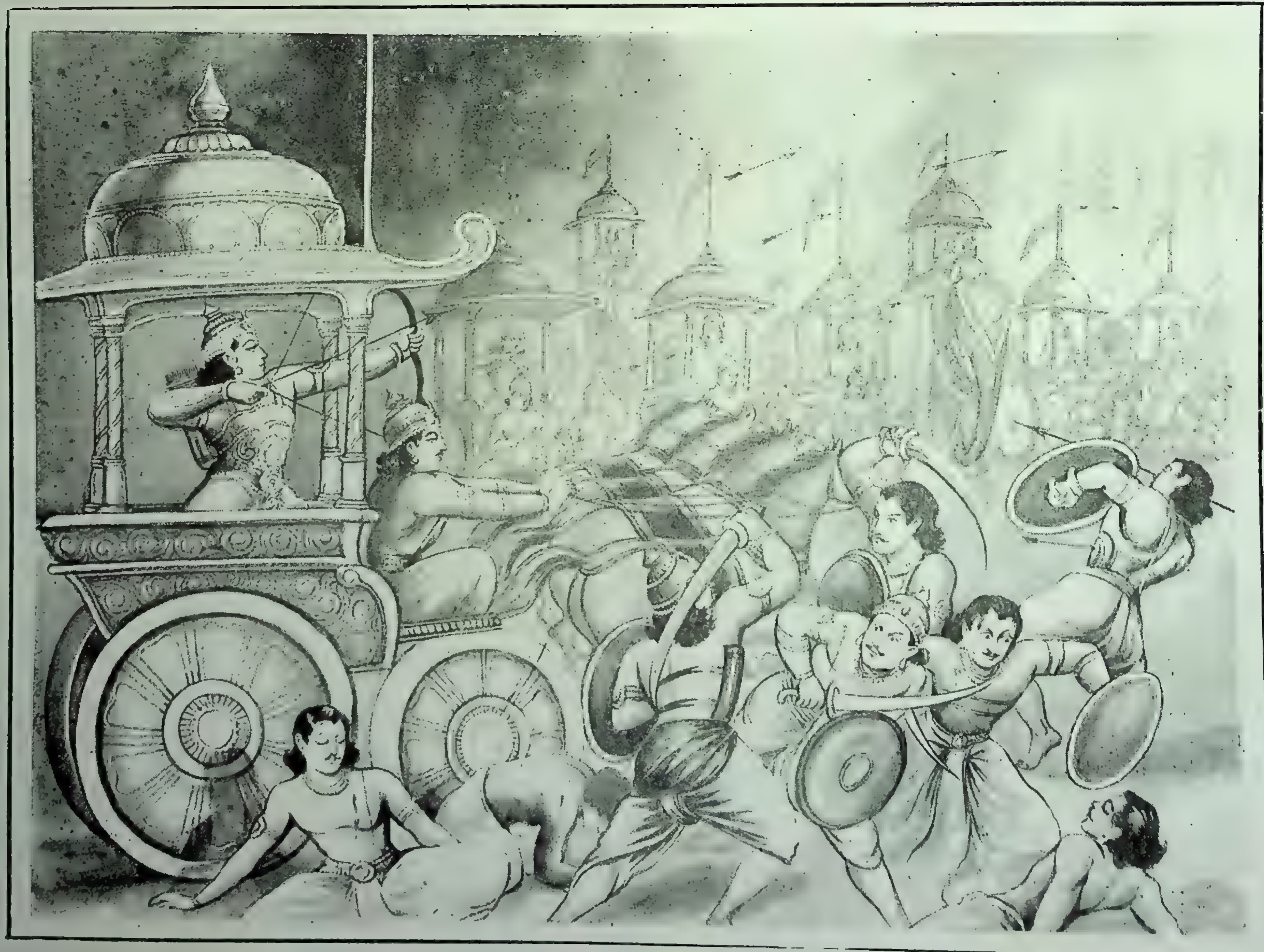
ततस्तेषां शरीरैश्च शरीरावयवैश्च सः।
संतस्तार क्षितिं क्षिप्रं कुशैर्वेदिमिवाध्वरे ॥ २२ ॥

जैसे यज्ञमें वेदीके ऊपर कुश बिछाये जाते हैं, उसी प्रकार अभिमन्युने तुरंत ही शत्रुओंके शरीरों तथा विभिन्न अवयवोंके द्वारा सारी रणभूमिको पाट दिया ॥ २२ ॥

बद्धगोधाङ्गुलित्राणान् सशरासनसायकान्।
सासिचर्माङ्कुशाभीषून् सतोमरपरश्वधान् ॥ २३ ॥
सगदायोगुडप्रासान् सर्ष्टितोमरपट्टिशान्।
सभिन्दिपालपरिघान् सशक्तिवरकम्पनान् ॥ २४ ॥
सप्रतोदमहाशङ्खान् सकुन्तान् सकचग्रहान्।
समुद्गरक्षेपणीयान् सपाशपरिघोपलान् ॥ २५ ॥
सकेयूराङ्गदान् बाहून् हृद्यगन्धानुलेपनान्।
संचिच्छेदार्जुनिस्तूर्णं त्वदीयानां सहस्रशः ॥ २६ ॥

महाराज! अर्जुनकुमार अभिमन्युने आपके सहस्रों सैनिकोंकी उन भुजाओंको तुरंत काट डाला, जिनमें मनोहर सुगन्धयुक्त चन्दनका लेप लगा हुआ था। वीरोंकी उन भुजाओंमें गोहके चमड़ेसे बने हुए दस्ताने बँधे हुए थे। धनुष और बाण शोभा पाते थे। किन्हीं भुजाओंमें ढाल, तलवार, अङ्कुश और बागडोर दिखायी देती थीं। किन्हींमें तोमर और फरसे शोभा पाते थे। किन्हींमें गदा, लोहेकी गोलियाँ, प्रास, ऋष्टि, तोमर, पट्टिश, भिन्दिपाल, परिघ, श्रेष्ठ शक्ति, कम्पन, प्रतोद, महाशङ्ख और कुन्त दृष्टिगोचर हो रहे थे। किन्हीं-किन्हीं भुजाओंने शत्रुओंकी चोटियाँ पकड़ रक्खी थीं। किन्हींमें मुद्गर फेंकने योग्य अन्यान्य अस्त्र, पाश, परिघ तथा प्रस्तरखण्ड दिखायी देते थे। वीरोंकी वे सभी भुजाएँ केयूर और अङ्गद आदि आभूषणोंसे विभूषित थीं ॥ २३–२६ ॥

तैः स्फुरद्भिर्महाराज शुशुभे भूः सुलोहितैः।
पञ्चास्यैः पन्नगैश्छिन्नैर्गरुडेनेव मारिष ॥ २७ ॥



अभिमन्युके द्वारा कौरव-सेनाके प्रमुख वीरोंका संहार

आदरणीय महाराज ! खूनसे लथपथ होकर तड़पती हुई उन भुजाओंसे इस पृथ्वीकी वैसी ही शोभा हो रही थी, जैसे गरुड़के द्वारा छिन्न-भिन्न किये हुए पाँच मुखवाले सर्पोंके शरीरोंसे आच्छादित हुई वसुधा सुशोभित होती है ॥ २७ ॥

सुनासाननकेशान्तैरव्रणैश्चारुकुण्डलैः ।
संदष्टौष्ठपुटैः क्रोधात् क्षरद्भिः शोणितं बहु ॥ २८ ॥
स चारुमुकुटोष्णीषैर्मणिरत्नविभूषितैः ।
विनालनलिनाकारैर्दिवाकरशशिप्रभैः ॥ २९ ॥
हितप्रियंवदैः काले बहुभिः पुण्यगन्धिभिः ।
द्विषच्छिरोभिः पृथिवीं स वै तस्तार फाल्गुनिः ॥ ३० ॥

जिनमें सुन्दर नासिका, सुन्दर मुख और सुन्दर केशान्त भागकी अद्भुत शोभा हो रही थी, जिनमें फोड़े-फुंसी या घावके चिह्न नहीं थे, जो मनोहर कुण्डलोंसे प्रकाशित हो रहे थे, जिनके ओष्ठपुट क्रोधके कारण दाँतों तले दबे हुए थे, जो अधिकाधिक रक्तकी धारा बहा रहे थे, जिनके ऊपर मनोहर मुकुट और पगड़ीकी शोभा होती थी, जो मणि-रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित थे, जिनकी प्रभा सूर्य और चन्द्रमाके समान जान पड़ती थी, जो बिना नालके प्रफुल्ल कमलके समान प्रतीत होते थे, जो समय-समयपर हित एवं प्रियकी बातें बताते थे, जिनकी संख्या बहुत अधिक थी तथा जो पवित्र सुगन्धसे सुवासित थे, शत्रुओंके उन मस्तकोंद्वारा अभिमन्युने वहाँकी सारी पृथ्वीको पाट दिया ॥ २८—३० ॥

गन्धर्वनगराकारान् विधिवत् कल्पितान् रथान् ।
वीषामुखान् द्वित्रिवेणून् न्यस्तदण्डकबन्धुरान् ॥ ३१ ॥
विजङ्घाकूबरांस्तत्र विनेमिदशनानपि ।
विचक्रोपस्करोपस्थान् भग्नोपकरणानपि ॥ ३२ ॥
प्रपातितोपस्तरणान् हतयोधान् सहस्रशः ।
शरैर्विशकलीकुर्वन् दिक्षु सर्वास्वदृश्यत ॥ ३३ ॥

इसी प्रकार अभिमन्यु अपने बाणोंसे शत्रुओंके गन्धर्व-नगरके समान विशाल तथा विधिपूर्वक सुसज्जित बहुसंख्यक रथोंके टुकड़े-टुकड़े करता हुआ सम्पूर्ण दिशाओंमें दृष्टिगोचर हो रहा था। उन रथोंके प्रधान ईषादण्ड नष्ट हो गये थे। त्रिवेणु चूर-चूर हो गये थे। स्तम्भदण्ड उखड़ गये थे। उसके बन्धन टूट गये थे। जङ्घा (नीचेका स्थान) और कूबर (जूएका आधारभूत काष्ठ) टूट फूट गये थे। पहियोंके ऊपरी भाग और अरे चौपट कर दिये गये थे। पहिये, रथकी सजावटके समान और बैठकें नष्ट-भ्रष्ट हो गयी थीं। सारी सामग्री तथा रथके अवयव चूर-चूर हो गये थे। रथकी छतरी और आवरणको गिरा दिया गया था तथा उन रथोंके समस्त योद्धा मार डाले गये थे। इस तरह सहस्रों रथोंकी धज्जियाँ उड़ गयी थीं ॥ ३१—३३ ॥

पुनर्द्विपान् द्विपारोहान् वैजयन्त्यङ्कुशध्वजान् ।
तूणान् वर्माण्यथो कक्ष्या ग्रैवेयांश्च सकम्बलान् ॥ ३४ ॥
घण्टाः शुण्डाविषाणाग्रान् छत्रमालाः पदानुगान् ।
शरैर्निशितधाराग्रैः शात्रवाणामशातयत् ॥ ३५ ॥

रथोंका संहार करके अभिमन्युने पुनः तीखी धारवाले बाणोंद्वारा शत्रुओंके हाथियों, गजारोहियों, उनके झंडों, अङ्कुशों, ध्वजाओं, तूणीरों, कवचों, रस्सों, कण्ठाभूषणों, झूलों, घंटों, सूँड़ों, दाँतों, छत्रों, मालाओं और पादरक्षकोंको भी काट डाला ॥ ३४-३५ ॥

वनायुजान् पर्वतीयान् काम्बोजानथ बाह्लिकान् ।
स्थिरबालधिकर्णाक्षाञ्जवनान् साधुवाहिनः ॥ ३६ ॥
आरूढाञ्शिक्षितैर्योधैः शक्त्यृष्टिप्रासयोधिभिः ।
विध्वस्तचामरमुखान् विप्रविद्धप्रकीर्णकान् ॥ ३७ ॥
निरस्तजिह्वानयनान् निष्कीर्णान्त्रयकृद्घनान् ।
हतारोहांश्छिन्नघण्टान् क्रव्यादगणमोदकान् ॥ ३८ ॥
निकृत्तचर्मकवचाञ्शकृन्मूत्रासृगाप्लुतान् ।
निपातयन्नश्ववरांस्तावकान् स व्यरोचत ॥ ३९ ॥
एको विष्णुरिवाचिन्त्यं कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ।

राजन् ! आपके वनायुज, पर्वतीय, काम्बोज तथा बाह्लिक देशीय श्रेष्ठ घोड़ोंको, जो पूँछ, कान और नेत्रोंको निश्चल करके दौड़नेवाले, वेगवान् और अच्छी तरह सवारीका काम देनेवाले थे तथा जिनके ऊपर शक्ति, ऋष्टि एवं प्रासद्वारा युद्ध करनेवाले सुशिक्षित योद्धा सवार थे, धराशायी करता हुआ अकेला वीर अभिमन्यु एकमात्र भगवान् विष्णुकी भाँति अचिन्त्य एवं दुष्कर कर्म करके बड़ी शोभा पा रहा था। उन घोड़ोंके मस्तक और गर्दनके चँवरके समान बड़े-बड़े बाल और मुख बाणोंके आघातसे नष्ट हो गये थे। वे सब-के-सब घायल हो गये थे। कितने ही अश्वोंके सिर छिन्न-भिन्न होकर बिखर गये थे। कितनोंकी जिह्वा और नेत्र बाहर निकल आये थे। आँत और जिगरके टुकड़े-टुकड़े हो गये थे। उन सबके सवार मार डाले गये थे। उनके गलेके घुँघुरू कटकर गिर गये थे। वे घोड़े मृत्युके अधीन होकर मांसभक्षी प्राणियोंका हर्ष बढ़ा रहे थे। उनके चमड़े और कवच टूक-टूक हो गये थे और वे मल-मूत्र तथा रक्तमें डूबे हुए थे ३६—३९½

तथा निर्मथितं तेन त्र्यङ्गं तव बलं महत् ॥ ४० ॥
यथासुरबलं घोरं त्र्यम्बकेण महौजसा ।

जैसे महान् तेजस्वी त्रिनेत्रधारी भगवान् रुद्रने असुरोंकी सेनाको मथ डाला था, उसी प्रकार अभिमन्युने रथ, हाथी और घोड़े—इन तीन अङ्गोंसे युक्त आपकी विशाल सेनाको रौंद डाला ॥ ४०½ ॥

कृत्वा कर्म रणेऽसह्यं परैरार्जुनिराहवे ॥ ४१ ॥
अभिनद्य पदात्योघांस्त्वदीयानेव सर्वशः ।

इस प्रकार अर्जुनकुमार अभिमन्युने रणक्षेत्रमें शत्रुओंके लिये असह्य पराक्रम करके आपके पैदल योद्धाओंके समूहोंका सभी प्रकारसे विनाश आरम्भ किया ॥ ४१½ ॥

एवमेकेन तां सेनां सौभद्रेण शितैः शरैः ॥ ४२ ॥
भृशं विप्रहतां दृष्ट्वा स्कन्देनेवासुरीं चमूम् ।
त्वदीयास्तव पुत्राश्च वीक्षमाणा दिशो दश ॥ ४३ ॥
संशुष्कास्याश्चलन्नेत्राः प्रस्विन्ना रोमहर्षिणः ।
पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ॥ ४४ ॥

जैसे कार्तिकेयने असुरोंकी सेनाको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था, उसी प्रकार एकमात्र सुभद्राकुमार अभिमन्युने अपने तीखे बाणोंद्वारा समस्त कौरवसेनाको अत्यन्त छिन्न-भिन्न कर डाला है; यह देखकर आपके पुत्र और सैनिक भयभीत हो दसों दिशाओंकी ओर देखने लगे । उनके मुख सूख गये थे, नेत्र चञ्चल हो उठे थे, सारे अङ्गोंमें पसीना हो आया था और उनके रोंगटे खड़े हो गये थे । अब वे भागनेमें उत्साह दिखाने लगे । शत्रुओंको जीतनेके लिये उनके मनमें तनिक भी उत्साह नहीं रह गया था ॥ ४२-४४ ॥

गोत्रनामभिरन्योन्यं क्रन्दन्तो जीवितैषिणः ।
हतान् पुत्रान् पितॄन् भ्रातॄन् बन्धून् संबन्धिनस्तथा ॥ ४५ ॥
प्रातिष्ठन्त समुत्सृज्य त्वरयन्तो हयद्विपान् ॥ ४६ ॥

वे जीवनकी इच्छा रखकर अपने-अपने सगे-सम्बन्धियोंके गोत्र और नामका उच्चारण करके एक दूसरेके लिये क्रन्दन कर रहे थे । उस समय आपके सैनिक इतने डर गये थे कि वहाँ मारे गये अपने पुत्रों, पितृतुल्य सम्बन्धियों, भाई-बन्धुओं तथा नातेदारोंको भी छोड़कर अपने घोड़ों और हाथियोंको उतावलीके साथ हाँकते हुए रणभूमिसे पलायन कर गये ॥ ४५-४६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें अभिमन्युका पराक्रमविषयक छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३६ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ४७ श्लोक हैं)

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

अभिमन्युका पराक्रम, उसके द्वारा अश्मकपुत्रका वध, शल्यका मूर्छित होना और कौरवसेनाका पलायन

संजय उवाच

तां प्रभग्नां चमूं दृष्ट्वा सौभद्रेणामितौजसा ।
दुर्योधनो भृशं क्रुद्धः स्वयं सौभद्रमभ्ययात् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! अमिततेजस्वी सुभद्राकुमार अभिमन्युने कौरवसेनाको मार भगाया है, यह देखकर अत्यन्त क्रोधमें भरा हुआ दुर्योधन स्वयं सुभद्राकुमारका सामना करनेके लिये आया ॥ १ ॥

ततो राजानमावृत्तं सौभद्रं प्रति संयुगे ।
दृष्ट्वा द्रोणोऽब्रवीद् योधान् परीप्सध्वं नराधिपम् ॥ २ ॥

उस युद्धस्थलमें राजा दुर्योधनको अभिमन्युकी ओर लौटते देख द्रोणाचार्यने समस्त योद्धाओंसे कहा—'वीरो ! कौरव-नरेशकी सब ओरसे रक्षा करो ॥ २ ॥

पुराभिमन्युर्लक्ष्यं नः पश्यतां हन्ति वीर्यवान् ।
तमाद्रवत मा भैष्ट क्षिप्रं रक्षत कौरवम् ॥ ३ ॥

'बलवान् अभिमन्यु हमारे देखते-देखते अपने लक्ष्यभूत राजा दुर्योधनको पहले ही मार डालेगा; अतः तुम सब लोग दौड़ो, भय न करो, शीघ्र ही कुरुवंशी दुर्योधनकी रक्षा करो' ॥ ३ ॥

ततः कृतज्ञा बलिनः सुहृदो जितकाशिनः ।
त्रास्यमाना भयाद् वीरं परिवव्रुस्तवात्मजम् ॥ ४ ॥

महाराज ! तदनन्तर अस्त्र-शिक्षामें निपुण, बलवान्, हितैषी और विजयशाली योद्धाओंने (रक्षाके लिये) आपके वीर पुत्रको चारों ओरसे घेर लिया; यद्यपि वे अभिमन्युके भयसे बहुत डरते थे ॥ ४ ॥

द्रोणो द्रौणिः कृपः कर्णः कृतवर्मा च सौबलः ।
बृहद्बलो मद्रराजो भूरिर्भूरिश्रवाः शलः ॥ ५ ॥
पौरवो वृषसेनश्च विसृजन्तः शिताञ्छरान् ।
सौभद्रं शरवर्षेण महता समवाकिरन् ॥ ६ ॥

द्रोण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, कृतवर्मा, सुबलपुत्र शकुनि, बृहद्बल, मद्रराज शल्य, भूरि, भूरिश्रवा, शल, पौरव तथा वृषसेन—ये अभिमन्युपर तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगे । इन्होंने महान् बाणवर्षाद्वारा अभिमन्युको आच्छादित कर दिया ॥ ५-६ ॥

सम्मोहयित्वा तमथ दुर्योधनममोचयन् ।
आस्याद् ग्रासमिवाक्षिप्तं ममृषे नार्जुनात्मजः ॥ ७ ॥

इस प्रकार उसे मोहित करके इन वीरोंने दुर्योधनको छुड़ा लिया । तब मानो मुँहसे ग्रास छिन गया हो, यह मानकर अर्जुनकुमार अभिमन्यु इसे सहन न कर सका ॥ ७ ॥

ताञ्छरौघेण महता साश्वसूतान् महारथान् ।
विमुखीकृत्य सौभद्रः सिंहनादमथानदत् ॥ ८ ॥

अतः अपनी भारी बाणवर्षासे उन महारथियोंको उनके सारथि और घोड़ोंसहित युद्धसे विमुख करके सुभद्राकुमारने सिंहके समान गर्जना की ॥ ८ ॥

तस्य नादं ततः श्रुत्वा सिंहस्येवामिषैषिणः।
नामृष्यन्त सुसंरब्धाः पुनर्द्रोणमुखा रथाः ॥ ९ ॥

मांस चाहनेवाले सिंहके समान अभिमन्युकी वह गर्जना सुनकर अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए द्रोण आदि महारथी न सह सके ॥ ९ ॥

त एनं कोष्ठकीकृत्य रथवंशेन मारिष।
व्यसृजन्निषुजालानि नानालिङ्गानि सङ्घशः ॥ १० ॥

आर्य ! तब उन महारथियोंने रथसेनाद्वारा उसे कोष्ठमें आबद्ध-सा करके उसके ऊपर नाना प्रकारके चिह्नवाले समूह-के-समूह बाण बरसाने आरम्भ किये ॥ १० ॥

तान्यन्तरिक्षे चिच्छेद पौत्रस्ते निशितैः शरैः।
तांश्चैव प्रतिविव्याध तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ११ ॥

परंतु आपके उस वीर पौत्रने अपने पैने बाणोंद्वारा शत्रुओंके उन सायक-समूहोंको आकाशमें ही काट दिया और उन सभी महारथियोंको घायल भी कर डाला—यह एक अद्भुत-सी बात हुई ॥ ११ ॥

ततस्ते कोपितास्तेन शरैराशीविषोपमैः।
परिवव्रुर्जिघांसन्तः सौभद्रमपराजितम् ॥ १२ ॥

तब अभिमन्युसे चिढ़े हुए उन योद्धाओंने विषधर सर्पके समान भयंकर बाणोंद्वारा किसीसे परास्त न होनेवाले सुभद्राकुमारको मार डालनेकी इच्छा रखकर उसे घेर लिया॥

समुद्रमिव पर्यस्तं त्वदीयं तं बलार्णवम्।
दधारैकोऽऽर्जुनिर्बाणैर्वेलेव भरतर्षभ ॥ १३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उस समय जैसे सब ओरसे उछलते हुए समुद्रको तटभूमि रोक लेती है, उसी प्रकार आपके सैन्य-सागरको एकमात्र अर्जुनकुमारने आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥

शूराणां युध्यमानानां निघ्नतामितरेतरम्।
अभिमन्योः परेषां च नासीत् कश्चित् पराङ्मुखः॥१४॥

उस समय एक दूसरेपर प्रहार करते हुए युद्धपरायण विपक्षी वीरों तथा अभिमन्युमें कोई भी युद्धसे विमुख नहीं हुआ ॥ १४ ॥

तस्मिंस्तु घोरे संग्रामे वर्तमाने भयंकरे।
दुःसहो नवभिर्बाणैरभिमन्युमविध्यत ॥ १५ ॥
दुःशासनो द्वादशभिः कृपः शारद्वतस्त्रिभिः।
द्रोणस्तु सप्तदशभिः शरैराशीविषोपमैः ॥ १६ ॥

इस प्रकार वह भयंकर एवं घोर संग्राम चल रहा था। उसमें आपके पुत्र दुःसहने नौ, दुःशासनने बारह, शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्यने तीन और द्रोणाचार्यने विषधर सर्पके समान भयंकर सतरह बाणोंसे अभिमन्युको बींध डाला १५-१६

विविंशतिस्तु सप्तत्या कृतवर्मा च सप्तभिः।
बृहद्बलस्तथाष्टाभिरश्वत्थामा च सप्तभिः ॥ १७ ॥
भूरिश्रवास्त्रिभिर्बाणैर्मद्रेशः षड्भिराशुगैः।
द्वाभ्यां शराभ्यां शकुनिस्त्रिभिर्दुर्योधनो नृपः ॥ १८ ॥

इसी प्रकार विविंशतिने सत्तर, कृतवर्माने सात, बृहद्बलने आठ, अश्वत्थामाने सात, भूरिश्रवाने तीन, मद्रराज शल्यने छः, शकुनिने दो और राजा दुर्योधनने तीन बाणोंसे अभिमन्युको घायल कर दिया ॥ १७-१८ ॥

स तु तान् प्रतिविव्याध त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः।
नृत्यन्निव महाराज चापहस्तः प्रतापवान् ॥ १९ ॥

महाराज ! उस समय धनुष हाथमें लिये प्रतापी अभिमन्युने जैसे नाच रहा हो, इस प्रकार सब ओर घूम-घूमकर उन सब महारथियोंको तीन-तीन बाणोंसे घायल कर दिया ॥

ततोऽभिमन्युः संक्रुद्धस्त्रास्यमानस्तवात्मजैः।
विदर्शयन् वै सुमहच्छिक्षौरसकृतं बलम् ॥ २० ॥

तब आपके सभी पुत्रोंने मिलकर अभिमन्युको त्रास देना आरम्भ किया, फिर तो वह क्रोधसे जल उठा और अपनी अस्त्र-शिक्षा तथा हृदयका महान् बल दिखाने लगा ॥ २०॥

गरुडानिलरंहोभिर्यन्तुर्वाक्यकरैर्हयैः।
दान्तैरश्मकदायादस्त्वरमाणो ह्यवारयत् ॥ २१ ॥
विव्याध दशभिर्बाणैस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्।

इतनेमें ही अश्मकके पुत्रने सारथिके आदेशका पालन करनेवाले, गरुड और वायुके समान वेगशाली सुशिक्षित घोड़ोंद्वारा बड़ी तेजीसे वहाँ आकर अभिमन्युको रोका और दस बाण मारकर उसे घायल कर दिया, साथ ही इस प्रकार कहा—'अरे ! खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ २१½ ॥

तस्याभिमन्युर्दशभिर्हयान् सूतं ध्वजं शरैः ॥ २२ ॥
बाहू धनुः शिरश्चोर्व्यां स्मयमानोऽभ्यपातयत्।

तब अभिमन्युने मुसकराकर अश्मकपुत्रके घोड़ों, सारथि, ध्वज, भुजाओं, धनुष तथा मस्तकको भी दस बाणोंसे पृथ्वीपर काट गिराया ॥ २२½ ॥

ततस्तस्मिन् हते वीरे सौभद्रेणाश्मकेश्वरे ॥ २३ ॥
संचचाल बलं सर्वं पलायनपरायणम्।

सुभद्रा कुमार अभिमन्युकेद्वारा वीर अश्मकराजकुमारके मारे जानेपर सारी सेना विचलित हो भागने लगी ॥२३½॥

ततः कर्णः कृपो द्रोणो द्रौणिर्गान्धारराट् शलः ॥ २४ ॥
शल्यो भूरिश्रवाः क्राथः सोमदत्तो विविंशतिः।
वृषसेनः सुषेणश्च कुण्डभेदी प्रतर्दनः ॥ २५ ॥
वृन्दारको ललित्थश्च प्रबाहुर्दीर्घलोचनः।
दुर्योधनश्च संक्रुद्धः शरवर्षैरवाकिरन् ॥ २६ ॥

तदनन्तर कर्ण, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, गान्धारराज शकुनि, शल, शल्य, भूरिश्रवा, क्राथ, सोम-

दत्त, विविंशति, वृषसेन, सुषेण, कुण्डभेदी, प्रतर्दन, वृन्दारक, ललित्थ, प्रबाहु, दीर्घलोचन तथा अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए दुर्योधनने अभिमन्युपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ २४—२६ ॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासैरभिमन्युरजिह्मगैः ।
शरमादत्त कर्णाय वर्मकायावभेदिनम् ॥ २७ ॥

इन महाधनुर्धर वीरोंके चलाये हुए बाणोंसे अत्यन्त घायल होकर अभिमन्युने कर्णको लक्ष्य करके एक ऐसा बाण हाथमें लिया, जो उसके कवच और कायाको विदीर्ण कर डालनेवाला था ॥ २७ ॥

तस्य भित्त्वा तनुत्राणं देहं निर्भिद्य चाशुगः ।
प्राविशद् धरणीं वेगाद् वल्मीकमिव पन्नगः ॥ २८ ॥

जैसे सर्प बाँबीमें घुस जाता है, उसी प्रकार अभिमन्युका छोड़ा हुआ वह बाण कर्णके शरीर और कवचको विदीर्ण करके बड़े वेगसे धरतीमें समा गया ॥ २८ ॥

स तेनातिप्रहारेण व्यथितो विह्वलन्निव ।
संचचाल रणे कर्णः क्षितिकम्पे यथाचलः ॥ २९ ॥

जैसे भूकम्प होनेपर पर्वत भी हिलने लगता है, उसी प्रकार उस अत्यन्त गहरे आघातसे व्यथित एवं विह्वल-सा होकर कर्ण उस रणभूमिमें विचलित हो उठा ॥ २९ ॥

तथान्यैर्निशितैर्बाणैः सुषेणं दीर्घलोचनम् ।
कुण्डभेदिं च संक्रुद्धस्त्रिभिस्त्रीनवधीद् बली ॥ ३० ॥

फिर बलवान् अभिमन्युने अत्यन्त कुपित होकर दूसरे तीन पैने बाणोंद्वारा सुषेण, दीर्घलोचन तथा कुण्डभेदी—इन तीन वीरोंको घायल कर दिया ॥ ३० ॥

कर्णस्तं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्पयत् ।
अश्वत्थामा च विंशत्या कृतवर्मा च सप्तभिः ॥ ३१ ॥

तब कर्णने पचीस, अश्वत्थामाने बीस तथा कृतवर्माने सात नाराचोंद्वारा अभिमन्युको गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३१ ॥

स शराचितसर्वाङ्गः क्रुद्धः शक्रात्मजात्मजः ।
विचरन् दृदृशे सैन्ये पाशहस्त इवान्तकः ॥ ३२ ॥

उस समय इन्द्रकुमार अर्जुनके पुत्र अभिमन्युके सम्पूर्ण अङ्गोंमें बाण ही-बाण व्याप्त हो रहे थे, वह क्रोधमें भरे हुए पाशधारी यमराजके समान शत्रुसेनामें विचरता दिखायी देता था ॥ ३२ ॥

शल्यं च शरवर्षेण समीपस्थमवाकिरत् ।
उदक्रोशन्महाबाहुस्तव सैन्यानि भीषयन् ॥ ३३ ॥

राजा शल्य अभिमन्युके पास ही खड़े थे, अतः वह महाबाहु वीर उनपर बाणोंकी वर्षा करने लगा। उसने आपकी सेनाको भयभीत करते हुए बड़े जोरसे गर्जना की ॥

ततः स विद्धोऽस्त्रविदा मर्मभिद्भिरजिह्मगैः ।
शल्यो राजन् रथोपस्थे निषसाद मुमोह च ॥ ३४ ॥

राजन्! अस्त्रवेत्ता अभिमन्युके चलाये हुए मर्मभेदी बाणोंद्वारा घायल होकर राजा शल्य रथकी बैठकमें धमसे बैठ गये और मूर्छित हो गये ॥ ३४ ॥

तं हि दृष्ट्वा तथा विद्धं सौभद्रेण यशस्विना ।
सम्प्राद्रवच्चमूः सर्वा भारद्वाजस्य पश्यतः ॥ ३५ ॥

यशस्वी सुभद्राकुमारके द्वारा घायल किये हुए शल्यको इस प्रकार भय हुआ देख द्रोणाचार्यके देखते-देखते उनकी सारी सेना रणभूमिसे भाग चली ॥ ३५ ॥



सम्प्रेक्ष्य तं महाबाहुं रुक्मपुङ्खैः समावृतम् ।
त्वदीयाः प्रपलायन्ते मृगाः सिंहार्दिता इव ॥ ३६ ॥

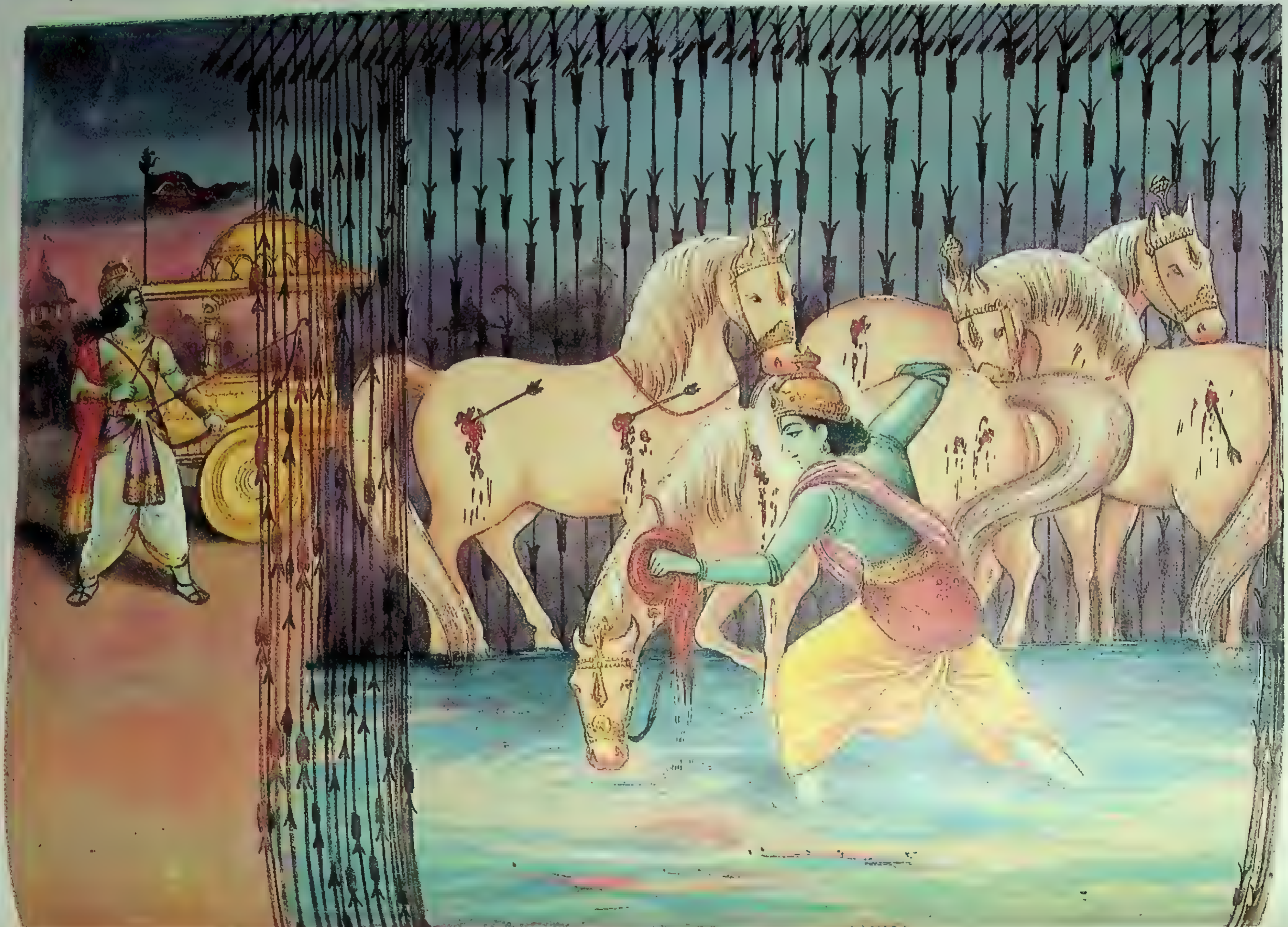
महाबाहु शल्यको अभिमन्युके सुवर्णमय पंखवाले बाणोंसे व्याप्त हुआ देख आपके सभी सैनिक सिंहके सताये हुए मृगोंकी भाँति जोर-जोरसे भागने लगे ॥ ३६ ॥

स तु रणयशसाभिपूज्यमानः
पितृसुरचारणसिद्धयक्षसंघैः ।
अवनितलगतैश्च भूतसङ्घै-
रतिविबभौ हुतभुग्यथाऽऽज्यसिक्तः ॥ ३७ ॥

देवताओं, पितरों, चारणों, सिद्धों तथा यक्षसमूहों एवं भूतलवर्ती भूतसमुदायोंसे प्रशंसित होकर युद्धविषयक सुयशसे प्रकाशित होनेवाला अभिमन्यु घृतकी धारासे अभिषिक्त हुए अग्निदेवके समान अत्यन्त शोभा पाने लगा ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें अभिमन्युपराक्रमविषयक सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३७ ॥



श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन के अश्वों की परिचर्या

अष्टात्रिंशोऽध्यायः

अभिमन्युके द्वारा शल्यके भाईका वध तथा द्रोणाचार्यकी रथसेनाका पलायन

धृतराष्ट्र उवाच

तथा प्रमथमानं तं महेष्वासानजिह्मगैः।
आर्जुनिं मामकाः संख्ये के त्वेनं समवारयन्॥ १॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! अर्जुनकुमार अभिमन्यु जब इस प्रकार अपने बाणोंद्वारा बड़े-बड़े धनुर्धरोंको मथ रहा था, उस समय मेरे पक्षके किन योद्धाओंने उसे युद्धमें रोका था ?॥ १॥

संजय उवाच

शृणु राजन् कुमारस्य रणे विक्रीडितं महत्।
बिभित्सतो रथानीकं भारद्वाजेन रक्षितम्॥ २॥

संजयने कहा—राजन्! रणक्षेत्रमें कुमार अभिमन्यु-की विशाल रणक्रीड़ाका वर्णन सुनिये। वह द्रोणाचार्यद्वारा सुरक्षित रथियोंकी सेनाको विदीर्ण करना चाहता था॥ २॥

मद्रेशं सादितं दृष्ट्वा सौभद्रेणाशुगै रणे।
शल्यादवरजः क्रुद्धः किरन् बाणान् समभ्ययात्॥ ३॥

सुभद्राकुमारने रणभूमिमें अपने शीघ्रगामी बाणोंद्वारा घायल करके मद्रराज शल्यको धराशायी कर दिया, यह देखकर उनका छोटा भाई कुपित हो बाणोंकी वर्षा करता हुआ अभिमन्युपर चढ़ आया॥ ३॥

स विद्ध्वा दशभिर्बाणैः साश्वयन्तारमार्जुनिम्।
उदक्रोशन्महाशब्दं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्॥ ४॥

उसने दस बाणोंद्वारा घोड़े और सारथिसहित अभिमन्यु-को क्षत-विक्षत करके बड़े जोरसे गर्जना की और कहा—'अरे! खड़ा रह, खड़ा रह'॥ ४॥

तस्यार्जुनिः शिरोग्रीवं पाणिपादं धनुर्हयान्।
छत्रं ध्वजं नियन्तारं त्रिवेणुं तल्पमेव च॥ ५॥
चक्रं युगं च तूणीरं ह्यनुकर्षं च सायकैः।
पताकां चक्रगोप्तारौ सर्वोपकरणानि च॥ ६॥
लघुहस्तः प्रचिच्छेद ददृशे तं न कश्चन।
स पपात क्षितौ क्षीणः प्रविद्धाभरणाम्बरः॥ ७॥
वायुनेव महाशैलः सम्भग्नोऽमिततेजसा।

तब शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले अर्जुनकुमारने अपने सायकोंद्वारा शल्यके भाईके मस्तक, ग्रीवा, हाथ, पैर, धनुष, अश्व, छत्र, ध्वज, सारथि, त्रिवेणु, तल्प (शय्या), पहिये, जूआ, तरकस, अनुकर्ष, पताका, चक्ररक्षक तथा अन्य समस्त उपकरणोंको काट डाला। उस समय कोई भी उसे देख न सका। जैसे वायुके वेगसे कोई महान् पर्वत टूटकर गिर पड़े, उसी प्रकार अमिततेजस्वी अभिमन्युका मारा हुआ वह शल्यराजका भाई छिन्न-भिन्न होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसके वस्त्र और आभूषणोंके टुकड़े-टुकड़े हो गये थे॥ ५—७½॥

अनुगास्तस्य वित्रस्ताः प्राद्रवन् सर्वतो दिशः॥ ८॥
आर्जुनेः कर्म तद् दृष्ट्वा सम्प्रणेदुः समन्ततः।
नादेन सर्वभूतानि साधु साध्विति भारत॥ ९॥

उसके सेवक भयभीत होकर सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गये। भारत! अर्जुनकुमारके उस अद्भुत पराक्रमको देखकर समस्त प्राणी साधुवाद देते हुए सब ओर हर्षध्वनि करने लगे॥ ८-९॥

शल्यभ्रातर्यथारुग्णे बहुशस्तस्य सैनिकाः।
कुलाधिवासनामानि श्रावयन्तोऽर्जुनात्मजम्॥ १०॥
अभ्यधावन्त संक्रुद्धा विविधायुधपाणयः।

शल्यके भाईके मारे जानेपर उसके बहुत-से सैनिक अपने कुल और निवासस्थानके नाम सुनाते हुए कुपित हो हाथोंमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये अर्जुनकुमार अभिमन्यु-की ओर दौड़े॥ १०½॥

रथैरश्वैर्गजैश्चान्ये पद्भिश्चान्ये बलोत्कटाः॥ ११॥
बाणशब्देन महता रथनेमिस्वनेन च।
हुंकारैः क्ष्वेडितोत्क्रुष्टैः सिंहनादैः सगर्जितैः॥ १२॥
ज्यातलत्रस्वनैरन्ये गर्जन्तोऽर्जुननन्दनम्।
ब्रुवन्तश्च न नो जीवन् मोक्ष्यसे जीवितादिति॥ १३॥

कितने ही वीर रथ, घोड़े और हाथीपर सवार होकर आये। दूसरे बहुत-से प्रचण्ड बलशाली योद्धा पैदल ही दौड़ पड़े। बाणोंकी सनसनाहट, रथके पहियोंकी जोर-जोरसे होने-वाली घर्घराहट, हुङ्कार, कोलाहल, ललकार, सिंहनाद, गर्जना, धनुषकी टङ्कार तथा हस्तत्राणके चट-चट शब्दके साथ गर्जन-तर्जन करते हुए अन्यान्य बहुत-से योद्धा अर्जुन-कुमार अभिमन्युपर यह कहते हुए टूट पड़े, 'अब तू हमारे हाथसे जीवित नहीं छूट सकता। तुझे जीवनसे ही हाथ धोना पड़ेगा'॥ ११—१३॥

तांस्तथा ब्रुवतो दृष्ट्वा सौभद्रः प्रहसन्निव।
यो योऽस्मै प्राहरत् पूर्वं तं तं विव्याध पत्रिभिः॥ १४॥

उनको ऐसा कहते देख सुभद्राकुमार अभिमन्यु मानो जोर-जोरसे हँसने लगा और जिस-जिस योद्धाने उसपर पहले प्रहार किया, उस-उसको उसने भी अपने पंखयुक्त बाणोंद्वारा घायल कर दिया॥ १४॥

संदर्शयिष्यन्नस्त्राणि विचित्राणि लघूनि च।
आर्जुनिः समरे शूरो मृदुपूर्वमयुध्यत॥ १५॥

शूरवीर अर्जुनकुमारने समराङ्गणमें अपने विचित्र एवं शीघ्रगामी अस्त्रोंका प्रदर्शन करते हुए पहले मृदुभावसे ही युद्ध किया॥ १५॥

वासुदेवादुपात्तं यदस्त्रं यच्च धनंजयात्।
अदर्शयत तत् कार्ष्णिः कृष्णाभ्यामविशेषवत् ॥ १६ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण तथा अर्जुनसे अभिमन्युने जो-जो अस्त्र प्राप्त किये थे, उनका उन्हीं दोनोंकी भाँति वह युद्धस्थलमें प्रदर्शन करने लगा ॥ १६ ॥

दूरमस्य गुरुं भारं साध्वसं च पुनः पुनः।
संदधद् विसृजंश्चेषून् निर्विशेषमदृश्यत ॥ १७ ॥

भारी भार और भय उससे दूर हो गया था। वह बारंबार बाणोंका संधान करता और छोड़ता हुआ एक-सा दिखायी देता था ॥ १७ ॥

चापमण्डलमेवास्य विस्फुरद् दिक्ष्वदृश्यत।
सुदीप्तस्य शरत्काले सवितुर्मण्डलं यथा ॥ १८ ॥

जैसे शरद् ऋतुमें अत्यन्त प्रकाशित होनेवाले सूर्यदेवका मण्डल दृष्टिगोचर होता है, उसी प्रकार अभिमन्युका मण्डलाकार धनुष ही सम्पूर्ण दिशाओंमें उद्भासित होता दिखायी देता था ॥ १८ ॥

ज्याशब्दः शुश्रुवे तस्य तलशब्दश्च दारुणः।
महाशनिमुचः काले पयोदस्येव निःस्वनः ॥ १९ ॥

उसके धनुषकी प्रत्यञ्चा और हथेलीका शब्द वर्षाकालमें महान् वज्र गिरानेवाले मेघकी गर्जनाके समान भयंकर सुनायी पड़ता था ॥ १९ ॥

ह्रीमानमर्षी सौभद्रो मानकृत् प्रियदर्शनः।
सम्मिमानयिषुर्वीरानिष्वस्त्रैश्चाप्ययुध्यत ॥ २० ॥

लज्जाशील, अमर्षी, दूसरोंको मान देनेवाला और देखनेमें प्रिय लगनेवाला सुभद्राकुमार अभिमन्यु विपक्षी वीरोंका सम्मान करनेकी इच्छासे धनुष-बाणोंद्वारा युद्ध करता रहा ॥

मृदुर्भूत्वा महाराज दारुणः समपद्यत।
वर्षाभ्यतीतो भगवाञ्छरदीव दिवाकरः ॥ २१ ॥

महाराज! जैसे वर्षाकाल बीतनेपर शरत्कालमें भगवान् सूर्य प्रचण्ड हो उठते हैं, उसी प्रकार अभिमन्यु पहले मृदु होकर अन्तमें शत्रुओंके लिये अति उग्र हो उठा ॥ २१ ॥

शरान् विचित्रान् सुबहून् रुक्मपुङ्खाञ्छिलाशितान्।
मुमोच शतशः क्रुद्धो गभस्तीनिव भास्करः ॥ २२ ॥

जैसे सूर्य अपनी सहस्रों किरणोंको सब ओर बिखेर देते हैं, उसी प्रकार क्रोधमें भरा हुआ अभिमन्यु सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखसे युक्त सैकड़ों विचित्र एवं बहुसंख्यक बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ २२ ॥

क्षुरप्रैर्वत्सदन्तैश्च विपाठैश्च महायशाः।
नाराचैरर्धचन्द्राभैर्भल्लैरञ्जलिकैरपि ॥ २३ ॥
अवाकिरद् रथानीकं भारद्वाजस्य पश्यतः।
ततस्तत्सैन्यमभवद् विमुखं शरपीडितम् ॥ २४ ॥

उस महायशस्वी वीरने द्रोणाचार्यके देखते-देखते उनकी रथसेनापर क्षुरप्र, वत्सदन्त, विपाठ, नाराच, अर्धचन्द्राकार बाण, भल्ल एवं अञ्जलिक आदिकी वर्षा आरम्भ कर दी। इससे उन बाणोंद्वारा पीड़ित हुई वह सेना युद्धसे विमुख होकर भाग चली ॥ २३-२४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें अभिमन्युपराक्रमविषयक अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

द्रोणाचार्यके द्वारा अभिमन्युके पराक्रमकी प्रशंसा तथा दुर्योधनके आदेशसे दुःशासनका अभिमन्युके साथ युद्ध आरम्भ करना

धृतराष्ट्र उवाच

द्वैधीभवति मे चित्तं ह्रिया तुष्ट्या च संजय।
मम पुत्रस्य यत् सैन्यं सौभद्रः समवारयत् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय! सुभद्राकुमारने मेरे पुत्रकी सेनाको जो आगे बढ़नेसे रोक दिया, इसे सुनकर लज्जा और प्रसन्नतासे मेरे चित्तकी दो अवस्थाएँ हो रही हैं ॥ १ ॥

विस्तरेणैव मे शंस सर्वं गावल्गणे पुनः।
विक्रीडितं कुमारस्य स्कन्दस्येवासुरैः सह ॥ २ ॥

गवल्गणनन्दन! जैसे कुमार कार्तिकेयने असुरोंके साथ रणक्रीड़ा की थी, उसी प्रकार कुमार अभिमन्युने जो युद्धका खेल किया था, वह सब मुझसे विस्तारपूर्वक कहो ॥

संजय उवाच

हन्त ते सम्प्रवक्ष्यामि विमर्दमतिदारुणम्।
एकस्य च बहूनां च यथाऽऽसीत् तुमुलो रणः ॥ ३ ॥

संजयने कहा—महाराज! मैं अत्यन्त खेदके साथ आपको उस अत्यन्त भयंकर नरसंहारका वृत्तान्त बता रहा हूँ, जिसके लिये एक वीरका बहुत-से महारथियोंके साथ तुमुल युद्ध हुआ था ॥ ३ ॥

अभिमन्युः कृतोत्साहः कृतोत्साहानरिंदमान्।
रथस्थो रथिनः सर्वांस्तावकानभ्यवर्षयत् ॥ ४ ॥

अभिमन्यु युद्धके लिये उत्साहसे भरा था। वह रथपर बैठकर आपके उत्साहभरे शत्रुदमन समस्त रथारोहियोंपर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ४ ॥

द्रोणं कर्णं कृपं शल्यं द्रौणिं भोजं बृहद्बलम्।
दुर्योधनं सौमदत्तिं शकुनिं च महाबलम् ॥ ५ ॥

नानानृपान् नृपसुतान् सैन्यानि विविधानि च ।
अलातचक्रवत् सर्वांश्चरन् बाणैः समार्पयत् ॥ ६ ॥

द्रोण, कर्ण, कृप, शल्य, अश्वत्थामा, भोजवंशी कृतवर्मा, बृहद्बल, दुर्योधन, भूरिश्रवा, महाबली शकुनि, अनेकानेक नरेश, राजकुमार तथा उनकी विविध प्रकारकी सेनाओंपर अभिमन्यु अलातचक्रकी भाँति चारों ओर घूमकर बाणोंका प्रहार कर रहा था ॥ ५-६ ॥

निघ्नन्नमित्रान् सौभद्रः परमास्त्रैः प्रतापवान् ।
अदर्शयत तेजस्वी दिक्षु सर्वासु भारत ॥ ७ ॥

भारत ! प्रतापी एवं तेजस्वी वीर सुभद्राकुमार अपने दिव्यास्त्रोंद्वारा शत्रुओंका नाश करता हुआ सम्पूर्ण दिशाओंमें दृष्टिगोचर हो रहा था ॥ ७ ॥

तद् दृष्ट्वा चरितं तस्य सौभद्रस्यामितौजसः ।
समकम्पन्त सैन्यानि त्वदीयानि सहस्रशः ॥ ८ ॥

अमिततेजस्वी अभिमन्युका वह चरित्र देखकर आपके सहस्रों सैनिक भयसे काँपने लगे ॥ ८ ॥

अथाब्रवीन्महाप्राज्ञो भारद्वाजः प्रतापवान् ।
हर्षेणोत्फुल्लनयनः कृपमाभाष्य सत्वरम् ॥ ९ ॥
घट्टयन्निव मर्माणि पुत्रस्य तव भारत ।
अभिमन्युं रणे दृष्ट्वा तदा रणविशारदम् ॥ १० ॥

तदनन्तर परम बुद्धिमान् और प्रतापी वीर द्रोणाचार्यके नेत्र हर्षसे खिल उठे । भारत ! उन्होंने युद्धविशारद अभिमन्युको युद्धमें स्थित देखकर आपके पुत्रके मर्मस्थलपर चोट करते हुए-से उस समय तुरंत ही कृपाचार्यको सम्बोधित करके कहा—॥ ९-१० ॥

एष गच्छति सौभद्रः पार्थानां प्रथितो युवा ।
नन्दयन् सुहृदः सर्वान् राजानं च युधिष्ठिरम् ॥ ११ ॥
नकुलं सहदेवं च भीमसेनं च पाण्डवम् ।
बन्धून् सम्बन्धिनश्चान्यान् मध्यस्थान् सुहृदस्तथा ॥ १२ ॥

'यह पार्थकुलका प्रसिद्ध तरुण वीर सुभद्राकुमार अभिमन्यु अपने समस्त सुहृदोंको, राजा युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव तथा पाण्डुपुत्र भीमसेनको, अन्यान्य भाई-बन्धुओं, सम्बन्धियों तथा मध्यस्थ सुहृदोंको भी आनन्द प्रदान करता हुआ जा रहा है ॥ ११-१२ ॥

नास्य युद्धे समं मन्ये कंचिदन्यं धनुर्धरम् ।
इच्छन् हन्यादिमां सेनां किमर्थमपि नेच्छति ॥ १३ ॥

'मैं दूसरे किसी धनुर्धर वीरको युद्धभूमिमें इसके समान नहीं मानता । यदि यह चाहे तो इस सारी सेनाको नष्ट कर सकता है; परंतु न जाने यह क्यों ऐसा चाहता नहीं है' ॥

द्रोणस्य प्रीतिसंयुक्तं श्रुत्वा वाक्यं तवात्मजः ।
आर्जुनिं प्रति संक्रुद्धो द्रोणं दृष्ट्वा स्मयन्निव ॥ १४ ॥

अथ दुर्योधनः कर्णमब्रवीद् बाह्लिकं नृपः ।
दुःशासनं मद्रराजं तांस्तथान्यान् महारथान् ॥ १५ ॥

अभिमन्युके सम्बन्धमें द्रोणाचार्यका यह प्रीतियुक्त वचन सुनकर आपका पुत्र राजा दुर्योधन क्रोधमें भर गया और द्रोणाचार्यकी ओर देखकर मुसकराता हुआ-सा कर्ण, बाह्लिक, दुःशासन, मद्रराज शल्य तथा अन्य महारथियोंसे बोला—॥

सर्वमूर्धाभिषिक्तानामाचार्यो ब्रह्मवित्तमः ।
अर्जुनस्य सुतं मूढं नायं हन्तुमिहेच्छति ॥ १६ ॥

ये सम्पूर्ण मूर्धाभिषिक्त राजाओंके आचार्य तथा सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता द्रोण अर्जुनके इस मूढ़ पुत्रको मारना नहीं चाहते हैं ॥ १६ ॥

न ह्यस्य समरे युद्ध्येदन्तकोऽप्याततायिनः ।
किमङ्ग पुनरेवान्यो मर्त्यः सत्यं ब्रवीमि वः ॥ १७ ॥

'प्रिय सैनिको ! मैं आपलोगोंसे सच्ची बात कहता हूँ । यदि ये युद्धमें मारनेके लिये उद्यत हो जायँ तो इनके सामने यमराज भी युद्ध नहीं कर सकता; फिर दूसरा कोई मनुष्य तो इनके सामने टिक ही कैसे सकता है ? ॥ १७ ॥

अर्जुनस्य सुतं त्वेष शिष्यत्वादभिरक्षति ।
शिष्याः पुत्राश्च दयितास्तदपत्यं च धर्मिणाम् ॥ १८ ॥

'परंतु ये अर्जुनके पुत्रकी रक्षा करते हैं; क्योंकि अर्जुन इनके शिष्य हैं । शिष्य और पुत्र तो प्रिय होते ही हैं । उनकी संतानें भी धर्मात्मा पुरुषोंको प्रिय जान पड़ती हैं ॥

संरक्ष्यमाणो द्रोणेन मन्यते वीर्यमात्मनः ।
आत्मसम्भावितो मूढस्तं प्रमथ्नीत मा चिरम् ॥ १९ ॥

'यह द्रोणाचार्यसे रक्षित होनेके कारण अपने बल और पराक्रमपर अभिमान कर रहा है । यह मूर्ख अभिमन्यु आत्मश्लाघा करनेवाला है । तुम सब लोग मिलकर इसे शीघ्र ही मथ डालो' ॥ १९ ॥

एवमुक्तास्तु ते राज्ञा सात्वतीपुत्रमभ्ययुः ।
संरब्धास्ते जिघांसन्तो भारद्वाजस्य पश्यतः ॥ २० ॥

राजा दुर्योधनके ऐसा कहनेपर वे सब वीर अत्यन्त कुपित हो सुभद्राकुमार अभिमन्युको मार डालनेकी इच्छासे द्रोणाचार्यके देखते-देखते उसपर टूट पड़े ॥ २० ॥

दुःशासनस्तु तच्छ्रुत्वा दुर्योधनवचस्तदा ।
अब्रवीत् कुरुशार्दूल दुर्योधनमिदं वचः ॥ २१ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! उस समय दुर्योधनके उपर्युक्त वचनको सुनकर दुःशासनने उससे यह बात कही—॥ २१ ॥

अहमेनं हनिष्यामि महाराज ब्रवीमि ते ।
मिषतां पाण्डुपुत्राणां पञ्चालानां च पश्यताम् ॥ २२ ॥

'महाराज ! मैं आपसे (प्रतिज्ञापूर्वक) कहता हूँ । मैं पाञ्चालों और पाण्डवोंके देखते-देखते इस अभिमन्युको मार डालूँगा ॥ २२ ॥

ग्रसिष्याम्यद्य सौभद्रं यथा राहुर्दिवाकरम् ।
उत्क्रुश्य चाब्रवीद् वाक्यं कुरुराजमिदं पुनः ॥ २३ ॥

'जैसे राहु सूर्यपर ग्रहण लगाता है, उसी प्रकार आज मैं सुभद्राकुमार अभिमन्युको ग्रस लूँगा ।' इतना कहकर उसने जोर-जोरसे गर्जना करके पुनः कुरुराज दुर्योधनसे इस प्रकार कहा—॥ २३ ॥

श्रुत्वा कृष्णौ मया ग्रस्तं सौभद्रमतिमानिनौ ।
गमिष्यतः प्रेतलोकं जीवलोकान्न संशयः ॥ २४ ॥

'सुभद्राकुमार अभिमन्युको मेरे द्वारा कालकवलित हुआ सुनकर अत्यन्त अभिमानी श्रीकृष्ण और अर्जुन इस जीवलोकसे प्रेतलोकको चले जायँगे—इसमें संशय नहीं है ॥ २४ ॥

तौ च श्रुत्वा मृतौ व्यक्तं पाण्डोः क्षेत्रोद्भवाः सुताः ।
एकाह्ना ससुहृद्वर्गाः क्लैब्याद्धास्यन्ति जीवितम् ॥ २५ ॥

'उन दोनोंको मरा हुआ सुनकर पाण्डुके क्षेत्रमें उत्पन्न हुए ये चारों पाण्डव कायरतावश अपने सुहृद्वर्गके साथ एक ही दिन प्राण त्याग देंगे ॥ २५ ॥

तस्मादस्मिन् हते शत्रौ हताः सर्वेऽहितास्तव ।
शिवेन मां ध्याहि राजन्नेष हन्मि रिपूंस्तव ॥ २६ ॥

'अतः इस अपने शत्रु अभिमन्युके मारे जानेपर आपके सारे दुश्मन स्वतः नष्ट हो जायँगे । राजन् ! आप मेरा कल्याण मनाइये । मैं अभी आपके शत्रुओंका नाश किये देता हूँ' ॥

एवमुक्त्वानदद् राजन् पुत्रो दुःशासनस्तव ।
सौभद्रमभ्ययात् क्रुद्धः शरवर्षैरवाकिरन् ॥ २७ ॥

महाराज ! ऐसा कहकर आपका पुत्र दुःशासन जोर-जोरसे गर्जना करने लगा । वह क्रोधमें भरकर सुभद्राकुमार-पर बाणोंकी वर्षा करता हुआ उसके सामने गया ॥ २७ ॥

तमतिक्रुद्धमायान्तं तव पुत्रमरिंदमः ।
अभिमन्युः शरैस्तीक्ष्णैः षड्विंशत्या समार्पयत् ॥ २८ ॥

आपके पुत्रको अत्यन्त कुपित हो आते देख शत्रुसूदन अभिमन्युने छब्बीस पैने बाणोंद्वारा उसे घायल कर दिया ॥

दुःशासनस्तु संक्रुद्धः प्रभिन्न इव कुञ्जरः ।
अयोधयत सौभद्रमभिमन्युश्च तं रणे ॥ २९ ॥

मदकी धारा बहानेवाले गजराजके समान क्रोधमें भरा हुआ दुःशासन उस रणक्षेत्रमें अभिमन्युसे और अभिमन्यु दुःशासनसे युद्ध करने लगे ॥ २९ ॥

तौ मण्डलानि चित्राणि रथाभ्यां सव्यदक्षिणम् ।
चरमाणावयुध्येतां रथशिक्षाविशारदौ ॥ ३० ॥

रथ-युद्धकी शिक्षामें निपुण वे दोनों योद्धा अपने रथों-द्वारा दायें-बायें विचित्र मण्डलाकार गतिसे विचरते हुए युद्ध करने लगे ॥ ३० ॥

अथ पणवमृदङ्गदुन्दुभीनां
क्रकचमहानकभेरिझर्झराणाम् ।
निनदमतिभृशं नराः प्रचक्रु-
र्लवणजलोद्भवसिंहनादमिश्रम् ॥ ३१ ॥

उस समय बाजे बजानेवाले लोग ढोल, मृदंग, दुन्दुभि, क्रकच, बड़ी ढोल, भेरी और झाँझके अत्यन्त भयंकर शब्द करने लगे । उसमें शङ्ख और सिंहनादकी भी ध्वनि मिली हुई थी॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि दुःशासनयुद्धे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें दुःशासनयुद्धविषयक उनतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

अभिमन्युके द्वारा दुःशासन और कर्णकी पराजय

संजय उवाच

(ततः समभवद् युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः ।
तस्मिन् काले महाबाहुः सौभद्रः परवीरहा ॥
सशरं कार्मुकं छित्त्वा लाघवेन व्यपातयत् ।
दुःशासनं शरैर्घोरैः संततक्ष समन्ततः ॥)

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर उन दोनों पुरुषसिंहोंमें घोर युद्ध होने लगा । उस समय शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले महाबाहु सुभद्राकुमारने बड़ी फुर्तीके साथ दुःशासनके बाणसहित धनुषको काट गिराया और उसे अपने भयंकर बाणोंद्वारा सब ओरसे क्षत-विक्षत कर दिया ॥

शरविक्षतगात्रं तु प्रत्यमित्रमवस्थितम् ।
अभिमन्युः स्मयन् धीमान् दुःशासनमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

इसके बाद बुद्धिमान् अभिमन्यु किंचित् मुसकराकर सामने विपक्षमें खड़े हुए दुःशासनसे, जिसका शरीर बाणोंसे अत्यन्त घायल हो गया था, इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

दिष्ट्या पश्यामि संग्रामे मानिनं शूरमागतम् ।
निष्ठुरं त्यक्तधर्माणमाक्रोशनपरायणम् ॥ २ ॥

'बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज मैं युद्धमें सामने आये हुए और अपनेको शूरवीर माननेवाले तुझ अभिमानी, निष्ठुर, धर्मत्यागी और दूसरोंकी निन्दामें तत्पर रहनेवाले शत्रुको प्रत्यक्ष देख रहा हूँ ॥ २ ॥

यत् सभायां त्वया राज्ञो धृतराष्ट्रस्य शृण्वतः ।
कोपितः परुषैर्वाक्यैर्धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥
जयोन्मत्तेन भीमश्च बह्वबद्धं प्रभाषितः ।
अक्षकूटं समाश्रित्य सौबलस्यात्मनो बलम् ॥ ४ ॥
तत् त्वयेदमनुप्राप्तं तस्य कोपान्महात्मनः ।

'ओ मूर्ख ! तूने द्यूतक्रीडामें विजय पानेसे उन्मत्त होकर सभामें राजा धृतराष्ट्रके सुनते हुए जो अपने निष्ठुर वचनोंद्वारा धर्मराज युधिष्ठिरको कुपित किया था और शकुनिके आत्मबल—जूएमें छल-कपटका आश्रय लेकर जो भीमसेनके प्रति बहुत-सी अंट-संट बातें कही थीं, इससे उन महात्मा धर्मराजको जो क्रोध हुआ, उसीका यह फल है कि तुझे आज यह दुर्दिन प्राप्त हुआ है ॥ ३–४½ ॥

परवित्तापहारस्य क्रोधस्याप्रशमस्य च ॥ ५ ॥
लोभस्य ज्ञाननाशस्य द्रोहस्यात्याहितस्य च।
पितॄणां मम राज्यस्य हरणस्योग्रधन्विनाम् ॥ ६ ॥
तत् त्वयेदमनुप्राप्तं प्रकोपाद् वै महात्मनाम्।

'दूसरोंके धनका अपहरण, क्रोध, अशान्ति, लोभ, ज्ञान-लोप, द्रोह, दुःसाहसपूर्ण बर्ताव तथा मेरे उग्र धनुर्धर पितरोंके राज्यका अपहरण—इन सभी बुराइयोंके फलस्वरूप उन महात्मा पाण्डवोंके क्रोधसे तुझे आज यह बुरा दिन प्राप्त हुआ है ॥ ५–६½ ॥

स तस्योग्रमधर्मस्य फलं प्राप्नुहि दुर्मते ॥ ७ ॥
शासितास्म्यद्य ते बाणैः सर्वसैन्यस्य पश्यतः।
अद्याहमनृणस्तस्य कोपस्य भविता रणे ॥ ८ ॥

'दुर्मते ! तू अपने उस अधर्मका भयंकर फल प्राप्त कर। आज मैं सारी सेनाओंके देखते-देखते अपने बाणोंद्वारा तुझे दण्ड दूँगा। आज मैं युद्धमें उन महात्मा पितरोंके उस क्रोधका बदला चुकाकर उऋण हो जाऊँगा ॥ ७–८ ॥

अमर्षितायाः कृष्णायाः काङ्क्षितस्य च मे पितुः।
अद्य कौरव्य भीमस्य भवितास्म्यनृणो युधि ॥ ९ ॥

'कुरुकुलकलङ्क ! आज रोषमें भरी हुई माता कृष्णा तथा पितृतुल्य (ताऊ) भीमसेनका अभीष्ट मनोरथ पूर्ण करके इस युद्धमें उनके ऋणसे उऋण हो जाऊँगा ॥ ९ ॥

न हि मे मोक्ष्यसे जीवन् यदि नोत्सृजसे रणम्।
एवमुक्त्वा महाबाहुर्बाणं दुःशासनान्तकम् ॥ १० ॥
संदधे परवीरघ्नः कालाग्न्यनिलवर्चसम्।

'यदि तू युद्ध छोड़कर भाग नहीं जायगा तो आज मेरे हाथसे जीवित नहीं छूट सकेगा।' ऐसा कहकर शत्रुवीरोंका नाश करनेवाले महाबाहु अभिमन्युने काल, अग्नि और वायुके समान तेजस्वी बाणका संधान किया, जो दुःशासनके प्राण लेनेमें समर्थ था ॥ १०½ ॥

तस्योरस्तूर्णमासाद्य जत्रुदेशे विभिद्य तम् ॥ ११ ॥
जगाम सह पुङ्खेन वल्मीकमिव पन्नगः।
अथैनं पञ्चविंशत्या पुनरेव समार्पयत् ॥ १२ ॥

वह बाण तुरंत ही उसके वक्षःस्थलपर पहुँचकर उसके गलेकी हँसलीको विदीर्ण करता हुआ पंखसहित भीतर घुस गया, मानो कोई सर्प बाँबीमें समा गया हो। तत्पश्चात् अभिमन्युने दुःशासनको पचीस बाण और मारे ॥ ११–१२ ॥

शरैरग्निसमस्पर्शैराकर्णसमचोदितैः।
स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ॥ १३ ॥
दुःशासनो महाराज कश्मलं चाविशन्महत्।

धनुषको कानतक खींचकर चलाये हुए उन बाणोंद्वारा, जिनका स्पर्श अग्निके समान दाहक था, गहरी चोट खाकर दुःशासन व्यथित हो रथकी बैठकमें बैठ गया। महाराज ! उस समय उसे भारी मूर्छा आ गयी ॥ १३½ ॥

सारथिस्त्वरमाणस्तु दुःशासनमचेतनम् ॥ १४ ॥
रणमध्यादपोवाह सौभद्रशरपीडितम्।

तब अभिमन्युके बाणोंसे पीड़ित एवं अचेत हुए दुःशासनको सारथि बड़ी उतावलीके साथ युद्धस्थलसे बाहर हटा ले गया ॥ १४½ ॥

पाण्डवा द्रौपदेयाश्च विराटश्च समीक्ष्य तम् ॥ १५ ॥
पञ्चालाः केकयाश्चैव सिंहनादमथानदन्।

उस समय पाण्डव, पाँचों द्रौपदीकुमार, राजा विराट, पाञ्चाल और केकय दुःशासनको पराजित हुआ देख जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे ॥ १५½ ॥

वादित्राणि च सर्वाणि नानालिङ्गानि सर्वशः ॥ १६ ॥
प्रावादयन्त संहृष्टाः पाण्डूनां तत्र सैनिकाः।
अपश्यन् स्मयमानाश्च सौभद्रस्य विचेष्टितम् ॥ १७ ॥

पाण्डवोंके सैनिक वहाँ हर्षमें भरकर नाना प्रकारके सभी रणवाद्य बजाने लगे और मुसकराते हुए वे सुभद्रा-कुमारका पराक्रम देखने लगे ॥ १६–१७ ॥

अत्यन्तवैरिणं दृप्तं दृष्ट्वा शत्रुं पराजितम्।
धर्ममारुतशक्राणामश्विनोः प्रतिमास्तथा ॥ १८ ॥
धारयन्तो ध्वजाग्रेषु द्रौपदेया महारथाः।
सात्यकिश्चेकितानश्च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥ १९ ॥
केकया धृष्टकेतुश्च मत्स्याः पञ्चालसृंजयाः।
पाण्डवाश्च मुदा युक्ता युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ २० ॥
अभ्यद्रवन्त त्वरिता द्रोणानीकं बिभित्सवः।

घमंडमें भरे हुए अपने कट्टर शत्रुको पराजित हुआ देख अपनी ध्वजाओंके अग्रभागमें धर्म, वायु, इन्द्र और अश्विनी-कुमारोंकी प्रतिमा धारण करनेवाले महारथी द्रौपदीकुमार, सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, केकय-राजकुमार, धृष्टकेतु, मत्स्य, पाञ्चाल, सृंजय तथा युधिष्ठिर आदि पाण्डव बड़े हर्षके साथ उतावले होकर द्रोणाचार्यके व्यूहका भेदन करनेकी इच्छासे उसपर टूट पड़े ॥ १८–२०½ ॥

ततोऽभवन्महायुद्धं त्वदीयानां परैः सह ॥ २१ ॥
जयमाकाङ्क्षमाणानां शूराणामनिवर्तिनाम्।

तदनन्तर विजयकी अभिलाषा रखकर युद्धमें कभी पीठ न दिखानेवाले आपके शूरवीर सैनिकोंका शत्रुओंके साथ महान् युद्ध होने लगा ॥ २१½ ॥

तथा तु वर्तमाने वै संग्रामेऽतिभयंकरे ॥ २२ ॥
दुर्योधनो महाराज राधेयमिदमब्रवीत् ।

महाराज ! जब इस प्रकार अत्यन्त भयंकर संग्राम हो रहा था, उस समय दुर्योधनने राधापुत्र कर्णसे यों कहा—॥

पश्य दुःशासनं वीरमभिमन्युवशं गतम् ॥ २३ ॥
प्रतपन्तमिवादित्यं निघ्नन्तं शात्रवान् रणे।

'कर्ण ! देखो, वीर दुःशासन सूर्यके समान शत्रु-सैनिकोंको संतप्त करता हुआ युद्धमें उन्हें मार रहा था, इसी अवस्थामें वह अभिमन्युके वशमें पड़ गया है ॥ २३½ ॥

अथ चैते सुसंरब्धाः सिंहा इव बलोत्कटाः ॥ २४ ॥
सौभद्रमुद्यतास्त्रातुमभ्यधावन्त पाण्डवाः ।

'इधर ये क्रोधमें भरे हुए पाण्डव सुभद्राकुमारकी रक्षा करनेके लिये उद्यत हो प्रचण्ड बलशाली सिंहोंके समान धावा कर चुके हैं' ॥ २४½ ॥

ततः कर्णः शरैस्तीक्ष्णैरभिमन्युं दुरासदम् ॥ २५ ॥
अभ्यवर्षत संक्रुद्धः पुत्रस्य हितकृत् तव ।

यह सुनकर आपके पुत्रका हित करनेवाला कर्ण अत्यन्त क्रोधमें भरकर दुर्द्धर्ष वीर अभिमन्युपर तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ २५½ ॥

तस्य चानुचरांस्तीक्ष्णैर्विव्याध परमेषुभिः ॥ २६ ॥
अवज्ञापूर्वकं शूरः सौभद्रस्य रणाजिरे ।

शूरवीर कर्णने समराङ्गणमें सुभद्राकुमारके सेवकोंको भी तीखे एवं उत्तम बाणोंद्वारा अवहेलनापूर्वक बींध डाला ॥

अभिमन्युस्तु राधेयं त्रिसप्तत्या शिलीमुखैः ॥ २७ ॥
अविध्यत् त्वरितो राजन् द्रोणं प्रेप्सुर्महामनाः ।

राजन् ! उस समय महामनस्वी अभिमन्युने द्रोणाचार्यके समीप पहुँचनेकी इच्छा रखकर तुरंत ही तिहत्तर बाणोंद्वारा कर्णको घायल कर दिया ॥ २७½ ॥

तं तथा नाशकत् कश्चिद् द्रोणाद् वारयितुं रथी ॥ २८ ॥
आरुजन्तं रथव्रातान् वज्रहस्तात्मजात्मजम् ।

कोई भी रथी रथसमूहोंको नष्ट-भ्रष्ट करते हुए इन्द्र-कुमार अर्जुनके उस पुत्रको द्रोणाचार्यकी ओर जानेसे रोक न सका ॥ २८½ ॥

ततः कर्णो जयप्रेप्सुर्मानी सर्वधनुष्मताम् ॥ २९ ॥
सौभद्रं शतशोऽविध्यदुत्तमास्त्राणि दर्शयन् ।
सोऽस्त्रैरस्त्रविदां श्रेष्ठो रामशिष्यः प्रतापवान् ॥ ३० ॥
समरे शत्रुदुर्धर्षमभिमन्युमपीडयत् ।

विजय पानेकी इच्छा रखनेवाले, सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें मानी, अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, परशुरामजीके शिष्य और प्रतापी वीर कर्णने अपने उत्तम अस्त्रोंका प्रदर्शन करते हुए सैकड़ों बाणोंद्वारा शत्रुदुर्जय सुभद्राकुमार अभिमन्युको बींध डाला और समराङ्गणमें उसे पीड़ा देना आरम्भ किया ॥

स तथा पीड्यमानस्तु राधेयेनास्त्रवृष्टिभिः ॥ ३१ ॥
समरेऽमरसंकाशः सौभद्रो न व्यशीर्यत ।

कर्णके द्वारा उसकी अस्त्रवर्षासे पीड़ित होनेपर भी देवतुल्य अभिमन्यु समरभूमिमें शिथिल नहीं हुआ ॥ ३१½ ॥

ततः शिलाशितैस्तीक्ष्णैर्भल्लैरानतपर्वभिः ॥ ३२ ॥
छित्त्वा धनूंषि शूराणामार्जुनिः कर्णमार्दयत् ।

तत्पश्चात् अर्जुनकुमारने सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए झुकी हुई गाँठवाले तीखे भल्लोंद्वारा शूरवीरोंके धनुष काटकर कर्णको सब ओरसे पीड़ा दी ॥ ३२½ ॥

धनुर्मण्डलनिर्मुक्तैः शरैराशीविषोपमैः ॥ ३३ ॥
सच्छत्रध्वजयन्तारं साश्वमाशु स्मयन्निव ।

उसने मुसकराते हुए-से अपने मण्डलाकार धनुषसे छूटे हुए विषधर सर्पोंके समान भयानक बाणोंद्वारा छत्र, ध्वज, सारथि और घोड़ोंसहित कर्णको शीघ्र ही घायल कर दिया ॥

कर्णोऽपि चास्य चिक्षेप बाणान् संनतपर्वणः ॥ ३४ ॥
असम्भ्रान्तश्च तान् सर्वानगृह्णात् फाल्गुनात्मजः ।

कर्णने भी उसके ऊपर झुकी हुई गाँठवाले बहुत-से बाण चलाये; परंतु अर्जुनकुमारने उन सबको बिना किसी घबराहटके सह लिया ॥ ३४½ ॥

ततो मुहूर्तात् कर्णस्य बाणेनैकेन वीर्यवान् ॥ ३५ ॥
सध्वजं कार्मुकं वीरश्छित्त्वा भूमावपातयत् ।

तदनन्तर दो ही घड़ीमें पराक्रमी वीर अभिमन्युने एक बाण मारकर कर्णके ध्वजसहित धनुषको पृथ्वीपर काट गिराया॥

ततः कृच्छ्रगतं कर्णं दृष्ट्वा कर्णादनन्तरः ॥ ३६ ॥
सौभद्रमभ्ययात् तूर्णं दृढमुद्यम्य कार्मुकम् ।
तत उच्चुक्रुशुः पार्थास्तेषां चानुचरा जनाः ।
वादित्राणि च संजघ्नुः सौभद्रं चापि तुष्टुवुः ॥ ३७ ॥

कर्णको संकटमें पड़ा देख उसका छोटा भाई सुदृढ़ धनुष हाथमें लेकर तुरंत ही सुभद्राकुमारका सामना करनेके लिये आ पहुँचा। उस समय कुन्तीके सभी पुत्र और उनके अनुगामी सैनिक जोर जोरसे गरजने, बाजे बजाने और अभिमन्युकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ॥ ३६–३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि कर्णदुःशासनपराभवे चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें कर्ण तथा दुःशासनकी पराजयविषयक चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २ श्लोक मिलाकर कुल ३९ श्लोक हैं)

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

अभिमन्युके द्वारा कर्णके भाईका वध तथा कौरवसेनाका संहार और पलायन

संजय उवाच

सोऽतिगर्जन् धनुष्पाणिर्ज्यां विकर्षन् पुनः पुनः।
तयोर्महात्मनोस्तूर्णं रथान्तरमवापतत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! कर्णका वह भाई हाथमें धनुष ले अत्यन्त गरजता और प्रत्यञ्चाको बार-बार खींचता हुआ तुरंत ही उन दोनों महामनस्वी वीरोंके रथोंके बीचमें आ पहुँचा ॥ १ ॥

सोऽविध्यद् दशभिर्बाणैरभिमन्युं दुरासदम्।
सच्छत्रध्वजयन्तारं साश्वमाशु स्मयन्निव ॥ २ ॥

उसने मुसकराते हुए-से दस बाण मारकर दुर्जय वीर अभिमन्युको छत्र, ध्वजा, सारथि और घोड़ोंसहित शीघ्र ही घायल कर दिया ॥ २ ॥

पितृपैतामहं कर्म कुर्वाणमतिमानुषम्।
दृष्ट्वार्दितं शरैः कार्ष्णिं त्वदीया हृषिताऽभवन् ॥ ३ ॥

अपने पिता-पितामहोंके अनुसार मानवीय शक्तिसे बढ़कर पराक्रम प्रकट करनेवाले अर्जुनकुमार अभिमन्युको उस समय बाणोंसे पीड़ित देखकर आपके सैनिक हर्षसे खिल उठे॥

तस्याभिमन्युरायम्य स्मयन्नेकेन पत्रिणा।
शिरः प्रच्यावयामास तद्रथात् प्रापतद् भुवि ॥ ४ ॥
कर्णिकारमिवाधूतं वातेनापतितं नगात्।

तब अभिमन्युने मुसकराते हुए-से अपने धनुषको खींचकर एक ही बाणसे कर्णके भाईका मस्तक धड़से अलग कर दिया। उसका वह सिर रथसे नीचे पृथ्वीपर गिर पड़ा,



मानो वायुके वेगसे हिलकर उखड़ा हुआ कनेरका वृक्ष पर्वत-शिखरसे नीचे गिर गया हो ॥ ४½ ॥

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा राजन् कर्णो व्यथां ययौ ॥ ५ ॥
विमुखीकृत्य कर्णं तु सौभद्रः कङ्कपत्रिभिः।
अन्यानपि महेष्वासांस्तूर्णमेवाभिदुद्रुवे ॥ ६ ॥

राजन्! अपने भाईको मारा गया देख कर्णको बड़ी व्यथा हुई। इधर सुभद्राकुमार अभिमन्युने गीधकी पाँखवाले बाणोंद्वारा कर्णको युद्धसे भगाकर दूसरे-दूसरे महाधनुर्धर वीरोंपर भी तुरंत ही धावा किया ॥ ५-६ ॥

ततस्तद् विततं सैन्यं हस्त्यश्वरथपत्तिमत्।
क्रुद्धोऽभिमन्युरभिनत् तिग्मतेजा महारथः ॥ ७ ॥

उस समय क्रोधमें भरे हुए प्रचण्ड तेजस्वी महारथी अभिमन्युने हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसे युक्त उस विशाल चतुरङ्गिणी सेनाको विदीर्ण कर डाला ॥ ७ ॥

कर्णस्तु बहुभिर्बाणैरर्द्यमानोऽभिमन्युना।
अपायाज्जवनैरश्वैस्ततोऽनीकमभज्यत ॥ ८ ॥

अभिमन्युके चलाये हुए बहुसंख्यक बाणोंसे पीड़ित हुआ कर्ण अपने वेगशाली घोड़ोंकी सहायतासे शीघ्र ही रणभूमिसे भाग गया। इससे सारी सेनामें भगदड़ मच गयी॥

शलभैरिव चाकाशे धाराभिरिव चावृते।
अभिमन्योः शरै राजन् न प्राज्ञायत किंचन ॥ ९ ॥

राजन्! उस दिन अभिमन्युके बाणोंसे सारा आकाशमण्डल इस प्रकार आच्छादित हो गया था, मानो टिड्डीदलोंसे अथवा वर्षाकी धाराओंसे व्याप्त हो गया हो। उस आकाशमें कुछ भी सूझता नहीं था ॥ ९ ॥

तावकानां तु योधानां वध्यतां निशितैः शरैः।
अन्यत्र सैन्धवाद् राजन् न स्म कश्चिदतिष्ठत ॥ १० ॥

महाराज! पैने बाणोंद्वारा मारे जाते हुए आपके योद्धाओंमेंसे सिंधुराज जयद्रथको छोड़कर दूसरा कोई वहाँ ठहर न सका ॥ १० ॥

सौभद्रस्तु ततः शङ्खं प्रध्माप्य पुरुषर्षभः।
शीघ्रमभ्यपतत् सेनां भारतीं भरतर्षभ ॥ ११ ॥

भरतश्रेष्ठ! तब पुरुषप्रवर सुभद्राकुमार अभिमन्युने शङ्ख बजाकर पुनः शीघ्र ही भारतीय सेनापर धावा किया ॥

स कक्षेऽग्निरिवोत्सृष्टो निर्दहंस्तरसा रिपून्।
मध्ये भारतसैन्यानामार्जुनिः पर्यवर्तत ॥ १२ ॥

सूखे जंगलमें छोड़ी हुई आगके समान वेगसे शत्रुओंको दग्ध करता हुआ अभिमन्यु कौरव-सेनाके बीचमें विचरने लगा॥

रथनागाश्वमनुजानर्दयन् निशितैः शरैः।
सम्प्रविश्याकरोद् भूमिं कबन्धगणसंकुलाम् ॥ १३ ॥

उस सेनामें प्रवेश करके उसने अपने तीखे बाणोंद्वारा रथों, हाथियों, घोड़ों और पैदल मनुष्योंको पीड़ित करते हुए सारी रणभूमिको बिना मस्तकके शरीरोंसे पाट दिया ॥ १३ ॥

सौभद्रचापप्रभवैर्निकृत्ताः परमेषुभिः।

स्वानेवाभिमुखान् घ्नन्तः प्राद्रवन् जीवितार्थिनः ॥ १४ ॥

सुभद्राकुमारके धनुषसे छूटे हुए उत्तम बाणोंसे क्षत-विक्षत हो आपके सैनिक अपने जीवनकी रक्षाके लिये सामने आये हुए अपने ही पक्षके योद्धाओंको मारते हुए भाग चले ॥

ते घोरा रौद्रकर्माणो विपाठा बहवः शिताः।
निघ्नन्तो रथनागाश्वाञ्जग्मुराशु वसुंधराम् ॥ १५ ॥

अभिमन्युके वे भयंकर कर्म करनेवाले, घोर, तीक्ष्ण और बहुसंख्यक विपाठ नामक बाण आपके रथों, हाथियों और घोड़ोंको नष्ट करते हुए शीघ्र ही धरतीमें समा जाते थे ॥

सायुधाः साङ्गुलित्राणाः सगदाः साङ्गदा रणे।
दृश्यन्ते बाहवश्छिन्ना हेमाभरणभूषिताः ॥ १६ ॥

उस युद्धमे आयुध, दस्ताने, गदा और बाजूबंदसहित वीरोंकी सुवर्णभूषण-भूषित भुजाएँ कटकर गिरी दिखायी देती थीं ॥ १६ ॥

शराश्चापानि खड्गाश्च शरीराणि शिरांसि च।
सकुण्डलानि स्रग्वीणि भूमावासन् सहस्रशः ॥ १७ ॥

उस युद्धभूमिमें धनुष, बाण, खड्ग, शरीर तथा हार और कुण्डलोंसे विभूषित मस्तक सहस्रोंकी संख्यामें छिन्न-भिन्न होकर पड़े थे ॥ १७ ॥

सोपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डैश्च बन्धुरैः।
अक्षैर्विमथितैश्चक्रैर्बहुधा पतितैर्युगैः ॥ १८ ॥
शक्तिचापासिभिश्चैव पतितैश्च महाध्वजैः।
चर्मचापशरैश्चैव व्यवकीर्णैः समन्ततः ॥ १९ ॥
निहतैः क्षत्रियैरश्वैर्वारणैश्च विशाम्पते।
अगम्यरूपा पृथिवी क्षणेनासीत् सुदारुणा ॥ २० ॥

आवश्यक सामग्री, बैठक, ईषादण्ड, बन्धुर, अक्ष, पहिए और जूए चूर-चूर और टुकड़े-टुकड़े होकर गिरे थे। शक्ति, धनुष, खड्ग, गिरे हुए विशाल ध्वज, ढाल और बाण भी छिन्न-भिन्न होकर सब ओर बिखरे पड़े थे। प्रजानाथ ! बहुत-से क्षत्रिय, घोड़े और हाथी भी मारे गये थे । इन सबके कारण वहाँकी भूमि क्षणभरमें अत्यन्त भयंकर और अगम्य हो गयी थी ॥ १८–२० ॥

वध्यतां राजपुत्राणां क्रन्दतामितरेतरम्।
प्रादुरासीन्महाशब्दो भीरूणां भयवर्धनः ॥ २१ ॥

बाणोंकी चोट खाकर परस्पर क्रन्दन करते हुए राजकुमारोंका महान् शब्द सुनायी पड़ता था, जो कायरोंका भय बढ़ानेवाला था ॥ २१ ॥

स शब्दो भरतश्रेष्ठ दिशः सर्वा व्यनादयत्।
सौभद्रश्चाद्रवत् सेनां घ्नन् वराश्वरथद्विपान् ॥ २२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! वह शब्द सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित कर रहा था । सुभद्राकुमार श्रेष्ठ घड़ों, रथों और हाथियोंका संहार करता हुआ कौरव-सेनापर टूट पड़ा था ॥ २२ ॥

कक्षमग्निरिवोत्सृष्टो निर्दहंस्तरसा रिपून्।
मध्ये भारतसैन्यानामार्जुनिः प्रत्यदृश्यत ॥ २३ ॥

सूखे जंगलमें छोड़ी हुई आगकी भाँति अर्जुनकुमार अभिमन्यु वेगसे शत्रुओंको दग्ध करता हुआ कौरवसेनाओंके बीचमें दृष्टिगोचर हो रहा था ॥ २३ ॥

विचरन्तं दिशः सर्वाः प्रदिशश्चापि भारत।
तं तदा नानुपश्यामः सैन्ये च रजसाऽऽवृते ॥ २४ ॥

भारत ! धूलसे आच्छादित हुई सेनाके भीतर सम्पूर्ण दिशाओं और विदिशाओंमें विचरते हुए अभिमन्युको उस समय हमलोग देख नहीं पाते थे ॥ २४ ॥

आददानं गजाश्वानां नृणां चायूंषि भारत।
क्षणेन भूयः पश्यामः सूर्यं मध्यंदिने यथा ॥ २५ ॥
अभिमन्युं महाराज प्रतपन्तं द्विषद्गणान्।
स वासवसमः संख्ये वासवस्यात्मजात्मजः।
अभिमन्युर्महाराज सैन्यमध्ये व्यरोचत ॥ २६ ॥
(यथा पुरा वह्निसुतोऽसुरसैन्येषु वीर्यवान्।)

भरतनन्दन ! हाथियों, घोड़ों और पैदल-सैनिकोंकी आयुको छीनते हुए अभिमन्युको हमने क्षणभरमें दोपहरके सूर्यकी भाँति शत्रुसेनाको पुनः तपाते देखा था । महाराज ! इन्द्रकुमार अर्जुनका वह पुत्र युद्धमें इन्द्रके समान पराक्रमी जान पड़ता था । जैसे पूर्वकालमें पराक्रमी कुमार कार्तिकेय असुरोंकी सेनामें उसका संहार करते हुए सुशोभित होते थे, उसी प्रकार अभिमन्यु कौरव-सेनामें विचरता हुआ शोभा पा रहा था ॥ २५–२६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें अभिमन्युका पराक्रमविषयक इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४१ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल २६½ श्लोक हैं)

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

अभिमन्युके पीछे जानेवाले पाण्डवोंको जयद्रथका वरके प्रभावसे रोक देना

धृतराष्ट्र उवाच

बालमत्यन्तसुखिनं स्वबाहुबलदर्पितम्।
युद्धेषु कुशलं वीरं कुलपुत्रं तनुत्यजम् ॥ १ ॥
गाहमानमनीकानि सदश्वैश्च त्रिहायनैः।
अपि यौधिष्ठिरात् सैन्यात् कश्चिदन्वपतद् बली ॥ २ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! अत्यन्त सुखमें पला हुआ वीर

बालक अभिमन्यु युद्धमें कुशल था। उसे अपने बाहुबलपर गर्व था। वह उत्तम कुलमें उत्पन्न होनेके कारण अपने शरीरको निछावर करके युद्ध कर रहा था। जिस समय वह तीन सालकी अवस्थावाले उत्तम घोड़ोंके द्वारा मेरी सेनाओंमें प्रवेश कर रहा था, उस समय युधिष्ठिरकी सेनासे क्या कोई बलवान् वीर उसके पीछे-पीछे व्यूहके भीतर आ सका था ? ॥ १-२ ॥

संजय उवाच

युधिष्ठिरो भीमसेनः शिखण्डी सात्यकिर्यमौ ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च द्रुपदश्च सकेकयः ॥ ३ ॥
धृष्टकेतुश्च संरब्धो मत्स्याश्चाभ्यपतन् रणे ।
तेनैव तु पथा यान्तः पितरो मातुलैः सह ॥ ४ ॥
अभ्यद्रवन् परीप्सन्तो व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।

संजयने कहा—राजन्! युधिष्ठिर, भीमसेन, शिखण्डी, सात्यकि, नकुल-सहदेव, धृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद, केकय-राजकुमार, रोषमें भरा हुआ धृष्टकेतु तथा मत्स्यदेशीय योद्धा—ये सब-के-सब युद्धस्थलमें आगे बढ़े। अभिमन्युके ताऊ, चाचा तथा मामागण अपनी सेनाको व्यूहद्वारा संगठित करके प्रहार करनेके लिये उद्यत हो अभिमन्युकी रक्षाके लिये उसीके बनाये हुए मार्गसे व्यूहमें जानेके उद्देश्यसे एक साथ दौड़ पड़े ॥ ३-४½ ॥

तान् दृष्ट्वा द्रवतः शूरांस्त्वदीया विमुखाऽभवन् ॥ ५ ॥
ततस्तद् विमुखं दृष्ट्वा तव सूनोर्महद् बलम् ।
जामाता तव तेजस्वी संस्तम्भयिषुराद्रवत् ॥ ६ ॥

उन शूरवीरोंको आक्रमण करते देख आपके सैनिक भाग खड़े हुए। आपके पुत्रकी विशाल सेनाको रणसे विमुख हुई देख उसे स्थिरतापूर्वक स्थापित करनेकी इच्छासे आपका तेजस्वी जामाता जयद्रथ वहाँ दौड़ा हुआ आया ॥ ५-६ ॥

सैन्धवस्य महाराज पुत्रो राजा जयद्रथः ।
स पुत्रगृद्धिनः पार्थान् सहसैन्यानवारयत् ॥ ७ ॥

महाराज! सिंधुनरेशके पुत्र राजा जयद्रथने अपने पुत्रको बचानेकी इच्छा रखनेवाले कुन्तीकुमारोंको सेनासहित आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ७ ॥

उग्रधन्वा महेष्वासो दिव्यमस्त्रमुदीरयन् ।
वार्धक्षत्रिरुपासेधत् प्रवणादिव कुञ्जरः ॥ ८ ॥

जैसे हाथी नीची भूमिमें आकर वहींसे शत्रुका निवारण करता है, उसी प्रकार भयंकर एवं महान् धनुष धारण करनेवाले वृद्धक्षत्रकुमार जयद्रथने दिव्यास्त्रोंका प्रयोग करके शत्रुओंकी प्रगति रोक दी ॥ ८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

अतिभारमहं मन्ये सैन्धवे संजयाहितम् ।
यदेकः पाण्डवान् क्रुद्धान् पुत्रप्रेप्सूनवारयत् ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय! मैं तो समझता हूँ, सिंधुराज जयद्रथपर यह बहुत बड़ा भार आ पड़ा था, जो अकेले होनेपर भी उसने पुत्रकी रक्षाके लिये उत्सुक एवं क्रोधमें भरे हुए पाण्डवोंको रोका ॥ ९ ॥

अत्यद्भुतमहं मन्ये बलं शौर्यं च सैन्धवे ।
तस्य प्रब्रूहि मे वीर्यं कर्म चाग्र्यं महात्मनः ॥ १० ॥

सिंधुराजमें ऐसे बल और शौर्यका होना मैं अत्यन्त आश्चर्यकी बात मानता हूँ। महामना जयद्रथके बल और श्रेष्ठ पराक्रमका मुझसे विस्तारपूर्वक वर्णन करो ॥ १० ॥

किं दत्तं हुतमिष्टं वा किं सुतप्तमथो तपः ।
सिंधुराजो हि येनैकः पाण्डवान् समवारयत् ॥ ११ ॥

सिंधुराजने कौन-सा ऐसा दान, होम, यज्ञ अथवा उत्तम तप किया था, जिससे वह अकेला ही समस्त पाण्डवोंको रोकनेमें समर्थ हो सका ॥ ११ ॥

(दमो वा ब्रह्मचर्यं वा सूत यच्चास्य सत्तम ।
देवं कतममाराध्य विष्णुमीशानमब्जजम् ॥
सिन्धुराट् तनये सक्तान् क्रुद्धः पार्थानवारयत् ।
नैवं कृतं महत् कर्म भीष्मेणाश्शुश्रिषं तथा ॥)

साधुशिरोमणे सूत ! जयद्रथमें जो इन्द्रियसंयम अथवा ब्रह्मचर्य हो, वह बताओ। विष्णु, शिव अथवा ब्रह्मा किस देवताकी आराधना करके सिन्धुराजने अपने पुत्रकी रक्षामें तत्पर हुए पाण्डवोंको क्रोधपूर्वक रोक दिया ? भीष्मने भी ऐसा महान् पराक्रम किया हो, उसका पता मुझे नहीं है ॥

संजय उवाच

द्रौपदीहरणे यत् तद् भीमसेनेन निर्जितः ।
मानात् स तप्तवान् राजा वरार्थी सुमहत् तपः ॥ १२ ॥

संजयने कहा—महाराज ! द्रौपदीहरणके प्रसंगमें जो जयद्रथको भीमसेनसे पराजित होना पड़ा था, उसीसे अभिमानवश अपमानका अनुभव करके राजाने वर प्राप्त करनेकी इच्छा रखकर बड़ी भारी तपस्या की ॥ १२ ॥

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्रियेभ्यः संनिवर्त्य सः ।
क्षुत्पिपासातपसहः कृशो धमनिसंततः ॥ १३ ॥

प्रिय लगनेवाले विषयोंकी ओरसे सम्पूर्ण इन्द्रियोंको हटाकर भूख-प्यास और धूपका कष्ट सहन करता हुआ जयद्रथ अत्यन्त दुर्बल हो गया। उसके शरीरकी नस-नाड़ियाँ दिखायी देने लगीं ॥ १३ ॥

देवमाराधयच्छर्वं गृणन् ब्रह्म सनातनम् ।
भक्तानुकम्पी भगवांस्तस्य चक्रे ततो दयाम् ॥ १४ ॥
स्वप्नान्तेऽप्यथ चैवाह हरः सिन्धुपतेः सुतम् ।
वरं वृणीष्व प्रीतोऽस्मि जयद्रथ किमिच्छसि ॥ १५ ॥

वह सनातन ब्रह्मस्वरूप भगवान् शङ्करकी स्तुति करता हुआ उनकी आराधना करने लगा। तब भक्तोंपर दया करनेवाले

भगवान्‌ने उसपर कृपा की और स्वप्नमें जयद्रथको दर्शन देकर उससे कहा—'जयद्रथ ! तुम क्या चाहते हो ? वर माँगो। मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ' ॥ १४-१५ ॥

एवमुक्तस्तु शर्वेण सिन्धुराजो जयद्रथः।
उवाच प्रणतो रुद्रं प्राञ्जलिर्नियतात्मवान्॥ १६ ॥

भगवान् शङ्करके ऐसा कहनेपर सिंधुराज जयद्रथने अपने मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर उन रुद्रदेवको प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा—॥ १६ ॥



पाण्डवेयानहं संख्ये भीमवीर्यपराक्रमान्।
वारयेयं रथेनैकः समस्तानिति भारत॥ १७॥
एवमुक्तस्तु देवेशो जयद्रथमथाब्रवीत्।
ददामि ते वरं सौम्य विना पार्थं धनंजयम्॥ १८॥
वारयिष्यसि संग्रामे चतुरः पाण्डुनन्दनान्।
एवमस्त्विति देवेशमुक्त्वाबुद्ध्यत पार्थिवः॥ १९॥

'प्रभो ! मैं युद्धमें भयंकर बल-पराक्रमसे सम्पन्न समस्त पाण्डवोंको अकेला ही रथके द्वारा परास्त करके आगे बढ़नेसे रोक दूँ' । भारत ! उसके ऐसा कहनेपर देवेश्वर भगवान् शिवने जयद्रथसे कहा—'सौम्य ! मैं तुम्हें वर देता हूँ। तुम कुन्तीपुत्र अर्जुनको छोड़कर शेष चार पाण्डवोंको (एक दिन) युद्धमें आगे बढ़नेसे रोक दोगे ।' तब देवेश्वर महादेवसे 'एवमस्तु' कहकर राजा जयद्रथ जाग उठा ॥ १७–१९ ॥

स तेन वरदानेन दिव्येनास्त्रबलेन च।
एकः संवारयामास पाण्डवानामनीकिनीम्॥ २०॥

उसी वरदानसे अपने दिव्य अस्त्र-बलके द्वारा जयद्रथने अकेले ही पाण्डवोंकी सेनाको रोक दिया ॥ २० ॥

तस्य ज्यातलघोषेण क्षत्रियान् भयमाविशत्।
परांस्तु तव सैन्यस्य हर्षः परमकोऽभवत्॥ २१॥

उसके धनुषकी टंकार सुनकर शत्रुपक्षके क्षत्रियोंके मनमें भय समा गया; परंतु आपके सैनिकोंको बड़ा हर्ष हुआ ॥२१॥

दृष्ट्वा तु क्षत्रिया भारं सैन्धवे सर्वमाहितम्।
उत्क्रुश्याभ्यद्रवन् राजन् येन यौधिष्ठिरं बलम्॥ २२॥

राजन् ! उस समय सारा भार जयद्रथके ही ऊपर पड़ा देख आपके क्षत्रियवीर कोलाहल करते हुए जिस ओर युधिष्ठिरकी सेना थी, उसी ओर टूट पड़े ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि जयद्रथयुद्धे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें जयद्रथयुद्धविषयक बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४२ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २ श्लोक मिलाकर कुल २४ श्लोक हैं)

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

पाण्डवोंके साथ जयद्रथका युद्ध और व्यूहद्वारको रोक रखना

संजय उवाच

यन्मां पृच्छसि राजेन्द्र सिन्धुराजस्य विक्रमम्।
शृणु तत् सर्वमाख्यास्ये यथा पाण्डूनयोधयत्॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजेन्द्र ! आप मुझसे जो सिंधुराज जयद्रथके पराक्रमका समाचार पूछ रहे हैं, वह सब सुनिये। उसने जिस प्रकार पाण्डवोंके साथ युद्ध किया था, वह सारा वृत्तान्त बताऊँगा ॥ १ ॥

तमूहुर्वाजिनो वश्याः सैन्धवाः साधुवाहिनः।
विकुर्वाणा बृहन्तोऽश्वाः श्वसनोपमरंहसः॥ २ ॥

सारथिके वशमें रहकर अच्छी तरह सवारीका काम देनेवाले, वायुके समान वेगशाली तथा नाना प्रकारकी चाल दिखाते हुए चलनेवाले सिंधुदेशीय विशाल अश्व जयद्रथको वहन करते थे ॥ २ ॥

गन्धर्वनगराकारं विधिवत्कल्पितं रथम्।
तस्याभ्यशोभयत् केतुर्वाराहो राजतो महान्॥ ३ ॥

विधिपूर्वक सजाया हुआ उसका रथ गन्धर्वनगरके समान जान पड़ता था। उसका रजतनिर्मित एवं वाराह-चिह्नसे युक्त महान् ध्वज उसके रथकी शोभा बढ़ा रहा था ॥

श्वेतच्छत्रपताकाभिश्चामरव्यजनेन च।
स बभौ राजलिङ्गैस्तैस्तारापतिरिवाम्बरे॥ ४ ॥

श्वेत छत्र, पताका, चँवर और व्यजन—इन राजचिह्नोंसे वह आकाशमें चन्द्रमाकी भाँति सुशोभित हो रहा था ॥४॥

मुक्तावज्रमणिस्वर्णैर्भूषितं तदयस्मयम् ।
वरूथं विबभौ तस्य ज्योतिर्भिः खमिवावृतम् ॥ ५ ॥

उसके रथका मुक्ता, मणि, सुवर्ण तथा हीरोंसे विभूषित लोहमय आवरण नक्षत्रोंसे व्याप्त हुए आकाशके समान सुशोभित होता था ॥ ५ ॥

स विस्फार्य महच्चापं किरन्निषुगणान् बहून् ।
तत् खण्डं पूरयामास यद् व्यदारयदार्जुनिः ॥ ६ ॥

उसने अपना विशाल धनुष फैलाकर बहुत-से बाणसमूहोंकी वर्षा करते हुए व्यूहके उस भागको योद्धाओंद्वारा भर दिया, जिसे अभिमन्युने तोड़ डाला था ॥ ६ ॥

स सात्यकिं त्रिभिर्बाणैरष्टभिश्च वृकोदरम् ।
धृष्टद्युम्नं तथा षष्ट्या विराटं दशभिः शरैः ॥ ७ ॥
द्रुपदं पञ्चभिस्तीक्ष्णैः सप्तभिश्च शिखण्डिनम् ।
केकयान् पञ्चविंशत्या द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ८ ॥
युधिष्ठिरं तु सप्तत्या ततः शेषानपानुदत् ।
इषुजालेन महता तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ९ ॥

उसने सात्यकिको तीन, भीमसेनको आठ, धृष्टद्युम्नको साठ, विराटको दस, द्रुपदको पाँच, शिखण्डीको सात, केकयराजकुमारोंको पचीस, द्रौपदीपुत्रोंको तीन-तीन तथा युधिष्ठिरको सत्तर तीखे बाणोंद्वारा घायल कर दिया। तत्पश्चात् बाणोंका बड़ा भारी जाल-सा बिछाकर उसने शेष सैनिकोंको भी पीछे हटा दिया। यह एक अद्भुत-सी बात थी ॥७–९॥



अथास्य शितपीतेन भल्लेनादिश्य कार्मुकम् ।
चिच्छेद प्रहसन् राजा धर्मपुत्रः प्रतापवान् ॥ १० ॥

तब प्रतापी राजा धर्मपुत्र युधिष्ठिरने एक तीखे और पानीदार भल्लके द्वारा उसके धनुषको काटनेकी घोषणा करके हँसते-हँसते काट डाला ॥ १० ॥

अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण सोऽन्यदादाय कार्मुकम् ।
विव्याध दशभिः पार्थं तांश्चैवान्यांस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ११ ॥

उस समय जयद्रथने पलक मारते-मारते दूसरा धनुष हाथमें लेकर युधिष्ठिरको दस तथा अन्य वीरोंको तीन-तीन बाणोंसे बींध डाला ॥ ११ ॥

तत् तस्य लाघवं ज्ञात्वा भीमो भल्लैस्त्रिभिस्त्रिभिः ।
धनुर्ध्वजं च च्छत्रं च क्षितौ क्षिप्रमपातयत् ॥ १२ ॥

उसकी इस फुर्तीको देख और समझकर भीमसेनने तीन-तीन भल्लोंद्वारा उसके धनुष, ध्वज और छत्रको शीघ्र ही पृथ्वीपर काट गिराया ॥ १२ ॥

सोऽन्यदादाय बलवान् सज्यं कृत्वा च कार्मुकम् ।
भीमस्यापातयत् केतुं धनुरश्वांश्च मारिष ॥ १३ ॥

आर्य ! तब उस बलवान् वीरने दूसरा धनुष ले उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर भीमके धनुष, ध्वज और घोड़ोंको धराशायी कर दिया ॥ १३ ॥

स हताश्वादवप्लुत्य च्छिन्नधन्वा रथोत्तमात् ।
सात्यकेराप्लुतो यानं गिर्यग्रमिव केसरी ॥ १४ ॥

धनुष कट जानेपर अपने अश्वहीन उत्तम रथसे कूदकर भीमसेन सात्यकिके रथपर जा बैठे, मानो कोई सिंह पर्वतके शिखरपर जा चढ़ा हो ॥ १४ ॥

ततस्त्वदीयाः संहृष्टाः साधु साध्विति वादिनः ।
सिन्धुराजस्य तत् कर्म प्रेक्ष्याश्रद्धेयमद्भुतम् ॥ १५ ॥

सिंधुराजके उस अद्भुत पराक्रमको, जो सुननेपर विश्वास करने योग्य नहीं था, प्रत्यक्ष देख आपके सभी सैनिक अत्यन्त हर्षमें भरकर उसे साधुवाद देने लगे ॥ १५ ॥

संक्रुद्धान् पाण्डवानेको यद् दधारास्त्रतेजसा ।
तत् तस्य कर्म भूतानि सर्वाण्येवाभ्यपूजयन् ॥ १६ ॥

जयद्रथने अकेले ही अपने अस्त्रोंके तेजसे जो क्रोधमें भरे हुए पाण्डवोंको रोक लिया, उसके उस पराक्रमकी सभी प्राणी प्रशंसा करने लगे ॥ १६ ॥

सौभद्रेण हतैः पूर्वं सोत्तरायोधिभिर्द्विपैः ।
पाण्डूनां दर्शितः पन्थाः सैन्धवेन निवारितः ॥ १७ ॥

सुभद्राकुमार अभिमन्युने पहले गजारोहियोंसहित बहुत-से गजराजोंको मारकर व्यूहमें प्रवेश करनेके लिये जो पाण्डवोंको मार्ग दिखा दिया था, उसे जयद्रथने बंद कर दिया ॥ १७ ॥

यतमानास्तु ते वीरा मत्स्यपञ्चालकेकयाः ।
पाण्डवाश्चान्वपद्यन्त प्रतिशेकुर्न सैन्धवम् ॥ १८ ॥

वे वीर मत्स्य, पाञ्चाल, केकय तथा पाण्डव बारंबार प्रयत्न करके व्यूहपर आक्रमण करते थे; परंतु सिंधुराजके सामने टिक नहीं पाते थे ॥ १८ ॥

यो यो हि यतते भेत्तुं द्रोणानीकं तवाहितः ।
तं तमेव वरं प्राप्य सैन्धवः प्रत्यवारयत् ॥ १९ ॥

आपका जो-जो शत्रु द्रोणाचार्यके व्यूहको तोड़नेका प्रयत्न करता, उसी उसी श्रेष्ठ वीरके पास पहुँचकर जयद्रथ उसे रोक देता था ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि जयद्रथयुद्धे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें जयद्रथका युद्धविषयक तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

अभिमन्युका पराक्रम और उसके द्वारा वसातीय आदि अनेक योद्धाओंका वध

संजय उवाच

सैन्धवेन निरुद्धेषु जयगृद्धिषु पाण्डुषु ।
सुघोरमभवद्युद्धं त्वदीयानां परैः सह ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! विजयकी अभिलाषा रखनेवाले पाण्डवोंको जब सिंधुराज जयद्रथने रोक दिया, उस समय आपके सैनिकोंका शत्रुओंके साथ बड़ा भयंकर युद्ध हुआ ॥ १ ॥

प्रविश्याथार्जुनिः सेनां सत्यसंधो दुरासदः ।
व्यक्षोभयत तेजस्वी मकरः सागरं यथा ॥ २ ॥

तदनन्तर सत्यप्रतिज्ञ दुर्धर्ष और तेजस्वी वीर अभिमन्युने आपकी सेनाके भीतर घुसकर इस प्रकार तहलका मचा दिया, जैसे बड़ा भारी मगर समुद्रमें हलचल पैदा कर देता है ॥ २ ॥

तं तथा शरवर्षेण क्षोभयन्तमरिन्दमम् ।
यथाप्रधानाः सौभद्रमभ्ययू रथसत्तमाः ॥ ३ ॥

इस प्रकार बाणोंकी वर्षासे कौरवसेनामें हलचल मचाते हुए शत्रुदमन सुभद्राकुमारपर आपकी सेनाके प्रधान-प्रधान महारथियोंने एक साथ आक्रमण किया ॥ ३ ॥

तेषां तस्य च सम्मर्दो दारुणः समपद्यत ।
सृजतां शरवर्षाणि प्रसक्तममितौजसाम् ॥ ४ ॥

उस समय अति तेजस्वी कौरव योद्धा परस्पर सटे हुए बाणोंकी वर्षा कर रहे थे । उनके साथ अभिमन्युका भयंकर युद्ध होने लगा ॥ ४ ॥

रथव्रजेन संरुद्धस्तैरमित्रैस्तथाऽऽर्जुनिः ।
वृषसेनस्य यन्तारं हत्वा चिच्छेद कार्मुकम् ॥ ५ ॥

यद्यपि शत्रुओंने अपने रथसमूहके द्वारा अर्जुनकुमार अभिमन्युको सब ओरसे घेर लिया था, तो भी उसने वृषसेनके सारथिको घायल करके उसके धनुषको भी काट डाला ॥

तस्य विव्याध बलवाञ्शरैरश्वानजिह्मगैः ।
वातायमानैरथ तैरश्वैरपहृतो रणात् ॥ ६ ॥

तब बलवान् वृषसेन अपने सीधे जानेवाले बाणोंद्वारा अभिमन्युके घोड़ोंको बींधने लगा । इससे उसके घोड़े हवाके समान वेगसे भाग चले । इस प्रकार उन अश्वोंद्वारा वह रणभूमिसे दूर पहुँचा दिया गया ॥ ६ ॥

तेनान्तरेणाभिमन्योर्यन्तापासारयद् रथम् ।
रथव्रजास्ततो हृष्टाः साधु साध्विति चुक्रुशुः ॥ ७ ॥

अभिमन्युके कार्यमें इस प्रकार विघ्न आ जानेसे वृषसेनका सारथि अपने रथको वहाँसे दूर हटा ले गया । इससे वहाँ जुटे हुए रथियोंके समुदाय हर्षमें भरकर 'बहुत अच्छा बहुत अच्छा' कहते हुए कोलाहल करने लगे ॥ ७ ॥

तं सिंहमिव संक्रुद्धं प्रमथ्नन्तं शरैररीन् ।
आरादायान्तमभ्येत्य वसातीयोऽभ्ययाद् द्रुतम् ॥ ८ ॥

तदनन्तर सिंहके समान अत्यन्त क्रोधमें भरकर अपने बाणोंद्वारा शत्रुओंको मथते हुए अभिमन्युको समीप आते देख वसातीय तुरंत वहाँ उपस्थित हो उसका सामना करनेके लिये गया ॥ ८ ॥

सोऽभिमन्युं शरैः षष्ट्या रुक्मपुङ्खैरवाकिरत् ।
अब्रवीच्च न मे जीवञ्जीवतो युधि मोक्ष्यसे ॥ ९ ॥

उसने अभिमन्युपर सुवर्णमय पंखवाले साठ बाण बरसाये और कहा—'अब तू मेरे जीते-जी इस युद्धमें जीवित नहीं छूट सकेगा' ॥ ९ ॥

तमयस्मयवर्माणमिषुणा दूरपातिना ।
विव्याध हृदि सौभद्रः स पपात व्यसुः क्षितौ ॥ १० ॥

तब अभिमन्युने लोहमय कवच धारण करनेवाले वसातीयको दूरतकके लक्ष्यको मार गिरानेवाले बाणद्वारा उसकी छातीमें चोट पहुँचायी, जिससे वह प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ १० ॥

वसातीयं हतं दृष्ट्वा क्रुद्धाः क्षत्रियपुङ्गवाः ।
परिवव्रुस्तदा राजंस्तव पौत्रं जिघांसवः ॥ ११ ॥

राजन् ! वसातीयको मारा गया देख क्रोधमें भरे हुए क्षत्रियशिरोमणि वीरोंने आपके पौत्र अभिमन्युको मार डालनेकी इच्छासे उस समय चारोंओरसे घेर लिया ॥ ११ ॥

विस्फारयन्तश्चापानि नानारूपाण्यनेकशः ।
तद् युद्धमभवद् रौद्रं सौभद्रस्यारिभिः सह ॥ १२ ॥

वे अपने नाना प्रकारके धनुषोंकी बारंबार टंकार करने लगे। सुभद्राकुमारका शत्रुओंके साथ वह बड़ा भयंकर युद्ध हुआ ॥ १२ ॥

तेषां शरान् सेष्वसनाञ्शरीराणि शिरांसि च।
सकुण्डलानि स्रग्वीणि क्रुद्धश्चिच्छेद फाल्गुनिः ॥१३॥

उस समय अर्जुनकुमारने कुपित होकर उनके धनुष, बाण, शरीर तथा हार और कुण्डलोंसे युक्त मस्तकोंके टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥ १३ ॥

सखड्गाः साङ्गुलित्राणाः सपट्टिशपरश्वधाः।
अदृश्यन्त भुजाश्छिन्ना हेमाभरणभूषिताः ॥ १४ ॥

सोनेके आभूषणोंसे विभूषित उनकी भुजाएँ खड्ग, दस्ताने, पट्टिश और फरसोंसहित कटी दिखायी देने लगीं ॥

स्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैः पातितैश्च महाभुजैः।
वर्मभिश्चर्मभिर्हारैर्मुकुटैश्छत्रचामरैः ॥ १५ ॥
उपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डकबन्धुरैः।
अक्षैर्विमथितैश्चक्रैर्भग्नैश्च बहुधा युगैः ॥ १६ ॥
अनुकर्षैः पताकाभिस्तथा सारथिवाजिभिः।
रथैश्च भग्नैर्नागैश्च हतैः कीर्णाभवन्मही ॥ १७ ॥

काटकर गिराये हुए हार, आभूषण, वस्त्र, विशाल भुजा, कवच, ढाल, मनोहर मुकुट, छत्र, चँवर, आवश्यक सामग्री, रथकी बैठक, ईषादण्ड, बन्धुर, चूर-चूर हुई धुरी, टूटे हुए पहिये, टूक-टूक हुए जूए, अनुकर्ष, पताका, सारथि, अश्व, टूटे हुए रथ और मरे हुए हाथियोंसे वहाँकी सारी पृथ्वी आच्छादित हो गयी थी ॥ १५–१७ ॥

निहतैः क्षत्रियैः शूरैर्नानाजनपदेश्वरैः।
जयगृद्धैर्वृता भूमिर्दारुणा समपद्यत ॥ १८ ॥

विजयकी अभिलाषा रखनेवाले विभिन्न जनपदोंके स्वामी क्षत्रियवीर उस युद्धमें मारे गये। उनकी लाशोंसे पटी हुई पृथ्वी बड़ी भयानक जान पड़ती थी ॥ १८ ॥

दिशो विचरतस्तस्य सर्वाश्च प्रदिशस्तथा।
रणेऽभिमन्योः क्रुद्धस्य रूपमन्तरधीयत ॥ १९ ॥

उस रणक्षेत्रमें कुपित होकर सम्पूर्ण दिशा-विदिशाओंमें विचरते हुए अभिमन्युका रूप अदृश्य हो गया था ॥ १९ ॥

काञ्चनं यद्यदस्यासीद् वर्म चाभरणानि च।
धनुषश्च शराणां च तदपश्याम केवलम् ॥ २० ॥

उसके कवच, आभूषण, धनुष और बाणके जो-जो अवयव सुवर्णमय थे, केवल उन्हींको हम दूरसे देख पाते थे ॥

तं तदा नाशकत् कश्चिच्चक्षुर्भ्यामभिवीक्षितुम्।
आददानं शरैर्योधान् मध्ये सूर्यमिव स्थितम् ॥ २१ ॥

अभिमन्यु जिस समय बाणोंद्वारा योद्धाओंके प्राण ले रहा था और व्यूहके मध्यभागमें सूर्यके समान खड़ा था, उस समय कोई वीर उसकी ओर आँख उठाकर देखनेका साहस नहीं कर पाता था ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युपराक्रमे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें अभिमन्युका पराक्रमविषयक चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

अभिमन्युके द्वारा सत्यश्रवा, क्षत्रियसमूह, रुक्मरथ तथा उसके मित्रगणों और सैकड़ों राजकुमारोंका वध और दुर्योधनकी पराजय

संजय उवाच

आददानस्तु शूराणामायूंष्यभवदार्जुनिः।
अन्तकः सर्वभूतानां प्राणान् काल इवागते ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! मृत्युकाल उपस्थित होनेपर जैसे यमराज समस्त प्राणियोंके प्राण हर लेते हैं, उसी प्रकार अर्जुनकुमार अभिमन्यु भी वीरोंकी आयुका अपहरण करते हुए उनके लिये यमराज ही हो गये थे ॥ १ ॥

स शक्र इव विक्रान्तः शक्रसूनोः सुतो बली।
अभिमन्युस्तदानीकं लोडयन् समदृश्यत ॥ २ ॥

इन्द्रकुमार अर्जुनका बलवान् पुत्र अभिमन्यु इन्द्रके समान पराक्रमी था। वह उस समय सारे व्यूहका मन्थन करता दिखायी देता था ॥ २ ॥

प्रविश्यैव तु राजेन्द्र क्षत्रियेन्द्रान्तकोपमः।
सत्यश्रवसमादत्त व्याघ्रो मृगमिवोल्बणः ॥ ३ ॥

राजेन्द्र! क्षत्रियशिरोमणियोंके लिये यमराजके समान अभिमन्युने उस सेनामें प्रवेश करते ही जैसे उन्मत्त व्याघ्र हरिणको दबोच लेता है, उसी प्रकार सत्यश्रवाको ले बैठा ॥

सत्यश्रवसि चाक्षिप्ते त्वरमाणा महारथाः।
प्रगृह्य विपुलं शस्त्रमभिमन्युमुपाद्रवन् ॥ ४ ॥

सत्यश्रवाके मारे जानेपर उन सभी महारथियोंने प्रचुर अस्त्र-शस्त्र लेकर बड़ी उतावलीके साथ अभिमन्युपर आक्रमण किया ॥ ४ ॥

अहं पूर्वमहं पूर्वमिति क्षत्रियपुङ्गवाः।
स्पर्धमानाः समाजग्मुर्जिघांसन्तोऽर्जुनात्मजम् ॥ ५ ॥

वे सभी क्षत्रियशिरोमणि 'पहले मैं, पहले मैं' इस प्रकार परस्पर होड़ लगाते हुए अर्जुनकुमारको मार डालनेकी इच्छासे आगे बढ़े ॥ ५ ॥

क्षत्रियाणामनीकानि प्रद्रुतान्यभिधावताम् ।
जग्रास तिमिरासाद्य क्षुद्रमत्स्यानिवार्णवे ॥ ६ ॥

उस समय धावा करनेवाले क्षत्रियोंकी उन आगे बढ़ती हुई सेनाओंको अभिमन्युने उसी प्रकार कालका ग्रास बना लिया, जैसे महासागरमें तिमि नामक महामत्स्य छोटे-छोटे मत्स्योंको निगल जाता है ॥ ६ ॥

ये केचन गतास्तस्य समीपमपलायिनः ।
न ते प्रतिन्यवर्तन्त समुद्रादिव सिन्धवः ॥ ७ ॥

युद्धसे न भागनेवाले जो कोई शूरवीर उस समय अभिमन्युके पास गये, वे फिर नहीं लौटे । जैसे समुद्रमें मिली हुई नदियाँ फिर वहाँसे लौट नहीं पाती हैं ॥ ७ ॥

महाग्राहगृहीतेव वातवेगभयार्दिता ।
समकम्पत सा सेना विभ्रष्टा नौरिवार्णवे ॥ ८ ॥

जिसका समुद्रमें मार्ग भूल गया हो, जो वायुके वेगसे भयाक्रान्त हो रही हो तथा जिसे किसी बहुत बड़े ग्राहने पकड़ लिया हो—ऐसी नौका जैसे डगमगाने लगती है, उसी प्रकार वह सेना अभिमन्युके भयसे काँप रही थी ॥ ८ ॥

अथ रुक्मरथो नाम मद्रेश्वरसुतो बली ।
त्रस्तामाश्वासयन् सेनामत्रस्तो वाक्यमब्रवीत् ॥ ९ ॥

इसी समय मद्रराजका बलवान् पुत्र रुक्मरथ आकर अपनी डरी हुई सेनाको आश्वासन देता हुआ निर्भय होकर बोला— ॥ ९ ॥

अलं त्रासेन वः शूरा नैष कश्चिन्मयि स्थिते ।
अहमेनं ग्रहीष्यामि जीवग्राहं न संशयः ॥ १० ॥

'शूरवीरो ! तुम्हें डरनेकी कोई आवश्यकता नहीं । यह अभिमन्यु मेरे रहते कुछ भी नहीं है । मैं अभी इसे जीते-जी पकड़ लूँगा । इसमें संशय नहीं है' ॥ १० ॥

एवमुक्त्वा तु सौभद्रमभिदुद्राव वीर्यवान् ।
सुकल्पितेनोह्यमानः स्यन्दनेन विराजता ॥ ११ ॥

ऐसा कहकर पराक्रमी रुक्मरथ सुन्दर सजे-सजाये तेजस्वी रथपर आरूढ़ हो सुभद्राकुमार अभिमन्युकी ओर दौड़ा ॥

सोऽभिमन्युं त्रिभिर्बाणैर्विद्ध्वा वक्षस्यथानदत् ।
त्रिभिश्च दक्षिणे बाहौ सव्ये च निशितैस्त्रिभिः ॥ १२ ॥

उसने अभिमन्युकी छातीमें तीन बाण मारकर सिंहनाद किया । फिर तीन बाण दाहिनी और तीन तीखे बाण बायीं भुजामें मारे ॥ १२ ॥

स तस्येष्वसनं छित्त्वा फाल्गुनिः सव्यदक्षिणौ ।
भुजौ शिरश्च स्वक्षिभ्रु क्षितौ क्षिप्रमपातयत् ॥ १३ ॥

तब अर्जुनकुमारने रुक्मरथका धनुष काटकर उसकी बायीं-दायीं भुजाओंको तथा सुन्दर नेत्र एवं भौंहोंसे सुशोभित मस्तकको भी तुरंत ही पृथ्वीपर काट गिराया ॥ १३ ॥

दृष्ट्वा रुक्मरथं रुग्णं पुत्रं शल्यस्य मानिनम् ।
जीवग्राहं जिघृक्षन्तं सौभद्रेण यशस्विना ॥ १४ ॥
संग्रामदुर्मदा राजन् राजपुत्राः प्रहारिणः ।
वयस्याः शल्यपुत्रस्य सुवर्णविकृतध्वजाः ॥ १५ ॥
तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महाबलाः ।
आर्जुनिं शरवर्षेण समन्तात् पर्यवारयन् ॥ १६ ॥

राजन् ! राजा शल्यके अभिमानी पुत्र रुक्मरथको जो, अभिमन्युको जीते-जी पकड़ना चाहता था, यशस्वी सुभद्राकुमारके द्वारा मारा गया देख शल्यपुत्रके बहुत-से मित्र राजकुमार, जो प्रहार करनेमें कुशल और युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले थे, अर्जुनकुमारको चारों ओरसे घेरकर बाणोंकी वर्षा करने लगे । उनके ध्वज सुवर्णके बने हुए थे, वे महाबली वीर चार हाथके धनुष खींच रहे थे ॥ १४-१६ ॥

शूरैः शिक्षाबलोपेतैस्तरुणैरत्यमर्षणैः ।
दृष्ट्वैकं समरे शूरं सौभद्रमपराजितम् ॥ १७ ॥
छाद्यमानं शरव्रातैर्हृष्टो दुर्योधनोऽभवत् ।
वैवस्वतस्य भवनं गतं ह्येनममन्यत ॥ १८ ॥

शिक्षा और बलसे सम्पन्न, तरुण अवस्थावाले, अत्यन्त अमर्षशील और शूरवीर राजकुमारोंद्वारा, किसीसे परास्त न होनेवाले शौर्यसम्पन्न सुभद्राकुमारको अकेले ही समराङ्गणमें बाणसमूहोंसे आच्छादित होते देख राजा दुर्योधनको बड़ा हर्ष हुआ । उसने यह मान लिया कि अब अभिमन्यु यमराजके लोकमें पहुँच गया ॥ १७-१८ ॥

सुवर्णपुङ्खैरिषुभिर्नानालिङ्गैः सुतेजनैः ।
अदृश्यमार्जुनिं चक्रुर्निमेषात् ते नृपात्मजाः ॥ १९ ॥

उन राजकुमारोंने सोनेके पंखवाले नाना प्रकारके चिह्नोंसे सुशोभित और पैने बाणोंद्वारा अर्जुनकुमार अभिमन्युको पलक मारते-मारते अदृश्य कर दिया ॥ १९ ॥

ससूताश्वध्वजं तस्य स्यन्दनं तं च मारिष ।
आचितं समपश्याम श्वाविधं शललैरिव ॥ २० ॥

आर्य ! सारथि, घोड़े और ध्वजसहित अभिमन्युके उस रथको मैंने उसी प्रकार बाणोंसे व्याप्त देखा, जैसे साही (सेह) का शरीर काँटोंसे भरा रहता है ॥ २० ॥

स गाढविद्धः क्रुद्धश्च तोत्रैर्गज इवार्दितः ।
गान्धर्वमस्त्रमायच्छद् रथमायां च भारत ॥ २१ ॥

भारत ! बाणोंसे गहरी चोट खाकर अभिमन्यु अङ्कुशसे पीड़ित हुए गजराजकी भाँति कुपित हो उठा । उसने गान्धर्वास्त्रका प्रयोग किया और रथमाया (रथयुद्धकी शिक्षामें निपुणता) प्रकट की ॥ २१ ॥

अर्जुनेन तपस्तप्त्वा गन्धर्वेभ्यो यदाहृतम् ।
तुम्बुरुप्रमुखेभ्यो वै तेनामोहयताहितान् ॥ २२ ॥

अर्जुनने तपस्या करके तुम्बुरु आदि गन्धर्वोंसे जो अस्त्र प्राप्त किया था, उसीसे अभिमन्युने अपने शत्रुओंको मोहित कर दिया ॥ २२ ॥

एकधा शतधा राजन् दृश्यते स्म सहस्रधा ।
अलातचक्रवत् संख्ये क्षिप्रमस्त्राणि दर्शयन् ॥ २३ ॥

राजन् ! वह शीघ्रतापूर्वक अस्त्रसंचालनका कौशल दिखाता हुआ युद्धमें अलातचक्रकी भाँति एक, शत तथा सहस्रों रूपोंमें दृष्टिगोचर होता था ॥ २३ ॥

रथचर्यास्त्रमायाभिर्मोहयित्वा परंतपः ।
बिभेद शतधा राजञ्शरीराणि महीक्षिताम् ॥ २४ ॥

महाराज ! शत्रुओंको संताप देनेवाले अभिमन्युने रथ-चर्या तथा अस्त्रोंकी मायासे मोहित करके राजाओंके शरीरों-के सौ-सौ टुकड़े कर दिये ॥ २४ ॥

प्राणाः प्राणभृतां संख्ये प्रेषितानि शितैः शरैः ।
राजन् प्रापुरमुं लोकं शरीराण्यवनिं ययुः ॥ २५ ॥

राजन् ! उस युद्धस्थलमें उसके पैने बाणोंसे प्रेरित हुए प्राणधारियोंके शरीर तो पृथ्वीपर गिर पड़े, परंतु प्राण परलोकमें जा पहुँचे ॥ २५ ॥

धनूंष्यश्वान् नियन्तॄंश्च ध्वजान् बाहूंश्च साङ्गदान् ।
शिरांसि च शितैर्बाणैस्तेषां चिच्छेद फाल्गुनिः ॥ २६ ॥

अर्जुनकुमारने अपने तीखे बाणोंद्वारा उनके धनुष, घोड़े, सारथि, ध्वज, अङ्गदयुक्त बाहु तथा मस्तक भी काट डाले ॥ २६ ॥

चूतारामो यथा भग्नः पञ्चवर्षः फलोपगः ।
राजपुत्रशतं तद्वत् सौभद्रेण निपातितम् ॥ २७ ॥

जैसे पाँच वर्षोंका लगाया हुआ आमका बाग, जो फल देनेके योग्य हो गया हो, काट दिया जाय, उसी प्रकार सैकड़ों राजकुमारोंको सुभद्राकुमारने वहाँ मार गिराया ॥

क्रुद्धाशीविषसंकाशान् सुकुमारान् सुखोचितान् ।
एकेन निहतान् दृष्ट्वा भीतो दुर्योधनोऽभवत् ॥ २८ ॥

क्रोधमें भरे हुए विषधर सर्पोंके समान भयंकर तथा सुख भोगनेके योग्य उन सुकुमार राजकुमारोंको एकमात्र अभिमन्युद्वारा मारा गया देख दुर्योधन भयभीत हो गया ॥

रथिनः कुञ्जरानश्वान् पदातींश्चापि मज्जतः ।
दृष्ट्वा दुर्योधनः क्षिप्रमुपायात् तममर्षितः ॥ २९ ॥

रथियों, हाथियों, घोड़ों और पैदलोंको भी अभिमन्यु-रूपी समुद्रमें डूबते देख अमर्षमें भरे हुए दुर्योधनने शीघ्र ही उसपर धावा किया ॥ २९ ॥

तयोः क्षणमिवापूर्णः संग्रामः समपद्यत ।
अथाभवत् ते विमुखः पुत्रः शरशताहतः ॥ ३० ॥

उन दोनोंमें एक क्षणतक अधूरा-सा युद्ध हुआ । इतने-हीमें आपका पुत्र दुर्योधन सैकड़ों बाणोंसे आहत होकर वहाँसे भाग गया ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि दुर्योधनपराजये पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें दुर्योधनकी पराजयविषयक पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

अभिमन्युके द्वारा लक्ष्मण तथा क्राथपुत्रका वध और सेनासहित छः महारथियोंका पलायन

धृतराष्ट्र उवाच

यथा वदसि मे सूत एकस्य बहुभिः सह ।
संग्रामं तुमुलं घोरं जयं चैव महात्मनः ॥ १ ॥
अश्रद्धेयमिवाश्चर्यं सौभद्रस्याथ विक्रमम् ।
किं तु नात्यद्भुतं तेषां येषां धर्मो व्यपाश्रयः ॥ २ ॥

धृतराष्ट्र बोले—सूत ! जैसा कि तुम बता रहे हो, अकेले महामना अभिमन्युका बहुत-से योद्धाओंके साथ अत्यन्त भयंकर संग्राम हुआ और उसमें विजय भी उसीकी हुई—सुभद्राकुमारका यह पराक्रम आश्चर्यजनक है । उसपर सहसा विश्वास नहीं होता; परंतु जिन लोगोंका धर्म ही आश्रय है, उनके लिये यह कोई अत्यन्त अद्भुत बात नहीं है ॥ १-२ ॥

दुर्योधने च विमुखे राजपुत्रशते हते ।
सौभद्रे प्रतिपत्तिं कां प्रत्यपद्यन्त मामकाः ॥ ३ ॥

संजय ! जब दुर्योधन भाग गया और सैकड़ों राजकुमार मारे गये, उस समय मेरे पुत्रोंने सुभद्राकुमारका सामना करनेके लिये क्या उपाय किया ? ॥ ३ ॥

संजय उवाच

संशुष्कास्याश्चलन्नेत्राः प्रस्विन्ना लोमहर्षणाः ।
पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ॥ ४ ॥

संजयने कहा—महाराज ! आपके सभी सैनिकोंके मुँह सूख गये थे, आँखें भयसे चञ्चल हो रही थीं, सारे अंग पसीने-पसीने हो रहे थे और रोंगटे खड़े हो गये थे । वे भागनेमें ही उत्साह दिखा रहे थे । शत्रुओंको जीतनेका उत्साह उनके मनमें तनिक भी नहीं था ॥ ४ ॥

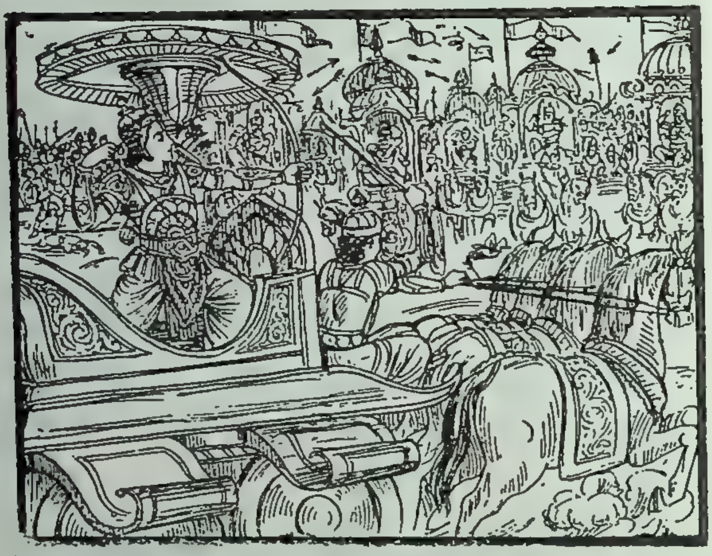
हतान् भ्रातॄन् पितॄन् पुत्रान् सुहृत्सम्बन्धिबान्धवान् ।
उत्सृज्योत्सृज्य संजग्मुस्त्वरयन्तो हयद्विपान् ॥ ५ ॥

वे युद्धमें मारे गये भाइयों, पितरों, पुत्रों, सुहृदों, सम्बन्धियों तथा बन्धु-बान्धवोंको छोड़-छोड़कर अपने घोड़े

और हाथियोंको उतावलीके साथ हाँकते हुए भाग रहे थे ॥

तान् प्रभग्नांस्तथा दृष्ट्वा द्रोणो द्रौणिर्बृहद्बलः।
कृपो दुर्योधनः कर्णः कृतवर्माथ सौबलः ॥ ६ ॥
अभ्यधावन् सुसंक्रुद्धाः सौभद्रमपराजितम्।
ते तु पौत्रेण ते राजन् प्रायशो विमुखीकृताः ॥ ७ ॥

राजन्! उन सबको भागते देख द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, बृहद्बल, कृपाचार्य, दुर्योधन, कर्ण, कृतवर्मा और शकुनि—



ये सब अत्यन्त क्रोधमें भरकर अपराजित वीर अभिमन्युपर टूट पड़े; परंतु आपके उस पौत्र अभिमन्युने उन सबको प्रायः युद्धसे भगा दिया ॥ ६-७ ॥

एकस्तु सुखसंवृद्धो बाल्याद् दर्पाच्च निर्भयः।
इष्वस्त्रविन्महातेजा लक्ष्मणोऽऽर्जुनिमभ्ययात् ॥ ८ ॥

उस समय सुखमें पला हुआ, धनुर्वेदका ज्ञाता, एकमात्र महातेजस्वी लक्ष्मण अपने बालस्वभाव तथा अभिमानके कारण निर्भय हो अभिमन्युके सामने आ गया ॥ ८ ॥

तमन्वगेवास्य पिता पुत्रगृद्धी न्यवर्तत।
अनुदुर्योधनं चान्ये न्यवर्तन्त महारथाः ॥ ९ ॥

पुत्रकी रक्षा चाहनेवाला पिता दुर्योधन भी उसीके साथ-साथ लौट पड़ा। फिर दुर्योधनके पीछे दूसरे महारथी लौट आये ॥ ९ ॥

तं तेऽभिषिषिचुर्बाणैर्मेघा गिरिमिवाम्बुभिः।
स तु तान् प्रममाथैको विष्वग्वातो यथाम्बुदान् ॥ १० ॥

जैसे बादल किसी पर्वतको अपने जलकी धाराओंसे सींचते हैं, उसी प्रकार वे महारथी अभिमन्युपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। जैसे चारों ओरसे बहनेवाली हवा (चौवाई) बादलोंको उड़ा देती है, उसी प्रकार अकेले अभिमन्युने उन सबको मथ डाला ॥ १० ॥

पौत्रं तव च दुर्धर्षं लक्ष्मणं प्रियदर्शनम्।
पितुः समीपे तिष्ठन्तं शूरमुद्यतकार्मुकम् ॥ ११ ॥
अत्यन्तसुखसंवृद्धं धनेश्वरसुतोपमम्।
आससाद रणे कार्ष्णिर्मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ १२ ॥

राजन्! आपका प्रियदर्शन पौत्र लक्ष्मण बड़ा दुर्धर्ष वीर था। वह धनुष उठाये अपने पिताके ही पास खड़ा था। अत्यन्त सुखमें पला हुआ वह वीर कुबेरके पुत्रके समान जान पड़ता था। जैसे मतवाला हाथी किसी मदोन्मत्त गजराजसे भिड़ जाय, उसी प्रकार अर्जुनकुमारने लक्ष्मणपर आक्रमण किया ॥ ११-१२ ॥

लक्ष्मणेन तु संगम्य सौभद्रः परवीरहा।
शरैः सुनिशितैस्तीक्ष्णैर्बाह्वोरुरसि चार्पितः ॥ १३ ॥

लक्ष्मणसे भिड़नेपर उसके द्वारा शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले सुभद्राकुमारकी भुजाओं और छातीमें अत्यन्त तीखे बाणोंद्वारा प्रहार किया गया ॥ १३ ॥

संक्रुद्धो वै महाराज दण्डाहत इवोरगः।
पौत्रस्तव महाराज तव पौत्रमभाषत ॥ १४ ॥

महाराज! उस प्रहारसे लाठीकी चोट खाये हुए सर्पके समान अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए आपके पौत्र अभिमन्युने आपके दूसरे पौत्र लक्ष्मणसे कहा—॥ १४ ॥

सुदृष्टः क्रियतां लोको ह्यमुं लोकं गमिष्यसि।
पश्यतां बान्धवानां त्वां नयामि यमसादनम् ॥ १५ ॥

'लक्ष्मण! इस संसारको अच्छी तरह देख लो। अब शीघ्र ही परलोककी यात्रा करोगे। इन बान्धव-जनोंके देखते-देखते मैं तुम्हें यमलोक पहुँचाये देता हूँ' ॥ १५ ॥

एवमुक्त्वा ततो भल्लं सौभद्रः परवीरहा।
उद्बबर्ह महाबाहुर्निर्मुक्तोरगसंनिभम् ॥ १६ ॥

ऐसा कहकर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले महाबाहु सुभद्राकुमारने केंचुलसे निकले हुए सर्पके समान एक भल्लको तरकससे निकाला ॥ १६ ॥

स तस्य भुजनिर्मुक्तो लक्ष्मणस्य सुदर्शनम्।
सुनसं सुभ्रु केशान्तं शिरोऽहार्षीत् सकुण्डलम् ॥ १७ ॥

अभिमन्युके हाथोंसे छूटे हुए उस भल्लने लक्ष्मणके देखनेमें सुन्दर, सुघड़ नासिका, मनोहर भौंह, सुन्दर केशान्तभाग और रुचिर कुण्डलोंसे युक्त मस्तकको धड़से अलग कर दिया ॥

लक्ष्मणं निहतं दृष्ट्वा हाहेत्युच्चुकुशुर्जनाः।
ततो दुर्योधनः क्रुद्धः प्रिये पुत्रे निपातिते ॥ १८ ॥
हतैनमिति चुक्रोश क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः।

लक्ष्मणको मारा गया देख सब लोग जोर-जोरसे हाहाकार करने लगे। अपने प्यारे पुत्रके मारे जानेपर क्षत्रियशिरोमणि दुर्योधन कुपित हो उठा और समस्त क्षत्रियोंसे बोला—'अहो! इस अभिमन्युको मार डालो' ॥ १८½ ॥

ततो द्रोणः कृपः कर्णो द्रोणपुत्रो बृहद्बलः ॥ १९ ॥
कृतवर्मा च हार्दिक्यः षड् रथाः पर्यवारयन्।

तब द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, बृहद्बल

और हृदिकपुत्र कृतवर्मा—इन छः महारथियोंने अभिमन्युको घेर लिया ॥ १९½ ॥

तांस्तु विद्ध्वा शितैर्बाणैर्विमुखीकृत्य चार्जुनिः ॥२०॥
वेगेनाभ्यपतत् क्रुद्धः सैन्धवस्य महद् बलम् ।

यह देख अर्जुनकुमारने अपने पैने बाणोंद्वारा उन सबको घायल करके भगा दिया और क्रोधमें भरकर बड़े वेगसे जयद्रथकी विशाल सेनापर धावा किया ॥ २०½ ॥

आवव्रुस्तस्य पन्थानं गजानीकेन दंशिताः ॥ २१ ॥
कलिङ्गाश्च निषादाश्च क्राथपुत्रश्च वीर्यवान् ।

उस समय कलिङ्गदेशीय सैनिक, निषादगण तथा पराक्रमी क्राथपुत्र—इन सबने कवच धारण करके गजसेनाके द्वारा अभिमन्युका रास्ता रोक दिया ॥ २१½ ॥

तत् प्रसक्तमिवात्यर्थं युद्धमासीद् विशाम्पते ॥ २२ ॥
ततस्तत् कुञ्जरानीकं व्यधमद् धृष्टमार्जुनिः ।
यथा वायुर्नित्यगतिर्जलदाञ्शतशोऽम्बरे ॥ २३ ॥

प्रजानाथ ! तब वहाँ अत्यन्त निकटसे घोर युद्ध आरम्भ हो गया । अर्जुनकुमारने पैने बाणोंद्वारा उस धृष्ट गजसेनाको उसी प्रकार नष्ट कर दिया, जैसे सदागति वायु आकाशमें सैकड़ों मेघखण्डोंको छिन्न-भिन्न कर देती है ॥ २२-२३ ॥

ततः क्राथः शरव्रातैरार्जुनिं समवाकिरत् ।
अथेतरे संनिवृत्ताः पुनर्द्रोणमुखा रथाः ॥ २४ ॥

तदनन्तर क्राथने अर्जुनकुमार अभिमन्युपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी । इतनेहीमें द्रोण आदि दूसरे महारथी भी पुनः लौट आये ॥ २४ ॥

परमास्त्राणि धुन्वानाः सौभद्रमभिदुद्रुवुः ।
तान् निवार्यार्जुनिर्बाणैः क्राथपुत्रमथार्दयत् ॥ २५ ॥

उन सबने अपने उत्तम अस्त्रोंका प्रयोग करते हुए सुभद्राकुमारपर आक्रमण किया । अभिमन्युने अपने बाणोंद्वारा उन सबका निवारण करके क्राथपुत्रको अधिक पीड़ा दी॥

शरौघेणाप्रमेयेण त्वरमाणो जिघांसया ।
सधनुर्बाणकेयूरौ बाहू समुकुटं शिरः ॥ २६ ॥
सच्छत्रध्वजयन्तारं रथं चाश्वान् न्यपातयत् ।

फिर उसने असंख्य बाणसमूहोंद्वारा क्राथपुत्रको मार डालनेकी इच्छासे जल्दी करते हुए उसकी धनुष-बाणों और केयूरसहित दोनों भुजाओं, मुकुटमण्डित मस्तक, छत्र, ध्वज और सारथिसहित रथ तथा घोड़ोंको भी मार गिराया ॥



कुलशीलश्रुतिबलैः कीर्त्या चास्त्रबलेन च ।
युक्ते तस्मिन् हते वीराः प्रायशो विमुखाऽभवन् ॥२७॥

कुल, शील, शास्त्रज्ञान, बल, कीर्ति तथा अस्त्र-बलसे सम्पन्न उस वीर क्राथपुत्रके मारे जानेपर आपकी सेनाके प्रायः सभी शूरवीर सैनिक युद्ध छोड़कर भाग गये ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि लक्ष्मणवधे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें लक्ष्मणवधविषयक छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

अभिमन्युका पराक्रम, छः महारथियोंके साथ घोर युद्ध और उसके द्वारा वृन्दारक तथा दश हजार अन्य राजाओंके सहित कोसलनरेश बृहद्बलका वध

धृतराष्ट्र उवाच

तथा प्रविष्टं तरुणं सौभद्रमपराजितम् ।
कुलानुरूपं कुर्वाणं संग्रामेष्वपलायिनम् ॥ १ ॥
आजानेयैः सुबलिभिर्यान्तमश्वैस्त्रिहायनैः ।
प्लवमानमिवाकाशे के शूराः समवारयन् ॥ २ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! कभी पराजित न होनेवाला तथा युद्धमें पीठ न दिखानेवाला तरुण, सुभद्राकुमार अभिमन्यु जब इस प्रकार जयद्रथकी सेनामें प्रवेश करके अपने कुलके अनुरूप पराक्रम प्रकट कर रहा था और तीन वर्षकी अवस्थावाले अच्छी जातिके बलवान् घोड़ोंद्वारा मानो आकाशमें तैरता हुआ आक्रमण करता था, उस समय किन शूरवीरोंने उसे रोका था ? ॥ १-२ ॥

संजय उवाच

अभिमन्युः प्रविश्यैतांस्तावकान् निशितैः शरैः ।
अकरोत् पार्थिवान् सर्वान् विमुखान् पाण्डुनन्दनः ३

संजयने कहा—राजन् ! पाण्डुकुलनन्दन अभिमन्युने उस सेनामें प्रविष्ट होकर आपके इन सभी राजाओंको अपने तीखे बाणोंद्वारा युद्धसे विमुख कर दिया ॥ ३ ॥

तं तु द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणिश्च स बृहद्बलः ।
कृतवर्मा च हार्दिक्यः षड् रथाः पर्यवारयन् ॥ ४ ॥

तब द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, बृहद्बल और हृदिकपुत्र कृतवर्मा—इन छः महारथियोंने उसे चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४ ॥

दृष्ट्वा तु सैन्धवे भारमतिमात्रं समाहितम् ।
सैन्यं तव महाराज युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ५ ॥

महाराज ! सिंधुराज जयद्रथपर बहुत बड़ा भार आया देख आपकी सेनाने राजा युधिष्ठिरपर धावा किया ॥ ५ ॥

सौभद्रमितरे वीरमभ्यवर्षञ्शराम्बुभिः ।
तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महाबलाः ॥ ६ ॥

तथा कुछ अन्य महाबली योद्धाओंने अपने चार हाथके धनुष खींचते हुए वहाँ सुभद्राकुमार वीर अभिमन्युपर बाणरूपी जलकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ ६ ॥

तांस्तु सर्वान् महेष्वासान् सर्वविद्यासु निष्ठितान् ।
व्यष्टम्भयद् रणे बाणैः सौभद्रः परवीरहा ॥ ७ ॥

परंतु शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले अभिमन्युने सम्पूर्ण विद्याओंमें प्रवीण उन समस्त महाधनुर्धरोंको रणक्षेत्रमें अपने बाणोंद्वारा स्तब्ध कर दिया ॥ ७ ॥

द्रोणं पञ्चाशताविध्यद् विंशत्या च बृहद्बलम् ।
अशीत्या कृतवर्माणं कृपं षष्ट्या शिलीमुखैः ॥ ८ ॥
रुक्मपुङ्खैर्महावेगैराकर्णसमचोदितैः ।
अविध्यद् दशभिर्बाणैरश्वत्थामानमार्जुनिः ॥ ९ ॥

अर्जुनकुमार अभिमन्युने द्रोणको पचास, बृहद्बलको बीस, कृतवर्माको असी, कृपाचार्यको साठ और अश्वत्थामाको कानतक खींचकर छोड़े हुए स्वर्णमय पंखयुक्त, महावेगशाली दस बाणोंद्वारा घायल कर दिया ॥ ८-९ ॥

स कर्णं कर्णिना कर्णे पीतेन च शितेन च ।
फाल्गुनिर्द्विषतां मध्ये विव्याध परमेषुणा ॥ १० ॥

अर्जुनकुमारने शत्रुओंके मध्यमें खड़े हुए कर्णके कानमें पानीदार पैने और उत्तम बाणद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥

पातयित्वा कृपस्याश्वांस्तथोभौ पार्ष्णिसारथी ।
अथैनं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ॥ ११ ॥

कृपाचार्यके चारों घोड़ों तथा उनके दो पार्श्वरक्षकोंको धराशायी करके उनकी छातीमें दस बाणोंद्वारा प्रहार किया ॥

ततो वृन्दारकं वीरं कुरूणां कीर्तिवर्धनम् ।
पुत्राणां तव वीराणां पश्यतामवधीद् बली ॥ १२ ॥

तदनन्तर बलवान् अभिमन्युने कुरुकुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले वीर वृन्दारकको आपके वीर पुत्रोंके देखते-देखते मार डाला ॥ १२ ॥

तं द्रौणिः पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ।
वरं वरममित्राणामारुजन्तमभीतवत् ॥ १३ ॥

तब शत्रुदलके प्रधान-प्रधान वीरोंका बेखटके वध करते हुए अभिमन्युको अश्वत्थामाने पचीस बाण मारे ॥ १३ ॥

स तु बाणैः शितैस्तूर्णं प्रत्यविध्यत मारिष ।
पश्यतां धार्तराष्ट्राणामश्वत्थामानमार्जुनिः ॥ १४ ॥

आर्य ! अर्जुनकुमारने भी आपके पुत्रोंके देखते-देखते तुरंत ही अश्वत्थामाको पैने बाणोंद्वारा बींध डाला ॥ १४ ॥

षष्ट्या शराणां तं द्रौणिस्तिग्मधारैः सुतेजनैः ।
उग्रैर्नाकम्पयद् विद्ध्वा मैनाकमिव पर्वतम् ॥ १५ ॥

तब द्रोणपुत्रने तीखी धारवाले तेज और भयंकर साठ बाणोंद्वारा अभिमन्युको बींध डाला; परंतु बींधकर भी वह मैनाक पर्वतके समान स्थित अभिमन्युको कम्पित न कर सका ॥

स तु द्रौणिं त्रिसप्तत्या हेमपुङ्खैरजिह्मगैः ।
प्रत्यविध्यन्महातेजा बलवानपकारिणम् ॥ १६ ॥

महातेजस्वी बलवान् अभिमन्युने सुवर्णमय पंखसे युक्त तिहत्तर बाणोंद्वारा अपने अपकारी अश्वत्थामाको पुनः घायल कर दिया ॥ १६ ॥

तस्मिन् द्रोणो बाणशतं पुत्रगृद्धी न्यपातयत् ।
अश्वत्थामा तथाष्टौ च परीप्सन् पितरं रणे ॥ १७ ॥

तब अपने पुत्रके प्रति स्नेह रखनेवाले द्रोणाचार्यने अभिमन्युको सौ बाण मारे । साथ ही अश्वत्थामाने भी अपने पिताकी रक्षा करते हुए रणक्षेत्रमें उसपर आठ बाण चलाये ॥

कर्णो द्वाविंशतिं भल्लान् कृतवर्मा च विंशतिम् ।
बृहद्बलस्तु पञ्चाशत् कृपः शारद्वतो दश ॥ १८ ॥

तत्पश्चात् कर्णने बाईस, कृतवर्माने बीस, बृहद्बलने पचास तथा शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्यने अभिमन्युको दस भल्ल मारे ॥

तांस्तु प्रत्यवधीत् सर्वान् दशभिर्दशभिः शरैः ।
तैरर्द्यमानः सौभद्रः सर्वतो निशितैः शरैः ॥ १९ ॥

उन सबके चलाये हुए तीखे बाणोंद्वारा सब ओरसे पीड़ित हुए सुभद्राकुमारने उन सभीको दस-दस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ १९ ॥

तं कोसलानामधिपः कर्णिनाताडयद्धृदि ।
स तस्याश्वान् ध्वजं चापं सूतं चापातयत् क्षितौ ॥ २० ॥

तत्पश्चात् कोसलनरेश बृहद्बलने एक बाणद्वारा अभिमन्युकी छातीमें चोट पहुँचायी । यह देख अभिमन्युने उनके चारों घोड़ों तथा ध्वज, धनुष एवं सारथिको भी पृथ्वीपर मार गिराया ॥ २० ॥

अथ कोसलराजस्तु विरथः खड्गचर्मभृत् ।
इयेष फाल्गुनेः कायाच्छिरो हर्तुं सकुण्डलम् ॥ २१ ॥

रथहीन होनेपर कोसलनरेशने हाथमें ढाल और तलवार ले ली तथा अभिमन्युके शरीरसे उसके कुण्डलयुक्त

मस्तकको काट लेनेका विचार किया ॥ २१ ॥

स कोसलानामधिपं राजपुत्रं बृहद्बलम् ।
हृदि विव्याध बाणेन स भिन्नहृदयोऽपतत् ॥ २२ ॥

इतनेहीमें अभिमन्युने एक बाणद्वारा कोसलनरेश राजपुत्र बृहद्बलके हृदयमें गहरी चोट पहुँचायी। इससे उनका वक्षःस्थल विदीर्ण हो गया और वे गिर पड़े ॥ २२ ॥

बभञ्ज च सहस्राणि दश राज्ञां महात्मनाम् ।
सृजतामशिवा वाचः खड्गकार्मुकधारिणाम् ॥ २३ ॥

इसके बाद अशुभ वचन बोलनेवाले तथा खड्ग एवं धनुष धारण करनेवाले दस हजार महामनस्वी राजाओंका भी उसने संहार कर डाला ॥ २३ ॥

तथा बृहद्बलं हत्वा सौभद्रो व्यचरद् रणे ।
व्यष्टम्भयन्महेष्वासो योधांस्तव शराम्बुभिः ॥ २४ ॥

इस प्रकार महाधनुर्धर अभिमन्यु बृहद्बलका वध करके आपके योद्धाओंको अपने बाणरूपी जलकी वर्षासे स्तब्ध करता हुआ रणक्षेत्रमें विचरने लगा ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि बृहद्बलवधे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें बृहद्बलवधविषयक सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

अभिमन्युद्वारा अश्वकेतु, भोज और कर्णके मन्त्री आदिका वध एवं छः महारथियोंके साथ घोर युद्ध और उन महारथियोंद्वारा अभिमन्युके धनुष, रथ, ढाल और तलवारका नाश

संजय उवाच

स कर्णं कर्णिना कर्णे पुनर्विव्याध फाल्गुनिः ।
शरैः पञ्चाशता चैनमविध्यत् कोपयन् भृशम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर अर्जुनकुमार अभिमन्युने एक बाणद्वारा कर्णके कानमें पुनः चोट पहुँचायी और उसे क्रोध दिलाते हुए उसने पचास बाण मारकर अत्यन्त घायल कर दिया ॥ १ ॥

प्रतिविव्याध राधेयस्तावद्भिरथ तं पुनः ।
शरैराचितसर्वाङ्गो बह्वशोभत भारत ॥ २ ॥

भरतनन्दन! तब राधापुत्र कर्णने भी अभिमन्युको उतने ही बाणोंसे बींध डाला। उसका सारा अंग बाणोंसे व्याप्त होनेके कारण वह बड़ी शोभा पा रहा था ॥ २ ॥

कर्णं चाप्यकरोत् क्रुद्धो रुधिरोत्पीडवाहिनम् ।
कर्णोऽपि विबभौ शूरः शरैश्छिन्नोऽसृगाप्लुतः॥ ३ ॥
(संध्यानुगतपर्यन्तः शरदीव दिवाकरः ।)

फिर क्रोधमें भरे हुए अभिमन्युने कर्णको भी बाणोंसे क्षत-विक्षत करके उसे रक्तकी धारा बहानेवाला बना दिया। उस समय शूरवीर कर्ण भी बाणोंसे छिन्न-भिन्न और खूनसे लथपथ हो बड़ी शोभा पाने लगा, मानो शरत्कालका सूर्य संध्याके समय सम्पूर्ण रूपसे लाल दिखायी दे रहा हो ॥ ३ ॥

तावुभौ शरचित्राङ्गौ रुधिरेण समुक्षितौ ।
बभूवतुर्महात्मानौ पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ४ ॥

उन दोनोंके शरीर बाणोंसे व्याप्त होनेके कारण विचित्र दिखायी देते थे। दोनों ही रक्तसे भींग गये तथा वे दोनों महामनस्वी वीर फूलोंसे भरे हुए पलाश-वृक्षके समान प्रतीत होते थे ॥ ४ ॥

अथ कर्णस्य सचिवान् षट् शूरांश्चित्रयोधिनः ।
साश्वसूतध्वजरथान् सौभद्रो निजघान ह ॥ ५ ॥

तदनन्तर सुभद्राकुमारने कर्णके विचित्र युद्ध करनेवाले छः शूरवीर मन्त्रियोंको उनके घोड़े, सारथि, रथ तथा ध्वज-सहित मार डाला ॥ ५ ॥

तथेतरान् महेष्वासान् दशभिर्दशभिः शरैः ।
प्रत्यविध्यदसम्भ्रान्तस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ६ ॥

इतना ही नहीं, उसने बिना किसी घबराहटके दस-दस बाणोंद्वारा अन्य महाधनुर्धरोंको भी आहत कर दिया। वह अद्भुत-सी बात थी ॥ ६ ॥

मागधस्य तथा पुत्रं हत्वा षड्भिरजिह्मगैः ।
साश्वं ससूतं तरुणमश्वकेतुमपातयत् ॥ ७ ॥

इसी प्रकार उसने मगधराजके तरुण पुत्र अश्वकेतुको छः बाणोंद्वारा मारकर उसे घोड़ों और सारथिसहित रथसे नीचे गिरा दिया ॥ ७ ॥

मार्तिकावतकं भोजं ततः कुञ्जरकेतनम् ।
क्षुरप्रेण समुन्मथ्य ननाद विसृजञ्शरान् ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् हाथीके चिह्नसे युक्त ध्वजावाले मार्तिकावतक-नरेश भोजको एक क्षुरप्रद्वारा नष्ट करके अभिमन्युने बाणोंकी वर्षा करते हुए सिंहनाद किया ॥ ८ ॥

तस्य दौःशासनिर्विद्ध्वा चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
सूतमेकेन विव्याध दशभिश्चार्जुनात्मजम् ॥ ९ ॥

तब दुःशासनकुमारने चार बाणोंद्वारा अभिमन्युके चारों घोड़ोंको घायल करके एकसे सारथिको और दस बाणोंद्वारा स्वयं अभिमन्युको बींध डाला ॥ ९ ॥

ततो दौःशासनिं कार्ष्णिर्विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः।
संरम्भाद् रक्तनयनो वाक्यमुच्चैरथाब्रवीत् ॥ १० ॥

यह देख अर्जुनकुमारने क्रोधसे लाल आँखें करके

सात बाणोंद्वारा दुःशासनपुत्रको बींध डाला और उच्च स्वरसे यह बात कही—॥ १० ॥

पिता तवाहवं त्यक्त्वा गतः कापुरुषो यथा।
दिष्ट्या त्वमपि जानीषे योद्धुं न त्वद्य मोक्ष्यसे ॥ ११ ॥

'अरे ! तेरा पिता कायरकी भाँति युद्ध छोड़कर भाग गया है। सौभाग्यकी बात है कि तू भी युद्ध करना जानता है; किंतु आज तू जीवित नहीं छूट सकेगा' ॥ ११ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं कर्मारपरिमार्जितम्।
नाराचं विससर्जास्मै तं द्रौणिस्त्रिभिराच्छिनत् ॥ १२ ॥

यह वचन कहकर अभिमन्युने कारीगरके माँजे हुए एक नाराचको दुःशासनपुत्रपर चलाया; परंतु अश्वत्थामाने तीन बाण मारकर उसे बीचमें ही काट दिया ॥ १२ ॥

तस्यार्जुनिर्ध्वजं छित्त्वा शल्यं त्रिभिरताडयत्।
तं शल्यो नवभिर्बाणैर्गार्ध्रपत्रैरताडयत् ॥ १३ ॥
हृद्यसम्भ्रान्तवद् राजंस्तदद्भुतमिवाभवत्।

तब अर्जुनकुमारने अश्वत्थामाका ध्वज काटकर शल्यको तीन बाण मारे। राजन् ! शल्यने भी मनमें तनिक भी सम्भ्रम या घबराहटका अनुभव न करते हुए-से गीधके पंखसे युक्त नौ बाणोंद्वारा अभिमन्युको आहत कर दिया। यह एक अद्भुत-सी बात हुई ॥ १३½ ॥

तस्यार्जुनिर्ध्वजं छित्त्वा हत्वोभौ पार्ष्णिसारथी ॥ १४ ॥
तं विव्याधायसैः षड्भिः सोपाक्रामद् रथान्तरम्।

उस समय अभिमन्युने शल्यके ध्वजको काटकर उनके दोनों पार्श्वरक्षकोंको भी मार डाला और उनको भी लोहेके बने हुए छः बाणोंसे बींध दिया; फिर तो शल्य भागकर दूसरे रथपर चले गये ॥ १४½ ॥

शत्रुंजयं चन्द्रकेतुं मेघवेगं सुवर्चसम् ॥ १५ ॥
सूर्यभासं च पञ्चैतान् हत्वा विव्याध सौबलम्।
तं सौबलस्त्रिभिर्विद्ध्वा दुर्योधनमथाब्रवीत् ॥ १६ ॥

तत्पश्चात् शत्रुंजय, चन्द्रकेतु, मेघवेग, सुवर्चा और सूर्यभास—इन पाँच वीरोंको मारकर अभिमन्युने सुबलपुत्र शकुनिको भी घायल कर दिया। तब शकुनिने भी तीन बाणोंसे अभिमन्युको घायल करके दुर्योधनसे इस प्रकार कहा—॥

सर्व एनं विमथ्नीमः पुरैकैकं हिनस्ति नः।
अथाब्रवीत् पुनर्द्रोणं कर्णो वैकर्तनो रणे ॥ १७ ॥

'राजन् ! यह एक-एकके साथ युद्ध करके हमें मारे, इसके पहले ही हम सब लोग मिलकर इस अभिमन्युको मथ डालें।' तदनन्तर विकर्तनपुत्र कर्णने रणक्षेत्रमें पुनः द्रोणाचार्यसे पूछा—॥ १७ ॥

पुरा सर्वान् प्रमथ्नाति ब्रूह्यस्य वधमाशु नः।
ततो द्रोणो महेष्वासः सर्वांस्तान् प्रत्यभाषत ॥ १८ ॥

'आचार्य ! अभिमन्यु हमलोगोंको मार डाले' इसके पहले ही हमें शीघ्र यह बताइये कि इसका वध किस प्रकार होगा?' तब महाधनुर्धर द्रोणाचार्यने उन सबसे कहा—॥ १८ ॥

अस्ति वास्यान्तरं किंचित् कुमारस्याथ पश्यत।
अण्वप्यस्यान्तरं ह्यद्य चरतः सर्वतोदिशम् ॥ १९ ॥

'देखो, क्या इस कुमार अभिमन्युमें कहीं कोई दुर्बलता या छिद्र है ? सम्पूर्ण दिशाओंमें विचरते हुए अभिमन्युमें आज कोई छोटा-सा भी छिद्र हो तो देखो ॥ १९ ॥

शीघ्रतां नरसिंहस्य पाण्डवेयस्य पश्यत।
धनुर्मण्डलमेवास्य रथमार्गेषु दृश्यते ॥ २० ॥
संदधानस्य विशिखाञ्शीघ्रं चैव विमुञ्चतः।

'इस पुरुषसिंह पाण्डवपुत्रकी शीघ्रता तो देखो। शीघ्रतापूर्वक बाणोंका संधान करते और छोड़ते समय रथके मार्गोंमें इसके धनुषका मण्डलमात्र दिखायी देता है ॥ २०½ ॥

आरुजन्नपि मे प्राणान् मोहयन्नपि सायकैः ॥ २१ ॥
प्रहर्षयति मां भूयः सौभद्रः परवीरहा।
अति मां नन्दयत्येष सौभद्रो विचरन् रणे ॥ २२ ॥

'शत्रुवीरोंका संहार करनेवाला सुभद्राकुमार अभिमन्यु यद्यपि अपने बाणोंद्वारा मेरे प्राणोंको अत्यन्त कष्ट दे रहा है, मुझे मूर्छित किये देता है, तथापि बारंबार मेरा हर्ष बढ़ा रहा है। रणक्षेत्रमें विचरता हुआ सुभद्राका यह पुत्र मुझे अत्यन्त आनन्दित कर रहा है ॥ २१-२२ ॥

अन्तरं यस्य संरब्धा न पश्यन्ति महारथाः।
अस्यतो लघुहस्तस्य दिशः सर्वा महेषुभिः ॥ २३ ॥
न विशेषं प्रपश्यामि रणे गाण्डीवधन्वनः।

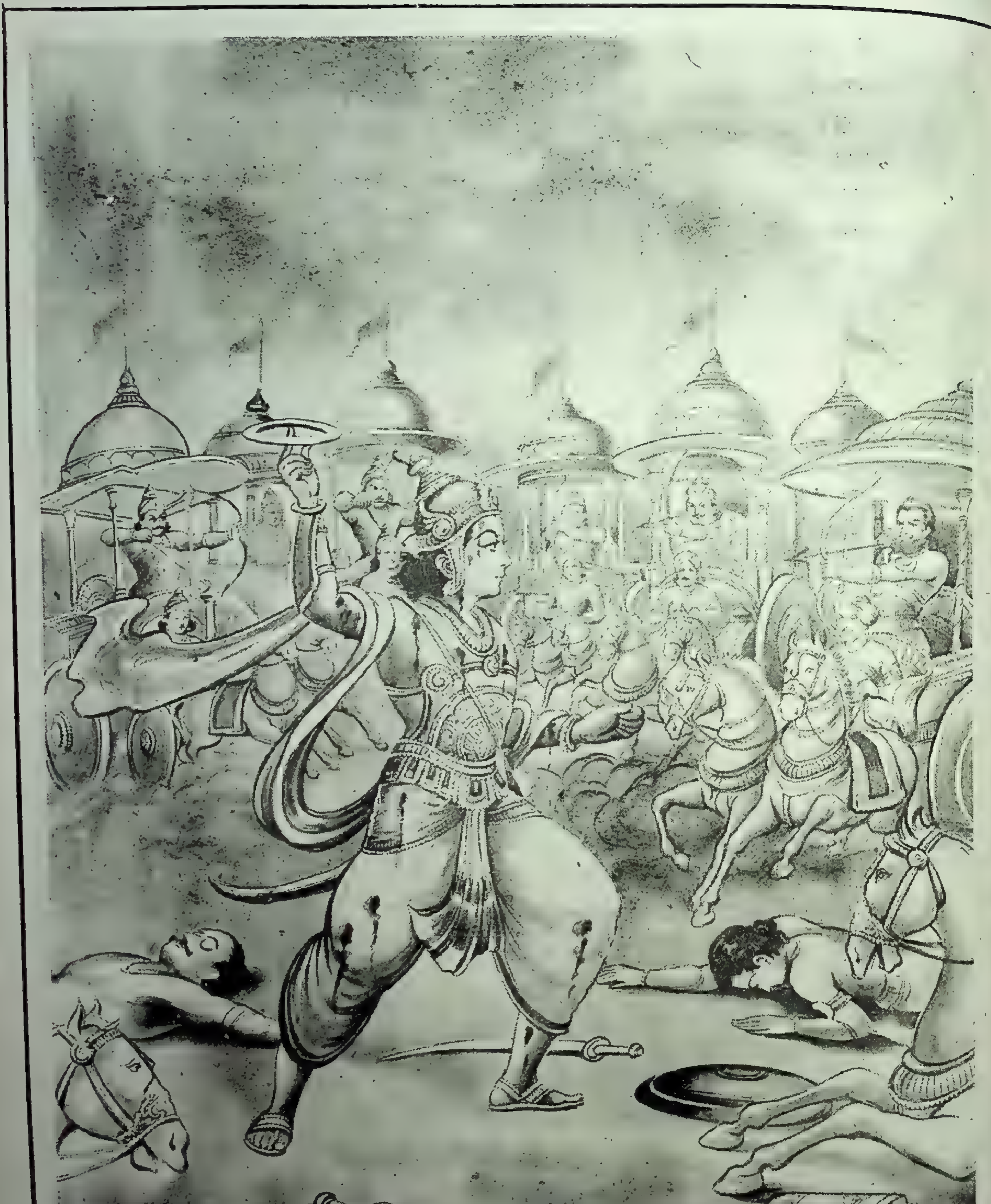
'क्रोधमें भरे हुए महारथी इसके छिद्रको नहीं देख पाते हैं। यह शीघ्रतापूर्वक हाथ चलाता हुआ अपने महान् बाणोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको व्याप्त कर रहा है। मैं युद्धस्थलमें गाण्डीवधारी अर्जुन और इस अभिमन्युमें कोई अन्तर नहीं देख पाता हूँ' ॥ २३½ ॥

अथ कर्णः पुनर्द्रोणमाहार्जुनिशराहतः ॥ २४ ॥
स्थातव्यमिति तिष्ठामि पीड्यमानोऽभिमन्युना।

तदनन्तर कर्णने अभिमन्युके बाणोंसे आहत होकर पुनः द्रोणाचार्यसे कहा—'आचार्य ! मैं अभिमन्युके बाणोंसे पीड़ित होता हुआ भी केवल इसलिये यहाँ खड़ा हूँ कि युद्धके मैदानमें डटे रहना ही क्षत्रियका धर्म है (अन्यथा मैं कभी भाग गया होता) ॥ २४½ ॥

तेजस्विनः कुमारस्य शराः परमदारुणाः ॥ २५ ॥
क्षिण्वन्ति हृदयं मेऽद्य घोराः पावकतेजसः।
तमाचार्योऽब्रवीत् कर्णं शनकैः प्रहसन्निव ॥ २६ ॥

'तेजस्वी कुमार अभिमन्युके ये अत्यन्त दारुण और अग्निके समान तेजस्वी घोर बाण आज मेरे वक्षः-



अभिमन्युपर अनेक महारथियोंद्वारा एक साथ प्रहार

स्थलको विदीर्ण किये देते हैं ।' यह सुनकर द्रोणाचार्य ठहाका मारकर हँसते हुए-से धीरे-धीरे कर्णसे इस प्रकार बोले—॥ २५-२६ ॥

अभेद्यमस्य कवचं युवा चाशुपराक्रमः ।
उपदिष्टा मया चास्य पितुः कवचधारणा ॥ २७ ॥
तामेष निखिलां वेत्ति ध्रुवं परपुरंजयः ।
शक्यं त्वस्य धनुश्छेत्तुं ज्यां च बाणैः समाहितैः ॥ २८ ॥

'कर्ण ! अभिमन्युका कवच अभेद्य है । यह तरुण वीर शीघ्रतापूर्वक पराक्रम प्रकट करनेवाला है । मैंने इसके पिताको कवच धारण करनेकी विधि बतायी है । शत्रुनगरीपर विजय पानेवाला यह वीर कुमार निश्चय ही वह सारी विधि जानता है (अतः इसका कवच तो अभेद्य ही है); परंतु मनोयोगपूर्वक चलाये हुए बाणोंसे इसके धनुष और प्रत्यञ्चाको काटा जा सकता है ॥ २७–२८ ॥

अभीषूंश्च हयांश्चैव तथोभौ पार्ष्णिसारथी ।
एतत् कुरु महेष्वास राधेय यदि शक्यते ॥ २९ ॥

'साथ ही इसके घोड़ोंकी बागडोरोंको, घोड़ोंको तथा दोनों पार्श्वरक्षकोंको भी नष्ट किया जा सकता है । महाधनुर्धर राधापुत्र ! यदि कर सको तो यही करो ॥ २९ ॥

अथैनं विमुखीकृत्य पश्चात् प्रहरणं कुरु ।
सधनुष्को न शक्योऽयमपि जेतुं सुरासुरैः ॥ ३० ॥

'अभिमन्युको युद्धसे विमुख करके पीछे इसके ऊपर प्रहार करो, धनुष लिये रहनेपर तो इसे सम्पूर्ण देवता और असुर भी जीत नहीं सकते ॥ ३० ॥

विरथं विधनुष्कं च कुरुष्वैनं यदीच्छसि ।
तदाचार्यवचः श्रुत्वा कर्णो वैकर्तनस्त्वरन् ॥ ३१ ॥
अस्यतो लघुहस्तस्य पृषत्कैर्धनुराच्छिनत् ।
अश्वानस्यावधीद् भोजो गौतमः पार्ष्णिसारथी ॥ ३२ ॥

'यदि तुम इसे परास्त करना चाहते हो तो इसके रथ और धनुषको नष्ट कर दो ।' आचार्यकी यह बात सुनकर विकर्तनपुत्र कर्णने बड़ी उतावलीके साथ अपने बाणोंद्वारा शीघ्रतापूर्वक हाथ चलाते हुए अस्त्रोंका प्रयोग करनेवाले अभिमन्युके धनुषको काट दिया । भोजवंशी कृतवर्माने उसके घोड़े मार डाले और कृपाचार्यने दोनों पार्श्वरक्षकोंका काम तमाम कर दिया ॥ ३१–३२ ॥

शेषास्तु छिन्नधन्वानं शरवर्षैरवाकिरन् ।
त्वरमाणास्त्वराकाले विरथं षण्महारथाः ॥ ३३ ॥
शरवर्षैरकरुणा बालमेकमवाकिरन् ।

शेष महारथी धनुष कट जानेपर अभिमन्युके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे । इस प्रकार शीघ्रता करनेके अवसरपर शीघ्रता करनेवाले छः निर्दय महारथी एक रथहीन बालकपर बाणोंकी बौछार करने लगे ॥ ३३½ ॥

स च्छिन्नधन्वा विरथः स्वधर्ममनुपालयन् ॥ ३४ ॥
खड्गचर्मधरः श्रीमानुत्पपात विहायसा ।

धनुष कट जाने और रथ नष्ट हो जानेपर तेजस्वी वीर अभिमन्यु अपने धर्मका पालन करते हुए ढाल और तलवार हाथमें लेकर आकाशमें उछल पड़ा ॥ ३४½ ॥

मार्गैः सकौशिकाद्यैश्च लाघवेन बलेन च ॥ ३५ ॥
आर्जुनिर्व्यचरद् व्योम्नि भृशं वै पक्षिराडिव ।

अर्जुनकुमार अभिमन्यु कौशिक आदि मार्गों (पैतरों) द्वारा तथा शीघ्रकारिता और बल-पराक्रमसे पक्षिराज गरुड़की भाँति भूतलकी अपेक्षा आकाशमें ही अधिक विचरण करने लगा ॥

मय्येव निपतत्येष सासिरित्यूर्ध्वदृष्टयः ॥ ३६ ॥
विव्यधुस्तं महेष्वासं समरे छिद्रदर्शिनः ।

समराङ्गणमें छिद्र देखनेवाले योद्धा 'जान पड़ता है यह मेरे ही ऊपर तलवार लिये टूटा पड़ता है' इस आशङ्कासे ऊपरकी ओर दृष्टि करके महाधनुर्धर अभिमन्युको बींधने लगे ॥

तस्य द्रोणोऽच्छिनन्मुष्टौ खड्गं मणिमयत्सरुम् ॥ ३७ ॥
क्षुरप्रेण महातेजास्त्वरमाणः सपत्नजित् ।

उस समय शत्रुओंपर विजय पानेवाले महातेजस्वी द्रोणाचार्यने शीघ्रता करते हुए एक क्षुरप्रके द्वारा अभिमन्युकी मुट्ठीमें स्थित हुए मणिमय मूठसे युक्त खड्गको काट डाला ॥

राधेयो निशितैर्बाणैर्व्यधमच्चर्म चोत्तमम् ॥ ३८ ॥
व्यसिचर्मेषुपूर्णाङ्गः सोऽन्तरिक्षात् पुनः क्षितिम् ।
आस्थितश्चक्रमुद्यम्य द्रोणं क्रुद्धोऽभ्यधावत ॥ ३९ ॥

राधानन्दन कर्णने अपने पैने बाणोंद्वारा उसके उत्तम ढालके टुकड़े-टुकड़े कर डाले । ढाल और तलवारसे वञ्चित हो जानेपर बाणोंसे भरे हुए शरीरवाला अभिमन्यु पुनः आकाशसे पृथ्वीपर उतर आया और चक्र हाथमें ले कुपित हो द्रोणाचार्यकी ओर दौड़ा ॥ ३८–३९ ॥

स चक्ररेणूज्ज्वलशोभिताङ्गो
बभावतीवोज्ज्वलचक्रपाणिः ।
रणेऽभिमन्युः क्षणमास रौद्रः
स वासुदेवानुकृतिं प्रकुर्वन् ॥ ४० ॥

अभिमन्युका शरीर चक्रकी प्रभासे उज्ज्वल तथा धूलराशिसे सुशोभित था । उसके हाथमें तेजोमय उज्ज्वल चक्र प्रकाशित हो रहा था । इससे उसकी बड़ी शोभा हो रही थी । उस रणक्षेत्रमें चक्रधारणद्वारा भगवान् श्रीकृष्णका अनुकरण करता हुआ अभिमन्यु क्षणभरके लिये बड़ा भयंकर प्रतीत होने लगा ॥ ४० ॥

स्रुतरुधिरकृतैकरागवक्त्रो
भ्रुकुटिपुटाकुटिलोऽतिसिंहनादः ।
प्रभुरमितबलो रणेऽभिमन्यु-
र्नृपवरमध्यगतो भृशं व्यराजत् ॥ ४१ ॥

अभिमन्युके वस्त्र उसके शरीरसे बहनेवाले एकमात्र रुधिरके रंगमें रँग गये थे। भौंहें टेढ़ी होनेसे उसका मुख-मण्डल सब ओरसे कुटिल प्रतीत होता था और वह बड़े जोर-जोरसे सिंहनाद कर रहा था। ऐसी अवस्थामें प्रभावशाली अनन्त बलवान् अभिमन्यु उस रणक्षेत्रमें पूर्वोक्त नरेशोंके बीचमें खड़ा होकर अत्यन्त प्रकाशित हो रहा था ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युविरथकरणे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें अभिमन्युको रथहीन करनेसे सम्बन्ध रखनेवाला अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका $\frac{१}{२}$ श्लोक मिलाकर कुल ४१$\frac{१}{२}$ श्लोक हैं

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अभिमन्युका कालिकेय, वसाति और कैकय रथियोंको मार डालना एवं छः महारथियोंके सहयोगसे अभिमन्युका वध और भागती हुई अपनी सेनाको युधिष्ठिरका आश्वासन देना

संजय उवाच

विष्णोः स्वसुर्नन्दकरः स विष्णवायुधभूषणः।
रराजातिरथः संख्ये जनार्दन इवापरः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! भगवान् श्रीकृष्णकी बहिन सुभद्राको आनन्दित करनेवाला तथा श्रीकृष्णके ही समान चक्ररूपी आयुधसे सुशोभित होनेवाला अतिरथी वीर अभिमन्यु उस युद्धस्थलमें दूसरे श्रीकृष्णके समान प्रकाशित हो रहा था ॥ १ ॥

मारुतोद्धूतकेशान्तमुद्यतारिवरायुधम्।
वपुः समीक्ष्य पृथ्वीशा दुःसमीक्ष्यं सुरैरपि ॥ २ ॥
तच्चक्रं भृशमुद्विग्नाः संचिच्छिदुरनेकधा।

हवा उसके केशान्तभागको हिला रही थी। उसने अपने हाथमें चक्रनामक उत्तम आयुध उठा रक्खा था। उस समय उसके शरीर और उस चक्रको—जिसकी ओर दृष्टिपात करना देवताओंके लिये भी अत्यन्त कठिन था—देखकर समस्त भूपालगण अत्यन्त उद्विग्न हो उठे और उन सबने मिलकर उस चक्रके टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥ २$\frac{१}{२}$ ॥

महारथस्ततः कार्ष्णिः संजग्राह महागदाम् ॥ ३ ॥
विधनुःस्यन्दनासिस्तैर्विचक्रश्चारिभिः कृतः।
अभिमन्युर्गदापाणिरश्वत्थामानमार्दयत् ॥ ४ ॥

तब महारथी अभिमन्युने एक विशाल गदा हाथमें ले ली। शत्रुओंने उसे धनुष, रथ, खड्ग और चक्रसे भी वञ्चित कर दिया था। इसलिये गदा हाथमें लिये हुए अभिमन्युने अश्वत्थामापर धावा किया ॥ ३-४ ॥

स गदामुद्यतां दृष्ट्वा ज्वलन्तीमशनीमिव।
अपाक्रामद् रथोपस्थाद् विक्रमांस्त्रीन् नरर्षभः ॥ ५ ॥

प्रज्वलित वज्रके समान उस गदाको ऊपर उठी हुई देख नरश्रेष्ठ अश्वत्थामा अपने रथकी बैठकसे तीन पग पीछे हट गया ॥ ५ ॥



तस्याश्वान् गदया हत्वा तथोभौ पार्ष्णिसारथी।
शराचिताङ्गः सौभद्रः श्वाविद्वत् समदृश्यत ॥ ६ ॥

उस गदासे अश्वत्थामाके चारों घोड़ों तथा दोनों पार्श्वरक्षकोंको मारकर बाणोंसे भरे हुए शरीरवाला सुभद्राकुमार साहीके समान दिखायी देने लगा ॥ ६ ॥

ततः सुबलदायादं कालिकेयमपोथयत्।
जघान चास्यानुचरान् गान्धारान् सप्तसप्ततिम् ॥ ७ ॥

तदनन्तर उसने सुबलपुत्र कालिकेयको मार गिराया और उसके पीछे चलनेवाले सतहत्तर गान्धारोंका भी संहार कर डाला ॥ ७ ॥

पुनश्चैव वसातीयाञ्जघान रथिनो दश।
केकयानां रथान् सप्त हत्वा च दश कुञ्जरान् ॥ ८ ॥
दौःशासनिरथं साश्वं गदया समपोथयत्।

इसके बाद दस वसातीय रथियोंको मार डाला। केकयोंके सात रथों और दस हाथियोंको मारकर दुःशासनकुमारके घोड़ोंसहित रथको भी गदाके आघातसे चूर-चूर कर डाला॥

ततो दौःशासनिः क्रुद्धो गदामुद्यम्य मारिष ॥ ९ ॥
अभिदुद्राव सौभद्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्।

आर्य! इससे दुःशासनपुत्र कुपित हो गदा हाथमें

लेकर अभिमन्युकी ओर दौड़ा और इस प्रकार बोला—'अरे ! खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ ९½ ॥

तावुद्यतगदौ वीरावन्योन्यवधकाङ्क्षिणौ ॥ १० ॥
भ्रातृव्यौ सम्प्रजह्राते पुरेव त्र्यम्बकान्धकौ ।

वे दोनों वीर एक दूसरेके शत्रु थे । अतः गदा हाथमें लेकर एक दूसरेका वध करनेकी इच्छासे परस्पर प्रहार करने लगे । ठीक उसी तरह, जैसे पूर्वकालमें भगवान् शंकर और अन्धकासुर परस्पर गदाका आघात करते थे ॥

तावन्योन्यं गदाग्राभ्यामाहत्य पतितौ क्षितौ ॥ ११ ॥
इन्द्रध्वजाविवोत्सृष्टौ रणमध्ये परंतपौ ।

शत्रुओंको संताप देनेवाले वे दोनों वीर रणक्षेत्रमें गदाके अग्रभागसे एक दूसरेको चोट पहुँचाकर नीचे गिराये हुए दो इन्द्र-ध्वजोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ११½ ॥

दौःशासनिरथोत्थाय कुरूणां कीर्तिवर्धनः ॥ १२ ॥
उत्तिष्ठमानं सौभद्रं गदया मूर्ध्न्यताडयत् ।

तत्पश्चात् कुरुकुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले दुःशासनपुत्रने पहले उठकर उठते हुए सुभद्राकुमारके मस्तकपर गदाका प्रहार किया ॥ १२½ ॥

गदावेगेन महता व्यायामेन च मोहितः ॥ १३ ॥
विचेता न्यपतद् भूमौ सौभद्रः परवीरहा ।
एवं विनिहतो राजन्नेको बहुभिराहवे ॥ १४ ॥

गदाके उस महान् वेग और परिश्रमसे मोहित होकर शत्रुवीरोंका नाश करनेवाला अभिमन्यु अचेत हो पृथ्वीपर गिर पड़ा । राजन् ! इस प्रकार उस युद्धस्थलमें बहुत-से योद्धाओंने मिलकर एकाकी अभिमन्युको मार डाला ।१३-१४।

क्षोभयित्वा चमूं सर्वां नलिनीमिव कुञ्जरः ।
अशोभत हतो वीरो व्याधैर्वनगजो यथा ॥ १५ ॥

जैसे हाथी कभी सरोवरको मथ डालता है, उसी प्रकार सारी सेनाको क्षुब्ध करके व्याधोंके द्वारा जंगली हाथीकी भाँति मारा गया वीर अभिमन्यु वहाँ अद्भुत शोभा पा रहा था॥

तं तथा पतितं शूरं तावकाः पर्यवारयन् ।
दावं दग्ध्वा यथा शान्तं पावकं शिशिरात्यये ॥ १६ ॥
विमृद्य नगशृङ्गाणि संनिवृत्तमिवानिलम् ।
अस्तंगतमिवादित्यं तप्त्वा भारतवाहिनीम् ॥ १७ ॥
उपप्लुतं यथा सोमं संशुष्कमिव सागरम् ।
पूर्णचन्द्राभवदनं काकपक्षवृताक्षिकम् ॥ १८ ॥
तं भूमौ पतितं दृष्ट्वा तावकास्ते महारथाः ।
मुदा परमया युक्ताश्चुक्रुशुः सिंहवन्मुहुः ॥ १९ ॥

इस प्रकार रणभूमिमें गिरे हुए शूरवीर अभिमन्युको आपके सैनिकोंने चारों ओरसे घेर लिया । जैसे ग्रीष्म ऋतुमें जंगलको जलाकर आग बुझ गयी हो, जिस प्रकार वायु वृक्षोंकी शाखाओंको तोड़-फोड़कर शान्त हो रही हो, जैसे संसारको संतप्त करके सूर्य अस्ताचलको चले गये हों, जैसे चन्द्रमापर ग्रहण लग गया हो तथा जैसे समुद्र सूख गया हो, उसी प्रकार समस्त कौरव-सेनाको संतप्त करके पूर्णचन्द्रमाके समान मुखवाला अभिमन्यु पृथ्वीपर पड़ा था; उसके सिरके बड़े-बड़े बालों (काकपक्ष) से उसकी आँखें ढक गयी थीं । उस दशामें उसे देखकर आपके महारथी बड़ी प्रसन्नताके साथ बारंबार सिंहनाद करने लगे ॥ १६–१९ ॥

आसीत् परमको हर्षस्तावकानां विशाम्पते ।
इतरेषां तु वीराणां नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम् ॥ २० ॥

प्रजानाथ ! आपके पुत्रोंको तो बड़ा हर्ष हुआ; परंतु पाण्डव वीरोंके नेत्रोंसे आँसू बहने लगा ॥ २० ॥

अन्तरिक्षे च भूतानि प्राक्रोशन्त विशाम्पते ।
दृष्ट्वा निपतितं वीरं च्युतं चन्द्रमिवाम्बरात् ॥ २१ ॥

महाराज ! उस समय अन्तरिक्षमें खड़े हुए प्राणी आकाशसे गिरे हुए चन्द्रमाके समान वीर अभिमन्युको रणभूमिमें पड़ा देख उच्च स्वरसे आपके महारथियोंकी निन्दा करने लगे ॥ २१ ॥

द्रोणकर्णमुखैः षड्भिर्धार्तराष्ट्रैर्महारथैः ।
एकोऽयं निहतः शेते नैष धर्मो मतो हि नः ॥ २२ ॥

द्रोण और कर्ण आदि छः कौरव महारथियोंके द्वारा असहाय अवस्थामें मारा गया यह एक बालक यहाँ सो रहा है । हमारे मतमें यह धर्म नहीं है ॥ २२ ॥

तस्मिन् विनिहते वीरे बह्वशोभत मेदिनी ।
द्यौर्यथा पूर्णचन्द्रेण नक्षत्रगणमालिनी ॥ २३ ॥

वीर अभिमन्युके मारे जानेपर वह रणभूमि पूर्ण चन्द्रमासे युक्त तथा नक्षत्रमालाओंसे अलंकृत आकाशकी भाँति बड़ी शोभा पा रही थी ॥ २३ ॥

रुक्मपुङ्खैश्च सम्पूर्णा रुधिरौघपरिप्लुता ।
उत्तमाङ्गैश्च शूराणां भ्राजमानैः सकुण्डलैः ॥ २४ ॥
विचित्रैश्च परिस्तोमैः पताकाभिश्च संवृता ।
चामरैश्च कुथाभिश्च प्रविद्धैश्चाम्बरोत्तमैः ॥ २५ ॥
तथाश्वनरनागानामलंकारैश्च सुप्रभैः ।
खड्गैः सुनिशितैः पीतैर्निर्मुक्तैर्भुजगैरिव ॥ २६ ॥
चापैश्च विविधैश्छिन्नैः शक्त्यृष्टिप्रासकम्पनैः ।
विविधैश्चायुधैश्चान्यैः संवृता भूरशोभत ॥ २७ ॥

सुवर्णमय पंखवाले बाणोंसे वहाँकी भूमि भरी हुई थी । रक्तकी धाराओंमें डूबी हुई थी। शूरवीरोंके कुण्डलमण्डित तेजस्वी मस्तकों, हाथियोंके विचित्र झूलों, पताकाओं, चामरों, हाथीकी पीठपर बिछाये जानेवाले कम्बलों, इधर-उधर पड़े हुए उत्तम वस्त्रों, हाथी, घोड़े और मनुष्योंके चमकीले आभूषणों, केंचुलसे निकले हुए सर्पोंके समान पैने और पानीदार खड्गों, भाँति-भाँतिके कटे हुए धनुषों, शक्ति, ऋष्टि, प्रास, कम्पन तथा अन्य नाना प्रकारके आयुधोंसे आच्छादित हुई रणभूमिकी अद्भुत शोभा हो रही थी ॥

वाजिभिश्चापि निर्जीवैः श्वसद्भिः शोणितोक्षितैः।
सारोहैर्विषमा भूमिः सौभद्रेण निपातितैः ॥ २८ ॥

सुभद्राकुमार अभिमन्युके द्वारा मार गिराये हुए रक्त-स्नात निर्जीव और सजीव घोड़ों और घुड़सवारोंके कारण वह भूमि विषम एवं दुर्गम हो गयी थी ॥ २८ ॥

साङ्कुशैः समहामात्रैः सवर्मायुधकेतुभिः ।
पर्वतैरिव विध्वस्तैर्विशिखैर्मथितैर्गजैः ॥ २९ ॥
पृथिव्यामनुकीर्णैश्च व्यश्वसारथियोधिभिः ।
ह्रदैरिव प्रक्षुभितैर्हतनागै रथोत्तमैः ॥ ३० ॥
पदातिसंघैश्च हतैर्विविधायुधभूषणैः ।
भीरूणां त्रासजननी घोररूपाभवन्मही ॥ ३१ ॥

अङ्कुश, महावत, कवच, आयुध और ध्वजाओंसहित बड़े-बड़े गजराज बाणोंद्वारा मथित होकर भहराये हुए पर्वतोंके समान जान पड़ते थे। जिन्होंने बड़े बड़े गजराजोंको मार डाला था, वे श्रेष्ठ रथ घोड़े, सारथि और योद्धाओंसे रहित हो मथे गये सरोवरोंके समान चूर-चूर होकर पृथ्वीपर बिखरे पड़े थे। नाना प्रकारके आयुधों और आभूषणोंसे युक्त पैदल सैनिकोंके समूह भी उस युद्धमें मारे गये थे। इन सबके कारण वहाँकी भूमि अत्यन्त भयानक तथा भीरु पुरुषोंके मनमें भय उत्पन्न करनेवाली हो गयी थी ॥ २९—३१ ॥

तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ चन्द्रार्कसदृशद्युतिम् ।
तावकानां परा प्रीतिः पाण्डूनां चाभवद् व्यथा ॥ ३२ ॥

चन्द्रमा और सूर्यके समान कान्तिमान् अभिमन्युको पृथ्वीपर पड़ा देख आपके पुत्रोंको बड़ी प्रसन्नता हुई और पाण्डवोंकी अन्तरात्मा व्यथित हो उठी ॥ ३२ ॥

अभिमन्यौ हते राजञ्शिशुकेऽप्राप्तयौवने ।
सम्प्राद्रवच्चमूः सर्वा धर्मराजस्य पश्यतः ॥ ३३ ॥

राजन्! जो अभी युवावस्थाको प्राप्त नहीं हुआ था, उस बालक अभिमन्युके मारे जानेपर धर्मराज युधिष्ठिरके देखते-देखते उनकी सारी सेना भागने लगी ॥ ३३ ॥

दीर्यमाणं बलं दृष्ट्वा सौभद्रे विनिपातिते ।
अजातशत्रुस्तान् वीरानिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३४ ॥

सुभद्राकुमारके धराशायी होनेपर अपनी सेनामें भगदड़ पड़ी देख अजातशत्रु युधिष्ठिरने अपने पक्षके उन वीरोंसे यह वचन कहा—॥ ३४ ॥

स्वर्गमेष गतः शूरो यो हतो न पराङ्मुखः ।
संस्तम्भयत मा भैष्ट विजेष्यामो रणे रिपून् ॥ ३५ ॥

'यह शूरवीर अभिमन्यु जो प्राणोंपर खेल गया, परंतु युद्धमें पीठ न दिखा सका, निश्चय ही स्वर्गलोकमें गया है। तुम सब लोग धैर्य धारण करो। भयभीत न होओ। हम लोग रणक्षेत्रमें शत्रुओंको अवश्य जीतेंगे' ॥ ३५ ॥

इत्येवं स महातेजा दुःखितेभ्यो महाद्युतिः ।
धर्मराजो युधां श्रेष्ठो ब्रुवन् दुःखमपानुदत् ॥ ३६ ॥

महातेजस्वी और परम कान्तिमान् योद्धाओंमें श्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिरने अपने दुखी सैनिकोंसे ऐसा कहकर उनके दुःखका निवारण किया ॥ ३६ ॥

युद्धे ह्याशीविषाकारान् राजपुत्रान् रणे रिपून् ।
पूर्वं निहत्य संग्रामे पश्चादार्जुनिरभ्ययात् ॥ ३७ ॥

युद्धमें विषधर सर्पके समान भयंकर शत्रुरूप राजकुमारोंको पहले मारकर पीछेसे अर्जुनकुमार अभिमन्यु स्वर्गलोकमें गया था ॥ ३७ ॥

हत्वा दश सहस्राणि कौसल्यं च महारथम् ।
कृष्णार्जुनसमः कार्ष्णिः शक्रलोकं गतो ध्रुवम् ॥ ३८ ॥

दस हजार रथियों और महारथी कोसलनरेश बृहद्बलको मारकर श्रीकृष्ण और अर्जुनके समान पराक्रमी अभिमन्यु निश्चय ही इन्द्रलोकमें गया है ॥ ३८ ॥

रथाश्वनरमातङ्गान् विनिहत्य सहस्रशः ।
अवितृप्तः स संग्रामादशोच्यः पुण्यकर्मकृत् ।
गतः पुण्यकृतां लोकाञ्शाश्वतान् पुण्यनिर्जितान् ३९

रथ, घोड़े, पैदल और हाथियोंका सहस्रोंकी संख्यामें संहार करके भी वह युद्धसे तृप्त नहीं हुआ था। पुण्यकर्म करनेके कारण अभिमन्यु शोकके योग्य नहीं है। वह पुण्यात्माओंके पुण्योपार्जित सनातन लोकोंमें जा पहुँचा है ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि अभिमन्युवधे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें अभिमन्युवधविषयक उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४९ ॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

तीसरे (तेरहवें) दिनके युद्धकी समाप्तिपर सेनाका शिबिरको प्रस्थान एवं रणभूमिका वर्णन

संजय उवाच

वयं तु प्रवरं हत्वा तेषां तैः शरपीडिताः।
निवेशायाभ्युपायामः सायाह्ने रुधिरोक्षिताः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! हमलोग शत्रुओंके उस प्रमुख वीरका वध करके उनके बाणोंसे पीड़ित हो संध्याके समय शिबिरमें विश्रामके लिये चले आये। उस समय हमलोगोंके शरीर रक्तसे भीग गये थे ॥ १ ॥

निरीक्षमाणास्तु वयं परे चायोधनं शनैः।
अपयाता महाराज ग्लानिं प्राप्ता विचेतसः ॥ २ ॥

महाराज! हम और शत्रुपक्षके लोग युद्धस्थलको देखते हुए धीरे-धीरे वहाँसे हट गये। पाण्डव-दलके लोग अत्यन्त शोकग्रस्त हो अचेत हो रहे थे ॥ २ ॥

ततो निशाया दिवसस्य चाशिवः
शिवारुतैः संधिरवर्तताद्भुतः।
कुशेशयापीडनिभे दिवाकरे
विलम्बमानेऽस्तमुपेत्य पर्वतम् ॥ ३ ॥

उस समय जब सूर्य अस्ताचलपर पहुँचकर ढल रहे थे, कमलनिर्मित मुकुटके समान जान पड़ते थे। दिन और रात्रिकी संधिरूप वह अद्भुत संध्या सियारिनोंके भयंकर शब्दोंसे अमङ्गलमयी प्रतीत हो रही थी ॥ ३ ॥

वरासिशक्त्यृष्टिवरूथचर्मणां
विभूषणानां च समाक्षिपन् प्रभाः।
दिवं च भूमिं च समानयन्निव
प्रियां तनुं भानुरुपैति पावकम् ॥ ४ ॥

सूर्यदेव श्रेष्ठ तलवार, शक्ति, ऋष्टि, वरूथ, ढाल और आभूषणोंकी प्रभाको छीनते तथा आकाश और पृथ्वीको समान अवस्थामें लाते हुए-से अपने प्रिय शरीर—अग्निमें प्रवेश कर रहे थे ॥ ४ ॥

महाभ्रकूटाचलशृङ्गसंनिभै-
र्गजैरनेकैरिव वज्रपातितैः।
स वैजयन्त्यङ्कुशवर्मयन्तृभि-
र्निपातितैर्नष्टगतिश्चिता क्षितिः ॥ ५ ॥

महान् मेघोंके समुदाय तथा पर्वतशिखरोंके समान विशालकाय बहुसंख्यक हाथी इस प्रकार पड़े थे, मानो वज्रसे मार गिराये गये हों। वैजयन्ती पताका, अङ्कुश, कवच और महावतोंसहित धराशायी किये गये उन गजराजोंकी लाशोंसे सारी धरती पट गयी थी, जिसके कारण वहाँ चलने-फिरनेका मार्ग बंद हो गया था ॥ ५ ॥

हतेश्वरैश्चूर्णितपत्त्युपस्करै-
र्हताश्वसूतैर्विपताककेतुभिः।
महारथैर्भूः शुशुभे विचूर्णितैः
पुरैरिवामित्रहतैर्नराधिप ॥ ६ ॥

नरेश्वर! शत्रुओंके द्वारा तहस-नहस किये गये विशाल नगरोंके समान बड़े-बड़े रथ चूर-चूर होकर गिरे थे। उनके घोड़े और सारथि मार दिये गये थे तथा ध्वजा-पताकाएँ नष्ट कर दी गयी थीं। इसी प्रकार उनके सवार मरे पड़े थे, पैदल सैनिक तथा युद्धसम्बन्धी अन्य उपकरण चूर-चूर हो गये थे। इन सबके द्वारा उस रणभूमिकी अद्भुत शोभा हो रही थी ॥

रथाश्ववृन्दैः सह सादिभिर्हतैः
प्रविद्धभाण्डाभरणैः पृथग्विधैः।
निरस्तजिह्वादशनान्त्रलोचनै-
र्धरा बभौ घोरविरूपदर्शना ॥ ७ ॥

रथों और अश्वोंके समूह सवारोंके साथ नष्ट हो गये थे। भिन्न-भिन्न प्रकारके भाण्ड और आभूषण छिन्न-भिन्न होकर पड़े थे। मनुष्यों और पशुओंकी जिह्वा, दाँत, आँत और आँखें बाहर निकल आयी थीं। इन सबसे वहाँकी भूमि अत्यन्त घोर और विकराल दिखायी देती थी ॥ ७ ॥

प्रविद्धवर्माभरणाम्बरायुधा
विपन्नहस्त्यश्वरथानुगा नराः।
महार्हशय्यास्तरणोचितास्तदा
क्षितावनाथा इव शेरते हताः ॥ ८ ॥

योद्धाओंके कवच, आभूषण, वस्त्र और आयुध छिन्न-भिन्न हो गये। हाथी, घोड़े तथा रथोंका अनुसरण करनेवाले पैदल मनुष्य अपने प्राण खोकर पड़े थे। जो राजा और राजकुमार बहुमूल्य शय्याओं तथा बिछौनोंपर शयन करनेके योग्य थे, वे ही उस समय मारे जाकर अनाथकी भाँति पृथ्वीपर पड़े थे ॥

अतीव हृष्टाः श्वशृगालवायसा
बकाः सुपर्णाश्च वृकास्तरक्षवः।
वयांस्यसृक्पान्यथ रक्षसां गणाः
पिशाचसंघाश्च सुदारुणा रणे ॥ ९ ॥

कुत्ते, सियार, कौए, बगले, गरुड़, भेड़िये, तेंदुए, रक्त पीनेवाले पक्षी, राक्षसोंके समुदाय तथा अत्यन्त भयंकर पिशाचगण उस रणभूमिमें बहुत प्रसन्न हो रहे थे ॥ ९ ॥

त्वचो विनिर्भिद्य पिबन् वसामसृक्
तथैव मज्जाः पिशितानि चाश्नुवन्।
वपां विलुम्पन्ति हसन्ति गान्ति च
प्रकर्षमाणाः कुणपान्यनेकशः ॥ १० ॥

वे मृतकोंकी त्वचा विदीर्ण करके उनके वसा तथा रक्तको पी रहे थे, मज्जा और मांस खा रहे थे, चर्बियोंको काटकर चबा लेते थे तथा बहुत-से मृतकोंको इधर-उधर खींचते हुए वे हँसते और गीत गाते थे ॥ १० ॥

शरीरसंघातवहा ह्यसृग्जला
रथोडुपा कुञ्जरशैलसङ्कटा ।
मनुष्यशीर्षोपलमांसकर्दमा
प्रविद्धनानाविधशस्त्रमालिनी ॥ ११ ॥
भयावहा वैतरणीव दुस्तरा
प्रवर्तिता योधवरैस्तदा नदी ।
उवाह मध्येन रणाजिरे भृशं
भयावहा जीवमृतप्रवाहिनी ॥ १२ ॥

उस समय श्रेष्ठ योद्धाओंने रणभूमिमें रक्तकी नदी बहा दी, जो वैतरणीके समान दुष्कर एवं भयंकर प्रतीत होती थी। उसमें जलकी जगह रक्तकी ही धारा बहती थी। ढेर-के-ढेर शरीर उसमें बह रहे थे। उसमें तैरते हुए रथ नावके समान जान पड़ते थे। हाथियोंके शरीर वहाँ पर्वतकी चट्टानों-के समान व्याप्त हो रहे थे। मनुष्योंकी खोपड़ियाँ प्रस्तर-खण्डोंके समान और मांस कीचड़के समान जान पड़ते थे। वहाँ टूटे-फूटे पड़े हुए नाना प्रकारके शस्त्रसमूह मालाओंके समान प्रतीत होते थे। वह अत्यन्त भयंकर नदी रणक्षेत्रके मध्यभागमें बहती और मृतकों तथा जीवितोंको भी बहा ले जाती थी ॥ ११–१२ ॥

पिबन्ति चाश्नन्ति च यत्र दुर्दशाः
पिशाचसंघास्तु नदन्ति भैरवाः ।
सुनन्दिताः प्राणभृतां क्षयङ्कराः
समानभक्षाः श्वश्रृगालपक्षिणः ॥ १३ ॥

जिनकी ओर देखना भी कठिन था, ऐसे भयंकर पिशाचसमूह वहाँ खाते-पीते और गर्जना करते थे। समस्त प्राणियोंका विनाश करनेवाले वे पिशाच बहुत ही प्रसन्न थे। कुत्तों, सियारों और पक्षियोंको भी समानरूपसे भोजनसामग्री प्राप्त हुई थी ॥ १३ ॥

तथा तदायोधनमुग्रदर्शनं
निशामुखे पितृपतिराष्ट्रवर्धनम् ।
निरीक्षमाणाः शनकैर्जहुर्नराः
समुत्थिता नृत्तकबन्धसंकुलम् ॥ १४ ॥

प्रदोषकालमें यमराजके राज्यकी वृद्धि करनेवाली वह युद्धभूमि बड़ी भयंकर दिखायी देती थी। वहाँ सब ओर नाचते हुए कबन्ध (धड़) व्याप्त हो रहे थे। यह सब देखते हुए उभय पक्षके योद्धाओंने वहाँसे धीरे-धीरे चलकर उस युद्धस्थलको त्याग दिया ॥ १४ ॥

अपेतविध्वस्तमहार्हभूषणं
निपातितं शक्रसमं महाबलम् ।
रणेऽभिमन्युं ददृशुस्तदा जना
व्यपोढहव्यं सदसीव पावकम् ॥ १५ ॥

उस समय लोगोंने देखा, इन्द्रके समान महाबली अभिमन्यु रणक्षेत्रमें गिरा दिया गया है। उसके बहुमूल्य आभूषण छिन्न-भिन्न होकर शरीरसे दूर जा पड़े हैं और वह यज्ञवेदीपर हविष्यरहित अग्निके समान निस्तेज हो गया है ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि तृतीयदिवसावहारे समरभूमिवर्णने पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें तीसरे दिनके युद्धमें सेनाके शिबिरमें प्रस्थान करते समय समरभूमिका वर्णनविषयक पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

युधिष्ठिरका विलाप

संजय उवाच

हते तस्मिन् महावीर्ये सौभद्रे रथयूथपे ।
विमुक्तरथसंनाहाः सर्वे निक्षिप्तकार्मुकाः ॥ १ ॥
उपोपविष्टा राजानं परिवार्य युधिष्ठिरम् ।
तदेव युद्धं ध्यायन्तः सौभद्रगतमानसाः ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! महापराक्रमी रथयूथपति सुभद्राकुमार अभिमन्युके मारे जानेपर समस्त पाण्डव महारथी रथ और कवचका त्याग कर और धनुषको नीचे डालकर राजा युधिष्ठिरको चारों ओरसे घेरकर उनके पास बैठ गये। उन सबका मन सुभद्राकुमार अभिमन्युमें ही लगा था और वे उसी युद्धका चिन्तन कर रहे थे ॥ १-२ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा विललाप सुदुःखितः ।
अभिमन्यौ हते वीरे भ्रातुः पुत्रे महारथे ॥ ३ ॥

उस समय राजा युधिष्ठिर अपने भाईके वीर पुत्र महारथी अभिमन्युके मारे जानेके कारण अत्यन्त दुखी हो विलाप करने लगे—॥ ३ ॥

(एष जित्वा कृपं शल्यं राजानं च सुयोधनम् ।
द्रोणं द्रौणिं महेष्वासं तथैवान्यान् महारथान् ॥)
द्रोणानीकमसम्बाधं मम प्रियचिकीर्षया ।
(हत्वा शत्रुगणान् वीरानेष शेते निपातितः ।
कृतास्त्रान् युद्धकुशलान् महेष्वासान् महारथान् ॥
कुलशीलगुणैर्युक्ताञ्छूरान् विख्यातपौरुषान् ।

द्रोणेन विहितं व्यूहमभेद्यममरैरपि ॥
अदृष्टपूर्वमस्माभिः चक्रं चक्रायुधप्रियः ।)
भित्त्वा व्यूहं प्रविष्टोऽसौ गोमध्यमिव केसरी ॥ ४ ॥

'अहो ! कृपाचार्य, शल्य, राजा दुर्योधन, द्रोणाचार्य, महाधनुर्धर अश्वत्थामा तथा अन्य महारथियोंको जीतकर, मेरा प्रिय करनेकी इच्छासे द्रोणाचार्यके निर्बाध सैन्यव्यूहको विनष्ट करके वीर शत्रुसमूहोंका संहार करनेके पश्चात् यह पुत्र अभिमन्यु मार गिराया गया और अब रणक्षेत्रमें सो रहा है ! जो अस्त्रविद्याके विद्वान्, युद्धकुशल, कुल-शील और गुणोंसे युक्त, शूरवीर तथा अपने पराक्रमके लिये प्रसिद्ध थे, उन महाधनुर्धर महारथियोंको परास्त करके देवताओंके लिये भी जिसका भेदन करना असम्भव है तथा हमने जिसे पहले कभी देखातक नहीं था, उस द्रोणनिर्मित चक्रव्यूहका भेदन करके चक्रधारी श्रीकृष्णका प्यारा भानजा वह अभिमन्यु उसके भीतर उसी प्रकार प्रवेश कर गया, जैसे सिंह गौओं-के झुंडमें घुस जाता है ॥ ४ ॥

(विक्रीडितं रणे तेन निघ्नता वै परान् वरान् ।)
यस्य शूरा महेष्वासाः प्रत्यनीकगता रणे ।
प्रभग्ना विनिवर्तन्ते कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ॥ ५ ॥

'उसने रणक्षेत्रमें प्रमुख-प्रमुख शत्रुवीरोंका वध करते हुए अद्भुत रणक्रीडा की थी । युद्धमें उसके सामने जानेपर शत्रुपक्षके अस्त्रविद्याविशारद युद्धदुर्मद और महान् धनुर्धर शूरवीर भी हतोत्साह हो भाग खड़े होते थे ॥ ५ ॥

अत्यन्तशत्रुरस्माकं येन दुःशासनः शरैः ।
क्षिप्रं ह्यभिमुखः संख्ये विसंज्ञो विमुखीकृतः ॥ ६ ॥
स तीर्त्वा दुस्तरं वीरो द्रोणानीकमहार्णवम् ।
प्राप्य दौःशासनिं कार्ष्णिः प्राप्तो वैवस्वतक्षयम् ॥ ७ ॥

'जिस वीर अर्जुनकुमारने युद्धस्थलमें हमारे अत्यन्त शत्रु दुःशासनको सामने आनेपर शीघ्र ही अपने बाणोंसे अचेत करके भगा दिया, वही महासागरके समान दुस्तर द्रोण-सेना-को पार करके भी दुःशासनपुत्रके पास जाकर यमलोकमें पहुँच गया ॥ ६-७ ॥

कथं द्रक्ष्यामि कौन्तेयं सौभद्रे निहतेऽर्जुनम् ।
सुभद्रां वा महाभागां प्रियं पुत्रमपश्यतीम् ॥ ८ ॥

'सुभद्राकुमार अभिमन्युके मार दिये जानेपर अब मैं कुन्तीकुमार अर्जुनकी ओर आँख उठाकर कैसे देखूँगा ? अथवा अपने प्रियपुत्रको अब नहीं देख पानेवाली महाभागा सुभद्राके सामने कैसे जाऊँगा ? ॥ ८ ॥

किंस्विद् वयमपेतार्थमश्लिष्टमसमञ्जसम् ।
तावुभौ प्रतिवक्ष्यामो हृषीकेशधनंजयौ ॥ ९ ॥

'हाय ! हमलोग भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंके सामने किस प्रकार यह अनर्थपूर्ण, असंगत और अनुचित वृत्तान्त कह सकेंगे ॥ ९ ॥

अहमेव सुभद्रायाः केशवार्जुनयोरपि ।
प्रियकामो जयाकाङ्क्षी कृतवानिदमप्रियम् ॥ १० ॥

'मैंने ही अपने प्रिय कार्यकी इच्छा, विजयकी अभिलाषा रखकर सुभद्रा, श्रीकृष्ण और अर्जुनका यह अप्रिय कार्य किया है ॥ १० ॥

न लुब्धो बुध्यते दोषाँल्लोभान्मोहात् प्रवर्तते ।
मधुलिप्सुर्हि नापश्यं प्रपातमहमीदृशम् ॥ ११ ॥

'लोभी मनुष्य किसी कार्यके दोषको नहीं समझता । वह लोभ और मोहके वशीभूत होकर उसमें प्रवृत्त हो जाता है । मैंने मधुके समान मधुर लगनेवाले राज्यको पानेकी लालसा रखकर यह नहीं देखा कि इसमें ऐसे भयंकर पतनका भय है ॥ ११ ॥

यो हि भोज्ये पुरस्कार्यो यानेषु शयनेषु च ।
भूषणेषु च सोऽस्माभिर्बालो युधि पुरस्कृतः ॥ १२ ॥

'हाय ! जिस सुकुमार बालकको भोजन और शयन करने, सवारीपर चलने तथा भूषण, वस्त्र पहननेमें आगे रखना चाहिये था, उसे हमलोगोंने युद्धमें आगे कर दिया ॥ १२ ॥

कथं हि बालस्तरुणो युद्धानामविशारदः ।
सदश्व इव सम्बाधे विषमे क्षेममर्हति ॥ १३ ॥

'वह तरुण कुमार अभी बालक था । युद्धकी कलामें पूरा प्रवीण नहीं हुआ था । फिर गहन वनमें फँसे हुए सुन्दर अश्वकी भाँति वह उस विषम संग्राममें कैसे सकुशल रह सकता था ? ॥ १३ ॥

नो चेद्धि वयमप्येनं महीमनु शयीमहि ।
बीभत्सोः कोपदीप्तस्य दग्धाः कृपणचक्षुषा ॥ १४ ॥

'यदि हमलोग अभिमन्युके साथ ही उस रणक्षेत्रमें शयन न कर सके तो अब क्रोधसे उत्तेजित हुए अर्जुनके शोकाकुल नेत्रोंसे हमें अवश्य दग्ध होना पड़ेगा ॥ १४ ॥

अलुब्धो मतिमान् ह्रीमान् क्षमावान् रूपवान् बली ।
वपुष्मान् मानकृद् वीरः प्रियः सत्यपराक्रमः ॥ १५ ॥
यस्य श्लाघन्ति विबुधाः कर्माण्यूर्जितकर्मणः ।
निवातकवचाञ्जघ्ने कालकेयांश्च वीर्यवान् ॥ १६ ॥
महेन्द्रशत्रवो येन हिरण्यपुरवासिनः ।
अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण पौलोमाः सगणा हताः ॥ १७ ॥
परेभ्योऽप्यभयार्थिभ्यो यो ददात्यभयं विभुः ।
तस्यास्माभिर्न शकितस्त्रातुमप्यात्मजो बली ॥ १८ ॥

'जो लोभरहित, बुद्धिमान्, लज्जाशील, क्षमावान्, रूप-वान्, बलवान्, सुन्दर शरीरधारी, दूसरोंको मान देनेवाले, प्रीतिपात्र, वीर तथा सत्यपराक्रमी हैं, जिनके कर्मोंकी देवता-लोग भी प्रशंसा करते हैं, जिनके कर्म सबल एवं महान् हैं,

जिन पराक्रमी वीरने निवातकवचों तथा कालकेय नामक दैत्योंका विनाश किया था, जिन्होंने आँखोंकी पलक मारते-मारते हिरण्यपुरनिवासी इन्द्रशत्रु पौलोम नामक दानवोंका उनके गणोंसहित संहार कर डाला था तथा जो सामर्थ्यशाली अर्जुन अभयकी इच्छा रखनेवाले शत्रुओंको भी अभय-दान देते हैं, उन्हींके बलवान् पुत्रकी भी हमलोग रक्षा नहीं कर सके ॥ १५-१८ ॥

भयं तु सुमहत् प्राप्तं धार्तराष्ट्रान् महाबलान् ।
पार्थः पुत्रवधात् क्रुद्धः कौरवाञ्छोषयिष्यति ॥ १९ ॥

'अहो ! महाबली धृतराष्ट्रपुत्रोंपर बड़ा भारी भय आ पहुँचा है; क्योंकि अपने पुत्रके वधसे कुपित हुए कुन्तीकुमार अर्जुन कौरवोंको सोख लेंगे—उनका मूलोच्छेद कर डालेंगे ॥ १९ ॥

क्षुद्रः क्षुद्रसहायश्च स्वपक्षक्षयमातुरः ।
व्यक्तं दुर्योधनो दृष्ट्वा शोचन् हास्यति जीवितम् ॥ २० ॥

'दुर्योधन नीच है । उसके सहायक भी ओछे स्वभावके हैं, अतः वह निश्चय ही (अर्जुनके हाथों) अपने पक्षका विनाश देखकर शोकसे व्याकुल हो जीवनका परित्याग कर देगा ॥ २० ॥

न मे जयः प्रीतिकरो न राज्यं
न चामरत्वं न सुरैः सलोकता ।
इमं समीक्ष्याप्रतिवीर्यपौरुषं
निपातितं देववरात्मजात्मजम् ॥ २१ ॥

'जिसके बल और पुरुषार्थकी कहीं तुलना नहीं थी, देवेन्द्रकुमार अर्जुनके पुत्र इस अभिमन्युको रणक्षेत्रमें मारा गया देख अब मुझे विजय, राज्य, अमरत्व तथा देवलोककी प्राप्ति भी प्रसन्न नहीं कर सकती' ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि युधिष्ठिरप्रलापे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें युधिष्ठिरप्रलापविषयक इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५१ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ४ श्लोक मिलाकर कुल २५ श्लोक हैं)

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

विलाप करते हुए युधिष्ठिरके पास व्यासजीका आगमन और अकम्पन-नारद-संवादकी प्रस्तावना करते हुए मृत्युकी उत्पत्तिका प्रसंग आरम्भ करना

संजय उवाच

अथैनं विलपन्तं तं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
कृष्णद्वैपायनस्तत्र आजगाम महानृषिः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार विलाप करते हुए कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरके पास वहाँ महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी आये ॥ १ ॥

अर्चयित्वा यथान्यायमुपविष्टं युधिष्ठिरः ।
अब्रवीच्छोकसंतप्तो भ्रातुः पुत्रवधेन च ॥ २ ॥

उस समय युधिष्ठिरने उनकी यथायोग्य पूजा की और जब वे बैठ गये, तब भतीजेके वधसे शोकसंतप्त हो युधिष्ठिर उनसे इस प्रकार बोले—॥ २ ॥

अधर्मयुक्तैर्बहुभिः परिवार्य महारथैः ।
युध्यमानो महेष्वासैः सौभद्रो निहतो रणे ॥ ३ ॥

'मुने ! बहुत-से अधर्मपरायण महाधनुर्धर महारथियोंने चारों ओरसे घेरकर रणक्षेत्रमें युद्ध करते हुए सुभद्राकुमार अभिमन्युको असहायावस्थामें मार डाला है ॥ ३ ॥

बालश्च बालबुद्धिश्च सौभद्रः परवीरहा ।
अनुपायेन संग्रामे युध्यमानो विशेषतः ॥ ४ ॥

'शत्रुवीरोंका संहार करनेवाला अभिमन्यु अभी बालक था; बालोचित बुद्धिसे युक्त था । विशेषतः संग्राममें वह उपयुक्त साधनोंसे रहित होकर युद्ध कर रहा था ॥ ४ ॥

मया प्रोक्तः स संग्रामे द्वारं संजनयस्व नः ।
प्रविष्टेऽभ्यन्तरे तस्मिन् सैन्धवेन निवारिताः ॥ ५ ॥

'मैंने युद्धस्थलमें उससे कहा था कि तुम व्यूहमें हमारे प्रवेशके लिये द्वार बना दो । तब वह द्वार बनाकर भीतर प्रविष्ट हो गया और जब हमलोग उसी द्वारसे व्यूहमें प्रवेश करने लगे, उस समय सिंधुराज जयद्रथने हमें रोक दिया ॥

ननु नाम समं युद्धमेष्टव्यं युद्धजीविभिः ।
इदं चैवासमं युद्धमीदृशं यत् कृतं परैः ॥ ६ ॥

'युद्धजीवी क्षत्रियोंको अपने समान साधनसम्पन्न वीरके साथ युद्ध करनेकी इच्छा करनी चाहिये । शत्रुओंने जो अभिमन्युके साथ इस प्रकार युद्ध किया है, यह कदापि समान नहीं है ॥ ६ ॥

तेनास्मि भृशसंतप्तः शोकबाष्पसमाकुलः ।
शमं नैवाधिगच्छामि चिन्तयानः पुनः पुनः ॥ ७ ॥

'इसीलिये मैं अत्यन्त संतप्त हूँ, शोकाश्रुओंसे मेरे नेत्र भरे हुए हैं । मैं बारंबार चिन्तामग्न होकर शान्ति नहीं पा रहा हूँ' ॥ ७ ॥

संजय उवाच

तं तथा विलपन्तं वै शोकव्याकुलमानसम् ।
उवाच भगवान् व्यासो युधिष्ठिरमिदं वचः ॥ ८ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार शोकसे व्याकुल-

चित्त होकर विलाप करते हुए राजा युधिष्ठिरसे भगवान् वेदव्यासने इस प्रकार कहा ॥ ८ ॥

व्यास उवाच

युधिष्ठिर महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
व्यसनेषु न मुह्यन्ति त्वादृशा भरतर्षभ ॥ ९ ॥

व्यासजी बोले—सम्पूर्ण शास्त्रोंके विशेषज्ञ, परम बुद्धिमान्, भरतकुलभूषण युधिष्ठिर ! तुम्हारे-जैसे पुरुष संकट-के समय मोहित नहीं होते हैं ॥ ९ ॥

स्वर्गमेष गतः शूरः शत्रून् हत्वा बहून् रणे ।
अबालसदृशं कर्म कृत्वा वै पुरुषोत्तमः ॥ १० ॥

यह पुरुषोत्तम अभिमन्यु शूरवीर था । इसने रणक्षेत्रमें अबालोचित पराक्रम करके बहुत-से शत्रुओंको मारकर स्वर्ग-लोककी यात्रा की है ॥ १० ॥

अनतिक्रमणीयो वै विधिरेष युधिष्ठिर ।
देवदानवगन्धर्वान् मृत्युर्हरति भारत ॥ ११ ॥

भरतनन्दन युधिष्ठिर! यह विधाताका विधान है । इसका कोई भी उल्लङ्घन नहीं कर सकता । मृत्यु देवताओं, दानवों तथा गन्धर्वोंके भी प्राण हर लेती है ॥ ११ ॥

युधिष्ठिर उवाच

इमे वै पृथिवीपालाः शेरते पृथिवीतले ।
निहताः पृतनामध्ये मृतसंज्ञा महाबलाः ॥ १२ ॥

युधिष्ठिर बोले—मुने ! ये महाबली भूपालगण सेनाके मध्यमें मारे जाकर 'मृत' नाम धारण करके पृथ्वीपर सो रहे हैं ॥ १२ ॥

नागायुतबलाश्चान्ये वायुवेगबलास्तथा ।
त एते निहताः संख्ये तुल्यरूपा नरैर्नराः ॥ १३ ॥

इनमेंसे कितने ही राजा दस हजार हाथियोंके समान बलवान् थे तथा कितनोंके वेग और बल वायुके समान थे । ये सब मनुष्य एक समान रूपवाले हैं, जो दूसरे मनुष्योंद्वारा युद्धमें मार डाले गये हैं ॥ १३ ॥

नैषां पश्यामि हन्तारं प्राणिनां संयुगे क्वचित् ।
विक्रमेणोपसम्पन्नास्तपोबलसमन्विताः ॥ १४ ॥

इन प्राणशक्तिसम्पन्न वीरोंका युद्धमें कहीं कोई वध करनेवाला मुझे नहीं दिखायी देता था; क्योंकि ये सबके सब पराक्रमसे सम्पन्न और तपोबलसे संयुक्त थे ॥ १४ ॥

जेतव्यमिति चान्योन्यं येषां नित्यं हृदि स्थितम् ।
अथ चेमे हताः प्राज्ञाः शेरते विगतायुषः ॥ १५ ॥

जिनके हृदयमें सदा एक-दूसरेको जीतनेकी अभिलाषा रहती थी, वे ही ये बुद्धिमान् नरेश आयु समाप्त होनेपर युद्ध-में मारे जाकर धरतीपर सो रहे हैं ॥ १५ ॥

मृता इति च शब्दोऽयं वर्तते च ततोऽर्थवत् ।
इमे मृता महीपालाः प्रायशो भीमविक्रमाः ॥ १६ ॥

अतः इनके विषयमें 'मृत' शब्द सार्थक हो रहा है । ये भयंकर पराक्रमी भूमिपाल प्रायः 'मर गये' कहे जाते हैं ॥ १६ ॥

निश्चेष्टा निरभीमानाः शूराः शत्रुवशंगताः ।
राजपुत्राश्च संरब्धा वैश्वानरमुखं गताः ॥ १७ ॥

ये शूरवीर राजकुमार चेष्टा और अभिमानसे रहित हो शत्रुओंके अधीन हो गये थे । वे कुपित होकर बाणोंकी आगमें कूद पड़े थे ॥ १७ ॥

अत्र मे संशयः प्राप्तः कुतः संज्ञा मृता इति ।
कस्य मृत्युः कुतो मृत्युः केन मृत्युरिमाः प्रजाः ॥ १८ ॥
हरत्यमरसंकाश तन्मे ब्रूहि पितामह ।

मुझे संदेह होता है कि इन्हें 'मर गये' ऐसा क्यों कहा जाता है ? मृत्यु किसकी होती है ? किस निमित्तसे होती है ? तथा वह किसलिये इन प्रजाओं (प्राणियों) का अपहरण करती है ? देवतुल्य पितामह ! ये सब बातें आप मुझे बताइये॥

संजय उवाच

तं तथा परिपृच्छन्तं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
आश्वासनमिदं वाक्यमुवाच भगवानृषिः ॥ १९ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार पूछते हुए कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरसे मुनिवर भगवान् व्यासने यह आश्वासन-जनक वचन कहा ॥ १९ ॥

व्यास उवाच

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
अकम्पनस्य कथितं नारदेन पुरा नृप ॥ २० ॥

व्यासजी बोले—नरेश्वर ! जानकार लोग इस विषयमें एक प्राचीन इतिहासका दृष्टान्त दिया करते हैं । वह इतिहास पूर्वकालमें नारदजीने राजा अकम्पनसे कहा था ॥ २० ॥

स चापि राजा राजेन्द्र पुत्रव्यसनमुत्तमम् ।
अप्रसह्यतमं लोके प्राप्तवानिति मे मतिः ॥ २१ ॥

राजेन्द्र ! राजा अकम्पनको भी अपने पुत्रकी मृत्युका बड़ा भारी शोक प्राप्त हुआ था, जो मेरे विचारमें सबसे अधिक असह्य दुःख है ॥ २१ ॥

तदहं सम्प्रवक्ष्यामि मृत्योः प्रभवमुत्तमम् ।
ततस्त्वं मोक्ष्यसे दुःखात् स्नेहबन्धनसंश्रयात् ॥ २२ ॥

इसलिये मैं तुम्हें मृत्युकी उत्पत्तिका उत्तम वृत्तान्त बताऊँगा, उसे सुनकर तुम स्नेह-बन्धनके कारण होनेवाले दुःखसे छूट जाओगे ॥ २२ ॥

समस्तपापराशिघ्नं शृणु कीर्तयतो मम ।
धन्यमाख्यानमायुष्यं शोकघ्नं पुष्टिवर्धनम् ॥ २३ ॥
पवित्रमरिसंघघ्नं मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
यथैव वेदाध्ययनमुपाख्यानमिदं तथा ॥ २४ ॥

यह उपाख्यान समस्त पापराशिका नाश करनेवाला है ।

मैं इसका वर्णन करता हूँ, सुनो । यह धन और आयुको बढ़ानेवाला, शोकनाशक, पुष्टिवर्धक, पवित्र, शत्रुसमूहका निवारक और मङ्गलकारी कार्योंमें सबसे अधिक मङ्गलकारक है । जैसे वेदोंका स्वाध्याय पुण्यदायक होता है, उसी प्रकार यह उपाख्यान भी है ॥ २३-२४ ॥

श्रवणीयं महाराज प्रातर्नित्यं नृपोत्तमैः ।
पुत्रानायुष्मतो राज्यमीहमानैः श्रियं तथा ॥ २५ ॥

महाराज ! दीर्घायु पुत्र, राज्य और धन-सम्पत्ति चाहनेवाले श्रेष्ठ राजाओंको प्रतिदिन प्रातःकाल इस इतिहासका श्रवण करना चाहिये ॥ २५ ॥

पुरा कृतयुगे तात आसीद् राजा ह्यकम्पनः ।
स शत्रुवशमापन्नो मध्ये संग्राममूर्धनि ॥ २६ ॥

तात ! प्राचीनकालकी बात है, सत्ययुगमें अकम्पन नामसे प्रसिद्ध एक राजा थे । वे युद्धमें शत्रुओंके वशमें पड़ गये ॥ २६ ॥

तस्य पुत्रो हरिर्नाम नारायणसमो बले ।
श्रीमान् कृतास्त्रो मेधावी युधि शक्रोपमो बली ॥ २७ ॥

राजाके एक पुत्र था, जिसका नाम था हरि । वह बलमें भगवान् नारायणके समान था । वह अस्त्रविद्यामें पारंगत, मेधावी, श्रीसम्पन्न तथा युद्धमें इन्द्रके तुल्य पराक्रमी था ॥

स शत्रुभिः परिवृतो बहुधा रणमूर्धनि ।
व्यस्यन् बाणसहस्राणि योधेषु च गजेषु च ॥ २८ ॥

वह रणक्षेत्रमें शत्रुओंद्वारा घिर जानेपर शत्रुपक्षके योद्धाओं और गजारोहियोंपर बारंबार सहस्रों बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ २८ ॥

स कर्म दुष्करं कृत्वा संग्रामे शत्रुतापनः ।
शत्रुभिर्निहतः संख्ये पृतनायां युधिष्ठिर ॥ २९ ॥

युधिष्ठिर ! वह शत्रुओंको संताप देनेवाला वीर राजकुमार संग्राममें दुष्कर पराक्रम दिखाकर अन्तमें शत्रुओंके हाथसे वहाँ सेनाके बीचमें मारा गया ॥ २९ ॥

स राजा प्रेतकृत्यानि तस्य कृत्वा शुचान्वितः ।
शोचन्नहनि रात्रौ च नालभत् सुखमात्मनः ॥ ३० ॥

राजा अकम्पनको बड़ा शोक हुआ । वे पुत्रका अन्त्येष्टि संस्कार करके दिन-रात उसीके शोकमें मग्न रहने लगे । उनकी अन्तरात्माको (थोड़ा-सा भी) सुख नहीं मिला ॥ ३० ॥

तस्य शोकं विदित्वा तु पुत्रव्यसनसम्भवम् ।
आजगामाथ देवर्षिर्नारदोऽस्य समीपतः ॥ ३१ ॥

राजा अकम्पनको अपने पुत्रकी मृत्युसे महान् शोक हो रहा है, यह जानकर देवर्षि नारद उनके समीप आये ॥ ३१ ॥

स तु राजा महाभागो दृष्ट्वा देवर्षिसत्तमम् ।
पूजयित्वा यथान्यायं कथामकथयत् तदा ॥ ३२ ॥

उस समय महाभाग राजा अकम्पनने देवर्षिप्रवर नारदजीको आया देख उनकी यथायोग्य पूजा करके उनसे अपने पुत्रकी मृत्युका वृत्तान्त कहा ॥ ३२ ॥

तस्य सर्वं समाचष्ट यथावृत्तं नरेश्वरः ।
शत्रुभिर्विजयं संख्ये पुत्रस्य च वधं तथा ॥ ३३ ॥

राजाने क्रमशः शत्रुओंकी विजय और युद्धस्थलमें अपने पुत्रके मारे जानेका सब समाचार उनसे ठीक-ठीक कह सुनाया ॥

मम पुत्रो महावीर्य इन्द्रविष्णुसमद्युतिः ।
शत्रुभिर्बहुभिः संख्ये पराक्रम्य हतो बली ॥ ३४ ॥

(वे बोले—) 'देवर्षे ! मेरा पुत्र इन्द्र और विष्णुके समान तेजस्वी, महापराक्रमी और बलवान् था; परंतु युद्धमें बहुत-से शत्रुओंने मिलकर एक साथ पराक्रम करके उसे मार डाला है ॥ ३४ ॥

क एष मृत्युर्भगवन् किंवीर्यबलपौरुषः ।
एतदिच्छामि तत्त्वेन श्रोतुं मतिमतां वर ॥ ३५ ॥

'भगवन् ! यह मृत्यु क्या है ? इसका वीर्य, बल और पौरुष कैसा है ? बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ महर्षे ! मैं यह सब यथार्थरूपसे सुनना चाहता हूँ' ॥ ३५ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा नारदो वरदः प्रभुः ।
आख्यानमिदमाचष्ट पुत्रशोकापहं महत् ॥ ३६ ॥

राजाकी यह बात सुनकर वर देनेमें समर्थ एवं प्रभावशाली नारदजीने यह पुत्रशोकनाशक उत्तम उपाख्यान कहना आरम्भ किया ॥ ३६ ॥

नारद उवाच

शृणु राजन् महाबाहो आख्यानं बहुविस्तरम् ।
यथावृत्तं श्रुतं चैव मयापि वसुधाधिप ॥ ३७ ॥

नारदजी बोले—पृथ्वीपते ! तुम्हारे पुत्रकी मृत्यु जिस प्रकार घटित हुई है, वह सब वृत्तान्त मैंने भी यथार्थरूपसे सुन लिया है । महाबाहु नरेश ! अब मैं तुम्हारे सामने एक बहुत विस्तृत कथा आरम्भ करता हूँ । तुम ध्यान देकर सुनो ॥

प्रजाः सृष्ट्वा तदा ब्रह्मा आदिसर्गे पितामहः ।
असंहृतं महातेजा दृष्ट्वा जगदिदं प्रभुः ॥ ३८ ॥
तस्य चिन्ता समुत्पन्ना संहारं प्रति पार्थिव ।
चिन्तयन् ह्यसौ वेद संहारं वसुधाधिप ॥ ३९ ॥

आदि सृष्टिके समय महातेजस्वी एवं शक्तिशाली पितामह ब्रह्माने जब प्रजावर्गकी सृष्टि की थी, उस समय संहारकी कोई व्यवस्था नहीं की थी, अतः इस सम्पूर्ण जगत्को प्राणियोंसे परिपूर्ण एवं मृत्युरहित देख प्राणियोंके संहारके लिये चिन्तित हो उठे । राजन् ! पृथ्वीपते ! बहुत सोचने-विचारनेपर भी ब्रह्माजीको प्राणियोंके संहारका कोई उपाय नहीं ज्ञात हो सका ॥ ३८-३९ ॥



रुद्रदेवका ब्रह्माजीसे उनके क्रोधकी शान्तिके लिये वर माँगना

तस्य रोषान्महाराज खेभ्योऽग्निरुदतिष्ठत ।
तेन सर्वा दिशो व्याप्ताः सान्तर्देशा दिधक्षता ॥ ४० ॥

महाराज ! उस समय क्रोधवश ब्रह्माजीके श्रवण-नेत्र आदि इन्द्रियोंसे अग्नि प्रकट हो गयी। वह अग्नि इस जगत्‌को दग्ध करनेकी इच्छासे सम्पूर्ण दिशाओं और विदिशाओं (कोणों) में फैल गयी ॥ ४० ॥

ततो दिवं भुवं चैव ज्वालामालासमाकुलम् ।
चराचरं जगत् सर्वं ददाह भगवान् प्रभुः ॥ ४१ ॥
ततो हतानि भूतानि चराणि स्थावराणि च ।
महता क्रोधवेगेन त्रासयन्निव वीर्यवान् ॥ ४२ ॥

तदनन्तर आकाश और पृथ्वीमें सब ओर आगकी प्रचण्ड लपटें व्याप्त हो गयीं। दाह करनेमें समर्थ एवं अत्यन्त शक्तिशाली भगवान् अग्निदेव महान् क्रोधके वेगसे सबको त्रस्त-से करते हुए सम्पूर्ण चराचर जगत्‌को दग्ध करने लगे। इससे बहुत-से स्थावर-जंगम प्राणी नष्ट हो गये॥

ततो रुद्रो जटी स्थाणुर्निशाचरपतिर्हरः ।
जगाम शरणं देवं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ॥ ४३ ॥

तत्पश्चात् राक्षसोंके स्वामी जटाधारी दुःखहारी स्थाणु नामधारी भगवान् रुद्र परमेष्ठी भगवान् ब्रह्माजीकी शरणमें गये॥

तस्मिन्नापतिते स्थाणौ प्रजानां हितकाम्यया ।
अब्रवीत् परमो देवो ज्वलन्निव महामुनिः ॥ ४४ ॥

प्रजावर्गके हितकी इच्छासे भगवान् रुद्रके आनेपर परमदेव महामुनि ब्रह्माजी अपने तेजसे प्रज्वलित होते हुए-से इस प्रकार बोले—॥ ४४ ॥

किं कुर्मः काममं कामार्ह कामाज्जातोऽसि पुत्रक।
करिष्यामि प्रियं सर्वं ब्रूहि स्थाणो यदिच्छसि ॥ ४५ ॥

'अपने अभीष्ट मनोरथको प्राप्त करने योग्य पुत्र ! तुम मेरे मानसिक संकल्पसे उत्पन्न हुए हो। मैं तुम्हारी कौन-सी कामना पूर्ण करूँ ? स्थाणो ! तुम जो कुछ चाहते हो, बतलाओ। मैं तुम्हारा सम्पूर्ण प्रिय कार्य करूँगा' ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

शंकर और ब्रह्माका संवाद, मृत्युकी उत्पत्ति तथा उसे समस्त प्रजाके संहारका कार्य सौंपा जाना

स्थाणुरुवाच

प्रजासर्गनिमित्तं हि कृतो यत्नस्त्वया विभो ।
त्वया सृष्टाश्च वृद्धाश्च भूतग्रामाः पृथग्विधाः ॥ १ ॥

स्थाणु (रुद्रदेव) ने कहा—प्रभो ! आपने प्रजाकी सृष्टिके लिये स्वयं ही यत्न किया है। आपने ही नाना प्रकारके प्राणिसमुदायकी सृष्टि एवं वृद्धि की है ॥ १ ॥

तास्तवेह पुनः क्रोधात् प्रजा दह्यन्ति सर्वशः ।
ता दृष्ट्वा मम कारुण्यं प्रसीद भगवन् प्रभो ॥ २ ॥

आपकी वे ही सारी प्रजाएँ पुनः आपके ही क्रोधसे यहाँ दग्ध हो रही हैं। इससे उनके प्रति मेरे हृदयमें करुणा भर आयी है। अतः भगवन् ! प्रभो ! आप उन प्रजाओंपर कृपादृष्टि करके प्रसन्न होइये ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच

संहर्तुं न च मे काम एतदेवं भवेदिति।
पृथिव्या हितकामं तु ततो मां मन्युराविशत् ॥ ३ ॥

ब्रह्माजी बोले—रुद्र ! मेरी इच्छा यह नहीं है कि इस प्रकार इस जगत्‌का संहार हो। वसुधाके हितके लिये ही मेरे मनमें क्रोधका आवेश हुआ था ॥ ३ ॥

इयं हि मां सदा देवी भारार्ता समचूचुदत् ।
संहारार्थं महादेव भारेणाभिहता सती ॥ ४ ॥

महादेव ! इस पृथ्वीदेवीने भारसे पीड़ित होकर मुझे जगत्‌के संहारके लिये प्रेरित किया था। यह सती-साध्वी देवी महान् भारसे दबी हुई थी ॥ ४ ॥

ततोऽहं नाधिगच्छामि तथा बहुविधं तदा ।
संहारमप्रमेयस्य ततो मां मन्युराविशत् ॥ ५ ॥

मैंने अनेक प्रकारसे इस अनन्त जगत्‌के संहारके उपायपर विचार किया, परंतु मुझे कोई उपाय सूझ न पड़ा। इसीलिये मुझमें क्रोधका आवेश हो गया ॥ ५ ॥

रुद्र उवाच

संहारार्थं प्रसीदस्व मा रुषो वसुधाधिप ।
मा प्रजाः स्थावराश्चैव जंगमाश्च व्यनीनशः ॥ ६ ॥

रुद्रने कहा—वसुधाके स्वामी पितामह ! आप रोष न कीजिये। जगत्‌का संहार बंद करनेके लिये प्रसन्न होइये। इन स्थावर-जङ्गम प्राणियोंका विनाश न कीजिये ॥

तव प्रसादाद् भगवन्निदं वर्तेत् त्रिधा जगत् ।
अनागतमतीतं च यच्च सम्प्रति वर्तते ॥ ७ ॥

भगवन् ! आपकी कृपासे यह जगत् भूत, भविष्य और वर्तमान—तीन रूपोंमें विभक्त हो जाय ॥ ७ ॥

भगवन् क्रोधसंदीप्तः क्रोधादग्निमवासृजत् ।
स दहत्यश्मकूटानि द्रुमांश्च सरितस्तथा ॥ ८ ॥

प्रभो ! आपने क्रोधसे प्रज्वलित होकर क्रोधपूर्वक जिस

अग्निकी सृष्टि की है, वह पर्वत-शिखरों, वृक्षों और सरिताओं-को दग्ध कर रही है ॥ ८ ॥

पल्वलानि च सर्वाणि सर्वांश्चैव तृणोलपान् ।
स्थावरं जङ्गमं चैव निःशेषं कुरुते जगत् ॥ ९ ॥
तदेतद् भस्मसाद्भूतं जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
प्रसीद भगवन् स त्वं रोषो न स्याद् वरो मम ॥ १० ॥

यह समस्त छोटे-छोटे जलाशयों, सब प्रकारके तृण और लताओं तथा स्थावर और जङ्गम जगत्को सम्पूर्णरूपसे नष्ट कर रही है । इस प्रकार यह सारा चराचर जगत् जलकर भस्म हो गया । भगवन् ! आप प्रसन्न होइये । आपके मनमें रोष न हो, यही मेरे लिये आपकी ओरसे वर प्राप्त हो ॥ ९-१० ॥

सर्वे हि सृष्टा नश्यन्ति तव देव कथंचन ।
तस्मान्निवर्ततां तेजस्त्वय्येवेदं प्रलीयताम् ॥ ११ ॥

देव ! आपके रचे हुए समस्त प्राणी किसी-न-किसी रूपमें नष्ट होते चले जा रहे हैं; अतः आपका यह तेजस्वरूप क्रोध जगत्के संहारसे निवृत्त हो आपमें ही विलीन हो जाय ॥

तत् पश्य देव सुभृशं प्रजानां हितकाम्यया ।
यथेमे प्राणिनः सर्वे निवर्तेरंस्तथा कुरु ॥ १२ ॥

प्रभो ! आप प्रजावर्गके अत्यन्त हितकी इच्छासे इनकी ओर कृपापूर्ण दृष्टिसे देखिये, जिससे ये समस्त प्राणी नष्ट होनेसे बच जायँ, वैसा कीजिये ॥ १२ ॥

अभावं नेह गच्छेयुरुत्सन्नजननाः प्रजाः ।
आदिदेव नियुक्तोऽस्मि त्वया लोकेषु लोककृत् ॥ १३ ॥

संतानोंका नाश हो जानेसे इस जगत्के सम्पूर्ण प्राणियोंका अभाव न हो जाय । आदिदेव ! आपने सम्पूर्ण लोकोंमें मुझे लोकस्रष्टाके पदपर नियुक्त किया है ॥ १३ ॥

मा विनश्येज्जगन्नाथ जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
प्रसादाभिमुखं देवं तस्मादेवं ब्रवीम्यहम् ॥ १४ ॥

जगन्नाथ ! यह चराचर जगत् नष्ट न हो, इसीलिये सदा कृपा करनेको उद्यत रहनेवाले प्रभुके सामने मैं ऐसी प्रार्थना कर रहा हूँ ॥ १४ ॥

नारद उवाच

श्रुत्वा हि वचनं देवः प्रजानां हितकारणे ।
तेजः संधारयामास पुनरेवान्तरात्मनि ॥ १५ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! प्रजाके हितके लिये महादेवका यह वचन सुनकर भगवान् ब्रह्माने पुनः अपनी अन्तरात्मामें ही उस तेज (क्रोध) को धारण कर लिया ॥

ततोऽग्निमुपसंहृत्य भगवाँल्लोकसत्कृतः ।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च कथयामास वै प्रभुः ॥ १६ ॥

तब विश्ववन्दित भगवान् ब्रह्माने उस अग्निका उपसंहार करके मनुष्योंके लिये प्रवृत्ति (कर्म) और निवृत्ति (ज्ञान) मार्गोंका उपदेश दिया ॥ १६ ॥

उपसंहरतस्तस्य तमग्निं रोषजं तथा ।
प्रादुर्बभूव विश्वेभ्यो गोभ्यो नारी महात्मनः ॥ १७ ॥
कृष्णरक्ता तथा पिङ्गरक्तजिह्वास्यलोचना ।
कुण्डलाभ्यां च राजेन्द्र तप्ताभ्यां तप्तभूषणा ॥ १८ ॥

उस क्रोधाग्निका उपसंहार करते समय महात्मा ब्रह्माजीकी सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे एक नारी प्रकट हुई, जो काले और लाल रंगकी थी । उसकी जिह्वा, मुख और नेत्र पीले और लाल रंगके थे । राजेन्द्र ! वह तपाये हुए सोनेके कुण्डलोंसे सुशोभित थी और उसके सभी आभूषण तप्त सुवर्णके बने हुए थे ॥ १७-१८ ॥

सा निःसृत्य तथा खेभ्यो दक्षिणां दिशमाश्रिता ।
स्मयमाना च सावेक्ष्य देवौ विश्वेश्वरावुभौ ॥ १९ ॥

वह उनकी इन्द्रियोंसे निकलकर दक्षिण दिशामें खड़ी हुई और उन दोनों देवताओं एवं जगदीश्वरोंकी ओर देखकर मन्द-मन्द मुसकराने लगी ॥ १९ ॥

तामाहूय तदा देवो लोकादिनिधनेश्वरः ।
(उक्तवान् मधुरं वाक्यं सान्त्वयित्वा पुनः पुनः ।)
मृत्यो इति महीपाल जहि चेमाः प्रजा इति ॥ २० ॥

महीपाल ! उस समय सम्पूर्ण लोकोंके आदि और अन्तके स्वामी ब्रह्माजीने उस नारीको अपने पास बुलाकर उसे बारंबार सान्त्वना देते हुए मधुर वाणीमें 'मृत्यो' (हे मृत्यु) कह करके पुकारा और कहा—'तू इन समस्त प्रजाओंका संहार कर ॥ २० ॥



त्वं हि संहारबुद्ध्याथ प्रादुर्भूता रुषो मम ।
तस्मात् संहर सर्वास्त्वं प्रजाः सजडपण्डिताः ॥ २१ ॥
मम त्वं हि नियोगेन ततः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि ।

'देवि ! तू संहारबुद्धिसे मेरे रोषद्वारा प्रकट हुई है, इसलिये मूर्ख और पण्डित सभी प्रजाओंका संहार करती रह, मेरी आज्ञासे तुझे यह कार्य करना होगा। इससे तू कल्याण प्राप्त करेगी' ॥ २१½ ॥

एवमुक्ता तु सा तेन मृत्युः कमललोचना ॥२२॥
दध्यौ चात्यर्थमबला प्ररुरोद च सुस्वरम्।

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर वह मृत्युनामवाली कमललोचना अबला अत्यन्त चिन्तामग्न हो गयी और फूट-फूटकर रोने लगी ॥ २२½ ॥

पाणिभ्यां प्रतिजग्राह तान्यश्रूणि पितामहः।
सर्वभूतहितार्थाय तां चाप्यनुनयत् तदा ॥२३॥

पितामह ब्रह्माने उसके उन आँसुओंको समस्त प्राणियोंके हितके लिये अपने दोनों हाथोंमें ले लिया और उस नारीको भी अनुनयसे प्रसन्न किया ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि मृत्युकथने त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें मृत्युवर्णनविषयक तिरपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल २३½ श्लोक हैं)

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मृत्युकी घोर तपस्या, ब्रह्माजीके द्वारा उसे वरकी प्राप्ति तथा नारद-अकम्पन-संवादका उपसंहार

नारद उवाच

विनीय दुःखमबला आत्मन्येव प्रजापतिम्।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा लतेवावर्जिता पुनः ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर वह अबला अपने भीतर ही उस दुःखको दबाकर झुकायी हुई लताके समान विनम्र हो हाथ जोड़कर ब्रह्माजीसे बोली ॥ १ ॥

मृत्युरुवाच

त्वया सृष्टा कथं नारी ईदृशी वदतां वर।
क्रूरं कर्माहितं कुर्यां तदेव किमु जानती ॥ २ ॥

मृत्युने कहा—वक्ताओंमें श्रेष्ठ प्रजापते ! आपने मुझे ऐसी नारीके रूपमें क्यों उत्पन्न किया ? मैं जान-बूझकर वही क्रूरतापूर्ण अहितकर कर्म कैसे करूँ ? ॥ २ ॥

बिभेम्यहमधर्माद्धि प्रसीद भगवन् प्रभो।
प्रियान् पुत्रान् वयस्यांश्च भ्रातॄन् मातॄः पितॄन् पतीन्॥३॥
अपध्यास्यन्ति मे देव मृतेष्वेभ्यो बिभेम्यहम्।

भगवन् ! मैं पापसे डरती हूँ। प्रभो ! मुझपर प्रसन्न होइये। जब मैं लोगोंके प्यारे पुत्रों, मित्रों, भाइयों, माताओं, पिताओं तथा पतियोंको मारने लगूँगी, देव ! उस समय उनके सम्बन्धी इन लोगोंके मेरे द्वारा मारे जानेपर सदा मेरा अनिष्ट-चिन्तन करेंगे। अतः मैं इन सबसे बहुत डरती हूँ ॥ ३½ ॥

कृपणानां हि रुदतां ये पतन्त्यश्रुबिन्दवः ॥ ४ ॥
तेभ्योऽहं भगवन् भीता शरणं त्वाहमागता।

भगवन् ! रोते हुए दीन-दुखी प्राणियोंके नेत्रोंसे जो आँसुओंकी बूँदें गिरती हैं, उनसे भयभीत होकर मैं आपकी शरणमें आयी हूँ ॥ ४½ ॥

यमस्य भवनं देव गच्छेयं न सुरोत्तम ॥ ५ ॥
कायेन विनयोपेता मूर्ध्नोद्यग्रनखेन च।
एतदिच्छाम्यहं कामं त्वत्तो लोकपितामह ॥ ६ ॥

देव ! सुरश्रेष्ठ ! लोकपितामह ! मैं शरीर और मस्तकको झुकाकर, हाथ जोड़कर विनीतभावसे आपकी शरणागत होकर केवल इसी अभिलाषाकी पूर्ति चाहती हूँ कि मुझे यमराजके भवनमें न जाना पड़े ॥ ५-६ ॥

इच्छेयं त्वत्प्रसादाद्धि तपस्तप्तुं प्रजेश्वर।
प्रदिशेमं वरं देव त्वं मह्यं भगवन् प्रभो ॥ ७ ॥

प्रजेश्वर ! मैं आपकी कृपासे तपस्या करना चाहती हूँ। देव ! भगवन् ! प्रभो ! आप मुझे यही वर प्रदान करें ॥

त्वया ह्युक्ता गमिष्यामि धेनुकाश्रममुत्तमम्।
तत्र तप्स्ये तपस्तीव्रं तवैवाराधने रता ॥ ८ ॥

आपकी आज्ञा लेकर मैं उत्तम धेनुकाश्रमको चली जाऊँगी और वहाँ आपकी ही आराधनामें तत्पर रहकर कठोर तपस्या करूँगी ॥ ८ ॥

न हि शक्ष्यामि देवेश प्राणान् प्राणभृतां प्रियान्।
हर्तुं विलपमानानामधर्मादभिरक्ष माम् ॥ ९ ॥

देवेश्वर ! मैं रोते-विलखते प्राणियोंके प्यारे प्राणोंका अपहरण नहीं कर सकूँगी, आप इस अधर्मसे मुझे बचावें ॥

ब्रह्मोवाच

मृत्यो संकल्पितासि त्वं प्रजासंहारहेतुना।
गच्छ संहर सर्वास्त्वं प्रजा मा ते विचारणा ॥१०॥

ब्रह्माजीने कहा—मृत्यो ! प्रजाके संहारके लिये ही मेरे द्वारा संकल्पपूर्वक तेरी सृष्टि की गयी है। जा, तू सारी प्रजाका संहार कर। तेरे मनमें कोई अन्यथा विचार नहीं होना चाहिये ॥ १० ॥

भविता त्वेतदेवं हि नैतज्जात्वन्यथा भवेत्।
भव त्वनिन्दिता लोके कुरुष्व वचनं मम ॥११॥

यह बात इसी प्रकार होनेवाली है। इसमें कभी कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। तू लोकमें निन्दित न हो, मेरी आज्ञाका पालन कर ॥ ११ ॥

नारद उवाच

एवमुक्ताभवत् प्रीता प्राञ्जलिर्भगवन्मुखी ।
संहारे नाकरोद् बुद्धिं प्रजानां हितकाम्यया ॥१२॥

नारदजी कहते हैं—राजन् ! भगवान् ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर उन्हींकी ओर मुँह करके हाथ जोड़े खड़ी हुई वह नारी मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुई; परंतु उसने प्रजाके हितकी कामनासे संहार-कार्यमें मन नहीं लगाया ॥ १२ ॥

तूष्णीमासीत् तदा देवः प्रजानामीश्वरेश्वरः ।
प्रसादं चागमत् क्षिप्रमात्मनैव प्रजापतिः ॥१३॥

तब प्रजेश्वरोंके भी स्वामी भगवान् ब्रह्मा चुप हो गये। फिर वे भगवान् प्रजापति तुरंत अपने आप ही प्रसन्नताको प्राप्त हुए॥

स्मयमानश्च देवेशो लोकान् सर्वानवेक्ष्य च ।
लोकास्त्वासन् यथापूर्वं दृष्टास्तेनापमन्युना ॥१४॥

देवेश्वर ब्रह्मा सम्पूर्ण लोकोंकी ओर देखकर मुसकराये। उन्होंने क्रोधशून्य होकर देखा, इसलिये वे सभी लोक पहलेके समान हरे-भरे हो गये ॥ १४ ॥

निवृत्तरोषे तस्मिंस्तु भगवत्यपराजिते ।
सा कन्यापि जगामाथ समीपात् तस्य धीमतः ॥१५॥

उन अपराजित भगवान् ब्रह्माका रोष निवृत्त हो जानेपर वह कन्या भी उन परम बुद्धिमान् देवेश्वरके निकटसे अन्यत्र चली गयी ॥ १५ ॥

अपसृत्याप्रतिश्रुत्य प्रजासंहरणं तदा ।
त्वरमाणा च राजेन्द्र मृत्युर्धेनुकमभ्यगात् ॥१६॥

राजेन्द्र ! उस समय प्रजाका संहार करनेके विषयमें कोई प्रतिज्ञा न करके मृत्यु वहाँसे हट गयी और बड़ी उतावलीके साथ धेनुकाश्रममें जा पहुँची ॥ १६ ॥

सा तत्र परमं तीव्रं चचार व्रतमुत्तमम् ।
सा तदा ह्येकपादेन तस्थौ पद्मानि षोडश ॥१७॥
पञ्च चाब्दानि कारुण्यात् प्रजानां तु हितैषिणी ।
इन्द्रियार्णीन्द्रियार्थेभ्यः प्रियेभ्यः संनिवर्त्य सा ॥१८॥

उसने वहाँ अत्यन्त कठोर और उत्तम व्रतका पालन आरम्भ किया। उस समय वह दयावश प्रजावर्गका हित करनेकी इच्छासे अपनी इन्द्रियोंको प्रिय विषयोंसे हटाकर इक्कीस पद्म वर्षोंतक एक पैरपर खड़ी रही ॥ १७-१८ ॥

ततस्त्वेकेन पादेन पुनरन्यानि सप्त वै ।
तस्थौ पद्मानि षट् चैव सप्त चैकं च पार्थिव ॥१९॥

नरेश्वर ! तदनन्तर पुनः अन्य इक्कीस पद्म वर्षोंतक वह एक पैरसे खड़ी होकर तपस्या करती रही ॥ १९ ॥

ततः पद्मायुतं तात मृगैः सह चचार सा ।
पुनर्गत्वा ततो नन्दां पुण्यां शीतामलोदकाम् ॥२०॥
अप्सु वर्षसहस्राणि सप्त चैकं च सानयत् ।

तात ! इसके बाद दस हजार पद्म वर्षोंतक वह मृगोंके साथ विचरती रही, फिर शीतल एवं निर्मल जलवाली पुण्यमयी नन्दानदीमें जाकर उसके जलमें उसने आठ हजार वर्ष व्यतीत किये ॥ २०½ ॥

धारयित्वा तु नियमं नन्दायां वीतकल्मषा ॥२१॥
सा पूर्वं कौशिकीं पुण्यां जगाम नियमैधिता ।
तत्र वायुजलाहारा चचार नियमं पुनः ॥२२॥

इस प्रकार नन्दानदीमें नियमोंके पालनपूर्वक रहकर वह निष्पाप हो गयी। तदनन्तर व्रत-नियमोंसे सम्पन्न हो मृत्यु पहले पुण्यमयी कौशिकी नदीके तटपर गयी और वहाँ वायु तथा जलका आहार करती हुई पुनः कठोर नियमोंका पालन करने लगी ॥ २१-२२ ॥

पञ्चगङ्गासु सा पुण्या कन्या वेतसकेषु च ।
तपोविशेषैर्बहुभिः कर्षयद् देहमात्मनः ॥२३॥

उस पवित्र कन्याने पञ्चगङ्गामें तथा वेतसवनमें बहुत-सी भिन्न-भिन्न तपस्याओंद्वारा अपने शरीरको अत्यन्त दुर्बल कर दिया ॥ २३ ॥

ततो गत्वा तु सा गङ्गां महामेरुं च केवलम् ।
तस्थौ चाश्मेव निश्चेष्टा प्राणायामपरायणा ॥२४॥

इसके बाद वह गङ्गाजीके तट और प्रमुख तीर्थ महामेरुके शिखरपर जाकर प्राणायाममें तत्पर हो प्रस्तर-मूर्तिकी भाँति निश्चेष्ट भावसे बैठी रही ॥ २४ ॥

पुनर्हिमवतो मूर्ध्नि यत्र देवाः पुरायजन् ।
तत्राङ्गुष्ठेन सा तस्थौ निखर्वं परमा शुभा ॥२५॥

फिर हिमालयके शिखरपर जहाँ पहले देवताओंने यज्ञ किया था, वहाँ वह परम शुभलक्षणा कन्या एक निखर्व वर्षोंतक अँगूठेके बलपर खड़ी रही ॥ २५ ॥

पुष्करेष्वथ गोकर्णे नैमिषे मलये तथा ।
अपाकर्षत् स्वकं देहं नियमैर्मानसप्रियैः ॥२६॥

तदनन्तर पुष्कर, गोकर्ण, नैमिषारण्य तथा मलयाचलके तीर्थोंमें रहकर मनको प्रिय लगनेवाले नियमोंद्वारा उसने अपने शरीरको अत्यन्त क्षीण कर दिया ॥ २६ ॥

अनन्यदेवता नित्यं दृढभक्ता पितामहे ।
तस्थौ पितामहं चैव तोषयामास धर्मतः ॥२७॥

दूसरे किसी देवतामें मन न लगाकर वह सदा पितामह ब्रह्मामें ही सुदृढ़ भक्तिभाव रखती थी। उस कन्याने अपने धर्माचरणसे पितामहको संतुष्ट कर लिया ॥ २७ ॥

ततस्तामब्रवीत् प्रीतो लोकानां प्रभवोऽव्ययः ।
सौम्येन मनसा राजन् प्रीतः प्रीतमनास्तदा ॥२८॥

राजन् ! तब लोकोंकी उत्पत्तिके कारणभूत अविनाशी ब्रह्मा उस समय मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न हो सौम्य हृदयसे प्रीतिपूर्वक उससे बोले—॥ २८ ॥

मृत्यो किमिदमत्यन्तं तपांसि चरसीति ह ।
ततोऽब्रवीत् पुनर्मृत्युर्भगवन्तं पितामहम् ॥२९॥

'मृत्यो ! तू किसलिये इस प्रकार अत्यन्त कठोर तपस्या कर रही है ?' तब मृत्युने भगवान् पितामहसे फिर इस प्रकार कहा—॥ २९ ॥

नाहं हन्यां प्रजा देव स्वस्थाश्चाक्रोशनीस्तथा ।
एतदिच्छामि सर्वेश त्वत्तो वरमहं प्रभो ॥३०॥

'देव ! प्रभो ! सर्वेश्वर ! मैं आपसे यही वर पाना चाहती हूँ कि मुझे रोती-चिल्लाती हुई स्वस्थ प्रजाओंका वध न करना पड़े॥

अधर्मभयभीतास्मि ततोऽहं तप आस्थिता ।
भीतायास्तु महाभाग प्रयच्छाभयमव्यय ॥३१॥

'महाभाग ! मैं अधर्मके भयसे बहुत डरती हूँ, इसीलिये तपस्यामें लगी हुई हूँ । अविनाशी परमेश्वर ! मुझ भयभीत अबलाको अभय-दान दीजिये ॥ ३१ ॥

आर्ता चानागसी नारी याचामि भव मे गतिः ।
तामब्रवीत् ततो देवो भूतभव्यभविष्यवित् ॥३२॥

'नाथ ! मैं एक निरपराध नारी हूँ और आपके सामने आर्तभावसे याचना करती हूँ, आप मेरे आश्रयदाता हों ।' तब भूत, भविष्य और वर्तमानके ज्ञाता भगवान् ब्रह्माने उससे कहा—॥ ३२ ॥

अधर्मो नास्ति ते मृत्यो संहरन्त्या इमाः प्रजाः ।
मया चोक्तं मृषा भद्रे भविता न कथंचन ॥३३॥

'मृत्यो ! इन प्रजाओंका संहार करनेसे तुझे अधर्म नहीं होगा । भद्रे ! मेरी कही हुई बात किसी प्रकार झूठी नहीं हो सकती ॥ ३३ ॥

तस्मात् संहर कल्याणि प्रजाः सर्वाश्चतुर्विधाः ।
धर्मः सनातनश्च त्वां सर्वथा पावयिष्यति ॥३४॥

'इसलिये कल्याणि ! तू चार श्रेणियोंमें विभाजित समस्त प्राणियोंका संहार कर । सनातन धर्म तुझे सब प्रकारसे पवित्र बनाये रखेगा ॥ ३४ ॥

लोकपालो यमश्चैव सहाया व्याधयश्च ते ।
अहं च विबुधाश्चैव पुनर्दास्याम ते वरम् ॥३५॥
यथा त्वमेनसा मुक्ता विरजाः ख्यातिमेष्यसि ।

'लोकपाल, यम तथा नाना प्रकारकी व्याधियाँ तेरी सहायता करेंगी । मैं और सम्पूर्ण देवता तुझे पुनः वरदान देंगे, जिससे तू पापमुक्त हो अपने निर्मल स्वरूपसे विख्यात होगी' ॥ ३५½ ॥

सैवमुक्ता महाराज कृताञ्जलिरिदं विभुम् ॥३६॥
पुनरेवाब्रवीद् वाक्यं प्रसाद्य शिरसा तदा ।

महाराज ! उनके ऐसा कहनेपर मृत्यु हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर भगवान् ब्रह्माको प्रसन्न करके उस समय पुनः यह वचन बोली—॥ ३६½ ॥

यद्येवमेतत् कर्तव्यं मया न स्याद् विना प्रभो ॥३७॥
तवाज्ञा मूर्ध्नि मे न्यस्ता यत् ते वक्ष्यामि तच्छृणु ।

'प्रभो ! यदि इस प्रकार यह कार्य मेरे बिना नहीं हो सकता तो आपकी आज्ञा मैंने शिरोधार्य कर ली है, परंतु इसके विषयमें मैं आपसे जो कुछ कहती हूँ, उसे (ध्यान देकर) सुनिये ॥ ३७½ ॥

लोभः क्रोधोऽभ्यसूयेर्ष्या द्रोहो मोहश्च देहिनाम् ॥३८॥
अह्रीश्चान्योन्यपरुषा देहं भिन्द्युः पृथग्विधाः ।

'लोभ, क्रोध, असूया, ईर्ष्या, द्रोह, मोह, निर्लज्जता और एक दूसरेके प्रति कही हुई कठोर वाणी—ये विभिन्न दोष ही देहधारियोंकी देहका भेदन करें' ॥ ३८½ ॥

ब्रह्मोवाच

तथा भविष्यते मृत्यो साधु संहर भोः प्रजाः ।
अधर्मस्ते न भविता नापध्यास्याम्यहं शुभे ॥३९॥

ब्रह्माजीने कहा—मृत्यो ! ऐसा ही होगा । तू उत्तम रीतिसे प्राणियोंका संहार कर । शुभे ! इससे तुझे पाप नहीं लगेगा और मैं भी तेरा अनिष्ट-चिन्तन नहीं करूँगा ॥ ३९ ॥

यान्यश्रुबिन्दूनि करे ममासं-
स्ते व्याधयः प्राणिनामात्मजाताः ।
ते मारयिष्यन्ति नरान् गतासून्
नाधर्मस्ते भविता मा स्म भैषीः ॥ ४० ॥

तेरे आँसुओंकी बूँदें, जिन्हें मैंने हाथमें ले लिया था, प्राणियोंके अपने ही शरीरोंसे उत्पन्न हुई व्याधियाँ बनकर गतायु प्राणियोंका नाश करेंगी । तुझे अधर्मकी प्राप्ति नहीं होगी; इसलिये तू भय न कर ॥ ४० ॥

नाधर्मस्ते भविता प्राणिनां वै
त्वं वै धर्मस्त्वं हि धर्मस्य चेशा ।
धर्म्या भूत्वा धर्मनित्या धरित्री
तस्मात् प्राणान् सर्वथेमान् नियच्छ ॥ ४१ ॥

निश्चय ही, तुझे पाप नहीं लगेगा । तू प्राणियोंका धर्म और उस धर्मकी स्वामिनी होगी । अतः सदा धर्ममें तत्पर रहनेवाली और धर्मानुकूल जीवन बितानेवाली धरित्री होकर इन समस्त जीवोंके प्राणोंका नियन्त्रण कर ॥ ४१ ॥

सर्वेषां वै प्राणिनां कामरोषौ
संत्यज्य त्वं संहरस्वेह जीवान् ।
एवं धर्मस्त्वां भविष्यत्यनन्तो
मिथ्यावृत्तान् मारयिष्यत्यधर्मः ॥ ४२ ॥

काम और क्रोधका परित्याग करके इस जगत्‌के समस्त प्राणियोंके प्राणोंका संहार कर । ऐसा करनेसे तुझे अक्षय धर्मकी प्राप्ति होगी । मिथ्याचारी पुरुषोंको तो उनका अधर्म ही मार डालेगा ॥ ४२ ॥

तेनात्मानं पावयस्वात्मना त्वं
पापेऽऽत्मानं मज्जयिष्यन्त्यसत्यात्।
तस्मात् कामं रोषमप्यागतं त्वं
संत्यज्यान्तः संहरस्वेति जीवान् ॥४३॥

तू धर्माचरणद्वारा स्वयं ही अपने आपको पवित्र कर। असत्यका आश्रय लेनेसे प्राणी स्वयं अपने आपको पाप-पङ्कमें डुबो लेंगे। इसलिये अपने मनमें आये हुए काम और क्रोधका त्याग करके तू समस्त जीवोंका संहार कर॥४३॥

नारद उवाच

सा वै भीता मृत्युसंज्ञोपदेशा-
च्छापाद् भीता बाढमित्यब्रवीत् तम्।
सा च प्राणं प्राणिनामन्तकाले
कामक्रोधौ त्यज्य हरत्यसक्ता ॥ ४४ ॥

नारदजी कहते हैं—राजन्! वह मृत्यु नामवाली नारी ब्रह्माजीके उस उपदेशसे और विशेषतः उनके शापके भयसे भीत होकर उनसे बोली—'बहुत अच्छा, आपकी आज्ञा स्वीकार है'। वही मृत्यु अन्तकाल आनेपर काम और क्रोधका परित्याग करके अनासक्त भावसे समस्त प्राणियोंके प्राणोंका अपहरण करती है ॥ ४४ ॥

मृत्युस्त्वेषां व्याधयस्तत्प्रसूता
व्याधी रोगो रुज्यते येन जन्तुः।
सर्वेषां च प्राणिनां प्रायणान्ते
तस्माच्छोकं मा कृथा निष्फलं त्वम्।४५।

यही प्राणियोंकी मृत्यु है, इसीसे व्याधियोंकी उत्पत्ति हुई है। व्याधि नाम है रोगका, जिससे प्राणी रुग्ण होता है (उसका स्वास्थ्य भंग होता है)। आयु समाप्त होनेपर सभी प्राणियोंकी मृत्यु इसी प्रकार होती है। अतः राजन्! तुम व्यर्थ शोक न करो ॥ ४५ ॥

सर्वे देवाः प्राणिभिः प्रायणान्ते
गत्वा वृत्ताः संनिवृत्तास्तथैव।
एवं सर्वे प्राणिनस्तत्र गत्वा
वृत्ता देवा मर्त्यवद् राजसिंह ॥ ४६ ॥

आयुके अन्तमें सारी इन्द्रियाँ प्राणियोंके साथ परलोकमें जाकर स्थित होती हैं और पुनः उनके साथ ही इस लोकमें लौट आती हैं। नृपश्रेष्ठ! इस प्रकार सभी प्राणी देवलोकमें जाकर वहाँ देवस्वरूपमें स्थित होते हैं तथा वे कर्म-देवता मनुष्योंकी भाँति भोगोंकी समाप्ति होनेपर पुनः इस लोकमें लौट आते हैं ॥ ४६ ॥

वायुर्भीमो भीमनादो महौजा
भेत्ता देहान् प्राणिनां सर्वगोऽसौ।
नो वाऽऽवृत्तिं नैव वृत्तिं कदाचित्
प्राप्नोत्युग्रोऽनन्ततेजोविशिष्टः ॥ ४७ ॥

भयंकर शब्द करनेवाला महान् बलशाली भयानक प्राणवायु प्राणियोंके शरीरोंका ही भेदन करता है (चेतन आत्माका नहीं, क्योंकि) वह सर्वव्यापी, उग्र प्रभावशाली और अनन्त तेजसे सम्पन्न है। उसका कभी आवागमन नहीं होता ॥ ४७ ॥

सर्वे देवा मर्त्यसंज्ञाविशिष्टा-
स्तस्मात् पुत्रं मा शुचो राजसिंह।
स्वर्गं प्राप्तो मोदते ते तनूजो
नित्यं रम्यान् वीरलोकानवाप्य ॥ ४८ ॥

राजसिंह! सम्पूर्ण देवता भी मर्त्य (मरणधर्मा) नामसे विभूषित हैं, इसलिये तुम अपने पुत्रके लिये शोक न करो। तुम्हारा पुत्र स्वर्गलोकमें जा पहुँचा है और नित्य रमणीय वीर-लोकोंमें रहकर आनन्दका अनुभव करता है ॥ ४८ ॥

त्यक्त्वा दुःखं संगतः पुण्यकृद्भि-
रेषा मृत्युर्देवदिष्टा प्रजानाम्।
प्राप्ते काले संहरन्ती यथावत्
स्वयं कृता प्राणहरा प्रजानाम् ॥ ४९ ॥

वह दुःखका परित्याग करके पुण्यात्मा पुरुषोंसे जा मिला है। प्राणियोंके लिये यह मृत्यु भगवान्‌की ही दी हुई है; जो समय आनेपर यथोचित रूपसे (प्रजाजनोंका) संहार करती है। प्रजावर्गके प्राण लेनेवाली इस मृत्युको स्वयं ब्रह्माजीने ही रचा है ॥ ४९ ॥

आत्मानं वै प्राणिनो घ्नन्ति सर्वे
नैतान् मृत्युर्दण्डपाणिर्हिनस्ति।
तस्मान्मृतान् नानुशोचन्ति धीरा
मृत्युं ज्ञात्वा निश्चयं ब्रह्मसृष्टम्।
इत्थं सृष्टिं देवक्लृप्तां विदित्वा
पुत्रान्नष्टाच्छोकमाशु त्यजस्व ॥ ५० ॥

सब प्राणी स्वयं ही अपने आपको मारते हैं। मृत्यु हाथमें डंडा लेकर इनका वध नहीं करती है। अतः धीर पुरुष मृत्युको ब्रह्माजीका रचा हुआ निश्चित विधान समझकर मरे हुए प्राणियोंके लिये कभी शोक नहीं करते हैं। इस प्रकार ब्रह्माजीकी बनायी हुई सारी सृष्टिको ही मृत्युके वशीभूत जानकर तुम अपने पुत्रके मर जानेसे प्राप्त होनेवाले शोकका शीघ्र परित्याग कर दो ॥ ५० ॥

द्वैपायन उवाच

एतच्छ्रुत्वार्थवद् वाक्यं नारदेन प्रकाशितम्।
उवाचाकम्पनो राजा सखायं नारदं तथा ॥ ५१ ॥

व्यासजी कहते हैं—युधिष्ठिर! नारदजीकी कही हुई यह अर्थभरी बात सुनकर राजा अकम्पन अपने मित्र नारदसे इस प्रकार बोले—॥ ५१ ॥

व्यपेतशोकः प्रीतोऽस्मि भगवन्नृषिसत्तम।
श्रुत्वेतिहासं त्वत्तस्तु कृतार्थोऽस्म्यभिवादये ॥ ५२ ॥

'भगवन्! मुनिश्रेष्ठ! आपके मुँहसे यह इतिहास सुनकर मेरा शोक दूर हो गया। मैं प्रसन्न और कृतार्थ हो गया हूँ और आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ ॥ ५२ ॥

तथोक्तो नारदस्तेन राज्ञा ऋषिवरोत्तमः।
जगाम नन्दनं शीघ्रं देवर्षिरमितात्मवान् ॥ ५३ ॥

राजा अकम्पनके इस प्रकार कहनेपर ऋषियोंमें श्रेष्ठतम अमितात्मा देवर्षि नारद शीघ्र ही नन्दन वनको चले गये ॥

पुण्यं यशस्यं स्वर्ग्यं च धन्यमायुष्यमेव च।
अस्येतिहासस्य सदा श्रवणं श्रावणं तथा ॥ ५४ ॥

जो इस इतिहासको सदा सुनता और सुनाता है, उसके लिये यह पुण्य, यश, स्वर्ग, धन तथा आयु प्रदान करनेवाला है ॥ ५४ ॥

एतदर्थपदं श्रुत्वा तदा राजा युधिष्ठिर।
क्षत्रधर्मं च विज्ञाय शूराणां च परां गतिम् ॥ ५५ ॥
सम्प्राप्तोऽसौ महावीर्यः स्वर्गलोकं महारथः।

युधिष्ठिर! उस समय महारथी महापराक्रमी राजा अकम्पन इस उत्तम अर्थको प्रकाशित करनेवाले वृत्तान्तको सुनकर तथा क्षत्रियधर्म एवं शूरवीरोंकी परम गतिके विषयमें जानकर यथासमय स्वर्गलोकको प्राप्त हुए ॥ ५५½ ॥

अभिमन्युः परान् हत्वा प्रमुखे सर्वधन्विनाम् ॥ ५६ ॥
युध्यमानो महेष्वासो हतः सोऽभिमुखो रणे।
असिना गदया शक्त्या धनुषा च महारथः।
विरजाः सोमसूनुः स पुनस्तत्र प्रलीयते ॥ ५७ ॥

महाधनुर्धर अभिमन्यु पूर्वजन्ममें चन्द्रमाका पुत्र था, वह महारथी वीर समराङ्गणमें समस्त धनुर्धरोंके सामने शत्रुओंका वध करके खड्ग, शक्ति, गदा और धनुषद्वारा सम्मुख युद्ध करता हुआ मारा गया है तथा दुःखरहित हो पुनः चन्द्रलोकमें ही चला गया है ॥ ५६–५७ ॥

तस्मात् परां धृतिं कृत्वा भ्रातृभिः सह पाण्डव।
अप्रमत्तः सुसंनद्धः शीघ्रं योद्धुमुपाक्रम ॥ ५८ ॥

अतः पाण्डुनन्दन! तुम भाइयोंसहित उत्तम धैर्य धारण करके प्रमाद छोड़कर भलीभाँति कवच आदिसे सुसज्जित हो पुनः शीघ्र ही युद्धके लिये तैयार हो जाओ ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि मृत्युप्रजापतिसंवादे चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें मृत्युप्रजापतिसंवादविषयक चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

षोडशराजकीयोपाख्यानका आरम्भ, नारदजीकी कृपासे राजा सृञ्जयको पुत्रकी प्राप्ति, दस्युओंद्वारा उसका वध तथा पुत्रशोकसंतप्त सृञ्जयको नारदजीका मरुत्तका चरित्र सुनाना

संजय उवाच

श्रुत्वा मृत्युसमुत्पत्तिं कर्माण्यनुपमानि च।
धर्मराजः पुनर्वाक्यं प्रसाद्यैनमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! मृत्युकी उत्पत्ति और उसके अनुपम कर्म सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने पुनः व्यासजीको प्रसन्न करके उनसे यह बात कही ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

गुरवः पुण्यकर्माणः शक्रप्रतिमविक्रमाः।
स्थाने राजर्षयो ब्रह्मन्ननघाः सत्यवादिनः ॥ २ ॥

युधिष्ठिर बोले—ब्रह्मन्! इन्द्रके समान पराक्रमी, श्रेष्ठ, पुण्यकर्मा, निष्पाप तथा सत्यवादी राजर्षिगण अपने योग्य उत्तम स्थान (लोक) में निवास करते हैं ॥ २ ॥

भूय एव तु मां तथ्यैर्वचोभिरभिबृंहय।
राजर्षीणां पुराणानां समाश्वासय कर्मभिः ॥ ३ ॥

अतः आप पुनः उन प्राचीन राजर्षियोंके सत्कर्मोंका बोध करानेवाले अपने यथार्थ वचनोंद्वारा मेरा सौभाग्य बढ़ाइये और मुझे आश्वासन दीजिये ॥ ३ ॥

कियन्त्यो दक्षिणा दत्ताः कैश्च दत्ता महात्मभिः।
राजर्षिभिः पुण्यकृद्भिस्तद् भवान् प्रब्रवीतु मे ॥ ४ ॥

पूर्वकालके किन-किन महामनस्वी पुण्यात्मा राजर्षियोंने यज्ञोंमें कितनी-कितनी दक्षिणाएँ दी थीं। यह सब आप मुझे बताइये ॥ ४ ॥

व्यास उवाच

शैब्यस्य नृपतेः पुत्रः सृञ्जयो नाम नामतः।
सखायौ तस्य चैवोभौ ऋषी पर्वतनारदौ ॥ ५ ॥

व्यासजीने कहा—राजन्! राजा शैब्यके सृंजय नामसे प्रसिद्ध एक पुत्र था। उसके पर्वत और नारद—ये दो ऋषि मित्र थे ॥ ५ ॥

तौ कदाचिद् गृहं तस्य प्रविष्टौ तद्दिदृक्षया।
विधिवच्चार्चितौ तेन प्रीतौ तत्रोषतुः सुखम् ॥ ६ ॥

एक दिन वे दोनों महर्षि सृंजयसे मिलनेके लिये उसके घर पधारे। उसने विधिपूर्वक उनकी पूजा की और वे दोनों वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे ॥ ६ ॥

तं कदाचित् सुखासीनं ताभ्यां सह शुचिस्मिता।
दुहिताभ्यागमत् कन्या सृञ्जयं वरवर्णिनी ॥ ७ ॥

एक समय उन दोनों ऋषियोंके साथ राजा सृंजय सुखपूर्वक बैठे थे। उसी समय पवित्र मुसकानवाली परम सुन्दरी सृंजयकी कुमारी पुत्री वहाँ आयी ॥ ७ ॥

तयाभिवादितः कन्यामभ्यनन्दद् यथाविधि।
तत्सलिङ्गाभिराशीभिरिष्टाभिरभितः स्थिताम् ॥ ८ ॥

आकर उसने राजाको प्रणाम किया। राजाने उसके अनुरूप अभीष्ट आशीर्वाद देकर अपने पार्श्वभागमें खड़ी हुई उस कन्याका विधिपूर्वक अभिनन्दन किया ॥ ८ ॥

तां निरीक्ष्याब्रवीद् वाक्यं पर्वतः प्रहसन्निव।
कस्येयं चञ्चलापाङ्गी सर्वलक्षणसम्मता ॥ ९ ॥

तब महर्षि पर्वतने उस कन्याकी ओर देखकर हँसते हुए-से कहा—'राजन्! यह समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्मानित चञ्चल कटाक्षवाली कन्या किसकी पुत्री है? ॥ ९ ॥

उताहो भाः स्विदर्कस्य ज्वलनस्य शिखा त्वियम्।
श्रीर्ह्रीः कीर्तिर्धृतिः पुष्टिः सिद्धिश्चन्द्रमसः प्रभा ॥ १० ॥

'अहो! यह सूर्यकी प्रभा है या अग्निदेवकी शिखा है अथवा श्री, ह्री, कीर्ति, धृति, पुष्टि, सिद्धि या चन्द्रमाकी प्रभा है?' ॥ १० ॥

एवं ब्रुवाणं देवर्षिं नृपतिः सृञ्जयोऽब्रवीत्।
ममेयं भगवन् कन्या मत्तो वरमभीप्सति ॥ ११ ॥

इस प्रकार पूछते हुए देवर्षि पर्वतसे राजा सृंजयने कहा—'भगवन्! यह मेरी कन्या है, जो मुझसे वर प्राप्त करना चाहती है' ॥ ११ ॥

नारदस्त्वब्रवीदेनं देहि मह्यमिमां नृप।
भार्यार्थं सुमहच्छ्रेयः प्राप्तुं चेदिच्छसे नृप ॥ १२ ॥

इसी समय नारदजी राजासे बोले—'नरेश्वर! यदि तुम परम कल्याण प्राप्त करना चाहते हो तो अपनी इस कन्याको धर्मपत्नी बनानेके लिये मुझे दे दो' ॥ १२ ॥

ददानीत्येव संहृष्टः सृञ्जयः प्राह नारदम्।
पर्वतस्तु सुसंक्रुद्धो नारदं वाक्यमब्रवीत् ॥ १३ ॥

तब सृंजयने अत्यन्त प्रसन्न होकर नारदजीसे कहा—'दे दूँगा'। यह सुनकर पर्वत अत्यन्त कुपित हो नारदजीसे बोले—॥ १३ ॥

हृदयेन मया पूर्वं वृतां वै वृतवानसि।
यस्माद् वृता त्वया विप्र मा गाः स्वर्गं यथेप्सया ॥ १४ ॥

'ब्रह्मन्! मैंने मन-ही-मन पहले ही जिसका वरण कर लिया था, उसीका तुमने वरण किया है। अतः तुमने मेरी मनोनीत पत्नीको वर लिया है, इसलिये अब तुम इच्छानुसार स्वर्गमें नहीं जा सकते' ॥ १४ ॥

एवमुक्तो नारदस्तं प्रत्युवाचोत्तरं वचः।
मनोवाग्बुद्धिसम्भाषा दत्ता चोदकपूर्वकम् ॥ १५ ॥
पाणिग्रहणमन्त्राश्च प्रथितं वरलक्षणम्।
न त्वेषा निश्चिता निष्ठा निष्ठा सप्तपदी स्मृता ॥ १६ ॥

उनके ऐसा कहनेपर नारदजीने उन्हें यह उत्तर दिया—'मनसे संकल्प करके, वाणीद्वारा प्रतिज्ञा करके, बुद्धिके द्वारा पूर्ण निश्चयके साथ, परस्पर सम्भाषणपूर्वक तथा संकल्पका जल हाथमें लेकर जो कन्यादान किया जाता है, वरके द्वारा जो कन्याका पाणिग्रहण होता है और वैदिक मन्त्रके पाठ किये जाते हैं, यही विधि-विधान कन्या-परिग्रहके साधकरूपसे प्रसिद्ध है; परंतु इतनेसे ही पाणिग्रहणकी पूर्णताका निश्चय नहीं होता है। उसकी पूर्ण निष्ठा तो सप्तपदी ही मानी गयी है ॥ १५-१६ ॥

अनुत्पन्ने च कार्यार्थे मां त्वं व्याहृतवानसि।
तस्मात् त्वमपि न स्वर्गं गमिष्यसि मया विना ॥ १७ ॥

'अतः इस कन्याके ऊपर पतिरूपसे तुम्हारा अधिकार नहीं हुआ है—ऐसी अवस्थामें भी तुमने मुझे शाप दे दिया है, इसलिये तुम भी मेरे बिना स्वर्ग नहीं जा सकोगे' ॥ १७ ॥

अन्योन्यमेवं शप्त्वा वै तस्थतुस्तत्र तौ तदा।
अथ सोऽपि नृपो विप्रान् पानाच्छादनभोजनैः ॥ १८ ॥
पुत्रकामः परं शक्त्या यत्नाच्चोपाचरच्छुचिः।

इस प्रकार एक दूसरेको शाप देकर वे दोनों उस समय वहीं ठहर गये। इधर राजा सृंजयने पुत्रकी इच्छासे पवित्र हो पूरी शक्ति लगाकर बड़े यत्नसे भोजन, पीने योग्य पदार्थ तथा वस्त्र आदि देकर ब्राह्मणोंकी आराधना की ॥ १८½ ॥

तस्य प्रसन्ना विप्रेन्द्राः कदाचित् पुत्रमीप्सवः ॥ १९ ॥
तपःस्वाध्यायनिरता वेदवेदाङ्गपारगाः।
सहिता नारदं प्राहुर्देह्यस्मै पुत्रमीप्सितम् ॥ २० ॥

एक दिन राजापर प्रसन्न होकर उन्हें पुत्र देनेकी इच्छावाले सभी श्रेष्ठ ब्राह्मण, जो तपस्या और स्वाध्यायमें संलग्न रहनेवाले तथा वेद-वेदाङ्गोंके पारंगत विद्वान् थे, एक साथ नारदजीसे बोले—'देवर्षे! आप इन राजा सृंजयको अभीष्ट पुत्र प्रदान कीजिये' ॥ १९-२० ॥

तथेत्युक्त्वा द्विजैरुक्तः सृञ्जयं नारदोऽब्रवीत्।
तुभ्यं प्रसन्ना राजर्षे पुत्रमीप्सन्ति ब्राह्मणाः ॥ २१ ॥

ब्राह्मणोंके ऐसा कहनेपर नारदजीने 'तथास्तु' कहकर उनका अनुरोध स्वीकार कर लिया। फिर वे सृंजयसे इस प्रकार बोले—'राजर्षे! ये ब्राह्मणलोग प्रसन्न होकर तुम्हारे लिये अभीष्ट पुत्र प्राप्त करना चाहते हैं ॥ २१ ॥

वरं वृणीष्व भद्रं ते यादृशं पुत्रमीप्सितम्।
तथोक्तः प्राञ्जली राजा पुत्रं वव्रे गुणान्वितम् ॥ २२ ॥
यशस्विनं कीर्तिमन्तं तेजस्विनमरिंदमम्।

यस्य मूत्रं पुरीषं च क्लेदः स्वेदश्च काञ्चनम् ॥ २३ ॥
(सर्वं भवतु प्रसादाद् वै तादृशं तनयं वृणे ।

'तुम्हारा कल्याण हो । तुम्हें जैसा पुत्र अभीष्ट हो, उसके लिये वर माँगो' । नारदजीके ऐसा कहनेपर राजाने हाथ जोड़कर उनसे एक सद्गुणसम्पन्न, यशस्वी, कीर्तिमान्, तेजस्वी तथा शत्रुदमन पुत्र माँगा । वह बोला—'मुने ! मैं ऐसे पुत्रकी याचना करता हूँ, जिसका मल, मूत्र, थूक और पसीना सब कुछ आपके कृपाप्रसादसे सुवर्णमय हो जाय' ॥

व्यास उवाच

तथा भविष्यतीत्युक्ते जज्ञे तस्येप्सितः सुतः ॥
काञ्चनस्याकरः श्रीमान् प्रसादाच्च सुकाङ्क्षितः ।
अपतत् तस्य नेत्राभ्यां रुदतस्तस्य नेत्रजम् ॥)
सुवर्णष्ठीवीत्येवं तस्य नामाभवत् कृतम् ।
तस्मिन् वरप्रदानेन वर्धयत्यमितं धनम् ॥ २४ ॥

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! तब मुनिने कहा—'ऐसा ही होगा' । उनके ऐसा कहनेपर राजाको मनोवाञ्छित पुत्र प्राप्त हुआ । मुनिके प्रसादसे वह शोभाशाली पुत्र सुवर्णकी खान निकला । राजा वैसा ही पुत्र चाहते थे । रोते समय उसके नेत्रोंसे सुवर्णमय आँसू गिरता था । इसीलिये उस पुत्रका नाम सुवर्णष्ठीवी प्रसिद्ध हो गया । वरदानके प्रभावसे वह अनन्त धनराशिकी वृद्धि करने लगा ॥ २४ ॥

कारयामास नृपतिः सौवर्णं सर्वमीप्सितम् ।
गृहप्राकारदुर्गाणि ब्राह्मणावसथान्यपि ॥ २५ ॥
शय्यासनानि यानानि स्थाली पिठरभाजनम् ।
तस्य राज्ञोऽपि यद् वेश्म बाह्याश्चोपस्कराश्च ये ॥ २६ ॥
सर्वं तत् काञ्चनमयं कालेन परिवर्धितम् ।

राजाने घर, परकोटे, दुर्ग एवं ब्राह्मणोंके निवासस्थान सारी अभीष्ट वस्तुएँ सोनेकी बनवा लीं । शय्या, आसन, सवारी, बटलोई, थाली, अन्य बर्तन, उस राजाका महल तथा बाह्य उपकरण—ये सब कुछ सुवर्णमय बन गये थे, जो समयके अनुसार बढ़ रहे थे ॥ २५–२६½ ॥

अथ दस्युगणाः श्रुत्वा दृष्ट्वा चैनं तथाविधम् ॥ २७ ॥
सम्भूय तस्य नृपतेः समारब्धाश्चिकीर्षितुम् ।

तदनन्तर लुटेरोंने राजाके वैभवकी बात सुनकर तथा उन्हें वैसा ही सम्पन्न देखकर संगठित हो उनके यहाँ लूट-पाट आरम्भ कर दी ॥ २७½ ॥

केचित् तत्राब्रुवन् राज्ञः पुत्रं गृह्णीम वै स्वयम् ॥ २८ ॥
सोऽस्याकरः काञ्चनस्य तस्य यत्नं चरामहे ।

उन डाकुओंमेंसे कोई-कोई इस प्रकार बोले—'हम सब लोग स्वयं इस राजाके पुत्रको अधिकारमें कर लें; क्योंकि वही इस सुवर्णकी खान है । अतः हम उसीको पकड़नेका यत्न करें' ॥ २८½ ॥

ततस्ते दस्यवो लुब्धाः प्रविश्य नृपतेर्गृहम् ॥ २९ ॥
राजपुत्रं तथा जह्रुः सुवर्णष्ठीविनं बलात् ।

तब उन लोभी लुटेरोंने राजमहलमें प्रवेश करके राजकुमार सुवर्णष्ठीवीको बलपूर्वक हर लिया ॥ २९½ ॥

गृहीत्वैनमनुपायज्ञा नीत्वारण्यमचेतसः ॥ ३० ॥
हत्वा विशस्य चापश्यन् लुब्धा वसु न किञ्चन ।
तस्य प्राणैर्विमुक्तस्य नष्टं तद् वरदं वसु ॥ ३१ ॥

योग्य उपायको न जाननेवाले उन विवेकशून्य डाकुओंने उसे वनमें ले जाकर मार डाला और उसके शरीरके टुकड़े-टुकड़े करके देखा, परंतु उन्हें थोड़ा-सा भी धन नहीं दिखायी दिया । उसके प्राणशून्य होते ही वह वरदायक वैभव नष्ट हो गया ॥ ३०–३१ ॥

दस्यवश्च तदान्योन्यं जघ्नुर्मूर्खा विचेतसः ।
हत्वा परस्परं नष्टाः कुमारं चाद्भुतं भुवि ॥ ३२ ॥
असम्भाव्यं गता घोरं नरकं दुष्टकारिणः ।

उस समय वे विचारशून्य मूर्ख एवं दुराचारी दस्यु भूमण्डलके उस अद्भुत और असम्भव कुमारका वध करके परस्पर एक दूसरेको मारने लगे । इस प्रकार मार-पीट करके वे भी नष्ट हो गये और भयंकर नरकमें पड़ गये ॥ ३२½ ॥

तं दृष्ट्वा निहतं पुत्रं वरदत्तं महातपाः ॥ ३३ ॥
विललाप सुदुःखार्तो बहुधा करुणं नृपः ।

मुनिके वरसे प्राप्त हुए उस पुत्रको मारा गया देख वे महातपस्वी नरेश अत्यन्त दुःखसे आतुर हो नाना प्रकारसे करुणाजनक विलाप करने लगे ॥ ३३½ ॥

विलपन्तं निशम्याथ पुत्रशोकहतं नृपम् ॥ ३४ ॥
प्रत्यदृश्यत देवर्षिर्नारदस्तस्य संनिधौ ।

पुत्रशोकसे पीड़ित हुए राजा सृंजय विलाप कर रहे हैं—यह सुनकर देवर्षि नारद उनके समीप दिखायी दिये । ३४½ ।

उवाच चैनं दुःखार्तं विलपन्तमचेतसम् ॥ ३५ ॥
सृञ्जयं नारदोऽभ्येत्य तन्निबोध युधिष्ठिर ।

युधिष्ठिर ! दुःखसे पीड़ित हो अचेत होकर विलाप करते हुए राजा सृंजयके निकट आकर नारदजीने जो कुछ कहा था, वह सुनो ॥ ३५½ ॥

(नारद उवाच

त्यज शोकं महाराज वैक्लव्यं त्यज बुद्धिमन् ।
न मृतः शोचतो जीवेन्मुह्यतो वा जनाधिप ॥

नारदजी बोले—महाराज ! शोकका त्याग करो ! बुद्धिमान् नरेश ! व्याकुलता छोड़ो । जनेश्वर ! कोई कितना ही शोक क्यों न करे या दुःखसे मूर्छित क्यों न हो जाय, इससे मरा हुआ मनुष्य जीवित नहीं हो सकता ॥

त्यज मोहं नृपश्रेष्ठ न हि मुह्यन्ति त्वद्विधाः ।
धीरो भव महाराज ज्ञानवृद्धोऽसि मे मतः ॥)

नृपश्रेष्ठ ! मोह त्याग दो ! तुम्हारे-जैसे पुरुष मोहित नहीं होते हैं। महाराज ! धैर्य धारण करो ! मैं तुम्हें ज्ञानमें बढ़ा-चढ़ा मानता हूँ ॥

कामानामवितृप्तस्त्वं सृञ्जयेह मरिष्यसि ॥ ३६ ॥
यस्य चैते वयं गेहे उषिता ब्रह्मवादिनः ।

सृंजय ! जिसके घरमें ये हम-जैसे ब्रह्मवादी मुनि निवास करते हैं, वह तुम भी यहाँ एक दिन भोगोंसे अतृप्त रहकर ही मर जाओगे ॥ ३६½ ॥

आविक्षितं मरुत्तं च मृतं सृञ्जय शुश्रुम ॥ ३७ ॥
संवर्तो याजयामास स्पर्धया वै बृहस्पतेः ।
यस्मै राजर्षये प्रादाद् धनं स भगवान् प्रभुः ॥ ३८ ॥
हैमं हिमवतः पादं यियक्षोर्विविधैः स वै ।
यस्य सेन्द्राऽमरगणा बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ ३९ ॥
देवा विश्वसृजः सर्वे यजनान्ते समासते ।
यज्ञवाटस्य सौवर्णाः सर्वे चासन् परिच्छदाः ॥ ४० ॥
यस्य सर्व तदा ह्यन्नं मनोऽभिप्रायगं शुचि ।
कामतो बुभुजुर्विप्राः सर्वे चान्नार्थिनो द्विजाः ॥ ४१ ॥
पयो दधि घृतं क्षौद्रं भक्ष्यं भोज्यं च शोभनम् ।
यस्य यज्ञेषु सर्वेषु वासांस्याभरणानि च ॥ ४२ ॥
ईप्सितान्युपतिष्ठन्ते प्रहृष्टान् वेदपारगान् ।
मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्याभवन् गृहे ॥ ४३ ॥
आविक्षितस्य राजर्षेर्विश्वेदेवाः सभासदः ।
यस्य वीर्यवतो राज्ञः सुवृष्ट्या सस्यसम्पदः ॥ ४४ ॥
हविर्भिस्तर्पिता येन सम्यक् क्लृप्तैर्दिवौकसः ।
ऋषीणां च पितॄणां च देवानां सुखजीविनाम् ॥ ४५ ॥
ब्रह्मचर्यश्रुतिमुखैः सर्वैर्दानैश्च सर्वदा ।
शयनासनयानानि स्वर्णराशीश्च दुस्त्यजाः ॥ ४६ ॥
तत् सर्वममितं वित्तं दत्तं विप्रेभ्य इच्छया ।
सोऽनुध्यातस्तु शक्रेण प्रजाः कृत्वा निरामयाः ॥ ४७ ॥
श्रद्दधानो जिताँल्लोकान् गतः पुण्यदुहोऽक्षयान् ।

सृंजय ! अविक्षितके पुत्र राजा मरुत्त भी मर गये, ऐसा हमने सुना है। बृहस्पतिजीके साथ स्पर्धा रखनेके कारण उनके भाई संवर्तने जिन राजर्षि मरुत्तका यज्ञ कराया था, भाँति-भाँतिके यज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन करनेकी इच्छा होनेपर जिन्हें साक्षात् भगवान् शङ्करने प्रचुर धनराशिके रूपमें हिमालयका एक सुवर्णमय शिखर प्रदान किया था तथा प्रतिदिन यज्ञकार्यके अन्तमें जिनकी सभामें इन्द्र आदि देवता और बृहस्पति आदि समस्त प्रजापतिगण सभासद्‌के रूपमें बैठा करते थे, जिनके यज्ञमण्डपकी सारी सामग्रियाँ सोनेकी बनी हुई थीं, जिनके यहाँ उन दिनों सब प्रकारका अन्न, मनकी इच्छाके अनुरूप और पवित्र रूपमें उपलब्ध होता था और सभी भोजनार्थी ब्राह्मण एवं द्विज जहाँ अपनी इच्छाके अनुसार दूध, दही, घी, मधु एवं सुन्दर भक्ष्य-भोज्य पदार्थ भोजन करते थे, जिनके सम्पूर्ण यज्ञोंमें प्रसन्नतासे भरे हुए वेदोंके पारंगत विद्वान् ब्राह्मणोंको अपनी रुचिके अनुसार वस्त्र एवं आभूषण प्राप्त होते थे, जिन अविक्षितकुमार (राजर्षि मरुत्त) के घरमें मरुद्गण रसोई परोसनेका काम करते थे और विश्वेदेवगण सभासद् थे, जिन पराक्रमी नरेशके राज्यमें उत्तम वृष्टिके कारण खेतीकी उपज बहुत होती थी, जिन्होंने उत्तम विधिसे समर्पित किये हुए हविष्योंद्वारा देवताओंको तृप्त किया था, जो ब्रह्मचर्यपालन और वेदपाठ आदि सत्कर्मोंद्वारा तथा सब प्रकारके दानोंसे सदा ऋषियों, पितरों एवं सुखजीवी देवताओंको भी संतुष्ट करते थे तथा जिन्होंने इच्छानुसार ब्राह्मणोंको शय्या, आसन, सवारी और दुस्त्यज स्वर्णराशि आदि वह सारा अपरिमित धन दान कर दिया था, देवराज इन्द्र जिनका सदा शुभ चिन्तन करते थे, वे श्रद्धालु नरेश मरुत्त अपनी प्रजाको नीरोग करके अपने सत्कर्मोंद्वारा जीते हुए पुण्यफलदायक अक्षय लोकोंमें चले गये ॥ ३७—४७½ ॥

सप्रजः सनृपामात्यः सदारापत्यबान्धवः ॥ ४८ ॥
यौवनेन सहस्राब्दं मरुत्तो राज्यमन्वशात् ।

राजा मरुत्तने युवावस्थामें रहकर प्रजा, मन्त्री, धर्मपत्नी, पुत्र और भाइयोंके साथ एक हजार वर्षोंतक राज्यशासन किया था ॥ ४८½ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ ४९ ॥
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ ५० ॥

श्वैत्य सृंजय ! धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य—इन चारों बातोंमें राजा मरुत्त तुमसे बढ़कर थे और तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे । तुम्हारे पुत्रने न तो कोई यज्ञ किया था और न उसमें कोई उदारता ही थी। अतः उसको लक्ष्य करके तुम चिन्ता न करो—नारदजीने राजा सृंजयसे यही बात कही ॥ ४९-५० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५५ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ४ श्लोक मिलाकर कुल ५४ श्लोक हैं)

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

राजा सुहोत्रकी दानशीलता

नारद उवाच

सुहोत्रं नाम राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
एकवीरमशक्यं तममरैरभिवीक्षितुम् ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—सृंजय ! राजा सुहोत्रकी भी मृत्यु सुनी गयी है । वे अपने समयके अद्वितीय वीर थे । देवता भी उनकी ओर आँख उठाकर नहीं देख सकते थे ॥

यः प्राप्य राज्यं धर्मेण ऋत्विग्ब्रह्मपुरोहितान् ।
अपृच्छदात्मनः श्रेयः पृष्ट्वा तेषां मते स्थितः ॥ २ ॥

उन्होंने धर्मके अनुसार राज्य पाकर ऋत्विजों, ब्राह्मणों तथा पुरोहितोंसे अपने कल्याणका उपाय पूछा और पूछकर वे उनकी सम्मतिके अनुसार चलते रहे ॥ २ ॥

प्रजानां पालनं धर्मो दानमिज्या द्विषज्जयः ।
एतत् सुहोत्रो विज्ञाय धर्मेणैच्छद् धनागमम् ॥ ३ ॥

प्रजापालन, धर्म, दान, यज्ञ और शत्रुओंपर विजय पाना—इन सबको राजा सुहोत्रने अपने लिये श्रेयस्कर जानकर धर्मके द्वारा ही धन पानेकी अभिलाषा की ॥ ३ ॥

धर्मेणाराधयन् देवान् बाणैः शत्रूञ्जयंस्तथा ।
सर्वाण्यपि च भूतानि स्वगुणैरप्यरञ्जयत् ॥ ४ ॥
यो भुक्त्वेमां वसुमतीं म्लेच्छाटविकवर्जिताम् ।
यस्मै ववर्ष पर्जन्यो हिरण्यं परिवत्सरान् ॥ ५ ॥

उन्होंने इस पृथ्वीको म्लेच्छों तथा तस्करोंसे रहित करके इसका उपभोग किया और धर्माचरणद्वारा देवताओंकी आराधना तथा बाणोंद्वारा शत्रुओंपर विजय करते हुए अपने गुणोंसे समस्त प्राणियोंका मनोरञ्जन किया था, उनके लिये मेघने अनेक वर्षोंतक सुवर्णकी वर्षा की थी ॥४-५॥

हैरण्यास्तत्र वाहिन्यः स्वैरिण्यो व्यवहन् पुरा ।
ग्राहान् कर्कटकांश्चैव मत्स्यांश्च विविधान् बहून् ॥६॥

राजा सुहोत्रके राज्यमें पहले स्वच्छन्द गतिसे बहनेवाली स्वर्णरससे भरी हुई सरिताएँ सुवर्णमय ग्राहों, केकड़ों, मत्स्यों तथा नाना प्रकारके बहुसंख्यक जल-जन्तुओंको अपने भीतर बहाया करती थीं ॥ ६ ॥

कामान् वर्षति पर्जन्यो रूप्याणि विविधानि च ।
सौवर्णान्यप्रमेयाणि वाप्यश्च क्रोशसम्मिताः ॥ ७ ॥

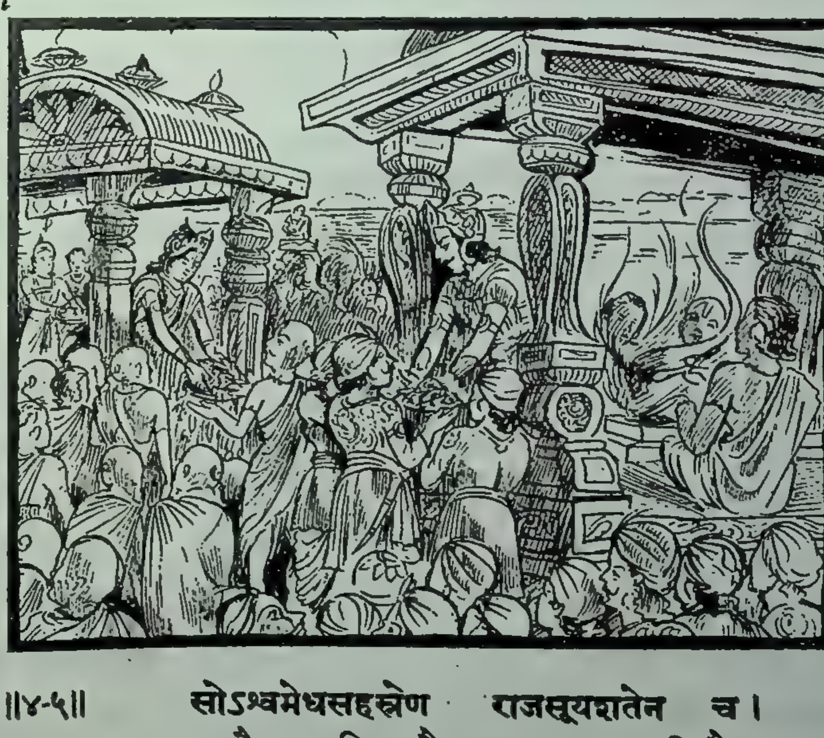
मेघ अभीष्ट वस्तुओंकी तथा नाना प्रकारके रजत और असंख्य सुवर्णकी वर्षा करते थे । उनके राज्यमें एक-एक कोसकी लंबी-चौड़ी बावलियाँ थीं ॥ ७ ॥

सहस्रं वामनान् कुब्जान् नक्रान् मकरकच्छपान् ।
सौवर्णान् विहितान् दृष्ट्वा ततोऽस्मयत वै तदा ॥ ८ ॥

उनमें सहस्रों नाटे-कुबड़े ग्राह, मगर और कछुए रहते थे, जिनके शरीर सुवर्णके बने हुए थे । उन्हें देखकर राजाको उन दिनों बड़ा विस्मय होता था ॥ ८ ॥

तत् सुवर्णमपर्यन्तं राजर्षिः कुरुजाङ्गले ।
ईजानो वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ ९ ॥

राजर्षि सुहोत्रने कुरुजाङ्गल देशमें यज्ञ किया और उस विशाल यज्ञमें अपनी अनन्त सुवर्णराशि ब्राह्मणोंको बाँट दी ॥ ९ ॥



सोऽश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेन च ।
पुण्यैः क्षत्रिययज्ञैश्च प्रभूतवरदक्षिणैः ॥ १० ॥

उन्होंने एक हजार अश्वमेध, सौ राजसूय तथा बहुत-सी श्रेष्ठ दक्षिणावाले अनेक पुण्यमय क्षत्रिय-यज्ञोंका अनुष्ठान किया था ॥ १० ॥

काम्यनैमित्तिकाजस्रैरिष्टां गतिमवाप्तवान् ।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ ११ ॥
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।

अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ १२ ॥

राजाने नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य यज्ञोंके निरन्तर अनुष्ठानसे मनोवाञ्छित गति प्राप्त कर ली। श्वैत्य संजय! वे भी तुमसे धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य–इन चारों कल्याणकारी विषयोंमें बहुत बढ़े-चढ़े थे। तुम्हारे पुत्रसे भी वे अधिक पुण्यात्मा थे। जब वे भी मर गये, तब तुम्हें अपने पुत्रके लिये अनुताप नहीं करना चाहिये; क्योंकि तुम्हारे पुत्रने न तो कोई यज्ञ किया था और न उसमें दाक्षिण्य (उदारताका गुण) ही था। नारदजीने राजा सृञ्जयसे यही बात कही ॥ ११-१२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक छप्पनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

राजा पौरवके अद्भुत दानका वृत्तान्त

नारद उवाच

राजानं पौरवं वीरं मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
सहस्रं यः सहस्राणां श्वेतानश्वानवासृजत् ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—संजय! हमने वीर राजा पौरवकी भी मृत्यु हुई सुनी है, जिन्होंने दस लाख श्वेत घोड़ोंका दान किया था ॥ १ ॥

तस्याश्वमेधे राजर्षेर्देशाद्देशात् समीयुषाम्।
शिक्षाक्षरविधिज्ञानां नासीत् संख्या विपश्चिताम् ॥ २ ॥

उन राजर्षिके अश्वमेध यज्ञमें देश-देशसे आये हुए शिक्षाशास्त्र, अक्षर (विभिन्न देशोंकी लिपि) और यज्ञ-विधिके ज्ञाता विद्वानोंकी गिनती नहीं थी ॥ २ ॥

वेदविद्याव्रतस्नाता वदान्याः प्रियदर्शनाः।
सुभिक्षाच्छादनगृहाः सुशय्यासनभोजनाः ॥ ३ ॥

वेदविद्याके अध्ययनका व्रत पूर्ण करके स्नातक बने हुए उदार और प्रियदर्शन पण्डितजन राजासे उत्तम अन्न, वस्त्र, गृह, सुन्दर शय्या, आसन और भोजन पाते थे ॥ ३ ॥

नटनर्तकगन्धर्वैः पूर्णकैर्वर्धमानकैः।
नित्योद्योगैश्च क्रीडद्भिस्तत्र स परिहर्षिताः ॥ ४ ॥

नित्य उद्योगशील एवं खेल-कूद करनेवाले नट, नर्तक और गन्धर्वगण कुक्कुटकी-सी आकृतिवाले आरतीके प्यालोंसे अपनी कला दिखाकर उक्त विद्वानोंका मनोरञ्जन एवं हर्ष वर्द्धन करते रहते थे ॥ ४ ॥

यज्ञे यज्ञे यथाकालं दक्षिणाः सोऽत्यकालयत्।
द्विपा दशसहस्राख्याः प्रमदाः काञ्चनप्रभाः ॥ ५ ॥
सध्वजाः सपताकाश्च रथा हेममयास्तथा।
यः सहस्रं सहस्राणि कन्या हेमविभूषिताः ॥ ६ ॥

राजा पौरव प्रत्येक यज्ञमें यथासमय प्रचुर दक्षिणा बाँटते थे। उन्होंने स्वर्णकी-सी कान्तिवाले दस हजार मतवाले हाथी, ध्वजा और पताकाओंसहित सुवर्णमय बहुत-से रथ तथा एक लाख स्वर्णभूषित कन्याओंका दान किया था ॥ ५-६ ॥

धूर्युजाश्वगजारूढाः सगृहक्षेत्रगोशताः।
शतं शतसहस्राणि स्वर्णमालिमहात्मनाम् ॥ ७ ॥
गवां सहस्रानुचरान् दक्षिणामत्यकालयत्।

वे कन्याएँ रथ, अश्व एवं हाथियोंपर आरूढ़ थीं। उनके साथ ही उन्होंने सौ-सौ घर, क्षेत्र और गौएँ प्रदान की थीं। राजाने सुवर्णमालामण्डित विशालकाय एक करोड़ गाय-बैलों और उनके सहस्रों अनुचरोंको दक्षिणारूपसे दान किया था ॥ ७½ ॥

हेमशृङ्ग्यो रौप्यखुराः सवत्साः कांस्यदोहनाः ॥ ८ ॥
दासीदासखरोष्ट्राश्च प्रादादाजाविकं बहु।

सोनेके सींग, चाँदीके खुर और काँसेके दुग्धपात्रवाली बहुत-सी बछड़ेसहित गौएँ तथा दास, दासी, गदहे, ऊँट एवं बकरी और भेड़ आदि भारी संख्यामें दान किये ॥ ८½ ॥

रत्नानां विविधानां च विविधांश्चान्नपर्वतान् ॥ ९ ॥
तस्मिन् संविततते यज्ञे दक्षिणामत्यकालयत्।

उस विशाल यज्ञमें नाना प्रकारके रत्नों तथा भाँति-भाँतिके अन्नोंके पर्वत-समान ढेर उन्होंने दक्षिणारूपमें दिये ॥ ९½ ॥

तत्रास्य गाथा गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ॥ १० ॥

उस यज्ञके सम्बन्धमें प्राचीन बातोंको जाननेवाले लोग इस प्रकार गाथा गाते हैं—॥ १० ॥

अङ्गस्य यजमानस्य स्वधर्माधिगताः शुभाः।
गुणोत्तरास्तु क्रतवस्तस्यासन् सार्वकामिकाः ॥ ११ ॥

'यजमान अङ्गनरेशके सभी यज्ञ स्वधर्मके अनुसार प्राप्त और शुभ थे। वे उत्तरोत्तर गुणवान् और सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धि करनेवाले थे' ॥ ११ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ १२ ॥

संजय! राजा पौरव धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य—

इन चारों बातोंमें तुमसे बढ़कर थे और तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे। श्वैत्य सृंजय! जब वे भी मर गये, तब तुम यज्ञ और दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो। नारदजीने राजा सृंजयसे यही बात कही ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक सत्तावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

राजा शिबिके यज्ञ और दानकी महत्ता

नारद उवाच

शिबिमौशीनरं चापि मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
य इमां पृथिवीं सर्वां चर्मवत् पर्यवेष्टयत् ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—सृंजय! जिन्होंने इस सम्पूर्ण पृथ्वीको चमड़ेकी भाँति लपेट लिया था, (सर्वथा अपने अधीन कर लिया था) वे उशीनरपुत्र राजा शिबि भी मरे थे, यह हमने सुना है ॥ १ ॥

साद्रिद्वीपार्णववनां रथघोषेण नादयन्।
स शिबिर्वै रिपून् नित्यं मुख्यान् निघ्नन् सपत्नजित् ॥ २ ॥

राजा शिबिने पर्वत, द्वीप, समुद्र और वनोंसहित इस पृथ्वीको अपने रथकी घरघराहटसे प्रतिध्वनित करते हुए प्रधान-प्रधान शत्रुओंको मारकर सदा ही अपने विपक्षियोंपर विजय प्राप्त की थी ॥ २ ॥

तेन यज्ञैर्बहुविधैरिष्टं पर्याप्तदक्षिणैः।
स राजा वीर्यवान् धीमानवाप्य वसु पुष्कलम् ॥ ३ ॥
सर्वमूर्धाभिषिक्तानां सम्मतः सोऽभवद् युधि।
अयजच्चाश्वमेधैर्यो विजित्य पृथिवीमिमाम् ॥ ४ ॥

उन्होंने प्रचुर दक्षिणाओंसे युक्त नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। वे पराक्रमी और बुद्धिमान् नरेश पर्याप्त धन पाकर युद्धमें सम्पूर्ण मूर्धाभिषिक्त राजाओंकी दृष्टिमें सम्माननीय वीर हो गये थे। उन्होंने इस पृथ्वीको जीतकर अनेक अश्वमेध-यज्ञ किये थे ॥ ३–४ ॥

निरर्गलैर्बहुफलैर्निष्ककोटिसहस्रदः ।
हस्त्यश्वपशुभिर्धान्यैर्मृगैर्गोऽजाविभिस्तथा ॥ ५ ॥
विविधां पृथिवीं पुण्यां शिबिर्ब्राह्मणसात्करोत्।

उनके वे यज्ञ प्रचुर फल देनेवाले थे और सदा निर्बाध-रूपसे चलते रहते थे। उन्होंने सहस्रकोटि स्वर्णमुद्राओंका दान किया था। राजा शिबिने हाथी, घोड़े, मृग, गौ, भेड़ और बकरी आदि पशुओं तथा धान्योंसहित नाना प्रकारके पवित्र भूखण्ड ब्राह्मणोंके अधीन कर दिये थे ॥ ५½ ॥

यावत्यो वर्षतो धारा यावत्यो दिवि तारकाः ॥ ६ ॥
यावत्यः सिकता गाङ्ग्यो यावन्मेरोर्महोपलाः।
उदन्वति च यावन्ति रत्नानि प्राणिनोऽपि च ॥ ७ ॥
तावतीरददद् गा वै शिबिरौशीनरोऽध्वरे।

बरसते हुए मेघसे जितनी धाराएँ गिरती हैं, आकाशमें जितने नक्षत्र दिखायी देते हैं, गङ्गाके किनारे जितने बालूके कण हैं, सुमेरु पर्वतमें जितने स्थूल प्रस्तरखण्ड हैं तथा महासागरमें जितने रत्न और प्राणी निवास करते हैं, उतनी गौएँ उशीनरपुत्र शिबिने यज्ञमें ब्राह्मणोंको दी थीं ॥ ६-७½ ॥

नो यन्तारं धुरस्तस्य कञ्चिदन्यं प्रजापतिः ॥ ८ ॥
भूतं भव्यं भवन्तं वा नाध्यगच्छन्नरोत्तमम्।

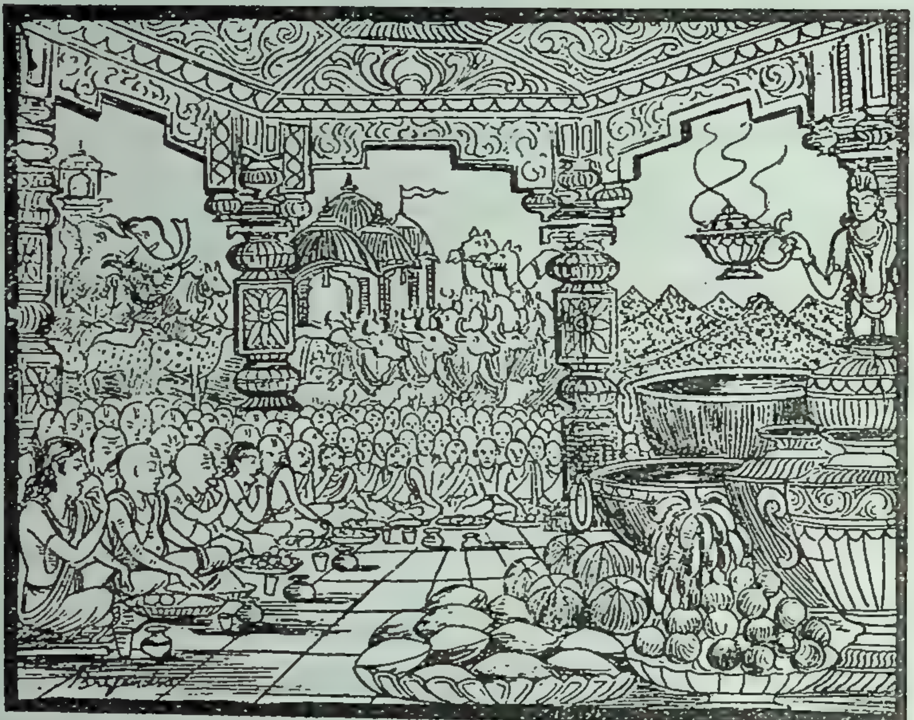
प्रजापतिने भी अपनी सृष्टिमें भूत, भविष्य और वर्तमान कालके किसी भी दूसरे नरश्रेष्ठ राजाको ऐसा नहीं पाया, जो शिबिके कार्यभारको सँभाल सकता हो ॥ ८½ ॥

तस्यासन् विविधा यज्ञाः सर्वकामैः समन्विताः ॥ ९ ॥
हेमयूपासनगृहा हेमप्राकारतोरणाः।

उन्होंने नाना प्रकारके बहुत-से यज्ञ किये, जिनमें प्रार्थियोंकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण की जाती थीं। उन यज्ञोंमें यज्ञस्तम्भ, आसन, गृह, परकोटे और दरवाजे सुवर्णके बने हुए थे ॥ ९½ ॥

शुचि स्वाद्वन्नपानं च ब्राह्मणाः प्रयुतायुताः ॥ १० ॥
नानाभक्ष्यैः प्रियकथाः पयोदधिमहाह्रदाः।
तस्यासन् यज्ञवाटेषु नद्यः शुभ्रान्नपर्वताः ॥ ११ ॥

उन यज्ञोंमें खाने-पीनेकी वस्तुएँ पवित्र और स्वादिष्ट होती थीं। वहाँ दूध-दहीके बड़े-बड़े सरोवर बने हुए थे। वहाँ हजारों और लाखों ब्राह्मण भाँति-भाँतिके खाद्य पदार्थ पाकर प्रसन्नता प्रकट करनेवाली बातें कहते थे। उनकी यज्ञशालाओंमें पीने योग्य पदार्थोंकी नदियाँ बहती थीं और शुद्ध अन्नके पर्वतोंके समान ढेर लगे रहते थे ॥ १०–११ ॥



पिबत स्नात खादध्वमिति यद् रोचते जनाः।
यस्मै प्रादाद् वरं रुद्रस्तुष्टः पुण्येन कर्मणा ॥ १२ ॥
अक्षयं ददतो वित्तं श्रद्धा कीर्तिस्तथा क्रियाः।
यथोक्तमेव भूतानां प्रियत्वं स्वर्गमुत्तमम् ॥ १३ ॥

वहाँ सबके लिये यह घोषणा की जाती थी कि 'सज्जनो! स्नान करो और जिसकी जैसी रुचि हो उसके अनुसार अन्न-पान लेकर खूब खाओ-पीओ'। भगवान् शिवने राजा शिबिके पुण्यकर्मसे प्रसन्न होकर उन्हें यह वर दिया था कि राजन्! सदा दान करते रहनेपर भी तुम्हारा धन क्षीण नहीं होगा, तुम्हारी श्रद्धा, कीर्ति और पुण्यकर्म भी अक्षय होंगे। तुम्हारे कहनेके अनुसार ही सब प्राणी तुमसे प्रेम करेंगे और अन्तमें तुम्हें उत्तम स्वर्गलोककी प्राप्ति होगी ॥ १२-१३ ॥

एताँल्लब्ध्वा वरानिष्टा-
ञ्छिबिः काले दिवं गतः।
स चेन्ममार सृञ्जय
चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ १४ ॥
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं
मा पुत्रमनुतप्यथाः।
अयज्वानमदाक्षिण्य-
मभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ १५ ॥

इन अभीष्ट वरोंको पाकर राजा शिबि समय आनेपर स्वर्गलोकमें गये। सृंजय! वे तुम्हारी अपेक्षा पूर्वोक्त चारों बातोंमें बहुत बढ़े-चढ़े थे। तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे। श्वित्यनन्दन! जब वे शिबि भी मर गये, तब तुम्हें यज्ञ और दानसे रहित अपने पुत्रके लिये इस प्रकार शोक नहीं करना चाहिये। नारदजीने राजा सृंजयसे यही बात कही ॥ १४-१५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक अट्ठावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

भगवान् श्रीरामका चरित्र

नारद उवाच

रामं दाशरथिं चैव मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
यं प्रजा अन्वमोदन्त पिता पुत्रानिवौरसान् ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—सृंजय! दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम भी यहाँसे परमधामको चले गये थे, यह मेरे सुननेमें आया है। उनके राज्यमें सारी प्रजा निरन्तर आनन्दमग्न रहती थी। जैसे पिता अपने औरस पुत्रोंका पालन करता है, उसी प्रकार वे समस्त प्रजाका स्नेहपूर्वक संरक्षण करते थे ॥

असंख्येया गुणा यस्मिन्नासन्नमिततेजसि।
यश्चतुर्दश वर्षाणि निदेशात् पितुरच्युतः ॥ २ ॥
वने वनितया सार्धमवसल्लक्ष्मणाग्रजः।

वे अत्यन्त तेजस्वी थे और उनमें असंख्य गुण विद्यमान थे। अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले लक्ष्मणके बड़े भाई श्रीरामने पिताकी आज्ञासे चौदह वर्षोंतक अपनी पत्नी सीता (और भाई लक्ष्मण) के साथ वनमें निवास किया था ॥ २½ ॥

जघान च जनस्थाने राक्षसान् मनुजर्षभः ॥ ३ ॥
तपस्विनां रक्षणार्थं सहस्राणि चतुर्दश।

नरश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने जनस्थानमें तपस्वी मुनियोंकी रक्षाके लिये चौदह हजार राक्षसोंका वध किया था ॥ ३½ ॥

तत्रैव वसतस्तस्य रावणो नाम राक्षसः ॥ ४ ॥
जहार भार्यां वैदेहीं सम्मोह्यैनं सहानुजम्।

वहीं रहते समय लक्ष्मणसहित श्रीरामको मोहमें डालकर रावण नामक राक्षसने उनकी पत्नी विदेहनन्दिनी सीताको हर लिया ॥ ४½ ॥

(रामां हृतां राक्षसेन भार्यां श्रुत्वा जटायुषः।
आतुरः शोकसंतप्तोऽगच्छद् रामो हरीश्वरम् ॥

अपनी मनोरमा पत्नीके राक्षसद्वारा हर लिये जानेका

समाचार जटायुके मुखसे सुनकर श्रीरामचन्द्रजी आतुर एवं शोकसंतप्त हो वानरराज सुग्रीवके पास गये ॥

तेन रामः सुसङ्गम्य वानरैश्च महाबलैः ।
आजगामोदधेः पारं सेतुं कृत्वा महार्णवे ॥

सुग्रीवसे मिलकर श्रीरामने (उनके साथ मित्रता की और) महाबली वानरोंको साथ ले महासागरमें पुल बाँधकर समुद्रको पार किया ॥

तत्र हत्वा तु पौलस्त्यान् ससुहृद्‌गणबान्धवान् ।
मायाविनं महाघोरं रावणं लोककण्टकम् ॥)
तमागस्कारिणं रामः पौलस्त्यमजितं परैः ॥ ५ ॥
जघान समरे क्रुद्धः पुरेव त्र्यम्बकोऽन्धकम् ।

वहाँ पुलस्त्यवंशी राक्षसोंको उनके सुहृदों और बन्धु-बान्धवोंसहित मारकर श्रीरामने अपने प्रधान अपराधी अत्यन्त घोर मायावी लोककंटक पुलस्त्यनन्दन रावणको, जो दूसरोंके द्वारा कभी जीता नहीं गया था, कुपित होकर समर-भूमिमें मार डाला । ठीक उसी तरह, जैसे पूर्वकालमें भगवान् शङ्करने अन्धकासुरको मारा था ॥ ५½ ॥

सुरासुरैरवध्यं तं देवब्राह्मणकण्टकम् ॥ ६ ॥
जघान स महाबाहुः पौलस्त्यं सगणं रणे ।

जो देवताओं और असुरोंके लिये भी अवध्य था, देवताओं और ब्राह्मणोंके लिये कण्टकरूप उस पुलस्त्यवंशी रावणका रणक्षेत्रमें महाबाहु श्रीरामचन्द्रजीने उसके दलबल-सहित संहार कर डाला ॥ ६½ ॥

(हत्वा तत्र रिपुं संख्ये भार्यया सह सङ्गतः ।
लङ्केश्वरं च चक्रे स धर्मात्मानं विभीषणम् ॥

इस प्रकार वहाँ युद्धस्थलमें अपने वैरी रावणका वध करके वे धर्मपत्नी सीतासे मिले । तत्पश्चात् धर्मात्मा विभीषण-को उन्होंने लङ्काका राजा बना दिया ॥

भार्यया सह संयुक्तस्ततो वानरसेनया ।
अयोध्यामागतो वीरः पुष्पकेण विराजता ॥

तदनन्तर वीर श्रीरामचन्द्रजी अपनी पत्नी तथा वानरसेनाके साथ शोभाशाली पुष्पकविमानके द्वारा अयोध्यामें आये ॥

तत्र राजन् प्रविष्टः स अयोध्यायां महायशाः ।
मातॄर्वयस्यान् सचिवानृत्विजः सपुरोहितान् ॥
शुश्रूषमाणः सततं मन्त्रिभिश्चाभिषेचितः ।

राजन् ! अयोध्यामें प्रवेश करके महायशस्वी श्रीराम वहाँ माताओं, मित्रों, मन्त्रियों, ऋत्विजों तथा पुरोहितोंकी सेवामें सदैव संलग्न रहने लगे । फिर मन्त्रियोंने उनका राज्याभिषेक कर दिया ॥

विसृज्य हरिराजानं हनुमन्तं सहाङ्गदम् ॥
भ्रातरं भरतं वीरं शत्रुघ्नं चैव लक्ष्मणम् ।
पूजयन् परया प्रीत्या वैदेह्या चाभिपूजितः ॥
चतुःसागरपर्यन्तां पृथिवीमन्वशासत ॥)
स प्रजानुग्रहं कृत्वा त्रिदशैरभिपूजितः ॥ ७ ॥

इसके बाद वानरराज सुग्रीव, हनुमान् और अङ्गदको विदा करके अपने वीर भ्राता भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मणका आदर करते हुए विदेहनन्दिनी सीताद्वारा परम प्रेमपूर्वक सम्मानित हो श्रीरामचन्द्रजीने चारों समुद्रोंतककी सारी पृथ्वीका शासन किया और समस्त प्रजाओंपर अनुग्रह करके वे देवताओंद्वारा सम्मानित हुए ॥ ७ ॥

व्याप्य कृत्स्नं जगत् कीर्त्या सुरर्षिगणसेवितः ।
स प्राप्य विधिवद् राज्यं सर्वभूतानुकम्पकः ॥ ८ ॥
आजहार महायज्ञं प्रजा धर्मेण पालयन् ।
निरर्गलं राजसूयमश्वमेधं च तं विभुः ॥ ९ ॥
आजहार सुरेशस्य हविषा मुदमाहरत् ।
अन्यैश्च विविधैर्यज्ञैरीजे बहुगुणैर्नृपः ॥ १० ॥

देवर्षिगणोंसे सेवित श्रीरामने विधिपूर्वक राज्य पाकर अपनी कीर्तिसे सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर दिया और समस्त प्राणियोंपर अनुग्रह करते हुए वे धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करने लगे । भगवान् रामने निर्बाधरूपसे राजसूय और अश्व-मेघ-यज्ञका अनुष्ठान किया और देवराज इन्द्रको हविष्यसे तृप्त करके उन्हें अत्यन्त आनन्द प्रदान किया । राजा रामने नाना प्रकारके दूसरे-दूसरे यज्ञ भी किये थे, जो अनेक गुणोंसे सम्पन्न थे ॥

क्षुत्पिपासेऽजयद् रामः सर्वरोगांश्च देहिनाम् ।
सततं गुणसम्पन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा ॥ ११ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने भूख और प्यासको जीत लिया था । सम्पूर्ण देहधारियोंके रोगोंको नष्ट कर दिया था । वे उत्तम गुणोंसे सम्पन्न हो सदैव अपने तेजसे प्रकाशित होते थे ॥ ११ ॥

अति सर्वाणि भूतानि रामो दाशरथिर्बभौ ।
ऋषीणां देवतानां च मानुषाणां च सर्वशः ॥ १२ ॥
पृथिव्यां सहवासोऽभूद् रामे राज्यं प्रशासति ।

दशरथनन्दन श्रीराम (अपने महान् तेजके कारण) सम्पूर्ण प्राणियोंसे बढ़कर शोभा पाते थे। श्रीरामके राज्यशासन करते समय ऋषि, देवता और मनुष्य सभी एक साथ इस पृथ्वीपर निवास करते थे ॥ १२½ ॥

नाहीयत तदा प्राणः प्राणिनां न तदन्यथा ॥ १३ ॥
प्राणोऽपानः समानश्च रामे राज्यं प्रशासति ।

उस समय उनके राज्य शासनकालमें प्राणियोंके प्राण, अपान और समान आदि प्राणवायुका क्षय नहीं होता था; इस नियममें कोई हेर-फेर नहीं था ॥ १३½ ॥

पर्यदीप्यन्त तेजांसि तदानर्थाश्च नाभवन् ॥ १४ ॥
दीर्घायुषः प्रजाः सर्वा युवा न म्रियते तदा ।

(यज्ञों अथवा अग्निहोत्र-गृहोंमें) सब ओर अग्निदेव प्रज्वलित होते रहते थे। उन दिनों किसी प्रकारका अनर्थ नहीं होता था। सारी प्रजा दीर्घायु होती थी। किसी युवककी मृत्यु नहीं हुआ करती थी ॥ १४½ ॥

वेदैश्चतुर्भिः सुप्रीताः प्राप्नुवन्ति दिवौकसः ॥ १५ ॥
हव्यं कव्यं च विविधं निष्पूर्तं हुतमेव च।

चारों वेदोंके स्वाध्यायसे प्रसन्न हुए देवता तथा पितृगण नाना प्रकारके हव्य और कव्य प्राप्त करते थे। सब ओर इष्ट (यज्ञयागादि) और पूर्त (वापी, कूप, तडाग और वृक्षारोपण आदि) का अनुष्ठान होता रहता था ॥ १५½ ॥

अदंशमशका देशा नष्टव्यालसरीसृपाः ॥ १६ ॥
नाप्सु प्राणभृतां मृत्युर्नाकाले ज्वलनोऽदहत्।

श्रीरामचन्द्रजीके राज्यमें किसी भी देशमें डाँस और मच्छरोंका भय नहीं था। साँप और बिच्छू नष्ट हो गये थे। जलमें पड़नेपर भी किसी प्राणीकी मृत्यु नहीं होती थी। चिताकी अग्निने किसी भी मनुष्यको असमयमें नहीं जलाया था (किसीकी अकालमृत्यु नहीं हुई थी) ॥ १६½ ॥

अधर्मरुचयो लुब्धा मूर्खा वा नाभवंस्तदा ॥ १७ ॥
शिष्टेष्टयज्ञकर्माणः सर्वे वर्णास्तदाभवन्।

उन दिनों लोग अधर्ममें रुचि रखनेवाले, लोभी और मूर्ख नहीं होते थे। उस समय सभी वर्णके लोग अपने लिये शास्त्रविहित यज्ञ-यागादि कर्मोंका अनुष्ठान करते थे ॥ १७½ ॥

स्वधां पूजां च रक्षोभिर्जनस्थाने प्रणाशिताम् ॥ १८ ॥
प्रादान्निहत्य रक्षांसि पितृदेवेभ्य ईश्वरः।

जनस्थानमें राक्षसोंने जो पितरों और देवताओंकी पूजा-अर्चा नष्ट कर दी थी, उसे भगवान् श्रीरामने राक्षसोंको मारकर पुनः प्रचलित किया और पितरोंको श्राद्धका तथा देवताओंको यज्ञका भाग दिया ॥ १८½ ॥

सहस्रपुत्राः पुरुषा दशवर्षशतायुषः ॥ १९ ॥
न च ज्येष्ठाः कनिष्ठेभ्यस्तदा श्राद्धान्यकारयन्।

श्रीरामके राज्यकालमें एक-एक मनुष्यके हजार-हजार पुत्र होते थे और उनकी आयु भी एक-एक सहस्र वर्षोंकी होती थी। बड़ोंको अपने छोटोंका श्राद्ध नहीं करना पड़ता था ॥ १९½ ॥

(न तस्करा वा व्याधिर्वा विविधोपद्रवाः क्वचित्।
अनावृष्टिभयं चात्र दुर्भिक्षो व्याधयः क्वचित् ॥
सर्वं प्रसन्नमेवासीदत्यन्तसुखसंयुतम्।
एवं लोकोऽभवत् सर्वो रामे राज्यं प्रशासति ॥)

श्रीरामके राज्यमें कहीं भी चोर, नाना प्रकारके रोग और भाँति-भाँतिके उपद्रव नहीं थे। दुर्भिक्ष, व्याधि और अनावृष्टिका भय भी कहीं नहीं था। सारा जगत् अत्यन्त सुखसे सम्पन्न और प्रसन्न ही दिखायी देता था। इस प्रकार श्रीरामके राज्य करते समय सब लोग बहुत सुखी थे ॥

श्यामो युवा लोहिताक्षो मत्तमातङ्गविक्रमः ॥ २० ॥
आजानुबाहुः सुभुजः सिंहस्कन्धो महाबलः।
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥ २१ ॥
सर्वभूतमनःकान्तो रामो राज्यमकारयत्।

भगवान् श्रीरामकी श्यामसुन्दर छवि, तरुण अवस्था और कुछ-कुछ अरुणाई लिये बड़ी-बड़ी आँखें थीं। उनकी चाल मतवाले हाथी-जैसी थी, भुजाएँ सुन्दर और घुटनोंतक लंबी थीं। कंधे सिंहके समान थे। उनमें महान् बल था। उनकी कान्ति समस्त प्राणियोंके मनको मोह लेनेवाली थी। उन्होंने ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य किया था ॥ २०-२१½ ॥

रामो रामो राम इति प्रजानामभवत् कथा ॥ २२ ॥
रामाद् रामं जगदभूद् रामे राज्यं प्रशासति।

श्रीरामचन्द्रजीके राज्य-शासन-कालमें समस्त प्रजाओंमें 'राम, राम, राम' यही चर्चा होती थी। श्रीरामके कारण सारा जगत् ही राममय हो रहा था ॥ २२½ ॥

चतुर्विधाः प्रजा रामः स्वर्गं नीत्वा दिवं गतः ॥ २३ ॥
आत्मानं सम्प्रतिष्ठाप्य राजवंशमिहाष्टधा।

फिर समयानुसार अपने और भाइयोंके अंशभूत दो-दो पुत्रोंद्वारा आठ प्रकारके राजवंशकी स्थापना करके उन्होंने चारों वर्णोंकी प्रजाको अपने धाममें भेजकर स्वयं ही सदेह परम धामको गमन किया ॥ २३½ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ २४ ॥
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ २५ ॥

श्वैत्य सृंजय ! वे श्रीरामचन्द्रजी धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य चारों बातोंमें तुमसे बहुत बढ़े-चढ़े थे



और तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे। जब वे भी यहाँ नहीं रह सके, तब दूसरोंकी तो बात ही क्या है ! अतः तुम यज्ञ एवं दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो। नारदजीने राजा सृंजयसे यही बात कही ॥ २४-२५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक उनसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५९ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १०½ श्लोक मिलाकर कुल ३५½ श्लोक हैं)

षष्टितमोऽध्यायः

राजा भगीरथका चरित्र

नारद उवाच

भगीरथं च राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
परित्राणाय पूर्वेषां येन गङ्गावतारिता।
यस्येन्द्रो बाहुवीर्येण प्रीतो राज्ञो महात्मनः॥
योऽश्वमेधशतैरीजे समाप्तवरदक्षिणैः।
हविर्मन्त्रान्नसम्पन्नैर्देवानामादधान्मुदम् ॥
यस्येन्द्रो वितते यज्ञे सोमं पीत्वा मदोत्कटः।
असुराणां सहस्राणि बहूनि च सुरेश्वरः॥
अजयद् बाहुवीर्येण भगवाँल्लोकपूजितः।)
येन भागीरथी गङ्गा चयनैः काञ्चनैश्चिता ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—सृंजय ! हमारे सुननेमें आया है कि राजा भगीरथ भी मर गये, जिन्होंने अपने पूर्वजोंका उद्धार करनेके लिये इस भूतलपर गङ्गाजीको उतारा था। जिन महामना नरेशके बाहुबलसे इन्द्र बहुत प्रसन्न थे, जिन्होंने प्रचुर एवं उत्तम दक्षिणासे युक्त हविष्य, मन्त्र और अन्नसे सम्पन्न सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान किया और देवताओंका आनन्द बढ़ाया, जिनके महान् यज्ञमें इन्द्र सोमरस पीकर मदोन्मत्त हो उठे थे तथा जिनके यहाँ रहकर लोकपूजित भगवान् देवेन्द्रने अपने बाहुबलसे अनेक सहस्र असुरोंको पराजित किया, उन्हीं राजा भगीरथने यज्ञ करते समय गङ्गाके दोनों किनारोंपर सोनेकी ईंटोंके घाट बनवाये थे ॥ १ ॥



यः सहस्रं सहस्राणां कन्या हेमविभूषिताः।
राज्ञश्च राजपुत्रांश्च ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ २ ॥

इतना ही नहीं, उन्होंने कितने ही राजाओं तथा राजपुत्रोंको जीतकर उनके यहाँसे सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित दस लाख कन्याएँ लाकर उन्हें ब्राह्मणोंको दान किया था ॥ २ ॥

सर्वा रथगताः कन्या रथाः सर्वे चतुर्युजः।
रथे रथे शतं नागाः सर्वे वै हेममालिनः ॥ ३ ॥

वे सभी कन्याएँ रथोंमें बैठी थीं। उन सभी रथोंमें चार-चार घोड़े जुते थे। प्रत्येक रथके पीछे सोनेके हारोंसे अलंकृत सौ-सौ हाथी चलते थे ॥ ३ ॥

सहस्रमश्वाश्चैकैकं गजानां पृष्ठतोऽन्वयुः।
अश्वे अश्वे शतं गावो गवां पश्चादजाविकम् ॥ ४ ॥

एक-एक हाथीके पीछे हजार-हजार घोड़े जा रहे थे और एक-एक घोड़ेके साथ सौ-सौ गौएँ एवं गौओंके पीछे भेड़ और बकरियोंके झुंड चलते थे ॥ ४ ॥

तेनाक्रान्ता जलौघेन दक्षिणा भूयसीर्ददत्।
उपह्वरेऽतिव्यथिता तस्याङ्के निषसाद ह ॥ ५ ॥

राजा भगीरथ गङ्गाके तटपर भूयसी (प्रचुर) दक्षिणा देते हुए निवास करते थे। अतः उनके संकल्पकालिक जलप्रवाहसे आक्रान्त होकर गङ्गादेवी मानो अत्यन्त व्यथित हो उठीं और समीपवर्ती राजाके अङ्कमें आ बैठीं ॥ ५ ॥

तथा भागीरथी गङ्गा
उर्वशी चाभवत् पुरा।
दुहितृत्वं गता राज्ञः
पुत्रत्वमगमत् तदा ॥ ६ ॥

इस प्रकार भगीरथकी पुत्री होनेसे गङ्गाजी भागीरथी कहलायीं और उनके ऊरुपर बैठनेके कारण उर्वशी नामसे प्रसिद्ध हुईं। राजाके पुत्रीभावको प्राप्त होकर उनका नरकसे त्राण करनेके कारण वे उस समय पुत्रभावको भी प्राप्त हुईं ॥ ६ ॥

तां तु गाथां जगुः प्रीता गन्धर्वाः सूर्यवर्चसः ।
पितृदेवमनुष्याणां शृण्वतां वल्गुवादिनः ॥ ७ ॥

सूर्यके समान तेजस्वी और मधुरभाषी गन्धर्वोंने प्रसन्न होकर देवताओं, पितरों और मनुष्योंके सुनते हुए यह गाथा गायी थी ॥ ७ ॥

भगीरथं यजमानमैक्ष्वाकुं भूरिदक्षिणम् ।
गङ्गा समुद्रगा देवी वव्रे पितरमीश्वरम् ॥ ८ ॥

यज्ञ करते समय भूयसी दक्षिणा देनेवाले इक्ष्वाकुवंशी ऐश्वर्यशाली राजा भगीरथको समुद्रगामिनी गङ्गादेवीने अपना पिता मान लिया था ॥ ८ ॥

तस्य सेन्द्रैः सुरगणैर्देवैर्यज्ञः स्वलङ्कृतः ।
सम्यक्परिगृहीतश्च शान्तविघ्नो निरामयः ॥ ९ ॥

इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओंने उनके यज्ञको सुशोभित किया था । उसमें प्राप्त हुए हविष्यको भलीभाँति ग्रहण करके उसके विघ्नोंको शान्त करते हुए उसे निर्बाधरूपसे पूर्ण किया था ॥ ९ ॥

यो य इच्छेत विप्रो वै यत्र यत्रात्मनः प्रियम् ।
भगीरथस्तदा प्रीतस्तत्र तत्राददद् वशी ॥ १० ॥

जिस-जिस ब्राह्मणने जहाँ-जहाँ अपने मनको प्रिय लगनेवाली जिस-जिस वस्तुको पाना चाहा, जितेन्द्रिय राजाने वहीं-वहीं प्रसन्नतापूर्वक वह वस्तु उसे तत्काल समर्पित की ॥

नादेयं ब्राह्मणस्यासीद् यस्य यत्स्यात् प्रियं धनम् ।
सोऽपि विप्रप्रसादेन ब्रह्मलोकं गतो नृपः ॥ ११ ॥

उनके पास जो भी प्रिय धन था, वह ब्राह्मणके लिये अदेय नहीं था । राजा भगीरथ ब्राह्मणोंकी कृपासे ब्रह्मलोकको प्राप्त हुए ॥ ११ ॥

येन यातौ मखमुखौ दिशाशाविह पादपाः ।
तेनावस्थातुमिच्छन्ति तं गत्वा राजमीश्वरम् ॥ १२ ॥

शत्रुओंकी दशा और आशाका हनन करनेवाले सुंजय ! राजा भगीरथने यज्ञोंमें प्रधान ज्ञानयज्ञ और ध्यानयज्ञको ग्रहण किया था । इसलिये किरणोंका पान करनेवाले महर्षिगण भी उस ब्रह्मलोकमें जितेन्द्रिय राजा भगीरथके निकट जाकर उसी स्थानपर रहनेकी इच्छा करते थे ॥ १२ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ॥ १३ ॥
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ।

श्वैत्य सुंजय ! वे भगीरथ उपर्युक्त चारों बातोंमें तुमसे बहुत बढ़कर थे । तुम्हारे पुत्रकी अपेक्षा उनका पुण्य बहुत अधिक था । जब वे भी जीवित न रह सके, तब दूसरोंकी तो बात ही क्या है ? अतः तुम यज्ञानुष्ठान और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो । नारदजीने राजा सुंजयसे यही बात कही ॥ १३½ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक साठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २½ श्लोक मिलाकर कुल १७ श्लोक हैं)

एकषष्टितमोऽध्यायः

राजा दिलीपका उत्कर्ष

नारद उवाच

दिलीपं चैलविलं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यस्य यज्ञशतेष्वासन् प्रयुतायुतशो द्विजाः ।
तन्त्रज्ञानार्थसम्पन्ना यज्वानः पुत्रपौत्रिणः ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—सुंजय ! इलविलाके पुत्र राजा दिलीपकी भी मृत्यु सुनी गयी है, जिनके सौ यज्ञोंमें लाखों ब्राह्मण नियुक्त थे । वे सभी ब्राह्मण वेदोंके कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्डके तात्पर्यको जाननेवाले, यज्ञकर्ता तथा पुत्र-पौत्रोंसे सम्पन्न थे ॥ १ ॥

य इमां वसुसम्पूर्णां वसुधां वसुधाधिपः ।
ईजानो वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ २ ॥

पृथ्वीपति दिलीपने यज्ञ करते समय अपने विशाल यज्ञमें धन-धान्यसे सम्पन्न इस सारी पृथ्वीको ब्राह्मणोंके लिये दान कर दिया था ॥ २ ॥

दिलीपस्य तु यज्ञेषु कृतः पन्था हिरण्मयः ।
तं धर्म इव कुर्वाणाः सेन्द्रा देवाः समागमन् ॥ ३ ॥

राजा दिलीपके यज्ञोंमें सोनेकी सड़कें बनायी गयी थीं । इन्द्र आदि देवता मानो धर्मकी प्राप्तिके लिये उन्हें अलंकृत करते हुए उनके यहाँ पधारते थे ॥ ३ ॥

सहस्रं यत्र मातङ्गा गच्छन्ति पर्वतोपमाः ।
सौवर्णं चाभवत् सर्वं सदः परमभास्वरम् ॥ ४ ॥

वहाँ पर्वतोंके समान विशालकाय सहस्रों गजराज विचरा करते थे । राजाका सभामण्डप सोनेका बना हुआ था, जो सदा देदीप्यमान रहता था ॥ ४ ॥



मोदक और विविध भोज्यपदार्थ खाकर मतवाले हो सड़कोंपर लेट जाते थे। मेरे मतमें उनके यहाँ यह एक अद्भुत बात थी, जिसकी दूसरे राजाओंसे तुलना नहीं हो सकती थी। राजा दिलीप युद्ध करते समय जलमें भी चले जाते तो उनके रथके पहिये वहाँ डूबते नहीं थे ॥ ८½ ॥

राजानं दृढधन्वानं
दिलीपं सत्यवादिनम् ॥ ९ ॥
येऽपश्यन् भूरिदाक्षिण्यं
तेऽपि स्वर्गजितो नराः ।

सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले तथा प्रचुर दक्षिणा देनेवाले सत्यवादी राजा दिलीपका जो लोग दर्शन कर लेते थे, वे मनुष्य भी स्वर्गलोकके अधिकारी हो जाते थे ॥ ९½ ॥

रसानां चाभवन् कुल्या भक्ष्याणां चापि पर्वताः ।
सहस्रव्यामा नृपते यूपाश्चासन् हिरण्मयाः ॥ ५ ॥

वहाँ रसकी नहरें बहती थीं और अन्नके पहाड़ों-जैसे ढेर लगे हुए थे। राजन्! उनके यज्ञमें सहस्र व्याम-विस्तृत सुवर्णमय यूप सुशोभित होते थे ॥ ५ ॥

चषालं प्रचषालं च यस्य यूपे हिरण्मये ।
नृत्यन्तेऽप्सरसस्तस्य षट् सहस्राणि सप्त च ॥ ६ ॥

उनके यूपमें सुवर्णमय चषाल[1] और प्रचषाल लगे हुए थे। उनके यहाँ तेरह हजार अप्सराएँ नृत्य करती थीं ॥६॥

यत्र वीणां वादयति प्रीत्या विश्वावसुः स्वयम् ।
सर्वभूतान्यमन्यन्त राजानं सत्यशीलिनम् ॥ ७ ॥

उस समय वहाँ साक्षात् गन्धर्वराज विश्वावसु प्रेमपूर्वक वीणा बजाते थे। समस्त प्राणी राजा दिलीपको सत्यवादी मानते थे ॥ ७ ॥

रागखाण्डवभोज्यैश्च मत्ताः पथिषु शेरते ।
तदेतदद्भुतं मन्ये अन्यैर्न सदृशं नृपैः ॥ ८ ॥
यदप्सु युध्यमानस्य चक्रे न परिपेततुः ।

उनके यहाँ आये हुए अतिथि 'रागखाण्डव' नामक

पञ्च शब्दा न जीर्यन्ति खट्वाङ्गस्य निवेशने ॥ १० ॥
स्वाध्यायघोषो ज्याघोषः पिबताश्नीत खादत ।

खट्वाङ्ग (दिलीप) के भवनमें ये पाँच प्रकारके शब्द कभी बंद नहीं होते थे—वेद-शास्त्रोंके स्वाध्यायका शब्द, धनुषकी प्रत्यञ्चाकी ध्वनि तथा अतिथियोंके लिये कहे जानेवाले 'खाओ, पीओ और अन्न ग्रहण करो' ये तीन शब्द ॥ १०½ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ ११ ॥
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ १२ ॥

श्वैत्य संजय! वे दिलीप धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य—इन चारों कल्याणकारी गुणोंमें तुमसे बहुत बढ़े-चढ़े थे, तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे। जब वे भी मर गये, तब औरोंकी क्या बात है? अतः जिसने अभी यज्ञ नहीं किया, दक्षिणाएँ नहीं बाँटीं, अपने उस पुत्रके लिये तुम शोक न करो—इस प्रकार नारदजीने कहा ॥ ११-१२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक इकसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमोऽध्यायः

राजा मान्धाताकी महत्ता

नारद उवाच

मान्धाता चेद्यौवनाश्वो मृतः सृञ्जय शुश्रुम ।
देवासुरमनुष्याणां त्रैलोक्यविजयी नृपः ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—संजय! युवनाश्वके पुत्र राजा मान्धाता भी मरे थे, यह सुना गया है। वे देवता, असुर और मनुष्य—तीनों लोकोंमें विजयी थे ॥ १ ॥

यं देवावश्विनौ गर्भात् पितुः पूर्वं चकर्षतुः ।
मृगयां विचरन् राजा तृषितः क्लान्तवाहनः ॥ २ ॥

१. यज्ञीय यूप या स्तम्भके ऊपर लगाये जानेवाले काठके छल्लेको 'चषाल' कहते हैं, इसीका उत्कृष्ट रूप 'प्रचषाल' है।

पूर्वकालमें दोनों अश्विनीकुमार नामक देवताओंने उन्हें पिताके पेटसे निकाला था। एक समयकी बात है, राजा युवनाश्व वनमें शिकार खेलनेके लिये विचर रहे थे। वहाँ उनका घोड़ा थक गया और उन्हें भी प्यास लग गयी ॥ २ ॥

धूमं दृष्ट्वागमत् सत्रं पृषदाज्यमवाप सः।
तं दृष्ट्वा युवनाश्वस्य जठरे सूनुतां गतम् ॥ ३ ॥
गर्भाद्धि जह्रतुर्देवावश्विनौ भिषजां वरौ।

इतनेमें दूरसे उठता हुआ धूआँ देखकर वे उसी ओर चले और एक यज्ञमण्डपमें जा पहुँचे। वहाँ एक पात्रमें रक्खे हुए घृतमिश्रित अभिमन्त्रित जलको उन्होंने पी लिया। उस जलको युवनाश्वके पेटमें पुत्ररूपमें परिणत हुआ देख वैद्योंमें श्रेष्ठ अश्विनीकुमार नामक देवताओंने उसे पिताके गर्भसे बाहर निकाला ॥ ३½ ॥

तं दृष्ट्वा पितुरुत्सङ्गे शयानं देववर्चसम् ॥ ४ ॥
अन्योन्यमब्रुवन् देवाः कमयं धास्यतीति वै।
मामेवायं धयत्वग्रे इति ह स्माह वासवः ॥ ५ ॥

देवताके समान तेजस्वी उस शिशुको पिताकी गोदमें शयन करते देख देवता आपसमें कहने लगे, यह किसका दूध पीयेगा? यह सुनकर इन्द्रने कहा—यह पहले मेरा ही दूध पीये ॥ ४-५ ॥

ततोऽङ्गुलिभ्यो हीन्द्रस्य प्रादुरासीत् पयोऽमृतम्।
मां धास्यतीति कारुण्याद् यदिन्द्रो ह्यन्वकम्पयत् ॥ ६ ॥
तस्मात्तु मान्धातेत्येवं नाम तस्याद्भुतं कृतम्।

तदनन्तर इन्द्रकी अङ्गुलियोंसे अमृतमय दूध प्रकट हो गया; क्योंकि इन्द्रने करुणावश 'मां धास्यति' (मेरा दूध पीयेगा) ऐसा कहकर उसपर कृपा की थी, इसलिये उसका 'मान्धाता' यह अद्भुत नाम निश्चित कर दिया गया ॥ ६½ ॥

ततस्तु धारां पयसो घृतस्य च महात्मनः ॥ ७ ॥
तस्यास्ये यौवनाश्वस्य पाणिरिन्द्रस्य चास्रवत्।
अपिबत् पाणिमिन्द्रस्य स चाप्यह्नाभ्यवर्धत ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् महामना मान्धाताके मुखमें इन्द्रके हाथने दूध और घीकी धारा बहायी। वह बालक इन्द्रका हाथ पीने लगा और एक ही दिनमें बहुत बढ़ गया ॥ ७-८ ॥

सोऽभवद् द्वादशसमो द्वादशाहेन वीर्यवान्।
इमां च पृथिवीं कृत्स्नामेकाह्ना स व्यजीजयत् ॥ ९ ॥

वह पराक्रमी राजकुमार बारह दिनोंमें ही बारह वर्षोंकी अवस्थावाले बालकके समान हो गया। (राजा होनेपर) मान्धाताने एक ही दिनमें इस सारी पृथ्वीको जीत लिया ॥ ९ ॥

धर्मात्मा धृतिमान् वीरः सत्यसंधो जितेन्द्रियः।
जनमेजयं सुधन्वानं गयं पूरुं बृहद्रथम् ॥ १० ॥
असितं च नृगं चैव मान्धाता मनुजोऽजयत्।

वे धर्मात्मा, धैर्यवान्, शूरवीर, सत्यप्रतिज्ञ और जितेन्द्रिय थे। मानव मान्धाताने जनमेजय, सुधन्वा, गय, पूरु, बृहद्रथ, असित और नृगको भी जीत लिया ॥ १०½ ॥

उदेति च यतः सूर्यो यत्र च प्रतितिष्ठति ॥ ११ ॥
तत् सर्वं यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते।

सूर्य जहाँसे उदय होते थे और जहाँ जाकर अस्त होते थे, वह सारा-का-सारा प्रदेश युवनाश्वपुत्र मान्धाताका क्षेत्र (राज्य) कहलाता था ॥ ११½ ॥

सोऽश्वमेधशतैरिष्ट्वा राजसूयशतेन च ॥ १२ ॥
अददद् रोहितान् मत्स्यान् ब्राह्मणेभ्यो विशाम्पते।
हैरण्यान् यो जनोत्सेधानायतान्शतयोजनम् ॥ १३ ॥

राजन्! उन्होंने सौ अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञोंका अनुष्ठान करके सौ योजन विस्तृत रोहितक, मत्स्य तथा हिरण्यमय (सोनेकी खानोंसे युक्त) जनपदोंको, जो लोगोंमें ऊँची भूमिके रूपमें प्रसिद्ध थे, ब्राह्मणोंको दे दिया ॥ १२-१३ ॥

बहुप्रकारान् सुस्वादून् भक्ष्यभोज्यान्नपर्वतान्।
अतिरिक्तं ब्राह्मणेभ्यो भुञ्जानो हीयते जनः ॥ १४ ॥

अनेक प्रकारके सुस्वादु भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंके पर्वत भी उन्होंने ब्राह्मणोंको दे दिये। ब्राह्मणोंके भोजनसे भी जो अन्न बच गया, उसे दूसरे लोगोंको दिया गया। उस अन्नको खानेवाले लोगोंकी ही वहाँ कमी रहती थी। अन्न कभी नहीं घटता था ॥ १४ ॥

भक्ष्यान्नपाननिचयाः शुशुभुस्त्वन्नपर्वताः।
घृतह्रदाः सूपकूपाः दधिफेना गुडोदकाः ॥ १५ ॥
रुरुधुः पर्वतान् नद्यो मधुक्षीरवहाः शुभाः।

वहाँ भक्ष्य-भोज्य अन्न और पीने योग्य पदार्थोंकी अनेक राशियाँ संचित थीं। अन्नके तो पहाड़ों-जैसे ढेर सुशोभित होते थे। उन पर्वतोंको मधु और दूधकी सुन्दर नदियाँ घेरे हुए थीं। पर्वतोंके चारों ओर घीके कुण्ड और दालके कुएँ भरे थे। वहाँ कई नदियोंमें फेनकी जगह दही और जलके स्थानमें गुड़के रस बहते थे ॥ १५½ ॥

देवासुरा नरा यक्षा गन्धर्वोरगपक्षिणः ॥ १६ ॥
विप्रास्तत्रागताश्चासन् वेदवेदाङ्गपारगाः।
ब्राह्मण ऋषयश्चापि नासंस्तत्राविपश्चितः ॥ १७ ॥

वहाँ देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व, नाग, पक्षी तथा वेद-वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् ब्राह्मण एवं ऋषि भी पधारे थे; किंतु वहाँ कोई मनुष्य ऐसे नहीं थे, जो विद्वान् न हों ॥ १६-१७ ॥

समुद्रान्तां वसुमतीं वसुपूर्णां तु सर्वतः।
स तां ब्राह्मणसात्कृत्वा जगामास्तं तदा नृपः ॥ १८ ॥

उस समय राजा मान्धाता सब ओरसे धन-धान्यसे सम्पन्न समुद्रपर्यन्त पृथ्वीको ब्राह्मणोंके अधीन करके सूर्यके समान अस्त हो गये ॥ १८ ॥

गतः पुण्यकृतां लोकान् व्याप्य स्वयशसा दिशः।
स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ १९ ॥
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ २० ॥

उन्होंने अपने सुयशसे सम्पूर्ण दिशाओंको व्याप्त करके पुण्यात्माओंके लोकोंमें पदार्पण किया। श्वैत्य सृंजय! वे पूर्वोक्त चारों कल्याणकारी गुणोंमें तुमसे बहुत बढ़े-चढ़े थे और तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे। जब वे भी मर गये, तब औरोंकी क्या बात है। अतः तुम यज्ञ और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो। ऐसा नारदजीने कहा ॥ १९-२० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक बासठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

राजा ययातिका उपाख्यान

नारद उवाच

ययातिं नाहुषं चैव मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
राजसूयशतैरिष्ट्वा सोऽश्वमेधशतेन च ॥ १ ॥
पुण्डरीकसहस्रेण वाजपेयशतैस्तथा।
अतिरात्रसहस्रेण चातुर्मास्यैश्च कामतः।
अग्निष्टोमैश्च विविधैः सत्रैश्च प्राज्यदक्षिणैः ॥ २ ॥

नारदजी कहते हैं—सृंजय! नहुषनन्दन राजा ययातिकी भी मृत्यु हुई थी, यह मैंने सुना है। राजाने सौ राजसूय, सौ अश्वमेध, एक हजार पुण्डरीक याग, सौ वाजपेय यज्ञ, एक सहस्र अतिरात्र याग तथा अपनी इच्छाके अनुसार चातुर्मास्य और अग्निष्टोम आदि नाना प्रकारके प्रचुर दक्षिणावाले यज्ञोंका अनुष्ठान किया ॥ १-२ ॥

अब्राह्मणानां यद् वित्तं पृथिव्यामस्ति किंचन।
तत् सर्वं परिसंख्याय ततो ब्राह्मणसात्करोत् ॥ ३ ॥

इस पृथ्वीपर ब्राह्मणद्रोहियोंके पास जो कुछ धन था, वह सब उनसे छीनकर उन्होंने ब्राह्मणोंके अधीन कर दिया ॥

सरस्वती पुण्यतमा नदीनां
तथा समुद्राः सरितः साद्रयश्च।
ईजानाय पुण्यतमाय राज्ञे
घृतं पयो दुदुहुर्नाहुषाय ॥ ४ ॥

नदियोंमें परम पवित्र सरस्वती नदी, समुद्रों, पर्वतों तथा अन्य सरिताओंने यज्ञमें लगे हुए परम पुण्यात्मा राजा ययातिको घी और दूध प्रदान किये ॥ ४ ॥

व्यूढे देवासुरे युद्धे कृत्वा देवसहायताम्।
चतुर्धा व्यभजत् सर्वां चतुर्भ्यः पृथिवीमिमाम् ॥ ५ ॥
यज्ञैर्नानाविधैरिष्ट्वा प्रजामुत्पाद्य चोत्तमाम्।
देवयान्यां चौशनस्यां शर्मिष्ठायां च धर्मतः ॥ ६ ॥
देवारण्येषु सर्वेषु विजहारामरोपमः।
आत्मनः कामचारेण द्वितीय इव वासवः ॥ ७ ॥

देवासुरसंग्राम छिड़ जानेपर उन्होंने देवताओंकी सहायता करके नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा परमात्माका यजन किया और इस सारी पृथ्वीको चार भागोंमें विभक्त करके उसे ऋत्विज, अध्वर्यु, होता तथा उद्गाता—इन चार प्रकारके ब्राह्मणोंको बाँट दिया। फिर शुक्रकन्या देवयानी और दानवराजकी पुत्री शर्मिष्ठाके गर्भसे धर्मतः उत्तम संतान उत्पन्न करके वे देवोपम नरेश दूसरे इन्द्रकी भाँति समस्त देवकाननोंमें अपनी इच्छाके अनुसार विहार करते रहे। ५—७।

यदा नाभ्यगमच्छान्तिं कामानां सर्ववेदवित्।
ततो गाथामिमां गीत्वा सदारः प्राविशद् वनम् ॥ ८ ॥

जब भोगोंके उपभोगसे उन्हें शान्ति नहीं मिली, तब सम्पूर्ण वेदोंके ज्ञाता राजा ययाति निम्नाङ्कित गाथाका गान करके अपनी पत्नियोंके साथ वनमें चले गये ॥ ८ ॥

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य तत् सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत् ॥ ९ ॥

वह गाथा इस प्रकार है—इस पृथ्वीपर जितने भी धान, जौ, सुवर्ण, पशु और स्त्री आदि भोग्य पदार्थ हैं, वे सब एक मनुष्यको भी संतोष करानेके लिये पर्याप्त नहीं हैं; ऐसा समझकर मनको शान्त करना चाहिये ॥ ९ ॥

एवं कामान् परित्यज्य ययातिर्धृतिमेत्य च।
पूरुं राज्ये प्रतिष्ठाप्य प्रयातो वनमीश्वरः ॥ १० ॥

इस प्रकार ऐश्वर्यशाली राजा ययातिने धैर्यका आश्रय ले कामनाओंका परित्याग करके अपने पुत्र पूरुको राज्यसिंहासनपर बिठाकर वनको प्रस्थान किया ॥ १० ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ ११ ॥

श्वैत्य सृंजय ! वे धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य—इन चारों कल्याणकारी गुणोंमें तुमसे बहुत बढ़े-चढ़े थे और तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे। जब वे भी जीवित न रह सके, तब औरोंकी तो बात ही क्या है ? अतः तुम अपने उस पुत्रके लिये शोक न करो, जिसने न तो यज्ञ किया था और न दक्षिणा ही दी थी। ऐसा नारदजीने कहा ॥ ११ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक तिरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

राजा अम्बरीषका चरित्र

नारद उवाच

नाभागमम्बरीषं च मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
यः सहस्रं सहस्राणां राज्ञां चैकस्त्वयोधयत् ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—सृंजय ! मैंने सुना है कि नाभागके पुत्र राजा अम्बरीष भी मृत्युको प्राप्त हुए थे, जिन्होंने अकेले ही दस लाख राजाओंसे युद्ध किया था ॥ १ ॥

जिगीषमाणाः संग्रामे समन्ताद् वैरिणोऽभ्ययुः।
अस्त्रयुद्धविदो घोराः सृजन्तश्चाशिवा गिरः ॥ २ ॥

राजाके शत्रुओंने उन्हें युद्धमें जीतनेकी इच्छासे चारों ओरसे उनपर आक्रमण किया था। वे सब अस्त्रयुद्धकी कलामें निपुण और भयंकर थे तथा राजाके प्रति अभद्र वचनोंका प्रयोग कर रहे थे ॥ २ ॥

बललाघवशिक्षाभिस्तेषां सोऽस्त्रबलेन च।
छत्रायुधध्वजरथांश्छित्त्वा प्रासान् गतव्यथः ॥ ३ ॥

परंतु राजा अम्बरीषको इससे तनिक भी व्यथा नहीं हुई। उन्होंने शारीरिक बल, अस्त्र-बल, हाथोंकी फुर्ती और युद्धसम्बन्धी शिक्षाके द्वारा शत्रुओंके छत्र, आयुध, ध्वजा, रथ और प्रासोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ३ ॥

त एनं मुक्तसंनाहाः प्रार्थयन् जीवितैषिणः।
शरण्यमीयुः शरणं तवास्म इति वादिनः ॥ ४ ॥

तब वे शत्रु अपने प्राण बचानेके लिये कवच खोलकर उनसे प्रार्थना करने लगे और हम सब प्रकारसे आपके हैं; ऐसा कहते हुए उन शरणदाता नरेशकी शरणमें चले गये ॥ ४ ॥

स तु तान् वशगान् कृत्वा जित्वा चेमां वसुन्धराम्।
ईजे यज्ञशतैरिष्टैर्यथाशास्त्रं तथानघ ॥ ५ ॥

अनघ ! इस प्रकार उन शत्रुओंको वशीभूत करके इस सम्पूर्ण पृथ्वीपर विजय पाकर उन्होंने शास्त्रविधिके अनुसार सौ अभीष्ट यज्ञोंका अनुष्ठान किया ॥ ५ ॥

बुभुजुः सर्वसम्पन्नमन्नमन्ये जनाः सदा।
तस्मिन् यज्ञे तु विप्रेन्द्राः संतृप्ताः परमार्चिताः ॥ ६ ॥

उन यज्ञोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण तथा अन्य लोग भी सदा सर्वगुणसम्पन्न अन्न भोजन करते और अत्यन्त आदर-सत्कार पाकर अत्यन्त संतुष्ट होते थे ॥ ६ ॥



मोदकान् पूरिकापूपान् स्वादपूर्णाश्च शष्कुलीः।
करम्भान् पृथुमृद्वीका अन्नानि सुकृतानि च ॥ ७ ॥
सूपान् मैरेयकापूपान् रागखाण्डवपानकान्।
मृष्टान्नानि सुयुक्तानि मृदूनि सुरभीणि च ॥ ८ ॥
घृतं मधु पयस्तोयं दधीनि रसवन्ति च।
फलं मूलं च सुस्वादु द्विजास्तत्रोपभुञ्जते ॥ ९ ॥

लड्डू, पूरी, पुए, स्वादिष्ट कचौड़ी, करम्भ, मोटे मुनक्के, तैयार अन्न, मैरेयक, अपूप, रागखाण्डव, पानक, शुद्ध एवं सुन्दर ढंगसे बने हुए मधुर और सुगन्धित भोज्य पदार्थ, घी, मधु, दूध, जल, दही, सरस वस्तुएँ तथा सुस्वादु फल, मूल वहाँ ब्राह्मणलोग भोजन करते थे ॥ ७-९ ॥

मादनीयानि पापानि विदित्वा चात्मनः सुखम्।
अपिबन्त यथाकामं पानपा गीतवादितैः ॥ १० ॥

मादक वस्तुएँ पापजनक होती हैं, यह जानकर भी पीनेवाले लोग अपने सुखके लिये गीत और वाद्योंके साथ इच्छानुसार उनका पान करते थे ॥ १० ॥

तत्र स्म गाथा गायन्ति क्षीबा हृष्टाः पठन्ति च ।
नाभागस्तुतिसंयुक्ता ननृतुश्च सहस्रशः ॥ ११ ॥

पीकर मतवाले बने हुए सहस्रों मनुष्य वहाँ हर्षमें भरकर गाथा गाते, अम्बरीषकी स्तुतिसे युक्त कविताएँ पढ़ते और नृत्य करते थे ॥ ११ ॥

तेषु यज्ञेष्वम्बरीषो दक्षिणामत्यकालयत् ।
राज्ञां शतसहस्राणि दश प्रयुतयाजिनाम् ॥ १२ ॥

उन यज्ञोंमें राजा अम्बरीषने दस लाख यज्ञकर्ता ब्राह्मणोंको दक्षिणाके रूपमें दस लाख राजाओंको ही दे दिया था ॥ १२ ॥

हिरण्यकवचान् सर्वाञ्श्वेतच्छत्रप्रकीर्णकान् ।
हिरण्यस्यन्दनारूढान् सानुयात्रपरिच्छदान् ॥ १३ ॥

वे सब राजा सोनेके कवच धारण किये, श्वेत छत्र लगाये, सुवर्णमय रथपर आरूढ़ हुए तथा अपने अनुगामी सेवकों और आवश्यक सामग्रियोंसे सम्पन्न थे ॥ १३ ॥

ईजानो वितते यज्ञे दक्षिणामत्यकालयत् ।
मूर्धाभिषिक्तांश्च नृपान् राजपुत्रशतानि च ॥ १४ ॥
सदण्डकोशनिचयान् ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।

उस विस्तृत यज्ञमें यजमान अम्बरीषने उन मूर्धाभिषिक्त नरेशों और सैकड़ों राजकुमारोंको दण्ड और खजानोंसहित ब्राह्मणोंके अधीन कर दिया ॥ १४½ ॥

नैवं पूर्वे जनाश्चक्रुर्न करिष्यन्ति चापरे ॥ १५ ॥
यदम्बरीषो नृपतिः करोत्यमितदक्षिणः ।
इत्येवमनुमोदन्ते प्रीता यस्य महर्षयः ॥ १६ ॥

महर्षिलोग उनके ऊपर प्रसन्न होकर उनके कार्योंका अनुमोदन करते हुए कहते थे कि असंख्य दक्षिणा देनेवाले राजा अम्बरीष जैसा यज्ञ कर रहे हैं, वैसा न तो पहलेके राजाओंने किया और न आगे कोई करेंगे ॥ १५-१६ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ १७ ॥

श्वैत्य सृंजय ! वे पूर्वोक्त चारों कल्याणकारी गुणोंमें तुमसे बढ़-चढ़कर थे और तुम्हारे पुत्रकी अपेक्षा भी अधिक पुण्यात्मा थे । जब वे भी जीवित न रह सके, तब दूसरोंकी तो बात ही क्या है ! अतः तुम यज्ञ और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो । ऐसा नारदजीने कहा ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक चौसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥६४॥

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

राजा शशबिन्दुका चरित्र

नारद उवाच

शशबिन्दुं च राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
ईजे स विविधैर्यज्ञैः श्रीमान् सत्यपराक्रमः ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं--संजय ! मेरे सुननेमें आया है कि राजा शशबिन्दुकी भी मृत्यु हो गयी थी । उन सत्यपराक्रमी श्रीमान् नरेशने नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान किया था ॥ १ ॥

तस्य भार्यासहस्राणां शतमासीन्महात्मनः ।
एकैकस्यां च भार्यायां सहस्रं तनयाऽभवन् ॥ २ ॥

महामना शशबिन्दुके एक लाख स्त्रियाँ थीं और प्रत्येक स्त्रीके गर्भसे एक-एक हजार पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ २ ॥

ते कुमाराः पराक्रान्ताः सर्वे नियुतयाजिनः ।
राजानः क्रतुभिर्मुख्यैरीजाना वेदपारगाः ॥ ३ ॥

वे सभी राजकुमार अत्यन्त पराक्रमी और वेदोंके पारङ्गत विद्वान् थे । वे राजा होनेपर दस लाख यज्ञ करनेका संकल्प ले प्रधान-प्रधान यज्ञोंका अनुष्ठान कर चुके थे ॥ ३ ॥

हिरण्यकवचाः सर्वे सर्वे चोत्तमधन्विनः ।
सर्वेऽश्वमेधैरीजानाः कुमाराः शशबिन्दवः ॥ ४ ॥

शशबिन्दुके उन सभी पुत्रोंने सोनेके कवच धारण कर रक्खे थे । वे सब उत्तम धनुर्धर थे और अश्वमेध-यज्ञोंका अनुष्ठान कर चुके थे ॥ ४ ॥

तानश्वमेधे राजेन्द्रो ब्राह्मणेभ्योऽददत् पिता ।
शतं शतं रथगजा एकैकं पृष्ठतोऽन्वयुः ॥ ५ ॥

पिता महाराज शशबिन्दुने अश्वमेध-यज्ञ करके उसमें अपने वे सभी पुत्र ब्राह्मणोंको दे डाले । एक-एक राजकुमारके पीछे सौ-सौ रथ और हाथी गये थे ॥ ५ ॥

राजपुत्रं तदा कन्यास्तपनीयस्वलंकृताः ।
कन्यां कन्यां शतं नागा नागे नागे शतं रथाः ॥ ६ ॥

उस समय प्रत्येक राजकुमारके साथ सुवर्णभूषित सौ-सौ कन्याएँ थीं । एक-एक कन्याके पीछे सौ-सौ हाथी



और प्रत्येक हाथीके पीछे सौ-सौ रथ थे ॥ ६ ॥

रथे रथे शतं चाश्वा बलिनो हेममालिनः ।
अश्वे अश्वे गोसहस्रं गवां पञ्चाशदाविकाः ॥ ७ ॥

हर एक रथके साथ सोनेके हारोंसे विभूषित सौ-सौ बलवान् अश्व थे। प्रत्येक अश्वके पीछे हजार-हजार गौएँ तथा एक-एक गायके पीछे पचास-पचास भेंड़ें थीं ॥ ७ ॥

एतद् धनमपर्याप्तमश्वमेधे महामखे ।
शशबिन्दुर्महाभागो ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ ८ ॥

यह अपार धन महाभाग शशबिन्दुने अपने अश्वमेध नामक महायज्ञमें ब्राह्मणोंके लिये दान किया था ॥ ८ ॥

वार्क्षाश्च यूपा यावन्त अश्वमेधे महामखे ।
ते तथैव पुनश्चान्ये तावन्तः काञ्चनाऽभवन् ॥ ९ ॥

उनके महायज्ञ अश्वमेधमें जितने काष्ठके यूप थे, वे तो ज्यों-के-त्यों थे ही, फिर उतने ही और सुवर्णमय यूप बनाये गये थे ॥ ९ ॥

भक्ष्यान्नपाननिचयाः पर्वताः क्रोशमुच्छ्रिताः ।
तस्याश्वमेधे निर्वृत्ते राज्ञः शिष्टास्त्रयोदश ॥ १० ॥

उस यज्ञमें भक्ष्य-भोज्य अन्न-पानके पर्वतोंके समान एक कोस ऊँचे ढेर लगे हुए थे। राजाका अश्वमेध-यज्ञ पूरा हो जानेपर अन्नके तेरह पर्वत बच गये थे ॥ १० ॥

तुष्टपुष्टजनाकीर्णा शान्तविघ्नामनामयाम् ।
शशबिन्दुरिमां भूमिं चिरं भुक्त्वा दिवं गतः ॥ ११ ॥

शशबिन्दुके राज्यकालमें यह पृथ्वी हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरी थी। यहाँ कोई विघ्न-बाधा और रोग-व्याधि नहीं थी। शशबिन्दु इस वसुधाका दीर्घकालतक उपभोग करके अन्तमें स्वर्गलोकको चले गये ॥ ११ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ १२ ॥

श्वैत्य सृंजय ! वे चारों कल्याणकारी गुणोंमें तुमसे बढ़े-चढ़े थे और तुम्हारे पुत्रोंसे तो बहुत अधिक पुण्यात्मा थे। जब वे भी मर गये, तब दूसरोंकी तो बात ही क्या है ? अतः तुम यज्ञ और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो। ऐसा नारदजीने कहा ॥ १२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक पैंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमोऽध्यायः

राजा गयका चरित्र

नारद उवाच

गयं चामूर्तरयसं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यो वै वर्षशतं राजा हुतशिष्टाशनोऽभवत् ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—संजय ! राजा अमूर्तरयके पुत्र गयकी भी मृत्यु सुनी गयी है। राजा गयने सौ वर्षोंतक नियमपूर्वक अग्निहोत्र करके होमावशिष्ट अन्नका ही भोजन किया ॥ १ ॥

तस्मै ह्यग्निर्वरं प्रादात् ततो वव्रे वरं गयः ।
तपसा ब्रह्मचर्येण व्रतेन नियमेन च ॥ २ ॥
गुरूणां च प्रसादेन वेदानिच्छामि वेदितुम् ।
स्वधर्मेणाविहिंस्यान्यान् धनमिच्छामि चाक्षयम् ॥ ३ ॥
विप्रेषु ददतश्चैव श्रद्धा भवतु नित्यशः ।
अनन्यासु सवर्णासु पुत्रजन्म च मे भवेत् ॥ ४ ॥
अन्नं मे ददतः श्रद्धा धर्मे मे रमतां मनः ।
अविघ्नं चास्तु मे नित्यं धर्मकार्येषु पावक ॥ ५ ॥

इससे प्रसन्न होकर अग्निदेवने उन्हें वर देनेकी इच्छा प्रकट की। (अग्निदेवकी आज्ञासे) गयने उनसे यह वरदान माँगा—'मैं तप, ब्रह्मचर्य, व्रत, नियम और गुरुजनोंकी कृपासे वेदोंका ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ। दूसरोंको कष्ट पहुँचाये बिना अपने धर्मके अनुसार चलकर अक्षय धन

पाना चाहता हूँ। ब्राह्मणोंको दान देता रहूँ और इस कार्यमें प्रतिदिन मेरी अधिकाधिक श्रद्धा बढ़ती रहे। अपने ही वर्णकी पतिव्रता कन्याओंसे मेरा विवाह हो और उन्हींके गर्भसे मेरे पुत्र उत्पन्न हों। अन्नदानमें मेरी श्रद्धा बढ़े तथा धर्ममें ही मेरा मन लगा रहे। अग्निदेव ! मेरे धर्मसम्बन्धी कार्योंमें कभी कोई विघ्न न आवे' ॥ २-५ ॥

तथा भविष्यतीत्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ।
गयो ह्यवाप्य तत् सर्वं धर्मेणारीनजीजयत् ॥ ६ ॥

'ऐसा ही होगा' यों कहकर अग्निदेव वहीं अन्तर्धान हो गये। राजा गयने वह सब कुछ पाकर धर्मसे ही शत्रुओंपर विजय पायी ॥ ६ ॥

स दर्शपौर्णमासाभ्यां कालेष्वाग्रयणेन च ।
चातुर्मास्यैश्च विविधैर्यज्ञैश्चावाप्तदक्षिणैः ॥ ७ ॥
अयजच्छ्रद्धया राजा परिसंवत्सरान् शतम् ।

राजाने यथासमय सौ वर्षोंतक बड़ी श्रद्धाके साथ दर्श, पौर्णमास, आग्रयण और चातुर्मास्य आदि नाना प्रकारके यज्ञ किये तथा उनमें प्रचुर दक्षिणा दी ॥ ७½ ॥

गवां शतसहस्राणि शतमश्वशतानि च ॥ ८ ॥
शतं निष्कसहस्राणि गवां चाप्ययुतानि षट् ।
उत्थायोत्थाय स प्रादात् परिसंवत्सरान् शतम् ॥ ९ ॥

वे सौ वर्षोंतक प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर एक लाख साठ हजार गौ, दस हजार अश्व तथा एक लाख स्वर्णमुद्रा दान करते थे ॥ ८-९ ॥

नक्षत्रेषु च सर्वेषु ददन्नक्षत्रदक्षिणाः ।
ईजे च विविधैर्यज्ञैर्यथा सोमोऽङ्गिरा यथा ॥ १० ॥

वे सोम और अङ्गिराकी भाँति सम्पूर्ण नक्षत्रोंमें नक्षत्र-दक्षिणा देते हुए नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन करते थे ॥ १० ॥

सौवर्णां पृथिवीं कृत्वा य इमां मणिशर्कराम् ।
विप्रेभ्यः प्राददद् राजा सोऽश्वमेधे महामखे ॥ ११ ॥

राजा गयने अश्वमेध नामक महायज्ञमें मणिमय रेतवाली सोनेकी पृथ्वी बनवाकर ब्राह्मणोंको दान की थी ॥ ११ ॥

जाम्बूनदमया यूपाः सर्वे रत्नपरिच्छदाः ।
गयस्यासन् समृद्धास्तु सर्वभूतमनोहराः ॥ १२ ॥

गयके यज्ञमें सम्पूर्ण यूप जाम्बूनद नामक सुवर्णके बने हुए थे। उन्हें रत्नोंसे विभूषित किया गया था। वे समृद्धि-शाली यूप सम्पूर्ण प्राणियोंके मनको हर लेते थे ॥ १२ ॥

सर्वकामसमृद्धं च प्रादादन्नं गयस्तदा ।
ब्राह्मणेभ्यः प्रहृष्टेभ्यः सर्वभूतेभ्य एव च ॥ १३ ॥

राजा गयने यज्ञ करते समय हर्षसे उल्लसित हुए ब्राह्मणों तथा अन्य समस्त प्राणियोंको सम्पूर्ण कामनाओंसे सम्पन्न उत्तम अन्न दिया था ॥ १३ ॥

स समुद्रवनद्वीपनदीनदवनेषु च ।
नगरेषु च राष्ट्रेषु दिवि व्योम्नि च येऽवसन् ॥ १४ ॥
भूतग्रामाश्च विविधाः संतृप्ता यज्ञसम्पदा ।
गयस्य सदृशो यज्ञो नास्त्यन्य इति तेऽब्रुवन् ॥ १५ ॥

समुद्र, वन, द्वीप, नदी, नद, कानन, नगर, राष्ट्र, आकाश तथा स्वर्गमें जो नाना प्रकारके प्राणिसमुदाय रहते थे, वे उस यज्ञकी सम्पत्तिसे तृप्त होकर कहने लगे, राजा गयके समान दूसरे किसीका यज्ञ नहीं हुआ है ॥ १४-१५ ॥

षट्त्रिंशद् योजनायामा त्रिंशद् योजनमायता ।
पश्चात् पुरश्चतुर्विंशद् वेदी ह्यासीद्धिरण्मयी ॥ १६ ॥
गयस्य यजमानस्य मुक्तावज्रमणिस्तृता ।
प्रादात् स ब्राह्मणेभ्योऽथ वासांस्याभरणानि च ॥ १७ ॥
यथोक्ता दक्षिणाश्चान्या विप्रेभ्यो भूरिदक्षिणः ।

यजमान गयके यज्ञमें छत्तीस योजन लम्बी, तीस योजन चौड़ी और आगे-पीछे (अर्थात् नीचेसे ऊपरको) चौबीस योजन ऊँची सुवर्णमयी वेदी बनवायी गयी थी*। उसके ऊपर हीरे-मोती एवं मणिरत्न बिछाये गये थे। प्रचुर दक्षिणा देनेवाले गयने ब्राह्मणोंको वस्त्र, आभूषण तथा अन्य शास्त्रोक्त दक्षिणाएँ दी थीं ॥ १६-१७½ ॥

यत्र भोजनशिष्टस्य पर्वताः पञ्चविंशतिः ॥ १८ ॥
कुल्याः कुशलवाहिन्यो रसानामभवंस्तदा ।
वस्त्राभरणगन्धानां राशयश्च पृथग्विधाः ॥ १९ ॥

उस यज्ञमें खाने-पीनेसे बचे हुए अन्नके पचीस पर्वत शेष थे। रसोंको कौशलपूर्वक प्रवाहित करनेवाली कितनी ही छोटी-छोटी नदियाँ तथा वस्त्र, आभूषण और सुगन्धित पदार्थोंकी विभिन्न राशियाँ भी उस समय शेष रह गयी थीं ॥ १८-१९ ॥

यस्य प्रभावाच्च गयस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
वटश्चाक्षय्यकरणः पुण्यं ब्रह्मसरश्च तत् ॥ २० ॥

उस यज्ञके प्रभावसे राजा गय तीनों लोकोंमें विख्यात हो गये। साथ ही पुण्यको अक्षय्य करनेवाला अक्षयवट तथा पवित्र तीर्थ ब्रह्मसरोवर भी उनके कारण प्रसिद्ध हो गये ॥



* एक विद्वान् व्याख्याकारने ऐसे स्थलोंमें योजनका अर्थ 'बित्ता' माना है। इसके अनुसार वह वेदी १८ हाथ लंबी १५ हाथ चौड़ी और १२ हाथ ऊँची थी।

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ २१ ॥

श्वैत्य सृंजय ! वे धर्म-ज्ञानादि चारों कल्याणकारी गुणोंमें तुमसे बहुत बढ़े-चढ़े थे और तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे। जब वे भी मर गये, तब दूसरोंके लिये क्या कहना है ? अतः तुम यज्ञानुष्ठान और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये अनुताप न करो। ऐसा नारदजीने कहा ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक छाछठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥६६॥

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

राजा रन्तिदेवकी महत्ता

नारद उवाच

सांकृतिं रन्तिदेवं च मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यस्य द्विशतसाहस्रा आसन् सूदा महात्मनः ॥ १ ॥
गृहानभ्यागतान् विप्रानतिथीन् परिवेषकाः ।
पक्वापक्वं दिवारात्रं वरान्नममृतोपमम् ॥ २ ॥

नारदजी कहते हैं—सृंजय ! सुना है कि संकृतिके पुत्र रन्तिदेव भी जीवित नहीं रह सके। उन महामना नरेशके यहाँ दो लाख रसोइये थे, जो घरपर आये हुए ब्राह्मण अतिथियोंको अमृतके समान मधुर कच्चा-पक्का उत्तम अन्न दिन-रात परोसते रहते थे ॥ १-२ ॥

न्यायेनाधिगतं वित्तं ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ।
वेदानधीत्य धर्मेण यश्चक्रे द्विषतो वशे ॥ ३ ॥

उन्होंने ब्राह्मणोंको न्यायपूर्वक प्राप्त हुए धनका दान किया और चारों वेदोंका अध्ययन करके धर्मके द्वारा समस्त शत्रुओंको अपने वशमें कर लिया ॥ ३ ॥

ब्राह्मणेभ्यो ददन्निष्कान् सौवर्णान् स प्रभावतः।
तुभ्यं निष्कं तुभ्यं निष्कमिति ह स्म प्रभाषते ॥ ४ ॥

ब्राह्मणोंको सोनेके चमकीले निष्क देते हुए वे बार-बार प्रत्येक ब्राह्मणसे यही कहते थे कि यह निष्क तुम्हारे लिये है, यह निष्क तुम्हारे लिये है ॥ ४ ॥

तुभ्यं तुभ्यमिति प्रादान्निष्कान् निष्कान् सहस्रशः।
ततः पुनः समाश्वास्य निष्कानेव प्रयच्छति ॥ ५ ॥

'तुम्हारे लिये, तुम्हारे लिये' कहकर वे हजारों निष्क दान किया करते थे। इतनेपर भी जो ब्राह्मण पाये बिना रह जाते, उन्हें पुनः आश्वासन देकर वे बहुत-से निष्क ही देते थे ॥ ५ ॥

अल्पं दत्तं मयाद्येति निष्ककोटिं सहस्रशः ।
एकाह्ना दास्यति पुनः कोऽन्यस्तत् सम्प्रदास्यति॥ ६ ॥

राजा रन्तिदेव एक दिनमें सहस्रों कोटि निष्क दान करके भी यह खेद प्रकट किया करते थे कि आज मैंने बहुत कम दान किया; ऐसा सोचकर वे पुनः दान देते थे। भला दूसरा कौन इतना दान दे सकता है ? ॥ ६ ॥

द्विजपाणिवियोगेन दुःखं मे शाश्वतं महत्।
भविष्यति न संदेह एवं राजाददद् वसु ॥ ७ ॥

ब्राह्मणोंके हाथका वियोग होनेपर मुझे सदा महान् दुःख होगा, इसमें संदेह नहीं है। यह विचारकर राजा रन्तिदेव बहुत धन दान करते थे ॥ ७ ॥

सहस्रशश्च सौवर्णान् वृषभान् गोशतानुगान्।
साष्टं शतं सुवर्णानां निष्कमाहुर्धनं तथा ॥ ८ ॥

सृंजय ! एक हजार सुवर्णके बैल, प्रत्येकके पीछे सौ-सौ गायें और एक सौ आठ स्वर्णमुद्राएँ—इतने धनको निष्क कहते हैं ॥ ८ ॥

अध्यर्धमासमददद् ब्राह्मणेभ्यः शतं समाः ।
अग्निहोत्रोपकरणं यज्ञोपकरणं च यत् ॥ ९ ॥

राजा रन्तिदेव प्रत्येक पक्षमें ब्राह्मणोंको (करोड़ों) निष्क दिया करते थे। इसके साथ अग्निहोत्रके उपकरण और यज्ञकी सामग्री भी होती थी। उनका यह नियम सौ वर्षोंतक चलता रहा ॥ ९ ॥

ऋषिभ्यः करकान् कुम्भान् स्थालीः पिठरमेव च ।
शयनासनयानानि प्रासादांश्च गृहाणि च ॥ १० ॥
वृक्षांश्च विविधान् दद्यादन्नानि च धनानि च ।
सर्वं सौवर्णमेवासीद् रन्तिदेवस्य धीमतः ॥ ११ ॥

वे ऋषियोंको करवे, घड़े, बटलोई, पिठर, शय्या, आसन, सवारी, महल और घर, भाँति-भाँतिके वृक्ष तथा अन्न-धन दिया करते थे। बुद्धिमान् रन्तिदेवकी सारी देय वस्तुएँ सुवर्णमय ही होती थीं ॥ १०-११ ॥



तत्रास्य गाथा गायन्ति ये पुराणविदो जनाः।
रन्तिदेवस्य तां दृष्ट्वा समृद्धिमतिमानुषीम् ॥ १२ ॥

राजा रन्तिदेवकी वह अलौकिक समृद्धि देखकर पुराणवेत्ता पुरुष वहाँ इस प्रकार उनकी यशोगाथा गाया करते थे ॥ १२ ॥

नैतादृशं दृष्टपूर्वं कुबेरसदनेष्वपि।
धनं च पूर्यमाणं नः किं पुनर्मनुजेष्विति ॥ १३ ॥

हमने कुबेरके भवनमें भी पहले कभी ऐसा (रन्तिदेवके समान) भरा-पूरा धनका भंडार नहीं देखा है; फिर मनुष्योंके यहाँ तो हो ही कैसे सकता है ? ॥ १३ ॥

व्यक्तं वस्वोकसारेयमित्यूचुस्तत्र विस्मिताः।

वास्तवमें रन्तिदेवकी समृद्धिका सारतत्त्व उनका सुवर्णमय राजभवन और स्वर्णराशि ही है। इस प्रकार विस्मित होकर लोग उस गाथाका गान करने लगे ॥ १३½ ॥

सांकृते रन्तिदेवस्य यां रात्रिमतिथिर्वसेत् ॥ १४ ॥
आलभ्यन्त तदा गावः सहस्राण्येकविंशतिः।

संकृतिपुत्र रन्तिदेवके यहाँ जिस रातमें अतिथियोंका समुदाय निवास करता था, उस समय वहाँ इक्कीस हजार गौएँ छूकर दान की जाती थीं ॥ १४½ ॥

तत्र स्म सूदाः क्रोशन्ति सुमृष्टमणिकुण्डलाः ॥ १५ ॥
सूपं भूयिष्ठमश्नीध्वं नाद्य मांसं यथा पुरा।

वहाँ विशुद्ध मणिमय कुण्डल धारण किये रसोइये पुकार-पुकारकर कहते थे, आपलोग खूब दाल और कढ़ी खाइये। यह आज जैसी स्वादिष्ट बनी है, वैसी पहले एक महीनेतक नहीं बनी थी ॥ १५½ ॥

रन्तिदेवस्य यत् किंचित् सौवर्णमभवत् तदा ॥ १६ ॥
तत् सर्वं वितते यज्ञे ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत।

उन दिनों राजा रन्तिदेवके पास जो कुछ भी सुवर्णमयी सामग्री थी, वह सब उन्होंने उस विस्तृत यज्ञमें ब्राह्मणोंको बाँट दी ॥ १६½ ॥

प्रत्यक्षं तस्य हव्यानि प्रतिगृह्णन्ति देवताः ॥ १७ ॥
कव्यानि पितरः काले सर्वकामान् द्विजोत्तमाः।

उनके यज्ञमें देवता और पितर प्रत्यक्ष दर्शन देकर यथासमय हव्य और कव्य ग्रहण करते थे तथा श्रेष्ठ ब्राह्मण वहाँ सम्पूर्ण मनोवाञ्छित पदार्थोंको पाते थे ॥ १७½ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ १८ ॥
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ १९ ॥

श्वैत्य संजय ! वे रन्तिदेव चारों कल्याणमय गुणोंमें तुमसे बहुत बढ़े-चढ़े थे और तुम्हारे पुत्रकी अपेक्षा बहुत अधिक पुण्यात्मा थे। जब वे भी मर गये, तब दूसरोंकी क्या बात है। अतः तुम यज्ञ और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो। ऐसा नारदजीने कहा ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक सरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥६७॥

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

राजा भरतका चरित्र

नारद उवाच

दौष्यन्तिं भरतं चापि मृतं सृञ्जय शुश्रुम।
कर्माण्यसुकराण्यन्यैः कृतवान् यः शिशुर्वने ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—संजय ! दुष्यन्तपुत्र राजा भरतकी भी मृत्यु हुई सुनी गयी है, जिन्होंने शैशवावस्थामें ही वनमें ऐसे-ऐसे कर्म किये थे, जो दूसरोंके लिये सर्वथा दुष्कर है ॥ १ ॥

हिमावदातान् यः सिंहान् नखदंष्ट्रायुधान् बली।
निर्वीर्यांस्तरसा कृत्वा विचकर्ष बबन्ध च ॥ २ ॥

बलवान् भरत बाल्यावस्थामें ही नखों और दाढ़ोंसे

प्रहार करनेवाले बरफके समान सफेद रंगके सिंहोंको अपने बाहुबलके वेगसे पराजित एवं निर्बल करके उन्हें खींच लाते और बाँध देते थे ॥ २ ॥



क्रूरांश्चोग्रतरान् व्याघ्रान् दमित्वा चाकरोद् वशे।
मनःशिला इव शिलाः संयुक्ता जतुराशिभिः ॥ ३ ॥

वे अत्यन्त भयंकर और क्रूर स्वभाववाले व्याघ्रोंका दमन करके उन्हें अपने वशमें कर लेते थे। मैनसिलके समान पीली और लाक्षाराशिसे संयुक्त लाल रंगकी बड़ी-बड़ी शिलाओंको वे सुगमतापूर्वक हाथसे उठा लेते थे ॥ ३ ॥

व्यालादींश्चातिबलवान् सुप्रतीकान् गजानपि।
दंष्ट्रासु गृह्य विमुखाञ्शुष्कास्यानकरोद् वशे ॥ ४ ॥

अत्यन्त बलवान् भरत सर्प आदि जन्तुओंको और सुप्रतीक जातिके गजराजोंके भी दाँत पकड़ लेते और उनके मुख सुखाकर उन्हें विमुख करके अपने अधीन कर लेते थे ॥

महिषानप्यतिबलो बलिनो विचकर्ष ह।
सिंहानां च सुदप्तानां शतान्याकर्षयद् बलात् ॥ ५ ॥

भरतका बल असीम था। वे बलवान् भैंसों और सौ-सौ गर्वीले सिंहोंको भी बलपूर्वक घसीट लाते थे ॥ ५ ॥

बलिनः सृमरान् खड्गान् नानासत्त्वानि चाप्युत।
कृच्छ्रप्राणं वने बद्ध्वा दमयित्वाप्यवासृजत् ॥ ६ ॥

बलवान् सामरों, गैंड़ों तथा अन्य नाना प्रकारके हिंसक जन्तुओंको वे वनमें बाँध लेते और उनका दमन करते-करते उन्हें अधमरा करके छोड़ते थे ॥ ६ ॥

तं सर्वदमनेत्याहुर्द्विजास्तेनास्य कर्मणा।
तं प्रत्यषेधज्जननी मा सत्त्वानि विजीजहि ॥ ७ ॥

उनके इस कर्मसे ब्राह्मणोंने उनका नाम सर्वदमन रख दिया। माता शकुन्तलाने भरतको मना किया कि तू जंगली जीवोंको सताया न कर ॥ ७ ॥

सोऽश्वमेधशतेनेष्ट्वा यमुनामनु वीर्यवान्।
त्रिशताश्वान् सरस्वत्यां गङ्गामनु चतुःशतान् ॥ ८ ॥
सोऽश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेन च।
पुनरीजे महायज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥ ९ ॥

पराक्रमी महाराज भरत जब बड़े हुए, तब उन्होंने यमुनाके तटपर सौ, सरस्वतीके तटपर तीन सौ और गङ्गाजीके किनारे चार सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करके पुनः उत्तम दक्षिणाओंसे सम्पन्न एक हजार अश्वमेध और सौ राजसूय महायज्ञोंद्वारा भगवान्का यजन किया ॥ ८-९ ॥

अग्निष्टोमातिरात्राभ्यामिष्ट्वा विश्वजिता अपि।
वाजपेयसहस्राणां सहस्रैश्च सुसंवृतैः ॥ १० ॥
इष्ट्वा शाकुन्तलो राजा तर्पयित्वा द्विजान् धनैः।
सहस्रं यत्र पद्मानां कण्वाय भरतो ददौ ॥ ११ ॥
जाम्बूनदस्य शुद्धस्य कनकस्य महायशाः।

इसके बाद भरतने अग्निष्टोम और अतिरात्र याग करके विश्वजित् नामक यज्ञ किया। तत्पश्चात् सर्वथा सुरक्षित दस लाख वाजपेय यज्ञोंद्वारा भगवान् यज्ञपुरुषकी आराधना करके महायशस्वी शकुन्तलाकुमार राजा भरतने धनद्वारा ब्राह्मणोंको तृप्त करते हुए आचार्य कण्वको विशुद्ध जाम्बूनद सुवर्णके बने हुए एक हजार कमल भेंट किये ॥ १०-११½ ॥

यस्य यूपः शतव्यामः परिणाहेन काञ्चनः ॥ १२ ॥
समागम्य द्विजैः सार्धं सेन्द्रैर्देवैः समुच्छ्रितः।

इन्द्र आदि देवताओंने वहाँ ब्राह्मणोंके साथ मिलकर राजा भरतके यज्ञमें सोनेके बने हुए सौ व्याम (चार सौ हाथ) लंबे सुवर्णमय यूपका आरोपण किया ॥ १२½ ॥

अलंकृतान् राजमानान् सर्वरत्नैर्मनोहरैः ॥ १३ ॥
हैरण्यानश्वान् द्विरदान् रथानुष्ट्रानजाविकम्।
दासीदासं धनं धान्यं गाः सवत्साः पयस्विनीः ॥ १४ ॥
ग्रामान् गृहांश्च क्षेत्राणि विविधांश्च परिच्छदान्।
कोटीशतायुतांश्चैव ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ १५ ॥
चक्रवर्ती ह्यदीनात्मा जितारिर्ह्यजितः परैः।

शत्रुविजयी, दूसरोंसे पराजित न होनेवाले अदीनचित्त चक्रवर्ती सम्राट् भरतने ब्राह्मणोंको सम्पूर्ण मनोहर रत्नोंसे विभूषित, कान्तिमान् एवं सुवर्णशोभित घोड़े, हाथी, रथ, ऊँट, बकरी, भेड़, दास, दासी, धन-धान्य, दूध देनेवाली सवत्सा गायें, गाँव, घर, खेत तथा वस्त्राभूषण आदि नाना प्रकारकी सामग्री एवं दस लाख कोटि स्वर्णमुद्राएँ दी थीं ॥ १३—१५½ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय चतुर्भद्रतरस्त्वया ॥ १६ ॥
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्यमभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ १७ ॥

श्वैत्य संजय ! चारों कल्याणकारी गुणोंमें वे तुमसे बढ़-चढ़कर थे और तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे। जब वे भी मृत्युसे बच न सके, तब दूसरे कैसे बच सकते हैं ? अतः तुम यज्ञ और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो। ऐसा नारदजीने कहा ॥ १६-१७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक अड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

राजा पृथुका चरित्र

नारद उवाच

पृथुं वैन्यं च राजानं मृतं सृञ्जय शुश्रुम ।
यमभ्यषिञ्चन् साम्राज्ये राजसूये महर्षयः ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—संजय ! वेनके पुत्र राजा पृथु भी जीवित नहीं रह सके; यह हमने सुना है। महर्षियोंने राजसूय-यज्ञमें उन्हें सम्राट्के पदपर अभिषिक्त किया था॥१॥

यत्नतः प्रथितेत्यूचुः सर्वानभिभवन् पृथुः ।
क्षतान्नस्त्रास्यते सर्वानित्येवं क्षत्रियोऽभवत् ॥ २ ॥

'ये समस्त शत्रुओंको पराजित करके अपने प्रयत्नसे प्रथित (विख्यात) होंगे'—ऐसा महर्षियोंने कहा था। इसलिये वे 'पृथु' कहलाये। ऋषियोंने यह भी कहा कि 'ये क्षतसे हमारा त्राण करेंगे', इसलिये वे 'क्षत्रिय' इस सार्थक नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ २ ॥

पृथुं वैन्यं प्रजा दृष्ट्वा रक्ताः स्मेति यदब्रुवन् ।
ततो राजेति नामास्य अनुरागादजायत ॥ ३ ॥

वेनकुमार पृथुको देखकर प्रजाने कहा, हम इनमें अनुरक्त हैं। इसलिये उस प्रजारञ्जनजनित अनुरागके कारण उनका नाम 'राजा' हुआ ॥ ३ ॥

अकृष्टपच्या पृथिवी आसीद् वैन्यस्य कामधुक् ।
सर्वाः कामदुघा गावः पुटके पुटके मधु ॥ ४ ॥

वेननन्दन पृथुके लिये यह पृथ्वी कामधेनु हो गयी थी। उनके राज्यमें बिना जोते ही पृथ्वीसे अनाज पैदा होता था। उस समय सभी गौएँ कामधेनुके समान थीं। पत्ते-पत्तेमें मधु भरा रहता था ॥ ४ ॥

आसन् हिरण्मया दर्भाः सुखस्पर्शाः सुखावहाः ।
तेषां चीराणि संवीताः प्रजास्तेष्वेव शेरते ॥ ५ ॥

कुश सुवर्णमय होते थे। उनका स्पर्श कोमल था और वे सुखद जान पड़ते थे। उन्हींके चीर बनाकर प्रजा उनसे अपना शरीर ढकती थी तथा उन कुशोंकी ही चटाइयोंपर सोती थी ॥ ५ ॥

फलान्यमृतकल्पानि स्वादूनि च मधूनि च ।
तेषामासीत् तदाहारो निराहाराश्च नाभवन् ॥ ६ ॥

वृक्षोंके फल अमृतके समान मधुर और स्वादिष्ट होते थे। उन दिनों उन फलोंका ही आहार किया जाता था। कोई भी भूखा नहीं रहता था ॥ ६ ॥

अरोगाः सर्वसिद्धार्था मनुष्या ह्यकुतोभयाः ।
न्यवसन्त यथाकामं वृक्षेषु च गुहासु च ॥ ७ ॥

सभी मनुष्य नीरोग थे। सबकी सारी इच्छाएँ पूर्ण होती थीं और उन्हें कहींसे भी कोई भय नहीं था। वे अपनी इच्छाके अनुसार वृक्षोंके नीचे और पर्वतोंकी गुफाओंमें निवास करते थे ॥ ७ ॥

प्रविभागो न राष्ट्राणां पुराणां चाभवत् तदा ।
यथासुखं यथाकामं तथैता मुदिताः प्रजाः ॥ ८ ॥

उस समय राष्ट्रों और नगरोंका विभाग नहीं था। सबको इच्छानुसार सुख और भोग प्राप्त थे। इससे यह सारी प्रजा प्रसन्न थी ॥ ८ ॥

तस्य संस्तम्भिता ह्यापः समुद्रमभियास्यतः ।
पर्वताश्च ददुर्मार्गं ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥ ९ ॥

राजा पृथु जब समुद्रमें यात्रा करते थे, तब पानी थम जाता था और पर्वत उन्हें जानेके लिये मार्ग दे देते थे। उनके रथकी ध्वजा कभी खण्डित नहीं हुई थी ॥ ९ ॥

तं वनस्पतयः शैला देवासुरनरोरगाः ।
सप्तर्षयः पुण्यजना गन्धर्वाप्सरसोऽपि च ॥ १० ॥
पितरश्च सुखासीनमभिगम्येदमब्रुवन् ।
सम्राडसि क्षत्रियोऽसि राजा गोप्ता पितासि नः ॥ ११ ॥
देह्यस्मभ्यं महाराज प्रभुः सन्नीप्सितान् वरान् ।
यैर्वयं शाश्वतीस्तृप्तीर्वर्तयिष्यामहे सुखम् ॥ १२ ॥

एक दिन सुखपूर्वक बैठे हुए राजा पृथुके पास वनस्पति, पर्वत, देवता, असुर, मनुष्य, सर्प, सप्तर्षि, पुण्यजन (यक्ष), गन्धर्व, अप्सरा तथा पितरोंने आकर इस प्रकार कहा—'महाराज ! तुम हमारे सम्राट् हो, क्षत्रिय हो तथा राजा, रक्षक और पिता हो। तुम हमें अभीष्ट वर दो, जिससे हमलोग अनन्त कालतक तृप्ति और सुखका अनुभव करें। तुम ऐसा करनेमें समर्थ हो' ॥ १०—१२ ॥

तथेत्युक्त्वा पृथुर्वैन्यो गृहीत्वाऽऽजगवं धनुः।
शरांश्चाप्रतिमान् घोरांश्चिन्तयित्वाब्रवीन्महीम्॥१३॥

'बहुत अच्छा' ऐसा ही होगा, यह कहकर वेनकुमार पृथुने अपना आजगव नामक धनुष और जिनकी कहीं तुलना नहीं थी, ऐसे भयंकर बाण हाथमें ले लिये और कुछ सोचकर पृथ्वीसे कहा—॥ १३ ॥

एह्येहि वसुधे क्षिप्रं क्षरैभ्यः काङ्क्षितं पयः।
ततो दास्यामि भद्रं ते अन्नं यस्य यथेप्सितम्॥ १४ ॥

'वसुधे ! तुम्हारा कल्याण हो। आओ-आओ, इन प्रजाजनोंके लिये शीघ्र ही मनोवाञ्छित दूधकी धारा बहाओ। तब मैं जिसका जैसा अभीष्ट अन्न है, उसे वैसा दे सकूँगा'॥१४॥

वसुधोवाच

दुहितृत्वेन मां वीर संकल्पयितुमर्हसि।
तथेत्युक्त्वा पृथुः सर्वं विधानमकरोद् वशी॥ १५ ॥

वसुधा बोली—वीर ! तुम मुझे अपनी पुत्री मान लो, तब जितेन्द्रिय राजा पृथुने 'तथास्तु' कहकर वहाँ सारी आवश्यक व्यवस्था की ॥ १५ ॥

ततो भूतनिकायास्तां वसुधां दुदुहुस्तदा।
तां वनस्पतयः पूर्वं समुत्तस्थुर्दुधुक्षवः॥ १६ ॥

तदनन्तर प्राणियोंके समुदायने उस समय वसुधाको दुहना आरम्भ किया । सबसे पहले दूधकी इच्छावाले वनस्पति उठे ॥ १६ ॥

सातिष्ठद् वत्सला वत्सं दोग्धृपात्राणि चेच्छती।
वत्सोऽभूत् पुष्पितः शालः प्लक्षो दोग्धाभवत् तदा १७
छिन्नप्ररोहणं दुग्धं पात्रमौदुम्बरं शुभम्।

उस समय गोरूपधारिणी पृथ्वी वात्सल्य-स्नेहसे परिपूर्ण हो बछड़े, दुहनेवाले और दुग्धपात्रकी इच्छा करती हुई खड़ी हो गयी। वनस्पतियोंमेंसे खिला हुआ शालवृक्ष बछड़ा हो गया। पाकरका पेड़ दुहनेवाला बन गया। गूलर सुन्दर दुग्धपात्रका काम देने लगा। कटनेपर पुनः पनप जाना यही दूध था ॥ १७½ ॥

उदयः पर्वतो वत्सो मेरुर्दोग्धा महागिरिः॥ १८ ॥
रत्नान्योषधयो दुग्धं पात्रमश्ममयं तथा।

पर्वतोंमें उदयाचल बछड़ा, महागिरि मेरु दुहनेवाला, रत्न और ओषधि दूध तथा प्रस्तर ही दुग्धपात्र था ॥ १८½ ॥

दोग्धा चासीत् तदा देवो दुग्धमूर्जस्करं प्रियम्॥१९॥

देवताओंमें भी उस समय कोई दुहनेवाला और कोई बछड़ा बन गया। उन्होंने पुष्टिकारक अमृतमय प्रिय दूध दुह लिया१९

असुरा दुदुहुर्मायामामपात्रे तु ते तदा।
दोग्धा द्विमूर्धा तत्रासीद् वत्सश्चासीद् विरोचनः॥२०॥

असुरोंने कच्चे बर्तनमें मायामय दूधका ही दोहन किया। उस समय द्विमूर्धा दुहनेवाला और विरोचन बछड़ा बना था ॥

कृषिं च सस्यं च नरा दुदुहुः पृथिवीतले।
स्वायम्भुवो मनुर्वत्सस्तेषां दोग्धाभवत् पृथुः॥२१॥

भूतलके मनुष्योंने कृषिकर्म और खेतीकी उपजको ही दूधके रूपमें दुहा। उनके बछड़ेके स्थानपर स्वायम्भू मनु थे और दुहनेका कार्य पृथुने किया ॥ २१ ॥

अलाबुपात्रे च तथा विषं दुग्धा वसुंधरा।
धृतराष्ट्रोऽभवद् दोग्धा तेषां वत्सस्तु तक्षकः॥ २२ ॥

सर्पोंने तुम्बीके बर्तनमें पृथ्वीसे विषका दोहन किया। उनकी ओरसे दुहनेवाला धृतराष्ट्र और बछड़ा तक्षक था॥२२॥

सप्तर्षिभिर्ब्रह्म दुग्धा तथा चाक्लिष्टकर्मभिः।
दोग्धा बृहस्पतिः पात्रं छन्दो वत्सश्च सोमराट्॥ २३ ॥

अक्लिष्टकर्मा सप्तर्षियोंने ब्रह्म (वेद एवं तप) का दोहन किया। उनके दोग्धा बृहस्पति, पात्र छन्द और बछड़ा राजा सोम थे ॥ २३ ॥

अन्तर्धानं चामपात्रे दुग्धा पुण्यजनैर्विराट्।
दोग्धा वैश्रवणस्तेषां वत्सश्चासीद् वृषध्वजः॥ २४ ॥

यक्षोंने कच्चे बर्तनमें पृथ्वीसे अन्तर्धान विद्याका दोहन किया। उनके दोग्धा कुबेर और बछड़ा महादेवजी थे ॥२४॥

पुण्यगन्धान् पद्मपात्रे गन्धर्वाप्सरसोऽदुहन्।
वत्सश्चित्ररथस्तेषां दोग्धा विश्वरुचिः प्रभुः॥ २५ ॥

गन्धर्वों और अप्सराओंने कमलकेपात्रमें पवित्र गन्धको ही दूधके रूपमें दुहा। उनका बछड़ा चित्ररथ और दुहनेवाले गन्धर्वराज विश्वरुचि थे ॥ २५ ॥

स्वधां रजतपात्रेषु दुदुहुः पितरश्च ताम्।
वत्सो वैवस्वतस्तेषां यमो दोग्धान्तकस्तदा॥ २६ ॥

पितरोंने पृथ्वीसे चाँदीके पात्रमें स्वधारूपी दूधका दोहन किया। उस समय उनकी ओरसे वैवस्वत यम बछड़ा और अन्तक दुहनेवाले थे ॥ २६ ॥

एवं निकायैस्तैर्दुग्धा पयोऽभीष्टं हि सा विराट्।
यैर्वर्तयन्ति ते ह्यद्य पात्रैर्वत्सैश्च नित्यशः॥ २७ ॥

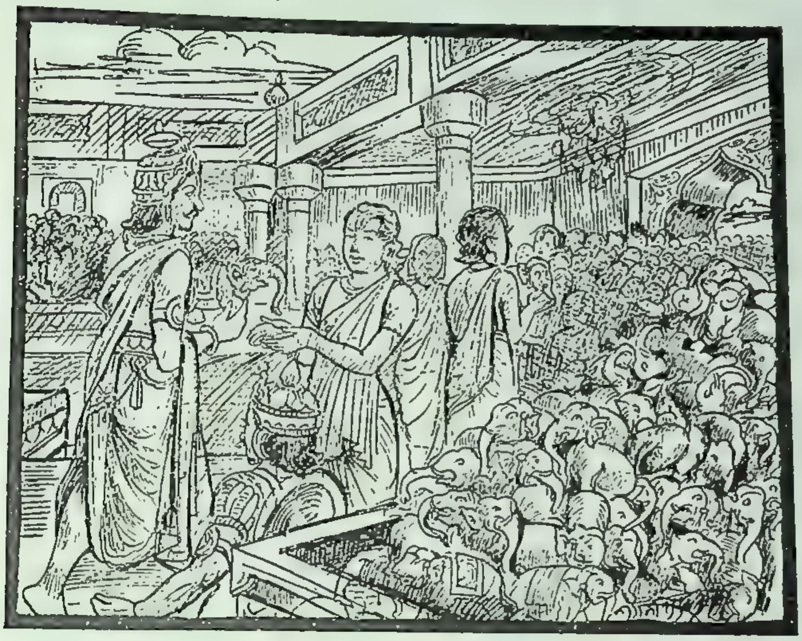
संजय ! इस प्रकार सभी प्राणियोंने बछड़ों और पात्रोंकी कल्पना करके पृथ्वीसे अपने अभीष्ट दूधका दोहन किया था, जिससे वे आजतक निरन्तर जीवन-निर्वाह करते हैं ॥ २७ ॥

यज्ञैश्च विविधैरिष्ट्वा पृथुर्वैन्यः प्रतापवान्।
संतर्पयित्वा भूतानि सर्वैः कामैर्मनःप्रियैः॥ २८ ॥

तदनन्तर प्रतापी वेनकुमार पृथुने नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा यजन करके मनको प्रिय लगनेवाले सम्पूर्ण भोगोंकी प्राप्ति कराकर सब प्राणियोंको तृप्त किया ॥ २८ ॥

हैरण्यानकरोद् राजा ये केचित् पार्थिवा भुवि।
तान् ब्राह्मणेभ्यः प्रायच्छदश्वमेधे महामखे॥ २९ ॥

भूतलपर जो कोई भी पार्थिव पदार्थ हैं, उनकी सोनेकी आकृति बनवाकर राजा पृथुने महायज्ञ अश्वमेधमें उन्हें ब्राह्मणोंको दान किया ॥ २९ ॥



इमां च पृथिवीं सर्वां
मणिरत्नविभूषिताम् ।
सौवर्णीमकरोद् राजा
ब्राह्मणेभ्यश्च तां ददौ ॥ ३१ ॥

राजा पृथुने इस सारी पृथ्वीकी भी मणि तथा रत्नोंसे विभूषित सुवर्णमयी प्रतिमा बनवायी और उसे ब्राह्मणोंको दे दिया ॥ ३१ ॥

स चेन्ममार सृञ्जय
चतुर्भद्रतरस्त्वया ।
पुत्रात् पुण्यतरस्तुभ्यं
मा पुत्रमनुतप्यथाः ।
अयज्वानमदाक्षिण्य-
मभि श्वैत्येत्युदाहरत् ॥ ३२ ॥

षष्टिनागसहस्राणि षष्टिनागशतानि च ।
सौवर्णानकरोद् राजा ब्राह्मणेभ्यश्च तान् ददौ ॥ ३० ॥

राजाने छाछठ हजार सोनेके हाथी बनवाये और उन्हें ब्राह्मणोंको दे दिया ॥ ३० ॥

श्वैत्य सृंजय ! चारों कल्याणकारी गुणोंमें वे तुमसे बहुत बढ़े-चढ़े थे और तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे। जब वे भी मर गये, तब दूसरोंकी क्या गिनती है ! अतः तुम यज्ञानुष्ठान और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो । ऐसा नारदजीने कहा ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक उनहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६९ ॥

सप्ततितमोऽध्यायः

परशुरामजीका चरित्र

नारद उवाच

रामो महातपाः शूरो वीरलोकनमस्कृतः ।
जामदग्न्योऽप्यतियशा अवितृप्तो मरिष्यति ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—संजय ! महातपस्वी शूरवीर, वीरजनवन्दित महायशस्वी जमदग्निनन्दन परशुरामजी भी अतृप्त अवस्थामें ही मौतके मुखमें चले जायँगे ॥ १ ॥

यः स्मायमनुपर्येति भूमिं कुर्वन्निमां सुखाम् ।
न चासीद् विक्रिया यस्य प्राप्य श्रियमनुत्तमाम् ॥ २ ॥

जिन्होंने इस पृथ्वीको सुखमय बनाते हुए आदि युगके धर्मका जहाँ निरन्तर प्रचार किया था तथा परम उत्तम सम्पत्तिको पाकर भी जिनके मनमें किसी प्रकारका विकार नहीं आया ॥ २ ॥

यः क्षत्रियैः परामृष्टे वत्से पितरि चाब्रुवन् ।
ततोऽवधीत् कार्तवीर्यमजितं समरे परैः ॥ ३ ॥

जब क्षत्रियोंने गायके बछड़ेको पकड़ लिया और पिता जमदग्निको मार डाला, तब जिन्होंने मौन रहकर ही समर-भूमिमें दूसरोंसे कभी पराजित न होनेवाले कृतवीर्यकुमार अर्जुनका वध किया था ॥ ३ ॥

क्षत्रियाणां चतुःषष्टिमयुतानि सहस्रशः ।
तदा मृत्योः समेतानि एकेन धनुषाजयत् ॥ ४ ॥

उस समय मरने-मारनेका निश्चय करके एकत्र हुए चौसठ करोड़ क्षत्रियोंको उन्होंने एकमात्र धनुषके द्वारा जीत लिया ॥ ४ ॥

ब्रह्मद्विषां चाथ तस्मिन् सहस्राणि चतुर्दश ।
पुनरन्यानि जग्राह दन्तक्रूरं जघान ह ॥ ५ ॥

उसी युद्धके सिलसिलेमें परशुरामजीने चौदह हजार दूसरे ब्रह्मद्रोहियोंका दमन किया और दन्तक्रूर नामक राजा-को भी मार डाला ॥ ५ ॥

सहस्रं मुसलेनाहन् सहस्रमसिनावधीत् ।
उद्बन्धनात् सहस्रं च सहस्रमुदके धृतम् ॥ ६ ॥

उन्होंने एक सहस्र क्षत्रियोंको मूसलसे मार गिराया, एक सहस्र राजपूतोंको तलवारसे काट डाला, फिर एक सहस्र क्षत्रियोंको वृक्षोंकी शाखाओंमें फाँसीपर लटकाकर मार डाला और पुनः एक सहस्रको पानीमें डुबो दिया ॥ ६ ॥

दन्तान् भङ्क्त्वा सहस्रस्य कर्णान् नासा न्यकृन्तत ।
ततः सप्तसहस्राणां कटुधूपमपाययत् ॥ ७ ॥

एक सहस्र राजपूतोंके दाँत तोड़कर नाक और कान काट डाले तथा सात हजार राजाओंको कड़ुवा धूप पिला दिया ॥

शिष्टान् बद्ध्वा च हत्वा वै तेषां मूर्ध्नि विभिद्य च।
गुणावतीमुत्तरेण खाण्डवाद् दक्षिणेन च।
गिर्यन्ते शतसाहस्रा हैहयाः समरे हताः ॥ ८ ॥
सरथाश्वगजा वीरा निहतास्तत्र शेरते।
पितुर्वधामर्षितेन जामदग्न्येन धीमता ॥ ९ ॥

शेष क्षत्रियोंको बाँधकर उनका वध कर डाला। उनमेंसे कितनोंके ही मस्तक विदीर्ण कर डाले। गुणावतीसे उत्तर और खाण्डव वनसे दक्षिण पर्वतके निकटवर्ती प्रदेशमें लाखों हैहयवंशी क्षत्रिय वीर पिताके वधसे कुपित हुए बुद्धिमान् परशुरामजीके द्वारा समरभूमिमें मारे गये। वे अपने रथ, घोड़े और हाथियोंसहित मारे जाकर वहाँ धराशायी हो गये ॥

निजघ्ने दशसाहस्रान् रामः परशुना तदा।
न ह्यमृष्यत ता वाचो यास्तैर्भृशमुदीरिताः ॥ १० ॥
भृगो रामाभिधावेति यदाक्रन्दन् द्विजोत्तमाः।

परशुरामजीने उस समय अपने फरसेसे दस हजार क्षत्रियोंको काट डाला। आश्रमवासियोंने आर्तभावसे जो बातें कही थीं, वहाँके श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने 'भृगुवंशी परशुराम! दौड़ो, बचाओ' इस प्रकार कहकर जो करुण क्रन्दन किया था, उनकी वह कातर पुकार परशुरामजीसे नहीं सही गयी ॥ १०½ ॥

ततः काश्मीरदरदान् कुन्तिक्षुद्रकमालवान् ॥ ११ ॥
अङ्गवङ्गकलिङ्गांश्च विदेहांस्ताम्रलिप्तकान्।
रक्षोवाहान् वीतिहोत्रांस्त्रिगर्तान् मार्तिकावतान् ॥ १२ ॥
शिबीनन्यांश्च राजन्यान् देशान् देशान् सहस्रशः।
निजघान शितैर्बाणैर्जामदग्न्यः प्रतापवान् ॥ १३ ॥

तदनन्तर प्रतापी परशुरामने काश्मीर, दरद, कुन्ति, क्षुद्रक, मालव, अंग, वंग, कलिंग, विदेह, ताम्रलिप्त, रक्षोवाह, वीतिहोत्र, त्रिगर्त, मार्तिकावत, शिबि तथा अन्य सहस्रों देशोंके क्षत्रियोंका अपने तीखे बाणोंद्वारा संहार किया ॥

कोटीशतसहस्राणि क्षत्रियाणां सहस्रशः।
इन्द्रगोपकवर्णस्य बन्धुजीवनिभस्य च ॥ १४ ॥
रुधिरस्य परीवाहैः पूरयित्वा सरांसि च।
सर्वानष्टादश द्वीपान् वशमानीय भार्गवः ॥ १५ ॥
ईजे क्रतुशतैः पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणैः।

सहस्रों और लाखों कोटि क्षत्रियोंके इन्द्रगोप (वीरबहूटी) नामक कीट तथा बन्धुजीव (दुपहरिया)-पुष्पके समान रंगवाले रक्तकी धाराओंसे भृगुनन्दन परशुरामने कितने ही तालाब भर दिये और समस्त अठारह द्वीपोंको अपने वशमें करके उत्तम दक्षिणाओंसे युक्त सौ पवित्र यज्ञोंका अनुष्ठान किया ॥ १४-१५½ ॥

वेदीमष्टनलोत्सेधां सौवर्णां विधिनिर्मिताम् ॥ १६ ॥
सर्वरत्नशतैः पूर्णां पताकाशतमालिनीम्।
ग्राम्यारण्यैः पशुगणैः सम्पूर्णां च महीमिमाम् ॥ १७ ॥
रामस्य जामदग्न्यस्य प्रतिजग्राह कश्यपः।

उस यज्ञमें विधिपूर्वक बत्तीस हाथ ऊँची सोनेकी वेदी बनायी गयी थी, जो सब प्रकारके सैकड़ों रत्नोंसे परिपूर्ण और सौ पताकाओंसे सुशोभित थी। जमदग्निनन्दन परशुरामकी उस वेदीको तथा ग्रामीण और जंगली पशुओंसे भरी-पूरी इस पृथ्वीको भी महर्षि कश्यपने दक्षिणारूपसे ग्रहण किया॥

ततः शतसहस्राणि द्विपेन्द्रान् हेमभूषणान् ॥ १८ ॥
निर्दस्युं पृथिवीं कृत्वा शिष्टेष्टजनसंकुलाम्।
कश्यपाय ददौ रामो हयमेधे महामखे ॥ १९ ॥

उस समय परशुरामजीने लाखों गजराजोंको सोनेके आभूषणोंसे विभूषित करके तथा पृथ्वीको चोर-डाकुओंसे सूनी और साधु पुरुषोंसे भरी पूरी करके महायज्ञ अश्वमेधमें कश्यपजीको दे दिया ॥ १८-१९ ॥

त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः।
इष्ट्वा क्रतुशतैर्वीरो ब्राह्मणेभ्यो ह्यमन्यत ॥ २० ॥

वीर एवं शक्तिशाली परशुरामजीने इक्कीस बार इस पृथ्वीको क्षत्रियोंसे शून्य करके सैकड़ों यज्ञोंद्वारा भगवान्का यजन किया और इस वसुधाको ब्राह्मणोंके अधिकारमें दे दिया॥

सप्तद्वीपां वसुमतीं मारीचोऽगृह्णत द्विजः।
रामं प्रोवाच निर्गच्छ वसुधातो ममाज्ञया ॥ २१ ॥

ब्रह्मर्षि कश्यपने जब सातों द्वीपोंसे युक्त यह पृथ्वी दानमें ले ली, तब उन्होंने परशुरामजीसे कहा—'अब तू मेरी आज्ञासे इस पृथ्वीसे निकल जाओ' (और कहीं अन्यत्र जाकर रहो) ॥ २१ ॥

स कश्यपस्य वचनात् प्रोत्सार्य सरितां पतिम्।
इषुपाते युधां श्रेष्ठः कुर्वन् ब्राह्मणशासनम् ॥ २२ ॥
अध्यावसद् गिरिश्रेष्ठं महेन्द्रं पर्वतोत्तमम्।

कश्यपके इस आदेशसे योद्धाओंमें श्रेष्ठ परशुरामने जितनी दूर बाण फेंका जा सकता है, समुद्रको उतनी ही दूर पीछे हटाकर ब्राह्मणकी आज्ञाका पालन करते हुए उत्तम पर्वत गिरिश्रेष्ठ महेन्द्रपर निवास किया ॥ २२½ ॥

एवं गुणशतैर्युक्तो भृगूणां कीर्तिवर्धनः ॥ २३ ॥
जामदग्न्यो ह्यतियशा मरिष्यति महाद्युतिः।

इस प्रकार भृगुकुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले महायशस्वी, महातेजस्वी और सैकड़ों गुणोंसे सम्पन्न जमदग्निनन्दन परशुराम भी एक-न-एक दिन मरेंगे ही ॥ २३½ ॥

त्वया चतुर्भद्रतरः पुत्रात् पुण्यतरस्तव ॥ २४ ॥
अयज्वानमदाक्षिण्यं मा पुत्रमनुतप्यथाः।

संजय ! चारों कल्याणकारी गुणोंमें वे तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा हैं। अतः तुम यज्ञानुष्ठान और दान-दक्षिणासे रहित अपने पुत्रके लिये शोक न करो ॥

एते चतुर्भद्रतरास्त्वया भद्रशताधिकाः।
मृता नरवरश्रेष्ठ मरिष्यन्ति च सृञ्जय ॥ २५ ॥

नरश्रेष्ठ संजय ! अबतक जिन लोगोंका वर्णन किया गया है, ये चतुर्विध कल्याणकारी गुणोंमें तो तुमसे बढ़कर थे ही, तुम्हारी अपेक्षा उनमें सैकड़ों मङ्गलकारी गुण अधिक भी थे; तथापि वे मर गये और जो विद्यमान हैं, वे भी मरेंगे ही ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक सत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमोऽध्यायः

नारदजीका सृंजयके पुत्रको जीवित करना और व्यासजीका युधिष्ठिरको समझाकर अन्तर्धान होना

व्यास उवाच

पुण्यमाख्यानमायुष्यं श्रुत्वा षोडशराजकम्।
अव्याहरन्नरपतिस्तूष्णीमासीत् स सृञ्जयः ॥ १ ॥

व्यासजी कहते हैं—राजन् ! इन सोलह राजाओंका पवित्र एवं आयुकी वृद्धि करनेवाला उपाख्यान सुनकर राजा सृंजय कुछ भी नहीं बोलते हुए मौन रह गये ॥ १ ॥

तमब्रवीत् तथाऽऽसीनं नारदो भगवानृषिः।
श्रुतं कीर्तयतो मह्यं गृहीतं ते महाद्युते ॥ २ ॥

उन्हें इस प्रकार चुपचाप बैठे देख भगवान् नारदमुनिने उनसे पूछा—'महातेजस्वी नरेश ! मैंने जो कुछ कहा है, उसे तुमने सुना और समझा है न ? ॥ २ ॥

आहोस्विदन्ततो नष्टं श्राद्धं शूद्रीपताविव।
स एवमुक्तः प्रत्याह प्राञ्जलिः सृञ्जयस्तदा ॥ ३ ॥

'अथवा ऐसा तो नहीं हुआ कि जैसे शूद्रजातिकी स्त्रीसे सम्बन्ध रखनेवाले ब्राह्मणको दिया हुआ श्राद्धका दान नष्ट (निष्फल) हो जाता है, उसी प्रकार मेरा यह सारा कहना अन्ततोगत्वा व्यर्थ हो गया हो।' उनके इस प्रकार पूछनेपर उस समय सृंजयने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—॥ ३ ॥

एतच्छ्रुत्वा महाबाहो धन्यमाख्यानमुत्तमम्।
राजर्षीणां पुराणानां यज्वनां दक्षिणावताम् ॥ ४ ॥
विस्मयेन हृते शोके तमसीवार्कतेजसा।
विपाप्मास्म्यव्यथोपेतो ब्रूहि किं करवाण्यहम् ॥ ५ ॥

'महाबाहु महर्षे ! यज्ञ करने और दक्षिणा देनेवाले प्राचीन राजर्षियोंका यह परम उत्तम सराहनीय उपाख्यान सुनकर मुझे ऐसा विस्मय हुआ है कि उसने मेरा सारा शोक हर लिया है। ठीक उसी तरह, जैसे सूर्यका तेज सारा अन्धकार हर लेता है। अब मैं पाप (दुःख) और व्यथासे शून्य हो गया हूँ। बताइये, आपकी किस आज्ञाका पालन करूँ' ॥

नारद उवाच

दिष्ट्यापहृतशोकस्त्वं वृणीष्वेह यदिच्छसि।
तत् तत् प्रपत्स्यसे सर्वं न मृषावादिनो वयम् ॥ ६ ॥

नारदजीने कहा—राजन् ! बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम्हारा शोक दूर हो गया। अब तुम्हारी जो इच्छा हो, यहाँ मुझसे माँग लो। तुम्हारी वह सारी अभिलषित वस्तु तुम्हें प्राप्त हो जायगी। हमलोग झूठ नहीं बोलते हैं ॥ ६ ॥

सृंजय उवाच

एतेनैव प्रतीतोऽहं प्रसन्नो यद्भवान् मम।
प्रसन्नो यस्य भगवान् न तस्यास्तीह दुर्लभम् ॥ ७ ॥

सृंजयने कहा—मुने ! आप मुझपर प्रसन्न हैं, इतनेसे ही मैं पूर्ण संतुष्ट हूँ। जिसपर आप प्रसन्न हों, उसे इस जगत्‌में कुछ भी दुर्लभ नहीं है ॥ ७ ॥

नारद उवाच

मृतं ददानि ते पुत्रं दस्युभिर्निहतं वृथा।
उद्धृत्य नरकात् कष्टात् पशुवत् प्रोक्षितं यथा ॥ ८ ॥

नारदजीने कहा—राजन् ! लुटेरोंने तुम्हारे पुत्रको प्रोक्षित पशुकी भाँति व्यर्थ ही मार डाला है। तुम्हारे उस मरे हुए पुत्रको मैं कष्टप्रद नरकसे निकालकर तुम्हें पुनः वापस दे रहा हूँ ॥ ८ ॥

व्यास उवाच

प्रादुरासीत् ततः पुत्रः सृञ्जयस्याद्भुतप्रभः।
प्रसन्नेनर्षिणा दत्तः कुबेरतनयोपमः ॥ ९ ॥

व्यासजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! नारदजीके इतना कहते ही सृंजयका अद्भुत कान्तिमान् पुत्र वहाँ प्रकट हो गया। उसे ऋषिने प्रसन्न होकर राजाको दिया था। वह देखनेमें कुबेरके पुत्रके समान जान पड़ता था ॥ ९ ॥

ततः संगम्य पुत्रेण प्रीतिमानभवन्नृपः।
ईजे च क्रतुभिः पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥ १० ॥

अपने उस पुत्रसे मिलकर राजा सृंजयको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने उत्तम दक्षिणाओंसे युक्त पुण्यमय यज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन किया ॥ १० ॥

अकृतार्थश्च भीतश्च न च सान्नाहिको हतः।
अयज्वा त्वनपत्यश्च ततोऽसौ जीवितः पुनः ॥ ११ ॥

सृंजयका पुत्र कवच बाँधकर युद्धमें लड़ता हुआ नहीं

मारा गया था। उसे अकृतार्थ और भयभीत अवस्थामें अपने प्राणोंका त्याग करना पड़ा था। वह यज्ञकर्मसे रहित और संतानहीन भी था। इसलिये नारदजीने पुनः उसे जीवित कर दिया था॥ ११॥

शूरो वीरः कृतार्थश्च प्रताप्यारीन् सहस्रशः।
अभिमन्युर्गतो वीरः पृतनाभिमुखो हतः॥ १२॥

परंतु शूरवीर अभिमन्यु तो कृतार्थ हो चुका है। वह वीर शत्रुसेनाके सम्मुख युद्धतत्पर हो सहस्रों वैरियोंको संतप्त करके मारा गया और स्वर्गलोकमें जा पहुँचा है॥१२॥

ब्रह्मचर्येण यान् कांश्चित् प्रज्ञया च श्रुतेन च।
इष्टैश्च क्रतुभिर्यान्ति तांस्ते पुत्रोऽक्षयान् गतः॥ १३॥

पुण्यात्मा पुरुष ब्रह्मचर्यपालन, उत्तम ज्ञान, वेद-शास्त्रोंके स्वाध्याय तथा यज्ञोंके अनुष्ठानसे जिन किन्हीं लोकोंमें जाते हैं, उन्हीं अक्षय लोकोंमें तुम्हारा पुत्र अभिमन्यु भी गया है॥ १३॥

विद्वांसः कर्मभिः पुण्यैः स्वर्गमीहन्ति नित्यशः।
न तु स्वर्गादयं लोकः काम्यते स्वर्गवासिभिः॥ १४॥

विद्वान् पुरुष पुण्यकर्मोंद्वारा सदा स्वर्गलोकमें जानेकी इच्छा करते हैं; परंतु स्वर्गवासी पुरुष स्वर्गसे इस लोकमें आनेकी कामना नहीं करते हैं॥ १४॥

तस्मात् स्वर्गगतं पुत्रमर्जुनस्य हतं रणे।
न चेहानयितुं शक्यं किंचिदप्राप्यमीहितम्॥ १५॥

अर्जुनका पुत्र युद्धमें मारे जानेके कारण स्वर्गलोकमें गया हुआ है। अतः उसे यहाँ नहीं लाया जा सकता। कोई अप्राप्य वस्तु केवल इच्छा करनेमात्रसे नहीं सुलभ हो सकती॥ १५॥

यां योगिनो ध्यानविविक्तदर्शनाः
प्रयान्ति यां चोत्तमयज्विनो जनाः।
तपोभिरिद्धैरनुयान्ति यां तथा
तामक्षयां ते तनयो गतो गतिम्॥ १६॥

जिन्होंने ध्यानके द्वारा पवित्र ज्ञानमयी दृष्टि प्राप्त कर ली है, वे योगी निष्कामभावसे उत्तम यज्ञ करनेवाले पुरुष तथा अपनी उज्ज्वल तपस्याओंद्वारा तपस्वी मुनि जिस अक्षय गतिको पाते हैं, तुम्हारे पुत्रने भी वही गति प्राप्त की है॥

अन्तात् पुनर्भावगतो विराजते
राजेव वीरो ह्यमृतात्मरश्मिभिः।
तामैन्दवीमात्मतनुं द्विजोचितां
गतोऽभिमन्युर्न स शोकमर्हति॥ १७॥

वीर अभिमन्यु मृत्युके पश्चात् पुनः पूर्वभावको प्राप्त होकर चन्द्रमासे उत्पन्न अपने द्विजोचित शरीरमें प्रतिष्ठित हो अपनी अमृतमयी किरणोंसे राजा सोमके समान प्रकाशित हो रहा है। अतः उसके लिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये॥

एवं ज्ञात्वा स्थिरो भूत्वा जह्यरीन् धैर्यमाप्नुहि।
जीवन्त एव नः शोच्या न तु स्वर्गगतोऽनघ॥ १८॥

राजन्! ऐसा जानकर सुस्थिर हो धैर्यका आश्रय लो और उत्साहपूर्वक शत्रुओंका वध करो। अनघ! हमें इस संसारमें जीवित पुरुषोंके लिये ही शोक करना चाहिये। जो स्वर्गमें चला गया है, उसके लिये शोक करना उचित नहीं है॥

शोचतो हि महाराज अघमेवाभिवर्धते।
तस्माच्छोकं परित्यज्य श्रेयसे प्रयतेद् बुधः॥ १९॥
प्रहर्षमभिमानं च सुखप्राप्तिं च चिन्तयन्।

महाराज! शोक करनेसे केवल दुःख ही बढ़ता है। अतः विद्वान् पुरुष उत्कृष्ट हर्ष, अतिशय सम्मान और सुख-प्राप्तिका चिन्तन करते हुए शोकका परित्याग करके अपने कल्याणके लिये ही प्रयत्न करे॥ १९½॥

एतद् बुद्ध्वा बुधाः शोकं न शोकः शोक उच्यते॥२०॥

यही सब सोच-समझकर ज्ञानवान् पुरुष शोक नहीं करते हैं। शोकको शोक नहीं कहते हैं (उसका अनुभव करनेवाला मन ही शोकरूप होता है)॥ २०॥

एवं विद्वान् समुत्तिष्ठ प्रयतो भव मा शुचः।
श्रुतस्ते सम्भवो मृत्योस्तपांस्यनुपमानि च॥ २१॥

राजन्! ऐसा जानकर तुम युद्धके लिये उठो। मन और इन्द्रियोंको संयममें रक्खो तथा शोक न करो। तुमने मृत्युकी उत्पत्ति और उसकी अनुपम तपस्याका वृत्तान्त सुन लिया है॥ २१॥

सर्वभूतसमत्वं च चञ्चलाश्च विभूतयः।
सृञ्जयस्य तु तं पुत्रं मृतं संजीवितं पुनः॥ २२॥

मृत्यु सम्पूर्ण प्राणियोंको समभावसे प्राप्त होती है और धन-ऐश्वर्य चञ्चल है—यह बात भी जान ली है। संजयका पुत्र मरा और पुनः जीवित हुआ, यह कथा भी तुमने सुन ही ली है॥ २२॥

एवं विद्वान् महाराज मा शुचः साधयाम्यहम्।
एतावदुक्त्वा भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत॥ २३॥

महाराज! यह सब तुम जानते हो। अतः शोक न करो। अब मैं अपनी साधनामें लग रहा हूँ। ऐसा कहकर भगवान् व्यास वहीं अन्तर्धान हो गये॥ २३॥

वागीशाने भगवति व्यासे व्यभ्रनभःप्रभे।
गते मतिमतां श्रेष्ठे समाश्वास्य युधिष्ठिरम्॥ २४॥
पूर्वेषां पार्थिवेन्द्राणां महेन्द्रप्रतिमौजसाम्।
न्यायाधिगतवित्तानां तां श्रुत्वा यज्ञसम्पदम्॥ २५॥
सम्पूज्य मनसा विद्वान् विशोकोऽभूद् युधिष्ठिरः।
पुनश्चाचिन्तयद् दीनः किंस्विद् वक्ष्ये धनंजयम्॥२६॥

बिना बादलके आकाशकी-सी कान्तिवाले, बुद्धिमानोंमें

श्रेष्ठ वागीश्वर भगवान् व्यास जब युधिष्ठिरको आश्वासन देकर चले गये, तब देवराज इन्द्रके समान पराक्रमी और न्यायसे धन प्राप्त करनेवाले प्राचीन राजाओंके उस यज्ञ-वैभवकी कथा सुनकर विद्वान् युधिष्ठिर मन-ही-मन उनके प्रति आदरकी भावना करते हुए शोकसे रहित हो गये। तदनन्तर फिर दीनभावसे यह सोचने लगे कि अर्जुनसे मैं क्या कहूँगा॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि अभिमन्युवधपर्वणि षोडशराजकीये एकसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत अभिमन्युवधपर्वमें षोडशराजकीयोपाख्यानविषयक इकहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७१॥

(प्रतिज्ञापर्व)

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

अभिमन्युकी मृत्युके कारण अर्जुनका विषाद और क्रोध

(धृतराष्ट्र उवाच

अथ संशप्तकैः सार्धं युध्यमाने धनंजये।
अभिमन्यौ हते चापि बाले बलवतां वरे॥
महर्षिसत्तमे याते युधिष्ठिरपुरोगमाः।
पाण्डवाः किमथाकार्षुः शोकेन हतचेतसः॥
कथं संशप्तकेभ्यो वा निवृत्तो वानरध्वजः।
केन वा कथितः तस्य प्रशान्तः सुतपावकः॥
एतन्मे शंस तत्त्वेन सर्वमेवेह संजय।)

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! जब अर्जुन संशप्तकोंके साथ युद्ध कर रहे थे, जब बलवानोंमें श्रेष्ठ बालक अभिमन्यु मारा गया और जब महर्षियोंमें श्रेष्ठ व्यास (युधिष्ठिरको सान्त्वना देकर) चले गये, तब शोकसे व्याकुल चित्तवाले युधिष्ठिर और अन्य पाण्डवोंने क्या किया? कपिध्वज अर्जुन संशप्तकोंकी ओरसे कैसे लौटे तथा किसने उनसे कहा कि तुम्हारा अग्निके समान तेजस्वी पुत्र सदाके लिये शान्त हो गया। इन सब बातोंको तुम यथार्थरूपसे मुझे बताओ॥

संजय उवाच

तस्मिन्नहनि निर्वृत्ते घोरे प्राणभृतां क्षये।
आदित्येऽस्तं गते श्रीमान् संध्याकाल उपस्थिते॥ १॥
व्यपयातेषु वासाय सर्वेषु भरतर्षभ।
हत्वा संशप्तकव्रातान् दिव्यैरस्त्रैः कपिध्वजः॥ २॥
प्रायात् स शिबिरं जिष्णुर्जैत्रमास्थाय तं रथम्।
गच्छन्नेव च गोविन्दं साश्रुकण्ठोऽभ्यभाषत॥ ३॥

संजय बोले—भरतश्रेष्ठ! प्राणधारियोंका संहार करनेवाले उस भयङ्कर दिनके बीत जानेपर जब सूर्यदेव अस्ताचलको चले गये और संध्याकाल उपस्थित हुआ, उस समय समस्त सैनिक जब शिबिरमें विश्रामके लिये चल दिये, तब विजयशील श्रीमान् कपिध्वज अर्जुन अपने दिव्यास्त्रोंद्वारा संशप्तकसमूहोंका वध करके अपने उस विजयी रथपर बैठे हुए शिबिरकी ओर चले। चलते-चलते ही वे अश्रुगद्गदकण्ठ हो भगवान् गोविन्दसे इस प्रकार बोले—॥ १—३॥



किं नु मे हृदयं त्रस्तं वाक् च सज्जति केशव।
स्पन्दन्ति चाप्यनिष्टानि गात्रं सीदति चाच्युत॥ ४॥

'केशव! न जाने क्यों आज मेरा हृदय धड़क रहा है, वाणी लड़खड़ा रही है, अनिष्टसूचक बायें अङ्ग फड़क रहे हैं और शरीर शिथिल होता जा रहा है॥ ४॥

अनिष्टं चैव मे श्लिष्टं हृदयान्नापसर्पति।
भुवि ये दिक्षु चाप्युग्रा उत्पातास्त्रासयन्ति माम्॥ ५॥

'मेरे हृदयमें अनिष्टकी चिन्ता घुसी हुई है, जो किसी प्रकार वहाँसे निकलती ही नहीं है। पृथ्वीपर तथा सम्पूर्ण दिशाओंमें होनेवाले भयंकर उत्पात मुझे डरा रहे हैं॥ ५॥

बहुप्रकारा दृश्यन्ते सर्व एवाघशंसिनः।
अपि स्वस्ति भवेद् राज्ञः सामात्यस्य गुरोर्मम ॥ ६ ॥

'ये उत्पात अनेक प्रकारके दिखायी देते हैं और सब-के-सब भारी अमङ्गलकी सूचना दे रहे हैं। क्या मेरे पूज्य भ्राता राजा युधिष्ठिर अपने मन्त्रियोंसहित सकुशल होंगे?' ॥ ६ ॥

वासुदेव उवाच

व्यक्तं शिवं तव भ्रातुः सामात्यस्य भविष्यति।
मा शुचः किञ्चिदेवान्यत् तत्रानिष्टं भविष्यति ॥ ७ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—अर्जुन! शोक न करो। मुझे स्पष्ट जान पड़ता है कि मन्त्रियोंसहित तुम्हारे भाईका कल्याण ही होगा। इस अपशकुनके अनुसार कोई दूसरा ही अनिष्ट हुआ होगा ॥ ७ ॥

संजय उवाच

ततः संध्यामुपास्यैव वीरौ वीरावसादने।
कथयन्तौ रणे वृत्तं प्रयातौ रथमास्थितौ ॥ ८ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर वे दोनों वीर उस वीरसंहारक रणभूमिमें संध्या-वन्दन करके पुनः रथपर बैठकर युद्धसम्बन्धी बातें करते हुए आगे बढ़े ॥ ८ ॥

ततः स्वशिबिरं प्राप्तौ हतानन्दं हतत्विषम्।
वासुदेवोऽर्जुनश्चैव कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ ९ ॥

फिर श्रीकृष्ण और अर्जुन जो अत्यन्त दुष्कर कर्म करके आ रहे थे, अपने शिविरके निकट आ पहुँचे। उस समय वह शिविर आनन्दशून्य और श्रीहीन दिखायी देता था ॥

ध्वस्ताकारं समालक्ष्य शिबिरं परवीरहा।
बीभत्सुरब्रवीत् कृष्णमस्वस्थहृदयस्ततः ॥ १० ॥

अपनी छावनीको विध्वस्त हुई-सी देखकर शत्रुवीरोंका संहारकरनेवाले अर्जुनका हृदय चिन्तित हो उठा। अतः वे भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोले—॥ १० ॥

नदन्ति नाद्य तूर्याणि मङ्गल्यानि जनार्दन।
मिश्रा दुन्दुभिनिर्घोषैः शङ्खाश्चाडम्बरैः सह ॥ ११ ॥

'जनार्दन! आज इस शिविरमें माङ्गलिक बाजे नहीं बज रहे हैं। दुन्दुभि-नाद तथा तुरहीके शब्दोंके साथ मिली हुई शङ्खध्वनि भी नहीं सुनायी देती है ॥ ११ ॥

वीणा नैवाद्य वाद्यन्ते शम्यातालस्वनैः सह।
मङ्गल्यानि च गीतानि न गायन्ति पठन्ति च ॥ १२ ॥
स्तुतियुक्तानि रम्याणि ममानीकेषु बन्दिनः।

'ढाक और करतारकी ध्वनिके साथ आज वीणा भी नहीं बज रही है। मेरी सेनाओंमें वन्दीजन न तो मङ्गलगीत गा रहे हैं और न स्तुतियुक्त मनोहर श्लोकोंका ही पाठ करते हैं ॥ १२½ ॥

योधाश्चापि हि मां दृष्ट्वा निवर्तन्ते ह्यधोमुखाः ॥ १३ ॥
कर्माणि च यथापूर्वं कृत्वा नाभिवदन्ति माम्।
अपि स्वस्ति भवेदद्य भ्रातृभ्यो मम माधव ॥ १४ ॥

'मेरे सैनिक मुझे देखकर नीचे मुख किये लौट जाते हैं। पहलेकी भाँति अभिवादन करके मुझसे युद्धका समाचार नहीं बता रहे हैं। माधव! क्या आज मेरे भाई सकुशल होंगे? ॥ १३-१४ ॥

न हि शुद्ध्यति मे भावो दृष्ट्वा स्वजनमाकुलम्।
अपि पाञ्चालराजस्य विराटस्य च मानद ॥ १५ ॥
सर्वेषां चैव योधानां सामग्र्यं स्यान्ममाच्युत।

'आज इन स्वजनोंको व्याकुल देखकर मेरे हृदयकी आशंका नहीं दूर होती है। दूसरोंको मान देनेवाले अच्युत श्रीकृष्ण! राजा द्रुपद, विराट तथा मेरे अन्य सब योद्धाओंका समुदाय तो सकुशल होगा न? ॥ १५½ ॥

न च मामद्य सौभद्रः प्रहृष्टो भ्रातृभिः सह।
रणादायान्तमुचितं प्रत्युद्याति हसन्निव ॥ १६ ॥

'आज प्रतिदिनकी भाँति सुभद्राकुमार अभिमन्यु अपने भाइयोंके साथ हर्षमें भरकर हँसता हुआ-सा युद्धसे लौटते हुए मेरी उचित अगवानी करने नहीं आ रहा है (इसका क्या कारण है?)' ॥ १६ ॥

संजय उवाच

एवं संकथयन्तौ तौ प्रविष्टौ शिबिरं स्वकम्।
ददृशाते भृशास्वस्थान् पाण्डवान् नष्टचेतसः ॥ १७ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! इस प्रकार बातें करते हुए उन दोनोंने शिविरमें पहुँचकर देखा कि पाण्डव अत्यन्त व्याकुल और हतोत्साह हो रहे हैं ॥ १७ ॥

दृष्ट्वा भ्रातॄंश्च पुत्रांश्च विमना वानरध्वजः।
अपश्यंश्चैव सौभद्रमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १८ ॥

भाइयों तथा पुत्रोंको इस अवस्थामें देख और सुभद्राकुमार अभिमन्युको वहाँ न पाकर कपिध्वज अर्जुनका मन अत्यन्त उदास हो गया तथा वे इस प्रकार बोले—॥ १८ ॥

मुखवर्णोऽप्रसन्नो वः सर्वेषामेव लक्ष्यते।
न चाभिमन्युं पश्यामि न च मां प्रतिनन्दथ ॥ १९ ॥

'आज आप सभी लोगोंके मुखकी कान्ति अप्रसन्न दिखायी दे रही है, इधर मैं अभिमन्युको नहीं देख पाता हूँ और आपलोग भी मुझसे प्रसन्नतापूर्वक वार्तालाप नहीं कर रहे हैं ॥ १९ ॥

मया श्रुतश्च द्रोणेन चक्रव्यूहो विनिर्मितः।
न च वस्तस्य भेत्तास्ति विना सौभद्रमर्भकम् ॥ २० ॥

'मैंने सुना है कि आचार्य द्रोणने चक्रव्यूहकी रचना की थी। आपलोगोंमेंसे बालक अभिमन्युके सिवा दूसरा कोई उस व्यूहका भेदन नहीं कर सकता था ॥ २० ॥

न चोपदिष्टस्तस्यासीन्मयानीकाद् विनिर्गमः ।
कच्चिन्न बालो युष्माभिः परानीकं प्रवेशितः ॥ २१ ॥

'परंतु मैंने उसे उस व्यूहसे निकलनेका ढंग अभी नहीं बताया था । कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि आपलोगोंने उस बालकको शत्रुके व्यूहमें भेज दिया हो ? ॥ २१ ॥

भित्त्वानीकं महेष्वासः परेषां बहुशो युधि ।
कच्चिन्न निहतः संख्ये सौभद्रः परवीरहा ॥ २२ ॥

'शत्रुवीरोंका संहार करनेवाला महाधनुर्धर सुभद्राकुमार अभिमन्यु युद्धमें शत्रुओंके उस व्यूहका अनेकों बार भेदन करके अन्तमें वहीं मारा तो नहीं गया ? ॥ २२ ॥

लोहिताक्षं महाबाहुं जातं सिंहमिवाद्रिषु ।
उपेन्द्रसदृशं ब्रूत कथमायोधने हतः ॥ २३ ॥

'पर्वतोंमें उत्पन्न हुए सिंहके समान लाल नेत्रोंवाले, श्रीकृष्णतुल्य पराक्रमी महाबाहु अभिमन्युके विषयमें आप लोग बतावें । वह युद्धमें किस प्रकार मारा गया ? ॥ २३ ॥

सुकुमारं महेष्वासं वासवस्यात्मजात्मजम् ।
सदा मम प्रियं ब्रूत कथमायोधने हतः ॥ २४ ॥

'इन्द्रके पौत्र तथा मुझे सदा प्रिय लगनेवाले सुकुमार शरीर महाधनुर्धर अभिमन्युके विषयमें बताइये । वह युद्धमें कैसे मारा गया ? ॥ २४ ॥

सुभद्रायाः प्रियं पुत्रं द्रौपद्याः केशवस्य च ।
अम्बायाश्च प्रियं नित्यं कोऽवधीत् कालमोहितः ॥ २५ ॥

'सुभद्रा और द्रौपदीके प्यारे पुत्र अभिमन्युको, जो श्रीकृष्ण और माता कुन्तीका सदा दुलारा रहा है, किसने कालसे मोहित होकर मारा है ? ॥ २५ ॥

सदृशो वृष्णिवीरस्य केशवस्य महात्मनः ।
विक्रमश्रुतमाहात्म्यैः कथमायोधने हतः ॥ २६ ॥

'वृष्णिकुलके वीर महात्मा केशवके समान पराक्रमी, शास्त्रज्ञ और महत्त्वशाली अभिमन्यु युद्धमें किस प्रकार मारा गया है ? ॥ २६ ॥

वार्ष्णेयीदयितं शूरं मया सततलालितम् ।
यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम् ॥ २७ ॥

'सुभद्राके प्राणप्यारे शूरवीर पुत्रको, जिसको मैंने सदा लाड़-प्यार किया है, यदि नहीं देखूँगा तो मैं भी यमलोक चला जाऊँगा ॥ २७ ॥

मृदुकुञ्चितकेशान्तं बालं बालमृगेक्षणम् ।
मत्तद्विरदविक्रान्तं शालपोतमिवोद्गतम् ॥ २८ ॥
स्मिताभिभाषिणं शान्तं गुरुवाक्यकरं सदा ।
बाल्येऽप्यतुलकर्माणं प्रियवाक्यममत्सरम् ॥ २९ ॥
महोत्साहं महाबाहुं दीर्घराजीवलोचनम् ।
भक्तानुकम्पिनं दान्तं न च नीचानुसारिणम् ॥ ३० ॥
कृतज्ञं ज्ञानसम्पन्नं कृतास्त्रमनिवर्तिनम् ।
युद्धाभिनन्दिनं नित्यं द्विषतां भयवर्धनम् ॥ ३१ ॥
स्वेषां प्रियहिते युक्तं पितॄणां जयगृद्धिनम् ।
न च पूर्वं प्रहर्तारं संग्रामे नष्टसम्भ्रमम् ॥ ३२ ॥
यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम् ।

'जिसके केशप्रान्त कोमल और घुँघराले थे, दोनों नेत्र मृगछौनेके समान चञ्चल थे, जिसका पराक्रम मतवाले हाथीके समान और शरीर नूतन शालवृक्षके समान ऊँचा था, जो मुसकराकर बातें करता था, जिसका मन शान्त था, जो सदा गुरुजनोंकी आज्ञाका पालन करता था, बाल्यावस्थामें भी जिसके पराक्रमकी कोई तुलना नहीं थी, जो सदा प्रिय वचन बोलता और किसीसे ईर्ष्या-द्वेष नहीं रखता था, जिसमें महान् उत्साह भरा था, जिसकी भुजाएँ बड़ी-बड़ी और दोनों नेत्र विकसित कमलके समान सुन्दर एवं विशाल थे, जो भक्त-जनोंपर दया करता, इन्द्रियोंको वशमें रखता और नीच पुरुषोंका साथ कभी नहीं करता था, जो कृतज्ञ, ज्ञानवान्, अस्त्र-विद्यामें पारङ्गत, युद्धसे मुँह न मोड़नेवाला, युद्धका अभिनन्दन करनेवाला तथा सदा शत्रुओंका भय बढ़ानेवाला था, जो स्वजनोंके प्रिय और हितमें तत्पर तथा अपने पितृकुलकी विजय चाहनेवाला था, संग्राममें जिसे कभी घबराहट नहीं होती थी और जो शत्रुपर पहले प्रहार नहीं करता था, अपने उस पुत्र बालक अभिमन्युको यदि नहीं देखूँगा तो मैं भी यमलोककी राह लूँगा ॥ २८—३२½ ॥

रथेषु गण्यमानेषु गणितं तं महारथम् ॥ ३३ ॥
मयाध्यर्धगुणं संख्ये तरुणं बाहुशालिनम् ।
प्रद्युम्नस्य प्रियं नित्यं केशवस्य ममैव च ॥ ३४ ॥
यदि पुत्रं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम् ।

'रथियोंकी गणना होते समय जो महारथी गिना गया था, जिसे युद्धमें मेरी अपेक्षा ड्योढ़ा समझा जाता था तथा अपनी भुजाओंसे सुशोभित होनेवाला जो तरुण वीर प्रद्युम्नको, श्रीकृष्णको और मुझे भी सदैव प्रिय था, उस पुत्रको यदि मैं नहीं देखूँगा तो यमराजके लोकमें चला जाऊँगा ॥

सुनसं सुललाटान्तं स्वक्षिभ्रूदशनच्छदम् ॥ ३५ ॥
अपश्यतस्तद्वदनं का शान्तिर्हृदयस्य मे ।

'जिसकी नासिका, ललाटप्रान्त, नेत्र, भौंह तथा ओष्ठ—ये सभी परम सुन्दर थे, अभिमन्युके उस मुखको न देखनेपर मेरे हृदयमें क्या शान्ति होगी ? ॥ ३५½ ॥

तन्त्रीस्वनसुखं रम्यं पुंस्कोकिलसमध्वनिम् ॥ ३६ ॥
अशृण्वतः स्वनं तस्य का शान्तिर्हृदयस्य मे ।

'अभिमन्युका स्वर वीणाकी ध्वनिके समान सुखद, मनोहर तथा कोयलकी काकलीके तुल्य मधुर था । उसे न सुननेपर मेरे हृदयको क्या शान्ति मिलेगी ? ॥ ३६½ ॥

रूपं चाप्रतिमं तस्य त्रिदशैश्चापि दुर्लभम् ॥ ३७ ॥
अपश्यतो हि वीरस्य का शान्तिर्हृदयस्य मे ।

'उसके रूपकी कहीं तुलना नहीं थी । देवताओंके लिये भी वैसा रूप दुर्लभ है । यदि वीर अभिमन्युके उस रूपको नहीं देख पाता हूँ तो मेरे हृदयको क्या शान्ति मिलेगी ? ३७½ ॥

अभिवादनदक्षं तं पितॄणां वचने रतम् ॥ ३८ ॥
नाद्याहं यदि पश्यामि का शान्तिर्हृदयस्य मे ।

'प्रणाम करनेमें कुशल और पितृवर्गकी आज्ञाका पालन करनेमें तत्पर अभिमन्युको यदि आज मैं नहीं देखता हूँ तो मेरे हृदयको क्या शान्ति मिलेगी ? ॥ ३८½ ॥

सुकुमारः सदा वीरो महार्हशयनोचितः ॥ ३९ ॥
भूमावनाथवच्छेते नूनं नाथवतां वरः ।

'जो सदा बहुमूल्य शय्यापर सोनेके योग्य और सुकुमार था, वह सनाथशिरोमणि वीर अभिमन्यु आज निश्चय ही अनाथकी भाँति पृथ्वीपर सो रहा है ॥ ३९½ ॥

शयानं समुपासन्ति यं पुरा परमस्त्रियः ॥ ४० ॥
तमद्य विप्रविद्धाङ्गमुपासन्त्यशिवाः शिवाः ।

'आजसे पहले सोते समय परम सुन्दरी स्त्रियाँ जिसकी उपासना करती थीं, अपने क्षत-विक्षत अङ्गोंसे पृथ्वीपर पड़े हुए उस अभिमन्युके पास आज अमङ्गलजनक शब्द करनेवाली सियारिनें बैठी होंगी ॥ ४०½ ॥

यः पुरा बोध्यते सुप्तः सूतमागधवन्दिभिः ॥ ४१ ॥
बोधयन्त्यद्य तं नूनं श्वापदा विकृतैः स्वनैः ।

'जिसे पहले सो जानेपर सूत, मागध और बन्दीजन जगाया करते थे, उसी अभिमन्युको आज निश्चय ही हिंसक जन्तु अपने भयंकर शब्दोंद्वारा जगाते होंगे ॥ ४१½ ॥

छत्रच्छायासमुचितं तस्य तद् वदनं शुभम् ॥ ४२ ॥
नूनमद्य रजोध्वस्तं रणरेणुः करिष्यति ।

'उसका वह सुन्दर मुख सदा छत्रकी छायामें रहने योग्य था; परंतु आज युद्धभूमिमें उड़ती हुई धूल उसे आच्छादित कर देगी ॥ ४२½ ॥

हा पुत्रकावितृप्तस्य सततं पुत्रदर्शने ॥ ४३ ॥
भाग्यहीनस्य कालेन यथा मे नीयसे बलात् ।

'हा पुत्र ! मैं बड़ा भाग्यहीन हूँ । निरन्तर तुम्हें देखते रहनेपर भी मुझे तृप्ति नहीं होती थी, तो भी काल आज बलपूर्वक तुम्हें मुझसे छीनकर लिये जा रहा है ॥ ४३½ ॥

सा च संयमनी नूनं सदा सुकृतिनां गतिः ॥ ४४ ॥
स्वभाभिर्भासिता रम्या त्वयात्यर्थं विराजते ।

'निश्चय ही वह संयमनी पुरी सदा पुण्यवानोंका आश्रय है; जो आज अपनी प्रभासे प्रकाशित और मनोहारिणी होती हुई भी तुम्हारे द्वारा अत्यन्त उद्भासित हो उठी होगी ॥ ४४½ ॥

नूनं वैवस्वतश्च त्वां वरुणश्च प्रियातिथिम् ॥ ४५ ॥
शतक्रतुर्धनेशश्च प्राप्तमर्चन्त्यभीरुकम् ।

'अवश्य ही आज वैवस्वत यम, वरुण, इन्द्र और कुबेर वहाँ तुम-जैसे निर्भय वीरको अपने प्रिय अतिथिके रूपमें पाकर तुम्हारा बड़ा आदर-सत्कार करते होंगे' ॥ ४५½ ॥

एवं विलप्य बहुधा भिन्नपोतो वणिग् यथा ॥ ४६ ॥
दुःखेन महताऽऽविष्टो युधिष्ठिरमपृच्छत ।

इस प्रकार बारंबार विलाप करके टूटे हुए जहाजवाले व्यापारीकी भाँति महान् दुःखसे व्याप्त हो अर्जुनने युधिष्ठिरसे इस प्रकार पूछा—॥ ४६½ ॥

कच्चित्स कदनं कृत्वा परेषां कुरुनन्दन ॥ ४७ ॥
स्वर्गतोऽभिमुखः संख्ये युध्यमानो नरर्षभैः ।

'कुरुनन्दन ! क्या उन श्रेष्ठ वीरोंके साथ युद्ध करता हुआ अभिमन्यु रणभूमिमें शत्रुओंका संहार करके सम्मुख मारा जाकर स्वर्गलोकमें गया है ? ॥ ४७½ ॥

स नूनं बहुभिर्यत्तैर्युध्यमानो नरर्षभैः ॥ ४८ ॥
असहायः सहायार्थी मामनुध्यातवान् ध्रुवम् ।

'अवश्य ही बहुत-से श्रेष्ठ एवं सावधानीके साथ प्रयत्नपूर्वक युद्ध करनेवाले योद्धाओंके साथ अकेले लड़ते हुए अभिमन्युने सहायताकी इच्छासे मेरा बारंबार स्मरण किया होगा

पीड्यमानः शरैस्तीक्ष्णैः कर्णद्रोणकृपादिभिः ॥ ४९ ॥
नानालिङ्गैः सुधौताग्रैर्मम पुत्रोऽल्पचेतनः ।
इह मे स्यात् परित्राणं पितेति स पुनः पुनः ॥ ५० ॥
इत्येवं विलपन् मन्ये नृशंसैर्भुवि पातितः ।

'जब कर्ण, द्रोण और कृपाचार्य आदिने चमकते हुए अग्रभागवाले नाना प्रकारके तीखे बाणोंद्वारा मेरे पुत्रको पीड़ित किया होगा और उसकी चेतना मन्द होने लगी होगी, उस समय अभिमन्युने बारंबार विलाप करते हुए यह कहा होगा कि यदि यहाँ मेरे पिताजी होते तो मेरे प्राणोंकी रक्षा हो जाती । मैं समझता हूँ, उसी अवस्थामें उन निर्दयी शत्रुओंने उसे पृथ्वीपर मार गिराया होगा ॥ ४९-५०½ ॥

अथवा मत्प्रसूतः स स्वस्रीयो माधवस्य च ॥ ५१ ॥
सुभद्रायां च सम्भूतो नैवं वक्तुमर्हति ।

'अथवा वह मेरा पुत्र, श्रीकृष्णका भानजा था, सुभद्राकी कोखसे उत्पन्न हुआ था; इसलिये ऐसी दीनतापूर्ण बात नहीं कह सकता था ॥ ५१½ ॥

वज्रसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम ॥ ५२ ॥
अपश्यतो दीर्घबाहुं रक्ताक्षं यन्न दीर्यते ।

'निश्चय ही मेरा यह हृदय अत्यन्त सुदृढ़ एवं वज्रसारका बना हुआ है, तभी तो लाल नेत्रोंवाले महाबाहु अभिमन्युको न देखनेपर भी यह फट नहीं जाता है ॥ ५२½ ॥

कथं बाले महेष्वासा नृशंसा मर्मभेदिनः ॥ ५३ ॥
स्वस्रीये वासुदेवस्य मम पुत्रेऽक्षिपञ्शरान्।

'उन क्रूरकर्मा महान् धनुर्धरोंने श्रीकृष्णके भानजे और मेरे बालक पुत्रपर मर्मभेदी बाणोंका प्रहार कैसे किया ? ॥

यो मां नित्यमदीनात्मा प्रत्युद्गम्याभिनन्दति ॥ ५४ ॥
उपायान्तं रिपून् हत्वा सोऽद्य मां किं न पश्यति।

'जब मैं शत्रुओंको मारकर शिविरको लौटता था, उस समय जो प्रतिदिन प्रसन्नचित्त हो आगे बढ़कर मेरा अभिनन्दन करता था, वह अभिमन्यु आज मुझे क्यों नहीं देख रहा है ?॥

नूनं स पातितः शेते धरण्यां रुधिरोक्षितः ॥ ५५ ॥
शोभयन् मेदिनीं गात्रैरादित्य इव पातितः।

'निश्चय ही शत्रुओंने उसे मार गिराया है और वह खूनसे लथपथ होकर धरतीपर पड़ा सो रहा है एवं आकाशसे नीचे गिराये हुए सूर्यकी भाँति वह अपने अङ्गोंसे इस भूमिकी शोभा बढ़ा रहा है ॥ ५५½ ॥

सुभद्रामनुशोचामि या पुत्रमपलायिनम् ॥ ५६ ॥
रणे विनिहतं श्रुत्वा शोकार्ता वै विनङ्क्ष्यति।

'मुझे बारंबार सुभद्राके लिये शोक हो रहा है, जो युद्धसे मुँह न मोड़नेवाले अपने वीर पुत्रको रणभूमिमें मारा गया सुनकर शोकसे आतुर हो प्राण त्याग देगी ॥ ५६½ ॥

सुभद्रा वक्ष्यते किं मामभिमन्युमपश्यती ॥ ५७ ॥
द्रौपदी चैव दुःखार्ते ते च वक्ष्यामि किं न्वहम्।

'अभिमन्युको न देखकर सुभद्रा मुझे क्या कहेगी ? द्रौपदी भी मुझसे किस प्रकार वार्तालाप करेगी ? इन दोनों दुःखकातर देवियोंको मैं क्या जवाब दूँगा ? ॥ ५७½ ॥

वज्रसारमयं नूनं हृदयं यन्न यास्यति ॥ ५८ ॥
सहस्रधा वधूं दृष्ट्वा रुदतीं शोककर्शिताम्।

'निश्चय ही मेरा हृदय वज्रसारका बना हुआ है, जो शोकसे कातर हुई बहू उत्तराको रोती देखकर सहस्रों टुकड़ोंमें विदीर्ण नहीं हो जाता ? ॥ ५८½ ॥

दृप्तानां धार्तराष्ट्राणां सिंहनादो मया श्रुतः ॥ ५९ ॥
युयुत्सुश्चापि कृष्णेन श्रुतो वीरानुपालभन्।

'मैंने घमंडमें भरे हुए धृतराष्ट्रपुत्रोंका सिंहनाद सुना है और श्रीकृष्णने यह भी सुना है कि युयुत्सु उन कौरववीरोंको इस प्रकार उपालम्भ दे रहा था ॥ ५९½ ॥

अशक्नुवन्तो बीभत्सुं बालं हत्वा महारथाः ॥ ६० ॥
किं मोदध्वमधर्मज्ञाः पाण्डवं दृश्यतां बलम्।

'युयुत्सु कह रहा था, धर्मको न जाननेवाले महारथी कौरवो ! अर्जुनपर जब तुम्हारा वश न चला, तब तुम एक बालककी हत्या करके क्यों आनन्द मना रहे हो ? कल पाण्डवोंका बल देखना ॥ ६०½ ॥

किं तयोर्विप्रियं कृत्वा केशवार्जुनयोर्मृधे ॥ ६१ ॥
सिंहवन्नदथ प्रीताः शोककाल उपस्थिते।

'रणक्षेत्रमें श्रीकृष्ण और अर्जुनका अपराध करके तुम्हारे लिये शोकका अवसर उपस्थित है, ऐसे समयमें तुमलोग प्रसन्न होकर सिंहनाद कैसे कर रहे हो ? ॥ ६१½ ॥

आगमिष्यति वः क्षिप्रं फलं पापस्य कर्मणः ॥ ६२ ॥
अधर्मो हि कृतस्तीव्रः कथं स्यादफलश्चिरम्।

'तुम्हारे पापकर्मका फल तुम्हें शीघ्र ही प्राप्त होगा। तुमलोगोंने घोर पाप किया है। उसका फल मिलनेमें अधिक विलम्ब कैसे हो सकता है ? ॥ ६२½ ॥

इति तान् परिभाषन् वै वैश्यापुत्रो महामतिः॥ ६३ ॥
अपायाच्छस्त्रमुत्सृज्य कोपदुःखसमन्वितः।

'राजा धृतराष्ट्रकी वैश्यजातीय पत्नीका परम बुद्धिमान् पुत्र युयुत्सु कोप और दुःखसे युक्त हो कौरवोंसे उपर्युक्त बातें कहकर शस्त्र त्यागकर चला आया है ॥ ६३½ ॥

किमर्थमेतन्नाख्यातं त्वया कृष्ण रणे मम ॥ ६४ ॥
अधाक्षं तानहं क्रूरांस्तदा सर्वान् महारथान्।

'श्रीकृष्ण ! आपने रणक्षेत्रमें ही यह बात मुझसे क्यों नहीं बता दी ? मैं उसी समय उन समस्त क्रूर महारथियोंको जलाकर भस्म कर डालता' ॥ ६४½ ॥

संजय उवाच

पुत्रशोकार्दितं पार्थं ध्यायन्तं साश्रुलोचनम् ॥ ६५ ॥
निगृह्य वासुदेवस्तं पुत्राधिभिरभिप्लुतम्।
मैवमित्यब्रवीत् कृष्णस्तीव्रशोकसमन्वितम् ॥ ६६ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! इस प्रकार अर्जुनको पुत्रशोकसे पीड़ित और उसीका चिन्तन करते हुए नेत्रोंसे आँसू बहाते देख भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें पकड़कर सँभाला। वे पुत्रवियोगके कारण होनेवाली गहरी मनोव्यथामें डूबे हुए थे और तीव्र शोक उन्हें संतप्त कर रहा था। भगवान् बोले—'मित्र ! ऐसे व्याकुल न होओ ॥ ६५-६६ ॥

सर्वेषामेष वै पन्थाः शूराणामनिवर्तिनाम्।
क्षत्रियाणां विशेषेण येषां युद्धेन जीविका ॥ ६७ ॥

'युद्धमें पीठ न दिखानेवाले सभी शूरवीरोंका यही मार्ग है। विशेषतः उन क्षत्रियोंको, जिनकी युद्धसे जीविका चलती है, इस मार्गसे जाना ही पड़ता है ॥ ६७ ॥

एषा वै युध्यमानानां शूराणामनिवर्तिनाम्।
विहिता सर्वशास्त्रज्ञैर्गतिर्मतिमतां वर ॥ ६८ ॥

'बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ वीर ! जो युद्धसे कभी पीछे नहीं हटते हैं, उन युद्धपरायण शूरवीरोंके लिये सम्पूर्ण शास्त्रज्ञोंने यही गति निश्चित की है ॥ ६८ ॥

ध्रुवं हि युद्धे मरणं शूराणामनिवर्तिनाम्।

गतः पुण्यकृतां लोकानभिमन्युर्न संशयः ॥ ६९ ॥

'पीछे पैर न हटानेवाले शूरवीरोंका युद्धमें मरण अवश्यम्भावी है। अभिमन्यु पुण्यात्मा पुरुषोंके लोकमें गया है, इसमें संशय नहीं है ॥ ६९ ॥

एतच्च सर्ववीराणां काङ्क्षितं भरतर्षभ।
संग्रामेऽभिमुखो मृत्युं प्राप्नुयादिति मानद ॥ ७० ॥

'दूसरोंको मान देनेवाले भरतश्रेष्ठ ! संग्राममें सम्मुख युद्ध करते हुए वीरको मृत्युकी प्राप्ति हो, यही सम्पूर्ण शूरवीरोंका अभीष्ट मनोरथ हुआ करता है ॥ ७० ॥

स च वीरान् रणे हत्वा राजपुत्रान् महाबलान्।
वीरैराकाङ्क्षितं मृत्युं सम्प्राप्तोऽभिमुखं रणे ॥ ७१॥

'अभिमन्युने रणक्षेत्रमें महाबली वीर राजकुमारोंका वध करके वीर पुरुषोंद्वारा अभिलषित संग्राममें सम्मुख मृत्यु प्राप्त की है ॥ ७१ ॥

मा शुचः पुरुषव्याघ्र पूर्वैरेष सनातनः।
धर्मकृद्भिः कृतो धर्मः क्षत्रियाणां रणे क्षयः ॥ ७२॥

'पुरुषसिंह ! शोक न करो । प्राचीन धर्मशास्त्रकारोंने संग्राममें वध होना क्षत्रियोंका सनातन धर्म नियत किया है।७२।

इमे ते भ्रातरः सर्वे दीना भरतसत्तम।
त्वयि शोकसमाविष्टे नृपाश्च सुहृदस्तव ॥ ७३ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारे शोकाकुल हो जानेसे ये तुम्हारे सभी भाई, नरेशगण तथा सुहृद् दीन हो रहे हैं ॥ ७३ ॥

एतांश्च वचसा साम्ना समाश्वासय मानद।
विदितं वेदितव्यं ते न शोकं कर्तुमर्हसि ॥ ७४ ॥

'मानद ! इन सबको अपने शान्तिपूर्ण वचनसे आश्वासन दो। तुम्हें जाननेयोग्य तत्त्वका ज्ञान हो चुका है। अतः तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये' ॥ ७४ ॥

एवमाश्वासितः पार्थः कृष्णेनाद्भुतकर्मणा।
ततोऽब्रवीत् तदा भ्रातॄन् सर्वान् पार्थः सगद्गदान्।७५।

अद्भुत कर्म करनेवाले श्रीकृष्णके इस प्रकार समझाने-बुझानेपर अर्जुन उस समय वहाँ गद्गद कण्ठवाले अपने सब भाइयोंसे बोले—॥ ७५ ॥

स दीर्घबाहुः पृथ्वंसो दीर्घराजीवलोचनः।
अभिमन्युर्यथावृत्तः श्रोतुमिच्छाम्यहं तथा ॥ ७६ ॥

'मोटे कंधों, बड़ी भुजाओं तथा कमलसदृश विशाल नेत्रोंवाला अभिमन्यु संग्राममें जिस प्रकार लड़ा था, वह सब वृत्तान्त मैं सुनना चाहता हूँ ॥ ७६ ॥

सनागस्यन्दनहयान् द्रक्ष्यध्वं निहतान् मया।
संग्रामे सानुबन्धांस्तान् मम पुत्रस्य वैरिणः ॥ ७७॥

'कल आपलोग देखेंगे कि मेरे पुत्रके वैरी अपने हाथी, रथ, घोड़े और सगे-सम्बन्धियोंसहित युद्धमें मेरेद्वारा मार डाले गये ॥ ७७ ॥

कथं च वः कृतास्त्राणां सर्वेषां शस्त्रपाणिनाम्।
सौभद्रो निधनं गच्छेद् वज्रिणापि समागतः ॥७८॥

'आप सब लोग अस्त्रविद्याके पण्डित और हाथमें हथियार लिये हुए थे। सुभद्राकुमार अभिमन्यु साक्षात् वज्रधारी इन्द्रसे भी युद्ध करता हो तो भी आपके सामने कैसे मारा जा सकता था ? ॥ ७८ ॥

यद्येवमहमज्ञास्यमशक्तान् रक्षणे मम।
पुत्रस्य पाण्डुपञ्चालान् मया गुप्तो भवेत् ततः ॥ ७९ ॥

'यदि मैं ऐसा जानता कि पाण्डव और पाञ्चाल मेरे पुत्रकी रक्षा करनेमें असमर्थ हैं तो मैं स्वयं उसकी रक्षा करता ॥

कथं च वो रथस्थानां शरवर्षाणि मुञ्चताम्।
नीतोऽभिमन्युर्निधनं कदर्थीकृत्य वः परैः ॥ ८० ॥

'आपलोग रथपर बैठे हुए बाणोंकी वर्षा कर रहे थे तो भी शत्रुओंने आपकी अवहेलना करके कैसे अभिमन्युको मार डाला ? ॥ ८० ॥

अहो वः पौरुषं नास्ति न च वोऽस्ति पराक्रमः।
यत्राभिमन्युः समरे पश्यतां वो निपातितः ॥ ८१ ॥

'अहो ! आपलोगोंमें पुरुषार्थ नहीं है और पराक्रम भी नहीं है; क्योंकि समरभूमिमें आपलोगोंके देखते-देखते अभिमन्यु मार डाला गया ॥ ८१ ॥

आत्मानमेव गर्हेयं यदहं वै सुदुर्बलान्।
युष्मानाज्ञाय निर्यातो भीरूनकृतनिश्चयान् ॥ ८२ ॥

'मैं अपनी ही निन्दा करूँगा; क्योंकि आपलोगोंको अत्यन्त दुर्बल, डरपोक और सुदृढ़ निश्चयसे रहित जानकर भी मैं (अभिमन्युको आपलोगोंके भरोसे छोड़कर) अन्यत्र चला गया ॥ ८२ ॥

आहोस्विद् भूषणार्थाय वर्म शस्त्रायुधानि वः।
वाचस्तु वक्तुं संसत्सु मम पुत्रमरक्षताम् ॥ ८३ ॥

'अथवा आपलोगोंके ये कवच और अस्त्र-शस्त्र क्या शरीरका आभूषण बनानेके लिये हैं ? मेरे पुत्रकी रक्षा न करके वीरोंकी सभामें केवल बातें बनानेके लिये हैं ?' ॥ ८३ ॥

एवमुक्त्वा ततो वाक्यं तिष्ठंश्चापवरासिमान्।
न स्माशक्यत बीभत्सुः केनचित्प्रसमीक्षितुम् ॥ ८४॥

ऐसा कहकर फिर अर्जुन धनुष और श्रेष्ठ तलवार लेकर खड़े हो गये। उस समय कोई उनकी ओर आँख उठाकर देख भी न सका ॥ ८४ ॥

तमन्तकमिव क्रुद्धं निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः।
पुत्रशोकाभिसंतप्तमश्रुपूर्णमुखं तदा ॥ ८५ ॥

वे यमराजके समान कुपित हो बारंबार लंबी साँसें छोड़ रहे थे। उस समय पुत्रशोकसे संतप्त हुए अर्जुनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी ॥ ८५ ॥

न भाषितुं शक्नुवन्ति द्रष्टुं वा सुहृदोऽर्जुनम् ।
अन्यत्र वासुदेवाद्वा ज्येष्ठाद्वा पाण्डुनन्दनात् ॥ ८६ ॥

उस अवस्थामें वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण अथवा ज्येष्ठ पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरको छोड़कर दूसरे सगे-सम्बन्धी न तो उनसे कुछ बोल सकते थे और न तो देखनेका ही साहस करते थे ॥ ८६ ॥

सर्वास्ववस्थासु हितावर्जुनस्य मनोनुगौ ।
बहुमानात् प्रियत्वाच्च तावेनं वक्तुमर्हतः ॥ ८७ ॥

श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर सभी अवस्थाओंमें अर्जुनके हितैषी और उनके मनके अनुकूल चलनेवाले थे; क्योंकि अर्जुनके प्रति उनका बड़ा आदर और प्रेम था। अतः वे ही दोनों इनसे उस समय कुछ कहनेका अधिकार रखते थे ॥ ८७ ॥

ततस्तं पुत्रशोकेन भृशं पीडितमानसम् ।
राजीवलोचनं क्रुद्धं राजा वचनमब्रवीत् ॥ ८८ ॥

तदनन्तर मन-ही-मन पुत्रशोकसे अत्यन्त पीड़ित हुए क्रोधभरे कमलनयन अर्जुनसे राजा युधिष्ठिरने इस प्रकार कहा ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनकोपे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें अर्जुनकोपविषयक बहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७२ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३½ श्लोक मिलाकर कुल ९१½ श्लोक हैं)

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

युधिष्ठिरके मुखसे अभिमन्युवधका वृत्तान्त सुनकर अर्जुनकी जयद्रथको मारनेके लिये शपथपूर्ण प्रतिज्ञा

युधिष्ठिर उवाच

त्वयि याते महाबाहो संशप्तकबलं प्रति ।
प्रयत्नमकरोत् तीव्रमाचार्यो ग्रहणे मम ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले—महाबाहो ! जब तुम संशप्तक सेनाके साथ युद्धके लिये चले गये, उस समय आचार्य द्रोणने मुझे पकड़नेके लिये घोर प्रयत्न किया ॥ १ ॥

व्यूढानीका वयं द्रोणं वारयामः स्म सर्वशः ।
प्रतिव्यूह्य रथानीकं यतमानं तथा रणे ॥ २ ॥

वे रथोंकी सेनाका व्यूह बनाकर बारंबार उद्योग करते थे और हमलोग रणक्षेत्रमें अपनी सेनाको व्यूहाकारमें संघटित करके सब प्रकारसे द्रोणाचार्यको आगे बढ़नेसे रोक देते थे ॥ २ ॥

स वार्यमाणो रथिभिर्मयि चापि सुरक्षिते ।
अस्मानभिजगामाशु पीडयन् निशितैः शरैः ॥ ३ ॥

जब रथियोंके द्वारा आचार्य रोक दिये गये और मैं सर्वथा सुरक्षित रह गया, तब उन्होंने अपने तीखे बाणोंद्वारा हमें पीड़ा देते हुए हमलोगोंपर तीव्र वेगसे आक्रमण किया ॥

ते पीड्यमाना द्रोणेन द्रोणानीकं न शक्नुमः ।
प्रतिवीक्षितुमप्याजौ भेत्तुं तत् कुत एव तु ॥ ४ ॥

द्रोणाचार्यसे पीड़ित होनेके कारण हमलोग उनके सैन्य-व्यूहकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकते थे; फिर युद्धभूमिमें उसका भेदन तो कर ही कैसे सकते थे ? ॥ ४ ॥

वयं त्वप्रतिमं वीर्ये सर्वे सौभद्रमात्मजम् ।
उक्तवन्तः स्म तं तात भिन्ध्यनीकमिति प्रभो ॥ ५ ॥

तब हम सब लोग अनुपम पराक्रमी अपने पुत्र सुभद्रा-नन्दन अभिमन्युसे बोले—'तात ! तुम इस व्यूहका भेदन करो; क्योंकि तुम ऐसा करनेमें समर्थ हो' ॥ ५ ॥

स तथा नोदितोऽस्माभिः सदश्व इव वीर्यवान् ।
असह्यमपि तं भारं वोढुमेवोपचक्रमे ॥ ६ ॥

हमारे इस प्रकार आज्ञा देनेपर उस पराक्रमी वीरने अच्छे घोड़ेकी भाँति उस असह्य भारको भी वहन करनेका ही प्रयत्न किया ॥ ६ ॥

स तवास्त्रोपदेशेन वीर्येण च समन्वितः ।
प्राविशत् तद्बलं बालः सुपर्ण इव सागरम् ॥ ७ ॥

तुम्हारे दिये हुए अस्त्र-विद्याके उपदेश और पराक्रमसे सम्पन्न बालक अभिमन्युने उस सेनामें उसी प्रकार प्रवेश किया, जैसे गरुड़ समुद्रमें घुस जाते हैं ॥ ७ ॥

तेऽनुयाता वयं वीरं सात्वतीपुत्रमाहवे ।
प्रवेष्टुकामास्तेनैव येन स प्राविशच्चमूम् ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् हमलोग रणक्षेत्रमें वीर सुभद्राकुमार अभिमन्यु-के पीछे उस व्यूहमें प्रवेश करनेकी इच्छासे चले। हम भी उसी मार्गसे उसमें घुसना चाहते थे, जिसके द्वारा उसने शत्रुसेनामें प्रवेश किया था ॥ ८ ॥

ततः सैन्धवको राजा क्षुद्रस्तात जयद्रथः ।
वरदानेन रुद्रस्य सर्वान् नः समवारयत् ॥ ९ ॥

तात ! ठीक इसी समय नीच सिंधुनरेश राजा जयद्रथने सामने आकर भगवान् शंकरके दिये हुए वरदानके प्रभावसे हम सब लोगोंको रोक दिया ॥ ९ ॥

ततो द्रोणः कृपः कर्णो द्रौणिः कौसल्य एव च ।
कृतवर्मा च सौभद्रं षड् रथाः पर्यवारयन् ॥ १० ॥

तदनन्तर द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, बृहद्बल और कृतवर्मा—इन छः महारथियोंने सुभद्राकुमारको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १० ॥

परिवार्य तु तैः सर्वैर्युधि बालो महारथैः ।

यतमानः परं शक्त्या बहुभिर्विरथीकृतः ॥ ११ ॥

घिरा होनेपर भी वह बालक पूरी शक्ति लगाकर उन सबको जीतनेका प्रयत्न करता रहा; तथापि वे संख्यामें अधिक थे, अतः उन समस्त महारथियोंने उसे घेरकर रथहीन कर दिया ॥ ११ ॥

ततो दौःशासनिः क्षिप्रं तथा तैर्विरथीकृतम् ।
संशयं परमं प्राप्य दिष्टान्तेनाभ्ययोजयत् ॥ १२ ॥

तत्पश्चात् दुःशासनपुत्रने अभिमन्युके प्रहारसे भारी प्राणसंकटमें पड़कर पूर्वोक्त महारथियोंद्वारा रथहीन किये हुए अभिमन्युको शीघ्र ही (गदाके आघातसे) मार डाला ॥ १२ ॥

स तु हत्वा सहस्राणि नराश्वरथदन्तिनाम् ।
अष्टौ रथसहस्राणि नव दन्तिशतानि च ॥ १३ ॥
राजपुत्रसहस्रे द्वे वीरांश्चालक्षितान् बहून् ।
बृहद्बलं च राजानं स्वर्गेणाजौ प्रयोज्य ह ॥ १४ ॥
ततः परमधर्मात्मा दिष्टान्तमुपजग्मिवान् ।

इसके पहले उसने हजारों हाथी, रथ, घोड़े और मनुष्योंको मार डाला था । आठ हजार रथों और नौ सौ हाथियोंका संहार किया था । दो हजार राजकुमारों तथा और भी बहुत-से अलक्षित वीरोंका वध करके राजा बृहद्बलको भी युद्धस्थलमें स्वर्गलोकका अतिथि बनाया । इसके बाद परम धर्मात्मा अभिमन्यु स्वयं मृत्युको प्राप्त हुआ ॥ १३-१४½ ॥

(गतः सुकृतिनां लोकान् ये च स्वर्गजितां शुभाः।
अदीनस्त्रासयञ्छत्रून् नन्दयित्वा च बान्धवान् ॥
असकृन्नाम विश्राव्य पितॄणां मातुलस्य च ।
वीरो दिष्टान्तमापन्नः शोचयन् बान्धवान् बहून् ॥
ततः स्म शोकसंतप्ता भवताद्य समेयुषः ।)

वह पुण्यात्माओंके लोकोंमें गया है । अपने पुण्यके बलसे स्वर्गलोकपर विजय पानेवाले धर्मात्मा पुरुषोंको जो शुभ लोक सुलभ होते हैं, वे ही उसे भी प्राप्त हुए हैं । उसने कभी युद्धमें दीनता नहीं दिखायी । वह वीर शत्रुओंको त्रास और बान्धवोंको आनन्द प्रदान करता हुआ अपने पितरों और मामाके नामको बारंबार विख्यात करके अपने बहुसंख्यक बन्धुओंको शोकमें डालकर मृत्युको प्राप्त हुआ है । तभीसे हमलोग शोकसे संतप्त हैं और इस समय तुमसे हमारी भेंट हुई है ॥

एतावदेव निर्वृत्तमस्माकं शोकवर्धनम् ॥ १५ ॥
स चैवं पुरुषव्याघ्रः स्वर्गलोकमवाप्तवान् ।

यही हमलोगोंके लिये शोक बढ़ानेवाली घटना घटित हुई है । पुरुषसिंह अभिमन्यु इस प्रकार स्वर्गलोकमें गया है ॥

ततोऽर्जुनो वचः श्रुत्वा धर्मराजेन भाषितम् ॥ १६ ॥
हा पुत्र इति निःश्वस्य व्यथितो न्यपतद् भुवि ।

धर्मराज युधिष्ठिरकी कही हुई यह बात सुनकर अर्जुन व्यथासे पीड़ित हो लंबी साँस खींचते हुए 'हा पुत्र' कहकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १६½ ॥

विषण्णवदनाः सर्वे परिवार्य धनंजयम् ॥ १७ ॥
नेत्रैरनिमिषैर्दीनाः प्रत्यवैक्षन् परस्परम् ।

उस समय सबके मुखपर विषाद छा गया । सब लोग अर्जुनको घेरकर दुखी हो एकटक नेत्रोंसे एक दूसरेकी ओर देखने लगे ॥ १७½ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां वासविः क्रोधमूर्च्छितः ॥ १८ ॥
कम्पमानो ज्वरेणेव निःश्वसंश्च मुहुर्मुहुः ।
पाणिं पाणौ विनिष्पिष्य श्वसमानोऽश्रुनेत्रवान् ॥ १९ ॥
उन्मत्त इव विप्रेक्षन्निदं वचनमब्रवीत् ।

तदनन्तर इन्द्रपुत्र अर्जुन होशमें आकर क्रोधसे व्याकुल हो मानो ज्वरसे काँप रहे हों—इस प्रकार बारंबार लंबी साँस खींचते और हाथपर हाथ मलते हुए नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे और उन्मत्तके समान देखते हुए इस तरह बोले ॥

अर्जुन उवाच

सत्यं वः प्रतिजानामि श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम् ।
न चेद् वधभयाद् भीतो धार्तराष्ट्रान् प्रहास्यति ॥ २० ॥
न चास्माञ्शरणं गच्छेत् कृष्णं वा पुरुषोत्तमम् ।
भवन्तं वा महाराज श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम् ॥ २१ ॥

अर्जुनने कहा—मैं आपलोगोंके सामने सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, कल जयद्रथको अवश्य मार डालूँगा । महाराज ! यदि वह मारे जानेके भयसे डरकर धृतराष्ट्रपुत्रोंको छोड़ नहीं देगा, मेरी, पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी अथवा आपकी शरणमें नहीं आ जायगा तो कल उसे अवश्य मार डालूँगा ॥

धार्तराष्ट्रप्रियकरं मयि विस्मृतसौहृदम् ।
पापं बालवधे हेतुं श्वोऽस्मि हन्ता जयद्रथम् ॥ २२ ॥

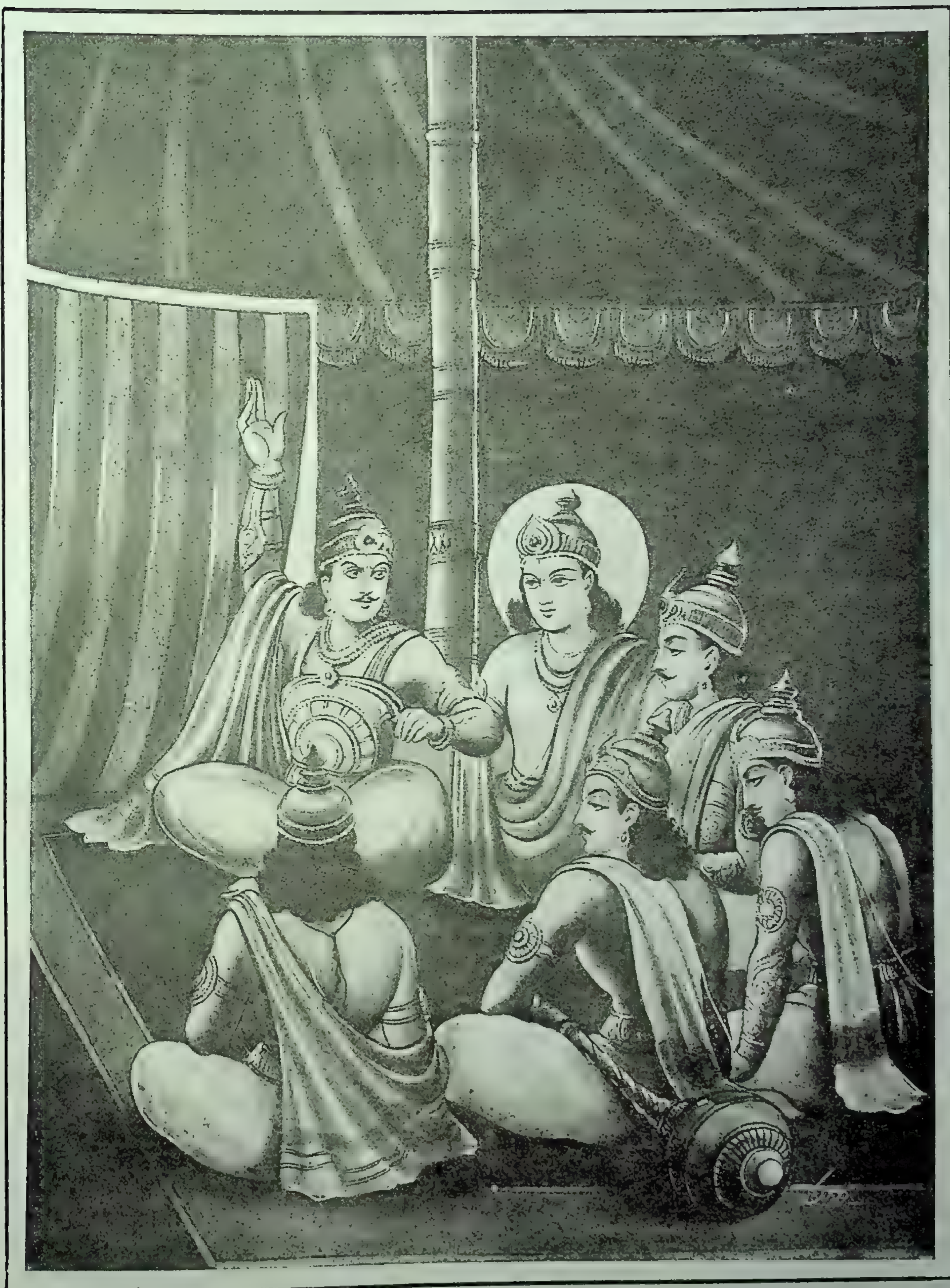
जो धृतराष्ट्रके पुत्रोंका प्रिय कर रहा है, जिसने मेरे प्रति अपना सौहार्द भुला दिया है तथा जो बालक अभिमन्युके वधमें कारण बना है, उस पापी जयद्रथको कल अवश्य मार डालूँगा ॥ २२ ॥

रक्षमाणाश्च तं संख्ये ये मां योत्स्यन्ति केचन ।
अपि द्रोणकृपौ राजन् छादयिष्यामि ताञ्छरैः ॥ २३ ॥

राजन् ! युद्धमें जयद्रथकी रक्षा करते हुए जो कोई मेरे साथ युद्ध करेंगे, वे द्रोणाचार्य और कृपाचार्य ही क्यों न हों, उन्हें अपने बाणोंके समूहसे आच्छादित कर दूँगा ॥ २३ ॥

यद्येतदेवं संग्रामे न कुर्यां पुरुषर्षभाः ।
मा स्म पुण्यकृतां लोकान् प्राप्नुयां शूरसम्मतान् ॥ २४ ॥

पुरुषश्रेष्ठ वीरो ! यदि संग्रामभूमिमें मैं ऐसा न कर सकूँ तो पुण्यात्मा पुरुषोंके उन लोकोंको, जो शूरवीरोंको प्रिय हैं, न प्राप्त करूँ ॥ २४ ॥



अर्जुनका जयद्रथवधके लिये प्रतिज्ञा करना

ये लोका मातृहन्तॄणां ये चापि पितृघातिनाम्।
गुरुदारगतानां ये पिशुनानां च ये सदा ॥ २५ ॥
साधूनसूयतां ये च ये चापि परिवादिनाम्।
ये च निक्षेपहर्तॄणां ये च विश्वासघातिनाम् ॥ २६ ॥
भुक्तपूर्वां स्त्रियं ये च विन्दतामघशंसिनाम्।
ब्रह्मघ्नानां च ये लोका ये च गोघातिनामपि ॥ २७ ॥
पायसं वा यवान्नं वा शाकं कृसरमेव वा।
संयावापूपमांसानि ये च लोका वृथाश्नताम् ॥ २८ ॥
तानन्हायाधिगच्छेयं न चेद्धन्यां जयद्रथम्।

माता-पिताकी हत्या करनेवालोंको जो लोक प्राप्त होते हैं, गुरु-पत्नीगामी और चुगलखोरोंको जिन लोकोंकी प्राप्ति होती है, साधुपुरुषोंकी निन्दा करनेवालों और दूसरोंको कलंक लगानेवालोंको जो लोक प्राप्त होते हैं, धरोहर हड़पने और विश्वासघात करनेवालोंको जिन लोकोंकी प्राप्ति होती है, दूसरेके उपभोगमें आयी हुई स्त्रीको ग्रहण करनेवाले, पापकी बातें करनेवाले, ब्रह्महत्यारे और गोघातियोंको जो लोक प्राप्त होते हैं, खीर, यवान्न, साग, खिचड़ी, हलुआ, पूआ आदिको बलिवैश्वदेव किये बिना ही खानेवाले मनुष्योंको जो लोक प्राप्त होते हैं, यदि मैं कल जयद्रथका वध न कर डालूँ तो मुझे भी तत्काल उन्हीं लोकोंको जाना पड़े ॥ २५–२८½ ॥

वेदाध्यायिनमत्यर्थं संशितं वा द्विजोत्तमम् ॥ २९ ॥
अवमन्यमानो यान् याति वृद्धान् साधून् गुरूंस्तथा।
स्पृशतो ब्राह्मणं गां च पादेनाग्निं च या भवेत् ॥ ३० ॥
याऽप्सु श्लेष्म पुरीषं च मूत्रं वा मुञ्चतां गतिः।
तां गच्छेयं गतिं कष्टां न चेद्धन्यां जयद्रथम् ॥ ३१ ॥

वेदोंका स्वाध्याय अथवा अत्यन्त कठोर व्रतका पालन करनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मणकी तथा बड़े-बूढ़ों, साधु पुरुषों और गुरुजनोंकी अवहेलना करनेवाला पुरुष जिन नरकोंमें पड़ता है, ब्राह्मण, गौ और अग्निको पैरसे छूनेवाले पुरुषकी जो गति होती है तथा जलमें थूक अथवा मल-मूत्र छोड़नेवालोंकी जो दुर्गति होती है, यदि मैं कल जयद्रथको न मारूँ तो उसी कष्टदायिनी गतिको मैं भी प्राप्त करूँ ॥ २९–३१ ॥

नग्नस्य स्नायमानस्य या च वन्ध्यातिथेर्गतिः।
उत्कोचिनां मृषोक्तीनां वञ्चकानां च या गतिः ॥ ३२ ॥
आत्मापहारिणां या च या च मिथ्याभिशंसिनाम्।
भृत्यैः संदिश्यमानानां पुत्रदाराश्रितैस्तथा ॥ ३३ ॥
असंविभज्य क्षुद्राणां या गतिर्मिष्टमश्नताम्।
तां गच्छेयं गतिं घोरां न चेद्धन्यां जयद्रथम् ॥ ३४ ॥

नंगे नहानेवाले तथा अतिथिको भोजन दिये बिना ही उसे असफल लौटा देनेवाले पुरुषकी जो गति होती है; घूसखोर, असत्यवादी तथा दूसरोंके साथ वञ्चना (ठगी) करनेवालोंकी जो दुर्गति होती है; आत्माका हनन करनेवाले, दूसरोंपर झूठे दोषारोपण करनेवाले, भृत्योंकी आज्ञाके अधीन रहनेवाले तथा स्त्री, पुत्र एवं आश्रित जनोंके साथ यथायोग्य बँटवारा किये बिना ही अकेले मिष्टान्न उड़ानेवाले क्षुद्र पुरुषोंको जिस घोर नारकी गतिकी प्राप्ति होती है, यदि मैं कल जयद्रथको न मारूँ तो मुझे भी वही दुर्गति प्राप्त हो । ३२–३४ ।

संश्रितं चापि यस्त्यक्त्वा साधुं तद्वचने रतम्।
न बिभर्ति नृशंसात्मा निन्दते चोपकारिणम् ॥ ३५ ॥
अर्हते प्रातिवेश्याय श्राद्धं यो न ददाति च।
अनर्हेभ्यश्च यो दद्याद् वृषलीपतये तथा ॥ ३६ ॥
मद्यपो भिन्नमर्यादः कृतघ्नो भर्तृनिन्दकः।
तेषां गतिमियां क्षिप्रं न चेद्धन्यां जयद्रथम् ॥ ३७ ॥

जो नृशंस स्वभावका मनुष्य शरणागत, साधुपुरुष तथा आज्ञापालनमें तत्पर रहनेवाले पुरुषको त्यागकर उसका भरण-पोषण नहीं करता, जो उपकारीकी निन्दा करता है, पड़ोसमें रहनेवाले योग्य व्यक्तिको श्राद्धका दान नहीं देता और अयोग्य व्यक्तियोंको तथा शूद्राके स्वामी ब्राह्मणको देता है, जो मद्य पीनेवाला, धर्म-मर्यादाको तोड़नेवाला, कृतघ्न और स्वामीकी निन्दा करनेवाला है—इन सभी लोगोंको जो दुर्गति प्राप्त होती है, उसीको मैं भी शीघ्र ही प्राप्त करूँ; यदि कल जयद्रथका वध न कर डालूँ ॥ ३५–३७ ॥

भुञ्जानानां तु सव्येन उत्सङ्गे चापि खादताम्।
पालाशमासनं चैव तिन्दुकैर्दन्तधावनम् ॥ ३८ ॥
ये चावर्जयतां लोकाः स्वपतां च तथोषसि।

जो बायें हाथसे भोजन करते हैं, गोदमें रखकर खाते हैं, जो पलासके आसनका और तेंदूकी दातुनका त्याग नहीं करते तथा उषःकालमें सोते हैं, उनको जो नरक-लोक प्राप्त होते हैं (वे ही मुझे भी मिलें; यदि मैं जयद्रथको न मार डालूँ) ॥ ३८½ ॥

शीतभीताश्च ये विप्रा रणभीताश्च क्षत्रियाः ॥ ३९ ॥
एककूपोदकग्रामे वेदध्वनिविवर्जिते।
षण्मासं तत्र वसतां तथा शास्त्रं विनिन्दताम् ॥ ४० ॥
दिवामैथुनिनां चापि दिवसेषु च शेरते।
अगारदाहिनां चैव गरदानां च ये मताः ॥ ४१ ॥
अग्न्यातिथ्यविहीनाश्च गोपानेषु च विघ्नदाः।
रजस्वलां सेवयन्तः कन्यां शुल्केन दायिनः ॥ ४२ ॥
या च वै बहुयाजिनां ब्राह्मणानां श्ववृत्तिनाम्।
आस्यमैथुनिकानां च ये दिवा मैथुने रताः ॥ ४३ ॥
ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुत्य यो वै लोभाद् ददाति न।
तेषां गतिं गमिष्यामि श्वो न हन्यां जयद्रथम् ॥ ४४ ॥

जो ब्राह्मण होकर सर्दीसे और क्षत्रिय होकर युद्धसे डरते हैं, जिस गाँवमें एक ही कुएँका जल पीया जाता हो और जहाँ कभी वेदमन्त्रोंकी ध्वनि न हुई हो, ऐसे स्थानोंमें

जो छः महीनोंतक निवास करते हैं, जो शास्त्रकी निन्दामें तत्पर रहते, दिनमें मैथुन करते और सोते हैं, जो दूसरोंके घरोंमें आग लगाते और दूसरोंको जहर दे देते हैं, जो कभी अग्निहोत्र और अतिथि-सत्कार नहीं करते तथा गायोंके पानी पीनेमें विघ्न डालते हैं, जो रजस्वला स्त्रीका सेवन करते और शुल्क लेकर कन्या देते हैं, जो बहुतोंकी पुरोहिती करते, ब्राह्मण होकर सेवा-वृत्तिसे जीविका चलाते, मुँहमें मैथुन करते अथवा दिनमें स्त्री-सहवास करते हैं, जो ब्राह्मणको कुछ देनेकी प्रतिज्ञा करके फिर लोभवश नहीं देते हैं, उन सबको जिन लोकों अथवा दुर्गतिकी प्राप्ति होती है, उन्हींको मैं भी प्राप्त होऊँ; यदि कलतक जयद्रथको न मार डालूँ ॥ ३९—४४ ॥

धर्मादपेता ये चान्ये मया नात्रानुकीर्तिताः ।
ये चानुकीर्तितास्तेषां गतिं क्षिप्रमवाप्नुयाम् ॥ ४५ ॥
यदि व्युष्टामिमां रात्रिं श्वो न हन्यां जयद्रथम् ।

ऊपर जिन पापियोंका नाम मैंने गिनाया है तथा जिन दूसरे पापियोंका नाम नहीं गिनाया है, उनको जो दुर्गति प्राप्त होती है, उसीको शीघ्र ही मैं भी प्राप्त करूँ; यदि यह रात बीतनेपर कल जयद्रथको न मार डालूँ ॥ ४५½ ॥

इमां चाप्यपरां भूयः प्रतिज्ञां मे निबोधत ॥ ४६ ॥
यद्यस्मिन्नहते पापे सूर्योऽस्तमुपयास्यति ।
इहैव सम्प्रवेष्टाहं ज्वलितं जातवेदसम् ॥ ४७ ॥

अब आपलोग पुनः मेरी यह दूसरी प्रतिज्ञा भी सुन लें। यदि इस पापी जयद्रथके मारे जानेसे पहले ही सूर्यदेव अस्ताचलको पहुँच जायँगे तो मैं यहीं प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा ॥ ४६—४७ ॥

असुरसुरमनुष्याः पक्षिणो वोरगा वा
पितृरजनिचरा वा ब्रह्मदेवर्षयो वा ।
चरमचरमपीदं यत्परं चापि तस्मात्
तदपि ममरिपुं तं रक्षितुं नैव शक्ताः ॥ ४८ ॥

देवता, असुर, मनुष्य, पक्षी, नाग, पितर, निशाचर, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, यह चराचर जगत् तथा इसके परे जो कुछ है, वह—ये सब मिलकर भी मेरे शत्रु जयद्रथकी रक्षा नहीं कर सकते ॥ ४८ ॥

यदि विशति रसातलं तदग्र्यं
वियदपि देवपुरं दितेः पुरं वा ।
तदपि शरशतैरहं प्रभाते
भृशमभिमन्युरिपोः शिरोऽभिहर्ता ॥ ४९ ॥

यदि जयद्रथ पातालमें घुस जाय या उससे भी आगे बढ़ जाय अथवा आकाश, देवलोक या दैत्योंके नगरमें जाकर छिप जाय तो भी मैं कल अपने सैकड़ों बाणोंसे अभिमन्युके उस घोर शत्रुका सिर अवश्य काट लूँगा ॥ ४९ ॥

एवमुक्त्वा विचिक्षेप गाण्डीवं सव्यदक्षिणम् ।
तस्य शब्दमतिक्रम्य धनुःशब्दोऽस्पृशद् दिवम् ॥ ५० ॥

ऐसा कहकर अर्जुनने दाहिने और बायें हाथसे भी गाण्डीव धनुषकी टङ्कार की। उसकी ध्वनि दूसरे शब्दोंको दबाकर सम्पूर्ण आकाशमें गूँज उठी ॥ ५० ॥

अर्जुनेन प्रतिज्ञाते पाञ्चजन्यं जनार्दनः ।
प्रदध्मौ तत्र संक्रुद्धो देवदत्तं च फाल्गुनः ॥ ५१ ॥

अर्जुनके इस प्रकार प्रतिज्ञा कर लेनेपर भगवान् श्रीकृष्णने भी अत्यन्त कुपित होकर पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया। इधर अर्जुनने भी देवदत्त नामक शङ्खको फूँका ॥ ५१ ॥

स पाञ्चजन्योऽच्युतवक्त्रवायुना
भृशं सुपूर्णोदरनिःसृतध्वनिः ।
जगत् सपातालवियद्दिगीश्वरं
प्रकम्पयामास युगात्यये यथा ॥ ५२ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके मुखकी वायुसे भीतरी भाग भर जानेके कारण अत्यन्त भयंकर ध्वनि प्रकट करनेवाले पाञ्चजन्यने आकाश, पाताल, दिशा और दिक्पालों-सहित सम्पूर्ण जगत्को कम्पित कर दिया, मानो प्रलय-काल आ गया हो ॥ ५२ ॥

ततो वादित्रघोषाश्च प्रादुरासन् सहस्रशः ।
सिंहनादश्च पाण्डूनां प्रतिज्ञाते महात्मना ॥ ५३ ॥

महामना अर्जुनने जब उक्त प्रतिज्ञा कर ली, उस समय पाण्डवोंके शिबिरमें अनेक बाजोंके हजारों शब्द और पाण्डव वीरोंका सिंहनाद भी सब ओर गूँजने लगा ॥ ५३ ॥

(*भीम उवाच*

प्रतिज्ञोद्भवशब्देन कृष्णशङ्खस्वनेन च ।
निहतो धार्तराष्ट्रोऽयं सानुबन्धः सुयोधनः ॥

भीमसेनने कहा—अर्जुन ! तुम्हारी प्रतिज्ञाके शब्दसे और भगवान् श्रीकृष्णके इस शङ्खनादसे मुझे विश्वास हो गया कि यह धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन अपने सगे-सम्बन्धियों-सहित अवश्य मारा जायगा ॥

अथ मृदिततमाग्र्यदाममाल्यं
तव सुतशोकमयं च रोषजातम् ।
व्यपनुदति महाप्रभावमेत-
न्नरवर वाक्यमिदं महार्थमिष्टम् ॥)

नरश्रेष्ठ ! तुम्हारा यह वचन महान् अर्थसे युक्त और मुझे अत्यन्त प्रिय है। यह अत्यन्त प्रभावशाली वाक्य तुम्हारे पुत्रशोकमय उस रोष-समूहका निवारण कर रहा है, जिसने तुम्हारे गलेके सुन्दर पुष्पहारको मसल डाला था ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनप्रतिज्ञायां त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें अर्जुनप्रतिज्ञाविषयक तिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ४½ श्लोक मिलाकर कुल ५७½ श्लोक हैं)

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

जयद्रथका भय तथा दुर्योधन और द्रोणाचार्यका उसे आश्वासन देना

संजय उवाच

श्रुत्वा तु तं महाशब्दं पाण्डूनां जयगृद्धिनाम्।
चारैः प्रवेदिते तत्र समुत्थाय जयद्रथः॥ १॥
शोकसम्मूढहृदयो दुःखेनाभिपरिप्लुतः।
मज्जमान इवागाधे विपुले शोकसागरे॥ २॥
जगाम समितिं राज्ञां सैन्धवो विमृशन् बहु।
स तेषां नरदेवानां सकाशे पर्यदेवयत्॥ ३॥

संजय कहते हैं—राजन्! सिंधुराज जयद्रथने जब विजयाभिलाषी पाण्डवोंका वह महान् शब्द सुना और गुप्तचरोंने आकर जब अर्जुनकी प्रतिज्ञाका समाचार निवेदन किया, तब वह सहसा उठकर खड़ा हो गया, उसका हृदय शोकसे व्याकुल हो गया। वह दुःखसे व्याप्त हो शोकके विशाल एवं अगाध महासागरमें डूबता हुआ-सा बहुत सोच-विचारकर राजाओंकी सभामें गया और उन नरदेवोंके समीप रोने-बिलखने लगा॥ १—३॥

अभिमन्योः पितुर्भीतः सव्रीडो वाक्यमब्रवीत्।
योऽसौ पाण्डोः किल क्षेत्रे जातः शक्रेण कामिना॥४॥
स निनीषति दुर्बुद्धिर्मां किलैकं यमक्षयम्।
तत् स्वस्ति वोऽस्तु यास्यामि स्वगृहं जीवितेप्सया॥ ५॥

जयद्रथ अभिमन्युके पितासे बहुत डर गया था, इसलिये लज्जित होकर बोला—'राजाओ! कामी इन्द्रने पाण्डुकी पत्नीके गर्भसे जिसको जन्म दिया है, वह दुर्बुद्धि अर्जुन केवल मुझको ही यमलोक भेजना चाहता है; यह बात सुननेमें आयी है। अतः आपलोगोंका कल्याण हो। अब मैं अपने प्राण बचानेकी इच्छासे अपनी राजधानीको चला जाऊँगा॥ ४-५॥

अथवास्त्रप्रतिबलास्त्रात मां क्षत्रियर्षभाः।
पार्थेन प्रार्थितं वीरास्ते संदत्त ममाभयम्॥ ६॥

'अथवा क्षत्रियशिरोमणि वीरो! आपलोग अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञानमें अर्जुनके समान ही शक्तिशाली हैं। उधर अर्जुनने मेरे प्राण लेनेकी प्रतिज्ञा की है। इस अवस्थामें आप मेरी रक्षा करें और मुझे अभयदान दें॥ ६॥

द्रोणदुर्योधनकृपाः कर्णमद्रेशबाह्लिकाः।
दुःशासनादयः शक्तास्त्रातुं मामन्तकार्दितम्॥ ७॥
किमङ्ग पुनरेकेन फाल्गुनेन जिघांसता।
न त्रायेयुर्भवन्तो मां समस्ताः पतयः क्षितेः॥ ८॥

'द्रोणाचार्य, दुर्योधन, कृपाचार्य, कर्ण, मद्रराज शल्य, बाह्लक तथा दुःशासन आदि वीर मुझे यमराजके संकटसे भी बचानेमें समर्थ हैं। प्रिय नरेशगण! फिर जब अकेला अर्जुन ही मुझे मारनेकी इच्छा रखता है तो उसके हाथसे आप समस्त भूपतिगण मेरी रक्षा क्यों नहीं कर सकते हैं॥ ७-८॥

प्रहर्षं पाण्डवेयानां श्रुत्वा मम महद् भयम्।
सीदन्ति मम गात्राणि मुमूर्षोरिव पार्थिवाः॥ ९॥

'राजाओ! पाण्डवोंका हर्षनाद सुनकर मुझे महान् भय हो रहा है। मरणासन्न मनुष्यकी भाँति मेरे सारे अङ्ग शिथिल होते जा रहे हैं॥ ९॥

वधो नूनं प्रतिज्ञातो मम गाण्डीवधन्वना।
तथा हि हृष्टाः क्रोशन्ति शोककाले स्म पाण्डवाः॥ १०॥

'निश्चय ही गाण्डीवधारी अर्जुनने मेरे वधकी प्रतिज्ञा कर ली है, तभी शोकके समय भी पाण्डव योद्धा बड़े हर्षके साथ गर्जना करते हैं॥ १०॥

तन्न देवा न गन्धर्वा नासुरोरगराक्षसाः।
उत्सहन्तेऽन्यथाकर्तुं कुत एव नराधिपाः॥ ११॥

'उस प्रतिज्ञाको देवता, गन्धर्व, असुर, नाग तथा राक्षस भी पलट नहीं सकते हैं। फिर ये नरेश उसे भङ्ग करनेमें कैसे समर्थ हो सकते हैं?॥ ११॥

तस्मान्मामनुजानीत भद्रं वोऽस्तु नरर्षभाः।
अदर्शनं गमिष्यामि न मां द्रक्ष्यन्ति पाण्डवाः॥ १२॥

'अतः नरश्रेष्ठ वीरो! आपका कल्याण हो। आपलोग मुझे जानेकी आज्ञा दें। मैं अदृश्य हो जाऊँगा। पाण्डव मुझे नहीं देख सकेंगे'॥ १२॥

एवं विलपमानं तं भयाद् व्याकुलचेतसम्।
आत्मकार्यगरीयस्त्वाद् राजा दुर्योधनोऽब्रवीत्॥ १३॥

भयसे व्याकुलचित्त होकर विलाप करते हुए जयद्रथसे राजा दुर्योधनने अपने कार्यकी गुरुताका विचार करके इस प्रकार कहा—॥ १३॥



न भेतव्यं नरव्याघ्र को हि त्वां पुरुषर्षभ।
मध्ये क्षत्रियवीराणां तिष्ठन्तं प्रार्थयेद् युधि॥ १४॥

'पुरुषसिंह! नरश्रेष्ठ! तुम्हें भय नहीं करना चाहिये।

युद्धस्थलमें इन क्षत्रिय वीरोंके बीचमें खड़े रहनेपर कौन तुम्हें मारनेकी इच्छा कर सकता है ? ॥ १४ ॥

अहं वैकर्तनः कर्णश्चित्रसेनो विविंशतिः ।
भूरिश्रवाः शलः शल्यो वृषसेनो दुरासदः ॥ १५ ॥
पुरुमित्रो जयो भोजः काम्बोजश्च सुदक्षिणः ।
सत्यव्रतो महाबाहुर्विकर्णो दुर्मुखश्च ह ॥ १६ ॥
दुःशासनः सुबाहुश्च कालिङ्गश्चाप्युदायुधः ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ द्रोणो द्रौणिश्च सौबलः॥१७॥
एते चान्ये च बहवो नानाजनपदेश्वराः ।
ससैन्यास्त्वाभियास्यन्ति व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥१८॥

'मैं, सूर्यपुत्र कर्ण, चित्रसेन, विविंशति, भूरिश्रवा, शल, शल्य, दुर्धर्ष वीर वृषसेन, पुरुमित्र, जय, भोज, काम्बोज-राज सुदक्षिण, सत्यव्रत, महाबाहु विकर्ण, दुर्मुख, दुःशासन, सुबाहु, अस्त्र-शस्त्रधारी कलिंगराज, अवन्तीके दोनों राजकुमार विन्द और अनुविन्द, द्रोण, अश्वत्थामा और शकुनि–ये तथा और भी बहुत-से नरेश जो विभिन्न देशोंके अधिपति हैं, अपनी सेनाके साथ तुम्हारी रक्षाके लिये चलेंगे। अतः तुम्हारी मानसिक चिन्ता दूर हो जानी चाहिये ॥ १५–१८ ॥

त्वं चापि रथिनां श्रेष्ठः स्वयं शूरोऽमितद्युते ।
स कथं पाण्डवेयेभ्यो भयं पश्यसि सैन्धव ॥ १९ ॥

'अमित तेजस्वी सिंधुराज ! तुम स्वयं भी तो रथियोंमें श्रेष्ठ शूरवीर हो, फिर पाण्डुके पुत्रोंसे अपने लिये भय क्यों देख रहे हो ? ॥ १९ ॥

अक्षौहिण्यो दशैका च मदीयास्तव रक्षणे ।
यत्ता योत्स्यन्ति मा भैस्त्वं सैन्धव व्येतु ते भयम्॥२०॥

'मेरी ग्यारह अक्षौहिणी[1] सेनाएँ तुम्हारी रक्षाके लिये उद्यत होकर युद्ध करेंगी; अतः सिंधुराज ! तुम भय मत मानो। तुम्हारा भय निकल जाना चाहिये' ॥ २० ॥

संजय उवाच

एवमाश्वासितो राजन् पुत्रेण तव सैन्धवः ।
दुर्योधनेन सहितो द्रोणं रात्रावुपागमत् ॥ २१ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार आपके पुत्र दुर्योधनके आश्वासन देनेपर जयद्रथ उसके साथ रात्रिके समय द्रोणाचार्यके पास गया ॥ २१ ॥

उपसंग्रहणं कृत्वा द्रोणाय स विशाम्पते ।
उपोपविश्य प्रणतः पर्यपृच्छदिदं तदा ॥ २२ ॥

महाराज ! उस समय उसने द्रोणाचार्यके चरण छूकर विधि-पूर्वक प्रणाम किया और पास बैठकर प्रणतभावसे इस प्रकार पूछा—॥ २२ ॥

निमित्ते दूरपातित्वे लघुत्वे दृढवेधने ।
मम ब्रवीतु भगवान् विशेषं फाल्गुनस्य च ॥ २३ ॥

'दूरतक बाण चलानेमें, लक्ष्य वेधनेमें, हाथकी फुर्तीमें तथा अचूक निशाना मारनेमें मुझमें और अर्जुनमें कितना अन्तर है, यह पूज्य गुरुदेव मुझे बतावें ॥ २३ ॥

विद्याविशेषमिच्छामि ज्ञातुमाचार्य तत्त्वतः ।
अर्जुनस्यात्मनश्चैव याथातथ्यं प्रचक्ष्व मे ॥ २४ ॥

'आचार्य ! मैं अर्जुनकी और अपनी विद्याविषयक विशेषताको ठीक-ठीक जानना चाहता हूँ। आप मुझे यथार्थ बात बताइये' ॥ २४ ॥

द्रोण उवाच

सममाचार्यकं तात तव चैवार्जुनस्य च ।
योगाद् दुःखोषितत्वाच्च तस्मात्त्वत्तोऽधिकोऽर्जुनः॥२५॥

द्रोणाचार्यने कहा—तात ! यद्यपि तुम्हारा और अर्जुनका आचार्यत्व मैंने समानरूपसे ही किया है, तथापि सम्पूर्ण दिव्यास्त्रोंकी प्राप्ति एवं अभ्यास और क्लेशसहनकी दृष्टिसे अर्जुन तुमसे बढ़े-चढ़े हैं ॥ २५ ॥

न तु ते युधि संत्रासः कार्यः पार्थात् कथञ्चन ।
अहं हि रक्षिता तात भयात्त्वां नात्र संशयः ॥ २६ ॥
न हि मद्बाहुगुप्तस्य प्रभवन्त्यमरा अपि ।
व्यूहयिष्यामि तं व्यूहं यं पार्थो न तरिष्यति ॥ २७ ॥

वत्स ! तो भी तुम्हें युद्धमें किसी प्रकार भी अर्जुनसे डरना नहीं चाहिये; क्योंकि मैं उनके भयसे तुम्हारी रक्षा करनेवाला हूँ—इसमें संशय नहीं है। मेरी भुजाएँ जिसकी रक्षा करती हों, उसपर देवताओंका भी जोर नहीं चल सकता। मैं ऐसा व्यूह बनाऊँगा, जिसे अर्जुन पार नहीं कर सकेंगे ॥ २६-२७ ॥

तस्माद् युद्ध्यस्व मा भैस्त्वं स्वधर्ममनुपालय ।
पितृपैतामहं मार्गमनुयाहि महारथ ॥ २८ ॥

इसलिये तुम डरो मत। उत्साहपूर्वक युद्ध करो और अपने क्षत्रिय-धर्मका पालन करो। महारथी वीर ! अपने बाप-दादोंके मार्गपर चलो ॥ २८ ॥

अधीत्य विधिवद् वेदानग्नयः सुहुतास्त्वया ।
इष्टं च बहुभिर्यज्ञैर्न ते मृत्युभयङ्करः ॥ २९ ॥

तुमने वेदोंका विधिपूर्वक अध्ययन करके भलीभाँति अग्निहोत्र किया है। बहुत-से यज्ञोंका अनुष्ठान भी कर लिया है। तुम्हें तो मृत्युका भय करना ही नहीं चाहिये ॥ २९ ॥

दुर्लभं मानुषैर्मन्दैर्महाभाग्यमवाप्य तु ।
भुजवीर्यार्जिताँल्लोकान् दिव्यान् प्राप्स्यस्यनुत्तमान् ॥

जो मन्दभागी मनुष्योंके लिये दुर्लभ है, रणक्षेत्रमें मृत्युरूप उस परम सौभाग्यको पाकर तुम अपने बाहुबलसे

१. यद्यपि अब दुर्योधनके पास पूरी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ नहीं रह गयी थीं; तथापि ग्यारह भागोंमें विभक्त उन सेनाओंमेंसे जो लोग शेष बचे थे, उन्हींको लेकर यहाँ 'ग्यारह अक्षौहिणी' का उल्लेख किया गया है।

जीते हुए परम उत्तम दिव्य लोकोंमें पहुँच जाओगे ॥३०॥

कुरवः पाण्डवाश्चैव वृष्णयोऽन्ये च मानवाः।
अहं च सह पुत्रेण अध्रुवा इति चिन्त्यताम् ॥ ३१ ॥

कौरव-पाण्डव, वृष्णिवंशी योद्धा, अन्य मनुष्य तथा पुत्रसहित मैं—ये सभी अस्थिर (नाशवान्) हैं—ऐसा चिन्तन करो ॥ ३१ ॥

पर्यायेण वयं सर्वे कालेन बलिना हताः ।
परलोकं गमिष्यामः स्वैः स्वैः कर्मभिरन्विताः ॥ ३२ ॥

बारी-बारीसे हम सभी लोग बलवान् कालके हाथों मारे जाकर अपने-अपने शुभाशुभ कर्मोंके साथ परलोकमें चले जायँगे ॥ ३२ ॥

तपस्तप्त्वा तु यॉंल्लोकान् प्राप्नुवन्ति तपस्विनः।
क्षत्रधर्माश्रिता वीराः क्षत्रियाः प्राप्नुवन्ति तान् ॥३३॥

तपस्वीलोग तपस्या करके जिन लोकोंको पाते हैं, क्षत्रिय-धर्मका आश्रय लेनेवाले वीर क्षत्रिय उन्हें अनायास ही प्राप्त कर लेते हैं ॥ ३३ ॥

एवमाश्वासितो राजा भारद्वाजेन सैन्धवः ।
अपानुदद् भयं पार्थाद् युद्धाय च मनो दधे ॥ ३४ ॥

द्रोणाचार्यके इस प्रकार आश्वासन देनेपर राजा जयद्रथने अर्जुनका भय छोड़ दिया और युद्ध करनेका विचार किया॥

ततः प्रहर्षः सैन्यानां तवाप्यासीद् विशाम्पते ।
वादित्राणां ध्वनिश्चोग्रः सिंहनादरवैः सह ॥ ३५ ॥

महाराज ! तदनन्तर आपकी सेनामें भी हर्षध्वनि होने लगी, सिंहनादके साथ-साथ रणवाद्योंकी भयंकर ध्वनि गूँज उठी ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि जयद्रथाश्वासे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें जयद्रथको आश्वासनविषयक चौहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥७४॥

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका अर्जुनको कौरवोंके जयद्रथकी रक्षाविषयक उद्योगका समाचार बताना

संजय उवाच

प्रतिज्ञाते तु पार्थेन सिन्धुराजवधे तदा ।
वासुदेवो महाबाहुर्धनंजयमभाषत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! जब अर्जुनने सिंधुराज जयद्रथके वधकी प्रतिज्ञा कर ली, उस समय महाबाहु भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—॥ १ ॥

भ्रातॄणां मतमज्ञाय त्वया वाचा प्रतिश्रुतम् ।
सैन्धवं चास्मि हन्तेति तत्साहसमिदं कृतम् ॥ २ ॥

'धनंजय ! तुमने अपने भाइयोंका मत जाने बिना ही जो वाणीद्वारा यह प्रतिज्ञा कर ली कि मैं सिंधुराज जयद्रथको मार डालूँगा, यह तुमने दुःसाहसपूर्ण कार्य किया है ॥ २ ॥

असम्मन्त्र्य मया सार्धमतिभारोऽयमुद्यतः ।
कथं तु सर्वलोकस्य नावहास्या भवेमहि ॥ ३ ॥

'मेरे साथ सलाह किये बिना ही तुमने यह बड़ा भारी भार उठा लिया। ऐसी दशामें हम सम्पूर्ण लोकोंके उपहास-पात्र कैसे नहीं बनेंगे ! ॥ ३ ॥

धार्तराष्ट्रस्य शिबिरे मया प्रणिहिताश्चराः ।
त इमे शीघ्रमागम्य प्रवृत्तिं वेदयन्ति नः ॥ ४ ॥

'मैंने दुर्योधनके शिविरमें अपने गुप्तचर भेजे थे। वे शीघ्र ही वहाँसे लौटकर अभी-अभी वहाँका समाचार मुझे बता गये हैं ॥ ४ ॥

त्वया वै सम्प्रतिज्ञाते सिन्धुराजवधे प्रभो ।
सिंहनादः सवादित्रः सुमहानिह तैः श्रुतः ॥ ५ ॥

'शक्तिशाली अर्जुन ! जब तुमने सिंधुराजके वधकी प्रतिज्ञा की थी, उस समय यहाँ रणवाद्योंके साथ-साथ महान् सिंहनाद किया गया था, जिसे कौरवोंने सुना था ॥ ५ ॥

तेन शब्देन वित्रस्ता धार्तराष्ट्राः ससैन्धवाः ।
नाकस्मात् सिंहनादोऽयमिति मत्वा व्यवस्थिताः ॥६॥

'उस शब्दसे जयद्रथसहित सभी धृतराष्ट्रपुत्र संत्रस्त हो उठे। वे यह सोचकर कि यह सिंहनाद अकारण नहीं हुआ है, सावधान हो गये ॥ ६ ॥

सुमहाञ्शब्दसम्पातः कौरवाणां महाभुज ।
आसीन्नागाश्वपत्तीनां रथघोषश्च भैरवः ॥ ७ ॥

'महाबाहो ! फिर तो कौरवोंके दलमें भी बड़े जोरका कोलाहल मच गया। हाथी, घोड़े, पैदल तथा रथ-सेनाओं-का भयंकर घोष सब ओर गूँजने लगा ॥ ७ ॥

अभिमन्योर्वधं श्रुत्वा ध्रुवमार्तो धनंजयः ।
रात्रौ निर्यास्यति क्रोधादिति मत्वा व्यवस्थिताः॥ ८ ॥

'वे यह समझकर युद्धके लिये उद्यत हो गये कि अभिमन्यु-के वधका वृत्तान्त सुनकर अर्जुनको अवश्य ही महान् कष्ट हुआ होगा; अतः वे क्रोध करके रातमें ही युद्धके लिये निकल पड़ेंगे ॥ ८ ॥

तैर्यतद्भिरियं सत्या श्रुता सत्यवतस्तव ।
प्रतिज्ञा सिन्धुराजस्य वधे राजीवलोचन ॥ ९ ॥

'कमलनयन ! युद्धके लिये तैयार होते-होते उन कौरवोंने सदा सत्य बोलनेवाले तुम्हारी जयद्रथ-वधविषयक वह सच्ची प्रतिज्ञा सुनी ॥ ९ ॥

ततो विमनसः सर्वे त्रस्ताः क्षुद्रमृगा इव ।
आसन् सुयोधनामात्याः स च राजा जयद्रथः ॥ १० ॥

'फिर तो दुर्योधनके मन्त्री और स्वयं राजा जयद्रथ—ये सब-के-सब (सिंहसे डरे हुए) क्षुद्र मृगोंके समान भयभीत और उदास हो गये ॥ १० ॥

अथोत्थाय सहामात्यैर्दीनः शिबिरमात्मनः ।
आयात् सौवीरसिन्धूनामीश्वरो भृशदुःखितः ॥ ११ ॥

'तदनन्तर सिंधुसौवीरदेशका स्वामी जयद्रथ अत्यन्त दुखी और दीन हो मन्त्रियोंसहित उठकर अपने शिविरमें आया ॥ ११ ॥

स मन्त्रकाले सम्मन्त्र्य सर्वा नैःश्रेयसीं क्रियाम्।
सुयोधनमिदं वाक्यमब्रवीद् राजसंसदि ॥ १२ ॥

'उसने मन्त्रणाके समय अपने लिये श्रेयस्कर सिद्ध होनेवाले समस्त कार्योंके सम्बन्धमें मन्त्रियोंसे परामर्श करके राजसभामें आकर दुर्योधनसे इस प्रकार कहा—॥ १२ ॥

मामसौ पुत्रहन्तेति श्वोऽभियाता धनंजयः ।
प्रतिज्ञातो हि सेनाया मध्ये तेन वधो मम ॥ १३ ॥

'राजन् ! मुझे अपने पुत्रका घातक समझकर अर्जुन कल सवेरे मुझपर आक्रमण करनेवाला है; क्योंकि उसने अपनी सेनाके बीचमें मेरे वधकी प्रतिज्ञा की है ॥ १३ ॥

तां न देवा न गन्धर्वा नासुरोरगराक्षसाः ।
उत्सहन्तेऽन्यथा कर्तुं प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः ॥ १४ ॥

'सव्यसाची अर्जुनकी उस प्रतिज्ञाको देवता, गन्धर्व, असुर, नाग और राक्षस भी अन्यथा नहीं कर सकते ॥ १४ ॥

ते मां रक्षत संग्रामे मा वो मूर्ध्नि धनंजयः ।
पदं कृत्वाऽऽप्नुयाल्लक्ष्यं तस्मादत्र विधीयताम् ॥ १५ ॥

'अतः आपलोग संग्राममें मेरी रक्षा करें । कहीं ऐसा न हो कि अर्जुन आपलोगोंके सिरपर पैर रखकर अपने लक्ष्यतक पहुँच जाय; अतः इसके लिये आप आवश्यक व्यवस्था करें ॥ १५ ॥

अथ रक्षा न मे संख्ये क्रियते कुरुनन्दन ।
अनुजानीहि मां राजन् गमिष्यामि गृहान् प्रति ॥ १६ ॥

'कुरुनन्दन ! यदि आप युद्धमें मेरी रक्षा न कर सकें तो मुझे आज्ञा दें; राजन् ! मैं अपने घर चला जाऊँगा' ॥ १६ ॥

एवमुक्तस्त्ववाक्शीर्षो विमनाः स सुयोधनः ।
श्रुत्वा तं समयं तस्य ध्यानमेवान्वपद्यत ॥ १७ ॥

'जयद्रथके ऐसा कहनेपर दुर्योधन अपना सिर नीचे किये मन-ही-मन बहुत दुखी हो गया और तुम्हारी उस प्रतिज्ञाको सुनकर उसे बड़ी भारी चिन्ता हो गयी ॥ १७ ॥

तमार्तमभिसंप्रेक्ष्य राजा किल स सैन्धवः ।
मृदु चात्महितं चैव साक्षेपमिदमुक्तवान् ॥ १८ ॥

'दुर्योधनको उद्विग्नचित्त देखकर सिन्धुराज जयद्रथने व्यंग्य करते हुए कोमल वाणीमें अपने हितकी बात इस प्रकार कही—॥ १८ ॥

नेह पश्यामि भवतां तथावीर्यं धनुर्धरम् ।
योऽर्जुनस्यास्त्रमस्त्रेण प्रतिहन्यान्महाहवे ॥ १९ ॥

'राजन् ! आपकी सेनामें किसी भी ऐसे पराक्रमी धनुर्धरको नहीं देखता, जो उस महायुद्धमें अपने अस्त्रद्वारा अर्जुनके अस्त्रका निवारण कर सके ॥ १९ ॥

वासुदेवसहायस्य गाण्डीवं धुन्वतो धनुः ।
कोऽर्जुनस्याग्रतस्तिष्ठेत् साक्षादपि शतक्रतुः ॥ २० ॥

'श्रीकृष्णके साथ आकर गाण्डीव धनुषका संचालन करते हुए अर्जुनके सामने कौन खड़ा हो सकता है ? साक्षात् इन्द्र भी तो उसका सामना नहीं कर सकते ॥ २० ॥

महेश्वरोऽपि पार्थेन श्रूयते योधितः पुरा ।
पदातिना महावीर्यो गिरौ हिमवति प्रभुः ॥ २१ ॥

'मैंने सुना है कि पूर्वकालमें हिमालयपर्वतपर पैदल अर्जुनने महापराक्रमी भगवान् महेश्वरके साथ भी युद्ध किया था॥

दानवानां सहस्राणि हिरण्यपुरवासिनाम् ।
जघानैकरथेनैव देवराजप्रचोदितः ॥ २२ ॥

'देवराज इन्द्रकी आज्ञा पाकर उसने एकमात्र रथकी सहायतासे हिरण्यपुरवासी सहस्रों दानवोंका संहार कर डाला था॥

समायुक्तो हि कौन्तेयो वासुदेवेन धीमता ।
सामरानपि लोकांस्त्रीन् हन्यादिति मतिर्मम ॥ २३ ॥

'मेरा तो ऐसा विश्वास है कि परम बुद्धिमान् वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके साथ रहकर कुन्तीकुमार अर्जुन देवताओंसहित तीनों लोकोंको नष्ट कर सकता है ॥ २३ ॥

सोऽहमिच्छाम्यनुज्ञातं रक्षितुं वा महात्मना ।
द्रोणेन सहपुत्रेण वीरेण यदि मन्यसे ॥ २४ ॥

'इसलिये मैं यहाँसे चले जानेकी अनुमति चाहता हूँ। अथवा यदि आप ठीक समझें तो पुत्रसहित वीर महामना द्रोणाचार्यके द्वारा मैं अपनी रक्षाका आश्वासन चाहता हूँ' ।२४।

स राज्ञा स्वयमाचार्यो भृशमत्रार्थितोऽर्जुन ।
संविधानं च विहितं रथाश्च किल सज्जिताः ॥ २५ ॥

'अर्जुन ! तब राजा दुर्योधनने स्वयं ही आचार्य द्रोणसे जयद्रथकी रक्षाके लिये बड़ी प्रार्थना की है । अतः उसकी रक्षाका पूरा प्रबन्ध कर लिया गया है तथा रथ भी सजा दिये गये हैं ॥ २५ ॥

कर्णो भूरिश्रवा द्रौणिर्वृषसेनश्च दुर्जयः ।
कृपश्च मद्रराजश्च षडेतेऽस्य पुरोगमाः ॥ २६ ॥

'कलके युद्धमें कर्ण, भूरिश्रवा, अश्वत्थामा, दुर्जय वीर वृषसेन, कृपाचार्य और मद्रराज शल्य ये—छः महारथी उसके आगे रहेंगे ॥ २६ ॥

शकटः पद्मकश्चार्धो व्यूहो द्रोणेन निर्मितः।
पद्मकर्णिकमध्यस्थः सूचीपार्श्वे जयद्रथः ॥ २७ ॥
स्थास्यते रक्षितो वीरैः सिंधुराट् स सुदुर्मदः।

'द्रोणाचार्यने ऐसा व्यूह बनाया है, जिसका अगला आधा भाग शकटके आकारका है और पिछला कमलके समान। कमलव्यूहके मध्यकी कर्णिकाके बीच सूचीव्यूहके पार्श्व भागमें युद्धदुर्मद सिन्धुराज जयद्रथ खड़ा होगा और अन्यान्य वीर उसकी रक्षा करते रहेंगे ॥ २७½ ॥

धनुष्यस्त्रे च वीर्ये च प्राणे चैव तथौरसे ॥ २८ ॥
अविषह्यतमा ह्येते निश्चिताः पार्थ षड् रथाः।
एतानजित्वा षड् रथान् नैव प्राप्यो जयद्रथः ॥२९॥

'पार्थ ! ये पूर्व निश्चित छः महारथी धनुष, बाण, पराक्रम, प्राणशक्ति तथा मनोबलमें अत्यन्त असह्य माने गये हैं। इन छः महारथियोंको जीते बिना जयद्रथको प्राप्त करना असम्भव है ॥ २८-२९ ॥

तेषामेकैकशो वीर्यं षण्णां त्वमनुचिन्तय।
सहिता हि नरव्याघ्र न शक्या जेतुमञ्जसा ॥ ३० ॥

'पुरुषसिंह ! पहले तुम इन छः महारथियोंमें एक-एकके बल-पराक्रमका विचार करो। फिर जब ये छः एक साथ होंगे, उस समय इन्हें सुगमतासे नहीं जीता जा सकता।३०।

भूयस्तु मन्त्रयिष्यामि नीतिमात्महिताय वै।
मन्त्रज्ञैः सचिवैः सार्धं सुहृद्भिः कार्यसिद्धये ॥ ३१ ॥

'अब मैं पुनः अपने हितका ध्यान रखते हुए कार्यकी सिद्धिके लिये मन्त्रज्ञ मन्त्रियों और हितैषी सुहृदोंके साथ सलाह करूँगा'॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि कृष्णवाक्ये पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें श्रीकृष्णवाक्यविषयक पचहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

अर्जुनके वीरोचित वचन

अर्जुन उवाच

षड् रथान् धार्तराष्ट्रस्य मन्यसे यान् बलाधिकान्।
तेषां वीर्यं ममार्धेन न तुल्यमिति मे मतिः ॥ १ ॥
अस्त्रमस्त्रेण सर्वेषामेतेषां मधुसूदन।
मया द्रक्ष्यसि निर्भिन्नं जयद्रथवधैषिणा ॥ २ ॥

अर्जुन बोले—मधुसूदन ! दुर्योधनके जिन छः महारथियोंको आप बलमें अधिक मानते हैं, उनका पराक्रम मेरे आधेके बराबर भी नहीं है, ऐसा मेरा विश्वास है। जयद्रथके वधकी इच्छासे मेरे युद्ध करते समय आप देखेंगे कि मैंने इन सबके अस्त्रोंको अपने अस्त्रसे काट गिराया है ॥ १-२ ॥

द्रोणस्य मिषतश्चाहं सगणस्य विलप्यतः।
मूर्धानं सिन्धुराजस्य पातयिष्यामि भूतले ॥ ३ ॥

मैं द्रोणाचार्यके देखते-देखते अपने सैनिकोंसहित विलाप करते हुए सिन्धुराज जयद्रथका मस्तक पृथ्वीपर गिरा दूँगा॥३॥

यदि साध्याश्च रुद्राश्च वसवश्च सहाश्विनः।
मरुतश्च सहेन्द्रेण विश्वेदेवाः सहेश्वराः ॥ ४ ॥
पितरः सहगन्धर्वाः सुपर्णाः सागराद्रयः।
द्यौर्वियत् पृथिवी चेयं दिशश्च सदिगीश्वराः ॥ ५ ॥
ग्रामारण्यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
त्रातारः सिन्धुराजस्य भवन्ति मधुसूदन ॥ ६ ॥
तथापि बाणैर्निहतं श्वो द्रष्टासि रणे मया।
सत्येन च शपे कृष्ण तथैवायुधमालभे ॥ ७ ॥

मधुसूदन श्रीकृष्ण ! यदि साध्य, रुद्र, वसु, अश्विनीकुमार, इन्द्रसहित मरुद्गण, विश्वेदेव, देवेश्वरगण, पितर, गन्धर्व, गरुड़, समुद्र, पर्वत, स्वर्ग, आकाश, यह पृथ्वी, दिशाएँ, दिक्पाल, गाँवों तथा जंगलोंमें निवास करनेवाले प्राणी और सम्पूर्ण चराचर जीव भी सिन्धुराज जयद्रथकी रक्षाके लिये उद्यत हो जायँ तो भी मैं सत्यकी शपथ खाकर और अपना धनुष छूकर कहता हूँ कि कल युद्धमें आप मेरे बाणोंद्वारा जयद्रथको मारा गया देखेंगे ॥ ४—७ ॥

यस्तु गोप्ता महेष्वासस्तस्य पापस्य दुर्मतेः।
तमेव प्रथमं द्रोणमभियास्यामि केशव ॥ ८ ॥

केशव ! उस दुर्बुद्धि पापी जयद्रथकी रक्षाका बीड़ा उठाये हुए जो महाधनुर्धर आचार्य द्रोण हैं, पहले उन्हींपर आक्रमण करूँगा ॥ ८ ॥

तस्मिन् द्यूतमिदं बद्धं मन्यते स सुयोधनः।
तस्मात् तस्यैव सेनाग्रं भित्त्वा यास्यामि सैन्धवम् ॥९॥

दुर्योधन आचार्यपर ही इस युद्धरूपी द्यूतको आबद्ध (अवलम्बित) मानता है; अतः उसीकी सेनाके अग्रभागका भेदन करके मैं सिन्धुराजके पास जाऊँगा ॥ ९ ॥

द्रष्टासि श्वो महेष्वासान् नाराचैस्तिग्मतेजितैः।
शृङ्गाणीव गिरेर्वज्रैर्दार्यमाणान् मया युधि ॥ १० ॥

जैसे इन्द्र अपने वज्रद्वारा पर्वतोंके शिखरोंको विदीर्ण कर देते हैं, उसी प्रकार कल युद्धमें मैं अच्छी तरह तेज किये हुए नाराचोंद्वारा बड़े-बड़े धनुर्धरोंको चीर डालूँगा; यह आप देखेंगे ॥ १० ॥

नरनागाश्वदेहेभ्यो विस्रविष्यति शोणितम्।

पतद्भ्यः पतितेभ्यश्च विभिन्नेभ्यः शितैः शरैः ॥ ११ ॥

मेरे तीखे बाणोंद्वारा विदीर्ण होकर गिरते और गिरे हुए मनुष्य, हाथी और घोड़ोंके शरीरोंसे खूनकी धारा बह चलेगी ॥ ११ ॥

गाण्डीवप्रेषिता बाणा मनोऽनिलसमा जवे।
नृनागाश्वान् विदेहासून् कर्तारश्च सहस्रशः ॥१२॥

गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाण मन और वायुके समान वेगशाली होते हैं। वे शत्रुओंके सहस्रों हाथी-घोड़े और मनुष्योंको शरीर और प्राणोंसे शून्य कर देंगे ॥ १२ ॥

यमात् कुबेराद् वरुणादिन्द्राद् रुद्राच्च यन्मया।
उपात्तमस्त्रं घोरं तद् द्रष्टारोऽत्र नरा युधि ॥१३॥

यम, कुबेर, वरुण, इन्द्र तथा रुद्रसे मैंने जो भयंकर अस्त्र प्राप्त किये हैं, उन्हें कलके युद्धमें सब लोग देखेंगे॥१३॥

ब्राह्मेणास्त्रेण चास्त्राणि हन्यमानानि संयुगे।
मया द्रष्टासि सर्वेषां सैन्धवस्याभिरक्षिणाम् ॥१४॥

जयद्रथके समस्त रक्षकोंद्वारा छोड़े हुए अस्त्रोंको मैं युद्धमें ब्रह्मास्त्रद्वारा काट डालूँगा, यह आप देखेंगे ॥१४॥

शरवेगसमुत्कृत्तै राज्ञां केशव मूर्धभिः।
आस्तीर्यमाणां पृथिवीं द्रष्टासि श्वो मया युधि ॥१५॥

केशव! कलके युद्धमें आप देखेंगे कि इस पृथ्वीपर मेरे बाणोंके वेगसे कटे हुए राजाओंके मस्तक बिछ गये हैं।१५।

क्रव्यादांस्तर्पयिष्यामि द्रावयिष्यामि शात्रवान्।
सुहृदो नन्दयिष्यामि प्रमथिष्यामि सैन्धवम् ॥ १६ ॥

कल मैं मांसभोजी प्राणियोंको तृप्त कर दूँगा, शत्रुसैनिकोंको मार भगाऊँगा, सुहृदोंको आनन्द प्रदान करूँगा और सिन्धुराज जयद्रथको मथ डालूँगा ॥ १६ ॥

बह्वागस्कृत् कुसम्बन्धी पापदेशसमुद्भवः।
मया सैन्धवको राजा हतः स्वान् शोचयिष्यति ॥१७॥

सिन्धुराज जयद्रथ पापपूर्ण प्रदेशमें उत्पन्न हुआ है। उसने बहुत-से अपराध किये हैं। वह एक दुष्ट सम्बन्धी है। अतः कल मेरेद्वारा मारा जाकर अपने सुजनोंको शोकमें निमग्न कर देगा ॥ १७ ॥

सर्वक्षीरान्नभोक्तारं पापाचारं रणाजिरे।
मया सराजकं बाणैर्भिन्नं द्रक्ष्यसि सैन्धवम् ॥ १८ ॥

सदा सब प्रकारसे दूध-भात खानेवाले पापाचारी जयद्रथको रणाङ्गणमें आप राजाओंसहित मेरे बाणोंद्वारा विदीर्ण हुआ देखेंगे ॥ १८ ॥

तथा प्रभाते कर्तास्मि यथा कृष्ण सुयोधनः।
नान्यं धनुर्धरं लोके मंस्यते मत्समं युधि ॥ १९ ॥

श्रीकृष्ण! मैं कल सबेरे ऐसा युद्ध करूँगा, जिससे दुर्योधन रणक्षेत्रके भीतर संसारके दूसरे किसी धनुर्धरको मेरे समान नहीं मानेगा ॥ १९ ॥

गाण्डीवं च धनुर्दिव्यं योद्धा चाहं नरर्षभ।
त्वं च यन्ता हृषीकेश किं नु स्यादजितं मया॥ २०॥

नरश्रेष्ठ हृषीकेश! जहाँ गाण्डीव-जैसा दिव्य धनुष है, मैं योद्धा हूँ और आप सारथि हैं, वहाँ मैं किसको नहीं जीत सकता? ॥ २० ॥

तव प्रसादाद् भगवन् किमिवास्ति रणे मम।
अविषह्यं हृषीकेश किं जानन् मां विगर्हसे ॥ २१ ॥

भगवन्! आपकी कृपासे इस युद्धस्थलमें कौन-सी ऐसी शक्ति है, जो मेरे लिये असह्य हो। हृषीकेश! आप यह जानते हुए भी क्यों मेरी निन्दा करते हैं? ॥ २१ ॥

यथा लक्ष्म स्थिरं चन्द्रे समुद्रे च यथा जलम्।
एवमेतां प्रतिज्ञां मे सत्यां विद्धि जनार्दन ॥ २२ ॥

जनार्दन! जैसे चन्द्रमामें काला चिह्न स्थिर है, जैसे समुद्रमें जलकी सत्ता सुनिश्चित है, उसी प्रकार आप मेरी इस प्रतिज्ञाको भी सत्य समझें ॥ २२ ॥

मावमंस्था ममास्त्राणि मावमंस्था धनुर्दृढम्।
मावमंस्था बलं बाह्वोर्मावमंस्था धनंजयम् ॥ २३ ॥

प्रभो! आप मेरे अस्त्रोंका अनादर न करें। मेरे इस सुदृढ़ धनुषकी अवहेलना न करें। इन दोनों भुजाओंके बलका तिरस्कार न करें और अपने इस सखा धनंजयका अपमान न करें ॥ २३ ॥

तथाभियामि संग्रामं न जीयेयं जयामि च।
तेन सत्येन संग्रामे हतं विद्धि जयद्रथम् ॥ २४ ॥

मैं संग्राममें इस प्रकार चलूँगा, जिससे कोई मुझे जीत न सके, वरं मैं ही विजयी होऊँ। इस सत्यके प्रभावसे आप रणक्षेत्रमें जयद्रथको मारा गया ही समझें ॥ २४ ॥

ध्रुवं वै ब्राह्मणे सत्यं ध्रुवा साधुषु संनतिः।
श्रीर्ध्रुवापि च यज्ञेषु ध्रुवो नारायणे जयः ॥ २५ ॥

जैसे ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणमें सत्य, साधुपुरुषोंमें नम्रता और यज्ञोंमें लक्ष्मीका होना ध्रुव सत्य है, उसी प्रकार जहाँ आप नारायण विद्यमान हैं, वहाँ विजय भी अटल है ॥ २५ ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा हृषीकेशं स्वयमात्मानमात्मना।
संदिदेशार्जुनो नर्दन् वासविः केशवं प्रभुम् ॥ २६ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! इन्द्रकुमार अर्जुनने गर्जना करते हुए इस प्रकार उपर्युक्त बातें कहकर सम्पूर्ण इन्द्रियोंके नियन्ता तथा सब कुछ करनेमें समर्थ अपने आत्मस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णको स्वयं ही मनसे सोचकर इस प्रकार आदेश दिया—॥ २६ ॥

यथा प्रभातां रजनीं कल्पितः स्याद् रथो मम।

तथा कार्यं त्वया कृष्ण कार्यं हि महदुद्यतम् ॥ २७ ॥

'श्रीकृष्ण ! आप ऐसा प्रबन्ध कर लें कि कल सबेरा होते ही मेरा रथ तैयार हो जाय; क्योंकि हमलोगोंपर महान् कार्यभार आ पड़ा है' ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वण्यर्जुनवाक्ये षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें अर्जुनवाक्यविषयक छिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

नाना प्रकारके अशुभसूचक उत्पात, कौरवसेनामें भय और श्रीकृष्णका अपनी बहिन सुभद्राको आश्वासन देना

संजय उवाच

तां निशां दुःखशोकार्तौ निःश्वसन्ताविवोरगौ।
निद्रां नैवोपलेभाते वासुदेवधनंजयौ ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! दुःख और शोकसे पीड़ित हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन सर्पोंके समान लंबी साँस खींच रहे थे । उन दोनोंको उस रातमें नींद नहीं आयी ॥ १ ॥

नरनारायणौ क्रुद्धौ ज्ञात्वा देवाः सवासवाः ।
व्यथिताश्चिन्तयामासुः किंस्विदेतद् भविष्यति॥ २ ॥

नर और नारायणको कुपित जान इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता व्यथित हो चिन्ता करने लगे; यह क्या होनेवाला है ? ।२।

ववुश्च दारुणा वाता रूक्षा घोराभिशंसिनः ।
सकबन्धस्तथाऽऽदित्ये परिधिः समदृश्यत ॥ ३ ॥

रूक्ष, भयसूचक एवं दारुण वायु बहने लगी। (दूसरे दिन सूर्योदय होनेपर) सूर्यमण्डलमें कबन्धयुक्त घेरा देखा गया॥३॥

शुष्काशन्यश्च निष्पेतुः सनिर्घाताः सविद्युतः ।
चचाल चापि पृथिवी सशैलवनकानना ॥ ४ ॥

बिना वर्षाके ही वज्र गिरने लगे । आकाशमें बिजलीकी चमकके साथ भयंकर गर्जना होने लगी । पर्वत, वन और काननोंसहित पृथ्वी काँपने लगी ॥ ४ ॥

चुक्षुभुश्च महाराज सागरा मकरालयाः ।
प्रतिस्रोतः प्रवृत्ताश्च तथा गन्तुं समुद्रगाः ॥ ५ ॥

महाराज ! ग्राहोंके निवासस्थान समुद्रोंमें ज्वार आ गया । समुद्रगामिनी नदियाँ उलटी धारामें बहकर अपने उद्गमकी ओर जाने लगीं ॥ ५ ॥

रथाश्वनरनागानां प्रवृत्तमधरोत्तरम् ।
क्रव्यादानां प्रमोदार्थं यमराष्ट्रविवृद्धये ॥ ६ ॥

मांसभक्षी प्राणियोंके आनन्द और यमराजके राज्यकी वृद्धिके लिये रथ, घोड़े, मनुष्य और हाथियोंके नीचे-ऊपरके ओष्ठ फड़कने लगे ॥ ६ ॥

वाहनानि शकृन्मूत्रे मुमुचू रुरुदुश्च ह ।
तान् दृष्ट्वा दारुणान् सर्वानुत्पाताँल्लोमहर्षणान्॥ ७ ॥
सर्वे ते व्यथिताः सैन्यास्त्वदीया भरतर्षभ ।
श्रुत्वा महाबलस्योग्रां प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः ॥ ८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! हाथी, घोड़े आदि वाहन मल-मूत्र करने और रोने लगे । उन सब भयंकर एवं रोमाञ्चकारी उत्पातोंको देखकर और महाबली सव्यसाची अर्जुनकी उस भयंकर प्रतिज्ञाको सुनकर आपके सभी सैनिक व्यथित हो उठे ॥

अथ कृष्णं महाबाहुरब्रवीत् पाकशासनिः ।
आश्वासय सुभद्रां त्वं भगिनीं स्नुषया सह ॥ ९ ॥
स्नुषां चास्या वयस्याश्च विशोकाः कुरु माधव ।
साम्ना सत्येन युक्तेन वचसाऽऽश्वासय प्रभो ॥ १० ॥

इधर इन्द्रकुमार महाबाहु अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'माधव ! आप पुत्रवधू उत्तरासहित अपनी बहिन सुभद्राको धीरज बँधाइये । उत्तरा और उसकी सखियोंका शोक दूर कीजिये । प्रभो ! शान्तिपूर्ण, सत्य और युक्तियुक्त वचनोंद्वारा इन सबको आश्वासन दीजिये' ॥ ९-१० ॥

ततोऽर्जुनगृहं गत्वा वासुदेवः सुदुर्मनाः ।
भगिनीं पुत्रशोकार्तामाश्वासयत दुःखिताम् ॥ ११ ॥

तब भगवान् श्रीकृष्ण अत्यन्त उदास मनसे अर्जुनके शिविरमें गये और पुत्रशोकसे पीड़ित हुई अपनी दुखिया बहिनको आश्वासन देने लगे ॥ ११ ॥

वासुदेव उवाच

मा शोकं कुरु वार्ष्णेयि कुमारं प्रति सस्नुषा ।
सर्वेषां प्राणिनां भीरु निष्ठैषा कालनिर्मिता ॥ १२ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—वृष्णिनन्दिनी ! तुम और पुत्रवधू उत्तरा कुमार अभिमन्युके लिये शोक न करो ।

भीरु ! काल एक दिन सभी प्राणियोंकी ऐसी ही अवस्था कर देता है ॥ १२ ॥



कुले जातस्य धीरस्य क्षत्रियस्य विशेषतः।
सदृशं मरणं ह्येतत् तव पुत्रस्य मा शुचः ॥ १३ ॥

तुम्हारा पुत्र उत्तम कुलमें उत्पन्न धीर-वीर और विशेषतः क्षत्रिय था। यह मृत्यु उसके योग्य ही हुई है; इसलिये शोक न करो ॥ १३ ॥

दिष्ट्या महारथो धीरः पितुस्तुल्यपराक्रमः।
क्षात्रेण विधिना प्राप्तो वीराभिलषितां गतिम् ॥ १४ ॥

यह सौभाग्यकी बात है कि पिताके तुल्य पराक्रमी धीर महारथी अभिमन्यु क्षत्रियोचित कर्तव्यका पालन करके उस उत्तम गतिको प्राप्त हुआ है, जिसकी वीर पुरुष अभिलाषा करते हैं ॥ १४ ॥

जित्वा सुबहुशः शत्रून् प्रेषयित्वा च मृत्यवे।
गतः पुण्यकृतां लोकान् सर्वकामदुहोऽक्षयान् ॥ १५ ॥

वह बहुत-से शत्रुओंको जीतकर और बहुतोंको मृत्युके लोकमें भेजकर पुण्यात्माओंको प्राप्त होनेवाले उन अक्षय लोकोंमें गया है, जो सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं ॥

तपसा ब्रह्मचर्येण श्रुतेन प्रज्ञयापि च।
सन्तो यां गतिमिच्छन्ति तां प्राप्तस्तव पुत्रकः ॥ १६ ॥

तपस्या, ब्रह्मचर्य, शास्त्रज्ञान और सद्बुद्धिके द्वारा साधुपुरुष जिस गतिको पाना चाहते हैं, वही गति तुम्हारे पुत्रको भी प्राप्त हुई है ॥ १६ ॥

वीरसूर्वीरपत्नी त्वं वीरजा वीरबान्धवा।
मा शुचस्तनयं भद्रे गतः स परमां गतिम् ॥ १७ ॥

सुभद्रे ! तुम वीरमाता, वीरपत्नी, वीरकन्या और वीर भाइयोंकी बहिन हो। तुम पुत्रके लिये शोक न करो। वह उत्तम गतिको प्राप्त हुआ है ॥ १७ ॥

प्राप्स्यते चाप्यसौ पापः सैन्धवो बालघातकः।
अस्यावलेपस्य फलं ससुहृद्गणबान्धवः ॥ १८ ॥
व्युष्टायां तु वरारोहे रजन्यां पापकर्मकृत्।
न हि मोक्ष्यति पार्थात् स प्रविष्टोऽप्यमरावतीम् ॥ १९ ॥

वरारोहे ! बालककी हत्या करानेवाला वह पापकर्मा पापी सिंधुराज जयद्रथ रात बीतनेपर प्रातःकाल होते ही अपने सुहृदों और बन्धु-बान्धवोंसहित इस अपराधका फल पायेगा। वह अमरावतीपुरीमें जाकर छिप जाय तो भी अर्जुनके हाथसे उसका छुटकारा नहीं होगा ॥ १८-१९ ॥

श्वः शिरः श्रोष्यसे तस्य सैन्धवस्य रणे हृतम्।
समन्तपञ्चकाद् बाह्यं विशोका भव मा रुदः ॥ २० ॥

तुम कल ही सुनोगी कि रणक्षेत्रमें जयद्रथका मस्तक काट लिया गया है और वह समन्तपञ्चक क्षेत्रसे बाहर जा गिरा है। अतः शोक त्याग दो और रोना बंद करो ॥ २० ॥

क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य गतः शूरः सतां गतिम्।
यां गतिं प्राप्नुयामेह ये चान्ये शस्त्रजीविनः ॥ २१ ॥

शूरवीर अभिमन्युने क्षत्रिय-धर्मको आगे रखकर सत्पुरुषोंकी गति पायी है, जिसे हमलोग और इस संसारके दूसरे शस्त्रधारी क्षत्रिय भी पाना चाहते हैं ॥ २१ ॥

व्यूढोरस्को महाबाहुरनिवर्ती रथप्रणुत्।
गतस्तव वरारोहे पुत्रः स्वर्गं ज्वरं जहि ॥ २२ ॥

सुन्दरी ! चौड़ी छाती और विशाल भुजाओंसे सुशोभित युद्धसे पीछे न हटनेवाला तथा शत्रुपक्षके रथियोंपर विजय पानेवाला तुम्हारा पुत्र स्वर्गलोकमें गया है। तुम चिन्ता छोड़ो॥

अनुयातश्च पितरं मातृपक्षं च वीर्यवान्।
सहस्रशो रिपून् हत्वा हतः शूरो महारथः ॥ २३ ॥

बलवान्, शूरवीर और महारथी अभिमन्यु पितृकुल तथा मातृकुलकी मर्यादाका अनुसरण करते हुए सहस्रों शत्रुओंको मारकर मरा है ॥ २३ ॥

आश्वासय स्नुषां राज्ञि मा शुचः क्षत्रिये भृशम्।
श्वः प्रियं सुमहच्छ्रुत्वा विशोका भव नन्दिनि ॥ २४ ॥

रानी बहिन ! अधिक चिन्ता छोड़ो और बहूको धीरज बँधाओ। अपने कुलको आनन्दित करनेवाली क्षत्रियकन्ये ! कल अत्यन्त प्रिय समाचार सुनकर शोकरहित हो जाओ ॥ २४॥

यत् पार्थेन प्रतिज्ञातं तत् तथा न तदन्यथा।
चिकीर्षितं हि ते भर्तुर्न भवेज्जातु निष्फलम् ॥ २५ ॥

अर्जुनने जिस बातके लिये प्रतिज्ञा कर ली है, वह उसी रूपमें पूर्ण होगी। उसे कोई पलट नहीं सकता। तुम्हारे स्वामी जो कुछ करना चाहते हैं, वह कभी निष्फल नहीं होता॥

यदि च मनुजपन्नगाः पिशाचा
रजनिचराः पतगाः सुरासुराश्च।
रणगतमभियान्ति सिन्धुराजं
न स भविता सह तैरपि प्रभाते॥ २६॥

यदि मनुष्य, नाग, पिशाच, निशाचर, पक्षी, देवता और असुर भी रणक्षेत्रमें आये हुए सिंधुराज जयद्रथकी सहायताके लिये आ जायँ तो भी वह कल उन सहायकोंके साथ ही जीवनसे हाथ धो बैठेगा॥ २६॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि सुभद्राश्वासने सप्तसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें सुभद्राको श्रीकृष्णका आश्वासनविषयक सतहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७७॥

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

सुभद्राका विलाप और श्रीकृष्णका सबको आश्वासन

संजय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य केशवस्य महात्मनः।
सुभद्रा पुत्रशोकार्ता विललाप सुदुःखिता॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! महात्मा केशवका यह कथन सुनकर पुत्रशोकसे व्याकुल और अत्यन्त दुःखित हुई सुभद्रा इस प्रकार विलाप करने लगी—॥ १॥

हा पुत्र मम मन्दायाः कथमेत्यासि संयुगे।
निधनं प्राप्तवांस्तात पितुस्तुल्यपराक्रमः॥ २॥

'हा पुत्र! हा बेटा अभिमन्यु! तुम मुझ अभागिनीके गर्भमें आकर क्रमशः पिताके तुल्य पराक्रमी होकर युद्धमें मारे कैसे गये?॥ २॥

कथमिन्दीवरश्यामं सुदंष्ट्रं चारुलोचनम्।
मुखं ते दृश्यते वत्स गुण्ठितं रणरेणुना॥ ३॥

'वत्स! नील कमलके समान श्याम, सुन्दर दन्तपङ्क्तियोंसे सुशोभित, मनोहर नेत्रोंवाला तुम्हारा मुख आज युद्धकी धूलसे आच्छादित होकर कैसा दिखायी देता होगा?॥ ३॥

नूनं शूरं निपतितं त्वां पश्यन्त्यनिवर्तिनम्।
सुशिरोग्रीवबाह्वंसं व्यूढोरस्कं नतोदरम्॥ ४॥
चारूपचितसर्वाङ्गं स्वक्षं शस्त्रक्षताचितम्।
भूतानि त्वां निरीक्षन्ते नूनं चन्द्रमिवोदितम्॥ ५॥

'बेटा! तुम शूरवीर थे। युद्धसे कभी पीछे पैर नहीं हटाते थे। मस्तक, ग्रीवा, बाहु और कंधे आदि तुम्हारे सभी अङ्ग सुन्दर थे, छाती चौड़ी थी, उदर एवं नाभिदेश नीचा था, समस्त अङ्ग मनोहर और हृष्ट-पुष्ट थे। सम्पूर्ण इन्द्रियाँ विशेषतः नेत्र बड़े सुन्दर थे तथा तुम्हारे सारे अङ्ग शस्त्रजनित आघातसे व्याप्त थे। इस दशामें तुम धरतीपर पड़े होगे और निश्चय ही समस्त प्राणी उदय होते हुए चन्द्रमाके समान तुम्हें देख रहे होंगे॥ ४-५॥

शयनीयं पुरा यस्य स्पर्ध्यास्तरणसंवृतम्।
भूमावद्य कथं शेषे विप्रविद्धः सुखोचितः॥ ६॥

'हाय! पहले जिसके शयन करनेके लिये बहुमूल्य बिछौनेसे ढकी हुई शय्या बिछायी जाती थी, वही बेटा अभिमन्यु सुख भोगनेके योग्य होकर भी आज बाणविद्ध शरीरसे भूतलपर कैसे सो रहा होगा?॥ ६॥

योऽन्वास्यत पुरा वीरो वरस्त्रीभिर्महाभुजः।
कथमन्वास्यते सोऽद्य शिवाभिः पतितो मृधे॥ ७॥

'जिस महाबाहु वीरके पास पहले सुन्दरी स्त्रियाँ बैठा करती थीं, वही आज युद्धभूमिमें पड़ा होगा और उसके आस-पास सियारिनें बैठी होंगी; यह सब कैसे सम्भव हुआ?॥

योऽस्तूयत पुरा हृष्टैः सूतमागधवन्दिभिः।
सोऽद्य क्रव्याद्गणैर्घोरैर्विनदद्भिरुपास्यते॥ ८॥

'पहले हर्षमें भरे हुए सूत, मागध और वन्दीजन जिसकी स्तुति किया करते थे, उसीकी आज विकट गर्जना करते हुए भयंकर मांसभक्षी जन्तुओंके समुदाय उपासना करते होंगे॥

पाण्डवेषु च नाथेषु वृष्णिवीरेषु वा विभो।
पञ्चालेषु च वीरेषु हतः केनास्यनाथवत्॥ ९॥

'शक्तिशाली पुत्र! तुम्हारे रक्षक पाण्डवों, वृष्णिवीरों तथा पाञ्चालवीरोंके होते हुए भी तुम्हें अनाथकी भाँति किसने मारा?॥ ९॥

अतृप्तदर्शना पुत्र दर्शनस्य तवानघ।
मन्दभाग्या गमिष्यामि व्यक्तमद्य यमक्षयम्॥ १०॥

'बेटा! तुम्हें देखनेके लिये मेरी आँखें तरस रही हैं, इनकी प्यास नहीं बुझी। अनघ! कितनी मन्दभागिनी हूँ। निश्चय ही आज मैं यमलोकको चली जाऊँगी॥ १०॥

विशालाक्षं सुकेशान्तं चारुवाक्यं सुगन्धि च।
तव पुत्र कदा भूयो मुखं द्रक्ष्यामि निर्व्रणम्॥ ११॥

'वत्स ! बड़े-बड़े नेत्र, सुन्दर केशप्रान्त, मनोहर वाक्य और उत्तम सुगंधसे युक्त तुम्हारा घावरहित सुन्दर मुख मैं फिर कब देख पाऊँगी ? ॥ ११ ॥

धिग् बलं भीमसेनस्य धिक् पार्थस्य धनुष्मताम् ।
धिग् वीर्यं वृष्णिवीराणां पञ्चालानां च धिग् बलम् ॥ १२ ॥

'भीमसेनके बलको धिक्कार है, अर्जुनके धनुषधारणको धिक्कार है, वृष्णिवंशी वीरोंके पराक्रमको धिक्कार है तथा पाञ्चालोंके बलको भी धिक्कार है ! ॥ १२ ॥

धिक्केकयांस्तथा चेदीन् मत्स्यांश्चैवाथ सृञ्जयान् ।
ये त्वां रणगतं वीरं न शेकुरभिरक्षितुम् ॥ १३ ॥

'केकय, चेदि तथा मत्स्यदेशके वीरों और सृंजयवंशी क्षत्रियोंको भी धिक्कार है, जो युद्धमें गये हुए तुम-जैसे वीरकी रक्षा न कर सके ॥ १३ ॥

अद्य पश्यामि पृथिवीं शून्यामिव हतत्विषम् ।
अभिमन्युमपश्यन्ती शोकव्याकुललोचना ॥ १४ ॥

'अभिमन्युको न देखनेके कारण मेरे नेत्र शोकसे व्याकुल हो रहे हैं । आज मुझे सारी पृथ्वी सूनी एवं कान्तिहीन-सी दिखायी देती है ॥ १४ ॥

स्वस्रीयं वासुदेवस्य पुत्रं गाण्डीवधन्वनः ।
कथं त्वातिरथं वीरं द्रक्ष्याम्यद्य निपातितम् ॥ १५ ॥

'वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके भानजे और गाण्डीवधारी अर्जुनके अतिरथी वीर पुत्र अभिमन्युको आज मैं धरतीपर पड़ा हुआ कैसे देख सकूँगी ? ॥ १५ ॥

एह्येहि तृषितो वत्स स्तनौ पूर्णौ पिबाशु मे ।
अङ्कमारुह्य मन्दाया ह्यतृप्तायाश्च दर्शने ॥ १६ ॥

'बेटा ! आओ, आओ । तुम्हें प्यास लगी होगी । तुम्हें देखनेके लिये प्यासी हुई मुझ अभागिनी माताकी गोदमें बैठकर मेरे दूधसे भरे हुए इन स्तनोंको शीघ्र पी लो ॥ १६ ॥

हा वीर दृष्टो नष्टश्च धनं स्वप्न इवासि मे ।
अहो ह्यनित्यं मानुष्यं जलबुद्बुदचञ्चलम् ॥ १७ ॥

'हा वीर ! तुम सपनेमें मिले हुए धनकी भाँति मुझे दिखायी दिये और नष्ट हो गये । अहो ! यह मनुष्य-जीवन पानीके बुलबुलेके समान चञ्चल एवं अनित्य है ॥ १७ ॥

इमां ते तरुणीं भार्यां तवाधिभिरभिप्लुताम् ।
कथं संधारयिष्यामि विवत्सामिव धेनुकाम् ॥ १८ ॥

'बेटा ! तुम्हारी यह तरुणी पत्नी तुम्हारे विरहशोकमें डूबी हुई है । जिसका बछड़ा खो गया हो, उस गायकी भाँति व्याकुल है । मैं इसे कैसे धीरज बँधाऊँगी ? ॥ १८ ॥

(उत्तरामुत्तमां जात्या सुशीलां प्रियभाषिणीम् ।
शनकैः परिरभ्यैनां स्नुषां मम यशस्विनीम् ॥
सुकुमारीं विशालाक्षीं पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
बालपल्लवतन्वङ्गीं मत्तमातङ्गगामिनीम् ॥
बिम्बाधरोष्ठीमबलामभिमन्यो प्रहर्षय ।)

'यह उत्तरा जातिसे उत्तम, सुशीला, प्रियभाषिणी, यशस्विनी तथा मेरी प्यारी बहू है । यह सुकुमारी है । इसके नेत्र बड़े-बड़े और मुख पूर्णिमाके चन्द्रमाकी भाँति परम मनोहर है । इसके अङ्ग नूतन पल्लवोंके समान कृश हैं । यह मतवाले हाथीके समान मन्दगतिसे चलनेवाली है । इसके ओठ बिम्बफलके समान लाल हैं । बेटा अभिमन्यु ! तुम मेरी इस बहूको धीरे-धीरे हृदयसे लगाकर आनन्दित करो ॥

अहो ह्यकाले प्रस्थानं कृतवानसि पुत्रक ।
विहाय फलकाले मां सुगृद्धां तव दर्शने ॥ १९ ॥

'अहो वत्स ! जब पुत्रके होनेका फल मिलनेका समय आया है, तब तुम मुझे अपने दर्शनोंके लिये भी तरसती हुई छोड़कर असमयमें ही चल बसे ॥ १९ ॥

नूनं गतिः कृतान्तस्य प्राज्ञैरपि सुदुर्विदा ।
यत्र त्वं केशवे नाथे संग्रामेऽनाथवद्धतः ॥ २० ॥

'निश्चय ही कालकी गति बड़े-बड़े विद्वानोंके लिये भी अत्यन्त दुर्बोध है, जिसके अधीन होकर तुम श्रीकृष्ण-जैसे संरक्षकके रहते हुए संग्राम-भूमिमें अनाथकी भाँति मारे गये ॥

यज्वनां दानशीलानां ब्राह्मणानां कृतात्मनाम् ।
चरितब्रह्मचर्याणां पुण्यतीर्थावगाहिनाम् ॥ २१ ॥
कृतज्ञानां वदान्यानां गुरुशुश्रूषिणामपि ।
सहस्रदक्षिणानां च या गतिस्तामवाप्नुहि ॥ २२ ॥

'वत्स ! यज्ञकर्ता, दानी, जितेन्द्रिय, ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण, ब्रह्मचारी, पुण्यतीर्थोंमें नहानेवाले, कृतज्ञ, उदार, गुरुसेवा-परायण और सहस्रोंकी संख्यामें दक्षिणा देनेवाले धर्मात्मा पुरुषोंको जो गति प्राप्त होती है, वही तुम्हें भी मिले ॥ २१-२२ ॥

या गतिर्युध्यमानानां शूराणामनिवर्तिनाम् ।
हत्वारीन् निहतानां च संग्रामे तां गतिं व्रज ॥ २३ ॥

'संग्राममें युद्धतत्पर हो कभी पीछे पैर न हटानेवाले और शत्रुओंको मारकर मरनेवाले शूरवीरोंको जो गति प्राप्त होती है, वही तुम्हें भी मिले ॥ २३ ॥

गोसहस्रप्रदातॄणां क्रतुदानां च या गतिः ।
नैवेशिकं चाभिमतं ददतां या गतिः शुभा ॥ २४ ॥

'सहस्र गोदान करनेवाले, यज्ञके लिये दान देनेवाले तथा मनके अनुरूप सब सामग्रियोंसहित निवासस्थान प्रदान करनेवाले पुरुषोंको जो शुभ गति प्राप्त होती है, वही तुम्हें भी मिले ॥

ब्राह्मणेभ्यः शरण्येभ्यो निधिं निदधतां च या ।
या चापि न्यस्तदण्डानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २५ ॥

'जो शरणागत वत्सल ब्राह्मणोंके लिये निधि स्थापित करते

हैं तथा किसी भी प्राणीको दण्ड नहीं देते, उन्हें जिस गतिकी प्राप्ति होती है, बेटा ! वही गति तुम्हें भी प्राप्त हो ॥ २५ ॥

ब्रह्मचर्येण यां यान्ति मुनयः संशितव्रताः।
एकपत्न्यश्च यां यान्ति तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २६ ॥

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनि ब्रह्मचर्यके द्वारा जिस गतिको पाते हैं और पतिव्रता स्त्रियोंको जिस गतिकी प्राप्ति होती है, बेटा ! वही गति तुम्हें भी सुलभ हो ॥२६॥

राज्ञां सुचरितैर्या च गतिर्भवति शाश्वती।
चतुराश्रमिणां पुण्यैः पावितानां सुरक्षितैः ॥ २७ ॥
दीनानुकम्पिनां या च सततं संविभागिनाम्।
पैशुन्याच्च निवृत्तानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २८ ॥

'पुत्र ! सदाचारके पालनसे राजाओंको तथा सुरक्षित पुण्यके प्रभावसे पवित्र हुए चारों आश्रमोंके लोगोंको जो सनातन गति प्राप्त होती है; दीनोंपर दया करनेवाले, उत्तम वस्तुओंको घरमें बाँटकर उपयोगमें लेनेवाले तथा चुगलीसे दूर रहनेवाले लोगोंको जो गति प्राप्त होती है, वही गति तुम्हें भी मिले ॥ २७-२८ ॥

व्रतिनां धर्मशीलानां गुरुशुश्रूषिणामपि।
अमोघातिथिनां या च तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ २९ ॥

'वत्स ! व्रतपरायण, धर्मशील, गुरुसेवक एवं अतिथिको निराश न लौटानेवाले लोगोंको जिस गतिकी प्राप्ति होती है, वह तुम्हें भी प्राप्त हो ॥ २९ ॥

कृच्छ्रेषु या धारयतामात्मानं व्यसनेषु च।
गतिः शोकाग्निदग्धानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ ३० ॥

'बेटा ! जो लोग भारी-से-भारी कठिनाइयोंमें और संकटोंमें पड़नेपर तथा शोकाग्निसे दग्ध होनेपर भी धैर्य धारण करके अपने आपको स्थिर रखते हैं, उन्हें मिलनेवाली गतिको तुम भी प्राप्त करो ॥ ३० ॥

मातापित्रोश्च शुश्रूषां कल्पयन्तीह ये सदा।
स्वदारनिरतानां च या गतिस्तामवाप्नुहि ॥ ३१ ॥

'जो सदा इस जगत्‌में माता-पिताकी सेवा करते हैं और अपनी ही स्त्रीमें अनुराग रखते हैं, उनकी जैसी गति होती है, वही तुम्हें भी प्राप्त हो ॥ ३१ ॥

ऋतुकाले स्वकां भार्यां गच्छतां या मनीषिणाम्।
परस्त्रीभ्यो निवृत्तानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ ३२ ॥

'पुत्र ! ऋतुकालमें अपनी स्त्रीसे सहवास करते हुए परायी स्त्रियोंसे सदा दूर रहनेवाले मनीषी पुरुषोंको जो गति प्राप्त होती है, वही तुम्हें भी मिले ॥ ३२ ॥

साम्ना ये सर्वभूतानि पश्यन्ति गतमत्सराः।
नारुंतुदानां क्षमिणां या गतिस्तामवाप्नुहि ॥ ३३ ॥

'जो ईर्ष्या-द्वेषसे दूर रहकर समस्त प्राणियोंको समभावसे देखते हैं तथा जो किसीके मर्मस्थानको वाणीद्वारा चोट नहीं पहुँचाते एवं सबके प्रति क्षमाभाव रखते हैं, उनकी जो गति होती है, उसीको तुम भी प्राप्त करो ॥ ३३ ॥

मधुमांसनिवृत्तानां मदाद् दम्भात् तथानृतात्।
परोपतापत्यक्तानां तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ ३४ ॥

'पुत्र ! जो मद्य और मांसका सेवन नहीं करते, मद, दम्भ और असत्यसे अलग रहते और दूसरोंको संताप नहीं देते हैं, उन्हें मिलनेवाली सद्गति तुम्हें भी प्राप्त हो ॥ ३४ ॥

ह्रीमन्तः सर्वशास्त्रज्ञा ज्ञानतृप्ता जितेन्द्रियाः।
यां गतिं साधवो यान्ति तां गतिं व्रज पुत्रक ॥ ३५ ॥

'बेटा ! सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता, लज्जाशील, ज्ञानसे परितृप्त, जितेन्द्रिय श्रेष्ठपुरुष जिस गतिको पाते हैं, उसीको तुम भी प्राप्त करो' ॥ ३५ ॥

एवं विलपतीं दीनां सुभद्रां शोककर्शिताम्।
अन्वपद्यत पाञ्चाली वैराटीसहितां तदा ॥ ३६ ॥

इस प्रकार उत्तरासहित विलाप करती हुई दीन-दुखी एवं शोकसे दुर्बल सुभद्राके पास उस समय द्रौपदी भी आ पहुँची ॥ ३६ ॥

ताः प्रकामं रुदित्वा च विलप्य च सुदुःखिताः।
उन्मत्तवत् तदा राजन् विसंज्ञा न्यपतन् क्षितौ ॥ ३७ ॥

राजन् ! वे सब-की-सब अत्यन्त दुखी हो इच्छानुसार रोती और विलाप करती हुई पगली-सी हो गयीं और मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं ॥ ३७ ॥

सोपचारस्तु कृष्णश्च दुःखितां भृशदुःखितः।
सिक्त्वाम्भसा समाश्वास्य तत्तदुक्त्वा हितं वचः ॥ ३८ ॥
विसंज्ञकल्पां रुदतीं मर्मविद्धां प्रवेपतीम्।
भगिनीं पुण्डरीकाक्ष इदं वचनमब्रवीत् ॥ ३९ ॥

तब कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण अत्यन्त दुखी हो उन सबको होशमें लानेके लिये उपचार करने लगे। उन्होंने अपनी दुःखिनी बहिन सुभद्रापर जल छिड़ककर नाना प्रकारके हितकर वचन कहते हुए उसे आश्वासन दिया। पुत्र-शोकसे मर्माहत हो वह रोती हुई काँप रही थी और अचेत-सी हो गयी थी। उस अवस्थामें भगवान्‌ने उससे कहा—॥३८-३९॥

सुभद्रे मा शुचः पुत्रं पाञ्चाल्याश्वासयोत्तराम्।
गतोऽभिमन्युः प्रथितां गतिं क्षत्रियपुङ्गवः ॥ ४० ॥

'सुभद्रे ! तुम पुत्रके लिये शोक न करो। द्रुपदकुमारी ! तुम उत्तराको धीरज बँधाओ। वह क्षत्रियशिरोमणि सर्वश्रेष्ठ गतिको प्राप्त हुआ है ॥ ४० ॥

ये चान्येऽपि कुले सन्ति पुरुषा नो वरानने।
सर्वे ते तां गतिं यान्तु ह्यभिमन्योर्यशस्विनः ॥ ४१ ॥

'सुमुखि ! हमारी इच्छा तो यह है कि हमारे कुलमें और भी जितने पुरुष हैं, वे सब यशस्वी अभिमन्युकी ही गति प्राप्त करें ॥ ४१ ॥

कुर्याम तद् वयं कर्म क्रियासु सुहृदश्च नः ।
कृतवान् यादृगद्यैकस्तव पुत्रो महारथः ॥ ४२ ॥

'तुम्हारे महारथी पुत्रने अकेले ही आज जैसा पराक्रम किया है, उसे हम और हमारे सुहृद् भी कार्यरूपमें परिणत करें'॥

एवमाश्वास्य भगिनीं द्रौपदीमपि चोत्तराम् ।
पार्थस्यैव महाबाहुः पार्श्वमागादरिंदमः ॥ ४३ ॥

इस प्रकार अपनी बहिन सुभद्रा, उत्तरा तथा द्रौपदीको आश्वासन देकर शत्रुदमन महाबाहु श्रीकृष्ण पुनः अर्जुनके ही पास चले आये ॥ ४३ ॥

ततोऽभ्यनुज्ञाय नृपान् कृष्णो बन्धूंस्तथार्जुनम् ।
विवेशान्तःपुरे राजंस्ते च जग्मुर्यथालयम् ॥ ४४ ॥

राजन् ! तदनन्तर श्रीकृष्ण राजाओं, बन्धुजनों तथा अर्जुनसे अनुमति ले अन्तःपुरमें गये और वे राजालोग भी अपने-अपने शिबिरमें चले गये ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि सुभद्राप्रविलापे अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें सुभद्रा-विलापविषयक अठहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २½ श्लोक मिलाकर कुल ४६½ श्लोक हैं)

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका अर्जुनकी विजयके लिये रात्रिमें भगवान् शिवका पूजन करवाना, जागते हुए पाण्डव सैनिकोंकी अर्जुनके लिये शुभाशंसा तथा अर्जुनकी सफलताके लिये श्रीकृष्णके दारुकके प्रति उत्साहभरे वचन

संजय उवाच

ततोऽर्जुनस्य भवनं प्रविश्याप्रतिमं विभुः ।
स्पृष्ट्वाम्भः पुण्डरीकाक्षः स्थण्डिले शुभलक्षणे ॥ १ ॥
संतस्तार शुभां शय्यां दर्भैर्वैदूर्यसंनिभैः ।
ततो माल्येन विधिवल्लाजैर्गन्धैः सुमङ्गलैः ॥ २ ॥
अलंचकार तां शय्यां परिवार्यायुधोत्तमैः ।
ततः स्पृष्टोदके पार्थे विनीताः परिचारकाः ॥ ३ ॥
दर्शयन्तोऽन्तिके चक्रुर्नैशं त्रैयम्बकं बलिम् ।

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके अनुपम भवनमें प्रवेश करके जलका स्पर्श किया और शुभ लक्षणोंसे युक्त वेदीपर वैदूर्यमणिके सदृश कुशोंकी सुन्दर शय्या बिछायी। तत्पश्चात् विधिपूर्वक परम मङ्गलकारी अक्षत, गन्ध एवं पुष्पमाला आदिसे उस शय्याको सजाया । उसके चारों ओर उत्तम आयुध रख दिये । इसके बाद जब अर्जुन आचमन कर चुके, तब विनीत (सुशिक्षित) परिचारकोंने उन्हें दिखाते हुए उनके निकट ही भगवान् शंकरका निशीथ-पूजन किया ॥ १–३½ ॥

ततः प्रीतमनाः पार्थो गन्धमाल्यैश्च माधवम् ॥ ४ ॥
अलंकृत्योपहारं तं नैशं तस्मै न्यवेदयत् ।
स्मयमानस्तु गोविन्दः फाल्गुनं प्रत्यभाषत ॥ ५ ॥

तत्पश्चात् अर्जुनने प्रसन्नचित्त होकर श्रीकृष्णको गन्ध और मालाओंसे अलंकृत करके रात्रिका वह सारा उपहार उन्हींको समर्पित किया । तब मुसकराते हुए भगवान् गोविन्द अर्जुनसे बोले—॥ ४–५ ॥

सुप्यतां पार्थ भद्रं ते कल्याणाय व्रजाम्यहम् ।
स्थापयित्वा ततो द्वाःस्थान् गोप्तॄंश्चात्तायुधान् नरान् ॥६॥
दारुकानुगतः श्रीमान् विवेश शिबिरं स्वकम् ।

'कुन्तीकुमार ! तुम्हारा कल्याण हो । अब शयन करो । मैं तुम्हारे कल्याण-साधनके लिये ही जा रहा हूँ' ऐसा कहकर वहाँ अस्त्र-शस्त्र लिये हुए मनुष्योंको द्वारपाल एवं रक्षक नियुक्त करके भगवान् श्रीकृष्ण दारुकके साथ अपने शिबिरमें चले गये॥

शिश्ये च शयने शुभ्रे बहुकृत्यं विचिन्तयन् ॥ ७ ॥
पार्थाय सर्वं भगवान् शोकदुःखापहं विधिम् ।
व्यदधात् पुण्डरीकाक्षस्तेजोद्युतिविवर्धनम् ॥ ८ ॥
योगमास्थाय युक्तात्मा सर्वेषामीश्वरेश्वरः ।
श्रेयस्कामः पृथुयशा विष्णुर्जिष्णुप्रियंकरः ॥ ९ ॥

वहाँ बहुत-से कार्योंका चिन्तन करते हुए उन्होंने शुभ्र शय्यापर शयन किया । कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण सबके ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं । उनका यश महान् है । वे विष्णुरूप गोविन्द अर्जुनका प्रिय करनेवाले हैं और सदा उनके कल्याणकी कामना रखते हैं । उन युक्तात्मा श्रीहरिने उत्तम योगका आश्रय ले अर्जुनके लिये वह सारा विधि-विधान सम्पन्न किया, जो उनके शोक और दुःखको दूर करनेवाला तथा तेज और कान्तिको बढ़ानेवाला था ॥ ७–९ ॥

न पाण्डवानां शिबिरे कश्चित् सुष्वाप तां निशाम् ।
प्रजागरः सर्वजनं ह्याविवेश विशाम्पते ॥ १० ॥

राजन् ! उस रातमें पाण्डवोंके शिबिरमें कोई नहीं सोया । सब लोगोंमें जागरणका आवेश हो गया था ॥ १० ॥

पुत्रशोकाभितप्तेन प्रतिज्ञातो महात्मना ।
सहसा सिन्धुराजस्य वधो गाण्डीवधन्वना ॥ ११ ॥
तत् कथं नु महाबाहुर्वासविः परवीरहा ।
प्रतिज्ञां सफलां कुर्यादिति ते समचिन्तयन् ॥ १२ ॥

सब लोग इसी चिन्तामें पड़े थे कि पुत्रशोकसे संतप्त हुए गाण्डीवधारी महामना अर्जुनने सहसा सिंधुराज जयद्रथके वधकी प्रतिज्ञा कर ली है। शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले वे महाबाहु इन्द्रकुमार अपनी उस प्रतिज्ञाको कैसे सफल करेंगे?

कष्टं हीदं व्यवसितं पाण्डवेन महात्मना ।
पुत्रशोकाभितप्तेन प्रतिज्ञा महती कृता ॥ १३ ॥
स च राजा महावीर्यः पारयत्वर्जुनः स ताम् ।
भ्रातरश्चापि विक्रान्ता बहुलानि बलानि च ॥ १४ ॥

महामना पाण्डवने यह बड़ा कष्टप्रद निश्चय किया है। उन्होंने पुत्रशोकसे संतप्त होकर बड़ी भारी प्रतिज्ञा कर ली है। उधर राजा जयद्रथका पराक्रम भी महान् है, तथापि अर्जुन अपनी उस प्रतिज्ञाको पूरी कर लेंगे; क्योंकि उनके भाई भी बड़े पराक्रमी हैं और उनके पास सेनाएँ भी बहुत हैं ॥ १३–१४ ॥

धृतराष्ट्रस्य पुत्रेण सर्वं तस्मै निवेदितम् ।
स हत्वा सैन्धवं संख्ये पुनरेतु धनंजयः ॥ १५ ॥

धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनने जयद्रथको सब बातें बता दी होंगी। अर्जुन युद्धमें सिंधुराज जयद्रथको मारकर पुनः सकुशल लौट आवें (यही हमारी शुभ कामना है) ॥ १५ ॥

जित्वा रिपुगणांश्चैव पारयत्वर्जुनो व्रतम् ।
श्वोऽहत्वा सिन्धुराजं वै धूमकेतुं प्रवेक्ष्यति ॥ १६ ॥
न ह्यसावनृतं कर्तुमलं पार्थो धनंजयः ।
धर्मपुत्रः कथं राजा भविष्यति मृतेऽर्जुने ॥ १७ ॥

अर्जुन शत्रुओंको जीतकर अपना व्रत पूरा करें। यदि वे कल सिंधुराजको न मार सके तो अग्निमें प्रवेश कर जायँगे। कुन्तीकुमार धनंजय अपनी बात झूठी नहीं कर सकते। यदि अर्जुन मर गये तो धर्मपुत्र युधिष्ठिर कैसे राजा होंगे? ॥ १६–१७ ॥

तस्मिन् हि विजयः कृत्स्नः पाण्डवेन समाहितः ।
यदि नोऽस्ति कृतं किञ्चिद् यदि दत्तं हुतं यदि ॥ १८ ॥
फलेन तस्य सर्वस्य सव्यसाची जयत्वरीन् ।

पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने अर्जुनपर ही सारा विजयका भार रख दिया। यदि हमलोगोंका किया हुआ कुछ भी सत्कर्म शेष हो, यदि हमने दान और होम किये हों तो हमारे उन सभी शुभकर्मोंके फलसे सव्यसाची अर्जुन अपने शत्रुओंपर विजय प्राप्त करें ॥ १८½ ॥

एवं कथयतां तेषां जयमाशंसतां प्रभो ॥ १९ ॥
कृच्छ्रेण महता राजन् रजनी व्यत्यवर्तत ।

राजन्! प्रभो! इस प्रकार बातें करते और अर्जुनकी विजय चाहते हुए उन सभी सैनिकोंकी वह रात्रि महान् कष्टसे बीती थी ॥ १९½ ॥

तस्यां रजन्यां मध्ये तु प्रतिबुद्धो जनार्दनः ॥ २० ॥
स्मृत्वा प्रतिज्ञां पार्थस्य दारुकं प्रत्यभाषत ।

भगवान् श्रीकृष्ण उस रात्रिके मध्यकालमें जाग उठे और अर्जुनकी प्रतिज्ञाको स्मरण करके दारुकसे बोले—॥ २०½॥

अर्जुनेन प्रतिज्ञातमार्तेन हतबन्धुना ॥ २१ ॥
जयद्रथं वधिष्यामि श्वोभूत इति दारुक ।

'दारुक! अपने पुत्र अभिमन्युके मारे जानेसे शोकार्त होकर अर्जुनने यह प्रतिज्ञा कर ली है कि मैं कल जयद्रथका वध कर डालूँगा' ॥ २१½ ॥

तत्तु दुर्योधनः श्रुत्वा मन्त्रिभिर्मन्त्रयिष्यति ॥ २२ ॥
यथा जयद्रथं पार्थो न हन्यादिति संयुगे ।

'यह सब सुनकर दुर्योधन अपने मन्त्रियोंके साथ ऐसी मन्त्रणा करेगा' जिससे अर्जुन समरभूमिमें जयद्रथको मार न सकें॥

अक्षौहिण्यो हि ताः सर्वा रक्षिष्यन्ति जयद्रथम्॥ २३ ॥
द्रोणश्च सह पुत्रेण सर्वास्त्रविधिपारगः ।

'वे सारी अक्षौहिणी सेनाएँ जयद्रथकी रक्षा करेंगी तथा सम्पूर्ण अस्त्र-विधिके पारंगत विद्वान् द्रोणाचार्य भी अपने पुत्र अश्वत्थामाके साथ उसकी रक्षामें रहेंगे ॥ २३½ ॥

एको वीरः सहस्राक्षो दैत्यदानवदर्पहा ॥ २४ ॥
सोऽपि तं नोत्सहेताजौ हन्तुं द्रोणेन रक्षितम् ।

'त्रिलोकीके एकमात्र वीर हैं सहस्रनेत्रधारी इन्द्र, जो दैत्यों और दानवोंके भी दर्पका दलन करनेवाले हैं; परंतु वे भी द्रोणाचार्यसे सुरक्षित जयद्रथको युद्धमें मार नहीं सकते ॥

सोऽहं श्वस्तत् करिष्यामि यथा कुन्तीसुतोऽर्जुनः।२५।
अप्राप्तेऽस्तं दिनकरे हनिष्यति जयद्रथम् ।

'अतः मैं कल वह उद्योग करूँगा, जिससे कुन्तीपुत्र अर्जुन सूर्यदेवके अस्त होनेसे पहले जयद्रथको मार डालेंगे ॥

न हि दारा न मित्राणि ज्ञातयो न च बान्धवाः ॥ २६ ॥
कश्चिदन्यः प्रियतरः कुन्तीपुत्रान्ममार्जुनात् ।

'मुझे स्त्री, मित्र, कुटुम्बीजन, भाई-बन्धु तथा दूसरा कोई भी कुन्तीपुत्र अर्जुनसे अधिक प्रिय नहीं है ॥ २६½ ॥

अनर्जुनमिमं लोकं मुहूर्तमपि दारुक ॥ २७ ॥
उदीक्षितुं न शक्तोऽहं भविता न च तत् तथा ।

'दारुक! मैं अर्जुनसे रहित इस संसारको दो घड़ी भी नहीं देख सकता। ऐसा हो ही नहीं सकता (कि मेरे रहते अर्जुनका कोई अनिष्ट हो) ॥ २७½ ॥

अहं विजित्य तान् सर्वान् सहसा सहयद्विपान् ॥ २८ ॥
अर्जुनार्थे हनिष्यामि सकर्णान् ससुयोधनान् ।

'मैं अर्जुनके लिये हाथी, घोड़े, कर्ण और दुर्योधन-

सहित उन समस्त शत्रुओंको जीतकर सहसा उनका संहार कर डालूँगा ॥ २८½ ॥

श्वो निरीक्षन्तु मे वीर्यं त्रयो लोका महाहवे ॥ २९ ॥
धनंजयार्थे समरे पराक्रान्तस्य दारुक ।

'दारुक ! कलके महासमरमें तीनों लोक धनंजयके लिये युद्धमें पराक्रम प्रकट करते हुए मेरे बल और प्रभावको देखें ॥

श्वो नरेन्द्रसहस्राणि राजपुत्रशतानि च ॥ ३० ॥
साश्वद्विपरथान्याजौ विद्रविष्यामि दारुक ।

'दारुक ! कल युद्धमें मैं सहस्रों राजाओं तथा सैकड़ों राजकुमारोंको उनके घोड़े, हाथी एवं रथोंसहित मार भगाऊँगा ॥

श्वस्तां चक्रप्रमथितां द्रक्ष्यसे नृपवाहिनीम् ॥ ३१ ॥
मया क्रुद्धेन समरे पाण्डवार्थे निपातिताम् ।

'तुम कल देखोगे कि मैंने समराङ्गणमें कुपित होकर पाण्डुपुत्र अर्जुनके लिये सारी राजसेनाको चक्रसे चूर-चूर करके धरतीपर मार गिराया है ॥ ३१½ ॥

श्वः सदेवाः सगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ॥ ३२ ॥
ज्ञास्यन्ति लोकाः सर्वे मां सुहृदं सव्यसाचिनः ।

'कल देवता, गन्धर्व, पिशाच, नाग तथा राक्षस आदि समस्त लोक यह अच्छी तरह जान लेंगे कि मैं सव्यसाची अर्जुनका हितैषी मित्र हूँ ॥ ३२½ ॥

यस्तं द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्तं चानु स मामनु ॥ ३३ ॥
इति संकल्प्यतां बुद्ध्या शरीरार्द्धं ममार्जुनः ।

'जो अर्जुनसे द्वेष करता है, वह मुझसे द्वेष करता है और जो अर्जुनका अनुगामी है, वह मेरा अनुगामी है, तुम अपनी बुद्धिसे यह निश्चय कर लो कि अर्जुन मेरा आधा शरीर है ॥ ३३½ ॥

यथा त्वं मे प्रभातायामस्यां निशि रथोत्तमम् ॥ ३४ ॥
कल्पयित्वा यथाशास्त्रमादाय व्रज संयतः ।

'कल प्रातःकाल तुम शास्त्रविधिके अनुसार मेरे उत्तम रथको सुसज्जित करके सावधानीके साथ लेकर युद्धस्थलमें चलना ॥ ३४½ ॥

गदां कौमोदकीं दिव्यां शक्तिं चक्रं धनुः शरान् ॥ ३५ ॥
आरोप्य वै रथे सूत सर्वोपकरणानि च ।
स्थानं च कल्पयित्वाथ रथोपस्थे ध्वजस्य मे ॥ ३६ ॥
वैनतेयस्य वीरस्य समरे रथशोभिनः ।

'सूत ! कौमोदकी गदा, दिव्य शक्ति, चक्र, धनुष, बाण तथा अन्य सब आवश्यक सामग्रियोंको रथपर रखकर उसके पिछले भागमें समराङ्गणमें रथपर शोभा पानेवाले वीर विनतानन्दन गरुड़के चिह्नवाले ध्वजके लिये भी स्थान बना लेना ॥ ३५–३६½ ॥

छत्रं जाम्बूनदैर्जालैरर्कज्वलनसप्रभैः ॥ ३७ ॥
विश्वकर्मकृतैर्दिव्यैरश्वानपि विभूषितान् ।
बलाहकं मेघपुष्पं शैब्यं सुग्रीवमेव च ॥ ३८ ॥
युक्तान् वाजिवरान् यत्तः कवची तिष्ठ दारुक ।

'दारुक ! साथ ही उसमें छत्र लगाकर अग्नि और सूर्यके समान प्रकाशित होनेवाले तथा विश्वकर्माके बनाये हुए दिव्य सुवर्णमय जालोंसे विभूषित मेरे चारों श्रेष्ठ घोड़ों—बलाहक, मेघपुष्प, शैब्य तथा सुग्रीवको जोत लेना और स्वयं भी कवच धारण करके तैयार रहना ॥ ३७–३८½ ॥

पाञ्चजन्यस्य निर्घोषमार्षभेणैव पूरितम् ॥ ३९ ॥
श्रुत्वा च भैरवं नादमुपेयास्त्वं जवेन माम् ।

'पाञ्चजन्य शङ्खका ऋषभ स्वरसे बजाया हुआ शब्द और भयंकर कोलाहल सुनते ही तुम बड़े वेगसे मेरे पास पहुँच जाना ॥ ३९½ ॥

एकाह्नाहममर्षं च सर्वदुःखानि चैव ह ॥ ४० ॥
भ्रातुः पैतृष्वसेयस्य व्यपनेष्यामि दारुक ।

'दारुक ! मैं अपनी बुआजीके पुत्र भाई अर्जुनके सारे दुःख और अमर्षको एक ही दिनमें दूर कर दूँगा ॥४०½॥

सर्वोपायैर्यतिष्यामि यथा बीभत्सुराहवे ॥ ४१ ॥
पश्यतां धार्तराष्ट्राणां हनिष्यति जयद्रथम् ।

'सभी उपायोंसे ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे अर्जुन युद्धमें धृतराष्ट्रपुत्रोंके देखते-देखते जयद्रथको मार डालें ॥ ४१½ ॥

यस्य यस्य च बीभत्सुर्वधे यत्नं करिष्यति ।
आशंसे सारथे तत्र भवितास्य ध्रुवो जयः ॥ ४२ ॥

'सारथे ! कल अर्जुन जिस-जिस वीरके वधका प्रयत्न करेंगे, मैं आशा करता हूँ, वहाँ-वहाँ उनकी निश्चय ही विजय होगी' ॥ ४२ ॥

दारुक उवाच

जय एव ध्रुवस्तस्य कुत एव पराजयः ।
यस्य त्वं पुरुषव्याघ्र सारथ्यमुपजग्मिवान् ॥ ४३ ॥

दारुक बोला—पुरुषसिंह ! आप जिनके सारथि बने हुए हैं, उनकी विजय तो निश्चित है ही । उनकी पराजय कैसे हो सकती है ? ॥ ४३ ॥

एवं चैतत् करिष्यामि यथा मामनुशाससि ।
सुप्रभातामिमां रात्रिं जयाय विजयस्य हि ॥ ४४ ॥

अर्जुनकी विजयके लिये कल सबेरे जो कुछ करनेकी आप मुझे आज्ञा देते हैं, उसे उसी रूपमें मैं अवश्य पूर्ण करूँगा ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि कृष्णदारुकसम्भाषणे एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें श्रीकृष्ण और दारुककी बातचीतविषयक उन्नासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥७९॥

अशीतितमोऽध्यायः

अर्जुनका स्वप्नमें भगवान् श्रीकृष्णके साथ शिवजीके समीप जाना और उनकी स्तुति करना

संजय उवाच

कुन्तीपुत्रस्तु तं मन्त्रं स्मरन्नेव धनंजयः।
प्रतिज्ञामात्मनो रक्षन् मुमोहाचिन्त्यविक्रमः॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! इधर अचिन्त्य पराक्रमशाली कुन्तीपुत्र अर्जुन अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये (वनवासकालमें व्यासजीके बताये हुए शिवसम्बन्धी) मन्त्रका चिन्तन करते-करते नींदसे मोहित हो गये॥ १॥

तं तु शोकेन संतप्तं स्वप्ने कपिवरध्वजम्।
आससाद महातेजा ध्यायन्तं गरुडध्वजः॥ २॥

उस समय स्वप्नमें महातेजस्वी गरुड़ध्वज भगवान् श्रीकृष्ण शोकसंतप्त हो चिन्तामें पड़े हुए कपिध्वज अर्जुनके पास आये॥ २॥

प्रत्युत्थानं च कृष्णस्य सर्वावस्थो धनंजयः।
न लोपयति धर्मात्मा भक्त्या प्रेम्णा च सर्वदा॥ ३॥

धर्मात्मा धनंजय किसी भी अवस्थामें क्यों न हों, सदा प्रेम और भक्तिके साथ खड़े होकर श्रीकृष्णका स्वागत करते थे। अपने इस नियमका वे कभी लोप नहीं होने देते थे॥ ३॥

प्रत्युत्थाय च गोविन्दं स तस्मा आसनं ददौ।
न चासने स्वयं बुद्धिं बीभत्सुर्व्यदधात् तदा॥ ४॥

अर्जुनने खड़े होकर गोविन्दको बैठनेके लिये आसन दिया और स्वयं उस समय किसी आसनपर बैठनेका विचार उन्होंने नहीं किया॥ ४॥

ततः कृष्णो महातेजा जानन् पार्थस्य निश्चयम्।
कुन्तीपुत्रमिदं वाक्यमासीनः स्थितमब्रवीत्॥ ५॥

तब महातेजस्वी श्रीकृष्ण पार्थके इस निश्चयको जानकर अकेले ही आसनपर बैठ गये और खड़े हुए कुन्तीकुमारसे इस प्रकार बोले—॥ ५॥

मा विषादे मनः पार्थ कृथाः कालो हि दुर्जयः।
कालः सर्वाणि भूतानि नियच्छति परे विधौ॥ ६॥

'कुन्तीनन्दन! तुम अपने मनको विषादमें न डालो; क्योंकि कालपर विजय पाना अत्यन्त कठिन है। काल ही समस्त प्राणियोंको विधाताके अवश्यम्भावी विधानमें प्रवृत्त कर देता है॥ ६॥

किमर्थं च विषादस्ते तद् ब्रूहि द्विपदां वर।
न शोच्यं विदुषां श्रेष्ठ शोकः कार्यविनाशनः॥ ७॥

'मनुष्योंमें श्रेष्ठ अर्जुन! बताओ तो सही, तुम्हें किस लिये विषाद हो रहा है? विद्वद्वर! तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये; क्योंकि शोक समस्त कर्मोंका विनाश करनेवाला है॥

यत् तु कार्यं भवेत् कार्यं कर्मणा तत् समाचर।
हीनचेष्टस्य यः शोकः स हि शत्रुर्धनंजय॥ ८॥

'जो कार्य करना हो, उसे प्रयत्नपूर्वक करो। धनंजय! उद्योगहीन मनुष्यका जो शोक है, वह उसके लिये शत्रुके समान है॥ ८॥

शोचन् नन्दयते शत्रून् कर्शयत्यपि बान्धवान्।
क्षीयते च नरस्तस्मान्न त्वं शोचितुमर्हसि॥ ९॥

'शोक करनेवाला पुरुष अपने शत्रुओंको आनन्दित करता और बन्धु-बान्धवोंको दुःखसे दुर्बल बनाता है। इसके सिवा वह स्वयं भी शोकके कारण क्षीण होता जाता है। अतः तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये'॥ ९॥

इत्युक्तो वासुदेवेन बीभत्सुरपराजितः।
आबभाषे तदा विद्वानिदं वचनमर्थवत्॥ १०॥

वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर किसीसे पराजित न होनेवाले विद्वान् अर्जुनने यह अर्थयुक्त वचन उस समय कहा—॥ १०॥

मया प्रतिज्ञा महती जयद्रथवधे कृता।
श्वोऽस्मि हन्ता दुरात्मानं पुत्रघ्नमिति केशव॥ ११॥

'केशव! मैंने जयद्रथ-वधके लिये यह भारी प्रतिज्ञा कर ली है कि कल मैं अपने पुत्रके घातक दुरात्मा सिंधुराजको अवश्य मार डालूँगा॥ ११॥

मत्प्रतिज्ञाविघातार्थं धार्तराष्ट्रैः किलाच्युत।
पृष्ठतः सैन्धवः कार्यः सर्वैर्गुप्तो महारथैः॥ १२॥

'परंतु अच्युत! धृतराष्ट्र-पक्षके सभी महारथी मेरी प्रतिज्ञा भङ्ग करनेके लिये सिंधुराजको निश्चय ही सबसे पीछे खड़े करेंगे और वह उन सबके द्वारा सुरक्षित होगा॥ १२॥

दश चैका च ताः कृष्ण अक्षौहिण्यः सुदुर्जयाः।
हतावशेषास्तत्रेमा हन्त माधव संख्यया॥ १३॥
ताभिः परिवृतः संख्ये सर्वैश्चैव महारथैः।
कथं शक्येत संद्रष्टुं दुरात्मा कृष्ण सैन्धवः॥ १४॥

'माधव! श्रीकृष्ण! कौरवोंकी वे ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ, जो अत्यन्त दुर्जय हैं और उनमें मरनेसे बचे हुए जितने सैनिक विद्यमान हैं, उनसे तथा पूर्वोक्त सभी महारथियोंसे युद्धस्थलमें घिरे होनेपर दुरात्मा सिंधुराजको कैसे देखा जा सकता है?॥ १३-१४॥

प्रतिज्ञापारणं चापि न भविष्यति केशव।
प्रतिज्ञायां च हीनायां कथं जीवेत मद्विधः॥ १५॥

'केशव! ऐसी अवस्थामें प्रतिज्ञाकी पूर्ति नहीं हो

सकेगा और प्रतिज्ञा भङ्ग होनेपर मेरे-जैसा पुरुष कैसे जीवन धारण कर सकता है ? ॥ १५ ॥

दुःखोपायस्य मे वीर विकाङ्क्षा परिवर्तते ।
द्रुतं च याति सविता तत एतद् ब्रवीम्यहम् ॥ १६ ॥

'वीर ! अब इस कष्टसाध्य (जयद्रथवधरूपी कार्य) की ओरसे मेरी अभिलाषा परिवर्तित हो रही है । इसके सिवा इन दिनों सूर्य जल्दी अस्त हो जाते हैं; इसलिये मैं ऐसा कह रहा हूँ' ॥ १६ ॥

शोकस्थानं तु तच्छ्रुत्वा पार्थस्य द्विजकेतनः ।
संस्पृश्याम्भस्ततः कृष्णःप्राङ्मुखःसमवस्थितः॥१७॥
इदं वाक्यं महातेजा बभाषे पुष्करेक्षणः ।
हितार्थं पाण्डुपुत्रस्य सैन्धवस्य वधे कृती ॥ १८ ॥

अर्जुनके शोकका आधार क्या है, यह सुनकर महातेजस्वी विद्वान् गरुड़ध्वज कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण आचमन करके पूर्वाभिमुख होकर बैठे और पाण्डुपुत्र अर्जुनके हित तथा सिंधुराज जयद्रथके वधके लिये इस प्रकार बोले—१७-१८

पार्थ पाशुपतं नाम परमास्त्रं सनातनम् ।
येन सर्वान् मृधे दैत्याञ्जघ्ने देवो महेश्वरः ॥ १९ ॥

'पार्थ ! पाशुपत नामक एक परम उत्तम सनातन अस्त्र है, जिससे युद्धमें भगवान् महेश्वरने समस्त दैत्योंका वध किया था ॥ १९ ॥

यदि तद् विदितं तेऽद्य श्वो हन्तासि जयद्रथम् ।
अथाज्ञातं प्रपद्यस्व मनसा वृषभध्वजम् ॥ २० ॥
तं देवं मनसा ध्यात्वा जोषमास्स्व धनंजय ।
ततस्तस्य प्रसादात् त्वं भक्तः प्राप्स्यसि तन्महत् ॥२१॥

'यदि वह अस्त्र आज तुम्हें विदित हो तो तुम अवश्य कल जयद्रथको मार सकते हो और यदि तुम्हें उसका ज्ञान न हो तो मन-ही-मन भगवान् वृषभध्वज (शिव) की शरण लो । धनंजय ! तुम मनमें उन महादेवजीका ध्यान करते हुए चुपचाप बैठ जाओ । तब उनके दया-प्रसादसे तुम उनके भक्त होनेके कारण उस महान् अस्त्रको प्राप्त कर लोगे' ॥

ततः कृष्णवचः श्रुत्वा संस्पृश्याम्भो धनंजयः ।
भूमावासीन एकाग्रो जगाम मनसा भवम् ॥ २२ ॥

भगवान् श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर अर्जुन जलका आचमन करके धरतीपर एकाग्र होकर बैठ गये और मनसे महादेवजीका चिन्तन करने लगे ॥ २२ ॥

ततः प्रणिहितो ब्राह्मे मुहूर्ते शुभलक्षणे ।
आत्मानमर्जुनोऽपश्यद् गगने सहकेशवम् ॥ २३ ॥

तब शुभ लक्षणोंसे युक्त ब्राह्म मुहूर्तमें ध्यानस्थ होनेपर अर्जुनने अपने आपको भगवान् श्रीकृष्णके साथ आकाशमें जाते देखा ॥ २३ ॥

पुण्यं हिमवतः पादं मणिमन्तं च पर्वतम् ।
ज्योतिर्भिश्च समाकीर्णं सिद्धचारणसेवितम् ॥ २४ ॥

पवित्र हिमालयके शिखर तथा तेजःपुञ्जसे व्याप्त एवं सिद्धों और चारणोंसे सेवित मणिमान् पर्वतको भी देखा ॥२४॥

वायुवेगगतिः पार्थः खं भेजे सहकेशवः ।
केशवेन गृहीतः स दक्षिणे विभुना भुजे ॥ २५ ॥

उस समय अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णके साथ वायुवेगके समान तीव्रगतिसे आकाशमें बहुत ऊँचे उठ गये । भगवान् केशवने उनकी दाहिनी बाँह पकड़ रक्खी थी ॥ २५ ॥

प्रेक्षमाणो बहून् भावाञ्जगामाद्भुतदर्शनान् ।
उदीच्यां दिशि धर्मात्मा सोऽपश्यच्छ्वेतपर्वतम्॥२६॥

तत्पश्चात् धर्मात्मा अर्जुनने अद्भुत दिखायी देनेवाले बहुत-से पदार्थोंको देखते हुए क्रमशः उत्तर दिशामें जाकर श्वेत पर्वतका दर्शन किया ॥ २६ ॥

कुबेरस्य विहारे च नलिनीं पद्मभूषिताम् ।
सरिच्छ्रेष्ठां च तां गङ्गां वीक्षमाणो बहूदकाम् ॥ २७ ॥

इसके बाद उन्होंने कुबेरके उद्यानमें कमलोंसे विभूषित सरोवर तथा अगाध जलराशिसे भरी हुई सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गाका अवलोकन किया ॥ २७ ॥

सदा पुष्पफलैर्वृक्षैरुपेतां स्फटिकोपलाम् ।
सिंहव्याघ्रसमाकीर्णां नानामृगसमाकुलाम् ॥ २८ ॥

गङ्गाके तटपर स्फटिकमणिमय पत्थर सुशोभित होते थे । सदा फूल और फलोंसे भरे हुए वृक्षसमूह वहाँकी शोभा बढ़ा रहे थे । गङ्गाके उस तटप्रान्तमें बहुत-से सिंह और व्याघ्र विचरण करते थे । नाना प्रकारके मृग वहाँ सब ओर भरे हुए थे ॥ २८ ॥

पुण्याश्रमवतीं रम्यां मनोज्ञाण्डजसेविताम् ।
मन्दरस्य प्रदेशांश्च किन्नरोद्गीतनादितान् ॥ २९ ॥

अनेक पवित्र आश्रमोंसे युक्त और मनोहर पक्षियोंसे सेवित रमणीय गङ्गानदीका दर्शन करते हुए आगे बढ़नेपर उन्हें मन्दराचलके प्रदेश दिखायी दिये, जो किन्नरोंके उच्चस्वरसे गाये हुए मधुर गीतोंसे मुखरित हो रहे थे ।२९।

हेमरूप्यमयैः शृङ्गैर्नानौषधिविदीपितान् ।
तथा मन्दारवृक्षैश्च पुष्पितैरुपशोभितान् ॥ ३० ॥

सोने और चाँदीके शिखर तथा फूलोंसे भरे हुए पारिजातके वृक्ष उन पर्वतीय प्रान्तोंकी शोभा बढ़ा रहे थे तथा भाँति-भाँतिकी तेजोमयी ओषधियाँ वहाँ अपना प्रकाश फैला रही थीं ॥ ३० ॥

स्निग्धाञ्जनचयाकारं सम्प्राप्तः कालपर्वतम् ।
ब्रह्मतुङ्गं नदीश्चान्यास्तथा जनपदानपि ॥ ३१ ॥

वे क्रमशः आगे बढ़ते हुए स्निग्ध कज्जलराशिके समान आकारवाले काल पर्वतके समीप जा पहुँचे । फिर



अर्जुनका स्वप्नदर्शन

ब्रह्मतुंग पर्वत, अन्यान्य नदियों तथा बहुत-से जनपदोंको भी उन्होंने देखा ॥ ३१ ॥

स तुङ्गं शतश्रृङ्गं च शर्यातिवनमेव च ।
पुण्यमश्वशिरःस्थानं स्थानमाथर्वणस्य च ॥ ३२ ॥
वृषदंशं च शैलेन्द्रं महामन्दरमेव च ।
अप्सरोभिः समाकीर्णं किन्नरैश्चोपशोभितम् ॥ ३३ ॥

तदनन्तर क्रमशः उच्चतम शतश्रृङ्ग, शर्यातिवन, पवित्र अश्वशिरःस्थान, आथर्वण मुनिका स्थान और गिरिराज वृषदंशका अवलोकन करते हुए वे महा-मन्दराचलपर जा पहुँचे, जो अप्सराओंसे व्याप्त और किन्नरोंसे सुशोभित था ॥ ३२-३३ ॥

तस्मिञ्शैले व्रजन् पार्थः सकृष्णः समवैक्षत ।
शुभैः प्रस्रवणैर्जुष्टां हेमधातुविभूषिताम् ॥ ३४ ॥
चन्द्ररश्मिप्रकाशाङ्गीं पृथिवीं पुरमालिनीम् ।

उस पर्वतके ऊपरसे जाते हुए श्रीकृष्णसहित अर्जुनने नीचे देखा कि नगरों एवं गाँवोंके समुदायसे सुशोभित, सुवर्णमय धातुओंसे विभूषित तथा सुन्दर झरनोंसे युक्त पृथ्वीके सम्पूर्ण अङ्ग चन्द्रमाकी किरणोंसे प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ३४½ ॥

समुद्रांश्चाद्भुताकारानपश्यद् बहुलाकरान् ॥ ३५ ॥
वियद् द्यां पृथिवीं चैव तथा विष्णुपदं व्रजन् ।
विस्मितः सह कृष्णेन क्षिप्तो बाण इवाभ्यगात् ॥ ३६ ॥

बहुत-से रत्नोंकी खानोंसे युक्त समुद्र भी अद्भुत आकारमें दृष्टिगोचर हो रहे थे। इस प्रकार पृथ्वी, अन्तरिक्ष और आकाशका एक साथ दर्शन करके आश्चर्यचकित हुए अर्जुन श्रीकृष्णके साथ विष्णुपद (उच्चतम आकाश) में यात्रा करने लगे। वे धनुषसे चलाये हुए बाणके समान आगे बढ़ रहे थे ॥ ३५-३६ ॥

ग्रहनक्षत्रसोमानां सूर्याग्न्योश्च समत्विषम् ।
अपश्यत तदा पार्थो ज्वलन्तमिव पर्वतम् ॥ ३७ ॥

तदनन्तर कुन्तीकुमार अर्जुनने एक पर्वतको देखा, जो अपने तेजसे प्रज्वलित-सा हो रहा था। ग्रह, नक्षत्र, चन्द्रमा, सूर्य और अग्निके समान उसकी प्रभा सब ओर फैल रही थी ॥ ३७ ॥

समासाद्य तु तं शैलं शैलाग्रे समवस्थितम् ।
तपोनित्यं महात्मानमपश्यद् वृषभध्वजम् ॥ ३८ ॥

उस पर्वतपर पहुँचकर अर्जुनने उसके एक शिखरपर खड़े हुए नित्य तपस्यापरायण परमात्मा भगवान् वृषभध्वजका दर्शन किया ॥ ३८ ॥

सहस्रमिव सूर्याणां दीप्यमानं स्वतेजसा ।
शूलिनं जटिलं गौरं वल्कलाजिनवाससम् ॥ ३९ ॥

वे अपने तेजसे सहस्रों सूर्योंके समान प्रकाशित हो रहे थे। उनके हाथमें त्रिशूल, मस्तकपर जटा और श्रीअङ्गोंपर वल्कल एवं मृगचर्मके वस्त्र शोभा पा रहे थे। उनकी कान्ति गौरवर्णकी थी ॥ ३९ ॥

नयनानां सहस्रैश्च विचित्राङ्गं महौजसम् ।
पार्वत्या सहितं देवं भूतसंघैश्च भास्वरैः ॥ ४० ॥

सहस्रों नेत्रोंसे युक्त उनके श्रीविग्रहकी विचित्र शोभा हो रही थी। वे तेजस्वी महादेव अपनी धर्मपत्नी पार्वतीजीके साथ विराजमान थे और तेजोमय शरीरवाले भूतोंके समुदाय उनकी सेवामें उपस्थित थे ॥ ४० ॥

गीतवादित्रसंनादैर्हास्यलास्यसमन्वितम् ।
वल्गितास्फोटितोत्क्रुष्टैः पुण्यैर्गन्धैश्च सेवितम् ॥ ४१ ॥

उनके सम्मुख गीतों और वाद्योंकी मधुर ध्वनि हो रही थी। हास्य-लास्य (नृत्य) का प्रदर्शन किया जा रहा था। प्रमथगण उछल-कूदकर बाहें फैलाकर और उच्चस्वरसे बोल-बोलकर अपनी कलाओंसे भगवान्‌का मनोरंजन करते थे। उनकी सेवामें पवित्र, सुगन्धित पदार्थ प्रस्तुत किये गये थे ॥

स्तूयमानं स्तवैर्दिव्यैर्ऋषिभिर्ब्रह्मवादिभिः ।
गोप्तारं सर्वभूतानामिष्वासधरमच्युतम् ॥ ४२ ॥

ब्रह्मवादी महर्षिगण दिव्य स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति कर रहे थे। अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले वे समस्त प्राणियोंके रक्षक भगवान् शिव धनुष धारण किये हुए (अद्भुत शोभा पा रहे) थे ॥ ४२ ॥

वासुदेवस्तु तं दृष्ट्वा जगाम शिरसा क्षितिम् ।
पार्थेन सह धर्मात्मा गृणन् ब्रह्म सनातनम् ॥ ४३ ॥

अर्जुनसहित धर्मात्मा वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने उन्हें देखते ही वहाँकी पृथ्वीपर माथा टेककर प्रणाम किया और उन सनातन ब्रह्मस्वरूप भगवान् शिवकी स्तुति करने लगे ॥

लोकादिं विश्वकर्माणमजमीशानमव्ययम् ।
मनसः परमं योनिं खं वायुं ज्योतिषां निधिम् ॥ ४४ ॥
स्रष्टारं वारिधाराणां भुवश्च प्रकृतिं पराम् ।
देवदानवयक्षाणां मानवानां च साधनम् ॥ ४५ ॥
योगानां च परं धाम दृष्टं ब्रह्मविदां निधिम् ।
चराचरस्य स्रष्टारं प्रतिहर्तारमेव च ॥ ४६ ॥
कालकोपं महात्मानं शक्रसूर्यगुणोदयम् ।
ववन्दे तं तदा कृष्णो वाङ्मनोबुद्धिकर्मभिः ॥ ४७ ॥

वे जगत्‌के आदि कारण, लोकस्रष्टा, अजन्मा, ईश्वर, अविनाशी, मनकी उत्पत्तिके प्रधान कारण, आकाश एवं वायुस्वरूप, तेजके आश्रय, जलकी सृष्टि करनेवाले, पृथ्वीके भी परम कारण, देवताओं, दानवों, यक्षों तथा मनुष्योंके भी प्रधान कारण, सम्पूर्ण योगोंके परम आश्रय, ब्रह्मवेत्ताओंकी

प्रत्यक्ष निधि, चराचर जगत्की सृष्टि और संहार करनेवाले तथा इन्द्रके ऐश्वर्य आदि और सूर्यदेवके प्रताप आदि गुणोंको प्रकट करनेवाले परमात्मा थे। उनके क्रोधमें कालका निवास था। उस समय भगवान् श्रीकृष्णने मन, वाणी, बुद्धि और क्रियाओंद्वारा उनकी वन्दना की ॥ ४४—४७ ॥

यं प्रपद्यन्ति विद्वांसः सूक्ष्माध्यात्मपदैषिणः ।
तमजं कारणात्मानं जग्मतुः शरणं भवम् ॥ ४८ ॥

सूक्ष्म अध्यात्मपदकी अभिलाषा रखनेवाले विद्वान् जिनकी शरण लेते हैं, उन्हीं कारणस्वरूप अजन्मा भगवान् शिवकी शरणमें श्रीकृष्ण और अर्जुन भी गये ॥ ४८ ॥

अर्जुनश्चापि तं देवं भूयो भूयोऽभ्यवन्दत ।
ज्ञात्वा तं सर्वभूतादिं भूतभव्यभवोद्भवम् ॥ ४९ ॥

अर्जुनने भी उन्हें समस्त भूतोंका आदि कारण और भूत, भविष्य एवं वर्तमान जगत्का उत्पादक जानकर बारंबार उन महादेवजीके चरणोंमें प्रणाम किया ॥ ४९ ॥

ततस्तावागतौ दृष्ट्वा नरनारायणावुभौ ।
सुप्रसन्नमनाः शर्वः प्रोवाच प्रहसन्निव ॥ ५० ॥

उन दोनों नर और नारायणको वहाँ आया देख भगवान् शंकर अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर हँसते हुए-से बोले—॥

स्वागतं वो नरश्रेष्ठावुत्तिष्ठेतां गतक्लमौ ।
किं च वामीप्सितं वीरौ मनसः क्षिप्रमुच्यताम् ॥ ५१ ॥

'नरश्रेष्ठो ! तुम दोनोंका स्वागत है। उठो। तुम्हारा श्रम दूर हो। वीरो ! तुम दोनोंके मनकी अभीष्ट वस्तु क्या है ? यह शीघ्र बताओ ॥ ५१ ॥

येन कार्येण सम्प्राप्तौ युवां तत् साधयामि किम् ।
व्रियतामात्मनः श्रेयस्तत् सर्वं प्रददानि वाम् ॥ ५२ ॥

'तुम दोनों जिस कार्यसे यहाँ आये हो, वह क्या है ? मैं उसे सिद्ध कर दूँगा। अपने लिये कल्याणकारी वस्तुको माँगो। मैं तुम दोनोंको सब कुछ दे सकता हूँ' ॥ ५२ ॥

ततस्तद् वचनं श्रुत्वा प्रत्युत्थाय कृताञ्जली ।
वासुदेवार्जुनौ शर्वं तुष्टुवाते महामती ॥ ५३ ॥
भक्त्या स्तवेन दिव्येन महात्मानावनिन्दितौ ॥ ५४ ॥

भगवान् शंकरकी यह बात सुनकर अनिन्दित महात्मा परम बुद्धिमान् श्रीकृष्ण और अर्जुन हाथ जोड़कर खड़े हो गये और दिव्य स्तोत्रद्वारा भक्तिभावसे उन भगवान् शिवकी स्तुति करने लगे ॥ ५३-५४ ॥

कृष्णार्जुनावूचतुः

नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च ।
पशूनां पतये नित्यमुग्राय च कपर्दिने ॥ ५५ ॥

श्रीकृष्ण और अर्जुन बोले—भव (सबकी उत्पत्ति करनेवाले), शर्व (संहारकारी), रुद्र (दुःख दूर करनेवाले[1]), वरदाता, पशुपति (जीवोंके पालक), सदा उग्ररूपमें रहनेवाले और जटाजूटधारी भगवान् शिवको नमस्कार है ॥ ५५ ॥

महादेवाय भीमाय त्र्यम्बकाय च शान्तये ।
ईशानाय मखघ्नाय नमोऽस्त्वन्धकघातिने ॥ ५६ ॥

महान् देवता, भयंकर रूपधारी, तीन नेत्र धारण करनेवाले, शान्तिस्वरूप, सबका शासन करनेवाले, दक्ष-यज्ञनाशक तथा अन्धकासुरका विनाश करनेवाले भगवान् शंकरको प्रणाम है ॥ ५६ ॥

कुमारगुरवे तुभ्यं नीलग्रीवाय वेधसे ।
पिनाकिने हविष्याय सत्याय विभवे सदा ॥ ५७ ॥

प्रभो ! आप कुमार कार्तिकेयके पिता, कण्ठमें नील चिह्न धारण करनेवाले, लोकस्रष्टा, पिनाकधारी, हविष्यके अधिकारी, सत्यस्वरूप और सर्वत्र व्यापक हैं, आपको सदैव नमस्कार है ॥ ५७ ॥

विलोहिताय धूम्राय व्याधायानपराजिते ।
नित्यनीलशिखण्डाय शूलिने दिव्यचक्षुषे ॥ ५८ ॥
हन्त्रे गोप्त्रे त्रिनेत्राय व्याधाय वसुरेतसे ।
अचिन्त्यायाम्बिकाभर्त्रे सर्वदेवस्तुताय च ॥ ५९ ॥
वृषध्वजाय मुण्डाय जटिने ब्रह्मचारिणे ।
तप्यमानाय सलिले ब्रह्मण्यायाजिताय च ॥ ६० ॥
विश्वात्मने विश्वसृजे विश्वमावृत्य तिष्ठते ।
नमो नमस्ते सेव्याय भूतानां प्रभवे सदा ॥ ६१ ॥

विशेष लोहित एवं धूम्रवर्णवाले, मृगव्याधस्वरूप, समस्त प्राणियोंको पराजित करनेवाले, सर्वदा नीलकेश धारण करनेवाले, त्रिशूलधारी, दिव्यलोचन, संहारक, पालक, त्रिनेत्रधारी, पापरूपी मृगोंके बधिक, हिरण्यरेता (अग्नि), अचिन्त्य, अम्बिकापति, सम्पूर्ण देवताओंद्वारा प्रशंसित, वृषभ-चिह्नसे युक्त ध्वजा धारण करनेवाले, मुण्डित मस्तक, जटाधारी, ब्रह्मचारी, जलमें तप करनेवाले, ब्राह्मणभक्त, अपराजित, विश्वात्मा, विश्वस्रष्टा, विश्वको व्याप्त करके स्थित, सबके सेवन करनेयोग्य तथा सदा समस्त प्राणियोंकी उत्पत्तिके कारणभूत आप भगवान् शिवको बारंबार नमस्कार है। ५८-६१ ।

ब्रह्मवक्त्राय सर्वाय शङ्कराय शिवाय च ।
नमोऽस्तु वाचस्पतये प्रजानां पतये नमः ॥ ६२ ॥

ब्राह्मण जिनके मुख हैं, उन सर्वस्वरूप कल्याणकारी भगवान् शिवको नमस्कार है। वाणीके अधीश्वर और प्रजाओंके पालक आपको नमस्कार है ॥ ६२ ॥

नमो विश्वस्य पतये महतां पतये नमः ।
नमः सहस्रशिरसे सहस्रभुजमृत्यवे ॥ ६३ ॥
सहस्रनेत्रपादाय नमोऽसंख्येयकर्मणे ।

1. रुर्दुःखं तद् द्रावयति इति रुद्रः ।

विश्वके स्वामी और महापुरुषोंके पालक भगवान् शिवको नमस्कार है, जिनके सहस्रों सिर और सहस्रों भुजाएँ हैं, जो मृत्यु-स्वरूप हैं, जिनके नेत्र और पैर भी सहस्रोंकी संख्यामें हैं तथा जिनके कर्म असंख्य हैं, उन भगवान् शिवको नमस्कार है ६३½

नमो हिरण्यवर्णाय हिरण्यकवचाय च ।
भक्तानुकम्पिने नित्यं सिध्यतां नो वरः प्रभो ॥ ६४ ॥

सुवर्णके समान जिनका रंग है, जो सुवर्णमय कवच धारण करते हैं, उन आप भक्तवत्सल भगवान्‌को मेरा नित्य नमस्कार है । प्रभो ! हमारा अभीष्ट वर सिद्ध हो ॥ ६४ ॥

संजय उवाच

एवं स्तुत्वा महादेवं वासुदेवः सहार्जुनः ।
प्रसादयामास भवं तदा ह्यस्त्रोपलब्धये ॥ ६५ ॥

संजय कहते हैं—इस प्रकार महादेवजीकी स्तुति करके उस समय अर्जुनसहित भगवान् श्रीकृष्णने पाशुपतास्त्र-की प्राप्तिके लिये भगवान् शङ्करको प्रसन्न किया ॥ ६५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनस्वप्ने अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें अर्जुनस्वप्नविषयक अस्सीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८० ॥

एकाशीतितमोऽध्यायः

अर्जुनको स्वप्नमें ही पुनः पाशुपतास्त्रकी प्राप्ति

संजय उवाच

ततः पार्थः प्रसन्नात्मा प्राञ्जलिर्वृषभध्वजम् ।
ददर्शोत्फुल्लनयनः समस्तं तेजसां निधिम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर कुन्तीकुमार अर्जुनने प्रसन्नचित्त हो हाथ जोड़कर समस्त तेजोंके भण्डार भगवान् वृषभध्वजका हर्षोत्फुल्ल नेत्रोंसे दर्शन किया ॥ १ ॥

तं चोपहारं सुकृतं नैशं नैत्यकमात्मना ।
ददर्श त्र्यम्बकाभ्याशे वासुदेवनिवेदितम् ॥ २ ॥

उन्होंने अपनेद्वारा समर्पित किये हुए रात्रिकालके उस नैत्यिक उपहारको, जिसे श्रीकृष्णको निवेदित किया था, भगवान् त्रिनेत्रधारी शिवके समीप रक्खा हुआ देखा ॥ २ ॥

ततोऽभिपूज्य मनसा कृष्णं शर्वं च पाण्डवः ।
इच्छाम्यहं दिव्यमस्त्रमित्यभाषत शङ्करम् ॥ ३ ॥

तब पाण्डुपुत्र अर्जुनने मन-ही-मन भगवान् श्रीकृष्ण और शिवकी पूजा करके भगवान् शङ्करसे कहा—'प्रभो ! मैं आपसे दिव्य अस्त्र प्राप्त करना चाहता हूँ' ॥ ३ ॥

ततः पार्थस्य विज्ञाय वरार्थे वचनं तदा ।
वासुदेवार्जुनौ देवः स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ ४ ॥

उस समय अर्जुनका वर-प्राप्तिके लिये वह वचन सुनकर महादेवजी मुसकराने लगे और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनसे बोले—॥

स्वागतं वां नरश्रेष्ठौ विज्ञातं मनसेप्सितम् ।
येन कामेन सम्प्राप्तौ भवद्भ्यां तं ददाम्यहम्॥ ५ ॥

'नरश्रेष्ठ ! तुम दोनोंका स्वागत है । तुम्हारा मनोरथ मुझे विदित है । तुम दोनों जिस कामनासे यहाँ आये हो, उसे मैं तुम्हें दे रहा हूँ ॥ ५ ॥

सरोऽमृतमयं दिव्यमभ्याशे शत्रुसूदनौ ।
तत्र मे तद् धनुर्दिव्यं शरश्च निहितः पुरा ॥ ६ ॥
येन देवारयः सर्वे मया युधि निपातिताः ।
तत आनीयतां कृष्णौ सशरं धनुरुत्तमम् ॥ ७ ॥

'शत्रुसूदन वीरो ! यहाँ पास ही दिव्य अमृतमय सरोवर है; वहीं पूर्वकालमें मेरा वह दिव्य धनुष और बाण रक्खा गया था, जिसके द्वारा मैंने युद्धमें सम्पूर्ण देव-शत्रुओंको मार गिराया था । कृष्ण ! तुम दोनों उस सरोवरसे बाणसहित वह उत्तम धनुष ले आओ' ॥ ६-७ ॥

तथेत्युक्त्वा तु तौ वीरौ सर्वपारिषदैः सह ।
प्रस्थितौ तत्सरो दिव्यं दिव्यैश्वर्यशतैर्युतम् ॥ ८ ॥
निर्दिष्टं यद् वृषाङ्केण पुण्यं सर्वार्थसाधकम् ।
तौ जग्मतुरसम्भ्रान्तौ नरनारायणावृषी ॥ ९ ॥

तब 'बहुत अच्छा' कहकर वे दोनों वीर भगवान् शङ्कर-के पार्षदगणोंके साथ सैकड़ों दिव्य ऐश्वर्योंसे सम्पन्न तथा सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि करनेवाले उस पुण्यमय दिव्य सरोवरकी ओर प्रस्थित हुए, जिसकी ओर जानेके लिये महादेवजीने स्वयं ही संकेत किया था । वे दोनों नर-नारायण ऋषि बिना किसी घबराहटके वहाँ जा पहुँचे ॥ ८-९ ॥

ततस्तौ तत् सरो गत्वा सूर्यमण्डलसंनिभम् ।
नागमन्तर्जले घोरं ददृशातेऽर्जुनाच्युतौ ॥ १० ॥

उस सरोवरके तटपर पहुँचकर अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनोंने जलके भीतर एक भयंकर नाग देखा, जो सूर्यमण्डलके समान प्रकाशित हो रहा था॥ १० ॥

द्वितीयं चापरं नागं सहस्रशिरसं वरम् ।
वमन्तं विपुला ज्वाला ददृशातेऽग्निवर्चसम् ॥ ११ ॥

वहीं उन्होंने अग्निके समान तेजस्वी और सहस्र फणोंसे युक्त दूसरा श्रेष्ठ नाग भी देखा, जो अपने मुखसे आगकी प्रचण्ड ज्वालाएँ उगल रहा था ॥ ११ ॥

ततः कृष्णश्च पार्थश्च संस्पृश्याम्भः कृताञ्जली ।
तौ नागावुपतस्थाते नमस्यन्तौ वृषध्वजम् ॥ १२ ॥

तब श्रीकृष्ण और अर्जुन जलसे आचमन करके हाथ जोड़ भगवान् शङ्करको प्रणाम करते हुए उन दोनों नागोंके निकट खड़े हो गये ॥ १२ ॥

गृणन्तौ वेदविद्वांसौ तद् ब्रह्म शतरुद्रियम्।
अप्रमेयं प्रणमतो गत्वा सर्वात्मना भवम् ॥ १३ ॥

वे दोनों ही वेदोंके विद्वान् थे। अतः उन्होंने शतरुद्री मन्त्रोंका पाठ करते हुए साक्षात् ब्रह्मस्वरूप अप्रमेय शिवकी सब प्रकारसे शरण लेकर उन्हें प्रणाम किया ॥ १३ ॥

ततस्तौ रुद्रमाहात्म्याद्धित्वा रूपं महोरगौ।
धनुर्बाणश्च शत्रुघ्नं तद् द्वन्द्वं समपद्यत ॥ १४ ॥

तदनन्तर भगवान् शङ्करकी महिमासे वे दोनों महानाग अपने उस रूपको छोड़कर दो शत्रुनाशक धनुष-बाणके रूपमें परिणत हो गये ॥ १४ ॥

तौ तज्जगृहतुः प्रीतौ धनुर्बाणं च सुप्रभम्।
आजह्रतुर्महात्मानौ ददतुश्च महात्मने ॥ १५ ॥

उस समय अत्यन्त प्रसन्न होकर महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुनने उस प्रकाशमान धनुष और बाणको हाथमें ले लिया। फिर वे उन्हें महादेवजीके पास ले आये और उन्हीं महात्माके हाथोंमें अर्पित कर दिया ॥ १५ ॥

ततः पार्श्वाद् वृषाङ्कस्य ब्रह्मचारी न्यवर्तत।
पिङ्गाक्षस्तपसः क्षेत्रं बलवान् नीललोहितः ॥ १६ ॥

तब भगवान् शङ्करके पार्श्वभागसे एक ब्रह्मचारी प्रकट हुआ, जो पिङ्गल नेत्रोंसे युक्त, तपस्याका क्षेत्र, बलवान् तथा नील-लोहित वर्णका था ॥ १६ ॥

स तद् गृह्य धनुःश्रेष्ठं तस्थौ स्थानं समाहितः।
विचकर्षाथ विधिवत् सशरं धनुरुत्तमम् ॥ १७ ॥

वह एकाग्रचित्त हो उस श्रेष्ठ धनुषको हाथमें लेकर एक धनुर्धरको जैसे खड़ा होना चाहिये, वैसे खड़ा हुआ। फिर उसने बाणसहित उस उत्तम धनुषको विधिपूर्वक खींचा।१७।



तस्य मौर्वीं च मुष्टिं च स्थानं चालक्ष्य पाण्डवः।
श्रुत्वा मन्त्रं भवप्रोक्तं जग्राहाचिन्त्यविक्रमः ॥ १८ ॥

उस समय अचिन्त्य पराक्रमी पाण्डुपुत्र अर्जुनने उसका मुट्ठीसे धनुष पकड़ना, धनुषकी डोरीको खींचना और विशेष प्रकारसे उसका खड़ा होना—इन सब बातोंकी ओर लक्ष्य रखते हुए भगवान् शङ्करके द्वारा उच्चारित मन्त्रको सुनकर मनसे ग्रहण कर लिया ॥ १८ ॥

स सरस्येव तं बाणं मुमोचातिबलः प्रभुः।
चकार च पुनर्वीरस्तस्मिन् सरसि तद् धनुः ॥ १९ ॥

तत्पश्चात् अत्यन्त बलशाली वीर भगवान् शिवने उस बाणको उसी सरोवरमें छोड़ दिया। फिर उस धनुषको भी वहीं डाल दिया ॥ १९ ॥

ततः प्रीतं भवं ज्ञात्वा स्मृतिमानर्जुनस्तदा।
वरमारण्यके दत्तं दर्शनं शङ्करस्य च ॥ २० ॥
मनसा चिन्तयामास तन्मे सम्पद्यतामिति।

तब स्मरणशक्तिसे सम्पन्न अर्जुनने भगवान् शङ्करको अत्यन्त प्रसन्न जानकर वनवासके समय जो भगवान् शङ्करका दर्शन और वरदान प्राप्त हुआ था, उसका मन-ही-मन चिन्तन किया और यह इच्छा की कि मेरा वह मनोरथ पूर्ण हो ॥२०½॥

तस्य तन्मतमाज्ञाय प्रीतः प्रादाद् वरं भवः ॥ २१ ॥
तच्च पाशुपतं घोरं प्रतिज्ञायाश्च पारणम्।

उनके इस अभिप्रायको जानकर भगवान् शङ्करने प्रसन्न हो वरदानके रूपमें वह घोर पाशुपत अस्त्र, जो उनकी प्रतिज्ञाकी पूर्ति करानेवाला था, दे दिया ॥ २१½ ॥

ततः पाशुपतं दिव्यमवाप्य पुनरीश्वरात् ॥ २२ ॥
संहृष्टरोमा दुर्धर्षः कृतं कार्यममन्यत।

भगवान् शङ्करसे उस दिव्य पाशुपतास्त्रको पुनः प्राप्त करके दुर्धर्ष वीर अर्जुनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया और उन्हें यह विश्वास हो गया कि अब मेरा कार्य पूर्ण हो जायगा॥

ववन्दतुश्च संहृष्टौ शिरोभ्यां तं महेश्वरम् ॥ २३ ॥
अनुज्ञातौ क्षणे तस्मिन् भवेनार्जुनकेशवौ।
प्राप्तौ स्वशिबिरं वीरौ मुदा परमया युतौ ॥ २४ ॥

फिर तो अत्यन्त हर्षमें भरे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों महापुरुषोंने मस्तक नवाकर भगवान् महेश्वरको प्रणाम किया और उनकी आज्ञा ले उसी क्षण वे दोनों वीर बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने शिबिरको लौट आये ॥ २३-२४ ॥

तथा भवेनानुमतौ महासुरनिघातिना।
इन्द्राविष्णू यथा प्रीतौ जम्भस्य वधकाङ्क्षिणौ ॥ २५ ॥

जैसे पूर्वकालमें जम्भासुरके वधकी इच्छा रखनेवाले इन्द्र और विष्णु महासुरविनाशक भगवान् शङ्करकी अनुमति पाकर प्रसन्नतापूर्वक लौटे थे, उसी प्रकार श्रीकृष्ण और अर्जुन भी आनन्दित होकर अपने शिविरमें आये॥२५॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनस्य पुनः पाशुपतास्त्रप्राप्तौ एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें अर्जुनको पुनः पाशुपतास्त्रकी प्राप्तिविषयक इक्यासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

युधिष्ठिरका प्रातःकाल उठकर स्नान और नित्यकर्म आदिसे निवृत्त हो ब्राह्मणोंको दान देना, वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो सिंहासनपर बैठना और वहाँ पधारे हुए भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करना

संजय उवाच

तयोः संवदतोरेवं कृष्णदारुकयोस्तथा।
सात्यगाद् रजनी राजन्नथ राजाऽन्वबुध्यत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! इधर श्रीकृष्ण और दारुकमें पूर्वोक्त प्रकारसे बातें हो ही रही थीं कि वह रात बीत गयी। दूसरी ओर राजा युधिष्ठिर भी जाग गये ॥ १ ॥

पठन्ति पाणिस्वनिका मागधा मधुपर्किकाः।
वैतालिकाश्च सूताश्च तुष्टुवुः पुरुषर्षभम् ॥ २ ॥

उस समय हाथसे ताली देकर गीत गानेवाले तथा माङ्गलिक वस्तुओंको प्रस्तुत करनेवाले सूत, मागध और वैतालिक जन पुरुषश्रेष्ठ युधिष्ठिरकी स्तुति करने लगे ॥ २ ॥

नर्तकाश्चाप्यनृत्यन्त जगुर्गीतानि गायकाः।
कुरुवंशस्तवार्थानि मधुरं रक्तकण्ठिनः ॥ ३ ॥

नर्तक नाचने और रागयुक्त कण्ठवाले गायक कुरुकुलकी स्तुतिसे युक्त मधुर गीत गाने लगे ॥ ३ ॥

मृदङ्गा झर्झरा भेर्यः पणवानकगोमुखाः।
आडम्बराश्च शङ्खाश्च दुन्दुभ्यश्च महास्वनाः ॥ ४ ॥
एवमेतानि सर्वाणि तथान्यान्यपि भारत।
वादयन्ति सुसंहृष्टाः कुशलाः साधुशिक्षिताः ॥ ५ ॥

भारत! सुशिक्षित एवं कुशल वादक अत्यन्त हर्षमें भरकर मृदङ्ग, झाँझ, भेरी, पणव, आनक, गोमुख, आडम्बर, शङ्ख और बड़े जोरसे बजनेवाली दुन्दुभियाँ तथा दूसरे प्रकारके वाद्योंको भी बजाने लगे ॥ ४-५ ॥

स मेघसमनिर्घोषो महाञ्शब्दोऽस्पृशद् दिवम्।
पार्थिवप्रवरं सुप्तं युधिष्ठिरमबोधयत् ॥ ६ ॥

वाद्योंका वह मेघके समान गम्भीर एवं महान् घोष आकाशतक फैल गया। उस ध्वनिने सोये हुए नृपश्रेष्ठ महाराज युधिष्ठिरको जगा दिया ॥ ६ ॥

प्रतिबुद्धः सुखं सुप्तो महार्हे शयनोत्तमे।
उत्थायावश्यकार्यार्थं ययौ स्नानगृहं नृपः ॥ ७ ॥

बहुमूल्य एवं उत्तम शय्यापर सुखपूर्वक सोकर जगे हुए राजा युधिष्ठिर वहाँसे उठकर आवश्यक कार्यके लिये स्नान करने गये ॥ ७ ॥

ततः शुक्लाम्बराः स्नातास्तरुणाः शतमष्ट च।
स्नापकाः काञ्चनैः कुम्भैः पूर्णैः समुपतस्थिरे ॥ ८ ॥

वहाँ स्नान करके श्वेत वस्त्र धारण किये हुए एक सौ आठ युवक सोनेके घड़ोंमें जल भरकर उन्हें नहलानेके लिये उपस्थित हुए ॥ ८ ॥

भद्रासने सूपविष्टः परिधायाम्बरं लघु।
सस्नौ चन्दनसंयुक्तैः पानीयैरभिमन्त्रितैः ॥ ९ ॥

उस समय एक हल्का वस्त्र पहनकर राजा युधिष्ठिर भद्रासन (चौकी) पर बैठ गये और चन्दनयुक्त मन्त्रपूत जलसे स्नान करने लगे ॥ ९ ॥



उत्सादितः कषायेण बलवद्भिः सुशिक्षितैः ।
आप्लुतः साधिवासेन जलेन स सुगन्धिना ॥ १० ॥

सबसे पहले बलवान् तथा सुशिक्षित पुरुषोंने सर्वौषधि आदिद्वारा तैयार किये हुए उबटनसे उनके शरीरको अच्छी तरह मला, फिर उन्होंने अधिवासित एवं सुगन्धित जलसे स्नान किया ॥ १० ॥

राजहंसनिभं प्राप्य उष्णीषं शिथिलार्पितम् ।
जलक्षयनिमित्तं वै वेष्टयामास मूर्धनि ॥ ११ ॥

तत्पश्चात् राजहंसके समान सफेद ढीली-ढाली पगड़ी लेकर माथेका जल सुखानेके लिये उसे मस्तकपर लपेट लिया ॥ ११ ॥

हरिणा चन्दनेनाङ्गमुपलिप्य महाभुजः ।
स्रग्वी चाक्लिष्टवसनः प्राङ्मुखः प्राञ्जलिः स्थितः ॥ १२ ॥

फिर वे महाबाहु युधिष्ठिर अपने सारे अङ्गोंमें हरिचन्दनका अनुलेपन करके नूतन वस्त्र और पुष्पमाला धारण किये हाथ जोड़े पूर्वाभिमुख होकर बैठ गये ॥ १२ ॥

जजाप जप्यं कौन्तेयः सतां मार्गमनुष्ठितः ।
तत्राग्निशरणं दीप्तं प्रविवेश विनीतवत् ॥ १३ ॥

सत्पुरुषोंके मार्गपर चलनेवाले कुन्तीकुमार युधिष्ठिरने जपने योग्य गायत्री मन्त्रका जप किया और प्रज्वलित अग्निसे प्रकाशित अग्निशालामें विनीतभावसे प्रवेश किया ॥ १३ ॥

समिद्भिः सपवित्राभिरग्निमाहुतिभिस्तथा ।
मन्त्रपूताभिरर्चित्वा निश्चक्राम गृहात् ततः ॥ १४ ॥

वहाँ पवित्री (कुशके दो पत्तों) सहित समिधाओं तथा मन्त्रपूत आहुतियोंसे अग्निदेवकी पूजा करके वे उस अग्निहोत्र-गृहसे बाहर निकले ॥ १४ ॥

द्वितीयां पुरुषव्याघ्रः कक्ष्यां निर्गम्य पार्थिवः ।
ततो वेदविदो वृद्धानपश्यद् ब्राह्मणर्षभान् ॥ १५ ॥

फिर शिबिरकी दूसरी ड्योढ़ी पार करके पुरुषसिंह राजा युधिष्ठिरने वेदवेत्ता वृद्ध ब्राह्मणशिरोमणियोंको देखा ॥ १५ ॥

दान्तान् वेदव्रतस्नातान् स्नातानवभृथेषु च ।
सहस्रानुचरान् सौरान् सहस्रं चाष्ट चापरान् ॥ १६ ॥

वे सबके-सब जितेन्द्रिय, वेदाध्ययनके व्रतमें निष्णात, यज्ञान्तस्नानसे पवित्र तथा सूर्यदेवके उपासक थे। वे संख्यामें एक हजार आठ थे और उनके साथ एक सहस्र अनुचर थे ॥ १६ ॥

अक्षतैः सुमनोभिश्च वाचयित्वा महाभुजः ।
तान् द्विजान् मधुसर्पिर्भ्यां फलैः श्रेष्ठैः सुमङ्गलैः ॥ १७ ॥
प्रादात् काञ्चनमेकैकं निष्कं विप्राय पाण्डवः ।

तब महाबाहु पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने अक्षत-फूल देकर उन ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराया और उनमेंसे प्रत्येक ब्राह्मणको मधु, घी एवं श्रेष्ठ माङ्गलिक फलोंके साथ एक-एक स्वर्णमुद्रा प्रदान की ॥ १७½ ॥

अलंकृतं चाश्वशतं वासांसीष्टाश्च दक्षिणाः ॥ १८ ॥
तथा गाः कपिला दोग्ध्रीः सवत्साः पाण्डुनन्दनः ।
हेमशृङ्गा रौप्यखुरा दत्त्वा चक्रे प्रदक्षिणम् ॥ १९ ॥

इसके सिवा उन पाण्डुनन्दनने ब्राह्मणोंको सजे-सजाये सौ घोड़े, उत्तम वस्त्र, इच्छानुसार दक्षिणा और बछड़ों-सहित दूध देनेवाली बहुत-सी कपिला गौएँ दीं । उन गौओंके सींगोंमें सोने और खुरोंमें चाँदी मढ़े हुए थे । उन सबको देकर युधिष्ठिरने उन (गौओं एवं ब्राह्मणों)की परिक्रमा की ॥

स्वस्तिकान् वर्धमानांश्च नन्द्यावर्तांश्च काञ्चनान् ।
माल्यं च जलकुम्भांश्च ज्वलितं च हुताशनम् ॥ २० ॥
पूर्णान्यक्षतपात्राणि रुचकं रोचनास्तथा ।
स्वलंकृताः शुभाः कन्या दधिसर्पिर्मधूदकम् ॥ २१ ॥
मङ्गल्यान् पक्षिणश्चैव यच्चान्यदपि पूजितम् ।
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च कौन्तेयो बाह्यां कक्ष्यां ततोऽगमत् ॥ २२ ॥

तत्पश्चात् सोनेके बने हुए स्वस्तिक, सिकोरे, बन्द मुँहवाले अर्घ्यपात्र, माला, जलसे भरे हुए कलश, प्रज्वलित अग्नि, अक्षतसे भरे हुए पूर्णपात्र, बिजौरा नीबू, गोरोचन, आभूषणोंसे विभूषित सुन्दरी कन्याएँ, दही, घी, मधु, जल, माङ्गलिक पक्षी तथा अन्यान्य भी जो प्रशस्त वस्तुएँ हैं, उन सबको देखकर और उनमेंसे कुछका स्पर्श करके कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने बाहरी ड्योढ़ीमें प्रवेश किया ॥ २०—२२ ॥

ततस्तस्यां महाबाहोस्तिष्ठतः परिचारकाः ।
सौवर्णं सर्वतोभद्रं मुक्तावैदूर्यमण्डितम् ॥ २३ ॥
परार्ध्यास्तरणास्तीर्णं सोत्तरच्छदसृद्धिमत् ।
विश्वकर्मकृतं दिव्यमुपजह्रुर्वरासनम् ॥ २४ ॥

उस ड्योढ़ीमें खड़े हुए महाबाहु युधिष्ठिरके सेवकोंने उनके लिये सोनेका बना हुआ एक सर्वतोभद्र नामक श्रेष्ठ आसन दिया, जिसमें मुक्ता और वैदूर्यमणि जड़ी हुई थी । उसपर बहुमूल्य बिछौना बिछा हुआ था । उसके ऊपर सुन्दर चादर बिछायी गयी थी । वह दिव्य एवं समृद्धिशाली सिंहासन साक्षात् विश्वकर्माका बनाया हुआ था ॥ २३-२४ ॥

तत्र तस्योपविष्टस्य भूषणानि महात्मनः ।
उपाजह्रुर्महार्हाणि प्रेष्याः शुभ्राणि सर्वशः ॥ २५ ॥

वहाँ बैठे हुए महात्मा राजा युधिष्ठिरको उनके सेवकोंने सब प्रकारके उज्ज्वल एवं बहुमूल्य आभूषण भेंट किये ॥ २५ ॥

मुक्ताभरणवेषस्य कौन्तेयस्य महात्मनः ।
रूपमासीन्महाराज द्विषतां शोकवर्धनम् ॥ २६ ॥

महाराज ! मुक्तामय आभूषणोंसे विभूषित वेशवाले महात्मा कुन्तीनन्दनका स्वरूप उस समय शत्रुओंका शोक बढ़ा रहा था ॥ २६ ॥

चामरैश्चन्द्ररश्म्याभैर्हेमदण्डैः सुशोभनैः ।
दोधूयमानैः शुशुभे विद्युद्भिरिव तोयदः ॥ २७ ॥

चन्द्रमाकी किरणोंके समान श्वेत तथा सुवर्णमय दण्ड-वाले सुन्दर शोभाशाली अनेक चँवर डुलाये जा रहे थे । उनसे राजा युधिष्ठिरकी वैसी ही शोभा हो रही थी, जैसे बिजलियोंसे मेघ सुशोभित होता है ॥ २७ ॥

संस्तूयमानः सूतैश्च वन्द्यमानश्च वन्दिभिः ।
उपगीयमानो गन्धर्वैरास्ते स्म कुरुनन्दनः ॥२८॥

उस समय सूतगण स्तुति करते थे, वन्दीजन वन्दना कर रहे थे और गन्धर्वगण उनके सुयशके गीत गाते थे । इन सबसे घिरे हुए युधिष्ठिर वहाँ सिंहासनपर विराजमान थे।२८।

ततो मुहूर्तादासीत् स्यन्दनानां स्वनो महान् ।
नेमिघोषश्च रथिनां खुरघोषश्च वाजिनाम् ॥ २९॥

तदनन्तर दो ही घड़ीमें रथोंका महान् शब्द गूँज उठा। रथियोंके रथोंके पहियोंकी घरघराहट और घोड़ोंकी टापोंके शब्द सुनायी देने लगे ॥ २९ ॥

ह्रादेन गजघण्टानां शङ्खानां निनदेन च ।
नराणां पदशब्दैश्च कम्पतीव स्म मेदिनी ॥ ३०॥

हाथियोंके घंटोंकी घनघनाहट, शङ्खोंकी ध्वनि तथा पैदल चलनेवाले मनुष्योंके पैरोंकी धमकसे यह पृथ्वी काँपती-सी जान पड़ती थी ॥ ३० ॥

ततः शुद्धान्तमासाद्य जानुभ्यां भूतले स्थितः ।
शिरसा वन्दनीयं तमभिवाद्य जनेश्वरम् ॥ ३१ ॥
कुण्डली बद्धनिस्त्रिंशः संनद्धकवचो युवा ।
अभिप्रणम्य शिरसा द्वाःस्थो धर्मात्मजाय वै ॥ ३२ ॥
न्यवेदयद्धृषीकेशमुपयान्तं महात्मने ।

इसी समय कानोंमें कुण्डल पहने, कमरमें तलवार बाँधे और वक्षःस्थलपर कवच धारण किये एक तरुण द्वारपालने उस ड्योढ़ीके भीतर प्रवेश करके धरतीपर दोनों घुटने टेक दिये और वन्दनीय महाराज युधिष्ठिरको मस्तक नवाकर प्रणाम किया । इस प्रकार सिरसे प्रणाम करके उसने धर्मपुत्र महात्मा युधिष्ठिरको यह सूचना दी कि भगवान् श्रीकृष्ण पधार रहे हैं ॥ ३१-३२½ ॥

सोऽब्रवीत् पुरुषव्याघ्रः स्वागतेनैव माधवम् ॥३३॥
अर्घ्यं चैवासनं चास्मै दीयतां परमार्चितम् ।

तब पुरुषसिंह युधिष्ठिरने द्वारपालसे कहा—'तुम माधवको स्वागतपूर्वक ले आओ और उन्हें अर्घ्य तथा परम उत्तम आसन अर्पित करो' ॥ ३३½ ॥

ततः प्रवेश्य वार्ष्णेयमुपवेश्य वरासने ।
पूजयामास विधिवद् धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३४ ॥

तब द्वारपालने भगवान् श्रीकृष्णको भीतर ले आकर एक श्रेष्ठ आसनपर बैठा दिया । तत्पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिरने स्वयं ही विधिपूर्वक उनका पूजन किया ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि युधिष्ठिरसज्जतायां द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें युधिष्ठिरके सुसज्जित होनेसे सम्बन्ध रखनेवाला बयासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

अर्जुनकी प्रतिज्ञाको सफल बनानेके लिये युधिष्ठिरकी श्रीकृष्णसे प्रार्थना और श्रीकृष्णका उन्हें आश्वासन देना

संजय उवाच

ततो युधिष्ठिरो राजा प्रतिनन्द्य जनार्दनम् ।
उवाच परमप्रीतः कौन्तेयो देवकीसुतम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर कुन्तीकुमार राजा युधिष्ठिरने अत्यन्त प्रसन्न हो देवकीनन्दन जनार्दनका अभिनन्दन करके पूछा—॥ १ ॥

सुखेन रजनी व्युष्टा कच्चित् ते मधुसूदन ।
कच्चिज्ज्ञानानि सर्वाणि प्रसन्नानि तवाच्युत ॥ २ ॥

'मधुसूदन ! क्या आपकी रात सुखपूर्वक बीती है ? अच्युत ! क्या आपकी सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रियाँ प्रसन्न हैं ?' ॥ २ ॥

वासुदेवोऽपि तद्युक्तं पर्यपृच्छद् युधिष्ठिरम् ।
ततश्च प्रकृतीः क्षत्ता न्यवेदयदुपस्थिताः ॥ ३ ॥

तब भगवान् श्रीकृष्णने भी उनसे समयोचित प्रश्न किये । तत्पश्चात् सेवकने आकर सूचना दी कि मन्त्री, सेना-पति आदि उपस्थित हैं ॥ ३ ॥

अनुज्ञातश्च राज्ञा स प्रावेशयत तं जनम्।
विराटं भीमसेनं च धृष्टद्युम्नं च सात्यकिम् ॥ ४ ॥
चेदिपं धृष्टकेतुं च द्रुपदं च महारथम्।
शिखण्डिनं यमौ चैव चेकितानं सकेकयम् ॥ ५ ॥
युयुत्सुं चैव कौरव्यं पाञ्चाल्यं चोत्तमौजसम्।
युधामन्युं सुबाहुं च द्रौपदेयांश्च सर्वशः ॥ ६ ॥

उस समय महाराजकी अनुमति पाकर विराट, भीमसेन, धृष्टद्युम्न, सात्यकि, चेदिराज धृष्टकेतु, महारथी द्रुपद, शिखण्डी, नकुल, सहदेव, चेकितान, केकयराजकुमार, कुरुवंशी युयुत्सु, पाञ्चाल वीर उत्तमौजा, युधामन्यु, सुबाहु तथा द्रौपदीके पाँचों पुत्र—इन सब लोगोंको द्वारपाल भीतर ले आया॥४—६॥

एते चान्ये च बहवः क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम्।
उपतस्थुर्महात्मानं विविशुश्चासने शुभे ॥ ७ ॥

ये तथा और भी बहुत-से क्षत्रियशिरोमणि महात्मा युधिष्ठिरकी सेवामें उपस्थित हुए और सुन्दर आसनपर बैठे॥

एकस्मिन्नासने वीरावुपविष्टौ महाबलौ।
कृष्णश्च युयुधानश्च महात्मानौ महाद्युती ॥ ८ ॥

महाबली और महातेजस्वी महात्मा श्रीकृष्ण और सात्यकि ये दोनों वीर एक ही आसनपर बैठे थे ॥ ८ ॥

ततो युधिष्ठिरस्तेषां शृण्वतां मधुसूदनम्।
अब्रवीत् पुण्डरीकाक्षमाभाष्य मधुरं वचः ॥ ९ ॥

तब युधिष्ठिरने उन सब लोगोंके सुनते हुए कमलनयन भगवान् मधुसूदनको सम्बोधित करके मधुर वाणीमें कहा—॥

एकं त्वां वयमाश्रित्य सहस्राक्षमिवामराः।
प्रार्थयामो जयं युद्धे शाश्वतानि सुखानि च ॥ १० ॥

'प्रभो ! जैसे देवता इन्द्रका आश्रय लेते हैं, उसी प्रकार हमलोग एकमात्र आपका सहारा लेकर युद्धमें विजय और शाश्वत सुख पाना चाहते हैं ॥ १० ॥

त्वं हि राज्यविनाशं च द्विषद्भिश्च निराक्रियाम्।
क्लेशांश्च विविधान् कृष्ण सर्वांस्तानपि वेद नः ॥ ११ ॥

'श्रीकृष्ण ! शत्रुओंने जो हमारे राज्यका नाश करके हमारा तिरस्कार किया और भाँति-भाँतिके क्लेश दिये, उन सबको आप अच्छी तरह जानते हैं ॥ ११ ॥

त्वयि सर्वेश सर्वेषामस्माकं भक्तवत्सल।
सुखमायत्तमत्यर्थं यात्रा च मधुसूदन ॥ १२ ॥

'भक्तवत्सल सर्वेश्वर ! मधुसूदन ! हम सब लोगोंका सुख और जीवननिर्वाह पूर्णरूपसे आपके ही अधीन है॥१२॥

स तथा कुरु वार्ष्णेय यथा त्वयि मनो मम।
अर्जुनस्य यथा सत्या प्रतिज्ञा स्याच्चिकीर्षिता ॥ १३ ॥

'वार्ष्णेय ! हमारा मन आपमें ही लगा हुआ है। अतः आप ऐसा करें, जिससे अर्जुनकी अभीष्ट प्रतिज्ञा सत्य होकर रहे॥

स भवांस्तारयत्वस्माद् दुःखामर्षमहार्णवात्।
पारं तितीर्षतामद्य प्लवो नो भव माधव ॥ १४ ॥

'माधव ! आज इस दुःख और अमर्षके महासागरसे पार होनेकी इच्छावाले हम सब लोगोंके लिये आप नौका बन जाइये। आप ही इस संकटसे हमारा उद्धार कीजिये ॥ १४ ॥

न हि तत् कुरुते संख्ये रथी रिपुवधोद्यतः।
यथा वै कुरुते कृष्ण सारथिर्यत्नमास्थितः ॥ १५ ॥

'श्रीकृष्ण ! संग्राममें शत्रुवधके लिये उद्यत हुआ रथी भी वैसा कार्य नहीं कर पाता, जैसा कि प्रयत्नशील सारथि कर दिखाता है ॥ १५ ॥

यथैव सर्वास्वापत्सु पासि वृष्णीञ्जनार्दन।
तथैवास्मान् महाबाहो वृजिनात् त्रातुमर्हसि ॥ १६ ॥

'महाबाहु जनार्दन ! जैसे आप वृष्णिवंशियोंको सम्पूर्ण आपत्तियोंसे बचाते हैं, उसी प्रकार हमारी भी इस संकटसे रक्षा कीजिये ॥ १६ ॥

त्वमगाधेऽप्लवे मग्नान् पाण्डवान् कुरुसागरे।
समुद्धर प्लवो भूत्वा शङ्खचक्रगदाधर ॥ १७ ॥

'शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले परमेश्वर ! नौकारहित अगाध कौरव-सागरमें निमग्न पाण्डवोंका आप स्वयं ही नौका बनकर उद्धार कीजिये ॥ १७ ॥

नमस्ते देवदेवेश सनातन विशातन।
विष्णो जिष्णो हरे कृष्ण वैकुण्ठ पुरुषोत्तम ॥ १८ ॥

'शत्रुनाशक ! सनातन देवदेवेश्वर ! विष्णो ! जिष्णो ! हरे ! कृष्ण ! वैकुण्ठ ! पुरुषोत्तम ! आपको नमस्कार है ॥

नारदस्त्वां समाचख्यौ पुराणमृषिसत्तमम्।
वरदं शार्ङ्गिणं श्रेष्ठं तत् सत्यं कुरु माधव ॥ १९ ॥

'माधव ! देवर्षि नारदने बताया है कि आप शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले, सर्वोत्तम वरदायक पुरातन ऋषिश्रेष्ठ नारायण हैं, उनकी वह बात सत्य कर दिखाइये ॥ १९ ॥

इत्युक्तः पुण्डरीकाक्षो धर्मराजेन संसदि।
तोयमेघस्वनो वाग्मी प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ॥ २० ॥

उस राजसभामें धर्मराज युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर उत्तम



श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको आश्वासन

वक्ता कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने सजल मेघके समान गम्भीर वाणीमें उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया ॥ २० ॥

वासुदेव उवाच

सामरेष्वपि लोकेषु सर्वेषु न तथाविधः।
शरासनधरः कश्चिद् यथा पार्थो धनंजयः ॥ २१ ॥

श्रीकृष्ण बोले—राजन्! देवताओंसहित सम्पूर्ण लोकोंमें कोई भी वैसा धनुर्धर नहीं है, जैसे आपके भाई कुन्तीकुमार धनंजय हैं ॥ २१ ॥

वीर्यवानस्त्रसम्पन्नः पराक्रान्तो महाबलः।
युद्धशौण्डः सदामर्षी तेजसा परमो नृणाम् ॥ २२ ॥

वे शक्तिशाली, अस्त्रज्ञानसम्पन्न, पराक्रमी, महाबली, युद्धकुशल, सदा अमर्षशील और मनुष्योंमें परम तेजस्वी हैं ॥

स युवा वृषभस्कन्धो दीर्घबाहुर्महाबलः।
सिंहर्षभगतिः श्रीमान् द्विषतस्ते हनिष्यति ॥ २३ ॥

अर्जुनके कंधे वृषभके समान सुपुष्ट हैं, भुजाएँ बड़ी-बड़ी हैं, उनकी चाल भी श्रेष्ठ सिंहके सदृश है, वे महान् बलवान् युवक और श्रीसम्पन्न हैं, अतः आपके शत्रुओंको अवश्य मार डालेंगे ॥ २३ ॥

अहं च तत् करिष्यामि यथा कुन्तीसुतोऽर्जुनः।
धार्तराष्ट्रस्य सैन्यानि धक्ष्यत्यग्निरिवेन्धनम् ॥ २४ ॥

मैं भी वही करूँगा, जिससे कुन्तीपुत्र अर्जुन दुर्योधनकी सारी सेनाओंको उसी प्रकार जला डालेंगे, जैसे आग ईंधनको जलाती है ॥ २४ ॥

अद्य तं पापकर्माणं क्षुद्रं सौभद्रघातिनम्।
अपुनर्दर्शनं मार्गमिषुभिः क्षेप्स्यतेऽर्जुनः ॥ २५ ॥

आज सुभद्राकुमार अभिमन्युकी हत्या करनेवाले उस नीच पापी जयद्रथको अर्जुन अपने बाणोंद्वारा उस मार्गपर डाल देंगे, जहाँ जानेपर उस जीवका पुनः इस लोकमें दर्शन नहीं होता ॥ २५ ॥

तस्याद्य गृध्राः श्येनाश्च चण्डगोमायवस्तथा।
भक्षयिष्यन्ति मांसानि ये चान्ये पुरुषादकाः ॥ २६ ॥

आज गीध, बाज, क्रोधमें भरे हुए गीदड़ तथा अन्य नरभक्षी जीव-जन्तु जयद्रथका मांस खायेंगे ॥ २६ ॥

यद्यस्य देवा गोप्तारः सेन्द्राः सर्वे तथाप्यसौ।
राजधानीं यमस्याद्य हतः प्राप्स्यति संकुले ॥ २७ ॥

यदि इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी उसकी रक्षाके लिये आ जायँ तथापि वह आज संग्राममें मारा जाकर यमराजकी राजधानीमें अवश्य जा पहुँचेगा ॥ २७ ॥

निहत्य सैन्धवं जिष्णुरद्य त्वामुपयास्यति।
विशोको विज्वरो राजन् भव भूतिपुरस्कृतः ॥ २८ ॥

राजन्! आज विजयशील अर्जुन जयद्रथको मारकर ही आपके पास आयेंगे, आप ऐश्वर्यसे सम्पन्न रहकर शोक और चिन्ताको त्याग दीजिये ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि श्रीकृष्णवाक्ये त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें श्रीकृष्णवाक्यविषयक तिरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमोऽध्यायः

युधिष्ठिरका अर्जुनको आशीर्वाद, अर्जुनका स्वप्न सुनकर समस्त सुहृदोंकी प्रसन्नता, सात्यकि और श्रीकृष्णके साथ रथपर बैठकर अर्जुनकी रणयात्रा तथा अर्जुनके कहनेसे सात्यकिका युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये जाना

संजय उवाच

तथा तु वदतां तेषां प्रादुरासीद् धनंजयः।
दिदृक्षुर्भरतश्रेष्ठं राजानं ससुहृद्गणम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! इस प्रकार उन लोगोंमें बात-चीत हो ही रही थी कि सुहृदोंसहित भरतश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरका दर्शन करनेकी इच्छासे अर्जुन वहाँ आ गये ॥

तं निविष्टं शुभां कक्ष्यामभिवन्द्याग्रतः स्थितम्।
तमुत्थायार्जुनं प्रेम्णा सस्वजे पाण्डवर्षभः ॥ २ ॥

उस सुन्दर ड्योढ़ीमें प्रवेश करके राजाको प्रणाम करनेके पश्चात् उनके सामने खड़े हुए अर्जुनको पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिरने उठकर प्रेमपूर्वक हृदयसे लगा लिया ॥ २ ॥

मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय परिष्वज्य च बाहुना।
आशिषः परमाः प्रोच्य स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ ३ ॥

उनका मस्तक सूँघकर और एक बाँहसे उनका आलिंगन करके उन्हें उत्तम आशीर्वाद देते हुए राजाने मुसकराकर कहा—॥ ३ ॥

व्यक्तमर्जुन संग्रामे ध्रुवस्ते विजयो महान्।
यादृग्रूपा च ते च्छाया प्रसन्नश्च जनार्दनः ॥ ४ ॥

'अर्जुन ! आज संग्राममें तुम्हें निश्चय ही महान् विजय प्राप्त होगी, यह बात स्पष्टरूपसे दृष्टिगोचर हो रही है; क्योंकि इसीके अनुरूप तुम्हारे मुखकी कान्ति है और भगवान् श्रीकृष्ण भी प्रसन्न हैं' ॥ ४ ॥

तमब्रवीत् ततो जिष्णुर्महदाश्चर्यमुत्तमम् ।
दृष्टवानस्मि भद्रं ते केशवस्य प्रसादजम् ॥ ५ ॥

'तब विजयशील अर्जुनने उनसे कहा—राजन् ! आपका कल्याण हो। आज मैंने बहुत उत्तम और आश्चर्यजनक स्वप्न देखा है। भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे ही वैसा स्वप्न प्रकट हुआ था' ॥ ५ ॥

ततस्तत् कथयामास यथा दृष्टं धनंजयः ।
आश्वासनार्थं सुहृदां त्र्यम्बकेण समागमम् ॥ ६ ॥

यों कहकर अर्जुन अपने सुहृदोंके आश्वासनके लिये जिस प्रकार भगवान् शंकरसे मिलनका स्वप्न देखा था, वह सब कह सुनाया ॥ ६ ॥

ततः शिरोभिरवनिं स्पृष्ट्वा सर्वे च विस्मिताः ।
नमस्कृत्य वृषाङ्काय साधु साध्वित्यथाब्रुवन् ॥ ७ ॥

यह स्वप्न सुनकर वहाँ आये हुए सब लोग आश्चर्यचकित हो उठे और सबने धरतीपर मस्तक टेककर भगवान् शंकरको प्रणाम करके कहा—'यह तो बहुत अच्छा हुआ, बहुत अच्छा हुआ' ॥ ७ ॥

अनुज्ञातास्ततः सर्वे सुहृदो धर्मसूनुना ।
त्वरमाणाः सुसंनद्धा हृष्टा युद्धाय निर्ययुः ॥ ८ ॥

तदनन्तर धर्मपुत्र युधिष्ठिरकी आज्ञा लेकर कवच धारण किये हुए समस्त सुहृद् हर्षमें भरकर शीघ्रतापूर्वक वहाँसे युद्धके लिये निकले ॥ ८ ॥

अभिवाद्य तु राजानं युयुधानाच्युतार्जुनाः ।
हृष्टा विनिर्ययुस्ते वै युधिष्ठिरनिवेशनात् ॥ ९ ॥

तत्पश्चात् राजा युधिष्ठिरको प्रणाम करके सात्यकि, श्रीकृष्ण और अर्जुन बड़े हर्षके साथ उनके शिबिरसे बाहर निकले ॥ ९ ॥

रथेनैकेन दुर्धर्षौ युयुधानजनार्दनौ ।
जग्मतुः सहितौ वीरावर्जुनस्य निवेशनम् ॥ १० ॥

दुर्धर्ष वीर सात्यकि और श्रीकृष्ण एक रथपर आरूढ़ हो एक साथ अर्जुनके शिविरमें गये ॥ १० ॥

तत्र गत्वा हृषीकेशः कल्पयामास सूतवत् ।
रथं रथवरस्याजौ वानरर्षभलक्षणम् ॥ ११ ॥

वहाँ पहुँचकर भगवान् श्रीकृष्णने एक सारथिके समान रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनके वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌के चिह्नसे युक्त ध्वजावाले रथको युद्धके लिये सुसज्जित किया ॥ ११ ॥

स मेघसमनिर्घोषस्तप्तकाञ्चनसप्रभः ।
बभौ रथवरः क्लृप्तः शिशुर्दिवसकृद् यथा ॥ १२ ॥

मेघके समान गम्भीर घोष करनेवाला और तपाये हुए सुवर्णके समान प्रभासे उद्भासित होनेवाला वह सजाया हुआ श्रेष्ठ रथ प्रातःकालके सूर्यकी भाँति प्रकाशित हो रहा था ॥

ततः पुरुषशार्दूलः सज्जं सज्जपुरःसरः ।
कृताह्निकाय पार्थाय न्यवेदयत तं रथम् ॥ १३ ॥

तदनन्तर युद्धके लिये सुसज्जित पुरुषोंमें सर्वश्रेष्ठ पुरुषसिंह श्रीकृष्णने नित्य-कर्म सम्पन्न करके बैठे हुए अर्जुनको यह सूचित किया कि रथ तैयार है ॥ १३ ॥

तं तु लोकवरः पुंसां किरीटी हेमवर्मभृत् ।
चापबाणधरो वाहं प्रदक्षिणमवर्तत ॥ १४ ॥

तब पुरुषोंमें श्रेष्ठ लोकप्रवर अर्जुनने सोनेके कवच और किरीट धारण करके धनुष-बाण लेकर उस रथकी परिक्रमा की॥

तपोविद्यावयोवृद्धैः क्रियावद्भिर्जितेन्द्रियैः ।
स्तूयमानो जयाशीर्भिरारुरोह महारथम् ॥ १५ ॥

उस समय तपस्या, विद्या तथा अवस्थामें बड़े-बूढ़े, क्रियाशील, जितेन्द्रिय ब्राह्मण उन्हें विजयसूचक आशीर्वाद देते हुए उनकी स्तुति-प्रशंसा कर रहे थे। उनकी की हुई वह स्तुति सुनते हुए अर्जुन उस विशाल रथपर आरूढ़ हुए ॥ १५ ॥

जैत्रैः सांग्रामिकैर्मन्त्रैः पूर्वमेव रथोत्तमम् ।
अभिमन्त्रितमर्चिष्मानुदयं भास्करो यथा ॥ १६ ॥

उस उत्तम रथको पहलेसे ही विजयसाधक युद्धसम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा अभिमन्त्रित किया गया था। उसपर आरूढ़ हुए तेजस्वी अर्जुन उदयाचलपर चढ़े हुए सूर्यके समान जान पड़ते थे ॥ १६ ॥

स रथे रथिनां श्रेष्ठः काञ्चने काञ्चनावृतः ।
विबभौ विमलोऽर्चिष्मान् मेराविव दिवाकरः ॥ १७ ॥

सुवर्णमय कवचसे आवृत हो उस स्वर्णमय रथपर आरूढ़ हुए रथियोंमें श्रेष्ठ उज्ज्वल कान्तिधारी तेजस्वी अर्जुन मेरु पर्वतपर प्रकाशित होनेवाले सूर्यके समान शोभा पा रहे थे ॥

अन्वारुरुहतुः पार्थं युयुधानजनार्दनौ ।
शर्यातेर्यज्ञमायान्तं यथेन्द्रं देवमश्विनौ ॥ १८ ॥

अर्जुनके बैठनेके बाद सात्यकि और श्रीकृष्ण भी उस रथपर आरूढ़ हो गये, मानो राजा शर्यातिके यज्ञमें आते हुए इन्द्रदेवके साथ दोनों अश्विनीकुमार आ रहे हों ॥१८॥

अथ जग्राह गोविन्दो रश्मीन् रश्मिविदां वरः ।
मातलिर्वासवस्येव वृत्रं हन्तुं प्रयास्यतः ॥ १९ ॥

उन घोड़ोंकी रास पकड़नेकी कलामें सर्वश्रेष्ठ भगवान् गोविन्दने रथकी बागडोर अपने हाथमें ले ली, ठीक उसी प्रकार जैसे, वृत्रासुरका वध करनेके लिये जानेवाले इन्द्रके रथकी बागडोर मातलिने पकड़ी थी ॥ १९ ॥

स ताभ्यां सहितः पार्थो रथप्रवरमास्थितः ।

सहितो बुधशुक्राभ्यां तमो निघ्नन् यथा शशी ॥ २० ॥

सात्यकि और श्रीकृष्ण दोनोंके साथ उस श्रेष्ठ रथपर बैठे हुए अर्जुन बुध और शुक्रके साथ स्थित हुए अन्धकार-नाशक चन्द्रमाके समान जान पड़ते थे ॥ २० ॥

सैन्धवस्य वधं प्रेप्सुः प्रयातः शत्रुपूगहा ।
सहाम्बुपतिमित्राभ्यां यथेन्द्रस्तारकामये ॥ २१ ॥

शत्रुसमूहका नाश करनेवाले अर्जुन जब सात्यकि और श्रीकृष्णके साथ सिंधुराज जयद्रथका वध करनेकी इच्छासे प्रस्थित हुए, उस समय वरुण और मित्रके साथ तारकामय संग्राममें जानेवाले इन्द्रके समान सुशोभित हुए ॥ २१ ॥

ततो वादित्रनिर्घोषैर्माङ्गल्यैश्च स्तवैः शुभैः ।
प्रयान्तमर्जुनं वीरं मागधाश्चैव तुष्टुवुः ॥ २२ ॥

तदनन्तर रणवाद्योंके घोष तथा शुभ एवं माङ्गलिक स्तुतियोंके साथ यात्रा करते हुए वीर अर्जुनकी मागधजन स्तुति करने लगे ॥ २२ ॥

सजयाशीः सपुण्याहः सूतमागधनिःस्वनः ।
युक्तो वादित्रघोषेण तेषां रतिकरोऽभवत् ॥ २३ ॥

विजयसूचक आशीर्वाद तथा पुण्याहवाचनके साथ सूत, मागध एवं बन्दीजनोंका शब्द रणवाद्योंकी ध्वनिसे मिलकर उन सबकी प्रसन्नताको बढ़ा रहा था ॥ २३ ॥

तमनुप्रयतो वायुः पुण्यगन्धवहः शुभः ।
ववौ संहर्षयन् पार्थं द्विषतश्चापि शोषयन् ॥ २४ ॥

अर्जुनके प्रस्थान करनेपर पीछेसे मङ्गलमय पवित्र एवं सुगन्धयुक्त वायु बहने लगी, जो अर्जुनका हर्ष बढ़ाती हुई उनके शत्रुओंका शोषण कर रही थी ॥ २४ ॥

ततस्तस्मिन् क्षणे राजन् विविधानि शुभानि च ।
प्रादुरासन् निमित्तानि विजयाय बहूनि च ।
पाण्डवानां त्वदीयानां विपरीतानि मारिष ॥ २५ ॥

माननीय महाराज ! उस समय बहुत-से ऐसे शुभ शकुन प्रकट हुए, जो पाण्डवोंकी विजय और आपके सैनिकोंकी पराजयकी सूचना दे रहे थे ॥ २५ ॥

दृष्ट्वार्जुनो निमित्तानि विजयाय प्रदक्षिणम् ।
युयुधानं महेष्वासमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥

अर्जुनने अपने दाहिने प्रकट होनेवाले उन विजयसूचक शुभ लक्षणोंको देखकर महाधनुर्धर सात्यकिसे इस प्रकार कहा—॥ २६ ॥

युयुधानाद्य युद्धे मे दृश्यते विजयो ध्रुवः ।
यथा हीमानि लिङ्गानि दृश्यन्ते शिनिपुङ्गव ॥ २७ ॥

'शिनिप्रवर युयुधान ! आज जैसे ये शुभ लक्षण दिखायी देते हैं, उनसे युद्धमें मेरी निश्चित विजय दृष्टिगोचर हो रही है ॥

सोऽहं तत्र गमिष्यामि यत्र सैन्धवको नृपः ।
यियासुर्यमलोकाय मम वीर्यं प्रतीक्षते ॥ २८ ॥

'अतः मैं वहीं जाऊँगा, जहाँ सिंधुराज जयद्रथ यमलोकमें जानेकी इच्छासे मेरे पराक्रमकी प्रतीक्षा कर रहा है ॥ २८ ॥

यथा परमकं कृत्यं सैन्धवस्य वधो मम ।
तथैव सुमहत् कृत्यं धर्मराजस्य रक्षणम् ॥ २९ ॥

'मेरे लिये सिंधुराज जयद्रथका वध जैसे अत्यन्त महान् कार्य है, उसी प्रकार धर्मराजकी रक्षा भी परम महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है ॥ २९ ॥

स त्वमद्य महाबाहो राजानं परिपालय ।
यथैव हि मया गुप्तस्त्वया गुप्तो भवेत् तथा ॥ ३० ॥

'महाबाहो ! आज तुम्हीं राजा युधिष्ठिरकी सब ओरसे रक्षा करो । जिस प्रकार वे मेरे द्वारा सुरक्षित होते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे द्वारा भी उनकी सुरक्षा हो सकती है ॥ ३० ॥

न पश्यामि च तं लोके यस्त्वां युद्धे पराजयेत् ।
वासुदेवसमं युद्धे स्वयमप्यमरेश्वरः ॥ ३१ ॥

'मैं संसारमें ऐसे किसी वीरको नहीं देखता, जो युद्धमें तुम्हें पराजित कर सके । तुम संग्रामभूमिमें साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके समान हो । साक्षात् देवराज इन्द्र भी तुम्हें नहीं जीत सकते ॥ ३१ ॥

त्वयि चाहं पराश्वस्तः प्रद्युम्ने वा महारथे ।
शक्नुयां सैन्धवं हन्तुमनपेक्षो नरर्षभ ॥ ३२ ॥

'नरश्रेष्ठ ! इस कार्यके लिये मैं तुमपर अथवा महारथी प्रद्युम्नपर ही पूरा भरोसा करता हूँ । सिंधुराज जयद्रथका वध तो मैं किसीकी सहायताकी अपेक्षा किये बिना ही कर सकता हूँ ॥

मय्यपेक्षा न कर्तव्या कथंचिदपि सात्वत ।
राजन्येव परा गुप्तिः कार्या सर्वात्मना त्वया ॥ ३३ ॥

'सात्वतवीर ! तुम किसी प्रकार भी मेरा अनुसरण न करना । तुम्हें सब प्रकारसे राजा युधिष्ठिरकी ही पूर्णरूपसे रक्षा करनी चाहिये ॥ ३३ ॥

न हि यत्र महाबाहुर्वासुदेवो व्यवस्थितः ।
किंचिद् व्यापद्यते तत्र यत्राहमपि च ध्रुवम् ॥ ३४ ॥

'जहाँ महाबाहु भगवान् श्रीकृष्ण विराजमान हैं और मैं भी उपस्थित हूँ, वहाँ अवश्य ही कोई कार्य बिगड़ नहीं सकता है' ॥ ३४ ॥

एवमुक्तस्तु पार्थेन सात्यकिः परवीरहा ।
तथेत्युक्त्वागमत् तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ ३५ ॥

अर्जुनके ऐसा कहनेपर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले सात्यकि 'बहुत अच्छा' कहकर जहाँ राजा युधिष्ठिर थे, वहीं चले गये ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि प्रतिज्ञापर्वणि अर्जुनवाक्ये चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत प्रतिज्ञापर्वमें अर्जुनवाक्यविषयक चौरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८४ ॥

(जयद्रथवधपर्व)

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका विलाप

धृतराष्ट्र उवाच

श्वोभूते किमकार्षुस्ते दुःखशोकसमन्विताः ।
अभिमन्यौ हते तत्र के वायुध्यन्त मामकाः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय ! अभिमन्युके मारे जानेपर दुःख और शोकमें डूबे हुए पाण्डवोंने सबेरा होनेपर क्या किया ? तथा मेरे पक्षवाले योद्धाओंमेंसे किन लोगोंने युद्ध किया? ॥ १ ॥

जानन्तस्तस्य कर्माणि कुरवः सव्यसाचिनः ।
कथं तत् किल्बिषं कृत्वा निर्भया ब्रूहि मामकाः ॥ २ ॥

सव्यसाची अर्जुनके पराक्रमको जानते हुए भी मेरे पक्षवाले कौरव योद्धा उनका अपराध करके कैसे निर्भय रह सके ? यह बताओ ॥ २ ॥

पुत्रशोकाभिसंतप्तं क्रुद्धं मृत्युमिवान्तकम् ।
आयान्तं पुरुषव्याघ्रं कथं ददृशुराहवे ॥ ३ ॥

पुत्रशोकसे संतप्त हो क्रोधमें भरे हुए प्राणान्तकारी मृत्युके समान आते हुए पुरुषसिंह अर्जुनकी ओर मेरे पुत्र युद्धमें कैसे देख सके ? ॥ ३ ॥

कपिराजध्वजं संख्ये विधुन्वानं महद् धनुः ।
दृष्ट्वा पुत्रपरिद्यूनं किमकुर्वत मामकाः ॥ ४ ॥

जिनकी ध्वजामें कपिराज हनुमान् विराजमान हैं, उन पुत्रवियोगसे व्यथित हुए अर्जुनको युद्धस्थलमें अपने विशाल धनुषकी टंकार करते देख मेरे पुत्रोंने क्या किया ? ॥ ४ ॥

किं नु संजय संग्रामे वृत्तं दुर्योधनं प्रति ।
परिदेवो महानद्य श्रुतो मे नाभिनन्दनम् ॥ ५ ॥

संजय ! संग्रामभूमिमें दुर्योधनपर क्या बीता है ? इन दिनों मैंने महान् विलापकी ध्वनि सुनी है । आमोद-प्रमोदके शब्द मेरे कानोंमें नहीं पड़े हैं ॥ ५ ॥

बभूवुर्ये मनोग्राह्याः शब्दाः श्रुतिसुखावहाः ।
न श्रूयन्तेऽद्य सर्वे ते सैन्धवस्य निवेशने ॥ ६ ॥

पहले सिंधुराजके शिविरमें जो मनको प्रिय लगनेवाले और कानोंको सुख देनेवाले शब्द होते रहते थे, वे सब अब नहीं सुनायी पड़ते हैं ॥ ६ ॥

स्तुवतां नाद्य श्रूयन्ते पुत्राणां शिविरे मम ।
सूतमागधसंघानां नर्तकानां च सर्वशः ॥ ७ ॥

मेरे पुत्रोंके शिविरमें अब स्तुति करनेवाले सूतों, मागधों एवं नर्तकोंके शब्द सर्वथा नहीं सुनायी पड़ते हैं ॥ ७ ॥

शब्देन नादिताभीक्ष्णमभवद् यत्र मे श्रुतिः ।
दीनानामद्य तं शब्दं न शृणोमि समीरितम् ॥ ८ ॥

जहाँ मेरे कान निरन्तर स्वजनोंके आनन्द-कोलाहलसे गूँजते रहते थे, वहीं आज मैं अपने दीन दुखी पुत्रोंके द्वारा उच्चारित वह हर्षसूचक शब्द नहीं सुन रहा हूँ ॥ ८ ॥

निवेशने सत्यधृतेः सोमदत्तस्य संजय ।
आसीनोऽहं पुरा तात शब्दमश्रौषमुत्तमम् ॥ ९ ॥

तात संजय ! पहले मैं यथार्थ धैर्यशाली सोमदत्तके भवनमें बैठा हुआ उत्तम शब्द सुना करता था ॥ ९ ॥

तदद्य पुण्यहीनोऽहमार्तस्वरनिनादितम् ।
निवेशनं गतोत्साहं पुत्राणां मम लक्षये ॥ १० ॥

परंतु आज पुण्यहीन मैं अपने पुत्रोंके घरको उत्साहशून्य एवं आर्तनादसे गूँजता हुआ देख रहा हूँ ॥ १० ॥

विविंशतेर्दुर्मुखस्य चित्रसेनविकर्णयोः ।
अन्येषां च सुतानां मे न तथा श्रूयते ध्वनिः ॥ ११ ॥

विविंशति, दुर्मुख, चित्रसेन, विकर्ण तथा मेरे अन्य पुत्रोंके घरोंमें अब पूर्ववत् आनन्दित ध्वनि नहीं सुनी जाती है ॥ ११ ॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या यं शिष्याः पर्युपासते ।
द्रोणपुत्रं महेष्वासं पुत्राणां मे परायणम् ॥ १२ ॥
वितण्डालापसंलापैर्द्रुतवादित्रवादितैः ।
गीतैश्च विविधैरिष्टै रमते यो दिवानिशम् ॥ १३ ॥
उपास्यमानो बहुभिः कुरुपाण्डवसात्वतैः ।
सूत तस्य गृहे शब्दो नाद्य द्रौणेर्यथा पुरा ॥ १४ ॥

सूत संजय ! मेरे पुत्रोंके परम आश्रय जिस महाधनुर्धर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाकी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सभी जातियोंके शिष्य उपासना (निकट रहकर सेवा) करते रहे हैं, जो वितण्डावाद, भाषण, पारस्परिक बातचीत, द्रुतस्वरमें बजाये हुए वाद्योंके शब्दों तथा भाँति-भाँतिके अभीष्ट गीतोंसे दिन-रात मन बहलाया करता था, जिसके पास बहुत-से कौरव, पाण्डव और सात्वतवंशी वीर बैठा करते थे, उस अश्वत्थामाके घरमें आज पहलेके समान हर्षसूचक शब्द नहीं हो रहा है ॥ १२–१४ ॥

द्रोणपुत्रं महेष्वासं गायना नर्तकाश्च ये ।
अत्यर्थमुपतिष्ठन्ति तेषां न श्रूयते ध्वनिः ॥ १५ ॥

महाधनुर्धर द्रोणपुत्रकी सेवामें जो गायक और नर्तक अधिक उपस्थित होते थे, उनकी ध्वनि अब नहीं सुनायी देती है ॥ १५ ॥

विन्दानुविन्दयोः सायं शिबिरे यो महाध्वनिः ॥ १६ ॥
श्रूयते सोऽद्य न तथा केकयानां च वेश्मसु ।

नित्यं प्रमुदितानां च तालगीतस्वनो महान् ॥ १७ ॥
नृत्यतां श्रूयते तात गणानां सोऽद्य न स्वनः ।

विन्द और अनुविन्दके शिविरमें संध्याके समय जो महान् शब्द सुनायी पड़ता था, वह अब नहीं सुननेमें आता है। तात सदा आनन्दित रहनेवाले केकयोंके भवनोंमें झुंड-के-झुंड नर्तकोंका ताल-स्वरके साथ गीतका जो महान् शब्द सुनायी पड़ता था, वह अब नहीं सुना जाता है ॥

सप्त तन्तून् वितन्वाना याजका यमुपासते ॥ १८ ॥
सौमदत्तिं श्रुतनिधिं तेषां न श्रूयते ध्वनिः ।

वेद-विद्याके भण्डार जिस सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवाके यहाँ सातों यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले याजक सदा रहा करते थे, अब वहाँ उन ब्राह्मणोंकी आवाज नहीं सुनायी देती है ॥

ज्याघोषो ब्रह्मघोषश्च तोमरासिरथध्वनिः ॥ १९ ॥
द्रोणस्यासीदविरतो गृहे तं न शृणोम्यहम् ।

द्रोणाचार्यके घरमें निरन्तर धनुषकी प्रत्यञ्चाका घोष, वेदमन्त्रोंके उच्चारणकी ध्वनि तथा तोमर, तलवार एवं रथके शब्द गूँजते रहते थे; परंतु अब मैं वहाँ वह शब्द नहीं सुन रहा हूँ ॥ १९½ ॥

नानादेशसमुत्थानां गीतानां योऽभवत् स्वनः ॥ २० ॥
वादित्रनादितानां च सोऽद्य न श्रूयते महान् ।

नाना प्रदेशोंसे आये हुए लोगोंके गाये हुए गीतोंका और बजाये हुए बाजोंका भी जो महान् शब्द श्रवण गोचर होता था, वह अब नहीं सुनायी देता है ॥ २०½ ॥

यदा प्रभृत्युपप्लव्याच्छान्तिमिच्छञ्जनार्दनः ॥ २१ ॥
आगतः सर्वभूतानामनुकम्पार्थमच्युतः ।
ततोऽहमब्रुवं सूत मन्दं दुर्योधनं तदा ॥ २२ ॥

संजय! जब अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले भगवान् जनार्दन समस्त प्राणियोंपर कृपा करनेके लिये शान्ति स्थापित करनेकी इच्छा लेकर उपप्लव्यसे हस्तिनापुरमें पधारे थे, उस समय मैंने अपने मूर्ख पुत्र दुर्योधनसे इस प्रकार कहा था— ॥

वासुदेवेन तीर्थेन पुत्र संशाम्य पाण्डवैः ।
कालप्राप्तमहं मन्ये मा त्वं दुर्योधनातिगाः ॥ २३ ॥

'बेटा! भगवान् श्रीकृष्णको साधन बनाकर पाण्डवोंके साथ संधि कर लो। मैं इसीको समयोचित कर्तव्य मानता हूँ। दुर्योधन! तुम इसे टालो मत ॥ २३ ॥

शमं चेद् याचमानं त्वं प्रत्याख्यास्यसि केशवम्।
हितार्थमभिजल्पन्तं न तवास्ति रणे जयः ॥ २४ ॥

'भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे हितकी ही बात कहते हैं और स्वयं संधिके लिये याचना कर रहे हैं। ऐसी दशामें यदि तुम इनकी बात नहीं मानोगे तो युद्धमें तुम्हारी विजय नहीं होगी' ॥

प्रत्याचष्ट स दाशार्हमृषभं सर्वधन्विनाम् ।
अनुनेयानि जल्पन्तमनयान्नान्वपद्यत ॥ २५ ॥

परंतु उसने सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णकी बात माननेसे इनकार कर दिया। यद्यपि वे अनुनयपूर्ण वचन बोलते थे, तथापि दुर्योधनने अन्यायवश उन्हें नहीं माना ॥ २५ ॥

(कर्णदुःशासनमते सौबलस्य च दुर्मतेः ।
प्रत्याख्यातो महाबाहुः कुलान्तकरणेन मे ॥)

कर्ण, दुःशासन और खोटी बुद्धिवाले शकुनिके मतमें आकर मेरे कुलका नाश करनेवाले दुर्योधनने महाबाहु श्रीकृष्णका तिरस्कार कर दिया ॥

ततो दुःशासनस्यैव कर्णस्य च मतं द्वयोः ।
अन्ववर्तत मां हित्वा कृष्टः कालेन दुर्मतिः ॥ २६ ॥

फिर तो कालसे आकृष्ट हुए दुर्बुद्धि दुर्योधनने मुझे छोड़कर दुःशासन और कर्ण इन्हीं दोनोंके मतका अनुसरण किया ॥ २६ ॥

न ह्यहं द्यूतमिच्छामि विदुरो न प्रशंसति ।
सैन्धवो नेच्छति द्यूतं भीष्मो न द्यूतमिच्छति ॥ २७ ॥

मैं जूआ खेलना नहीं चाहता था, विदुर भी उसकी प्रशंसा नहीं करते थे, सिंधुराज जयद्रथ भी जूआ नहीं चाहते थे और भीष्मजी भी द्यूतकी अभिलाषा नहीं रखते थे ॥

शल्यो भूरिश्रवाश्चैव पुरुमित्रो जयस्तथा ।
अश्वत्थामा कृपो द्रोणो द्यूतं नेच्छन्ति संजय ॥ २८ ॥

संजय! शल्य, भूरिश्रवा, पुरुमित्र, जय, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और द्रोणाचार्य भी जूआ होने देना नहीं चाहते थे ॥

एतेषां मतमादाय यदि वर्तेत पुत्रकः ।
सज्ञातिमित्रः ससुहृच्चिरं जीवेदनामयः ॥ २९ ॥

यदि बेटा दुर्योधन इन सबकी राय लेकर चलता तो भाई-बन्धु, मित्र और सुहृदोंसहित दीर्घकालतक नीरोग एवं स्वस्थ रहकर जीवन धारण करता ॥ २९ ॥

श्लक्ष्णा मधुरसम्भाषा ज्ञातिबन्धुप्रियंवदाः ।
कुलीनाः सम्मताः प्राज्ञाः सुखं प्राप्स्यन्ति पाण्डवाः ॥ ३० ॥

'पाण्डव सरल, मधुरभाषी, भाई-बन्धुओंके प्रति प्रिय वचन बोलनेवाले, कुलीन, सम्मानित और विद्वान् हैं; अतः उन्हें सुखकी प्राप्ति होगी ॥ ३० ॥

धर्मापेक्षी नरो नित्यं सर्वत्र लभते सुखम् ।
प्रेत्यभावे च कल्याणं प्रसादं प्रतिपद्यते ॥ ३१ ॥

'धर्मकी अपेक्षा रखनेवाला मनुष्य सदा सर्वत्र सुखका भागी होता है। मृत्युके पश्चात् भी उसे कल्याण एवं प्रसन्नता प्राप्त होती है ॥ ३१ ॥

अर्हास्ते पृथिवीं भोक्तुं समर्थाः साधनेऽपि च ।
तेषामपि समुद्रान्ता पितृपैतामही मही ॥ ३२ ॥

'पाण्डव पृथ्वीका राज्य भोगनेमें और उसे प्राप्त करनेमें भी समर्थ हैं। यह समुद्रपर्यन्त पृथ्वी उनके बाप-दादोंकी भी है ॥ ३२ ॥

नियुज्यमानाः स्थास्यन्ति पाण्डवा धर्मवर्त्मनि।
सन्ति मे ज्ञातयस्तात येषां श्रोष्यन्ति पाण्डवाः ॥३३॥

'तात! पाण्डवोंको यदि आदेश दिया जाय तो वे उसे मानकर सदा धर्ममार्गपर ही स्थिर रहेंगे। मेरे अनेक ऐसे भाई-बन्धु हैं, जिनकी बात पाण्डव सुनेंगे ॥ ३३ ॥

शल्यस्य सोमदत्तस्य भीष्मस्य च महात्मनः।
द्रोणस्याथ विकर्णस्य बाह्लीकस्य कृपस्य च ॥३४॥
अन्येषां चैव वृद्धानां भरतानां महात्मनाम्।
त्वदर्थं ब्रुवतां तात करिष्यन्ति वचो हि ते ॥३५॥

'वत्स! शल्य, सोमदत्त, महात्मा भीष्म, द्रोणाचार्य, विकर्ण, बाह्लीक, कृपाचार्य तथा अन्य जो बड़े-बूढ़े महामना भरतवंशी हैं, वे यदि तुम्हारे लिये उनसे कुछ कहेंगे तो पाण्डव उनकी बात अवश्य मानेंगे ॥ ३४-३५ ॥

कं वा त्वं मन्यसे तेषां यस्तान् ब्रूयादतोऽन्यथा।
कृष्णो न धर्मं संजह्यात् सर्वे ते हि तदन्वयाः ॥३६॥

'बेटा दुर्योधन! तुम उपर्युक्त व्यक्तियोंमेंसे किसको ऐसा मानते हो जो पाण्डवोंके विषयमें इसके विपरीत कह सके। श्रीकृष्ण कभी धर्मका परित्याग नहीं कर सकते और समस्त पाण्डव उन्हींके मार्गका अनुसरण करनेवाले हैं ॥३६॥

मयापि चोक्तास्ते वीरा वचनं धर्मसंहितम्।
नान्यथा प्रकरिष्यन्ति धर्मात्मानो हि पाण्डवाः ॥३७॥

'मेरे कहनेपर भी वे मेरे धर्मयुक्त वचनकी अवहेलना नहीं करेंगे; क्योंकि वीर पाण्डव धर्मात्मा हैं' ॥ ३७ ॥

इत्यहं विलपन् सूत बहुशः पुत्रमुक्तवान्।
न च मे श्रुतवान् मूढो मन्ये कालस्य पर्ययम् ॥३८॥

सूत! इस प्रकार विलाप करते हुए मैंने अपने पुत्र दुर्योधनसे बहुत कुछ कहा, परंतु उस मूर्खने मेरी एक नहीं सुनी। अतः मैं समझता हूँ कि कालचक्रने पलटा खाया है ॥ ३८ ॥

वृकोदरार्जुनौ यत्र वृष्णिवीरश्च सात्यकिः।
उत्तमौजाश्च पाञ्चाल्यो युधामन्युश्च दुर्जयः ॥३९॥
धृष्टद्युम्नश्च दुर्धर्षः शिखण्डी चापराजितः।
अश्मकाः केकयाश्चैव क्षत्रधर्मा च सौमकिः ॥४०॥
चैद्यश्च चेकितानश्च पुत्रः काश्यस्य चाभिभूः।
द्रौपदेया विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥४१॥
यमौ च पुरुषव्याघ्रौ मन्त्री च मधुसूदनः।
क एताञ्जातु युध्येत लोकेऽस्मिन् वै जिजीविषुः ॥४२॥

जिस पक्षमें भीमसेन, अर्जुन, वृष्णिवीर सात्यकि, पाञ्चालवीर उत्तमौजा, दुर्जय युधामन्यु, दुर्धर्ष धृष्टद्युम्न, अपराजित वीर शिखण्डी, अश्मक, केकयराजकुमार, सोमकपुत्र क्षत्रधर्मा, चेदिराज धृष्टकेतु, चेकितान, काशिराजके पुत्र अभिभू, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, राजा विराट और महारथी द्रुपद हैं, जहाँ पुरुषसिंह नकुल, सहदेव और मन्त्रदाता मधुसूदन हैं, वहाँ इस संसारमें कौन ऐसा वीर है, जो जीवित रहनेकी इच्छा रखकर इन वीरोंके साथ कभी युद्ध करेगा ॥ ३९–४२ ॥

दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणान् प्रसहेद् वा परान् मम।
अन्यो दुर्योधनात् कर्णाच्छकुनेश्चापि सौबलात् ॥४३॥
दुःशासनचतुर्थानां नान्यं पश्यामि पञ्चमम्।

अथवा दुर्योधन, कर्ण, सुबलपुत्र शकुनि तथा चौथे दुःशासनके सिवा मैं पाँचवें किसी ऐसे वीरको नहीं देखता, जो दिव्यास्त्र प्रकट करनेवाले मेरे इन शत्रुओंका वेग सह सके ॥ ४३½ ॥

येषामभीषुहस्तः स्याद् विष्वक्सेनो रथे स्थितः ॥ ४४ ॥
संनद्धश्चार्जुनो योद्धा तेषां नास्ति पराजयः।

रथपर बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्ण हाथोंमें बागडोर लेकर जिनका सारथ्य करते हैं तथा जिनकी ओरसे कवचधारी अर्जुन युद्ध करनेवाले हैं, उनकी कभी पराजय नहीं हो सकती ॥ ४४½ ॥

तेषामथ विलापानां नायं दुर्योधनः स्मरेत् ॥ ४५ ॥
हतौ हि पुरुषव्याघ्रौ भीष्मद्रोणौ त्वमात्थ वै।

संजय! यह दुर्योधन मेरे उन विलापोंको कभी याद नहीं करेगा। तुम कहते हो कि 'पुरुषसिंह भीष्म और द्रोणाचार्य मारे गये' ॥ ४५½ ॥

तेषां विदुरवाक्यानामुक्तानां दीर्घदर्शनात् ॥ ४६ ॥
दृष्ट्वेमां फलनिर्वृत्तिं मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः।
सेनां दृष्ट्वाभिभूतां मे शैनेयेनार्जुनेन च ॥ ४७ ॥

विदुरने भविष्यमें होनेवाली दूरतककी घटनाओंको ध्यानमें रखकर जो बातें कही थीं, उन्हींके अनुसार इस समय हमें यह फल मिल रहा है। इसे देखकर मैं यह समझता हूँ कि मेरे पुत्र सात्यकि और अर्जुनके द्वारा अपनी सेनाका संहार देखते हुए शोक कर रहे होंगे ॥ ४६–४७ ॥

शून्यान् दृष्ट्वा रथोपस्थान् मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः।
हिमात्यये यथा कक्षं शुष्कं वातेरितो महान् ॥ ४८ ॥
अग्निर्दहेत् तथा सेनां मामिकां स धनंजयः।
आचक्ष्व मम तत् सर्वं कुशलो ह्यसि संजयः ॥४९॥

बहुत-से रथोंकी बैठकोंको रथियोंसे शून्य देखकर मेरे पुत्र शोकमें डूब गये होंगे; ऐसा मेरा विश्वास है। जैसे ग्रीष्म ऋतुमें वायुका सहारा पाकर बढ़ी हुई अग्नि सूखे घासको जला डालती है, उसी प्रकार अर्जुन मेरी सेनाको दग्ध कर डालेंगे। संजय! तुम कथा कहनेमें कुशल हो; अतः युद्धका सारा समाचार मुझसे कहो ॥ ४८-४९ ॥

यदुपायात सायाह्ने कृत्वा पार्थस्य किल्बिषम्।
अभिमन्यौ हते तात कथमासीन्मनो हि वः ॥ ५० ॥

तात ! जब तुमलोग अभिमन्युके मारे जानेपर अर्जुनका महान् अपराध करके सायंकालमें शिबिरको लौटे थे, उस समय तुम्हारे मनकी क्या अवस्था थी ? ॥ ५० ॥

न जातु तस्य कर्माणि युधि गाण्डीवधन्वनः।
अपकृत्य महत् तात सोढुं शक्ष्यन्ति मामकाः ॥ ५१ ॥

तात ! गाण्डीवधारी अर्जुनका महान् अपकार करके मेरे पुत्र युद्धमें उनके पराक्रमको कभी नहीं सह सकेंगे ॥५१॥

किन्नु दुर्योधनः कृत्यं कर्णः कृत्यं किमब्रवीत्।
दुःशासनः सौबलश्च तेषामेवं गतेष्वपि ॥ ५२ ॥

उस समय उनकी ऐसी अवस्था होनेपर भी दुर्योधनने कौन-सा कर्तव्य निश्चित किया ? कर्ण, दुःशासन तथा शकुनिने क्या करनेकी सलाह दी ? ॥ ५२ ॥

सर्वेषां समवेतानां पुत्राणां मम संजय।
यद् वृत्तं तात संग्रामे मन्दस्यापनयैर्भृशम् ॥ ५३ ॥
लोभानुगस्य दुर्बुद्धेः क्रोधेन विकृतात्मनः।
राज्यकामस्य मूढस्य रागोपहतचेतसः।
दुर्नीतं वा सुनीतं वा तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ५४ ॥

तात संजय ! युद्धमें मेरे मूर्ख पुत्र दुर्योधनके अत्यन्त अन्यायसे एकत्र हुए मेरे अन्य सभी पुत्रोंपर जो कुछ बीता था तथा लोभका अनुसरण करनेवाले, क्रोधसे विकृत चित्तवाले, रागसे दूषित हृदयवाले, राज्यकामी मूढ़ और दुर्बुद्धि दुर्योधनने जो न्याय अथवा अन्याय किया हो, वह सब मुझसे कहो ॥ ५३-५४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्ये पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें धृतराष्ट्रवाक्यविषयक पचासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८५ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ५५ श्लोक हैं)

षडशीतितमोऽध्यायः

संजयका धृतराष्ट्रको उपालम्भ

संजय उवाच

हन्त ते सम्प्रवक्ष्यामि सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान्।
शुश्रूषस्व स्थिरो भूत्वा तव ह्यपनयो महान् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! मैंने सब कुछ प्रत्यक्ष देखा है, वह सब आपको अभी बताऊँगा। स्थिर होकर सुननेकी इच्छा कीजिये। इस परिस्थितिमें आपका महान् अन्याय ही कारण है ॥ १ ॥

गतोदके सेतुबन्धो यादृक् तादृगयं तव।
विलापो निष्फलो राजन् मा शुचो भरतर्षभ ॥ २ ॥

भरतश्रेष्ठ राजन् ! जैसे पानी निकल जानेपर वहाँ पुल बाँधना व्यर्थ है, उसी प्रकार इस समय आपका यह विलाप भी निष्फल है। आप शोक न कीजिये ॥ २ ॥

अनतिक्रमणीयोऽयं कृतान्तस्याद्भुतो विधिः।
मा शुचो भरतश्रेष्ठ दिष्टमेतत् पुरातनम् ॥ ३ ॥

कालके इस अद्भुत विधानका उल्लङ्घन करना असम्भव है। भरतभूषण ! शोक त्याग दीजिये। यह सब पुरातन प्रारब्धका फल है ॥ ३ ॥

यदि त्वं हि पुरा द्यूतात् कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्।
निवर्तयेथाः पुत्रांश्च न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ४ ॥

यदि आप कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर तथा अपने पुत्रोंको पहले ही जूएसे रोक देते तो आपपर यह संकट नहीं आता॥

युद्धकाले पुनः प्राप्ते तदैव भवता यदि।
निवर्तिताः स्युः संरब्धा न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ५ ॥

फिर जब युद्धका अवसर आया, उसी समय यदि आपने क्रोधमें भरे हुए अपने पुत्रोंको बलपूर्वक रोक दिया होता तो आपपर यह संकट नहीं आ सकता था ॥ ५ ॥

दुर्योधनं चाविधेयं बध्नीतेति पुरा यदि।
कुरूनचोदयिष्यस्त्वं न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ६ ॥

यदि आप पहले ही कौरवोंको यह आज्ञा दे देते कि इस दुर्विनीत दुर्योधनको कैद कर लो तो आपपर यह संकट नहीं आता ॥ ६ ॥

तत् ते बुद्धिव्यभीचारमुपलप्स्यन्ति पाण्डवाः।
पञ्चाला वृष्णयः सर्वे ये चान्येऽपि नराधिपाः ॥ ७ ॥

आपकी बुद्धिके वैपरीत्यका फल पाण्डव, पाञ्चाल, समस्त वृष्णिवंशी तथा अन्य जो-जो नरेश हैं, वे सभी भोगेंगे ॥७॥

स कृत्वा पितृकर्म त्वं पुत्रं संस्थाप्य सत्पथे।
वर्तेथा यदि धर्मेण न त्वां व्यसनमाव्रजेत् ॥ ८ ॥

यदि आपने अपने पुत्रको सन्मार्गमें स्थापित करके पिताके कर्तव्यका पालन करते हुए धर्मके अनुसार बर्ताव किया होता तो आपपर यह संकट नहीं आता ॥ ८ ॥

त्वं तु प्राज्ञतमो लोके हित्वा धर्मं सनातनम्।
दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेश्चान्वगा मतम् ॥ ९ ॥

आप संसारमें बड़े बुद्धिमान् समझे जाते हैं तो भी आपने सनातनधर्मका परित्याग करके दुर्योधन, कर्ण और शकुनिके मतका अनुसरण किया है ॥ ९ ॥

तत् तं विलपितं सर्वं मया राजन् निशामितम्।

अर्थे निविशमानस्य विषमिश्रं यथा मधु ॥ १० ॥

राजन् ! आप स्वार्थमें सने हुए हैं । आपका यह सारा विलाप-कलाप मैंने सुन लिया । यह विषमिश्रित मधुके समान ऊपरसे ही मीठा है (इसके भीतर घातक कटुता भरी हुई है) ॥ १० ॥

नामन्यत तदा कृष्णो राजानं पाण्डवं पुरा ।
न भीष्मं नैव च द्रोणं यथा त्वां मन्यतेऽच्युतः ॥ ११ ॥

अपनी महिमासे च्युत न होनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण पहले आपका जैसा सम्मान करते थे, वैसा उन्होंने पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर, भीष्म तथा द्रोणाचार्यका भी समादर नहीं किया है ॥ ११ ॥

अजानात् स यदा तु त्वां राजधर्मादधश्च्युतम् ।
तदाप्रभृति कृष्णस्त्वां न तथा बहु मन्यते ॥ १२ ॥

परंतु जबसे श्रीकृष्णने यह जान लिया है कि आप राजोचित धर्मसे नीचे गिर गये हैं, तबसे वे आपका उस तरह अधिक आदर नहीं करते हैं ॥ १२ ॥

परुषाण्युच्यमानांश्च यथा पार्थानुपेक्षसे ।
तस्यानुबन्धः प्राप्तस्त्वां पुत्राणां राज्यकामुक ॥ १३ ॥

पुत्रोंको राज्य दिलानेकी अभिलाषा रखनेवाले महाराज ! कुन्तीके पुत्रोंको कठोर बातें (गालियाँ) सुनायी जाती थीं और आप उनकी उपेक्षा करते थे । आज उसी अन्यायका फल आपको प्राप्त हुआ है ॥ १३ ॥

पितृपैतामहं राज्यमपवृत्तं तदानघ ।
अथ पार्थैर्जितां कृत्स्नां पृथिवीं प्रत्यपद्यथाः ॥ १४ ॥

निष्पाप नरेश ! आपने उन दिनों बाप-दादोंके राज्यको तो अपने अधिकारमें कर ही लिया था; फिर कुन्तीके पुत्रोंद्वारा जीती हुई सम्पूर्ण पृथ्वीका विशाल साम्राज्य भी हड़प लिया ॥ १४ ॥

पाण्डुना निर्जितं राज्यं कौरवाणां यशस्तथा ।
ततश्चाप्यधिकं भूयः पाण्डवैर्धर्मचारिभिः ॥ १५ ॥

राजा पाण्डुने भूमण्डलका राज्य जीता और कौरवोंके यशका विस्तार किया था । फिर धर्मपरायण पाण्डवोंने अपने पितासे भी बढ़-चढ़कर राज्य और सुयशका प्रसार किया है ।१५।

तेषां तत् तादृशं कर्म त्वामासाद्य सुनिष्फलम् ।
यत् पित्र्याद् भ्रंशिता राज्यात् त्वयेहामिषगृद्धिना॥१६॥

परंतु उनका वैसा महान् कर्म भी आपको पाकर अत्यन्त निष्फल हो गया; क्योंकि आपने राज्यके लोभमें पड़कर उन्हें अपने पैतृक राज्यसे भी वञ्चित कर दिया ॥ १६ ॥

यत् पुनर्युद्धकाले त्वं पुत्रान् गर्हयसे नृप ।
बहुधा व्याहरन् दोषान् न तद्द्योपपद्यते ॥१७॥

नरेश्वर ! आज जब युद्धका अवसर उपस्थित है, ऐसे समयमें जो आप अपने पुत्रोंके नाना प्रकारके दोष बताते हुए उनकी निन्दा कर रहे हैं यह इस समय आपको शोभा नहीं देता है ॥ १७ ॥

न हि रक्षन्ति राजानो युध्यन्तो जीवितं रणे ।
चमूं विगाह्य पार्थानां युध्यन्ते क्षत्रियर्षभाः ॥१८॥

राजा लोग रणक्षेत्रमें युद्ध करते हुए अपने जीवनकी रक्षा नहीं कर रहे हैं । वे क्षत्रियशिरोमणि नरेश पाण्डवोंकी सेनामें घुसकर युद्ध करते हैं ॥ १८ ॥

यां तु कृष्णार्जुनौ सेनां यां सात्यकिवृकोदरौ ।
रक्षेरन् को नु तां युध्येच्चमूमन्यत्र कौरवैः ॥ १९ ॥

श्रीकृष्ण, अर्जुन, सात्यकि तथा भीमसेन जिस सेनाकी रक्षा करते हों, उसके साथ कौरवोंके सिवा दूसरा कौन युद्ध कर सकता है ? ॥ १९ ॥

येषां योद्धा गुडाकेशो येषां मन्त्री जनार्दनः ।
येषां च सात्यकिर्योद्धा येषां योद्धा वृकोदरः ॥ २० ॥
को हि तान् विषहेद् योद्धुं मर्त्यधर्मा धनुर्धरः ।
अन्यत्र कौरवेयेभ्यो ये वा तेषां पदानुगाः ॥ २१ ॥

जिनके योद्धा गुडाकेश अर्जुन हैं, जिनके मन्त्री भगवान् श्रीकृष्ण हैं तथा जिनकी ओरसे युद्ध करनेवाले योद्धा सात्यकि और भीमसेन हैं, उनके साथ कौरवों तथा उनके चरणचिह्नों पर चलनेवाले अन्य नरेशोंको छोड़कर दूसरा कौन मरणधर्मा धनुर्धर युद्ध करनेका साहस कर सकता है ? ॥ २०-२१ ॥

यावत् तु शक्यते कर्तुमन्तरज्ञैर्जनाधिपैः ।
क्षत्रधर्मरतैः शूरैस्तावत् कुर्वन्ति कौरवाः ॥ २२ ॥

अवसरको जाननेवाले, क्षत्रिय-धर्मपरायण, शूरवीर राजा लोग जितना कर सकते हैं, कौरवपक्षी नरेश उतना पराक्रम करते हैं ॥ २२ ॥

यथा तु पुरुषव्याघ्रैर्युद्धं परमसंकटम् ।
कुरूणां पाण्डवैः सार्धं तत् सर्वं शृणु तत्त्वतः ॥ २३ ॥

पुरुषसिंह पाण्डवोंके साथ कौरवोंका जिस प्रकार अत्यन्त संकटपूर्ण युद्ध हुआ है, वह सब आप ठीक-ठीक सुनिये ॥२३॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संजयवाक्ये षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें संजय-वाक्यविषयक छियासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

कौरव-सैनिकोंका उत्साह तथा आचार्य द्रोणके द्वारा चक्रशकटव्यूहका निर्माण

संजय उवाच

तस्यां निशायां व्युष्टायां द्रोणः शस्त्रभृतां वरः।
स्वान्यनीकानि सर्वाणि प्राक्रामद् व्यूहितुं ततः॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! वह रात बीतनेपर प्रातःकाल शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यने अपनी सारी सेनाओंका व्यूह बनाना आरम्भ किया ॥ १ ॥

शूराणां गर्जतां राजन् संक्रुद्धानाममर्षिणाम्।
श्रूयन्ते स्म गिरश्चित्राः परस्परवधैषिणाम्॥ २ ॥

राजन्! उस समय अत्यन्त क्रोधमें भरकर एक दूसरेके वधकी इच्छासे गर्जना करनेवाले अमर्षशील शूरवीरोंकी विचित्र बातें सुनायी देती थीं ॥ २ ॥

विस्फार्य च धनूंष्यन्ये ज्याः परे परिमृज्य च।
विनिःश्वसन्तः प्राक्रोशन् क्वेदानीं स धनंजयः॥ ३ ॥

कोई धनुष खींचकर और कोई प्रत्यञ्चापर हाथ फेरकर रोषपूर्ण उच्छ्वास लेते हुए चिल्ला-चिल्लाकर कहते थे कि इस समय वह अर्जुन कहाँ है? ॥ ३ ॥

विकोशान् सुत्सरूनन्ये कृतधारान् समाहितान्।
पीतानाकाशसंकाशानसीन् केचिच्च चिक्षिपुः॥ ४ ॥

कितने ही योद्धा आकाशके समान निर्मल पानीदार, सँभालकर रक्खी हुई, सुन्दर मूठ और तेजधारवाली तलवारोंको म्यानसे निकालकर चलाने लगे ॥ ४ ॥

चरन्तस्त्वसिमार्गांश्च धनुर्मार्गांश्च शिक्षया।
संग्राममनसः शूरा दृश्यन्ते स्म सहस्रशः॥ ५ ॥

मनमें संग्रामके लिये पूर्ण उत्साह रखनेवाले सहस्रों शूरवीर अपनी शिक्षाके अनुसार खड्गयुद्ध और धनुर्युद्धके मार्गों (पैतरों) का प्रदर्शन करते दिखायी देते थे ॥ ५ ॥

सघण्टाश्चन्दनादिग्धाः स्वर्णवज्रविभूषिताः।
समुत्क्षिप्य गदाश्चान्ये पर्यपृच्छन्त पाण्डवम्॥ ६ ॥

दूसरे बहुत-से योद्धा घंटानादसे युक्त, चन्दनचर्चित तथा सुवर्ण एवं हीरोंसे विभूषित गदाएँ ऊपर उठाकर पूछते थे कि पाण्डुपुत्र अर्जुन कहाँ है? ॥ ६ ॥

अन्ये बलमदोन्मत्ताः परिघैर्बाहुशालिनः।
चक्रुः सम्बाधमाकाशमुच्छ्रितेन्द्रध्वजोपमैः॥ ७ ॥

अपनी भुजाओंसे सुशोभित होनेवाले कितने ही योद्धा अपने बलके मदसे उन्मत्त हो ऊँचे फहराते हुए इन्द्र-ध्वजके समान उठे हुए परिघोंसे सम्पूर्ण आकाशको व्याप्त कर रहे थे ॥

नानाप्रहरणैश्चान्ये विचित्रस्रगलङ्कृताः।
संग्राममनसः शूरास्तत्र तत्र व्यवस्थिताः॥ ८ ॥

दूसरे शूरवीर योद्धा विचित्र मालाओंसे अलंकृत हो नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये मनमें युद्धके लिये उत्साहित होकर जहाँ-तहाँ खड़े थे ॥ ८ ॥

क्वार्जुनः क्व स गोविन्दः क्व च मानी वृकोदरः।
क्व च ते सुहृदस्तेषामाह्वयन्ते रणे तदा॥ ९ ॥

वे उस समय रणक्षेत्रमें शत्रुओंको ललकारते हुए इस प्रकार कहते थे, कहाँ है अर्जुन? कहाँ हैं श्रीकृष्ण? कहाँ है घमंडी भीमसेन? और कहाँ हैं उनके सारे सुहृद्? ॥ ९ ॥

ततः शङ्खमुपाध्माय त्वरयन् वाजिनः स्वयम्।
इतस्ततस्तान् रचयन् द्रोणश्चरति वेगितः॥ १० ॥

तदनन्तर द्रोणाचार्य शङ्ख बजाकर स्वयं ही अपने घोड़ोंको उतावलीके साथ हाँकते और उन सैनिकोंका व्यूह-निर्माण करते हुए इधर-उधर बड़े वेगसे विचर रहे थे ॥ १० ॥

तेष्वनीकेषु सर्वेषु स्थितेष्वाहवनन्दिषु।
भारद्वाजो महाराज जयद्रथमथाब्रवीत्॥ ११ ॥

महाराज! युद्धसे प्रसन्न होनेवाले उन समस्त सैनिकोंके व्यूहबद्ध हो जानेपर द्रोणाचार्यने जयद्रथसे कहा—॥ ११ ॥

त्वं चैव सौमदत्तिश्च कर्णश्चैव महारथः।
अश्वत्थामा च शल्यश्च वृषसेनः कृपस्तथा॥ १२ ॥
शतं चाश्वसहस्राणां रथानामयुतानि षट्।
द्विरदानां प्रभिन्नानां सहस्राणि चतुर्दश॥ १३ ॥
पदातीनां सहस्राणि दंशितान्येकविंशतिः।
गव्यूतिषु त्रिमात्रासु मामनासाद्य तिष्ठत॥ १४ ॥

'राजन्! तुम, भूरिश्रवा, महारथी कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य, वृषसेन तथा कृपाचार्य, एक लाख घुड़सवार, साठ हजार रथ, चौदह हजार मदस्रावी गजराज तथा इक्कीस हजार कवचधारी पैदल सैनिकोंको साथ लेकर मुझसे छः कोसकी दूरीपर जाकर डटे रहो ॥ १२–१४ ॥

तत्रस्थं त्वां न संसोढुं शक्ता देवाः सवासवाः।
किं पुनः पाण्डवाः सर्वे समाश्वसिहि सैन्धव॥ १५ ॥

'सिंधुराज! वहाँ रहनेपर इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता भी तुम्हारा सामना नहीं कर सकते; फिर समस्त पाण्डव तो कर ही कैसे सकते हैं? अतः तुम धैर्य धारण करो' ॥ १५ ॥

एवमुक्तः समाश्वस्तः सिन्धुराजो जयद्रथः।
सम्प्रायात् सह गान्धारैर्वृतस्तैश्च महारथैः॥ १६ ॥
वर्मिभिः सादिभिर्यत्तैः प्रासपाणिभिरास्थितैः।

उनके ऐसा कहनेपर सिंधुराज जयद्रथको बड़ा आश्वासन मिला। वह गान्धार महारथियोंसे घिरा हुआ युद्धके लिये चल दिया। कवचधारी घुड़सवार हाथोंमें प्रास लिये पूरी सावधानीके साथ उन्हें घेरे हुए चल रहे थे ॥ १६½ ॥

चामरापीडिनः सर्वे जाम्बूनदविभूषिताः ॥ १७ ॥
जयद्रथस्य राजेन्द्र हयाः साधुप्रवाहिनः ।
ते चैव सप्तसाहस्राख्रिसाहस्राश्च सैन्धवाः ॥ १८ ॥

राजेन्द्र ! जयद्रथके घोड़े सवारीमें बहुत अच्छा काम देते थे । वे सबके सब चवँरकी कलँगीसे सुशोभित और सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित थे । उन सिंधुदेशीय अश्वोंकी संख्या दस हजार थी ॥ १७-१८ ॥

मत्तानां सुविरूढानां हस्त्यारोहैर्विशारदैः ।
नागानां भीमरूपाणां वर्मिणां रौद्रकर्मिणाम् ॥ १९ ॥
अध्यर्धेन सहस्रेण पुत्रो दुर्मर्षणस्तव ।
अग्रतः सर्वसैन्यानां युध्यमानो व्यवस्थितः ॥ २० ॥

जिनपर युद्धकुशल हाथीसवार आरूढ थे, ऐसे भयंकर रूप तथा पराक्रमवाले डेढ़ हजार कवचधारी मतवाले गजराजोंके साथ आकर आपका पुत्र दुर्मर्षण युद्धके लिये उद्यत हो सम्पूर्ण सेनाओंके आगे खड़ा हुआ ॥ १९-२० ॥

ततो दुःशासनश्चैव विकर्णश्च तवात्मजौ ।
सिन्धुराजार्थसिद्ध्यर्थमग्रानीके व्यवस्थितौ ॥ २१ ॥

तत्पश्चात् आपके दो पुत्र दुःशासन और विकर्ण सिन्धुराज जयद्रथके अभीष्ट अर्थकी सिद्धिके लिये सेनाके अग्रभागमें खड़े हुए ॥ २१ ॥

दीर्घो द्वादश गव्यूतिः पश्चार्धे पञ्च विस्तृतः ।
व्यूहस्तु चक्रशकटो भारद्वाजेन निर्मितः ॥ २२ ॥

आचार्य द्रोणने चक्रगर्भ शकट-व्यूहका निर्माण किया था, जिसकी लम्बाई बारह गव्यूति (चौबीस कोस) थी और पिछले भागकी चौड़ाई पाँच गव्यूति (दस कोस) थी ॥२२॥

नानानृपतिभिर्वीरैस्तत्र तत्र व्यवस्थितैः ।
रथाश्वगजपत्त्योघैर्द्रोणेन विहितः स्वयम् ॥ २३ ॥

यत्र-तत्र खड़े हुए अनेक नरपतियों तथा हाथीसवार, घुड़सवार, रथी और पैदल सैनिकोंद्वारा द्रोणाचार्यने स्वयं उस व्यूहकी रचना की थी ॥ २३ ॥

पश्चार्धे तस्य पद्मस्तु गर्भव्यूहः सुदुर्भिदः ।
सूची पद्मस्य गर्भस्थो गूढो व्यूहः कृतः पुनः ॥ २४ ॥

उस चक्रशकटव्यूहके पिछले भागमें पद्मनामक एक गर्भव्यूह बनाया गया था; जो अत्यन्त दुर्भेद्य था । उस पद्मव्यूहके मध्यभागमें सूची नामक एक गूढ़ व्यूह और बनाया गया था ॥ २४ ॥

एवमेतं महाव्यूहं व्यूह्य द्रोणो व्यवस्थितः ।
सूचीमुखे महेष्वासः कृतवर्मा व्यवस्थितः ॥ २५ ॥

इस प्रकार इस महाव्यूहकी रचना करके द्रोणाचार्य युद्धके लिये तैयार खड़े थे । सूचीमुख व्यूहके प्रमुख भागमें महाधनुर्धर कृतवर्मा खड़ा किया गया था ॥ २५ ॥

अनन्तरं च काम्बोजो जलसंधश्च मारिष ।
दुर्योधनश्च कर्णश्च तदनन्तरमेव च ॥ २६ ॥

आर्य ! कृतवर्माके पीछे काम्बोजराज और जलसंध खड़े हुए, तदनन्तर दुर्योधन और कर्ण स्थित हुए ॥२६॥

ततः शतसहस्राणि योधानामनिवर्तिनाम् ।
व्यवस्थितानि सर्वाणि शकटे मुखरक्षिणाम् ॥ २७ ॥

तत्पश्चात् युद्धमें पीठ न दिखानेवाले एक लाख योद्धा खड़े हुए थे । वे सबके सब शकटव्यूहके प्रमुख भागकी रक्षाके लिये नियुक्त थे ॥ २७ ॥

तेषां च पृष्ठतो राजा बलेन महता वृतः ।
जयद्रथस्ततो राजा सूचीपार्श्वे व्यवस्थितः ॥ २८ ॥

उनके पीछे विशाल सेनाके साथ स्वयं राजा जयद्रथ सूचीव्यूहके पार्श्वभागमें खड़ा था ॥ २८ ॥

शकटस्य तु राजेन्द्र भारद्वाजो मुखे स्थितः ।
अनु तस्याभवद् भोजो जुगोपैनं ततः स्वयम् ॥ २९ ॥

राजेन्द्र ! उस शकटव्यूहके मुहानेपर भरद्वाजनन्दन द्रोणाचार्य थे और उनके पीछे भोज था, जो स्वयं आचार्यकी रक्षा करता था ॥ २९ ॥

श्वेतवर्माम्बरोष्णीषो व्यूढोरस्को महाभुजः ।
धनुर्विस्फारयन् द्रोणस्तस्थौ क्रुद्ध इवान्तकः ॥ ३० ॥

द्रोणाचार्यका कवच श्वेत रंगका था । उनके वस्त्र और उष्णीष (पगड़ी) भी श्वेत ही थे । छाती चौड़ी और भुजाएँ विशाल थीं । उस समय धनुष खींचते हुए द्रोणाचार्य वहाँ क्रोधमें भरे हुए यमराजके समान खड़े थे ॥ ३० ॥

पताकिनं शोणहयं वेदिकृष्णाजिनध्वजम् ।
द्रोणस्य रथमालोक्य प्रहृष्टाः कुरवोऽभवन् ॥ ३१ ॥

उस समय वेदी और काले मृगचर्मके चिह्नसे युक्त ध्वजवाले, पताकासे सुशोभित और लाल घोड़ोंसे जुते हुए द्रोणाचार्यके रथको देखकर समस्त कौरव बड़े प्रसन्न हुए ३१

सिद्धचारणसंघानां विस्मयः सुमहानभूत् ।
द्रोणेन विहितं दृष्ट्वा व्यूहं क्षुब्धार्णवोपमम् ॥ ३२ ॥

द्रोणाचार्यद्वारा रचित वह महाव्यूह क्षुब्ध महासागरके समान जान पड़ता था । उसे देखकर सिद्धों और चारणोंके समुदायोंको महान् विस्मय हुआ ॥ ३२ ॥

सशैलसागरवनां नानाजनपदाकुलाम् ।
ग्रसेद् व्यूहः क्षितिं सर्वामिति भूतानि मेनिरे ॥ ३३ ॥

उस समय समस्त प्राणी ऐसा मानने लगे कि वह व्यूह पर्वत, समुद्र और काननोंसहित अनेकानेक जनपदोंसे भरी हुई इस सारी पृथ्वीको अपना ग्रास बना लेगा ॥ ३३ ॥

बहुरथमनुजाश्वपत्तिनागं
प्रतिभयनिःस्वनमद्भुतानुरूपम् ।

अहितहृदयभेदनं महद् वै
शकटमवेक्ष्य कृतं ननन्द राजा ॥ ३४ ॥

बहुत-से रथ, पैदल मनुष्य, घोड़े और हाथियोंसे परिपूर्ण, भयंकर कोलाहलसे युक्त एवं शत्रुओंके हृदयको विदीर्ण करनेमें समर्थ, अद्भुत और समयके अनुरूप बने हुए उस महान् शकटव्यूहको देखकर राजा दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कौरवव्यूहनिर्माणे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें कौरव-सेनाके व्यूहका निर्माणविषयक सतासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

कौरव-सेनाके लिये अपशकुन, दुर्मर्षणका अर्जुनसे लड़नेका उत्साह तथा अर्जुनका रणभूमिमें प्रवेश एवं शङ्खनाद

संजय उवाच

ततो व्यूढेष्वनीकेषु समुत्क्रुष्टेषु मारिष।
ताड्यमानासु भेरीषु मृदङ्गेषु नदत्सु च ॥ १ ॥
अनीकानां च संह्रादे वादित्राणां च निःस्वने।
प्रध्मापितेषु शङ्खेषु संनादे लोमहर्षणे ॥ २ ॥
अभिहारयत्सु शनकैर्भरतेषु युयुत्सुषु।
रौद्रे मुहूर्ते सम्प्राप्ते सव्यसाची व्यदृश्यत ॥ ३ ॥

संजय कहते हैं—आर्य ! जब इस प्रकार कौरव-सेनाओंकी व्यूह-रचना हो गयी, युद्धके लिये उत्सुक सैनिक कोलाहल करने लगे, नगाड़े पीटे जाने लगे, मृदङ्ग बजने लगे, सैनिकोंकी गर्जनाके साथ-साथ रणवाद्योंकी तुमुल ध्वनि फैलने लगी, शङ्ख फूँके जाने लगे, रोमाञ्चकारी शब्द गूँजने लगा और युद्धके इच्छुक भरतवंशी वीर जब कवच धारण करके धीरे-धीरे प्रहारके लिये उद्यत होने लगे, उस समय उग्र मुहूर्त आनेपर युद्धभूमिमें सव्यसाची अर्जुन दिखायी दिये ॥

बलानां वायसानां च पुरस्तात् सव्यसाचिनः।
बहुलानि सहस्राणि प्राक्रीडंस्तत्र भारत ॥ ४ ॥

भारत ! वहाँ सव्यसाची अर्जुनके सम्मुख आकाशमें कई हजार कौए और वायस क्रीडा करते हुए उड़ रहे थे ॥ ४ ॥

मृगाश्च घोरसंनादाः शिवाश्चाशिवदर्शनाः।
दक्षिणेन प्रयातानामस्माकं प्राणदंस्तथा ॥ ५ ॥

और जब हमलोग आगे बढ़ने लगे, तब भयंकर शब्द करनेवाले पशु और अशुभ दर्शनवाले सियार हमारे दाहिने आकर कोलाहल करने लगे ॥ ५ ॥

(लोकक्षये महाराज यादृशास्तादृशा हि ते।
अशिवा धार्तराष्ट्राणां शिवाः पार्थस्य संयुगे ॥)

महाराज ! उस लोक-संहारकारी युद्धमें जैसे-तैसे अपशकुन प्रकट होने लगे, जो आपके पुत्रोंके लिये अमङ्गलकारी और अर्जुनके लिये मङ्गलकारी थे ॥

सनिर्घाता ज्वलन्त्यश्च पेतुरुल्काः सहस्रशः।
चचाल च मही कृत्स्ना भये घोरे समुत्थिते ॥ ६ ॥

महान् भय उपस्थित होनेके कारण आकाशसे भयंकर गर्जनाके साथ सहस्रों जलती हुई उल्काएँ गिरने लगीं और सारी पृथ्वी काँपने लगी ॥ ६ ॥

विष्वग्वाताः सनिर्घाता रूक्षाः शर्करवर्षिणः।
ववुरायाति कौन्तेये संग्रामे समुपस्थिते ॥ ७ ॥

अर्जुनके आने और संग्रामका अवसर उपस्थित होनेपर रेतकी वर्षा करनेवाली विकट गर्जन-तर्जनके साथ रूखी एवं चौवाई हवा चलने लगी ॥ ७ ॥

नाकुलिश्च शतानीको धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
पाण्डवानामनीकानि प्राज्ञौ तौ व्यूहतुस्तदा ॥ ८ ॥

उस समय नकुलपुत्र शतानीक और द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न—इन दोनों बुद्धिमान् वीरोंने पाण्डव सैनिकोंके व्यूहका निर्माण किया ॥ ८ ॥

ततो रथसहस्रेण द्विरदानां शतेन च।
त्रिभिरश्वसहस्रैश्च पदातीनां शतैः शतैः ॥ ९ ॥
अध्यर्धमात्रे धनुषां सहस्रे तनयस्तव।
अग्रतः सर्वसैन्यानां स्थित्वा दुर्मर्षणोऽब्रवीत् ॥ १० ॥

तदनन्तर एक हजार रथी, सौ हाथीसवार, तीन हजार घुड़सवार और दस हजार पैदल सैनिकोंके साथ आकर अर्जुनसे डेढ़ हजार धनुषकी दूरीपर स्थित हो समस्त कौरव सैनिकोंके आगे होकर आपके पुत्र दुर्मर्षणने इस प्रकार कहा— ॥ ९-१० ॥

अद्य गाण्डीवधन्वानं तपन्तं युद्धदुर्मदम्।
अहमावारयिष्यामि वेलेव मकरालयम् ॥ ११ ॥

'जिस प्रकार तटभूमि समुद्रको आगे बढ़नेसे रोकती है, उसी प्रकार आज मैं युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले शत्रु-संतापी गाण्डीवधारी अर्जुनको रोक दूँगा ॥ ११ ॥

अद्य पश्यन्तु संग्रामे धनंजयममर्षणम्।
विषक्तं मयि दुर्धर्षमश्मकूटमिवाश्मनि ॥ १२ ॥

'आज सब लोग देखें, जैसे पत्थर दूसरे प्रस्तरसमूहसे टकराकर रह जाता है, उसी प्रकार अमर्षशील दुर्धर्ष अर्जुन युद्धस्थलमें मुझसे भिड़कर अवरुद्ध हो जायँगे ॥ १२ ॥

तिष्ठध्वं रथिनो यूयं संग्राममभिकाङ्क्षिणः।

युध्यामि संहतानेतान् यशो मानं च वर्धयन् ॥ १३ ॥

'संग्रामकी इच्छा रखनेवाले रथियो ! आपलोग चुपचाप खड़े रहें । मैं कौरवकुलके यश और मानकी वृद्धि करता हुआ आज इन संगठित होकर आये हुए शत्रुओंके साथ युद्ध करूँगा' ॥ १३ ॥

एवं ब्रुवन्महाराज महात्मा स महामतिः ।
महेष्वासैर्वृतो राजन् महेष्वासो व्यवस्थितः ॥ १४ ॥

राजन् ! महाराज ! ऐसा कहता हुआ वह महामनस्वी महाबुद्धिमान् एवं महाधनुर्धर दुर्मर्षण बड़े-बड़े धनुर्धरोंसे घिरकर युद्धके लिये खड़ा हो गया ॥ १४ ॥

ततोऽन्तक इव क्रुद्धः सवज्र इव वासवः ।
दण्डपाणिरिवासह्यो मृत्युः कालेन चोदितः ॥ १५ ॥
शूलपाणिरिवाक्षोभ्यो वरुणः पाशवानिव ।
युगान्ताग्निरिवार्चिष्मान् प्रधक्ष्यन् वै पुनः प्रजाः ॥ १६ ॥
क्रोधामर्षबलोद्भूतो निवातकवचान्तकः ।
जयो जेता स्थितः सत्ये पारयिष्यन् महाव्रतम् ॥ १७ ॥
आमुक्तकवचः खड्गी जाम्बूनदकिरीटभृत् ।
शुभ्रमाल्याम्बरधरः स्वङ्गदश्चारुकुण्डलः ॥ १८ ॥
रथप्रवरमास्थाय नरो नारायणानुगः ।
विधुन्वन् गाण्डिवं संख्ये बभौ सूर्य इवोदितः ॥ १९ ॥

तत्पश्चात् क्रोधमें भरे हुए यमराज, वज्रधारी इन्द्र, दण्डधारी असह्य अन्तक, कालप्रेरक मृत्यु, किसीसे भी क्षुब्ध न होनेवाले त्रिशूलधारी रुद्र, पाशधारी वरुण तथा पुनः समस्त प्रजाको दग्ध करनेके लिये उठे हुए ज्वालाओंसे युक्त प्रलयकालीन अग्निदेवके समान दुर्धर्ष वीर अर्जुन युद्धस्थलमें अपने श्रेष्ठ रथपर आरूढ़ हो गाण्डीव धनुषकी टंकार करते हुए नवोदित सूर्यके समान प्रकाशित होने लगे । वे क्रोध, अमर्ष और बलसे प्रेरित होकर आगे बढ़ रहे थे । उन्होंने ही पूर्वकालमें निवातकवच नामक दानवोंका संहार किया था । वे जय नामके अनुसार ही विजयी होते थे । सत्यमें स्थित होकर अपने महान् व्रतको पूर्ण करनेके लिये उद्यत थे । उन्होंने कवच बाँध रक्खा था । मस्तकपर जाम्बूनद सुवर्णका बना हुआ किरीट धारण किया था । उनके कमरमें तलवार लटक रही थी । वे नरस्वरूप अर्जुन नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णका अनुसरण करते हुए सुन्दर अंगदों (बाजूबन्द) और मनोहर कुण्डलोंसे सुशोभित हो रहे थे । उन्होंने श्वेत माला और श्वेत वस्त्र पहन रक्खे थे ॥ १५–१९ ॥

सोऽग्रानीकस्य महत इषुपाते धनंजयः ।
व्यवस्थाप्य रथं राजञ्शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥ २० ॥

राजन् ! प्रतापी अर्जुनने अपने सामने खड़ी हुई विशाल शत्रुसेनाके सम्मुख, जितनी दूरसे बाण मारा जा सके उतनी ही दूरीपर अपने रथको खड़ा करके शङ्ख बजाया ॥ २० ॥



अथ कृष्णोऽप्यसम्भ्रान्तः पार्थेन सह मारिष ।
प्राध्मापयत् पाञ्चजन्यं शङ्खं प्रवरमोजसा ॥ २१ ॥

आर्य ! तब श्रीकृष्णने भी अर्जुनके साथ बिना किसी घबराहटके अपने श्रेष्ठ शङ्ख पाञ्चजन्यको बलपूर्वक बजाया ॥

तयोः शङ्खप्रणादेन तव सैन्ये विशाम्पते ।
आसन् संहृष्टरोमाणः कम्पिता गतचेतसः ॥ २२ ॥

प्रजानाथ ! उन दोनोंके शङ्खनादसे आपकी सेनाके समस्त योद्धाओंके रोंगटे खड़े हो गये, सब लोग काँपते हुए अचेत-से हो गये ॥ २२ ॥

यथा त्रस्यन्ति भूतानि सर्वाण्यशनिनिःस्वनात् ।
तथा शङ्खप्रणादेन वित्रेसुस्तव सैनिकाः ॥ २३ ॥

जैसे वज्रकी गड़गड़ाहटसे सारे प्राणी थर्रा उठते हैं, उसी प्रकार उन दोनों वीरोंकी शङ्खध्वनिसे आपके समस्त सैनिक संत्रस्त हो उठे ॥ २३ ॥

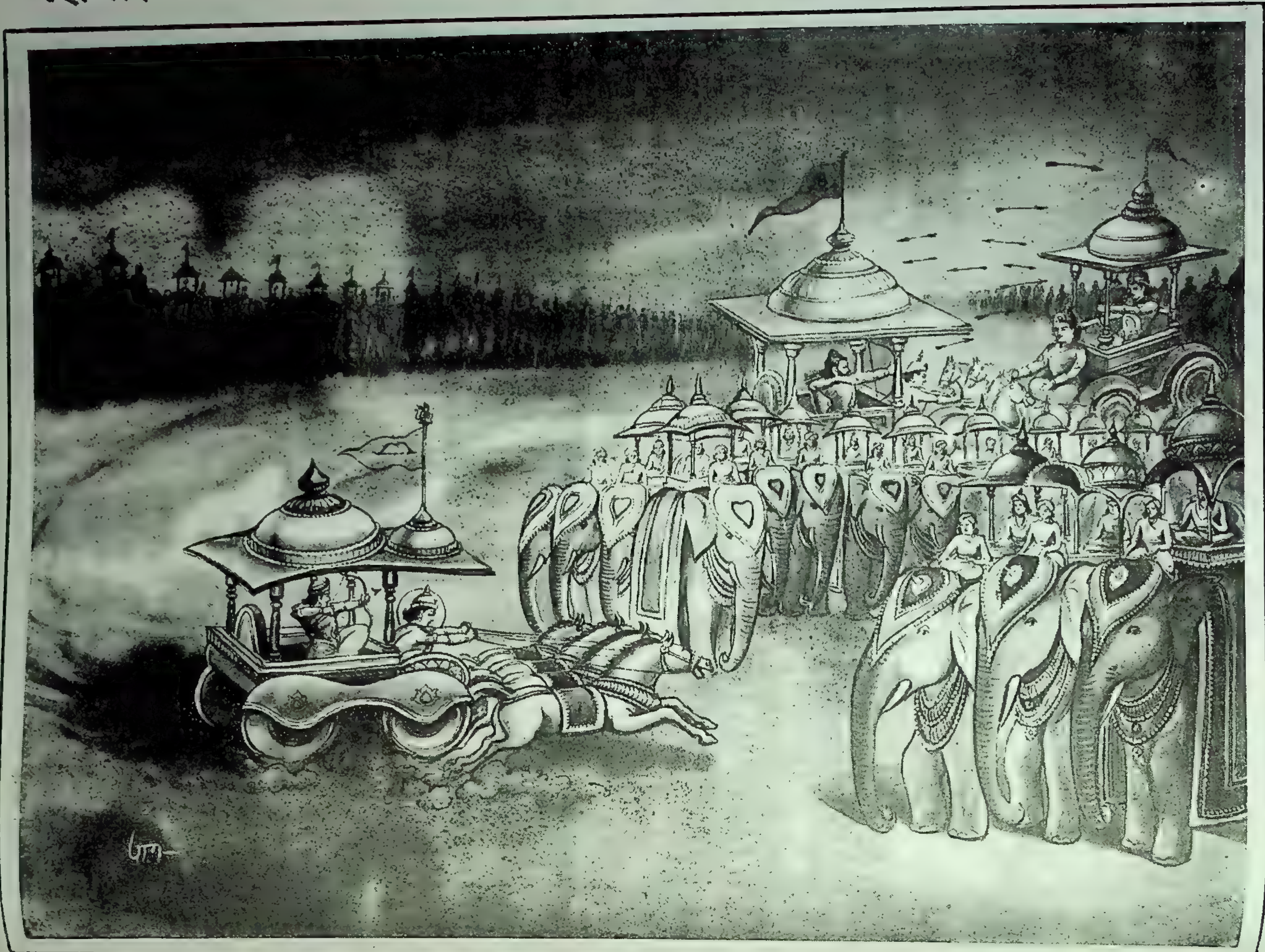
प्रसुस्रुवुः शकृन्मूत्रं वाहनानि च सर्वशः ।
एवं सवाहनं सर्वमाविग्नमभवद् बलम् ॥ २४ ॥

सेनाके सभी वाहन भयके मारे मल-मूत्र करने लगे । इस प्रकार सवारियोंसहित सारी सेना उद्विग्न हो गयी ॥ २४ ॥

सीदन्ति स्म नरा राजञ्शङ्खशब्देन मारिष ।
विसंज्ञाश्चाभवन् केचित् केचिद् राजन् वितत्रसुः ॥ २५ ॥

आदरणीय महाराज ! अपनी सेनाके सब मनुष्य वह शङ्खनाद सुनकर शिथिल हो गये । नरेश्वर ! कितने ही तो मूर्च्छित हो गये और कितने ही भयसे थर्रा उठे ॥ २५ ॥

ततः कपिर्महानादं सह भूतैर्ध्वजालयैः ।
अकरोद् व्यादितास्यश्च भीषयंस्तव सैनिकान् ॥ २६ ॥



श्रीकृष्ण और अर्जुनका दुर्मर्षणकी गजसेनामें प्रवेश

तत्पश्चात् अर्जुनकी ध्वजामें निवास करनेवाले भूतगणोंके साथ वहाँ बैठे हुए हनूमान्‌जीने मुँह बाकर आपके सैनिकोंको भयभीत करते हुए बड़े जोरसे गर्जना की ॥ २६ ॥

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च मृदङ्गाश्चानकैः सह ।
पुनरेवाभ्यहन्यन्त तव सैन्यप्रहर्षणाः ॥२७॥

तब आपकी सेनामें भी पुनः मृदङ्ग और ढोलके साथ शङ्ख तथा नगाड़े बज उठे, जो आपके सैनिकोंके हर्ष और उत्साहको बढ़ानेवाले थे ॥ २७ ॥

नानावादित्रसंह्रादैः क्ष्वेडितास्फोटिताकुलैः ।
सिंहनादैः समुत्कुष्टैः समाधूतैर्महारथैः ॥ २८ ॥
तस्मिंस्तु तुमुले शब्दे भीरूणां भयवर्धने ।
अतीव हृष्टो दाशार्हमब्रवीत् पाकशासनिः ॥ २९ ॥

नाना प्रकारके रणवाद्योंकी ध्वनिसे, गर्जन-तर्जन करनेसे, ताल ठोंकनेसे, सिंहनादसे और महारथियोंके ललकारनेसे जो शब्द होते थे, वे सब मिलकर भयंकर हो उठे और भीरु पुरुषोंके हृदयमें भय उत्पन्न करने लगे। उस समय अत्यन्त हर्षमें भरे हुए इन्द्रपुत्र अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अर्जुनरणप्रवेशे अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें अर्जुनका रणभूमिमें प्रवेशविषयक अठासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ३० श्लोक हैं)

एकोननवतितमोऽध्यायः

अर्जुनके द्वारा दुर्मर्षणकी गजसेनाका संहार और समस्त सैनिकोंका पलायन

अर्जुन उवाच

चोदयाश्वान् हृषीकेश यत्र दुर्मर्षणः स्थितः ।
एतद् भित्त्वा गजानीकं प्रवेक्ष्याम्यरिवाहिनीम् ॥ १॥

अर्जुन बोले—हृषीकेश ! जहाँ दुर्मर्षण खड़ा है, उसी ओर घोड़ोंको बढ़ाइये। मैं उसकी इस गजसेनाका भेदन करके शत्रुओंकी विशाल वाहिनीमें प्रवेश करूँगा ॥

संजय उवाच

एवमुक्तो महाबाहुः केशवः सव्यसाचिना ।
अचोदयद्धयांस्तत्र यत्र दुर्मर्षणः स्थितः ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! सव्यसाची अर्जुनके ऐसा कहनेपर महाबाहु श्रीकृष्णने, जहाँ दुर्मर्षण खड़ा था, उसी ओर घोड़ोंको हाँका ॥ २ ॥

स सम्प्रहारस्तुमुलः सम्प्रवृत्तः सुदारुणः ।
एकस्य च बहूनां च रथनागनरक्षयः ॥ ३ ॥

उस समय एक वीरका बहुत-से योद्धाओंके साथ बड़ा भयंकर घमासान युद्ध छिड़ गया, जो रथों, हाथियों और मनुष्योंका संहार करनेवाला था ॥ ३ ॥

ततः सायकवर्षेण पर्जन्य इव वृष्टिमान् ।
परानवाकिरत् पार्थः पर्वतानिव नीरदः ॥ ४ ॥

तदनन्तर अर्जुन बाणोंकी वर्षा करते हुए जल बरसानेवाले मेघके समान प्रतीत होने लगे। जैसे मेघ पानीकी वर्षा करके पर्वतोंको आच्छादित कर देता है, उसी प्रकार अर्जुनने अपनी बाणवर्षासे शत्रुओंको ढक दिया ॥ ४ ॥

ते चापि रथिनः सर्वे त्वरिताः कृतहस्तवत् ।
अवाकिरन् बाणजालैस्तत्र कृष्णधनंजयौ ॥ ५ ॥

उधर उन समस्त कौरव रथियोंने भी सिद्धहस्त पुरुषोंकी भाँति शीघ्रतापूर्वक अपने बाणसमूहोंद्वारा वहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुनको आच्छादित कर दिया ॥ ५ ॥

ततः क्रुद्धो महाबाहुर्वार्यमाणः परैर्युधि ।
शिरांसि रथिनां पार्थः कायेभ्योऽपाहरच्छरैः ॥ ६ ॥

उस समय युद्धस्थलमें शत्रुओंके द्वारा रोके जानेपर महाबाहु अर्जुन कुपित हो उठे और अपने बाणोंद्वारा रथियोंके मस्तकोंको उनके शरीरोंसे काटकर गिराने लगे ॥ ६ ॥

उद्भ्रान्तनयनैर्वक्त्रैः संदष्टौष्ठपुटैः शुभैः ।
सकुण्डलशिरस्त्राणैर्वसुधा समकीर्यत ॥ ७ ॥

कुण्डल और टोपोंसहित उन रथियोंके घूमते हुए नेत्रों तथा दाँतोंद्वारा चबाये जाते हुए ओठोंवाले सुन्दर मुखोंसे सारी रणभूमि पट गयी ॥ ७ ॥

पुण्डरीकवनानीव विध्वस्तानि समन्ततः ।
विनिकीर्णानि योधानां वदनानि चकाशिरे ॥ ८ ॥

सब ओर बिखरे हुए योद्धाओंके मुख कटकर गिरे हुए कमल-समूहोंके समान सुशोभित होने लगे ॥ ८ ॥

तपनीयतनुत्राणाः संसिक्ता रुधिरेण च ।
संसक्ता इव दृश्यन्ते मेघसंघाः सविद्युतः ॥ ९ ॥

सुवर्णमय कवच धारण किये और खूनसे लथपथ हो एक दूसरेसे सटे हुए हताहत योद्धाओंके शरीर विद्युत्सहित मेघसमूहोंके समान दिखायी देते थे ॥ ९ ॥

शिरसां पततां राजञ्शब्दोऽभूद् वसुधातले ।
कालेन परिपक्वानां तालानां पततामिव ॥ १० ॥

राजन् ! कालसे परिपक्व हुए ताड़के फलोंके पृथ्वीपर गिरनेसे जैसा शब्द होता है, उसी प्रकार रणभूमिमें कटकर गिरते हुए योद्धाओंके मस्तकोंका शब्द होता था ॥ १० ॥

ततः कबन्धं किंचित् तु धनुरालम्ब्य तिष्ठति ।
किंचित् खड्गं विनिष्कृष्य भुजेनोद्यम्य तिष्ठति ॥ ११ ॥

कोई-कोई कबन्ध (बिना सिरका धड़) धनुष लेकर

खड़ा था और कोई तलवार खींचकर उसे हाथमें उठाये खड़ा हुआ था ॥ ११ ॥

पतितानि न जानन्ति शिरांसि पुरुषर्षभाः ।
अमृष्यमाणाः संग्रामे कौन्तेयं जयगृद्धिनः ॥१२॥

संग्राममें विजयकी अभिलाषा रखनेवाले कितने ही श्रेष्ठ पुरुष कुन्तीपुत्र अर्जुनके प्रति अमर्षशील होकर यह भी न जान पाये कि उनके मस्तक कब कटकर गिर गये ॥१२॥

हयानामुत्तमाङ्गैश्च हस्तिहस्तैश्च मेदिनी ।
बाहुभिश्च शिरोभिश्च वीराणां समकीर्यत ॥१३॥

घोड़ोंके मस्तकों, हाथियोंकी सूँड़ों और वीरोंकी भुजाओं तथा सिरोंसे सारी रणभूमि आच्छादित हो गयी थी॥

अयं पार्थः कुतः पार्थ एष पार्थ इति प्रभो ।
तव सैन्येषु योधानां पार्थभूतमिवाभवत् ॥१४॥

प्रभो ! आपकी सेनाओंके समस्त योद्धाओंकी दृष्टिमें सब ओर अर्जुनमय-सा हो रहा था । वे बार-बार 'यह अर्जुन है, कहाँ अर्जुन है ? यह अर्जुन है' इस प्रकार चिल्ला उठते थे ॥

अन्योन्यमपि चाजघ्नुरात्मानमपि चापरे ।
पार्थभूतममन्यन्त जगत् कालेन मोहिताः ॥१५॥

बहुत-से दूसरे सैनिक आपसमें ही एक दूसरेपर तथा अपने ऊपर भी प्रहार कर बैठते थे । वे कालसे मोहित होकर सारे संसारको अर्जुनमय ही मानने लगे ॥ १५ ॥

निष्टनन्तः सरुधिरा विसंज्ञा गाढवेदनाः ।
शयाना बहवो वीराः कीर्तयन्तः स्वबान्धवान् ॥१६॥

बहुत-से वीर रक्तसे भीगे शरीरसे धराशायी होकर गहरी वेदनाके कारण कराहते हुए अपनी चेतना खो बैठते थे और कितने ही योद्धा धरतीपर पड़े-पड़े अपने बन्धु-बान्धवोंको पुकार रहे थे ॥ १६ ॥

सभिन्दिपालाः सप्रासाः सशक्त्यृष्टिपरश्वधाः।
सनिर्व्यूहाः सनिस्त्रिंशाः सशरासनतोमराः ॥१७॥
सबाणवर्माभरणाः सगदाः साङ्गदा रणे ।
महाभुजगसंकाशा बाहवः परिघोपमाः ॥१८॥
उद्वेष्टन्ति विचेष्टन्ति संचेष्टन्ति च सर्वशः ।
वेगं कुर्वन्ति संरब्धा निकृत्ताः परमेषुभिः ॥१९॥

अर्जुनके श्रेष्ठ बाणोंसे कटी हुई वीरोंकी परिघके समान मोटी और महान् सर्पके समान दिखायी देनेवाली भिन्दिपाल, प्रास, शक्ति, ऋष्टि, फरसे, निर्व्यूह, खड्ग, धनुष, तोमर, बाण, कवच, आभूषण, गदा और भुजबंद आदिसे युक्त भुजाएँ आवेशमें भरकर अपना महान् वेग प्रकट करती, ऊपरको उछलती, छटपटाती और सब प्रकारकी चेष्टाएँ करती थीं ॥ १७-१९ ॥

यो यः स्म समरे पार्थं प्रतिसंचरते नरः ।
तस्य तस्यान्तको बाणः शरीरमुपसर्पति ॥२०॥

जो जो मनुष्य उस समराङ्गणमें अर्जुनका सामना करनेके लिये चलता था, उस-उसके शरीरपर प्राणान्तकारी बाण आ गिरता था ॥ २० ॥

नृत्यतो रथमार्गेषु धनुर्व्यायच्छतस्तथा ।
न कश्चित् तत्र पार्थस्य ददर्शोऽन्तरमण्वपि ॥ २१ ॥

अर्जुन वहाँ इस प्रकार निरन्तर रथके मार्गोंपर विचरते और खींच रहे थे कि उस समय कोई भी उनपर प्रहार करनेका धनुषको थोड़ा-सा भी अवसर नहीं देख पाता था ॥ २१ ॥

यत्तस्य घटमानस्य क्षिप्रं विक्षिपतः शरान् ।
लाघवात् पाण्डुपुत्रस्य व्यस्मयन्त परे जनाः ॥ २२ ॥

पाण्डुपुत्र अर्जुन पूर्ण सावधान हो विजय पानेकी चेष्टा करते और शीघ्रतापूर्वक बाण चलाते थे । उस समय उनकी फुर्ती देखकर दूसरे लोगोंको बड़ा आश्चर्य होता था ॥ २२ ॥

हस्तिनं हस्तियन्तारमश्वमाश्विकमेव च ।
अभिनत् फाल्गुनो बाणै रथिनं च ससारथिम् ॥ २३ ॥

अर्जुनने हाथी और महावतको, घोड़े और घुड़सवारको तथा रथी और सारथिको भी अपने बाणोंसे विदीर्ण कर डाला॥

आवर्तमानमावृत्तं युध्यमानं च पाण्डवः ।
प्रमुखे तिष्ठमानं च न कंचिन्न निहन्ति सः ॥ २४ ॥

जो लौटकर आ रहे थे, जो आ चुके थे, जो युद्ध करते थे और जो सामने खड़े थे—इनमेंसे किसीको भी पाण्डुकुमार अर्जुन मारे बिना नहीं छोड़ते थे ॥ २४ ॥

यथोदयन् वै गगने सूर्यो हन्ति महत् तमः ।
तथार्जुनो गजानीकमवधीत् कङ्कपत्रिभिः ॥ २५ ॥

जैसे आकाशमें उदित हुआ सूर्य महान् अन्धकारको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार अर्जुनने कंककी पाँखवाले बाणोंद्वारा उस गजसेनाका संहार कर डाला ॥ २५ ॥

हस्तिभिः पतितैर्भिन्नैस्तव सैन्यमदृश्यत ।
अन्तकाले यथा भूमिर्व्यवकीर्णा महीधरैः ॥ २६ ॥

राजन् ! बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर धरतीपर पड़े हुए हाथियोंसे आपकी सेना वैसी ही दिखायी देती थी, जैसे प्रलयकालमें यह पृथ्वी इधर-उधर बिखरे हुए पर्वतोंसे आच्छादित देखी जाती है ॥ २६ ॥

यथा मध्यन्दिने सूर्यो दुष्प्रेक्ष्यः प्राणिभिः सदा ।
तथा धनंजयः क्रुद्धो दुष्प्रेक्ष्यो युधि शत्रुभिः ॥ २७ ॥

जैसे दोपहरके सूर्यकी ओर देखना समस्त प्राणियोंके लिये सदा ही कठिन होता है, उसी प्रकार उस युद्धस्थलमें कुपित हुए अर्जुनकी ओर शत्रुलोग बड़ी कठिनाईसे देख पाते थे ॥ २७ ॥

तत् तथा तव पुत्रस्य सैन्यं युधि परंतप ।
प्रभग्नं द्रुतमाविग्नमतीव शरपीडितम् ॥ २८ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले नरेश! इस प्रकार उस युद्धस्थलमें अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित हुई आपके पुत्रकी सेनाके पाँव उखड़ गये और वह अत्यन्त उद्विग्न हो तुरंत ही वहाँसे भाग चली ॥

मारुतेनेव महता मेघानीकं व्यदीर्यत।
प्रकाल्यमानं तत् सैन्यं नाशकत् प्रतिवीक्षितुम् ॥ २९ ॥

जैसे बड़े वेगसे उठी हुई वायु बादलोंके समूहको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार दुर्मर्षणकी सेनाका व्यूह टूट गया और वह अर्जुनके खदेड़नेपर इस प्रकार जोर-जोरसे भागने लगी कि उसे पीछे फिरकर देखनेका भी साहस न हुआ ॥

प्रतोदैश्चापकोटीभिर्हुङ्कारैः साधुवाहितैः।
कशापार्ष्ण्यभिघातैश्च वाग्भिरुग्राभिरेव च ॥ ३० ॥
चोदयन्तो हयांस्तूर्णं पलायन्ते स्म तावकाः।
सादिनो रथिनश्चैव पत्तयश्चार्जुनार्दिताः ॥ ३१ ॥

अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित हुए आपके पैदल, घुड़सवार और रथी सैनिक चाबुक, धनुषकी कोटि, हुंकार, हाँकनेकी सुन्दर कला, कोड़ोंके प्रहार, चरणोंके आघात तथा भयंकर वाणीद्वारा अपने घोड़ोंको बड़ी उतावलीके साथ हाँकते हुए भाग रहे थे ॥ ३०-३१ ॥

पार्ष्ण्यङ्गुष्ठाङ्कुशैर्नागं चोदयन्तस्तथा परे।
शरैः सम्मोहिताश्चान्ये तमेवाभिमुखा ययुः।
तव योधा हतोत्साहा विभ्रान्तमनसस्तदा ॥ ३२ ॥

दूसरे गजारोही सैनिक अपने पैरोंके अँगूठों और अंकुशोंद्वारा हाथियोंको हाँकते हुए रणभूमिसे पलायन कर रहे थे। कितने ही योद्धा अर्जुनके बाणोंसे मोहित होकर उन्हींके सामने चले जाते थे। उस समय आपके सभी योद्धाओंका उत्साह नष्ट हो गया था और मनमें बड़ी भारी घबराहट पैदा हो गयी थी ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अर्जुनयुद्धे एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें अर्जुनयुद्धविषयक नवासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८९ ॥

नवतितमोऽध्यायः

अर्जुनके बाणोंसे हताहत होकर सेनासहित दुःशासनका पलायन

धृतराष्ट्र उवाच

तस्मिन् प्रभग्ने सैन्याग्रे वध्यमाने किरीटिना।
के नु तत्र रणे वीराः प्रत्युदीयुर्धनंजयम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! किरीटधारी अर्जुनकी मार खाकर उस अग्रगामी सैन्यदलके पलायन कर जानेपर वहाँ रणक्षेत्रमें किन वीरोंने अर्जुनपर धावा किया था? ॥ १ ॥

आहोस्विच्छकटव्यूहं प्रविष्टा मोघनिश्चयाः।
द्रोणमाश्रित्य तिष्ठन्तं प्राकारमकुतोभयम् ॥ २ ॥

अथवा ऐसा तो नहीं हुआ कि अपना मनोरथ सफल न होनेपर वे परकोटेकी भाँति खड़े हुए द्रोणाचार्यका आश्रय लेकर सर्वथा निर्भय शकटव्यूहमें घुस गये हों ॥ २ ॥

संजय उवाच

तथार्जुनेन सम्भग्ने तस्मिंस्तव बलेऽनघ।
हतवीरे हतोत्साहे पलायनकृतक्षणे ॥ ३ ॥
पाकशासनिनाभीक्ष्णं वध्यमाने शरोत्तमैः।
न तत्र कश्चित् संग्रामे शशाकार्जुनमीक्षितुम् ॥ ४ ॥

संजयने कहा—निष्पाप नरेश! जब इन्द्रपुत्र अर्जुनने पूर्वोक्त प्रकारसे आपकी सेनाके वीरोंको मारकर उसे हतोत्साह एवं भागनेके लिये विवश कर दिया, सभी सैनिक पलायन करनेका ही अवसर देखने लगे तथा उनके ऊपर निरन्तर श्रेष्ठ बाणोंकी मार पड़ने लगी, उस समय वहाँ संग्राममें कोई भी अर्जुनकी ओर आँख उठाकर देख न सका ॥ ३-४ ॥

ततस्तव सुतो राजन् दृष्ट्वा सैन्यं तथागतम्।
दुःशासनो भृशं क्रुद्धो युद्धायार्जुनमभ्यगात् ॥ ५ ॥

राजन्! सेनाकी वह दुरवस्था देखकर आपके पुत्र दुःशासनको बड़ा क्रोध हुआ और वह युद्धके लिये अर्जुनके सामने जा पहुँचा ॥ ५ ॥

स काञ्चनविचित्रेण कवचेन समावृतः।
जाम्बूनदशिरस्त्राणः शूरस्तीव्रपराक्रमः ॥ ६ ॥

उसने अपने-आपको सुवर्णमय विचित्र कवचके द्वारा ढक लिया था, उसके मस्तकपर जाम्बूनद सुवर्णका बना हुआ शिरस्त्राण (टोप) शोभा पा रहा था। वह दुःसह पराक्रम करनेवाला शूरवीर था ॥ ६ ॥

नागानीकेन महता ग्रसन्निव महीमिमाम्।
दुःशासनो महाराज सव्यसाचिनमावृणोत् ॥ ७ ॥

महाराज! दुःशासनने अपनी विशाल गजसेनाद्वारा अर्जुनको इस प्रकार चारों ओरसे घेर लिया, मानो वह सारी पृथ्वीको ग्रस लेनेके लिये उद्यत हो ॥ ७ ॥

ह्रादेन गजघण्टानां शङ्खानां निनदेन च।
ज्याक्षेपनिनदैश्चैव विरावेण च दन्तिनाम् ॥ ८ ॥
भूर्दिशश्चान्तरिक्षं च शब्देनासीत् समावृतम्।
स मुहूर्तं प्रतिभयो दारुणः समपद्यत ॥ ९ ॥

हाथियोंके घंटोंकी ध्वनि, शङ्खनाद, धनुषकी टंकार और गजराजोंके चिग्घाड़नेके शब्दसे पृथ्वी, दिशाएँ तथा आकाश—ये सभी गूँज उठे थे। उस समय दुःशासन दो घड़ीके लिये अत्यन्त भयंकर एवं दारुण हो उठा ॥ ८-९ ॥

तान् दृष्ट्वा पततस्तूणमङ्कुशैरभिचोदितान् ।
व्यालम्बहस्तान् संरब्धान् सपक्षानिव पर्वतान् ॥ १० ॥
सिंहनादेन महता नरसिंहो धनंजयः ।
गजानीकममित्राणामभीतो व्यधमच्छरैः ॥ ११ ॥

महावतोंद्वारा अंकुशोंसे हाँके जानेपर लम्बी सूँड़ उठाये और क्रोधमें भरे, पंखधारी पर्वतोंके समान उन हाथियोंको बड़े वेगसे अपने ऊपर आते देख मनुष्योंमें सिंहके समान पराक्रमी अर्जुनने बड़े जोरसे सिंहनाद करके शत्रुओंकी उस गजसेनाका बिना किसी भयके बाणोंद्वारा संहार कर डाला॥

महोर्मिणमिवोद्धूतं श्वसनेन महार्णवम् ।
किरीटी तद् गजानीकं प्राविशन्मकरो यथा ॥ १२ ॥

वायुद्वारा ऊपर उठाये हुए ऊँची-ऊँची तरंगोंसे युक्त महासागरके समान उस गजसैन्यमें किरीटधारी अर्जुनने मकरके समान प्रवेश किया ॥ १२ ॥

काष्ठातीत इवादित्यः प्रतपन् स युगक्षये ।
ददृशे दिक्षु सर्वासु पार्थः परपुरंजयः ॥ १३ ॥

जैसे प्रलयकालमें सूर्यदेव सीमाका उल्लङ्घन करके तपने लगते हैं, उसी प्रकार शत्रुओंकी राजधानीपर विजय पानेवाले अर्जुन सम्पूर्ण दिशाओंमें असीम पराक्रम करते हुए दिखायी देने लगे ॥ १३ ॥

खुरशब्देन चाश्वानां नेमिघोषेण तेन च ।
तेन चोत्कृष्टशब्देन ज्यानिनादेन तेन च ॥ १४ ॥
नानावादित्रशब्देन पाञ्चजन्यस्वनेन च ।
देवदत्तस्य घोषेण गाण्डीवनिनदेन च ॥ १५ ॥
मन्दवेगा नरा नागा बभूवुस्ते विचेतसः ।
शरैराशीविषस्पर्शैर्निर्भिन्नाः सव्यसाचिना ॥ १६ ॥

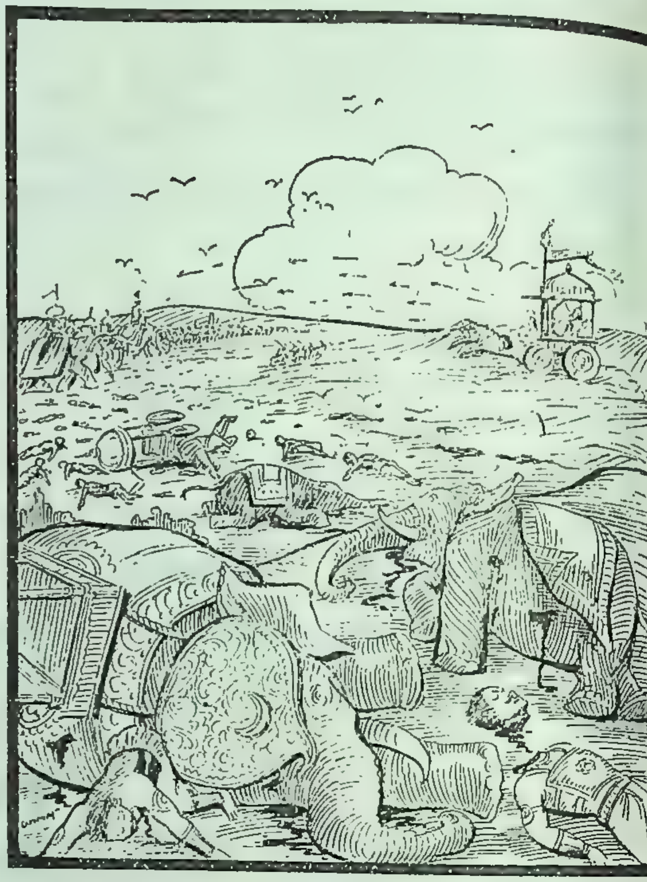
घोड़ोंकी टापोंके शब्दसे, रथके पहियोंकी उस घरघराहटसे, उच्चस्वरसे किये जानेवाले गर्जन-तर्जनकी उस आवाजसे, धनुषकी प्रत्यञ्चाकी उस टंकारसे, भाँति-भाँतिके वाद्योंकी ध्वनिसे, पाञ्चजन्यके हुंकारसे, देवदत्त नामक शङ्खके गम्भीर घोषसे तथा गाण्डीवकी टंकार-ध्वनिसे मनुष्यों और हाथियोंके वेग मन्द पड़ गये और वे सब-के-सब भयके मारे अचेत हो गये। सव्यसाची अर्जुनने विषधर सर्पके समान भयंकर बाणोंद्वारा उन्हें विदीर्ण कर दिया ॥ १४–१६ ॥

ते गजा विशिखैस्तीक्ष्णैर्युधि गाण्डीवचोदितैः ।
अनेकशतसाहस्रैः सर्वाङ्गेषु समर्पिताः ॥ १७ ॥

गाण्डीव धनुषद्वारा चलाये हुए लाखों तीखे बाण युद्धस्थलमें खड़े हुए उन हाथियोंके सम्पूर्ण अङ्गोंमें बिंध गये थे ॥ १७ ॥

आरावं परमं कृत्वा वध्यमानाः किरीटिना ।
निपेतुरनिशं भूमौ छिन्नपक्षा इवाद्रयः ॥ १८ ॥

अर्जुनके बाणोंकी मार खाकर बड़े जोरसे चीत्कार करके वे हाथी पंख कटे हुए पर्वतोंके समान पृथ्वीपर निरन्तर गिर रहे थे ॥ १८ ॥



अपरे दन्तवेष्टेषु कुम्भेषु च कटेषु च ।
शरैः समर्पिता नागाः क्रौञ्चवद् व्यनदन् मुहुः ॥ १९ ॥

कुछ दूसरे गजराज नीचेके ओठोंमें, कुम्भस्थलोंमें और कनपटियोंमें बाणोंसे छिद जानेके कारण कुरर पक्षीके समान बारंबार आर्तनाद कर रहे थे ॥ १९ ॥

गजस्कन्धगतानां च पुरुषाणां किरीटिना ।
छिद्यन्ते चोत्तमाङ्गानि भल्लैः संनतपर्वभिः ॥ २० ॥

किरीटधारी अर्जुन झुकी हुई गाँठवाले भल्ल नामक बाणोंद्वारा हाथीकी पीठपर बैठे हुए पुरुषोंके मस्तक भी धड़ाधड़ काटते जा रहे थे ॥ २० ॥

सकुण्डलानां पततां शिरसां धरणीतले ।
पद्मानामिव संघातैः पार्थश्चक्रे निवेदनम् ॥ २१ ॥

पृथ्वीपर गिरते हुए कुण्डलयुक्त मस्तक कमलपुष्पोंके ढेरके समान जान पड़ते थे, मानो अर्जुनने उन मस्तकोंके रूपमें पृथ्वीको पद्मके समूह भेंट किये हों ॥ २१ ॥

यन्त्रबद्धा विकवचा व्रणार्ता रुधिरोक्षिताः ।
भ्रमत्सु युधि नागेषु मनुष्या विललम्बिरे ॥ २२ ॥

युद्धके मैदानमें चक्कर काटते हुए हाथियोंपर बहुत-से मनुष्य इस प्रकार लटक रहे थे, मानो उन्हें किसी यन्त्रसे वहाँ जड़ दिया गया हो। उनके कवच नष्ट हो गये थे। वे घावसे पीड़ित और खूनसे लथपथ हो रहे थे ॥ २२ ॥

केचिदेकेन बाणेन सुयुक्तेन सुपत्रिणा ।
द्वौ त्रयश्च विनिर्भिन्ना निपेतुर्धरणीतले ॥ २३ ॥

कुछ हाथी तो अच्छी तरहसे चलाये हुए सुन्दर पंख-युक्त एक ही बाणद्वारा दो-दो तीन-तीनकी संख्यामें एक साथ विदीर्ण होकर पृथ्वीपर गिर पड़ते थे ॥ २३ ॥

अतिविद्धाश्च नाराचैर्वमन्तो रुधिरं मुखैः ।
सारोहा न्यपतन् भूमौ द्रुमवन्त इवाचलाः ॥ २४ ॥

सवारोंसहित कितने ही हाथी नाराचोंसे अत्यन्त घायल होकर मुँहसे रक्त वमन करते हुए वृक्षयुक्त पर्वतोंके समान धराशायी हो रहे थे ॥ २४ ॥

मौर्वीं ध्वजं धनुश्चैव युगमीषां तथैव च ।
रथिनां कुट्टयामास भल्लैः संनतपर्वभिः ॥ २५ ॥

तदनन्तर अर्जुनने झुकी हुई गाँठवाले भल्लोंद्वारा रथियों की प्रत्यञ्चा, ध्वजा, धनुष, जुआ तथा ईषादण्डके टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ २५ ॥

न संदधन् न चाकर्षन् न विमुञ्चन् न चोद्वहन् ।
मण्डलेनैव धनुषा नृत्यन् पार्थः स्म दृश्यते ॥ २६ ॥

उस समय अर्जुन मण्डलाकार धनुषके साथ सब ओर नृत्य करते हुए-से दृष्टिगोचर हो रहे थे । वे कब धनुषपर बाणोंको रखते, कब प्रत्यञ्चा खींचते, कब बाण छोड़ते और कब उन्हें तरकससे निकालते हैं, यह कोई नहीं देख पाता था ॥

अतिविद्धाश्च नाराचैर्वमन्तो रुधिरं मुखैः ।
मुहूर्तान्न्यपतन्नन्ये वारणा वसुधातले ॥ २७ ॥

दो ही घड़ीमें और भी बहुत-से हाथी नाराचोंकी मार-से अत्यन्त क्षत-विक्षत होकर मुँहसे रक्त वमन करते हुए धरतीपर लोटने लगे ॥ २७ ॥

उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ।
अदृश्यन्त महाराज तस्मिन् परमसंकुले ॥ २८ ॥

महाराज ! उस अत्यन्त भयानक युद्धमें चारों ओर असंख्य कबन्ध (धड़) उठे दिखायी देते थे ॥ २८ ॥

सचापाः साङ्गुलित्राणाः सखड्गाः साङ्गदा रणे ।
अदृश्यन्त भुजाश्छिन्ना हेमाभरणभूषिताः ॥ २९ ॥

वीरोंकी कटी हुई स्वर्णमय आभूषणोंसे विभूषित भुजाएँ धनुष, दस्ताने, तलवार और भुजबन्दोंसहित कटकर रण भूमिमें पड़ी दिखायी देती थीं ॥ २९ ॥

सूपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डकबन्धुरैः ।
चक्रैर्विमथितैरक्षैर्भग्नैश्च बहुधा युगैः ॥ ३० ॥
चर्मचापधरैश्चैव व्यवकीर्णैस्ततस्ततः ।
स्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैः पतितैश्च महाध्वजैः ॥ ३१ ॥
निहतैर्वारणैरश्वैः क्षत्रियैश्च निपातितैः ।
अदृश्यत मही तत्र दारुणप्रतिदर्शना ॥ ३२ ॥

सुन्दर उपकरणों, बैठकों, ईषादण्ड, बन्धनरज्जुओं और पहियोंसहित रथ चूर-चूर हो रहे थे । उनके धुरे टूट गये थे और जूए टुकड़े-टुकड़े होकर पड़े थे । बहुत-सी ढालों और धनुषोंको लिये-दिये वे टूटे हुए रथ इधर-उधर बिखरे पड़े थे । बहुत-से हार, आभूषण, वस्त्र और बड़े-बड़े ध्वज धरतीपर गिरे हुए थे । अनेक हाथी और घोड़े मारे गये थे तथा बहुत-से क्षत्रिय भी धराशायी कर दिये गये थे । इन सबके कारण वहाँकी भूमि देखनेमें अत्यन्त भयंकर जान पड़ती थी ॥ ३०—३२ ॥

एवं दुःशासनबलं वध्यमानं किरीटिना ।
सम्प्राद्रवन्महाराज व्यथितं सहनायकम् ॥ ३३ ॥

महाराज ! इस प्रकार किरीटधारी अर्जुनकी मार खाकर अत्यन्त व्यथित हुई दुःशासनकी सेना अपने नायक-सहित भाग चली ॥ ३३ ॥

ततो दुःशासनस्त्रस्तः सहानीकः शरार्दितः ।
द्रोणं त्रातारमाकाङ्क्षञ्शकटव्यूहमभ्यगात् ॥ ३४ ॥

तब अर्जुनके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित और भयभीत हो सेनाओंसहित दुःशासन अपने रक्षक द्रोणाचार्यके आश्रयमें जानेकी इच्छा रखकर शकट-व्यूहके भीतर घुस गया ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुःशासनसैन्यपराभवे नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें दुःशासनकी सेनाका पराभवविषयक नब्बेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९० ॥

एकनवतितमोऽध्यायः

अर्जुन और द्रोणाचार्यका वार्तालाप तथा युद्ध एवं द्रोणाचार्यको छोड़कर आगे बढ़े हुए अर्जुनका कौरव सैनिकोंद्वारा प्रतिरोध

संजय उवाच

दुःशासनबलं हत्वा सव्यसाची महारथः ।
सिन्धुराजं परीप्सन् वै द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! दुःशासनकी सेनाका संहार करके सव्यसाची महारथी अर्जुनने सिन्धुराज जयद्रथको पानेकी इच्छा रखकर द्रोणाचार्यकी सेनापर धावा किया ॥ १ ॥

स तु द्रोणं समासाद्य व्यूहस्य प्रमुखे स्थितम् ।
कृताञ्जलिरिदं वाक्यं कृष्णस्यानुमतेऽब्रवीत् ॥ २ ॥

व्यूहके मुहानेपर खड़े हुए आचार्य द्रोणके पास पहुँचकर अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णकी अनुमति ले हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—॥ २ ॥

शिवेन ध्याहि मां ब्रह्मन् स्वस्ति चैव वदस्व मे ।

भवत्प्रसादादिच्छामि प्रवेष्टुं दुर्भिदां चमूम् ॥ ३ ॥

'ब्रह्मन् ! आप मेरा कल्याण चिन्तन कीजिये । मुझे स्वस्ति कहकर आशीर्वाद दीजिये । मैं आपकी कृपासे ही इस दुर्भेद्य सेनाके भीतर प्रवेश करना चाहता हूँ ॥ ३ ॥

भवान् पितृसमो मह्यं धर्मराजसमोऽपि च ।
तथा कृष्णसमश्चैव सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ४ ॥

'आप मेरे लिये पिता पाण्डु, भ्राता धर्मराज युधिष्ठिर तथा सखा श्रीकृष्णके समान हैं । यह मैं आपसे सच्ची बात कहता हूँ ॥ ४ ॥

अश्वत्थामा यथा तात रक्षणीयस्त्वयानघ ।
तथाहमपि ते रक्ष्यः सदैव द्विजसत्तम ॥ ५ ॥

'तात ! निष्पाप द्विजश्रेष्ठ ! जैसे अश्वत्थामा आपके लिये रक्षणीय हैं, उसी प्रकार मैं भी सदैव आपसे संरक्षण पानेका अधिकारी हूँ ॥ ५ ॥

तव प्रसादादिच्छेयं सिन्धुराजानमाहवे ।
निहन्तुं द्विपदां श्रेष्ठ प्रतिज्ञां रक्ष मे प्रभो ॥ ६ ॥

'नरश्रेष्ठ ! मैं आपके प्रसादसे इस युद्धमें सिन्धुराज जयद्रथको मारना चाहता हूँ । प्रभो ! आप मेरी इस प्रतिज्ञाकी रक्षा कीजिये' ॥ ६ ॥

संजय उवाच

एवमुक्तस्तदाचार्यः प्रत्युवाच स्मयन्निव ।
मामजित्वा न बीभत्सो शक्यो जेतुं जयद्रथः ॥ ७ ॥

संजय कहते हैं–महाराज ! अर्जुनके ऐसा कहनेपर उस समय द्रोणाचार्यने उन्हें हँसते हुए-से उत्तर दिया— 'अर्जुन ! मुझे पराजित किये बिना जयद्रथको जीतना असम्भव है' ॥ ७ ॥

एतावदुक्त्वा तं द्रोणः शरव्रातैरवाकिरत् ।
सरथाश्वध्वजं तीक्ष्णैः प्रहसन् वै ससारथिम् ॥ ८ ॥

अर्जुनसे इतना ही कहकर द्रोणाचार्यने हँसते-हँसते रथ, घोड़े, ध्वज तथा सारथिसहित उनके ऊपर तीखे बाणसमूहोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ८ ॥

ततोऽर्जुनः शरव्रातान् द्रोणस्यावार्य सायकैः ।
द्रोणमभ्यद्रवद् बाणैर्घोररूपैर्महत्तरैः ॥ ९ ॥

तब अर्जुनने अपने बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यके बाणसमूहोंका निवारण करके बड़े-बड़े भयंकर बाणोंद्वारा उनपर आक्रमण किया ॥ ९ ॥

विव्याध चरणे द्रोणमनुमान्य विशाम्पते ।
क्षत्रधर्मं समास्थाय नवभिः सायकैः पुनः ॥ १० ॥

प्रजानाथ ! उन्होंने द्रोणाचार्यका समादर करते हुए क्षत्रिय-धर्मका आश्रय ले पुनः नौ बाणोंद्वारा उनके चरणोंमें आघात किया ॥ १० ॥

तस्येषूनिषुभिश्छित्त्वा द्रोणो विव्याध तावुभौ ।
विषाग्निज्वलितप्रख्यैरिषुभिः कृष्णपाण्डवौ ॥ ११ ॥

द्रोणाचार्यने अपने बाणोंद्वारा अर्जुनके उन बाणोंको काटकर प्रज्वलित विष एवं अग्निके समान तेजस्वी बाणोंसे श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंको घायल कर दिया ॥ ११ ॥

इयेष पाण्डवस्तस्य बाणैश्छेत्तुं शरासनम् ।
तस्य चिन्तयतस्त्वेवं फाल्गुनस्य महात्मनः ॥ १२ ॥
द्रोणः शरैरसम्भ्रान्तो ज्यां चिच्छेदाशु वीर्यवान् ।
विव्याध च हयानस्य ध्वजं सारथिमेव च ॥ १३ ॥

तब पाण्डुनन्दन अर्जुनने अपने बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यके धनुषको काट देनेकी इच्छा की । महामना अर्जुन अभी इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि पराक्रमी द्रोणाचार्यने बिना किसी घबराहटके अपने बाणोंद्वारा शीघ्र ही उनके धनुषकी प्रत्यञ्चा काट डाली और अर्जुनके घोड़ों, ध्वज और सारथिको भी बींध डाला ॥ १२-१३ ॥

अर्जुनं च शरैर्वीरः स्मयमानोऽभ्यवाकिरत् ।
एतस्मिन्नन्तरे पार्थः सज्यं कृत्वा महद् धनुः ॥ १४ ॥
विशेषयिष्यन्नाचार्यं सर्वास्त्रविदुषां वरः ।
मुमोच षट्शतान् बाणान् गृहीत्वैकमिव द्रुतम् ॥ १५ ॥

इतना ही नहीं, वीर द्रोणाचार्यने मुसकराकर अर्जुनको अपने बाणोंकी वर्षासे आच्छादित कर दिया । इसी बीचमें सम्पूर्ण अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ कुन्तीकुमार अर्जुनने अपने विशाल धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी और आचार्यसे बढ़कर पराक्रम दिखानेकी इच्छासे तुरंत छः सौ बाण छोड़े । उन बाणोंको उन्होंने इस प्रकार हाथमें ले लिया था, मानो एक ही बाण हो ॥ १४-१५ ॥

पुनः सप्तशतानन्यान् सहस्रं चानिवर्तिनः ।
चिक्षेपायुतशश्चान्यांस्तेऽघ्नन् द्रोणस्य तां चमूम् ॥ १६ ॥

तत्पश्चात् सात सौ और फिर एक हजार ऐसे बाण छोड़े जो किसी प्रकार प्रतिहत होनेवाले नहीं थे । तदनन्तर अर्जुनने दस-दस हजार बाणोंद्वारा प्रहार किया । उन सभी बाणोंने द्रोणाचार्यकी उस सेनाका संहार कर डाला ॥ १६ ॥

तैः सम्यगस्तैर्बलिना कृतिना चित्रयोधिना ।
मनुष्यवाजिमातङ्गा विद्धाः पेतुर्गतासवः ॥ १७ ॥

विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले अस्त्रवेत्ता महाबली अर्जुनके द्वारा भलीभाँति चलाये हुए उन बाणोंसे घायल हो बहुत-से मनुष्य, घोड़े और हाथी प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १७ ॥

विसूताश्वध्वजाः पेतुः संछिन्नायुधजीविताः ।
रथिनो रथमुख्येभ्यः सहसा शरपीडिताः ॥ १८ ॥

अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित हुए बहुतेरे रथी सारथि,

अश्व, ध्वज, अस्त्र-शस्त्र और प्राणोंसे भी वञ्चित हो सहसा श्रेष्ठ रथोंसे नीचे जा गिरे ॥ १८ ॥

चूर्णिताक्षिप्तदग्धानां वज्रानिलहुताशनैः ।
तुल्यरूपा गजाः पेतुर्गिर्यग्राम्बुदवेश्मनाम् ॥१९॥

वज्रके आघातसे चूर-चूर हुए पर्वतों, वायुके द्वारा संचालित हुए भयंकर बादलों तथा आगमें जले हुए गृहोंके समान रूपवाले बहुत-से हाथी धराशायी हो रहे थे ॥ १९ ॥

पेतुरश्वसहस्राणि प्रहतान्यर्जुनेषुभिः ।
हंसा हिमवतः पृष्ठे वारिविप्रहता इव ॥ २०॥

अर्जुनके बाणोंसे मारे गये सहस्रों घोड़े रणभूमिमें उसी प्रकार पड़े थे, जैसे वर्षाके जलसे आहत हुए बहुत-से हंस हिमालयकी तलहटीमें पड़े हुए हों ॥ २० ॥

रथाश्वद्विपपत्त्योघाः सलिलौघा इवाद्भुताः ।
युगान्तादित्यरश्म्याभैः पाण्डवास्त्रशरैर्हताः ॥ २१ ॥

प्रलयकालके सूर्यकी किरणोंके समान अर्जुनके तेजस्वी बाणोंद्वारा मारे गये रथ, घोड़े, हाथी और पैदलोंके समूह सूर्यकिरणोंद्वारा सोखे गये अद्भुत जलप्रवाहके समान जान पड़ते थे ॥ २१ ॥

तं पाण्डवादित्यशरांशुजालं
कुरुप्रवीरान् युधि निष्टपन्तम् ।
स द्रोणमेघः शरवृष्टिवेगैः
प्राच्छादयन्मेघ इवार्करश्मीन् ॥ २२ ॥

जैसे बादल सूर्यकी किरणोंको छिपा देता है, उसी प्रकार द्रोणाचार्यरूपी मेघने अपनी बाणवर्षाके वेगसे अर्जुनरूपी सूर्यके इस बाणरूपी किरणसमूहको आच्छादित कर दिया, जो युद्धमें मुख्य-मुख्य कौरव वीरोंको संतप्त कर रहा था ॥ २२ ॥

अथात्यर्थं विसृष्टेन द्विषतामसुभोजिना ।
आजघ्ने वक्षसि द्रोणो नाराचेन धनंजयम् ॥ २३ ॥

तत्पश्चात् शत्रुओंके प्राण लेनेवाले एक नाराचका प्रहार करके द्रोणाचार्यने अर्जुनकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥

स विह्वलितसर्वाङ्गः क्षितिकम्पे यथाचलः ।
धैर्यमालम्ब्य बीभत्सुर्द्रोणं विव्याध पत्रिभिः ॥ २४ ॥

उस आघातसे अर्जुनका सारा शरीर विह्वल हो गया, मानो भूकम्प होनेपर पर्वत हिल उठा हो। तथापि अर्जुनने धैर्य धारण करके पंखयुक्त बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यको घायल कर दिया ॥ २४ ॥

द्रोणस्तु पञ्चभिर्बाणैर्वासुदेवमताडयत् ।
अर्जुनं च त्रिसप्तत्या ध्वजं चास्य त्रिभिः शरैः ॥२५॥

फिर द्रोणने भी पाँच बाणोंसे भगवान् श्रीकृष्णको, तिहत्तर बाणोंसे अर्जुनको और तीन बाणोंद्वारा उनके ध्वजको भी चोट पहुँचायी ॥ २५ ॥

विशेषयिष्यञ्शिष्यं च द्रोणो राजन् पराक्रमी ।
अदृश्यमर्जुनं चक्रे निमेषाच्छरवृष्टिभिः ॥ २६ ॥

राजन्! पराक्रमी द्रोणाचार्यने अपने शिष्य अर्जुनसे अधिक पराक्रम प्रकट करनेकी इच्छा रखकर पलक मारते-मारते अपने बाणोंकी वर्षाद्वारा अर्जुनको अदृश्य कर दिया ॥

प्रसक्तान् पततोऽद्राक्ष्म भारद्वाजस्य सायकान् ।
मण्डलीकृतमेवास्य धनुश्चादृश्यताद्भुतम् ॥ २७ ॥

हमने देखा, द्रोणाचार्यके बाण परस्पर सटे हुए गिरते थे। उनका अद्भुत धनुष सदा मण्डलाकार ही दिखायी देता था ॥ २७ ॥

तेऽभ्ययुः समरे राजन् वासुदेवधनंजयौ ।
द्रोणसृष्टाः सुबहवः कङ्कपत्रपरिच्छदाः ॥ २८ ॥

राजन्! उस समराङ्गणमें द्रोणाचार्यके छोड़े हुए कंकपत्रविभूषित बहुत-से बाण श्रीकृष्ण और अर्जुनपर पड़ने लगे ॥ २८ ॥

तद् दृष्ट्वा तादृशं युद्धं द्रोणपाण्डवयोस्तदा ।
वासुदेवो महाबुद्धिः कार्यवत्तामचिन्तयत् ॥ २९ ॥

उस समय द्रोणाचार्य और अर्जुनका वैसा युद्ध देखकर परम बुद्धिमान् वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने मन-ही-मन कर्तव्यका निश्चय कर लिया ॥ २९ ॥

ततोऽब्रवीद् वासुदेवो धनंजयमिदं वचः ।
पार्थ पार्थ महाबाहो न नः कालात्ययो भवेत् ॥ ३० ॥
द्रोणमुत्सृज्य गच्छामः कृत्यमेतन्महत्तरम् ।

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण अर्जुनसे इस प्रकार बोले—'अर्जुन! अर्जुन! महाबाहो! हमारा अधिक समय यहाँ न बीत जाय, इसलिये द्रोणाचार्यको छोड़कर आगे चलें; यही इस समय सबसे महान् कार्य है' ॥ ३०½ ॥

पार्थश्चाप्यब्रवीत् कृष्णं यथेष्टमिति केशवम् ॥ ३१ ॥
ततः प्रदक्षिणं कृत्वा द्रोणं प्रायान्महाभुजम् ।
परिवृत्तश्च बीभत्सुरगच्छद् विसृजञ्शरान् ॥ ३२ ॥

तब अर्जुनने भी सच्चिदानन्दस्वरूप केशवसे कहा—'प्रभो! आपकी जैसी रुचि हो, वैसा कीजिये।' तत्पश्चात् अर्जुन महाबाहु द्रोणाचार्यकी परिक्रमा करके लौट पड़े और बाणोंकी वर्षा करते हुए आगे चले गये ॥ ३१-३२ ॥

ततोऽब्रवीत् स्वयं द्रोणः क्वेदं पाण्डव गम्यते ।
ननु नाम रणे शत्रुमजित्वा न निवर्तसे ॥ ३३ ॥

यह देख द्रोणाचार्यने स्वयं कहा—'पाण्डुनन्दन! तुम इस प्रकार कहाँ चले जा रहे हो? तुम तो रणक्षेत्रमें शत्रुको पराजित किये बिना कभी नहीं लौटते थे' ॥ ३३ ॥

अर्जुन उवाच

गुरुर्भवान् न मे शत्रुः शिष्यः पुत्रसमोऽस्मि ते ।
न चास्ति स पुमाँल्लोके यस्त्वां युधि पराजयेत् ॥ ३४ ॥

अर्जुन बोले—ब्रह्मन् ! आप मेरे गुरु हैं । शत्रु नहीं हैं । मैं आपका पुत्रके समान प्रिय शिष्य हूँ । इस जगत्में ऐसा कोई पुरुष नहीं है, जो युद्धमें आपको पराजित कर सके ॥ ३४ ॥

संजय उवाच

एवं ब्रुवाणो बीभत्सुर्जयद्रथवधोत्सुकः ।
त्वरायुक्तो महाबाहुस्त्वत्सैन्यं समुपाद्रवत् ॥ ३५ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! ऐसा कहते हुए महाबाहु अर्जुनने जयद्रथ-वधके लिये उत्सुक हो बड़ी उतावलीके साथ आपकी सेनापर धावा किया ॥ ३५ ॥

तं चक्ररक्षौ पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ ।
अन्वयातां महात्मानौ विशन्तं तावकं बलम् ॥ ३६ ॥

आपकी सेनामें प्रवेश करते समय उनके पीछे-पीछे पाञ्चाल वीर महामना युधामन्यु और उत्तमौजा चक्ररक्षक होकर गये ॥ ३६ ॥

ततो जयो महाराज कृतवर्मा च सात्वतः ।
काम्बोजश्च श्रुतायुश्च धनंजयमवारयन् ॥ ३७ ॥

महाराज ! तब जय, सात्वत-वंशी कृतवर्मा, काम्बोज-नरेश तथा श्रुतायुने सामने आकर अर्जुनको रोका ॥ ३७ ॥

तेषां दश सहस्राणि रथानामनुयायिनाम् ।
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ॥ ३८ ॥
मावेल्लका ललित्थाश्च केकया मद्रकास्तथा ।
नारायणाश्च गोपालाः काम्बोजानां च ये गणाः ॥ ३९ ॥
कर्णेन विजिताः पूर्वं संग्रामे शूरसम्मताः ।
भारद्वाजं पुरस्कृत्य हृष्टात्मानोऽर्जुनं प्रति ॥ ४० ॥

इनके पीछे दस हजार रथी, अभीषाह, शूरसेन, शिबि, वसाति, मावेल्लक, ललित्थ, केकय, मद्रक, नारायण नामक गोपालगण तथा काम्बोजदेशीय सैनिकगण भी थे । इन सबको पूर्वकालमें कर्णने रणभूमिमें जीतकर अपने अधीन कर लिया था । ये सब-के-सब शूरवीरोंद्वारा सम्मानित योद्धा थे और प्रसन्नचित्त हो द्रोणाचार्यको आगे करके अर्जुनपर चढ़ आये थे ॥ ३८–४० ॥

पुत्रशोकाभिसंतप्तं क्रुद्धं मृत्युमिवान्तकम् ।
त्यजन्तं तुमुले प्राणान् संनद्धं चित्रयोधिनम् ॥ ४१ ॥
गाहमानमनीकानि मातङ्गमिव यूथपम् ।
महेष्वासं पराक्रान्तं नरव्याघ्रमवारयन् ॥ ४२ ॥

अर्जुन पुत्रशोकसे संतप्त एवं कुपित हुए प्राणान्तक मृत्युके समान प्रतीत होते थे । वे उस भयंकर युद्धमें अपने प्राणोंको निछावर करनेके लिये उद्यत, कवच आदिसे सुसज्जित और विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले थे । जैसे यूथपति गजराज गजसमूहमें प्रवेश करता है, उसी प्रकार आपकी सेनाओंमें घुसते हुए महाधनुर्धर परम पराक्रमी उन नरश्रेष्ठ अर्जुनको पूर्वोक्त योद्धाओंने आकर रोका ॥ ४१-४२ ॥

ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
अन्योन्यं वै प्रार्थयतां योधानामर्जुनस्य च ॥ ४३ ॥

तदनन्तर एक दूसरेको ललकारते हुए कौरव योद्धाओं तथा अर्जुनमें रोमाञ्चकारी एवं भयंकर युद्ध छिड़ गया ॥४३॥

जयद्रथवधप्रेप्सुमायान्तं पुरुषर्षभम् ।
न्यवारयन्त सहिताः क्रिया व्याधिमिवोत्थितम् ॥ ४४ ॥

जैसे चिकित्साकी क्रिया उभड़ते हुए रोगको रोक देती है, उसी प्रकार जयद्रथका वध करनेकी इच्छासे आते हुए पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनको समस्त कौरव वीरोंने एक साथ मिलकर रोक दिया ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणातिक्रमे एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें द्रोणातिक्रमणविषयक इक्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥९१॥

द्विनवतितमोऽध्यायः

अर्जुनका द्रोणाचार्य और कृतवर्माके साथ युद्ध करते हुए कौरव-सेनामें प्रवेश तथा श्रुतायुधका अपनी गदासे और सुदक्षिणका अर्जुनद्वारा वध

संजय उवाच

संनिरुद्धस्तु तैः पार्थो महाबलपराक्रमः ।
द्रुतं समनुयातश्च द्रोणेन रथिनां वरः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—रथियोंमें श्रेष्ठ एवं महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न अर्जुन जब उन कौरव सैनिकोंद्वारा रोक दिये गये, उस समय द्रोणाचार्यने भी तुरंत ही उनका पीछा किया ॥ १ ॥

किरन्निषुगणांस्तीक्ष्णान् स रश्मीनिव भास्करः ।
तापयामास तत् सैन्यं देहं व्याधिगणो यथा ॥ २ ॥

जैसे रोगोंका समुदाय शरीरको संतप्त कर देता है, उसी प्रकार अर्जुनने कौरवोंकी उस सेनाको अत्यन्त संताप दिया । जैसे सूर्य अपनी प्रचण्ड किरणोंका प्रसार करते हैं, उसी प्रकार वे तीखे बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगे ॥ २ ॥

अश्वो विद्धो रथश्छिन्नः सारोहः पातितो गजः ।
छत्राणि चापविद्धानि रथाश्चक्रैर्विना कृताः ॥ ३ ॥

उन्होंने घोड़ोंको घायल कर दिया, रथके टुकड़े-टुकड़े कर डाले, गजारोहियोंसहित हाथीको मार गिराया, छत्र इधर-उधर बिखेर दिये तथा रथोंको पहियोंसे सूना कर दिया ।३।

विद्रुतानि च सैन्यानि शरार्तानि समन्ततः।
इत्यासीत् तुमुलं युद्धं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ४ ॥

उनके बाणोंसे पीड़ित होकर सारे सैनिक सब ओर भाग चले। वहाँ इस प्रकार भयंकर युद्ध हो रहा था कि किसीको कुछ भी भान नहीं हो रहा था ॥ ४ ॥

तेषां संयच्छतां संख्ये परस्परमजिह्मगैः।
अर्जुनो ध्वजिनीं राजन्नभीक्ष्णं समकम्पयत् ॥ ५ ॥

राजन्! उस युद्धस्थलमें कौरव-सैनिक एक दूसरेको काबूमें रखनेका प्रयत्न करते थे और अर्जुन अपने बाणोंद्वारा उनकी सेनाको बारंबार कम्पित कर रहे थे ॥ ५ ॥

सत्यां चिकीर्षमाणस्तु प्रतिज्ञां सत्यसंगरः।
अभ्यद्रवद् रथश्रेष्ठं शोणाश्वं श्वेतवाहनः ॥ ६ ॥

सत्यप्रतिज्ञ श्वेतवाहन अर्जुनने अपनी प्रतिज्ञा सच्ची करनेकी इच्छासे लाल घोड़ोंवाले रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यपर धावा किया ॥ ६ ॥

तं द्रोणः पञ्चविंशत्या मर्मभिद्भिरजिह्मगैः।
अन्तेवासिनमाचार्यो महेष्वासं समार्पयत् ॥ ७ ॥

उस समय आचार्य द्रोणने अपने महाधनुर्धर शिष्य अर्जुनको पचीस मर्मभेदी बाणोंद्वारा घायल कर दिया ॥ ७ ॥

तं तूर्णमिव बीभत्सुः सर्वशस्त्रभृतां वरः।
अभ्यधावदिषूनस्यन्निषुवेगविघातकान् ॥ ८ ॥

तब सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने भी तुरंत ही उनके बाणोंके वेगका विनाश करनेवाले भल्लोंका प्रहार करते हुए उनपर आक्रमण किया ॥ ८ ॥

तस्याशुक्षिप्तान् भल्लान् हि भल्लैः संनतपर्वभिः।
प्रत्यविध्यदमेयात्मा ब्रह्मास्त्रं समुदीरयन् ॥ ९ ॥

अमेय आत्मबलसे सम्पन्न द्रोणाचार्यने अर्जुनके तुरंत चलाये हुए उन भल्लोंको झुकी हुई गाँठवाले भल्लोंद्वारा ही काट दिया और ब्रह्मास्त्र प्रकट किया ॥ ९ ॥

तदद्भुतमपश्याम द्रोणस्याचार्यकं युधि।
यतमानो युवा नैनं प्रत्यविध्यद् यदर्जुनः ॥ १० ॥

उस युद्धस्थलमें द्रोणाचार्यकी अद्भुत अस्त्रशिक्षा हमने देखी कि नवयुवक अर्जुन प्रयत्नशील होनेपर भी उन्हें अपने बाणोंद्वारा चोट न पहुँचा सके ॥ १० ॥

क्षरन्निव महामेघो वारिधाराः सहस्रशः।
द्रोणमेघः पार्थशैलं ववर्ष शरवृष्टिभिः ॥ ११ ॥

जैसे महान् मेघ जलकी सहस्रों धाराएँ बरसाता रहता है, उसी प्रकार द्रोणाचार्यरूपी मेघने अर्जुनरूपी पर्वतपर बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ ११ ॥

अर्जुनः शरवर्षं तद् ब्रह्मास्त्रेणैव मारिष।
प्रतिजग्राह तेजस्वी बाणैर्बाणान् निशातयन् ॥ १२ ॥

पूजनीय नरेश! उस समय अपने बाणोंद्वारा उनके बाणोंको काटते हुए तेजस्वी अर्जुनने भी ब्रह्मास्त्रद्वारा ही आचार्यकी उस बाण-वर्षाको रोका ॥ १२ ॥

द्रोणस्तु पञ्चविंशत्या श्वेतवाहनमार्दयत्।
वासुदेवं च सप्तत्या बाह्वोरुरसि चाशुगैः ॥ १३ ॥

तब द्रोणाचार्यने पचीस बाण मारकर श्वेतवाहन अर्जुनको पीड़ित कर दिया। साथ ही श्रीकृष्णकी भुजाओं तथा वक्षःस्थलमें भी उन्होंने सत्तर बाण मारे ॥ १३ ॥

पार्थस्तु प्रहसन् धीमानाचार्यं सशरौघिणम्।
विसृजन्तं शितान् बाणानवारयत तं युधि ॥ १४ ॥

परम बुद्धिमान् अर्जुनने हँसते हुए ही युद्धस्थलमें तीखे बाणोंकी बौछार करनेवाले द्रोणाचार्यको उनकी बाण-वर्षासहित रोक दिया ॥ १४ ॥

अथ तौ वध्यमानौ तु द्रोणेन रथसत्तमौ।
आवर्जयेतां दुर्धर्षं युगान्ताग्निमिवोत्थितम् ॥ १५ ॥

तदनन्तर द्रोणाचार्यके द्वारा घायल किये जाते हुए वे दोनों रथिश्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुन उस समय प्रलयकालकी अग्निके समान उठे हुए उन दुर्धर्ष आचार्यको छोड़कर अन्यत्र चल दिये ॥ १५ ॥

वर्जयन् निशितान् बाणान् द्रोणचापविनिःसृतान्।
किरीटमाली कौन्तेयो भोजानीकं व्यशातयत् ॥ १६ ॥

द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए तीखे बाणोंका निवारण करते हुए किरीटधारी कुन्तीकुमार अर्जुनने कृतवर्माकी सेनाका संहार आरम्भ किया ॥ १६ ॥

सोऽन्तरा कृतवर्माणं काम्बोजं च सुदक्षिणम्।
अभ्ययाद् वर्जयन् द्रोणं मैनाकमिव पर्वतम् ॥ १७ ॥

वे मैनाक पर्वतकी भाँति अविचल भावसे स्थित द्रोणाचार्यको छोड़ते हुए कृतवर्मा तथा काम्बोजराज सुदक्षिणके बीचसे होकर निकले ॥ १७ ॥

ततो भोजो नरव्याघ्रो दुर्धर्षं कुरुसत्तमम्।
अविध्यत् तूर्णमव्यग्रो दशभिः कङ्कपत्रिभिः ॥ १८ ॥

तब पुरुषसिंह कृतवर्माने कुरुकुलके श्रेष्ठ एवं दुर्धर्ष वीर अर्जुनको कंकपत्रयुक्त दस बाणोंद्वारा तुरंत ही घायल कर दिया। उस समय उसके मनमें तनिक भी व्यग्रता नहीं हुई ॥ १८ ॥

तमर्जुनः शतेनाजौ राजन् विव्याध पत्रिणाम्।
पुनश्चान्यैस्त्रिभिर्बाणैर्मोहयन्निव सात्वतम् ॥ १९ ॥

राजन्! अर्जुनने कृतवर्माको उस युद्धस्थलमें सौ बाणोंद्वारा बींध डाला। फिर उसे मोहित-सा करते हुए उन्होंने तीन बाण और मारे ॥ १९ ॥

भोजस्तु प्रहसन् पार्थं वासुदेवं च माधवम्।
एकैकं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत् ॥ २० ॥

तब कृतवर्माने भी हँसकर कुन्तीकुमार अर्जुन और मधुवंशी भगवान् वासुदेवमेंसे प्रत्येकको पचीस-पचीस बाण मारे॥

तस्यार्जुनो धनुश्छित्त्वा विव्याधैनं त्रिसप्तभिः।
शरैरग्निशिखाकारैः क्रुद्धाशीविषसंनिभैः ॥ २१ ॥

यह देख अर्जुनने उसके धनुषको काटकर क्रोधमें भरे हुए विषधर सर्पके समान भयंकर और आगकी लपटोंके समान तेजस्वी इक्कीस बाणोंद्वारा उसे भी घायल कर दिया २१

अथान्यद् धनुरादाय कृतवर्मा महारथः।
पञ्चभिः सायकैस्तूर्णं विव्याधोरसि भारत ॥ २२ ॥

भारत ! तब महारथी कृतवर्माने दूसरा धनुष लेकर तुरंत ही पाँच बाणोंसे अर्जुनकी छातीमें चोट पहुँचायी॥२२॥

पुनश्च निशितैर्बाणैः पार्थं विव्याध पञ्चभिः।
तं पार्थो नवभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥ २३ ॥

फिर पाँच तीखे बाण और मारकर अर्जुनको घायल कर दिया। यह देख अर्जुनने कृतवर्माकी छातीमें नौ बाण मारे ॥

दृष्ट्वा विषक्तं कौन्तेयं कृतवर्मरथं प्रति।
चिन्तयामास वार्ष्णेयो न नः कालात्ययो भवेत् ॥ २४ ॥

कुन्तीकुमार अर्जुनको कृतवर्माके रथसे उलझे हुए देखकर भगवान् श्रीकृष्णने मन-ही-मन सोचा कि हमलोगोंका अधिक समय यहीं न व्यतीत हो जाय ॥ २४ ॥

ततः कृष्णोऽब्रवीत् पार्थं कृतवर्मणि मा दयाम्।
कुरु सम्बन्धकं हित्वा प्रमथ्यैनं विशातय ॥ २५ ॥

तत्पश्चात् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'तुम कृतवर्मापर दया न करो। इस समय सम्बन्धी होनेका विचार छोड़कर इसे मथकर मार डालो' ॥ २५ ॥

ततः स कृतवर्माणं मोहयित्वार्जुनः शरैः।
अभ्यगाज्जवनैरश्वैः काम्बोजानामनीकिनीम् ॥२६ ॥

तब अर्जुन अपने बाणोंद्वारा कृतवर्माको मूर्छित करके अपने वेगशाली घोड़ोंद्वारा काम्बोजोंकी सेनापर आक्रमण करने लगे॥

अमर्षितस्तु हार्दिक्यः प्रविष्टे श्वेतवाहने।
विधुन्वन् सशरं चापं पाञ्चाल्याभ्यां समागतः ॥२७ ॥

श्वेतवाहन अर्जुनके व्यूहमें प्रवेश कर जानेपर कृतवर्माको बड़ा क्रोध हुआ। वह बाणसहित धनुषको हिलाता हुआ पाञ्चालराजकुमार युधामन्युं और उत्तमौजासे भिड़ गया॥

चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यावर्जुनस्य पदानुगौ।
पर्यवारयदायान्तौ कृतवर्मा रथेषुभिः ॥२८ ॥

वे दोनों पाञ्चाल वीर अर्जुनके चक्ररक्षक होकर उनके पीछे-पीछे जा रहे थे। कृतवर्माने अपने रथ और बाणोंद्वारा वहाँ आते हुए उन दोनों वीरोंको रोक दिया ॥ २८ ॥

तावविध्यत् ततो भोजः कृतवर्मा शितैः शरैः।
त्रिभिरेव युधामन्युं चतुर्भिश्चोत्तमौजसम् ॥२९ ॥

भोजवंशी कृतवर्माने अपने तीन तीखे बाणोंद्वारा युधामन्युको और चार बाणोंसे उत्तमौजाको घायल कर दिया॥२९॥

तावप्येनं विविधतुर्दशभिर्दशभिः शरैः।
त्रिभिरेव युधामन्युरुत्तमौजास्त्रिभिस्तथा ॥ ३० ॥

तब उन दोनोंने भी कृतवर्माको दस-दस बाणोंसे बींध दिया। फिर युधामन्युने तीन और उत्तमौजाने भी तीन बाणोंद्वारा उसे चोट पहुँचायी ॥ ३० ॥

संचिच्छिदतुरप्यस्य ध्वजं कार्मुकमेव च।
अथान्यद् धनुरादाय हार्दिक्यः क्रोधमूर्छितः ॥ ३१ ॥
कृत्वा विधनुषौ वीरौ शरवर्षैरवाकिरत्।
तावन्ये धनुषी सज्ये कृत्वा भोजं विजघ्नतुः ॥ ३२ ॥

साथ ही उन्होंने कृतवर्माके ध्वज और धनुषको भी काट डाला। यह देख कृतवर्मा क्रोधसे मूर्छित हो उठा और उसने दूसरा धनुष हाथमें लेकर उन दोनों वीरोंके धनुष काट दिये। तत्पश्चात् वह उनपर बाणोंकी वर्षा करने लगा। इसी तरह वे दोनों पाञ्चाल वीर भी दूसरे धनुषोंपर डोरी चढ़ाकर भोजवंशी कृतवर्माको चोट पहुँचाने लगे ॥ ३१-३२ ॥

तेनान्तरेण बीभत्सुर्विवेशामित्रवाहिनीम्।
न लेभाते तु तौ द्वारं वारितौ कृतवर्मणा ॥ ३३ ॥
धार्तराष्ट्रेष्वनीकेषु यतमानौ नरर्षभौ।

इसी बीचमें अवसर पाकर अर्जुन शत्रुओंकी सेनामें घुस गये। परंतु कृतवर्माद्वारा रोक दिये जानेके कारण वे दोनों नरश्रेष्ठ युधामन्यु और उत्तमौजा प्रयत्न करनेपर भी आपके पुत्रोंकी सेनामें प्रवेश करनेका द्वार न पा सके ३३½

अनीकान्यर्दयन् युद्धे त्वरितः श्वेतवाहनः ॥ ३४ ॥
नावधीत् कृतवर्माणं प्राप्तमप्यरिसूदनः।

श्वेत घोड़ोंवाले शत्रुसूदन अर्जुन उस युद्धस्थलमें बड़ी उतावलीके साथ शत्रु-सेनाओंको पीड़ा दे रहे थे। परंतु उन्होंने (सम्बन्धका विचार करके) कृतवर्माको सामने पाकर भी मारा नहीं ॥ ३४½ ॥

तं दृष्ट्वा तु तथा यान्तं शूरो राजा श्रुतायुधः ॥ ३५ ॥
अभ्यद्रवत् सुसंक्रुद्धो विधुन्वानो महद् धनुः।

अर्जुनको इस प्रकार आगे बढ़ते देख शूरवीर राजा श्रुतायुध अत्यन्त कुपित हो उठे और अपना विशाल धनुष हिलाते हुए उनपर टूट पड़े ॥ ३५½ ॥

स पार्थं त्रिभिरानर्छत् सप्तत्या च जनार्दनम् ॥ ३६ ॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन पार्थकेतुमताडयत्।

उन्होंने अर्जुनको तीन और श्रीकृष्णको सत्तर बाण मारे। फिर अत्यन्त तीखे क्षुरप्रसे अर्जुनकी ध्वजापर प्रहार किया ॥ ३६½ ॥

ततोऽर्जुनो नवत्या तु शराणां नतपर्वणाम् ॥ ३७ ॥

आजघान भृशं क्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ।

तब अर्जुनने अत्यन्त कुपित होकर अंकुशोंसे महान् गजराजको पीड़ित करनेकी भाँति झुकी हुई गाँठवाले नब्बे बाणोंसे राजा श्रुतायुधको चोट पहुँचायी ॥ ३७½ ॥

स तन्न ममृषे राजन् पाण्डवेयस्य विक्रमम् ॥ ३८ ॥
अथैनं सप्तसप्तत्या नाराचानां समार्पयत् ।

राजन् ! उस समय राजा श्रुतायुध पाण्डुकुमार अर्जुनके उस पराक्रमको न सह सके । अतः उन्होंने अर्जुनको सतहत्तर बाण मारे ॥ ३८½ ॥

तस्यार्जुनो धनुश्छित्त्वा शरावापं निकृत्य च ॥ ३९ ॥
आजघानोरसि क्रुद्धः सप्तभिर्नतपर्वभिः ।

तब अर्जुनने उनका धनुष काटकर उनके तरकसके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये । फिर कुपित हो झुकी हुई गाँठवाले सात बाणोंद्वारा उनकी छातीपर प्रहार किया ॥ ३९½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय स राजा क्रोधमूर्च्छितः ॥ ४० ॥
वासविं नवभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ।

फिर तो राजा श्रुतायुधने क्रोधसे अचेत होकर दूसरा धनुष हाथमें लिया और इन्द्रकुमार अर्जुनकी भुजाओं तथा वक्षःस्थलमें नौ बाण मारे ॥ ४०½ ॥

ततोऽर्जुनः स्मयन्नेव श्रुतायुधमरिंदमः ॥ ४१ ॥
शरैरनेकसाहस्रैः पीडयामास भारत ।

भारत ! यह देख शत्रुदमन अर्जुनने मुसकराते हुए ही श्रुतायुधको कई हजार बाण मारकर पीड़ित कर दिया ४१½

अश्वांश्चास्यावधीत् तूर्णं सारथिं च महारथः ॥ ४२ ॥
विव्याध चैनं सप्तत्या नाराचानां महाबलः ।

साथ ही उन महारथी एवं महाबली वीरने उनके घोड़ों और सारथिको भी शीघ्रतापूर्वक मार डाला और सत्तर नाराचोंसे श्रुतायुधको भी घायल कर दिया ॥ ४२½ ॥

हताश्वं रथमुत्सृज्य स तु राजा श्रुतायुधः ॥ ४३ ॥
अभ्यद्रवद् रणे पार्थं गदामुद्यम्य वीर्यवान् ।

घोड़ोंके मारे जानेपर पराक्रमी राजा श्रुतायुध उस रथको छोड़कर हाथमें गदा ले समराङ्गणमें अर्जुनपर टूट पड़े ॥

वरुणस्यात्मजो वीरः स तु राजा श्रुतायुधः ॥ ४४ ॥
पर्णाशा जननी यस्य शीततोया महानदी ।

वीर राजा श्रुतायुध वरुणके पुत्र थे । शीतसलिला महानदी पर्णाशा उनकी माता थी ॥ ४४½ ॥

तस्य माताब्रवीद् राजन् वरुणं पुत्रकारणात् ॥ ४५ ॥
अवध्योऽयं भवेल्लोके शत्रूणां तनयो मम ।

राजन् ! उनकी माता पर्णाशा अपने पुत्रके लिये वरुणसे बोली—'प्रभो ! मेरा यह पुत्र संसारमें शत्रुओंके लिये अवध्य हो' ॥ ४५½ ॥

वरुणस्त्वब्रवीत् प्रीतो ददाम्यस्मै वरं हितम् ॥ ४६ ॥
दिव्यमस्त्रं सुतस्तेऽयं येनावध्यो भविष्यति ।

तब वरुणने प्रसन्न होकर कहा—'मैं इसके लिये हितकारक वरके रूपमें यह दिव्य अस्त्र प्रदान करता हूँ, जिसके द्वारा तुम्हारा यह पुत्र अवध्य होगा ॥ ४६½ ॥

नास्ति चाप्यमरत्वं वै मनुष्यस्य कथंचन ॥ ४७ ॥
सर्वेणावश्यमर्तव्यं जातेन सरितां वरे ।

'सरिताओंमें श्रेष्ठ पर्णाशे ! मनुष्य किसी प्रकार भी अमर नहीं हो सकता । जिन लोगोंने यहाँ जन्म लिया है, उनकी मृत्यु अवश्यम्भावी है ॥ ४७½ ॥

दुर्धर्षस्त्वेष शत्रूणां रणेषु भविता सदा ॥ ४८ ॥
अस्त्रस्यास्य प्रभावाद् वै व्येतु ते मानसो ज्वरः ।

'तुम्हारा यह पुत्र इस अस्त्रके प्रभावसे रणक्षेत्रमें शत्रुओंके लिये सदा ही दुर्धर्ष होगा । अतः तुम्हारी मानसिक चिन्ता निवृत्त हो जानी चाहिये' ॥ ४८½ ॥

इत्युक्त्वा वरुणः प्रादाद् गदां मन्त्रपुरस्कृताम् ॥ ४९ ॥
यामासाद्य दुराधर्षः सर्वलोके श्रुतायुधः ।

ऐसा कहकर वरुणदेवने श्रुतायुधको मन्त्रोपदेशपूर्वक वह गदा प्रदान की, जिसे पाकर वे सम्पूर्ण जगत्में दुर्जय वीर माने जाते थे ॥ ४९½ ॥

उवाच चैनं भगवान् पुनरेव जलेश्वरः ॥ ५० ॥
अयुध्यति न मोक्तव्या सा त्वय्येव पतेदिति ।
हन्यादेषा प्रतीपं हि प्रयोक्तारमपि प्रभो ॥ ५१ ॥

गदा देकर भगवान् वरुणने उनसे पुनः कहा—'वत्स ! जो युद्ध न कर रहा हो, उसपर इस गदाका प्रहार न करना; अन्यथा यह तुम्हारे ऊपर ही आकर गिरेगी । शक्तिशाली पुत्र ! यह गदा प्रतिकूल आचरण करनेवाले प्रयोक्ता पुरुषको भी मार सकती है' ॥ ५०-५१ ॥

न चाकरोत् स तद्वाक्यं प्राप्ते काले श्रुतायुधः ।
स तया वीरघातिन्या जनार्दनमताडयत् ॥ ५२ ॥

परंतु काल आ जानेपर श्रुतायुधने वरुण देवके उक्त आदेशका पालन नहीं किया । उन्होंने उस वीरघातिनी गदाके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णको चोट पहुँचायी ॥ ५२ ॥

प्रतिजग्राह तां कृष्णः पीनेनांसेन वीर्यवान् ।
नाकम्पयत शौरिं सा विन्ध्यं गिरिमिवानिलः ॥ ५३ ॥

पराक्रमी श्रीकृष्णने अपने हृष्ट-पुष्ट कंधेपर उस गदाका आघात सह लिया । परंतु जैसे वायु विन्ध्यपर्वतको नहीं हिला सकती है, उसी प्रकार वह गदा श्रीकृष्णको कम्पित न कर सकी ॥ ५३ ॥

प्रत्युद्यान्ती तमेवैषा कृत्येव दुरधिष्ठिता ।
जघान चास्थितं वीरं श्रुतायुधममर्षणम् ॥ ५४ ॥

जैसे दोषयुक्त आभिचारिक क्रियासे उत्पन्न हुई कृत्या उसका प्रयोग करनेवाले यजमानका ही नाश कर देती है, उसी प्रकार उस गदाने लौटकर वहाँ खड़े हुए अमर्षशील वीर श्रुतायुधको मार डाला ॥ ५४ ॥

हत्वा श्रुतायुधं वीरं धरणीमन्वपद्यत ।
गदां निवर्तितां दृष्ट्वा निहतं च श्रुतायुधम् ॥ ५५ ॥
हाहाकारो महांस्तत्र सैन्यानां समजायत ।

वीर श्रुतायुधका वध करके वह गदा धरतीपर जा गिरी । लौटी हुई उस गदाको और उसके द्वारा मारे गये वीर श्रुतायुधको देखकर वहाँ आपकी सेनाओंमें महान् हाहाकार मच गया ॥ ५५½ ॥

स्वेनास्त्रेण हतं दृष्ट्वा श्रुतायुधमरिंदमम् ॥ ५६ ॥
अयुध्यमानाय ततः केशवाय नराधिप ।
क्षिप्ता श्रुतायुधेनाथ तस्मात् तमवधीद् गदा ॥ ५७ ॥

नरेश्वर ! शत्रुदमन श्रुतायुधको अपने ही अस्त्रसे मारा गया देख यह बात ध्यानमें आयी कि श्रुतायुधने युद्ध न करनेवाले श्रीकृष्णपर गदा चलायी है । इसीलिये उस गदाने उन्हींका वध किया है ॥ ५६–५७ ॥

यथोक्तं वरुणेनाजौ तथा स निधनं गतः ।
व्यसुश्चाप्यपतद् भूमौ प्रेक्षतां सर्वधन्विनाम् ॥ ५८ ॥

वरुणदेवने जैसा कहा था, युद्धभूमिमें श्रुतायुधकी उसी प्रकार मृत्यु हुई । वे सम्पूर्ण धनुर्धरोंके देखते-देखते प्राण-शून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ५८ ॥

पतमानस्तु स बभौ पर्णाशायाः प्रियः सुतः ।
स भग्न इव वातेन बहुशाखो वनस्पतिः ॥ ५९ ॥

गिरते समय पर्णाशाके प्रिय पुत्र श्रुतायुध आँधीके उखाड़े हुए अनेक शाखाओंवाले वृक्षके समान प्रतीत हो रहे थे ॥ ५९ ॥

ततः सर्वाणि सैन्यानि सेनामुख्याश्च सर्वशः ।
प्राद्रवन्त हतं दृष्ट्वा श्रुतायुधमरिंदमम् ॥ ६० ॥

शत्रुसूदन श्रुतायुधको इस प्रकार मारा गया देख सारे सैनिक और सम्पूर्ण सेनापति वहाँसे भाग खड़े हुए ॥ ६० ॥

ततः काम्बोजराजस्य पुत्रः शूरः सुदक्षिणः ।
अभ्ययाज्जवनैरश्वैः फाल्गुनं शत्रुसूदनम् ॥ ६१ ॥

तत्पश्चात् काम्बोजराजका शूरवीर पुत्र सुदक्षिण वेगशाली अश्वोंद्वारा शत्रुसूदन अर्जुनका सामना करनेके लिये आया ॥

तस्य पार्थः शरान् सप्त प्रेषयामास भारत ।
ते तं शूरं विनिर्भिद्य प्राविशन् धरणीतलम् ॥ ६२ ॥

भारत ! अर्जुनने उसके ऊपर सात बाण चलाये । वे बाण उस शूरवीरके शरीरको विदीर्ण करके धरतीमें समा गये ॥ ६२ ॥

सोऽतिविद्धः शरैस्तीक्ष्णैर्गाण्डीवप्रेषितैर्मृधे ।
अर्जुनं प्रतिविव्याध दशभिः कङ्कपत्रिभिः ॥ ६३ ॥

गाण्डीव धनुषद्वारा छोड़े हुए तीखे बाणोंसे अत्यन्त घायल होनेपर सुदक्षिणने उस रणक्षेत्रमें कंककी पाँखवाले दस बाणोंद्वारा अर्जुनको क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ६३ ॥

वासुदेवं त्रिभिर्विद्ध्वा पुनः पार्थं च पञ्चभिः ।
तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा केतुं चिच्छेद मारिष ॥ ६४ ॥

वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णको तीन बाणोंसे घायल करके उसने अर्जुनपर पुनः पाँच बाणोंका प्रहार किया । आर्य ! तब अर्जुनने उसका धनुष काटकर उसकी ध्वजाके टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥ ६४ ॥

भल्लाभ्यां भृशतीक्ष्णाभ्यां तं च विव्याध पाण्डवः ।
स तु पार्थं त्रिभिर्विद्ध्वा सिंहनादमथानदत् ॥ ६५ ॥

इसके बाद पाण्डुकुमार अर्जुनने दो अत्यन्त तीखे भल्लोंसे सुदक्षिणको बींध डाला । फिर सुदक्षिण भी तीन बाणोंसे पार्थको घायल करके सिंहके समान दहाड़ने लगा ॥ ६५ ॥

सर्वपारशवीं चैव शक्तिं शूरः सुदक्षिणः ।
सघण्टां प्राहिणोद् घोरां क्रुद्धो गाण्डीवधन्वने ॥ ६६ ॥

शूरवीर सुदक्षिणने कुपित होकर पूर्णतः लोहेकी बनी हुई घण्टायुक्त भयंकर शक्ति गाण्डीवधारी अर्जुनपर चलायी ॥

सा ज्वलन्ती महोल्केव तमासाद्य महारथम् ।
सविस्फुलिङ्गा निर्भिद्य निपपात महीतले ॥ ६७ ॥

वह बड़ी भारी उल्काके समान प्रज्वलित होती और चिनगारियाँ बिखेरती हुई महारथी अर्जुनके पास जा उनके शरीरको विदीर्ण करके पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ६७ ॥

शक्त्या त्वभिहतो गाढं मूर्च्छयाभिपरिप्लुतः ।
समाश्वास्य महातेजाः सृक्किणी परिलेलिहन् ॥ ६८ ॥
तं चतुर्दशभिः पार्थो नाराचैः कङ्कपत्रिभिः ।
साश्वध्वजधनुःसूतं विव्याधाचिन्त्यविक्रमः ॥ ६९ ॥

उस शक्तिके द्वारा गहरी चोट खाकर महातेजस्वी अर्जुन मूर्छित हो गये, फिर धीरे-धीरे सचेत हो अपने मुखके दोनों कोनोंको जीभसे चाटते हुए अचिन्त्य पराक्रमी पार्थने कंकके पाँखवाले चौदह नाराचोंद्वारा घोड़े, ध्वज, धनुष और सारथिसहित सुदक्षिणको घायल कर दिया ॥ ६८-६९ ॥

रथं चान्यैः सुबहुभिश्चक्रे विशकलं शरैः ।
सुदक्षिणं तं काम्बोजं मोघसंकल्पविक्रमम् ॥ ७० ॥
बिभेद हृदि बाणेन पृथुधारेण पाण्डवः ।

फिर दूसरे बहुत-से बाणोंद्वारा उसके रथको टूक-टूक कर दिया और काम्बोजराज सुदक्षिणके संकल्प एवं पराक्रमको व्यर्थ करके पाण्डुपुत्र अर्जुनने मोटी धारवाले बाणसे उसकी छाती छेद डाली ॥ ७०½ ॥

स भिन्नवर्मा स्रस्ताङ्गः प्रभ्रष्टमुकुटाङ्गदः ॥ ७१ ॥
पपाताभिमुखः शूरो यन्त्रमुक्त इव ध्वजः ।

इससे उसका कवच फट गया, सारे अङ्ग शिथिल हो गये, मुकुट और बाजूबंद गिर गये तथा शूरवीर सुदक्षिण मशीनसे फेंके गये ध्वजके समान मुँहके बल गिर पड़ा ॥

गिरेः शिखरजः श्रीमान् सुशाखः सुप्रतिष्ठितः ॥ ७२ ॥
निर्भग्न इव वातेन कर्णिकारो हिमात्यये ।
शेते स्म निहतो भूमौ काम्बोजास्तरणोचितः ॥ ७३ ॥

जैसे सर्दी बीतनेके बाद पर्वतके शिखरपर उत्पन्न हुआ सुन्दर शाखाओंसे युक्त, सुप्रतिष्ठित एवं शोभासम्पन्न कनेरका वृक्ष वायुके वेगसे टूटकर गिर जाता है, उसी प्रकार काम्बोज-देशके मुलायम बिछौनोंपर शयन करनेके योग्य सुदक्षिण वहाँ मारा जाकर पृथ्वीपर सो रहा था ॥ ७२-७३ ॥

महार्हाभरणोपेतः सानुमानिव पर्वतः ।
सुदर्शनीयस्ताम्राक्षः कर्णिना स सुदक्षिणः ॥ ७४ ॥
पुत्रः काम्बोजराजस्य पार्थेन विनिपातितः ।

बहुमूल्य आभूषणोंसे विभूषित एवं शिखरयुक्त पर्वतके समान सुदर्शनीय अरुण नेत्रोंवाले काम्बोजराजकुमार सुदक्षिणको अर्जुनने एक ही बाणसे मार गिराया था ॥ ७४½ ॥

धारयन्नग्निसंकाशां शिरसा काञ्चनीं स्रजम् ॥ ७५ ॥
अशोभत महाबाहुर्व्यसुर्भूमौ निपातितः ।

अपने मस्तकपर अग्निके समान दमकते हुए सुवर्णमय हारको धारण किये महाबाहु सुदक्षिण यद्यपि प्राणशून्य करके पृथ्वीपर गिराया गया था, तथापि उस अवस्थामें भी उसकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ७५½ ॥

ततः सर्वाणि सैन्यानि व्यद्रवन्त सुतस्य ते ।
हतं श्रुतायुधं दृष्ट्वा काम्बोजं च सुदक्षिणम् ॥ ७६ ॥

तदनन्तर श्रुतायुध तथा काम्बोजराजकुमार सुदक्षिणको मारा गया देख आपके पुत्रकी सारी सेनाएँ वहाँसे भागने लगीं ॥ ७६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि श्रुतायुधसुदक्षिणवधे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥
इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें श्रुतायुध और सुदक्षिणका वधविषयक बानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९२ ॥

त्रिनवतितमोऽध्यायः

अर्जुनद्वारा श्रुतायु, अच्युतायु, नियतायु, दीर्घायु, म्लेच्छ सैनिक और अम्बष्ठ आदिका वध

संजय उवाच

हते सुदक्षिणे राजन् वीरे चैव श्रुतायुधे ।
जवेनाभ्यद्रवन् पार्थं कुपिताः सैनिकास्तव ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! काम्बोजराज सुदक्षिण और वीर श्रुतायुधके मारे जानेपर आपके सारे सैनिक कुपित हो बड़े वेगसे अर्जुनपर टूट पड़े ॥ १ ॥

अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ।
अभ्यवर्षंस्ततो राजञ्शरवर्षैर्धनंजयम् ॥ २ ॥

महाराज ! वहाँ अभीषाह, शूरसेन, शिबि और वसाति-देशीय सैनिकगण अर्जुनपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २ ॥

तेषां षष्टिशतानन्यान् प्रामथ्नात् पाण्डवः शरैः ।
ते स्म भीताः पलायन्ते व्याघ्रात् क्षुद्रमृगा इव ॥ ३ ॥

उस समय पाण्डुकुमार अर्जुनने उपर्युक्त सेनाओंके छः हजार सैनिकों तथा अन्य योद्धाओंको भी अपने बाणोंद्वारा मथ डाला । जैसे छोटे-छोटे मृग बाघसे डरकर भागते हैं, उसी प्रकार वे अर्जुनसे भयभीत हो वहाँसे पलायन करने लगे॥

ते निवृत्ताः पुनः पार्थं सर्वतः पर्यवारयन् ।
रणे सपत्नान् निघ्नन्तं जिगीषन्तं परान् युधि ॥ ४ ॥

उस समय अर्जुन रणक्षेत्रमें शत्रुओंपर विजय पानेकी इच्छासे उनका संहार कर रहे थे । यह देख उन भागे हुए सैनिकोंने पुनः लौटकर पार्थको चारों ओरसे घेर लिया ॥४॥

तेषामापततां तूर्णं गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ।
शिरांसि पातयामास बाहूंश्चापि धनंजयः ॥ ५ ॥

उन आक्रमण करनेवाले योद्धाओंके मस्तकों और भुजाओंको अर्जुनने गाण्डीव-धनुषद्वारा छोड़े हुए बाणोंसे तुरंत ही काट गिराया ॥ ५ ॥

शिरोभिः पातितैस्तत्र भूमिरासीन्निरन्तरा ।
अभ्रच्छायेव चैवासीद् ध्वाङ्क्षगृध्रबलैर्युधि ॥ ६ ॥

वहाँ गिराये हुए मस्तकोंसे वह रणभूमि ठसाठस भर गयी थी और उस युद्धस्थलमें कौओं तथा गीधोंकी सेनाके आ जानेसे वहाँ मेघकी छाया-सी प्रतीत होती थी ॥ ६ ॥

तेषु तूत्साद्यमानेषु क्रोधामर्षसमन्वितौ ।
श्रुतायुश्चाच्युतायुश्च धनंजयमयुध्यताम् ॥ ७ ॥

इस प्रकार जब उन समस्त सैनिकोंका संहार होने लगा, तब श्रुतायु तथा अच्युतायु—ये दो वीर क्रोध और अमर्षमें भरकर अर्जुनके साथ युद्ध करने लगे ॥ ७ ॥

बलिनौ स्पर्धिनौ वीरौ कुलजौ बाहुशालिनौ ।
तावेनं शरवर्षाणि सव्यदक्षिणमस्यताम् ॥ ८ ॥

वे दोनों बलवान्, अर्जुनसे स्पर्धा रखनेवाले, वीर, उत्तम कुलमें उत्पन्न और अपनी भुजाओंसे सुशोभित होनेवाले थे । उन दोनोंने अर्जुनपर दायें-बायेंसे बाण बरसाना आरम्भ किया ॥ ८ ॥

त्वरायुक्तौ महाराज प्रार्थयानौ महद् यशः ।
अर्जुनस्य वधप्रेप्सू पुत्रार्थे तव धन्विनौ ॥ ९ ॥

महाराज ! वे दोनों वीर महान् यशकी अभिलाषा रखते हुए आपके पुत्रके लिये अर्जुनके वधकी इच्छा रखकर हाथमें धनुष ले बड़ी उतावलीके साथ बाण चला रहे थे ॥ ९ ॥

तावर्जुनं सहस्रेण पत्रिणां नतपर्वणाम् ।
पूरयामासतुः क्रुद्धौ तटागं जलदौ यथा ॥ १० ॥

जैसे दो मेघ किसी तालाबको भरते हों, उसी प्रकार क्रोधमें भरे हुए उन दोनों वीरोंने झुकी हुई गाँठवाले सहस्रों बाणोंद्वारा अर्जुनको आच्छादित कर दिया ॥ १० ॥

श्रुतायुश्च ततः क्रुद्धस्तोमरेण धनंजयम् ।
आजघान रथश्रेष्ठः पीतेन निशितेन च ॥ ११ ॥

फिर रथियोंमें श्रेष्ठ श्रुतायुने कुपित होकर पानीदार तीखी धारवाले तोमरसे अर्जुनपर आघात किया ॥ ११ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुकर्शनः ।
जगाम परमं मोहं मोहयन् केशवं रणे ॥ १२ ॥

उस बलवान् शत्रुके द्वारा अत्यन्त घायल किये हुए शत्रुसूदन अर्जुन उस रणक्षेत्रमें श्रीकृष्णको मोहित करते हुए स्वयं भी अत्यन्त मूर्छित हो गये ॥ १२ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु सोऽच्युतायुर्महारथः ।
शूलेन भृशतीक्ष्णेन ताडयामास पाण्डवम् ॥ १३ ॥

इसी समय महारथी अच्युतायुने अत्यन्त तीखे शूलके द्वारा पाण्डुकुमार अर्जुनपर प्रहार किया ॥ १३ ॥

क्षते क्षारं स हि ददौ पाण्डवस्य महात्मनः ।
पार्थोऽपि भृशसंविद्धो ध्वजयष्टिं समाश्रितः ॥ १४ ॥

उसने इस प्रहारद्वारा महामना पाण्डुपुत्र अर्जुनके घावपर नमक छिड़क दिया । अर्जुन भी अत्यन्त घायल होकर ध्वज-दण्डके सहारे टिक गये ॥ १४ ॥

ततः सर्वस्य सैन्यस्य तावकस्य विशाम्पते ।
सिंहनादो महानासीद्धतं मत्वा धनंजयम् ॥ १५ ॥

प्रजानाथ ! उस समय अर्जुनको मरा हुआ मानकर आपके सारे सैनिक जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे ॥ १५ ॥

कृष्णश्च भृशसंतप्तो दृष्ट्वा पार्थं विचेतनम् ।
आश्वासयत् सुहृद्याभिर्वाग्भिस्तत्र धनंजयम् ॥ १६ ॥

अर्जुनको अचेत हुआ देख भगवान् श्रीकृष्ण अत्यन्त संतप्त हो उठे और मनको प्रिय लगनेवाले वचनोंद्वारा वहाँ उन्हें आश्वासन देने लगे ॥ १६ ॥

ततस्तौ रथिनां श्रेष्ठौ लब्धलक्ष्यौ धनंजयम् ।
वासुदेवं च वार्ष्णेयं शरवर्षैः समन्ततः ॥ १७ ॥
सचक्रकूबररथं साश्वध्वजपताकिनम् ।
अदृश्यं चक्रतुर्युद्धे तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १८ ॥

तदनन्तर रथियोंमें श्रेष्ठ श्रुतायु और अच्युतायुने अपना लक्ष्य सामने पाकर अर्जुन तथा वृष्णिवंशी श्रीकृष्णपर चारों ओरसे बाणवर्षा करके चक्र, कूबर, रथ, अश्व, ध्वज और पताका-सहित उन्हें उस रणक्षेत्रमें अदृश्य कर दिया । वह अद्भुत-सी बात हो गयी ॥ १७-१८ ॥

प्रत्याश्वस्तस्तु बीभत्सुः शनकैरिव भारत ।
प्रेतराजपुरं प्राप्य पुनः प्रत्यागतो यथा ॥ १९ ॥

भारत ! फिर अर्जुन धीरे-धीरे सचेत हुए, मानो यमराजके नगरमें पहुँचकर पुनः वहाँसे लौटे हों ॥ १९ ॥

संछन्नं शरजालेन रथं दृष्ट्वा सकेशवम् ।
शत्रू चाभिमुखौ दृष्ट्वा दीप्यमानाविवानलौ ॥ २० ॥
प्रादुश्चक्रे ततः पार्थः शाक्रमस्त्रं महारथः ।
तस्मादासन् सहस्राणि शराणां नतपर्वणाम् ॥ २१ ॥

उस समय भगवान् श्रीकृष्णसहित अपने रथको बाण समूहसे आच्छादित और सामने खड़े हुए दोनों शत्रुओंको अग्निके समान देदीप्यमान देखकर महारथी अर्जुनने ऐन्द्रास्त्र प्रकट किया । उससे झुकी हुई गाँठवाले सहस्रों बाण प्रकट होने लगे ॥ २०-२१ ॥

ते जघ्नुस्तौ महेष्वासौ ताभ्यां मुक्तांश्च सायकान् ।
विचेरुराकाशगताः पार्थबाणविदारिताः ॥ २२ ॥

उन बाणोंने उन दोनों महाधनुर्धरोंको तथा उनके छोड़े हुए सायकोंको भी छिन्न-भिन्न कर दिया । अर्जुनके बाणोंसे टुकड़े-टुकड़े होकर उन शत्रुओंके बाण आकाशमें विचरने लगे॥

प्रतिहत्य शरांस्तूर्णं शरवेगेन पाण्डवः ।
प्रतस्थे तत्र तत्रैव योधयन् वै महारथान् ॥ २३ ॥

अपने बाणोंके वेगसे शत्रुओंके बाणोंको नष्ट करके पाण्डुकुमार अर्जुनने जहाँ-तहाँ अन्य महारथियोंसे युद्ध करनेके लिये प्रस्थान किया ॥ २३ ॥

तौ च फाल्गुनबाणौघैर्विबाहुशिरसौ कृतौ ।
वसुधामन्वपद्येतां वातनुन्नाविव द्रुमौ ॥ २४ ॥

अर्जुनके उन बाण-समूहोंसे श्रुतायु और अच्युतायुके मस्तक कट गये । भुजाएँ छिन्न-भिन्न हो गयीं । वे दोनों आँधीके उखाड़े हुए वृक्षोंके समान धराशायी हो गये ॥ २४ ॥

श्रुतायुषश्च निधनं वधश्चैवाच्युतायुषः ।
लोकविस्मापनमभूत् समुद्रस्येव शोषणम् ॥ २५ ॥

श्रुतायु और अच्युतायुका वह वध समुद्रशोषणके समान सब लोगोंको आश्चर्यमें डालनेवाला था ॥ २५ ॥

तयोः पदानुगान् हत्वा पुनः पञ्चाशतं रथान् ।
प्रत्यगाद् भारतीं सेनां निघ्नन् पार्थो वरान् वरान् ॥ २६ ॥

उन दोनोंके पीछे आनेवाले पचास रथियोंको मारकर अर्जुनने श्रेष्ठ-श्रेष्ठ वीरोंको चुन-चुनकर मारते हुए पुनः कौरवसेनामें प्रवेश किया ॥ २६ ॥

श्रुतायुषं च निहतं प्रेक्ष्य चैवाच्युतायुषम् ।
नियतायुश्च संक्रुद्धो दीर्घायुश्चैव भारत ॥ २७ ॥

पुत्रौ तयोर्नरश्रेष्ठौ कौन्तेयं प्रतिजग्मतुः ।
किरन्तौ विविधान् बाणान् पितृव्यसनकर्शितौ ॥ २८ ॥

भारत ! श्रुतायु तथा अच्युतायुको मारा गया देख उन दोनोंके पुत्र नरश्रेष्ठ नियुतायु और दीर्घायु पिताके वधसे दुखी हो अत्यन्त क्रोधमें भरकर नाना प्रकारके बाणोंकी वर्षा करते हुए कुन्तीकुमार अर्जुनका सामना करनेके लिये आये ॥ २७-२८ ॥

तावर्जुनो मुहूर्तेन शरैः संनतपर्वभिः ।
प्रैषयत् परमक्रुद्धो यमस्य सदनं प्रति ॥ २९ ॥

तब अर्जुनने अत्यन्त कुपित हो झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा दो ही घड़ीमें उन दोनोंको यमराजके घर भेज दिया॥

लोडयन्तमनीकानि द्विपं पद्मसरो यथा ।
नाशक्नुवन् वारयितुं पार्थं क्षत्रियपुङ्गवाः ॥ ३० ॥

जैसे हाथी कमलोंसे भरे हुए सरोवरको मथ डालता हो, उसी प्रकार आपकी सेनाओंका मन्थन करते हुए पार्थको आपके क्षत्रियशिरोमणि योद्धा रोक न सके ॥ ३० ॥

अङ्गास्तु गजवारेण पाण्डवं पर्यवारयन् ।
क्रुद्धाः सहस्रशो राजञ्शिक्षिता हस्तिसादिनः ॥ ३१ ॥

राजन् ! इसी समय युद्धविषयक शिक्षा पाये हुए अङ्गदेशके सहस्रों गजारोही योद्धाओंने क्रोधमें भरकर हाथियोंके समूहद्वारा पाण्डुकुमार अर्जुनको सब ओरसे घेर लिया ॥

दुर्योधनसमादिष्टाः कुञ्जरैः पर्वतोपमैः ।
प्राच्याश्च दाक्षिणात्याश्च कलिङ्गप्रमुखा नृपाः ॥ ३२ ॥

फिर दुर्योधनकी आज्ञा पाकर पूर्व और दक्षिण देशोंके कलिंग आदि नरेशोंने भी अर्जुनपर पर्वताकार हाथियोंद्वारा घेरा डाल दिया ॥ ३२ ॥

तेषामापततां शीघ्रं गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ।
निचकर्त शिरांस्युग्रो बाहूनपि सुभूषणान् ॥ ३३ ॥

तब उग्ररूपधारी अर्जुनने गाण्डीव धनुषसे छोड़े हुए बाणोंद्वारा उन सारे आक्रमणकारियोंके मस्तकों तथा उत्तम भूषणभूषित भुजाओंको भी शीघ्र ही काट डाला ॥ ३३ ॥

तैः शिरोभिर्मही कीर्णा बाहुभिश्च सहाङ्गदैः ।
बभौ कनकपाषाणा भुजगैरिव संवृता ॥ ३४ ॥

उस समय उन मस्तकों और भुजबंदसहित भुजाओंसे आच्छादित हुई वहाँकी भूमि सर्पोंसे घिरी हुई स्वर्ण-प्रस्तरयुक्त भूमिके समान शोभा पा रही थी ॥ ३४ ॥

बाहवो विशिखैश्छिन्नाः शिरांस्युन्मथितानि च ।
पतमानान्यदृश्यन्त द्रुमेभ्य इव पक्षिणः ॥ ३५ ॥

बाणोंसे छिन्न भिन्न हुई भुजाएँ और कटे हुए मस्तक इस प्रकार गिरते दिखायी दे रहे थे, मानो वृक्षोंसे पक्षी गिर रहे हों ॥ ३५ ॥

शरैः सहस्रशो विद्धा द्विपाः प्रस्रुतशोणिताः ।
अदृश्यन्ताद्रयः काले गैरिकाम्बुस्रवा इव ॥ ३६ ॥

सहस्रों बाणोंसे बिंधकर खूनकी धारा बहाते हुए हाथी वर्षाकालमें गेरुमिश्रित जलके झरने बहानेवाले पर्वतोंके समान दिखायी देते थे ॥ ३६ ॥

निहताः शेरते स्मान्ये बीभत्सोर्निशितैः शरैः ।
गजपृष्ठगता म्लेच्छा नानाविकृतदर्शनाः ॥ ३७ ॥

अर्जुनके तीखे बाणोंसे मारे जाकर दूसरे-दूसरे म्लेच्छ-सैनिक हाथीकी पीठपर ही लेट गये थे। उनकी नाना प्रकारकी आकृति बड़ी विकृत दिखायी देती थी ॥ ३७ ॥

नानावेषधरा राजन् नानाशस्त्रौघसंवृताः ।
रुधिरेणानुलिप्ताङ्गा भान्ति चित्रैः शरैर्हताः ॥ ३८ ॥

राजन् ! नाना प्रकारके वेश धारण करनेवाले तथा अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न योद्धा अर्जुनके विचित्र बाणोंसे मारे जाकर अद्भुत शोभा पा रहे थे। उनके सारे अङ्ग खूनसे लथपथ हो रहे थे ॥ ३८ ॥

शोणितं निर्वमन्ति स्म द्विपाः पार्थशराहताः ।
सहस्रशश्छिन्नगात्राः सारोहाः सपदानुगाः ॥ ३९ ॥

सवारों और अनुचरोंसहित सहस्रों हाथी अर्जुनके बाणोंसे आहत हो मुँहसे रक्त वमन करते थे। उनके सम्पूर्ण अङ्ग छिन्न-भिन्न हो रहे थे ॥ ३९ ॥

चुक्रुशुश्च निपेतुश्च बभ्रमुश्चापरे दिशः ।
भृशं त्रस्ताश्च बहवः स्वानेव ममृदुर्गजाः ॥ ४० ॥
सान्तरायुधिनश्चैव द्विपास्तीक्ष्णविषोपमाः ।

बहुत-से हाथी चिग्घाड़ रहे थे, बहुतेरे धराशायी हो गये थे, दूसरे कितने ही हाथी सम्पूर्ण दिशाओंमें चक्कर काट रहे थे और बहुत-से गज अत्यन्त भयभीत हो भागते हुए अपने ही पक्षके योद्धाओंको कुचल रहे थे। तीक्ष्ण विषवाले सर्पोंके समान भयंकर वे सभी हाथी गुप्तास्त्रधारी सैनिकोंसे युक्त थे॥

विदन्त्यसुरमायां ये सुघोरा घोरचक्षुषः ॥ ४१ ॥
यवनाः पारदाश्चैव शकाश्च सह बाह्लिकैः ।
काकवर्णा दुराचाराः स्त्रीलोलाः कलहप्रियाः ॥ ४२ ॥

जो आसुरी मायाको जानते हैं, जिनकी आकृति अत्यन्त भयंकर है तथा जो भयानक नेत्रोंसे युक्त हैं एवं जो कौओंके समान काले, दुराचारी, स्त्रीलम्पट और कलहप्रिय होते हैं वे यवन, पारद, शक और बाह्लीक भी वहाँ युद्धके लिये उपस्थित हुए ॥ ४१-४२ ॥

द्राविडास्तत्र युध्यन्ते मत्तमातङ्गविक्रमाः ।
गोयोनिप्रभवा म्लेच्छाः कालकल्पाः प्रहारिणः ॥ ४३ ॥

मतवाले हाथियोंके समान पराक्रमी द्राविड तथा नन्दिनी गायसे उत्पन्न हुए कालके समान प्रहारकुशल म्लेच्छ भी वहाँ युद्ध कर रहे थे ॥ ४३ ॥

दार्वातिसारा दरदाः पुण्ड्राश्चैव सहस्रशः ।
ते न शक्याः स्म संख्यातुं व्रात्याः शतसहस्रशः ॥ ४४ ॥

दार्वातिसार, दरद और पुण्ड्र आदि हजारों लाखों संस्कार-शून्य म्लेच्छ वहाँ उपस्थित थे, जिनकी गणना नहीं की जा सकती थी ॥ ४४ ॥

अभ्यवर्षन्त ते सर्वे पाण्डवं निशितैः शरैः ।
अवाकिरंश्च ते म्लेच्छा नानायुद्धविशारदाः ॥ ४५ ॥

नाना प्रकारके युद्धोंमें कुशल वे सभी म्लेच्छगण पाण्डु-पुत्र अर्जुनपर तीखे बाणोंकी वर्षा करके उन्हें आच्छादित करने लगे ॥ ४५ ॥

तेषामपि ससर्जाशु शरवृष्टिं धनंजयः ।
सृष्टिस्तथाविधा ह्यासीच्छलभानामिवायतिः ॥ ४६ ॥

तब अर्जुनने उनके ऊपर भी तुरंत बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ की । उनकी वह बाण-वृष्टि टिड्डी-दलोंकी सृष्टि-सी प्रतीत होती थी ॥ ४६ ॥

अभ्रच्छायामिव शरैः सैन्ये कृत्वा धनंजयः ।
मुण्डार्धमुण्डाञ्जटिलानशुचीञ्जटिलाननान् ॥ ४७ ॥
म्लेच्छानशातयत् सर्वान् समेतानस्त्रतेजसा ।

बाणोंद्वारा उस विशाल सेनापर बादलोंकी छाया-सी करके अर्जुनने अपने अस्त्रके तेजसे मुण्डित, अर्धमुण्डित, जटाधारी, अपवित्र तथा दाढ़ीभरे मुखवाले उन समस्त म्लेच्छोंका, जो वहाँ एकत्र थे, संहार कर डाला ॥ ४७½ ॥

शरैश्च शतशो विद्धास्ते संघा गिरिचारिणः ।
प्राद्रवन्त रणे भीता गिरिगह्वरवासिनः ॥ ४८ ॥

उस समय पर्वतोंपर विचरने और पर्वतीय कन्दराओंमें निवास करनेवाले सैकड़ों म्लेच्छ-संघ अर्जुनके बाणोंसे विद्ध एवं भयभीत हो रणभूमिसे भागने लगे ॥ ४८ ॥

गजाश्वसादिम्लेच्छानां पतितानां शितैः शरैः ।
बलाः कंका वृका भूमावपिबन् रुधिरं मुदा ॥ ४९ ॥

अर्जुनके तीखे बाणोंसे मरकर पृथ्वीपर गिरे हुए उन हाथीसवार और घुड़सवार म्लेच्छोंका रक्त कौए, बगले और भेड़िये बड़ी प्रसन्नताके साथ पी रहे थे ॥ ४९ ॥

पत्त्यश्वरथनागैश्च प्रच्छन्नकृतसंक्रमाम् ।
शरवर्षप्लवां घोरां केशशैवलशाद्वलाम् ।
प्रावर्तयन्नदीमुग्रां शोणितौघतरङ्गिणीम् ॥ ५० ॥
छिन्नाङ्गुलीक्षुद्रमत्स्यां युगान्ते कालसंनिभाम् ।
प्राकरोद् गजसम्बाधां नदीमुत्तरशोणिताम् ॥ ५१ ॥
देहेभ्यो राजपुत्राणां नागाश्वरथसादिनाम् ।

उस समय अर्जुनने वहाँ रक्तकी एक भयंकर नदी बहा दी, जो प्रलयकालकी नदीके समान डरावनी प्रतीत होती थी । उसमें पैदल मनुष्य, घोड़े, रथ और हाथियोंको बिछाकर मानो पुल तैयार किया गया था, बाणोंकी वर्षा ही नौकाके समान जान पड़ती थी । केश सेवार और घासके समान जान पड़ते थे । उस भयंकर नदीसे रक्त-प्रवाहकी ही तरङ्गें उठ रही थीं । कटी हुई अँगुलियाँ छोटी-छोटी मछलियोंके समान जान पड़ती थीं । हाथी, घोड़े और रथोंकी सवारी करनेवाले राजकुमारोंके शरीरोंसे बहनेवाले रक्तसे लबालब भरी हुई उस नदीको अर्जुनने स्वयं प्रकट किया था । उसमें हाथियोंकी लाशें व्याप्त हो रही थीं ॥ ५०-५१½ ॥

यथास्थलं च निम्नं च न स्याद् वर्षति वासवे ॥ ५२ ॥
तथासीत् पृथिवी सर्वा शोणितेन परिप्लुता ।

जैसे इन्द्रके वर्षा करते समय ऊँचे-नीचे स्थलका भान नहीं होता है, उसी प्रकार वहाँकी सारी पृथ्वी रक्तकी धारामें डूबकर समतल-सी जान पड़ती थी ॥ ५२½ ॥

षट्सहस्रान् हयान् वीरान् पुनर्दशशतान् वरान् ॥ ५३ ॥
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः ।

क्षत्रियशिरोमणि अर्जुनने वहाँ छः हजार घुड़सवारों तथा एक हजार श्रेष्ठ शूरवीर क्षत्रियोंको मृत्युके लोकमें भेज दिया ॥ ५३½ ॥

शरैः सहस्रशो विद्धा विधिवत्कल्पिता द्विपाः ॥ ५४ ॥
शेरते भूमिमासाद्य शैला वज्रहता इव ।

विधिपूर्वक सुसज्जित किये गये हाथी सहस्रों बाणोंसे बिंधकर वज्रके मारे हुए पर्वतोंके समान धराशायी हो रहे थे॥

सवाजिरथमातङ्गान् निघ्नन् व्यचरदर्जुनः ॥ ५५ ॥
प्रभिन्न इव मातङ्गो मृद्नन् नलवनं यथा ।

जैसे मदकी धारा बहानेवाला मतवाला हाथी नरकुलके जंगलोंको रौंदता चलता है, उसी प्रकार अर्जुन घोड़े, रथ और हाथियोंसहित सम्पूर्ण शत्रुओंका संहार करते हुए रण-भूमिमें विचर रहे थे ॥ ५५½ ॥

भूरिद्रुमलतागुल्मं शुष्केन्धनतृणोलपम् ॥ ५६ ॥
निर्दहेदनलोऽरण्यं यथा वायुसमीरितः ।
सेनारण्यं तव तथा कृष्णानिलसमीरितः ॥ ५७ ॥
शरार्चिरदहत् क्रुद्धः पाण्डवाग्निर्धनंजयः ।

जैसे वायुप्रेरित अग्नि सूखे ईंधन, तृण और लताओंसे युक्त तथा बहुसंख्यक वृक्षों और लतागुल्मोंसे भरे हुए जंगलको जलाकर भस्म कर देती है, उसी प्रकार श्रीकृष्णरूपी वायुसे प्रेरित हो बाणरूपी ज्वालाओंसे युक्त पाण्डुपुत्र अर्जुनरूपी अग्निने कुपित होकर आपकी सेनारूप वनको दग्ध कर दिया ॥ ५६–५७½ ॥

शून्यान् कुर्वन् रथोपस्थान् मानवैः संस्तरन् महीम् ॥ ५८ ॥
प्रानृत्यदिव सम्बाधे चापहस्तो धनंजयः ।

रथकी बैठकोंको सूनी करके धरतीपर मनुष्योंकी लाशों-का बिछौना करते हुए चापधारी धनंजय उस युद्धके मैदानमें नृत्य-सा कर रहे थे ॥ ५८½ ॥

वज्रकल्पैः शरैर्भूमिं कुर्वन्नुत्तरशोणिताम् ॥ ५९ ॥
प्राविशद् भारतीं सेनां संक्रुद्धो वै धनंजयः ।
तं श्रुतायुस्तथाम्बष्ठो व्रजमानं न्यवारयत् ॥ ६० ॥

क्रोधमें भरे हुए धनंजयने वज्रोपम बाणोंद्वारा पृथ्वीको रक्तसे आप्लावित करते हुए कौरवी सेनामें प्रवेश किया। उस समय सेनाके भीतर जाते हुए अर्जुनको श्रुतायु तथा अम्बष्ठने रोका ॥ ५९-६० ॥

तस्यार्जुनः शरैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रपरिच्छदैः ।
न्यपातयद्धयाञ्शीघ्रं यतमानस्य मारिष ॥ ६१ ॥

मान्यवर ! तब अर्जुनने कंककी पाँखोंवाले तीखे बाणोंद्वारा विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले अम्बष्ठके घोड़ोंको शीघ्र ही मार गिराया ॥ ६१ ॥

धनुश्चास्यापरैश्छित्त्वा शरैः पार्थो विचक्रमे ।
अम्बष्ठस्तु गदां गृह्य कोपपर्याकुलेक्षणः ॥ ६२ ॥
आससाद रणे पार्थं केशवं च महारथम् ।

फिर दूसरे बाणोंसे उसके धनुषको भी काटकर पार्थने विशेष बल-विक्रमका परिचय दिया। तब अम्बष्ठकी आँखें क्रोधसे व्याप्त हो गयीं। उसने गदा लेकर रणक्षेत्रमें महारथी श्रीकृष्ण और अर्जुनपर आक्रमण किया ॥ ६२½ ॥

ततः सम्प्रहरन् वीरो गदामुद्यम्य भारत ॥ ६३ ॥
रथमावार्य गदया केशवं समताडयत् ।

भारत ! तदनन्तर वीर अम्बष्ठने प्रहार करनेके लिये उद्यत हो गदा उठाये आगे बढ़कर अर्जुनके रथको रोक दिया और भगवान् श्रीकृष्णपर गदासे आघात किया ॥ ६३½ ॥

गदया ताडितं दृष्ट्वा केशवं परवीरहा ॥ ६४ ॥
अर्जुनोऽथ भृशं क्रुद्धः सोऽम्बष्ठं प्रति भारत ।

भरतनन्दन ! शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णको गदासे आहत हुआ देख अम्बष्ठके प्रति अत्यन्त कुपित हो उठे ॥ ६४½ ॥

ततः शरैर्हेमपुङ्खैः सगदं रथिनां वरम् ॥ ६५ ॥
छादयामास समरे मेघः सूर्यमिवोदितम् ।

फिर तो जैसे बादल उदित हुए सूर्यको ढक लेता है, उसी प्रकार अर्जुनने समराङ्गणमें सोनेके पंखवाले बाणोंद्वारा गदासहित रथियोंमें श्रेष्ठ अम्बष्ठको आच्छादित कर दिया ॥

अथापरैः शरैश्चापि गदां तस्य महात्मनः ॥ ६६ ॥
अचूर्णयत् तदा पार्थस्तदद्भुतमिवाभवत् ।

तत्पश्चात् दूसरे बहुत-से बाण मारकर अर्जुनने महामना अम्बष्ठकी उस गदाको उसी समय चूर-चूर कर दिया। वह अद्भुत-सी घटना हुई ॥ ६६½ ॥

अथ तां पतितां दृष्ट्वा गृह्यान्यां च महागदाम् ॥ ६७ ॥
अर्जुनं वासुदेवं च पुनः पुनरताडयत् ।

उस गदाको गिरी हुई देख अम्बष्ठने दूसरी विशाल गदा ले ली और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनपर बारंबार प्रहार किया ॥

तस्यार्जुनः क्षुरप्राभ्यां सगदावुद्यतौ भुजौ ॥ ६८ ॥
चिच्छेदेन्द्रध्वजाकारौ शिरश्चान्येन पत्रिणा ।

तब अर्जुनने उसकी गदासहित, इन्द्रध्वजके समान उठी हुई दोनों भुजाओंको दो क्षुरप्रोंसे काट डाला और पंख-युक्त दूसरे बाणसे उसके मस्तकको भी काट गिराया ॥ ६८½ ॥

स पपात हतो राजन् वसुधामनुनादयन् ॥ ६९ ॥
इन्द्रध्वज इवोत्सृष्टो यन्त्रनिर्मुक्तबन्धनः ।

राजन् ! यन्त्रद्वारा बन्धनमुक्त होकर गिरे हुए इन्द्रध्वज-के समान वह मरकर पृथ्वीपर धमाकेकी आवाज करता हुआ गिर पड़ा ॥ ६९½ ॥

रथानीकावगाढश्च वारणाश्वशतैर्वृतः ।
अदृश्यत तदा पार्थो घनैः सूर्य इवावृतः ॥ ७० ॥

उस समय रथियोंकी सेनामें घुसकर सैकड़ों हाथियों और घोड़ोंसे घिरे हुए कुन्तीकुमार अर्जुन बादलोंमें छिपे हुए सूर्यके समान दिखायी देते थे ॥ ७० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अम्बष्ठवधे त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें अम्बष्ठवधविषयक तिरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९३ ॥

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

दुर्योधनका उपालम्भ सुनकर द्रोणाचार्यका उसके शरीरमें दिव्य कवच बाँधकर उसीको अर्जुनके साथ युद्धके लिये भेजना

संजय उवाच

ततः प्रविष्टे कौन्तेये सिंधुराजजिघांसया ।
द्रोणानीकं विनिर्भिद्य भोजानीकं च दुस्तरम् ॥ १ ॥
काम्बोजस्य च दायादे हते राजन् सुदक्षिणे ।
श्रुतायुधे च विक्रान्ते निहते सव्यसाचिना ॥ २ ॥
विप्रद्रुतेष्वनीकेषु विध्वस्तेषु समन्ततः ।
प्रभग्नं स्वबलं दृष्ट्वा पुत्रस्ते द्रोणमभ्ययात् ॥ ३ ॥
त्वरन्नेकरथेनैव समेत्य द्रोणमब्रवीत् ।

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर जब कुन्ती-कुमार अर्जुन सिन्धुराज जयद्रथका वध करनेकी इच्छासे द्रोणाचार्य और कृतवर्माका दुस्तर सेना-व्यूह भेदन करके आपकी सेनामें प्रविष्ट हो गये और सव्यसाची अर्जुनके हाथसे

जब काम्बोजराजकुमार सुदक्षिण तथा पराक्रमी श्रुतायुध मार दिये गये तथा जब सारी सेनाएँ नष्ट-भ्रष्ट होकर चारों ओर भाग खड़ी हुईं, उस समय अपनी सम्पूर्ण सेनामें भगदड़ मची देख आपका पुत्र दुर्योधन बड़ी उतावलीके साथ एकमात्र रथके द्वारा द्रोणाचार्यके पास गया और उनसे मिलकर इस प्रकार बोला—॥ १—३½ ॥

गतः स पुरुषव्याघ्रः प्रमथ्यैतां महाचमूम् ॥ ४ ॥
अथ बुद्ध्या समीक्षस्व किन्नु कार्यमनन्तरम् ।
अर्जुनस्य विघाताय दारुणेऽस्मिञ्जनक्षये ॥ ५ ॥
यथा स पुरुषव्याघ्रो न हन्येत जयद्रथः ।
तथा विधत्स्व भद्रं ते त्वं हि नः परमा गतिः ॥ ६ ॥

'गुरुदेव ! पुरुषसिंह अर्जुन हमारी इस विशाल सेनाको मथकर व्यूहके भीतर चला गया । अब आप अपनी बुद्धिसे यह विचार कीजिये कि इसके बाद अर्जुनके विनाशके लिये क्या करना चाहिये ? इस भयंकर नरसंहारमें जिस प्रकार भी पुरुषसिंह जयद्रथ न मारे जायँ, वैसा उपाय कीजिये । आपका कल्याण हो । हमारा सबसे बड़ा सहारा आप ही हैं ॥ ४—६ ॥

असौ धनंजयाग्निर्हि कोपमारुतचोदितः ।
सेनाकक्षं दहति मे वह्निः कक्षमिवोत्थितः ॥ ७ ॥

'जैसे सहसा उठा हुआ दावानल सूखे घास-फूँस अथवा जंगलको जलाकर भस्म कर देता है, उसी प्रकार यह धनंजय-रूपी अग्नि कोपरूपी प्रचण्ड वायुसे प्रेरित हो मेरे सैन्यरूपी सूखे वनको दग्ध किये देती है ॥ ७ ॥

अतिक्रान्ते हि कौन्तेये भित्त्वा सैन्यं परंतप ।
जयद्रथस्य गोप्तारः संशयं परमं गताः ॥ ८ ॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले आचार्य ! जबसे कुन्तीकुमार अर्जुन आपकी सेनाका व्यूह भेदकर आपको भी लाँघकर आगे चले गये हैं, तबसे जयद्रथकी रक्षा करनेवाले योद्धा महान् संशयमें पड़ गये हैं ॥ ८ ॥

स्थिरा बुद्धिर्नरेन्द्राणामासीद् ब्रह्मविदां वर ।
नातिक्रमिष्यति द्रोणं जातु जीवं धनंजयः ॥ ९ ॥

'ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ गुरुदेव ! हमारे पक्षके नरेशोंको यह दृढ़ विश्वास था कि अर्जुन द्रोणाचार्यके जीते-जी उन्हें लाँघकर सेनाके भीतर नहीं घुस सकेगा ॥ ९ ॥

योऽसौ पार्थो व्यतिक्रान्तो मिषतस्ते महाद्युते ।
सर्वं ह्यद्यातुरं मन्ये नेदमस्ति बलं मम ॥ १० ॥

'परंतु महातेजस्वी वीर ! आपके देखते-देखते वह कुन्तीकुमार अर्जुन आपको लाँघकर जो व्यूहमें घुस गया है, इससे मैं अपनी इस सारी सेनाको व्याकुल और विनष्ट हुई-सी मानता हूँ । अब मेरी इस सेनाका अस्तित्व नहीं रहेगा ॥ १० ॥

जानामि त्वां महाभाग पाण्डवानां हिते रतम् ।
तथा मुह्यामि च ब्रह्मन् कार्यवत्तां विचिन्तयन् ॥ ११ ॥

'ब्रह्मन् ! महाभाग ! मैं यह जानता हूँ कि आप पाण्डवोंके हितमें तत्पर रहनेवाले हैं; इसीलिये अपने कार्यकी गुरुताका विचार करके मोहित हो रहा हूँ ॥ ११ ॥

यथाशक्ति च ते ब्रह्मन् वर्तये वृत्तिमुत्तमाम् ।
प्रीणामि च यथाशक्ति तच्च त्वं नावबुध्यसे ॥ १२ ॥

'विप्रवर ! मैं यथाशक्ति आपके लिये उत्तम जीविका-वृत्तिकी व्यवस्था करता रहता हूँ और अपनी शक्तिभर आपको प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करता रहता हूँ; परंतु इन सब बातोंको आप याद नहीं रखते हैं ॥ १२ ॥

अस्मान्न त्वं सदा भक्तानिच्छस्यमितविक्रम ।
पाण्डवान् सततं प्रीणास्यस्माकं विप्रिये रतान् ॥ १३ ॥

'अमितपराक्रमी आचार्य ! हम आपके चरणोंमें सदा भक्ति रखते हैं तो भी आप हमें नहीं चाहते हैं और जो सदा हमलोगोंका अप्रिय करनेमें तत्पर रहते हैं, उन पाण्डवोंको आप निरन्तर प्रसन्न रखते हैं ॥ १३ ॥

अस्मानेवोपजीवंस्त्वमस्माकं विप्रिये रतः ।
न ह्ययं त्वां विजानामि मधुदिग्धमिव क्षुरम् ॥ १४ ॥

'हमसे ही आपकी जीविका चलती है तो भी आप हमारा ही अप्रिय करनेमें संलग्न रहते हैं । मैं नहीं जानता था कि आप शहदमें डुबोये हुए छुरेके समान हैं ॥ १४ ॥

नादास्यच्चेद् वरं मह्यं भवान् पाण्डवनिग्रहे ।
नावारयिष्यं गच्छन्तमहं सिन्धुपतिं गृहान् ॥ १५ ॥

'यदि आप मुझे अर्जुनको रोके रखनेका वर न देते तो मैं अपने घरको जाते हुए सिन्धुराज जयद्रथको कभी मना नहीं करता ॥ १५ ॥

मया त्वाशंसमानेन त्वत्तस्त्राणमबुद्धिना ।
आश्वासितः सिन्धुपतिर्मोहाद् दत्तश्च मृत्यवे ॥ १६ ॥

'मुझ मूर्खने आपसे संरक्षण पानेका भरोसा करके सिन्धुराज जयद्रथको समझा-बुझाकर यहीं रोक लिया और इस प्रकार मोहवश मैंने उन्हें मौतके हाथमें सौंप दिया ॥ १६ ॥

यमदंष्ट्रान्तरं प्राप्तो मुच्येतापि हि मानवः ।
नार्जुनस्य वशं प्राप्तो मुच्येताजौ जयद्रथः ॥ १७ ॥

'मनुष्य यमराजकी दाढ़ोंमें पड़कर भले ही बच जाय, परंतु रणभूमिमें अर्जुनके वशमें पड़े हुए जयद्रथके प्राण नहीं बच सकते ॥ १७ ॥

स तथा कुरु शोणाश्व यथा मुच्येत सैन्धवः ।
मम चार्तप्रलापानां मा क्रुधः पाहि सैन्धवम् ॥ १८ ॥

'लाल घोड़ोंवाले आचार्य ! आप कोई ऐसा प्रयत्न कीजिये, जिससे सिन्धुराज जयद्रथ मृत्युसे छुटकारा पा सके । मैंने आर्त होनेके कारण जो प्रलाप किये हैं, उनके लिये क्रोध न कीजियेगा; जैसे भी हो, सिन्धुराजकी रक्षा कीजिये' ॥ १८ ॥

द्रोण उवाच

नाभ्यसूयामि ते वाक्यमश्वत्थाम्नासि मे समः।
सत्यं तु ते प्रवक्ष्यामि तज्जुषस्व विशाम्पते ॥ १९ ॥

द्रोणाचार्यने कहा—राजन् ! तुमने जो बात कही है, उसके लिये मैं बुरा नहीं मानता; क्योंकि तुम मेरे लिये अश्वत्थामाके समान हो । परंतु जो सच्ची बात है, वह तुम्हें बता रहा हूँ; उसे ध्यान देकर सुनो ॥ १९ ॥

सारथिः प्रवरः कृष्णः शीघ्राश्चास्य हयोत्तमाः।
अल्पं च विवरं कृत्वा तूर्णं याति धनंजयः ॥ २० ॥

श्रीकृष्ण अर्जुनके श्रेष्ठ सारथि हैं तथा उनके उत्तम घोड़े भी तेज चलनेवाले हैं । इसलिये थोड़ा-सा भी अवकाश बनाकर अर्जुन तत्काल सेनामें घुस जाते हैं ॥ २० ॥

किं न पश्यसि बाणौघान् क्रोशमात्रे किरीटिनः।
पश्चाद् रथस्य पतितान् क्षिप्ताञ्शीघ्रं हि गच्छतः॥२१॥

क्या तुम देखते नहीं हो कि मेरे चलाये हुए बाणसमूह शीघ्रगामी अर्जुनके रथके एक कोस पीछे पड़े हैं ॥ २१ ॥

न चाहं शीघ्रयानेऽद्य समर्थो वयसान्वितः।
सेनामुखे च पार्थानामेतद् बलमुपस्थितम् ॥ २२॥

मैं बूढ़ा हो गया । अतः अब मैं शीघ्रतापूर्वक रथ चलानेमें असमर्थ हूँ । इधर मेरी सेनाके सामने यह कुन्तीकुमारोंकी भारी सेना उपस्थित है ॥ २२ ॥

युधिष्ठिरश्च मे ग्राह्यो मिषतां सर्वधन्विनाम्।
एवं मया प्रतिज्ञातं क्षत्रमध्ये महाभुज ॥ २३ ॥

महाबाहो ! मैंने क्षत्रियोंके बीचमें यह प्रतिज्ञा की है कि समस्त धनुर्धरोंके देखते-देखते युधिष्ठिरको कैद कर लूँगा।२३।

धनंजयेन चोत्सृष्टो वर्तते प्रमुखे नृप।
तस्माद् व्यूहमुखं हित्वा नाहं योत्स्यामि फाल्गुनम्॥२४॥

नरेश्वर ! इस समय युधिष्ठिर अर्जुनसे रहित होकर मेरे सामने खड़े हैं । ऐसी अवस्थामें मैं व्यूहका द्वार छोड़कर अर्जुनके साथ युद्ध करनेके लिये नहीं जाऊँगा ॥ २४ ॥

तुल्याभिजनकर्माणं शत्रुमेकं सहायवान्।
गत्वा योधय मा भैस्त्वं त्वं ह्यस्य जगतः पतिः ॥ २५॥

तुम्हारे शत्रु अर्जुन भी तो तुम्हारे-जैसे ही कुल और पराक्रमसे युक्त हैं । इस समय वे अकेले हैं और तुम सहायकोंसे सम्पन्न हो । (वे राज्यसे च्युत हो गये हैं और तुम) इस सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी हो । अतः डरो मत । जाकर अर्जुनसे युद्ध करो ॥ २५ ॥

राजा शूरः कृती दक्षो वैरमुत्पाद्य पाण्डवैः।
वीर स्वयं प्रयाह्यत्र यत्र पार्थो धनंजयः ॥ २६ ॥

तुम राजा, शूरवीर, विद्वान् और युद्धकुशल हो। वीर ! तुमने ही पाण्डवोंके साथ वैर बाँधा है । अतः जहाँ कुन्तीकुमार अर्जुन गये हैं, वहाँ उनसे युद्ध करनेके लिये स्वयं ही शीघ्रतापूर्वक जाओ ॥ २६ ॥

दुर्योधन उवाच

कथं त्वामप्यतिक्रान्तः सर्वशस्त्रभृतां वरम्।
धनंजयो मया शक्य आचार्य प्रतिबाधितुम् ॥ २७ ॥

दुर्योधन बोला—आचार्य ! आप सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ हैं । जो आपको भी लाँघकर आगे बढ़ गया, वह अर्जुन मेरेद्वारा कैसे रोका जा सकता है ? ॥ २७ ॥

अपि शक्यो रणे जेतुं वज्रहस्तः पुरंदरः।
नार्जुनः समरे शक्यो जेतुं परपुरंजयः ॥ २८ ॥

युद्धमें वज्रधारी इन्द्रको भी जीता जा सकता है; परंतु समराङ्गणमें शत्रुओंकी राजधानीपर विजय पानेवाले अर्जुनको जीतना असम्भव है ॥ २८ ॥

येन भोजश्च हार्दिक्यो भवांश्च त्रिदशोपमः।
अस्त्रप्रतापेन जितौ श्रुतायुश्च निबर्हितः ॥ २९ ॥
सुदक्षिणश्च निहतः स च राजा श्रुतायुधः।
श्रुतायुश्चाच्युतायुश्च म्लेच्छाश्चायुतशो हताः ॥ ३० ॥
तं कथं पाण्डवं युद्धे दहन्तमिव पावकम्।
प्रतियोत्स्यामि दुर्धर्षं तमहं शस्त्रकोविदम् ॥ ३१ ॥

जिसने भोजवंशी कृतवर्मा तथा देवताओंके समान तेजस्वी आपको भी अपने अस्त्रके प्रतापसे पराजित कर दिया, श्रुतायुका संहार कर डाला, काम्बोजराज सुदक्षिण तथा राजा श्रुतायुधको भी मार डाला, श्रुतायु, अच्युतायु तथा सहस्रों म्लेच्छ सैनिकोंके भी प्राण ले लिये, युद्धमें अग्निके समान शत्रुओंको दग्ध करनेवाले और अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता उस दुर्धर्ष वीर पाण्डुपुत्र अर्जुनके साथ मैं कैसे युद्ध कर सकूँगा?॥

क्षमं च मन्यसे युद्धं मम तेनाद्य संयुगे।
परवानस्मि भवति प्रेष्यवद् रक्ष मद्यशः ॥ ३२ ॥

यदि आज युद्धस्थलमें आप अर्जुनके साथ मेरा युद्ध करना उचित मानते हैं तो मैं एक सेवककी भाँति आपकी आज्ञाके अधीन हूँ । आप मेरे यशकी रक्षा कीजिये ॥ ३२ ॥

द्रोण उवाच

सत्यं वदसि कौरव्य दुराधर्षो धनंजयः।
अहं तु तत् करिष्यामि यथैनं प्रसहिष्यसि ॥ ३३ ॥

द्रोणाचार्यने कहा—कुरुनन्दन ! तुम ठीक कहते हो । अर्जुन अवश्य दुर्जय वीर हैं । परंतु मैं एक ऐसा उपाय कर दूँगा, जिससे तुम उनका वेग सह सकोगे ॥३३॥

अद्भुतं चाद्य पश्यन्तु लोके सर्वधनुर्धराः।
विषक्तं त्वयि कौन्तेयं वासुदेवस्य पश्यतः ॥ ३४ ॥

आज संसारके सम्पूर्ण धनुर्धर भगवान् श्रीकृष्णके सामने ही कुन्तीकुमार अर्जुनको तुम्हारे साथ युद्धमें उलझे रहनेकी अद्भुत घटना देखें ॥ ३४ ॥

एष ते कवचं राजंस्तथा बध्नामि काञ्चनम्।
यथा न बाणा नास्त्राणि प्रहरिष्यन्ति ते रणे ॥ ३५॥

राजन्! मैं यह सुवर्णमय कवच तुम्हारे शरीरमें इस प्रकार बाँध देता हूँ, जिससे युद्धस्थलमें छूटनेवाले बाण और अन्य अस्त्र तुम्हें चोट नहीं पहुँचा सकेंगे ॥ ३५ ॥

यदि त्वां सासुरसुराः सयक्षोरगराक्षसाः।
योधयन्ति त्रयो लोकाः सनरा नास्ति ते भयम्॥३६॥

यदि मनुष्योंसहित देवता, असुर, यक्ष, नाग, राक्षस तथा तीनों लोकके प्राणी तुमसे युद्ध करते हों तो भी आज तुम्हें कोई भय नहीं होगा ॥ ३६ ॥

न कृष्णो न च कौन्तेयो न चान्यः शस्त्रभृद् रणे।
शरानर्पयितुं कश्चित् कवचे तव शक्ष्यति ॥ ३७॥

इस कवचके रहते हुए श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा दूसरे कोई शस्त्रधारी योद्धा भी तुम्हें बाणोंद्वारा चोट पहुँचानेमें समर्थ न हो सकेंगे ॥ ३७ ॥

स त्वं कवचमास्थाय क्रुद्धमद्य रणेऽर्जुनम्।
त्वरमाणः स्वयं याहि न त्वासौ विसहिष्यति ॥ ३८॥

अतः तुम यह कवच धारण करके शीघ्रतापूर्वक रणक्षेत्रमें कुपित हुए अर्जुनका सामना करनेके लिये स्वयं ही जाओ। वे तुम्हारा वेग नहीं सह सकेंगे ॥ ३८ ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा त्वरन् द्रोणः स्पृष्ट्वाम्भो वर्म भास्वरम्।
आबबन्धाद्भुततमं जपन् मन्त्रं यथाविधि ॥ ३९॥
रणे तस्मिन् सुमहति विजयाय सुतस्य ते।
विसिस्मापयिषुर्लोकान् विद्यया ब्रह्मवित्तमः ॥ ४०॥

संजय कहते हैं—राजन्! ऐसा कहकर वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यने अपनी विद्याके प्रभावसे सब लोगोंको आश्चर्यमें डालनेकी इच्छा रखते हुए तुरंत आचमन करके उस महायुद्धमें आपके पुत्र दुर्योधनकी विजयके लिये उसके शरीरमें विधिपूर्वक मन्त्रजपके साथ-साथ वह अत्यन्त तेजस्वी अद्भुत कवच बाँध दिया ॥ ३९-४० ॥

द्रोण उवाच

करोतु स्वस्ति ते ब्रह्म ब्रह्मा चापि द्विजातयः।
सरीसृपाश्च ये श्रेष्ठास्तेभ्यस्ते स्वस्ति भारत ॥ ४१॥

द्रोणाचार्य बोले—भरतनन्दन! परब्रह्म परमात्मा तुम्हारा कल्याण करें। ब्रह्माजी तथा ब्राह्मण तुम्हारा मङ्गल करें। जो श्रेष्ठ सर्प हैं, उनसे भी तुम्हारा कल्याण हो ॥ ४१ ॥

ययातिर्नाहुषश्चैव धुन्धुमारो भगीरथः।
तुभ्यं राजर्षयः सर्वे स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा ॥ ४२॥

नहुषपुत्र ययाति, धुन्धुमार और भगीरथ आदि सभी राजर्षि सदा तुम्हारी भलाई करें ॥ ४२ ॥

स्वस्ति तेऽस्त्वेकपादेभ्यो बहुपादेभ्य एव च।
स्वस्त्यस्त्वपादकेभ्यश्च नित्यं तव महारणे ॥ ४३॥

इस महायुद्धमें एक पैरवाले, अनेक पैरवाले तथा पैरोंसे रहित प्राणियोंसे तुम्हारा नित्य मङ्गल हो ॥ ४३ ॥

स्वाहा स्वधा शची चैव स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा।
लक्ष्मीररुन्धती चैव कुरुतां स्वस्ति तेऽनघ ॥ ४४॥

निष्पाप नरेश! स्वाहा, स्वधा और शची आदि देवियाँ तुम्हारा सदा कल्याण करें। लक्ष्मी और अरुन्धती भी तुम्हारा मङ्गल करें ॥ ४४ ॥

असितो देवलश्चैव विश्वामित्रस्तथाङ्गिराः।
वसिष्ठः कश्यपश्चैव स्वस्ति कुर्वन्तु ते नृप ॥ ४५॥

नरेश्वर! असित, देवल, विश्वामित्र, अङ्गिरा, वसिष्ठ तथा कश्यप तुम्हारा भला करें ॥ ४५ ॥

धाता विधाता लोकेशो दिशश्च सदिगीश्वराः।
स्वस्ति तेऽद्य प्रयच्छन्तु कार्तिकेयश्च षण्मुखः ॥४६॥

धाता, विधाता, लोकनाथ ब्रह्मा, दिशाएँ, दिक्पाल तथा षडानन कार्तिकेय भी आज तुम्हें कल्याण प्रदान करें ॥४६॥

विवस्वान् भगवान् स्वस्ति करोतु तव सर्वशः।
दिग्गजाश्चैव चत्वारः क्षितिश्च गगनं ग्रहाः ॥ ४७॥

भगवान् सूर्य सब प्रकारसे तुम्हारा मङ्गल करें। चारों दिग्गज, पृथ्वी, आकाश और ग्रह तुम्हारा भला करें ॥४७॥

अधस्ताद् धरणीं योऽसौ सदा धारयते नृप।
शेषश्च पन्नगश्रेष्ठः स्वस्ति तुभ्यं प्रयच्छतु ॥ ४८॥

राजन्! जो सदा इस पृथ्वीके नीचे रहकर इसे अपने मस्तकपर धारण करते हैं, वे पन्नगश्रेष्ठ भगवान् शेषनाग तुम्हें कल्याण प्रदान करें ॥ ४८ ॥

गान्धारे युधि विक्रम्य निर्जिताः सुरसत्तमाः।
पुरा वृत्रेण दैत्येन भिन्नदेहाः सहस्रशः ॥ ४९॥

गान्धारीनन्दन! प्राचीन कालकी बात है, वृत्रासुरने युद्धमें पराक्रमपूर्वक सहस्रों श्रेष्ठ देवताओंके शरीरको विदीर्ण करके उन्हें परास्त कर दिया था ॥ ४९ ॥

हततेजोबलाः सर्वे तदा सेन्द्रा दिवौकसः।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुर्वृत्राद् भीता महासुरात् ॥ ५० ॥

उस समय तेज और बलसे हीन हुए इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता महान् असुर वृत्रसे भयभीत हो ब्रह्माजीकी शरणमें गये ॥

देवा ऊचुः

प्रमर्दितानां वृत्रेण देवानां देवसत्तम।
गतिर्भव सुरश्रेष्ठ त्राहि नो महतो भयात् ॥ ५१ ॥

देवता बोले—देवप्रवर! सुरश्रेष्ठ! वृत्रासुरने जिन्हें सब प्रकारसे कुचल दिया है, उन देवताओंके लिये आप आश्रयदाता हों। महान् भयसे हमारी रक्षा करें ॥ ५१ ॥

अथ पार्श्वे स्थितं विष्णुं शक्रादींश्च सुरोत्तमान् ।
प्राह तथ्यमिदं वाक्यं विषण्णान् सुरसत्तमान् ॥५२॥

तब अपने पास खड़े हुए भगवान् विष्णु तथा विषादमें भरे हुए इन्द्र आदि श्रेष्ठ देवताओंसे ब्रह्माजीने यह यथार्थ बात कही—॥ ५२ ॥

रक्ष्या मे सततं देवाः सहेन्द्राः सद्विजातयः ।
त्वष्टुः सुदुर्धरं तेजो येन वृत्रो विनिर्मितः ॥ ५३॥

'देवताओ ! इन्द्र आदि देवता और ब्राह्मण सदा ही मेरे रक्षणीय हैं । परंतु वृत्रासुरका जिससे निर्माण हुआ है, वह त्वष्टा प्रजापतिका अत्यन्त दुर्धर्ष तेज है ॥ ५३ ॥

त्वष्टा पुरा तपस्तप्त्वा वर्षायुतशतं तदा ।
वृत्रो विनिर्मितो देवाः प्राप्यानुज्ञां महेश्वरात् ॥ ५४ ॥

'देवगण ! प्राचीन कालमें त्वष्टा प्रजापतिने दस लाख वर्षोंतक तपस्या करके भगवान् शङ्करसे वरदान पाकर वृत्रासुरको उत्पन्न किया था॥ ५४ ॥

स तस्यैव प्रसादाद् वो हन्यादेव रिपुर्बली ।
नागत्वा शंकरस्थानं भगवान् दृश्यते हरः ॥ ५५ ॥

'वह बलवान् शत्रु भगवान् शङ्करके ही प्रसादसे निश्चय ही तुम सब लोगोंको मार सकता है । अतः भगवान् शङ्करके निवासस्थानपर गये बिना उनका दर्शन नहीं हो सकता ॥ ५५ ॥

दृष्ट्वा जेष्यथ वृत्रं तं क्षिप्रं गच्छत मन्दरम् ।
यत्रास्ते तपसां योनिर्दक्षयज्ञविनाशनः ॥ ५६ ॥
पिनाकी सर्वभूतेशो भगनेत्रनिपातनः ।

'उनका दर्शन पाकर तुमलोग वृत्रासुरको जीत सकोगे । अतः शीघ्र ही मन्दराचलको चलो, जहाँ तपस्याके उत्पत्ति-स्थान, दक्षयज्ञविनाशक तथा भगदेवताके नेत्रोंका नाश करनेवाले सर्वभूतेश्वर पिनाकधारी भगवान् शिव विराजमान हैं' ॥ ५६½ ॥

ते गत्वा सहिता देवा ब्रह्मणा सह मन्दरम् ॥ ५७ ॥
अपश्यंस्तेजसां राशिं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।

'तब एकत्र हुए उन सब देवताओंने ब्रह्माजीके साथ मन्दराचलपर जाकर करोड़ों सूर्योंके समान कान्तिमान् तेजोराशि भगवान् शिवका दर्शन किया ॥ ५७½ ॥

सोऽब्रवीत् स्वागतं देवा ब्रूत किं करवाण्यहम् ॥५८॥
अमोघं दर्शनं मह्यं कामप्राप्तिरतोऽस्तु वः ।

उस समय भगवान् शिवने कहा—'देवताओ ! तुम्हारा स्वागत है । बोलो, मैं तुम्हारे लिये क्या करूँ ? मेरा दर्शन अमोघ है । अतः तुम्हें अपने अभीष्ट मनोरथोंकी प्राप्ति हो' ॥ ५८½ ॥

एवमुक्तास्तु ते सर्वे प्रत्यूचुस्तं दिवौकसः ॥ ५९ ॥
तेजो हृतं नो वृत्रेण गतिर्भव दिवौकसाम् ।
मूर्तीरीक्षस्व नो देव प्रहारैर्जर्जरीकृताः ।
शरणं त्वां प्रपन्नाः स्म गतिर्भव महेश्वर ॥ ६० ॥

उनके ऐसा कहनेपर सम्पूर्ण देवता इस प्रकार बोले—'देव ! वृत्रासुरने हमारा तेज हर लिया है । आप देवताओंके आश्रयदाता हों । महेश्वर ! आप हमारे शरीरोंकी दशा देखिये । हम वृत्रासुरके प्रहारोंसे जर्जर हो गये हैं, इसलिये आपकी शरणमें आये हैं । आप हमें आश्रय दीजिये'।५९-६०।

शर्व उवाच

विदितं वो यथा देवाः कृत्येयं सुमहाबला ।
त्वष्टुस्तेजोभवा घोरा दुर्निवार्याकृतात्मभिः ॥ ६१ ॥

भगवान् शिव बोले—देवताओ ! तुम्हें विदित हो कि यह प्रजापति त्वष्टाके तेजसे उत्पन्न हुई अत्यन्त प्रबल एवं भयंकर कृत्या है । जिन्होंने अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें नहीं किया है, ऐसे लोगोंके लिये इस कृत्याका निवारण करना अत्यन्त कठिन है ॥ ६१ ॥

अवश्यं तु मया कार्यं साह्यं सर्वदिवौकसाम् ।
ममेदं गात्रजं शक्र कवचं गृह्य भास्वरम् ॥ ६२ ॥

तथापि मुझे सम्पूर्ण देवताओंकी सहायता अवश्य करनी चाहिये । अतः इन्द्र ! मेरे शरीरसे उत्पन्न हुए इस तेजस्वी कवचको ग्रहण करो ॥ ६२ ॥

बधानानेन मन्त्रेण मानसेन सुरेश्वर ।
वधायासुरमुख्यस्य वृत्रस्य सुरघातिनः ॥ ६३ ॥

सुरेश्वर ! मेरे बताये हुए इस मन्त्रका मानसिक जप करके असुरमुख्य देवशत्रु वृत्रका वध करनेके लिये इसे अपने शरीरमें बाँध लो ॥ ६३ ॥

द्रोण उवाच

इत्युक्त्वा वरदः प्रादाद् वर्म तन्मन्त्रमेव च ।
स तेन वर्मणा गुप्तः प्रायाद् वृत्रचमूं प्रति ॥ ६४ ॥

द्रोणाचार्य कहते हैं—राजन् ! ऐसा कहकर वरदायक भगवान् शङ्करने वह कवच और उसका मन्त्र उन्हें दे दिया । उस कवचसे सुरक्षित हो इन्द्र वृत्रासुरकी सेनाका सामना करनेके लिये गये ॥ ६४ ॥

नानाविधैश्च शस्त्रौघैः पात्यमानैर्महारणे ।
न संधिः शक्यते भेत्तुं वर्मबन्धस्य तस्य तु ॥ ६५ ॥

उस महान् युद्धमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंके समुदाय उनके ऊपर चलाये गये; परंतु उनके द्वारा इन्द्रके उस कवच-बन्धनकी सन्धि भी नहीं काटी जा सकी ॥ ६५ ॥

ततो जघान समरे वृत्रं देवपतिः स्वयम् ।
तं च मन्त्रमयं बन्धं वर्म चाङ्गिरसे ददौ ॥ ६६ ॥

तदनन्तर देवराज इन्द्रने स्वयं ही समराङ्गणमें वृत्रासुरको मार डाला । इसके बाद उन्होंने वह कवच तथा उसे

बाँधनेकी मन्त्रयुक्त विधि अङ्गिराको दे दी ॥ ६६ ॥

अङ्गिराः प्राह पुत्रस्य मन्त्रज्ञस्य बृहस्पतेः।
बृहस्पतिरथोवाच आग्निवेश्याय धीमते ॥ ६७ ॥

अङ्गिराने अपने मन्त्रज्ञ पुत्र बृहस्पतिको उसका उपदेश दिया और बृहस्पतिने परम बुद्धिमान् आग्निवेश्यको यह विद्या प्रदान की ॥ ६७ ॥

आग्निवेश्यो मम प्रादात् तेन बध्नामि वर्म ते।
तवाद्य देहरक्षार्थं मन्त्रेण नृपसत्तम ॥ ६८ ॥

आग्निवेश्यने मुझे उसका उपदेश किया था। नृपश्रेष्ठ! उसी मन्त्रसे आज तुम्हारे शरीरकी रक्षाके लिये मैं यह कवच बाँध रहा हूँ ॥ ६८ ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा ततो द्रोणस्तव पुत्रं महाद्युतिम्।
पुनरेव वचः प्राह शनैराचार्यपुङ्गवः ॥ ६९ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! वहाँ आपके महातेजस्वी पुत्रसे यह प्रसंग सुनाकर आचार्यशिरोमणि द्रोणने पुनः धीरेसे यह बात कही—॥ ६९ ॥

ब्रह्मसूत्रेण बध्नामि कवचं तव भारत।
हिरण्यगर्भेण यथा बद्धं विष्णोः पुरा रणे ॥ ७० ॥

'भारत! जैसे पूर्वकालमें रणक्षेत्रमें भगवान् ब्रह्माने श्रीविष्णुके शरीरमें कवच बाँधा था, उसी प्रकार मैं भी ब्रह्मसूत्रसे तुम्हारे इस कवचको बाँधता हूँ ॥ ७० ॥

यथा च ब्रह्मणा बद्धं संग्रामे तारकामये।
शक्रस्य कवचं दिव्यं तथा बध्नाम्यहं तव ॥ ७१ ॥

'तारकामय संग्राममें ब्रह्माजीने इन्द्रके शरीरमें जिस प्रकार दिव्य कवच बाँधा था, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे शरीरमें बाँध रहा हूँ' ॥ ७१ ॥

बद्ध्वा तु कवचं तस्य मन्त्रेण विधिपूर्वकम्।
प्रेषयामास राजानं युद्धाय महते द्विजः ॥ ७२ ॥

इस प्रकार मन्त्रके द्वारा राजा दुर्योधनके शरीरमें विधिपूर्वक कवच बाँधकर विप्रवर द्रोणाचार्यने उसे महान् युद्धके लिये भेजा ॥ ७२ ॥

स संनद्धो महाबाहुराचार्येण महात्मना।
रथानां च सहस्रेण त्रिगर्तानां प्रहारिणाम् ॥ ७३ ॥
तथा दन्तिसहस्रेण मत्तानां वीर्यशालिनाम्।
अश्वानां नियुतेनैव तथान्यैश्च महारथैः ॥ ७४ ॥
वृतः प्रायान्महाबाहुरर्जुनस्य रथं प्रति।
नानावादित्रघोषेण यथा वैरोचनिस्तथा ॥ ७५ ॥

महामना आचार्यके द्वारा अपने शरीरमें कवच बँध जानेपर महाबाहु दुर्योधन प्रहार करनेमें कुशल एक सहस्र त्रिगर्तदेशीय रथियों, एक सहस्र पराक्रमशाली मतवाले हाथीसवारों एक लाख घुड़सवारों तथा अन्य महारथियोंसे घिरकर नाना प्रकारके रणवाद्योंकी ध्वनिके साथ अर्जुनके रथकी ओर चला। ठीक उसी तरह, जैसे राजा बलि (इन्द्रके साथ युद्धके लिये) यात्रा करते हैं ॥ ७३—७५ ॥

ततः शब्दो महानासीत् सैन्यानां तव भारत।
अगाधं प्रस्थितं दृष्ट्वा समुद्रमिव कौरवम् ॥ ७६ ॥

भारत! उस समय अगाध समुद्रके समान कुरुनन्दन दुर्योधनको युद्धके लिये प्रस्थान करते देख आपकी सेनामें बड़े जोरसे कोलाहल होने लगा ॥ ७६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनकवचबन्धने चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें दुर्योधनका कवच-बन्धनविषयक चौरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९४ ॥

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

द्रोण और धृष्टद्युम्नका भीषण संग्राम तथा उभय पक्षके प्रमुख वीरोंका परस्पर संकुल युद्ध

संजय उवाच

प्रविष्टयोर्महाराज पार्थवार्ष्णेययो रणे।
दुर्योधने प्रयाते च पृष्ठतः पुरुषर्षभे ॥ १ ॥
जवेनाभ्यद्रवन् द्रोणं महता निःस्वनेन च।
पाण्डवाः सोमकैः सार्धं ततो युद्धमवर्तत ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! उस रणक्षेत्रमें जब श्रीकृष्ण और अर्जुन कौरवसेनाके भीतर प्रवेश कर गये तथा पुरुषप्रवर दुर्योधन उनका पीछा करता हुआ आगे बढ़ गया, तब सोमकोंसहित पाण्डवोंने बड़ी भारी गर्जनाके साथ द्रोणाचार्यपर वेगपूर्वक धावा किया। फिर तो वहाँ बड़े जोरसे युद्ध होने लगा ॥ १—२ ॥

तद् युद्धमभवत् तीव्रं तुमुलं लोमहर्षणम्।
कुरूणां पाण्डवानां च व्यूहस्य पुरतोऽद्भुतम् ॥ ३ ॥

व्यूहके द्वारपर होनेवाला कौरवों तथा पाण्डवोंका वह अद्भुत युद्ध अत्यन्त तीव्र एवं भयंकर था। उसे देखकर लोगोंके रोंगटे खड़े हो जाते थे ॥ ३ ॥

राजन् कदाचिन्नास्माभिर्दृष्टं तादृङ् न च श्रुतम्।
यादृङ् मध्यगते सूर्ये युद्धमासीद् विशाम्पते ॥ ४ ॥

राजन्! प्रजानाथ! वहाँ मध्याह्नकालमें जैसा वह युद्ध हुआ था, वैसा न तो मैंने कभी देखा था और न सुना ही था ॥ ४ ॥

धृष्टद्युम्नमुखाः पार्था व्यूढानीकाः प्रहारिणः।
द्रोणस्य सैन्यं ते सर्वे शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ५ ॥

धृष्टद्युम्न आदि पाण्डवपक्षीय सब प्रहारकुशल योद्धा

अपनी सेनाका व्यूह बनाकर द्रोणाचार्यकी सेनापर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ५ ॥

वयं द्रोणं पुरस्कृत्य सर्वशस्त्रभृतां वरम्।
पार्षतप्रमुखान् पार्थानभ्यवर्षाम सायकैः ॥ ६ ॥

उस समय हमलोग सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यको आगे करके धृष्टद्युम्न आदि पाण्डवसैनिकोंपर बाण-वर्षा कर रहे थे ॥ ६ ॥

महामेघाविवोदीर्णौ मिश्रवातौ हिमात्यये।
सेनाग्रे प्रचकाशेते रुचिरे रथभूषिते ॥ ७ ॥

रथोंसे विभूषित हुई वे दोनों प्रधान एवं सुन्दर सेनाएँ हेमन्तके अन्त (शिशिर) में उठे हुए वायुयुक्त दो महामेघोंके समान प्रकाशित हो रही थीं ॥ ७ ॥

समेत्य तु महासेने चक्रतुर्वेगमुत्तमम् ।
जाह्नवीयमुने नद्यौ प्रावृषीवोल्बणोदके ॥ ८ ॥

वे दोनों विशाल सेनाएँ परस्पर भिड़कर विजयके लिये बड़े वेगसे आगे बढ़नेका प्रयत्न करने लगीं; मानो वर्षा-ऋतुमें जलकी बाढ़ आनेसे बढ़ी हुई गङ्गा और यमुना दोनों नदियाँ बड़े वेगसे मिल रही हों ॥ ८ ॥

नानाशस्त्रपुरोवातो द्विपाश्वरथसंवृतः ।
गदाविद्युन्महारौद्रः संग्रामजलदो महान् ॥ ९ ॥
भारद्वाजानिलोद्धूतः शरधारासहस्रवान् ।
अभ्यवर्षन्महासैन्यः पाण्डुसेनाग्निमुद्धतम् ॥ १० ॥

उस समय महान् सैन्यदलसे संयुक्त एवं हाथी, घोड़े और रथोंसे भरा हुआ वह संग्राम महान् मेघके समान जान पड़ता था। नाना प्रकारके शस्त्र पूर्ववात (पुरवैया) के तुल्य चल रहे थे। गदाएँ विद्युत्‌के समान प्रकाशित होती थीं। देखनेमें वह संग्राम-मेघ बड़ा भयंकर जान पड़ता था। द्रोणाचार्य वायुके समान उसे संचालित कर रहे थे तथा उससे बाण-रूपी जलकी सहस्रों धाराएँ गिर रही थीं और इस प्रकार वह अग्निके समान उठी हुई पाण्डव-सेनापर सब ओरसे वर्षा कर रहा था ॥ ९-१० ॥

समुद्रमिव घर्मान्ते विशन् घोरो महानिलः।
व्यक्षोभयदनीकानि पाण्डवानां द्विजोत्तमः ॥ ११ ॥

जैसे ग्रीष्मऋतुके अन्तमें बड़े जोरसे उठी हुई भयंकर वायु महासागरमें क्षोभ उत्पन्न करके वहाँ ज्वारका दृश्य उपस्थित कर देती है, उसी प्रकार विप्रवर द्रोणाचार्यने पाण्डवसेनामें हलचल मचा दी ॥ ११ ॥

तेऽपि सर्वप्रयत्नेन द्रोणमेव समाद्रवन् ।
बिभित्सन्तो महासेतुं वार्योघाः प्रबला इव ॥ १२ ॥

पाण्डव-योद्धाओंने भी सारी शक्ति लगाकर द्रोणपर ही धावा किया था; मानो पानीके प्रखर प्रवाह किसी महान् पुलको तोड़ डालना चाहते हों ॥ १२ ॥

वारयामास तान् द्रोणो जलौघमचलो यथा।
पाण्डवान् समरे क्रुद्धान् पञ्चालांश्च सकेकयान् ॥ १३ ॥

जैसे सामने खड़ा हुआ पर्वत आती हुई जलराशिको रोक देता है, उसी प्रकार समराङ्गणमें द्रोणाचार्यने कुपित हुए पाण्डवों, पाञ्चालों तथा केकयोंको रोक दिया था ॥ १३ ॥

अथापरे च राजानः परिवृत्य समन्ततः।
महाबला रणे शूराः पञ्चालानन्ववारयन् ॥ १४ ॥

इसी प्रकार दूसरे महाबली शूरवीर नरेश भी उस युद्धस्थलमें सब ओरसे लौटकर पाञ्चालोंका ही प्रतिरोध करने लगे ॥ १४ ॥

ततो रणे नरव्याघ्रः पार्षतः पाण्डवैः सह।
संजघानासकृद् द्रोणं बिभित्सुररिवाहिनीम् ॥ १५ ॥

तदनन्तर रणक्षेत्रमें पाण्डवोंसहित नरश्रेष्ठ धृष्टद्युम्नने शत्रुसेनाके व्यूहका भेदन करनेकी इच्छासे द्रोणाचार्यपर बारंबार प्रहार किया ॥ १५ ॥

यथैव शरवर्षाणि द्रोणो वर्षति पार्षते।
तथैव शरवर्षाणि धृष्टद्युम्नोऽप्यवर्षत ॥ १६ ॥

आचार्य द्रोण धृष्टद्युम्नपर जैसे बाणोंकी वर्षा करते थे, धृष्टद्युम्न भी द्रोणपर वैसे ही बाण बरसाते थे ॥ १६ ॥

सनिस्त्रिंशपुरोवातः शक्तिप्रासर्ष्टिसंवृतः।
ज्याविद्युच्चापसंह्रादो धृष्टद्युम्नबलाहकः ॥ १७ ॥
शरधाराश्मवर्षाणि व्यसृजत् सर्वतो दिशम्।
निघ्नन् रथवराश्वौघान् प्लावयामास वाहिनीम् ॥ १८ ॥

उस समय धृष्टद्युम्न एक महामेघके समान जान पड़ते थे। उनकी तलवार पुरवैया हवाके समान चल रही थी। वे शक्ति, प्रास एवं ऋष्टि आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न थे। उनकी प्रत्यञ्चा विद्युत्‌के समान प्रकाशित होती थी। धनुषकी टंकार मेघगर्जनाके समान जान पड़ती थी। उस धृष्टद्युम्नरूपी मेघने श्रेष्ठ रथी और घुड़सवारोंके समूहरूपी खेतीको नष्ट करनेके लिये सम्पूर्ण दिशाओंमें बाणरूपी जलकी धारा और अस्त्र-शस्त्ररूपी पत्थर बरसाते हुए शत्रु-सेनाको आप्लावित कर दिया ॥ १७-१८ ॥

यं यमार्च्छच्छरैर्द्रोणः पाण्डवानां रथव्रजम्।
ततस्ततः शरैर्द्रोणमपाकर्षत पार्षतः ॥ १९ ॥

द्रोणाचार्य बाणोंद्वारा पाण्डवोंकी जिस जिस रथसेनापर आक्रमण करते थे, धृष्टद्युम्न तत्काल बाणोंकी वर्षा करके उस-उस ओरसे उन्हें लौटा देते थे ॥ १९ ॥

तथा तु यतमानस्य द्रोणस्य युधि भारत।
धृष्टद्युम्नं समासाद्य त्रिधा सैन्यमभिद्यत ॥ २० ॥

भारत ! युद्धमें इस प्रकार विजयके लिये प्रयत्नशील हुए द्रोणाचार्यकी सेना धृष्टद्युम्नके पास पहुँचकर तीन भागोंमें बँट गयी ॥ २० ॥

भोजमेकेऽभ्यवर्तन्त जलसंधं तथापरे ।
पाण्डवैर्हन्यमानाश्च द्रोणमेवापरे ययुः ॥ २१ ॥

पाण्डव-योद्धाओंकी मार खाकर कुछ सैनिक कृतवर्माके पास चले गये, दूसरे जलसंधके पास भाग गये और शेष सभी योद्धा द्रोणाचार्यका ही अनुसरण करने लगे ॥ २१ ॥

संघट्टयति सैन्यानि द्रोणस्तु रथिनां वरः ।
व्यधमच्चापि तान्यस्य धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ २२॥

रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोण बारंबार अपनी सेनाओंको संगठित करते और महारथी धृष्टद्युम्न उनकी सब सेनाओंको छिन्न-भिन्न कर देते थे ॥ २२ ॥

धार्तराष्ट्रास्तथाभूता वध्यन्ते पाण्डुसृञ्जयैः ।
अगोपाः पशवोऽरण्ये बहुभिः श्वापदैरिव ॥ २३ ॥

जैसे वनमें बिना रक्षकके पशुओंको बहुत-से हिंसक जन्तु मार डालते हैं, उसी प्रकार पाण्डव और सृंजय आपके सैनिकोंका वध कर रहे थे ॥ २३ ॥

कालः स ग्रसते योधान् धृष्टद्युम्नेन मोहितान्।
संग्रामे तुमुले तस्मिन्निति सम्मेनिरे जनाः ॥ २४ ॥

उस भयंकर संग्राममें सब लोग ऐसा मानने लगे कि काल ही धृष्टद्युम्नके द्वारा कौरवयोद्धाओंको मोहित करके उन्हें अपना ग्रास बना रहा है ॥ २४ ॥

कुनृपस्य यथा राष्ट्रं दुर्भिक्षव्याधितस्करैः ।
द्राव्यते तद्वदापन्ना पाण्डवैस्तव वाहिनी ॥ २५ ॥

जैसे दुष्ट राजाका राज्य दुर्भिक्ष, भाँति-भाँतिकी बीमारी और चोर-डाकुओंके उपद्रवके कारण उजाड़ हो जाता है, उसी प्रकार पाण्डव सैनिकोंद्वारा विपत्तिमें पड़ी हुई आपकी सेना इधर-उधर खदेड़ी जा रही थी ॥ २५ ॥

अर्करश्मिविमिश्रेषु शस्त्रेषु कवचेषु च ।
चक्षूंषि प्रत्यहन्यन्त सैन्येन रजसा तथा ॥ २६ ॥

योद्धाओंके अस्त्र-शस्त्रों और कवचोंपर सूर्यकी किरणें पड़नेसे वहाँ आँखें चौंधिया जाती थीं और सेनासे इतनी धूल उठती थी कि उससे सबके नेत्र बंद हो जाते थे ॥

त्रिधाभूतेषु सैन्येषु वध्यमानेषु पाण्डवैः ।
अमर्षितस्ततो द्रोणः पञ्चालान् व्यधमच्छरैः॥ २७ ॥

जब पाण्डवोंके द्वारा मारी जाती हुई कौरवसेना तीन भागोंमें बँट गयी, तब द्रोणाचार्यने अत्यन्त कुपित होकर अपने बाणोंद्वारा पाञ्चालोंका विनाश आरम्भ किया ॥ २७ ॥

मृद्नतस्तान्यनीकानि निघ्नतश्चापि सायकैः ।
बभूव रूपं द्रोणस्य कालाग्नेरिव दीप्यतः ॥ २८॥

पाञ्चालोंकी उन सेनाओंको रौंदते और बाणोंद्वारा उनका संहार करते हुए द्रोणाचार्यका स्वरूप प्रलयकालकी प्रज्वलित अग्निके समान जान पड़ता था ॥ २८ ॥

रथं नागं हयं चापि पत्तिनश्च विशाम्पते ।
एकैकेनेषुणा संख्ये निर्बिभेद महारथः ॥ २९ ॥

प्रजानाथ ! महारथी द्रोणने उस युद्धस्थलमें शत्रुसेनाके प्रत्येक रथ, हाथी, अश्व और पैदल सैनिकको एक-एक बाणसे घायल कर दिया ॥ २९ ॥

पाण्डवानां तु सैन्येषु नास्ति कश्चित् स भारत ।
दधार यो रणे बाणान् द्रोणचापच्युतान् प्रभो ॥ ३० ॥

भारत ! प्रभो ! उस समय पाण्डवोंकी सेनामें कोई ऐसा वीर नहीं था, जो रणक्षेत्रमें द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए बाणोंको धैर्यपूर्वक सह सका हो ॥ ३० ॥

तत् पच्यमानमर्केण द्रोणसायकतापितम् ।
बभ्राम पार्षतं सैन्यं तत्र तत्रैव भारत ॥ ३१ ॥

भरतनन्दन ! सूर्यके द्वारा अपनी किरणोंसे पकायी जाती हुई-सी धृष्टद्युम्नकी सेना द्रोणाचार्यके बाणोंसे संतप्त हो जहाँ-तहाँ चक्कर काटने लगी ॥ ३१ ॥

तथैव पार्षतेनापि काल्यमानं बलं तव ।
अभवत् सर्वतो दीप्तं शुष्कं वनमिवाग्निना ॥ ३२ ॥

इसी प्रकार धृष्टद्युम्नके द्वारा खदेड़ी जाती हुई आपकी सेना भी सब ओरसे आग लग जानेके कारण प्रज्वलित हुए सूखे वनकी भाँति दग्ध हो रही थी ॥ ३२ ॥

बाध्यमानेषु सैन्येषु द्रोणपार्षतसायकैः ।
त्यक्त्वा प्राणान् परं शक्त्या युध्यन्ते सर्वतोमुखाः ॥ ३३ ॥

द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नके बाणोंद्वारा सेनाओंके पीड़ित होनेपर भी सब लोग प्राणोंका मोह छोड़कर पूरी शक्तिसे सब ओर युद्ध कर रहे थे ॥ ३३ ॥

तावकानां परेषां च युध्यतां भरतर्षभ ।
नासीत् कश्चिन्महाराज योऽत्याक्षीत् संयुगं भयात् ॥ ३४ ॥

भरतभूषण ! महाराज ! वहाँ युद्ध करते हुए आपके और शत्रुओंके योद्धाओंमें कोई ऐसा नहीं था, जिसने भयके कारण युद्धका मैदान छोड़ दिया हो ॥ ३४ ॥

भीमसेनं तु कौन्तेयं सोदर्याः पर्यवारयन् ।
विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च महारथः ॥ ३५ ॥

उस समय विविंशति, चित्रसेन तथा महारथी विकर्ण—इन तीनों भाइयोंने कुन्तीपुत्र भीमसेनको घेर लिया ॥ ३५ ॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ क्षेमधूर्तिश्च वीर्यवान् ।
त्रयाणां तव पुत्राणां त्रय एवानुयायिनः ॥ ३६ ॥

अवन्तीके राजकुमार विन्द और अनुविन्द तथा पराक्रमी क्षेमधूर्ति—ये तीनों ही आपके पूर्वोक्त तीनों पुत्रोंके अनुयायी थे ॥ ३६ ॥

बाह्लीकराजस्तेजस्वी कुलपुत्रो महारथः ।
सहसेनः सहामात्यो द्रौपदेयानवारयत् ॥ ३७ ॥

उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए तेजस्वी महारथी बाह्लीकराजने सेना और मन्त्रियोंसहित जाकर द्रौपदीपुत्रोंको रोका ॥ ३७ ॥

शैब्यो गोवासनो राजा योधैर्दशशतावरैः ।
काश्यस्याभिभुवः पुत्रं पराक्रान्तमवारयत् ॥ ३८ ॥

शिविदेशीय राजा गोवासनने कम-से-कम एक सहस्र योद्धा साथ लेकर काशिराज अभिभूके पराक्रमी पुत्रका सामना किया ॥ ३८ ॥

अजातशत्रुं कौन्तेयं ज्वलन्तमिव पावकम् ।
मद्राणामीश्वरः शल्यो राजा राजानमावृणोत् ॥ ३९ ॥

प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी अजातशत्रु कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरका सामना मद्रदेशके स्वामी राजा शल्यने किया ॥

दुःशासनस्त्ववस्थाप्य स्वमनीकममर्षणः ।
सात्यकिं प्रत्ययौ क्रुद्धः शूरो रथवरं युधि ॥ ४० ॥

अमर्षशील शूरवीर दुःशासनने अपनी भागती हुई सेनाको पुनः स्थिरतापूर्वक स्थापित करके कुपित हो युद्धस्थलमें रथियोंमें श्रेष्ठ सात्यकिपर आक्रमण किया ॥ ४० ॥

स्वकेनाहमनीकेन संनद्धः कवचावृतः ।
चतुःशतैर्महेष्वासैश्चेकितानमवारयम् ॥ ४१ ॥

अपनी सेना तथा चार सौ महाधनुर्धरोंके साथ कवच धारण करके सुसज्जित हो मैंने चेकितानको रोका ॥ ४१ ॥

शकुनिस्तु सहानीको माद्रीपुत्रमवारयत् ।
गान्धारकैः सप्तशतैश्चापशक्त्यसिपाणिभिः ॥ ४२ ॥

सेनासहित शकुनिने माद्रीपुत्र नकुलका प्रतिरोध किया। उसके साथ हाथोंमें धनुष, शक्ति और तलवार लिये सात सौ गान्धार-देशीय योद्धा मौजूद थे ॥ ४२ ॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ विराटं मत्स्यमार्च्छताम् ।
प्राणांस्त्यक्त्वा महेष्वासौ मित्रार्थेऽभ्युद्यतायुधौ ॥ ४३ ॥

अवन्तीके राजकुमार विन्द और अनुविन्दने मत्स्यनरेश विराटपर आक्रमण किया। उन दोनों महाधनुर्धर वीरोंने प्राणोंका मोह छोड़कर अपने मित्र दुर्योधनके लिये हथियार उठाया था ॥ ४३ ॥

शिखण्डिनं याज्ञसेनिं रुन्धानमपराजितम् ।
वाह्लीकः प्रतिसंयत्तः पराक्रान्तमवारयत् ॥ ४४ ॥

किसीसे परास्त न होनेवाले पराक्रमी यज्ञसेन-कुमार शिखण्डीको, जो राह रोककर खड़ा था, बाह्लीकने पूर्ण प्रयत्नशील होकर रोका ॥ ४४ ॥

धृष्टद्युम्नं तु पाञ्चाल्यं क्रूरैः सार्धं प्रभद्रकैः ।
आवन्त्यः सहसौवीरैः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ४५ ॥

अवन्तीके एक-दूसरे वीरने क्रूर स्वभाववाले प्रभद्रकों और सौवीरदेशीय सैनिकोंके साथ आकर क्रोधमें भरे हुए पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नको रोका ॥ ४५ ॥

घटोत्कचं तथा शूरं राक्षसं क्रूरकर्मिणम् ।
अलायुधोऽद्रवत् तूर्णं क्रुद्धमायान्तमाहवे ॥ ४६ ॥

क्रोधमें भरकर युद्धके लिये आते हुए क्रूरकर्मा तथा शूरवीर राक्षस घटोत्कचपर अलायुधने शीघ्रतापूर्वक आक्रमण किया ॥

अलम्बुषं राक्षसेन्द्रं कुन्तिभोजो महारथः ।
सैन्येन महता युक्तः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ४७ ॥

पाण्डवपक्षके महारथी राजा कुन्तिभोजने विशाल सेनाके साथ आकर कुपित हुए कौरवपक्षीय राक्षसराज अलम्बुषका सामना किया ॥ ४७ ॥

सैन्धवः पृष्ठतस्त्वासीत् सर्वसैन्यस्य भारत ।
रक्षितः परमेष्वासैः कृपप्रभृतिभी रथैः ॥ ४८ ॥

भरतनन्दन ! उस समय सिंधुराज जयद्रथ सारी सेनाके पीछे महाधनुर्धर कृपाचार्य आदि रथियोंसे सुरक्षित था ॥

तस्यास्तां चक्ररक्षौ द्वौ सैन्धवस्य बृहत्तमौ ।
द्रौणिर्दक्षिणतो राजन् सूतपुत्रश्च वामतः ॥ ४९ ॥

राजन् ! जयद्रथके दो महान् चक्ररक्षक थे। उसके दाहिने चक्रकी अश्वत्थामा और बायें चक्रकी रक्षा सूतपुत्र कर्ण कर रहा था ॥ ४९ ॥

पृष्ठगोपास्तु तस्यासन् सौमदत्तिपुरोगमाः ।
कृपश्च वृषसेनश्च शलः शल्यश्च दुर्जयः ॥ ५० ॥
नीतिमन्तो महेष्वासाः सर्वे युद्धविशारदाः ।
सैन्धवस्य विधायैवं रक्षां युयुधिरे ततः ॥ ५१ ॥

भूरिश्रवा आदि वीर उसके पृष्ठभागकी रक्षा करते थे। कृप, वृषसेन, शल और दुर्जय वीर शल्य—ये सभी नीतिज्ञ, महान् धनुर्धर एवं युद्धकुशल थे और इस प्रकार सिंधुराजकी रक्षाका प्रबन्ध करके वहाँ युद्ध कर रहे थे ॥ ५०-५१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संकुलयुद्धे पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें संकुलयुद्धविषयक पंचानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९५ ॥

षण्णवतितमोऽध्यायः

दोनों पक्षोंके प्रधान वीरोंका द्वन्द्व-युद्ध

संजय उवाच

राजन् संग्राममाश्चर्यं शृणु कीर्तयतो मम ।
कुरूणां पाण्डवानां च यथा युद्धमवर्तत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! कौरवों और पाण्डवोंमें जिस प्रकार युद्ध हुआ था, उस आश्चर्यमय संग्रामका मैं वर्णन करता हूँ, ध्यान देकर सुनिये ॥ १ ॥

भारद्वाजं समासाद्य व्यूहस्य प्रमुखे स्थितम् ।
अयोधयन् रणे पार्था द्रोणानीकं बिभित्सवः ॥ २ ॥

व्यूहके द्वारपर खड़े हुए द्रोणाचार्यके पास आकर पाण्डवगण उनकी सेनाके व्यूहका भेदन करनेकी इच्छासे रणक्षेत्रमें उनके साथ युद्ध करने लगे ॥ २ ॥

रक्षमाणः स्वकं व्यूहं द्रोणोऽपि सह सैनिकैः ।
अयोधयद् रणे पार्थान् प्रार्थयानो महद् यशः ॥ ३ ॥

द्रोणाचार्य भी महान् यशकी अभिलाषा रखकर अपने व्यूहकी रक्षा करते हुए बहुत-से सैनिकोंको साथ लेकर समराङ्गणमें कुन्तीपुत्रोंके साथ युद्धमें संलग्न हो गये ॥ ३ ॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ विराटं दशभिः शरैः ।
आजघ्नतुः सुसंक्रुद्धौ तव पुत्रहितैषिणौ ॥ ४ ॥

आपके पुत्रका हित चाहनेवाले अवन्तीके राजकुमार विन्द और अनुविन्दने अत्यन्त कुपित हो राजा विराटको दस बाण मारे ॥ ४ ॥

विराटश्च महाराज तावुभौ समरे स्थितौ ।
पराक्रान्तौ पराक्रम्य योधयामास सानुगौ ॥ ५ ॥

महाराज ! राजा विराटने भी समरभूमिमें अनुचरोंसहित खड़े हुए उन दोनों पराक्रमी वीरोंके साथ पराक्रमपूर्वक युद्ध किया ॥ ५ ॥

तेषां युद्धं समभवद् दारुणं शोणितोदकम् ।
सिंहस्य द्विपमुख्याभ्यां प्रभिन्नाभ्यां यथा वने ॥ ६ ॥

जैसे वनमें सिंहका दो मदस्रावी महान् हाथियोंके साथ युद्ध हो रहा हो, उसी प्रकार विराट और विन्द-अनुविन्दमें बड़ा भयंकर संग्राम होने लगा, जहाँ पानीकी तरह खून बहाया जा रहा था ॥ ६ ॥

बाह्लीकं रभसं युद्धे याज्ञसेनिर्महाबलः ।
आजघ्ने विशिखैस्तीक्ष्णैर्घोरैर्मर्मास्थिभेदिभिः ॥ ७ ॥

महाबली शिखण्डीने युद्धस्थलमें वेगशाली बाह्लीकको मर्मस्थानों और हड्डियोंको विदीर्ण कर देनेवाले भयंकर तीखे बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥ ७ ॥

बाह्लीको याज्ञसेनिं तु हेमपुङ्खैः शिलाशितैः ।
आजघान भृशं क्रुद्धो नवभिर्नतपर्वभिः ॥ ८ ॥

इससे बाह्लीक अत्यन्त कुपित हो उठे । उन्होंने शानपर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखसे युक्त और झुकी हुई गाँठवाले नौ बाणोंद्वारा शिखण्डीको घायल कर दिया ॥ ८ ॥

तद् युद्धमभवद् घोरं शरशक्तिसमाकुलम् ।
भीरूणां त्रासजननं शूराणां हर्षवर्धनम् ॥ ९ ॥

उन दोनोंके उस युद्धने बड़ा भयंकर रूप धारण किया। उसमें बाणों और शक्तियोंका ही अधिक प्रहार हो रहा था । वह भीरु पुरुषोंके हृदयमें भय और शूरवीरोंके हृदयमें हर्षकी वृद्धि करनेवाला था ॥ ९ ॥

ताभ्यां तत्र शरैर्मुक्तैरन्तरिक्षं दिशस्तथा ।
अभवत् संवृतं सर्वं न प्राज्ञायत किंचन ॥ १० ॥

उन दोनों भाइयोंके छोड़े हुए बाणोंसे वहाँ आकाश और दिशाएँ—सब कुछ व्याप्त हो गया । कुछ भी सूझ नहीं पड़ता था ॥ १० ॥

शैब्यो गोवासनो युद्धे काश्यपुत्रं महारथम् ।
ससैन्यो योधयामास गजः प्रतिगजं यथा ॥ ११ ॥

शिबिदेशीय गोवासनने सेनासहित सामने जा काशिराजके महारथी पुत्रके साथ रणक्षेत्रमें उसी प्रकार युद्ध किया, जैसे एक हाथी अपने प्रतिद्वन्द्वी दूसरे हाथीके साथ युद्ध करता है ॥ ११ ॥

बाह्लीकराजः संक्रुद्धो द्रौपदेयान् महारथान् ।
मनः पञ्चेन्द्रियाणीव शुशुभे योधयन् रणे ॥ १२ ॥

क्रोधमें भरे हुए बाह्लीकराज महारथी द्रौपदीपुत्रोंके साथ रण-क्षेत्रमें युद्ध करते हुए उसी प्रकार शोभा पाने लगे, जैसे मन पाँचों इन्द्रियोंसे युद्ध करता हुआ सुशोभित होता है ॥ १२ ॥

अयोधयंस्ते सुभृशं तं शरौघैः समन्ततः ।
इन्द्रियार्था यथा देहं शश्वद् देहवतां वर ॥ १३ ॥

देहधारियोंमें श्रेष्ठ महाराज ! द्रौपदीके पुत्र भी चारों ओरसे बाणसमूहोंकी वर्षा करते हुए वहाँ बाह्लीकराजके साथ उसी प्रकार बड़े वेगसे युद्ध करने लगे, जैसे इन्द्रियोंके विषय शरीरके साथ सदा जूझते रहते हैं ॥ १३ ॥

वार्ष्णेयं सात्यकिं युद्धे पुत्रो दुःशासनस्तव ।
आजघ्ने सायकैस्तीक्ष्णैर्नवभिर्नतपर्वभिः ॥ १४ ॥

आपके पुत्र दुःशासनने युद्धस्थलमें झुकी हुई गाँठवाले नौ तीखे बाणोंद्वारा वृष्णिवंशी सात्यकिको घायल कर दिया ॥ १४ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता महेष्वासेन धन्विना ।
ईषन्मूर्च्छां जगामाशु सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ १५ ॥

बलवान् एवं महान् धनुर्धर दुःशासनके बाणोंसे अत्यन्त बिंध जानेके कारण सत्यपराक्रमी सात्यकिको तुरंत ही थोड़ी-सी मूर्छा आ गयी ॥ १५ ॥

समाश्वस्तस्तु वार्ष्णेयस्तव पुत्रं महारथम् ।
विव्याध दशभिस्तूर्णं सायकैः कङ्कपत्रिभिः ॥ १६ ॥

थोड़ी देरमें स्वस्थ होनेपर सात्यकिने आपके महारथी पुत्र दुःशासनको कंककी पाँखवाले दस बाणोंद्वारा तुरंत ही घायल कर दिया ॥ १६ ॥

तावन्योन्यं दृढं विद्धावन्योन्यशरपीडितौ ।
रेजतुः समरे राजन् पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ १७ ॥

राजन् ! वे दोनों एक दूसरेके बाणोंसे पीड़ित और अत्यन्त घायल हो समराङ्गणमें दो खिले हुए पलाशके वृक्षोंकी भाँति शोभा पाने लगे ॥ १७ ॥

अलम्बुषस्तु संक्रुद्धः कुन्तिभोजशरार्दितः ।
अशोभत भृशं लक्ष्म्या पुष्पाढ्य इव किंशुकः ॥ १८ ॥

राजा कुन्तिभोजके बाणोंसे पीड़ित हो अत्यन्त क्रोधमें भरा हुआ राक्षस अलम्बुष फूलोंसे लदे हुए पलाश वृक्षके समान एक विशेष शोभासे सम्पन्न दिखायी देने लगा ॥

कुन्तिभोजं ततो रक्षो विद्ध्वा बहुभिरायसैः ।
अनदद् भैरवं नादं वाहिन्याः प्रमुखे तव ॥ १९ ॥

फिर राक्षसने बहुत-से लोहेके बाणोंद्वारा राजा कुन्तिभोजको घायल करके आपकी सेनाके प्रमुख भागमें बड़ी भयंकर गर्जना की ॥ १९ ॥

ततस्तौ समरे शूरौ योधयन्तौ परस्परम् ।
ददृशुः सर्वसैन्यानि शक्रजम्भौ यथा पुरा ॥ २०॥

तदनन्तर सम्पूर्ण सेनाएँ पूर्वकालमें एक दूसरेसे युद्ध करनेवाले इन्द्र और जम्भासुरके समान समराङ्गणमें परस्पर जूझते हुए उन दोनों शूरवीरोंको देखने लगीं ॥ २० ॥

शकुनिं रभसं युद्धे कृतवैरं च भारत ।
माद्रीपुत्रौ च संरब्धौ शरैश्चार्दयतां भृशम् ॥ २१ ॥

भारत ! क्रोधमें भरे हुए दोनों माद्रीकुमारोंने पहलेसे वैर बाँधनेवाले और युद्धमें वेगपूर्वक आगे बढ़नेवाले शकुनिको अपने बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित किया ॥ २१ ॥

तुमुलः स महान् राजन् प्रावर्तत जनक्षयः ।
त्वया संजनितोऽत्यर्थं कर्णेन च विवर्धितः ॥ २२ ॥

राजन् ! इस प्रकार वह महाभयंकर जनसंहार चालू हो गया, जिसकी परिस्थितिको आपने ही उत्पन्न किया है और कर्णने उसे अत्यन्त बढ़ावा दिया है ॥ २२ ॥

रक्षितस्तव पुत्रैश्च क्रोधमूलो हुताशनः ।
य इमां पृथिवीं राजन् दग्धुं सर्वां समुद्यतः ॥ २३ ॥

महाराज ! आपके पुत्रोंने उस क्रोधमूलक वैरकी आगको सुरक्षित रक्खा है, जो इस सारी पृथ्वीको भस्म कर डालनेके लिये उद्यत है ॥ २३ ॥

शकुनिः पाण्डुपुत्राभ्यां कृतः स विमुखः शरैः ।
न स्म जानाति कर्तव्यं युद्धे किंचित् पराक्रमम् ॥ २४ ॥

पाण्डुकुमार नकुल और सहदेवने अपने बाणोंद्वारा शकुनिको युद्धसे विमुख कर दिया । उस समय उसे युद्धविषयक कर्तव्यका ज्ञान न रहा और न कुछ पराक्रमका ही भान हुआ ॥ २४ ॥

विमुखं चैनमालोक्य माद्रीपुत्रौ महारथौ ।
ववर्षतुः पुनर्बाणैर्यथा मेघौ महागिरिम् ॥ २५ ॥

उसे युद्धसे विमुख हुआ देखकर भी महारथी माद्रीकुमार नकुल-सहदेव उसके ऊपर पुनः उसी प्रकार बाणोंकी वर्षा करने लगे, जैसे दो मेघ किसी महान् पर्वतपर जलकी धारा बरसा रहे हों ॥ २५ ॥

स वध्यमानो बहुभिः शरैः संनतपर्वभिः ।
सम्प्रायाज्जवनैरश्वैर्द्रोणानीकाय सौबलः ॥ २६ ॥

झुकी हुई गाँठवाले बहुत-से बाणोंकी मार खाकर सुबलपुत्र शकुनि वेगशाली घोड़ोंकी सहायतासे द्रोणाचार्यकी सेनाके पास जा पहुँचा ॥ २६ ॥

घटोत्कचस्तथा शूरं राक्षसं तमलायुधम् ।
अभ्ययाद् रभसं युद्धे वेगमास्थाय मध्यमम् ॥ २७ ॥

इधर घटोत्कचने अपने प्रतिद्वन्द्वी शूर राक्षस अलायुधका जो युद्धमें बड़ा वेगशाली था, मध्यम वेगका आश्रय ले सामना किया ॥ २७ ॥

तयोर्युद्धं महाराज चित्ररूपमिवाभवत् ।
यादृशं हि पुरा वृत्तं रामरावणयोर्मृधे ॥ २८ ॥

महाराज ! पूर्वकालमें श्रीराम और रावणके युद्धमें जैसी आश्चर्यजनक घटना घटित हुई थी, उसी प्रकार उन दोनों राक्षसोंका युद्ध भी विचित्र-सा ही हुआ ॥ २८ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा मद्रराजानमाहवे ।
विद्ध्वा पञ्चाशता बाणैः पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ २९ ॥

तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने युद्धमें मद्रराज शल्यको पचास बाणोंसे घायल करके पुनः सात बाणोंद्वारा उन्हें बींध डाला ॥ २९ ॥

ततः प्रववृते युद्धं तयोरत्यद्भुतं नृप ।
यथा पूर्वं महद् युद्धं शम्बरामरराजयोः ॥ ३० ॥

नरेश्वर ! जैसे पूर्वकालमें शम्बरासुर और देवराज इन्द्रमें महान् युद्ध हुआ था, उसी प्रकार उस समय उन दोनोंमें अत्यन्त अद्भुत संग्राम होने लगा ॥ ३० ॥

विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च तवात्मजः ।
अयोधयन् भीमसेनं महत्या सेनया वृताः ॥ ३१ ॥

आपके पुत्र विविंशति, चित्रसेन और विकर्ण–ये तीनों विशाल सेनाके साथ रहकर भीमसेनके साथ युद्ध करने लगे॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें द्वन्द्वयुद्धविषयक छानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९६ ॥

सप्तनवतितमोऽध्यायः

द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नका युद्ध तथा सात्यकिद्वारा धृष्टद्युम्नकी रक्षा

संजय उवाच

तथा तस्मिन् प्रवृत्ते तु संग्रामे लोमहर्षणे ।
कौरवेयांस्त्रिधाभूतान् पाण्डवाः समुपाद्रवन् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! उस रोमाञ्चकारी संग्रामके

होते समय वहाँ तीन भागोंमें बँटे हुए कौरवोंपर पाण्डव-सैनिकोंने धावा किया ॥ १ ॥

जलसंधं महाबाहुं भीमसेनोऽभ्यवर्तत ।
युधिष्ठिरः सहानीकः कृतवर्माणमाहवे ॥ २ ॥

भीमसेनने महाबाहु जलसंधपर आक्रमण किया और सेनासहित युधिष्ठिरने युद्धस्थलमें कृतवर्मापर धावा बोल दिया॥

किरंस्तु शरवर्षाणि रोचमान इवांशुमान् ।
धृष्टद्युम्नो महाराज द्रोणमभ्यद्रवद् रणे ॥ ३ ॥

महाराज ! जैसे प्रकाशमान सूर्य सहस्रों किरणोंका प्रसार करते हैं, उसी प्रकार धृष्टद्युम्नने बाण-समूहोंकी वर्षा करते हुए रणक्षेत्रमें द्रोणाचार्यपर आक्रमण किया ॥ ३ ॥

ततः प्रववृते युद्धं त्वरतां सर्वधन्विनाम् ।
कुरूणां पाण्डवानां च संक्रुद्धानां परस्परम् ॥ ४ ॥

तदनन्तर परस्पर क्रोधमें भरे और उतावले हुए कौरव-पाण्डवपक्षके सम्पूर्ण धनुर्धरोंका आपसमें युद्ध होने लगा ॥

संक्षये तु तथाभूते वर्तमाने महाभये ।
द्वन्द्वीभूतेषु सैन्येषु युध्यमानेष्वभीतवत् ॥ ५ ॥
द्रोणः पाञ्चालपुत्रेण बली बलवता सह ।
यदक्षिपत् पृषत्कौघांस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ६ ॥

इस प्रकार जब महाभयंकर जनसंहार होने लगा और सारे सैनिक निर्भय-से होकर द्वन्द्व-युद्ध करने लगे, उस समय बलवान् द्रोणाचार्यने शक्तिशाली पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध करते हुए जो बाण-समूहोंकी वर्षा आरम्भ की, वह अद्भुत-सी प्रतीत होने लगी ॥ ५-६ ॥

पुण्डरीकवनानीव विध्वस्तानि समन्ततः ।
चक्राते द्रोणपाञ्चाल्यौ नृणां शीर्षाण्यनेकशः ॥ ७ ॥

द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नने मनुष्योंके बहुत-से मस्तक काट गिराये, जो चारों ओर नष्ट होकर पड़े हुए कमलवनोंके समान जान पड़ते थे ॥ ७ ॥

विनिकीर्णानि वीराणामनीकेषु समन्ततः ।
वस्त्राभरणशस्त्राणि ध्वजवर्मायुधानि च ॥ ८ ॥

चारों ओर सेनाओंमें वीरोंके बहुत-से वस्त्र, आभूषण, अस्त्र-शस्त्र, ध्वज, कवच तथा आयुध छिन्न-भिन्न होकर बिखरे पड़े थे ॥ ८ ॥

तपनीयतनुत्राणाः संसिक्ता रुधिरेण च ।
संसक्ता इव दृश्यन्ते मेघसंघाः सविद्युतः ॥ ९ ॥

सुवर्णका कवच बाँधे तथा खूनसे लथपथ हुए सैनिक परस्पर सटे हुए बिजलियोंसहित मेघ-समूहोंके समान दिखायी देते थे ॥ ९ ॥

कुञ्जराश्वनरानन्ये पातयन्ति स्म पत्रिभिः ।
तालमात्राणि चापानि विकर्षन्तो महारथाः ॥ १० ॥

बहुत-से दूसरे महारथी चार हाथके धनुष खींचते हुए अपने पंखयुक्त बाणोंद्वारा हाथी, घोड़े और पैदल मनुष्योंको मार गिराते थे ॥ १० ॥

असिचर्माणि चापानि शिरांसि कवचानि च ।
विप्रकीर्यन्त शूराणां सम्प्रहारे महात्मनाम् ॥ ११ ॥

उन महामनस्वी वीरोंके संग्राममें योद्धाओंके खड्ग, ढाल, धनुष, मस्तक और कवच कटकर इधर-उधर बिखरे जाते थे॥

उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ।
अदृश्यन्त महाराज तस्मिन् परमसंकुले ॥ १२ ॥

महाराज ! उस महाभयानक युद्धमें चारों ओर असंख्य कबन्ध खड़े दिखायी देते थे ॥ १२ ॥

गृध्राः कङ्का बकाः श्येना वायसा जम्बुकास्तथा ।
बहुशः पिशिताशाश्च तत्रादृश्यन्त मारिष ॥ १३ ॥

आर्य ! वहाँ बहुत-से गीध, कङ्क, बगले, बाज, कौए, सियार तथा अन्य मांसभक्षी प्राणी दृष्टिगोचर होते थे ॥१३॥

भक्षयन्तश्च मांसानि पिबन्तश्चापि शोणितम् ।
विलुम्पन्तश्च केशांश्च मज्जाश्च बहुधा नृप ॥ १४ ॥

नरेश्वर ! वे मांस खाते, रक्त पीते और केशों तथा मज्जाको बारंबार नोचते थे ॥ १४ ॥

आकर्षन्तः शरीराणि शरीरावयवांस्तथा ।
नराश्वगजसंघानां शिरांसि च ततस्ततः ॥ १५ ॥

मनुष्यों, घोड़ों तथा हाथियोंके समूहोंके सम्पूर्ण शरीरों और अवयवों एवं मस्तकोंको इधर-उधर खींचते थे ॥१५॥

कृतास्त्रा रणदीक्षाभिर्दीक्षिता रणशालिनः ।
रणे जयं प्रार्थयाना भृशं युयुधिरे तदा ॥ १६ ॥

अस्त्रविद्याके ज्ञाता और युद्धमें शोभा पानेवाले वीर रणयज्ञकी दीक्षा लेकर संग्राममें विजय चाहते हुए उस समय बड़े जोरसे युद्ध करने लगे ॥ १६ ॥

असिमार्गान् बहुविधान् विचेरुः सैनिका रणे ।
ऋष्टिभिः शक्तिभिः प्रासैः शूलतोमरपट्टिशैः ॥ १७ ॥
गदाभिः परिघैश्चान्यैरायुधैश्च भुजैरपि ।
अन्योन्यं जघ्निरे क्रुद्धा युद्धरङ्गगता नराः ॥ १८ ॥

समस्त सैनिक उस रणक्षेत्रमें तलवारके बहुत-से पैंतरे दिखाते हुए विचर रहे थे । युद्धकी रंगभूमिमें आये हुए मनुष्य परस्पर कुपित हो एक दूसरेपर ऋष्टि, शक्ति, प्रास, शूल, तोमर, पट्टिश, गदा, परिघ, अन्यान्य आयुध तथा भुजाओंद्वारा चोट पहुँचाते थे ॥ १७-१८ ॥

रथिनो रथिभिः सार्धमश्वारोहाश्च सादिभिः ।
मातङ्गा वरमातङ्गैः पदाताश्च पदातिभिः ॥ १९ ॥

रथी रथियोंके, घुड़सवार घुड़सवारोंके, मतवाले हाथी श्रेष्ठ गजराजोंके और पैदल योद्धा पैदलोंके साथ युद्ध कर रहे थे ॥ १९ ॥

क्षीबा इवान्ये चोन्मत्ता रङ्गेष्विव च वारणाः ।
उच्चुकुशुरथान्योन्यं जघ्नुरन्योन्यमेव च ॥ २० ॥

रंगस्थलके समान उस रणक्षेत्रमें अन्य बहुत-से मत्त और उन्मत्त हाथी एक दूसरेको देखकर चिग्घाड़ते और परस्पर आघात-प्रत्याघात करते थे ॥ २० ॥

वर्तमाने तथा युद्धे निर्मर्यादे विशाम्पते ।
धृष्टद्युम्नो हयानश्वैर्द्रोणस्य व्यत्यमिश्रयत् ॥ २१ ॥

राजन् ! जिस समय वह मर्यादाशून्य युद्ध हो रहा था, उसी समय धृष्टद्युम्नने अपने रथके घोड़ोंको द्रोणाचार्यके घोड़ोंसे मिला दिया ॥ २१ ॥

ते हयाः साध्वशोभन्त मिश्रिता वातरंहसः ।
पारावतसवर्णाश्च रक्तशोणाश्च संयुगे ॥ २२ ॥

धृष्टद्युम्नके घोड़ोंका रंग कबूतरके समान था और द्रोणाचार्यके घोड़े लाल थे । उस युद्धके मैदानमें परस्पर मिले हुए वे वायुके समान वेगशाली अश्व बड़ी शोभा पा रहे थे ॥

पारावतसवर्णास्ते रक्तशोणविमिश्रिताः ।
हयाः शुशुभिरे राजन् मेघा इव सविद्युतः ॥ २३ ॥

राजन् ! कबूतरके समान वर्णवाले घोड़े लाल रंगके घोड़ोंसे मिलकर बिजलियोंसहित मेघोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥

धृष्टद्युम्नस्तु सम्प्रेक्ष्य द्रोणमभ्याशमागतम् ।
असिचर्माददे वीरो धनुरुत्सृज्य भारत ॥ २४ ॥

भारत ! वीर धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यको अत्यन्त निकट आया हुआ देख धनुष छोड़कर हाथमें ढाल और तलवार ले ली ॥

चिकीर्षुर्दुष्करं कर्म पार्षतः परवीरहा ।
ईषया समतिक्रम्य द्रोणस्य रथमाविशत् ॥ २५ ॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले धृष्टद्युम्न दुष्कर कर्म करना चाहते थे । अतः ईषादण्डके सहारे अपने रथको लाँधकर द्रोणाचार्यके रथपर जा चढ़े ॥ २५ ॥

अतिष्ठद् युगमध्ये स युगसंनहनेषु च ।
जघनार्धेषु चाश्वानां तत् सैन्यान्यभ्यपूजयन् ॥ २६ ॥

वे एक पैर जूएके ठीक बीचमें और दूसरा पैर उस जूएसे सटे हुए (आचार्यके) घोड़ोंके पिछले आधे भागोंपर रखकर खड़े हो गये । उनके इस कार्यकी सभी सैनिकोंने भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ २६ ॥

खड्गेन चरतस्तस्य शोणाश्वानधितिष्ठतः ।
न ददर्शान्तरं द्रोणस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २७ ॥

लाल घोड़ोंपर खड़े हो तलवार घुमाते हुए धृष्टद्युम्नके ऊपर प्रहार करनेके लिये आचार्य द्रोणको थोड़ा-सा भी अवसर नहीं दिखायी दिया । वह अद्भुत-सी बात हुई ॥

यथा श्येनस्य पतनं वनेष्वामिषगृद्धिनः ।
तथैवासीदभीसारस्तस्य द्रोणं जिघांसतः ॥ २८ ॥

जैसे वनमें मांसकी इच्छा रखनेवाला बाज झपट्टा मारता है, उसी प्रकार द्रोणको मार डालनेकी इच्छासे उनपर धृष्टद्युम्नका यह सहसा आक्रमण हुआ था ॥ २८ ॥

ततः शरशतेनास्य शतचन्द्रं समाक्षिपत् ।
द्रोणो द्रुपदपुत्रस्य खड्गं च दशभिः शरैः ॥ २९ ॥

तदनन्तर द्रोणाचार्यने सौ बाण मारकर द्रुपदकुमारकी ढालको, जिसमें सौ चन्द्राकार चिह्न बने हुए थे, काट गिराया और दस बाणोंसे उनकी तलवारके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥

हयांश्चैव चतुःषष्ट्या शराणां जघ्निवान् बली ।
ध्वजं छत्रं च भल्लाभ्यां तथा तौ पार्ष्णिसारथी ॥ ३० ॥

बलवान् आचार्यने चौसठ बाणोंसे धृष्टद्युम्नके चारों घोड़ोंको मार डाला । फिर दो भल्लोंसे ध्वज और छत्र काटकर उनके दोनों पार्श्वरक्षकोंको भी मार गिराया ॥ ३० ॥

अथास्मै त्वरितो बाणमपरं जीवितान्तकम् ।
आकर्णपूर्णं चिक्षेप वज्रं वज्रधरो यथा ॥ ३१ ॥

तदनन्तर तुरंत ही एक दूसरा प्राणान्तकारी बाण कानतक खींचकर उनके ऊपर चलाया, मानो वज्रधारी इन्द्रने वज्र मारा हो ॥ ३१ ॥

तं चतुर्दशभिस्तीक्ष्णैर्बाणैश्चिच्छेद सात्यकिः ।
ग्रस्तमाचार्यमुख्येन धृष्टद्युम्नं व्यमोचयत् ॥ ३२ ॥

उस समय सात्यकिने चौदह तीखे बाण मारकर उस बाणको काट डाला और इस प्रकार आचार्यप्रवरके चंगुलमें फँसे हुए धृष्टद्युम्नको बचा लिया ॥ ३२ ॥

सिंहेनेव मृगं ग्रस्तं नरसिंहेन मारिष ।
द्रोणेन मोचयामास पाञ्चाल्यं शिनिपुङ्गवः ॥ ३३ ॥

पूजनीय नरेश ! जैसे सिंहने किसी मृगको दबोच लिया हो, उसी प्रकार नरसिंह द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नको ग्रस लिया था; परंतु शिनिप्रवर सात्यकिने उन्हें छुड़ा लिया ॥ ३३ ॥

सात्यकिं प्रेक्ष्य गोप्तारं पाञ्चाल्यं च महाहवे ।
शराणां त्वरितो द्रोणः षड्विंशत्या समार्पयत् ॥ ३४ ॥

उस महासमरमें सात्यकि धृष्टद्युम्नके रक्षक हो गये, यह देखकर द्रोणाचार्यने तुरंत ही उनपर छब्बीस बाणोंसे प्रहार किया ॥ ३४ ॥

ततो द्रोणं शिनेः पौत्रो ग्रसन्तमपि सृंजयान् ।
प्रत्यविध्यच्छितैर्बाणैः षड्विंशत्या स्तनान्तरे ॥ ३५ ॥

तब शिनिके पौत्र सात्यकिने सृंजयोंके संहारमें लगे हुए द्रोणाचार्यकी छातीमें छब्बीस तीखे बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३५ ॥

ततः सर्वे रथास्तूर्णं पाञ्चाल्या जयगृद्धिनः ।

सात्वताभिसृते द्रोणे धृष्टद्युम्नमवाक्षिपन् ॥ ३६ ॥

जब द्रोणाचार्य सात्यकिके साथ उलझ गये, तब विजयाभिलाषी समस्त पाञ्चाल रथी तुरंत ही धृष्टद्युम्नको अपने रथपर बिठाकर दूर हटा ले गये ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणधृष्टद्युम्नयुद्धे सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नका युद्धविषयक सत्तानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९७ ॥

अष्टनवतितमोऽध्यायः

द्रोणाचार्य और सात्यकिका अद्भुत युद्ध

धृतराष्ट्र उवाच

बाणे तस्मिन् निकृत्ते तु धृष्टद्युम्ने च मोक्षिते।
तेन वृष्णिप्रवीरेण युयुधानेन संजय ॥ १ ॥
अमर्षितो महेष्वासः सर्वशस्त्रभृतां वरः।
नरव्याघ्रः शिनेः पौत्रे द्रोणः किमकरोद् युधि ॥ २ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! जब वृष्णिवंशके प्रमुख वीर युयुधानने आचार्य द्रोणके उस बाणको काट दिया और धृष्टद्युम्नको प्राणसंकटसे बचा लिया, तब अमर्षमें भरे हुए सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाधनुर्धर नरव्याघ्र द्रोणाचार्यने उस युद्धस्थलमें सात्यकिके प्रति क्या किया? ॥ १-२ ॥

संजय उवाच

सम्प्रद्रुतः क्रोधविषो व्यादितास्यशरासनः।
तीक्ष्णधारेषुदशनः शितनाराचदंष्ट्रवान् ॥ ३ ॥
संरम्भामर्षताम्राक्षो महोरग इव श्वसन्।

संजयने कहा—महाराज! उस समय क्रोध और अमर्षसे लाल आँखें किये द्रोणाचार्यने फुफकारते हुए महानागके समान बड़े वेगसे सात्यकिपर धावा किया। क्रोध ही उस महानागका विष था, खींचा हुआ धनुष फैलाये हुए मुखके समान जान पड़ता था, तीखी धारवाले बाण दाँतोंके समान थे और तेज धारवाले नाराच दाढ़ोंका काम देते थे ॥ ३½ ॥

नरवीरः प्रमुदितः शोणैरश्वैर्महाजवैः ॥ ४ ॥
उत्पतद्भिरिवाकाशे क्रामद्भिरिव पर्वतम्।
रुक्मपुङ्खाञ्छरानस्यन् युयुधानमुपाद्रवत् ॥ ५ ॥

हर्षमें भरे हुए नरवीर द्रोणाचार्यने अपने महान् वेगशाली लाल घोड़ोंद्वारा, जो मानो आकाशमें उड़ रहे और पर्वतको लाँघ रहे थे, सुवर्णमय पंखवाले बाणोंकी वर्षा करते हुए वहाँ युयुधानपर आक्रमण किया ॥ ४–५ ॥

शरपातमहावर्षं रथघोषबलाहकम्।
कार्मुकाकर्षविक्षेपं नाराचबहुविद्युतम् ॥ ६ ॥
शक्तिखड्गाशनिधरं क्रोधवेगसमुत्थितम्।
द्रोणमेघमनावार्यं हयमारुतचोदितम् ॥ ७ ॥

उस समय द्रोणाचार्य अश्वरूपी वायुसे संचालित अनिवार्य मेघके समान हो रहे थे। बाणोंका प्रहार ही उनके द्वारा की जानेवाली महावृष्टि था। रथकी घर्घराहट ही मेघकी गर्जना थी, धनुषका खींचना ही धारावाहिक वृष्टिका साधन था, बहुत-से नाराच ही विद्युत्के समान प्रकाशित होते थे, उस मेघने खड्ग और शक्तिरूपी अशनिको धारण कर रक्खा था और क्रोधके वेगसे ही उसका उत्थान हुआ था ॥ ६-७ ॥

दृष्ट्वैवाभिपतन्तं तं शूरः परपुरंजयः।
उवाच सूतं शैनेयः प्रहसन् युद्धदुर्मदः ॥ ८ ॥

शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले रणदुर्मद शूरवीर सात्यकि द्रोणाचार्यको अपने ऊपर आक्रमण करते देख सारथिसे जोर-जोरसे हँसते हुए बोले—॥ ८ ॥

एतं वै ब्राह्मणं शूरं स्वकर्मण्यनवस्थितम्।
आश्रयं धार्तराष्ट्रस्य राज्ञो दुःखभयापहम् ॥ ९ ॥
शीघ्रं प्रजवितैरश्वैः प्रत्युद्याहि प्रहृष्टवत्।
आचार्यं राजपुत्राणां सततं शूरमानिनम् ॥ १० ॥

'सूत! ये शौर्यसम्पन्न ब्राह्मणदेवता अपने ब्राह्मणोचित कर्ममें स्थिर नहीं हैं। ये धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधनके आश्रय होकर उसके दुःख और भयका निवारण करनेवाले हैं। समस्त राजकुमारोंके ये ही आचार्य हैं और सदा अपनेको शूरवीर मानते हैं। तुम प्रसन्नचित्त होकर अपने वेगशाली अश्वोंद्वारा शीघ्र इनका सामना करनेके लिये चलो' ॥ ९–१० ॥

ततो रजतसंकाशा माधवस्य हयोत्तमाः।
द्रोणस्याभिमुखाः शीघ्रमगच्छन् वातरंहसः ॥ ११ ॥

तदनन्तर चाँदीके समान श्वेत रंगवाले और वायुके समान वेगशाली सात्यकिके उत्तम घोड़े द्रोणाचार्यके सामने शीघ्रतापूर्वक जा पहुँचे ॥ ११ ॥

ततस्तौ द्रोणशैनेयौ युयुधाते परंतपौ।
शरैरनेकसाहस्रैस्ताडयन्तौ परस्परम् ॥ १२ ॥

फिर तो शत्रुओंको संताप देनेवाले द्रोणाचार्य और सात्यकि एक दूसरेपर सहस्रों बाणोंका प्रहार करते हुए युद्ध करने लगे ॥ १२ ॥

इषुजालावृतं व्योम चक्रतुः पुरुषर्षभौ।
पूरयामासतुर्वीरावुभौ दश दिशः शरैः ॥ १३ ॥

उन दोनों पुरुषशिरोमणि वीरोंने आकाशको

बाणोंके समूहसे आच्छादित कर दिया और दसों दिशाओं-को बाणोंसे भर दिया ॥ १३ ॥

मेघाविवातपापाये धाराभिरितरेतरम् ।
न स्म सूर्यस्तदा भाति न ववौ च समीरणः ॥१४॥

जैसे वर्षाकालमें दो मेघ एक दूसरेपर जलकी धाराएँ गिराते हों, उसी प्रकार वे परस्पर बाण-वर्षा कर रहे थे। उस समय न तो सूर्यका पता चलता था और न हवा ही चलती थी ॥ १४ ॥

इषुजालावृतं घोरमन्धकारं समन्ततः ।
अनाधृष्यमिवान्येषां शूराणामभवत् तदा ॥१५॥

चारों ओर बाणोंका जाल-सा बिछ जानेके कारण वहाँ घोर अन्धकार छा गया था। उस समय अन्य शूरवीरोंका वहाँ पहुँचना असम्भव-सा हो गया ॥ १५ ॥

अन्धकारीकृते लोके द्रोणशैनेययोः शरैः ।
तयोः शीघ्रास्त्रविदुषोर्द्रोणसात्वतयोस्तदा ॥ १६ ॥
नान्तरं शरवृष्टीनां ददृशे नरसिंहयोः ।

शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलानेकी कलाको जाननेवाले द्रोणाचार्य तथा सात्वतवंशी सात्यकिके बाणोंसे लोकमें अन्धकार छा जानेपर भी उस समय उन दोनों पुरुषसिंहोंकी बाण-वर्षामें कोई अन्तर नहीं दिखायी देता था ॥ १६½ ॥

इषूणां संनिपातेन शब्दो धाराभिघातजः ॥ १७ ॥
शुश्रुवे शक्रमुक्तानामशनीनामिव स्वनः ।

बाणोंके परस्पर टकरानेसे उनकी धारोंके आघात प्रत्याघातसे जो शब्द होता था, वह इन्द्रके छोड़े हुए वज्रास्त्रोंकी गड़गड़ाहटके समान सुनायी पड़ता था ॥ १७½ ॥

नाराचैर्व्यतिविद्धानां शराणां रूपमाबभौ ॥ १८ ॥
आशीविषविदष्टानां सर्पाणामिव भारत ।

भरतनन्दन ! नाराचोंसे अत्यन्त विद्ध हुए बाणोंका स्वरूप विषधर नागोंके डँसे हुए सर्पोंके समान जान पड़ता था ॥

तयोर्ज्यातलनिर्घोषः शुश्रुवे युद्धशौण्डयोः ॥ १९ ॥
अजस्रं शैलशृङ्गाणां वज्रेणाहन्यतामिव ।

उन दोनों युद्धकुशल वीरोंके धनुषोंकी प्रत्यञ्चाकी टंकारध्वनि ऐसी सुनायी देती थी, मानो पर्वतोंके शिखरोंपर निरन्तर वज्रसे आघात किया जा रहा हो ॥ १९½ ॥

उभयोस्तौ रथौ राजंस्ते चाश्वास्तौ च सारथी ॥ २० ॥
रुक्मपुङ्खैः शरैश्छिन्नाश्चित्ररूपा बभुस्तदा ।

राजन् ! उन दोनोंके वे रथ, वे घोड़े और वे सारथि सुवर्णमय पंखवाले बाणोंसे क्षत-विक्षत होकर उस समय विचित्ररूपसे सुशोभित हो रहे थे ॥ २०½ ॥

निर्मलानामजिह्मानां नाराचानां विशाम्पते ॥ २१ ॥
निर्मुक्ताशीविषाभानां सम्पातोऽभूत् सुदारुणः ।

प्रजानाथ ! केंचुल छोड़कर निकले हुए सर्पोंके समान निर्मल और सीधे जानेवाले नाराचोंका प्रहार वहाँ बड़ा भयंकर प्रतीत होता था ॥ २१½ ॥

उभयोः पतिते छत्रे तथैव पतितौ ध्वजौ ॥ २२ ॥
उभौ रुधिरसिक्ताङ्गावुभौ च विजयैषिणौ ।

दोनोंके छत्र कटकर गिर गये, ध्वज धराशायी हो गये और दोनों ही विजयकी अभिलाषा रखते हुए खूनसे लथपथ हो रहे थे ॥ २२½ ॥

स्रवद्भिः शोणितं गात्रैः प्रस्रुताविव वारणौ ॥ २३ ॥
अन्योन्यमभ्यविध्येतां जीवितान्तकरैः शरैः ।

सारे अङ्गोंसे रक्तकी धारा बहनेके कारण वे दोनों वीर मदवर्षी गजराजोंके समान जान पड़ते थे। वे एक दूसरेको प्राणान्तकारी बाणोंसे बेध रहे थे ॥ २३½ ॥

गर्जितोत्क्रुष्टसंनादाः शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनाः ॥ २४ ॥
उपारमन् महाराज व्याजहार न कश्चन ।

महाराज ! उस समय गरजने, ललकारने और सिंहनाद-के शब्द तथा शङ्खों और दुन्दुभियोंके घोष बंद हो गये थे। कोई बातचीततक नहीं करता था ॥ २४½ ॥

तूष्णीम्भूतान्यनीकानि योधा युद्धादुपारमन् ॥ २५ ॥
ददर्श द्वैरथं ताभ्यां जातकौतूहलो जनः ।

सारी सेनाएँ मौन थीं, योद्धा युद्धसे विरत हो गये थे, सब लोग कौतूहलवश उन दोनोंके द्वैरथ युद्धका दृश्य देखने लगे ॥ २५½ ॥

रथिनो हस्तियन्तारो हयारोहाः पदातयः ॥ २६ ॥
अवैक्षन्ताचलैर्नेत्रैः परिवार्य नरर्षभौ ।

रथी, महावत, घुड़सवार और पैदल सभी उन दोनों नरश्रेष्ठ वीरोंको घेरकर उन्हें एकटक नेत्रोंसे निहारने लगे ॥

हस्त्यनीकान्यतिष्ठन्त तथानीकानि वाजिनाम् ॥ २७ ॥
तथैव रथवाहिन्यः प्रतिव्यूह्य व्यवस्थिताः ।

हाथियोंकी सेनाएँ चुपचाप खड़ी थीं, घुड़सवार सैनिकोंकी भी यही दशा थी तथा रथसेनाएँ भी व्यूह बनाकर वहाँ स्थिरभावसे खड़ी थीं ॥ २७½ ॥

मुक्ताविद्रुमचित्रैश्च मणिकाञ्चनभूषितैः ॥ २८ ॥
ध्वजैराभरणैश्चित्रैः कवचैश्च हिरण्मयैः ।
वैजयन्तीपताकाभिः परिस्तोमाङ्गकम्बलैः ॥ २९ ॥
विमलैर्निशितैः शस्त्रैर्हयानां च प्रकीर्णकैः ।
जातरूपमयीभिश्च राजतीभिश्च मूर्धसु ॥ ३० ॥
गजानां कुम्भमालाभिर्दन्तवेष्टैश्च भारत ।
सबलाकाः सखद्योताः सैरावतशतह्रदाः ॥ ३१ ॥
अदृश्यन्तोष्णपर्याये मेघानामिव वागुराः ।

भारत ! मोती और मूँगोंसे चित्रित तथा मणियों और सुवर्णों-से विभूषित ध्वज, विचित्र आभूषण, सुवर्णमय कवच, वैजयन्ती,

पताका, हाथियोंके झूल और कम्बल, चमचमाते हुए तीखे शस्त्र, घोड़ोंकी पीठपर बिछाये जानेवाले वस्त्र, हाथियोंके कुम्भस्थलमें और मस्तकोंपर सुशोभित होनेवाली सोने-चाँदीकी मालाएँ तथा दन्तवेष्टन—इन सब वस्तुओंके कारण उभयपक्षकी सेनाएँ वर्षाकालमें बगलोंकी पाँति, खद्योत, ऐरावत और बिजलियोंसे युक्त मेघसमूहोंके समान दृष्टिगोचर हो रही थीं ॥ २८–३१½ ॥

अपश्यन्नस्मदीयाश्च ते च यौधिष्ठिराः स्थिताः ॥ ३२ ॥
तद् युद्धं युयुधानस्य द्रोणस्य च महात्मनः ।

राजन्! हमारी और युधिष्ठिरकी सेनाके सैनिक वहाँ खड़े होकर महामना द्रोण और सात्यकिका वह युद्ध देख रहे थे॥

विमानाग्रगता देवा ब्रह्मसोमपुरोगमाः ॥ ३३ ॥
सिद्धचारणसंघाश्च विद्याधरमहोरगाः ।

ब्रह्मा और चन्द्रमा आदि सब देवता विमानोंपर बैठकर वहाँ युद्ध देखनेके लिये आये थे। उनके साथ ही सिद्धों और चारणोंके समूह, विद्याधर और बड़े-बड़े नागगण भी थे ॥

गतप्रत्यागताक्षेपैश्चित्रैरस्त्रविघातिभिः ॥ ३४ ॥
विविधैर्विस्मयं जग्मुस्तयोः पुरुषसिंहयोः ।

वे सब लोग उन दोनों पुरुषसिंहोंके विचित्र गमन-प्रत्यागमन, आक्षेप तथा नाना प्रकारके अस्त्रनिवारक व्यापारोंसे आश्चर्यचकित हो रहे थे ॥ ३४½ ॥

हस्तलाघवमस्त्रेषु दर्शयन्तौ महाबलौ ॥ ३५ ॥
अन्योन्यमभिविध्येतां शरैस्तौ द्रोणसात्यकी ।

महावीर द्रोणाचार्य और सात्यकि अस्त्र चलानेमें अपने हाथोंकी फुर्ती दिखाते हुए बाणोंद्वारा एक दूसरेको बेध रहे थे॥

ततो द्रोणस्य दाशार्हः शरांश्चिच्छेद संयुगे ॥ ३६ ॥
पत्रिभिः सुदृढैराशु धनुश्चैव महाद्युतेः ।

इसी बीचमें सात्यकिने महातेजस्वी द्रोणाचार्यके धनुष और बाणोंको पंखयुक्त सुदृढ़ बाणोंद्वारा युद्धस्थलमें शीघ्र ही काट डाला ॥ ३६½ ॥

निमेषान्तरमात्रेण भारद्वाजोऽपरं धनुः ॥ ३७ ॥
सज्यं चकार तदपि चिच्छेदास्य च सात्यकिः ।

तब भरद्वाजनन्दन द्रोणने पलक मारते-मारते दूसरा धनुष हाथमें लेकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी; परंतु सात्यकिने उनके उस धनुषको भी काट डाला ॥ ३७½ ॥

ततस्त्वरन् पुनर्द्रोणो धनुर्हस्तो व्यतिष्ठत ॥ ३८ ॥
सज्यं सज्यं धनुश्चास्य चिच्छेद निशितैः शरैः ।

तब द्रोणाचार्य पुनः बड़ी उतावलीके साथ दूसरा धनुष हाथमें लेकर खड़े हो गये; परंतु ज्यों ही वे धनुषपर डोरी चढ़ाते, त्यों ही सात्यकि अपने तीखे बाणोंद्वारा उसे काट देते थे ॥ ३८½ ॥

एवमेकशतं छिन्नं धनुषां दृढधन्विना ॥ ३९ ॥
न चान्तरं तयोर्दृष्टं संधाने छेदनेऽपि च ।

इस प्रकार सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले सात्यकिने आचार्यके एक सौ धनुष काट डाले; परंतु कब वे संधान करते हैं और सात्यकि कब उस धनुषको काट देते हैं, उन दोनोंके इस कार्यमें किसीको कोई अन्तर नहीं दिखायी दिया॥

ततोऽस्य संयुगे द्रोणो दृष्ट्वा कर्मातिमानुषम् ॥ ४० ॥
युयुधानस्य राजेन्द्र मनसैतदचिन्तयत् ।

राजेन्द्र! तदनन्तर रणक्षेत्रमें सात्यकिके उस अमानुषिक पराक्रमको देखकर द्रोणाचार्यने मन-ही-मन इस प्रकार विचार किया ॥ ४०½ ॥

एतदस्त्रबलं रामे कार्तवीर्ये धनंजये ॥ ४१ ॥
भीष्मे च पुरुषव्याघ्रे यदिदं सात्वतां वरे ।
तं चास्य मनसा द्रोणः पूजयामास विक्रमम् ॥ ४२ ॥

सात्वतकुलके श्रेष्ठ वीर सात्यकिमें जो यह अस्त्रबल दिखायी देता है, ऐसा तो केवल परशुराममें, कार्तवीर्य अर्जुनमें, धनंजयमें तथा पुरुषसिंह भीष्ममें ही देखा-सुना गया है। द्रोणाचार्यने मन-ही-मन उनके पराक्रमकी बड़ी प्रशंसा की ॥ ४१-४२ ॥

लाघवं वासवस्येव सम्प्रेक्ष्य द्विजसत्तमः ।
तुतोषास्त्रविदां श्रेष्ठस्तथा देवाः सवासवाः ॥ ४३ ॥

इन्द्रके समान सात्यकिके उस हस्तलाघव तथा पराक्रमको देखकर अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ विप्रवर द्रोणाचार्य और इन्द्र आदि देवता भी बड़े प्रसन्न हुए ॥ ४३ ॥

न तामालक्षयामासुर्लघुतां शीघ्रचारिणः ।
देवाश्च युयुधानस्य गन्धर्वाश्च विशाम्पते ॥ ४४ ॥
सिद्धचारणसंघाश्च विदुर्द्रोणस्य कर्म तत् ।

प्रजानाथ! रणभूमिमें शीघ्रतापूर्वक विचरनेवाले सात्यकिकी उस फुर्तीको देवताओं, गन्धर्वों, सिद्धों और चारणसमूहोंने पहले कभी नहीं देखा था। वे जानते थे कि केवल द्रोणाचार्य ही वैसा पराक्रम कर सकते हैं (परंतु उस दिन उन्होंने सात्यकिका पराक्रम भी प्रत्यक्ष देख लिया) ॥४४½॥

ततोऽन्यद् धनुरादाय द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ४५ ॥
अस्त्रैरस्त्रविदां श्रेष्ठो योधयामास भारत ।

भारत! तत्पश्चात् अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ क्षत्रियसंहारक द्रोणाचार्यने दूसरा धनुष हाथमें लेकर विभिन्न अस्त्रोंद्वारा युद्ध आरम्भ किया ॥ ४५½ ॥

तस्यास्त्राण्यस्त्रमायाभिः प्रतिहत्य स सात्यकिः ॥ ४६ ॥
जघान निशितैर्बाणैस्तदद्भुतमिवाभवत् ।

सात्यकिने अपने अस्त्रोंकी मायासे आचार्यके अस्त्रोंका निवारण करके उन्हें तीखे बाणोंसे घायल कर दिया। वह अद्भुत-सी घटना हुई ॥ ४६½ ॥

तस्यातिमानुषं कर्म दृष्ट्वान्यैरसमं रणे ॥ ४७ ॥

युक्तं योगेन योगज्ञास्तावकाः समपूजयन् ।

उस रणक्षेत्रमें सात्यकिके उस युक्तियुक्त अलौकिक कर्मको, जिसकी दूसरोंसे कोई तुलना नहीं थी, देखकर आपके रणकौशलवेत्ता सैनिक उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ॥ ४७½ ॥

यदस्त्रमस्यति द्रोणस्तदेवास्यति सात्यकिः ॥ ४८ ॥
तमाचार्योऽप्यसम्भ्रान्तोऽयोधयच्छत्रुतापनः ।

द्रोणाचार्य जिस अस्त्रका प्रयोग करते, उसीका सात्यकि भी करते थे । शत्रुओंको संताप देनेवाले आचार्य द्रोण भी घबराहट छोड़कर सात्यकिसे युद्ध करते रहे ॥ ४८½ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज धनुर्वेदस्य पारगः ॥ ४९ ॥
वधाय युयुधानस्य दिव्यमस्त्रमुदैरयत् ।

महाराज ! तदनन्तर धनुर्वेदके पारङ्गत विद्वान् द्रोणाचार्यने कुपित हो सात्यकिके वधके लिये एक दिव्यास्त्र प्रकट किया ॥ ४९½ ॥

तदाग्नेयं महाघोरं रिपुघ्नमुपलक्ष्य सः ॥ ५० ॥
दिव्यमस्त्रं महेष्वासो वारुणं समुदैरयत् ।

शत्रुओंका नाश करनेवाले उस अत्यन्त भयंकर आग्नेयास्त्रको देखकर महाधनुर्धर सात्यकिने भी वारुणनामक दिव्यास्त्रका प्रयोग किया ॥ ५०½ ॥

हाहाकारो महानासीद् दृष्ट्वा दिव्यास्त्रधारिणौ ॥ ५१ ॥
न विचेरुस्तदाकाशे भूतान्याकाशगाम्यपि ।

उन दोनोंको दिव्यास्त्र धारण किये देख वहाँ महान् हाहाकार मच गया । उस समय आकाशचारी प्राणी भी आकाशमें विचरण नहीं करते थे ॥ ५१½ ॥

अस्त्रे ते वारुणाग्नेये ताभ्यां बाणसमाहिते ॥ ५२ ॥
न यावदभ्यपद्येतां व्यावर्तदथ भास्करः ।

वे वारुण और आग्नेय दोनों अस्त्र उन दोनोंके द्वारा अपने बाणोंमें स्थापित होकर जबतक एक दूसरेके प्रभावसे प्रतिहत नहीं हो गये, तभीतक भगवान् सूर्य दक्षिणसे पश्चिमके आकाशमें ढल गये ॥ ५२½ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा भीमसेनश्च पाण्डवः ॥ ५३ ॥
नकुलः सहदेवश्च पर्यरक्षन्त सात्यकिम् ।

तब राजा युधिष्ठिर, पाण्डुकुमार भीमसेन, नकुल और सहदेव सब ओरसे सात्यकिकी रक्षा करने लगे ॥ ५३½ ॥

धृष्टद्युम्नमुखैः सार्धं विराटश्च सकेकयः ॥ ५४ ॥
मत्स्याः शाल्वेयसेनाश्च द्रोणमाजग्मुरञ्जसा ।

धृष्टद्युम्न आदि वीरोंके साथ विराट, केकयराजकुमार, मत्स्यदेशीय सैनिक तथा शाल्वदेशकी सेनाएँ—ये सब-के-सब अनायास ही द्रोणाचार्यपर चढ़ आये ॥ ५४½ ॥

दुःशासनं पुरस्कृत्य राजपुत्राः सहस्रशः ॥ ५५ ॥
द्रोणमभ्युपपद्यन्त सपत्नैः परिवारितम् ।

उधरसे सहस्रों राजकुमार दुःशासनको आगे करके शत्रुओंसे घिरे हुए द्रोणाचार्यके पास उनकी रक्षाके लिये आ पहुँचे ॥ ५५½ ॥

ततो युद्धमभूद् राजंस्तेषां तव च धन्विनाम् ॥ ५६ ॥
रजसा संवृते लोके शरजालसमावृते ।

राजन् ! तदनन्तर पाण्डवोंके और आपके धनुर्धरोंका परस्पर युद्ध होने लगा । उस समय सब लोग धूलसे आवृत और बाणसमूहसे आच्छादित हो गये थे ॥ ५६½ ॥

सर्वमाविग्नमभवन्न प्राज्ञायत किंचन ।
सैन्येन रजसा ध्वस्ते निर्मर्यादमवर्तत ॥ ५७ ॥

वहाँका सब कुछ उद्विग्न हो रहा था । सेनाद्वारा उड़ायी हुई धूलसे ध्वस्त होनेके कारण किसीको कुछ ज्ञात नहीं होता था । वहाँ मर्यादाशून्य युद्ध चल रहा था ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणसात्यकियुद्धे अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें द्रोण और सात्यकिका युद्धविषयक अट्ठानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९८ ॥

एकोनशततमोऽध्यायः

अर्जुनके द्वारा तीव्र गतिसे कौरवसेनामें प्रवेश, विन्द और अनुविन्दका वध तथा अद्भुत जलाशयका निर्माण

संजय उवाच

(वर्तमाने तदा युद्धे द्रोणस्य सह पाण्डुभिः ॥)
विवर्तमाने त्वादित्ये तत्रास्तशिखरं प्रति ।
रजसा कीर्यमाणे च मन्दीभूते दिवाकरे ॥ १ ॥
तिष्ठतां युध्यमानानां पुनरावर्ततामपि ।
भज्यतां जयतां चैव जगाम तदहः शनैः ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! जब द्रोणाचार्यका पाण्डवोंके साथ युद्ध हो रहा था और सूर्य अस्ताचलके शिखरकी ओर ढल चुके थे, उस समय धूलसे आवृत होनेके कारण दिवाकरकी रश्मियाँ मन्द दिखायी देने लगी थीं । योद्धाओंमेंसे कोई तो खड़े थे, कोई युद्ध करते थे, कोई भागकर पुनः पीछे लौटते थे और कोई विजयी हो रहे थे । इस प्रकार

उन सब लोगोंका वह दिन धीरे-धीरे बीतता चला जा रहा था ॥ १-२ ॥

तथा तेषु विषक्तेषु सैन्येषु जयगृद्धिषु ।
अर्जुनो वासुदेवश्च सैन्धवायैव जग्मतुः ॥ ३ ॥

विजयकी अभिलाषा रखनेवाली वे समस्त सेनाएँ जब युद्धमें इस प्रकार अनुरक्त हो रही थीं, तब अर्जुन और श्रीकृष्ण सिन्धुराज जयद्रथको प्राप्त करनेके लिये ही आगे बढ़ते चले गये ॥ ३ ॥

रथमार्गप्रमाणं तु कौन्तेयो निशितैः शरैः ।
चकार यत्र पन्थानं ययौ येन जनार्दनः ॥ ४ ॥

कुन्तीकुमार अर्जुन अपने तीखे बाणोंद्वारा वहाँ रथके जाने योग्य रास्ता बना लेते थे, जिससे श्रीकृष्ण रथ लिये आगे बढ़ जाते थे ॥ ४ ॥

यत्र यत्र रथो याति पाण्डवस्य महात्मनः ।
तत्र तत्रैव दीर्यन्ते सेनास्तव विशाम्पते ॥ ५ ॥

प्रजानाथ ! महामना पाण्डुनन्दन अर्जुनका रथ जहाँ-जहाँ जाता था, वहीं-वहीं आपकी सेनामें दरार पड़ जाती थी ॥५॥

रथशिक्षां तु दाशार्हो दर्शयामास वीर्यवान् ।
उत्तमाधममध्यानि मण्डलानि विदर्शयन् ॥ ६ ॥

दशार्हवंशी परम पराक्रमी भगवान् श्रीकृष्ण उत्तम, मध्यम और अधम तीनों प्रकारके मण्डल दिखाते हुए अपनी उत्तम रथ-शिक्षाका प्रदर्शन करते थे ॥ ६ ॥

ते तु नामाङ्किताः पीताः कालज्वलनसंनिभाः ।
स्नायुनद्धाः सुपर्वाणः पृथवो दीर्घगामिनः ॥ ७ ॥
वैणवाश्चायसाश्चोग्रा ग्रसन्तो विविधानरीन् ।
रुधिरं पतगैः सार्धं प्राणिनां पपुराहवे ॥ ८ ॥

अर्जुनके बाणोंपर उनका नाम अङ्कित था। उनपर पानी-चढ़ाया गया था। वे कालाग्निके समान भयंकर, ताँतमें बँधे हुए, सुन्दर पंखवाले, मोटे तथा दूरतक जानेवाले थे। उनमेंसे कुछ तो बाँसके बने हुए थे और कुछ लोहेके। वे सभी भयंकर थे और नाना प्रकारके शत्रुओंका संहार करते हुए पक्षियोंके साथ उड़कर युद्धस्थलमें प्राणियोंका रक्त पीते थे ॥ ७-८ ॥

रथस्थितोऽग्रतः क्रोशं यानस्यरयर्जुनः शरान् ।
रथे क्रोशमतिक्रान्ते तस्य ते घ्नन्ति शात्रवान् ॥ ९ ॥

रथपर बैठे हुए अर्जुन अपने आगे एक कोसकी दूरीतक जिन बाणोंको फेंकते थे, वे बाण उनके शत्रुओंका जबतक संहार करते, तबतक उनका रथ एक कोस और आगे निकल जाता था ॥ ९ ॥

तार्क्ष्यमारुतरंहोभिर्वाजिभिः साधुवाहिभिः ।
तदागच्छद्धृषीकेशः कृत्स्नं विस्मापयञ्जगत् ॥ १० ॥

उस समय भगवान् हृषीकेश अच्छी प्रकारसे रथका भार वहन करनेवाले गरुड़ एवं वायुके समान वेगशाली घोड़ोंद्वारा सम्पूर्ण जगत्को आश्चर्यचकित करते हुए आगे बढ़ रहे थे ॥ १० ॥

न तथा गच्छति रथस्तपनस्य विशाम्पते ।
नेन्द्रस्य न तु रुद्रस्य नापि वैश्रवणस्य च ॥ ११ ॥

प्रजानाथ ! सूर्य, इन्द्र, रुद्र तथा कुबेरका भी रथ वैसी तीव्र गतिसे नहीं चलता था, जैसे अर्जुनका चलता था ॥ ११ ॥

नान्यस्य समरे राजन् गतपूर्वस्तथा रथः ।
यथा ययावर्जुनस्य मनोऽभिप्रायशीघ्रगः ॥ १२ ॥

राजन् ! समरभूमिमें दूसरे किसीका रथ पहले कभी उस प्रकार तीव्र गतिसे नहीं चला था, जैसे अर्जुनका रथ मनकी अभिलाषाके अनुरूप शीघ्र गतिसे चलता था ॥ १२ ॥

प्रविश्य तु रणे राजन् केशवः परवीरहा ।
सेनामध्ये हयांस्तूर्णं चोदयामास भारत ॥ १३ ॥

महाराज ! भरतनन्दन ! शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने रणभूमिमें सेनाके भीतर प्रवेश करके अपने घोड़ोंको तीव्र वेगसे हाँका ॥ १३ ॥

ततस्तस्य रथौघस्य मध्यं प्राप्य हयोत्तमाः ।
कृच्छ्रेण रथमूहुस्तं क्षुत्पिपासासमन्विताः ॥ १४ ॥

तदनन्तर रथियोंके समूहके मध्यभागमें पहुँचकर भूख और प्याससे पीड़ित हुए वे उत्तम घोड़े बड़ी कठिनाईसे उस रथका भार वहन कर पाते थे ॥ १४ ॥

क्षताश्च बहुभिः शस्त्रैर्युद्धशौण्डैरनेकशः ।
मण्डलानि विचित्राणि विचेरुस्ते मुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥

युद्धकुशल योद्धाओंने बहुत-से शस्त्रोंद्वारा उन्हें अनेक बार घायल कर दिया और वे क्षत-विक्षत हो बारंबार विचित्र मण्डलाकार गतिसे विचरण करते रहे ॥ १५ ॥

हतानां वाजिनागानां रथानां च नरैः सह ।
उपरिष्टादतिक्रान्ताः शैलाभानां सहस्रशः ॥ १६ ॥

रण-भूमिमें सहस्रों पर्वताकार हाथी, घोड़े, रथ और पैदल मनुष्य मरे पड़े थे। उन सबको अर्जुनके घोड़े ऊपर-ही-ऊपर लाँघ जाते थे ॥ १६ ॥

(श्रमेण महता युक्तास्ते हया वातरंहसः ।
मन्दवेगगता राजन् संवृत्तास्तत्र संयुगे ॥)

राजन् ! वे वायुके समान वेगशाली अश्व उस युद्धस्थलमें अधिक परिश्रमसे थक जानेके कारण मन्दगतिसे चलने लगे ॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरावावन्त्यौ भ्रातरौ नृप ।
सहसेनौ समार्च्छेतां पाण्डवं क्लान्तवाहनम् ॥ १७ ॥

नरेश्वर ! इसी बीचमें अवन्तीके वीर राजकुमार दोनों

भाई विन्द और अनुविन्द थके हुए घोड़ोंवाले पाण्डुनन्दन अर्जुनका सामना करनेके लिये अपनी सेनाके साथ आये ॥ १७ ॥

तावर्जुनं चतुःषष्ट्या सप्तत्या च जनार्दनम्।
शराणां च शतैरश्वानविध्येतां मुदान्वितौ ॥ १८ ॥

उन दोनोंने अर्जुनको चौसठ और श्रीकृष्णको सत्तर बाण मारे तथा उनके घोड़ोंको सौ बाणोंसे घायल कर दिया। ऐसा करके उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ १८ ॥

तावर्जुनो महाराज नवभिर्नतपर्वभिः।
आजघान रणे क्रुद्धो मर्मज्ञो मर्मभेदिभिः ॥ १९ ॥

महाराज ! मर्मको जाननेवाले अर्जुनने रणक्षेत्रमें कुपित होकर झुकी हुई गाँठवाले नौ मर्मभेदी बाणोंद्वारा उन दोनोंको चोट पहुँचायी ॥ १९ ॥

ततस्तौ तु शरौघेण बीभत्सुं सहकेशवम्।
आच्छादयेतां संरब्धौ सिंहनादं च चक्रतुः ॥ २० ॥

तब उन दोनों भाइयोंने कुपित हो श्रीकृष्णसहित अर्जुनको अपने बाणसमूहोंसे आच्छादित कर दिया और बड़े जोरसे सिंहनाद किया ॥ २० ॥

तयोस्तु धनुषी चित्रे भल्लाभ्यां श्वेतवाहनः।
चिच्छेद समरे तूर्णं ध्वजौ च कनकोज्ज्वलौ ॥ २१ ॥

तदनन्तर श्वेत घोड़ोंवाले अर्जुनने समराङ्गणमें दो बाणोंद्वारा उनके दोनों विचित्र धनुषों और सुवर्णके समान प्रकाशित होनेवाले दोनों ध्वजोंको भी तुरंत ही काट डाला ॥ २१ ॥

अथान्ये धनुषी राजन् प्रगृह्य समरे तदा।
पाण्डवं भृशसंक्रुद्धावर्दयामासतुः शरैः ॥ २२ ॥

राजन् ! फिर वे दोनों भाई अत्यन्त कुपित हो उठे और उस समय समराङ्गणमें दूसरे धनुष लेकर उन्होंने बाणोंद्वारा पाण्डुकुमार अर्जुनको गहरी पीड़ा दी ॥ २२ ॥

तयोस्तु भृशसंक्रुद्धः शराभ्यां पाण्डुनन्दनः।
धनुषी चिच्छिदे तूर्णं भूय एव धनंजयः ॥ २३ ॥

यह देख पाण्डुनन्दन धनंजय अत्यन्त क्रोधसे जल उठे और दो बाण मारकर तुरंत ही उन्होंने उन दोनोंके धनुष पुनः काट डाले ॥ २३ ॥

तथान्यैर्विशिखैस्तूर्णं रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः।
जघानाश्वांस्तथा सूतौ पार्ष्णी च सपदानुगौ ॥ २४ ॥

फिर सुवर्णमय पंखोंवाले और शानपर चढ़ाकर तेज किये हुए दूसरे बाणोंद्वारा उनके घोड़ोंको एवं दोनों सारथियों, पार्श्वरक्षकों तथा पदानुगामी सेवकोंको भी शीघ्र ही मार डाला ॥ २४ ॥

ज्येष्ठस्य च शिरः कायात् क्षुरप्रेण न्यकृन्तत।
स पपात हतः पृथ्व्यां वातरुग्ण इव द्रुमः ॥ २५ ॥

इसके बाद एक क्षुरप्रद्वारा बड़े भाई विन्दका मस्तक धड़से काट दिया। विन्द आँधीके उखाड़े हुए वृक्षके समान मरकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २५ ॥

विन्दं तु निहतं दृष्ट्वा ह्यनुविन्दः प्रतापवान्।
हताश्वं रथमुत्सृज्य गदां गृह्य महाबलः ॥ २६ ॥
अभ्यवर्तत संग्रामे भ्रातुर्वधमनुस्मरन्।

विन्दको मारा गया देख महाबली और प्रतापी अनुविन्द अपने भाईके वधका बारंबार चिन्तन करता हुआ अश्वहीन रथको त्यागकर हाथमें गदा ले संग्रामभूमिमें डटा रहा ॥ २६½ ॥

गदया रथिनां श्रेष्ठो नृत्यन्निव महारथः ॥ २७ ॥
अनुविन्दस्तु गदया ललाटे मधुसूदनम्।
स्पृष्ट्वा नाकम्पयत् क्रुद्धो मैनाकमिव पर्वतम् ॥ २८ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ महारथी अनुविन्दने कुपित हो नृत्य-सा करते हुए गदाद्वारा मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्णके ललाटमें आघात किया; परंतु मैनाकपर्वतके समान श्रीकृष्णको कम्पित न कर सका ॥ २७-२८ ॥

तस्यार्जुनः शरैः षड्भिर्ग्रीवां पादौ भुजौ शिरः।
निचकर्त स संछिन्नः पपाताद्रिचयो यथा ॥ २९ ॥

तब अर्जुनने छः बाणोंद्वारा उसकी गर्दन, दोनों पैरों दोनों भुजाओं तथा मस्तकको भी काट डाला। इस प्रकार छिन्न-भिन्न होकर वह पर्वतसमूहके समान धराशायी हो गया ॥ २९ ॥

ततस्तौ निहतौ दृष्ट्वा तयो राजन् पदानुगाः।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धाः किरन्तः शतशः शरान् ॥ ३० ॥

राजन् ! तब उन दोनों भाइयोंको मारा गया देख उनके सेवकगण अत्यन्त कुपित हो अर्जुनपर सैकड़ों बाणोंकी वर्षा करते हुए टूट पड़े ॥ ३० ॥

तानर्जुनः शरैस्तूर्णं निहत्य भरतर्षभ।
व्यरोचत यथा वह्निर्दावं दग्ध्वा हिमात्यये ॥ ३१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! अर्जुन बाणोंद्वारा तुरंत ही उन सबका संहार करके ग्रीष्मऋतुमें वनको जलाकर प्रकाशित होनेवाले अग्निदेवके समान सुशोभित हुए ॥ ३१ ॥

तयोः सेनामतिक्रम्य कृच्छ्रादिव धनंजयः।
विबभौ जलदं हित्वा दिवाकर इवोदितः ॥ ३२ ॥

उन दोनोंकी सेनाका बड़ी कठिनाईसे उल्लङ्घन करके अर्जुन मेघोंका आवरण भेदकर उदित हुए सूर्यके समान प्रकाशित होने लगे ॥ ३२ ॥

तं दृष्ट्वा कुरवस्त्रस्ताः प्रहृष्टाश्चाभवन् पुनः।
अभ्यवर्तन्त पार्थं च समन्ताद् भरतर्षभ ॥ ३३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उन्हें देखकर कौरवसैनिक पहले तो भयभीत हुए। फिर प्रसन्न भी हो गये। वे चारों ओरसे कुन्तीकुमारका सामना करनेके लिये डट गये ॥ ३३ ॥

श्रान्तं चैनं समालक्ष्य ज्ञात्वा दूरे च सैन्धवम्।

सिंहनादेन महता सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ३४ ॥

अर्जुनको थका हुआ देख और सिन्धुराज जयद्रथको उनसे बहुत दूर जानकर आपके सैनिकोंने महान् सिंहनाद करते हुए उन्हें सब ओरसे घेर लिया ॥ ३४ ॥

तांस्तु दृष्ट्वा सुसंरब्धानुत्स्मयन् पुरुषर्षभः ।
शनकैरिव दाशार्हमर्जुनो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३५ ॥

उन सबको क्रोधमें भरा देख पुरुषशिरोमणि अर्जुनने मुसकराते हुए धीरे-धीरे भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—॥ ३५ ॥

शरार्दिताश्च ग्लानाश्च हया दूरे च सैन्धवः ।
किमिहानन्तरं कार्यं ज्यायिष्ठं तव रोचते ॥ ३६ ॥

'मेरे घोड़े बाणोंसे पीड़ित हो बहुत थक गये हैं और सिन्धुराज जयद्रथ अभी बहुत दूर है। अतः इस समय यहाँ कौन-सा कार्य आपको श्रेष्ठ जान पड़ता है ॥ ३६ ॥

ब्रूहि कृष्ण यथातत्त्वं त्वं हि प्राज्ञतमः सदा ।
भवन्नेत्रा रणे शत्रून् विजेष्यन्तीह पाण्डवाः ॥ ३७ ॥

'श्रीकृष्ण ! आप ही सदा सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी हैं। अतः मुझे यथार्थ बात बताइये। आपको नायक बनाकर ही पाण्डव इस रणक्षेत्रमें शत्रुओंपर विजयी होंगे ॥ ३७ ॥

मम त्वनन्तरं कृत्यं यद् वै तत् त्वं निबोध मे ।
हयान् विमुच्य हि सुखं विशल्यान् कुरु माधव ॥ ३८ ॥

'माधव ! मेरी दृष्टिमें इस समय जो कर्तव्य है, वह बताता हूँ, आप मुझसे सुनिये। घोड़ोंको खोलकर इन्हें सुख पहुँचानेके लिये इनके शरीरसे बाण निकाल दीजिये' ॥ ३८ ॥

एवमुक्तस्तु पार्थेन केशवः प्रत्युवाच तम् ।
ममाप्येतन्मतं पार्थ यदिदं ते प्रभाषितम् ॥ ३९ ॥

अर्जुनके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया—'पार्थ ! तुमने इस समय जो बात कही है, यही मुझे भी अभीष्ट है' ॥ ३९ ॥

अर्जुन उवाच

अहमावारयिष्यामि सर्वसैन्यानि केशव ।
त्वमप्यत्र यथान्यायं कुरु कार्यमनन्तरम् ॥ ४० ॥

अर्जुन बोले—केशव ! मैं इन समस्त सेनाओंको रोक रक्खूँगा। आप भी यहाँ इस समय करनेयोग्य यथोचित कार्य सम्पन्न करें ॥ ४० ॥

संजय उवाच

सोऽवतीर्य रथोपस्थादसम्भ्रान्तो धनंजयः ।
गाण्डीवं धनुरादाय तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ ४१ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! अर्जुन बिना किसी घबराहटके रथकी बैठकसे उतर पड़े और गाण्डीव धनुष हाथमें लेकर पर्वतके समान अविचल भावसे खड़े हो गये ॥ ४१ ॥

तमभ्यधावन् क्रोशन्तः क्षत्रिया जयकाङ्क्षिणः ।
इदं छिद्रमिति ज्ञात्वा धरणीस्थं धनंजयम् ॥ ४२ ॥

धनंजयको धरतीपर खड़ा जान 'यही अवसर है' ऐसा कहते हुए विजयाभिलाषी क्षत्रिय हल्ला मचाते हुए उनकी ओर दौड़े ॥ ४२ ॥

तमेकं रथवंशेन महता पर्यवारयन् ।
विकर्षन्तश्च चापानि विसृजन्तश्च सायकान् ॥ ४३ ॥

उन सबने महान् रथसमूहके द्वारा एकमात्र अर्जुनको चारों ओर घेर लिया। वे सब-के-सब धनुष खींचते और उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करते थे ॥ ४३ ॥

शस्त्राणि च विचित्राणि क्रुद्धास्तत्र व्यदर्शयन् ।
छादयन्तः शरैः पार्थं मेघा इव दिवाकरम् ॥ ४४ ॥

जैसे बादल सूर्यको ढक लेते हैं, उसी प्रकार बाणोंद्वारा कुन्तीकुमार अर्जुनको आच्छादित करते हुए कुपित कौरव-सैनिक वहाँ विचित्र अस्त्र-शस्त्रोंका प्रदर्शन करने लगे ॥४४॥

अभ्यद्रवन्त वेगेन क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् ।
नरसिंहं रथोदाराः सिंहं मत्ता इव द्विपाः ॥ ४५ ॥

जैसे मतवाले हाथी सिंहपर धावा करते हों, उसी प्रकार वे श्रेष्ठ रथी क्षत्रिय क्षत्रियशिरोमणि नरसिंह अर्जुनपर बड़े वेगसे टूट पड़े थे ॥ ४५ ॥

तत्र पार्थस्य भुजयोर्महद्बलमदृश्यत ।
यत् क्रुद्धो बहुलाः सेनाः सर्वतः समवारयत् ॥ ४६ ॥

उस समय वहाँ अर्जुनकी दोनों भुजाओंका महान् बल देखनेमें आया। उन्होंने कुपित होकर उन विशाल सेनाओंको सब ओर जहाँ-की-तहाँ रोक दिया ॥ ४६ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्विषतां सर्वतो विभुः ।
इषुभिर्बहुभिस्तूर्णं सर्वानेव समावृणोत् ॥ ४७ ॥

शक्तिशाली अर्जुनने अपने अस्त्रोंद्वारा शत्रुओंके सम्पूर्ण अस्त्रोंका सब ओरसे निवारण करके अपने बहुसंख्यक बाणोंद्वारा तुरंत उन सबको ही आच्छादित कर दिया ॥ ४७ ॥

तत्रान्तरिक्षे बाणानां प्रगाढानां विशाम्पते ।
संघर्षेण महार्चिष्मान् पावकः समजायत ॥ ४८ ॥

प्रजानाथ ! वहाँ अन्तरिक्षमें ठसाठस भरे हुए बाणोंकी रगड़से भारी लपटोंसे युक्त आग प्रकट हो गयी ॥ ४८ ॥

तत्र तत्र महेष्वासैः श्वसद्भिः शोणितोक्षितैः ।
हयैर्नागैश्च सम्भिन्नैर्नदद्भिश्चारिकर्षणैः ॥ ४९ ॥
संरब्धैश्चारिभिर्वीरैः प्रार्थयद्भिर्जयं मृधे ।
एकस्थैर्बहुभिः क्रुद्धैरूष्मेव समजायत ॥ ५० ॥

तदनन्तर जहाँ-तहाँ हाँफते और खूनसे लथपथ हुए महाधनुर्धर योद्धाओं, अर्जुनके शत्रुनाशक बाणोंद्वारा विदीर्ण हो चीत्कार करते हुए हाथियों और घोड़ों तथा युद्धमें

विजयकी अभिलाषा लिये रोषावेशमें भरकर एक जगह कुपित खड़े हुए बहुतेरे वीर शत्रुओंके जमघटसे उस स्थानपर गर्मी-सी होने लगी ॥ ४९-५० ॥

शरोर्मिणं ध्वजावर्तं नागनक्रं दुरत्ययम्।
पदातिमत्स्यकलिलं शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनम् ॥ ५१ ॥
असंख्येयमपारं च रथोर्मिणमतीव च।
उष्णीषकमठं छत्रपताकाफेनमालिनम् ॥ ५२ ॥
रणसागरमक्षोभ्यं मातङ्गाङ्गशिलाचितम्।
वेलाभूतस्तदा पार्थः पत्रिभिः समवारयत् ॥ ५३ ॥

उस समय अर्जुनने उस असंख्य, अपार, दुर्लङ्घ्य एवं अक्षोभ्य रण-समुद्रको सीमावर्ती तटप्रान्तके समान होकर अपने बाणोंद्वारा रोक दिया। उस रण-सागरमें बाणोंकी तरङ्गें उठ रही थीं, फहराते हुए ध्वज भौंरोंके समान जान पड़ते थे, हाथी ग्राह थे, पैदल सैनिक मत्स्य और कीचड़के समान प्रतीत होते थे, शङ्खों और दुन्दुभियोंकी ध्वनि ही उस रण-सिन्धुकी गम्भीर गर्जना थी, रथ ऊँची-ऊँची लहरोंके समान जान पड़ते थे, योद्धाओंकी पगड़ी और टोप कछुओंके समान थे, छत्र और पताकाएँ फेनराशि-सी प्रतीत होती थीं तथा मतवाले हाथियोंकी लाशें ऊँचे-ऊँचे शिलाखण्डोंके समान उस सैन्यसागरको व्याप्त किये हुए थीं ॥ ५१—५३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

अर्जुने धरणीं प्राप्ते हयहस्ते च केशवे।
एतदन्तरमासाद्य कथं पार्थो न घातितः ॥ ५४ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! जब अर्जुन धरतीपर उतर आये और भगवान् श्रीकृष्णने घोड़ोंकी चिकित्सामें हाथ लगाया, तब यह अवसर पाकर मेरे सैनिकोंने कुन्तीकुमारका वध क्यों नहीं कर डाला ? ॥ ५४ ॥

संजय उवाच

सद्यः पार्थिव पार्थेन निरुद्धाः सर्वपार्थिवाः।
रथस्था धरणीस्थेन वाक्यमच्छान्दसं यथा ॥ ५५ ॥

संजयने कहा—महाराज ! उस समय पार्थने पृथ्वीपर खड़े होकर रथपर बैठे हुए समस्त भूपालोंको सहसा उसी प्रकार रोक दिया, जैसे वेदविरुद्ध वाक्य अग्राह्य कर दिया जाता है ॥ ५५ ॥

स पार्थः पार्थिवान् सर्वान् भूमिस्थोऽपि रथस्थितान्।
एको निवारयामास लोभः सर्वगुणानिव ॥ ५६ ॥

अर्जुनने अकेले ही पृथ्वीपर खड़े रहकर भी रथपर बैठे हुए समस्त पृथ्वीपतियोंको उसी प्रकार रोक दिया, जैसे लोभ सम्पूर्ण गुणोंका निवारण कर देता है ॥ ५६ ॥

ततो जनार्दनः संख्ये प्रियं पुरुषसत्तमम्।
असम्भ्रान्तो महाबाहुरर्जुनं वाक्यमब्रवीत् ॥ ५७ ॥

तदनन्तर सम्भ्रमरहित महाबाहु भगवान् श्रीकृष्णने युद्धस्थलमें अपने प्रिय सखा पुरुषप्रवर अर्जुनसे यह बात कही—॥ ५७ ॥

उदपानमिहाश्वानां नालमस्ति रणेऽर्जुन।
परीप्सन्ते जलं चेमे पेयं न त्ववगाहनम् ॥ ५८ ॥

'अर्जुन ! यहाँ घोड़ोंके पीनेके लिये पर्याप्त जल नहीं है। ये पीनेयोग्य जल चाहते हैं। इन्हें स्नानकी इच्छा नहीं है' ॥ ५८ ॥

इदमस्तीत्यसम्भ्रान्तो ब्रुवन्नस्त्रेण मेदिनीम्।
अभिहत्यार्जुनश्चक्रे वाजिपानं सरः शुभम् ॥ ५९ ॥

'यह रहा इनके पीनेके लिये जल' ऐसा कहकर अर्जुनने बिना किसी घबराहटके अस्त्रद्वारा पृथ्वीपर आघात करके घोड़ोंके पीनेयोग्य जलसे भरा हुआ सुन्दर सरोवर उत्पन्न कर दिया ॥ ५९ ॥

हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम्।
सुविस्तीर्णं प्रसन्नाम्भः प्रफुल्लवरपङ्कजम् ॥ ६० ॥

उसमें हंस और कारण्डव आदि जलपक्षी भरे हुए थे, चक्रवाक उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। स्वच्छ जलसे युक्त उस विशाल सरोवरमें सुन्दर कमल खिले हुए थे ॥ ६० ॥

कूर्ममत्स्यगणाकीर्णमगाधमृषिसेवितम्।
आगच्छन्नारदमुनिर्दर्शनार्थं कृतं क्षणात् ॥ ६१ ॥

वह अगाध जलाशय कछुओं और मछलियोंसे भरा था। ऋषिगण उसका सेवन करते थे। तत्काल प्रकट किये हुए ऐसी योग्यतावाले उस सरोवरका दर्शन करनेके लिये देवर्षि नारदजी वहाँ आये ॥ ६१ ॥

शरवंशं शरस्थूणं शराच्छादनमद्भुतम्।
शरवेश्माकरोत् पार्थस्त्वष्टेवाद्भुतकर्मकृत् ॥ ६२ ॥

विश्वकर्माके समान अद्भुत कर्म करनेवाले अर्जुनने वहाँ बाणोंका एक अद्भुत घर बना दिया था, जिनमें बाणोंके ही बाँस, बाणोंके ही खम्भे और बाणोंकी ही छाजन थी ॥ ६२ ॥

ततः प्रहस्य गोविन्दः साधु साध्वित्यथाब्रवीत्।
शरवेश्मनि पार्थेन कृते तस्मिन् महात्मना ॥ ६३ ॥

महामना अर्जुनके द्वारा वह बाणमय गृह निर्मित हो जानेपर भगवान् श्रीकृष्णने हँसकर कहा—'शाबाश अर्जुन, शाबाश' ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि विन्दानुविन्दवधे अर्जुनसरोनिर्माणे च एकोनशततमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें विन्द और अनुविन्दका वध तथा अर्जुनके द्वारा जलाशयका निर्माणविषयक निन्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९९ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १½ श्लोक मिलाकर कुल ६४½ श्लोक हैं)

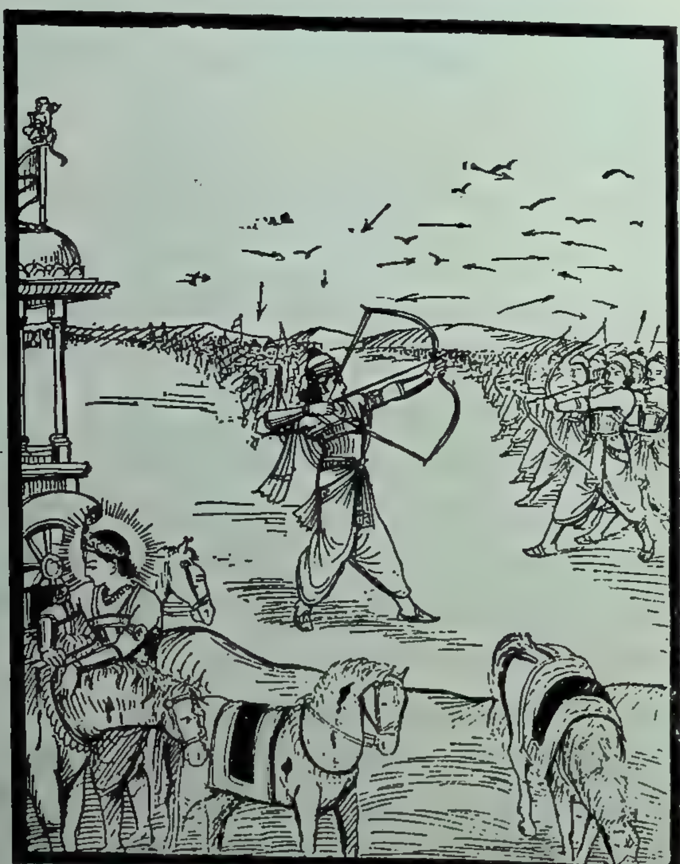
शततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णके द्वारा अश्वपरिचर्या तथा खा-पीकर हृष्ट-पुष्ट हुए अश्वोंद्वारा अर्जुनका पुनः शत्रुसेनापर आक्रमण करते हुए जयद्रथकी ओर बढ़ना

संजय उवाच

सलिले जनिते तस्मिन् कौन्तेयेन महात्मना ।
निस्तारिते द्विषत्सैन्ये कृते च शरवेश्मनि ॥ १ ॥
वासुदेवो रथात् तूर्णमवतीर्य महाद्युतिः ।
मोचयामास तुरगान् वितुन्नान् कङ्कपत्रिभिः ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! जब महात्मा कुन्तीकुमारने वह जल उत्पन्न कर दिया, शत्रुओंकी सेनाको आगे बढ़नेसे रोक दिया और बाणोंका घर बना दिया, तब महातेजस्वी भगवान् श्रीकृष्णने तुरंत ही रथसे उतरकर कंकपत्रयुक्त बाणोंसे क्षत-विक्षत हुए घोड़ोंको खोल दिया ॥ १-२ ॥



अदृष्टपूर्वं तद् दृष्ट्वा साधुवादो महानभूत् ।
सिद्धचारणसंघानां सैनिकानां च सर्वशः ॥ ३ ॥

यह अदृष्टपूर्व कार्य देखकर सिद्ध, चारण तथा सैनिकोंके मुखसे निकला हुआ महान् साधुवाद सब ओर गूँज उठा ॥ ३ ॥

पदातिनं तु कौन्तेयं युध्यमानं महारथाः ।
नाशक्नुवन् वारयितुं तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४ ॥

पैदल युद्ध करते हुए कुन्तीकुमार अर्जुनको समस्त महारथी मिलकर भी न रोक सके; यह अद्भुत-सी बात हुई ॥ ४ ॥

आपतत्सु रथौघेषु प्रभूतगजवाजिषु ।
नासम्भ्रमत् तदा पार्थस्तदस्य पुरुषानति ॥ ५ ॥

रथियोंके समूह तथा बहुत-से हाथी-घोड़े सब ओरसे उनपर टूट पड़े थे, तो भी उस समय कुन्तीकुमार अर्जुनको तनिक भी घबराहट नहीं हुई । उनका यह धैर्य और साहस समस्त पुरुषोंसे बढ़-चढ़कर था ॥ ५ ॥

व्यसृजन्त शरौघांस्ते पाण्डवं प्रति पार्थिवाः ।
न चाव्यथत धर्मात्मा वासविः परवीरहा ॥ ६ ॥

सम्पूर्ण भूपाल पाण्डुनन्दन अर्जुनपर बाणसमूहोंकी वर्षा कर रहे थे, तो भी शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले इन्द्रकुमार धर्मात्मा पार्थ तनिक भी व्यथित नहीं हुए ॥ ६ ॥

स तानि शरजालानि गदाः प्रासांश्च वीर्यवान् ।
आगतानग्रसत् पार्थः सरितः सागरो यथा ॥ ७ ॥

उन पराक्रमी कुन्तीकुमारने शत्रुओंके उन बाणसमूहों, गदाओं और प्रासोंको अपने पास आनेपर उसी प्रकार ग्रस लिया, जैसे समुद्र सरिताओंको अपनेमें मिला लेता है ॥ ७ ॥

अस्त्रवेगेन महता पार्थो बाहुबलेन च ।
सर्वेषां पार्थिवेन्द्राणामग्रसत् तान् शरोत्तमान् ॥ ८ ॥

अर्जुनने अस्त्रोंके महान् वेग और बाहुबलसे समस्त राजाधिराजोंके उत्तमोत्तम बाणोंको नष्ट कर दिया ॥ ८ ॥

तत् तु पार्थस्य विक्रान्तं वासुदेवस्य चोभयोः ।
अपूजयन् महाराज कौरवा महदद्भुतम् ॥ ९ ॥

महाराज ! अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्ण दोनोंके उस अत्यन्त अद्भुत पराक्रमकी समस्त कौरवोंने भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ ९ ॥

किमद्भुततमं लोके भविताप्यथवा ह्यभूत् ।
यदश्वान् पार्थगोविन्दौ मोचयामासतू रणे ॥ १० ॥

संसारमें इससे बढ़कर और कोई अत्यन्त अद्भुत घटना क्या होगी अथवा हुई होगी कि अर्जुन और श्रीकृष्णने उस भयंकर संग्राममें भी घोड़ोंको रथसे खोल दिया ॥ १० ॥

भयं विपुलमस्मासु तावधत्तां नरोत्तमौ ।
तेजो विदधतुश्चोग्रं विस्रब्धौ रणमूर्धनि ॥ ११ ॥

उन दोनों नरश्रेष्ठ वीरोंने हमलोगोंमें महान् भय उत्पन्न कर दिया और युद्धके मुहानेपर निर्भय और निश्चिन्त होकर अपने भयानक तेजका प्रदर्शन किया ॥ ११ ॥

अथ स्मयन् हृषीकेशः स्त्रीमध्य इव भारत ।
अर्जुनेन कृते संख्ये शरगर्भगृहे तथा ॥ १२ ॥

भरतनन्दन ! युद्धस्थलमें अर्जुनके बनाये हुए उस बाणनिर्मित गृहमें भगवान् श्रीकृष्ण उसी प्रकार मुसकराते हुए निर्भय खड़े थे, मानो वे स्त्रियोंके बीचमें हों ॥ १२ ॥

उपावर्तयदव्यग्रस्तानश्वान् पुष्करेक्षणः ।
मिषतां सर्वसैन्यानां त्वदीयानां विशाम्पते ॥ १३ ॥

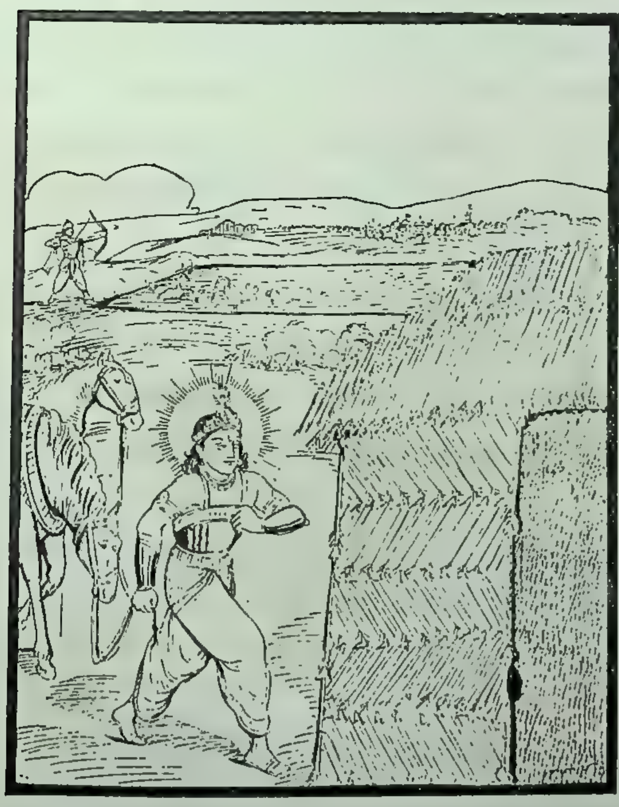
प्रजानाथ ! कमलनयन श्रीकृष्णने आपके सम्पूर्ण सैनिकोंके देखते-देखते उद्वेगशून्य होकर उन घोड़ोंको टहलाया ॥

तेषां श्रमं च ग्लानिं च वमथुं वेपथुं व्रणान् ।
सर्वं व्यपानुदत् कृष्णः कुशलो ह्यश्वकर्मणि ॥ १४ ॥

घोड़ोंकी चिकित्सा करनेमें कुशल श्रीकृष्णने उनके परिश्रम, थकावट, वमन, कम्पन और घाव—सारे कष्टोंको दूर कर दिया ॥ १४ ॥

शल्यानुद्धृत्य पाणिभ्यां परिमृज्य च तान् हयान् ।
उपावर्त्य यथान्यायं पाययामास वारि सः ॥१५॥

उन्होंने अपने दोनों हाथोंसे बाण निकालकर उन घोड़ोंको मला और यथोचित रूपसे टहलाकर उन्हें पानी पिलाया ॥



स ताँल्लब्धोदकान् स्नातान् जग्धान्नान् विगतक्लमान् ।
योजयामास संहृष्टः पुनरेव रथोत्तमे ॥ १६ ॥

श्रीकृष्णने पानी पिलाकर उन्हें नहलाया, घास और दाने खिलाये तथा जब उनकी सारी थकावट दूर हो गयी, तब पुनः उस उत्तम रथमें उन्हें बड़ी प्रसन्नताके साथ जोत दिया ॥ १६ ॥

स तं रथवरं शौरिः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
समास्थाय महातेजाः सार्जुनः प्रययौ द्रुतम् ॥ १७ ॥

तदनन्तर सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी श्रीकृष्ण उस उत्तम रथपर अर्जुनसहित आरूढ़ हो बड़े वेगसे आगे बढ़े ॥

रथं रथवरस्याजौ युक्तं लब्धोदकैर्हयैः ।
दृष्ट्वा कुरुबलश्रेष्ठाः पुनर्विमनसोऽभवन् ॥ १८ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनके उस रथको समराङ्गणमें पानी पीकर सुस्ताये हुए घोड़ोंसे जुता हुआ देख कौरवसेनाके श्रेष्ठ वीर फिर उदास हो गये ॥ १८ ॥

विनिःश्वसन्तस्ते राजन् भग्नदंष्ट्रा इवोरगाः ।
धिगहो धिग्गतः पार्थः कृष्णश्चेत्यब्रुवन् पृथक् ॥ १९ ॥

राजन् ! टूटे दाँतवाले सर्पोंके समान लंबी सांस खींचते हुए वे पृथक्-पृथक् कहने लगे—'अहो ! हमें धिक्कार है, धिक्कार है, अर्जुन और श्रीकृष्ण तो चले गये' ॥ १९ ॥

त्वत्सेनाः सर्वतो दृष्ट्वा लोमहर्षणमद्भुतम् ।
त्वरध्वमिति चाक्रन्दन् नैतदस्तीति चाब्रुवन् ॥ २० ॥

आपकी सम्पूर्ण सेनाएँ वह अद्भुत रोमाञ्चकारी व्यापार देखकर अपने साथियोंको पुकार-पुकारकर कहने लगीं—'वीरो ! ऐसा नहीं हो सकता । तुम सब लोग शीघ्रतापूर्वक उनका पीछा करो' ॥ २० ॥

सर्वक्षत्रस्य मिषतो रथेनैकेन दंशितौ ।
बालः क्रीडनकेनेव कदर्थीकृत्य नो बलम् ॥ २१ ॥
क्रोशतां यतमानानामसंसक्तौ परंतपौ ।
दर्शयित्वाऽऽत्मनो वीर्यं प्रयातौ सर्वराजसु ॥ २२ ॥

हमलोग चीखते-चिल्लाते तथा रोकनेकी चेष्टा करते ही रह गये; परंतु कुछ न हो सका । शत्रुओंको संताप देनेवाले कवचधारी श्रीकृष्ण और अर्जुन हम सब क्षत्रियोंके देखते-देखते हमारे बलकी अवहेलना करके एकमात्र रथके द्वारा सम्पूर्ण राजमण्डलीमें अपना पराक्रम दिखाकर उसी प्रकार बेरोक-टोक आगे बढ़ गये हैं, जैसे बालक खिलौनोंसे खेलता हुआ निकल जाता है ॥ २१-२२ ॥

(यथा दैवासुरे युद्धे तृणीकृत्य च दानवान् ।
इन्द्राविष्णू पुरा राजञ्जम्भस्य वधकाङ्क्षिणौ ॥)

राजन् ! पूर्वकालमें जैसे देवासुर-संग्राममें जम्भासुरका वध करनेकी इच्छावाले इन्द्र और भगवान् विष्णु दानवोंको तिनकोंके समान तुच्छ मानते हुए आगे बढ़ गये थे (उसी प्रकार श्रीकृष्ण और अर्जुन जयद्रथको मारनेके लिये बड़े वेगसे अग्रसर हो रहे हैं) ॥

तौ प्रयातौ पुनर्दृष्ट्वा तदान्ये सैनिकाब्रुवन् ।
त्वरध्वं कुरवः सर्वे वधे कृष्णकिरीटिनोः ॥ २३ ॥
रथयुक्तो हि दाशार्हो मिषतां सर्वधन्विनाम् ।
जयद्रथाय यात्येष कदर्थीकृत्य नो रणे ॥ २४ ॥

उन दोनोंको पुनः आगे बढ़ते देख दूसरे सैनिक बोल उठे—'कौरवो ! श्रीकृष्ण और अर्जुनका वध करनेके लिये तुम सब लोग शीघ्र चेष्टा करो । इस रणक्षेत्रमें रथपर बैठे हुए श्रीकृष्ण हमारी अवहेलना करके हम सब धनुर्धरोंके देखते-देखते जयद्रथकी ओर बढ़े जा रहे हैं' ॥ २३-२४ ॥

तत्र केचिन्मिथो राजन् समभाषन्त भूमिपाः ।
अदृष्टपूर्वं संग्रामे तद् दृष्ट्वा महदद्भुतम् ॥ २५ ॥

राजन् ! वहाँ कुछ भूमिपाल समराङ्गणमें श्रीकृष्ण और अर्जुनका वह अत्यन्त अद्भुत अदृष्टपूर्व कार्य देखकर आपसमें इस प्रकार बातें करने लगे—॥ २५ ॥

सर्वसैन्यानि राजा च धृतराष्ट्रोऽत्ययं गतः ।
दुर्योधनापराधेन क्षत्रं कृत्स्ना च मेदिनी ॥ २६ ॥
विलयं समनुप्राप्ता तच्च राजा न बुध्यते ।

'एकमात्र दुर्योधनके अपराधसे राजा धृतराष्ट्र तथा उनकी सम्पूर्ण सेनाएँ भारी विपत्तिमें फँस गयीं । सारा क्षत्रिय-समाज और सम्पूर्ण पृथ्वी विनाशके द्वारपर जा पहुँची है । इस बातको राजा धृतराष्ट्र नहीं समझ रहे हैं' ॥

इत्येवं क्षत्रियास्तत्र ब्रुवन्त्यन्ये च भारत ॥ २७ ॥
सिन्धुराजस्य यत् कृत्यं गतस्य यमसादनम् ।
तत् करोतु वृथादृष्टिर्धार्तराष्ट्रोऽनुपायवित् ॥ २८ ॥

भारत ! इसी प्रकार वहाँ दूसरे क्षत्रिय निम्नाङ्कित बातें कहते थे—'योग्य उपायको न जाननेवाले और मिथ्या-दृष्टि रखनेवाले राजा धृतराष्ट्र यमलोकमें गये हुए सिन्धुराज जयद्रथका जो और्ध्वदैहिक कृत्य है, उसका सम्पादन करें'॥

ततः शीघ्रतरं प्रायात् पाण्डवः सैन्धवं प्रति ।
विवर्तमाने तिग्मांशौ हृष्टैः पीतोदकैर्हयैः ॥ २९ ॥

तदनन्तर पानी पीकर हर्ष और उत्साहमें भरे हुए घोड़ोंद्वारा पाण्डुकुमार अर्जुन सिन्धुराज जयद्रथकी ओर बड़े वेगसे बढ़ने लगे । उस समय सूर्यदेव अस्ताचलके शिखरकी ओर ढलते चले जा रहे थे ॥ २९ ॥

तं प्रयान्तं महाबाहुं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
नाशक्नुवन् वारयितुं योधाः क्रुद्धमिवान्तकम् ॥ ३० ॥

जैसे क्रोधमें भरे हुए यमराजको रोकना असम्भव है, उसी प्रकार आगे बढ़ते हुए समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु अर्जुनको आपके सैनिक रोक न सके ॥ ३० ॥

विद्राव्य तु ततः सैन्यं पाण्डवः शत्रुतापनः ।
यथा मृगगणान् सिंहः सैन्धवार्थे व्यलोडयत् ॥ ३१ ॥

जैसे सिंह मृगोंके झुंडको खदेड़ता हुआ उन्हें मथ डालता है, उसी प्रकार शत्रुओंको संताप देनेवाले पाण्डुकुमार अर्जुन आपकी सेनाको खदेड़-खदेड़कर मारने और मथने लगे ॥ ३१ ॥

गाहमानस्त्वनीकानि तूर्णमश्वानचोदयत् ।
बलाकाभं तु दाशार्हः पाञ्चजन्यं व्यनादयत् ॥ ३२ ॥

सेनाके भीतर घुसते हुए श्रीकृष्णने तीव्र वेगसे अपने घोड़ोंको आगे बढ़ाया और बगुलोंके समान श्वेत रंगवाले अपने पाञ्चजन्य शङ्खको बड़े जोरसे बजाया ॥ ३२ ॥

कौन्तेयेनाग्रतः सृष्टा न्यपतन् पृष्ठतः शराः ।
तूर्णात् तूर्णतरं ह्यश्वाः प्रावहन् वातरंहसः ॥ ३३ ॥

वायुके समान वेगशाली अश्व इतनी तीव्रातितीव्र गतिसे रथको लिये हुए भाग रहे थे कि कुन्तीकुमार अर्जुनद्वारा आगेकी ओर फेंके हुए बाण उनके रथके पीछे गिरते थे ॥ ३३ ॥

ततो नृपतयः क्रुद्धाः परिवव्रुर्धनंजयम् ।
क्षत्रिया बहवश्चान्ये जयद्रथवधैषिणम् ॥ ३४ ॥

तत्पश्चात् क्रोधमें भरे हुए बहुत-से नरेशों तथा अन्य क्षत्रियोंने जयद्रथ-वधकी इच्छा रखनेवाले अर्जुनको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ३४ ॥

सैन्येषु विप्रयातेषु धिष्ठितं पुरुषर्षभम् ।
दुर्योधनोऽन्वयात् पार्थं त्वरमाणो महाहवे ॥ ३५ ॥

सेनाओंके सहसा आक्रमण करनेपर पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन कुछ ठहर गये । इसी समय उस महासमरमें राजा दुर्योधनने बड़ी उतावलीके साथ उनका पीछा किया ॥ ३५ ॥

वातोद्धूतपताकं तं रथं जलदनिःस्वनम् ।
घोरं कपिध्वजं दृष्ट्वा विषण्णा रथिनोऽभवन् ॥ ३६ ॥

हवा लगनेसे अर्जुनके रथकी पताका फहरा रही थी। उस रथसे मेघकी गर्जनाके समान गम्भीर ध्वनि हो रही थी और ध्वजापर वानरवीर हनुमान्‌जी विराजमान थे । उस भयंकर रथको देखकर सम्पूर्ण रथी विषादग्रस्त हो गये ॥ ३६ ॥

दिवाकरेऽथ रजसा सर्वतः संवृते भृशम् ।
शरार्ताश्च रणे योधाः शेकुः कृष्णौ न वीक्षितुम् ॥ ३७ ॥

उस समय सब ओर इतनी धूल उड़ रही थी कि सूर्यदेव छिप गये । उस रणक्षेत्रमें बाणोंसे पीड़ित हुए सैनिक श्रीकृष्ण और अर्जुनकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकते थे ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सैन्यविस्मये शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सेनाविस्मयविषयक सौवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ३८ श्लोक हैं)

एकाधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण और अर्जुनको आगे बढ़ा देख कौरवसैनिकोंकी निराशा तथा दुर्योधनका युद्धके लिये आना

संजय उवाच

स्रंसन्त इव मज्जानस्तावकानां भयान्नृप।
तौ दृष्ट्वा समतिक्रान्तौ वासुदेवधनंजयौ ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—नरेश्वर ! भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनको सबको लाँघकर आगे बढ़ा हुआ देख भयके कारण आपके सैनिकोंकी मज्जा खिसकने लगी ॥ १ ॥

सर्वे तु प्रतिसंरब्धा ह्रीमन्तः सत्त्वचोदिताः।
स्थिरीभूता महात्मानः प्रत्यगच्छन् धनंजयम् ॥ २ ॥

फिर वे लज्जित हुए समस्त महामनस्वी सैनिक धैर्य और साहससे प्रेरित हो युद्धके लिये स्थिरचित्त होकर रोषपूर्वक अर्जुनकी ओर जाने लगे ॥ २ ॥

ये गताः पाण्डवं युद्धे रोषामर्षसमन्विताः।
तेऽद्यापि न निवर्तन्ते सिन्धवः सागरादिव ॥ ३ ॥

जो लोग युद्धमें रोष और अमर्षसे भरकर पाण्डुनन्दन अर्जुनके सामने गये, वे समुद्रतक गयी हुई नदियोंके समान आजतक नहीं लौटे ॥ ३ ॥

असन्तस्तु न्यवर्तन्त वेदेभ्य इव नास्तिकाः।
नरकं भजमानास्ते प्रत्यपद्यन्त किल्बिषम् ॥ ४ ॥

जैसे नास्तिक पुरुष वेदोंसे (उनकी बतायी हुई विधियोंसे) दूर रहते हैं, उसी प्रकार जो अधम मनुष्य थे, वे ही अर्जुनके सामने जाकर भी लौट आये (पीठ दिखाकर भाग खड़े हुए)। वे नरकमें पड़कर अपने पापका फल भोग रहे होंगे ॥

तावतीत्य रथानीकं विमुक्तौ पुरुषर्षभौ ।
ददृशाते यथा राहोरास्यान्मुक्तौ प्रभाकरौ ॥ ५ ॥

रथियोंकी सेनाको लाँघकर उनके घेरेसे मुक्त हुए पुरुषश्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुन राहुके मुँहसे छूटे हुए सूर्य और चन्द्रमाके समान दिखायी दिये ॥ ५ ॥

मत्स्याविव महाजालं विदार्य विगतक्लमौ।
तथा कृष्णावदृश्येतां सेनाजालं विदार्य तत् ॥ ६ ॥

जैसे दो मत्स्य किसी महाजालको फाड़कर निकल जानेपर क्लेशशून्य हो जाते हैं, उसी प्रकार उस सेनासमूहको विदीर्ण करके श्रीकृष्ण और अर्जुन क्लेशरहित दिखायी देते थे॥

विमुक्तौ शस्त्रसम्बाधाद् द्रोणानीकात् सुदुर्भिदात्।
अदृश्येतां महात्मानौ कालसूर्याविवोदितौ ॥ ७ ॥

शस्त्रोंसे भरे हुए आचार्य द्रोणके दुर्भेद्य सैन्य-व्यूहसे छुटकारा पाकर महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन उदित हुए प्रलयकालके सूर्यके समान दृष्टिगोचर हो रहे थे ॥ ७ ॥

अस्त्रसम्बाधनिर्मुक्तौ विमुक्तौ शस्त्रसंकटात् ।
अदृश्येतां महात्मानौ शत्रुसम्बाधकारिणौ ॥ ८ ॥
विमुक्तौ ज्वलनस्पर्शान्मकरास्याज्झषाविव ।

शत्रुओंको संतप्त करनेवाले वे दोनों महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन अग्निके समान दाहक स्पर्शवाले मगरके मुखसे छूटे हुए दो मत्स्योंके समान अस्त्र-शस्त्रोंकी बाधाओं तथा संकटोंसे मुक्त दिखायी दे रहे थे ॥ ८½ ॥

अक्षोभयेतां सेनां तौ समुद्रं मकराविव ॥ ९ ॥
तावकास्तव पुत्राश्च द्रोणानीकस्थयोस्तयोः ।
नैतौ तरिष्यतो द्रोणमिति चक्रुस्तदा मतिम् ॥ १० ॥

जैसे दो मगर समुद्रको क्षुब्ध कर देते हैं, उसी प्रकार उन दोनोंने सारी सेनाको व्याकुल कर दिया। आपके सैनिकों तथा पुत्रोंने उस समय द्रोणाचार्यके सैन्यव्यूहमें घुसे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनके सम्बन्धमें यह विचार किया था कि ये दोनों द्रोणको नहीं लाँघ सकेंगे ॥ ९-१० ॥

तौ तु दृष्ट्वा व्यतिक्रान्तौ द्रोणानीकं महाद्युती।
नाशशंसुर्महाराज सिन्धुराजस्य जीवितम् ॥ ११ ॥

परंतु महाराज ! जब वे दोनों महातेजस्वी वीर द्रोणाचार्यके सैन्यव्यूहको लाँघ गये, तब उन्हें देखकर आपके पुत्रोंको सिन्धुराजके जीवित रहनेकी आशा नहीं रह गयी ॥ ११ ॥

आशा बलवती राजन् सिन्धुराजस्य जीविते ।
द्रोणहार्दिक्ययोः कृष्णौ न मोक्ष्येते इति प्रभो ॥ १२ ॥

राजन् ! प्रभो ! सब लोगोंको यह सोचकर कि श्रीकृष्ण और अर्जुन द्रोणाचार्य तथा कृतवर्माके हाथसे नहीं छूट सकेंगे, सिन्धुराजके जीवनकी आशा प्रबल हो उठी थी॥१२॥

तामाशां विफलीकृत्य संतीर्णौ तौ परंतपौ।
द्रोणानीकं महाराज भोजानीकं च दुस्तरम् ॥ १३ ॥

महाराज ! शत्रुओंको संताप देनेवाले वे दोनों वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन लोगोंकी उस आशाको विफल करके द्रोणाचार्य तथा कृतवर्माकी दुस्तर सेनाको लाँघ गये ॥१३॥

अथ दृष्ट्वा व्यतिक्रान्तौ ज्वलिताविव पावकौ ।
निराशाः सिन्धुराजस्य जीवितं न शशंसिरे ॥ १४ ॥

दो प्रज्वलित अग्नियोंके समान सारी सेनाको लाँघकर खड़े हुए उन दोनों वीरोंको सकुशल देख आपके सैनिकोंने निराश होकर सिन्धुराजके जीवनकी आशा त्याग दी ॥ १४ ॥

मिथश्च समभाषेतामभीतौ भयवर्धनौ ।
जयद्रथवधे वाचस्तास्ताः कृष्णधनंजयौ ॥ १५॥

दूसरोंका भय बढ़ाने और स्वयं निर्भय रहनेवाले श्रीकृष्ण और अर्जुन आपसमें जयद्रथवधके विषयमें इस प्रकार बातें करने लगे— ॥ १५ ॥

असौ मध्ये कृतः षड्भिर्धार्तराष्ट्रैर्महारथैः ।
चक्षुर्विषयसम्प्राप्तो न मे मोक्ष्यति सैन्धवः ॥ १६ ॥

'यद्यपि धृतराष्ट्रके छः महारथी पुत्रोंने जयद्रथको अपने बीचमें छिपा रक्खा है, तथापि यदि वह मेरी आँखोंको दीख गया तो मेरे हाथसे जीवित नहीं बच सकेगा ॥ १६ ॥

यद्यस्य समरे गोप्ता शक्रो देवगणैः सह ।
तथाप्येनं निहंस्याव इति कृष्णावभाषताम् ॥ १७ ॥

'यदि देवताओंसहित साक्षात् इन्द्र भी समराङ्गणमें इसकी रक्षा करें, तो भी हम दोनों इसे अवश्य मार डालेंगे'। इस प्रकार दोनों कृष्ण आपसमें बात कर रहे थे ॥ १७ ॥

इति कृष्णौ महाबाहू मिथोऽकथयतां तदा ।
सिन्धुराजमवेक्षन्तौ त्वत्पुत्रा बहु चुक्रुशुः ॥ १८ ॥

सिन्धुराज जयद्रथकी खोज करते हुए महाबाहु श्रीकृष्ण और अर्जुनने उस समय जब आपसमें उपर्युक्त बातें कहीं, तब आपके पुत्र बहुत कोलाहल करने लगे ॥ १८ ॥

अतीत्य मरुधन्वानं प्रयान्तौ तृषितौ गजौ ।
पीत्वा वारि समाश्वस्तौ तथैवास्तामरिंदमौ ॥ १९ ॥

जैसे मरुभूमिको लाँघकर जाते हुए दो प्यासे हाथी पानी पीकर तृप्त एवं संतुष्ट हो गये हों, उसी प्रकार शत्रुओं-का दमन करनेवाले श्रीकृष्ण और अर्जुन भी शत्रुसेनाको लाँघकर अत्यन्त प्रसन्न हुए थे ॥ १९ ॥

व्याघ्रसिंहगजाकीर्णानतिक्रम्य च पर्वतान् ।
वणिजाविव दृश्येतां हीनमृत्यू जरातिगौ ॥ २० ॥

जैसे व्याघ्र, सिंह और हाथियोंसे भरे हुए पर्वतोंको लाँघकर दो व्यापारी प्रसन्न दिखायी देते हों, उसी प्रकार मृत्यु और जरासे रहित श्रीकृष्ण और अर्जुन भी उस सेनाको लाँघकर संतुष्ट दीखते थे ॥ २० ॥

तथा हि मुखवर्णोऽयमनयोरिति मेनिरे ।
तावका वीक्ष्य मुक्तौ तौ विक्रोशन्ति स्म सर्वशः ॥ २१ ॥
द्रोणादाशीविषाकाराज्ज्वलितादिव पावकात् ।
अन्येभ्यः पार्थिवेभ्यश्च भास्वन्ताविव भास्करौ ॥ २२ ॥

इन दोनोंके मुखकी कान्ति वैसी ही थी, ऐसा सभी सैनिक मान रहे थे। विषधर सर्प और प्रज्वलित अग्निके समान भयंकर द्रोणाचार्य तथा अन्य नरेशोंके हाथसे छूटे हुए दो प्रकाशमान सूर्योंके सदृश श्रीकृष्ण और अर्जुनको वहाँ देखकर आपके समस्त सैनिक सब ओरसे कोलाहल मचा रहे थे ॥ २१-२२ ॥

विमुक्तौ सागरप्रख्याद् द्रोणानीकादरिंदमौ ।
अदृश्येतां मुदा युक्तौ समुत्तीर्यार्णवं यथा ॥ २३ ॥

समुद्रके समान विशाल द्रोणसेनासे मुक्त हुए वे दोनों शत्रुदमन वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन ऐसे प्रसन्न दिखायी देते थे, मानो महासागर लाँघ गये हों ॥ २३ ॥

अस्त्रौघान्महतो मुक्तौ द्रोणहार्दिक्यरक्षितात् ।
रोचमानावदृश्येतामिन्द्राग्न्योः सदृशौ रणे ॥ २४ ॥

द्रोणाचार्य और कृतवर्माद्वारा सुरक्षित महान् अस्त्र-समुदायसे छूटकर वे दोनों वीर समराङ्गणमें इन्द्र और अग्नि-के समान प्रकाशमान दिखायी देते थे ॥ २४ ॥

उद्भिन्नरुधिरौ कृष्णौ भारद्वाजस्य सायकैः ।
शितैश्चितौ व्यरोचेतां कर्णिकारैरिवाचलौ ॥ २५ ॥

द्रोणाचार्यके तीखे बाणोंसे श्रीकृष्ण और अर्जुनके शरीर छिदे हुए थे और उनसे रक्तकी धारा बह रही थी। उस समय वे लाल कनेरसे भरे हुए दो पर्वतोंके समान सुशोभित होते थे ॥ २५ ॥

द्रोणग्राहह्रदान्मुक्तौ शक्त्याशीविषसंकटात् ।
अयःशरोग्रमकरात् क्षत्रियप्रवराम्भसः ॥ २६ ॥
ज्याघोषतलनिर्ह्रादाद् गदानिस्त्रिंशविद्युतः ।
द्रोणास्त्रमेघान्निर्मुक्तौ सूर्येन्दू तिमिरादिव ॥ २७ ॥

द्रोणाचार्य जिस सैन्य-सरोवरके ग्राहतुल्य जन्तु थे, जो शक्तिरूपी विषधर सर्पोंसे भरा था, लोहेके बाण जिसके भीतर भयंकर मगरका भय उत्पन्न करते थे, बड़े-बड़े क्षत्रिय जिसमें जलके समान शोभा पाते थे, धनुषकी टंकार जहाँ मेघगर्जनाके समान सुनायी पड़ती थी, गदा और खड्ग जहाँ विद्युत्के समान चमक रहे थे और द्रोणाचार्यके बाण ही जहाँ मेघ बनकर बरस रहे थे, उससे मुक्त हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन राहुसे छूटे हुए सूर्य और चन्द्रमाके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ २६-२७ ॥

बाहुभ्यामिव संतीर्णौ सिन्धुषष्ठाः समुद्रगाः ।
तपान्ते सरितः पूर्णा महाग्राहसमाकुलाः ॥ २८ ॥

उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो वर्षा ऋतुमें जलसे लबालब भरी हुई बड़े-बड़े ग्राहोंसे व्याप्त समुद्र-गामिनी इरावती (रावी), विपाशा (व्यास), वितस्ता (झेलम), शतद्रू (शतलज) और चन्द्रभागा (चनाव)-इन पाँचों नदियोंके साथ छठी सिंधु नदीको श्रीकृष्ण और अर्जुनने अपनी भुजाओंसे तैरकर पार किया हो ॥ २८ ॥

इति कृष्णौ महेष्वासौ प्रशस्तौ लोकविश्रुतौ ।
सर्वभूतान्यमन्यन्त द्रोणास्त्रबलवारणात् ॥ २९ ॥

इस प्रकार द्रोणाचार्यके अस्त्र-बलका निवारण करनेके कारण समस्त प्राणी श्रीकृष्ण और अर्जुनको लोकविख्यात प्रशस्त गुणयुक्त महाधनुर्धर मानने लगे ॥ २९ ॥

जयद्रथं समीपस्थमवेक्षन्तौ जिघांसया ।
रुरुं निपाने लिप्सन्तौ व्याघ्राविव व्यतिष्ठताम् ॥ ३० ॥

जैसे पानी पीनेके घाटपर आये हुए रुरुमृगको दबोच लेनेकी इच्छासे दो व्याघ्र खड़े हों, उसी प्रकार निकटवर्ती

जयद्रथको मार डालनेकी इच्छासे उसकी ओर देखते हुए वे दोनों वीर खड़े थे ॥ ३० ॥

यथा हि मुखवर्णोऽयमनयोरिति मेनिरे।
तव योधा महाराज हतमेव जयद्रथम् ॥ ३१ ॥

महाराज! उस समय उन दोनोंके मुखपर जैसी समुज्ज्वल कान्ति थी, उसके अनुसार आपके योद्धाओंने जयद्रथको मरा हुआ ही माना ॥ ३१ ॥

लोहिताक्षौ महाबाहू संयुक्तौ कृष्णपाण्डवौ।
सिन्धुराजमभिप्रेक्ष्य हृष्टौ व्यनदतां मुहुः ॥ ३२ ॥

एक साथ बैठे हुए लाल नेत्रोंवाले महाबाहु श्रीकृष्ण और अर्जुन सिन्धुराज जयद्रथको देखकर हर्षसे उल्लसित हो बारंबार गर्जना करने लगे ॥ ३२ ॥

शौरेरभीषुहस्तस्य पार्थस्य च धनुष्मतः।
तयोरासीत् प्रभा राजन् सूर्यपावकयोरिव ॥ ३३ ॥

राजन्! हाथोंमें बागडोर लिये श्रीकृष्ण और धनुष धारण किये अर्जुन—इन दोनोंकी प्रभा सूर्य और अग्निके समान जान पड़ती थी ॥ ३३ ॥

हर्ष एव तयोरासीद् द्रोणानीकप्रमुक्तयोः।
समीपे सैन्धवं दृष्ट्वा श्येनयोरामिषं यथा ॥ ३४ ॥

जैसे मांसका टुकड़ा देखकर दो बाजोंको प्रसन्नता होती है, उसी प्रकार द्रोणाचार्यकी सेनासे मुक्त हुए उन दोनों वीरोंको अपने पास ही जयद्रथको देखकर सब प्रकारसे हर्ष ही हुआ ॥ ३४ ॥

तौ तु सैन्धवमालोक्य वर्तमानमिवान्तिके।
सहसा पेततुः क्रुद्धौ क्षिप्रं श्येनाविवामिषम् ॥ ३५ ॥

अपने समीप ही खड़े हुए-से सिन्धुराज जयद्रथको देखकर तत्काल वे दोनों वीर कुपित हो उसी प्रकार सहसा उसपर टूट पड़े, जैसे दो बाज मांसपर झपट रहे हों ॥ ३५ ॥

तौ दृष्ट्वा तु व्यतिक्रान्तौ हृषीकेशधनंजयौ।
सिन्धुराजस्य रक्षार्थं पराक्रान्तः सुतस्तव ॥ ३६ ॥

श्रीकृष्ण और अर्जुन सारी सेनाको लाँघकर आगे बढ़ते चले जा रहे हैं, यह देखकर आपके पुत्र दुर्योधनने सिन्धुराजकी रक्षाके लिये पराक्रम दिखाना आरम्भ किया ॥ ३६ ॥

द्रोणेनाबद्धकवचो राजा दुर्योधनस्ततः।
ययावेकरथेनाजौ हयसंस्कारवित् प्रभो ॥ ३७ ॥

प्रभो! घोड़ोंके संस्कारको जाननेवाला राजा दुर्योधन उस समय द्रोणाचार्यके बाँधे हुए कवचको धारण करके एकमात्र रथकी सहायतासे युद्धभूमिमें गया था ॥ ३७ ॥

कृष्णपार्थौ महेष्वासौ व्यतिक्रम्याथ ते सुतः।
अग्रतः पुण्डरीकाक्षं प्रतीयाय नराधिप ॥ ३८ ॥

नरेश्वर! महाधनुर्धर श्रीकृष्ण और अर्जुनको लाँघकर आपका पुत्र कमलनयन श्रीकृष्णके सामने जा पहुँचा ॥

ततः सर्वेषु सैन्येषु वादित्राणि प्रहृष्टवत्।
प्रावाद्यन्त व्यतिक्रान्ते तव पुत्रे धनंजयम् ॥ ३९ ॥

तदनन्तर आपका पुत्र दुर्योधन जब अर्जुनको भी लाँघकर आगे बढ़ गया, तब सारी सेनाओंमें हर्षपूर्ण बाजे बजने लगे ॥ ३९ ॥

सिंहनादरवाश्चासञ्शङ्खशब्दविमिश्रिताः ।
दृष्ट्वा दुर्योधनं तत्र कृष्णयोः प्रमुखे स्थितम् ॥ ४० ॥

दुर्योधनको वहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुनके सामने खड़ा देख शङ्खोंकी ध्वनिसे मिले हुए सिंहनादके शब्द सब ओर गूँजने लगे ॥ ४० ॥

ये च ते सिन्धुराजस्य गोप्तारः पावकोपमाः।
ते प्राहृष्यन्त समरे दृष्ट्वा पुत्रं तव प्रभो ॥ ४१ ॥

प्रभो! सिन्धुराजकी रक्षा करनेवाले जो अग्निके समान तेजस्वी वीर थे, वे आपके पुत्रको समराङ्गणमें डटा हुआ देख बड़े प्रसन्न हुए ॥ ४१ ॥

दृष्ट्वा दुर्योधनं कृष्णो व्यतिक्रान्तं सहानुगम्।
अब्रवीदर्जुनं राजन् प्राप्तकालमिदं वचः ॥ ४२ ॥

राजन्! सेवकोंसहित दुर्योधन सबको लाँघकर सामने आ गया—यह देखकर श्रीकृष्णने अर्जुनसे यह समयोचित बात कही ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनागमे एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें दुर्योधनका आगमनविषयक एक सौ एकवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०१ ॥

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका अर्जुनकी प्रशंसापूर्वक उसे प्रोत्साहन देना, अर्जुन और दुर्योधनका एक दूसरेके सम्मुख आना, कौरव-सैनिकोंका भय तथा दुर्योधनका अर्जुनको ललकारना

वासुदेव उवाच

दुर्योधनमतिक्रान्तमेतं पश्य धनंजय।
अत्यद्भुतमिमं मन्ये नास्त्यस्य सदृशो रथः ॥ १ ॥

श्रीकृष्ण बोले—धनंजय! सबको लाँघकर सामने आये हुए इस दुर्योधनको देखो। मैं तो इसे अत्यन्त अद्भुत योद्धा मानता हूँ। इसके समान दूसरा कोई रथी नहीं है ॥

दूरपाती महेष्वासः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः।
दृढास्त्रश्चित्रयोधी च धार्तराष्ट्रो महाबलः ॥ २ ॥

यह महाबली धृतराष्ट्रपुत्र दूरतकके लक्ष्यको मार गिरानेवाला, महान् धनुर्धर, अस्त्र-विद्यामें निपुण और युद्धमें दुर्मद है। इसके अस्त्र-शस्त्र अत्यन्त सुदृढ़ हैं तथा यह विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाला है ॥ २ ॥

अत्यन्तसुखसंवृद्धो मानितश्च महारथः।
कृती च सततं पार्थ नित्यं द्वेष्टि च बान्धवान् ॥ ३ ॥

कुन्तीकुमार ! महारथी दुर्योधन अत्यन्त सुखसे पला हुआ सम्मानित और विद्वान् है। यह तुम-जैसे बन्धु-बान्धवोंसे नित्य-निरन्तर द्वेष रखता है ॥ ३ ॥

तेन युद्धमहं मन्ये प्राप्तकालं तवानघ।
अत्र वो द्यूतमायत्तं विजयायेतराय वा ॥ ४ ॥

निष्पाप अर्जुन ! मैं समझता हूँ, इस समय इसीके साथ युद्ध करनेका अवसर प्राप्त हुआ है। यहाँ तुमलोगोंके अधीन जो रणद्यूत होनेवाला है, वही विजय अथवा पराजयका कारण होगा ॥ ४ ॥

अत्र क्रोधविषं पार्थ विमुञ्च चिरसम्भृतम्।
एष मूलमनर्थानां पाण्डवानां महारथः ॥ ५ ॥

पार्थ ! तुम बहुत दिनोंसे सँजोकर रक्खे हुए अपने क्रोधरूपी विषको इसके ऊपर छोड़ो। महारथी दुर्योधन ही पाण्डवोंके सारे अनर्थोंकी जड़ है ॥ ५ ॥

सोऽयं प्राप्तस्तवाक्षेपं पश्य साफल्यमात्मनः।
कथं हि राजा राज्यार्थी त्वया गच्छेत संयुगम् ॥ ६ ॥

आज यह तुम्हारे बाणोंके मार्गमें आ पहुँचा है। इसे तुम अपनी सफलता समझो; अन्यथा राज्यकी अभिलाषा रखनेवाला राजा दुर्योधन तुम्हारे साथ युद्ध-भूमिमें कैसे उतर सकता था ? ॥ ६ ॥

दिष्ट्या त्विदानीं सम्प्राप्त एष ते बाणगोचरम्।
यथायं जीवितं जह्यात् तथा कुरु धनंजय ॥ ७ ॥

धनंजय ! सौभाग्यवश यह दुर्योधन इस समय तुम्हारे बाणोंके पथमें आ गया है। तुम ऐसा प्रयत्न करो, जिससे यह अपने प्राणोंको त्याग दे ॥ ७ ॥

ऐश्वर्यमदसम्मूढो नैष दुःखमुपेयिवान्।
न च ते संयुगे वीर्यं जानाति पुरुषर्षभ ॥ ८ ॥

पुरुषरत्न ! ऐश्वर्यके घमंडमें चूर रहनेवाले इस दुर्योधनने कभी कष्ट नहीं उठाया है। यह युद्धमें तुम्हारे बल-पराक्रमको नहीं जानता है ॥ ८ ॥

त्वां हि लोकास्त्रयः पार्थ ससुरासुरमानुषाः।
नोत्सहन्ते रणे जेतुं किमुतैकः सुयोधनः ॥ ९ ॥

पार्थ ! देवता, असुर और मनुष्योंसहित तीनों लोक भी रणक्षेत्रमें तुम्हें जीत नहीं सकते। फिर अकेले दुर्योधनकी तो औकात ही क्या है ? ॥ ९ ॥

स दिष्ट्या समनुप्राप्तस्तव पार्थ रथान्तिकम्।
जह्येनं त्वं महाबाहो यथा वृत्रं पुरंदरः ॥ १० ॥

कुन्तीकुमार ! सौभाग्यकी बात है कि यह तुम्हारे रथके निकट आ पहुँचा है। महाबाहो ! जैसे इन्द्रने वृत्रासुरको मारा था, उसी प्रकार तुम भी इस दुर्योधनको मार डालो ॥ १० ॥

एष ह्यनर्थे सततं पराक्रान्तस्तवानघ।
निकृत्या धर्मराजं च द्यूते वञ्चितवानयम् ॥ ११ ॥

अनघ ! यह सदा तुम्हारा अनर्थ करनेमें ही पराक्रम दिखाता आया है। इसने धर्मराज युधिष्ठिरको जूएमें छल-कपटसे ठग लिया है ॥ ११ ॥

बहूनि सुनृशंसानि कृतान्येतेन मानद।
युष्मासु पापमतिना अपापेष्वेव नित्यदा ॥ १२ ॥

मानद ! तुमलोग कभी इसकी बुराई नहीं करते थे, तो भी इस पापबुद्धि दुर्योधनने सदा तुमलोगोंके साथ बहुत-से क्रूरतापूर्ण बर्ताव किये हैं ॥ १२ ॥

तमनार्यं सदा क्रुद्धं पुरुषं कामचारिणम्।
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा जहि पार्थाविचारयन् ॥ १३ ॥

पार्थ ! तुम युद्धमें श्रेष्ठ बुद्धिका आश्रय ले बिना किसी सोच-विचारके, सदा क्रोधमें भरे रहनेवाले इस स्वेच्छाचारी दुष्ट पुरुषको मार डालो ॥ १३ ॥

निकृत्या राज्यहरणं वनवासं च पाण्डव।
परिक्लेशं च कृष्णाया हृदि कृत्वा पराक्रमम् ॥ १४ ॥

पाण्डुनन्दन ! दुर्योधनने छलसे तुमलोगोंका राज्य छीन लिया है, तुम्हें जो वनवासका कष्ट भोगना पड़ा है तथा द्रौपदीको जो दुःख और अपमान उठाना पड़ा है—इन सब बातोंको मन-ही-मन याद करके पराक्रम करो ॥ १४ ॥

दिष्ट्यैष तव बाणानां गोचरे परिवर्तते।
प्रतिघाताय कार्यस्य दिष्ट्या च यततेऽग्रतः ॥ १५ ॥

सौभाग्यसे ही यह दुर्योधन तुम्हारे बाणोंकी पहुँचके भीतर चक्कर लगा रहा है। यह भी भाग्यकी बात है कि यह तुम्हारे कार्यमें बाधा डालनेके लिये सामने आकर प्रयत्नशील हो रहा है ॥ १५ ॥

दिष्ट्या जानाति संग्रामे योद्धव्यं हि त्वया सह।
दिष्ट्या च सफलाः पार्थ सर्वे कामा ह्यकामिताः ॥ १६ ॥

पार्थ ! भाग्यवश समराङ्गणमें तुम्हारे साथ युद्ध करना यह अपना कर्तव्य समझता है और भाग्यसे ही न चाहनेपर भी तुम्हारे सारे मनोरथ सफल हो रहे हैं ॥ १६ ॥

तस्माज्जहि रणे पार्थ धार्तराष्ट्रं कुलाधमम्।
यथेन्द्रेण हतः पूर्वं जम्भो देवासुरे मृधे ॥ १७ ॥

कुन्तीकुमार ! जैसे पूर्वकालमें इन्द्रने देवासुर-संग्राममें जम्भका वध किया था, उसी प्रकार तुम रणक्षेत्रमें कुलकलङ्क धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनको मार डालो ॥ १७ ॥

अस्मिन् हते त्वया सैन्यमनाथं भिद्यतामिदम्।
वैरस्यास्यास्त्ववभृथो मूलं छिन्धि दुरात्मनाम्॥ १८॥

इसके मारे जानेपर अनाथ हुई इस कौरवसेनाका संहार करो, दुरात्माओंकी जड़ काट डालो, जिससे इस वैररूपी यज्ञका अन्त होकर अवभृथस्नानका अवसर प्राप्त हो ॥१८॥

संजय उवाच

तं तथेत्यब्रवीत् पार्थः कृत्यरूपमिदं मम।
सर्वमन्यदनादृत्य गच्छ यत्र सुयोधनः॥ १९॥

संजय कहते हैं—राजन्! तब कुन्तीकुमार अर्जुनने 'बहुत अच्छा' कहकर भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'यह मेरे लिये सबसे महान् कर्तव्य प्राप्त हुआ है। अन्य सब कार्योंकी अवहेलना करके आप वहीं चलिये, जहाँ दुर्योधन खड़ा है॥

येनैतद् दीर्घकालं नो भुक्तं राज्यमकण्टकम्।
अप्यस्य युधि विक्रम्य छिन्द्यां मूर्धानमाहवे॥ २०॥

'जिसने दीर्घकालतक हमारे इस अकंटक राज्यका उपभोग किया है, मैं युद्धमें पराक्रम करके उस दुर्योधनका मस्तक काट डालूँगा॥ २०॥

अपि तस्य ह्यनर्हायाः परिक्लेशस्य माधव।
कृष्णायाः शक्नुयां गन्तुं पदं केशप्रधर्षणे॥ २१॥

'माधव! जो क्लेश भोगनेके योग्य नहीं है, उस द्रौपदीका केश पकड़कर जो उसे अपमानित किया गया है, उसका बदला इस दुर्योधनको मारकर ही चुका सकता हूँ॥ २१॥

(अप्यहं तानि दुःखानि पूर्ववृत्तानि माधव।
दुर्योधनं रणे हत्वा प्रतिमोक्ष्ये कथंचन॥)

'श्रीकृष्ण! समराङ्गणमें दुर्योधनका वध करके मैं किसी प्रकार उन सभी दुःखोंसे छुटकारा पा जाऊँगा, जो पूर्वकालमें भोगने पड़े हैं'॥

इत्येवंवादिनौ कृष्णौ हृष्टौ श्वेतान् हयोत्तमान्।
प्रेषयामासतुः संख्ये प्रेप्सन्तौ तं नराधिपम्॥ २२॥

इस प्रकारकी बातें करते हुए उन दोनों कृष्णोंने युद्धस्थलमें राजा दुर्योधनको अपना लक्ष्य बनानेके लिये हर्षपूर्वक अपने उत्तम सफेद घोड़ोंको उसकी ओर बढ़ाया॥ २२॥

तयोः समीपं सम्प्राप्य पुत्रस्ते भरतर्षभ।
न चकार भयं प्राप्ते भये महति मारिष॥२३॥

आर्य! भरतभूषण! आपके पुत्रने उन दोनोंके समीप पहुँचकर महान् भयका अवसर प्राप्त होनेपर भी भय नहीं माना॥

तदस्य क्षत्रियास्तत्र सर्व एवाभ्यपूजयन्।
यदर्जुनहृषीकेशौ प्रत्युद्यातौ न्यवारयत्॥ २४॥

अपने सामने आये हुए श्रीकृष्ण और अर्जुनको दुर्योधनने जो रोक दिया, उसके इस कार्यकी वहाँ सभी क्षत्रियोंने भूरि-भूरि प्रशंसा की॥ २४॥

ततः सर्वस्य सैन्यस्य तावकस्य विशाम्पते।
महानादो ह्यभूत् तत्र दृष्ट्वा राजानमाहवे॥ २५॥

प्रजानाथ! युद्धस्थलमें राजा दुर्योधनको उपस्थित देख आपकी सारी सेनामें महान् सिंहनाद होने लगा॥ २५॥

तस्मिञ्जनसमुन्नादे प्रवृत्ते भैरवे सति।
कदर्थीकृत्य ते पुत्रः प्रत्यमित्रमवारयत्॥ २६॥

जिस समय वह भयंकर जन-कोलाहल हो रहा था, उसी समय आपके पुत्रने अपने शत्रुको कुछ भी न समझकर आगे बढ़नेसे रोक दिया॥ २६॥

आवारितस्तु कौन्तेयस्तव पुत्रेण धन्विना।
संरम्भमगमद् भूयः स च तस्मिन् परंतपः॥ २७॥

आपके धनुर्धर पुत्र दुर्योधनद्वारा रोके जानेपर शत्रुओंको संताप देनेवाले कुन्तीकुमार अर्जुन पुनः उसके ऊपर अत्यन्त कुपित हो उठे॥ २७॥

तौ दृष्ट्वा प्रतिसंरब्धौ दुर्योधनधनंजयौ।
अभ्यवैक्षन्त राजानो भीमरूपाः समन्ततः॥ २८॥

दुर्योधन तथा अर्जुनको परस्पर कुपित देख भयंकर नरेशगण सब ओर खड़े हो चुपचाप देखने लगे॥ २८॥

दृष्ट्वा तु पार्थं संरब्धं वासुदेवं च मारिष।
प्रहसन्नेव पुत्रस्ते योद्धुकामः समाह्वयत्॥ २९॥

आर्य! अर्जुन और श्रीकृष्णको अत्यन्त रोषमें भरे देख आपके पुत्रने जोर-जोरसे हँसते हुए ही युद्धकी इच्छासे उन दोनोंको ललकारा॥ २९॥

ततः प्रहृष्टो दाशार्हः पाण्डवश्च धनंजयः।
व्यक्रोशेतां महानादं दध्मतुश्चाम्बुजोत्तमौ॥ ३०॥

तब हर्षमें भरे हुए श्रीकृष्ण और पाण्डुनन्दन अर्जुनने बड़े जोरसे सिंहनाद किया और अपने उत्तम शङ्खोंको बजाया॥

तौ हृष्टरूपौ सम्प्रेक्ष्य कौरवेयास्तु सर्वशः।
निराशाः समपद्यन्त पुत्रस्य तव जीविते॥ ३१॥

उन दोनोंको हर्षोल्लाससे परिपूर्ण देख सम्पूर्ण कौरव-सैनिक आपके पुत्रके जीवनसे निराश हो गये॥ ३१॥

शोकमापुः परे चैव कुरवः सर्व एव ते।
अमन्यन्त च पुत्रं ते वैश्वानरमुखे हुतम्॥ ३२॥

अन्य सब कौरव भी शोकमग्न हो गये और आपके पुत्रको आगके मुखमें होम दिया गया—ऐसा मानने लगे॥

तथा तु दृष्ट्वा योधास्ते प्रहृष्टौ कृष्णपाण्डवौ।
हतो राजा हतो राजेत्यूचिरे च भयार्दिताः॥ ३३॥

श्रीकृष्ण और अर्जुनको इस प्रकार हर्षमग्न देख आपके समस्त सैनिक भयसे पीड़ित हो ऐसा कहते हुए कोलाहल करने लगे कि 'हाय! राजा दुर्योधन मारे गये, मारे गये'॥ ३३॥

जनस्य संनिनादं तु श्रुत्वा दुर्योधनोऽब्रवीत्।
व्येतु वो भीरहं कृष्णौ प्रेषयिष्यामि मृत्यवे॥ ३४॥

लोगोंका वह आर्तनाद सुनकर दुर्योधन बोला—'तुम लोगोंका भय दूर हो जाना चाहिये। मैं इन दोनों कृष्णोंको मृत्युके घर भेज दूँगा' ॥ ३४ ॥

इत्युक्त्वा सैनिकान् सर्वाञ्जयापेक्षी नराधिपः।
पार्थमाभाष्य संरम्भादिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥

अपने सम्पूर्ण सैनिकोंसे ऐसा कहकर विजयकी अभिलाषा रखनेवाले राजा दुर्योधनने कुन्तीकुमारको सम्बोधित करके क्रोधपूर्वक इस प्रकार कहा— ॥ ३५ ॥

पार्थ यच्छिक्षितं तेऽस्त्रं दिव्यं पार्थिवमेव च।
तद् दर्शय मयि क्षिप्रं यदि जातोऽसि पाण्डुना ॥ ३६ ॥

'पार्थ ! यदि तुम पाण्डुके बेटे हो तो तुमने जो लौकिक एवं दिव्य अस्त्रोंकी शिक्षा प्राप्त की है, उन सबको मेरे ऊपर शीघ्र दिखाओ ॥ ३६ ॥

यद् बलं तव वीर्यं च केशवस्य तथैव च।
तत् कुरुष्व मयि क्षिप्रं पश्यामस्तव पौरुषम् ॥ ३७ ॥

'तुममें और श्रीकृष्णमें जो बल और पराक्रम हो, उसे मेरे ऊपर शीघ्र प्रकट करो। हम देखते हैं कि तुममें कितना पुरुषार्थ है ॥ ३७ ॥

अस्मत्परोक्षं कर्माणि कृतानि प्रवदन्ति ते।
स्वामिसत्कारयुक्तानि यानि तानीह दर्शय ॥ ३८ ॥

'हमारे परोक्षमें लोग स्वामीके सत्कारसे युक्त तुम्हारे किये हुए जिन कर्मोंका वर्णन करते हैं, उन्हें यहाँ दिखाओ' ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनवचने द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें दुर्योधनवचनविषयक एक सौ दोवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०२ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ३९ श्लोक हैं)

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

दुर्योधन और अर्जुनका युद्ध तथा दुर्योधनकी पराजय

संजय उवाच

एवमुक्त्वार्जुनं राजा त्रिभिर्मर्मातिगैः शरैः।
अभ्यविध्यन्महावेगैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! अर्जुनसे ऐसा कहकर राजा दुर्योधनने तीन अत्यन्त वेगशाली मर्मभेदी बाणोंद्वारा उन्हें बींध डाला और चार बाणोंद्वारा उनके चारों घोड़ोंको भी घायल कर दिया ॥ १ ॥

वासुदेवं च दशभिः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे।
प्रतोदं चास्य भल्लेन छित्त्वा भूमावपातयत् ॥ २ ॥

इसी प्रकार दस बाण मारकर उसने श्रीकृष्णकी भी छाती छेद डाली और एक भल्लसे उनके चाबुकको काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ २ ॥

तं चतुर्दशभिः पार्थश्चित्रपुङ्खैः शिलाशितैः।
अविध्यत् तूर्णमव्यग्रस्ते चाभ्रश्यन्त वर्मणि ॥ ३ ॥

तब व्यग्रतारहित अर्जुनने सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए विचित्र पंखवाले चौदह बाणोंद्वारा तुरंत उसे घायल किया; परंतु उनके वे बाण दुर्योधनके कवचपर जाकर फिसल गये ॥ ३ ॥

तेषां नैष्फल्यमालोक्य पुनर्नव च पञ्च च।
प्राहिणोन्निशितान् बाणांस्ते चाभ्रश्यन्त वर्मणः ॥ ४ ॥

उन्हें निष्फल हुआ देख अर्जुनने पुनः चौदह तीखे बाण चलाये; परंतु वे भी कवचसे फिसल गये ॥ ४ ॥

अष्टाविंशांस्तु तान् बाणानस्तान् विप्रेक्ष्य निष्फलान्।
अब्रवीत् परवीरघ्नः कृष्णोऽर्जुनमिदं वचः ॥ ५ ॥

अर्जुनके चलाये हुए उन अट्ठाईस बाणोंको निष्फल हुआ देख शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले श्रीकृष्णने उनसे इस प्रकार कहा— ॥ ५ ॥

अदृष्टपूर्वं पश्यामि शिलानामिव सर्पणम्।
त्वया सम्प्रेषिताः पार्थ नार्थं कुर्वन्ति पत्रिणः ॥ ६ ॥

'पार्थ ! आज तो मैं प्रस्तरखण्डोंके चलनेके समान ऐसी बात देख रहा हूँ, जिसे पहले कभी नहीं देखा था। तुम्हारे चलाये हुए बाण तो कोई काम नहीं कर रहे हैं ॥ ६ ॥

कच्चिद् गाण्डीवजः प्राणस्तथैव भरतर्षभ।
मुष्टिश्च ते यथापूर्वं भुजयोश्च बलं तव ॥ ७ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारे गाण्डीव-धनुषकी शक्ति पहले-जैसी ही है न ? तुम्हारी मुट्ठी एवं बाहुबल भी पूर्ववत् हैं न ? ॥

न वा कच्चिदयं कालः प्राप्तः स्यादद्य पश्चिमः।
तव चैवास्य शत्रोश्च तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥ ८ ॥

'आज तुम्हारी और तुम्हारे इस शत्रुकी अन्तिम भेंटका समय नहीं आया है क्या ? मैं जो पूछता हूँ, उसका उत्तर दो ॥

विस्मयो मे महान् पार्थ तव दृष्ट्वा शरानिमान्।
व्यर्थान् निपतितान् संख्ये दुर्योधनरथं प्रति ॥ ९ ॥

'कुन्तीनन्दन ! आज युद्धस्थलमें दुर्योधनके रथके पास निष्फल होकर गिरे हुए तुम्हारे इन बाणोंको देखकर मुझे महान् आश्चर्य हो रहा है ॥ ९ ॥

वज्राशनिसमा घोराः परकायावभेदिनः।
शराः कुर्वन्ति ते नार्थं पार्थ काद्य विडम्बना ॥ १० ॥

'पार्थ ! वज्र और अशनिके समान भयंकर तथा शत्रुओंके शरीरको विदीर्ण कर देनेवाले तुम्हारे वे बाण आज कुछ काम नहीं कर रहे हैं, यह कैसी विडम्बना है ?' ॥ १० ॥

अर्जुन उवाच

द्रोणेनैषा मतिः कृष्ण धार्तराष्ट्रे निवेशिता।
अभेद्या हि ममास्त्राणामेषा कवचधारणा ॥ ११ ॥

अर्जुन बोले—श्रीकृष्ण ! मेरा तो यह विश्वास है कि दुर्योधनको द्रोणाचार्यने अभेद्य कवच बाँधकर उसमें यह अद्भुत शक्ति स्थापित कर दी है। यह कवचधारणा मेरे अस्त्रोंके लिये अभेद्य है ॥ ११ ॥

अस्मिन्नन्तर्हितं कृष्ण त्रैलोक्यमपि वर्मणि।
एको द्रोणो हि वेदैतदहं तस्माच्च सत्तमात् ॥ १२ ॥

श्रीकृष्ण ! इस कवचके भीतर तीनों लोकोंकी शक्ति संनिहित है। एकमात्र आचार्य द्रोण ही इस विद्याको जानते हैं और उन्हीं सद्गुरुसे सीखकर मैं भी इसे जान पाया हूँ ॥

न शक्यमेतत् कवचं बाणैर्भेत्तुं कथंचन।
अपि वज्रेण गोविन्द स्वयं मघवता युधि ॥ १३ ॥

इस कवचको किसी प्रकार बाणोंद्वारा विदीर्ण नहीं किया जा सकता। गोविन्द ! युद्धस्थलमें साक्षात् देवराज इन्द्र अपने वज्रसे भी इसका विदारण नहीं कर सकते ॥ १३ ॥

जानंस्त्वमपि वै कृष्ण मां विमोहयसे कथम्।
यद् वृत्तं त्रिषु लोकेषु यच्च केशव वर्तते ॥ १४ ॥
तथा भविष्यद् यच्चैव तत् सर्वं विदितं तव।
न त्विदं वेद वै कश्चिद् यथा त्वं मधुसूदन ॥ १५ ॥

श्रीकृष्ण ! आप यह सब कुछ जानते हुए भी मुझे मोहमें कैसे डाल रहे हैं ? केशव ! तीनों लोकोंमें जो बात हो चुकी है, जो हो रही है तथा जो कुछ आगे होनेवाली है, वह सब आपको विदित है। मधुसूदन ! इसे आप जैसा जानते हैं, वैसा दूसरा कोई नहीं जानता है ॥ १४-१५ ॥

एष दुर्योधनः कृष्ण द्रोणेन विहितामिमाम्।
तिष्ठत्यभीतवत् संख्ये बिभ्रत् कवचधारणाम् ॥ १६ ॥

श्रीकृष्ण ! द्रोणाचार्यके द्वारा विधिपूर्वक धारण करायी हुई इस कवचधारणाको ग्रहण करके यह दुर्योधन युद्धस्थलमें निर्भय-सा खड़ा है ॥ १६ ॥

यत्त्वत्र विहितं कार्यं नैष तद् वेत्ति माधव।
स्त्रीवदेष बिभर्त्येतां युक्तां कवचधारणाम् ॥ १७ ॥

माधव ! इसे धारण करनेपर जिस कर्तव्यके पालनका विधान किया गया है, उसे यह नहीं जानता है। जैसे स्त्रियाँ गहने पहन लेती हैं, उसी प्रकार यह दूसरेके द्वारा दी हुई इस कवचधारणाको अपनाये हुए है ॥ १७ ॥

पश्य बाह्वोश्च मे वीर्यं धनुषश्च जनार्दन।
पराजयिष्ये कौरव्यं कवचेनापि रक्षितम् ॥ १८ ॥

जनार्दन ! अब आप मेरी भुजाओं और धनुषका बल देखिये। मैं कवचसे सुरक्षित होनेपर भी दुर्योधनको पराजित कर दूँगा ॥ १८ ॥

इदमङ्गिरसे प्रादाद् देवेशो वर्म भास्वरम्।
तस्माद् बृहस्पतिः प्राप ततः प्राप पुरंदरः ॥ १९ ॥

देवेश्वर ! ब्रह्माजीने यह तेजस्वी कवच अङ्गिराको दिया था। उनसे बृहस्पतिजीने प्राप्त किया था। बृहस्पतिजीसे वह इन्द्रको मिला ॥ १९ ॥

पुनर्ददौ सुरपतिर्मह्यं वर्म ससंग्रहम्।
दैवं यद्यस्य वर्मैतद् ब्रह्मणा वा स्वयं कृतम् ॥ २० ॥
नैनं गोप्स्यति दुर्बुद्धिमद्य बाणहतं मया।

फिर देवराज इन्द्रने विधि एवं रहस्यसहित वह कवच मुझे प्रदान किया। यदि दुर्योधनका यह कवच देवताओंद्वारा निर्मित हो अथवा स्वयं ब्रह्माजीका बनाया हुआ हो तो भी आज मेरे बाणोंद्वारा मारे गये इस दुर्बुद्धि दुर्योधनको यह बचा नहीं सकेगा ॥ २०½ ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वार्जुनो बाणमभिमन्त्र्य व्यकर्षयत् ॥ २१ ॥
मानवास्त्रेण मानार्हस्तीक्ष्णावरणभेदिना।

संजय कहते हैं—राजन् ! ऐसा कहकर माननीय अर्जुनने कठोर आवरणका भेदन करनेवाले मानवास्त्रसे अपने बाणोंको अभिमन्त्रित करके धनुषकी डोरीको खींचा ॥ २१½ ॥

विकृष्यमाणांस्तेनैव धनुर्मध्यगताञ्छरान् ॥ २२ ॥
तानस्यास्त्रेण चिच्छेद द्रौणिः सर्वास्त्रघातिना।

धनुषके बीचमें रखकर अर्जुनके द्वारा खींचे जानेवाले उन बाणोंको अश्वत्थामाने सर्वास्त्रघातक अस्त्रके द्वारा काट डाला॥

तान् निकृत्तानिषून् दृष्ट्वा दूरतो ब्रह्मवादिना ॥ २३ ॥
न्यवेदयत् केशवाय विस्मितः श्वेतवाहनः।

ब्रह्मवादी अश्वत्थामाके द्वारा दूरसे ही काट दिये गये उन बाणोंको देखकर श्वेतवाहन अर्जुन चकित हो उठे और श्रीकृष्णको सूचित करते हुए बोले—॥ २३½ ॥

नैतदस्त्रं मया शक्यं द्विः प्रयोक्तुं जनार्दन ॥ २४ ॥
अस्त्रं मामेव हन्याद्धि हन्याच्चापि बलं मम।

'जनार्दन ! इस अस्त्रका मैं दो बार प्रयोग नहीं कर सकता; क्योंकि ऐसा करनेपर यह मुझे ही मार डालेगा और मेरी सेनाका भी संहार कर देगा' ॥ २४½ ॥

ततो दुर्योधनः कृष्णौ नवभिर्नवभिः शरैः ॥ २५ ॥
अविध्यत रणे राजञ्छरैराशीविषोपमैः।

राजन् ! इसी समय दुर्योधनने रणक्षेत्रमें विषधर सर्पके समान भयंकर नौ-नौ बाणोंसे श्रीकृष्ण और अर्जुनको घायल कर दिया ॥ २५½ ॥

भूय एवाभ्यवर्षच्च समरे कृष्णपाण्डवौ ॥ २६ ॥
शरवर्षेण महता ततोऽहृष्यन्त तावकाः।
चक्रुर्वादित्रनिनदान् सिंहनादरवांस्तथा ॥ २७ ॥

उसने समरभूमिमें बड़ी भारी बाणवर्षा करके श्रीकृष्ण और पाण्डुकुमार धनंजयपर पुनः बाणोंकी झड़ी लगा दी। इससे आपके सैनिक बड़े प्रसन्न हुए। वे बाजे बजाने और सिंहनाद करने लगे ॥ २६-२७ ॥

ततः क्रुद्धो रणे पार्थः सृक्किणी परिसंलिहन्।
नापश्यच्च ततोऽस्याङ्गं यन्न स्याद् वर्मरक्षितम्॥२८॥

तदनन्तर युद्धस्थलमें कुपित हुए अर्जुन अपने मुँहके कोने चाटने लगे। उन्होंने दुर्योधनका कोई भी ऐसा अङ्ग नहीं देखा, जो कवचसे सुरक्षित न हो ॥ २८ ॥

ततोऽस्य निशितैर्बाणैः सुमुक्तैरन्तकोपमैः।
हयांश्चकार निर्देहानुभौ च पार्ष्णिसारथी ॥२९॥

तदनन्तर अर्जुनने अच्छी तरह छोड़े हुए कालोपम तीखे बाणोंद्वारा दुर्योधनके चारों घोड़ों और दोनों पृष्ठ-रक्षकोंको मार डाला ॥ २९ ॥

धनुरस्याच्छिनत् तूर्णं हस्तावापं च वीर्यवान्।
रथं च शकलीकर्तुं सव्यसाची प्रचक्रमे ॥ ३०॥

तत्पश्चात् पराक्रमी सव्यसाची अर्जुनने तुरंत ही उसके धनुष और दस्तानेको काट दिया और रथको टूक-टूक करना आरम्भ किया ॥ ३० ॥

दुर्योधनं च बाणाभ्यां तीक्ष्णाभ्यां विरथीकृतम्।
आविध्यद्धस्ततलयोरुभयोरर्जुनस्तदा ॥ ३१॥

उस समय पार्थने रथहीन हुए दुर्योधनकी दोनों हथेलियोंमें दो पैने बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३१ ॥

प्रयत्नज्ञो हि कौन्तेयो नखमांसान्तरेषुभिः।
स वेदनाभिराविग्नः पलायनपरायणः ॥ ३२॥

उपायको जाननेवाले कुन्तीकुमारने अपने बाणोंद्वारा दुर्योधनके नखोंके मांसमें प्रहार किया। तब वह वेदनासे व्याकुल हो युद्धभूमिसे भाग चला ॥ ३२ ॥

तं कृच्छ्रामापदं प्राप्तं दृष्ट्वा परमधन्विनः।
समापेतुः परीप्सन्तो धनंजयशरार्दितम् ॥३३॥

धनंजयके बाणोंसे पीड़ित हुए दुर्योधनको भारी विपत्तिमें पड़ा हुआ देख श्रेष्ठ धनुर्धर योद्धा उसकी रक्षाके लिये आ पहुँचे ॥ ३३ ॥

तं रथैर्बहुसाहस्रैः कल्पितैः कुञ्जरैर्हयैः।
पदात्योघैश्च संरब्धैः परिवव्रुर्धनंजयम् ॥३४॥

उन्होंने कई हजार रथों, सजे-सजाये हाथियों, घोड़ों तथा रोषमें भरे हुए पैदल सैनिकोंद्वारा अर्जुनको चारों ओरसे घेर लिया॥ ३४ ॥

अथ नार्जुनगोविन्दौ न रथो वा व्यदृश्यत।
अस्त्रवर्षेण महता जनौघैश्चापि संवृतौ ॥ ३५॥

उस समय बड़ी भारी बाणवर्षा और जनसमुदायसे घिरे हुए अर्जुन, श्रीकृष्ण और उनका रथ—इनमेंसे कोई भी दिखायी नहीं देता था ॥ ३५ ॥

ततोऽर्जुनोऽस्त्रवीर्येण निजघ्ने तां वरूथिनीम्।
तत्र व्यङ्गीकृताः पेतुः शतशोऽथ रथद्विपाः ॥ ३६॥

तब अर्जुन अपने अस्त्रबलसे उस कौरवसेनाका विनाश करने लगे। वहाँ सैकड़ों रथ और हाथी अंग-भंग होनेके कारण धराशायी हो गये ॥ ३६ ॥

ते हता हन्यमानाश्च न्यगृह्णंस्तं रथोत्तमम्।
स रथस्तम्भितस्तस्थौ क्रोशमात्रे समन्ततः ॥ ३७॥

उन हताहत होनेवाले कौरवसैनिकोंने उत्तम रथी अर्जुनको आगे बढ़नेसे रोक दिया। वे जयद्रथसे एक कोसकी दूरीपर चारों ओरसे रथसेनाद्वारा घिरे हुए खड़े थे ॥ ३७ ॥

ततोऽर्जुनं वृष्णिवीरस्त्वरितो वाक्यमब्रवीत्।
धनुर्विस्फारयात्यर्थमहं ध्मास्यामि चाम्बुजम् ॥ ३८॥

तब वृष्णिवीर श्रीकृष्णने तुरंत ही अर्जुनसे कहा--'तुम जोर-जोरसे धनुषको खींचो और मैं अपना शङ्ख बजाऊँगा'॥

ततो विस्फार्य बलवद् गाण्डीवं जघ्निवान् रिपून्।
महता शरवर्षेण तलशब्देन चार्जुनः ॥ ३९॥

यह सुनकर अर्जुनने बड़े जोरसे गाण्डीव धनुषको खींचकर हथेलीके चटचट शब्दके साथ भारी बाणवर्षा करते हुए शत्रुओंका संहार आरम्भ किया ॥ ३९ ॥

पाञ्चजन्यं च बलवान् दध्मौ तारेण केशवः।
रजसा ध्वस्तपक्ष्मान्ताः प्रस्विन्नवदनो भृशम् ॥ ४०॥

बलवान् केशवने उच्चस्वरसे पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया। उस समय उनकी पलकें धूलधूसरित हो रही थीं और उनके मुखपर बहुत-सी पसीनेकी बूँदें छा रही थीं ॥ ४० ॥

(तेनाच्युतोष्ठयुगपूरितमारुतेन
शङ्खान्तरोदरविवृद्धविनिःसृतेन।
नादेन सासुरवियत्सुरलोकपाल-
मुद्विग्नमीश्वर जगत् स्फुटतीव सर्वम् ॥)

तस्य शङ्खस्य नादेन धनुषो निःस्वनेन च।
निःसत्त्वाश्च ससत्त्वाश्च क्षितौ पेतुस्तदा जनाः॥ ४१॥

'नरेश्वर! भगवान् श्रीकृष्णके दोनों ओठोंसे भरी हुई वायु शङ्खके भीतरी भागमें प्रवेश करके पुष्ट हो जब गम्भीर नादके रूपमें बाहर निकली, उस समय असुरलोक (पाताल), अन्तरिक्ष, देवलोक और लोकपालोंसहित सम्पूर्ण जगत् भयसे उद्विग्न हो विदीर्ण होता-सा जान पड़ा। उस शङ्खकी ध्वनि और धनुषकी टंकारसे उद्विग्न हो निर्मल और सबल सभी शत्रु-सैनिक उस समय पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ४१ ॥

तैर्विमुक्तो रथो रेजे वाय्वीरित इवाम्बुदः।
जयद्रथस्य गोप्तारस्ततः क्षुब्धाः सहानुगाः ॥ ४२॥

उनके घेरेसे मुक्त हुआ अर्जुनका रथ वायुसंचालित मेघके समान शोभा पाने लगा। इससे जयद्रथके रक्षक सेवकों-सहित क्षुब्ध हो उठे ॥ ४२ ॥

ते दृष्ट्वा सहसा पार्थं गोप्तारः सैन्धवस्य तु।
चक्रुर्नादान् महेष्वासाः कम्पयन्तो वसुंधराम् ॥ ४३ ॥

जयद्रथकी रक्षामें नियुक्त हुए महाधनुर्धर वीर सहसा अर्जुनको देखकर पृथ्वीको कँपाते हुए जोर-जोरसे गर्जना करने लगे ॥ ४३ ॥

बाणशब्दरवांश्चोग्रान् विमिश्राञ्शङ्खनिःस्वनैः।
प्रादुश्चक्रुर्महात्मानः सिंहनादरवानपि ॥ ४४ ॥

उन महामनस्वी वीरोंने शङ्खध्वनिसे मिले हुए बाण-जनित भयंकर शब्दों और सिंहनादको भी प्रकट किया ॥४४॥

तं श्रुत्वा निनदं घोरं तावकानां समुत्थितम्।
प्रदध्मतुः शङ्खवरौ वासुदेवधनंजयौ ॥ ४५ ॥

आपके सैनिकोंद्वारा किये हुए उस भयंकर कोलाहल-को सुनकर श्रीकृष्ण और अर्जुनने अपने श्रेष्ठ शङ्खोंको बजाया ॥

तेन शब्देन महता पूरितेयं वसुंधरा।
सशैला सार्णवद्वीपा सपाताला विशाम्पते ॥ ४६ ॥

प्रजानाथ ! उस महान् शब्दसे पर्वत, समुद्र, द्वीप और पातालसहित यह सारी पृथ्वी गूँज उठी ॥ ४६ ॥

स शब्दो भरतश्रेष्ठ व्याप्य सर्वा दिशो दश।
प्रतिसस्वान तत्रैव कुरुपाण्डवयोर्बले ॥ ४७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! वह शब्द सम्पूर्ण दसों दिशाओंमें व्याप्त होकर वहीं कौरव-पाण्डव सेनाओंमें प्रतिध्वनित होता रहा ॥

तावका रथिनस्तत्र दृष्ट्वा कृष्णधनंजयौ।
सम्भ्रमं परमं प्राप्तास्त्वरमाणा महारथाः ॥ ४८ ॥

आपके रथी और महारथी वहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुनको उपस्थित देख बड़े भारी उद्वेगमें पड़कर उतावले हो उठे ॥

अथ कृष्णौ महाभागौ तावका वीक्ष्य दंशितौ।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धास्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४९ ॥

आपके योद्धा कवच धारण किये महाभाग श्रीकृष्ण और अर्जुनको आया हुआ देख कुपित हो उनकी ओर दौड़े, यह एक अद्भुत-सी बात हुई ॥ ४९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनपराजये त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें दुर्योधन-पराजयविषयक एक सौ तीनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ५० श्लोक हैं)

चतुरधिकशततमोऽध्यायः

अर्जुनका कौरव महारथियोंके साथ घोर युद्ध

संजय उवाच

तावका हि समीक्ष्यैवं वृष्ण्यन्धककुरूत्तमौ।
प्रागत्वरञ्जिघांसन्तस्तथैव विजयः परान् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! आपके सैनिक इस प्रकार वृष्णि और अन्धकवंशके श्रेष्ठ पुरुष श्रीकृष्ण तथा कुरुकुल-रत्न अर्जुनको आगे देखकर उनका वध करनेकी इच्छासे उतावले हो उठे। इसी प्रकार अर्जुन भी शत्रुओंके वधकी अभिलाषासे शीघ्रता करने लगे ॥ १ ॥

सुवर्णचित्रैर्वैयाघ्रैः स्वनवद्भिर्महारथैः।
दीपयन्तो दिशः सर्वा ज्वलद्भिरिव पावकैः ॥ २ ॥

वे कौरव सैनिक व्याघ्रचर्मसे आच्छादित सुवर्णजटित और गम्भीर घोष करनेवाले प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी विशाल रथोंद्वारा सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे ॥ २ ॥

रुक्मपुङ्खैश्च दुष्प्रेक्ष्यैः कार्मुकैः पृथिवीपते।
कूजद्भिरतुलान् नादान् कोपितैस्तुरगैरिव ॥ ३ ॥

पृथ्वीपते ! वे सोनेके पंखवाले दुर्लक्ष्य बाणों और क्रोधमें भरे हुए घोड़ोंके समान अनुपम टंकारध्वनि करनेवाले धनुषोंके द्वारा भी समस्त दिशाओंमें दीप्ति बिखेर रहे थे ॥

भूरिश्रवाः शलः कर्णो वृषसेनो जयद्रथः।
कृपश्च मद्रराजश्च द्रौणिश्च रथिनां वरः ॥ ४ ॥

ते पिबन्त इवाकाशमश्वैरष्टौ महारथाः।
व्यराजयन् दश दिशो वैयाघ्रैर्हेमचन्द्रकैः ॥ ५ ॥

भूरिश्रवा, शल, कर्ण, वृषसेन, जयद्रथ, कृपाचार्य, मद्रराज शल्य तथा रथियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामा—ये आठ महारथी व्याघ्रचर्मद्वारा आच्छादित तथा सुवर्णमय चन्द्रचिह्नोंसे विभूषित अश्वोंद्वारा आकाशको पीते हुए-से दसों दिशाओंको सुशोभित कर रहे थे ॥ ४-५ ॥

ते दंशिताः सुसंरब्धा रथैर्मेघौघनिःस्वनैः।
समावृण्वन् दश दिशः पार्थस्य निशितैः शरैः ॥ ६ ॥

कौलूतका हयाश्चित्रा वहन्तस्तान् महारथान्।
व्यशोभन्त तदा शीघ्रा दीपयन्तो दिशो दश ॥ ७ ॥

रोसमें भरे हुए उन कवचधारी वीरोंने मेघके समान गम्भीर गर्जना करनेवाले रथों और पैने बाणों द्वारा अर्जुनकी दसों दिशाओंको आच्छादित कर दिया कुलूतदेशके विचित्र एवं शीघ्रगामी घोड़े उस समय उन महारथियोंके वाहन बनकर दसों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे ॥

आजानेयैर्महावेगैर्नानादेशसमुत्थितैः।
पर्वतीयैर्नदीजैश्च सैन्धवैश्च हयोत्तमैः ॥ ८ ॥

कुरुयोधवरा राजंस्तव पुत्रं परीप्सवः।
धनंजयरथं शीघ्रं सर्वतः समुपाद्रवन् ॥ ९ ॥

राजन् ! नाना देशोंमें उत्पन्न महान् वेगशाली आजानेय[1], पर्वतीय[2] (पहाड़ी), नदीज[3] (दरियाई) तथा सिंधुदेशीय उत्तम घोड़ोंद्वारा आपके पुत्रकी रक्षाके लिये उत्सुक हुए श्रेष्ठ कौरव योद्धा सब ओरसे शीघ्र ही अर्जुनके रथपर टूट पड़े ॥ ८-९ ॥

ते प्रगृह्य महाशङ्खान् दध्मुः पुरुषसत्तमाः।
पूरयन्तो दिवं राजन् पृथिवीं च ससागराम् ॥ १० ॥

नरेश्वर ! उन पुरुषप्रवर योद्धाओंने समुद्रसहित पृथ्वी और आकाशको शब्दोंसे व्याप्त करते हुए बड़े-बड़े शङ्ख लेकर बजाये ॥ १० ॥

तथैव दध्मतुः शङ्खौ वासुदेवधनंजयौ।
प्रवरौ सर्वदेवानां सर्वशङ्खवरौ भुवि ॥ ११ ॥

इसी प्रकार सम्पूर्ण देवताओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुन भूतलके समस्त शङ्खोंमें उत्तम अपने दिव्य शङ्ख बजाने लगे ॥

देवदत्तं च कौन्तेयः पाञ्चजन्यं च केशवः।
शब्दस्तु देवदत्तस्य धनंजयसमीरितः ॥ १२ ॥
पृथिवीं चान्तरिक्षं च दिशश्चैव समावृणोत्।

कुन्तीकुमार अर्जुनने देवदत्त नामक शङ्ख बजाया और श्रीकृष्णने पाञ्चजन्य। धनंजयके बजाये हुए देवदत्तका शब्द पृथ्वी, आकाश तथा सम्पूर्ण दिशाओंमें व्याप्त हो गया ॥

तथैव पाञ्चजन्योऽपि वासुदेवसमीरितः ॥ १३ ॥
सर्वशब्दानतिक्रम्य पूरयामास रोदसी।

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके बजाये हुए पाञ्चजन्यने भी सम्पूर्ण शब्दोंको दबाकर अपनी ध्वनिसे पृथ्वी और आकाशको भर दिया ॥ १३½ ॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने दारुणे नादसंकुले ॥ १४ ॥
भीरूणां त्रासजनने शूराणां हर्षवर्धने।
प्रवादितासु भेरीषु झर्झरेष्वानकेषु च ॥ १५ ॥
मृदङ्गेष्वपि राजेन्द्र वाद्यमानेष्वनेकशः।
महारथाः समाख्याता दुर्योधनहितैषिणः ॥ १६ ॥
अमृष्यमाणास्तं शब्दं क्रुद्धाः परमधन्विनः।
नानादेश्या महीपालाः स्वसैन्यपरिरक्षिणः ॥ १७ ॥
अमर्षिता महाशङ्खान् दध्मुर्वीरा महारथाः।
कृते प्रतिकरिष्यन्तः केशवस्यार्जुनस्य च ॥ १८ ॥

राजेन्द्र ! इस प्रकार जब वहाँ भयंकर शब्द व्याप्त हो गया, जो कायरोंको डराने और शूरवीरोंके हर्षको बढ़ानेवाला था, जब भेरी, झाँझ, ढोल और मृदंग आदि अनेक प्रकारके बाजे बजने और बजाये जाने लगे, उस समय दुर्योधनका हित चाहनेवाले विख्यात महारथी उस शब्दको न सह सकनेके कारण कुपित हो उठे। वे नाना देशोंमें उत्पन्न वीर, महारथी, महाधनुर्धर महीपाल, जो अपनी सेनाका संरक्षण कर रहे थे, अमर्षमें भरकर बड़े-बड़े शङ्ख बजाने लगे; वे श्रीकृष्ण और अर्जुनके प्रत्येक कार्यका बदला चुकानेको उद्यत थे ॥ १४–१८ ॥

बभूव तव तत् सैन्यं शङ्खशब्दसमीरितम्।
उद्विग्नरथनागाश्वमस्वस्थमिव वा विभो ॥ १९ ॥

प्रभो ! आपकी वह सेना शङ्खके शब्दसे व्याप्त होनेके कारण अस्वस्थ-सी दिखायी देती थी। उसके हाथी, घोड़े और रथी सभी उद्विग्न हो उठे थे ॥ १९ ॥

तत् प्रविद्धमिवाकाशं शूरैः शङ्खविनादितम्।
बभूव भृशमुद्विग्नं निर्घातैरिव नादितम् ॥ २० ॥

शूरवीरोंने शङ्खध्वनिसे आकाशको विद्ध-सा कर डाला। वह वज्रकी गड़गड़ाहटसे व्याप्त-सा होकर अत्यन्त उद्वेगजनक हो गया ॥ २० ॥

स शब्दः सुमहान् राजन् दिशः सर्वा व्यनादयत्।
त्रासयामास तत् सैन्यं युगान्त इव सम्भृतः ॥ २१ ॥

राजन् ! प्रलयकालके समान सब ओर फैला हुआ वह महान् शब्द सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करने और आपकी सेनाको डराने लगा ॥ २१ ॥

ततो दुर्योधनोऽष्टौ च राजानस्ते महारथाः।
जयद्रथस्य रक्षार्थं पाण्डवं पर्यवारयन् ॥ २२ ॥

तदनन्तर दुर्योधन तथा आठ महारथी नरेशोंने जयद्रथकी रक्षाके लिये अर्जुनको घेर लिया ॥ २२ ॥

ततो द्रौणिस्त्रिसप्तत्या वासुदेवमताडयत्।
अर्जुनं च त्रिभिर्भल्लैर्ध्वजमश्वांश्च पञ्चभिः ॥ २३ ॥

उस समय अश्वत्थामाने भगवान् श्रीकृष्णको तिहत्तर

---

१. आजानेयका लक्षण इस प्रकार है—गुणगन्धाः काये ये सुश्लक्ष्णाः कान्तितो जितक्रोधाः। सारयुता जितेन्द्रियाः क्षुत्तृडाहितं चापि नो दुःखम् ॥ जानन्त्याजानेया निर्दिष्टा वाजिनो धीरैः। अर्थात् जिनके शरीरसे गुड़की-सी गन्ध आती हो, जो कान्तिसे अत्यन्त चिकने और चमकीले जान पड़ते हों, क्रोधको जीत चुके हों, बलवान् और जितेन्द्रिय हों तथा भूख-प्यासके कष्टका अनुभव न करते हों, उन घोड़ोंको धीर पुरुषोंने 'आजानेय' कहा है।

२. पर्वतीय घोड़ोंका लक्षण यों होना चाहिये—वाहास्तु पर्वतीया बलान्विताः स्निग्धकेशाश्च वृत्तखुरा दृढपादा महाजवास्तेऽतिविख्याताः। अर्थात् अत्यन्त विख्यात 'पर्वतीय' घोड़े बलवान् होते हैं, उनके बाल चिकने, टाप गोल, पैर सुदृढ और वेग महान् होते हैं।

३. नदीज या दरियाई घोड़ोंका लक्षण इस प्रकार है—अश्वाः सकर्णिकाराः कचन नदीतीरजाः समुद्दिष्टाः। पूर्वार्धेषूद्याः पश्चार्धे चानताः किंचित्। कहीं नदीके तटपर उत्पन्न हुए कनेरयुक्त अश्व 'नदीज' कहलाते हैं। वे आगेके आधे शरीरसे ऊँचे और पिछले आधे शरीरसे कुछ नीचे होते हैं।

बाण मारे, तीन भल्लोंसे अर्जुनको चोट पहुँचायी और पाँचसे उनके ध्वज एवं घोड़ोंको घायल कर दिया ॥ २३ ॥

तमर्जुनः पृषत्कानां शतैः षड्भिरताडयत् ।
अत्यर्थमिव संक्रुद्धः प्रतिविद्धे जनार्दने ॥२४॥

श्रीकृष्णके घायल हो जानेपर अर्जुन अत्यन्त कुपित हो उठे । उन्होंने छः सौ बाणोंद्वारा अश्वत्थामाको क्षत-विक्षत कर दिया ॥ २४ ॥

कर्णं च दशभिर्विद्ध्वा वृषसेनं त्रिभिस्तथा ।
शल्यस्य सशरं चापं मुष्टौ चिच्छेद वीर्यवान् ॥२५॥

फिर पराक्रमी अर्जुनने दस बाणोंसे कर्णको और तीन बाणोंद्वारा वृषसेनको घायल करके राजा शल्यके बाणसहित धनुषको मुट्ठी पकड़नेकी जगहसे काट डाला ॥ २५ ॥

गृहीत्वा धनुरन्यत् तु शल्यो विव्याध पाण्डवम्।
भूरिश्रवास्त्रिभिर्बाणैर्हेमपुङ्खैः शिलाशितैः ॥२६॥

तब शल्यने दूसरा धनुष हाथमें लेकर पाण्डुपुत्र अर्जुनको बींध डाला । भूरिश्रवाने सानपर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले तीन बाणोंसे उन्हें घायल कर दिया ॥

कर्णो द्वात्रिंशता चैव वृषसेनश्च सप्तभिः ।
जयद्रथस्त्रिसप्तत्या कृपश्च दशभिः शरैः ॥२७॥
मद्रराजश्च दशभिर्विव्यधुः फाल्गुनं रणे ।

फिर कर्णने बत्तीस, वृषसेनने सात, जयद्रथने तिहत्तर, कृपाचार्यने दस तथा मद्रराज शल्यने भी दस बाण मारकर रणक्षेत्रमें अर्जुनको बींध डाला ॥ २७½ ॥

ततः शराणां षष्ट्या तु द्रौणिः पार्थमवाकिरत् ॥ २८॥
वासुदेवं च विंशत्या पुनः पार्थं च पञ्चभिः ।

तत्पश्चात् अश्वत्थामाने अर्जुनपर साठ बाण बरसाये, फिर श्रीकृष्णको बीस और अर्जुनको भी पाँच बाण मारे ॥

प्रहसंस्तु नरव्याघ्रः श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ॥ २९ ॥
प्रत्यविध्यत् स तान् सर्वान् दर्शयन् पाणिलाघवम् ।

तब श्रीकृष्ण जिनके सारथि हैं, उन श्वेतवाहन पुरुषसिंह अर्जुनने जोर-जोरसे हँसते और हाथोंकी फुर्ती दिखाते हुए उन सबको बींधकर बदला चुकाया ॥ २९½ ॥

कर्णं द्वादशभिर्विद्ध्वा वृषसेनं त्रिभिः शरैः ॥ ३० ॥
शल्यस्य सशरं चापं मुष्टिदेशे व्यकृन्तत ।

कर्णको बारह और वृषसेनको तीन बाणोंसे घायल करके राजा शल्यके बाणसहित धनुषको मुट्ठी पकड़नेकी जगहसे पुनः काट डाला ॥ ३०½ ॥

सौमदत्तिं त्रिभिर्विद्ध्वा शल्यं च दशभिः शरैः॥ ३१ ॥
शितैरग्निशिखाकारैर्द्रौणिं विव्याध चाष्टभिः ।

इसके बाद भूरिश्रवाको तीन और शल्यको दस बाणोंसे बींधकर अग्निकी ज्वालाके समान आकारवाले आठ तीखे बाणोंद्वारा अश्वत्थामाको घायल कर दिया ॥ ३१½ ॥

गौतमं पञ्चविंशत्या सैन्धवं च शतेन ह ॥ ३२ ॥
पुनर्द्रौणिं च सप्तत्या शराणां सोऽभ्यताडयत् ।

तत्पश्चात् कृपाचार्यको पचीस, जयद्रथको सौ तथा अश्वत्थामाको पुनः उन्होंने सत्तर बाण मारे ॥ ३२½ ॥

भूरिश्रवास्तु संक्रुद्धः प्रतोदं चिच्छिदे हरेः ॥ ३३ ॥
अर्जुनं च त्रिसप्तत्या बाणानामाजघान ह ॥ ३४ ॥

भूरिश्रवाने कुपित होकर श्रीकृष्णका चाबुक काट डाला और अर्जुनको तिहत्तर बाणोंसे गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३३-३४॥

ततः शरशतैस्तीक्ष्णैस्तानरीञ्श्वेतवाहनः ।
प्रत्यषेधद् द्रुतं क्रुद्धो महावातो घनानिव ॥ ३५ ॥

तदनन्तर जैसे प्रचण्ड वायु बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार श्वेतवाहन अर्जुनने कुपित हो सैकड़ों तीखे बाणोंद्वारा उन शत्रुओंको तुरंत पीछे हटा दिया ॥ ३५॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संकुलयुद्धे चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें संकुलयुद्धविषयक एक सौ चारवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१०४॥

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

अर्जुन तथा कौरव-महारथियोंके ध्वजोंका वर्णन और नौ महारथियोंके साथ अकेले अर्जुनका युद्ध

धृतराष्ट्र उवाच

ध्वजान् बहुविधाकारान् भ्राजमानानतिश्रिया ।
पार्थानां मामकानां च तान् ममाचक्ष्व संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! मेरे तथा कुन्तीके पुत्रोंके जो नाना प्रकारके ध्वज अत्यन्त शोभासे उद्भासित हो रहे थे, उनका मुझसे वर्णन करो ॥ १ ॥

संजय उवाच

ध्वजान् बहुविधाकाराञ्शृणु तेषां महात्मनाम् ।
रूपतो वर्णतश्चैव नामतश्च निबोध मे ॥ २ ॥

संजयने कहा—राजन् ! उन महामनस्वी वीरोंके जो नाना प्रकारकी आकृतिवाले ध्वज फहरा रहे थे, उनका रूप-रंग और नाम मैं बता रहा हूँ, सुनिये ॥ २ ॥

तेषां तु रथमुख्यानां रथेषु विविधा ध्वजाः ।
प्रत्यदृश्यन्त राजेन्द्र ज्वलिता इव पावकाः ॥ ३ ॥

राजेन्द्र ! उन श्रेष्ठ महारथियोंके रथोंपर भाँति-भाँतिके ध्वज प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी दिखायी देते थे ॥

काञ्चनाः काञ्चनापीडाः काञ्चनस्रगलंकृताः ।
काञ्चनानीव शृङ्गाणि काञ्चनस्य महागिरेः ॥ ४ ॥

वे ध्वज सोनेके बने थे । उनके ऊपरी भागको सुवर्णसे ही सजाया गया था । सोनेकी ही मालाओंसे वे अलंकृत थे । अतः सुवर्णमय महापर्वत सुमेरुके स्वर्णमय शिखरोंके समान सुशोभित होते थे ॥ ४ ॥

अनेकवर्णा विविधा ध्वजाः परमशोभनाः ।
ते ध्वजाः संवृतास्तेषां पताकाभिः समन्ततः ॥ ५ ॥
नानावर्णविरागाभिः शुशुभुः सर्वतो वृताः ।

वे परम शोभासम्पन्न अनेक प्रकारके बहुरंगे ध्वज सब ओरसे नाना रंगकी पताकाओंद्वारा घिरकर बड़ी शोभा पाते थे ॥ ५½ ॥

पताकाश्च ततस्तास्तु श्वसनेन समीरिताः ॥ ६ ॥
नृत्यमाना व्यदृश्यन्त रङ्गमध्ये विलासिकाः ।

उनकी वे पताकाएँ वायुसे संचालित हो रंगमंचपर नृत्य करनेवाली विलासिनियोंके समान दिखायी देती थीं ॥ ६½ ॥

इन्द्रायुधसवर्णाभाः पताका भरतर्षभ ॥ ७ ॥
दोधूयमाना रथिनां शोभयन्ति महारथान् ।

भरतश्रेष्ठ ! इन्द्रधनुषके समान प्रभावाली फहराती हुई पताकाएँ रथियोंके विशाल रथोंकी शोभा बढ़ाती थीं ॥ ७½ ॥

सिंहलाङ्गलमुग्रास्यं ध्वजं वानरलक्षणम् ॥ ८ ॥
धनंजयस्य संग्रामे प्रत्यदृश्यत भैरवम् ।

उस संग्राममें अर्जुनका भयंकर ध्वज वानरके चिह्नसे सुशोभित दिखायी देता था । उस वानरकी पूँछ सिंहके समान थी और उसका मुख बड़ा ही उग्र था ॥ ८½ ॥

स वानरवरो राजन् पताकाभिरलंकृतः ॥ ९ ॥
त्रासयामास तत् सैन्यं ध्वजो गाण्डीवधन्वनः ।

राजन् ! श्रेष्ठ वानरसे सुशोभित तथा पताकाओंसे अलंकृत गाण्डीवधारी अर्जुनका वह ध्वज आपकी उस सेनाको भयभीत किये देता था ॥ ९½ ॥

तथैव सिंहलाङ्गूलं द्रोणपुत्रस्य भारत ॥ १० ॥
ध्वजाग्रं समपश्याम बालसूर्यसमप्रभम् ।

भारत ! इसी प्रकार हमलोगोंने द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके श्रेष्ठ ध्वजको प्रातःकालीन सूर्यके समान अरुण कान्तिसे प्रकाशित देखा था । उसमें सिंहकी पूँछका चिह्न था ॥ १०½ ॥

काञ्चनं पवनोद्धूतं शक्रध्वजसमप्रभम् ॥ ११ ॥
नन्दनं कौरवेन्द्राणां द्रौणेर्लक्ष्म समुच्छ्रितम् ।

अश्वत्थामाका इन्द्रध्वजके समान प्रकाशमान सुवर्णमय ऊँचा ध्वज वायुकी प्रेरणासे फहराता हुआ कौरव-नरेशोंका आनन्द बढ़ा रहा था ॥ ११½ ॥

हस्तिकक्ष्या पुनर्हैमी बभूवाधिरथेर्ध्वजः ॥ १२ ॥
आहवे खं महाराज ददृशे पूरयन्निव ।

अधिरथपुत्र कर्णका ध्वज हाथीकी सुवर्णमयी रस्सीके चिह्नसे युक्त था । महाराज ! वह संग्राममें आकाशको भरता हुआ-सा दिखायी देता था ॥ १२½ ॥

पताका काञ्चनी स्रग्वी ध्वजे कर्णस्य संयुगे ॥ १३ ॥
नृत्यतीव रथोपस्थे श्वसनेन समीरिता ।

युद्धस्थलमें कर्णके ध्वजपर सुवर्णमयी मालासे विभूषित पताका वायुसे आन्दोलित हो रथकी बैठकपर नृत्य-सा कर रही थी ॥ १३½ ॥

आचार्यस्य तु पाण्डूनां ब्राह्मणस्य तपस्विनः ॥ १४ ॥
गोवृषो गौतमस्यासीत् कृपस्य सुपरिष्कृतः ।
स तेन भ्राजते राजन् गोवृषेण महारथः ॥ १५ ॥
त्रिपुरघ्नरथो यद्वद् गोवृषेण विराजता ।

पाण्डवोंके आचार्य, तपस्वी ब्राह्मण, गौतमगोत्रीय कृपाचार्यके ध्वजपर एक बैलका सुन्दर चिह्न अङ्कित था । राजन् ! उनका वह विशाल रथ उस वृषभचिह्नसे बड़ी शोभा पा रहा था; ठीक उसी तरह, जैसे त्रिपुरनाशक महादेवजीका रथ सुन्दर वृषभचिह्नसे शोभायमान होता था ॥ १४–१५½ ॥

मयूरो वृषसेनस्य काञ्चनो मणिरत्नवान् ॥ १६ ॥
व्याहरिष्यन्निवातिष्ठत् सेनाग्रमुपशोभयन् ।

वृषसेनका मणिरत्नविभूषित सुवर्णमय ध्वज मयूरचिह्नसे युक्त था । वह मयूर सेनाके अग्रभागकी शोभा बढ़ाता हुआ इस प्रकार खड़ा था, मानो बोल देगा ॥ १६½ ॥

तेन तस्य रथो भाति मयूरेण महात्मनः ॥ १७ ॥
यथा स्कन्दस्य राजेन्द्र मयूरेण विराजता ।

राजेन्द्र ! जैसे स्वामी स्कन्दका रथ सुन्दर मयूरचिह्नसे शोभित होता है, उसी प्रकार महामना वृषसेनका रथ उस मयूरचिह्नसे शोभा पा रहा था ॥ १७½ ॥

मद्रराजस्य शल्यस्य ध्वजाग्रेऽग्निशिखामिव ॥ १८ ॥
सौवर्णीं प्रतिपश्याम सीतामप्रतिमां शुभाम् ।

मद्रराज शल्यकी ध्वजाके अग्रभागमें हमने अग्निशिखाके समान उज्ज्वल, सुवर्णमय, अनुपम तथा शुभ लक्षणोंसे युक्त एक सीता (हलसे भूमिपर खींची हुई रेखा) देखी थी ॥ १८½ ॥

सा सीता भ्राजते तस्य रथमास्थाय मारिष ॥ १९ ॥
सर्वबीजविरूढेव यथा सीता श्रिया वृता ।

माननीय नरेश ! जैसे खेतमें हलकी नोकसे बनी हुई

रेखा सभी बीजोंके अङ्कुरित होनेपर शोभासम्पन्न दिखायी देती है, उसी प्रकार मद्रराजके रथका आश्रय ले वह सीता (हलद्वारा बनी हुई रेखा) बड़ी शोभा पा रही थी ॥ १९½ ॥

वराहः सिन्धुराजस्य राजतोऽभिविराजते ॥ २० ॥
ध्वजाग्रेऽलोहितार्काभो हेमजालपरिष्कृतः ।

सिन्धुराज जयद्रथकी ध्वजाके अग्रभागमें उज्ज्वल सूर्यके समान श्वेत कान्तिमान् और सोनेकी जालीसे विभूषित चाँदीका बना हुआ वराहचिह्न अत्यन्त सुशोभित हो रहा था ॥ २०½ ॥

शुशुभे केतुना तेन राजतेन जयद्रथः ॥ २१ ॥
यथा देवासुरे युद्धे पुरा पूषा स्म शोभते ।

जैसे पूर्वकालमें देवासुर-संग्राममें पूषा शोभा पाते थे, उसी प्रकार उस रजतनिर्मित ध्वजसे जयद्रथकी शोभा हो रही थी ॥ २१½ ॥

सौमदत्तेः पुनर्यूपो यज्ञशीलस्य धीमतः ॥ २२ ॥
ध्वजः सूर्य इवाभाति सोमश्चात्र प्रदृश्यते ।

सदा यज्ञमें लगे रहनेवाले बुद्धिमान् भूरिश्रवाके रथमें यूपका चिह्न बना था। वह ध्वज सूर्यके समान प्रकाशित होता था और उसमें चन्द्रमाका चिह्न भी दृष्टिगोचर होता था ॥ २२½ ॥

स यूपः काञ्चनो राजन् सौमदत्तेर्विराजते ॥ २३ ॥
राजसूये मखश्रेष्ठे यथा यूपः समुच्छ्रितः ।

राजन् ! जैसे यज्ञोंमें श्रेष्ठ राजसूयमें ऊँचा यूप सुशोभित होता है, भूरिश्रवाका वह सुवर्णमय यूप वैसे ही शोभा पा रहा था ॥ २३½ ॥

शल्यस्य तु महाराज राजतो द्विरदो महान् ॥ २४ ॥
केतुः काञ्चनचित्राङ्गैर्मयूरैरुपशोभितः ।
स केतुः शोभयामास सैन्यं ते भरतर्षभ ॥ २५ ॥

महाराज ! शल्यके ध्वजमें चाँदीका महान् गजराज बना हुआ था । भरतश्रेष्ठ ! वह ध्वज सुवर्णनिर्मित विचित्र अङ्गोंवाले मयूरोंसे सुशोभित था और आपकी सेनाकी शोभा बढ़ा रहा था ॥ २४-२५ ॥

यथा श्वेतो महानागो देवराजचमूं तथा ।
नागो मणिमयो राज्ञो ध्वजः कनकसंवृतः ॥ २६ ॥

जैसे श्वेत वर्णका महान् ऐरावत हाथी देवराजकी सेनाको सुशोभित करता है, उसी प्रकार राजा दुर्योधनका सुवर्णमण्डित ध्वज मणिमय गजराजके चिह्नसे उपलक्षित होता था ॥ २६ ॥

किंकिणीशतसंह्रादो भ्राजंश्चित्रो रथोत्तमे ।
व्यभ्राजत भृशं राजन् पुत्रस्तव विशाम्पते ॥ २७ ॥
ध्वजेन महता संख्ये कुरूणामृषभस्तदा ।

प्रजानाथ ! वह विचित्र ध्वज दुर्योधनके उत्तम रथपर सैकड़ों क्षुद्रघंटिकाओंकी ध्वनिसे शोभायमान था । उस महान् ध्वजसे युद्धस्थलमें आपके पुत्र कुरुश्रेष्ठ दुर्योधनकी उस समय बड़ी शोभा हो रही थी ॥ २७½ ॥

नवैते तव वाहिन्यामुच्छ्रिताः परमध्वजाः ॥ २८ ॥
व्यदीपयंस्ते पृतनां युगान्तादित्यसंनिभाः ।

ये नौ उत्तम ध्वज आपकी सेनामें बहुत ऊँचे थे और प्रलयकालके सूर्यके समान अपना प्रकाश फैलाते हुए आपकी सेनाको उद्भासित कर रहे थे ॥ २८½ ॥

दशमस्त्वर्जुनस्यासीदेक एव महाकपिः ॥ २९ ॥
अदीप्यतार्जुनो येन हिमवानिव वह्निना ।

दसवाँ ध्वज एकमात्र अर्जुनका ही था, जो विशाल वानरचिह्नसे सुशोभित था । उससे अर्जुन उसी प्रकार देदीप्यमान हो रहे थे, जैसे अग्निसे हिमालय पर्वत उद्भासित होता है ॥ २९½ ॥

ततश्चित्राणि शुभ्राणि सुमहान्ति महारथाः ॥ ३० ॥
कार्मुकाण्याददुस्तूर्णमर्जुनार्थे परंतपाः ।

तदनन्तर शत्रुओंको संताप देनेवाले उन सब महारथियोंने अर्जुनको मारनेके लिये तुरंत ही विचित्र, चमकीले और विशाल धनुष हाथमें ले लिये ॥ ३०½ ॥

तथैव धनुरायच्छत् पार्थः शत्रुविनाशनः ॥ ३१ ॥
गाण्डीवं दिव्यकर्मा तद् राजन् दुर्मन्त्रिते तव ।

राजन् ! उसी प्रकार दिव्य कर्म करनेवाले शत्रुनाशन पार्थने भी आपकी कुमन्त्रणाके फलस्वरूप अपने गाण्डीव धनुषको खींचा ॥ ३१½ ॥

तवापराधाद् राजानो निहता बहुशो युधि ॥ ३२ ॥
नानादिग्भ्यः समाहूताः सहयाः सरथद्विपाः ।

महाराज ! आपके अपराधसे उस युद्धस्थलमें अनेक दिशाओंसे आमन्त्रित होकर आये हुए बहुत-से राजा अपने घोड़ों, रथों और हाथियोंसहित मारे गये हैं ॥ ३२½ ॥

तेषामासीद् व्यतिक्षेपो गर्जतामितरेतरम् ॥ ३३ ॥
दुर्योधनमुखानां च पाण्डूनामृषभस्य च ।

उस समय एक दूसरेको लक्ष्य करके गर्जना करनेवाले दुर्योधन आदि महारथियों तथा पाण्डवश्रेष्ठ अर्जुनमें परस्पर आघात-प्रतिघात होने लगा ॥ ३३½ ॥

तत्राद्भुतं परं चक्रे कौन्तेयः कृष्णसारथिः ॥ ३४ ॥
यदेको बहुभिः सार्धं समागच्छदभीतवत् ।

वहाँ श्रीकृष्ण जिनके सारथि हैं, उन कुन्तीकुमार अर्जुनने यह अत्यन्त अद्भुत पराक्रम किया कि अकेले ही बहुतोंके साथ निर्भय होकर युद्ध आरम्भ कर दिया ॥ ३४½ ॥

अशोभत महाबाहुर्गाण्डीवं विक्षिपन् धनुः ॥ ३५ ॥

जिगीषुस्तान् नरव्याघ्रो जिघांसुश्च जयद्रथम् ।

उनपर विजय पानेकी इच्छा रखकर जयद्रथके वधकी अभिलाषासे गाण्डीव धनुषको खींचते हुए पुरुषसिंह महाबाहु अर्जुनकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ३५½ ॥

तत्रार्जुनो नरव्याघ्रः शरैर्मुक्तैः सहस्रशः ॥ ३६ ॥
अदृश्यांस्तावकान् योधान् प्रचक्रे शत्रुतापनः ।

उस समय शत्रुओंको संताप देनेवाले नरव्याघ्र अर्जुनने अपने छोड़े हुए सहस्रों बाणोंद्वारा आपके योद्धाओंको अदृश्य कर दिया ॥ ३६½ ॥

ततस्तेऽपि नरव्याघ्राः पार्थं सर्वे महारथाः ॥ ३७ ॥
अदृश्यं समरे चक्रुः सायकौघैः समन्ततः ।

तब उन सभी पुरुषसिंह महारथियोंने भी समराङ्गणमें सब ओरसे बाणसमूहोंकी वर्षा करके अर्जुनको अदृश्य कर दिया ॥ ३७½ ॥

संवृते नरसिंहैस्तु कुरूणामृषभेऽर्जुने ।
महानासीत् समुद्धूतस्तस्य सैन्यस्य निःस्वनः ॥ ३८ ॥

जब कुरुश्रेष्ठ अर्जुन उन पुरुषसिंहोंद्वारा घेर लिये गये, तब उस सेनामें महान् कोलाहल प्रकट हुआ ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि ध्वजवर्णने पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें ध्वजवर्णनविषयक एक सौ पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०५ ॥

षडधिकशततमोऽध्यायः

द्रोण और उनकी सेनाके साथ पाण्डव-सेनाका द्वन्द्वयुद्ध तथा द्रोणाचार्यके साथ युद्ध करते समय रथ-भंग हो जानेपर युधिष्ठिरका पलायन

धृतराष्ट्र उवाच

अर्जुने सैन्धवं प्राप्ते भारद्वाजेन संवृताः ।
पञ्चालाः कुरुभिः सार्धं किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! जब अर्जुन सिन्धुराज जयद्रथके समीप पहुँच गये, तब द्रोणाचार्यद्वारा रोके हुए पाञ्चाल-सैनिकोंने कौरवोंके साथ क्या किया ? ॥ १ ॥

संजय उवाच

अपराह्णे महाराज संग्रामे लोमहर्षणे ।
पञ्चालानां कुरूणां च द्रोणद्यूतमवर्तत ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! उस दिन अपराह्ण-कालमें, जब रोमाञ्चकारी युद्ध चल रहा था, पाञ्चालों और कौरवोंमें द्रोणाचार्यको दाँवपर रखकर द्यूत-सा होने लगा ॥ २ ॥

पञ्चाला हि जिघांसन्तो द्रोणं संहृष्टचेतसः ।
अभ्यमुञ्चन्त गर्जन्तः शरवर्षाणि मारिष ॥ ३ ॥

माननीय नरेश ! पाञ्चाल-सैनिक द्रोणको मार डालनेकी इच्छासे प्रसन्नचित्त होकर गर्जना करते हुए उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३ ॥

ततस्तु तुमुलस्तेषां संग्रामोऽवर्तताद्भुतः ।
पञ्चालानां कुरूणां च घोरो देवासुरोपमः ॥ ४ ॥

तदनन्तर उन पाञ्चालों और कौरवोंमें घोर देवासुर-संग्रामके समान अद्भुत एवं भयंकर युद्ध होने लगा ॥ ४ ॥

सर्वे द्रोणरथं प्राप्य पञ्चालाः पाण्डवैः सह ।
तदनीकं बिभित्सन्तो महास्त्राणि व्यदर्शयन् ॥ ५ ॥

समस्त पाञ्चाल पाण्डवोंके साथ द्रोणाचार्यके रथके समीप जाकर उनकी सेनाके व्यूहका भेदन करनेकी इच्छासे बड़े-बड़े अस्त्रोंका प्रदर्शन करने लगे ॥ ५ ॥

द्रोणस्य रथपर्यन्तं रथिनो रथमास्थिताः ।
कम्पयन्तोऽभ्यवर्तन्त वेगमास्थाय मध्यमम् ॥ ६ ॥

वे पाञ्चाल रथी रथपर बैठकर मध्यम वेगका आश्रय ले पृथ्वीको कँपाते हुए द्रोणाचार्यके रथके अत्यन्त निकट जाकर उनका सामना करने लगे ॥ ६ ॥

तमभ्ययाद् बृहत्क्षत्रः केकयानां महारथः ।
प्रवपन् निशितान् बाणान् महेन्द्राशनिसंनिभान् ॥ ७ ॥

केकयदेशके महारथी वीर बृहत्क्षत्रने महेन्द्रके वज्रके समान तीखे बाणोंकी वर्षा करते हुए वहाँ द्रोणाचार्यपर धावा किया ॥ ७ ॥

तं तु प्रत्युद्ययौ शीघ्रं क्षेमधूर्तिर्महायशाः ।
विमुञ्चन् निशितान् बाणाञ्शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ८ ॥

उस समय महायशस्वी क्षेमधूर्ति सैकड़ों और हजारों तीखे बाण छोड़ते हुए शीघ्रतापूर्वक बृहत्क्षत्रका सामना करनेके लिये गये ॥ ८ ॥

धृष्टकेतुश्च चेदीनामृषभोऽतिबलोदितः ।
त्वरितोऽभ्यद्रवद् द्रोणं महेन्द्र इव शम्बरम् ॥ ९ ॥

अत्यन्त बलसे विख्यात चेदिराज धृष्टकेतुने भी बड़ी उतावलीके साथ द्रोणाचार्यपर धावा किया, मानो देवराज इन्द्रने शम्बरासुरपर चढ़ाई की हो ॥ ९ ॥

तमापतन्तं सहसा व्यादितास्यमिवान्तकम् ।
वीरधन्वा महेष्वासस्त्वरमाणः समभ्ययात् ॥ १० ॥

मुँह बाये हुए कालके समान सहसा आक्रमण करनेवाले धृष्टकेतुका सामना करनेके लिये महाधनुर्धर वीरधन्वा बड़े वेगसे आ पहुँचे ॥ १० ॥

युधिष्ठिरं महाराजं जिगीषुं समवस्थितम् ।
सहानीकं ततो द्रोणो न्यवारयत वीर्यवान् ॥ ११ ॥

तदनन्तर पराक्रमी द्रोणाचार्यने विजयकी इच्छासे सेना-सहित खड़े हुए महाराज युधिष्ठिरको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ११ ॥

नकुलं कुशलं युद्धे पराक्रान्तं पराक्रमी ।
अभ्यगच्छत् समायान्तं विकर्णस्ते सुतः प्रभो ॥ १२ ॥

प्रभो ! आपके पराक्रमी पुत्र विकर्णने वहाँ आते हुए पराक्रमशाली युद्धकुशल नकुलका सामना किया ॥ १२ ॥

सहदेवं तथाऽऽयान्तं दुर्मुखः शत्रुकर्षणः ।
शरैरनेकसाहस्रैः समवाकिरदाशुगैः ॥ १३ ॥

शत्रुसूदन दुर्मुखने अपने सामने आते हुए सहदेवपर कई हजार बाणोंकी वर्षा की ॥ १३ ॥

सात्यकिं तु नरव्याघ्रं व्याघ्रदत्तस्त्ववारयत् ।
शरैः सुनिशितैस्तीक्ष्णैः कम्पयन् वै मुहुर्मुहुः ॥ १४ ॥

व्याघ्रदत्तने अत्यन्त तेज किये हुए तीखे बाणोंद्वारा बारंबार शत्रुसेनाको कम्पित करते हुए वहाँ पुरुषसिंह सात्यकिको आगे बढ़नेसे रोका ॥ १४ ॥

द्रौपदेयान् नरव्याघ्रान् मुञ्चतः सायकोत्तमान् ।
संरब्धान् रथिनः श्रेष्ठान् सौमदत्तिरवारयत् ॥ १५ ॥

मनुष्योंमें व्याघ्रके समान पराक्रमी तथा श्रेष्ठ रथी द्रौपदीके पाँचों पुत्र कुपित होकर शत्रुओंपर उत्तम बाणोंकी वर्षा कर रहे थे। सोमदत्तकुमार शलने उन सबको रोक दिया ॥ १५ ॥

भीमसेनं तदा क्रुद्धं भीमरूपो भयानकः ।
प्रत्यवारयदायान्तमार्ष्यश्रृङ्गिर्महारथः ॥ १६ ॥

भयंकर रूपधारी एवं भयानक महारथी ऋष्यश्रृङ्ग-कुमार अलम्बुषने उस समय क्रोधमें भरकर आते हुए भीमसेनको रोका ॥ १६ ॥

तयोः समभवद् युद्धं नरराक्षसयोर्मृधे ।
यादृगेव पुरा वृत्तं रामरावणयोर्नृप ॥ १७ ॥

राजन् ! पूर्वकालमें जिस प्रकार श्रीराम और रावणका संग्राम हुआ था, उसी प्रकार उस रणक्षेत्रमें मानव भीमसेन तथा राक्षस अलम्बुषका युद्ध हुआ ॥ १७ ॥

ततो युधिष्ठिरो द्रोणं नवत्या नतपर्वणाम् ।
आजघ्ने भरतश्रेष्ठः सर्वमर्मसु भारत ॥ १८ ॥

भरतनन्दन ! तदनन्तर भरतभूषण युधिष्ठिरने झुकी हुई गाँठवाले नब्बे बाणोंसे द्रोणाचार्यके सम्पूर्ण मर्मस्थानोंमें आघात किया ॥ १८ ॥

तं द्रोणः पञ्चविंशत्या निजघान स्तनान्तरे ।
रोषितो भरतश्रेष्ठ कौन्तेयेन यशस्विना ॥ १९ ॥

भरतश्रेष्ठ ! यशस्वी कुन्तीकुमारके क्रोध दिलानेपर द्रोणाचार्यने उनकी छातीमें पचीस बाण मारे ॥ १९ ॥

भूय एव तु विंशत्या सायकानां समाचिनोत् ।
साश्वसूतध्वजं द्रोणः पश्यतां सर्वधन्विनाम् ॥ २० ॥

फिर द्रोणने सम्पूर्ण धनुर्धरोंके देखते-देखते घोड़े, सारथि और ध्वजसहित युधिष्ठिरको बीस बाण मारे ॥ २० ॥

ताञ्शरान् द्रोणमुक्तांस्तु शरवर्षेण पाण्डवः ।
अवारयत धर्मात्मा दर्शयन् पाणिलाघवम् ॥ २१ ॥

धर्मात्मा पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने अपने हाथोंकी फुर्ती दिखाते हुए द्रोणाचार्यके छोड़े हुए उन बाणोंको अपनी बाण-वर्षाद्वारा रोक दिया ॥ २१ ॥

ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धो धर्मराजस्य संयुगे ।
चिच्छेद समरे धन्वी धनुस्तस्य महात्मनः ॥ २२ ॥

तब धनुर्धर द्रोणाचार्य उस युद्धस्थलमें महात्मा धर्मराज युधिष्ठिरपर अत्यन्त कुपित हो उठे । उन्होंने समराङ्गणमें युधिष्ठिरके धनुषको काट दिया ॥ २२ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं त्वरमाणो महारथः ।
शरैरनेकसाहस्रैः पूरयामास सर्वतः ॥ २३ ॥

धनुष काट देनेके पश्चात् महारथी द्रोणाचार्यने बड़ी उतावलीके साथ कई हजार बाणोंकी वर्षा करके उन्हें सब ओरसे ढक दिया ॥ २३ ॥

अदृश्यं वीक्ष्य राजानं भारद्वाजस्य सायकैः ।
सर्वभूतान्यमन्यन्त हतमेव युधिष्ठिरम् ॥ २४ ॥

राजा युधिष्ठिरको द्रोणाचार्यके बाणोंसे अदृश्य हुआ देख समस्त प्राणियोंने उन्हें मारा गया ही मान लिया ॥ २४ ॥

केचिच्चैनममन्यन्त तथैव विमुखीकृतम् ।
हतो राजेति राजेन्द्र ब्राह्मणेन महात्मना ॥ २५ ॥

राजेन्द्र ! कुछ लोग ऐसा समझते थे कि युधिष्ठिर पराजित होकर भाग गये । कुछ लोगोंकी यही धारणा थी कि महामनस्वी ब्राह्मण द्रोणाचार्यके हाथसे राजा युधिष्ठिर मार डाले गये ॥ २५ ॥

स कृच्छ्रं परमं प्राप्तो धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
त्यक्त्वा तत् कार्मुकं छिन्नं भारद्वाजेन संयुगे ॥ २६ ॥
आददेऽन्यद् धनुर्दिव्यं भास्वरं वेगवत्तरम् ।

इस प्रकार भारी संकटमें पड़े हुए धर्मराज युधिष्ठिरने युद्धमें द्रोणाचार्यके द्वारा काट दिये गये उस धनुषको त्यागकर दूसरा प्रकाशमान एवं अत्यन्त वेगशाली दिव्य धनुष धारण किया ॥ २६½ ॥

ततस्तान् सायकांस्तत्र द्रोणमुक्तान् सहस्रशः ॥ २७ ॥
चिच्छेद समरे वीरस्तदद्भुतमिवाभवत् ।

तदनन्तर वीर युधिष्ठिरने समराङ्गणमें द्रोणाचार्यके

चलाये हुए सहस्रों बाणोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। वह अद्भुत-सी बात हुई ॥ २७½ ॥

छित्त्वा तु तान् शरान् राजन् क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ २८ ॥
शक्तिं जग्राह समरे गिरीणामपि दारिणीम्।
स्वर्णदण्डां महाघोरामष्टघण्टां भयावहाम् ॥ २९ ॥

राजन्! उस समराङ्गणमें क्रोधसे लाल आँखें किये युधिष्ठिरने द्रोणके उन बाणोंको काटकर एक शक्ति हाथमें ली, जो पर्वतोंको भी विदीर्ण कर देनेवाली थी। उसमें सोनेका डंडा और आठ घंटियाँ लगी थीं। वह अत्यन्त घोर शक्ति मनमें भय उत्पन्न करनेवाली थी ॥ २८-२९ ॥

समुत्क्षिप्य च तां हृष्टो ननाद बलवद् बली।
नादेन सर्वभूतानि त्रासयन्निव भारत ॥ ३० ॥

भारत! उसे चलाकर हर्षमें भरे हुए बलवान् युधिष्ठिरने बड़े जोरसे सिंहनाद किया। उन्होंने उस सिंहनादसे सम्पूर्ण भूतोंमें भय-सा उत्पन्न कर दिया ॥ ३० ॥

शक्तिं समुद्यतां दृष्ट्वा धर्मराजेन संयुगे।
स्वस्ति द्रोणाय सहसा सर्वभूतान्यथाब्रुवन् ॥ ३१ ॥

युद्धस्थलमें धर्मराजके द्वारा उठायी हुई उस शक्तिको देखकर समस्त प्राणी सहसा बोल उठे—'द्रोणाय स्वस्ति (द्रोणाचार्यका कल्याण हो)' ॥ ३१ ॥

सा राजभुजनिर्मुक्ता निर्मुक्तोरगसंनिभा।
प्रज्वालयन्ती गगनं दिशः सप्रदिशस्तथा ॥ ३२ ॥
द्रोणान्तिकमनुप्राप्ता दीप्तास्या पन्नगी यथा।

केंचुलसे छूटे हुए सर्पके समान राजाकी भुजाओंसे मुक्त हुई वह शक्ति आकाश दिशाओं तथा विदिशाओं (कोणों) को प्रकाशित करती हुई जलते मुखवाली नागिनके समान द्रोणाचार्यके निकट जा पहुँची ॥ ३२½ ॥

तामापतन्तीं सहसा दृष्ट्वा द्रोणो विशाम्पते ॥ ३३ ॥
प्रादुश्चक्रे ततो ब्राह्ममस्त्रमस्त्रविदां वरः।

प्रजानाथ! तब सहसा आती हुई उस शक्तिको देखकर अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ द्रोणने ब्रह्मास्त्र प्रकट किया ॥ ३३½ ॥

तदस्त्रं भस्मसात्कृत्वा तां शक्तिं घोरदर्शनाम् ॥ ३४ ॥
जगाम स्यन्दनं तूर्णं पाण्डवस्य यशस्विनः।

वह अस्त्र भयंकर दीखनेवाली उस शक्तिको भस्म करके तुरंत ही यशस्वी युधिष्ठिरके रथकी ओर चला ॥ ३४½ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा द्रोणास्त्रं तत् समुद्यतम् ॥ ३५ ॥
अशामयन्महाप्राज्ञो ब्रह्मास्त्रेणैव मारिष।

माननीय नरेश! तब महाप्राज्ञ राजा युधिष्ठिरने द्रोणद्वारा चलाये गये उस ब्रह्मास्त्रको ब्रह्मास्त्रद्वारा ही शान्त कर दिया ॥ ३५½ ॥

विद्ध्वा तं च रणे द्रोणं पञ्चभिर्नतपर्वभिः ॥ ३६ ॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन चिच्छेदास्य महद् धनुः।

इसके बाद झुकी हुई गाँठवाले पाँच बाणोंद्वारा रणक्षेत्रमें द्रोणाचार्यको घायल करके तीखे क्षुरप्रसे उनके विशाल धनुषको काट दिया ॥ ३६½ ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ३७ ॥
गदां चिक्षेप सहसा धर्मपुत्राय मारिष।

आर्य! क्षत्रियमर्दन द्रोणने उस कटे हुए धनुषको फेंककर सहसा धर्मपुत्र युधिष्ठिरपर गदा चलायी ॥ ३७½ ॥

तामापतन्तीं सहसा गदां दृष्ट्वा युधिष्ठिरः ॥ ३८ ॥
गदामेवाग्रहीत् क्रुद्धश्चिक्षेप च परंतप।

शत्रुओंको संताप देनेवाले नरेश! उस गदाको सहसा अपने ऊपर आती देख क्रोधमें भरे हुए युधिष्ठिरने भी गदा ही उठा ली और द्रोणाचार्यपर चला दी ॥ ३८½ ॥

ते गदे सहसा मुक्ते समासाद्य परस्परम् ॥ ३९ ॥
संघर्षात् पावकं मुक्त्वा समेयातां महीतले।

एकबारगी छोड़ी हुई वे दोनों गदाएँ एक दूसरीसे टकराकर संघर्षसे आगकी चिनगारियाँ छोड़ती हुई



पृथ्वीपर गिर पड़ीं ॥ ३९½ ॥

ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धो धर्मराजस्य मारिष ॥ ४० ॥
चतुर्भिर्निशितैस्तीक्ष्णैर्हयाञ्जघ्ने शरोत्तमैः।

माननीय नरेश! तब द्रोणाचार्य अत्यन्त कुपित हो उठे और उन्होंने सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए चार तीखे एवं उत्तम बाणोंद्वारा धर्मराजके चारों घोड़ोंको मार डाला ॥ ४०½ ॥

चिच्छेदैकेन भल्लेन धनुश्चेन्द्रध्वजोपमम् ॥ ४१ ॥
केतुमेकेन चिच्छेद पाण्डवं चार्दयत् त्रिभिः ।

फिर एक भल्ल चलाकर उनका धनुष काट दिया। एक भल्लसे इन्द्रध्वजके समान उनकी ध्वजा खण्डित कर दी और तीन बाणोंसे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको भी पीड़ा पहुँचायी ॥ ४१½ ॥

हताश्वात् तु रथात् तूर्णमवप्लुत्य युधिष्ठिरः ॥ ४२॥
तस्थावूर्ध्वभुजो राजा व्यायुधो भरतर्षभ ।

भरतश्रेष्ठ ! जिसके घोड़े मारे गये थे, उस रथसे तुरंत ही कूदकर राजा युधिष्ठिर बिना आयुधके हाथ ऊपर उठाये धरतीपर खड़े हो गये ॥ ४२½ ॥

विरथं तं समालोक्य व्यायुधं च विशेषतः ॥ ४३॥
द्रोणो व्यमोहयच्छत्रून् सर्वसैन्यानि वा विभो ।

प्रभो ! उन्हें रथ और विशेषतः आयुधसे रहित देख द्रोणाचार्यने शत्रुओं तथा उनकी सम्पूर्ण सेनाओंको मोहित कर दिया ॥ ४३½ ॥

मुञ्चन्निषुगणांस्तीक्ष्णाँल्लघुहस्तो दृढव्रतः ॥ ४४ ॥
अभिदुद्राव राजानं सिंहो मृगमिवोल्बणः ।

दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करनेवाले द्रोणके हाथ बड़ी फुर्तीसे चलते थे। जैसे प्रचण्ड सिंह किसी मृगका पीछा करता हो, उसी प्रकार वे तीखे बाणसमूहोंकी वर्षा करते हुए राजा युधिष्ठिरकी ओर दौड़े ॥ ४४½ ॥

तमभिद्रुतमालोक्य द्रोणेनामित्रघातिना ॥ ४५ ॥
हाहेति सहसा शब्दः पाण्डूनां समजायत ।

शत्रुनाशक द्रोणाचार्यके द्वारा युधिष्ठिरका पीछा होता देख पाण्डवदलमें सहसा हाहाकार मच गया ॥ ४५½ ॥

हतो राजा हतो राजा भारद्वाजेन मारिष ॥ ४६ ॥
इत्यासीत् सुमहाञ्छब्दः पाण्डुसैन्यस्य भारत ।

भारत ! माननीय नरेश ! पाण्डुसेनामें यह महान् कोलाहल होने लगा कि 'राजा मारे गये, राजा मारे गये' ॥

ततस्त्वरितमारुह्य सहदेवरथं नृपः ।
अपायाज्जवनैरश्वैः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ४७ ॥

तदनन्तर कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर तुरंत ही सहदेवके रथपर आरूढ़ हो अपने वेगशाली घोड़ोंद्वारा वहाँसे हट गये ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरापयाने षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें युधिष्ठिरका पलायनविषयक एक सौ छवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०६ ॥

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

कौरवसेनाके क्षेमधूर्ति, वीरधन्वा, निरमित्र तथा व्याघ्रदत्तका वध और दुर्मुख एवं विकर्णकी पराजय

संजय उवाच

बृहत्क्षत्रमथायान्तं कैकेयं दृढविक्रमम् ।
क्षेमधूर्तिर्महाराज विव्याधोरसि मार्गणैः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! तदनन्तर सुदृढ़ पराक्रमी केकयराज बृहत्क्षत्रको आते देख क्षेमधूर्तिने अनेक बाणोंद्वारा उनकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ १ ॥

बृहत्क्षत्रस्तु तं राजा नवत्या नतपर्वणाम् ।
आजघ्ने त्वरितो राजन् द्रोणानीकबिभित्सया ॥ २ ॥

राजन् ! तब राजा बृहत्क्षत्रने भी झुकी हुई गाँठवाले नब्बे बाणोंद्वारा तुरंत ही द्रोणाचार्यके सैन्यव्यूहका विघटन करनेकी इच्छासे क्षेमधूर्तिको घायल कर दिया ॥ २ ॥

क्षेमधूर्तिस्तु संक्रुद्धः कैकेयस्य महात्मनः ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन पीतेन निशितेन ह ॥ ३ ॥

इससे क्षेमधूर्ति अत्यन्त कुपित हो उठा और उसने पानीदार तीखे भल्लसे महामनस्वी केकयराजका धनुष काट डाला॥

अथैनं छिन्नधन्वानं शरेणानतपर्वणा ।
विव्याध समरे तूर्णं प्रवरं सर्वधन्विनाम् ॥ ४ ॥

धनुष कट जानेपर समस्त धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ बृहत्क्षत्रको समराङ्गणमें झुकी हुई गाँठवाले बाणसे उसने तुरंत ही बींध डाला ॥ ४ ॥

अथान्यद् धनुरादाय बृहत्क्षत्रो हसन्निव ।
व्यश्वसूतरथं चक्रे क्षेमधूर्तिं महारथम् ॥ ५ ॥

तदनन्तर बृहत्क्षत्रने दूसरा धनुष हाथमें लेकर हँसते हँसते महारथी क्षेमधूर्तिको घोड़ों, सारथि और रथसे हीन कर दिया॥

ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च ।
जहार नृपतेः कायाच्छिरो ज्वलितकुण्डलम् ॥ ६ ॥

इसके बाद दूसरे पानीदार तीखे भल्लसे राजा क्षेमधूर्तिके प्रज्वलित कुण्डलोंवाले मस्तकको धड़से अलग कर दिया ॥ ६ ॥

तच्छिन्नं सहसा तस्य शिरः कुञ्चितमूर्धजम् ।
सकिरीटं महीं प्राप्य बभौ ज्योतिरिवाम्बरात् ॥ ७ ॥

सहसा कटा हुआ घुँघराले बालोंवाला क्षेमधूर्तिका मस्तक मुकुटसहित पृथ्वीपर गिरकर आकाशसे टूटे हुए तारेके समान प्रतीत हुआ ॥ ७ ॥

तं निहत्य रणे हृष्टो बृहत्क्षत्रो महारथः ।
सहसाभ्यपतत् सैन्यं तावकं पार्थकारणात् ॥ ८ ॥

रणक्षेत्रमें क्षेमधूर्तिका वध करके प्रसन्न हुए महारथी बृहत्क्षत्र युधिष्ठिरके हितके लिये सहसा आपकी सेनापर टूट पड़े॥

धृष्टकेतुं तथाऽऽयान्तं द्रोणहेतोः पराक्रमी ।
वीरधन्वा महेष्वासो वारयामास भारत ॥ ९ ॥

भारत ! इसी प्रकार द्रोणाचार्यके हितके लिये महाधनुर्धर पराक्रमी वीरधन्वाने वहाँ आते हुए धृष्टकेतुको रोका ॥ ९ ॥

तौ परस्परमासाद्य शरदंष्ट्रौ तरस्विनौ ।
शरैरनेकसाहस्रैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ १० ॥

वे दोनों वेगशाली वीर बाणरूपी दाढ़ोंसे युक्त हो परस्पर भिड़कर अनेक सहस्र बाणोंद्वारा एक दूसरेको चोट पहुँचाने लगे ॥ १० ॥

तावुभौ नरशार्दूलौ युयुधाते परस्परम् ।
महावने तीव्रमदौ वारणाविव यूथपौ ॥ ११ ॥

महान् वनमें तीव्र मदवाले दो यूथपति गजराजोंके समान वे दोनों पुरुषसिंह परस्पर युद्ध करने लगे ॥ ११ ॥

गिरिगह्वरमासाद्य शार्दूलाविव रोषितौ ।
युयुधाते महावीर्यौ परस्परजिघांसया ॥ १२ ॥

दोनों ही महान् पराक्रमी थे और एक दूसरेको मार डालनेकी इच्छासे रोषमें भरकर पर्वतकी गुफामें पहुँचकर लड़नेवाले दो सिंहोंके समान आपसमें जूझ रहे थे ॥ १२ ॥

तद् युद्धमासीत् तुमुलं प्रेक्षणीयं विशाम्पते ।
सिद्धचारणसंघानां विस्मयाद्भुतदर्शनम् ॥ १३ ॥

प्रजानाथ ! उनका वह घमासान युद्ध देखने ही योग्य था । वह सिद्धों और चारणसमूहोंको भी आश्चर्यजनक एवं अद्भुत दिखायी देता था ॥ १३ ॥

वीरधन्वा ततः क्रुद्धो धृष्टकेतोः शरासनम् ।
द्विधा चिच्छेद भल्लेन प्रहसन्निव भारत ॥ १४ ॥

भरतनन्दन ! तत्पश्चात् वीरधन्वाने कुपित होकर हँसते हुए-से ही एक भल्लद्वारा धृष्टकेतुके धनुषके दो टुकड़े कर दिये॥

तदुत्सृज्य धनुश्छिन्नं चेदिराजो महारथः ।
शक्तिं जग्राह विपुलां हेमदण्डामयस्मयीम् ॥ १५ ॥

महारथी चेदिराज धृष्टकेतुने उस कटे हुए धनुषको फेंककर एक लोहेकी बनी हुई स्वर्णदण्डविभूषित विशाल शक्ति हाथमें ले ली ॥ १५ ॥

तां तु शक्तिं महावीर्यां दोर्भ्यामायम्य भारत ।
चिक्षेप सहसा यत्तो वीरधन्वरथं प्रति ॥ १६ ॥

भारत ! उस अत्यन्त प्रबल शक्तिको दोनों हाथोंसे उठाकर यत्नशील धृष्टकेतुने सहसा वीरधन्वाके रथपर उसे दे मारा ॥ १६ ॥

तया तु वीरघातिन्या शक्त्या त्वभिहतो भृशम् ।
निर्भिन्नहृदयस्तूर्णं निपपात रथान्महीम् ॥ १७ ॥

उस वीरघातिनी शक्तिकी गहरी चोट खाकर वीरधन्वाका वक्षःस्थल विदीर्ण हो गया और वह तुरंत ही रथसे पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ १७ ॥

तस्मिन् विनिहते वीरे त्रैगर्तानां महारथे ।
बलं तेऽभज्यत विभो पाण्डवेयैः समन्ततः ॥ १८ ॥

प्रभो ! त्रिगर्तदेशके उस महारथी वीरके मारे जानेपर पाण्डव सैनिकोंने चारों ओरसे आपकी सेनाको विघटित कर दिया ॥ १८ ॥

सहदेवे ततः षष्टिं सायकान् दुर्मुखोऽक्षिपत् ।
ननाद च महानादं तर्जयन् पाण्डवं रणे ॥ १९ ॥

तदनन्तर दुर्मुखने रणक्षेत्रमें सहदेवपर साठ बाण चलाये और उन पाण्डुकुमारको डाँट बताते हुए बड़े जोरसे गर्जना की ॥ १९ ॥

माद्रेयस्तु ततः क्रुद्धो दुर्मुखं च शितैः शरैः ।
भ्राता भ्रातरमायान्तं विव्याध प्रहसन्निव ॥ २० ॥

यह देख माद्रीकुमार कुपित हो उठे। वे दुर्मुखके भाई लगते थे । उन्होंने अपने पास आते हुए भ्राता दुर्मुखको हँसते हुए-से तीखे बाणोंद्वारा बींध डाला ॥ २० ॥

तं रणे रभसं दृष्ट्वा सहदेवं महाबलम् ।
दुर्मुखो नवभिर्बाणैस्ताडयामास भारत ॥ २१ ॥

भारत ! रणक्षेत्रमें महाबली सहदेवका वेग बढ़ता देख दुर्मुखने नौ बाणोंद्वारा उन्हें घायल कर दिया ॥ २१ ॥

दुर्मुखस्य तु भल्लेन छित्त्वा केतुं महाबलः ।
जघान चतुरो वाहांश्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ॥ २२ ॥

तब महाबली सहदेवने एक भल्लसे दुर्मुखकी ध्वजा काटकर चार तीखे बाणोंद्वारा उसके चारों घोड़ोंको मार डाला॥

अथापरेण भल्लेन पीतेन निशितेन ह ।
चिच्छेद सारथेः कायाच्छिरो ज्वलितकुण्डलम् ॥ २३ ॥

फिर दूसरे पानीदार एवं तीखे भल्लसे उसके सारथिके चमकीले कुण्डलवाले मस्तकको धड़से काट गिराया ॥ २३ ॥

क्षुरप्रेण च तीक्ष्णेन कौरव्यस्य महद् धनुः ।
सहदेवो रणे छित्त्वा तं च विव्याध पञ्चभिः ॥ २४ ॥

तत्पश्चात् सहदेवने तीखे क्षुरप्रसे समराङ्गणमें दुर्मुखके विशाल धनुषको काटकर उसे भी पाँच बाणोंसे घायल कर दिया ॥ २४ ॥

हताश्वं तु रथं त्यक्त्वा दुर्मुखो विमनास्तदा ।
आरुरोह रथं राजन् निरमित्रस्य भारत ॥ २५ ॥

राजन् ! भरतनन्दन ! तब दुर्मुख दुःखी मनसे उस अश्वहीन रथको त्यागकर निरमित्रके रथपर जा चढ़ा ॥ २५ ॥

सहदेवस्ततः क्रुद्धो निरमित्रं महाहवे ।
जघान पृतनामध्ये भल्लेन परवीरहा ॥ २६ ॥

इससे शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले सहदेव कुपित हो उठे और उन्होंने उस महासमरमें सेनाके बीचों-बीच एक भल्लसे निरमित्रको मार डाला ॥ २६ ॥

स पपात रथोपस्थान्निरमित्रो जनेश्वरः ।
त्रिगर्तराजस्य सुतो व्यथयंस्तव वाहिनीम् ॥२७॥

त्रिगर्तराजका पुत्र राजा निरमित्र अपने वियोगसे आपकी सेनाको व्यथित करता हुआ रथकी बैठकसे नीचे गिर पड़ा ॥ २७ ॥

तं तु हत्वा महाबाहुः सहदेवो व्यरोचत ।
यथा दाशरथी रामः खरं हत्वा महाबलम् ॥ २८॥

जैसे पूर्वकालमें दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम महाबली खरका वध करके सुशोभित हुए थे, उसी प्रकार महाबाहु सहदेव निरमित्रको मारकर शोभा पा रहे थे ॥ २८ ॥

हाहाकारो महानासीत् त्रिगर्तानां जनेश्वर ।
राजपुत्रं हतं दृष्ट्वा निरमित्रं महारथम् ॥ २९॥

नरेश्वर ! महारथी राजकुमार निरमित्रको मारा गया देख त्रिगर्तोंके दलमें महान् हाहाकार मच गया ॥ २९ ॥

नकुलस्ते सुतं राजन् विकर्णं पृथुलोचनम् ।
मुहूर्ताज्जितवाँल्लोके तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३०॥

राजन् ! नकुलने विशाल नेत्रोंवाले आपके पुत्र विकर्णको दो ही घड़ीमें पराजित कर दिया; यह अद्भुत-सी बात हुई ॥ ३० ॥

सात्यकिं व्याघ्रदत्तस्तु शरैः संनतपर्वभिः ।
चक्रेऽदृश्यं साश्वसूतं सध्वजं पृतनान्तरे ॥ ३१॥

व्याघ्रदत्तने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा सेनाके मध्यभागमें घोड़ों, सारथि और ध्वजसहित सात्यकिको अदृश्य कर दिया ॥ ३१ ॥

तान् निवार्य शराञ्शूरः शैनेयः कृतहस्तवत् ।
साश्वसूतध्वजं बाणैर्व्याघ्रदत्तमपातयत् ॥ ३२ ॥

तब शूरवीर शिनिनन्दन सात्यकिने सिद्धहस्त पुरुषकी भाँति उन बाणोंका निवारण करके अपने बाणोंद्वारा घोड़ों, सारथि और ध्वजसहित व्याघ्रदत्तको मार गिराया ॥ ३२ ॥

कुमारे निहते तस्मिन् मागधस्य सुते प्रभो ।
मागधाः सर्वतो यत्ता युयुधानमुपाद्रवन् ॥ ३३ ॥

प्रभो ! मगधनरेशके पुत्र राजकुमार व्याघ्रदत्तके मारे जानेपर मगधदेशीय वीरोंने सब ओरसे प्रयत्नशील होकर युयुधानपर धावा किया ॥ ३३ ॥

विसृजन्तः शरांश्चैव तोमरांश्च सहस्रशः ।
भिन्दिपालांस्तथा प्रासान् मुद्गरान् मुसलानपि ॥ ३४ ॥
अयोधयन् रणे शूराः सात्वतं युद्धदुर्मदम् ।

वे शूरवीर मागध सैनिक बहुत-से बाणों, सहस्रों तोमरों, भिन्दिपालों, प्रासों, मुद्गरों और मुसलोंका प्रहार करते हुए समराङ्गणमें रणदुर्जय सात्यकिके साथ युद्ध करने लगे ॥

तांस्तु सर्वान् स बलवान् सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ॥ ३५ ॥
नातिकृच्छ्राद्धसन्नेव विजिग्ये पुरुषर्षभः ।

बलवान् युद्धदुर्मद पुरुषप्रवर सात्यकिने हँसते हुए ही उन सबको अधिक कष्ट उठाये बिना ही परास्त कर दिया ॥

मागधान् द्रवतो दृष्ट्वा हतशेषान् समन्ततः ॥ ३६ ॥
बलं तेऽभज्यत विभो युयुधानशरार्दितम् ।

प्रभो ! मरनेसे बचे हुए मागधसैनिकोंको चारों ओर भागते देख सात्यकिके बाणोंसे पीड़ित हुई आपकी सेनाका व्यूह भंग हो गया ॥ ३६½ ॥

नाशयित्वा रणे सैन्यं त्वदीयं माधवोत्तमः ॥ ३७ ॥
विधुन्वानो धनुः श्रेष्ठं व्यभ्राजत महायशाः ।

इस प्रकार मधुवंशके श्रेष्ठ वीर महायशस्वी सात्यकि रणक्षेत्रमें आपकी सेनाका विनाश करके अपने उत्तम धनुषको हिलाते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे ॥ ३७½ ॥

भज्यमानं बलं राजन् सात्वतेन महात्मना ॥ ३८ ॥
नाभ्यवर्तत युद्धाय त्रासितं दीर्घबाहुना ।

राजन् ! महामना महाबाहु सात्यकिके द्वारा डरायी गयी और तितर-बितर की हुई आपकी सेना फिर युद्धके लिये सामने नहीं आयी ॥ ३८½ ॥

ततो द्रोणो भृशं क्रुद्धः सहसोद्वृत्य चक्षुषी ।
सात्यकिं सत्यकर्माणं स्वयमेवाभिदुद्रुवे ॥ ३९ ॥

तब अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए द्रोणाचार्यने सहसा आँखें घुमाकर सत्यकर्मा सात्यकिपर स्वयं ही आक्रमण किया ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संकुलयुद्धे सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें संकुलयुद्धविषयक एक सौ सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०७ ॥

अष्टाधिकशततमोऽध्यायः

द्रौपदी-पुत्रोंके द्वारा सोमदत्तकुमार शलका वध तथा भीमसेनके द्वारा अलम्बुषकी पराजय

संजय उवाच

द्रौपदेयान् महेष्वासान् सौमदत्तिर्महायशाः ।
एकैकं पञ्चभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! महायशस्वी शलने महाधनुर्धर द्रौपदी-पुत्रोंमेंसे एक-एकको पाँच-पाँच बाणोंसे बींधकर पुनः सात बाणोंद्वारा घायल कर दिया ॥ १ ॥

ते पीडिता भृशं तेन रौद्रेण सहसा विभो ।
प्रमूढा नैव विविदुर्मृधे कृत्यं स्म किंचन ॥ २ ॥

प्रभो ! उस भयंकर वीरके द्वारा अत्यन्त पीड़ित होनेके कारण वे सहसा मोहित हो यह नहीं जान सके कि इस समय युद्धमें हमारा कर्तव्य क्या है ? ॥ २ ॥

नाकुलिश्च शतानीकः सौमदत्तिं नरर्षभम् ।
द्वाभ्यां विद्ध्वानदद्धृष्टः शराभ्यां शत्रुकर्शनः ॥ ३ ॥

तब नकुलके पुत्र शत्रुसूदन शतानीकने दो बाणोंद्वारा नरश्रेष्ठ शलको घायल करके बड़े हर्षके साथ सिंहनाद किया॥

तथेतरे रणे यत्तास्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ।
विव्यधुः समरे तूर्णं सौमदत्तिममर्षणम् ॥ ४ ॥

इसी प्रकार अन्य द्रौपदीपुत्रोंने भी समराङ्गणमें प्रयत्नशील होकर अमर्षशील शलको तुरंत ही तीन-तीन बाणोंद्वारा बींध डाला ॥ ४ ॥

स तान् प्रति महाराज पञ्च चिक्षेप सायकान् ।
एकैकं हृदि चाजघ्ने एकैकेन महायशाः ॥ ५ ॥

महाराज ! तब महायशस्वी शलने उनपर पाँच बाण चलाये, जिनमेंसे एक-एकके द्वारा एक-एककी छाती छेद डाली॥

ततस्ते भ्रातरः पञ्च शरैर्विद्धा महात्मना ।
परिवार्य रणे वीरं विव्यधुः सायकैर्भृशम् ॥ ६ ॥

फिर महामना शलके बाणोंसे घायल हुए उन पाँचों भाइयोंने उस वीरको रणक्षेत्रमें चारों ओरसे घेरकर अपने बाणोंद्वारा अत्यन्त घायल कर दिया ॥ ६ ॥

आर्जुनिस्तु हयांस्तस्य चतुर्भिर्निशितैः शरैः ।
प्रेषयामास संक्रुद्धो यमस्य सदनं प्रति ॥ ७ ॥

अर्जुनकुमार श्रुतकीर्तिने अत्यन्त कुपित हो चार तीखे बाणोंद्वारा शलके चारों घोड़ोंको यमलोक भेज दिया ॥ ७ ॥

भैमसेनिर्धनुश्छित्त्वा सौमदत्तेर्महात्मनः ।
ननाद बलवन्नादं विव्याध च शितैः शरैः ॥ ८ ॥

फिर भीमसेनके पुत्र सुतसोमने पैने बाणोंद्वारा महामना सोमदत्तकुमारके धनुषको काटकर उन्हें भी बींध डाला और बड़े जोरसे गर्जना की ॥ ८ ॥

यौधिष्ठिरिर्ध्वजं तस्य छित्त्वा भूमावपातयत् ।
नाकुलिश्चाथ यन्तारं रथनीडादपाहरत् ॥ ९ ॥

तदनन्तर युधिष्ठिरकुमार प्रतिविन्ध्यने शलकी ध्वजा काटकर पृथ्वीपर गिरा दी । फिर नकुलपुत्र शतानीकने उनके सारथिको मारकर रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया ॥

साहदेविस्तु तं ज्ञात्वा भ्रातृभिर्विमुखीकृतम् ।
क्षुरप्रेण शिरो राजन् निचकर्त महात्मनः ॥ १० ॥

राजन् ! अन्तमें सहदेवकुमारने यह जानकर कि मेरे भाइयोंने शलको युद्धसे विमुख कर दिया है, महामनस्वी शलके मस्तकको क्षुरप्रसे काट डाला ॥ १० ॥

तच्छिरो न्यपतद् भूमौ तपनीयविभूषितम् ।
भ्राजयत् तं रणोद्देशं बालसूर्यसमप्रभम् ॥ ११ ॥

सोमदत्तकुमारका प्रातःकालके सूर्यकी भाँति प्रकाशमान सुवर्णभूषित वह मस्तक उस रणभूमिको प्रकाशित करता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ११ ॥

सौमदत्तेः शिरो दृष्ट्वा निहतं तन्महात्मनः ।
वित्रस्तास्तावका राजन् प्रदुद्रुवुरनेकधा ॥ १२ ॥

महाराज ! महामना शलके मस्तकको कटा हुआ देख आपके सैनिक अत्यन्त भयभीत हो अनेक दलोंमें बँटकर भागने लगे ॥ १२ ॥

अलम्बुषस्तु समरे भीमसेनं महाबलम् ।
योधयामास संक्रुद्धो लक्ष्मणं रावणिर्यथा ॥ १३ ॥

तदनन्तर जैसे पूर्वकालमें रावणकुमार मेघनादने लक्ष्मणके साथ युद्ध किया था, उसी प्रकार अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए राक्षस अलम्बुषने महाबली भीमसेनके साथ संग्राम आरम्भ किया ॥ १३ ॥

सम्प्रयुद्धौ रणे दृष्ट्वा तावुभौ नरराक्षसौ ।
विस्मयः सर्वभूतानां प्रहर्षः समजायत ॥ १४ ॥

उस रणक्षेत्रमें उन दोनों मनुष्य एवं राक्षसको युद्ध करते देख समस्त प्राणियोंको अत्यन्त आश्चर्य और हर्ष हुआ॥

आर्ष्यशृङ्गिं ततो भीमो नवभिर्निशितैः शरैः ।
विव्याध प्रहसन् राजन् राक्षसेन्द्रममर्षणम् ॥ १५ ॥

राजन् ! फिर भीमसेनने हँसते हुए नौ पैने बाणोंद्वारा ऋष्यशृङ्गकुमार अमर्षशील राक्षसराज अलम्बुषको घायल कर दिया ॥ १५ ॥

तद् रक्षः समरे विद्धं कृत्वा नादं भयावहम् ।
अभ्यद्रवत् ततो भीमं ये च तस्य पदानुगाः ॥ १६ ॥

तब समराङ्गणमें घायल हुआ वह राक्षस भयंकर गर्जना करके भीमसेनकी ओर दौड़ा । उसके सेवकोंने भी उसीका साथ दिया ॥ १६ ॥

स भीमं पञ्चभिर्विद्ध्वा शरैः संनतपर्वभिः ।
भैमान् परिजघानाशु रथांस्त्रिशतमाहवे ॥ १७ ॥

उसने झुकी हुई गाँठवाले पाँच बाणोंद्वारा भीमसेनको घायल करके उनके साथ आये हुए तीन सौ रथियोंका समरभूमिमें शीघ्र ही संहार कर डाला ॥ १७ ॥

पुनश्चतुःशतान् हत्वा भीमं विव्याध पत्रिणा ।
सोऽतिविद्धस्तथा भीमो राक्षसेन महाबलः ॥ १८ ॥
निपपात रथोपस्थे मूर्च्छयाभिपरिप्लुतः ।

फिर चार सौ योद्धाओंको मारकर भीमसेनको भी एक बाणसे घायल किया । इस प्रकार राक्षसके द्वारा अत्यन्त

घायल किये जानेपर महाबली भीमसेन मूर्छित हो रथकी बैठकमें गिर पड़े ॥ १८½ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां मारुतिः क्रोधमूर्च्छितः ॥ १९ ॥
विकृष्य कार्मुकं घोरं भारसाधनमुत्तमम् ।
अलम्बुषं शरैस्तीक्ष्णैरर्दयामास सर्वतः ॥ २० ॥

तदनन्तर पुनः होशमें आकर क्रोधसे व्याकुल हुए वायुपुत्र भीमने भार वहन करनेमें समर्थ, उत्तम तथा भयंकर धनुष तानकर पैने बाणोंद्वारा सब ओरसे अलम्बुषको पीड़ित कर दिया ॥ १९-२० ॥

स विद्धो बहुभिर्बाणैर्नीलाञ्जनचयोपमः ।
शुशुभे सर्वतो राजन् प्रफुल्ल इव किंशुकः ॥ २१ ॥

राजन् ! काले काजलके ढेरके समान वह राक्षस बहुत-से बाणोंद्वारा सब ओरसे घायल होकर लोहू-लुहान हो खिले हुए पलाशके वृक्षके समान सुशोभित होने लगा ॥ २१ ॥

स वध्यमानः समरे भीमचापच्युतैः शरैः ।
स्मरन् भ्रातृवधं चैव पाण्डवेन महात्मना ॥ २२ ॥
घोरं रूपमथो कृत्वा भीमसेनमभाषत ।

भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा समरभूमिमें घायल होकर और महात्मा पाण्डुकुमार भीमके द्वारा किये गये अपने भाईके वधका स्मरण करके उस राक्षसने भयंकर रूप धारण कर लिया और भीमसेनसे कहा—॥ २२½ ॥

तिष्ठेदानीं रणे पार्थ पश्य मेऽद्य पराक्रमम् ॥ २३ ॥
बको नाम सुदुर्बुद्धे राक्षसप्रवरो बली ।
परोक्षं मम तद् वृत्तं यद् भ्राता मे हतस्त्वया ॥ २४ ॥

'पार्थ ! इस समय तुम रणक्षेत्रमें डटे रहो और आज मेरा पराक्रम देखो । दुर्मते ! मेरे बलवान् भाई राक्षसराज बकको जो तुमने मार डाला था, वह सब कुछ मेरी आँखोंकी ओटमें हुआ था (मेरे सामने तुम कुछ नहीं कर सकते थे)'॥

एवमुक्त्वा ततो भीममन्तर्धानं गतस्तदा ।
महता शरवर्षेण भृशं तं समवाकिरत् ॥ २५ ॥

भीमसेनसे ऐसा कहकर वह राक्षस उसी समय अन्तर्धान हो गया और फिर उनके ऊपर बाणोंकी भारी वर्षा करने लगा ॥

भीमस्तु समरे राजन्नदृश्ये राक्षसे तदा ।
आकाशं पूरयामास शरैः संनतपर्वभिः ॥ २६ ॥

राजन् ! उस समय समराङ्गणमें राक्षसके अदृश्य हो जानेपर भीमसेनने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा वहाँके समूचे आकाशको भर दिया ॥ २६ ॥

स वध्यमानो भीमेन निमेषाद् रथमास्थितः ।
जगाम धरणीं चैव क्षुद्रः खं सहसागमत् ॥ २७ ॥

भीमसेनके बाणोंकी मार खाकर राक्षस अलम्बुष पलक मारते-मारते अपने रथपर आ बैठा । वह क्षुद्र निशाचर कभी तो धरतीपर आ जाता और कभी सहसा आकाशमें पहुँच जाता था ॥ २७ ॥

उच्चावचानि रूपाणि चकार सुबहूनि च ।
अणुर्बृहत् पुनः स्थूलो नादान् मुञ्चन्निवाम्बुदः ॥ २८ ॥

उसने वहाँ छोटे-बड़े बहुत-से रूप धारण किये । वह मेघके समान गर्जना करता हुआ कभी बहुत छोटा हो जाता और कभी महान्, कभी सूक्ष्मरूप धारण करता और कभी स्थूल बन जाता था ॥ २८ ॥

उच्चावचास्तथा वाचो व्याजहार समन्ततः ।
निपेतुर्गगनाच्चैव शरधाराः सहस्रशः ॥ २९ ॥

इसी प्रकार वहाँ सब ओर घूम-घूमकर वह भिन्न-भिन्न प्रकारकी बोलियाँ भी बोलता था । उस समय भीमसेनपर आकाशसे बाणोंकी सहस्रों धाराएँ गिरने लगीं ॥ २९ ॥

शक्तयः कणपाः प्रासाः शूलपट्टिशतोमराः ।
शतघ्न्यः परिघाश्चैव भिन्दिपालाः परश्वधाः ॥ ३० ॥
शिलाः खड्गा गुडाश्चैव ऋष्टीर्वज्राणि चैव ह ।
सा राक्षसविसृष्टा तु शस्त्रवृष्टिः सुदारुणा ॥ ३१ ॥
जघान पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान् रणमूर्धनि ।

शक्ति, कणप, प्रास, शूल, पट्टिश, तोमर, शतघ्नी, परिघ, भिन्दिपाल, फरसे, शिलाएँ, खड्ग, लोहेकी गोलियाँ, ऋष्टि और वज्र आदि अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी । राक्षसद्वारा की हुई उस भयंकर शस्त्रवर्षाने युद्धके मुहानेपर पाण्डुपुत्र भीमके बहुत-से सैनिकोंका संहार कर डाला ॥

तेन पाण्डवसैन्यानां सूदिता युधि वारणाः ॥ ३२ ॥
हयाश्च बहवो राजन् पत्तयश्च तथा पुनः ।
रथेभ्यो रथिनः पेतुस्तस्य नुन्नाः स सायकैः ॥ ३३ ॥

राजन् ! राक्षस अलम्बुषने युद्धस्थलमें पाण्डव-सेनाके बहुत-से हाथियों, घोड़ों और पैदल सैनिकोंका बारंबार संहार किया उसके बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर बहुतेरे रथी रथोंसे गिर पड़े ॥ ३२-३३ ॥

शोणितोदां रथावर्तां हस्तिग्राहसमाकुलाम् ।
छत्रहंसां कर्दमिनीं बाहुपन्नगसंकुलाम् ॥ ३४ ॥
नदीं प्रावर्तयामास रक्षोगणसमाकुलाम् ।
वहन्तीं बहुधा राजंश्चेदिपञ्चालसृञ्जयान् ॥ ३५ ॥

उसने युद्धस्थलमें खूनकी नदी बहा दी, जिसमें रक्त ही पानीके समान बहता था, रथ भँवरोंके समान जान पड़ते थे, हाथियोंके शरीर उस नदीमें ग्राहके समान सब ओर छा रहे थे, छत्र हंसोंका भ्रम उत्पन्न करते थे, वहाँ कीच जम गयी थी, कटी हुई भुजाएँ सर्पोंके समान सब ओर व्याप्त हो रही थीं । राजन् ! बारंबार चेदि, पाञ्चाल और सृंजयोंको बहाती हुई वह नदी राक्षसोंसे घिरी हुई थी॥

तं तथा समरे राजन् विचरन्तमभीतवत्।
पाण्डवा भृशसंविग्नाः प्रापश्यंस्तस्य विक्रमम् ॥ ३६ ॥

महाराज ! उस निशाचरको समराङ्गणमें इस प्रकार निर्भय-सा विचरते देख पाण्डव अत्यन्त उद्विग्न हो उसका पराक्रम देखने लगे ॥ ३६ ॥

तावकानां तु सैन्यानां प्रहर्षः समजायत।
वादित्रनिनदश्चोग्रः सुमहान् रोमहर्षणः ॥ ३७ ॥

उस समय आपके सैनिकोंको महान् हर्ष हो रहा था। वहाँ रणवाद्योंका रोमाञ्चकारी एवं भयंकर शब्द बड़े जोर-जोरसे होने लगा ॥ ३७ ॥

तं श्रुत्वा निनदं घोरं तव सैन्यस्य पाण्डवः।
नामृष्यत यथा नागस्तलशब्दं समीरितम् ॥ ३८ ॥

आपकी सेनाका वह घोर हर्षनाद सुनकर पाण्डुकुमार भीमसेन नहीं सहन कर सके। ठीक उसी तरह, जैसे हाथी ताल ठोंकनेका शब्द नहीं सह सकता ॥ ३८ ॥

ततः क्रोधाभिताम्राक्षो निर्दहन्निव पावकः।
संदधे त्वाष्ट्रमस्त्रं स स्वयं त्वष्टेव मारुतिः ॥ ३९ ॥

तब वायुकुमार भीमसेनने जलानेको उद्यत हुए अग्निके समान क्रोधसे लाल आँखें करके त्वाष्ट्र नामक अस्त्रका संधान किया, मानो साक्षात् त्वष्टा ही उसका प्रयोग कर रहे हों ॥

ततः शरसहस्राणि प्रादुरासन् समन्ततः।
तैः शरैस्तव सैन्यस्य विद्रवः सुमहानभूत् ॥ ४० ॥

उससे चारों ओर सहस्रों बाण प्रकट होने लगे। उन बाणोंद्वारा आपकी सेनाका महान् संहार होने लगा ॥ ४० ॥

तदस्त्रं प्रेरितं तेन भीमसेनेन संयुगे।
राक्षसस्य महामायां हत्वा राक्षसमार्दयत् ॥ ४१ ॥

युद्धस्थलमें भीमसेनके द्वारा चलाये हुए उस अस्त्रने राक्षसकी महामायाको नष्ट करके उसे गहरी पीड़ा दी ॥ ४१ ॥

स वध्यमानो बहुधा भीमसेनेन राक्षसः।
संत्यज्य समरे भीमं द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥ ४२ ॥

बारंबार भीमसेनकी मार खाकर राक्षसराज अलम्बुष रणक्षेत्रमें उनका सामना छोड़कर द्रोणाचार्यकी सेनामें भाग गया ॥ ४२ ॥

तस्मिंस्तु निर्जिते राजन् राक्षसेन्द्रे महात्मना।
अनादयन् सिंहनादैः पाण्डवाः सर्वतो दिशम् ॥ ४३ ॥

राजन् ! महामना भीमसेनके द्वारा राक्षसराज अलम्बुषके पराजित हो जानेपर पाण्डव-सैनिकोंने सम्पूर्ण दिशाओंको अपने सिंहनादोंसे निनादित कर दिया ॥ ४३ ॥

अपूजयन् मारुतिं च संहृष्टास्ते महाबलम्।
प्रह्लादं समरे जित्वा यथा शक्रं मरुद्गणाः ॥ ४४ ॥

उन्होंने अत्यन्त हर्षमें भरकर महाबली भीमसेनकी उसी प्रकार भूरि-भूरि प्रशंसा की, जैसे मरुद्गणोंने समराङ्गणमें प्रह्लादको जीतकर आये हुए देवराज इन्द्रकी स्तुति की थी॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अलम्बुषपराजये अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें अलम्बुषकी पराजयविषयक एक सौ आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०८ ॥

नवाधिकशततमोऽध्यायः

घटोत्कचद्वारा अलम्बुषका वध और पाण्डवसेनामें हर्ष-ध्वनि

संजय उवाच

अलम्बुषं तथा युद्धे विचरन्तमभीतवत्।
हैडिम्बिः प्रययौ तूर्णं विव्याध निशितैः शरैः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! युद्धमें इस प्रकार निर्भय-से विचरते हुए अलम्बुषके पास हिडिम्बाकुमार घटोत्कच बड़े वेगसे जा पहुँचा और उसे अपने तीखे बाणोंद्वारा बींधने लगा ॥

तयोः प्रतिभयं युद्धमासीद् राक्षससिंहयोः।
कुर्वतोर्विविधा मायाः शक्रशम्बरयोरिव ॥ २ ॥

वे दोनों राक्षसोंमें सिंहके समान पराक्रमी थे और इन्द्र तथा शम्बरासुरके समान नाना प्रकारकी मायाओंका प्रयोग करते थे। उन दोनोंमें बड़ा भयंकर युद्ध हुआ ॥ २ ॥

अलम्बुषो भृशं क्रुद्धो घटोत्कचमताडयत्।
तयोर्युद्धं समभवद् रक्षोग्रामणिमुख्ययोः ॥ ३ ॥
यादृगेव पुरा वृत्तं रामरावणयोः प्रभो।

अलम्बुषने अत्यन्त कुपित होकर घटोत्कचको घायल कर दिया। वे दोनों राक्षस समाजके मुखिया थे। प्रभो ! जैसे पूर्वकालमें श्रीराम और रावणका संग्राम हुआ था, उसी प्रकार उन दोनोंमें भी युद्ध हुआ ॥ ३½ ॥

घटोत्कचस्तु विंशत्या नाराचानां स्तनान्तरे ॥ ४ ॥
अलम्बुषमथो विद्ध्वा सिंहवद् व्यनदन्मुहुः।

घटोत्कचने बीस नाराचोंद्वारा अलम्बुषकी छातीमें गहरी चोट पहुँचाकर बारंबार सिंहके समान गर्जना की ॥

तथैवालम्बुषो राजन् हैडिम्बिं युद्धदुर्मदम् ॥ ५ ॥
विद्ध्वा विद्ध्वा नदद्धृष्टः पूरयन् खं समन्ततः।

राजन् ! इसी प्रकार अलम्बुष भी युद्धदुर्मद घटोत्कचको बारंबार घायल करके समूचे आकाशको हर्षपूर्वक गुँजाता हुआ सिंहनाद करता था ॥ ५½ ॥

तथा तौ भृशसंक्रुद्धौ राक्षसेन्द्रौ महाबलौ ॥ ६ ॥
निर्विशेषमयुध्येतां मायाभिरितरेतरम्।

इस प्रकार अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए वे दोनों महाबली

राक्षसराज परस्पर मायाओंका प्रयोग करते हुए समानरूपसे युद्ध करने लगे ॥ ६½ ॥

मायाशतसृजौ नित्यं मोहयन्तौ परस्परम् ॥ ७ ॥
मायायुद्धेषु कुशलौ मायायुद्धमयुध्यताम् ।

वे प्रतिदिन सैकड़ों मायाओंकी सृष्टि करनेवाले थे और दोनों ही मायायुद्धमें कुशल थे। अतः एक दूसरेको मोहित करते हुए मायाद्वारा ही युद्ध करने लगे ॥ ७½ ॥

यां यां घटोत्कचो युद्धे मायां दर्शयते नृप ॥ ८ ॥
तां तामलम्बुषो राजन् माययैव निजघ्निवान् ।

नरेश्वर ! घटोत्कच युद्धस्थलमें जो-जो माया दिखाता, उसे अलम्बुष अपनी मायाद्वारा ही नष्ट कर देता था ॥

तं तथा युध्यमानं तु मायायुद्धविशारदम् ॥ ९ ॥
अलम्बुषं राक्षसेन्द्रं दृष्ट्वाक्रुध्यन्त पाण्डवाः ।

मायायुद्धविशारद राक्षसराज अलम्बुषको इस प्रकार युद्ध करते देख समस्त पाण्डव कुपित हो उठे ॥ ९½ ॥

त एनं भृशसंविग्नाः सर्वतः प्रवरा रथैः ॥ १० ॥
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धा भीमसेनादयो नृप ।

राजन् ! वे अत्यन्त उद्विग्न हुए भीमसेन आदि श्रेष्ठ वीर क्रोधमें भरकर रथोंद्वारा सब ओरसे अलम्बुषपर टूट पड़े ॥

त एनं कोष्ठकीकृत्य रथवंशेन मारिष ॥ ११ ॥
सर्वतो व्यकिरन् बाणैरुल्काभिरिव कुञ्जरम् ।

माननीय नरेश ! जैसे जलती हुई उल्काओंद्वारा चारों ओरसे घेरकर हाथीपर प्रहार किया जाता है, उसी प्रकार रथसमूहके द्वारा अलम्बुषको कोष्ठबद्ध करके वे सब लोग चारों ओरसे उसपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ११½ ॥

स तेषामस्त्रवेगं तं प्रतिहत्यास्त्रमायया ॥ १२ ॥
तस्माद् रथव्रजान्मुक्तो वनदाहादिव द्विपः ।

उस समय अलम्बुष अपने अस्त्रोंकी मायासे उनके उस महान् अस्त्रवेगको दबाकर रथसमूहके उस घेरेसे मुक्त हो गया, मानो कोई गजराज दावानलके घेरेसे बाहर हो गया हो ॥

स विस्फार्य धनुर्घोरमिन्द्राशनिसमस्वनम् ॥ १३ ॥
मारुतिं पञ्चविंशत्या भैमसेनिं च पञ्चभिः ।

उसने इन्द्रके वज्रकी भाँति घोर टंकार करनेवाले अपने भयंकर धनुषको तानकर भीमसेनको पचीस और उनके पुत्र घटोत्कचको पाँच बाण मारे ॥ १३½ ॥

युधिष्ठिरं त्रिभिर्विद्ध्वा सहदेवं च सप्तभिः ॥ १४ ॥
नकुलं च त्रिसप्तत्या द्रौपदेयांश्च मारिष ।
पञ्चभिः पञ्चभिर्विद्ध्वा घोरं नादं ननाद ह ॥ १५ ॥

आर्य ! उसने युधिष्ठिरको तीन, सहदेवको सात, नकुलको तिहत्तर और द्रौपदी-पुत्रोंको पाँच-पाँच बाणोंसे घायल करके घोर गर्जना की ॥ १४-१५ ॥

तं भीमसेनो नवभिः सहदेवस्तु पञ्चभिः ।
युधिष्ठिरः शतेनैव राक्षसं प्रत्यविध्यत ॥ १६ ॥

तब भीमसेनने नौ, सहदेवने पाँच और युधिष्ठिरने सौ बाणोंसे राक्षस अलम्बुषको घायल कर दिया ॥ १६ ॥

नकुलस्तु चतुःषष्ट्या द्रौपदेयास्त्रिभिस्त्रिभिः ।
हैडिम्बो राक्षसं विद्ध्वा युद्धे पञ्चाशता शरैः ॥ १७ ॥
पुनर्विव्याध सप्तत्या ननाद च महाबलः ।

तत्पश्चात् नकुलने चौसठ और द्रौपदीकुमारोंने तीन-तीन बाणोंसे अलम्बुषको बींध डाला। तदनन्तर महाबली हिडिम्बाकुमारने युद्धस्थलमें उस राक्षसको पचास बाणोंसे घायल करके पुनः सत्तर बाणोंद्वारा बींध डाला और बड़े जोरसे गर्जना की ॥ १७½ ॥

तस्य नादेन महता कम्पितेयं वसुंधरा ॥ १८ ॥
सपर्वतवना राजन् सपादपजलाशया ।

राजन् ! उसके महान् सिंहनादसे वृक्षों, जलाशयों, पर्वतों और वनोंसहित यह सारी पृथ्वी काँप उठी ॥१८½॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासैः सर्वतस्तैर्महारथैः ॥ १९ ॥
प्रतिविव्याध तान् सर्वान् पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ।

उन महाधनुर्धर महारथियोंद्वारा सब ओरसे अत्यन्त घायल होकर बदलेमें अलम्बुषने भी पाँच-पाँच बाणोंसे उन सबको वेध दिया ॥ १९½ ॥

तं क्रुद्धं राक्षसं युद्धे प्रतिक्रुद्धस्तु राक्षसः ॥ २० ॥
हैडिम्बो भरतश्रेष्ठ शरैर्विव्याध सप्तभिः ।

भरतश्रेष्ठ ! उस युद्धस्थलमें कुपित हुए राक्षस अलम्बुषको क्रोधमें भरे हुए निशाचर घटोत्कचने सात बाणोंसे घायल कर दिया ॥ २०½ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता राक्षसेन्द्रो महाबलः ॥ २१ ॥
व्यसृजत् सायकांस्तूर्णं रुक्मपुङ्खान् शिलाशितान् ।

बलवान् घटोत्कचद्वारा अत्यन्त क्षत-विक्षत होकर उस महाबली राक्षसराजने तुरंत ही सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी॥२१½॥

ते शरा नतपर्वाणो विविशू राक्षसं तदा ॥ २२ ॥
रुषिताः पन्नगा यद्वद् गिरिशृङ्गं महाबलाः ।

जैसे रोषमें भरे हुए महाबली सर्प पर्वतके शिखरपर चढ़ जाते हैं, उसी प्रकार अलम्बुषके वे झुकी हुई गाँठवाले बाण उस समय घटोत्कचके शरीरमें घुस गये ॥ २२½ ॥

ततस्ते पाण्डवा राजन् समन्तान्निशिताञ्शरान् ॥ २३ ॥
प्रेषयामासुरुद्विग्ना हैडिम्बश्च घटोत्कचः ।

राजन् ! तदनन्तर पाण्डव तथा हिडिम्बाकुमार घटोत्कच सबने उद्विग्न होकर सब ओरसे अलम्बुषपर पैने बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ २३½ ॥

स विध्यमानः समरे पाण्डवैर्जितकाशिभिः ॥ २४ ॥
मर्त्यधर्ममनुप्राप्तः कर्तव्यं नान्वपद्यत ।

विजयसे उल्लसित होनेवाले पाण्डवोंद्वारा समरभूमिमें विद्ध होकर मर्त्यधर्मको प्राप्त हुए अलम्बुषसे कुछ भी करते न बना ॥ २४½ ॥

ततः समरशौण्डो वै भैमसेनिर्महाबलः ॥ २५ ॥
समीक्ष्य तदवस्थं तं वधायास्य मनो दधे ।

तब समरकुशल महाबली भीमसेन-कुमारने अलम्बुषको उस अवस्थामें देखकर मन-ही-मन उसके वधका निश्चय किया॥

वेगं चक्रे महान्तं च राक्षसेन्द्ररथं प्रति ॥ २६ ॥
दग्धाद्रिकूटशृङ्गाभं भिन्नाञ्जनचयोपमम् ।

उसने जले हुए पर्वतशिखर तथा कटे-छटे कोयलेके पहाड़के समान प्रतीत होनेवाले राक्षसराज अलम्बुषके रथपर पहुँचनेके लिये महान् वेग प्रकट किया ॥ २६½ ॥

रथाद् रथमभिद्रुत्य क्रुद्धो हैडिम्बिराक्षिपत् ॥ २७ ॥
उद्बबर्ह रथाच्चापि पन्नगं गरुडो यथा ।

क्रोधमें भरे हुए हिडिम्बाकुमारने अपने रथसे अलम्बुषके रथपर कूदकर उसे पकड़ लिया और जैसे गरुड सर्पको टाँग लेता है, उसी प्रकार उसने भी अलम्बुषको रथसे उठा लिया ॥

समुत्क्षिप्य च बाहुभ्यामाविध्य च पुनः पुनः ॥ २८ ॥
निष्पिपेष क्षितौ क्षिप्रं पूर्णकुम्भमिवाश्मनि ।

दोनों भुजाओंसे अलम्बुषको ऊपर उठाकर घटोत्कचने बारंबार घुमाया और जैसे जलसे भरे हुए घड़ेको पत्थरपर पटक दिया जाय, उसी प्रकार उसे शीघ्र ही पृथ्वीपर दे मारा॥

बललाघवसम्पन्नः सम्पन्नो विक्रमेण च ॥ २९ ॥
भैमसेनी रणे क्रुद्धः सर्वसैन्यान्यभीषयत् ।

घटोत्कचमें बल और फुर्ती दोनों विद्यमान थे। वह अद्भुत पराक्रमसे सम्पन्न था। उसने रणक्षेत्रमें कुपित होकर आपकी समस्त सेनाओंको भयभीत कर दिया ॥ २९½ ॥

स विस्फारितसर्वाङ्गश्चूर्णितास्थिर्विभीषणः ॥ ३० ॥
घटोत्कचेन वीरेण हतः शालकटङ्कटः ।

वीर घटोत्कचके द्वारा मारे गये शालकटंकटाके पुत्र अलम्बुषके सारे अङ्ग फट गये थे। उसकी हड्डियाँ चूर-चूर हो गयी थीं और वह बड़ा भयंकर दिखायी देता था॥३०½॥

ततः सुमनसः पार्था हते तस्मिन् निशाचरे ॥ ३१ ॥
चुक्रुशुः सिंहनादांश्च वासांस्यादुधुवुश्च ह ।

उस निशाचर अलम्बुषके मारे जानेपर कुन्तीके सभी पुत्र प्रसन्नचित्त हो सिंहनाद करने और वस्त्र हिलाने लगे ॥

तावकाश्च हतं दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रं महाबलम् ॥ ३२ ॥
अलम्बुषं तथा शूरा विशीर्णमिव पर्वतम् ।
हाहाकारमकार्षुश्च सैन्यानि भरतर्षभ ॥ ३३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! टूट-फूटकर गिरे हुए पर्वतके समान महाबली राक्षसराज अलम्बुषको मारा गया देख आपके शूरवीर योद्धा तथा उनकी सारी सेनाएँ हाहाकार करने लगीं।३२-३३॥

जनाश्च तद् ददृशिरे रक्षः कौतूहलान्विताः ।
यदृच्छया निपतितं भूमावङ्गारकं यथा ॥ ३४ ॥

पृथ्वीपर अकस्मात् टूटकर गिरे हुए मंगल ग्रहके समान धराशायी हुए उस राक्षसको बहुत-से मनुष्य कौतूहलवश देखने लगे ॥ ३४ ॥

घटोत्कचस्तु तद्धत्वा रक्षो बलवतां वरम् ।
मुमोच बलवन्नादं बलं हत्वेव वासवः ॥ ३५ ॥

जैसे इन्द्रने बलासुरका वध करके महान् सिंहनाद किया था, उसी प्रकार घटोत्कचने उस बलवानोंमें श्रेष्ठ अलम्बुषको मारकर बड़े जोरसे गर्जना की ॥ ३५ ॥

(ततोऽभिगम्य राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
स्वकर्मावेदयन्मूर्ध्ना साञ्जलिर्निपपात ह ॥
मूर्ध्न्युपाघ्राय तं ज्येष्ठः परिष्वज्य च पाण्डवः ।
प्रीतोऽस्मीत्यब्रवीद् राजन् हर्षादुत्फुल्ललोचनः ॥
घटोत्कचेन निष्पिष्टे मृते शालकटङ्कटे ।
बभूवुर्मुदिताः सर्वे हते तस्मिन् निशाचरे ॥)

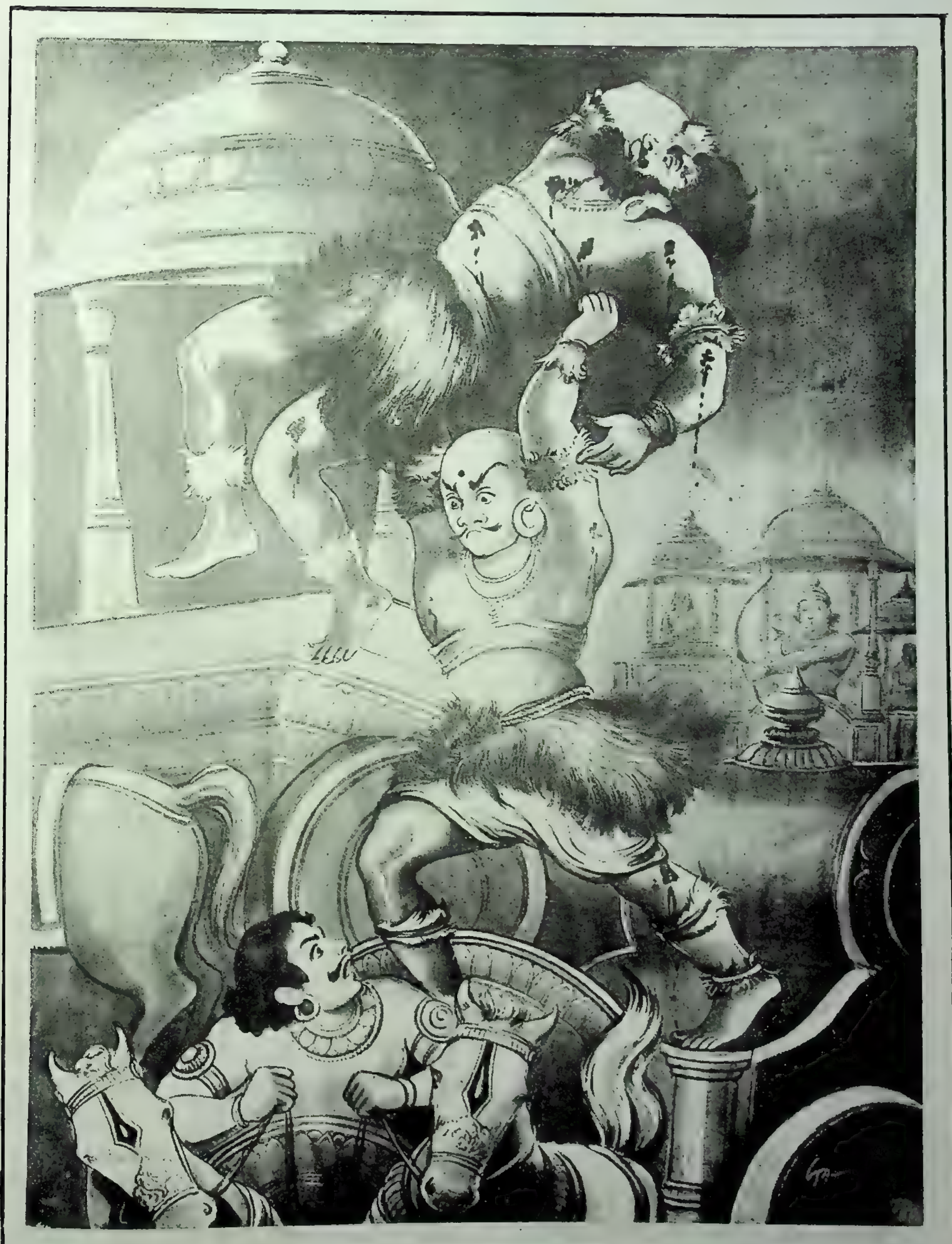
तदनन्तर घटोत्कच धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरके पास जाकर हाथ जोड़ मस्तक नवाकर अपना कर्म निवेदन करता हुआ उनके चरणोंमें गिर पड़ा। राजन् ! तब ज्येष्ठ पाण्डवने उसका मस्तक सूँघकर उसे हृदयसे लगा लिया और कहा—'वत्स ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ।' उस समय युधिष्ठिरके नेत्र हर्षसे खिल उठे थे। शालकटंकटाके पुत्र राक्षस अलम्बुषको जब घटोत्कचने पृथ्वीपर रगड़कर मार डाला, तब सब लोग बहुत प्रसन्न हुए ॥

स पूज्यमानः पितृभिः सबान्धवै-
र्घटोत्कचः कर्मणि दुष्करे कृते ।
रिपुं निहत्याभिननन्द वै तदा
ह्यलम्बुषं पक्वमलम्बुषं यथा ॥ ३६ ॥

पके हुए अलम्बुष (मुंडीर) फलके समान अपने शत्रु अलम्बुषको मारकर घटोत्कच वह दुष्कर पराक्रम करनेके कारण अपने पिता पाण्डवों तथा बन्धु-बान्धवोंसे सम्मानित एवं प्रशंसित हो उस समय बड़ी प्रसन्नताका अनुभव करने लगा ॥ ३६ ॥

ततो निनादः सुमहान् समुत्थितः
सशङ्खनानाविधबाणघोषवान् ।
निशम्य तं प्रत्यनदंस्तु पाण्डवा-
स्ततो ध्वनिर्भुवनमथास्पृशद् भृशम् ॥ ३७ ॥

तत्पश्चात् पाण्डवपक्षमें शङ्खध्वनि तथा नाना प्रकारके



घटोत्कचद्वारा अलम्बुषका वध

बाणोंकी सनसनाहटके शब्दसे मिला हुआ बड़ा भारी आनन्द-कोलाहल प्रकट हुआ। उसे सुनकर समस्त पाण्डव बड़े प्रसन्न हुए। वह आनन्दध्वनि जगत्में बहुत दूरतक फैल गयी ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अलम्बुषवधे नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें अलम्बुषवधविषयक एक सौ नवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १०९ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३ श्लोक मिलाकर कुल ४० श्लोक हैं)

दशाधिकशततमोऽध्यायः

द्रोणाचार्य और सात्यकिका युद्ध तथा युधिष्ठिरका सात्यकिकी प्रशंसा करते हुए उसे अर्जुनकी सहायताके लिये कौरवसेनामें प्रवेश करनेका आदेश

धृतराष्ट्र उवाच

भारद्वाजं कथं युद्धे युयुधानो न्यवारयत् ।
संजयाचक्ष्व तत्त्वेन परं कौतूहलं हि मे ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! सात्यकिने युद्धमें द्रोणाचार्यको किस प्रकार रोका ? यह यथार्थरूपसे बताओ। इसे सुननेके लिये मेरे मनमें महान् कौतूहल हो रहा है ॥ १ ॥

संजय उवाच

शृणु राजन् महाप्राज्ञ संग्रामं लोमहर्षणम् ।
द्रोणस्य पाण्डवैः सार्धं युयुधानपुरोगमैः ॥ २ ॥

संजयने कहा—राजन् ! महामते ! द्रोणाचार्यका सात्यकि आदि पाण्डव-योद्धाओंके साथ जो रोमाञ्चकारी संग्राम हुआ था, उसका वर्णन सुनिये ॥ २ ॥

वध्यमानं बलं दृष्ट्वा युयुधानेन मारिष ।
अभ्यद्रवत् स्वयं द्रोणः सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥ ३ ॥

माननीय नरेश ! द्रोणाचार्यने जब अपनी सेनाको युयुधानके द्वारा पीड़ित होते देखा, तब वे सत्यपराक्रमी सात्यकिपर स्वयं ही टूट पड़े ॥ ३ ॥

तमापतन्तं सहसा भारद्वाजं महारथम् ।
सात्यकिः पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ॥ ४ ॥

उस समय सहसा आते हुए महारथी द्रोणाचार्यको सात्यकिने पचीस बाण मारे ॥ ४ ॥

द्रोणोऽपि युधि विक्रान्तो युयुधानं समाहितः ।
अविध्यत् पञ्चभिस्तूर्णं हेमपुङ्खैः शरैः शितैः ॥ ५ ॥

तब पराक्रमी द्रोणाचार्यने भी युद्धस्थलमें एकाग्रचित्त हो तुरंत ही सोनेके पंखवाले पाँच पैने बाणोंद्वारा युयुधानको घायल कर दिया ॥ ५ ॥

ते वर्म भित्त्वा सुदृढं द्विषत्पिशितभोजनाः ।
अभ्ययुर्धरणीं राजञ्श्वसन्त इव पन्नगाः ॥ ६ ॥

राजन् ! द्रोणाचार्यके बाण शत्रुओंके मांस खानेवाले थे। वे सात्यकिके सुदृढ़ कवचको छिन्न-भिन्न करके फुफकारते हुए सर्पोंके समान धरतीमें समा गये ॥ ६ ॥

दीर्घबाहुरभिक्रुद्धस्तोत्त्रार्दित इव द्विपः ।
द्रोणं पञ्चाशताविध्यन्नाराचैरग्निसंनिभैः ॥ ७ ॥

तब अंकुशकी मार खाये हुए गजराजके समान अत्यन्त कुपित हुए महाबाहु सात्यकिने अग्निके समान तेजस्वी पचास नाराचोंद्वारा द्रोणाचार्यको वेध दिया ॥ ७ ॥

भारद्वाजो रणे विद्धो युयुधानेन सत्वरम् ।
सात्यकिं बहुभिर्बाणैर्यतमानमविध्यत ॥ ८ ॥

सात्यकिके द्वारा समराङ्गणमें घायल हो द्रोणाचार्यने शीघ्र ही बहुत-से बाण मारकर विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले सात्यकिको क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ८ ॥

ततः क्रुद्धो महेष्वासो भूय एव महाबलः ।
सात्वतं पीडयामास शरेणानतपर्वणा ॥ ९ ॥

तदनन्तर महाधनुर्धर महाबली द्रोणने पुनः कुपित होकर झुकी हुई गाँठवाले एक बाणद्वारा सात्यकिको गहरी चोट पहुँचायी ॥ ९ ॥

स वध्यमानः समरे भारद्वाजेन सात्यकिः ।
नान्वपद्यत कर्तव्यं किञ्चिदेव विशाम्पते ॥ १० ॥

प्रजानाथ ! समरभूमिमें द्रोणाचार्यके द्वारा क्षत विक्षत होकर सात्यकिसे कुछ भी करते नहीं बना ॥ १० ॥

विषण्णवदनश्चापि युयुधानोऽभवन्नृप ।
भारद्वाजं रणे दृष्ट्वा विसृजन्तं शिताञ्शरान् ॥ ११ ॥

नरेश्वर ! रणक्षेत्रमें पैने बाणोंकी वर्षा करते हुए द्रोणाचार्यको देखकर युयुधानके मुखपर विषाद छा गया ॥ ११ ॥

तं तु सम्प्रेक्ष्य ते पुत्राः सैनिकाश्च विशाम्पते ।
प्रहृष्टमनसो भूत्वा सिंहवद् व्यनदन् मुहुः ॥ १२ ॥

प्रजापालक नरेश ! उन्हें उस अवस्थामें देखकर आपके पुत्र और सैनिक प्रसन्नचित्त होकर बारंबार सिंहनाद करने लगे ॥ १२ ॥

तं श्रुत्वा निनदं घोरं पीड्यमानं च माधवम् ।
युधिष्ठिरोऽब्रवीद् राजा सर्वसैन्यानि भारत ॥ १३ ॥

भारत ! उनकी वह घोर गर्जना सुनकर और सात्यकिको पीड़ित देखकर राजा युधिष्ठिरने अपने समस्त सैनिकोंसे कहा— ॥

एष वृष्णिवरो वीरः सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
ग्रस्यते युधि वीरेण भानुमानिव राहुणा ॥ १४ ॥
अभिद्रवत गच्छध्वं सात्यकिर्यत्र युध्यते ।

'योद्धाओ ! जैसे राहु सूर्यको ग्रस लेता है, उसी प्रकार यह वृष्णिवंशका श्रेष्ठ वीर सत्यपराक्रमी सात्यकि युद्धस्थलमें वीर द्रोणाचार्यके द्वारा कालके गालमें जाना चाहता है। अतः तुमलोग दौड़ो और वहीं जाओ, जहाँ सात्यकि युद्ध करता है' ॥ १४½ ॥

धृष्टद्युम्नं च पाञ्चाल्यमिदमाह जनाधिपः ॥ १५ ॥
अभिद्रव द्रुतं द्रोणं किमु तिष्ठसि पार्षत।
न पश्यसि भयं द्रोणाद् घोरं नः समुपस्थितम् ॥ १६ ॥

इसके बाद राजाने पाञ्चाल-राजकुमार धृष्टद्युम्नसे इस प्रकार कहा—'द्रुपदनन्दन ! खड़े क्यों हो ? तुरंत ही द्रोणाचार्यपर धावा करो। क्या तुम नहीं देखते कि द्रोणकी ओरसे हमलोगोंपर घोर भय उपस्थित हो गया है ? ॥ १५-१६ ॥

असौ द्रोणो महेष्वासो युयुधानेन संयुगे।
क्रीडते सूत्रबद्धेन पक्षिणा बालको यथा ॥ १७ ॥

'जैसे कोई बालक डोरमें बँधे हुए पक्षीके साथ खेलता है, उसी प्रकार ये महाधनुर्धर द्रोण युद्धस्थलमें युयुधानके साथ क्रीड़ा करते हैं ॥ १७ ॥

तत्रैव सर्वे गच्छन्तु भीमसेनपुरोगमाः।
त्वयैव सहिताः सर्वे युयुधानरथं प्रति ॥ १८ ॥

'अतः तुम्हारे साथ भीमसेन आदि सभी महारथी वहीं युयुधानके रथके समीप जायँ ॥ १८ ॥

पृष्ठतोऽनुगमिष्यामि त्वामहं सहसैनिकः।
सात्यकिं मोक्षयस्वाद्य यमदंष्ट्रान्तरं गतम् ॥ १९ ॥

'फिर मैं भी सम्पूर्ण सैनिकोंके साथ तुम्हारे पीछे-पीछे आऊँगा। इस समय यमराजकी दाढ़ोंमें पहुँचे हुए सात्यकिको छुड़ाओ' ॥ १९ ॥

एवमुक्त्वा ततो राजा सर्वसैन्येन भारत।
अभ्यद्रवद् रणे द्रोणं युयुधानस्य कारणात् ॥ २० ॥

भारत ! ऐसा कहकर राजा युधिष्ठिरने उस समय रणक्षेत्रमें युयुधानकी रक्षाके लिये अपनी सारी सेनाके साथ द्रोणाचार्यपर आक्रमण किया ॥ २० ॥

तत्रारावो महानासीद् द्रोणमेकं युयुत्सताम्।
पाण्डवानां च भद्रं ते सृञ्जयानां च सर्वशः ॥ २१ ॥

राजन् ! आपका भला हो। अकेले द्रोणाचार्यके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे आये हुए पाण्डवों और सृञ्जयोंका वहाँ सब ओर महान् कोलाहल छा गया ॥ २१ ॥

ते समेत्य नरव्याघ्रा भारद्वाजं महारथम्।
अभ्यवर्षञ्शरैस्तीक्ष्णैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥ २२ ॥

वे मनुष्योंमें व्याघ्रके समान पराक्रमी सैनिक महारथी द्रोणाचार्यके पास जाकर कंक और मोरके पंखोंसे युक्त तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २२ ॥

स्मयन्नेव तु तान् वीरान् द्रोणः प्रत्यग्रहीत् स्वयम्।
अतिथीनागतान् यद्वत् सलिलेनासनेन च ॥ २३ ॥
तर्पितास्ते शरैस्तस्य भारद्वाजस्य धन्विनः।
आतिथेयं गृहं प्राप्य नृपतेऽतिथयो यथा ॥ २४ ॥

राजन् ! जैसे घरपर आये हुए अतिथियोंका जल और आसन आदिके द्वारा सत्कार किया जाता है, उसी प्रकार द्रोणाचार्यने स्वयं उन समस्त आक्रमणकारी वीरोंकी मुसकराते हुए ही अगवानी की। जैसे अतिथिसत्कारमें निपुण गृहस्थके घर जाकर अतिथि तृप्त होते हैं, उसी प्रकार धनुर्धर द्रोणाचार्यके बाणोंसे उन सबकी यथेष्ट तृप्ति की गयी ॥ २३-२४ ॥

भारद्वाजं च ते सर्वे न शेकुः प्रतिवीक्षितुम्।
मध्यंदिनमनुप्राप्तं सहस्रांशुमिव प्रभो ॥ २५ ॥

प्रभो ! जैसे दोपहरके प्रचण्ड मार्तण्डकी ओर देखना कठिन होता है, उसी प्रकार वे समस्त योद्धा भरद्वाजनन्दन द्रोणाचार्यकी ओर देखनेमें भी समर्थ न हो सके ॥ २५ ॥

तांस्तु सर्वान् महेष्वासान् द्रोणः शस्त्रभृतां वरः।
अतापयच्छरव्रातैर्गभस्तिभिरिवांशुमान् ॥ २६ ॥

शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य उन समस्त महाधनुर्धरोंको अपने बाणसमूहोंद्वारा उसी प्रकार संतप्त करने लगे, जैसे अंशुमाली सूर्य अपनी किरणोंसे जगत्‌को संताप देते हैं ॥

वध्यमाना महाराज पाण्डवाः सृञ्जयास्तथा।
त्रातारं नाध्यगच्छन्त पङ्कमग्ना इव द्विपाः ॥ २७ ॥

महाराज ! उस समय द्रोणाचार्यकी मार खाते हुए पाण्डव और संजय सैनिक कीचड़में फँसे हुए हाथियोंके समान कोई रक्षक न पा सके ॥ २७ ॥

द्रोणस्य च व्यदृश्यन्त विसर्पन्तो महाशराः।
गभस्तय इवार्कस्य प्रतपन्तः समन्ततः ॥ २८ ॥

जैसे सूर्यकी किरणें सब ओर ताप प्रदान करती हुई फैल जाती हैं, उसी प्रकार द्रोणाचार्यके विशाल बाण सब ओर फैलते और शत्रुओंको संतप्त करते दिखायी देते थे ॥ २८ ॥

तस्मिन् द्रोणेन निहताः पञ्चालाः पञ्चविंशतिः।
महारथाः समाख्याता धृष्टद्युम्नस्य सम्मताः ॥ २९ ॥

उस युद्धमें द्रोणाचार्यके द्वारा पाञ्चालोंके पचीस सुप्रसिद्ध महारथी मारे गये, जो धृष्टद्युम्नको बहुत ही प्रिय थे ॥ २९ ॥

पाण्डूनां सर्वसैन्येषु पञ्चालानां तथैव च।
द्रोणं स्म ददृशुः शूरं विनिघ्नन्तं वरान् वरान् ॥ ३० ॥

लोगोंने देखा, पाण्डवों और पाञ्चालोंकी समस्त सेनाओंमें जो मुख्य-मुख्य योद्धा हैं, उन्हें शूरवीर द्रोणाचार्य चुन-चुनकर मार रहे हैं ॥ ३० ॥

केकयानां शतं हत्वा विद्राव्य च समन्ततः।
द्रोणस्तस्थौ महाराज व्यादितास्य इवान्तकः ॥ ३१ ॥

महाराज ! सौ केकय-योद्धाओंको मारकर शेष सैनिकोंको चारों ओर खदेड़नेके पश्चात् द्रोणाचार्य मुँह बाये हुए यमराजके समान खड़े हो गये ॥ ३१ ॥

पञ्चालान् सृञ्जयान् मत्स्यान् केकयांश्च नराधिप ।
द्रोणोऽजयन्महाबाहुः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३२ ॥

नरेश्वर ! महाबाहु द्रोणाचार्यने पाञ्चाल, सृञ्जय, मत्स्य और केकयोंके सैकड़ों तथा सहस्रों वीरोंको परास्त किया ॥

तेषां समभवच्छब्दो विद्धानां द्रोणसायकैः ।
वनौकसामिवारण्ये व्याप्तानां धूम्रकेतुना ॥ ३३ ॥

जैसे घोर जंगलमें दावानलसे व्याप्त हुए वनवासी जन्तुओंकी क्रन्दनध्वनि सुनायी पड़ती है, उसी प्रकार द्रोणाचार्यके बाणोंसे घायल हुए उन विपक्षी योद्धाओंका आर्तनाद वहाँ श्रवणगोचर होता था ॥ ३३ ॥

तत्र देवाः सगन्धर्वाः पितरश्चाब्रुवन् नृप ।
एते द्रवन्ति पञ्चालाः पाण्डवाश्च ससैनिकाः ॥ ३४ ॥

नरेश्वर ! उस समय वहाँ आकाशमें खड़े हुए देवता, पितर और गन्धर्व कहते थे, ये पाञ्चाल और पाण्डव अपने सैनिकोंके साथ भागे जा रहे हैं ॥ ३४ ॥

तं तथा समरे द्रोणं निघ्नन्तं सोमकान् रणे ।
न चाप्यभिययुः केचिदपरे नैव विव्यधुः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार समराङ्गणमें सोमकोंका वध करते हुए द्रोणाचार्यके सामने न तो कोई जा सके और न कोई उन्हें चोट ही पहुँचा सके ॥ ३५ ॥

वर्तमाने तथा रौद्रे तस्मिन् वीरवरक्षये ।
अशृणोत् सहसा पार्थः पाञ्चजन्यस्य निःस्वनम् ॥ ३६ ॥

बड़े-बड़े वीरोंका संहार करनेवाला वह भयंकर संग्राम चल ही रहा था कि सहसा कुन्तीकुमार युधिष्ठिरने पाञ्चजन्यकी ध्वनि सुनी ॥ ३६ ॥

पूरितो वासुदेवेन शङ्खराट् स्वनते भृशम् ।
युध्यमानेषु वीरेषु सैन्धवस्याभिरक्षिषु ॥ ३७ ॥
नदत्सु धार्तराष्ट्रेषु विजयस्य रथं प्रति ।
गाण्डीवस्य च निर्घोषे विप्रणष्टे समन्ततः ॥ ३८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके फूँकनेपर वह शङ्खराज पाञ्चजन्य बड़े जोरसे अपनी ध्वनिका विस्तार कर रहा था । सिन्धुराज जयद्रथकी रक्षामें नियुक्त हुए वीरगण युद्धमें संलग्न थे । अर्जुनके रथके पास आपके पुत्र और सैनिक गरज रहे थे तथा गाण्डीव धनुषकी टङ्कार सब ओरसे दब गयी थी ॥३७-३८॥

कश्मलाभिहतो राजा चिन्तयामास पाण्डवः ।
न नूनं स्वस्ति पार्थाय यथा नदति शङ्खराट् ॥ ३९ ॥
कौरवाश्च यथा हृष्टा विनदन्ति मुहुर्मुहुः ।

तब पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर मोहके वशीभूत होकर इस प्रकार चिन्ता करने लगे—'जिस प्रकार शङ्खराज पाञ्चजन्यकी ध्वनि हो रही है और जिस तरह कौरव-सैनिक बारंबार हर्षनाद कर रहे हैं, उससे जान पड़ता है, निश्चय ही अर्जुनकी कुशल नहीं है' ॥ ३९½ ॥

एवं स चिन्तयित्वा तु व्याकुलेनान्तरात्मना ॥ ४० ॥
अजातशत्रुः कौन्तेयः सात्वतं प्रत्यभाषत ।
बाष्पगद्गदया वाचा मुह्यमानो मुहुर्मुहुः ।
कृत्यस्यानन्तरापेक्षी शैनेयं शिनिपुङ्गवम् ॥ ४१ ॥

ऐसा विचारकर अजातशत्रु कुन्तीकुमार युधिष्ठिरका हृदय व्याकुल हो उठा । वे चाहते थे कि जयद्रथवधका कार्य निर्विघ्न पूर्ण हो जाय; अतः बारंबार मोहित हो अश्रुगद्गद वाणीमें शिनिप्रवर सात्यकिको सम्बोधित करके बोले ॥

युधिष्ठिर उवाच

यः स धर्मः पुरा दृष्टः सद्भिः शैनेय शाश्वतः ।
साम्पराये सुहृत्कृत्ये तस्य कालोऽयमागतः ॥ ४२ ॥

युधिष्ठिरने कहा—शैनेय ! साधु पुरुषोंने पूर्वकालमें विपत्तिके समय एक सुहृद्के कर्तव्यके विषयमें जिस सनातन धर्मका साक्षात्कार किया है, आज उसीके पालनका अवसर उपस्थित हुआ है ॥ ४२ ॥

सर्वेष्वपि च योधेषु चिन्तयञ्शिनिपुङ्गव ।
त्वत्तः सुहृत्तमं कञ्चिन्नाभिजानामि सात्यके ॥ ४३ ॥

शिनिप्रवर सात्यके ! इस दृष्टिसे विचार करनेपर मैं समस्त योद्धाओंमें किसीको भी तुमसे बढ़कर अपना अतिशय सुहृत् नहीं समझ पाता हूँ ॥ ४३ ॥

यो हि प्रीतमना नित्यं यश्च नित्यमनुव्रतः ।
स कार्ये साम्पराये तु नियोज्य इति मे मतिः ॥ ४४ ॥

जो सदा प्रसन्नचित्त रहता हो तथा जो नित्य-निरन्तर अपने प्रति अनुराग रखता हो, उसीको संकटकालमें किसी महत्त्वपूर्ण कार्यका सम्पादन करनेके लिये नियुक्त करना चाहिये, ऐसा मेरा मत है ॥ ४४ ॥

यथा च केशवो नित्यं पाण्डवानां परायणम् ।
तथा त्वमपि वार्ष्णेय कृष्णतुल्यपराक्रमः ॥ ४५ ॥

वार्ष्णेय ! जैसे भगवान् श्रीकृष्ण सदा पाण्डवोंके परम आश्रय हैं, उसी प्रकार तुम भी हो । तुम्हारा पराक्रम भी श्रीकृष्णके समान ही है ॥ ४५ ॥

सोऽहं भारं समाधास्ये त्वयि तं वोढुमर्हसि ।
अभिप्रायं च मे नित्यं न वृथा कर्तुमर्हसि ॥ ४६ ॥

अतः मैं तुमपर जो कार्यभार रख रहा हूँ, उसका तुम्हें निर्वाह करना चाहिये । मेरे मनोरथको सदा सफल बनानेकी ही तुम्हें चेष्टा करनी चाहिये ॥ ४६ ॥

स त्वं भ्रातुर्वयस्यस्य गुरोरपि च संयुगे ।
कुरु कृच्छ्रे सहायार्थमर्जुनस्य नरर्षभ ॥ ४७ ॥

नरश्रेष्ठ ! अर्जुन तुम्हारा भाई, मित्र और गुरु है। वह युद्धके मैदानमें संकटमें पड़ा हुआ है। अतः तुम उसकी सहायताके लिये प्रयत्न करो ॥ ४७ ॥

त्वं हि सत्यव्रतः शूरो मित्राणामभयङ्करः।
लोके विख्यायसे वीर कर्मभिः सत्यवागिति ॥ ४८ ॥

तुम सत्यव्रती, शूरवीर तथा मित्रोंको अभय देनेवाले हो। वीर ! तुम अपने कर्मोंद्वारा संसारमें सत्यवादीके रूपमें विख्यात हो ॥ ४८ ॥

यो हि शैनेय मित्रार्थे युध्यमानस्त्यजेत् तनुम्।
पृथिवीं च द्विजातिभ्यो यो दद्यात् स समो भवेत्॥४९॥

शैनेय ! जो मित्रके लिये युद्ध करते हुए शरीरका त्याग करता है तथा जो ब्राह्मणोंको समूची पृथ्वीका दान कर देता है, वे दोनों समान पुण्यके भागी होते हैं ॥ ४९ ॥

श्रुताश्च बहवोऽस्माभी राजानो ये दिवं गताः।
दत्त्वेमां पृथिवीं कृत्स्नां ब्राह्मणेभ्यो यथाविधि ॥ ५०॥

हमने सुना है कि बहुत-से राजा ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक इस समूची पृथ्वीका दान करके स्वर्गलोकमें गये हैं ॥५०॥

एवं त्वामपि धर्मात्मन् प्रयाचेऽहं कृताञ्जलिः।
पृथिवीदानतुल्यं स्यादधिकं वा फलं विभो ॥ ५१ ॥

धर्मात्मन् ! इसी प्रकार तुमसे भी मैं अर्जुनकी सहायताके लिये हाथ जोड़कर याचना करता हूँ। प्रभो ! ऐसा करनेसे तुम्हें पृथ्वीदानके समान अथवा उससे भी अधिक फल प्राप्त होगा ॥ ५१ ॥

एक एव सदा कृष्णो मित्राणामभयङ्करः।
रणे संत्यजति प्राणान् द्वितीयस्त्वं च सात्यके ॥ ५२ ॥

सात्यके ! मित्रोंको अभय प्रदान करनेवाले एक तो भगवान् श्रीकृष्ण ही सदा हमारे लिये युद्धमें अपने प्राणोंका परित्याग करनेके लिये उद्यत रहते हैं और दूसरे तुम ॥५२॥

विक्रान्तस्य च वीरस्य युद्धे प्रार्थयतो यशः।
शूर एव सहायः स्यान्नेतरः प्राकृतो जनः ॥ ५३ ॥

युद्धमें सुयश पानेकी इच्छा रखकर पराक्रम करनेवाले वीर पुरुषकी सहायता कोई शूरवीर पुरुष ही कर सकता है। दूसरा कोई निम्न कोटिका मनुष्य उसका सहायक नहीं हो सकता ॥ ५३ ॥

ईदृशे तु परामर्दे वर्तमानस्य माधव।
त्वदन्यो हि रणे गोप्ता विजयस्य न विद्यते ॥ ५४ ॥

माधव ! ऐसे घोर युद्धमें लगे हुए रणक्षेत्रमें अर्जुनका सहायक एवं संरक्षक होनेयोग्य तुम्हारे सिवा दूसरा कोई नहीं है॥

श्लाघन्नेव हि कर्माणि शतशस्तव पाण्डवः।
मम संजनयन् हर्षं पुनः पुनरकीर्तयत् ॥ ५५ ॥

पाण्डुपुत्र अर्जुनने तुम्हारे सैकड़ों कार्योंकी प्रशंसा करते और मेरा हर्ष बढ़ाते हुए बारंबार तुम्हारे गुणोंका वर्णन किया था ॥ ५५ ॥

लघुहस्तश्चित्रयोधी तथा लघुपराक्रमः।
प्राज्ञः सर्वास्त्रविच्छूरो मुह्यते न च संयुगे ॥ ५६ ॥

वह कहता था—'सात्यकिके हाथोंमें बड़ी फुर्ती है। वह विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाला और शीघ्रतापूर्वक पराक्रम दिखानेवाला है। सम्पूर्ण अस्त्रोंका ज्ञाता, विद्वान् एवं शूर-वीर सात्यकि युद्धस्थलमें कभी मोहित नहीं होता है ॥५६॥

महास्कन्धो महोरस्को महाबाहुर्महाहनुः।
महाबलो महावीर्यः स महात्मा महारथः ॥ ५७ ॥

'उसके कंधे महान्, छाती चौड़ी, भुजाएँ बड़ी-बड़ी और ठोढ़ी विशाल एवं हृष्ट-पुष्ट हैं। वह महाबली, महापराक्रमी, महामनस्वी और महारथी है ॥ ५७ ॥

शिष्यो मम सखा चैव प्रियोऽस्याहं प्रियश्च मे।
युयुधानः सहायो मे प्रमथिष्यति कौरवान् ॥ ५८ ॥

'सात्यकि मेरा शिष्य और सखा है। मैं उसको प्रिय हूँ और वह मुझे। युयुधान मेरा सहायक होकर मेरे विपक्षी कौरवोंका संहार कर डालेगा ॥ ५८ ॥

अस्मदर्थं च राजेन्द्र संनह्येद् यदि केशवः।
रामो वाप्यनिरुद्धो वा प्रद्युम्नो वा महारथः ॥ ५९ ॥
गदो वा सारणो वापि साम्बो वा सह वृष्णिभिः।
सहायार्थं महाराज संग्रामोत्तममूर्धनि ॥ ६० ॥
तथाप्यहं नरव्याघ्रं शैनेयं सत्यविक्रमम्।
साहाय्ये विनियोक्ष्यामि नास्ति मेऽन्यो हि तत्समः॥६१॥

'राजेन्द्र ! महाराज ! यदि युद्धके श्रेष्ठ मुहानेपर हमारी सहायताके लिये भगवान् श्रीकृष्ण, बलराम, अनिरुद्ध, महारथी प्रद्युम्न, गद, सारण अथवा वृष्णिवंशियोंसहित साम्ब कवच धारण करके तैयार होंगे, तो भी मैं पुरुषसिंह सत्यपराक्रमी शिनिपौत्र सात्यकिको अवश्य ही अपनी सहायताके कार्यमें नियुक्त करूँगा; क्योंकि मेरी दृष्टिमें दूसरा कोई सात्यकिके समान नहीं है' ॥ ५९–६१ ॥

इति द्वैतवने तात मामुवाच धनंजयः।
परोक्षे त्वद्गुणांस्तथ्यान् कथयन्नार्यसंसदि ॥ ६२ ॥

तात ! इस प्रकार अर्जुनने द्वैतवनमें श्रेष्ठ पुरुषोंकी सभामें तुम्हारे यथार्थ गुणोंका वर्णन करते हुए परोक्षमें मुझसे उपर्युक्त बातें कही थीं ॥ ६२ ॥

तस्य त्वमेवं संकल्पं न वृथा कर्तुमर्हसि।
धनंजयस्य वार्ष्णेय मम भीमस्य चोभयोः ॥ ६३ ॥

वार्ष्णेय ! अर्जुनका, मेरा, भीमसेनका तथा दोनों माद्रीकुमारोंका तुम्हारे विषयमें जो वैसा संकल्प है, उसे तुम्हें व्यर्थ नहीं करना चाहिये ॥ ६३ ॥

यच्चापि तीर्थानि चरन्नगच्छं द्वारकां प्रति।
तत्राहमपि ते भक्तिमर्जुनं प्रति दृष्टवान् ॥ ६४ ॥

जब मैं तीर्थोंमें विचरता हुआ द्वारकामें गया था, वहाँ भी अर्जुनके प्रति जो तुम्हारा भक्तिभाव है, उसे मैंने प्रत्यक्ष देखा था ॥ ६४ ॥

न तत् सौहृदमन्येषु मया शैनेय लक्षितम्।
यथा त्वमस्मान् भजसे वर्तमानानुपप्लवे ॥ ६५ ॥

शैनेय ! इस विनाशकारी संकटमें पड़े हुए हमलोगोंकी तुम जिस प्रकार सेवा एवं सहायता कर रहे हो, वैसा सौहार्द मैंने तुम्हारे सिवा दूसरोंमें नहीं देखा है ॥ ६५ ॥

सोऽभिजातया च भक्त्या च सख्यस्याचार्यकस्य च।
सौहृदस्य च वीर्यस्य कुलीनत्वस्य माधव ॥ ६६ ॥
सत्यस्य च महाबाहो अनुकम्पार्थमेव च।
अनुरूपं महेष्वास कर्म त्वं कर्तुमर्हसि ॥ ६७ ॥

महाबाहु महाधनुर्धर माधव ! वही तुम हमलोगोंपर कृपा करनेके लिये ही उत्तम कुलमें जन्म-ग्रहण, अर्जुनके प्रति भक्तिभाव, मैत्री, गुरुभाव, सौहार्द, पराक्रम, कुलीनता और सत्यके अनुरूप कर्म करो ॥ ६६-६७ ॥

सुयोधनो हि सहसा गतो द्रोणेन दंशितः।
पूर्वमेवानुयातास्ते कौरवाणां महारथाः ॥ ६८ ॥

द्रोणाचार्यद्वारा दी गयी कवचधारणासे सुरक्षित हो दुर्योधन सहसा अर्जुनका सामना करनेके लिये गया है। बहुतेरे कौरव महारथियोंने पहलेसे ही उसका पीछा किया था॥

सुमहान् निनदश्चैव श्रूयते विजयं प्रति।
स शैनेय जवेनाशु गन्तुमर्हसि मानद ॥ ६९ ॥

जहाँ अर्जुन हैं, उस ओर बड़े जोरकी गर्जना सुनायी दे रही है। अतः दूसरोंको मान देनेवाले शैनेय ! तुम्हें शीघ्रतापूर्वक बड़े वेगसे वहाँ जाना चाहिये ॥ ६९ ॥

भीमसेनो वयं चैव संयत्ताः ससैनिकाः।
द्रोणमावारयिष्यामो यदि त्वां प्रति यास्यति ॥ ७० ॥

भीमसेन और हमलोग अपने सैनिकोंके साथ सब प्रकारसे सावधान हैं। यदि द्रोणाचार्य तुम्हारा पीछा करेंगे तो हम सब लोग उन्हें रोकेंगे ॥ ७० ॥

पश्य शैनेय सैन्यानि द्रवमाणानि संयुगे।
महान्तं च रणे शब्दं दीर्यमाणां च भारतीम् ॥ ७१ ॥

शैनेय ! वह देखो, उधर युद्धस्थलमें सेनाएँ भाग रही हैं। रणक्षेत्रमें महान् कोलाहल हो रहा है और मोरचेबंदी करके खड़ी हुई कौरवी सेनामें दरारें पड़ रही हैं ॥

महामारुतवेगेन समुद्रमिव पर्वसु।
धार्तराष्ट्रबलं तात विक्षिप्तं सव्यसाचिना ॥ ७२ ॥

तात ! पूर्णिमाके दिन प्रचण्ड वायुके वेगसे विक्षुब्ध हुए समुद्रके समान सव्यसाची अर्जुनके द्वारा पीड़ित हुई दुर्योधनकी सेनामें हलचल मच गयी है ॥ ७२ ॥

रथैर्विपरिधावद्भिर्मनुष्यैश्च हयैश्च ह।
सैन्यं रजःसमुद्भूतमेतत् सम्परिवर्तते ॥ ७३ ॥

इधर-उधर भागते हुए रथों, मनुष्यों और घोड़ोंके द्वारा उड़ी हुई धूलसे आच्छादित हुई यह सारी सेना चक्कर काट रही है ॥ ७३ ॥

संवृतः सिन्धुसौवीरैर्नखरप्रासयोधिभिः।
अत्यन्तोपचितैः शूरैः फाल्गुनः परवीरहा ॥ ७४ ॥

शत्रु-वीरोंका संहार करनेवाला अर्जुन, नखर (बघनखे) और प्रासोंद्वारा युद्ध करनेवाले तथा अधिक संख्यामें एकत्र हुए सिन्धु-सौवीर देशके शूरवीर सैनिकोंसे घिर गया है ॥ ७४॥

नैतद् बलमसंवार्य शक्यो जेतुं जयद्रथः।
एते हि सैन्धवस्यार्थे सर्वे संत्यक्तजीविताः ॥ ७५ ॥

इस सेनाका निवारण किये बिना जयद्रथको जीतना असम्भव है। ये सभी सैनिक सिन्धुराजके लिये अपना जीवन न्यौछावर कर चुके हैं ॥ ७५ ॥

शरशक्तिध्वजवरं हयनागसमाकुलम्।
पश्यैतद् धार्तराष्ट्राणामनीकं सुदुरासदम् ॥ ७६ ॥

बाण, शक्ति और ध्वजाओंसे सुशोभित तथा घोड़े और हाथियोंसे भरी हुई कौरवोंकी इस दुर्जय सेनाको देखो ॥७६॥

शृणु दुन्दुभिनिर्घोषं शङ्खशब्दांश्च पुष्कलान्।
सिंहनादरवांश्चैव रथनेमिस्वनांस्तथा ॥ ७७ ॥

सुनो, डंकोंकी आवाज हो रही है, जोर-जोरसे शङ्ख बज रहे हैं, वीरोंके सिंहनाद तथा रथोंके पहियोंकी घर्घराहटके शब्द सुनायी पड़ रहे हैं ॥ ७७ ॥

नागानां शृणु शब्दं च पत्तीनां च सहस्रशः।
सादिनां द्रवतां चैव शृणु कम्पयतां महीम् ॥ ७८ ॥

हाथियोंके चिग्घाड़नेकी आवाज सुनो। सहस्रों पैदल सिपाहियों तथा पृथ्वीको कम्पित करते हुए दौड़ लगानेवाले घुड़सवारोंके शब्द सुन लो ॥ ७८ ॥

पुरस्तात् सैन्धवानीकं द्रोणानीकं च पृष्ठतः।
बहुत्वाद्धि नरव्याघ्र देवेन्द्रमपि पीडयेत् ॥ ७९ ॥

नरव्याघ्र ! अर्जुनके सामने सिन्धुराजकी सेना है और पीछे द्रोणाचार्यकी। इसकी संख्या इतनी अधिक है कि यह देवराज इन्द्रको भी पीड़ित कर सकती है ॥ ७९ ॥

अपर्यन्ते बले मग्नो जह्यादपि च जीवितम्।
तस्मिंश्च निहते युद्धे कथं जीवेत मादृशः ॥ ८० ॥
सर्वथाहमनुप्राप्तः सुकृच्छ्रं त्वयि जीवति।

इस अनन्त सैन्यसमुद्रमें डूबकर अर्जुन अपने प्राणोंका भी परित्याग कर देगा। युद्धमें उसके मारे जानेपर मेरे-जैसा

मनुष्य कैसे जीवित रह सकता है ? युयुधान ! तुम्हारे जीते-जी मैं सब प्रकारसे बड़े भारी संकटमें पड़ गया हूँ ॥८०½॥

श्यामो युवा गुडाकेशो दर्शनीयश्च पाण्डवः ॥ ८१॥
लघ्वस्त्रश्चित्रयोधी च प्रविष्टस्तात भारतीम् ।
सूर्योदये महाबाहुर्दिवसश्चातिवर्तते ॥ ८२॥

निद्राविजयी पाण्डुकुमार अर्जुन श्यामवर्णवाला दर्शनीय तरुण है। वह शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलाता और विचित्र रीतिसे युद्ध करता है। तात ! उस महाबाहु वीरने सूर्योदयके समय अकेले ही कौरवी सेनामें प्रवेश किया था और अब दिन बीतता चला जा रहा है ॥ ८१-८२ ॥

तन्न जानामि वार्ष्णेय यदि जीवति वा न वा ।
कुरूणां चापि तत् सैन्यं सागरप्रतिमं महत् ॥ ८३ ॥
एक एव च बीभत्सुः प्रविष्टस्तात भारतीम् ।
अविषह्यां महाबाहुः सुरैरपि महाहवे ॥ ८४ ॥

वार्ष्णेय ! पता नहीं, इस समयतक अर्जुन जीवित है या नहीं । महासमरमें जिसके वेगको सहन करना देवताओंके लिये भी असम्भव है, कौरवोंकी वह सेना समुद्रके समान विशाल है, तात ! उस कौरवी सेनामें महाबाहु अर्जुनने अकेले ही प्रवेश किया है ॥ ८३-८४ ॥

न हि मे वर्तते बुद्धिरद्य युद्धे कथंचन ।
द्रोणोऽपि रभसो युद्धे मम पीडयते बलम् ॥ ८५ ॥

आज किसी प्रकार मेरी बुद्धि युद्धमें नहीं लग रही है । इधर द्रोणाचार्य भी युद्धस्थलमें बड़े वेगसे आक्रमण करके मेरी सेनाको पीड़ित कर रहे हैं ॥ ८५ ॥

प्रत्यक्षं ते महाबाहो यथासौ चरति द्विजः ।
युगपच्च समेतानां कार्याणां त्वं विचक्षणः ॥ ८६ ॥

महाबाहो ! विप्रवर द्रोणाचार्य जैसा कार्य कर रहे हैं, वह सब तुम्हारी आँखोंके सामने है । एक ही समय प्राप्त हुए अनेक कार्योंमेंसे किसका पालन आवश्यक है, इसका निर्णय करनेमें तुम कुशल हो ॥ ८६ ॥

महार्थं लघुसंयुक्तं कर्तुमर्हसि मानद ।
तस्य मे सर्वकार्येषु कार्यमेतन्मतं महत् ॥ ८७ ॥
अर्जुनस्य परित्राणं कर्तव्यमिति संयुगे ।

मानद ! सबसे महान् प्रयोजनको तुम्हें शीघ्रतापूर्वक सम्पन्न करना चाहिये । मुझे तो सब कार्योंमें सबसे महान् कार्य यही जान पड़ता है कि युद्धस्थलमें अर्जुनकी रक्षा की जाय ॥ ८७½ ॥

नाहं शोचामि दाशार्हं गोप्तारं जगतः पतिम् ॥ ८८ ॥
स हि शक्तो रणे तात त्रींल्लोकानपि संगतान् ।
विजेतुं पुरुषव्याघ्रः सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ८९ ॥
किं पुनर्धार्तराष्ट्रस्य बलमेतत् सुदुर्बलम् ।

तात ! मैं दशार्हनन्दन भगवान् श्रीकृष्णके लिये शोक नहीं करता । वे तो सम्पूर्ण जगत्के संरक्षक और स्वामी हैं । युद्धस्थलमें तीनों लोक संघटित होकर आ जायँ तो भी वे पुरुषसिंह श्रीकृष्ण उन सबको परास्त कर सकते हैं, यह तुमसे सच्ची बात कहता हूँ । फिर दुर्योधनकी इस अत्यन्त दुर्बल सेनाको जीतना उनके लिये कौन बड़ी बात है ? ॥ ८८-८९½ ॥

अर्जुनस्त्वेष वार्ष्णेय पीडितो बहुभिर्युधि ॥ ९० ॥
प्रजह्यात् समरे प्राणांस्तस्माद् विन्दामि कश्मलम् ।

परंतु वार्ष्णेय ! यह अर्जुन तो युद्धस्थलमें बहुसंख्यक सैनिकोंद्वारा पीड़ित होनेपर समराङ्गणमें अपने प्राणोंका परित्याग कर देगा । इसीलिये मैं शोक और दुःखमें डूबा जा रहा हूँ ॥ ९०½ ॥

तस्य त्वं पदवीं गच्छ गच्छेयुस्त्वादृशा यथा ॥ ९१ ॥
तादृशस्येदृशे काले मादृशेनाभिनोदितः ।

अतः तुम मेरे-जैसे मनुष्यसे प्रेरित हो ऐसे संकटके समय अर्जुन-जैसे प्रिय सखाके पथका अनुसरण करो, जैसा कि तुम्हारे-जैसे वीर पुरुष किया करते हैं ॥ ९१½ ॥

रणे वृष्णिप्रवीराणां द्वावेवातिरथौ स्मृतौ ॥ ९२ ॥
प्रद्युम्नश्च महाबाहुस्त्वं च सात्वत विश्रुतः ।

सात्वत ! वृष्णिवंशी प्रमुख वीरोंमें रणक्षेत्रके लिये दो ही व्यक्ति अतिरथी माने गये हैं—एक तो महाबाहु प्रद्युम्न और दूसरे सुविख्यात वीर तुम ॥ ९२½ ॥

अस्त्रे नारायणसमः संकर्षणसमो बले ॥ ९३ ॥
वीरतायां नरव्याघ्र धनंजयसमो ह्यसि ।

नरव्याघ्र ! तुम अस्त्रविद्याके ज्ञानमें भगवान् श्रीकृष्णके समान, बलमें बलरामजीके तुल्य और वीरतामें धनंजयके समान हो ॥ ९३½ ॥

भीष्मद्रोणावतिक्रम्य सर्वयुद्धविशारदम् ॥ ९४ ॥
त्वामेव पुरुषव्याघ्रं लोके सन्तः प्रचक्षते ।

इस जगत्में भीष्म और द्रोणके बाद तुझ पुरुषसिंह सात्यकि-को ही श्रेष्ठ पुरुष सम्पूर्ण युद्धकलामें निपुण बताते हैं ॥९४½॥

(सदेवासुरगन्धर्वान् सकिन्नरमहोरगान् ।
योधयेत् स जगत् सर्वं विजयेत रिपून् बहून् ॥
इति ब्रुवन्ति लोकेषु जनास्तव गुणान् सदा ।
समागमेषु जल्पन्ति पृथगेव च सर्वदा ॥)

जब अच्छे पुरुषोंका समाज जुटता है, उस समय उसमें आये हुए सब लोग संसारमें तुम्हारे गुणोंको सदा-सर्वदा सबसे विलक्षण ही बतलाते हैं । उनका कहना है कि सात्यकि देवता, असुर, गन्धर्व, किन्नर तथा बड़े-बड़े नागोंसहित बहुसंख्यक शत्रुओंपर विजय पा सकते हैं । सम्पूर्ण जगत्से अकेले ही युद्ध कर सकते हैं ॥

नाशक्यं विद्यते लोके सात्यकेरिति माधव ॥ ९५ ॥
तत् त्वां यदभिवक्ष्यामि तत् कुरुष्व महाबल ।
सम्भावना हि लोकस्य मम पार्थस्य चोभयोः ॥ ९६ ॥
नान्यथा तां महाबाहो सम्प्रकर्तुमिहार्हसि ।
परित्यज्य प्रियान् प्राणान् रणे चर विभीतवत् ॥ ९७ ॥

माधव ! लोग कहते हैं कि संसारमें सात्यकिके लिये कोई कार्य असाध्य नहीं है । महाबली वीर ! सब लोगोंकी तथा मेरी और अर्जुनकी—दोनों भाइयोंकी तुम्हारे विषयमें बड़ी उत्तम भावना है । अतः मैं तुमसे जो कुछ कहता हूँ, उसका पालन करो । महाबाहो ! तुम हमारी पूर्वोक्त धारणाको बदल न देना । समराङ्गणमें प्यारे प्राणोंका मोह छोड़कर निर्भयके समान विचरो ॥ ९५–९७ ॥

न हि शैनेय दाशार्हा रणे रक्षन्ति जीवितम् ।
अयुद्धमनवस्थानं संग्रामे च पलायनम् ॥ ९८ ॥
भीरूणामसतां मार्गो नैष दाशार्हसेवितः ।

शैनेय ! दशार्हकुलके वीर पुरुष रणक्षेत्रमें अपने प्राण बचानेकी चेष्टा नहीं करते हैं । युद्धसे मुँह मोड़ना, युद्धस्थलमें डटे न रहना और संग्रामभूमिमें पीठ दिखाकर भागना यह कायरों और अधम पुरुषोंका मार्ग है । दशार्हकुलके वीर पुरुष इससे दूर रहते हैं ॥ ९८½ ॥

तवार्जुनो गुरुस्तात धर्मात्मा शिनिपुङ्गव ॥ ९९ ॥
वासुदेवो गुरुश्चापि तव पार्थस्य धीमतः ।

तात ! शिनिप्रवर ! धर्मात्मा अर्जुन तुम्हारा गुरु है तथा भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे और बुद्धिमान् अर्जुनके भी गुरु हैं ॥ ९९½ ॥

कारणद्वयमेतद्धि जानंस्त्वामहमब्रुवम् ॥ १०० ॥
मावमंस्था वचो मह्यं गुरुस्तव गुरोर्ह्यहम् ।

इन दोनों कारणोंको जानकर मैं तुमसे इस कार्यके लिये कह रहा हूँ । तुम मेरी बातकी अवहेलना न करो; क्योंकि मैं तुम्हारे गुरुका भी गुरु हूँ ॥ १००½ ॥

वासुदेवमतं चैव मम चैवार्जुनस्य च ॥ १०१ ॥
सत्यमेतन्मयोक्तं ते याहि यत्र धनंजयः ।

तुम्हारा वहाँ जाना भगवान् श्रीकृष्णको, मुझको तथा अर्जुनको भी प्रिय है । यह मैंने तुमसे सच्ची बात कही है । अतः जहाँ अर्जुन है, वहाँ जाओ ॥ १०१½ ॥

एतद् वचनमाज्ञाय मम सत्यपराक्रम ॥ १०२ ॥
प्रविशैतद् बलं तात धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः ।

सत्यपराक्रमी वत्स ! तुम मेरी इस बातको मानकर दुर्बुद्धि दुर्योधनकी इस सेनामें प्रवेश करो ॥ १०२½ ॥

प्रविश्य च यथान्यायं संगम्य च महारथैः ।
यथार्हमात्मनः कर्म रणे सात्वत दर्शय ॥ १०३ ॥

सात्वत ! इसमें प्रवेश करके यथायोग्य सब महारथियोंसे मिलकर युद्धमें अपने अनुरूप पराक्रम दिखाओ ॥ १०३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरवाक्ये दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें युधिष्ठिरवाक्यविषयक एक सौ दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २ श्लोक मिलाकर कुल १०५ श्लोक हैं)

एकादशाधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकि और युधिष्ठिरका संवाद

संजय उवाच

प्रीतियुक्तं च हृद्यं च मधुराक्षरमेव च ।
कालयुक्तं च चित्रं च न्याय्यं यच्चापि भाषितुम् ॥ १ ॥
धर्मराजस्य तद् वाक्यं निशम्य शिनिपुङ्गवः ।
सात्यकिर्भरतश्रेष्ठ प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! धर्मराजका वह वचन प्रेमपूर्ण, मनको प्रिय लगनेवाला, मधुर अक्षरोंसे युक्त, सामयिक, विचित्र, कहने योग्य तथा न्यायसङ्गत था । भरतश्रेष्ठ ! उसे सुनकर शिनिप्रवर सात्यकिने युधिष्ठिरको इस प्रकार उत्तर दिया—॥ १-२ ॥

श्रुतं ते गदतो वाक्यं सर्वमेतन्मयाच्युत ।
न्याययुक्तं च चित्रं च फाल्गुनार्थे यशस्करम् ॥ ३ ॥

'अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले नरेश ! आपने अर्जुनकी सहायताके लिये जो-जो बातें कही हैं, वह सब मैंने सुन लीं । आपका कथन अद्भुत, न्यायसङ्गत और यशकी वृद्धि करनेवाला है ॥ ३ ॥

एवंविधे तथा काले मादृशं प्रेक्ष्य सम्मतम् ।
वक्तुमर्हसि राजेन्द्र यथा पार्थे तथैव माम् ॥ ४ ॥

'राजेन्द्र ! ऐसे समयमें मेरे-जैसे प्रिय व्यक्तिको देखकर आप जैसी बात कह सकते हैं, वैसी ही कही है । आप अर्जुनसे जो कुछ कह सकते हैं, वही आपने मुझसे भी कहा है ॥ ४ ॥

न मे धनंजयस्यार्थे प्राणा रक्ष्याः कथंचन ।
त्वत्प्रयुक्तः पुनरहं किं न कुर्यां महाहवे ॥ ५ ॥

'महाराज ! अर्जुनके हितके लिये मुझे किसी प्रकार भी अपने प्राणोंकी रक्षाकी चिन्ता नहीं करनी है; फिर आपका आदेश मिलनेपर मैं इस महायुद्धमें क्या नहीं कर सकता हूँ ! ॥ ५ ॥

लोकत्रयं योधयेयं सदेवासुरमानुषम् ।
त्वत्प्रयुक्तो नरेन्द्रेह किमुतैतत् सुदुर्बलम् ॥ ६ ॥

'नरेन्द्र ! आपकी आज्ञा हो तो देवताओं, असुरों तथा मनुष्योंसहित तीनों लोकोंके साथ मैं युद्ध कर सकता हूँ। फिर यहाँ इस अत्यन्त दुर्बल कौरवी सेनाका सामना करना कौन बड़ी बात है ? ॥ ६ ॥

सुयोधनबलं त्वद्य योधयिष्ये समन्ततः ।
विजेष्ये च रणे राजन् सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ७ ॥

'राजन् ! मैं रणक्षेत्रमें आज चारों ओर घूमकर दुर्योधनकी सेनाके साथ युद्ध करूँगा और उसपर विजय पाऊँगा; यह मैं आपसे सच्ची बात कहता हूँ ॥ ७ ॥

कुशल्यहं कुशलिनं समासाद्य धनंजयम् ।
हते जयद्रथे राजन् पुनरेष्यामि तेऽन्तिकम् ॥ ८ ॥

'राजन् ! मैं कुशलपूर्वक रहकर सकुशल अर्जुनके पास पहुँच जाऊँगा और जयद्रथके मारे जानेपर उनके साथ ही आपके पास लौट आऊँगा ॥ ८ ॥

अवश्यं तु मया सर्वं विज्ञाप्यस्त्वं नराधिप ।
वासुदेवस्य यद् वाक्यं फाल्गुनस्य च धीमतः ॥ ९ ॥

'परंतु नरेश्वर ! भगवान् श्रीकृष्ण तथा बुद्धिमान् अर्जुनने युद्धके लिये जाते समय मुझसे जो कुछ कहा था, वह सब आपको सूचित कर देना मेरे लिये अत्यन्त आवश्यक है ॥ ९ ॥

दृढं त्वभिपरीतोऽहमर्जुनेन पुनः पुनः ।
मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य वासुदेवस्य शृण्वतः ॥ १० ॥

'अर्जुनने सारी सेनाके बीचमें भगवान् श्रीकृष्णके सुनते हुए मुझे बारंबार कहकर दृढ़तापूर्वक बाँध लिया है ॥१०॥

अद्य माधव राजानमप्रमत्तोऽनुपालय ।
आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा यावद्धन्मि जयद्रथम् ॥ ११ ॥

'उन्होंने कहा था—'माधव ! आज मैं जबतक जयद्रथका वध करता हूँ, तबतक युद्धमें तुम श्रेष्ठ बुद्धिका आश्रय लेकर पूरी सावधानीके साथ राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करो ॥ ११ ॥

त्वयि चाहं महाबाहो प्रद्युम्ने वा महारथे ।
नृपं निक्षिप्य गच्छेयं निरपेक्षो जयद्रथम् ॥ १२ ॥

''महाबाहो ! मैं तुमपर अथवा महारथी प्रद्युम्नपर ही भरोसा करके राजाको धरोहरकी भाँति सौंपकर निरपेक्षभावसे जयद्रथके पास जा सकता हूँ ॥ १२ ॥

जानीषे हि रणे द्रोणं रभसं श्रेष्ठसम्मतम् ।
प्रतिज्ञा चापि ते नित्यं श्रुता द्रोणस्य माधव ॥ १३ ॥

''माधव ! तुम जानते ही हो कि रणक्षेत्रमें श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा सम्मानित आचार्य द्रोण कितने वेगशाली हैं। उन्होंने जो प्रतिज्ञा कर रक्खी है, उसे भी तुम प्रतिदिन सुनते ही होगे ॥ १३ ॥

ग्रहणे धर्मराजस्य भारद्वाजोऽपि गृध्यति ।
शक्तश्चापि रणे द्रोणो निग्रहीतुं युधिष्ठिरम् ॥ १४ ॥

''द्रोणाचार्य भी धर्मराजको बंदी बनाना चाहते हैं और वे समराङ्गणमें राजा युधिष्ठिरको कैद करनेमें समर्थ भी हैं ॥ १४ ॥

एवं त्वयि समाधाय धर्मराजं नरोत्तमम् ।
अहमद्य गमिष्यामि सैन्धवस्य वधाय हि ॥ १५ ॥

''ऐसी अवस्थामें नरश्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिरकी रक्षाका सारा भार तुमपर ही रखकर आज मैं सिन्धुराजके वधके लिये जाऊँगा ॥ १५ ॥

जयद्रथं च हत्वाहं द्रुतमेष्यामि माधव ।
धर्मराजं न चेद् द्रोणो निगृह्णीयाद् रणे बलात् ॥ १६ ॥

''माधव ! यदि द्रोणाचार्य रणक्षेत्रमें धर्मराजको बलपूर्वक बंदी न बना सकें तो मैं जयद्रथका वध करके शीघ्र ही लौट आऊँगा ॥ १६ ॥

निगृहीते नरश्रेष्ठे भारद्वाजेन माधव ।
सैन्धवस्य वधो न स्यान्ममाप्रीतिस्तथा भवेत् ॥ १७ ॥

''मधुवंशी वीर ! यदि द्रोणाचार्यने नरश्रेष्ठ युधिष्ठिरको कैद कर लिया तो सिन्धुराजका वध नहीं हो सकेगा और मुझे भी महान् दुःख होगा ॥ १७ ॥

एवंगते नरश्रेष्ठे पाण्डवे सत्यवादिनि ।
अस्माकं गमनं व्यक्तं वनं प्रति भवेत् पुनः ॥ १८ ॥

''यदि सत्यवादी नरश्रेष्ठ पाण्डुकुमार युधिष्ठिर इस प्रकार बंदी बनाये गये तो निश्चय ही हमें पुनः वनमें जाना पड़ेगा ॥ १८ ॥

सोऽयं मम जयो व्यक्तं व्यर्थ एव भविष्यति ।
यदि द्रोणो रणे क्रुद्धो निगृह्णीयाद् युधिष्ठिरम् ॥ १९ ॥

''यदि द्रोणाचार्य रणक्षेत्रमें कुपित होकर युधिष्ठिरको कैद कर लेंगे तो मेरी यह विजय अवश्य ही व्यर्थ हो जायगी ॥ १९ ॥

स त्वमद्य महाबाहो प्रियार्थं मम माधव ।
जयार्थं च यशोऽर्थं च रक्ष राजानमाहवे ॥ २० ॥

''महाबाहु माधव ! इसलिये तुम आज मेरा प्रिय करने, मुझे विजय दिलाने और मेरे यशकी वृद्धि करनेके लिये युद्धस्थलमें राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करो' ॥ २० ॥

स भवान् मयि निक्षेपो निक्षिप्तः सव्यसाचिना ।
भारद्वाजाद् भयं नित्यं मन्यमानेन वै प्रभो ॥ २१ ॥

'प्रभो ! इस प्रकार द्रोणाचार्यसे निरन्तर भय मानते हुए सव्यसाची अर्जुनने आपको मेरे पास धरोहरके रूपमें रख छोड़ा है ॥ २१ ॥

तस्यापि च महाबाहो नित्यं पश्यामि संयुगे ।
नान्यं हि प्रतियोद्धारं रौक्मिणेयादृते प्रभो ॥ २२ ॥

'महाबाहो! प्रभो! मैं प्रतिदिन युद्धस्थलमें रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नके सिवा दूसरे किसी वीरको ऐसा नहीं देखता, जो द्रोणाचार्यके सामने खड़ा होकर उनसे युद्ध कर सके ॥२२॥

मां चापि मन्यते युद्धे भारद्वाजस्य धीमतः ।
सोऽहं सम्भावनां चैतामाचार्यवचनं च तत् ॥ २३ ॥
पृष्ठतो नोत्सहे कर्तुं त्वां वा त्यक्तुं महीपते ।

'अर्जुन मुझे भी बुद्धिमान् द्रोणाचार्यका सामना करनेमें समर्थ योद्धा मानते हैं। महीपते! मैं अपने आचार्यकी इस सम्भावनाको तथा उनके उस आदेशको न तो पीछे ढकेल सकता हूँ और न आपको ही त्याग सकता हूँ ॥ २३½ ॥

आचार्यो लघुहस्तत्वादभेद्यकवचावृतः ॥ २४ ॥
उपलभ्य रणे क्रीडेद् यथा शकुनिना शिशुः ।

'द्रोणाचार्य अभेद्य कवचसे सुरक्षित हैं। वे शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेके कारण रणक्षेत्रमें अपने विपक्षीको पाकर उसी प्रकार क्रीड़ा करते हैं, जैसे कोई बालक पक्षीके साथ खेल रहा हो ॥ २४½ ॥

यदि कार्ष्णिर्धनुष्पाणिरिह स्यान्मकरध्वजः ॥२५॥
तस्मै त्वां विसृजेयं वै स त्वां रक्षेद् यथार्जुनः ।

'यदि कामदेवके अवतार श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्न यहाँ हाथमें धनुष लेकर खड़े होते तो उन्हें मैं आपको सौंप देता। वे अर्जुनके समान ही आपकी रक्षा कर सकते थे ॥ २५½ ॥

कुरु त्वमात्मनो गुप्तिं कस्ते गोप्ता गते मयि ॥ २६ ॥
यः प्रतीयाद् रणे द्रोणं यावद् गच्छामि पाण्डवम् ।

'आप पहले अपनी रक्षाको व्यवस्था कीजिये। मेरे चले जानेपर कौन आपका संरक्षण करनेवाला है, जो रणक्षेत्रमें तबतक द्रोणाचार्यका सामना करता रहे, जबतक कि मैं अर्जुनके पास जाता (और लौटता) हूँ ॥ २६½ ॥

मा च ते भयमद्यास्तु राजन्नर्जुनसम्भवम् ॥ २७ ॥
न स जातु महाबाहुर्भारमुद्यम्य सीदति ।

'महाराज! आज आपके मनमें अर्जुनके लिये भय नहीं होना चाहिये। वे महाबाहु किसी कार्यभारको उठा लेनेपर कभी शिथिल नहीं होते हैं ॥ २७½ ॥

ये च सौवीरका योधास्तथा सैन्धवपौरवाः ॥ २८ ॥
उदीच्या दाक्षिणात्याश्च ये चान्येऽपि महारथाः ।
ये च कर्णमुखा राजन् रथोदाराः प्रकीर्तिताः ॥ २९ ॥
एतेऽर्जुनस्य क्रुद्धस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।

'राजन्! जो सौवीर, सिन्धु तथा पुरुदेशके योद्धा हैं, जो उत्तर और दक्षिणके निवासी एव अन्य महारथी हैं तथा जो कर्ण आदि श्रेष्ठ रथी बताये गये हैं; वे कुपित हुए अर्जुनकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हैं ॥२८-२९½॥

उद्युक्ता पृथिवी सर्वा ससुरासुरमानुषा ॥ ३० ॥
सराक्षसगणा राजन् सकिन्नरमहोरगा ।
जङ्गमाः स्थावराः सर्वे नालं पार्थस्य संयुगे ॥ ३१ ॥

'नरेश्वर! देवता, असुर, मनुष्य, राक्षस, किन्नर तथा महान् सर्पगणोंसहित यह समूची पृथ्वी और सभी स्थावर-जङ्गम प्राणी युद्धके लिये उद्यत हो जायँ, तो भी सब मिलकर भी युद्धस्थलमें अर्जुनका सामना नहीं कर सकते हैं ॥३०-३१॥

एवं ज्ञात्वा महाराज व्येतु ते भीर्धनंजये ।
यत्र वीरौ महेष्वासौ कृष्णौ सत्यपराक्रमौ ॥ ३२ ॥
न तत्र कर्मणो व्यापत् कथञ्चिदपि विद्यते ।

'महाराज! ऐसा जानकर अर्जुनके विषयमें आपका भय दूर हो जाना चाहिये। जहाँ सत्यपराक्रमी और महाधनुर्धर वीर श्रीकृष्ण एवं अर्जुन विद्यमान हैं, वहाँ किसी प्रकार भी कार्यमें व्याघात नहीं हो सकता ॥ ३२½ ॥

दैवं कृतास्त्रतां योगममर्षमपि चाहवे ॥ ३३ ॥
कृतज्ञतां दयां चैव भ्रातुस्त्वमनुचिन्तय ।

'आपके भाई अर्जुनमें जो दैवीशक्ति, अस्त्रविद्याकी निपुणता, योग, युद्धस्थलमें अमर्ष, कृतज्ञता और दया आदि सद्गुण हैं, उनका आप बारंबार चिन्तन कीजिये ॥ ३३½ ॥

मयि चापि सहाये ते गच्छमानेऽर्जुनं प्रति ॥ ३४ ॥
द्रोणे चित्रास्त्रतां संख्ये राजंस्त्वमनुचिन्तय ।

'राजन्! मैं आपका सहायक रहा हूँ, यदि मैं भी अर्जुनके पास चला जाता हूँ तो युद्धमें द्रोणाचार्य जिन विचित्र अस्त्रोंका प्रयोग करेंगे, उनपर भी आप अच्छी तरह विचार कर लीजिये ॥ ३४½ ॥

आचार्यो हि भृशं राजन् निग्रहे तव गृध्यति ॥ ३५ ॥
प्रतिज्ञामात्मनो रक्षन् सत्यां कर्तुं च भारत ।

'भरतवंशी नरेश! द्रोणाचार्य आपको कैद करनेकी बड़ी इच्छा रखते हैं। वे अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षा करते हुए उसे सत्य कर दिखाना चाहते हैं ॥ ३५½ ॥

कुरुष्वाद्यात्मनो गुप्तिं कस्ते गोप्ता गते मयि ॥ ३६ ॥
यस्याहं प्रत्ययात् पार्थ गच्छेयं फाल्गुनं प्रति ।

'अब आप अपनी रक्षाका प्रबन्ध कीजिये। पार्थ! मेरे चले जानेपर कौन आपका रक्षक होगा, जिसपर विश्वास करके मैं अर्जुनके पास चला जाऊँ ॥ ३६½ ॥

न ह्यहं त्वां महाराज अनिक्षिप्य महाहवे ॥ ३७ ॥
क्वचिद् यास्यामि कौरव्य सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ।

'महाराज! कुरुनन्दन! मैं आपको इस महासमरमें किसी वीरके संरक्षणमें रक्खे बिना कहीं नहीं जाऊँगा; यह मैं आपसे सच्ची बात कहता हूँ ॥ ३७½ ॥

एतद्विचार्य बहुशो बुद्ध्या बुद्धिमतां वर ॥ ३८ ॥
दृष्ट्वा श्रेयः परं बुद्ध्या ततो राजन् प्रशाधि माम्॥ ३९ ॥

'बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ महाराज ! अपनी बुद्धिसे इस विषयमें बहुत सोच-विचार करके आपको जो परम मङ्गलकारक कृत्य जान पड़े, उसके लिये मुझे आज्ञा दें' ॥ ३८–३९ ॥

युधिष्ठिर उवाच

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि माधव।
न तु मे शुद्ध्यते भावः श्वेताश्वं प्रति मारिष ॥ ४० ॥

युधिष्ठिर बोले—महाबाहु माधव ! तुम जैसा कहते हो, वही ठीक है । आर्य ! श्वेतवाहन द्रोणाचार्यकी ओरसे मेरा हृदय शुद्ध (निश्चिन्त) नहीं हो रहा है ॥ ४० ॥

करिष्ये परमं यत्नमात्मनो रक्षणे ह्यहम् ।
गच्छ त्वं समनुज्ञातो यत्र यातो धनंजयः ॥ ४१ ॥

मैं अपनी रक्षाके लिये महान् प्रयत्न करूँगा । तुम मेरी आज्ञासे वहीं जाओ, जहाँ अर्जुन गया है ॥ ४१ ॥

आत्मसंरक्षणं संख्ये गमनं चार्जुनं प्रति ।
विचार्यैतत् स्वयं बुद्ध्या गमनं तत्र रोचय ॥ ४२ ॥

मुझे युद्धमें अपनी रक्षा करनी चाहिये या अर्जुनके पास तुम्हें भेजना चाहिये । इन दोनों बातोंपर तुम स्वयं ही अपनी बुद्धिसे विचार करके वहाँ जाना ही पसंद करो ॥

स त्वमातिष्ठ यानाय यत्र यातो धनंजयः ।
ममापि रक्षणं भीमः करिष्यति महाबलः ॥ ४३ ॥

अतः जहाँ अर्जुन गया है, वहाँ जानेके लिये तुम तैयार हो जाओ । महाबली भीमसेन मेरी भी रक्षा कर लेंगे ॥४३॥

पार्षतश्च ससोदर्यः पार्थिवाश्च महाबलाः ।
द्रौपदेयाश्च मां तात रक्षिष्यन्ति न संशयः ॥ ४४ ॥

तात ! भाइयोंसहित धृष्टद्युम्न, महाबली भूपालगण तथा द्रौपदीके पाँचों पुत्र मेरी रक्षा कर लेंगे; इसमें संशय नहीं है ॥ ४४ ॥

केकया भ्रातरः पञ्च राक्षसश्च घटोत्कचः ।
विराटो द्रुपदश्चैव शिखण्डी च महारथः ॥ ४५ ॥

धृष्टकेतुश्च बलवान् कुन्तिभोजश्च मातुलः ।
नकुलः सहदेवश्च पञ्चालाः सृञ्जयास्तथा ॥ ४६ ॥
एते समाहितास्तात रक्षिष्यन्ति न संशयः ।

तात ! पाँच भाई केकय-राजकुमार, राक्षस घटोत्कच, विराट, द्रुपद, महारथी शिखण्डी, धृष्टकेतु, बलवान् मामा कुन्तिभोज (पुरुजित्), नकुल, सहदेव, पाञ्चाल तथा सृंजय-वीरगण—ये सभी सावधान होकर निःसंदेह मेरी रक्षा करेंगे ॥ ४५–४६½ ॥

न द्रोणः सह सैन्येन कृतवर्मा च संयुगे ॥ ४७ ॥
समासादयितुं शक्तो न च मां धर्षयिष्यति ।

सेनासहित द्रोणाचार्य तथा कृतवर्मा—ये युद्धस्थलमें मेरे पास नहीं पहुँच सकते और न मुझे परास्त ही कर सकेंगे ॥

धृष्टद्युम्नश्च समरे द्रोणं क्रुद्धं परंतपः ॥ ४८ ॥
वारयिष्यति विक्रम्य वेलेव मकरालयम् ।

शत्रुओंको संताप देनेवाला धृष्टद्युम्न समराङ्गणमें कुपित हुए द्रोणाचार्यको पराक्रम करके रोक लेगा । ठीक वैसे ही, जैसे तटकी भूमि समुद्रको आगे बढ़नेसे रोक देती है ॥

यत्र स्थास्यति संग्रामे पार्षतः परवीरहा ॥ ४९ ॥
द्रोणो न सैन्यं बलवत् क्रामेत् तत्र कथंचन ।

जहाँ शत्रुवीरोंका संहार करनेवाला द्रुपदकुमार संग्राम-भूमिमें खड़ा होगा, वहाँ मेरी प्रबल सेनापर द्रोणाचार्य किसी तरह आक्रमण नहीं कर सकते ॥ ४९½ ॥

एष द्रोणविनाशाय समुत्पन्नो हुताशनात् ॥ ५० ॥
कवची स शरी खड्गी धन्वी च वरभूषणः ।

यह धृष्टद्युम्न, द्रोणाचार्यका नाश करनेके लिये कवच, धनुष, बाण, खड्ग और श्रेष्ठ आभूषणोंके साथ अग्निसे प्रकट हुआ है ॥ ५०½ ॥

विश्रब्धं गच्छ शैनेय मा कार्षीर्मयि सम्भ्रमम् ।
धृष्टद्युम्नो रणे क्रुद्धं द्रोणमावारयिष्यति ॥ ५१ ॥

अतः शिनिनन्दन ! तुम निश्चिन्त होकर जाओ । मेरे लिये संदेह मत करो । धृष्टद्युम्न रणक्षेत्रमें कुपित हुए द्रोणाचार्यको सर्वथा रोक देगा ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरसात्यकिवाक्ये एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें युधिष्ठिर और सात्यकिका संवादविषयक एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १११ ॥

द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिकी अर्जुनके पास जानेकी तैयारी और सम्मानपूर्वक विदा होकर उनका प्रस्थान तथा साथ आते हुए भीमको युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये लौटा देना

संजय उवाच

धर्मराजस्य तद् वाक्यं निशम्य शिनिपुङ्गवः ।
स पार्थाद् भयमाशंसन् परित्यागान्महीपतेः ॥ १ ॥
अपवादं ह्यात्मनश्च लोकात् पश्यन् विशेषतः ।

ते मां भीतमिति ब्रूयुरायान्तं फाल्गुनं प्रति ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! धर्मराजका वह कथन सुनकर शिनिप्रवर सात्यकिके मनमें राजाको छोड़कर जानेसे अर्जुनके अप्रसन्न होनेकी आशङ्का उत्पन्न हुई। विशेषतः उन्हें अपने लिये लोकापवादका भय दिखायी देने लगा। वे सोचने लगे—मुझे अर्जुनकी ओर आते देख सब लोग यही कहेंगे कि यह डरकर भाग आया है ॥ १–२ ॥

निश्चित्य बहुधैवं स सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ।
धर्मराजमिदं वाक्यमब्रवीत् पुरुषर्षभः ॥ ३ ॥

युद्धमें दुर्जय वीर पुरुषरत्न सात्यकिने इस प्रकार भाँति-भाँतिसे विचार करके धर्मराजसे यह बात कही—॥ ३॥

कृतां चेन्मन्यसे रक्षां स्वस्ति तेऽस्तु विशाम्पते ।
अनुयास्यामि बीभत्सुं करिष्ये वचनं तव ॥ ४ ॥

'प्रजानाथ ! यदि आप अपनी रक्षाकी व्यवस्था की हुई मानते हैं तो आपका कल्याण हो । मैं अर्जुनके पास जाऊँगा और आपकी आज्ञाका पालन करूँगा ॥ ४ ॥

न हि मे पाण्डवात् कश्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते।
यो मे प्रियतरो राजन् सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ५ ॥

'राजन्! मैं आपसे सच कहता हूँ कि तीनों लोकोंमें कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जो मुझे पाण्डुनन्दन अर्जुनसे अधिक प्रिय हो ॥ ५ ॥

तस्याहं पदवीं यास्ये संदेशात् तव मानद ।
त्वत्कृते न च मे किंचिदकर्तव्यं कथंचन ॥ ६ ॥

'मानद ! मैं आपके आदेश और संदेशसे अर्जुनके पथका अनुसरण करूँगा। आपके लिये कोई ऐसा कार्य नहीं है, जिसे मैं किसी प्रकार न कर सकूँ ॥ ६ ॥

यथा हि मे गुरोर्वाक्यं विशिष्टं द्विपदां वर ।
तथा तवापि वचनं विशिष्टतरमेव मे ॥ ७ ॥

'नरश्रेष्ठ ! मेरे गुरु अर्जुनका वचन मेरे लिये जैसा महत्त्व रखता है, आपका वचन भी वैसा ही है, बल्कि उससे भी बढ़कर है ॥ ७ ॥

प्रिये हि तव वर्तेते भ्रातरौ कृष्णपाण्डवौ ।
तयोः प्रिये स्थितं चैव विद्धि मां राजपुङ्गव ॥ ८ ॥

'नृपश्रेष्ठ ! दोनों भाई श्रीकृष्ण और अर्जुन आपके प्रिय साधनमें लगे हुए हैं और उन दोनोंके प्रिय कार्यमें आप मुझे तत्पर जानिये ॥ ८ ॥

तवाज्ञां शिरसा गृह्य पाण्डवार्थमहं प्रभो ।
भित्त्वेदं दुर्भिदं सैन्यं प्रयास्ये नरपुङ्गव ॥ ९ ॥

'प्रभो ! नरश्रेष्ठ ! मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके पाण्डुनन्दन अर्जुनके लिये इस दुर्भेद्य सैन्यव्यूहका भेदनकर उनके पास जाऊँगा ॥ ९ ॥

द्रोणानीकं विशाम्येष क्रुद्धो झष इवार्णवम् ।
तत्र यास्यामि यत्रासौ राजन् राजा जयद्रथः ॥ १० ॥

'राजन् ! जैसे महामत्स्य महासागरमें प्रवेश करता है, उसी प्रकार मैं भी कुपित होकर द्रोणाचार्यकी सेनामें घुसता हूँ । मैं वहीं जाऊँगा, जहाँ राजा जयद्रथ है ॥ १० ॥

यत्र सेनां समाश्रित्य भीतस्तिष्ठति पाण्डवात् ।
गुप्तो रथवरश्रेष्ठैर्द्रौणिकर्णकृपादिभिः ॥ ११ ॥

'पाण्डुनन्दन अर्जुनसे भयभीत हो अपनी सेनाका आश्रय लेकर जयद्रथ जहाँ अश्वत्थामा, कर्ण और कृपाचार्य आदि श्रेष्ठ महारथियोंसे सुरक्षित होकर खड़ा है, वहीं मुझे पहुँचना है ॥ ११ ॥

इतस्त्रियोजनं मन्ये तमध्वानं विशाम्पते ।
यत्र तिष्ठति पार्थोऽसौ जयद्रथवधोद्यतः ॥ १२ ॥

'प्रजापालक नरेश ! इस समय जहाँ जयद्रथ-वधके लिये उद्यत हुए अर्जुन खड़े हैं, उस स्थानको मैं यहाँसे तीन योजन दूर मानता हूँ ॥ १२ ॥

त्रियोजनगतस्यापि तस्य यास्याम्यहं पदम् ।
आसैन्धववधाद् राजन् सुदृढेनान्तरात्मना ॥ १३ ॥

'राजन् ! अर्जुनके तीन योजन दूर चले जानेपर भी मैं जयद्रथ-वधके पहले ही सुदृढ़ हृदयसे अर्जुनके स्थानपर पहुँच जाऊँगा ॥ १३ ॥

अनादिष्टस्तु गुरुणा को नु युध्येत मानवः ।
आदिष्टस्तु यथा राजन् को न युध्येत मादृशः ॥ १४ ॥

'नरेश्वर ! गुरुकी आज्ञा प्राप्त हुए बिना कौन मनुष्य युद्ध करेगा और गुरुकी आज्ञा मिल जानेपर मेरे-जैसा कौन वीर युद्ध नहीं करेगा ? ॥ १४ ॥

अभिजानामि तं देशं यत्र यास्याम्यहं प्रभो ।
हलशक्तिगदाप्रासचर्मखड्गर्ष्टितोमरम् ॥ १५ ॥
इष्वस्त्रवरसम्बाधं क्षोभयिष्ये बलार्णवम् ।

'प्रभो ! मुझे जहाँ जाना है, उस स्थानको मैं जानता हूँ। वह हल, शक्ति, गदा, प्रास, ढाल, तलवार, ऋष्टि और तोमरोंसे भरा है। श्रेष्ठ धनुष-बाणोंसे परिपूर्ण शत्रु-सैन्यरूपी महासागरको मैं मथ डालूँगा ॥ १५½ ॥

यदेतत् कुञ्जरानीकं साहस्रमनुपश्यसि ॥ १६ ॥
कुलमाञ्जनकं नाम यत्रैते वीर्यशालिनः ।
आस्थिता बहुभिर्म्लेच्छैर्युद्धशौण्डैः प्रहारिभिः॥ १७ ॥

'महाराज ! यह जो आप हजारों हाथियोंकी सेना देखते हैं, इसका नाम है आञ्जनककुल। इसमें पराक्रमशाली गजराज खड़े हैं, जिनके ऊपर प्रहारकुशल और युद्धनिपुण बहुत-से म्लेच्छ योद्धा सवार हैं ॥ १६–१७ ॥

नागा मेघनिभा राजन् क्षरन्त इव तोयदाः ।
नैते जातु निवर्तेरन् प्रेषिता हस्तिसादिभिः ॥ १८ ॥
अन्यत्र हि वधादेषां नास्ति राजन् पराजयः ।

'राजन्! ये हाथी मेघोंकी घटाके समान दिखायी देते हैं और पानी बरसानेवाले बादलोंके समान मदकी वर्षा करते हैं। हाथीसवारोंके हाँकनेपर ये कभी युद्धसे पीछे नहीं हटते हैं। महाराज! वधके अतिरिक्त और किसी उपायसे इनकी पराजय नहीं हो सकती ॥ १८½ ॥

अथ यान् रथिनो राजन् सहस्रमनुपश्यसि ॥ १९ ॥
एते रुक्मरथा नाम राजपुत्रा महारथाः ।
रथेष्वस्त्रेषु निपुणा नागेषु च विशाम्पते ॥ २० ॥

'राजन्! आप जिन सहस्रों रथियोंको देख रहे हैं, ये रुक्मरथ नामवाले महारथी राजकुमार हैं। प्रजानाथ! ये रथों, अस्त्रों और हाथियोंके संचालनमें भी निपुण हैं॥१९-२०॥

धनुर्वेदे गताः पारं मुष्टियुद्धे च कोविदाः ।
गदायुद्धविशेषज्ञा नियुद्धकुशलास्तथा ॥ २१ ॥

'ये सब-के-सब धनुर्वेदके पारंगत विद्वान् हैं। मुष्टि-युद्धमें भी निपुण हैं, गदायुद्धके विशेषज्ञ हैं और मल्लयुद्धमें भी कुशल हैं ॥ २१ ॥

खड्गप्रहरणे युक्ताः सम्पाते चासिचर्मणोः ।
शूराश्च कृतविद्याश्च स्पर्धन्ते च परस्परम् ॥ २२ ॥

'तलवार चलानेका भी इन्हें अच्छा अभ्यास है। ये ढाल, तलवार लेकर विचरनेमें समर्थ हैं। शूर और अस्त्र-शस्त्रोंके विद्वान् होनेके साथ ही परस्पर स्पर्धा रखते हैं॥

नित्यं हि समरे राजन् विजिगीषन्ति मानवान् ।
कर्णेन विहिता राजन् दुःशासनमनुव्रताः ॥ २३ ॥

'नरेश्वर! ये सदा समरभूमिमें मनुष्योंको जीतनेकी इच्छा रखते हैं। महाराज! कर्णने इन्हें दुःशासनका अनुगामी बना रक्खा है ॥ २३ ॥

एतांस्तु वासुदेवोऽपि रथोदारान् प्रशंसति ।
सततं प्रियकामाश्च कर्णस्यैते वशे स्थिताः ॥ २४ ॥

'भगवान् श्रीकृष्ण भी इन श्रेष्ठ महारथियोंकी प्रशंसा करते हैं, ये सब-के-सब कर्णके वशमें स्थित हैं और सदा उसका प्रिय करनेकी अभिलाषा रखते हैं ॥ २४ ॥

तस्यैव वचनाद् राजन् निवृत्ताः श्वेतवाहनात् ।
ते न क्रान्ता न च श्रान्ता दृढावरणकार्मुकाः ॥ २५ ॥

'राजन्! कर्णके ही कहनेसे ये अर्जुनकी ओरसे इधर लौट आये हैं। इनके कवच और धनुष अत्यन्त सुदृढ़ हैं। वे न तो थके हैं और न पीड़ित ही हुए हैं ॥ २५ ॥

मदर्थेऽधिष्ठिता नूनं धार्तराष्ट्रस्य शासनात् ।
एतान् प्रमथ्य संग्रामे प्रियार्थं तव कौरव ॥ २६ ॥
प्रयास्यामि ततः पश्चात् पदवीं सव्यसाचिनः ।

'दुर्योधनके आदेशसे ये निश्चय ही मुझसे युद्ध करनेके लिये खड़े हैं। कुरुनन्दन! मैं आपका प्रिय करनेके लिये इन सबको संग्राममें मथकर सव्यसाची अर्जुनके मार्गपर जाऊँगा॥

यांस्त्वेतानपरान् राजन् नागान् सप्त शतानिमान् ॥ २७ ॥
प्रेक्षसे वर्मसंछन्नान् किरातैः समधिष्ठितान् ।
किरातराजो यान् प्रादाद् द्विरदान् सव्यसाचिनः ॥ २८ ॥
स्वलंकृतांस्तदा प्रेष्यानिच्छञ्जीवितमात्मनः ।

'महाराज! जिन दूसरे इन सात सौ हाथियोंको आप देख रहे हैं, जो कवचसे आच्छादित हैं और जिनपर किरात योद्धा चढ़े हुए हैं, ये वे ही हाथी हैं, जिन्हें दिग्विजयके समय अपने प्राण बचानेकी इच्छा रखकर किरातराजने सव्य-साची अर्जुनको भेंट किया था। ये सजे-सजाये हाथी उन दिनों आपके सेवक थे ॥ २७–२८½ ॥

आसन्नेते पुरा राजंस्तव कर्मकरा दृढम् ॥ २९ ॥
त्वामेवाद्य युयुत्सन्ते पश्य कालस्य पर्ययम् ।

'महाराज! यह कालचक्रका परिवर्तन तो देखिये—जो पूर्वकालमें दृढ़तापूर्वक आपकी सेवा करनेवाले थे, वे आज आपसे ही युद्ध करना चाहते हैं ॥ २९½ ॥

एषामेते महामात्राः किराता युद्धदुर्मदाः ॥ ३० ॥
हस्तिशिक्षाविदश्चैव सर्वे चैवाग्नियोनयः ।
एते विनिर्जिताः संख्ये संग्रामे सव्यसाचिना ॥ ३१ ॥

'ये रणदुर्मद किरात इन हाथियोंके महावत और इन्हें शिक्षा देनेमें कुशल हैं। ये सब-के-सब अग्निसे उत्पन्न हुए हैं। सव्यसाची अर्जुनने इन सबको संग्रामभूमिमें पराजित कर दिया था ॥ ३०–३१ ॥

मदर्थमद्य संयत्ता दुर्योधनवशानुगाः ।
एतान् हत्वा शरै राजन् किरातान् युद्धदुर्मदान् ॥ ३२ ॥
सैन्धवस्य वधे यत्तमनुयास्यामि पाण्डवम् ।

'राजन्! आज दुर्योधनके वशीभूत होकर ये मेरे साथ युद्ध करनेको तैयार खड़े हैं। इन रण-दुर्मद किरातोंका अपने बाणोंद्वारा संहार करके मैं सिंधुराजके वधके प्रयत्नमें लगे हुए पाण्डुनन्दन अर्जुनके पास जाऊँगा॥ ३२½ ॥

ये त्वेते सुमहानागा अञ्जनस्य कुलोद्भवाः ॥ ३३ ॥
कर्कशाश्च विनीताश्च प्रभिन्नकरटामुखाः ।
जाम्बूनदमयैः सर्वे वर्मभिः सुविभूषिताः ॥ ३४ ॥
लब्धलक्ष्या रणे राजन्नैरावणसमा युधि ।
उत्तरात् पर्वतादेते तीक्ष्णैर्दस्युभिरास्थिताः ॥ ३५ ॥

'ये जो बड़े-बड़े गजराज दृष्टिगोचर हो रहे हैं, ये अञ्जन-नामक दिग्गजके कुलमें उत्पन्न हुए हैं*। इनका स्वभाव

---

* अञ्जनके कुलमें उत्पन्न हुए हाथियोंका लक्षण इस प्रकार बतलाया गया है—

स्निग्धनीलाम्बुदप्रख्या बलिनो विपुलैः करैः ।
सुविभक्तमहाशीर्षा करिणोऽञ्जनवंशजाः ॥

'स्निग्ध एवं नील-वर्णके मेघोंकी घटाके समान काले,

बड़ा ही कठोर है। इन्हें युद्धकी अच्छी शिक्षा मिली है। इनके गण्डस्थल और मुखसे मदकी धारा बहती रहती है। वे सब-के-सब सुवर्णमय कवचोंसे विभूषित हैं। राजन्! ये पहले भी युद्धस्थलमें अपने लक्ष्यपर विजय पा चुके हैं और समराङ्गणमें ऐरावतके समान पराक्रम प्रकट करते हैं। उत्तर पर्वत (हिमाचल-प्रदेश) से आये हुए तीखे स्वभाव-वाले लुटेरे और डाकू इन हाथियोंपर सवार हैं ॥३३–३५॥

कर्कशैः प्रवरैर्योधैः कार्ष्णायसतनुच्छदैः ।
सन्ति गोयोनयश्चात्र सन्ति वानरयोनयः ॥ ३६ ॥
अनेकयोनयश्चान्ये तथा मानुषयोनयः ।

'वे कर्कश स्वभाववाले तथा श्रेष्ठ योद्धा हैं। उन्होंने काले लोहेके बने हुए कवच धारण कर रक्खे हैं। उनमेंसे बहुत-से दस्यु गायोंके पेटसे उत्पन्न हुए हैं। कितने ही बंदरियोंकी संतानें हैं। कुछ ऐसे भी हैं, जिनमें अनेक योनियोंका सम्मिश्रण है तथा कितने ही मानव-संतान भी हैं॥

अनीकं समवेतानां धूम्रवर्णमुदीर्यते ॥ ३७ ॥
म्लेच्छानां पापकर्तॄणां हिमदुर्गनिवासिनाम् ।

'यहाँ एकत्र हुए हिमदुर्गनिवासी पापाचारी म्लेच्छोंकी यह सेना धूएँके समान काली प्रतीत होती है ॥ ३७½ ॥

एतद् दुर्योधनो लब्ध्वा समग्रं राजमण्डलम् ॥ ३८ ॥
कृपं च सौमदत्तिं च द्रोणं च रथिनां वरम् ।
सिन्धुराजं तथा कर्णमवमन्यत पाण्डवान् ॥ ३९ ॥
कृतार्थमथ चात्मानं मन्यते कालचोदितः ।

'कालसे प्रेरित हुआ दुर्योधन इन समस्त राजाओंके समुदायको तथा रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, भूरिश्रवा, जयद्रथ और कर्णको पाकर पाण्डवोंका अपमान करता है तथा अपने-आपको कृतार्थ मान रहा है ॥ ३८–३९½ ॥

ते तु सर्वेऽद्य सम्प्राप्ता मम नाराचगोचरम् ॥ ४० ॥
न विमोक्ष्यन्ति कौन्तेय यद्यपि स्युर्मनोजवाः ।

'कुन्तीनन्दन! वे सब लोग आज मेरे नाराचोंके लक्ष्य बने हुए हैं। वे मनके समान वेगशाली हों तो भी मेरे हाथोंसे छूट नहीं सकेंगे ॥ ४०½ ॥

तेन सम्भाविता नित्यं परवीर्योपजीविना ॥ ४१ ॥
विनाशमुपयास्यन्ति मच्छरौघनिपीडिताः ।

'दूसरोंके बलपर जीनेवाले दुर्योधनने इन सब लोगोंका सदा आदरपूर्वक भरण-पोषण किया है; परंतु ये मेरे बाण-समूहोंसे पीड़ित होकर आज विनष्ट हो जायँगे ॥ ४१½ ॥

ये त्वेते रथिनो राजन् दृश्यन्ते काञ्चनध्वजाः ॥ ४२ ॥
एते दुर्वारणा नाम काम्बोजा यदि ते श्रुताः ।

'राजन्! ये जो सोनेकी ध्वजावाले रथी दिखायी देते हैं, ये दुर्वारण नामवाले काम्बोज सैनिक हैं। आपने इनका नाम सुना होगा ॥ ४२½ ॥

शूराश्च कृतविद्याश्च धनुर्वेदे च निष्ठिताः ॥ ४३ ॥
संहताश्च भृशं ह्येते अन्योन्यस्य हितैषिणः ।

'ये शूर, विद्वान् तथा धनुर्वेदमें परिनिष्ठित हैं। इनमें परस्पर बड़ा संगठन है। ये एक दूसरेका हित चाहनेवाले हैं॥

अक्षौहिण्यश्च संरब्धा धार्तराष्ट्रस्य भारत ॥ ४४ ॥
यत्ता मदर्थे तिष्ठन्ति कुरुवीराभिरक्षिताः ।
अप्रमत्ता महाराज मामेव प्रत्युपस्थिताः ॥ ४५ ॥

'भरतनन्दन! दुर्योधनकी क्रोधमें भरी हुई ये कई अक्षौहिणी सेनाएँ कौरववीरोंसे सुरक्षित हो मेरे लिये तैयार खड़ी हैं। महाराज! ये सब सावधान होकर मुझपर ही आक्रमण करनेवाली हैं ॥ ४४–४५ ॥

तानहं प्रमथिष्यामि तृणानीव हुताशनः ।
तस्मात् सर्वानुपासंगान् सर्वोपकरणानि च ॥ ४६ ॥
रथे कुर्वन्तु मे राजन् यथावद् रथकल्पकाः ।

'परंतु जैसे आग तिनकोंको जला डालती है, उसी प्रकार मैं उन समस्त कौरव-सैनिकोंको मथ डालूँगा। अतः राजन्! रथको सुसज्जित करनेवाले लोग आज मेरे रथपर यथावत् रूपसे भरे हुए तरकसों तथा अन्य सब आवश्यक उपकरणोंको रख दें॥

अस्मिंस्तु किल सम्मर्दे ग्राह्यं विविधमायुधम् ॥ ४७ ॥
यथोपदिष्टमाचार्यैः कार्यः पञ्चगुणो रथः ।

'इस संग्राममें नाना प्रकारके आयुधोंका उसी प्रकार संग्रह कर लेना चाहिये, जैसा कि आचार्योंने उपदेश किया है। रथपर रक्खी जानेवाली युद्धसामग्री पहलेसे पाँचगुनी कर देनी चाहिये ॥ ४७½ ॥

काम्बोजैर्हि समेष्यामि तीक्ष्णैराशीविषोपमैः ॥ ४८ ॥
नानाशस्त्रसमावायैर्विविधायुधयोधिभिः ।

'आज मैं विषधर सर्पके समान क्रूर स्वभाववाले उन काम्बोज-सैनिकोंके साथ युद्ध करूँगा, जो नाना प्रकारके शस्त्रसमुदायोंसे सम्पन्न और भाँति-भाँतिके आयुधोंद्वारा युद्ध करनेमें कुशल हैं ॥ ४८½ ॥

किरातैश्च समेष्यामि विषकल्पैः प्रहारिभिः ॥ ४९ ॥
लालितैः सततं राज्ञा दुर्योधनहितैषिभिः ।

'दुर्योधनका हित चाहनेवाले और विषके समान घातक उन प्रहारकुशल किरात-योद्धाओंके साथ भी संग्राम करूँगा, जिनका राजा दुर्योधनने सदा ही लालन-पालन किया है ॥

शकैश्चापि समेष्यामि शक्रतुल्यपराक्रमैः ॥ ५० ॥
अग्निकल्पैर्दुराधर्षैः प्रदीप्तैरिव पावकैः ।

'प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी, दुर्धर्ष एवं इन्द्रके

बलवान्, विशाल शुण्डदण्डसे सुशोभित तथा सुन्दर विभागयुक्त विशाल मस्तकवाले हाथी अंजनकुलकी संतानें हैं।

समान पराक्रमी शकोंके साथ भी आज मैं भिड़ जाऊँगा ॥

तथान्यैर्विविधैर्योधैः कालकल्पैर्दुरासदैः ॥ ५१ ॥
समेष्यामि रणे राजन् बहुभिर्युद्धदुर्मदैः ।

'राजन् ! इनके सिवा और भी जो नाना प्रकारके बहुसंख्यक युद्धदुर्मद, कालके तुल्य भयंकर तथा दुर्जय योद्धा हैं, रणक्षेत्रमें उन सबका सामना करूँगा ॥ ५१½ ॥

तस्माद् वै वाजिनो मुख्या विश्रान्ताः शुभलक्षणाः॥ ५२॥
उपावृत्ताश्च पीताश्च पुनर्युज्यन्तु मे रथे ।

'इसलिये उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न श्रेष्ठ घोड़े, जो विश्राम कर चुके हों, जिन्हें टहलाया गया हो और पानी भी पिला दिया गया हो, पुनः मेरे रथमें जोते जायँ, ॥ ५२½ ॥

संजय उवाच

तस्य सर्वानुपासंगान् सर्वोपकरणानि च ॥ ५३ ॥
रथे चास्थापयद् राजा शस्त्राणि विविधानि च ।

संजय कहते हैं—महाराज ! तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने सात्यकिके रथपर भरे हुए सारे तरकसों, समस्त उपकरणों तथा भाँति-भाँतिके शस्त्रोंको रखवा दिया ॥ ५३½ ॥

ततस्तान् सर्वतो युक्तान् सदश्वांश्चतुरो जनाः॥ ५४ ॥
रसवत् पाययामासुः पानं मदसमीरणम् ।

तदनन्तर सब प्रकारसे सुशिक्षित उन चारों उत्तम घोड़ोंको सेवकोंने मदमत्त बना देनेवाला रसीला पेय पदार्थ पिलाया ॥ ५४½ ॥

पीतोपवृत्तान् स्नातांश्च जग्धान्नान् समलंकृतान् ॥५५॥
विनीतशल्यांस्तुरगांश्चतुरो हेममालिनः ।
तान् युक्तान् रुक्मवर्णाभान् विनीताञ्शीघ्रगामिनः॥५६॥
संहृष्टमनसोऽव्यग्रान् विधिवत्कल्पितान् रथे।
महाध्वजेन सिंहेन हेमकेसरमालिना ॥ ५७ ॥
संवृते केतकैर्हैमैर्मणिविद्रुमचित्रितैः ।
पाण्डुराभ्रप्रकाशाभिः पताकाभिरलंकृते ॥ ५८ ॥
हेमदण्डोच्छ्रितच्छत्रे बहुशस्त्रपरिच्छदे ।
योजयामास विधिवद्धेमभाण्डविभूषितान् ॥ ५९ ॥

जब वे पी चुके तो उन्हें टहलाया और नहलाया गया । उसके बाद दाना और चारा खिलाया गया । फिर उन्हें सब प्रकारसे सुसजित किया गया । उनके अङ्गोंमें गड़े हुए बाण पहले ही निकाल दिये गये थे । वे चारों घोड़े सोनेकी मालाओंसे विभूषित थे । उन योग्य अश्वोंकी कान्ति सुवर्णके समान थी । वे सुशिक्षित और शीघ्रगामी थे । उनके मनमें हर्ष और उत्साह था । तनिक भी व्यग्रता नहीं थी । उन्हें विधिपूर्वक सजाया गया था । स्वर्णमय अलङ्कारोंसे अलङ्कृत उन अश्वोंको सारथिने विधिपूर्वक रथमें जोता । वह रथ सुवर्णमय केशरोंसे सुशोभित सिंहके चिह्नवाले विशाल ध्वजसे सम्पन्न था । मणियों और मूँगोंसे चित्रित सोनेकी शलाकाओंसे शोभायमान एवं श्वेत पताकाओंसे अलंकृत था । उस रथके ऊपर स्वर्णमय दण्डसे विभूषित छत्र तना हुआ था तथा रथके भीतर नाना प्रकारके शस्त्र तथा अन्य आवश्यक सामान रक्खे गये थे ॥ ५५–५९ ॥

दारुकस्यानुजो भ्राता सूतस्तस्य प्रियः सखा ।
न्यवेदयद् रथं युक्तं वासवस्येव मातलिः ॥ ६० ॥

जैसे मातलि इन्द्रका सारथि और सखा भी है, उसी प्रकार दारुकका छोटा भाई सात्यकिका सारथि और प्रिय सखा था । उसने सात्यकिको यह सूचना दी कि रथ जोतकर तैयार है ॥ ६० ॥

ततः स्नातः शुचिर्भूत्वा कृतकौतुकमङ्गलः ।
स्नातकानां सहस्रस्य स्वर्णनिष्कानथो ददौ ॥ ६१ ॥

तदनन्तर सात्यकिने स्नान करके पवित्र हो यात्राकालिक मङ्गलकृत्य सम्पन्न करनेके पश्चात् एक सहस्र स्नातकोंको सोनेकी मुद्राएँ दान कीं ॥ ६१ ॥

आशीर्वादैः परिष्वक्तः सात्यकिः श्रीमतां वरः ।
ततः स मधुपर्कार्हः पीत्वा कैलातकं मधु ॥ ६२ ॥
लोहिताक्षो बभौ तत्र मदविह्वललोचनः ।
आलभ्य वीरकांस्यं च हर्षेण महतान्वितः ॥ ६३ ॥
द्विगुणीकृततेजा हि प्रज्वलन्निव पावकः ।
उत्सङ्गे धनुरादाय सशरं रथिनां वरः ॥ ६४ ॥
कृतस्वस्त्ययनो विप्रैः कवची समलंकृतः ।
लाजैर्गन्धैस्तथा माल्यैः कन्याभिश्चाभिनन्दितः॥ ६५ ॥

ब्राह्मणोंके आशीर्वाद पाकर तेजस्वी पुरुषोंमें श्रेष्ठ एवं मधुपर्कके अधिकारी सात्यकिने कैलातक नामक मधुका पान किया । उसे पीते ही उनकी आँखें लाल हो गयीं । मदसे नेत्र चञ्चल हो उठे, फिर उन्होंने अत्यन्त हर्षमें भरकर वीरकांस्यपात्रका स्पर्श किया । उस समय प्रज्वलित अग्निके समान रथियोंमें श्रेष्ठ सात्यकिका तेज दूना हो गया । उन्होंने बाणसहित धनुषको गोदमें लेकर ब्राह्मणोंके मुखसे स्वस्तिवाचनका कार्य सम्पन्न कराकर कवच एवं आभूषण धारण किये, फिर कुमारी कन्याओंने लावा, गन्ध तथा पुष्पमालाओंसे उनका पूजन एवं अभिनन्दन किया ॥ ६२–६५ ॥

युधिष्ठिरस्य चरणावभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
तेन मूर्धन्युपाघ्रात आरुरोह महारथम् ॥ ६६ ॥

इसके बाद सात्यकिने हाथ जोड़कर युधिष्ठिरके चरणोंमें प्रणाम किया और युधिष्ठिरने उनका मस्तक सूँघा । फिर वे उस विशाल रथपर आरूढ़ हो गये ॥ ६६ ॥

ततस्ते वाजिनो हृष्टाः सुपुष्टाः वातरंहसः ।
अजय्या जैत्रमूहुस्तं विकुर्वाणाः स्म सैन्धवाः ॥ ६७ ॥

तदनन्तर वे हृष्ट-पुष्ट वायुके समान वेगशाली एवं अजेय सिंधुदेशीय घोड़े मदमत्त हो उस विजयशील रथको लेकर चल दिये ॥ ६७ ॥

तथैव भीमसेनोऽपि धर्मराजेन पूजितः ।
प्रायात् सात्यकिना सार्धमभिवाद्य युधिष्ठिरम् ॥ ६८ ॥

इसी प्रकार धर्मराजसे सम्मानित भीमसेन भी युधिष्ठिरको प्रणाम करके सात्यकिके साथ चले ॥ ६८ ॥

तौ दृष्ट्वा प्रविविक्षन्तौ तव सेनामरिंदमौ ।
संयत्तास्तावकाः सर्वे तस्थुर्द्रोणपुरोगमाः ॥ ६९ ॥

उन दोनों शत्रुदमन वीरोंको आपकी सेनामें प्रवेश करनेके लिये इच्छुक देख द्रोणाचार्य आदि आपके सारे सैनिक सावधान होकर खड़े हो गये ॥ ६९ ॥

संनद्धमनुगच्छन्तं दृष्ट्वा भीमं स सात्यकिः ।
अभिनन्द्याब्रवीद् वीरस्तदा हर्षकरं वचः ॥ ७० ॥

उस समय भीमसेनको कवच आदिसे सुसज्जित होकर अपने पीछे आते देख उनका अभिनन्दन करके वीर सात्यकिने उनसे यह हर्षवर्धक वचन कहा—॥ ७० ॥

त्वं भीम रक्ष राजानमेतत् कार्यतमं हि ते ।
अहं भित्त्वा प्रवेक्ष्यामि कालपक्वमिदं बलम् ॥ ७१ ॥

'भीमसेन ! तुम राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करो । यही तुम्हारे लिये सबसे महान् कार्य है । जिसे कालने राँधकर पका दिया है, इस कौरवसेनाको चीरकर मैं भीतर प्रवेश कर जाऊँगा ॥

आयत्यां च तदात्वे च श्रेयो राज्ञोऽभिरक्षणम् ।
जानीषे मम वीर्यं त्वं तव चाहमरिंदम ॥ ७२ ॥
तस्माद् भीम निवर्तस्व मम चेदिच्छसि प्रियम् ।

'शत्रुदमन वीर ! इस समय और भविष्यमें भी राजाकी रक्षा करना ही श्रेयस्कर है । तुम मेरा बल जानते हो और मैं तुम्हारा । अतः भीमसेन ! यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो लौट जाओ ॥ ७२½ ॥

तथोक्तः सात्यकिं प्राह व्रज त्वं कार्यसिद्धये ॥ ७३ ॥
अहं राज्ञः करिष्यामि रक्षां पुरुषसत्तम ।

सात्यकिके ऐसा कहनेपर भीमसेनने उनसे कहा—'अच्छा भैया ! तुम कार्यसिद्धिके लिये आगे बढ़ो। पुरुषप्रवर ! मैं राजाकी रक्षा करूँगा' ॥ ७३½ ॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच भीमसेनं स माधवः ॥ ७४ ॥
गच्छ गच्छ ध्रुवं पार्थ ध्रुवो हि विजयो मम ।

भीमसेनके ऐसा कहनेपर सात्यकिने उनसे कहा—'कुन्तीकुमार ! तुम जाओ । निश्चय ही लौट जाओ । मेरी विजय अवश्य होगी ॥ ७४½ ॥

यन्मे गुणानुरक्तश्च त्वमद्य वशमास्थितः ॥ ७५ ॥
निमित्तानि च धन्यानि यथा भीम वदन्ति माम् ।
निहते सैन्धवे पापे पाण्डवेन महात्मना ॥ ७६ ॥
परिष्वजिष्ये राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।

'भीमसेन ! तुम जो मेरे गुणोंमें अनुरक्त होकर मेरे वशमें हो गये हो तथा इस समय दिखायी देनेवाले शुभ शकुन मुझे जैसी बात बता रहे हैं, इससे जान पड़ता है कि महात्मा अर्जुनके द्वारा पापी जयद्रथके मारे जानेपर मैं निश्चय ही लौटकर धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरका आलिङ्गन करूँगा' ॥ ७५-७६½ ॥

एतावदुक्त्वा भीमं तु विसृज्य च महायशाः ॥ ७७ ॥
सम्प्रैक्षत् तावकं सैन्यं व्याघ्रो मृगगणानिव ।

भीमसेनसे ऐसा कहकर उन्हें विदा करनेके पश्चात् महायशस्वी सात्यकिने आपकी सेनाकी ओर उसी प्रकार देखा, जैसे बाघ मृगोंके झुंडकी ओर देखता है ॥ ७७½ ॥

तं दृष्ट्वा प्रविविक्षन्तं सैन्यं तव जनाधिप ॥ ७८ ॥
भूय एवाभवन्मूढं सुभृशं चाप्यकम्पत ।

नरेश्वर ! सात्यकिको अपने भीतर प्रवेश करनेके लिये उत्सुक देख आपकी सेनापर पुनः मोह छा गया और वह बारंबार काँपने लगी ॥ ७८½ ॥

ततः प्रयातः सहसा तव सैन्यं स सात्यकिः ॥ ७९ ॥
दिदृक्षुरर्जुनं राजन् धर्मराजस्य शासनात् ।

राजन् ! तदनन्तर धर्मराजकी आज्ञाके अनुसार अर्जुनसे मिलनेके लिये सात्यकि आपकी सेनाकी ओर वेगपूर्वक बढ़े ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिका कौरवसेनामें प्रवेशविषयक एक सौ बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११२ ॥

त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिका द्रोण और कृतवर्माके साथ युद्ध करते हुए काम्बोजोंकी सेनाके पास पहुँचना

संजय उवाच

प्रयाते तव सैन्यं तु युयुधाने युयुत्सया ।
धर्मराजो महाराज स्वेनानीकेन संवृतः ॥ १ ॥
प्रायाद् द्रोणरथं प्रेप्सुर्युयुधानस्य पृष्ठतः ।

संजय कहते हैं—महाराज ! जब युयुधान युद्धकी इच्छासे आपकी सेनाकी ओर बढ़े, उस समय अपने सैनिकोंसे घिरे हुए धर्मराज युधिष्ठिर द्रोणाचार्यके रथका सामना करनेके लिये उनके पीछे-पीछे गये ॥ १½ ॥

ततः पाञ्चालराजस्य पुत्रः समरदुर्मदः ॥ २ ॥
प्राक्रोशत् पाण्डवानीके वसुदानश्च पार्थिवः ।
आगच्छत प्रहरत द्रुतं विपरिधावत ॥ ३ ॥
यथा सुखेन गच्छेत सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ।
महारथा हि बहवो यतिष्यन्त्यस्य निर्जये ॥ ४ ॥

तदनन्तर समरभूमिमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न तथा राजा वसुदानने पाण्डवसेनामें पुकारकर कहा—'योद्धाओ ! आओ, दौड़ो और शीघ्रतापूर्वक प्रहार करो, जिससे रणदुर्मद सात्यकि सुखपूर्वक आगे जा सकें; क्योंकि बहुत-से कौरव महारथी इन्हें पराजित करनेका प्रयत्न करेंगे' ॥ २–४ ॥

इति ब्रुवन्तो वेगेन निपेतुस्ते महारथाः ।
वयं प्रतिजिगीषन्तस्तत्र तान् समभिद्रुताः ॥ ५ ॥

सेनापतिकी पूर्वोक्त बात दुहराते हुए सभी पाण्डव महारथी बड़े वेगसे वहाँ आ पहुँचे । उस समय हमलोगोंने भी उन्हें जीतनेकी अभिलाषासे उनपर धावा कर दिया ॥

(बाणशब्दरवान् कृत्वा विमिश्राञ्शङ्खनिस्वनैः ।
युयुधानरथं दृष्ट्वा तावका अभिदुद्रुवुः ॥)

युयुधानके रथको देखकर आपके सैनिक शङ्खध्वनिसे मिश्रित बाणोंका शब्द प्रकट करते हुए उनके सामने दौड़े आये॥

ततः शब्दो महानासीद् युयुधानरथं प्रति ।
आकीर्यमाणा धावन्ती तव पुत्रस्य वाहिनी ॥ ६ ॥
सात्वतेन महाराज शतधाभिन्यशीर्यत ।

तदनन्तर सात्यकिके रथके समीप महान् कोलाहल मच गया । महाराज ! चारों ओरसे दौड़कर आती हुई आपके पुत्रकी सेना सात्यकिके बाणोंसे आच्छादित हो सैकड़ों टुकड़ियोंमें बँटकर तितर-बितर हो गयी ॥ ६½ ॥

तस्यां विदीर्यमाणायां शिनेः पौत्रो महारथः ॥ ७ ॥
सप्त वीरान् महेष्वासानग्रानीकेष्वपोथयत् ।

उस सेनाके छिन्न-भिन्न होते ही शिनिके महारथी पौत्रने सेनाके मुहानेपर खड़े हुए सात महाधनुर्धर वीरोंको मार गिराया ॥ ७½ ॥

अथान्यानपि राजेन्द्र नानाजनपदेश्वरान् ॥ ८ ॥
शरैरनलसंकाशैर्निन्ये वीरान् यमक्षयम् ।

राजेन्द्र ! तदनन्तर विभिन्न जनपदोंके स्वामी अन्यान्य वीर राजाओंको भी उन्होंने अपने अग्निसदृश बाणोंद्वारा यमलोक पहुँचा दिया ॥ ८½ ॥

शतमेकेन विव्याध शतेनैकं च पत्रिणाम् ॥ ९ ॥
द्विपारोहान् द्विपांश्चैव हयारोहान् हयांस्तथा ।
रथिनः साश्वसूतांश्च जघानेशः पशूनिव ॥ १० ॥

वे एक बाणसे सैकड़ों वीरोंको और सैकड़ों बाणोंसे एक-एक वीरको घायल करने लगे । जिस प्रकार भगवान् पशुपति पशुओंका संहार कर डालते हैं, उसी प्रकार सात्यकिने हाथीसवारों और हाथियोंको, घुड़सवारों और घोड़ोंको तथा घोड़े और सारथिसहित रथियोंको मार डाला ॥ ९-१० ॥

तं तथाद्भुतकर्माणं शरसम्पातवर्षिणम् ।
न केचनाभ्यधावन् वै सात्यकिं तव सैनिकाः ॥ ११ ॥

इस प्रकार बाणधाराकी वर्षा करनेवाले उस अद्भुत पराक्रमी सात्यकिके सामने जानेका साहस आपके कोई सैनिक न कर सके ॥ ११ ॥

ते भीता मृद्यमानाश्च प्रमृष्टा दीर्घबाहुना ।
आयोधनं जहुर्वीरा दृष्ट्वा तमतिमानिनम् ॥ १२ ॥

उस महाबाहु वीरने अपने बाणोंसे रौंदकर आपके सारे सिपाहियोंको मसल डाला । वे वीर सिपाही ऐसे डर गये कि उस अत्यन्त मानी शूरवीरको देखते ही युद्धका मैदान छोड़ देते थे ॥

तमेकं बहुधापश्यन् मोहितास्तस्य तेजसा ।
रथैर्विमथितैश्चैव भग्ननीडैश्च मारिष ॥ १३ ॥
चक्रैर्विमथितैश्छत्रैर्ध्वजैश्च विनिपातितैः ।
अनुकर्षैः पताकाभिः शिरस्त्राणैः सकाञ्चनैः ॥ १४ ॥
बाहुभिश्चन्दनादिग्धैः साङ्गदैश्च विशाम्पते ।
हस्तिहस्तोपमैश्चापि भुजङ्गाभोगसंनिभैः ॥ १५ ॥
ऊरुभिः पृथिवी च्छन्ना मनुजानां नराधिप ।

माननीय नरेश ! सारे कौरव सैनिक सात्यकिके तेजसे मोहित हो अकेले होनेपर भी उन्हें अनेक रूपोंमें देखने लगे । वहाँ बहुसंख्यक रथ चूर-चूर हो गये थे । उनकी बैठकें टूट-फूट गयी थीं । पहियोंके टुकड़े-टुकड़े हो गये थे । छत्र और ध्वज छिन्न-भिन्न होकर धरतीपर पड़े थे । अनुकर्ष, पताका, शिरस्त्राण, सुवर्णभूषित अङ्गदयुक्त चन्दनचर्चित भुजाएँ, हाथीकी सूँड़ तथा सर्पोंके शरीरके समान मोटे-मोटे ऊरु सब ओर बिखरे पड़े थे । नरेश्वर ! मनुष्योंके विभिन्न अंगों तथा रथके पूर्वोक्त अवयवोंसे वहाँकी भूमि आच्छादित हो गयी थी॥

शशाङ्कसंनिभैश्चैव वदनैश्चारुकुण्डलैः ॥ १६ ॥
पतितैर्ऋषभाक्षाणां सा बभावति मेदिनी ।

वृषभके समान बड़े-बड़े नेत्रोंवाले वीरोंके गिरे हुए मनोहर कुण्डलमण्डित चन्द्रमा-जैसे मुखोंसे वहाँकी भूमि अत्यन्त शोभा पा रही थी ॥ १६½ ॥

गजैश्च बहुधा छिन्नैः शयानैः पर्वतोपमैः ॥ १७ ॥
रराजातिभृशं भूमिर्विकीर्णैरिव पर्वतैः ।

अनेकों टुकड़ोंमें कटकर धराशायी हुए पर्वताकार गजराजोंसे वहाँकी भूमि इस प्रकार अत्यन्त शोभासम्पन्न हो रही थी, मानो वहाँ बहुत-से पर्वत बिखरे हुए हों ॥

तपनीयमयैर्योक्त्रैर्मुक्ताजालविभूषितैः ॥ १८ ॥
उरश्छदैर्विचित्रैश्च व्यशोभन्त तुरङ्गमाः ।
गतसत्त्वा महीं प्राप्य प्रमृष्टा दीर्घबाहुना ॥ १९ ॥

कितने ही घोड़े सुनहरी रस्सियों तथा मोतीकी जालियोंसे विभूषित विचित्र आच्छादन वस्त्रोंसे विशेष शोभायमान हो रहे थे । महाबाहु सात्यकिके द्वारा रौंदे जाकर वे धरतीपर पड़े थे और उनके प्राण-पखेरू उड़ गये ॥ १८-१९ ॥

नानाविधानि सैन्यानि तव हत्वा तु सात्वतः ।
प्रविष्टस्तावकं सैन्यं द्रावयित्वा चमूं भृशम् ॥ २० ॥

इस प्रकार आपकी नाना प्रकारकी सेनाओंका संहार करके तथा बहुत-से सैनिकोंको भगाकर सात्यकि आपकी सेनाके भीतर घुस गये ॥ २० ॥

ततस्तेनैव मार्गेण येन यातो धनंजयः ।
इयेष सात्यकिर्गन्तुं ततो द्रोणेन वारितः ॥ २१ ॥

तदनन्तर जिस मार्गसे अर्जुन गये, उसीसे सात्यकिने भी जानेका विचार किया; परंतु द्रोणाचार्यने उन्हें रोक दिया॥

भारद्वाजं समासाद्य युयुधानश्च सात्यकिः ।
न न्यवर्तत संक्रुद्धो वेलामिव जलाशयः ॥ २२ ॥

अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए सत्यकनन्दन युयुधान द्रोणाचार्यके पास पहुँचकर रुक तो गये; परंतु पीछे नहीं लौटे । जैसे क्षुब्ध जलाशय अपनी तटभूमितक पहुँचकर फिर पीछे नहीं लौटता है ॥ २२ ॥

निवार्य तु रणे द्रोणो युयुधानं महारथम् ।
विव्याध निशितैर्बाणैः पञ्चभिर्मर्मभेदिभिः ॥ २३ ॥

द्रोणाचार्यने रणक्षेत्रमें महारथी युयुधानको रोककर मर्मस्थलको विदीर्ण कर देनेवाले पाँच पैने बाणोंसे उन्हें घायल कर दिया ॥ २३ ॥

सात्यकिस्तु रणे द्रोणं राजन् विव्याध सप्तभिः ।
हेमपुङ्खैः शिलाधौतैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥ २४ ॥

राजन् ! तब सात्यकिने भी समराङ्गणमें शानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पाँखवाले तथा कंक और मोर-की पाँखोंसे संयुक्त हुए सात बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यको क्षत-विक्षत कर डाला ॥ २४ ॥

तं षड्भिः सायकैर्द्रोणः साश्वयन्तारमार्दयत् ।
स तं न ममृषे द्रोणं युयुधानो महारथः ॥ २५ ॥

फिर द्रोणने छः बाण मारकर घोड़ों और सारथिसहित सात्यकिको पीड़ित कर दिया । द्रोणाचार्यके इस पराक्रमको महारथी युयुधान सहन न कर सके ॥ २५ ॥

सिंहनादं ततः कृत्वा द्रोणं विव्याध सात्यकिः ।
दशभिः सायकैश्चान्यैः षड्भिरष्टाभिरेव च ॥ २६ ॥

उन्होंने सिंहनाद करके लगातार दस, छः और आठ बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यको गहरी चोट पहुँचायी ॥ २६ ॥

युयुधानः पुनर्द्रोणं विव्याध दशभिः शरैः ।
एकेन सारथिं चास्य चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ २७ ॥
ध्वजमेकेन बाणेन विव्याध युधि मारिष ।

माननीय नरेश ! तदनन्तर युयुधानने पुनः दस बाण मारकर द्रोणाचार्यको घायल कर दिया । फिर एक बाणसे उनके सारथिको, चारसे चारों घोड़ोंको और एक बाणसे उनकी ध्वजाको युद्धस्थलमें बींध डाला ॥ २७½ ॥

तं द्रोणः साश्वयन्तारं सरथध्वजमाशुगैः ॥ २८ ॥
त्वरन् प्राच्छादयद् बाणैः शलभानामिव व्रजैः ।

इसके बाद द्रोणाचार्यने उतावले होकर टिड्डीदलोंके समान अपने शीघ्रगामी बाणोंद्वारा घोड़े, सारथि, रथ और ध्वजसहित सात्यकिको आच्छादित कर दिया ॥ २८½ ॥

तथैव युयुधानोऽपि द्रोणं बहुभिराशुगैः ॥ २९ ॥
आच्छादयदसम्भ्रान्तस्ततो द्रोण उवाच ह ।

इसी प्रकार सात्यकिने भी बिना किसी घबराहटके बहुत-से शीघ्रगामी बाणोंकी वर्षा करके द्रोणाचार्यको ढक दिया । तब द्रोणाचार्य बोले—॥ २९½ ॥

तवाचार्यो रणं हित्वा गतः कापुरुषो यथा ॥ ३० ॥
युध्यमानं च मां हित्वा प्रदक्षिणमवर्तत ।
त्वं हि मे युध्यतो नाद्य जीवन् यास्यसि माधव ॥ ३१ ॥
यदि मां त्वं रणे हित्वा न यास्याचार्यवद् द्रुतम् ।

'माधव ! तुम्हारे आचार्य अर्जुन तो कायरके समान युद्धका मैदान छोड़कर चले गये हैं । मैं युद्ध कर रहा था तो भी मुझे छोड़कर मेरी परिक्रमा करते हुए चल दिये । तुम भी अपने आचार्यके समान तुरंत ही समराङ्गणमें मुझे छोड़कर चले नहीं जाओगे तो युद्धमें तत्पर रहते हुए मेरे हाथसे आज जीवित बचकर नहीं जा सकोगे' ॥ ३०-३१½ ॥

सात्यकिरुवाच

धनंजयस्य पदवीं धर्मराजस्य शासनात् ॥ ३२ ॥
गच्छामि स्वस्ति ते ब्रह्मन् न मे कालात्ययो भवेत् ।
आचार्यानुगतो मार्गः शिष्यैरन्वास्यते सदा ॥ ३३ ॥
तस्मादेव व्रजाम्याशु यथा मे स गुरुर्गतः ।

सात्यकिने कहा—ब्रह्मन् ! आपका कल्याण हो । मैं धर्मराजकी आज्ञासे धनंजयके मार्गपर जा रहा हूँ । आप ऐसा करें, जिससे मुझे विलम्ब न हो । शिष्यगण तो सदासे ही अपने आचार्यके मार्गका ही अनुसरण करते आये हैं । अतः जिस प्रकार मेरे गुरुजी गये हैं, उसी प्रकार मैं भी शीघ्र ही चला जाता हूँ ॥ ३२-३३½ ॥

संजय उवाच

एतावदुक्त्वा शैनेय आचार्यं परिवर्जयन् ॥ ३४ ॥
प्रयातः सहसा राजन् सारथिं चेदमब्रवीत् ।

संजय कहते हैं—राजन् ! ऐसा कहकर सात्यकि सहसा द्रोणाचार्यको छोड़कर चल दिये और सारथिसे इस प्रकार बोले—॥ ३४½ ॥

द्रोणः करिष्यते यत्नं सर्वथा मम वारणे ॥ ३५ ॥
यत्तो याहि रणे सूत शृणु चेदं वचः परम् ।

'सूत ! द्रोणाचार्य मुझे रोकनेके लिये सब प्रकारसे प्रयत्न करेंगे, अतः तुम रणक्षेत्रमें सावधान होकर चलो और मेरी यह दूसरी बात भी सुन लो ॥ ३५½ ॥

एतदालोक्यते सैन्यमावन्त्यानां महाप्रभम् ॥ ३६ ॥
अस्यानन्तरतस्त्वेतद् दाक्षिणात्यं महद् बलम् ।
तदनन्तरमेतच्च बाह्लिकानां महद् बलम् ॥ ३७ ॥

'यह अवन्तिनिवासियोंकी अत्यन्त तेजस्विनी सेना दिखायी देती है । इसके बाद यह दाक्षिणात्योंकी विशाल सेना है । उसके पश्चात् यह बाह्लिकोंकी विशाल वाहिनी है ॥

बाह्लिकाभ्याशतो युक्तं कर्णस्य च महद् बलम् ।
अन्योन्येन हि सैन्यानि भिन्नान्येतानि सारथे ॥ ३८ ॥

'बाह्लिकोंके पास ही उनसे जुड़ी हुई कर्णकी बड़ी भारी सेना खड़ी है । सारथे ! ये सारी सेनाएँ एक दूसरीसे भिन्न हैं॥

अन्योन्यं समुपाश्रित्य न त्यक्ष्यन्ति रणाजिरम् ।
एतदन्तरमासाद्य चोदयाश्वान् प्रहृष्टवत् ॥ ३९ ॥

'ये सब-की-सब एक दूसरीका सहारा लेकर युद्धके लिये डटी हुई हैं । ये कभी भी समराङ्गणका परित्याग नहीं करेंगी । तुम इन्हींके बीचमें होकर प्रसन्नतापूर्वक अपने घोड़ोंको आगे बढ़ाओ ॥ ३९ ॥

मध्यमं जवमास्थाय वह मामत्र सारथे ।
बाह्लिका यत्र दृश्यन्ते नानाप्रहरणोद्यताः ॥ ४० ॥

'सारथे ! मध्यम वेगका आश्रय लेकर तुम मुझे वहाँ ले चलो, जहाँ नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये युद्धके लिये उद्यत हुए बाह्लिकदेशीय सैनिक दिखायी देते हैं ॥ ४० ॥

दाक्षिणात्याश्च बहवः सूतपुत्रपुरोगमाः ।
हस्त्यश्वरथसम्बाधं यच्चानीकं विलोक्यते ॥ ४१ ॥
नानादेशसमुत्थैश्च पदातिभिरधिष्ठितम् ।

'जहाँ सूतपुत्र कर्णको आगे करके बहुत-से दाक्षिणात्य योद्धा खड़े हैं, हाथी, घोड़ों और रथोंसे भरी हुई जो वह सेना दृष्टिगोचर हो रही है, उसमें अनेक देशोंके पैदल सैनिक मौजूद हैं; तुम वहाँ भी मेरे रथको ले चलो' ॥ ४१½ ॥

एतावदुक्त्वा यन्तारं ब्राह्मणं परिवर्जयन् ॥ ४२ ॥
स व्यतीयाय यत्रोग्रं कर्णस्य च महद् बलम् ।

सारथिसे ऐसा कहकर सात्यकि ब्राह्मण द्रोणाचार्यको छोड़ते हुए सबको लाँघकर उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ कर्णकी भयंकर एवं विशाल सेना खड़ी थी ॥ ४२½ ॥

तं द्रोणोऽनुययौ क्रुद्धो विकिरन् विशिखान् बहून् ॥ ४३ ॥
युयुधानं महाभागं गच्छन्तमनिवर्तिनम् ।

युद्धसे पीछे न हटनेवाले महाभाग युयुधानको आगे बढ़ते देख द्रोणाचार्य कुपित हो उठे और वे बहुत-से बाणोंकी वर्षा करते हुए कुछ दूरतक उनके पीछे-पीछे दौड़े ॥ ४३½ ॥

कर्णस्य सैन्यं सुमहदभिहत्य शितैः शरैः ॥ ४४ ॥
प्राविशद् भारतीं सेनामपर्यन्तां च सात्यकिः ।

सात्यकि कर्णकी विशाल वाहिनीको अपने पैने बाणोंद्वारा घायल करके अपार कौरवी सेनामें घुस गये ॥ ४४½ ॥

प्रविष्टे युयुधाने तु सैनिकेषु द्रुतेषु च ॥ ४५ ॥
अमर्षी कृतवर्मा तु सात्यकिं पर्यवारयत् ।

सात्यकिके प्रवेश करते ही सारे कौरव-सैनिक भागने लगे । तब क्रोधमें भरे हुए कृतवर्माने उन्हें आ घेरा ॥ ४५½ ॥

तमापतन्तं विशिखैः षड्भिराहत्य सात्यकिः ॥ ४६ ॥
चतुर्भिश्चतुरोऽस्याश्वानाजघानाशु वीर्यवान् ।

उसे आते देख पराक्रमी सात्यकिने छः बाणोंद्वारा उसे चोट पहुँचाकर चार बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको शीघ्र ही घायल कर दिया ॥ ४६½ ॥

ततः पुनः षोडशभिर्नतपर्वभिराशुगैः ॥ ४७ ॥
सात्यकिः कृतवर्माणं प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ।

तदनन्तर पुनः झुकी हुई गाँठवाले सोलह बाण मारकर सात्यकिने कृतवर्माकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ ४७½ ॥

स ताड्यमानो विशिखैर्बहुभिस्तिग्मतेजनैः ॥ ४८ ॥
सात्वतेन महाराज कृतवर्मा न चक्षमे ।

महाराज ! सात्यकिके प्रचण्ड तेजवाले बहुसंख्यक बाणोंद्वारा घायल होनेपर कृतवर्मा सहन न कर सका ॥ ४८½ ॥

स वत्सदन्तं संधाय जिह्मगानलसंनिभम् ॥ ४९ ॥
आकृष्य राजन्नाकर्णाद् विव्याधोरसि सात्यकिम् ।

राजन् ! वक्रगतिसे चलनेवाले अग्निके समान तेजस्वी

वत्सदन्तनामक बाणको धनुषपर रखकर कृतवर्माने उसे कानतक खींचा और उसके द्वारा सात्यकिकी छातीमें प्रहार किया॥

स तस्य देहावरणं भित्त्वा देहं च सायकः ॥ ५० ॥
सपुङ्खपत्रः पृथिवीं विवेश रुधिरोक्षितः ।

वह बाण सात्यकिके शरीर और कवच दोनोंको विदीर्ण करके खूनसे लथपथ हो पङ्ख एवं पत्रसहित धरतीमें समा गया ॥

अथास्य बहुभिर्बाणैरच्छिनत् परमास्त्रवित् ॥ ५१ ॥
समार्गणगणं राजन् कृतवर्मा शरासनम् ।

राजन् ! कृतवर्मा उत्तम अस्त्रोंका ज्ञाता है। उसने बहुत-से बाण चलाकर बाणसमूहोंसहित सात्यकिके शरासनको काट दिया ॥ ५१½ ॥

विव्याध च रणे राजन् सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥ ५२ ॥
दशभिर्विशिखैस्तीक्ष्णैरभिक्रुद्धः स्तनान्तरे ।

नरेश्वर ! इसके बाद क्रोधमें भरे हुए कृतवर्माने सत्यपराक्रमी सात्यकिकी छातीमें पुनः दस पैने बाणोंद्वारा गहरा आघात किया ॥ ५२½ ॥

ततः प्रशीर्णे धनुषि शक्त्या शक्तिमतां वरः ॥ ५३ ॥
जघान दक्षिणं बाहुं सात्यकिः कृतवर्मणः ।

धनुष कट जानेपर शक्तिशाली शूरवीरोंमें श्रेष्ठ सात्यकिने कृतवर्माकी दाहिनी भुजापर शक्तिद्वारा ही प्रहार किया ॥ ५३½ ॥

ततोऽन्यत् सुदृढं चापं पूर्णमायम्य सात्यकिः ॥ ५४ ॥
व्यसृजद् विशिखांस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः ।
सरथं कृतवर्माणं समन्तात् पर्यवारयत् ॥ ५५ ॥

तदनन्तर दूसरे सुदृढ़ धनुषको अच्छी तरह खींचकर सात्यकि तुरंत ही सैकड़ों और हजारों बाणोंकी वर्षा की और रथसहित कृतवर्माको सब ओरसे ढक दिया ॥ ५४-५५ ॥

छादयित्वा रणे राजन् हार्दिक्यं स तु सात्यकिः ।
अथास्य भल्लेन शिरः सारथेः समकृन्तत ॥ ५६ ॥

राजन् ! रणक्षेत्रमें इस प्रकार कृतवर्माको आच्छादित करके सात्यकिने एक भल्लद्वारा उसके सारथिका सिर काट दिया ॥ ५६ ॥

स पपात हतः सूतो हार्दिक्यस्य महारथात् ।
ततस्ते यन्तृरहिताः प्राद्रवंस्तुरगा भृशम् ॥ ५७ ॥

उनके द्वारा मारा गया सारथि कृतवर्माके विशाल रथसे नीचे गिर पड़ा। फिर तो सारथिके बिना उसके घोड़े बड़े जोरसे भागने लगे ॥ ५७ ॥

अथ भोजस्तु सम्भ्रान्तो निगृह्य तुरगान् स्वयम् ।
तस्थौ वीरो धनुष्पाणिस्तत् सैन्यान्यभ्यपूजयन् ॥ ५८ ॥

इससे कृतवर्माको बड़ी घबराहट हुई; परंतु वह वीर स्वयं ही घोड़ोंको काबूमें करके हाथमें धनुष ले युद्धके लिये डट गया। उसके इस कर्मकी सभी सैनिकोंने भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ ५८ ॥

स मुहूर्तमिवाश्वस्य सदश्वान् समनोदयत् ।
व्यपेतभीरमित्राणामावहत् सुमहद् भयम् ॥ ५९ ॥

उसने थोड़ी ही देरमें आश्वस्त होकर अपने उत्तम घोड़ोंको आगे बढ़ाया तथा स्वयं निर्भय रहकर शत्रुओंके हृदयमें महान् भय उत्पन्न कर दिया ॥ ५९ ॥

सात्यकिश्चाभ्यगात् तस्मात् स तु भीममुपाद्रवत् ।
युयुधानोऽपि राजेन्द्र भोजानीकाद् विनिःसृतः ॥ ६० ॥
प्रययौ त्वरितस्तूर्णं काम्बोजानां महाचमूम् ।
स तत्र बहुभिः शूरैः संनिरुद्धो महारथैः ॥ ६१ ॥
न चचाल तदा राजन् सात्यकिः सत्यविक्रमः ।

राजेन्द्र ! यहीं अवसर पाकर सात्यकि वहाँसे आगे निकल गये। तब कृतवर्माने भीमसेनपर धावा किया। कृतवर्माकी सेनासे निकलकर युयुधान तुरंत ही काम्बोजोंकी विशाल वाहिनीके पास आ पहुँचे। वहाँ बहुत-से शूरवीर महारथियोंने उन्हें आगे बढ़नेसे रोक दिया। महाराज ! तो भी उस समय सत्यपराक्रमी सात्यकि विचलित नहीं हुए ॥ ६०-६१½ ॥

संधाय च चमूं द्रोणो भोजे भारं निवेश्य च ॥ ६२ ॥
अभ्यधावद् रणे यत्तो युयुधानं युयुत्सया ।

द्रोणाचार्यने अपनी बिखरी हुई सेनाको एकत्र करके उसकी रक्षाका भार कृतवर्माको सौंपकर समराङ्गणमें सात्यकिके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे उद्यत हो उनके पीछे-पीछे दौड़े ॥ ६२½ ॥

तथा तमनुधावन्तं युयुधानस्य पृष्ठतः ॥ ६३ ॥
न्यवारयन्त संहृष्टाः पाण्डुसैन्ये बृहत्तमाः ।

इस प्रकार उन्हें युयुधानके पीछे दौड़ते देख पाण्डव-सेनाके प्रमुख वीर हर्षमें भरकर द्रोणाचार्यको रोकनेका प्रयत्न करने लगे ॥ ६३½ ॥

समासाद्य तु हार्दिक्यं रथानां प्रवरं रथम् ॥ ६४ ॥
पञ्चाला विगतोत्साहा भीमसेनपुरोगमाः ।

परंतु रथियोंमें श्रेष्ठ महारथी कृतवर्माके पास पहुँचकर भीमसेनको आगे करके आक्रमण करनेवाले पाञ्चालोंका उत्साह नष्ट हो गया ॥ ६४½ ॥

विक्रम्य वारिता राजन् वीरेण कृतवर्मणा ॥ ६५ ॥
यतमानांश्च तान् सर्वानीषद्विगतचेतसः ।

अभितस्तान्शरौघेण क्लान्तवाहानकारयत् ॥ ६६ ॥

राजन् ! वीर कृतवर्माने पराक्रम करके उनको रोक दिया। वे सभी वीर कुछ-कुछ शिथिल एवं अचेत-से हो रहे थे; तो भी अपनी विजयके लिये प्रयत्नशील थे; परंतु कृतवर्माने सब ओरसे उनके ऊपर बाण-समूहोंकी वर्षा करके उनके वाहनोंको व्याकुल कर दिया ॥ ६५-६६ ॥

निगृहीतास्तु भोजेन भोजानीकेप्सवो रणे।
अतिष्ठन्नार्यवद् वीराः प्रार्थयन्तो महद्यशः ॥ ६७ ॥

कृतवर्माद्वारा रोके जानेपर वे पाण्डव वीर रणक्षेत्रमें महान् यशकी इच्छा करते हुए उसीकी सेनाके साथ युद्धकी अभिलाषा करके श्रेष्ठ पुरुषोंके समान डटकर खड़े हो गये ॥ ६७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिप्रवेशविषयक एक सौ तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥११३॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ६८ श्लोक हैं)

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका विषादयुक्त वचन,संजयका धृतराष्ट्रको ही दोषी बताना, कृतवर्माका भीमसेन और शिखण्डीके साथ युद्ध तथा पाण्डवसेनाकी पराजय

धृतराष्ट्र उवाच

एवं बहुगुणं सैन्यमेवं प्रविचितं बलम्।
व्यूढमेवं यथान्यायमेवं बहु च संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय ! मेरी सेना इस प्रकार अनेक गुणोंसे सम्पन्न है और इस तरह अधिक संख्यामें इसका संग्रह किया गया है। पाण्डवसेनाकी अपेक्षा यह प्रबल भी है। इसकी व्यूहरचना भी इस प्रकार शास्त्रीय विधिके अनुसार की जाती है और इस तरह बहुत-से योद्धाओंका समूह जुट गया है ॥ १ ॥

नित्यं पूजितमस्माभिरभिकामं च नः सदा।
प्रौढमत्यद्भुताकारं पुरस्ताद् दृष्टविक्रमम् ॥ २ ॥

हमलोगोंने सदा अपनी सेनाका आदर-सत्कार किया है तथा वह हमारे प्रति सदासे ही अनुरक्त भी है। हमारे सैनिक युद्धकी कलामें बढ़े-चढ़े हैं। हमारा सैन्य-समुदाय देखनेमें अद्भुत जान पड़ता है तथा इस सेनामें वे ही लोग चुन-चुनकर रक्खे गये हैं, जिनका पराक्रम पहलेसे ही देख लिया गया है ॥ २ ॥

नातिवृद्धमबालं च नाकृशं नातिपीवरम्।
लघुवृत्तायतप्रायं सारगात्रमनामयम् ॥ ३ ॥

इसमें न तो कोई अधिक बूढ़ा है, न बालक है, न अधिक दुबला है और न बहुत ही मोटा है। उनका शरीर हल्का, सुडौल तथा प्रायः लंबा है। शरीरका एक-एक अवयव सारवान् (सबल) तथा सभी सैनिक नीरोग एवं स्वस्थ हैं ॥ ३ ॥

आत्तसंनाहसंछन्नं बहुशस्त्रपरिच्छदम्।
शस्त्रग्रहणविद्यासु बह्वीषु परिनिष्ठितम् ॥ ४ ॥

इन सैनिकोंका शरीर बँधे हुए कवचसे आच्छादित है। इनके पास शस्त्र आदि आवश्यक सामग्रियोंकी बहुतायत है। ये सभी सैनिक शस्त्रग्रहणसम्बन्धी बहुत-सी विद्याओंमें प्रवीण हैं ॥ ४ ॥

आरोहे पर्यवस्कन्दे सरणे सान्तरप्लुते।
सम्यक्प्रहरणे याने व्यपयाने च कोविदम् ॥ ५ ॥

चढ़ने, उतरने, फैलने, कूद-कूदकर चलने, भली-भाँति प्रहार करने, युद्धके लिये जाने और अवसर देखकर पलायन करनेमें भी कुशल हैं ॥ ५ ॥

नागेष्वश्वेषु बहुशो रथेषु च परीक्षितम्।
परीक्ष्य च यथान्यायं वेतनेनोपपादितम् ॥ ६ ॥

हाथियों, घोड़ों तथा रथोंपर बैठकर युद्ध करनेकी कलामें सब लोगोंकी परीक्षा ली जा चुकी है और परीक्षा लेनेके पश्चात् उन्हें यथायोग्य वेतन दिया गया है ॥ ६ ॥

न गोष्ठ्या नोपकारेण न सम्बन्धनिमित्ततः।
नानाहूतं नाप्यभृतं मम सैन्यं बभूव ह ॥ ७ ॥

हमने किसीको भी गोष्ठीद्वारा बहकाकर, उपकार करके अथवा किसी सम्बन्धके कारण सेनामें भर्ती नहीं किया है। इनमें ऐसा भी कोई नहीं है, जिसे बुलाया न गया हो अथवा जिसे बेगारमें पकड़कर लाया गया हो। मेरी सारी सेनाकी यही स्थिति है ॥ ७ ॥

कुलीनार्यजनोपेतं तुष्टपुष्टमनुद्धतम्।
कृतमानोपचारं च यशस्वि च मनस्वि च ॥ ८ ॥

इसमें सभी लोग कुलीन, श्रेष्ठ, हृष्ट-पुष्ट, उद्दण्डताशून्य, पहलेसे सम्मानित, यशस्वी तथा मनस्वी हैं ॥ ८ ॥

सचिवैश्चापरैर्मुख्यैर्बहुभिः पुण्यकर्मभिः।
लोकपालोपमैस्तात पालितं नरसत्तमैः ॥ ९ ॥

तात ! हमारे मन्त्री तथा अन्य बहुतेरे प्रमुख कार्यकर्ता जो पुण्यात्मा, लोकपालोंके समान पराक्रमी और मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं, सदा इस सेनाका पालन करते आये हैं ॥ ९ ॥

बहुभिः पार्थिवैर्गुप्तमस्मत्प्रियचिकीर्षुभिः ।
अस्मानभिसृतैः कामात् सबलैः सपदानुगैः ॥ १० ॥

हमारा प्रिय करनेकी इच्छावाले तथा सेना और अनुचरों-सहित स्वेच्छासे ही हमारे पक्षमें आये हुए बहुत-से भूपालगण भी इसकी रक्षामें तत्पर रहते हैं ॥ १० ॥

महोदधिमिवापूर्णमापगाभिः समन्ततः ।
अपक्षैः पक्षिसंकाशै रथैरश्वैश्च संवृतम् ॥ ११ ॥

सम्पूर्ण दिशाओंसे बहकर आयी हुई नदियोंसे परिपूर्ण होनेवाले महासागरके समान हमारी यह सेना अगाध और अपार है । पक्षरहित एवं पक्षियोंके समान तीव्र वेगसे चलनेवाले रथों और घोड़ोंसे यह भरी हुई है ॥ ११ ॥

प्रभिन्नकरटैश्चैव द्विरदैरावृतं महत् ।
यदहन्यत मे सैन्यं किमन्यद् भागधेयतः ॥ १२ ॥

गण्डस्थलसे मद बहानेवाले गजराजोंद्वारा आवृत यह मेरी विशाल वाहिनी यदि शत्रुओंद्वारा मारी गयी है तो इसमें भाग्यके सिवा दूसरा क्या कारण हो सकता है ? ॥ १२ ॥

योधाक्षय्यजलं भीमं वाहनोर्मितरङ्गिणम् ।
क्षेपण्यसिगदाशक्तिशरप्रासझषाकुलम् ॥ १३ ॥
ध्वजभूषणसम्बाधरत्नोपलसुसंचितम् ।
वाहनैरभिधावद्भिर्वायुवेगविकम्पितम् ॥ १४ ॥
द्रोणगम्भीरपातालं कृतवर्ममहाह्रदम् ।
जलसंधमहाग्राहं कर्णचन्द्रोदयोद्धतम् ॥ १५ ॥

संजय ! मेरी सेना भयंकर समुद्रके समान जान पड़ती है । योद्धा ही इसके अक्षय्य जल हैं, वाहन ही इसकी तरङ्गमालाएँ हैं, क्षेपणीय, खड्ग, गदा, शक्ति, बाण और प्रास आदि अस्त्र-शस्त्र इसमें मछलियोंके समान भरे हुए हैं । ध्वजा और आभूषणोंके समुदाय इसके भीतर रत्नोंके समान संचित हैं । दौड़ते हुए वाहन ही वायुके वेग हैं, जिनसे यह सैन्यसमुद्र कम्पित एवं क्षुब्ध-सा जान पड़ता है । द्रोणाचार्य ही इसकी पातालतक फैली हुई गहराई है । कृतवर्मा इसमें महान् ह्रदके समान है, जलसंध विशाल ग्राह है और कर्णरूपी चन्द्रमाके उदयसे यह सदा उद्वेलित होता रहता है ॥ १३–१५ ॥

गते सैन्यार्णवं भित्त्वा तरसा पाण्डवर्षभे ।
संजयैकरथेनैव युयुधाने च मामकम् ॥ १६ ॥
तत्र शेषं न पश्यामि प्रविष्टे सव्यसाचिनि ।
सात्वते च रथोदारे मम सैन्यस्य संजय ॥ १७ ॥

संजय ! ऐसे मेरे सैन्यरूपी महासागरका वेगपूर्वक भेदन करके जब पाण्डवश्रेष्ठ सव्यसाची अर्जुन तथा सात्वतवंशी उदार महारथी युयुधान एकमात्र रथकी सहायतासे इसके भीतर घुस गये, तब मैं अपनी सेनाके शेष रहनेकी आशा नहीं देखता हूँ ॥ १६-१७ ॥

तौ तत्र समतिक्रान्तौ दृष्ट्वातीव तरस्विनौ ।
सिन्धुराजं तु सम्प्रेक्ष्य गाण्डीवस्येषुगोचरे ॥ १८ ॥
किं नु वा कुरवः कृत्यं विदधुः कालचोदिताः ।
दारुणैकायने काले कथं वा प्रतिपेदिरे ॥ १९ ॥

उन दोनों अत्यन्त वेगशाली वीरोंको वहाँ सबका उल्लङ्घन करके घुसे हुए देख तथा सिन्धुराज जयद्रथको गाण्डीवसे छूटे हुए बाणोंकी सीमामें उपस्थित पाकर काल-प्रेरित कौरवोंने वहाँ कौन-सा कार्य किया ? उस दारुण संहारके समय, जहाँ मृत्युके सिवा दूसरी कोई गति नहीं थी, किस प्रकार उन्होंने कर्तव्यका निश्चय किया ? ॥१८-१९॥

ग्रस्तान् हि कौरवान् मन्ये मृत्युना तात संगतान् ।
विक्रमोऽपि रणे तेषां न तथा दृश्यते हि वै ॥ २० ॥

तात ! मैं युद्धस्थलमें एकत्र हुए कौरवोंको कालका ग्रास ही मानता हूँ; क्योंकि रणक्षेत्रमें उनका पराक्रम भी पहले-जैसा नहीं दिखायी देता है ॥ २० ॥

अक्षतौ संयुगे तत्र प्रविष्टौ कृष्णपाण्डवौ ।
न च वारयिता कश्चित् तयोरस्तीह संजय ॥ २१ ॥

संजय ! श्रीकृष्ण और अर्जुन बिना कोई क्षति उठाये युद्धस्थलमें मेरी सेनाके भीतर घुस गये; परंतु इसमें कोई भी वीर उन दोनोंको रोकनेवाला न निकला ॥ २१ ॥

भृताश्च बहवो योधाः परीक्ष्यैव महारथाः ।
वेतनेन यथायोगं प्रियवादेन चापरे ॥ २२ ॥

हमने दूसरे बहुत-से महारथी योद्धाओंकी परीक्षा करके ही उन्हें सेनामें भर्ती किया है और यथायोग्य वेतन देकर तथा प्रिय वचन बोलकर उनका सत्कार किया है ॥२२॥

असत्कारभृतस्तात मम सैन्ये न विद्यते ।
कर्मणा ह्यनुरूपेण लभ्यते भक्तवेतनम् ॥ २३ ॥

तात ! मेरी सेनामें कोई भी ऐसा नहीं है, जिसे अनादर-पूर्वक रक्खा गया हो । सबको उनके कार्यके अनुरूप ही भोजन और वेतन प्राप्त होता है ॥ २३ ॥

न चायोधोऽभवत् कश्चिन्मम सैन्ये तु संजय ।
अल्पदानभृतस्तात तथा चाभृतको नरः ॥ २४ ॥

तात संजय ! मेरी सेनामें ऐसा एक भी योद्धा नहीं रहा होगा, जिसे थोड़ा वेतन दिया जाता हो अथवा बिना वेतनके ही रक्खा गया हो ॥ २४ ॥

पूजितो हि यथाशक्त्या दानमानासनैर्मया ।
तथा पुत्रैश्च मे तात ज्ञातिभिश्च सबान्धवैः ॥ २५ ॥

तात ! मैंने, मेरे पुत्रोंने तथा कुटुम्बीजनों एवं बन्धु-बान्धवोंने भी सभी सैनिकोंका यथाशक्ति दान, मान और आसन आदि देकर सत्कार किया है ॥ २५ ॥

ते च प्राप्यैव संग्रामे निर्जिताः सव्यसाचिना ।
शैनेयेन परामृष्टाः किमन्यद् भागधेयतः ॥ २६ ॥

तथापि सव्यसाची अर्जुनने संग्रामभूमिमें पहुँचते ही उन सबको पराजित कर दिया है और सात्यकिने भी उन्हें कुचल डाला है। इसे भाग्यके सिवा और क्या कहा जा सकता है ? ॥ २६ ॥

रक्ष्यते यश्च संग्रामे ये च संजय रक्षिणः ।
एकः साधारणः पन्था रक्ष्यस्य सह रक्षिभिः ॥ २७ ॥

संजय ! संग्राममें जिसकी रक्षा की जाती है और जो लोग रक्षक हैं, उन रक्षकोंसहित रक्षणीय पुरुषके लिये एकमात्र साधारण मार्ग रह गया है पराजय ॥ २७ ॥

अर्जुनं समरे दृष्ट्वा सैन्धवस्याग्रतः स्थितम् ।
पुत्रो मम भृशं मूढः किं कार्यं प्रत्यपद्यत ॥ २८ ॥

अर्जुनको समराङ्गणमें सिन्धुराजके सामने खड़ा देख अत्यन्त मोहग्रस्त हुए मेरे पुत्रने कौन-सा कर्तव्य निश्चित किया ? ॥ २८ ॥

सात्यकिं च रणे दृष्ट्वा प्रविशन्तमभीतवत् ।
किं नु दुर्योधनः कृत्यं प्राप्तकालममन्यत ॥ २९ ॥

सात्यकिको रणक्षेत्रमें निर्भय-सा प्रवेश करते देख दुर्योधनने उस समयके लिये कौन-सा कर्तव्य उचित माना ? ॥ २९ ॥

सर्वशस्त्रातिगौ सेनां प्रविष्टौ रथिसत्तमौ ।
दृष्ट्वा कां वै धृतिं युद्धे प्रत्यपद्यन्त मामकाः ॥ ३० ॥

सम्पूर्ण शस्त्रोंकी पहुँचसे परे होकर जब रथियोंमें श्रेष्ठ सात्यकि और अर्जुन मेरी सेनामें प्रविष्ट हो गये, तब उन्हें देखकर मेरे पुत्रोंने युद्धस्थलमें किस प्रकार धैर्य धारण किया? ॥

दृष्ट्वा कृष्णं तु दाशार्हमर्जुनार्थे व्यवस्थितम् ।
शिनीनामृषभं चैव मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३१ ॥

मैं समझता हूँ कि अर्जुनके लिये रथपर बैठे हुए दशार्हनन्दन भगवान् श्रीकृष्णको तथा शिनिप्रवर सात्यकिको देखकर मेरे पुत्र शोकमग्न हो गये होंगे ॥ ३१ ॥

दृष्ट्वा सेनां व्यतिक्रान्तां सात्वतेनार्जुनेन च ।
पलायमानांश्च कुरून् मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३२ ॥

सात्यकि और अर्जुनको सेना लाँघकर जाते और कौरव सैनिकोंको युद्धस्थलसे भागते देखकर मैं समझता हूँ कि मेरे पुत्र शोकमें डूब गये होंगे ॥ ३२ ॥

विद्रुतान् रथिनो दृष्ट्वा निरुत्साहान् द्विषज्जये ।
पलायनकृतोत्साहान् मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३३ ॥

मेरे मनमें यह बात आती है कि अपने रथियोंको शत्रु-विजयकी ओरसे उत्साहशून्य होकर भागते और भागनेमें ही बहादुरी दिखाते देख मेरे पुत्र शोक कर रहे होंगे॥३३॥

शून्यान् कृतान् रथोपस्थान् सात्वतेनार्जुनेन च ।
हतांश्च योधान् संदृश्य मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३४ ॥

सात्यकि और अर्जुनने हमारी रथोंकी बैठकें सूनी कर दी हैं और योद्धाओंको मार गिराया है, यह देखकर मैं सोचता हूँ कि मेरे पुत्र बहुत दुखी हो गये होंगे ॥ ३४ ॥

व्यश्वनागरथान् दृष्ट्वा तत्र वीरान् सहस्रशः ।
धावमानान् रणे व्यग्रान् मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३५ ॥

सहस्रों वीरोंको वहाँ युद्धके मैदानमें घोड़े, रथ और हाथियोंसे रहित एवं उद्विग्न होकर भागते देखकर मैं मानता हूँ कि मेरे पुत्र शोकमग्न हो गये होंगे ॥ ३५ ॥

महानागान् विद्रवतो दृष्ट्वार्जुनशराहतान् ।
पतितान् पततश्चान्यान् मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३६ ॥

अर्जुनके बाणोंसे आहत होकर बड़े-बड़े गजराजोंको भागते, गिरते और गिरे हुए देखकर मैं समझता हूँ कि मेरे पुत्र शोक कर रहे होंगे ॥ ३६ ॥

विहीनांश्च कृतानश्वान् विरथांश्च कृतान् नरान् ।
तत्र सात्यकिपार्थाभ्यां मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३७ ॥

सात्यकि और अर्जुनने घोड़ोंको सवारोंसे हीन और मनुष्योंको रथसे वञ्चित कर दिया है। यह देख-सुनकर मेरे पुत्र शोकमें डूब रहे होंगे ॥ ३७ ॥

हयौघान् निहतान् दृष्ट्वा द्रवमाणांस्ततस्ततः ।
रणे माधवपार्थाभ्यां मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३८ ॥

रणक्षेत्रमें सात्यकि और अर्जुनद्वारा मारे गये तथा इधर-उधर भागते हुए अश्वसमूहोंको देखकर मैं मानता हूँ कि मेरे पुत्र शोकदग्ध हो रहे होंगे ॥ ३८ ॥

पत्तिसंघान् रणे दृष्ट्वा धावमानांश्च सर्वशः ।
निराशा विजये सर्वे मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ३९ ॥

पैदल सिपाहियोंको रणक्षेत्रमें सब ओर भागते देख मैं समझता हूँ, मेरे सभी पुत्र विजयसे निराश हो शोक कर रहे होंगे ॥ ३९ ॥

द्रोणस्य समतिक्रान्तावनीकमपराजितौ ।
क्षणेन दृष्ट्वा तौ वीरौ मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ॥ ४० ॥

मेरे मनमें यह बात आती है कि किसीसे पराजित न होनेवाले दोनों वीर अर्जुन और सात्यकिको क्षणभरमें द्रोणा-

चार्यकी सेनाका उल्लङ्घन करते देख मेरे पुत्र शोकाकुल हो गये होंगे ॥ ४० ॥

सम्मूढोऽस्मि भृशं तात श्रुत्वा कृष्णधनंजयौ ।
प्रविष्टौ मामकं सैन्यं सात्वतेन सहाच्युतौ ॥ ४१ ॥

तात ! अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले श्रीकृष्ण और अर्जुनके सात्यकिसहित अपनी सेनामें घुसनेका समाचार सुनकर मैं अत्यन्त मोहित हो रहा हूँ ॥ ४१ ॥

तस्मिन् प्रविष्टे पृतनां शिनीनां प्रवरे रथे ।
भोजानीकं व्यतिक्रान्ते किमकुर्वत कौरवाः ॥ ४२ ॥

शिनिप्रवर महारथी सात्यकि जब कृतवर्माकी सेनाको लाँघकर कौरवी सेनामें प्रविष्ट हो गये, तब कौरवोंने क्या किया ? ॥ ४२ ॥

तथा द्रोणेन समरे निगृहीतेषु पाण्डुषु ।
कथं युद्धमभूत् तत्र तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ४३ ॥

संजय ! जब द्रोणाचार्यने समर-भूमिमें पूर्वोक्त प्रकारसे पाण्डवोंको रोक दिया, तब वहाँ किस प्रकार युद्ध हुआ ? यह सब मुझे बताओ ॥ ४३ ॥

द्रोणो हि बलवाञ्श्रेष्ठः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ।
पञ्चालास्ते महेष्वासं प्रत्यविध्यन् कथं रणे ॥ ४४ ॥
बद्धवैरास्ततो द्रोणे धनंजयजयैषिणः ।

द्रोणाचार्य अस्त्रविद्यामें निपुण, युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले, बलवान् एवं श्रेष्ठ वीर हैं । पाञ्चालसैनिकोंने उस समय रणक्षेत्रमें महाधनुर्धर द्रोणको किस प्रकार घायल किया ? क्योंकि वे द्रोणाचार्यसे वैर बाँधकर अर्जुनकी विजय-की अभिलाषा रखते थे ॥ ४४½ ॥

भारद्वाजसुतस्तेषु दृढवैरो महारथः ॥ ४५ ॥
अर्जुनश्चापि यच्चक्रे सिन्धुराजवधं प्रति ।
तन्मे सर्वं समाचक्ष्व कुशलो ह्यसि संजय ॥ ४६ ॥

संजय ! भरद्वाजके पुत्र महारथी अश्वत्थामा भी पाञ्चालों-से दृढ़तापूर्वक वैर बाँधे हुए थे । अर्जुनने सिन्धुराज जयद्रथ-का वध करनेके लिये जो-जो उपाय किया, वह सब मुझसे कहो; क्योंकि तुम कथा कहनेमें कुशल हो ॥ ४५–४६ ॥

संजय उवाच

आत्मापराधात् सम्भूतं व्यसनं भरतर्षभ ।
प्राप्य प्राकृतवद् वीर न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ४७ ॥

संजयने कहा—भरतश्रेष्ठ ! यह सारी विपत्ति आपको अपने ही अपराधसे प्राप्त हुई है । वीर ! इसे पाकर निम्न कोटिके मनुष्योंकी भाँति शोक न कीजिये ॥ ४७ ॥

पुरा यदुच्यसे प्राज्ञैः सुहृद्भिर्विदुरादिभिः ।
मा हार्षीः पाण्डवान् राजन्निति तन्न त्वया श्रुतम् ॥ ४८ ॥

पहले जब आपके बुद्धिमान् सुहृद् विदुर आदिने आपसे कहा था कि राजन् ! आप पाण्डवोंके राज्यका अपहरण न कीजिये, तब आपने उनकी यह बात नहीं सुनी थी ॥ ४८ ॥

सुहृदां हितकामानां वाक्यं यो न शृणोति ह ।
स महद् व्यसनं प्राप्य शोचते वै यथा भवान् ॥ ४९ ॥

जो हितैषी सुहृदोंकी बात नहीं सुनता है, वह भारी संकटमें पड़कर आपके ही समान शोक करता है ॥ ४९ ॥

याचितोऽसि पुरा राजन् दाशार्हेण शमं प्रति ।
न च तं लब्धवान् कामं त्वत्तः कृष्णो महायशाः ॥ ५० ॥

राजन् ! दशार्हनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने पहले आपसे शान्तिके लिये याचना की थी; परंतु आपकी ओरसे उन महायशस्वी श्रीकृष्णकी वह इच्छा पूरी नहीं की गयी ॥

तव निर्गुणतां ज्ञात्वा पक्षपातं सुतेषु च ।
द्वैधीभावं तथा धर्मे पाण्डवेषु च मत्सरम् ॥ ५१ ॥
तव जिह्ममभिप्रायं विदित्वा पाण्डवान् प्रति ।
आर्तप्रलापांश्च बहून् मनुजाधिपसत्तम ॥ ५२ ॥
सर्वलोकस्य तत्त्वज्ञः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ।
वासुदेवस्ततो युद्धं कुरूणामकरोन्महत् ॥ ५३ ॥

नृपश्रेष्ठ ! सम्पूर्ण लोकोंके तत्त्वज्ञ तथा सर्वलोकेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने जब यह जान लिया कि आप सर्वथा सद्गुणशून्य हैं, अपने पुत्रोंपर पक्षपात रखते हैं, धर्मके विषयमें आपके मनमें दुविधा बनी हुई है, पाण्डवोंके प्रति आपके हृदयमें डाह है, आप उनके प्रति कुटिलतापूर्ण मनसूबे बाँधते रहते हैं और व्यर्थ ही आर्त मनुष्योंके समान बहुत-सी बातें बनाते हैं, तब उन्होंने कौरव-पाण्डवोंके महान् युद्धका आयोजन किया ॥ ५१–५३ ॥

आत्मापराधात् सुमहान् प्राप्तस्ते विपुलः क्षयः ।
नैनं दुर्योधने दोषं कर्तुमर्हसि मानद ॥ ५४ ॥

मानद ! अपने ही अपराधसे आपके सामने यह महान् जनसंहार प्राप्त हुआ है । आपको यह सारा दोष दुर्योधनपर नहीं मढ़ना चाहिये ॥ ५४ ॥

न हि ते सुकृतं किंचिदादौ मध्ये च भारत ।
दृश्यते पृष्ठतश्चैव त्वन्मूलो हि पराजयः ॥ ५५ ॥

भारत ! मुझे तो आगे, पीछे या बीचमें आपका कोई भी शुभ कर्म नहीं दिखायी देता । इस पराजयकी जड़ आप ही हैं ॥ ५५ ॥

तस्मादवस्थितो भूत्वा ज्ञात्वा लोकस्य निर्णयम् ।
शृणु युद्धं यथावृत्तं घोरं देवासुरोपमम् ॥ ५६ ॥

इसलिये स्थिर होकर और लोकके नियत स्वभावको

जानकर देवासुर-संग्रामके समान भयंकर इस कौरव-पाण्डव-युद्धका यथार्थ वृत्तान्त सुनिये ॥ ५६ ॥

प्रविष्टे तव सैन्यं तु शैनेये सत्यविक्रमे ।
भीमसेनमुखाः पार्थाः प्रतीयुर्वाहिनीं तव ॥ ५७ ॥

जब सत्यपराक्रमी सात्यकि कौरव-सेनामें प्रविष्ट हो गये, तब भीमसेन आदि कुन्तीकुमारोंने आपकी विशाल वाहिनीपर आक्रमण किया ॥ ५७ ॥

आगच्छतस्तान् सहसा क्रुद्धरूपान् सहानुगान् ।
दधारैको रणे पाण्डून् कृतवर्मा महारथः ॥ ५८ ॥

सेवकोंसहित कुपित होकर सहसा आक्रमण करनेवाले उन पाण्डववीरोंको रणक्षेत्रमें एकमात्र महारथी कृतवर्माने रोका ॥

यथोद्वृत्तं वारयते वेला वै सलिलार्णवम् ।
पाण्डुसैन्यं तथा संख्ये हार्दिक्यः समवारयत् ॥ ५९ ॥

जैसे उद्वेलित हुए महासागरको किनारेकी भूमि आगे बढ़नेसे रोकती है, उसी प्रकार युद्धस्थलमें कृतवर्माने पाण्डव-सेनाको रोक दिया ॥ ५९ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम हार्दिक्यस्य पराक्रमम् ।
यदेनं सहिताः पार्था नातिचक्रमुराहवे ॥ ६० ॥

वहाँ हमने कृतवर्माका अद्भुत पराक्रम देखा । सारे पाण्डव एक साथ मिलकर भी समराङ्गणमें उसे लाँघ न सके॥

ततो भीमस्त्रिभिर्विद्ध्वा कृतवर्माणमाशुगैः ।
शङ्खं दध्मौ महाबाहुर्हर्षयन् सर्वपाण्डवान् ॥ ६१ ॥

तदनन्तर महाबाहु भीमने तीन बाणोंद्वारा कृतवर्माको घायल करके समस्त पाण्डवोंका हर्ष बढ़ाते हुए शङ्ख बजाया॥

सहदेवस्तु विंशत्या धर्मराजश्च पञ्चभिः ।
शतेन नकुलश्चापि हार्दिक्यं समविध्यत ॥ ६२ ॥

सहदेवने बीस, धर्मराजने पाँच और नकुलने सौ बाणोंसे कृतवर्माको बींध डाला ॥ ६२ ॥

द्रौपदेयास्त्रिसप्तत्या सप्तभिश्च घटोत्कचः ।
धृष्टद्युम्नस्त्रिभिश्चापि कृतवर्माणमार्दयत् ॥ ६३ ॥

द्रौपदीके पुत्रोंने तिहत्तर, घटोत्कचने सात और धृष्टद्युम्नने तीन बाणोंद्वारा उसे गहरी चोट पहुँचायी ॥६३॥

विराटो द्रुपदश्चैव याज्ञसेनिश्च पञ्चभिः ।
शिखण्डी चैव हार्दिक्यं विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः ॥६४॥
पुनर्विव्याध विंशत्या सायकानां हसन्निव ।

विराट, द्रुपद और उनके पुत्र धृष्टद्युम्नने पाँच-पाँच बाणोंसे उसको घायल किया । फिर शिखण्डीने पहले पाँच बाणोंद्वारा चोट करके फिर हँसते हुए ही बीस बाणोंसे कृतवर्माको बींध डाला ॥ ६४½ ॥

कृतवर्मा ततो राजन् सर्वतस्तान् महारथान् ॥ ६५ ॥
एकैकं पञ्चभिर्विद्ध्वा भीमं विव्याध सप्तभिः ।
धनुर्ध्वजं चास्य तथा रथाद् भूमावपातयत् ॥ ६६ ॥

राजन् ! उस समय कृतवर्माने चारों ओर बाण चलाकर उन महारथियोंमेंसे प्रत्येकको पाँच बाणोंद्वारा बींध डाला और भीमसेनको सात बाणोंसे घायल कर दिया । फिर तत्काल ही उनके धनुष और ध्वजको काटकर रथसे पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ६५–६६ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं त्वरमाणो महारथः ।
आजघानोरसि क्रुद्धः सप्तत्या निशितैः शरैः ॥ ६७ ॥

भीमसेनका धनुष कट जानेपर महारथी कृतवर्माने कुपित हो बड़ी उतावलीके साथ सत्तर पैने बाणोंद्वारा उनकी छातीमें गहरा आघात किया ॥ ६७ ॥

स गाढविद्धो बलवान् हार्दिक्यस्य शरोत्तमैः ।
चचाल रथमध्यस्थः क्षितिकम्पे यथाचलः ॥ ६८ ॥

कृतवर्माके श्रेष्ठ बाणोंद्वारा अत्यन्त घायल हुए बलवान् भीमसेन रथके भीतर बैठे हुए ही भूकम्पके समय हिलनेवाले पर्वतके समान काँपने लगे ॥ ६८ ॥

भीमसेनं तथा दृष्ट्वा धर्मराजपुरोगमाः ।
विसृजन्तः शरान् राजन् कृतवर्माणमार्दयन् ॥ ६९ ॥

राजन् ! भीमसेनको वैसी अवस्थामें देखकर धर्मराज आदि महारथियोंने बाणोंकी वर्षा करके कृतवर्माको बड़ी पीड़ा दी ॥ ६९ ॥

तं तथा कोष्ठकीकृत्य रथवंशेन मारिष ।
विव्यधुः सायकैर्हृष्टा रक्षार्थं मारुतेर्मृधे ॥ ७० ॥

माननीय नरेश ! हर्षमें भरे हुए पाण्डव सैनिक भीमसेनकी रक्षाके लिये अपने रथसमूहद्वारा कृतवर्माको कोष्ठबद्ध-सा करके उसे युद्धस्थलमें अपने बाणोंका निशाना बनाने लगे ॥ ७० ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां भीमसेनो महाबलः ।
शक्तिं जग्राह समरे हेमदण्डामयस्मयीम् ॥ ७१ ॥

इसी बीचमें महाबली भीमसेनने सचेत होकर समराङ्गणमें सुवर्णमय दण्डसे विभूषित एक लोहेकी शक्ति हाथमें ले ली॥

चिक्षेप च रथात् तूर्णं कृतवर्मरथं प्रति ।
सा भीमभुजनिर्मुक्ता निर्मुक्तोरगसंनिभा ॥ ७२ ॥
कृतवर्माणमभितः प्रजज्वाल सुदारुणा ।

और शीघ्र ही उसे अपने रथसे कृतवर्माके रथपर चला दिया । भीमसेनके हाथोंसे छूटी हुई, केंचुलसे निकले हुए सर्पके समान वह भयङ्कर शक्ति कृतवर्माके समीप जाकर प्रज्वलित हो उठी ॥ ७२½ ॥

तामापतन्तीं सहसा युगान्ताग्निसमप्रभाम् ॥ ७३ ॥
द्वाभ्यां शराभ्यां हार्दिक्यो निजघान द्विधा तदा।

उस समय अपने ऊपर आती हुई प्रलयकालकी अग्निके समान उस शक्तिको सहसा दो बाण मारकर कृतवर्माने उसके दो टुकड़े कर दिये ॥ ७३½ ॥

सा छिन्ना पतिता भूमौ शक्तिः कनकभूषणा ॥ ७४ ॥
द्योतयन्ती दिशो राजन् महोल्केव नभश्च्युता ।

राजन्! सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करती हुई वह सुवर्णभूषित शक्ति कटकर आकाशसे गिरी हुई बड़ी भारी उल्काके समान पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ७४½ ॥

शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा भीमश्चुक्रोध वै भृशम् ॥ ७५ ॥
ततोऽन्यद् धनुरादाय वेगवत् सुमहास्वनम् ।
भीमसेनो रणे क्रुद्धो हार्दिक्यं समवारयत् ॥ ७६ ॥

अपनी शक्तिको कटी हुई देख भीमसेनको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने बड़ी भारी टङ्कारध्वनि करनेवाले दूसरे वेगशाली धनुषको हाथमें लेकर समराङ्गणमें कुपित हो कृतवर्माका सामना किया ॥ ७५-७६ ॥

अथैनं पञ्चभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ।
भीमो भीमबलो राजंस्तव दुर्मन्त्रितेन च ॥ ७७ ॥

राजन्! आपकी ही कुमन्त्रणासे वहाँ भयङ्कर बलशाली भीमसेनने कृतवर्माकी छातीमें पाँच बाण मारे ॥ ७७ ॥

भोजस्तु क्षतसर्वाङ्गो भीमसेनेन मारिष ।
रक्ताशोक इवोत्फुल्लो व्यभ्राजत रणाजिरे ॥ ७८ ॥

माननीय नरेश! भीमसेनने उन बाणोंद्वारा कृतवर्माके सम्पूर्ण अङ्गोंको क्षत-विक्षत कर दिया। वह रणाङ्गणमें खूनसे लथपथ हो खिले हुए लाल फूलोंवाले अशोकवृक्षके समान सुशोभित होने लगा ॥ ७८ ॥

ततः क्रुद्धस्त्रिभिर्बाणैर्भीमसेनं हसन्निव ।
अभिहत्य दृढं युद्धे तान् सर्वान् प्रत्यविध्यत ॥ ७९ ॥
त्रिभिस्त्रिभिर्महेष्वासो यतमानान् महारथान् ।

तदनन्तर उस महाधनुर्धरने क्रोधमें भरकर हँसते हुए ही तीन बाणोंद्वारा भीमसेनको गहरी चोट पहुँचाकर युद्धमें विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले उन सभी महारथियोंको तीन-तीन बाणोंसे बींध डाला ॥ ७९½ ॥

तेऽपि तं प्रत्यविध्यन्त सप्तभिः सप्तभिः शरैः ॥ ८० ॥
शिखण्डिनस्ततः क्रुद्धः क्षुरप्रेण महारथः ।
धनुश्चिच्छेद समरे प्रहसन्निव सात्वतः ॥ ८१ ॥

तब उन महारथियोंने भी कृतवर्माको सात-सात बाण मारे। उस समय क्रोधमें भरे हुए महारथी कृतवर्माने हँसते हुए ही समराङ्गणमें एक क्षुरप्रद्वारा शिखण्डीका धनुष काट डाला ॥ ८०-८१ ॥

शिखण्डी तु ततः क्रुद्धश्छिन्ने धनुषि सत्वरः ।
असिं जग्राह समरे शतचन्द्रं च भास्वरम् ॥ ८२ ॥

धनुष कट जानेपर शिखण्डीने तुरंत ही कुपित हो उस युद्धस्थलमें सौ चन्द्रमाओंके चिह्नसे युक्त चमकीली ढाल और तलवार हाथमें ले ली ॥ ८२ ॥

भ्रामयित्वा महच्चर्म चामीकरविभूषितम् ।
तमसिं प्रेषयामास कृतवर्मरथं प्रति ॥ ८३ ॥

उसने स्वर्णभूषित विशाल ढालको घुमाकर कृतवर्माके रथपर वह तलवार दे मारी ॥ ८३ ॥

स तस्य सशरं चापं छित्त्वा राजन् महानसिः ।
अभ्यगाद् धरणीं राजंश्च्युतं ज्योतिरिवाम्बरात् ॥ ८४ ॥

राजन्! वह महान् खड्ग कृतवर्माके बाणसहित धनुषको काटकर आकाशसे टूटे हुए तारेके समान धरतीमें समा गया ॥ ८४ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु त्वरमाणं महारथाः ।
विव्यधुः सायकैर्गाढं कृतवर्माणमाहवे ॥ ८५ ॥

इसी समय पाण्डव महारथियोंने युद्धमें जल्दी-जल्दी हाथ चलानेवाले कृतवर्माको अपने बाणोंद्वारा भारी चोट पहुँचायी ॥ ८५ ॥

अथान्यद् धनुरादाय त्यक्त्वा तच्च महद् धनुः ।
विशीर्णं भरतश्रेष्ठ हार्दिक्यः परवीरहा ॥ ८६ ॥
विव्याध पाण्डवान् युद्धे त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ।
शिखण्डिनं च विव्याध त्रिभिः पञ्चभिरेव च ॥ ८७ ॥

भरतश्रेष्ठ! तदनन्तर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले कृतवर्माने टूटे हुए उस विशाल धनुषको त्यागकर दूसरा धनुष हाथमें ले लिया और युद्धमें पाण्डवोंको तीन-तीन बाण मारकर घायल कर दिया। साथ ही शिखण्डीको भी तीन और पाँच बाणोंसे बींध डाला ॥ ८६-८७ ॥

धनुरन्यत् समादाय शिखण्डी तु महायशाः ।
अवारयत् कूर्मनखैराशुगैर्हृदिकात्मजम् ॥ ८८ ॥

तत्पश्चात् महायशस्वी शिखण्डीने भी दूसरा धनुष लेकर कछुओंके नखोंके समान धारवाले बाणोंद्वारा कृतवर्माका सामना किया ॥ ८८ ॥

ततः क्रुद्धो रणे राजन् हृदिकस्यात्मसम्भवः ।
अभिदुद्राव वेगेन याज्ञसेनिं महारथम् ॥ ८९ ॥
भीष्मस्य समरे राजन् मृत्योर्हेतुं महात्मनः ।
विदर्शयन् बलं शूरः शार्दूल इव कुञ्जरम् ॥ ९० ॥

राजन्! जैसे सिंह हाथीपर आक्रमण करता है, उसी प्रकार उस रणक्षेत्रमें कुपित हुए शूरवीर कृतवर्माने समराङ्गणमें महात्मा भीष्मकी मृत्युका कारण बने हुए महारथी शिखण्डीपर अपने बलका प्रदर्शन करते हुए बड़े वेगसे धावा किया ॥ ८९-९० ॥

तौ दिशां गजसंकाशौ ज्वलिताविव पावकौ।
समापेततुरन्योन्यं शरसङ्घैररिंदमौ ॥ ९१ ॥

प्रज्वलित अग्नियोंके समान तेजस्वी तथा शत्रुओंका दमन करनेवाले वे दोनों वीर अपने बाण-समूहोंद्वारा दो दिग्गजोंके समान एक दूसरेपर टूट पड़े ॥ ९१ ॥

विधुन्वानौ धनुःश्रेष्ठे संदधानौ च सायकान्।
विसृजन्तौ च शतशो गभस्तीनिव भास्वरौ ॥ ९२ ॥

जैसे दो सूर्य पृथक्-पृथक् अपनी किरणोंका विस्तार करते हों, उसी प्रकार वे दोनों वीर अपने श्रेष्ठ धनुष हिलाते और उनपर सैकड़ों बाणोंका संधान करके छोड़ते थे ॥ ९२ ॥

तापयन्तौ शरैस्तीक्ष्णैरन्योन्यं तौ महारथौ।
युगान्तप्रतिमौ वीरौ रेजतुर्भास्कराविव ॥ ९३ ॥

अपने पैने बाणोंद्वारा एक दूसरेको संताप देते हुए वे दोनों महारथी वीर प्रलयकालके दो सूर्योंके समान शोभा पा रहे थे ॥ ९३ ॥

कृतवर्मा च समरे याज्ञसेनिं महारथम्।
विद्ध्वेषुभिस्त्रिसप्तत्या पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ ९४ ॥

कृतवर्माने समराङ्गणमें महारथी शिखण्डीको पहले तिहत्तर बाणोंसे घायल करके फिर सात बाणोंसे क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ९४ ॥

स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत्।
विसृज्य सशरं चापं मूर्च्छयाभिपरिप्लुतः ॥ ९५ ॥

उन बाणोंकी गहरी चोट खाकर शिखण्डी व्यथित एवं मूर्छित हो धनुष-बाण त्यागकर रथकी बैठकमें बैठ गया ॥ ९५ ॥

तं विषण्णं रणे दृष्ट्वा तावकाः पुरुषर्षभ।
हार्दिक्यं पूजयामासुर्वासांस्यादुधुवुश्च ह ॥ ९६ ॥

नरश्रेष्ठ! रणक्षेत्रमें शिखण्डीको विषादग्रस्त देख आपके सैनिक कृतवर्माकी प्रशंसा करने और वस्त्र हिलाने लगे ॥ ९६ ॥

शिखण्डिनं तथा ज्ञात्वा हार्दिक्यशरपीडितम्।
अपोवाह रणाद् यन्ता त्वरमाणो महारथम् ॥ ९७ ॥

महारथी शिखण्डीको कृतवर्माके बाणोंसे पीड़ित जान सारथि बड़ी उतावलीके साथ उसे रणभूमिसे बाहर ले गया ॥ ९७ ॥

सादितं तु रथोपस्थे दृष्ट्वा पार्थाः शिखण्डिनम्।
परिवव्रू रथैस्तूर्णं कृतवर्माणमाहवे ॥ ९८ ॥

कुन्तीकुमारोंने शिखण्डीको रथके पिछले भागमें बेसुध होकर बैठा देख तुरंत ही कृतवर्माको रणभूमिमें अपने रथोंद्वारा चारों ओरसे घेर लिया ॥ ९८ ॥

तत्राद्भुतं परं चक्रे कृतवर्मा महारथः।
यदेकः समरे पार्थान् वारयामास सानुगान् ॥ ९९ ॥

वहाँ महारथी कृतवर्माने अत्यन्त अद्भुत पराक्रम प्रकट किया। उसने अकेले होनेपर भी सेवकोंसहित समस्त पाण्डवोंका समरभूमिमें सामना किया ॥ ९९ ॥

पार्थाञ्जित्वाजयच्चेदीन् पञ्चालान् सृञ्जयानपि।
केकयांश्च महावीर्यान् कृतवर्मा महारथः ॥ १०० ॥

महारथी कृतवर्माने पाण्डवोंको जीतकर चेदिदेशीय सैनिकोंको परास्त किया, फिर पाञ्चालों, सृंजयों और महापराक्रमी केकयोंको भी हरा दिया ॥ १०० ॥

ते वध्यमानाः समरे हार्दिक्येन स्म पाण्डवाः।
इतश्चेतश्च धावन्तो नैव चक्रुर्धृतिं रणे ॥ १०१ ॥

समराङ्गणमें कृतवर्माके बाणोंकी मार खाकर पाण्डव सैनिक इधर-उधर भागने लगे। वे रणभूमिमें कहीं भी स्थिर न हो सके ॥ १०१ ॥

जित्वा पाण्डुसुतान् युद्धे भीमसेनपुरोगमान्।
हार्दिक्यः समरेऽतिष्ठद् विधूम इव पावकः ॥ १०२ ॥

युद्धमें भीमसेन आदि पाण्डवोंको जीतकर कृतवर्मा उस रणक्षेत्रमें धूमरहित अग्निके समान शोभा पाता हुआ खड़ा था ॥ १०२ ॥

ते द्राव्यमाणाः समरे हार्दिक्येन महारथाः।
विमुखाः समपद्यन्त शरवृष्टिभिरार्दिताः ॥ १०३ ॥

समराङ्गणमें कृतवर्माके द्वारा खदेड़े गये और उसकी बाणवर्षासे पीड़ित हुए पूर्वोक्त सभी महारथियोंने युद्धसे मुँह मोड़ लिया ॥ १०३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे कृतवर्मपराक्रमे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिका कौरवसेनामें प्रवेश तथा कृतवर्माका पराक्रमविषयक एक सौ चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११४ ॥

पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिके द्वारा कृतवर्माकी पराजय, त्रिगर्तोंकी गजसेनाका संहार और जलसंधका वध

संजय उवाच

शृणुष्वैकमना राजन् यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
द्राव्यमाणे बले तस्मिन् हार्दिक्येन महात्मना ॥ १ ॥
लज्जयावनते चापि प्रहृष्टैश्चापि तावकैः ।
द्वीपो य आसीत् पाण्डूनामगाधे गाधमिच्छताम् ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! आप मुझसे जो कुछ पूछ रहे हैं, उसे एकाग्रचित्त होकर सुनिये । महामना कृतवर्माके द्वारा खदेड़ी जानेके कारण जब पाण्डवसेना लज्जासे नतमस्तक हो गयी और आपके सैनिक हर्षसे उल्लसित हो उठे, उस समय अथाह सैन्य-समुद्रमें थाह पानेकी इच्छावाले पाण्डव सैनिकोंके लिये जो द्वीप बनकर आश्रयदाता हुआ (उस सात्यकिका पराक्रम श्रवण कीजिये) ॥ १-२ ॥

श्रुत्वा स निनदं भीमं तावकानां महाहवे ।
शैनेयस्त्वरितो राजन् कृतवर्माणमभ्ययात् ॥ ३ ॥

राजन् ! उस महासमरमें आपके सैनिकोंका भयंकर सिंहनाद सुनकर सात्यकिने तुरंत ही कृतवर्मापर आक्रमण किया ॥ ३ ॥

उवाच सारथिं तत्र क्रोधामर्षसमन्वितः ।
हार्दिक्याभिमुखं सूत कुरु मे रथमुत्तमम् ॥ ४ ॥

उन्होंने क्रोध और अमर्षमें भरकर वहाँ सारथिसे कहा—'सूत ! तुम मेरे उत्तम रथको कृतवर्माके सामने ले चलो ॥ ४ ॥

कुरुते कदनं पश्य पाण्डुसैन्ये ह्यमर्षितः ।
एनं जित्वा पुनः सूत यास्यामि विजयं प्रति ॥ ५ ॥

'देखो, वह अमर्षयुक्त होकर पाण्डवसेनामें संहार मचा रहा है । सारथे ! इसे जीतकर मैं पुनः अर्जुनके पास चलूँगा' ॥ ५ ॥

एवमुक्ते तु वचने सूतस्तस्य महामते ।
निमेषान्तरमात्रेण कृतवर्माणमभ्ययात् ॥ ६ ॥

महामते ! सात्यकिके ऐसा कहनेपर सारथि पलक गिरते-गिरते रथ लेकर कृतवर्माके पास जा पहुँचा ॥ ६ ॥

कृतवर्मा तु हार्दिक्यः शैनेयं निशितैः शरैः ।
अवाकिरत् सुसंक्रुद्धस्ततोऽक्रुद्ध्यत् स सात्यकिः॥ ७ ॥

हृदिकपुत्र कृतवर्माने अत्यन्त कुपित हो सात्यकिपर पैने बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी । इससे सात्यकिका क्रोध भी बहुत बढ़ गया ॥ ७ ॥

अथाशु निशितं भल्लं शैनेयः कृतवर्मणः ।
प्रेषयामास समरे शरांश्च चतुरोऽपरान् ॥ ८ ॥

उन्होंने तुरंत ही कृतवर्मापर समरभूमिमें एक तीखे भल्लका प्रहार किया । फिर चार बाण और मारे ॥ ८ ॥

ते तस्य जघ्निरे वाहान् भल्लेनास्याच्छिनद् धनुः ।
पृष्ठरक्षं तथा सूतमविध्यन्निशितैः शरैः ॥ ९ ॥

उन चारों बाणोंने कृतवर्माके चारों घोड़ोंको मार डाला । सात्यकिने भल्लसे उसके धनुषको काट दिया । फिर पैने बाणोंद्वारा उसके पृष्ठरक्षक और सारथिको भी क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ९ ॥

ततस्तं विरथं कृत्वा सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
सेनामस्यार्दयामास शरैः संनतपर्वभिः ॥ १० ॥

तदनन्तर सत्यपराक्रमी सात्यकिने कृतवर्माको रथहीन करके झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा उसकी सेनाको पीड़ित करना आरम्भ किया ॥ १० ॥

अभज्यताथ पृतना शैनेयशरपीडिता ।
ततः प्रायात् स त्वरितः सात्यकिः सत्यविक्रमः॥ ११ ॥

सात्यकिके बाणोंसे पीड़ित हो कृतवर्माकी सेना भाग खड़ी हुई । तत्पश्चात् सत्यपराक्रमी सात्यकि तुरंत आगे बढ़ गये ॥ ११ ॥

शृणु राजन् यदकरोत् तव सैन्येषु वीर्यवान् ।
अतीत्य स महाराज द्रोणानीकमहार्णवम् ॥ १२ ॥

महाराज ! पराक्रमी सात्यकिने द्रोणाचार्यके सैन्य-समुद्रको लाँघकर आपकी सेनाओंमें जो पराक्रम किया, उसका वर्णन सुनिये ॥ १२ ॥

पराजित्य तु संहृष्टः कृतवर्माणमाहवे ।
यन्तारमब्रवीच्छूरः शनैर्याहीत्यसम्भ्रमम् ॥ १३ ॥

उस महासमरमें कृतवर्माको पराजित करके हर्षमें भरे हुए शूरवीर सात्यकि बिना किसी घबराहटके सारथिसे बोले—'सूत ! धीरे-धीरे चलो' ॥ १३ ॥

दृष्ट्वा तु तव तत् सैन्यं रथाश्वद्विपसंकुलम् ।
पदातिजनसम्पूर्णमब्रवीत् सारथिं पुनः ॥ १४ ॥

रथ, घोड़े, हाथी और पैदलोंसे भरी हुई आपकी सेनाको देखकर सात्यकिने पुनः सारथिसे कहा—॥ १४ ॥

यदेतन्मेघसंकाशं द्रोणानीकस्य सव्यतः ।
सुमहत् कुञ्जरानीकं यस्य रुक्मरथो मुखम् ॥ १५ ॥
एते हि बहवः सूत दुर्निवाराश्च संयुगे ।
दुर्योधनसमादिष्टा मदर्थे त्यक्तजीविताः ॥ १६ ॥

'सूत ! द्रोणाचार्यकी सेनाके बायें भागमें जो यह मेघोंकी घटाके समान विशाल गजसेना दिखायी देती है, इसके मुहानेपर रुक्मरथ खड़ा है । इसमें बहुत-से ऐसे शूरवीर हैं,

जिन्हें युद्धमें रोकना अत्यन्त कठिन है। ये दुर्योधनकी आज्ञासे प्राणोंका मोह छोड़कर मेरे साथ युद्ध करनेके लिये खड़े हैं ॥ १५-१६ ॥

(न चाजित्वा रणे ह्येताञ्शक्यः प्राप्तुं जयद्रथः ।
नापि पार्थो मया सूत शक्यः प्राप्तुं कथंचन ॥
एते तिष्ठन्ति सहिताः सर्वविद्यासु निष्ठिताः ॥)

'सूत ! इन्हें रणमें परास्त किये बिना न तो जयद्रथको प्राप्त किया जा सकता है और न किसी प्रकार अर्जुन ही मुझे मिल सकते हैं। ये समस्त विद्याओंमें प्रवीण योद्धा एक साथ संगठित होकर खड़े हैं ॥

राजपुत्रा महेष्वासाः सर्वे विक्रान्तयोधिनः ।
त्रिगर्तानां रथोदाराः सुवर्णविकृतध्वजाः ॥ १७ ॥

ये त्रिगर्तदेशके उदार महारथी राजकुमार महान् धनुर्धर हैं और सभी पराक्रमपूर्वक युद्ध करनेवाले हैं। इन सबकी ध्वजा सुवर्णमयी है ॥ १७ ॥

मामेवाभिमुखा वीरा योत्स्यमाना व्यवस्थिताः ।
अत्र मां प्रापय क्षिप्रमश्वांश्चोदय सारथे ॥ १८ ॥
त्रिगर्तैः सह योत्स्यामि भारद्वाजस्य पश्यतः ।

'ये समस्त वीर मेरी ही ओर मुँह करके युद्ध करनेके लिये खड़े हैं। सारथे ! घोड़ोंको हाँको और मुझे शीघ्र ही इनके पास पहुँचा दो । मैं द्रोणाचार्यके देखते-देखते त्रिगर्तोंके साथ युद्ध करूँगा' ॥ १८½ ॥

ततः प्रायाच्छनैः सूतः सात्वतस्य मते स्थितः ॥ १९ ॥
रथेनादित्यवर्णेन भास्वरेण पताकिना ।

तदनन्तर सात्यकिकी सम्मतिके अनुसार सारथि सूर्यके समान तेजस्वी तथा पताकाओंसे विभूषित रथके द्वारा धीरे-धीरे आगे बढ़ा ॥ १९½ ॥

तमूहुः सारथेर्वश्या वल्गमाना हयोत्तमाः ॥ २० ॥
वायुवेगसमाः संख्ये कुन्देन्दुरजतप्रभाः ।

उस रथके उत्तम घोड़े कुन्द, चन्द्रमा और चाँदीके समान श्वेत रंगके थे ; वे सारथिके अधीन रहनेवाले और वायुके समान वेगशाली थे तथा युद्धमें उछलते हुए उस रथका भार वहन करते थे ॥ २०½ ॥

आपतन्तं रणे तं तु शङ्खवर्णैर्हयोत्तमैः ॥ २१ ॥
परिवव्रुस्ततः शूरा गजानीकेन सर्वतः ।
किरन्तो विविधांस्तीक्ष्णान् सायकाँल्लघुवेधिनः ॥ २२ ॥

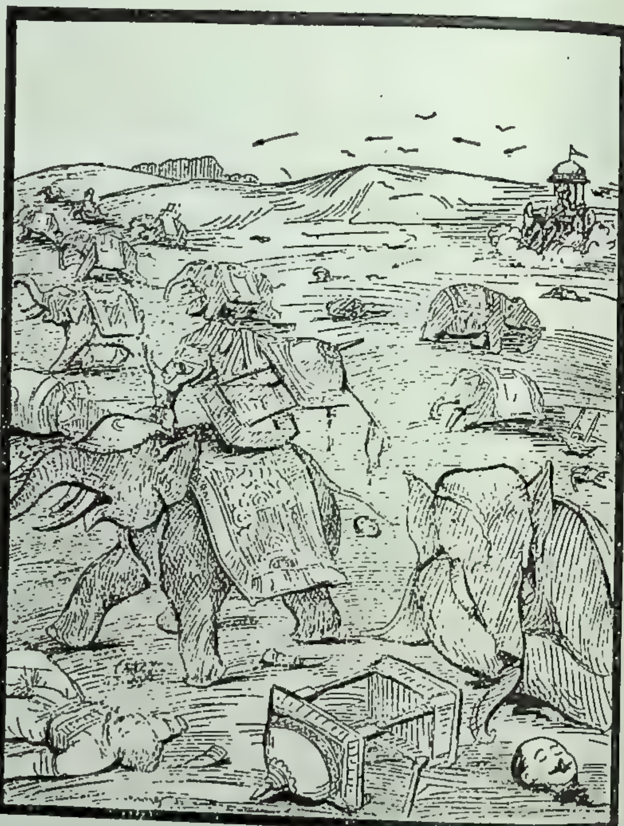
शङ्खके समान श्वेत रंगवाले उन उत्तम घोड़ोंद्वारा रणभूमिमें आते हुए सात्यकिको त्रिगर्तदेशीय शूरवीरोंने सब ओरसे गजसेनाद्वारा घेर लिया। शीघ्रतापूर्वक लक्ष्य वेधनेवाले वे समस्त सैनिक नाना प्रकारके तीखे बाणोंकी वर्षा कर रहे थे ॥ २१-२२ ॥

सात्वतो निशितैर्बाणैर्गजानीकमयोधयत् ।
पर्वतानिव वर्षेण तपान्ते जलदो महान् ॥ २३ ॥

सात्यकिने भी पैने बाणोंद्वारा गजसेनाके साथ युद्ध प्रारम्भ किया, मानो वर्षाकालमें महान् मेघ पर्वतोंपर जलकी धारा बरसा रहा हो ॥ २३ ॥

वज्राशनिसमस्पर्शैर्वध्यमानाः शरैर्गजाः ।
प्राद्रवन् रणमुत्सृज्य शिनिवीरसमीरितैः ॥ २४ ॥

शिनिवंशके वीर सात्यकिद्वारा चलाये हुए वज्र और बिजलीके समान स्पर्शवाले उन बाणोंकी मार खाकर उस सेनाके हाथी युद्धका मैदान छोड़कर भागने लगे ॥ २४ ॥



शीर्णदन्ता विरुधिरा भिन्नमस्तकपिण्डिकाः ।
विशीर्णकर्णास्यकरा विनियन्तृपताकिनः ॥ २५ ॥
सम्भिन्नमर्मघण्टाश्च विनिकृत्तमहाध्वजाः ।
हतारोहा दिशो राजन् भेजिरे भ्रष्टकम्बलाः ॥ २६ ॥

उन हाथियोंके दाँत टूट गये, सारे अङ्गोंसे खूनकी धाराएँ बहने लगीं, कुम्भस्थल और गण्डस्थल फट गये, कान, मुख और शुण्ड छिन्न-भिन्न हो गये, महावत मारे गये और ध्वजा-पताकाएँ टूटकर गिर गयीं। उनके मर्मस्थान विदीर्ण हो गये, घंटे टूट गये और विशाल ध्वज कटकर गिर पड़े। सवार मारे गये तथा झूल खिसककर गिर गये थे। राजन् ! ऐसी अवस्थामें उन हाथियोंने भागकर विभिन्न दिशाओंकी शरण ली थी ॥ २५–२६ ॥

रुवन्तो विविधान् नादान् जलदोपमनिःस्वनाः ।
नाराचैर्वत्सदन्तैश्च भल्लैरञ्जलिकैस्तथा ॥ २७ ॥

क्षुरप्रैरर्धचन्द्रैश्च सात्वतेन विदारिताः ।
क्षरन्तोऽसृक् तथा मूत्रं पुरीषं च प्रदुद्रुवुः ॥ २८ ॥

उनके चिग्घाड़नेकी ध्वनि मेघोंकी गर्जनाके समान जान पड़ती थी। वे सात्यकिके चलाये हुए नाराच, वत्सदन्त, भल्ल, अञ्जलिक, क्षुरप्र और अर्द्धचन्द्र नामक बाणोंसे विदीर्ण हो नाना प्रकारसे आर्तनाद करते, रक्त बहाते तथा मल-मूत्र छोड़ते हुए भाग रहे थे ॥ २७–२८ ॥

बभ्रमुश्च स्खलुश्चान्ये पेतुर्मम्लुस्तथापरे ।
एवं तत् कुञ्जरानीकं युयुधानेन पीडितम् ॥ २९ ॥
शरैरग्न्यर्कसंकाशैः प्रदुद्राव समन्ततः ।

उनमेंसे कुछ हाथी चक्कर काटने लगे, कुछ लड़खड़ाने लगे, कुछ धराशायी हो गये और कुछ पीड़ाके मारे अत्यन्त शिथिल हो गये थे। इस प्रकार युयुधानके अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा पीड़ित हुई हाथियोंकी वह सेना सब ओर भाग गयी ॥ २९½ ॥

तस्मिन् हते गजानीके जलसंधो महाबलः ॥ ३० ॥
यत्तः सम्प्रापयन्नागं रजताश्वरथं प्रति ।

उस गजसेनाके नष्ट होनेपर महाबली जलसंध युद्धके लिये उद्यत हो श्वेत घोड़ोंवाले सात्यकिके रथके समीप अपना हाथी ले आया ॥ ३०½ ॥

रुक्मवर्मधरः शूरस्तपनीयाङ्गदः शुचिः ॥ ३१ ॥
कुण्डली मुकुटी खड्गी रक्तचन्दनरूषितः ।
शिरसा धारयन् दीप्तां तपनीयमयीं स्रजम् ॥ ३२ ॥
उरसा धारयन् निष्कं कण्ठसूत्रं च भास्वरम् ।

शूरवीर एवं पवित्र जलसंधने अपने शरीरमें सोनेका कवच धारण कर रक्खा था। उसकी दोनों भुजाओंमें सोनेके ही बाजूबंद शोभा पा रहे थे। दोनों कानोंमें कुण्डल और मस्तकपर किरीट चमक रहे थे। उसके हाथमें तलवार थी और सम्पूर्ण शरीरमें रक्त चन्दनका लेप लगा हुआ था। उसने अपने सिरपर सोनेकी बनी हुई चमकीली माला और वक्षःस्थलपर प्रकाशमान पदक एवं कण्ठहार धारण कर रक्खे थे ॥ ३१-३२½ ॥

चापं च रुक्मविकृतं विधुन्वन् गजमूर्धनि ॥ ३३ ॥
अशोभत महाराज सविद्युदिव तोयदः ।

महाराज ! हाथीकी पीठपर बैठकर अपने सोनेके बने हुए धनुषको हिलाता हुआ जलसंध बिजलीसहित मेघके समान शोभा पा रहा था ॥ ३३½ ॥

तमापतन्तं सहसा मागधस्य गजोत्तमम् ॥ ३४ ॥
सात्यकिर्वारयामास वेलेव मकरालयम् ।

सहसा अपनी ओर आते हुए मगधराजके उस गजराजको सात्यकिने उसी प्रकार रोक दिया, जैसे तटकी भूमि समुद्रको रोक देती है ॥ ३४½ ॥

नागं निवारितं दृष्ट्वा शैनेयस्य शरोत्तमैः ॥ ३५ ॥
अक्रुध्यत रणे राजन् जलसंधो महाबलः ।

राजन् ! सात्यकिके उत्तम बाणोंसे उस हाथीको अवरुद्ध हुआ देख महाबली जलसंध रणक्षेत्रमें कुपित हो उठा ॥ ३५½ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज मार्गणैर्भारसाधनैः ॥ ३६ ॥
अविध्यत शिनेः पौत्रं जलसंधो महोरसि ।

महाराज ! क्रोधमें भरे हुए जलसंधने भार सहन करनेमें समर्थ बाणोंद्वारा शिनिपौत्र सात्यकिकी विशाल छातीपर गहरा आघात किया ॥ ३६½ ॥

ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च ॥ ३७ ॥
अस्यतो वृष्णिवीरस्य निचकर्त शरासनम् ।

तत्पश्चात् दूसरे तीखे, पैने और पानीदार भल्लसे उसने बाण फेंकते हुए वृष्णिवीर सात्यकिके धनुषको काट डाला ॥

सात्यकिं छिन्नधन्वानं प्रहसन्निव भारत ॥ ३८ ॥
अविध्यन्मागधो वीरः पञ्चभिर्निशितैः शरैः ।

भारत ! धनुष कटनेके पश्चात् सात्यकिको उस मागध वीरने हँसते हुए ही पाँच तीखे बाणोंद्वारा घायल कर दिया ॥

स विद्धो बहुभिर्बाणैर्जलसंधेन वीर्यवान् ॥ ३९ ॥
नाकम्पत महाबाहुस्तदद्भुतमिवाभवत् ।

जलसंधके बहुत-से बाणोंद्वारा क्षत-विक्षत होनेपर भी पराक्रमी महाबाहु सात्यकि कम्पित नहीं हुए। यह अद्भुत-सी बात थी ॥ ३९½ ॥

अचिन्तयन् वै स शरान्नात्यर्थं सम्भ्रमाद् बली ॥ ४० ॥
धनुरन्यत् समादाय तिष्ठ तिष्ठेत्युवाच ह ।

बलवान् सात्यकिने उसके बाणोंको कुछ भी न गिनते हुए अधिक संभ्रममें न पड़कर दूसरा धनुष हाथमें ले लिया और कहा—'अरे ! खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ ४०½ ॥

एतावदुक्त्वा शैनेयो जलसंधं महोरसि ॥ ४१ ॥
विव्याध षष्ट्या सुभृशं शराणां प्रहसन्निव ।

ऐसा कहकर सात्यकिने हँसते हुए ही साठ बाणोंद्वारा जलसंधकी चौड़ी छातीपर गहरी चोट पहुँचायी ॥ ४१½ ॥

क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन मुष्टिदेशे महद् धनुः ॥ ४२ ॥
जलसंधस्य चिच्छेद विव्याध च त्रिभिः शरैः ।

फिर अत्यन्त तीखे क्षुरप्रसे जलसंधके विशाल धनुषको मुट्ठी पकड़नेकी जगहसे काट दिया और तीन बाण मारकर उसे घायल भी कर दिया ॥ ४२½ ॥

जलसंधस्तु तत् त्यक्त्वा सशरं वै शरासनम् ॥ ४३ ॥
तोमरं व्यसृजत् तूर्णं सात्यकिं प्रति मारिष ।

माननीय नरेश ! जलसंधने बाणसहित उस धनुषको त्यागकर सात्यकिपर तुरंत ही तोमरका प्रहार किया ॥ ४३½ ॥

स निर्भिद्य भुजं सव्यं माधवस्य महारणे ॥ ४४ ॥

अभ्यगाद् धरणीं घोरः श्वसन्निव महोरगः ।

फुफकारते हुए महान् सर्पके समान वह भयंकर तोमर उस महासमरमें सात्यकिकी बायीं भुजाको विदीर्ण करता हुआ धरतीमें समा गया ॥

निर्भिन्ने तु भुजे सव्ये सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ ४५ ॥
त्रिंशद्भिर्विशिखैस्तीक्ष्णैर्जलसंधमताडयत् ।

अपनी बायीं भुजाके घायल होनेपर सत्यपराक्रमी सात्यकिने तीस तीखे बाणोंद्वारा जलसंधको आहत कर दिया ॥

प्रगृह्य तु ततः खड्गं जलसंधो महाबलः ॥ ४६ ॥
आर्षभं चर्म च महच्छतचन्द्रकसंकुलम् ।
आविध्य च ततः खड्गं सात्वतायोत्ससर्ज ह ॥ ४७ ॥

तब महाबली जलसंधने सौ चन्द्राकार चमकीले चिह्नोंसे युक्त वृषभ-चर्मकी बनी हुई विशाल ढाल और तलवार हाथमें ले ली तथा उस तलवारको घुमाकर सात्यकिपर छोड़ दिया ॥

शैनेयस्य धनुश्छित्त्वा स खड्गो न्यपतन्महीम् ।
अलातचक्रवच्चैव व्यरोचत महीं गतः ॥ ४८ ॥

वह खड्ग सात्यकिके धनुषको काटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। धरतीपर पहुँचकर वह अलातचक्रके समान प्रकाशित हो रहा था ॥

अथान्यद् धनुरादाय सर्वकायावदारणम् ।
शालस्कन्धप्रतीकाशमिन्द्राशनिसमस्वनम् ॥ ४९ ॥
विस्फार्य विव्यधे क्रुद्धो जलसंधं शरेण ह ।

तब सात्यकिने साखूके तनेके समान विशाल, इन्द्रके वज्रकी भाँति घोर टंकार करनेवाले तथा सबके शरीरको विदीर्ण करनेमें समर्थ दूसरा धनुष हाथमें लेकर उसे कानतक खींचा और कुपित हो एक बाणसे जलसंधको बींध डाला ॥

ततः साभरणौ बाहू क्षुराभ्यां माधवोत्तमः ॥ ५० ॥
सात्यकिर्जलसंधस्य चिच्छेद प्रहसन्निव ।

फिर मधुवंशशिरोमणि सात्यकिने हँसते हुए-से दो छुरोंका प्रहार करके जलसंधकी आभूषणभूषित दोनों भुजाओंको काट दिया ॥ ५०½ ॥

तौ बाहू परिघप्रख्यौ पेततुर्गजसत्तमात् ॥ ५१ ॥
वसुंधराधराद् भ्रष्टौ पञ्चशीर्षाविवोरगौ ।

उसकी वे परिघके समान मोटी भुजाएँ उस गजराजकी पीठसे नीचे गिर पड़ीं, मानो पर्वतसे पाँच-पाँच मस्तकोंवाले दो नाग पृथ्वीपर गिरे हों ॥ ५१½ ॥

ततः सुदंष्ट्रं सुमहच्चारुकुण्डलमण्डितम् ॥ ५२ ॥
क्षुरेणास्य तृतीयेन शिरश्चिच्छेद सात्यकिः ।

तदनन्तर सात्यकिने तीसरे छुरेसे उसके सुन्दर दाँतोंवाले मनोहर कुण्डलमण्डित विशाल मस्तकको काट गिराया ॥

तत्पातितशिरोबाहुकबन्धं भीमदर्शनम् ॥ ५३ ॥
द्विरदं जलसंधस्य रुधिरेणाभ्यषिञ्चत ।

मस्तक और भुजाओंके गिर जानेसे अत्यन्त भयंकर दिखायी देनेवाले जलसंधके उस धड़ने अपने खूनसे उस हाथीको नहला दिया ॥ ५३½ ॥

जलसंधं निहत्याजौ त्वरमाणस्तु सात्वतः ॥ ५४ ॥
विमानं पातयामास गजस्कन्धाद् विशाम्पते ।

प्रजानाथ ! युद्धस्थलमें जलसंधको मारकर फुर्ती करनेवाले सात्यकिने हाथीकी पीठसे उसके हौदेको भी गिरा दिया ॥

रुधिरेणावसिक्ताङ्गो जलसंधस्य कुञ्जरः ॥ ५५ ॥
विलम्बमानमवहत् संश्लिष्टं परमासनम् ।

खूनसे भीगे शरीरवाला जलसंधका वह हाथी अपनी पीठसे सटकर लटकते हुए उस हौदेको ढो रहा था ॥ ५५½ ॥

शरार्दितः सात्वतेन मर्दमानः स्ववाहिनीम् ॥ ५६ ॥
घोरमार्तस्वरं कृत्वा विदुद्राव महागजः ।

सात्यकिके बाणोंसे पीड़ित हो वह महान् गजराज घोर चीत्कार करके अपनी ही सेनाको कुचलता हुआ भाग निकला ॥

हाहाकारो महानासीत् तव सैन्यस्य मारिष ॥ ५७ ॥
जलसंधं हतं दृष्ट्वा वृष्णीनामृषभेण तु ।

आर्य ! वृष्णिप्रवर सात्यकिके द्वारा जलसंधको मारा गया देख आपकी सेनामें महान् हाहाकार मच गया ॥ ५७½ ॥

विमुखाश्चाभ्यधावन्त तव योधाः समन्ततः ॥ ५८ ॥
पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ।

आपके योद्धा शत्रुओंपर विजय पानेका उत्साह खो बैठे। अब वे भाग निकलनेमें ही उत्साह दिखाने लगे और युद्धसे मुँह मोड़कर चारों ओर भाग गये ॥ ५८½ ॥

एतस्मिन्नन्तरे राजन् द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ॥ ५९ ॥
अभ्ययाज्जवनैरश्वैर्युयुधानं महारथम् ।

राजन् ! इसी समय शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य अपने वेगशाली घोड़ोंद्वारा महारथी युयुधानका सामना करनेके लिये आ पहुँचे ॥ ५९½ ॥

तमुदीर्णं तथा दृष्ट्वा शैनेयं नरपुङ्गवाः ॥ ६० ॥
द्रोणेनैव सह क्रुद्धाः सात्यकिं समुपाद्रवन् ।

शिनिपौत्र सात्यकिको बढ़ते देख नरश्रेष्ठ कौरव महारथी द्रोणाचार्यके साथ ही कुपित हो उनपर टूट पड़े ॥ ६०½ ॥

ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां सात्वतस्य च ।
द्रोणस्य च रणे राजन् घोरं देवासुरोपमम् ॥ ६१ ॥

राजन् ! फिर तो उस रणक्षेत्रमें कौरवोंसहित द्रोणाचार्य तथा सात्यकिका देवासुर-संग्रामके समान भयंकर युद्ध होने लगा ॥ ६१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे जलसंधवधो नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिके कौरवसेनामें प्रवेशके अवसरपर जलसंधका वध नामक एक सौ पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११५ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १½ श्लोक मिलाकर कुल ६२½ श्लोक हैं)

षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिका पराक्रम तथा दुर्योधन और कृतवर्माकी पुनः पराजय

संजय उवाच

ते किरन्तः शरव्रातान् सर्वे यत्ताः प्रहारिणः।
त्वरमाणा महाराज युयुधानमयोधयन् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! वे प्रहारकुशल सम्पूर्ण योद्धा सावधान हो बड़ी फुर्तीके साथ बाणसमूहोंकी वर्षा करते हुए वहाँ युयुधानके साथ युद्ध करने लगे ॥ १ ॥

तं द्रोणः सप्तसप्तत्या जघान निशितैः शरैः।
दुर्मर्षणो द्वादशभिर्दुःसहो दशभिः शरैः ॥ २ ॥

द्रोणाचार्यने सात्यकिको सतहत्तर तीखे बाणोंसे घायल कर दिया। फिर दुर्मर्षणने बारह और दुःसहने दस बाणोंसे उन्हें बींध डाला ॥ २ ॥

विकर्णश्चापि निशितैस्त्रिंशद्भिः कङ्कपत्रिभिः।
विव्याध सव्ये पार्श्वे तु स्तनाभ्यामन्तरे तथा ॥ ३ ॥

तत्पश्चात् विकर्णने भी कंककी पाँखवाले तीस तीखे बाणोंसे सात्यकिकी बायीं पसली और छाती छेद डाली ॥३॥

दुर्मुखो दशभिर्बाणैस्तथा दुःशासनोऽष्टभिः।
चित्रसेनश्च शैनेयं द्वाभ्यां विव्याध मारिष ॥ ४ ॥

आर्य ! तदनन्तर दुर्मुखने दस, दुःशासनने आठ और चित्रसेनने दो बाणोंसे सात्यकिको घायल कर दिया ॥ ४ ॥

दुर्योधनश्च महता शरवर्षेण माधवम्।
अपीडयद् रणे राजञ्शूराश्चान्ये महारथाः ॥ ५ ॥

राजन् ! उस रणक्षेत्रमें दुर्योधन तथा अन्य शूरवीर महारथियोंने भारी बाण-वर्षा करके सात्यकिको पीडित कर दिया ॥ ५ ॥

सर्वतः प्रतिविद्धस्तु तव पुत्रैर्महारथैः।
तान् प्रत्यविध्यद् वार्ष्णेयः पृथक् पृथगजिह्मगैः॥ ६ ॥

आपके महारथी पुत्रोंद्वारा सब ओरसे घायल किये जानेपर वृष्णिवंशी वीर सात्यकिने उन सबको पृथक्-पृथक् अपने बाणोंसे बींधकर बदला चुकाया ॥ ६ ॥

भारद्वाजं त्रिभिर्बाणैर्दुःसहं नवभिः शरैः।
विकर्णं पञ्चविंशत्या चित्रसेनं च सप्तभिः ॥ ७ ॥
दुर्मर्षणं द्वादशभिरष्टाभिश्च विविंशतिम्।
सत्यव्रतं च नवभिर्विजयं दशभिः शरैः ॥ ८ ॥

उन्होंने द्रोणाचार्यको तीन, दुःसहको नौ, विकर्णको पचीस, चित्रसेनको सात, दुर्मर्षणको बारह, विविंशतिको आठ, सत्यव्रतको नौ तथा विजयको दस बाणोंसे घायल किया॥

ततो रुक्माङ्गदं चापं विधुन्वानो महारथः।
अभ्ययात् सात्यकिस्तूर्णं पुत्रं तव महारथम् ॥ ९ ॥

तदनन्तर महारथी सात्यकिने सोनेके अङ्गदसे विभूषित अपने विशाल धनुषको हिलाते हुए तुरंत ही आपके महारथी पुत्र दुर्योधनपर आक्रमण किया ॥ ९ ॥

राजानं सर्वलोकस्य सर्वलोकमहारथम्।
शरैरभ्याहनद् गाढं ततो युद्धमभूत् तयोः ॥ १० ॥

सब लोगोंके राजा और समस्त संसारके विख्यात महारथी दुर्योधनको उन्होंने अपने बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी। फिर तो उन दोनोंमें भारी युद्ध छिड़ गया ॥ १० ॥

विमुञ्चन्तौ शरांस्तीक्ष्णान् संदधानौ च सायकान्।
अदृश्यं समरेऽन्योन्यं चक्रतुस्तौ महारथौ ॥ ११ ॥

उन दोनों महारथियोंने समरभूमिमें बाणोंका संधान और तीखे बाणोंका प्रहार करते हुए एक दूसरेको अदृश्य कर दिया ॥ ११ ॥

सात्यकिः कुरुराजेन निर्विद्धो बह्वशोभत।
अस्रवद् रुधिरं भूरि स्वरसं चन्दनो यथा ॥ १२ ॥

सात्यकि कुरुराज दुर्योधनके बाणोंसे बिंधकर अधिक मात्रामें रक्त बहाने लगे। उस समय वे अपना रस बहाते हुए लाल चन्दनवृक्षके समान अधिक शोभा पा रहे थे ॥

सात्वतेन च बाणौघैर्निर्विद्धस्तनयस्तव।
शातकुम्भमयापीडो बभौ यूप इवोच्छ्रितः ॥ १३ ॥

सात्यकिके बाणसमूहोंसे घायल होकर आपका पुत्र दुर्योधन सुवर्णमय मुकुट धारण किये ऊँचे यूपके समान सुशोभित हो रहा था ॥ १३ ॥

माधवस्तु रणे राजन् कुरुराजस्य धन्विनः।
धनुश्चिच्छेद समरे क्षुरप्रेण हसन्निव ॥ १४ ॥

राजन् ! रणक्षेत्रमें सात्यकिने धनुर्धर दुर्योधनके धनुषको एक क्षुरप्रद्वारा हँसते हुए-से काट दिया ॥ १४ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं शरैर्बहुभिराचिनोत्।
निर्भिन्नश्च शरैस्तेन द्विषता क्षिप्रकारिणा ॥ १५ ॥
नामृष्यत रणे राजा शत्रोर्विजयलक्षणम्।

धनुष कट जानेपर उन्होंने बहुत-से बाण मारकर दुर्योधनके शरीरको चुन दिया। शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले अपने शत्रु सात्यकिके बाणोंद्वारा विदीर्ण होकर राजा दुर्योधन रणभूमिमें विपक्षीके उस विजयसूचक पराक्रमको सह न सका ॥१५½॥

अथान्यद् धनुरादाय हेमपृष्ठं दुरासदम् ॥ १६ ॥
विव्याध सात्यकिं तूर्णं सायकानां शतेन ह।

उसने सोनेकी पीठवाले दूसरे दुर्धर्ष धनुषको लेकर शीघ्र ही सौ बाणोंसे सात्यकिको घायल कर दिया ॥१६½॥

सोऽतिविद्धो बलवता तव पुत्रेण धन्विना ॥ १७ ॥
अमर्षवशमापन्नस्तव पुत्रमपीडयत्।

आपके बलवान् और धनुर्धर पुत्रके द्वारा अत्यन्त घायल किये जानेपर सात्यकिने भी अमर्षके वशीभूत होकर आपके पुत्रको बड़ी पीड़ा दी ॥ १७½ ॥

पीडितं नृपतिं दृष्ट्वा तव पुत्रा महारथाः ॥ १८ ॥
सात्यकिं शरवर्षेण छादयामासुरोजसा ।

राजाको पीड़ित देखकर आपके अन्य महारथी पुत्रोंने बलपूर्वक बाणोंकी वर्षा करके सात्यकिको आच्छादित कर दिया॥

स च्छाद्यमानो बहुभिस्तव पुत्रैर्महारथैः ॥ १९ ॥
एकैकं पञ्चभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ।
दुर्योधनं च त्वरितो विव्याधाष्टभिराशुगैः ॥ २० ॥

आपके बहुसंख्यक महारथी पुत्रोंद्वारा बाणोंसे आच्छादित किये जानेपर सात्यकिने उनमेंसे एक-एकको पहले पाँच-पाँच बाणोंसे घायल किया। फिर सात-सात बाणोंसे बींध डाला। तत्पश्चात् तुरंत ही आठ शीघ्रगामी बाणोंद्वारा दुर्योधनको भी गहरी चोट पहुँचायी ॥ १९-२० ॥

प्रहसंश्चास्य चिच्छेद कार्मुकं रिपुभीषणम् ।
नागं मणिमयं चैव शरैर्ध्वजमपातयत् ॥ २१ ॥

इसके बाद युयुधानने हँसते हुए ही दुर्योधनके शत्रु-भीषण धनुषको और मणिमय नागसे चिह्नित ध्वजको भी बाणोंद्वारा काट गिराया ॥ २१ ॥

हत्वा तु चतुरो वाहांश्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ।
सारथिं पातयामास क्षुरप्रेण महायशाः ॥ २२ ॥

फिर चार तीखे बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको मारकर महायशस्वी सात्यकिने क्षुरप्रद्वारा उसके सारथिको भी मार गिराया ॥ २२ ॥

एतस्मिन्नन्तरे चैव कुरुराजं महारथम् ।
अवाकिरच्छरैर्हृष्टो बहुभिर्मर्मभेदिभिः ॥ २३ ॥

तदनन्तर हर्षमें भरे हुए सात्यकिने महारथी कुरुराज दुर्योधनपर बहुत-से मर्मभेदी बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी॥

स वध्यमानः समरे शैनेयस्य शरोत्तमैः ।
प्राद्रवत् सहसा राजन् पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ २४ ॥
आप्लुतश्च ततो यानं चित्रसेनस्य धन्विनः ।

राजन्! सात्यकिके श्रेष्ठ बाणोंद्वारा समराङ्गणमें क्षत-विक्षत होकर आपका पुत्र दुर्योधन सहसा भागा और धनुर्धर चित्रसेनके रथपर जा चढ़ा ॥ २४½ ॥

हाहाभूतं जगच्चासीद् दृष्ट्वा राजानमाहवे ॥ २५ ॥
ग्रस्यमानं सात्यकिना खे सोममिव राहुणा ।

जैसे आकाशमें राहु चन्द्रमापर ग्रहण लगाता है, उसी प्रकार सात्यकिद्वारा राजा दुर्योधनको ग्रस्त होते देख वहाँ सब लोगोंमें हाहाकार मच गया ॥ २५½ ॥

तं तु शब्दमथ श्रुत्वा कृतवर्मा महारथः ॥ २६ ॥
अभ्ययात् सहसा तत्र यत्रास्ते माधवः प्रभुः ।

उस कोलाहलको सुनकर महारथी कृतवर्मा सहसा वहीं आ पहुँचा, जहाँ शक्तिशाली सात्यकि खड़े थे ॥ २६½ ॥

विधुन्वानो धनुः श्रेष्ठं चोदयंश्चैव वाजिनः ॥ २७ ॥
भर्त्सयन् सारथिं चाग्रे याहि याहीति सत्वरम् ।

वह अपने श्रेष्ठ धनुषको कँपाता, घोड़ोंको हाँकता और 'आगे बढ़ो, जल्दी चलो' कहकर सारथिको फटकारता हुआ वहाँ आया ॥ २७½ ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य व्यादितास्यमिवान्तकम् ॥ २८ ॥
युयुधानो महाराज यन्तारमिदमब्रवीत् ।

महाराज! मुँह बाये हुए कालके समान कृतवर्माको वहाँ आते देख युयुधानने अपने सारथिसे कहा—॥२८½॥

कृतवर्मा रथेनैष द्रुतमापतते शरी ॥ २९ ॥
प्रत्युद्याहि रथेनैनं प्रवरं सर्वधन्विनाम् ।

'सूत! यह कृतवर्मा बाण लेकर रथके द्वारा तीव्र वेगसे आ रहा है। यह सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ है। तुम रथके द्वारा इसकी अगवानी करो' ॥ २९½ ॥

ततः प्रजविताश्वेन विधिवत् कल्पितेन च ॥ ३० ॥
आससाद रणे भोजं प्रतिमानं धनुष्मताम् ।

तदनन्तर सात्यकि विधिपूर्वक सजाये गये तेज घोड़ोंवाले रथके द्वारा रणभूमिमें धनुर्धरोंके आदर्शभूत कृतवर्माके पास जा पहुँचे ॥ ३०½ ॥

ततः परमसंक्रुद्धौ ज्वलिताविव पावकौ ॥ ३१ ॥
समेयातां नरव्याघ्रौ व्याघ्राविव तरस्विनौ ।

तत्पश्चात् प्रज्वलित पावक और वेगशाली व्याघ्रोंके समान वे दोनों नरश्रेष्ठ वीर अत्यन्त कुपित हो एक दूसरेसे भिड़ गये ॥ ३१½ ॥

कृतवर्मा तु शैनेयं षड्विंशत्या समार्पयत् ॥ ३२ ॥
निशितैः सायकैस्तीक्ष्णैर्यन्तारं चास्य पञ्चभिः ।

कृतवर्माने सात्यकिपर तेजधारवाले छब्बीस तीखे बाण चलाये और पाँच बाणोंद्वारा उनके सारथिको भी घायल कर दिया ॥ ३२½ ॥

चतुरश्चतुरो वाहांश्चतुर्भिः परमेषुभिः ॥ ३३ ॥
अविध्यत् साधुदान्तान् वै सैन्धवान् सात्वतस्य हि ।

इसके बाद चार उत्तम बाण मारकर उसने सात्यकिके सुशिक्षित एवं विनीत चारों सिंधी घोड़ोंको भी बींध डाला ॥

रुक्मध्वजो रुक्मपृष्ठं महद् विस्फार्य कार्मुकम् ॥ ३४॥
रुक्माङ्गदी रुक्मवर्मा रुक्मपुङ्खैरवारयत् ।

तदनन्तर सोनेके केयूर और सोनेके ही कवच धारण करनेवाले सुवर्णमय ध्वजासे सुशोभित कृतवर्माने सोनेकी पीठवाले अपने विशाल धनुषकी टंकार करके स्वर्णमय पंखवाले बाणोंसे सात्यकिको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ३४½ ॥

ततोऽशीतिं शिनेः पौत्रः सायकान् कृतवर्मणे ॥ ३५ ॥
प्राहिणोत् त्वरया युक्तो द्रष्टुकामो धनंजयम् ।

तत्र शिनिपौत्र सात्यकिने बड़ी उतावलीके साथ मनमें अर्जुनके दर्शनकी कामना लिये वहाँ कृतवर्माको अस्सी बाण मारे ॥ ३५½ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुतापनः ॥ ३६ ॥
समकम्पत दुर्धर्षः क्षितिकम्पे यथाचलः ।

शत्रुओंको संताप देनेवाला दुर्धर्ष वीर कृतवर्मा अपने बलवान् शत्रु सात्यकिके द्वारा अत्यन्त घायल होकर उसी प्रकार काँपने लगा, जैसे भूकम्पके समय पर्वत हिलने लगता है ॥

त्रिषष्ट्या चतुरोऽस्याश्वान् सप्तभिः सारथिं तथा ॥३७॥
विव्याध निशितैस्तूर्णं सात्यकिः सत्यविक्रमः ।

तत्पश्चात् सत्यपराक्रमी सात्यकिने तिरसठ बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको और सात तीखे बाणोंसे उसके सारथिको भी शीघ्र ही क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ३७½ ॥

सुवर्णपुङ्खं विशिखं समाधाय च सात्यकिः ॥ ३८ ॥
व्यसृजत् तं महाज्वालं संक्रुद्धमिव पन्नगम् ।

अब सात्यकिने अपने धनुषपर सुवर्णमय पंखवाले अत्यन्त तेजस्वी बाणका संधान किया, जो क्रोधमें भरे हुए सर्पके समान प्रतीत होता था। उस बाणको उन्होंने कृतवर्मा-पर छोड़ दिया ॥ ३८½ ॥

सोऽविध्यत् कृतवर्माणं यमदण्डोपमः शरः ॥ ३९ ॥
जाम्बूनदविचित्रं च वर्म निर्भिद्य भानुमत् ।
अभ्यगाद् धरणीमुग्रो रुधिरेण समुक्षितः ॥ ४० ॥

सात्यकिका वह बाण यमदण्डके समान भयंकर था। उसने कृतवर्माके सुवर्णजटित चमकीले कवचको छिन्न-भिन्न करके उसे गहरी चोट पहुँचायी तथा खूनसे लथपथ होकर वह धरतीमें समा गया ॥ ३९–४० ॥

संजातरुधिरश्चाजौ सात्वतेषुभिरर्दितः ।
सशरं धनुरुत्सृज्य न्यपतत् स्यन्दनोत्तमात् ॥ ४१ ॥

युद्धस्थलमें सात्यकिके बाणोंसे पीड़ित हो कृतवर्मा खून-की धारा बहाता हुआ धनुष-बाण छोड़कर उस उत्तम रथसे उसके पिछले भागमें गिर पड़ा ॥ ४१ ॥

स सिंहदंष्ट्रो जानुभ्यां पतितोऽमितविक्रमः ।
शरार्दितः सात्यकिना रथोपस्थे नरर्षभः ॥ ४२ ॥

सिंहके समान दाँतोंवाला अमितपराक्रमी नरश्रेष्ठ कृतवर्मा सात्यकिके बाणोंसे पीड़ित हो घुटनोंके बलसे रथकी बैठकमें गिर गया ॥ ४२ ॥

सहस्रबाहुसदृशमक्षोभ्यमिव सागरम् ।
निवार्य कृतवर्माणं सात्यकिः प्रययौ ततः ॥ ४३ ॥

सहस्रबाहु अर्जुनके समान दुर्जय तथा महासागरके समान अक्षोभ्य कृतवर्माको इस प्रकार पराजित करके सात्यकि वहाँसे आगे बढ़ गये ॥ ४३ ॥

खड्गशक्तिधनुःकीर्णां गजाश्वरथसंकुलाम् ।
प्रवर्तितोग्ररुधिरां शतशः क्षत्रियर्षभैः ॥ ४४ ॥
प्रेक्षतां सर्वसैन्यानां मध्येन शिनिपुङ्गवः ।
अभ्यगाद् वाहिनीं हित्वा वृत्रहेवासुरीं चमूम् ॥ ४५ ॥

जैसे वृत्रनाशक इन्द्र असुरोंकी सेनाको लाँघकर जा रहे हों, उसी प्रकार शिनिप्रवर सात्यकि सम्पूर्ण सैनिकोंके देखते-देखते उनके बीचसे होकर उस सेनाका परित्याग करके चल दिये। उस कौरवसेनामें सैकड़ों क्षत्रियशिरोमणियोंने भयानक रक्तकी धारा बहा दी थी। वहाँ हाथी, घोड़े तथा रथ खचाखच भरे हुए थे और खड्ग, शक्ति एवं धनुष सब ओर व्याप्त थे ॥ ४४–४५ ॥

समाश्वस्य च हार्दिक्यो गृह्य चान्यन्महद् धनुः।
तस्थौ स तत्र बलवान् वारयन् युधि पाण्डवान् ॥ ४६ ॥

उधर बलवान् कृतवर्मा आश्वस्त होकर दूसरा विशाल धनुष हाथमें लेकर युद्धस्थलमें पाण्डवोंका सामना करता हुआ वहीं खड़ा रहा ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे दुर्योधनकृतवर्मपराजये षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिके कौरव-सेनामें प्रवेशके पश्चात् दुर्योधन और कृतवर्माकी पराजयविषयक एक सौ सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११६ ॥

सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकि और द्रोणाचार्यका युद्ध, द्रोणकी पराजय तथा कौरव-सेनाका पलायन

संजय उवाच

काल्यमानेषु सैन्येषु शैनेयेन ततस्ततः ।
भारद्वाजः शरव्रातैर्महद्भिः समवाकिरत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! जब सात्यकि जहाँ-तहाँ आ-आकर आपकी सेनाओंको कालके गालमें भेजने लगे, तब भरद्वाजनन्दन द्रोणाचार्यने उनपर महान् बाणसमूहोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ १ ॥

स सम्प्रहारस्तुमुलो द्रोणसात्वतयोरभूत् ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां बलिवासवयोरिव ॥ २ ॥

राजन् ! सम्पूर्ण सैनिकोंके देखते-देखते बलि और इन्द्र-

के समान द्रोणाचार्य और सात्यकिका वह युद्ध बड़ा भयंकर हो गया ॥ २ ॥

ततो द्रोणः शिनेः पौत्रं चित्रैः सर्वायसैः शरैः ।
त्रिभिराशीविषाकारैर्ललाटे समविध्यत ॥ ३ ॥

उस समय द्रोणाचार्यने सम्पूर्णतः लोहेके बने हुए विचित्र तथा विषधर सर्पके समान भयंकर तीन बाणोंद्वारा शिनिपौत्र सात्यकिके ललाटमें गहरा आघात किया ॥ ३ ॥

तैर्ललाटार्पितैर्बाणैर्युयुधानस्त्वजिह्मगैः ।
व्यरोचत महाराज त्रिशृङ्ग इव पर्वतः ॥ ४ ॥

महाराज ! ललाटमें धँसे हुए उन सीधे जानेवाले बाणोंके द्वारा युयुधान तीन शिखरोंवाले पर्वतके समान सुशोभित हुए॥

ततोऽस्य बाणानपरानिन्द्राशनिसमस्वनान् ।
भारद्वाजोऽन्तरप्रेक्षी प्रेषयामास संयुगे ॥ ५ ॥

द्रोणाचार्य अवसर देखते रहते थे । उन्होंने मौका पाकर इन्द्रके वज्रकी भाँति भयंकर शब्द करनेवाले और भी बहुत-से बाण युद्धस्थलमें सात्यकिपर चलाये ॥ ५ ॥

तान् द्रोणचापनिर्मुक्तान् दाशार्हः पततः शरान् ।
द्वाभ्यां द्वाभ्यां सुपुङ्खाभ्यां चिच्छेद परमास्त्रवित् ॥ ६॥

द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटकर गिरते हुए उन बाणोंको दशार्हकुलनन्दन परमास्त्रवेत्ता सात्यकिने उत्तम पंखोंसे युक्त दो दो बाणोंद्वारा काट डाला ॥ ६ ॥

तामस्य लघुतां द्रोणः समवेक्ष्य विशाम्पते ।
प्रहस्य सहसाविध्यत् त्रिंशता शिनिपुङ्गवम् ॥ ७ ॥

प्रजानाथ ! सात्यकिकी वह फुर्ती देखकर द्रोणाचार्य हँस पड़े । उन्होंने सहसा तीस बाण मारकर शिनिप्रवर सात्यकिको घायल कर दिया ॥ ७ ॥

पुनः पञ्चाशतेषूणां शितेन च समार्पयत् ।
लघुतां युयुधानस्य लाघवेन विशेषयन् ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् उन्होंने युयुधानकी फुर्तीको अपनी फुर्तीसे मन्द सिद्ध करते हुए तेजधारवाले पचास बाणोंद्वारा पुनः उन्हें घायल कर दिया ॥ ८ ॥

समुत्पतन्ति वल्मीकाद् यथा क्रुद्धा महोरगाः ।
तथा द्रोणरथाद् राजन्नुत्पतन्ति तनुच्छिदः ॥ ९ ॥

राजन् ! जैसे बाँबीसे क्रोधमें भरे हुए बहुत-से सर्प प्रकट होते हैं, उसी प्रकार द्रोणाचार्यके रथसे शरीरको छेद डालनेवाले बाण प्रकट होकर वहाँ सब ओर गिरने लगे॥

तथैव युयुधानेन सृष्टाः शतसहस्रशः ।
अवाकिरन् द्रोणरथं शरा रुधिरभोजनाः ॥ १० ॥

उसी प्रकार युयुधानके चलाये हुए लाखों रुधिरभोजी बाण द्रोणाचार्यके रथपर बरसने लगे ॥ १० ॥

लाघवाद् द्विजमुख्यस्य सात्वतस्य च मारिष ।
विशेषं नाध्यगच्छाम समावास्तां नरर्षभौ ॥ ११ ॥

माननीय नरेश ! हाथोंकी फुर्तीकी दृष्टिसे द्विजश्रेष्ठ द्रोणाचार्य और सात्यकिमें हमें कोई अन्तर नहीं जान पड़ता था । वे दोनों ही नरश्रेष्ठ समान प्रतीत होते थे ॥ ११ ॥

सात्यकिस्तु ततो द्रोणं नवभिर्नतपर्वभिः ।
आजघान भृशं क्रुद्धो ध्वजं च निशितैः शरैः ॥ १२ ॥

तदनन्तर सात्यकिने अत्यन्त कुपित हो झुकी हुई गाँठवाले नौ बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यपर गहरा आघात किया तथा तीखे बाणोंसे उनके ध्वजको भी चोट पहुँचायी ॥ १२ ॥

सारथिं च शतेनैव भारद्वाजस्य पश्यतः ।
लाघवं युयुधानस्य दृष्ट्वा द्रोणो महारथः ॥ १३ ॥
सप्तत्या सारथिं विद्ध्वा तुरङ्गांश्च त्रिभिस्त्रिभिः ।
ध्वजमेकेन चिच्छेद माधवस्य रथे स्थितम् ॥ १४ ॥

तत्पश्चात् द्रोणके देखते-देखते सात्यकिने सौ बाणोंसे उनके सारथिको भी घायल कर दिया । युयुधानकी यह फुर्ती देखकर महारथी द्रोणने सत्तर बाणोंसे सात्यकिके सारथिको बींधकर तीन-तीन बाणोंसे उनके घोड़ोंको भी घायल कर दिया । फिर एक बाणसे सात्यकिके रथपर फहराते हुए ध्वजको भी काट डाला ॥ १३–१४ ॥

अथापरेण भल्लेन हेमपुङ्खेन पत्रिणा ।
धनुश्चिच्छेद समरे माधवस्य महात्मनः ॥ १५ ॥

इसके बाद सुवर्णमय पंखवाले दूसरे भल्लसे आचार्यने समराङ्गणमें महामनस्वी सात्यकिके धनुषको भी खण्डित कर दिया ॥ १५ ॥

सात्यकिस्तु ततः क्रुद्धो धनुस्त्यक्त्वा महारथः ।
गदां जग्राह महतीं भारद्वाजाय चाक्षिपत् ॥ १६ ॥

इससे महारथी सात्यकिको बड़ा क्रोध हुआ । उन्होंने धनुष त्यागकर विशाल गदा हाथमें ले ली और उसे द्रोणाचार्यपर दे मारा ॥ १६ ॥

तामापतन्तीं सहसा पट्टबद्धामयस्मयीम् ।
न्यवारयच्छरैर्द्रोणो बहुभिर्बहुरूपिभिः ॥ १७ ॥

वह लोहेकी गदा रेशमी वस्त्रसे बँधी हुई थी । उसे सहसा अपने ऊपर आती देख द्रोणाचार्यने अनेक रूपवाले बहुसंख्यक बाणोंद्वारा उसका निवारण कर दिया ॥ १७ ॥

अथान्यद् धनुरादाय सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
विव्याध बहुभिर्वीरं भारद्वाजं शिलाशितैः ॥ १८ ॥

तब सत्यपराक्रमी सात्यकिने दूसरा धनुष लेकर सानपर तेज किये हुए बहुसंख्यक बाणोंद्वारा वीर द्रोणाचार्यको बींध डाला ॥ १८ ॥

स विद्ध्वा समरे द्रोणं सिंहनादममुञ्चत ।
तं वै न ममृषे द्रोणः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ १९ ॥

इस प्रकार समराङ्गणमें द्रोणको घायल करके सात्यकिने

सिंहके समान गर्जना की। उसे सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य सहन न कर सके ॥ १९ ॥

ततः शक्तिं गृहीत्वा तु रुक्मदण्डामयस्मयीम्।
तरसा प्रेषयामास माधवस्य रथं प्रति ॥ २० ॥

उन्होंने सोनेकी डंडेवाली लोहेकी शक्ति लेकर उसे सात्यकिके रथपर बड़े वेगसे चलाया ॥ २० ॥

अनासाद्य तु शैनेयं सा शक्तिः कालसंनिभा।
भित्त्वा रथं जगामोग्रा धरणीं दारुणस्वना ॥ २१ ॥

वह कालके समान विकराल शक्ति सात्यकितक न पहुँचकर उनके रथको विदीर्ण करके भयंकर शब्द करती हुई पृथ्वीमें समा गयी ॥ २१ ॥

ततो द्रोणं शिनेः पौत्रो राजन् विव्याध पत्रिणा।
दक्षिणं भुजमासाद्य पीडयन् भरतर्षभ ॥ २२ ॥

राजन्! भरतश्रेष्ठ! तब शिनिके पौत्रने एक बाणसे द्रोणाचार्यकी दाहिनी भुजापर चोट करके उसे पीड़ा देते हुए आचार्यको घायल कर दिया ॥ २२ ॥

द्रोणोऽपि समरे राजन् माधवस्य महद् धनुः।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद रथशक्त्या च सारथिम् ॥ २३ ॥

नरेश्वर! तब समरभूमिमें द्रोणाचार्यने भी सात्यकिके विशाल धनुषको अर्द्धचन्द्राकार बाणसे काट दिया तथा रथ-शक्तिका प्रहार करके सारथिको भी गहरी चोट पहुँचायी॥२३॥

मुमोह सारथिस्तस्य रथशक्त्या समाहतः।
स रथोपस्थमासाद्य मुहूर्तं संन्यषीदत ॥ २४ ॥

द्रोणकी रथशक्तिसे आहत हो सारथि मूर्छित हो गया। वह रथकी बैठकमें पहुँचकर वहाँ दो घड़ीतक चुपचाप बैठा रहा ॥ २४ ॥

चकार सात्यकी राजन् सूतकर्मातिमानुषम्।
अयोधयच्च यद् द्रोणं रश्मीञ्जग्राह च स्वयम् ॥ २५ ॥

महाराज! उस समय सात्यकिने लोकोत्तर सारथ्य कर्म कर दिखाया। वे द्रोणाचार्यसे युद्ध भी करते रहे और स्वयं ही घोड़ोंकी बागडोर भी सँभाले रहे ॥ २५ ॥

ततः शरशतेनैव युयुधानो महारथः।
अविध्यद् ब्राह्मणं संख्ये हृष्टरूपो विशाम्पते ॥ २६ ॥

प्रजानाथ! उस युद्धस्थलमें महारथी सात्यकिने हर्षमें भरकर विप्रवर द्रोणाचार्यको सौ बाणोंसे घायल कर दिया ॥

तस्य द्रोणः शरान् पञ्च प्रेषयामास भारत।
ते घोराः कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे ॥ २७ ॥

भारत! फिर द्रोणाचार्यने सात्यकिपर पाँच बाण चलाये। वे भयंकर बाण उस रणक्षेत्रमें सात्यकिका कवच फाड़कर उनका लोहू पीने लगे ॥ २७ ॥

निर्विद्धस्तु शरैर्घोरैरक्रुद्ध्यत् सात्यकिर्भृशम्।
सायकान् व्यसृजच्चापि वीरो रुक्मरथं प्रति ॥ २८ ॥

उन भयंकर बाणोंसे क्षत-विक्षत होकर वीर सात्यकिको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने सुवर्णमय रथवाले द्रोणाचार्यपर बाणोंकी झड़ी लगा दी ॥ २८ ॥

ततो द्रोणस्य यन्तारं निपात्यैकेषुणा भुवि।
अश्वान् व्यद्रावयद् बाणैर्हतसूतांस्ततस्ततः ॥ २९ ॥

एक बाणसे युयुधानने द्रोणाचार्यके सारथिको धरतीपर गिरा दिया और सारथिहीन घोड़ोंको अपने बाणोंसे इधर-उधर मार भगाया ॥ २९ ॥

स रथः प्रद्रुतः संख्ये मण्डलानि सहस्रशः।
चकार राजतो राजन् भ्राजमान इवांशुमान् ॥ ३० ॥

राजन्! वह चाँदीका बना हुआ रथ* युद्धस्थलमें दौड़ लगाता हुआ हजारों चक्कर काटता रहा। उस समय उसकी अंशुमाली सूर्यके समान शोभा हो रही थी ॥ ३० ॥

अभिद्रवत गृह्णीत हयान् द्रोणस्य धावत।
इति स्म चुक्रुशुः सर्वे राजपुत्राः सराजकाः ॥ ३१ ॥

उस समय समस्त राजा और राजकुमार पुकार-पुकारकर कहने लगे—'अरे! दौड़ो, दौड़ो! द्रोणाचार्यके घोड़ोंको पकड़ो' ॥ ३१ ॥

ते सात्यकिमपास्याशु राजन् युधि महारथाः।
यतो द्रोणस्ततः सर्वे सहसा समुपाद्रवन् ॥ ३२ ॥

नरेश्वर! उस युद्धस्थलमें वे सभी महारथी शीघ्र ही सात्यकिका सामना छोड़कर जहाँ द्रोणाचार्य थे, वहीं सहसा भाग गये ॥ ३२ ॥

तान् दृष्ट्वा प्रद्रुतान् संख्ये सात्वतेन शरार्दितान्।
प्रभग्नं पुनरेवासीत् तव सैन्यं समाकुलम् ॥ ३३ ॥

सात्यकिके बाणोंसे पीड़ित हो उन सबको युद्धस्थलसे पलायन करते देख आपकी संगठित हुई सारी सेना पुनः भाग खड़ी हुई ॥ ३३ ॥

व्यूहस्यैव पुनर्द्वारं गत्वा द्रोणो व्यवस्थितः।
वातायमानैस्तैरश्वैर्नीतो वृष्णिशरार्दितैः ॥ ३४ ॥

द्रोणाचार्य पुनः व्यूहके ही द्वारपर जाकर खड़े हो गये। सात्यकिके बाणोंसे पीड़ित होकर वायुके समान वेगसे भागनेवाले उनके घोड़ोंने ही उन्हें वहाँ पहुँचा दिया ॥ ३४ ॥

पाण्डुपाञ्चालसम्भिन्नं व्यूहमालोक्य वीर्यवान्।
शैनेये नाकरोद् यत्नं व्यूहमेवाभ्यरक्षत ॥ ३५ ॥

पराक्रमी द्रोणने अपने व्यूहको पाण्डवों और पाञ्चालोंद्वारा भङ्ग हुआ देख सात्यकिको रोकनेका प्रयत्न छोड़

* अट्ठाईसवें श्लोकमें द्रोणके रथको सोनेका बताया है और इसमें चाँदीका बताया है। इससे यह समझना चाहिये कि उस रथमें सोना और चाँदी दोनों ही धातुएँ लगी हुई थीं।

दिया। वे पुनः व्यूहकी ही रक्षा करने लगे ॥ ३५ ॥

निवार्य पाण्डुपञ्चालान् द्रोणाग्निः प्रदहन्निव।
तस्थौ क्रोधेध्मसंदीप्तः कालसूर्य इवोद्यतः ॥ ३६ ॥

क्रोधरूपी ईंधनसे प्रज्वलित हुई द्रोणरूपी अग्नि पाण्डवों और पाञ्चालोंको रोककर सबको दग्ध करती हुई-सी खड़ी हो गयी और प्रलयकालके सूर्यकी भाँति प्रकाशित होने लगी॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे सात्यकिपराक्रमे सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिका कौरवसेनामें प्रवेश तथा पराक्रमविषयक एक सौ सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११७ ॥

अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिद्वारा सुदर्शनका वध

संजय उवाच

द्रोणं स जित्वा पुरुषप्रवीर-
स्तथैव हार्दिक्यमुखांस्त्वदीयान्।
प्रहस्य सूतं वचनं बभाषे
शिनिप्रवीरः कुरुपुङ्गवाग्र्य ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—कुरुवंशशिरोमणे ! द्रोणाचार्य तथा कृतवर्मा आदि आपके प्रमुख महारथियोंको जीतकर नरवीर सात्यकिने अपने सारथिसे हँसते हुए कहा—॥ १ ॥

निमित्तमात्रं वयमद्य सूत
दग्धारयः केशवफाल्गुनाभ्याम्।
हतान् निहन्मेह नरर्षभेण
वयं सुरेशात्मसमुद्भवेन ॥ २ ॥

'सारथे ! इस विजयमें आज हमलोग तो निमित्तमात्र हो रहे हैं। वास्तवमें श्रीकृष्ण और अर्जुनने ही हमारे इन शत्रुओंको दग्ध कर दिया है। देवराजके पुत्र नरश्रेष्ठ अर्जुनके मारे हुए सैनिकोंको ही हमलोग यहाँ मार रहे हैं' ॥ २ ॥

तमेवमुक्त्वा शिनिपुङ्गवस्तदा
महामृधे सोऽग्र्यधनुर्धरोऽरिहा।
किरन् समन्तात् सहसा शरान् बली
समापतच्छ्येन इवामिषं यथा ॥ ३ ॥

उस महासमरमें सारथिसे ऐसा कहकर धनुर्धरशिरोमणि शत्रुसूदन शिनिप्रवर बलवान् सात्यकिने सहसा सब ओर बाणोंकी वर्षा करते हुए शत्रुओंपर उसी प्रकार आक्रमण किया, जैसे बाज मांसके टुकड़ेपर झपटता है ॥ ३ ॥

तं यान्तमश्वैः शशिशङ्खवर्णै-
र्विगाह्य सैन्यं पुरुषप्रवीरम्।
नाशक्नुवन् वारयितुं समन्ता-
दादित्यरश्मिप्रतिमं रथाग्र्यम् ॥ ४ ॥

सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशमान रथियोंमें श्रेष्ठ नरवीर सात्यकि आपकी सेनामें घुसकर चन्द्रमा और शङ्खके समान श्वेतवर्णवाले घोड़ोंद्वारा आगे बढ़ते चले जा रहे थे। उस समय किसी ओरसे कोई योद्धा उन्हें रोक न सके ॥ ४ ॥

असह्यविक्रान्तमदीनसत्त्वं
सर्वे गणा भारत ये त्वदीयाः।
सहस्रनेत्रप्रतिमप्रभावं
दिवीव सूर्यं जलदव्यपाये ॥ ५ ॥

भारत ! सात्यकिका पराक्रम असह्य था। उनका धैर्य और बल महान् था। वे इन्द्रके समान प्रभावशाली तथा आकाशमें प्रकाशित होनेवाले शरत्कालके सूर्यके समान प्रचण्ड तेजस्वी थे। आपके समस्त सैनिक मिलकर भी उन्हें रोक न सके ॥ ५ ॥

अमर्षपूर्णस्त्वतिचित्रयोधी
शरासनी काञ्चनवर्मधारी।
सुदर्शनः सात्यकिमापतन्तं
न्यवारयद् राजवरः प्रसह्य ॥ ६ ॥

उस समय अत्यन्त विचित्र युद्ध करनेवाले, सुवर्ण-कवचधारी धनुर्धर नृपश्रेष्ठ सुदर्शनने अपनी ओर आते हुए सात्यकिको अमर्षमें भरकर बलपूर्वक रोका ॥ ६ ॥

तयोरभूद् भारत सम्प्रहारः
सुदारुणस्तं समतिप्रशंसन्।
योधास्त्वदीयाश्च हि सोमकाश्च
वृत्रेन्द्रयोर्युद्धमिवामरौघाः ॥ ७ ॥

भारत ! उन दोनों वीरोंमें बड़ा भयंकर संग्राम हुआ। जैसे देवगण वृत्रासुर और इन्द्रके युद्धकी गाथा गाते हैं, उसी प्रकार आपके योद्धाओं तथा सोमकोंने भी उन दोनोंके उस युद्धकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ ७ ॥

शरैः सुतीक्ष्णैः शतशोऽभ्यविध्यत्
सुदर्शनः सात्वतमुख्यमाजौ।
अनागतानेव तु तान् पृषत्कां-
श्चिच्छेद राजञ्शिनिपुङ्गवोऽपि ॥ ८ ॥

राजन् ! सुदर्शनने समराङ्गणमें सात्वतशिरोमणि सात्यकिपर सैकड़ों सुतीक्ष्ण बाणोंद्वारा प्रहार किया; परंतु शिनिप्रवर सात्यकिने उन बाणोंको अपने पास आनेसे पहले ही काट डाला ॥ ८ ॥

तथैव शक्रप्रतिमोऽपि सात्यकिः
सुदर्शने यान् क्षिपति स्म सायकान्।
द्विधा त्रिधा तानकरोत् सुदर्शनः
शरोत्तमैः स्यन्दनवर्यमास्थितः ॥ ९ ॥

इसी प्रकार इन्द्रके समान पराक्रमी सात्यकि भी सुदर्शनपर जिन-जिन बाणोंका प्रहार करते थे, श्रेष्ठ रथपर बैठे हुए सुदर्शन भी अपने उत्तम बाणोंद्वारा उन सबके दो-दो-तीन-तीन टुकड़े कर देते थे ॥ ९ ॥

तान् वीक्ष्य बाणान् निहतांस्तदानीं
सुदर्शनः सात्यकिबाणवेगैः।
क्रोधाद् दिधक्षन्निव तिग्मतेजाः
शरानमुञ्चत् तपनीयचित्रान् ॥ १० ॥

उस समय सात्यकिके वेगशाली बाणोंद्वारा अपने चलाये हुए बाणोंको नष्ट हुआ देख प्रचण्ड तेजस्वी राजा सुदर्शनने क्रोधसे उन्हें जला डालनेकी इच्छा रखते हुए-से सुवर्णजटित विचित्र बाणोंका उनपर प्रहार आरम्भ किया ॥ १० ॥

पुनः स बाणैस्त्रिभिरग्निकल्पै-
राकर्णपूर्णैर्निशितैः सुपुङ्खैः।
विव्याध देहावरणं विभिद्य
ते सात्यकेराविविशुः शरीरम् ॥ ११ ॥

फिर उन्होंने अग्निके समान तेजस्वी तथा कानतक खींचकर छोड़े हुए सुन्दर पंखवाले तीन तीखे बाणोंसे सात्यकिको बींध दिया। वे बाण सात्यकिका कवच विदीर्ण करके उनके शरीरमें समा गये ॥ ११ ॥

तथैव तस्यावनिपालपुत्रः
संधाय बाणैरपरैर्ज्वलद्भिः।
आजघ्निवांस्तान् रजतप्रकाशां-
श्चतुर्भिरश्वांश्चतुरः प्रसह्य ॥ १२ ॥

तत्पश्चात् उन राजकुमार सुदर्शनने अन्य चार तेजस्वी बाणोंका संधान करके उनके द्वारा चाँदीके समान चमकनेवाले सात्यकिके उन चारों घोड़ोंको भी बलपूर्वक घायल कर दिया ॥ १२ ॥

तथा तु तेनाभिहतस्तरस्वी
नप्ता शिनेरिन्द्रसमानवीर्यः।
सुदर्शनस्येषुगणैः सुतीक्ष्णै-
र्हयान् निहत्याशु ननाद नादम् ॥ १३ ॥

सुदर्शनके द्वारा इस प्रकार घायल होनेपर इन्द्रके समान बलवान् और वेगशाली शिनिपौत्र सात्यकिने अपने सुतीक्ष्ण बाणसमूहोंसे सुदर्शनके अश्वोंका शीघ्र ही संहार करके उच्चस्वरसे सिंहनाद किया ॥ १३ ॥

अथास्य सूतस्य शिरो निकृत्य
भल्लेन शक्राशनिसंनिभेन।
सुदर्शनस्यापि शिनिप्रवीरः
क्षुरेण कालानलसंनिभेन ॥ १४ ॥
सकुण्डलं पूर्णशशिप्रकाशं
भ्राजिष्णु वक्त्रं विचकर्त देहात्।
यथा पुरा वज्रधरः प्रसह्य
बलस्य संख्येऽतिबलस्य राजन् ॥ १५ ॥

राजन्! तत्पश्चात् इन्द्रके वज्रतुल्य भल्लसे उनके सारथिका सिर काटकर शिनिवंशके प्रमुख वीर सात्यकिने कालाग्निके समान तेजस्वी छुरेसे सुदर्शनके पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशमान शोभाशाली कुण्डलमण्डित मस्तकको भी धड़से काट गिराया। ठीक उसी प्रकार, जैसे पूर्वकालमें वज्रधारी इन्द्रने समराङ्गणमें अत्यन्त बलवान् बलासुरका सिर बलपूर्वक काट लिया था ॥ १४-१५ ॥

निहत्य तं पार्थिवपुत्रपौत्रं
रणे यदूनामृषभस्तरस्वी।
मुदा समेतः परया महात्मा
रराज राजन् सुरराजकल्पः ॥ १६ ॥

नरेश्वर! राजाके पुत्र एवं पौत्र सुदर्शनका रणभूमिमें वध करके यदुकुलतिलक देवेन्द्रसदृश पराक्रमी वेगशाली महामनस्वी सात्यकि अत्यन्त प्रसन्न होकर विजयश्रीसे सुशोभित होने लगे ॥ १६ ॥

ततो ययावर्जुन एव येन
निवार्य सैन्यं तव मार्गणौघैः।
सदश्वयुक्तेन रथेन राजँ-
ल्लोकं विसिस्मापयिषुर्नृवीरः ॥ १७ ॥

राजन्! तदनन्तर लोगोंको आश्चर्यचकित करनेकी इच्छावाले नरवीर सात्यकि अपने सुन्दर अश्वोंसे जुते हुए रथके द्वारा बाणसमूहोंसे आपकी सेनाको हटाते हुए उसी मार्गसे चल दिये, जिससे अर्जुन गये थे ॥ १७ ॥

तत् तस्य विस्मापयनीयमग्र्य-
मपूजयन् योधवराः समेताः।
प्रवर्तमानानिषुगोचरेऽरीन्
ददाह बाणैर्हुतभुग् यथैव ॥ १८ ॥

उनके उस आश्चर्यजनक उत्तम पराक्रमकी वहाँ एकत्र हुए समस्त योद्धाओंने बड़ी प्रशंसा की। सात्यकि अपने बाणोंके पथमें आये हुए शत्रुओंको उन बाणोंद्वारा अग्निदेवके समान दग्ध कर रहे थे ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सुदर्शनवधे अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सुदर्शनवधविषयक एक सौ अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११८ ॥

एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकि और उनके सारथिका संवाद तथा सात्यकिद्वारा काम्बोजों और यवन आदिकी सेनाकी पराजय

संजय उवाच

ततः स सात्यकिर्धीमान् महात्मा वृष्णिपुङ्गवः।
सुदर्शनं निहत्याजौ यन्तारं पुनरब्रवीत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर वृष्णिवंशावतंस बुद्धिमान् महामनस्वी सात्यकिने युद्धमें सुदर्शनको मारकर सारथिसे फिर इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

रथाश्वनागकलिलं शरशक्त्यूर्मिमालिनम्।
खड्गमत्स्यं गदाग्राहं शूरायुधमहास्वनम् ॥ २ ॥
प्राणापहारिणं रौद्रं वादित्रोत्क्रुष्टनादितम्।
योधानामसुखस्पर्शं दुर्धर्षमजयैषिणाम् ॥ ३ ॥
तीर्णाः स्म दुस्तरं तात द्रोणानीकमहार्णवम्।
जलसंधबलेनाजौ पुरुषादैरिवावृतम् ॥ ४ ॥

'तात! रथ, घोड़े और हाथियोंसे भरी हुई द्रोणाचार्यकी सेना महासागरके समान थी। उसमें बाण और शक्ति आदि अस्त्र-शस्त्र तरंगमालाओंके समान प्रतीत होते थे। खड्ग मत्स्यके समान और गदा ग्राहके तुल्य थी। शूरवीरोंके आयुधोंके प्रहारसे जो महान् शब्द होता था, वही मानो महासागरका भयानक गर्जन था। बाजे बजानेकी ध्वनि और वीरोंके ललकारनेकी आवाजसे उस गर्जनका स्वर और भी बढ़ा हुआ था। योद्धाओंके लिये उसका स्पर्श अत्यन्त दुःखदायक था। जो विजयकी अभिलाषा नहीं रखते, ऐसे लोगोंके लिये वह प्राणनाशक भयंकर सैन्य-समुद्र दुर्धर्ष था। युद्धस्थलमें खड़ी हुई जलसंधकी सेनाने उसे राक्षसोंके समान घेर रक्खा था। उस दुस्तर सेना-सागरसे हमलोग पार हो गये हैं ॥ २–४ ॥

अतोऽन्यत् पृतनाशेषं मन्ये कुनदिकामिव।
तर्तव्यामल्पसलिलां चोदयाश्वानसम्भ्रमम् ॥ ५ ॥

'उससे भिन्न जो शेष सेना है, उसे मैं सुगमतापूर्वक लाँघनेयोग्य थोड़े जलवाली छोटी नदीके समान समझता हूँ। अतः तुम निर्भय होकर घोड़ोंको आगे बढ़ाओ ॥ ५ ॥

हस्तप्राप्तमहं मन्ये साम्प्रतं सव्यसाचिनम्।
निर्जित्य दुर्धरं द्रोणं सपदानुगमाहवे ॥ ६ ॥

'सेवकोंसहित दुर्धर्ष वीर द्रोणाचार्यको युद्धस्थलमें जीतकर मैं ऐसा मानता हूँ कि इस समय सव्यसाची अर्जुन हमारे हाथमें ही आ गये हैं ॥ ६ ॥

हार्दिक्यं योधवर्यं च मन्ये प्राप्तं धनंजयम्।
न हि मे जायते त्रासो दृष्ट्वा सैन्यान्यनेकशः ॥ ७ ॥
वह्नेरिव प्रदीप्तस्य वने शुष्कतृणोलपे।

'योद्धाओंमें श्रेष्ठ कृतवर्माको पराजित करके मैं ऐसा समझता हूँ कि अर्जुन मुझे मिल गये। जैसे सूखे तृण और लतावाले वनमें प्रज्वलित हुई अग्निके लिये कहीं कोई बाधा नहीं रहती, उसी प्रकार मुझे इन अनेक सेनाओंको देखकर तनिक भी त्रास नहीं हो रहा है ॥ ७½ ॥

पश्य पाण्डवमुख्येन यातां भूमिं किरीटिना ॥ ८ ॥
पत्त्यश्वरथनागौघैः पतितैर्विषमीकृताम्।

'देखो, पाण्डवप्रवर किरीटधारी अर्जुन जिस मार्गसे गये हैं, वहाँकी भूमि धराशायी हुए पैदलों, घोड़ों, रथों और हाथियोंके समुदायसे विषम एवं दुर्लङ्घ्य हो गयी है ॥ ८½ ॥

द्रवते तद् यथा सैन्यं तेन भग्नं महात्मना ॥ ९ ॥
रथैर्विपरिधावद्भिर्गजैरश्वैश्च सारथे।
कौशेयारुणसंकाशमेतदुद्धूयते रजः ॥ १० ॥

'सारथे! उन्हीं महात्मा अर्जुनकी खदेड़ी हुई वह सेना इधर-उधर भाग रही है। दौड़ते हुए रथों, हाथियों और घोड़ोंसे लाल रेशमके समान यह धूल ऊपरको उठ रही है ॥ ९–१० ॥

अभ्याशस्थमहं मन्ये श्वेताश्वं कृष्णसारथिम्।
स एष श्रूयते शब्दो गाण्डीवस्यामितौजसः ॥ ११ ॥

'इससे मैं समझता हूँ कि श्रीकृष्ण जिनके सारथि हैं, वे श्वेतवाहन अर्जुन हमारे निकट ही हैं, तभी यह अमितशक्तिशाली गाण्डीव धनुषकी टंकार सुनायी दे रही है ॥ ११ ॥

यादृशानि निमित्तानि मम प्रादुर्भवन्ति वै।
अनस्तंगत आदित्ये हन्ता सैन्धवमर्जुनः ॥ १२ ॥

'इस समय मेरे सामने जैसे शुभ शकुन प्रकट हो रहे हैं, उनसे जान पड़ता है अर्जुन सूर्यास्त होनेके पहले ही जयद्रथको मार डालेंगे ॥ १२ ॥

शनैर्विश्रम्भयन्नश्वान् याहि यत्रारिवाहिनी।
यत्रैते सतलत्राणाः सुयोधनपुरोगमाः ॥ १३ ॥

'सूत! धीरे-धीरे घोड़ोंको आराम देते हुए उस ओर चलो, जहाँ वह शत्रुसेना खड़ी है, जहाँ ये तलत्राण धारण किये दुर्योधन आदि योद्धा उपस्थित हैं ॥ १३ ॥

दंशिताः क्रूरकर्माणः काम्बोजा युद्धदुर्मदाः।
शरबाणासनधरा यवनाश्च प्रहारिणः ॥ १४ ॥
शकाः किराता दरदा बर्बरास्ताम्रलिप्तकाः।
अन्ये च बहवो म्लेच्छा विविधायुधपाणयः ॥ १५ ॥
यत्रैते सतलत्राणाः सुयोधनपुरोगमाः।
मामेवाभिमुखाः सर्वे तिष्ठन्ति समरार्थिनः ॥ १६ ॥

'जहाँ कवच धारण किये रणदुर्मद क्रूरकर्मा काम्बोज, धनुष-बाण धारण किये प्रहारकुशल यवन, शक, किरात,



सात्यकिका कौरव-सेनामें प्रवेश और युद्ध

दरद, बर्बर, ताम्रलिप्त तथा हाथोंमें भाँति-भाँतिके आयुध धारण किये अन्य बहुत-से म्लेच्छ—ये सबके सब जहाँ दुर्योधनको अगुआ बनाकर दस्ताने पहने युद्धकी इच्छासे मेरी ओर मुँह करके खड़े हैं, वहीं चलो ॥ १४–१६ ॥

एतान् सरथनागाश्वान् निहत्याजौ सपत्तिनः।
इदं दुर्गं महाघोरं तीर्णमेवोपधारय ॥ १७ ॥

'इन सबको युद्धस्थलमें रथ, हाथी, घोड़े और पैदलोंसहित मार लेनेपर निश्चितरूपसे समझ लो कि हमलोग इस अत्यन्त भयंकर दुर्गम संकटसे पार हो गये' ॥ १७ ॥

सूत उवाच

न सम्भ्रमो मे वार्ष्णेय विद्यते सत्यविक्रम।
यद्यपि स्यात् तव क्रुद्धो जामदग्न्योऽग्रतः स्थितः॥ १८ ॥

सारथिने कहा—सत्यपराक्रमी वृष्णिनन्दन ! आपके सामने क्रोधमें भरे हुए जमदग्निनन्दन परशुराम भी खड़े हो जायँ तो मुझे भय नहीं होगा ॥ १८ ॥

द्रोणो वा रथिनां श्रेष्ठः कृपो मद्रेश्वरोऽपि वा।
तथापि सम्भ्रमो न स्यात् त्वामाश्रित्य महाभुज॥ १९ ॥

महाबाहो ! रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य, कृपाचार्य अथवा मद्रराज शल्य ही क्यों न खड़े हों, तथापि आपके आश्रित रहकर मुझे कदापि भय नहीं हो सकता ॥ १९ ॥

त्वया सुबहवो युद्धे निर्जिताः शत्रुसूदन।
दंशिताः क्रूरकर्माणः काम्बोजा युद्धदुर्मदाः ॥ २० ॥
शरबाणासनधरा यवनाश्च प्रहारिणः।
शकाः किराता दरदा बर्बरास्ताम्रलिप्तकाः ॥ २१ ॥
अन्ये च बहवो म्लेच्छा विविधायुधपाणयः।
न च मे सम्भ्रमः कश्चिद् भूतपूर्वः कथंचन ॥ २२ ॥
किमुतैतत् समासाद्य धीरसंयुगगोष्पदम्।
आयुष्मन् कतरेण त्वां प्रापयामि धनंजयम् ॥ २३ ॥

शत्रुसूदन ! आपने पहले भी युद्धमें बहुतेरे कवचधारी, क्रूरकर्मा रणदुर्मद काम्बोजोंको परास्त किया है। धनुष-बाण धारण करनेवाले प्रहारकुशल यवनोंको जीता है। शकों, किरातों, दरदों, बर्बरों, ताम्रलिप्तों तथा हाथोंमें नाना प्रकारके आयुध लिये अन्य बहुत-से म्लेच्छोंको पराजित किया है। इन अवसरोंपर पहले कभी कोई किसी प्रकारका भय नहीं हुआ था। फिर इस गायकी खुरके समान तुच्छ युद्धस्थलमें आकर क्या भय हो सकता है ? आयुष्मन् ! बताइये, इन दो मार्गोंमेंसे किसके द्वारा आपको अर्जुनके पास पहुँचाऊँ२०–२३

केषां क्रुद्धोऽसि वार्ष्णेय केषां मृत्युरुपस्थितः।
केषां संयमनीमद्य गन्तुमुत्सहते मनः ॥ २४ ॥

वार्ष्णेय ! आप किनके ऊपर क्रुद्ध हैं, किनकी मौत आ गयी है और किनका मन आज यमपुरीमें जानेके लिये उत्साहित हो रहा है ? ॥ २४ ॥

के त्वां युधि पराक्रान्तं कालान्तकयमोपमम्।
दृष्ट्वा विक्रमसम्पन्नं विद्रविष्यन्ति संयुगे ॥ २५ ॥
केषां वैवस्वतो राजा स्मरतेऽद्य महाभुज।

युद्धमें काल, अन्तक और यमके समान पराक्रम दिखानेवाले आप-जैसे बल-विक्रमसम्पन्न वीरको देखकर आज कौन-कौन-से योद्धा मैदान छोड़कर भागनेवाले हैं ? महाबाहो ! आज राजा यम किनका स्मरण कर रहे हैं ? ॥ २५½ ॥

सात्यकिरुवाच

मुण्डानेतान् हनिष्यामि दानवानिव वासवः ॥ २६ ॥
प्रतिज्ञां पारयिष्यामि काम्बोजानेव मां वह।
अद्यैषां कदनं कृत्वा प्रियं यास्यामि पाण्डवम् ॥ २७ ॥

सात्यकि बोले—सूत ! जैसे इन्द्र दानवोंका वध करते हैं, उसी प्रकार आज मैं इन मथमुंडे काम्बोजोंका ही वध करूँगा और ऐसा करके अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर लूँगा। अतः तुम उन्हींकी ओर मुझे ले चलो। इन सबका संहार करके ही आज मैं अपने प्रिय सुहृद् पाण्डुनन्दन अर्जुनके पास चलूँगा ॥ २६-२७ ॥

अद्य द्रक्ष्यन्ति मे वीर्यं कौरवाः ससुयोधनाः।
मुण्डानीके हते सूत सर्वसैन्येषु चासकृत् ॥ २८ ॥
अद्य कौरवसैन्यस्य दीर्यमाणस्य संयुगे।
श्रुत्वा विरावं बहुधा संतप्स्यति सुयोधनः ॥ २९ ॥

आज दुर्योधनसहित समस्त कौरव मेरा पराक्रम देखेंगे। सूत ! आज इन सिरमुण्डोंके मारे जाने तथा अन्य सारी सेनाओंका बारंबार विनाश होनेपर युद्धस्थलमें छिन्न-भिन्न होती हुई कौरवसेनाका नाना प्रकारसे आर्तनाद सुनकर दुर्योधनको बड़ा संताप होगा ॥ २८-२९ ॥

अद्य पाण्डवमुख्यस्य श्वेताश्वस्य महात्मनः।
आचार्यस्य कृतं मार्गं दर्शयिष्यामि संयुगे ॥ ३० ॥

आज रणक्षेत्रमें मैं अपने आचार्य पाण्डवप्रवर श्वेतवाहन महात्मा अर्जुनके प्रकट किये हुए मार्गको दिखाऊँगा ॥ ३० ॥

अद्य मद्बाणनिहतान् योधमुख्यान् सहस्रशः।
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा पश्चात्तापं गमिष्यति ॥ ३१ ॥

आज मेरे बाणोंसे अपने सहस्रों प्रमुख योद्धाओंको मारा गया देखकर राजा दुर्योधन अत्यन्त पश्चात्ताप करेगा ॥ ३१ ॥

अद्य मे क्षिप्रहस्तस्य क्षिपतः सायकोत्तमान्।
अलातचक्रप्रतिमं धनुर्द्रक्ष्यन्ति कौरवाः ॥ ३२ ॥

आज शीघ्रतापूर्वक हाथ चलाकर उत्तम बाणोंका प्रहार करते हुए मेरे धनुषको कौरवलोग अलातचक्रके समान देखेंगे ॥ ३२ ॥

मत्सायकचिताङ्गानां रुधिरं स्रवतां मुहुः।
सैनिकानां वधं दृष्ट्वा संतप्स्यति सुयोधनः ॥ ३३ ॥

मैं अपने बाणोंसे सारे कौरवसैनिकोंका शरीर व्याप्त कर दूँगा और वे बारंबार रक्त बहाते हुए प्राण त्याग देंगे। इस प्रकार अपने सैनिकोंका संहार देखकर सुयोधन संतप्त हो उठेगा ॥ ३३ ॥

अद्य मे क्रुद्धरूपस्य निघ्नतश्च वरान् वरान्।
द्विरर्जुनमिमं लोकं मंस्यतेऽद्य सुयोधनः ॥ ३४ ॥

आज क्रोधमें भरकर मैं कौरवसेनाके उत्तमोत्तम वीरोंको चुन-चुनकर मारूँगा, जिससे दुर्योधनको यह मालूम होगा कि अब संसारमें दो अर्जुन प्रकट हो गये हैं ॥ ३४ ॥

अद्य राजसहस्राणि निहतानि मया रणे।
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा संतप्स्यति महामृधे ॥ ३५ ॥

आज महासमरमें मेरे द्वारा सहस्रों राजाओंका विनाश देखकर राजा दुर्योधनको बड़ा संताप होगा ॥ ३५ ॥

अद्य स्नेहं च भक्तिं च पाण्डवेषु महात्मसु।
हत्वा राजसहस्राणि दर्शयिष्यामि राजसु ॥ ३६ ॥
बलं वीर्यं कृतज्ञत्वं मम ज्ञास्यन्ति कौरवाः।

आज सहस्रों राजाओंका संहार करके मैं इन राजाओंके समाजमें महात्मा पाण्डवोंके प्रति अपने स्नेह और भक्तिका प्रदर्शन करूँगा। अब कौरवोंको मेरे बल, पराक्रम और कृतज्ञताका परिचय मिल जायगा ॥ ३६½ ॥

संजय उवाच

एवमुक्तस्तदा सूतः शिक्षितान् साधुवाहिनः ॥ ३७ ॥
शशाङ्कसंनिकाशान् वै वाजिनो व्यनुदद् भृशम्।

संजय कहते हैं—राजन्! सात्यकिके ऐसा कहनेपर सारथिने चन्द्रमाके समान श्वेत वर्णवाले उन घोड़ोंको, जो सुशिक्षित और अच्छी प्रकार सवारीका काम देनेवाले थे, बड़े वेगसे हाँका ॥ ३७½ ॥

ते पिबन्त इवाकाशं युयुधानं हयोत्तमाः ॥ ३८ ॥
प्रापयन् यवनाञ्शीघ्रं मनःपवनरंहसः।

मन और वायुके समान वेगवाले उन उत्तम घोड़ोंने आकाशको पीते हुए-से चलकर युयुधानको शीघ्र ही यवनोंके पास पहुँचा दिया ॥ ३८½ ॥

सात्यकिं ते समासाद्य पृतनास्वनिवर्तिनम् ॥ ३९ ॥
बहवो लघुहस्ताश्च शरवर्षैरवाकिरन्।

युद्धमें कभी पीछे न हटनेवाले सात्यकिको अपनी सेनाओंके बीच पाकर शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले बहुतेरे यवनोंने उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ३९½ ॥

तेषामिषूनथास्त्राणि वेगवान् नतपर्वभिः ॥ ४० ॥
अच्छिनत् सात्यकी राजन् नैनं ते प्राप्नुवञ्शराः।

राजन्! वेगशाली सात्यकिने झुकी हुई गाँठवाले अपने बाणोंद्वारा उन सबके बाणों तथा अन्य अस्त्रोंको काट गिराया। वे बाण उनके पासतक पहुँच न सके ॥ ४०½ ॥

रुक्मपुङ्खैः सुनिशितैर्गार्ध्रपत्रैरजिह्मगैः ॥ ४१ ॥
उच्चकर्त शिरांस्युग्रो यवनानां भुजानपि।
शैक्यायसानि वर्माणि कांस्यानि च समन्ततः ॥ ४२ ॥

उन भयंकर वीरने सब ओर घूम-घूमकर सोनेके पुङ्ख और गीधकी पाँखवाले तीखे बाणोंसे यवनोंके मस्तक, भुजाएँ तथा लाल लोहे एवं काँसके बने हुए कवच भी काट डाले ॥ ४१–४२ ॥

भित्त्वा देहांस्तथा तेषां शरा जग्मुर्महीतलम्।
ते हन्यमाना वीरेण म्लेच्छाः सात्यकिना रणे ॥ ४३ ॥
शतशोऽभ्यपतंस्तत्र व्यसवो वसुधातले।

वे बाण उनके शरीरोंको विदीर्ण करके पृथ्वीमें घुस गये। वीर सात्यकिके द्वारा रणभूमिमें आहत होकर सैकड़ों म्लेच्छ प्राण त्यागकर धराशायी हो गये ॥ ४३½ ॥

सुपूर्णायतमुक्तैस्तानव्यवच्छिन्नपिण्डितैः ॥ ४४ ॥
पञ्च षट् सप्त चाष्टौ च बिभेद यवनाञ्शरैः।

वे कानतक खींचकर छोड़े हुए और अविच्छिन्न गतिसे परस्पर सटकर निकलते हुए बाणोंद्वारा पाँच, छः, सात और आठ यवनोंको एक ही साथ विदीर्ण कर डालते थे ॥ ४४½ ॥

काम्बोजानां सहस्रैश्च शकानां च विशाम्पते ॥ ४५ ॥
शबराणां किरातानां बर्बराणां तथैव च।
अगम्यरूपां पृथिवीं मांसशोणितकर्दमाम् ॥ ४६ ॥
कृतवांस्तत्र शैनेयः क्षपयंस्तावकं बलम्।

प्रजानाथ! सात्यकिने आपकी सेनाका संहार करते हुए वहाँकी भूमिको सहस्रों काम्बोजों, शकों, शबरों, किरातों और बर्बरोंकी लाशोंसे पाटकर अगम्य बना दिया था। वहाँ मांस और रक्तकी कीच जम गयी थी ॥ ४५–४६½ ॥

दस्यूनां सशिरस्त्राणैः शिरोभिर्लूनमूर्धजैः ॥ ४७ ॥
दीर्घकूर्चैर्मही कीर्णा विबर्हैरण्डजैरिव।

उन लुटेरोंके लंबी दाढ़ीवाले शिरस्त्राणयुक्त मुण्डित मस्तकोंसे आच्छादित हुई रणभूमि पंखहीन पक्षियोंसे व्याप्त हुई-सी जान पड़ती थी ॥ ४७½ ॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गैस्तैस्तदायोधनं बभौ ॥ ४८ ॥
कबन्धैः संवृतं सर्वं ताम्राभ्रैः खमिवावृतम्।

जिनके सारे अङ्ग खूनसे लथपथ हो रहे थे, उन कबन्धोंसे भरा हुआ वह सारा रणक्षेत्र लाल रंगके बादलोंसे ढके हुए आकाशके समान जान पड़ता था ॥ ४८½ ॥

वज्राशनिसमस्पर्शैः सुपर्वभिरजिह्मगैः ॥ ४९ ॥
ते सात्वतेन निहताः समावव्रुर्वसुंधराम्।

वज्र और विद्युत्के समान कठोर स्पर्शवाले सुन्दर पर्वयुक्त बाणोंद्वारा सात्यकिके हाथसे मारे गये उन यवनोंने वहाँकी भूमिको अपनी लाशोंसे ढक लिया ॥४९½ ॥

अल्पावशिष्टाः सम्भग्नाः कृच्छ्रप्राणा विचेतसः ॥ ५० ॥
जिताः संख्ये महाराज युयुधानेन दंशिताः ।
पार्ष्णिभिश्च कशाभिश्च ताडयन्तस्तुरङ्गमान् ॥ ५१ ॥
जवमुत्तममास्थाय सर्वतः प्राद्रवन् भयात् ।

महाराज ! थोड़ेसे यवन शेष रह गये थे, जो बड़ी कठिनाईसे अपने प्राण बचाये हुए थे । वे अपने समुदायसे भ्रष्ट होकर अचेत-से हो रहे थे। उन सभी कवचधारी यवनोंको युयुधानने युद्धस्थलमें जीत लिया था । वे हाथों और कोड़ोंसे अपने घोड़ोंको पीटते हुए उत्तम वेगका आश्रय ले चारों ओर भयके मारे भाग गये ॥ ५०–५१½ ॥

काम्बोजसैन्यं विद्राव्य दुर्जयं युधि भारत ॥ ५२ ॥
यवनानां च तत् सैन्यं शकानां च महद् बलम् ।
ततः स पुरुषव्याघ्रः सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ ५३ ॥
प्रविष्टस्तावकाञ्जित्वा सूतं याहीत्यचोदयत् ।

भरतनन्दन ! उस रणक्षेत्रमें दुर्जय काम्बोजसेनाको, यवनसेनाको तथा शकोंकी विशाल वाहिनीको खदेड़कर सत्यपराक्रमी पुरुषसिंह सात्यकि आपके सैनिकोंपर विजयी हो कौरवसेनामें घुस गये और सारथिको आदेश देते हुए बोले—'आगे बढ़ो' ॥ ५२–५३½ ॥

तत् तस्य समरे कर्म दृष्ट्वान्यैरकृतं पुरा ॥ ५४ ॥
चारणाः सहगन्धर्वाः पूजयाञ्चक्रिरे भृशम् ।

जिसे पहले दूसरोंने नहीं किया था, समराङ्गणमें सात्यकिके उस पराक्रमको देखकर चारणों और गन्धर्वोंने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ ५४½ ॥

तं यान्तं पृष्ठगोप्तारमर्जुनस्य विशाम्पते ।
चारणाः प्रेक्ष्य संहृष्टास्त्वदीयाश्चाभ्यपूजयन् ॥ ५५ ॥

प्रजानाथ ! अर्जुनके पृष्ठरक्षक सात्यकिको जाते देख चारणोंको बड़ा हर्ष हुआ और आपके सैनिकोंने भी उनकी बड़ी सराहना की ॥ ५५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे यवनपराजये एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिके कौरवसेनामें प्रवेशके प्रसंगमें यवनोंकी पराजयविषयक एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११९ ॥

विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिद्वारा दुर्योधनकी सेनाका संहार तथा भाइयोंसहित दुर्योधनका पलायन

संजय उवाच

जित्वा यवनकाम्बोजान् युयुधानस्ततोऽर्जुनम् ।
जगाम तव सैन्यस्य मध्येन रथिनां वरः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! रथियोंमें श्रेष्ठ युयुधान यवनों और काम्बोजोंको पराजित करके आपकी सेनाके बीचसे होते हुए अर्जुनकी ओर चले ॥ १ ॥

चारुदंष्ट्रो नरव्याघ्रो विचित्रकवचध्वजः ।
मृगं व्याघ्र इवाजिघ्रंस्तव सैन्यमभीषयत् ॥ २ ॥

पुरुषसिंह सात्यकिके दाँत बड़े सुन्दर थे । उनके कवच और ध्वज भी विचित्र थे । वे मृगकी गन्ध लेते हुए व्याघ्रके समान आपकी सेनाको भयभीत कर रहे थे ॥ २ ॥

स रथेन चरन् मार्गान् धनुरभ्रामयद् भृशम् ।
रुक्मपृष्ठं महावेगं रुक्मचन्द्रकसंकुलम् ॥ ३ ॥

युयुधान रथके द्वारा विभिन्न मार्गोंपर विचरते हुए अपने उस महावेगशाली धनुषको जोर-जोरसे घुमा रहे थे, जिसका पृष्ठभाग सोनेसे मढ़ा था और जो सुवर्णमय चन्द्राकार चिह्नोंसे व्याप्त था ॥ ३ ॥

रुक्माङ्गदशिरस्त्राणो रुक्मवर्मसमावृतः ।
रुक्मध्वजधनुः शूरो मेरुशृङ्गमिवाबभौ ॥ ४ ॥

उनके भुजबंद और शिरस्त्राण सुवर्णके बने हुए थे । वे स्वर्णमय कवचसे आच्छादित थे । सोनेके ध्वज और धनुषसे सुशोभित शूरवीर सात्यकि मेरुपर्वतके शिखरकी भाँति शोभा पा रहे थे ॥ ४ ॥

सधनुर्मण्डलः संख्ये तेजोभास्कररश्मिवान् ।
शरदीवोदितः सूर्यो नृसूर्यो विरराज ह ॥ ५ ॥

युद्धस्थलमें मण्डलाकार धनुष धारण किये अपने तेजस्वरूप सूर्यरश्मियोंसे प्रकाशित, मानव-सूर्य सात्यकि शरत्कालमें उगे हुए सूर्यदेवके समान देदीप्यमान हो रहे थे ॥

वृषभस्कन्धविक्रान्तो वृषभाक्षो नरर्षभः ।
तावकानां बभौ मध्ये गवां मध्ये यथा वृषः ॥ ६ ॥

उनके कंधे और चाल-ढाल वृषभके समान थे । नेत्र भी वृषभके ही तुल्य बड़े-बड़े थे । वे नरश्रेष्ठ सात्यकि आपके सैनिकोंके बीचमें उसी प्रकार सुशोभित होते थे, जैसे गौओंके झुंडमें साँड़की शोभा होती है ॥ ६ ॥

मत्तद्विरदसंकाशं मत्तद्विरदगामिनम् ।
प्रभिन्नमिव मातङ्गं यूथमध्ये व्यवस्थितम् ॥ ७ ॥
व्याघ्रा इव जिघांसन्तस्त्वदीयाः समुपाद्रवन् ।

मतवाले हाथीके समान पराक्रमी और मदोन्मत्त गजराज-

के समान मन्दगतिसे चलनेवाले सात्यकि जब मदस्रावी मातङ्गके समान कौरवसैनिकोंके मध्यभागमें खड़े हुए, उस समय आपके योद्धा उन्हें मार डालनेकी इच्छासे भूखे बाघोंके समान उनपर टूट पड़े ॥ ७½ ॥

द्रोणानीकमतिक्रान्तं भोजानीकं च दुस्तरम् ॥ ८ ॥
जलसंधार्णवं तीर्त्वा काम्बोजानां च वाहिनीम् ।
हार्दिक्यमकरान्मुक्तं तीर्णं वै सैन्यसागरम् ॥ ९ ॥
परिवव्रुः सुसंक्रुद्धास्त्वदीयाः सात्यकिं रथाः ।

वे सात्यकि जब द्रोणाचार्य और कृतवर्माकी दुस्तर सेनाको लाँघकर जलसंधरूपी सिन्धुको पार करके काम्बोजोंकी सेनाका संहारकर कृतवर्मारूपी ग्राहके चंगुलसे छूटकर आपकी सेनाके समुद्रसे पार हो गये, उस समय अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए आपके रथियोंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ॥ ८–९½ ॥

दुर्योधनश्चित्रसेनो दुःशासनविविंशती ॥ १० ॥
शकुनिर्दुःसहश्चैव युवा दुर्धर्षणः क्रथः ।
अन्ये च बहवः शूराः शस्त्रवन्तो दुरासदाः ॥ ११ ॥
पृष्ठतः सात्यकिं यान्तमन्वधावन्नमर्षिणः ।

दुर्योधन, चित्रसेन, दुःशासन, विविंशति, शकुनि, दुःसह, तरुण वीर दुर्धर्ष क्रथ तथा अन्य बहुत-से दुर्जय शूरवीर, अमर्षमें भरकर अस्त्र-शस्त्र लिये वहाँ आगे बढ़ते हुए सात्यकिके पीछे-पीछे दौड़े ॥ १०–११½ ॥

अथ शब्दो महानासीत् तव सैन्यस्य मारिष ॥ १२ ॥
मारुतोद्धूतवेगस्य सागरस्येव पर्वणि ।

माननीय नरेश ! पूर्णिमाके दिन वायुके झकोरोंसे वेगपूर्वक ऊपर उठनेवाले महासागरके समान आपकी सेनामें बड़े जोर-जोरसे गर्जन-तर्जनका शब्द होने लगा ॥ १२½ ॥

तानभिद्रवतः सर्वान् समीक्ष्य शिनिपुङ्गवः ॥ १३ ॥
शनैर्याहीति यन्तारमब्रवीत् प्रहसन्निव ।

उन सबको आक्रमण करते देख शिनिप्रवर सात्यकिने अपने सारथिसे हँसते हुए-से कहा—'सूत ! धीरे-धीरे चलो ॥

इदमेतत् समुद्धूतं धार्तराष्ट्रस्य यद् बलम् ॥ १४ ॥
मामेवाभिमुखं तूर्णं गजाश्वरथपत्तिमत् ।
नादयन् वै दिशः सर्वा रथघोषेण सारथे ॥ १५ ॥
पृथिवीं चान्तरिक्षं च कम्पयन् सागरानपि ।
एतद् बलार्णवं सूत वारयिष्ये महारणे ॥ १६ ॥
पौर्णमास्यामिवोद्धूतं वेलेव मकरालयम् ।

'सूत ! यह हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसे भरी हुई जो दुर्योधनकी सेना युद्धके लिये उद्यत हो मेरी ही ओर तीव्र वेगसे चली आ रही है, इस सेना-समुद्रको मैं इस महान् समराङ्गणमें अपने रथकी घर्घराहटसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करता तथा पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं सागरोंको भी कँपाता हुआ आगे बढ़नेसे रोकूँगा। ठीक उसी तरह, जैसे तटकी भूमि पूर्णिमाको उद्वेलित होनेवाले महासागरको रोक देती है ॥ १४–१६½ ॥

पश्य मे सूत विक्रान्तमिन्द्रस्येव महामृधे ॥ १७ ॥
एष सैन्यानि शत्रूणां विधमामि शितैः शरैः ।

'सारथे ! इस महायुद्धमें देवराज इन्द्रके समान मेरा पराक्रम तुम देखो । मैं अभी-अभी अपने पैने बाणोंसे शत्रुओंकी सेनाओंका संहार कर डालता हूँ ॥ १७½ ॥

निहतानाहवे पश्य पदात्यश्वरथद्विपान् ॥ १८ ॥
मच्छरैरग्निसंकाशैर्विद्धदेहान् सहस्रशः ।

'इस युद्धस्थलमें मेरे द्वारा मारे गये सहस्रों पैदलों, घुड़सवारों, रथियों और हाथीसवारोंको देखना, जिनके शरीर मेरे अग्निसदृश बाणोंद्वारा विदीर्ण हुए होंगे' ॥ १८½ ॥

इत्येवं ब्रुवतस्तस्य सात्यकेरमितौजसः ॥ १९ ॥
समीपे सैनिकास्ते तु शीघ्रमीयुर्युयुत्सवः ।
जह्याद्रवस्व तिष्ठेति पश्य पश्येति वादिनः ॥ २० ॥

अमित तेजस्वी सात्यकि जब इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय युद्धके लिये उत्सुक हुए आपके सारे सैनिक शीघ्र ही उनके समीप आ पहुँचे । वे 'दौड़ो, मारो, ठहरो, देखो-देखो' इत्यादि बातें बोल रहे थे ॥ १९–२० ॥

तानेवं ब्रुवतो वीरान् सात्यकिर्निशितैः शरैः ।
जघान त्रिशतानश्वान् कुञ्जरांश्च चतुःशतान् ॥ २१ ॥
(लघ्वस्त्रश्चित्रयोधी च प्रहसञ्शिनिपुङ्गवः ।)

शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलानेवाले एवं विचित्र युद्धकी कलामें निपुण शिनिप्रवर सात्यकिने हँसते हुए वहाँ उपर्युक्त बातें बोलनेवाले तीन सौ वीर घुड़सवारों तथा चार सौ हाथीसवारको अपने तीखे बाणोंसे मार गिराया ॥ २१ ॥

स सम्प्रहारस्तुमुलस्तस्य तेषां च धन्विनाम् ।
देवासुररणप्रख्यः प्रावर्तत जनक्षयः ॥ २२ ॥

सात्यकि तथा आपकी सेनाके धनुर्धरोंका वह नरसंहारकारी युद्ध देवासुर-संग्रामके समान अत्यन्त भयंकर हो चला॥

मेघजालनिभं सैन्यं तव पुत्रस्य मारिष ।
प्रत्यगृह्णाच्छिनेः पौत्रः शरैराशीविषोपमैः ॥ २३ ॥

माननीय नरेश ! शिनिपौत्र सात्यकिने अपने विषधर सर्पके समान भयंकर बाणोंद्वारा मेघोंकी घटाके समान प्रतीत होनेवाली आपके पुत्रकी सेनाका अकेले ही सामना किया ॥

प्रच्छाद्यमानः समरे शरजालैः स वीर्यवान् ।
असम्भ्रमन् महाराज तावकानवधीद् बहून् ॥ २४ ॥

महाराज ! उस समराङ्गणमें पराक्रमी सात्यकि बाणोंके समूहसे आच्छादित हो गये थे, तो भी उन्होंने मनमें तनिक भी घबराहट नहीं आने दी और आपके बहुत-से सैनिकोंका संहार कर डाला ॥ २४ ॥

आश्चर्यं तत्र राजेन्द्र सुमहद् दृष्टवानहम्।
न मोघः सायकः कश्चित् सात्यकेरभवत् प्रभो ॥ २५ ॥

शक्तिशाली राजेन्द्र! वहाँ सबसे महान् आश्चर्यकी बात मैंने यह देखी कि सात्यकिका कोई भी बाण व्यर्थ नहीं गया ॥

रथनागाश्वकलिलः पदात्यूर्मिसमाकुलः।
शैनेयवेलामासाद्य स्थितः सैन्यमहार्णवः ॥ २६ ॥

रथ, हाथी और घोड़ोंसे भरी तथा पैदलरूपी लहरोंसे व्याप्त हुई आपकी सागर-सदृश सेना सात्यकिरूपी तटभूमिके समीप आकर अवरुद्ध हो गयी ॥ २६ ॥

सम्भ्रान्तनरनागाश्वमावर्तत मुहुर्मुहुः।
तत् सैन्यमिषुभिस्तेन वध्यमानं समन्ततः ॥ २७ ॥

सात्यकिके बाणोंद्वारा सब ओरसे मारी जाती हुई आपकी सेनाके पैदल, हाथी और घोड़े सभी घबरा गये और बारंबार चक्कर काटने लगे ॥ २७ ॥

बभ्राम तत्र तत्रैव गावः शीतार्दिता इव।
पदातिनं रथं नागं सादिनं तुरगं तथा ॥ २८ ॥
अविद्धं तत्र नाद्राक्षं युयुधानस्य सायकैः।

सर्दीसे पीड़ित हुई गायोंके समान आपकी सारी सेना वहीं चक्कर लगा रही थी। मैंने वहाँ एक भी पैदल, रथी, हाथी तथा सवारसहित घोड़ेको ऐसा नहीं देखा, जो युयुधानके बाणोंसे विद्ध न हुआ हो ॥ २८½ ॥

न तादृक् कदनं राजन् कृतवांस्तत्र फाल्गुनः ॥ २९ ॥
यादृक् क्षयमनीकानामकरोत् सात्यकिर्नृप।

राजन्! नरेश्वर! सात्यकिने आपके सैनिकोंका जैसा संहार किया था, वैसा वहाँ अर्जुनने भी नहीं किया था ॥ २९½ ॥

अत्यर्जुनं शिनेः पौत्रो युध्यते पुरुषर्षभः ॥ ३० ॥
वीतभीर्लाघवोपेतः कृतित्वं सम्प्रदर्शयन्।

शिनिपौत्र पुरुषश्रेष्ठ सात्यकि निर्भय हो बड़ी फुर्तीसे अस्त्र चलाते और अपनी कुशलताका प्रदर्शन करते हुए अर्जुनसे भी अधिक पराक्रमपूर्वक युद्ध कर रहे थे ॥ ३०½ ॥

ततो दुर्योधनो राजा सात्वतस्य त्रिभिः शरैः ॥ ३१ ॥
विव्याध सूतं निशितैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान्।
सात्यकिं च त्रिभिर्विद्ध्वा पुनरष्टाभिरेव च ॥ ३२ ॥

तब राजा दुर्योधनने तीन बाणोंसे सात्यकिके सारथिको और चार पैने बाणोंद्वारा उनके चारों घोड़ोंको घायल कर दिया। तत्पश्चात् सात्यकिको भी पहले तीन बाणोंसे बींधकर फिर आठ बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३१-३२ ॥

दुःशासनः षोडशभिर्विव्याध शिनिपुङ्गवम्।
शकुनिः पञ्चविंशत्या चित्रसेनश्च पञ्चभिः ॥ ३३ ॥

तदनन्तर दुःशासनने सोलह, शकुनिने पचीस और चित्रसेनने पाँच बाणोंद्वारा शिनिप्रवर सात्यकिको बींध डाला ॥

दुःसहः पञ्चदशभिर्विव्याधोरसि सात्यकिम्।
उत्स्मयन् वृष्णिशार्दूलस्तथा बाणैः समाहतः ॥ ३४ ॥
तानविध्यन्महाराज सर्वानेव त्रिभिस्त्रिभिः।

इसके बाद दुःसहने सात्यकिकी छातीमें पंद्रह बाण मारे। महाराज! इस प्रकार उन बाणोंसे आहत होकर वृष्णिवंशके सिंह सात्यकिने मुसकराते हुए ही उन सबको ही तीन-तीन बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ३४½ ॥

गाढविद्धानरीन् कृत्वा मार्गणैः सोऽतितेजनैः ॥ ३५ ॥
शैनेयः श्येनवत् संख्ये व्यचरल्लघुविक्रमः।

उस युद्धस्थलमें शीघ्रतापूर्वक पराक्रम करनेवाले शिनिवंशी सात्यकि अपने अत्यन्त तेज बाणोंद्वारा शत्रुओंको गहरी चोट पहुँचाकर बाजके समान सब ओर विचरने लगे ॥ ३५½ ॥

सौबलस्य धनुश्छित्त्वा हस्तावापं निकृत्य च ॥ ३६ ॥
दुर्योधनं त्रिभिर्बाणैरभ्यविध्यत् स्तनान्तरे।

उन्होंने सुबलपुत्र शकुनिके धनुष और दस्ताने काटकर दुर्योधनकी छातीमें तीन बाण मारे ॥ ३६½ ॥

चित्रसेनं शतेनैव दशभिर्दुःसहं तथा ॥ ३७ ॥
दुःशासनं तु विंशत्या विव्याध शिनिपुङ्गवः।

फिर शिनिवंशके प्रमुख वीरने चित्रसेनको सौ, दुःसहको दस और दुःशासनको बीस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ३७½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय श्यालस्तव विशाम्पते ॥ ३८ ॥
अष्टाभिः सात्यकिं विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः।
दुःशासनश्च दशभिर्दुःसहश्च त्रिभिः शरैः ॥ ३९ ॥

प्रजानाथ! तत्पश्चात् आपके सालेने दूसरा धनुष लेकर सात्यकिको पहले आठ बाण मारे। फिर पाँच बाणोंसे उन्हें घायल कर दिया। दुःशासनने दस और दुःसहने भी तीन बाण मारे ॥ ३८-३९ ॥

दुर्मुखश्च द्वादशभी राजन् विव्याध सात्यकिम्।
दुर्योधनस्त्रिसप्तत्या विद्ध्वा भारत माधवम् ॥ ४० ॥
ततोऽस्य निशितैर्बाणैस्त्रिभिर्विव्याध सारथिम्।

राजन्! दुर्मुखने बारह बाणोंसे सात्यकिको क्षत-विक्षत कर दिया। भारत! इसके बाद दुर्योधनने तिहत्तर बाणोंसे युयुधानको घायल करके तीन पैने बाणोंद्वारा उनके सारथिको भी बींध डाला ॥ ४०½ ॥

तान् सर्वान् सहिताञ्शूरान् यतमानान् महारथान् ॥
पञ्चभिः पञ्चभिर्बाणैः पुनर्विव्याध सात्यकिः।

तब सात्यकिने एक साथ विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले उन समस्त शूरवीर महारथियोंको पुनः पाँच-पाँच बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ४१½ ॥

ततः स रथिनां श्रेष्ठस्तव पुत्रस्य सारथिम् ॥ ४२ ॥
आजघानाशु भल्लेन स हतो न्यपतद् भुवि।

तत्पश्चात् रथियोंमें श्रेष्ठ सात्यकिने आपके पुत्रके सारथिके ऊपर शीघ्र ही एक भल्लका प्रहार किया। सारथि उसके द्वारा मारा जाकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ४२½ ॥

पतिते सारथौ तस्मिंस्तव पुत्ररथः प्रभो ॥ ४३ ॥
वातायमानैस्तैरश्वैरपानीयत संगरात्।

प्रभो! उस सारथिके धराशायी होनेपर आपके पुत्रका रथ हवाके समान तीव्र वेगसे भागनेवाले घोड़ोंद्वारा युद्धस्थलसे दूर हटा दिया गया ॥ ४३½ ॥

ततस्तव सुता राजन् सैनिकाश्च विशाम्पते ॥ ४४ ॥
राज्ञो रथमभिप्रेक्ष्य विद्रुताः शतशोऽभवन्।

राजन्! प्रजानाथ! तदनन्तर आपके पुत्र और सैनिक राजा दुर्योधनके रथकी वैसी दशा देखकर सैकड़ोंकी संख्यामें भाग खड़े हुए ॥ ४४½ ॥

विद्रुतं तत्र तत् सैन्यं दृष्ट्वा भारत सात्यकिः ॥ ४५ ॥
अवाकिरच्छरैस्तीक्ष्णै रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः।

भारत! आपकी सेनाको भागती देख सात्यकिने सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले तीखे बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ४५½ ॥

विद्राव्य सर्वसैन्यानि तावकानि सहस्रशः ॥ ४६ ॥
प्रययौ सात्यकी राजञ्श्वेताश्वस्य रथं प्रति।

राजन्! इस प्रकार आपके सहस्रों सैनिकोंको भगाकर सात्यकि श्वेतवाहन अर्जुनके रथकी ओर चल दिये ॥४६½॥

(तं प्रयान्तं महाबाहुं तावकाः प्रेक्ष्य मारिष।
दृष्टं चादृष्टवत्कृत्वा क्रियामन्यां प्रयोजयन् ॥)

आर्य! महाबाहु सात्यकिको आगे जाते देखकर आपके सैनिक उस देखी हुई घटनाको भी अनदेखी करके दूसरे काममें लग गये ॥

तं शरानाददानं च रक्षमाणं च सारथिम्।
आत्मानं पालयानं च तावकाः समपूजयन् ॥ ४७ ॥

सात्यकि बाणोंको ग्रहण करते हुए अपनी और सारथिकी भी रक्षा करते थे। उनके इस कार्यकी आपके सैनिकोंने भी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे दुर्योधनपलायने विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिका शत्रुसेनामें प्रवेश और दुर्योधनका पलायनविषयक एक सौ बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १½ श्लोक मिलाकर कुल ४८½ श्लोक हैं)

एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिके द्वारा पाषाणयोधी म्लेच्छोंकी सेनाका संहार और दुःशासनका सेनासहित पलायन

धृतराष्ट्र उवाच

सम्प्रमृद्य महत् सैन्यं यान्तं शैनेयमर्जुनम्।
निर्ह्रीका मम ते पुत्राः किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! मेरी विशाल सेनाको रौंदकर जाते हुए सात्यकि और अर्जुनको देखकर मेरे उन निर्लज्ज पुत्रोंने क्या किया? ॥ १ ॥

कथं वैषां तदा युद्धे धृतिरासीन्मुमूर्षताम्।
शैनेयचरितं दृष्ट्वा यादृशं सव्यसाचिनः ॥ २ ॥

वे सब-के-सब मरना चाहते थे। उस समय युद्धस्थलमें अर्जुनके समान ही सात्यकिका चरित्र देखकर उनकी कैसी धारणा हुई थी? ॥ २ ॥

किं नु वक्ष्यन्ति ते क्षात्रं सैन्यमध्ये पराजिताः।
कथं नु सात्यकिर्युद्धे व्यतिक्रान्तो महायशाः ॥ ३ ॥

वे सेनाके बीचमें परास्त होकर अपने क्षात्रबलका क्या वर्णन करेंगे? समराङ्गणमें महायशस्वी सात्यकि किस प्रकार सारी सेनाको लाँघकर आगे बढ़ गये? ॥ ३ ॥

कथं च मम पुत्राणां जीवतां तत्र संजय।
शैनेयोऽभिययौ युद्धे तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ४ ॥

संजय! युद्धस्थलमें मेरे पुत्रोंके जीते-जी शिनिनन्दन सात्यकि किस तरह आगे जा सके? संजय! यह सब मुझे बताओ ॥ ४ ॥

अत्यद्भुतमिदं तात त्वत्सकाशाच्छृणोम्यहम्।
एकस्य बहुभिः सार्धं शत्रुभिस्तैर्महारथैः ॥ ५ ॥

तात! यह मैं तुम्हारे मुँहसे अत्यन्त विचित्र बात सुन रहा हूँ कि शत्रुदलके उन बहुसंख्यक महारथियोंके साथ एकमात्र सात्यकिका ऐसा घोर संग्राम हुआ ॥ ५ ॥

विपरीतमहं मन्ये मन्दभाग्यं सुतं प्रति।
यत्रावध्यन्त समरे सात्वतेन महारथाः ॥ ६ ॥

मैं अपने भाग्यहीन पुत्रके लिये सब कुछ विपरीत ही मान रहा हूँ; क्योंकि समराङ्गणमें अकेले सात्यकिने बहुत-से महारथियोंका वध कर डाला है ॥ ६ ॥

एकस्य हि न पर्याप्तं यत्सैन्यं तस्य संजय।
क्रुद्धस्य युयुधानस्य सर्वे तिष्ठन्तु पाण्डवाः ॥ ७ ॥

संजय! और सब पाण्डव तो दूर रहें, क्रोधमें भरे हुए अकेले सात्यकिके लिये भी मेरी सारी सेना पर्याप्त नहीं है ॥७॥

निर्जित्य समरे द्रोणं कृतिनं चित्रयोधिनम्।
यथा पशुगणान् सिंहस्तद्वद्धन्ता सुतान् मम ॥ ८ ॥

जैसे सिंह पशुओंको मार डालता है, उसी प्रकार

सात्यकि विचित्र युद्ध करनेवाले विद्वान् द्रोणाचार्यको भी युद्धमें परास्त करके मेरे पुत्रोंका वध कर डालेंगे ॥ ८ ॥

कृतवर्मादिभिः शूरैर्यत्तैर्बहुभिराहवे ।
युयुधानो न शकितो हन्तुं यत् पुरुषर्षभः ॥ ९ ॥

कृतवर्मा आदि बहुत-से शूरवीर समराङ्गणमें प्रयत्न करते ही रह गये; परंतु पुरुषप्रवर सात्यकि मारे न जा सके ॥ ९ ॥

नैतदीदृशकं युद्धं कृतवांस्तत्र फाल्गुनः ।
यादृशं कृतवान् युद्धं शिनेर्नप्ता महायशाः ॥ १० ॥

शिनिके महायशस्वी पौत्र सात्यकिने वहाँ जैसा युद्ध किया, वैसा तो अर्जुनने भी नहीं किया था ॥ १० ॥

संजय उवाच

तव दुर्मन्त्रिते राजन् दुर्योधनकृतेन च ।
शृणुष्वावहितो भूत्वा यत् ते वक्ष्यामि भारत ॥ ११ ॥

संजयने कहा—राजन्! आपकी खोटी सलाह और दुर्योधनकी काली करतूतसे यह सब कुछ हुआ है। भारत ! मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे सावधान होकर सुनिये ॥ ११ ॥

ते पुनः संन्यवर्तन्त कृत्वा संशप्तकान् मिथः ।
परां युद्धे मतिं क्रूरां तव पुत्रस्य शासनात् ॥ १२ ॥

आपके पुत्रकी आज्ञासे युद्धके लिये अत्यन्त क्रूरतापूर्ण निश्चय करके परस्पर शपथ ले वे सभी पराजित योद्धा पुनः लौट आये ॥ १२ ॥

त्रीणि सादिसहस्राणि दुर्योधनपुरोगमाः ।
शककाम्बोजबाह्लीका यवनाः पारदास्तथा ॥ १३ ॥
कुलिन्दास्तङ्गणाम्बष्ठाः पैशाचाश्च सबर्बराः ।
पर्वतीयाश्च राजेन्द्र क्रुद्धाः पाषाणपाणयः ॥ १४ ॥
अभ्यद्रवन्त शैनेयं शलभाः पावकं यथा ।

तीन हजार घुड़सवार और हाथीसवार दुर्योधनको अपना अगुआ बनाकर चले। उनके साथ शक, काम्बोज, बाह्लीक, यवन, पारद, कुलिन्द, तंगण, अम्बष्ठ, पैशाच, बर्बर तथा पर्वतीय योद्धा भी थे। राजेन्द्र ! वे सब-के सब कुपित हो हाथोंमें पत्थर लिये सात्यकिकी ओर उसी प्रकार दौड़े, जैसे फतिंगे जलती हुई आगपर टूटे पड़ते हैं ॥ १३-१४½ ॥

युक्ताश्च पर्वतीयानां रथाः पाषाणयोधिनाम् ॥ १५ ॥
शूराः पञ्चशता राजन् शैनेयं समुपाद्रवन् ।

राजन् ! पत्थरोंद्वारा युद्ध करनेवाले पर्वतीयोंके पाँच सौ शूरवीर रथी युद्धके लिये सुसज्जित हो सात्यकिपर चढ़ आये ॥ १५½ ॥

ततो रथसहस्रेण महारथशतेन च ॥ १६ ॥
द्विरदानां सहस्रेण द्विसाहस्रैश्च वाजिभिः ।
शरवर्षाणि मुञ्चन्तो विविधानि महारथाः ॥ १७ ॥
अभ्यद्रवन्त शैनेयमसंख्येयाश्च पत्तयः ।

तत्पश्चात् एक हजार रथी, सौ महारथी, एक हजार हाथी और दो हजार घुड़सवारोंके साथ बहुत-से महारथी और असंख्य पैदल सैनिक सात्यकिपर नाना प्रकारके बाणोंकी वर्षा करते हुए टूट पड़े ॥ १६-१७½ ॥

तांश्च संचोदयन् सर्वान् घ्नतैनमिति भारत ॥ १८ ॥
दुःशासनो महाराज सात्यकिं पर्यवारयत् ।

भरतवंशी महाराज ! 'इस सात्यकिको मार डालो' इस प्रकार उन समस्त सैनिकोंको प्रेरित करते हुए दुःशासनने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ॥ १८½ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम शैनेयचरितं महत् ॥ १९ ॥
यदेको बहुभिः सार्धमसम्भ्रान्तमयुध्यत ।

वहाँ हमने सात्यकिका अत्यन्त अद्भुत चरित्र देखा कि वे बिना किसी घबराहटके अकेले ही बहुसंख्यक योद्धाओंके साथ युद्ध कर रहे थे ॥ १९½ ॥

अवधीच्च रथानीकं द्विरदानां च तद् बलम् ॥ २० ॥
सादिनश्चैव तान् सर्वान् दस्यूनपि च सर्वशः ।

उन्होंने रथसेना और गजसेनाका तथा उन समस्त घुड़सवारों एवं लुटेरे म्लेच्छोंका भी सब प्रकारसे संहार कर डाला ॥ २०½ ॥

तत्र चक्रैर्विमथितैर्भग्नैश्च परमायुधैः ॥ २१ ॥
अक्षैश्च बहुधा भग्नैरीषादण्डकबन्धुरैः ।
कुञ्जरैर्मथितैश्चापि ध्वजैश्च विनिपातितैः ॥ २२ ॥
वर्मभिश्च तथानीकैर्व्यवकीर्णा वसुंधरा ।

वहाँ चूर-चूर हुए चक्कों, टूटे हुए उत्तमोत्तम आयुधों, टूक-टूक हुए धुरों, खण्डित हुए ईषादण्डों और बन्धुरों, मथे गये हाथियों, तोड़कर गिराये हुए ध्वजों, छिन्न-भिन्न कवचों और विनष्ट हुए सैनिकोंकी लाशोंसे वहाँकी पृथ्वी पट गयी थी ॥ २१-२२½ ॥

स्रग्भिराभरणैर्वस्त्रैरनुकर्षैश्च मारिष ॥ २३ ॥
संछन्ना वसुधा तत्र द्यौर्ग्रहैरिव भारत ।

माननीय भरतनरेश ! योद्धाओंके हारों, आभूषणों, वस्त्रों और अनुकर्षोंसे आच्छादित हुई वहाँकी भूमि तारोंसे व्याप्त हुए आकाशके समान जान पड़ती थी ॥ २३½ ॥

गिरिरूपधराश्चापि पतिताः कुञ्जरोत्तमाः ॥ २४ ॥
अञ्जनस्य कुले जाता वामनस्य च भारत ।

भारत ! अञ्जन और वामन नामक दिग्गजके कुलमें उत्पन्न हुए पर्वताकार श्रेष्ठ गजराज भी वहाँ धराशायी हो गये थे ॥ २४½ ॥

सुप्रतीककुले जाता महापद्मकुले तथा ॥ २५ ॥
ऐरावतकुले चैव तथान्येषु कुलेषु च ।

जाता दन्तिवरा राजञ्शेरते बहवो हताः ॥ २६ ॥

नरेश्वर! सुप्रतीक, महापद्म, ऐरावत तथा अन्य पुण्डरीक, पुष्पदन्त और सार्वभौम-(इन) दिग्गजोंके कुलोंमें उत्पन्न हुए बहुतेरे दंतार हाथी भी वहाँ धरतीपर लोट रहे थे ॥२५ २६॥

वनायुजान् पर्वतीयान् काम्बोजान् बाह्लिकानपि ।
तथा हयवरान् राजन् निजघ्ने तत्र सात्यकिः ॥ २७ ॥

राजन् ! वहाँ सात्यकिने वनायु, काम्बोज (काबुल) और बाह्लीक देशोंमें उत्पन्न हुए श्रेष्ठ अश्वों तथा पहाड़ी घोड़ोंको भी मार गिराया ॥ २७ ॥

नानादेशसमुत्थांश्च नानाजातींश्च दन्तिनः ।
निजघ्ने तत्र शैनेयः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २८ ॥

शिनिके उस वीर पौत्रने अनेक देशोंमें उत्पन्न हुए विभिन्न जातिके सैकड़ों और हजारों हाथियोंका भी संहार कर डाला ॥ २८ ॥

तेषु प्रकाल्यमानेषु दस्यून् दुःशासनोऽब्रवीत् ।
निवर्तध्वमधर्मज्ञा युध्यध्वं किं सृतेन वः ॥ २९ ॥

वे हाथी जब कालके गालमें जा रहे थे, उस समय दुःशासनने लूट-पाट करनेवाले म्लेच्छोंसे इस प्रकार कहा—'धर्मको न जाननेवाले योद्धाओ ! इस तरह भाग जानेसे तुम्हें क्या मिलेगा ? लौटो और युद्ध करो' ॥ २९ ॥

तांश्चातिभग्नान् सम्प्रेक्ष्य पुत्रो दुःशासनस्तव ।
पाषाणयोधिनः शूरान् पर्वतीयानचोदयत् ॥ ३० ॥

इतनेपर भी उन्हें जोर-जोरसे भागते देख आपके पुत्र दुःशासनने पत्थरोंद्वारा युद्ध करनेवाले शूरवीर पर्वतीयोंको आज्ञा दी—॥ ३० ॥

अश्मयुद्धेषु कुशला नैतज्जानाति सात्यकिः ।
अश्मयुद्धमजानन्तं घ्नतैनं युद्धकामुकम् ॥ ३१ ॥

'वीरो ! तुमलोग प्रस्तरोंद्वारा युद्ध करनेमें कुशल हो। सात्यकिको इस कलाका ज्ञान नहीं है। प्रस्तरयुद्धको न जानते हुए भी युद्धकी इच्छा रखनेवाले इस शत्रुको तुम-लोग मार डालो ॥ ३१ ॥

तथैव कुरवः सर्वे नाश्मयुद्धविशारदाः ।
अभिद्रवत मा भैष्ट न वः प्राप्स्यति सात्यकिः ॥ ३२ ॥

'इसी प्रकार समस्त कौरव भी प्रस्तरयुद्धमें प्रवीण नहीं है। अतः तुम डरो मत। आक्रमण करो। सात्यकि तुम्हें नहीं पा सकता' ॥ ३२ ॥

ते पर्वतीया राजानः सर्वे पाषाणयोधिनः ।
अभ्यद्रवन्त शैनेयं राजानमिव मन्त्रिणः ॥ ३३ ॥

जैसे मन्त्री राजाके पास जाते हैं, उसी प्रकार वे पाषाण-योधी समस्त पर्वतीय नरेश सात्यकिकी ओर दौड़े ॥ ३३ ॥

ततो गजशिरःप्रख्यैरुपलैः शैलवासिनः ।
उद्यतैर्युयुधानस्य पुरतस्तस्थुराहवे ॥ ३४ ॥

वे पर्वतनिवासी योद्धा हाथीके मस्तकके समान बड़े-बड़े प्रस्तर हाथमें लेकर समराङ्गणमें युयुधानके सामने युद्धके लिये तैयार होकर खड़े हो गये ॥ ३४ ॥

क्षेपणीयैस्तथाप्यन्ये सात्वतस्य वधैषिणः ।
चोदितास्तव पुत्रेण सर्वतो रुरुधुर्दिशः ॥ ३५ ॥

आपके पुत्र दुःशासनसे प्रेरित होकर सात्यकिके वधकी इच्छा रखनेवाले अन्य बहुतेरे सैनिकोंने भी क्षेपणीयास्त्र उठा-कर सब ओरसे सात्यकिकी सम्पूर्ण दिशाओंको अवरुद्ध कर लिया ॥ ३५ ॥

तेषामापततामेव शिलायुद्धं चिकीर्षताम् ।
सात्यकिः प्रतिसंधाय निशितान् प्राहिणोच्छरान् ॥३६॥

प्रस्तरयुद्धकी इच्छा रखनेवाले उन योद्धाओंके आक्रमण करते ही सात्यकिने तेज किये हुए बाणोंका संधान करके उन्हें उनपर चलाया ॥ ३६ ॥

तामश्मवृष्टिं तुमुलां पर्वतीयैः समीरिताम् ।
चिच्छेदोरगसंकाशैर्नाराचैः शिनिपुङ्गवः ॥ ३७ ॥

पर्वतीय सैनिकोंद्वारा की हुई उस भयंकर पाषाणवर्षा-को शिनिप्रवर सात्यकिने अपने सर्पतुल्य नाराचोंद्वारा छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ ३७ ॥

तैरश्मचूर्णैर्दीप्यद्भिः खद्योतानामिव व्रजैः ।
प्रायः सैन्यान्यहन्यन्त हाहाभूतानि मारिष ॥ ३८ ॥

माननीय नरेश ! जुगनुओंकी जमातोंके समान उद्भासित होनेवाले उन प्रस्तरचूर्णोंसे प्रायः सारी सेनाएँ आहत हो हाहाकार करने लगीं ॥ ३८ ॥

ततः पञ्चशतं शूराः समुद्यतमहाशिलाः ।
निकृत्तबाहवो राजन् निपेतुर्धरणीतले ॥ ३९ ॥

राजन् ! तदनन्तर बड़े-बड़े प्रस्तरखण्ड उठाये हुए पाँच सौ शूरवीर अपनी भुजाओंके कट जानेसे धरतीपर गिर पड़े ॥ ३९ ॥

पुनर्दशशताश्चान्ये शतसाहस्रिणस्तथा ।
सोपलैर्बाहुभिश्छिन्नैः पेतुरप्राप्य सात्यकिम् ॥ ४० ॥

फिर एक हजार दूसरे योद्धा तथा एक लाख अन्य सैनिक सात्यकितक पहुँचने भी नहीं पाये थे कि अपने हाथमें लिये शिला-खण्डोंसे कटी हुई बाहुओंके साथ ही धराशायी हो गये ॥४०॥

(सात्वतस्य च भल्लेन निष्पिष्टैस्तैस्तथाद्रिभिः ।
न्यपतन् निहता म्लेच्छास्तत्र तत्र गतासवः ॥
ते हन्यमानाः समरे सात्वतेन महात्मना ।
अश्मवृष्टिं महाघोरां पातयन्ति स्म सात्वते ॥)

सात्यकिके भल्लसे चूर-चूर हुए शिलाखण्डोंद्वारा मारे गये म्लेच्छ प्राणशून्य होकर जहाँ-तहाँ पड़े थे। महामना

सात्यकिद्वारा समरभूमिमें मारे जाते हुए वे म्लेच्छ सैनिक उनपर बड़ी भयंकर पत्थरोंकी वर्षा करते थे ॥

पाषाणयोधिनः शूरान् यतमानानवस्थितान्।
न्यवधीद् बहुसाहस्रांस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४१ ॥

वे पाषाणोंद्वारा युद्ध करनेवाले शूरवीर विजयके लिये यत्नशील होकर रणक्षेत्रमें डटे हुए थे। उनकी संख्या अनेक सहस्र थी; परंतु सात्यकिने उन सबका संहार कर डाला। वह एक अद्भुत-सी घटना हुई ॥ ४१ ॥

ततः पुनर्व्यात्तमुखास्तेऽश्मवृष्टीः समन्ततः।
अयोहस्ताः शूलहस्ता दरदास्तङ्गणाः खसाः ॥ ४२ ॥
लम्पाकाश्च कुलिन्दाश्च चिक्षिपुस्तांश्च सात्यकिः।
नाराचैः प्रतिचिच्छेद प्रतिपत्तिविशारदः ॥ ४३ ॥

तदनन्तर पुनः हाथमें लोहेके गोले और त्रिशूल लिये मुँह फैलाये हुए दरद, तंगण, खस, लम्पाक और कुलिन्द-देशीय म्लेच्छोंने सात्यकिपर चारों ओरसे पत्थर बरसाने आरम्भ किये; परंतु प्रतीकार करनेमें निपुण सात्यकिने अपने नाराचोंद्वारा उन सबको छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ ४२-४३ ॥

अद्रीणां भिद्यमानानामन्तरिक्षे शितैः शरैः।
शब्देन प्राद्रवन् संख्ये रथाश्वगजपत्तयः ॥ ४४ ॥

आकाशमें तीखे बाणोंद्वारा टूटने-फूटनेवाले प्रस्तर-खण्डोंके शब्दसे भयभीत हो रथ, घोड़े, हाथी और पैदल सैनिक युद्धस्थलमें इधर-उधर भागने लगे ॥ ४४ ॥

अश्मचूर्णैरवाकीर्णा मनुष्यगजवाजिनः।
नाशक्नुवन्नवस्थातुं भ्रमरैरिव दंशिताः ॥ ४५ ॥

पत्थरके चूर्णोंसे व्याप्त हुए मनुष्य, हाथी और घोड़े वहाँ ठहर न सके, मानो उन्हें भ्रमरोंने डस लिया हो ॥ ४५ ॥

हतशिष्टाः सरुधिरा भिन्नमस्तकपिण्डिकाः।
(विभिन्नशिरसो राजन् दन्तैश्छिन्नैश्च दन्तिनः।
निर्धूतैश्च करैर्नागा व्यङ्गाश्च शतशः कृताः ॥
हत्वा पञ्चशतान् योधांस्तत्क्षणेनैव मारिष।
व्यचरत् पृतनामध्ये शैनेयः कृतहस्तवत् ॥)
कुञ्जरा वर्जयामासुर्युयुधानरथं तथा ॥ ४६ ॥

जो मरनेसे बचे थे, वे हाथी भी खूनसे लथपथ हो रहे थे। उनके कुम्भस्थल विदीर्ण हो गये थे। राजन्! बहुत-से हाथियोंके सिर क्षत-विक्षत हो गये थे। उनके दाँत टूट गये थे, शुण्डदण्ड खण्डित हो गये थे तथा सैकड़ों गजराजोंके सात्यकिने अङ्ग भंग कर दिये थे। माननीय नरेश! सात्यकि सिद्धहस्त पुरुषकी भाँति क्षणभरमें पाँच सौ योद्धाओंका संहार करके सेनाके मध्यभागमें विचरने लगे। उस समय घायल हुए हाथी युयुधानके रथको छोड़कर भाग गये ॥ ४६ ॥

(अश्मनां भिद्यमानानां सायकैः श्रूयते ध्वनिः।
पद्मपत्रेषु धाराणां पतन्तीनामिव ध्वनिः ॥)

बाणोंसे चूर-चूर होनेवाले पत्थरोंकी ऐसी ध्वनि सुनायी पड़ती थी, मानो कमलदलोंपर गिरती हुई जलधाराओंका शब्द कानोंमें पड़ रहा हो ॥

ततः शब्दः समभवत् तव सैन्यस्य मारिष।
माधवेनार्द्यमानस्य सागरस्येव पर्वणि ॥ ४७ ॥

आर्य! जैसे पूर्णिमाके दिन समुद्रका गर्जन बहुत बढ़ जाता है, उसी प्रकार सात्यकिके द्वारा पीड़ित हुई आपकी सेनाका महान् कोलाहल प्रकट हो रहा था ॥ ४७ ॥

तं शब्दं तुमुलं श्रुत्वा द्रोणो यन्तारमब्रवीत्।
एष सूत रणे क्रुद्धः सात्वतानां महारथः ॥ ४८ ॥
दारयन् बहुधा सैन्यं रणे चरति कालवत्।
यत्रैष शब्दस्तुमुलस्तत्र सूत रथं नय ॥ ४९ ॥

उस भयंकर शब्दको सुनकर द्रोणाचार्यने अपने सारथिसे कहा—'सूत! यह सात्वतकुलका महारथी वीर सात्यकि रणक्षेत्रमें कुद्ध होकर कौरवसेनाको बारंबार विदीर्ण करता हुआ कालके समान विचर रहा है। सारथे! जहाँ यह भयानक शब्द हो रहा है, वहीं मेरे रथको ले चलो ॥ ४८-४९ ॥

पाषाणयोधिभिर्नूनं युयुधानः समागतः।
तथा हि रथिनः सर्वे ह्रियन्ते विद्रुतैर्हयैः ॥ ५० ॥

'निश्चय ही युयुधान पाषाणयोधी योद्धाओंसे भिड़ गया है, तभी तो ये भागे हुए घोड़े सम्पूर्ण रथियोंको रणभूमिसे बाहर लिये जा रहे हैं ॥ ५० ॥

विशस्त्रकवचा रुग्णास्तत्र तत्र पतन्ति च।
न शक्नुवन्ति यन्तारः संयन्तुं तुमुले हयान् ॥ ५१ ॥

'ये रथी शस्त्र और कवचसे हीन होकर शस्त्रोंके आघातसे रुग्ण हो यत्र-तत्र गिर रहे हैं। इस भयंकर युद्धमें सारथि अपने घोड़ोंको काबूमें नहीं रख पाते हैं' ॥ ५१ ॥

इत्येतद् वचनं श्रुत्वा भारद्वाजस्य सारथिः।
प्रत्युवाच ततो द्रोणं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥ ५२ ॥
सैन्यं द्रवति चायुष्मन् कौरवेयं समन्ततः।
पश्य योधान् रणे भग्नान् धावतो वै ततस्ततः ॥ ५३ ॥

द्रोणाचार्यका यह वचन सुनकर सारथिने सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणसे इस प्रकार कहा—'आयुष्मन्! कौरव-सेना चारों ओर भाग रही है। देखिये, रणक्षेत्रमें वे सब योद्धा व्यूह-भंग करके इधर-उधर दौड़ रहे हैं ॥ ५२-५३ ॥

इमे च संहताः शूराः पञ्चालाः पाण्डवैः सह।
त्वामेव हि जिघांसन्त आद्रवन्ति समन्ततः ॥ ५४ ॥

'ये पाण्डवोंसहित पाञ्चाल वीर संगठित हो आपको मार डालनेकी इच्छासे सब ओरसे आपपर ही आक्रमण कर रहे हैं ॥ ५४ ॥

अत्र कार्यं समाधत्स्व प्राप्तकालमरिंदम ।
स्थाने वा गमने वापि दूरं यातश्च सात्यकिः ॥ ५५ ॥

'शत्रुदमन ! इस समय जो कर्तव्य प्राप्त हो, उसपर ध्यान दीजिये; यहीं ठहरना है या अन्यत्र जाना है । सात्यकि तो बहुत दूर चले गये' ॥ ५५ ॥

तथैवं वदतस्तस्य भारद्वाजस्य सारथेः ।
प्रत्यदृश्यत शैनेयो निघ्नन् बहुविधान् रथान् ॥ ५६ ॥

द्रोणाचार्यका सारथि जब इस प्रकार कह रहा था, उसी समय शिनिनन्दन सात्यकि बहुतेरे रथियोंका संहार करते दिखायी दिये ॥ ५६ ॥

ते वध्यमानाः समरे युयुधानेन तावकाः ।
युयुधानरथं त्यक्त्वा द्रोणानीकाय दुद्रुवुः ॥ ५७ ॥

समराङ्गणमें युयुधानकी मार खाते हुए आपके सैनिक उनके रथको छोड़कर द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर भाग गये ॥ ५७ ॥

यैस्तु दुःशासनः सार्धं रथैः पूर्वं न्यवर्तत ।
ते भीतास्त्वभ्यधावन्त सर्वे द्रोणरथं प्रति ॥ ५८ ॥

पहले दुःशासन जिन रथियोंके साथ लौटा था, वे सब-के-सब भयभीत होकर द्रोणाचार्यके रथकी ओर भाग गये ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिप्रवेशविषयक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२१ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ५ श्लोक मिलाकर कुल ६३ श्लोक हैं)

द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्रोणाचार्यका दुःशासनको फटकारना और द्रोणाचार्यके द्वारा वीरकेतु आदि पाञ्चालोंका वध एवं उनका धृष्टद्युम्नके साथ घोर युद्ध, द्रोणाचार्यका मूर्च्छित होना, धृष्टद्युम्नका पलायन, आचार्यकी विजय

संजय उवाच

दुःशासनरथं दृष्ट्वा समीपे पर्यवस्थितम् ।
भारद्वाजस्ततो वाक्यं दुःशासनमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! दुःशासनके रथको अपने समीप खड़ा हुआ देख द्रोणाचार्य उससे इस प्रकार बोले—॥ १ ॥

दुःशासन रथाः सर्वे कस्माच्चैते प्रविद्रुताः ।
कच्चित् क्षेमं तु नृपतेः कच्चिज्जीवति सैन्धवः ॥ २ ॥

'दुःशासन ! ये सारे रथी कहाँसे भागे आ रहे हैं ? राजा दुर्योधन सकुशल तो हैं न ? क्या सिंधुराज जयद्रथ अभी जीवित है ? ॥ २ ॥

राजपुत्रो भवानत्र राजभ्राता महारथः ।
किमर्थं द्रवते युद्धे यौवराज्यमवाप्य हि ॥ ३ ॥

'तुम तो राजाके बेटे, राजाके भाई और महारथी वीर हो । युवराजका पद प्राप्त करके तुम इस युद्धस्थलमें किस लिये भागे फिरते हो ? ॥ ३ ॥

दासी जितासि द्यूते त्वं यथाकामचरी भव ।
वाससां वाहिका राज्ञो भ्रातुर्ज्येष्ठस्य मे भव ॥ ४ ॥

'दुःशासन ! तुमने द्रौपदीसे कहा था 'अरी ! तू जूएमें जीती हुई दासी है । अतः हमारी इच्छाके अनुसार आचरण करनेवाली हो जा । मेरे बड़े भाई राजा दुर्योधनकी वस्त्र-वाहिका बन जा ॥ ४ ॥

न सन्ति पतयः सर्वे तेऽद्य षण्ढतिलैः समाः ।
दुःशासनैवं कस्मात् त्वं पूर्वमुक्त्वा पलायसे ॥ ५ ॥

'अब तेरे सम्पूर्ण पति थोथे तिलोंके समान नहींके बराबर हो गये हैं ।' पहले ऐसी बातें कहकर अब तुम युद्धसे भाग क्यों रहे हो ? ॥ ५ ॥

स्वयं वैरं महत् कृत्वा पञ्चालैः पाण्डवैः सह ।
एकं सात्यकिमासाद्य कथं भीतोऽसि संयुगे ॥ ६ ॥

'पाञ्चालों और पाण्डवोंके साथ स्वयं ही बड़ा भारी वैर ठानकर युद्धस्थलमें अकेले सात्यकिका सामना करके कैसे भयभीत हो उठे हो ? ॥ ६ ॥

न जानीषे पुरा त्वं तु गृह्णन्नक्षान् दुरोदरे ।
शरा ह्येते भविष्यन्ति दारुणाशीविषोपमाः ॥ ७ ॥

'क्या पहले तुम जूएमें पासे उठाते समय नहीं जानते थे कि ये एक दिन भयंकर विषधर सर्पोंके समान विनाशकारी बाण बन जायँगे ॥ ७ ॥

अप्रियाणां हि वचसां पाण्डवस्य विशेषतः ।
द्रौपद्याश्च परिक्लेशस्त्वन्मूलो ह्यभवत् पुरा ॥ ८ ॥

'पूर्वकालमें विशेषतः पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको जो अप्रिय वचन सुनाये गये और द्रौपदीदेवीको जो कष्ट पहुँचाया गया, इन सबकी जड़ तुम्हीं रहे हो ॥ ८ ॥

क ते मानश्च दर्पश्च क ते वीर्यं क गर्जितम् ।
आशीविषसमान् पार्थान् कोपयित्वा क यास्यसि ॥ ९ ॥

'कहाँ गया तुम्हारा वह दर्प और अभिमान ? कहाँ है तुम्हारा पराक्रम ? और कहाँ गयी तुम्हारी गर्जना ? विषैले सर्पोंके समान कुन्तीकुमारोंको कुपित करके कहाँ भागे जा रहे हो ? ॥ ९ ॥

शोच्येयं भारती सेना राज्यं चैव सुयोधनः ।
यस्य त्वं कर्कशो भ्राता पलायनपरायणः ॥ १० ॥

'यह कौरवी सेना, यह राज्य और इसका राजा दुर्योधन— ये सभी शोचनीय हो गये हैं; क्योंकि तुम राजाके क्रूरकर्मी भाई होकर आज युद्धमें पीठ दिखाकर भाग रहे हो ॥ १० ॥

ननु नाम त्वया वीर दीर्यमाणा भयार्दिता ।
स्वबाहुबलमास्थाय रक्षितव्या ह्यनीकिनी ॥ ११ ॥

'वीर ! तुम्हें तो अपने बाहुबलका आश्रय लेकर इस भागती हुई भयभीत सेनाकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ११ ॥

स त्वमद्य रणं हित्वा भीतो हर्षयसे परान् ।
विद्रुते त्वयि सैन्यस्य नायके शत्रुसूदन ॥ १२ ॥
कोऽन्यः स्थास्यति संग्रामे भीतो भीते व्यपाश्रये ।

'परंतु तुम आज युद्ध छोड़कर भयभीत हो उठे और शत्रुओंका हर्ष बढ़ा रहे हो । शत्रुसूदन ! तुम तो सेनापति हो । तुम्हारे भागनेपर दूसरा कौन युद्धभूमिमें ठहर सकेगा ? जब आश्रयदाता या रक्षक ही डर जाय, तब दूसरा क्यों न भयभीत होगा ? ॥ १२½ ॥

एकेन सात्वतेनाद्य युध्यमानस्य तेन वै ॥ १३ ॥
पलायने तव मतिः संग्रामाद्धि प्रवर्तते ।
यदा गाण्डीवधन्वानं भीमसेनं च कौरव ॥ १४ ॥
यमौ वा युधि द्रष्टासि तदा त्वं किं करिष्यसि ।

'कौरव ! अकेले सात्यकिके साथ युद्ध करते समय, जब आज तुम्हारी बुद्धि संग्रामसे पलायन करनेमें प्रवृत्त हो गयी, तुमने भागनेका विचार कर लिया, तब जिस समय तुम गाण्डीवधारी अर्जुन, भीमसेन अथवा नकुल-सहदेवको युद्धस्थलमें देखोगे, उस समय तुम क्या करोगे ? ॥ १३-१४½ ॥

युधि फाल्गुनबाणानां सूर्याग्निसमवर्चसाम् ॥ १५ ॥
न तुल्याः सात्यकिशरा येषां भीतः पलायसे ।

'रणक्षेत्रमें अर्जुनके बाण सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी हैं । उनके समान सात्यकिके बाण नहीं हैं, जिनसे भयभीत होकर तुम भागे जा रहे हो ॥ १५½ ॥

त्वरितो वीर गच्छ त्वं गान्धार्युदरमाविश ॥ १६ ॥
पृथिव्यां धावमानस्य नान्यत् पश्यामि जीवनम् ।

'वीर ! जल्दी जाओ । अपनी माता गान्धारीदेवीके पेटमें घुस जाओ; अन्यथा इस भूतलपर दूसरा कोई ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ भाग जानेसे मुझे तुम्हारे जीवनकी रक्षा दिखायी देती हो ॥ १६½ ॥

यदि तावत् कृता बुद्धिः पलायनपरायणा ॥ १७ ॥
पृथिवी धर्मराजाय शमेनैव प्रदीयताम् ।

'यदि तुमने भागनेका ही विचार कर लिया है, तब यह पृथ्वीका राज्य शान्तिपूर्वक ही धर्मराज युधिष्ठिरको सौंप दो ॥ १७½ ॥

यावत् फाल्गुननाराचा निर्मुक्तोरगसंनिभाः ॥ १८ ॥
नाविशन्ति शरीरं ते तावत् संशाम्य पाण्डवैः ।

'केंचुल छोड़कर निकले हुए सर्पोंके समान अर्जुनके बाण जबतक तुम्हारे शरीरमें नहीं घुस रहे हैं, तबतक ही तुम पाण्डवोंके साथ संधि कर लो ॥ १८½ ॥

यावत् ते पृथिवीं पार्था हत्वा भ्रातृशतं रणे ॥ १९ ॥
नाक्षिपन्ति महात्मानस्तावत् संशाम्य पाण्डवैः ।

'महामनस्वी कुन्तीकुमार जबतक तुम्हारे सौ भाइयोंको रणक्षेत्रमें मारकर यह सारी पृथ्वी तुमसे छीन नहीं लेते हैं, तभीतक तुम पाण्डवोंके साथ संधि कर लो ॥ १९½ ॥

यावन्न क्रुद्ध्यते राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २० ॥
कृष्णश्च समरश्लाघी तावत् संशाम्य पाण्डवैः ।

'जबतक धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर तथा युद्धकी प्रशंसा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण क्रोध नहीं करते हैं, तभीतक तुम पाण्डवोंके साथ संधि कर लो ॥ २०½ ॥

यावद् भीमो महाबाहुर्विगाह्य महतीं चमूम् ॥ २१ ॥
सोदरांस्ते न गृह्णाति तावत् संशाम्य पाण्डवैः ।

'जबतक महाबाहु भीमसेन विशाल कौरवसेनामें घुसकर तुम्हारे सारे भाइयोंको दबोच नहीं लेते हैं, तभीतक तुम पाण्डवोंके साथ संधि कर लो ॥ २१½ ॥

पूर्वमुक्तश्च ते भ्राता भीष्मेणासौ सुयोधनः ॥ २२ ॥
अजेयाः पाण्डवाः संख्ये सौम्य संशाम्य तैः सह ।
न च तत् कृतवान् मन्दस्तव भ्राता सुयोधनः ॥ २३ ॥

'पूर्वकालमें भीष्मजीने तुम्हारे भाई दुर्योधनसे यह कहा था कि 'सौम्य ! पाण्डव युद्धमें अजेय हैं । तुम उनके साथ संधि कर लो ।' परंतु तुम्हारे मूर्ख भ्राता दुर्योधनने वह कार्य नहीं किया ॥ २२-२३ ॥

स युद्धे धृतिमास्थाय यत्तो युध्यस्व पाण्डवैः ।
तवापि शोणितं भीमः पास्यतीति मया श्रुतम् ॥ २४ ॥
तच्चाप्यवितथं तस्य तत् तथैव भविष्यति ।

'अतः अब तुम रणक्षेत्रमें धैर्य धारण करके प्रयत्नपूर्वक पाण्डवोंके साथ युद्ध करो । मैंने सुना है भीमसेन तुम्हारा भी खून पीयेंगे । भीमसेनकी वह प्रतिज्ञा झूठी नहीं है । वह उसी रूपमें सत्य होगी ॥ २४½ ॥

किं भीमस्य न जानासि विक्रमं त्वं सुबालिश ॥ २५ ॥
यत्त्वया वैरमारब्धं संयुगे प्रपलायिना ।

'ओ मूर्ख ! क्या तुम भीमसेनके पराक्रमको नहीं जानते, जो तुमने उनके साथ वैर ठाना और अब युद्धसे भागे जा रहे हो ? ॥ २५½ ॥

गच्छ तूर्णं रथेनैव यत्र तिष्ठति सात्यकिः ॥ २६ ॥
त्वया हीनं बलं ह्येतद् विद्रविष्यति भारत ।
आत्मार्थं योधय रणे सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥ २७ ॥

'भरतनन्दन ! अब तुम शीघ्र ही इसी रथके द्वारा जहाँ सात्यकि खड़े हैं, वहाँ जाओ । तुम्हारे न रहनेसे यह सारी सेना भाग जायगी । तुम अपने लाभके लिये रणक्षेत्रमें सत्यपराक्रमी सात्यकिके साथ युद्ध करो' ॥ २६-२७ ॥

एवमुक्तस्तव सुतो नाब्रवीत् किंचिदप्यसौ ।
श्रुतं चाश्रुतवत् कृत्वा प्रायाद् येन स सात्यकिः ॥ २८ ॥

द्रोणाचार्यके ऐसा कहनेपर आपका पुत्र दुःशासन कुछ भी नहीं बोला । वह उनकी सुनी हुई बातोंको भी अनसुनी-सी करके उसी मार्गपर चल दिया, जिससे सात्यकि गये थे ॥

सैन्येन महता युक्तो म्लेच्छानामनिवर्तिनाम् ।
आसाद्य च रणे यत्तो युयुधानमयोधयत् ॥ २९ ॥

उसने युद्धसे पीछे न हटनेवाले म्लेच्छोंकी विशाल सेनाके साथ समराङ्गणमें सात्यकिके पास पहुँचकर उनके साथ प्रयत्नपूर्वक युद्ध आरम्भ किया ॥ २९ ॥

द्रोणोऽपि रथिनां श्रेष्ठः पञ्चालान् पाण्डवांस्तथा ।
अभ्यद्रवत संक्रुद्धो जवमास्थाय मध्यमम् ॥ ३० ॥

इधर रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य भी क्रोधमें भरकर मध्यम वेगका आश्रय ले पाञ्चालों और पाण्डवोंपर टूट पड़े ॥ ३० ॥

प्रविश्य च रणे द्रोणः पाण्डवानां वरूथिनीम् ।
द्रावयामास योधान् वै शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३१ ॥

द्रोणाचार्य रणक्षेत्रमें पाण्डवोंकी विशाल सेनामें प्रवेश करके उनके सैकड़ों और हजारों सैनिकोंको भगाने लगे ॥ ३१ ॥

ततो द्रोणो महाराज नाम विश्राव्य संयुगे ।
पाण्डुपाञ्चालमत्स्यानां प्रचक्रे कदनं महत् ॥ ३२ ॥

महाराज ! उस समय आचार्य द्रोण युद्धस्थलमें अपना नाम सुना-सुनाकर पाण्डव, पाञ्चाल तथा मत्स्यदेशीय सैनिकोंका महान् संहार करने लगे ॥ ३२ ॥

तं जयन्तमनीकानि भारद्वाजं ततस्ततः ।
पाञ्चालपुत्रो द्युतिमान् वीरकेतुः समभ्ययात् ॥ ३३ ॥

इधर-उधर घूम-घूमकर समस्त सेनाओंको पराजित करते हुए द्रोणाचार्यका सामना करनेके लिये उस समय तेजस्वी पाञ्चालराजकुमार वीरकेतु आया ॥ ३३ ॥

स द्रोणं पञ्चभिर्विद्ध्वा शरैः संनतपर्वभिः ।
ध्वजमेकेन विव्याध सारथिं चास्य सप्तभिः ॥ ३४ ॥

उसने झुकी हुई गाँठवाले पाँच बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यको घायल करके एकसे उनके ध्वजको और सात बाणोंसे उनके सारथिको भी बेध दिया ॥ ३४ ॥

तत्राद्भुतं महाराज दृष्टवानस्मि संयुगे ।
यद् द्रोणो रभसं युद्धे पाञ्चाल्यं नाभ्यवर्तत ॥ ३५ ॥

महाराज ! उस युद्धमें मैंने यह अद्भुत बात देखी कि द्रोणाचार्य उस वेगशाली पाञ्चालराजकुमार वीरकेतुकी ओर बढ़ न सके ॥ ३५ ॥

संनिरुद्धं रणे द्रोणं पञ्चाला वीक्ष्य मारिष ।
आवव्रुः सर्वतो राजन् धर्मपुत्रजयैषिणः ॥ ३६ ॥

माननीय नरेश ! द्रोणाचार्यको रणक्षेत्रमें अवरुद्ध हुआ देख धर्मपुत्रकी विजय चाहनेवाले पाञ्चालोंने सब ओरसे उन्हें घेर लिया ॥ ३६ ॥

ते शरैरग्निसंकाशैस्तोमरैश्च महाधनैः ।
शस्त्रैश्च विविधै राजन् द्रोणमेकमवाकिरन् ॥ ३७ ॥

राजन् ! उन्होंने अग्निके समान तेजस्वी बाणों, बहुमूल्य तोमरों तथा नाना प्रकारके शस्त्रोंकी वर्षा करके अकेले द्रोणाचार्यको ढक दिया ॥ ३७ ॥

निहत्य तान् बाणगणैर्द्रोणो राजन् समन्ततः ।
महाजलधरान् व्योम्नि मातरिश्वेव चाबभौ ॥ ३८ ॥

नरेश्वर ! द्रोणाचार्यने अपने बाण-समूहोंद्वारा चारों ओरसे उन समस्त अस्त्र-शस्त्रोंके टुकड़े-टुकड़े करके आकाशमें महान् मेघोंकी घटाको छिन्न-भिन्न करनेके पश्चात् प्रवाहित होनेवाले वायुदेवके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ ३८ ॥

ततः शरं महाघोरं सूर्यपावकसंनिभम् ।
संदधे परवीरघ्नो वीरकेतो रथं प्रति ॥ ३९ ॥

तत्पश्चात् शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले आचार्यने सूर्य और अग्निके समान अत्यन्त भयंकर बाणको धनुषपर रक्खा और उसे वीरकेतुके रथपर चला दिया ॥ ३९ ॥

स भित्त्वा तु शरो राजन् पाञ्चालकुलनन्दनम् ।
अभ्यगाद् धरणीं तूर्णं लोहितार्द्रो ज्वलन्निव ॥ ४० ॥

राजन् ! वह प्रज्वलित होता हुआ-सा बाण पाञ्चालकुलनन्दन वीरकेतुको विदीर्ण करके खूनसे लथपथ हो तुरंत ही धरतीमें समा गया ॥ ४० ॥

ततोऽपतद् रथात् तूर्णं पाञ्चालकुलनन्दनः ।
पर्वताग्रादिव महांश्चम्पको वायुपीडितः ॥ ४१ ॥

फिर तो पाञ्चालकुलको आनन्दित करनेवाला वह राजकुमार वायुसे टूटकर पर्वतके शिखरसे नीचे गिरनेवाले चम्पाके विशाल वृक्षके समान तुरंत रथसे नीचे गिर पड़ा ॥ ४१ ॥

तस्मिन् हते महेष्वासे राजपुत्रे महाबले ।
पञ्चालास्त्वरिता द्रोणं समन्तात् पर्यवारयन् ॥ ४२ ॥

उस महान् धनुर्धर महाबली राजकुमारके मारे जानेपर पाञ्चालसैनिकोंने शीघ्र ही आकर द्रोणाचार्यको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४२ ॥

चित्रकेतुः सुधन्वा च चित्रवर्मा च भारत ।
तथा चित्ररथश्चैव भ्रातृव्यसनकर्शिताः ॥ ४३ ॥

अभ्यद्रवन्त सहिता भारद्वाजं युयुत्सवः।
मुञ्चन्तः शरवर्षाणि तपान्ते जलदा इव ॥ ४४ ॥

भारत ! चित्रकेतु, सुधन्वा, चित्रवर्मा और चित्ररथ—ये चारों वीर अपने भाईकी मृत्युसे दुःखित हो युद्धकी इच्छा रखकर एक साथ ही द्रोणपर टूट पड़े और जिस प्रकार वर्षाकालमें मेघ पानी बरसाते हैं, उसी प्रकार वे बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४३-४४ ॥

स वध्यमानो बहुधा राजपुत्रैर्महारथैः।
क्रोधमाहारयत् तेषामभावाय द्विजर्षभः ॥ ४५ ॥

उन महारथी राजकुमारोंद्वारा बारंबार घायल किये जानेपर द्विजश्रेष्ठ द्रोणने उनके विनाशके लिये महान् क्रोध प्रकट किया ॥ ४५ ॥

ततः शरमयं जालं द्रोणस्तेषामवासृजत्।
ते हन्यमाना द्रोणस्य शरैराकर्णचोदितैः ॥ ४६ ॥
कर्तव्यं नाभ्यजानन् वै कुमारा राजसत्तम।

तब द्रोणाचार्यने उनके ऊपर बाणोंका जाल-सा बिछा दिया। नृपश्रेष्ठ ! द्रोणाचार्यके कानतक खींचकर छोड़े हुए उन बाणोंद्वारा घायल होकर वे राजकुमार यह भी न जान सके कि हमें क्या करना चाहिये ? ॥ ४६½ ॥

तान् विमूढान् रणे द्रोणः प्रहसन्निव भारत ॥ ४७ ॥
व्यश्वसूतरथांश्चक्रे कुमारान् कुपितो रणे।

भरतनन्दन ! रणक्षेत्रमें कुपित हुए द्रोणाचार्यने हँसते हुए-से अपने बाणोंद्वारा उन किंकर्तव्यविमूढ़ राजकुमारोंको घोड़े, सारथि तथा रथसे हीन कर दिया ॥ ४७½ ॥

अथापरैः सुनिशितैर्भल्लैस्तेषां महायशाः ॥ ४८ ॥
पुष्पाणीव विचिन्वन् हि सोत्तमाङ्गान्यपातयत्।

तत्पश्चात् दूसरे तेज धारवाले भल्लोंसे महायशस्वी द्रोणने उन राजकुमारोंके मस्तक उसी प्रकार काट गिराये, मानो वृक्षोंसे फूल चुन लिये हों ॥ ४८½ ॥

ते रथेभ्यो हताः पेतुः क्षितौ राजन् सुवर्चसः ॥ ४९ ॥
देवासुरे पुरा युद्धे यथा दैतेयदानवाः।

राजन् ! जैसे पूर्वकालके देवासुरसंग्राममें दैत्य और दानव धराशायी हुए थे, उसी प्रकार वे सुन्दर कान्तिवाले राजकुमार मारे जाकर उस समय रथोंसे पृथ्वीपर गिर पड़े ४९½

तान् निहत्य रणे राजन् भारद्वाजः प्रतापवान् ॥५०॥
कार्मुकं भ्रामयामास हेमपृष्ठं दुरासदम्।
(तदस्य भ्राजते राजन् मेघमध्ये तडिद् यथा ॥)

महाराज ! प्रतापी द्रोणने युद्धस्थलमें उन राजकुमारोंका वध करके सुवर्णमय पृष्ठभागवाले दुर्जय धनुषको घुमाना आरम्भ किया। राजन् ! उस समय वह धनुष मेघोंकी घटामें बिजलीके समान प्रकाशित हो रहा था ॥ ५०½ ॥

पञ्चालान् निहतान् दृष्ट्वा देवकल्पान् महारथान् ॥५१॥
धृष्टद्युम्नो भृशोद्विग्नो नेत्राभ्यां पातयञ्जलम्।
अभ्यवर्तत संग्रामे क्रुद्धो द्रोणरथं प्रति ॥ ५२ ॥

देवताओंके समान तेजस्वी पाञ्चाल महारथियोंको मारा गया देख धृष्टद्युम्न अत्यन्त उद्विग्न हो नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए कुपित हो उठे और संग्रामभूमिमें द्रोणाचार्यके रथकी ओर बढ़े ॥ ५१-५२ ॥

ततो हाहेति सहसा नादः समभवन्नृप।
पाञ्चाल्येन रणे दृष्ट्वा द्रोणमावारितं शरैः ॥ ५३ ॥

राजन् ! रणक्षेत्रमें धृष्टद्युम्नके बाणोंसे द्रोणाचार्यकी गति अवरुद्ध हुई देख (कौरवसेनामें) सहसा हाहाकार मच गया ॥ ५३ ॥

स च्छाद्यमानो बहुधा पार्षतेन महात्मना।
न विव्यथे ततो द्रोणः स्मयन्नेवान्वयुध्यत ॥ ५४ ॥

महामना धृष्टद्युम्नके द्वारा बाणोंसे आच्छादित किये जानेपर भी द्रोणाचार्यको तनिक भी व्यथा नहीं हुई। वे मुसकराते हुए ही युद्धमें संलग्न रहे ॥ ५४ ॥

ततो द्रोणं महाराज पाञ्चाल्यः क्रोधमूर्च्छितः।
आजघानोरसि क्रुद्धो नवत्या नतपर्वणाम् ॥ ५५ ॥

महाराज ! तत्पश्चात् धृष्टद्युम्नने क्रोधसे अचेत होकर झुकी हुई गाँठवाले नब्बे बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यकी छातीमें प्रहार किया ॥ ५५ ॥

स गाढविद्धो बलिना भारद्वाजो महायशाः।
निषसाद रथोपस्थे कश्मलं च जगाम ह ॥ ५६ ॥

बलवान् वीर धृष्टद्युम्नके द्वारा गहरी चोट पहुँचायी जानेपर महायशस्वी द्रोणाचार्य रथके पिछले भागमें बैठ गये और मूर्छित हो गये ॥ ५६ ॥

तं वै तथागतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नः पराक्रमी।
चापमुत्सृज्य शीघ्रं तु असिं जग्राह वीर्यवान् ॥ ५७ ॥

उनको उस अवस्थामें देखकर बल और पराक्रमसे सम्पन्न धृष्टद्युम्नने धनुष रख दिया और तुरंत ही तलवार हाथमें ले ली ॥ ५७ ॥

अवप्लुत्य रथाच्चापि त्वरितः स महारथः।
आरुरोह रथं तूर्णं भारद्वाजस्य मारिष ॥ ५८ ॥

माननीय नरेश ! महारथी धृष्टद्युम्न शीघ्र ही अपने रथसे कूदकर द्रोणाचार्यके रथपर जा चढ़े ॥ ५८ ॥

हर्तुमिच्छञ्शिरः कायात् क्रोधसंरक्तलोचनः।
प्रत्याश्वस्तस्ततो द्रोणो धनुर्गृह्य महारवम् ॥ ५९ ॥
आसन्नमागतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नं जिघांसया।
शरैर्वैतस्तिकै राजन् विव्याधासन्नवेधिभिः ॥ ६० ॥

राजन् ! वे क्रोधसे लाल आँखें करके द्रोणाचार्यके सिरको धड़से अलग कर देना चाहते थे। इसी समय

द्रोणाचार्य होशमें आ गये और उन्होंने अपनेको मार डालनेकी इच्छासे धृष्टद्युम्नको निकट आया देख महान् टङ्कार करनेवाले अपने धनुषको हाथमें लेकर निकटसे वेधनेवाले बित्ते बराबर बाणोंद्वारा उन्हें घायल कर दिया ॥ ५९-६० ॥

योधयामास समरे धृष्टद्युम्नं महारथम् ।
ते हि वैतस्तिका नाम शरा आसन्नयोधिनः ॥ ६१ ॥
द्रोणस्य विहिता राजन् यैर्धृष्टद्युम्नमाक्षिणोत् ।

राजन्! आचार्य समराङ्गणमें महारथी धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध करने लगे। निकटसे युद्ध करनेवाले द्रोणाचार्यके पास उन्हींके बनाये हुए वैतस्तिक नामक बाण थे, जिनके द्वारा उन्होंने धृष्टद्युम्नको क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ६१½ ॥

स वध्यमानो बहुभिः सायकैस्तैर्महाबलः ॥ ६२ ॥
अवप्लुत्य रथात् तूर्णं भग्नवेगः पराक्रमी ।
आरुह्य स्वरथं वीरः प्रगृह्य च महद् धनुः ॥ ६३ ॥
विव्याध समरे द्रोणं धृष्टद्युम्नो महारथः ।
द्रोणश्चापि महाराज शरैर्विव्याध पार्षतम् ॥ ६४ ॥

महाबली और पराक्रमी धृष्टद्युम्न उन बहुसंख्यक बाणोंद्वारा घायल होकर अपना वेग भंग हो जानेके कारण उस रथसे कूद पड़े और पुनः अपने रथपर आरुढ़ हो वे वीर महारथी धृष्टद्युम्न महान् धनुष हाथमें लेकर समराङ्गणमें द्रोणाचार्यको वेधने लगे। महाराज! द्रोणाचार्यने भी अपने बाणोंद्वारा द्रुपदपुत्रको घायल कर दिया ॥ ६२–६४ ॥

तदद्भुतमभूद् युद्धं द्रोणपाञ्चालयोस्तदा ।
त्रैलोक्यकाङ्क्षिणोरासीच्छक्रप्रह्लादयोरिव ॥ ६५ ॥

जैसे त्रिलोकीके राज्यकी इच्छा रखनेवाले इन्द्र और प्रह्लादमें परस्पर युद्ध हुआ था, उसी प्रकार उस समय द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नमें अत्यन्त अद्भुत युद्ध होने लगा ॥ ६५ ॥

मण्डलानि विचित्राणि यमकानीतराणि च ।
चरन्तौ युद्धमार्गज्ञौ ततक्षतुरथेषुभिः ॥ ६६ ॥

वे दोनों ही युद्धकी प्रणालीके ज्ञाता थे। अतः विचित्र मण्डल, यमक तथा अन्य प्रकारके मार्गोंका प्रदर्शन करते हुए एक दूसरेको बाणोंसे क्षत-विक्षत करने लगे ॥ ६६ ॥

मोहयन्तौ मनांस्याजौ योधानां द्रोणपार्षतौ ।
सृजन्तौ शरवर्षाणि वर्षास्विव बलाहकौ ॥ ६७ ॥

वर्षाकालके दो मेघोंके समान बाण-वर्षा करते हुए द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न युद्धस्थलमें सम्पूर्ण योद्धाओंके मन मोहने लगे ॥ ६७ ॥

छादयन्तौ महात्मानौ शरैर्व्योम दिशो महीम् ।
तदद्भुतं तयोर्युद्धं भूतसङ्घा ह्यपूजयन् ॥ ६८ ॥

वे दोनों महामनस्वी वीर अपने बाणोंद्वारा आकाश, दिशाओं तथा पृथ्वीको आच्छादित करने लगे। उन दोनोंके उस अद्भुत युद्धकी सभी प्राणियोंने भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ ६८ ॥

क्षत्रियाश्च महाराज ये चान्ये तव सैनिकाः ।
अवश्यं समरे द्रोणो धृष्टद्युम्नेन सङ्गतः ॥ ६९ ॥
वशमेष्यति नो राजन् पञ्चाला इति चुक्रुशुः ।

महाराज! सभी क्षत्रियों तथा आपके अन्य सैनिकोंने भी उन दोनोंके युद्धकी प्रशंसा की। राजन्! पाञ्चालयोद्धा यों कहकर कोलाहल करने लगे कि द्रोणाचार्य समराङ्गणमें धृष्टद्युम्नके साथ उलझे हुए हैं। वे अवश्य ही हमारे अधीन हो जायँगे ॥ ६९½ ॥

द्रोणस्तु त्वरितो युद्धे धृष्टद्युम्नस्य सारथेः ॥ ७० ॥
शिरः प्रच्यावयामास फलं पक्वं तरोरिव ।

इसी समय द्रोणने युद्धमें बड़ी उतावलीके साथ धृष्टद्युम्नके सारथिका सिर वृक्षके पके हुए फलके समान धड़से नीचे गिरा दिया ॥ ७०½ ॥

ततस्तु प्रद्रुता वाहा राजंस्तस्य महात्मनः ॥ ७१ ॥
तेषु प्रद्रवमाणेषु पञ्चालान् सृञ्जयांस्तथा ।
अयोधयद् रणे द्रोणस्तत्र तत्र पराक्रमी ॥ ७२ ॥

राजन्! फिर तो महामना धृष्टद्युम्नके घोड़े भाग चले। उनके भाग जानेपर पराक्रमी द्रोणाचार्य रणभूमिमें सब ओर घूम-घूमकर पाञ्चालों और सृञ्जयोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ ७१-७२ ॥

विजित्य पाण्डुपञ्चालान् भारद्वाजः प्रतापवान् ।
स्वं व्यूहं पुनरास्थाय स्थितोऽभवदरिंदमः ।
न चैनं पाण्डवा युद्धे जेतुमुत्सेहिरे प्रभो ॥ ७३ ॥

इस प्रकार शत्रुओंका दमन करनेवाले प्रतापी द्रोणाचार्य पाण्डवों और पाञ्चालोंको पराजित करके पुनः अपने व्यूहमें आकर खड़े हो गये। प्रभो! उस समय पाण्डवसैनिक युद्धमें उन्हें जीतनेका साहस न कर सके ॥ ७३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे द्रोणपराक्रमे द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिका प्रवेश और द्रोणाचार्यका पराक्रमविषयक एक सौ बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२२ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ७३½ श्लोक हैं)

त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिका घोर युद्ध और दुःशासनकी पराजय

संजय उवाच

ततो दुःशासनो राजञ्शैनेयं समुपाद्रवत्।
किरञ्शतसहस्राणि पर्जन्य इव वृष्टिमान्॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर दुःशासनने वर्षा करनेवाले मेघके समान लाखों बाण बिखेरते हुए वहाँ शिनि-पौत्र सात्यकिपर धावा कर दिया ॥ १ ॥

स विद्ध्वा सात्यकिं षष्ट्या तथा षोडशभिः शरैः।
नाकम्पयत् स्थितं युद्धे मैनाकमिव पर्वतम् ॥ २ ॥

वह पहले साठ फिर सोलह बाणोंसे बींधकर भी युद्धमें मैनाक पर्वतकी भाँति अविचलभावसे खड़े हुए सात्यकिको कम्पित न कर सका ॥ २ ॥

तं तु दुःशासनः शूरः सायकैरावृणोद् भृशम्।
रथव्रातेन महता नानादेशोद्भवेन च ॥ ३ ॥

शूरवीर दुःशासनने नाना देशोंसे प्राप्त हुए विशाल रथ-समूहके द्वारा तथा बाणोंकी वर्षासे भी सात्यकिको अत्यन्त आवृत कर लिया ॥ ३ ॥

सर्वतो भरतश्रेष्ठ विसृजन् सायकान् बहून्।
पर्जन्य इव घोषेण नादयन् वै दिशो दश ॥ ४ ॥

भरतश्रेष्ठ! उसने मेघके समान अपनी गम्भीर गर्जनासे दसों दिशाओंको निनादित करते हुए चारों ओरसे बहुत-से बाणोंकी वर्षा की ॥ ४ ॥

तमापतन्तमालोक्य सात्यकिः कौरवं रणे।
अभिद्रुत्य महाबाहुश्छादयामास सायकैः ॥ ५ ॥

कुरुवंशी दुःशासनको रणक्षेत्रमें आक्रमण करते देख महाबाहु सात्यकिने उसपर धावा करके अपने बाणोंद्वारा उसे आच्छादित कर दिया ॥ ५ ॥

ते छाद्यमाना बाणौघैर्दुःशासनपुरोगमाः।
प्राद्रवन् समरे भीतास्तव सैन्यस्य पश्यतः ॥ ६ ॥

वे दुःशासन आदि योद्धा सात्यकिके बाण-समूहोंसे आच्छादित होनेपर समरभूमिमें भयभीत हो उठे और आपकी सारी सेनाके देखते-देखते भागने लगे ॥ ६ ॥

तेषु द्रवत्सु राजेन्द्र पुत्रो दुःशासनस्तव।
तस्थौ व्यपेतभी राजन् सात्यकिं चार्दयच्छरैः ॥ ७ ॥

राजेन्द्र! उनके भागनेपर भी आपका पुत्र दुःशासन वहीं निर्भय खड़ा रहा। उसने सात्यकिको अपने बाणोंसे पीड़ित कर दिया ॥ ७ ॥

चतुर्भिर्वाजिनस्तस्य सारथिं च त्रिभिः शरैः।
सात्यकिं च शतेनाजौ विद्ध्वा नादं मुमोच सः ॥ ८ ॥

उसने चार बाणोंसे उसके घोड़ोंको, तीनसे सारथिको और सौ बाणोंसे स्वयं सात्यकिको युद्धभूमिमें घायल करके बड़े जोरसे गर्जना की ॥ ८ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज माधवस्तस्य संयुगे।
रथं सूतं ध्वजं तं च चक्रेऽदृश्यमजिह्मगैः ॥ ९ ॥

महाराज! तब मधुवंशी सात्यकिने समराङ्गणमें कुपित होकर दुःशासनके रथ, सारथि और ध्वजको अपने बाणों-द्वारा अदृश्य कर दिया ॥ ९ ॥

स तु दुःशासनं शूरं सायकैरावृणोद् भृशम्।
सशङ्कं समनुप्राप्तमूर्णनाभिरिवोर्णया ॥ १० ॥
त्वरन् समावृणोद् बाणैर्दुःशासनममित्रजित्।

इतना ही नहीं, उन्होंने शूरवीर दुःशासनको अपने बाणोंसे अत्यन्त आच्छादित कर दिया। जैसे मकड़ी अपने जालेसे किसी जीवको लपेट देती है, उसी प्रकार शङ्कित-भावसे पास आये हुए दुःशासनको शत्रुविजयी सात्यकिने बड़ी उतावलीके साथ अपने बाणोंद्वारा आवृत कर लिया ॥ १०½ ॥

दृष्ट्वा दुःशासनं राजा तथा शरशताचितम् ॥ ११ ॥
त्रिगर्तांश्चोदयामास युयुधानरथं प्रति।

इस प्रकार दुःशासनको सैकड़ों बाणोंसे ढका हुआ देख राजा दुर्योधनने त्रिगर्तोंको युयुधानके रथपर आक्रमण करनेकी आज्ञा दी ॥ ११½ ॥

तेऽगच्छन् युयुधानस्य समीपं क्रूरकर्मणः ॥ १२ ॥
त्रिगर्तानां त्रिसाहस्रा रथा युद्धविशारदाः।

वे त्रिगर्तोंके तीन हजार रथी, जो युद्धमें कुशल थे, कठोर कर्म करनेवाले युयुधानके समीप गये ॥ १२½ ॥

ते तु तं रथवंशेन महता पर्यवारयन् ॥ १३ ॥
स्थिरां कृत्वा मतिं युद्धे भूत्वा संशप्तका मिथः।

उन्होंने युद्धके लिये दृढ़ निश्चय करके परस्पर शपथ ग्रहण करनेके अनन्तर विशाल रथ-सेनाके द्वारा उन्हें घेर लिया ॥ १३½ ॥

तेषां प्रयततां युद्धे शरवर्षाणि मुञ्चताम् ॥ १४ ॥
योधान् पञ्चशतान् मुख्यानग्र्यानीके व्यपोथयत्।

तब सात्यकिने युद्धमें बाणवर्षा करते हुए आक्रमण करनेवाले पाँच सौ प्रमुख योद्धाओंको सेनाके मुहानेपर मार गिराया ॥ १४½ ॥

तेऽपतन् निहतास्तूर्णं शिनिप्रवरसायकैः ॥ १५ ॥
महामारुतवेगेन भग्ना इव नगाद् द्रुमाः।

जैसे आँधीके वेगसे टूटे हुए वृक्ष पर्वतसे नीचे गिरते हैं, उसी प्रकार शिनिश्रेष्ठ सात्यकिके बाणोंसे मारे गये वे त्रिगर्त योद्धा तुरंत ही धराशायी हो गये ॥ १५½ ॥

नागैश्च बहुधा च्छिन्नैर्ध्वजैश्चैव विशाम्पते ॥ १६ ॥
हयैश्च कनकापीडैः पतितैस्तत्र मेदिनी ।
शैनेयशरसंकृत्तैः शोणितौघपरिप्लुतैः ॥ १७ ॥
अशोभत महाराज किंशुकैरिव पुष्पितैः ।

महाराज ! प्रजापालक नरेश ! उस समय गिरे हुए गजराजों, अनेक टुकड़ोंमें कटी हुई ध्वजाओं तथा धरतीपर पड़े हुए, सोनेकी कलंगियोंसे सुशोभित घोड़ोंसे, जो सात्यकिके बाणोंसे क्षत-विक्षत होकर खूनसे लथपथ हो रहे थे, आच्छादित हुई यह पृथ्वी वैसी ही शोभा पा रही थी, मानो वह लाल फूलोंसे भरे हुए पलाशके वृक्षोंद्वारा ढक गयी हो ॥ १६–१७½ ॥

ते वध्यमानाः समरे युयुधानेन तावकाः ॥ १८ ॥
त्रातारं नाध्यगच्छन्त पङ्कमग्ना इव द्विपाः ।

जैसे कीचड़में फँसे हुए हाथियोंको कोई रक्षक नहीं मिलता है, उसी प्रकार समराङ्गणमें युयुधानकी मार खाते हुए आपके सैनिक कोई रक्षक न पा सके ॥ १८½ ॥

ततस्ते पर्यवर्तन्त सर्वे द्रोणरथं प्रति ॥ १९ ॥
भयात् पतगराजस्य गर्तानीव महोरगाः ।

जैसे बड़े-बड़े सर्प गरुड़के भयसे बिलोंमें घुस जाते हैं, उसी प्रकार आपके वे सभी पराजित सैनिक द्रोणाचार्यके रथके पास इकट्ठे हो गये ॥ १९½ ॥

हत्वा पञ्चशतान् योधाञ्छरैराशीविषोपमैः ॥ २० ॥
प्रायात् स शनकैर्वीरो धनंजयरथं प्रति ।

विषधर सर्पके समान भयंकर बाणोंद्वारा पाँच सौ योद्धाओंका संहार करके वीर सात्यकि धीरे-धीरे धनंजयके रथकी ओर बढ़ने लगे ॥ २०½ ॥

तं प्रयान्तं नरश्रेष्ठं पुत्रो दुःशासनस्तव ॥ २१ ॥
विव्याध नवभिस्तूर्णं शरैः संनतपर्वभिः ।

उस समय आपके पुत्र दुःशासनने वहाँसे जाते हुए नरश्रेष्ठ सात्यकिको झुकी हुई गाँठवाले नौ बाणोंद्वारा शीघ्र ही बींध डाला ॥ २१½ ॥

स तु तं प्रतिविव्याध पञ्चभिर्निशितैः शरैः ॥ २२ ॥
रुक्मपुङ्खैर्महेष्वासो गार्ध्रपत्रैरजिह्मगैः ।

तब महाधनुर्धर सात्यकिने भी सोनेके पुंख तथा गीधकी पाँखवाले पाँच तीखे और सीधे जानेवाले बाणोंद्वारा दुःशासनको वेधकर बदला चुकाया ॥ २२½ ॥

सात्यकिं तु महाराज प्रहसन्निव भारत ॥ २३ ॥
दुःशासनस्त्रिभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ।

भरतवंशी महाराज ! इसके बाद दुःशासनने हँसते हुए-से ही वहाँ तीन बाणोंद्वारा सात्यकिको घायल करके पुनः पाँच बाणोंसे बींध डाला ॥ २३½ ॥

शैनेयस्तव पुत्रं तु हत्वा पञ्चभिराशुगैः ॥ २४ ॥
धनुश्चास्य रणे छित्त्वा विस्मयन्नर्जुनं ययौ ।

तब शिनिपौत्र सात्यकि पाँच बाणोंसे आपके पुत्रको रणक्षेत्रमें घायल करके उसका धनुष काटकर मुसकराते हुए वहाँसे अर्जुनकी ओर चल दिये ॥ २४½ ॥

ततो दुःशासनः क्रुद्धो वृष्णिवीराय गच्छते ॥ २५ ॥
सर्वपारशवीं शक्तिं विससर्ज जिघांसया ।

तदनन्तर दुःशासनने वहाँसे जाते हुए वृष्णिवीर सात्यकिपर कुपित हो उन्हें मार डालनेकी इच्छासे सम्पूर्णतः लोहेकी बनी हुई शक्ति चलायी ॥ २५½ ॥

तां तु शक्तिं तदा घोरां तव पुत्रस्य सात्यकिः ॥ २६ ॥
चिच्छेद शतधा राजन् निशितैः कङ्कपत्रिभिः ।

राजन् ! आपके पुत्रकी उस भयंकर शक्तिको उस समय सात्यकिने कंकपत्रयुक्त तीखे बाणोंद्वारा सौ टुकड़ोंमें खण्डित कर दिया ॥ २६½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय पुत्रस्तव जनेश्वर ॥ २७ ॥
सात्यकिं च शरैर्विद्ध्वा सिंहनादं ननर्द ह ।

जनेश्वर ! तत्पश्चात् आपके पुत्रने दूसरा धनुष लेकर सात्यकिको अपने बाणोंद्वारा घायल करके सिंहके समान गर्जना की ॥ २७½ ॥

सात्यकिस्तु रणे क्रुद्धो मोहयित्वा सुतं तव ॥ २८ ॥
शरैरग्निशिखाकारैराजघ्नान स्तनान्तरे ।
त्रिभिरेव महाभागः शरैः संनतपर्वभिः ।

इससे महाभाग सात्यकिने समराङ्गणमें कुपित होकर आपके पुत्रको मोहित करते हुए झुकी हुई गाँठवाले अग्निकी लपटोंके समान प्रज्वलित तीन बाणोंद्वारा उसकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ २८½ ॥

सर्वायसैस्तीक्ष्णवक्त्रैः पुनर्विव्याध चाष्टभिः ॥ २९ ॥
दुःशासनस्तु विंशत्या सात्यकिं प्रत्यविध्यत ।

फिर लोहेके बने हुए तीखी धारवाले आठ बाणोंसे उसे पुनः घायल कर दिया । तब दुःशासनने भी बीस बाण मारकर सात्यकिको क्षत-विक्षत कर दिया ॥ २९½ ॥

सात्वतोऽपि महाराज तं विव्याध स्तनान्तरे ॥ ३० ॥
त्रिभिरेव महाभागः शरैः संनतपर्वभिः ।

महाराज ! इधर महाभाग सात्यकिने भी झुकी हुई गाँठवाले तीन बाणोंद्वारा दुःशासनकी छातीमें चोट पहुँचायी॥

ततोऽस्य वाहान् निशितैः शरैर्जघ्ने महारथः ॥ ३१ ॥
सारथिं च सुसंक्रुद्धः शरैः संनतपर्वभिः ।

इसके बाद महारथी युयुधानने अत्यन्त कुपित हो पैने बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको मार डाला । फिर झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे सारथिको भी यमलोक पहुँचा दिया॥३१½॥

धनुरेकेन भल्लेन हस्तावापं च पञ्चभिः ॥ ३२ ॥

ध्वजं च रथशक्तिं च भल्लाभ्यां परमास्त्रवित्।
चिच्छेद विशिखैस्तीक्ष्णैस्तथोभौ पार्ष्णिसारथी ॥३३॥

तदनन्तर महान् अस्त्रवेत्ता सात्यकिने एक भल्लसे दुःशासनका धनुष, पाँचसे उसके दस्ताने तथा दो भल्लोंसे उसकी ध्वजा एवं रथशक्तिके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये। इतना ही नहीं, उन्होंने तीखे बाणोंद्वारा उसके दोनों पार्श्वरक्षकोंको भी मार डाला ॥ ३२-३३ ॥

स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
त्रिगर्तसेनापतिना स्वरथेनापवाहितः ॥ ३४ ॥

धनुष कट जानेपर रथ, घोड़े और सारथिसे हीन हुए दुःशासनको त्रिगर्त-सेनापतिने अपने रथपर बिठाकर वहाँसे दूर हटा दिया ॥ ३४ ॥

तमभिद्रुत्य शैनेयो मुहूर्तमिव भारत।
न जघान महाबाहुर्भीमसेनवचः स्मरन् ॥ ३५ ॥

भारत! उस समय महाबाहु सात्यकिने लगभग दो घड़ीतक दुःशासनका पीछा किया; परंतु भीमसेनकी बात याद आ जानेसे उसका वध नहीं किया ॥ ३५ ॥

भीमसेनेन तु वधः सुतानां तव भारत।
प्रतिज्ञातः सभामध्ये सर्वेषामेव संयुगे ॥ ३६ ॥

भरतनन्दन! भीमसेनने सभामें सबके सामने ही युद्धस्थलमें आपके पुत्रोंका वध करनेकी प्रतिज्ञा की थी ॥ ३६ ॥

ततो दुःशासनं जित्वा सात्यकिः संयुगे प्रभो।
जगाम त्वरितो राजन् येन यातो धनंजयः ॥ ३७ ॥

राजन्! प्रभो! इस प्रकार समराङ्गणमें दुःशासनपर विजय पाकर सात्यकि तत्काल ही उसी मार्गपर चल दिये, जिससे अर्जुन गये थे ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे दुःशासनपराजये त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिका प्रवेश और दुःशासनकी पराजयविषयक एक सौ तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२३ ॥

चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

कौरव-पाण्डव-सेनाका घोर युद्ध तथा पाण्डवोंके साथ दुर्योधनका संग्राम

धृतराष्ट्र उवाच

किं तस्यां मम सेनायां नासन् केचिन्महारथाः।
ये तथा सात्यकिं यान्तं नैवाघ्नन् नाप्यवारयन्॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! क्या मेरी उस सेनामें कोई भी महारथी वीर नहीं थे, जिन्होंने जाते हुए सात्यकिको न तो मारा और न उन्हें रोका ही ॥ १ ॥

एको हि समरे कर्म कृतवान् सत्यविक्रमः।
शक्रतुल्यबलो युद्धे महेन्द्रो दानवेष्विव ॥ २ ॥

जैसे देवराज इन्द्र दानवोंके साथ युद्धमें पराक्रम दिखाते हैं, उसी प्रकार इन्द्रतुल्य बलशाली सत्यपराक्रमी सात्यकिने समराङ्गणमें अकेले ही महान् कर्म किया ॥ २ ॥

अथवा शून्यमासीत् तद् येन यातः स सात्यकिः।
हतभूयिष्ठमथवा येन यातः स सात्यकिः ॥ ३ ॥

अथवा जिस मार्गसे सात्यकि आगे बढ़े थे, वह वीरोंसे शून्य तो नहीं हो गया था या वहाँके अधिकांश सैनिक मारे तो नहीं गये थे ॥ ३ ॥

यत् कृतं वृष्णिवीरेण कर्म शंससि मे रणे।
नैतदुत्सहते कर्तुं कर्म शक्रोऽपि संजय ॥ ४ ॥

संजय! तुम रणक्षेत्रमें वृष्णिवंशी वीर सात्यकिके द्वारा किये हुए जिस कर्मकी प्रशंसा कर रहे हो, वह कर्म देवराज इन्द्र भी नहीं कर सकते ॥ ४ ॥

अश्रद्धेयमचिन्त्यं च कर्म तस्य महात्मनः।
वृष्ण्यन्धकप्रवीरस्य श्रुत्वा मे व्यथितं मनः ॥ ५ ॥

वृष्णि और अंधक वंशके प्रमुख वीर महामना सात्यकिका वह कर्म अचिन्त्य (सम्भावनासे परे) है। उसपर सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता। उसे सुनकर मेरा मन व्यथित हो उठा है ॥ ५ ॥

न सन्ति तस्मात् पुत्रा मे यथा संजय भाषसे।
एको वै बहुलाः सेनाः प्रामृद्नत् सत्यविक्रमः ॥ ६ ॥

संजय! जैसा कि तुम बता रहे हो, यदि एक ही सत्यपराक्रमी सात्यकिने मेरी बहुत-सी सेनाओंको धूलमें मिला दिया है, तब तो मुझे यह मान लेना चाहिये कि अब मेरे पुत्र जीवित नहीं हैं ॥ ६ ॥

कथं च युध्यमानानामपक्रान्तो महात्मनाम्।
एको बहूनां शैनेयस्तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ७ ॥

संजय! जब बहुत-से महामनस्वी वीर युद्ध कर रहे थे, उस समय अकेले सात्यकि उन्हें पराजित करके कैसे आगे बढ़ गये, यह सब मुझे बताओ ॥ ७ ॥

संजय उवाच

राजन् सेनासमुद्योगो रथनागाश्वपत्तिमान्।
तुमुलस्तव सैन्यानां युगान्तसदृशोऽभवत् ॥ ८ ॥

संजयने कहा—राजन्! रथ, हाथी, घोड़े और पैदलोंसे भरा हुआ आपका सेनासम्बन्धी उद्योग महान् था।

आपके सैनिकोंका समाहार प्रलयकालके समान भंयकर जान पड़ता था ॥ ८ ॥

आहूतेषु समूहेषु तव सैन्यस्य मानद।
नाभूल्लोके समः कश्चित् समूह इति मे मतिः ॥ ९ ॥

मानद ! जब आपकी सेनाके भिन्न-भिन्न समूह सब ओरसे बुलाये गये, उस समय जो महान् समुदाय एकत्र हुआ, उसके समान इस संसारमें दूसरा कोई समूह नहीं था, ऐसा मेरा विश्वास है ॥ ९ ॥

तत्र देवास्त्वभाषन्त चारणाश्च समागताः।
एतदन्ताः समूहा वै भविष्यन्ति महीतले ॥ १० ॥

वहाँ आये हुए देवता तथा चारण ऐसा कहते थे कि इस भूतलपर सारे समूहोंकी अन्तिम सीमा यही होगी ॥ १० ॥

न च वै तादृशो व्यूह आसीत् कश्चिद् विशाम्पते।
यादृग् जयद्रथवधे द्रोणेन विहितोऽभवत् ॥ ११ ॥

प्रजानाथ ! जयद्रथ-वधके समय द्रोणाचार्यने जैसा व्यूह बनाया था, वैसा दूसरा कोई भी व्यूह नहीं बन सका था ॥

चण्डवातविभिन्नानां समुद्राणामिव स्वनः।
रणेऽभवद् बलौघानामन्योन्यमभिधावताम् ॥ १२ ॥

प्रचण्ड वायुके थपेड़े खाकर उद्वेलित हुए समुद्रोंके जलसे जैसा भैरव गर्जन सुनायी देता है, उस रणक्षेत्रमें एक दूसरे-पर धावा करनेवाले सैन्य-समूहोंका कोलाहल भी वैसा ही भयंकर था ॥ १२ ॥

पार्थिवानां समेतानां बहून्यासन् नरोत्तम।
तद्बले पाण्डवानां च सहस्राणि शतानि च ॥ १३ ॥

नरश्रेष्ठ ! आपकी और पाण्डवोंकी सेनाओंमें सब ओरसे एकत्र हुए भूमिपालोंके सैकड़ों और हजारों दल थे ॥ १३ ॥

संरब्धानां प्रवीराणां समरे दृढकर्मणाम्।
तत्रासीत् सुमहाशब्दस्तुमुलो लोमहर्षणः ॥ १४ ॥

वे सभी प्रमुख वीर रोषावेशसे परिपूर्ण हो समरभूमिमें सुदृढ़ पराक्रम कर दिखानेवाले थे। वहाँ उन सबका महान् एवं तुमुल कोलाहल रोंगटे खड़े कर देनेवाला था ॥ १४ ॥

(पाण्डवानां कुरूणां च गर्जतामितरेतरम्।
क्ष्वेडाः किलकिलाशब्दास्तत्रासन् वै सहस्रशः ॥

एक दूसरेके प्रति गर्जना करनेवाले पाण्डवों तथा कौरवों-के सिंहनाद और किलकिलाहटके शब्द वहाँ सहस्रों बार प्रकट होते थे ॥

भेरीशब्दाश्च तुमुला बाणशब्दाश्च भारत।
अन्योन्यं निघ्नतां चैव नराणां शुश्रुवे स्वनः ॥)

भरतनन्दन ! वहाँ नगाड़ोंकी भयानक गड़गड़ाहट, बाणोंकी सनसनाहट तथा परस्पर प्रहार करनेवाले मनुष्योंकी गर्जनाके शब्द बड़े जोरसे सुनायी दे रहे थे ॥

अथाक्रन्दद् भीमसेनो धृष्टद्युम्नश्च मारिष।
नकुलः सहदेवश्च धर्मराजश्च पाण्डवः ॥ १५ ॥

माननीय नरेश ! तदनन्तर भीमसेन, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव तथा पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिरने अपने सैनिकोंसे पुकारकर कहा— ॥ १५ ॥

आगच्छत प्रहरत द्रुतं विपरिधावत।
प्रविष्टावरिसेनां हि वीरौ माधवपाण्डवौ ॥ १६ ॥

'वीरो ! आओ, शत्रुओंपर प्रहार करो। बड़े वेगसे इनपर टूट पड़ो; क्योंकि वीर सात्यकि और अर्जुन शत्रुओं-की सेनामें घुस गये हैं ॥ १६ ॥

यथा सुखेन गच्छेतां जयद्रथवधं प्रति।
तथा प्रकुरुत क्षिप्रमिति सैन्यान्यचोदयन् ॥ १७ ॥

'वे दोनों जयद्रथका वध करनेके लिये जैसे सुखपूर्वक आगे जा सकें, उसी प्रकार शीघ्रतापूर्वक प्रयत्न करो।' इस तरह उन्होंने सारी सेनाओंको आदेश दिया ॥ १७ ॥

तयोरभावे कुरवः कृतार्थाः स्युर्वयं जिताः।
ते यूयं सहिता भूत्वा तूर्णमेव बलार्णवम् ॥ १८ ॥
क्षोभयध्वं महावेगाः पवनः सागरं यथा।

(इसके बाद उन्होंने फिर कहा—) 'सात्यकि और अर्जुन-के न होनेपर ये कौरव तो कृतार्थ हो जायँगे और हम पराजित होंगे। अतः तुम सब लोग एक साथ मिलकर महान् वेगका आश्रय ले तुरंत ही इस सैन्य-समुद्रमें हलचल मचा दो। ठीक वैसे ही जैसे प्रचण्ड वायु महासागरको विक्षुब्ध कर देती है' ॥ १८½ ॥

भीमसेनेन ते राजन् पाञ्चाल्येन च नोदिताः ॥ १९ ॥
आजघ्नुः कौरवान् संख्ये त्यक्त्वासूनात्मनः प्रियान्।

राजन् ! भीमसेन तथा धृष्टद्युम्नके द्वारा इस प्रकार प्रेरित हुए पाण्डव सैनिकोंने अपने प्यारे प्राणोंका मोह छोड़-कर युद्धस्थलमें कौरव-योद्धाओंका संहार आरम्भ कर दिया ॥

इच्छन्तो निधनं युद्धे शस्त्रैरुत्तमतेजसः ॥ २० ॥
स्वर्गेप्सवो मित्रकार्ये नाभ्यनन्दन्त जीवितम्।

वे उत्तम तेजवाले नरेश स्वर्गलोक प्राप्त करना चाहते थे। अतः उन्हें युद्धमें शस्त्रोंद्वारा मृत्यु आनेकी अभिलाषा थी। इसीलिये उन्होंने मित्रका कार्य सिद्ध करनेके प्रयत्नमें अपने प्राणोंकी परवा नहीं की ॥ २०½ ॥

तथैव तावका राजन् प्रार्थयन्तो महद् यशः ॥ २१ ॥
आर्या युद्धे मतिं कृत्वा युद्धायैवावतस्थिरे।

राजन् ! इसी प्रकार आपके सैनिक भी महान् सुयश प्राप्त करना चाहते थे। अतः वे युद्धविषयक श्रेष्ठ बुद्धिका आश्रय ले वहाँ युद्धके लिये ही डंटे रहे ॥ २१½ ॥

तस्मिन् सुतुमुले युद्धे वर्तमाने भयावहे ॥ २२ ॥

जित्वा सर्वाणि सैन्यानि प्रायात् सात्यकिरर्जुनम्।

जिस समय वह अत्यन्त भयंकर घमासान युद्ध चल रहा था, उसी समय सात्यकि आपकी सारी सेनाओंको जीतकर अर्जुनकी ओर बढ़ चले ॥ २२½ ॥

कवचानां प्रभास्तत्र सूर्यरश्मिविराजिताः ॥ २३ ॥
दृष्टीः संख्ये सैनिकानां प्रतिजघ्नुः समन्ततः ।

वहाँ वीरोंके सुवर्णमय कवचोंकी प्रभाएँ सूर्यकी किरणोंसे उद्भासित हो युद्धस्थलमें सब ओर खड़े हुए सैनिकोंके नेत्रोंमें चकाचौंध पैदा कर रही थी ॥ २३½ ॥

तथा प्रयतमानानां पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ २४ ॥
दुर्योधनो महाराज व्यगाहत महद् बलम् ।

महाराज ! इस प्रकार विजयके लिये प्रयत्नशील हुए महामनस्वी पाण्डवोंकी उस विशाल वाहिनीमें राजा दुर्योधनने प्रवेश किया ॥ २४½ ॥

स संनिपातस्तुमुलस्तेषां तस्य च भारत ॥ २५ ॥
अभवत् सर्वभूतानामभावकरणो महान् ।

भारत ! पाण्डव सैनिकों तथा दुर्योधनका वह भयंकर संग्राम समस्त प्राणियोंके लिये महान् संहारकारी सिद्ध हुआ ॥ २५½ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

तथा यातेषु सैन्येषु तथा कृच्छ्रगतः स्वयम् ॥ २६ ॥
कच्चिद् दुर्योधनः सूत नाकार्षीत् पृष्ठतो रणम् ।

धृतराष्ट्रने पूछा—सूत ! जब इस प्रकार सारी सेनाएँ भाग रही थीं, उस समय स्वयं भी वैसे संकटमें पड़े हुए दुर्योधनने क्या उस युद्धमें पीठ नहीं दिखायी ? ॥ २६½ ॥

एकस्य च बहूनां च संनिपातो महाहवे ॥ २७ ॥
विशेषतो नरपतेर्विषमः प्रतिभाति मे ।

उस महासमरमें बहुत-से योद्धाओंके साथ किसी एक वीरका विशेषतः राजा दुर्योधनका युद्ध करना तो मुझे विषम (अयोग्य) प्रतीत हो रहा है ॥ २७½ ॥

सोऽत्यन्तसुखसंवृद्धो लक्ष्म्या लोकस्य चेश्वरः ॥ २८ ॥
एको बहून् समासाद्य कच्चिन्नासीत् पराङ्मुखः ।

अत्यन्त सुखमें पला हुआ, इस लोक तथा राजलक्ष्मीका स्वामी अकेला दुर्योधन बहुसंख्यक योद्धाओंके साथ युद्ध करके रणभूमिसे विमुख तो नहीं हुआ ? ॥ २८½ ॥

संजय उवाच

राजन् संग्राममाश्चर्यं तव पुत्रस्य भारत ॥ २९ ॥
एकस्य बहुभिः सार्धं शृणुष्व गदतो मम ।

संजयने कहा—भरतवंशी नरेश ! आपके एकमात्र पुत्र दुर्योधनका शत्रुपक्षके बहुसंख्यक योद्धाओंके साथ जो आश्चर्यजनक संग्राम हुआ था, उसे मैं बताता हूँ, सुनिये ॥ २९½ ॥

दुर्योधनेन समरे पृतना पाण्डवी रणे ॥ ३० ॥
नलिनी द्विरदेनेव समन्तात् प्रतिलोडिता ।

दुर्योधनने समराङ्गणमें पाण्डवसेनाको सब ओरसे उसी प्रकार मथ डाला, जैसे हाथी कमलोंसे भरे हुए किसी पोखरेको ॥ ३०½ ॥

ततस्तां प्रहितां सेनां दृष्ट्वा पुत्रेण ते नृप ॥ ३१ ॥
भीमसेनपुरोगास्तं पञ्चालाः समुपाद्रवन् ।

नरेश्वर ! आपके पुत्रद्वारा आपकी सेनाको आगे बढ़नेके लिये प्रेरित हुई देख भीमसेनको अगुआ बनाकर पाञ्चाल योद्धाओंने दुर्योधनपर आक्रमण कर दिया ॥ ३१½ ॥

स भीमसेनं दशभिः शरैर्विव्याध पाण्डवम् ॥ ३२ ॥
त्रिभिस्त्रिभिर्यमौ वीरौ धर्मराजं च सप्तभिः ।

तब दुर्योधनने पाण्डुपुत्र भीमसेनको दस बाणोंसे, वीर नकुल और सहदेवको तीन-तीन बाणोंसे तथा धर्मराज युधिष्ठिरको सात बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ३२½ ॥

विराटद्रुपदौ षड्भिः शतेन च शिखण्डिनम् ॥ ३३ ॥
धृष्टद्युम्नं च विंशत्या द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः ।

तत्पश्चात् उसने राजा विराट और द्रुपदको छः-छः बाणोंसे बींध डाला, फिर शिखण्डीको सौ, धृष्टद्युम्नको बीस और द्रौपदीपुत्रोंको तीन-तीन बाणोंसे घायल किया ॥ ३३½ ॥

शतशश्चापरान् योधान् सद्विपांश्च रथान् रणे ॥ ३४ ॥
शरैरवचकर्तोग्रैः क्रुद्धोऽन्तक इव प्रजाः ।

तदनन्तर उस रणक्षेत्रमें उसने अपने भयंकर बाणोंद्वारा दूसरे-दूसरे सैकड़ों योद्धाओं, हाथियों और रथोंको उसी प्रकार काट डाला, जैसे क्रोधमें भरा हुआ यमराज समस्त प्राणियोंका विनाश करता है ॥ ३४½ ॥

न संदधन् विमुञ्चन् वा मण्डलीकृतकार्मुकः ॥ ३५ ॥
अदृश्यत रिपून् निघ्नञ्छिक्षयास्त्रबलेन च ।

दुर्योधनने अपने धनुषको खींचकर मण्डलाकार बना दिया था। वह अपनी शिक्षा और अस्त्र-बलसे इतनी शीघ्रताके साथ बाणोंको धनुषपर रखता, चलाता तथा शत्रुओंका वध करता था कि कोई उसके इस कार्यको देख नहीं पाता था ॥ ३५½ ॥

तस्य तान् निघ्नतः शत्रून् हेमपृष्ठं महद् धनुः ॥ ३६ ॥
अजस्रं मण्डलीभूतं ददृशुः समरे जनाः ।

शत्रुओंके संहारमें लगे हुए दुर्योधनके सुवर्णमय पृष्ठवाले विशाल धनुषको सब लोग समराङ्गणमें सदा मण्डलाकार हुआ ही देखते थे ॥ ३६½ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा भल्लाभ्यामच्छिनद् धनुः ॥ ३७ ॥
तव पुत्रस्य कौरव्य यतमानस्य संयुगे ।

कुरुनन्दन ! तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने दो भल्ल मारकर

युद्धमें विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले आपके पुत्रके धनुषको काट दिया ॥ ३७½ ॥

विव्याध चैनं दशभिः सम्यगस्तैः शरोत्तमैः ॥ ३८ ॥
वर्म चाशु समासाद्य ते भित्त्वा क्षितिमाविशन् ।

और उसे विधिपूर्वक चलाये हुए उत्तम दस बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी। वे बाण तुरंत ही उसके कवचमें जा लगे और उसे छेदकर धरतीमें समा गये ॥ ३८½ ॥

ततः प्रमुदिताः पार्थाः परिवव्रुर्युधिष्ठिरम् ॥ ३९ ॥
यथा वृत्रवधे देवाः पुरा शक्रं महर्षयः ।

इससे कुन्तीकुमारोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। जैसे पूर्वकालमें वृत्रासुरका वध होनेपर सम्पूर्ण देवताओं और महर्षियोंने इन्द्रको सब ओरसे घेर लिया था, उसी प्रकार पाण्डव भी युधिष्ठिरको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये ॥ ३९½ ॥

ततोऽन्यद् धनुरादाय तव पुत्रः प्रतापवान् ॥ ४० ॥
तिष्ठ तिष्ठेति राजानं ब्रुवन् पाण्डवमभ्ययात् ।

तत्पश्चात् आपके प्रतापी पुत्रने दूसरा धनुष लेकर 'खड़ा रह, खड़ा रह' ऐसा कहते हुए वहाँ पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरपर आक्रमण किया ॥ ४०½ ॥

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य तव पुत्रं महामृधे ॥ ४१ ॥
प्रत्युद्ययुः समुदिताः पञ्चाला जयगृद्धिनः ।

उस महासमरमें आपके पुत्रको आते देख विजयकी अभिलाषा रखनेवाले पाञ्चाल सैनिक संघबद्ध हो उसका सामना करनेके लिये आगे बढ़े ॥ ४१½ ॥

तान् द्रोणः प्रतिजग्राह परीप्सन् युधि पाण्डवम् ॥ ४२ ॥
चण्डवातोद्धुतान् मेघान् गिरिरम्बुमुचो यथा ।

उस समय युद्धमें युधिष्ठिरको पकड़नेकी इच्छावाले द्रोणाचार्यने उन सब योद्धाओंको उसी प्रकार रोक दिया, जैसे प्रचण्ड वायुद्वारा उड़ाये गये जलवर्षी मेघोंको पर्वत रोक देता है ॥ ४२½ ॥

तत्र राजन् महानासीत् संग्रामो लोमहर्षणः ॥ ४३ ॥
पाण्डवानां महाबाहो तावकानां च संयुगे ।
रुद्रस्याक्रीडसदृशः संहारः सर्वदेहिनाम् ॥ ४४ ॥

राजन्! महाबाहो! फिर तो वहाँ युद्धस्थलमें पाण्डवों तथा आपके सैनिकोंमें महान् रोमाञ्चकारी संग्राम होने लगा। जो रुद्रकी क्रीडाभूमि (श्मशानके सदृश) सम्पूर्ण देहधारियोंके लिये संहारका स्थान बन गया था ॥ ४३-४४ ॥

ततः शब्दो महानासीत् पुनर्येन धनंजयः ।
अतीव सर्वशब्देभ्यो लोमहर्षकरः प्रभो ॥ ४५ ॥

प्रभो! तदनन्तर जिधर अर्जुन गये थे, उसी ओर बड़े जोरका कोलाहल होने लगा, जो सम्पूर्ण शब्दोंसे ऊपर उठकर सुननेवालोंके रोंगटे खड़े किये देता था ॥ ४५ ॥

अर्जुनस्य महाबाहो तावकानां च धन्विनाम् ।
मध्ये भारतसैन्यस्य माधवस्य महारणे ॥ ४६ ॥

महाबाहो! उस महासमरमें कौरवी सेनाके भीतर आपके धनुर्धरोंकी तथा अर्जुन और सात्यकिकी भीषण गर्जना सुनायी देती थी ॥ ४६ ॥

द्रोणस्यापि परैः सार्धं व्यूहद्वारे महारणे ।
एवमेष क्षयो वृत्तः पृथिव्यां पृथिवीपते ।
क्रुद्धेऽर्जुने तथा द्रोणे सात्वते च महारथे ॥ ४७ ॥

पृथ्वीपते! उस महायुद्धमें व्यूहके द्वारपर शत्रुओंके साथ जूझते हुए द्रोणाचार्यका भी सिंहनाद प्रकट हो रहा था। इस प्रकार अर्जुन, द्रोणाचार्य तथा महारथी सात्यकिके कुपित होनेपर युद्धभूमिमें यह भयंकर विनाशका कार्य सम्पन्न हुआ ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रवेशे संकुलयुद्धे चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिका प्रवेश और दोनों सेनाओंका घमासान युद्धविषयक एक सौ चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२४ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २ श्लोक मिलाकर कुल ४९ श्लोक हैं)

पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्रोणाचार्यके द्वारा बृहत्क्षत्र, धृष्टकेतु, जरासन्धपुत्र सहदेव तथा धृष्टद्युम्नकुमार क्षत्रधर्माका वध और चेकितानकी पराजय

संजय उवाच

अपराह्णे महाराज संग्रामः सुमहानभूत् ।
पर्जन्यसमनिर्घोषः पुनर्द्रोणस्य सोमकैः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! अपराह्णकालमें सोमकोंके साथ द्रोणाचार्यका पुनः महान् संग्राम छिड़ गया, जिसमें मेघोंकी गर्जनाके समान गम्भीर सिंहनाद हो रहा था ॥ १ ॥

शोणाश्वं रथमास्थाय नरवीरः समाहितः ।
समरेऽभ्यद्रवत् पाण्डूनवमास्थाय मध्यमम् ॥ २ ॥

नरवीर द्रोण लाल घोड़ोंवाले रथपर आरूढ़ हो चित्तको एकाग्र करके मध्यम वेगका आश्रय ले समरभूमिमें पाण्डवोंपर टूट पड़े ॥ २ ॥

तव प्रियहिते युक्तो महेष्वासो महाबलः ।
चित्रपुङ्खैः शितैर्बाणैः कलशोत्तमसम्भवः ॥ ३ ॥
(जघान सोमकान् राजन् सृञ्जयान् केकयानपि ।)

राजन्! आपके प्रिय और हित साधनमें लगे हुए महाधनुर्धर महाबली उत्तम कलशजन्मा द्रोणाचार्यने अपने विचित्र पंखोंवाले पैने बाणोंद्वारा सोमकों, सृंजयों तथा केकयोंका संहार आरम्भ किया ॥ ३ ॥

वरान् वरान् हि योधानां विचिन्वन्निव भारत।
आक्रीडत रणे राजन् भारद्वाजः प्रतापवान्॥ ४॥

भरतवंशी नरेश! प्रतापी द्रोणाचार्य मानो उस युद्ध-स्थलमें प्रधान-प्रधान योद्धाओंको चुन रहे हों, इस प्रकार उनके साथ खेल-सा कर रहे थे ॥ ४ ॥

तमभ्ययाद् बृहत्क्षत्रः केकयानां महारथः।
भ्रातॄणां नृप पञ्चानां श्रेष्ठः समरकर्कशः॥ ५॥

नरेश्वर! उस समय रणकर्कश केकय महारथी बृहत्क्षत्र, जो अपने पाँचों भाइयोंमें सबसे बड़े थे, द्रोणाचार्यका सामना करनेके लिये आगे बढ़े ॥ ५ ॥

विमुञ्चन् विशिखांस्तीक्ष्णानाचार्यं भृशमार्दयत्।
महामेघो यथा वर्षं विमुञ्चन् गन्धमादने॥ ६॥

उन्होंने गन्धमादन पर्वतपर पानी बरसानेवाले महा-मेघके समान पैने बाणोंकी वर्षा करके आचार्य द्रोणको अत्यन्त पीड़ित कर दिया ॥ ६ ॥

तस्य द्रोणो महाराज स्वर्णपुङ्खाञ्छिलाशितान्।
प्रेषयामास संक्रुद्धः सायकान् दश पञ्च च॥ ७॥

महाराज! तब द्रोणने अत्यन्त कुपित हो सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सोनेके पंखवाले पंद्रह बाणोंका बृहत्क्षत्रपर प्रहार किया ॥ ७ ॥

तांस्तु द्रोणविनिर्मुक्तान् क्रुद्धाशीविषसंनिभान्।
एकैकं पञ्चभिर्बाणैर्युधि चिच्छेद हृष्टवत्॥ ८॥

द्रोणाचार्यके छोड़े हुए रोषभरे विषधर सर्पोंके समान उन भयंकर बाणोंमेंसे प्रत्येकको बृहत्क्षत्रने युद्धमें पाँच-पाँच बाण मारकर प्रसन्नतापूर्वक काट डाला ॥ ८ ॥

तदस्य लाघवं दृष्ट्वा प्रहस्य द्विजपुङ्गवः।
प्रेषयामास विशिखानष्टौ संनतपर्वणः॥ ९॥

उनकी इस फुर्तीको देखकर विप्रवर द्रोणने हँसते हुए झुकी हुई गाँठवाले आठ बाणोंका प्रहार किया ॥ ९ ॥

तान् दृष्ट्वा पततस्तूर्णं द्रोणचापच्युताञ्शरान्।
अवारयच्छरैरेव तावद्भिर्निशितैर्मृधे॥ १०॥

द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए उन बाणोंको शीघ्र ही अपने ऊपर आते देख बृहत्क्षत्रने उतने ही तीखे बाणोंद्वारा उन्हें युद्धस्थलमें काट गिराया ॥ १० ॥

ततोऽभवन्महाराज तव सैन्यस्य विस्मयः।
बृहत्क्षत्रेण तत् कर्म कृतं दृष्ट्वा सुदुष्करम्॥ ११॥
ततो द्रोणो महाराज बृहत्क्षत्रं विशेषयन्।
प्रादुश्चक्रे रणे दिव्यं ब्राह्ममस्त्रं सुदुर्जयम्॥ १२॥

महाराज! इससे आपकी सेनाको बड़ा आश्चर्य हुआ। बृहत्क्षत्रद्वारा किये हुए उस अत्यन्त दुष्कर कर्मको देखकर उनकी अपेक्षा अपनी विशेषता प्रकट करते हुए द्रोणाचार्यने रणक्षेत्रमें परम दुर्जय दिव्य ब्रह्मास्त्र प्रकट किया ॥ ११-१२ ॥

कैकेयोऽस्त्रं समालोक्य मुक्तं द्रोणेन संयुगे।
ब्रह्मास्त्रेणैव राजेन्द्र ब्राह्ममस्त्रमशातयत्॥ १३॥

राजेन्द्र! युद्धभूमिमें द्रोणाचार्यके द्वारा चलाये हुए ब्रह्मास्त्रको देखकर केकयनरेशने ब्रह्मास्त्रद्वारा ही उसे शान्त कर दिया ॥ १३ ॥

ततोऽस्त्रे निहते ब्राह्मे बृहत्क्षत्रस्तु भारत।
विव्याध ब्राह्मणं षष्ट्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः॥ १४॥

भरतनन्दन! ब्रह्मास्त्रका निवारण हो जानेपर बृहत्क्षत्रने सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सोनेके पंखोंसे युक्त साठ बाणोंद्वारा ब्राह्मण द्रोणाचार्यको वेध दिया ॥ १४ ॥

तं द्रोणो द्विपदां श्रेष्ठो नाराचेन समार्पयत्।
स तस्य कवचं भित्त्वा प्राविशद् धरणीतलम्॥ १५॥

तब मनुष्योंमें श्रेष्ठ द्रोणने उनपर नाराच चलाया। वह नाराच बृहत्क्षत्रका कवच विदीर्ण करके धरतीमें समा गया ॥ १५ ॥

कृष्णसर्पो यथा मुक्तो वल्मीकं नृपसत्तम।
तथात्यगान्महीं बाणो भित्त्वा कैकेयमाहवे॥ १६॥

नृपश्रेष्ठ! जैसे काला साँप बाँबीमें प्रवेश करता है, उसी प्रकार द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटा हुआ वह बाण युद्ध-स्थलमें केकयराजकुमार बृहत्क्षत्रको विदीर्ण करके पृथ्वीमें घुस गया ॥ १६ ॥

सोऽतिविद्धो महाराज कैकेयो द्रोणसायकैः।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो व्यावृत्य नयने शुभे॥ १७॥

महाराज! द्रोणाचार्यके बाणोंसे अत्यन्त घायल हो जानेपर केकयराजकुमारको बड़ा क्रोध हुआ। वे अपनी दोनों सुन्दर आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगे ॥ १७ ॥

द्रोणं विव्याध सप्तत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः।
सारथिं चास्य बाणेन भृशं मर्मस्वताडयत्॥ १८॥

उन्होंने सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्ण-पंखयुक्त सत्तर बाणोंसे द्रोणाचार्यको बींध डाला और एक बाणद्वारा उनके सारथिके मर्मस्थानोंमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ १८ ॥

द्रोणस्तु बहुभिर्विद्धो बृहत्क्षत्रेण मारिष।
असृजद् विशिखांस्तीक्ष्णान् कैकेयस्य रथं प्रति॥ १९॥

माननीय नरेश! जब बृहत्क्षत्रने बहुसंख्यक बाणोंसे द्रोणाचार्यको क्षत-विक्षत कर दिया, तब उन्होंने केकयनरेशके रथपर तीखे सायकोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ १९ ॥

व्याकुलीकृत्य तं द्रोणो बृहत्क्षत्रं महारथम्।

अश्वांश्चतुर्भिर्न्यवधीच्चतुरोऽस्य पतत्त्रिभिः ॥ २० ॥

द्रोणाचार्यने महारथी बृहत्क्षत्रको व्याकुल करके अपने चार बाणोंद्वारा उनके चारों घोड़ोंको मार डाला ॥ २० ॥

सूतं चैकेन बाणेन रथनीडादपातयत्।
द्वाभ्यां ध्वजं च च्छत्रं च छित्त्वा भूमावपातयत्॥२१॥

फिर एक बाणसे मारकर सारथिको रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया और दो बाणोंसे उनके ध्वज और छत्रको भी पृथ्वीपर काट गिराया ॥ २१ ॥

ततः साधुविसृष्टेन नाराचेन द्विजर्षभः।
हृद्यविध्यद् बृहत्क्षत्रं स च्छिन्नहृदयोऽपतत् ॥ २२ ॥

तदनन्तर अच्छी तरह चलाये हुए नाराचसे द्विजश्रेष्ठ द्रोणने बृहत्क्षत्रकी छाती छेद डाली। वक्षःस्थल विदीर्ण होनेके कारण बृहत्क्षत्र धरतीपर गिर पड़े ॥ २२ ॥

बृहत्क्षत्रे हते राजन् केकयानां महारथे।
शैशुपालिरभिक्रुद्धो यन्तारमिदमब्रवीत् ॥ २३ ॥

राजन्! केकय महारथी बृहत्क्षत्रके मारे जानेपर शिशुपालपुत्र धृष्टकेतुने अत्यन्त कुपित हो अपने सारथिसे इस प्रकार कहा—॥ २३ ॥

सारथे याहि यत्रैष द्रोणस्तिष्ठति दंशितः।
विनिघ्नन् केकयान् सर्वान् पञ्चालानां च वाहिनीम्॥२४॥

'सारथे! जहाँ ये द्रोणाचार्य कवच धारण किये खड़े हैं और समस्त केकयों तथा पाञ्चाल-सेनाका संहार कर रहे हैं, वहीं चलो' ॥ २४ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा सारथी रथिनां वरम्।
द्रोणाय प्रापयामास काम्बोजैर्जवनैर्हयैः ॥ २५ ॥

उनकी वह बात सुनकर सारथिने काम्बोजदेशीय (काबुली) वेगशाली घोड़ोंद्वारा रथियोंमें श्रेष्ठ धृष्टकेतुको द्रोणाचार्यके निकट पहुँचा दिया ॥ २५ ॥

धृष्टकेतुश्च चेदीनामृषभोऽतिबलोदितः।
वधायाभ्यद्रवद् द्रोणं पतङ्ग इव पावकम् ॥ २६ ॥

अत्यन्त बलसम्पन्न चेदिराज धृष्टकेतु द्रोणाचार्यका वध करनेके लिये उनकी ओर उसी प्रकार दौड़ा, जैसे फतिंगा आगपर टूट पड़ता है ॥ २६ ॥

सोऽविध्यत तदा द्रोणं षष्ट्या साश्वरथध्वजम्।
पुनश्चान्यैः शरैस्तीक्ष्णैः सुप्तं व्याघ्रं तुदन्निव ॥ २७ ॥

उसने घोड़े, रथ और ध्वजसहित द्रोणाचार्यको उस समय साठ बाणोंसे वेध दिया। फिर सोते हुए शेरको पीड़ित करते हुए-से उसने अन्य तीखे बाणोंद्वारा भी आचार्यको घायल कर दिया ॥ २७ ॥

तस्य द्रोणो धनुर्मध्ये क्षुरप्रेण शितेन च।
चकर्त गार्ध्रपत्रेण यतमानस्य शुष्मिणः ॥ २८ ॥

तब द्रोणाचार्यने गीधकी पाँखवाले तीखे क्षुरप्रद्वारा विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले बलवान् धृष्टकेतुके धनुषको बीचसे ही काट दिया ॥ २८ ॥

अथान्यद् धनुरादाय शैशुपालिर्महारथः।
विव्याध सायकैर्द्रोणं कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥ २९ ॥

यह देख महारथी शिशुपालकुमारने दूसरा धनुष हाथमें लेकर कङ्क और मोरकी पाँखोंसे युक्त बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यको घायल कर दिया ॥ २९ ॥

तस्य द्रोणो हयान् हत्वा चतुर्भिश्चतुरः शरैः।
सारथेश्च शिरः कायाच्चकर्त प्रहसन्निव ॥ ३० ॥

द्रोणाचार्यने चार बाणोंसे धृष्टकेतुके चारों घोड़ोंको मारकर उनके सारथिके भी मस्तकको हँसते हुए-से काटकर धड़से अलग कर दिया ॥ ३० ॥

अथैनं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत्।
अवप्लुत्य रथाच्चैद्यो गदामादाय सत्वरः ॥ ३१ ॥
भारद्वाजाय चिक्षेप रुषितामिव पन्नगीम्।

तत्पश्चात् उन्होंने धृष्टकेतुको पचीस बाण मारे। उस समय धृष्टकेतुने शीघ्रतापूर्वक रथसे कूदकर गदा हाथमें ले ली और रोषमें भरी हुई सर्पिणीके समान उसे द्रोणाचार्यपर दे मारा ॥ ३१½ ॥

तामापतन्तीमालोक्य कालरात्रिमिवोद्यताम् ॥ ३२ ॥
अश्मसारमयीं गुर्वीं तपनीयविभूषिताम्।
शरैरनेकसाहस्रैर्भारद्वाजोऽच्छिनच्छितैः ॥ ३३ ॥

वह गदा लोहेकी बनी हुई और भारी थी। उसमें सोने जड़े हुए थे, उसे उठी हुई कालरात्रिके समान अपने ऊपर गिरती देख द्रोणाचार्यने कई हजार पैने बाणोंसे उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥ ३२–३३ ॥

सा छिन्ना बहुभिर्बाणैर्भारद्वाजेन मारिष।
गदा पपात कौरव्य नादयन्ती धरातलम् ॥ ३४ ॥

माननीय कौरवनरेश! द्रोणाचार्यद्वारा अनेक बाणोंसे छिन्न-भिन्न की हुई वह गदा भूतलको निनादित करती हुई धमसे गिर पड़ी ॥ ३४ ॥

गदां विनिहतां दृष्ट्वा धृष्टकेतुरमर्षणः।
तोमरं व्यसृजद् वीरः शक्तिं च कनकोज्ज्वलाम्॥३५॥

अपनी गदाको नष्ट हुई देख अमर्षमें भरे हुए वीर धृष्टकेतुने द्रोणाचार्यपर तोमर तथा स्वर्णभूषित तेजस्विनी शक्तिका प्रहार किया ॥ ३५ ॥

तोमरं पञ्चभिर्भित्त्वा शक्तिं चिच्छेद पञ्चभिः।
तौ जग्मतुर्महीं छिन्नौ सर्पाविव गरुत्मता ॥ ३६ ॥

द्रोणाचार्यने तोमरको पाँच बाणोंसे छिन्न-भिन्न करके पाँच बाणोंद्वारा धृष्टकेतुकी शक्तिके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

वे दोनों अस्त्र गरुड़के द्वारा खण्डित किये हुए दो सर्पोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ३६ ॥

ततोऽस्य विशिखं तीक्ष्णं वधाय वधकाङ्क्षिणः।
प्रेषयामास समरे भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ३७ ॥

तत्पश्चात् अपने वधकी इच्छा रखनेवाले धृष्टकेतुके वधके लिये प्रतापी द्रोणाचार्यने समरभूमिमें उसके ऊपर एक बाण-का प्रहार किया ॥ ३७ ॥

स तस्य कवचं भित्त्वा हृदयं चामितौजसः।
अभ्यगाद् धरणीं बाणो हंसः पद्मवनं यथा ॥ ३८ ॥

जैसे हंस कमलवनमें प्रवेश करता है, उसी प्रकार वह बाण अमित तेजस्वी धृष्टकेतुके कवच और वक्षःस्थलको विदीर्ण करके धरतीमें समा गया ॥ ३८ ॥

पतङ्गं हि ग्रसेच्चाषो यथा क्षुद्रं बुभुक्षितः।
तथा द्रोणोऽग्रसच्छूरो धृष्टकेतुं महाहवे ॥ ३९ ॥

जैसे भूखा हुआ नीलकण्ठ छोटे फतिंगेको खा जाता है, उसी प्रकार शूरवीर द्रोणाचार्यने उस महासमरमें धृष्टकेतुको अपने बाणोंका ग्रास बना लिया ॥ ३९ ॥

निहते चेदिराजे तु तत् खण्डं पित्र्यमाविशत्।
अमर्षवशमापन्नः पुत्रोऽस्य परमास्त्रवित् ॥ ४० ॥

चेदिराजके मारे जानेपर उत्तम अस्त्रोंका ज्ञाता उसका पुत्र अमर्षके वशीभूत हो पिताके स्थानपर आकर डट गया ॥

तमपि प्रहसन् द्रोणः शरैर्निन्ये यमक्षयम्।
महाव्याघ्रो महारण्ये मृगशावं यथा बली ॥ ४१ ॥

परंतु हँसते हुए द्रोणाचार्यने उसे भी अपने बाणोंद्वारा उसी प्रकार यमलोक पहुँचा दिया, जैसे बलवान् महाव्याघ्र विशाल वनमें किसी हिरनके बच्चेको दबोच लेता है ॥ ४१॥

तेषु प्रक्षीयमाणेषु पाण्डवेयेषु भारत।
जरासंधसुतो वीरः स्वयं द्रोणमुपाद्रवत् ॥ ४२ ॥

भरतनन्दन ! उन पाण्डव योद्धाओंके इस प्रकार नष्ट होनेपर जरासंधके वीर पुत्र सहदेवने स्वयं ही द्रोणाचार्यपर धावा किया ॥ ४२ ॥

स तु द्रोणं महाबाहुः शरधाराभिराहवे।
अदृश्यमकरोत् तूर्णं जलदो भास्करं यथा ॥ ४३ ॥

जैसे बादल आकाशमें सूर्यको ढक लेता है, उसी प्रकार महाबाहु सहदेवने युद्धस्थलमें अपने बाणोंकी धाराओंसे द्रोणा-चार्यको तुरंत ही अदृश्य कर दिया ॥ ४३ ॥

तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा द्रोणः क्षत्रियमर्दनः।
व्यसृजत् सायकांस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४४ ॥

उसकी वह फुर्ती देखकर क्षत्रियोंका संहार करनेवाले द्रोणाचार्यने शीघ्र ही उसपर सैकड़ों और सहस्रों बाणोंकी बर्षा आरम्भ कर दी ॥ ४४ ॥

छादयित्वा रणे द्रोणो रथस्थं रथिनां वरम्।
जारासंधिं जघानाशु मिषतां सर्वधन्विनाम् ॥ ४५ ॥

इस प्रकार रणक्षेत्रमें द्रोणाचार्यने सम्पूर्ण धनुर्धरोंके देखते-देखते रथपर बैठे हुए रथियोंमें श्रेष्ठ जरासंधकुमारको अपने बाणोंद्वारा आच्छादित करके उसे शीघ्र ही कालके गालमें डाल दिया ॥ ४५ ॥

यो यः स्म नीयते तत्र तं द्रोणो ह्यन्तकोपमः।
आदत्त सर्वभूतानि प्राप्ते काले यथान्तकः ॥ ४६ ॥

जैसे काल आनेपर यमराज समस्त प्राणियोंको ग्रस लेता है, उसी प्रकार कालके समान द्रोणाचार्यने जो जो वीर उनके सामने पहुँचा, उसे-उसे मौतके हवाले कर दिया ॥ ४६ ॥

ततो द्रोणो महाराज नाम विश्राव्य संयुगे।
शरैरनेकसाहस्रैः पाण्डवेयान् समावृणोत् ॥ ४७ ॥

महाराज ! तदनन्तर द्रोणाचार्यने युद्धस्थलमें अपना नाम सुनाकर अनेक सहस्र बाणोंद्वारा पाण्डवसैनिकोंको ढक दिया॥

ते तु नामाङ्किता बाणा द्रोणेनास्ताः शिलाशिताः।
नरान् नागान् हयांश्चैव निजघ्नुः शतशो मृधे ॥ ४८ ॥

द्रोणाचार्यके चलाये हुए वे बाण सानपर चढ़ाकर तेज किये गये थे। उनपर आचार्यके नाम खुदे हुए थे। उन्होंने समरभूमिमें सैकड़ों मनुष्यों, हाथियों और घोड़ोंका संहार कर डाला ॥ ४८ ॥

ते वध्यमाना द्रोणेन शक्रेणेव महासुराः।
समकम्पन्त पञ्चाला गावः शीतार्दिता इव ॥ ४९ ॥

जैसे सर्दीसे पीड़ित हुई गौएँ थर-थर काँपती हैं और जैसे देवराज इन्द्रकी मार खाकर बड़े-बड़े असुर काँपने लगते हैं, उसी प्रकार द्रोणाचार्यके बाणोंसे विद्ध होकर पाञ्चाल सैनिक काँप उठे ॥ ४९ ॥

ततो निष्टानको घोरः पाण्डवानामजायत।
द्रोणेन वध्यमानेषु सैन्येषु भरतर्षभ ॥ ५० ॥

भरतश्रेष्ठ ! फिर तो द्रोणाचार्यके द्वारा मारी जाती हुई पाण्डवोंकी सेनाओंमें घोर आर्तनाद होने लगा ॥ ५० ॥

प्रताप्यमानाः सूर्येण हन्यमानाश्च सायकैः।
अन्वपद्यन्त पञ्चालास्तदा संत्रस्तचेतसः ॥ ५१ ॥

भरतनन्दन ! उस समय ऊपरसे तो सूर्य तपा रहे थे और रणभूमिमें द्रोणाचार्यके सायकोंकी मार पड़ रही थी। उस अवस्थामें पाञ्चाल वीर मन-ही-मन अत्यन्त भयभीत एवं व्याकुल हो उठे ॥ ५१ ॥

मोहिता बाणजालेन भारद्वाजेन संयुगे।
ऊरुग्राहगृहीतानां पञ्चालानां महारथाः ॥ ५२ ॥

उस युद्धस्थलमें भरद्वाजनन्दन द्रोणाचार्यके बाण-समूहोंसे आहत हो पाञ्चाल महारथी मूर्छित हो रहे थे। उनकी जाँघें अकड़ गयी थीं ॥ ५२ ॥

चेदयश्च महाराज सृञ्जयाः काशिकोसलाः ।
अभ्यद्रवन्त संहृष्टा भारद्वाजं युयुत्सया ॥ ५३ ॥

महाराज ! उस समय चेदि, संजय, काशी और कोसल प्रदेशोंके सैनिक हर्ष और उत्साहमें भरकर युद्धकी अभिलाषासे द्रोणाचार्यपर टूट पड़े ॥ ५३ ॥

ब्रुवन्तश्च रणेऽन्योन्यं चेदिपञ्चालसृञ्जयाः ।
घ्नत द्रोणं घ्नत द्रोणमिति ते द्रोणमभ्ययुः ॥ ५४ ॥

'द्रोणाचार्यको मार डालो, द्रोणाचार्यको मार डालो' परस्पर ऐसा कहते हुए चेदि, पाञ्चाल और संजय वीरोंने द्रोणाचार्यपर धावा किया ॥ ५४ ॥

यतन्तः पुरुषव्याघ्राः सर्वशक्त्या महाद्युतिम् ।
निनीषवो रणे द्रोणं यमस्य सदनं प्रति ॥ ५५ ॥

वे पुरुषसिंह वीर समराङ्गणमें महातेजस्वी आचार्य द्रोणको यमराजके घर भेज देनेकी इच्छासे अपनी सारी शक्ति लगाकर प्रयत्न करने लगे ॥ ५५ ॥

यतमानांस्तु तान् वीरान् भारद्वाजः शिलीमुखैः ।
यमाय प्रेषयामास चेदिमुख्यान् विशेषतः ॥ ५६ ॥

इस प्रकार प्रयत्नमें लगे हुए उन वीरोंको विशेषतः चेदि देशके प्रमुख योद्धाओंको द्रोणाचार्यने अपने बाणोंद्वारा यमलोक भेज दिया ॥ ५६ ॥

तेषु प्रक्षीयमाणेषु चेदिमुख्येषु सर्वशः ।
पञ्चालाः समकम्पन्त द्रोणसायकपीडिताः ॥ ५७ ॥

चेदि देशके प्रधान वीर जब इस प्रकार नष्ट होने लगे, तब द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीड़ित हुए पाञ्चाल योद्धा थर-थर काँपने लगे ॥ ५७ ॥

प्राक्रोशन् भीमसेनं ते धृष्टद्युम्नं च भारत ।
दृष्ट्वा द्रोणस्य कर्माणि तथारूपाणि मारिष ॥ ५८ ॥

माननीय भरतनन्दन ! वे द्रोणके वैसे पराक्रमको देखकर भीमसेन तथा धृष्टद्युम्नको पुकारने लगे ॥ ५८ ॥

ब्राह्मणेन तपो नूनं चरितं दुश्चरं महत् ।
तथा हि युधि संक्रुद्धो दहति क्षत्रियर्षभान् ॥ ५९ ॥

और परस्पर कहने लगे—'इस ब्राह्मणने निश्चय ही कोई बड़ी भारी दुष्कर तपस्या की है, तभी तो यह युद्धमें अत्यन्त क्रुद्ध होकर श्रेष्ठ क्षत्रियोंको दग्ध कर रहा है ॥ ५९ ॥

धर्मो युद्धं क्षत्रियस्य ब्राह्मणस्य परं तपः ।
तपस्वी कृतविद्यश्च प्रेक्षितेनापि निर्दहेत् ॥ ६० ॥

'युद्ध करना तो क्षत्रियका धर्म है । तप करना ही ब्राह्मणका उत्तम धर्म माना गया है । यह तपस्वी और अस्त्रविद्याका विद्वान् ब्राह्मण अपने दृष्टिपातमात्रसे दग्ध कर सकता है' ॥

द्रोणाग्निमस्त्रसंस्पर्शं प्रविष्टाः क्षत्रियर्षभाः ।
बहवो दुस्तरं घोरं यत्रादह्यन्त भारत ॥ ६१ ॥

भारत ! उस युद्धमें बहुत-से क्षत्रियशिरोमणि वीर अस्त्ररूपी दाहक स्पर्शवाले द्रोणाचार्यरूपी भयंकर एवं दुस्तर अग्निमें प्रविष्ट होकर भस्म हो गये ॥ ६१ ॥

यथाबलं यथोत्साहं यथासत्त्वं महाद्युतिः ।
मोहयन् सर्वभूतानि द्रोणो हन्ति बलानि नः ॥ ६२ ॥

पाञ्चाल सैनिक कहने लगे—'महातेजस्वी द्रोण अपने बल, उत्साह और धैर्यके अनुसार समस्त प्राणियोंको मोहित करते हुए हमारी सेनाओंका संहार कर रहे हैं' ॥ ६२ ॥

तेषां तद् वचनं श्रुत्वा क्षत्रधर्मा व्यवस्थितः ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद क्षत्रधर्मा महाबलः ॥ ६३ ॥
क्रोधसंविग्नमनसो द्रोणस्य सशरं धनुः ।

उनकी यह बात सुनकर क्षत्रधर्मा युद्धके लिये द्रोणाचार्यके सामने आकर खड़ा हो गया । उस महाबली वीरने अर्धचन्द्राकार बाण मारकर क्रोधसे उद्विग्न मनवाले द्रोणाचार्यके धनुष और बाणको काट दिया ॥ ६३½ ॥

स संरब्धतरो भूत्वा द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ६४ ॥
अन्यत् कार्मुकमादाय भास्वरं वेगवत्तरम् ।
तत्राधाय शरं तीक्ष्णं परानीकविशातनम् ॥ ६५ ॥
आकर्णपूर्णमाचार्यो बलवानभ्यवासृजत् ।
स हत्वा क्षत्रधर्माणं जगाम धरणीतलम् ॥ ६६ ॥

इससे क्षत्रियोंका मर्दन करनेवाले द्रोणाचार्य अत्यन्त कुपित हो उठे और अत्यन्त वेगशाली तथा प्रकाशमान दूसरा धनुष हाथमें लेकर उन्होंने एक तीखा बाण अपने धनुषपर रक्खा, जो शत्रुसेनाका विनाश करनेवाला था । बलवान् आचार्यने कानतक धनुषको खींचकर उस बाणको छोड़ दिया । वह बाण क्षत्रधर्माका वध करके धरतीमें समा गया ॥ ६४–६६ ॥

स भिन्नहृदयो वाहादन्यपतन्मेदिनीतले ।
ततः सैन्यान्यकम्पन्त धृष्टद्युम्नसुते हते ॥ ६७ ॥

क्षत्रधर्मा हृदय विदीर्ण हो जानेके कारण रथसे पृथ्वीपर गिर पड़ा । इस प्रकार धृष्टद्युम्नकुमारके मारे जानेपर सारी सेनाएँ भयसे काँपने लगीं ॥ ६७ ॥

अथ द्रोणं समारोहच्चेकितानो महाबलः ।
स द्रोणं दशभिर्विद्ध्वा प्रत्यविद्ध्यत् स्तनान्तरे ॥ ६८ ॥
चतुर्भिः सारथिं चास्य चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।

तदनन्तर महाबली चेकितानने द्रोणाचार्यपर चढ़ाई की । उन्होंने दस बाणोंसे द्रोणको घायल करके उनकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी । साथ ही चार बाणोंसे उनके सारथिको और चार ही बाणोंद्वारा उनके चारों घोड़ोंको भी बींध डाला ६८½

तमाचार्यस्त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ६९ ॥
ध्वजं सप्तभिरुन्मथ्य यन्तारमवधीत् त्रिभिः ।

तब आचार्यने उनकी दोनों भुजाओं और छातीमें कुल तीन बाण मारे। फिर सात सायकोंद्वारा उनकी ध्वजाके टुकड़े-टुकड़े करके तीन बाणोंसे सारथिका वध कर दिया ६९½

तस्य सूते हते तेऽश्वा रथमादाय विद्रुताः ॥ ७० ॥
समरे शरसंवीता भारद्वाजेन मारिष ।

चेकितानके सारथिके मारे जानेपर वे घोड़े उनका रथ लेकर भाग चले। आर्य! द्रोणाचार्यने समराङ्गणमें उनके शरीरोंको बाणोंसे भर दिया था ॥ ७०½ ॥

चेकितानरथं दृष्ट्वा हताश्वं हतसारथिम् ॥ ७१ ॥
तान् समेतान् रणे शूरांश्चेदिपञ्चालसृञ्जयान् ।
समन्ताद् द्रावयन् द्रोणो बह्वशोभत मारिष ॥ ७२ ॥

जिसके घोड़े और सारथि मार दिये गये थे, चेकितानके उस रथको देखकर तथा रणक्षेत्रमें एकत्र हुए चेदि, पाञ्चाल तथा सृंजय वीरोंपर दृष्टिपात करके द्रोणाचार्यने उन सबको चारों ओर भगा दिया। आर्य! उस समय उनकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ७१-७२ ॥

आकर्णपलितः श्यामो वयसाशीतिपञ्चकः ।
रणे पर्यचरद् द्रोणो वृद्धः षोडशवर्षवत् ॥ ७३ ॥

जिनके कानतकके बाल पक गये थे, शरीरकी कान्ति श्याम थी तथा जो पचासी (या चार सौ) वर्षोंकी अवस्थाके बूढ़े थे, वे द्रोणाचार्य रणक्षेत्रमें सोलह वर्षके नवजवानकी भाँति विचर रहे थे ॥ ७३ ॥

अथ द्रोणं महाराज विचरन्तमभीतवत् ।
वज्रहस्तममन्यन्त शत्रवः शत्रुसूदनम् ॥ ७४ ॥

महाराज! रणभूमिमें निर्भय-से विचरते हुए शत्रुसूदन द्रोणको शत्रुओंने वज्रधारी इन्द्र समझा ॥ ७४ ॥

ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्द्रुपदो बुद्धिमान् नृप ।
लुब्धोऽयं क्षत्रियान् हन्ति व्याघ्रः क्षुद्रमृगानिव ॥ ७५ ॥

नरेश्वर! उस समय महाबाहु बुद्धिमान् राजा द्रुपदने कहा—'जैसे बाघ छोटे मृगको मारता है, उसी प्रकार यह व्याध-तुल्य ब्राह्मण क्षत्रियोंका संहार कर रहा है ॥ ७५ ॥

कृच्छ्रान् दुर्योधनो लोकान् पापः प्राप्स्यति दुर्मतिः ।
यस्य लोभाद् विनिहताः समरे क्षत्रियर्षभाः ॥ ७६ ॥

'दुर्बुद्धि पापी दुर्योधन अत्यन्त कष्टप्रद लोकोंमें जायगा, जिसके लोभसे इस समराङ्गणमें बहुत-से क्षत्रियशिरोमणि वीर मारे गये हैं ॥ ७६ ॥

शतशः शेरते भूमौ निकृत्ता गोवृषा इव ।
रुधिरेण परीताङ्गाः श्वशृगालादनीकृताः ॥ ७७ ॥

'सैकड़ों योद्धा कटकर गाय-बैलोंके समान धरतीपर सो रहे हैं। इन सबके शरीर खूनसे लथपथ हो गये हैं और ये कुत्तों तथा सियारोंके भोजन बन गये हैं' ॥ ७७ ॥

एवमुक्त्वा महाराज द्रुपदोऽक्षौहिणीपतिः ।
पुरस्कृत्य रणे पार्थान् द्रोणमभ्यद्रवद् द्रुतम् ॥ ७८ ॥

महाराज! ऐसा कहकर एक अक्षौहिणी सेनाके स्वामी राजा द्रुपदने रणक्षेत्रमें कुन्तीके पुत्रोंको आगे करके तुरंत ही द्रोणाचार्यपर धावा बोल दिया ॥ ७८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणपराक्रमे पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें द्रोणपराक्रमविषयक एक सौ पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२५ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ७८½ श्लोक हैं)

षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

युधिष्ठिरका चिन्तित होकर भीमसेनको अर्जुन और सात्यकिका पता लगानेके लिये भेजना

संजय उवाच

व्यूहेष्वालोड्यमानेषु पाण्डवानां ततस्ततः ।
सुदूरमन्वयुः पार्थाः पञ्चालाः सह सोमकैः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! जब द्रोणाचार्य पाण्डवोंके व्यूहोंको इस प्रकार जहाँ-तहाँसे रौंदने लगे, तब पार्थ, पाञ्चाल तथा सोमक योद्धा उनसे बहुत दूर हट गये ॥ १ ॥

वर्तमाने तथा रौद्रे संग्रामे लोमहर्षणे ।
संक्षये जगतस्तीव्रे युगान्त इव भारत ॥ २ ॥

भरतनन्दन! वह रोमाञ्चकारी भयंकर संग्राम प्रलयकालमें होनेवाले जगत्के भीषण संहार-सा उपस्थित हुआ था ॥ २ ॥

द्रोणे युधि पराक्रान्ते नर्दमाने मुहुर्मुहुः ।
पञ्चालेषु च क्षीणेषु वध्यमानेषु पाण्डुषु ॥ ३ ॥
नापश्यच्छरणं किञ्चिद् धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
चिन्तयामास राजेन्द्र कथमेतद् भविष्यति ॥ ४ ॥

जब द्रोणाचार्य युद्धमें पराक्रम प्रकट करके बारंबार गर्जना कर रहे थे, पाञ्चाल वीरोंका विनाश हो रहा था और पाण्डव सैनिक मारे जा रहे थे, उस समय धर्मराज युधिष्ठिरको कोई भी अपना आश्रय या रक्षक नहीं दिखायी दिया। राजेन्द्र! वे सोचने लगे कि यह कैसे होगा ? ॥ ३-४ ॥

ततो वीक्ष्य दिशः सर्वाः सव्यसाचिदिदृक्षया ।
युधिष्ठिरो ददर्शाथ नैव पार्थं न माधवम् ॥ ५ ॥

तदनन्तर युधिष्ठिरने सव्यसाची अर्जुनको देखनेकी इच्छासे सम्पूर्ण दिशाओंमें दृष्टि दौड़ायी; परंतु उन्हें कहीं भी अर्जुन और सात्यकि नहीं दिखायी दिये ॥ ५ ॥

सोऽपश्यन् नरशार्दूलं वानरर्षभलक्षणम् ।
गाण्डीवस्य च निर्घोषमशृण्वन् व्यथितेन्द्रियः ॥ ६ ॥

वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌के चिह्नसे युक्त ध्वजवाले पुरुषसिंह अर्जुनको न देखकर और उनके गाण्डीवका गम्भीर घोष न सुनकर उनकी सारी इन्द्रियाँ व्यथित हो उठीं ॥ ६ ॥

अपश्यन् सात्यकिं चापि वृष्णीनां प्रवरं रथम् ।
चिन्तयाभिपरीताङ्गो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ७ ॥

वृष्णिवंशके प्रमुख महारथी सात्यकिको भी न देखनेके कारण धर्मराज युधिष्ठिरका एक-एक अंग चिन्ताकी आगसे संतप्त हो उठा ॥ ७ ॥

नाध्यगच्छत् तदा शान्तिं तावपश्यन् नरोत्तमौ ।
लोकोपक्रोशभीरुत्वाद् धर्मराजो महामनाः ॥ ८ ॥

महामनस्वी धर्मराज युधिष्ठिर लोकनिन्दाके डरसे बहुत डरते थे । अतः नरश्रेष्ठ अर्जुन और सात्यकिको न देखनेसे उस समय उन्हें तनिक भी शान्ति नहीं मिली ॥ ८ ॥

अचिन्तयन्महाबाहुः शैनेयस्य रथं प्रति ।
पदवीं प्रेषितश्चैव फाल्गुनस्य मया रणे ॥ ९ ॥
शैनेयः सात्यकिः सत्यो मित्राणामभयंकरः ।
तदिदं ह्येकमेवासीद् द्विधा जातं ममाद्य वै ॥ १० ॥

महाबाहु युधिष्ठिर सात्यकिके रथके विषयमें मन-ही-मन इस प्रकार चिन्ता करने लगे—'अहो ! मैंने ही रणक्षेत्रमें मित्रोंको अभय देनेवाले सत्यवादी शिनिपौत्र सात्यकिको अर्जुनके मार्गपर जानेके लिये भेजा था । इसलिये यह मेरा हृदय जो पहले एक हीकी चिन्तामें निमग्न था, अब दो व्यक्तियोंके लिये चिन्तित होकर दो भागोंमें बँट गया है ९-१०

सात्यकिश्च हि विज्ञेयः पाण्डवश्च धनंजयः ।
सात्यकिं प्रेषयित्वा तु पाण्डवस्य पदानुगम् ॥ ११ ॥
सात्वतस्यापि कं युद्धे प्रेषयिष्ये पदानुगम् ।

'इस समय सात्यकिका भी पता लगाना चाहिये और पाण्डुपुत्र अर्जुनका भी । मैंने पाण्डुपुत्र अर्जुनके पीछे तो सात्यकिको भेज दिया । अब सात्यकिके पीछे किसको युद्धभूमिमें भेजूँगा ? ॥ ११½ ॥

करिष्यामि प्रयत्नेन भ्रातुरन्वेषणं यदि ॥ १२ ॥
युयुधानमनन्विष्य लोको मां गर्हयिष्यति ।

'यदि मैं युयुधानकी खोज न कराकर प्रयत्नपूर्वक केवल अपने भाई अर्जुनका ही अन्वेषण करूँगा तो संसार मेरी निन्दा करेगा ॥ १२½ ॥

भ्रातुरन्वेषणं कृत्वा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १३ ॥
परित्यजति वार्ष्णेयं सात्यकिं सत्यविक्रमम् ।

'सब लोग यही कहेंगे कि धर्मपुत्र युधिष्ठिर अपने भाईकी खोज करके वृष्णिवंशी वीर सत्यपराक्रमी सात्यकिकी उपेक्षा कर रहे हैं ॥ १३½ ॥

लोकापवादभीरुत्वात् सोऽहं पार्थं वृकोदरम् ॥ १४ ॥
पदवीं प्रेषयिष्यामि माधवस्य महात्मनः ।

'मुझे लोकनिन्दासे बड़ा भय मालूम होता है । अतः कुन्तीनन्दन भीमसेनको मैं महामनस्वी सात्यकिका पता लगानेके लिये भेजूँगा ॥ १४½ ॥

यथैव च मम प्रीतिरर्जुने शत्रुसूदने ॥ १५ ॥
तथैव वृष्णिवीरेऽपि सात्वते युद्धदुर्मदे ।
अतिभारे नियुक्तश्च मया शैनेयनन्दनः ॥ १६ ॥

'शत्रुसूदन अर्जुनपर जैसा मेरा प्रेम है, वैसा ही रणदुर्मद वृष्णिवंशी वीर सात्यकिपर भी है । मैंने शिनिवंशका आनन्द बढ़ानेवाले सात्यकिको महान् कार्यभार सौंप रक्खा था १५-१६

स तु मित्रोपरोधेन गौरवात्तु महाबलः ।
प्रविष्टो भारतीं सेनां मकरः सागरं यथा ॥ १७ ॥

'उन महाबली सात्यकिने मित्रके अनुरोधसे और अपने लिये गौरवकी बात समझकर समुद्रमें मगरकी भाँति कौरवी सेनामें प्रवेश किया था ॥ १७ ॥

असौ हि श्रूयते शब्दः शूराणामनिवर्तिनाम् ।
मिथः संयुध्यमानानां वृष्णिवीरेण धीमता ॥ १८ ॥

'बुद्धिमान् वृष्णिवंशी वीर सात्यकिके साथ परस्पर युद्ध करनेवाले उन शूरवीरोंका वह महान् कोलाहल सुनायी पड़ता है, जो युद्धसे कभी पीछे नहीं हटते हैं ॥ १८ ॥

प्राप्तकालं सुबलवन्निश्चितं बहुधा हि मे ।
तत्रैव पाण्डवेयस्य भीमसेनस्य धन्विनः ॥ १९ ॥
गमनं रोचते मह्यं यत्र यातौ महारथौ ।

'इस समय जो कर्तव्य प्राप्त है, उसपर मैंने अनेक प्रकारसे प्रबल विचार कर लिया है । जहाँ महारथी अर्जुन और सात्यकि गये हैं, वहीं धनुर्धर वीर पाण्डुनन्दन भीमसेनको भी जाना चाहिये-यही मुझे ठीक जँचता है ॥ १९½ ॥

न चाप्यसह्यं भीमस्य विद्यते भुवि किंचन ॥ २० ॥
शक्तो ह्येष रणे यत्तः पृथिव्यां सर्वधन्विनाम् ।
स्वबाहुबलमास्थाय प्रतिव्यूहितुमञ्जसा ॥ २१ ॥

'इस भूतलपर कोई ऐसा कार्य नहीं है, जो भीमसेनके लिये असह्य हो । ये अपने बाहुबलका आश्रय ले रणक्षेत्रमें प्रयत्नशील होकर भूमण्डलके समस्त धनुर्धरोंका अनायास ही सामना करनेमें समर्थ हैं ॥ २०-२१ ॥

यस्य बाहुबलं सर्वे समाश्रित्य महात्मनः ।
वनवासान्निवृत्ताः स्म न च युद्धेषु निर्जिताः ॥ २२ ॥

'इस महामनस्वी वीरके बाहुबलका आश्रय लेकर हम सब भाई वनवाससे सकुशल लौटे हैं और युद्धोंमें कभी पराजित नहीं हुए हैं ॥ २२ ॥

इतो गते भीमसेने सात्वतं प्रति पाण्डवे ।

सनाथौ भवितारौ हि युधि सात्वतफाल्गुनौ ॥ २३ ॥

'यहाँसे सात्यकिके पथपर पाण्डुपुत्र भीमसेनके जानेपर युद्धस्थलमें डटे हुए सात्यकि और अर्जुन सनाथ हो जायँगे ॥

कामं त्वशोचनीयौ तौ रणे सात्वतफाल्गुनौ ।
रक्षितौ वासुदेवेन स्वयं शस्त्रविशारदौ ॥ २४ ॥

'निश्चय ही सात्यकि और अर्जुन रणक्षेत्रमें शोकके योग्य नहीं हैं; क्योंकि वे दोनों स्वयं तो शस्त्रविद्यामें कुशल हैं ही, भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा भी पूर्णरूपसे सुरक्षित हैं ॥२४॥

अवश्यं तु मया कार्यमात्मनः शोकनाशनम् ।
तस्माद् भीमं नियोक्ष्यामि सात्वतस्य पदानुगम् ॥ २५ ॥

'तथापि मुझे अपने मानसिक दुःखको निवारण करनेके लिये ऐसी व्यवस्था अवश्य करनी चाहिये । इसलिये मैं भीमसेनको सात्यकिके मार्गका अनुगामी अवश्य बनाऊँगा ॥२५॥

ततः प्रतिकृतं मन्ये विधानं सात्यकिं प्रति ।
एवं निश्चित्य मनसा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २६ ॥
यन्तारमब्रवीद् राजा भीमं प्रति नयस्व माम् ।

'ऐसा करके ही मैं समझूँगा कि मैंने सात्यकिके प्रति समुचित कर्तव्यका पालन किया है ।' मन-ही-मन ऐसा निश्चय करके धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने अपने सारथिसे कहा—'मुझे भीमके पास ले चलो' ॥ २६½ ॥

धर्मराजवचः श्रुत्वा सारथिर्हयकोविदः ॥ २७ ॥
रथं हेमपरिष्कारं भीमान्तिकमुपानयत् ।

धर्मराजकी बात सुनकर अश्वसंचालनमें कुशल सारथिने उनके सुवर्णभूषित रथको भीमसेनके निकट पहुँचा दिया ॥ २७½ ॥

भीमसेनमनुप्राप्य प्राप्तकालमचिन्तयत् ॥ २८ ॥
कश्मलं प्राविशद् राजा बहु तत्र समादिशन् ।

भीमसेनके पास पहुँचकर राजा युधिष्ठिर समयोचित कर्तव्यका चिन्तन करने लगे और वहाँ बहुत कुछ कहते हुए वे मूर्छित-से हो गये ॥ २८½ ॥

स कश्मलसमाविष्टो भीममाहूय पार्थिवः ॥ २९ ॥
अब्रवीद् वचनं राजन् कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।

राजन् ! इस प्रकार मोहाविष्ट हुए कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरने भीमसेनको सम्बोधित करके इस प्रकार कहा—२९½

यः सदेवान् सगन्धर्वान् दैत्यांश्चैकरथोऽजयत् ॥३०॥
तस्य लक्ष्म न पश्यामि भीमसेनानुजस्य ते ।

'भीमसेन ! जिन्होंने एकमात्र रथकी सहायतासे देवताओं-सहित गन्धर्वों और दैत्योंपर भी विजय पायी थी, उन्हीं तुम्हारे छोटे भाई अर्जुनका आज मुझे कोई चिह्न नहीं दिखायी देता है' ॥ ३०½ ॥

ततोऽब्रवीद् धर्मराजं भीमसेनस्तथागतम् ॥ ३१ ॥
नैवाद्राक्षं न चाश्रौषं तव कश्मलमीदृशम् ।

तब वैसी अवस्थामें पड़े हुए धर्मराज युधिष्ठिरसे भीमसेनने कहा—'राजन् ! आपकी ऐसी घबराहट तो पहले मैंने न कभी देखी थी और न सुनी ही थी ॥ ३१½ ॥

पुरातिदुःखदीर्णानां भवान् गतिरभूद्धि नः ॥ ३२ ॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजेन्द्र शाधि किं करवाणि ते ।

'पहले जब कभी हमलोग अत्यन्त दुःखसे अधीर हो उठते थे, तब आप ही हमें सहारा दिया करते थे । राजेन्द्र ! उठिये, उठिये, आज्ञा दीजिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? ॥ ३२½ ॥

न ह्यसाध्यमकार्यं वा विद्यते मम मानद ॥ ३३ ॥
आज्ञापय कुरुश्रेष्ठ मा च शोके मनः कृथाः ।

'मानद ! इस संसारमें ऐसा कोई कार्य नहीं है, जो मेरे लिये असाध्य हो अथवा जिसे मैं आपकी आज्ञा मिलनेपर न करूँ । कुरुश्रेष्ठ ! आज्ञा दीजिये । अपने मनको शोकमें न डालिये' ॥ ३३½ ॥

तमब्रवीदश्रुपूर्णः कृष्णसर्प इव श्वसन् ॥ ३४ ॥
भीमसेनमिदं वाक्यं प्रम्लानवदनो नृपः ।

तब राजा युधिष्ठिर म्लानमुख हो काले सर्पके समान लबी साँसें खींचते हुए नेत्रोंमें आँसू भरकर भीमसेनसे इस प्रकार बोले—॥ ३४½ ॥

यथा शङ्खस्य निर्घोषः पाञ्चजन्यस्य श्रूयते ॥ ३५ ॥
पूरितो वासुदेवेन संरब्धेन यशस्विना ।
नूनमद्य हतः शेते तव भ्राता धनंजयः ॥ ३६ ॥

'भैया ! इस समय पाञ्चजन्य शङ्खकी जैसी ध्वनि सुनायी देती है और यशस्वी वासुदेवने क्रोधमें भरकर उस शङ्खको जिस तरह बजाया है, उससे जान पड़ता है, आज तुम्हारा भाई अर्जुन निश्चय ही मारा जाकर रणभूमिमें सो रहा है ॥

तस्मिन् विनिहते नूनं युध्यतेऽसौ जनार्दनः ।
यस्य सत्त्ववतो वीर्यं ह्युपजीवन्ति पाण्डवाः ॥ ३७ ॥
यं भयेष्वभिगच्छन्ति सहस्राक्षमिवामराः ।
स शूरः सैन्धवप्रेप्सुरन्वयाद् भारतीं चमूम् ॥ ३८ ॥

'उसके मारे जानेपर स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही युद्ध कर रहे हैं । जिस शक्तिशाली वीरके पराक्रमका भरोसा करके हम समस्त पाण्डव जी रहे हैं, भयके अवसरोंपर हम उसी प्रकार जिसका आश्रय लेते हैं, जैसे देवता देवराज इन्द्रका, वही शूरवीर अर्जुन सिंधुराज जयद्रथको अपने वशमें करनेके लिये कौरव-सेनामें घुसा है ॥ ३७–३८ ॥

तस्य वै गमनं विद्मो भीम नावर्तनं पुनः ।
श्यामो युवा गुडाकेशो दर्शनीयो महारथः ॥ ३९ ॥

'भीमसेन ! हमें उसके जानेका ही पता है, पुनः लौटनेका नहीं । अर्जुनकी अङ्गकान्ति श्याम है । वह नवयुवक, निद्रापर विजय पानेवाला, देखनेमें सुन्दर और महारथी है ॥

व्यूढोरस्को महाबाहुर्मत्तद्विरदविक्रमः।
चकोरनेत्रस्ताम्रास्यो द्विषतां भयवर्धनः ॥ ४० ॥

'उसकी छाती चौड़ी और भुजाएँ बड़ी-बड़ी हैं। उसका पराक्रम मतवाले हाथीके समान है, आँखें चकोरके नेत्रोंके समान विशाल हैं और उसके मुख एवं ओष्ठ लाल-लाल हैं। वह शत्रुओंका भय बढ़ाता है ॥ ४० ॥

(मम प्रियहितार्थं च शक्रलोकादिहागतः।
वृद्धोपसेवी धृतिमान् कृतज्ञः सत्यसङ्गरः ॥
प्रविष्टो महतीं सेनामपर्यन्तां धनंजयः।
प्रविष्टे च चमूं घोरामर्जुने शत्रुनाशने ॥
प्रेषितः सात्वतो वीरः फाल्गुनस्य पदानुगः।
तस्याभिगमनं जाने भीम नावर्तनं पुनः ॥)

'अर्जुन मेरे प्रिय और हितके लिये इन्द्रलोकसे यहाँ आया है। वह वृद्धजनोंका सेवक, धैर्यवन्, कृतज्ञ तथा सत्यप्रतिज्ञ है। वह धनंजय शत्रुओंकी विशाल एवं अपार सेनामें घुसा है। शत्रुनाशन अर्जुनके उस भयंकर सेनामें प्रवेश करनेपर मैंने सात्वतवीर सात्यकिको उसके चरणोंका अनुगामी बनाकर भेजा है। भीमसेन! सात्यकिके भी मुझे जानेका ही पता है, लौटनेका नहीं ॥

तदिदं मम भद्रं ते शोकस्थानमरिंदम।
अर्जुनार्थे महाबाहो सात्वतस्य च कारणात् ॥ ४१ ॥
वर्धते हविषेवाग्निरिध्यमानः पुनः पुनः।
तस्य लक्ष्म न पश्यामि तेन विन्दामि कश्मलम् ॥ ४२ ॥

'शत्रुदमन महाबाहु भीम! तुम्हारा कल्याण हो। यही मेरे शोकका कारण है। अर्जुन और सात्यकिके लिये ही मैं दुखी हो रहा हूँ। जैसे बारंबार घी डालनेसे आग प्रज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार मेरी शोकाग्नि बढ़ती जाती है। मैं अर्जुनका कोई चिह्न नहीं देखता, इसीसे मुझपर मोह छा रहा है ॥ ४१-४२ ॥

तं विद्धि पुरुषव्याघ्रं सात्वतं च महारथम्।
स तं महारथं पश्चादनुयातस्तवानुजम् ॥ ४३ ॥

'उन सात्वतवंशी पुरुषसिंह महारथी सात्यकिका भी पता लगाओ। वे तुम्हारे छोटे भाई महारथी अर्जुनके पीछे गये हैं॥

तमपश्यन्महाबाहुमहं विन्दामि कश्मलम्।
पार्थे तस्मिन् हते चैव युध्यते नूनमग्रणीः ॥ ४४ ॥

'उन महाबाहु सात्यकिको न देखनेके कारण भी मैं भारी घबराहटमें पड़ गया हूँ। पार्थके मारे जानेपर अवश्य ही सात्यकि भी आगे होकर युद्ध कर रहे हैं ॥ ४४ ॥

सहायो नास्य वै कश्चित् तेन विन्दामि कश्मलम्।
तस्मिन् कृष्णो हते नूनं युध्यते युद्धकोविदः ॥ ४५ ॥

'उनका कोई दूसरा सहायक नहीं है। इससे मुझे बड़ी घबराहट हो रही है। निश्चय ही उनके मारे जानेपर युद्धकलाकोविद भगवान् श्रीकृष्ण युद्ध कर रहे हैं ॥ ४५ ॥

न हि मे शुध्यते भावस्तयोरेव परंतप।
स तत्र गच्छ कौन्तेय यत्र यातो धनंजयः ॥ ४६ ॥
सात्यकिश्च महावीर्यः कर्तव्यं यदि मन्यसे।
वचनं मम धर्मज्ञ भ्राता ज्येष्ठो भवामि ते ॥ ४७ ॥
न तेऽर्जुनस्तथा ज्ञेयो ज्ञातव्यः सात्यकिर्यथा।
चिकीर्षुर्मत्प्रियं पार्थ स यातः सव्यसाचिनः।
पदवीं दुर्गमां घोरामगम्यामकृतात्मभिः ॥ ४८ ॥

'परंतप! अर्जुन और सात्यकिके जीवनके विषयमें जो मेरे मनमें संशय उत्पन्न हो गया है, वह दूर नहीं हो रहा है। अतः कुन्तीनन्दन! तुम वहीं जाओ, जहाँ अर्जुन और महापराक्रमी सात्यकि गये हैं। धर्मज्ञ! मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूँ। यदि तुम मेरी आज्ञाका पालन करना उचित मानते हो तो ऐसा ही करो। तुम्हें अर्जुनकी उतनी खोज नहीं करनी है, जितनी सात्यकिकी। पार्थ! सात्यकिने मेरा प्रिय करनेकी इच्छासे सव्यसाची अर्जुनके उस दुर्गम एवं भयंकर पथका अनुसरण किया है, जो अजितात्मा पुरुषोंके लिये अगम्य है ॥ ४६-४८ ॥

दृष्ट्वा कुशलिनौ कृष्णौ सात्वतं चैव सात्यकिम्।
संविदं चैव कुर्यास्त्वं सिंहनादेन पाण्डव ॥ ४९ ॥

'पाण्डुनन्दन! जब तुम भगवान् श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा सात्वतवंशी वीर सात्यकिको सकुशल देखना, तब उच्च स्वरसे सिंहनाद करके मुझे इसकी सूचना दे देना' ॥ ४९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरचिन्तायां षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें युधिष्ठिरकी चिन्ताविषयक एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२६ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३ श्लोक मिलाकर कुल ५२ श्लोक हैं)

सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेनका कौरवसेनामें प्रवेश, द्रोणाचार्यके सारथिसहित रथका चूर्ण कर देना तथा उनके द्वारा धृतराष्ट्रके ग्यारह पुत्रोंका वध, अवशिष्ट पुत्रोंसहित सेनाका पलायन

भीमसेन उवाच

ब्रह्मेशानेन्द्रवरुणानवहद् यः पुरा रथः।
तमास्थाय गतौ कृष्णौ न तयोर्विद्यते भयम् ॥ १ ॥

भीमसेनने कहा—महाराज! जो रथ पहले ब्रह्मा,

महादेव, इन्द्र और वरुणकी सवारीमें आ चुका है, उसीपर बैठकर श्रीकृष्ण और अर्जुन युद्धके लिये गये हैं। अतः उनके लिये तनिक भी भय नहीं है ॥ १ ॥

आज्ञां तु शिरसा बिभ्रदेष गच्छामि मा शुचः।
समेत्य तान् नरव्याघ्रांस्तव दास्यामि संविदम् ॥ २ ॥

तथापि आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके यह मैं जा रहा हूँ। आप शोक या चिन्ता न करें। मैं उन पुरुषसिंहोंसे मिलकर आपको सूचना दूँगा ॥ २ ॥

संजय उवाच

एतावदुक्त्वा प्रययौ परिदाय युधिष्ठिरम्।
धृष्टद्युम्नाय बलवान् सुहृद्भ्यश्च पुनः पुनः ॥ ३ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! ऐसा कहकर बलवान् भीमसेन राजा युधिष्ठिरको धृष्टद्युम्न तथा अन्य सुहृदोंकी देख-रेखमें सौंपकर वहाँसे चल दिये ॥ ३ ॥

धृष्टद्युम्नं चेदमाह भीमसेनो महाबलः।
विदितं ते महाबाहो यथा द्रोणो महारथः ॥ ४ ॥
ग्रहणे धर्मराजस्य सर्वोपायेन वर्तते।

जाते समय महाबली भीमसेनने धृष्टद्युम्नसे इस प्रकार कहा—'महाबाहो! तुम्हें तो यह मालूम ही है कि महारथी द्रोण सारे उपाय करके किस प्रकार धर्मराजको पकड़नेपर तुले हुए हैं ॥ ४½ ॥

न च मे गमने कृत्यं तादृक् पार्षत विद्यते ॥ ५ ॥
यादृशं रक्षणे राज्ञः कार्यमात्ययिकं हि नः।

'अतः द्रुपदनन्दन! मेरे लिये वहाँ जानेकी वैसी आवश्यकता नहीं है, जैसी यहाँ रहकर राजाकी रक्षा करनेकी है। यही हमलोगोंके लिये सबसे महान् कार्य है ॥ ५½ ॥

एवमुक्तोऽस्मि पार्थेन प्रतिवक्तुं न चोत्सहे ॥ ६ ॥
प्रयास्ये तत्र यत्रासौ मुमूर्षुः सैन्धवः स्थितः।
धर्मराजस्य वचने स्थातव्यमविशङ्कया ॥ ७ ॥

'परंतु जब कुन्तीनन्दन महाराजने इस प्रकार मुझे वहाँ जानेकी आज्ञा दे दी है, तब मैं उन्हें कोरा जवाब नहीं दे सकता—उनकी आज्ञा टाल नहीं सकता। अतः जहाँ मरणासन्न जयद्रथ खड़ा है, वहीं मैं जाऊँगा। मुझे बिना किसी संशयके धर्मराज युधिष्ठिरकी आज्ञाके अधीन रहना चाहिये॥

यास्यामि पदवीं भ्रातुः सात्वतस्य च धीमतः।
सोऽद्य यत्तो रणे पार्थं परिरक्ष युधिष्ठिरम् ॥ ८ ॥
एतद्धि सर्वकार्याणां परमं कृत्यमाहवे।

'अतः अब मैं भाई अर्जुन तथा बुद्धिमान् सात्यकिके पथका अनुसरण करूँगा। अब तुम सावधान हो प्रयत्नपूर्वक रणभूमिमें कुन्तीकुमार राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करो। इस युद्धस्थलमें यही हमारे लिये सब कार्योंसे बढ़कर महान् कार्य है' ॥ ८½ ॥

तमब्रवीन्महाराज धृष्टद्युम्नो वृकोदरम् ॥ ९ ॥
ईप्सितं ते करिष्यामि गच्छ पार्थाविचारयन्।

महाराज! यह सुनकर धृष्टद्युम्नने भीमसेनसे कहा—'कुन्तीनन्दन! तुम कुछ भी सोच-विचार न करके जाओ। मैं तुम्हारी इच्छाके अनुसार सब कार्य करूँगा ॥ ९½ ॥

नाहत्वा समरे द्रोणो धृष्टद्युम्नं कथञ्चन ॥ १० ॥
निग्रहं धर्मराजस्य प्रकरिष्यति संयुगे।

'द्रोणाचार्य संग्राममें धृष्टद्युम्नका वध किये बिना किसी प्रकार धर्मराजको कैद नहीं कर सकेंगे' ॥ १०½ ॥

ततो निक्षिप्य राजानं धृष्टद्युम्ने च पाण्डवम् ॥ ११ ॥
अभिवाद्य गुरुं ज्येष्ठं प्रययौ येन फाल्गुनः।

तब भीमसेन पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरको धृष्टद्युम्नके हाथमें सौंपकर अपने बड़े भाईको प्रणाम करके जिस मार्गसे अर्जुन गये थे, उसीपर चल दिये ॥ ११½ ॥

परिष्वक्तश्च कौन्तेयो धर्मराजेन भारत ॥ १२ ॥
आघ्रातश्च तथा मूर्ध्नि श्रावितश्चाशिषः शुभाः।

भारत! उस समय धर्मराज युधिष्ठिरने कुन्तीकुमार भीमसेनको गलेसे लगाया, उनका सिर सूँघा और उन्हें शुभ आशीर्वाद सुनाये ॥ १२½ ॥

कृत्वा प्रदक्षिणान् विप्रानर्चितांस्तुष्टमानसान् ॥ १३ ॥
आलभ्य मङ्गलान्यष्टौ पीत्वा कैरातकं मधु।
द्विगुणद्रविणो वीरो मदरक्तान्तलोचनः ॥ १४ ॥

तदनन्तर पूजित एवं संतुष्टचित्त हुए ब्राह्मणोंकी परिक्रमा करके आठ प्रकारकी माङ्गलिक वस्तुओंका[1] स्पर्श करनेके पश्चात् भीमसेनने केरातक मधुका पान किया। फिर तो वीर भीमसेनका बल और उत्साह दुगुना हो गया, उनके नेत्र मदसे लाल हो गये थे ॥ १३-१४ ॥

विप्रैः कृतस्वस्त्ययनो विजयोत्पादसूचितः।
पश्यन्नेवात्मनो बुद्धिं विजयानन्दकारिणीम् ॥ १५ ॥

उस समय ब्राह्मणोंने स्वस्तिवाचन किया, जिससे विजय-लाभ सूचित होता था। उन्हें अपनी बुद्धि विजयानन्दका अनुभव करती-सी दिखायी दी ॥ १५ ॥

अनुलोमानिलैश्चाशु प्रदर्शितजयोदयः।
भीमसेनो महाबाहुः कवची शुभकुण्डली ॥ १६ ॥
साङ्गदः सतलत्राणः सरथो रथिनां वरः।

अनुकूल हवा चलकर उन्हें शीघ्र ही अवश्यम्भावी विजयकी सूचना देने लगी। रथियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु भीमसेन

१. अनलो गौर्हिरण्यं च दूर्वागोरोचनामृतम्।
अक्षतं दधि चेत्यष्टौ मङ्गलानि प्रचक्षते ॥
अग्नि, गौ, सुवर्ण, दूर्वा, गोरोचन, अमृत (घी), अक्षत और दही—इन आठ वस्तुओंको माङ्गलिक कहते हैं।

कवच, सुन्दर कुण्डल, बाजूबन्द और तलत्राण (दस्ताने) धारण करके रथपर आरूढ़ हो गये ॥ १६½ ॥

तस्य कार्ष्णायसं वर्म हेमचित्रं महर्द्धिमत् ॥ १७ ॥
विबभौ सर्वतः श्लिष्टं सविद्युदिव तोयदः ।

उनका काले लोहेका बना हुआ सुवर्णजटित बहुमूल्य कवच उनके सारे अङ्गोंमें सटकर बिजलीसहित मेघके समान सुशोभित हो रहा था ॥ १७½ ॥

पीतरक्तासितसितैर्वासोभिश्च सुवेष्टितः ॥ १८ ॥
कण्ठत्राणेन च बभौ सेन्द्रायुध इवाम्बुदः ।

लाल, पीले, काले और सफेद वस्त्रोंसे अपने शरीरको सुसज्जित करके कण्ठत्राण पहनकर वे इन्द्रधनुषयुक्त मेघके समान शोभा पा रहे थे ॥ १८½ ॥

प्रयाते भीमसेने तु तव सैन्यं युयुत्सया ॥ १९ ॥
पाञ्चजन्यरवो घोरः पुनरासीद् विशाम्पते ।

प्रजानाथ ! जब भीमसेन युद्धकी इच्छासे आपकी सेनाकी ओर प्रस्थित हुए, उस समय पुनः पाञ्चजन्य शङ्खकी भयंकर ध्वनि प्रकट हुई ॥ १९½ ॥

तं श्रुत्वा निनदं घोरं त्रैलोक्यत्रासनं महत् ॥ २० ॥
पुनर्भीमं महाबाहुं धर्मपुत्रोऽभ्यभाषत ।

त्रिलोकीको डरा देनेवाले उस घोर एवं महान् सिंहनाद-को सुनकर धर्मपुत्र युधिष्ठिरने (जाते हुए) महाबाहु भीम-सेनसे पुनः इस प्रकार कहा—॥ २०½ ॥

एष वृष्णिप्रवीरेण ध्मातः सलिलजो भृशम् ॥ २१ ॥
पृथिवीं चान्तरिक्षं च विनादयति शङ्खराट् ।
नूनं व्यसनमापन्ने सुमहत् सव्यसाचिनि ॥ २२ ॥
कुरुभिर्युध्यते सार्धं सर्वैश्चक्रगदाधरः ।

'भीम ! देखो, यह वृष्णिवंशके प्रमुख वीर भगवान् श्रीकृष्णने बड़े जोरसे शङ्ख बजाया है । यह शङ्खराज इस समय पृथ्वी और आकाश दोनोंको अपनी ध्वनिसे परिपूर्ण किये देता है । निश्चय ही सव्यसाची अर्जुनके भारी संकट-में पड़ जानेपर चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण समस्त कौरवोंके साथ युद्ध कर रहे हैं ॥ २१–२२½ ॥

आह कुन्ती नूनमार्या पापमद्य निदर्शनम् ॥ २३ ॥
द्रौपदी च सुभद्रा च पश्यन्त्यौ सह बन्धुभिः ।

'आज अवश्य ही माता कुन्ती किसी दुःखद अपशकुन-की चर्चा करती होंगी । बन्धुओंसहित द्रौपदी और सुभद्रा भी कोई असगुन देख रही होंगी ॥ २३½ ॥

स भीम त्वरया युक्तो याहि यत्र धनंजयः ॥ २४ ॥
मुह्यन्तीव हि मे सर्वा धनंजयदिदृक्षया ।
दिशश्च प्रदिशः पार्थ सात्वतस्य च कारणात् ॥ २५ ॥

'अतः भीम ! तुम तुरंत ही जहाँ अर्जुन हैं, वहाँ जाओ । आज अर्जुनको देखनेके लिये मेरी सारी दिशाएँ मोहाच्छन्न-सी हो रही हैं । सात्यकिको न देख पानेके कारण भी मेरे लिये सारी दिशाओंमें अँधेरा छा गया है' ॥ २४-२५ ॥

गच्छ गच्छेति गुरुणा सोऽनुज्ञातो वृकोदरः ।
ततः पाण्डुसुतो राजन् भीमसेनः प्रतापवान् ॥ २६ ॥
बद्धगोधाङ्गुलित्राणः प्रगृहीतशरासनः ।
ज्येष्ठेन प्रहितो भ्रात्रा भ्राता भ्रातुः प्रियंकरः ॥ २७ ॥

राजन् ! इस प्रकार 'जाओ, जाओ' कहकर बड़े भाईके आज्ञा देनेपर उदरमें वृक नामक अग्निको धारण करनेवाले प्रतापी पाण्डुपुत्र भीमसेन गोहके चमड़ेके बने हुए दस्ताने पहनकर हाथमें धनुष ले वहाँसे जानेके लिये तैयार हुए । वे भाईका प्रिय करनेवाले भाई थे और बड़े भाईके भेजनेसे ही वहाँसे जानेको उद्यत हुए थे ॥ २६-२७ ॥

आहत्य दुन्दुभिं भीमः शङ्खं प्रध्माप्य चासकृत् ।
विनद्य सिंहनादेन ज्यां विकर्षन् पुनः पुनः ॥ २८ ॥

भीमसेनने बारंबार डंका पीटा और अनेक बार शङ्ख बजाकर बारंबार धनुषकी प्रत्यञ्चा खींचते हुए सिंहके दहाड़ने-के समान भयंकर गर्जना की ॥ २८ ॥

तेन शब्देन वीराणां पातयित्वा मनांस्युत ।
दर्शयन् घोरमात्मानममित्रान् सहसाभ्ययात् ॥ २९ ॥

उस तुमुल शब्दके द्वारा बड़े-बड़े वीरोंके दिल दहला-कर अपना भयंकर रूप दिखाते हुए उन्होंने सहसा शत्रुओं-पर धावा बोल दिया ॥ २९ ॥

तमूहुर्जवना दान्ता विरुवन्तो हयोत्तमाः ।
विशोकेनाभिसम्पन्ना मनोमारुतरंहसः ॥ ३० ॥

उस समय विशोक नामक सारथिके द्वारा संचालित होनेवाले, मन और वायुके समान वेगशाली तीव्रगामी और सुशिक्षित सुन्दर घोड़े हर्षसूचक शब्द करते हुए उनका भार वहन करते थे ॥ ३० ॥

आरुजन् विरुजन् पार्थो ज्यां विकर्षंश्च पाणिना ।
सम्प्रकर्षन् विमर्षंश्च सेनाग्रं समलोडयत् ॥ ३१ ॥

कुन्तीकुमार भीम अपने हाथसे धनुषकी डोरी खींचकर चढ़ाते, उसे भलीभाँति कानतक खींचते, बाणोंकी वर्षा करते तथा शत्रुओंको घायल करके उनके अङ्ग-भङ्ग करते हुए सेनाके अग्रभागको मथे डालते थे ॥ ३१ ॥

तं प्रयान्तं महाबाहुं पञ्चालाः सहसोमकाः ।
पृष्ठतोऽनुययुः शूरा मघवन्तमिवामराः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार यात्रा करते हुए महाबाहु भीमसेनके पीछे पाञ्चाल और सोमक वीर भी चले, मानो देवगण देवराज इन्द्रका अनुसरण कर रहे हों ॥ ३२ ॥

तं समेत्य महाराज तावकाः पर्यवारयन् ।

दुःशलश्चित्रसेनश्च कुण्डभेदी विविंशतिः ॥ ३३ ॥
दुर्मुखो दुःसहश्चैव विकर्णश्च शलस्तथा ।
विन्दानुविन्दौ सुमुखो दीर्घबाहुः सुदर्शनः ॥ ३४ ॥
वृन्दारकः सुहस्तश्च सुषेणो दीर्घलोचनः ।
अभयो रौद्रकर्मा च सुवर्मा दुर्विमोचनः ॥ ३५ ॥
शोभन्तो रथिनां श्रेष्ठाः सहसैन्यपदानुगाः ।
संयत्ताः समरे वीरा भीमसेनमुपाद्रवन् ॥ ३६ ॥

महाराज ! उस समय आपके पुत्रोंने भीमसेनका सामना करके उन्हें रोका । दुःशल, चित्रसेन, कुण्डभेदी, विविंशति, दुर्मुख, दुःसह, विकर्ण, शल, विन्द, अनुविन्द, सुमुख, दीर्घबाहु, सुदर्शन, वृन्दारक, सुहस्त, सुषेण, दीर्घलोचन, अभय, रौद्रकर्मा, सुवर्मा और दुर्विमोचन—इन शोभाशाली रथिश्रेष्ठ वीरोंने अपने सैनिकों और सेवकोंके साथ सावधान एवं प्रयत्नशील होकर समराङ्गणमें भीमसेनपर धावा किया॥

तैः समन्ताद् वृतः शूरैः समरेषु महारथः ।
तान् समीक्ष्य तु कौन्तेयो भीमसेनः पराक्रमी ।
अभ्यवर्तत वेगेन सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥ ३७ ॥

उन शूरवीरोंके द्वारा समरभूमिमें महारथी भीम सब ओरसे घिर गये थे । उन सबको सामने देखकर पराक्रमशाली कुन्तीकुमार भीमसेन उसी प्रकार वेगसे आगे बढ़े, जैसे सिंह क्षुद्र मृगोंकी ओर बढ़ता है ॥ ३७ ॥

ते महास्त्राणि दिव्यानि तत्र वीरा अदर्शयन् ।
छादयन्तः शरैर्भीमं मेघाः सूर्यमिवोदितम् ॥ ३८ ॥

परंतु जैसे बादल उगे हुए सूर्यको ढक लेता है, उसी प्रकार वे वीरगण अपने बाणोंद्वारा भीमसेनको आच्छादित करते हुए वहाँ बड़े-बड़े दिव्यास्त्रोंका प्रदर्शन करने लगे ३८

स तानतीत्य वेगेन द्रोणानीकमुपाद्रवत् ।
अग्रतश्च गजानीकं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३९ ॥

किंतु भीमसेन अपने वेगसे उन सबको लाँघकर द्रोणाचार्यकी सेनापर टूट पड़े और सामने खड़ी हुई गजसेनाको अपने बाणोंकी वर्षासे आच्छादित करने लगे ॥ ३९ ॥

सोऽचिरेणैव कालेन तद् गजानीकमाशुगैः ।
दिशः सर्वाः समभ्यस्य व्यधमत् पवनात्मजः ॥ ४० ॥

पवनपुत्र भीमने सम्पूर्ण दिशाओंमें बारंबार बाणोंकी वर्षा करके उनके द्वारा थोड़े ही समयमें उस गजसेनाको मार भगाया ॥ ४० ॥

त्रासिताः शरभस्येव गर्जितेन वने मृगाः ।
प्राद्रवन् द्विरदाः सर्वे नदन्तो भैरवान् रवान् ॥ ४१ ॥

जैसे शरभकी गर्जनासे भयभीत हो वनके सारे मृग भाग जाते हैं, उसी प्रकार भीमसेनसे डरे हुए समस्त गजराज भैरव स्वरसे आर्तनाद करते हुए भाग निकले ॥ ४१ ॥

पुनश्चातीव वेगेन द्रोणानीकमुपाद्रवत् ।
तमवारयदाचार्यो वेलोद्वृत्तमिवार्णवम् ॥ ४२ ॥

फिर उन्होंने बड़े वेगसे द्रोणाचार्यकी सेनापर चढ़ाई की । उस समय उत्ताल तरंगोंके साथ उठे हुए महासागरको जैसे तटकी भूमि रोक देती है, उसी प्रकार द्रोणाचार्यने भीमसेनको रोका ॥ ४२ ॥

ललाटेऽताडयच्चैनं नाराचेन स्मयन्निव ।
ऊर्ध्वरश्मिरिवादित्यो विबभौ तेन पाण्डवः ॥ ४३ ॥

द्रोणने मुसकराते हुए-से नाराच चलाकर भीमसेनके ललाटमें चोट पहुँचायी । उस नाराचसे पाण्डुपुत्र भीमसेन ऊपर उठी किरणोंवाले सूर्यके समान सुशोभित होने लगे ॥

स मन्यमानस्त्वाचार्यो ममायं फाल्गुनो यथा ।
भीमः करिष्यते पूजामित्युवाच वृकोदरम् ॥ ४४ ॥

द्रोणाचार्य यह समझकर कि यह भीम भी अर्जुनके समान मेरी पूजा करेगा, उनसे इस प्रकार बोले—॥ ४४॥

भीमसेन न ते शक्या प्रवेष्टुमरिवाहिनी ।
मामनिर्जित्य समरे शत्रुमद्य महाबल ॥ ४५ ॥

'महाबली भीमसेन ! तुम समरभूमिमें आज मुझ शत्रुको पराजित किये बिना इस शत्रुसेनामें प्रवेश नहीं कर सकोगे ॥

यदि ते सोऽनुजः कृष्णः प्रविष्टोऽनुमते मम ।
अनीकं न तु शक्यं मे प्रवेष्टुमिह वै त्वया ॥ ४६ ॥

'तुम्हारे छोटे भाई अर्जुन मेरी अनुमतिसे इस सेनाके भीतर घुस गये हैं । यदि इच्छा हो तो उसी तरह तुम भी जा सकते हो; अन्यथा मेरे इस सैन्यव्यूहमें प्रवेश नहीं करने पाओगे' ॥ ४६ ॥

अथ भीमस्तु तच्छ्रुत्वा गुरोर्वाक्यमपेतभीः ।
क्रुद्धः प्रोवाच वै द्रोणं रक्तताम्रेक्षणस्त्वरन् ॥ ४७ ॥

गुरुका यह वचन सुनकर भीमसेनके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये, वे बड़ी उतावलीके साथ द्रोणाचार्यसे निर्भय होकर बोले ॥ ४७ ॥

तवार्जुनो नानुमते ब्रह्मबन्धो रणाजिरम् ।
प्रविष्टः स हि दुर्धर्षः शक्रस्यापि विशेद् बलम्॥ ४८ ॥

'ब्रह्मबन्धो ! अर्जुन तुम्हारी अनुमतिसे इस समराङ्गणमें नहीं प्रविष्ट हुए हैं । वे तो दुर्जय हैं । देवराज इन्द्रकी सेनामें भी घुस सकते हैं ॥ ४८ ॥

तेन वै परमां पूजां कुर्वता मानितो ह्यसि ।
नार्जुनोऽहं घृणी द्रोण भीमसेनोऽस्मि ते रिपुः ॥ ४९ ॥

'उन्होंने तुम्हारी बड़ी पूजा करके निश्चय ही तुम्हें सम्मान दिया है, परंतु द्रोण ! मैं दयालु अर्जुन नहीं हूँ । मैं तो तुम्हारा शत्रु भीमसेन हूँ ॥ ४९ ॥

पिता नस्त्वं गुरुर्बन्धुस्तथा पुत्रास्तु ते वयम् ।
इति मन्यामहे सर्वे भवन्तं प्रणताः स्थिताः ॥ ५० ॥

'तुम हमारे पिता, गुरु और बन्धु हो और हम तुम्हारे पुत्रके तुल्य हैं। हम सब लोग यही मानते हैं और सदा तुम्हारे सामने प्रणतभावसे खड़े होते हैं ॥ ५० ॥

अद्य तद्विपरीतं ते वदतोऽस्मासु दृश्यते।
यदि त्वं शत्रुमात्मानं मन्यसे तत्तथास्त्विह ॥ ५१ ॥
एष ते सदृशं शत्रोः कर्म भीमः करोम्यहम्।

'परंतु आज तुम्हारे मुँहसे जो बात निकल रही है, उससे हमलोगोंपर तुम्हारा विपरीत भाव लक्षित होता है। यदि तुम अपने आपको शत्रु मानते हो तो ऐसा ही सही। यह मैं भीमसेन तुम्हारे शत्रुके अनुरूप कर्म कर रहा हूँ' ॥ ५१½ ॥

अथोद्भ्राम्य गदां भीमः कालदण्डमिवान्तकः ॥ ५२ ॥
द्रोणाय व्यसृजद् राजन् स रथादवपुप्लुवे।

राजन्! ऐसा कहकर भीमसेनने गदा उठा ली, मानो यमराजने कालदण्ड हाथमें ले लिया हो। उन्होंने उस गदाको घुमाकर द्रोणाचार्यपर दे मारा, किंतु द्रोणाचार्य शीघ्र ही रथसे कूद पड़े ॥ ५२½ ॥

साश्वसूतध्वजं यानं द्रोणस्यापोथयत् तदा ॥ ५३ ॥
प्रामृद्गाच्च बहून् योधान् वायुर्वृक्षानिवौजसा।

जैसे हवा अपने वेगसे वृक्षोंको उखाड़ फेंकती है, उसी प्रकार उस गदाने उस समय घोड़े, सारथि और ध्वजसहित द्रोणाचार्यके रथको चूर-चूर कर दिया और बहुत-से योद्धाओंको भी धूलमें मिला दिया ॥ ५३½ ॥

तं पुनः परिवव्रुस्ते तव पुत्रा रथोत्तमम् ॥ ५४ ॥
अन्यं तु रथमास्थाय द्रोणः प्रहरतां वरः।
व्यूहद्वारं समासाद्य युद्धाय समुपस्थितः ॥ ५५ ॥

उस समय उस श्रेष्ठ महारथी वीरको आपके पुत्रोंने पुनः आकर चारों ओरसे घेर लिया। योद्धाओंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य दूसरे रथपर बैठकर व्यूहके द्वारपर आ पहुँचे और युद्धके लिये उद्यत हो गये ॥ ५४-५५ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज भीमसेनः पराक्रमी।
अग्रतः स्यन्दनानीकं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ५६ ॥

महाराज! तब क्रोधमें भरे हुए पराक्रमी भीमसेनने सामने खड़ी हुई रथसेनापर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥

ते वध्यमानाः समरे तव पुत्रा महारथाः।
भीमं भीमबला युद्धे योधयन्ति जयैषिणः ॥ ५७ ॥

युद्धस्थलमें भयंकर बलशाली विजयाभिलाषी आपके महारथी पुत्र बाणोंकी मार खाकर भी समराङ्गणमें भीमसेनके साथ युद्ध करते रहे ॥ ५७ ॥

ततो दुःशासनः क्रुद्धो रथशक्तिं समाक्षिपत्।
सर्वपारसवीं तीक्ष्णां जिघांसुः पाण्डुनन्दनम् ॥ ५८ ॥

उस समय कुपित हुए दुःशासनने पाण्डुनन्दन भीमसेन-को मार डालनेकी इच्छासे उनके ऊपर एक तीखी रथशक्ति चलायी, जो सम्पूर्णतः लोहेकी बनी हुई थी ॥ ५८ ॥

आपतन्तीं महाशक्तिं तव पुत्रप्रणोदिताम्।
द्विधा चिच्छेद तां भीमस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ५९ ॥

आपके पुत्रकी चलायी हुई उस महाशक्तिको अपने ऊपर आती देख भीमसेनने उसके दो टुकड़े कर दिये। वह एक अद्भुत-सी बात हुई ॥ ५९ ॥

अथान्यैर्विशिखैस्तीक्ष्णैः संक्रुद्धः कुण्डभेदिनम्।
सुषेणं दीर्घनेत्रं च त्रिभिस्त्रीनवधीद् बली ॥ ६० ॥

फिर अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए बलवान् भीमने दूसरे तीन तीखे बाणोंद्वारा कुण्डभेदी, सुषेण तथा दीर्घलोचन (दीर्घरोमा)- इन तीनोंको मार डाला (जो आपके पुत्र थे) ॥ ६० ॥

ततो वृन्दारकं वीरं कुरूणां कीर्तिवर्धनम्।
पुत्राणां तव वीराणां युध्यतामवधीत् पुनः ॥ ६१ ॥

तत्पश्चात् आपके (अन्य) वीर पुत्रोंके युद्ध करते रहने-पर भी उन्होंने पुनः कुरुकुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले वीर वृन्दारकका वध कर दिया ॥ ६१ ॥

अभयं रौद्रकर्माणं दुर्विमोचनमेव च।
त्रिभिस्त्रीनवधीद् भीमः पुनरेव सुतांस्तव ॥ ६२ ॥

इसके बाद भीमने पुनः तीन बाण मारकर अभय, रौद्र-कर्मा तथा दुर्विमोचन (दुर्विरोचन)—आपके इन तीन पुत्रोंको भी मार गिराया ॥ ६२ ॥

वध्यमाना महाराज पुत्रास्तव बलीयसा।
भीमं प्रहरतां श्रेष्ठं समन्तात् पर्यवारयन् ॥ ६३ ॥

महाराज! अत्यन्त बलवान् भीमसेनके बाणोंसे घायल होते हुए आपके पुत्रोंने योद्धाओंमें श्रेष्ठ भीमसेनको फिर चारों ओरसे घेर लिया ॥ ६३ ॥

ते शरैर्भीमकर्माणं ववर्षुः पाण्डवं युधि।
मेघा इवातपापाये धाराभिर्धरणीधरम् ॥ ६४ ॥

जैसे वर्षा-ऋतुमें मेघ पर्वतपर जलधाराओंकी वर्षा करते हैं, उसी प्रकार वे आपके पुत्र युद्धस्थलमें भयंकर कर्म करने-वाले पाण्डुपुत्र भीमसेनपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ६४ ॥

स तद् बाणमयं वर्षमश्मवर्षमिवाचलः।
प्रतीच्छन् पाण्डुदायादो न प्राव्यथत शत्रुहा ॥ ६५ ॥

जैसे पत्थरोंकी वर्षा ग्रहण करते हुए पर्वतको कोई पीड़ा नहीं होती, उसी प्रकार शत्रुसूदन पाण्डुपुत्र भीमसेन उस बाण-वर्षाको सहन करते हुए भी व्यथित नहीं हुए ॥ ६५ ॥

विन्दानुविन्दौ सहितौ सुवर्माणं च ते सुतम्।
प्रहसन्नेव कौन्तेयः शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ ६६ ॥

कुन्तीनन्दन भीमने हँसते हुए ही अपने बाणोंद्वारा एक साथ आये हुए दोनों भाई विन्द और अनुविन्दको तथा आपके पुत्र सुवर्माको भी यमलोक पहुँचा दिया ॥ ६६ ॥

ततः सुदर्शनं वीरं पुत्रं ते भरतर्षभ ।
विव्याध समरे तूर्णं स पपात ममार च ॥ ६७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर उन्होंने समरभूमिमें आपके वीर पुत्र सुदर्शन (उर्णनाभ) को घायल कर दिया । इससे वह तुरंत ही गिरा और मर गया ॥ ६७ ॥

सोऽचिरेणैव कालेन तद्रथानीकमाशुगैः ।
दिशः सर्वाः समालोक्य व्यधमत् पाण्डुनन्दनः ॥६८॥

इस प्रकार पाण्डुनन्दन भीमसेनने सम्पूर्ण दिशाओंमें दृष्टिपात करके अपने बाणोंद्वारा थोड़े ही समयमें उस रथ-सेनाको नष्ट कर दिया ॥ ६८ ॥

ततो वै रथघोषेण गर्जितेन मृगा इव ।
भज्यमानाश्च समरे तव पुत्रा विशाम्पते ॥ ६९ ॥

प्रजानाथ ! तदनन्तर भीमसेनके रथकी घरघराहट और गर्जनासे समराङ्गणमें मृगोंके समान भयभीत हुए आपके पुत्रोंका उत्साह भंग हो गया ॥ ६९ ॥

प्राद्रवन् सहसा सर्वे भीमसेनभयार्दिताः ।
अनुयायाच्च कौन्तेयः पुत्राणां ते महद् बलम् ॥ ७० ॥

वे सब-के-सब भीमसेनके भयसे पीड़ित हो सहसा भाग खड़े हुए । कुन्तीकुमार भीमसेनने आपके पुत्रोंकी विशाल सेनाका दूरतक पीछा किया ॥ ७० ॥

विव्याध समरे राजन् कौरवेयान् समन्ततः ।
वध्यमाना महाराज भीमसेनेन तावकाः ॥ ७१ ॥
त्यक्त्वा भीमं रणाज्जग्मुश्चोदयन्तो हयोत्तमान् ।

राजन् ! उन्होंने रणक्षेत्रमें सब ओर कौरवोंको घायल किया । महाराज ! भीमसेनके द्वारा मारे जाते हुए आपके सभी पुत्र उन्हें छोड़कर अपने उत्तम घोड़ोंको हाँकते हुए रणभूमिसे दूर चले गये ॥ ७१½ ॥

तांस्तु निर्जित्य समरे भीमसेनो महाबलः ॥ ७२ ॥
सिंहनादरवं चक्रे बाहुशब्दं च पाण्डवः ।

उन सबको संग्राममें पराजित करके महाबली पाण्डुपुत्र भीमसेनने अपनी भुजाओंपर ताल ठोकी और सिंहके समान गर्जना की ॥ ७२½ ॥

तलशब्दं च सुमहत् कृत्वा भीमो महाबलः ॥ ७३ ॥
भीषयित्वा रथानीकं हत्वा योधान् वरान् वरान् ।
व्यतीत्य रथिनश्चापि द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥ ७४ ॥

बड़े जोरसे ताली बजाकर महाबली भीमने रथसेनाको डरा दिया और श्रेष्ठ-श्रेष्ठ योद्धाओंको चुन-चुनकर मारा । फिर समस्त रथियोंको लाँघकर द्रोणाचार्यकी सेनापर धावा बोल दिया ॥ ७३-७४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमसेनप्रवेशे भीमपराक्रमे सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भीमसेनका प्रवेश और भयंकर पराक्रमविषयक एक सौ सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२७ ॥

अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेनका द्रोणाचार्य और अन्य कौरव योद्धाओंको पराजित करते हुए द्रोणाचार्यके रथको आठ बार फेंक देना तथा श्रीकृष्ण और अर्जुनके समीप पहुँचकर गर्जना करना तथा युधिष्ठिरका प्रसन्न होकर अनेक प्रकारकी बातें सोचना

संजय उवाच

समुत्तीर्णं रथानीकं पाण्डवं विहसन् रणे ।
विवारयिषुराचार्यः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! रथसेनाको पार करके आये हुए पाण्डुनन्दन भीमसेनको युद्धमें रोकनेकी इच्छासे आचार्य द्रोणने हँसते-हँसते उनपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ १ ॥

पिबन्निव शरौघांस्तान् द्रोणचापपरिच्युतान् ।
सोऽभ्यद्रवत सोदर्यान् मोहयन् बलमायया ॥ २ ॥

द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए उन बाणोंको पीते हुए-से भीमसेन अपने बलकी मायासे समस्त कौरव बन्धुओंको मोहित करते हुए उनपर टूट पड़े ॥ २ ॥

तं मृधे वेगमास्थाय नृपाः परमधन्विनः ।
चोदितास्तव पुत्रैश्च सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ३ ॥

उस समय आपके पुत्रोंद्वारा प्रेरित हुए बहुत-से महाधनुर्धर नरेशोंने महान् वेगका आश्रय ले युद्धस्थलमें भीमसेनको सब ओरसे घेर लिया ॥ ३ ॥

स तैस्तु संवृतो भीमः प्रहसन्निव भारत ।
उद्यच्छन् स गदां तेभ्यः सुघोरां सिंहवन्नदन् ।
अवासृजच्च वेगेन शत्रुपक्षविनाशिनीम् ॥ ४ ॥

भरतनन्दन ! उनसे घिरे हुए भीमने हँसते हुए-से अपनी अत्यन्त भयंकर गदा ऊपर उठायी और सिंहनाद करते हुए उन्होंने शत्रुपक्षका विनाश करनेवाली उस गदाको बड़े वेगसे उन राजाओंपर दे मारा ॥ ४ ॥

इन्द्राशनिरिवेन्द्रेण प्रविद्धा संहतात्मना ।
प्रामथ्नात् सा महाराज सैनिकांस्तव संयुगे ॥ ५ ॥

महाराज ! सुस्थिरचित्तवाले इन्द्र जिस प्रकार अपने वज्र

कः प्रयोग करते हैं, उसी तरह भीमसेनद्वारा चलायी हुई उस गदाने युद्धस्थलमें आपके सैनिकोंका कचूमर निकाल दिया ॥ ५ ॥

घोषेण महता राजन् पूरयन्तीव मेदिनीम्।
ज्वलन्ती तेजसा भीमा त्रासयामास ते सुतान् ॥ ६ ॥

राजन्! तेजसे प्रज्वलित होनेवाली उस भयंकर गदाने अपने महान् घोषसे इस पृथ्वीको परिपूर्ण करके आपके पुत्रोंको भयभीत कर दिया ॥ ६ ॥

तां पतन्तीं महावेगां दृष्ट्वा तेजोऽभिसंवृताम्।
प्राद्रवंस्तावकाः सर्वे नदन्तो भैरवान् रवान् ॥ ७ ॥

उस महावेगशालिनी तेजस्विनी गदाको गिरती देख आपके समस्त सैनिक घोर स्वरमें आर्तनाद करते हुए वहाँसे भाग गये ॥ ७ ॥

तं च शब्दमसह्यं वै तस्याः संलक्ष्य मारिष।
प्रापतन्मनुजास्तत्र रथेभ्यो रथिनस्तदा ॥ ८ ॥

माननीय नरेश! उस गदाके असह्य शब्दको सुनकर उस समय कितने ही रथी मानव अपने रथोंसे नीचे गिर पड़े ॥

ते हन्यमाना भीमेन गदाहस्तेन तावकाः।
प्राद्रवन्त रणे भीता व्याघ्रघ्राता मृगा इव ॥ ९ ॥

रणभूमिमें गदाधारी भीमके द्वारा मारे जानेवाले आपके सैनिक व्याघ्रोंके सूँघे हुए मृगोंके समान भयभीत होकर भाग निकले ॥ ९ ॥

स तान् विद्राव्य कौन्तेयः संख्येऽमित्रान् दुरासदान्।
सुपर्ण इव वेगेन पक्षिराडत्यगाच्चमूम् ॥ १० ॥

कुन्तीकुमार भीमसेन युद्धस्थलमें उन दुर्जय शत्रुओंको भगाकर पक्षिराज गरुडके समान वेगसे उस सेनाको लाँघ गये ॥ १० ॥

तथा तु विप्रकुर्वाणं रथयूथपयूथपम्।
भारद्वाजो महाराज भीमसेनं समभ्ययात् ॥ ११ ॥

महाराज! रथयूथपतियोंके भी यूथपति भीमसेनको इस प्रकार सेनाका संहार करते देख द्रोणाचार्य उनका सामना करनेके लिये आगे बढ़े ॥ ११ ॥

भीमं तु समरे द्रोणो वारयित्वा शरोर्मिभिः।
अकरोत् सहसा नादं पाण्डूनां भयमादधत् ॥ १२ ॥

उस समराङ्गणमें अपने बाणरूपी तरङ्गोंसे भीमसेनको रोककर आचार्य द्रोणने पाण्डवोंके मनमें भय उत्पन्न करते हुए सहसा सिंहनाद किया ॥ १२ ॥

तद् युद्धमासीत् सुमहद् घोरं देवासुरोपमम्।
द्रोणस्य च महाराज भीमस्य च महात्मनः ॥ १३ ॥

महाराज! द्रोणाचार्य तथा महामनस्वी भीमसेनका वह महान् युद्ध देवासुर-संग्रामके समान भयंकर था ॥ १३ ॥

यदा तु विशिखैस्तीक्ष्णैर्द्रोणचापविनिःसृतैः।
वध्यन्ते समरे वीराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १४ ॥
ततो रथादवप्लुत्य वेगमास्थाय पाण्डवः।
निमील्य नयने राजन् पदातिर्द्रोणमभ्ययात् ॥ १५ ॥
अंसे शिरो भीमसेनः करौ कृत्वोरसि स्थिरौ।
वेगमास्थाय बलवान् मनोऽनिलगरुत्मताम् ॥ १६ ॥

राजन्! जब इस प्रकार द्रोणाचार्यके धनुषसे छूटे हुए पैने बाणोंद्वारा समराङ्गणमें सैकड़ों और हजारों वीर मारे जाने लगे, तब बलवान् पाण्डुनन्दन भीम वेगपूर्वक रथसे कूद पड़े तथा दोनों नेत्र मूँदकर सिरको कंधेपर सिकोड़कर दोनों हाथोंको छातीपर सुस्थिर करके मन, वायु तथा गरुडके समान वेगका आश्रय ले पैदल ही द्रोणाचार्यकी ओर दौड़े ॥ १४–१६ ॥

यथा हि गोवृषो वर्षं प्रतिगृह्णाति लीलया।
तथा भीमो नरव्याघ्रः शरवर्षं समग्रहीत् ॥ १७ ॥

जैसे साँड़ लीलापूर्वक वर्षाका वेग अपने शरीरपर ग्रहण करता है, उसी प्रकार पुरुषसिंह भीमसेनने आचार्यकी उस बाण-वर्षाको अपने शरीरपर ग्रहण किया ॥ १७ ॥

स वध्यमानः समरे रथं द्रोणस्य मारिष।
ईषायां पाणिना गृह्य प्रचिक्षेप महाबलः ॥ १८ ॥

आर्य! समराङ्गणमें बाणोंसे आहत होते हुए महाबली भीमने द्रोणाचार्यके रथके ईषादण्डको हाथसे पकड़कर समूचे रथको दूर फेंक दिया ॥ १८ ॥

द्रोणस्तु सत्वरो राजन् क्षिप्तो भीमेन संयुगे।
रथमन्यं समारुह्य व्यूहद्वारं ययौ पुनः ॥ १९ ॥

राजन्! उस युद्धस्थलमें भीमसेनद्वारा फेंके गये आचार्य द्रोण तुरंत ही दूसरे रथपर आरूढ़ हो पुनः व्यूहके द्वारपर जा पहुँचे ॥ १९ ॥

तमायान्तं तथा दृष्ट्वा भग्नोत्साहं गुरुं तदा।
गत्वा वेगात् पुनर्भीमो धुरं गृह्य रथस्य तु ॥ २० ॥
तमप्यतिरथं भीमश्चिक्षेप भृशरोषितः।
एवमष्टौ रथाः क्षिप्ता भीमसेनेन लीलया ॥ २१ ॥

उस समय गुरु द्रोणका उत्साह भंग हो गया था। उन्हें उस अवस्थामें आते देख भीमने पुनः वेगपूर्वक आगे बढ़कर उनके रथकी धुरी पकड़ ली और अत्यन्त रोषमें भरकर उन अतिरथी वीर द्रोणको भी पुनः रथके साथ ही फेंक दिया। इस प्रकार भीमसेनने खेल-सा करते हुए आठ रथ फेंके ॥ २०–२१ ॥

व्यदृश्यत निमेषेण पुनः स्वरथमास्थितः।
दृश्यते तावकैर्योधैर्विस्मयोत्फुल्ललोचनैः ॥ २२ ॥

परंतु द्रोणाचार्य पुनः पलक मारते-मारते अपने रथपर बैठे दिखायी देते थे। उस समय आपके योद्धा विस्मयसे



भीमसेनके द्वारा द्रोणाचार्यके रथको दूर फेंकनेका उपक्रम

आँखें फाड़-फाड़कर यह दृश्य देख रहे थे ॥ २२ ॥

तस्मिन् क्षणे तस्य यन्ता तूर्णमश्वानचोदयत् ।
भीमसेनस्य कौरव्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २३ ॥

कुरुनन्दन ! इसी समय भीमसेनका सारथि तुरंत ही घोड़ोंको हाँककर वहाँ ले आया। वह एक अद्भुत-सी बात थी॥

ततः स्वरथमास्थाय भीमसेनो महाबलः ।
अभ्यद्रवत वेगेन तव पुत्रस्य वाहिनीम् ॥ २४ ॥

तत्पश्चात् महाबली भीमसेन पुनः अपने रथपर आरूढ़ हो आपके पुत्रकी सेनापर वेगपूर्वक टूट पड़े ॥ २४ ॥

स मृद्नन् क्षत्रियानाजौ वातो वृक्षानिवोद्धतः ।
आगच्छद् दारयन् सेनां सिन्धुवेगो नगानिव॥ २५॥

जैसे उठी हुई आँधी वृक्षोंको उखाड़ फेंकती है और सिंधुका वेग पर्वतोंको विदीर्ण कर देता है, उसी प्रकार युद्ध-स्थलमें क्षत्रियोंको रौंदते और कौरव-सेनाको विदीर्ण करते हुए भीमसेन आगे बढ़ गये ॥ २५ ॥

भोजानीकं समासाद्य हार्दिक्येनाभिरक्षितम् ।
प्रमथ्य तरसा वीरस्तदप्यतिबलोऽभ्ययात् ॥ २६ ॥

फिर अत्यन्त बलशाली वीर भीमसेन कृतवर्माद्वारा सुरक्षित भोजवंशियोंकी सेनाके पास जा पहुँचे और उसे वेगपूर्वक मथकर आगे चले गये ॥ २६ ॥

संत्रासयन्ननीकानि तलशब्देन पाण्डवः ।
अजयत् सर्वसैन्यानि शार्दूल इव गोवृषान् ॥ २७ ॥

जैसे सिंह गाय-बैलोंको जीत लेता है, उसी प्रकार पाण्डु-नन्दन भीमने ताली बजाकर शत्रुसेनाओंको संत्रस्त करते हुए समस्त सैनिकोंपर विजय पा ली ॥ २७ ॥

भोजानीकमतिक्रम्य दरदानां च वाहिनीम् ।
तथा म्लेच्छगणानन्यान् बहून् युद्धविशारदान्॥ २८ ॥
सात्यकिं चैव सम्प्रेक्ष्य युध्यमानं महारथम् ।
रथेन यत्तः कौन्तेयो वेगेन प्रययौ तदा ॥ २९ ॥

उस समय कुन्तीकुमार भीमसेन भोजवंशियोंकी सेनाको लाँघकर दरदोंकी विशाल वाहिनीको पार कर गये तथा बहुत-से युद्धविशारद म्लेच्छोंको परास्त करके महारथी सात्यकिको शत्रुओंके साथ युद्ध करते देख सावधान हो रथके द्वारा वेगपूर्वक आगे बढ़े ॥

भीमसेनो महाराज द्रष्टुकामो धनंजयम् ।
अतीत्य समरे योधांस्तावकान् पाण्डुनन्दनः ॥ ३० ॥

महाराज ! अर्जुनको देखनेकी इच्छा लिये पाण्डुनन्दन भीमसेन समराङ्गणमें आपके योद्धाओंको लाँघते हुए वहाँ पहुँचे थे ॥ ३० ॥

सोऽपश्यदर्जुनं तत्र युध्यमानं महारथम् ।
सैन्धवस्य वधार्थं हि पराक्रान्तं पराक्रमी ॥ ३१ ॥

पराक्रमी भीमने वहाँ सिंधुराजके वधके लिये पराक्रम करते हुए युद्धतत्पर महारथी अर्जुनको देखा ॥ ३१ ॥

तं दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रश्चुक्रोश महतो रवान् ।
प्रावृट्काले महाराज नर्दन्निव बलाहकः ॥ ३२ ॥

महाराज ! उन्हें देखते ही पुरुषसिंह भीमने वर्षाकालमें गरजते हुए मेघके समान बड़े जोरसे सिंहनाद किया ॥ ३२ ॥

तं तस्य निनदं घोरं पार्थः शुश्राव नर्दतः ।
वासुदेवश्च कौरव्य भीमसेनस्य संयुगे ॥ ३३ ॥

कुरुनन्दन ! गरजते हुए भीमसेनके उस भयंकर सिंह-नादको युद्धस्थलमें कुन्तीकुमार अर्जुन तथा भगवान् श्रीकृष्ण-ने सुना ॥ ३३ ॥

तौ श्रुत्वा युगपद् वीरौ निनदं तस्य शुष्मिणः ।
पुनः पुनः प्राणदतां दिदृक्षन्तौ वृकोदरम् ॥ ३४ ॥

उस महाबली वीरके सिंहनादको एक ही साथ सुनकर उन दोनों वीरोंने भीमसेनको देखनेकी इच्छा प्रकट करते हुए बारंबार गर्जना की ॥ ३४ ॥

ततः पार्थो महानादं मुञ्चन् वै माधवश्च ह ।
अभ्ययातां महाराज नर्दन्तौ गोवृषाविव ॥ ३५ ॥

महाराज ! गरजते हुए दो साँड़ोंके समान अर्जुन और श्रीकृष्ण महान् सिंहनाद करते हुए आगे बढ़ने लगे ॥३५॥

भीमसेनरवं श्रुत्वा फाल्गुनस्य च धन्विनः ।
अप्रीयत महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३६ ॥

नरेश्वर ! भीमसेन तथा धनुर्धर अर्जुनकी गर्जना सुनकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुए ॥ ३६ ॥

विशोकश्चाभवद् राजा श्रुत्वा तं निनदं तयोः ।
धनंजयस्य समरे जयमाशास्तवान् विभुः ॥ ३७ ॥

उन दोनोंका सिंहनाद सुनकर राजाका शोक दूर हो गया । वे शक्तिशाली नरेश समरभूमिमें अर्जुनकी विजयके लिये शुभ कामना करने लगे ॥ ३७ ॥

तथा तु नर्दमाने वै भीमसेने मदोत्कटे ।
स्मितं कृत्वा महाबाहुर्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३८ ॥
हृद्गतं मनसा प्राह ध्यात्वा धर्मभृतां वरः ।

मदोन्मत्त भीमसेनके बारंबार गर्जना करनेपर धर्मात्माओं-में श्रेष्ठ धर्मपुत्र महाबाहु युधिष्ठिर मुसकराकर मन-ही-मन कुछ सोचते हुए अपने हृदयकी बात इस प्रकार कहने लगे—॥

दत्ता भीम त्वया संवित् कृतं गुरुवचस्तथा ॥ ३९ ॥
न हि तेषां जयो युद्धे येषां द्वेष्टासि पाण्डव ।
दिष्ट्या जीवति संग्रामे सव्यसाची धनंजयः ॥ ४० ॥

'भीम ! तुमने सूचना दे दी और गुरुजनकी आज्ञाका पालन कर दिया । पाण्डुनन्दन ! जिनके शत्रु तुम हो, उन्हें युद्धमें विजय नहीं प्राप्त हो सकती । सौभाग्यकी बात है कि संग्राममूमिमें सव्यसाची अर्जुन जीवित है ॥ ३९-४० ॥

दिष्ट्या च कुशली वीरः सात्यकिः सत्यविक्रमः।
दिष्ट्या शृणोमि गर्जन्तौ वासुदेवधनंजयौ ॥ ४१ ॥

'यह भी आनन्दकी बात है कि सत्यपराक्रमी वीर सात्यकि सकुशल हैं। मैं सौभाग्यवश इस समय भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनकी गर्जना सुन रहा हूँ ॥ ४१ ॥

येन शक्रं रणे जित्वा तर्पितो हव्यवाहनः।
स हन्ता द्विषतां संख्ये दिष्ट्या जीवति फाल्गुनः॥४२॥

'जिसने रणक्षेत्रमें इन्द्रको जीतकर अग्निदेवको तृप्त किया था, वह शत्रुहन्ता अर्जुन मेरे सौभाग्यसे युद्धस्थलमें जीवित है ॥ ४२ ॥

यस्य बाहुबलं सर्वे वयमाश्रित्य जीविताः।
स हन्ता रिपुसैन्यानां दिष्ट्या जीवति फाल्गुनः॥४३॥

'जिसके बाहुबलका भरोसा करके हम सब लोग जीवन धारण करते हैं, शत्रुसेनाओंका संहार करनेवाला वह अर्जुन हमारे सौभाग्यसे जीवित है ॥ ४३ ॥

निवातकवचा येन देवैरपि सुदुर्जयाः।
निर्जिता धनुषैकेन दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥ ४४ ॥

'जिसने देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्जय निवातकवच नामक दानवोंको एकमात्र धनुषकी सहायतासे जीत लिया था, वह कुन्तीकुमार अर्जुन हमारे भाग्यसे जीवित है ॥

कौरवान् सहितान् सर्वान् गोग्रहार्थे समागतान्।
योऽजयन्मत्स्यनगरे दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥ ४५ ॥

'विराटकी गौओंका अपहरण करनेके लिये एक साथ आये हुए समस्त कौरवोंको जिसने मत्स्य देशकी राजधानीके समीप पराजित किया था, वह पार्थ जीवित है, यह सौभाग्यकी बात है ॥ ४५ ॥

कालकेयसहस्राणि चतुर्दश महारणे।
योऽवधीद् भुजवीर्येण दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥४६॥

'जिसने महासमरमें अपने बाहुबलसे चौदह हजार कालकेय नामक दैत्योंका वध किया था, वह अर्जुन हमारे भाग्यसे जीवित है ॥ ४६ ॥

गन्धर्वराजं बलिनं दुर्योधनकृते च वै।
जितवान् योऽस्त्रवीर्येण दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥४७॥

'जिसने अपने अस्त्र-बलसे दुर्योधनके लिये बलवान् गन्धर्वराज चित्रसेनको परास्त किया था, वह पार्थ सौभाग्यवश जीवित है ॥ ४७ ॥

किरीटमाली बलवाञ्छ्वेताश्वः कृष्णसारथिः।
मम प्रियश्च सततं दिष्ट्या पार्थः स जीवति ॥ ४८ ॥

'जिसके मस्तकपर किरीट शोभा पाता है, जिसके रथमें श्वेत घोड़े जोते जाते हैं, भगवान् श्रीकृष्ण जिसके सारथि हैं तथा जो सदा ही मुझे प्रिय लगता है, वह बलवान् अर्जुन अभी जीवित है, यह सौभाग्यकी बात है ॥ ४८ ॥

पुत्रशोकाभिसंतप्तश्चिकीर्षन् कर्म दुष्करम्।
जयद्रथवधान्वेषी प्रतिज्ञां कृतवान् हि यः ॥ ४९ ॥
कच्चित् स सैन्धवं संख्ये हनिष्यति धनंजयः।
कच्चित् तीर्णप्रतिज्ञं हि वासुदेवेन रक्षितम् ॥ ५० ॥
अनस्तमित आदित्ये समेष्याम्यहमर्जुनम्।

'जिसने पुत्रशोकसे संतप्त हो दुष्कर कर्म करनेकी इच्छा रखकर जयद्रथके वधकी अभिलाषासे भारी प्रतिज्ञा कर ली है, वह अर्जुन क्या आज युद्धमें सिंधुराजको मार डालेगा? क्या सूर्यास्त होनेसे पहले ही प्रतिज्ञा पूर्ण करके लौटे हुए, भगवान् श्रीकृष्णद्वारा सुरक्षित अर्जुनसे मैं मिल सकूँगा? ॥ ४९–५०½ ॥

कच्चित् सैन्धवको राजा दुर्योधनहिते रतः ॥ ५१ ॥
नन्दयिष्यत्यमित्रान् हि फाल्गुनेन निपातितः।

'क्या दुर्योधनके हितमें तत्पर रहनेवाला राजा जयद्रथ अर्जुनके हाथसे मारा जाकर शत्रुपक्षको आनन्दित करेगा? ॥

कच्चिद् दुर्योधनो राजा फाल्गुनेन निपातितम् ॥ ५२ ॥
दृष्ट्वा सैन्धवकं संख्ये शममस्मासु धास्यति।

'क्या युद्धमें सिंधुराजको अर्जुनके हाथसे मारा गया देखकर राजा दुर्योधन हमारे साथ संधि कर लेगा?॥५२½॥

दृष्ट्वा विनिहतान् भ्रातॄन् भीमसेनेन संयुगे ॥ ५३ ॥
कच्चिद् दुर्योधनो मन्दः शममस्मासु धास्यति।

'क्या मूर्ख दुर्योधन संग्रामभूमिमें भीमसेनके हाथसे अपने भाइयोंका वध होता देखकर हमारे साथ संधि कर लेगा?॥

दृष्ट्वा चान्यान् महायोधान् पातितान् धरणीतले।
कच्चिद् दुर्योधनो मन्दः पश्चात्तापं गमिष्यति ॥ ५४ ॥

'अन्यान्य बड़े-बड़े योद्धाओंको भी धराशायी किये गये देखकर क्या मन्दबुद्धि दुर्योधनको पश्चात्ताप होगा? ॥५४॥

कच्चिद् भीष्मेण नो वैरं शममेकेन यास्यति।
शेषस्य रक्षणार्थं च संधास्यति सुयोधनः ॥ ५५ ॥

'क्या एकमात्र भीष्मकी मृत्युसे हमलोगोंका वैर शान्त हो जायगा? क्या शेष वीरोंकी रक्षाके लिये दुर्योधन हमारे साथ संधि कर लेगा?' ॥ ५५ ॥

एवं बहुविधं तस्य राज्ञश्चिन्तयतस्तदा।
कृपयाभिपरीतस्य घोरं युद्धमवर्तत ॥ ५६ ॥

इस प्रकार राजा युधिष्ठिर जब दयासे द्रवित होकर भाँति-भाँतिकी बातें सोच रहे थे, उस समय दूसरी ओर घोर युद्ध हो रहा था ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमसेनप्रवेशे युधिष्ठिरहर्षे अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भीमसेनका कौरव-सेनामें प्रवेश तथा युधिष्ठिरका हर्षविषयक एक सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२८ ॥

एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेन और कर्णका युद्ध तथा कर्णकी पराजय

धृतराष्ट्र उवाच

निनदन्तं तथा तं तु भीमसेनं महाबलम्।
मेघस्तनितनिर्घोषं के वीराः पर्यवारयन्॥ १॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! इस प्रकार मेघकी गर्जनाके समान गम्भीर स्वरसे सिंहनाद करते हुए महाबली भीमसेनको किन वीरोंने रोका? ॥ १ ॥

न हि पश्याम्यहं तं वै त्रिषु लोकेषु कंचन।
क्रुद्धस्य भीमसेनस्य यस्तिष्ठेदग्रतो रणे॥ २॥

मैं तो तीनों लोकोंमें किसीको ऐसा नहीं देखता, जो क्रोधमें भरे हुए भीमसेनके सामने युद्धस्थलमें खड़ा हो सके॥

गदां युयुत्समानस्य कालस्येवेह संजय।
न हि पश्याम्यहं युद्धे यस्तिष्ठेदग्रतः पुमान्॥ ३॥

संजय! मुझे ऐसा कोई वीर पुरुष नहीं दिखायी देता, जो कालके समान गदा उठाकर युद्धकी इच्छा रखनेवाले भीमसेनके सामने समरभूमिमें ठहर सके॥ ३॥

रथं रथेन यो हन्यात् कुञ्जरं कुञ्जरेण च।
कस्तस्य समरे स्थाता साक्षादपि पुरंदरः॥ ४॥

जो रथसे रथको और हाथीसे हाथीको मार सकता है, उस वीर पुरुषके सामने साक्षात् इन्द्र ही क्यों न हो, कौन युद्धके लिये खड़ा होगा? ॥ ४॥

क्रुद्धस्य भीमसेनस्य मम पुत्रान् जिघांसतः।
दुर्योधनहिते युक्ताः समतिष्ठन्त केऽग्रतः॥ ५॥

क्रोधमें भरकर मेरे पुत्रोंका वध करनेकी इच्छावाले भीमसेनके आगे दुर्योधनके हितमें तत्पर रहनेवाले कौन-कौन योद्धा खड़े हो सके? ॥ ५॥

भीमसेनदवाग्नेस्तु मम पुत्रांस्तृणोपमान्।
प्रधक्षतो रणमुखे केऽतिष्ठन्नग्रतो नराः॥ ६॥

भीमसेन दावानलके समान हैं और मेरे पुत्र तिनकोंके समान। उन्हें जला डालनेकी इच्छावाले भीमसेनके सामने युद्धके मुहानेपर कौन-कौन-से वीर खड़े हुए? ॥ ६॥

काल्यमानांस्तु पुत्रान् मे दृष्ट्वा भीमेन संयुगे।
कालेनेव प्रजाः सर्वाः के भीमं पर्यवारयन्॥ ७॥

जैसे काल समस्त प्रजाको अपना ग्रास बना लेता है, उसी प्रकार युद्धस्थलमें भीमसेनके द्वारा मेरे पुत्रोंको कालके गालमें जाते देख किन वीरोंने आगे बढ़कर भीमसेनको रोका?॥

न मेऽर्जुनाद् भयं तादृक् कृष्णान्नापि च सात्वतात्।
हुतभुग्जन्मनो नैव यादृग्भीमाद् भयं मम॥ ८॥

मुझे भीमसेनसे जैसा भय लगता है, वैसा न तो अर्जुनसे और न श्रीकृष्णसे, न सात्यकिसे और न धृष्टद्युम्नसे ही लगता है॥ ८॥

भीमवह्नेः प्रदीप्तस्य मम पुत्रान् दिधक्षतः।
के शूराः पर्यवर्तन्त तन्ममाचक्ष्व संजय॥ ९॥

संजय! मेरे पुत्रोंको दग्ध करनेकी इच्छासे प्रज्वलित हुए भीमरूपी अग्निदेवके सामने कौन-कौन शूरवीर डटे रह सके, यह मुझे बताओ॥ ९॥

संजय उवाच

तथा तु नर्दमानं तं भीमसेनं महाबलम्।
तुमुलेनैव शब्देन कर्णोऽप्यभ्यद्रवद् बली॥ १०॥

संजयने कहा—राजन्! इस प्रकार गरजते हुए महाबली भीमसेनपर बलवान् कर्णने भयंकर सिंहनादके साथ आक्रमण किया॥ १०॥

व्याक्षिपन् सुमहच्चापमतिमात्रममर्षणः।
कर्णः सुयुद्धमाकाङ्क्षन् दर्शयिष्यन् बलं मृधे॥ ११॥
रुरोध मार्गं भीमस्य वातस्येव महीरुहः।

अत्यन्त अमर्षशील कर्णने रणभूमिमें अपना बल दिखानेके लिये अपने विशाल धनुषको खींचते और युद्धकी अभिलाषा रखते हुए, जैसे वृक्ष वायुका मार्ग रोकता है, उसी प्रकार भीमसेनका मार्ग अवरुद्ध कर दिया॥ ११½॥

भीमोऽपि दृष्ट्वा सावेगं पुरो वैकर्तनं स्थितम्॥ १२॥
चुकोप बलवद्वीरश्चिक्षेपास्य शिलाशितान्।

वीर भीमसेन भी अपने सामने कर्णको खड़ा देख अत्यन्त कुपित हो उठे और तुरंत ही उसके ऊपर सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए बाण बलपूर्वक छोड़ने लगे॥ १२½॥

तान् प्रत्यगृह्णात् कर्णोऽपि प्रतीपं प्रापयच्छरान्॥ १३॥

कर्णने भी उन बाणोंको ग्रहण किया और उनके विपरीत बहुत-से बाण चलाये॥ १३॥

ततस्तु सर्वयोधानां यततां प्रेक्षतां तदा।
प्रावेपन्निव गात्राणि कर्णभीमसमागमे॥ १४॥

उस समय कर्ण और भीमसेनके संघर्षमें विजयके लिये प्रयत्नशील होकर देखनेवाले सम्पूर्ण योद्धाओंके शरीर काँपने-से लगे॥ १४॥

रथिनां सादिनां चैव तयोः श्रुत्वा तलस्वनम्।
भीमसेनस्य निनदं श्रुत्वा घोरं रणाजिरे॥ १५॥

उन दोनोंके ताल ठोकनेकी आवाज सुनकर तथा समराङ्गणमें भीमसेनकी घोर गर्जना सुनकर रथियों और घुड़सवारोंके भी शरीर थर-थर काँपने लगे॥ १५॥

खं च भूमिं च संरुद्धां मेनिरे क्षत्रियर्षभाः।
पुनर्घोरेण नादेन पाण्डवस्य महात्मनः ॥ १६ ॥

वहाँ आये हुए क्षत्रियशिरोमणि योद्धा महामना पाण्डुनन्दन भीमसेनके बारंबार होनेवाले घोर सिंहनादसे आकाश और पृथ्वीको व्याप्त मानने लगे ॥ १६ ॥

समरे सर्वयोधानां धनूंष्यभ्यपतन् क्षितौ।
शस्त्राणि न्यपतन् दोर्भ्यः केषांचिच्चासवोऽद्रवन्॥१७॥

उस समराङ्गणमें प्रायः सम्पूर्ण योद्धाओंके धनुष तथा अन्य अस्त्र-शस्त्र हाथोंसे छूटकर पृथ्वीपर गिर पड़े। कितनोंके तो प्राण ही निकल गये ॥ १७ ॥

वित्रस्तानि च सर्वाणि शकृन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः।
वाहनानि च सर्वाणि बभूवुर्विमनांसि च ॥ १८ ॥
प्रादुरासन् निमित्तानि घोराणि सुबहून्युत।
गृध्रकङ्कबलैश्चासीदन्तरिक्षं समावृतम् ॥ १९ ॥
तस्मिन् सुतुमुले राजन् कर्णभीमसमागमे।

सारी सेनाके समस्त वाहन संत्रस्त होकर मल-मूत्र त्यागने लगे। उनका मन उदास हो गया। बहुत-से भयंकर अपशकुन प्रकट होने लगे। राजन्! कर्ण और भीमके उस भयंकर युद्धमें आकाश गीधों, कौवों और कंकोंसे छा गया १८-१९½

ततः कर्णस्तु विंशत्या शराणां भीममार्दयत् ॥ २० ॥
विव्याध चास्य त्वरितः सूतं पञ्चभिराशुगैः।

तदनन्तर कर्णने बीस बाणोंसे भीमसेनको गहरी चोट पहुँचायी। फिर तुरंत ही उनके सारथिको पाँच बाणोंसे बींध डाला ॥ २०½ ॥

प्रहस्य भीमसेनोऽपि कर्णं प्रत्याद्रवद् रणे ॥ २१ ॥
सायकानां चतुःषष्ट्या क्षिप्रकारी महायशाः।

तब शीघ्रता करनेवाले महायशस्वी भीमसेनने भी हँसकर चौंसठ बाणोंद्वारा रणभूमिमें कर्णपर आक्रमण किया ॥२१½॥

तस्य कर्णो महेष्वासः सायकांश्चतुरोऽक्षिपत् ॥ २२ ॥
असम्प्राप्तांश्च तान् भीमः सायकैर्नतपर्वभिः।
चिच्छेद बहुधा राजन् दर्शयन् पाणिलाघवम् ॥ २३ ॥

राजन्! फिर महाधनुर्धर कर्णने चार बाण चलाये। परंतु भीमसेनने अपने हाथकी फुर्ती दिखाते हुए झुकी हुई गाँठवाले अनेक बाणोंद्वारा अपने पास आनेके पहले ही कर्णके बाणोंके टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥ २२-२३ ॥

तं कर्णश्छादयामास शरव्रातैरनेकशः।
संछाद्यमानः कर्णेन बहुधा पाण्डुनन्दनः ॥ २४ ॥
चिच्छेद चापं कर्णस्य मुष्टिदेशे महारथः।
विव्याध चैनं बहुभिः सायकैर्नतपर्वभिः ॥ २५ ॥

तब कर्णने अनेकों बार बाण-समूहोंकी वर्षा करके भीमसेनको आच्छादित कर दिया। कर्णके द्वारा बारंबार आच्छादित होते हुए पाण्डुनन्दन महारथी भीमने कर्णके धनुषको मुट्ठी पकड़नेकी जगहसे काट दिया और झुकी हुई गाँठवाले बहुत-से बाणोंद्वारा उसे घायल कर दिया ॥ २४-२५ ॥

अथान्यद् धनुरादाय सज्यं कृत्वा च सूतजः।
विव्याध समरे भीमं भीमकर्मा महारथः ॥ २६ ॥

तत्पश्चात् भयंकर कर्म करनेवाले महारथी सूतपुत्र कर्णने दूसरा धनुष लेकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और समरभूमिमें भीमसेनको घायल कर दिया ॥ २६ ॥

तस्य भीमो भृशं क्रुद्धस्त्रीञ्शरान् नतपर्वणः।
निचखानोरसि क्रुद्धः सूतपुत्रस्य वेगतः ॥ २७ ॥

तब भीमसेनको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने वेगपूर्वक सूतपुत्रकी छातीमें झुकी हुई गाँठवाले तीन बाण धँसा दिये ॥

तैः कर्णोऽराजत शरैरुरोमध्यगतैस्तदा।
महीधर इवोदग्रस्त्रिशृङ्गो भरतर्षभ ॥ २८ ॥

भरतश्रेष्ठ! ठीक छातीके बीचमें गड़े हुए उन बाणोंद्वारा कर्ण तीन शिखरोंवाले ऊँचे पर्वतके समान सुशोभित हुआ ॥ २८ ॥

सुस्राव चास्य रुधिरं विद्धस्य परमेषुभिः।
धातुप्रस्यन्दिनः शैलाद् यथा गैरिकधातवः ॥ २९ ॥

उन उत्तम बाणोंसे बिंधे हुए कर्णकी छातीसे बहुत रक्त गिरने लगा, मानो धातुकी धाराएँ बहानेवाले पर्वतसे गैरिक धातु (गेरु) प्रवाहित हो रहा हो ॥ २९ ॥

किंचिद् विचलितः कर्णः सुप्रहाराभिपीडितः।
आकर्णपूर्णमाकृष्य भीमं विव्याध सायकैः ॥ ३० ॥

उस गहरे प्रहारसे पीड़ित हो कर्ण कुछ विचलित हो उठा। फिर धनुषको कानतक खींचकर उसने अनेक बाणोंद्वारा भीमसेनको बींध डाला ॥ ३० ॥

चिक्षेप च पुनर्बाणाञ्शतशोऽथ सहस्रशः।
स शरैरर्दितस्तेन कर्णेन दृढधन्विना।
धनुर्ज्यामच्छिनत् तूर्णं भीमस्तस्य क्षुरेण ह ॥ ३१ ॥

तत्पश्चात् उनपर पुनः सैकड़ों और हजारों बाणोंका प्रहार किया। सुदृढ़ धनुर्धर कर्णके बाणोंसे पीड़ित हो भीमसेनने एक क्षुरके द्वारा तुरंत ही उसके धनुषकी प्रत्यञ्चा काट दी ॥ ३१ ॥

सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत्।
वाहांश्च चतुरस्तस्य व्यसूंश्चक्रे महारथः ॥ ३२ ॥

साथ ही उसके सारथिको एक भल्लसे मारकर रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया। इतना ही नहीं, महारथी भीमने उसके चारों घोड़ोंके भी प्राण ले लिये ॥ ३२ ॥

हताश्वात् तु रथात् कर्णः समाप्लुत्य विशाम्पते।
स्यन्दनं वृषसेनस्य तूर्णमापुप्लुवे भयात् ॥ ३३ ॥

प्रजानाथ ! उस समय कर्ण भयके मारे उस अश्वहीन रथसे कूदकर तुरंत ही वृषसेनके रथपर जा बैठा ॥ ३३ ॥

निर्जित्य तु रणे कर्णं भीमसेनः प्रतापवान् ।
ननाद बलवान् नादं पर्जन्यनिनदोपमम् ॥ ३४ ॥

इस प्रकार बलवान् एवं प्रतापी भीमसेनने रणभूमिमें कर्णको पराजित करके मेघ-गर्जनाके समान गम्भीर स्वरसे सिंहनाद किया ॥ ३४ ॥

तस्य तं निनदं श्रुत्वा प्रहृष्टोऽभूद् युधिष्ठिरः ।
कर्णं पराजितं मत्वा भीमसेनेन संयुगे ॥ ३५ ॥

भीमसेनका वह महान् सिंहनाद सुनकर उनके द्वारा युद्धमें कर्णको पराजित हुआ जान राजा युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुए ॥ ३५ ॥

समन्ताच्छङ्खनिनदं पाण्डुसेनाकरोत् तदा ।
शत्रुसेनाध्वनिं श्रुत्वा तावका ह्यनदन् भृशम् ॥ ३६ ॥

उस समय पाण्डव-सेना सब ओर शङ्खनाद करने लगी। शत्रुसेनाकी शङ्खध्वनि सुनकर आपके सैनिक भी जोर-जोरसे गर्जना करने लगे ॥ ३६ ॥

स शङ्खबाणनिनदैर्हर्षाद् राजा स्ववाहिनीम् ।
चक्रे युधिष्ठिरः संख्ये हर्षनादैश्च संकुलाम् ॥ ३७ ॥

राजा युधिष्ठिरने युद्धस्थलमें हर्षके कारण अपनी सेनाको शङ्ख और बाणोंकी ध्वनि तथा हर्षनादसे व्याप्त कर दिया ॥

गाण्डीवं व्याक्षिपत् पार्थः कृष्णोऽप्यब्जमवादयत्।
तमन्तर्धाय निनदं भीमस्य नदतो ध्वनिः ।
अश्रूयत तदा राजन् सर्वसैन्येषु दारुणः ॥ ३८ ॥

इसी समय अर्जुनने गाण्डीव धनुषकी टंकार की और भगवान् श्रीकृष्णने पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया। परंतु उसकी ध्वनिको तिरोहित करके गरजते हुए भीमसेनका भयंकर सिंहनाद सम्पूर्ण सेनाओंमें सुनायी देने लगा ॥ ३८ ॥

ततो व्यायच्छतामस्त्रैः पृथक् पृथगजिह्मगैः ।
मृदुपूर्वं तु राधेयो दृढपूर्वं तु पाण्डवः ॥ ३९ ॥

तदनन्तर वे दोनों वीर एक दूसरेपर पृथक्-पृथक् सीधे जानेवाले बाणोंका प्रहार करने लगे। राधानन्दन कर्ण मृदुता-पूर्वक बाण चलाता था और पाण्डुनन्दन भीमसेन कठोरतापूर्वक ॥ ३९ ॥

(दृष्ट्वा कर्णं च पार्थेन बाधितं बहुभिः शरैः ।
दुर्योधनो महाराज दुःशलं प्रत्यभाषत ॥
कर्णं कृच्छ्रगतं पश्य शीघ्रं यानं प्रयच्छ ह ।

महाराज ! कुन्तीपुत्र भीमसेनके द्वारा कर्णको बहु-संख्यक बाणोंसे पीड़ित हुआ देख, दुर्योधनने दुःशलसे कहा— 'दुःशल ! देखो, कर्ण संकटमें पड़ा है। तुम शीघ्र उसके लिये रथ प्रस्तुत करो' ॥

एवमुक्तस्ततो राज्ञा दुःशलः समुपाद्रवत् ।
दुःशलस्य रथं कर्णश्चारुरोह महारथः ॥
तौ पार्थः सहसा गत्वा विव्याध दशभिः शरैः ।
पुनश्च कर्णं विव्याध दुःशलस्य शिरोऽहरत् ॥)

राजाके ऐसा कहनेपर दुःशल कर्णके पास दौड़ा गया; फिर महारथी कर्ण दुःशलके रथपर आरूढ़ हो गया। इसी समय भीमसेनने सहसा जाकर दस बाणोंसे उन दोनोंको घायल कर दिया। तत्पश्चात् पुनः कर्णपर आघात किया और दुःशलका सिर काट लिया ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमप्रवेशे कर्णपराजये एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भीमसेनका प्रवेश और कर्णकी पराजयविषयक एक सौ उनतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२९ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३½ श्लोक मिलाकर कुल ४२½ श्लोक हैं)

त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

दुर्योधनका द्रोणाचार्यको उपालम्भ देना, द्रोणाचार्यका उसे द्यूतका परिणाम दिखाकर युद्धके लिये वापस भेजना और उसके साथ युधामन्यु तथा उत्तमौजाका युद्ध

संजय उवाच

तस्मिन् विलुलिते सैन्ये सैन्धवायार्जुने गते ।
सात्वते भीमसेने च पुत्रस्ते द्रोणमभ्ययात् ॥ १ ॥
त्वरन्नेकरथेनैव बहुकृत्यं विचिन्तयन् ।

संजय कहते हैं—महाराज ! इस प्रकार जब वह सेना विचलित होकर भाग चली, अर्जुन सिंधुराजके वधके लिये आगे बढ़ गये और उनके पीछे सात्यकि तथा भीमसेन भी वहाँ जा पहुँचे, तब आपका पुत्र दुर्योधन बड़ी उतावलीके साथ एकमात्र रथद्वारा बहुत-से आवश्यक कार्योंके सम्बन्धमें सोचता-विचारता हुआ द्रोणाचार्यके पास गया ॥ १½ ॥

स रथस्तव पुत्रस्य त्वरया परया युतः ॥ २ ॥
तूर्णमभ्यद्रवद् द्रोणं मनोमारुतवेगवान् ।

आपके पुत्रका वह रथ मन और वायुके समान वेगशाली था। वह बड़ी तेजीके साथ तत्काल द्रोणाचार्यके पास जा पहुँचा ॥ २½ ॥

उवाच चैनं पुत्रस्ते संरम्भाद् रक्तलोचनः ॥ ३ ॥
ससम्भ्रममिदं वाक्यमब्रवीत् कुरुनन्दनः ।

उस समय आपका पुत्र कुरुनन्दन दुर्योधन क्रोधसे लाल आँखें करके घबराहटके स्वरमें द्रोणाचार्यसे इस प्रकार बोला—॥ ३½ ॥

अर्जुनो भीमसेनश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥ ४ ॥
विजित्य सर्वसैन्यानि सुमहान्ति महारथाः ।
सम्प्राप्ताः सिन्धुराजस्य समीपमनिवारिताः ॥ ५ ॥

'आचार्य ! अर्जुन, भीमसेन और अपराजित वीर सात्यकि—ये तीनों महारथी मेरी सम्पूर्ण एवं विशाल सेनाओं-को पराजित करके सिंधुराज जयद्रथके समीप पहुँच गये हैं। उन्हें कोई रोक नहीं सका है ॥ ४-५ ॥

व्यायच्छन्ति च तत्रापि सर्व एवापराजिताः।
यदि तावद् रणे पार्थो व्यतिक्रान्तो महारथः ॥ ६ ॥
कथं सात्यकिभीमाभ्यां व्यतिक्रान्तोऽसि मानद।

'वहाँ भी वे सब-के-सब अपराजित होकर मेरी सेनापर प्रहार कर रहे हैं। मान लिया, महारथी अर्जुन रणभूमिमें (अधिक शक्तिशाली होनेके कारण) आपको लाँघकर आगे बढ़ गये हैं; परंतु दूसरोंको मान देनेवाले गुरुदेव ! सात्यकि और भीमसेनने किस तरह आपका लंघन किया है ? ॥ ६½ ॥

आश्चर्यभूतं लोकेऽस्मिन् समुद्रस्येव शोषणम् ॥ ७ ॥
निर्जयस्तव विप्राग्र्य सात्वतेनार्जुनेन च।
तथैव भीमसेनेन लोकः संवदते भृशम् ॥ ८ ॥

'विप्रवर ! सात्यकि, भीमसेन तथा अर्जुनके द्वारा आपकी पराजय समुद्रको सुखा देनेके समान इस संसारमें एक आश्चर्य-भरी घटना है। लोग बड़े जोरसे इस बातकी चर्चा कर रहे हैं ॥ ७-८ ॥

कथं द्रोणो जितः संख्ये धनुर्वेदस्य पारगः।
इत्येवं ब्रुवते योधा अश्रद्धेयमिदं तव ॥ ९ ॥

'सारे योद्धा यह कह रहे हैं कि धनुर्वेदके पारंगत आचार्य द्रोण कैसे युद्धमें पराजित हो गये। आपका यह हारना लोगों-के लिये अविश्वसनीय हो गया है ॥ ९ ॥

नाश एव तु मे नूनं मन्दभाग्यस्य संयुगे।
यत्र त्वां पुरुषव्याघ्रं व्यतिक्रान्तास्त्रयो रथाः ॥ १० ॥

'वास्तवमें मेरा भाग्य ही खोटा है। ये तीनों महारथी जहाँ आप-जैसे पुरुषसिंह वीरको लाँघकर आगे बढ़ गये हैं, उस युद्धमें मेरा विनाश ही अवश्यम्भावी है ॥ १० ॥

एवं गते तु कृत्येऽस्मिन् ब्रूहि यत् ते विवक्षितम्।
यद् गतं गतमेवेदं शेषं चिन्तय मानद ॥ ११ ॥

'ऐसी परिस्थितिमें जो कर्तव्य है, उसके सम्बन्धमें आपकी क्या राय है, यह बताइये। मानद ! जो हो गया सो तो हो ही गया। अब जो शेष कार्य है, उसका विचार कीजिये ११

यत् कृत्यं सिन्धुराजस्य प्राप्तकालमनन्तरम्।
तत् संविधीयतां क्षिप्रं साधु संचिन्त्य नो द्विज ॥ १२ ॥

'ब्रह्मन् ! इस समय सिंधुराजकी रक्षाके लिये तुरंत करने योग्य जो कार्य हमारे सामने प्राप्त है, उसे अच्छी तरह सोच-विचारकर शीघ्र सम्पन्न कीजिये' ॥ १२ ॥

द्रोण उवाच

चिन्त्यं बहुविधं तात यत् कृत्यं तच्छृणुष्व मे।
त्रयो हि समतिक्रान्ताः पाण्डवानां महारथाः ॥ १३ ॥
यावत् तेषां भयं पश्चात् तावदेषां पुरःसरम्।
तद् गरीयस्तरं मन्ये यत्र कृष्णधनंजयौ ॥ १४ ॥

द्रोणाचार्यने कहा—तात ! सोचने-विचारनेको तो बहुत कुछ है, किंतु इस समय जो कर्तव्य प्राप्त है, वह मुझसे सुनो। पाण्डवपक्षके तीन महारथी हमारी सेनाको लाँघकर आगे बढ़ गये हैं। पीछे उनका जितना भय है, उतना ही आगे भी है। परंतु जहाँ अर्जुन और श्रीकृष्ण हैं, वहीं मेरी समझमें अधिक भयकी आशंका है ॥ १३-१४ ॥

सा पुरस्ताच्च पश्चाच्च गृहीता भारती चमूः।
तत्र कृत्यमहं मन्ये सैन्धवस्याभिरक्षणम् ॥ १५ ॥

इस समय कौरव-सेना आगे और पीछेसे भी शत्रुओंके आक्रमणका शिकार हो रही है। इस परिस्थितिमें मैं सबसे आवश्यक कार्य यही मानता हूँ कि सिंधुराज जयद्रथकी रक्षा की जाय ॥ १५ ॥

स नो रक्ष्यतमस्तात क्रुद्धाद् भीतो धनंजयात्।
गतौ च सैन्धवं भीमौ युयुधानवृकोदरौ ॥ १६ ॥

तात ! जयद्रथ कुपित हुए अर्जुनसे डरा हुआ है। अतः वह हमारे लिये सबसे रक्षणीय है। भयंकर वीर सात्यकि और भीमसेन भी जयद्रथको ही लक्ष्य करके गये हैं ॥१६॥

सम्प्राप्तं तदिदं द्यूतं यत् तच्छकुनिबुद्धिजम्।
न सभायां जयो वृत्तो नापि तत्र पराजयः ॥ १७ ॥
इह नो ग्लहमानानामद्य तावज्जयाजयौ।

शकुनिकी बुद्धिमें जो जूआ खेलनेकी बात पैदा हुई थी, वह वास्तवमें आज इस रूपमें सफल हो रही है। उस दिन सभामें किसी पक्षकी जीत या हार नहीं हुई थी। आज यहाँ जो हमलोग प्राणोंकी बाजी लगाकर जूआ खेल रहे हैं, इसीमें वास्तविक हार-जीत होनेवाली है ॥ १७½ ॥

यान् स तान् ग्लहते घोराञ्छकुनिः कुरुसंसदि ॥ १८ ॥
अक्षान् स मन्यमानः प्राक् शरास्ते हि दुरासदाः।

शकुनि कौरवसभामें पहले जिन भयंकर पासोंको हाथमें लेकर जूएका खेल खेलता था, उन्हें वह तो पासे ही समझता था, परंतु वास्तवमें वे दुर्धर्ष बाण थे ॥ १८½ ॥

यत्र ते बहवस्तात कौरवेया व्यवस्थिताः ॥ १९ ॥
सेनां दुरोदरं विद्धि शरानक्षान् विशाम्पते।
ग्लहं च सैन्धवं राजंस्तत्र द्यूतस्य निश्चयः ॥ २० ॥

तात ! (असली जूआ तो वहाँ हो रहा है) जहाँ तुम्हारे बहुत-से कौरव योद्धा खड़े हैं। इस सेनाको ही तुम जुआरी समझो। प्रजानाथ ! बाणोंको ही पासे मान लो। राजन् ! सिंधुराज जयद्रथको ही बाजी या दाँव समझो। उसीपर जूए-की हार-जीतका फैसला होगा ॥ १९-२० ॥

सैन्धवे तु महद् द्यूतं समासक्तं परैः सह।
अत्र सर्वे महाराज त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ २१ ॥
सैन्धवस्य रणे रक्षां विधिवत् कर्तुमर्हथ।
तत्र नो ग्लहमानानां ध्रुवौ जयपराजयौ ॥ २२ ॥

महाराज ! सिंधुराजके ही जीवनकी बाजी लगाकर शत्रुओंके साथ हमारी भारी द्यूतक्रीड़ा चल रही है। यहाँ तुम सब लोग अपने जीवनका मोह छोड़कर रणभूमिमें विधिपूर्वक जयद्रथकी रक्षा करो। निश्चय ही उसीपर हम द्यूतक्रीड़ा करनेवालोंकी असली हार-जीत निर्भर है ॥ २१-२२ ॥

यत्र ते परमेष्वासा यत्ता रक्षन्ति सैन्धवम्।
तत्र गच्छ स्वयं शीघ्रं तांश्च रक्षस्व रक्षिणः॥ २३॥

राजन् ! जहाँ वे महाधनुर्धर योद्धा सावधान होकर सिंधुराजकी रक्षा करने लगे हैं, वहीं तुम स्वयं भी शीघ्र चले जाओ और सिंधुराजके उन रक्षकोंकी रक्षा करो ॥ २३ ॥

इहैव त्वहमासिष्ये प्रेषयिष्यामि चापरान्।
निरोत्स्यामि च पञ्चालान् सहितान् पाण्डुसृञ्जयैः॥२४॥

मैं तो यहीं रहूँगा और तुम्हारे पास दूसरे-दूसरे रक्षकोंको भेजता रहूँगा। साथ ही पाण्डवों तथा सृंजयोंसहित आये हुए पाञ्चालोंको व्यूहके भीतर जानेसे रोकूँगा ॥ २४ ॥

ततो दुर्योधनोऽगच्छत् तूर्णमाचार्यशासनात्।
उद्यम्यात्मानमुग्राय कर्मणे सपदानुगः॥ २५॥

तदनन्तर आचार्यकी आज्ञासे दुर्योधन अपने आपको उग्र कर्म करनेके लिये तैयार करके अपने अनुचरोंके साथ शीघ्र वहाँसे चला गया ॥ २५ ॥

चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ।
बाह्येन सेनामभ्येत्य जग्मतुः सव्यसाचिनम्॥ २६॥

अर्जुनके चक्ररक्षक पाञ्चालराजकुमार युधामन्यु और उत्तमौजा सेनाके बाहरी भागसे होकर सव्यसाची अर्जुनके समीप जाने लगे ॥ २६ ॥

यौ तु पूर्वं महाराज वारितौ कृतवर्मणा।
प्रविष्टे त्वर्जुने राजंस्तव सैन्यं युयुत्सया॥ २७॥

महाराज ! जब अर्जुन युद्धकी इच्छासे आपकी सेनाके भीतर घुसे थे, उस समय (ये दोनों भीमके साथ ही थे, किंतु) कृतवर्माने उन दोनोंको पहले रोक दिया था ॥ २७ ॥

पार्श्वे भित्त्वा चमूं वीरौ प्रविष्टौ तव वाहिनीम्।
पार्श्वेन सैन्यमायान्तौ कुरुराजो ददर्श ह॥ २८॥

अब वे दोनों वीर पार्श्वभागसे आपकी सेनाका भेदन करके उसके भीतर घुस गये। पार्श्वभागसे सेनाके भीतर आते हुए उन दोनों वीरोंको कुरुराज दुर्योधनने देखा ॥२८॥

ताभ्यां दुर्योधनः सार्धमकरोत् संख्यमुत्तमम्।
त्वरितस्त्वरमाणाभ्यां भ्रातृभ्यां भारतो बली॥ २९॥

तब उस बलवान् भरतवंशी वीर दुर्योधनने तुरंत आगे बढ़कर बड़ी उतावलीके साथ आते हुए उन दोनों भाइयोंके साथ भारी युद्ध छेड़ दिया ॥ २९ ॥

तावेनमभ्यद्रवतामुभावुद्यतकार्मुकौ।
महारथसमाख्यातौ क्षत्रियप्रवरौ युधि॥ ३०॥

वे दोनों क्षत्रियशिरोमणि विख्यात महारथी वीर थे। उन दोनोंने युद्धस्थलमें धनुष उठाकर दुर्योधनपर धावा बोल दिया ॥ ३० ॥

तमविध्यद् युधामन्युस्त्रिंशता कङ्कपत्रिभिः।
विंशत्या सारथिं चास्य चतुर्भिश्चतुरो हयान्॥ ३१॥

युधामन्युने कंकपत्रयुक्त तीस बाणोंद्वारा दुर्योधनको घायल कर दिया। फिर बीस बाणोंसे उसके सारथिको और चारसे चारों घोड़ोंको बींध डाला ॥ ३१ ॥

दुर्योधनो युधामन्योर्ध्वजमेकेषुणाच्छिनत्।
एकेन कार्मुकं चास्य चकर्त तनयस्तव॥ ३२॥

तब आपके पुत्र दुर्योधनने एक बाणसे युधामन्युकी ध्वजा काट डाली और एकसे उसके धनुषके दो टुकड़े कर दिये ॥ ३२ ॥

सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपाहरत्।
ततोऽविध्यच्छरैस्तीक्ष्णैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान्॥ ३३॥

इतना ही नहीं, एक भल्ल मारकर उसने युधामन्युके सारथिको भी रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया। फिर चार तीखे बाणोंद्वारा उसके चारों घोड़ोंको भी घायल कर दिया ॥

युधामन्युश्च संक्रुद्धः शरांस्त्रिंशतमाहवे।
व्यसृजत् तव पुत्रस्य त्वरमाणः स्तनान्तरे॥ ३४॥

इससे युधामन्यु भी कुपित हो उठा। उसने युद्धस्थलमें बड़ी उतावलीके साथ आपके पुत्रकी छातीमें तीस बाण मारे ॥

तथोत्तमौजाः संक्रुद्धः शरैर्हेमविभूषितैः।
अविध्यत् सारथिं चास्य प्राहिणोद् यमसादनम्॥३५॥

इसी प्रकार उत्तमौजाने भी अत्यन्त कुपित हो अपने सुवर्णभूषित बाणोंद्वारा उसके सारथिको गहरी चोट पहुँचायी और उसे यमलोक भेज दिया ॥ ३५ ॥

दुर्योधनोऽपि राजेन्द्र पाञ्चाल्यस्योत्तमौजसः।
जघान चतुरोऽस्याश्वानुभौ तौ पार्ष्णिसारथी॥ ३६॥

राजेन्द्र ! तब दुर्योधनने भी पाञ्चालराज उत्तमौजाके चारों घोड़ों और दोनों पार्श्वरक्षकोंको सारथिसहित मार डाला ॥ ३६ ॥

उत्तमौजा हताश्वस्तु हतसूतश्च संयुगे।
आरुरोह रथं भ्रातुर्युधामन्योरभित्वरन्॥ ३७॥

युद्धमें घोड़ों और सारथिके मारे जानेपर उत्तमौजा शीघ्रतापूर्वक अपने भाई युधामन्युके रथपर जा चढ़ा ॥३७॥

स रथं प्राप्य तं भ्रातुर्दुर्योधनहयाञ्शरैः।
बहुभिस्ताडयामास ते हताः प्रापतन् भुवि॥ ३८॥

भाईके रथपर बैठकर उत्तमौजाने अपने बहुसंख्यक बाणोंद्वारा दुर्योधनके घोड़ोंपर इतना प्रहार किया कि वे प्राणशून्य होकर धरतीपर गिर पड़े ॥ ३८ ॥

हयेषु पतितेष्वस्य चिच्छेद परमेषुणा।
युधामन्युर्धनुः शीघ्रं शरावापं च संयुगे॥ ३९॥

घोड़ोंके धराशायी हो जानेपर युधामन्युने उस युद्धस्थलमें उत्तम बाणका प्रहार करके दुर्योधनके धनुष और तरकसको भी शीघ्रतापूर्वक काट गिराया ॥ ३९ ॥

हताश्वसूतात् स रथादवतीर्य नराधिपः ।
गदामादाय ते पुत्रः पाञ्चाल्यावभ्यधावत ॥ ४० ॥

घोड़े और सारथिके मारे जानेपर आपका पुत्र राजा दुर्योधन रथसे उतर पड़ा और गदा हाथमें लेकर पाञ्चाल देशके उन दोनों वीरोंकी ओर दौड़ा ॥ ४० ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य क्रुद्धं कुरुपतिं तदा ।
अवप्लुतौ रथोपस्थाद् युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ ४१ ॥

उस समय क्रोधमें भरे हुए कुरुराज दुर्योधनको अपनी ओर आते देख दोनों भाई युधामन्यु और उत्तमौजा रथके पिछले भागसे नीचे कूद गये ॥ ४१ ॥

ततः स हेमचित्रं तं गदया स्यन्दनं गदी ।
संक्रुद्धः पोथयामास साश्वसूतध्वजं नृप ॥ ४२ ॥

नरेश्वर ! तदनन्तर अत्यन्त कुपित हुए गदाधारी दुर्योधनने घोड़े, सारथि और ध्वजसहित उस सुवर्णजटित सुन्दर रथको गदाके आघातसे चूर-चूर कर दिया ॥ ४२ ॥

भङ्क्त्वा रथं स पुत्रस्ते हताश्वो हतसारथिः ।
मद्रराजरथं तूर्णमारुरोह परंतपः ॥ ४३ ॥

इस प्रकार उस रथको तोड़-फोड़कर घोड़ों और सारथिसे हीन हुआ शत्रुसंतापी दुर्योधन शीघ्र ही मद्रराज शल्यके रथपर जा चढ़ा ॥ ४३ ॥

पञ्चालानां ततो मुख्यौ राजपुत्रौ महारथौ ।
रथावन्यौ समारुह्य बीभत्सुमभिजग्मतुः ॥ ४४ ॥

तत्पश्चात् पाञ्चालसेनाके वे दोनों प्रधान महारथी राजकुमार युधामन्यु और उत्तमौजा दूसरे दो रथोंपर आरूढ़ होकर अर्जुनके समीप चले गये ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनयुद्धे त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें दुर्योधनका युद्धविषयक एक सौ तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३० ॥

एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेनके द्वारा कर्णकी पराजय

संजय उवाच

वर्तमाने महाराज संग्रामे लोमहर्षणे ।
व्याकुलेषु च सर्वेषु पीड्यमानेषु सर्वशः ॥ १ ॥
राधेयो भीममानर्च्छद् युद्धाय भरतर्षभ ।
यथा नागो वने नागं मत्तो मत्तमभिद्रवन् ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—भरतश्रेष्ठ महाराज ! इस प्रकार रोमाञ्चकारी संग्राम छिड़ जानेपर जब सारी सेनाएँ सब ओरसे पीड़ित और व्याकुल हो गयीं, तब राधानन्दन कर्ण युद्धके लिये पुनः भीमसेनके सामने आया । ठीक उसी तरह, जैसे वनमें एक मतवाला हाथी दूसरे मदोन्मत्त हाथीपर आक्रमण करता है ॥ १-२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

यौ तौ कर्णश्च भीमश्च सम्प्रयुद्धौ महाबलौ ।
अर्जुनस्य रथोपान्ते कीदृशः सोऽभवद् रणः ॥ ३ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! महाबली कर्ण और भीमसेनने अर्जुनके रथके निकट जाकर जो बड़े वेगसे युद्ध किया, उनका वह संग्राम कैसा हुआ ? ॥ ३ ॥

पूर्वं हि निर्जितः कर्णो भीमसेनेन संयुगे ।
कथं भूयः स राधेयो भीममागान्महारथः ॥ ४ ॥

भीमसेनने युद्धमें जब राधानन्दन महारथी कर्णको पहले ही जीत लिया था, तब वह पुनः उनका सामना करनेके लिये कैसे आया ? ॥ ४ ॥

भीमो वा सूततनयं प्रत्युद्यातः कथं रणे ।
महारथं समाख्यातं पृथिव्यां प्रवरं रथम् ॥ ५ ॥

अथवा भीमसेन भूमण्डलके श्रेष्ठ एवं विख्यात महारथी सूतपुत्र कर्णसे समराङ्गणमें युद्ध करनेके लिये कैसे आगे बढ़े ? ॥ ५ ॥

भीष्मद्रोणावतिक्रम्य धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
नान्यतो भयमादत्त विना कर्णान्महारथात् ॥ ६ ॥

भीष्म और द्रोणसे पार पाकर धर्मराज युधिष्ठिरको अब महारथी कर्णके सिवा दूसरे किसीसे भय नहीं रह गया है ॥ ६ ॥

भयाद् यस्य महाबाहोर्न शेते बहुलाः समाः ।
चिन्तयन् नित्यशो वीर्यं राधेयस्य महात्मनः ।
तं कथं सूतपुत्रं तु भीमोऽयोधयताहवे ॥ ७ ॥

पहले जिस महाबाहु महामना राधानन्दन कर्णके बल-पराक्रमका नित्य चिन्तन करते हुए राजा युधिष्ठिर भयके मारे बहुत वर्षोंतक नींद नहीं लेते थे, उसी सूतपुत्र कर्णके साथ भीमसेनने समरभूमिमें किस तरह युद्ध किया ? ॥ ७ ॥

ब्रह्मण्यं वीर्यसम्पन्नं समरेष्वनिवर्तिनम् ।
कथं कर्णं युधां श्रेष्ठं योधयामास पाण्डवः ॥ ८ ॥

जो ब्राह्मणभक्त, पराक्रमसम्पन्न और समरभूमिमें कभी पीछे न हटनेवाला है, योद्धाओंमें श्रेष्ठ उस कर्णके साथ भीमसेनने किस प्रकार युद्ध किया ? ॥ ८ ॥

यौ तौ समीयतुर्वीरौ वैकर्तनवृकोदरौ ।
कथं तावत्र युध्येतां महाबलपराक्रमौ ॥ ९ ॥

जो वीर पहले आपसमें भिड़ चुके थे, वे ही महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न कर्ण और भीमसेन यहाँ पुनः कैसे युद्धमें प्रवृत्त हुए ? ॥ ९ ॥

भ्रातृत्वं दर्शितं पूर्वं घृणी चापि स सूतजः ।
कथं भीमेन युयुधे कुन्त्या वाक्यमनुस्मरन् ॥ १० ॥

पहले तो सूतपुत्र कर्णने अर्जुनके सिवा अन्य पाण्डवोंके प्रति बन्धुत्व दिखाया था और वह दयालु भी है ही, तथापि कुन्तीके वचनोंको बारंबार स्मरण करते हुए भी उसने भीमसेनके साथ कैसे युद्ध किया ? ॥ १० ॥

भीमो वा सूतपुत्रेण स्मरन् वैरं पुरा कृतम् ।
अयुध्यत कथं शूरः कर्णेन सह संयुगे ॥ ११ ॥

अथवा शूरवीर भीमसेनने पहलेके किये हुए वैरका स्मरण करके सूतपुत्र कर्णके साथ उस रणक्षेत्रमें किस प्रकार युद्ध किया ? ॥ ११ ॥

आशास्ते च सदा सूत पुत्रो दुर्योधनो मम ।
कर्णो जेष्यति संग्रामे समस्तान् पाण्डवानिति ॥१२॥

संजय ! मेरा बेटा दुर्योधन सदा यही आशा करता है कि कर्ण संग्राममें समस्त पाण्डवोंको जीत लेगा ॥ १२ ॥

जयाशा यत्र पुत्रस्य मम मन्दस्य संयुगे ।
स कथं भीमकर्माणं भीमसेनमयोधयत् ॥ १३ ॥

युद्धस्थलमें जिसके ऊपर मेरे मूर्ख पुत्रकी विजयकी आशा लगी हुई है, उस कर्णने भयंकर कर्म करनेवाले भीमसेनके साथ किस प्रकार युद्ध किया ? ॥ १३ ॥

यं समासाद्य पुत्रैर्मे कृतं वैरं महारथैः ।
तं सूततनयं तात कथं भीमो ह्ययोधयत् ॥ १४ ॥

तात ! जिसका आश्रय लेकर मेरे पुत्रोंने महारथी पाण्डवोंके साथ वैर ठाना है, उस सूतपुत्र कर्णके साथ भीमसेनने किस प्रकार युद्ध किया ? ॥ १४ ॥

अनेकान् विप्रकारांश्च सूतपुत्रसमुद्भवान् ।
स्मरमाणः कथं भीमो युयुधे सूतसूनुना ॥ १५ ॥

सूतपुत्रके द्वारा किये गये अनेक अपकारोंको स्मरण करके भीमसेनने उसके साथ किस तरह युद्ध किया ? ॥१५॥

योऽजयत् पृथिवीं सर्वां रथेनैकेन वीर्यवान् ।
तं सूततनयं युद्धे कथं भीमो ह्ययोधयत् ॥ १६ ॥

जिस पराक्रमी वीरने एकमात्र रथकी सहायतासे सारी पृथ्वीको जीत लिया, उस सूतपुत्रके साथ रणभूमिमें भीमसेनने किस तरह युद्ध किया ? ॥ १६ ॥

यो जातः कुण्डलाभ्यां च कवचेन सहैव च ।
तं सूतपुत्रं समरे भीमः कथमयोधयत् ॥ १७ ॥

जो जन्मसे ही कवच और कुण्डलोंके साथ उत्पन्न हुआ था, उस सूतपुत्रके साथ समराङ्गणमें भीमसेनने किस प्रकार युद्ध किया ? ॥ १७ ॥

यथा तयोर्युद्धमभूद् यश्चासीद् विजयी तयोः ।
तन्ममाचक्ष्व तत्त्वेन कुशलो ह्यसि संजय ॥ १८ ॥

संजय ! उन दोनों वीरोंमें जिस प्रकार युद्ध हुआ और उनमेंसे जिस एकको विजय प्राप्त हुई, उसका वह सब समाचार मुझे ठीक-ठीक बताओ; क्योंकि तुम इस कार्यमें कुशल हो ॥ १८ ॥

संजय उवाच

भीमसेनस्तु राधेयमुत्सृज्य रथिनां वरम् ।
इयेष गन्तुं यत्रास्तां वीरौ कृष्णधनंजयौ ॥ १९ ॥

संजयने कहा—राजन् ! भीमसेनने रथियोंमें श्रेष्ठ राधापुत्र कर्णको छोड़कर वहाँ जानेकी इच्छा की, जहाँ वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन विद्यमान थे ॥ १९ ॥

तं प्रयान्तमभिद्रुत्य राधेयः कङ्कपत्रिभिः ।
अभ्यवर्षन्महाराज मेघो वृष्ट्येव पर्वतम् ॥ २० ॥

महाराज ! वहाँसे जाते हुए भीमसेनपर आक्रमण करके राधापुत्र कर्णने उनके ऊपर कङ्कपत्रयुक्त बाणोंकी उसी प्रकार वर्षा आरम्भ कर दी, जैसे बादल पर्वतपर जलकी वर्षा करता है ॥ २० ॥

फुल्लता पङ्कजेनेव वक्त्रेण विहसन् बली ।
आजुहाव रणे यान्तं भीममाधिरथिस्तदा ॥ २१ ॥

बलवान् अधिरथपुत्रने खिलते हुए कमलके समान मुखसे हँसकर जाते हुए भीमसेनको युद्धके लिये ललकारा ॥ २१ ॥

कर्ण उवाच

भीमाहितैस्तव रणे स्वप्नेऽपि न विभावितम् ।
तद् दर्शयसि कस्मान्मे पृष्ठं पार्थदिदृक्षया ॥ २२ ॥

कर्णने कहा—भीमसेन ! तुम्हारे शत्रुओंने स्वप्नमें भी यह नहीं सोचा था कि तुम युद्धमें पीठ दिखाओगे; परंतु इस समय अर्जुनसे मिलनेके लिये तुम मुझे पीठ क्यों दिखा रहे हो ? ॥ २२ ॥

कुन्त्याः पुत्रस्य सदृशं नेदं पाण्डवनन्दन ।
तेन मामभितः स्थित्वा शरवर्षैरवाकिर ॥ २३ ॥

पाण्डवनन्दन ! तुम्हारा यह कार्य कुन्तीके पुत्रके योग्य नहीं है । अतः मेरे सम्मुख रहकर मुझपर बाणोंकी वर्षा करो ॥ २३ ॥

भीमसेनस्तदाह्वानं कर्णान्नामर्षयद् युधि ।
अर्धमण्डलमावृत्य सूतपुत्रमयोधयत् ॥ २४ ॥

कर्णकी ओरसे रणक्षेत्रमें वह युद्धकी ललकार भीमसेन न सह सके । उन्होंने अर्धमण्डल गतिसे घूमकर सूतपुत्रके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया ॥ २४ ॥

अवक्रगामिभिर्बाणैरभ्यवर्षन्महायशाः ।
दंशितं द्वैरथे यत्तं सर्वशस्त्रविशारदम् ॥ २५ ॥

महायशस्वी भीमसेन सम्पूर्ण शस्त्रोंके चलानेमें निपुण, कवचधारी तथा द्वैरथ युद्धके लिये तैयार कर्णके ऊपर सीधे जानेवाले बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २५ ॥

विधित्सुः कलहस्यान्तं जिघांसुः कर्णमक्षिणोत्।
हत्वा तस्यानुगांस्तं च हन्तुकामो महाबलः ॥ २६ ॥

कलहका अन्त करनेकी इच्छासे महाबली भीमसेन कर्णको मार डालना चाहते थे और इसीलिये उसे बाणोंद्वारा क्षत-विक्षत कर रहे थे। वे कर्णको मारकर उसके अनुगामी सेवकोंका भी वध करनेकी इच्छा रखते थे ॥ २६ ॥

तस्मै व्यसृजदुग्राणि विविधानि परंतपः।
अमर्षात् पाण्डवः क्रुद्धः शरवर्षाणि मारिष ॥ २७ ॥

माननीय नरेश ! शत्रुओंको संताप देनेवाले पाण्डुनन्दन भीमसेन कुपित हो अमर्षवश कर्णपर नाना प्रकारके भयंकर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २७ ॥

तस्य तानीषुवर्षाणि मत्तद्विरदगामिनः।
सूतपुत्रोऽस्त्रमायाभिरग्रसत् परमास्त्रवित् ॥ २८ ॥

उत्तम अस्त्रोंका ज्ञान रखनेवाले सूतपुत्र कर्णने अपने अस्त्रोंकी मायासे मतवाले हाथीके समान मस्तीसे चलनेवाले भीमसेनकी उस बाणवर्षाको ग्रस लिया ॥ २८ ॥

स यथावन्महाबाहुर्विद्यया वै सुपूजितः।
आचार्यवन्महेष्वासः कर्णः पर्यचरद् बली ॥ २९ ॥

महाबाहु महाधनुर्धर, बलवान् कर्ण अपनी विद्याद्वारा आचार्य द्रोणके समान यथावत् पूजित हो रणक्षेत्रमें विचरने लगा ॥ २९ ॥

युध्यमानं तु संरम्भाद् भीमसेनं हसन्निव।
अभ्यपद्यत कौन्तेयं कर्णो राजन् वृकोदरम् ॥ ३० ॥

राजन् ! क्रोधपूर्वक युद्ध करनेवाले कुन्तीपुत्र भीमसेनकी हँसी उड़ाता हुआ-सा कर्ण उनके सामने जा पहुँचा ॥ ३० ॥

तन्नामृष्यत कौन्तेयः कर्णस्य स्मितमाहवे।
युध्यमानेषु वीरेषु पश्यत्सु च समन्ततः ॥ ३१ ॥
तं भीमसेनः सम्प्राप्तं वत्सदन्तैः स्तनान्तरे।
विव्याध बलवान् क्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ ३२ ॥

कुन्तीकुमार भीम युद्धस्थलमें कर्णकी उस हँसीको न सह सके। सब ओर युद्ध करते हुए समस्त वीरोंको देखते-देखते बलवान् भीमसेनने कुपित हो सामने आये हुए कर्णकी छातीमें वत्सदन्त नामक बाणोंद्वारा उसी प्रकार चोट पहुँचायी, जैसे महावत महान् गजराजको अंकुशोंद्वारा पीड़ित करता है ॥ ३१-३२ ॥

पुनश्च सूतपुत्रं तु स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः।
सुमुक्तैश्चित्रवर्माणं निर्बिभेद त्रिसप्तभिः ॥ ३३ ॥

तत्पश्चात् विचित्र कवच धारण करनेवाले सूतपुत्रको सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले तथा अच्छी तरह छोड़े हुए इक्कीस बाणोंद्वारा पुनः क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ३३ ॥

कर्णो जाम्बूनदैर्जालैः संछन्नान् वातरंहसः।
हयान् विव्याध भीमस्य पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ॥ ३४ ॥

उधर कर्णने भीमसेनके सोनेकी जालियोंसे आच्छादित हुए वायुके समान वेगशाली घोड़ोंको पाँच-पाँच बाणोंसे बेध दिया ॥ ३४ ॥

ततो बाणमयं जालं भीमसेनरथं प्रति।
कर्णेन विहितं राजन् निमेषार्धाददृश्यत ॥ ३५ ॥

राजन् ! तदनन्तर आधे निमेषमें ही भीमसेनके रथपर कर्णद्वारा बाणोंका जाल-सा बिछाया जाता दिखायी दिया ॥ ३५ ॥

सरथः सध्वजस्तत्र ससूतः पाण्डवस्तदा।
प्राच्छाद्यत महाराज कर्णचापच्युतैः शरैः ॥ ३६ ॥

महाराज ! वहाँ कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा उस समय रथ, ध्वज और सारथिसहित पाण्डुनन्दन भीमसेन आच्छादित हो गये ॥ ३६ ॥

तस्य कर्णश्चतुःषष्ट्या व्यधमत् कवचं दृढम्।
क्रुद्धश्चाप्यहनत् पार्थं नाराचैर्मर्मभेदिभिः ॥ ३७ ॥

कर्णने चौंसठ बाण मारकर भीमसेनके सुदृढ़ कवचकी धज्जियाँ उड़ा दीं। फिर कुपित होकर उसने मर्मभेदी नाराचोंसे कुन्तीकुमारको अच्छी तरह घायल किया ॥ ३७ ॥

ततोऽचिन्त्य महाबाहुः कर्णकार्मुकनिःसृतान्।
समाश्लिष्यदसम्भ्रान्तः सूतपुत्रं वृकोदरः ॥ ३८ ॥

महाबाहु भीमसेन कर्णके धनुषसे छूटे हुए उन बाणोंकी कोई परवा न करके बिना किसी घबराहटके सूतपुत्रके इतने समीप पहुँच गये, मानो उससे सटे जा रहे हों ॥ ३८ ॥

स कर्णचापप्रभवानिषूनाशीविषोपमान्।
बिभ्रद् भीमो महाराज न जगाम व्यथां रणे ॥ ३९ ॥

महाराज ! कर्णके धनुषसे छूटे हुए विषधर सर्पके समान भयंकर बाणोंको अपने शरीरपर धारण करते हुए भीमसेन रणक्षेत्रमें व्यथित नहीं हुए ॥ ३९ ॥

ततो द्वात्रिंशता भल्लैर्निशितैस्तिग्मतेजनैः।
विव्याध समरे कर्णं भीमसेनः प्रतापवान् ॥ ४० ॥

तत्पश्चात् अच्छी तरह तेज किये हुए बत्तीस तीखे भल्लोंसे प्रतापी भीमसेनने समराङ्गणमें कर्णको भारी चोट पहुँचायी ॥ ४० ॥

अयत्नेनैव तं कर्णः शरैर्भृशमवाकिरत्।
भीमसेनं महाबाहुं सैन्धवस्य वधैषिणम् ॥ ४१ ॥

उधर कर्ण जयद्रथके वधकी इच्छावाले महाबाहु भीमसेनपर अनायास ही बाणोंकी बड़ी भारी वर्षा करने लगा ॥ ४१ ॥

मृदुपूर्वं तु राधेयो भीममाजावयोधयत्।
क्रोधपूर्वं तथा भीमः पूर्वं वैरमनुस्मरन् ॥ ४२ ॥

राधानन्दन कर्ण तो भीमसेनपर कोमल प्रहार करता हुआ रणभूमिमें उनके साथ युद्ध करता था; परंतु भीमसेन पहलेके वैरको बारंबार स्मरण करते हुए क्रोधपूर्वक उसके साथ जूझ रहे थे ॥ ४२ ॥

तं भीमसेनो नामृष्यदवमानममर्षणः।
स तस्मै व्यसृजत् तूर्णं शरवर्षममित्रहा ॥ ४३ ॥

शत्रुओंका नाश करनेवाले अमर्षशील भीमसेन कर्णद्वारा दिखायी जानेवाली कोमलता या ढिलाईको अपने लिये अपमान समझकर उसे सह न सके। अतः उन्होंने भी तुरंत ही उसपर बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ ४३ ॥

ते शराः प्रेषितास्तेन भीमसेनेन संयुगे।
निपेतुः सर्वतो वीरे कूजन्त इव पक्षिणः ॥ ४४ ॥

युद्धस्थलमें भीमसेनके द्वारा चलाये हुए वे बाण कूजते हुए पक्षियोंके समान वीर कर्णपर सब ओरसे पड़ने लगे ॥४४॥

हेमपुङ्खाः प्रसन्नाग्रा भीमसेनधनुश्च्युताः।
प्राच्छादयंस्ते राधेयं शलभा इव पावकम् ॥ ४५ ॥

भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए चमचमाती हुई धारवाले सुवर्णमय पंखोंसे सुशोभित उन बाणोंने राधानन्दन कर्णको उसी प्रकार ढक दिया, जैसे पतिंगे आगको आच्छादित कर लेते हैं ॥ ४५ ॥

कर्णस्तु रथिनां श्रेष्ठश्छाद्यमानः समन्ततः।
राजन् व्यसृजदुग्राणि शरवर्षाणि भारत ॥ ४६ ॥

भरतवंशी नरेश ! इस प्रकार सब ओरसे बाणोंद्वारा आच्छादित होते हुए रथियोंमें श्रेष्ठ कर्णने भी भीमपर भयंकर बाणवर्षा आरम्भ कर दी ॥ ४६ ॥

तस्य तानशनिप्रख्यानिषून् समरशोभिनः।
चिच्छेद बहुभिर्भल्लैरसम्प्राप्तान् वृकोदरः ॥ ४७ ॥

परंतु समरभूमिमें शोभा पानेवाले कर्णके उन वज्रोपम बाणोंको भीमसेनने अपने पास आनेसे पहले ही बहुत-से भल्लोंद्वारा काट गिराया ॥ ४७ ॥

पुनश्च शरवर्षेण च्छादयामास भारत।
कर्णो वैकर्तनो युद्धे भीमसेनमरिंदमः ॥ ४८ ॥

भरतनन्दन ! शत्रुओंका दमन करनेवाले सूर्यपुत्र कर्णने युद्धमें पुनः बाणवर्षा करके भीमसेनको ढक दिया ॥४८॥

तत्र भारत भीमं तु दृष्टवन्तः स्म सायकैः।
समाचिततनुं संख्ये श्वाविधं शललैरिव ॥ ४९ ॥

भारत ! उस समय युद्धस्थलमें बाणोंसे चिने हुए शरीरवाले भीमसेनको सब लोगोंने कंटकोंसे युक्त साहीके समान देखा ॥ ४९ ॥

हेमपुङ्खाञ्छिलाधौतान् कर्णचापच्युताञ्छरान्।
दधार समरे वीरः स्वरश्मीनिव रश्मिवान् ॥ ५० ॥

वीर भीमसेनने कर्णके धनुषसे छूटे और शिलापर तेज किये हुए सुवर्णपंखयुक्त बाणोंको समराङ्गणमें अपने शरीरपर उसी प्रकार धारण किया था, जैसे अंशुमाली सूर्य अपने किरणोंको धारण करते हैं ॥ ५० ॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गो भीमसेनो व्यराजत।
समृद्धकुसुमापीडो वसन्तेऽशोकवृक्षवत् ॥ ५१ ॥

भीमसेनका सारा शरीर खूनसे लथपथ हो रहा था। वे वसन्तऋतुमें खिले हुए अधिकाधिक पुष्पोंसे सम्पन्न अशोक वृक्षके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ ५१ ॥

तत्तु भीमो महाबाहोः कर्णस्य चरितं रणे।
नामृष्यत महाबाहुः क्रोधादुद्वृत्तलोचनः ॥ ५२ ॥

महाबाहु भीमसेन रणभूमिमें विशालबाहु कर्णके उस चरित्रको न सह सके। उस समय क्रोधसे उनके नेत्र घूमने लगे ॥ ५२ ॥

स कर्णं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्पयत्।
महीधरमिव श्वेतं गूढपादैर्विषोल्बणैः ॥ ५३ ॥

उन्होंने कर्णपर पचीस नाराच चलाये; उनके लगनेसे कर्ण छिपे हुए पैरोंवाले विषैले सर्पोंसे युक्त श्वेत पर्वतके समान जान पड़ता था ॥ ५३ ॥

पुनरेव च विव्याध षड्भिरष्टाभिरेव च।
मर्मस्वमरविक्रान्तः सूतपुत्रं तनुत्यजम् ॥ ५४ ॥

फिर देवोपम पराक्रमी भीमने अपने शरीरकी परवा न करनेवाले सूतपुत्रको उसके मर्मस्थानोंमें छः और आठ बाण मारकर घायल कर दिया ॥ ५४ ॥

पुनरन्येन बाणेन भीमसेनः प्रतापवान्।
चिच्छेद कार्मुकं तूर्णं कर्णस्य प्रहसन्निव ॥ ५५ ॥

इसके बाद हँसते हुए-से प्रतापी भीमसेनने दूसरा बाण मारकर तुरंत ही कर्णके धनुषको काट दिया ॥ ५५ ॥

जघान चतुरश्चाश्वान् सूतं च त्वरितः शरैः।
नाराचैरर्करश्म्याभैः कर्णं विव्याध चोरसि ॥ ५६ ॥

फिर शीघ्रतापूर्वक बाणोंका प्रहार करके उसके चारों घोड़ों और सारथिको भी मार डाला। साथ ही सूर्यकी किरणोंके समान तेजस्वी नाराचोंसे कर्णकी छातीमें भारी आघात किया ॥ ५६ ॥

ते जग्मुर्धरणीमाशु कर्णं निर्भिद्य पत्रिणः।
यथा जलधरं भित्त्वा दिवाकरमरीचयः ॥ ५७ ॥

जैसे सूर्यकी किरणें बादलोंको भेदकर सब ओर फैल जाती हैं, उसी प्रकार भीमसेनके बाण कर्णके शरीरको छेदकर शीघ्र ही धरतीमें समा गये ॥ ५७ ॥

स वैक्लव्यं महत् प्राप्य छिन्नधन्वा शराहतः।
तथा पुरुषमानी स प्रत्यपायाद् रथान्तरम् ॥ ५८ ॥

यद्यपि कर्णको अपने पुरुषत्वका बड़ा अभिमान था, तो भी भीमसेनके बाणोंसे घायल हो धनुष कट जानेपर रथहीन होनेके कारण वह बड़ी भारी घबराहटमें पड़ गया और दूसरे रथपर बैठनेके लिये वहाँसे भाग निकला ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णपराजये एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें कर्णकी पराजयविषयक एक सौ इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३१ ॥

द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेन और कर्णका घोर युद्ध

धृतराष्ट्र उवाच

स्वयं शिष्यो महेशस्य भृगूत्तमधनुर्धरः ।
शिष्यत्वं प्राप्तवान् कर्णस्तस्य तुल्योऽस्त्रविद्यया ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय ! भृगुवंशशिरोमणि धनुर्धर परशुरामजी साक्षात् भगवान् शङ्करके शिष्य हैं तथा कर्ण उन्हींका शिष्यत्व ग्रहण करके अस्त्रविद्यामें उनके समान ही सुयोग्य हो गया था ॥ १ ॥

तद्विशिष्टोऽपि वा कर्णः शिष्यः शिष्यगुणैर्युतः ।
कुन्तीपुत्रेण भीमेन निर्जितः स तु लीलया ॥ २ ॥

अथवा शिष्योचित सद्गुणोंसे सम्पन्न परशुरामका वह शिष्य उनसे भी बढ़-चढ़कर है, तो भी उसे कुन्तीकुमार भीमसेनने खेल-खेलमें ही पराजित कर दिया ॥ २ ॥

यस्मिञ्जयाशा महती पुत्राणां मम संजय ।
तं भीमाद् विमुखं दृष्ट्वा किं नु दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ ३ ॥

संजय ! जिसपर मेरे पुत्रोंको विजयकी बड़ी भारी आशा लगी हुई है, उसे भीमसेनसे पराजित होकर युद्धसे विमुख हुआ देख दुर्योधनने क्या कहा ? ॥ ३ ॥

कथं च युयुधे भीमो वीर्यश्लाघी महाबलः ।
कर्णो वा समरे तात किमकार्षीत् ततः परम् ।
भीमसेनं रणे दृष्ट्वा ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ ४ ॥

तात ! अपने पराक्रमसे सुशोभित होनेवाले महाबली भीमसेनने किस प्रकार युद्ध किया ? अथवा कर्णने रणक्षेत्रमें भीमसेनको अग्निके समान तेजसे प्रज्वलित होते देख उसके बाद क्या किया ? ॥ ४ ॥

संजय उवाच

रथमन्यं समास्थाय विधिवत् कल्पितं पुनः ।
अभ्ययात् पाण्डवं कर्णो वातोद्धूत इवार्णवः ॥ ५ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! वायुके वेगसे ऊपर उठते हुए समुद्रके समान कर्णने विधिपूर्वक सजाये हुए दूसरे रथपर आरूढ़ होकर पुनः पाण्डुनन्दन भीमपर आक्रमण किया ॥

क्रुद्धमाधिरथिं दृष्ट्वा पुत्रास्तव विशाम्पते ।
भीमसेनममन्यन्त वैश्वानरमुखे हुतम् ॥ ६ ॥

प्रजानाथ ! उस समय अधिरथपुत्र कर्णको क्रोधमें भरा हुआ देखकर आपके पुत्रोंने यही मान लिया कि भीमसेन अब अग्निके मुखमें दी हुई आहुतिके समान नष्ट हो जायँगे ॥ ६ ॥

चापशब्दं ततः कृत्वा तलशब्दं च भैरवम् ।
अभ्यद्रवत राधेयो भीमसेनरथं प्रति ॥ ७ ॥

तदनन्तर धनुषकी टंकार और हथेलीका भयानक शब्द करते हुए राधानन्दन कर्णने भीमसेनके रथपर धावा बोल दिया ॥

पुनरेव तयो राजन् घोर आसीत् समागमः ।
वैकर्तनस्य शूरस्य भीमस्य च महात्मनः ॥ ८ ॥

राजन् ! शूरवीर कर्ण और महामनस्वी भीमसेन—इन दोनों वीरोंमें पुनः घोर संग्राम छिड़ गया ॥ ८ ॥

संरब्धौ हि महाबाहू परस्परवधैषिणौ ।
अन्योन्यमीक्षांचक्राते दहन्ताविव लोचनैः ॥ ९ ॥

एक दूसरेके वधकी इच्छावाले वे दोनों महाबाहु योद्धा अत्यन्त कुपित हो एक दूसरेको नेत्रोंद्वारा दग्ध-से करते हुए परस्पर दृष्टिपात करने लगे ॥ ९ ॥

क्रोधरक्तेक्षणौ तीव्रौ निःश्वसन्ताविवोरगौ ।
शूरावन्योन्यमासाद्य ततक्षतुररिंदमौ ॥ १० ॥

उन दोनोंकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयी थीं। दोनों ही फुफकारते हुए सर्पोंके समान लंबी साँस खींच रहे थे। दोनों ही शत्रुदमन वीर उग्र हो परस्पर भिड़कर एक दूसरेको बाणोंद्वारा क्षत-विक्षत करने लगे ॥ १० ॥

व्याघ्राविव सुसंरब्धौ श्येनाविव च शीघ्रगौ ।
शरभाविव संक्रुद्धौ युयुधाते परस्परम् ॥ ११ ॥

वे दो व्याघ्रोंके समान रोषावेशमें भरकर दो बाजोंके समान परस्पर शीघ्रतापूर्वक झपटते थे तथा अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए दो शरभोंके समान परस्पर युद्ध करते थे ॥ ११ ॥

ततो भीमः स्मरन् क्लेशानक्षद्यूते वनेऽपि च ।
विराटनगरे चैव दुःखं प्राप्तमरिंदमः ॥ १२ ॥
राष्ट्राणां स्फीतरत्नानां हरणं च तवात्मजैः ।
सततं च परिक्लेशान् सपुत्रेण त्वया कृतान् ॥ १३ ॥
दग्धुमैच्छच्च यः कुन्तीं सपुत्रां त्वमनागसम् ।
कृष्णायाश्च परिक्लेशं सभामध्ये दुरात्मभिः ॥ १४ ॥
केशपक्षग्रहं चैव दुःशासनकृतं तथा ।



भीमसेनके द्वारा कर्णकी पराजय

परुषाणि च वाक्यानि कर्णेनोक्तानि भारत ॥ १५ ॥
पतिमन्यं परीप्सस्व न सन्ति पतयस्तव ।
पतिता नरके पार्थाः सर्वे षण्ढतिलोपमाः ॥ १६ ॥
समक्षं तव कौरव्य यदूचुः कौरवास्तदा ।
दासीभावेन कृष्णां च भोक्तुकामाः सुतास्तव ॥ १७ ॥
यच्चापि तान् प्रव्रजतः कृष्णाजिननिवासिनः ।
परुषाण्युक्तवान् कर्णः सभायां संनिधौ तव ॥ १८ ॥
तृणीकृत्य यथा पार्थांस्तव पुत्रो ववल्ग ह ।
विषमस्थान् समस्थो हि संरब्धो गतचेतनः ॥ १९ ॥
बाल्यात् प्रभृति चारिघ्नः स्वानि दुःखानि चिन्तयन् ।
निरविद्यत धर्मात्मा जीवितेन वृकोदरः ॥ २० ॥

जूआके समय, वनवासकालमें तथा विराटनगरमें जो दुःख प्राप्त हुआ था, उनका स्मरण करके, आपके पुत्रोंने जो पाण्डवोंके राज्यों तथा समुज्ज्वल रत्नोंका अपहरण किया था, उसे याद करके, पुत्रोंसहित आपने पाण्डवोंको जो निरन्तर क्लेश प्रदान किये हैं, उन्हें ध्यानमें लाकर, निरपराध कुन्ती-देवी तथा उनके पुत्रोंको जो आपने जला डालनेकी इच्छा की थी, सभाके भीतर आपके दुरात्मा पुत्रोंने जो द्रौपदीको महान् कष्ट पहुँचाया था, दुःशासनने जो उसके केश पकड़े थे, भारत ! कर्णने जो उसके प्रति कठोर वचन सुनाये थे तथा कुरुनन्दन ! आपकी आँखोंके सामने ही कौरवोंने जो द्रौपदीसे यह कहा था कि 'कृष्णे ! तू दूसरा पति कर ले, तेरे ये पति अब नहीं रहे, कुन्तीके सभी पुत्र थोथे तिलोंके समान निर्वीर्य होकर नरक (दुःख) में पड़ गये हैं ।' महाराज ! आपके पुत्र जो द्रौपदीको दासी बनाकर उसका उपभोग करना चाहते थे तथा काले मृगचर्म धारण करके वनकी ओर प्रस्थान करते समय पाण्डवोंके प्रति सभामें आपके समीप ही कर्णने जो कटुवचन सुनाये थे और पाण्डवोंको तिनकोंके समान समझ कर जो आपका पुत्र दुर्योधन उछलता-कूदता था, स्वयं सुखमयी परिस्थितिमें रहते हुए भी जो उस अचेत मूर्खने संकटमें पड़े हुए पाण्डवोंके प्रति क्रोधका भाव दिखाया था, इन सब बातोंको तथा बचपनसे लेकर अबतक आपकी ओरसे प्राप्त हुए अपने दुःखोंको याद करके शत्रुओंका दमन करनेवाले शत्रुनाशक धर्मात्मा भीमसेन अपने जीवनसे विरक्त हो उठे थे ॥ १२–२० ॥

ततो विस्फार्य सुमहद्धेमपृष्ठं दुरासदम् ।
चापं भरतशार्दूलस्त्यक्तात्मा कर्णमभ्ययात् ॥ २१ ॥

उस समय भरतवंशके उस सिंहने अपने जीवनका मोह छोड़कर सुवर्णमय पृष्ठभागसे सुशोभित दुर्धर्ष एवं विशाल धनुषकी टंकार करते हुए वहाँ कर्णपर धावा किया ॥ २१॥

स सायकमयैर्जालैर्भीमः कर्णरथं प्रति ।
भानुमद्भिः शिलाधौतैर्भानोः प्राच्छादयत् प्रभाम् ॥ २२॥

कर्णके रथपर भीमसेनने सानपर चढ़ाकर स्वच्छ किये हुए तेजस्वी बाणोंका जाल-सा बिछाकर सूर्यकी प्रभाको आच्छादित कर दिया ॥ २२ ॥

ततः प्रहस्याधिरथिस्तूर्णमस्य शिलाशितैः ।
व्यधमद् भीमसेनस्य शरजालानि पत्रिभिः ॥ २३ ॥

तब अधिरथपुत्र कर्णने हँसकर शिलापर तेज किये हुए पंखयुक्त बाणोंद्वारा भीमसेनके उन बाण-समूहोंको तुरंत ही छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ २३ ॥

महारथो महाबाहुर्महाबाणैर्महाबलः ।
विव्याधाधिरथिर्भीमं नवभिर्निशितैस्तदा ॥ २४ ॥

महारथी महाबाहु महाबली अधिरथपुत्र कर्णने उस समय नौ तीखे महाबाणोंसे भीमसेनको घायल कर दिया॥ २४॥

स तोत्त्रैरिव मातङ्गो वार्यमाणः पतत्रिभिः ।
अभ्यधावदसम्भ्रान्तः सूतपुत्रं वृकोदरः ॥ २५ ॥

जैसे मतवाला हाथी अङ्कुशसे रोका जाय, उसी प्रकार पंखयुक्त बाणोंद्वारा रोके जाते हुए भीमसेन तनिक भी घबराहटमें न पड़कर सूतपुत्र कर्णपर चढ़ आये ॥ २५ ॥

तमापतन्तं वेगेन रभसं पाण्डवर्षभम् ।
कर्णः प्रत्युद्ययौ युद्धे मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ २६ ॥

जैसे मतवाला हाथी दूसरे मतवाले हाथीपर धावा करता है, उसी प्रकार पाण्डवशिरोमणि वेगशाली भीमको वेगपूर्वक आक्रमण करते देख कर्ण भी युद्धस्थलमें उनका सामना करनेके लिये आगे बढ़ा ॥ २६ ॥

ततः प्रध्माप्य जलजं भेरीशतसमस्वनम् ।
अक्षुभ्यत बलं हर्षादुद्धूत इव सागरः ॥ २७ ॥

तदनन्तर कर्णने हर्षपूर्वक सैकड़ों भेरियोंके समान गम्भीर ध्वनि करनेवाले शङ्खको बजाकर सब ओर गुँजा दिया । इससे पाण्डवोंकी सेनामें विक्षुब्ध समुद्रके समान हलचल पैदा हो गयी ॥ २७ ॥

तदुद्धूतं बलं दृष्ट्वा नागाश्वरथपत्तिमत् ।
भीमः कर्णं समासाद्य च्छादयामास सायकैः ॥ २८ ॥

हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसे युक्त उस सेनाको विक्षुब्ध हुई देख भीमसेनने कर्णके पास जाकर उसे बाणोंद्वारा आच्छादित कर दिया ॥ २८ ॥

अश्वानृक्षसवर्णांश्च हंसवर्णैर्हयोत्तमैः ।
व्यामिश्रयद् रणे कर्णः पाण्डवं छादयञ्छरैः ॥ २९ ॥

उस रणक्षेत्रमें पाण्डुनन्दन भीमको अपने बाणोंसे आच्छादित करते हुए कर्णने रीछके समान रंगवाले अपने काले घोड़ोंको भीमसेनके हंस-सदृश श्वेतवर्णवाले उत्तम घोड़ोंके साथ मिला दिया ॥ २९ ॥

ऋक्षवर्णान् हयान् कर्कैर्मिश्रान् मारुतरंहसः ।
निरीक्ष्य तव पुत्राणां हाहाकृतमभूद् बलम् ॥ ३० ॥

रीछके समान रंगवाले और वायुके समान वेगशाली घोड़ोंको श्वेत अश्वोंके साथ मिला हुआ देख आपके पुत्रोंकी सेनामें हाहाकार मच गया ॥ ३० ॥

ते हया बह्वशोभन्त मिश्रिता वातरंहसः।
सितासिता महाराज यथा व्योम्नि बलाहकाः ॥ ३१ ॥

महाराज ! वायुके समान वेगवाले वे सफेद और काले घोड़े परस्पर मिलकर आकाशमें उठे हुए सफेद और काले बादलोंके समान अधिक शोभा पा रहे थे ॥ ३१ ॥

संरब्धौ क्रोधताम्राक्षौ प्रेक्ष्य कर्णवृकोदरौ।
संत्रस्ताः समकम्पन्त त्वदीयानां महारथाः ॥ ३२ ॥

रोषावेशमें भरकर क्रोधसे लाल आँखें किये कर्ण और भीमसेनको देखकर आपके महारथी भयभीत हो काँपने लगे ॥

यमराष्ट्रोपमं घोरमासीदायोधनं तयोः।
दुर्दर्शं भरतश्रेष्ठ प्रेतराजपुरं यथा ॥ ३३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उन दोनोंका संग्राम यमराजके राज्यके समान अत्यन्त भयंकर था। प्रेतराजकी पुरीके समान उसकी ओर देखना अत्यन्त कठिन हो रहा था ॥ ३३ ॥

समाजमिव तच्चित्रं प्रेक्षमाणा महारथाः।
नालक्षयञ्जयं व्यक्तमेकस्यैव महारणे ॥ ३४ ॥

उस विचित्र-से समाजको देखते हुए महारथियोंने उस महासमरमें निश्चय ही उन दोनोंमेंसे किसी एक ही व्यक्तिकी विजय होती नहीं देखी ॥ ३४ ॥

तयोः प्रैक्षन्त सम्मर्दं संनिकृष्टं महास्त्रयोः।
तव दुर्मन्त्रिते राजन् सपुत्रस्य विशाम्पते ॥ ३५ ॥

राजन् ! प्रजानाथ ! पुत्रोंसहित आपकी कुमन्त्रणाके फलस्वरूप महान् अस्त्रधारी भीमसेन और कर्णका अत्यन्त निकटसे होनेवाला संघर्ष सब लोग देख रहे थे ॥ ३५ ॥

छादयन्तौ हि शत्रुघ्नावन्योन्यं सायकैः शितैः।
शरजालावृतं व्योम चक्रातेऽद्भुतविक्रमौ ॥ ३६ ॥

उन दोनों अद्भुत पराक्रमी शत्रुहन्ता वीरोंने एक-दूसरेको तीखे बाणोंसे आच्छादित करते हुए आकाशको बाण-समूहोंसे व्याप्त कर दिया ॥ ३६ ॥

तावन्योन्यं जिघांसन्तौ शरैस्तीक्ष्णैर्महारथौ।
प्रेक्षणीयतरावास्तां वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ ॥ ३७ ॥

पैने बाणोंद्वारा एक दूसरेको मार डालनेकी इच्छावाले वे दोनों महारथी वीर वर्षा करनेवाले बादलोंके समान अत्यन्त दर्शनीय हो रहे थे ॥ ३७ ॥

सुवर्णविकृतान् बाणान् विमुञ्चन्तावरिंदमौ।
भास्वरं व्योम चक्राते महोल्काभिरिव प्रभो ॥ ३८ ॥

प्रभो ! उन दोनों शत्रुहन्ता वीरोंने सुवर्णनिर्मित बाणोंकी वर्षा करके आकाशको उसी प्रकार प्रकाशमान कर दिया, जैसे बड़ी-बड़ी उल्काओंके गिरनेसे वह प्रकाशित होने लगता है ॥ ३८ ॥

ताभ्यां मुक्ताः शरा राजन् गार्ध्रपत्राश्चकाशिरे।
श्रेण्यः शरदि मत्तानां सारसानामिवाम्बरे ॥ ३९ ॥

राजन् ! उन दोनोंके छोड़े हुए गीधकी पाँखवाले बाण शरद् ऋतुके आकाशमें मतवाले सारसोंकी श्रेणियोंके समान सुशोभित होते थे ॥ ३९ ॥

संसक्तं सूतपुत्रेण दृष्ट्वा भीममरिंदमम्।
अतिभारममन्येतां भीमे कृष्णधनंजयौ ॥ ४० ॥

शत्रुदमन भीमसेनको सूतपुत्रके साथ उलझा हुआ देख श्रीकृष्ण और अर्जुनने भीमपर यह बहुत बड़ा भार समझा ॥

तत्राधिरथिभीमाभ्यां शरैर्मुक्तैर्दृढं हताः।
इषुपातमतिक्रम्य पेतुरश्वनरद्विपाः ॥ ४१ ॥

उस युद्धस्थलमें कर्ण और भीमसेनके छोड़े हुए बाणोंसे अत्यन्त घायल हुए घोड़े, मनुष्य और हाथी बाणोंके गिरनेके स्थानको लाँघकर उससे दूर जा गिरते थे ॥ ४१ ॥

पतद्भिः पतितैश्चान्यैर्गतासुभिरनेकशः।
कृतो राजन् महाराज पुत्राणां ते जनक्षयः ॥ ४२ ॥

राजन् ! महाराज ! कुछ सैनिक गिर रहे थे, कुछ गिर चुके थे और दूसरे बहुत-से योद्धा प्राणशून्य हो गये थे; उन सबके कारण आपके पुत्रोंकी सेनामें बड़ा भारी नर-संहार हुआ ॥ ४२ ॥

मनुष्याश्वगजानां च शरीरैर्गतजीवितैः।
क्षणेन भूमिः संजज्ञे संवृता भरतर्षभ ॥ ४३ ॥
(आक्रीडमिव रुद्रस्य दक्षयज्ञनिबर्हणे।)

भरतश्रेष्ठ ! मनुष्य, घोड़े और हाथियोंके निष्प्राण शरीरोंसे वहाँकी भूमि क्षणभरमें ढक गयी और दक्षयज्ञके संहारकालमें रुद्रकी क्रीड़ाभूमिके समान प्रतीत होने लगी ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमकर्णयुद्धे द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भीमसेन और कर्णका युद्धविषयक एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३२ ॥

(दक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ४३½ श्लोक हैं)

त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेन और कर्णका युद्ध, कर्णके सारथिसहित रथका विनाश तथा धृतराष्ट्रपुत्र दुर्जयका वध

धृतराष्ट्र उवाच

अत्यद्भुतमहं मन्ये भीमसेनस्य विक्रमम्।
यत् कर्णं योधयामास समरे लघुविक्रमम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! मैं भीमसेनके पराक्रमको

अत्यन्त अद्भुत मानता हूँ कि उन्होंने समराङ्गणमें शीघ्रता-पूर्वक पराक्रम दिखानेवाले कर्णके साथ भी युद्ध किया ॥१॥

त्रिदशानपि वा युक्तान् सर्वशस्त्रधरान् युधि ।
वारयेद् यो रणे कर्णः सयक्षासुरमानुषान् ॥ २ ॥
स कथं पाण्डवं युद्धे भ्राजमानमिव श्रिया ।
नातरत् संयुगे पार्थं तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ३ ॥

संजय ! जो कर्ण रणक्षेत्रमें युद्धके लिये सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंको धारण करके सुसज्जित हुए देवताओं तथा यक्षों, असुरों और मनुष्योंका भी निवारण कर सकता है, वह युद्धमें विजय-लक्ष्मीसे सुशोभित होते हुए-से पाण्डुनन्दन कुन्तीकुमार भीमसेनको कैसे नहीं लाँघ सका ? इसका कारण मुझे बताओ ॥ २-३ ॥

कथं च युद्धं सम्भूतं तयोः प्राणदुरोदरे ।
अत्र मन्ये समायत्तो जयो वाजय एव च ॥ ४ ॥

उन दोनोंमें प्राणोंकी बाजी लगाकर किस प्रकार युद्ध हुआ ? मैं समझता हूँ कि यहीं उभय पक्षकी जय अथवा विजय निर्भर है ॥ ४ ॥

कर्णं प्राप्य रणे सूत मम पुत्रः सुयोधनः ।
जेतुमुत्सहते पार्थान् सगोविन्दान् ससात्वतान्॥ ५ ॥

सूत ! रणक्षेत्रमें कर्णको पाकर मेरा पुत्र दुर्योधन श्रीकृष्ण तथा सात्यकि आदि यादवोंसहित समस्त कुन्तीकुमारोंको जीतनेका उत्साह रखता है ॥ ५ ॥

श्रुत्वा तु निर्जितं कर्णमसकृद् भीमकर्मणा ।
भीमसेनेन समरे मोह आविशतीव माम् ॥ ६ ॥

समराङ्गणमें भयंकर कर्म करनेवाले भीमसेनके द्वारा कर्णके बारंबार पराजित होनेकी बात सुनकर मेरे मनपर मोह-सा छा जाता है ॥ ६ ॥

विनष्टान् कौरवान् मन्ये मम पुत्रस्य दुर्नयैः ।
न हि कर्णो महेष्वासान् पार्थाञ्जेष्यति संजय ॥ ७ ॥

मेरे पुत्रकी दुर्नीतियोंके कारण मैं समस्त कौरवोंको नष्ट हुआ ही मानता हूँ । संजय ! कर्ण कभी महाधनुर्धर कुन्तीकुमारोंको नहीं जीत सकेगा ॥ ७ ॥

कृतवान् यानि युद्धानि कर्णः पाण्डुसुतैः सह ।
सर्वत्र पाण्डवाः कर्णमजयन्त रणाजिरे ॥ ८ ॥

कर्णने पाण्डुपुत्रोंके साथ जो-जो युद्ध किये हैं, उन सबमें पाण्डवोंने ही रणक्षेत्रमें कर्णको जीता है ॥ ८ ॥

अजेयाः पाण्डवास्तात देवैरपि सवासवैः ।
न च तद् बुध्यते मन्दः पुत्रो दुर्योधनो मम ॥ ९ ॥

तात ! इन्द्र आदि देवताओंके लिये भी पाण्डवोंपर विजय पाना असम्भव है; परंतु मेरा मूर्ख पुत्र दुर्योधन इस बातको नहीं समझता है ॥ ९ ॥

धनं धनेश्वरस्येव हृत्वा पार्थस्य मे सुतः ।
मधुप्रेप्सुरिवाबुद्धिः प्रपातं नावबुध्यते ॥ १० ॥

मेरा पुत्र कुबेरके समान कुन्तीकुमार युधिष्ठिरके धनका अपहरण करके ऊँचे स्थानसे मधु लेनेकी इच्छावाले मूर्ख मनुष्यके समान पतनके भयको नहीं समझ रहा है ॥ १० ॥

निकृत्या निकृतिप्रज्ञो राज्यं हृत्वा महात्मनाम् ।
जितमित्येव मन्वानः पाण्डवानवमन्यते ॥ ११ ॥

वह छल-कपटकी विद्याको जानता है । अतः छलसे ही उन महामनस्वी पाण्डवोंके राज्यका अपहरण करके उसे जीता हुआ मानकर पाण्डवोंका अपमान करता है ॥ ११ ॥

पुत्रस्नेहाभिभूतेन मया चाप्यकृतात्मना ।
धर्मे स्थिता महात्मानो निकृताः पाण्डुनन्दनाः॥ १२ ॥

मुझ अकृतात्माने भी पुत्रस्नेहके वशीभूत होकर सदा धर्मपर स्थित रहनेवाले महात्मा पाण्डवोंको ठगा है ॥ १२ ॥

शमकामः ससोदर्यो दीर्घप्रेक्षी युधिष्ठिरः ।
अशक्त इति मत्वा तु मम पुत्रैर्निराकृतः ॥ १३ ॥

दूरदर्शी युधिष्ठिर अपने भाइयोंसहित संधिकी अभिलाषा रखते थे; परंतु उन्हें असमर्थ मानकर मेरे पुत्रोंने उनकी बात ठुकरा दी ॥ १३ ॥

तानि दुःखान्यनेकानि विप्रकारांश्च सर्वशः ।
हृदि कृत्वा महाबाहुर्भीमोऽयुध्यत सूतजम् ॥ १४ ॥

अनेक बार दिये गये उन दुःखों और सम्पूर्ण अपकारोंको मनमें रखकर महाबाहु भीमसेनने सूतपुत्र कर्णके साथ युद्ध किया है ॥ १४ ॥

तस्मान्मे संजय ब्रूहि कर्णभीमौ यथा रणे ।
अयुध्येतां युधि श्रेष्ठौ परस्परवधैषिणौ ॥ १५ ॥

अतः संजय ! एक दूसरेके वधकी इच्छावाले युद्धस्थलके श्रेष्ठ वीर कर्ण और भीमसेनने समराङ्गणमें जिस प्रकार युद्ध किया, वह सब मुझे बताओ ॥ १५ ॥

संजय उवाच

शृणु राजन् यथावृत्तं संग्रामं कर्णभीमयोः ।
परस्परवधप्रेप्स्वोर्वनकुञ्जरयोरिव ॥ १६ ॥

संजयने कहा—राजन् ! कर्ण और भीमसेनके युद्धका यथावत् वृत्तान्त सुनिये । वे दोनों जंगली हाथियोंके समान एक दूसरेके वधके लिये उत्सुक थे ॥ १६ ॥

राजन् वैकर्तनो भीमं क्रुद्धः क्रुद्धमरिंदमम् ।
पराक्रान्तं पराक्रम्य विव्याध त्रिंशता शरैः ॥ १७ ॥

राजन् ! क्रोधमें भरे हुए सूर्यपुत्र कर्णने कुपित हुए शत्रुदमन पराक्रमी भीमसेनको अपने बल-पराक्रमका परिचय देते हुए तीस बाणोंसे बींध डाला ॥ १७ ॥

महावेगैः प्रसन्नाग्रैः शातकुम्भपरिष्कृतैः ।

अहनद् भरतश्रेष्ठ भीमं वैकर्तनः शरैः ॥ १८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! कर्णने चमकते हुए अग्रभागवाले सुवर्ण-जटित महान् वेगशाली बाणोंद्वारा भीमसेनको घायल कर दिया ॥ १८ ॥

तस्यास्यतो धनुर्भीमश्चकर्त निशितैस्त्रिभिः ।
रथनीडाच्च यन्तारं भल्लेनापातयत् क्षितौ ॥ १९ ॥

इस प्रकार बाण चलाते हुए कर्णके धनुषको भीमसेनने तीन तीखे बाणोंद्वारा काट डाला और एक भल्ल मारकर सारथिको रथकी बैठकसे नीचे पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ १९ ॥

स काङ्क्षन् भीमसेनस्य वधं वैकर्तनो भृशम् ।
शक्तिं कनकवैदूर्यचित्रदण्डां परामृशत् ॥ २० ॥

तब भीमसेनके वधकी अभिलाषा रखकर कर्णने वेगपूर्वक एक शक्ति हाथमें ली, जिसका डंडा सुवर्ण और वैदूर्यमणिसे जटित होनेके कारण विचित्र दिखायी देता था ॥ २० ॥

प्रगृह्य च महाशक्तिं कालशक्तिमिवापराम् ।
समुत्क्षिप्य च राधेयः संधाय च महाबलः ॥ २१ ॥
चिक्षेप भीमसेनाय जीवितान्तकरीमिव ।

वह महाशक्ति दूसरी कालशक्तिके समान प्रतीत होती थी । महाबली राधापुत्र कर्णने जीवनका अन्त कर देनेवाली उस शक्तिको लेकर ऊपर उठाया और उसे धनुषपर रखकर भीमसेनपर चला दिया ॥ २१½ ॥

शक्तिं विसृज्य राधेयः पुरंदर इवाशनिम् ॥ २२ ॥
ननाद सुमहानादं बलवान् सूतनन्दनः ।
तं च नादं ततः श्रुत्वा पुत्रास्ते हर्षिताऽभवन् ॥ २३ ॥

इन्द्रके वज्रकी भाँति उस शक्तिको छोड़कर बलवान् सूतनन्दन कर्णने बड़े जोरसे गर्जना की । उस समय उस सिंहनादको सुनकर आपके पुत्र बड़े प्रसन्न हुए ॥२२-२३॥

तां कर्णभुजनिर्मुक्तामर्कवैश्वानरप्रभाम् ।
शक्तिं वियति चिच्छेद भीमः सप्तभिराशुगैः ॥ २४ ॥

कर्णके हाथोंसे छूटकर आकाशमें सूर्य और अग्निके समान प्रकाशित होनेवाली उस शक्तिको भीमसेनने सात बाणोंसे आकाशमें ही काट डाला ॥ २४ ॥

छित्त्वा शक्तिं ततो भीमो निर्मुक्तोरगसंनिभाम् ।
मार्गमाण इव प्राणान् सूतपुत्रस्य मारिष ॥ २५ ॥
प्राहिणोत् क्रुद्धसंरम्भः शरान् बर्हिणवाससः ।
स्वर्णपुङ्खाञ्छिलाधौतान् यमदण्डोपमान् मृधे ॥ २६ ॥

माननीय नरेश ! केचुलसे छूटी हुई सर्पिणीके समान उस शक्तिके टुकड़े-टुकड़े करके फिर भीमसेनने कुपित हो युद्धस्थलमें सूतपुत्र कर्णके प्राणोंकी खोज करते हुए-से सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए, यमदण्डके समान भयंकर, मयूरपंख एवं स्वर्णपंखसे विभूषित बाणोंको उसके ऊपर चलाना आरम्भ किया ॥ २५-२६ ॥

कर्णोऽप्यन्यद् धनुर्गृह्य हेमपृष्ठं दुरासदम् ।
विकृष्य तन्महच्चापं व्यसृजत् सायकांस्तदा ॥ २७ ॥

तब कर्णने भी सुवर्णमय पीठवाले दूसरे दुर्धर्ष एवं विशाल धनुषको हाथमें लेकर खींचा और बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ २७ ॥

तान् पाण्डुपुत्रश्चिच्छेद नवभिर्नतपर्वभिः ।
वसुषेणेन निर्मुक्तान् नव राजन् महाशरान् ॥ २८ ॥

राजन् ! वसुषेण (कर्ण) के छोड़े हुए नौ विशाल बाणोंको पाण्डुपुत्र भीमसेनने झुकी हुई गाँठवाले नौ बाणोंद्वारा काट गिराया ॥ २८ ॥

छित्त्वा भीमो महाराज नादं सिंह इवानदत् ।
तौ वृषाविव नर्दन्तौ बलिनौ वासितान्तरे ॥ २९ ॥
शार्दूलाविव चान्योन्यमामिषार्थेऽभ्यगर्जताम् ।

महाराज ! भीमसेनने कर्णके बाणोंको काटकर सिंहके समान गर्जना की । वे दोनों बलवान् वीर कभी गायके लिये लड़नेवाले दो साँड़ोंके समान हँकड़ते और कभी मांसके लिये परस्पर जूझनेवाले दो सिंहोंके समान दहाड़ते थे ॥ २९½ ॥

अन्योन्यं प्रजिहीर्षन्तावन्योन्यस्यान्तरैषिणौ ॥ ३० ॥
अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ गोष्ठेष्विव महर्षभौ ।

वे गोशालाओंमें लड़नेवाले दो बड़े-बड़े साँड़ोंके समान एक दूसरेपर चोट करनेकी इच्छा रखते हुए अवसर ढूँढ़ते और परस्पर आँखें तरेर कर देखते थे ॥ ३०½ ॥

महागजाविवासाद्य विषाणाग्रैः परस्परम् ॥ ३१ ॥
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ।

जैसे दो विशाल गजराज अपने दाँतोंके अग्रभागोंद्वारा एक दूसरेसे भिड़ गये हों, उसी प्रकार कर्ण और भीमसेन धनुषको पूर्णतः खींचकर छोड़े गये बाणोंद्वारा एक दूसरेको चोट पहुँचाते थे ॥ ३१½ ॥

निर्दहन्तौ महाराज शस्त्रवृष्ट्या परस्परम् ॥ ३२ ॥
अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ कोपाद् विवृतलोचनौ ।
प्रहसन्तौ तथान्योन्यं भर्त्सयन्तौ मुहुर्मुहुः ॥ ३३ ॥
शङ्खशब्दं च कुर्वाणौ युयुधाते परस्परम् ।

महाराज ! वे परस्पर शस्त्रोंकी वर्षा करके एक दूसरेको दग्ध करते, क्रोधसे आँखें फाड़-फाड़कर देखते, कभी हँसते और कभी बारंबार एक दूसरेको डाँटते एवं शङ्ख-नाद करते हुए परस्पर जूझ रहे थे ॥३२-३३½॥

तस्य भीमः पुनश्चापं मुष्टौ चिच्छेद मारिष ॥ ३४ ॥
शङ्खवर्णांश्च तानश्वान् बाणैर्निन्ये यमक्षयम् ।
सारथिं च तथाप्यस्य रथनीडादपातयत् ॥ ३५ ॥

आर्य ! भीमसेनने पुनः कर्णके धनुषको मुट्ठी पकड़नेकी जगहसे काट डाला, शङ्खके समान श्वेत रंगवाले उसके घोड़ों-

को भी बाणोंद्वारा यमलोक पहुँचा दिया और उसके सारथिको भी मारकर रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया ॥३४-३५॥

ततो वैकर्तनः कर्णश्चिन्तां प्राप दुरत्ययाम् ।
स च्छाद्यमानः समरे हताश्वो हतसारथिः ॥ ३६ ॥

घोड़े और सारथिके मारे जानेपर समराङ्गणमें बाणोंद्वारा आच्छादित हुआ सूर्यपुत्रकर्ण दुस्तर चिन्तामें निमग्न हो गया।

मोहितः शरजालेन कर्तव्यं नाभ्यपद्यत ।
तथा कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा कर्णं दुर्योधनो नृपः ॥ ३७ ॥
वेपमान इव क्रोधाद् व्यादिदेशाथ दुर्जयम् ।
गच्छ दुर्जय राधेयं पुरो ग्रसति पाण्डवः ॥ ३८ ॥
जहि तूबरकं क्षिप्रं कर्णस्य बलमादधत् ।

बाण-समूहोंसे मोहित होनेके कारण उसे यह नहीं सूझता था कि अब क्या करना चाहिये। कर्णको इस प्रकार संकटमें पड़ा देख राजा दुर्योधन क्रोधसे काँपने-सा लगा और दुर्जयको आदेश देता हुआ बोला—'दुर्जय ! जाओ। राधानन्दन कर्णको सामने ही पाण्डुपुत्र भीमसेन कालका ग्रास बनाना चाहता है। तुम कर्णका बल बढ़ाते हुए उस बिना दाढ़ी-मूँछके मुंडे भीमसेनको शीघ्र मार डालो'।३७-३८½।

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा तव पुत्रं तवात्मजः ॥ ३९ ॥
अभ्यद्रवद् भीमसेनं व्यासक्तं विकिरञ्छरैः ।

ऐसा आदेश मिलनेपर आपके पुत्र दुर्योधनसे 'बहुत अच्छा' कहकर आपके दूसरे पुत्र दुर्जयने युद्धमें आसक्त हुए भीमसेनपर बाणोंकी वर्षा करते हुए आक्रमण किया ॥

स भीमं नवभिर्बाणैरश्वानष्टभिरार्पयत् ॥ ४० ॥
षड्भिः सूतं त्रिभिः केतुं पुनस्तं चापि सप्तभिः ।

उसने नौ बाणोंसे भीमसेनको, आठ बाणोंसे उनके घोड़ोंको और छः बाणोंसे सारथिको घायल कर दिया। फिर तीन बाणोंद्वारा उनकी ध्वजापर आघात करके उन्हें भी पुनः सात बाणोंसे बींध डाला ॥ ४०½ ॥

भीमसेनोऽपि संक्रुद्धः साश्वयन्तारमाशुगैः ॥ ४१ ॥
दुर्जयं भिन्नमर्माणमनयद् यमसादनम् ।

तब भीमसेनने भी अत्यन्त कुपित होकर अपने शीघ्रगामी बाणोंद्वारा दुर्जय(दुष्पराजय)के मर्मस्थलको विदीर्ण करके उसे सारथि और घोड़ोंसहित यमलोक भेज दिया ॥ ४१½ ॥

स्वलंकृतं क्षितौ क्षुण्णं चेष्टमानं यथोरगम् ॥ ४२ ॥
रुदन्नार्तस्तव सुतं कर्णश्चक्रे प्रदक्षिणम् ।

आभूषणभूषित दुर्जय अपने क्षत-विक्षत अङ्गोंसे पृथ्वीपर गिरकर चोट खाये हुए सर्पके समान छटपटाने लगा। उस समय कर्णने शोकार्त होकर रोते-रोते आपके पुत्रकी परिक्रमा की ॥ ४२½ ॥

स तु तं विरथं कृत्वा स्मयन्नत्यन्तवैरिणम् ॥ ४३ ॥
समाचिनोद् बाणगणैः शतघ्नीभिश्च शङ्कुभिः ।

इस प्रकार अपने अत्यन्त वैरी कर्णको रथहीन करके मुसकराते हुए भीमसेनने उसे बाण-समूहों, शतघ्नियों और शङ्कुओंसे आच्छादित कर दिया ॥ ४३½ ॥

तथाप्यतिरथः कर्णो भिद्यमानोऽस्य सायकैः ॥ ४४ ॥
न जहौ समरे भीमं क्रुद्धरूपं परंतपः ॥ ४५ ॥

भीमसेनके बाणोंसे क्षत-विक्षत होनेपर भी शत्रुओंको संताप देनेवाला अतिरथी कर्ण समर-भूमिमें कुपित भीमसेनको छोड़कर भागा नहीं ॥ ४४–४५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णभीमयुद्धे त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें कर्ण और भीमसेनका युद्धविषयक एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१३३॥

चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेन और कर्णका युद्ध, धृतराष्ट्रपुत्र दुर्मुखका वध तथा कर्णका पलायन

संजय उवाच

सर्वथा विरथः कर्णः पुनर्भीमेन निर्जितः ।
रथमन्यं समास्थाय पुनर्विव्याध पाण्डवम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! सब प्रकारसे रथहीन एवं भीमसेनके द्वारा पुनः पराजित हुए कर्णने दूसरे रथपर बैठकर पाण्डुकुमार भीमसेनको पुनः बींध डाला ॥ १ ॥

महागजाविवासाद्य विषाणाग्रैः परस्परम् ।
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ २ ॥

जैसे दो विशाल गजराज अपने दाँतोंके अग्रभागोंद्वारा एक दूसरेसे भिड़ गये हों, उसी प्रकार कर्ण और भीमसेन धनुषको पूर्णतः खींचकर छोड़े गये बाणोंद्वारा एक दूसरेको चोट पहुँचाने लगे ॥ २ ॥

अथ कर्णः शरव्रातैर्भीमसेनं समार्पयत् ।
ननाद च महानादं पुनर्विव्याध चोरसि ॥ ३ ॥

तदनन्तर कर्णने अपने बाण-समूहोंद्वारा भीमसेनको घायल कर दिया। उसने बड़े जोरसे गर्जना की और पुनः भीमसेनकी छातीमें चोट पहुँचायी ॥ ३ ॥

तं भीमो दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यदजिह्मगैः ।
पुनर्विव्याध सप्तत्या शराणां नतपर्वणाम् ॥ ४ ॥

तब भीमने सीधे जानेवाले दस बाणोंसे कर्णको मारकर

बदला चुकाया। तत्पश्चात् झुकी हुई गाँठवाले सत्तर बाणोंद्वारा पुनः कर्णको बींध डाला ॥ ४ ॥

कर्णं तु नवभिर्भीमो भित्त्वा राजन् स्तनान्तरे।
ध्वजमेकेन विव्याध सायकेन शितेन ह ॥ ५ ॥

राजन्! भीमसेनने कर्णकी छातीमें नौ बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचाकर एक तीखे बाणसे उसकी ध्वजाको भी छेद दिया ॥ ५ ॥

सायकानां ततः पार्थस्त्रिषष्ट्या प्रत्यविध्यत।
तोत्रैरिव महानागं कशाभिरिव वाजिनम् ॥ ६ ॥

तदनन्तर जैसे विशाल गजराजको अङ्कुशोंसे और घोड़ेको कोड़ोंसे पीटा जाय, उसी प्रकार कुन्तीकुमार भीमने तिरसठ बाणोंद्वारा कर्णको घायल कर दिया ॥ ६ ॥

सोऽतिविद्धो महाराज पाण्डवेन यशस्विना।
सृक्किणी लेलिहन् वीरः क्रोधरक्तान्तलोचनः ॥ ७ ॥

महाराज! यशस्वी पाण्डुपुत्रके द्वारा अत्यन्त घायल होकर वीर कर्ण क्रोधसे लाल आँखें करके अपने दोनों जबड़ोंको चाटने लगा ॥ ७ ॥

ततः शरं महाराज सर्वकायावदारणम्।
प्राहिणोद् भीमसेनाय बलायेन्द्र इवाशनिम् ॥ ८ ॥

राजन्! तदनन्तर जैसे इन्द्रने बलासुरपर वज्र चलाया था, उसी प्रकार उसने भीमसेनपर समस्त शरीरको विदीर्ण कर देनेवाले बाणका प्रहार किया ॥ ८ ॥

स निर्भिद्य रणे पार्थं सूतपुत्रधनुश्च्युतः।
अगच्छद् दारयन् भूमिं चित्रपुङ्खः शिलीमुखः ॥ ९ ॥

रणक्षेत्रमें सूतपुत्रके धनुषसे छूटा हुआ वह विचित्र पंखोंवाला बाण भीमसेनको विदीर्ण करके पृथ्वीको चीरता हुआ उसके भीतर समा गया ॥ ९ ॥

ततो भीमो महाबाहुः क्रोधसंरक्तलोचनः।
वज्रकल्पां चतुष्किष्कुं गुर्वीं रुक्माङ्गदां गदाम् ॥ १० ॥
प्राहिणोत् सूतपुत्राय षडस्रामविचारयन्।

तब क्रोधसे लाल नेत्रोंवाले महाबाहु भीमसेनने चार बित्तेकी बनी हुई वज्रके समान भयंकर तथा सुवर्णमय भुजबंदसे विभूषित छः कोणोंवाली भारी गदा उठाकर उसे बिना विचारे सूतपुत्र कर्णपर चला दिया ॥ १०½ ॥

तया जघानाधिरथेः सदश्वान् साधुवाहिनः ॥ ११ ॥
गदया भारतः क्रुद्धो वज्रेणेन्द्र इवासुरान्।

जैसे कुपित हुए इन्द्रने वज्रसे असुरोंका वध किया था, उसी प्रकार क्रोधमें भरे भरतवंशी भीमने अपनी उस गदासे अधिरथ-पुत्र कर्णके उन उत्तम घोड़ोंको मार डाला, जो अच्छी तरह सवारीका काम देते थे ॥ ११½ ॥

ततो भीमो महाबाहुः क्षुराभ्यां भरतर्षभ ॥ १२ ॥
ध्वजमाधिरथेश्छित्त्वा सूतमभ्यहनच्छरैः।

भरतश्रेष्ठ! तत्पश्चात् महाबाहु भीमसेनने दो छुरोंसे कर्णकी ध्वजा काटकर अपने बाणोंद्वारा उसके सारथिको भी मार डाला ॥ १२½ ॥

हताश्वसूतमुत्सृज्य सरथं पतितध्वजम् ॥ १३ ॥
विस्फारयन् धनुः कर्णस्तस्थौ भारत दुर्मनाः।

भारत! घोड़े और सारथिके मारे जाने तथा ध्वजाके गिर जानेपर कर्ण उस रथको छोड़कर धनुषकी टंकार करता हुआ दुखी मनसे वहाँ खड़ा हो गया ॥ १३½ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम राधेयस्य पराक्रमम् ॥ १४ ॥
विरथो रथिनां श्रेष्ठो वारयामास यद् रिपुम्।

वहाँ हमलोगोंने राधानन्दन कर्णका अद्भुत पराक्रम देखा। रथियोंमें श्रेष्ठ उस वीरने रथहीन होनेपर भी अपने शत्रुको आगे नहीं बढ़ने दिया ॥ १४½ ॥

विरथं तं नरश्रेष्ठं दृष्ट्वाऽऽधिरथिमाहवे ॥ १५ ॥
दुर्योधनस्ततो राजन्नभ्यभाषत दुर्मुखम्।
एष दुर्मुख राधेयो भीमेन विरथीकृतः ॥ १६ ॥
तं रथेन नरश्रेष्ठं सम्पादय महारथम्।

राजन्! नरश्रेष्ठ कर्णको युद्धस्थलमें रथहीन खड़ा देख दुर्योधनने अपने भाई दुर्मुखसे कहा—'दुर्मुख! यह राधानन्दन कर्ण भीमसेनके द्वारा रथसे वञ्चित कर दिया गया है। इस महारथी नरश्रेष्ठ वीरको रथसे सम्पन्न करो' ॥

ततो दुर्योधनवचः श्रुत्वा भारत दुर्मुखः ॥ १७ ॥
त्वरमाणोऽभ्ययात् कर्णं भीमं चावारयच्छरैः।
दुर्मुखं प्रेक्ष्य संग्रामे सूतपुत्रपदानुगम् ॥ १८ ॥
वायुपुत्रः प्रहृष्टोऽभूत् सृक्किणी परिसंलिहन्।

भरतनन्दन! दुर्योधनकी यह बात सुनकर दुर्मुख बड़ी उतावलीके साथ कर्णके समीप आ पहुँचा और भीमसेनको अपने बाणोंद्वारा रोका। संग्राममें सूतपुत्रके चरणोंका अनुसरण करनेवाले दुर्मुखको देखकर वायुपुत्र भीमसेन बड़े प्रसन्न हुए। वे अपने दोनों गलफर चाटने लगे ॥ १७–१८½ ॥

ततः कर्णं महाराज वारयित्वा शिलीमुखैः ॥ १९ ॥
दुर्मुखाय रथं तूर्णं प्रेषयामास पाण्डवः।

महाराज! तदनन्तर कर्णको अपने बाणोंद्वारा रोककर पाण्डुकुमार भीम तुरंत ही अपने रथको दुर्मुखके पास ले गये ॥ १९½ ॥

तस्मिन् क्षणे महाराज नवभिर्नतपर्वभिः ॥ २० ॥
सुमुखैर्दुर्मुखं भीमः शरैर्निन्ये यमक्षयम्।

राजन्! फिर झुकी हुई गाँठवाले नौ सुमुख बाणोंद्वारा भीमसेनने दुर्मुखको उसी क्षण यमलोक पहुँचा दिया ।२०½।

ततस्तमेवाधिरथिः स्यन्दनं दुर्मुखे हते ॥ २१ ॥
आस्थितः प्रबभौ राजन् दीप्यमान इवांशुमान्।

नरेश्वर! दुर्मुखके मारे जानेपर कर्ण उसी रथपर बैठकर देदीप्यमान सूर्यके समान प्रकाशित होने लगा ॥ २१½ ॥

शयानं भिन्नमर्माणं दुर्मुखं शोणितोक्षितम् ॥ २२ ॥

दृष्ट्वा कर्णोऽश्रुपूर्णाक्षो मुहूर्तं नाभ्यवर्तत ।
तं गतासुमतिक्रम्य कृत्वा कर्णः प्रदक्षिणम् ॥ २३ ॥
दीर्घमुष्णं श्वसन् वीरो न किंचित् प्रत्यपद्यत ।

दुर्मुखका मर्मस्थान विदीर्ण हो गया था । वह खूनसे लथपथ हो पृथ्वीपर पड़ा था । उसे उस दशामें देखकर कर्णके नेत्रोंमें आँसू भर आया । वह दो घड़ीतक विपक्षीका सामना न कर सका । जब उसके प्राणपखेरू उड़ गये, तब कर्ण उस शवकी परिक्रमा करके आगे बढ़ा । वह वीर गरम गरम लंबी साँस खींचता हुआ किसी कर्तव्यका निश्चय न कर सका ॥ २२–२३½ ॥

तस्मिंस्तु विवरे राजन् नाराचान् गार्ध्रवाससः ॥ २४ ॥
प्राहिणोत् सूतपुत्राय भीमसेनश्चतुर्दश ।

राजन् ! इसी अवसरमें भीमसेनने सूतपुत्रपर गीधकी पाँखवाले चौदह नाराच चलाये ॥ २४½ ॥

ते तस्य कवचं भित्त्वा स्वर्णचित्रं महौजसः ॥ २५ ॥
हेमपुङ्खा महाराज व्यशोभन्त दिशो दश ।

महाराज ! वे महातेजस्वी सुनहरी पाँखवाले बाण उसके सुवर्णजटित कवचको छिन्न-भिन्न करके दसों दिशाओंको सुशोभित करने लगे ॥ २५½ ॥

अपिबन् सूतपुत्रस्य शोणितं रक्तभोजनाः ॥ २६ ॥
क्रुद्धा इव मनुष्येन्द्र भुजङ्गाः कालचोदिताः ।

नरेन्द्र ! वे रक्तका आहार करनेवाले बाण क्रोधभरे कालप्रेरित भुजंगोंके समान सूतपुत्र कर्णका खून पीने लगे ॥

प्रसर्पमाणा मेदिन्यां ते व्यरोचन्त मार्गणाः ॥ २७ ॥
अर्धप्रविष्टाः संरब्धा बिलानीव महोरगाः ।

जैसे क्रोधमें भरे हुए महान् सर्प बिलोंमें प्रवेश करते समय आधे ही घुस पाये हों, उसी प्रकार वे बाण पृथ्वीमें घुसते हुए शोभा पा रहे थे ॥ २७½ ॥

तं प्रत्यविध्यद् राधेयो जाम्बूनदविभूषितैः ॥ २८ ॥
चतुर्दशभिरत्युग्रैर्नाराचैरविचारयन् ।

तब कर्णने कुछ विचार न करके अत्यन्त भयंकर एवं सुवर्णभूषित चौदह नाराचोंसे भीमसेनको भी घायल कर दिया ॥ २८½ ॥

ते भीमसेनस्य भुजं सव्यं निर्भिद्य पत्रिणः ॥ २९ ॥
प्राविशन् मेदिनीं भीमाः क्रौञ्चं पत्ररथा इव ।

वे पंखधारी भयानक बाण भीमसेनकी बायीं भुजा छेदकर पृथ्वीमें समा गये, मानो पक्षी क्रौञ्च पर्वतको जा रहे हों ॥२९½॥

ते व्यरोचन्त नाराचाः प्रविशन्तो वसुंधराम् ॥ ३० ॥
गच्छत्यस्तं दिनकरे दीप्यमाना इवांशवः ।

वे नाराच इस पृथ्वीमें प्रवेश करते समय वैसी ही शोभा पा रहे थे, जैसे सूर्यके डूबते समय उनकी चमकीली किरणें प्रकाशित होती हैं ॥ ३०½ ॥

स निर्भिन्नो रणे भीमो नाराचैर्मर्मभेदिभिः ॥ ३१ ॥
सुस्राव रुधिरं भूरि पर्वतः सलिलं यथा ।

मर्मभेदी नाराचोंसे रणक्षेत्रमें विदीर्ण हुए भीमसेन उसी प्रकार भूरि-भूरि रक्त बहाने लगे, जैसे पर्वत झरनेका जल गिराता है ॥ ३१½ ॥

स भीमस्त्रिभिरायत्तः सूतपुत्रं पतत्त्रिभिः ॥ ३२ ॥
सुपर्णवेगैर्विव्याध सारथिं चास्य सप्तभिः ।

तब भीमसेनने भी प्रयत्नपूर्वक गरुडके समान वेगशाली तीन बाणोंद्वारा सूतपुत्र कर्णको तथा सात बाणोंसे उसके सारथिको भी घायल कर दिया ॥ ३२½ ॥

स विह्वलो महाराज कर्णो भीमशराहतः ॥ ३३ ॥
प्राद्रवज्जवनैरश्वै रणं हित्वा महाभयात् ।

महाराज ! भीमके बाणोंसे आहत होकर कर्ण विह्वल हो उठा और महान् भयके कारण युद्ध छोड़कर शीघ्रगामी घोड़ोंकी सहायतासे भाग निकला ॥ ३३½ ॥



भीमसेनस्तु विस्फार्य चापं हेमपरिष्कृतम् ॥ ३४ ॥
आहवेऽतिरथोऽतिष्ठज्ज्वलन्निव हुताशनः ॥ ३५ ॥

परंतु अतिरथी भीमसेन अपने सुवर्णभूषित धनुषको ताने हुए प्रज्वलित अग्निके समान युद्धस्थलमें ही खड़े रहे ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णापयाने चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें कर्णका पलायनविषयक एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१३४॥

पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका खेदपूर्वक भीमसेनके बलका वर्णन और अपने पुत्रोंकी निन्दा करना तथा भीमके द्वारा दुर्मर्षण आदि धृतराष्ट्रके पाँच पुत्रोंका वध

धृतराष्ट्र उवाच

दैवमेव परं मन्ये धिक् पौरुषमनर्थकम्।
यत्राधिरथिरायत्तो नातरत् पाण्डवं रणे॥ १॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय! मैं तो दैवको ही बड़ा मानता हूँ। पुरुषार्थ तो व्यर्थ है। उसे धिक्कार है; क्योंकि उसमें स्थित हुआ अधिरथपुत्र कर्ण सब प्रकारसे प्रयत्न करके भी रणक्षेत्रमें पाण्डुनन्दन भीमसे पार न पा सका॥ १॥

कर्णः पार्थान् सगोविन्दान् जेतुमुत्सहते रणे।
न च कर्णसमं योधं लोके पश्यामि कञ्चन॥ २॥

'कर्ण युद्धस्थलमें कृष्णसहित समस्त कुन्तीकुमारोंको जीतनेका उत्साह रखता है। मैं संसारमें कर्णके समान दूसरे किसी योद्धाको नहीं देख रहा हूँ'॥ २॥

इति दुर्योधनस्याहमश्रौषं जल्पतो मुहुः।
कर्णो हि बलवाञ्छूरो दृढधन्वा जितक्लमः॥ ३॥
इति मामब्रवीत् सूत मन्दो दुर्योधनः पुरा।
वसुषेणसहायं मां नालं देवाऽपि संयुगे॥ ४॥
किं नु पाण्डुसुता राजन् गतसत्त्वा विचेतसः।

इस प्रकार दुर्योधनके मुँहसे मैंने बारंबार सुना है। सूत! मूर्ख दुर्योधनने पहले मुझसे यह भी कहा था कि 'कर्ण बलवान्, शूरवीर, सुदृढ़ धनुर्धर और युद्धमें श्रम तथा थकावटपर विजय पानेवाला है। राजन्! कर्णके साथ रहनेपर समरभूमिमें मुझे देवता भी परास्त नहीं कर सकते; फिर शक्तिहीन और विवेकशून्य पाण्डव मेरा क्या कर सकते हैं?'॥ ३-४½॥

तत्र तं निर्जितं दृष्ट्वा भुजङ्गमिव निर्विषम्॥ ५॥
युद्धात् कर्णमपक्रान्तं किंस्विद् दुर्योधनोऽब्रवीत्।

परंतु रणक्षेत्रमें विषहीन सर्पके समान कर्णको पराजित और युद्धसे भागा हुआ देखकर दुर्योधनने क्या कहा था॥ ५½॥

अहो दुर्मुखमेवैकं युद्धानामविशारदम्॥ ६॥
प्रावेशयद्धुतवहं पतङ्गमिव मोहितः।

अहो! दुर्योधनने मोहित होकर युद्धकी कलासे अनभिज्ञ दुर्मुखको अकेले ही पतंगकी भाँति आगमें झोंक दिया॥६½॥

अश्वत्थामा मद्रराजः कृपः कर्णश्च संगताः॥ ७॥
न शक्ताः प्रमुखे स्थातुं नूनं भीमस्य संजय।

संजय! अश्वत्थामा, मद्रराज शल्य, कृपाचार्य और कर्ण—ये सब मिलकर भी निश्चय ही भीमके सामने नहीं ठहर सकते॥ ७½॥

तेऽपि चास्य महाघोरं बलं नागायुतोपमम्॥ ८॥
जानन्तो व्यवसायं च क्रूरं मारुततेजसः।
किमर्थं क्रूरकर्माणं यमकालान्तकोपमम्॥ ९॥
बलसंरम्भवीर्यज्ञाः कोपयिष्यन्ति संयुगे।

वे भी वायुके तुल्य तेजस्वी भीमसेनके दस हजार हाथियोंके समान अत्यन्त घोर बलको तथा उनके क्रूरतापूर्ण निश्चयको जानते हैं; उनके बल, पराक्रम और क्रोधसे परिचित हैं। ऐसी दशामें वे यम, काल और अन्तकके समान क्रूर कर्म करनेवाले भीमसेनको युद्धमें अपने ऊपर कैसे कुपित करेंगे?॥ ८-९½॥

कर्णस्त्वेको महाबाहुः स्वबाहुबलदर्पितः॥ १०॥
भीमसेनमनादृत्य रणेऽयुध्यत सूतजः।

अकेला सूतपुत्र महाबाहु कर्ण ही अपने बाहुबलके घमंडमें भरकर भीमसेनका तिरस्कार करके रणभूमिमें उनके साथ जूझता रहा॥ १०½॥

योऽजयत् समरे कर्णं पुरंदर इवासुरम्॥ ११॥
न स पाण्डुसुतो जेतुं शक्यः केनचिदाहवे।

जिन्होंने समराङ्गणमें असुरोंपर विजय पानेवाले देवराज इन्द्रके समान कर्णको पराजित कर दिया, उन पाण्डुपुत्र भीमसेनको कोई भी युद्धमें जीत नहीं सकता॥ ११½॥

द्रोणं यः सम्प्रमथ्यैकः प्रविष्टो मम वाहिनीम्॥ १२॥
भीमो धनंजयान्वेषी कस्तमार्च्छेज्जिजीविषुः।

जो भीमसेन अकेले ही द्रोणाचार्यको मथकर धनंजयका पता लगानेके लिये मेरी सेनामें घुस आये, उनका सामना करनेके लिये जीवित रहनेकी इच्छावाला कौन पुरुष जा सकता है?॥ १२½॥

को हि संजय भीमस्य स्थातुमुत्सहतेऽग्रतः॥ १३॥
उद्यताशनिहस्तस्य महेन्द्रस्येव दानवः।

संजय! जैसे हाथमें वज्र लिये हुए देवराज इन्द्रके सामने कोई दानव खड़ा नहीं हो सकता, उसी प्रकार भीमसेनके सम्मुख भला कौन ठहर सकता है?॥ १३½॥

प्रेतराजपुरं प्राप्य निवर्तेतापि मानवः॥ १४॥
न भीमसेनं सम्प्राप्य निवर्तेत कदाचन।

मनुष्य यमलोकमें भी जाकर लौट सकता है; परंतु युद्धमें भीमसेनके सामने जाकर कदापि जीवित नहीं लौट सकता॥ १४½॥

पतङ्गा इव वह्निं ते प्राविशन्नल्पचेतसः॥ १५॥
ये भीमसेनं संक्रुद्धमन्वधावन् विमोहिताः।

मेरे जो मन्दबुद्धि पुत्र मोहित होकर क्रोधमें भरे हुए भीमसेनकी ओर दौड़े थे, वे पतंगोंके समान मानो आगमें ही कूद पड़े थे ॥ १५½ ॥

यत् तत् सभायां भीमेन मम पुत्रवधाश्रयम् ॥ १६ ॥
उक्तं संरम्भिणोग्रेण कुरूणां शृण्वतां तदा ।
तन्नूनमभिसंचिन्त्य दृष्ट्वा कर्णं च निर्जितम् ॥ १७ ॥
दुःशासनः सह भ्रात्रा भयाद् भीमादुपारमत् ।

क्रोधमें भरे हुए भयंकर भीमसेनने सभाभवनमें उस दिन समस्त कौरवोंके सुनते हुए मेरे पुत्रोंके वधके सम्बन्धमें जो प्रतिज्ञा की थी, उसका विचार करके और कर्णको पराजित देखकर अपने भाई दुर्योधनसहित दुःशासन निश्चय ही भयके मारे भीमसेनसे दूर हट गया होगा ॥ १६-१७½ ॥

यश्च संजय दुर्बुद्धिरब्रवीत् समितौ मुहुः ॥ १८ ॥
कर्णो दुःशासनोऽहं च जेष्यामो युधि पाण्डवान्।

संजय ! खोटी बुद्धिवाले दुर्योधनने सभामें बारंबार कहा था कि 'कर्ण, दुःशासन तथा मैं—तीनों मिलकर युद्धमें अवश्य पाण्डवोंको जीत लेंगे' ॥ १८½ ॥

स नूनं विरथं दृष्ट्वा कर्णं भीमेन निर्जितम् ॥ १९ ॥
प्रत्याख्यानाच्च कृष्णस्य भृशं तप्यति पुत्रकः ।

परंतु अब कर्णको भीमसेनके द्वारा पराजित और रथहीन हुआ देख श्रीकृष्णकी बात न माननेके कारण मेरा वह पुत्र निश्चय ही बड़ा भारी पश्चात्ताप कर रहा होगा ॥ १९½ ॥

दृष्ट्वा भ्रातॄन् हतान् संख्ये भीमसेनेन दंशितान् ॥ २० ॥
आत्मापराधे सुमहन्नूनं तप्यति पुत्रकः ।

अपने कवचधारी भ्राताओंको युद्धमें भीमसेनके द्वारा मारा गया देख मेरे पुत्रको अपने अपराधके लिये अवश्य ही महान् अनुताप हो रहा होगा ॥ २०½ ॥

को हि जीवितमन्विच्छन् प्रतीपं पाण्डवं व्रजेत् ॥ २१ ॥
भीमं भीमायुधं क्रुद्धं साक्षात् कालमिव स्थितम्।

अपने जीवनकी इच्छा रखनेवाला कौन पुरुष क्रोधमें भरकर साक्षात् कालके समान खड़े हुए भयानक अस्त्र-शस्त्रधारी पाण्डुपुत्र भीमसेनके विरुद्ध युद्धमें जा सकता है ॥ २१½ ॥

वडवामुखमध्यस्थो मुच्येतापि हि मानवः ॥ २२ ॥
न भीममुखसम्प्राप्तो मुच्येदिति मतिर्मम ।

मेरा तो ऐसा विश्वास है कि बडवानलके मुखमें पड़ा हुआ मनुष्य शायद जीवित बच जाय; परंतु भीमसेनके सम्मुख युद्धके लिये आया हुआ कोई भी शूरमा जीवित नहीं छूट सकता ॥ २२½ ॥

न पार्थो न च पञ्चाला न च केशवसात्यकी ॥ २३ ॥
जानते युधि संरब्धा जीवितं परिरक्षितुम् ।
अहो मम सुतानां हि विपन्नं सूत जीवितम् ॥ २४ ॥

सूत ! युद्धमें क्रुद्ध होनेपर पाण्डव, पाञ्चाल, श्रीकृष्ण तथा सात्यकि—ये कोई भी शत्रुके जीवनकी रक्षा करना नहीं जानते हैं । अहो ! मेरे पुत्रोंका जीवन भारी विपत्तिमें पड़ गया है ॥ २३-२४ ॥

संजय उवाच

यस्त्वं शोचसि कौरव्य वर्तमाने महाभये ।
त्वमस्य जगतो मूलं विनाशस्य न संशयः ॥ २५ ॥

संजयने कहा—कुरुनन्दन ! यह महान् भय जब सिरपर आ गया है, तब आप शोक करने बैठे हैं, यह ठीक नहीं है । इसमें कोई संदेह नहीं कि इस जगत्‌के विनाशका मूल कारण आप ही हैं ॥ २५ ॥

स्वयं वैरं महत् कृत्वा पुत्राणां वचने स्थितः ।
उच्यमानो न गृह्णीषे मर्त्यः पथ्यमिवौषधम् ॥ २६ ॥

पुत्रोंकी हाँमें हाँ मिलाकर आपने स्वयं ही इस महान् वैरकी नींव डाली है और जब इसे मिटानेके लिये आपसे किसीने कोई बात कही, तब आपने उसे नहीं माना, ठीक उसी तरह, जैसे मरणासन्न मनुष्य हितकारक औषध नहीं ग्रहण करता है ॥ २६ ॥

स्वयं पीत्वा महाराज कालकूटं सुदुर्जरम् ।
तस्येदानीं फलं कृत्स्नमवाप्नुहि नरोत्तम ॥ २७ ॥

नरश्रेष्ठ ! महाराज ! जिसको पचाना अत्यन्त कठिन है, उस कालकूट विषको स्वयं पीकर अब उसके सारे परिणामोंको आप ही भोगिये ॥ २७ ॥

यत् तु कुत्सयसे योधान् युध्यमानान् महाबलान्।
तत्र ते वर्तयिष्यामि यथा युद्धमवर्तत ॥ २८ ॥

युद्धमें लगे हुए महाबली योद्धाओंको जो आप कोस रहे हैं, वह व्यर्थ है । अब जिस प्रकार वहाँ युद्ध हुआ था, वह सब आपको बता रहा हूँ, सुनिये ॥ २८ ॥

दृष्ट्वा कर्णं तु पुत्रास्ते भीमसेनपराजितम् ।
नामृष्यन्त महेष्वासाः सोदर्याः पञ्च भारत ॥ २९ ॥

भरतनन्दन ! कर्णको भीमसेनसे पराजित हुआ देख आपके पाँच महाधनुर्धर पुत्र जो परस्पर सगे भाई थे, सह न सके ॥ २९ ॥

दुर्मर्षणो दुःसहश्च दुर्मदो दुर्धरो जयः ।
पाण्डवं चित्रसंनाहास्तं प्रतीपमुपाद्रवन् ॥ ३० ॥

उन पाँचोंके नाम ये हैं—दुर्मर्षण, दुःसह, दुर्मद, दुर्धर(दुराधार)और जय । इन सबने विचित्र कवच धारण करके अपने विरोधी पाण्डुपुत्र भीमसेनपर आक्रमण किया ॥ ३० ॥

ते समन्तान्महाबाहुं परिवार्य वृकोदरम् ।
दिशः शरैः समावृण्वञ्शलभानामिव व्रजैः ॥ ३१ ॥

उन्होंने महाबाहु भीमसेनको चारों ओरसे घेरकर टिड्डी-दलोंके समान अपने बाणसमूहोंद्वारा सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित कर दिया ॥ ३१ ॥

आगच्छतस्तान् सहसा कुमारान् देवरूपिणः ।
प्रतिजग्राह समरे भीमसेनो हसन्निव ॥ ३२ ॥

उन देवतुल्य राजकुमारोंको सहसा देख समरभूमिमें भीमसेनने हँसते हुए-से उनका आघात सहन किया ॥ ३२ ॥

तव दृष्ट्वा तु तनयान् भीमसेनपुरोगतान् ।
अभ्यवर्तत राधेयो भीमसेनं महाबलम् ॥ ३३ ॥

आपके पुत्रोंको भीमसेनके सामने गया हुआ देख राधानन्दन कर्ण पुनः महाबली भीमसेनका सामना करनेके लिये आ पहुँचा ॥ ३३ ॥

विसृजन् विशिखांस्तीक्ष्णान् स्वर्णपुङ्खाञ्छिलाशितान् ।
तं तु भीमोऽभ्ययात् तूर्णं वार्यमाणः सुतैस्तव ॥ ३४ ॥

वह शानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखोंसे युक्त पैने बाणोंकी वर्षा कर रहा था। उस समय आपके पुत्रोंद्वारा रोके जानेपर भी भीमसेन तुरंत ही कर्णके साथ युद्ध करनेके लिये आगे बढ़ गये ॥ ३४ ॥

कुरवस्तु ततः कर्णं परिवार्य समन्ततः ।
अवाकिरन् भीमसेनं शरैः संनतपर्वभिः ॥ ३५ ॥

तब उन कौरवोंने कर्णको चारों ओरसे घेरकर भीमसेन-पर झुकी हुई गाँठवाले बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥३५॥

तान् बाणैः पञ्चविंशत्या साश्वान् राजन् नरर्षभान् ।
ससूतान् भीमधनुषो भीमो निन्ये यमक्षयम् ॥ ३६ ॥

राजन्! यह देखकर भीमसेनने पचीस बाणोंका प्रहार करके सारथि और घोड़ोंसहित भयंकर धनुष धारण करनेवाले उन नरश्रेष्ठ राजकुमारोंको यमलोक पहुँचा दिया ॥ ३६ ॥

प्रापतन् स्यन्दनेभ्यस्ते सार्धं सूतैर्गतासवः ।
चित्रपुष्पधरा भग्ना वातेनेव महाद्रुमाः ॥ ३७ ॥

वे प्राणशून्य होकर सारथियोंके साथ रथोंसे नीचे गिर पड़े, मानो प्रचण्ड आँधीने विचित्र पुष्प धारण करनेवाले विशाल वृक्षोंको उखाड़कर धराशायी कर दिया हो ॥ ३७ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम भीमसेनस्य विक्रमम् ।
संवार्याधिरथिं बाणैर्यज्जघान तवात्मजान् ॥ ३८ ॥

वहाँ हमने भीमसेनका यह अद्भुत पराक्रम देखा कि उन्होंने सूतपुत्र कर्णको अपने बाणोंद्वारा रोककर आपके पुत्रोंको मार डाला ॥ ३८ ॥

स वार्यमाणो भीमेन शितैर्बाणैः समन्ततः ।
सूतपुत्रो महाराज भीमसेनमवैक्षत ॥ ३९ ॥

महाराज! भीमसेनके पैने बाणोंद्वारा चारों ओरसे रोके जानेपर भी सूतपुत्र कर्णने भीमसेनकी ओर क्रोधपूर्वक देखा ॥ ३९ ॥

तं भीमसेनः संरम्भात् क्रोधसंरक्तलोचनः ।
विस्फार्य सुमहच्चापं मुहुः कर्णमवैक्षत ॥ ४० ॥

इधर क्रोधसे लाल आँखें किये भीमसेन भी अपने विशाल धनुषको फैलाकर कर्णकी ओर रोषपूर्वक बारंबार देखने लगे ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमसेनपराक्रमे पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भीमसेनका पराक्रमविषयक एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१३५॥

षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेन और कर्णका युद्ध, कर्णका पलायन, धृतराष्ट्रके सात पुत्रोंका वध तथा भीमका पराक्रम

संजय उवाच

तवात्मजांस्तु पतितान् दृष्ट्वा कर्णः प्रतापवान् ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो निर्विण्णोऽभूत् स जीवितात् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! आपके पुत्रोंको रणभूमिमें गिरा हुआ देख प्रतापी कर्ण अत्यन्त कुपित हो अपने जीवनसे विरक्त हो उठा ॥ १ ॥

आगस्कृतमिवात्मानं मेने चाधिरथिस्तदा ।
यत्प्रत्यक्षं तव सुता भीमेन निहता रणे ॥ २ ॥

उस समय अधिरथपुत्र कर्ण अपने आपको अपराधी-सा मानने लगा; क्योंकि भीमसेनने उसकी आँखोंके सामने रणभूमिमें आपके पुत्रोंको मार डाला था ॥ २ ॥

भीमसेनस्ततः क्रुद्धः कर्णस्य निशिताञ्शरान् ।
निचखान स सम्भ्रान्तः पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ३ ॥

तदनन्तर पहलेके वैरका बारंबार स्मरण करके कुपित हुए भीमसेनने कर्णके शरीरमें बड़े वेगसे अपने पैने बाण धँसा दिये ॥ ३ ॥

स भीमं पञ्चभिर्विद्ध्वा राधेयः प्रहसन्निव ।
पुनर्विव्याध सप्तत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ ४ ॥

तब राधानन्दन कर्णने हँसते हुए-से पाँच बाण मारकर भीमसेनको घायल कर दिया। फिर शानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले सत्तर बाणोंद्वारा उन्हें गहरी चोट पहुँचायी ॥ ४ ॥

अविचिन्त्याथ तान् बाणान् कर्णेनास्तान् वृकोदरः ।
रणे विव्याध राधेयं शतेनानतपर्वणाम् ॥ ५ ॥

कर्णके चलाये हुए उन बाणोंकी कुछ भी परवा न करके भीमसेनने रणभूमिमें झुकी हुई गाँठवाले सौ बाणोंद्वारा राधापुत्रको घायल कर दिया ॥ ५ ॥

पुनश्च विशिखैस्तीक्ष्णैर्विद्ध्वा मर्मसु पञ्चभिः ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सूतपुत्रस्य मारिष ॥ ६ ॥

माननीय नरेश ! फिर पाँच तीखे बाणोंद्वारा सूतपुत्रके मर्मस्थानोंमें चोट पहुँचाकर भीमसेनने एक भल्लद्वारा उसका धनुष काट दिया ॥ ६ ॥

अथान्यद् धनुरादाय कर्णो भारत दुर्मनाः ।
इषुभिश्छादयामास भीमसेनं परंतपः ॥ ७ ॥

भारत ! तब शत्रुओंको संताप देनेवाले कर्णने खिन्न होकर दूसरा धनुष हाथमें ले भीमसेनको अपने बाणोंद्वारा आच्छादित कर दिया ॥ ७ ॥

तस्य भीमो हयान् हत्वा विनिहत्य च सारथिम्।
प्रजहास महाहासं कृते प्रतिकृते पुनः ॥ ८ ॥

भीमसेनने उसके घोड़ों और सारथिको मारकर उसके प्रहारका बदला चुका लेनेके पश्चात् पुनः बड़े जोरसे अट्टहास किया ॥ ८ ॥

इषुभिः कार्मुकं चास्य चकर्त पुरुषर्षभः ।
तत् पपात महाराज स्वर्णपृष्ठं महास्वनम् ॥ ९ ॥

महाराज ! पुरुषशिरोमणि भीमने अपने बाणोंद्वारा कर्णका धनुष भी फिर काट दिया । स्वर्णमय पृष्ठभागसे युक्त और गम्भीर टङ्कार करनेवाला उसका वह धनुष पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ९ ॥

अवारोहद् रथात् तस्मादथ कर्णो महारथः ।
गदां गृहीत्वा समरे भीमाय प्राहिणोद् रुषा ॥ १० ॥

महारथी कर्ण उस रथसे उतर गया और गदा लेकर उसने समरभूमिमें भीमसेनपर रोषपूर्वक चला दी ॥ १० ॥

तामापतन्तीमालक्ष्य भीमसेनो महागदाम् ।
शरैरवारयद् राजन् सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ११ ॥

राजन् ! उस विशाल गदाको अपने ऊपर आती देख भीमसेनने सब सेनाओंके देखते-देखते बाणोंद्वारा उसका निवारण कर दिया ॥ ११ ॥

ततो बाणसहस्राणि प्रेषयामास पाण्डवः ।
सूतपुत्रवधाकाङ्क्षी त्वरमाणः पराक्रमी ॥ १२ ॥

तब सूतपुत्रके वधकी इच्छावाले पराक्रमी पाण्डुपुत्र भीमसेनने बड़ी उतावलीके साथ एक हजार बाण चलाये ॥ १२ ॥

तानिषूनिषुभिः कर्णो वारयित्वा महामृधे ।
कवचं भीमसेनस्य पाटयामास सायकैः ॥ १३ ॥

परंतु कर्णने उस महासमरमें अपने बाणोंद्वारा उन सभी बाणोंका निवारण करके भीमसेनके कवचको बाणोंसे छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ १३ ॥

अथैनं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्पयत् ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १४ ॥

तदनन्तर उसने सब सेनाओंके देखते-देखते भीमसेनपर पचीस नाराचोंका प्रहार किया । वह अद्भुत-सी बात हुई ॥ १४ ॥

ततो भीमो महाबाहुर्नवभिर्नतपर्वभिः ।
प्रेषयामास संक्रुद्धः सूतपुत्रस्य मारिष ॥ १५ ॥

माननीय नरेश ! तब अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए महाबाहु भीमसेनने सूतपुत्रको झुकी हुई गाँठवाले नौ बाण मारे॥१५॥

ते तस्य कवचं भित्त्वा तथा बाहुं च दक्षिणम् ।
अभ्ययुर्धरणीं तीक्ष्णा वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ १६ ॥

वे तीखे बाण कर्णके कवच तथा दाहिनी भुजाको विदीर्ण करके बाँबीमें घुसनेवाले सर्पोंके समान धरतीमें समा गये ॥ १६ ॥

स च्छाद्यमानो बाणौघैर्भीमसेनधनुश्च्युतैः ।
पुनरेवाभवत् कर्णो भीमसेनात् पराङ्मुखः ॥ १७ ॥

भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए बाणसमूहोंसे आच्छादित होकर कर्ण पुनः भीमसेनसे विमुख हो गया (उन्हें पीठ दिखाकर भाग चला) ॥ १७ ॥

तं पराङ्मुखमालोक्य पदातिं सूतनन्दनम् ।
कौन्तेयशरसंछन्नं राजा दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ १८ ॥

सूतपुत्र कर्णको युद्धसे विमुख, पैदल तथा भीमसेनके बाणोंसे आच्छादित देखकर राजा दुर्योधन अपने सैनिकोंसे बोला—॥ १८ ॥

त्वरध्वं सर्वतो यत्ता राधेयस्य रथं प्रति ।
ततस्तव सुता राजञ्छ्रुत्वा भ्रातुर्वचो द्रुतम् ॥ १९ ॥
अभ्ययुः पाण्डवं युद्धे विसृजन्तः शिलीमुखान् ।

'वीरो ! सब ओरसे राधानन्दन कर्णके रथकी ओर शीघ्र आओ और उसकी रक्षाका प्रबन्ध करो ।' राजन् ! तब भाईकी यह बात सुनकर आपके पुत्र शीघ्रतापूर्वक युद्धमें पाण्डुपुत्र भीमपर बाणोंकी वर्षा करते हुए आ पहुँचे ॥१९½॥

चित्रोपचित्रश्चित्राक्षश्चारुचित्रः शरासनः ॥ २० ॥
चित्रायुधश्चित्रवर्मा समरे चित्रयोधिनः ।

उनके नाम इस प्रकार हैं—चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन, चित्रायुध और चित्रवर्मा । ये सब-के-सब समरभूमिमें विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले थे ॥ २०½ ॥

तानापतत एवाशु भीमसेनो महारथः ॥ २१ ॥
एकैकेन शरेणाजौ पातयामास ते सुतान् ।
ते हता न्यपतन् भूमौ वातरुग्णा इव द्रुमाः ॥ २२ ॥

महारथी भीमसेनने उनके आते ही शीघ्रतापूर्वक एक-एक बाण मारकर आपके सभी पुत्रोंको युद्धमें धराशायी कर दिया। वे मारे जाकर आँधीके उखाड़े हुए वृक्षोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २१-२२ ॥

दृष्ट्वा विनिहतान् पुत्रांस्तव राजन् महारथान्।
अश्रुपूर्णमुखः कर्णः क्षत्तुः सस्मार तद् वचः ॥ २३ ॥

राजन्! आपके महारथी पुत्रोंको इस प्रकार मारा गया देख कर्णके मुखपर आँसुओंकी धारा बह चली। उस समय उसे विदुरजीकी कही हुई बात याद आयी ॥ २३ ॥

रथं चान्यं समास्थाय विधिवत् कल्पितं पुनः।
अभ्ययात् पाण्डवं युद्धे त्वरमाणः पराक्रमी ॥ २४ ॥

फिर उस पराक्रमी वीरने विधिपूर्वक सजाये हुए दूसरे रथपर बैठकर युद्धमें शीघ्रतापूर्वक पाण्डुपुत्र भीमसेनपर धावा किया ॥ २४ ॥

तावन्योन्यं शरैर्भित्त्वा स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः।
व्यभ्राजेतां यथा मेघौ संस्यूतौ सूर्यरश्मिभिः ॥ २५ ॥

वे दोनों एक दूसरेको शिलापर तेज किये हुए सुवर्ण-पंखयुक्त बाणोंद्वारा क्षत-विक्षत करके सूर्यकी किरणोंमें पिरोये हुए बादलोंके समान सुशोभित होने लगे ॥ २५ ॥

षट्त्रिंशद्भिस्ततो भल्लैर्निशितैस्तिग्मतेजनैः।
व्यधमत् कवचं क्रुद्धः सूतपुत्रस्य पाण्डवः ॥ २६ ॥

तत्पश्चात् क्रोधमें भरे हुए भीमसेनने प्रचण्ड तेजवाले छत्तीस तीखे भल्लोंका प्रहार करके सूतपुत्रके कवचकी धज्जियाँ उड़ा दीं ॥ २६ ॥

सूतपुत्रोऽपि कौन्तेयं शरैः संनतपर्वभिः।
पञ्चाशता महाबाहुर्विव्याध भरतर्षभ ॥ २७ ॥

भरतश्रेष्ठ! फिर महाबाहु सूतपुत्रने भी कुन्तीकुमार भीमसेनको झुकी हुई गाँठवाले पचास बाणोंसे बींध डाला ॥

रक्तचन्दनदिग्धाङ्गौ शरैः कृतमहाव्रणौ।
शोणिताक्तौ व्यराजेतां चन्द्रसूर्याविवोदितौ ॥ २८ ॥

उन दोनोंने अपने शरीरमें लाल चन्दन लगा रक्खे थे। इसके सिवा उनके शरीरमें बाणोंके आघातसे बड़े-बड़े घाव हो गये थे। इस प्रकार खूनसे लथपथ हुए वे दोनों योद्धा उदयकालीन सूर्य और चन्द्रमाके समान शोभा पा रहे थे ॥ २८ ॥

तौ शोणितोक्षितैर्गात्रैः शरैश्छिन्नतनुच्छदौ।
कर्णभीमौ व्यराजेतां निर्मुक्ताविव पन्नगौ ॥ २९ ॥
व्याघ्राविव नरव्याघ्रौ दंष्ट्राभिरितरेतरम्।
शरधारासृजौ वीरौ मेघाविव ववर्षतुः ॥ ३० ॥

बाणोंद्वारा उन दोनोंके कवच कट गये थे और सारे अङ्ग रक्तसे भींग गये थे। उस दशामें वे कर्ण और भीमसेन केंचुल छोड़कर निकले हुए दो सर्पोंके समान शोभा पाने लगे। जैसे दो व्याघ्र अपनी दाढ़ोंसे एक दूसरेपर चोट करते हैं, उसी प्रकार वे दोनों पुरुषव्याघ्र योद्धा परस्पर प्रहार कर रहे थे। वे दोनों वीर दो मेघोंके समान बाणधाराकी वर्षा कर रहे थे ॥ २९-३० ॥

वारणाविव चान्योन्यं विषाणाभ्यामरिंदमौ।
निर्भिन्दन्तौ स्वगात्राणि सायकैश्चारु रेजतुः ॥ ३१ ॥

जैसे दो हाथी अपने दाँतोंसे एक दूसरेपर आघात करते हैं, उसी प्रकार वे शत्रुदमन वीर अपने बाणोंद्वारा एक दूसरेके शरीरोंको विदीर्ण करते हुए सुशोभित हो रहे थे ॥

नादयन्तौ प्रहर्षन्तौ विक्रीडन्तौ परस्परम्।
मण्डलानि विकुर्वाणौ रथाभ्यां रथसत्तमौ ॥ ३२ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ भीम और कर्ण सिंहनाद करते, अत्यन्त हर्षसे उत्फुल्ल हो उठते और आपसमें खेल-सा करते हुए रथोंद्वारा मण्डलगतिसे विचरते थे ॥ ३२ ॥

वृषाविवाथ नर्दन्तौ बलिनौ वासितान्तरे।
सिंहाविव पराक्रान्तौ नरसिंहौ महाबलौ ॥ ३३ ॥
परस्परं वीक्षमाणौ क्रोधसंरक्तलोचनौ।
युयुधाते महावीर्यौ शक्रवैरोचनी यथा ॥ ३४ ॥

जैसे गायके लिये दो बलवान् साँड़ गरजते हुए लड़ जाते हैं, उसी प्रकार वे सिंहके समान पराक्रमी महान् बलशाली पुरुषसिंह कर्ण और भीम क्रोधसे लाल आँखें करके एक दूसरेको देखते हुए महापराक्रमी इन्द्र और बलिके समान युद्ध कर रहे थे ॥ ३३-३४ ॥

ततो भीमो महाबाहुर्बाहुभ्यां विक्षिपन् धनुः।
व्यराजत रणे राजन्सविद्युदिव तोयदः ॥ ३५ ॥

राजन्! उस रणक्षेत्रमें महाबाहु भीमसेन अपनी भुजाओंसे धनुषकी टंकार करते हुए बिजलीसहित मेघके समान शोभा पा रहे थे ॥ ३५ ॥

स नेमिघोषस्तनितश्चापविद्युच्छराम्बुभिः।
भीमसेनमहामेघः कर्णपर्वतमावृणोत् ॥ ३६ ॥

रथके पहियोंकी घरघराहट जिसकी गम्भीर गर्जना थी और धनुष ही विद्युत्के समान प्रकाशित होता था, भीमसेनरूपी उस महामेघने बाणरूपी जलकी वर्षासे कर्णरूपी पर्वतको ढक दिया ॥ ३६ ॥

ततः शरसहस्रेण सम्यगस्तेन भारत।
पाण्डवो व्यकिरत् कर्णं भीमो भीमपराक्रमः ॥ ३७ ॥

भरतनन्दन! तदनन्तर अच्छी तरह चलाये हुए सहस्रों बाणोंसे भयंकर पराक्रमी पाण्डुपुत्र भीमने कर्णको आच्छादित कर दिया ॥ ३७ ॥

तत्रापश्यंस्तव सुता भीमसेनस्य विक्रमम्।
सुपुङ्खैः कङ्कवासोभिर्यत् कर्णं छादयच्छरैः ॥ ३८ ॥

आपके पुत्रोंने वहाँ भीमसेनका यह अद्भुत पराक्रम देखा कि उन्होंने कङ्कपत्रयुक्त सुन्दर पंखवाले बाणोंसे कर्णको आच्छादित कर दिया ॥ ३८ ॥

स नन्दयन् रणे पार्थं केशवं च यशस्विनम्।
सात्यकिं चक्ररक्षौ च भीमः कर्णमयोधयत् ॥ ३९ ॥

भीमसेन रणक्षेत्रमें कुन्तीकुमार अर्जुन, यशस्वी श्रीकृष्ण, सात्यकि तथा दोनों चक्ररक्षक युधामन्यु एवं उत्तमौजाको आनन्दित करते हुए कर्णके साथ युद्ध कर रहे थे ॥ ३९ ॥

विक्रमं भुजयोर्वीर्यं धैर्यं च विदितात्मनः।
पुत्रास्तव महाराज दृष्ट्वा विमनसोऽभवन् ॥ ४० ॥

महाराज ! सुविख्यात भीमसेनके पराक्रम, बाहुबल और धैर्यको देखकर आपके सभी पुत्र उदास हो गये ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमयुद्धे षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भीमसेनका युद्धविषयक एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३६ ॥

सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेन और कर्णका युद्ध तथा दुर्योधनके सात भाइयोंका वध

संजय उवाच

भीमसेनस्य राधेयः श्रुत्वा ज्यातलनिःस्वनम्।
नामृष्यत यथा मत्तो गजः प्रतिगजस्वनम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! भीमसेनके धनुषकी टंकार सुनकर राधानन्दन कर्ण उसे सहन न कर सका। जैसे मतवाला हाथी अपने प्रतिपक्षी गजराजकी गर्जनाको नहीं सहन कर पाता ॥ १ ॥

सोऽपक्रम्य मुहूर्तं तु भीमसेनस्य गोचरात्।
पुत्रांस्तव ददर्शाथ भीमसेनेन पातितान् ॥ २ ॥

उसने थोड़ी देरके लिये भीमसेनकी दृष्टिसे दूर हटनेपर देखा कि भीमसेनने आपके पुत्रोंको मार गिराया है ॥ २ ॥

तानवेक्ष्य नरश्रेष्ठ विमना दुःखितस्तदा।
निःश्वसन् दीर्घमुष्णं च पुनः पाण्डवमभ्ययात् ॥ ३ ॥

नरश्रेष्ठ ! उनकी वह अवस्था देखकर उस समय कर्णको बहुत दुःख हुआ। उसका मन उदास हो गया। वह गरम-गरम लंबी साँस खींचता हुआ पुनः पाण्डुनन्दन भीमसेनके सामने आया ॥ ३ ॥

स ताम्रनयनः क्रोधाच्छ्वसन्निव महोरगः।
बभौ कर्णः शरानस्यन् रश्मीनिव दिवाकरः ॥ ४ ॥

उसकी आँखें क्रोधसे लाल हो रही थीं और वह फुफकारते हुए महान् सर्पके समान उच्छ्वास खींच रहा था। उस समय बाणोंकी वर्षा करता हुआ कर्ण अपनी किरणोंका प्रसार करते हुए सूर्यदेवके समान शोभा पा रहा था ॥ ४ ॥

किरणैरिव सूर्यस्य महीध्रो भरतर्षभ।
कर्णचापच्युतैर्बाणैः प्राच्छाद्यत वृकोदरः ॥ ५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! जैसे सूर्यकी किरणोंसे पर्वत ढक जाता है, उसी प्रकार कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा भीमसेन आच्छादित हो गये ॥ ५ ॥

ते कर्णचापप्रभवाः शरा बर्हिणवाससः।
विविशुः सर्वतः पार्थं वासायेवाण्डजा द्रुमम् ॥ ६ ॥

कर्णके धनुषसे छूटे हुए वे मयूरपंखधारी बाण सब ओरसे आकर भीमसेनके शरीरमें उसी प्रकार घुसने लगे, जैसे पक्षी बसेरा लेनेके लिये वृक्षोंपर आ जाते हैं ॥ ६ ॥

कर्णचापच्युता बाणाः सम्पतन्तस्ततस्ततः।
रुक्मपुङ्खा व्यराजन्त हंसाः श्रेणीकृता इव ॥ ७ ॥

कर्णके धनुषसे छूटकर इधर-उधर पड़नेवाले सुवर्णपंखयुक्त बाण श्रेणीबद्ध हंसोंके समान शोभा पा रहे थे ॥ ७ ॥

चापध्वजोपस्करेभ्यश्छत्रादीषामुखाद् युगात्।
प्रभवन्तो व्यदृश्यन्त राजन्नाधिरथेः शराः ॥ ८ ॥

राजन् ! उस समय अधिरथपुत्र कर्णके बाण केवल धनुषसे ही नहीं, ध्वज आदि अन्य समानोंसे, छत्रसे, ईषादण्ड आदिसे तथा रथके जूएसे भी प्रकट होते दिखायी देते थे ॥ ८ ॥

खं पूरयन् महावेगान् खगमान् गृध्रवाससः।
सुवर्णविकृतांश्चित्रान् मुमोचाधिरथिः शरान् ॥ ९ ॥

अधिरथपुत्र कर्णने अन्तरिक्षको व्याप्त करते हुए महान् वेगशाली, आकाशमें विचरनेवाले गृध्रके पंखोंसे युक्त और सुवर्णके बने हुए विचित्र बाण चलाये ॥ ९ ॥

तमन्तकमिवायस्तमापतन्तं वृकोदरः।
त्यक्त्वा प्राणानतिक्रम्य विव्याध निशितैः शरैः ॥ १० ॥

कर्णको यमराजके समान आयासयुक्त हो आते देख भीमसेन प्राणोंका मोह छोड़कर पराक्रमपूर्वक उसे पैने बाणोंद्वारा बींधने लगे ॥ १० ॥

तस्य वेगमसह्यं स दृष्ट्वा कर्णस्य पाण्डवः।
महतश्च शरौघांस्तान् न्यवारयत वीर्यवान् ॥ ११ ॥

पराक्रमी पाण्डुपुत्र भीमने कर्णके वेगको असह्य देखकर उसके महान् बाणसमूहोंका निवारण किया ॥ ११ ॥

ततो विधम्याधिरथेः शरजालानि पाण्डवः।
विव्याध कर्णं विंशत्या पुनरन्यैः शिलाशितैः ॥ १२ ॥

पाण्डुकुमार भीमने अधिरथपुत्रके बाणसमूहोंका निवारण

करके शिलापर चढ़ाकर तेज किये हुए बीस अन्य बाणोंद्वारा कर्णको घायल कर दिया ॥ १२ ॥

यथैव हि स कर्णेन पार्थः प्रच्छादितः शरैः।
तथैव स रणे कर्णं छादयामास पाण्डवः ॥ १३ ॥

जैसे कर्णने अपने बाणोंद्वारा भीमसेनको आच्छादित किया था, उसी प्रकार पाण्डुपुत्र भीमने भी कर्णको ढक दिया ॥ १३ ॥

दृष्ट्वा तु भीमसेनस्य विक्रमं युधि भारत।
अभ्यनन्दंस्त्वदीयाश्च सम्प्रहृष्टाश्च चारणाः ॥ १४ ॥

भरतनन्दन ! युद्धमें भीमसेनका वह पराक्रम देखकर आपके योद्धाओं तथा चारणोंने भी प्रसन्न होकर उनका अभिनन्दन किया ॥ १४ ॥

भूरिश्रवाः कृपो द्रौणिर्मद्रराजो जयद्रथः।
उत्तमौजा युधामन्युः सात्यकिः केशवार्जुनौ ॥ १५ ॥
कुरुपाण्डवप्रवरा दश राजन् महारथाः।
साधु साध्विति वेगेन सिंहनादमथानदन् ॥ १६ ॥

राजन् ! भूरिश्रवा, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, मद्रराज शल्य, जयद्रथ, उत्तमौजा, युधामन्यु, सात्यकि, श्रीकृष्ण तथा अर्जुन—ये कौरव और पाण्डव-पक्षके दस श्रेष्ठ महारथी 'साधु-साधु' कहकर वेगपूर्वक सिंहनाद करने लगे ॥१५-१६॥

तस्मिन् समुत्थिते शब्दे तुमुले लोमहर्षणे।
अभ्यभाषत पुत्रस्ते राजन् दुर्योधनस्त्वरन् ॥ १७ ॥
राज्ञः सराजपुत्रांश्च सोदर्यांश्च विशेषतः।
कर्णं गच्छत भद्रं वः परीप्सन्तो वृकोदरात् ॥ १८ ॥

महाराज ! उस रोमाञ्चकारी भयंकर शब्दके प्रकट होनेपर आपके पुत्र राजा दुर्योधनने बड़ी उतावलीके साथ राजाओं, राजकुमारों और विशेषतः अपने भाइयोंसे कहा—'तुम्हारा कल्याण हो, तुम सब लोग भीमसेनसे कर्णकी रक्षा करनेके लिये जाओ ॥ १७-१८ ॥

पुरा निघ्नन्ति राधेयं भीमचापच्युताः शराः।
ते यतध्वं महेष्वासाः सूतपुत्रस्य रक्षणे ॥ १९ ॥

'कहीं ऐसा न हो कि भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए बाण राधानन्दन कर्णको पहले ही मार डालें । अतः महाधनुर्धर वीरो ! तुम सब लोग सूतपुत्रकी रक्षाका प्रयत्न करो' ॥१९॥

दुर्योधनसमादिष्टाः सोदर्याः सप्त भारत।
भीमसेनमभिद्रुत्य संरब्धाः पर्यवारयन् ॥ २० ॥

भारत ! दुर्योधनकी आज्ञा पाकर उसके सात भाइयोंने कुपित हो भीमसेनपर आक्रमण करके उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ॥ २० ॥

ते समासाद्य कौन्तेयमावृण्वञ्छरवृष्टिभिः।
पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकाः ॥ २१ ॥

जैसे वर्षाऋतुमें मेघ पर्वतपर जलकी धाराएँ बरसाते हैं, उसी प्रकार उन कौरवोंने कुन्तीकुमारके समीप जाकर उन्हें अपने बाणोंकी वर्षासे आच्छादित कर दिया ॥ २१ ॥

तेऽपीडयन् भीमसेनं क्रुद्धाः सप्त महारथाः।
प्रजासंहरणे राजन् सोमं सप्त ग्रहा इव ॥ २२ ॥

राजन् ! उन सात महारथियोंने कुपित हो भीमसेनको उसी प्रकार पीड़ा दी, जैसे सात ग्रह प्रजाओंके संहारकालमें सोमको पीड़ा देते हैं ॥ २२ ॥

ततो वेगेन कौन्तेयः पीडयित्वा शरासनम्।
मुष्टिना पाण्डवो राजन् दृढेन सुपरिष्कृतम् ॥ २३ ॥
मनुष्यसमतां ज्ञात्वा सप्त संधाय सायकान्।
तेभ्यो व्यसृजदायस्तः सूर्यरश्मिनिभान् प्रभुः ॥ २४ ॥

महाराज ! तब कुन्तीकुमार पाण्डुपुत्र भीमने अत्यन्त स्वच्छ धनुषको सुदृढ़ मुट्ठीसे वेगपूर्वक दबाकर उन सातों भाइयोंको साधारण मनुष्य जानकर उनके लिये धनुषपर सात बाणोंका संधान किया। सूर्यकिरणोंके समान उन चमकीले बाणोंको शक्तिशाली भीमने परिश्रमपूर्वक आपके उन पुत्रोंपर छोड़ दिया ॥ २३-२४ ॥

निरस्यन्निव देहेभ्यस्तनयानामसूंस्तव।
भीमसेनो महाराज पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ २५ ॥

नरेश्वर ! पहलेके वैरका बारंबार स्मरण करके भीमसेनने आपके पुत्रोंके प्राणोंको उनके शरीरोंसे निकालते हुए-से उन बाणोंका प्रहार किया था ॥ २५ ॥

ते क्षिप्ता भीमसेनेन शरा भारत भारतान्।
विदार्य खं समुत्पेतुः स्वर्णपुङ्खाः शिलाशिताः ॥ २६ ॥

भारत ! भीमसेनके चलाये हुए वे बाण सुवर्णमय पंखोंसे सुशोभित तथा शिलापर तेज किये गये थे। वे आपके पुत्रोंको विदीर्ण करके आकाशमें उड़ चले ॥ २६ ॥

तेषां विदार्य चेतांसि शरा हेमविभूषिताः।
व्यराजन्त महाराज सुपर्णा इव खेचराः ॥ २७ ॥

महाराज ! वे स्वर्णविभूषित बाण उन सातों भाइयोंके वक्षःस्थलको विदीर्ण करके आकाशमें विचरनेवाले गरुड़पक्षियोंके समान शोभा पाने लगे ॥ २७ ॥

शोणितादिग्धवाजाग्राः सप्त हेमपरिष्कृताः।
पुत्राणां तव राजेन्द्र पीत्वा शोणितमुद्गताः ॥ २८ ॥

राजेन्द्र ! वे सुवर्णभूषित सातों बाण आपके पुत्रोंका रक्त पीकर लाल हो ऊपरको उछले थे। उनके पंख और अग्रभागोंपर अधिक रक्त जम गया था ॥ २८ ॥

ते शरैर्भिन्नमर्माणो रथेभ्यः प्रापतन् क्षितौ।
गिरिसानुरुहा भग्ना द्विपेनेव महाद्रुमाः ॥ २९ ॥

उन बाणोंसे मर्मस्थल विदीर्ण हो जानेके कारण वे सातों

वीर रथोंसे पृथ्वीपर गिर पड़े, मानो किसी हाथीने पर्वतके शिखरपर खड़े हुए विशाल वृक्षोंको तोड़ गिराया हो ॥२९॥

शत्रुंजयः शत्रुसहश्चित्रश्चित्रायुधो दृढः।
चित्रसेनो विकर्णश्च सप्तैते विनिपातिताः ॥ ३० ॥

शत्रुञ्जय[1], शत्रुसह, चित्र (चित्रवाण), चित्रायुध (अग्रायुध), दृढ़ (दृढवर्मा), चित्रसेन (उग्रसेन) और विकर्ण—इन सातों भाइयोंको भीमसेनने मार गिराया ॥

पुत्राणां तव सर्वेषां निहतानां वृकोदरः।
शोचत्यतिभृशं दुःखाद् विकर्णं पाण्डवः प्रियम् ॥३१॥

राजन्! वहाँ मारे गये आपके सभी पुत्रोंमेंसे विकर्ण पाण्डवोंको अधिक प्रिय था। पाण्डुनन्दन भीमसेन उसके लिये अत्यन्त दुखी होकर शोक करने लगे ॥ ३१ ॥

प्रतिज्ञेयं मया वृत्ता निहन्तव्यास्तु संयुगे।
विकर्ण तेनासि हतः प्रतिज्ञा रक्षिता मया ॥ ३२ ॥

वे बोले—'विकर्ण! मैंने यह प्रतिज्ञा कर रक्खी थी कि युद्धस्थलमें धृतराष्ट्रके सभी पुत्रोंको मार डालूँगा! इसीलिये तुम मेरे हाथसे मारे गये हो। ऐसा करके मैंने अपनी प्रतिज्ञाका पालन किया है ॥ ३२ ॥

त्वमागाः समरं वीर क्षात्रधर्ममनुस्मरन्।
ततो विनिहतः संख्ये युद्धधर्मो हि निष्ठुरः ॥ ३३ ॥

'वीर! तुम क्षत्रिय-धर्मका विचार करके समरभूमिमें आ गये। इसीलिये इस युद्धमें मारे गये; क्योंकि युद्धधर्म कठोर होता है ॥ ३३ ॥

विशेषतो हि नृपतेस्तथास्माकं हिते रतः।
न्यायतोऽन्यायतो वापि हतः शेते महाद्युतिः ॥ ३४ ॥
अगाधबुद्धिर्गाङ्गेयः क्षितौ सुरगुरोः समः।
त्याजितः समरे प्राणांस्तस्माद् युद्धं हि निष्ठुरम् ॥३५॥

'जो विशेषतः राजा युधिष्ठिरके और हमारे हितमें तत्पर रहते थे, वे बृहस्पतिके समान अगाध बुद्धिवाले महातेजस्वी गङ्गानन्दन भीष्म भी न्याय अथवा अन्यायसे मारे जाकर समरभूमिमें सो रहे हैं और प्राणत्यागकी परिस्थितिमें डाल दिये गये हैं। इसीसे कहना पड़ता है कि युद्ध अत्यन्त निष्ठुर कर्म है' ॥ ३४-३५ ॥

संजय उवाच

तान् निहत्य महाबाहू राधेयस्यैव पश्यतः।
सिंहनादरवं घोरमसृजत् पाण्डुनन्दनः ॥ ३६ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! राधानन्दन कर्णके देखते-देखते उन सातों भाइयोंको मारकर पाण्डुनन्दन महाबाहु भीमने भयंकर सिंहनाद किया ॥ ३६ ॥

स रवस्तस्य शूरस्य धर्मराजस्य भारत।
आचख्याविव तद् युद्धं विजयं चात्मनो महत् ॥३७॥

भारत! उस सिंहनादने धर्मराज युधिष्ठिरको शूरवीर भीमके उस युद्धकी तथा अपनी महान् विजयकी मानो सूचना दे दी ॥ ३७ ॥

तं श्रुत्वा तु महानादं भीमसेनस्य धन्विनः।
बभूव परमा प्रीतिर्धर्मराजस्य धीमतः ॥ ३८ ॥

धनुर्धर भीमसेनके उस महानादको सुनकर बुद्धिमान् धर्मराज युधिष्ठिरको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ३८ ॥

ततो हृष्टमना राजन् वादित्राणां महास्वनैः।
सिंहनादरवं भ्रातुः प्रतिजग्राह पाण्डवः ॥ ३९ ॥

राजन्! तब प्रसन्नचित्त होकर युधिष्ठिरने वाद्योंकी गम्भीर ध्वनिके द्वारा भाईके उस सिंहनादको स्वागतपूर्वक ग्रहण किया ॥ ३९ ॥

हर्षेण महता युक्तः कृतसंज्ञो वृकोदरे।
अभ्ययात् समरे द्रोणं सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ४० ॥

इस प्रकार भीमसेनको अपनी प्रसन्नताका संकेत करके सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरने बड़े हर्षके साथ रणभूमिमें द्रोणाचार्यपर आक्रमण किया ॥ ४० ॥

एकत्रिंशन्महाराज पुत्रांस्तव निपातितान्।
हतान् दुर्योधनो दृष्ट्वा क्षत्तुः सस्मार तद् वचः ॥४१॥

महाराज! आपके इकतीस (दुःशलको लेकर बत्तीस) पुत्रोंको मारा गया देखकर दुर्योधनको विदुरजीकी कही हुई बात याद आ गयी ॥ ४१ ॥

तदिदं समनुप्राप्तं क्षत्तुर्निःश्रेयसं वचः।
इति संचिन्त्य ते पुत्रो नोत्तरं प्रत्यपद्यत ॥ ४२ ॥

विदुरजीने जो कल्याणकारी वचन कहा था, उसके अनुसार ही यह संकट प्राप्त हुआ है। ऐसा सोचकर आपके पुत्रसे कोई उत्तर देते न बना ॥ ४२ ॥

यद् द्यूतकाले दुर्बुद्धिरब्रवीत् तनयस्तव।
सभामानाय्य पाञ्चालीं कर्णेन सहितोऽल्पधीः॥ ४३ ॥
यच्च कर्णोऽब्रवीत् कृष्णां सभायां परुषं वचः।
प्रमुखे पाण्डुपुत्राणां तव चैव विशाम्पते ॥ ४४ ॥
शृण्वतस्तव राजेन्द्र कौरवाणां च सर्वशः।
विनष्टाः पाण्डवाः कृष्णे शाश्वतं नरकं गताः ॥ ४५ ॥
पतिमन्यं वृणीष्वेति तस्येदं फलमागतम्।

द्यूतके समय कर्णके साथ आपके मन्दमति पुत्र दुर्बुद्धि दुर्योधनने पाञ्चालराजकुमारी द्रौपदीको सभामें बुलाकर उसके प्रति जो दुर्वचन कहा था तथा प्रजानाथ! महाराज! पाण्डवों और आपके सामने समस्त कौरवोंके सुनते हुए कर्णने सभामें द्रौपदीके प्रति जो यह कठोर वचन कहा था कि 'कृष्णे! पाण्डव नष्ट हो गये। सदाके लिये नरकमें पड़ गये। तू दूसरा पति कर ले', उसी अन्यायका आज यह फल प्राप्त हुआ है ॥ ४३—४५½ ॥

यच्च षण्ढतिलादीनि परुषाणि तवात्मजैः।
श्रावितास्ते महात्मानः पाण्डवाः कोपयिष्णुभिः॥ ४६ ॥

१. किसी-किसी प्रतिमें शत्रुंजय और शत्रुसह—इन दो नामोंके स्थानमें क्रमशः 'दृढसन्ध' और 'जरासन्ध' नाम मिलते हैं।

तं भीमसेनः क्रोधाग्निं त्रयोदश समाः स्थितम् ।
उद्गिरंस्तव पुत्राणामन्तं गच्छति पाण्डवः ॥ ४७ ॥

आपके पुत्रोंने जो पाण्डवोंको कुपित करनेके लिये षण्ढतिल (सारहीन तिल या नपुंसक) आदि कठोर बातें उन महामनस्वी पाण्डवोंको सुनायी थीं, उसके कारण पाण्डु-पुत्र भीमसेनके हृदयमें तेरह वर्षोंतक जो क्रोधाग्नि धधकती रही है, उसीको निकालते हुए भीमसेन आपके पुत्रोंका अन्त कर रहे हैं ॥ ४६-४७ ॥

विलपंश्च बहु क्षत्ता शमं नालभत त्वयि ।
सपुत्रो भरतश्रेष्ठ तस्य भुङ्क्ष्व फलोदयम् ॥ ४८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! विदुरजीने आपके समीप बहुत विलाप किया, परंतु उन्हें शान्तिकी भिक्षा नहीं प्राप्त हुई । आपके उसी अन्यायका यह फल प्रकट हुआ है । अब आप पुत्रों-सहित इसे भोगिये ॥ ४८ ॥

त्वया वृद्धेन धीरेण कार्यतत्त्वार्थदर्शिना ।
न कृतं सुहृदां वाक्यं दैवमत्र परायणम् ॥ ४९ ॥

आप वृद्ध हैं, धीर हैं, कार्यके तत्त्व और प्रयोजनको देखते और समझते हैं, तो भी आपने हितैषी सुहृदोंकी बातें नहीं मानीं । इसमें दैव ही प्रधान कारण है ॥ ४९ ॥

तन्मा शुचो नरव्याघ्र तवैवापनयो महान् ।
विनाशहेतुः पुत्राणां भवानेव मतो मम ॥ ५० ॥

अतः नरश्रेष्ठ ! आप शोक न कीजिये । इसमें आपका ही महान् अन्याय कारण है । मैं तो आपको ही आपके पुत्रों-के विनाशका मुख्य हेतु मानता हूँ ॥ ५० ॥

हतो विकर्णो राजेन्द्र चित्रसेनश्च वीर्यवान् ।
प्रवराश्चात्मजानां ते सुताश्चान्ये महारथाः ॥ ५१ ॥

राजेन्द्र ! विकर्ण मारा गया । पराक्रमी चित्रसेनको भी प्राणोंका त्याग करना पड़ा । आपके पुत्रोंमें जो प्रमुख थे, वे तथा अन्य महारथी भी कालके गालमें चले गये ॥ ५१॥

यानन्यान् ददृशे भीमश्चक्षुर्विषयमागतान् ।
पुत्रांस्तव महाराज त्वरया ताञ्जघान ह ॥ ५२॥

महाराज ! भीमसेनने अपने नेत्रोंके सामने आये हुए जिन-जिन पुत्रोंको देखा, उन सबको तुरंत ही मार डाला॥

त्वत्कृते ह्यहमद्राक्षं दह्यमानां वरूथिनीम् ।
सहस्रशः शरैर्मुक्तैः पाण्डवेन वृषेण च ॥ ५३॥

आपके ही कारण मैंने भीमसेन और कर्णके छोड़े हुए हजारों बाणोंसे राजाओंकी विशाल सेना दग्ध होती देखी है॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमयुद्धे सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भीमसेनयुद्धविषयक एक सौ सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१३७ ॥

अष्टात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेन और कर्णका भयंकर युद्ध

धृतराष्ट्र उवाच

महानपनयः सूत ममैवात्र विशेषतः ।
स इदानीमनुप्राप्तो मन्ये संजय शोचतः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले--सूत संजय ! इसमें विशेषतः मेरा ही अन्याय है—यह मैं स्वीकार करता हूँ । इस समय शोकमें डूबे हुए मुझको मेरे उसी अन्यायका फल प्राप्त हुआ है ॥

यद् गतं तद् गतमिति ममासीन्मनसि स्थितम् ।
इदानीमत्र किं कार्यं प्रकरिष्यामि संजय ॥ २ ॥

संजय ! अबतक मेरे मनमें यह बात थी कि जो बीत गया, सो बीत गया । उसके लिये चिन्ता करना व्यर्थ है । परंतु अब यहाँ इस समय मेरा क्या कर्तव्य है, उसे बताओ । मैं उसका पालन अवश्य करूँगा ॥ २ ॥

यथा ह्येष क्षयो वृत्तो ममापनयसम्भवः ।
वीराणां तन्ममाचक्ष्व स्थिरीभूतोऽस्मि संजय ॥ ३ ॥

सूत ! मेरे अन्यायसे वीरोंका जो यह विनाश हुआ है, वह सब कह सुनाओ । मैं धैर्य धारण करके बैठा हूँ ॥ ३ ॥

संजय उवाच

कर्णभीमौ महाराज पराक्रान्तौ महाबलौ ।
बाणवर्षाण्यसृजतां वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ ॥ ४ ॥

संजयने कहा—महाराज ! जलकी वर्षा करनेवाले दो बादलोंके समान महाबली, महापराक्रमी कर्ण और भीमसेन परस्पर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४ ॥

भीमनामाङ्किता बाणाः स्वर्णपुङ्खाः शिलाशिताः ।
विविशुः कर्णमासाद्य छिन्दन्त इव जीवितम्॥ ५ ॥

जिनपर भीमसेनके नाम खुदे हुए थे, वे शिलापर तेज किये हुए स्वर्णमय पंखयुक्त बाण कर्णके पास पहुँचकर उसके जीवनका उच्छेद करते हुए-से उसके शरीरमें घुस गये॥

तथैव कर्णनिर्मुक्ताः शरा बर्हिणवाससः ।
छादयाञ्चक्रिरे वीरं शतशोऽथ सहस्रशः॥ ६ ॥

इसी प्रकार कर्णके छोड़े हुए मयूरपंखवाले सैकड़ों और हजारों बाणोंने वीर भीमसेनको आच्छादित कर दिया॥

तयोः शरैर्महाराज सम्पतद्भिः समन्ततः ।
बभूव तत्र सैन्यानां संक्षोभः सागरोत्तरः ॥ ७ ॥

महाराज ! चारों ओर गिरते हुए उन दोनोंके बाणोंसे वहाँकी सेनाओंमें समुद्रसे भी बढ़कर महान् क्षोभ होने लगा ॥७॥

भीमचापच्युतैर्बाणैस्तव सैन्यमरिंदम।
अवध्यत चमूमध्ये घोरैराशीविषोपमैः ॥ ८ ॥

शत्रुदमन! भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए विषधर सर्पोंके समान भयंकर बाणोंद्वारा सेनाके मध्यभागमें आपके सैनिकोंका वध हो रहा था ॥ ८ ॥

वारणैः पतितै राजन् वाजिभिश्च नरैः सह।
अदृश्यत मही कीर्णा वातभग्नैरिव द्रुमैः ॥ ९ ॥

राजन्! वहाँ गिरे हुए हाथियों, घोड़ों और पैदल मनुष्योंद्वारा ढकी हुई वह रणभूमि आँधीके उखाड़े हुए वृक्षोंसे आच्छादित-सी दिखायी देती थी ॥ ९ ॥

ते वध्यमानाः समरे भीमचापच्युतैः शरैः।
प्राद्रवंस्तावका योधाः किमेतदिति चाब्रुवन् ॥ १० ॥

भीमसेनके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा समराङ्गणमें मारे जाते हुए आपके सैनिक भाग चले और आपसमें कहने लगे, अरे! यह क्या हुआ ॥ १० ॥

ततो व्युदस्तं तत् सैन्यं सिन्धुसौवीरकौरवम्।
प्रोत्सारितं महावेगैः कर्णपाण्डवयोः शरैः ॥ ११ ॥

इस प्रकार कर्ण और भीमसेनके महान् वेगशाली बाणोंद्वारा सिन्धु, सौवीर और कौरवदलकी वह सेना उखड़ गयी और वहाँसे भाग खड़ी हुई ॥ ११ ॥

ते शूरा हतभूयिष्ठा हताश्वरथवारणाः।
उत्सृज्य भीमकर्णौ च सर्वतो व्यद्रवन् दिशः ॥ १२ ॥

वे शूरवीर सैनिक जिनमें बहुत-से लोग मारे गये थे तथा जिनके हाथी, घोड़े और रथ नष्ट हो चुके थे, भीमसेन और कर्णको छोड़कर सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गये ॥ १२ ॥

नूनं पार्थार्थमेवास्मान् मोहयन्ति दिवौकसः।
यत् कर्णभीमप्रभवैर्वध्यते नो बलं शरैः ॥ १३ ॥

'अवश्य ही कुन्तीकुमारोंके हितके लिये ही देवता हमें मोहमें डाल रहे हैं; क्योंकि कर्ण और भीमसेनके बाणोंसे वे हमारी सेनाका वध कर रहे हैं' ॥ १३ ॥

एवं ब्रुवाणा योधास्ते तावका भयपीडिताः।
शरपातं समुत्सृज्य स्थिता युद्धदिदृक्षवः ॥ १४ ॥

ऐसा कहते हुए आपके योद्धा भयसे पीड़ित हो बाण मारनेका कार्य छोड़कर युद्धके दर्शक बनकर खड़े हो गये ॥

ततः प्रावर्तत नदी घोररूपा रणाजिरे।
शूराणां हर्षजननी भीरूणां भयवर्धिनी ॥ १५ ॥

तदनन्तर रणभूमिमें रक्तकी भयंकर नदी बह चली, जो शूरवीरोंको हर्ष देनेवाली और भीरु पुरुषोंका भय बढ़ानेवाली थी ॥ १५ ॥

वारणाश्वमनुष्याणां रुधिरौघसमुद्भवा।
संवृता गतसत्त्वैश्च मनुष्यगजवाजिभिः ॥ १६ ॥

हाथी, घोड़े और मनुष्योंके रुधिरसमूहसे उस नदीका प्राकट्य हुआ था। वह प्राणशून्य मनुष्यों, हाथियों और घोड़ोंसे घिरी हुई थी ॥ १६ ॥

सानुकर्षपताकैश्च द्विपाश्वरथभूषणैः।
स्यन्दनैरपविद्धैश्च भग्नचक्राक्षकूबरैः ॥ १७ ॥
जातरूपपरिष्कारैर्धनुर्भिः सुमहास्वनैः।
सुवर्णपुङ्खैरिषुभिर्नाराचैश्च सहस्रशः ॥ १८ ॥
कर्णपाण्डवनिर्मुक्तैर्निर्मुक्तैरिव पन्नगैः।
प्रासतोमरसंघातैः खड्गैश्च सपरश्वधैः ॥ १९ ॥
सुवर्णविकृतैश्चापि गदामुसलपट्टिशैः।
ध्वजैश्च विविधाकारैः शक्तिभिः परिघैरपि ॥ २० ॥
शतघ्नीभिश्च चित्राभिर्बभौ भारत मेदिनी।

भारत! उस समय अनुकर्ष, पताका, हाथी, घोड़े, रथ, आभूषण, टूटकर बिखरे पड़े हुए स्यन्दन (रथ), टूक-टूक हुए पहिये, धुरी और कूबर, सुवर्णभूषित एवं महान् टङ्कार शब्द करनेवाले धनुष, सोनेके पंखवाले बाण, केंचुल छोड़कर निकले हुए सर्पोंके समान कर्ण और भीमसेनके छोड़े हुए सहस्रों नाराच, प्रास, तोमर, खड्ग, फरसे, सोनेकी गदा, मुसल, पट्टिश, भाँति-भाँतिके ध्वज, शक्ति, परिघ और विचित्र शतघ्नी आदिसे उस रणभूमिकी अद्भुत शोभा हो रही थी ॥ १७–२०½ ॥

कनकाङ्गदहारैश्च कुण्डलैर्मुकुटैस्तथा ॥ २१ ॥
वलयैरपविद्धैश्च तत्रैवाङ्गुलिवेष्टकैः।
चूडामणिभिरुष्णीषैः स्वर्णसूत्रैश्च मारिष ॥ २२ ॥
तनुत्रैः सतलत्रैश्च हारैर्निष्कैश्च भारत।
वस्त्रैश्छत्रैश्च विध्वस्तैश्चामरव्यजनैरपि ॥ २३ ॥
गजाश्वमनुजैर्भिन्नैः शोणिताक्तैश्च पत्रिभिः।
तैस्तैश्च विविधैर्भिन्नैस्तत्र तत्र वसुंधरा ॥ २४ ॥
पतितैरपविद्धैश्च विबभौ द्यौरिव ग्रहैः।

माननीय भरतनन्दन! इधर-उधर पड़े हुए सोनेके अङ्गद, हार, कुण्डल, मुकुट, वलय, अंगूठी, चूड़ामणि, उष्णीष, सुवर्णमय सूत्र, कवच, दस्ताने, हार, निष्क, वस्त्र, छत्र, टूटे हुए चँवर, व्यजन, विदीर्ण हुए हाथी, घोड़े, मनुष्य, खूनसे लथपथ हुए पंखयुक्त बाण आदि नाना प्रकारकी छिन्न-भिन्न, पतित और फेंकी हुई वस्तुओंसे वहाँकी भूमि ग्रहोंसे आकाशकी भाँति सुशोभित हो रही थी ॥ २१–२४½ ॥

अचिन्त्यमद्भुतं चैव तयोः कर्मातिमानुषम् ॥ २५ ॥
दृष्ट्वा चारणसिद्धानां विस्मयः समजायत।

उन दोनोंके उस अचिन्त्य, अलौकिक और अद्भुत कर्मको देखकर चारणों और सिद्धोंके मनमें भी महान् विस्मय हो गया ॥ २५½ ॥

अग्नेर्वायुसहायस्य गतिः कक्ष इवाहवे ॥ २६ ॥
आसीद् भीमसहायस्य रौद्रमाधिरथेर्गतम् ।

जैसे वायुकी सहायता पाकर सूखे वनमें तथा घास-फूँसमें अग्निकी गति बढ़ जाती है, उसी प्रकार उस महायुद्धमें भीमसेनके साथ सूतपुत्र कर्णकी भयंकर गति बढ़ गयी थी ॥ २६½ ॥

निपातितध्वजरथं हतवाजिनरद्विपम् ॥ २७ ॥
गजाभ्यां सम्प्रयुक्ताभ्यामासीन्नलवनं यथा ।
मेघजालनिभं सैन्यमासीत् तव नराधिप ॥ २८ ॥
विमर्दः कर्णभीमाभ्यामासीच्च परमो रणे ।

नरेश्वर! जैसे दो हाथी किसीसे प्रेरित होकर नरकुलके वनको रौंद डालते हैं, उसी प्रकार मेघोंकी घटाके समान आपकी सेना बड़ी दुरवस्थामें पड़ गयी थी। उसके रथ और ध्वज गिराये जा चुके थे। हाथी, घोड़े और मनुष्य मारे गये थे। कर्ण और भीमसेनने उस युद्धस्थलमें महान् संहार मचा रक्खा था ॥ २७–२८½ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमकर्णयुद्धे अष्टात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भीम और कर्णका युद्धविषयक एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३८ ॥

एकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेन और कर्णका भयंकर युद्ध, पहले भीमकी और पीछे कर्णकी विजय, उसके बाद अर्जुनके बाणोंसे व्यथित होकर कर्ण और अश्वत्थामाका पलायन

संजय उवाच

ततः कर्णो महाराज भीमं विद्ध्वा त्रिभिः शरैः ।
मुमोच शरवर्षाणि विचित्राणि बहूनि च ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! तदनन्तर कर्णने तीन बाणोंसे भीमसेनको घायल करके उनपर बहुत-से विचित्र बाण बरसाये ॥

वध्यमानो महाबाहुः सूतपुत्रेण पाण्डवः ।
न विव्यथे भीमसेनो भिद्यमान इवाचलः ॥ २ ॥

सूतपुत्रके द्वारा बेधे जानेपर भी महाबाहु पाण्डुपुत्र भीमसेनको विद्ध होनेवाले पर्वतके समान तनिक भी व्यथा नहीं हुई ॥ २ ॥

स कर्णं कर्णिना कर्णे पीतेन निशितेन च ।
विव्याध सुभृशं संख्ये तैलधौतेन मारिष ॥ ३ ॥

माननीय नरेश! फिर उन्होंने भी युद्धस्थलमें तेलके धोये हुए पानीदार एवं तीखे 'कर्णी' नामक बाणसे कर्णके कानमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३ ॥

स कुण्डलं महच्चारु कर्णस्यापातयद् भुवि ।
तपनीयं महाराज दीप्तं ज्योतिरिवाम्बरात् ॥ ४ ॥

महाराज! भीमने कर्णके सोनेके बने हुए विशाल एवं सुन्दर कुण्डलको आकाशसे चमकते हुए तारेके समान पृथ्वीपर काट गिराया ॥ ४ ॥

अथापरेण भल्लेन सूतपुत्रं स्तनान्तरे ।
आजघान भृशं क्रुद्धो हसन्निव वृकोदरः ॥ ५ ॥

तदनन्तर भीमसेनने अत्यन्त कुपित हो हँसते हुए-से दूसरे भल्लसे सूतपुत्रकी छातीमें बड़े जोरसे आघात किया ॥

पुनरस्य त्वरन् भीमो नाराचान् दश भारत ।
रणे प्रैषीन्महाबाहुर्निर्मुक्ताशीविषोपमान् ॥ ६ ॥

भरतनन्दन! फिर महाबाहु भीमने बड़ी उतावलीके साथ केंचुलसे छूटे हुए विषधर सर्पोंके समान दस नाराच उस रणक्षेत्रमें कर्णपर चलाये ॥ ६ ॥

ते ललाटं विनिर्भिद्य सूतपुत्रस्य भारत ।
विविशुश्चोदितास्तेन वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ ७ ॥

भारत! उनके चलाये हुए वे नाराच सूतपुत्रका ललाट छेद करके बाँबीमें सर्पोंके समान उसके भीतर घुस गये ॥

ललाटस्थैस्ततो बाणैः सूतपुत्रो व्यरोचत ।
नीलोत्पलमयीं मालां धारयन् वै यथा पुरा ॥ ८ ॥

ललाटमें स्थित हुए उन बाणोंद्वारा सूतपुत्रकी उसी प्रकार शोभा हुई, जैसे वह पहले मस्तकपर नील कमलकी माला धारण करके सुशोभित होता था ॥ ८ ॥

सोऽतिविद्धो भृशं कर्णः पाण्डवेन तरस्विना ।
रथकूबरमालम्ब्य न्यमीलयत लोचने ॥ ९ ॥

वेगवान् पाण्डुपुत्र भीमके द्वारा अत्यन्त घायल कर दिये जानेपर कर्णने रथके कूबरका सहारा लेकर आँखें बंद कर लीं ॥

स मुहूर्तात् पुनः संज्ञां लेभे कर्णः परंतपः ।
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गः क्रोधमाहारयत् परम् ॥ १० ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले कर्णको पुनः दो ही घड़ीके बाद चेत हो गया। उस समय उसका सारा शरीर रक्तसे भीग गया था। उस दशामें उसे बड़ा क्रोध हुआ ॥ १० ॥

ततः क्रुद्धो रणे कर्णः पीडितो दृढधन्वना ।
वेगं चक्रे महावेगो भीमसेनरथं प्रति ॥ ११ ॥

सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले भीमसेनसे पीड़ित हुए महान् वेगशाली कर्णने रणभूमिमें कुपित हो भीमसेनके रथकी ओर बड़े वेगसे आक्रमण किया ॥ ११ ॥

तस्मै कर्णः शतं राजन्निषूणां गार्ध्रवाससाम् ।
अमर्षी बलवान् क्रुद्धः प्रेषयामास भारत ॥ १२ ॥

राजन्! भरतनन्दन! अमर्षशील एवं क्रोधमें भरे हुए बलवान् कर्णने भीमसेनपर गीधके पंखवाले सौ बाण चलाये॥

ततः प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः।
समरे तमनादृत्य तस्य वीर्यमचिन्तयन्॥ १३॥

तब समरभूमिमें कर्णके पराक्रमको कुछ न समझते हुए उसकी अवहेलना करके पाण्डुनन्दन भीमसेनने उसके ऊपर भयंकर बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी॥ १३॥

कर्णस्ततो महाराज पाण्डवं नवभिः शरैः।
आजघानोरसि क्रुद्धः क्रुद्धरूपं परंतप॥ १४॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले महाराज! तब कर्णने कुपित हो क्रोधमें भरे हुए पाण्डुपुत्र भीमसेनकी छातीमें नौ बाण मारे॥ १४॥

तावुभौ नरशार्दूलौ शार्दूलाविव दंष्ट्रिणौ।
जीमूताविव चान्योन्यं प्रववर्षतुराहवे॥ १५॥

वे दोनों पुरुषसिंह दाढ़ोंवाले दो सिंहोंके समान परस्पर जूझ रहे थे और आकाशमें दो मेघोंके समान युद्धस्थलमें वे दोनों एक दूसरेपर बाणोंकी वर्षा कर रहे थे॥ १५॥

तलशब्दरवैश्चैव त्रासयेतां परस्परम्।
शरजालैश्च विविधैस्त्रासयामासतुर्मृधे॥ १६॥
अन्योन्यं समरे क्रुद्धौ कृतप्रतिकृतैषिणौ।

वे अपनी हथेलियोंके शब्दसे एक दूसरेको डराते हुए युद्धस्थलमें विविध बाणसमूहोंद्वारा परस्पर त्रास पहुँचा रहे थे। वे दोनों वीर समरमें कुपित हो एक दूसरेके किये हुए प्रहारका प्रतीकार करनेकी अभिलाषा रखते थे॥ १६½॥

ततो भीमो महाबाहुः सूतपुत्रस्य भारत॥ १७॥
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा ननाद परवीरहा।

भरतनन्दन! तब शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले महाबाहु भीमसेनने क्षुरप्रके द्वारा सूतपुत्रके धनुषको काटकर बड़े जोरसे गर्जना की॥ १७½॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं सूतपुत्रो महारथः॥ १८॥
अन्यत् कार्मुकमादत्त भारघ्नं वेगवत्तरम्।

तब महारथी सूतपुत्र कर्णने उस कटे हुए धनुषको फेंककर भार निवारण करनेमें समर्थ और अत्यन्त वेगशाली दूसरा धनुष हाथमें लिया॥ १८½॥

तदप्यथ निमेषार्धाच्चिच्छेदास्य वृकोदरः॥ १९॥
तृतीयं च चतुर्थं च पञ्चमं षष्ठमेव हि।
सप्तमं चाष्टमं चैव नवमं दशमं तथा॥ २०॥
एकादशं द्वादशं च त्रयोदशमथापि च।
चतुर्दशं पञ्चदशं षोडशं च वृकोदरः॥ २१॥

परंतु भीमसेनने आधे निमेषमें ही उसे भी काट दिया। इसी प्रकार तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठे, सातवें, आठवें, नवें, दसवें, ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें, चौदहवें, पंद्रहवें और सोलहवें धनुषको भी भीमसेनने काट डाला॥ १९–२१॥

तथा सप्तदशं वेगादष्टादशमथापि वा।
बहूनि भीमश्चिच्छेद कर्णस्यैवं धनूंषि हि॥ २२॥

इतना ही नहीं, भीमने सत्रहवें, अठारहवें तथा और भी बहुत-से कर्णके धनुषोंको वेगपूर्वक काट दिया॥ २२॥

निमेषार्धात् ततः कर्णो धनुर्हस्तो व्यतिष्ठत।
दृष्ट्वा स कुरुसौवीरसिन्धुवीरबलक्षयम्॥ २३॥
सवर्मध्वजशस्त्रैश्च पतितैः संवृतां महीम्।
हस्त्यश्वरथदेहांश्च गतासून् प्रेक्ष्य सर्वशः॥ २४॥
सूतपुत्रस्य संरम्भाद् दीप्तं वपुरजायत।

इतनेपर भी कर्ण आधे ही निमेषमें दूसरा धनुष हाथमें लेकर खड़ा हो गया। कुरु, सौवीर तथा सिंधुदेशके वीरोंकी सेनाका विनाश, सब ओर गिरे हुए कवच, ध्वज तथा अस्त्र-शस्त्रोंसे आच्छादित हुई भूमि और प्राणशून्य हाथी, घोड़े एवं रथियोंके शरीरोंको सब ओर देखकर सूतपुत्र कर्णका शरीर क्रोधसे उद्दीप्त हो उठा॥ २३–२४½॥

स विस्फार्य महच्चापं कार्तस्वरविभूषितम्॥ २५॥
भीमं प्रैक्षत राधेयो घोरं घोरेण चक्षुषा।

उस समय राधानन्दन कर्णने कुपित हो अपने सुवर्ण-भूषित विशाल धनुषकी टंकार करते हुए भयानक भीमसेनको घोर दृष्टिसे देखा॥ २५½॥

ततः क्रुद्धः शरानस्यन् सूतपुत्रो व्यरोचत॥ २६॥
मध्यंदिनगतोऽर्चिष्माञ्शरदीव दिवाकरः।

तत्पश्चात् सूतपुत्र कुपित हो बाणोंकी वर्षा करता हुआ शरत्कालके दोपहरके तेजस्वी सूर्यकी भाँति शोभा पाने लगा॥ २६½॥

मरीचिविकचस्येव राजन् भानुमतो वपुः॥ २७॥
आसीदाधिरथेर्घोरं वपुः शरशताचितम्।

राजन्! अधिरथपुत्र कर्णका भयंकर शरीर सैकड़ों बाणोंसे व्याप्त था। वह किरणोंसे प्रकाशित होनेवाले सूर्यके समान जान पड़ता था॥ २७½॥

कराभ्यामाददानस्य संदधानस्य चाशुगान्॥ २८॥
कर्षतो मुञ्चतो बाणान् नान्तरं ददृशे रणे।

उस रणभूमिमें दोनों हाथोंसे बाणोंको लेते, धनुषपर रखते, खींचते और छोड़ते हुए कर्णके इन कार्योंमें कोई अन्तर नहीं दिखायी देता था॥ २८½॥

अग्निचक्रोपमं घोरं मण्डलीकृतमायुधम्॥ २९॥
कर्णस्यासीन्महीपाल सव्यदक्षिणमस्यतः।

भूपाल! दायें-बायें बाण चलाते हुए कर्णका मण्डलाकार धनुष अग्निचक्रके समान भयंकर प्रतीत होता था॥ २९½॥

स्वर्णपुङ्खाः सुनिशिताः कर्णचापच्युताः शराः ॥ ३० ॥
प्राच्छादयन्महाराज दिशः सूर्यस्य च प्रभाः ।

महाराज ! कर्णके धनुषसे छूटे हुए सुवर्णमय पंखवाले अत्यन्त तीखे बाणोंने सम्पूर्ण दिशाओं तथा सूर्यकी प्रभाको भी ढक दिया ॥ ३०½ ॥

ततः कनकपुङ्खानां शराणां नतपर्वणाम् ॥ ३१ ॥
धनुश्च्युतानां वियति ददृशे बहुधा व्रजः ।

तदनन्तर धनुषसे छूटे हुए झुकी हुई गाँठ तथा सुवर्णमय पंखवाले बहुत-से बाणोंके समूह आकाशमें दृष्टिगोचर होने लगे ॥ ३१½ ॥

बाणासनादाधिरथेः प्रभवन्ति स्म सायकाः ॥ ३२ ॥
श्रेणीकृता व्यरोचन्त राजन् क्रौञ्चा इवाम्बरे ।

राजन् ! अधिरथपुत्रके धनुषसे जो बाण छूटते थे, वे श्रेणीबद्ध होकर आकाशमें क्रौञ्च पक्षियोंके समान सुशोभित होते थे ॥ ३२½ ॥

गार्ध्रपत्राञ्छिलाधौतान् कार्तस्वरविभूषितान् ॥ ३३ ॥
महावेगान् प्रदीप्ताग्रान् मुमोचाधिरथिः शरान् ।

सूतपुत्रने गीधके पाँखवाले, शिलापर तेज किये, सुवर्णभूषित, महान् वेगशाली और प्रज्वलित अग्र भागवाले बहुत-से बाण छोड़े ॥ ३३½ ॥

ते तु चापबलोद्धूताः शातकुम्भविभूषिताः ॥ ३४ ॥
अजस्रमपतन् बाणा भीमसेनरथं प्रति ।

धनुषके बलसे उठे हुए वे सुवर्णभूषित बाण भीमसेनके रथपर लगातार गिर रहे थे ॥ ३४½ ॥

ते व्योम्नि रुक्मविकृता व्यकाशन्त सहस्रशः ॥ ३५ ॥
शलभानामिव व्राताः शराः कर्णसमीरिताः ।

कर्णके चलाये हुए सहस्रों सुवर्णमय बाण आकाशमें टिड्डी-दलोंके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ ३५½ ॥

चापादाधिरथेर्बाणाः प्रपतन्तश्चकाशिरे ॥ ३६ ॥
एको दीर्घ इवात्यर्थमाकाशे संस्थितः शरः ।

सूतपुत्रके धनुषसे गिरते हुए बाण ऐसी शोभा पा रहे थे, मानो एक ही अत्यन्त विशाल-सा बाण आकाशमें खड़ा हो ३६½

पर्वतं वारिधाराभिश्छादयन्निव तोयदः ॥ ३७ ॥
कर्णः प्राच्छादयत् क्रुद्धो भीमं सायकवृष्टिभिः ।

क्रोधमें भरे हुए कर्णने अपने बाणोंकी वर्षासे भीमसेनको उसी प्रकार आच्छादित कर दिया, जैसे बादल जलकी धाराओंसे पर्वतको ढक देता है ॥ ३७½ ॥

तत्र भारत भीमस्य बलं वीर्यं पराक्रमम् ॥ ३८ ॥
व्यवसायं च पुत्रास्ते ददृशुः सहसैनिकाः ।

भारत ! वहाँ सैनिकोंसहित आपके पुत्रोंने भीमसेनके बल, वीर्य, पराक्रम और उद्योगको देखा ॥ ३८½ ॥

तां समुद्रमिवोद्धूतां शरवृष्टिं समुत्थिताम् ॥ ३९ ॥
अचिन्तयित्वा भीमस्तु क्रुद्धः कर्णमुपाद्रवत् ।

क्रोधमें भरे हुए भीमसेनने समुद्रकी भाँति उठी हुई उस बाण-वर्षाकी तनिक भी परवा न करके कर्णपर धावा बोल दिया ॥ ३९½ ॥

रुक्मपृष्ठं महच्चापं भीमस्यासीद् विशाम्पते ॥ ४० ॥
आकर्षान्मण्डलीभूतं शक्रचापमिवापरम् ।
तस्माच्छराः प्रादुरासन् पूरयन्त इवाम्बरम् ॥ ४१ ॥

प्रजानाथ ! सुवर्णमय पृष्ठवाला भीमसेनका विशाल धनुष प्रत्यञ्चा खींचनेसे मण्डलाकार हो दूसरे इन्द्र-धनुषके समान प्रतीत हो रहा था। उससे जो बाण प्रकट होते थे, वे मानो आकाशको भर रहे थे ॥ ४०-४१ ॥

सुवर्णपुङ्खैर्भीमेन सायकैर्नतपर्वभिः ।
गगने रचिता माला काञ्चनीव व्यरोचत ॥ ४२ ॥

भीमसेनने झुकी हुई गाँठ और सुवर्णमय पंखवाले बाणोंसे आकाशमें सोनेकी माला-सी रच डाली थी, जो बड़ी शोभा पा रही थी ॥ ४२ ॥

ततो व्योम्नि विषक्तानि शरजालानि भागशः ।
आहतानि व्यशीर्यन्त भीमसेनस्य पत्रिभिः ॥ ४३ ॥

उस समय भीमसेनके बाणोंसे आहत होकर आकाशमें फैले हुए बाणोंके जाल टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर गये ॥ ४३ ॥

कर्णस्य शरजालौघैर्भीमसेनस्य चोभयोः ।
अग्निस्फुलिङ्गसंस्पर्शैरञ्जोगतिभिराहवे ॥ ४४ ॥
तैस्तैः कनकपुङ्खानां द्यौरासीत् संवृता व्रजैः ।

कर्ण और भीमसेन दोनोंके बाण-समूह स्पर्श करनेपर आगकी चिनगारियोंके समान प्रतीत होते थे। अनायास ही उनकी युद्धमें सर्वत्र गति थी। सुवर्णमय पंखवाले उन बाणोंके समूहसे सारा आकाश छा गया था ॥ ४४½ ॥

न स्म सूर्यस्तदा भाति न स्म वाति समीरणः ॥ ४५ ॥
शरजालावृते व्योम्नि न प्राज्ञायत किंचन ।

उस समय न तो सूर्यका पता चलता था और न वायु ही चल पाती थी। बाणोंके समूहसे आच्छादित हुए आकाशमें कुछ भी जान नहीं पड़ता था ॥ ४५½ ॥

स भीमं छादयन् बाणैः सूतपुत्रः पृथग्विधैः ॥ ४६ ॥
उपारोहदनादृत्य तस्य वीर्यं महात्मनः ।

सूतपुत्र कर्ण नाना प्रकारके बाणोंद्वारा भीमसेनको आच्छादित करता हुआ उन महामनस्वी वीरके पराक्रमका तिरस्कार करके उनपर चढ़ आया ॥ ४६½ ॥

तयोर्विसृजतोस्तत्र शरजालानि मारिष ॥ ४७ ॥
वायुभूतान्यदृश्यन्त संसक्तानीतरेतरम् ।

माननीय नरेश ! उन दोनोंके छोड़े हुए बाण-समूह

वहाँ परस्पर सटकर अत्यन्त वेगके कारण वायुस्वरूप दिखायी देते थे ॥ ४७½ ॥

अन्योन्यशरसंस्पर्शात् तयोर्मनुजसिंहयोः ॥ ४८ ॥
आकाशे भरतश्रेष्ठ पावकः समजायत ।

भरतश्रेष्ठ ! उन दोनों पुरुषसिंहोंके बाणोंके परस्पर टकरानेसे आकाशमें आग प्रकट हो जाती थी ॥ ४८½ ॥

तथा कर्णः शितान् बाणान् कर्मारपरिमार्जितान् ॥४९॥
सुवर्णविकृतान् क्रुद्धः प्राहिणोद् वधकाङ्क्षया ।

कर्णने कुपित होकर भीमसेनके वधकी इच्छासे सुनारके माँजे हुए सुवर्णभूषित तीखे बाणोंका प्रहार किया ॥४९½॥

तानन्तरिक्षे विशिखैस्त्रिधैकैकमशातयत् ॥ ५० ॥
विशेषयन् सूतपुत्रं भीमस्तिष्ठेति चाब्रवीत् ।

परंतु भीमसेनने अपनेको सूतपुत्रसे विशिष्ट सिद्ध करते हुए बाणोंद्वारा आकाशमें उन बाणोंमेंसे प्रत्येकके तीन-तीन टुकड़े कर डाले और कर्णसे कहा—'अरे ! खड़ा रह' ॥५०½॥

पुनश्चासृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः ॥ ५१ ॥
अमर्षी बलवान् क्रुद्धो दिधक्षन्निव पावकः ।

फिर क्रोध एवं अमर्षमें भरे हुए बलवान् भीमसेनने जलानेकी इच्छावाले अग्निदेवके समान भयंकर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ५१½ ॥

ततश्चटचटाशब्दो गोधाघातादभूत् तयोः ॥ ५२ ॥
तलशब्दश्च सुमहान् सिंहनादश्च भैरवः ।
रथनेमिनिनादश्च ज्याशब्दश्चैव दारुणः ॥ ५३ ॥

उस समय उन दोनोंके गोहचर्मके बने हुए दस्तानोंके आघातसे चटाचटकी आवाज होने लगी । साथ ही हथेलीका शब्द और महाभयंकर सिंहनाद भी होने लगा । रथके पहियोंकी घरघराहट और प्रत्यञ्चाकी भयंकर टंकार भी कानोंमें पड़ने लगी ॥ ५२-५३ ॥

योधा व्युपारमन् युद्धाद् दिदृक्षन्तः पराक्रमम् ।
कर्णपाण्डवयो राजन् परस्परवधैषिणोः ॥ ५४ ॥

राजन् ! परस्पर वधकी इच्छा रखनेवाले कर्ण और भीमसेनके पराक्रमको देखनेकी अभिलाषासे समस्त योद्धा युद्धसे उपरत हो गये ॥ ५४ ॥

देवर्षिसिद्धगन्धर्वाः साधु साध्वित्यपूजयन् ।
मुमुचुः पुष्पवर्षं च विद्याधरगणास्तथा ॥ ५५ ॥

देवता, ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व और विद्याधरगण 'साधु-साधु' कहकर उन दोनोंकी प्रशंसा और फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ५५ ॥

ततो भीमो महाबाहुः संरम्भी दृढविक्रमः ।
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य शरैर्विव्याध सूतजम् ॥ ५६ ॥

तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए सुदृढ़ पराक्रमी महाबाहु भीमसेनने अपने अस्त्रोंद्वारा कर्णके अस्त्रोंका निवारण करके उसे बाणोंसे बींध डाला ॥ ५६ ॥

कर्णोऽपि भीमसेनस्य निवार्येषून् महाबलः ।
प्राहिणोन्नव नाराचानाशीविषसमान् रणे ॥ ५७ ॥

महाबली कर्णने भी रणक्षेत्रमें भीमसेनके बाणोंका निवारण करके उनके ऊपर विषैले सर्पोंके समान नौ नाराच चलाये ॥ ५७ ॥

तावद्भिरथ तान् भीमो व्योम्नि चिच्छेद पत्रिभिः ।
नाराचान् सूतपुत्रस्य तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ५८ ॥

भीमसेनने उतने ही बाणोंसे आकाशमें सूतपुत्रके सारे नाराच काट डाले और उससे कहा 'खड़ा रह, खड़ा रह' ॥५८॥

ततो भीमो महाबाहुः शरं क्रुद्धान्तकोपमम् ।
मुमोचाधिरथेर्वीरो यमदण्डमिवापरम् ॥ ५९ ॥

तत्पश्चात् महाबाहु वीर भीमसेनने कर्णके ऊपर ऐसा बाण चलाया, जो क्रुद्ध यमराजके समान तथा दूसरे यमदण्डके सदृश भयंकर था ॥ ५९ ॥

तमापतन्तं चिच्छेद राधेयः प्रहसन्निव ।
त्रिभिः शरैः शरं राजन् पाण्डवस्य प्रतापवान् ॥ ६० ॥

राजन् ! अपने ऊपर आते हुए भीमसेनके उस बाणको प्रतापी राधानन्दन कर्णने तीन बाणोंद्वारा हँसते हुए-से काट डाला ॥ ६० ॥

पुनश्चासृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः ।
तस्य तान्याददे कर्णः सर्वाण्यस्त्राण्यभीतवत् ॥ ६१ ॥

तब पाण्डुनन्दन भीमने पुनः भयानक बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी; परंतु कर्णने उन सब अस्त्रोंको निर्भयतापूर्वक आत्मसात् कर लिया ॥ ६१ ॥

युध्यमानस्य भीमस्य सूतपुत्रोऽस्त्रमायया ।
तस्येषुधी धनुर्ज्यां च बाणैः संनतपर्वभिः ॥ ६२ ॥
रश्मीन् योक्त्राणि चाश्वानां क्रुद्धः कर्णोऽच्छिनन्मृधे ।
तस्याश्वांश्च पुनर्हत्वा सूतं विव्याध पञ्चभिः ॥ ६३ ॥

क्रोधमें भरे हुए सूतपुत्र कर्णने अपने अस्त्रोंकी मायासे तथा झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा युद्धपरायण भीमसेनके दो तरकसों, धनुषकी प्रत्यञ्चा, बागडोर तथा घोड़े जोतनेकी रस्सियोंको भी युद्धस्थलमें काट डाला । फिर घोड़ोंको भी मारकर सारथिको पाँच बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ६२-६३ ॥

सोऽपसृत्य द्रुतं सूतो युधामन्यो रथं ययौ ।
विहसन्निव भीमस्य क्रुद्धः कालानलद्युतिः ॥ ६४ ॥
ध्वजं चिच्छेद राधेयः पताकां च व्यपातयत् ।

सारथि वहाँसे भागकर तुरंत ही युधामन्युके रथपर चढ़ गया । इधर क्रोधमें भरे हुए कालाग्निके समान तेजस्वी

राधापुत्र कर्णने भीमसेनका उपहास-सा करते हुए उनकी ध्वजा और पताकाको भी काट गिराया ॥ ६४½ ॥

स विधन्वा महाबाहुरथ शक्तिं परामृशत् ॥ ६५ ॥
तां व्यवासृजदाविध्य क्रुद्धः कर्णरथं प्रति ।

धनुष कट जानेपर कुपित हुए महाबाहु भीमसेनने शक्ति हाथमें ली और उसे घुमाकर कर्णके रथपर दे मारा ॥ ६५½ ॥

तामाधिरथिरायस्तः शक्तिं काञ्चनभूषणाम् ॥ ६६ ॥
आपतन्तीं महोल्काभां चिच्छेद दशभिः शरैः ।

कर्ण कुछ थक-सा गया था, तो भी उसने बहुत बड़ी उल्काके समान अपनी ओर आती हुई उस सुवर्णभूषित शक्तिको दस बाणोंसे काट दिया ॥ ६६½ ॥

सापतद् दशधा छिन्ना कर्णस्य निशितैः शरैः॥ ६७ ॥
अस्यतः सूतपुत्रस्य मित्रार्थे चित्रयोधिनः ।

मित्रके हितके लिये विचित्र युद्ध करनेवाले तथा बाण-प्रहारमें तत्पर सूतपुत्र कर्णके तीखे बाणोंसे दश टुकड़ोंमें कटकर वह शक्ति धरतीपर गिर पड़ी ॥ ६७½ ॥

स चर्मादत्त कौन्तेयो जातरूपपरिष्कृतम् ॥ ६८ ॥
खड्गं चान्यतरप्रेप्सुर्मृत्योरग्रे जयस्य वा ।

तब कुन्तीकुमार भीमसेनने युद्धमें सम्मुख मृत्यु अथवा विजय इन दोमेंसे एकका निश्चित रूपसे वरण करनेकी इच्छा रखकर ढाल और सुवर्णभूषित तलवार हाथमें ले ली ॥ ६८½ ॥

तदस्य तरसा क्रुद्धो व्यधमच्चर्म सुप्रभम् ॥ ६९ ॥
शरैर्बहुभिरत्युग्रैः प्रहसन्निव भारत ।

भारत ! उस समय क्रोधमें भरे हुए कर्णने हँसते हुए-से वेगपूर्वक बहुत-से अत्यन्त भयंकर बाण मारकर भीमसेनकी चमकीली ढाल नष्ट कर दी ॥ ६९½ ॥

स विचर्मा महाराज विरथः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ७० ॥
असिं प्रासृजदाविध्य त्वरन् कर्णरथं प्रति ।

महाराज ! ढाल और रथसे रहित हुए भीमसेनने क्रोधसे आतुर हो बड़ी उतावलीके साथ कर्णके रथपर तलवार घुमाकर चला दी ॥ ७०½ ॥

स धनुः सूतपुत्रस्य सज्यं छित्त्वा महानसिः ॥ ७१ ॥
पपात भुवि राजेन्द्र क्रुद्धः सर्प इवाम्बरात् ।

राजेन्द्र ! वह बड़ी तलवार आकाशसे कुपित सर्पकी भाँति आकर सूतपूत्र कर्णके प्रत्यञ्चासहित धनुषको काटती हुई पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ७१½ ॥

ततः प्रहस्याधिरथिरन्यदादाय कार्मुकम् ॥ ७२ ॥
शत्रुघ्नं समरे क्रुद्धो दृढज्यं वेगवत्तरम् ।
व्यायच्छत् स शरान् कर्णः कुन्तीपुत्रजिघांसया॥७३॥
सहस्रशो महाराज रुक्मपुङ्खान् सुतेजनान् ।

यह देख अधिरथ-पुत्र कर्ण ठठाकर हँस पड़ा और समराङ्गणमें कुपित हो उसने शत्रुविनाशकारी सुदृढ़ प्रत्यञ्चावाला अत्यन्त वेगशाली दूसरा धनुष हाथमें लेकर उसपर कुन्तीपुत्रके वधकी इच्छासे सुवर्णमय पंखवाले सहस्रों अत्यन्त तीखे बाणोंका संधान किया ॥ ७२-७३½ ॥

स वध्यमानो बलवान् कर्णचापच्युतैः शरैः ॥ ७४ ॥
वैहायसं प्राक्रमद् वै कर्णस्य व्यथयन्मनः ।

कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा घायल किये जाते हुए बलवान् भीमसेन कर्णके मनमें व्यथा उत्पन्न करते हुए उसे पकड़नेके लिये आकाशमें उछले ॥ ७४½ ॥

स तस्य चरितं दृष्ट्वा संग्रामे विजयैषिणः ॥ ७५ ॥
लयमास्थाय राधेयो भीमसेनमवञ्चयत् ।

संग्राममें विजय चाहनेवाले भीमसेनका वह चरित्र देख राधापुत्र कर्णने अपना अङ्ग सिकोड़कर भीमसेनके आक्रमण-को विफल कर दिया ॥ ७५½ ॥

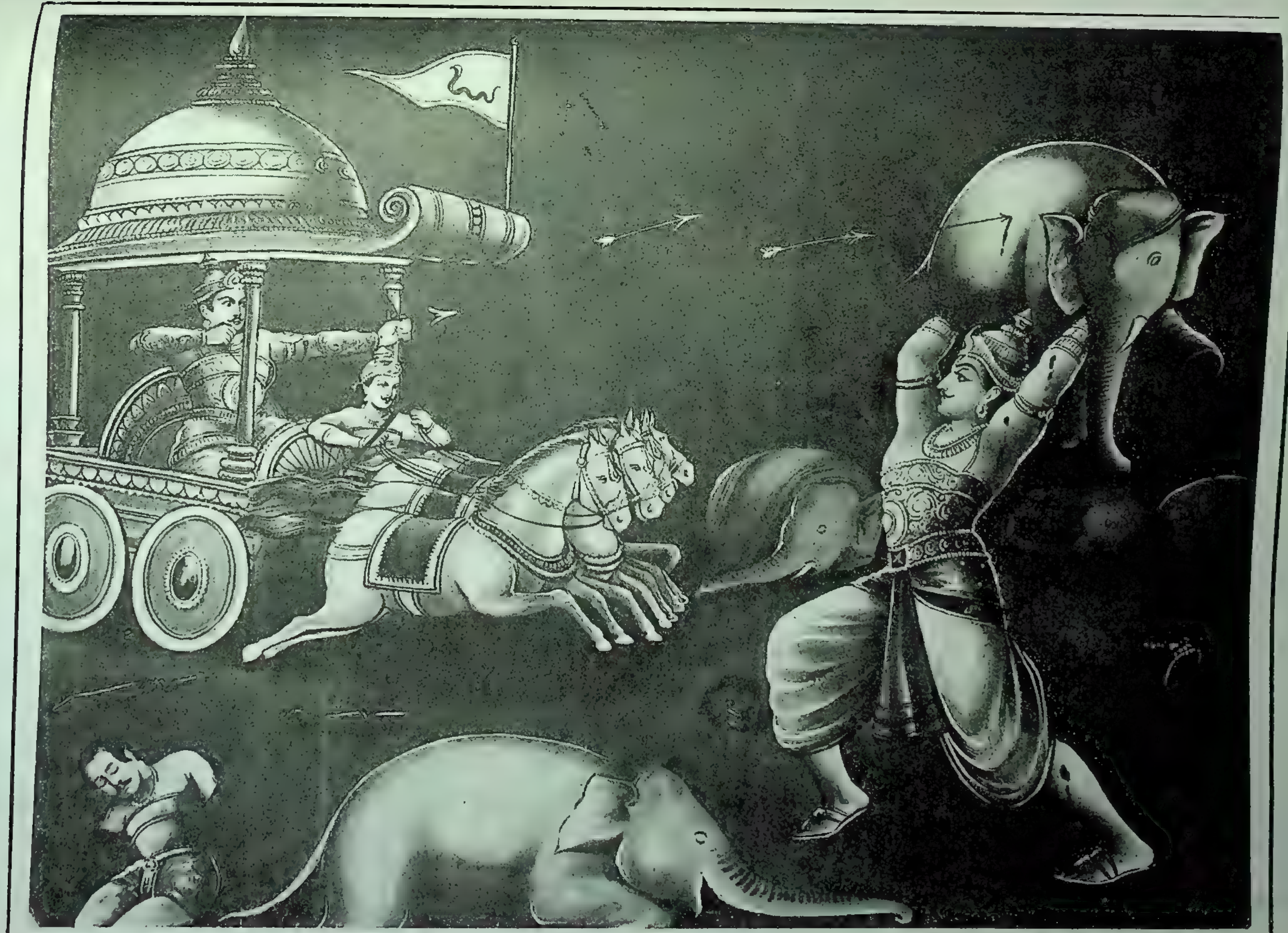


तं च दृष्ट्वा रथोपस्थे निलीनं व्यथितेन्द्रियम् ॥ ७६ ॥
ध्वजमस्य समासाद्य तस्थौ भीमो महीतले ।

कर्णकी सारी इन्द्रियाँ व्यथित हो गयी थीं । वह रथके पिछले भागमें दुबक गया था । उसे उस अवस्थामें देखकर भीमसेन उसके ध्वजका सहारा लेकर पृथ्वीपर खड़े हो गये ।७६½।

तदस्य कुरवः सर्वे चारणाश्चाभ्यपूजयन् ॥ ७७ ॥
यदियेष रथात् कर्णं हर्तुं तार्क्ष्य इवोरगम् ।

जैसे गरुड़ सर्पको दबोच लेते हैं, उसी प्रकार भीमसेनने कर्णको उसके रथसे पकड़ ले जानेकी जो इच्छा की थी,



भीमसेनका कर्णके रथपर हाथीकी लाश फेंकना

उनके इस कर्मकी समस्त कौरवों तथा चारणोंने भी प्रशंसा की ॥ ७७½ ॥

स च्छिन्नधन्वा विरथः स्वधर्ममनुपालयन् ॥ ७८ ॥
स्वरथं पृष्ठतः कृत्वा युद्धायैव व्यवस्थितः ।

धनुष कट जाने तथा रथहीन होनेपर भी स्वधर्मका पालन करते हुए भीमसेन अपने रथको पीछे करके युद्धके लिये ही खड़े रहे ॥ ७८½ ॥

तद् विहत्यास्य राधेयस्तत एनं समभ्ययात् ॥ ७९ ॥
संरम्भात् पाण्डवं संख्ये युद्धाय समुपस्थितम् ।

उनके रथ आदि साधनोंको नष्ट करके राधानन्दन कर्णने फिर क्रोधपूर्वक रणक्षेत्रमें युद्धके लिये उपस्थित हुए इन पाण्डुपुत्र भीमसेनपर आक्रमण किया ॥ ७९½ ॥

तौ समेतौ महाराज स्पर्धमानौ महाबलौ ॥ ८० ॥
जीमूताविव घर्मान्ते गर्जमानौ नरर्षभौ ।

महाराज ! एक दूसरेसे स्पर्धा रखनेवाले वे दोनों नरश्रेष्ठ महाबली वीर परस्पर भिड़कर वर्षा ऋतुमें गर्जना करनेवाले दो मेघोंके समान गरज रहे थे ॥८०½ ॥

तयोरासीत् सम्प्रहारः क्रुद्धयोर्नरसिंहयोः ॥ ८१ ॥
अमृष्यमाणयोः संख्ये देवदानवयोरिव ।

युद्धस्थलमें अमर्ष और क्रोधसे भरे हुए उन दोनों पुरुषसिंहोंका संग्राम देव-दानव-युद्धके समान भयंकर हो रहा था ॥ ८१½ ॥

क्षीणशस्त्रस्तु कौन्तेयः कर्णेन समभिद्रुतः ॥ ८२ ॥
दृष्ट्वार्जुनहतान् नागान् पतितान् पर्वतोपमान् ।
रथमार्गविघातार्थं व्यायुधः प्रविवेश ह ॥ ८३ ॥

जब कुन्तीकुमार भीमसेनके सारे अस्त्र-शस्त्र नष्ट हो गये, उनके पास एक भी आयुध शेष नहीं रह गया और कर्णके द्वारा उनपर पूर्ववत् आक्रमण होता रहा, तब वे रथके मार्गको बंद कर देनेके लिये अर्जुनके मारे हुए पर्वताकार हाथियोंको वहाँ गिरा देख उनके भीतर प्रवेश कर गये ॥ ८२-८३ ॥

हस्तिनां व्रजमासाद्य रथदुर्गं प्रविश्य च ।
पाण्डवो जीविताकाङ्क्षी राधेयं नाभ्यहारयत् ॥ ८४ ॥

हाथियोंके समूहमें पहुँचकर मानो वे रथके आक्रमणसे बचनेके लिये दुर्गके भीतर प्रविष्ट हो गये हों, ऐसा अनुभव करते हुए पाण्डुपुत्र भीम केवल अपने प्राण बचानेकी इच्छा करने लगे, उन्होंने राधापुत्र कर्णपर प्रहार नहीं किया ॥ ८४ ॥

व्यवस्थानमथाकाङ्क्षन् धनंजयशरैर्हतम् ।
उद्यम्य कुञ्जरं पार्थस्तस्थौ परपुरंजयः ॥ ८५ ॥
महौषधिसमायुक्तं हनूमानिव पर्वतम् ।

शत्रुओंकी नगरीपर विजय पानेवाले कुन्तीकुमार भीमसेन यह चाहते थे कि कर्णके बाणोंसे बचनेके लिये कोई व्यवधान (आड़) मिल जाय; इसीलिये वे अर्जुनके बाणोंसे मारे गये एक हाथीकी लाशको उठाकर चुपचाप खड़े हो गये । उस समय वे संजीवन नामक महान् ओषधिसे युक्त पर्वत उठाये हुए हनुमान्‌जीके समान जान पड़ते थे ॥ ८५½ ॥

तमस्य विशिखैः कर्णो व्यधमत् कुञ्जरं पुनः ॥ ८६ ॥
हस्त्यङ्गान्यथ कर्णाय प्राहिणोत् पाण्डुनन्दनः ।
चक्राण्यश्वांस्तथा चान्यद् यद् यत् पश्यति भूतले ॥ ८७ ॥
तत् तदादाय चिक्षेप क्रुद्धः कर्णाय पाण्डवः ।
तदस्य सर्वं चिच्छेद क्षिप्तं क्षिप्तं शितैः शरैः ॥ ८८ ॥

कर्णने अपने बाणोंद्वारा उस हाथीके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये । तब पाण्डुनन्दन भीमने हाथीके कटे हुए अंगोंको ही कर्णपर फेंकना शुरू किया । रथोंके पहिये, घोड़ोंकी लाशें तथा और भी जो-जो वस्तुएँ वे धरतीपर पड़ी देखते, उन्हें उठाकर क्रोधपूर्वक कर्णपर फेंकते थे; परंतु वे जो-जो वस्तु फेंकते, उन सबको कर्ण अपने तीखे बाणोंसे काट डालता था ॥ ८६—८८ ॥

भीमोऽपि मुष्टिमुद्यम्य वज्रगर्भां सुदारुणाम् ।
हन्तुमैच्छत् सूतपुत्रं संस्मरन्नर्जुनं क्षणात् ॥ ८९ ॥
शक्तोऽपि नावधीत् कर्णं समर्थः पाण्डुनन्दनः ।
रक्षमाणः प्रतिज्ञां तां या कृता सव्यसाचिना ॥ ९० ॥

अब भीमसेनने अपने अंगूठेको मुट्ठीके भीतर करके वज्रतुल्य अत्यन्त भयंकर घूँसा तानकर सूतपुत्र कर्णको मार डालनेकी इच्छा की । तबतक क्षणभरमें उन्हें अर्जुनकी याद आ गयी । अतः सव्यसाची अर्जुनने पहले जो प्रतिज्ञा की थी, उसकी रक्षा करते हुए पाण्डुनन्दन भीमने समर्थ एवं शक्तिशाली होनेपर भी उस समय कर्णका वध नहीं किया ॥ ८९-९० ॥

तमेवं व्याकुलं भीमं भूयो भूयः शितैः शरैः ।
मूर्च्छयाभिपरीताङ्गमकरोत् सूतनन्दनः ॥ ९१ ॥

इस प्रकार वहाँ बाणोंके आघातसे व्याकुल हुए भीमसेनको सूतपुत्र कर्णने बारंबार अपने पैने बाणोंकी मारसे मूर्छित-सा कर दिया ॥ ९१ ॥

व्यायुधं नावधीच्चैनं कर्णः कुन्त्या वचः स्मरन् ।
धनुषोऽग्रेण तं कर्ण सोऽभिद्रुत्य परामृशत् ॥ ९२ ॥

परंतु कुन्तीके वचनका स्मरण करके उसने शस्त्रहीन भीमसेनका वध नहीं किया । कर्णने उनके पास जाकर अपने धनुषकी नोकसे उनका स्पर्श किया ॥ ९२ ॥

धनुषा स्पृष्टमात्रेण क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ।
आच्छिद्य स धनुस्तस्य कर्णं मूर्धन्यताडयत् ॥ ९३ ॥

धनुषका स्पर्श होते ही वे क्रोधमें भरे हुए सर्पके समान फुफकार उठे और उन्होंने कर्णके हाथसे वह धनुष छीनकर उसे उसीके मस्तकपर दे मारा ॥ ९३ ॥

ताडितो भीमसेनेन क्रोधादारक्तलोचनः।
विहसन्निव राधेयो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ९४ ॥

भीमसेनकी मार खाकर राधापुत्र कर्णकी आँखें लाल हो गयीं। उसने हँसते हुए-से यह बात कही—॥ ९४ ॥

पुनः पुनस्तूबरक मूढ औदरिकेति च।
अकृतास्त्रक मा योत्सीर्बाल संग्रामकातर ॥ ९५ ॥

'ओ बिना दाढ़ी-मूछके नपुंसक ! ओ मूर्ख ! अरे पेटू ! तू तो अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञानसे सर्वथा शून्य है। युद्धभीरु कायर ! छोकरे ! अब फिर कभी युद्ध न करना ॥ ९५ ॥

यत्र भोज्यं बहुविधं भक्ष्यं पेयं च पाण्डव।
तत्र त्वं दुर्मते योग्यो न युद्धेषु कदाचन ॥ ९६ ॥

'दुर्बुद्धि पाण्डव ! जहाँ अनेक प्रकारकी खाने-पीनेकी वस्तुएँ रक्खी हों, तू वहीं रहनेके योग्य है ! युद्धोंमें तुझे कभी नहीं आना चाहिये ॥ ९६ ॥

मूलपुष्पफलाहारो व्रतेषु नियमेषु च।
उचितस्त्वं वने भीम न त्वं युद्धविशारदः ॥ ९७ ॥

'भीम ! वनमें रहकर तू फल-मूल और फूल खाकर व्रत एवं नियम आदि पालन करनेके योग्य है। युद्धकौशल तुझमें नाममात्रको भी नहीं है ॥ ९७ ॥

क युद्धं क मुनित्वं च वनं गच्छ वृकोदर।
न त्वं युद्धोचितस्तात वनवासरतिर्भवान् ॥ ९८ ॥

'वृकोदर ! कहाँ युद्ध और कहाँ मुनिवृत्ति। जा, जा, वनमें चला जा। तात ! तुझमें युद्धकी योग्यता नहीं है। तू तो वनवासका ही प्रेमी है ॥ ९८ ॥

(सूदं त्वामहमाजाने मात्स्ये प्रेष्यककारकम्।)
सूदान् भृत्यजनान् दासांस्त्वं गृहे त्वरयन् भृशम्।
योग्यस्ताडयितुं क्रोधाद् भोजनार्थं वृकोदर ॥ ९९ ॥

'मैं तुझे अच्छी तरह जानता हूँ। तू मत्स्यराज विराट-का नौकर एक रसोइया रहा है। वृकोदर ! तू तो घरमें रसोइयों, भृत्यजनों तथा दासोंको बहुत जल्दी भोजन तैयार करनेके लिये प्रेरणा देते हुए क्रोधसे उन्हें डाँटने और मारने-पीटनेकी योग्यता रखता है ॥ ९९ ॥

मुनिर्भूत्वाथवा भीम फलान्यादत्स्व दुर्मते।
वनाय व्रज कौन्तेय न त्वं युद्धविशारदः ॥१००॥

'दुर्मति कुन्तीकुमार भीम ! अथवा तू मुनि होकर वनमें चला जा। वहाँ इधर-उधरसे फल ले आ और खा। तू युद्धमें निपुण नहीं है ॥ १०० ॥

फलमूलाशने शक्तस्त्वं तथातिथिपूजने।
न त्वां शस्त्रसमुद्योगे योग्यं मन्ये वृकोदर ॥१०१॥

'वृकोदर ! तू फल-मूल खाने और अतिथिसत्कार करनेमें समर्थ है। मैं तुझे हथियार उठानेके योग्य नहीं मानता' ॥

कौमारे यानि वृत्तानि विप्रियाणि विशाम्पते।
तानि सर्वाणि चाप्येव रूक्षाण्यश्रावयद् भृशम् ॥१०२॥

प्रजापालक नरेश ! कर्णने बाल्यावस्थामें जो अप्रिय वृत्तान्त घटित हुए थे, उन सबका उल्लेख करते हुए बहुत-सी रूखी बातें सुनायीं ॥ १०२ ॥

अथैनं तत्र संलीनमस्पृशद् धनुषा पुनः।
प्रहसंश्च पुनर्वाक्यं भीममाह वृषस्तदा ॥१०३॥

तत्पश्चात् वहाँ छिपे हुए भीमसेनका कर्णने पुनः धनुष-से स्पर्श किया और उस समय उनका उपहास करते हुए फिर कहा—॥ १०३ ॥

योद्धव्यं मारिषान्यत्र न योद्धव्यं च मादृशैः।
मादृशैर्युध्यमानानामेतच्चान्यच्च विद्यते ॥१०४॥

'आर्य ! तुझे और लोगोंके साथ युद्ध करना चाहिये। मेरे-जैसे वीरोंके साथ नहीं। मेरे-जैसे योद्धाओंसे जूझनेवालों-की ऐसी ही अथवा इससे भी बुरी दशा होती है ॥ १०४ ॥

गच्छ वा यत्र तौ कृष्णौ तौ त्वां रक्षिष्यतो रणे।
गृहं वा गच्छ कौन्तेय किं ते युद्धेन बालक ॥१०५॥

'अथवा जहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं, वहीं चला जा। वे रणभूमिमें तेरी रक्षा करेंगे। अथवा कुन्तीकुमार ! तू घर चला जा। बच्चे ! तुझे युद्धसे क्या लाभ है ?' ॥ १०५ ॥

कर्णस्य वचनं श्रुत्वा भीमसेनोऽतिदारुणम्।
उवाच कर्णं प्रहसन् सर्वेषां शृण्वतां वचः ॥१०६॥

कर्णके ये अत्यन्त कठोर वचन सुनकर भीमसेन ठठाकर हँस पड़े और सबके सुनते हुए उससे इस प्रकार बोले—॥

जितस्त्वमसकृद् दुष्ट कत्थसे किं वृथाऽऽत्मना।
जयाजयौ महेन्द्रस्य लोके दृष्टौ पुरातनैः ॥१०७॥

'अरे दुष्ट ! मैंने तुझे एक बार नहीं, बारंबार हराया है; फिर क्यों व्यर्थ अपने ही मुँहसे अपनी बड़ाई कर रहा है। संसारमें पूर्वपुरुषोंने देवराज इन्द्रकी भी कभी जय और कभी पराजय होती देखी है ॥ १०७ ॥

मल्लयुद्धं मया सार्धं कुरु दुष्कुलसम्भव।
महाबलो महाभोगी कीचको निहतो यथा ॥१०८॥
तथा त्वां घातयिष्यामि पश्यत्सु सर्वराजसु।

'नीच कुलमें पैदा हुए कर्ण ! आ, मेरे साथ मल्ल-युद्ध कर ले। जैसे मैंने महान् बलशाली महाभोगी कीचकको पीस डाला था, उसी प्रकार इन समस्त राजाओंके देखते-देखते मैं तुझे अभी मौतके हवाले कर दूँगा' ॥ १०८½ ॥

भीमस्य मतमाज्ञाय कर्णो बुद्धिमतां वरः ॥१०९॥
विरराम रणात् तस्मात् पश्यतां सर्वधन्विनाम्।

भीमसेनका यह अभिप्राय जानकर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ

कर्ण समस्त धनुर्धरोंके सामने ही उस युद्धसे हट गया ॥ १०९½ ॥

एवं तं विरथं कृत्वा कर्णो राजन् व्यकत्थयत् ॥ ११० ॥
प्रमुखे वृष्णिसिंहस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
ततो राजञ्शिलाधौताञ्शराञ्शाखामृगध्वजः ॥ १११ ॥
प्राहिणोत् सूतपुत्राय केशवेन प्रचोदितः ।

राजन् ! इस प्रकार कर्णने भीमसेनको रथहीन करके जब वृष्णिवंशके सिंह भगवान् श्रीकृष्ण और महामना अर्जुनके सामने ही अपनी इतनी प्रशंसा की, तब श्रीकृष्णकी प्रेरणासे कपिध्वज अर्जुनने शिलापर स्वच्छ किये हुए बहुत-से बाणोंको सूतपुत्र कर्णपर चलाया ॥ ११०-१११½ ॥

ततः पार्थभुजोत्सृष्टाः शराः कनकभूषणाः ॥ ११२ ॥
गाण्डीवप्रभवाः कर्णं हंसाः क्रौञ्चमिवाविशन् ।

तत्पश्चात् अर्जुनकी भुजाओंसे छोड़े गये तथा गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए वे सुवर्णभूषित बाण कर्णके शरीरमें उसी प्रकार घुस गये, जैसे हंस क्रौञ्च पर्वतकी गुफाओंमें समा जाते हैं ॥ ११२½ ॥

स भुजङ्गैरिवाविष्टैर्गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ॥ ११३ ॥
भीमसेनादपासेधत् सूतपुत्रं धनंजयः ।

इस प्रकार धनंजयने गाण्डीव धनुषसे छोड़े गये रोषभरे सर्पोंके समान बाणोंद्वारा सूतपुत्र कर्णको भीमसेनसे दूर हटा दिया ॥ ११३½ ॥

स छिन्नधन्वा भीमेन धनंजयशराहतः ॥ ११४ ॥
कर्णो भीमादपायासीद् रथेन महता द्रुतम् ।

भीमसेनने कर्णके धनुषको तो पहले-से ही तोड़ दिया था । इसीलिये वह धनंजयके बाणोंसे घायल हो भीमसेनको छोड़कर अपने विशाल रथके द्वारा तुरंत ही वहाँसे दूर हट गया ॥ ११४½ ॥

भीमोऽपि सात्यकेर्वाहं समारुह्य नरर्षभः ॥ ११५ ॥
अन्वयाद् भ्रातरं संख्ये पाण्डवं सव्यसाचिनम् ।

इधर नरश्रेष्ठ भीमसेन भी सात्यकिके रथपर आरूढ़ हो युद्धस्थलमें सव्यसाची पाण्डुपुत्र भाई अर्जुनके पास जा पहुँचे ॥ ११५½ ॥

ततः कर्णं समुद्दिश्य त्वरमाणो धनंजयः ॥ ११६ ॥
नाराचं क्रोधताम्राक्षः प्रैषीन्मृत्युमिवान्तकः ।

तत्पश्चात् क्रोधसे लाल आँखें किये अर्जुनने बड़ी उतावलीके साथ कर्णको लक्ष्य करके एक नाराच चलाया, मानो यमराजने किसीके लिये मौत भेज दी हो ॥ ११६½ ॥

स गरुत्मानिवाकाशे प्रार्थयन् भुजगोत्तमम् ॥ ११७ ॥
नाराचोऽभ्यपतत् कर्णं तूर्णं गाण्डीवचोदितः ।

गाण्डीव धनुषसे छूटा हुआ वह नाराच आकाशमार्गसे तुरंत ही कर्णकी ओर चला, मानो गरुड़ किसी उत्तम सर्पको पकड़नेके लिये जा रहे हों ॥ ११७½ ॥

तमन्तरिक्षे नाराचं द्रौणिश्चिच्छेद पत्रिणा ॥ ११८ ॥
धनंजयभयात् कर्णमुज्जिहीर्षन् महारथः ।

उस समय अर्जुनके भयसे कर्णका उद्धार करनेकी इच्छा रखकर महारथी अश्वत्थामाने अपने बाणसे उस नाराचको आकाशमें ही काट दिया ॥ ११८½ ॥

ततो द्रौणिं चतुःषष्ट्या विव्याध कुपितोऽर्जुनः ॥ ११९ ॥
शिलीमुखैर्महाराज मा गास्तिष्ठेति चाब्रवीत् ।

महाराज ! तब क्रोधमें भरे हुए अर्जुनने अश्वत्थामाको चौसठ बाण मारे और कहा—'खड़े रहो, भागना मत' ॥ ११९½ ॥

स तु मत्तगजाकीर्णमनीकं रथसंकुलम् ॥ १२० ॥
तूर्णमभ्याविशद् द्रौणिर्धनंजयशरार्दितः ।

परंतु अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित हो अश्वत्थामा तुरंत ही रथसे व्याप्त एवं मतवाले हाथियोंसे भरे हुए व्यूहके भीतर घुस गया ॥ १२०½ ॥

ततः सुवर्णपृष्ठानां चापानां कूजतां रणे ॥ १२१ ॥
शब्दं गाण्डीवघोषेण कौन्तेयोऽभ्यभवद् बली ।

तब बलवान् कुन्तीकुमार अर्जुनने रणक्षेत्रमें टंकार करते हुए सुवर्णमय पृष्ठभागवाले समस्त धनुषोंके सम्मिलित शब्दोंको अपने गाण्डीव धनुषके गम्भीर घोषसे दबा दिया १२१½

धनंजयस्तथा यान्तं पृष्ठतो द्रौणिमभ्यगात् ॥ १२२ ॥
नातिदीर्घमिवाध्वानं शरैः संत्रासयन् बलम् ।

अर्जुन भागते हुए अश्वत्थामाके पीछे-पीछे अपने बाणोंद्वारा कौरवसेनाको संत्रस्त करते हुए कुछ दूरतक गये ॥ १२२½ ॥

विदार्य देहान् नाराचैर्नरवारणवाजिनाम् ॥ १२३ ॥
कङ्कबर्हिणवासोभिर्बलं व्यधमदर्जुनः ।

उस समय उन्होंने कंक और मोरकी पाँखोंसे युक्त नाराचोंद्वारा घोड़ों, हाथियों और मनुष्योंके शरीरोंको विदीर्ण करके सारी सेनाको तहस-नहस कर दिया ॥ १२३½ ॥

तद् बलं भरतश्रेष्ठ सवाजिद्विपमानवम् ॥ १२४ ॥
पाकशासनिरायत्तः पार्थः स निजघान ह ॥ १२५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उस समय सावधान हुए इन्द्रकुमार, कुन्तीपुत्र अर्जुनने हाथी, घोड़ों और मनुष्योंसे भरी हुई उस सेनाका संहार कर डाला ॥ १२४-१२५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भीमकर्णयुद्धे एकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भीमसेन और कर्णका युद्धविषयक एक सौ उन्तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३९ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल १२५ ½ श्लोक हैं)

चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिद्वारा राजा अलम्बुषका और दुःशासनके घोड़ोंका वध

धृतराष्ट्र उवाच

अहन्यहनि मे दीप्तं यशः पतति संजय।
हता मे बहवो योधा मन्ये कालस्य पर्ययम्॥ १॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय! प्रतिदिन मेरा उज्ज्वल यश घटता या मन्द पड़ता जा रहा है, मेरे बहुत-से योद्धा मारे गये, इसे मैं समयका ही फेर समझता हूँ॥ १॥

धनंजयः सुसंक्रुद्धः प्रविष्टो मामकं बलम्।
रक्षितं द्रौणिकर्णाभ्यामप्रवेश्यं सुरैरपि॥ २॥

अश्वत्थामा और कर्णके द्वारा सुरक्षित मेरी सेनामें, जहाँ देवताओंका भी प्रवेश असम्भव था, क्रोधमें भरे हुए अर्जुन प्रविष्ट हो गये॥ २॥

ताभ्यामूर्जितवीर्याभ्यामाप्यायितपराक्रमः।
सहितः कृष्णभीमाभ्यां शिनीनामृषभेण च॥ ३॥

महान् पराक्रमी श्रीकृष्ण और भीमसेन तथा शिनिप्रवर सात्यकिका साथ होनेसे अर्जुनका बल तथा पराक्रम और भी बढ़ गया है॥ ३॥

तदाप्रभृति मां शोको दहत्यग्निरिवाशयम्।
ग्रस्तानिव प्रपश्यामि भूमिपालान् ससैन्धवान्॥ ४॥

जबसे यह बात मुझे मालूम हुई है, तबसे शोक मुझे उसी प्रकार दग्ध कर रहा है, जैसे काष्ठसे पैदा होनेवाली आग अपने आधारभूत काष्ठको ही जला देती है। मैं सिंधुराज जयद्रथसहित समस्त राजाओंको कालके गालमें गया हुआ ही समझता हूँ॥ ४॥

अप्रियं सुमहत् कृत्वा सिन्धुराजः किरीटिनः।
चक्षुर्विषयमापन्नः कथं जीवितमाप्नुयात्॥ ५॥

सिंधुराज जयद्रथ किरीटधारी अर्जुनका महान् अप्रिय करके जब उनकी आँखोंके सामने आ गया है, तब कैसे जीवित रह सकता है?॥ ५॥

अनुमानाच्च पश्यामि नास्ति संजय सैन्धवः।
युद्धं तु तद् यथावृत्तं तन्ममाचक्ष्व तत्त्वतः॥ ६॥

संजय! मैं अनुमानसे यह देख रहा हूँ कि सिंधुराज जयद्रथ अब जीवित नहीं है। अब वह युद्ध जिस प्रकार हुआ था, वह सब यथार्थरूपसे बताओ॥ ६॥

यश्च विक्षोभ्य महतीं सेनामालोड्य चासकृत्।
एकः प्रविष्टः संक्रुद्धो नलिनीमिव कुञ्जरः॥ ७॥
तस्य मे वृष्णिवीरस्य ब्रूहि युद्धं यथातथम्।
धनंजयार्थे यत्तस्य कुशलो ह्यसि संजय॥ ८॥

संजय! जैसे हाथी किसी पोखरेमें प्रवेश करता है, उसी प्रकार जिन्होंने अकेले ही कुपित होकर मेरी विशाल सेनाको क्षुब्ध करके बारंबार उसे मथकर उसके भीतर प्रवेश किया था, उन वृष्णिवंशी वीर सात्यकिने अर्जुनके लिये प्रयत्नपूर्वक जैसा युद्ध किया था, उसका वर्णन करो; क्योंकि तुम कथा कहनेमें कुशल हो॥ ७-८॥

संजय उवाच

तथा तु वैकर्तनपीडितं तं
भीमं प्रयान्तं पुरुषप्रवीरम्।
समीक्ष्य राजन् नरवीरमध्ये
शिनिप्रवीरोऽनुययौ रथेन॥ ९॥

संजयने कहा—राजन्! पुरुषोंमें प्रमुख वीर भीमसेन अर्जुनके पास जाते समय जब पूर्वोक्त प्रकारसे कर्णद्वारा पीड़ित होने लगे, तब उन्हें उस अवस्थामें देखकर शिनिवंशके प्रधान वीर सात्यकिने उन नरवीरोंके समूहमें रथके द्वारा भीमसेनकी सहायताके लिये उनका अनुसरण किया॥ ९॥

नदन् यथा वज्रधरस्तपान्ते
ज्वलन् यथा जलदान्ते च सूर्यः।
निघ्नन्नमित्रान् धनुषा दृढेन
स कम्पयंस्तव पुत्रस्य सेनाम्॥ १०॥

जैसे वज्रधारी इन्द्र वर्षाकालमें मेघरूपसे गर्जना करते हैं और जैसे सूर्य शरत्कालमें प्रज्वलित होते हैं, उसी प्रकार गरजते और तेजसे प्रज्वलित होते हुए सात्यकि अपने सुदृढ़ धनुषद्वारा आपके पुत्रकी सेनाको कँपाते हुए शत्रुओंका संहार करने लगे॥ १०॥

तं यान्तमश्वै रजतप्रकाशै-
रायोधने वीरवरं नदन्तम्।
नाशक्नुवन् वारयितुं त्वदीयाः
सर्वे रथा भारत माधवाग्र्यम्॥ ११॥

भारत! उस युद्धस्थलमें रजतवर्णके अश्वोंद्वारा आगे बढ़ते और गरजना करते हुए मधुवंशशिरोमणि वीरवर सात्यकिको आपके सारे रथी मिलकर भी रोक न सके॥ ११॥

अमर्षपूर्णस्त्वनिवृत्तयोधी
शरासनी काञ्चनवर्मधारी।
अलम्बुषः सात्यकिं माधवाग्र्य-
मवारयद् राजवरोऽभिपत्य॥ १२॥

उस समय सोनेका कवच और धनुष धारण किये, युद्धसे कभी पीठ न दिखानेवाले, राजाओंमें श्रेष्ठ अलम्बुषने अमर्षमें भरकर मधुकुलके महान् वीर सात्यकिको सहसा सामने आकर रोका॥ १२॥

तयोरभूद् भारत सम्प्रहारो
यथाविधो नैव बभूव कश्चित्।
प्रेक्षन्त एवाहवशोभिनौ तौ
योधास्त्वदीयाश्च परे च सर्वे ॥ १३ ॥

भरतनन्दन ! उन दोनोंका जैसा संग्राम हुआ, वैसा दूसरा कोई युद्ध नहीं हुआ था। आपके और शत्रुपक्षके समस्त योद्धा संग्राममें शोभा पानेवाले उन दोनों वीरोंको देखते ही रह गये थे ॥ १३ ॥

आविध्यदेनं दशभिः पृषत्कै-
रलम्बुषो राजवरः प्रसह्य।
अनागतानेव तु तान् पृषत्कां-
श्चिच्छेद बाणैः शिनिपुङ्गवोऽपि ॥ १४ ॥

राजाओंमें श्रेष्ठ अलम्बुषने सात्यकिको बलपूर्वक दस बाण मारे। शिनिप्रवर सात्यकिने भी बाणोंद्वारा अपने पास आनेसे पहले ही उन समस्त बाणोंको काट गिराया ॥ १४ ॥

पुनः स बाणैस्त्रिभिरग्निकल्पै-
राकर्णपूर्णैर्निशितैः सपुङ्खैः।
विव्याध देहावरणं विदार्य
ते सात्यकेराविविशुः शरीरम् ॥ १५ ॥

तब अलम्बुषने धनुषको कानतक खींचकर अग्निके समान प्रज्वलित, सुन्दर पंखवाले तीन तीखे बाणोंद्वारा पुनः सात्यकिपर प्रहार किया। वे बाण सात्यकिके कवचको विदीर्ण करके उनके शरीरमें घुस गये ॥ १५ ॥

तैः कायमस्याग्न्यनिलप्रभावै-
र्विदार्य बाणैर्निशितैर्ज्वलद्भिः।
आजघ्निवांस्तान् रजतप्रकाशा-
नश्वांश्चतुर्भिश्चतुरः प्रसह्य ॥ १६ ॥

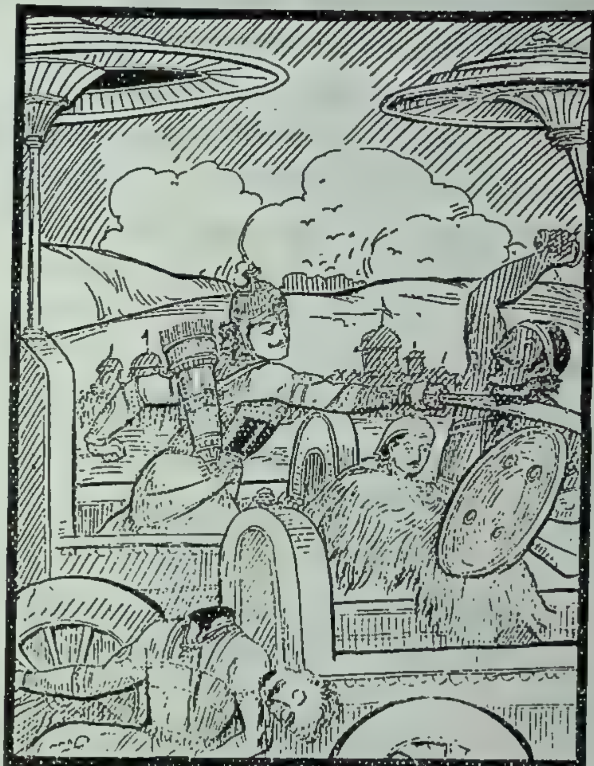
अग्नि और वायुके समान प्रभावशाली उन प्रज्वलित तीखे बाणोंद्वारा सात्यकिका शरीर विदीर्ण करके अलम्बुषने चाँदीके समान चमकनेवाले उनके उन चारों घोड़ोंको भी चार बाणोंसे हठात् घायल कर दिया ॥ १६ ॥

तथा तु तेनाभिहतस्तरस्वी
नप्ता शिनेश्चक्रधरप्रभावः।
अलम्बुषस्योत्तमवेगवद्भि-
रश्वांश्चतुर्भिर्निजघान बाणैः ॥ १७ ॥

इस प्रकार अलम्बुषके द्वारा घायल होकर चक्रधारी विष्णुके समान प्रभावशाली और वेगवान् वीर शिनिपौत्र सात्यकिने अपने उत्तम वेगवाले चार बाणोंद्वारा राजा अलम्बुषके चारों घोड़ोंको मार डाला ॥ १७ ॥

अथास्य सूतस्य शिरो निकृत्य
भल्लेन कालानलसंनिभेन।
सकुण्डलं पूर्णशशिप्रकाशं
भ्राजिष्णु वक्त्रं निचकर्त देहात् ॥ १८ ॥

तत्पश्चात् उनके सारथिका भी मस्तक काटकर कालाग्निके समान तेजस्वी भल्लद्वारा पूर्ण चन्द्रमाके समान कान्तिसे



प्रकाशित होनेवाले उनके कुण्डलमण्डित मुखमण्डलको भी धड़से काट गिराया ॥ १८ ॥

निहत्य तं पार्थिवपुत्रपौत्रं
संख्ये यदूनामृषभः प्रमाथी।
ततोऽन्वयादर्जुनमेव वीरः
सैन्यानि राजंस्तव संनिवार्य ॥ १९ ॥

राजन् ! शत्रुओंको मथ डालनेवाले यदुकुलतिलक वीर सात्यकिने इस प्रकार युद्धस्थलमें राजाके पुत्र और पौत्र अलम्बुषको मारकर आपकी सेनाको स्तब्ध करके फिर अर्जुनका ही अनुसरण किया ॥ १९ ॥

अन्वागतं वृष्णिवीरं समीक्ष्य
तथारिमध्ये परिवर्तमानम्।
घ्नन्तं कुरूणामिषुभिर्बलानि
पुनः पुनर्वायुमिवाभ्रपूगान् ॥ २० ॥

ततोऽवहन् सैन्धवाः साधुदान्ता
गोक्षीरकुन्देन्दुहिमप्रकाशाः ।
सुवर्णजालावतताः सदश्वा
यतो यतः कामयते नृसिंहः ॥ २१ ॥

अथात्मजास्ते सहिताभिपेतु-
रन्ये च योधास्त्वरितास्त्वदीयाः।

कृत्वा मुखं भारत योधमुख्यं
दुःशासनं त्वत्सुतमाजमीढ ॥ २२ ॥

उस समय गोदुग्ध, कुन्दकुसुम, चन्द्रमा तथा हिमके समान कान्तिवाले सिंधुदेशीय सुशिक्षित सुन्दर घोड़े, जो सोनेकी जालीसे आवृत थे, पुरुषसिंह सात्यकि जहाँ-जहाँ जाना चाहते, वहाँ-वहाँ उन्हें ले जाते थे। अजमीढवंशी भरतनन्दन! इस प्रकार जैसे वायु मेघोंकी घटाको छिन्न-भिन्न करती रहती है, वैसे ही बारंबार बाणोंद्वारा कौरवसेनाओंका संहार करते और शत्रुओंके बीचमें विचरते हुए वृष्णिवीर सात्यकिको वहाँ आया हुआ देख योद्धाओंमें प्रधान आपके पुत्र दुःशासनको अगुआ बनाकर आपके बहुत-से पुत्र तथा आपके पक्षके अन्य योद्धा भी शीघ्रतापूर्वक एक साथ ही उनपर टूट पड़े ॥ २०–२२ ॥

ते सर्वतः सम्परिवार्य संख्ये
शैनेयमाजघ्नुरनीकसाहाः ।
स चापि तान् प्रवरः सात्वतानां
न्यवारयद् बाणजालेन वीरः ॥ २३ ॥

वे सभी बड़ी-बड़ी सेनाओंका आक्रमण सहनेमें समर्थ थे। उन सबने युद्धस्थलमें सात्यकिको चारों ओरसे घेरकर उनपर प्रहार आरम्भ कर दिया। सात्वतशिरोमणि वीर सात्यकिने भी अपने बाणोंके समूहसे उन सबको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ २३ ॥

निवार्य तांस्तूर्णममित्रघाती
नप्ता शिनेः पत्रिभिरग्निकल्पैः ।
दुःशासनस्याभिजघान वाहा-
नुद्यम्य बाणासनमाजमीढ ॥ २४ ॥

अजमीढनन्दन! उन सबको रोककर शत्रुघाती शिनिपौत्र सात्यकिने तुरंत ही धनुष उठाकर अग्निके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा दुःशासनके घोड़ोंको मार डाला ॥ २४ ॥

ततोऽर्जुनो हर्षमवाप संख्ये
कृष्णश्च दृष्ट्वा पुरुषप्रवीरम् ॥ २५ ॥

उस समय श्रीकृष्ण और अर्जुन पुरुषोंमें प्रधान वीर सात्यकिको उस युद्धभूमिमें उपस्थित देख बड़े प्रसन्न हुए ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अलम्बुषवधे चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥
इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें अलम्बुषवधविषयक एक सौ चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१४०॥

एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिका अद्भुत पराक्रम, श्रीकृष्णका अर्जुनको सात्यकिके आगमनकी सूचना देना और अर्जुनकी चिन्ता

संजय उवाच

समुद्यतं महाबाहुं दुःशासनरथं प्रति ।
त्वरितं त्वरणीयेषु धनंजयजयैषिणम् ॥ १ ॥
त्रिगर्तानां महेष्वासाः सुवर्णविकृतध्वजाः ।
सेनासमुद्रमाविष्टमनन्तं पर्यवारयन् ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! महाबाहु सात्यकि जल्दी करने योग्य कार्योंमें बड़ी फुर्ती दिखाते थे। वे अर्जुनकी विजय चाहते थे। उन्हें अनन्त सैन्य-सागरमें प्रविष्ट होकर दुःशासनके रथपर आक्रमण करनेके लिये उद्यत देख सोनेकी ध्वजा धारण करनेवाले त्रिगर्तदेशीय महाधनुर्धर योद्धाओंने सब ओरसे घेर लिया ॥ १-२ ॥

अथैनं रथवंशेन सर्वतः संनिवार्य ते ।
अवाकिरञ्छरव्रातैः क्रुद्धाः परमधन्विनः ॥ ३ ॥

रथसमूहद्वारा सब ओरसे सात्यकिको अवरुद्ध करके उन परम धनुर्धर योद्धाओंने उनपर क्रोधपूर्वक बाण-समूहोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ३ ॥

अजयद् राजपुत्रांस्तान् भ्राजमानान् महारणे ।
एकः पञ्चाशतं शत्रून् सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ ४ ॥

परंतु उस महासमरमें शोभा पानेवाले अपने शत्रुरूप उन पचास राजकुमारोंको सत्यपराक्रमी सात्यकिने अकेले ही परास्त कर दिया ॥ ४ ॥

सम्प्राप्य भारतीमध्यं तलघोषसमाकुलम् ।
असिशक्तिगदापूर्णमप्लवं सलिलं यथा ॥ ५ ॥
तत्राद्भुतमपश्याम शैनेयचरितं रणे ।

कौरवसेनाका वह मध्यभाग हथेलियोंके चट-चट शब्दसे गूँज उठा था। खड्ग, शक्ति तथा गदा आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे व्याप्त था और नौकारहित अगाध जलके समान दुस्तर प्रतीत होता था। वहाँ पहुँचकर हमलोगोंने रणभूमिमें सात्यकिका अद्भुत चरित्र देखा ॥ ५½ ॥

प्रतीच्यां दिशि तं दृष्ट्वा प्राच्यां पश्यामि लाघवात् ॥ ६ ॥
उदीचीं दक्षिणां प्राचीं प्रतीचीं विदिशस्तथा ।
नृत्यन्निवाचरच्छूरो यथा रथशतं तथा ॥ ७ ॥

वे इतनी फुर्तीसे इधर-उधर जाते थे कि मैं उन्हें पश्चिम दिशामें देखकर तुरंत ही पूर्व दिशामें भी उपस्थित देखता था, सैकड़ों रथियोंके समान वे शूरवीर सात्यकि उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम तथा कोणवर्ती दिशाओंमें भी नाचते हुए-से विचर रहे थे ॥ ६-७ ॥

तद् दृष्ट्वा चरितं तस्य सिंहविक्रान्तगामिनः ।
त्रिगर्ताः संन्यवर्तन्त संतप्ताः स्वजनं प्रति ॥ ८ ॥

सिंहके समान पराक्रमसूचक गतिसे चलनेवाले सात्यकिके उस चरित्रको देखकर त्रिगर्तदेशीय योद्धा अपने स्वजनोंके लिये शोक-संताप करते हुए पीछे लौट गये ॥ ८ ॥

तमन्ये शूरसेनानां शूराः संख्ये न्यवारयन् ।
नियच्छन्तः शरव्रातैर्मत्तं द्विपमिवाङ्कुशैः ॥ ९ ॥

तदनन्तर युद्धस्थलमें दूसरे शूरसेनदेशीय शूरवीर सैनिकोंने अपने शरसमूहोंद्वारा उनपर नियन्त्रण करते हुए उन्हें उसी प्रकार रोका, जैसे महावत मतवाले हाथीको अंकुशोंद्वारा रोकते हैं ॥ ९ ॥

तैर्व्यवाहरदार्यात्मा मुहूर्तादेव सात्यकिः ।
ततः कलिङ्गैर्युयुधे सोऽचिन्त्यबलविक्रमः ॥ १० ॥

तब अचिन्त्य बल और पराक्रमसे सम्पन्न महामना सात्यकिने उनके साथ युद्ध करके दो ही घड़ीमें उन्हें हरा दिया और फिर वे कलिङ्गदेशीय सैनिकोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ १० ॥

तां च सेनामतिक्रम्य कलिङ्गानां दुरत्ययाम् ।
अथ पार्थं महाबाहुर्धनंजयमुपासदत् ॥ ११ ॥

कलिङ्गोंकी उस दुर्जय सेनाको लाँघकर महाबाहु सात्यकि कुन्तीकुमार अर्जुनके निकट जा पहुँचे ॥ ११ ॥

तरन्निव जले श्रान्तो यथा स्थलमुपेयिवान् ।
तं दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रं युयुधानः समाश्वसत् ॥ १२ ॥

जैसे जलमें तैरते-तैरते थका हुआ मनुष्य स्थलमें पहुँच जाय, उसी प्रकार पुरुषसिंह अर्जुनको देखकर युयुधानको बड़ा आश्वासन मिला ॥ १२ ॥

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य केशवः पार्थमब्रवीत् ।
असावायाति शैनेयस्तव पार्थ पदानुगः ॥ १३ ॥

सात्यकिको आते देख भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे



कहा—'पार्थ ! देखो, यह तुम्हारे चरणोंका अनुगामी शिनिपौत्र सात्यकि आ रहा है ॥ १३ ॥

एष शिष्यः सखा चैव तव सत्यपराक्रमः ।
सर्वान् योधांस्तृणीकृत्य विजिग्ये पुरुषर्षभः ॥ १४ ॥

'यह सत्यपराक्रमी वीर तुम्हारा शिष्य और सखा भी है। इस पुरुषसिंहने समस्त योद्धाओंको तिनकोंके समान समझकर परास्त कर दिया है ॥ १४ ॥

एष कौरवयोधानां कृत्वा घोरमुपद्रवम् ।
तव प्राणैः प्रियतमः किरीटिन्नेति सात्यकिः ॥ १५ ॥

'किरीटधारी अर्जुन ! जो तुम्हें प्राणोंके समान अत्यन्त प्रिय है, वही यह सात्यकि कौरव योद्धाओंमें घोर उपद्रव मचाकर आ रहा है ॥ १५ ॥

एष द्रोणं तथा भोजं कृतवर्माणमेव च ।
कदर्थीकृत्य विशिखैः फाल्गुनाभ्येति सात्यकिः ॥ १६ ॥

'फाल्गुन ! यह सात्यकि अपने बाणोंद्वारा द्रोणाचार्य तथा भोजवंशी कृतवर्माका भी तिरस्कार करके तुम्हारे पास आ रहा है ॥ १६ ॥

धर्मराजप्रियान्वेषी हत्वा योधान् वरान् वरान् ।
शूरश्चैव कृतास्त्रश्च फाल्गुनाभ्येति सात्यकिः ॥ १७ ॥

'फाल्गुन ! यह शूरवीर एवं उत्तम अस्त्रोंका ज्ञाता सात्यकि धर्मराजके प्रिय तुम्हारे समाचार लेनेके लिये बड़े-बड़े योद्धाओंको मारकर यहाँ आ रहा है ॥ १७ ॥

कृत्वा सुदुष्करं कर्म सैन्यमध्ये महाबलः ।
तव दर्शनमन्विच्छन् पाण्डवाभ्येति सात्यकिः ॥ १८ ॥

'पाण्डुनन्दन ! महाबली सात्यकि कौरवसेनाके भीतर अत्यन्त दुष्कर पराक्रम करके तुम्हें देखनेकी इच्छासे यहाँ आ रहा है ॥ १८ ॥

बहूनेकरथेनाजौ योधयित्वा महारथान् ।
आचार्यप्रमुखान् पार्थ प्रयात्येष स सात्यकिः ॥ १९ ॥

'पार्थ ! युद्धस्थलमें द्रोणाचार्य आदि बहुत-से महारथियोंके साथ एकमात्र रथकी सहायतासे युद्ध करके यह सात्यकि इधर आ रहा है ॥ १९ ॥

स्वबाहुबलमाश्रित्य विदार्य च वरूथिनीम् ।
प्रेषितो धर्मराजेन पार्थैषोऽभ्येति सात्यकिः ॥ २० ॥

'कुन्तीकुमार ! अपने बाहुबलका आश्रय ले कौरवसेनाको विदीर्ण करके धर्मराजका भेजा हुआ यह सात्यकि यहाँ आ रहा है ॥ २० ॥

यस्य नास्ति समो योधः कौरवेषु कथंचन ।
सोऽयमायाति कौन्तेय सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ॥ २१ ॥

'कुन्तीनन्दन ! कौरवसेनामें किसी प्रकार भी जिसकी समता करनेवाला एक भी योद्धा नहीं है, वही यह रणदुर्मद सात्यकि यहाँ आ रहा है ॥ २१ ॥

कुरुसैन्याद् विमुक्तो वै सिंहो मध्याद् गवामिव।
निहत्य बहुलाः सेनाः पार्थैषोऽभ्येति सात्यकिः॥ २२ ॥

'पार्थ ! जैसे सिंह गायोंके बीचसे अनायास ही निकल जाता है, उसी प्रकार कौरव-सेनाके घेरेसे छूटकर निकला हुआ यह सात्यकि बहुत-सी शत्रु-सेनाओंका संहार करके इधर आ रहा है ॥ २२ ॥

एष राजसहस्राणां वक्त्रैः पङ्कजसंनिभैः।
आस्तीर्य वसुधां पार्थ क्षिप्रमायाति सात्यकिः ॥ २३ ॥

'कुन्तीनन्दन ! यह सात्यकि सहस्रों राजाओंके कमल-सदृश मस्तकोंद्वारा इस रणभूमिको पाटकर शीघ्रतापूर्वक इधर आ रहा है ॥ २३ ॥

एष दुर्योधनं जित्वा भ्रातृभिः सहितं रणे।
निहत्य जलसंधं च क्षिप्रमायाति सात्यकिः ॥ २४ ॥

'यह सात्यकि रणभूमिमें भाइयोंसहित दुर्योधनको जीतकर और जलसंधका वध करके शीघ्र यहाँ आ रहा है ॥ २४ ॥

रुधिरौघवतीं कृत्वा नदीं शोणितकर्दमाम्।
तृणवद् व्यस्य कौरव्यानेष ह्यायाति सात्यकिः ॥ २५ ॥

'शोणित और मांसरूपी कीचड़से युक्त खूनकी नदी बहाकर और कौरव-सैनिकोंको तिनकोंके समान उड़ाकर यह सात्यकि इधर आ रहा है' ॥ २५ ॥

ततः प्रहृष्टः कौन्तेयः केशवं वाक्यमब्रवीत्।
न मे प्रियं महाबाहो यन्मामभ्येति सात्यकिः ॥ २६ ॥

तब हर्षमें भरे हुए कुन्तीकुमार अर्जुनने केशवसे कहा—'महाबाहो ! सात्यकि जो मेरे पास आ रहे हैं, यह मुझे प्रिय नहीं है ॥ २६ ॥

न हि जानामि वृत्तान्तं धर्मराजस्य केशव।
सात्वतेन विहीनः स यदि जीवति वा न वा ॥ २७ ॥

'केशव ! पता नहीं, धर्मराजका क्या हाल है ? सात्यकिसे रहित होकर वे जीवित हैं या नहीं ? ॥ २७ ॥

एतेन हि महाबाहो रक्षितव्यः स पार्थिवः।
तमेष कथमुत्सृज्य मम कृष्ण पदानुगः ॥ २८ ॥

'महाबाहो ! सात्यकिको तो उन्हींकी रक्षा करनी चाहिये थी। श्रीकृष्ण ! उन्हें छोड़कर ये मेरे पीछे कैसे चले आये ? ॥ २८ ॥

राजा द्रोणाय चोत्सृष्टः सैन्धवश्चानिपातितः।
प्रत्युद्याति च शैनेयमेष भूरिश्रवा रणे ॥ २९ ॥

'इन्होंने राजा युधिष्ठिरको द्रोणाचार्यके लिये छोड़ दिया और सिन्धुराज जयद्रथ भी अभी मारा नहीं गया। इसके सिवा ये भूरिश्रवा रणमें शिनिपौत्र सात्यकिकी ओर अग्रसर हो रहे हैं ॥ २९ ॥

सोऽयं गुरुतरो भारः सैन्धवार्थे समाहितः।
ज्ञातव्यश्च हि मे राजा रक्षितव्यश्च सात्यकिः ॥ ३० ॥

'इस समय सिन्धुराज जयद्रथके कारण यह मुझपर बहुत बड़ा भार आ गया। एक तो मुझे राजाका कुशल-समाचार जानना है, दूसरे सात्यकिकी भी रक्षा करनी है ॥ ३० ॥

जयद्रथश्च हन्तव्यो लम्बते च दिवाकरः।
श्रान्तश्चैष महाबाहुरल्पप्राणश्च साम्प्रतम् ॥ ३१ ॥
परिश्रान्ता हयाश्चास्य हयन्ता च माधव।
न च भूरिश्रवाः श्रान्तः ससहायश्च केशव ॥ ३२ ॥

'इसके सिवा जयद्रथका भी वध करना है। इधर सूर्यदेव अस्ताचलपर जा रहे हैं। माधव ! ये महाबाहु सात्यकि इस समय थककर अल्पप्राण हो रहे हैं। इनके घोड़े और सारथि भी थक गये हैं। किंतु केशव ! भूरिश्रवा और उनके सहायक थके नहीं हैं ॥ ३१-३२ ॥

अपीदानीं भवेदस्य क्षेममस्मिन् समागमे।
कच्चिन्न सागरं तीर्त्वा सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ ३३ ॥
गोष्पदं प्राप्य सीदेत महौजाः शिनिपुङ्गवः।

'क्या इन दोनोंके इस संघर्षमें इस समय सात्यकि सकुशल विजयी हो सकेंगे ? कहीं ऐसा तो नहीं होगा कि सत्यपराक्रमी शिनिप्रवर महाबली सात्यकि समुद्रको पार करके गायकी खुरीके बराबर जलमें डूबने लगे ॥ ३३½ ॥

अपि कौरवमुख्येन कृतास्त्रेण महात्मना ॥ ३४ ॥
समेत्य भूरिश्रवसा स्वस्तिमान् सात्यकिर्भवेत्।

'कौरवकुलके मुख्य वीर अस्त्रवेत्ता महामना भूरिश्रवासे भिड़कर क्या सात्यकि सकुशल रह सकेंगे ॥ ३४½ ॥

व्यतिक्रममिमं मन्ये धर्मराजस्य केशव ॥ ३५ ॥
आचार्याद् भयमुत्सृज्य यः प्रैषयत् सात्यकिम्।

'केशव ! मैं तो धर्मराजके इस कार्यको विपरीत समझता हूँ, जिन्होंने द्रोणाचार्यका भय छोड़कर सात्यकिको इधर भेज दिया ॥ ३५½ ॥

ग्रहणं धर्मराजस्य खगः श्येन इवामिषम् ॥ ३६ ॥
नित्यमाशंसते द्रोणः कच्चित् स्यात् कुशली नृपः॥ ३७॥

'जैसे बाजपक्षी मांसपर झपट्टा मारता है, उसी प्रकार द्रोणाचार्य प्रतिदिन धर्मराजको बंदी बनाना चाहते हैं। क्या राजा युधिष्ठिर सकुशल होंगे ?' ॥३६-३७॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यक्यर्जुनदर्शने एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकि और अर्जुनका परस्पर साक्षात्कारविषयक एक सौ इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४१ ॥

द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भूरिश्रवा और सात्यकिका रोषपूर्वक सम्भाषण और युद्ध तथा सात्यकिका सिर काटनेके लिये उद्यत हुए भूरिश्रवाकी भुजाका अर्जुनद्वारा उच्छेद

संजय उवाच

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य सात्वतं युद्धदुर्मदम्।
क्रोधाद् भूरिश्रवा राजन् सहसा समुपाद्रवत्॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! रणदुर्मद सात्यकिको आते देख भूरिश्रवाने क्रोधपूर्वक सहसा उनपर आक्रमण किया ॥ १ ॥

तमब्रवीन्महाराज कौरव्यः शिनिपुङ्गवम्।
अद्य प्राप्तोऽसि दिष्ट्या मे चक्षुर्विषयमित्युत ॥ २ ॥
चिराभिलषितं काममहं प्राप्स्यामि संयुगे।
न हि मे मोक्ष्यसे जीवन् यदि नोत्सृजसे रणम् ॥ ३ ॥

महाराज! कुरुनन्दन भूरिश्रवाने उस समय शिनिप्रवर सात्यकिसे इस प्रकार कहा—'युयुधान! बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज तुम मेरी आँखोंके सामने आ गये। आज युद्धमें मैं अपनी बहुत दिनोंकी इच्छा पूर्ण करूँगा। यदि तुम मैदान छोड़कर भाग नहीं गये तो आज मेरे हाथसे जीवित नहीं बचोगे ॥ २-३ ॥

अद्य त्वां समरे हत्वा नित्यं शूराभिमानिनम्।
नन्दयिष्यामि दाशार्ह कुरुराजं सुयोधनम् ॥ ४ ॥

'दाशार्ह! तुम सदा अपनेको बड़ा शूरवीर मानते हो। आज मैं समरभूमिमें तुम्हारा वध करके कुरुराज दुर्योधनको आनन्दित करूँगा ॥ ४ ॥

अद्य मद्बाणनिर्दग्धं पतितं धरणीतले।
द्रक्ष्यतस्त्वां रणे वीरौ सहितौ केशवार्जुनौ ॥ ५ ॥

'आज युद्धमें वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों एक साथ तुम्हें मेरे बाणोंसे दग्ध होकर पृथ्वीपर पड़ा हुआ देखेंगे ॥५॥

अद्य धर्मसुतो राजा श्रुत्वा त्वां निहतं मया।
सव्रीडो भविता सद्यो येनासीह प्रवेशितः ॥ ६ ॥

'आज जिन्होंने इस सेनाके भीतर तुम्हारा प्रवेश कराया है, वे धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर मेरे द्वारा तुम्हारे मारे जानेका समाचार सुनकर तत्काल लज्जित हो जायँगे ॥ ६ ॥

अद्य मे विक्रमं पार्थो विज्ञास्यति धनंजयः।
त्वयि भूमौ विनिहते शयाने रुधिरोक्षिते ॥ ७ ॥

'आज जब तुम मारे जाकर खूनसे लथपथ हो धरतीपर सो जाओगे, उस समय कुन्तीपुत्र अर्जुन मेरे पराक्रमको अच्छी तरह जान लेंगे ॥ ७ ॥

चिराभिलषितो ह्येष त्वया सह समागमः।
पुरा देवासुरे युद्धे शक्रस्य बलिना यथा ॥ ८ ॥

'जैसे पूर्वकालमें देवासुर-संग्राममें इन्द्रका राजा बलिके साथ युद्ध हुआ था, उसी प्रकार तुम्हारे साथ मेरा युद्ध हो, यह मेरी बहुत दिनोंकी अभिलाषा थी ॥ ८ ॥

अद्य युद्धं महाघोरं तव दास्यामि सात्वत।
ततो ज्ञास्यसि तत्त्वेन मद्वीर्यबलपौरुषम् ॥ ९ ॥

'सात्वत! आज मैं तुम्हें अत्यन्त घोर संग्रामका अवसर दूँगा। इससे तुम मेरे बल, वीर्य और पुरुषार्थका यथार्थ परिचय प्राप्त करोगे ॥ ९ ॥

अद्य संयमनीं याता मया त्वं निहतो रणे।
यथा रामानुजेनाजौ रावणिर्लक्ष्मणेन ह ॥ १० ॥

'जैसे पूर्वकालमें श्रीरामचन्द्रजीके भाई लक्ष्मणके द्वारा युद्धमें रावणकुमार इन्द्रजित् मारा गया था, उसी प्रकार इस रणभूमिमें मेरे द्वारा मारे जाकर तुम आज ही यमराजकी संयमनीपुरीकी ओर प्रस्थान करोगे ॥ १० ॥

अद्य कृष्णश्च पार्थश्च धर्मराजश्च माधव।
हते त्वयि निरुत्साहा रणं त्यक्ष्यन्त्यसंशयम् ॥ ११ ॥

'माधव! आज तुम्हारे मारे जानेपर श्रीकृष्ण, अर्जुन और धर्मराज युधिष्ठिर उत्साहशून्य हो युद्ध बंद कर देंगे, इसमें संशय नहीं है ॥ ११ ॥

अद्य तेऽपचितिं कृत्वा शितैर्माधव सायकैः।
तत्स्त्रियो नन्दयिष्यामि ये त्वया निहता रणे ॥ १२ ॥

'मधुकुलनन्दन! आज तीखे बाणोंसे तुम्हारी पूजा करके मैं उन वीरोंकी स्त्रियोंको आनन्दित करूँगा, जिन्हें रणभूमिमें तुमने मार डाला है ॥ १२ ॥

मच्चक्षुर्विषयं प्राप्तो न त्वं माधव मोक्ष्यसे।
सिंहस्य विषयं प्राप्तो यथा क्षुद्रमृगस्तथा ॥ १३ ॥

'माधव! जैसे कोई क्षुद्र मृग सिंहकी दृष्टिमें पड़कर जीवित नहीं रह सकता, उसी प्रकार मेरी आँखोंके सामने आकर अब तुम जीवित नहीं छूट सकोगे' ॥ १३ ॥

युयुधानस्तु तं राजन् प्रत्युवाच हसन्निव।
कौरवेय न संत्रासो विद्यते मम संयुगे ॥ १४ ॥

राजन्! युयुधानने भूरिश्रवाकी यह बात सुनकर हँसते हुए-से यह उत्तर दिया—'कुरुनन्दन! युद्धमें मुझे कभी किसीसे भय नहीं होता है ॥ १४ ॥

नाहं भीषयितुं शक्यो वाङ्मात्रेण तु केवलम्।
स मां निहन्यात् संग्रामे यो मां कुर्यान्निरायुधम्॥ १५॥

'मुझे केवल बातें बनाकर नहीं डराया जा सकता। संग्राममें जो मुझे शस्त्रहीन कर दे, वही मेरा वध कर सकता है ॥ १५ ॥

समास्तु शाश्वतीर्हन्याद् यो मां हन्याद्धि संयुगे।
किं वृथोक्तेन बहुना कर्मणा तत् समाचर ॥ १६ ॥

'जो युद्धमें मुझे मार सकता है, वह सदा सर्वत्र अपने शत्रुओंका वध कर सकता है। अस्तु, व्यर्थ ही बहुत-सी बातें बनानेसे क्या लाभ? तुमने जो कुछ कहा है, उसे करके दिखाओ ॥ १६ ॥

शारदस्येव मेघस्य गर्जितं निष्फलं हि ते।
श्रुत्वा त्वद्गर्जितं वीर हास्यं हि मम जायते ॥ १७ ॥

'शरत्कालके मेघके समान तुम्हारे इस गर्जन-तर्जनका कुछ फल नहीं है। वीर! तुम्हारी यह गर्जना सुनकर मुझे हँसी आती है ॥ १७ ॥

चिरकालेप्सितं लोके युद्धमद्यास्तु कौरव।
त्वरते मे मतिस्तात तव युद्धाभिकाङ्क्षिणी ॥ १८ ॥
नाहत्वाहं निवर्तिष्ये त्वामद्य पुरुषाधम।

'कौरव! इस लोकमें मेरी भी तुम्हारे साथ युद्ध करनेकी बहुत दिनोंसे अभिलाषा थी। वह आज पूरी हो जाय। तात! तुमसे युद्धकी अभिलाषा रखनेवाली मेरी बुद्धि मुझे जल्दी करनेके लिये प्रेरणा दे रही है। पुरुषाधम! आज तुम्हारा वध किये बिना मैं पीछे नहीं हटूँगा' ॥ १८½ ॥

अन्योन्यं तौ तथा वाग्भिस्तक्षन्तौ नरपुङ्गवौ ॥ १९ ॥
जिघांसू परमक्रुद्धावभिजघ्नतुराहवे।

इस प्रकार एक दूसरेको मार डालनेकी इच्छावाले वे दोनों नरश्रेष्ठ वीर परस्पर वाग्बाणोंका प्रहार करते हुए उस युद्धस्थलमें अत्यन्त कुपित हो बाणोंद्वारा आघात करने लगे ॥ १९½ ॥

समेतौ तौ महेष्वासौ शुष्मिणौ स्पर्धिनौ रणे ॥ २० ॥
द्विरदाविव संक्रुद्धौ वासितार्थे मदोत्कटौ।

वे दोनों महाधनुर्धर और पराक्रमी वीर उस रणक्षेत्रमें एक दूसरेसे स्पर्धा रखते हुए हथिनीके लिये अत्यन्त कुपित होकर परस्पर युद्ध करनेवाले दो मदोन्मत्त हाथियोंकी तरह एक दूसरेसे भिड़ गये ॥ २०½ ॥

भूरिश्रवाः सात्यकिश्च ववर्षतुररिंदमौ ॥ २१ ॥
शरवर्षाणि घोराणि मेघाविव परस्परम्।

भूरिश्रवा और सात्यकि दोनों शत्रुदमन वीरोंने दो मेघोंकी भाँति परस्पर भयंकर बाण-वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ २१½ ॥

सौमदत्तिस्तु शैनेयं प्रच्छाद्येषुभिराशुगैः ॥ २२ ॥
जिघांसुर्भरतश्रेष्ठ विव्याध निशितैः शरैः।

भरतश्रेष्ठ! सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवाने शिनिप्रवर सात्यकिको मार डालनेकी इच्छासे शीघ्रगामी बाणोंद्वारा आच्छादित करके तीखे बाणोंसे घायल कर दिया ॥ २२½ ॥

दशभिः सात्यकिं विद्ध्वा सौमदत्तिरथापरान् ॥ २३ ॥
मुमोच निशितान् बाणान् जिघांसुः शिनिपुङ्गवम्।

शिनिवंशके प्रधान वीर सात्यकिके वधकी इच्छासे भूरिश्रवाने उन्हें दस बाणोंसे घायल करके उनपर और भी बहुत-से पैने बाण छोड़े ॥ २३½ ॥

तानस्य विशिखांस्तीक्ष्णानन्तरिक्षे विशाम्पते ॥ २४ ॥
अप्राप्तानस्त्रमायाभिरग्रसत् सात्यकिः प्रभो।

प्रजानाथ! प्रभो! सात्यकिने भूरिश्रवाके उन तीखे बाणोंको अपने पास आनेके पूर्व ही अपने अस्त्र-बलसे आकाशमें ही नष्ट कर दिये ॥ २४½ ॥

तौ पृथक् शस्त्रवर्षाभ्यामवर्षेतां परस्परम् ॥ २५ ॥
उत्तमाभिजनौ वीरौ कुरुवृष्णियशस्करौ।

वे दोनों वीर उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए थे। एक कुरुकुलकी कीर्तिका विस्तार कर रहा था तो दूसरा वृष्णिवंशका यश बढ़ा रहा था। उन दोनोंने एक दूसरेपर पृथक्-पृथक् अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा की ॥ २५½ ॥

तौ नखैरिव शार्दूलौ दन्तैरिव महाद्विपौ ॥ २६ ॥
रथशक्तिभिरन्योन्यं विशिखैश्चाप्यकृन्तताम्।

जैसे दो सिंह नखोंसे और दो बड़े-बड़े गजराज दाँतोंसे परस्पर प्रहार करते हैं, उसी प्रकार वे दोनों वीर रथ-शक्तियों तथा बाणोंद्वारा एक दूसरेको क्षत-विक्षत करने लगे ॥ २६½ ॥

निर्भिन्दन्तौ हि गात्राणि विक्षरन्तौ च शोणितम् ॥ २७ ॥
व्यष्टम्भयेतामन्योन्यं प्राणद्यूताभिदेविनौ।

प्राणोंकी बाजी लगाकर युद्धका जूआ खेलनेवाले वे दोनों वीर एक दूसरेके अङ्गोंको विदीर्ण करते और खून बहाते हुए एक दूसरेको रोकने लगे ॥ २७½ ॥

एवमुत्तमकर्माणौ कुरुवृष्णियशस्करौ ॥ २८ ॥
परस्परमयुध्येतां वारणाविव यूथपौ।

कुरुकुल तथा वृष्णिवंशके यशका विस्तार करनेवाले उत्तमकर्मा भूरिश्रवा और सात्यकि इस प्रकार दो यूथपति गजराजोंके समान परस्पर युद्ध करने लगे ॥ २८½ ॥

तावदीर्घेण कालेन ब्रह्मलोकपुरस्कृतौ ॥ २९ ॥
यियासन्तौ परं स्थानमन्योन्यं संजगर्जतुः।

ब्रह्मलोकको सामने रखकर परमपद प्राप्त करनेकी इच्छावाले वे दोनों वीर कुछ कालतक एक दूसरेकी ओर देखकर गर्जन-तर्जन करते रहे ॥ २९½ ॥

सात्यकिः सौमदत्तिश्च शरवृष्ट्या परस्परम् ॥ ३० ॥
हृष्टवद् धार्तराष्ट्राणां पश्यतामभ्यवर्षताम्।

सात्यकि और भूरिश्रवा दोनों परस्पर बाणोंकी बौछार कर रहे थे और धृतराष्ट्रके सभी पुत्र हर्षमें भरकर उनके युद्धका दृश्य देख रहे थे ॥ ३०½ ॥

सम्प्रैक्षन्त जनास्तौ तु युध्यमानौ युधाम्पती ॥ ३१ ॥
यूथपौ वासिताहेतोः प्रयुद्धाविव कुञ्जरौ।

जैसे हथिनीके लिये दो यूथपति गजराज परस्पर घोर युद्ध करते हैं, उसी प्रकार आपसमें लड़नेवाले उन योद्धाओंके अधिपतियोंको सब लोग दर्शक बनकर देखने लगे ॥ ३१½ ॥

अन्योन्यस्य हयान् हत्वा धनुषी विनिकृत्य च ॥ ३२ ॥
विरथावसियुद्धाय समेयातां महारणे ।

दोनोंने दोनोंके घोड़े मारकर धनुष काट दिये तथा उस महासमरमें दोनों ही रथहीन होकर खड्ग-युद्धके लिये एक दूसरेके सामने आ गये ॥ ३२½ ॥

आर्षभे चर्मणी चित्रे प्रगृह्य विपुले शुभे ॥ ३३ ॥
विकोशौ चाप्यसी कृत्वा समरे तौ विचेरतुः ।

बैलके चमड़ेसे बनी हुई दो विचित्र, सुन्दर एवं विशाल ढालें लेकर और तलवारोंको म्यानसे बाहर निकालकर वे दोनों समराङ्गणमें विचरने लगे ॥ ३३½ ॥

चरन्तौ विविधान् मार्गान् मण्डलानि च भागशः ॥ ३४ ॥
मुहुराजघ्नतुः क्रुद्धावन्योन्यमरिमर्दनौ ।
सखड्गौ चित्रवर्माणौ सनिष्काङ्गदभूषणौ ॥ ३५ ॥

क्रोधमें भरे हुए वे दोनों शत्रुमर्दन वीर पृथक्-पृथक् नाना प्रकारके मार्ग और मण्डल (पैंतरे और दाँव-पेंच) दिखाते हुए एक दूसरेपर बारंबार चोट करने लगे । उनके हाथोंमें तलवारें चमक रही थीं । उन दोनोंके ही कवच विचित्र थे तथा वे निष्क और अङ्गद आदि आभूषणोंसे विभूषित थे ॥ ३४–३५ ॥

भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं विप्लुतं सृतम् ।
सम्पातं समुदीर्णं च दर्शयन्तौ यशस्विनौ ॥ ३६ ॥
असिभ्यां सम्प्रजह्राते परस्परमरिंदमौ ।

शत्रुओंका दमन करनेवाले वे दोनों यशस्वी वीर भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, आप्लुत, विप्लुत, सृत, सम्पात और समुदीर्ण आदि गति और पैंतरे दिखाते हुए परस्पर तलवारोंका वार करने लगे ॥ ३६½ ॥

उभौ छिद्रैषिणौ वीरावुभौ चित्रं ववल्गतुः ॥ ३७ ॥
दर्शयन्तावुभौ शिक्षां लाघवं सौष्ठवं तथा ।
रणे रणकृतां श्रेष्ठावन्योन्यं पर्यकर्षताम् ॥ ३८ ॥

दोनों ही वीर एक दूसरेके छिद्र (प्रहार करनेके अवसर) पानेकी इच्छा रखते हुए विचित्र रीतिसे उछलते-कूदते थे । दोनों ही अपनी शिक्षा, फुर्ती तथा युद्ध-कौशल दिखाते हुए रणभूमिमें एक दूसरेको खींच रहे थे । वे दोनों ही योद्धाओंमें श्रेष्ठ थे ॥ ३७–३८ ॥

मुहूर्तमिव राजेन्द्र समाहत्य परस्परम् ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां वीरावाश्वसतां पुनः ॥ ३९ ॥
असिभ्यां चर्मणी चित्रे शतचन्द्रे नराधिप ।
निकृत्य पुरुषव्याघ्रौ बाहुयुद्धं प्रचक्रतुः ॥ ४० ॥

राजेन्द्र ! उस समय विश्राम करती हुई सम्पूर्ण सेनाओंके देखते देखते लगभग दो घड़ीतक एक दूसरेपर तलवारोंसे चोट करके दोनोंने दोनोंकी सौ चन्द्राकार चिह्नोंसे सुशोभित विचित्र ढालें काट डालीं । नरेश्वर ! फिर वे दोनों पुरुषसिंह भुजाओंद्वारा मल्ल-युद्ध करने लगे ॥

व्यूढोरस्कौ दीर्घभुजौ नियुद्धकुशलावुभौ ।
बाहुभिः समसज्जेतामायसैः परिघैरिव ॥ ४१ ॥

दोनोंके वक्षःस्थल चौड़े और भुजाएँ बड़ी-बड़ी थीं । दोनों ही मल्ल-युद्धमें कुशल थे और लोहेके परिघोंके समान सुदृढ़ भुजाओंद्वारा एक दूसरेसे गुथ गये थे ॥ ४१ ॥

तयो राजन् भुजाघातनिग्रहप्रग्रहास्तथा ।
शिक्षाबलसमुद्भूताः सर्वयोधप्रहर्षणाः ॥ ४२ ॥

राजन् ! उन दोनोंके भुजाओंद्वारा आघात, निग्रह (हाथ पकड़ना) और प्रग्रह (गलेमें हाथ लगाना) आदि दाव उनकी शिक्षा और बलके अनुरूप प्रकट होकर समस्त योद्धाओंका हर्ष बढ़ा रहे थे ॥ ४२ ॥

तयोर्नृवरयो राजन् समरे युध्यमानयोः ।
भीमोऽभवन्महाशब्दो वज्रपर्वतयोरिव ॥ ४३ ॥

राजन् ! समरभूमिमें जूझते हुए उन दोनों नरश्रेष्ठोंके पारस्परिक आघातसे प्रकट होनेवाला महान् शब्द वज्र और पर्वतके टकरानेके समान भयंकर जान पड़ता था ॥ ४३ ॥

द्विपाविव विषाणाग्रैः श्रृङ्गैरिव महर्षभौ ।
भुजयोक्त्रावबन्धैश्च शिरोभ्यां चावघातनैः ॥ ४४ ॥
पादावकर्षसंधानैस्तोमराङ्कुशलासनैः ।
पादोदरविबन्धैश्च भूमावुद्भ्रमणैस्तथा ॥ ४५ ॥
गतप्रत्यागताक्षेपैः पातनोत्थानसम्प्लुतैः ।
युयुधाते महात्मानौ कुरुसात्वतपुङ्गवौ ॥ ४६ ॥

जैसे दो हाथी दाँतोंके अग्रभागसे तथा दो साँड़ सींगोंसे लड़ते हैं, उसी प्रकार वे दोनों वीर कभी भुजपाशोंसे बाँधकर, कभी सिरोंकी टक्कर लगाकर, कभी पैरोंसे खींचकर, कभी पैरमें पैर लपेट कर, कभी तोमर-प्रहारके समान ताल ठोंककर, कभी अङ्कुश गड़ानेके समान एक दूसरेको नोचकर, कभी पादबन्ध, उदरबन्ध, उद्भ्रमण[1], गत[2], प्रत्यागत[3], आक्षेप[4], पातन[5], उत्थान[6] और संप्लुत[7] आदि दावोंका प्रदर्शन करते हुए वे दोनों महामनस्वी कुरु और सात्वतवंशके प्रमुख वीर परस्पर युद्ध कर रहे थे ॥ ४४-४६ ॥

द्वात्रिंशत्करणानि स्युर्यानि युद्धानि भारत ।
तान्यदर्शयतां तत्र युध्यमानौ महाबलौ ॥ ४७ ॥

१. पृथ्वीपर घुमाना । २. प्रतिद्वन्द्वीकी ओर बढ़ना । ३. पीछे लौटना । ४. पछाड़ना ५. पृथ्वीपर पटकना । ६. उछलकर खड़ा होना । ७. पीठ लगाना ।

भारत ! इस प्रकार वे दोनों महाबली वीर परस्पर जूझते हुए मल्ल-युद्धकी जो बत्तीस कलाएँ हैं, उनका प्रदर्शन करने लगे ॥ ४७ ॥

क्षीणायुधे सात्वते युध्यमाने
ततोऽब्रवीदर्जुनं वासुदेवः ।
पश्यस्वैनं विरथं युध्यमानं
रणे वरं सर्वधनुर्धराणाम् ॥ ४८ ॥

तदनन्तर जब अस्त्र-शस्त्र नष्ट हो जानेपर सात्यकि युद्ध कर रहे थे, उस समय भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'पार्थ ! रणमें समस्त धनुर्धरियोंमें श्रेष्ठ इस सात्यकिकी ओर देखो । यह रथहीन होकर युद्ध कर रहा है ॥ ४८ ॥

(सीदन्तं सात्यकिं पश्य पार्थैनं परिरक्ष च ॥)
प्रविष्टो भारतीं भित्त्वा तव पाण्डव पृष्ठतः ।
योधितश्च महावीर्यैः सर्वैर्भारत भारतैः ॥ ४९ ॥

'कुन्तीनन्दन ! देखो, सात्यकि शिथिल हो गया है । इसकी रक्षा करो । भारत ! पाण्डुनन्दन ! तुम्हारे पीछे-पीछे यह कौरव-सेनाका व्यूह भेदकर भीतर घुस आया है और भरतवंशके प्रायः सभी महापराक्रमी योद्धाओंके साथ युद्ध कर चुका है ॥ ४९ ॥

(धार्तराष्ट्राश्च ये मुख्या ये च मुख्या महारथाः ।
निहता वृष्णिवीरेण शतशोऽथ सहस्रशः ॥)

'दुर्योधनकी सेनामें जो मुख्य योद्धा और प्रधान महारथी थे, वे सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें इस वृष्णिवंशी वीरके हाथसे मारे गये हैं ॥

परिश्रान्तं युधां श्रेष्ठं सम्प्राप्तो भूरिदक्षिणः ।
युद्धाकाङ्क्षी समायान्तं नैतत् सममिवार्जुन ॥ ५० ॥

'अर्जुन ! यहाँ आता हुआ योद्धाओंमें श्रेष्ठ सात्यकि बहुत थक गया है, तो भी उसके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे यज्ञोंमें पर्याप्त दक्षिणा देनेवाले भूरिश्रवा आये हैं । यह युद्ध समान योग्यताका नहीं है' ॥ ५० ॥

ततो भूरिश्रवाः क्रुद्धः सात्यकिं युद्धदुर्मदः ।
उद्यम्याभ्याहनद् राजन् मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ५१ ॥

राजन् ! इसी समय क्रोधमें भरे हुए रणदुर्मद भूरिश्रवाने उद्योग करके सात्यकिपर उसी प्रकार आघात किया, जैसे एक मतवाला हाथी दूसरे मदोन्मत्त हाथीपर चोट करता है ॥ ५१ ॥

रथस्थयोर्द्वयोर्युद्धे क्रुद्धयोर्योधमुख्ययोः ।
केशवार्जुनयो राजन् समरे प्रेक्षमाणयोः ॥ ५२ ॥

नरेश्वर ! समराङ्गणमें रथपर बैठे हुए क्रोधभरे योद्धाओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुन वह युद्ध देख रहे थे ॥ ५२ ॥

अथ कृष्णो महाबाहुरर्जुनं प्रत्यभाषत ।
पश्य वृष्ण्यन्धकव्याघ्रं सौमदत्तिवशं गतम् ॥ ५३ ॥

तब महाबाहु श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'पार्थ ! देखो, वृष्णि और अंधकवंशका वह श्रेष्ठ वीर भूरिश्रवाके वशमें हो गया है ॥ ५३ ॥

परिश्रान्तं गतं भूमौ कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ।
तवान्तेवासिनं वीरं पालयार्जुन सात्यकिम् ॥ ५४ ॥

'वह अत्यन्त दुष्कर कर्म करके परिश्रमसे चूर-चूर हो पृथ्वीपर गिर गया है । अर्जुन ! वीर सात्यकि तुम्हारा ही शिष्य है । उसकी रक्षा करो ॥ ५४ ॥

न वशं यज्ञशीलस्य गच्छेदेष वरोऽर्जुन ।
त्वत्कृते पुरुषव्याघ्र तदाशु क्रियतां विभो ॥ ५५ ॥

'पुरुषसिंह अर्जुन ! प्रभो ! यह श्रेष्ठ वीर तुम्हारे लिये यज्ञशील भूरिश्रवाके अधीन न हो जाय, ऐसा शीघ्र प्रयत्न करो' ॥

अथाब्रवीद्धृष्टमना वासुदेवं धनंजयः ।
पश्य वृष्णिप्रवीरेण क्रीडन्तं कुरुपुङ्गवम् ॥ ५६ ॥
महाद्विपेनेव वने मत्तेन हरियूथपम् ।

तब अर्जुनने प्रसन्नचित्त होकर भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'भगवन् ! देखिये, जैसे कोई सिंहोंका यूथपति वनमें मतवाले महान् गजके साथ क्रीडा करे, उसी प्रकार कुरुकुल-शिरोमणि भूरिश्रवा वृष्णिवंशके प्रमुख वीर सात्यकिके साथ रणक्रीडा कर रहे हैं' ॥ ५६½ ॥

संजय उवाच

इत्येवं भाषमाणे तु पाण्डवे वै धनंजये ॥ ५७ ॥
हाहाकारो महानासीत् सैन्यानां भरतर्षभ ।
तदुद्यम्य महाबाहुः सात्यकिं न्यहनद् भुवि ॥ ५८ ॥

संजय कहते हैं—भरतश्रेष्ठ ! पाण्डुनन्दन अर्जुन इस प्रकार कह ही रहे थे कि सैनिकोंमें महान् हाहाकार मच गया । महाबाहु भूरिश्रवाने सात्यकिको उठाकर धरतीपर पटक दिया ॥ ५७-५८ ॥

स सिंह इव मातङ्गं विकर्षन् भूरिदक्षिणः ।
व्यरोचत कुरुश्रेष्ठः सात्वतप्रवरं युधि ॥ ५९ ॥

जैसे सिंह किसी मतवाले हाथीको खींचता है, उसी प्रकार प्रचुर दक्षिणा देनेवाले कुरुश्रेष्ठ भूरिश्रवा युद्धस्थलमें सात्वत-वंशके प्रमुख वीर सात्यकिको घसीटते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे ॥ ५९ ॥

अथ कोशाद् विनिष्कृष्य खड्गं भूरिश्रवा रणे ।
मूर्धजेषु निजग्राह पदा चोरस्यताडयत् ॥ ६० ॥

तदनन्तर भूरिश्रवाने रणभूमिमें तलवारको म्यानसे बाहर निकालकर सात्यकिकी चुटिया पकड़ ली और उनकी छातीमें लात मारी ॥ ६० ॥

ततोऽस्य छेत्तुमारब्धः शिरः कायात् सकुण्डलम् ।
तावत्क्षणात् सात्वतोऽपि शिरः सम्भ्रमयंस्त्वरन् ॥ ६१ ॥

फिर उसने उनके कुण्डलमण्डित मस्तकको धड़से अलग कर देनेका उद्योग आरम्भ किया। उस समय सात्यकि भी बड़ी शीघ्रताके साथ अपने मस्तकको घुमाने लगे ॥ ६१ ॥

यथा चक्रं तु कौलालो दण्डविद्धं तु भारत।
सहैव भूरिश्रवसो बाहुना केशधारिणा ॥ ६२ ॥

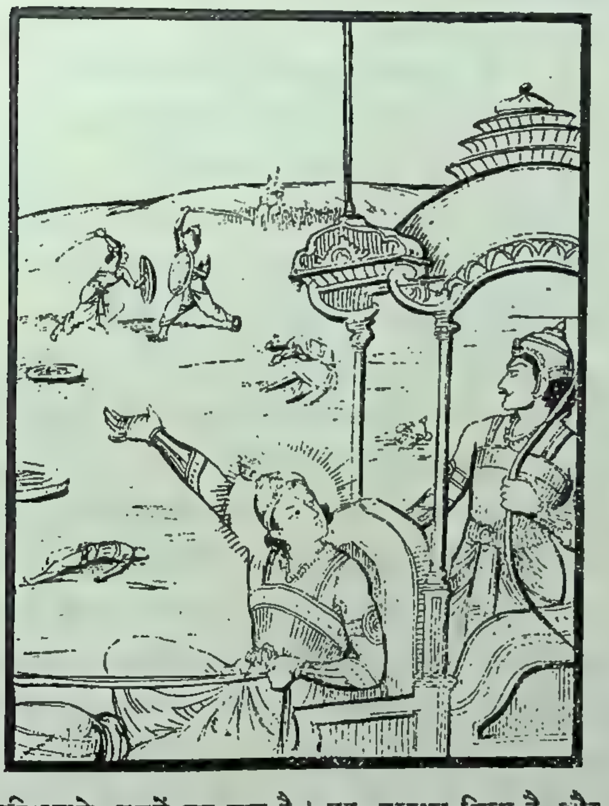
भारत ! जैसे कुम्हार छेदमें डंडा डालकर अपनी चाकको घुमाता है, उसी प्रकार केश पकड़े हुए भूरिश्रवाके बाँहके साथ ही सात्यकि अपने सिरको घुमाने लगे ॥ ६२ ॥

तं तथा परिकृष्यन्तं दृष्ट्वा सात्वतमाहवे।
वासुदेवस्ततो राजन् भूयोऽर्जुनमभाषत ॥ ६३ ॥

राजन् ! इस प्रकार युद्धभूमिमें केश खींचे जानेके कारण सात्यकिको कष्ट पाते देख भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे पुनः इस प्रकार बोले—॥ ६३ ॥

पश्य वृष्ण्यन्धकव्याघ्रं सौमदत्तिवशं गतम्।
तव शिष्यं महाबाहो धनुष्यनवरं त्वया ॥ ६४ ॥

'महाबाहो ! देखो, वृष्णि और अन्धकवंशका वह सिंह



भूरिश्रवाके वशमें पड़ गया है। यह तुम्हारा शिष्य है और धनुर्विद्यामें तुमसे कम नहीं है ॥ ६४ ॥

असत्यो विक्रमः पार्थ यत्र भूरिश्रवा रणे।
विशेषयति वार्ष्णेयं सात्यकिं सत्यविक्रमम् ॥ ६५ ॥

'पार्थ ! पराक्रम मिथ्या है, जिसका आश्रय लेनेपर भी वृष्णिवंशी सत्यपराक्रमी सात्यकिसे रणभूमिमें भूरिश्रवा बढ़ गये हैं' ॥ ६५ ॥

एवमुक्तो महाबाहुर्वासुदेवेन पाण्डवः।
मनसा पूजयामास भूरिश्रवसमाहवे ॥ ६६ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर पाण्डुपुत्र महाबाहु अर्जुनने मन-ही-मन युद्धस्थलमें भूरिश्रवाकी प्रशंसा की ॥

विकर्षन् सात्वतश्रेष्ठं क्रीडमान इवाहवे।
संहर्षयति मां भूयः कुरूणां कीर्तिवर्धनः ॥ ६७ ॥

कुरुकुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले भूरिश्रवा इस युद्धस्थलमें सात्वतकुलके श्रेष्ठ वीर सात्यकिको घसीटते हुए खेल-सा कर रहे हैं और बारंबार मेरा हर्ष बढ़ा रहे हैं ॥ ६७ ॥

प्रवरं वृष्णिवीराणां यन्न हन्याद्धि सात्यकिम्।
महाद्विपमिवारण्ये मृगेन्द्र इव कर्षति ॥ ६८ ॥

जैसे सिंह वनमें किसी महान् गजराजको खींचता है, उसी प्रकार ये भूरिश्रवा वृष्णिवंशके प्रमुख वीर सात्यकिको खींच रहे हैं, उसे मार नहीं रहे हैं ॥ ६८ ॥

एवं तु मनसा राजन् पार्थः सम्पूज्य कौरवम्।
वासुदेवं महाबाहुरर्जुनः प्रत्यभाषत ॥ ६९ ॥

राजन् ! इस प्रकार मन-ही-मन उस कुरुवंशी वीरकी प्रशंसा करके महाबाहु कुन्तीकुमार अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—॥ ६९ ॥

सैन्धवे सक्तदृष्टित्वान्नैनं पश्यामि माधवम्।
एतत् त्वसुकरं कर्म यादवार्थे करोम्यहम् ॥ ७० ॥

'प्रभो ! मेरी दृष्टि सिन्धुराज जयद्रथपर लगी हुई थी। इसलिये मैं सात्यकिको नहीं देख रहा था; परंतु अब मैं इस यदुवंशी वीरकी रक्षाके लिये यह दुष्कर कर्म करता हूँ'॥

इत्युक्त्वा वचनं कुर्वन् वासुदेवस्य पाण्डवः।
ततः क्षुरप्रं निशितं गाण्डीवे समयोजयत् ॥ ७१ ॥

ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञाका पालन करते हुए पाण्डुनन्दन अर्जुनने गाण्डीव धनुषपर एक तीखा क्षुरप्र रक्खा ॥ ७१ ॥

पार्थबाहुविसृष्टः स महोल्केव नभश्च्युता।
सखड्गं यज्ञशीलस्य साङ्गदं बाहुमच्छिनत् ॥ ७२ ॥

अर्जुनकी भुजाओंसे छोड़े गये उस क्षुरप्रने आकाशसे गिरी हुई बहुत बड़ी उल्काके समान उन यज्ञशील भूरिश्रवाके बाजूबंदविभूषित (दाहिनी) भुजाको खड्गसहित काट गिराया ॥ ७२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भूरिश्रवोबाहुच्छेदे द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भूरिश्रवाकी भुजाका उच्छेदविषयक
एक सौ बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४२ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १½ श्लोक मिलाकर कुल ७३½ श्लोक हैं)

त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भूरिश्रवाका अर्जुनको उपालम्भ देना, अर्जुनका उत्तर और आमरण अनशनके लिये बैठे हुए भूरिश्रवाका सात्यकिके द्वारा वध

संजय उवाच

स बाहुर्न्यपतद् भूमौ सखड्गः सशुभाङ्गदः।
आदधज्जीवलोकस्य दुःखमद्भुतमुत्तमः॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! भूरिश्रवाकी सुन्दर बाजूबंदसे विभूषित वह उत्तम बाँह समस्त प्राणियोंके मनमें अद्भुत दुःखका संचार करती हुई खड्गसहित कटकर पृथ्वीपर गिर पड़ी॥ १॥

प्रहरिष्यन् हृतो बाहुरदृश्येन किरीटिना।
वेगेन न्यपतद् भूमौ पञ्चास्य इव पन्नगः॥ २॥

प्रहार करनेके लिये उद्यत हुई वह भुजा अलक्ष्य अर्जुनके बाणसे कटकर पाँच मुखवाले सर्पकी भाँति बड़े वेगसे पृथ्वीपर गिर पड़ी॥ २॥

स मोघं कृतमात्मानं दृष्ट्वा पार्थेन कौरवः।
उत्सृज्य सात्यकिं क्रोधाद् गर्हयामास पाण्डवम्॥ ३॥

कुन्तीकुमार अर्जुनके द्वारा अपनेको असफल किया हुआ देख कुरुवंशी भूरिश्रवाने कुपित हो सात्यकिको छोड़कर पाण्डुनन्दन अर्जुनकी निन्दा करते हुए कहा॥ ३॥

(स विबाहुर्महाराज एकपक्ष इवाण्डजः।
एकचक्रो रथो यद्वद् धरणीमास्थितो नृपः।
उवाच पाण्डवं चैव सर्वक्षत्रस्य शृण्वतः॥)

महाराज! वे राजा भूरिश्रवा एक बाँहसे रहित हो एक पाँखके पक्षी और एक पहियेके रथकी भाँति पृथ्वीपर खड़े हो सम्पूर्ण क्षत्रियोंके सुनते हुए पाण्डुपुत्र अर्जुनसे बोले॥

भूरिश्रवा उवाच

नृशंसं बत कौन्तेय कर्मेदं कृतवानसि।
अपश्यतो विषक्तस्य यन्मे बाहुमचिच्छिदः॥ ४॥

भूरिश्रवा बोले—कुन्तीकुमार! तुमने यह बड़ा कठोर कर्म किया है; क्योंकि मैं तुम्हें देख नहीं रहा था और दूसरेसे युद्ध करनेमें लगा हुआ था, उस दशामें तुमने मेरी बाँह काट दी है॥ ४॥

किं नु वक्ष्यसि राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्।
किं कुर्वाणो मया संख्ये हतो भूरिश्रवा रणे॥ ५॥

तुम धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरसे क्या कहोगे? यही न कि 'भूरिश्रवा किसी और कार्यमें लगे थे और मैंने उसी दशामें उन्हें युद्धमें मार डाला है'॥ ५॥

इदमिन्द्रेण ते साक्षादुपदिष्टं महात्मना।
अस्त्रं रुद्रेण वा पार्थ द्रोणेनाथ कृपेण वा॥ ६॥

पार्थ! इस अस्त्र-विद्याका उपदेश तुम्हें साक्षात् महात्मा इन्द्रने दिया है, या रुद्र, द्रोण अथवा कृपाचार्यने?॥ ६॥

ननु नामास्त्रधर्मज्ञस्त्वं लोकेऽभ्यधिकः परैः।
सोऽयुध्यमानस्य कथं रणे प्रहृतवानसि॥ ७॥

तुम तो इस लोकमें दूसरोंसे अधिक अस्त्र-धर्मके ज्ञाता हो, फिर जो तुम्हारे साथ युद्ध नहीं कर रहा था, उसपर संग्राममें तुमने कैसे प्रहार किया?॥ ७॥

न प्रमत्ताय भीताय विरथाय प्रयाचते।
व्यसने वर्तमानाय प्रहरन्ति मनस्विनः॥ ८॥

मनस्वी पुरुष असावधान, डरे हुए, रथहीन, प्राणोंकी भिक्षा माँगनेवाले तथा संकटमें पड़े हुए मनुष्यपर प्रहार नहीं करते हैं॥ ८॥

इदं तु नीचाचरितमसत्पुरुषसेवितम्।
कथमाचरितं पार्थ पापकर्म सुदुष्करम्॥ ९॥

पार्थ! यह नीच पुरुषोंद्वारा आचरित और दुष्ट पुरुषोंद्वारा सेवित अत्यन्त दुष्कर पापकर्म तुमने कैसे किया?॥ ९॥

आर्येण सुकरं त्वाहुरार्यकर्म धनंजय।
अनार्यकर्म त्वार्येण सुदुष्करतमं भुवि॥ १०॥

धनंजय! श्रेष्ठ पुरुषके लिये श्रेष्ठ कर्म ही सुकर बताया गया है। नीच कर्मका आचरण तो इस पृथ्वीपर उसके लिये अत्यन्त दुष्कर माना गया है॥ १०॥

येषु येषु नरव्याघ्र यत्र यत्र च वर्तते।
आशु तच्छीलतामेति तदिदं त्वयि दृश्यते॥ ११॥

नरव्याघ्र! मनुष्य जहाँ-जहाँ जिन-जिन लोगोंके समीप रहता है, उसमें शीघ्र ही उन लोगोंका शील-स्वभाव आ जाता है; यही बात तुममें भी देखी जाती है॥ ११॥

कथं हि राजवंश्यस्त्वं कौरवेयो विशेषतः।
क्षत्रधर्मादपक्रान्तः सुवृत्तश्चरितव्रतः॥ १२॥

अन्यथा राजाके वंशज और विशेषतः कुरुकुलमें उत्पन्न होकर भी तुम क्षत्रिय-धर्मसे कैसे गिर जाते? तुम्हारा शील-स्वभाव तो बहुत उत्तम था और तुमने श्रेष्ठ व्रतोंका पालन भी किया था॥ १२॥

इदं तु यदतिक्षुद्रं वार्ष्णेयार्थे कृतं त्वया।
वासुदेवमतं नूनं नैतत् त्वय्युपपद्यते॥ १३॥

तुमने सात्यकिको बचानेके लिये जो यह अत्यन्त नीच कर्म किया है, यह निश्चय ही वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णका मत है, तुममें यह नीच विचार सम्भव नहीं है॥ १३॥

को हि नाम प्रमत्ताय परेण सह युध्यते ।
ईदृशं व्यसनं दद्याद् यो न कृष्णसखो भवेत् ॥ १४ ॥

कौन ऐसा मनुष्य है, जो दूसरेके साथ युद्ध करनेवाले असावधान योद्धाको ऐसा संकट प्रदान कर सकता है। जो श्रीकृष्णका मित्र न हो, उससे ऐसा कर्म नहीं बन सकता ॥१४॥

व्रात्याः संक्लिष्टकर्माणः प्रकृत्यैव च गर्हिताः ।
वृष्ण्यन्धकाः कथं पार्थ प्रमाणं भवता कृताः ॥ १५ ॥

कुन्तीनन्दन ! वृष्णि और अन्धकवंशके लोग तो संस्कार-भ्रष्ट हिंसा-प्रधान कर्म करनेवाले और स्वभावसे ही निन्दित हैं। फिर उनको तुमने प्रमाण कैसे मान लिया ? ॥ १५ ॥

एवमुक्तो रणे पार्थो भूरिश्रवसमब्रवीत् ।

रणभूमिमें भूरिश्रवाके ऐसा कहनेपर अर्जुनने उससे कहा ॥ १५½ ॥

अर्जुन उवाच

व्यक्तं हि जीर्यमाणोऽपि बुद्धिं जरयते नरः ॥ १६ ॥
अनर्थकमिदं सर्वं यत् त्वया व्याहृतं प्रभो ।
जानन्नेव हृषीकेशं गर्हसे मां च पाण्डवम् ॥ १७ ॥

अर्जुन बोले—प्रभो ! यह स्पष्ट है कि मनुष्यके बूढ़े होनेके साथ-साथ उसकी बुद्धि भी बूढ़ी हो जाती है। तुमने इस समय जो कुछ कहा है, वह सब व्यर्थ है । तुम सम्पूर्ण इन्द्रियोंके नियन्ता भगवान् श्रीकृष्णको और मुझ पाण्डुपुत्र अर्जुनको भी जानते हो, तो भी हमारी निन्दा करते हो ॥१६-१७॥

संग्रामाणां हि धर्मज्ञः सर्वशास्त्रार्थपारगः ।
न चाधर्ममहं कुर्यां जानंश्चैव हि मुह्यसे ॥ १८ ॥

मैं संग्रामके धर्मोंको जानता हूँ और सम्पूर्ण वेद-शास्त्रोंके अर्थज्ञानमें पारंगत हूँ। मैं किसी प्रकार अधर्म नहीं कर सकता; यह जानते हुए भी तुम मेरे विषयमें मोहित हो रहे हो ॥ १८ ॥

युध्यन्ति क्षत्रियाः शत्रून् स्वैः स्वैः परिवृता नराः ।
भ्रातृभिः पितृभिः पुत्रैस्तथा सम्बन्धिबान्धवैः ॥१९॥
वयस्यैरथ मित्रैश्च ते च बाहुं समाश्रिताः ।

क्षत्रियलोग अपने-अपने भाई, पिता, पुत्र, सम्बन्धी, बन्धु-बान्धवों, समान अवस्थावाले साथी और मित्रोंसे घिरकर शत्रुओंके साथ युद्ध करते हैं । वे सब लोग उस प्रधान योद्धाके बाहुबलके आश्रित होते हैं ॥ १९½ ॥

स कथं सात्यकिं शिष्यं सुखसम्बन्धमेव च ॥ २० ॥
अस्मदर्थे च युध्यन्तं त्यक्त्वा प्राणान् सुदुस्त्यजान् ।
मम बाहुं रणे राजन् दक्षिणं युद्धदुर्मदम् ॥ २१ ॥
(निकृष्यमाणं तं दृष्ट्वा कथं शत्रुवशं गतम् ।
त्वया विकृष्यमाणं च दृष्टवानस्मि निष्क्रियम् ॥)

सात्यकि मेरा शिष्य और सुखप्रद सम्बन्धी है। वह मेरे ही लिये अपने दुस्त्यज प्राणोंका मोह छोड़कर युद्ध कर रहा है। राजन् ! रणदुर्मद सात्यकि युद्धस्थलमें मेरी दाहिनी भुजाके समान है। उसे तुम्हारे द्वारा कष्ट पाते देख मैं कैसे उसकी उपेक्षा कर सकता था । मैंने देखा है तुम उसे घसीट रहे थे और वह शत्रुके अधीन होकर निश्चेष्ट हो गया था ॥ २०-२१ ॥

न चात्मा रक्षितव्यो वै राजन् रणगतेन हि ।
यो यस्य युज्यतेऽर्थेषु स वै रक्ष्यो नराधिप ॥ २२ ॥

राजन् ! रणभूमिमें गये हुए वीरके लिये केवल अपनी ही रक्षा करना उचित नहीं है। नरेश्वर ! जो जिसके कार्योंमें संलग्न होता है, वह अवश्य ही उसके द्वारा रक्षणीय हुआ करता है ॥ २२ ॥

तै रक्ष्यमाणैः स नृपो रक्षितव्यो महामृधे ।
यद्यहं सात्यकिं पश्ये वध्यमानं महारणे ॥ २३ ॥
ततस्तस्य वियोगेन पापं मेऽनर्थतो भवेत् ।
रक्षितश्च मया यस्मात् तस्मात् क्रुध्यसि किं मयि ॥ २४ ॥

इसी प्रकार उन सुरक्षित होनेवाले सुहृदोंका भी कर्तव्य है कि वे महासमरमें अपने राजाकी रक्षा करें। यदि मैं इस महायुद्धमें सात्यकिको अपने सामने मरते देखता तो उसके वियोगसे मुझे अनर्थकारी पाप लगता। इसीलिये मैंने उसकी रक्षा की है । अतः तुम मुझपर क्यों क्रोध करते हो ? ॥ २३-२४ ॥

यच्च मे गर्हसे राजन्नन्येन सह संगतम् ।
अहं त्वया विनिकृतस्तत्र मे बुद्धिविभ्रमः ॥ २५ ॥

राजन् ! आप जो यह कहकर मेरी निन्दा कर रहे हैं कि 'अर्जुन ! मैं दूसरेके साथ युद्धमें लगा हुआ था, उस दशामें तुमने मेरे साथ छल किया' आपकी इस बातसे मेरी बुद्धिमें भ्रम पैदा हो गया है ॥ २५ ॥

कवचं धुन्वतस्तुभ्यं रथं चारोहतः स्वयम् ।
धनुर्ज्यां कर्षतश्चैव युध्यतः सह शत्रुभिः ॥ २६ ॥
एवं रथगजाकीर्णे हयपत्तिसमाकुले ।
सिंहनादोद्धतरवे गम्भीरे सैन्यसागरे ॥ २७ ॥
स्वैः परैश्च समेतेभ्यः सात्वतेन च संगमे ।
एकस्यैकेन हि कथं संग्रामः सम्भविष्यति ॥ २८ ॥

तुम स्वयं कवच हिलाते हुए रथपर चढ़े थे, धनुषकी प्रत्यञ्चा खींचते थे और अपने बहुसंख्यक शत्रुओंके साथ युद्ध कर रहे थे । इस प्रकार रथ, हाथी, घुड़सवार और पैदलोंसे भरे हुए सिंहनादकी भैरव गर्जनासे व्याप्त गम्भीर सैन्य-समुद्रमें जहाँ अपने और शत्रुपक्षके एकत्र हुए लोगोंका परस्पर युद्ध चल रहा था, तुम्हारी सात्यकिके साथ मुठभेड़ हुई थी। ऐसे तुमुल युद्धमें किसी भी एक

योद्धाका एक ही योद्धाके साथ संग्राम कैसे माना जा सकता है ? ॥ २६–२८ ॥

बहुभिः सह संगम्य निर्जित्य च महारथान् ।
श्रान्तश्च श्रान्तवाहश्च विमनाः शस्त्रपीडितः ॥ २९ ॥

सात्यकि बहुतसे योद्धाओंके साथ युद्ध करके कितने ही महारथियोंको पराजित करनेके बाद थक गया था। उसके घोड़े भी परिश्रमसे चूर-चूर हो रहे थे और वह अस्त्र-शस्त्रोंसे पीड़ित हो खिन्नचित्त हो गया था ॥ २९ ॥

ईदृशं सात्यकिं संख्ये निर्जित्य च महारथम् ।
अधिकत्वं विजानीषे स्ववीर्यवशमागतम् ॥ ३० ॥

ऐसी अवस्थामें महारथी सात्यकिको युद्धमें जीतकर तुम यह समझने लगे कि मैं सात्यकिसे बड़ा वीर हूँ और वह मेरे पराक्रमसे वशमें आ गया है ॥ ३० ॥

यदिच्छसि शिरश्चास्य असिना हन्तुमाहवे ।
तथा कृच्छ्रगतं चैव सात्यकिं कः क्षमिष्यति ॥ ३१ ॥

इसीलिये तुम युद्धस्थलमें तलवारसे उसका सिर काट लेना चाहते थे। सात्यकिको वैसे संकटमें देखकर मेरे पक्षका कौन वीर सहन करेगा ? ॥ ३१ ॥

त्वं वै विगर्हयात्मानमात्मानं यो न रक्षसि ।
कथं करिष्यसे वीर यो वा त्वां संश्रयेज्जनः ॥ ३२ ॥

तुम अपनी ही निन्दा करो, जो कि अपनी भी रक्षातक नहीं कर सकते। वीरवर ! फिर जो तुम्हारे आश्रयमें होगा, उसकी रक्षा कैसे कर सकोगे ? ॥ ३२ ॥

संजय उवाच

एवमुक्तो महाबाहुर्यूपकेतुर्महायशाः ।
युयुधानं समुत्सृज्य रणे प्रायमुपाविशत् ॥ ३३ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! अर्जुनके ऐसा कहनेपर यूपके चिह्नसे युक्त ध्वजावाले महायशस्वी महाबाहु भूरिश्रवा सात्यकिको छोड़कर रणभूमिमें आमरण अनशनका नियम लेकर बैठ गये ॥ ३३ ॥

शरानास्तीर्य सव्येन पाणिना पुण्यलक्षणः ।
यियासुर्ब्रह्मलोकाय प्राणान् प्राणेष्वथाजुहोत् ॥ ३४ ॥

पवित्र लक्षणोंवाले भूरिश्रवाने बायें हाथसे बाण बिछाकर ब्रह्मलोकमें जानेकी इच्छासे प्राणायामके द्वारा प्राणोंको प्राणोंमें ही होम दिया ॥ ३४ ॥

सूर्ये चक्षुः समाधाय प्रसन्नं सलिले मनः ।
ध्यायन् महोपनिषदं योगयुक्तोऽभवन्मुनिः ॥ ३५ ॥

वे नेत्रोंको सूर्यमें और प्रसन्न मनको जलमें समाहित करके महोपनिषत्प्रतिपादित परब्रह्मका चिन्तन करते हुए योगयुक्त मुनि हो गये ॥ ३५ ॥

ततः स सर्वसेनायां जनः कृष्णधनंजयौ ।
गर्हयामास तं चापि शशंस पुरुषर्षभम् ॥ ३६ ॥

तदनन्तर सारी कौरव-सेनाके लोग श्रीकृष्ण और अर्जुनकी निन्दा तथा नरश्रेष्ठ भूरिश्रवाकी प्रशंसा करने लगे ॥ ३६ ॥

निन्द्यमानौ तथा कृष्णौ नोचतुः किंचिदप्रियम् ।
ततः प्रशस्यमानश्च नाहृष्यद् यूपकेतनः ॥ ३७ ॥

उनके द्वारा निन्दित होनेपर भी श्रीकृष्ण और अर्जुनने कोई अप्रिय बात नहीं कही तथा प्रशंसित होनेपर भी यूपकेतु भूरिश्रवाने हर्ष नहीं प्रकट किया ॥ ३७ ॥

तांस्तथावादिनो राजन् पुत्रांस्तव धनंजयः ।
अमृष्यमाणो मनसा तेषां तस्य च भाषितम् ॥ ३८ ॥

राजन् ! आपके पुत्र जब भूरिश्रवाकी ही भाँति निन्दाकी बातें कहने लगे, तब अर्जुन उनके तथा भूरिश्रवाके उस कथनको मन-ही-मन सहन न कर सके ॥ ३८ ॥

असंक्रुद्धमना वाचः स्मारयन्निव भारत ।
उवाच पाण्डुतनयः साक्षेपमिव फाल्गुनः ॥ ३९ ॥

भरतनन्दन ! पाण्डुपुत्र अर्जुनके मनमें तनिक भी क्रोध नहीं हुआ। उन्होंने मानो पुरानी बातें याद दिलाते हुए, कौरवोंपर आक्षेप करते हुए-से कहा—॥ ३९ ॥

मम सर्वेऽपि राजानो जानन्त्येव महाव्रतम् ।
न शक्यो मामको हन्तुं यो मे स्याद् बाणगोचरे ॥ ४० ॥

'सब राजा मेरे इस महान् व्रतको जानते ही हैं कि जो कोई मेरा आत्मीयजन मेरे बाणोंकी पहुँचके भीतर होगा, वह किसी शत्रुके द्वारा मारा नहीं जा सकता ॥ ४० ॥

यूपकेतो निरीक्ष्यैतन्न मामर्हसि गर्हितुम् ।
न हि धर्ममविज्ञाय युक्तं गर्हयितुं परम् ॥ ४१ ॥

'यूपध्वज भूरिश्रवाजी ! इस बातपर ध्यान देकर आपको मेरी निन्दा नहीं करनी चाहिये। धर्मके स्वरूपको जाने बिना दूसरे किसीकी निन्दा करनी उचित नहीं है ॥ ४१ ॥

आत्तशस्त्रस्य हि रणे वृष्णिवीरं जिघांसतः ।
यदहं बाहुमच्छैत्सं न स धर्मो विगर्हितः ॥ ४२ ॥

'आप तलवार हाथमें लेकर रणभूमिमें वृष्णिवीर सात्यकिका वध करना चाहते थे। उस दशामें मैंने जो आपकी बाँह काट डाली है, वह आश्रित-रक्षारूप धर्म निन्दित नहीं है ॥ ४२ ॥

न्यस्तशस्त्रस्य बालस्य विरथस्य विवर्मणः ।
अभिमन्योर्वधं तात धार्मिकः को नु पूजयेत् ॥ ४३ ॥

तात ! बालक अभिमन्यु शस्त्र, कवच और रथसे हीन हो चुका था, उस दशामें जो उसका वध किया गया, उसकी कौन धार्मिक पुरुष प्रशंसा कर सकता है ॥ ४३ ॥

(दुर्योधनस्य क्षुद्रस्य न प्रमाणेऽवतिष्ठतः ।
सौमदत्तेर्वधः साधुः स वै साहाय्यकारिणः ॥

'जो शास्त्रीय मर्यादामें स्थित नहीं रहता, उस नीच दुर्योधनकी सहायता करनेवाले सोमदत्तकुमार भूरिश्रवाका जो इस प्रकार वध हुआ है, वह ठीक ही है ॥

अस्मदीया मया रक्ष्याः प्राणबाध उपस्थिते ।
ये मे प्रत्यक्षतो वीरा हन्येरन्निति मे मतिः ॥

'मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि मुझे प्राण-संकट उपस्थित होनेपर आत्मीय जनोंकी रक्षा करनी चाहिये; विशेषतः उन वीरोंकी जो मेरी आँखोंके सामने मारे जा रहे हों ॥

सात्यकिश्च वशं नीतः कौरवेण महात्मना ।
ततो मयैतच्चरितं प्रतिज्ञारक्षणं प्रति ॥

'कुरुवंशी महामना भूरिश्रवाने सात्यकिको अपने वशमें कर लिया था । इसीसे अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये मैंने यह कार्य किया है' ॥

संजय उवाच

पुनश्च कृपयाऽऽविष्टो बहु तत्तद् विचिन्तयन् ।
उवाच चैनं कौरव्यमर्जुनः शोकपीडितः ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! फिर बहुत-सी भिन्न-भिन्न बातें सोचकर अर्जुन दयासे द्रवित और शोकसे पीड़ित हो उठे तथा कुरुवंशी भूरिश्रवासे इस प्रकार बोले ॥

अर्जुन उवाच

धिगस्तु क्षत्रधर्मं तु यत्र त्वं पुरुषेश्वरः ।
अवस्थामीदृशीं प्राप्तः शरण्यः शरणप्रदः ॥

अर्जुनने कहा—उस क्षत्रिय-धर्मको धिक्कार है, जहाँ दूसरोंको शरण देनेवाले आप-जैसे शरणागतवत्सल नरेश ऐसी अवस्थाको जा पहुँचे हैं ॥

को हि नाम पुमाँल्लोके मादृशः पुरुषोत्तमः ।
प्रहरेत् त्वद्विधं त्वद्य प्रतिज्ञा यदि नो भवेत् ॥)

यदि पहलेसे प्रतिज्ञा न की गयी होती तो संसारमें मेरे-जैसा कौन श्रेष्ठ पुरुष आप-जैसे गुरुजनपर आज ऐसा प्रहार कर सकता था ?॥

एवमुक्तः स पार्थेन शिरसा भूमिमस्पृशत् ।
पाणिना चैव सव्येन प्राहिणोदस्य दक्षिणम् ॥ ४४ ॥

कुन्तीकुमार अर्जुनके ऐसा कहनेपर भूरिश्रवाने अपने मस्तकसे भूमिका स्पर्श किया । बायें हाथसे अपना दाहिना हाथ उठाकर अर्जुनके पास फेंक दिया ॥ ४४ ॥

एतत् पार्थस्य तु वचस्ततः श्रुत्वा महाद्युतिः ।
यूपकेतुर्महाराज तूष्णीमासीदवाङ्मुखः ॥ ४५ ॥

महाराज ! पार्थकी उपर्युक्त बात सुनकर यूपचिह्नित ध्वजा-वाले महातेजस्वी भूरिश्रवा नीचे मुँह किये मौन रह गये ॥४५॥

अर्जुन उवाच

या प्रीतिर्धर्मराजे मे भीमे च बलिनां वरे ।
नकुले सहदेवे च सा मे त्वयि शलाग्रज ॥ ४६ ॥

उस समय अर्जुनने कहा—शलके बड़े भाई भूरिश्रवाजी ! मेरा जो प्रेम धर्मराज युधिष्ठिर, बलवानोंमें श्रेष्ठ भीमसेन, नकुल और सहदेवमें है, वही आपमें भी है ॥४६॥

मया त्वं समनुज्ञातः कृष्णेन च महात्मना ।
गच्छ पुण्यकृताँल्लोकाञ्छिबिरौशीनरो यथा ॥ ४७ ॥

मैं और महात्मा भगवान् श्रीकृष्ण आपको यह आज्ञा देते हैं कि आप उशीनर-पुत्र शिबिके समान पुण्यात्मा पुरुषोंके लोकोंमें जायँ ॥ ४७ ॥

वासुदेव उवाच

ये लोका मम विमलाः सकृद् विभाता
ब्रह्माद्यैः सुरवृषभैरपीष्यमाणाः ।
तान् क्षिप्रं व्रज सततागिनहोत्रयाजिन्
मत्तुल्यो भव गरुडोत्तमाङ्गयानः ॥ ४८ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—निरन्तर अग्निहोत्रद्वारा यजन करनेवाले भूरिश्रवाजी ! मेरे जो निरन्तर प्रकाशित होनेवाले निर्मल लोक हैं और ब्रह्मा आदि देवेश्वर भी जहाँ जानेकी सदैव अभिलाषा रखते हैं, उन्हीं लोकोंमें आप शीघ्र पधारिये और मेरे ही समान गरुड़की पीठपर बैठकर विचरने-वाले होइये ॥ ४८ ॥

संजय उवाच

उत्थितः स तु शैनेयो विमुक्तः सौमदत्तिना ।
खड्गमादाय चिच्छित्सुः शिरस्तस्य महात्मनः ॥ ४९ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! सोमदत्तकुमार भूरिश्रवाके छोड़ देनेपर शिनि-पौत्र सात्यकि उठकर खड़े हो गये । फिर उन्होंने तलवार लेकर महामना भूरिश्रवाका सिर काट लेने का निश्चय किया ॥ ४९ ॥

निहतं पाण्डुपुत्रेण प्रसक्तं भूरिदक्षिणम् ।
इयेष सात्यकिर्हन्तुं शलाग्रजमकल्मषम् ॥ ५० ॥
निकृत्तभुजमासीनं छिन्नहस्तमिव द्विपम् ।

शलके बड़े भाई प्रचुर दक्षिणा देनेवाले भूरिश्रवा सर्वथा निष्पाप थे । पाण्डुपुत्र अर्जुनने उनकी बाँह काटकर उनका वध-सा ही कर दिया था और इसीलिये वे आमरण अनशनका निश्चय लेकर ध्यान आदि अन्य कार्योंमें आसक्त हो गये थे । उस अवस्थामें सात्यकिने बाँह कट जानेसे सूँड़ कटे हाथीके समान बैठे हुए भूरिश्रवाको मार डालनेकी इच्छा की ॥ ५०½ ॥

क्रोशतां सर्वसैन्यानां निन्द्यमानः सुदुर्मनाः ॥ ५१ ॥
वार्यमाणः स कृष्णेन पार्थेन च महात्मना ।
भीमेन चक्ररक्षाभ्यामश्वत्थाम्ना कृपेण च ॥ ५२ ॥
कर्णेन वृषसेनेन सैन्धवेन तथैव च ।
विक्रोशतां च सैन्यानामवधीत् तं धृतव्रतम् ॥ ५३ ॥

उस समय समस्त सेनाके लोग चिल्ला-चिल्लाकर

सात्यकिकी निन्दा कर रहे थे । परंतु सात्यकिकी मनोदशा बहुत बुरी थी । भगवान् श्रीकृष्ण तथा महात्मा अर्जुन भी उन्हें रोक रहे थे । भीमसेन, चक्ररक्षक युधामन्यु और उत्तमौजा, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, वृषसेन तथा सिंधुराज जयद्रथ भी उन्हें मना करते रहे, किंतु समस्त सैनिकोंके चीखने-चिल्लानेपर भी सात्यकिने उस व्रतधारी भूरिश्रवाका वध कर ही डाला ॥ ५१–५३ ॥

प्रायोपविष्टाय रणे पार्थेन छिन्नबाहवे ।
सात्यकिः कौरवेयाय खड्गेनापाहरच्छिरः ॥ ५४ ॥

रणभूमिमें अर्जुनने जिनकी भुजा काट डाली थी तथा जो आमरण उपवासका व्रत लेकर बैठे थे, उन भूरिश्रवापर सात्यकिने खड्गका प्रहार किया और उनका सिर काट लिया ॥



नाभ्यनन्दन्त सैन्यानि सात्यकिं तेन कर्मणा ।
अर्जुनेन हतं पूर्वं यज्जघान कुरूद्वहम् ॥ ५५ ॥

अर्जुनने पहले जिन्हें मार डाला था, उन कुरुश्रेष्ठ भूरिश्रवाका सात्यकिने जो वध किया, उनके उस कर्मसे सैनिकोंने उनका अभिनन्दन नहीं किया ॥ ५५ ॥

सहस्राक्षसमं चैव सिद्धचारणमानवाः ।
भूरिश्रवसमालोक्य युद्धे प्रायगतं हतम् ॥ ५६ ॥
अपूजयन्त तं देवा विस्मितास्तेऽस्य कर्मभिः ।

युद्धमें प्रायोपवेशन करनेवाले, इन्द्रके समान पराक्रमी भूरिश्रवाको मारा गया देख सिद्ध, चारण, मनुष्य और देवताओंने उनका गुणगान किया; क्योंकि वे भूरिश्रवाके कर्मोंसे आश्चर्यचकित हो रहे थे ॥ ५६½ ॥

पक्षवादांश्च सुबहून् प्रावदंस्तव सैनिकाः ॥ ५७ ॥
न वार्ष्णेयस्यापराधो भवितव्यं हि तत् तथा ।
तस्मान्मन्युर्न वः कार्यः क्रोधो दुःखतरो नृणाम् ॥ ५८ ॥

आपके सैनिकोंने सात्यकिके पक्ष और विपक्षमें बहुत-सी बातें कहीं । अन्तमें वे इस प्रकार बोले—'इसमें सात्यकिका कोई अपराध नहीं है । होनहार ही ऐसी थी । इसलिये आपलोगोंको अपने मनमें क्रोध नहीं करना चाहिये; क्योंकि क्रोध ही मनुष्योंके लिये अधिक दुःखदायी होता है ५७-५८

हन्तव्यश्चैव वीरेण नात्र कार्या विचारणा ।
विहितो ह्यस्य धात्रैव मृत्युः सात्यकिराहवे ॥ ५९ ॥

'वीर सात्यकिके द्वारा ही भूरिश्रवा मारे जानेवाले थे । विधाताने युद्धस्थलमें ही सात्यकिको उनकी मृत्यु निश्चित कर दिया था; इसलिये इसमें विचार नहीं करना चाहिये ।५९।

सात्यकिरुवाच

न हन्तव्यो न हन्तव्य इति यन्मां प्रभाषत ।
धर्मवादैरधर्मिष्ठा धर्मकञ्चुकमास्थिताः ॥ ६० ॥

सात्यकि बोले—धर्मका चोला पहनकर खड़े हुए अधर्मपरायण पापात्माओ ! इस समय धर्मकी बातें बनाते हुए तुमलोग जो मुझसे बारंबार कह रहे हो कि 'न मारो, न मारो' उसका उत्तर मुझसे सुन लो ॥ ६० ॥

यदा बालः सुभद्रायाः सुतः शस्त्रविना कृतः ।
युष्माभिर्निहतो युद्धे तदा धर्मः क्व वो गतः ॥ ६१ ॥

जब तुमलोगोंने सुभद्राके बालक पुत्र अभिमन्युको युद्धमें शस्त्रहीन करके मार डाला था, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था ? ॥ ६१ ॥

मया त्वेतत् प्रतिज्ञातं क्षेपे कस्मिंश्चिदेव हि ।
यो मां निष्पिष्य संग्रामे जीवन् हन्यात् पदा रुषा ॥ ६२ ॥
स मे वध्यो भवेच्छत्रुर्यद्यपि स्यान्मुनिव्रतः ।

मैंने तो पहलेसे ही यह प्रतिज्ञा कर रक्खी है कि जिसके द्वारा कभी भी मेरा तिरस्कार हो जायगा अथवा जो संग्रामभूमिमें मुझे पटककर जीते-जी रोषपूर्वक मुझे लात मारेगा, वह शत्रु मुनियोंके समान मौनव्रत लेकर ही क्यों न बैठा हो, अवश्य मेरा वध्य होगा ॥ ६२½ ॥

चेष्टमानं प्रतीघाते सभुजं मां सचक्षुषः ॥ ६३ ॥
मन्यध्वं मृत इत्येवमेतद् वो बुद्धिलाघवम् ।
युक्तो ह्यस्य प्रतीघातः कृतो मे कुरुपुङ्गवाः ॥ ६४ ॥

मेरी बाँहें मौजूद हैं और मैं अपने ऊपर किये गये आघातका बदला लेनेकी निरन्तर चेष्टा करता आया हूँ तो भी तुमलोग आँख रहते हुए भी यदि मुझे मरा हुआ मान लेते हो, तो यह तुम्हारी बुद्धिकी मन्दताका परिचायक है । कुरुश्रेष्ठ वीरो ! मैंने तो भूरिश्रवाका वध करके बदला चुकाया है, जो सर्वथा उचित है ॥ ६३-६४ ॥

यत् तु पार्थेन मां दृष्ट्वा प्रतिज्ञामभिरक्षता।
सखड्गोऽस्य हृतो बाहुरेतेनैवास्मि वञ्चितः ॥ ६५ ॥

कुन्तीकुमार अर्जुनने अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षा करते हुए जो मुझे संकटमें देखकर भूरिश्रवाकी तलवारसहित बाँह काट डाली, इसीसे मैं भूरिश्रवाको मारनेके यशसे वञ्चित रह गया ॥ ६५ ॥

भवितव्यं हि यद् भावि दैवं चेष्टयतीव च।
सोऽयं हतो विमर्देऽस्मिन् किमत्राधर्मचेष्टितम् ॥ ६६ ॥

जो होनहार होती है, उसके अनुकूल ही दैव चेष्टा कराता है। इसीके अनुसार इस संग्राममें भूरिश्रवा मारे गये हैं। इसमें अधर्मपूर्ण चेष्टा क्या है? ॥ ६६ ॥

अपि चायं पुरा गीतः श्लोको वाल्मीकिना भुवि।
न हन्तव्याः स्त्रिय इति यद् ब्रवीषि प्लवङ्गम ॥ ६७ ॥
सर्वकालं मनुष्येण व्यवसायवता सदा।
पीडाकरममित्राणां यत् स्यात् कर्तव्यमेव तत् ॥ ६८ ॥

महर्षि वाल्मीकिने पूर्वकालमें ही इस भूतलपर एक श्लोकका गान किया है। जिसका भावार्थ इस प्रकार है—'वानर! तुम जो यह कहते हो कि स्त्रियोंका वध नहीं करना चाहिये, उसके उत्तरमें मेरा यह कहना है कि उद्योगी मनुष्यके लिये सदा सब समय वह कार्य करने ही योग्य माना गया है, जो शत्रुओंको पीड़ा देनेवाला हो' ॥ ६७-६८ ॥

संजय उवाच

एवमुक्ते महाराज सर्वे कौरवपुङ्गवाः।
न स्म किंचिदभाषन्त मनसा समपूजयन् ॥ ६९ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! सात्यकिके ऐसा कहनेपर समस्त श्रेष्ठ कौरवोंने उसके उत्तरमें कुछ नहीं कहा। वे मन-ही-मन उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ६९ ॥

मन्त्राभिपूतस्य महाध्वरेषु
यशस्विनो भूरिसहस्रदस्य च।
मुनेरिवारण्यगतस्य तस्य
न तत्र कश्चिद् वधमभ्यनन्दत ॥ ७० ॥

बड़े-बड़े यज्ञोंमें मन्त्रयुक्त अभिषेकसे जो पवित्र हो चुके थे, यज्ञोंमें कई हजार स्वर्णमुद्राओंकी दक्षिणा देते थे, जिनका यश सर्वत्र फैला हुआ था और जो वनवासी मुनिके समान वहाँ बैठे हुए थे, उन भूरिश्रवाके वधका किसीने भी अभिनन्दन नहीं किया ॥ ७० ॥

सुनीलकेशं वरदस्य तस्य
शूरस्य पारावतलोहिताक्षम्।
अश्वस्य मेध्यस्य शिरो निकृत्तं
न्यस्तं हविर्धानमिवान्तरेण ॥ ७१ ॥

वर देनेवाले भूरिश्रवाका नीले केशोंसे अलंकृत तथा कबूतरके समान लाल नेत्रोंवाला वह कटा हुआ सिर ऐसा जान पड़ता था, मानो अश्वमेधके मेध्य अश्वका कटा हुआ मस्तक अग्निकुण्डके भीतर रक्खा गया हो ॥ ७१ ॥

स तेजसा शस्त्रकृतेन पूतो
महाहवे देहवरं विसृज्य।
आक्रामदूर्ध्वं वरदो वरार्हो
व्यावृत्य धर्मेण परेण रोदसी ॥ ७२ ॥

वरदायक तथा वर पानेके योग्य भूरिश्रवाने उस महायुद्धमें शस्त्रके तेजसे पवित्र हो अपने उत्तम शरीरका परित्याग करके उत्कृष्ट धर्मके द्वारा पृथ्वी और आकाशको लाँघकर ऊर्ध्वलोकमें गमन किया ॥ ७२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि भूरिश्रवोवधे त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें भूरिश्रवाका वधविषयक एक सौ तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ८½ श्लोक मिलाकर कुल ८०½ श्लोक हैं)

चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिके भूरिश्रवाद्वारा अपमानित होनेका कारण तथा वृष्णिवंशी वीरोंकी प्रशंसा

धृतराष्ट्र उवाच

अजितो द्रोणराधेयविकर्णकृतवर्मभिः।
तीर्णः सैन्यार्णवं वीरः प्रतिश्रुत्य युधिष्ठिरे ॥ १ ॥
स कथं कौरवेयेण समरेष्वनिवारितः।
निगृह्य भूरिश्रवसा बलाद् भुवि निपातितः ॥ २ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! जो वीर सात्यकि द्रोण, कर्ण, विकर्ण और कृतवर्मासे भी परास्त न हुए और युधिष्ठिरसे की हुई प्रतिज्ञाके अनुसार कौरव-सेनारूपी समुद्रसे पार हो गये, जिन्हें समराङ्गणमें कोई भी रोक न सका, उन्हींको कुरुवंशी भूरिश्रवाने बलपूर्वक पकड़कर कैसे पृथ्वीपर गिरा दिया? ॥ १-२ ॥

संजय उवाच

शृणु राजन्निहोत्पत्तिं शैनेयस्य यथा पुरा।
यथा च भूरिश्रवसो यत्र ते संशयो नृप ॥ ३ ॥

संजयने कहा—राजन्! जिस विषयमें आपको संशय है, उसे स्पष्ट समझनेके लिये यहाँ पूर्वकालमें सात्यकि और भूरिश्रवाकी उत्पत्ति जिस प्रकार हुई थी, वह प्रसंग सुनिये ॥ ३ ॥

अत्रेः पुत्रोऽभवत् सोमः सोमस्य तु बुधः स्मृतः।
बुधस्यैको महेन्द्राभः पुत्र आसीत् पुरूरवाः ॥ ४ ॥

महर्षि अत्रिके पुत्र सोम हुए। सोमके पुत्र बुध माने

गये हैं। बुधके एक ही पुत्र हुआ पुरूरवा, जो देवराज इन्द्रके समान तेजस्वी था ॥ ४ ॥

पुरूरवस आयुस्तु आयुषो नहुषः सुतः।
नहुषस्य ययातिस्तु राजा देवर्षिसम्मतः ॥ ५ ॥

पुरूरवाके पुत्र आयु और आयुके पुत्र नहुष हुए। नहुषके राजा ययाति हुए, जिनका देवताओं तथा ऋषियोंमें भी बड़ा आदर था ॥ ५ ॥

ययातेर्देवयान्यां तु यदुर्ज्येष्ठोऽभवत् सुतः।
यदोरभूदन्ववाये देवमीढ इति स्मृतः ॥ ६ ॥
यादवस्तस्य तु सुतः शूरस्त्रैलोक्यसम्मतः।
शूरस्य शौरिर्नृवरो वसुदेवो महायशाः ॥ ७ ॥

ययातिसे देवयानीके गर्भसे जो ज्येष्ठ पुत्र हुआ, उसका नाम यदु था। इन्हीं यदुके वंशमें देवमीढ़ नामसे विख्यात एक यादव हो गये हैं। उनके पुत्रका नाम था शूर, जो तीनों लोकोंमें सम्मानित थे। शूरके पुत्र नरश्रेष्ठ शौरि हुए, जो महायशस्वी वसुदेवके नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ६-७ ॥

धनुष्यनवरः शूरः कार्तवीर्यसमो युधि।
तद्वीर्यश्चापि तत्रैव कुले शिनिरभून्नृप ॥ ८ ॥

शूर धनुर्विद्यामें सबसे श्रेष्ठ थे। वे युद्धमें कार्तवीर्य अर्जुनके समान पराक्रमी थे। नरेश्वर! जिस कुलमें शूरका जन्म हुआ था, उसीमें उन्हींके समान बलशाली शिनि हुए॥

एतस्मिन्नेव काले तु देवकस्य महात्मनः।
दुहितुः स्वयंवरे राजन् सर्वक्षत्रसमागमे ॥ ९ ॥

राजन्! इसी समय महात्मा देवककी पुत्री देवकीके स्वयंवरमें सम्पूर्ण क्षत्रिय एकत्र हुए थे ॥ ९ ॥

तत्र वै देवकीं देवीं वसुदेवार्थमाशु वै।
निर्जित्य पार्थिवान् सर्वान् रथमारोपयच्छिनिः ॥१०॥

उस स्वयंवरमें शिनिने शीघ्र ही समस्त राजाओंको जीतकर वसुदेवके लिये देवकी देवीको रथपर बैठा लिया ॥ १० ॥

तां दृष्ट्वा देवकीं शूरो रथस्थां पुरुषर्षभ।
नामृष्यत महातेजाः सोमदत्तः शिनेर्नृप ॥ ११ ॥

नरश्रेष्ठ! नरेश्वर! उस समय महातेजस्वी शूरवीर सोमदत्तने देवकी देवीको रथपर बैठे हुए देख शिनिके पराक्रमको सहन नहीं किया ॥ ११ ॥

तयोर्युद्धमभूद् राजन् दिनार्धं चित्रमद्भुतम्।
बाहुयुद्धं सुबलिनोः प्रसक्तं पुरुषर्षभ ॥ १२ ॥

पुरुषप्रवर महाराज! उन दोनों महाबली शिनि और सोमदत्तमें आधे दिनतक विचित्र एवं अद्भुत बाहुयुद्ध हुआ॥

शिनिना सोमदत्तस्तु प्रसह्य भुवि पातितः।
असिमुद्यम्य केशेषु प्रगृह्य च पदा हतः ॥ १३ ॥

उसमें शिनिने सोमदत्तको बलपूर्वक पृथ्वीपर पटक दिया और तलवार उठाकर उनकी चुटिया पकड़ ली एवं उन्हें लात मारी ॥ १३ ॥

मध्ये राजसहस्राणां प्रेक्षकाणां समन्ततः।
कृपया च पुनस्तेन स जीवेति विसर्जितः ॥ १४ ॥

चारों ओरसे सहस्रों नरेश दर्शक बनकर यह युद्ध देख रहे थे। उनके बीचमें पुनः कृपा करके 'जाओ, जीवित रहो' ऐसा कहकर शिनिने सोमदत्तको छोड़ दिया ॥ १४ ॥

तदवस्थः कृतस्तेन सोमदत्तोऽथ मारिष।
प्रासादयन्महादेवममर्षवशमास्थितः ॥ १५ ॥

माननीय नरेश! जब शिनिने सोमदत्तकी ऐसी दुरवस्था कर दी, तब उन्होंने अमर्षके वशीभूत हो आराधनाद्वारा महादेवजीको प्रसन्न किया ॥ १५ ॥

तस्य तुष्टो महादेवो वराणां वरदः प्रभुः।
वरेण च्छन्दयामास स तु वव्रे वरं नृपः ॥ १६ ॥

श्रेष्ठ देवताओंमें भी सर्वश्रेष्ठ वरदायक तथा सामर्थ्यशाली महादेवजीने संतुष्ट होकर उन्हें इच्छानुसार वर माँगनेके लिये कहा। तब राजा सोमदत्तने इस प्रकार वर माँगा—॥ १६ ॥

पुत्रमिच्छामि भगवन् यो निपात्य शिनेः सुतम्।
मध्ये राजसहस्राणां पदा हन्याच्च संयुगे ॥ १७ ॥

'भगवन्! मैं ऐसा पुत्र पाना चाहता हूँ, जो शिनिके पुत्रको सहस्रों राजाओंके बीच युद्धमें पृथ्वीपर गिराकर उसे पैरसे मारे' ॥ १७ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा सोमदत्तस्य पार्थिव।
(सशिरःकम्पमाहेदं नैतदेवं भवेन्नृप।
स पूर्वमेव तपसा मामाराध्य जगत्त्रये ॥
कस्याप्यवध्यता मत्तः प्राप्तवान् वरमुत्तमम्।
तवाप्ययं प्रयासस्तु निष्फलो न भविष्यति ॥
तस्य पौत्रं तु समरे त्वत्पुत्रो मोहयिष्यति।
न तु मारयितुं शक्यः कृष्णसंरक्षितो ह्यसौ ॥
अहमेव तु कृष्णोऽस्मि नावयोरन्तरं क्वचित्।)
एवमस्त्विति तत्रोक्त्वा स देवोऽन्तरधीयत ॥ १८ ॥

राजन्! सोमदत्तका यह कथन सुनकर महादेवजीने सिर हिलाकर कहा—'नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। नरेश्वर! शिनिके पुत्रने तो पहले ही तपस्याद्वारा मेरी आराधना करके तीनों लोकोंमें किसीसे भी न मारे जानेका उत्तम वर मुझसे प्राप्त कर लिया है; परंतु तुम्हारा भी यह प्रयास निष्फल नहीं होगा। तुम्हारा पुत्र समरभूमिमें शिनिके पौत्रको तुम्हारी इच्छाके अनुसार मूर्छित कर देगा, परंतु उसके हाथसे वह मारा नहीं जा सकेगा; क्योंकि श्रीकृष्णसे वह सुरक्षित होगा। मैं ही श्रीकृष्ण हूँ। हम दोनोंमें कहीं कोई अन्तर नहीं है। जाओ, ऐसा ही होगा।' ऐसा कहकर महादेवजी वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ १८ ॥

स तेन वरदानेन लब्धवान् भूरिदक्षिणम्।
अपातयच्च समरे सौमदत्तिः शिनेः सुतम्॥ १९॥

उसी वरदानके प्रभावसे सोमदत्तने प्रचुर दक्षिणा देनेवाले भूरिश्रवाको पुत्ररूपमें प्राप्त किया और उसने समराङ्गणमें शिनिवंशज सात्यकिको गिरा दिया॥ १९॥

पश्यतां सर्वसैन्यानां पदा चैनमताडयत्।
एतत् ते कथितं राजन् यन्मां त्वं परिपृच्छसि॥२०॥

इतना ही नहीं, उसने सारी सेनाओंके देखते-देखते सात्यकिको लात भी मारी। राजन्! आप मुझसे जो पूछ रहे थे, उसके उत्तरमें यह प्रसंग सुनाया है॥ २०॥

न हि शक्यो रणे जेतुं सात्वतो मनुजर्षभैः।
लब्धलक्ष्याश्च संग्रामे बहुशश्चित्रयोधिनः॥ २१॥

सात्यकिको रणभूमिमें श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ मनुष्य भी नहीं जीत सकते। वृष्णिवंशी योद्धा अपने निशानेको सफलतापूर्वक वेध लेते हैं। वे संग्रामभूमिमें अनेक प्रकारसे विचित्र युद्ध करनेवाले होते हैं॥ २१॥

देवदानवगन्धर्वान् विजेतारो ह्यविस्मिताः।
स्ववीर्यविजये युक्ता नैते परपरिग्रहाः॥ २२॥

देवताओं, दानवों तथा गन्धर्वोंपर भी वे विजयी होते हैं। फिर भी इसके लिये उनके मनमें गर्व या विस्मय नहीं होता। वे अपने ही बलसे विजय पानेका उद्योग करते हैं। ये वृष्णिवंशी कभी पराधीन नहीं होते हैं॥ २२॥

न तुल्यं वृष्णिभिरिह दृश्यते किंचन प्रभो।
भूतं भव्यं भविष्यच्च बलेन भरतर्षभ॥ २३॥

शक्तिशाली भरतश्रेष्ठ! भूत, वर्तमान और भविष्य कोई भी जगत् बलमें वृष्णिवंशियोंके समान नहीं दिखायी देता॥ २३॥

न ज्ञातिमवमन्यन्ते वृद्धानां शासने रताः।
न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः॥ २४॥
जेतारो वृष्णिवीराणां किं पुनर्मानवा रणे।

ये अपने कुटुम्बीजनोंकी अवहेलना नहीं करते हैं। सदा बड़े-बूढ़ोंकी आज्ञामें तत्पर रहते हैं। देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, नाग और राक्षस भी युद्धमें वृष्णिवीरोंपर विजय नहीं पा सकते; फिर मनुष्य किस गिनतीमें हैं?॥ २४½॥

ब्रह्मद्रव्ये गुरुद्रव्ये ज्ञातिस्वे चाप्यहिंसकाः॥ २५॥
एतेषां रक्षितारश्च ये स्युः कस्यांचिदापदि।
अर्थवन्तो न चोत्सिक्ता ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः॥ २६॥

ये ब्राह्मण, गुरु तथा कुटुम्बीजनोंके धन लेनेके लिये कभी हिंसा नहीं करते हैं। इन ब्राह्मण-गुरु आदिमें जो कोई भी किसी आपत्तिमें पड़े हों, उनकी ये वृष्णिवंशी रक्षा करते हैं। ये सब-के-सब धनवान्, अभिमानशून्य, ब्राह्मण-भक्त और सत्यवादी होते हैं॥ २५-२६॥

समर्थान् नावमन्यन्ते दीनानभ्युद्धरन्ति च।
नित्यं देवपरा दान्तास्त्रातारश्चाविकत्थनाः॥ २७॥

ये सामर्थ्यशाली पुरुषोंकी अवहेलना नहीं करते और दीन-दुखियोंका उद्धार करते हैं। सदा देवभक्त, जितेन्द्रिय, दूसरोंके संरक्षक तथा आत्मप्रशंसासे दूर रहनेवाले हैं॥

तेन वृष्णिप्रवीराणां चक्रं न प्रतिहन्यते।
अपि मेरुं वहेत् कश्चित् तरेद् वा मकरालयम्।
न तु वृष्णिप्रवीराणां समेत्यान्तं व्रजेन्नृप॥ २८॥

इसीसे वृष्णिवीरोंका यह समूह किसीके द्वारा प्रतिहत नहीं होता है। नरेश्वर! कोई मेरुपर्वतको सिरपर उठा ले अथवा समुद्रको हाथोंसे तैर जाय; परंतु वृष्णिवीरोंके समूहका अन्त नहीं पा सकता॥ २८॥

एतत् ते सर्वमाख्यातं यत्र ते संशयः प्रभो।
कुरुराज नरश्रेष्ठ तव व्यपनयो महान्॥ २९॥

प्रभो! जहाँ आपको संदेह था, वह सब मैंने अच्छी तरह बता दिया है। कुरुराज नरश्रेष्ठ! इस युद्धको चालू करनेमें आपका महान् अन्याय ही कारण है॥ २९॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि सात्यकिप्रशंसायां चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें सात्यकिकी प्रशंसाविषयक एक सौ चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥१४४॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३½ श्लोक मिलाकर कुल ३२½ श्लोक हैं)

पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अर्जुनका जयद्रथपर आक्रमण, कर्ण और दुर्योधनकी बातचीत, कर्णके साथ अर्जुनका युद्ध और कर्णकी पराजय तथा सब योद्धाओंके साथ अर्जुनका घोर युद्ध

धृतराष्ट्र उवाच

तदवस्थे हते तस्मिन् भूरिश्रवसि कौरवे।
यथा भूयोऽभवद् युद्धं तन्ममाचक्ष्व संजय॥ १॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! उस अवस्थामें कुरुवंशी भूरिश्रवाके मारे जानेपर पुनः जिस प्रकार युद्ध हुआ, वह मुझे बताओ॥ १॥

संजय उवाच

भूरिश्रवसि संक्रान्ते परलोकाय भारत।

वासुदेवं महाबाहुरर्जुनः समचूचुदत् ॥ २ ॥

संजयने कहा—भारत ! भूरिश्रवाके परलोकगामी हो जानेपर महाबाहु अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णको प्रेरित करते हुए कहा—॥ २ ॥

चोदयाश्वान् भृशं कृष्ण यतो राजा जयद्रथः ।
श्रूयते पुण्डरीकाक्ष त्रिषु धर्मेषु वर्तते ॥ ३ ॥
प्रतिज्ञां सफलां चापि कर्तुमर्हसि मेऽनघ ।
अस्तमेति महाबाहो त्वरमाणो दिवाकरः ॥ ४ ॥

'श्रीकृष्ण ! जिस ओर राजा जयद्रथ खड़ा है, उसी ओर अब इन घोड़ोंको शीघ्रतापूर्वक हाँकिये। कमलनयन ! सुना जाता है कि वह इस समय तीन धर्मोंमें विद्यमान है। निष्पाप केशव ! मेरी प्रतिज्ञा आप सफल करें । महाबाहो ! सूर्यदेव तीव्रगतिसे अस्ताचलकी ओर जा रहे हैं ॥ ३-४ ॥

एतद्धि पुरुषव्याघ्र महदभ्युद्यतं मया ।
कार्यं संरक्ष्यते चैष कुरुसेनामहारथैः ॥ ५ ॥

'पुरुषसिंह ! मैंने यह बहुत बड़े कार्यके लिये उद्योग आरम्भ किया है। कौरवसेनाके महारथी इस जयद्रथकी रक्षा कर रहे हैं ॥ ५ ॥

तथा नाभ्येति सूर्योऽस्तं यथा सत्यं भवेद् वचः ।
चोदयाश्वांस्तथा कृष्ण यथा हन्यां जयद्रथम् ॥ ६ ॥

'श्रीकृष्ण! जबतक सूर्य अस्ताचलको न चले जायँ, तभीतक जैसे भी मेरी प्रतिज्ञा सच्ची हो जाय और जैसे भी मैं जयद्रथको मार सकूँ, उसी प्रकार शीघ्रतापूर्वक इन घोड़ोंको हाँकिये' ॥ ६ ॥

ततः कृष्णो महाबाहू रजतप्रतिमान् हयान् ।
हयज्ञश्चोदयामास जयद्रथवधं प्रति ॥ ७ ॥

तब अश्वविद्याके ज्ञाता महाबाहु श्रीकृष्णने जयद्रथको मारनेके उद्देश्यसे उसकी ओर चाँदीके समान श्वेत घोड़ोंको हाँका ॥ ७ ॥

तं प्रयान्तममोघेषुमुत्पतद्भिरिवाशुगैः ।
त्वरमाणा महाराज सेनामुख्याः समाद्रवन् ॥ ८ ॥

महाराज ! जिनके बाण कभी व्यर्थ नहीं जाते, उन अर्जुनको धनुषसे छूटे हुए बाणोंके समान उड़ते हुए-से अश्वोंद्वारा जयद्रथकी ओर जाते देख कौरवसेनाके प्रधान-प्रधान वीर बड़े वेगसे दौड़े ॥ ८ ॥

दुर्योधनश्च कर्णश्च वृषसेनोऽथ मद्रराट् ।
अश्वत्थामा कृपश्चैव स्वयमेव च सैन्धवः ॥ ९ ॥

दुर्योधन, कर्ण, वृषसेन, मद्रराज शल्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और स्वयं सिंधुराज जयद्रथ—ये सभी युद्धके लिये डट गये ॥ ९ ॥

समासाद्य च बीभत्सुः सैन्धवं समुपस्थितम् ।
नेत्राभ्यां क्रोधदीप्ताभ्यां सम्प्रैक्षन्निर्दहन्निव ॥ १० ॥

वहाँ उपस्थित हुए सिंधुराजको सामने पाकर अर्जुनने क्रोधसे उद्दीप्त नेत्रोंद्वारा उसे इस प्रकार देखा, मानो जलाकर भस्म कर देंगे ॥ १० ॥

ततो दुर्योधनो राजा राधेयं त्वरितोऽब्रवीत् ।
अर्जुनं प्रेक्ष्य संयातं जयद्रथवधं प्रति ॥ ११ ॥

तब राजा दुर्योधनने अर्जुनको जयद्रथको मारनेके लिये उसकी ओर जाते देख तुरंत ही राधापुत्र कर्णसे कहा—॥

अयं स वैकर्तन युद्धकालो
विदर्शयस्वात्मबलं महात्मन् ।
यथा न वध्येत रणेऽर्जुनेन
जयद्रथः कर्ण तथा कुरुष्व ॥ १२ ॥

'सूर्यपुत्र ! यही वह युद्धका समय आया है । महात्मन्! तुम इस समय अपना बल दिखाओ । कर्ण ! रणभूमिमें अर्जुनके द्वारा जैसे भी जयद्रथका वध न होने पावे, वैसा प्रयत्न करो॥

अल्पावशेषो दिवसो नृवीर
विघातयस्वाद्य रिपुं शरौघैः ।
दिनक्षयं प्राप्य नरप्रवीर
ध्रुवो हि नः कर्ण जयो भविष्यति ॥ १३ ॥

'नरवीर ! अब दिनका थोड़ा-सा ही भाग शेष है। तुम अपने बाणसमूहोंद्वारा इस समय शत्रुको घायल करके उसके कार्यमें बाधा डालो । मनुष्यलोकके प्रमुख वीर कर्ण ! दिन समाप्त होनेपर तो निश्चय ही हमारी विजय हो जायगी ॥

सैन्धवे रक्ष्यमाणे तु सूर्यस्यास्तमनं प्रति ।
मिथ्याप्रतिज्ञः कौन्तेयः प्रवेक्ष्यति हुताशनम् ॥ १४ ॥

'सूर्यास्त होनेतक यदि सिंधुराज सुरक्षित रहे तो प्रतिज्ञा झूठी होनेके कारण अर्जुन अग्निमें प्रवेश कर जायँगे ॥ १४॥

अनर्जुनायां च भुवि मुहूर्तमपि मानद ।
जीवितुं नोत्सहेरन् वै भ्रातरोऽस्य सहानुगाः ॥ १५ ॥

'मानद ! फिर अर्जुनरहित भूतलपर उनके भाई और अनुगामी सेवक दो घड़ी भी जीवित नहीं रह सकते ॥ १५॥

विनष्टैः पाण्डवेयैश्च सशैलवनकाननाम् ।
वसुंधरामिमां कर्ण भोक्ष्यामो हतकण्टकाम् ॥ १६ ॥

'कर्ण ! पाण्डवोंके नष्ट हो जानेपर हमलोग पर्वत, वन और काननोंसहित इस निष्कण्टक वसुधाका राज्य भोगेंगे ॥

दैवेनोपहतः पार्थो विपरीतश्च मानद ।
कार्याकार्यमजानानः प्रतिज्ञां कृतवान् रणे ॥ १७ ॥

'मानद ! दैवके मारे हुए अर्जुनकी बुद्धि विपरीत हो गयी थी । इसीलिये कर्तव्य और अकर्तव्यका विचार न करके उन्होंने रणभूमिमें जयद्रथको मारनेकी प्रतिज्ञा कर ली॥ १७॥

नूनमात्मविनाशाय पाण्डवेन किरीटिना ।
प्रतिज्ञेयं कृता कर्ण जयद्रथवधं प्रति ॥ १८ ॥

'कर्ण ! निश्चय ही किरीटधारी पाण्डव अर्जुनने अपने ही विनाशके लिये जयद्रथ-वधकी यह प्रतिज्ञा कर डाली है ॥

कथं जीवति दुर्धर्षे त्वयि राधेय फाल्गुनः।
अनस्तंगत आदित्ये हन्यात् सैन्धवकं नृपम् ॥ १९ ॥

'राधानन्दन ! तुम-जैसे दुर्धर्ष वीरके जीते-जी अर्जुन सिंधुराजको सूर्यास्त होनेसे पहले ही कैसे मार सकेंगे ? ॥ १९ ॥

रक्षितं मद्रराजेन कृपेण च महात्मना।
जयद्रथं रणमुखे कथं हन्याद् धनंजयः ॥ २० ॥

'मद्रराज शल्य और महामना कृपाचार्यसे सुरक्षित हुए जयद्रथको अर्जुन युद्धके मुहानेपर कैसे मार सकेंगे ? ॥ २० ॥

द्रौणिना रक्ष्यमाणं च मया दुःशासनेन च।
कथं प्राप्स्यति बीभत्सुः सैन्धवं कालचोदितः ॥ २१ ॥

'मैं, दुःशासन तथा अश्वत्थामा जिनकी रक्षा कर रहे हैं, उन सिंधुराज जयद्रथको अर्जुन कैसे प्राप्त कर सकेंगे ? जान पड़ता है कि वे कालसे प्रेरित हो रहे हैं ॥ २१ ॥

युध्यन्ते बहवः शूरा लम्बते च दिवाकरः।
शङ्के जयद्रथं पार्थो नैव प्राप्स्यति मानद ॥ २२ ॥

'मानद ! बहुत-से शूरवीर युद्ध कर रहे हैं, उधर सूर्य भी अस्ताचलपर जा रहे हैं। अतः मुझे संदेह यह होता है कि अर्जुन जयद्रथतक नहीं पहुँच पायेंगे ॥ २२ ॥

स त्वं कर्ण मया सार्धं शूरैश्चान्यैर्महारथैः।
द्रौणिना त्वं हि सहितो मद्रेशेन कृपेण च ॥ २३ ॥
युध्यस्व यत्नमास्थाय परं पार्थेन संयुगे।

'कर्ण ! तुम मेरे, अश्वत्थामाके, मद्रराज शल्यके, कृपाचार्यके तथा अन्य शूरवीर महारथियोंके साथ पूरा प्रयत्न करके रणक्षेत्रमें अर्जुनके साथ युद्ध करो' ॥ २३½ ॥

एवमुक्तस्तु राधेयस्तव पुत्रेण मारिष ॥ २४ ॥
दुर्योधनमिदं वाक्यं प्रत्युवाच कुरूत्तमम्।

आर्य ! आपके पुत्रके ऐसा कहनेपर राधानन्दन कर्णने कुरुश्रेष्ठ दुर्योधनसे इस प्रकार कहा—॥ २४½ ॥

दृढलक्ष्येण वीरेण भीमसेनेन धन्विना ॥ २५ ॥
भृशं भिन्नतनुः संख्ये शरजालैरनेकशः।
स्थातव्यमिति तिष्ठामि रणे सम्प्रति मानद ॥ २६ ॥

'मानद ! सुदृढ़ लक्ष्यवाले वीर धनुर्धर भीमसेनने संग्राममें अपने बाणसमूहोंद्वारा अनेक बार मेरे शरीरको अत्यन्त क्षत-विक्षत कर दिया है। मुझे खड़ा रहना चाहिये (भागना नहीं चाहिये), यह सोचकर ही इस समय मैं रणभूमिमें ठहरा हुआ हूँ ॥ २५-२६ ॥

नाङ्गमिङ्गति किंचिन्मे संतप्तस्य महेषुभिः।
योत्स्यामि तु यथाशक्त्या त्वदर्थं जीवितं मम ॥ २७ ॥

'इस समय मेरा कोई भी अङ्ग किसी प्रकारकी चेष्टा नहीं कर रहा है। मैं बड़े-बड़े बाणोंकी आगसे संतप्त हूँ, तथापि यथाशक्ति युद्ध करूँगा; क्योंकि यह मेरा जीवन तुम्हारे लिये ही है ॥ २७ ॥

यथा पाण्डवमुख्योऽसौ न हनिष्यति सैन्धवम्।
न हि मे युध्यमानस्य सायकानस्यतः शितान् ॥ २८ ॥
सैन्धवं प्राप्स्यते वीरः सव्यसाची धनंजयः।

'पाण्डवोंके प्रधान वीर अर्जुन जैसे भी किसी तरह सिंधुराजको नहीं मार सकेंगे, वैसा प्रयत्न करूँगा। जबतक मैं युद्धमें तत्पर होकर पैने बाण छोड़ता रहूँगा, तबतक सव्यसाची वीर धनंजय सिंधुराजको नहीं पा सकेंगे ॥ २८½ ॥

यत्तु भक्तिमता कार्यं सततं हितकाङ्क्षिणा ॥ २९ ॥
तत् करिष्यामि कौरव्य जयो दैवे प्रतिष्ठितः।

'कुरुनन्दन ! सदा मित्रका हित चाहनेवाले भक्तिमान् पुरुषको जो कार्य करना चाहिये, वह मैं करूँगा। विजयकी प्राप्ति तो दैवके अधीन है ॥ २९½ ॥

सैन्धवार्थे परं यत्नं करिष्याम्यद्य संयुगे ॥ ३० ॥
त्वत्प्रियार्थं महाराज जयो दैवे प्रतिष्ठितः।

'महाराज ! आज युद्धस्थलमें आपका प्रिय करनेके लिये मैं सिंधुराजकी रक्षाके निमित्त पूरा प्रयत्न करूँगा। विजय तो दैवके अधीन है ॥ ३०½ ॥

अद्य योत्स्येऽर्जुनमहं पौरुषं स्वं व्यपाश्रितः ॥ ३१ ॥
त्वदर्थे पुरुषव्याघ्र जयो दैवे प्रतिष्ठितः।

'पुरुषसिंह ! आज मैं अपने पुरुषार्थका भरोसा करके तुम्हारे हितके लिये अर्जुनके साथ युद्ध करूँगा। विजयकी प्राप्ति तो दैवके अधीन है ॥ ३१½ ॥

अद्य युद्धं कुरुश्रेष्ठ मम पार्थस्य चोभयोः ॥ ३२ ॥
पश्यन्तु सर्वसैन्यानि दारुणं लोमहर्षणम्।

'कुरुश्रेष्ठ ! आज सारी सेनाएँ मेरे और अर्जुन दोनोंके भयंकर एवं रोमाञ्चकारी युद्धको देखें' ॥ ३२½ ॥

कर्णकौरवयोरेवं रणे सम्भाषमाणयोः ॥ ३३ ॥
अर्जुनो निशितैर्बाणैर्जघान तव वाहिनीम्।

जब रणक्षेत्रमें कर्ण और दुर्योधन इस तरह वार्तालाप कर रहे थे, उस समय अर्जुनने अपने पैने बाणोंद्वारा आपकी सेनाका संहार आरम्भ किया ॥ ३३½ ॥

चिच्छेद निशितैर्बाणैः शूराणामनिवर्तिनाम् ॥ ३४ ॥
भुजान् परिघसंकाशान् हस्तिहस्तोपमान् रणे।

उन्होंने तीखे बाणोंसे रणभूमिमें कभी पीठ न दिखानेवाले शूरवीरोंकी परिघके समान सुदृढ़ तथा हाथीकी सूँड़के समान मोटी भुजाओंको काट डाला ॥ ३४½ ॥

शिरांसि च महाबाहुश्चिच्छेद निशितैः शरैः ॥ ३५ ॥
हस्तिहस्तान् हयग्रीवान् रथाक्षांश्च समन्ततः।

महाबाहु अर्जुनने सब ओर अपने तीखे बाणोंसे शत्रुओंके मस्तक, हाथियोंके शुण्डदण्डों, घोड़ोंकी गर्दनों तथा रथके धुरोंको भी खण्डित कर दिया ॥ ३५½ ॥

शोणिताक्तान् हयारोहान् गृहीतप्रासतोमरान् ॥ ३६ ॥
क्षुरैश्चिच्छेद बीभत्सुर्द्विधैकैकं त्रिधैव च ।

अर्जुनने हाथोंमें प्रास और तोमर लिये खूनसे रँगे हुए घुड़सवारोंमेंसे प्रत्येकके अपने छुरोंद्वारा दो-दो और तीन-तीन टुकड़े कर डाले ॥ ३६½ ॥

हया वारणमुख्याश्च प्रापतन्त समन्ततः ॥ ३७ ॥
ध्वजाश्छत्राणि चापानि चामराणि शिरांसि च ।

बड़े-बड़े हाथी और घोड़े सब ओर धराशायी होने लगे। ध्वज, छत्र, धनुष, चँवर तथा योद्धाओंके मस्तक कट-कटकर गिरने लगे ॥ ३७½ ॥

कक्षमग्निरिवोद्धूतः प्रदहंस्तव वाहिनीम् ॥ ३८ ॥
अचिरेण महीं पार्थश्चकार रुधिरोत्तराम् ।

जैसे प्रचण्ड अग्नि घास-फूसके जंगलको जला डालती है, उसी प्रकार अर्जुनने आपकी सेनाको दग्ध करते हुए थोड़ी ही देरमें वहाँकी भूमिको रक्तसे आप्लावित कर दिया ॥ ३८½ ॥

हतभूयिष्ठयोधं तत् कृत्वा तव बलं बली ॥ ३९ ॥
आससाद दुराधर्षः सैन्धवं सत्यविक्रमः ।

सत्यपराक्रमी, बलवान् एवं दुर्धर्ष वीर अर्जुनने आपकी सेनाके अधिकांश योद्धाओंको मारकर सिंधुराजपर आक्रमण किया ॥ ३९½ ॥

बीभत्सुर्भीमसेनेन सात्वतेन च रक्षितः ॥ ४० ॥
प्रबभौ भरतश्रेष्ठ ज्वलन्निव हुताशनः ।

भरतश्रेष्ठ ! भीमसेन और सात्यकिसे सुरक्षित अर्जुन उस समय प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ ४०½ ॥

तं तथावस्थितं दृष्ट्वा त्वदीया वीर्यसम्पदा ॥ ४१ ॥
नामृष्यन्त महेष्वासाः पाण्डवं पुरुषर्षभाः ।

अर्जुनको इस प्रकार बल-पराक्रमकी सम्पत्तिसे युक्त होकर युद्धके लिये डटा हुआ देख आपकी सेनाके श्रेष्ठ पुरुष एवं महाधनुर्धर वीर सहन न कर सके ॥ ४१½ ॥

दुर्योधनश्च कर्णश्च वृषसेनोऽथ मद्रराट् ॥ ४२ ॥
अश्वत्थामा कृपश्चैव स्वयमेव च सैन्धवः ।
संनद्धाः सैन्धवस्यार्थे समावृण्वन् किरीटिनम् ॥ ४३ ॥

दुर्योधन, कर्ण, वृषसेन, मद्रराज शल्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य तथा स्वयं सिंधुराज जयद्रथ—इन सबने जयद्रथकी रक्षाके लिये संनद्ध होकर किरीटधारी अर्जुनको सब ओरसे घेर लिया ॥ ४२-४३ ॥

नृत्यन्तं रथमार्गेषु धनुर्ज्यातलनिःस्वनैः ।
संग्रामकोविदं पार्थं सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ४४ ॥
अभीताः पर्यवर्तन्त व्यादितास्यमिवान्तकम् ।

उस समय युद्धकुशल कुन्तीकुमार धनुषकी टङ्कार करते हुए रथके मार्गोंपर नाच रहे थे और मुँह बाये हुए यमराजके समान भयंकर जान पड़ते थे। उन्हें युद्धविशारद समस्त कौरव-महारथियोंने निर्भय हो चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४४½ ॥

सैन्धवं पृष्ठतः कृत्वा जिघांसन्तोऽच्युतार्जुनौ ॥ ४५ ॥
सूर्यास्तमनमिच्छन्तो लोहितायति भास्करे ।

वे श्रीकृष्ण और अर्जुनको मार डालनेकी इच्छासे सिंधुराज जयद्रथको पीछे करके सूर्यास्त होनेकी इच्छा और प्रतीक्षा करने लगे। उस समय सूर्य लाल-से हो चले थे ॥ ४५½ ॥

ते भुजैर्भोगिभोगाभैर्धनूंष्यानम्य सायकान् ॥ ४६ ॥
मुमुचुः सूर्यरश्म्याभाञ्छतशः फाल्गुनं प्रति ।

उन कौरव-सैनिकोंने सर्पके शरीरके समान प्रतीत होनेवाली अपनी भुजाओंद्वारा धनुषोंको नवाकर अर्जुनपर सूर्यकी किरणोंके समान चमकीले सैकड़ों बाण छोड़े ॥ ४६½ ॥

ततस्तानस्यमानांश्च किरीटी युद्धदुर्मदः ॥ ४७ ॥
द्विधा त्रिधाष्टधैकैकं छित्त्वा विव्याध तान् रथान् ।

तदनन्तर रणदुर्मद किरीटधारी अर्जुनने उन छोड़े गये बाणोंमेंसे प्रत्येकके दो-दो, तीन-तीन और आठ-आठ टुकड़े करके उन रथियोंको भी घायल कर दिया ॥ ४७½ ॥

सिंहलाङ्गूलकेतुस्तु दर्शयन् वीर्यमात्मनः ॥ ४८ ॥
शारद्वतीसुतो राजन्नर्जुनं प्रत्यवारयत् ।

राजन् ! जिनकी ध्वजामें सिंहकी पूँछका चिह्न था, उन शारद्वतीपुत्र कृपाचार्यने अपना बल-पराक्रम दिखाते हुए अर्जुनको रोका ॥ ४८½ ॥

स विद्ध्वा दशभिः पार्थं वासुदेवं च सप्तभिः ॥ ४९ ॥
अतिष्ठद् रथमार्गेषु सैन्धवं प्रतिपालयन् ।

वे दस बाणोंसे अर्जुनको और सातसे श्रीकृष्णको घायल करके रथके मार्गोंपर जयद्रथकी रक्षा करते हुए खड़े थे ॥ ४९½ ॥

अथैनं कौरवश्रेष्ठाः सर्वे एव महारथाः ॥ ५० ॥
महता रथवंशेन सर्वतः प्रत्यवारयन् ।

तत्पश्चात् कौरवसेनाके सभी श्रेष्ठ महारथियोंने विशाल रथसमूहके द्वारा कृपाचार्यको सब ओरसे घेर लिया ॥ ५०½ ॥

विस्फारयन्तश्चापानि विसृजन्तश्च सायकान् ॥ ५१ ॥
सैन्धवं पर्यरक्षन्त शासनात् तनयस्य ते ।

वे आपके पुत्रकी आज्ञासे धनुष खींचते और बाण छोड़ते हुए वहाँ जयद्रथकी सब ओरसे रक्षा करने लगे ॥ ५१½ ॥

ततः पार्थस्य शूरस्य बाह्वोर्बलमदृश्यत ॥ ५२ ॥
इषूणामक्षयत्वं च धनुषो गाण्डिवस्य च ।

तत्पश्चात् वहाँ शूरवीर कुन्तीकुमारकी भुजाओंका बल देखा गया। उनके गाण्डीव धनुष तथा बाणोंकी अक्षयताका परिचय मिला ॥ ५२½ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्रौणेः शारद्वतस्य च ॥ ५३ ॥
एकैकं दशभिर्बाणैः सर्वानेव समार्पयत्।

उन्होंने अश्वत्थामा तथा कृपाचार्यके अस्त्रोंका अपने अस्त्रोंद्वारा निवारण करके बारी-बारीसे उन सबको दस-दस बाण मारे ॥ ५३½ ॥

तं द्रौणिः पञ्चविंशत्या वृषसेनश्च सप्तभिः ॥ ५४ ॥
दुर्योधनस्तु विंशत्या कर्णशल्यौ त्रिभिस्त्रिभिः।

अश्वत्थामाने पचीस, वृषसेनने सात, दुर्योधनने बीस तथा कर्ण और शल्यने तीन-तीन बाणोंसे अर्जुनको घायल कर दिया ॥ ५४½ ॥

त एनमभिगर्जन्तो विध्यन्तश्च पुनः पुनः ॥ ५५ ॥
विधुन्वतश्च चापानि सर्वतः प्रत्यवारयन्।

वे अर्जुनको लक्ष्य करके बार-बार गरजते, उन्हें बारंबार बाणोंसे बींधते और धनुषको हिलाते हुए सब ओरसे उन्हें आगे बढ़नेसे रोकने लगे ॥ ५५½ ॥

श्लिष्टं च सर्वतश्चक्रू रथमण्डलमाशु ते ॥ ५६ ॥
सूर्यास्तमनमिच्छन्तस्त्वरमाणा महारथाः।

उन महारथियोंने सूर्यास्तकी इच्छा रखते हुए बड़ी उतावलीके साथ अपने रथसमूहको परस्पर सटाकर सब ओरसे खड़ा कर दिया ॥ ५६½ ॥

त एनमभिनर्दन्तो विधुन्वाना धनूंषि च ॥ ५७ ॥
सिषिचुर्मार्गणैस्तीक्ष्णैर्गिरिं मेघा इवाम्बुभिः।

जैसे बादल पर्वतशिखरपर अपने जलकी बूँदोंसे आघात करते हैं, उसी प्रकार वे कौरव-महारथी धनुष हिलाते तथा अर्जुनके सामने गर्जना करते हुए उनपर तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ५७½ ॥

ते महास्त्राणि दिव्यानि तत्र राजन् व्यदर्शयन् ॥५८॥
धनंजयस्य गात्रे तु शूराः परिघबाहवः।

राजन्! परिघके समान सुदृढ़ भुजाओंवाले उन शूरवीरोंने अर्जुनके शरीरपर वहाँ बड़े-बड़े दिव्यास्त्रोंका प्रदर्शन किया॥

हतभूयिष्ठयोधं तत् कृत्वा तव बलं बली ॥ ५९ ॥
आससाद दुराधर्षः सैन्धवं सत्यविक्रमः।

तथापि सत्यपराक्रमी बलवान् एवं दुर्धर्ष वीर अर्जुनने आपकी सेनाके अधिकांश योद्धाओंका संहार करके सिन्धुराजपर आक्रमण किया ॥ ५९½ ॥

तं कर्णः संयुगे राजन् प्रत्यवारयदाशुगैः ॥ ६० ॥
मिषतो भीमसेनस्य सात्वतस्य च भारत।

राजन्! भरतनन्दन! उस युद्धस्थलमें कर्णने भीमसेन और सात्यकिके देखते-देखते अपने शीघ्रगामी बाणोंद्वारा अर्जुनको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ६०½ ॥

तं पार्थो दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यद् रणाजिरे ॥ ६१ ॥
सूतपुत्रं महाबाहुः सर्वसैन्यस्य पश्यतः।

तब महाबाहु अर्जुनने समराङ्गणमें सारी सेनाके देखते-देखते सूतपुत्र कर्णको दस बाणोंसे घायल कर दिया॥६१½॥

सात्वतश्च त्रिभिर्बाणैः कर्णं विव्याध मारिष ॥ ६२ ॥
भीमसेनस्त्रिभिश्चैव पुनः पार्थश्च सप्तभिः।

माननीय नरेश! तदनन्तर सात्यकिने तीन बाणोंसे कर्णको वेध दिया, फिर भीमसेनने भी उसे तीन बाण मारे और अर्जुनने पुनः सात बाणोंसे कर्णको घायल कर दिया ॥ ६२½ ॥

तान् कर्णः प्रतिविव्याध षष्ट्या षष्ट्या महारथः ॥६३॥
तद् युद्धमभवद् राजन् कर्णस्य बहुभिः सह।

तब महारथी कर्णने उन तीनोंको साठ-साठ बाण मारकर बदला चुकाया। राजन्! कर्णका वह युद्ध अनेक वीरोंके साथ हो रहा था ॥ ६३½ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम सूतपुत्रस्य मारिष ॥ ६४ ॥
यदेकः समरे क्रुद्धस्त्रीन् रथान् पर्यवारयत्।

आर्य! वहाँ हमने सूतपुत्रका अद्भुत पराक्रम देखा कि समरभूमिमें कुपित होकर उसने अकेले ही तीन-तीन महारथियोंको रोक दिया था ॥ ६४½ ॥

फाल्गुनस्तु महाबाहुः कर्णं वैकर्तनं रणे ॥ ६५ ॥
सायकानां शतेनैव सर्वमर्मस्वताडयत्।

उस समय महाबाहु अर्जुनने रणभूमिमें सौ बाणोंद्वारा सूर्यपुत्र कर्णको उसके सम्पूर्ण मर्मस्थानोंमें चोट पहुँचायी ॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गः सूतपुत्रः प्रतापवान् ॥ ६६ ॥
शरैः पञ्चाशता वीरः फाल्गुनं प्रत्यविध्यत।
तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा नामृष्यत रणेऽर्जुनः ॥ ६७ ॥

प्रतापी सूतपुत्र कर्णके सारे अंग खूनसे लथपथ हो गये, तथापि उस वीरने पचास बाणोंसे अर्जुनको भी घायल कर दिया। रणक्षेत्रमें उसकी यह फुर्ती देखकर अर्जुन सहन न कर सके ॥ ६६-६७ ॥

ततः पार्थो धनुश्छित्त्वा विव्याधैनं स्तनान्तरे।
सायकैर्नवभिर्वीरस्त्वरमाणो धनंजयः ॥ ६८ ॥

तदनन्तर कुन्तीकुमार वीर धनंजयने कर्णका धनुष काटकर बड़ी उतावलीके साथ उसकी छातीमें नौ बाणोंका प्रहार किया ॥ ६८ ॥

अथान्यद् धनुरादाय सूतपुत्रः प्रतापवान्।
सायकैरष्टसाहस्रैश्छादयामास पाण्डवम् ॥ ६९ ॥

तब प्रतापी सूतपुत्रने दूसरा धनुष हाथमें लेकर आठ

हजार बाणोंसे पाण्डुपुत्र अर्जुनको ढक दिया ॥ ६९ ॥

तां बाणवृष्टिमतुलां कर्णचापसमुत्थिताम् ।
व्यधमत् सायकैः पार्थः शलभानिव मारुतः ॥ ७० ॥

कर्णके धनुषसे प्रकट हुई उस अनुपम बाण-वर्षाको अर्जुनने बाणोंद्वारा उसी प्रकार नष्ट कर दिया, जैसे वायु टिड्डियोंके दलको उड़ा देती है ॥ ७० ॥

छादयामास च तदा सायकैरर्जुनो रणे ।
पश्यतां सर्वयोधानां दर्शयन् पाणिलाघवम् ॥ ७१ ॥

तत्पश्चात् अर्जुनने रणभूमिमें दर्शक बने हुए समस्त योद्धाओंको अपने हाथोंकी फुर्ती दिखाते हुए उस समय कर्णको भी आच्छादित कर दिया ॥ ७१ ॥

वधार्थं चास्य समरे सायकं सूर्यवर्चसम् ।
चिक्षेप त्वरया युक्तस्त्वराकाले धनंजयः ॥ ७२ ॥

साथ ही शीघ्रताके अवसरपर शीघ्रता करनेवाले अर्जुनने समरभूमिमें सूतपुत्रका वध करनेके लिये उसके ऊपर सूर्यके समान तेजस्वी बाण चलाया ॥ ७२ ॥

तमापतन्तं वेगेन द्रौणिश्चिच्छेद सायकम् ।
अर्धचन्द्रेण तीक्ष्णेन स च्छिन्नः प्रापतद् भुवि ॥ ७३ ॥

उस बाणको वेगपूर्वक आते देख अश्वत्थामाने तीखे अर्धचन्द्रसे बीचमें ही काट दिया । कटकर वह पृथ्वीपर गिर पड़ा॥

कर्णोऽपि द्विषतां हन्ता छादयामास फाल्गुनम् ।
सायकैर्बहुसाहस्रैः कृतप्रतिकृतेप्सया ॥ ७४ ॥

तब शत्रुहन्ता कर्णने भी उनके किये हुए प्रहारका बदला चुकानेकी इच्छासे अनेक सहस्र बाणोंद्वारा पुनः अर्जुनको आच्छादित कर दिया ॥ ७४ ॥

तौ वृषाविव नर्दन्तौ नरसिंहौ महारथौ ।
सायकैस्तु प्रतिच्छन्नं चक्रतुः खमजिह्मगैः ॥ ७५ ॥

वे दोनों पुरुषसिंह महारथी दो साँड़ोंके समान हँकड़ते हुए अपने सीधे जानेवाले बाणोंद्वारा आकाशको आच्छादित करने लगे ॥ ७५ ॥

अदृश्यौ च शरौघैस्तौ निघ्नन्तावितरेतरम् ।
कर्ण पार्थोऽस्मि तिष्ठ त्वं कर्णोऽहं तिष्ठ फाल्गुन ॥ ७६ ॥

वे दोनों एक दूसरेपर चोट करते हुए स्वयं बाणसमूहोंसे ढककर अदृश्य हो गये थे और एक दूसरेको पुकारकर इस प्रकार कहते थे–'कर्ण ! तू खड़ा रह, मैं अर्जुन हूँ;' 'अर्जुन ! खड़ा रह, मैं कर्ण हूँ' ॥ ७६ ॥

इत्येवं तर्जयन्तौ तौ वाक्शल्यैस्तुदतां तदा ।
युध्येतां समरे वीरौ चित्रं लघु च सुष्ठु च ॥ ७७ ॥

इस प्रकार एक दूसरेको ललकारते और डाँटते हुए वे दोनों वीर वाक्यरूपी बाणोंद्वारा परस्पर चोट करते हुए समराङ्गणमें शीघ्रतापूर्वक और सुन्दर ढंगसे विचित्र युद्ध कर रहे थे ॥ ७७ ॥

प्रेक्षणीयौ चाभवतां सर्वयोधसमागमे ।
प्रशस्यमानौ समरे सिद्धचारणपन्नगैः ॥ ७८ ॥
अयुध्येतां महाराज परस्परवधैषिणौ ।

सम्पूर्ण योद्धाओंके उस सम्मेलनमें वे दोनों दर्शनीय हो रहे थे । महाराज ! समरभूमिमें सिद्ध, चारण और नागोंद्वारा प्रशंसित होते हुए कर्ण और अर्जुन एक दूसरेके वधकी इच्छासे युद्ध कर रहे थे ॥ ७८½ ॥

ततो दुर्योधनो राजंस्तावकानभ्यभाषत ॥ ७९ ॥
यत्नाद् रक्षत राधेयं नाहत्वा समरेऽर्जुनम् ।
निवर्तिष्यति राधेय इति मामुक्तवान् वृषः ॥ ८० ॥

राजन् ! तदनन्तर दुर्योधनने आपके सैनिकोंसे कहा– 'वीरो ! तुम यत्नपूर्वक राधापुत्र कर्णकी रक्षा करो । वह युद्धस्थलमें अर्जुनका वध किये बिना नहीं लौटेगा; क्योंकि उसने मुझसे यही बात कही है' ॥ ७९-८० ॥

एतस्मिन्नन्तरे राजन् दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ।
आकर्णमुक्तैरिषुभिः कर्णस्य चतुरो हयान् ॥ ८१ ॥
अनयत् प्रेतलोकाय चतुर्भिः श्वेतवाहनः ।
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ८२ ॥

राजन् ! इसी समय कर्णका वह पराक्रम देखकर श्वेतवाहन अर्जुनने कानतक खींचकर छोड़े हुए चार बाणोंद्वारा कर्णके चारों घोड़ोंको प्रेतलोक पहुँचा दिया और एक भल्ल मारकर उसके सारथिको रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया ॥ ८१-८२ ॥



छादयामास स शरैस्तव पुत्रस्य पश्यतः ।
संछाद्यमानः समरे हताश्वो हतसारथिः ॥ ८३ ॥

मोहितः शरजालेन कर्तव्यं नाभ्यपद्यत ।

इतना ही नहीं, आपके पुत्रके देखते-देखते उन्होंने कर्णको बाणोंसे ढक दिया । घोड़े और सारथिके मारे जानेपर समराङ्गणमें बाणोंसे ढका हुआ कर्ण बाण-जालसे मोहित हो यह भी नहीं सोच सका कि अब क्या करना चाहिये ॥८३½॥

तं तथा विरथं दृष्ट्वा रथमारोप्य तं तदा ॥ ८४ ॥
अश्वत्थामा महाराज भूयोऽर्जुनमयोधयत् ।

महाराज ! कर्णको इस प्रकार रथहीन हुआ देख अश्वत्थामाने उस समय उसे रथपर बैठा लिया और वह पुनः अर्जुनके साथ युद्ध करने लगा ॥ ८४½ ॥

मद्रराजश्च कौन्तेयमविध्यत् त्रिंशता शरैः ॥ ८५ ॥
शारद्वतस्तु विंशत्या वासुदेवं समार्पयत् ।
धनंजयं द्वादशभिराजघान शिलीमुखैः ॥ ८६ ॥

मद्रराज शल्यने कुन्तीकुमार अर्जुनको तीस बाणोंसे घायल कर दिया । कृपाचार्यने भगवान् श्रीकृष्णको बीस बाण मारे और अर्जुनपर बारह बाणोंका प्रहार किया ॥८५-८६॥

चतुर्भिः सिन्धुराजश्च वृषसेनश्च सप्तभिः ।
पृथक् पृथङ्महाराज विव्यधुः कृष्णपाण्डवौ ॥ ८७ ॥

महाराज ! फिर सिन्धुराजने चार और वृषसेनने सात बाणोंद्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुनको पृथक्-पृथक् घायल कर दिया ॥ ८७ ॥

तथैव तान् प्रत्यविध्यत् कुन्तीपुत्रो धनंजयः ।
द्रोणपुत्रं चतुःषष्ट्या मद्रराजं शतेन च ॥ ८८ ॥
सैन्धवं दशभिर्बाणैर्वृषसेनं त्रिभिः शरैः ।
शारद्वतं च विंशत्या विद्ध्वा पार्थो ननाद ह ॥ ८९ ॥

इसी प्रकार कुन्तीपुत्र अर्जुनने भी उन्हें बाणोंसे बींधकर बदला चुकाया । अर्जुनने द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको चौसठ, मद्रराज शल्यको सौ, सिन्धुराज जयद्रथको दस, वृषसेनको तीन और कृपाचार्यको बीस बाणोंसे घायल करके सिंहनाद किया ॥ ८८-८९ ॥

ते प्रतिज्ञाप्रतीघातमिच्छन्तः सव्यसाचिनः ।
सहितास्तावकास्तूर्णमभिपेतुर्धनंजयम् ॥ ९० ॥

यह देख सव्यसाची अर्जुनकी प्रतिज्ञाको भंग करनेकी अभिलाषासे आपके वे सभी सैनिक एक साथ संगठित हो तुरंत उनपर टूट पड़े ॥ ९० ॥

अथार्जुनः सर्वतो वारुणास्त्रं
प्रादुश्चक्रे त्रासयन् धार्तराष्ट्रान् ।
तं प्रत्युदीयुः कुरवः पाण्डुपुत्रं
रथैर्महार्हैः शरवर्षाण्यवर्षन् ॥ ९१ ॥

तदनन्तर अर्जुनने धृतराष्ट्रके पुत्रोंको भयभीत करते हुए सब ओर वारुणास्त्र प्रकट किया । कौरव-सैनिक अपने बहुमूल्य रथोंद्वारा पाण्डुपुत्र अर्जुनकी ओर बढ़े और उनपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ९१ ॥

ततस्तु तस्मिंस्तुमुले समुत्थिते
सुदारुणे भारत मोहनीये ।
नोऽमुह्यत प्राप्य स राजपुत्रः
किरीटमाली व्यसृजच्छरौघान् ॥ ९२ ॥

भारत ! सबको मोहमें डालनेवाले उस अत्यन्त भयंकर तुमुल युद्धके उपस्थित होनेपर भी किरीटधारी राजकुमार अर्जुन तनिक भी मोहित नहीं हुए । वे बाणसमूहोंकी वर्षा करते ही रहे ॥ ९२ ॥

राज्यप्रेप्सुः सव्यसाची कुरूणां
स्मरन् क्लेशान् द्वादशवर्षवृत्तान् ।
गाण्डीवमुक्तैरिषुभिर्महात्मा
सर्वा दिशो व्यावृणोदप्रमेयः ॥ ९३ ॥

अप्रमेय शक्तिशाली महामनस्वी सव्यसाची अर्जुन अपना राज्य प्राप्त करना चाहते थे । उन्होंने कौरवोंके दिये हुए क्लेशों और बारह वर्षोंतक भोगे हुए वनवासके कष्टोंको स्मरण करते हुए गाण्डीव धनुषसे छूटनेवाले बाणोंद्वारा सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित कर दिया ॥ ९३ ॥

प्रदीप्तोल्कमभवच्चान्तरिक्षं
मृतेषु देहेष्वपतन् वयांसि ।
यत् पिङ्गलज्येन किरीटमाली
क्रुद्धो रिपूनाजगवेन हन्ति ॥ ९४ ॥

आकाशमें कितनी ही उल्काएँ प्रज्वलित हो उठीं और योद्धाओंके मृत शरीरोंपर मांसभक्षी पक्षी गिरने लगे; क्योंकि उस समय क्रोधमें भरे हुए किरीटधारी अर्जुन पीली प्रत्यञ्चावाले गाण्डीव धनुषके द्वारा शत्रुओंका संहार कर रहे थे ॥ ९४ ॥

ततः किरीटी महता महायशाः
शरासनेनास्य शराननीकजित् ।
हयप्रवेकोत्तमनागधूर्गतान्
कुरुप्रवीरानिषुभिर्व्यपातयत् ॥ ९५ ॥

तत्पश्चात् शत्रुसेनाको जीतनेवाले महायशस्वी किरीटधारी अर्जुनने विशाल धनुषके द्वारा बाणोंका प्रहार करके उत्तम घोड़ों और श्रेष्ठ हाथियोंकी पीठपर बैठे हुए प्रमुख कौरव-वीरोंको मार गिराया ॥ ९५ ॥

गदाश्च गुर्वीः परिघानयस्मया-
नसींश्च शक्तीश्च रणे नराधिपाः ।
महान्ति शस्त्राणि च भीमदर्शनाः
प्रगृह्य पार्थं सहसाभिदुद्रुवुः ॥ ९६ ॥

उस रणक्षेत्रमें भयंकर दिखायी देनेवाले कितने ही नरेश

भारी गदाओं, लोहेके परिघों, तलवारों, शक्तियों और बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्रोंको हाथमें लेकर कुन्तीनन्दन अर्जुनपर सहसा टूट पड़े ॥ ९६ ॥

ततो युगान्ताभ्रसमस्वनं मह-
न्महेन्द्रचापप्रतिमं च गाण्डिवम् ।
चकर्ष दोर्भ्यां विहसन् भृशं ययौ
दहंस्त्वदीयान् यमराष्ट्रवर्धनः ॥ ९७ ॥

तब यमराजके राज्यकी वृद्धि करनेवाले अर्जुनने प्रलयकालके मेघोंके समान गम्भीर ध्वनि करनेवाले तथा इन्द्रधनुषके समान प्रतीत होनेवाले विशाल गाण्डीव धनुषको हँसते हुए दोनों हाथोंसे खींचा और आपके सैनिकोंको दग्ध करते हुए वे बड़े वेगसे आगे बढ़े ॥ ९७ ॥

स तानुदीर्णान् सरथान् सवारणान्
पदातिसङ्घांश्च महाधनुर्धरः ।
विपन्नसर्वायुधजीवितान् रणे
चकार वीरो यमराष्ट्रवर्धनान् ॥ ९८ ॥

महाधनुर्धर वीर अर्जुनने रथ, हाथी और पैदलसमूहोंसहित उन कौरव सैनिकोंको प्रचण्ड गतिसे आगे बढ़ते देख उनके सम्पूर्ण आयुधों और जीवनको भी नष्ट करके उन्हें यमराजके राज्यकी वृद्धि करनेवाला बना दिया ॥ ९८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि संकुलयुद्धे पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥
इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें संकुलयुद्धविषयक एक सौ पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४५ ॥

षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अर्जुनका अद्भुत पराक्रम और सिन्धुराज जयद्रथका वध

संजय उवाच

श्रुत्वा निनादं धनुषश्च तस्य
विस्पष्टमुत्क्रुष्टमिवान्तकस्य ।
शक्राशनिस्फोटसमं सुघोरं
विकृष्यमाणस्य धनंजयेन ॥ १ ॥
त्रासोद्विग्नं तथोद्भ्रान्तं त्वदीयं तद् बलं नृप ।
युगान्तवातसंक्षुब्धं चलद्वीचितरङ्गितम् ॥ २ ॥
प्रलीनमीनमकरं सागराम्भ इवाभवत् ।

संजय कहते हैं—राजन् ! उस समय अर्जुनके द्वारा खींचे जानेवाले गाण्डीव धनुषकी अत्यन्त भयंकर टंकार यमराजकी सुस्पष्ट गर्जना तथा इन्द्रके वज्रकी गड़गड़ाहटके समान जान पड़ती थी। उसे सुनकर आपकी सेना भयसे उद्विग्न हो बड़ी घबराहटमें पड़ गयी। उस समय उसकी दशा प्रलयकालकी आँधीसे क्षोभको प्राप्त एवं उत्ताल तरंगोंसे परिपूर्ण हुए उस महासागरके जलकी-सी हो गयी, जिसमें मछली और मगर आदि जलजन्तु छिप जाते हैं ॥ १-२½ ॥

स रणे व्यचरत् पार्थः प्रेक्षमाणो धनंजयः ॥ ३ ॥
युगपद् दिक्षु सर्वासु सर्वाण्यस्त्राणि दर्शयन् ।

उस रणक्षेत्रमें कुन्तीकुमार अर्जुन एक साथ सम्पूर्ण दिशाओंमें देखते और सब प्रकारके अस्त्रोंका कौशल दिखाते हुए विचर रहे थे ॥ ३½ ॥

आददानं महाराज संदधानं च पाण्डवम् ॥ ४ ॥
उत्कर्षन्तं सृजन्तं च न स्म पश्याम लाघवात् ।

महाराज ! उस समय अर्जुनकी अद्भुत फुर्तीके कारण हमलोग यह नहीं देख पाते थे कि वे कब बाण निकालते हैं, कब उसे धनुषपर रखते हैं, कब धनुषको खींचते हैं और कब बाण छोड़ते हैं ॥ ४½ ॥

ततः क्रुद्धो महाबाहुरैन्द्रमस्त्रं दुरासदम् ॥ ५ ॥
प्रादुश्चक्रे महाराज त्रासयन् सर्वभारतान् ।

नरेश्वर ! तदनन्तर महाबाहु अर्जुनने कुपित हो कौरव-सेनाके समस्त सैनिकोंको भयभीत करते हुए दुर्धर्ष इन्द्रास्त्रको प्रकट किया ॥ ५½ ॥

ततः शराः प्रादुरासन् दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रिताः ॥ ६ ॥
प्रदीप्ताश्च शिखिमुखाः शतशोऽथ सहस्रशः ।

इससे दिव्यास्त्रसम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा अभिमन्त्रित सैकड़ों तथा सहस्रों प्रज्वलित अग्निमुख बाण प्रकट होने लगे ॥ ६½ ॥

आकर्णपूर्णनिर्मुक्तैरग्न्यर्कांशुनिभैः शरैः ॥ ७ ॥
नभोऽभवत् तद् दुष्प्रेक्ष्यमुल्काभिरिव संवृतम् ।

धनुषको कानतक खींचकर छोड़े गये अग्निशिखा तथा सूर्यकिरणोंके समान तेजस्वी बाणोंसे भरा हुआ आकाश उल्काओंसे व्याप्त-सा जान पड़ता था। उसकी ओर देखना कठिन हो रहा था ॥ ७½ ॥

ततः शस्त्रान्धकारं तत् कौरवैः समुदीरितम् ॥ ८ ॥
अशक्यं मनसाप्यन्यैः पाण्डवः सम्भ्रमन्निव ।
नाशयामास विक्रम्य शरैर्दिव्यास्त्रमन्त्रितैः ॥ ९ ॥
नैशं तमोंऽशुभिः क्षिप्रं दिनादाविव भास्करः ।

तदनन्तर कौरवोंने अस्त्र-शस्त्रोंकी इतनी वर्षा की कि वहाँ अँधेरा छा गया। दूसरे कोई योद्धा उस अन्धकारको नष्ट करनेका विचार भी मनमें नहीं ला सकते थे; परंतु पाण्डुपुत्र अर्जुनने बड़ी शीघ्रता-सी करते हुए दिव्यास्त्र-सम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा अभिमन्त्रित बाणोंसे पराक्रमपूर्वक उसे नष्ट कर दिया। ठीक उसी तरह, जैसे प्रातःकालमें सूर्य अपनी

किरणोंद्वारा रात्रिके अन्धकारको शीघ्र नष्ट कर देते हैं ॥ ८-९½ ॥

ततस्तु तावकं सैन्यं दीप्तैः शरगभस्तिभिः ॥ १० ॥
आक्षिपत् पल्वलाम्बूनि निदाघार्क इव प्रभुः ।

तत्पश्चात् जैसे ग्रीष्मऋतुके शक्तिशाली सूर्य छोटे-छोटे गड्ढोंके पानीको शीघ्र ही सुखा देते हैं, उसी प्रकार सामर्थ्यशाली अर्जुनरूपी सूर्यने अपनी बाणमयी प्रज्वलित किरणोंद्वारा आपकी सेनारूपी जलको शीघ्र ही सोख लिया ॥ १०½ ॥

ततो दिव्यास्त्रविदुषा प्रहिताः सायकांशवः ॥ ११ ॥
समाप्लवन् द्विषत्सैन्यं लोकं भानोरिवांशवः ।

इसके बाद दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता अर्जुनरूपी सूर्यकी छिटकायी हुई बाणरूपी किरणोंने शत्रुओंकी सेनाको उसी प्रकार आप्लावित कर दिया, जैसे सूर्यकी रश्मियाँ सारे जगत्‌को व्याप्त कर लेती हैं ॥ ११½ ॥

अथापरे समुत्सृष्टा विशिखास्तिग्मतेजसः ॥ १२ ॥
हृदयान्याशु वीराणां विविशुः प्रियबन्धुवत् ।

तदनन्तर अर्जुनके छोड़े हुए दूसरे प्रचण्ड तेजस्वी बाण वीर योद्धाओंके हृदयमें प्रिय बन्धुकी भाँति शीघ्र ही प्रवेश करने लगे ॥ १२½ ॥

य एनमीयुः समरे त्वद्योधाः शूरमानिनः ॥ १३ ॥
शलभा इव ते दीप्तमग्निं प्राप्य ययुः क्षयम् ।

समराङ्गणमें अपनेको शूरवीर माननेवाले आपके जो-जो योद्धा अर्जुनके सामने गये, वे जलती आगमें पड़े हुए पतंगोंके समान नष्ट हो गये ॥ १३½ ॥

एवं स मृद्नञ्शत्रूणां जीवितानि यशांसि च ॥ १४ ॥
पार्थश्चचार संग्रामे मृत्युर्विग्रहवानिव ।

इस प्रकार कुन्तीकुमार अर्जुन शत्रुओंके जीवन और यशको धूलमें मिलाते हुए मूर्तिमान् मृत्युके समान संग्रामभूमिमें विचरण करने लगे ॥ १४½ ॥

सकिरीटानि वक्त्राणि साङ्गदान् विपुलान् भुजान् ॥
सकुण्डलयुगान् कर्णान् केषांचिदहरच्छरैः ।

वे अपने बाणोंसे किन्हीं शत्रुओंके मुकुटमण्डित मस्तकों, किन्हींके बाजूबंदविभूषित विशाल भुजाओं तथा किन्हींके दो कुण्डलोंसे अलंकृत दोनों कानोंको काट गिराते थे ॥ १५½ ॥

सतोमरान् गजस्थानां सप्रासान् हयसादिनाम् ॥ १६ ॥
सचर्मणः पदातीनां रथिनां च सधन्वनः ।
सप्रतोदान् नियन्तॄणां बाहूंश्चिच्छेद पाण्डवः ॥ १७ ॥

पाण्डुकुमार अर्जुनने हाथीसवारोंकी तोमरयुक्त, घुड़सवारोंकी प्रासयुक्त, पैदल सिपाहियोंकी ढालयुक्त, रथियोंकी धनुषयुक्त और सारथियोंकी चाबुकसहित भुजाओंको काट डाला ॥ १६-१७ ॥

प्रदीप्तोग्रशरार्चिष्मान् बभौ तत्र धनंजयः ।
सविस्फुलिङ्गाग्रशिखो ज्वलन्निव हुताशनः ॥ १८ ॥

उद्दीप्त एवं उग्र बाणरूपी शिखाओंसे युक्त तेजस्वी अर्जुन वहाँ चिनगारियों और लपटोंसे युक्त प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ १८ ॥

तं देवराजप्रतिमं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
युगपद् दिक्षु सर्वासु रथस्थं पुरुषर्षभम् ॥ १९ ॥
निक्षिपन्तं महास्त्राणि प्रेक्षणीयं धनंजयम् ।
नृत्यन्तं रथमार्गेषु धनुर्ज्यातलनादिनम् ॥ २० ॥
निरीक्षितुं न शेकुस्ते यत्नवन्तोऽपि पार्थिवाः ।
मध्यंदिनगतं सूर्यं प्रतपन्तमिवाम्बरे ॥ २१ ॥

देवराज इन्द्रके समान रथपर बैठे हुए सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ नरश्रेष्ठ अर्जुन एक ही साथ सम्पूर्ण दिशाओंमें महान् अस्त्रोंका प्रहार करते हुए सबके लिये दर्शनीय हो रहे थे। वे अपने धनुषकी टंकार करते हुए रथके मार्गोंपर नृत्य-सा कर रहे थे। जैसे आकाशमें तपते हुए दोपहरके सूर्यकी ओर देखना कठिन होता है, उसी प्रकार उनकी ओर राजालोग यत्न करनेपर भी देख नहीं पाते थे ॥ १९-२१ ॥

दीप्तोग्रसम्भृतशरः किरीटी विरराज ह ।
वर्षास्विवोदीर्णजलः सेन्द्रधन्वाम्बुदो महान् ॥ २२ ॥

प्रज्वलित एवं भयंकर बाण लिये किरीटधारी अर्जुन वर्षाऋतुमें अधिक जलसे भरे हुए इन्द्रधनुषसहित महामेघके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ २२ ॥

महास्त्रसम्प्लवे तस्मिञ्जिष्णुना सम्प्रवर्तिते ।
सुदुस्तरे महाघोरे ममज्जुर्योधपुङ्गवाः ॥ २३ ॥

उस युद्धस्थलमें अर्जुनने बड़े-बड़े अस्त्रोंकी ऐसी बाढ़ ला दी थी, जो परम दुस्तर और अत्यन्त भयंकर थी। उसमें कौरवदलके बहुसंख्यक श्रेष्ठ योद्धा डूब गये ॥ २३ ॥

उत्कृत्तवदनैर्देहैः शरीरैः कृत्तबाहुभिः ।
भुजैश्च पाणिनिर्मुक्तैः पाणिभिर्व्यङ्गुलीकृतैः ॥ २४ ॥
कृत्ताग्रहस्तैः करिभिः कृत्तदन्तैर्मदोत्कटैः ।
हयैश्च विधुरग्रीवै रथैश्च शकलीकृतैः ॥ २५ ॥
निकृत्तान्त्रैः कृत्तपादैस्तथान्यैः कृत्तसंधिभिः ।
निश्चेष्टैर्विस्फुरद्भिश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २६ ॥
मृत्योराघातललितं तत्पार्थायोधनं महत् ।
अपश्याम महीपाल भीरूणां भयवर्धनम् ॥ २७ ॥
आक्रीडमिव रुद्रस्य पुराभ्यर्दयतः पशून् ।

भूपाल! अर्जुनका वह महान् युद्ध मृत्युका क्रीडास्थल बना हुआ था, जो शस्त्रोंके आघातसे ही सुन्दर लगता था। वहाँ बहुत-सी ऐसी लाशें पड़ी थीं, जिनके मस्तक कट गये थे और भुजाएँ काट दी गयी थीं। बहुत-सी ऐसी भुजाएँ दृष्टिगोचर होती थीं, जिनके हाथ नष्ट हो गये थे

और बहुत-से हाथ भी अंगुलियोंसे शून्य थे । कितने ही मदोन्मत्त हाथी धराशायी हो गये थे, जिनकी सूँड़के अग्रभाग और दाँत काट डाले गये थे । बहुतेरे घोड़ोंकी गर्दनें उड़ा दी गयी थीं और रथोंके टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये थे। किन्हींकी आँतें कट गयी थीं, किन्हींके पाँव काट डाले गये थे तथा कुछ दूसरे लोगोंकी संधियाँ (अंगोंके जोड़) खण्डित हो गयी थीं । कुछ लोग निश्चेष्ट हो गये थे और कुछ पड़े-पड़े छटपटा रहे थे । इनकी संख्या सैकड़ों तथा सहस्रों थी । हमने देखा कि वह युद्धस्थल कायरोंके लिये भयवर्धक हो रहा है । मानो पूर्व (प्रलय) कालमें पशुओं (जीवों) को पीड़ा देनेवाले रुद्रदेवका क्रीडास्थल हो ॥ २४-२७½ ॥

गजानां क्षुरनिर्मुक्तैः करैः सभुजगेव भूः ॥ २८ ॥
क्वचिद् बभौ स्रग्विणीव वक्त्रपद्मैः समाचिता ।

क्षुरसे कटे हुए हाथियोंके शुण्डदण्डोंसे यह पृथ्वी सर्पयुक्त-सी जान पड़ती थी । कहीं-कहीं योद्धाओंके मुखकमलोंसे व्याप्त होनेके कारण रणभूमि कमलपुष्पोंकी मालाओंसे अलंकृत-सी प्रतीत होती थी ॥ २८½ ॥

विचित्रोष्णीषमुकुटैः केयूराङ्गदकुण्डलैः ॥ २९ ॥
स्वर्णचित्रतनुत्रैश्च भाण्डैश्च गजवाजिनाम् ।
किरीटशतसंकीर्णा तत्र तत्र समाचिता ॥ ३० ॥
विरराज भृशं चित्रा मही नववधूरिव ।

विचित्र पगड़ी, मुकुट, केयूर, अंगद, कुण्डल, स्वर्णजटित कवच, हाथी-घोड़ोंके आभूषण तथा सैकड़ों किरीटोंसे यत्र-तत्र आच्छादित हुई वह युद्धभूमि नववधूके समान अत्यन्त अद्भुत शोभासे सुशोभित हो रही थी ॥ २९-३०½ ॥

मज्जामेदःकर्दमिनीं शोणितौघतरङ्गिणीम् ॥ ३१ ॥
मर्मास्थिभिरगाधां च केशशैवलशाद्वलाम् ।
शिरोबाहूपलतटां रुग्णक्रोडास्थिसंकटाम् ॥ ३२ ॥
चित्रध्वजपताकाढ्यां छत्रचापोर्मिमालिनीम् ।
विगतासुमहाकायां गजदेहाभिसंकुलाम् ॥ ३३ ॥
रथोडुपशताकीर्णां हयसंघाततरोधसम् ।
रथचक्रयुगेषाक्षकूबरैरतिदुर्गमाम् ॥ ३४ ॥
प्रासासिशक्तिपरशुविशिखाहिदुरासदाम् ।
बलकङ्कमहानक्रां गोमायुमकरोत्कटाम् ॥ ३५ ॥
गृध्रोदग्रमहाग्राहां शिवाविरुतभैरवाम् ।
नृत्यत्प्रेतपिशाचाद्यैर्भूताकीर्णां सहस्रशः ॥ ३६ ॥
गतासुयोधनिश्चेष्टशरीरशतवाहिनीम् ।
महाप्रतिभयां रौद्रां घोरां वैतरणीमिव ॥ ३७ ॥
नदीं प्रवर्तयामास भीरूणां भयवर्धिनीम् ।

अर्जुनने कायरोंका भय बढ़ानेवाली वैतरणीके समान एक अत्यन्त भयंकर रौद्र और घोर रक्तकी नदी बहा दी, जो प्राणशून्य योद्धाओंके सैकड़ों निश्चेष्ट शरीरोंको बहाये लिये जाती थी। मज्जा और मेद ही उसकी कीचड़ थे। उसमें रक्तका ही प्रवाह था और रक्तकी ही तरंगें उठती थीं । वीरोंके मर्मस्थान एवं हड्डियोंसे व्याप्त हुई वह नदी अगाध जान पड़ती थी । केश ही उस नदीके सेवार और घास थे । योद्धाओंके कटे हुए मस्तक और भुजाएँ ही किनारेके छोटे-छोटे प्रस्तर-खण्डोंका काम देती थीं । टूटी हुई छातीकी हड्डियोंसे वह दुर्गम हो रही थी । विचित्र ध्वज और पताकाएँ उसके भीतर पड़ी हुई थीं। छत्र और धनुषरूपी तरंगमालाओंसे वह अलंकृत थी । प्राणशून्य प्राणी ही उसके विशाल शरीरके अवयव थे, हाथियोंकी लाशोंसे वह भरी हुई थी, रथरूपी सैकड़ों नौकाएँ उसपर तैर रही थीं, घोड़ोंके समूह उसके तट थे, रथके पहिये, जूए, ईषादण्ड, धुरी और कूबर आदिके कारण वह नदी अत्यन्त दुर्गम जान पड़ती थी। प्रास, खड्ग, शक्ति, फरसे और बाणरूपी सर्पोंसे युक्त होनेके कारण उसके भीतर प्रवेश करना कठिन था । कौए और कंक आदि जन्तु उसके भीतर निवास करनेवाले बड़े-बड़े नक्र (घड़ियाल) थे । गीदड़रूपी मगरोंके निवाससे उसकी उग्रता और बढ़ गयी थी । गीध ही उसमें प्रचण्ड एवं बड़े-बड़े ग्राह थे । गीदड़ियोंके चीत्कारसे वह नदी बड़ी भयानक प्रतीत होती थी । नाचते हुए प्रेत-पिशाचादि सहस्रों भूतोंसे वह व्याप्त थी ॥ ३१—३७½ ॥

तं दृष्ट्वा तस्य विक्रान्तमन्तकस्येव रूपिणः ॥ ३८ ॥
अभूतपूर्वं कुरुषु भयमागाद् रणाजिरे ।

समराङ्गणमें मूर्तिमान् यमराजके समान अर्जुनके उस अभूतपूर्व पराक्रमको देखकर कौरवोंपर भय छा गया॥३८½॥

तत आदाय वीराणामस्त्रैरस्त्राणि पाण्डवः ॥ ३९ ॥
आत्मानं रौद्रमाचष्ट रौद्रकर्मण्यधिष्ठितः ।

तदनन्तर पाण्डुकुमार अर्जुन अपने अस्त्रोंद्वारा विपक्षी वीरोंके अस्त्र लेकर रौद्रकर्ममें तत्पर हो अपनेको रौद्र सूचित करने लगे ॥ ३९½ ॥

ततो रथवरान् राजन्नत्यतिक्रामदर्जुनः ॥ ४० ॥
मध्यंदिनगतं सूर्यं प्रतपन्तमिवाम्बरे ।
न शेकुः सर्वभूतानि पाण्डवं प्रतिवीक्षितुम् ॥ ४१ ॥

राजन् ! तत्पश्चात् अर्जुन बड़े-बड़े रथियोंको लाँघकर आगे बढ़ गये । उस समय आकाशमें तपते हुए दोपहरके सूर्यके समान पाण्डुपुत्र अर्जुनकी ओर सम्पूर्ण प्राणी देख नहीं पाते थे ॥ ४०-४१ ॥

प्रसृतांस्तस्य गाण्डीवाच्छरव्रातान् महात्मनः ।
संग्रामे सम्प्रपश्यामो हंसपङ्क्तिमिवाम्बरे ॥ ४२ ॥

उन महात्माके गाण्डीव धनुषसे छूटकर संग्राममें फैले

हुए बाण-समूहोंको हम आकाशमें हंसोंकी पंक्तिके समान देखते थे ॥ ४२ ॥

विनिवार्य स वीराणामस्त्रैरस्त्राणि सर्वतः।
दर्शयन् रौद्रमात्मानमुग्रे कर्मणि धिष्ठितः ॥ ४३ ॥

वीरोंके अस्त्र-शस्त्रोंको अस्त्रोंद्वारा सब ओरसे रोककर अपने रौद्रभावका दर्शन कराते हुए वे उग्र कर्ममें संलग्न हो गये ॥ ४३ ॥

स तान् रथवरान् राजन्नत्याक्रामत् तदार्जुनः।
मोहयन्निव नाराचैर्जयद्रथवधेप्सया।
विसृजन् दिक्षु सर्वासु शरानसितसारथिः ॥ ४४ ॥
सरथो व्यचरत् तूर्णं प्रेक्षणीयो धनंजयः।

राजन्! उस समय जयद्रथ-वधकी इच्छासे अर्जुन नाराचोंद्वारा उन महारथियोंको मोहित करते हुए-से लाँघ गये। श्रीकृष्ण जिनके सारथि हैं, वे धनंजय सम्पूर्ण दिशाओंमें बाणोंकी वृष्टि करते हुए रथसहित तुरंत वहाँ विचरने लगे। उस समय उनकी शोभा देखने ही योग्य थी ॥४४½॥

भ्रमन्त इव शूरस्य शरव्राता महात्मनः ॥ ४५ ॥
अदृश्यन्तान्तरिक्षस्थाः शतशोऽथ सहस्रशः।

शूरवीर महात्मा अर्जुनके चलाये हुए सैकड़ों और हजारों बाणसमूह आकाशमें घूमते हुए-से दिखायी देते थे ॥ ४५½ ॥

आददानं महेष्वासं संदधानं च सायकम् ॥ ४६ ॥
विसृजन्तं च कौन्तेयं नानुपश्याम वै तदा।

उस समय हम कुन्तीकुमार महाधनुर्धर अर्जुनको बाण लेते, चढ़ाते और छोड़ते समय देख नहीं पाते थे ॥ ४६½॥

तथा सर्वा दिशो राजन् सर्वांश्च रथिनो रणे ॥ ४७ ॥
कदम्बीकृत्य कौन्तेयो जयद्रथमुपाद्रवत्।

राजन्! इस प्रकार अर्जुनने रणक्षेत्रमें सम्पूर्ण दिशाओं और समस्त रथियोंको कदम्बके फूलके समान रोमाञ्चित करके जयद्रथपर धावा किया ॥ ४७½ ॥

विव्याध च चतुःषष्ट्या शराणां नतपर्वणाम् ॥ ४८ ॥
सैन्धवाभिमुखं यान्तं योधाः सम्प्रेक्ष्य पाण्डवम्।
न्यवर्तन्त रणाद् वीरा निराशास्तस्य जीविते ॥ ४९ ॥

साथ ही उसे झुकी हुई गाँठवाले चौंसठ बाणोंसे क्षत-विक्षत कर दिया। पाण्डुपुत्र अर्जुनको सिंधुराजके सम्मुख जाते देख हमारे पक्षके वीर योद्धा उसके जीवनसे निराश होकर युद्धसे निवृत्त हो गये ॥ ४८-४९ ॥

यो योऽभ्यधावदाक्रन्दे तावकः पाण्डवं रणे।
तस्य तस्यान्तगा बाणाः शरीरे न्यपतन् प्रभो ॥ ५० ॥

प्रभो! उस घोर संग्राममें आपके पक्षका जो-जो योद्धा पाण्डुपुत्र अर्जुनकी ओर बढ़ा, उस-उसके शरीरपर प्राणान्तकारी बाण पड़ने लगे ॥ ५० ॥

कबन्धसंकुलं चक्रे तव सैन्यं महारथः।
अर्जुनो जयतां श्रेष्ठः शरैरग्न्यंशुसंनिभैः ॥ ५१ ॥

विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ महारथी अर्जुनने अग्निकी ज्वालाके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा आपकी सेनाको कबन्धोंसे भर दिया ॥

एवं तत् तव राजेन्द्र चतुरङ्गबलं तदा।
व्याकुलीकृत्य कौन्तेयो जयद्रथमुपाद्रवत् ॥ ५२ ॥

राजेन्द्र! उस समय इस प्रकार आपकी उस चतुरङ्गिणी सेनाको व्याकुल करके कुन्तीकुमार अर्जुन जयद्रथकी ओर बढ़े ॥ ५२ ॥

द्रौणिं पञ्चाशताविध्यद् वृषसेनं त्रिभिः शरैः।
कृपायमाणः कौन्तेयः कृपं नवभिरार्दयत् ॥ ५३ ॥

उन्होंने अश्वत्थामाको पचास और वृषसेनको तीन बाणोंसे बींध डाला। कृपाचार्यको कृपापूर्वक केवल नौ बाण मारे ॥५३॥

शल्यं षोडशभिर्बाणैः कर्णं द्वात्रिंशता शरैः।
सैन्धवं तु चतुःषष्ट्या विद्ध्वा सिंह इवानदत् ॥ ५४ ॥

शल्यको सोलह, कर्णको बत्तीस और सिंधुराजको चौंसठ बाणोंसे घायल करके अर्जुनने सिंहके समान गर्जना की॥५४॥

सैन्धवस्तु तथा विद्धः शरैर्गाण्डीवधन्वना।
न चक्षमे सुसंक्रुद्धस्तोत्रार्दित इव द्विपः ॥ ५५ ॥

गाण्डीवधारी अर्जुनके चलाये हुए बाणोंसे उस प्रकार घायल होनेपर सिंधुराज सहन न कर सका। वह अंकुशकी मार खाये हुए हाथीके समान अत्यन्त कुपित हो उठा ॥५५॥

स वराहध्वजस्तूर्णं गार्ध्रपत्रानजिह्मगान्।
क्रुद्धाशीविषसंकाशान् कर्मारपरिमार्जितान् ॥ ५६ ॥
आकर्णपूर्णाञ्चिक्षेप फाल्गुनस्य रथं प्रति।

उसकी ध्वजापर वाराहका चिह्न था। उसने गीधकी पाँखोंसे युक्त, सीधे जानेवाले, सोनारके माँजे हुए तथा कुपित विषधरके समान बहुत-से बाण धनुषको कानतक खींचकर शीघ्रतापूर्वक अर्जुनके रथकी ओर चलाये॥ ५६½ ॥

त्रिभिस्तु विद्ध्वा गोविन्दं नाराचैः षड्भिरर्जुनम् ॥५७॥
अष्टभिर्वाजिनोऽविध्यद् ध्वजं चैकेन पत्रिणा।

तीन बाणोंसे श्रीकृष्णको, छः नाराचोंसे अर्जुनको तथा आठ बाणोंसे घोड़ोंको घायल करके जयद्रथने एक बाणसे अर्जुनकी ध्वजाको भी बींध डाला ॥ ५७½ ॥

स विक्षिप्यार्जुनस्तूर्णं सैन्धवप्रहिताञ्शरान् ॥ ५८ ॥
युगपत् तस्य चिच्छेद शराभ्यां सैन्धवस्य ह।
सारथेश्च शिरः कायाद् ध्वजं च समलंकृतम् ॥ ५९ ॥

परंतु अर्जुनने तुरंत ही जयद्रथके चलाये हुए बाणोंको काट गिराया और एक ही साथ दो बाणोंसे सिंधुराजके सारथिका सिर तथा अलङ्कारोंसे सुशोभित उसका ध्वज भी काट डाला ॥ ५८-५९ ॥

स छिन्नयष्टिः सुमहान् धनंजयशराहतः।

वराहः सिन्धुराजस्य पपाताग्निशिखोपमः ॥ ६० ॥

धनंजयके बाणोंसे आहत हो अग्निशिखाके समान तेजस्वी वह सिंधुराजका महान् वाराह-ध्वज दण्ड कट जानेसे पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ६० ॥

एतस्मिन्नेव काले तु द्रुतं गच्छति भास्करे ।
अब्रवीत् पाण्डवं राजंस्त्वरमाणो जनार्दनः ॥ ६१ ॥

राजन् ! इसी समय जब कि सूर्यदेव तीव्रगतिसे अस्ताचलकी ओर जा रहे थे, उतावले हुए भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डुपुत्र अर्जुनसे कहा—॥ ६१ ॥

एष मध्ये कृतः षड्भिः पार्थ वीरैर्महारथैः ।
जीवितेप्सुर्महाबाहो भीतस्तिष्ठति सैन्धवः ॥ ६२ ॥

'महाबाहु पार्थ ! यह सिंधुराज जयद्रथ प्राण बचानेकी इच्छासे भयभीत होकर खड़ा है और उसे छः वीर महारथियोंने अपने बीचमें कर रक्खा है ॥ ६२ ॥

एतानविर्जित्य रणे षड् रथान् पुरुषर्षभ ।
न शक्यः सैन्धवो हन्तुं यतो निर्व्याजमर्जुन ॥ ६३ ॥

'नरश्रेष्ठ अर्जुन ! रणभूमिमें इन छः महारथियोंको परास्त किये बिना सिंधुराजको बिना मायाके जीता नहीं जा सकता है ॥ ६३ ॥

योगमत्र विधास्यामि सूर्यस्यावरणं प्रति ।
अस्तंगत इति व्यक्तं द्रक्ष्यत्येकः स सिन्धुराट् ॥ ६४॥

'अतः मैं यहाँ सूर्यदेवको ढकनेके लिये कोई युक्ति करूँगा, जिससे अकेला सिंधुराज ही सूर्यको स्पष्टरूपसे अस्त हुआ देखेगा ॥ ६४ ॥

हर्षेण जीविताकाङ्क्षी विनाशार्थं तव प्रभो ।
न गोप्स्यति दुराचारः स आत्मानं कथंचन ॥ ६५ ॥

'प्रभो ! वह दुराचारी हर्षपूर्वक अपने जीवनकी अभिलाषा रखते हुए तुम्हारे विनाशके लिये उतावला होकर किसी प्रकार भी अपने आपको गुप्त नहीं रख सकेगा ॥६५॥

तत्र छिद्रे प्रहर्तव्यं त्वयास्य कुरुसत्तम ।
व्यपेक्षा नैव कर्तव्या गतोऽस्तमिति भास्करः ॥ ६६ ॥

'कुरुश्रेष्ठ ! वैसा अवसर आनेपर तुम्हें अवश्य उसके ऊपर प्रहार करना चाहिये। इस बातपर ध्यान नहीं देना चाहिये कि सूर्यदेव अस्त हो गये' ॥ ६६ ॥

एवमस्त्विति बीभत्सुः केशवं प्रत्यभाषत ।
ततोऽसृजत् तमः कृष्णः सूर्यस्यावरणं प्रति ॥ ६७ ॥
योगी योगेन संयुक्तो योगिनामीश्वरो हरिः ।

यह सुनकर अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'प्रभो! ऐसा ही हो।' तब योगी, योगयुक्त और योगीश्वर भगवान् श्रीकृष्णने सूर्यको छिपानेके लिये अन्धकारकी सृष्टि की ।६७½।

सृष्टे तमसि कृष्णेन गतोऽस्तमिति भास्करः ॥ ६८ ॥
त्वदीया जहृषुर्योधाः पार्थनाशान्नराधिप ।

नरेश्वर ! श्रीकृष्णद्वारा अन्धकारकी सृष्टि होनेपर सूर्यदेव अस्त हो गये, ऐसा मानते हुए आपके योद्धा अर्जुनका विनाश निकट देख हर्षमग्न हो गये ॥ ६८½ ॥

ते प्रहृष्टा रणे राजन् नापश्यन् सैनिका रविम् ॥६९॥
उन्नाम्य वक्त्राणि तदा स च राजा जयद्रथः ।

राजन् ! उस रणक्षेत्रमें हर्षमग्न हुए आपके सैनिकोंने सूर्यकी ओर देखातक नहीं। केवल राजा जयद्रथ उस समय बारंबार मुँह ऊँचा करके सूर्यकी ओर देख रहा था ६९½

वीक्षमाणे ततस्तस्मिन् सिन्धुराजे दिवाकरम् ॥ ७० ॥
पुनरेवाब्रवीत् कृष्णो धनंजयमिदं वचः ।

जब इस प्रकार सिंधुराज दिवाकरकी ओर देखने लगा, तब भगवान् श्रीकृष्ण पुनः अर्जुनसे इस प्रकार बोले—।७०½।

पश्य सिन्धुपतिं वीरं प्रेक्षमाणं दिवाकरम् ॥ ७१ ॥
भयं हि विप्रमुच्यैतत् त्वत्तो भरतसत्तम ।

'भरतश्रेष्ठ ! देखो, यह वीर सिंधुराज अब तुम्हारा भय छोड़कर सूर्यदेवकी ओर दृष्टिपात कर रहा है ॥ ७१½ ॥

अयं कालो महाबाहो वधायास्य दुरात्मनः ॥ ७२ ॥
छिन्धि मूर्धानमस्याशु कुरु साफल्यमात्मनः ।

'महाबाहो ! इस दुरात्माके वधका यही अवसर है। तुम शीघ्र इसका मस्तक काट डालो और अपनी प्रतिज्ञा सफल करो' ॥ ७२½ ॥

इत्येवं केशवेनोक्तः पाण्डुपुत्रः प्रतापवान् ॥ ७३ ॥
न्यवधीत् तावकं सैन्यं शरैरर्काग्निसंनिभैः ।

श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर प्रतापी पाण्डुपुत्र अर्जुनने सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा आपकी सेनाका वध आरम्भ किया ॥ ७३½ ॥

कृपं विव्याध विंशत्या कर्णं पञ्चाशता शरैः ॥ ७४ ॥
शल्यं दुर्योधनं चैव षड्भिः षड्भिरताडयत् ।
वृषसेनं तथाष्टाभिः षष्ट्या सैन्धवमेव च ॥ ७५ ॥

उन्होंने कृपाचार्यको बीस, कर्णको पचास तथा शल्य और दुर्योधनको छः-छः बाण मारे। साथ ही वृषसेनको आठ और सिंधुराज जयद्रथको साठ बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ७४-७५ ॥

तथैव च महाबाहुस्त्वदीयान् पाण्डुनन्दनः ।
गाढं विद्ध्वा शरै राजन् जयद्रथमुपाद्रवत् ॥ ७६ ॥

राजन् ! इसी प्रकार महाबाहु पाण्डुनन्दन अर्जुनने आपके अन्य सैनिकोंको भी बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचाकर जयद्रथपर धावा किया ॥ ७६ ॥

तं समीपस्थितं दृष्ट्वा लेलिहानमिवानलम् ।
जयद्रथस्य गोप्तारः संशयं परमं गताः ॥ ७७ ॥

अपनी लपटोंसे सबको चाट जानेवाली आगके समान अर्जुनको निकट खड़ा देख जयद्रथके रक्षक भारी संशयमें पड़ गये ॥ ७७ ॥

ततः सर्वे महाराज तव योधा जयैषिणः ।
सिषिचुः शरधाराभिः पाकशासनिमाहवे ॥ ७८ ॥

महाराज ! उस समय विजयकी अभिलाषा रखनेवाले आपके समस्त योद्धा युद्धस्थलमें इन्द्रकुमार अर्जुनका बाणोंकी धाराओंसे अभिषेक करने लगे ॥ ७८ ॥

संछाद्यमानः कौन्तेयः शरजालैरनेकशः ।
अक्रुध्यत् स महाबाहुरजितः कुरुनन्दनः ॥ ७९ ॥

इस प्रकार बारंबार बाणसमूहोंसे आच्छादित किये जानेपर कुरुकुलको आनन्दित करनेवाले अपराजित वीर कुन्तीकुमार महाबाहु अर्जुन अत्यन्त कुपित हो उठे ॥ ७९ ॥

ततः शरमयं जालं तुमुलं पाकशासनिः ।
व्यसृजत् पुरुषव्याघ्रस्तव सैन्यजिघांसया ॥ ८० ॥

फिर उन पुरुषसिंह इन्द्रकुमारने आपकी सेनाके संहारकी इच्छासे बाणोंका भयंकर जाल बिछाना आरम्भ किया ॥८०॥

ते हन्यमाना वीरेण योधा राजन् रणे तव ।
प्रजहुः सैन्धवं भीता द्वौ समं नाभ्यधावताम् ॥ ८१ ॥

राजन् ! उस समय रणभूमिमें वीर अर्जुनकी मार खानेवाले योद्धा भयभीत हो सिंधुराजको छोड़ भाग चले । वे इतने डर गये थे कि दो सैनिक भी एक साथ नहीं भागते थे ॥ ८१ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम कुन्तीपुत्रस्य विक्रमम् ।
तादृङ् न भावी भूतो वा यच्चकार महायशाः ॥ ८२ ॥

वहाँ हमलोगोंने कुन्तीकुमारका अद्भुत पराक्रम देखा । उन महायशस्वी वीरने उस समय जो पुरुषार्थ प्रकट किया था, वैसा न तो पहले कभी प्रकट हुआ था और न आगे कभी होगा ही ॥ ८२ ॥

द्विपान् द्विपगतांश्चैव हयान् हयगतानपि ।
तथा स रथिनश्चैव न्यहन् रुद्रः पशूनिव ॥ ८३ ॥

जैसे संहारकारी रुद्र समस्त प्राणियोंका विनाश कर डालते हैं, उसी प्रकार उन्होंने हाथियों और हाथीसवारोंको, घोड़ों और घुड़सवारोंको तथा रथों एवं रथियोंको भी नष्ट कर दिया ॥ ८३ ॥

न तत्र समरे कश्चिन्मया दृष्टो नराधिप ।
गजो वाजी नरो वापि यो न पार्थशराहतः ॥ ८४ ॥

नरेश्वर ! उस समरभूमिमें मैंने कोई भी ऐसा हाथी, घोड़ा या मनुष्य नहीं देखा, जो अर्जुनके बाणोंसे क्षत-विक्षत न हो गया हो ॥ ८४ ॥

रजसा तमसा चैव योधाः संछन्नचक्षुषः ।
कश्मलं प्राविशन् घोरं नान्वजानन् परस्परम् ॥८५॥

उस समय धूल और अन्धकारसे सारे योद्धाओंके नेत्र आच्छादित हो गये थे । वे भयंकर मोहमें पड़ गये । उनके लिये एक दूसरेको पहचानना भी असम्भव हो गया ॥ ८५ ॥

ते शरैर्भिन्नमर्माणः सैनिकाः पार्थचोदितैः ।
बभ्रमुश्चस्खलुः पेतुः सेदुर्मम्लुश्च भारत ॥ ८६ ॥

भारत ! अर्जुनके चलाये हुए बाणोंसे जिनके मर्मस्थल विदीर्ण हो गये थे, वे सैनिक चक्कर काटते, लड़खड़ाते, गिरते, व्यथित होते और प्राणशून्य होकर मलिन हो जाते थे ॥ ८६ ॥

तस्मिन् महाभीषणके प्रजानामिव संक्षये ।
रणे महति दुष्पारे वर्तमाने सुदारुणे ॥ ८७ ॥
शोणितस्य प्रसेकेन शीघ्रत्वादनिलस्य च ।
अशाम्यत् तद् रजो भौममसृक्सिक्ते धरातले ॥८८॥
आनाभि निरमज्जंश्च रथचक्राणि शोणिते ।

समस्त प्राणियोंके प्रलयकालके समान जब वह महाभीषण अत्यन्त दारुण महान् एवं दुर्लङ्घ्य संग्राम चल रहा था, उस समय रक्तकी वर्षासे और वायुके वेगपूर्वक चलनेसे रुधिरसे भीगे हुए धरातलकी धूल शान्त हो गयी । रथके पहिये नाभितक खूनमें डूबे हुए थे ॥ ८७-८८½ ॥

मत्ता वेगवतो राजंस्तावकानां रणाङ्गणे ॥ ८९ ॥
हस्तिनश्च हतारोहा दारिताङ्गाः सहस्रशः ।
स्वान्यनीकानि मृद्नन्त आर्तनादाः प्रदुद्रुवुः ॥ ९० ॥

राजन् ! जिनके सवार मार डाले गये थे और समस्त अंग बाणोंसे विदीर्ण हो रहे थे, वे आपके योद्धाओंके वेगवान् और मदमत्त सहस्रों हाथी समरभूमिमें अपनी ही सेनाओंको रौंदते और आर्तनाद करते हुए जोर-जोरसे भागने लगे ॥८९-९०॥

हयाश्च पतितारोहाः पत्तयश्च नराधिप ।
प्रदुद्रुवुर्भयाद् राजन् धनंजयशराहताः ॥ ९१ ॥

नरेश्वर ! राजन् ! घुड़सवार गिर गये थे और घोड़े एवं पैदल सैनिक धनंजयके बाणोंसे अत्यन्त घायल हो भयके मारे भागे जा रहे थे ॥ ९१ ॥

मुक्तकेशा विकवचाः क्षरन्तः क्षतजं क्षतैः ।
प्रापलायन्त संत्रस्तास्त्यक्त्वा रणशिरो जनाः ॥ ९२ ॥

लोगोंके बाल खुले हुए थे, कवच कटकर गिर गये थे और वे अत्यन्त भयभीत हो युद्धका मुहाना छोड़कर अपने घावोंसे रक्तकी धारा बहाते हुए जान बचानेके लिये भाग रहे थे ॥ ९२ ॥

ऊरुग्राहगृहीताश्च केचित् तत्राभवन् भुवि ।
हतानां चापरे मध्ये द्विरदानां निलिल्यिरे ॥ ९३ ॥

कुछ लोग बिना हिले-डुले इस प्रकार भूमिपर खड़े थे, मानो उनकी जाँघें अकड़ गयी हों । दूसरे बहुत-से सैनिक वहाँ मारे गये हाथियोंके बीचमें जा छिपे थे ॥ ९३ ॥

एवं तव बलं राजन् द्रावयित्वा धनंजयः ।
न्यवधीत् सायकैर्घोरैः सिन्धुराजस्य रक्षिणः ॥ ९४ ॥

राजन् ! इस प्रकार अर्जुनने आपकी सेनाको भगाकर भयंकर बाणोंद्वारा सिंधुराजके रक्षकोंको मारना आरम्भ किया ॥

द्रौणिं कृपं कर्णशल्यौ वृषसेनं सुयोधनम् ।
छादयामास तीव्रेण शरजालेन पाण्डवः ॥ ९५ ॥

पाण्डुकुमार अर्जुनने अपने तीखे बाणसमूहसे अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, शल्य, वृषसेन तथा दुर्योधनको आच्छादित कर दिया ॥ ९५ ॥

न गृह्णन् न क्षिपन् राजन् मुञ्चन्नापि च संदधत् ।
अदृश्यतार्जुनः संख्ये शीघ्रास्त्रत्वात् कथंचन ॥ ९६ ॥

राजन् ! उस समय युद्धस्थलमें अर्जुन इतनी फुर्तीसे बाण चलाते थे कि कोई किसी प्रकार भी यह न देख सका कि वे कब बाण लेते हैं, कब उसे धनुषपर रखते हैं, कब प्रत्यञ्चा खींचते हैं और कब वह बाण छोड़ते हैं ॥ ९६ ॥

धनुर्मण्डलमेवास्य दृश्यते ह्यस्यतः सदा ।
सायकाश्च व्यदृश्यन्त निश्चरन्तः समन्ततः ॥ ९७ ॥

निरन्तर बाण छोड़ते हुए अर्जुनका केवल मण्डलाकार धनुष ही लोगोंकी दृष्टिमें आता था एवं चारों ओर फैलते हुए उनके बाण भी दृष्टिगोचर होते थे ॥ ९७ ॥

कर्णस्य तु धनुश्छित्त्वा वृषसेनस्य चैव ह ।
शल्यस्य सूतं भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ९८ ॥

अर्जुनने कर्ण और वृषसेनके धनुष काटकर एक भल्लके द्वारा शल्यके सारथिको रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया ॥

गाढविद्धावुभौ कृत्वा शरैः स्वस्रीयमातुलौ ।
अर्जुनो जयतां श्रेष्ठो द्रौणिशारद्वतौ रणे ॥ ९९ ॥

विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने रणभूमिमें मामा-भानजे कृपाचार्य और अश्वत्थामा दोनोंको बाणोंद्वारा बींधकर गहरी चोट पहुँचायी ॥ ९९ ॥

एवं तान् व्याकुलीकृत्य त्वदीयानां महारथान् ।
उज्जहार शरं घोरं पाण्डवोऽनलसंनिभम् ॥१००॥

इस प्रकार आपके उन महारथियोंको व्याकुल करके पाण्डुकुमार अर्जुनने एक अग्निके समान तेजस्वी एवं भयंकर बाण निकाला ॥ १०० ॥

इन्द्राशनिसमप्रख्यं दिव्यमस्त्राभिमन्त्रितम् ।
सर्वभारसहं शश्वद् गन्धमाल्यार्चितं महत् ॥१०१॥

वह दिव्य बाण दिव्यास्त्रोंसे अभिमन्त्रित होकर इन्द्रके वज्रके समान प्रकाशित हो रहा था । वह सब प्रकारका भार सहन करनेमें समर्थ और महान् था । उसकी गन्ध और मालाओंद्वारा सदा पूजा की जाती थी ॥ १०१ ॥

वज्रेणास्त्रेण संयोज्य विधिवत् कुरुनन्दनः ।
समाधत्त महाबाहुर्गाण्डीवे क्षिप्रमर्जुनः ॥१०२॥

कुरुनन्दन महाबाहु अर्जुनने उस बाणको विधिपूर्वक वज्रास्त्रसे संयोजित करके शीघ्र ही गाण्डीव धनुषपर रक्खा ॥

तस्मिन् संधीयमाने तु शरे ज्वलनतेजसि ।
अन्तरिक्षे महानादो भूतानामभवन्नृप ॥१०३॥

नरेश्वर ! जब अर्जुन अग्निके समान तेजस्वी उस बाणका संधान करने लगे, उस समय आकाशचारी प्राणियोंमें महान् कोलाहल होने लगा ॥ १०३ ॥

अब्रवीच्च पुनस्तत्र त्वरमाणो जनार्दनः ।
धनंजय शिरश्छिन्धि सैन्धवस्य दुरात्मनः ॥१०४॥

उस समय वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण पुनः उतावले होकर बोल उठे—'धनंजय ! तुम दुरात्मा सिंधुराजका मस्तक शीघ्र काट लो ॥ १०४ ॥

अस्तं महीधरश्रेष्ठं यियासति दिवाकरः ।
शृणुष्वैतच्च वाक्यं मे जयद्रथवधं प्रति ॥१०५॥

'क्योंकि सूर्य अब पर्वतश्रेष्ठ अस्ताचलपर जाना ही चाहते हैं । जयद्रथ-वधके विषयमें तुम मेरी यह बात ध्यानसे सुन लो ॥ १०५ ॥

वृद्धक्षत्रः सैन्धवस्य पिता जगति विश्रुतः ।
स कालेनेह महता सैन्धवं प्राप्तवान् सुतम् ॥१०६॥

सिंधुराजके पिता वृद्धक्षत्र इस जगत्‌में विख्यात हैं । उन्होंने दीर्घकालके पश्चात् इस सिंधुराज जयद्रथको अपने पुत्रके रूपमें प्राप्त किया ॥ १०६ ॥

जयद्रथममित्रघ्नं वागुवाचाशरीरिणी ।
नृपमन्तर्हिता वाणी मेघदुन्दुभिनिःस्वना ॥१०७॥

'इसके जन्मकालमें मेघके समान गम्भीर स्वरवाली अदृश्य आकाशवाणीने शत्रुसूदन जयद्रथके विषयमें राजाको सम्बोधित करके इस प्रकार कहा—॥ १०७ ॥

तवात्मजो मनुष्येन्द्र कुलशीलदमादिभिः ।
गुणैर्भविष्यति विभो सदृशो वंशयोर्द्वयोः ॥१०८॥

'शक्तिशाली नरेन्द्र ! तुम्हारा यह पुत्र कुल, शील और संयम आदि सद्गुणोंके द्वारा दोनों वंशोंके अनुरूप होगा ॥

क्षत्रियप्रवरो लोके नित्यं शूराभिसत्कृतः ।
किं त्वस्य युध्यमानस्य संग्रामे क्षत्रियर्षभः ॥१०९॥
शिरश्छेत्स्यति संक्रुद्धः शत्रुरालक्षितो भुवि ।

'इस जगत्‌के क्षत्रियोंमें यह श्रेष्ठ माना जायगा । शूरवीर सदा इसका सत्कार करेंगे; परंतु अन्त समयमें संग्रामभूमिमें युद्ध करते समय कोई क्षत्रियशिरोमणि वीर इसका शत्रु होकर इसके सामने खड़ा हो क्रोधपूर्वक इसका मस्तक काट डालेगा' ॥

एतच्छ्रुत्वा सिन्धुराजो ध्यात्वा चिरमरिंदमः ॥११०॥
ज्ञातीन् सर्वानुवाचेदं पुत्रस्नेहाभिचोदितः ।

'यह सुनकर शत्रुओंका दमन करनेवाले सिंधुराज वृद्ध-

क्षत्र देरतक कुछ सोचते रहे, फिर पुत्रस्नेहसे प्रेरित हो वे समस्त जाति-भाइयोंसे इस प्रकार बोले—॥ ११०½ ॥

संग्रामे युध्यमानस्य वहतो महतीं धुरम् ॥१११॥
धरण्यां मम पुत्रस्य पातयिष्यति यः शिरः ।
तस्यापि शतधा मूर्धा फलिष्यति न संशयः ॥११२॥

'संग्राममें युद्धतत्पर हो भारी भार वहन करते हुए मेरे इस पुत्रके मस्तकको जो पृथ्वीपर गिरा देगा, उसके सिरके भी सैकड़ों टुकड़े हो जायँगे, इसमें संशय नहीं है' ॥

एवमुक्त्वा ततो राज्ये स्थापयित्वा जयद्रथम् ।
वृद्धक्षत्रो वनं यातस्तपश्चोग्रं समास्थितः ॥११३॥

'ऐसा कहकर समय आनेपर वृद्धक्षत्रने जयद्रथको राज्य-सिंहासनपर स्थापित कर दिया और स्वयं वनमें जाकर वे उग्र तपस्यामें संलग्न हो गये ॥ ११३ ॥

सोऽयं तप्यति तेजस्वी तपो घोरं दुरासदम् ।
समन्तपञ्चकादस्माद् बहिर्वानरकेतन ॥११४॥

'कपिध्वज अर्जुन ! वे तेजस्वी राजा वृद्धक्षत्र इस समय इस समन्तपञ्चक-क्षेत्रसे बाहर घोर एवं दुर्धर्ष तपस्या कर रहे हैं ॥ ११४ ॥

तस्माज्जयद्रथस्य त्वं शिरश्छित्त्वा महामृधे ।
दिव्येनास्त्रेण रिपुहन् घोरेणाद्भुतकर्मणा ॥११५॥
सकुण्डलं सिन्धुपतेः प्रभञ्जनसुतानुज ।
उत्सङ्गे पातयस्वास्य वृद्धक्षत्रस्य भारत ॥११६॥

'अतः शत्रुसूदन ! तुम अद्भुत कर्म करनेवाले किसी भयंकर दिव्यास्त्रके द्वारा इस महासमरमें सिंधुराज जयद्रथका कुण्डलसहित मस्तक काटकर उसे इस वृद्धक्षत्रकी गोदमें गिरा दो । भारत ! तुम भीमसेनके छोटे भाई हो (अतः सब कुछ कर सकते हो) ॥ ११५–११६ ॥

अथ त्वमस्य मूर्धानं पातयिष्यसि भूतले ।
तवापि शतधा मूर्धा फलिष्यति न संशयः ॥११७॥

'यदि तुम इसके मस्तकको पृथ्वीपर गिराओगे तो तुम्हारे मस्तकके भी सौ टुकड़े हो जायँगे । इसमें संशय नहीं है॥

यथा चेदं न जानीयात् स राजा तपसि स्थितः ।
तथा कुरु कुरुश्रेष्ठ दिव्यमस्त्रमुपाश्रितः ॥११८॥

'कुरुश्रेष्ठ ! राजा वृद्धक्षत्र तपस्यामें संलग्न हैं । तुम दिव्यास्त्रका आश्रय लेकर ऐसा प्रयत्न करो, जिससे उसे इस बातका पता न चले' ॥ ११८ ॥

न ह्यसाध्यमकार्यं वा विद्यते तव किंचन ।
समस्तेष्वपि लोकेषु त्रिषु वासवनन्दन ॥११९॥

'इन्द्रकुमार ! सम्पूर्ण त्रिलोकीमें कोई ऐसा कार्य नहीं है, जो तुम्हारे लिये असाध्य हो अथवा जिसे तुम कर न सको' ॥ ११९ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं सृक्किणी परिसंलिहन् ।
इन्द्राशनिसमस्पर्शं दिव्यमन्त्राभिमन्त्रितम् ॥१२०॥
सर्वभारसहं शश्वद् गन्धमाल्यार्चितं शरम् ।
विससर्जार्जुनस्तूर्णं सैन्धवस्य वधे धृतम् ॥१२१॥

श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर अपने दोनों गलफर चाटते हुए अर्जुनने सिंधुराजके वधके लिये धनुषपर रक्खे हुए उस बाणको तुरंत ही छोड़ दिया, जिसका स्पर्श इन्द्रके वज्रके समान कठोर था, जिसे दिव्य मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित किया था, जो सारे भारोंको सहनेमें समर्थ था और जिसकी प्रतिदिन चन्दन और पुष्पमालाद्वारा पूजा की जाती थी ॥

स तु गाण्डीवनिर्मुक्तः शरः श्येन इवाशुगः ।
छित्त्वा शिरः सिन्धुपतेरुत्पपात विहायसम् ॥१२२॥

गाण्डीव धनुषसे छूटा हुआ वह शीघ्रगामी बाण सिंधु-राजका सिर काटकर बाज पक्षीके समान उसे आकाशमें ले उड़ा॥

तच्छिरः सिन्धुराजस्य शरैरूर्ध्वमवाहयत् ।
दुर्हृदामप्रहर्षाय सुहृदां हर्षणाय च ॥१२३॥

सिंधुराज जयद्रथके उस मस्तकको उन्होंने बाणोंद्वारा ऊपर-ही-ऊपर ढोना आरम्भ किया । इससे अर्जुनके शत्रुओं-को बड़ा दुःख और मित्रोंको महान् हर्ष हुआ ॥ १२३ ॥

शरैः कदम्बकीकृत्य काले तस्मिंश्च पाण्डवः ।
योधयामास तांश्चैव पाण्डवः षण्महारथान् ॥१२४॥

उस समय पाण्डुपुत्र अर्जुनने एकके बाद एक करके अनेक बाण मारकर उस मस्तकको कदम्बके फूल-सा बना दिया । साथ ही वे पूर्वोक्त छः महारथियोंसे युद्ध भी करते रहे ॥ १२४ ॥

ततः सुमहदाश्चर्यं तत्रापश्याम भारत ।
समन्तपञ्चकाद् बाह्यं शिरो यद् व्यहरत् ततः ॥१२५॥

भारत ! उस समय हमने समन्तपञ्चकसे बाहर जहाँ वह बाण उस मस्तकको ले गया था, वहाँ बड़े भारी आश्चर्यकी घटना देखी ॥ १२५ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु वृद्धक्षत्रो महीपतिः ।
संध्यामुपास्ते तेजस्वी सम्बन्धी तव मारिष ॥१२६॥

आर्य ! इसी समय आपके तेजस्वी सम्बन्धी राजा वृद्ध-क्षत्र संध्योपासना कर रहे थे ॥ १२६ ॥

उपासीनस्य तस्याथ कृष्णकेशं सकुण्डलम् ।
सिन्धुराजस्य मूर्धानमुत्सङ्गे समपातयत् ॥१२७॥

संध्योपासनामें बैठे हुए वृद्धक्षत्रके अङ्कमें उस बाणने सिंधुराज जयद्रथका वह काले केशोंवाला कुण्डलमण्डित मस्तक डाल दिया ॥ १२७ ॥

तस्योत्सङ्गे निपतितं शिरस्तच्चारुकुण्डलम् ।
वृद्धक्षत्रस्य नृपतेरलक्षितमरिंदम ॥१२८॥

शत्रुदमन नरेश ! जयद्रथका वह सुन्दर कुण्डलोंसे सुशोभित सिर राजा वृद्धक्षत्रकी गोदमें उनके बिना देखे ही गिर गया ॥ १२८ ॥

कृतजप्यस्य तस्याथ वृद्धक्षत्रस्य भारत ।
प्रोत्तिष्ठतस्तत् सहसा शिरोऽगच्छद् धरातलम् ॥१२९॥

भरतनन्दन ! जप समाप्त करके जब वृद्धक्षत्र सहसा उठने लगे, तब उनकी गोदसे वह मस्तक पृथ्वीपर जा गिरा ॥

ततस्तस्य नरेन्द्रस्य पुत्रमूर्धनि भूतले ।
गते तस्यापि शतधा मूर्धागच्छदरिंदम ॥१३०॥

शत्रुदमन महाराज ! पुत्रका मस्तक पृथ्वीपर गिरते ही राजा वृद्धक्षत्रके मस्तकके भी सौ टुकड़े हो गये ॥ १३० ॥

ततः सर्वाणि सैन्यानि विस्मयं जग्मुरुत्तमम् ।
वासुदेवं च बीभत्सुं प्रशशंसुर्महारथम् ॥१३१॥

तदनन्तर सारी सेनाएँ भारी आश्चर्यमें पड़ गयीं और सब लोग श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा करने लगे॥१३१॥

ततो विनिहते राजन् सिन्धुराजे किरीटिना ।
तमस्तद् वासुदेवेन संहृतं भरतर्षभ ॥१३२॥

राजन् ! भरतश्रेष्ठ ! किरीटधारी अर्जुनके द्वारा सिंधुराज जयद्रथके मारे जानेपर भगवान् श्रीकृष्णने अपने रचे हुए अन्धकारको समेट लिया ॥ १३२ ॥

पश्चाज्ज्ञातं महीपाल तव पुत्रैः सहानुगैः ।
वासुदेवप्रयुक्तेयं मायेति नृपसत्तम ॥१३३॥

नृपश्रेष्ठ ! महीपाल ! पीछे सेवकोंसहित आपके पुत्रोंको यह ज्ञात हुआ कि इस अन्धकारके रूपमें भगवान् श्रीकृष्ण-द्वारा फैलायी हुई माया थी ॥ १३३ ॥

एवं स निहतो राजन् पार्थेनामिततेजसा ।
अक्षौहिणीरष्ट हत्वा जामाता तव सैन्धवः ॥१३४॥

राजन् ! इस प्रकार अमित तेजस्वी अर्जुनने आपकी आठ अक्षौहिणी सेनाओंके संहारकी पूर्ति करके आपके दामाद सिंधुराज जयद्रथको मार डाला ॥ १३४ ॥

हतं जयद्रथं दृष्ट्वा तव पुत्रा नराधिप ।
दुःखादश्रूणि मुमुचुर्निराशाश्चाभवञ्जये ॥१३५॥

नरेश्वर ! जयद्रथको मारा गया देख आपके पुत्र दुःखसे आँसू बहाने लगे और अपनी विजयसे निराश हो गये ॥

ततो जयद्रथे राजन् हते पार्थेन केशवः ।
दध्मौ शङ्खं महाबाहुरर्जुनश्च परंतपः ॥१३६॥

राजन् ! कुन्तीकुमारद्वारा जयद्रथके मारे जानेपर भगवान् श्रीकृष्ण तथा शत्रुतापन महाबाहु अर्जुनने अपना-अपना शङ्ख बजाया ॥ १३६ ॥

भीमश्च वृष्णिसिंहश्च युधामन्युश्च भारत ।
उत्तमौजाश्च विक्रान्तः शङ्खान् दध्मुः पृथक् पृथक् ॥१३७॥

भारत ! तत्पश्चात् भीमसेन, वृष्णिवंशके सिंह, युधामन्यु और पराक्रमी उत्तमौजाने पृथक्-पृथक् शङ्ख बजाये ॥१३७॥

श्रुत्वा महान्तं तं शब्दं धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
सैन्धवं निहतं मेने फाल्गुनेन महात्मना ॥१३८॥

उस महान् शङ्खनादको सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरको यह निश्चय हो गया कि महात्मा अर्जुनने सिंधुराज जयद्रथको मार डाला ॥ १३८ ॥

ततो वादित्रघोषेण स्वान् योधान् पर्यहर्षयत् ।
अभ्यवर्तत संग्रामे भारद्वाजं युयुत्सया ॥१३९॥

तदनन्तर युधिष्ठिर भी विजयके बाजे बजवाकर अपने योद्धाओंका हर्ष बढ़ाने लगे । वे युद्धकी इच्छासे संग्रामभूमिमें द्रोणाचार्यके सामने डटे रहे ॥ १३९ ॥

ततः प्रववृते राजन्नस्तंगच्छति भास्करे ।
द्रोणस्य सोमकैः सार्धं संग्रामो लोमहर्षणः ॥१४०॥

राजन् ! तदनन्तर सूर्यास्त होते समय द्रोणाचार्यका सोमकोंके साथ रोमाञ्चकारी संग्राम छिड़ गया ॥ १४० ॥

ते तु सर्वे प्रयत्नेन भारद्वाजं जिघांसवः ।
सैन्धवे निहते राजन्नयुध्यन्त महारथाः ॥१४१॥

नरेश्वर ! सिंधुराजके मारे जानेपर समस्त सोमक महारथी द्रोणाचार्यके वधकी इच्छासे प्रयत्नपूर्वक युद्ध करने लगे ॥

पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा सैन्धवं विनिहत्य च ।
अयोधयंस्तु ते द्रोणं जयोन्मत्तास्ततस्ततः ॥१४२॥

पाण्डव सिंधुराजको मारकर विजय पा चुके थे । अतः वे विजयोल्लाससे उन्मत्त हो जहाँ-तहाँसे आकर द्रोणाचार्यके साथ युद्ध करने लगे ॥ १४२ ॥

अर्जुनोऽपि ततो योधांस्तावकान् रथसत्तमान् ।
अयोधयन्महाबाहुर्हत्वा सैन्धवकं नृपम् ॥१४३॥

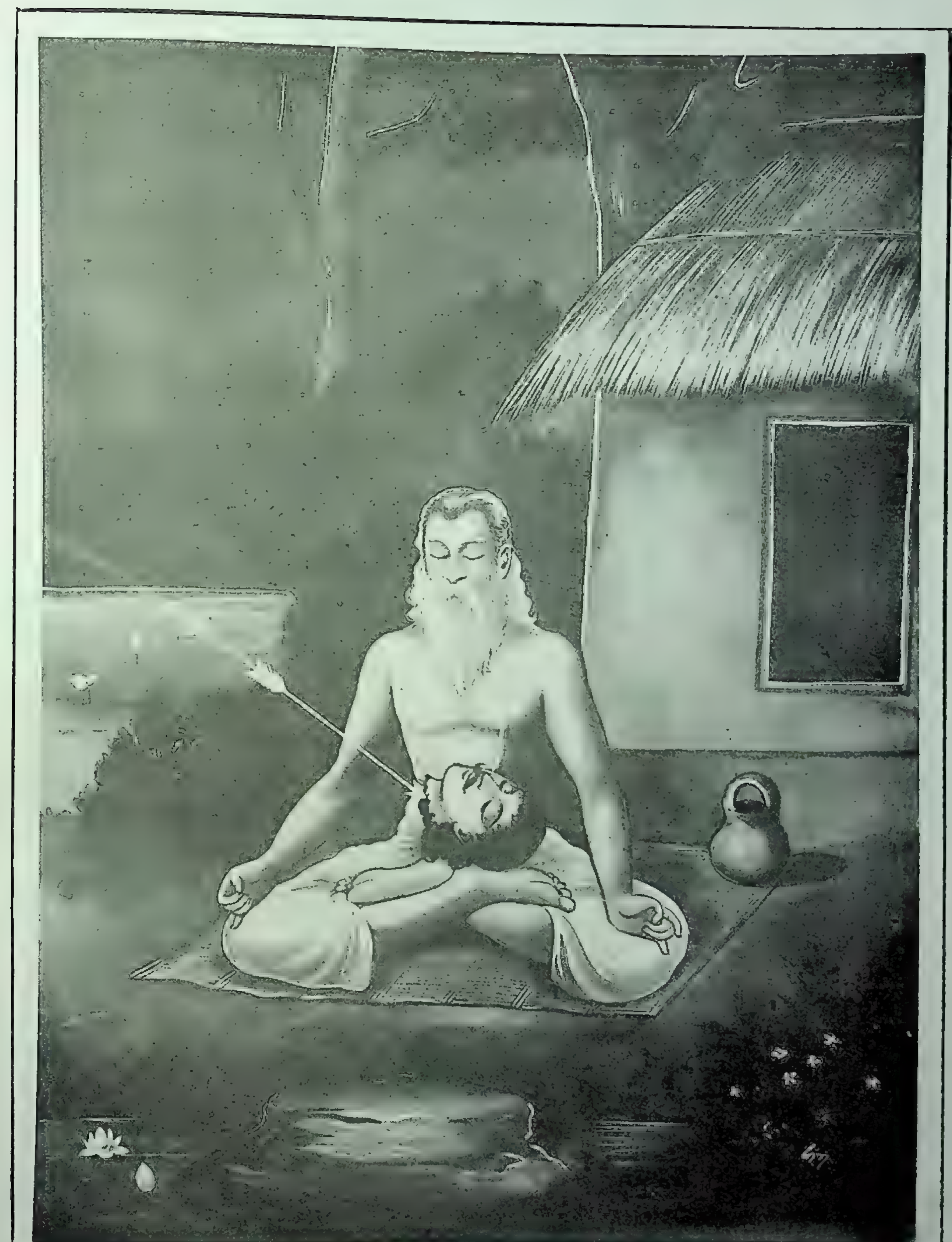
महाबाहु अर्जुनने भी सिंधुराजको मारकर आपके श्रेष्ठ रथी योद्धाओंके साथ युद्ध छेड़ दिया ॥ १४३ ॥

स देवशत्रूनिव देवराजः
किरीटमाली व्यधमत् समन्तात् ।
यथा तमांस्यभ्युदितस्तमोघ्नः
पूर्वप्रतिज्ञां समवाप्य वीरः ॥१४४॥

जैसे देवराज इन्द्र देवशत्रुओंका संहार करते हैं तथा जैसे तिमिरारि सूर्य उदित होकर अन्धकारका विनाश कर डालते हैं, उसी प्रकार किरीटधारी वीर अर्जुनने अपनी पहली प्रतिज्ञा पूरी करके सब ओरसे आपकी सेनाका संहार आरम्भ कर दिया ॥ १४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि जयद्रथवधे षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें जयद्रथवधविषयक एक सौ छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४६ ॥



जयद्रथके कटे हुए मस्तकका उसके पिताकी गोदमें गिरना

सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अर्जुनके बाणोंसे कृपाचार्यका मूर्छित होना, अर्जुनका खेद तथा कर्ण और सात्यकिका युद्ध एवं कर्णकी पराजय

धृतराष्ट्र उवाच

तस्मिन् विनिहते वीरे सैन्धवे सव्यसाचिना।
मामका यदकुर्वन्त तन्ममाचक्ष्व संजय॥ १॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! सव्यसाची अर्जुनके द्वारा वीर सिंधुराजके मारे जानेपर मेरे पुत्रोंने क्या किया? यह मुझे बताओ॥ १॥

संजय उवाच

सैन्धवं निहतं दृष्ट्वा रणे पार्थेन भारत।
अमर्षवशमापन्नः कृपः शारद्वतस्ततः॥ २॥
महता शरवर्षेण पाण्डवं समवाकिरत्।
द्रौणिश्चाभ्यद्रवद् राजन् रथमास्थाय फाल्गुनम्॥ ३॥

संजयने कहा—भरतनन्दन! सिंधुराजको अर्जुनके द्वारा रणभूमिमें मारा गया देख शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य अमर्षके वशीभूत हो बाणकी भारी वर्षा करके पाण्डुपुत्र अर्जुनको आच्छादित करने लगे। राजन्! द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने भी रथपर बैठकर अर्जुनपर धावा किया॥ २-३॥

तावेतौ रथिनां श्रेष्ठौ रथाभ्यां रथसत्तमौ।
उभावुभयतस्तीक्ष्णैर्विशिखैरभ्यवर्षताम्॥ ४॥

रथियोंमें श्रेष्ठ वे दोनों महारथी दो दिशाओंसे आकर अर्जुनपर पैने बाणोंकी वर्षा करने लगे॥ ४॥

स तथा शरवर्षाभ्यां सुमहद्भ्यां महाभुजः।
पीड्यमानः परामार्तिमगमद् रथिनां वरः॥ ५॥

इस प्रकार दो दिशाओंसे होनेवाली उस भारी बाण-वर्षासे पीड़ित हो रथियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु अर्जुन अत्यन्त व्यथित हो उठे॥ ५॥

सोऽजिघांसुर्गुरुं संख्ये गुरोस्तनयमेव च।
चकाराचार्यकं तत्र कुन्तीपुत्रो धनंजयः॥ ६॥

वे युद्धस्थलमें गुरु तथा गुरुपुत्रका वध करना नहीं चाहते थे। अतः कुन्तीपुत्र धनंजयने वहाँ अपने आचार्यका सम्मान किया॥ ६॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्रौणेः शारद्वतस्य च।
मन्दवेगानिषूंस्ताभ्यामजिघांसुरवासृजत्॥ ७॥

उन्होंने अपने अस्त्रोंद्वारा अश्वत्थामा तथा कृपाचार्यके अस्त्रोंका निवारण करके उनका वध करनेकी इच्छा न रखते हुए उनके ऊपर मन्द वेगवाले बाण चलाये॥ ७॥

ते चापि भृशमभ्यघ्नन् विशिखाः पार्थचोदिताः।
बहुत्वात् तु परामार्तिं शराणां तावगच्छताम्॥ ८॥

अर्जुनके चलाये हुए उन बाणोंकी संख्या अधिक होनेके कारण उनके द्वारा उन दोनोंको भारी चोट पहुँची। वे बड़ी वेदनाका अनुभव करने लगे॥ ८॥

अथ शारद्वतो राजन् कौन्तेयशरपीडितः।
अवासीदद् रथोपस्थे मूर्च्छामभिजगाम ह॥ ९॥

राजन्! कृपाचार्य अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित हो मूर्छित हो गये और रथके पिछले भागमें जा बैठे॥ ९॥

विह्वलं तमभिज्ञाय भर्तारं शरपीडितम्।
हतोऽयमिति च ज्ञात्वा सारथिस्तमपावहत्॥ १०॥

अपने स्वामीको बाणोंसे पीड़ित एवं विह्वल जानकर और उन्हें मरा हुआ समझकर सारथि रणभूमिसे दूर हटा ले गया॥ १०॥

तस्मिन् भग्ने महाराज कृपे शारद्वते युधि।
अश्वत्थामाप्यपायासीत् पाण्डवेयाद् रथान्तरम्॥ ११॥

महाराज! युद्धस्थलमें शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्यके अचेत होकर वहाँसे हट जानेपर अश्वत्थामा भी अर्जुनको छोड़कर दूसरे किसी रथीका सामना करनेके लिये चला गया॥ ११॥

दृष्ट्वा शारद्वतं पार्थो मूर्च्छितं शरपीडितम्।
रथ एव महेष्वासः सकृपं पर्यदेवयत्॥ १२॥
अश्रुपूर्णमुखो दीनो वचनं चेदमब्रवीत्।

कृपाचार्यको बाणोंसे पीड़ित एवं मूर्छित देखकर महाधनुर्धर कुन्तीकुमार अर्जुन दयावश रथपर बैठे-बैठे ही विलाप करने लगे। उनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी। वे दीनभावसे इस प्रकार कहने लगे—॥ १२½॥

पश्यन्निदं महाप्राज्ञः क्षत्ता राजानमुक्तवान्॥ १३॥
कुलान्तकरणे पापे जातमात्रे सुयोधने।
नीयतां परलोकाय साध्वयं कुलपांसनः॥ १४॥
अस्माद्धि कुरुमुख्यानां महदुत्पत्स्यते भयम्।

'जिस समय कुलान्तकारी पापी दुर्योधनका जन्म हुआ था, उस समय महाज्ञानी विदुरजीने यही सब विनाशकारी परिणाम देखकर राजा धृतराष्ट्रसे कहा था कि 'इस कुलाङ्गार बालकको परलोक भेज दिया जाय, यही अच्छा होगा; क्योंकि इससे प्रधान-प्रधान कुरुवंशियोंको महान् भय उत्पन्न होगा'॥ १३-१४½॥

तदिदं समनुप्राप्तं वचनं सत्यवादिनः॥ १५॥
तत्कृते ह्यद्य पश्यामि शरतल्पगतं गुरुम्।
धिगस्तु क्षात्रमाचारं धिगस्तु बलपौरुषम्॥ १६॥

'सत्यवादी विदुरजीका वह कथन आज सत्य हो रहा

है। दुर्योधनके ही कारण आज मैं अपने गुरुको शर-शय्यापर पड़ा देखता हूँ। क्षत्रियके आचार, बल और पुरुषार्थको धिक्कार है! धिक्कार है!! १५-१६ ॥

को हि ब्राह्मणमाचार्यमभिद्रुह्येत मादृशः ।
ऋषिपुत्रो ममाचार्यो द्रोणस्य परमः सखा ॥ १७ ॥
एष शेते रथोपस्थे कृपो मद्बाणपीडितः ।

'मेरे-जैसा कौन पुरुष ब्राह्मण एवं आचार्यसे द्रोह करेगा? ये ऋषिकुमार, मेरे आचार्य तथा गुरुवर द्रोणाचार्यके परम सखा कृप मेरे बाणोंसे पीड़ित हो रथकी बैठकमें पड़े हैं ॥ १७½ ॥

अकामयानेन मया विशिखैरर्दितो भृशम् ॥ १८ ॥
अवसीदन् रथोपस्थे प्राणान् पीडयतीव मे ।

'मैंने इच्छा न रहते हुए भी उन्हें बाणोंद्वारा अधिक चोट पहुँचायी है। वे रथकी बैठकमें पड़े-पड़े कष्ट पा रहे हैं और मुझे अत्यन्त पीड़ित-सा कर रहे हैं ॥ १८½ ॥

पुत्रशोकाभितप्तेन शरैरभ्यर्दितेन च ॥ १९ ॥
अभ्यस्तो बहुभिर्बाणैर्दशधर्मगतेन वै ।

'मैंने पुत्रशोकसे संतप्त, बाणोंद्वारा पीड़ित तथा भारी दुरवस्थाको प्राप्त होकर बहुसंख्यक बाणोंद्वारा उन्हें अनेक बार चोट पहुँचायी है ॥ १९½ ॥

शोचयत्येव नियतं भूयः पुत्रवधाद्धि माम् ॥ २० ॥
कृपणं स्वरथे सन्नं पश्य कृष्ण यथागतम् ।

'निश्चय ही ये कृपाचार्य आहत होकर मुझे पुत्रवधकी अपेक्षा भी अधिक शोकमें डाल रहे हैं। श्रीकृष्ण! देखिये, वे अपने रथपर कैसे सन्न और दीन होकर पड़े हैं ॥ २०½ ॥

उपाकृत्य तु वै विद्यामाचार्येभ्यो नरर्षभाः ॥ २१ ॥
प्रयच्छन्तीह ये कामान् देवत्वमुपयान्ति ते ।

'आचार्योंसे विद्या ग्रहण करके जो श्रेष्ठ पुरुष उन्हें उनकी अभीष्ट वस्तुएँ देते हैं, वे देवत्वको प्राप्त होते हैं। २१½

ये च विद्यामुपादाय गुरुभ्यः पुरुषाधमाः ॥ २२ ॥
घ्नन्ति तानेव दुर्वृत्तास्ते वै निरयगामिनः ।

'गुरुसे विद्या ग्रहण करके जो नराधम उनपर ही चोट करते हैं, वे दुराचारी मानव निश्चय ही नरकगामी होते हैं ॥ २२½ ॥

तदिदं नरकायाद्य कृतं कर्म मया ध्रुवम् ॥ २३ ॥
आचार्यं शरवर्षेण रथे सादयता कृपम् ।

'मैंने आचार्य कृपको अपने बाणोंकी वर्षाद्वारा रथपर सुला दिया है। निश्चय ही यह कर्म मैंने आज नरकमें जानेके लिये ही किया है॥ २३½ ॥

यत् तत् पूर्वमुपाकुर्वन्नस्त्रं मामब्रवीत् कृपः ॥ २४ ॥
न कथंचन कौरव्य प्रहर्तव्यं गुराविति ।

'पूर्वकालमें मुझे अस्त्रविद्याकी शिक्षा देकर कृपाचार्यने जो मुझसे यह कहा था कि 'कुरुनन्दन! तुम्हें गुरुके ऊपर किसी प्रकार भी प्रहार नहीं करना चाहिये' ॥२४½॥

तदिदं वचनं साधोराचार्यस्य महात्मनः ॥ २५ ॥
नानुष्ठितं तमेवाजौ विशिखैरभिवर्षता ।

'उन श्रेष्ठ महात्मा आचार्यका यह वचन युद्धस्थलमें उन्हींपर बाणोंकी वर्षा करके मैंने नहीं माना है ॥ २५½ ॥

नमस्तस्मै सुपूज्याय गौतमायापलायिने ॥ २६ ॥
धिगस्तु मम वार्ष्णेय यदस्मै प्रहराम्यहम् ।

'वार्ष्णेय! युद्धसे कभी पीठ न दिखानेवाले उन परम पूजनीय गौतमवंशी कृपाचार्यको मेरा नमस्कार है मैं जो उनपर प्रहार करता हूँ, इसके लिये मुझे धिक्कार है'।२६½॥

तथा विलपमाने तु सव्यसाचिनि तं प्रति ॥ २७ ॥
सैन्धवं निहतं दृष्ट्वा राधेयः समुपाद्रवत् ।

सव्यसाची अर्जुन कृपाचार्यके लिये विलाप कर ही रहे थे कि सिंधुराजको मारा गया देख राधानन्दन कर्णने उनपर धावा कर दिया ॥ २७½ ॥

तमापतन्तं राधेयमर्जुनस्य रथं प्रति ॥ २८ ॥
पाञ्चाल्यौ सात्यकिश्चैव सहसा समुपाद्रवन् ।

राधापुत्र कर्णको अर्जुनके रथकी ओर आते देख दोनों भाई पाञ्चालराजकुमार (युधामन्यु और उत्तमौजा) तथा सात्वतवंशी सात्यकि सहसा उसकी ओर दौड़े ॥ २८½ ॥

उपायान्तं तु राधेयं दृष्ट्वा पार्थो महारथः ॥ २९ ॥
प्रहसन् देवकीपुत्रमिदं वचनमब्रवीत् ।

राधापुत्रको अपने समीप आते देख महारथी कुन्तीकुमार अर्जुनने देवकीनन्दन श्रीकृष्णसे हँसते हुए कहा—॥ २९½ ॥

एष प्रयात्याधिरथिः सात्यकेः स्यन्दनं प्रति ॥ ३० ॥
न मृष्यति हतं नूनं भूरिश्रवसमाहवे ।

'यह अधिरथपुत्र कर्ण सात्यकिके रथकी ओर जा रहा है। अवश्य ही युद्धस्थलमें भूरिश्रवाका मारा जाना इसके लिये असह्य हो उठा है ॥ ३०½ ॥

यत्र यात्येष तत्र त्वं चोदयाश्वान् जनार्दन ॥ ३१ ॥
न सौमदत्तिपदवीं गमयेत् सात्यकिं वृषः ।

'जनार्दन! यह जहाँ जाता है, वहीं आप भी अपने घोड़ोंको हाँकिये। कहीं ऐसा न हो कि कर्ण सात्यकिको भूरिश्रवाके पथपर पहुँचा दे' ॥ ३१½ ॥

एवमुक्तो महाबाहुः केशवः सव्यसाचिना ॥ ३२ ॥
प्रत्युवाच महातेजाः कालयुक्तमिदं वचः ।

सव्यसाची अर्जुनके ऐसा कहनेपर महातेजस्वी महाबाहु केशवने उनसे यह समयोचित वचन कहा—॥ ३२½ ॥

अलमेष महाबाहुः कर्णायैकोऽपि पाण्डव ॥ ३३ ॥

किं पुनर्द्रौपदेयाभ्यां सहितः सात्वतर्षभः ।

'पाण्डुनन्दन ! यह महाबाहु सात्वतशिरोमणि सात्यकि अकेला भी कर्णके लिये पर्याप्त है । फिर इस समय जब द्रुपदके दोनों पुत्र इसके साथ हैं, तब तो कहना ही क्या है ॥ ३३½ ॥

न च तावत् क्षमः पार्थ तव कर्णेन सङ्गरः ॥ ३४ ॥
प्रज्वलन्ती महोल्केव तिष्ठत्यस्य हि वासवी ।

'कुन्तीकुमार ! इस समय कर्णके साथ तुम्हारा युद्ध होना ठीक नहीं है; क्योंकि उसके पास बड़ी भारी उल्काके समान प्रज्वलित होनेवाली इन्द्रकी दी हुई शक्ति है ३४½

त्वदर्थं पूज्यमानैषा रक्ष्यते परवीरहन् ॥ ३५ ॥
अतः कर्णः प्रयात्वत्र सात्वतस्य यथातथा ।

'शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले अर्जुन ! तुम्हारे लिये कर्ण उसकी प्रतिदिन पूजा करते हुए उसे सदा सुरक्षित रखता है; अतः कर्ण सात्यकिके पास जैसे-तैसे जाय और युद्ध करे ॥ ३५½ ॥

अहं ज्ञास्यामि कौन्तेय कालमस्य दुरात्मनः ।
यत्रैनं विशिखैस्तीक्ष्णैः पातयिष्यसि भूतले ॥ ३६ ॥

'कुन्तीकुमार ! मैं उस दुरात्माका अन्तकाल जानता हूँ, जब कि तुम अपने तीखे बाणोंद्वारा उसे पृथ्वीपर मार गिराओगे' ॥ ३६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

योऽसौ कर्णेन वीरस्य वार्ष्णेयस्य समागमः ।
हते तु भूरिश्रवसि सैन्धवे च निपातिते ॥ ३७ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! भूरिश्रवाके मारे जाने और सिंधुराजके धराशायी किये जानेपर कर्णके साथ वीरवर सात्यकिका जो संग्राम हुआ, वह कैसा था ? ॥ ३७ ॥

सात्यकिश्चापि विरथः कं समारूढवान् रथम् ।
चक्ररक्षौ च पाञ्चाल्यौ तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ३८॥

संजय ! सात्यकि भी तो रथहीन हो चुके थे । वे किस रथपर आरूढ़ हुए तथा चक्ररक्षक युधामन्यु और उत्तमौजा इन दोनों पाञ्चाल वीरोंने किसके साथ युद्ध किया ? यह सब मुझे बताओ ॥ ३८ ॥

संजय उवाच

हन्त ते वर्तयिष्यामि यथा वृत्तं महारणे ।
शुश्रूषस्व स्थिरो भूत्वा दुराचरितमात्मनः ॥ ३९ ॥

संजयने कहा—राजन् ! मैं बड़े खेदके साथ उस महासमरमें घटित हुई घटनाओंका आपके समक्ष वर्णन करूँगा । आप स्थिर होकर अपने दुराचारका परिणाम सुनें ॥

पूर्वमेव हि कृष्णस्य मनोगतमिदं प्रभो ।
विजेतव्यो यथा वीरः सात्यकिः सौमदत्तिना ॥ ४० ॥

प्रभो ! भगवान् श्रीकृष्णके मनमें पहले ही यह बात आ गयी थी कि आज वीर सात्यकिको सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवा परास्त कर देगा ॥ ४० ॥

अतीतानागते राजन् स हि वेत्ति जनार्दनः ।
ततः सूतं समाहूय दारुकं संदिदेश ह ॥ ४१ ॥
रथो मे युज्यतां कल्यमिति राजन् महाबलः ।
न हि देवा न गन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ॥ ४२ ॥
मानवा वापि जेतारः कृष्णयोः सन्ति केचन ।

राजन् ! वे जनार्दन भूत और भविष्य दोनों कालोंको जानते हैं । इसीलिये उन्होंने अपने सारथि दारुकको बुलाकर पहले ही दिन यह आज्ञा दे दी थी कि कल सबेरेसे ही मेरा रथ जोतकर तैयार रखना । महाराज ! श्रीकृष्णका बल महान् है । श्रीकृष्ण और अर्जुनको परास्त करनेवाले न तो कोई देवता हैं, न गन्धर्व हैं, न यक्ष, नाग तथा राक्षस हैं और न मनुष्य ही हैं ॥ ४१-४२½ ॥

पितामहपुरोगाश्च देवाः सिद्धाश्च तं विदुः ॥ ४३ ॥
तयोः प्रभावमतुलं शृणु युद्धं तु तत् तथा ।

उन्हें ब्रह्मा आदि देवता और सिद्ध पुरुष ही यथार्थ रूपसे जान पाते हैं । उन दोनोंके प्रभावकी कहीं तुलना नहीं है । अच्छा, अब युद्धका वृत्तान्त सुनिये ॥ ४३½ ॥

सात्यकिं विरथं दृष्ट्वा कर्णं चाभ्युद्यतं रणे ॥ ४४ ॥
दध्मौ शङ्खं महानादमार्षभेणाथ माधवः ।

सात्यकिको रथहीन और कर्णको युद्धके लिये उद्यत देख भगवान् श्रीकृष्णने बड़े जोरकी ध्वनि करनेवाले शङ्खको ऋषभस्वरसे बजाया ॥ ४४½ ॥

दारुकोऽवेत्य संदेशं श्रुत्वा शङ्खस्य च स्वनम् ॥ ४५ ॥
रथमन्वानयत् तस्मै सुपर्णोच्छ्रितकेतनम् ।

दारुकने उस शङ्खध्वनिको सुनकर भगवान्‌के संदेशको स्मरण करके तुरंत ही उनके लिये अपना रथ ला दिया, जिसपर गरुड़चिह्नसे युक्त ऊँची ध्वजा फहरा रही थी ४५½

स केशवस्यानुमते रथं दारुकसंयुतम् ॥ ४६ ॥
आरुरोह शिनेः पौत्रो ज्वलनादित्यसंनिभम् ।

भगवान् श्रीकृष्णकी अनुमति पाकर शिनिपौत्र सात्यकि दारुकद्वारा जोते हुए अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी उस रथपर आरूढ़ हुए ॥ ४६½ ॥

कामगैः शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकैः ॥ ४७ ॥
हयोदग्रैर्महावेगैर्हेमभाण्डविभूषितैः ।
युक्तं समारुह्य च तं विमानप्रतिमं रथम् ॥ ४८ ॥
अभ्यद्रवत राधेयं प्रवपन् सायकान् बहून् ।

उसमें इच्छानुसार चलनेवाले महान् वेगशाली और सुवर्णमय अलङ्कारोंसे विभूषित शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प

और बलाहक नामवाले श्रेष्ठ अश्व जुते हुए थे। वह रथ विमानके समान जान पड़ता था। उसपर आरूढ़ होकर बहुत-से बाणोंकी वर्षा करते हुए सात्यकिने राधापुत्र कर्णपर धावा किया ॥ ४७-४८½ ॥

चक्ररक्षावपि तदा युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ ४९ ॥
धनंजयरथं हित्वा राधेयं प्रत्युदीयतुः ।

उस समय चक्ररक्षक युधामन्यु और उत्तमौजाने भी धनंजयका रथ छोड़कर कर्णपर ही आक्रमण किया ४९½

राधेयोऽपि महाराज शरवर्षं समुत्सृजन् ॥ ५० ॥
अभ्यद्रवत् सुसंक्रुद्धो रणे शैनेयमच्युतम् ।

महाराज ! अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए कर्णने भी उस युद्धस्थलमें अपनी मर्यादासे च्युत न होनेवाले सात्यकिपर बाणोंकी वर्षा करते हुए धावा किया ॥ ५०½ ॥

नैव दैवं न गान्धर्वं नासुरं न च राक्षसम् ॥ ५१ ॥
तादृशं भुवि नो युद्धं दिवि वा श्रुतमित्युत ।

राजन् ! मैंने इस पृथ्वीपर या स्वर्गमें देवताओं, गन्धर्वों, असुरों तथा राक्षसोंका भी वैसा युद्ध नहीं सुना था ५१½

उपारमत तत् सैन्यं सरथाश्वनरद्विपम् ॥ ५२ ॥
तयोर्दृष्ट्वा महाराज कर्म सम्मूढचेतसः ।
सर्वे च समपश्यन्त तद् युद्धमतिमानुषम् ॥ ५३ ॥
तयोर्नृवरयो राजन् सारथ्यं दारुकस्य च ।

महाराज ! उन दोनोंका वह संग्राम देखकर सबके चित्तमें मोह छा गया । राजन् ! सभी दर्शकके समान उन दोनों नरश्रेष्ठ वीरोंके उस अतिमानव युद्धको और दारुकके सारथ्य कर्मको देखने लगे । हाथी, घोड़े, रथ और मनुष्योंसे युक्त वह चतुरंगिणी सेना भी युद्धसे उपरत हो गयी थी ।५२-५३½।

गतप्रत्यागतावृत्तैर्मण्डलैः संनिवर्तनैः ॥ ५४ ॥
सारथेस्तु रथस्थस्य काश्यपेयस्य विस्मिताः ।
नभस्तलगताश्चैव देवगन्धर्वदानवाः ॥ ५५ ॥
अतीवावहिता द्रष्टुं कर्णशैनेययो रणम् ।
मित्रार्थे तौ पराक्रान्तौ शुष्मिणौ स्पर्धिनौ रणे ॥ ५६ ॥

रथपर बैठे हुए कश्यपगोत्रीय सारथि दारुकके रथसंचालनकी गमन, प्रत्यागमन, आवर्तन, मण्डल तथा संनिवर्तन आदि विविध रीतियोंसे आकाशमें खड़े हुए देवता, गन्धर्व और दानव भी चकित हो उठे तथा कर्ण और सात्यकिके युद्धको देखनेके लिये अत्यन्त सावधान हो गये । वे दोनों बलवान् वीर रणभूमिमें एक दूसरेसे स्पर्धा रखते हुए अपने-अपने मित्रके लिये पराक्रम दिखा रहे थे ।५४-५६।

कर्णश्चामरसंकाशो युयुधानश्च सात्यकिः ।
अन्योन्यं तौ महाराज शरवर्षैरवर्षताम् ॥ ५७ ॥

महाराज ! देवताओंके समान तेजस्वी कर्ण तथा सत्यकपुत्र युयुधान दोनों एक दूसरेपर बाणोंकी बौछार करने लगे ॥

प्रममाथ शिनेः पौत्रं कर्णः सायकवृष्टिभिः ।
अमृष्यमाणो निधनं कौरव्यजलसंधयोः ॥ ५८ ॥

कर्णने भूरिश्रवा और जलसंधके वधको सहन न करनेके कारण अपने बाणोंकी वर्षासे शिनिपौत्र सात्यकिको मथ डाला ॥ ५८ ॥

कर्णः शोकसमाविष्टो महोरग इव श्वसन् ।
स शैनेयं रणे क्रुद्धः प्रदहन्निव चक्षुषा ॥ ५९ ॥
अभ्यधावत वेगेन पुनः पुनररिंदम ।

शत्रुदमन नरेश ! कर्ण उन दोनोंकी मृत्युसे शोकमग्न हो फुफकारते हुए महान् सर्पकी भाँति लंबी साँसें खींच रहा था । वह युद्धमें क्रुद्ध हो अपने नेत्रोंसे सात्यकिकी ओर इस प्रकार देख रहा था, मानो वह उन्हें जलाकर भस्म कर देगा । उसने बारंबार वेगपूर्वक सात्यकिपर धावा किया ॥५९½॥

तं तु सक्रोधमालोक्य सात्यकिः प्रत्ययुध्यत ॥ ६० ॥
महता शरवर्षेण गजं प्रति गजो यथा ।

कर्णको कुपित देख सात्यकि बाणोंकी बड़ी भारी वर्षा करते हुए उसका सामना करने लगे, मानो एक हाथी दूसरे हाथीसे लड़ रहा हो ॥ ६०½ ॥

तौ समेतौ नरव्याघ्रौ व्याघ्राविव तरस्विनौ ॥ ६१ ॥
अन्योन्यं संततक्षाते रणेऽनुपमविक्रमौ ।

वेगशाली व्याघ्रोंके समान परस्पर भिड़े हुए वे दोनों पुरुषसिंह युद्धमें अनुपम पराक्रम दिखाते हुए एक दूसरेको क्षत-विक्षत कर रहे थे ॥ ६१½ ॥

ततः कर्णं शिनेः पौत्रः सर्वपारसवैः शरैः ॥ ६२ ॥
बिभेद सर्वगात्रेषु पुनः पुनररिंदम ।
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ६३ ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले महाराज ! तदनन्तर शिनिपौत्र सात्यकिने सम्पूर्णतः लोहमय बाणोंद्वारा कर्णको उसके सारे अङ्गोंमें बारंबार चोट पहुँचायी और एक भल्लद्वारा उसके सारथिको रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया ६२-६३

अश्वांश्च चतुरः श्वेतान् निजघान शितैः शरैः ।
छित्त्वा ध्वजं रथं चैव शतधा पुरुषर्षभ ॥ ६४ ॥
चकार विरथं कर्णं तव पुत्रस्य पश्यतः ।

नरश्रेष्ठ ! इसके बाद सात्यकिने तीखे बाणोंद्वारा कर्णके चारों श्वेत घोड़ोंको मार डाला और उसके ध्वजको काटकर रथके सैकड़ों टुकड़े करके आपके पुत्रके देखते-देखते कर्णको रथहीन कर दिया ॥ ६४½ ॥

ततो विमनसो राजंस्तावकास्ते महारथाः ॥ ६५ ॥
वृषसेनः कर्णसुतः शल्यो मद्राधिपस्तथा ।
द्रोणपुत्रश्च शैनेयं सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ६६ ॥

राजन्! इससे खिन्नचित्त होकर आपके महारथी वीर कर्ण-पुत्र वृषसेन, मद्रराज शल्य तथा द्रोणकुमार अश्वत्थामाने सात्यकिको सब ओरसे घेर लिया ॥ ६५-६६ ॥

ततः पर्याकुलं सर्वं न प्राज्ञायत किंचन।
तथा सात्यकिना वीरे विरथे सूतजे कृते ॥ ६७ ॥

सात्यकिके द्वारा वीरवर सूतपुत्र कर्णके रथहीन कर दिये जानेपर सारा सैन्यदल सब ओरसे व्याकुल हो उठा। किसीको कुछ सूझ नहीं पड़ता था ॥ ६७ ॥

हाहाकारस्ततो राजन् सर्वसैन्येष्वभून्महान्।
कर्णोऽपि विरथो राजन् सात्वतेन कृतः शरैः ॥ ६८ ॥
दुर्योधनरथं तूर्णमारुरोह विनिःश्वसन्।

राजन्! उस समय सारी सेनाओंमें महान् हाहाकार होने लगा। महाराज! सात्यकिके बाणोंसे रथहीन किया गया कर्ण भी लंबी साँस खींचता हुआ तुरंत ही दुर्योधनके रथपर जा बैठा ॥ ६८½ ॥

मानयंस्तव पुत्रस्य बाल्यात् प्रभृति सौहृदम् ॥ ६९ ॥
कृतां राज्यप्रदानेन प्रतिज्ञां परिपालयन्।

बचपनसे लेकर सदा ही किये हुए आपके पुत्रके सौहार्दका वह समादर करता था और दुर्योधनको राज्य दिलानेकी जो उसने प्रतिज्ञा कर रक्खी थी, उसके पालनमें वह तत्पर था ॥ ६९½ ॥

तथा तु विरथं कर्णं पुत्रांश्च तव पार्थिव ॥ ७० ॥
दुःशासनमुखान् वीरान् नावधीत् सात्यकिर्वशी।
रक्षन् प्रतिज्ञां भीमेन पार्थेन च पुराकृताम् ॥ ७१ ॥

राजन्! अपने मनको वशमें करनेवाले सात्यकिने रथहीन हुए कर्णको तथा दुःशासन आदि आपके वीर पुत्रोंको भी उस समय इसलिये नहीं मारा कि वे भीमसेन और अर्जुनकी पहलेसे की हुई प्रतिज्ञाकी रक्षा कर रहे थे ॥ ७०-७१ ॥

विरथान् विह्वलांश्चक्रे न तु प्राणैर्व्ययोजयत्।
भीमसेनेन तु वधः पुत्राणां ते प्रतिश्रुतः ॥ ७२ ॥
अनुद्यूते च पार्थेन वधः कर्णस्य संश्रुतः।

उन्होंने उन सबको रथहीन और अत्यन्त व्याकुल तो कर दिया, परंतु उनके प्राण नहीं लिये। जब दुबारा द्यूत हुआ था, उस समय भीमसेनने आपके पुत्रोंके वधकी प्रतिज्ञा की थी और अर्जुनने कर्णको मार डालनेकी घोषणा की थी ॥७२½॥

वधे त्वकुर्वन् यत्नं ते तस्य कर्णमुखास्तदा ॥ ७३ ॥
नाशक्नुवंस्ततो हन्तुं सात्यकिं प्रवरा रथाः।

कर्ण आदि श्रेष्ठ महारथियोंने सात्यकिके वधके लिये पूरा प्रयत्न किया; परंतु वे उन्हें मार न सके ॥ ७३½ ॥

द्रौणिश्च कृतवर्मा च तथैवान्ये महारथाः ॥ ७४ ॥
निर्जिता धनुषैकेन शतशः क्षत्रियर्षभाः।
काङ्क्षता परलोकं च धर्मराजस्य च प्रियम् ॥ ७५ ॥

अश्वत्थामा, कृतवर्मा, अन्यान्य महारथी तथा सैकड़ों क्षत्रियशिरोमणि सात्यकिद्वारा एकमात्र धनुषसे परास्त कर दिये गये। सात्यकि धर्मराजका प्रिय करना और परलोकपर विजय पाना चाहते थे ॥ ७४-७५ ॥

कृष्णयोः सदृशो वीर्ये सात्यकिः शत्रुतापनः।
जितवान् सर्वसैन्यानि तावकानि हसन्निव ॥ ७६ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले सात्यकि श्रीकृष्ण और अर्जुनके समान पराक्रमी थे। उन्होंने आपकी सारी सेनाओंको हँसते हुए-से जीत लिया था ॥ ७६ ॥

कृष्णो वापि भवेल्लोके पार्थो वापि धनुर्धरः।
शैनेयो वा नरव्याघ्र चतुर्थस्तु न विद्यते ॥ ७७ ॥

नरव्याघ्र! संसारमें श्रीकृष्ण, कुन्तीकुमार अर्जुन और शिनिपौत्र सात्यकि—ये तीन ही वास्तवमें धनुर्धर हैं। इनके समान चौथा कोई नहीं है ॥ ७७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

अजय्यं वासुदेवस्य रथमास्थाय सात्यकिः।
विरथं कृतवान् कर्णं वासुदेवसमो युधि ॥ ७८ ॥
दारुकेण समायुक्तः स्वबाहुबलदर्पितः।
कच्चिदन्यं समारूढः सात्यकिः शत्रुतापनः ॥ ७९ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! सात्यकि युद्धमें भगवान् श्रीकृष्णके समान हैं। उन्होंने श्रीकृष्णके ही अजेय रथपर आरूढ़ होकर कर्णको रथहीन कर दिया। उस समय उनके साथ दारुक-जैसा सारथि था और उन्हें अपने बाहुबलका अभिमान तो था ही; परंतु शत्रुओंको संताप देनेवाले सात्यकि क्या किसी दूसरे रथपर भी आरूढ़ हुए थे? ७८-७९

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कुशलो ह्यसि भाषितुम्।
असह्यं तमहं मन्ये तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ८० ॥

मैं यह सुनना चाहता हूँ। तुम कथा कहनेमें बड़े कुशल हो। मैं तो सात्यकिको किसीके लिये भी असह्य मानता हूँ, अतः संजय! तुम मुझसे सारी बातें स्पष्टरूपसे बताओ ॥ ८० ॥

संजय उवाच

शृणु राजन् यथावृत्तं रथमन्यं महामतिः।
दारुकस्यानुजस्तूर्णं कल्पनाविधिकल्पितम् ॥ ८१ ॥

संजयने कहा—राजन्! सारा वृत्तान्त यथार्थरूपसे सुनिये। दारुकका एक छोटा भाई था, जो बड़ा बुद्धिमान् था। वह तुरंत ही रथ सजानेकी विधिसे सुसज्जित किया हुआ एक दूसरा रथ ले आया ॥ ८१ ॥

आयसैः काञ्चनैश्चापि पट्टैः संनद्धकूबरम्।
तारासहस्रखचितं सिंहध्वजपताकिनम् ॥ ८२ ॥

लोहे और सोनेके पट्टोंसे उसका कूबर अच्छी तरह

कसा हुआ था । उसमें सहस्रों तारे जड़े गये थे । उसकी ध्वजा-पताकाओंमें सिंहका चिह्न बना हुआ था ॥ ८२ ॥

अश्वैर्वातजवैर्युक्तं हेमभाण्डपरिच्छदैः ।
सैन्धवैरिन्दुसंकाशैः सर्वशब्दातिगैर्दृढैः ॥ ८३ ॥

उस रथमें सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित, वायुके समान वेगशाली, सम्पूर्ण शब्दोंको लाँघ जानेवाले, सुदृढ़ तथा चन्द्रमाके समान श्वेतवर्ण सिन्धी घोड़े जुते हुए थे ८३

चित्रकाञ्चनसंनाहैर्वाजिमुख्यैर्विशाम्पते ।
घण्टाजालाकुलरवं शक्तितोमरविद्युतम् ॥ ८४ ॥

प्रजानाथ ! उन घोड़ोंको विचित्र स्वर्णमय कवचोंसे सुसज्जित किया गया था । वे सभी अश्व अच्छी श्रेणीके थे । उनसे जुते हुए उस रथमें क्षुद्र घंटिकाओंके समूहसे निकलती हुई मधुर ध्वनि व्याप्त हो रही थी । वहाँ रक्खे हुए शक्ति और तोमर आदि शस्त्र विद्युत्के समान प्रकाशित होते थे ॥ ८४ ॥

युक्तं सांग्रामिकैर्द्रव्यैर्बहुशस्त्रपरिच्छदैः ।
रथं सम्पादयामास मेघगम्भीरनिःस्वनम् ॥ ८५ ॥

उसमें बहुत-से अस्त्र-शस्त्र आदि युद्धोपयोगी आवश्यक सामान एवं द्रव्य यथास्थान रक्खे गये थे । उस रथके चलने-पर मेघोंकी गर्जनाके समान गम्भीर शब्द होता था । दारुकका छोटा भाई उस रथको सात्यकिके पास ले आया ॥

तं समारुह्य शैनेयस्तव सैन्यमुपाद्रवत् ।
दारुकोऽपि यथाकामं प्रययौ केशवान्तिकम् ॥ ८६ ॥

सात्यकिने उसीपर आरूढ़ होकर आपकी सेना-पर आक्रमण किया । दारुक भी इच्छानुसार भगवान् श्रीकृष्णके निकट चला गया ॥ ८६ ॥

कर्णस्यापि रथं राजञ्शङ्खगोक्षीरपाण्डुरैः ।
चित्रकाञ्चनसंनाहैः सदश्वैर्वेगवत्तरैः ॥ ८७ ॥

राजन् ! कर्णके लिये भी एक सुन्दर रथ लाया गया, जिसमें शङ्ख और गोदुग्धके समान श्वेतवर्णवाले, विचित्र सुवर्णमय कवचसे सुसज्जित और अत्यन्त वेगशाली श्रेष्ठ अश्व जुते हुए थे ॥ ८७ ॥

हेमकक्ष्याध्वजोपेतं क्लृप्तयन्त्रपताकिनम् ।
अग्र्यं रथं सुयन्तारं बहुशस्त्रपरिच्छदम् ॥ ८८ ॥

उसमें सुवर्णमयी रज्जुसे आवेष्टित ध्वजा फहरा रही थी। वह रथ यन्त्र और पताकाओंसे सुशोभित था । उसके भीतर बहुत-से अस्त्र-शस्त्र आदि आवश्यक सामान रक्खे गये थे । उस श्रेष्ठ रथका सारथि भी सुयोग्य था ॥ ८८ ॥

उपाजह्रुस्तमास्थाय कर्णोऽप्यभ्यद्रवद् रिपून् ।
एतत् ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ८९ ॥

दुर्योधनके सेवक वह रथ लेकर आये और कर्णने उसके ऊपर आरूढ़ होकर शत्रुओंपर धावा किया । राजन् ! आप मुझसे जो कुछ पूछ रहे थे, वह सब मैंने आपको बता दिया॥

भूयश्चापि निबोधेमं तवापनयजं क्षयम् ।
एकत्रिंशत् तव सुता भीमसेनेन पातिताः ॥ ९० ॥
दुर्मुखं प्रमुखे कृत्वा सततं चित्रयोधिनम् ।

अब पुनः आपके ही अन्यायसे होनेवाले इस महान् जनसंहारका वृत्तान्त सुनिये । भीमसेनने अबतक सदा विचित्र युद्ध करनेवाले दुर्मुख आदि आपके इकतीस पुत्रों-को मार गिराया है ॥ ९०½ ॥

शतशो निहताः शूराः सात्वतेनार्जुनेन च ॥ ९१ ॥
भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा भगदत्तं च भारत ।
एवमेष क्षयो वृत्तो राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ ९२ ॥

भारत ! इसी प्रकार सात्यकि और अर्जुनने भी भीष्म और भगदत्त आदि सैकड़ों शूरवीरोंका संहार कर डाला है । राजन् ! इस प्रकार आपकी कुमन्त्रणाके फलस्वरूप यह विनाशकार्य सम्पन्न हुआ है ॥ ९१-९२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि कर्णसात्यकियुद्धे सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें कर्ण और सात्यकिका युद्धविषयक एक सौ सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४७ ॥

अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अर्जुनका कर्णको फटकारना और वृषसेनके वधकी प्रतिज्ञा करना, श्रीकृष्णका अर्जुनको बधाई देकर उन्हें रणभूमिका भयानक दृश्य दिखाते हुए युधिष्ठिरके पास ले जाना

धृतराष्ट्र उवाच

तथा गतेषु शूरेषु तेषां मम च संजय ।
किं वै भीमस्तदाकार्षीत् तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! जब पाण्डवपक्षके और मेरे शूरवीर सैनिक पूर्वोक्तरूपसे युद्धके लिये उद्यत हो गये, तब भीमसेनने क्या किया ? यह मुझे बताओ ॥ १ ॥

संजय उवाच

विरथो भीमसेनो वै कर्णवाक्शल्यपीडितः ।
अमर्षवशमापन्नः फाल्गुनं वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥

संजयने कहा—राजन् ! रथहीन भीमसेन कर्णके वाग्बाणोंसे पीड़ित हो अमर्षके वशीभूत हो गये थे । वे अर्जुनसे इस प्रकार बोले—॥ २ ॥

पुनः पुनस्तूबरक मूढ औदरिकेति च।
अकृतास्त्रक मा योत्सीर्बाल संग्रामकातर ॥ ३ ॥
इति मामब्रवीत् कर्णः पश्यतस्ते धनंजय।
एवं वक्ता च मे वध्यस्तेन चोक्तोऽस्मि भारत ॥ ४ ॥

'धनंजय! कर्णने तुम्हारे सामने ही मुझसे बारंबार कहा है कि 'अरे! तू निमूछिया, मूर्ख, पेटू, अस्त्रविद्याको न जाननेवाला, बालक और संग्रामभीरु है; अतः युद्ध न कर।' भारत! जो ऐसा कह दे, वह मेरा वध्य होता है। उसने मुझे ऐसा कह दिया ॥ ३-४ ॥

एतद् व्रतं महाबाहो त्वया सह कृतं मया।
तथैतन्मम कौन्तेय यथा तव न संशयः ॥ ५ ॥

'महाबाहु कुन्तीकुमार! ऐसा कहनेवालेके वधकी यह प्रतिज्ञा मैंने तुम्हारे साथ ही की थी। यह कर्णका वध जैसे मेरा कार्य है, वैसे ही तुम्हारा भी है, इसमें संशय नहीं है ॥ ५ ॥

तद्वधाय नरश्रेष्ठ स्मरैतद् वचनं मम।
यथा भवति तत् सत्यं तथा कुरु धनंजय ॥ ६ ॥

'नरश्रेष्ठ! कर्णके वधके लिये तुम मेरे इस कथनपर भी ध्यान दो। धनंजय! जैसे भी मेरी वह प्रतिज्ञा सत्य हो सके, वैसा प्रयत्न करो' ॥ ६ ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य भीमस्यामितविक्रमः।
ततोऽर्जुनोऽब्रवीत् कर्णं किंचिदभ्येत्य संयुगे ॥ ७ ॥

भीमसेनका यह वचन सुनकर अमित पराक्रमी अर्जुन युद्धस्थलमें कर्णके कुछ निकट जाकर उससे इस प्रकार बोले—॥ ७ ॥

कर्ण कर्ण वृथादृष्टे सूतपुत्रात्मसंस्तुत।
अधर्मबुद्धे शृणु मे यत् त्वां वक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥ ८ ॥

'कर्ण! कर्ण! तेरी दृष्टि मिथ्या है। सूतपुत्र! तू स्वयं ही अपनी प्रशंसा करता है। अधर्मबुद्धे! मैं इस समय तुझसे जो कुछ कहता हूँ, उसे सुन ॥ ८ ॥

द्विविधं कर्म शूराणां युद्धे जयपराजयौ।
तौ चाप्यनित्यौ राधेय वासवस्यापि युध्यतः ॥ ९ ॥

'राधानन्दन! युद्धमें शूरवीरोंके दो प्रकारके कर्म (परिणाम) देखे जाते हैं—जय और पराजय। यदि इन्द्र भी युद्ध करें तो उनके लिये भी वे दोनों परिणाम अनिश्चित हैं (अर्थात् यह निश्चित नहीं कि कब किसकी विजय होगी और कब किसकी पराजय) ॥ ९ ॥

(रणमुत्सृज्य निर्लज्ज गच्छसे वै पुनः पुनः।
माहात्म्यं पश्य भीमस्य कर्ण जन्म कुले तथा ॥
नोक्तवान् परुषं यत् त्वां पलायनपरायणम्।

'ओ निर्लज्ज कर्ण! तू बार-बार युद्ध छोड़कर भाग जाता है, तो भी तुझ भागते हुएके प्रति भीमसेनने कोई कटु वचन नहीं कहा। भीमसेनके इस माहात्म्यको और उनके उत्तम कुलमें जन्म लेनेके कारण प्राप्त हुए अच्छे शील-स्वभावको प्रत्यक्ष देख ले ॥

भूयस्त्वमपि सङ्गम्य सकृदेव यदृच्छया ॥
विरथं कृतवान् वीरं पाण्डवं सूतदायद।
कुलस्य सदृशं चापि राधेय कृतवानसि ॥

'सूतपुत्र! फिर तूने भी पुनः युद्ध करके केवल एक ही बार दैवेच्छासे पाण्डुपुत्र वीरवर भीमसेनको रथहीन किया है। राधापुत्र! तूने भीमको कटुवचन सुनाकर अपने कुलके अनुरूप कार्य किया है ॥

त्वमिदानीं नरश्रेष्ठ प्रस्तुतं नावबुध्यसे।
शृगाल इव वन्यान् वै क्षत्रं त्वमवमन्यसे ॥
पित्र्यं कर्मास्य संग्रामस्तव तस्य कुलोचितम्।

'नरश्रेष्ठ! इस समय जो संकट तेरे सामने प्रस्तुत है, उसे तू नहीं जानता है। जैसे सियार जंगली व्याघ्र आदि जन्तुओंकी अवहेलना करे, उसी प्रकार तू भी क्षत्रियसमाजका अपमान कर रहा है। संग्राम भीमसेनका तो पैतृक कर्म है और तेरा काम तेरे कुलके अनुरूप रथ हाँकना है ॥

अहं त्वामपि राधेय ब्रवीमि रणमूर्धनि ॥
सर्वशस्त्रभृतां मध्ये कुरु कार्याणि सर्वशः।
नैकान्तसिद्धिः संग्रामे वासवस्यापि विद्यते ॥)

'राधापुत्र! मैं इस युद्धके मुहानेपर सम्पूर्ण शस्त्रधारी योद्धाओंके बीचमें तुझसे कहे देता हूँ, तू अपने सारे कार्य सब प्रकारसे पूर्ण कर ले। संग्राममें इन्द्रको भी एकान्ततः सिद्धि नहीं प्राप्त होती ॥

मुमूर्षुर्युयुधानेन विरथो विकलेन्द्रियः।
मद्वध्यस्त्वमिति ज्ञात्वा जित्वा जीवन् विसर्जितः ॥ १० ॥

'सात्यकिने तुझे रथहीन करके मृत्युके निकट पहुँचा दिया था। तेरी सारी इन्द्रियाँ व्याकुल हो उठी थीं, तो भी 'तू मेरा वध्य है' यह जानकर उन्होंने तुझे जीतकर भी जीवित छोड़ दिया ॥ १० ॥

यदृच्छया रणे भीमं युध्यमानं महाबलम्।
कथंचिद् विरथं कृत्वा यत् त्वं रूक्षमभाषथाः ॥ ११ ॥
अधर्मस्त्वेष सुमहाननार्यचरितं च तत्।

'परंतु तूने रणभूमिमें युद्धपरायण महाबली भीमसेनको दैवेच्छासे किसी प्रकार रथहीन करके जो उनके प्रति कठोर बातें कही थीं, यह तेरा महान् अधर्म है। नीच मनुष्य वैसा कार्य करते हैं ॥ ११½ ॥

नार्रि जित्वातिकत्थन्ते न च जल्पन्ति दुर्वचः ॥ १२ ॥
न च कञ्चन निन्दन्ति सन्तः शूरा नरर्षभाः।

'नरश्रेष्ठ शूरवीर सज्जन शत्रुको जीतकर बढ़-बढ़कर बातें

नहीं बनाते, किसीको कटु वचन नहीं कहते और न किसीकी निन्दा ही करते हैं ॥ १२½ ॥

त्वं तु प्राकृतविज्ञानस्तत् तद् वदसि सूतज ॥ १३ ॥
बह्वबद्धमकर्ण्यं च चापलादपरीक्षितम् ।

'सूतपुत्र ! तेरी बुद्धि बहुत ओछी है। इसीलिये तू चपलतावश बिना जाँचे-बूझे बहुत-सी न सुननेयोग्य असम्बद्ध बातें बक जाया करता है ॥ १३½ ॥

युध्यमानं पराक्रान्तं शूरमार्यव्रते रतम् ॥ १४ ॥
यदवोचोऽप्रियं भीमं नैतत् सत्यं वचस्तव ।

'तूने युद्धमें संलग्न, श्रेष्ठ व्रतके पालनमें तत्पर, पराक्रमी और शूरवीर भीमसेनके प्रति जो अप्रिय वचन कहा है, तेरा यह कथन ठीक नहीं है ॥ १४½ ॥

पश्यतां सर्वसैन्यानां केशवस्य ममैव च ॥ १५ ॥
विरथो भीमसेनेन कृतोऽसि बहुशो रणे ।

'सारी सेनाओंके देखते-देखते मेरे और श्रीकृष्णके सामने युद्धस्थलमें भीमसेनने तुझे अनेक बार रथहीन कर दिया है ॥ १५½ ॥

न च त्वां परुषं किंचिदुक्तवान् पाण्डुनन्दनः ॥ १६ ॥
यस्मात् तु बहु रूक्षं च श्रावितस्ते वृकोदरः ।
परोक्षं यच्च सौभद्रो युष्माभिर्निहतो मम ॥ १७ ॥
तस्मादस्यावलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि ।

'परंतु उन पाण्डुनन्दन भीमने तुझसे कोई कटु वचन नहीं कहा। तूने जो भीमको बहुत-सी रूखी बातें सुनायी हैं और मेरे परोक्षमें तुमलोगोंने जो मेरे पुत्र सुभद्राकुमार अभिमन्युको अन्यायपूर्वक मार डाला है, अपने उस घमंडका तत्काल ही उचित फल तू प्राप्त कर ले ॥ १६-१७½ ॥

त्वया तस्य धनुश्छिन्नमात्मनाशाय दुर्मते ॥ १८ ॥
तस्माद् वध्योऽसि मे मूढ सभृत्यसुतबान्धवः ।

'दुर्मते ! मूढ ! तूने अपने विनाशके लिये अभिमन्युका धनुष काट दिया था, अतः तू मेरेद्वारा भृत्य, पुत्र तथा बन्धु-बान्धवोंसहित प्राणदण्ड पानेयोग्य है ॥ १८½ ॥

कुरु त्वं सर्वकृत्यानि महत् ते भयमागतम् ॥ १९ ॥
हन्तास्मि वृषसेनं ते प्रेक्षमाणस्य संयुगे ।

'तू अपने सारे कर्तव्य पूर्ण कर ले। तुझे भारी भय आ पहुँचा है। मैं युद्धस्थलमें तेरे देखते-देखते तेरे पुत्र वृषसेनको मार डालूँगा ॥ १९½ ॥

ये चान्येऽप्युपयास्यन्ति बुद्धिमोहेन मां नृपाः ॥ २० ॥
तांश्च सर्वान् हनिष्यामि सत्येनायुधमालभे ।

'दूसरे भी जो राजा अपनी बुद्धिपर मोह छा जानेके कारण मेरे समीप आ जायँगे, उन सबका संहार कर डालूँगा। इस सत्यको सामने रखकर मैं अपना धनुष छूता (शपथ खाता) हूँ ॥ २०½ ॥

त्वां च मूढाकृतप्रज्ञमतिमानिनमाहवे ॥ २१ ॥
दृष्ट्वा दुर्योधनो मन्दो भृशं तप्स्यति पातितम् ।

'ओ मूढ ! तुझ अपवित्र बुद्धिवाले अत्यन्त घमंडी सहायकको युद्धस्थलमें धराशायी हुआ देखकर मूर्ख दुर्योधनको भी बड़ा पश्चात्ताप होगा' ॥ २१½ ॥

अर्जुनेन प्रतिज्ञाते वधे कर्णसुतस्य तु ॥ २२ ॥
महान् सुतुमुलः शब्दो बभूव रथिनां तदा ।

इस प्रकार अर्जुनके द्वारा कर्णपुत्र वृषसेनके वधकी प्रतिज्ञा होनेपर उस समय वहाँ रथियोंका महान् एवं भयंकर कोलाहल छा गया ॥ २२½ ॥

तस्मिन्नाकुलसंग्रामे वर्तमाने महाभये ॥ २३ ॥
मन्दरश्मिः सहस्रांशुरस्तं गिरिमुपाद्रवत् ।

उस महाभयानक तुमुल संग्रामके छिड़ जानेपर मन्द किरणोंवाले भगवान् सूर्यदेव अस्ताचलको चले गये ॥ २३½ ॥

ततो राजन् हृषीकेशः संग्रामशिरसि स्थितम् ॥ २४ ॥
तीर्णप्रतिज्ञं बीभत्सुं परिष्वज्यैनमब्रवीत् ।

राजन् ! तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णने प्रतिज्ञासे पार होकर युद्धके मुहानेपर खड़े हुए अर्जुनको हृदयसे लगाकर इस प्रकार कहा—॥ २४½ ॥

दिष्ट्या सम्पादिता जिष्णो प्रतिज्ञा महती त्वया ॥ २५ ॥
दिष्ट्या विनिहतः पापो वृद्धक्षत्रः सहात्मजः ।

'विजयशील अर्जुन ! बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुमने अपनी बड़ी भारी प्रतिज्ञा पूरी कर ली। सौभाग्यसे पापी वृद्धक्षत्र पुत्रसहित मारा गया ॥ २५½ ॥

धार्तराष्ट्रबलं प्राप्य देवसेनापि भारत ॥ २६ ॥
सीदेत समरे जिष्णो नात्र कार्या विचारणा ।

'भारत ! दुर्योधनकी सेनामें पहुँचकर समरभूमिमें देवताओंकी सेना भी शिथिल हो सकती है। जिष्णो ! इस विषयमें कोई दूसरा विचार नहीं करना चाहिये ॥ २६½ ॥

न तं पश्यामि लोकेषु चिन्तयन् पुरुषं क्वचित् ॥ २७ ॥
त्वदृते पुरुषव्याघ्र य एतद् योधयेद् बलम् ।

'पुरुषसिंह ! मैं बहुत सोचनेपर भी तीनों लोकोंमें कहीं तुम्हारे सिवा किसी दूसरे पुरुषको ऐसा नहीं देखता, जो इस सेनाके साथ युद्ध कर सके ॥ २७½ ॥

महाप्रभावा बहवस्त्वया तुल्याधिकाऽपि वा ॥ २८ ॥
समेताः पृथिवीपाला धार्तराष्ट्रस्य कारणात् ।

'धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनके लिये बहुत-से महान् प्रभावशाली राजा यहाँ एकत्र हो गये हैं, जिनमेंसे कितने ही तुम्हारे समान या तुमसे भी अधिक बलशाली हैं ॥ २८½ ॥

ते त्वां प्राप्य रणे क्रुद्धा नाभ्यवर्तन्त दंशिताः ॥ २९ ॥
तव वीर्यं बलं चैव रुद्रशक्रान्तकोपमम् ।

'वे भी रणक्षेत्रमें कवच बाँधकर कुपित हो तुम्हारा सामना करनेके लिये आये, परंतु टिक न सके । तुम्हारा बल और पराक्रम रुद्र, इन्द्र तथा यमराजके समान है ॥२९½॥

नेदृशं शक्नुयात् कश्चिद् रणे कर्तुं पराक्रमम् ॥ ३० ॥
यादृशं कृतवानद्य त्वमेकः शत्रुतापनः ।

'युद्धमें कोई भी ऐसा पराक्रम नहीं कर सकता, जैसा कि आज तुमने अकेले ही कर दिखाया है। वास्तवमें तुम शत्रुओं-को संताप देनेवाले हो ॥ ३०½ ॥

एवमेव हते कर्णे सानुबन्धे दुरात्मनि ॥ ३१ ॥
वर्धयिष्यामि भूयस्त्वां विजितारिं हतद्विषम् ।

'इसी प्रकार सगे-सम्बन्धियोंसहित दुरात्मा कर्णके मारे जानेपर शत्रुओंको जीतने और द्वेषी विपक्षियोंको मार डालने-वाले तुझ विजयी वीरको पुनः बधाई दूँगा' ॥ ३१½ ॥

तमर्जुनः प्रत्युवाच प्रसादात् तव माधव ॥ ३२ ॥
प्रतिज्ञेयं मया तीर्णा विबुधैरपि दुस्तरा ।

तब अर्जुनने उनकी बातोंका उत्तर देते हुए कहा—'माधव ! आपकी कृपासे ही मैं इस प्रतिज्ञाको पार कर सका हूँ; अन्यथा इसका पार पाना देवताओंके लिये भी कठिन था ॥ ३२½ ॥

अनाश्चर्यो जयस्तेषां येषां नाथोऽसि केशव ॥ ३३ ॥
त्वत्प्रसादान्महीं कृत्स्नां सम्प्राप्स्यति युधिष्ठिरः ।
तव प्रभावो वार्ष्णेय तवैव विजयः प्रभो ।
वर्धनीयास्तव वयं सदैव मधुसूदन ॥ ३४ ॥

'केशव ! आप जिनके रक्षक हैं, उनकी विजय हो, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । आपके कृपा-प्रसादसे राजा युधिष्ठिर सम्पूर्ण भूमण्डलका राज्य प्राप्त कर लेंगे । वृष्णिनन्दन ! प्रभो ! यह आपका ही प्रभाव और आपकी ही विजय है। मधुसूदन ! आपकी बधाईके पात्र तो हमलोग सदा ही बने रहेंगे' ॥ ३३-३४ ॥

एवमुक्तस्ततः कृष्णः शनकैर्वाहयन् हयान् ।
दर्शयामास पार्थाय क्रूरमायोधनं महत् ॥ ३५ ॥

अर्जुनके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने धीरे-धीरे घोड़ोंको बढ़ाते हुए उस विशाल एवं क्रूरतापूर्ण संग्रामका दृश्य अर्जुनको दिखाना आरम्भ किया ॥ ३५ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

प्रार्थयन्तो जयं युद्धे प्रथितं च महद् यशः ।
पृथिव्यां शेरते शूराः पार्थिवास्त्वच्छरैर्हताः ॥ ३६ ॥

श्रीकृष्ण बोले—अर्जुन ! युद्धमें विजय और सब ओर फैले हुए महान् सुयशकी अभिलाषा रखनेवाले ये शूरवीर भूपाल तुम्हारे बाणोंसे मरकर पृथ्वीपर सो रहे हैं ॥ ३६ ॥



विकीर्णशस्त्राभरणा विपन्नाश्वरथद्विपाः ।
संछिन्नभिन्नमर्माणो वैक्लव्यं परमं गताः ॥ ३७ ॥

इनके अस्त्र-शस्त्र और आभूषण बिखरे पड़े हैं, घोड़े, रथ और हाथी नष्ट हो गये हैं तथा मर्मस्थल छिन्न-भिन्न हो जानेके कारण ये नरेश भारी व्याकुलतामें पड़ गये हैं ॥३७॥

ससत्त्वा गतसत्त्वाश्च प्रभया परया युताः ।
सजीवा इव लक्ष्यन्ते गतसत्त्वा नराधिपाः ॥ ३८ ॥

कितने ही राजाओंके प्राण चले गये हैं और कितनोंके प्राण अभी नहीं निकले हैं । जिनके प्राण निकल गये हैं, वे नरेश भी अत्यन्त कान्तिसे प्रकाशित होनेके कारण जीवित-से दिखायी देते हैं ॥ ३८ ॥

तेषां शरैः स्वर्णपुङ्खैः शस्त्रैश्च विविधैः शितैः ।
वाहनैरायुधैश्चैव सम्पूर्णां पश्य मेदिनीम् ॥ ३९ ॥

देखो, यह सारी पृथ्वी उन राजाओंके सुवर्णमय पंख-वाले बाणों, तेज धारवाले नाना प्रकारके शस्त्रों, वाहनों और आयुधोंसे भरी हुई है ॥ ३९ ॥

वर्मभिश्चर्मभिर्हारैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
उष्णीषैर्मुकुटैः स्रग्भिश्चूडामणिभिरम्बरैः ॥ ४० ॥
कण्ठसूत्रैरङ्गदैश्च निष्कैरपि च सप्रभैः ।
अन्यैश्चाभरणैश्चित्रैर्भाति भारत मेदिनी ॥ ४१ ॥

भारत ! चारों ओर गिरे हुए कवच, ढाल, हार, कुण्डलयुक्त मस्तक, पगड़ी, मुकुट, माला, चूड़ामणि, वस्त्र, कण्ठसूत्र, बाजूबंद, चमकीले निष्क एवं अन्यान्य विचित्र आभूषणोंसे इस रणभूमिकी बड़ी शोभा हो रही है ॥४०-४१॥

अनुकर्षैरुपासङ्गैः पताकाभिर्ध्वजैस्तथा ।
उपस्करैरधिष्ठानैरीषादण्डकबन्धुरैः ॥ ४२ ॥
चक्रैः प्रमथितैश्चित्रैरक्षैश्च बहुधा रणे ।
युगैर्योक्त्रैः कलापैश्च धनुर्भिः सायकैस्तथा ॥ ४३ ॥
परिस्तोमैः कुथाभिश्च परिघैरङ्कुशैस्तथा ।
शक्तिभिर्भिन्दिपालैश्च तूणैः शूलैः परश्वधैः ॥ ४४ ॥
प्रासैश्च तोमरैश्चैव कुन्तैर्यष्टिभिरेव च ।
शतघ्नीभिर्भुशुण्डीभिः खड्गैः परशुभिस्तथा ॥ ४५ ॥
मुसलैर्मुद्गरैश्चैव गदाभिः कुणपैस्तथा ।
सुवर्णविकृताभिश्च कशाभिर्भरतर्षभ ॥ ४६ ॥
घण्टाभिश्च गजेन्द्राणां भाण्डैश्च विविधैरपि ।
स्रग्भिश्च नानाभरणैर्वस्त्रैश्चैव महाधनैः ॥ ४७ ॥
अपविद्धैर्बभौ भूमिर्ग्रहैर्द्यौरिव शारदी ।

बहुत-से अनुकर्ष, उपासङ्ग, पताका, ध्वज, सजावटकी सामग्री, बैठक, ईषादण्ड, बन्धनरज्जु, टूटे-फूटे पहिये, विचित्र धुरे, नाना प्रकारके जुए, जोत, लगाम, धनुष-बाण, हाथीकी रंगीन झूल, हाथीकी पीठपर बिछाये जानेवाले गलीचे, परिघ, अङ्कुश, शक्ति, भिन्दिपाल, तरकस, शूल, फरसे, प्रास, तोमर, कुन्त, डंडे, शतघ्नी, भुसुण्डी, खड्ग, परशु, मुसल, मुद्गर, गदा, कुणप, सोनेके चाबुक, गजराजोंके घण्टे, नाना प्रकारके हौदे और जीन, माला, भाँति-भाँतिके अलंकार तथा बहुमूल्य वस्त्र रणभूमिमें सब ओर बिखरे पड़े हैं। भरतश्रेष्ठ ! इनके द्वारा यह भूमि नक्षत्रोंद्वारा शरदृतुके आकाशकी भाँति सुशोभित हो रही है ॥ ४२—४७½ ॥

पृथिव्यां पृथिवीहेतोः पृथिवीपतयो हताः ॥ ४८ ॥
पृथिवीमुपगुह्याङ्गैः सुप्ताः कान्तामिव प्रियाम् ।

इस पृथ्वीके राज्यके लिये मारे गये ये पृथ्वीपति अपने सम्पूर्ण अंगोंद्वारा प्यारी प्राणवल्लभाके समान इस भूमिका आलिंगन करके इसपर सो रहे हैं ॥ ४८½ ॥

इमांश्च गिरिकूटाभान् नागानैरावतोपमान् ॥ ४९ ॥
क्षरतः शोणितं भूरि शस्त्रच्छेददरीमुखैः ।
दरीमुखैरिव गिरीन् गैरिकाम्बुपरिस्रवान् ॥ ५० ॥
तांश्च बाणहतान् वीर पश्य निष्टनतः क्षितौ ।

वीर ! देखो, ये पर्वतशिखरके समान प्रतीत होनेवाले ऐरावत-जैसे हाथी शस्त्रोंद्वारा बने हुए घावोंके छिद्रसे उसी प्रकार अधिकाधिक रक्तकी धारा बहा रहे हैं, जैसे पर्वत अपनी कन्दराओंके मुखसे गेरुमिश्रित जलके झरने बहाया करते हैं। वे बाणोंसे मारे जाकर धरतीपर लोट रहे हैं ॥ ४९-५०½ ॥

हयांश्च पतितान् पश्य स्वर्णभाण्डविभूषितान् ॥ ५१ ॥
गन्धर्वनगराकारान् रथांश्च निहतेश्वरान् ।
छिन्नध्वजपताकाक्षान् विचक्रान् हतसारथीन् ॥ ५२ ॥

सोनेके जीन एवं साजबाजसे विभूषित इन घोड़ोंको तो देखो, ये भी प्राणशून्य होकर पड़े हैं। ये रथ जिनके स्वामी मारे गये हैं, गन्धर्वनगरके समान दिखायी देते हैं। इनकी ध्वजा, पताका और धुरे छिन्न-भिन्न हो गये हैं, पहिये नष्ट हो चुके हैं और सारथि भी मार डाले गये हैं ॥ ५१-५२ ॥

निकृत्तकूबरयुगान् भग्नेषाबन्धुरान् प्रभो ।
पश्य पार्थ हयान् भूमौ विमानोपमदर्शनान् ॥ ५३ ॥

प्रभो ! इन रथोंके कूबर और जुए खण्डित हो गये हैं। ईषादण्ड टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये हैं और इनकी बन्धनरज्जुओंकी भी धज्जियाँ उड़ गयी हैं। पार्थ ! भूमिपर पड़े हुए इन घोड़ोंको तो देखो, ये विमानके समान दिखायी दे रहे हैं ॥ ५३ ॥

पत्तींश्च निहतान् वीर शतशोऽथ सहस्रशः ।
धनुर्भृतश्चर्मभृतः शयानान् रुधिरोक्षितान् ॥ ५४ ॥

वीर ! अपने मारे हुए इन सैकड़ों और हजारों पैदल सैनिकोंको देखो, जो धनुष और ढाल लिये खूनसे लथपथ हो धरतीपर सो रहे हैं ॥ ५४ ॥

महीमालिङ्ग्य सर्वाङ्गैः पांसुध्वस्तशिरोरुहान् ।
पश्य योधान् महाबाहो त्वच्छरैर्भिन्नविग्रहान् ॥ ५५ ॥

महाबाहो ! तुम्हारे बाणोंसे जिनके शरीर छिन्न-भिन्न हो रहे हैं, उन योद्धाओंकी दशा तो देखो। उनके बाल धूलमें सन गये हैं और वे अपने सम्पूर्ण अङ्गोंसे इस पृथ्वीका आलिङ्गन करके सो रहे हैं ॥ ५५ ॥

निपातितद्विपरथवाजिसंकुल-
मसृग्वसापिशितसमृद्धकर्दमम् ।
निशाचरश्ववृकपिशाचमोदनं
महीतलं नरवर पश्य दुर्दृशम् ॥ ५६ ॥

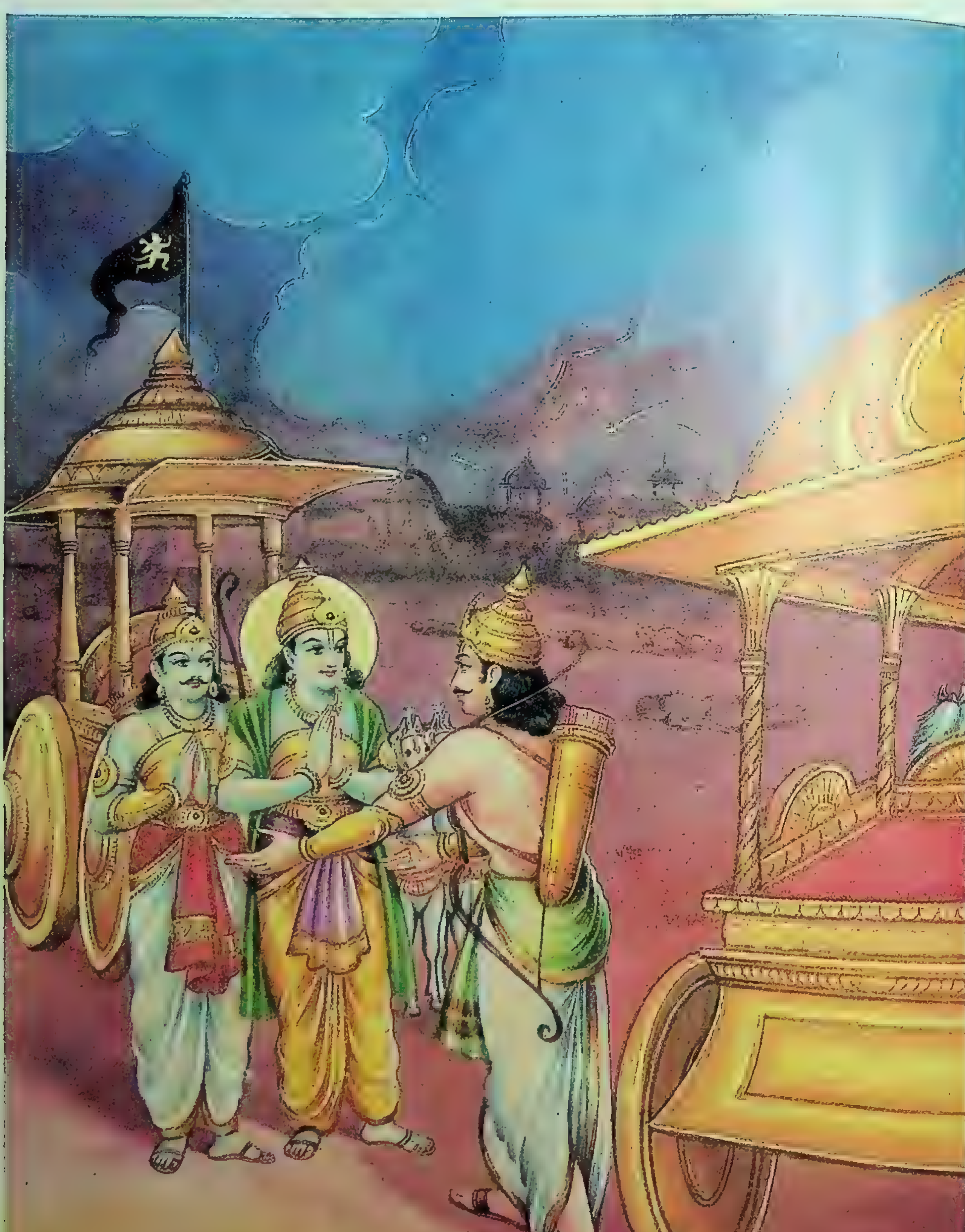
नरश्रेष्ठ ! इस भूतलकी दशा देख लो। इसकी ओर दृष्टि डालना कठिन हो रहा है। यह मारे गये हाथियों, चौपट हुए रथों और मरे हुए घोड़ोंसे पट गया है। रक्त, चर्बी और मांससे यहाँ कीच जम गयी है। यह रणभूमि निशाचरों, कुत्तों, भेड़ियों और पिशाचोंके लिये आनन्ददायिनी बन गयी है ॥ ५६ ॥

इदं महत् त्वय्युपपद्यते प्रभो
रणाजिरे कर्म यशोभिवर्धनम् ।
शतक्रतौ चापि च देवसत्तमे
महाहवे जघ्नुषि दैत्यदानवान् ॥ ५७ ॥

प्रभो ! समराङ्गणमें यह यशोवर्धक महान् कर्म करनेकी शक्ति तुममें तथा महायुद्धमें दैत्यों और दानवोंका संहार करनेवाले देवराज इन्द्रमें ही सम्भव है ॥ ५७ ॥

संजय उवाच

एवं संदर्शयन् कृष्णो रणभूमिं किरीटिने ।



जयद्रथवध के पश्चात् श्रीकृष्ण और अर्जुन का युधिष्ठिर से मिलना

स्वैः समेतः समुदितैः पाञ्चजन्यं व्यनादयत् ॥ ५८ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! इस प्रकार किरीटधारी अर्जुनको रणभूमिका दृश्य दिखाते हुए भगवान् श्रीकृष्णने वहाँ जुटे हुए स्वजनोंसहित पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया ॥५८॥

स दर्शयन्नेव किरीटिनेऽरिहा
जनार्दनस्तामरिभूमिमञ्जसा ।
अजातशत्रुं समुपेत्य पाण्डवं
निवेदयामास हतं जयद्रथम् ॥ ५९ ॥

शत्रुसूदन भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको इस प्रकार रणभूमिका दृश्य दिखाते हुए अनायास ही अजातशत्रु पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरके पास पहुँचकर उनसे यह निवेदन किया कि जयद्रथ मारा गया ॥ ५९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें एक सौ अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ६ श्लोक मिलाकर कुल ६५ श्लोक हैं)

एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका युधिष्ठिरसे विजयका समाचार सुनाना और युधिष्ठिरद्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति तथा अर्जुन, भीम एवं सात्यकिका अभिनन्दन

संजय उवाच

ततो राजानमभ्येत्य धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
ववन्दे स प्रहृष्टात्मा हते पार्थेन सैन्धवे ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर अर्जुनद्वारा सिंधुराज जयद्रथके मारे जानेपर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरके पास पहुँच कर भगवान् श्रीकृष्णने हर्षपूर्ण हृदयसे उन्हें प्रणाम किया और कहा—॥ १ ॥

दिष्ट्या वर्धसि राजेन्द्र हतशत्रुर्नरोत्तम ।
दिष्ट्या निस्तीर्णवांश्चैव प्रतिज्ञामनुजस्तव ॥ २ ॥

'राजेन्द्र! सौभाग्यसे आपका अभ्युदय हो रहा है। नरश्रेष्ठ! आपका शत्रु मारा गया। आपके छोटे भाईने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर ली, यह महान् सौभाग्यकी बात है'॥

स त्वेवमुक्तः कृष्णेन हृष्टः परपुरंजयः ।
ततो युधिष्ठिरो राजा रथादाप्लुत्य भारत ॥ ३ ॥
पर्यष्वजत् तदा कृष्णावानन्दाश्रुपरिप्लुतः ।

भारत! भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर शत्रुओंकी राजधानीपर विजय पानेवाले राजा युधिष्ठिर हर्षमें भरकर अपने रथसे कूद पड़े और आनन्दके आँसू बहाते हुए उन्होंने उस समय श्रीकृष्ण और अर्जुनको हृदयसे लगा लिया॥३½॥

प्रमृज्य वदनं शुभ्रं पुण्डरीकसमप्रभम् ॥ ४ ॥
अब्रवीद् वासुदेवं च पाण्डवं च धनंजयम् ।

फिर उनके कमलके समान कान्तिमान् सुन्दर मुखपर हाथ फेरते हुए वे वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण और पाण्डुपुत्र अर्जुनसे इस प्रकार बोले—॥ ४½ ॥

प्रियमेतदुपश्रुत्य त्वत्तः पुष्करलोचन ॥ ५ ॥
नान्तं गच्छामि हर्षस्य तितीर्षुरुदधेरिव ।
अत्यद्भुतमिदं कृष्ण कृतं पार्थेन धीमता ॥ ६ ॥

'कमलनयन कृष्ण! जैसे तैरनेकी इच्छावाला पुरुष समुद्रका पार नहीं पाता, उसी प्रकार आपके मुखसे यह प्रिय समाचार सुनकर मेरे हर्षकी सीमा नहीं रह गयी है। बुद्धिमान् अर्जुनने यह अत्यन्त अद्भुत पराक्रम किया है॥

दिष्ट्या पश्यामि संग्रामे तीर्णभारौ महारथौ ।
दिष्ट्या विनिहतः पापः सैन्धवः पुरुषाधमः ॥ ७ ॥

'आज सौभाग्यवश संग्रामभूमिमें मैं आप दोनों महारथियोंको प्रतिज्ञाके भारसे मुक्त हुआ देखता हूँ। यह बड़े हर्षकी बात है कि पापी नराधम सिंधुराज जयद्रथ मारा गया॥

कृष्ण दिष्ट्या मम प्रीतिर्महती प्रतिपादिता ।
त्वया गुप्तेन गोविन्द घ्नता पापं जयद्रथम् ॥ ८ ॥

'श्रीकृष्ण! गोविन्द! सौभाग्यवश आपके द्वारा सुरक्षित हुए अर्जुनने पापी जयद्रथको मारकर मुझे महान् हर्ष प्रदान किया है ॥ ८ ॥

किं तु नात्यद्भुतं तेषां येषां नस्त्वं समाश्रयः ।
न तेषां दुष्कृतं किंचित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ ९ ॥
सर्वलोकगुरुर्येषां त्वं नाथो मधुसूदन ।
त्वत्प्रसादाद्धि गोविन्द वयं जेष्यामहे रिपून् ॥ १० ॥

'परंतु जिनके आप आश्रय हैं, उन हमलोगोंके लिये विजय और सौभाग्यकी प्राप्ति अत्यन्त अद्भुत बात नहीं है। मधुसूदन! सम्पूर्ण जगत्के गुरु आप जिनके रक्षक हैं, उनके लिये तीनों लोकोंमें कहीं कुछ भी दुष्कर नहीं है। गोविन्द! हम आपकी कृपासे शत्रुओंपर निश्चय ही विजय पायेंगे॥

स्थितः सर्वात्मना नित्यं प्रियेषु च हितेषु च ।
त्वां चैवास्माभिराश्रित्य कृतः शस्त्रसमुद्यमः ॥ ११ ॥
सुरैरिवासुरवधे शक्रं शक्रानुजाहवे ।

'उपेन्द्र! आप सदा सब प्रकारसे हमारे प्रिय और हितसाधनमें लगे हुए हैं। हमलोगोंने आपका ही आश्रय लेकर शस्त्रोंद्वारा युद्धकी तैयारी की है। ठीक उसी तरह, जैसे देवता इन्द्रका आश्रय लेकर युद्धमें असुरोंके वधका उद्योग करते हैं॥ ११½ ॥

असम्भाव्यमिदं कर्म देवैरपि जनार्दन ॥ १२ ॥
त्वद्बुद्धिबलवीर्येण कृतवानेष फाल्गुनः ।

'जनार्दन ! आपकी ही बुद्धि, बल और पराक्रमसे इस अर्जुनने यह देवताओंके लिये भी असम्भव कर्म कर दिखाया है॥

बाल्यात् प्रभृति ते कृष्ण कर्माणि श्रुतवानहम् ॥ १३ ॥
अमानुषाणि दिव्यानि महान्ति च बहूनि च ।
तदैवाज्ञासिषं शत्रून् हतान् प्राप्तां च मेदिनीम्॥ १४ ॥

'श्रीकृष्ण ! बाल्यावस्थासे ही आपने जो बहुत-से अलौकिक, दिव्य एवं महान् कर्म किये हैं, उन्हें जबसे मैंने सुना है, तभीसे यह निश्चितरूपसे जान लिया है कि मेरे शत्रु मारे गये और मैंने भूमण्डलका राज्य प्राप्त कर लिया॥१३-१४॥

त्वत्प्रसादसमुत्थेन विक्रमेणारिसूदन ।
सुरेशत्वं गतः शक्रो हत्वा दैत्यान् सहस्रशः ॥ १५ ॥

'शत्रुसूदन ! आपकी कृपासे प्राप्त हुए पराक्रमद्वारा इन्द्र सहस्रों दैत्योंका संहार करके देवराजके पदपर प्रतिष्ठित हुए हैं ॥ १५ ॥

त्वत्प्रसादाद्धृषीकेश जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
स्ववर्त्मनि स्थितं वीर जपहोमेषु वर्तते ॥ १६ ॥

'वीर हृषीकेश ! आपके ही प्रसादसे यह स्थावर-जङ्गम-रूप जगत् अपनी मर्यादामें स्थित रहकर जप और होम आदि सत्कर्मोंमें संलग्न होता है ॥ १६ ॥

एकार्णवमिदं पूर्वं सर्वमासीत् तमोमयम् ।
त्वत्प्रसादान्महाबाहो जगत् प्राप्तं नरोत्तम ॥ १७ ॥

'महाबाहो ! नरश्रेष्ठ ! पहले यह सारा जगत् एकार्णवके जलमें निमग्न हो अन्धकारमें विलीन हो गया था । फिर आपकी ही कृपादृष्टिसे यह वर्तमान रूपमें उपलब्ध हुआ है ॥

स्रष्टारं सर्वलोकानां परमात्मानमव्ययम् ।
ये पश्यन्ति हृषीकेशं न ते मुह्यन्ति कर्हिचित् ॥ १८ ॥

'जो सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि करनेवाले आप अविनाशी परमात्मा हृषीकेशका दर्शन पा जाते हैं, वे कभी मोहके वशीभूत नहीं होते हैं ॥ १८ ॥

पुराणं परमं देवं देवदेवं सनातनम् ।
ये प्रपन्नाः सुरगुरुं न ते मुह्यन्ति कर्हिचित् ॥ १९ ॥

'आप पुराण पुरुष, परमदेव, देवताओंके भी देवता, देवगुरु एवं सनातन परमात्मा हैं । जो लोग आपकी शरणमें जाते हैं, वे कभी मोहमें नहीं पड़ते हैं ॥ १९ ॥

अनादिनिधनं देवं लोककर्तारमव्ययम् ।
ये भक्तास्त्वां हृषीकेश दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥ २० ॥

'हृषीकेश ! आप आदि-अन्तसे रहित विश्व-विधाता और अविकारी देवता हैं । जो आपके भक्त हैं, वे बड़े-बड़े संकटोंसे पार हो जाते हैं ॥ २० ॥

परं पुराणं पुरुषं पराणां परमं च यत् ।
प्रपद्यतस्तत् परमं परा भूतिर्विधीयते ॥ २१ ॥

'आप परम पुरातन पुरुष हैं । परसे भी पर हैं । आप परमेश्वरकी शरण लेनेवाले पुरुषको परम ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है ॥ २१ ॥

गायन्ति चतुरो वेदा यश्च वेदेषु गीयते ।
तं प्रपद्य महात्मानं भूतिमश्नाम्यनुत्तमाम् ॥ २२ ॥

'चारों वेद जिनके यशका गान करते हैं, जो सम्पूर्ण वेदोंमें गाये जाते हैं, उन महात्मा श्रीकृष्णकी शरण लेकर मैं सर्वोत्तम ऐश्वर्य (कल्याण) प्राप्त करूँगा ॥ २२ ॥

परमेश परेशेश तिर्यगीश नरेश्वर ।
सर्वेश्वरेश्वरेशेश नमस्ते पुरुषोत्तम ॥ २३ ॥

'पुरुषोत्तम ! आप परमेश्वर हैं । पशु, पक्षी तथा मनुष्योंके भी ईश्वर हैं । 'परमेश्वर' कहे जानेवाले इन्द्रादि लोकपालोंके भी स्वामी हैं । सर्वेश्वर ! जो सबके ईश्वर हैं, उनके भी आप ही ईश्वर हैं । आपको नमस्कार है ॥ २३ ॥

त्वमीशेशेश्वरेशान प्रभो वर्धस्व माधव ।
प्रभवाप्यय सर्वस्य सर्वात्मन् पृथुलोचन ॥ २४ ॥

'विशाल नेत्रोंवाले माधव ! आप ईश्वरोंके भी ईश्वर और शासक हैं । प्रभो ! आपका अभ्युदय हो । सर्वात्मन् ! आप ही सबके उत्पत्ति और प्रलयके कारण हैं ॥ २४ ॥

धनंजयसखा यश्च धनंजयहितश्च यः ।
धनंजयस्य गोप्ता तं प्रपद्य सुखमेधते ॥ २५ ॥

'जो अर्जुनके मित्र, अर्जुनके हितैषी और अर्जुनके रक्षक हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णकी शरण लेकर मनुष्य सुखी होता है ॥ २५ ॥

मार्कण्डेयः पुराणर्षिश्चरितज्ञस्तवानघ ।
माहात्म्यमनुभावं च पुरा कीर्तितवान् मुनिः ॥ २६ ॥

'निष्पाप श्रीकृष्ण ! प्राचीनकालके महर्षि मार्कण्डेय आपके चरित्रको जानते हैं । उन मुनिश्रेष्ठने पहले (वनवासके समय) आपके प्रभाव और माहात्म्यका मुझसे वर्णन किया था॥२६॥

असितो देवलश्चैव नारदश्च महातपाः ।
पितामहश्च मे व्यासस्त्वामाहुर्विधिमुत्तमम् ॥ २७ ॥

'असित, देवल, महातपस्वी नारद तथा मेरे पितामह व्यासने आपको ही सर्वोत्तम विधि बताया है ॥ २७ ॥

त्वं तेजस्त्वं परं ब्रह्म त्वं सत्यं त्वं महत् तपः ।
त्वं श्रेयस्त्वं यशश्चाग्र्यं कारणं जगतस्तथा ॥ २८ ॥
त्वया सृष्टमिदं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
प्रलये समनुप्राप्ते त्वां वै निविशते पुनः ॥ २९ ॥

'आप ही तेज, आप ही परब्रह्म, आप ही सत्य, आप ही महान् तप, आप ही श्रेय, आप ही उत्तम यश और

आप ही जगत्के कारण हैं। आपने ही इस सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम जगत्की सृष्टि की है और प्रलयकाल आनेपर यह पुनः आपहीमें लीन हो जाता है ॥२८-२९॥

अनादिनिधनं देवं विश्वस्येशं जगत्पते।
धातारमजमव्यक्तमाहुर्वेदविदो जनाः ॥ ३० ॥
भूतात्मानं महात्मानमनन्तं विश्वतोमुखम्।

'जगत्पते! वेदवेत्ता पुरुष आपको आदि-अन्तसे रहित, दिव्य-स्वरूप, विश्वेश्वर, धाता, अजन्मा, अव्यक्त, भूतात्मा, महात्मा, अनन्त तथा विश्वतोमुख आदि नामोंसे पुकारते हैं॥

अपि देवा न जानन्ति गुह्यमाद्यं जगत्पतिम् ॥ ३१ ॥
नारायणं परं देवं परमात्मानमीश्वरम्।
ज्ञानयोनिं हरिं विष्णुं मुमुक्षूणां परायणम्।
परं पुराणं पुरुषं पुराणानां परं च यत् ॥ ३२ ॥

'आपका रहस्य गूढ़ है। आप सबके आदि कारण और इस जगत्के स्वामी हैं। आप ही परमदेव, नारायण, परमात्मा और ईश्वर हैं। ज्ञानस्वरूप श्रीहरि तथा मुमुक्षुओंके परम आश्रय भगवान् विष्णु भी आप ही हैं। आपके यथार्थ स्वरूपको देवता भी नहीं जानते हैं। आप ही परम पुराण-पुरुष तथा पुराणोंसे भी परे हैं ॥ ३१-३२ ॥

एवमादिगुणानां ते कर्मणां दिवि चेह च।
अतीतभूतभव्यानां संख्याताত্র न विद्यते ॥ ३३ ॥
सर्वतो रक्षणीयाः स्म शक्रेणेव दिवौकसः।
यैस्त्वं सर्वगुणोपेतः सुहृन्न उपपादितः ॥ ३४ ॥

'आपके ऐसे-ऐसे गुणों तथा भूत, वर्तमान एवं भविष्य-कालमें होनेवाले कर्मोंकी गणना करनेवाला इस भूलोकमें या स्वर्गमें भी कोई नहीं है। जैसे इन्द्र देवताओंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार हम सब लोग आपके द्वारा सर्वथा रक्षणीय हैं। हमें आप सर्वगुणसम्पन्न सुहृद्के रूपमें प्राप्त हुए हैं' ॥ ३३-३४ ॥

इत्येवं धर्मराजेन हरिरुक्तो महायशाः।
अनुरूपमिदं वाक्यं प्रत्युवाच जनार्दनः ॥ ३५ ॥

धर्मराज युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर महायशस्वी भगवान् जनार्दनने उनके कथनके अनुरूप इस प्रकार उत्तर दिया—॥

भवता तपसोग्रेण धर्मेण परमेण च।
साधुत्वादार्जवाच्चैव हतः पापो जयद्रथः ॥ ३६ ॥

'धर्मराज! आपकी उग्र तपस्या, परम धर्म, साधुता तथा सरलतासे ही पापी जयद्रथ मारा गया है ॥ ३६ ॥

अयं च पुरुषव्याघ्र त्वदनुध्यानसंवृतः।
हत्वा योधसहस्राणि न्यहनज्जिष्णुर्जयद्रथम् ॥ ३७ ॥

'पुरुषसिंह! आपने जो निरन्तर शुभ-चिन्तन किया है, उसीसे सुरक्षित हो अर्जुनने सहस्रों योद्धाओंका संहार करके जयद्रथका वध किया है ॥ ३७ ॥

कृतित्वे बाहुवीर्ये च तथैवासम्भ्रमेऽपि च।
शीघ्रतामोघबुद्धित्वे नास्ति पार्थसमः क्वचित् ॥ ३८ ॥

'अस्त्रोंके ज्ञान, बाहुबल, स्थिरता, शीघ्रता और अमोघ-बुद्धिता आदि गुणोंमें कहीं कोई भी कुन्तीकुमार अर्जुनकी समता करनेवाला नहीं है ॥ ३८ ॥

तदयं भरतश्रेष्ठ भ्राता तेऽद्य यदर्जुनः।
सैन्यक्षयं रणे कृत्वा सिन्धुराजशिरोऽहरत् ॥ ३९ ॥

'भरतश्रेष्ठ! इसीलिये आज आपके इस छोटे भाई अर्जुनने संग्राममें शत्रुसेनाका संहार करके सिंधुराजका सिर काट लिया है' ॥ ३९ ॥

ततो धर्मसुतो जिष्णुं परिष्वज्य विशाम्पते।
प्रमृज्य वदनं तस्य पर्याश्वासयत प्रभुः ॥ ४० ॥

प्रजानाथ! तब धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने अर्जुनको हृदयसे लगा लिया और उनका मुँह पोंछकर उन्हें आश्वासन देते हुए कहा—॥ ४० ॥

अतीव सुमहत् कर्म कृतवानसि फाल्गुन।
असह्यं चाविषह्यं च देवैरपि सवासवैः ॥ ४१ ॥

'फाल्गुन! आज तुमने बड़ा भारी कर्म कर दिखाया। इसका सम्पादन करना अथवा इसके भारको सह लेना इन्द्र-सहित सम्पूर्ण देवताओंके लिये भी असम्भव था ॥ ४१ ॥

दिष्ट्या निस्तीर्णभारोऽसि हतारिश्चासि शत्रुहन्।
दिष्ट्या सत्या प्रतिज्ञेयं कृता हत्वा जयद्रथम् ॥ ४२ ॥

'शत्रुसूदन! आज तुम अपने शत्रुको मारकर प्रतिज्ञाके भारसे मुक्त हो गये। यह सौभाग्यकी बात है। हर्षका विषय है कि तुमने जयद्रथको मारकर अपनी यह प्रतिज्ञा सत्य कर दिखायी' ॥ ४२ ॥

एवमुक्त्वा गुडाकेशं धर्मराजो महायशाः।
पस्पर्श पुण्यगन्धेन पृष्ठे हस्तेन पार्थिवः ॥ ४३ ॥

महायशस्वी धर्मराज राजा युधिष्ठिरने निद्राविजयी अर्जुनसे ऐसा कहकर उनकी पीठपर पवित्र सुगन्धसे युक्त अपना हाथ फेरा ॥ ४३ ॥

एवमुक्तौ महात्मानावुभौ केशवपाण्डवौ।
तावब्रूतां तदा कृष्णौ राजानं पृथिवीपतिम् ॥ ४४ ॥

उनके ऐसा कहनेपर महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुनने उस समय उन पृथ्वीपति नरेशसे इस प्रकार कहा—॥४४॥

तव कोपाग्निना दग्धः पापो राजा जयद्रथः।
उत्तीर्णं चापि सुमहद् धार्तराष्ट्रबलं रणे ॥ ४५ ॥

'महाराज! पापी राजा जयद्रथ आपकी क्रोधाग्निसे दग्ध हो गया है तथा रणभूमिमें दुर्योधनकी विशाल सेना-से पार पाना भी आपकी कृपासे ही सम्भव हुआ है ॥ ४५ ॥

हन्यन्ते निहताश्चैव विनङ्क्ष्यन्ति च भारत।

तव क्रोधहता ह्येते कौरवाः शत्रुसूदन ॥ ४६ ॥

'भारत ! शत्रुसूदन ! ये सारे कौरव आपके क्रोधसे ही नष्ट होकर मारे गये हैं, मारे जाते हैं और भविष्यमें भी मारे जायँगे ॥ ४६ ॥

त्वां हि चक्षुर्हणं वीरं कोपयित्वा सुयोधनः।
समित्रबन्धुः समरे प्राणांस्त्यक्ष्यति दुर्मतिः ॥ ४७ ॥

'क्रोधपूर्ण दृष्टिपात मात्रसे विरोधीको दग्ध कर देनेवाले आप-जैसे वीरको कुपित करके दुर्बुद्धि दुर्योधन अपने मित्रों और बन्धुओंके साथ समरभूमिमें प्राणोंका परित्याग कर देगा॥

तव क्रोधहतः पूर्वं देवैरपि सुदुर्जयः ।
शरतल्पगतः शेते भीष्मः कुरुपितामहः ॥ ४८ ॥

'जिनपर विजय पाना पहले देवताओंके लिये भी अत्यन्त कठिन था, वे कुरुकुलके पितामह भीष्म आपके क्रोधसे ही दग्ध होकर इस समय बाणशय्यापर सो रहे हैं ॥ ४८ ॥

दुर्लभो विजयस्तेषां संग्रामे रिपुसूदन।
याता मृत्युवशं ते वै येषां क्रुद्धोऽसि पाण्डव ॥ ४९ ॥

'शत्रुसूदन पाण्डुनन्दन ! आप जिनपर कुपित हैं, उनके लिये युद्धमें विजय दुर्लभ है। वे निश्चय ही मृत्युके वशमें हो गये हैं ॥ ४९ ॥

राज्यं प्राणाः श्रियः पुत्राः सौख्यानि विविधानि च।
अचिरात् तस्य नश्यन्ति येषां क्रुद्धोऽसि मानद ॥५०॥

'दूसरोंको मान देनेवाले नरेश ! जिनपर आपका क्रोध हुआ है, उनके राज्य, प्राण, सम्पत्ति, पुत्र तथा नाना प्रकारके सौख्य शीघ्र नष्ट हो जायँगे ॥ ५० ॥

विनष्टान् कौरवान् मन्ये सपुत्रपशुबान्धवान् ।
राजधर्मपरे नित्यं त्वयि क्रुद्धे परंतप ॥ ५१ ॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले वीर ! सदा राजधर्मके पालनमें तत्पर रहनेवाले आपके कुपित होनेपर मैं कौरवोंको पुत्र, पशु तथा बन्धु-बान्धवोंसहित नष्ट हुआ ही मानता हूँ' ॥

ततो भीमो महाबाहुः सात्यकिश्च महारथः।
अभिवाद्य गुरुं ज्येष्ठं मार्गणैः क्षतविक्षतौ ॥ ५२ ॥
क्षितावास्तां महेष्वासौ पाञ्चाल्यैः परिवारितौ।
तौ दृष्ट्वा मुदितौ वीरौ प्राञ्जली चाग्रतः स्थितौ ॥ ५३ ॥
अभ्यनन्दत कौन्तेयस्तावुभौ भीमसात्यकी।

तदनन्तर, बाणोंसे क्षत-विक्षत हुए महाबाहु भीमसेन और महारथी सात्यकि अपने ज्येष्ठ गुरु युधिष्ठिरको प्रणाम करके भूमिपर खड़े हो गये। पाञ्चालोंसे घिरे हुए उन दोनों महाधनुर्धर वीरोंको प्रसन्नतापूर्वक हाथ जोड़े सामने खड़े देख कुन्तीकुमार युधिष्ठिरने भीम और सात्यकि दोनोंका अभिनन्दन किया ॥ ५२-५३½ ॥

दिष्ट्या पश्यामि वां शूरौ विमुक्तौ सैन्यसागरात् ॥५४॥
द्रोणग्राहदुराधर्षाद्धार्दिक्यमकरालयात् ।

वे बोले—'बड़े सौभाग्यकी बात है कि मैं तुम दोनों शूरवीरोंको शत्रुसेनाके समुद्रसे पार हुआ देख रहा हूँ। वह सैन्यसागर द्रोणाचार्यरूपी ग्राहके कारण दुर्द्धर्ष है और कृतवर्मा-जैसे मगरोंका वासस्थान बना हुआ है ॥ ५४½ ॥

दिष्ट्या विनिर्जिताः संख्ये पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः ॥५५॥
युवां विजयिनौ चापि दिष्ट्या पश्यामि संयुगे।

'युद्धमें सारे भूपाल पराजित हो गये और संग्राम-भूमिमें मैं तुम दोनोंको विजयी देख रहा हूँ—यह बड़े हर्षका विषय है॥

दिष्ट्या द्रोणो जितः संख्ये हार्दिक्यश्च महाबलः॥ ५६ ॥
दिष्ट्या विकर्णिभिः कर्णो रणे नीतः पराभवम्।
विमुखश्च कृतः शल्यो युवाभ्यां पुरुषर्षभौ ॥ ५७ ॥

'हमारे सौभाग्यसे ही आचार्य द्रोण और महाबली कृतवर्मा युद्धमें परास्त हो गये। भाग्यसे ही कर्ण भी तुम्हारे बाणोंद्वारा रणक्षेत्रमें पराभवको पहुँच गया। नरश्रेष्ठ वीरो ! तुम दोनोंने राजा शल्यको भी युद्धसे विमुख कर दिया॥५६-५७॥

दिष्ट्या युवां कुशलिनौ संग्रामात् पुनरागतौ ।
पश्यामि रथिनां श्रेष्ठावुभौ युद्धविशारदौ ॥ ५८ ॥

'रथियोंमें श्रेष्ठ तथा युद्धमें कुशल तुम दोनों वीरोंको मैं पुनः रणभूमिसे सकुशल लौटा हुआ देख रहा हूँ—यह मेरे लिये बड़े आनन्दकी बात है ॥ ५८ ॥

मम वाक्यकरौ वीरौ मम गौरवयन्त्रितौ ।
सैन्यार्णवं समुत्तीर्णौ दिष्ट्या पश्यामि वामहम् ॥ ५९ ॥

'मेरे प्रति गौरवसे बँधकर मेरी आज्ञाका पालन करनेवाले तुम दोनों वीरोंको मैं सैन्य-समुद्रसे पार हुआ देख रहा हूँ, यह सौभाग्यका विषय है ॥ ५९ ॥

समरश्लाघिनौ वीरौ समरेष्वपराजितौ ।
मम वाक्यसमौ चैव दिष्ट्या पश्यामि वामहम् ॥ ६० ॥

'तुम दोनों वीर मेरे कथनके अनुरूप ही युद्धकी श्लाघा रखनेवाले तथा समराङ्गणमें पराजित न होनेवाले हो। सौभाग्यसे मैं तुम दोनोंको यहाँ सकुशल देख रहा हूँ' ॥६०॥

इत्युक्त्वा पाण्डवो राजन् युयुधानवृकोदरौ ।
सस्वजे पुरुषव्याघ्रौ हर्षाद् बाष्पं मुमोच ह ॥ ६१ ॥

राजन् ! पुरुषसिंह सात्यकि और भीमसेनसे ऐसा कहकर पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने उन दोनोंको हृदयसे लगा लिया और वे हर्षके आँसू बहाने लगे ॥ ६१ ॥

ततः प्रमुदितं सर्वं बलमासीद् विशाम्पते।
पाण्डवानां रणे हृष्टं युद्धाय तु मनो दधे ॥ ६२ ॥

प्रजानाथ ! तदनन्तर पाण्डवोंकी सारी सेनाने युद्धस्थलमें प्रसन्न एवं उत्साहित होकर संग्राममें ही मन लगाया ६२

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि युधिष्ठिरहर्षे एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें युधिष्ठिरका हर्षविषयक एक सौ उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४९ ॥

पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

व्याकुल हुए दुर्योधनका खेद प्रकट करते हुए द्रोणाचार्यको उपालम्भ देना

संजय उवाच

सैन्धवे निहते राजन् पुत्रस्तव सुयोधनः।
अश्रुपूर्णमुखो दीनो निरुत्साहो द्विषज्जये ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! सिंधुराज जयद्रथके मारे जानेपर आपका पुत्र दुर्योधन बहुत दुखी हो गया। उसके मुँहपर आँसुओंकी धारा बहने लगी। शत्रुओंको जीतनेका उसका सारा उत्साह जाता रहा ॥ १ ॥

दुर्मना निःश्वसन् दुष्टो भग्नदंष्ट्र इवोरगः।
आगस्कृत् सर्वलोकस्य पुत्रस्तेऽऽर्तिं परामगात् ॥ २ ॥

जिसके दाँत तोड़ दिये गये हैं, उस दुष्ट सर्पके समान वह मन-ही-मन दुखी हो लंबी साँस खींचने लगा। सम्पूर्ण जगत्का अपराध करनेवाले आपके पुत्रको बड़ी पीड़ा हुई ॥

दृष्ट्वा तत्कदनं घोरं स्वबलस्य कृतं महत्।
जिष्णुना भीमसेनेन सात्वतेन च संयुगे ॥ ३ ॥
स विवर्णः कृशो दीनो बाष्पविप्लुतलोचनः।

युद्धस्थलमें अर्जुन, भीमसेन और सात्यकिके द्वारा अपनी सेनाका अत्यन्त घोर संहार हुआ देखकर वह दीन, दुर्बल और कान्तिहीन हो गया। उसके नेत्रोंमें आँसू भर आये ३½

अमन्यतार्जुनसमो न योद्धा भुवि विद्यते ॥ ४ ॥
न द्रोणो न च राधेयो नाश्वत्थामा कृपो न च।
क्रुद्धस्य समरे स्थातुं पर्याप्ता इति मारिष ॥ ५ ॥

माननीय नरेश! उसे यह निश्चय हो गया कि 'इस भूतलपर अर्जुनके समान कोई दूसरा योद्धा नहीं है। समराङ्गणमें कुपित हुए अर्जुनके सामने न द्रोण, न कर्ण, न अश्वत्थामा और न कृपाचार्य ही ठहर सकते हैं' ॥४-५॥

निर्जित्य हि रणे पार्थः सर्वान् मम महारथान्।
अवधीत् सैन्धवं संख्ये न च कश्चिदवारयत् ॥ ६ ॥

वह सोचने लगा कि 'आजके युद्धमें अर्जुनने हमारे सभी महारथियोंको जीतकर सिंधुराजका वध कर डाला, किंतु कोई भी उन्हें समराङ्गणमें रोक न सका ॥ ६ ॥

सर्वथा हतमेवेदं कौरवाणां महद् बलम्।
न ह्यस्य विद्यते त्राता साक्षादपि पुरंदरः ॥ ७ ॥

'कौरवोंकी यह विशाल सेना अब सर्वथा नष्टप्राय ही है। साक्षात् देवराज इन्द्र भी इसकी रक्षा नहीं कर सकते ॥ ७ ॥

यमुपाश्रित्य संग्रामे कृतः शस्त्रसमुद्यमः।
स कर्णो निर्जितः संख्ये हतश्चैव जयद्रथः ॥ ८ ॥

'जिसका भरोसा करके मैंने युद्धके लिये शस्त्र-संग्रहकी चेष्टा की, वह कर्ण भी युद्धस्थलमें परास्त हो गया और जयद्रथ भी मारा ही गया ॥ ८ ॥

यस्य वीर्यं समाश्रित्य शमं याचन्तमच्युतम्।
तृणवत् तमहं मन्ये स कर्णो निर्जितो युधि ॥ ९ ॥

'जिसके पराक्रमका आश्रय लेकर मैंने संधिकी याचना करनेवाले श्रीकृष्णको तिनकेके समान समझा था, वह कर्ण युद्धमें पराजित हो गया' ॥ ९ ॥

एवं क्लान्तमना राजन्नुपायाद् द्रोणमीक्षितुम्।
आगस्कृत् सर्वलोकस्य पुत्रस्ते भरतर्षभ ॥ १० ॥

राजन्! भरतश्रेष्ठ! सम्पूर्ण जगत्का अपराध करनेवाला आपका पुत्र जब इस प्रकार सोचते-सोचते मन-ही-मन बहुत खिन्न हो गया, तब आचार्य द्रोणका दर्शन करनेके लिये उनके पास गया ॥ १० ॥

ततस्तत्सर्वमाचख्यौ कुरूणां वैशसं महत्।
परान् विजयतश्चापि धार्तराष्ट्रान् निमज्जतः ॥ ११ ॥

तदनन्तर वहाँ उसने कौरवोंके महान् संहारका वह सारा समाचार कहा और यह भी बताया कि शत्रु विजयी हो रहे हैं और महाराज धृतराष्ट्रके सभी पुत्र विपत्तिके समुद्रमें डूब रहे हैं ॥ ११ ॥

दुर्योधन उवाच

पश्य मूर्धाभिषिक्तानामाचार्य कदनं महत्।
कृत्वा प्रमुखतः शूरं भीष्मं मम पितामहम् ॥ १२ ॥

दुर्योधन बोला—आचार्य! जिनके मस्तकपर विधिपूर्वक राज्याभिषेक किया गया था, उन राजाओंका यह महान् संहार देखिये। मेरे शूरवीर पितामह भीष्मसे लेकर अबतक कितने ही नरेश मारे गये ॥ १२ ॥

तं निहत्य प्रलुब्धोऽयं शिखण्डी पूर्णमानसः।
पाञ्चाल्यैः सहितः सर्वैः सेनाग्रमभिवर्तते ॥ १३ ॥

व्याधों-जैसा बर्ताव करनेवाला यह शिखण्डी भीष्मको मारकर मन-ही-मन उत्साहसे भरा हुआ है और समस्त पाञ्चाल सैनिकोंके साथ सेनाके मुहानेपर खड़ा है ॥ १३ ॥

अपरश्चापि दुर्धर्षः शिष्यस्ते सव्यसाचिना।
अक्षौहिणीः सप्त हत्वा हतो राजा जयद्रथः ॥ १४ ॥
अस्मद्विजयकामानां सुहृदामुपकारिणाम्।
गन्तास्मि कथमानृण्यं गतानां यमसादनम् ॥ १५ ॥

सव्यसाची अर्जुनने मेरी सात अक्षौहिणी सेनाओंका संहार करके आपके दूसरे दुर्धर्ष शिष्य राजा जयद्रथको भी मार डाला है। मुझे विजय दिलानेकी इच्छा रखनेवाले मेरे

जो-जो उपकारी सुहृद् युद्धमें प्राण देकर यमलोकमें जा पहुँचे हैं, उनका ऋण मैं कैसे चुका सकूँगा ? ॥ १४-१५ ॥

ये मदर्थं परीप्सन्ते वसुधां वसुधाधिपाः।
ते हित्वा वसुधैश्वर्यं वसुधामधिशेरते ॥ १६ ॥

जो भूमिपाल मेरे लिये इस भूमिको जीतना चाहते थे, वे स्वयं भूमण्डलका ऐश्वर्य त्यागकर भूमिपर सो रहे हैं ॥ १६ ॥

सोऽहं कापुरुषः कृत्वा मित्राणां क्षयमीदृशम्।
अश्वमेधसहस्रेण पावितुं न समुत्सहे ॥ १७ ॥

मैं कायर हूँ, अपने मित्रोंका ऐसा संहार कराकर हजारों अश्वमेध यज्ञोंसे भी अपनेको पवित्र नहीं कर सकता ॥

मम लुब्धस्य पापस्य तथा धर्मापचायिनः।
व्यायामेन जिगीषन्तः प्राप्ता वैवस्वतक्षयम् ॥ १८ ॥

हाय ! मुझ लोभी तथा धर्मनाशक पापीके लिये युद्धके द्वारा विजय चाहनेवाले मेरे मित्रगण यमलोक चले गये ॥

कथं पतितवृत्तस्य पृथिवी सुहृदां द्रुहः।
विवरं नाशकद् दातुं मम पार्थिवसंसदि ॥ १९ ॥

मुझ आचारभ्रष्ट और मित्रद्रोहीके लिये राजाओंके समाजमें यह पृथ्वी फट क्यों नहीं जाती, जिससे मैं उसीमें समा जाऊँ ॥ १९ ॥

योऽहं रुधिरसिक्ताङ्गं राज्ञां मध्ये पितामहम्।
शयानं नाशकं त्रातुं भीष्ममायोधने हतम् ॥ २० ॥

मेरे पितामह भीष्म राजाओंके बीच युद्धस्थलमें मारे गये और अब खूनसे लथपथ होकर बाणशय्यापर पड़े हैं; परंतु मैं उनकी रक्षा न कर सका ॥ २० ॥

तं मामनार्यपुरुषं मित्रद्रुहमधार्मिकम्।
किं वक्ष्यति हि दुर्धर्षः समेत्य परलोकजित् ॥ २१ ॥

वे परलोक-विजयी दुर्धर्ष वीर भीष्म यदि मैं उनके पास जाऊँ तो मुझ नीच, मित्रद्रोही तथा पापात्मा पुरुषसे क्या कहेंगे ? ॥ २१ ॥

जलसंधं महेष्वासं पश्य सात्यकिना हतम्।
मदर्थमुद्यतं शूरं प्राणांस्त्यक्त्वा महारथम् ॥ २२ ॥

आचार्य ! देखिये तो सही, मेरे लिये प्राणोंका मोह छोड़कर राज्य दिलानेको उद्यत हुए महाधनुर्धर शूरवीर महारथी जलसंधको सात्यकिने मार डाला ॥ २२ ॥

काम्बोजं निहतं दृष्ट्वा तथालम्बुषमेव च।
अन्यान् बहूंश्च सुहृदो जीवितार्थोऽद्य को मम ॥ २३ ॥

काम्बोजराज, अलम्बुष तथा अन्यान्य बहुत-से सुहृदोंको मारा गया देखकर भी अब मेरे जीवित रहनेका क्या प्रयोजन है ? ॥ २३ ॥

व्यायच्छन्तो हताः शूरा मदर्थे येऽपराङ्मुखाः।
यतमानाः परं शक्त्या विजेतुमहितान् मम ॥ २४ ॥
तेषां गत्वाहमानृण्यमद्य शक्त्या परंतप।
तर्पयिष्यामि तानेव जलेन यमुनामनु ॥ २५ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले आचार्य ! जो युद्धसे विमुख न होनेवाले शूरवीर सुहृद् मेरे लिये जूझते और मेरे शत्रुओंको जीतनेके लिये यथाशक्ति पूरी चेष्टा करते हुए मारे गये हैं, उनका अपनी शक्तिभर ऋण उतारकर आज मैं यमुनाके जलसे उन सभीका तर्पण करूँगा ॥ २४-२५ ॥

सत्यं ते प्रतिजानामि सर्वशस्त्रभृतां वर।
इष्टापूर्तेन च शपे वीर्येण च सुतैरपि ॥ २६ ॥
निहत्य तान् रणे सर्वान् पञ्चालान् पाण्डवैः सह।
शान्तिं लब्धास्मि तेषां वा रणे गन्ता सलोकताम् ॥ २७ ॥

समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ गुरुदेव ! आज मैं अपने यज्ञ-यागादि तथा कुँआ, बावली बनवाने आदि शुभ कर्मोंकी, पराक्रमकी तथा पुत्रोंकी शपथ खाकर आपके सामने सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ कि अब मैं पाण्डवोंके सहित समस्त पाञ्चालोंको युद्धमें मारकर ही शान्ति पाऊँगा अथवा मेरे वे सुहृद् युद्धमें मरकर जिन लोकोंमें गये हैं, उसीमें मैं भी चला जाऊँगा ॥ २६-२७ ॥

सोऽहं तत्र गमिष्यामि यत्र ते पुरुषर्षभाः।
हता मदर्थे संग्रामे युध्यमानाः किरीटिना ॥ २८ ॥

वे पुरुषशिरोमणि सुहृद् रणभूमिमें मेरे लिये युद्ध करते-करते अर्जुनके हाथसे मारे जाकर जिन लोकोंमें गये हैं, वहीं मैं भी जाऊँगा ॥ २८ ॥

न हीदानीं सहाया मे परीप्सन्त्यनुपस्कृताः।
श्रेयो हि पाण्डून् मन्यन्ते न तथास्मान् महाभुज ॥ २९ ॥

महाबाहो ! इस समय जो मेरे सहायक हैं, वे अरक्षित होनेके कारण हमारी सहायता करना नहीं चाहते हैं। वे जैसा पाण्डवोंका कल्याण चाहते हैं, वैसा हमलोगोंका नहीं ॥ २९ ॥

स्वयं हि मृत्युर्विहितः सत्यसंधेन संयुगे।
भवानुपेक्षां कुरुते शिष्यत्वादर्जुनस्य हि ॥ ३० ॥

युद्धस्थलमें सत्यप्रतिज्ञ भीष्मने स्वयं ही अपनी मृत्यु स्वीकार कर ली और आप भी हमारी इसलिये उपेक्षा करते हैं कि अर्जुन आपके प्रिय शिष्य हैं ॥ ३० ॥

अतो विनिहताः सर्वे येऽस्मज्जयचिकीर्षवः।
कर्णमेव तु पश्यामि सम्प्रत्यस्मज्जयैषिणम् ॥ ३१ ॥

इसलिये हमारी विजय चाहनेवाले सभी योद्धा मारे गये। इस समय तो मैं केवल कर्णको ही ऐसा देखता हूँ, जो सच्चे हृदयसे मेरी विजय चाहता है ॥ ३१ ॥

यो हि मित्रमविज्ञाय याथातथ्येन मन्दधीः।
मित्रार्थे योजयत्येनं तस्य सोऽर्थोऽवसीदति ॥ ३२ ॥

जो मूर्ख मनुष्य मित्रको ठीक-ठीक पहचाने बिना ही उसे मित्रके कार्यमें नियुक्त कर देता है, उसका वह काम बिगड़ जाता है ॥ ३२ ॥

तादृग् रूपं कृतमिदं मम कार्यं सुहृत्तमैः।
मोहाल्लुब्धस्य पापस्य जिह्मस्य धनमीहतः ॥ ३३ ॥

मेरे परम सुहृद् कहलानेवालोंने मोहवश धन (राज्य) चाहनेवाले मुझ लोभी, पापी और कुटिलके इस कार्यको उसी प्रकार चौपट कर दिया है ॥ ३३ ॥

हतो जयद्रथश्चैव सौमदत्तिश्च वीर्यवान्।
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ॥ ३४ ॥

जयद्रथ और सोमदत्तकुमार भूरिश्रवा मारे गये। अभीषाह, शूरसेन, शिबि तथा वसातिगण भी चल बसे ॥ ३४ ॥

सोऽहमद्य गमिष्यामि यत्र ते पुरुषर्षभाः।
हता मदर्थे संग्रामे युध्यमानाः किरीटिना ॥ ३५ ॥

वे नरश्रेष्ठ सुहृद् रणभूमिमें मेरे लिये युद्ध करते करते अर्जुनके हाथसे मारे जाकर जिन लोकोंमें गये हैं, वहीं आज मैं भी जाऊँगा ॥ ३५ ॥

न हि मे जीवितेनार्थस्तानृते पुरुषर्षभान्।
आचार्यः पाण्डुपुत्राणामनुजानातु नो भवान् ॥ ३६ ॥

उन पुरुषरत्न मित्रोंके बिना अब मेरे जीवित रहनेका कोई प्रयोजन नहीं है। आप हम पाण्डुपुत्रोंके आचार्य हैं, अतः मुझे जानेकी आज्ञा दें ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि दुर्योधनानुतापे पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें दुर्योधनका अनुतापविषयक एक सौ पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५० ॥

एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

द्रोणाचार्यका दुर्योधनको उत्तर और युद्धके लिये प्रस्थान

धृतराष्ट्र उवाच

सिन्धुराजे हते तात समरे सव्यसाचिना।
तथैव भूरिश्रवसि किमासीद् वो मनस्तदा ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—तात ! समराङ्गणमें सव्यसाची अर्जुनके द्वारा सिंधुराज जयद्रथके तथा सात्यकिद्वारा भूरिश्रवाके मारे जानेपर उस समय तुमलोगोंके मनकी कैसी अवस्था हुई ?

दुर्योधनेन च द्रोणस्तथोक्तः कुरुसंसदि।
किमुक्तवान् परं तस्मै तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ २ ॥

संजय ! दुर्योधनने जब कौरव-सभामें द्रोणाचार्यसे वैसी बातें कहीं, तब उन्होंने उसे क्या उत्तर दिया ? यह मुझे बताओ ॥ २ ॥

संजय उवाच

निष्टानको महानासीत् सैन्यानां तव भारत।
सैन्धवं निहतं दृष्ट्वा भूरिश्रवसमेव च ॥ ३ ॥

संजयने कहा—भारत ! सिंधुराज जयद्रथ तथा भूरिश्रवाको मारा गया देखकर आपकी सेनाओंमें महान् आर्तनाद होने लगा ॥ ३ ॥

मन्त्रितं तव पुत्रस्य ते सर्वमवमेनिरे।
येन मन्त्रेण निहताः शतशः क्षत्रियर्षभाः ॥ ४ ॥

वे सब लोग आपके पुत्र दुर्योधनकी उस सारी मन्त्रणाका अनादर करने लगे, जिससे सैकड़ों क्षत्रिय-शिरोमणि कालके गालमें चले गये ॥ ४ ॥

द्रोणस्तु तद् वचः श्रुत्वा पुत्रस्य तव दुर्मनाः।
मुहूर्तमिव तद् ध्यात्वा भृशमार्तोऽभ्यभाषत ॥ ५ ॥

आपके पुत्रका पूर्वोक्त वचन सुनकर द्रोणाचार्य मन-ही-मन दुखी हो उठे। उन्होंने दो घड़ीतक कुछ सोच-विचारकर अत्यन्त आर्तभावसे इस प्रकार कहा ॥ ५ ॥

द्रोण उवाच

दुर्योधन किमेवं मां वाक्शरैरपि कृन्तसि।
अजय्यं सततं संख्ये ब्रुवाणं सव्यसाचिनम् ॥ ६ ॥

द्रोणाचार्य बोले—दुर्योधन ! तुम क्यों इस प्रकार अपने वचनरूपी बाणोंसे मुझे छेद रहे हो ? मैं तो सदासे ही कहता आया हूँ कि सव्यसाची अर्जुन युद्धमें अजेय हैं ॥

एतेनैवार्जुनं ज्ञातुमलं कौरव संयुगे।
यच्छिखण्ड्यवधीद् भीष्मं पाल्यमानः किरीटिना ॥ ७ ॥

कुरुनन्दन ! अर्जुनको तो केवल इसी बातसे समझ लेना चाहिये था कि उनके द्वारा सुरक्षित होकर शिखण्डीने भी युद्धके मैदानमें भीष्मको मार डाला ॥ ७ ॥

अवध्यं निहतं दृष्ट्वा संयुगे देवदानवैः।
तदैवाज्ञासिषमहं नेयमस्तीति भारती ॥ ८ ॥

जो देवताओं और दानवोंके लिये भी अवध्य थे, उन्हें युद्धमें मारा गया देख मैंने उसी समय यह जान लिया कि यह कौरवसेना अब नहीं रह सकेगी ॥ ८ ॥

यं पुंसां त्रिषु लोकेषु सर्वशूरममंस्महि।
तस्मिन् निपतिते शूरे किं शेषं पर्युपास्महे ॥ ९ ॥

हमलोग जिन्हें तीनों लोकोंके पुरुषोंमें सबसे अधिक शूरवीर मानते थे, उन शौर्यसम्पन्न भीष्मके मारे जानेपर हम दूसरोंका क्या भरोसा करें ? ॥ ९ ॥

यान् स्म तान् ग्लहते तात शकुनिः कुरुसंसदि।
अक्षान् न तेऽक्षा निशिता बाणास्ते शत्रुतापनाः ॥ १० ॥

द्यूतक्रीड़ाके समय विदुरजीने तुमसे कहा था कि 'तात! कौरव-सभामें शकुनि जिन पासोंको फेंक रहा है, उन्हें पासे न समझो, वे किसी दिन शत्रुओंको संताप देनेवाले तीखे बाण बन सकते हैं' ॥ १० ॥

त एते घ्नन्ति नस्तात विशिखाः पार्थचोदिताः।
तांस्तदाऽऽख्यायमानस्त्वं विदुरेण न बुद्धवान् ॥ ११ ॥

परंतु वत्स ! उस समय विदुरजीकी कही हुई बातोंको तुमने कुछ नहीं समझा। तात ! वे ही पासे ये अर्जुनके चलाये हुए बाण बनकर हमें मार रहे हैं ॥ ११ ॥

यास्ता विजयतश्चापि विदुरस्य महात्मनः।
धीरस्य वाचो नाश्रौषीः क्षेमाय वदतः शिवाः ॥ १२ ॥
तदिदं वर्तते घोरमागतं वैशसं महत्।
तस्यावमानाद् वाक्यस्य दुर्योधन कृते तव ॥ १३ ॥

दुर्योधन ! विदुरजी धीर हैं, महात्मा पुरुष हैं। उन्होंने तुम्हारे कल्याणके लिये जो मङ्गलकारक वचन कहे थे और जिन्हें तुमने विजयके उल्लासमें अनसुना कर दिया था, उनके उन वचनोंके अनादरसे ही तुम्हारे लिये यह घोर महासंहार प्राप्त हुआ है ॥ १२-१३ ॥

योऽवमन्य वचः पथ्यं सुहृदामाप्तकारिणाम्।
स्वमतं कुरुते मूढः स शोच्यो नचिरादिव ॥ १४ ॥

जो मूर्ख अपने हितैषी मित्रोंके हितकर वचनकी अवहेलना करके मनमाना बर्ताव करता है, वह थोड़े ही समयमें शोचनीय दशाको प्राप्त हो जाता है ॥ १४ ॥

यच्च नः प्रेक्षमाणानां कृष्णामानाय्य तत्सभाम्।
अनर्हन्तीं कुले जातां सर्वधर्मानुचारिणीम् ॥ १५ ॥
तस्याधर्मस्य गान्धारे फलं प्राप्तमिदं महत्।
नो चेत् पापं परे लोके त्वमच्छैथास्ततोऽधिकम् ॥ १६ ॥

इसके सिवा तुमने हमलोगोंके सामने ही जो द्रौपदीको सभामें बुलाकर अपमानित किया, वह अपमान उसके योग्य नहीं था। वह उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई है और सम्पूर्ण धर्मोंका निरन्तर पालन करती है। गान्धारीनन्दन ! द्रौपदीके अपमानरूपी तुम्हारे अधर्मका ही यह महान् फल प्राप्त हुआ है कि तुम्हारे दलका विनाश हो रहा है। यदि यहाँ यह फल नहीं मिलता तो परलोकमें तुम्हें उस पापका इससे भी अधिक दण्ड भोगना पड़ता ॥ १५-१६ ॥

यच्च तान् पाण्डवान् द्यूते विषमेण विजित्य ह।
प्राव्राजयस्तदारण्ये रौरवाजिनवाससः ॥ १७ ॥

इतना ही नहीं, तुमने पाण्डवोंको जूएमें बेईमानीसे जीतकर और मृगचर्ममय वस्त्र पहनाकर उन्हें वनवास दे दिया (इस अधर्मका भी फल तुम्हें भोगना पड़ता है)।१७।

पुत्राणामिव चैतेषां धर्ममाचरतां सदा।
द्रुह्येत् को नु नरो लोके मदन्यो ब्राह्मणब्रुवः ॥ १८ ॥

पाण्डव मेरे पुत्रके समान हैं और वे सदा धर्मका आचरण करते रहते हैं। संसारमें मेरे सिवा दूसरा कौन मनुष्य है, जो ब्राह्मण कहलाकर भी उनसे द्रोह करे ॥ १८ ॥

पाण्डवानामयं कोपस्त्वया शकुनिना सह।
आहृतो धृतराष्ट्रस्य सम्मते कुरुसंसदि ॥ १९ ॥

तुमने राजा धृतराष्ट्रकी सम्मतिसे कौरवोंकी सभामें शकुनिके साथ बैठकर पाण्डवोंका यह क्रोध मोल लिया है ॥१९॥

दुःशासनेन संयुक्तः कर्णेन परिवर्धितः।
क्षत्तुर्वाक्यमनादृत्य त्वयाभ्यस्तः पुनः पुनः ॥ २० ॥

इस कार्यमें दुःशासनने तुम्हारा साथ दिया है, कर्णसे भी उस क्रोधको बढ़ावा मिला है और विदुरजीके उपदेशकी अवहेलना करके तुमने बारंबार पाण्डवोंके उस क्रोधको बढ़नेका अवसर दिया है ॥ २० ॥

यत्ताः सर्वे पराभूताः पर्यवारयताऽर्जुनम्।
सिन्धुराजानमाश्रित्य स वो मध्ये कथं हतः ॥ २१ ॥

तुम सब लोगोंने बड़ी सावधानीसे अर्जुनको घेर लिया था। फिर सब-के-सब पराजित कैसे हो गये ? तुमने सिंधुराजको आश्रय दिया था। फिर तुम्हारे बीचमें वह कैसे मारा गया ?॥ २१ ॥

कथं त्वयि च कर्णे च कृपे शल्ये च जीवति।
अश्वत्थाम्नि च कौरव्य निधनं सैन्धवोऽगमत् ॥ २२ ॥

कुरुनन्दन ! तुम और कर्ण तो नहीं मर गये थे, कृपाचार्य, शल्य और अश्वत्थामा तो जीवित थे; फिर तुम्हारे रहते सिंधुराजकी मृत्यु क्यों हुई ? ॥ २२ ॥

युध्यन्तः सर्वराजानस्तेजस्तिग्ममुपासते।
सिन्धुराजं परित्रातुं स वो मध्ये कथं हतः ॥ २३ ॥

युद्ध करते हुए समस्त राजा सिंधुराजकी रक्षाके लिये प्रचण्ड तेजका आश्रय लिये हुए थे। फिर वह आपलोगोंके बीचमें कैसे मारा गया ? ॥ २३ ॥

मय्येव हि विशेषेण तथा दुर्योधन त्वयि।
आशंसत परित्राणमर्जुनात् स महीपतिः ॥ २४ ॥

दुर्योधन ! राजा जयद्रथ विशेषतः मुझपर और तुमपर ही अर्जुनसे अपनी जीवन-रक्षाका भरोसा किये बैठा था ॥ २४ ॥

ततस्तस्मिन् परित्राणमलब्धवति फाल्गुनात्।
न किंचिदनुपश्यामि जीवितस्थानमात्मनः ॥ २५ ॥

तो भी जब अर्जुनसे उसकी रक्षा न की जा सकी, तब मुझे अब अपने जीवनकी रक्षाके लिये भी कोई स्थान दिखायी नहीं देता ॥ २५ ॥

मज्जन्तमिव चात्मानं धृष्टद्युम्नस्य किल्बिषे।

पश्याम्यहत्वा पञ्चालान् सह तेन शिखण्डिना ॥ २६ ॥

मैं धृष्टद्युम्न और शिखण्डीसहित समस्त पाञ्चालोंका वध न करके अपने-आपको धृष्टद्युम्नके पापपूर्ण संकल्पमें डूबता-सा देख रहा हूँ ॥ २६ ॥

तन्मां किमभितप्यन्तं वाक्शरैरेव कृन्तसि ।
अशक्तः सिन्धुराजस्य भूत्वा त्राणाय भारत ॥ २७ ॥

भारत ! ऐसी दशामें तुम स्वयं सिंधुराजकी रक्षामें असमर्थ होकर मुझे अपने वाग्बाणोंसे क्यों छेद रहे हो ? मैं तो स्वयं ही संतप्त हो रहा हूँ ॥ २७ ॥

सौवर्णं सत्यसंधस्य ध्वजमक्लिष्टकर्मणः ।
अपश्यन् युधि भीष्मस्य कथमाशंससे जयम् ॥ २८ ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले सत्यप्रतिज्ञ भीष्मके सुवर्णमय ध्वजको अब युद्धस्थलमें फहराता न देखकर भी तुम विजयकी आशा कैसे करते हो ? ॥ २८ ॥

मध्ये महारथानां च यत्राहन्यत सैन्धवः ।
हतो भूरिश्रवाश्चैव किं शेषं तत्र मन्यसे ॥ २९ ॥

जहाँ बड़े-बड़े महारथियोंके बीच सिंधुराज जयद्रथ और भूरिश्रवा मारे गये, वहाँ तुम किसके बचनेकी आशा करते हो ? ॥ २९ ॥

कृप एव च दुर्धर्षो यदि जीवति पार्थिव ।
यो नागात् सिन्धुराजस्य वर्त्म तं पूजयाम्यहम् ॥ ३० ॥

पृथ्वीपते ! दुर्धर्ष वीर कृपाचार्य यदि जीवित हैं, यदि सिंधुराजके पथपर नहीं गये हैं तो मैं उनके बल और सौभाग्यकी प्रशंसा करता हूँ ॥ ३० ॥

यत्रापश्यं हतं भीष्मं पश्यतस्तेऽनुजस्य वै ।
दुःशासनस्य कौरव्य कुर्वाणं कर्म दुष्करम् ॥ ३१ ॥
अवध्यकल्पं संग्रामे देवैरपि सवासवैः ।
न ते वसुन्धरास्तीति तदाहं चिन्तये नृप ॥ ३२ ॥

कुरुनन्दन ! नरेश ! जिन्हें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी युद्धमें नहीं मार सकते थे, दुष्कर कर्म करनेवाले उन्हीं भीष्मको जबसे मैंने तुम्हारे छोटे भाई दुःशासनके देखते-देखते मारा गया देखा है, तबसे मैं यही सोचता हूँ कि अब यह पृथ्वी तुम्हारे अधिकारमें नहीं रह सकती ॥ ३१-३२ ॥

इमानि पाण्डवानां च सृञ्जयानां च भारत ।
अनीकान्याद्रवन्ते मां सहितान्यद्य भारत ॥ ३३ ॥

भारत ! वह देखो, पाण्डवों और सृंजयोंकी सेनाएँ एक साथ मिलकर इस समय मुझपर चढ़ी आ रही हैं॥३३॥

नाहत्वा सर्वपञ्चालान् कवचस्य विमोक्षणम् ।
कर्तास्मि समरे कर्म धार्तराष्ट्र हितं तव ॥ ३४ ॥

दुर्योधन ! अब मैं समस्त पाञ्चालोंको मारे बिना अपना कवच नहीं उतारूँगा । मैं समराङ्गणमें वही कार्य करूँगा, जिससे तुम्हारा हित हो ॥ ३४ ॥

राजन् ब्रूयाः सुतं मे त्वमश्वत्थामानमाहवे ।
न सोमकाः प्रमोक्तव्या जीवितं परिरक्षता ॥ ३५ ॥

राजन् ! तुम मेरे पुत्र अश्वत्थामासे जाकर कहना कि 'वह युद्धमें अपने जीवनकी रक्षा करते हुए जैसे भी हो, सोमकोंको जीवित न छोड़े' ॥ ३५ ॥

यच्च पित्रानुशिष्टोऽसि तद् वचः परिपालय ।
आनृशंस्ये दमे सत्ये चार्जवे च स्थिरो भव ॥ ३६ ॥

यह भी कहना कि 'पिताने जो तुम्हें उपदेश दिया है, उसका पालन करो । दया, दम, सत्य और सरलता आदि सद्गुणोंमें स्थिर रहो ॥ ३६ ॥

धर्मार्थकामकुशलो धर्मार्थावप्यपीडयन् ।
धर्मप्रधानकार्याणि कुर्याश्चेति पुनः पुनः ॥ ३७ ॥

'तुम धर्म, अर्थ और कामके साधनमें कुशल हो । अतः धर्म और अर्थको पीड़ा न देते हुए बारंबार धर्मप्रधान कर्मोंका ही अनुष्ठान करो ॥ ३७ ॥

चक्षुर्मनोभ्यां संतोष्या विप्राः पूज्याश्च शक्तितः ।
न चैषां विप्रियं कार्यं ते हि वह्निशिखोपमाः ॥ ३८ ॥

'विनयपूर्ण दृष्टि और श्रद्धायुक्त हृदयसे ब्राह्मणोंको संतुष्ट रखना, यथाशक्ति उनका आदर-सत्कार करते रहना । कभी उनका अप्रिय न करना; क्योंकि वे अग्निकी ज्वालाके समान तेजस्वी होते हैं' ॥ ३८ ॥

एष त्वहमनीकानि प्रविशाम्यरिसूदन ।
रणाय महते राजंस्त्वया वाक्शरपीडितः ॥ ३९ ॥

राजन् ! शत्रुसूदन ! अब मैं तुम्हारे वाग्बाणोंसे पीड़ित हो महान् युद्धके लिये शत्रुओंकी सेनामें प्रवेश करता हूँ ॥३९॥

त्वं च दुर्योधन बलं यदि शक्तोऽसि पालय ।
रात्रावपि च योत्स्यन्ते संरब्धाः कुरुसृञ्जयाः ॥ ४० ॥

दुर्योधन ! यदि तुममें शक्ति हो तो सेनाकी रक्षा करना; क्योंकि इस समय क्रोधमें भरे हुए कौरव और सृंजय रात्रिमें भी युद्ध करेंगे ॥ ४० ॥

एवमुक्त्वा ततः प्रायाद् द्रोणः पाण्डवसृञ्जयान् ।
मुष्णन् क्षत्रियतेजांसि नक्षत्राणामिवांशुमान् ॥ ४१ ॥

जैसे सूर्य नक्षत्रोंके तेज हर लेते हैं, उसी प्रकार क्षत्रियोंके तेजका अपहरण करते हुए आचार्य द्रोण दुर्योधनसे पूर्वोक्त बातें कहकर पाण्डवों और सृंजयोंसे युद्ध करनेके लिये चल दिये ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि द्रोणवाक्ये एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें द्रोणवाक्यविषयक एक सौ इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५१ ॥

द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

दुर्योधन और कर्णकी बातचीत तथा पुनः युद्धका आरम्भ

संजय उवाच

ततो दुर्योधनो राजा द्रोणेनैवं प्रचोदितः।
अमर्षवशमापन्नो युद्धायैव मनो दधे॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर द्रोणाचार्यसे इस प्रकार प्रेरित हो अमर्षमें भरे हुए राजा दुर्योधनने मन-ही-मन युद्ध करनेका ही निश्चय किया॥ १॥

अब्रवीच्च तदा कर्णं पुत्रो दुर्योधनस्तव।
पश्य कृष्णसहायेन पाण्डवेन किरीटिना॥ २॥
आचार्यविहितं व्यूहं भित्त्वा देवैः सुदुर्भिदम्।
तव व्यायच्छमानस्य द्रोणस्य च महात्मनः॥ ३॥
मिषतां योधमुख्यानां सैन्धवो विनिपातितः।

उस समय आपके पुत्र दुर्योधनने कर्णसे इस प्रकार कहा—'कर्ण! देखो, श्रीकृष्णसहित पाण्डुपुत्र अर्जुनने आचार्यद्वारा



निर्मित व्यूहको, जिसका भेदन करना देवताओंके लिये भी अत्यन्त कठिन था, भेदकर तुम्हारे और महात्मा द्रोणके युद्धमें तत्पर रहते हुए भी मुख्य-मुख्य योद्धाओंके देखते-देखते सिंधुराज जयद्रथको मार गिराया है॥ २-३½॥

पश्य राधेय पृथ्वीशाः पृथिव्यां प्रवरा युधि॥ ४॥
पार्थेनैकेन निहताः सिंहेनेवेतरे मृगाः।

'राधानन्दन! देखो, जैसे सिंह दूसरे वन्य पशुओंका संहार कर डालता है, उसी प्रकार एकमात्र कुन्तीकुमार अर्जुनद्वारा मारे गये ये भूमण्डलके श्रेष्ठ भूपाल युद्धभूमिमें पड़े हैं॥ ४½॥

मम व्यायच्छमानस्य द्रोणस्य च महात्मनः॥ ५॥
अल्पावशेषं सैन्यं मे कृतं शक्रात्मजेन ह।

'मेरे और महात्मा द्रोणके परिश्रमपूर्वक युद्ध करते रहनेपर भी इन्द्रपुत्र अर्जुनने मेरी सेनाको अल्पमात्रामें ही जीवित छोड़ा है (अधिकांश सेनाको तो मार ही डाला है)॥ ५½॥

कथं नियच्छमानस्य द्रोणस्य युधि फाल्गुनः॥ ६॥
भिन्द्यात् सुदुर्भिदं व्यूहं यतमानोऽपि संयुगे।
प्रतिज्ञाया गतः पारं हत्वा सैन्धवमर्जुनः॥ ७॥

'यदि इस युद्धमें आचार्य द्रोण अर्जुनको रोकनेकी पूरी चेष्टा करते तो प्रयत्न करनेपर भी वे समराङ्गणमें उस दुर्भेद्य व्यूहको कैसे तोड़ सकते थे? सिंधुराजको मारकर अर्जुन अपनी प्रतिज्ञाके भारसे मुक्त हो गये॥ ६-७॥

पश्य राधेय पृथ्वीशान् पृथिव्यां पातितान् बहून्।
पार्थेन निहतान् संख्ये महेन्द्रोपमविक्रमान्॥ ८॥

'राधाकुमार! संग्रामभूमिमें पार्थके मारे और पृथ्वीपर गिराये हुए इन बहुसंख्यक भूपतियोंको देखो; ये सब-के-सब देवराज इन्द्रके समान पराक्रमी थे॥ ८॥

अनिच्छतः कथं वीर द्रोणस्य युधि पाण्डवः।
भिन्द्यात् सुदुर्भिदं व्यूहं यतमानस्य शुष्मिणः॥ ९॥

'वीर! यदि बलवान् द्रोणाचार्य पूरा प्रयत्न करके उन्हें व्यूहमें नहीं घुसने देना चाहते तो वे उस दुर्भेद्य व्यूहको कैसे तोड़ सकते थे?॥ ९॥

दयितः फाल्गुनो नित्यमाचार्यस्य महात्मनः।
ततोऽस्य दत्तवान् द्वारमयुद्धेनैव शत्रुहन्॥ १०॥

'शत्रुसूदन! किंतु अर्जुन तो महात्मा आचार्य द्रोणको सदा ही परम प्रिय हैं। इसीलिये उन्होंने युद्ध किये बिना ही उन्हें व्यूहमें घुसनेका मार्ग दे दिया॥ १०॥

अभयं सिन्धुराजाय दत्त्वा द्रोणः परंतपः।
प्रादात् किरीटिने द्वारं पश्य निर्गुणतां मयि॥ ११॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले द्रोणाचार्यने सिंधुराजको अभय-दान देकर भी किरीटधारी अर्जुनको व्यूहमें घुसनेका मार्ग दे दिया। देखो, मुझमें कितनी गुणहीनता है॥ ११॥

यद्यदास्यदनुज्ञां वै पूर्वमेव गृहान् प्रति।
प्रस्थातुं सिन्धुराजस्य नाभविष्यज्जनक्षयः॥ १२॥

'यदि उन्होंने पहले ही सिंधुराजको घर जानेकी आज्ञा दे दी होती तो यह इतना बड़ा जनसंहार नहीं होता॥ १२॥

जयद्रथो जीवितार्थी गच्छमानो गृहान् प्रति।
मयानार्येण संरुद्धो द्रोणात् प्राप्याभयं सखे॥ १३॥

'सखे! जयद्रथ अपनी जीवनरक्षाके लिये घरकी ओर पधार रहे थे, परंतु मुझ अधमने ही द्रोणाचार्यसे अभय पाकर उन्हें रोक लिया॥ १३॥

(रक्षामि सैन्धवं युद्धे नैनं प्राप्स्यति फाल्गुनः।
मम सैन्यविनाशाय रुद्धो विप्रेण सैन्धवः॥

'मैं युद्धमें सिंधुराजकी रक्षा करूँगा; अर्जुन उसे नहीं पा सकेंगे' ऐसा कहकर इस ब्राह्मणने मेरी सेनाका संहार करानेके लिये सिंधुराजको रोक लिया॥

तस्य मे मन्दभाग्यस्य यतमानस्य संयुगे।
हतानि सर्वसैन्यानि हतो राजा जयद्रथः॥

'युद्धमें प्रयत्न करनेपर भी मुझ भाग्यहीनकी सारी सेनाएँ नष्ट हो गयीं और राजा जयद्रथ भी मार डाले गये॥

पश्य योधवरान् कर्ण शतशोऽथ सहस्रशः।
पार्थनामाङ्कितैर्बाणैः सर्वे नीता यमक्षयम्॥

'कर्ण! इन सैकड़ों-हजारों श्रेष्ठ योद्धाओंको देखो, ये सब-के-सब अर्जुनके नामसे अङ्कित बाणोंद्वारा यमलोक पहुँचाये गये हैं॥

कथमेकरथेनाजौ बहूनां नः प्रपश्यताम्।
विपन्नः सैन्धवो राजा योधाश्चैव सहस्रशः॥)

'हम बहुसंख्यक योद्धा देखते ही रह गये और युद्धस्थलमें एकमात्र रथकी सहायतासे अर्जुनने मेरे इन सहस्रों योद्धाओं तथा सिंधुराज जयद्रथको भी मार डाला। यह कैसे सम्भव हुआ॥

अद्य मे भ्रातरः क्षीणाश्चित्रसेनादयो रणे।
भीमसेनं समासाद्य पश्यतां नो दुरात्मनाम्॥ १४॥

'आज युद्धमें हम दुरात्माओंके देखते-देखते मेरे चित्रसेन आदि भाई भीमसेनसे भिड़कर नष्ट हो गये'॥ १४॥

कर्ण उवाच

आचार्यं मा विगर्हस्व शक्त्यासौ युध्यते द्विजः।
यथाबलं यथोत्साहं त्यक्त्वा जीवितमात्मनः॥ १५॥

कर्ण बोला—भाई! तुम आचार्यकी निन्दा न करो। वह ब्राह्मण तो अपने बल, शक्ति और उत्साहके अनुसार प्राणोंका भी मोह छोड़कर युद्ध करता ही है॥ १५॥

यद्येनं समतिक्रम्य प्रविष्टः श्वेतवाहनः।
नात्र सूक्ष्मोऽपि दोषः स्यादाचार्यस्य कथंचन॥ १६॥

यदि श्वेतवाहन अर्जुन आचार्य द्रोणका उल्लङ्घन करके सेनामें घुस गये तो इसमें किसी प्रकार आचार्यका कोई सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म दोष नहीं है॥ १६॥

कृती दक्षो युवा शूरः कृतास्त्रो लघुविक्रमः।
दिव्यास्त्रयुक्तमास्थाय रथं वानरलक्षणम्॥ १७॥

कृष्णेन च गृहीताश्वमभेद्यकवचावृतः।
गाण्डीवमजरं दिव्यं धनुरादाय वीर्यवान्॥ १८॥
प्रवर्षन् निशितान् बाणान् बाहुद्रविणदर्पितः।
यदर्जुनोऽभ्ययाद् द्रोणमुपपन्नं हि तस्य तत्॥ १९॥

अर्जुन अस्त्रविद्याके विद्वान्, दक्ष, युवावस्थासे सम्पन्न, शूरवीर, अनेक दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता और शीघ्रतापूर्वक पराक्रम प्रकट करनेवाले हैं। वे दिव्यास्त्रोंसे सम्पन्न एवं वानरध्वजसे उपलक्षित रथपर बैठे हुए थे। श्रीकृष्णने उनके घोड़ोंकी बागडोर ले रक्खी थी। वे अभेद्य कवचसे सुरक्षित थे। उन्हें अपने बाहुबलका अभिमान है ही। ऐसी दशामें पराक्रमी अर्जुन कभी जीर्ण न होनेवाले दिव्य गाण्डीव धनुषको लेकर तीखे बाणोंकी वर्षा करते हुए यदि वहाँ आचार्य द्रोणको लाँघ गये तो वह उनके योग्य ही कर्म था॥ १७—१९॥

आचार्यः स्थविरो राजञ्शीघ्रयाने तथाक्षमः।
बाहुव्यायामचेष्टायामशक्तस्तु नराधिप॥ २०॥

राजन्! नरेश्वर! आचार्य द्रोण अब बूढ़े हुए। वे शीघ्रतापूर्वक चलनेमें भी असमर्थ हैं। भुजाओंद्वारा परिश्रमपूर्वक की जानेवाली प्रत्येक चेष्टामें अब उनकी शक्ति उतनी काम नहीं देती है॥ २०॥

तेनैवमभ्यतिक्रान्तः श्वेताश्वः कृष्णसारथिः।
तस्य दोषं न पश्यामि द्रोणस्यानेन हेतुना॥ २१॥

इसीलिये श्रीकृष्ण जिनके सारथि हैं, वे श्वेतवाहन अर्जुन द्रोणाचार्यको लाँघ गये। यही कारण है कि मैं इसमें द्रोणाचार्यका दोष नहीं देख रहा हूँ॥ २१॥

अजय्यान् पाण्डवान् मन्ये द्रोणेनास्त्रविदा मृधे।
तथा ह्येनमतिक्रम्य प्रविष्टः श्वेतवाहनः॥ २२॥

मैं तो ऐसा मानता हूँ कि अस्त्रवेत्ता होनेपर भी द्रोण युद्धमें पाण्डवोंको नहीं जीत सकते, तभी तो उन्हें लाँघकर श्वेतवाहन अर्जुन व्यूहमें घुस गये॥ २२॥

दैवादिष्टेऽन्यथाभावो न मन्ये विद्यते क्वचित्।
यतो नो युध्यमानानां परं शक्त्या सुयोधन॥ २३॥
सैन्धवो निहतो युद्धे दैवमत्र परं स्मृतम्।

सुयोधन! दैवके विधानमें कहीं कोई उलट-फेर नहीं हो सकता, यह मेरी मान्यता है; क्योंकि हमलोग सम्पूर्ण शक्ति लगाकर युद्ध कर रहे थे, तो भी रणभूमिमें सिंधुराज मारे गये। इस विषयमें दैव (प्रारब्ध) को ही प्रधान माना गया है॥ २३½॥

परं यत्नं कुर्वतां च त्वया सार्धं रणाजिरे॥ २४॥
हत्वास्माकं पौरुषं वै दैवं पश्चात् करोति नः।
सततं चेष्टमानानां निकृत्या विक्रमेण च॥ २५॥

समराङ्गणमें तुम्हारे साथ हमलोग भी विजयके लिये

महान् प्रयत्न करते हैं, छल-कपट तथा पराक्रमद्वारा भी सदा विजयकी चेष्टामें लगे रहते हैं, तो भी दैव हमारे पुरुषार्थको नष्ट करके हमें पीछे ढकेल देता है ॥ २४-२५ ॥

दैवोपसृष्टः पुरुषो यत् कर्म कुरुते क्वचित्।
कृतं कृतं हि तत्कर्म दैवेन विनिपात्यते ॥ २६ ॥

दैव या दुर्भाग्यका मारा हुआ पुरुष कहीं जो भी कर्म करता है, उसके किये हुए प्रत्येक कर्मको दैव उलट देता है ॥ २६ ॥

यत् कर्तव्यं मनुष्येण व्यवसायवता सदा।
तत् कार्यमविशङ्केन सिद्धिर्दैवे प्रतिष्ठिता ॥ २७ ॥

मनुष्यको सदा उद्योगशील होकर निःशङ्कभावसे अपने कर्तव्यका पालन करना चाहिये; परंतु उसकी सिद्धि दैवके ही अधीन है ॥ २७ ॥

निकृत्या वञ्चिताः पार्था विषयोगैश्च भारत।
दग्धा जतुगृहे चापि द्यूतेन च पराजिताः ॥ २८ ॥
राजनीतिं व्यपाश्रित्य प्रहिताश्चैव काननम्।
यत्नेन च कृतं तत्तद् दैवेन विनिपातितम् ॥ २९ ॥

भारत ! हमलोगोंने कपट करके कुन्तीकुमारोंको छला, उन्हें मारनेके लिये विषका प्रयोग किया, लाक्षागृहमें जलाया, जूएमें हराया और राजनीतिका सहारा लेकर उन्हें वनमें भी भेजा। इस प्रकार प्रयत्नपूर्वक किये हुए हमारे उन सभी कार्योंको दैवने नष्ट कर दिया ॥ २८-२९ ॥

युध्यस्व यत्नमास्थाय दैवं कृत्वा निरर्थकम्।
यततस्तव तेषां च दैवं मार्गेण यास्यति ॥ ३० ॥

फिर भी तुम दैवको व्यर्थ समझकर प्रयत्नपूर्वक युद्ध करो। तुम्हारे और पाण्डवोंके अपनी-अपनी विजयके लिये प्रयत्न करते रहनेपर दैव अपने गन्तव्य मार्गसे जाता रहेगा ॥ ३० ॥

न तेषां मतिपूर्वं हि सुकृतं दृश्यते क्वचित्।
दुष्कृतं तव वा वीर बुद्ध्या हीनं कुरूद्वह ॥ ३१ ॥

वीर कुरुश्रेष्ठ ! मुझे तो पाण्डवोंका बुद्धिपूर्वक किया हुआ कहीं कोई सुकृत नहीं दिखायी देता अथवा तुम्हारा बुद्धिहीनतापूर्वक किया हुआ कोई दुष्कृत भी देखनेमें नहीं आता ॥ ३१ ॥

दैवं प्रमाणं सर्वस्य सुकृतस्येतरस्य वा।
अनन्यकर्म दैवं हि जागर्ति स्वपतामपि ॥ ३२ ॥

सुकृत हो या दुष्कृत, सबपर दैवका ही अधिकार है; वही उसका फल देनेवाला है। अपना ही पूर्वकृत कर्म दैव है, जो मनुष्योंके सो जानेपर भी जागता रहता है ॥ ३२ ॥

बहूनि तव सैन्यानि योधाश्च बहवस्तव।
न तथा पाण्डुपुत्राणामेवं युद्धमवर्तत ॥ ३३ ॥

पहले तुम्हारे पास बहुत-सी सेनाएँ और बहुत-से योद्धा थे। पाण्डवोंके पास उतने सैनिक नहीं थे। इस अवस्थामें युद्ध आरम्भ हुआ था ॥ ३३ ॥

तैरल्पैर्बहवो यूयं क्षयं नीताः प्रहारिणः।
शङ्के दैवस्य तत् कर्म पौरुषं येन नाशितम् ॥ ३४ ॥

तथापि उन अल्पसंख्यकोंने तुम बहुसंख्यक योद्धाओंको क्षीण कर दिया। मैं समझता हूँ, वह दैवका ही कर्म है; जिसने तुम्हारे पुरुषार्थका नाश कर दिया है ॥ ३४ ॥

संजय उवाच

एवं सम्भाषमाणानां बहु तत् तज्जनाधिप।
पाण्डवानामनीकानि समदृश्यन्त संयुगे ॥ ३५ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार जब कर्ण और दुर्योधन परस्पर बहुत-सी बातें कर रहे थे, उसी समय युद्धस्थलमें पाण्डवोंकी सेनाएँ दिखायी दीं ॥ ३५ ॥

ततः प्रववृते युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपम्।
तावकानां परैः सार्धं राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ ३६ ॥

राजन् ! तदनन्तर आपकी कुमन्त्रणाके अनुसार आपके पुत्रोंका शत्रुओंके साथ घोर युद्ध छिड़ गया, जिसमें रथसे रथ और हाथीसे हाथी भिड़ गये थे ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि जयद्रथवधपर्वणि पुनर्युद्धारम्भे द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत जयद्रथवधपर्वमें पुनः युद्धारम्भविषयक एक सौ बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५२ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ४ श्लोक मिलाकर कुल ४० श्लोक हैं)

(घटोत्कचवधपर्व)

त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

कौरव-पाण्डव-सेनाका युद्ध, दुर्योधन और युधिष्ठिरका संग्राम तथा दुर्योधनकी पराजय

संजय उवाच

तदुदीर्णं गजानीकं बलं तव जनाधिप।
पाण्डुसेनामतिक्रम्य योधयामास सर्वतः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—जनेश्वर ! आपकी प्रचण्ड गजसेना पाण्डवसेनाका उल्लङ्घन करके सब ओर फैलकर युद्ध करने लगी ॥ १ ॥

पञ्चालाः कुरवश्चैव योधयन्तः परस्परम्।
यमराष्ट्राय महते परलोकाय दीक्षिताः ॥ २ ॥

पाञ्चाल और कौरव योद्धा महान् यमराज्य एवं परलोककी दीक्षा लेकर परस्पर युद्ध करने लगे ॥ २ ॥

शूराः शूरैः समागम्य शरतोमरशक्तिभिः ।
विव्यधुः समरेऽन्योन्यं निन्युश्चैव यमक्षयम् ॥ ३ ॥

एक पक्षके शूरवीर दूसरे पक्षके शूरवीरोंसे भिड़कर बाण, तोमर और शक्तियोंसे समरभूमिमें एक-दूसरेको चोट पहुँचाने और यमलोक भेजने लगे ॥ ३ ॥

रथिनां रथिभिः सार्धं रुधिरस्रावदारुणम् ।
प्रावर्तत महद् युद्धं निघ्नतामितरेतरम् ॥ ४ ॥

परस्पर प्रहार करनेवाले रथियोंका रथियोंके साथ महान् युद्ध होने लगा, जो खूनकी धारा बहानेके कारण अत्यन्त भयंकर जान पड़ता था ॥ ४ ॥

वारणाश्च महाराज समासाद्य परस्परम् ।
विषाणैर्दारयामासुः सुसंक्रुद्धा मदोत्कटाः ॥ ५ ॥

महाराज ! अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए मदमत्त हाथी परस्पर भिड़कर दाँतोंके प्रहारसे एक-दूसरेको विदीर्ण करने लगे॥

हयारोहान् हयारोहाः प्रासशक्तिपरश्वधैः ।
बिभिदुस्तुमुले युद्धे प्रार्थयन्तो महद् यशः ॥ ६ ॥

उस भयंकर युद्धमें महान् यशकी अभिलाषा रखते हुए घुड़सवार घुड़सवारोंको प्रास, शक्ति और फरसोंद्वारा घायल कर रहे थे ॥ ६ ॥

पत्तयश्च महाबाहो शतशः शस्त्रपाणयः ।
अन्योन्यमार्दयन् राजन् नित्यं यत्ताः पराक्रमे ॥ ७ ॥

राजन् ! हाथोंमें शस्त्र लिये सैकड़ों पैदल सैनिक सदा पराक्रमके लिये प्रयत्नशील हो एक दूसरेपर चोट कर रहे थे ॥

गोत्राणां नामधेयानां कुलानां चैव मारिष ।
श्रवणाद्धि विजानीमः पञ्चालान् कुरुभिः सह ॥ ८ ॥

आर्य ! नाम, गोत्र और कुलोंका परिचय सुनकर ही हमलोग उस समय कौरवोंके साथ युद्ध करनेवाले पाञ्चालोंको पहचान पाते थे ॥ ८ ॥

तेऽन्योन्यं समरे योधाः शरशक्तिपरश्वधैः ।
प्रैषयन् परलोकाय विचरन्तो ह्यभीतवत् ॥ ९ ॥

उस समराङ्गणमें वे समस्त योद्धा निर्भय-से विचरते हुए बाण, शक्ति और फरसोंकी मारसे एक दूसरेको परलोक भेज रहे थे ॥ ९ ॥

शरा दश दिशो राजंस्तेषां मुक्ताः सहस्रशः ।
न भ्राजन्ते यथातत्त्वं भास्करेऽस्तंगतेऽपि च ॥ १० ॥

राजन् ! सूर्यास्त हो जानेके कारण उन योद्धाओंके छोड़े हुए सहस्रों बाण दसों दिशाओंमें फैलकर अच्छी तरह प्रकाशित नहीं हो पाते थे ॥ १० ॥

तथा प्रयुध्यमानेषु पाण्डवेयेषु भारत ।
दुर्योधनो महाराज व्यवागाहत तद् बलम् ॥ ११ ॥

भरतवंशी महाराज ! जब इस प्रकार पाण्डव-सैनिक युद्ध कर रहे थे, उस समय दुर्योधनने उस सेनामें प्रवेश किया॥

सैन्धवस्य वधेनैव भृशं दुःखसमन्वितः ।
मर्तव्यमिति संचिन्त्य प्राविशच्च द्विषद्बलम् ॥ १२ ॥

वह सिंधुराजके वधसे बहुत दुःखी हो गया था । अतः मरनेका ही निश्चय करके उसने शत्रुओंकी सेनामें प्रवेश किया॥

नादयन् रथघोषेण कम्पयन्निव मेदिनीम् ।
अभ्यवर्तत पुत्रस्ते पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ १३ ॥

अपने रथकी घरघराहटसे दिशाओंको प्रतिध्वनित करता और पृथ्वीको कँपाता हुआ-सा आपका पुत्र पाण्डवसेनाके सम्मुख आया ॥ १३ ॥

स संनिपातस्तुमुलस्तस्य तेषां च भारत ।
अभवत् सर्वसैन्यानामभावकरणो महान् ॥ १४ ॥

भारत ! पाण्डव सैनिकों तथा दुर्योधनका वह भयंकर संग्राम समस्त सेनाओंका महान् विनाश करनेवाला था॥१४॥

(धृतराष्ट्र उवाच

द्रोणः कर्णः कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ।
नावारयन् कथं युद्धे राजानं राजकाङ्क्षिणः ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—द्रोण, कर्ण, कृप तथा सात्वतवंशी कृतवर्मा—ये तो राजाके चाहनेवालोंमेंसे हैं, इन्होंने उसे युद्धमें जानेसे रोका क्यों नहीं ? ॥

सर्वोपायैर्हि युद्धेषु रक्षितव्यो महीपतिः ।
एषा नीतिः परा युद्धे दृष्टा तत्र महर्षिभिः ॥

युद्धमें सभी उपायोंसे राजाकी रक्षा करनी चाहिये । महर्षियोंने युद्धविषयक इसी सर्वोत्तम नीतिका साक्षात्कार किया है ॥

प्रविष्टे वा मम सुते परेषां वै महद् बलम् ।
मामका रथिनां श्रेष्ठाः किमकुर्वत संजय ॥

संजय ! जब मेरा पुत्र शत्रुओंकी विशाल सेनामें घुस गया, उस समय मेरे पक्षके श्रेष्ठ रथियोंने क्या किया ? ॥

संजय उवाच

राजन् संग्राममाश्चर्यं पुत्रस्य तव भारत ।
एकस्य च बहूनां च शृणु मे ब्रुवतोऽद्भुतम् ॥

संजयने कहा—भरतवंशी नरेश ! आपके पुत्रके आश्चर्यजनक एवं अद्भुत संग्रामका, जो एकका बहुत-से योद्धाओंके साथ हुआ था, वर्णन करता हूँ, सुनिये ॥

द्रोणेन वार्यमाणोऽसौ कर्णेन च कृपेण च ।
प्राविशत् पाण्डवीं सेनां मकराः सागरं यथा ॥

द्रोणाचार्य, कर्ण और कृपाचार्यके मना करनेपर भी जैसे मगर समुद्रमें प्रवेश करता है, उसी प्रकार दुर्योधन पाण्डवसेनामें घुस गया था ॥

क्षिपन्निषुसहस्राणि तत्र तत्र तदा तदा ।
पञ्चालान् पाण्डवांश्चैव विव्याध निशितैः शरैः ॥

जहाँ-तहाँ सब ओर सहस्रों बाणोंकी वर्षा करते हुए उसने तीखे बाणोंद्वारा पाञ्चालों और पाण्डवोंको घायल कर दिया ॥

यथोद्यन् विततं सूर्यो रश्मिभिर्नाशयेत् तमः ।
तथा पुत्रस्तव बलं नाशयत् तन्महाबलः ॥)

जैसे उदयकालका सूर्य अपनी किरणोंद्वारा सर्वत्र फैले हुए अंधकारका नाश कर देता है, उसी प्रकार आपके महाबली पुत्रने शत्रुसेनाका विनाश कर दिया ॥

यथा मध्यंदिने सूर्यं प्रतपन्तं गभस्तिभिः ।
तथा तव सुतं मध्ये प्रतपन्तं शरार्चिभिः ॥ १५ ॥
न शेकुर्भ्रातरं युद्धे पाण्डवाः समुदीक्षितुम् ।

जैसे अपनी किरणोंसे तपते हुए दोपहरके सूर्यकी ओर कोई देख नहीं पाता, उसी प्रकार अपने बाणोंकी ज्वालाओंसे शत्रुओंको संताप देते हुए सेनाके मध्यभागमें खड़े आपके पुत्र एवं अपने भाई दुर्योधनकी ओर उस युद्धस्थलमें पाण्डव देख नहीं पाते थे ॥ १५½ ॥

पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ॥ १६ ॥
पर्यधावन्त पञ्चाला वध्यमाना महात्मना ।

महामनस्वी दुर्योधनकी मार खाकर पाञ्चाल सैनिक इधर-उधर भागने लगे । अब वे पलायन करनेमें ही उत्साह दिखा रहे थे । उनमें शत्रुओंको जीतनेका उत्साह नहीं रह गया था ॥ १६½ ॥

रुक्मपुङ्खैः प्रसन्नाग्रैस्तव पुत्रेण धन्विना ॥ १७ ॥
अर्द्यमानाः शरैस्तूर्णं न्यपतन् पाण्डुसैनिकाः ।

आपके धनुर्धर पुत्रके द्वारा चलाये हुए सुवर्णमय पंख तथा चमकती हुई धारवाले बाणोंसे पीड़ित होकर बहुतेरे पाण्डव सैनिक तुरंत धराशायी हो गये ॥ १७½ ॥

न तादृशं रणे कर्म कृतवन्तस्तु तावकाः ॥ १८ ॥
यादृशं कृतवान् राजा पुत्रस्तव विशाम्पते ।

प्रजानाथ ! आपके सैनिकोंने रणभूमिमें वैसा पराक्रम नहीं किया था, जैसा कि आपके पुत्र राजा दुर्योधनने किया॥

पुत्रेण तव सा सेना पाण्डवी मथिता रणे ॥ १९ ॥
नलिनी द्विरदेनेव समन्तात् फुल्लपङ्कजा ।

जैसे हाथी सब ओरसे खिले हुए कमलपुष्पोंसे सुशोभित पोखरेको मथ डालता है, उसी प्रकार आपके पुत्रने रणभूमिमें पाण्डव-सेनाको मथ डाला ॥ १९½ ॥

क्षीणतोयानिलार्काभ्यां हतत्विडिव पद्मिनी ॥ २० ॥
बभूव पाण्डवी सेना तव पुत्रस्य तेजसा ।

जैसे हवा और सूर्यसे पानी सूख जानेके कारण पद्मिनी हतप्रभ हो जाती है, उसी प्रकार आपके पुत्रके तेजसे तप्त होकर पाण्डव-सेना श्रीहीन हो गयी थी ॥ २०½ ॥

पाण्डुसेनां हतां दृष्ट्वा तव पुत्रेण भारत ॥ २१ ॥
भीमसेनपुरोगास्तु पञ्चालाः समुपाद्रवन् ।

भारत ! आपके पुत्रद्वारा पाण्डवसेनाको मारी गयी देख पाञ्चालोंने भीमसेनको अगुआ बनाकर उसपर आक्रमण किया ॥ २१½ ॥

स भीमसेनं दशभिर्माद्रीपुत्रौ त्रिभिस्त्रिभिः ॥ २२ ॥
विराटद्रुपदौ षड्भिः शतेन च शिखण्डिनम् ।
धृष्टद्युम्नं च सप्तत्या धर्मपुत्रं च सप्तभिः ॥ २३ ॥
केकयांश्चैव चेदींश्च बहुभिर्निशितैः शरैः ।

उस समय दुर्योधनने भीमसेनको दस, माद्रीकुमारोंको तीन-तीन, विराट और द्रुपदको छः-छः, शिखण्डीको सौ, धृष्टद्युम्नको सत्तर, धर्मपुत्र युधिष्ठिरको सात और केकय तथा चेदिदेशके सैनिकोंको बहुत-से तीखे बाण मारे ॥२२-२३½॥

सात्वतं पञ्चभिर्विद्ध्वा द्रौपदेयांस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥२४॥
घटोत्कचं च समरे विद्ध्वा सिंह इवानदत् ।

फिर सात्यकिको पाँच बाणोंसे घायल करके द्रौपदीपुत्रोंको तीन-तीन बाण मारे। तत्पश्चात् समरभूमिमें घटोत्कचको घायल करके दुर्योधनने सिंहके समान गर्जना की ॥२४½॥

शतशश्चापरान् योधान् सद्विपांश्च महारणे ॥ २५ ॥
शरैरवचकर्तोग्रैः क्रुद्धोऽन्तक इव प्रजाः ।

उस महायुद्धमें हाथियोंसहित सैकड़ों दूसरे योद्धाओंको क्रोधमें भरे हुए दुर्योधनने अपने भयंकर बाणोंद्वारा उसी प्रकार काट डाला, जैसे यमराज प्रजाका विनाश करते हैं ॥

सा तेन पाण्डवी सेना वध्यमाना शिलीमुखैः ॥ २६ ॥
तव पुत्रेण संग्रामे विदुद्राव नराधिप ।

नरेश्वर ! उस संग्राममें आपके पुत्रके चलाये हुए बाणोंकी मार खाकर पाण्डव-सेना इधर-उधर भागने लगी॥२६½॥

तं तपन्तमिवादित्यं कुरुराजं महाहवे ॥ २७ ॥
नाशकन् वीक्षितुं राजन् पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ।

राजन् ! उस महासमरमें तपते हुए सूर्यके समान कुरुराज दुर्योधनकी ओर पाण्डवसैनिक देख भी न सके ॥२७½॥

ततो युधिष्ठिरो राजा कुपितो राजसत्तम ॥ २८ ॥
अभ्यधावत् कुरुपतिं तव पुत्रं जिघांसया ।

नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए राजा युधिष्ठिर आपके पुत्र कुरुराज दुर्योधनको मार डालनेकी इच्छासे उसकी ओर दौड़े ॥ २८½ ॥

तावुभौ युधि कौरव्यौ समीयतुररिंदमौ ॥ २९ ॥
स्वार्थहेतोः पराक्रान्तौ दुर्योधनयुधिष्ठिरौ ।

शत्रुओंका दमन करनेवाले वे दोनों कुरुवंशी वीर दुर्योधन

और युधिष्ठिर अपने-अपने स्वार्थके लिये युद्धमें पराक्रम प्रकट करते हुए एक दूसरेसे भिड़ गये ॥ २९½ ॥

ततो दुर्योधनः क्रुद्धः शरैः संनतपर्वभिः ॥ ३० ॥
विव्याध दशभिस्तूर्णं ध्वजं चिच्छेद चेषुणा ।

तब दुर्योधनने कुपित होकर झुकी हुई गाँठवाले दस बाणोंद्वारा तुरंत ही युधिष्ठिरको घायल कर दिया और एक बाणसे उनका ध्वज भी काट डाला ॥ ३०½ ॥

इन्द्रसेनं त्रिभिश्चैव ललाटे जघ्निवान् नृप ॥ ३१ ॥
सारथिं दयितं राज्ञः पाण्डवस्य महात्मनः ।

नरेश्वर ! उन्होंने तीन बाणोंद्वारा महात्मा पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरके प्रिय सारथि इन्द्रसेनको उसके ललाटप्रदेशमें चोट पहुँचायी ॥ ३१½ ॥

धनुश्च पुनरन्येन चकर्तास्य महारथः ॥ ३२ ॥
चतुर्भिश्चतुरश्चैव बाणैर्विव्याध वाजिनः ।

फिर दूसरे बाणसे महारथी दुर्योधनने राजा युधिष्ठिरका धनुष भी काट दिया और चार बाणोंसे उनके चारों घोड़ोंको बींध डाला ॥ ३२½ ॥

ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धो निमेषादिव कार्मुकम् ॥ ३३ ॥
अन्यदादाय वेगेन कौरवं प्रत्यवारयत् ।

तब राजा युधिष्ठिरने कुपित हो पलक मारते-मारते दूसरा धनुष हाथमें ले लिया और बड़े वेगसे कुरुवंशी दुर्योधनको रोका ॥ ३३½ ॥

तस्य तान् निघ्नतः शत्रून् रुक्मपृष्ठं महद् धनुः ॥३४॥
भल्लाभ्यां पाण्डवो ज्येष्ठस्त्रिधा चिच्छेद मारिष ।

माननीय नरेश ! ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिरने दो भल्ल मारकर शत्रुओंके संहारमें लगे हुए दुर्योधनके सुवर्णमय पृष्ठ-वाले विशाल धनुषके तीन टुकड़े कर डाले ॥ ३४½ ॥

विव्याध चैनं दशभिः सम्यगस्तैः शितैः शरैः ॥ ३५ ॥
मर्म भित्त्वा तु ते सर्वे संलग्नाः क्षितिमाविशन् ।

साथ ही, उन्होंने अच्छी तरह चलाये हुए दस पैने बाणों-से दुर्योधनको भी घायल कर दिया । वे सारे बाण दुर्योधनके मर्म-स्थानोंमें लगकर उन्हें विदीर्ण करते हुए पृथ्वीमें समा गये।३५½

ततः परिवृता योधाः परिवव्रुर्युधिष्ठिरम् ॥ ३६ ॥
वृत्रहत्यै यथा देवाः परिवव्रुः पुरंदरम् ।

फिर तो भागे हुए पाण्डव-योद्धा लौट आये और युधिष्ठिरको वैसे ही घेरकर खड़े हो गये, जैसे वृत्रासुरके वधके लिये सब देवता इन्द्रको घेरकर खड़े हुए थे ॥३६½॥

ततो युधिष्ठिरो राजा तव पुत्रस्य मारिष ।
शरं च सूर्यरश्म्याभमत्युग्रमनिवारणम् ॥ ३७ ॥
हा हतोऽसीति राजानमुक्त्वामुञ्चद् युधिष्ठिरः ।

आर्य ! तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने आपके पुत्र राजा दुर्योधनपर सूर्यकिरणोंके समान तेजस्वी, अत्यन्त भयंकर तथा अनिवार्य बाण यह कहकर चलाया कि 'हाय ! तुम मारे गये' ॥ ३७½ ॥

स तेनाकर्णमुक्तेन विद्धो बाणेन कौरवः ॥ ३८ ॥
निषसाद रथोपस्थे भृशं सम्मूढचेतनः ।

कानोंतक खींचकर चलाये हुए उस बाणसे घायल हो कुरुवंशी दुर्योधन अत्यन्त मूर्च्छित हो गया और रथके पिछले भागमें धम्मसे बैठ गया ॥ ३८½ ॥

ततः पाञ्चाल्यसेनानां भृशमासीद् रवो महान् ॥३९॥
हतो राजेति राजेन्द्र मुदितानां समन्ततः ।
बाणशब्दरवश्चोग्रः शुश्रुवे तत्र मारिष ॥ ४० ॥

आदरणीय राजेन्द्र ! उस समय प्रसन्न हुए पाञ्चाल-सैनिकोंने 'राजा दुर्योधन मारा गया' ऐसा कहकर चारों ओर अत्यन्त महान् कोलाहल मचाया । वहाँ बाणोंका भयंकर शब्द भी सुनायी दे रहा था ॥ ३९-४० ॥

अथ द्रोणो द्रुतं तत्र प्रत्यदृश्यत संयुगे ।
हृष्टो दुर्योधनश्चापि दृढमादाय कार्मुकम् ॥ ४१ ॥
तिष्ठ तिष्ठेति राजानं ब्रुवन् पाण्डवमभ्ययात् ।

तत्पश्चात् तुरंत ही वहाँ युद्ध-स्थलमें द्रोणाचार्य दिखायी दिये । इधर, राजा दुर्योधनने भी हर्ष और उत्साहमें भरकर सुदृढ धनुष हाथमें ले 'खड़े रहो, खड़े रहो' कहते हुए वहाँ पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरपर आक्रमण किया॥४१½॥

प्रत्युद्ययुस्तं त्वरिताः पञ्चाला जयगृद्धिनः ॥ ४२ ॥
तान् द्रोणः प्रतिजग्राह परीप्सन् कुरुसत्तमम् ।
चण्डवातोद्धुतान् मेघान् निघ्नन् रश्मिमुचो यथा ॥४३॥

यह देख विजयाभिलाषी पाञ्चाल सैनिक तुरंत ही उसका सामना करनेके लिये आगे बढ़े; परंतु कुरुश्रेष्ठ दुर्योधनकी रक्षाके लिये द्रोणाचार्यने उन सबको उसी तरह नष्ट कर दिया, जैसे प्रचण्ड वायुद्वारा उठाये हुए मेघोंको सूर्यदेव नष्ट कर देते हैं ॥ ४२-४३ ॥

ततो राजन् महानासीत् संग्रामो भूरिवर्धनः ।
तावकानां परेषां च समेतानां युयुत्सया ॥ ४४ ॥

राजन् ! तदनन्तर युद्धकी इच्छासे एकत्र हुए आपके और शत्रुपक्षके सैनिकोंका महान् संग्राम होने लगा, जिसमें बहुसंख्यक प्राणियोंका संहार हुआ ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दुर्योधनपराभवे त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रिकालिक युद्धके प्रसंगमें दुर्योधनकी पराजयविषयक एक सौ तिरपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ७ श्लोक मिलाकर कुल ५१ श्लोक हैं)

चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

रात्रियुद्धमें पाण्डव-सैनिकोंका द्रोणाचार्यपर आक्रमण और द्रोणाचार्यद्वारा उनका संहार

धृतराष्ट्र उवाच

यत् तदा प्राविशत् पाण्डूनाचार्यः कुपितो बली।
उक्त्वा दुर्योधनं मन्दं मम शास्त्रातिगं सुतम् ॥ १ ॥
प्रविश्य विचरन्तं च रथे शूरमवस्थितम्।
कथं द्रोणं महेष्वासं पाण्डवाः पर्यवारयन् ॥ २ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! मेरी आज्ञाका उल्लंघन करनेवाले मेरे मूर्ख पुत्र दुर्योधनसे पूर्वोक्त बातें कहकर क्रोधमें भरे हुए बलवान् आचार्य द्रोणने जब वहाँ पाण्डव-सेनामें प्रवेश किया, उस समय रथपर बैठकर सेनाके भीतर प्रवेश करके सब ओर विचरते हुए महाधनुर्धर शूरवीर द्रोणाचार्यको पाण्डवोंने किस प्रकार रोका? ॥ १–२ ॥

केऽरक्षन् दक्षिणं चक्रमाचार्यस्य महाहवे।
के चोत्तरमरक्षन्त निघ्नतः शात्रवान् बहून् ॥ ३ ॥

उस महासमरमें बहुसंख्यक शत्रुयोद्धाओंका संहार करनेवाले आचार्य द्रोणके दायें चक्रकी किन लोगोंने रक्षा की तथा किन लोगोंने उनके रथके बायें पहियेकी रखवाली की? ॥

के चास्य पृष्ठतोऽन्वासन् वीरा वीरस्य योधिनः।
के पुरस्तादवर्तन्त रथिनस्तस्य शात्रवः ॥ ४ ॥

युद्धपरायण वीर रथी आचार्यके पीछे कौन-से वीर थे और शत्रुपक्षके कौन-कौनसे वीर उनके सामने खड़े हुए थे॥

मन्ये तानस्पृशच्छीतमतिवेलमनार्तवम्।
मन्ये ते समवेपन्त गावो वै शिशिरे यथा ॥ ५ ॥

मैं तो समझता हूँ शत्रुओंको बहुत देरतक बिना मौसमके ही सर्दी लगने लगी होगी। जैसे शिशिर ऋतुमें गायें सर्दीके मारे काँपने लगती हैं, उसी तरह वे शत्रुसैनिक भी आचार्यके भयसे थर-थर काँपने लगे होंगे ॥ ५ ॥

यत्प्राविशन्महेष्वासः पञ्चालानपराजितः।
नृत्यन् स रथमार्गेषु सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ६ ॥

क्योंकि किसीसे परास्त न होनेवाले, सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाधनुर्धर द्रोणाचार्यने पाञ्चालोंकी सेनामें रथके मार्गोंपर नृत्य-सा करते हुए प्रवेश किया था ॥ ६ ॥

निर्दहन् सर्वसैन्यानि पञ्चालानां रथर्षभः।
धूमकेतुरिव क्रुद्धः कथं मृत्युमुपेयिवान् ॥ ७ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोण क्रोधमें भरे हुए धूमकेतुके समान प्रकट होकर पाञ्चालोंकी समस्त सेनाओंको दग्ध कर रहे थे; फिर उनकी मृत्यु कैसे हो गयी? ॥ ७ ॥

संजय उवाच

सायाह्ने सैन्धवं हत्वा राज्ञा पार्थः समेत्य च।
सात्यकिश्च महेष्वासो द्रोणमेवाभ्यधावताम् ॥ ८ ॥

संजयने कहा—राजन्! सायंकाल सिंधुराज जयद्रथका वध करके राजा युधिष्ठिरसे मिलकर कुन्तीकुमार अर्जुन और महाधनुर्धर सात्यकि दोनोंने द्रोणाचार्यपर ही धावा किया॥

तथा युधिष्ठिरस्तूर्णं भीमसेनश्च पाण्डवः।
पृथक्चमूभ्यां संयत्तौ द्रोणमेवाभ्यधावताम् ॥ ९ ॥

इसी प्रकार राजा युधिष्ठिर और पाण्डुपुत्र भीमसेनने भी पृथक्-पृथक् सेनाओंके साथ तैयार हो शीघ्रतापूर्वक द्रोणाचार्यपर ही आक्रमण किया ॥ ९ ॥

तथैव नकुलो धीमान् सहदेवश्च दुर्जयः।
धृष्टद्युम्नः सहानीको विराटश्च सकेकयः ॥ १० ॥
मत्स्याः शाल्वाः ससेनाश्च द्रोणमेव ययुर्युधि।

इसी तरह बुद्धिमान् नकुल, दुर्जय वीर सहदेव, सेनासहित धृष्टद्युम्न, राजा विराट, केकयराजकुमार तथा मत्स्य और शाल्वदेशके सैनिक अपनी सेनाओंके साथ युद्धस्थलमें द्रोणाचार्यपर ही चढ़ आये ॥ १०½ ॥

द्रुपदश्च तथा राजा पञ्चालैरभिरक्षितः ॥ ११ ॥
धृष्टद्युम्नपिता राजन् द्रोणमेवाभ्यवर्तत।

राजन्! पाञ्चाल सैनिकोंसे सुरक्षित धृष्टद्युम्न-पिता राजा द्रुपदने भी द्रोणाचार्यका ही सामना किया ॥ ११½ ॥

द्रौपदेया महेष्वासा राक्षसश्च घटोत्कचः ॥ १२ ॥
ससैन्यास्ते न्यवर्तन्त द्रोणमेव महाद्युतिम्।

महाधनुर्धर द्रौपदीकुमार तथा राक्षस घटोत्कच भी अपनी सेनाओंके साथ महातेजस्वी द्रोणाचार्यकी ही ओर लौट आये ॥ १२½ ॥

प्रभद्रकाश्च पञ्चालाः षट्सहस्राः प्रहारिणः ॥ १३ ॥
द्रोणमेवाभ्यवर्तन्त पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्।

प्रहार करनेमें कुशल छः हजार प्रभद्रक और पाञ्चाल योद्धा भी शिखण्डीको आगे करके द्रोणाचार्यपर ही चढ़ आये ॥ १३½ ॥

तथेतरे नरव्याघ्राः पाण्डवानां महारथाः ॥ १४ ॥
सहिताः संन्यवर्तन्त द्रोणमेव द्विजर्षभम्।

इसी प्रकार पाण्डव-सेनाके अन्य महारथी वीर पुरुषसिंह भी एक साथ द्विजश्रेष्ठ द्रोणाचार्यकी ओर ही लौट आये ॥ १४½ ॥

तेषु शूरेषु युद्धाय गतेषु भरतर्षभ ॥ १५ ॥
बभूव रजनी घोरा भीरूणां भयवर्धिनी।

भरतश्रेष्ठ! युद्धके लिये उन शूरवीरोंके आ पहुँचनेपर वह रात बड़ी भयंकर हो गयी, जो भीरु पुरुषोंके भयको बढ़ानेवाली थी ॥ १५½ ॥

योधानामशिवा रौद्रा राजन्नन्तकगामिनी ॥ १६ ॥
कुञ्जराश्वमनुष्याणां प्राणान्तकरणी तदा ।

राजन् ! वह रात्रि समस्त योद्धाओंके लिये अमङ्गल-कारक, भयंकर, यमराजके पास ले जानेवाली तथा हाथी, घोड़े और मनुष्योंके प्राणोंका अन्त करनेवाली थी ॥ १६½ ॥

तस्यां रजन्यां घोरायां नदन्त्यः सर्वतः शिवाः ॥ १७ ॥
न्यवेदयन् भयं घोरं सज्वालकवलैर्मुखैः ।

उस घोर रजनीमें सब ओर कोलाहल करती हुई सियारिनें अपने मुँहसे आग उगलती हुई घोर भयकी सूचना दे रही थीं ॥ १७½ ॥

उलूकाश्चाप्यदृश्यन्त शंसन्तो विपुलं भयम् ॥ १८ ॥
विशेषतः कौरवाणां ध्वजिन्यामतिदारुणाः ।

विशेषतः कौरवसेनामें महान् भयकी सूचना देनेवाले अत्यन्त दारुण उल्लू पक्षी भी दिखायी दे रहे थे ॥ १८½ ॥

ततः सैन्येषु राजेन्द्र शब्दः समभवन्महान् ॥ १९ ॥
भेरीशब्देन महता मृदङ्गानां स्वनेन च ।
गजानां बृंहितैश्चापि तुरङ्गाणां च ह्रेषितैः ॥ २० ॥
खुरशब्दनिपातैश्च तुमुलः सर्वतोऽभवत् ।

राजेन्द्र ! तदनन्तर सारी सेनाओंमें रणभेरीकी भारी आवाज, मृदङ्गोंकी ध्वनि, हाथियोंके चिग्घाड़ने, घोड़ोंके हिनहिनाने और धरतीपर उनकी टाप पड़नेसे चारों ओर अत्यन्त भयंकर शब्द गूँजने लगा ॥ १९–२०½ ॥

ततः समभवद् युद्धं संध्यायामतिदारुणम् ॥ २१ ॥
द्रोणस्य च महाराज सृंजयानां च सर्वशः ।

महाराज ! तत्पश्चात् संध्याकालमें समस्त सृंजय-वीरों तथा द्रोणाचार्यका अत्यन्त दारुण संग्राम होने लगा ॥ २१½ ॥

तमसा चावृते लोके न प्राज्ञायत किंचन ॥ २२ ॥
सैन्येन रजसा चैव समन्तादुत्थितेन ह ।

सारा जगत् अंधकारसे तथा सेनाद्वारा सब ओर उड़ायी हुई धूलसे आच्छादित होनेके कारण किसीको कुछ भी ज्ञात नहीं होता था ॥ २२½ ॥

नरस्याश्वस्य नागस्य समसज्जत शोणितम् ॥ २३ ॥
नापश्याम रजो भौमं कश्मलेनाभिसंवृताः ।

मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंके रक्तमें सन जानेके कारण हमें धरतीकी धूल दिखायी नहीं देती थी । हम सब लोगोंपर मोह-सा छा गया था ॥ २३½ ॥

रात्रौ वंशवनस्येव दह्यमानस्य पर्वते ॥ २४ ॥
घोरश्चटचटाशब्दः शस्त्राणां पतताभूत् ।

जैसे पर्वतपर रातके समय बाँसोंका जंगल जल रहा हो और उन बाँसोंके चटखनेका घोर शब्द सुनायी दे रहा हो, उसी प्रकार शस्त्रोंके आघात-प्रत्याघातसे घोर चटचट शब्द कानोंमें पड़ रहा था ॥ २४½ ॥

मृदङ्गानकनिर्ह्रादैर्झर्झरैः पटहैस्तथा ॥ २५ ॥
फेत्कारैर्ह्रेषितैः शब्दैः सर्वमेवाकुलं बभौ ।

मृदङ्ग और ढोलोंकी आवाजसे, झाँझ और पटहोंकी ध्वनिसे तथा हाथी-घोड़ोंके फुंकार और हींसनेके शब्दोंसे वहाँका सब कुछ व्याप्त जान पड़ता था ॥ २५½ ॥

नैव स्वे न परे राजन् प्राज्ञायन्त तमोवृते ॥ २६ ॥
उन्मत्तमिव तत् सर्वं बभूव रजनीमुखे ।

राजन् ! उस अन्धकाराच्छन्न प्रदेशमें अपने और पराये-की पहचान नहीं होती थी । उस प्रदोषकालमें सब कुछ उन्मत्त-सा जान पड़ता था ॥ २६½ ॥

भौमं रजोऽथ राजेन्द्र शोणितेन प्रणाशितम् ॥ २७ ॥
शातकौम्भैश्च कवचैर्भूषणैश्च तमोऽभ्यगात् ।

राजेन्द्र ! रक्तकी धाराने धरतीकी धूलको नष्ट कर दिया । सोनेके कवचों और आभूषणोंकी चमकसे अंधकार दूर हो गया ॥ २७½ ॥

ततः सा भारती सेना मणिहेमविभूषिता ॥ २८ ॥
द्यौरिवासीत् सनक्षत्रा रजन्यां भरतर्षभ ।

भरतश्रेष्ठ ! उस समय रात्रिकालमें मणियों तथा सुवर्णके आभूषणोंसे विभूषित हुई वह कौरवसेना नक्षत्रोंसे युक्त आकाशके समान सुशोभित होती थी ॥ २८½ ॥

गोमायुबलसंघुष्टा शक्तिध्वजसमाकुला ॥ २९ ॥
वारणाभिरुता घोरा क्ष्वेडितोत्क्रुष्टनादिता ।

उस सेनाके आसपास सियारोंके समूह अपनी भयंकर बोली बोल रहे थे । शक्तियों तथा ध्वजोंसे सारी सेना व्याप्त थी । कहीं हाथी चिग्घाड़ रहे थे, कहीं योद्धा सिंहनाद कर रहे थे और कहीं एक सैनिक दूसरेको पुकारते तथा ललकारते थे । इन शब्दोंसे कोलाहलपूर्ण हुई वह सेना बड़ी भयानक जान पड़ती थी ॥ २९½ ॥

तत्राभवन्महाशब्दस्तुमुलो लोमहर्षणः ॥ ३० ॥
समावृण्वन् दिशः सर्वा महेन्द्राशनिनिःस्वनः ।

थोड़ी देरमें वहाँ रोंगटे खड़े कर देनेवाला अत्यन्त भयं-कर महान् शब्द गूँज उठा । ऐसा जान पड़ता था देवराज इन्द्रके वज्रकी गड़गड़ाहट फैल गयी हो । वह शब्द वहाँ सारी दिशाओंमें छा गया था ॥ ३०½ ॥

सा निशीथे महाराज सेनादृश्यत भारती ॥ ३१ ॥
अङ्गदैः कुण्डलैर्निष्कैः शस्त्रैश्चैवावभासिता ।

महाराज ! रातके समय कौरवसेना अपने बाजूबन्द, कुण्डल, सोनेके हार तथा अस्त्र-शस्त्रोंसे प्रकाशित हो रही थी ॥ ३१½ ॥

तत्र नागा रथाश्चैव जाम्बूनदविभूषिताः ॥ ३२ ॥
निशायां प्रत्यदृश्यन्त मेघा इव सविद्युतः ।

वहाँ रात्रिमें सुवर्णभूषित हाथी और रथ बिजलीसहित मेघोंके समान दिखायी दे रहे थे ॥ ३२½ ॥

ऋष्टिशक्तिगदाबाणमुसलप्रासपट्टिशाः ॥ ३३ ॥
सम्पतन्तो व्यदृश्यन्त भ्राजमाना इवाग्नयः ।

वहाँ चारों ओर गिरते हुए ऋष्टि, शक्ति, गदा, बाण मूसल, प्रास और पट्टिश आदि अस्त्र आगके अंगारोंके समान प्रकाशित दिखायी देते थे ॥ ३३½ ॥

दुर्योधनपुरोवातां रथनागबलाहकाम् ॥ ३४ ॥
वादित्रघोषस्तनितां चापविद्युद्ध्वजैर्वृताम् ।
द्रोणपाण्डवपर्जन्यां खड्गशक्तिगदाशनिम् ॥ ३५ ॥
शरधारास्त्रपवनां भृशं शीतोष्णसंकुलाम् ।
घोरां विस्मापनीमुग्रां जीवितच्छिदमप्लवाम् ॥ ३६ ॥
तां प्राविशन्नतिभयां सेनां युद्धचिकीर्षवः ।

युद्ध करनेकी इच्छावाले सैनिकोंने उस अत्यन्त भयंकर सेनामें प्रवेश किया, जो मेघोंकी घटाके समान जान पड़ती थी । दुर्योधन उसके लिये पुरवैया हवाके समान था । रथ और हाथी बादलोंके दल थे । रणवाद्योंकी गम्भीर ध्वनि मेघोंकी गर्जनाके समान जान पड़ती थी । धनुष और ध्वज बिजलीके समान चमक रहे थे । द्रोणाचार्य और पाण्डव पर्जन्यका काम देते थे । खड्ग, शक्ति और गदाका आघात ही वज्रपात था । बाणरूपी जलकी वहाँ वर्षा होती थी । अस्त्र ही पवनके समान प्रतीत होते थे । सर्दी और गर्मीसे व्याप्त हुई वह अत्यन्त भयंकर उग्र सेना सबको विस्मयमें डालनेवाली और योद्धाओंके जीवनका उच्छेद करनेवाली थी । उससे पार होनेके लिये नौकास्वरूप कोई साधन नहीं था ३४–३६½

तस्मिन् रात्रिमुखे घोरे महाशब्दनिनादिते ॥ ३७ ॥
भीरूणां त्रासजनने शूराणां हर्षवर्धने ।

महान् शब्दसे मुखरित एवं भयंकर रात्रिका प्रथम पहर बीत रहा था, जो कायरोंको डरानेवाला और शूरवीरोंका हर्ष बढ़ानेवाला था ॥ ३७½ ॥

रात्रियुद्धे महाघोरे वर्तमाने सुदारुणे ॥ ३८ ॥
द्रोणमभ्यद्रवन् क्रुद्धाः सहिताः पाण्डुसृञ्जयाः ।

जब वह अत्यन्त भयंकर और दारुण रात्रियुद्ध चल रहा था, उस समय क्रोधमें भरे हुए पाण्डवों तथा संजयोंने द्रोणाचार्यपर एक साथ धावा किया ॥ ३८½ ॥

ये ये प्रमुखतो राजन्नावर्तन्त महारथाः ॥ ३९ ॥
तान् सर्वान् विमुखांश्चक्रे कांश्चिन्निन्ये यमक्षयम् ।

राजन् ! जो-जो प्रमुख महारथी द्रोणाचार्यके सामने आये, उन सबको उन्होंने युद्धसे विमुख कर दिया और कितनोंको यमलोक पहुँचा दिया ॥ ३९½ ॥

तानि नागसहस्राणि रथानामयुतानि च ॥ ४० ॥
पदातिहयसंघानां प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
द्रोणेनैकेन नाराचैर्निर्भिन्नानि निशामुखे ॥ ४१ ॥

उस प्रदोषकालमें अकेले द्रोणाचार्यने अपने नाराचोंद्वारा एक हजार हाथी, दस हजार रथ तथा लाखों-करोड़ों पैदल एवं घुड़सवार नष्ट कर दिये ॥ ४०-४१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे चतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धविषयक एक सौ चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५४ ॥

पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

द्रोणाचार्यद्वारा शिबिका वध तथा भीमसेनद्वारा घुस्से और थप्पड़से कलिङ्गराजकुमारका एवं ध्रुव, जयरात तथा धृतराष्ट्रपुत्र दुष्कर्ण और दुर्मदका वध

धृतराष्ट्र उवाच

तस्मिन् प्रविष्टे दुर्धर्षे सृञ्जयानमितौजसि ।
अमृष्यमाणे संरब्धे का वोऽभूद् वै मतिस्तदा ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! अमित तेजस्वी दुर्धर्ष वीर आचार्य द्रोणने जब रोष और अमर्षमें भरकर संजयोंकी सेनामें प्रवेश किया, उस समय तुमलोगोंकी मनोवृत्ति कैसी हुई ? ॥ १ ॥

दुर्योधनं तथा पुत्रमुक्त्वा शास्त्रातिगं मम ।
यत् प्राविशदमेयात्मा किं पार्थः प्रत्यपद्यत ॥ २ ॥

गुरुजनोंकी आज्ञाका उल्लंघन करनेवाले मेरे पुत्र दुर्योधनसे पूर्वोक्त बातें कहकर जब अमेय आत्मबलसे सम्पन्न द्रोणाचार्यने शत्रुसेनामें पदार्पण किया, तब कुन्तीकुमार अर्जुनने क्या किया ? ॥ २ ॥

निहते सैन्धवे वीरे भूरिश्रवसि चैव ह ।
यदाभ्यगान्महातेजाः पञ्चालानपराजितः ॥ ३ ॥
किममन्यत दुर्धर्षे प्रविष्टे शत्रुतापने ।
दुर्योधनस्तु किं कृत्यं प्राप्तकालममन्यत ॥ ४ ॥

सिंधुराज जयद्रथ तथा वीर भूरिश्रवाके मारे जानेपर अपराजित वीर महातेजस्वी द्रोणाचार्य जब पाञ्चालोंकी सेनामें घुसे, उस समय शत्रुओंको संताप देनेवाले उन दुर्धर्ष वीरके प्रवेश कर लेनेपर दुर्योधनने उस अवसरके अनुरूप किस कार्यको मान्यता प्रदान की ॥ ३-४ ॥

के च तं वरदं वीरमन्वयुर्द्विजसत्तमम् ।
के चास्य पृष्ठतोऽगच्छन् वीराः शूरस्य युध्यतः ॥ ५ ॥

उन वरदायक वीर विप्रवर द्रोणाचार्यके पीछे-पीछे कौन गये तथा युद्धपरायण शूरवीर आचार्यके पृष्ठभागमें कौन-कौन-से वीर गये ? ॥ ५ ॥

के पुरस्तादवर्तन्त निघ्नन्तः शात्रवान् रणे।
मन्येऽहं पाण्डवान् सर्वान् भारद्वाजशरार्दितान् ॥ ६ ॥
शिशिरे कम्पमाना वै कृशा गाव इव प्रभो।

रणभूमिमें शत्रुओंका संहार करते हुए कौन-कौन-से वीर आचार्यके आगे खड़े थे। प्रभो! मैं तो समझता हूँ, द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीड़ित होकर समस्त पाण्डव शिशिर ऋतुमें दुबली-पतली गायोंके समान थर-थर काँपने लगे होंगे॥

प्रविश्य स महेष्वासः पञ्चालानरिमर्दनः।
कथं नु पुरुषव्याघ्रः पञ्चत्वमुपजग्मिवान् ॥ ७ ॥

शत्रुओंका मर्दन करनेवाले महाधनुर्धर पुरुषसिंह द्रोणाचार्य पाञ्चालोंकी सेनामें प्रवेश करके कैसे मृत्युको प्राप्त हुए? ॥ ७ ॥

सर्वेषु योधेषु च संगतेषु
रात्रौ समेतेषु महारथेषु।
संलोड्यमानेषु पृथग्बलेषु
के वस्तदानीं मतिमन्त आसन् ॥ ८ ॥

रात्रिके समय जब समस्त योद्धा और महारथी एकत्र होकर परस्पर जूझ रहे थे और पृथक्-पृथक् सेनाओंका मन्थन हो रहा था, उस समय तुमलोगोंमेंसे किन-किन बुद्धिमानोंकी बुद्धि ठिकाने रह सकी? ॥ ८ ॥

हतांश्चैव विषक्तांश्च पराभूतांश्च शंससि।
रथिनो विरथांश्चैव कृतान् युद्धेषु मामकान् ॥ ९ ॥

तुम प्रत्येक युद्धमें मेरे रथियोंको हताहत, पराजित तथा रथहीन हुआ बताते हो ॥ ९ ॥

तेषां संलोड्यमानानां पाण्डवैर्हतचेतसाम्।
अन्धे तमसि मग्नानामभवत् का मतिस्तदा ॥ १० ॥

जब पाण्डवोंने उन सबको मथकर अचेत कर दिया और वे घोर अन्धकारमें डूब गये, तब मेरे उन सैनिकोंने क्या विचार किया? ॥ १० ॥

प्रहृष्टांश्चाप्युदग्रांश्च संतुष्टांश्चैव पाण्डवान्।
शंससीहाप्रहृष्टांश्च विभ्रष्टांश्चैव मामकान् ॥ ११ ॥

संजय! तुम पाण्डवोंको तो हर्ष और उत्साहसे युक्त, आगे बढ़नेवाले और संतुष्ट बताते हो और मेरे सैनिकोंको दुःखी एवं युद्धसे विमुख बताया करते हो ॥ ११ ॥

कथमेषां तदा तत्र पार्थानामपलायिनाम्।
प्रकाशमभवद् रात्रौ कथं कुरुषु संजय ॥ १२ ॥

सूत! युद्धसे पीछे न हटनेवाले इन कुन्तीकुमारोंके दलमें रातके समय कैसे प्रकाश हुआ और कौरवदलमें भी किस प्रकार उजाला सम्भव हुआ? ॥ १२ ॥

संजय उवाच

रात्रियुद्धे तदा राजन् वर्तमाने सुदारुणे।
द्रोणमभ्यद्रवन् सर्वे पाण्डवाः सह सोमकैः ॥ १३ ॥

संजयने कहा—राजन्! जब वह अत्यन्त दारुण रात्रियुद्ध चलने लगा, उस समय सोमकोंसहित समस्त पाण्डवोंने द्रोणाचार्यपर धावा किया ॥ १३ ॥

ततो द्रोणः केकयांश्च धृष्टद्युम्नस्य चात्मजान्।
सम्प्रैषयत् प्रेतलोकं सर्वानिषुभिराशुगैः ॥ १४ ॥

तदनन्तर द्रोणाचार्यने केकयों और धृष्टद्युम्नके समस्त पुत्रोंको अपने शीघ्रगामी बाणोंद्वारा यमलोक भेज दिया ॥

तस्य प्रमुखतो राजन् येऽवर्तन्त महारथाः।
तान् सर्वान् प्रेषयामास पितृलोकं स भारत ॥ १५ ॥

भरतवंशी नरेश! जो-जो महारथी उनके सामने आये, उन सबको आचार्यने पितृलोकमें भेज दिया ॥ १५ ॥

प्रमथ्नन्तं तदा वीरान् भारद्वाजं महारथम्।
अभ्यवर्तत संक्रुद्धः शिबी राजा प्रतापवान् ॥ १६ ॥

इस प्रकार शत्रुवीरोंका संहार करते हुए महारथी द्रोणाचार्यका सामना करनेके लिये प्रतापी राजा शिबि क्रोधपूर्वक आये ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य पाण्डवानां महारथम्।
विव्याध दशभिर्बाणैः सर्वपारशवैः शितैः ॥ १७ ॥

पाण्डवपक्षके उन महारथी वीरको आते देख आचार्यने सम्पूर्णतः लोहेके बने हुए दस पैने बाणोंसे उन्हें घायल कर दिया ॥ १७ ॥

तं शिबिः प्रतिविव्याध त्रिंशता निशितैः शरैः।
सारथिं चास्य भल्लेन स्मयमानो न्यपातयत् ॥ १८ ॥

तब शिबिने तीस तीखे सायकोंसे बेधकर बदला चुकाया और मुसकराते हुए उन्होंने एक भल्लसे उनके सारथिको मार गिराया ॥ १८ ॥

तस्य द्रोणो हयान् हत्वा सारथिं च महात्मनः।
अथास्य सशिरस्त्राणं शिरः कायादपाहरत् ॥ १९ ॥

यह देख द्रोणाचार्यने भी महामना शिबिके घोड़ोंको मारकर सारथिका भी वध कर दिया। फिर उनके शिरस्त्राणसहित मस्तकको धड़से काट लिया ॥ १९ ॥

ततोऽस्य सारथिं क्षिप्रमन्यं दुर्योधनोऽदिशत्।
स तेन संगृहीताश्वः पुनरभ्यद्रवद् रिपून् ॥ २० ॥

तत्पश्चात् दुर्योधनने द्रोणाचार्यको शीघ्र ही दूसरा सारथि दे दिया। जब उस नये सारथिने उनके घोड़ोंकी बागडोर सँभाली, तब उन्होंने पुनः शत्रुओंपर धावा किया ॥ २० ॥

कलिङ्गानामनीकेन कालिङ्गस्य सुतो रणे।
पूर्वं पितृवधात् क्रुद्धो भीमसेनमुपाद्रवत् ॥ २१ ॥

उस रणभूमिमें कलिंगराजकुमारने कलिंगोंकी सेना साथ लेकर भीमसेनपर आक्रमण किया। भीमसेनने पहले उसके पिताका वध किया था। इससे उनके प्रति उसका क्रोध बढ़ा हुआ था ॥

स भीमं पञ्चभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः।
विशोकं त्रिभिराजघ्ने ध्वजमेकेन पत्रिणा ॥ २२ ॥

उसने भीमसेनको पहले पाँच बाणोंसे बेधकर पुनः सात बाणोंसे घायल कर दिया। उनके सारथि विशोकको उसने तीन बाण मारे और एक बाणसे उनकी ध्वजा छेद डाली ॥ २२ ॥

कलिङ्गानां तु तं शूरं क्रुद्धं क्रुद्धो वृकोदरः।
रथाद् रथमभिद्रुत्य मुष्टिनाभिजघान ह ॥ २३ ॥

क्रोधमें भरे हुए कलिंग देशके उस शूरवीरको कुपित हुए भीमसेनने अपने रथसे उसके रथपर कूदकर मुक्केसे मारा ॥ २३ ॥

तस्य मुष्टिहतस्याजौ पाण्डवेन बलीयसा।
सर्वाण्यस्थीनि सहसा प्रापतन् वै पृथक् पृथक् ॥२४॥

युद्धस्थलमें बलवान् पाण्डुपुत्रके मुक्केकी मार खाकर कलिंगराजकी सारी हड्डियाँ सहसा चूर-चूर हो पृथक्-पृथक् गिर गयीं ॥ २४ ॥

तं कर्णो भ्रातरश्चास्य नामृष्यन्त परंतप।
ते भीमसेनं नाराचैर्जघ्नुराशीविषोपमैः ॥ २५ ॥

परंतप ! कर्ण और उसके भाई भीमसेनके इस पराक्रमको सहन न कर सके। उन्होंने विषधर सर्पोंके समान विषैले नाराचोंद्वारा भीमसेनको गहरी चोट पहुँचायी ॥ २५ ॥

ततः शत्रुरथं त्यक्त्वा भीमो ध्रुवरथं गतः।
ध्रुवं चास्यन्तमनिशं मुष्टिना समपोथयत् ॥ २६ ॥

तदनन्तर भीमसेन शत्रुके उस रथको त्यागकर दूसरे शत्रु ध्रुवके रथपर जा चढ़े। ध्रुव लगातार बाणोंकी वर्षा कर रहा था। भीमसेनने उसे भी एक मुक्केसे मार गिराया ॥ २६ ॥

स तथा पाण्डुपुत्रेण बलिनाभिहतोऽपतत्।
तं निहत्य महाराज भीमसेनो महाबलः ॥ २७ ॥
जयरातरथं प्राप्य मुहुः सिंह इवानदत्।

बलवान् पाण्डुपुत्रके मुक्केकी चोट लगते ही वह धराशायी हो गया। महाराज ! ध्रुवको मारकर महाबली भीमसेन जयरातके रथपर जा पहुँचे और बारंबार सिंहनाद करने लगे ॥ २७½ ॥

जयरातमथाक्षिप्य नदन् सव्येन पाणिना ॥ २८ ॥
तलेन नाशयामास कर्णस्यैवाग्रतः स्थितः।

गर्जना करते हुए ही उन्होंने बायें हाथसे जयरातको झटका देकर उसे थप्पड़से मार डाला। फिर वे कर्णके ही सामने जाकर खड़े हो गये ॥ २८½ ॥

कर्णस्तु पाण्डवे शक्तिं काञ्चनीं समवासृजत् ॥ २९ ॥
ततस्तामेव जग्राह प्रहसन् पाण्डुनन्दनः।

तब कर्णने पाण्डुनन्दन भीमपर सोनेकी बनी हुई शक्तिका प्रहार किया; परंतु पाण्डुनन्दन भीमने हँसते हुए ही उसे हाथसे पकड़ लिया ॥ २९½ ॥

कर्णायैव च दुर्धर्षश्चिक्षेपाजौ वृकोदरः ॥ ३० ॥
तामापतन्तीं चिच्छेद शकुनिस्तैलपायिना।

दुर्धर्ष वीर वृकोदरने उस युद्धस्थलमें कर्णपर ही वह शक्ति चला दी; परंतु शकुनिने कर्णपर आती हुई शक्तिको तेल पीनेवाले बाणसे काट डाला ॥ ३०½ ॥

एतत् कृत्वा महत् कर्म रणेऽद्भुतपराक्रमः ॥ ३१ ॥
पुनः स्वरथमास्थाय दुद्राव तव वाहिनीम्।

अद्भुत पराक्रमी भीमसेन रणभूमिमें यह महान् पराक्रम करके पुनः अपने रथपर आ बैठे और आपकी सेनाको खदेड़ने लगे ॥ ३१½ ॥

तमायान्तं जिघांसन्तं भीमं क्रुद्धमिवान्तकम् ॥ ३२ ॥
न्यवारयन् महाबाहुं तव पुत्रा विशाम्पते।
महता शरवर्षेण च्छादयन्तो महारथाः ॥ ३३ ॥

प्रजानाथ ! क्रोधमें भरे हुए यमराजके समान महाबाहु भीमसेनको शत्रुवधकी इच्छासे सामने आते देख आपके महारथी पुत्रोंने बाणोंकी बड़ी भारी वर्षा करके उन्हें आच्छादित करते हुए रोका ॥ ३२-३३ ॥

दुर्मदस्य ततो भीमः प्रहसन्निव संयुगे।
सारथिं च हयांश्चैव शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ ३४ ॥

तब युद्धस्थलमें हँसते हुए-से भीमसेनने दुर्मदके सारथि और घोड़ोंको अपने बाणोंसे मारकर यमलोक पहुँचा दिया ॥

दुर्मदस्तु ततो यानं दुष्कर्णस्यावचक्रमे।
तावेकरथमारूढौ भ्रातरौ परतापनौ ॥ ३५ ॥
संग्रामशिरसो मध्ये भीमं द्वावप्यधावताम्।
यथाम्बुपतिमित्रौ हि तारकं दैत्यसत्तमम् ॥ ३६ ॥

तब दुर्मद दुष्कर्णके रथपर जा बैठा। फिर शत्रुओंको संताप देनेवाले उन दोनों भाइयोंने एक ही रथपर आरूढ़ हो युद्धके मुहानेपर भीमसेनपर धावा किया; ठीक उसी तरह, जैसे वरुण और मित्रने दैत्यराज तारकपर आक्रमण किया था ॥ ३५-३६ ॥

ततस्तु दुर्मदश्चैव दुष्कर्णश्च तवात्मजौ।
रथमेकं समारुह्य भीमं बाणैरविध्यताम् ॥ ३७ ॥

तत्पश्चात् आपके पुत्र दुर्मद (दुधर्ष)और दुष्कर्ण एक ही रथपर बैठकर भीमसेनको बाणोंसे घायल करने लगे ॥

ततः कर्णस्य मिषतो द्रौणेर्दुर्योधनस्य च।
कृपस्य सोमदत्तस्य बाह्लीकस्य च पाण्डवः ॥ ३८ ॥
दुर्मदस्य च वीरस्य दुष्कर्णस्य च तं रथम्।
पादप्रहारेण धरां प्रावेशयदरिंदमः ॥ ३९ ॥

तदनन्तर कर्ण, अश्वत्थामा, दुर्योधन, कृपाचार्य, सोमदत्त और बाह्लीकके देखते-देखते शत्रुदमन पाण्डुपुत्र भीमने वीर दुर्मद और दुष्कर्णके उस रथको लात मारकर धरतीमें धँसा दिया ॥ ३८-३९ ॥

ततः सुतौ ते बलिनौ शूरौ दुष्कर्णदुर्मदौ ।
मुष्टिनाऽऽहत्य संक्रुद्धो ममर्द च ननर्द च ॥ ४० ॥

फिर आपके बलवान् एवं शूरवीर पुत्र दुर्मद और दुष्कर्णको क्रोधमें भरे हुए भीमसेनने मुक्केसे मारकर मसल डाला और वे जोर-जोरसे गर्जना करने लगे ॥ ४० ॥

ततो हाहाकृते सैन्ये दृष्ट्वा भीमं नृपाऽब्रुवन् ।
रुद्रोऽयं भीमरूपेण धार्तराष्ट्रेषु युध्यति ॥ ४१ ॥

यह देख कौरव-सेनामें हाहाकार मच गया । भीमसेनको देखकर राजालोग कहने लगे 'ये साक्षात् भगवान् रुद्र ही भीमसेनका रूप धारण करके धृतराष्ट्रपुत्रोंके साथ युद्ध कर रहे हैं' ॥ ४१ ॥

एवमुक्त्वा पलायन्ते सर्वे भारत पार्थिवाः ।
विसंज्ञा वाहयन् वाहान् न च द्वौ सह धावतः ॥४२॥

भारत ! ऐसा कहकर सब राजा अचेत होकर अपने वाहनोंको हाँकते हुए रणभूमिसे पलायन करने लगे । उस समय दो व्यक्ति एक साथ नहीं भागते थे ॥ ४२ ॥

ततो बले भृशलुलिते निशामुखे
सुपूजितो नृपवृषभैर्वृकोदरः ।
महाबलः कमलविबुद्धलोचनो
युधिष्ठिरं नृपतिमपूजयद् बली ॥ ४३ ॥

तदनन्तर रात्रिके प्रथम प्रहरमें जब कौरवसेना अत्यन्त भयभीत हो इधर-उधर भाग गयी, तब श्रेष्ठ राजाओंने विकसित कमलके समान सुन्दर नेत्रोंवाले महाबली भीमसेनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और बलवान् भीमने राजा युधिष्ठिरका समादर किया ॥ ४३ ॥

ततो यमौ द्रुपदविराटकेकया
युधिष्ठिरश्चापि परां मुदं ययुः ।
वृकोदरं भृशमनुपूजयंश्च ते
यथान्धके प्रतिनिहते हरं सुराः ॥ ४४ ॥

तत्पश्चात् जैसे अन्धकासुरके मारे जानेपर देवताओंने भगवान् शङ्करका स्तवन और पूजन किया था, उसी प्रकार नकुल, सहदेव, द्रुपद, विराट, केकयराजकुमार तथा युधिष्ठिर भी भीमसेनकी विजयसे बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने वृकोदरकी बड़ी प्रशंसा की ॥ ४४ ॥

ततः सुतास्ते वरुणात्मजोपमा
रुषान्विताः सह गुरुणा महात्मना ।
वृकोदरं सरथपदातिकुञ्जरा
युयुत्सवो भृशमभिपर्यवारयन् ॥ ४५ ॥

इसके बाद वरुणपुत्रके समान पराक्रमी आपके सभी पुत्र रोषमें भरकर युद्धकी इच्छासे रथ, पैदल और हाथियोंकी सेना साथ ले महात्मा गुरु द्रोणाचार्यके साथ आये और वेगपूर्वक भीमसेनको सब ओरसे घेरकर खड़े हो गये ॥ ४५ ॥

(ततो यमौ द्रुपदसुताः ससैनिका
युधिष्ठिरद्रुपदविराटसात्वताः ।
घटोत्कचो जयविजयौ द्रुमो वृकः
ससृञ्जयास्तव तनयानवारयन् ॥)

यह देख नकुल, सहदेव, सैनिकोंसहित द्रुपदपुत्र, युधिष्ठिर, द्रुपद, विराट, सात्यकि, घटोत्कच, जय, विजय, द्रुम, वृक तथा संजय योधाओंने आपके पुत्रोंको आगे बढ़नेसे रोका ॥

ततोऽभवत् तिमिरघनैरिवावृते
महाभये भयदमतीव दारुणम् ।
निशामुखे वृकबलगृध्रमोदनं
महात्मनां नृपवर युद्धमद्भुतम् ॥ ४६ ॥

नृपश्रेष्ठ ! फिर तो घने अन्धकारसे आवृत महाभयंकर प्रदोषकालमें उन महामनस्वी वीरोंका अत्यन्त दारुण, भयदायक तथा भेड़ियों, गीधों और कौवोंको आनन्दित करनेवाला अद्भुत युद्ध होने लगा ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे भीमपराक्रमे पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसंगमें भीमसेनका पराक्रमविषयक एक सौ पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५५ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ४७ श्लोक हैं)

षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सोमदत्त और सात्यकिका युद्ध, सोमदत्तकी पराजय, घटोत्कच और अश्वत्थामाका युद्ध और अश्वत्थामाद्वारा घटोत्कचके पुत्रका, एक अक्षौहिणी राक्षस-सेनाका तथा द्रुपदपुत्रोंका वध एवं पाण्डव-सेनाकी पराजय

संजय उवाच

प्रायोपविष्टे तु हते पुत्रे सात्यकिना तदा ।
सोमदत्तो भृशं क्रुद्धः सात्यकिं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! आमरण उपवासका व्रत

लेकर बैठे हुए अपने पुत्र भूरिश्रवाके सात्यकिद्वारा मारे जानेपर उस समय सोमदत्तको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने सात्यकिसे इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

क्षत्रधर्मः पुरा दृष्टो यस्तु देवैर्महात्मभिः।
तं त्वं सात्वत संत्यज्य दस्युधर्मे कथं रतः॥ २ ॥

'सात्वत ! पूर्वकालमें महात्माओं तथा देवताओंने जिस क्षत्रियधर्मका साक्षात्कार किया है; उसे छोड़कर तुम लुटेरोंके धर्ममें कैसे प्रवृत्त हो गये ! ॥ २ ॥

पराङ्मुखाय दीनाय न्यस्तशस्त्राय सात्यके।
क्षत्रधर्मरतः प्राज्ञः कथं नु प्रहरेद् रणे॥ ३ ॥

'सात्यके ! जो युद्धसे विमुख एवं दीन होकर हथियार डाल चुका हो, उसपर रणभूमिमें क्षत्रियधर्मपरायण विद्वान् पुरुष कैसे प्रहार कर सकता है ! ॥३ ॥

द्वावेव किल वृष्णीनां तत्र ख्यातौ महारथौ।
प्रद्युम्नश्च महाबाहुस्त्वं चैव युधि सात्वत॥ ४ ॥

'सात्वत ! वृष्णिवंशियोंमें दो ही महारथी युद्धके लिये विख्यात हैं। एक तो महाबाहु प्रद्युम्न और दूसरे तुम ॥

कथं प्रायोपविष्टाय पार्थेन छिन्नबाहवे।
नृशंसं पतनीयं च तादृशं कृतवानसि॥ ५ ॥

'अर्जुनने जिसकी बाँह काट डाली थी तथा जो आमरण अनशनका निश्चय लेकर बैठा था, उस मेरे पुत्रपर तुमने वैसा पतनकारक क्रूर प्रहार क्यों किया ? ॥ ५ ॥

कर्मणस्तस्य दुर्वृत्त फलं प्राप्नुहि संयुगे।
अद्य च्छेत्स्यामि ते मूढ शिरो विक्रम्य पत्रिणा॥ ६ ॥

'ओ दुराचारी मूर्ख ! उस पापकर्मका फल तुम इस युद्धस्थलमें ही प्राप्त करो। आज मैं पराक्रम करके एक बाणसे तुम्हारा सिर काट डालूँगा' ॥ ६॥

शपे सात्वत पुत्राभ्यामिष्टेन सुकृतेन च।
अनतीतामिमां रात्रिं यदि त्वां वीरमानिनम्॥ ७ ॥
अरक्ष्यमाणं पार्थेन जिष्णुना ससुतानुजम्।
न हन्यां नरके घोरे पतेयं वृष्णिपांसन॥ ८ ॥

'वृष्णिकुलकलंक सात्वत ! मैं अपने दोनों पुत्रोंकी तथा यज्ञ और पुण्यकर्मोंकी शपथ खाकर कहता हूँ कि यदि आज रात्रि बीतनेके पहले ही कुन्तीपुत्र अर्जुनसे अरक्षित रहनेपर अपनेको वीर माननेवाले तुम्हें पुत्रों और भाइयोंसहित न मार डालूँ तो घोर नरकमें पड़ूँ' ॥ ७-८ ॥

एवमुक्त्वा सुसंक्रुद्धः सोमदत्तो महाबलः।
दध्मौ शङ्खं च तारेण सिंहनादं ननाद च॥ ९ ॥

ऐसा कहकर महाबली सोमदत्तने अत्यन्त कुपित हो उच्चस्वरसे शङ्ख बजाया और सिंहनाद किया ॥ ९ ॥

ततः कमलपत्राक्षः सिंहदंष्ट्रो दुरासदः।
सात्यकिर्भृशसंक्रुद्धः सोमदत्तमथाब्रवीत्॥ १० ॥

तब कमलके समान नेत्र और सिंहके सदृश दाँतवाले दुर्धर्ष वीर सात्यकि भी अत्यन्त कुपित हो सोमदत्तसे इस प्रकार बोले—॥ १० ॥

कौरवेय न मे त्रासः कथंचिदपि विद्यते।
त्वया सार्धमथान्यैश्च युध्यतो हृदि कश्चन॥ ११॥

'कौरवेय ! तुम्हारे या किसी दूसरेके साथ युद्ध करते समय मेरे हृदयमें किसी तरह भी कोई भय नहीं होगा ॥ ११ ॥

यदि सर्वेण सैन्येन गुप्तो मां योधयिष्यसि।
तथापि न व्यथा काचित् त्वयि स्यान्मम कौरव॥१२॥

'कौरव ! यदि सारी सेनासे सुरक्षित होकर तुम मेरे साथ युद्ध करोगे तो भी तुम्हारे कारण मुझे कोई व्यथा नहीं होगी॥

युद्धसारेण वाक्येन असतां सम्मतेन च।
नाहं भीषयितुं शक्यः क्षत्रवृत्ते स्थितस्त्वया॥ १३॥

'मैं सदा क्षत्रियोचित आचारमें स्थित हूँ। युद्ध ही जिसका सार है तथा दुष्ट पुरुष ही जिसे आदर देते हैं, ऐसे कटुवाक्यसे तुम मुझे डरा नहीं सकते ॥ १३ ॥

यदि तेऽस्ति युयुत्साद्य मया सह नराधिप।
निर्दयो निशितैर्बाणैः प्रहर प्रहरामि ते॥ १४॥

'नरेश्वर ! यदि मेरे साथ तुम्हारी युद्ध करनेकी इच्छा है तो निर्दयतापूर्वक पैने बाणोंद्वारा मुझपर प्रहार करो। मैं भी तुमपर प्रहार करूँगा ॥ १४ ॥

हतो भूरिश्रवा वीरस्तव पुत्रो महारथः।
शलश्चैव महाराज भ्रातृव्यसनकर्षितः॥ १५॥

'महाराज ! तुम्हारा वीर महारथी पुत्र भूरिश्रवा मारा गया। भाईके दुःखसे दुखी होकर शल भी वीरगतिको प्राप्त हुआ है ॥ १५ ॥

त्वां चाप्यद्य वधिष्यामि सहपुत्रं सबान्धवम्।
तिष्ठेदानीं रणे यत्तः कौरवोऽसि महारथः॥ १६॥

'अब पुत्रों और बान्धवोंसहित तुम्हें भी मार डालूँगा। तुम कुरुकुलके महारथी वीर हो। इस समय रणभूमिमें सावधान होकर खड़े रहो ॥ १६ ॥

यस्मिन् दानं दमः शौचमहिंसा ह्रीर्धृतिः क्षमा।
अनपायानि सर्वाणि नित्यं राज्ञि युधिष्ठिरे॥ १७॥
मृदङ्गकेतोस्तस्य त्वं तेजसा निहतः पुरा।
सकर्णसौबलः संख्ये विनाशमुपयास्यसि॥ १८॥

'जिन महाराज युधिष्ठिरमें दान, दम, शौच, अहिंसा, लज्जा, धृति और क्षमा आदि सारे सद्गुण अविनश्वरभावसे सदा विद्यमान रहते हैं, अपनी ध्वजामें मृदङ्गका चिह्न धारण करनेवाले उन्हीं धर्मराजके तेजसे तुम पहले ही मर चुके हो। अतः कर्ण और शकुनिके साथ ही इस युद्धस्थलमें तुम विनाशको प्राप्त होओगे ॥ १७-१८ ॥

शपेऽहं कृष्णचरणैरिष्टापूर्तेन चैव ह ।
यदि त्वां ससुतं पापं न हन्यां युधि रोषितः ॥ १९ ॥

'मैं श्रीकृष्णके चरणों तथा अपने इष्टापूर्तकर्मोंकी शपथ खाकर कहता हूँ कि यदि मैं युद्धमें कुद्ध होकर तुम-जैसे पापीको पुत्रोंसहित न मार डालूँ तो मुझे उत्तम गति न मिले ॥ १९ ॥

अपयास्यसि चेत्युक्त्वा रणं मुक्तो भविष्यसि ।
एवमाभाष्य चान्योन्यं क्रोधसंरक्तलोचनौ ॥ २० ॥
प्रवृत्तौ शरसम्पातं कर्तुं पुरुषसत्तमौ ।

'यदि तुम उपर्युक्त बातें कहकर भी युद्ध छोड़कर भाग जाओगे तभी मेरे हाथसे छुटकारा पा सकोगे ।' परस्पर ऐसा कहकर क्रोधसे लाल आँखें किये उन दोनों नरश्रेष्ठ वीरोंने एक दूसरेपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ २०½ ॥

ततो रथसहस्रेण नागानामयुतेन च ॥ २१ ॥
दुर्योधनः सोमदत्तं परिवार्य समन्ततः ।

तदनन्तर दुर्योधन एक हजार रथों और दस हजार हाथियोंद्वारा सोमदत्तको चारों ओरसे घेरकर उनकी रक्षा करने लगा ॥ २१½ ॥

शकुनिश्च सुसंक्रुद्धः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ २२ ॥
पुत्रपौत्रैः परिवृतो भ्रातृभिश्चेन्द्रविक्रमैः ।
स्यालस्तव महाबाहुर्वज्रसंहननो युवा ॥ २३ ॥

समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ और वज्रके समान सुदृढ़ शरीरवाला आपका नवयुवक साला महाबाहु शकुनि भी अत्यन्त कुपित हो इन्द्रके समान पराक्रमी भाइयों तथा पुत्र-पौत्रोंसे घिरकर वहाँ आ पहुँचा ॥ २२-२३ ॥

साग्रं शतसहस्रं तु हयानां तस्य धीमतः ।
सोमदत्तं महेष्वासं समन्तात् पर्यरक्षत ॥ २४ ॥

बुद्धिमान् शकुनिके एक लाखसे अधिक घुड़सवार महाधनुर्धर सोमदत्तकी सब ओरसे रक्षा करने लगे ॥ २४ ॥

रक्ष्यमाणश्च बलिभिश्छादयामास सात्यकिम् ।
तं छाद्यमानं विशिखैर्दृष्ट्वा संनतपर्वभिः ॥ २५ ॥
धृष्टद्युम्नोऽभ्ययात् क्रुद्धः प्रगृह्य महतीं चमूम् ।

बलवान् सहायकोंसे सुरक्षित हो सोमदत्तने अपने बाणोंसे सात्यकिको आच्छादित कर दिया । झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे सात्यकिको आच्छादित होते देख क्रोधमें भरे हुए धृष्टद्युम्न विशाल सेना साथ लेकर वहाँ आ पहुँचे ॥ २५½ ॥

चण्डवाताभिसृष्टानामुदधीनामिव स्वनः ॥ २६ ॥
आसीद् राजन् बलौघानामन्योन्यमभिनिघ्नताम् ।

राजन् ! उस समय परस्पर प्रहार करनेवाली सेनाओंका कोलाहल प्रचण्ड वायुसे विक्षुब्ध हुए समुद्रोंकी गर्जनाके समान प्रतीत होता था ॥ २६½ ॥

विव्याध सोमदत्तस्तु सात्वतं नवभिः शरैः ॥ २७ ॥
सात्यकिर्नवभिश्चैनमवधीत् कुरुपुङ्गवम् ।

सोमदत्तने सात्यकिको नौ बाणोंसे बींध डाला । फिर सात्यकिने भी कुरुश्रेष्ठ सोमदत्तको नौ बाणोंसे घायल कर दिया ॥ २७½ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता समरे दृढधन्विना ॥ २८ ॥
रथोपस्थं समासाद्य मुमोह गतचेतनः ।

सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले बलवान् सात्यकिके द्वारा समरभूमिमें अत्यन्त घायल किये जानेपर सोमदत्त रथकी बैठकमें जा बैठे और सुध-बुध खोकर मूर्छित हो गये ॥२८½॥

तं विमूढं समालक्ष्य सारथिस्त्वरया युतः ॥ २९ ॥
अपोवाह रणाद् वीरं सोमदत्तं महारथम् ।

तब महारथी वीर सोमदत्तको मूर्छित हुआ देख सारथि बड़ी उतावलीके साथ उन्हें रणभूमिसे दूर हटा ले गया ॥२९½॥

तं विसंज्ञं समालक्ष्य युयुधानशरार्दितम् ॥ ३० ॥
अभ्यद्रवत् ततो द्रोणो यदुवीरजिघांसया ।

सोमदत्तको युयुधानके बाणोंसे पीड़ित एवं अचेत हुआ देख द्रोणाचार्य यदुवीर सात्यकिका वध करनेकी इच्छासे उनकी ओर दौड़े ॥ ३०½ ॥

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ ३१ ॥
परिवव्रुर्महात्मानं परीप्सन्तो यदूत्तमम् ।

द्रोणाचार्यको आते देख युधिष्ठिर आदि पाण्डव वीर यदुकुलतिलक महामना सात्यकिकी रक्षाके लिये उन्हें सब ओरसे घेरकर खड़े हो गये ॥ ३१½ ॥

ततः प्रववृते युद्धं द्रोणस्य सह पाण्डवैः ॥ ३२ ॥
बलेरिव सुरैः पूर्वं त्रैलोक्यजयकाङ्क्षया ।

जैसे पूर्वकालमें त्रिलोकीपर विजय पानेकी इच्छासे राजा बलिका देवताओंके साथ युद्ध हुआ था, उसी प्रकार द्रोणाचार्यका पाण्डवोंके साथ घोर संग्राम आरम्भ हुआ ॥३२½

ततः सायकजालेन पाण्डवानीकमावृणोत् ॥ ३३ ॥
भारद्वाजो महातेजा विव्याध च युधिष्ठिरम् ।

तत्पश्चात् महातेजस्वी द्रोणाचार्यने अपने बाणसमूहसे पाण्डवसेनाको आच्छादित कर दिया और युधिष्ठिरको बींध डाला ॥ ३३½ ॥

सात्यकिं दशभिर्बाणैर्विंशत्या पार्षतं शरैः ॥ ३४ ॥
भीमसेनं च नवभिर्नकुलं पञ्चभिस्तथा ।
सहदेवं तथाष्टाभिः शतेन च शिखण्डिनम् ॥ ३५ ॥
द्रौपदेयान् महाबाहुः पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ।
विराटं मत्स्यमष्टाभिर्द्रुपदं दशभिः शरैः ॥ ३६ ॥
युधामन्युं त्रिभिः षड्भिरुत्तमौजसमाहवे ।
अन्यांश्च सैनिकान् विद्ध्वा युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ३७ ॥

फिर महाबाहु द्रोणने सात्यकिको दस, धृष्टद्युम्नको बीस, भीमसेनको नौ, नकुलको पाँच, सहदेवको आठ, शिखण्डीको सौ, द्रौपदी-पुत्रोंको पाँच-पाँच, मत्स्यराज विराटको आठ, द्रुपदको दस, युधामन्युको तीन, उत्तमौजाको छः तथा अन्य सैनिकोंको अन्यान्य बाणोंसे घायल करके युद्धस्थलमें राजा युधिष्ठिरपर आक्रमण किया ॥ ३४–३७ ॥

ते वध्यमाना द्रोणेन पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ।
प्राद्रवन् वै भयाद् राजन् सार्तनादा दिशो दश॥ ३८ ॥

राजन् ! द्रोणाचार्यकी मार खाकर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके सैनिक आर्तनाद करते हुए भयके मारे दसों दिशाओंमें भाग गये ॥ ३८ ॥

काल्यमानं तु तत् सैन्यं दृष्ट्वा द्रोणेन फाल्गुनः ।
किंचिदागतसंरम्भो गुरुं पार्थोऽभ्ययाद् द्रुतम्॥ ३९॥

द्रोणाचार्यके द्वारा पाण्डव-सेनाका संहार होता देख कुन्तीकुमार अर्जुनके हृदयमें कुछ क्रोध हो आया । वे तुरंत ही आचार्यका सामना करनेके लिये चल दिये ॥ ३९ ॥

दृष्ट्वा द्रोणं तु बीभत्सुमभिधावन्तमाहवे ।
संन्यवर्तत तत् सैन्यं पुनर्यौधिष्ठिरं बलम् ॥ ४० ॥

अर्जुनको युद्धमें द्रोणाचार्यपर धावा करते देख युधिष्ठिरकी सेना पुनः वापस लौट आयी ॥ ४० ॥

ततो युद्धमभूद् भूयो भारद्वाजस्य पाण्डवैः ।
द्रोणस्तव सुतै राजन् सर्वतः परिवारितः ॥ ४१ ॥
व्यधमत् पाण्डुसैन्यानि तूलराशिमिवानलः ।

राजन् ! तदनन्तर भरद्वाजनन्दन द्रोणका पाण्डवोंके साथ पुनः युद्ध आरम्भ हुआ । आपके पुत्रोंने द्रोणाचार्यको सब ओरसे घेर रक्खा था । जैसे आग रूईके ढेरको जला देती है, उसी प्रकार वे पाण्डव-सेनाको तहस-नहस करने लगे ॥ ४१½ ॥

तं ज्वलन्तमिवादित्यं दीप्तानलसमद्युतिम् ॥ ४२ ॥
राजन्ननिशमत्यन्तं दृष्ट्वा द्रोणं शरार्चिषम् ।
मण्डलीकृतधन्वानं तपन्तमिव भास्करम् ॥ ४३ ॥
दहन्तमहितान् सैन्ये नैनं कश्चिदवारयत् ।

नरेश्वर ! प्रज्वलित अग्निके समान कान्तिमान् तथा निरन्तर बाणरूपी किरणोंसे युक्त सूर्यके समान अत्यन्त प्रकाशित होनेवाले द्रोणाचार्यको धनुषको मण्डलाकार करके तपते हुए प्रभाकरके समान शत्रुओंको दग्ध करते देख पाण्डव-सेनामें कोई वीर उन्हें रोक न सका ॥ ४२-४३½ ॥

यो यो हि प्रमुखे तस्य तस्थौ द्रोणस्य पूरुषः ॥ ४४ ॥
तस्य तस्य शिरश्छित्त्वा ययुर्द्रोणशराः क्षितिम्।

जो-जो योद्धा पुरुष द्रोणाचार्यके सामने खड़ा होता, उसी-उसीका सिर काटकर द्रोणाचार्यके बाण धरतीमें समा जाते थे ॥ ४४½ ॥

एवं सा पाण्डवी सेना वध्यमाना महात्मना ॥ ४५ ॥
प्रदुद्राव पुनर्भीता पश्यतः सव्यसाचिनः ।

इस प्रकार महात्मा द्रोणके द्वारा मारी जाती हुई पाण्डव-सेना पुनः भयभीत हो सव्यसाची अर्जुनके देखते-देखते भागने लगी ॥ ४५½ ॥

सम्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा द्रोणेन निशि भारत ॥ ४६ ॥
गोविन्दमब्रवीज्जिष्णुर्गच्छ द्रोणरथं प्रति ।

भरतनन्दन ! रातमें द्रोणाचार्यके द्वारा अपनी सेनाको भगायी हुई देख अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा—'आप द्रोणाचार्यके रथके समीप चलिये' ॥ ४६½ ॥

ततो रजतगोक्षीरकुन्देन्दुसदृशप्रभान् ॥ ४७ ॥
चोदयामास दाशार्हो हयान् द्रोणरथं प्रति ।

तब दशार्हकुलनन्दन श्रीकृष्णने चाँदी, गोदुग्ध, कुन्द-पुष्प तथा चन्द्रमाके समान श्वेत कान्तिवाले घोड़ोंको द्रोणाचार्यके रथकी ओर हाँका ॥ ४७½ ॥

भीमसेनोऽपि तं दृष्ट्वा यान्तं द्रोणाय फाल्गुनम्॥ ४८॥
स्वसारथिमुवाचेदं द्रोणानीकाय मा वह ।

अर्जुनको द्रोणाचार्यका सामना करनेके लिये जाते देख भीमसेनने भी अपने सारथिसे कहा—'तुम द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर मुझे ले चलो' ॥ ४८½ ॥

सोऽपि तस्य वचः श्रुत्वा विशोकोऽवाहयद्धयान्॥४९॥
पृष्ठतः सत्यसंधस्य जिष्णोर्भरतसत्तम ।

भरतश्रेष्ठ ! उनके सारथि विशोकने उनकी बात सुनकर सत्यप्रतिज्ञ अर्जुनके पीछे अपने घोड़ोंको बढ़ाया ॥ ४९½ ॥

तौ दृष्ट्वा भ्रातरौ यत्तौ द्रोणानीकमभिद्रुतौ ॥ ५० ॥
पञ्चालाः सृञ्जया मत्स्याश्चेदिकारूषकोसलाः ।
अन्वगच्छन् महाराज केकयाश्च महारथाः ॥ ५१ ॥

महाराज ! उन दोनों भाइयोंको द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर युद्धके लिये उद्यत होकर जाते देख पाञ्चाल, संजय, मत्स्य, चेदि, कारूष, कोसल तथा केकय महारथियोंने भी उन्हींका अनुसरण किया ॥ ५०-५१ ॥

ततो राजन्नभूद् घोरः संग्रामो लोमहर्षणः ।
बीभत्सुर्दक्षिणं पार्श्वमुत्तरं च वृकोदरः ॥ ५२ ॥
महद्भ्यां रथवृन्दाभ्यां बलं जगृहतुस्तव ।

राजन् ! फिर तो वहाँ रोंगटे खड़े कर देनेवाला घोर संग्राम आरम्भ हो गया । अर्जुनने द्रोणाचार्यकी सेनाके दक्षिणभागको और भीमसेनने वामभागको अपना लक्ष्य बनाया । उन दोनों भाइयोंके साथ विशाल रथ तथा सेनाएँ थीं ॥ ५२½ ॥

तौ दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रौ भीमसेनधनंजयौ ॥ ५३ ॥
धृष्टद्युम्नोऽभ्ययाद् राजन् सात्यकिश्च महाबलः।



घटोत्कचका रथ

राजन्! पुरुषसिंह भीमसेन और अर्जुनको द्रोणाचार्यपर धावा करते देख धृष्टद्युम्न और महाबली सात्यकि भी वहीं जा पहुँचे ॥ ५३½ ॥

चण्डवाताभिपन्नानामुदधीनामिव स्वनः ॥ ५४ ॥
आसीद् राजन् बलौघानां तदान्योन्यमभिघ्नताम्।

महाराज! उस समय परस्पर आघात-प्रतिघात करते हुए उन सैन्यसमूहोंका कोलाहल प्रचण्ड वायुसे विक्षुब्ध हुए समुद्रकी गर्जनाके समान प्रतीत होता था ॥ ५४½ ॥

सौमदत्तिवधात् क्रुद्धो दृष्ट्वा सात्यकिमाहवे ॥ ५५ ॥
द्रौणिरभ्यद्रवद् राजन् वधाय कृतनिश्चयः।

नरेश्वर! द्रोणपुत्र अश्वत्थामा सोमदत्तकुमार भूरिश्रवाके वधसे अत्यन्त कुपित हो उठा था। उसने युद्धस्थलमें सात्यकिको देखकर उनके वधका दृढ़ निश्चय करके उनपर आक्रमण किया ॥ ५५½ ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य शैनेयस्य रथं प्रति ॥ ५६ ॥
भैमसेनिः सुसंक्रुद्धः प्रत्यमित्रमवारयत्।

अश्वत्थामाको शिनिपौत्रके रथकी ओर जाते देख अत्यन्त कुपित हुए भीमसेनके पुत्र घटोत्कचने अपने उस शत्रुको रोका ॥ ५६½ ॥

कार्ष्णायसं महाघोरमृक्षचर्मपरिच्छदम् ॥ ५७ ॥
महान्तं रथमास्थाय त्रिंशन्नल्वान्तरान्तरम्।
विक्षिप्तयन्त्रसंनाहं महामेघौघनिःस्वनम् ॥ ५८ ॥
युक्तं गजनिभैर्वाहैर्न हयैर्नापि वारणैः।
विक्षिप्तपक्षचरणविवृताक्षेण कूजता ॥ ५९ ॥
ध्वजेनोच्छ्रितदण्डेन गृध्रराजेन राजितम्।
लोहितार्द्रपताकं तु अन्त्रमालाविभूषितम् ॥ ६० ॥

घटोत्कच जिस विशाल रथपर बैठकर आया था, वह काले लोहेका बना हुआ और अत्यन्त भयंकर था। उसके ऊपर रीछकी खाल मढ़ी हुई थी। उसके भीतरी भागकी लम्बाई-चौड़ाई तीस नल्व[1] (बारह हजार हाथ) थी। उसमें यन्त्र और कवच रक्खे हुए थे। चलते समय उससे मेघोंकी भारी घटाके समान गम्भीर शब्द होता था। उसमें हाथी-जैसे विशालकाय वाहन जुते हुए थे, जो वास्तवमें न घोड़े थे और न हाथी। उस रथकी ध्वजाका डंडा बहुत ऊँचा था। वह ध्वज पंख और पंजे फैलाकर आँखें फाड़-फाड़कर देखने और कूजनेवाले एक गृध्रराजसे सुशोभित था। उसकी पताका खूनसे भीगी हुई थी और उस रथको आँतोंकी मालासे विभूषित किया गया था ॥ ५७—६० ॥

अष्टचक्रसमायुक्तमास्थाय विपुलं रथम्।
शूलमुद्गरधारिण्या शैलपादपहस्तया ॥ ६१ ॥
रक्षसां घोररूपाणामक्षौहिण्या समावृतः।

ऐसे आठ पहियोंवाले विशाल रथपर बैठा हुआ घटोत्कच भयंकर रूपवाले राक्षसोंकी एक अक्षौहिणी सेनासे घिरा हुआ था। उस समस्त सेनाने अपने हाथोंमें शूल, मुद्गर, पर्वत-शिखर और वृक्ष ले रक्खे थे ॥ ६१½ ॥

तमुद्यतमहाचापं निशम्य व्यथिता नृपाः ॥ ६२ ॥
युगान्तकालसमये दण्डहस्तमिवान्तकम्।

प्रलयकालमें दण्डधारी यमराजके समान विशाल धनुष उठाये घटोत्कचको देखकर समस्त राजा व्यथित हो उठे ॥ ६२½ ॥

ततस्तं गिरिशृङ्गाभं भीमरूपं भयावहम् ॥ ६३ ॥
दंष्ट्राकरालोग्रमुखं शङ्कुकर्णं महाहनुम्।
ऊर्ध्वकेशं विरूपाक्षं दीप्तास्यं निम्नितोदरम् ॥ ६४ ॥
महाश्वभ्रगलद्वारं किरीटच्छन्नमूर्धजम्।
त्रासनं सर्वभूतानां व्यात्ताननमिवान्तकम् ॥ ६५ ॥
वीक्ष्य दीप्तमिवायान्तं रिपुविक्षोभकारिणम्।
तमुद्यतमहाचापं राक्षसेन्द्रं घटोत्कचम् ॥ ६६ ॥
भयार्दिता प्रचुक्षोभ पुत्रस्य तव वाहिनी।
वायुना क्षोभितावर्ता गङ्गेवोर्ध्वतरङ्गिणी ॥ ६७ ॥

वह देखनेमें पर्वत-शिखरके समान जान पड़ता था। उसका रूप भयानक होनेके कारण वह सबको भयंकर प्रतीत होता था। उसका मुख यों ही बड़ा भीषण था; किंतु दाढ़ोंके कारण और भी विकराल हो उठा था। उसके कान कील या खूँटेके समान जान पड़ते थे। ठोढ़ी बहुत बड़ी थी। बाल ऊपरकी ओर उठे हुए थे। आँखें डरावनी थीं। मुख आगके समान प्रज्वलित था, पेट भीतरकी ओर धँसा हुआ था। उसके गलेका छेद बहुत बड़े गड्ढेके समान जान पड़ता था। सिरके बाल किरीटसे ढके हुए थे। वह मुँह बाये हुए यमराजके समान समस्त प्राणियोंके मनमें त्रास उत्पन्न करनेवाला था। शत्रुओंको क्षुब्ध कर देनेवाले प्रज्वलित अग्निके समान राक्षसराज घटोत्कचको विशाल धनुष उठाये आते देख आपके पुत्रकी सेना भयसे पीड़ित एवं क्षुब्ध हो उठी, मानो वायुसे विक्षुब्ध हुई गङ्गामें भयानक भँवरें और ऊँची-ऊँची लहरें उठ रही हों ॥ ६३—६७ ॥

घटोत्कचप्रयुक्तेन सिंहनादेन भीषिताः।
प्रसुस्रुवुर्गजा मूत्रं विव्यथुश्च नरा भृशम् ॥ ६८ ॥

घटोत्कचके द्वारा किये हुए सिंहनादसे भयभीत हो हाथियोंके पेशाब झड़ने लगे और मनुष्य भी अत्यन्त व्यथित हो उठे ॥ ६८ ॥

ततोऽश्मवृष्टिरत्यर्थमासीत् तत्र समन्ततः।
संध्याकालाधिकबलैः प्रयुक्ता राक्षसैः क्षितौ ॥ ६९ ॥

तदनन्तर उस रणभूमिमें चारों ओर संध्याकालसे ही

[1] १. भूमि नापनेका एक नाप जो चार सौ हाथका होता है।

अधिक बलवान् हुए राक्षसोंद्वारा की हुई पत्थरोंकी बड़ी भारी वर्षा होने लगी ॥ ६९ ॥

आयसानि च चक्राणि भुशुण्ड्यः प्रासतोमराः।
पतन्त्यविरताः शूलाः शतघ्न्यः पट्टिशास्तथा ॥ ७० ॥

लोहेके चक्र, भुशुण्डी, प्रास, तोमर, शूल, शतघ्नी और पट्टिश आदि अस्त्र अविराम गतिसे गिरने लगे ॥ ७० ॥

तदुग्रमतिरौद्रं च दृष्ट्वा युद्धं नराधिपाः।
तनयास्तव कर्णश्च व्यथिताः प्राद्रवन् दिशः ॥ ७१ ॥

उस अत्यन्त भयंकर और उग्र संग्रामको देखकर समस्त नरेश, आपके पुत्र और कर्ण—ये सभी पीड़ित हो सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गये ॥ ७१ ॥

तत्रैकोऽस्त्रबलश्लाघी द्रौणिर्मानी न विव्यथे।
व्यधमच्च शरैर्मायां घटोत्कचविनिर्मिताम् ॥ ७२ ॥

उस समय वहाँ अपने अस्त्र-बलपर अभिमान करनेवाला एकमात्र द्रोणकुमार स्वाभिमानी अश्वत्थामा तनिक भी व्यथित नहीं हुआ । उसने घटोत्कचकी रची हुई माया अपने बाणोंद्वारा नष्ट कर दी ॥ ७२ ॥

विहतायां तु मायायाममर्षी स घटोत्कचः।
विससर्ज शरान् घोरांस्तेऽश्वत्थामानमाविशन् ॥७३॥

माया नष्ट हो जानेपर अमर्षमें भरे हुए घटोत्कचने बड़े भयंकर बाण छोड़े । वे सभी बाण अश्वत्थामाके शरीरमें घुस गये ॥ ७३ ॥

भुजङ्गा इव वेगेन वल्मीकं क्रोधमूर्च्छिताः।
ते शरा रुधिराक्ताङ्गा भित्त्वा शारद्वतीसुतम् ॥ ७४ ॥
विविशुर्धरणीं शीघ्रा रुक्मपुङ्खाः शिलाशिताः।

जैसे क्रोधातुर सर्प बड़े वेगसे बाँबीमें घुसते हैं, उसी प्रकार शिलापर तेज किये हुए वे सुवर्णमय पंखवाले शीघ्रगामी बाण कृपीकुमारको विदीर्ण करके खूनसे लथपथ हो धरतीमें घुस गये ॥ ७४½ ॥

अश्वत्थामा तु संक्रुद्धो लघुहस्तः प्रतापवान् ॥ ७५ ॥
घटोत्कचमभिक्रुद्धं बिभेद दशभिः शरैः।

इससे अश्वत्थामाका क्रोध बहुत बढ़ गया । फिर तो शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले उस प्रतापी वीरने क्रोधी घटोत्कचको दस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ७५½ ॥

घटोत्कचोऽतिविद्धस्तु द्रोणपुत्रेण मर्मसु ॥ ७६ ॥
चक्रं शतसहस्रारमगृह्णाद् व्यथितो भृशम्।
क्षुरान्तं बालसूर्याभं मणिवज्रविभूषितम् ॥ ७७ ॥

द्रोणपुत्रके द्वारा मर्मस्थानोंमें गहरी चोट लगनेके कारण घटोत्कच अत्यन्त व्यथित हो उठा और उसने एक ऐसा चक्र हाथमें लिया, जिसमें एक लाख अरे थे । उसके प्रान्तभागमें छुरे लगे हुए थे । मणियों तथा हीरोंसे विभूषित वह चक्र प्रातःकालके सूर्यके समान जान पड़ता था ॥७६-७७॥

अश्वत्थाम्नि स चिक्षेप भैमसेनिर्जिघांसया।
वेगेन महताऽऽगच्छद् विक्षिप्तं द्रौणिना शरैः ॥ ७८ ॥
अभाग्यस्येव संकल्पस्तन्मोघमपतद् भुवि।

भीमसेनकुमारने अश्वत्थामाका वध करनेकी इच्छासे वह चक्र उसके ऊपर चला दिया, परंतु अश्वत्थामाने अपने बाणोंद्वारा बड़े वेगसे आते हुए उस चक्रको दूर फेंक दिया। वह भाग्यहीनके संकल्प (मनोरथ)की भाँति व्यर्थ होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ७८½ ॥

घटोत्कचस्ततस्तूर्णं दृष्ट्वा चक्रं निपातितम् ॥ ७९ ॥
द्रौणिं प्राच्छादयद् बाणैः स्वर्भानुरिव भास्करम्।

तदनन्तर अपने चक्रको धरतीपर गिराया हुआ देख घटोत्कचने अपने बाणोंकी वर्षासे अश्वत्थामाको उसी प्रकार ढक दिया, जैसे राहु सूर्यको आच्छादित कर देता है ॥७९½॥

घटोत्कचसुतः श्रीमान् भिन्नाञ्जनचयोपमः ॥ ८० ॥
रुरोध द्रौणिमायान्तं प्रभञ्जनमिवाद्रिराट्।

घटोत्कचके तेजस्वी पुत्र अंजनपर्वाने, जो कटे हुए कोयलेके ढेरके समान काला था, अपनी ओर आते हुए अश्वत्थामाको उसी प्रकार रोक दिया, जैसे गिरिराज हिमालय आँधीको रोक देता है ॥ ८०½ ॥

पौत्रेण भीमसेनस्य शरैरञ्जनपर्वणा ॥ ८१ ॥
बभौ मेघेन धाराभिर्गिरिर्मेरुरिवावृतः।

भीमसेनके पौत्र अंजनपर्वाके बाणोंसे आच्छादित हुआ अश्वत्थामा मेघकी जलधारासे आवृत हुए मेरुपर्वतके समान सुशोभित हो रहा था ॥ ८१½ ॥

अश्वत्थामा त्वसम्भ्रान्तो रुद्रोपेन्द्रेन्द्रविक्रमः ॥ ८२ ॥
ध्वजमेकेन बाणेन चिच्छेदाञ्जनपर्वणः।

रुद्र, विष्णु तथा इन्द्रके समान पराक्रमी अश्वत्थामाके मनमें तनिक भी घबराहट नहीं हुई । उसने एक बाणसे अंजनपर्वाकी ध्वजा काट डाली ॥ ८२½ ॥

द्वाभ्यां तु रथयन्तारौ त्रिभिश्चास्य त्रिवेणुकम् ॥ ८३ ॥
धनुरेकेन चिच्छेद चतुर्भिश्चतुरो हयान्।

फिर दो बाणोंसे उसके दो सारथियोंको, तीनसे त्रिवेणुको, एकसे धनुषको और चारसे चारों घोड़ोंको काट डाला।८३½।

विरथस्योद्यतं हस्ताद्धेमबिन्दुभिराचितम् ॥ ८४ ॥
विशिखेन सुतीक्ष्णेन खड्गमस्य द्विधाकरोत्।

तत्पश्चात् रथहीन हुए राक्षसपुत्रके हाथसे उठे हुए सुवर्ण-बिन्दुओंसे व्याप्त खड्गको उसने एक तीखे बाणसे मारकर उसके दो टुकड़े कर दिये ॥ ८४½ ॥

गदा हेमाङ्गदा राजंस्तूर्णं हैडिम्बसूनुना ॥ ८५ ॥
भ्राम्योत्क्षिप्ता शरैः साऽपि द्रौणिनाभ्याहताऽपतत्।

राजन् ! तब घटोत्कचपुत्रने तुरंत ही सोनेके अंगदसे विभूषित गदा घुमाकर अश्वत्थामापर दे मारी; परंतु

अश्वत्थामाके बाणोंसे आहत होकर वह भी पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ८५½ ॥

ततोऽन्तरिक्षमुत्प्लुत्य कालमेघ इवोन्नदन् ॥ ८६ ॥
ववर्षाञ्जनपर्वा स द्रुमवर्षं नभस्तलात् ।

तब आकाशमें उछलकर प्रलयकालके मेघकी भाँति गर्जना करते हुए अंजनपर्वाने आकाशसे वृक्षोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ८६½ ॥

ततो मायाधरं द्रौणिर्घटोत्कचसुतं दिवि ॥ ८७ ॥
मार्गणैरभिविव्याध घनं सूर्य इवांशुभिः ।

तदनन्तर द्रोणपुत्रने आकाशमें स्थित हुए मायाधारी घटोत्कचकुमारको अपने बाणोंद्वारा उसी तरह घायल कर दिया, जैसे सूर्य अपनी किरणोंद्वारा मेघोंकी घटाको गला देते हैं ॥ ८७½ ॥

सोऽवतीर्य पुरस्तस्थौ रथे हेमविभूषिते ॥ ८८ ॥
महीगत इवात्युग्रः श्रीमानञ्जनपर्वतः ।

इसके बाद वह नीचे उतरकर अपने स्वर्णभूषित रथपर अश्वत्थामाके सामने खड़ा हो गया । उस समय वह तेजस्वी राक्षस पृथ्वीपर खड़े हुए अत्यन्त भयंकर कज्जल-गिरिके समान जान पड़ा ॥ ८८½ ॥

तमयस्मयवर्माणं द्रौणिर्भीमात्मजात्मजम् ॥ ८९ ॥
जघानाञ्जनपर्वाणं महेश्वर इवान्धकम् ।

उस समय द्रोणकुमारने लोहेके कवच धारण करके आये हुए भीमसेनपौत्र अंजनपर्वाको उसी प्रकार मार डाला, जैसे भगवान् महेश्वरने अन्धकासुरका वध किया था ॥८९½॥

अथ दृष्ट्वा हतं पुत्रमश्वत्थाम्ना महाबलम् ॥ ९० ॥
द्रौणेः सकाशमभ्येत्य रोषात् प्रज्वलिताङ्गदः ।
प्राह वाक्यमसम्भ्रान्तो वीरं शारद्वतीसुतम् ॥ ९१ ॥
दहन्तं पाण्डवानीकं वनमग्निमिवोच्छ्रितम् ।

अपने महाबली पुत्रको अश्वत्थामाद्वारा मारा गया देख चमकते हुए बाजूबंदसे विभूषित घटोत्कच बड़े रोषके साथ द्रोणकुमारके समीप आकर बढ़े हुए दावानलके समान पाण्डवसेनारूपी वनको दग्ध करते हुए उस वीर कृपी-कुमारसे बिना किसी घबराहटके इस प्रकार बोला॥९०-९१½॥

घटोत्कच उवाच

तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन् द्रोणपुत्र गमिष्यसि ॥ ९२ ॥
त्वामद्य निहनिष्यामि क्रौञ्चमग्निसुतो यथा ।

घटोत्कचने कहा—द्रोणपुत्र ! खड़े रहो, खड़े रहो। आज तुम मेरे हाथसे जीवित बचकर नहीं जा सकोगे । जैसे अग्निपुत्र कार्तिकेयने क्रौञ्च पर्वतको विदीर्ण किया था, उसी प्रकार आज मैं तुम्हारा विनाश कर डालूँगा ॥ ९२½ ॥

अश्वत्थामोवाच

गच्छ वत्स सहान्यैस्त्वं युध्यस्वामरविक्रम ॥ ९३ ॥
न हि पुत्रेण हैडिम्बे पिता न्याय्यः प्रबाधितुम् ।

अश्वत्थामाने कहा—देवताओंके समान पराक्रमी पुत्र ! तुम जाओ, दूसरोंके साथ युद्ध करो । हिडिम्बानन्दन ! पुत्रके लिये यह उचित नहीं है कि वह पिताको भी सतावे॥

कामं खलु न रोषो मे हैडिम्बे विद्यते त्वयि ॥ ९४ ॥
किं तु रोषान्वितो जन्तुर्हन्यादात्मानमप्युत ।

हिडिम्बाकुमार ! अभी मेरे मनमें तुम्हारे प्रति तनिक भी रोष नहीं है, परंतु यदि रोष हो जाय तो तुम्हें ज्ञात होना चाहिये कि रोषके वशीभूत हुआ प्राणी अपना भी विनाश कर डालता है (फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है ? अतः मेरे कुपित होनेपर तुम सकुशल नहीं रह सकते) ॥ ९४½ ॥

संजय उवाच

श्रुत्वैतत् क्रोधताम्राक्षः पुत्रशोकसमन्वितः ॥ ९५ ॥
अश्वत्थामानमायस्तो भैमसेनिरभाषत ।

संजय कहते हैं—राजन् ! पुत्रशोकमें डूबे हुए भीमसेन-कुमारने अश्वत्थामाकी यह बात सुनकर क्रोधसे लाल आँखें करके रोषपूर्वक उससे कहा—॥ ९५½ ॥

किमहं कातरो द्रौणे पृथग्जन इवाहवे ॥ ९६ ॥
यन्मां भीषयसे वाग्भिरसदेतद् वचस्तव ।

'द्रोणकुमार ! क्या मैं युद्धस्थलमें नीच लोगोंके समान कायर हूँ, जो तू मुझे अपनी बातोंसे डरा रहा है । तेरी यह बात नीचतापूर्ण है ॥ ९६½ ॥

भीमात् खलु समुत्पन्नः कुरूणां विपुले कुले ॥ ९७ ॥
पाण्डवानामहं पुत्रः समरेष्वनिवर्तिनाम् ।
रक्षसामधिराजोऽहं दशग्रीवसमो बले ॥ ९८ ॥

'देख, मैं कौरवोंके विशाल कुलमें भीमसेनसे उत्पन्न हुआ हूँ, समराङ्गणमें कभी पीठ न दिखानेवाले पाण्डवोंका पुत्र हूँ, राक्षसोंका राजा हूँ और दशग्रीव रावणके समान बलवान् हूँ ॥ ९७–९८ ॥

तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन् द्रोणपुत्र गमिष्यसि ।
युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे ॥ ९९ ॥

'द्रोणपुत्र ! 'खड़ा रह, खड़ा रह, तू मेरे हाथसे छूटकर जीवित नहीं जा सकेगा । आज इस रणाङ्गणमें मैं तेरा युद्धका हौसला मिटा दूँगा' ॥ ९९ ॥

इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षो राक्षसः सुमहाबलः ।
द्रौणिमभ्यद्रवत् क्रुद्धो गजेन्द्रमिव केसरी ॥१००॥

ऐसा कहकर क्रोधसे लाल आँखें किये महाबली राक्षस घटोत्कचने द्रोणपुत्रपर रोषपूर्वक धावा किया, मानो सिंहने गजराजपर आक्रमण किया हो ॥ १०० ॥

रथाक्षमात्रैरिषुभिरभ्यवर्षद् घटोत्कचः ।
रथिनामृषभं द्रौणिं धाराभिरिव तोयदः ॥१०१॥

जैसे बादल पर्वतपर जलकी धारा बरसाता है, उसी प्रकार घटोत्कच रथियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामापर रथकी धुरीके समान मोटे बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ १०१ ॥

शरवृष्टिं शरैर्द्रौणिरप्राप्तां तां व्यशातयत् ।
ततोऽन्तरिक्षे बाणानां संग्रामोऽन्य इवाभवत् ॥१०२॥

परंतु द्रोणपुत्र अश्वत्थामा अपने पास आनेसे पहले ही उस बाण-वर्षाको बाणोंद्वारा नष्ट कर देता था। इससे आकाशमें बाणोंका दूसरा संग्राम-सा मच गया था ॥१०२॥

अथास्त्रसम्मर्दकृतैर्विस्फुलिङ्गैस्तदा बभौ ।
विभावरीमुखे व्योम खद्योतैरिव चित्रितम् ॥१०३॥

अस्त्रोंके परस्पर टकरानेसे जो आगकी चिनगारियाँ छूटती थीं, उससे रात्रिके प्रथम प्रहरमें आकाश जुगनुओंसे चित्रित-सा प्रतीत होता था ॥ १०३ ॥

निशाम्य निहतां मायां द्रौणिना रणमानिना ।
घटोत्कचस्ततो मायां ससर्जान्तर्हितः पुनः ॥१०४॥

युद्धाभिमानी अश्वत्थामाके द्वारा अपनी माया नष्ट हुई देख घटोत्कचने अदृश्य होकर पुनः दूसरी मायाकी सृष्टि की॥

सोऽभवद् गिरिरत्युच्चः शिखरैस्तरुसंकटैः ।
शूलप्रासासिमुसलजलप्रस्रवणो महान् ॥१०५॥

वह वृक्षोंसे भरे हुए शिखरोंद्वारा सुशोभित एक बहुत ऊँचा पर्वत बन गया। वह महान् पर्वत शूल, प्रास, खड्ग और मूसलरूपी जलके झरने बहा रहा था ॥ १०५ ॥

तमञ्जनगिरिप्रख्यं द्रौणिर्दृष्ट्वा महीधरम् ।
प्रपतद्भिश्च बहुभिः शस्त्रसंघैर्न विव्यथे ॥१०६॥

अंजनगिरिके समान उस काले पहाड़को देखकर और वहाँसे गिरनेवाले बहुतेरे अस्त्र-शस्त्रोंसे घायल होकर भी द्रोणकुमार अश्वत्थामा व्यथित नहीं हुआ ॥ १०६ ॥

ततो हसन्निव द्रौणिर्वज्रमस्त्रमुदैरयत् ।
स तेनास्त्रेण शैलेन्द्रः क्षिप्तः क्षिप्रं व्यनश्यत ॥१०७॥

तदनन्तर द्रोणकुमारने हँसते हुए-से वज्रास्त्रको प्रकट किया। उस अस्त्रका आघात होते ही वह पर्वतराज तत्काल अदृश्य हो गया ॥ १०७ ॥

ततः स तोयदो भूत्वा नीलः सेन्द्रायुधो दिवि ।
अश्मवृष्टिभिरत्युग्रो द्रौणिमाच्छादयद् रणे ॥१०८॥

तत्पश्चात् वह आकाशमें इन्द्रधनुषसहित अत्यन्त भयंकर नील मेघ बनकर पत्थरोंकी वर्षासे रणभूमिमें अश्वत्थामाको आच्छादित करने लगा ॥ १०८ ॥

अथ संधाय वायव्यमस्त्रमस्त्रविदां वरः ।
व्यधमद् द्रोणतनयो नीलमेघं समुत्थितम् ॥१०९॥

तब अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ द्रोणकुमारने वायव्यास्त्रका संधान करके वहाँ प्रकट हुए नील मेघको नष्ट कर दिया ॥ १०९ ॥

स मार्गणगणैर्द्रौणिर्दिशः प्रच्छाद्य सर्वशः ।
शतं रथसहस्राणां जघान द्विपदां वरः ॥११०॥

मनुष्योंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामाने अपने बाणसमूहोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित करके शत्रुपक्षके एक लाख रथियोंका संहार कर डाला ॥ ११० ॥

स दृष्ट्वा पुनरायान्तं रथेनायातकार्मुकम् ।
घटोत्कचमसम्भ्रान्तं राक्षसैर्बहुभिर्वृतम् ॥१११॥
सिंहशार्दूलसदृशैर्मत्तद्विरदविक्रमैः ।
गजस्थैश्च रथस्थैश्च वाजिपृष्ठगतैरपि ॥११२॥
विकृतास्यशिरोग्रीवैर्हैडिम्बानुचरैः सह ।
पौलस्त्यैर्यातुधानैश्च तामसैश्चेन्द्रविक्रमैः ॥११३॥
नानाशस्त्रधरैर्वीरैर्नानाकवचभूषणैः ।
महाबलैर्भीमरवैः संरम्भोद्वृत्तलोचनैः ॥११४॥
उपस्थितैस्ततो युद्धे राक्षसैर्युद्धदुर्मदैः ।
विषण्णमभिसम्प्रेक्ष्य पुत्रं ते द्रौणिरब्रवीत् ॥११५॥

तत्पश्चात् अश्वत्थामाने देखा कि घटोत्कच बिना किसी घबराहटके बहुत-से राक्षसोंसे घिरा हुआ पुनः रथपर आरूढ़ होकर आ रहा है। उसने अपने धनुषको खींचकर फैला रक्खा है। उसके साथ सिंह, व्याघ्र और मतवाले हाथियोंके समान पराक्रमी तथा विकराल मुख, मस्तक और कण्ठवाले बहुत-से अनुचर हैं, जो हाथी, घोड़ों तथा रथपर बैठे हुए हैं। उसके अनुचरोंमें राक्षस, यातुधान तथा तामस जातिके लोग हैं, जिनका पराक्रम इन्द्रके समान है। नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण करनेवाले, भाँति-भाँतिके कवच और आभूषणोंसे विभूषित, महाबली, भयंकर सिंहनाद करनेवाले तथा क्रोधसे घूरते हुए नेत्रोंवाले बहुसंख्यक रणदुर्मद राक्षस घटोत्कचकी ओरसे युद्धके लिये उपस्थित हैं। यह सब देखकर दुर्योधन विषादग्रस्त हो रहा है। इन सब बातोंपर दृष्टिपात करके अश्वत्थामाने आपके पुत्रसे कहा—॥१११–११५॥

तिष्ठ दुर्योधनाद्य त्वं न कार्यः सम्भ्रमस्त्वया ।
सहैभिर्भ्रातृभिर्वीरैः पार्थिवैश्चेन्द्रविक्रमैः ॥११६॥

'दुर्योधन ! आज तुम चुपचाप खड़े रहो। तुम्हें इन्द्रके समान पराक्रमी इन राजाओं तथा अपने वीर भाइयोंके साथ तनिक भी घबराना नहीं चाहिये ॥ ११६ ॥

निहनिष्याम्यमित्रांस्ते न तवास्ति पराजयः ।
सत्यं ते प्रतिजानामि पर्याश्वासय वाहिनीम् ॥११७॥

'राजन् ! मैं तुम्हारे शत्रुओंको मार डालूँगा, तुम्हारी पराजय नहीं हो सकती; इसके लिये मैं तुमसे सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ। तुम अपनी सेनाको आश्वासन दो' ॥ ११७ ॥

दुर्योधन उवाच

न त्वेतदद्भुतं मन्ये यत् ते महदिदं मनः ।
अस्मासु च परा भक्तिस्तव गौतमिनन्दन ॥११८॥

दुर्योधन बोला—गौतमीनन्दन ! तुम्हारा यह हृदय इतना विशाल है कि तुम्हारे द्वारा इस कार्यका होना मैं अद्भुत नहीं मानता । हमलोगोंपर तुम्हारा अनुराग बहुत अधिक है ॥ ११८ ॥

संजय उवाच

अश्वत्थामानमुक्त्वैवं ततः सौबलमब्रवीत् ।
वृतं रथसहस्रेण हयानां रणशोभिनाम् ॥११९॥

संजय कहते हैं—राजन् ! अश्वत्थामासे ऐसा कहकर दुर्योधन संग्राममें शोभा पानेवाले घोड़ोंसे युक्त एक हजार रथोंद्वारा घिरे हुए शकुनिसे इस प्रकार बोला—॥ ११९ ॥

षष्ट्या रथसहस्रैश्च प्रयाहि त्वं धनंजयम् ।
कर्णश्च वृषसेनश्च कृपो नीलस्तथैव च ॥१२०॥
उदीच्याः कृतवर्मा च पुरुमित्रः सुतापनः ।
दुःशासनो निकुम्भश्च कुण्डभेदी पराक्रमः ॥१२१॥
पुरंजयो दृढरथः पताकी हेमकम्पनः ।
शल्यारुणीन्द्रसेनाश्च संजयो विजयो जयः ॥१२२॥
कमलाक्षः परक्राथी जयवर्मा सुदर्शनः ।
एते त्वामनुयास्यन्ति पत्तीनामयुतानि षट् ॥१२३॥

'मामा ! तुम साठ हजार रथियोंकी सेना साथ लेकर अर्जुनपर आक्रमण करो । कर्ण, वृषसेन, कृपाचार्य, नील, उत्तर दिशाके सैनिक, कृतवर्मा, पुरुमित्र, सुतापन, दुःशासन, निकुम्भ, कुण्डभेदी, पराक्रमी पुरंजय, दृढ़रथ, पताकी, हेम-कम्पन, शल्य, आरुणि, इन्द्रसेन, संजय, विजय, जय, कमलाक्ष, परक्राथी, जयवर्मा और सुदर्शन—ये सभी महारथी वीर तथा साठ हजार पैदल सैनिक तुम्हारे साथ जायँगे ॥ १२०–१२३ ॥

जहि भीमं यमौ चोभौ धर्मराजं च मातुल ।
असुरानिव देवेन्द्रो जयाशा मे त्वयि स्थिता ॥१२४॥

'मामा ! जैसे देवराज इन्द्र असुरोंका संहार करते हैं, उसी प्रकार तुम भीमसेन, नकुल, सहदेव तथा धर्मराज युधिष्ठिरका भी वध कर डालो । मेरी विजयकी आशा तुमपर ही अवलम्बित है ॥ १२४ ॥

दारितान् द्रौणिना बाणैर्भृशं विक्षतविग्रहान् ।
जहि मातुल कौन्तेयानसुरानिव पावकिः ॥१२५॥

'मातुल ! द्रोणकुमार अश्वत्थामाने कुन्तीकुमारोंको अपने बाणोंद्वारा विदीर्ण कर डाला है; उनके शरीरोंको क्षत-विक्षत कर दिया है । इस अवस्थामें असुरोंका वध करनेवाले कुमार कार्तिकेयकी भाँति तुम कुन्तीपुत्रोंको मार डालो' ॥ १२५ ॥

एवमुक्तो ययौ शीघ्रं पुत्रेण तव सौबलः ।
पिप्रीषुस्ते सुतान् राजन् दिधक्षुश्चैव पाण्डवान् ॥१२६॥

राजन् ! आपके पुत्रके ऐसा कहनेपर सुबलपुत्र शकुनि आपके पुत्रोंको प्रसन्न करने तथा पाण्डवोंको दग्ध कर डालनेकी इच्छासे शीघ्र ही युद्धके लिये चल दिया ॥ १२६ ॥

अथ प्रववृते युद्धं द्रौणिराक्षसयोर्मृधे ।
विभावर्यां सुतुमुलं शक्रप्रह्लादयोरिव ॥१२७॥

तदनन्तर रणभूमिमें रात्रिके समय द्रोणकुमार अश्वत्थामा तथा राक्षस घटोत्कचका इन्द्र और प्रह्लादके समान अत्यन्त भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ ॥ १२७ ॥

ततो घटोत्कचो बाणैर्दशभिर्गौतमीसुतम् ।
जघानोरसि संक्रुद्धो विषाग्निप्रतिमैर्दृढैः ॥१२८॥

उस समय घटोत्कचने अत्यन्त कुपित होकर विष और अग्निके समान भयंकर दस सुदृढ़ बाणोंद्वारा कृपीकुमार अश्वत्थामाकी छातीमें गहरा आघात किया ॥ १२८ ॥

स तैरभ्याहतो गाढं शरैर्भीमसुतेरितैः ।
चचाल रथमध्यस्थो वातोद्धत इव द्रुमः ॥१२९॥

भीमपुत्र घटोत्कचके चलाये हुए उन बाणोंद्वारा गहरी चोट खाकर रथमें बैठा हुआ अश्वत्थामा वायुके झकझोरे हुए वृक्षके समान काँपने लगा ॥ १२९ ॥

भूयश्चाञ्जलिकेनाथ मार्गणेन महाप्रभम् ।
द्रौणिहस्तस्थितं चापं चिच्छेदाशु घटोत्कचः ॥१३०॥

इतनेहीमें घटोत्कचने पुनः अञ्जलिकनामक बाणसे अश्वत्थामाके हाथमें स्थित अत्यन्त कान्तिमान् धनुषको शीघ्रतापूर्वक काट डाला ॥ १३० ॥

ततोऽन्यद् द्रौणिरादाय धनुर्भारसहं महत् ।
ववर्ष विशिखांस्तीक्ष्णान् वारिधारा इवाम्बुदः ॥१३१॥

तब द्रोणकुमार भार सहन करनेमें समर्थ दूसरा विशाल धनुष हाथमें लेकर, जैसे मेघ जलकी धारा बरसाता है, उसी प्रकार तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ १३१ ॥

ततः शारद्वतीपुत्रः प्रेषयामास भारत ।
सुवर्णपुङ्खाञ्छत्रुघ्नान् खचरान् खचरं प्रति ॥१३२॥

भारत ! तदनन्तर गौतमीपुत्रने सुवर्णमय पंखवाले शत्रु-नाशक आकाशचारी बाणोंको उस राक्षसपर चलाया ॥ १३२ ॥

तद् बाणैरर्दितं यूथं रक्षसां पीनवक्षसाम् ।
सिंहैरिव बभौ मत्तं गजानामाकुलं कुलम् ॥१३३॥

उन बाणोंसे चौड़ी छातीवाले राक्षसोंका वह समूह अत्यन्त पीड़ित हो सिंहोंद्वारा व्याकुल किये गये मतवाले हाथियोंके झुंडके समान प्रतीत होने लगा ॥ १३३ ॥

विधम्य राक्षसान् बाणैः साश्वसूतरथद्विपान् ।
ददाह भगवान् वह्निर्भूतानीव युगक्षये ॥१३४॥

जैसे भगवान् अग्निदेव प्रलयकालमें सम्पूर्ण प्राणियोंको दग्ध कर देते हैं, उसी प्रकार अश्वत्थामाने अपने बाणोंद्वारा घोड़े, सारथि, रथ और हाथियोंसहित बहुत-से राक्षसोंको जलाकर भस्म कर दिया ॥ १३४ ॥

स दग्ध्वाक्षौहिणीं बाणैर्नैर्ऋतीं रुरुचे नृप।
पुरेव त्रिपुरं दग्ध्वा दिवि देवो महेश्वरः ॥१३५॥

नरेश्वर ! जैसे भगवान् महेश्वर आकाशमें त्रिपुरको दग्ध करके सुशोभित हुए थे, उसी प्रकार राक्षसोंकी अक्षौहिणी सेनाको बाणोंद्वारा दग्ध करके अश्वत्थामा शोभा पाने लगा ॥ १३५ ॥

युगान्ते सर्वभूतानि दग्ध्वेव वसुरुल्बणः।
रराज जयतां श्रेष्ठो द्रोणपुत्रस्तवाहितान् ॥१३६॥

राजन् ! विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ द्रोणपुत्र अश्वत्थामा प्रलय-कालमें समस्त प्राणियोंको भस्म कर देनेवाले संवर्तक अग्निके समान आपके शत्रुओंको दग्ध करके देदीप्यमान हो उठा ॥

ततो घटोत्कचः क्रुद्धो रक्षसां भीमकर्मणाम्।
द्रौणिं हतेति महतीं चोदयामास तां चमूम् ॥१३७॥

तब घटोत्कचने कुपित हो भयानक कर्म करनेवाले राक्षसोंकी उस विशाल सेनाको आदेश दिया, 'अरे ! अश्वत्थामाको मार डालो' ॥ १३७ ॥

घटोत्कचस्य तामाज्ञां प्रतिगृह्याथ राक्षसाः।
दंष्ट्रोज्ज्वला महावक्त्रा घोररूपा भयानकाः ॥१३८॥
व्यात्तानना घोरजिह्वाः क्रोधताम्रेक्षणा भृशम्।
सिंहनादेन महता नादयन्तो वसुन्धराम् ॥१३९॥
हन्तुमभ्यद्रवन् द्रौणिं नानाप्रहरणायुधाः।

घटोत्कचकी उस आज्ञाको शिरोधार्य करके दाढ़ोंसे प्रकाशित, विशाल मुखवाले, घोर रूपधारी, फैले मुँह और डरावनी जीभवाले भयानक राक्षस क्रोधसे लाल आँखें किये महान् सिंहनादसे पृथ्वीको प्रतिध्वनित करते हुए हाथोंमें भाँति-भाँतिके अस्त्र-शस्त्र ले अश्वत्थामाको मार डालनेके लिये उसपर टूट पड़े ॥ १३८–१३९½ ॥

शक्तीः शतघ्नीः परिघानशनीः शूलपट्टिशान् ॥१४०॥
खड्गान् गदा भिन्दिपालान् मुसलानि परश्वधान्।
प्रासानसींस्तोमरांश्च कणपान् कम्पनाञ्छितान् ॥१४१॥
स्थूलान् भुशुण्ड्यश्मगदाः स्थूणान् कार्ष्णायसांस्तथा।
मुद्गरांश्च महाघोरान् समरे शत्रुदारणान् ॥१४२॥
द्रौणिमूर्धन्यसंत्रस्ता राक्षसा भीमविक्रमाः।
चिक्षिपुः क्रोधताम्राक्षाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥१४३॥

समराङ्गणमें किसीसे भी न डरनेवाले तथा क्रोधसे लाल नेत्रोंवाले भयंकर पराक्रमी सैकड़ों और हजारों राक्षस अश्वत्थामाके मस्तकपर शक्ति, शतघ्नी, परिघ, अशनि, शूल, पट्टिश, खड्ग, गदा, भिन्दिपाल, मुसल, फरसे, प्रास, कटार, तोमर, कणप, तीखे कम्पन, मोटे-मोटे पत्थर, भुशुण्डी, गदा, काले लोहेके खंभे तथा शत्रुओंको विदीर्ण करनेमें समर्थ महाघोर मुद्गरोंकी वर्षा करने लगे ॥ १४०–१४३ ॥

तच्छस्त्रवर्षं सुमहद् द्रोणपुत्रस्य मूर्धनि।
पतमानं समीक्ष्याथ योधास्ते व्यथिताभवन् ॥१४४॥

द्रोणपुत्रके मस्तकपर अस्त्रोंकी वह बड़ी भारी वर्षा होती देख आपके समस्त सैनिक व्यथित हो उठे ॥ १४४ ॥

द्रोणपुत्रस्तु विक्रान्तस्तद् वर्षं घोरमुच्छ्रितम्।
शरैर्विध्वंसयामास वज्रकल्पैः शिलाशितैः ॥१४५॥

परंतु पराक्रमी द्रोणकुमारने शिलापर तेज किये हुए अपने वज्रोपम बाणोंद्वारा वहाँ प्रकट हुई उस भयंकर अस्त्र-वर्षाका विध्वंस कर डाला ॥ १४५ ॥

ततोऽन्यैर्विशिखैस्तूर्णं स्वर्णपुङ्खैर्महामनाः।
निजघ्ने राक्षसान् द्रौणिर्दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रितैः ॥१४६॥

तत्पश्चात् महामनस्वी अश्वत्थामाने दिव्यास्त्रोंसे अभिमन्त्रित सुवर्णमय पंखवाले अन्य बाणोंद्वारा तत्काल ही राक्षसोंको घायल कर दिया ॥ १४६ ॥

तद्बाणैरर्दितं यूथं रक्षसां पीनवक्षसाम्।
सिंहैरिव बभौ मत्तं गजानामाकुलं कुलम् ॥१४७॥

उन बाणोंसे चौड़ी छातीवाले राक्षसोंका समूह अत्यन्त पीड़ित हो सिंहोंद्वारा व्याकुल किये गये मतवाले हाथियोंके झुंडके समान प्रतीत होने लगा ॥ १४७ ॥

ते राक्षसाः सुसंक्रुद्धा द्रोणपुत्रेण ताडिताः।
क्रुद्धाः स्म प्राद्रवन् द्रौणिं जिघांसन्तो महाबलाः ॥१४८॥

द्रोणपुत्रकी मार खाकर, अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए महाबली राक्षस उसे मार डालनेकी इच्छासे रोषपूर्वक दौड़े ॥

तत्राद्भुतमिमं द्रौणिर्दर्शयामास विक्रमम्।
अशक्यं कर्तुमन्येन सर्वभूतेषु भारत ॥१४९॥

भारत ! वहाँ अश्वत्थामाने यह ऐसा अद्भुत पराक्रम दिखाया, जिसे समस्त प्राणियोंमें और किसीके लिये कर दिखना असम्भव था ॥ १४९ ॥

यदेको राक्षसीं सेनां क्षणाद् द्रौणिर्महास्त्रवित्।
ददाह ज्वलितैर्बाणै राक्षसेन्द्रस्य पश्यतः ॥१५०॥

क्योंकि महान् अस्त्रवेत्ता अश्वत्थामाने अकेले ही उस राक्षसी सेनाको राक्षसराज घटोत्कचके देखते-देखते अपने प्रज्वलित बाणोंद्वारा क्षणभरमें भस्म कर दिया ॥ १५० ॥

स हत्वा राक्षसानीकं रराज द्रौणिराहवे।
युगान्ते सर्वभूतानि संवर्तक इवानलः ॥१५१॥

जैसे प्रलयकालमें संवर्तक अग्नि समस्त प्राणियोंको दग्ध कर देती है, उसी प्रकार राक्षसोंकी उस सेनाका संहार करके

युद्धस्थलमें अश्वत्थामाकी बड़ी शोभा हुई ॥ १५१ ॥

तं दहन्तमनीकानि शरैराशीविषोपमैः ।
तेषु राजसहस्रेषु पाण्डवेयेषु भारत ॥ १५२ ॥
नैनं निरीक्षितुं कश्चिदशक्नोद् द्रौणिमाहवे ।
ऋते घटोत्कचाद् वीराद् राक्षसेन्द्रान्महाबलात् ॥ १५३ ॥

भरतनन्दन ! युद्धस्थलमें पाण्डवपक्षके सहस्रों राजाओं-मेंसे वीर महाबली राक्षसराज घटोत्कचको छोड़कर दूसरा कोई भी विषधर सर्पोंके समान भयंकर बाणोंद्वारा पाण्डवोंकी सेनाओंको दग्ध करते हुए अश्वत्थामाकी ओर देख न सका॥

स पुनर्भरतश्रेष्ठ क्रोधादुद्भ्रान्तलोचनः ।
तलं तलेन संहत्य संदश्य दशनच्छदम् ॥ १५४ ॥
स्वं सूतमब्रवीत् क्रुद्धो द्रोणपुत्राय मां वह ।

भरतश्रेष्ठ ! पुनः क्रोधसे घटोत्कचकी आँखें घूमने लगीं। उसने हाथसे हाथ मलकर ओठ चबा लिया और कुपित हो सारथिसे कहा—'सूत ! तू मुझे द्रोणपुत्रके पास ले चल' ॥ १५४½ ॥

स ययौ घोररूपेण सुपताकेन भास्वता ॥ १५५ ॥
द्वैरथं द्रोणपुत्रेण पुनरप्यरिसूदनः ।

शत्रुओंका संहार करनेवाला घटोत्कच सुन्दर पताकाओं-से सुशोभित, प्रकाशमान एवं भयंकर रथके द्वारा पुनः द्रोणपुत्रके साथ द्वैरथ युद्ध करनेके लिये गया ॥ १५५½ ॥

स विनद्य महानादं सिंहवद् भीमविक्रमः ॥ १५६ ॥
चिक्षेपाविध्य संग्रामे द्रोणपुत्राय राक्षसः ।
अष्टघण्टां महाघोरामशनिं देवनिर्मिताम् ॥ १५७ ॥

उस भयंकर पराक्रमी राक्षसने सिंहके समान बड़ी भारी गर्जना करके संग्राममें द्रोणपुत्रपर देवताओंद्वारा निर्मित तथा आठ घंटियोंसे सुशोभित एक महाभयंकर अशनि (वज्र) घुमाकर चलायी ॥ १५६–१५७ ॥

तामवप्लुत्य जग्राह द्रौणिर्न्यस्य रथे धनुः ।
चिक्षेप चैनां तस्यैव स्यन्दनात् सोऽवपुप्लुवे ॥ १५८ ॥

यह देख अश्वत्थामाने रथपर अपना धनुष रख उछल-कर उस अशनिको पकड़ लिया और उसे घटोत्कचके ही रथपर दे मारा। घटोत्कच उस रथसे कूद पड़ा ॥ १५८ ॥

साश्वसूतध्वजं यानं भस्म कृत्वा महाप्रभा ।
विवेश वसुधां भित्त्वा साशनिर्भृशदारुणा ॥ १५९ ॥

वह अत्यन्त प्रकाशमान तथा परम दारुण अशनि घोड़े, सारथि और ध्वजसहित घटोत्कचके रथको भस्म करके पृथ्वीको छेदकर उसके भीतर समा गयी ॥ १५९ ॥

द्रौणेस्तत् कर्म दृष्ट्वा तु सर्वभूतान्यपूजयन् ।
यदवप्लुत्य जग्राह घोरां शङ्करनिर्मिताम् ॥ १६० ॥

अश्वत्थामाने भगवान् शङ्करद्वारा निर्मित उस भयंकर अशनिको जो उछलकर पकड़ लिया, उसके उस कर्मको देखकर समस्त प्राणियोंने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की॥ १६० ॥

धृष्टद्युम्नरथं गत्वा भैमसेनिस्ततो नृप ।
धनुर्घोरं समादाय महदिन्द्रायुधोपमम् ।
मुमोच निशितान् बाणान् पुनर्द्रौणेर्महोरसि ॥ १६१ ॥

नरेश्वर ! उस समय भीमसेनकुमारने धृष्टद्युम्नके रथपर आरूढ़ हो इन्द्रायुधके समान विशाल एवं घोर धनुष हाथमें लेकर अश्वत्थामाके विशाल वक्षःस्थलपर बहुत-से तीखे बाण मारे ॥ १६१ ॥

धृष्टद्युम्नस्त्वसम्भ्रान्तो मुमोचाशीविषोपमान् ।
सुवर्णपुङ्खान् विशिखान् द्रोणपुत्रस्य वक्षसि ॥ १६२ ॥

धृष्टद्युम्नने भी बिना किसी घबराहटके विषधर सर्पोंके समान सुवर्णमय पंखवाले बहुत-से बाण द्रोणपुत्रके वक्षःस्थल पर छोड़े

ततो मुमोच नाराचान् द्रौणिस्तांश्च सहस्रशः ।
तावप्यग्निशिखप्रख्यैर्जघ्नतुस्तस्य मार्गणान् ॥ १६३ ॥

तब अश्वत्थामाने भी उनपर सहस्रों नाराच चलाये। धृष्टद्युम्न और घटोत्कचने भी अग्निशिखाके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा अश्वत्थामाके नाराचोंको काट डाला ॥ १६३ ॥

अतितीव्रं महद् युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः ।
योधानां प्रीतिजननं द्रौणेश्च भरतर्षभ ॥ १६४ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उन दोनों पुरुषसिंहों तथा अश्वत्थामाका वह अत्यन्त उग्र और महान् युद्ध समस्त योद्धाओंका हर्ष बढ़ा रहा था ॥ १६४ ॥

ततो रथसहस्रेण द्विरदानां शतैस्त्रिभिः ।
षड्भिर्वाजिसहस्रैश्च भीमस्तं देशमागमत् ॥ १६५ ॥

तदनन्तर एक हजार रथ, तीन सौ हाथी और छः हजार घुड़सवारोंके साथ भीमसेन उस युद्धस्थलमें आये ॥ १६५ ॥

ततो भीमात्मजं रक्षो धृष्टद्युम्नं च सानुगम् ।
अयोधयत धर्मात्मा द्रौणिरक्लिष्टविक्रमः ॥ १६६ ॥

उस समय अनायास ही पराक्रम प्रकट करनेवाला धर्मात्मा अश्वत्थामा भीमपुत्र राक्षस घटोत्कच तथा सेवकों-सहित धृष्टद्युम्नके साथ अकेला ही युद्ध कर रहा था ॥ १६६ ॥

तत्राद्भुततमं द्रौणिर्दर्शयामास विक्रमम् ।
अशक्यं कर्तुमन्येन सर्वभूतेषु भारत ॥ १६७ ॥

भारत ! वहाँ द्रोणपुत्रने अत्यन्त अद्भुत पराक्रम दिखाया, जिसे कर दिखाना समस्त प्राणियोंमें दूसरेके लिये असम्भव था ॥ १६७ ॥

निमेषान्तरमात्रेण साश्वसूतरथद्विपाम् ।
अक्षौहिणीं राक्षसानां शितैर्बाणैरशातयत् ॥ १६८ ॥

उसने पलक मारते-मारते अपने पैने बाणोंसे घोड़े, सारथि, रथ और हाथियोंसहित राक्षसोंकी एक अक्षौहिणी सेनाका संहार कर दिया ॥ १६८ ॥

मिषतो भीमसेनस्य हैडिम्बेः पार्षतस्य च ।
यमयोर्धर्मपुत्रस्य विजयस्याच्युतस्य च ॥१६९॥

भीमसेन, घटोत्कच, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव, धर्मपुत्र युधिष्ठिर, अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्णके देखते-देखते यह सब कुछ हो गया ॥ १६९ ॥

प्रगाढमञ्जोगतिभिर्नाराचैरभिताडिताः ।
निपेतुर्द्विरदा भूमौ सशृङ्गा इव पर्वताः ॥१७०॥

शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़नेवाले नाराचोंकी गहरी चोट खाकर बहुत-से हाथी शिखरयुक्त पर्वतोंके समान धराशायी हो गये ॥ १७० ॥

निकृत्तैर्हस्तिहस्तैश्च विचलद्भिरितस्ततः ।
रराज वसुधा कीर्णा विसर्पद्भिरिवोरगैः ॥१७१॥

हाथियोंके शुण्ड कटकर इधर-उधर छटपटा रहे थे । उनसे ढकी हुई पृथ्वी रेंगते हुए सर्पोंसे आच्छादित हुई-सी शोभा पा रही थी ॥ १७१ ॥

क्षिप्तैः काञ्चनदण्डैश्च नृपच्छत्रैः क्षितिर्बभौ ।
द्यौरिवोदितचन्द्रार्का ग्रहाकीर्णा युगक्षये ॥१७२॥

इधर-उधर गिरे हुए सुवर्णमय दण्डवाले राजाओंके छत्रोंसे छायी हुई यह पृथ्वी प्रलयकालमें उदित हुए सूर्य, चन्द्रमा तथा ग्रहनक्षत्रोंसे परिपूर्ण आकाशके समान जान पड़ती थी ॥ १७२ ॥

प्रवृद्धध्वजमण्डूकां भेरीविस्तीर्णकच्छपाम् ।
छत्रहंसावलीजुष्टां फेनचामरमालिनीम् ॥१७३॥
कङ्कगृध्रमहाग्राहां नैकायुधझषाकुलाम् ।
विस्तीर्णगजपाषाणां हताश्वमकराकुलाम् ॥१७४॥
रथक्षिप्तमहावप्रां पताकारुचिरद्रुमाम् ।
शरमीनां महारौद्रां प्रासशक्त्यृष्टिडुण्डुभाम् ॥१७५॥
मज्जामांसमहापङ्कां कबन्धावर्जितोडुपाम् ।
केशशैवलकल्माषां भीरूणां कश्मलावहाम् ॥१७६॥
नागेन्द्रहययोधानां शरीरव्ययसम्भवाम् ।
शोणितौघमहाघोरां द्रौणिः प्रावर्तयन्नदीम् ॥१७७॥
योधार्तरवनिर्घोषां क्षतजोर्मिसमाकुलाम् ।
श्वापदातिमहाघोरां यमराष्ट्रमहोदधिम् ॥१७८॥

अश्वत्थामाने उस युद्धस्थलमें खूनकी नदी बहा दी, जो शोणितके प्रवाहसे अत्यन्त भयंकर प्रतीत होती थी, जिसमें कटकर गिरी हुई विशाल ध्वजाएँ मेढकोंके समान और रणभेरियाँ विशाल कछुओंके सदृश जान पड़ती थीं । राजाओंके श्वेत छत्र हंसोंकी श्रेणीके समान उस नदीका सेवन करते थे । चँवरसमूह फेनका भ्रम उत्पन्न करते थे । कंक और गीध ही बड़े बड़े ग्राह-से जान पड़ते थे । अनेक प्रकारके आयुध वहाँ मछलियोंके समान भरे थे । विशाल हाथी शिलाखण्डोंके समान प्रतीत होते थे । मरे हुए घोड़े वहाँ मगरोंके समान व्याप्त थे । गिरे पड़े हुए रथ ऊँचे-ऊँचे टीलोंके समान जान पड़ते थे । पताकाएँ सुन्दर वृक्षोंके समान प्रतीत होती थीं । बाण ही मीन थे । देखनेमें वह बड़ी भयंकर थी । प्रास, शक्ति और ऋष्टि आदि अस्त्र डुण्डुभ सर्पके समान थे । मज्जा और मांस ही उस नदीमें महापङ्कके समान प्रतीत होते थे । तैरती हुई लाशें नौकाका भ्रम उत्पन्न करती थीं । केशरूपी सेवारोंसे वह रंग-बिरंगी दिखायी दे रही थी । वह कायरोंको मोह प्रदान करनेवाली थी । गजराजों, घोड़ों और योद्धाओंके शरीरोंका नाश होनेसे उस नदीका प्राकट्य हुआ था । योद्धाओंकी आर्तवाणी ही उसकी कलकल ध्वनि थी । उस नदीसे रक्तकी लहरें उठ रही थीं । हिंसक जन्तुओंके कारण उसकी भयंकरता और भी बढ़ गयी थी । वह यमराजके राज्यरूपी महासागरमें मिलनेवाली थी ॥ १७३—१७८ ॥

निहत्य राक्षसान् बाणैर्द्रौणिर्हैडिम्बिमार्दयत् ।
पुनरप्यतिसंक्रुद्धः सवृकोदरपार्षतान् ॥१७९॥
स नाराचगणैः पार्थान् द्रौणिर्विद्ध्वा महाबलः ।
जघान सुरथं नाम द्रुपदस्य सुतं विभुः ॥१८०॥

राक्षसोंका वध करके बाणोंद्वारा अश्वत्थामाने घटोत्कचको अत्यन्त पीड़ित कर दिया । फिर उस महाबली वीरने अत्यन्त कुपित होकर अपने नाराचोंसे भीमसेन और धृष्टद्युम्नसहित समस्त कुन्तीकुमारोंको घायल करके द्रुपदपुत्र सुरथको मार डाला ॥ १७९-१८० ॥

पुनः शत्रुंजयं नाम द्रुपदस्यात्मजं रणे ।
बलानीकं जयानीकं जयाश्वं चाभिजघ्निवान् ॥१८१॥

तत्पश्चात् उसने रणक्षेत्रमें द्रुपदकुमार शत्रुंजय, बलानीक, जयानीक और जयाश्वको भी मार गिराया ॥१८१॥

श्रुताह्वयं च राजानं द्रौणिर्निन्ये यमक्षयम् ।
त्रिभिश्चान्यैः शरैस्तीक्ष्णैः सुपुङ्खैर्हेममालिनम् ॥१८२॥
जघान स पृषध्रं च चन्द्रसेनं च मारिष ।
कुन्तिभोजसुतांश्चासौ दशभिर्दश जघ्निवान् ॥१८३॥

आर्य ! इसके बाद द्रोणकुमारने राजा श्रुताह्वको भी यमलोक पहुँचा दिया । फिर दूसरे तीन तीखे और सुन्दर पंखवाले बाणोंद्वारा हेममाली, पृषध्र और चन्द्रसेनका भी वध कर डाला । तदनन्तर दस बाणोंसे उसने राजा कुन्तिभोजके दस पुत्रोंको कालके गालमें डाल दिया ॥

अश्वत्थामा सुसंक्रुद्धः संधायोग्रमजिह्मगम् ।
मुमोचाकर्णपूर्णेन धनुषा शरमुत्तमम् ॥१८४॥
यमदण्डोपमं घोरमुद्दिश्याशु घटोत्कचम् ।

इसके बाद अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए अश्वत्थामाने एक सीधे जानेवाले अत्यन्त भयंकर एवं उत्तम बाणका संधान करके धनुषको कानतक खींचकर उसे शीघ्र ही घटोत्कच-

को लक्ष्य करके छोड़ दिया। वह बाण घोर यमदण्डके समान था ॥ १८४½ ॥

स भित्त्वा हृदयं तस्य राक्षसस्य महाशरः ॥१८५॥
विवेश वसुधां शीघ्रं सुपुङ्खः पृथिवीपते।

पृथ्वीपते ! वह सुन्दर पंखोंवाला महाबाण उस राक्षसका हृदय विदीर्ण करके शीघ्र ही पृथ्वीमें समा गया।१८५½।

तं हतं पतितं ज्ञात्वा धृष्टद्युम्नो महारथः ॥१८६॥
द्रौणेः सकाशाद् राजेन्द्र व्यपनिन्ये रथोत्तमम्।

राजेन्द्र ! घटोत्कचको मरकर गिरा हुआ जान महारथी धृष्टद्युम्नने अपने उत्तम रथको अश्वत्थामाके पाससे हटा लिया ॥ १८६½ ॥

ततः पराङ्मुखन्नृपं सैन्यं यौधिष्ठिरं नृप ॥१८७॥
पराजित्य रणे वीरो द्रोणपुत्रो ननाद ह।
पूजितः सर्वभूतेषु तव पुत्रैश्च भारत ॥१८८॥

नरेश्वर ! फिर तो युधिष्ठिरकी सेनाके सभी नरेश युद्धसे विमुख हो गये। उस सेनाको परास्त करके वीर द्रोणपुत्र रणभूमिमें गर्जना करने लगा। भारत ! उस समय सम्पूर्ण प्राणियोंमें अश्वत्थामाका बड़ा समादर हुआ। आपके पुत्रोंने भी उसका बड़ा सम्मान किया ॥ १८७-१८८ ॥

अथ शरशतभिन्नकृत्तदेहै-
र्हतपतितैः क्षणदाचरैः समन्तात्।
निधनमुपगतैर्मही कृताभूद्
गिरिशिखरैरिव दुर्गमातिरौद्रा ॥१८९॥

तदनन्तर सैकड़ों बाणोंसे शरीर छिन्न-भिन्न हो जानेके कारण मरकर गिरे और मृत्युको प्राप्त हुए निशाचरोंकी लाशोंसे पटी हुई चारों ओरकी भूमि पर्वतशिखरोंसे आच्छादित हुई-सी अत्यन्त भयंकर और दुर्गम प्रतीत होने लगी ॥ १८९ ॥

तं सिद्धगन्धर्वपिशाचसंघा
नागाः सुपर्णाः पितरो वयांसि।
रक्षोगणा भूतगणाश्च द्रौणि-
मपूजयन्नप्सरसः सुराश्च ॥१९०॥

उस समय वहाँ सिद्धों, गन्धर्वों, पिशाचों, नागों, सुपर्णों, पितरों, पक्षियों, राक्षसों, भूतों, अप्सराओं तथा देवताओंने भी द्रोणपुत्र अश्वत्थामाकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धविषयक एक सौ छप्पनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५६ ॥

सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सोमदत्तकी मूर्छा, भीमके द्वारा बाह्लीकका वध, धृतराष्ट्रके दस पुत्रों और शकुनिके सात रथियों एवं पाँच भाइयोंका संहार तथा द्रोणाचार्य और युधिष्ठिरके युद्धमें युधिष्ठिरकी विजय

संजय उवाच

द्रुपदस्यात्मजान् दृष्ट्वा कुन्तिभोजसुतांस्तथा।
द्रोणपुत्रेण निहतान् राक्षसांश्च सहस्रशः ॥ १ ॥
युधिष्ठिरो भीमसेनो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
युयुधानश्च संयत्ता युद्धायैव मनो दधुः ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके द्वारा द्रुपद और कुन्तिभोजके पुत्रों तथा सहस्रों राक्षसोंको मारा गया देख युधिष्ठिर, भीमसेन, द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न तथा युयुधानने भी सावधान होकर युद्धमें ही मन लगाया ॥

सोमदत्तः पुनः क्रुद्धो दृष्ट्वा सात्यकिमाहवे।
महता शरवर्षेणच्छादयामास भारत ॥ ३ ॥

भारत ! युद्धस्थलमें सात्यकिको देखकर सोमदत्त पुनः कुपित हो उठे और उन्होंने बड़ी भारी बाणवर्षा करके सात्यकिको आच्छादित कर दिया ॥ ३ ॥

ततः समभवद् युद्धमतीव भयवर्धनम्।
त्वदीयानां परेषां च घोरं विजयकाङ्क्षिणाम् ॥ ४ ॥

फिर तो विजयकी अभिलाषा रखनेवाले आपके और शत्रुपक्षके सैनिकोंमें अत्यन्त भयंकर घोर युद्ध छिड़ गया ॥

तं दृष्ट्वा समुपायान्तं रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः।
दशभिः सात्वतस्यार्थे भीमो विव्याध सायकैः ॥ ५ ॥

सोमदत्तको आते देख भीमसेनने सात्यकिकी सहायताके लिये शिलापर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले दस बाणोंद्वारा उन्हें घायल कर दिया ॥ ५ ॥

सोमदत्तोऽपि तं वीरं शतेन प्रत्यविध्यत।
सात्वतस्त्वभिसंक्रुद्धः पुत्राधिभिरभिप्लुतम् ॥ ६ ॥
वृद्धं वृद्धगुणैर्युक्तं ययातिमिव नाहुषम्।
विव्याध दशभिस्तीक्ष्णैः शरैर्वज्रनिपातनैः ॥ ७ ॥

सोमदत्तने भी वीर भीमसेनको सौ बाणोंसे बेधकर बदला चुकाया। इधर सात्यकिने भी अत्यन्त कुपित हो पुत्रशोकमें डूबे हुए, नहुषनन्दन ययातिकी भाँति वृद्धताके गुणोंसे युक्त बूढ़े सोमदत्तको वज्रको भी मार गिरानेवाले दस तीखे बाणोंसे बींध डाला ॥ ६-७ ॥

शक्त्या चैनं विनिर्भिद्य पुनर्विव्याध सप्तभिः।
ततस्तु सात्यकेरर्थे भीमसेनो नवं दृढम् ॥ ८ ॥

मुमोच परिघं घोरं सोमदत्तस्य मूर्धनि ।

फिर शक्तिसे इन्हें विदीर्ण करके सात बाणोंद्वारा पुनः गहरी चोट पहुँचायी । तत्पश्चात् सात्यकिके लिये भीमसेनने सोमदत्तके मस्तकपर नूतन, सुदृढ़ एवं भयंकर परिघका प्रहार किया ॥ ८½ ॥

सात्वतोऽप्यग्निसंकाशं मुमोच शरमुत्तमम् ॥ ९ ॥
सोमदत्तोरसि क्रुद्धः सुपत्रं निशितं युधि ।

इसी समय सात्यकिने भी युद्धस्थलमें कुपित हो सोमदत्तकी छातीपर सुन्दर पंखवाले, अग्निके समान तेजस्वी, उत्तम और तीखे बाणका प्रहार किया ॥ ९½ ॥

युगपत् पेततुर्वीरे घोरौ परिघमार्गणौ ॥ १० ॥
शरीरे सोमदत्तस्य स पपात महारथः ।

वे भयंकर परिघ और बाण वीर सोमदत्तके शरीरपर एक ही साथ गिरे । इससे महारथी सोमदत्त मूर्छित होकर गिर पड़े ॥ १०½ ॥

व्यामोहिते तु तनये बाह्लीकस्तमुपाद्रवत् ॥ ११ ॥
विसृजञ्छरवर्षाणि कालवर्षीव तोयदः ।

अपने पुत्रके मूर्च्छित होनेपर बाह्लीकने वर्षा ऋतुमें वर्षा करनेवाले मेघके समान बाणोंकी वृष्टि करते हुए वहाँ सात्यकिपर धावा किया ॥ ११½ ॥

भीमोऽथ सात्वतस्यार्थे बाह्लीकं नवभिः शरैः ॥ १२ ॥
प्रपीडयन् महात्मानं विव्याध रणमूर्धनि ।

भीमसेनने सात्यकिके लिये महात्मा बाह्लीकको पीड़ित करते हुए युद्धके मुहानेपर उन्हें नौ बाणोंसे घायल कर दिया ॥ १२½ ॥

प्रातिपेयस्तु संक्रुद्धः शक्तिं भीमस्य वक्षसि ॥ १३ ॥
निचखान महाबाहुः पुरंदर इवाशनिम् ।

तब महाबाहु प्रतीपपुत्र बाह्लीकने अत्यन्त कुपित हो भीमसेनकी छातीमें अपनी शक्ति धँसा दी, मानो देवराज इन्द्रने किसी पर्वतपर वज्र मारा हो ॥ १३½ ॥

स तथाभिहतो भीमश्चकम्पे च मुमोह च ॥ १४ ॥
प्राप्य चेतश्च बलवान् गदामस्मै ससर्ज ह ।

इस प्रकार शक्तिसे आहत होकर भीमसेन काँप उठे और मूर्च्छित हो गये । फिर सचेत होनेपर बलवान् भीमने उनपर गदाका प्रहार किया ॥ १४½ ॥

सा पाण्डवेन प्रहिता बाह्लीकस्य शिरोऽहरत् ॥ १५ ॥
स पपात हतः पृथ्व्यां वज्राहत इवाद्रिराट् ।

पाण्डुपुत्र भीमसेनद्वारा चलायी हुई उस गदाने बाह्लीकका सिर उड़ा दिया । वे वज्रके मारे हुए पर्वतराजकी भाँति मरकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १५½ ॥

तस्मिन् विनिहते वीरे बाह्लीके पुरुषर्षभ ॥ १६ ॥
पुत्रास्तेऽभ्यर्दयन् भीमं दश दाशरथेः समाः ।

नरश्रेष्ठ ! वीर बाह्लीकके मारे जानेपर श्रीरामचन्द्रजीके समान पराक्रमी आपके दस पुत्र भीमसेनको पीड़ा देने लगे ॥

नागदत्तो दृढरथो महाबाहुरयोभुजः ॥ १७ ॥
दृढः सुहस्तो विरजाः प्रमाथ्युग्रोऽनुयाय्यपि ।

उनके नाम इस प्रकार हैं—नागदत्त, दृढ़रथ (दृढ़रथाश्रय), महाबाहु, अयोभुज (अयोबाहु), दृढ़ (दृढ़क्षत्र), सुहस्त, विरजा, प्रमाथी, उग्र (उग्रश्रवा) और अनुयायी (अग्रयायी) ॥ १७½ ॥

तान् दृष्ट्वा चुक्रुधे भीमो जगृहे भारसाधनान् ॥ १८ ॥
एकमेकं समुद्दिश्य पातयामास मर्मसु ।

उनको सामने देखकर भीमसेन कुपित हो उठे । उन्होंने प्रत्येकके लिये एक-एक करके भारसाधनमें समर्थ दस बाण हाथमें लिये और उन्हें उनके मर्मस्थानोंपर चलाया ॥ १८½ ॥

ते विद्धा व्यसवः पेतुः स्यन्दनेभ्यो हतौजसः ॥ १९ ॥
चण्डवातप्रभग्नास्तु पर्वताग्रान्महीरुहाः ।

उन बाणोंसे घायल होकर आपके पुत्र अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठे और पर्वतशिखरसे प्रचण्ड वायुद्वारा उखाड़े हुए वृक्षोंके समान तेजोहीन होकर रथोंसे नीचे गिर पड़े ॥

नाराचैर्दशभिर्भीमस्तान् निहत्य तवात्मजान् ॥ २० ॥
कर्णस्य दयितं पुत्रं वृषसेनमवाकिरत् ।

आपके उन पुत्रोंको दस नाराचोंद्वारा मारकर भीमसेनने कर्णके प्यारे पुत्र वृषसेनपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥

ततो वृकरथो नाम भ्राता कर्णस्य विश्रुतः ॥ २१ ॥
जघान भीमं नाराचैस्तमप्यभ्यद्रवद् बली ।

तदनन्तर कर्णके सुविख्यात बलवान् भ्राता वृकरथने आकर भीमसेनपर भी आक्रमण किया और उन्हें नाराचोंद्वारा घायल कर दिया ॥ २१½ ॥

ततः सप्त रथान् वीरः स्यालानां तव भारत ॥ २२ ॥
निहत्य भीमो नाराचैः शतचन्द्रमपोथयत् ।

भारत ! तत्पश्चात् वीर भीमसेनने आपके सालोंमेंसे सात रथियोंको नाराचोंद्वारा मारकर शतचन्द्रको भी कालके गालमें भेज दिया ॥ २२½ ॥

अमर्षयन्तो निहतं शतचन्द्रं महारथम् ॥ २३ ॥
शकुनेर्भ्रातरो वीरा गवाक्षः शरभो विभुः ।
सुभगो भानुदत्तश्च शूराः पञ्च महारथाः ॥ २४ ॥
अभिद्रुत्य शरैस्तीक्ष्णैर्भीमसेनमताडयन् ।

महारथी शतचन्द्रके मारे जानेपर अमर्षमें भरे हुए शकुनिके वीर भाई गवाक्ष, शरभ, विभु, सुभग और भानुदत्त—ये पाँच शूर महारथी भीमसेनपर टूट पड़े और उन्हें पैने बाणोंद्वारा घायल करने लगे ॥ २३-२४½ ॥

स ताड्यमानो नाराचैर्वृष्टिवेगैरिवाचलः ॥ २५ ॥
जघान पञ्चभिर्बाणैः पञ्चैवातिरथान् बली ।

जैसे वर्षाके वेगसे पर्वत आहत होता है, उसी प्रकार उनके नाराचोंसे घायल होकर बलवान् भीमसेनने अपने पाँच बाणोंद्वारा उन पाँचों अतिरथी वीरोंको मार डाला ॥

तान् दृष्ट्वा निहतान् वीरान् विचेलुर्नृपसत्तमाः ॥ २६ ॥
ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धस्तवानीकमशातयत् ।
मिषतः कुम्भयोनेस्तु पुत्राणां तव चानघ ॥ २७ ॥

उन पाँचों वीरोंको मारा गया देख सभी श्रेष्ठ नरेश विचलित हो उठे । निष्पाप नरेश्वर ! तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए राजा युधिष्ठिर द्रोणाचार्य तथा आपके पुत्रोंके देखते-देखते आपकी सेनाका संहार करने लगे ॥ २६-२७ ॥

अम्बष्ठान् मालवाञ्छूरांस्त्रिगर्तान् स शिबीनपि ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय क्रुद्धो युद्धे युधिष्ठिरः ॥ २८ ॥

उस युद्धमें क्रुद्ध होकर युधिष्ठिरने अम्बष्ठों, मालवों, शूरवीर त्रिगर्तों तथा शिबिदेशीय सैनिकोंको भी मृत्युके लोकमें भेज दिया ॥ २८ ॥

अभीषाहाञ्छूरसेनान् बाह्लीकान् सवसातिकान् ।
निकृत्य पृथिवीं राजा चक्रे शोणितकर्दमाम् ॥ २९ ॥

अभीषाह, शूरसेन, बाह्लीक और वसातिदेशीय योद्धाओंको नष्ट करके राजा युधिष्ठिरने इस भूतलपर रक्तकी कीच मचा दी ॥ २९ ॥

यौधेयान् मालवान् राजन् मद्रकाणां गणान् युधि ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय शूरान् बाणैर्युधिष्ठिरः ॥ ३० ॥

राजन् ! युधिष्ठिरने अपने बाणोंसे यौधेय, मालव तथा शूरवीर मद्रकगणोंको मृत्युके लोकमें भेज दिया ॥ ३० ॥

हताहरत गृह्णीत विध्यत व्यवकृन्तत ।
इत्यासीत् तुमुलः शब्दो युधिष्ठिररथं प्रति ॥ ३१ ॥

युधिष्ठिरके रथके आसपास 'मारो, ले आओ, पकड़ो, घायल करो, टुकड़े-टुकड़े कर डालो' इत्यादि भयंकर शब्द गूँजने लगा ॥ ३१ ॥

सैन्यानि द्रावयन्तं तं द्रोणो दृष्ट्वा युधिष्ठिरम् ।
चोदितस्तव पुत्रेण सायकैरभ्यवाकिरत् ॥ ३२ ॥

द्रोणाचार्यने युधिष्ठिरको अपनी सेनाओंको खदेड़ते देख आपके पुत्र दुर्योधनसे प्रेरित होकर उनपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ३२ ॥

द्रोणस्तु परमक्रुद्धो वायव्यास्त्रेण पार्थिवम् ।
विव्याध सोऽपि तद् दिव्यमस्त्रमस्त्रेण जघ्निवान् ॥ ३३ ॥

अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए द्रोणाचार्यने वायव्यास्त्रसे राजा युधिष्ठिरको बींध डाला । युधिष्ठिरने भी उनके दिव्यास्त्रोंको अपने दिव्यास्त्रसे ही नष्ट कर दिया ॥ ३३ ॥

तस्मिन् विनिहते चास्त्रे भारद्वाजो युधिष्ठिरे ।
वारुणं याम्यमाग्नेयं त्वाष्ट्रं सावित्रमेव च ॥ ३४ ॥
चिक्षेप परमक्रुद्धो जिघांसुः पाण्डुनन्दनम् ।

उस अस्त्रके नष्ट हो जानेपर द्रोणाचार्यने युधिष्ठिरपर क्रमशः वारुण, याम्य, आग्नेय, त्वाष्ट्र और सावित्र नामक दिव्यास्त्र चलाया; क्योंकि वे अत्यन्त कुपित होकर पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरको मार डालना चाहते थे ॥ ३४½ ॥

क्षिप्तानि क्षिप्यमाणानि तानि चास्त्राणि धर्मजः ॥ ३५ ॥
जघानास्त्रैर्महाबाहुः कुम्भयोनेरवित्रसन् ।

परंतु महाबाहु धर्मपुत्र युधिष्ठिरने द्रोणाचार्यसे तनिक भी भय न खाकर उनके द्वारा चलाये गये और चलाये जानेवाले सभी अस्त्रोंको अपने दिव्यास्त्रोंसे नष्ट कर दिया ॥

सत्यां चिकीर्षमाणस्तु प्रतिज्ञां कुम्भसम्भवः ॥ ३६ ॥
प्रादुश्चक्रेऽस्त्रमैन्द्रं वै प्राजापत्यं च भारत ।
जिघांसुर्धर्मतनयं तव पुत्रहिते रतः ॥ ३७ ॥

भारत ! द्रोणाचार्यने अपनी प्रतिज्ञाको सच्ची करनेकी इच्छासे आपके पुत्रके हितमें तत्पर हो धर्मपुत्र युधिष्ठिरको मार डालनेकी अभिलाषा लेकर उनके ऊपर ऐन्द्र और प्राजापत्य नामक अस्त्रोंका प्रयोग किया ॥ ३६-३७ ॥

पतिः कुरूणां गजसिंहगामी
विशालवक्षाः पृथुलोहिताक्षः ।
प्रादुश्चकारास्त्रमहीनतेजा
माहेन्द्रमन्यत् स जघान तेन ॥ ३८ ॥

तब गज और सिंहके समान गतिवाले, विशाल वक्षःस्थलसे सुशोभित, बड़े-बड़े लाल नेत्रोंवाले, उत्कृष्ट तेजस्वी कुरुपति युधिष्ठिरने माहेन्द्र अस्त्र प्रकट किया और उसीसे अन्य सभी दिव्यास्त्रोंको नष्ट कर दिया ॥ ३८ ॥

विहन्यमानेष्वस्त्रेषु द्रोणः क्रोधसमन्वितः ।
युधिष्ठिरवधं प्रेप्सुर्ब्राह्ममस्त्रमुदैरयत् ॥ ३९ ॥

उन अस्त्रोंके नष्ट हो जानेपर क्रोधभरे द्रोणाचार्यने युधिष्ठिरका वध करनेकी इच्छासे ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया ॥

ततो नाज्ञासिषं किंचिद् घोरेण तमसाऽऽवृते ।
सर्वभूतानि च परं त्रासं जग्मुर्महीपते ॥ ४० ॥

महीपते ! फिर तो मैं घोर अन्धकारसे आवृत उस युद्धस्थलमें कुछ भी जान न सका और समस्त प्राणी अत्यन्त भयभीत हो उठे ॥ ४० ॥

ब्रह्मास्त्रमुद्यतं दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
ब्रह्मास्त्रेणैव राजेन्द्र तदस्त्रं प्रत्यवारयत् ॥ ४१ ॥

राजेन्द्र ! ब्रह्मास्त्रको उद्यत देख कुन्तीकुमार युधिष्ठिरने ब्रह्मास्त्रसे ही उस अस्त्रका निवारण कर दिया ॥ ४१ ॥

ततः सैनिकमुख्यास्ते प्रशशंसुर्नरर्षभौ ।
द्रोणपार्थौ महेष्वासौ सर्वयुद्धविशारदौ ॥ ४२ ॥

तदनन्तर प्रधान-प्रधान सैनिक सम्पूर्ण युद्धकलामें

प्रवीण, महाधनुर्धर, नरश्रेष्ठ द्रोणाचार्य और युधिष्ठिरकी बड़ी प्रशंसा करने लगे ॥ ४२ ॥

ततः प्रमुच्य कौन्तेयं द्रोणो द्रुपदवाहिनीम् ।
व्यधमत् क्रोधताम्राक्षो वायव्यास्त्रेण भारत ॥ ४३ ॥

भारत ! उस समय द्रोणाचार्यने कुन्तीकुमारका सामना करना छोड़कर क्रोधसे लाल आँखें किये वायव्यास्त्रके द्वारा द्रुपदकी सेनाका संहार आरम्भ किया ॥ ४३ ॥

ते हन्यमाना द्रोणेन पञ्चालाः प्राद्रवन् भयात् ।
पश्यतो भीमसेनस्य पार्थस्य च महात्मनः ॥ ४४ ॥

द्रोणाचार्यकी मार खाकर पाञ्चाल सैनिक भीमसेन और महात्मा अर्जुनके देखते-देखते भयके मारे भागने लगे ॥ ४४ ॥

ततः किरीटी भीमश्च सहसा संन्यवर्तताम् ।
महद्भ्यां रथवंशाभ्यां परिगृह्य बलं तदा ॥ ४५ ॥

यह देख किरीटधारी अर्जुन और भीमसेन विशाल रथ-सेनाओंके द्वारा अपनी सेनाकी रोक-थाम करते हुए सहसा उस ओर लौट पड़े ॥ ४५ ॥

बीभत्सुर्दक्षिणं पार्श्वमुत्तरं च वृकोदरः ।
भारद्वाजं शरौघाभ्यां महद्भ्यामभ्यवर्षताम् ॥ ४६ ॥

अर्जुनने द्रोणाचार्यके दाहिने पार्श्वमें और भीमसेनने बायें पार्श्वमें महान् बाण समूहोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ४६ ॥

केकयाः सृञ्जयाश्चैव पञ्चालाश्च महौजसः ।
अन्वगच्छन् महाराज मत्स्याश्च सह सात्वतैः ॥ ४७ ॥

महाराज ! उस समय केकय, सृंजय, महातेजस्वी पाञ्चाल, मत्स्य तथा यादव सैनिकोंने भी उन दोनोंका अनुसरण किया ॥

ततः सा भारती सेना वध्यमाना किरीटिना ।
तमसा निद्रया चैव पुनरेव व्यदीर्यत ॥ ४८ ॥

उस समय किरीटधारी अर्जुनकी मार खाती हुई कौरवी-सेना अंधकार और निद्रासे पीड़ित हो पुनः तितर-बितर हो गयी ॥ ४८ ॥

द्रोणेन वार्यमाणास्ते स्वयं तव सुतेन च ।
नाशक्यन्त महाराज योधा वारयितुं तदा ॥ ४९ ॥

महाराज ! द्रोणाचार्य और स्वयं आपके पुत्र दुर्योधनके मना करनेपर भी उस समय आपके योद्धा रोके न जा सके ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे द्रोणयुधिष्ठिरयुद्धे सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसंगमें द्रोणाचार्य और युधिष्ठिरका युद्धविषयक एक सौ सत्तावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५७ ॥

अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

दुर्योधन और कर्णकी बातचीत, कृपाचार्यद्वारा कर्णको फटकारना तथा कर्णद्वारा कृपाचार्यका अपमान

संजय उवाच

उदीर्यमाणं तद् दृष्ट्वा पाण्डवानां महद् बलम् ।
अविषह्यं च मन्वानः कर्णं दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! पाण्डवोंकी उस विशाल सेनाका जोर बढ़ते देख उसे असह्य मानकर दुर्योधनने कर्णसे कहा—॥ १ ॥

अयं स कालः सम्प्राप्तो मित्राणां मित्रवत्सल ।
त्रायस्व समरे कर्ण सर्वान् योधान् महारथान् ॥ २ ॥
पञ्चालैर्मत्स्यकैकेयैः पाण्डवैश्च महारथैः ।
वृतान् समन्तात् संक्रुद्धैर्निःश्वसद्भिरिवोरगैः ॥ ३ ॥

'मित्रवत्सल कर्ण ! यही मित्रोंके कर्तव्यपालनका उपयुक्त अवसर आया है। क्रोधमें भरे हुए पाञ्चाल, मत्स्य, केकय तथा पाण्डव महारथी फुफकारते हुए सर्पोंके समान भयंकर हो उठे हैं। उनके द्वारा चारों ओरसे घिरे हुए मेरे समस्त महारथी योद्धाओंकी आज तुम समराङ्गणमें रक्षा करो ॥

एते नदन्ति संहृष्टाः पाण्डवा जितकाशिनः ।
शक्रोपमाश्च बहवः पञ्चालानां रथव्रजाः ॥ ४ ॥

'देखो, ये विजयसे सुशोभित होनेवाले पाण्डव तथा इन्द्रके समान पराक्रमी बहुसंख्यक पाञ्चाल महारथी कैसे हर्षोत्फुल्ल होकर सिंहनाद कर रहे हैं ?' ॥ ४ ॥

कर्ण उवाच

परित्रातुमिह प्राप्तो यदि पार्थं पुरंदरः ।
तमप्याशु पराजित्य ततो हन्तास्मि पाण्डवम् ॥ ५ ॥

कर्णने कहा—राजन् ! यदि साक्षात् इन्द्र यहाँ कुन्तीकुमार अर्जुनकी रक्षा करनेके लिये आ गये हों तो उन्हें भी शीघ्र ही पराजित करके मैं पाण्डुपुत्र अर्जुनको अवश्य मार डालूँगा ॥ ५ ॥

सत्यं ते प्रतिजानामि समाश्वसिहि भारत ।
हन्तास्मि पाण्डुतनयान् पञ्चालांश्च समागतान् ॥ ६ ॥

भरतनन्दन ! तुम धैर्य धारण करो। मैं तुमसे सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि युद्धस्थलमें आये हुए पाण्डवों तथा पाञ्चालोंको निश्चय ही मारूँगा ॥ ६ ॥

जयं ते प्रतिदास्यामि वासवस्येव पावकिः ।
प्रियं तव मया कार्यमिति जीवामि पार्थिव ॥ ७ ॥

जैसे अग्निकुमार कार्तिकेयने तारकासुरका विनाश करके इन्द्रको विजय दिलायी थी, उसी प्रकार मैं आज तुम्हें

विजय प्रदान करूँगा । भूपाल ! मुझे तुम्हारा प्रिय करना है, इसीलिये जीवन धारण करता हूँ ॥ ७ ॥

सर्वेषामेव पार्थानां फाल्गुनो बलवत्तरः ।
तस्यामोघां विमोक्ष्यामि शक्तिं शक्रविनिर्मिताम्॥ ८ ॥

कुन्तीके सभी पुत्रोंमें अर्जुन ही अधिक शक्तिशाली हैं, अतः मैं इन्द्रकी दी हुई अमोघ शक्तिको अर्जुनपर ही छोड़ूँगा॥

तस्मिन् हते महेष्वासे भ्रातरस्तस्य मानद ।
तव वश्या भविष्यन्ति वनं यास्यन्ति वा पुनः ॥ ९ ॥

मानद ! महाधनुर्धर अर्जुनके मारे जानेपर उनके सभी भाई तुम्हारे वशमें हो जायँगे अथवा पुनः वनमें चले जायँगे॥

मयि जीवति कौरव्य विषादं मा कृथाः क्वचित् ।
अहं जेष्यामि समरे सहितान् सर्वपाण्डवान् ॥ १० ॥

कुरुनन्दन ! तुम मेरे जीते-जी कभी विषाद न करो । मैं समरभूमिमें संगठित होकर आये हुए समस्त पाण्डवोंको जीत लूँगा ॥ १० ॥

पञ्चालान् केकयांश्चैव वृष्णींश्चापि समागतान् ।
बाणौघैः शकलीकृत्य तव दास्यामि मेदिनीम् ॥ ११ ॥

मैं अपने बाणसमूहोंद्वारा रणभूमिमें पधारे हुए पाञ्चालों, केकयों और वृष्णिवंशियोंके भी टुकड़े-टुकड़े करके यह सारी पृथ्वी तुम्हें दे दूँगा ॥ ११ ॥

संजय उवाच

एवं ब्रुवाणं कर्णं तु कृपः शारद्वतोऽब्रवीत् ।
स्मयन्निव महाबाहुः सूतपुत्रमिदं वचः ॥ १२ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस तरहकी बातें करते हुए सूतपुत्र कर्णसे शरद्वान्‌के पुत्र महाबाहु कृपाचार्यने मुसकराते हुए-से यह बात कही—॥ १२ ॥

शोभनं शोभनं कर्ण सनाथः कुरुपुङ्गवः ।
त्वया नाथेन राधेय वचसा यदि सिध्यति ॥ १३ ॥

'कर्ण ! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा ! राधापुत्र ! यदि बात बनानेसे ही कार्य सिद्ध हो जाय, तब तो तुम-जैसे सहायकको पाकर कुरुराज दुर्योधन सनाथ हो गये ॥ १३ ॥

बहुशः कत्थसे कर्ण कौरव्यस्य समीपतः ।
न तु ते विक्रमः कश्चिद् दृश्यते फलमेव वा ॥ १४ ॥

'कर्ण ! तुम कुरुनन्दन सुयोधनके समीप तो बहुत बढ़-कर बातें किया करते हो; किंतु न तो कभी कोई तुम्हारा पराक्रम देखा जाता है और न उसका कोई फल ही सामने आता है ॥

समागमः पाण्डुसुतैर्दृष्टस्ते बहुशो युधि ।
सर्वत्र निर्जितश्चासि पाण्डवैः सूतनन्दन ॥ १५ ॥

'सूतनन्दन ! पाण्डुके पुत्रोंसे युद्धस्थलमें तुम्हारी अनेकों बार मुठभेड़ हुई है; परंतु सर्वत्र पाण्डवोंसे तुम्हीं परास्त हुए हो ॥ १५ ॥

ह्रियमाणे तदा कर्ण गन्धर्वैर्धृतराष्ट्रजे ।
तदायुध्यन्त सैन्यानि त्वमेकोऽग्रेऽपलायिथाः॥ १६ ॥

'कर्ण ! याद है कि नहीं, जब गन्धर्व दुर्योधनको पकड़-कर लिये जा रहे थे, उस समय सारी सेना तो युद्ध कर रही थी और अकेले तुम ही सबसे पहले पलायन कर गये थे ॥

विराटनगरे चापि समेताः सर्वकौरवाः ।
पार्थेन निर्जिता युद्धे त्वं च कर्ण सहानुजः ॥ १७ ॥

'कर्ण ! विराट नगरमें भी सम्पूर्ण कौरव एकत्र हुए थे; किंतु अर्जुनने अकेले ही वहाँ सबको हरा दिया था । कर्ण ! तुम भी अपने भाइयोंके साथ परास्त हुए थे ॥ १७ ॥

एकस्याप्यसमर्थस्त्वं फाल्गुनस्य रणाजिरे ।
कथमुत्सहसे जेतुं सकृष्णान् सर्वपाण्डवान् ॥ १८ ॥

'समराङ्गणमें अकेले अर्जुनका सामना करनेकी भी तुममें शक्ति नहीं है; फिर श्रीकृष्णसहित सम्पूर्ण पाण्डवोंको जीत लेनेका उत्साह कैसे दिखाते हो ? ॥ १८ ॥

अब्रुवन् कर्ण युध्यस्व कत्थसे बहु सूतज ।
अनुक्त्वा विक्रमेद् यस्तु तद् वै सत्पुरुषव्रतम्॥ १९ ॥

'सूतपुत्र कर्ण ! चुपचाप युद्ध करो । तुम बातें बहुत बनाते हो । जो बिना कुछ कहे ही पराक्रम दिखाये, वही वीर है और वैसा करना ही सत्पुरुषोंका व्रत है ॥ १९ ॥

गर्जित्वा सूतपुत्र त्वं शारदाभ्रमिवाफलम् ।
निष्फलो दृश्यसे कर्ण तच्च राजा न बुध्यते ॥ २० ॥

'सूतपुत्र कर्ण ! तुम शरद् ऋतुके निष्फल बादलोंके समान गर्जना करके भी निष्फल ही दिखायी देते हो; किंतु राजा दुर्योधन इस बातको नहीं समझ रहे हैं ॥ २० ॥

तावद् गर्जस्व राधेय यावत् पार्थं न पश्यसि ।
आरात् पार्थं हि ते दृष्ट्वा दुर्लभं गर्जितं पुनः ॥ २१ ॥

'राधानन्दन ! जबतक तुम अर्जुनको नहीं देखते हो, तभीतक गर्जना कर लो । कुन्तीकुमार अर्जुनको समीप देख लेनेपर फिर यह गर्जना तुम्हारे लिये दुर्लभ हो जायगी ॥२१॥

त्वमनासाद्य तान् बाणान् फाल्गुनस्य विगर्जसि ।
पार्थसायकविद्धस्य दुर्लभं गर्जितं तव ॥ २२ ॥

'जबतक अर्जुनके वे बाण तुम्हारे ऊपर नहीं पड़ रहे हैं, तभीतक तुम जोर-जोरसे गरज रहे हो । अर्जुनके बाणोंसे घायल होनेपर तुम्हारे लिये यह गर्जन-तर्जन दुर्लभ हो जायगा॥

बाहुभिः क्षत्रियाः शूरा वाग्भिः शूरा द्विजातयः ।
धनुषा फाल्गुनः शूरः कर्णः शूरो मनोरथैः ॥ २३ ॥
तोषितो येन रुद्रोऽपि कः पार्थं प्रतिघातयेत् ।

'क्षत्रिय अपनी भुजाओंसे शौर्यका परिचय देते हैं । ब्राह्मण वाणीद्वारा प्रवचन करनेमें वीर होते हैं । अर्जुन धनुष चलाने-में शूर हैं; किंतु कर्ण केवल मनसूबे बाँधनेमें वीर है । जिन्होंने अपने

पराक्रमसे भगवान् शंकरको भी संतुष्ट किया है, उन अर्जुनको कौन मार सकता है ?' ॥ २३½ ॥

एवं संरुषितस्तेन तदा शारद्वतेन ह ॥ २४ ॥
कर्णः प्रहरतां श्रेष्ठः कृपं वाक्यमथाब्रवीत् ।

उन कृपाचार्यके ऐसा कहनेपर योद्धाओंमें श्रेष्ठ कर्णने उस समय रुष्ट होकर कृपाचार्यसे इस प्रकार कहा—॥२४½॥

शूरा गर्जन्ति सततं प्रावृषीव बलाहकाः ॥ २५ ॥
फलं चाशु प्रयच्छन्ति बीजमुप्तमृताविव ।

'शूरवीर वर्षाकालके मेघोंकी तरह सदा गरजते हैं और ठीक ऋतुमें बोये हुए बीजके समान शीघ्र ही फल भी देते हैं॥

दोषमत्र न पश्यामि शूराणां रणमूर्धनि ॥ २६ ॥
तत्तद् विकत्थमानानां भारं चोद्वहतां मृधे ।

'युद्धस्थलमें महान् भार उठानेवाले शूरवीर यदि युद्धके मुहानेपर अपनी प्रशंसाकी भी बातें कहते हैं तो इसमें मुझे उनका कोई दोष नहीं दिखायी देता ॥ २६½ ॥

यं भारं पुरुषो वोढुं मनसा हि व्यवस्यति ॥ २७ ॥
दैवमस्य ध्रुवं तत्र साहाय्यायोपपद्यते ।

'पुरुष अपने मनसे जिस भारको ढोनेका निश्चय करता है, उसमें दैव अवश्य ही उसकी सहायता करता है ॥२७½॥

व्यवसायद्वितीयोऽहं मनसा भारमुद्वहन् ॥ २८ ॥
हत्वा पाण्डुसुतानाजौ सकृष्णान् सहसात्वतान्।
गर्जामि यद्यहं विप्र तव किं तत्र नश्यति ॥ २९ ॥

'मैं मनसे जिस कार्यभारका वहन कर रहा हूँ, उसकी सिद्धिमें दृढ़ निश्चय ही मेरा सहायक है । विप्रवर ! मैं कृष्ण और सात्यकिसहित समस्त पाण्डवोंको युद्धमें मारनेका निश्चय करके यदि गरज रहा हूँ तो उसमें आपका क्या नष्ट हुआ जा रहा है ?॥ २८-२९ ॥

वृथा शूरा न गर्जन्ति शारदा इव तोयदाः ।
सामर्थ्यमात्मनो ज्ञात्वा ततो गर्जन्ति पण्डिताः ॥ ३० ॥

'शरद्-ऋतुके बादलोंके समान शूरवीर व्यर्थ नहीं गरजते हैं। विद्वान् पुरुष पहले अपनी सामर्थ्यको समझ लेते हैं, उसके बाद गर्जना करते हैं ॥ ३० ॥

सोऽहमद्य रणे यत्तौ सहितौ कृष्णपाण्डवौ ।
उत्सहे मनसा जेतुं ततो गर्जामि गौतम ॥ ३१ ॥

'गौतम ! आज मैं रणभूमिमें विजयके लिये साथ-साथ प्रयत्न करनेवाले श्रीकृष्ण और अर्जुनको जीत लेनेके लिये मन-ही-मन उत्साह रखता हूँ । इसीलिये गर्जना करता हूँ ॥

पश्य त्वं गर्जितस्यास्य फलं मे विप्र सानुगान् ।
हत्वा पाण्डुसुतानाजौ सहकृष्णान् ससात्वतान्॥३२॥
दुर्योधनाय दास्यामि पृथिवीं हतकण्टकाम् ।

'ब्रह्मन् ! मेरी इस गर्जनाका फल देख लेना । मैं युद्धमें श्रीकृष्ण, सात्यकि तथा अनुगामियोंसहित पाण्डवोंको मारकर इस भूमण्डलका निष्कण्टक राज्य दुर्योधनको दे दूँगा' ॥



कृप उवाच

मनोरथप्रलापा मे न ग्राह्यास्तव सूतज ॥ ३३ ॥
सदा क्षिपसि वै कृष्णौ धर्मराजं च पाण्डवम् ।
ध्रुवस्तत्र जयः कर्ण यत्र युद्धविशारदौ ॥ ३४ ॥

कृपाचार्य बोले—सूतपुत्र ! तुम्हारे ये मनसूबे बाँधनेके निरर्थक प्रलाप मेरे लिये विश्वासके योग्य नहीं हैं । कर्ण ! तुम सदा ही श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरपर आक्षेप किया करते हो; परंतु विजय उसी पक्षकी होगी, जहाँ युद्धविशारद श्रीकृष्ण और अर्जुन विद्यमान हैं ॥ ३३-३४ ॥

देवगन्धर्वयक्षाणां मनुष्योरगरक्षसाम् ।
दंशितानामपि रणे अजेयौ कृष्णपाण्डवौ ॥ ३५ ॥

यदि देवता, गन्धर्व, यक्ष, मनुष्य, सर्प और राक्षस भी कवच बाँधकर युद्धके लिये आ जायँ तो रणभूमिमें श्रीकृष्ण और अर्जुनको वे भी जीत नहीं सकते ॥ ३५ ॥

ब्रह्मण्यः सत्यवाग् दान्तो गुरुदैवतपूजकः ।
नित्यं धर्मरतश्चैव कृतास्त्रश्च विशेषतः ॥ ३६ ॥
धृतिमांश्च कृतज्ञश्च धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।

धर्मपुत्र युधिष्ठिर ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, गुरु और देवताओंका सम्मान करनेवाले, सदा धर्मपरायण, अस्त्रविद्यामें विशेष कुशल, धैर्यवान् और कृतज्ञ हैं ॥ ३६½ ॥

भ्रातरश्चास्य बलिनः सर्वास्त्रेषु कृतश्रमाः ॥ ३७ ॥
गुरुवृत्तिरताः प्राज्ञा धर्मनित्या यशस्विनः ।

इनके बलवान् भाई भी सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंकी कलामें परिश्रम किये हुए हैं। वे गुरुसेवापरायण, विद्वान्, धर्मतत्पर और यशस्वी हैं ॥ ३७½ ॥

सम्बन्धिनश्चेन्द्रवीर्याः स्वनुरक्ताः प्रहारिणः ॥ ३८ ॥
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च दौर्मुखिर्जनमेजयः।
चन्द्रसेनो रुद्रसेनः कीर्तिधर्मा ध्रुवो धरः ॥ ३९ ॥
वसुचन्द्रो दामचन्द्रः सिंहचन्द्रः सुतेजनः।
द्रुपदस्य तथा पुत्रा द्रुपदश्च महास्त्रवित् ॥ ४० ॥

उनके सम्बन्धी भी इन्द्रके समान पराक्रमी, उनमें अनुराग रखनेवाले और प्रहार करनेमें कुशल हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, दुर्मुख-पुत्र जनमेजय, चन्द्रसेन, रुद्रसेन, कीर्तिधर्मा, ध्रुव, धर, वसुचन्द्र, दामचन्द्र, सिंहचन्द्र, सुतेजन, द्रुपदके पुत्रगण तथा महान् अस्त्रवेत्ता द्रुपद ॥ ३८–४० ॥

येषामर्थाय संयत्तो मत्स्यराजः सहानुजः।
शतानीकः सूर्यदत्तः श्रुतानीकः श्रुतध्वजः ॥ ४१ ॥
बलानीको जयानीको जयाश्वो रथवाहनः।
चन्द्रोदयः समरथो विराटभ्रातरः शुभाः ॥ ४२॥
यमौ च द्रौपदेयाश्च राक्षसश्च घटोत्कचः।
येषामर्थाय युध्यन्ते न तेषां विद्यते क्षयः ॥ ४३ ॥

जिनके लिये शतानीक, सूर्यदत्त, श्रुतानीक, श्रुतध्वज, बलानीक, जयानीक, जयाश्व, रथवाहन, चन्द्रोदय तथा समरथ—ये विराटके श्रेष्ठ भाई और इन भाइयोंसहित मत्स्यराज विराट युद्ध करनेको तैयार हैं, नकुल, सहदेव, द्रौपदीके पुत्र तथा राक्षस घटोत्कच—ये वीर जिनके लिये युद्ध कर रहे हैं, उन पाण्डवोंकी कभी कोई क्षति नहीं हो सकती है ॥ ४१–४३ ॥

एते चान्ये च बहवो गुणाः पाण्डुसुतस्य वै।
कामं खलु जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ४४ ॥
सयक्षराक्षसगणं सभूतभुजगद्विपम्।
निःशेषमस्त्रवीर्येण कुर्वाते भीमफाल्गुनौ ॥ ४५ ॥

पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके ये तथा और भी बहुत-से गुण हैं। भीमसेन और अर्जुन यदि चाहें तो अपने अस्त्रबलसे देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष, राक्षस, भूत, नाग और हाथियोंसहित इस सम्पूर्ण जगत्‌का सर्वथा विनाश कर सकते हैं ॥४४-४५॥

युधिष्ठिरश्च पृथिवीं निर्दहेद् घोरचक्षुषा।
अप्रमेयबलः शौरिर्येषामर्थे च दंशितः ॥ ४६ ॥
कथं तान् संयुगे कर्ण जेतुमुत्सहसे परान्।

युधिष्ठिर भी यदि रोषभरी दृष्टिसे देखें तो इस भूमण्डल-को भस्म कर सकते हैं। कर्ण! जिनके लिये अनन्त बलशाली भगवान् श्रीकृष्ण भी कवच धारण करके लड़नेको तैयार हैं, उन शत्रुओंको युद्धमें जीतनेका साहस तुम कैसे कर रहे हो?॥

महानपनयस्त्वेष नित्यं हि तव सूतज ॥ ४७ ॥
यस्त्वमुत्सहसे योद्धुं समरे शौरिणा सह।

सूतपुत्र! तुम जो सदा समरभूमिमें भगवान् श्रीकृष्णके साथ युद्ध करनेका उत्साह दिखाते हो, यह तुम्हारा महान् अन्याय (अक्षम्य अपराध) है ॥ ४७½ ॥

संजय उवाच

एवमुक्तस्तु राधेयः प्रहसन् भरतर्षभ ॥ ४८ ॥
अब्रवीच्च तदा कर्णो गुरुं शारद्वतं कृपम्।

संजय कहते हैं—भरतश्रेष्ठ! उनके ऐसा कहनेपर राधापुत्र कर्ण ठठाकर हँस पड़ा और शरद्वान्‌के पुत्र गुरु कृपाचार्यसे उस समय यों बोला—॥ ४८½ ॥

सत्यमुक्तं त्वया ब्रह्मन् पाण्डवान् प्रति यद् वचः॥४९॥
एते चान्ये च बहवो गुणाः पाण्डुसुतेषु वै।

'बाबाजी! पाण्डवोंके विषयमें तुमने जो बात कही है वह सब सत्य है। यही नहीं, पाण्डवोंमें और भी बहुत-से गुण हैं॥

अजय्याश्च रणे पार्था देवैरपि सवासवैः ॥ ५० ॥
सदैत्ययक्षगन्धर्वैः पिशाचोरगराक्षसैः।

'यह भी ठीक है कि कुन्तीके पुत्रोंको रणभूमिमें इन्द्र आदि देवता, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, नाग और राक्षस भी जीत नहीं सकते ॥ ५०½ ॥

तथापि पार्थाञ्जेष्यामि शक्त्या वासवदत्तया ॥ ५१ ॥
मम ह्यमोघा दत्तेयं शक्तिः शक्रेण वै द्विज।
एतया निहनिष्यामि सव्यसाचिनमाहवे ॥ ५२ ॥

'तथापि मैं इन्द्रकी दी हुई शक्तिसे कुन्तीके पुत्रोंको जीत लूँगा। ब्रह्मन्! मुझे इन्द्रने यह अमोघ शक्ति दे रक्खी है; इसके द्वारा मैं सव्यसाची अर्जुनको युद्धमें अवश्य मार डालूँगा॥

हते तु पाण्डवे कृष्णे भ्रातरश्चास्य सोदराः।
अनर्जुना न शक्ष्यन्ति महीं भोक्तुं कथञ्चन ॥ ५३ ॥

'पाण्डुपुत्र अर्जुनके मारे जानेपर उनके बिना उनके सहोदर भाई किसी तरह इस पृथ्वीका राज्य नहीं भोग सकेंगे॥

तेषु नष्टेषु सर्वेषु पृथिवीयं ससागरा।
अयत्नात् कौरवेन्द्रस्य वशे स्थास्यति गौतम ॥ ५४ ॥

'गौतम! उन सबके नष्ट हो जानेपर बिना किसी प्रयत्नके ही यह समुद्रसहित सारी पृथ्वी कौरवराज दुर्योधनके वशमें हो जायगी ॥ ५४ ॥

सुनीतैरिह सर्वार्थाः सिध्यन्ते नात्र संशयः।
एतमर्थमहं ज्ञात्वा ततो गर्जामि गौतम ॥ ५५ ॥

'गौतम! इस संसारमें सुनीतिपूर्ण प्रयत्नोंसे सारे कार्य सिद्ध होते हैं, इसमें संशय नहीं है। इस बातको समझकर ही मैं गर्जना करता हूँ ॥ ५५ ॥

त्वं तु विप्रश्च वृद्धश्च अशक्तश्चापि संयुगे।
कृतस्नेहश्च पार्थेषु मोहान्मामवमन्यसे ॥ ५६ ॥

'तुम तो ब्राह्मण और उसमें भी बूढ़े हो। तुममें युद्ध करनेकी शक्ति है ही नहीं। इसके सिवा, तुम कुन्तीके पुत्रोंपर स्नेह रखते हो; इसलिये मोहवश मेरा अपमान कर रहे हो॥

यद्येवं वक्ष्यसे भूयो ममाप्रियमिह द्विज।
ततस्ते खड्गमुद्यम्य जिह्वां छेत्स्यामि दुर्मते॥ ५७॥

'दुर्बुद्धि ब्राह्मण! यदि यहाँ पुनः इस प्रकार मुझे अप्रिय लगनेवाली बात बोलोगे तो मैं अपनी तलवार उठाकर तुम्हारी जीभ काट लूँगा॥ ५७॥

यच्चापि पाण्डवान् विप्र स्तोतुमिच्छसि संयुगे।
भीषयन् सर्वसैन्यानि कौरवेयाणि दुर्मते॥ ५८॥
अत्रापि शृणु मे वाक्यं यथावद् ब्रुवतो द्विज।

'ब्रह्मन्! दुर्मते! तुम जो युद्धस्थलमें समस्त कौरव-सेनाओंको भयभीत करनेके लिये पाण्डवोंके गुण गाना चाहते हो, उसके विषयमें भी मैं जो यथार्थ बात कह रहा हूँ, उसे सुन लो॥

दुर्योधनश्च द्रोणश्च शकुनिर्दुर्मुखो जयः॥ ५९॥
दुःशासनो वृषसेनो मद्रराजस्त्वमेव च।
सोमदत्तश्च भूरिश्च तथा द्रौणिर्विविंशतिः॥ ६०॥
तिष्ठेयुर्दंशिता यत्र सर्वे युद्धविशारदाः।
जयेदेतान् नरः को नु शक्रतुल्यबलोऽप्यरिः॥ ६१॥

'दुर्योधन, द्रोण, शकुनि, दुर्मुख, जय, दुःशासन, वृषसेन, मद्रराज शल्य, तुम स्वयं, सोमदत्त, भूरि, अश्वत्थामा और विविंशति—ये युद्धकुशल सम्पूर्ण वीर जहाँ कवच बाँधकर खड़े हो जायँगे, वहाँ इन्हें कौन मनुष्य जीत सकता है? वह इन्द्रके तुल्य बलवान् शत्रु ही क्यों न हो (इनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता)॥ ५९-६१॥

शूराश्च हि कृतास्त्राश्च बलिनः स्वर्गलिप्सवः।
धर्मज्ञा युद्धकुशला हन्युर्युद्धे सुरानपि॥ ६२॥

'जो शूरवीर, अस्त्रोंके ज्ञाता, बलवान्, स्वर्ग-प्राप्तिकी अभिलाषा रखनेवाले, धर्मज्ञ और युद्धकुशल हैं, वे देवताओं-को भी युद्धमें मार सकते हैं॥ ६२॥

एते स्थास्यन्ति संग्रामे पाण्डवानां वधार्थिनः।
जयमाकाङ्क्षमाणा हि कौरवेयस्य दंशिताः॥ ६३॥

'ये वीरगण कुरुराज दुर्योधनकी जय चाहते हुए पाण्डवों-के वधकी इच्छासे संग्राममें कवच बाँधकर डट जायँगे॥६३॥

दैवायत्तमहं मन्ये जयं सुबलिनामपि।
यत्र भीष्मो महाबाहुः शेते शरशताचितः॥ ६४॥

'मैं तो बड़े-से-बड़े बलवानोंकी भी विजय दैवके ही अधीन मानता हूँ। दैवाधीन होनेके ही कारण महाबाहु भीष्म आज सैकड़ों बाणोंसे विद्ध होकर रणभूमिमें शयन करते हैं॥ ६४॥

विकर्णश्चित्रसेनश्च बाह्लीकोऽथ जयद्रथः।
भूरिश्रवा जयश्चैव जलसंधः सुदक्षिणः॥ ६५॥
शलश्च रथिनां श्रेष्ठो भगदत्तश्च वीर्यवान्।
एते चान्ये च राजानो देवैरपि सुदुर्जयाः॥ ६६॥

'विकर्ण, चित्रसेन, बाह्लीक, जयद्रथ, भूरिश्रवा, जय, जलसंध, सुदक्षिण, रथियोंमें श्रेष्ठ शल तथा पराक्रमी भगदत्त-ये और दूसरे भी बहुत-से राजा देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्जय थे॥ ६५-६६॥

निहताः समरे शूराः पाण्डवैर्बलवत्तराः।
किमन्यद् दैवसंयोगान्मन्यसे पुरुषाधम॥ ६७॥

'परंतु उन अत्यन्त प्रबल तथा शूरवीर नरेशोंको भी पाण्डवोंने युद्धमें मार डाला। पुरुषाधम! तुम इसमें दैव-संयोगके सिवा दूसरा कौन-सा कारण मानते हो?॥ ६७॥

यांश्च तान् स्तौषि सततं दुर्योधनरिपून् द्विज।
तेषामपि हताः शूराः शतशोऽथ सहस्रशः॥ ६८॥

'ब्रह्मन्! तुम दुर्योधनके जिन शत्रुओंकी सदा स्तुति करते रहते हो, उनके भी तो सैकड़ों और सहस्रों शूरवीर मारे गये हैं॥ ६८॥

क्षीयन्ते सर्वसैन्यानि कुरूणां पाण्डवैः सह।
प्रभावं नात्र पश्यामि पाण्डवानां कथंचन॥ ६९॥

'कौरव तथा पाण्डव दोनों दलोंकी सारी सेनाएँ प्रतिदिन नष्ट हो रही हैं। मुझे इसमें किसी प्रकार भी पाण्डवोंका कोई विशेष प्रभाव नहीं दिखायी देता है॥ ६९॥

यस्तान् बलवतो नित्यं मन्यसे त्वं द्विजाधम।
यतिष्येऽहं यथाशक्ति योद्धुं तैः सह संयुगे।
दुर्योधनहितार्थाय 'जयो दैवे प्रतिष्ठितः'॥ ७०॥

'द्विजाधम! तुम जिन्हें सदा बलवान् मानते रहते हो, उन्हींके साथ मैं संग्रामभूमिमें दुर्योधनके हितके लिये यथा-शक्ति युद्ध करनेका प्रयत्न करूँगा। विजय तो दैवके अधीन है'॥ ७०॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे कृपकर्णवाक्येऽष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १५८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसंगमें कृपाचार्य और कर्णका विवादविषयक एक सौ अट्ठावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५८॥

एकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

अश्वत्थामाका कर्णको मारनेके लिये उद्यत होना, दुर्योधनका उसे मनाना, पाण्डवों और पाञ्चालोंका कर्णपर आक्रमण, कर्णका पराक्रम, अर्जुनके द्वारा कर्णकी पराजय तथा दुर्योधनका अश्वत्थामासे पाञ्चालोंके वधके लिये अनुरोध

संजय उवाच

तथा परुषितं दृष्ट्वा सूतपुत्रेण मातुलम्।
खड्गमुद्यम्य वेगेन द्रौणिरभ्यपतद् द्रुतम्॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! इस प्रकार अपने मामाके प्रति सूतपुत्र कर्णको कटु वचन सुनाते देख अश्वत्थामा बड़े वेगसे तलवार उठाकर तुरंत कर्णपर टूट पड़ा॥ १॥

ततः परमसंक्रुद्धः सिंहो मत्तमिव द्विपम्।
प्रेक्षतः कुरुराजस्य द्रौणिः कर्णं समभ्ययात्॥ २॥

जैसे सिंह मतवाले हाथीपर झपटता है, उसी प्रकार अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए द्रोणकुमार अश्वत्थामाने कुरुराज दुर्योधनके देखते-देखते कर्णपर आक्रमण किया॥ २॥

अश्वत्थामोवाच

यदर्जुनगुणांस्तथ्यान् कीर्तयानं नराधम।
शूरं द्वेषात् सुदुर्बुद्धे त्वं भर्त्सयसि मातुलम्॥ ३॥
विकत्थमानः शौर्येण सर्वलोकधनुर्धरम्।
दर्पोत्सेधगृहीतोऽद्य न कञ्चिद् गणयन् मृधे॥ ४॥

अश्वत्थामाने कहा—दुर्बुद्धि! नराधम! मेरे मामा सम्पूर्ण जगत्के श्रेष्ठ धनुर्धर एवं शूरवीर हैं। ये अर्जुनके सच्चे गुणोंका बखान कर रहे थे, तो भी तू द्वेषवश अपनी शूरताकी डींग हाँकता हुआ और घमण्डमें आकर आज युद्धमें किसीको कुछ न समझता हुआ जो इन्हें फटकार रहा है, उसका क्या कारण है?॥ ३-४॥

क्व ते वीर्यं क्व चास्त्राणि यत्त्वां निर्जित्य संयुगे।
गाण्डीवधन्वा हतवान् प्रेक्षतस्ते जयद्रथम्॥ ५॥

जब युद्धस्थलमें गाण्डीवधारी अर्जुनने तुझे परास्त करके तेरे देखते-देखते जयद्रथको मार डाला था, उस समय तेरा पराक्रम कहाँ था? तेरे वे अस्त्र-शस्त्र कहाँ चले गये थे?॥ ५॥

येन साक्षान्महादेवो योधितः समरे पुरा।
तमिच्छसि वृथा जेतुं सूताधम मनोरथैः॥ ६॥

सूताधम! जिन्होंने समराङ्गणमें पहले साक्षात् महादेवजीके साथ युद्ध किया है; उन्हें केवल मनोरथोंद्वारा जीतनेकी तू व्यर्थ इच्छा प्रकट कर रहा है॥ ६॥

यं हि कृष्णेन सहितं सर्वशस्त्रभृतां वरम्।
जेतुं न शक्ताः सहिताः सेन्द्रा अपि सुरासुराः॥ ७॥
लोकैकवीरमजितमर्जुनं सूत संयुगे।
किं पुनस्त्वं सुदुर्बुद्धे सहैभिर्वसुधाधिपैः॥ ८॥

दुर्बुद्धि! सूत! जो सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ हैं तथा श्रीकृष्णके साथ रहनेपर जिन्हें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता और असुर भी जीतनेमें समर्थ नहीं हैं, उन्हीं लोकके एकमात्र अपराजित वीर अर्जुनको जीतनेके लिये इन राजाओंसहित तेरी क्या शक्ति है?॥ ७-८॥

कर्ण पश्य सुदुर्बुद्धे तिष्ठेदानीं नराधम।
एष तेऽद्य शिरः कायादुद्धरामि सुदुर्मते॥ ९॥

दुर्बुद्धि नराधम! कर्ण! तू देख और खड़ा रह। दुर्मते! मैं अभी तेरा सिर धड़से उतार लेता हूँ॥ ९॥

संजय उवाच

तमुद्यतं तु वेगेन राजा दुर्योधनः स्वयम्।
न्यवारयन्महातेजाः कृपश्च द्विपदां वरः॥ १०॥

संजय कहते हैं—राजन्! इस प्रकार वेगपूर्वक उठे हुए अश्वत्थामाको महातेजस्वी स्वयं राजा दुर्योधन तथा मनुष्योंमें श्रेष्ठ कृपाचार्यने रोका॥ १०॥

कर्ण उवाच

शूरोऽयं समरश्लाघी दुर्मतिश्च द्विजाधमः।
आसादयतु मद्वीर्यं मुञ्चेमं कुरुसत्तम॥ ११॥

कर्ण बोला—कुरुश्रेष्ठ! यह दुर्बुद्धि एवं नीच ब्राह्मण बड़ा शूरवीर बनता है और युद्धकी श्लाघा रखता है। तुम इसे छोड़ दो। आज यह मेरे पराक्रमका सामना करे॥ ११॥

अश्वत्थामोवाच

तवैतत् क्षम्यतेऽस्माभिः सूतात्मज सुदुर्मते।
दर्पमुत्सिक्तमेतत् ते फाल्गुनो नाशयिष्यति॥ १२॥

अश्वत्थामाने कहा—दुर्बुद्धि सूतपुत्र! हमलोग तेरे इस अपराधको क्षमा करते हैं। तेरे इस बढ़े हुए घमण्डका नाश अर्जुन करेंगे॥ १२॥

दुर्योधन उवाच

अश्वत्थामन् प्रसीदस्व क्षन्तुमर्हसि मानद।
कोपः खलु न कर्तव्यः सूतपुत्रे कथंचन॥ १३॥

दुर्योधन बोला—दूसरोंको मान देनेवाले (भाई) अश्वत्थामा! प्रसन्न होओ। तुम्हें क्षमा करना चाहिये। सूतपुत्र कर्णपर तुम्हें किसी प्रकार भी क्रोध करना उचित नहीं है॥ १३॥

त्वयि कर्णे कृपे द्रोणे मद्रराजेऽथ सौबले।
महत् कार्यं समासक्तं प्रसीद द्विजसत्तम॥ १४॥

द्विजश्रेष्ठ! तुमपर, कर्णपर तथा कृपाचार्य, द्रोणाचार्य मद्रराज शल्य और शकुनिपर महान् कार्यभार रक्खा गया है; तुम प्रसन्न होओ॥ १४॥

एते ह्यभिमुखाः सर्वे राधेयेन युयुत्सवः।
आयान्ति पाण्डवा ब्रह्मन्नाह्वयन्तः समन्ततः ॥ १५ ॥

ब्रह्मन्! ये सामने राधापुत्र कर्णके साथ युद्धकी अभिलाषा रखकर समस्त पाण्डव-सैनिक सब ओरसे ललकारते आ रहे हैं॥

संजय उवाच

प्रसाद्यमानस्तु ततो राज्ञा द्रौणिर्महामनाः।
प्रससाद महाराज क्रोधवेगसमन्वितः ॥ १६ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! राजा दुर्योधनके मनानेपर क्रोधके वेगसे युक्त महामना अश्वत्थामा शान्त एवं प्रसन्न हो गया ॥ १६ ॥

ततः कृपोऽप्युवाचेदमाचार्यः सुमहामनाः।
सौम्यस्वभावाद् राजेन्द्र क्षिप्रमागतमार्दवः ॥ १७ ॥

राजेन्द्र! तत्पश्चात् सौम्य स्वभावके कारण शीघ्र ही मृदुता आ जानेसे महामना कृपाचार्य भी शान्त हो गये और इस प्रकार बोले ॥ १७ ॥

कृप उवाच

तवैतत् क्षम्यतेऽस्माभिः सूतात्मज सुदुर्मते।
दर्पमुत्सिक्तमेतत् ते फाल्गुनो नाशयिष्यति ॥ १८ ॥

कृपाचार्यने कहा—दुर्बुद्धि सूतपुत्र! हमलोग तो तेरे इस अपराधको क्षमा कर देते हैं; परंतु अर्जुन तेरे इस बढ़े हुए घमंडका अवश्य नाश करेंगे ॥ १८ ॥

संजय उवाच

ततस्ते पाण्डवा राजन् पञ्चालाश्च यशस्विनः।
आजग्मुः सहिताः कर्णं तर्जयन्तः समन्ततः ॥ १९ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर वे यशस्वी पाण्डव और पाञ्चाल एक साथ होकर गर्जन-तर्जन करते हुए चारों ओरसे कर्णपर चढ़ आये ॥ १९ ॥

कर्णोऽपि रथिनां श्रेष्ठश्चापमुद्यम्य वीर्यवान्।
कौरवाग्र्यैः परिवृतः शक्रो देवगणैरिव ॥ २० ॥
पर्यतिष्ठत तेजस्वी स्वबाहुबलमाश्रितः।

रथियोंमें श्रेष्ठ, पराक्रमी एवं तेजस्वी वीर कर्ण भी देवताओंसे घिरे हुए इन्द्रके समान प्रधान कौरव वीरोंसे घिरकर अपने बाहुबलका भरोसा करके धनुष उठाकर युद्धके लिये खड़ा हो गया ॥२०½॥

ततः प्रववृते युद्धं कर्णस्य सह पाण्डवैः ॥ २१ ॥
भीषणं सुमहाराज सिंहनादविराजितम्।

महाराज! तदनन्तर कर्णका पाण्डवोंके साथ भीषण युद्ध आरम्भ हुआ, जो सिंहनादसे सुशोभित हो रहा था ॥२१½॥

ततस्ते पाण्डवा राजन् पञ्चालाश्च यशस्विनः ॥ २२ ॥
दृष्ट्वा कर्णं महाबाहुमुच्चैः शब्दमथानदन्।

राजन्! यशस्वी पाण्डव और पाञ्चालोंने महाबाहु कर्णको देखकर उच्चस्वरसे इस प्रकार कहना आरम्भ किया—॥२२½॥

अयं कर्णः कुतः कर्णस्तिष्ठ कर्ण महारणे ॥ २३ ॥
युध्यस्व सहितोऽस्माभिर्दुरात्मन् पुरुषाधम।

'कहाँ कर्ण है? यह कर्ण है। दुरात्मन् नराधम कर्ण! इस महायुद्धमें खड़ा रह और हमारे साथ युद्ध कर' ॥२३½॥

अन्ये तु दृष्ट्वा राधेयं क्रोधरक्तेक्षणाऽब्रुवन् ॥ २४ ॥
हन्यतामयमुत्सिक्तः सूतपुत्रोऽल्पचेतनः।
सर्वैः पार्थिवशार्दूलैर्नानेनार्थोऽस्ति जीवता ॥ २५ ॥
अत्यन्तवैरी पार्थानां सततं पापपूरुषः।
एष मूलमनर्थानां दुर्योधनमते स्थितः ॥ २६ ॥
घ्नतैनमिति जल्पन्तः क्षत्रियाः समुपाद्रवन्।
महता शरवर्षेण च्छादयन्तो महारथाः ॥ २७ ॥
वधार्थं सूतपुत्रस्य पाण्डवेयेन चोदिताः।

दूसरे लोगोंने राधापुत्र कर्णको देखकर क्रोधसे लाल आँखें करके कहा—'समस्त श्रेष्ठ राजा मिलकर इस घमंडी और मूर्ख सूतपुत्रको मार डालें। इसके जीनेसे कोई लाभ नहीं है। यह पापात्मा पुरुष सदा कुन्तीकुमारोंके साथ अत्यन्त वैर रखता आया है। दुर्योधनकी रायमें रहकर यही सारे अनर्थोंकी जड़ बना हुआ है। अतः इसे मार डालो।' ऐसा कहते हुए समस्त क्षत्रिय महारथी पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरसे सूतपुत्रके वधके लिये प्रेरित हो बाणोंकी बड़ी भारी वर्षाद्वारा उसे आच्छादित करते हुए उसपर टूट पड़े ॥ २४—२७½ ॥

तांस्तु सर्वांस्तथा दृष्ट्वा धावमानान् महारथान् ॥ २८ ॥
न विव्यथे सूतपुत्रो न च त्रासमगच्छत।

उन समस्त महारथियोंको इस प्रकार धावा करते देख सूतपुत्रके मनमें न तो व्यथा हुई और न त्रास ही हुआ ॥

दृष्ट्वा संहारकल्पं तमुद्धूतं सैन्यसागरम् ॥ २९ ॥
पिप्रीषुस्तव पुत्राणां संग्रामेष्वपराजितः।
सायकौघेन बलवान् क्षिप्रकारी महाबलः ॥ ३० ॥
वारयामास तत् सैन्यं समन्ताद् भरतर्षभ।

भरतश्रेष्ठ! प्रलयकालके समान उस सैन्यसागरको उमड़ा हुआ देख संग्राममें पराजित न होनेवाले बलवान्, शीघ्रकारी और महान् शक्तिशाली कर्णने आपके पुत्रोंको प्रसन्न करनेकी इच्छासे बाण-समूहकी वर्षा करके सब ओरसे शत्रुओंकी उस सेनाको रोक दिया ॥ २९-३०½ ॥

ततस्तु शरवर्षेण पार्थिवास्तमवारयन् ॥ ३१ ॥
धनूंषि ते विधुन्वानाः शतशोऽथ सहस्रशः।
अयोधयन्त राधेयं शक्रं दैत्यगणा इव ॥ ३२ ॥

तदनन्तर सैकड़ों और सहस्रों नरेशोंने अपने धनुषोंको कम्पित करते हुए बाणोंकी वर्षासे कर्णकी भी प्रगति रोक दी। जैसे दैत्योंने इन्द्रके साथ संग्राम किया था, उसी प्रकार वे राजालोग राधापुत्र कर्णके साथ युद्ध करने लगे ॥

शरवर्षं तु तत् कर्णः पार्थिवैः समुदीरितम्।
शरवर्षेण महता समन्ताद् व्यकिरत् प्रभो ॥ ३३ ॥

प्रभो! राजाओंद्वारा की हुई उस बाण-वर्षाको कर्णने बाणोंकी बड़ी भारी वृष्टि करके सब ओर बिखेर दिया ॥ ३३ ॥

तद् युद्धमभवत् तेषां कृतप्रतिकृतैषिणाम्।
यथा देवासुरे युद्धे शक्रस्य सह दानवैः ॥ ३४ ॥

जैसे देवासुर-संग्राममें दानवोंके साथ इन्द्रका युद्ध हुआ था, उसी प्रकार घात-प्रतिघातकी इच्छावाले राजाओं तथा कर्णका वह युद्ध बड़ा भयंकर हो रहा था ॥ ३४ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम सूतपुत्रस्य लाघवम्।
यदेनं सर्वतो यत्ता नाप्नुवन्ति परे युधि ॥ ३५ ॥

वहाँ हमने सूतपुत्र कर्णकी अद्भुत फुर्ती देखी, जिससे सब ओरसे प्रयत्न करनेपर भी शत्रुपक्षीय योद्धा उस युद्ध-स्थलमें कर्णको काबूमें नहीं कर पा रहे थे ॥ ३५ ॥

निवार्य च शरौघांस्तान् पार्थिवानां महारथः।
युगेष्वीषासु च्छत्रेषु ध्वजेषु च हयेषु च ॥ ३६ ॥
आत्मनामाङ्कितान् घोरान् राधेयः प्राहिणोच्छरान्।

राजाओंके उन बाणसमूहोंका निवारण करके महारथी राधापुत्र कर्णने उनके रथके जूओं, ईषादण्डों, छत्रों, ध्वजाओं तथा घोड़ोंपर अपने नाम खुदे हुए भयंकर बाणोंका प्रहार किया ॥ ३६½ ॥

ततस्ते व्याकुलीभूता राजानः कर्णपीडिताः ॥ ३७ ॥
बभ्रमुस्तत्र तत्रैव गावः शीतार्दिता इव।

तत्पश्चात् कर्णके बाणोंसे पीड़ित और व्याकुल हुए राजा लोग सर्दीसे कष्ट पानेवाली गायोंके समान इधर-उधर चक्कर काटने लगे ॥ ३७½ ॥

हयानां वध्यमानानां गजानां रथिनां तथा ॥ ३८ ॥
तत्र तत्राभ्यवेक्षाम संघान् कर्णेन ताडितान्।

कर्णके बाणोंकी चोट खाकर मरनेवाले घोड़ों, हाथियों और रथियोंके झुंड-के-झुंड हमने वहाँ देखे थे ॥ ३८½ ॥

शिरोभिः पतितै राजन् बाहुभिश्च समन्ततः ॥ ३९ ॥
आस्तीर्णा वसुधा सर्वा शूराणामनिवर्तिनाम्।

राजन्! युद्धमें पीठ न दिखानेवाले शूरवीरोंके कट-कटकर गिरे हुए मस्तकों और भुजाओंसे वहाँकी सारी भूमि सब ओरसे पट गयी थी ॥ ३९½ ॥

हतैश्च हन्यमानैश्च निष्टनद्भिश्च सर्वशः ॥ ४० ॥
बभूवायोधनं रौद्रं वैवस्वतपुरोपमम्।

कुछ लोग मारे गये थे, कुछ मारे जा रहे थे और कुछ लोग सब ओर पीड़ासे कराह रहे थे। इससे वह युद्धस्थल यमपुरीके समान भयंकर प्रतीत होता था ॥ ४०½ ॥

ततो दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥ ४१ ॥
अश्वत्थामानमासाद्य वाक्यमेतदुवाच ह।

उस समय राजा दुर्योधनने कर्णका पराक्रम देख अश्वत्थामाके पास पहुँचकर यह बात कही— ॥ ४१½ ॥

युध्यतेऽसौ रणे कर्णो दंशितः सर्वपार्थिवैः ॥ ४२ ॥
पश्यैतां द्रवतीं सेनां कर्णसायकपीडिताम्।
कार्तिकेयेन विध्वस्तामासुरीं पृतनामिव ॥ ४३ ॥

'रणभूमिमें वह कवचधारी कर्ण समस्त राजाओंके साथ अकेला ही युद्ध कर रहा है। देखो, कर्णके बाणोंसे पीड़ित हुई यह पाण्डव-सेना कार्तिकेयके द्वारा नष्ट की हुई असुरवाहिनी-के समान भागी जा रही है ॥ ४२-४३ ॥

दृष्ट्वैतां निर्जितां सेनां रणे कर्णेन धीमता।
अभियात्येष बीभत्सुः सूतपुत्रजिघांसया ॥ ४४ ॥

'बुद्धिमान् कर्णके द्वारा रणभूमिमें पराजित हुई इस सेना-को देखकर सूतपुत्रका वध करनेकी इच्छासे ये अर्जुन आगे बढ़े जा रहे हैं ॥ ४४ ॥

तद् यथा प्रेक्षमाणानां सूतपुत्रं महारथम्।
न हन्यात् पाण्डवः संख्ये तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ ४५ ॥

'अतः हमलोगोंके देखते-देखते युद्धमें पाण्डुपुत्र अर्जुन जैसे भी महारथी सूतपुत्रको न मार सकें, वैसी नीतिसे काम लो' ॥ ४५ ॥

ततो द्रौणिः कृपः शल्यो हार्दिक्यश्च महारथः।
प्रत्युद्ययुस्तदा पार्थं सूतपुत्रपरीप्सया ॥ ४६ ॥
आयान्तं वीक्ष्य कौन्तेयं शक्रं दैत्यचमूमिव।

तब दैत्यसेनापर आक्रमण करनेवाले इन्द्रके समान अर्जुनको कौरवसेनाकी ओर आते देख अश्वत्थामा, कृपाचार्य, शल्य और महारथी कृतवर्मा सूतपुत्रकी रक्षा करनेकी इच्छासे अर्जुनका सामना करनेके लिये आगे बढ़े ॥ ४६½ ॥

बीभत्सुरपि राजेन्द्र पञ्चालैरभिसंवृतः ॥ ४७ ॥
प्रत्युद्ययौ तदा कर्णं यथा वृत्रं शतक्रतुः।

राजेन्द्र! उस समय वृत्रासुरपर चढ़ाई करनेवाले इन्द्रके समान पाञ्चालोंसे घिरे हुए अर्जुनने भी कर्णपर धावा किया ॥

धृतराष्ट्र उवाच

संरब्धं फाल्गुनं दृष्ट्वा कालान्तकयमोपमम् ॥ ४८ ॥
कर्णो वैकर्तनः सूत प्रत्यपद्यत् किमुत्तरम्।

धृतराष्ट्रने पूछा—सूत! काल, अन्तक और यमके समान क्रोधमें भरे हुए अर्जुनको देखकर वैकर्तन कर्णने उन्हें किस प्रकार उत्तर दिया? (कैसे उनका सामना किया) ॥

यो ह्यस्पर्धत पार्थेन नित्यमेव महारथः ॥ ४९ ॥
आशंसते च बीभत्सुं युद्धे जेतुं सुदारुणम्।

महारथी कर्ण सदा ही अर्जुनके साथ स्पर्धा रखता था और युद्धमें अत्यन्त भयंकर अर्जुनको पराजित करनेका विश्वास प्रकट करता था ॥ ४९½ ॥

स तु तं सहसा प्राप्तं नित्यमत्यन्तवैरिणम् ॥ ५० ॥
कर्णो वैकर्तनः सूत किमुत्तरमपद्यत ।

संजय ! उस समय अपने सदाके अत्यन्त वैरी अर्जुनको सहसा सामने पाकर सूर्यपुत्र कर्णने उन्हें किस प्रकार उत्तर देनेका निश्चय किया ? ॥ ५०½ ॥

संजय उवाच

आयान्तं पाण्डवं दृष्ट्वा गजं प्रतिगजो यथा ॥ ५१ ॥
असम्भ्रान्तो रणे कर्णः प्रत्युदीयाद् धनंजयम् ।

संजयने कहा–राजन् ! जैसे एक हाथीको आते देख दूसरा हाथी उसका सामना करनेके लिये आगे बढ़े, उसी प्रकार पाण्डुपुत्र धनंजयको आते देख कर्ण बिना किसी घबराहटके युद्धमें उनका सामना करनेके लिये आगे बढ़ा ॥ ५१½ ॥

तमापतन्तं वेगेन वैकर्तनमजिह्मगैः ॥ ५२ ॥
छादयामास पार्थोऽथ कर्णस्तु विजयं शरैः ।

वेगसे आते हुए वैकर्तन कर्णको अर्जुनने अपने सीधे जानेवाले बाणोंसे आच्छादित कर दिया और कर्णने भी अर्जुनको अपने बाणोंसे ढक दिया ॥ ५२½ ॥

स कर्णं शरजालेन च्छादयामास पाण्डवः ॥ ५३ ॥
ततः कर्णः सुसंरब्धः शरैस्त्रिभिरविध्यत ।

पाण्डुपुत्र अर्जुनने पुनः अपने बाणोंके जालसे कर्णको आच्छादित कर दिया । तब क्रोधमें भरे हुए कर्णने तीन बाणोंसे अर्जुनको बींध डाला ॥ ५३½ ॥

तस्य तल्लाघवं पार्थो नामृष्यत महाबलः ॥ ५४ ॥
तस्मै बाणाञ्छिलाधौतान् प्रसन्नाग्रानजिह्मगान् ।
प्राहिणोत् सूतपुत्राय त्रिशतं शत्रुतापनः ॥ ५५ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले महाबली अर्जुन कर्णकी इस फुर्तीको न सह सके । उन्होंने सूतपुत्र कर्णको शिलापर तेज किये हुए स्वच्छ अग्रभागवाले तीन सौ बाण मारे ॥५४-५५॥

विव्याध चैनं संरब्धो बाणेनैकेन वीर्यवान् ।
सव्ये भुजाग्रे बलवान् नाराचेन हसन्निव ॥ ५६ ॥

इसके सिवा कुपित हुए पराक्रमी एवं बलवान् अर्जुनने हँसते हुए-से एक नाराच नामक बाणके द्वारा कर्णकी बायीं भुजाके अग्रभागमें चोट पहुँचायी ॥ ५६ ॥

तस्य विद्धस्य बाणेन कराच्चापं पपात ह ।
पुनरादाय तच्चापं निमेषार्धान्महाबलः ॥ ५७ ॥
छादयामास बाणौघैः फाल्गुनं कृतहस्तवत् ।

उस बाणसे घायल हुए कर्णके हाथसे धनुष छूटकर गिर पड़ा । फिर आधे निमेषमें ही उस महाबली वीरने पुनः वह धनुष लेकर सिद्धहस्त योद्धाकी भाँति बाण-समूहोंकी वर्षा करके अर्जुनको ढक दिया ॥ ५७½ ॥

शरवृष्टिं तु तां मुक्तां सूतपुत्रेण भारत ॥ ५८ ॥
व्यधमच्छरवर्षेण स्मयन्निव धनंजयः ।

भारत ! सूतपुत्रद्वारा की हुई उस बाण-वर्षाको अर्जुनने मुसकराते हुए-से बाणोंकी वृष्टि करके नष्ट कर दिया ॥५८½॥

तौ परस्परमासाद्य शरवर्षेण पार्थिव ॥ ५९ ॥
छादयेतां महेष्वासौ कृतप्रतिकृतैषिणौ ।

राजन् ! वे दोनों महाधनुर्धर वीर आघातका प्रतिघात करनेकी इच्छासे परस्पर बाणोंकी वर्षा करके एक-दूसरेको आच्छादित करने लगे ॥ ५९½ ॥

तदद्भुतं महद् युद्धं कर्णपाण्डवयोर्मृधे ॥ ६० ॥
क्रुद्धयोर्वासिताहेतोर्वन्ययोर्गजयोरिव ।

जैसे दो जंगली हाथी किसी हथिनीके लिये क्रोधपूर्वक लड़ रहे हों, उसी प्रकार उस युद्धस्थलमें कर्ण और अर्जुनका वह संग्राम महान् एवं अद्भुत था ॥ ६०½ ॥

ततः पार्थो महेष्वासो दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥ ६१ ॥
मुष्टिदेशे धनुस्तस्य चिच्छेद त्वरयान्वितः ।

तदनन्तर महाधनुर्धर अर्जुनने कर्णका पराक्रम देखकर उसके धनुषको मुट्ठी पकड़नेकी जगहसे शीघ्रतापूर्वक काट दिया॥

अश्वांश्च चतुरो भल्लैरनयद् यमसादनम् ॥ ६२ ॥
सारथेश्च शिरः कायादहरच्छत्रुतापनः ।

साथ ही उसके चारों घोड़ोंको चार भल्लोंद्वारा यमलोक पहुँचा दिया । फिर शत्रुसंतापी अर्जुनने उसके सारथिका सिर धड़से अलग कर दिया ॥ ६२½ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं हताश्वं हतसारथिम् ॥ ६३ ॥
विव्याध सायकैः पार्थश्चतुर्भिः पाण्डुनन्दनः ।

धनुष कट जाने और घोड़ों तथा सारथिके मारे जानेपर कर्णको पाण्डुनन्दन अर्जुनने चार बाणोंद्वारा घायल कर दिया॥

हताश्वात् तु रथात् तूर्णमवप्लुत्य नरर्षभः ॥ ६४ ॥
आरुरोह रथं तूर्णं कृपस्य शरपीडितः ।

जिसके घोड़े मारे गये थे, उस रथसे तुरंत ही उतरकर बाणपीड़ित कर्ण शीघ्रतापूर्वक कृपाचार्यके रथपर चढ़ गया ॥

स नुन्नोऽर्जुनबाणौघैराचितः शल्यको यथा ॥ ६५ ॥
जीवितार्थमभिप्रेप्सुः कृपस्य रथमारुहत् ।

अर्जुनके बाण-समूहोंसे पीड़ित और व्याप्त होकर वह काँटोंसे भरे हुए साहीके समान जान पड़ता था । अपने प्राण बचानेके लिये कर्ण कृपाचार्यके रथपर जा बैठा था।६५½।

राधेयं निर्जितं दृष्ट्वा तावका भरतर्षभ ॥ ६६ ॥
धनंजयशरैर्नुन्नाः प्राद्रवन्त दिशो दश ।

भरतश्रेष्ठ ! राधापुत्र कर्णको पराजित हुआ देख आपके सैनिक अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित हो दसों दिशाओंमें भाग चले॥

द्रवतस्तान् समालोक्य राजा दुर्योधनो नृप ॥ ६७ ॥
निवर्तयामास तदा वाक्यमेतदुवाच ह ।

नरेश्वर ! उन्हें भागते देख राजा दुर्योधनने लौटाया और उस समय उनसे यह बात कही—॥ ६७½ ॥

अलं द्रुतेन वः शूरास्तिष्ठध्वं क्षत्रियर्षभाः ॥ ६८ ॥
एष पार्थवधायाहं स्वयं गच्छामि संयुगे ।
अहं पार्थान् हनिष्यामि सपञ्चालान् ससोमकान्॥ ६९॥

'क्षत्रियशिरोमणि शूरवीरो ! ठहरो, तुम्हारे भागनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । मैं स्वयं अभी अर्जुनका वध करनेके लिये युद्धभूमिमें चलता हूँ । मैं पाञ्चालों और सोमकों सहित कुन्तीकुमारोंका वध करूँगा ॥ ६८-६९ ॥

अद्य मे युध्यमानस्य सह गाण्डीवधन्वना ।
द्रक्ष्यन्ति विक्रमं पार्थाः कालस्येव युगक्षये ॥ ७० ॥

'आज गाण्डीवधारी अर्जुनके साथ युद्ध करते समय कुन्तीके सभी पुत्र प्रलयकालमें कालके समान मेरा पराक्रम देखेंगे ॥ ७० ॥

अद्य मद्बाणजालानि विमुक्तानि सहस्रशः ।
द्रक्ष्यन्ति समरे योधाः शलभानामिवायतीः ॥ ७१ ॥

'आज समराङ्गणमें सहस्रों योद्धा मेरे छोड़े हुए हजारों बाणसमूहोंको शलभोंकी पंक्तियोंके समान देखेंगे ॥ ७१ ॥

अद्य बाणमयं वर्षं सृजतो मम धन्विनः ।
जीमूतस्येव घर्मान्ते द्रक्ष्यन्ति युधि सैनिकाः ॥ ७२ ॥

'जैसे वर्षाकालमें मेघ जलकी वर्षा करता है, उसी प्रकार धनुष हाथमें लेकर मेरेद्वारा की हुई बाणमयी वर्षाको आज युद्धस्थलमें समस्त सैनिक देखेंगे ॥ ७२ ॥

जेष्याम्यद्य रणे पार्थं सायकैर्नतपर्वभिः ।
तिष्ठध्वं समरे शूरा भयं त्यजत फाल्गुनात् ॥ ७३ ॥

'आज रणभूमिमें झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा मैं अर्जुनको जीत लूँगा । शूरवीरो ! तुम समरभूमिमें डटे रहो और अर्जुनसे भय छोड़ दो ॥ ७३ ॥

न हि मद्वीर्यमासाद्य फाल्गुनः प्रसहिष्यति ।
यथा वेलां समासाद्य सागरो मकरालयः ॥ ७४ ॥

'जैसे समुद्र तटभूमितक पहुँचकर शान्त हो जाता है, उसी प्रकार अर्जुन मेरे समीप आकर मेरा पराक्रम नहीं सह सकेंगे' ॥ ७४ ॥

इत्युक्त्वा प्रययौ राजा सैन्येन महता वृतः ।
फाल्गुनं प्रति दुर्धर्षः क्रोधात् संरक्तलोचनः ॥ ७५ ॥

ऐसा कहकर दुर्धर्ष राजा दुर्योधनने क्रोधसे लाल आँखें करके विशाल सेनाके साथ अर्जुनपर आक्रमण किया ॥ ७५ ॥

तं प्रयान्तं महाबाहुं दृष्ट्वा शारद्वतस्तदा ।
अश्वत्थामानमासाद्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ७६ ॥

महाबाहु दुर्योधनको अर्जुनके सामने जाते देख शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्यने उस समय अश्वत्थामाके पास जाकर यह बात कही—॥ ७६ ॥

एष राजा महाबाहुरमर्षी क्रोधमूर्च्छितः ।
पतङ्गवृत्तिमास्थाय फाल्गुनं योद्धुमिच्छति ॥ ७७ ॥

'यह अमर्षशील महाबाहु राजा दुर्योधन क्रोधसे अपनी सुधबुध खो बैठा है और पतंगोंकी वृत्तिका आश्रय ले अर्जुनके साथ युद्ध करना चाहता है ॥ ७७ ॥

यावन्नः पश्यमानानां प्राणान् पार्थेन संगतः ।
न जह्यात् पुरुषव्याघ्रस्तावद् वारय कौरवम् ॥ ७८ ॥

'यह पुरुषसिंह नरेश अर्जुनसे भिड़कर हमारे देखते-देखते जबतक अपने प्राणोंको त्याग न दे, उसके पहले ही तुम जाकर उस कुरुवंशी राजाको रोको ॥ ७८ ॥

यावत् फाल्गुनबाणानां गोचरं नाद्य गच्छति ।
कौरवः पार्थिवो वीरस्तावद् वारय संयुगे ॥ ७९ ॥

'यह कौरववंशका वीर भूपाल आज जबतक अर्जुनके बाणोंकी पहुँचके भीतर नहीं जाता है, तभीतक इसे रोक दो॥

यावत् पार्थशरैर्घोरैर्निर्मुक्तोरगसंनिभैः ।
न भस्मीक्रियते राजा तावद् युद्धान्निवार्यताम् ॥ ८० ॥

'केंचुलसे छूटे हुए सर्पोंके समान अर्जुनके भयंकर बाणोंद्वारा जबतक राजा दुर्योधन भस्म नहीं कर दिया जाता है, तबतक ही उसे युद्धसे रोक दो ॥ ८० ॥

अयुक्तमिव पश्यामि तिष्ठत्स्वस्मासु मानद ।
स्वयं युद्धाय यद् राजा पार्थं यात्यसहायवान्॥ ८१ ॥

'मानद ! यह मुझे अनुचित-सा दिखायी देता है कि हमलोगोंके रहते हुए स्वयं राजा दुर्योधन बिना किसी सहायकके अर्जुनके साथ युद्धके लिये जाय ॥ ८१ ॥

दुर्लभं जीवितं मन्ये कौरव्यस्य किरीटिना ।
युध्यमानस्य पार्थेन शार्दूलेनेव हस्तिनः ॥ ८२ ॥

'जैसे सिंहके साथ हाथी युद्ध करे तो उसका जीवित रहना असम्भव हो जाता है, उसी प्रकार किरीटधारी कुन्तीकुमार अर्जुनके साथ युद्धमें प्रवृत्त होनेपर कुरुवंशी दुर्योधनके जीवनको मैं दुर्लभ ही मानता हूँ' ॥ ८२ ॥

मातुलेनैवमुक्तस्तु द्रौणिः शस्त्रभृतां वरः ।
दुर्योधनमिदं वाक्यं त्वरितः समभाषत ॥ ८३ ॥

मामाके ऐसा कहनेपर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणकुमार अश्वत्थामाने तुरंत ही दुर्योधनके पास जाकर इस प्रकार कहा—॥

मयि जीवति गान्धारे न युद्धं गन्तुमर्हसि ।
मामनादृत्य कौरव्य तव नित्यं हितैषिणम् ॥ ८४ ॥

'गान्धारीनन्दन ! कुरुकुलरत्न ! मैं सदा तुम्हारा हित चाहनेवाला हूँ । तुम मेरे जीते-जी मेरा अनादर करके स्वयं युद्धमें न जाओ ॥ ८४ ॥

न हि ते सम्भ्रमः कार्यः पार्थस्य विजयं प्रति ।
अहमावारयिष्यामि पार्थं तिष्ठ सुयोधन ॥ ८५ ॥

'सुयोधन ! अर्जुनपर विजय पानेके सम्बन्धमें तुम्हें किसी प्रकार संदेह नहीं करना चाहिये । तुम खड़े रहो । मैं अर्जुनको रोकूँगा' ॥ ८५ ॥

दुर्योधन उवाच

आचार्यः पाण्डुपुत्रान् वै पुत्रवत् परिरक्षति ।
त्वमप्युपेक्षां कुरुषे तेषु नित्यं द्विजोत्तम ॥ ८६ ॥

दुर्योधन बोला—द्विजश्रेष्ठ ! हमारे आचार्य तो अपने पुत्रकी भाँति पाण्डवोंकी रक्षा करते हैं और तुम भी सदा उनकी उपेक्षा ही करते हो ॥ ८६ ॥

मम वा मन्दभाग्यत्वान्मन्दस्ते विक्रमो युधि ।
धर्मराजप्रियार्थं वा द्रौपद्या वा न विद्म तत् ॥ ८७ ॥

अथवा मेरे दुर्भाग्यसे युद्धमें तुम्हारा पराक्रम मन्द पड़ गया है । तुम धर्मराज युधिष्ठिर अथवा द्रौपदीका प्रिय करनेके लिये ऐसा करते हो, इसका मुझे पता नहीं है॥८७॥

धिगस्तु मम लुब्धस्य यत्कृते सर्वबान्धवाः ।
सुखार्हाः परमं दुःखं प्राप्नुवन्त्यपराजिताः ॥ ८८ ॥

मुझ लोभीको धिक्कार है, जिसके कारण किसीसे पराजित न होनेवाले और सुख भोगनेके योग्य मेरे सभी भाई-बन्धु महान् दुःख उठा रहे हैं ॥ ८८ ॥

को हि शस्त्रविदां मुख्यो महेश्वरसमो युधि ।
शत्रुं न क्षपयेच्छक्तो यो न स्याद् गौतमीसुतः ॥ ८९ ॥

कृपीकुमार अश्वत्थामाके सिवा दूसरा कौन ऐसा वीर है, जो शस्त्रवेत्ताओंमें प्रधान, महादेवजीके समान पराक्रमी तथा शक्तिशाली होकर भी युद्धमें शत्रुका संहार नहीं करेगा॥८९॥

अश्वत्थामन् प्रसीदस्व नाशयैतान् ममाहितान् ।
तवास्त्रगोचरे शक्ताः स्थातुं देवा न दानवाः ॥ ९० ॥

अश्वत्थामन् ! प्रसन्न होओ । मेरे इन शत्रुओंका नाश करो । तुम्हारे अस्त्रोंके मार्गमें देवता और दानव भी नहीं ठहर सकते हैं ॥ ९० ॥

पञ्चालान् सोमकांश्चैव जहि द्रौणे सहानुगान् ।
वयं शेषान् हनिष्यामस्त्वयैव परिरक्षिताः ॥ ९१ ॥

द्रोणकुमार ! तुम अनुगामियोंसहित पाञ्चालों और सोमकोंको मार डालो; फिर तुमसे ही सुरक्षित हो हमलोग अपने शेष शत्रुओंका संहार कर डालेंगे ॥ ९१ ॥

एते हि सोमका विप्र पञ्चालाश्च यशस्विनः ।
मम सैन्येषु संक्रुद्धा विचरन्ति दवाग्निवत् ॥ ९२ ॥
तान् वारय महाबाहो केकयांश्च नरोत्तम ।
पुरा कुर्वन्ति निःशेषं रक्ष्यमाणाः किरीटिना ॥ ९३ ॥

विप्रवर ! ये यशस्वी पाञ्चाल और सोमक क्रोधमें भरकर दावानलके समान मेरी सेनाओंमें विचर रहे हैं । इन्हींके साथ केकय भी हैं । महाबाहो ! नरश्रेष्ठ ! वे किरीटधारी अर्जुनसे सुरक्षित हो मेरी सेनाका सर्वनाश न कर डालें । अतः पहले ही उन्हें रोको ॥ ९२–९३ ॥

अश्वत्थामंस्त्वरायुक्तो याहि शीघ्रमरिंदम ।
आदौ वा यदि वा पश्चात् तवेदं कर्म मारिष ॥ ९४ ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले माननीय भाई अश्वत्थामा ! तुम शीघ्र ही जाओ । पहले करो या पीछे; यह कार्य तुम्हारे ही वशका है ॥ ९४ ॥

त्वमुत्पन्नो महाबाहो पञ्चालानां वधं प्रति ।
करिष्यसि जगत् सर्वमपाञ्चालं किलोद्यतः ॥ ९५ ॥

महाबाहो ! तुम पाञ्चालोंका वध करनेके लिये ही उत्पन्न हुए हो । यदि तुम तैयार हो जाओ तो निश्चय ही सारे जगत्‌को पाञ्चालोंसे शून्य कर दोगे ॥ ९५ ॥

एवं सिद्धाऽब्रुवन् वाचो भविष्यति च तत् तथा ।
तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र पञ्चालाञ्जहि सानुगान् ॥ ९६ ॥

पुरुषसिंह ! सिद्ध पुरुषोंने तुम्हारे विषयमें ऐसी ही बातें कही हैं । वे उसी रूपमें सत्य होंगी । अतः तुम सेवकोंसहित पाञ्चालोंका वध करो ॥ ९६ ॥

न तेऽस्त्रगोचरे शक्ताः स्थातुं देवाः सवासवाः ।
किमु पार्थाः सपाञ्चालाः सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ ९७ ॥

मैं तुमसे यह सच कहता हूँ कि तुम्हारे बाणोंके मार्गमें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी नहीं ठहर सकते; फिर कुन्तीके पुत्रों और पाञ्चालोंकी तो बिसात ही क्या है ? ॥ ९७ ॥

न त्वां समर्थाः संग्रामे पाण्डवाः सह सोमकैः ।
बलाद् योधयितुं वीर सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ९८ ॥

वीर ! सोमकोंसहित पाण्डव संग्राममें तुम्हारे साथ बलपूर्वक युद्ध करनेमें समर्थ नहीं हैं । यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ ॥ ९८ ॥

गच्छ गच्छ महाबाहो न नः कालात्ययो भवेत् ।
इयं हि द्रवते सेना पार्थसायकपीडिता ॥ ९९ ॥

महाबाहो ! जाओ, जाओ । हमारे इस कार्यमें विलम्ब नहीं होना चाहिये । देखो, अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित होकर यह सेना भागी जा रही है ॥ ९९ ॥

शक्तो ह्यसि महाबाहो दिव्येन स्वेन तेजसा ।
निग्रहे पाण्डुपुत्राणां पञ्चालानां च मानद ॥१००॥

दूसरोंको मान देनेवाले महाबाहु वीर ! तुम अपने दिव्य तेजसे पाञ्चालों और पाण्डवोंका निग्रह करनेमें समर्थ हो ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दुर्योधनवाक्ये एकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१५९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसङ्गमें दुर्योधनका वचनविषयक एक सौ उनसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५९ ॥

षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

अश्वत्थामाका दुर्योधनको उपालम्भपूर्ण आश्वासन देकर पाञ्चालोंके साथ युद्ध करते हुए धृष्टद्युम्नके रथसहित सारथिको नष्ट करके उसकी सेनाको भगाकर अद्भुत पराक्रम दिखाना

संजय उवाच

दुर्योधनेनैवमुक्तो द्रौणिराहवदुर्मदः ।
चकारारिवधे यत्नमिन्द्रो दैत्यवधे यथा ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! दुर्योधनके ऐसा कहनेपर रणदुर्मद अश्वत्थामाने उसी प्रकार शत्रुवधके लिये प्रयत्न आरम्भ किया, जैसे इन्द्र दैत्यवधके लिये यत्न करते हैं॥१॥

प्रत्युवाच महाबाहुस्तव पुत्रमिदं वचः ।
सत्यमेतन्महाबाहो यथा वदसि कौरव ॥ २ ॥

उस समय महाबाहु अश्वत्थामाने आपके पुत्रसे यह वचन कहा—'महाबाहु कौरवनन्दन ! तुम जैसा कहते हो, यही ठीक है ॥ २ ॥

प्रिया हि पाण्डवा नित्यं मम चापि पितुश्च मे ।
तथैवावां प्रियौ तेषां न तु युद्धे कुरूद्वह ॥ ३ ॥

'कुरुश्रेष्ठ ! पाण्डव मुझे तथा मेरे पिताजीको भी बहुत प्रिय हैं । इसी प्रकार उनको भी हम दोनों पिता-पुत्र प्रिय हैं, किंतु युद्धस्थलमें हमारा यह भाव नहीं रहता ॥ ३ ॥

शक्तितस्तात युध्यामस्त्यक्त्वा प्राणानभीतवत् ।
अहं कर्णश्च शल्यश्च कृपो हार्दिक्य एव च ।
निमेषात् पाण्डवीं सेनां क्षपयेम नृपोत्तम ॥ ४ ॥

'तात ! हम अपने प्राणोंका मोह छोड़कर निर्भय-से होकर यथाशक्ति युद्ध करते हैं । नृपश्रेष्ठ ! मैं, कर्ण, शल्य, कृप और कृतवर्मा पलक मारते-मारते पाण्डव-सेनाका संहार कर सकते हैं ॥ ४ ॥

ते चापि कौरवीं सेनां निमेषार्धात् कुरूद्वह ।
क्षपयेयुर्महाबाहो न स्याम यदि संयुगे ॥ ५ ॥

'महाबाहु कुरुश्रेष्ठ ! यदि युद्धस्थलमें हमलोग न रहें, तो पाण्डव भी आधे निमेषमें ही कौरव-सेनाका संहार कर सकते हैं ॥ ५ ॥

युध्यतां पाण्डवाञ्छक्त्या तेषां चास्मान् युयुत्सताम् ।
तेजस्तेजः समासाद्य प्रशमं याति भारत ॥ ६ ॥

'हम यथाशक्ति पाण्डवोंसे युद्ध करते हैं और वे हमलोगोंसे युद्ध करना चाहते हैं । भारत ! इस प्रकार हमारा तेज परस्पर एक दूसरेसे टकराकर शान्त हो जाता है ॥६॥

अशक्या तरसा जेतुं पाण्डवानामनीकिनी ।
जीवत्सु पाण्डुपुत्रेषु तद्धि सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ७ ॥

'राजन् ! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि पाण्डवोंके जीते-जी उनकी सेनाको बलपूर्वक जीतना असम्भव है ॥ ७ ॥

आत्मार्थं युध्यमानास्ते समर्थाः पाण्डुनन्दनाः ।
किमर्थं तव सैन्यानि न हनिष्यन्ति भारत ॥ ८ ॥

'भरतनन्दन ! पाण्डव शक्तिशाली हैं और अपने लिये युद्ध करते हैं, फिर वे किस लिये तुम्हारी सेनाओंका संहार नहीं करेंगे ? ॥ ८ ॥

त्वं तु लुब्धतमो राजन् निकृतिज्ञश्च कौरव ।
सर्वाभिशङ्की मानी च ततोऽस्मानभिशङ्कसे ॥ ९ ॥

'कौरवनरेश ! तुम तो लोभी और छल-कपटकी विद्याको जाननेवाले हो । सबपर संदेह करनेवाले और अभिमानी हो; इसीलिये हमलोगोंपर भी शङ्का करते हो ॥ ९ ॥

मन्ये त्वं कुत्सितो राजन् पापात्मा पापपूरुषः ।
अन्यानपि स नः क्षुद्र शङ्कसे पापभावितः ॥ १० ॥

'राजन् ! मेरी मान्यता है कि तुम निन्दित, पापात्मा एवं पापपुरुष हो ।' क्षुद्र नरेश ! तुम्हारा अन्तःकरण पाप-भावनासे ही पूर्ण है, इसीलिये तुम हमपर तथा दूसरोंपर भी संदेह करते हो ॥ १० ॥

अहं तु यत्नमास्थाय त्वदर्थे त्यक्तजीवितः ।
एष गच्छामि संग्रामं त्वत्कृते कुरुनन्दन ॥ ११ ॥

'कुरुनन्दन ! मैं अभी तुम्हारे लिये जीवनका मोह छोड़कर पूरा प्रयत्न करके संग्राम-भूमिमें जा रहा हूँ ॥ ११ ॥

योत्स्येऽहं शत्रुभिः सार्धं जेष्यामि च वरान् वरान् ।
पञ्चालैः सह योत्स्यामि सोमकैः केकयैस्तथा ॥ १२ ॥
पाण्डवेयैश्च संग्रामे त्वत्प्रियार्थमरिंदम ।

'शत्रुदमन ! मैं शत्रुओंके साथ युद्ध करूँगा और उनके प्रधान-प्रधान वीरोंपर विजय पाऊँगा । संग्रामभूमिमें तुम्हारा प्रिय करनेके लिये मैं पाञ्चालों, सोमकों, केकयों तथा पाण्डवोंके साथ भी युद्ध करूँगा ॥ १२½ ॥

अद्य मद्बाणनिर्दग्धाः पञ्चालाः सोमकास्तथा ॥ १३ ॥
सिंहेनेवार्दिता गावो विद्रविष्यन्ति सर्वशः ।

'आज पाञ्चाल और सोमक योद्धा मेरे बाणोंसे दग्ध होकर सिंहसे पीड़ित हुई गौओंके समान सब ओर भाग जायँगे ॥ १३½ ॥

अद्य धर्मसुतो राजा दृष्ट्वा मम पराक्रमम् ॥ १४ ॥
अश्वत्थाममयं लोकं मंस्यते सह सोमकैः ।

'आज सोमकोसहित धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर मेरा पराक्रम देखकर सम्पूर्ण जगत्को अश्वत्थामासे भरा हुआ मानेंगे ॥ १४½ ॥

आगमिष्यति निर्वेदं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १५ ॥
दृष्ट्वा विनिहतान् संख्ये पञ्चालान् सोमकैः सह ।

'सोमकोंसहित पाञ्चालोंको युद्धमें मारा गया देख आज धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरके मनमें बड़ा निर्वेद (खेद एवं वैराग्य) होगा ॥ १५½ ॥

ये मां युद्धेऽभियोत्स्यन्ति तान् हनिष्यामि भारत ॥ १६॥
न हि ते वीर मोक्ष्यन्ते मद्बाह्वन्तरमागताः ।

'भारत ! जो लोग रणभूमिमें मेरे साथ युद्ध करेंगे, उन्हें मैं मार डालूँगा । वीर ! मेरी भुजाओंके भीतर आकर शत्रुसैनिक जीवित नहीं छूट सकेंगे' ॥ १६½ ॥

एवमुक्त्वा महाबाहुः पुत्रं दुर्योधनं तव ॥ १७ ॥
अभ्यवर्तत युद्धाय त्रासयन् सर्वधन्विनः ।
चिकीर्षुस्तव पुत्राणां प्रियं प्राणभृतां वरः ॥ १८ ॥

आपके पुत्र दुर्योधनसे ऐसा कहकर महाबाहु अश्वत्थामा समस्त धनुर्धरोंको त्रास देता हुआ युद्धके लिये शत्रुओंके सामने डट गया । प्राणियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामा आपके पुत्रोंका प्रिय करना चाहता था ॥ १७–१८ ॥

ततोऽब्रवीत् सकैकेयान् पञ्चालान् गौतमीसुतः ।
प्रहरध्वमितः सर्वे मम गात्रे महारथाः ॥ १९ ॥
स्थिरीभूताश्च युद्ध्यध्वं दर्शयन्तोऽस्त्रलाघवम् ।

तदनन्तर गौतमीनन्दन अश्वत्थामाने केकयोंसहित पाञ्चालोंसे कहा—'महारथियो ! अब सब लोग मिलकर मेरे शरीरपर प्रहार करो और अपनी अस्त्र-संचालनकी फुर्ती दिखाते हुए सुस्थिर होकर युद्ध करो' ॥ १९½ ॥

एवमुक्तास्तु ते सर्वे शस्त्रवृष्टीरपातयन् ॥ २० ॥
द्रौणिं प्रति महाराज जलं जलधरा इव ।

महाराज ! अश्वत्थामाके ऐसा कहनेपर वे सभी वीर उसके ऊपर उसी प्रकार अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे, जैसे मेघ पर्वतपर पानी बरसाते हैं ॥ २०½ ॥

तान् निहत्य शरान्द्रौणिर्दश वीरानपोथयत् ॥ २१ ॥
प्रमुखे पाण्डुपुत्राणां धृष्टद्युम्नस्य च प्रभो ।

प्रभो ! द्रोणकुमारने उनके उन बाणोंको नष्ट करके उनमेंसे दस वीरोंको पाण्डवों और धृष्टद्युम्नके सामने ही मार गिराया ॥ २१½ ॥

ते हन्यमानाः समरे पञ्चालाः सोमकास्तथा ॥ २२ ॥
परित्यज्य रणे द्रौणिं व्यद्रवन्त दिशो दश ।

समराङ्गणमें मारे जाते हुए पाञ्चाल और सोमक द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको छोड़कर दसों दिशाओंमें भाग गये ॥ २२½ ॥

तान् दृष्ट्वा द्रवतः शूरान् पञ्चालान् सहसोमकान् ॥ २३॥
धृष्टद्युम्नो महाराज द्रौणिमभ्यद्रवद् रणे ।

महाराज ! शूरवीर पाञ्चालों और सोमकोंको भागते देख धृष्टद्युम्नने रणक्षेत्रमें अश्वत्थामापर धावा किया ॥ २३½ ॥

ततः काञ्चनचित्राणां सजलाम्बुदनादिनाम् ॥ २४ ॥
वृतः शतेन शूराणां रथानामनिवर्तिनाम् ।
पुत्रः पाञ्चालराजस्य धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ २५ ॥
द्रौणिमित्यब्रवीद् वाक्यं दृष्ट्वा योधान् निपातितान् ।

तदनन्तर सुवर्णचित्रित, सजल जलधरके समान गम्भीर घोष करनेवाले तथा युद्धसे कभी पीठ न दिखानेवाले सौ रथों एवं शूरवीर रथियोंसे घिरे हुए पाञ्चालराजकुमार महारथी धृष्टद्युम्नने अपने योद्धाओंको मारा गया देख द्रोणकुमार अश्वत्थामासे इस प्रकार कहा— ॥ २४–२५½ ॥

आचार्यपुत्र दुर्बुद्धे किमन्यैर्निहतैस्तव ॥ २६ ॥
समागच्छ मया सार्धं यदि शूरोऽसि संयुगे ।
अहं त्वां निहनिष्यामि तिष्ठेदानीं ममाग्रतः ॥ २७ ॥

'खोटी बुद्धिवाले आचार्यपुत्र ! दूसरोंको मारनेसे तुम्हें क्या लाभ है ? यदि शूरमा हो तो रणक्षेत्रमें मेरे साथ भिड़ जाओ । इस समय मेरे सामने खड़े तो हो जाओ, मैं अभी तुम्हें मार डालूँगा' ॥ २६–२७ ॥

ततस्तमाचार्यसुतं धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ।
मर्मभिद्भिः शरैस्तीक्ष्णैर्जघान भरतर्षभ ॥ २८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! ऐसा कहकर प्रतापी धृष्टद्युम्नने मर्मभेदी एवं पैने बाणोंद्वारा आचार्यपुत्रको घायल कर दिया ॥ २८॥

ते तु पङ्क्तीकृता द्रौणिं शरा विविशुराशुगाः ।
रुक्मपुङ्खाः प्रसन्नाग्राः सर्वकायावदारणाः ॥ २९ ॥
मध्वर्थिन इवोद्दामा भ्रमराः पुष्पितं द्रुमम् ।

सुवर्णमय पंख और स्वच्छ धारवाले, सबके शरीरोंको विदीर्ण करनेमें समर्थ वे शीघ्रगामी बाण श्रेणीबद्ध होकर अश्वत्थामाके शरीरमें वैसे ही घुस गये, जैसे मधुके लोभी उद्दाम भ्रमर फूले हुए वृक्षपर बैठ जाते हैं ॥ २९½ ॥

सोऽतिविद्धो भृशं क्रुद्धः पदाक्रान्त इवोरगः ॥ ३० ॥
मानी द्रौणिरसम्भ्रान्तो बाणपाणिरभाषत ।

उन बाणोंसे अत्यन्त घायल होकर मानी द्रोणकुमार पैरोंसे कुचले गये सर्पके समान अत्यन्त कुपित हो उठा और हाथमें बाण लेकर संभ्रमरहित हो इस प्रकार बोला— ॥ ३०½ ॥

धृष्टद्युम्न स्थिरो भूत्वा मुहूर्तं प्रतिपालय ॥ ३१ ॥
यावत् त्वां निशितैर्बाणैः प्रेषयामि यमक्षयम् ।

'धृष्टद्युम्न ! स्थिर होकर दो घड़ी और प्रतीक्षा कर लो, तबतक मैं तुम्हें अपने पैने बाणोंद्वारा यमलोक भेज देता हूँ' ॥

द्रौणिरेवमथाभाष्य पार्षतं परवीरहा ॥ ३२ ॥
छादयामास बाणौघैः समन्ताल्लघुहस्तवत् ।

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले अश्वत्थामाने ऐसा कहकर शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले कुशल योद्धाकी भाँति अपने बाण-समूहोंद्वारा धृष्टद्युम्नको सब ओरसे आच्छादित कर दिया ॥

स बाध्यमानः समरे द्रौणिना युद्धदुर्मदः ॥ ३३ ॥

द्रौणिं पाञ्चालतनयो वाग्भिरातर्जयत् तदा ।

समराङ्गणमें अश्वत्थामाद्वारा पीड़ित होनेपर रणदुर्मद पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नने उसे वाणीद्वारा डाँट बतायी और इस प्रकार कहा—॥ ३३½ ॥

न जानीषे प्रतिज्ञां मे विप्रोत्पत्तिं तथैव च ॥ ३४ ॥
द्रोणं हत्वा किल मया हन्तव्यस्त्वं सुदुर्मते ।

'दुर्बुद्धि ब्राह्मण ! क्या तू मेरी प्रतिज्ञा और उत्पत्तिका वृत्तान्त नहीं जानता ? निश्चय ही, मुझे पहले द्रोणाचार्यका वध करके फिर तेरा विनाश करना है ॥ ३४½ ॥

ततस्त्वाहं न हन्म्यद्य द्रोणे जीवति संयुगे ॥ ३५ ॥
इमां तु रजनीं प्राप्तामप्रभातां सुदुर्मते ।
निहत्य पितरं तेऽद्य ततस्त्वामपि संयुगे ॥ ३६ ॥
नेष्यामि प्रेतलोकाय ह्येतन्मे मनसि स्थितम् ।

'इसीलिये द्रोणके जीते-जी अभी युद्धस्थलमें तेरा वध नहीं कर रहा हूँ । दुर्मते ! इसी रातमें प्रभात होनेसे पहले आज तेरे पिताका वध करके फिर तुझे भी युद्धस्थलमें प्रेतलोकको भेज दूँगा । यही मेरे मनका निश्चित विचार है ॥

यस्ते पार्थेषु विद्वेषो या भक्तिः कौरवेषु च ॥ ३७ ॥
तां दर्शय स्थिरो भूत्वा न मे जीवन् विमोक्ष्यसे ।

'कुन्तीके पुत्रोंके प्रति जो तेरा द्वेषभाव और कौरवोंके प्रति जो भक्तिभाव है, उसे स्थिर होकर दिखा । तू जीते-जी मेरे हाथसे छुटकारा नहीं पा सकेगा ॥ ३७½ ॥

यो हि ब्राह्मण्यमुत्सृज्य क्षत्रधर्मरतो द्विजः ॥ ३८ ॥
स वध्यः सर्वलोकस्य यथा त्वं पुरुषाधमः ।

'जो ब्राह्मण ब्राह्मणत्वका परित्याग करके क्षत्रियधर्ममें तत्पर हो, जैसा कि मनुष्योंमें अधम तू है, वह सब लोगोंके लिये वध्य है' ॥ ३८½ ॥

इत्युक्तः परुषं वाक्यं पार्षतेन द्विजोत्तमः ॥ ३९ ॥
क्रोधमाहारयत् तीव्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ।

द्रुपदकुमारके इस प्रकार कठोर वचन कहनेपर द्विजश्रेष्ठ अश्वत्थामाको बड़ा क्रोध हुआ और उसने कहा—'अरे ! खड़ा रह, खड़ा रह' ॥३९½ ॥

निर्दहन्निव चक्षुर्भ्यां पार्षतं सोऽभ्यवैक्षत ॥ ४० ॥
छादयामास च शरैर्निःश्वसन् पन्नगो यथा ।

उसने धृष्टद्युम्नकी ओर इस प्रकार देखा मानो अपने नेत्रोंके तेजसे उन्हें दग्ध कर डालेगा । साथ ही सर्पकी भाँति फुफकारते हुए अश्वत्थामाने उन्हें अपने बाणोंद्वारा ढक दिया ॥ ४०½ ॥

स च्छाद्यमानः समरे द्रौणिना राजसत्तम ॥ ४१ ॥
सर्वपाञ्चालसेनाभिः संवृतो रथसत्तमः ।
नाकम्पत महाबाहुः स्ववीर्यं समुपाश्रितः ॥ ४२ ॥
सायकांश्चैव विविधानश्वत्थाम्नि मुमोच ह ।

नृपश्रेष्ठ ! समराङ्गणमें अश्वत्थामाके द्वारा आच्छादित होनेपर भी समस्त पाञ्चालसेनाओंसे घिरे हुए महारथी महाबाहु धृष्टद्युम्न कम्पित नहीं हुए । उन्होंने अपने बल-पराक्रमका आश्रय लेकर अश्वत्थामापर नाना प्रकारके बाणोंका प्रहार किया ॥ ४१–४२½ ॥

तौ पुनः संन्यवर्तेतां प्राणद्यूतपणे रणे ॥ ४३ ॥
निपीडयन्तौ बाणौघैः परस्परममर्षिणौ ।
उत्सृजन्तौ महेष्वासौ शरवृष्टीः समन्ततः ॥ ४४ ॥

वे दोनों महाधनुर्धर वीर अमर्षमें भरकर एक दूसरेपर चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा करते और उन बाण-समूहोंद्वारा परस्पर पीड़ा देते हुए प्राणोंकी बाजी लगाकर रणभूमिमें डटे रहे ॥ ४३-४४ ॥

द्रौणिपार्षतयोर्युद्धं घोररूपं भयानकम् ।
दृष्ट्वा सम्पूजयामासुः सिद्धचारणवातिकाः ॥ ४५ ॥

अश्वत्थामा और धृष्टद्युम्नके उस घोर एवं भयानक युद्धको देखकर सिद्ध, चारण तथा वायुचारी गरुड़ आदिने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ ४५ ॥

शरौघैः पूरयन्तौ तावाकाशं च दिशस्तथा ।
अलक्ष्यौ समयुध्येतां महत् कृत्वा शरैस्तमः ॥ ४६ ॥

वे दोनों अपने बाण-समूहोंसे आकाश और दिशाओंको भरते हुए उनके द्वारा महान् अन्धकारकी सृष्टि करके अलक्ष्य होकर युद्ध करते रहे ॥ ४६ ॥

नृत्यमानाविव रणे मण्डलीकृतकार्मुकौ ।
परस्परवधे यत्तौ सर्वभूतभयङ्करौ ॥ ४७ ॥

उस रणक्षेत्रमें धनुषको मण्डलाकार करके वे दोनों नृत्य-सा कर रहे थे । एक दूसरेके वधके लिये प्रयत्नशील होकर समस्त प्राणियोंके लिये भयंकर बन गये थे ॥ ४७ ॥

अयुध्येतां महाबाहू चित्रं लघु च सुष्ठु च ।
सम्पूज्यमानौ समरे योधमुख्यैः सहस्रशः ॥ ४८ ॥

वे महाबाहु वीर समराङ्गणमें समस्त श्रेष्ठ योद्धाओंद्वारा हजारों बार प्रशंसित होते हुए शीघ्रतापूर्वक और सुन्दर ढंगसे विचित्र युद्ध कर रहे थे ॥ ४८ ॥

तौ प्रवृद्धौ रणे दृष्ट्वा वने वन्यौ गजाविव ।
उभयोः सेनयोर्हर्षस्तुमुलः समपद्यत ॥ ४९ ॥

वनमें लड़नेवाले दो जंगली हाथियोंके समान उन दोनोंको युद्धमें जागरूक देखकर दोनों सेनाओंमें तुमुल हर्षनाद छा गया ॥ ४९ ॥

सिंहनादरवाश्चासन् दध्मुः शङ्खांश्च सैनिकाः ।
वादित्राण्यभ्यवाद्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५० ॥

सब ओर सिंहनाद होने लगा। सैनिक शङ्खध्वनि करने लगे तथा सैकड़ों एवं सहस्रों प्रकारके रणवाद्य बजने लगे॥ ५० ॥

तस्मिंस्तु तुमुले युद्धे भीरूणां भयवर्धने।
मुहूर्तमपि तद् युद्धं समरूपं तदाभवत्॥ ५१ ॥

कायरोंका भय बढ़ानेवाले उस तुमुल संग्राममें दो घड़ीतक उन दोनोंका समान रूपसे युद्ध चलता रहा ॥५१॥

ततो द्रौणिर्महाराज पार्षतस्य महात्मनः।
ध्वजं धनुस्तथा छत्रमुभौ च पार्ष्णिसारथी॥ ५२ ॥
सूतमश्वांश्च चतुरो निहत्याभ्यद्रवद् रणे।

महाराज! तदनन्तर द्रोणकुमारने महामना धृष्टद्युम्नके ध्वज, धनुष, छत्र, दोनों पार्श्वरक्षक, सारथि तथा चारों घोड़ोंको नष्ट करके उस युद्धमें बड़े वेगसे धावा किया॥

पञ्चालांश्चैव तान् सर्वान् बाणैः संनतपर्वभिः॥ ५३ ॥
व्यद्रावयदमेयात्मा शतशोऽथ सहस्रशः।

अनन्त आत्मबलसे सम्पन्न अश्वत्थामाने झुकी हुई गाँठवाले सैकड़ों और सहस्रों बाणोंद्वारा उन समस्त पाञ्चालोंको दूर भगा दिया॥ ५३½ ॥

ततस्तु विव्यथे सेना पाण्डवी भरतर्षभ॥ ५४ ॥
दृष्ट्वा द्रौणेर्महत् कर्म वासवस्येव संयुगे।

भरतश्रेष्ठ! युद्धस्थलमें इन्द्रके समान अश्वत्थामाके उस महान् कर्मको देखकर पाण्डवसेना व्यथित हो उठी॥

शतेन च शतं हत्वा पञ्चालानां महारथः॥ ५५ ॥
त्रिभिश्च निशितैर्बाणैर्हत्वा त्रीन् वै महारथान्।
द्रौणिर्द्रुपदपुत्रस्य फाल्गुनस्य च पश्यतः॥ ५६ ॥
नाशयामास पञ्चालान् भूयिष्ठं ये व्यवस्थिताः।

महारथी द्रोणकुमारने पहले सौ बाणोंसे सौ पाञ्चाल योद्धाओंका वध करके फिर तीन पैने बाणोंद्वारा उनके तीन महारथियोंको भी मार गिराया और धृष्टद्युम्न तथा अर्जुनके देखते-देखते वहाँ जो बहुसंख्यक पाञ्चाल योद्धा खड़े थे, उन सबको नष्ट कर दिया॥ ५५-५६½ ॥

ते वध्यमानाः पञ्चालाः समरे सह सृंजयैः॥ ५७ ॥
अगच्छन् द्रौणिमुत्सृज्य विप्रकीर्णरथध्वजाः।

समरभूमिमें मारे जाते हुए पाञ्चाल और सृंजय सैनिक अश्वत्थामाको छोड़कर चल दिये, उनके रथ और ध्वज नष्ट-भ्रष्ट होकर बिखर गये थे॥ ५७½ ॥

स जित्वा समरे शत्रून् द्रोणपुत्रो महारथः॥ ५८ ॥
ननाद सुमहानादं तपान्ते जलदो यथा।

इस प्रकार रणभूमिमें शत्रुओंको जीतकर महारथी द्रोणपुत्र वर्षाकालके मेघके समान जोर-जोरसे गर्जना करने लगा॥ ५८½ ॥

स निहत्य बहूञ्छूरानश्वत्थामा व्यरोचत।
युगान्ते सर्वभूतानि भस्म कृत्वेव पावकः॥ ५९ ॥

जैसे प्रलयकालमें अग्निदेव सम्पूर्ण भूतोंको भस्म करके प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार अश्वत्थामा वहाँ बहुसंख्यक शूर-वीरोंका वध करके सुशोभित हो रहा था॥ ५९ ॥

सम्पूज्यमानो युधि कौरवेयै-
र्निर्जित्य संख्येऽरिगणान् सहस्रशः।
व्यरोचत द्रोणसुतः प्रतापवान्
यथा सुरेन्द्रोऽरिगणान् निहत्य वै॥ ६० ॥

जैसे देवराज इन्द्र शत्रुओंका संहार करके सुशोभित होते हैं, उसी प्रकार प्रतापी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा संग्राममें सहस्रों शत्रुसमूहोंको परास्त करके कौरवोंद्वारा पूजित एवं प्रशंसित होता हुआ बड़ी शोभा पा रहा था॥ ६० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धेऽश्वत्थामपराक्रमे षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १६०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके अवसरपर अश्वत्थामाका पराक्रमविषयक एक सौ साठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६०॥

एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेन और अर्जुनका आक्रमण और कौरवसेनाका पलायन

संजय उवाच

ततो युधिष्ठिरश्चैव भीमसेनश्च पाण्डवः।
द्रोणपुत्रं महाराज समन्तात् पर्यवारयन्॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! तदनन्तर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर और भीमसेनने द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको चारों ओरसे घेर लिया॥ १ ॥

ततो दुर्योधनो राजा भारद्वाजेन संवृतः।
अभ्ययात् पाण्डवान् संख्ये ततो युद्धमवर्तत॥ २ ॥
घोररूपं महाराज भीरूणां भयवर्धनम्।

यह देख द्रोणाचार्यकी सेनासे घिरे हुए राजा दुर्योधनने भी रणभूमिमें पाण्डवोंपर आक्रमण किया। महाराज! फिर तो कायरोंका भय बढ़ानेवाला घोर युद्ध होने लगा॥२½॥

अम्बष्ठान् मालवान् वङ्गाञ्छिबींस्त्रैगर्तकानपि॥ ३ ॥
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय गणान् क्रुद्धो वृकोदरः।

क्रोधमें भरे हुए भीमसेनने अम्बष्ठ, मालव, वंग, शिबि तथा त्रिगर्तदेशके योद्धाओंको मृत्युके लोकमें भेज दिया॥

अभीषाहाञ्छूरसेनान् क्षत्रियान् युद्धदुर्मदान् ॥ ४ ॥
निकृत्य पृथिवीं चक्रे भीमः शोणितकर्दमाम् ।

अभीषाह तथा शूरसेन देशके रणदुर्मद क्षत्रियोंको भी काट-काटकर भीमसेनने वहाँकी भूमिको खूनसे कीचड़मयी बना दिया ॥ ४½ ॥

यौधेयानद्रिजान् राजन् मद्रकान्मालवानपि ॥ ५ ॥
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय किरीटी निशितैः शरैः ।

राजन् ! इसी प्रकार किरीटधारी अर्जुनने अपने पैने बाणोंद्वारा यौधेय, पर्वतीय, मद्रक तथा मालव योद्धाओंको भी मृत्युके लोकका पथिक बना दिया ॥ ५½ ॥

प्रगाढमञ्जोगतिभिर्नाराचैरभिताडिताः ॥ ६ ॥
निपेतुर्द्विरदा भूमौ द्विशृङ्गा इव पर्वताः ।

अनायास ही दूरतक जानेवाले उनके नाराचोंकी गहरी चोट खाकर दो दाँतोंवाले हाथी दो शिखरोंवाले पर्वतोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़ते थे ॥ ६½ ॥

निकृत्तैर्हस्तिहस्तैश्च चेष्टमानैरितस्ततः ॥ ७ ॥
रराज वसुधाऽऽकीर्णा विसर्पद्भिरिवोरगैः ।

हाथियोंके शुण्डदण्ड कटकर इधर-उधर तड़पते हुए ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानो सर्प चल रहे हों । उनके द्वारा आच्छादित हुई वहाँकी भूमि अद्भुत शोभा पा रही थी ॥

क्षिप्तैः कनकचित्रैश्च नृपच्छत्रैः क्षितिर्बभौ ॥ ८ ॥
द्यौरिवादित्यचन्द्राद्यैर्ग्रहैः कीर्णा युगक्षये ।

प्रलयकालमें सूर्य और चन्द्रमा आदि ग्रहोंसे व्याप्त हुए द्युलोककी जैसी शोभा होती है, उसी प्रकार इधर-उधर फेंके पड़े हुए राजाओंके सुवर्णचित्रित छत्रोंद्वारा उस रणभूमिकी भी शोभा हो रही थी ॥ ८½ ॥

हत प्रहरताभीता विध्यत व्यवकृन्तत ॥ ९ ॥
इत्यासीत् तुमुलः शब्दः शोणाश्वस्य रथं प्रति ।

लाल घोड़ोंवाले द्रोणाचार्यके रथके समीप 'मार डालो, निर्भय होकर प्रहार करो, बाणोंसे बींध डालो, टुकड़े-टुकड़े कर दो' इत्यादि भयंकर शब्द सुनायी पड़ता था ॥ ९½ ॥

द्रोणस्तु परमक्रुद्धो वायव्यास्त्रेण संयुगे ॥ १० ॥
व्यधमत् तान् महावायुर्मेघानिव दुरत्ययः ।

जैसे दुर्जय महावायु मेघोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए द्रोणाचार्यने वायव्यास्त्रके द्वारा युद्धमें समस्त शत्रुओंको तहस-नहस कर डाला ॥ १०½ ॥

ते हन्यमाना द्रोणेन पञ्चालाः प्राद्रवन् भयात् ॥ ११ ॥
पश्यतो भीमसेनस्य पार्थस्य च महात्मनः ।

द्रोणाचार्यकी मार खाकर भीमसेन और महात्मा अर्जुनके देखते-देखते पाञ्चाल सैनिक भयके मारे भागने लगे ॥

ततः किरीटी भीमश्च सहसा संन्यवर्तताम् ॥ १२ ॥
महता रथवंशेन परिगृह्य बलं महत् ।

तत्पश्चात् अर्जुन और भीमसेन विशाल रथसमूहसे युक्त भारी सेना साथ लेकर सहसा द्रोणाचार्यकी ओर लौट पड़े ॥

बीभत्सुर्दक्षिणं पार्श्वमुत्तरं तु वृकोदरः ॥ १३ ॥
भारद्वाजं शरौघाभ्यां महद्भ्यामभ्यवर्षताम् ।
तौ तथा सृंजयाश्चैव पञ्चालाश्च महौजसः ॥ १४ ॥
अन्वगच्छन् महाराज मत्स्यैश्च सह सोमकैः ।

अर्जुनने द्रोणाचार्यकी सेनापर दक्षिण पार्श्वसे और भीमसेनने बायें पार्श्वसे अपने बाणसमूहोंकी भारी वर्षा प्रारम्भ कर दी । महाराज ! उस समय महातेजस्वी पाञ्चालों, सृंजयों, मत्स्यों तथा सोमकोंने भी उन्हीं दोनोंके मार्गका अनुसरण किया ॥ १३-१४½ ॥



तथैव तव पुत्रस्य रथोदाराः प्रहारिणः ॥ १५ ॥
महत्या सेनया राजन् जग्मुर्द्रोणरथं प्रति ।

राजन् ! इसी प्रकार प्रहार करनेमें कुशल आपके पुत्रके श्रेष्ठ रथी भी विशाल सेनाके साथ द्रोणाचार्यके रथके समीप जा पहुँचे ॥ १५½ ॥

ततः सा भारती सेना हन्यमाना किरीटिना ॥ १६ ॥
तमसा निद्रया चैव पुनरेव व्यदीर्यत ।

उस समय किरीटधारी अर्जुनके द्वारा मारी जाती हुई कौरवी सेना अन्धकार और निद्रा दोनोंसे पीड़ित हो पुनः भागने लगी ॥ १६½ ॥

द्रोणेन वार्यमाणास्ते स्वयं तव सुतेन च ॥ १७ ॥

नाशक्यन्त महाराज योधा वारयितुं तदा ।

महाराज ! द्रोणाचार्यने तथा स्वयं आपके पुत्रने भी उन्हें बहुतेरा रोका, तथापि उस समय आपके सैनिक रोके न जा सके ॥ १७½ ॥

सा पाण्डुपुत्रस्य शरैर्दीर्यमाणा महाचमूः ॥ १८ ॥
तमसा संवृते लोकेऽभ्यद्रवत् सर्वतोमुखी ।

पाण्डुपुत्र अर्जुनके बाणोंसे विदीर्ण होती हुई वह विशाल सेना उस तिमिराच्छन्न जगत्में सब ओर भागने लगी ॥

उत्सृज्य शतशो वाहांस्तत्र केचिन्नराधिपाः ।
प्राद्रवन्त महाराज भयाविष्टाः समन्ततः ॥ १९ ॥

महाराज ! कुछ नरेश, जो सैकड़ोंकी संख्यामें थे, अपने वाहनोंको वहीं छोड़कर भयसे व्याकुल हो सब ओर भाग गये ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके अवसरपर संकुलयुद्धविषयक एक सौ इकसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६१ ॥

द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिद्वारा सोमदत्तका वध, द्रोणाचार्य और युधिष्ठिरका युद्ध तथा भगवान् श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको द्रोणाचार्यसे दूर रहनेका आदेश

संजय उवाच

सोमदत्तं तु सम्प्रेक्ष्य विधुन्वानं महद् धनुः ।
सात्यकिः प्राह यन्तारं सोमदत्ताय मां वह ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! सोमदत्तको अपना विशाल धनुष हिलाते देख सात्यकिने अपने सारथिसे कहा—'मुझे सोमदत्तके पास ले चलो ॥ १ ॥

न ह्यहत्वा रणे शत्रुं सोमदत्तं महाबलम् ।
निवर्तिष्ये रणात् सूत सत्यमेतद् वचो मम ॥ २ ॥

'सूत ! आज मैं रणभूमिमें अपने महाबली शत्रु सोमदत्तका वध किये बिना वहाँसे पीछे नहीं लौटूँगा। मेरी यह बात सत्य है' ॥ २ ॥

ततः सम्प्रैषयद् यन्ता सैन्धवांस्तान् मनोजवान् ।
तुरङ्गमाञ्छङ्खवर्णान् सर्वशब्दातिगान् रणे ॥ ३ ॥

तब सारथिने शङ्खके समान श्वेत वर्णवाले तथा सम्पूर्ण शब्दोंका अतिक्रमण करनेवाले मनके समान वेगशाली सिंधी घोड़ोंको रणभूमिमें आगे बढ़ाया ॥ ३ ॥

तेऽवहन् युयुधानं तु मनोमारुतरंहसः ।
यथेन्द्रं हरयो राजन् पुरा दैत्यवधोद्यतम् ॥ ४ ॥

राजन् ! मन और वायुके समान वेगशाली वे घोड़े युयुधानको उसी प्रकार ले जाने लगे, जैसे पूर्वकालमें दैत्यवधके लिये उद्यत देवराज इन्द्रको उनके घोड़े ले गये थे ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य सात्वतं रभसं रणे ।
सोमदत्तो महाबाहुरसम्भ्रान्तो न्यवर्तत ॥ ५ ॥

वेगशाली सात्यकिको रणभूमिमें अपनी ओर आते देख महाबाहु सोमदत्त बिना किसी घबराहटके उनकी ओर लौट पड़े ॥ ५ ॥

विमुञ्चञ्छरवर्षाणि पर्जन्य इव वृष्टिमान् ।
छादयामास शैनेयं जलदो भास्करं यथा ॥ ६ ॥

वर्षा करनेवाले मेघकी भाँति बाणसमूहोंकी वृष्टि करते हुए सोमदत्तने, जैसे बादल सूर्यको ढक लेता है, उसी प्रकार शिनिपौत्र सात्यकिको आच्छादित कर दिया ॥ ६ ॥

असम्भ्रान्तश्च समरे सात्यकिः कुरुपुङ्गवम् ।
छादयामास बाणौघैः समन्ताद् भरतर्षभ ॥ ७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उस समराङ्गणमें सम्भ्रमरहित सात्यकिने भी अपने बाणसमूहोंद्वारा सब ओरसे कुरुप्रवर सोमदत्तको आच्छादित कर दिया ॥ ७ ॥

सोमदत्तस्तु तं षष्ट्या विव्याधोरसि माधवम् ।
सात्यकिश्चापि तं राजन्नविध्यत् सायकैः शितैः ॥ ८ ॥

राजन् ! फिर सोमदत्तने सात्यकिकी छातीमें साठ बाण मारे और सात्यकिने भी उन्हें तीखे बाणोंसे क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ८ ॥

तावन्योन्यं शरैः कृत्तौ व्यराजेतां नरर्षभौ ।
सुपुष्पौ पुष्पसमये पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ९ ॥

वे दोनों नरश्रेष्ठ एक दूसरेके बाणोंसे घायल होकर वसन्त ऋतुमें सुन्दर पुष्पवाले दो विकसित पलाशवृक्षोंके समान शोभा पा रहे थे ॥ ९ ॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गौ कुरुवृष्णियशस्करौ ।
परस्परमवेक्षेतां दहन्ताविव लोचनैः ॥ १० ॥

कुरुकुल और वृष्णिवंशके यश बढ़ानेवाले उन दोनों वीरोंके सारे अङ्ग खूनसे लथपथ हो रहे थे। वे नेत्रोंद्वारा एक दूसरेको जलाते हुए-से देख रहे थे ॥ १० ॥

रथमण्डलमार्गेषु चरन्तावरिमर्दनौ ।
घोररूपौ हि तावास्तां वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ ॥ ११ ॥

रथ मण्डलके मार्गोंपर विचरते हुए वे दोनों शत्रुमर्दन

वीर वर्षा करनेवाले दो बादलोंके समान भयंकर रूप धारण किये हुए थे ॥ ११ ॥

शरसम्भिन्नगात्रौ तु सर्वतः शकलीकृतौ।
श्वाविधाविव राजेन्द्र दृश्येतां शरविक्षतौ ॥ १२ ॥

राजेन्द्र ! उनके शरीर बाणोंसे क्षत-विक्षत होकर सब ओरसे खण्डित-से हो बाणविद्ध हिंसक पशुओंके समान दिखायी दे रहे थे ॥ १२ ॥

सुवर्णपुङ्खैरिषुभिराचितौ तौ व्यराजताम्।
खद्योतैरावृतौ राजन् प्रावृषीव वनस्पती ॥ १३ ॥

राजन् ! सुवर्णमय पङ्खवाले बाणोंसे व्याप्त होकर वे दोनों योद्धा वर्षाकालमें जुगनुओंसे व्याप्त हुए दो वृक्षोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ १३ ॥

सम्प्रदीपितसर्वाङ्गौ सायकैस्तैर्महारथौ।
अदृश्येतां रणे क्रुद्धावुल्काभिरिव कुञ्जरौ ॥ १४ ॥

उन दोनों महारथियोंके सारे अङ्ग उन बाणोंसे उद्भासित हो रहे थे; इसीलिये वे दोनों, रणक्षेत्रमें उल्काओंसे प्रकाशित एवं क्रोधमें भरे हुए दो हाथियोंके समान दिखायी देते थे ॥ १४ ॥

ततो युधि महाराज सोमदत्तो महारथः।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद माधवस्य महद् धनुः ॥ १५ ॥

महाराज ! तदनन्तर युद्धस्थलमें महारथी सोमदत्तने अर्धचन्द्राकार बाणसे सात्यकिके विशाल धनुषको काट दिया ॥

अथैनं पञ्चविंशत्या सायकानां समार्पयत्।
त्वरमाणस्त्वराकाले पुनश्च दशभिः शरैः ॥ १६ ॥

और तत्काल ही उनपर पचीस बाणोंका प्रहार किया। शीघ्रताके अवसरपर शीघ्रता करनेवाले सोमदत्तने सात्यकिको पुनः दस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ १६ ॥

अथान्यद् धनुरादाय सात्यकिर्वेगवत्तरम्।
पञ्चभिः सायकैस्तूर्णं सोमदत्तमविध्यत ॥ १७ ॥

तदनन्तर सात्यकिने अत्यन्त वेगशाली दूसरा धनुष हाथमें लेकर तुरंत ही पाँच बाणोंसे सोमदत्तको बींध डाला ॥

ततोऽपरेण भल्लेन ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम्।
बाह्लीकस्य रणे राजन् सात्यकिः प्रहसन्निव ॥ १८ ॥

राजन् ! फिर सात्यकिने हँसते हुए-से रणभूमिमें एक दूसरे भल्लके द्वारा बाह्लीकपुत्र सोमदत्तके सुवर्णमय ध्वजको काट दिया ॥ १८ ॥

सोमदत्तस्त्वसम्भ्रान्तो दृष्ट्वा केतुं निपातितम्।
शैनेयं पञ्चविंशत्या सायकानां समाचिनोत् ॥ १९ ॥

ध्वजको गिराया हुआ देख सम्भ्रमरहित सोमदत्तने सात्यकिके शरीरमें पचीस बाण चुन दिये ॥ १९ ॥

सात्वतोऽपि रणे क्रुद्धः सोमदत्तस्य धन्विनः।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन क्षुरप्रेण शितेन ह ॥ २० ॥

तब रणक्षेत्रमें कुपित हुए सात्यकिने भी तीखे क्षुरप्र नामक भल्लसे धनुर्धर सोमदत्तके धनुषको काट दिया ॥ २० ॥

अथैनं रुक्मपुङ्खानां शतेन नतपर्वणाम्।
आचिनोद् बहुधा राजन् भग्नदंष्ट्रमिव द्विपम् ॥ २१ ॥

राजन् ! तत्पश्चात् उन्होंने झुकी हुई गाँठ और सुवर्णमय पंखवाले सौ बाणोंसे टूटे दाँतवाले हाथीके समान सोमदत्तके शरीरको अनेक बार बींध दिया ॥ २१ ॥

अथान्यद् धनुरादाय सोमदत्तो महारथः।
सात्यकिं छादयामास शरवृष्ट्या महाबलः ॥ २२ ॥

इसके बाद महारथी महाबली सोमदत्तने दूसरा धनुष लेकर सात्यकिको बाणोंकी वर्षासे ढक दिया ॥ २२ ॥

सोमदत्तं तु संक्रुद्धो रणे विव्याध सात्यकिः।
सात्यकिं शरजालेन सोमदत्तोऽप्यपीडयत् ॥ २३ ॥

उस युद्धमें क्रुद्ध हुए सात्यकिने सोमदत्तको गहरी चोट पहुँचायी और सोमदत्तने भी अपने बाणसमूहद्वारा सात्यकिको पीड़ित कर दिया ॥ २३ ॥

दशभिः सात्वतस्यार्थे भीमोऽहन् बाह्लिकात्मजम्।
सोमदत्तोऽप्यसम्भ्रान्तो भीममार्च्छच्छितैः शरैः ॥ २४ ॥

उस समय भीमसेनने सात्यकिकी सहायताके लिये सोमदत्तको दस बाण मारे। इससे सोमदत्तको तनिक भी घबराहट नहीं हुई। उन्होंने भी तीखे बाणोंसे भीमसेनको पीड़ित कर दिया ॥ २४ ॥

ततस्तु सात्वतस्यार्थे भीमसेनो नवं दृढम्।
मुमोच परिघं घोरं सोमदत्तस्य वक्षसि ॥ २५ ॥

तत्पश्चात् सात्यकिकी ओरसे भीमसेनने सोमदत्तकी छातीको लक्ष्य करके एक नूतन सुदृढ़ एवं भयंकर परिघ छोड़ा ॥

तमापतन्तं वेगेन परिघं घोरदर्शनम्।
द्विधा चिच्छेद समरे प्रहसन्निव कौरवः ॥ २६ ॥

समराङ्गणमें बड़े वेगसे आते हुए उस भयंकर परिघके कुरुवंशी सोमदत्तने हँसते हुए-से दो टुकड़े कर डाले ॥ २६ ॥

स पपात द्विधाच्छिन्न आयसः परिघो महान्।
महीधरस्येव महच्छिखरं वज्रदारितम् ॥ २७ ॥

लोहेका वह महान् परिघ दो खण्डोंमें विभक्त होकर वज्रसे विदीर्ण किये गये महान् पर्वत-शिखरके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २७ ॥

ततस्तु सात्यकी राजन् सोमदत्तस्य संयुगे।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन हस्तावापं च पञ्चभिः ॥ २८ ॥

राजन् ! तदनन्तर संग्रामभूमिमें सात्यकिने एक भल्लसे सोमदत्तका धनुष काट दिया और पाँच बाणोंसे उनके दस्ताने नष्ट कर दिये ॥ २८ ॥

ततश्चतुर्भिश्च शरैस्तूर्णं तांस्तुरगोत्तमान्।
समीपं प्रेषयामास प्रेतराजस्य भारत ॥ २९ ॥

भारत ! फिर तत्काल ही चार बाणोंसे उन्होंने सोमदत्तके उन उत्तम घोड़ोंको प्रेतराज यमके समीप भेज दिया ॥२९॥

सारथेश्च शिरः कायाद् भल्लेन नतपर्वणा।
जहार नरशार्दूलः प्रहसञ्छिनिपुङ्गवः ॥ ३० ॥

इसके बाद पुरुषसिंह शिनिप्रवर सात्यकिने हँसते हुए झुकी हुई गाँठवाले भल्लसे सोमदत्तके सारथिका सिर धड़से अलग कर दिया ॥ ३० ॥

ततः शरं महाघोरं ज्वलन्तमिव पावकम्।
मुमोच सात्वतो राजन् स्वर्णपुङ्खं शिलाशितम् ॥ ३१ ॥

राजन् ! तत्पश्चात् सात्वतवंशी सात्यकिने प्रज्वलित पावकके समान एक महाभयंकर, सुवर्णमय पंखवाला और शिलापर तेज किया हुआ बाण सोमदत्तपर छोड़ा ॥ ३१ ॥

स विमुक्तो बलवता शैनेयेन शरोत्तमः।
घोरस्तस्योरसि विभो निपपाताशु भारत ॥ ३२ ॥

भरतनन्दन ! प्रभो ! शिनिवंशी बलवान् सात्यकिके द्वारा छोड़ा हुआ वह श्रेष्ठ एवं भयंकर बाण शीघ्र ही सोमदत्तकी छातीपर जा पड़ा ॥ ३२ ॥

सोऽतिविद्धो महाराज सात्वतेन महारथः।
सोमदत्तो महाबाहुर्निपपात ममार च ॥ ३३ ॥

महाराज ! सात्यकिके चलाये हुए उस बाणसे अत्यन्त घायल होकर महारथी महाबाहु सोमदत्त पृथ्वीपर गिरे और मर गये ॥ ३३ ॥

तं दृष्ट्वा निहतं तत्र सोमदत्तं महारथाः।
महता शरवर्षेण युयुधानमुपाद्रवन् ॥ ३४ ॥

सोमदत्तको मारा गया देख आपके बहुसंख्यक महारथी बाणोंकी भारी वृष्टि करते हुए वहाँ सात्यकिपर टूट पड़े ॥३४॥

छाद्यमानं शरैर्दृष्ट्वा युयुधानं युधिष्ठिरः।
पाण्डवाश्च महाराज सह सर्वैः प्रभद्रकैः।
महत्या सेनया सार्धं द्रोणानीकमुपाद्रवन् ॥ ३५ ॥

महाराज ! उस समय सात्यकिको बाणोंद्वारा आच्छादित होते देख युधिष्ठिर तथा अन्य पाण्डवोंने समस्त प्रभद्रकों-सहित विशाल सेनाके साथ द्रोणाचार्यकी सेनापर धावा किया ॥ ३५ ॥

ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धस्तावकानां महाबलम्।
शरैर्विद्रावयामास भारद्वाजस्य पश्यतः ॥ ३६ ॥

तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए राजा युधिष्ठिरने अपने बाणोंकी मारसे आपकी विशाल वाहिनीको द्रोणाचार्यके देखते-देखते खदेड़ना आरम्भ किया ॥ ३६ ॥

सैन्यानि द्रावयन्तं तु द्रोणो दृष्ट्वा युधिष्ठिरम्।
अभिदुद्राव वेगेन क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ३७ ॥

द्रोणाचार्यने देखा कि युधिष्ठिर मेरे सैनिकोंको खदेड़ रहे हैं, तब वे क्रोधसे लाल आँखें करके बड़े वेगसे उनकी ओर दौड़े ॥ ३७ ॥

ततः सुनिशितैर्बाणैः पार्थं विव्याध सप्तभिः।
युधिष्ठिरोऽपि संक्रुद्धः प्रतिविव्याध पञ्चभिः ॥ ३८ ॥

फिर उन्होंने सात तीखे बाणोंसे कुन्तीकुमार युधिष्ठिरको घायल कर दिया। अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए युधिष्ठिरने भी उन्हें पाँच बाणोंसे बींधकर बदला चुकाया ॥ ३८ ॥

सोऽतिविद्धो महाबाहुः सृक्किणी परिसंलिहन्।
युधिष्ठिरस्य चिच्छेद ध्वजं कार्मुकमेव च ॥ ३९ ॥
स च्छिन्नधन्वा त्वरितस्त्वराकाले नृपोत्तमः।
अन्यदादत्त वेगेन कार्मुकं समरे दृढम् ॥ ४० ॥

तब अत्यन्त घायल हुए महाबाहु द्रोणाचार्य अपने दोनों गलफर चाटने लगे। उन्होंने युधिष्ठिरके ध्वज और धनुषको भी काट दिया। शीघ्रताके समय शीघ्रता करनेवाले नृपश्रेष्ठ युधिष्ठिरने समराङ्गणमें धनुष कट जानेपर दूसरे सुदृढ़ धनुषको वेगपूर्वक हाथमें ले लिया ॥ ३९-४० ॥

ततः शरसहस्रेण द्रोणं विव्याध पार्थिवः।
साश्वसूतध्वजरथं तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४१ ॥

फिर सहस्रों बाणोंकी वर्षा करके राजाने घोड़े, सारथि, रथ और ध्वजसहित द्रोणाचार्यको बींध डाला। वह अद्भुत-सा कार्य हुआ ॥ ४१ ॥

ततो मुहूर्तं व्यथितः शरपातप्रपीडितः।
निषसाद रथोपस्थे द्रोणो भरतसत्तम ॥ ४२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उन बाणोंके आघातसे अत्यन्त पीड़ित एवं व्यथित होकर द्रोणाचार्य दो घड़ीतक रथके पिछले भागमें बैठे रहे ॥ ४२ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां मुहूर्ताद् द्विजसत्तमः।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो वायव्यास्त्रमवासृजत् ॥ ४३ ॥

तत्पश्चात् सचेत होनेपर द्विजश्रेष्ठ द्रोणने महान् क्रोधमें भरकर वायव्यास्त्रका प्रयोग किया ॥ ४३ ॥

असम्भ्रान्तस्ततः पार्थो धनुराकृष्य वीर्यवान्।
ततस्तदस्त्रमस्त्रेण स्तम्भयामास भारत ॥ ४४ ॥

भरतनन्दन ! तदनन्तर पराक्रमी युधिष्ठिरने सम्भ्रम-रहित हो धनुष खींचकर उनके उस अस्त्रको अपने दिव्यास्त्र-द्वारा कुण्ठित कर दिया ॥ ४४ ॥

चिच्छेद च धनुर्दीर्घं ब्राह्मणस्य च पाण्डवः।
ततोऽन्यद् धनुरादत्त द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ४५ ॥
तदप्यस्य शितैर्भल्लैश्चिच्छेद कुरुपुङ्गवः।

इतना ही नहीं, उन पाण्डुकुमारने विप्रवर द्रोणाचार्यके विशाल धनुषको भी काट दिया। फिर क्षत्रियोंका मान मर्दन करनेवाले द्रोणाचार्यने दूसरा धनुष हाथमें लिया। परंतु कुरुप्रवर युधिष्ठिरने अपने तीखे भल्लोंसे उसको भी काट दिया ॥ ४५½ ॥

ततोऽब्रवीद् वासुदेवः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ४६ ॥
युधिष्ठिर महाबाहो यत्त्वां वक्ष्यामि तच्छृणु।
उपारमस्व युद्धे त्वं द्रोणाद् भरतसत्तम ॥ ४७ ॥

तदनन्तर वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरसे कहा—'महाबाहु युधिष्ठिर! मैं तुमसे जो कह रहा हूँ, उसे सुनो। भरतश्रेष्ठ! तुम युद्धमें द्रोणाचार्यसे अलग रहो ॥ ४६-४७ ॥

यतते हि सदा द्रोणो ग्रहणे तव संयुगे।
नानुरूपमहं मन्ये युद्धमस्य त्वया सह ॥ ४८ ॥

'क्योंकि द्रोणाचार्य युद्धस्थलमें सदा तुम्हें कैद करनेके प्रयत्नमें रहते हैं; अतः तुम्हारे साथ इनका युद्ध होना मैं उचित नहीं मानता ॥ ४८ ॥

योऽस्य सृष्टो विनाशाय स एवैनं हनिष्यति।
परिवर्ज्य गुरुं याहि यत्र राजा सुयोधनः ॥ ४९ ॥

'जो इनके विनाशके लिये उत्पन्न हुआ है, वही इन्हें मारेगा। तुम अपने गुरुदेवको छोड़कर जहाँ राजा दुर्योधन हैं, वहाँ जाओ ॥ ४९ ॥

राजा राज्ञा हि योद्धव्यो नाराज्ञा युद्धमिष्यते।
तत्र त्वं गच्छ कौन्तेय हस्त्यश्वरथसंवृतः ॥ ५० ॥

'क्योंकि राजाको राजाके ही साथ युद्ध करना चाहिये। जो राजा नहीं है, उसके साथ उसका युद्ध अभीष्ट नहीं है। अतः कुन्तीनन्दन! तुम हाथी, घोड़े और रथोंकी सेनासे घिरे रहकर वहीं जाओ ॥ ५० ॥

यावन्मात्रेण च मया सहायेन धनंजयः।
भीमश्च रथशार्दूलो युध्यते कौरवैः सह ॥ ५१ ॥

'तबतक मेरे साथ रहकर अर्जुन तथा रथियोंमें सिंहके समान पराक्रमी भीमसेन कौरवोंके साथ युद्ध करते हैं' ॥ ५१ ॥

वासुदेववचः श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः।
मुहूर्तं चिन्तयित्वा तु ततो दारुणमाहवम् ॥ ५२ ॥
प्रायाद् द्रुतममित्रघ्नो यत्र भीमो व्यवस्थितः।
विनिघ्नंस्तावकान् योधान् व्यादितास्य इवान्तकः ॥ ५३ ॥

भगवान् श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने दो घड़ीतक उस दारुण युद्धके विषयमें सोचा। फिर वे तुरंत वहाँ चले गये, जहाँ शत्रुओंका संहार करनेवाले भीमसेन आपके योद्धाओंका वध करते हुए मुँह फैलाये यमराजके समान खड़े थे ॥ ५२-५३ ॥

रथघोषेण महता नादयन् वसुधातलम्।
पर्जन्य इव घर्मान्ते नादयन् वै दिशो दश ॥ ५४ ॥
भीमस्य निघ्नतः शत्रून् पार्ष्णिं जग्राह पाण्डवः।
द्रोणोऽपि पाण्डुपञ्चालान् व्यधमद् रजनीमुखे ॥ ५५ ॥

पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर अपने रथकी भारी घर्घराहटसे भूतलको उसी प्रकार प्रतिध्वनित कर रहे थे, जैसे वर्षाकालमें गर्जना करता हुआ मेघ दसों दिशाओंको गुँजा देता है। उन्होंने शत्रुओंका संहार करनेवाले भीमसेनके पार्श्वभागकी रक्षाका भार ले लिया। उधर द्रोणाचार्य भी रात्रिके समय पाण्डव तथा पाञ्चाल सैनिकोंका संहार करने लगे ॥ ५४-५५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धविषयक एक सौ बासठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६२ ॥

त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

कौरवों और पाण्डवोंकी सेनाओंमें प्रदीपों (मशालों) का प्रकाश

संजय उवाच

वर्तमाने तथा युद्धे घोररूपे भयावहे।
तमसा संवृते लोके रजसा च महीपते ॥ १ ॥
नापश्यन्त रणे योधाः परस्परमवस्थिताः।
अनुमानेन संज्ञाभिर्युद्धं तद् ववृधे महत् ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! जिस समय वह भयंकर घोर युद्ध चल रहा था, उस समय सम्पूर्ण जगत् अन्धकार और धूलसे आच्छादित था; इसीलिये रणभूमिमें खड़े हुए योद्धा एक दूसरेको देख नहीं पाते थे। वह महान् युद्ध अनुमानसे तथा नाम या संकेतोंद्वारा चलता हुआ उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था ॥ १-२ ॥

नरनागाश्वमथनं परमं लोमहर्षणम्।
द्रोणकर्णकृपा वीरा भीमपार्षतसात्यकाः ॥ ३ ॥
अन्योन्यं क्षोभयामासुः सैन्यानि नृपसत्तम।

उस समय अत्यन्त रोमाञ्चकारी युद्ध हो रहा था। उसमें मनुष्य, हाथी और घोड़े मथे जा रहे थे। एक ओरसे द्रोण, कर्ण और कृपाचार्य ये तीन वीर युद्ध करते थे तथा दूसरी ओरसे भीमसेन, धृष्टद्युम्न एवं सात्यकि सामना कर रहे थे। नृपश्रेष्ठ! ये एक दूसरेकी सेनाओंमें हलचल मचाये हुए थे ॥ ३½ ॥

वध्यमानानि सैन्यानि समन्तात् तैर्महारथैः ॥ ४ ॥
तमसा संवृते चैव समन्ताद् विप्रदुद्रुवुः।

उन महारथियोंद्वारा उस अन्धकाराच्छन्न प्रदेशमें सब ओरसे मारी जाती हुई सेनाएँ चारों ओर भागने लगीं ॥४½॥

ते सर्वतो विद्रवन्तो योधा विध्वस्तचेतनाः ॥ ५ ॥
अहन्यन्त महाराज धावमानाश्च संयुगे ।

महाराज ! वे योद्धा अचेत होकर सब ओर भागते थे और भागते हुए ही उस युद्धस्थलमें मारे जाते थे ॥ ५½ ॥

महारथसहस्राणि जघ्नुरन्योन्यमाहवे ॥ ६ ॥
अन्धे तमसि मूढानि पुत्रस्य तव मन्त्रिते ।

आपके पुत्र दुर्योधनकी सलाहसे होनेवाले उस युद्धके भीतर प्रगाढ़ अन्धकारमें किंकर्तव्यविमूढ़ हुए सहस्रों महारथियोंने एक दूसरेको मार डाला ॥ ६½ ॥

ततः सर्वाणि सैन्यानि सेनागोपाश्च भारत ।
व्यमुह्यन्त रणे तत्र तमसा संवृते सति ॥ ७ ॥

भरतनन्दन ! तदनन्तर उस रणभूमिके तिमिराच्छन्न हो जानेपर समस्त सेनाएँ और सेनापति मोहित हो गये॥७॥

धृतराष्ट्र उवाच

तेषां संलोड्यमानानां पाण्डवैर्विहतौजसाम् ।
अन्धे तमसि मग्नानामासीत् किं वो मनस्तदा ॥ ८ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! जिस समय तुम सब लोग अन्धकारमें डूबे हुए थे और पाण्डव तुम्हारे बल और पराक्रमको नष्ट करके तुम्हें मथे डालते थे, उस समय तुम्हारे और उन पाण्डवोंके मनकी कैसी अवस्था थी ? ॥ ८ ॥

कथं प्रकाशस्तेषां वा मम सैन्यस्य वा पुनः ।
बभूव लोके तमसा तथा संजय संवृते ॥ ९ ॥

संजय ! जब कि सारा जगत् अन्धकारसे आवृत था, उस समय पाण्डवोंको अथवा मेरी सेनाको कैसे प्रकाश प्राप्त हुआ ॥ ९ ॥

संजय उवाच

ततः सर्वाणि सैन्यानि हतशिष्टानि यानि वै ।
सेनागोप्तनथादिश्य पुनर्व्यूहमकल्पयत् ॥ १० ॥

संजयने कहा—राजन् ! तदनन्तर जितनी सेनाएँ मरनेसे बची हुई थीं, उन सबको तथा सेनापतियोंको आदेश देकर दुर्योधनने उनका पुनः व्यूह-निर्माण करवाया ॥१०॥

द्रोणः पुरस्ताज्जघने तु शल्य-
स्तथा द्रौणिः पार्श्वतः सौबलश्च ।
स्वयं तु सर्वाणि बलानि राजन्
राजाभ्ययाद् गोपयन् वै निशायाम्॥ ११ ॥

राजन् ! उस व्यूहके अग्रभागमें द्रोणाचार्य, मध्यभागमें शल्य तथा पार्श्वभागमें अश्वत्थामा और शकुनि थे । स्वयं राजा दुर्योधन उस रात्रिके समय सम्पूर्ण सेनाओंकी रक्षा करता हुआ युद्धके लिये आगे बढ़ रहा था ॥ ११ ॥

उवाच सर्वांश्च पदातिसङ्घान्
दुर्योधनः पार्थिव सान्त्वपूर्वम् ।
उत्सृज्य सर्वे परमायुधानि
गृह्णीत हस्तैर्ज्वलितान् प्रदीपान्॥ १२ ॥

पृथ्वीनाथ ! उस समय दुर्योधनने समस्त पैदल सैनिकोंसे सान्त्वनापूर्ण वचनोंमें कहा—'वीरो ! तुम सब लोग उत्तम आयुध छोड़कर अपने हाथोंमें जलती हुई मशालें ले लो' ॥ १२ ॥

ते चोदिताः पार्थिवसत्तमेन
ततः प्रहृष्टा जगृहुः प्रदीपान् ।
देवर्षिगन्धर्वसुरर्षिसङ्घा
विद्याधराश्चाप्सरसां गणाश्च ॥ १३ ॥
नागाः सयक्षोरगकिंनराश्च
हृष्टा दिविस्था जगृहुः प्रदीपान् ।

नृपश्रेष्ठ दुर्योधनकी आज्ञा पाकर उन पैदल सिपाहियोंने बड़े हर्षके साथ हाथोंमें मशालें ले लीं । आकाशमें खड़े हुए देवता, ऋषि, गन्धर्व, देवर्षि, विद्याधर, अप्सराओंके समूह, नाग, यक्ष, सर्प और किंनर आदिने भी प्रसन्न होकर हाथोंमें प्रदीप ले लिये ॥ १३½ ॥

दिग्दैवतेभ्यश्च समापतन्तो-
ऽदृश्यन्त दीपाः ससुगन्धितैलाः ॥ १४ ॥
विशेषतो नारदपर्वताभ्यां
सम्बोध्यमानाः कुरुपाण्डवार्थम् ।

दिशाओंकी अधिष्ठात्री देवियोंके यहाँसे भी सुगन्धित तैलसे भरे हुए दीप वहाँ उतरते दिखायी दिये । विशेषतः नारद और पर्वत नामक मुनियोंने कौरव और पाण्डवोंकी सुविधाके लिये वे दीप जलाये थे ॥ १४½ ॥

सा भूय एव ध्वजिनी विभक्ता
व्यरोचताग्निप्रभया निशायाम् ॥ १५ ॥
महाधनैराभरणैश्च दिव्यैः
शस्त्रैश्च दीप्तैरपि सम्पतद्भिः ।

रातके समय अग्निकी प्रभासे वह सेना पुनः विभागपूर्वक प्रकाशित हो उठी । बहुमूल्य आभूषणों तथा सैनिकोंपर गिरनेवाले दीप्तिमान् दिव्यास्त्रोंसे भी वह सेना बड़ी शोभा पा रही थी ॥ १५½ ॥

रथे रथे पञ्च विदीपकास्तु
प्रदीपकास्तत्र गजे त्रयश्च ॥ १६ ॥
प्रत्यश्वमेकश्च महाप्रदीपः
कृतास्तु तैः पाण्डवैः कौरवेयैः ।
क्षणेन सर्वे विहिताः प्रदीपा
व्यादीपयन्तो ध्वजिनीं तवाशु ॥ १७ ॥

एक-एक रथके पास पाँच-पाँच मशालें थीं । प्रत्येक हाथीके साथ तीन-तीन प्रदीप जलते थे । प्रत्येक घोड़ेके साथ एक महाप्रदीपकी व्यवस्था की गयी थी । पाण्डवों तथा कौरवोंके द्वारा इस प्रकार व्यवस्थापूर्वक जलाये गये समस्त प्रदीप क्षणभरमें आपकी सारी सेनाको प्रकाशित करने लगे ॥ १६-१७ ॥

सर्वास्तु सेना व्यतिसेव्यमानाः
पदातिभिः पावकतैलहस्तैः ।
प्रकाश्यमाना ददृशुर्निशायां
यथान्तरिक्षे जलदास्तडिद्भिः ॥ १८ ॥

सब लोगोंने देखा कि मशाल और तेल हाथमें लिये पैदल सैनिकोंद्वारा सेवित सारी सेनाएँ रात्रिके समय उसी प्रकार प्रकाशित हो उठी हैं,जैसे आकाशमें बादल बिजलियोंके प्रकाशसे प्रकाशित हो उठते हैं ॥१८ ॥

प्रकाशितायां तु ततो ध्वजिन्यां
द्रोणोऽग्निकल्पः प्रतपन् समन्तात् ।
रराज राजेन्द्र सुवर्णवर्मा
मध्यं गतः सूर्य इवांशुमाली ॥ १९ ॥

राजेन्द्र ! सारी सेनामें प्रकाश फैल जानेपर अग्निके समान प्रतापी द्रोणाचार्य सुवर्णमय कवच धारण करके दोपहरके सूर्यकी भाँति सब ओर देदीप्यमान होने लगे ॥१९॥

जाम्बूनदेष्वाभरणेषु चैव
निष्केषु शुद्धेषु शरासनेषु ।
पीतेषु शस्त्रेषु च पावकस्य
प्रतिप्रभास्तत्र तदा बभूवुः ॥ २० ॥

उस समय सोनेके आभूषणों, शुद्ध निष्कों, धनुषों तथा चमकीले शस्त्रोंमें वहाँ उन मशालोंकी आगके प्रतिबिम्ब पड़ रहे थे ॥ २० ॥

गदाश्च शैक्याः परिघाश्च शुभ्रा
रथेषु शक्त्यश्च विवर्तमानाः ।
प्रतिप्रभारश्मिभिराजमीढ
पुनः पुनः संजनयन्ति दीपान् ॥ २१ ॥

अजमीढकुलनन्दन ! वहाँ जो गदाएँ, शैक्य, चमकीले परिघ तथा रथ-शक्तियाँ घुमायी जा रही थीं, उनमें जो उन मशालोंकी प्रभाएँ प्रतिबिम्बित होती थीं, वे मानो पुनः-पुनः बहुत-से नूतन प्रदीप प्रकट करती थीं ॥ २१ ॥

छत्राणि बालव्यजनानि खड्गा
दीप्ता महोल्काश्च तथैव राजन् ।
व्याघूर्णमानाश्च सुवर्णमाला
व्यायच्छतां तत्र तदा विरेजुः ॥ २२ ॥

राजन् ! छत्र, चँवर, खड्ग, प्रज्वलित विशाल उल्काएँ तथा वहाँ युद्ध करते हुए वीरोंकी हिलती हुई सुवर्णमालाएँ उस समय प्रदीपोंके प्रकाशसे बड़ी शोभा पा रही थीं ॥२२॥

शस्त्रप्रभाभिश्च विराजमानं
दीपप्रभाभिश्च तदा बलं तत् ।
प्रकाशितं चाभरणप्रभाभि-
र्भृशं प्रकाशं नृपते बभूव ॥ २३ ॥

नरेश्वर ! उस समय चमकीले अस्त्रों, प्रदीपों तथा आभूषणोंकी प्रभाओंसे प्रकाशित एवं सुशोभित आपकी सेना अत्यन्त प्रकाशसे उद्भासित होने लगी ॥ २३ ॥

पीतानि शस्त्राण्यसृगुक्षितानि
वीरावधूतानि तनुच्छदानि ।
दीप्तां प्रभां प्राजनयन्त तत्र
तपात्यये विद्युदिवान्तरिक्षे ॥ २४ ॥

पानीदार एवं खूनसे रँगे हुए शस्त्र तथा वीरोंद्वारा कँपाये हुए कवच वहाँ प्रदीपोंके प्रतिबिम्ब ग्रहण करके वर्षाकालके आकाशमें चमकनेवाली बिजलीकी भाँति अत्यन्त उज्ज्वल प्रभा बिखेर रहे थे ॥ २४ ॥

प्रकम्पितानामभिघातवेगै-
रभिघ्नतां चापततां जवेन ।
वक्त्राण्यकाशन्त तदा नराणां
वाय्वीरितानीव महाम्बुजानि ॥ २५ ॥

आघातके वेगसे कम्पित, आघात करनेवाले तथा वेगपूर्वक शत्रुकी ओर झपटनेवाले वीर मनुष्योंके मुख-मण्डल उस समय वायुसे हिलाये हुए बड़े-बड़े कमलोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ २५ ॥

महावने दारुमये प्रदीप्ते
यथा प्रभा भास्करस्यापि नश्येत् ।
तथा तदाऽऽसीद् ध्वजिनी प्रदीप्ता
महाभया भारत भीमरूपा ॥ २६ ॥

भरतनन्दन ! जैसे सूखे काठके विशाल वनमें आग लग जानेपर वहाँ सूर्यकी भी प्रभा फीकी पड़ जाती है, उसी प्रकार उस समय अधिक प्रकाशसे प्रज्वलित होती हुई-सी आपकी भयानक सेना महान् भय उत्पन्न करनेवाली प्रतीत होती थी ॥ २६ ॥

तत् सम्प्रदीप्तं बलमस्मदीयं
निशम्य पार्थास्त्वरितास्तथैव ।
सर्वेषु सैन्येषु पदातिसंघा-
नचोदयंस्तेऽपि चक्रुः प्रदीपान् ॥ २७ ॥

हमारी सेनाको मशालोंके प्रकाशसे प्रकाशित देख कुन्ती-के पुत्रोंने भी तुरंत ही सारी सेनाके पैदल सैनिकोंको मशाल जलानेकी आज्ञा दी, अतः उन्होंने भी मशालें जला लीं॥२७॥

गजे गजे सप्त कृताः प्रदीपा
रथे रथे चैव दश प्रदीपाः।
द्वावश्वपृष्ठे परिपार्श्वतोऽन्ये
ध्वजेषु चान्ये जघनेषु चान्ये ॥ २८ ॥

उनके एक-एक हाथीके लिये सात-सात और एक-एक रथके लिये दस-दस प्रदीपोंकी व्यवस्था की गयी। घोड़ोंके पृष्ठभागमें दो प्रदीप थे। अगल-बगलमें, ध्वजाओंके समीप तथा रथके पिछले भागोंमें अन्यान्य दीपकोंकी व्यवस्था की गयी थी ॥ २८ ॥

सेनासु सर्वासु च पार्श्वतोऽन्ये
पश्चात् पुरस्ताच्च समन्ततश्च।
मध्ये तथान्ये ज्वलिताग्निहस्ता
व्यदीपयन् पाण्डुसुतस्य सेनाम् ॥ २९ ॥

सारी सेनाओंके पार्श्वभागमें, आगे, पीछे, बीचमें एवं चारों ओर भिन्न-भिन्न सैनिक जलती हुई मशालें हाथमें लेकर पाण्डुपुत्रकी सेनाको प्रकाशित करने लगे ॥ २९ ॥

मध्ये तथान्ये ज्वलिताग्निहस्ताः
सेनाद्वयेऽपि स्म नरा विचेरुः।
सर्वेषु सैन्येषु पदातिसङ्घा
विमिश्रिता हस्तिरथाश्ववृन्दैः ॥ ३० ॥
व्यदीपयंस्ते ध्वजिनीं प्रदीप्तां
तथा बलं पाण्डवेयाभिगुप्तम्।

दोनों ही सेनाओंके अन्यान्य पैदल सैनिक हाथोंमें प्रदीप धारण किये दोनों ही सेनाओंके भीतर विचरण करने लगे। सारी सेनाओंके पैदल-समूह हाथी, रथ और अश्व-समूहोंके साथ मिलकर आपकी सेनाको तथा पाण्डवोंद्वारा सुरक्षित वाहिनीको भी अत्यन्त प्रकाशित करने लगे ॥ ३०½ ॥

तेन प्रदीप्तेन तथा प्रदीप्तं
बलं तवासीद् बलवद् बलेन ॥ ३१ ॥
भाः कुर्वता भानुमता ग्रहेण
दिवाकरेणाग्निरिवाभिगुप्तः।

जैसे किरणोंद्वारा सुशोभित और अपनी प्रभा बिखेरनेवाले सूर्यग्रहके द्वारा सुरक्षित अग्निदेव और भी प्रकाशित हो उठते हैं, उसी प्रकार प्रदीपोंकी प्रभासे अत्यन्त प्रकाशित होनेवाले उस पाण्डव सैन्यके द्वारा आपकी सेनाका प्रकाश और भी बढ़ गया ॥ ३१½ ॥

तयोः प्रभाः पृथिवीमन्तरिक्षं
सर्वा व्यतिक्रम्य दिशश्च वृद्धाः ॥ ३२ ॥
तेन प्रकाशेन भृशं प्रकाशं
बभूव तेषां तव चैव सैन्यम्।

उन दोनों सेनाओंका बढ़ा हुआ प्रकाश पृथ्वी, आकाश तथा सम्पूर्ण दिशाओंको लाँघकर चारों ओर फैल गया। प्रदीपोंके उस प्रकाशसे आपकी तथा पाण्डवोंकी सेना भी अधिक प्रकाशित हो उठी थी ॥ ३२½ ॥

तेन प्रकाशेन दिवं गतेन
सम्बोधिता देवगणाश्च राजन् ॥ ३३ ॥
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघाः
समागमन्नप्सरसश्च सर्वाः।

राजन्! स्वर्गलोकतक फैले हुए उस प्रकाशसे उद्बोधित होकर देवता, गन्धर्व, यक्ष, असुर और सिद्धोंके समुदाय तथा सम्पूर्ण अप्सराएँ भी युद्ध देखनेके लिये वहाँ आ पहुँचीं ॥ ३३½ ॥

तद् देवगन्धर्वसमाकुलं च
यक्षासुरेन्द्राप्सरसां गणैश्च ॥ ३४ ॥
हतैश्च शूरैर्दिवमारुहद्भि-
रायोधनं दिव्यकल्पं बभूव।

देवताओं, गन्धर्वों, यक्षों, असुरेन्द्रों और अप्सराओंके समुदायसे भरा हुआ वह युद्धस्थल वहाँ मारे जाकर स्वर्गलोक-पर अरूढ़ होनेवाले शूरवीरोंके द्वारा दिव्यलोक-सा जान पड़ता था ॥ ३४½ ॥

रथाश्वनागाकुलदीपदीप्तं
संरब्धयोधं हतविद्रुताश्वम् ॥ ३५ ॥
महद् बलं व्यूढरथाश्वनागं
सुरासुरव्यूहसमं बभूव।

रथ, घोड़े और हाथियोंसे परिपूर्ण, प्रदीपोंकी प्रभासे प्रकाशित, रोषमें भरे हुए योद्धाओंसे युक्त, घायल होकर भागनेवाले घोड़ोंसे उपलक्षित तथा व्यूहबद्ध रथ, घोड़े एवं हाथियोंसे सम्पन्न दोनों पक्षोंका वह महान् सैन्यसमूह देवताओं और असुरोंके सैन्यव्यूहके समान जान पड़ता था ॥ ३५½ ॥

तच्छक्तिसंघाकुलचण्डवातं
महारथाभ्रं गजवाजिघोषम् ॥ ३६ ॥
शस्त्रौघवर्षं रुधिराम्बुधारं
निशि प्रवृत्तं रणदुर्दिनं तत्।

रातमें होनेवाला वह युद्ध मेघोंकी घटासे आच्छादित दिनके समान प्रतीत होता था। उस समय शक्तियोंका समूह प्रचण्डवायुके समान चल रहा था। विशाल रथ मेघसमूहके समान दिखायी देते थे। हाथियों और घोड़ोंके हींसने और चिग्घाड़नेका शब्द ही मानो मेघोंका गम्भीर गर्जन था। अस्त्रसमूहोंकी वर्षा ही जलकी वृष्टि थी तथा रक्तकी धारा ही जलधाराके समान जान पड़ती थी ॥ ३६½ ॥

तस्मिन् महाग्निप्रतिमो महात्मा
संतापयन् पाण्डवान् विप्रमुख्यः॥ ३७ ॥
गभस्तिभिर्मध्यगतो यथार्को
वर्षात्यये तद्वदभून्नरेन्द्र ॥ ३८ ॥

नरेन्द्र ! जैसे शरत्कालमें मध्याह्नका सूर्य अपनी प्रखर किरणोंसे भारी संताप देता है, उसी प्रकार उस युद्धस्थलमें महान् अग्निके समान तेजस्वी महामना विप्रवर द्रोणाचार्य पाण्डवोंके लिये संतापकारी हो रहे थे ॥ ३७-३८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दीपोद्योतने त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके अवसरपर प्रदीपोंका प्रकाशविषयक एक सौ तिरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६३ ॥

चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

दोनों सेनाओंका घमासान युद्ध और दुर्योधनका द्रोणाचार्यकी रक्षाके लिये सैनिकोंको आदेश

संजय उवाच

प्रकाशिते तदा लोके रजसा तमसाऽऽवृते ।
समाजग्मुरथो वीराः परस्परवधैषिणः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! उस समय धूल और अन्धकारसे ढकी हुई रणभूमिमें इस प्रकार उजेला होनेपर एक दूसरेके वधकी इच्छावाले वीर सैनिक आपसमें भिड़ गये॥

ते समेत्य रणे राजञ्छस्त्रप्रासासिधारिणः ।
परस्परमुदैक्षन्त परस्परकृतागसः ॥ २ ॥

महाराज ! समराङ्गणमें परस्पर भिड़कर वे नाना प्रकारके शस्त्र, प्रास और खड्ग आदि धारण करनेवाले योद्धा, जो परस्पर अपराधी थे, एक दूसरेकी ओर देखने लगे ॥ २ ॥

प्रदीपानां सहस्रैश्च दीप्यमानैः समन्ततः ।
रत्नाचितैः स्वर्णदण्डैर्गन्धतैलावसिञ्चितैः ॥ ३ ॥

चारों ओर हजारों मशालें जल रही थीं । उनके डंडे सोनेके बने हुए थे और उनमें रत्न जड़े हुए थे । उन मशालोंपर सुगन्धित तेल डाला जाता था ॥ ३ ॥

देवगन्धर्वदीपाद्यैः प्रभाभिरधिकोज्ज्वलैः ।
विरराज तदा भूमिर्ग्रहैर्द्यौरिव भारत ॥ ४ ॥

भारत ! उन्हींमें देवताओं और गन्धर्वोंके भी दीप आदि जल रहे थे, जो अपनी विशेष प्रभाके कारण अधिक प्रकाशित हो रहे थे । उनके द्वारा उस समय रणभूमि नक्षत्रोंसे आकाशकी भाँति सुशोभित हो रही थी ॥ ४ ॥

उल्काशतैः प्रज्वलितै रणभूमिर्व्यराजत ।
दह्यमानेव लोकानामभावे च वसुंधरा ॥ ५ ॥

सैकड़ों प्रज्वलित उल्काओं (मशालों) से वह रणभूमि ऐसी शोभा पा रही थी, मानो प्रलयकालमें यह सारी पृथ्वी दग्ध हो रही हो ॥ ५ ॥

प्रदीप्यन्त दिशः सर्वाः प्रदीपैस्तैः समन्ततः ।
वर्षाप्रदोषे खद्योतैर्वृता वृक्षा इवाबभुः ॥ ६ ॥

उन प्रदीपोंसे सब ओर सारी दिशाएँ ऐसी प्रदीप्त हो उठीं, मानो वर्षाके सायंकालमें जुगनुओंसे घिरे हुए वृक्ष जगमगा रहे हों ॥ ६ ॥

असज्जन्त ततो वीरा वीरैरेव पृथक् पृथक् ।
नागा नागैः समाजग्मुस्तुरगा हयसादिभिः ॥ ७ ॥

उस समय वीरगण विपक्षी वीरोंके साथ पृथक्-पृथक् भिड़ गये । हाथी हाथियोंके और घुड़सवार घुड़सवारोंके साथ जूझने लगे ॥ ७ ॥

रथा रथवरैरेव समाजग्मुर्मुदा युताः ।
तस्मिन् रात्रिमुखे घोरे तव पुत्रस्य शासनात् ॥ ८ ॥
चतुरङ्गस्य सैन्यस्य सम्पातश्च महानभूत् ।

इसी प्रकार रथी श्रेष्ठ रथियोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक युद्ध करने लगे । उस भयंकर प्रदोषकालमें आपके पुत्रकी आज्ञासे वहाँ चतुरंगिणी सेनामें भारी मारकाट मच गयी ॥ ८½ ॥

ततोऽर्जुनो महाराज कौरवाणामनीकिनीम् ॥ ९ ॥
व्यधमत् त्वरया युक्तः क्षपयन् सर्वपार्थिवान् ।

महाराज ! तदनन्तर अर्जुन बड़ी उतावलीके साथ समस्त राजाओंका संहार करते हुए कौरव-सेनाका विनाश करने लगे ॥ ९½ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

तस्मिन् प्रविष्टे संरब्धे मम पुत्रस्य वाहिनीम् ॥ १० ॥
अमृष्यमाणे दुर्धर्षे कथमासीन्मनो हि वः ।

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! क्रोध और अमर्षमें भरे हुए दुर्धर्ष वीर अर्जुन जब मेरे पुत्रकी सेनामें प्रविष्ट हुए, उस समय तुमलोगोंके मनकी कैसी अवस्था हुई ? ॥१०½॥

किमकुर्वत सैन्यानि प्रविष्टे परपीडने ॥ ११ ॥
दुर्योधनश्च किं कृत्यं प्राप्तकालममन्यत ।

शत्रुओंको पीड़ा देनेवाले अर्जुनके प्रवेश करनेपर मेरी सेनाओंने क्या किया ? तथा दुर्योधनने उस समयके अनुरूप कौन-सा कार्य उचित माना ? ॥ ११½ ॥

के चैनं समरे वीरं प्रत्युद्ययुररिंदमाः ॥ १२ ॥
द्रोणं च के व्यरक्षन्त प्रविष्टे श्वेतवाहने ।

समराङ्गणमें शत्रुओंका दमन करनेवाले कौन-कौन-से योद्धा वीर अर्जुनका सामना करनेके लिये आगे बढ़े । श्वेतवाहन अर्जुनके कौरवसेनाके भीतर घुस आनेपर किन लोगोंने द्रोणाचार्यकी रक्षा की ॥ १२½ ॥

केऽरक्षन् दक्षिणं चक्रं के च द्रोणस्य सव्यतः ॥ १३ ॥
के पृष्ठतश्चाप्यभवन् वीरा वीरान् विनिघ्नतः ।
के पुरस्तादगच्छन्त निघ्नन्तः शात्रवान् रणे ॥ १४ ॥

कौन-कौन-से योद्धा द्रोणाचार्यके रथके दाहिने पहियेकी रक्षा करते थे और कौन-कौन-से बायें पहियेकी ? कौन-कौन-से वीर वीरोंका वध करनेवाले द्रोणाचार्यके पृष्ठभागके रक्षक थे और रणमें शत्रुसैनिकोंका संहार करनेवाले कौन-कौन-से योद्धा आचार्यके आगे-आगे चलते थे ? ॥ १३-१४ ॥

यत् प्राविशन्महेष्वासः पञ्चालानपराजितः ।
नृत्यन्निव नरव्याघ्रो रथमार्गेषु वीर्यवान् ॥ १५ ॥

महाधनुर्धर, पराक्रमी एवं किसीसे पराजित न होनेवाले पुरुषसिंह द्रोणाचार्यने रथके मार्गोंपर नृत्य-सा करते हुए वहाँ पाञ्चालोंकी सेनामें प्रवेश किया था ॥ १५ ॥

यो ददाह शरैर्द्रोणः पञ्चालानां रथव्रजान् ।
धूमकेतुरिव क्रुद्धः कथं मृत्युमुपेयिवान् ॥ १६ ॥

जिन आचार्य द्रोणने क्रोधमें भरे हुए अग्निदेवके समान अपने बाणोंकी ज्वालासे पाञ्चाल महारथियोंके समुदायोंको जलाकर भस्म कर दिया था, वे कैसे मृत्युको प्राप्त हुए ? ॥

अव्यग्रानेव हि परान् कथयस्यपराजितान् ।
हृष्टानुदीर्णान् संग्रामे न तथा सूत मामकान् ॥ १७ ॥

सूत ! तुम मेरे शत्रुओंको तो व्यग्रतारहित, अपराजित, हर्ष और उत्साहसे युक्त तथा संग्राममें वेगपूर्वक आगे बढ़नेवाले ही बता रहे हो; परंतु मेरे पुत्रोंकी ऐसी अवस्था नहीं बताते ॥ १७ ॥

हतांश्चैव विदीर्णांश्च विप्रकीर्णांश्च शंससि ।
रथिनो विरथांश्चैव कृतान् युद्धेषु मामकान् ॥ १८ ॥

सभी युद्धोंमें मेरे पक्षके रथियोंको तुम हताहत, छिन्न-भिन्न, तितर-बितर तथा रथहीन हुआ ही बता रहे हो ॥१८॥

संजय उवाच

द्रोणस्य मतमाज्ञाय योद्धुकामस्य तां निशाम् ।
दुर्योधनो महाराज वश्यान् भ्रातॄनुवाच ह ॥ १९ ॥
कर्णं च वृषसेनं च मद्रराजं च कौरव ।
दुर्धर्षं दीर्घबाहुं च ये च तेषां पदानुगाः ॥ २० ॥

संजय कहते हैं—कुरुनन्दन महाराज ! युद्धकी इच्छावाले द्रोणाचार्यका मत जानकर दुर्योधनने उस रातमें अपने वशवर्ती भाइयोंसे तथा कर्ण, वृषसेन, मद्रराज शल्य, दुर्धर्ष, दीर्घबाहु तथा जो-जो उनके पीछे चलनेवाले थे, उन सबसे इस प्रकार कहा—॥ १९-२० ॥

द्रोणं यत्ताः पराक्रान्ताः सर्वे रक्षन्तु पृष्ठतः ।
हार्दिक्यो दक्षिणं चक्रं शल्यश्चैवोत्तरं तथा ॥ २१ ॥

'तुम सब लोग सावधान रहकर पराक्रमपूर्वक पीछेकी ओरसे द्रोणाचार्यकी रक्षा करो । कृतवर्मा उनके दाहिने पहियेकी और राजा शल्य बायें पहियेकी रक्षा करें' ॥२१॥

त्रिगर्तानां च ये शूरा हतशिष्टा महारथाः ।
तांश्चैव पुरतः सर्वान् पुत्रस्ते समचोदयत् ॥ २२ ॥

राजन् ! त्रिगर्तोंके जो शूरवीर महारथी मरनेसे शेष रह गये थे, उन सबको आपके पुत्रने द्रोणाचार्यके आगे-आगे चलनेकी आज्ञा देते हुए कहा—॥ २२ ॥

आचार्यो हि सुसंयत्तो भृशं यत्ताश्च पाण्डवाः ।
तं रक्षत सुसंयत्ता निघ्नन्तं शात्रवान् रणे ॥ २३ ॥

'आचार्य पूर्णतः सावधान हैं, पाण्डव भी विजयके लिये विशेष यत्नशील एवं सावधान हैं । तुमलोग रणभूमिमें शत्रुसैनिकोंका संहार करते हुए आचार्यकी पूरी सावधानीके साथ रक्षा करो ॥ २३ ॥

द्रोणो हि बलवान् युद्धे क्षिप्रहस्तः प्रतापवान् ।
निर्जयेत् त्रिदशान् युद्धे किमु पार्थान् ससोमकान् ॥ २४ ॥

'क्योंकि द्रोणाचार्य बलवान्, प्रतापी और युद्धमें शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले हैं । वे संग्राममें देवताओंको भी परास्त कर सकते हैं; फिर कुन्तीके पुत्रों और सोमकोंकी तो बात ही क्या है ? ॥ २४ ॥

ते यूयं सहिताः सर्वे भृशं यत्ता महारथाः ।
द्रोणं रक्षत पाञ्चालाद् धृष्टद्युम्नान्महारथात् ॥ २५ ॥

'इसलिये तुम सब महारथी एक साथ होकर पूर्णतः प्रयत्नशील रहते हुए पाञ्चाल महारथी धृष्टद्युम्नसे द्रोणाचार्यकी रक्षा करो ॥ २५ ॥

पाण्डवीयेषु सैन्येषु न तं पश्याम कञ्चन ।
यो योधयेद् रणे द्रोणं धृष्टद्युम्नादृते नृपः ॥ २६ ॥

'हम पाण्डवोंकी सेनाओंमें धृष्टद्युम्नके सिवा ऐसे किसी वीर नरेशको नहीं देखते, जो रणक्षेत्रमें द्रोणाचार्यके साथ युद्ध कर सके ॥ २६ ॥

तस्मात् सर्वात्मना मन्ये भारद्वाजस्य रक्षणम्।
सुगुप्तः पाण्डवान् हन्यात् सृंजयांश्च ससोमकान्॥२७॥

'अतः मैं सब प्रकारसे द्रोणाचार्यकी रक्षा करना ही इस समय आवश्यक कर्तव्य मानता हूँ। वे सुरक्षित रहें तो पाण्डवों, सृंजयों और सोमकोंका भी संहार कर सकते हैं॥ २७॥

सृंजयेष्वथ सर्वेषु निहतेषु चमूमुखे।
धृष्टद्युम्नं रणे द्रौणिर्हनिष्यति न संशयः॥ २८॥

'युद्धके मुहानेपर सारे सृंजयोंके मारे जानेपर अश्वत्थामा रणभूमिमें धृष्टद्युम्नको भी मार डालेगा, इसमें संशय नहीं है॥ २८॥

तथार्जुनं च राधेयो हनिष्यति महारथः।
भीमसेनमहं चापि युद्धे जेष्यामि दीक्षितः॥ २९॥
शेषांश्च पाण्डवान् योधाः प्रसभं हीनतेजसः।

'योद्धाओ! इसी प्रकार महारथी कर्ण अर्जुनका वध कर डालेगा तथा रणयज्ञकी दीक्षा लेकर युद्ध करनेवाला मैं भीमसेनको और तेजोहीन हुए दूसरे पाण्डवोंको भी बलपूर्वक जीत लूँगा॥

सोऽयं मम जयो व्यक्तो दीर्घकालं भविष्यति।
तस्माद् रक्षत संग्रामे द्रोणमेव महारथम्॥ ३०॥

'इस प्रकार अवश्य ही मेरी यह विजय चिरस्थायिनी होगी, अतः तुम सब लोग मिलकर संग्राममें महारथी द्रोणकी ही रक्षा करो'॥ ३०॥

इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठ पुत्रो दुर्योधनस्तव।
व्यादिदेश तथा सैन्यं तस्मिंस्तमसि दारुणे॥ ३१॥

भरतश्रेष्ठ! ऐसा कहकर आपके पुत्र दुर्योधनने उस भयंकर अन्धकारमें अपनी सेनाको युद्धके लिये आज्ञा दे दी॥ ३१॥

ततः प्रववृते युद्धं रात्रौ भरतसत्तम।
उभयोः सेनयोर्घोरं परस्परजिगीषया॥ ३२॥

भरतसत्तम! फिर तो रात्रिके समय दोनों सेनाओंमें एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छासे घोर युद्ध आरम्भ हो गया॥३२॥

अर्जुनः कौरवं सैन्यमर्जुनं चापि कौरवाः।
नानाशस्त्रसमावापैरन्योन्यं समपीडयन्॥ ३३॥

अर्जुन कौरव-सेनापर और कौरव सैनिक अर्जुनपर नाना प्रकारके शस्त्र-समूहोंकी वर्षा करते हुए एक दूसरेको पीड़ा देने लगे॥ ३३॥

द्रौणिः पाञ्चालराजं च भारद्वाजश्च सृंजयान्।
छादयांचक्रतुः संख्ये शरैः संनतपर्वभिः॥ ३४॥

अश्वत्थामाने पाञ्चालराज द्रुपदको और द्रोणाचार्यने सृंजयोंको युद्धस्थलमें झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा आच्छादित कर दिया॥ ३४॥

पाण्डुपाञ्चालसैन्यानां कौरवाणां च भारत।
आसीन्निष्टानको घोरो निघ्नतामितरेतरम्॥ ३५॥

भारत! एक ओरसे पाण्डव और पाञ्चाल सैनिकोंका और दूसरी ओरसे कौरव योद्धाओंका, जो एक दूसरेपर गहरी चोट कर रहे थे, घोर आर्तनाद सुनायी पड़ता था॥ ३५॥

नैवास्माभिस्तथा पूर्वैर्दृष्टपूर्वं तथाविधम्।
श्रुतं वा यादृशं युद्धमासीद् रौद्रं भयानकम्॥ ३६॥

हमने तथा पूर्ववर्ती लोगोंने भी वैसा रौद्र एवं भयानक युद्ध न तो पहले कभी देखा था और न सुना ही था, जैसा कि वह युद्ध हो रहा था॥ ३६॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसंगमें संकुलयुद्धविषयक एक सौ चौसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६४॥

पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

दोनों सेनाओंका युद्ध और कृतवर्माद्वारा युधिष्ठिरकी पराजय

संजय उवाच

वर्तमाने तदा रौद्रे रात्रियुद्धे विशाम्पते।
सर्वभूतक्षयकरे धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः॥ १॥
अब्रवीत् पाण्डवांश्चैव पञ्चालांश्चैव सोमकान्।
अभिद्रवत संयात द्रोणमेव जिघांसया॥ २॥

संजय कहते हैं—प्रजानाथ! जब सम्पूर्ण भूतोंका विनाश करनेवाला वह भयंकर रात्रियुद्ध आरम्भ हुआ, उस समय धर्मपुत्र युधिष्ठिरने पाण्डवों, पाञ्चालों और सोमकोंसे कहा—'दौड़ो, द्रोणाचार्यपर ही उन्हें मार डालनेकी इच्छासे आक्रमण करो'॥ १-२॥

राक्षसते वचनाद् राजन् पञ्चालाः सृञ्जयास्तथा।
द्रोणमेवाभ्यवर्तन्त नदन्तो भैरवान् रवान्॥ ३॥

राजन् ! राजा युधिष्ठिरके आदेशसे पाञ्चाल और सृंजय भयानक गर्जना करते हुए द्रोणाचार्यपर ही टूट पड़े ॥ ३ ॥

तं तु ते प्रतिगर्जन्तः प्रत्युद्यातास्त्वमर्षिताः ।
यथाशक्ति यथोत्साहं यथासत्त्वं च संयुगे ॥ ४ ॥

वे सब-के-सब अमर्षमें भरे हुए थे और युद्धस्थलमें अपनी शक्ति, उत्साह एवं धैर्यके अनुसार बारंबार गर्जना करते हुए द्रोणाचार्यपर चढ़ आये ॥ ४ ॥

कृतवर्मा तु हार्दिक्यो युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ।
द्रोणं प्रति समायान्तं मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ५ ॥

जैसे मतवाला हाथी किसी मतवाले हाथीपर आक्रमण कर रहा हो, उसी प्रकार युधिष्ठिरको द्रोणाचार्यपर धावा करते देख हृदिकपुत्र कृतवर्माने आगे बढ़कर उन्हें रोका ॥

शैनेयं शरवर्षाणि विकिरन्तं समन्ततः ।
अभ्ययात् कौरवो राजन् भूरिः संग्राममूर्धनि ॥ ६ ॥

राजन् ! युद्धके मुहानेपर चारों ओर बाणोंकी बौछार करते हुए शिनिपौत्र सात्यकिपर कुरुवंशी भूरिने धावा किया ॥ ६ ॥

सहदेवमथायान्तं द्रोणप्रेप्सुं महारथम् ।
कर्णो वैकर्तनो राजन् वारयामास पाण्डवम् ॥ ७ ॥

राजन् ! द्रोणाचार्यको पकड़नेके लिये आते हुए महारथी पाण्डुपुत्र सहदेवको वैकर्तन कर्णने रोका ॥ ७ ॥

भीमसेनमथायान्तं व्यादितास्यमिवान्तकम् ।
स्वयं दुर्योधनो राजा प्रतीपं मृत्युमाव्रजत् ॥ ८ ॥

मुँह बाये यमराजके समान अथवा विपक्षी बनकर आयी हुई मृत्युके समान भीमसेनका सामना स्वयं राजा दुर्योधनने किया ॥ ८ ॥

नकुलं च युधां श्रेष्ठं सर्वयुद्धविशारदम् ।
शकुनिः सौबलो राजन् वारयामास सत्वरः ॥ ९ ॥

राजन् ! सम्पूर्ण युद्धकलामें कुशल योद्धाओंमें श्रेष्ठ नकुलको सुबलपुत्र शकुनिने शीघ्रतापूर्वक आकर रोका ॥ ९ ॥

शिखण्डिनमथायान्तं रथेन रथिनां वरम् ।
कृपः शारद्वतो राजन् वारयामास संयुगे ॥ १० ॥

नरेश्वर ! रथसे आते हुए रथियोंमें श्रेष्ठ शिखण्डीको युद्धस्थलमें शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्यने रोका ॥ १० ॥

प्रतिविन्ध्यमथायान्तं मयूरसदृशैर्हयैः ।
दुःशासनो महाराज यत्तो यत्तमवारयत् ॥ ११ ॥

महाराज ! मयूरके समान रंगवाले घोड़ोंद्वारा आते हुए प्रयत्नशील प्रतिविन्ध्यको दुःशासनने यत्नपूर्वक रोका ॥ ११ ॥

भैमसेनिमथायान्तं मायाशतविशारदम् ।
अश्वत्थामा महाराज राक्षसं प्रत्यषेधयत् ॥ १२ ॥

राजन् ! सैकड़ों मायाओंके प्रयोगमें कुशल भीमसेनकुमार राक्षस घटोत्कचको आते देख अश्वत्थामाने रोका ॥

द्रुपदं वृषसेनस्तु ससैन्यं सपदानुगम् ।
वारयामास समरे द्रोणप्रेप्सुं महारथम् ॥ १३ ॥

समराङ्गणमें द्रोणको पराजित करनेकी इच्छावाले सेना और सेवकोंसहित महारथी द्रुपदको वृषसेनने रोका ॥ १३ ॥

विराटं द्रुतमायान्तं द्रोणस्य निधनं प्रति ।
मद्रराजः सुसंक्रुद्धो वारयामास भारत ॥ १४ ॥

भारत ! द्रोणको मारनेके उद्देश्यसे शीघ्रतापूर्वक आते हुए राजा विराटको अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए मद्रराज शल्यने रोक दिया ॥ १४ ॥

शतानीकमथायान्तं नाकुलिं रभसं रणे ।
चित्रसेनो रुरोधाशु शरैर्द्रोणपरीप्सया ॥ १५ ॥

द्रोणाचार्यके वधकी इच्छासे रणक्षेत्रमें वेगपूर्वक आते हुए नकुलपुत्र शतानीकको चित्रसेनने अपने बाणोंद्वारा तुरंत रोक दिया ॥ १५ ॥

अर्जुनं च युधां श्रेष्ठं प्राद्रवन्तं महारथम् ।
अलम्बुषो महाराज राक्षसेन्द्रो न्यवारयत् ॥ १६ ॥

महाराज ! कौरवसेनापर धावा करते हुए योद्धाओंमें श्रेष्ठ महारथी अर्जुनको राक्षसराज अलम्बुषने रोका ॥ १६ ॥

तथा द्रोणं महेष्वासं निघ्नन्तं शात्रवान् रणे ।
धृष्टद्युम्नोऽथ पाञ्चाल्यो हृष्टरूपमवारयत् ॥ १७ ॥

इसी प्रकार रणभूमिमें शत्रुसैनिकोंका संहार करनेवाले, हर्ष और उत्साहसे युक्त, महाधनुर्धर द्रोणाचार्यको पाञ्चाल राजकुमार धृष्टद्युम्नने आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ १७ ॥

तथान्यान् पाण्डुपुत्राणां समायातान् महारथान् ।
तावका रथिनो राजन् वारयामासुरोजसा ॥ १८ ॥

राजन् ! इसी तरह आक्रमण करनेवाले पाण्डवपक्षके अन्य महारथियोंको आपकी सेनाके महारथियोंने बलपूर्वक रोका ॥ १८ ॥

गजारोहा गजैस्तूर्णं संनिपत्य महामृधे ।
योधयन्तश्च मृद्नन्तः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १९ ॥

उस महासमरमें सैकड़ों और हजारों हाथीसवार तुरंत ही विपक्षी गजारोहियोंसे भिड़कर परस्पर जूझने और सैनिकोंको रौंदने लगे ॥ १९ ॥

निशीथे तुरगा राजन् द्रावयन्तः परस्परम् ।
समदृश्यन्त वेगेन पक्षवन्तो यथाऽद्रयः ॥ २० ॥

राजन् ! रातके समय एक दूसरेपर वेगसे धावा करते

हुए घोड़े पंखधारी पर्वतोंके समान दिखायी देते थे ॥ २० ॥

सादिनः सादिभिः सार्धं प्रासशक्त्यृष्टिपाणयः ।
समागच्छन् महाराज विनदन्तः पृथक् पृथक् ॥ २१ ॥

महाराज ! हाथमें प्रास, शक्ति और ऋष्टि धारण किये घुड़सवार सैनिक पृथक्-पृथक् गर्जना करते हुए शत्रुपक्षके घुड़सवारोंके साथ युद्ध कर रहे थे ॥ २१ ॥

नरास्तु बहवस्तत्र समाजग्मुः परस्परम् ।
गदाभिर्मुसलैश्चैव नानाशस्त्रैश्च संयुगे ॥ २२ ॥

उस युद्धस्थलमें बहुसंख्यक पैदल मनुष्य गदा और मुसल आदि नाना प्रकारके अस्त्रोंद्वारा एक दूसरेपर आक्रमण करते थे ॥ २२ ॥

कृतवर्मा तु हार्दिक्यो धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
वारयामास संक्रुद्धो वेलेवोद्वृत्तमर्णवम् ॥ २३ ॥

जैसे उत्ताल तरंगोंवाले महासागरको तटभूमि रोक देती है, उसी प्रकार धर्मपुत्र युधिष्ठिरको अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए हृदिकपुत्र कृतवर्माने रोक दिया ॥ २३ ॥

युधिष्ठिरस्तु हार्दिक्यं विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः ।
पुनर्विव्याध विंशत्या तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २४ ॥

युधिष्ठिरने कृतवर्माको पहले पाँच बाणोंसे घायल करके फिर बीस बाणोंसे बींध डाला और कहा—'खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ २४ ॥

कृतवर्मा तु संक्रुद्धो धर्मपुत्रस्य मारिष ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन तं च विव्याध सप्तभिः ॥ २५ ॥

माननीय नरेश ! तब अत्यन्त कुपित हुए कृतवर्माने भी एक भल्लसे धर्मपुत्र युधिष्ठिरका धनुष काट दिया और उन्हें भी सात बाणोंसे बींध डाला ॥ २५ ॥

अथान्यद् धनुरादाय धर्मपुत्रो महारथः ।
हार्दिक्यं दशभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ २६ ॥

तदनन्तर महारथी धर्मकुमार युधिष्ठिरने दूसरा धनुष लेकर कृतवर्माकी छाती और भुजाओंमें दस बाण मारे ॥ २६ ॥

माधवस्तु रणे विद्धो धर्मपुत्रेण मारिष ।
प्राकम्पत च रोषेण सप्तभिश्चार्दयच्छरैः ॥ २७ ॥

आर्य ! रणभूमिमें धर्मपुत्र युधिष्ठिरके बाणोंसे घायल होकर कृतवर्मा काँपने लगा और उसने क्रोधपूर्वक युधिष्ठिरको भी सात बाण मारे ॥ २७ ॥

तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा हस्तावापं निकृत्य च ।
प्राहिणोन्निशितान् बाणान् पञ्च राजञ्छिलाशितान् ॥ २८ ॥

राजन् ! तब कुन्तीकुमार युधिष्ठिरने कृतवर्माके धनुष और दस्तानेको काटकर उसके ऊपर पाँच तीखे बाण चलाये, जो शिलापर तेज किये गये थे ॥ २८ ॥

ते तस्य कवचं भित्त्वा हेमचित्रं महाधनम् ।
प्राविशन् धरणीं भित्त्वा वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ २९ ॥

जैसे सर्प बाँबीमें घुस जाते हैं, उसी प्रकार वे बाण कृतवर्माके सुवर्णजटित बहुमूल्य कवचको छिन्न-भिन्न करके धरती फाड़कर उसके भीतर घुस गये ॥ २९ ॥

अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण सोऽन्यदादाय कार्मुकम् ।
विव्याध पाण्डवं षष्ट्या सूतं च नवभिः शरैः ॥ ३० ॥

कृतवर्माने पलक मारते-मारते दूसरा धनुष हाथमें लेकर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको साठ और उनके सारथिको नौ बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ३० ॥

तस्य शक्तिममेयात्मा पाण्डवो भुजगोपमाम् ।
चिक्षेप भरतश्रेष्ठ रथे न्यस्य महद् धनुः ॥ ३१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तब अमेय आत्मबलसे सम्पन्न पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने अपने विशाल धनुषको रथपर रखकर कृतवर्मापर एक सर्पाकार शक्ति चलायी ॥ ३१ ॥

सा हेमचित्रा महती पाण्डवेन प्रवेरिता ।
निर्भिद्य दक्षिणं बाहुं प्राविशद् धरणीतलम् ॥ ३२ ॥

पाण्डुकुमार युधिष्ठिरकी चलायी हुई वह सुवर्णचित्रित विशाल शक्ति कृतवर्माकी दाहिनी भुजाको छेदकर धरतीमें समा गयी ॥ ३२ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु गृह्य पार्थः पुनर्धनुः ।
हार्दिक्यं छादयामास शरैः संनतपर्वभिः ॥ ३३ ॥

इसी समय युधिष्ठिरने पुनः धनुष हाथमें लेकर झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा कृतवर्माको ढक दिया ॥ ३३ ॥

ततस्तु समरे शूरो वृष्णीनां प्रवरो रथी ।
व्यश्वसूतरथं चक्रे निमेषार्धाद् युधिष्ठिरम् ॥ ३४ ॥

फिर तो वृष्णिवंशके शूरवीर श्रेष्ठ महारथी कृतवर्माने समराङ्गणमें आधे निमेषमें ही युधिष्ठिरको घोड़ों, सारथि और रथसे हीन कर दिया ॥ ३४ ॥

ततस्तु पाण्डवो ज्येष्ठः खड्गं चर्म समाददे ।
तदस्य निशितैर्बाणैर्व्यधमन्माधवो रणे ॥ ३५ ॥

तब ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिरने ढाल-तलवार हाथमें ले ली। किंतु कृतवर्माने रणक्षेत्रमें तीखे बाण मारकर उनके उस खड्गको नष्ट कर दिया ॥ ३५ ॥

तोमरं तु ततो गृह्य स्वर्णदण्डं दुरासदम् ।
प्रैषयत् समरे तूर्णं हार्दिक्यस्य युधिष्ठिरः ॥ ३६ ॥

तब समराङ्गणमें युधिष्ठिरने सुवर्णमय दण्डसे युक्त दुर्धर्ष तोमर हाथमें लेकर उसे तुरंत ही कृतवर्मापर चला दिया ॥

तमापतन्तं सहसा धर्मराजभुजच्युतम् ।
द्विधा चिच्छेद हार्दिक्यः कृतहस्तः स्मयन्निव॥ ३७ ॥

धर्मराजके हाथसे छूटकर सहसा अपने ऊपर आते हुए उस तोमरके सिद्धहस्त कृतवर्माने मुसकराते हुए-से दो टुकड़े कर दिये ॥ ३७ ॥

ततः शरशतेनाजौ धर्मपुत्रमवाकिरत् ।
कवचं चास्य संक्रुद्धः शरैस्तीक्ष्णैरदारयत् ॥ ३८ ॥

तब युद्धस्थलमें कृतवर्माने सैकड़ों बाणोंसे धर्मपुत्र युधिष्ठिरको ढक दिया और अत्यन्त कुपित होकर उसने उनके कवचको भी तीखे बाणोंसे विदीर्ण कर डाला ॥ ३८ ॥

हार्दिक्यशरसंछन्नं कवचं तन्महाधनम् ।
व्यशीर्यत रणे राजंस्ताराजालमिवाम्बरात् ॥ ३९ ॥

राजन् ! कृतवर्माके बाणोंसे आच्छादित हुआ वह बहुमूल्य कवच आकाशसे तारोंके समुदायकी भाँति रणभूमिमें बिखर गया ॥ ३९ ॥

स चिछन्नधन्वा विरथः शीर्णवर्मा शरार्दितः ।
अपायासीद् रणात् तूर्णं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ४० ॥

इस प्रकार धनुष कट जाने, रथ नष्ट होने और कवच छिन्न-भिन्न हो जानेपर बाणोंसे पीड़ित हुए धर्मपुत्र युधिष्ठिर तुरंत ही युद्धसे पलायन कर गये ॥ ४० ॥

कृतवर्मा तु निर्जित्य धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।
पुनर्द्रोणस्य जुगुपे चक्रमेव महात्मनः ॥ ४१ ॥

धर्मात्मा युधिष्ठिरको जीतकर कृतवर्मा पुनः महात्मा द्रोणके रथचक्रकी ही रक्षा करने लगा ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे युधिष्ठिरापयानं नाम पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके अवसरपर युधिष्ठिरका पलायनविषयक एक सौ पैंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६५ ॥

षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिके द्वारा भूरिका वध, घटोत्कच और अश्वत्थामाका घोर युद्ध तथा भीमके साथ दुर्योधनका युद्ध एवं दुर्योधनका पलायन

संजय उवाच

भूरिस्तु समरे राजञ्शैनेयं रथिनां वरम् ।
आपतन्तमपासेधत् प्रयाणादिव कुञ्जरम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! जैसे कोई हाथीको उसके निकलनेके स्थानसे ही रोक दे, उसी प्रकार भूरिने आक्रमण करते हुए रथियोंमें श्रेष्ठ सात्यकिको समरभूमिमें आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ १ ॥

अथैनं सात्यकिः क्रुद्धः पञ्चभिर्निशितैः शरैः ।
विव्याध हृदये तस्य प्रास्रवत् तस्य शोणितम् ॥ २ ॥

यह देख सात्यकि कुपित हो उठे और उन्होंने पाँच तीखे बाणोंसे भूरिकी छाती छेद डाली । उससे रक्तकी धारा बहने लगी ॥ २ ॥

तथैव कौरवो युद्धे शैनेयं युद्धदुर्मदम् ।
दशभिर्निशितैस्तीक्ष्णैरविध्यत भुजान्तरे ॥ ३ ॥

इसी प्रकार युद्धस्थलमें कुरुवंशी भूरिने भी रणदुर्मद सात्यकिकी छातीमें दस तीखे बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३ ॥

तावन्योन्यं महाराज ततक्षाते शरैर्भृशम् ।
क्रोधसंरक्तनयनौ क्रोधाद् विस्फार्य कार्मुके ॥ ४ ॥

महाराज ! उन दोनोंके नेत्र क्रोधसे लाल हो रहे थे । वे दोनों ही रोषसे अपने-अपने धनुष खींचकर बाणोंकी वर्षासे एक-दूसरेको अत्यन्त घायल कर रहे थे ॥ ४ ॥

तयोरासीन्महाराज शस्त्रवृष्टिः सुदारुणा ।
क्रुद्धयोः सायकमुचोर्यमान्तकनिकाशयोः ॥ ५ ॥

राजेन्द्र ! उन दोनोंपर अस्त्र-शस्त्रोंकी अत्यन्त भयंकर वर्षा हो रही थी । ये यम और अन्तकके समान कुपित हो परस्पर बाणोंका प्रहार कर रहे थे ॥ ५ ॥

तावन्योन्यं शरै राजन् संछाद्य समवस्थितौ ।
मुहूर्तं चैव तद् युद्धं समरूपमिवाभवत् ॥ ६ ॥

राजन् ! वे दोनों ही एक-दूसरेको बाणोंद्वारा आच्छादित करके खड़े थे । दो घड़ीतक उनमें समानरूपसे ही युद्ध चलता रहा ॥ ६ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज शैनेयः प्रहसन्निव ।
धनुश्चिच्छेद समरे कौरव्यस्य महात्मनः ॥ ७ ॥

महाराज ! तब क्रोधमें भरे हुए सात्यकिने हँसते हुए-से समराङ्गणमें महामना कुरुवंशी भूरिके धनुषको काट दिया ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं नवभिर्निशितैः शरैः ।
विव्याध हृदये तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ८ ॥

धनुष कट जानेपर उसकी छातीमें सात्यकिने तुरंत ही नौ तीखे बाण मारे और कहा—'खड़ा रह, खड़ा रह' ॥८॥

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुतापनः ।
धनुरन्यत् समादाय सात्वतं प्रत्यविध्यत ॥ ९ ॥

बलवान् शत्रुके आघातसे अत्यन्त घायल हुए शत्रुतापन भूरिने दूसरा धनुष हाथमें लेकर सात्यकिको भी गहरी चोट पहुँचायी ॥ ९ ॥

स विद्ध्वा सात्वतं बाणैस्त्रिभिरेव विशाम्पते ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सुतीक्ष्णेन हसन्निव ॥ १० ॥

प्रजानाथ ! तीन बाणोंसे ही सात्यकिको घायल करके भूरिने हँसते हुए-से अत्यन्त तीखे भल्लद्वारा उनके धनुषको भी काट दिया ॥ १० ॥

छिन्नधन्वा महाराज सात्यकिः क्रोधमूर्छितः ।
प्रजहार महावेगां शक्तिं तस्य महोरसि ॥ ११ ॥

महाराज ! धनुष कट जानेपर क्रोधातुर हुए सात्यकिने भूरिके विशाल वक्षःस्थलपर एक अत्यन्त वेगशालिनी शक्तिका प्रहार किया ॥ ११ ॥

स तु शक्त्या विभिन्नाङ्गो निपपात रथोत्तमात् ।
लोहिताङ्ग इवाकाशाद् दीप्तरश्मिर्यदृच्छया ॥ १२ ॥

उस शक्तिसे भूरिके सारे अङ्ग विदीर्ण हो गये और वह अपने उत्तम रथसे नीचे गिर पड़ा, मानो दैववश प्रदीप्त किरणोंवाला मंगलग्रह आकाशसे नीचे गिर गया हो ॥ १२ ॥

तं तु दृष्ट्वा हतं शूरमश्वत्थामा महारथः ।
अभ्यधावत वेगेन शैनेयं प्रति संयुगे ॥ १३ ॥

शूरवीर भूरिको युद्धस्थलमें मारा गया देख महारथी अश्वत्थामा सात्यकिकी ओर बड़े वेगसे दौड़ा ॥ १३ ॥

तिष्ठ तिष्ठेति चाभाष्य शैनेयं स नराधिप ।
अभ्यवर्षच्छरौघेण मेरुं वृष्ट्या यथाम्बुदः ॥ १४ ॥

नरेश्वर ! वह सात्यकिसे 'खड़ा रह, खड़ा रह' ऐसा कहकर उनके ऊपर उसी प्रकार बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगा, जैसे बादल मेरु पर्वतपर जल बरसा रहा हो ॥ १४ ॥

तमापतन्तं संरब्धं शैनेयस्य रथं प्रति ।
घटोत्कचोऽब्रवीद् राजन् नादं मुक्त्वा महारथः ॥ १५ ॥

क्रोधमें भरे हुए अश्वत्थामाको सात्यकिके रथपर आक्रमण करते देख महारथी घटोत्कचने सिंहनाद करके कहा—॥ १५ ॥

तिष्ठ तिष्ठ न मे जीवन् द्रोणपुत्र गमिष्यसि ।
एष त्वां निहनिष्यामि महिषं षण्मुखो यथा ॥ १६ ॥

'द्रोणपुत्र ! खड़ा रह, खड़ा रह, मेरे हाथसे जीवित छूटकर नहीं जा सकेगा। जैसे कार्तिकेयने महिषासुरका वध किया था, उसी प्रकार मैं भी तुझे मार डालूँगा ॥ १६ ॥

युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे ।
इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षो राक्षसः परवीरहा ॥ १७ ॥
द्रौणिमभ्यद्रवत् क्रुद्धो गजेन्द्रमिव केसरी ।

'आज समराङ्गणमें मैं तेरी युद्धविषयक श्रद्धा दूर कर दूँगा।' ऐसा कहकर क्रोधसे लाल आँखें किये, शत्रुवीरोंका दमन करनेवाले कुपित राक्षस घटोत्कचने अश्वत्थामापर उसी प्रकार धावा किया, जैसे सिंह किसी गजराजपर आक्रमण करता है ॥ १७½ ॥

रथाक्षमात्रैरिषुभिरभ्यवर्षद् घटोत्कचः ॥ १८ ॥
रथिनामृषभं द्रौणिं धाराभिरिव तोयदः ।

जैसे मेघ पर्वतपर जलकी धारा गिराता है, उसी प्रकार घटोत्कच रथियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामापर रथके धुरेके समान मोटे-मोटे बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ १८½ ॥

शरवृष्टिं तु तां प्राप्तां शरैराशीविषोपमैः ॥ १९ ॥
शातयामास समरे तरसा द्रौणिरुत्स्मयन् ।

परंतु अश्वत्थामाने मुसकराते हुए समरभूमिमें अपने ऊपर आयी हुई उस बाणवर्षाको विषधर सर्पोंके समान भयंकर बाणोंद्वारा वेगपूर्वक नष्ट कर दिया ॥ १९½ ॥

ततः शरशतैस्तीक्ष्णैर्मर्मभेदिभिराशुगैः ॥ २० ॥
समाचिनोद् राक्षसेन्द्रं घटोत्कचमरिंदमम् ।

तत्पश्चात् मर्मस्थलको विदीर्ण कर देनेवाले सैकड़ों पैने बाणोंद्वारा उसने शत्रुदमन राक्षसराज घटोत्कचको बींध दिया ॥ २० ॥

स शरैराचितस्तेन राक्षसो रणमूर्धनि ॥ २१ ॥
व्यकाशत महाराज श्वाविच्छललतो यथा ।

महाराज ! अश्वत्थामाद्वारा उन बाणोंसे बिंधा हुआ वह राक्षस काँटोंसे भरे हुए साहीके समान सुशोभित हो रहा था ॥

ततः क्रोधसमाविष्टो भैमसेनिः प्रतापवान् ॥ २२ ॥
शरैरवचकर्तोग्रैर्द्रौणिं वज्राशनिप्रभैः ।
क्षुरप्रैरर्धचन्द्रैश्च नाराचैः सशिलीमुखैः ॥ २३ ॥
वराहकर्णैर्नालीकैर्विकर्णैश्चाभ्यवीवृषत् ।

तत्पश्चात् भीमसेनके प्रतापी पुत्र घटोत्कचने क्रोधमें भरकर वज्र एवं बिजलीके समान चमकनेवाले भयंकर बाणोंद्वारा अश्वत्थामाको क्षत-विक्षत कर दिया तथा उसके ऊपर क्षुरप्र, अर्धचन्द्र, नाराच, शिलीमुख, वराहकर्ण, नालीक और विकर्ण आदि अस्त्रोंकी चारों ओरसे वर्षा आरम्भ कर दी ॥

तां शस्त्रवृष्टिमतुलां वज्राशनिसमस्वनाम् ॥ २४ ॥
पतन्तीमुपरि क्रुद्धो द्रौणिरव्यथितेन्द्रियः ।
सुदुःसहां शरैर्घोरैर्दिव्यास्त्रप्रतिमन्त्रितैः ॥ २५ ॥
व्यधमत् सुमहातेजा महाभ्राणीव मारुतः ।

जैसे वायु बड़े-बड़े बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार व्यथारहित इन्द्रियोंवाले महातेजस्वी द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने कुपित हो दिव्यास्त्रोंद्वारा अभिमन्त्रित भयंकर बाणोंसे अपने ऊपर पड़ती हुई उस अत्यन्त दुःसह, अनुपम एवं वज्रपातके समान शब्द करनेवाली अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षाको नष्ट कर दिया ॥ २४-२५½ ॥

ततोऽन्तरिक्षे बाणानां संग्रामोऽन्य इवाभवत् ॥ २६ ॥
घोररूपो महाराज योधानां हर्षवर्धनः ।

महाराज ! तत्पश्चात् अन्तरिक्षमें बाणोंका दूसरा भयंकर संग्राम-सा होने लगा, जो योद्धाओंका हर्ष बढ़ा रहा था ॥

ततोऽस्त्रसंघर्षकृतैर्विस्फुलिङ्गैः समन्ततः ॥ २७ ॥
बभौ निशामुखे व्योम खद्योतैरिव संवृतम् ।

अस्त्रोंके परस्पर टकरानेसे जो चारों ओर चिनगारियाँ छूट रही थीं, उनसे आकाश प्रदोषकालमें जुगनुओंसे व्याप्त-सा जान पड़ता था ॥ २७½ ॥

स मार्गणगणैर्द्रौणिर्दिशः प्रच्छाद्य सर्वतः ॥ २८ ॥
प्रियार्थं तव पुत्राणां राक्षसं समवाकिरत् ।

द्रोणपुत्रने आपके पुत्रोंका प्रिय करनेके लिये अपने बाणोंद्वारा सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित करते हुए उस राक्षसको भी ढक दिया ॥ २८½ ॥

ततः प्रववृते युद्धं द्रौणिराक्षसयोर्मृधे ॥ २९ ॥
विगाढे रजनीमध्ये शक्रप्रह्लादयोरिव ।

तदनन्तर गाढ़ अन्धकारसे भरी हुई आधीरातके समय रणभूमिमें इन्द्र और प्रह्लादके समान अश्वत्थामा और घटोत्कच का घोर युद्ध आरम्भ हुआ ॥ २९½ ॥

ततो घटोत्कचो बाणैर्दशभिर्द्रौणिमाहवे ॥ ३० ॥
जघानोरसि संक्रुद्धः कालज्वलनसंनिभैः ।

अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए घटोत्कचने युद्धस्थलमें कालाग्नि के समान दस तेजस्वी बाणोंद्वारा अश्वत्थामाकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३०½ ॥

स तैरभ्यायतैर्विद्धो राक्षसेन महाबलः ॥ ३१ ॥
चचाल समरे द्रौणिर्वातनुन्न इव द्रुमः ।
स मोहमनुसम्प्राप्तो ध्वजयष्टिं समाश्रितः ॥ ३२ ॥

राक्षसद्वारा चलाये हुए उन विशाल बाणोंसे घायल हो महाबली अश्वत्थामा समराङ्गणमें आँधीके हिलाये हुए वृक्षके समान काँपने लगा । वह ध्वजदण्डका सहारा ले मूर्च्छित हो गया ॥ ३१-३२ ॥

ततो हाहाकृतं सैन्यं तव सर्वं जनाधिप ।
हतं स्म मेनिरे सर्वे तावकास्तं विशाम्पते ॥ ३३ ॥

नरेश्वर ! फिर तो आपकी सारी सेनामें हाहाकार मच गया । प्रजानाथ ! आपके समस्त योद्धाओंने यह मान लिया कि अश्वत्थामा मारा गया ॥ ३३ ॥

तं तु दृष्ट्वा तथावस्थमश्वत्थामानमाहवे ।
पञ्चालाः सृंजयाश्चैव सिंहनादं प्रचक्रिरे ॥ ३४ ॥

रणभूमिमें अश्वत्थामाकी वैसी अवस्था देख पाञ्चाल और सृञ्जय योद्धा सिंहनाद करने लगे ॥ ३४ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञामश्वत्थामा महाबलः ।
धनुः प्रपीड्य वामेन करेणामित्रकर्शनः ॥ ३५ ॥
मुमोचाकर्णपूर्णेन धनुषा शरमुत्तमम् ।
यमदण्डोपमं घोरमुद्दिश्याशु घटोत्कचम् ॥ ३६ ॥

तदनन्तर सचेत हो महाबली शत्रुसूदन अश्वत्थामाने बायें हाथसे धनुषको दबाकर कानतक खींचे हुए धनुषसे घटोत्कचको लक्ष्य करके यमदण्डके समान एक भयंकर एवं उत्तम बाण शीघ्र छोड़ दिया ॥ ३५-३६ ॥

स भित्त्वा हृदयं तस्य राक्षसस्य शरोत्तमः ।
विवेश वसुधामुग्रः सपुङ्खः पृथिवीपते ॥ ३७ ॥

पृथ्वीपते ! वह उत्तम एवं भयंकर बाण उस राक्षसकी छाती छेदकर पंखसहित पृथ्वीमें समा गया ॥ ३७ ॥

सोऽतिविद्धो महाराज रथोपस्थ उपाविशत् ।
राक्षसेन्द्रः सुबलवान् द्रौणिना रणशालिना ॥ ३८ ॥

महाराज ! युद्धमें शोभा पानेवाले अश्वत्थामाद्वारा अत्यन्त घायल हुआ महाबली राक्षसराज घटोत्कच रथके पिछले भाग में बैठ गया ॥ ३८ ॥

दृष्ट्वा विमूढं हैडिम्बं सारथिस्तु रणाजिरात् ।
द्रौणेः सकाशात् सम्भ्रान्तस्त्वपनिन्ये त्वरान्वितः ॥ ३९ ॥

हिडिम्बाकुमारको मूर्च्छित देख उसका सारथि घबरा गया और तुरंत ही उसे समराङ्गणसे, विशेषतः अश्वत्थामाके निकटसे दूर हटा ले गया ॥ ३९ ॥

तथा तु समरे विद्ध्वा राक्षसेन्द्रं घटोत्कचम् ।
ननाद सुमहानादं द्रोणपुत्रो महारथः ॥ ४० ॥

इस प्रकार समरभूमिमें राक्षसराज घटोत्कचको घायल करके महारथी द्रोणपुत्रने बड़े जोरसे गर्जना की ॥ ४० ॥

पूजितस्तव पुत्रैश्च सर्वयोधैश्च भारत ।
वपुषातिप्रजज्वाल मध्याह्न इव भास्करः ॥ ४१ ॥

भरतनन्दन ! उस समय सम्पूर्ण योद्धाओं तथा आपके पुत्रोंद्वारा पूजित हुआ अश्वत्थामा अपने शरीरसे मध्याह्नकालके सूर्यकी भाँति अत्यन्त प्रकाशित हो रहा था ॥ ४१ ॥

भीमसेनं तु युध्यन्तं भारद्वाजरथं प्रति।
स्वयं दुर्योधनो राजा प्रत्यविध्यच्छितैः शरैः ॥ ४२ ॥

द्रोणाचार्यके रथकी ओर आते हुए युद्धपरायण भीमसेनको स्वयं राजा दुर्योधनने पैने बाणोंसे बींध डाला ॥ ४२ ॥

तं भीमसेनो दशभिः शरैर्विव्याध मारिष।
दुर्योधनोऽपि विंशत्या शराणां प्रत्यविध्यत ॥ ४३ ॥

माननीय नरेश ! तब भीमसेनने भी दुर्योधनको दस बाणोंसे घायल किया। फिर दुर्योधनने भी उन्हें बीस बाण मारे ॥ ४३ ॥

तौ सायकैरवच्छिन्नावदृश्येतां रणाजिरे।
मेघजालसमाच्छन्नौ नभसीवेन्दुभास्करौ ॥ ४४ ॥

जैसे कभी-कभी चन्द्रमा और सूर्य आकाशमें मेघोंके समूहसे आच्छादित हुए देखे जाते हैं, उसी प्रकार समराङ्गणमें वे दोनों वीर सायकसमूहोंसे आच्छन्न दिखायी देते थे ॥

अथ दुर्योधनो राजा भीमं विव्याध पत्रिभिः।
पञ्चभिर्भरतश्रेष्ठ तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ४५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! राजा दुर्योधनने भीमसेनको पाँच बाणोंसे घायल कर दिया और कहा—'खड़ा रह, खड़ा रह' ॥४५॥

तस्य भीमो धनुश्छित्त्वा ध्वजं च दशभिः शरैः।
विव्याध कौरवश्रेष्ठं नवत्या नतपर्वणाम् ॥ ४६ ॥

तब भीमसेनने दस बाण मारकर उसके धनुष और ध्वज काट डाले और झुकी हुई गाँठवाले नब्बे बाणोंसे कौरवश्रेष्ठ दुर्योधनको गहरी चोट पहुँचायी ॥ ४६ ॥

ततो दुर्योधनः क्रुद्धो धनुरन्यन्महत्तरम्।
गृहीत्वा भरतश्रेष्ठो भीमसेनं शितैः शरैः ॥ ४७ ॥
अपीडयद् रणमुखे पश्यतां सर्वधन्विनाम्।

तत्पश्चात् भरतश्रेष्ठ दुर्योधनने कुपित हो दूसरा विशाल धनुष हाथमें लेकर युद्धके मुहानेपर सम्पूर्ण धनुर्धरोंके देखते-देखते पैने बाणोंद्वारा भीमसेनको पीड़ा देनी आरम्भ की ॥

तान् निहत्य शरान् भीमो दुर्योधनधनुश्च्युतान् ॥४८॥
कौरवं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत्।

दुर्योधनके धनुषसे छूटे हुए उन सभी बाणोंको नष्ट करके भीमसेनने उस कौरव-नरेशको पचीस बाण मारे ॥

दुर्योधनस्तु संक्रुद्धो भीमसेनस्य मारिष ॥ ४९ ॥
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा दशभिः प्रत्यविध्यत।

आर्य ! इससे दुर्योधन अत्यन्त कुपित हो उठा और उसने एक क्षुरप्रसे भीमसेनका धनुष काटकर उन्हें दस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ४९½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय भीमसेनो महाबलः ॥ ५० ॥
विव्याध नृपतिं तूर्णं सप्तभिर्निशितैः शरैः।

तब महाबली भीमसेनने दूसरा धनुष हाथमें लेकर तुरंत ही कौरव-नरेशको सात तीखे बाणोंसे बींध डाला ॥ ५०½ ॥

तदप्यस्य धनुः क्षिप्रं चिच्छेद लघुहस्तवत् ॥ ५१ ॥
द्वितीयं च तृतीयं च चतुर्थं पञ्चमं तथा।
आत्तमात्तं महाराज भीमस्य धनुराच्छिनत् ॥ ५२ ॥
तव पुत्रो महाराज जितकाशी मदोत्कटः।

दुर्योधनने शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले कुशल योद्धाकी भाँति भीमसेनके उस धनुषको भी शीघ्र ही काट दिया। महाराज ! भीमसेनके हाथमें लिये हुए दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवें धनुषको भी विजयसे उल्लसित होनेवाले आपके मदोन्मत्त पुत्रने काट डाला ॥ ५१-५२½ ॥

स तथा भिद्यमानेषु कार्मुकेषु पुनः पुनः ॥ ५३ ॥
शक्तिं चिक्षेप समरे सर्वपारशवीं शुभाम्।
मृत्योरिव स्वसारं हि दीप्तां वह्निशिखामिव ॥ ५४ ॥

इस प्रकार जब बारंबार धनुष काटे जाने लगे, तब भीमसेनने समरभूमिमें सम्पूर्णतः लोहेकी बनी हुई एक सुन्दर शक्ति चलायी, जो मौतकी सगी बहिनके समान जान पड़ती थी। वह आगकी ज्वालाके समान प्रकाशित हो रही थी ॥

सीमन्तमिव कुर्वन्तीं नभसोऽग्निसमप्रभाम्।
अप्राप्तामेव तां शक्तिं त्रिधा चिच्छेद कौरवः ॥ ५५ ॥
पश्यतः सर्वलोकस्य भीमस्य च महात्मनः।

आकाशमें सीमन्तकी रेखा-सी बनाती हुई अग्निके समान देदीप्यमान होनेवाली उस शक्तिके अपने पास आनेसे पहले ही कौरव-नरेशने तीन टुकड़े कर दिये। सम्पूर्ण योद्धाओं तथा महामना भीमसेनके देखते-देखते यह कार्य हो गया ॥

ततो भीमो महाराज गदां गुर्वीं महाप्रभाम् ॥ ५६ ॥
चिक्षेपाविध्य वेगेन दुर्योधनरथं प्रति।

महाराज ! तब भीमसेनने अपनी अत्यन्त तेजस्विनी गदाको बड़े वेगसे घुमाकर दुर्योधनके रथपर दे मारा ॥५६½॥

ततः सा सहसा वाहांस्तव पुत्रस्य संयुगे ॥ ५७ ॥
सारथिं च गदा गुर्वी ममर्दास्य रथं पुनः।

युद्धस्थलमें उस भारी गदाने सहसा आपके पुत्रके चारों घोड़ों, सारथि और रथका भी मर्दन कर दिया ॥ ५७½ ॥

पुत्रस्तु तव राजेन्द्र भीमाद् भीतः प्रणश्य च ॥ ५८ ॥
आरुरोह रथं चान्यं नन्दकस्य महात्मनः।

राजेन्द्र ! उस समय आपका पुत्र भीमसेनसे भयभीत हो पहले ही भागकर महामना नन्दकके रथपर जा बैठा था ॥

ततो भीमो हतं मत्वा तव पुत्रं महारथम् ॥ ५९ ॥
सिंहनादं महच्चक्रे तर्जयन् निशि कौरवान् ।

उस समय भीमसेनने आपके महारथी पुत्रको मारा गया मानकर रातके समय कौरवोंको डाँट बताते हुए बड़े जोर-जोरसे सिंहनाद किया ॥ ५९½ ॥

तावकाः सैनिकाश्चापि मेनिरे निहतं नृपम् ।
ततोऽतिचुक्रुशुः सर्वे ते हाहेति समन्ततः ॥ ६० ॥

आपके सैनिकोंने भी राजा दुर्योधनको मरा हुआ ही मान लिया था; अतः वे सब ओर जोर-जोरसे हाहाकार करने लगे ॥ ६० ॥

तेषां तु निनदं श्रुत्वा त्रस्तानां सर्वयोधिनाम् ।
भीमसेनस्य नादं च श्रुत्वा राजन् महात्मनः ॥ ६१ ॥
ततो युधिष्ठिरो राजा हतं मत्वा सुयोधनम् ।
अभ्यवर्तत वेगेन यत्र पार्थो वृकोदरः ॥ ६२ ॥

राजन् ! उन भयभीत हुए सम्पूर्ण योद्धाओंका आर्तनाद तथा महामनस्वी भीमसेनकी गर्जना सुनकर दुर्योधनको मरा हुआ मान राजा युधिष्ठिर बड़े वेगसे उस स्थानपर आ पहुँचे, जहाँ कुन्तीकुमार भीमसेन दहाड़ रहे थे ॥ ६१-६२ ॥

पञ्चालाः केकया मत्स्याः सृंजयाश्च विशाम्पते ।
सर्वोद्योगेनाभिजग्मुर्द्रोणमेव युयुत्सया ॥ ६३ ॥

प्रजानाथ ! फिर तो पाञ्चाल, मत्स्य, केकय और सृञ्जय योद्धा युद्धकी इच्छासे पूर्ण उद्योग करके द्रोणाचार्यपर ही टूट पड़े ॥ ६३ ॥

तत्रासीत् सुमहद् युद्धं द्रोणस्याथ परैः सह ।
घोरे तमसि मग्नानां निघ्नतामितरेतरम् ॥ ६४ ॥

वहाँ शत्रुओंके साथ द्रोणाचार्यका बड़ा भारी संग्राम हुआ । सब लोग घोर अन्धकारमें डूबकर एक-दूसरेपर घातक प्रहार कर रहे थे ॥ ६४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे दुर्योधनापयाने षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसंगमें दुर्योधनका पलायनविषयक एक सौ छाछठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६६ ॥

सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

कर्णके द्वारा सहदेवकी पराजय, शल्यके द्वारा विराटके भाई शतानीकका वध और विराटकी पराजय तथा अर्जुनसे पराजित होकर अलम्बुषका पलायन

संजय उवाच

सहदेवमथायान्तं द्रोणप्रेप्सुं विशाम्पते ।
कर्णो वैकर्तनो युद्धे वारयामास भारत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—प्रजानाथ ! भरतनन्दन ! द्रोणाचार्यको लक्ष्य करके आते हुए सहदेवको युद्धस्थलमें वैकर्तन कर्णने रोका ॥ १ ॥

सहदेवस्तु राधेयं विद्ध्वा नवभिराशुगैः ।
पुनर्विव्याध दशभिर्विशिखैर्नतपर्वभिः ॥ २ ॥

सहदेवने राधापुत्र कर्णको नौ बाणोंसे बींधकर झुकी हुई गाँठवाले दस बाणोंद्वारा पुनः घायल कर दिया ॥ २ ॥

तं कर्णः प्रतिविव्याध शतेन नतपर्वणाम् ।
सज्यं चास्य धनुः शीघ्रं चिच्छेद लघुहस्तवत् ॥ ३ ॥

कर्णने बदलेमें झुकी हुई गाँठवाले सौ बाण मारे और शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले वीर योद्धाकी भाँति उसने उनके प्रत्यञ्चासहित धनुषको भी शीघ्र ही काट दिया ॥

ततोऽन्यद् धनुरादाय माद्रीपुत्रः प्रतापवान् ।
कर्णं विव्याध विंशत्या तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४ ॥

तदनन्तर प्रतापी माद्रीकुमार सहदेवने दूसरा धनुष हाथमें लेकर कर्णको बीस बाणोंसे घायल कर दिया । वह अद्भुत-सा कार्य हुआ ॥ ४ ॥

तस्य कर्णो हयान् हत्वा शरैः संनतपर्वभिः ।
सारथिं चास्य भल्लेन द्रुतं निन्ये यमक्षयम् ॥ ५ ॥

तब कर्णने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे सहदेवके घोड़ोंको मारकर एक भल्लका प्रहार करके उनके सारथिको भी शीघ्र ही यमलोक पहुँचा दिया ॥ ५ ॥

विरथः सहदेवस्तु खड्गं चर्म समाददे ।
तदप्यस्य शरैः कर्णो व्यधमत् प्रहसन्निव ॥ ६ ॥

रथहीन हो जानेपर सहदेवने ढाल और तलवार हाथमें ले ली; परंतु कर्णने हँसते हुए-से बाण मारकर उनकी उस तलवारके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ६ ॥

अथ गुर्वीं महाघोरां हेमचित्रां महागदाम् ।
प्रेषयामास संक्रुद्धो वैकर्तनरथं प्रति ॥ ७ ॥

तब सहदेवने अत्यन्त कुपित होकर एक सुवर्णजटित अत्यन्त भयंकर विशाल गदा सूर्यपुत्र कर्णके रथपर दे मारी ॥ ७ ॥

तामापतन्तीं सहसा सहदेवप्रचोदिताम् ।
व्यष्टम्भयच्छरैः कर्णो भूमौ चैनामपातयत् ॥ ८ ॥

सहदेवके द्वारा चलायी हुई उस गदाको सहसा अपने ऊपर आती देख कर्णने बहुत-से बाणोंद्वारा उसे स्तम्भित कर दिया और पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ८ ॥

गदां विनिहतां दृष्ट्वा सहदेवस्त्वरान्वितः ।
शक्तिं चिक्षेप कर्णाय तामप्यस्याच्छिनच्छरैः ॥ ९ ॥

अपनी गदाको असफल होकर गिरी हुई देख सहदेवने बड़ी उतावलीके साथ कर्णपर शक्ति चलायी; किंतु उसने बाणोंद्वारा उस शक्तिको भी काट डाला ॥ ९ ॥

ससम्भ्रमं ततस्तूर्णमवप्लुत्य रथोत्तमात् ।
सहदेवो महाराज दृष्ट्वा कर्णं व्यवस्थितम् ॥ १० ॥
रथचक्रं प्रगृह्याजौ मुमोचाधिरथिं प्रति ।

महाराज ! तब सहदेव अपने उस उत्तम रथसे शीघ्र ही वेगपूर्वक कूद पड़े और युद्धस्थलमें अधिरथपुत्र कर्णको सामने खड़ा देख रथका एक चक्का लेकर उसके ऊपर चला दिया ॥ १०½ ॥

तदापतद् वै सहसा कालचक्रमिवोद्यतम् ॥ ११ ॥
शरैरनेकसाहस्रैराच्छिनत् सूतनन्दनः ।

उठे हुए कालचक्रके समान सहसा अपने ऊपर गिरते हुए उस रथचक्रको सूतनन्दन कर्णने कई हजार बाणोंसे काट गिराया ॥ ११½ ॥

तस्मिंस्तु निहते चक्रे सूतजेन महात्मना ॥ १२ ॥
ईषादण्डकयोक्त्रांश्च युगानि विविधानि च ।
हस्त्यङ्गानि तथाश्वांश्च मृतांश्च पुरुषान् बहून् ॥ १३ ॥
चिक्षेप कर्णमुद्दिश्य कर्णस्तान् व्यधमच्छरैः ।

महामनस्वी सूतपुत्र कर्णके द्वारा उस रथचक्रके नष्ट कर दिये जानेपर ईषादण्ड, जोते, नाना प्रकारके जूए, हाथीके कटे हुए अङ्ग, मरे घोड़े और बहुत-सी मृत मनुष्योंकी लाशें कर्णको लक्ष्य करके चलायीं; परंतु कर्णने अपने बाणोंद्वारा उन सबकी धज्जियाँ उड़ा दीं ॥ १२-१३½ ॥

स निरायुधमात्मानं ज्ञात्वा माद्रवतीसुतः ॥ १४ ॥
वार्यमाणस्तु विशिखैः सहदेवो रणं जहौ ।

तत्पश्चात् माद्रीकुमार सहदेवने अपने आपको आयुधोंसे रहित समझकर कर्णके बाणोंसे अवरुद्ध हो उस रणभूमिको त्याग दिया ॥ १४½ ॥

तमभिद्रुत्य राधेयो मुहूर्ताद् भरतर्षभ ॥ १५ ॥
अब्रवीत् प्रहसन् वाक्यं सहदेवं विशाम्पते ।

भरतश्रेष्ठ ! प्रजानाथ ! तदनन्तर राधापुत्र कर्णने दो घड़ीतक सहदेवका पीछा करके उनसे हँसते हुए इस प्रकार कहा—॥ १५½ ॥

मा युध्यस्व रणेऽधीर विशिष्टै रथिभिः सह ॥ १६ ॥
सदृशैर्युध्य माद्रेय वचो मे मा विशङ्किथाः ।

'ओ अधीर बालक ! तू युद्धस्थलमें विशिष्ट रथियोंके साथ संग्राम न करना । माद्रीकुमार ! अपने समान योद्धाओं-के साथ युद्ध किया कर । मेरी इस बातपर संदेह न करना' ॥

अथैनं धनुषोऽग्रेण तुदन् भूयोऽब्रवीद् वचः ॥ १७ ॥
एषोऽर्जुनो रणे तूर्णं युध्यते कुरुभिः सह ।
तत्र गच्छस्व माद्रेय गृहं वा यदि मन्यसे ॥ १८ ॥

तदनन्तर धनुषकी नोकसे उन्हें पीड़ा देते हुए कर्णने पुनः इस प्रकार कहा—'माद्रीपुत्र ! ये अर्जुन कौरवोंके साथ रणभूमिमें शीघ्रतापूर्वक युद्ध कर रहे हैं । तू उन्हींके पास चला जा अथवा तेरा मन हो तो घरको लौट जा' ॥१७-१८॥

एवमुक्त्वा तु तं कर्णो रथेन रथिनां वरः ।
प्रायात् पाञ्चालपाण्डूनां सैन्यानि प्रदहन्निव ॥ १९ ॥

सहदेवसे ऐसा कहकर रथियोंमें श्रेष्ठ कर्ण पाञ्चालों और पाण्डवोंकी सेनाओंको दग्ध करता हुआ-सा रथके द्वारा उनकी ओर वेगपूर्वक चल दिया ॥ १९ ॥

वधं प्राप्तं तु माद्रेयं नावधीत् समरेऽरिहा ।
कुन्त्याः स्मृत्वा वचो राजन् सत्यसंधो महायशाः ॥ २० ॥

यद्यपि सहदेव उस समय वध करने योग्य अवस्थामें पहुँच गये थे, तो भी कुन्तीको दिये हुए वचनको याद करके समराङ्गणमें शत्रुसूदन सत्यप्रतिज्ञ एवं महायशस्वी कर्णने उनका वध नहीं किया ॥ २० ॥

सहदेवस्ततो राजन् विमनाः शरपीडितः ।
कर्णवाक्छरतप्तश्च जीवितान्निरविद्यत ॥ २१ ॥

राजन् ! तदनन्तर सहदेव कर्णके बाणोंसे पीड़ित और उसके वचनरूपी बाणोंसे संतप्त एवं खिन्नचित्त हो अपने जीवनसे विरक्त हो गये ॥ २१ ॥

आरुरोह रथं चापि पाञ्चालस्य महात्मनः ।
जनमेजयस्य समरे त्वरायुक्तो महारथः ॥ २२ ॥

फिर वे महारथी सहदेव बड़ी उतावलीके साथ महामना पाञ्चाल-राजकुमार जनमेजयके रथपर आरूढ़ हो गये ॥२२॥

विराटं सहसेनं तु द्रोणं वै द्रुतमागतम् ।
मद्रराजः शरौघेण च्छादयामास धन्विनम् ॥ २३ ॥

द्रोणाचार्यपर वेगपूर्वक आक्रमण करनेवाले सेनासहित धनुर्धर राजा विराटको मद्रराज शल्यने अपने बाणसमूहोंसे आच्छादित कर दिया ॥ २३ ॥

तयोः समभवद् युद्धं समरे दृढधन्विनोः ।
यादृशं ह्यभवद् राजञ्जम्भवासवयोः पुरा ॥ २४ ॥

राजन्! फिर तो समराङ्गणमें उन दोनों सुदृढ़ धनुर्धर योद्धाओंमें वैसा ही घोर युद्ध होने लगा, जैसा कि पूर्वकालमें इन्द्र और जम्भासुरमें हुआ था ॥ २४ ॥

मद्रराजो महाराज विराटं वाहिनीपतिम् ।
आजघ्ने त्वरितस्तूर्णं शतेन नतपर्वणाम् ॥ २५ ॥

महाराज! मद्रराज शल्यने सेनापति राजा विराटको बड़ी उतावलीके साथ झुकी हुई गाँठवाले सौ बाण मारकर तुरंत घायल कर दिया ॥ २५ ॥

प्रतिविव्याध तं राजन् नवभिर्निशितैः शरैः ।
पुनश्चैनं त्रिसप्तत्या भूयश्चैव शतेन तु ॥ २६ ॥

राजन्! तब विराटने मद्रराजको पहले नौ, फिर तिहत्तर और पुनः सौ तीखे बाणोंसे घायल करके बदला चुकाया ॥ २६ ॥

तस्य मद्राधिपो हत्वा चतुरो रथवाजिनः ।
सूतं ध्वजं च समरे शराभ्यां संन्यपातयत् ॥ २७ ॥

तदनन्तर मद्रराजने विराटके रथके चारों घोड़ोंको मारकर दो बाणोंसे समराङ्गणमें सारथि और ध्वजको भी काट गिराया ॥ २७ ॥

हताश्वात् तु रथात् तूर्णमवप्लुत्य महारथः ।
तस्थौ विस्फारयंश्चापं विमुञ्चंश्च शिताञ्छरान्॥ २८ ॥

तब उस अश्वहीन रथसे तुरंत ही कूदकर महारथी राजा विराट धनुषकी टंकार करते और तीखे बाणोंको छोड़ते हुए भूमिपर खड़े हो गये ॥ २८ ॥

शतानीकस्ततो दृष्ट्वा भ्रातरं हतवाहनम् ।
रथेनाभ्यपतत् तूर्णं सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ २९ ॥

तत्पश्चात् शतानीक अपने भाईके वाहनको नष्ट हुआ देख सब लोगोंके देखते-देखते शीघ्र ही रथके द्वारा उनके पास आ पहुँचे ॥ २९ ॥

शतानीकमथायान्तं मद्रराजो महामृधे ।
विशिखैर्बहुभिर्विद्ध्वा ततो निन्ये यमक्षयम् ॥ ३० ॥

उस महासमरमें वहाँ आते हुए शतानीकको बहुत-से बाणोंद्वारा घायल करके मद्रराज शल्यने उन्हें यमलोक पहुँचा दिया ॥ ३० ॥

तस्मिंस्तु निहते वीरे विराटो रथसत्तमः ।
आरुरोह रथं तूर्णं तमेव ध्वजमालिनम् ॥ ३१ ॥

वीर शतानीकके मारे जानेपर रथियोंमें श्रेष्ठ विराट तुरंत ही ध्वज-मालासे विभूषित उसी रथपर आरूढ़ हो गये ॥ ३१ ॥

ततो विस्फार्य नयने क्रोधाद् द्विगुणविक्रमः ।
मद्रराजरथं तूर्णं छादयामास पत्रिभिः ॥ ३२ ॥

तब क्रोधसे आँखें फाड़कर दूना पराक्रम दिखाते हुए विराटने अपने बाणोंद्वारा मद्रराजके रथको शीघ्र ही आच्छादित कर दिया ॥ ३२ ॥

ततो मद्राधिपः क्रुद्धः शरेणानतपर्वणा ।
आजघानोरसि दृढं विराटं वाहिनीपतिम् ॥ ३३ ॥

इससे कुपित हुए मद्रराज शल्यने झुकी हुई गाँठवाले एक बाणसे सेनापति विराटकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥

सोऽतिविद्धो महाराज रथोपस्थ उपाविशत् ।
कश्मलं चाविशत् तीव्रं विराटो भरतर्षभ ॥ ३४ ॥

महाराज! भरतभूषण! राजा विराट अत्यन्त घायल होकर रथके पिछले भागमें धम्म-से बैठ गये और उन्हें तीव्र मूर्च्छाने दबा लिया ॥ ३४ ॥

सारथिस्तमपोवाह समरे शरविक्षतम् ।
ततः सा महती सेना प्राद्रवन्निशि भारत ॥ ३५ ॥
वध्यमाना शरशतैः शल्येनाहवशोभिना ।

भरतनन्दन! समराङ्गणमें बाणोंसे क्षत-विक्षत हुए राजा विराटको उनका सारथि दूर हटा ले गया। तब संग्राममें शोभा पानेवाले शल्यके सैकड़ों सायकोंसे पीड़ित हुई वह विशाल सेना उस रात्रिके समय भाग खड़ी हुई ॥

तां दृष्ट्वा विद्रुतां सेनां वासुदेवधनंजयौ ॥ ३६ ॥
प्रयातौ तत्र राजेन्द्र यत्र शल्यो व्यवस्थितः ।

राजेन्द्र! उस सेनाको भागती देख श्रीकृष्ण और अर्जुन उसी ओर चल दिये, जहाँ राजा शल्य खड़े थे ॥

तौ तु प्रत्युद्ययौ राजन् राक्षसेन्द्रो ह्यलम्बुषः॥ ३७ ॥
अष्टचक्रसमायुक्तमास्थाय प्रवरं रथम् ।

राजन्! उस समय राक्षसराज अलम्बुष आठ पहियोंसे युक्त श्रेष्ठ रथपर आरूढ़ हो उन दोनोंका सामना करनेके लिये आगे बढ़ आया ॥ ३७½ ॥

तुरङ्गममुखैर्युक्तं पिशाचैर्घोरदर्शनैः ॥ ३८ ॥
लोहितार्द्रपताकं तं रक्तमाल्यविभूषितम् ।
कार्ष्णायसमयं घोरमृक्षचर्मसमावृतम् ॥ ३९ ॥

उसके उस रथमें घोड़ोंके समान मुखवाले भयंकर पिशाच जुते हुए थे। उसपर लाल रंगकी आर्द्र पताका

फहरा रही थी। उस रथको लाल रंगके फूलोंकी मालासे सजाया गया था। वह भयंकर रथ काले लोहेका बना था और उसके ऊपर रीछकी खाल मढ़ी हुई थी ॥ ३८-३९ ॥

रौद्रेण चित्रपक्षेण विवृताक्षेण कूजता।
ध्वजेनोच्छ्रितदण्डेन गृध्रराजेन राजता ॥ ४० ॥
स बभौ राक्षसो राजन् भिन्नाञ्जनचयोपमः।

उसकी ध्वजापर विचित्र पंख और फैले हुए नेत्रोंवाला भयंकर गृध्रराज अपनी बोली बोलता था। उससे उपलक्षित उस ऊँचे डंडेवाले कान्तिमान् ध्वजसे कटे-छटे कोयलेके पहाड़के समान वह राक्षस बड़ी शोभा पा रहा था ॥ ४०½ ॥

रुरोधार्जुनमायान्तं प्रभञ्जनमिवाद्रिराट् ॥ ४१ ॥
किरन् बाणगणान् राजञ्शतशोऽर्जुनमूर्धनि।

राजन्! अर्जुनके मस्तकपर सैकड़ों बाण-समूहोंकी वर्षा करते हुए उस राक्षसने अपनी ओर आते हुए अर्जुनको उसी प्रकार रोक दिया, जैसे गिरिराज हिमालय प्रचण्ड वायुको रोक देता है ॥ ४१½ ॥

अतितीव्रं महद् युद्धं नरराक्षसयोस्तदा ॥ ४२ ॥
द्रष्टृणां प्रीतिजननं सर्वेषां तत्र भारत।
गृध्रकाकबलोलूककङ्कगोमायुहर्षणम् ॥ ४३ ॥

भारत! उस समय वहाँ मनुष्य और राक्षसमें बड़े जोरसे महान् संग्राम होने लगा, जो समस्त दर्शकोंका आनन्द बढ़ानेवाला और गीध, कौए, बगले, उल्लू, कङ्क तथा गीदड़ोंको हर्ष प्रदान करनेवाला था ॥ ४२-४३ ॥

तमर्जुनः शतेनैव पत्रिणां समताडयत्।
नवभिश्च शितैर्बाणैर्ध्वजं चिच्छेद भारत ॥ ४४ ॥

भरतनन्दन! अर्जुनने सौ बाणोंसे उस राक्षसको घायल कर दिया और नौ तीखे बाणोंसे उसकी ध्वजा काट डाली ॥ ४४ ॥

सारथिं च त्रिभिर्बाणैस्त्रिभिरेव त्रिवेणुकम्।
धनुरेकेन चिच्छेद चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ ४५ ॥

फिर तीन बाणोंसे उसके सारथिको, तीनसे ही रथके त्रिवेणुको, एकसे उसके धनुषको और चार बाणोंसे चारों घोड़ोंको काट डाला ॥ ४५ ॥

पुनः सज्यं कृतं चापं तदप्यस्य द्विधाच्छिनत्।
विरथस्योद्यतं खड्गं शरेणास्य द्विधाकरोत् ॥ ४६ ॥

जब उसने पुनः दूसरे धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी तो अर्जुनने उसके भी दो टुकड़े कर दिये। रथहीन होनेपर उस राक्षसने जब खड्ग उठाया, तब अर्जुनने एक बाण मारकर उसके भी दो खण्ड कर डाले ॥ ४६ ॥

अथैनं निशितैर्बाणैश्चतुर्भिर्भरतर्षभ।
पार्थोऽविध्यद् राक्षसेन्द्रं स विद्धः प्राद्रवद् भयात् ॥ ४७ ॥

भरतश्रेष्ठ! तत्पश्चात् कुन्तीकुमार अर्जुनने चार तीखे बाणोंद्वारा उस राक्षसराजको बींध डाला। उन बाणोंसे विद्ध होकर अलम्बुष भयके मारे भाग गया ॥ ४७ ॥

तं विजित्यार्जुनस्तूर्णं द्रोणान्तिकमुपाययौ।
किरञ्शरगणान् राजन् नरवारणवाजिषु ॥ ४८ ॥

राजन्! उसे परास्त करके अर्जुन मनुष्यों, हाथियों तथा घोड़ोंपर बाणसमूहोंकी वर्षा करते हुए तुरंत ही द्रोणाचार्यके समीप चले गये ॥ ४८ ॥

वध्यमाना महाराज पाण्डवेन यशस्विना।
सैनिका न्यपतन्नुर्व्यां वातनुन्ना इव द्रुमाः ॥ ४९ ॥

महाराज! उन यशस्वी पाण्डुकुमारके द्वारा मारे जाते हुए आपके सैनिक आँधीके उखाड़े हुए वृक्षोंके समान धड़ाधड़ पृथ्वीपर गिर रहे थे ॥ ४९ ॥

तेषु तूत्साद्यमानेषु फाल्गुनेन महात्मना।
सम्प्राद्रवद् बलं सर्वं पुत्राणां ते विशाम्पते ॥ ५० ॥

प्रजानाथ! जब इस प्रकार महात्मा अर्जुनके द्वारा उनका संहार होने लगा, तब आपके पुत्रोंकी सारी सेना भाग चली ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे अलम्बुषपराभवे सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके अवसरपर अलम्बुषकी पराजयविषयक एक सौ सरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६७ ॥

अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

शतानीकके द्वारा चित्रसेनकी और वृषसेनके द्वारा द्रुपदकी पराजय तथा प्रतिविन्ध्य एवं दुःशासनका युद्ध

संजय उवाच

शतानीकं शरैस्तूर्णं निर्दहन्तं चमूं तव।
चित्रसेनस्तव सुतो वारयामास भारत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—भारत! एक ओरसे नकुलपुत्र

शतानीक अपनी शराग्निसे आपकी सेनाको भस्म करता हुआ आ रहा था। उसे आपके पुत्र चित्रसेनने रोका॥ १॥

नाकुलिश्चित्रसेनं तु विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः।
स तु तं प्रतिविव्याध दशभिर्निशितैः शरैः॥ २॥

शतानीकने चित्रसेनको पाँच बाण मारे। चित्रसेनने भी दस पैने बाण मारकर बदला चुकाया॥ २॥

चित्रसेनो महाराज शतानीकं पुनर्युधि।
नवभिर्निशितैर्बाणैराजघान स्तनान्तरे॥ ३॥

महाराज! चित्रसेनने युद्धस्थलमें पुनः नौ तीखे बाणोंद्वारा शतानीककी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी॥ ३॥

नाकुलिस्तस्य विशिखैर्वर्म संनतपर्वभिः।
गात्रात् संच्यावयामास तदद्भुतमिवाभवत्॥ ४॥

तब नकुलपुत्रने झुकी हुई गाँठवाले अनेक बाण मारकर चित्रसेनके शरीरसे उसके कवचको काट गिराया। वह अद्भुत सा कार्य हुआ॥ ४॥

सोऽपेतवर्मा पुत्रस्ते विरराज भृशं नृप।
उत्सृज्य काले राजेन्द्र निर्मोकमिव पन्नगः॥ ५॥

नरेश्वर! राजेन्द्र! कवच कट जानेपर आपका पुत्र चित्रसेन समयपर केंचुल छोड़नेवाले सर्पके समान अत्यन्त सुशोभित हुआ॥ ५॥

ततोऽस्य निशितैर्बाणैर्ध्वजं चिच्छेद नाकुलिः।
धनुश्चैव महाराज यतमानस्य संयुगे॥ ६॥

महाराज! तदनन्तर नकुलपुत्र शतानीकने युद्धस्थलमें विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले चित्रसेनके ध्वज और धनुषको पैने बाणोंद्वारा काट दिया॥ ६॥

स च्छिन्नधन्वा समरे विवर्मा च महारथः।
धनुरन्यन्महाराज जग्राहारिविदारणम्॥ ७॥

राजेन्द्र! समराङ्गणमें धनुष और कवच कट जानेपर महारथी चित्रसेनने दूसरा धनुष हाथमें लिया, जो शत्रुको विदीर्ण करनेमें समर्थ था॥ ७॥

ततस्तूर्णं चित्रसेनो नाकुलिं नवभिः शरैः।
विव्याध समरे क्रुद्धो भरतानां महारथः॥ ८॥

उस समय समरभूमिमें कुपित हुए भरतकुलके महारथी वीर चित्रसेनने नकुलपुत्र शतानीकको नौ बाणोंसे घायल कर दिया॥ ८॥

शतानीकोऽथ संक्रुद्धश्चित्रसेनस्य मारिष।
जघान चतुरो वाहान् सारथिं च नरोत्तमः॥ ९॥

माननीय नरेश! तब अत्यन्त कुपित हुए नरश्रेष्ठ शतानीकने चित्रसेनके चारों घोड़ों और सारथिको मार डाला॥

अवप्लुत्य रथात् तस्माच्चित्रसेनो महारथः।
नाकुलिं पञ्चविंशत्या शराणामार्दयद् बली॥ १०॥

तब बलवान् महारथी चित्रसेनने उस रथसे कूदकर नकुलपुत्र शतानीकको पचीस बाण मारे॥ १०॥

तस्य तत्कुर्वतः कर्म नकुलस्य सुतो रणे।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद चापं रत्नविभूषितम्॥ ११॥

यह देख रणक्षेत्रमें नकुलपुत्रने पूर्वोक्त कर्म करनेवाले चित्रसेनके रत्नविभूषित धनुषको एक अर्धचन्द्राकार बाणसे काट डाला॥ ११॥

स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
आरुरोह रथं तूर्णं हार्दिक्यस्य महात्मनः॥ १२॥

धनुष कट गया, घोड़े और सारथि मारे गये और वह रथहीन हो गया। उस अवस्थामें चित्रसेन तुरंत भागकर महामना कृतवर्माके रथपर जा चढ़ा॥ १२॥

द्रुपदं तु सहानीकं द्रोणप्रेप्सुं महारथम्।
वृषसेनोऽभ्ययात् तूर्णं किरञ्शरशतैस्तदा॥ १३॥

द्रोणाचार्यका सामना करनेके लिये आते हुए महारथी द्रुपदपर वृषसेनने सैकड़ों बाणोंकी वर्षा करते हुए तत्काल आक्रमण कर दिया॥ १३॥

यज्ञसेनस्तु समरे कर्णपुत्रं महारथम्।
षष्ट्या शराणां विव्याध बाह्वोरुरसि चानघ॥ १४॥

निष्पाप नरेश! समराङ्गणमें राजा यज्ञसेन (द्रुपद) ने महारथी कर्णपुत्र वृषसेनकी छाती और भुजाओंमें साठ बाण मारे॥ १४॥

वृषसेनस्तु संक्रुद्धो यज्ञसेनं रथे स्थितम्।
बहुभिः सायकैस्तीक्ष्णैराजघान स्तनान्तरे॥ १५॥

तब वृषसेन अत्यन्त कुपित होकर रथपर बैठे हुए यज्ञसेनकी छातीमें बहुत-से पैने बाण मारे॥ १५॥

तावुभौ शरनुन्नाङ्गौ शरकण्टकितौ रणे।
व्यभ्राजेतां महाराज श्वाविधौ शललैरिव॥ १६॥

महाराज! उन दोनोंके ही शरीर एक दूसरेके बाणोंसे क्षत-विक्षत हो गये थे। वे दोनों ही बाणरूपी कंटकोंसे युक्त हो काँटोंसे भरे हुए दो साही नामक जन्तुओंके समान शोभित हो रहे थे॥ १६॥

रुक्मपुङ्खैः प्रसन्नाग्रैः शरैश्छिन्नतनुच्छदौ।
रुधिरौघपरिक्लिन्नौ व्यभ्राजेतां महामृधे॥ १७॥

सोनेके पंख और स्वच्छ धारवाले बाणोंसे उस महासमरमें दोनोंके कवच कट गये थे और दोनों ही लहू-लुहान होकर अद्भुत शोभा पा रहे थे॥ १७॥

तपनीयनिभौ चित्रौ कल्पवृक्षाविवाद्भुतौ।

किंशुकाविव चोत्फुल्लौ व्यकाशेतां रणाजिरे ॥ १८ ॥

वे दोनों सुवर्णके समान विचित्र, कल्पवृक्षके समान अद्भुत और खिले हुए दो पलाश वृक्षोंके समान अनूठी शोभासे सम्पन्न हो रणभूमिमें प्रकाशित हो रहे थे ॥ १८ ॥

वृषसेनस्ततो राजन् द्रुपदं नवभिः शरैः।
विद्ध्वा विव्याध सप्तत्या पुनरन्यैस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥१९॥

राजन् ! तदनन्तर वृषसेनने राजा द्रुपदको नौ बाणोंसे घायल करके फिर सत्तर बाणसे बींध डाला। तत्पश्चात् उन्हें तीन-तीन बाण और मारे ॥ १९ ॥

ततः शरसहस्राणि विमुञ्चन् विबभौ तदा।
कर्णपुत्रो महाराज वर्षमाण इवाम्बुदः ॥ २० ॥

महाराज ! तदनन्तर सहस्रों बाणोंका प्रहार करता हुआ कर्णपुत्र वृषसेन जलकी वर्षा करनेवाले मेघके समान सुशोभित होने लगा ॥ २० ॥

द्रुपदस्तु ततः क्रुद्धो वृषसेनस्य कार्मुकम्।
द्विधा चिच्छेद भल्लेन पीतेन निशितेन च ॥ २१ ॥

इससे क्रोधमें भरे हुए राजा द्रुपदने एक पानीदार पैने भल्लसे वृषसेनके धनुषके दो टुकड़े कर डाले ॥ २१ ॥

सोऽन्यत् कार्मुकमादाय रुक्मबद्धं नवं दृढम्।
तूणादाकृष्य विमलं भल्लं पीतं शितं दृढम् ॥ २२ ॥
कार्मुके योजयित्वा तं द्रुपदं संनिरीक्ष्य च।
आकर्णपूर्णं मुमुचे त्रासयन् सर्वसोमकान् ॥ २३ ॥

तब उसने सोनेसे मढ़े हुए दूसरे नवीन एवं सुदृढ़ धनुषको हाथमें लेकर तरकससे एक चमचमाता हुआ पानीदार, तीखा और मजबूत भल्ल निकाला। उसे धनुषपर रक्खा और कानतक खींचकर समस्त सोमकोंको भयभीत करते हुए वृषसेनने राजा द्रुपदको लक्ष्य करके वह भल्ल छोड़ दिया ॥ २२-२३ ॥

हृदयं तस्य भित्त्वा च जगाम वसुधातलम्।
कश्मलं प्राविशद् राजा वृषसेनशराहतः ॥ २४ ॥

वह भल्ल द्रुपदकी छाती छेदकर धरतीपर जा गिरा। वृषसेनके उस भल्लसे आहत होकर राजा द्रुपद मूर्छित हो गये ॥ २४ ॥

सारथिस्तमपोवाह स्मरन् सारथिचेष्टितम्।
तस्मिन् प्रभग्ने राजेन्द्र पञ्चालानां महारथे ॥ २५ ॥
ततस्तु द्रुपदानीकं शरैश्छिन्नतनुच्छदम्।
सम्प्राद्रवत् तदा राजन् निशीथे भैरवे सति ॥ २६ ॥

राजेन्द्र ! तब सारथि अपने कर्तव्यका स्मरण करके उन्हें रणभूमिसे दूर हटा ले गया। पाञ्चालोंके महारथी द्रुपदके हट जानेपर बाणोंसे कटे हुए कवचवाली द्रुपदकी सारी सेना उस भयंकर आधीरातके समय वहाँसे भाग चली ॥ २५-२६ ॥

प्रदीपैर्हि परित्यक्तैर्ज्वलद्भिस्तैः समन्ततः।
व्यराजत मही राजन् वीताभ्रा द्यौरिव ग्रहैः ॥ २७ ॥

राजन् ! भागते हुए सैनिकोंने जो मशालें फेंक दी थीं, वे सब ओर जल रही थीं। उनके द्वारा वह रणभूमि ग्रह-नक्षत्रोंसे भरे हुए मेघहीन आकाशके समान सुशोभित हो रही थी ॥ २७ ॥

तथाङ्गदैर्निपतितैर्व्यराजत वसुंधरा।
प्रावृट्काले महाराज विद्युद्भिरिव तोयदः ॥ २८ ॥

महाराज ! वीरोंके गिरे हुए चमकीले बाजूबन्दोंसे वहाँकी भूमि वैसी ही शोभा पा रही थी, जैसे वर्षाकालमें बिजलियोंसे मेघ प्रकाशित होता है ॥ २८ ॥

ततः कर्णसुतात् त्रस्ताः सोमका विप्रदुद्रुवुः।
यथेन्द्रभयवित्रस्ता दानवास्तारकामये ॥ २९ ॥

तदनन्तर कर्णपुत्र वृषसेनके भयसे त्रस्त हो सोमकवंशी क्षत्रिय उसी प्रकार भागने लगे, जैसे तारकामय संग्राममें इन्द्रके भयसे डरे हुए दानव भागे थे ॥ २९ ॥

तेनार्द्यमानाः समरे द्रवमाणाश्च सोमकाः।
व्यराजन्त महाराज प्रदीपैरवभासिताः ॥ ३० ॥

महाराज ! समरभूमिमें वृषसेनसे पीड़ित होकर भागते हुए सोमक योद्धा प्रदीपोंसे प्रकाशित हो बड़ी शोभा पा रहे थे ॥ ३० ॥

तांस्तु निर्जित्य समरे कर्णपुत्रोऽप्यरोचत।
मध्यंदिनमनुप्राप्तो घर्मांशुरिव भारत ॥ ३१ ॥

भारत ! युद्धस्थलमें उन सबको जीतकर कर्णपुत्र वृषसेन भी दोपहरके प्रचण्ड किरणोंवाले सूर्यके समान उद्भासित हो रहा था ॥ ३१ ॥

तेषु राजसहस्रेषु तावकेषु परेषु च।
एक एव ज्वलंस्तस्थौ वृषसेनः प्रतापवान् ॥ ३२ ॥

आपके और शत्रुपक्षके सहस्रों राजाओंके बीच एकमात्र प्रतापी वृषसेन ही अपने तेजसे प्रकाशित होता हुआ रणभूमिमें खड़ा था ॥ ३२ ॥

स विजित्य रणे शूरान् सोमकानां महारथान्।
जगाम त्वरितस्तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ ३३ ॥

वह युद्धके मैदानमें शूरवीर सोमक महारथियोंको परास्त करके तुरंत वहाँ चला गया, जहाँ राजा युधिष्ठिर खड़े थे ॥ ३३ ॥

प्रतिविन्ध्यमथ क्रुद्धं प्रदहन्तं रणे रिपून्।
दुःशासनस्तव सुतः प्रत्यगच्छन्महारथः ॥ ३४ ॥

दूसरी ओर क्रोधमें भरा हुआ प्रतिविन्ध्य रणक्षेत्रमें शत्रुओंको दग्ध कर रहा था। उसका सामना करनेके लिये आपका महारथी पुत्र दुःशासन आ पहुँचा ॥ ३४ ॥

तयोः समागमो राजंश्चित्ररूपो बभूव ह।
व्यपेतजलदे व्योम्नि बुधभास्करयोरिव ॥ ३५ ॥

राजन्! जैसे मेघरहित आकाशमें बुध और सूर्यका समागम हो, उसी प्रकार युद्धस्थलमें उन दोनोंका अद्भुत मिलन हुआ ॥ ३५ ॥

प्रतिविन्ध्यं तु समरे कुर्वाणं कर्म दुष्करम्।
दुःशासनस्त्रिभिर्बाणैर्ललाटे समविध्यत ॥ ३६ ॥

समराङ्गणमें दुष्कर कर्म करनेवाले प्रतिविन्ध्यके ललाटमें दुःशासनने तीन बाण मारे ॥ ३६ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता तव पुत्रेण धन्विना।
विरराज महाबाहुः सश्रृङ्ग इव पर्वतः ॥ ३७ ॥

आपके बलवान् धनुर्धर पुत्रद्वारा चलाये हुए उन बाणोंसे अत्यन्त घायल हो महाबाहु प्रतिविन्ध्य तीन शिखरों-वाले पर्वतके समान सुशोभित हुआ ॥ ३७ ॥

दुःशासनं तु समरे प्रतिविन्ध्यो महारथः।
नवभिः सायकैर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ ३८ ॥

तत्पश्चात् महारथी प्रतिविन्ध्यने समरभूमिमें दुःशासन-को नौ बाणोंसे घायल करके फिर सात बाणोंसे बींध डाला ॥ ३८ ॥

तत्र भारत पुत्रस्ते कृतवान् कर्म दुष्करम्।
प्रतिविन्ध्यहयानुग्रैः पातयामास सायकैः ॥ ३९ ॥

भारत! उस समय वहाँ आपके पुत्रने एक दुष्कर पराक्रम कर दिखाया। उसने अपने भयंकर बाणोंद्वारा प्रति-विन्ध्यके घोड़ोंको मार गिराया ॥ ३९ ॥

सारथिं चास्य भल्लेन ध्वजं च समपातयत्।
रथं च तिलशो राजन् व्यधमत् तस्य धन्विनः ॥ ४० ॥

राजन्! फिर एक भल्ल मारकर उसने धनुर्धर वीर प्रतिविन्ध्यके सारथि और ध्वजको धराशायी कर दिया तथा रथके भी तिलके समान टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ४० ॥

पताकाश्च सतूणीरा रश्मीन् योक्त्राणि च प्रभो।
चिच्छेद तिलशः क्रुद्धः शरैः संनतपर्वभिः ॥ ४१ ॥

प्रभो! क्रोधमें भरे हुए दुःशासनने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे प्रतिविन्ध्यकी पताकाओं, तरकसों, उनके घोड़ोंकी बागडोरों और रथके जोतोंको भी तिल-तिल करके काट डाला ॥ ४१ ॥

विरथः स तु धर्मात्मा धनुष्पाणिरवस्थितः।
अयोधयत् तव सुतं किरञ्शरशतान् बहून् ॥ ४२ ॥

धर्मात्मा प्रतिविन्ध्य रथहीन हो जानेपर हाथमें धनुष लिये पृथ्वीपर खड़ा हो गया और सैकड़ों बाणोंकी वर्षा करता हुआ आपके पुत्रके साथ युद्ध करने लगा ॥ ४२ ॥

क्षुरप्रेण धनुस्तस्य चिच्छेद तनयस्तव।
अथैनं दशभिर्बाणैश्छिन्नधन्वानमार्दयत् ॥ ४३ ॥

तब आपके पुत्रने एक क्षुरप्रसे प्रतिविन्ध्यका धनुष काट दिया और धनुष कट जानेपर उसे दस बाणोंसे गहरी चोट पहुँचायी ॥ ४३ ॥

तं दृष्ट्वा विरथं तत्र भ्रातरोऽस्य महारथाः।
अन्ववर्तन्त वेगेन महत्या सेनया सह ॥ ४४ ॥

उसे रथहीन हुआ देख उसके अन्य महारथी भाई विशाल सेनाके साथ बड़े वेगसे उसकी सहायताके लिये आ पहुँचे ॥ ४४ ॥

आप्लुतः स ततो यानं सुतसोमस्य भास्वरम्।
धनुर्गृह्य महाराज विव्याध तनयं तव ॥ ४५ ॥

महाराज! तब प्रतिविन्ध्य उछलकर सुतसोमके तेजस्वी रथपर जा बैठा और हाथमें धनुष लेकर आपके पुत्रको घायल करने लगा ॥ ४५ ॥

ततस्तु तावकाः सर्वे परिवार्य सुतं तव।
अभ्यवर्तन्त संग्रामे महत्या सेनया वृताः ॥ ४६ ॥

यह देख आपके सभी योद्धा आपके पुत्र दुःशासनको सब ओरसे घेरकर विशाल सेनाके साथ वहाँ युद्धके लिये डट गये ॥ ४६ ॥

ततः प्रववृते युद्धं तव तेषां च भारत।
निशीथे दारुणे काले यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ ४७ ॥

भारत! तदनन्तर उस भयंकर निशीथकालमें आपके पुत्र और द्रौपदीपुत्रोंका घोर युद्ध आरम्भ हुआ, जो यमराज-के राज्यकी वृद्धि करनेवाला था ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे शतानीकादियुद्धे अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके समय शतानीक आदिका युद्धविषयक एक सौ अड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६८ ॥

एकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

नकुलके द्वारा शकुनिकी पराजय तथा शिखण्डी और कृपाचार्यका घोर युद्ध

संजय उवाच

नकुलं रभसं युद्धे निघ्नन्तं वाहिनीं तव।
अभ्ययात् सौबलः क्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! वेगशाली नकुल युद्धमें आपकी सेनाका संहार कर रहे थे। उनका सामना करनेके लिये क्रोधमें भरा हुआ सुबलपुत्र शकुनि आया और बोला 'अरे! खड़ा रह, खड़ा रह'॥ १॥

कृतवैरौ तु तौ वीरावन्योन्यवधकाङ्क्षिणौ।
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः॥ २॥

उन दोनों वीरोंने पहलेसे ही आपसमें वैर बाँध रक्खा था, वे एक दूसरेका वध करना चाहते थे; इसलिये पूर्णतः कानतक खींचकर छोड़े हुए बाणोंसे वे एक दूसरेको घायल करने लगे॥ २॥

यथैव नकुलो राजन् शरवर्षाण्यमुञ्चत।
तथैव सौबलश्चापि शिक्षां संदर्शयन् युधि॥ ३॥

राजन्! नकुल जैसे-जैसे बाणोंकी वर्षा करते, शकुनि भी वैसे-ही-वैसे युद्धविषयक शिक्षाका प्रदर्शन करता हुआ बाण छोड़ता था॥ ३॥

तावुभौ समरे शूरौ शरकण्टकिनौ तदा।
व्यराजेतां महाराज श्वाविधौ शललैरिव॥ ४॥

महाराज! वे दोनों शूरवीर समराङ्गणमें बाणरूपी कंटकोंसे युक्त होकर काँटेदार शरीरवाले साहीके समान सुशोभित हो रहे थे॥ ४॥

रुक्मपुङ्खैरजिह्माग्रैः शरैश्छिन्नतनुच्छदौ।
रुधिरौघपरिक्लिन्नौ व्यभ्राजेतां महामृधे॥ ५॥
तपनीयनिभौ चित्रौ कल्पवृक्षाविव द्रुमौ।
किंशुकाविव चोत्फुल्लौ प्रकाशेते रणाजिरे॥ ६॥

सोनेके पंख और सीधे अग्रभागवाले बाणोंसे उन दोनोंके कवच छिन्न-भिन्न हो गये थे। दोनों ही उस महासमरमें खून-से लथपथ हो सुवर्णके समान विचित्र कान्तिसे सुशोभित हो रहे थे। वे दो कल्पवृक्षों और खिले हुए दो ढाकके पेड़ोंके समान समराङ्गणमें प्रकाशित हो रहे थे॥ ५-६॥

तावुभौ समरे शूरौ शरकण्टकिनौ तदा।
व्यराजेतां महाराज कण्टकैरिव शाल्मली॥ ७॥

महाराज! जैसे काटोंसे सेमरका वृक्ष सुशोभित होता है, उसी प्रकार वे दोनों शूरवीर समरभूमिमें बाणरूपी कंटकोंसे युक्त दिखायी देते थे॥ ७॥

सुजिह्मं प्रेक्षमाणौ च राजन् विवृतलोचनौ।
क्रोधसंरक्तनयनौ निर्दहन्तौ परस्परम्॥ ८॥

राजन्! वे अत्यन्त कुटिलभावसे परस्पर आँखें फाड़-फाड़कर देख रहे थे और क्रोधसे लाल नेत्र करके एक दूसरेको ऐसे देखते थे, मानो भस्म कर देंगे॥ ८॥

श्यालस्तु तव संक्रुद्धो माद्रीपुत्रं हसन्निव।
कर्णिनैकेन विव्याध हृदये निशितेन ह॥ ९॥

तदनन्तर अत्यन्त क्रोधमें भरकर हँसते हुए-से आपके सालेने एक तीखे कर्णी नामक बाणसे माद्रीपुत्र नकुलकी छातीमें गहरा आघात किया॥ ९॥

नकुलस्तु भृशं विद्धः श्यालेन तव धन्विना।
निषसाद रथोपस्थे कश्मलं चाविशन्महत्॥ १०॥

आपके धनुर्धर सालेके द्वारा अत्यन्त घायल किये हुए नकुल रथके पिछले भागमें बैठ गये और भारी मूर्छामें पड़ गये॥ १०॥

अत्यन्तवैरिणं दृप्तं दृष्ट्वा शत्रुं तथागतम्।
ननाद शकुनी राजंस्तपान्ते जलदो यथा॥ ११॥

राजन्! अपने अत्यन्त वैरी और अभिमानी शत्रुको वैसी अवस्थामें पड़ा देख शकुनि वर्षाकालके मेघके समान जोर-जोरसे गर्जना करने लगा॥ ११॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां नकुलः पाण्डुनन्दनः।
अभ्ययात् सौबलं भूयो व्यात्तानन इवान्तकः॥ १२॥

इतनेमें ही पाण्डुनन्दन नकुल होशमें आकर मुँह बाये हुए यमराजके समान पुनः सुबलपुत्रका सामना करनेके लिये आगे बढ़े॥ १२॥

संक्रुद्धः शकुनिं षष्ट्या विव्याध भरतर्षभ।
पुनश्चैनं शतेनैव नाराचानां स्तनान्तरे॥ १३॥

भरतश्रेष्ठ! इन्होंने कुपित होकर शकुनिको साठ बाणोंसे घायल कर दिया। फिर उसकी छातीमें इन्होंने सौ नाराच मारे॥

अथास्य सशरं चापं मुष्टिदेशेऽच्छिनत् तदा।
ध्वजं च त्वरितं छित्त्वा रथाद् भूमावपातयत्॥ १४॥

तत्पश्चात् नकुलने शकुनिके बाणसहित धनुषको मुट्ठी पकड़नेकी जगहसे काट दिया और तुरंत ही उसकी ध्वजाको भी काटकर रथसे भूमिपर गिरा दिया॥ १४॥

विशिखेन च तीक्ष्णेन पीतेन निशितेन च।
ऊरू निर्भिद्य चैकेन नकुलः पाण्डुनन्दनः॥ १५॥
श्येनं सपक्षं व्याधेन पातयामास तं तदा।

इसके बाद एक पानीदार पैने एवं तीखे बाणसे पाण्डुनन्दन नकुलने शकुनिकी दोनों जाँघोंको विदीर्ण करके व्याध-

द्वारा विद्ध हुए पंखयुक्त बाज पक्षीके समान उसे गिरा दिया॥

सोऽतिविद्धो महाराज रथोपस्थ उपाविशत् ॥ १६ ॥
ध्वजयष्टिं परिक्लिश्य कामुकः कामिनीं यथा ।

महाराज ! उस बाणसे अत्यन्त घायल हुआ शकुनि, जैसे कामी पुरुष कामिनीका आलिङ्गन करता है, उसी प्रकार ध्वज-यष्टि (ध्वजाके डंडे) को दोनों भुजाओंसे पकड़कर रथके पिछले भागमें बैठ गया॥ १६½ ॥

तं विसंज्ञं निपतितं दृष्ट्वा श्यालं तवानघ ॥ १७ ॥
अपोवाह रथेनाशु सारथिर्ध्वजिनीमुखात् ।

निष्पाप नरेश ! आपके सालेको बेहोश पड़ा देख सारथि रथके द्वारा शीघ्र ही उसे सेनाके आगेसे दूर हटा ले गया॥

ततः संचुक्रुशुः पार्था ये च तेषां पदानुगाः ॥ १८ ॥
निर्जित्य च रणे शत्रुं नकुलः शत्रुतापनः ।
अब्रवीत् सारथिं क्रुद्धो द्रोणानीकाय मां वह ॥ १९ ॥

फिर तो कुन्तीके पुत्र और उनके सेवक बड़े जोरसे सिंहनाद करने लगे। इस प्रकार रणभूमिमें शत्रुको परास्त करके क्रोधमें भरे हुए शत्रुसंतापी नकुलने अपने सारथिसे कहा—'सूत ! मुझे द्रोणाचार्यकी सेनाके पास ले चलो' ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा माद्रीपुत्रस्य सारथिः ।
प्रायात् तेन तदा राजन् यत्र द्रोणो व्यवस्थितः ॥ २० ॥

राजन् ! माद्रीकुमारका वह वचन सुनकर सारथि उस रथके द्वारा जहाँ द्रोणाचार्य खड़े थे, वहाँ तत्काल जा पहुँचा ॥ २० ॥

शिखण्डिनं तु समरे द्रोणप्रेप्सुं विशाम्पते ।
कृपः शारद्वतो यत्तः प्रत्युद्गच्छत् सवेगितः ॥ २१ ॥

प्रजानाथ ! द्रोणाचार्यके साथ युद्धकी इच्छावाले शिखण्डीका समरभूमिमें सामना करनेके लिये प्रयत्नशील हो शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य बड़े वेगसे आगे बढ़े ॥ २१ ॥

गौतमं द्रुतमायान्तं द्रोणानीकमरिंदमम् ।
विव्याध नवभिर्भल्लैः शिखण्डी प्रहसन्निव ॥ २२ ॥

शत्रुओंको दमन करनेवाले, द्रोण-रक्षक, गौतमगोत्रीय कृपाचार्यको शीघ्रतापूर्वक आते देख हँसते हुए-से शिखण्डीने उन्हें नौ भल्लोंसे बींध डाला ॥ २२ ॥

तमाचार्यो महाराज विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः ।
पुनर्विव्याध विंशत्या पुत्राणां प्रियकृत् तव ॥ २३ ॥

महाराज ! तब आपके पुत्रोंका प्रिय करनेवाले कृपाचार्यने शिखण्डीको पाँच बाणोंसे बींधकर फिर बीस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ २३ ॥

महद् युद्धं तयोरासीद् घोररूपं भयानकम् ।
यथा देवासुरे युद्धे शम्बरामरराजयोः ॥ २४ ॥

पूर्वकालमें देवासुर-संग्रामके अवसरपर शम्बरासुर और इन्द्रमें जैसा युद्ध हुआ था, वैसा ही घोर भयानक एवं महान् युद्ध उन दोनोंमें भी हुआ ॥ २४ ॥

शरजालावृतं व्योम चक्रतुस्तौ महारथौ ।
मेघाविव तपापाये वीरौ समरदुर्मदौ ॥ २५ ॥

उन दोनों रणदुर्मद वीर महारथियोंने वर्षाकालके दो मेघोंके समान आकाशको बाणसमूहोंसे व्याप्त कर दिया ॥

प्रकृत्या घोररूपं तदासीद् घोरतरं पुनः ।
रात्रिश्च भरतश्रेष्ठ योधानां युद्धशालिनाम् ॥ २६ ॥
कालरात्रिनिभा ह्यासीद् घोररूपा भयानका ।

भरतश्रेष्ठ ! स्वभावसे ही भयंकर दिखायी देनेवाला आकाश उस समय और भी घोरतर हो उठा। युद्धभूमिमें शोभा पानेवाले योद्धाओंके लिये वह घोर एवं भयानक रात्रि कालरात्रिके समान प्रतीत होती थी ॥ २६½ ॥

शिखण्डी तु महाराज गौतमस्य महद् धनुः ॥ २७ ॥
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद सज्यं सविशिखं तदा ।

महाराज ! शिखण्डीने उस समय अर्धचन्द्राकार बाण मारकर प्रत्यञ्चा और बाणसहित कृपाचार्यके विशाल धनुषको काट दिया ॥ २७½ ॥

तस्य क्रुद्धः कृपो राजञ्शक्तिं चिक्षेप दारुणाम् ॥ २८ ॥
स्वर्णदण्डामकुण्ठाग्रां कर्मारपरिमार्जिताम् ।

राजन् ! तब कृपाचार्यने कुपित होकर सोनेके दण्ड और अप्रतिहत धारवाली तथा कारीगरके द्वारा साफ की हुई एक भयंकर शक्ति उसके ऊपर चलायी ॥ २८½ ॥

तामापतन्तीं चिच्छेद शिखण्डी बहुभिः शरैः ॥ २९ ॥
साऽपतन्मेदिनीं दीप्ता भासयन्ती महाप्रभा ।

अपने ऊपर आती हुई उस शक्तिको शिखण्डीने बहुत-से बाण मारकर काट दिया। वह अत्यन्त कान्तिमती एवं प्रकाशमान शक्ति खण्डित हो सब ओर प्रकाश बिखेरती हुई पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ २९½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय गौतमो रथिनां वरः ॥ ३० ॥
प्राच्छादयच्छितैर्बाणैर्महाराज शिखण्डिनम् ।

महाराज ! तब रथियोंमें श्रेष्ठ कृपाचार्यने दूसरा धनुष हाथमें लेकर पैने बाणोंद्वारा शिखण्डीको ढक दिया ॥३०½॥

स च्छाद्यमानः समरे गौतमेन यशस्विना ॥ ३१ ॥
न्यषीदत रथोपस्थे शिखण्डी रथिनां वरः ।

समरभूमिमें यशस्वी कृपाचार्यद्वारा बाणोंसे आच्छादित किया जाता हुआ रथियोंमें श्रेष्ठ शिखण्डी रथके पिछले भागमें शिथिल होकर बैठ गया॥ ३१½ ॥

सीदन्तं चैनमालोक्य कृपः शारद्वतो युधि ॥ ३२ ॥
आजघ्ने बहुभिर्बाणैर्जिघांसन्निव भारत ।

भरतनन्दन ! युद्धस्थलमें शिखण्डीको शिथिल हुआ देख शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्यने उसपर बहुत-से बाणोंका प्रहार किया, मानो वे उसे मार डालना चाहते हों ॥ ३२½ ॥

विमुखं तु रणे दृष्ट्वा याज्ञसेनिं महारथम् ॥ ३३ ॥
पञ्चालाः सोमकाश्चैव परिवव्रुः समन्ततः ।

राजा द्रुपदके उस महारथी पुत्रको युद्धविमुख हुआ देख पाञ्चालों और सोमकोंने उसे चारों ओरसे घेरकर अपने बीचमें कर लिया ॥ ३३½ ॥

तथैव तव पुत्राश्च परिवव्रुर्द्विजोत्तमम् ॥ ३४ ॥
महत्या सेनया सार्धं ततो युद्धमवर्तत ।

इसी प्रकार आपके पुत्रोंने भी विशाल सेनाके साथ आकर द्विजश्रेष्ठ कृपाचार्यको अपने बीचमें कर लिया । फिर दोनों दलोंमें घोर युद्ध होने लगा ॥ ३४½ ॥

रथानां च रणे राजन्नन्योन्यमभिधावताम् ॥ ३५ ॥
बभूव तुमुलः शब्दो मेघानां गर्जतामिव ।

राजन् ! रणभूमिमें परस्पर धावा करनेवाले रथोंकी घर्घराहटका भयंकर शब्द मेघोंकी गर्जनाके समान जान पड़ता था ॥ ३५½ ॥

द्रवतां सादिनां चैव गजानां च विशाम्पते ॥ ३६ ॥
अन्योन्यमभितो राजन् क्रूरमायोधनं बभौ ।

प्रजापालक नरेश ! चारों ओर एक दूसरेपर आक्रमण करनेवाले घुड़सवारों और हाथीसवारोंके संघर्षसे वह रणभूमि अत्यन्त दारुण प्रतीत होने लगी ॥ ३६½ ॥

पत्तीनां द्रवतां चैव पादशब्देन मेदिनी ॥ ३७ ॥
अकम्पत महाराज भयत्रस्तेव चाङ्गना ।

महाराज ! दौड़ते हुए पैदल सैनिकोंके पैरोंकी धमकसे यह पृथ्वी भयभीत अबलाके समान काँपने लगी ॥ ३७½ ॥

रथिनो रथमारुह्य प्रद्रुता वेगवत्तरम् ॥ ३८ ॥
अगृह्णन् बहवो राजञ्शलभान् वायसा इव ।

राजन् ! जैसे कौए दौड़-दौड़कर टिड्डियोंको पकड़ते हैं, उसी प्रकार रथपर बैठकर बड़े वेगसे धावा करनेवाले बहुसंख्यक रथी शत्रुपक्षके सैनिकोंको दबोच लेते थे॥३८½॥

तथा गजान् प्रभिन्नांश्च सम्प्रभिन्ना महागजाः ॥ ३९ ॥
तस्मिन्नेव पदे यत्ता निगृह्णन्ति स्म भारत ।

भरतनन्दन ! मदस्रावी विशाल हाथी मदकी धारा बहानेवाले दूसरे गजराजोंसे सहसा भिड़कर एक दूसरेको यत्नपूर्वक काबूमें कर लेते थे ॥ ३९½ ॥

सादी सादिनमासाद्य पत्तयश्च पदातिनम् ॥ ४० ॥
समासाद्य रणेऽन्योन्यं संरब्धा नातिचक्रमुः ।

रणभूमिमें घुड़सवार घुड़सवारोंसे और पैदल पैदलसे भिड़कर परस्पर कुपित होते हुए भी एक दूसरेको लाँघकर आगे नहीं बढ़ पाते थे ॥ ४०½ ॥

धावतां द्रवतां चैव पुनरावर्ततामपि ॥ ४१ ॥
बभूव तत्र सैन्यानां शब्दः सुविपुलो निशि ।

उस रात्रिके समय दौड़ते, भागते और पुनः लौटते हुए सैनिकोंका महान् कोलाहल सुनायी पड़ता था ॥ ४१½ ॥

दीप्यमानाः प्रदीपाश्च रथवारणवाजिषु ॥ ४२ ॥
अदृश्यन्त महाराज महोल्का इव खाच्च्युताः ।

महाराज ! रथों, हाथियों और घोड़ोंपर जलती हुई मशालें आकाशसे गिरी हुई बड़ी-बड़ी उल्काओंके समान दिखायी देती थीं ॥ ४२½ ॥

सा निशा भरतश्रेष्ठ प्रदीपैरवभासिता ॥ ४३ ॥
दिवसप्रतिमा राजन् बभूव रणमूर्धनि ।

भरतभूषण नरेश ! प्रदीपोंसे प्रकाशित हुई वह रात्रि युद्धके मुहानेपर दिनके समान हो गयी थी ॥ ४३½ ॥

आदित्येन यथा व्याप्तं तमो लोके प्रणश्यति ॥ ४४ ॥
तथा नष्टं तमो घोरं दीपैर्दीप्तैरितस्ततः ।

जैसे सूर्यके प्रकाशसे सम्पूर्ण जगत्‌में फैला हुआ अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार इधर-उधर जलती हुई मशालोंसे वहाँका भयानक अँधेरा नष्ट हो गया था ॥ ४४½ ॥

द्यौश्चैव पृथिवी चापि दिशश्च प्रदिशस्तथा ॥ ४५ ॥
रजसा तमसा व्याप्ता द्योतिताः प्रभया पुनः ।

धूल और अन्धकारसे व्याप्त आकाश, पृथ्वी, दिशा और विदिशाएँ प्रदीपोंकी प्रभासे पुनः प्रकाशित हो उठी थीं ॥

अस्त्राणां कवचानां च मणीनां च महात्मनाम् ॥ ४६ ॥
अन्तर्दधुः प्रभाः सर्वा दीपैस्तैरवभासिताः ।

महामनस्वी योद्धाओंके अस्त्रों, कवचों और मणियोंकी सारी प्रभा उन प्रदीपोंके प्रकाशसे तिरोहित हो गयी थी ॥

तस्मिन् कोलाहले युद्धे वर्तमाने निशामुखे ॥ ४७ ॥
न किंचिद् विदुरात्मानमयमस्मीति भारत ।

भारत ! उस रात्रिके समय जब वह भयंकर कोलाहलपूर्ण संग्राम चल रहा था, तब योद्धाओंको कुछ भी पता नहीं चलता था । वे अपने आपके विषयमें भी यह नहीं जान पाते थे कि 'मैं अमुक हूँ' ॥ ४७½ ॥

अवधीत् समरे पुत्रं पिता भरतसत्तम ॥ ४८ ॥
पुत्रश्च पितरं मोहात् सखायं च सखा तथा ।
स्वस्रीयं मातुलश्चापि स्वस्रीयश्चापि मातुलम् ॥ ४९ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उस समराङ्गणमें मोहवश पिताने पुत्रका वध कर डाला और पुत्रने पिताका । मित्रने मित्रके प्राण ले लिये । मामाने भानजेको मार डाला और भानजेने मामाको ॥

स्वे स्वान् परे परांश्चापि निजघ्नुरितरेतरम् ।
निर्मर्यादमभूद् युद्धं रात्रौ भीरुभयानकम् ॥ ५० ॥

अपने पक्षके योद्धा अपने ही सैनिकोंपर तथा शत्रुपक्षके सैनिक भी अपने ही योद्धाओंपर परस्पर घातक प्रहार करने लगे । इस प्रकार रात्रिमें वह युद्ध मर्यादारहित होकर कायरोंके लिये अत्यन्त भयानक हो उठा ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे एकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके समय संकुलयुद्धविषयक एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६९ ॥

सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

धृष्टद्युम्न और द्रोणाचार्यका युद्ध, धृष्टद्युम्नद्वारा द्रुमसेनका वध, सात्यकि और कर्णका युद्ध, कर्णकी दुर्योधनको सलाह तथा शकुनिका पाण्डवसेनापर आक्रमण

संजय उवाच

तस्मिन् सुतुमुले युद्धे वर्तमाने भयावहे ।
धृष्टद्युम्नो महाराज द्रोणमेवाभ्यवर्तत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! जिस समय वह भयंकर घमासान युद्ध चल रहा था, उसी समय धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्य-पर चढ़ाई की ॥ १ ॥

संदधानो धनुःश्रेष्ठं ज्यां विकर्षन् पुनः पुनः ।
अभ्यद्रवत द्रोणस्य रथं रुक्मविभूषितम् ॥ २ ॥

उन्होंने अपने श्रेष्ठ धनुषपर बाणोंका संधान करके बारंबार उसकी प्रत्यञ्चा खींचते हुए द्रोणाचार्यके स्वर्णभूषित रथपर आक्रमण किया ॥ २ ॥

धृष्टद्युम्नमथायान्तं द्रोणस्यान्तचिकीर्षया ।
परिवव्रुर्महाराज पञ्चालाः पाण्डवैः सह ॥ ३ ॥

महाराज ! द्रोणाचार्यका अन्त करनेकी इच्छासे आते हुए धृष्टद्युम्नको पाण्डवोंसहित पाञ्चालोंने घेरकर अपने बीचमें कर लिया ॥ ३ ॥

तथा परिवृतं दृष्ट्वा द्रोणमाचार्यसत्तमम् ।
पुत्रास्ते सर्वतो यत्ता ररक्षुर्द्रोणमाहवे ॥ ४ ॥

धृष्टद्युम्नको इस प्रकार रक्षकोंसे घिरा हुआ देख आपके पुत्र भी सावधान हो युद्धस्थलमें सब ओरसे आचार्यप्रवर द्रोणकी रक्षा करने लगे ॥ ४ ॥

बलार्णवौ ततस्तौ तु समेयातां निशामुखे ।
वातोद्धूतौ क्षुब्धसत्त्वौ भैरवौ सागराविव ॥ ५ ॥

जैसे वायुके वेगसे उद्वेलित तथा विक्षुब्ध जल-जन्तुओंसे भरे हुए दो भयंकर समुद्र एक-दूसरेसे मिल रहे हों, उसी प्रकार उस रात्रिके समय वे सागर-सदृश दोनों सेनाएँ एक-दूसरेसे भिड़ गयीं ॥ ५ ॥

ततो द्रोणं महाराज पाञ्चाल्यः पञ्चभिः शरैः ।
विव्याध हृदये तूर्णं सिंहनादं ननाद च ॥ ६ ॥

महाराज ! उस समय धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यकी छातीमें तुरंत ही पाँच बाण मारे और सिंहके समान गर्जना की ॥ ६ ॥

तं द्रोणः पञ्चविंशत्या विद्ध्वा भारत संयुगे ।
चिच्छेदान्येन भल्लेन धनुरस्य महास्वनम् ॥ ७ ॥

भरतनन्दन ! तब द्रोणाचार्यने युद्धस्थलमें धृष्टद्युम्नको पचीस बाणोंसे घायल करके एक दूसरे भल्लके द्वारा उनके घोर टंकार करनेवाले धनुषको काट दिया ॥ ७ ॥

धृष्टद्युम्नस्तु निर्विद्धो द्रोणेन भरतर्षभ ।
उत्ससर्ज धनुस्तूर्णं संदश्य दशनच्छदम् ॥ ८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! द्रोणाचार्यके द्वारा घायल किये हुए धृष्टद्युम्नने रोषपूर्वक अपने ओठको दाँतोंसे दबा लिया और उस टूटे हुए धनुषको तुरंत फेंक दिया ॥ ८ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ।
आददेऽन्यद् धनुःश्रेष्ठं द्रोणस्यान्तचिकीर्षया ॥ ९ ॥

महाराज ! तदनन्तर क्रोधसे भरे हुए प्रतापी धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यका विनाश करनेकी इच्छासे दूसरा श्रेष्ठ धनुष हाथमें ले लिया ॥ ९ ॥

विकृष्य च धनुश्चित्रमाकर्णात् परवीरहा ।
द्रोणस्यान्तकरं घोरं व्यसृजत् सायकं ततः ॥ १० ॥

फिर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले उस पाञ्चाल वीरने उस विचित्र धनुषको कानोंतक खींचकर उसके द्वारा द्रोणाचार्यका अन्त करनेमें समर्थ एक भयंकर बाण छोड़ा ॥ १० ॥

स विसृष्टो बलवता शरो घोरो महामृधे ।
भासयामास तत् सैन्यं दिवाकर इवोदितः ॥ ११ ॥

उस महासमरमें बलवान् वीरके द्वारा छोड़ा हुआ वह घोर बाण उदित हुए सूर्यके समान उस सेनाको प्रकाशित करने लगा ॥ ११ ॥

तं तु दृष्ट्वा शरं घोरं देवगन्धर्वमानवाः ।
स्वस्त्यस्तु समरे राजन् द्रोणायेत्यब्रुवन् वचः ॥ १२ ॥

राजन् ! समरभूमिमें उस भयंकर बाणको देखकर देवता, गन्धर्व और मनुष्य सभी कहने लगे कि 'द्रोणाचार्यका कल्याण हो' ॥ १२ ॥

तं तु सायकमायान्तमाचार्यस्य रथं प्रति ।

कर्णो द्वादशधा राजंश्चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ १३ ॥

नरेश्वर ! आचार्यके रथकी ओर आते हुए उस बाणके कर्णने सिद्धहस्त योद्धाकी भाँति बारह टुकड़े कर डाले ॥ १३ ॥

स च्छिन्नो बहुधा राजन् सूतपुत्रेण धन्विना।
निपपात शरस्तूर्णं निर्विषो भुजगो यथा ॥ १४ ॥

राजन् ! धनुर्धर सूतपुत्रके द्वारा अनेक टुकड़ोंमें कटा हुआ वह बाण विषहीन भुजंगके समान तुरंत पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ १४ ॥

धृष्टद्युम्नं ततः कर्णो विव्याध दशभिः शरैः।
पञ्चभिर्द्रोणपुत्रस्तु स्वयं द्रोणस्तु सप्तभिः ॥ १५ ॥

तदनन्तर धृष्टद्युम्नको कर्णने दस, अश्वत्थामाने पाँच और स्वयं द्रोणने सात बाण मारे ॥ १५ ॥

शल्यश्च दशभिर्बाणैस्त्रिभिर्दुःशासनस्तथा।
दुर्योधनस्तु विंशत्या शकुनिश्चापि पञ्चभिः ॥ १६ ॥

फिर शल्यने दस, दुःशासनने तीन, दुर्योधनने बीस और शकुनिने पाँच बाणोंसे उन्हें घायल कर दिया ॥ १६ ॥

पाञ्चाल्यं त्वरयाविध्यन् सर्व एव महारथाः।
स विद्धः सप्तभिर्वीरैर्द्रोणस्यार्थे महाहवे ॥ १७ ॥
सर्वानसम्भ्रमाद् राजन् प्रत्यविद्ध्यत् त्रिभिस्त्रिभिः।
द्रोणं द्रौणिं च कर्णं च विव्याध च तवात्मजम् ॥ १८ ॥

राजन् ! इस प्रकार सभी महारथियोंने बड़ी उतावलीके साथ पाञ्चालराजकुमारपर अपने-अपने बाणोंका प्रहार किया। उस महासमरमें द्रोणाचार्यकी रक्षाके लिये सात वीरोंद्वारा घायल किये जानेपर भी धृष्टद्युम्नने बिना किसी घबराहटके उन सबको तीन-तीन बाणोंसे बींध डाला। फिर द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण तथा आपके पुत्र दुर्योधनको भी घायल कर दिया॥

ते भिन्ना धन्विना तेन धृष्टद्युम्नं पुनर्मृधे।
विव्यधुः पञ्चभिस्तूर्णमेकैको रथिनां वरः ॥ १९ ॥

उन धनुर्धर वीर धृष्टद्युम्नके बाणोंसे क्षत-विक्षत हो उन सभी योद्धाओंने युद्धस्थलमें पुनः उन्हें पाँच-पाँच बाणोंसे शीघ्र ही बींध डाला। प्रत्येक महारथीने उनपर प्रहार किया था॥

द्रुमसेनस्तु संक्रुद्धो राजन् विव्याध पत्रिणा।
त्रिभिश्चान्यैः शरैस्तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २० ॥

राजन् ! उस समय द्रुमसेनने अत्यन्त कुपित होकर एक बाणसे धृष्टद्युम्नको बींध डाला। फिर तुरंत ही अन्य तीन बाणोंसे उन्हें घायल करके कहा—'अरे ! खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ २० ॥

स तु तं प्रतिविव्याध त्रिभिस्तीक्ष्णैरजिह्मगैः।
स्वर्णपुङ्खैः शिलाधौतैः प्राणान्तकरणैर्युधि ॥ २१ ॥

तब धृष्टद्युम्नने रणभूमिमें सोनेके पंखवाले, शिलापर स्वच्छ किये हुए, तीन तीखे एवं प्राणान्तकारी बाणोंद्वारा द्रुमसेनको घायल कर दिया ॥ २१ ॥

भल्लेनान्येन तु पुनः सुवर्णोज्ज्वलकुण्डलम्।
निचकर्त शिरः कायाद् द्रुमसेनस्य वीर्यवान् ॥ २२ ॥

फिर दूसरे भल्लद्वारा उन पराक्रमी वीरने द्रुमसेनके सुवर्णनिर्मित कान्तिमान् कुण्डलोंद्वारा मण्डित मस्तकको धड़से काट गिराया ॥ २२ ॥

तच्छिरो न्यपतद् भूमौ संदष्टौष्ठपुटं रणे।
महावातसमुद्धूतं पक्वं तालफलं यथा ॥ २३ ॥

रणभूमिमें उस मस्तकने अपने ओठको दाँतोंसे दबा रक्खा था। वह आँधीके द्वारा गिराये हुए पके ताल-फलके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २३ ॥

तान् स विद्ध्वा पुनर्योधान् वीरः सुनिशितैः शरैः।
राधेयस्याच्छिनद् भल्लैः कार्मुकं चित्रयोधिनः॥ २४ ॥

तत्पश्चात् वीर धृष्टद्युम्नने अत्यन्त तीखे बाणोंद्वारा उन सभी योद्धाओंको पुनः घायल करके विचित्र युद्ध करनेवाले राधापुत्र कर्णके धनुषको भल्लोंसे काट डाला ॥ २४ ॥

न तु तन्ममृषे कर्णो धनुषश्छेदनं तथा।
निकर्तनमिवात्युग्रं लाङ्गूलस्य महाहरिः ॥ २५ ॥

जैसे सिंहकी पूँछ काट लेना अत्यन्त भयंकर कर्म है, उसे कोई महान् सिंह नहीं सह सकता, उसी प्रकार कर्ण अपने धनुषका काटा जाना सहन न कर सका ॥ २५ ॥

सोऽन्यद् धनुः समादाय क्रोधरक्तेक्षणः श्वसन्।
अभ्यद्रवच्छरौघैस्तं धृष्टद्युम्नं महाबलम् ॥ २६ ॥

क्रोधसे उसकी आँखें लाल हो रही थीं। वह दूसरा धनुष हाथमें लेकर लंबी साँस खींचता हुआ महाबली धृष्टद्युम्नकी ओर दौड़ा और उनपर बाण-समूहोंकी वर्षा करने लगा ॥ २६ ॥

दृष्ट्वा कर्णं तु संरब्धं ते वीराः षड्रथर्षभाः।
पाञ्चाल्यपुत्रं त्वरिताः परिवव्रुर्जिघांसया ॥ २७ ॥

कर्णको क्रोधमें भरा हुआ देख उन छहों[1] श्रेष्ठ रथी वीरोंने पाञ्चाल-राजकुमार धृष्टद्युम्नको मार डालनेकी इच्छासे तुरंत ही घेर लिया ॥ २७ ॥

षण्णां योधप्रवीराणां तावकानां पुरस्कृतम्।
मृत्योरास्यमनुप्राप्तं धृष्टद्युम्नममंस्महि ॥ २८ ॥

आपकी सेनाके इन छः प्रमुख वीर योद्धाओंके सामने खड़े हुए धृष्टद्युम्नको हमलोग मृत्युके मुखमें पड़ा हुआ ही मानने लगे॥

एतस्मिन्नेव काले तु दाशार्हो विकिरञ्छरान्।
धृष्टद्युम्नं पराक्रान्तं सात्यकिः प्रत्यपद्यत ॥ २९ ॥

इसी समय दशार्हकुलभूषण सात्यकि बाणोंकी वर्षा करते हुए वहाँ पराक्रमी धृष्टद्युम्नके पास आ पहुँचे ॥ २९ ॥

---

१. दुर्योधन, दुःशासन, द्रोण, कर्ण, शल्य और शकुनि—ये ही छः श्रेष्ठ रथी यहाँ ग्रहण किये गये हैं।

तमायान्तं महेष्वासं सात्यकिं युद्धदुर्मदम् ।
राधेयो दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यदजिह्मगैः ॥ ३० ॥

वहाँ आते हुए महाधनुर्धर युद्धदुर्मद सात्यकिको राधापुत्र कर्णने सीधे जानेवाले दस बाणोंसे बींध डाला ॥ ३० ॥

तं सात्यकिर्महाराज विव्याध दशभिः शरैः ।
पश्यतां सर्ववीराणां मा गास्तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ३१ ॥

महाराज ! तब सात्यकिने भी समस्त वीरोंके देखते-देखते कर्णको दस बाणोंसे घायल कर दिया और कहा—'खड़े रहो, भाग न जाना' ॥ ३१ ॥

स सात्यकेस्तु बलिनः कर्णस्य च महात्मनः ।
आसीत् समागमो राजन् बलिवासवयोरिव ॥ ३२ ॥

राजन् ! उस समय बलवान् सात्यकि और महामनस्वी कर्णका वह संग्राम राजा बलि और इन्द्रके युद्ध-सा प्रतीत होता था ॥ ३२ ॥

त्रासयन् रथघोषेण क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः ।
राजीवलोचनं कर्णं सात्यकिः प्रत्यविध्यत ॥ ३३ ॥

अपने रथकी घर्घराहटसे क्षत्रियोंको भयभीत करते हुए क्षत्रियशिरोमणि सात्यकिने कमललोचन कर्णको अच्छी तरह घायल कर दिया ॥ ३३ ॥

कम्पयन्निव घोषेण धनुषो वसुधां बली ।
सूतपुत्रो महाराज सात्यकिं प्रत्ययोधयत् ॥ ३४ ॥

महाराज ! बलवान् सूतपुत्र कर्ण भी अपने धनुषकी टंकारसे पृथ्वीको कम्पित करता हुआ-सा सात्यकिके साथ युद्ध करने लगा ॥ ३४ ॥

विपाठकर्णिनाराचैर्वत्सदन्तैः क्षुरैरपि ।
कर्णः शरशतैश्चापि शैनेयं प्रत्यविध्यत ॥ ३५ ॥

कर्णने शिनिपौत्र सात्यकिको विपाठ, कर्णी, नाराच, वत्सदन्त, क्षुर तथा सैकड़ों बाणोंसे क्षत-विक्षत कर दिया ॥

तथैव युद्ध्यमानोऽपि वृष्णीनां प्रवरो युधि ।
अभ्यवर्षच्छरैः कर्णं तद् युद्धमभवत् समम् ॥ ३६ ॥

इसी प्रकार रणभूमिमें वृष्णिवंशके श्रेष्ठ वीर सात्यकि भी युद्ध-तत्पर हो कर्णपर बाणोंकी वर्षा करने लगे । उन दोनोंका वह युद्ध समान रूपसे चलने लगा ॥ ३६ ॥

तावकाश्च महाराज कर्णपुत्रश्च दंशितः ।
सात्यकिं विव्यधुस्तूर्णं समन्तान्निशितैः शरैः ॥ ३७ ॥

महाराज ! आपके अन्य योद्धा तथा कर्णका पुत्र कवचधारी वृषसेन—ये सब-के-सब चारों ओरसे तीखे बाणोंद्वारा सात्यकिको बींधने लगे ॥ ३७ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य तेषां कर्णस्य वा विभो ।
अविद्ध्यत् सात्यकिः क्रुद्धो वृषसेनं स्तनान्तरे ॥ ३८ ॥

प्रभो ! इससे कुपित हुए सात्यकिने उन सब योद्धाओं तथा कर्णके अस्त्रोंका अस्त्रोंद्वारा निवारण करके वृषसेनकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३८ ॥

तेन बाणेन निर्विद्धो वृषसेनो विशाम्पते ।
न्यपतत् स रथे मूढो धनुरुत्सृज्य वीर्यवान् ॥ ३९ ॥

प्रजानाथ ! सात्यकिके बाणसे घायल हो बलवान् वृषसेन धनुष छोड़कर मूर्च्छित हो रथपर गिर पड़ा ॥ ३९ ॥

ततः कर्णो हतं मत्वा वृषसेनं महारथम् ।
पुत्रशोकाभिसंतप्तः सात्यकिं प्रत्यपीडयत् ॥ ४० ॥

तब महारथी वृषसेनको मारा गया मानकर कर्ण पुत्रशोकसे संतप्त हो सात्यकिको पीड़ा देने लगा ॥ ४० ॥

पीड्यमानस्तु कर्णेन युयुधानो महारथः ।
विव्याध बहुभिः कर्णं त्वरमाणः पुनः पुनः ॥ ४१ ॥

कर्णसे पीड़ित होते हुए महारथी युयुधान बड़ी उतावलीके साथ कर्णको अपने बहुसंख्यक बाणोंद्वारा बारंबार बींधने लगे॥

स कर्णं दशभिर्विद्ध्वा वृषसेनं च सप्तभिः ।
स हस्तावापधनुषी तयोश्चिच्छेद सात्वतः ॥ ४२ ॥

सात्वतवंशी सात्यकिने कर्णको दस और वृषसेनको सात बाणोंसे घायल करके उन दोनोंके दस्ताने और धनुष काट दिये॥

तावन्ये धनुषी सज्ये कृत्वा शत्रुभयंकरे ।
युयुधानमविध्येतां समन्तान्निशितैः शरैः ॥ ४३ ॥

तब उन दोनोंने दूसरे शत्रु-भयंकर धनुषोंपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर सब ओरसे तीखे बाणोंद्वारा युयुधानको बींधना आरम्भ किया ॥ ४३ ॥

वर्तमाने तु संग्रामे तस्मिन् वीरवरक्षये ।
अतीव शुश्रुवे राजन् गाण्डीवस्य महास्वनः ॥ ४४ ॥

राजन् ! जब बड़े-बड़े वीरोंका विनाश करनेवाला वह संग्राम चल रहा था, उसी समय वहाँ गाण्डीव धनुषकी गम्भीर टङ्कार-ध्वनि बड़े जोर-जोरसे सुनायी देने लगी ॥ ४४ ॥

श्रुत्वा तु रथनिर्घोषं गाण्डीवस्य च निःस्वनम् ।
सूतपुत्रोऽब्रवीद् राजन् दुर्योधनमिदं वचः ॥ ४५ ॥

नरेश्वर ! अर्जुनके रथका गम्भीर घोष और गाण्डीव धनुषकी टंकार सुनकर सूतपुत्र कर्णने दुर्योधनसे इस प्रकार कहा—॥ ४५ ॥

एष सर्वां चमूं हत्वा मुख्यांश्चैव नरर्षभान् ।
पौरवांश्च महेष्वासो विक्षिपन्नुत्तमं धनुः ॥ ४६ ॥
पार्थो विजयते तत्र गाण्डीवनिनदो महान् ।
श्रूयते रथघोषश्च वासवस्येव नर्दतः ॥ ४७ ॥

'राजन् ! ये महाधनुर्धर कुन्तीकुमार अर्जुन हमारी सारी सेनाका संहार और मुख्य-मुख्य कुरुवंशी श्रेष्ठ पुरुषोंका वध करके अपने उत्तम धनुषको टंकार करते हुए विजयी हो रहे हैं । उधर गाण्डीव धनुषका महान् घोष तथा गरजते हुए

मेघके समान पार्थके रथकी घोर घर्घराहट सुनायी दे रही है ॥

करोति पाण्डवो व्यक्तं कर्मौपयिकमात्मनः।
एषा विदार्यते राजन् बहुधा भारती चमूः ॥ ४८ ॥

'इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि अर्जुन वहाँ अपने अनुरूप पुरुषार्थ कर रहे हैं। राजन्! भरतवंशियोंकी इस सेनाको वे अनेक भागोंमें विदीर्ण (विभक्त) किये देते हैं ॥ ४८ ॥

विप्रकीर्णान्यनेकानि न हि तिष्ठन्ति कर्हिचित्।
वातेनेव समुद्धूतमभ्रजालं विदीर्यते ॥ ४९ ॥
सव्यसाचिनमासाद्य भिन्ना नौरिव सागरे।

'उनके द्वारा तितर-बितर किये हुए हमारे बहुतसे सैन्य-दल कहीं भी ठहर नहीं पाते हैं। जैसे हवा घिरे हुए बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार अर्जुनके सामने पड़कर अपनी सारी सेना अनेक टुकड़ियोंमें बँटकर भागने लगी है। उसकी अवस्था समुद्रमें फटी हुई नौकाके समान हो रही है ॥

द्रवतां योधमुख्यानां गाण्डीवप्रेषितैः शरैः ॥ ५० ॥
विद्धानां शतशो राजञ्श्रूयते निःस्वनो महान्।

'राजन्! गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा बिद्ध होकर भागते हुए सैकड़ों मुख्य-मुख्य योद्धाओंका वह महान् आर्तनाद सुनायी पड़ता है ॥ ५०½ ॥

शृणु दुन्दुभिनिर्घोषमर्जुनस्य रथं प्रति ॥ ५१ ॥
निशीथे राजशार्दूल स्तनयित्नोरिवाम्बरे।

'नृपश्रेष्ठ! इस रात्रिके समय आकाशमें मेघकी गर्जनाके समान जो अर्जुनके रथके समीप नगाड़ोंकी ध्वनि हो रही है, उसे सुनो ॥ ५१½ ॥

हाहाकाररवांश्चैव सिंहनादांश्च पुष्कलान् ॥ ५२ ॥
शृणु शब्दान् बहुविधानर्जुनस्य रथं प्रति।

'अर्जुनके रथके आसपास जो भाँति-भाँतिके हाहाकार, बारंबार सिंहनाद तथा अनेक प्रकारके और भी बहुत-से शब्द हो रहे हैं, उनको भी श्रवण करो ॥ ५२½ ॥

अयं मध्ये स्थितोऽस्माकं सात्यकिः सात्वतां वरः ॥५३॥
इह चेल्लभ्यते लक्ष्यं कृत्स्नाञ्जेष्यामहे परान्।

'ये सात्वतशिरोमणि सात्यकि इस समय हमलोगोंके बीचमें खड़े हैं। यदि यहाँ इन्हें हम अपने बाणोंका निशाना बना सकें तो निश्चय ही सम्पूर्ण शत्रुओंपर विजय पा सकेंगे ॥

एष पाञ्चालराजस्य पुत्रो द्रोणेन संगतः ॥ ५४ ॥
सर्वतः संवृतो योधैः शूरैश्च रथसत्तमैः।

'ये पाञ्चालराज द्रुपदके पुत्र धृष्टद्युम्न, जो आचार्य द्रोणके साथ जूझ रहे हैं, हमारे रथियोंमें श्रेष्ठतम शूरवीर योद्धाओंद्वारा चारों ओरसे घिर गये हैं ॥ ५४½ ॥

सात्यकिं यदि हन्याम धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ॥ ५५ ॥
असंशयं महाराज ध्रुवो नो विजयो भवेत्।

'महाराज! यदि हम सात्यकि तथा द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नको मार डालें तो हमारी स्थायी विजय होगी, इसमें संदेह नहीं है ॥ ५५½ ॥

सौभद्रवदिमौ वीरौ परिवार्य महारथौ ॥ ५६ ॥
प्रयतामो महाराज निहन्तुं वृष्णिपार्षतौ।

'राजेन्द्र! अतः हमलोग सुभद्राकुमार अभिमन्युके समान वृष्णिवंश तथा पार्षतकुलके इन दोनों महारथी वीरोंको सब ओरसे घेरकर मार डालनेका प्रयत्न करें ॥ ५६½ ॥

सव्यसाची पुरोऽभ्येति द्रोणानीकाय भारत ॥ ५७ ॥
संसक्तं सात्यकिं ज्ञात्वा बहुभिः कुरुपुङ्गवैः।

'भारत! सात्यकिको बहुत-से प्रधान कौरव-वीरोंके साथ उलझा हुआ जानकर सव्यसाची अर्जुन सामनेसे द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर आ रहे हैं ॥ ५७½ ॥

तत्र गच्छन्तु बहवः प्रवरा रथसत्तमाः ॥ ५८ ॥
यावत् पार्थो न जानाति सात्यकिं बहुभिर्वृतम्।
ते त्वरध्वं तथा शूराः शराणां मोक्षणे भृशम् ॥ ५९ ॥

'अतः बहुत-से श्रेष्ठ महारथी वहाँ उनका सामना करनेके लिये जायँ। जबतक अर्जुन यह नहीं जानते कि सात्यकि बहुसंख्यक योद्धाओंसे घिर गये हैं, तभीतक तुम सभी शूरवीर बाणोंका प्रहार करनेमें अधिकाधिक शीघ्रता करो ।५८-५९।

यथा त्विह व्रजत्येष परलोकाय माधवः।
तथा कुरु महाराज सुनीत्या सुप्रयुक्तया ॥ ६० ॥

'महाराज! जिस उपायसे भी यहाँ ये मधुवंशी सात्यकि परलोकगामी हो जायँ, अच्छी तरह प्रयोगमें लायी हुई सुन्दर नीतिके द्वारा वैसा ही प्रयत्न करो' ॥ ६० ॥

कर्णस्य मतमास्थाय पुत्रस्ते प्राह सौबलम्।
यथेन्द्रः समरे राजन् प्राह विष्णुं यशस्विनम् ॥ ६१ ॥

राजन्! जैसे इन्द्र समराङ्गणमें परम यशस्वी भगवान् विष्णुसे कोई बात कहते हैं, उसी प्रकार आपके पुत्र दुर्योधनने कर्णकी सलाह मानकर सुबलपुत्र शकुनिसे इस प्रकार कहा—॥ ६१ ॥

वृतः सहस्रैर्दशभिर्गजानामनिवर्तिनाम्।
रथैश्च दशसाहस्रैस्तूर्णं याहि धनंजयम् ॥ ६२ ॥

'मामा! तुम युद्धसे पीछे न हटनेवाले दस हजार हाथियों और उतने ही रथोंके साथ तुरंत ही अर्जुनका सामना करनेके लिये जाओ ॥ ६२ ॥

दुःशासनो दुर्विषहः सुबाहुर्दुष्प्रधर्षणः।
एते त्वामनुयास्यन्ति पत्तिभिर्बहुभिर्वृताः ॥ ६३ ॥

'दुःशासन, दुर्विषह, सुबाहु और दुष्प्रधर्षण—ये (महारथी) बहुत-से पैदल सैनिकोंको साथ लेकर तुम्हारे पीछे-पीछे जायँगे॥

जहि कृष्णौ महाबाहो धर्मराजं च मातुल।
नकुलं सहदेवं च भीमसेनं तथैव च ॥ ६४ ॥

'मेरे महाबाहु मामा ! तुम श्रीकृष्ण, अर्जुन, धर्मराज युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव तथा भीमसेनको भी मार डालो ॥

देवानामिव देवेन्द्रे जयाशा त्वयि मे स्थिता।
जहि मातुल कौन्तेयानसुरानिव पावकिः ॥ ६५ ॥

'मामा ! जैसे देवताओंकी आशा देवराज इन्द्रपर लगी रहती है, उसी प्रकार मेरी विजयकी आशा तुमपर अवलम्बित है। जैसे अग्निकुमार स्कन्दने असुरोंका संहार किया था, उसी प्रकार तुम भी कुन्तीकुमारोंका वध करो' ॥ ६५ ॥

एवमुक्तो ययौ पार्थान् पुत्रेण तव सौबलः।
महत्या सेनया सार्धं सह पुत्रैश्च ते विभो ॥ ६६ ॥

प्रभो ! आपके पुत्र दुर्योधनके ऐसा कहनेपर शकुनि विशाल सेना और आपके अन्य पुत्रोंके साथ कुन्तीकुमारोंका सामना करनेके लिये गया ॥ ६६ ॥

प्रियार्थं तव पुत्राणां दिधक्षुः पाण्डुनन्दनान्।
ततः प्रववृते युद्धं तावकानां परैः सह ॥ ६७ ॥

वह आपके पुत्रोंका प्रिय करनेके लिये पाण्डवोंको भस्म कर देना चाहता था। फिर तो आपके योद्धाओंका शत्रुओंके साथ घोर युद्ध आरम्भ हो गया ॥ ६७ ॥

प्रयाते सौबले राजन् पाण्डवानामनीकिनीम्।
बलेन महता युक्तः सूतपुत्रस्तु सात्वतम् ॥ ६८ ॥
अभ्ययात् त्वरितो युद्धे किरञ्शरशतान् बहून्।
तथैव पार्थिवाः सर्वे सात्यकिं पर्यवारयन् ॥ ६९ ॥

राजन् ! जब शकुनि पाण्डव-सेनाकी ओर चला गया, तब विशाल सेनाके साथ सूतपुत्र कर्णने युद्धस्थलमें कई सौ बाणोंकी वर्षा करते हुए तुरंत ही सात्यकिपर आक्रमण किया। इसी प्रकार अन्य सब राजाओंने भी सात्यकिको घेर लिया ॥

भारद्वाजस्ततो गत्वा धृष्टद्युम्नरथं प्रति।
महद् युद्धं तदाऽऽसीत् तु द्रोणस्य निशि भारत।
धृष्टद्युम्नेन वीरेण पञ्चालैश्च सहाद्भुतम् ॥ ७० ॥

भारत ! तदनन्तर द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नके रथपर आक्रमण किया। उस रात्रिके समय वीर धृष्टद्युम्न और पाञ्चालोंके साथ द्रोणाचार्यका महान् एवं अद्भुत युद्ध हुआ ॥ ७० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके अवसरपर संकुलयुद्धविषयक एक सौ सत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७० ॥

एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकिसे दुर्योधनकी, अर्जुनसे शकुनि और उलूककी तथा धृष्टद्युम्नसे कौरवसेनाकी पराजय

संजय उवाच

ततस्ते प्राद्रवन् सर्वे त्वरिता युद्धदुर्मदाः।
अमृष्यमाणाः संरब्धा युयुधानरथं प्रति ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तत्पश्चात् वे समस्त रणदुर्मद योद्धा बड़ी उतावलीके साथ अमर्ष और क्रोधमें भरकर युयुधानके रथकी ओर दौड़े ॥ १ ॥

ते रथैः कल्पितै राजन् हेमरूप्यविभूषितैः।
सादिभिश्च गजैश्चैव परिवव्रुः समन्ततः ॥ २ ॥

नरेश्वर ! उन्होंने सोने-चाँदीसे विभूषित एवं सुसज्जित रथों, घुड़सवारों और हाथियोंके द्वारा चारों ओरसे सात्यकिको घेर लिया ॥ २ ॥

अथैनं कोष्ठकीकृत्य सर्वतस्ते महारथाः।
सिंहनादांस्ततश्चक्रुस्तर्जयन्ति स्म सात्यकिम् ॥ ३ ॥

इस प्रकार सब ओरसे सात्यकिको कोष्ठबद्ध-सा करके वे महारथी योद्धा सिंहनाद करने और उन्हें डाँट बताने लगे ॥

तेऽभ्यवर्षञ्छरैस्तीक्ष्णैः सात्यकिं सत्यविक्रमम्।
त्वरमाणा महावीरा माधवस्य वधैषिणः ॥ ४ ॥

इतना ही नहीं, मधुवंशी सात्यकिका वध करनेकी इच्छासे उतावले हो वे महावीर सैनिक उन सत्यपराक्रमी सात्यकिपर तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४ ॥

तान् दृष्ट्वा पततस्तूर्णं शैनेयः परवीरहा।
प्रत्यगृह्णान्महाबाहुः प्रमुञ्चन् विशिखान् बहून् ॥ ५ ॥

तब शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले महाबाहु शिनिपौत्र सात्यकिने उन लोगोंको अपनेपर धावा करते देख स्वयं भी तुरंत ही बहुत-से बाणोंका प्रहार करते हुए उनका स्वागत किया ॥

तत्र वीरो महेष्वासः सात्यकिर्युद्धदुर्मदः।
निचकर्त शिरांस्युग्रैः शरैः संनतपर्वभिः ॥ ६ ॥

वहाँ महाधनुर्धर रणदुर्मद वीर सात्यकिने झुकी हुई गाँठवाले भयंकर बाणोंद्वारा बहुतेरे शत्रु-योद्धाओंके मस्तक काट डाले ॥ ६ ॥

हस्तिहस्तान् हयग्रीवा बाहूनपि च सायुधान्।
क्षुरप्रैः शातयामास तावकानां स माधवः ॥ ७ ॥

उन मधुवंशी वीरने आपकी सेनाके हाथियोंके शुण्डदण्डों, घोड़ोंकी गर्दनों तथा योद्धाओंकी आयुधोंसहित भुजाओंको भी क्षुरप्रोंद्वारा काट डाला ॥ ७ ॥

पतितैश्चामरैश्चैव श्वेतच्छत्रैश्च भारत।
बभूव धरणी पूर्णा नक्षत्रैर्द्यौरिव प्रभो ॥ ८ ॥

भरतनन्दन ! प्रभो ! वहाँ गिरे हुए चामरों और श्वेत छत्रोंसे भरी हुई भूमि नक्षत्रोंसे युक्त आकाशके समान जान पड़ती थी ॥ ८ ॥

एतेषां युयुधानेन युध्यतां युधि भारत।
बभूव तुमुलः शब्दः प्रेतानां क्रन्दतामिव ॥ ९ ॥

भारत ! युद्धस्थलमें युयुधानके साथ जूझते हुए इन योद्धाओंका भयंकर आर्तनाद प्रेतोंके करुण-क्रन्दन-सा प्रतीत होता था ॥ ९ ॥

तेन शब्देन महता पूरिताभूद् वसुन्धरा।
रात्रिः समभवच्चैव तीव्ररूपा भयावहा ॥ १० ॥

उस महान् कोलाहलसे भरी हुई वह रणभूमि और रात्रि अत्यन्त उग्र एवं भयंकर जान पड़ती थी ॥ १० ॥

दीर्यमाणं बलं दृष्ट्वा युयुधानशराहतम्।
श्रुत्वा च विपुलं नादं निशीथे लोमहर्षणे ॥ ११ ॥
सुतस्तवाब्रवीद् राजन् सारथिं रथिनां वरः।
यत्रैष शब्दस्तत्राश्वांश्चोदयेति पुनः पुनः ॥ १२ ॥

राजन् ! युयुधानके बाणोंसे आहत हुई अपनी सेनामें भगदड़ पड़ी देख और उस रोमाञ्चकारी निशीथकालमें वह महान् कोलाहल सुनकर रथियोंमें श्रेष्ठ आपके पुत्र दुर्योधनने अपने सारथिसे बारंबार कहा—'जहाँ यह कोलाहल हो रहा है, वहाँ मेरे घोड़ोंको हाँक ले चलो' ॥ ११-१२ ॥

तेन संचोद्यमानस्तु ततस्तांस्तुरगोत्तमान्।
सूतः संचोदयामास युयुधानरथं प्रति ॥ १३ ॥

उसका आदेश पाकर सारथिने उन श्रेष्ठ घोड़ोंको सात्यकिके रथकी ओर हाँक दिया ॥ १३ ॥

ततो दुर्योधनः क्रुद्धो दृढधन्वा जितक्लमः।
शीघ्रहस्तश्चित्रयोधी युयुधानमुपाद्रवत् ॥ १४ ॥

तदनन्तर दृढ़ धनुर्धर, श्रमविजयी, शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले और विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले दुर्योधनने क्रोधमें भरकर सात्यकिपर धावा किया ॥ १४ ॥

ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैः शोणितभोजनैः।
दुर्योधनं द्वादशभिर्माधवः प्रत्यविध्यत ॥ १५ ॥

तब मधुवंशी युयुधानने धनुषको पूर्णतः खींचकर छोड़े गये बारह रक्तभोजी बाणोंद्वारा दुर्योधनको घायल कर दिया॥

दुर्योधनस्तेन तथा पूर्वमेवार्दितः शरैः।
शैनेयं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यदमर्षितः ॥ १६ ॥

सात्यकिने जब पहले ही अपने बाणोंसे दुर्योधनको पीड़ित कर दिया, तब उसने भी अमर्षमें भरकर उन्हें दस बाण मारे॥

ततः समभवद् युद्धं तुमुलं भरतर्षभ।
पञ्चालानां च सर्वेषां भरतानां च दारुणम् ॥ १७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर समस्त पाञ्चालों और भरतवंशियोंका वहाँ भयंकर युद्ध होने लगा ॥ १७ ॥

शैनेयस्तु रणे क्रुद्धस्तव पुत्रं महारथम्।
सायकानामशीत्या तु विव्याधोरसि भारत ॥ १८ ॥

भारत ! रणभूमिमें कुपित हुए सात्यकिने आपके महारथी पुत्रकी छातीमें अस्सी सायकोंद्वारा प्रहार किया ॥ १८ ॥

ततोऽस्य वाहान् समरे शरैर्निन्ये यमक्षयम्।
सारथिं च रथात् तूर्णं पातयामास पत्रिणा ॥ १९ ॥

फिर समराङ्गणमें अपने बाणोंद्वारा घायल करके उसके घोड़ोंको यमलोक पहुँचा दिया और एक पंखयुक्त बाणसे मारकर उसके सारथिको भी तुरंत ही रथसे नीचे गिरा दिया ॥

हताश्वे तु रथे तिष्ठन् पुत्रस्तव विशाम्पते।
मुमोच निशितान् बाणाञ्शैनेयस्य रथं प्रति ॥ २० ॥

प्रजानाथ ! तब आपका पुत्र उस अश्वहीन रथपर खड़ा हो सात्यकिके रथकी ओर पैने बाण छोड़ने लगा ॥ २० ॥

शरान् पञ्चाशतस्तांस्तु शैनेयः कृतहस्तवत्।
चिच्छेद समरे राजन् प्रेषितांस्तनयेन ते ॥ २१ ॥

राजन् ! परंतु आपके पुत्रद्वारा छोड़े गये पचास बाणोंको समराङ्गणमें सात्यकिने एक सिद्धहस्त योद्धाकी भाँति काट डाला ॥ २१ ॥

अथापरेण भल्लेन मुष्टिदेशे महद् धनुः।
चिच्छेद तरसा युद्धे तव पुत्रस्य माधवः ॥ २२ ॥

तत्पश्चात् उन मधुवंशी वीरने एक दूसरे भल्लसे युद्धभूमिमें आपके पुत्रके विशाल धनुषको मुट्ठी पकड़नेकी जगहसे वेगपूर्वक काट दिया ॥ २२ ॥

विरथो विधनुष्कश्च सर्वलोकेश्वरः प्रभुः।
आरुरोह रथं तूर्णं भास्वरं कृतवर्मणः ॥ २३ ॥

तब सम्पूर्ण जगत्का स्वामी शक्तिशाली वीर दुर्योधन धनुष और रथसे हीन होकर तुरंत ही कृतवर्माके तेजस्वी रथपर आरूढ़ हो गया ॥ २३ ॥

दुर्योधने परावृत्ते शैनेयस्तव वाहिनीम्।
द्रावयामास विशिखैर्निशामध्ये विशाम्पते ॥ २४ ॥

प्रजानाथ ! उस आधीरातके समय दुर्योधनके पराङ्मुख हो जानेपर सात्यकिने आपकी सेनाको अपने बाणोंद्वारा खदेड़ना आरम्भ किया ॥ २४ ॥

शकुनिश्चार्जुनं राजन् परिवार्य समन्ततः।
रथैरनेकसाहस्रैर्गजैश्चापि सहस्रशः ॥ २५ ॥
तथा हयसहस्रैश्च नानाशस्त्रैरवाकिरत्।

राजन् ! उधर शकुनिने कई हजार रथों, सहस्रों हाथियों और सहस्रों घोड़ोंद्वारा अर्जुनको चारों ओरसे घेरकर उनपर नाना प्रकारके शस्त्रोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ २५½ ॥

ते महास्त्राणि सर्वाणि विकिरन्तोऽर्जुनं प्रति ॥ २६ ॥
अर्जुनं योधयन्ति स्म क्षत्रियाः कालचोदिताः ।

वे कालप्रेरित क्षत्रिय अर्जुनपर बड़े-बड़े अस्त्रोंकी वर्षा करते हुए उनके साथ युद्ध करने लगे ॥ २६½ ॥

तान्यर्जुनः सहस्राणि रथवारणवाजिनाम् ॥ २७ ॥
प्रत्यवारयदायस्तः प्रकुर्वन् विपुलं क्षयम् ।

यद्यपि अर्जुन कौरवसेनाका महान् संहार करते-करते थक गये थे, तो भी उन्होंने उन सहस्रों रथों, हाथियों और घुड़सवारोंकी सेनाको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ २७½ ॥

ततस्तु समरे शूरः शकुनिः सौबलस्तदा ॥ २८ ॥
विव्याध निशितैर्बाणैरर्जुनं प्रहसन्निव ।
पुनश्चैव शतेनास्य संरुरोध महारथम् ॥ २९ ॥

उस समय समरभूमिमें सुबलकुमार शूरवीर शकुनिने हँसते हुए-से तीखे बाणोंद्वारा अर्जुनको बींध डाला । फिर सौ बाण मारकर उनके विशाल रथको अवरुद्ध कर दिया॥

तमर्जुनस्तु विंशत्या विव्याध युधि भारत ।
अथेतरान् महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरविध्यत ॥ ३० ॥

भारत ! उस युद्धके मैदानमें अर्जुनने शकुनिको बीस बाण मारे और अन्य महाधनुर्धरोंको तीन-तीन बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ३० ॥

निवार्य तान् बाणगणैर्युधि राजन् धनंजयः ।
जघान तावकान् योधान् वज्रपाणिरिवासुरान् ॥ ३१ ॥

राजन् ! युद्धस्थलमें अर्जुनने अपने बाण-समूहोंद्वारा आपके उन योद्धाओंको रोककर जैसे वज्रपाणि इन्द्र असुरोंका संहार करते हैं, उसी प्रकार उन सबका वध कर डाला ॥

भुजैश्छिन्नैर्महीपाल हस्तिहस्तोपमैर्मृधे ।
समाकीर्णा मही भाति पञ्चास्यैरिव पन्नगैः ॥ ३२ ॥

भूपाल ! हाथीकी सूँड़के समान मोटी एवं कटी हुई भुजाओंसे आच्छादित हुई वह रणभूमि पाँच मुँहवाले सर्पोंसे ढकी हुई-सी जान पड़ती थी ॥ ३२ ॥

शिरोभिः सकिरीटैश्च सुनसैश्चारुकुण्डलैः ।
संदष्टौष्ठपुटैः क्रुद्धैस्तथैवोद्वृत्तलोचनैः ॥ ३३ ॥
निष्कचूडामणिधरैः क्षत्रियाणां प्रियंवदैः ।
पङ्कजैरिव विन्यस्तैः पतितैर्विबभौ मही ॥ ३४ ॥

जिनपर किरीट शोभा देता था, जो सुन्दर नासिका और मनोहर कुण्डलोंसे विभूषित थे, जिन्होंने क्रोधपूर्वक अपने ओठोंको दाँतोंसे दबा रक्खा था, जिनकी आँखें बाहर निकल आयी थीं तथा जो निष्क एवं चूड़ामणि धारण करते और प्रिय वचन बोलते थे, क्षत्रियोंके वे मस्तक वहाँ कटकर गिरे हुए थे । उनके द्वारा रणभूमिकी वैसी ही शोभा हो रही थी, मानो वहाँ कमल बिछा दिये गये हों ॥ ३३-३४ ॥

कृत्वा तत् कर्म बीभत्सुरुग्रमुग्रपराक्रमः ।
विव्याध शकुनिं भूयः पञ्चभिर्नतपर्वभिः ॥ ३५ ॥
अताडयदुलूकं च त्रिभिरेव तथा शरैः ।

भयंकर पराक्रमी अर्जुनने वह वीरोचित कर्म करके झुकी हुई गाँठवाले पाँच बाणोंद्वारा पुनः शकुनिको घायल किया । साथ ही तीन बाणोंसे उलूकको भी व्यथित कर दिया ॥ ३५½ ॥

उलूकस्तु तथा विद्धो वासुदेवमताडयत् ॥ ३६ ॥
ननाद च महानादं पूरयन्निव मेदिनीम् ।

इस प्रकार घायल होनेपर उलूकने भगवान् श्रीकृष्णपर प्रहार किया और पृथ्वीको गुँजाते हुए-से बड़े जोरसे गर्जना की ॥ ३६½ ॥

अर्जुनः शकुनेश्चापं सायकैरच्छिनद् रणे ॥ ३७ ॥
निन्ये च चतुरो वाहान् यमस्य सदनं प्रति ।

उस समय अर्जुनने रणभूमिमें अपने बाणोंद्वारा शकुनिका धनुष काट दिया और उसके चारों घोड़ोंको भी यमलोक भेज दिया ॥ ३७½ ॥

ततो रथादवप्लुत्य सौबलो भरतर्षभ ॥ ३८ ॥
उलूकस्य रथं तूर्णमारुरोह विशाम्पते ।

प्रजापालक भरतश्रेष्ठ ! तब सुबलपुत्र शकुनि अपने रथसे कूदकर तुरंत ही उलूकके रथपर जा चढ़ा ॥ ३८½ ॥

तावेकरथमारूढौ पितापुत्रौ महारथौ ॥ ३९ ॥
पार्थं सिषिचतुर्बाणैर्गिरिं मेघाविवाम्बुभिः ।

एक रथपर आरूढ़ हुए पिता और पुत्र दोनों महारथियोंने अर्जुनपर उसी प्रकार बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी, जैसे दो मेघखण्ड अपने जलसे किसी पर्वतको सींच रहे हों ॥

तौ तु विद्ध्वा महाराज पाण्डवो निशितैः शरैः ॥ ४० ॥
विद्रावयंस्तव चमूं शतशो व्यधमच्छरैः ।

महाराज ! परंतु पाण्डुनन्दन अर्जुनने उन दोनोंको तीखे बाणोंसे घायल करके आपकी सेनाको भगाते हुए उसे सैकड़ों बाणोंसे छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ ४०½ ॥

अनिलेन यथाभ्राणि विच्छिन्नानि समन्ततः ॥ ४१ ॥
विच्छिन्नानि तथा राजन् बलान्यासन् विशाम्पते ।

प्रजापालक नरेश ! जैसे हवा बादलोंको चारों ओर उड़ा देती है, उसी प्रकार अर्जुनने आपकी सेनाओंको छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ ४१½ ॥

तद् बलं भरतश्रेष्ठ वध्यमानं तदा निशि ॥ ४२ ॥
प्रदुद्राव दिशः सर्वा वीक्षमाणं भयार्दितम् ।

भरतश्रेष्ठ ! उस समय रात्रिमें अर्जुनद्वारा मारी जाती हुई आपकी सेना भयसे पीड़ित हो सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर देखती हुई भाग चली ॥ ४२½ ॥

उत्सृज्य वाहान् समरे चोदयन्तस्तथा परे ॥ ४३ ॥
सम्भ्रान्ताः पर्यधावन्त तस्मिंस्तमसि दारुणे ।

कुछ लोग अपने वाहनोंको समराङ्गणमें ही छोड़कर भाग चले । दूसरे लोग उन्हें तेजीसे हाँकते हुए भागे और कितने ही सैनिक भ्रान्त होकर उस दारुण अन्धकारमें चारों ओर चक्कर काटते रहे ॥ ४३½ ॥

विजित्य समरे योधांस्तावकान् भरतर्षभ ॥ ४४ ॥
दध्मतुर्मुदितौ शङ्खौ वासुदेवधनंजयौ ।

भरतश्रेष्ठ ! रणभूमिमें आपके योद्धाओंको जीतकर प्रसन्नतासे भरे हुए भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन अपना-अपना शङ्ख बजाने लगे ॥ ४४½ ॥

धृष्टद्युम्नो महाराज द्रोणं विद्ध्वा त्रिभिः शरैः॥ ४५ ॥
चिच्छेद धनुषस्तूर्णं ज्यां शरेण शितेन ह ।

महाराज ! उधर धृष्टद्युम्नने तीन बाणोंसे द्रोणाचार्यको बींधकर तुरंत ही तीखे बाणसे उनके धनुषकी प्रत्यञ्चा काट डाली ॥ ४५½ ॥

तन्निधाय धनुर्भूमौ द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ४६ ॥
आददेऽन्यद् धनुः शूरो वेगवत् सारवत्तरम् ।

तब क्षत्रियमर्दन शूरवीर द्रोणाचार्यने उस धनुषको भूमिपर रखकर दूसरा अत्यन्त प्रबल और वेगशाली धनुष हाथमें लिया ॥ ४६½ ॥

धृष्टद्युम्नं ततो द्रोणो विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः ॥ ४७ ॥
सारथिं पञ्चभिर्बाणै राजन् विव्याध संयुगे ।

राजन् ! तत्पश्चात् द्रोणने युद्धस्थलमें धृष्टद्युम्नको सात बाणोंसे बींधकर उनके सारथिको पाँच बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ४७½ ॥

तं निवार्य शरैस्तूर्णं धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ ४८ ॥
व्यधमत् कौरवीं सेनामासुरीं मघवानिव ।

महारथी धृष्टद्युम्नने तुरंत ही अपने बाणोंद्वारा द्रोणाचार्यको रोककर कौरव-सेनाका उसी प्रकार विनाश आरम्भ किया, जैसे इन्द्र आसुरी सेनाका संहार करते हैं ॥ ४८½ ॥

वध्यमाने बले तस्मिंस्तव पुत्रस्य मारिष ॥ ४९ ॥
प्रावर्तत नदी घोरा शोणितौघतरङ्गिणी ।

माननीय नरेश ! इस प्रकार जब आपके पुत्रकी उस सेनाका वध होने लगा, तब वहाँ रक्तराशिके प्रवाहसे तरङ्गित होनेवाली एक भयंकर नदी बह चली ॥ ४९½ ॥

उभयोः सेनयोर्मध्ये नराश्वद्विपवाहिनी ॥ ५० ॥
यथा वैतरणी राजन् यमराजपुरं प्रति ।

राजन् ! दोनों सेनाओंके बीचमें बहनेवाली वह नदी मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंको भी बहाये लिये जाती थी, मानो वैतरणी नदी यमराजपुरीकी ओर जा रही हो ॥५०½॥

द्रावयित्वा तु तत् सैन्यं धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ॥ ५१ ॥
अभ्यराजत तेजस्वी शक्रो देवगणेष्विव ।

उस सेनाको भगाकर प्रतापी धृष्टद्युम्न देवताओंके समूहमें तेजस्वी इन्द्रके समान सुशोभित होने लगे ॥ ५१½ ॥

अथ दध्मुर्महाशङ्खान् धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥ ५२ ॥
यमौ च युयुधानश्च पाण्डवश्च वृकोदरः ।

तदनन्तर धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, नकुल, सहदेव, सात्यकि तथा पाण्डुपुत्र भीमसेनने भी अपने महान् शङ्खको बजाया ॥

जित्वा रथसहस्राणि तावकानां महारथाः ।
सिंहनादरवांश्चक्रुः पाण्डवा जितकाशिनः ॥ ५३ ॥
पश्यतस्तव पुत्रस्य कर्णस्य च रणोत्कटाः ।
तथा द्रोणस्य शूरस्य द्रौणेश्चैव विशाम्पते ॥ ५४ ॥

प्रजानाथ ! विजयसे उल्लसित होनेवाले रणोन्मत्त पाण्डव महारथी आपके पुत्र दुर्योधन, कर्ण, द्रोणाचार्य तथा शूरवीर अश्वत्थामाके देखते-देखते आपकी सेनाके सहस्रों रथियोंको परास्त करके सिंहनाद करने लगे ॥ ५३-५४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसङ्गमें संकुलयुद्धविषयक एक सौ इकहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७१ ॥

द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

दुर्योधनके उपालम्भसे द्रोणाचार्य और कर्णका घोर युद्ध, पाण्डवसेनाका पलायन, भीमसेनका सेनाको लौटाकर लाना और अर्जुनसहित भीमसेनका कौरवोंपर आक्रमण करना

संजय उवाच

विद्रुतं स्वबलं दृष्ट्वा वध्यमानं महात्मभिः ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टः पुत्रस्तव विशाम्पते ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—प्रजानाथ ! अपनी सेनाको उन महामनस्वी वीरोंकी मार खाकर भागती देख आपके पुत्र दुर्योधनको महान् क्रोध हुआ ॥ १ ॥

अभ्येत्य सहसा कर्णं द्रोणं च जयतां वरम् ।
अमर्षवशमापन्नो वाक्यज्ञो वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥

बातचीतकी कला जाननेवाले दुर्योधनने सहसा विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ कर्ण और द्रोणाचार्यके पास जाकर अमर्षके वशीभूत हो इस प्रकार कहा—॥ २ ॥

भवद्भ्यामिह संग्रामः क्रुद्धाभ्यां सम्प्रवर्तितः।
आहवे निहतं दृष्ट्वा सैन्धवं सव्यसाचिना॥ ३ ॥

'सव्यसाची अर्जुनके द्वारा युद्धस्थलमें सिंधुराज जयद्रथको मारा गया देख क्रोधमें भरे हुए आप दोनों वीरोंने यहाँ रातके समय इस युद्धको जारी रक्खा था ॥ ३ ॥

निहन्यमानां पाण्डूनां बलेन मम वाहिनीम्।
भूत्वा तद्विजये शक्तावशक्ताविव पश्यतः॥ ४ ॥

'परंतु इस समय पाण्डव-सेनाद्वारा मेरी विशाल वाहिनी-का विनाश हो रहा है और आपलोग उसे जीतनेमें समर्थ होकर भी असमर्थकी भाँति देख रहे हैं ॥ ४ ॥

यद्यहं भवतोस्त्याज्यो न वाच्योऽस्मि तदैव हि।
आवां पाण्डुसुतान् संख्ये जेष्याव इति मानदौ॥ ५ ॥

'दूसरोंको मान देनेवाले वीरो! यदि आपलोग मुझे त्याग देना ही उचित समझते थे तो आपको उसी समय मुझसे यह नहीं कहना चाहिये था कि 'हमलोग पाण्डवोंको युद्धमें जीत लेंगे' ॥ ५ ॥

तदैवाहं वचः श्रुत्वा भवद्भ्यामनुसम्मतम्।
नाकरिष्यमिदं पार्थैर्वैरं योधविनाशनम्॥ ६ ॥

'उसी समय आपलोगोंकी सम्मति सुनकर मैं कुन्ती-पुत्रोंके साथ यह वैर नहीं करता, जो सम्पूर्ण योद्धाओंके लिये विनाशकारी हो रहा है ॥ ६ ॥

यदि नाहं परित्याज्यो भवद्भ्यां पुरुषर्षभौ।
युध्यतामनुरूपेण विक्रमेण सुविक्रमौ॥ ७ ॥

'अत्यन्त पराक्रमी पुरुषप्रवर वीरो! यदि आप मुझे त्याग देना न चाहते हों तो अपने अनुरूप पराक्रम प्रकट करते हुए युद्ध कीजिये' ॥ ७ ॥

वाक्प्रतोदेन तौ वीरौ प्रणुन्नौ तनयेन ते।
प्रावर्तयेतां संग्रामं घट्टिताविव पन्नगौ॥ ८ ॥

इस प्रकार जब आपके पुत्रने अपने वचनोंकी चाबुकसे उन दोनों वीरोंको पीड़ित किया, तब उन्होंने कुचले हुए सर्पोंकी भाँति कुपित हो पुनः घोर युद्ध आरम्भ किया ॥८॥

ततस्तौ रथिनां श्रेष्ठौ सर्वलोकधनुर्धरौ।
शैनेयप्रमुखान् पार्थानभिदुद्रुवतू रणे॥ ९ ॥

सम्पूर्ण लोकमें विख्यात धनुर्धर, रथियोंमें श्रेष्ठ उन द्रोणाचार्य और कर्णने रणभूमिमें पुनः सात्यकि आदि पाण्डव महारथियोंपर धावा किया ॥ ९ ॥

तथैव सहिताः पार्थाः सर्वसैन्येन संवृताः।
अभ्यवर्तन्त तौ वीरौ नर्दमानौ मुहुर्मुहुः॥ १० ॥

इसी प्रकार सम्पूर्ण सेनाओंके साथ संगठित होकर आये हुए कुन्तीके पुत्र भी बारंबार गर्जनेवाले उन दोनों वीरोंका सामना करने लगे ॥ १० ॥

अथ द्रोणो महेष्वासो दशभिः शिनिपुङ्गवम्।
अविध्यत् त्वरितं क्रुद्धः सर्वशस्त्रभृतां वरः॥ ११ ॥

तदनन्तर सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाधनुर्धर द्रोणाचार्यने कुपित होकर तुरंत ही दस बाणोंसे शिनिप्रवर सात्यकिको बींध डाला ॥ ११ ॥

कर्णश्च दशभिर्बाणैः पुत्रश्च तव सप्तभिः।
दशभिर्वृषसेनश्च सौबलश्चापि सप्तभिः॥ १२ ॥
एते कौरव संक्रन्दे शैनेयं पर्यवाकिरन्।

फिर कर्णने दस, आपके पुत्रने सात, वृषसेनने दस और शकुनिने भी सात बाण मारे। कुरुराज! इन वीरोंने युद्धमें शिनिपौत्र सात्यकिपर चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ १२½ ॥

दृष्ट्वा च समरे द्रोणं निघ्नन्तं पाण्डवीं चमूम्॥ १३ ॥
विव्यधुः सोमकास्तूर्णं समन्ताच्छरवृष्टिभिः।

समराङ्गणमें द्रोणाचार्यको पाण्डवसेनाका संहार करते देख सोमकोंने चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा करके उन्हें तुरंत घायल कर दिया ॥ १३½ ॥

ततो द्रोणोऽहरत् प्राणान् क्षत्रियाणां विशाम्पते॥ १४ ॥
रश्मिभिर्भास्करो राजंस्तमांसीव समन्ततः।

प्रजापालक नरेश! जैसे सूर्य अपनी किरणोंद्वारा चारों ओरके अन्धकारको दूर कर देते हैं, उसी प्रकार द्रोणाचार्य वहाँ क्षत्रियोंके प्राण लेने लगे ॥ १४½ ॥

द्रोणेन वध्यमानानां पञ्चालानां विशाम्पते॥ १५ ॥
शुश्रुवे तुमुलः शब्दः क्रोशतामितरेतरम्।

प्रजानाथ! द्रोणाचार्यकी मार खाकर परस्पर चीखते-चिल्लाते हुए पाञ्चालोंका घोर आर्तनाद सुनायी देने लगा ॥

पुत्रानन्ये पितॄनन्ये भ्रातॄनन्ये च मातुलान्॥ १६ ॥
भागिनेयान् वयस्यांश्च तथा सम्बन्धिबान्धवान्।
उत्सृज्योत्सृज्य गच्छन्ति त्वरिता जीवितेप्सवः॥ १७ ॥

कोई पुत्रोंको, कोई पिताओंको, कोई भाइयोंको, कोई मामा, भानजों, मित्रों, सम्बन्धियों तथा बन्धु-बान्धवोंको छोड़-छोड़कर अपनी जान बचानेके लिये तुरंत ही भाग चले ॥

अपरे मोहिता मोहात् तमेवाभिमुखा ययुः।
पाण्डवानां रणे योधाः परलोकं गताः परे॥ १८ ॥

कुछ पाण्डव सैनिक रणभूमिमें मोहित होकर मोहवश पुनः द्रोणाचार्यके ही सामने चले गये और मारे गये। बहुत-से सैनिक परलोक सिधार गये ॥ १८ ॥

सा तथा पाण्डवी सेना पीड्यमाना महात्मना।

निशि सम्प्राद्रवद् राजन्नुत्सृज्योल्काः सहस्रशः ।१९।
पश्यतो भीमसेनस्य विजयस्याच्युतस्य च ।
यमयोर्धर्मपुत्रस्य पार्षतस्य च पश्यतः ॥ २० ॥

महामना द्रोणाचार्यसे इस प्रकार पीड़ित हुई वह पाण्डव-सेना उस रातके समय सहस्रों मशालें फेंक-फेंककर भीमसेन, अर्जुन, श्रीकृष्ण, नकुल, सहदेव, धर्मपुत्र युधिष्ठिर और धृष्टद्युम्नके सामने ही उनके देखते-देखते भाग रही थी ॥

तमसा संवृते लोके न प्राज्ञायत किंचन ।
कौरवाणां प्रकाशेन दृश्यन्ते विद्रुताः परे ॥ २१ ॥

उस समय पाण्डवदल अन्धकारसे आच्छन्न हो गया था । किसीको कुछ जान नहीं पड़ता था । कौरवदलमें जो प्रकाश हो रहा था, उसीसे कुछ भागते हुए सैनिक दिखायी देते थे ॥ २१ ॥

द्रवमाणं तु तत् सैन्यं द्रोणकर्णौ महारथौ ।
जघ्नतुः पृष्ठतो राजन् किरन्तौ सायकान् बहून् ॥ २२ ॥

राजन् ! महारथी द्रोणाचार्य और कर्ण बहुत-से बाणों-की वर्षा करते हुए उस भागती हुई पाण्डव-सेनाको पीछेसे मार रहे थे ॥ २२ ॥

पञ्चालेषु प्रभग्नेषु क्षीयमाणेषु सर्वतः ।
जनार्दनो दीनमनाः प्रत्यभाषत फाल्गुनम् ॥ २३ ॥

जब पाञ्चाल योद्धा सब ओरसे नष्ट होने और भागने लगे, तब भगवान् श्रीकृष्णने दीनचित्त होकर अर्जुनसे इस प्रकार कहा—॥ २३ ॥

द्रोणकर्णौ महेष्वासावेतौ पार्षतसात्यकी ।
पञ्चालांश्चैव सहितौ जघ्नतुः सायकैर्भृशम् ॥ २४ ॥

'कुन्तीनन्दन ! द्रोणाचार्य और कर्ण इन दोनों महाधनुर्धरोंने एक साथ होकर धृष्टद्युम्न, सात्यकि और पाञ्चालोंको अपने बाणोंद्वारा अत्यन्त क्षत-विक्षत कर दिया है ॥२४॥

एतयोः शरवर्षेण प्रभग्ना नो महारथाः ।
वार्यमाणापि कौन्तेय पृतना नावतिष्ठते ॥ २५ ॥

'पार्थ ! इन दोनोंकी बाणवर्षासे हमारे महारथियोंके पाँव उखड़ गये हैं । हमारी सेना रोकनेपर भी रुक नहीं रही है' ॥

तां तु विद्रवतीं दृष्ट्वा ऊचतुः केशवार्जुनौ ।
मा विद्रवत वित्रस्ता भयं त्यजत पाण्डवाः ॥ २६ ॥

अपनी सेनाको भागती देख श्रीकृष्ण और अर्जुनने उससे कहा—'पाण्डव वीरो ! भयभीत होकर भागो मत । भय छोड़ो ॥ २६ ॥

तावावां सर्वसैन्यैश्च व्यूढैः सम्यगुदायुधैः ।
द्रोणं च सूतपुत्रं च प्रयतावः प्रबाधितुम् ॥ २७ ॥

'हम दोनों अस्त्र-शस्त्रोंसे भलीभाँति सुसज्जित सम्पूर्ण सेनाओंका व्यूह बनाकर द्रोणाचार्य और सूतपुत्र कर्णको बाधा देनेका प्रयत्न कर रहे हैं ॥ २७ ॥

एतौ हि बलिनौ शूरौ कृतास्त्रौ जितकाशिनौ ।
उपेक्षितौ तव बलं नाशयेतां निशामिमाम् ॥ २८ ॥

'ये दोनों द्रोण और कर्ण बलवान्, शूरवीर, अस्त्रवेत्ता तथा विजयश्रीसे सुशोभित हैं । यदि इनकी उपेक्षा की गयी तो ये इसी रातमें तुमलोगोंकी सारी सेनाका विनाश कर डालेंगे' ॥ २८ ॥

तयोः संवदतोरेवं भीमकर्मा महाबलः ।
आयाद् वृकोदरः शीघ्रं पुनरावर्त्य वाहिनीम् ॥ २९ ॥

वे दोनों इस प्रकार अपने सैनिकोंसे बातें कर ही रहे थे कि भयंकर कर्म करनेवाले महाबली भीमसेन पुनः अपनी सेनाको लौटाकर शीघ्र वहाँ आ पहुँचे ॥ २९ ॥

वृकोदरमथायान्तं दृष्ट्वा तत्र जनार्दनः ।
पुनरेवाब्रवीद् राजन् हर्षयन्निव पाण्डवम् ॥ ३० ॥

राजन् ! भीमसेनको वहाँ आते देख भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डुपुत्र अर्जुनका हर्ष बढ़ाते हुए-से पुनः इस प्रकार बोले—॥ ३० ॥

एष भीमो रणश्लाघी वृतः सोमकपाण्डवैः ।
अभ्यवर्तत वेगेन द्रोणकर्णौ महारथौ ॥ ३१ ॥

'ये युद्धकी स्पृहा रखनेवाले भीमसेन सोमक और पाण्डव योद्धाओंसे घिरकर महारथी द्रोण और कर्णका सामना करनेके लिये बड़े वेगसे आ रहे हैं ॥ ३१ ॥

एतेन सहितो युद्धय पञ्चालैश्च महारथैः ।
आश्वासनार्थं सैन्यानां सर्वेषां पाण्डुनन्दन ॥ ३२ ॥

'पाण्डुनन्दन ! इनके और पाञ्चाल महारथियोंके साथ रहकर तुम अपनी सारी सेनाओंको सान्त्वना देनेके लिये यहाँ युद्ध करो' ॥ ३२ ॥

ततस्तौ पुरुषव्याघ्रावुभौ माधवपाण्डवौ ।
द्रोणकर्णौ समासाद्य धिष्ठितौ रणमूर्धनि ॥ ३३ ॥

तदनन्तर वे दोनों पुरुषसिंह श्रीकृष्ण और अर्जुन युद्धके मुहानेपर द्रोणाचार्य और कर्णके सामने जाकर खड़े हो गये ॥ ३३ ॥

संजय उवाच

ततस्तत् पुनरावृत्तं युधिष्ठिरबलं महत् ।
ततो द्रोणश्च कर्णश्च परान् ममृदतुर्युधि ॥ ३४ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! तदनन्तर युधिष्ठिरकी वह विशाल सेना पुनः लौट आयी । तत्पश्चात् द्रोणाचार्य और कर्ण युद्धके मैदानमें शत्रुओंको रौंदने लगे ॥३४॥

स सम्प्रहारस्तुमुलो निशि प्रत्यभवन्महान् ।
यथा सागरयो राजंश्चन्द्रोदयविवृद्धयोः ॥ ३५ ॥

राजन् ! उस रात्रिमें चन्द्रोदयकालमें उमड़े हुए दो महासागरोंके सदृश उन दोनों दलोंका वह महान् संग्राम अत्यन्त भयंकर प्रतीत होता था ॥ ३५ ॥

तत उत्सृज्य पाणिभ्यां प्रदीपांस्तव वाहिनी।
युयुधे पाण्डवैः सार्धमुन्मत्तवदसंकुला ॥ ३६ ॥

तदनन्तर आपकी सेना अपने हाथोंसे मशालें फेंककर उन्मत्तके समान असंकुलभावसे पाण्डव सैनिकोंके साथ युद्ध करने लगी ॥ ३६ ॥

रजसा तमसा चैव संवृते भृशदारुणे।
केवलं नामगोत्रेण प्रायुध्यन्त जयैषिणः ॥ ३७ ॥

धूल और अंधकारसे छाये हुए उस अत्यन्त भयंकर संग्राममें विजयाभिलाषी योद्धा केवल नाम और गोत्रका परिचय पाकर युद्ध करते थे ॥ ३७ ॥

अश्रूयन्त हि नामानि श्राव्यमाणानि पार्थिवैः।
प्रहरद्भिर्महाराज स्वयंवर इवाहवे ॥ ३८ ॥

महाराज! स्वयंवरकी भाँति उस युद्धस्थलमें भी प्रहार करनेवाले नरेशोंद्वारा सुनाये जाते हुए नाम श्रवण-गोचर हो रहे थे ॥ ३८ ॥

निःशब्दमासीत् सहसा पुनः शब्दो महानभूत्।
क्रुद्धानां युध्यमानानां जीयतां जयतामपि ॥ ३९ ॥

क्रोधमें भरकर युद्ध करते हुए पराजित एवं विजयी होनेवाले योद्धाओंका शब्द वहाँ सहसा बंद होकर कभी सन्नाटा छा जाता था और कभी पुनः महान् कोलाहल होने लगता था ॥ ३९ ॥

यत्र यत्र स्म दृश्यन्ते प्रदीपाः कुरुसत्तम।
तत्र तत्र स्म शूरास्ते निपतन्ति पतङ्गवत् ॥ ४० ॥

कुरुश्रेष्ठ! जहाँ-जहाँ मशालें दिखायी देती थीं, वहाँ-वहाँ शूरवीर सैनिक पतङ्गोंकी तरह टूट पड़ते थे ॥ ४० ॥

तथा संयुध्यमानानां विगाढासीन्महानिशा।
पाण्डवानां च राजेन्द्र कौरवाणां च सर्वशः ॥ ४१ ॥

राजेन्द्र! इस प्रकार युद्धमें लगे हुए पाण्डवों और कौरवोंकी वह महारात्रि सर्वथा प्रगाढ़ हो चली ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे संकुलयुद्धे द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके अवसरपर संकुलयुद्धविषयक एक सौ बहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७२ ॥

त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

कर्णद्वारा धृष्टद्युम्न एवं पाञ्चालोंकी पराजय, युधिष्ठिरकी घबराहट तथा श्रीकृष्ण और अर्जुनका घटोत्कचको प्रोत्साहन देकर कर्णके साथ युद्धके लिये भेजना

संजय उवाच

ततः कर्णो रणे दृष्ट्वा पार्षतं परवीरहा।
आजघानोरसि शरैर्दशभिर्मर्मभेदिभिः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले कर्णने रणभूमिमें धृष्टद्युम्नको उपस्थित देख उनकी छातीमें दस मर्मभेदी बाण मारे ॥ १ ॥

प्रतिविव्याध तं तूर्णं धृष्टद्युम्नोऽपि मारिष।
दशभिः सायकैर्हृष्टस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २ ॥

माननीय नरेश! तब धृष्टद्युम्नने भी हर्ष और उत्साहमें भरकर दस बाणोंद्वारा तुरंत ही कर्णको घायल करके बदला चुकाया और कहा—'खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ २ ॥

तावन्योन्यं शरैः संख्ये संछाद्य सुमहारथैः।
पुनः पूर्णायतोत्सृष्टैर्विव्यधाते परस्परम् ॥ ३ ॥

वे दोनों विशाल रथपर आरूढ़ हो युद्धस्थलमें एक दूसरेको अपने बाणोंद्वारा आच्छादित करके पुनः धनुषको पूर्णरूपसे खींचकर छोड़े गये बाणोंद्वारा परस्पर आघात-प्रत्याघात करने लगे ॥ ३ ॥

ततः पाञ्चालमुख्यस्य धृष्टद्युम्नस्य संयुगे।
सारथिं चतुरश्चाश्वान् कर्णो विव्याध सायकैः ॥ ४ ॥

तत्पश्चात् रणभूमिमें कर्णने अपने बाणोंद्वारा पाञ्चाल देशके प्रमुख वीर धृष्टद्युम्नके सारथि और चारों घोड़ोंको घायल कर दिया ॥ ४ ॥

कार्मुकप्रवरं चापि प्रचिच्छेद शितैः शरैः।
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ५ ॥

इतना ही नहीं, उसने अपने तीखे बाणोंसे धृष्टद्युम्नके श्रेष्ठ धनुषको भी काट दिया और एक भल्ल मारकर उनके सारथिको भी रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया ॥ ५ ॥

धृष्टद्युम्नस्तु विरथो हताश्वो हतसारथिः।
गृहीत्वा परिघं घोरं कर्णस्याश्वानपीपिषत् ॥ ६ ॥

घोड़े और सारथिके मारे जानेपर रथहीन हुए धृष्टद्युम्नने एक भयंकर परिघ उठाकर उसके द्वारा कर्णके घोड़ोंको पीस डाला ॥ ६ ॥

विद्धश्च बहुभिस्तेन शरैराशीविषोपमैः।
ततो युधिष्ठिरानीकं पद्भ्यामेवान्वपद्यत ॥ ७ ॥

उस समय कर्णने विषधर सर्पके समान भयंकर एवं बहुसंख्यक बाणोंद्वारा उन्हें क्षत-विक्षत कर दिया। फिर वे युधिष्ठिरकी सेनामें पैदल ही चले गये ॥ ७ ॥

आरुरोह रथं चापि सहदेवस्य मारिष ।
प्रयातुकामः कर्णाय वारितो धर्मसूनुना ॥ ८ ॥

आर्य ! वहाँ धृष्टद्युम्न सहदेवके रथपर जा चढ़े और पुनः कर्णका सामना करनेके लिये जानेको उद्यत हुए, किंतु धर्मपुत्र युधिष्ठिरने उन्हें रोक दिया ॥ ८ ॥

कर्णस्तु सुमहातेजाः सिंहनादविमिश्रितम् ।
धनुःशब्दं महच्चक्रे दध्मौ तारेण चाम्बुजम् ॥ ९ ॥

उधर महातेजस्वी कर्णने सिंहनादके साथ-साथ अपने धनुषकी महती टंकारध्वनि फैलायी और उच्चस्वरसे शङ्ख बजाया ॥ ९ ॥

दृष्ट्वा विनिर्जितं युद्धे पार्षतं ते महारथाः ।
अमर्षवशमापन्नाः पञ्चालाः सहसोमकाः ॥ १० ॥
सूतपुत्रवधार्थाय शस्त्राण्यादाय सर्वशः ।
प्रययुः कर्णमुद्दिश्य मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ११ ॥

युद्धमें धृष्टद्युम्नको परास्त हुआ देख अमर्षमें भरे हुए वे पाञ्चाल और सोमक महारथी सूतपुत्र कर्णके वधके लिये सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लेकर मृत्युको ही युद्धसे निवृत्त होनेकी अवधि निश्चित करके उसकी ओर चल दिये ॥

कर्णस्यापि रथे वाहानन्यान् सूतोऽभ्ययोजयत् ।
शङ्खवर्णान् महावेगान् सैन्धवान् साधुवाहिनः ॥१२॥

उधर कर्णके रथमें भी उसके सारथिने दूसरे घोड़े जोत दिये । वे सिंधी घोड़े अच्छी तरह सवारीका काम देते थे । उनका रंग शङ्खके समान सफेद था और वे बड़े वेगशाली थे ॥ १२ ॥

लब्धलक्ष्यस्तु राधेयः पञ्चालानां महारथान् ।
अभ्यपीडयदायस्तः शरैर्मेघ इवाचलम् ॥ १३ ॥

राधापुत्र कर्णका निशाना कभी चूकता नहीं था । जैसे मेघ किसी पर्वतपर जलकी धारा गिराता है, उसी प्रकार वह प्रयत्नपूर्वक बाणोंकी वर्षा करके पाञ्चाल महारथियोंको पीड़ा देने लगा ॥ १३ ॥

सा पीड्यमाना कर्णेन पञ्चालानां महाचमूः ।
सम्प्राद्रवत् सुसंत्रस्ता सिंहेनेवार्दिता मृगी ॥ १४ ॥

कर्णके द्वारा पीड़ित होनेवाली पाञ्चालोंकी वह विशाल वाहिनी सिंहसे सतायी गयी हरिणीकी भाँति अत्यन्त भयभीत होकर वेगपूर्वक भागने लगी ॥ १४ ॥

पतितास्तुरगेभ्यश्च गजेभ्यश्च महीतले ।
रथेभ्यश्च नरास्तूर्णमदृश्यन्त ततस्ततः ॥ १५ ॥

कितने ही मनुष्य वहाँ इधर-उधर घोड़ों, हाथियों और रथोंसे तुरंत ही गिरकर धराशायी हुए दिखायी देने लगे ॥

धावमानस्य योधस्य क्षुरप्रैः स महामृधे ।
बाहू चिच्छेद वै कर्णः शिरश्चैव सकुण्डलम् ॥ १६ ॥

कर्ण उस महासमरमें अपने क्षुरप्रोंद्वारा भागते हुए योद्धाकी दोनों भुजाओं तथा कुण्डलमण्डित मस्तकको भी काट डाला था ॥ १६ ॥

ऊरू चिच्छेद चान्यस्य गजस्थस्य विशाम्पते ।
वाजिपृष्ठगतस्यापि भूमिष्ठस्य च मारिष ॥ १७ ॥

माननीय प्रजानाथ ! दूसरे योद्धा जो हाथियोंपर बैठे थे, घोड़ोंकी पीठपर सवार थे और पृथ्वीपर पैदल चलते थे, उनकी भी जाँघें कर्णने काट डालीं ॥ १७ ॥

नाज्ञासिषुर्धावमाना बहवश्च महारथाः ।
संछिन्नान्यात्मगात्राणि वाहनानि च संयुगे ॥ १८ ॥

भागते हुए बहुत-से महारथी उस युद्धस्थलमें अपने कटे हुए अंगों और वाहनोंको नहीं जान पाते थे ॥ १८ ॥

ते वध्यमानाः समरे पञ्चालाः सृञ्जयैः सह ।
तृणप्रस्पन्दनाच्चापि सूतपुत्रं स्म मेनिरे ॥ १९ ॥

समराङ्गणमें मारे जाते हुए पाञ्चाल और संजय एक तिनकेके हिल जानेसे भी सूतपुत्र कर्णको ही आया हुआ मानने लगते थे ॥ १९ ॥

अपि स्वं समरे योधं धावमानं विचेतसम् ।
कर्णमेवाभ्यमन्यन्त ततो भीता द्रवन्ति ते ॥ २० ॥

उस रणभूमिमें अचेत होकर भागते हुए अपने योद्धाको भी वे कर्ण ही समझ लेते और उसीसे डरकर भागने लगते थे ॥

तान्यनीकानि भग्नानि द्रवमाणानि भारत ।
अभ्यद्रवद् द्रुतं कर्णः पृष्ठतो विकिरञ्छरान् ॥ २१ ॥

भारत ! भयभीत होकर भागते हुए उन सैनिकोंके पीछे बाणोंकी वर्षा करता हुआ कर्ण बड़े वेगसे धावा करता था ॥ २१ ॥

अवेक्षमाणास्त्वन्योन्यं सुसम्मूढा विचेतसः ।
नाशक्नुवन्नवस्थातुं काल्यमाना महात्मना ॥ २२ ॥

महामनस्वी कर्णके द्वारा कालके गालमें भेजे जाते हुए मोहित एवं अचेत पाञ्चाल सैनिक एक दूसरेकी ओर देखते हुए कहीं भी ठहर न सके ॥ २२ ॥

कर्णेनाभ्याहता राजन् पञ्चालाः परमेषुभिः ।
द्रोणेन च दिशः सर्वा वीक्षमाणाः प्रदुद्रुवुः ॥ २३ ॥

राजन् ! कर्ण और द्रोणाचार्यके चलाये हुए उत्तम बाणोंसे घायल होकर पाञ्चाल सैनिक सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर देखते हुए भाग रहे थे ॥ २३ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा स्वसैन्यं प्रेक्ष्य विद्रुतम् ।
अपयाने मनः कृत्वा फाल्गुनं वाक्यमब्रवीत् ॥ २४ ॥

उस समय राजा युधिष्ठिरने अपनी सेनाको भागती देख स्वयं भी युद्धभूमिसे हट जानेका विचार करके अर्जुनसे इस प्रकार कहा—॥ २४ ॥

पश्य कर्णं महेष्वासं धनुष्पाणिमवस्थितम् ।
निशीथे दारुणे काले तपन्तमिव भास्करम् ॥ २५ ॥

'पार्थ ! महाधनुर्धर कर्णको देखो; वह हाथमें धनुष लिये खड़ा है और इस भयंकर आधी रातके समय सूर्यके समान तप रहा है ॥ २५ ॥

कर्णसायकनुन्नानां क्रोशतामेष निःस्वनः ।
अनिशं श्रूयते पार्थ त्वद्बन्धूनामनाथवत् ॥ २६ ॥

'अर्जुन ! कर्णके बाणोंसे घायल होकर अनाथके समान चीखते-चिल्लाते हुए तुम्हारे सहायक बन्धुओंका यह आर्तनाद निरन्तर सुनायी दे रहा है ॥ २६ ॥

यथा विसृजतश्चास्य संदधानस्य चाशुगान् ।
पश्यामि नान्तरं पार्थ क्षपयिष्यति नो ध्रुवम् ॥ २७ ॥

'कर्ण कब बाणोंको धनुषपर रखता है और कब उन्हें छोड़ता है, इसमें तनिक भी अन्तर मुझे नहीं दिखायी देता है । इससे जान पड़ता है यह निश्चय ही हमारी सारी सेनाका संहार कर डालेगा ॥ २७ ॥

यदत्रानन्तरं कार्यं प्राप्तकालं च पश्यसि ।
कर्णस्य वधसंयुक्तं तत् कुरुष्व धनंजय ॥ २८ ॥

'धनंजय ! अब यहाँ कर्णके वधके सम्बन्धमें तुम्हें जो समयोचित कर्तव्य दिखायी देता हो, उसे करो' ॥ २८ ॥

एवमुक्तो महाराज पार्थः कृष्णमथाब्रवीत् ।
भीतः कुन्तीसुतो राजा राधेयस्याद्य विक्रमात् ॥ २९ ॥

महाराज ! युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णसे बोले—'प्रभो ! आज कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिर राधापुत्र कर्णके पराक्रमसे भयभीत हो गये हैं ॥ २९ ॥

एवंगते प्राप्तकालं कर्णानीके पुनः पुनः ।
भवान् व्यवस्यतु क्षिप्रं द्रवते हि वरूथिनी ॥ ३० ॥

'ऐसी अवस्थामें कर्णकी सेनाके पास हमारा जो समयोचित कर्तव्य हो, उसका आप शीघ्र निश्चय करें; क्योंकि हमारी सेना बारंबार भाग रही है ॥ ३० ॥

द्रोणसायकनुन्नानां भग्नानां मधुसूदन ।
कर्णेन त्रास्यमानानामवस्थानं न विद्यते ॥ ३१ ॥

'मधुसूदन ! द्रोणाचार्यके बाणोंसे घायल और कर्णसे भयभीत होकर भागते हुए हमारे सैनिक कहीं भी ठहर नहीं पाते हैं ॥ ३१ ॥

पश्यामि च तथा कर्णं विचरन्तमभीतवत् ।
द्रवमाणान् रथोदारान् किरन्तं निशितैः शरैः ॥ ३२ ॥

'मैं देखता हूँ, कर्ण निर्भय-सा विचर रहा है और भागते हुए श्रेष्ठ रथियोंपर भी पीछेसे तीखे बाणोंकी वर्षा कर रहा है॥

नैनं शक्ष्यामि संसोढुं चरन्तं रणमूर्धनि ।
प्रत्यक्षं वृष्णिशार्दूल पादस्पर्शमिवोरगः ॥ ३३ ॥

'वृष्णिसिंह ! जैसे सर्प किसीके चरणोंका स्पर्श नहीं सह सकता, उसी प्रकार मैं युद्धके मुहानोंपर अपनी आँखोंके सामने कर्णका इस प्रकार विचरना नहीं सह सकूँगा ॥ ३३ ॥

स भवांस्तत्र यात्वाशु यत्र कर्णो महारथः ।
अहमेनं हनिष्यामि मां वैष मधुसूदन ॥ ३४ ॥

'मधुसूदन ! अतः आप शीघ्र वहीं चलिये, जहाँ महारथी कर्ण है । आज मैं इसे मार डालूँगा या यह मुझे (मार डालेगा)' ॥ ३४ ॥

श्रीवासुदेव उवाच

पश्यामि कर्णं कौन्तेय देवराजमिवाहवे ।
विचरन्तं नरव्याघ्रमतिमानुषविक्रमम् ॥ ३५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—कुन्तीनन्दन ! आज युद्धस्थलमें मैं पुरुषसिंह कर्णको देवराज इन्द्रके समान अमानुषिक पराक्रम प्रकट करते और विचरते देख रहा हूँ ॥

नैतस्यान्योऽस्ति संग्रामे प्रत्युद्याता धनंजय ।
ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र राक्षसाद् वा घटोत्कचात् ॥ ३६ ॥

पुरुषसिंह धनंजय ! संग्रामभूमिमें तुम्हें अथवा राक्षस घटोत्कचको छोड़कर दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो इसका सामना कर सके ॥ ३६ ॥

न तु तावदहं मन्ये प्राप्तकालं तवानघ ।
समागमं महाबाहो सूतपुत्रेण संयुगे ॥ ३७ ॥

निष्पाप महाबाहु अर्जुन ! इस समय रणक्षेत्रमें सूतपुत्रके साथ तुम्हारा युद्ध करना मैं उचित नहीं मानता ॥ ३७ ॥

दीप्यमाना महोल्केव तिष्ठत्यस्य हि वासवी ।
त्वदर्थं हि महाबाहो सूतपुत्रेण संयुगे ॥ ३८ ॥
रक्ष्यते शक्तिरेषा हि रौद्रं रूपं बिभर्ति च ।

क्योंकि उसके पास इन्द्रकी दी हुई शक्ति है, जो प्रज्वलित उल्काके समान प्रकाशित होती है । महाबाहो ! सूतपुत्रने युद्धस्थलमें तुम्हारे ऊपर प्रयोग करनेके लिये ही इस शक्तिको सुरक्षित रक्खा है, यह बड़ा भयंकर रूप धारण करती है ॥ ३८½ ॥

घटोत्कचस्तु राधेयं प्रत्युद्यातु महाबलः ॥ ३९ ॥
स हि भीमेन बलिना जातः सुरपराक्रमः ।
तस्मिन्नस्त्राणि दिव्यानि राक्षसान्यासुराणि च ॥ ४० ॥

अतः मेरी रायमें इस समय महाबली घटोत्कच ही राधापुत्र कर्णका सामना करनेके लिये जाय; क्योंकि वह बलवान् भीमसेनका बेटा है, देवताओंके समान पराक्रमी है तथा उसके पास राक्षस-सम्बन्धी एवं असुर-सम्बन्धी सभी प्रकारके दिव्य अस्त्र-शस्त्र हैं ॥ ३९-४० ॥

सततं चानुरक्तो वो हितैषी च घटोत्कचः ।
विजेष्यति रणे कर्णमिति मे नात्र संशयः ॥ ४१ ॥



घटोत्कचको कर्णके साथ युद्ध करनेकी प्रेरणा

घटोत्कच तुमलोगोंका हितैषी है और सदा तुम्हारे प्रति अनुराग रखता है। वह रणभूमिमें कर्णको जीत लेगा, इसमें मुझे संशय नहीं है ॥ ४१ ॥

एवमुक्तो महाबाहुः पार्थः पुष्करलोचनः।
आजुहावाथ तद् रक्षस्तच्चासीत् प्रादुरग्रतः ॥ ४२ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर महाबाहु कमलनयन कुन्तीकुमारने राक्षस घटोत्कचका आवाहन किया और वह तत्काल उनके सामने प्रकट हो गया ॥ ४२ ॥

कवची सशरः खड्गी सधन्वा च विशाम्पते।
अभिवाद्य ततः कृष्णं पाण्डवं च धनंजयम्।
अब्रवीच्च तदा कृष्णमयमस्म्यनुशाधि माम् ॥ ४३ ॥

प्रजानाथ! उसने कवच, धनुष, बाण और खड्ग धारण कर रक्खे थे। वह श्रीकृष्ण और पाण्डुपुत्र धनंजयको प्रणाम करके उस समय भगवान् श्रीकृष्णसे बोला—'प्रभो! यह मैं सेवामें उपस्थित हूँ। मुझे आज्ञा दीजिये, क्या करूँ?' ॥४३॥

ततस्तं मेघसंकाशं दीप्तास्यं दीप्तकुण्डलम्।
अभ्यभाषत हैडिम्बिं दाशार्हः प्रहसन्निव ॥ ४४ ॥

तदनन्तर प्रज्वलित मुख और प्रकाशित कुण्डलोंवाले मेघके समान काले हिडिम्बाकुमार घटोत्कचसे भगवान् श्रीकृष्णने हँसते हुए-से कहा ॥ ४४ ॥

श्रीवासुदेव उवाच

घटोत्कच विजानीहि यत् त्वां वक्ष्यामि पुत्रक।
प्राप्तो विक्रमकालोऽयं तव नान्यस्य कस्यचित्॥ ४५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—बेटा घटोत्कच! मैं तुमसे जो कुछ कह रहा हूँ, उसे सुनो और समझो। यह तुम्हारे लिये ही पराक्रम दिखानेका अवसर आया है, दूसरे किसीके लिये नहीं ॥ ४५ ॥

स भवान् मज्जमानानां बन्धूनां त्वं प्लवो भव।
विविधानि तवास्त्राणि सन्ति माया च राक्षसी ॥४६॥

तुम्हारे ये बन्धु संकटके समुद्रमें डूब रहे हैं, तुम इनके लिये जहाज बन जाओ। तुम्हारे पास नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र हैं और तुममें राक्षसी मायाका भी बल है ॥ ४६ ॥

पश्य कर्णेन हैडिम्बे पाण्डवानामनीकिनी।
काल्यमाना यथा गावः पालेन रणमूर्धनि ॥ ४७ ॥

हिडिम्बानन्दन! देखो, जैसे चरवाहा गायोंको हाँकता है, उसी प्रकार युद्धके मुहानेपर खड़ा हुआ कर्ण पाण्डवोंकी इस विशाल सेनाको खदेड़ रहा है ॥ ४७ ॥

एष कर्णो महेष्वासो मतिमान् दृढविक्रमः।
पाण्डवानामनीकेषु निहन्ति क्षत्रियर्षभान् ॥ ४८ ॥

यह कर्ण महाधनुर्धर, बुद्धिमान् और दृढ़तापूर्वक पराक्रम प्रकट करनेवाला है। यह पाण्डवोंकी सेनाओंमें जो श्रेष्ठ क्षत्रिय वीर हैं, उनका विनाश कर रहा है ॥ ४८ ॥

किरन्तः शरवर्षाणि महान्ति दृढधन्विनः।
न शक्नुवन्त्यवस्थातुं पीड्यमानाः शरार्चिषा ॥ ४९ ॥

इसके बाणोंकी आगसे संतप्त हो बाणोंकी बड़ी भारी वर्षा करनेवाले सुदृढ़ धनुर्धर वीर भी युद्धभूमिमें ठहर नहीं पाते हैं ॥ ४९ ॥

निशीथे सूतपुत्रेण शरवर्षेण पीडिताः।
एते द्रवन्ति पञ्चालाः सिंहेनेवार्दिता मृगाः ॥ ५० ॥

देखो, जैसे सिंहसे पीडित हुए मृग भागते हैं, उसी प्रकार इस आधी रातके समय सूतपुत्रके द्वारा की हुई बाण-वर्षासे व्यथित हो ये पाञ्चाल सैनिक भागे जा रहे हैं ॥५०॥

एतस्यैवं प्रवृद्धस्य सूतपुत्रस्य संयुगे।
निषेद्धा विद्यते नान्यस्त्वामृते भीमविक्रम ॥ ५१ ॥

भयंकर पराक्रमी वीर! इस युद्धस्थलमें तुम्हारे सिवा दूसरा कोई ऐसा योद्धा नहीं है, जो इस प्रकार आगे बढ़नेवाले सूतपुत्र कर्णको रोक सके ॥ ५१ ॥

स त्वं कुरु महाबाहो कर्म युक्तमिहात्मनः।
मातुलानां पितॄणां च तेजसोऽस्त्रबलस्य च ॥ ५२ ॥

महाबाहो! इसलिये तुम अपने पिता, मामा, तेज, अस्त्र-बल तथा अपनी प्रतिष्ठाके अनुरूप युद्धमें पराक्रम करो ॥

एतदर्थं हि हैडिम्बे पुत्रानिच्छन्ति मानवाः।
कथं नस्तारयेद् दुःखात् स त्वं तारय बान्धवान् ॥५३॥

हिडिम्बाकुमार! मनुष्य इसीलिये पुत्रकी इच्छा करते हैं कि वह किसी प्रकार हमें दुःखसे छुड़ायेगा; अतः तुम अपने बन्धु-बान्धवोंको उबारो ॥ ५३ ॥

इच्छन्ति पितरः पुत्रान् स्वार्थहेतोर्घटोत्कच।
इहलोकात् परे लोके तारयिष्यन्ति ये हिताः ॥ ५४ ॥

घटोत्कच! प्रत्येक पिता अपने इसी स्वार्थके लिये पुत्रोंकी इच्छा करता है कि वे पुत्र मेरे हितैषी होकर मुझे इस लोकसे परलोकमें तार देंगे ॥ ५४ ॥

तव ह्यत्र बलं भीमं मायाश्च तव दुस्तराः।
संग्रामे युध्यमानस्य सततं भीमनन्दन ॥ ५५ ॥

भीमनन्दन! संग्रामभूमिमें युद्ध करते समय सदा तुम्हारा भयङ्कर बल बढ़ता है और तुम्हारी मायाएँ दुस्तर होती हैं ॥

पाण्डवानां प्रभग्नानां कर्णेन निशि सायकैः।
मज्जतां धार्तराष्ट्रेषु भव पारं परंतप ॥ ५६ ॥

परंतप! रातके समय कर्णके बाणोंसे क्षत-विक्षत होकर पाण्डव सैनिकोंके पाँव उखड़ गये हैं और वे कौरवसेनारूपी समुद्रमें डूब रहे हैं। तुम उनके लिये तटभूमि बन जाओ ॥

रात्रौ हि राक्षसा भूयो भवन्त्यमितविक्रमाः।
बलवन्तः सुदुर्धर्षाः शूरा विक्रान्तचारिणः ॥ ५७ ॥

रात्रिके समय राक्षसोंका अनन्त पराक्रम और भी बढ़

जाता है। वे बलवान्, परम दुर्धर्ष, शूरवीर और पराक्रमपूर्वक विचरनेवाले होते हैं ॥ ५७ ॥

जहि कर्णं महेष्वासं निशीथे मायया रणे ।
पार्था द्रोणं वधिष्यन्ति धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ॥ ५८ ॥

तुम आधी रातके समय अपनी मायाद्वारा रणभूमिमें महाधनुर्धर कर्णको मार डालो और धृष्टद्युम्न आदि पाण्डवसैनिक द्रोणाचार्यका वध करेंगे ॥ ५८ ॥

संजय उवाच

केशवस्य वचः श्रुत्वा बीभत्सुरपि राक्षसम् ।
अभ्यभाषत कौरव्य घटोत्कचमरिंदमम् ॥ ५९ ॥

संजय कहते हैं—कुरुराज ! भगवान् श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर अर्जुनने भी शत्रुओंका दमन करनेवाले राक्षस घटोत्कचसे कहा—॥ ५९ ॥

घटोत्कच भवांश्चैव दीर्घबाहुश्च सात्यकिः ।
मतो मे सर्वसैन्येषु भीमसेनश्च पाण्डवः ॥ ६० ॥

'घटोत्कच ! मेरी सम्पूर्ण सेनाओंमें तीन ही वीर श्रेष्ठ माने गये हैं—तुम, महाबाहु सात्यकि तथा पाण्डुनन्दन भीमसेन ॥ ६० ॥

तद्भवान् यातु कर्णेन द्वैरथं युध्यतां निशि ।
सात्यकिः पृष्ठगोपस्ते भविष्यति महारथः ॥ ६१ ॥

'अतः तुम इस निशीथकालमें कर्णके साथ द्वैरथ युद्ध करो और महारथी सात्यकि तुम्हारे पृष्ठरक्षक होंगे ॥ ६१ ॥

जहि कर्णं रणे शूरं सात्वतेन सहायवान् ।
यथेन्द्रस्तारकं पूर्वं स्कन्देन सह जघ्निवान् ॥ ६२ ॥

'जैसे पूर्वकालमें स्कन्दके साथ रहकर इन्द्रने तारकासुरका वध किया था, उसी प्रकार तुम भी सात्यकिकी सहायता पाकर रणभूमिमें शूरवीर कर्णको मार डालो' ॥ ६२ ॥

घटोत्कच उवाच

(एवमेव महाबाहो यथा वदसि मां प्रभो ।
त्वया नियुक्तो गच्छामि कर्णस्य वधकाङ्क्षया ॥)
अलमेवास्मि कर्णाय द्रोणायालं च भारत ।
अन्येषां क्षत्रियाणां च कृतास्त्राणां महात्मनाम् ॥ ६३ ॥

घटोत्कचने कहा—महाबाहो ! प्रभो ! आप मुझे जैसा कह रहे हैं, वैसा ही है। मैं आपका भेजा हुआ कर्णके वधकी इच्छासे जा रहा हूँ। भारत ! मैं कर्णका सामना करनेमें तो समर्थ हूँ ही, द्रोणाचार्यका भी अच्छी तरह सामना कर सकता हूँ। अस्त्र-विद्याके जाननेवाले ये जो दूसरे महामनस्वी क्षत्रिय हैं, उनके साथ भी लोहा ले सकता हूँ ॥ ६३ ॥

अद्य दास्यामि संग्रामं सूतपुत्राय तं निशि ।
यं जनाः सम्प्रवक्ष्यन्ति यावद् भूमिर्धरिष्यति ॥ ६४ ॥

आज मैं इस रातमें सूतपुत्र कर्णके साथ ऐसा संग्राम करूँगा, जिसकी चर्चा जबतक यह पृथ्वी रहेगी, तबतक लोग करते रहेंगे ॥ ६४ ॥

न चात्र शूरान् मोक्ष्यामि न भीतान्न कृताञ्जलीन् ।
सर्वानेव वधिष्यामि राक्षसं धर्ममास्थितः ॥ ६५ ॥

इस युद्धमें मैं न तो शूरवीरोंको जीवित छोड़ूँगा, न डरनेवालोंको और न हाथ जोड़नेवालोंको ही। राक्षस-धर्मका आश्रय लेकर सबका ही संहार कर डालूँगा ॥ ६५ ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा महाबाहुर्हैडिम्बिर्वरवीरहा ।
अभ्ययात् तुमुले कर्णं तव सैन्यं विभीषयन् ॥ ६६ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! श्रेष्ठ वीरोंका संहार करनेवाला महाबाहु हिडिम्बाकुमार ऐसा कहकर उस भयंकर युद्धमें आपकी सेनाको भयभीत करता हुआ कर्णका सामना करनेके लिये गया ॥ ६६ ॥

तमापतन्तं संक्रुद्धं दीप्तास्यं दीप्तमूर्धजम् ।
प्रहसन् पुरुषव्याघ्रः प्रतिजग्राह सूतजः ॥ ६७ ॥

क्रोधमें भरे हुए उस प्रज्वलित मुख और चमकीले केशोंवाले राक्षसको आते हुए देख पुरुषसिंह सूतपुत्र कर्णने हँसते हुए उसे अपने प्रतिद्वन्द्वीके रूपमें ग्रहण किया ॥ ६७ ॥

तयोः समभवद् युद्धं कर्णराक्षसयोर्मृधे ।
गर्जतो राजशार्दूल शक्रप्रह्लादयोरिव ॥ ६८ ॥

नृपश्रेष्ठ ! संग्रामभूमिमें गर्जना करते हुए कर्ण और राक्षस दोनोंमें इन्द्र और प्रह्लादके समान युद्ध होने लगा ॥ ६८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे घटोत्कचप्रोत्साहने त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके समय 'घटोत्कचको भगवानका प्रोत्साहन देना'विषयक एक सौ तिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ६९ श्लोक हैं)

चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

घटोत्कच और जटासुरके पुत्र अलम्बुषका घोर युद्ध तथा अलम्बुषका वध

संजय उवाच

दृष्ट्वा घटोत्कचं राजन् सूतपुत्ररथं प्रति ।
आयान्तं तु तथा युक्तं जिघांसुं कर्णमाहवे ॥ १ ॥
अब्रवीत् तत्र पुत्रस्ते दुःशासनमिदं वचः ।
एतद् रक्षो रणे तूर्णं दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥ २ ॥
अभियाति द्रुतं कर्णं तद् वारय महारथम् ।

संजय कहते हैं—राजन्! युद्धस्थलमें इस प्रकार कर्णका वध करनेकी इच्छासे उद्यत हुए घटोत्कचको सूतपुत्रके रथकी ओर आते देख आपके पुत्र दुर्योधनने दुःशासनसे इस प्रकार कहा—'भाई! यह राक्षस रणभूमिमें कर्णका वेगपूर्वक पराक्रम देखकर तीव्र गतिसे उसपर आक्रमण कर रहा है; अतः उस महारथी घटोत्कचको रोको ॥ १-२½ ॥

वृतः सैन्येन महता याहि यत्र महाबलः ॥ ३ ॥
कर्णो वैकर्तनो युद्धे राक्षसेन युयुत्सति ।

'तुम विशाल सेनासे घिरकर वहीं जाओ, जहाँ महाबली वैकर्तन कर्ण रणभूमिमें उस राक्षसके साथ युद्ध करना चाहता है ॥ ३½ ॥

रक्ष कर्णं रणे यत्तो वृतः सैन्येन मानद ॥ ४ ॥
मा कर्णं राक्षसो घोरः प्रमादान्नाशयिष्यति ।

'मानद! तुम सेनाके साथ सावधान होकर रणभूमिमें कर्णकी रक्षा करो। कहीं ऐसा न हो कि हमलोगोंके प्रमादवश वह भयंकर राक्षस कर्णका विनाश कर डाले' ॥ ४½ ॥

एतस्मिन्नन्तरे राजञ्जटासुरसुतो बली ॥ ५ ॥
दुर्योधनमुपागम्य प्राह प्रहरतां वरः ।

राजन्! इसी समय जटासुरका बलवान् पुत्र योद्धाओंमें श्रेष्ठ एक राक्षस दुर्योधनके पास आकर इस प्रकार बोला—॥

दुर्योधन तवामित्रान् प्रख्यातान् युद्धदुर्मदान् ॥ ६ ॥
पाण्डवान् हन्तुमिच्छामि त्वयाऽऽज्ञप्तः सहानुगान् ।

'दुर्योधन! यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो मैं तुम्हारे विख्यात शत्रु रणदुर्मद पाण्डवोंका उनके सेवकोंसहित वध करना चाहता हूँ ॥ ६½ ॥

जटासुरो मम पिता रक्षसां ग्रामणीः पुरा ॥ ७ ॥
प्रयुज्य कर्म रक्षोघ्नं क्षुद्रैः पार्थैर्निपातितः ।

'मेरे पिता जटासुर राक्षसोंके अगुआ थे। उन्हें पूर्वकालमें इन नीच कुन्तीकुमारोंने राक्षस-विनाशक कर्म करके मार गिराया ॥ ७½ ॥

तस्यापचितिमिच्छामि शत्रुशोणितपूजया ।
शत्रुमांसैश्च राजेन्द्र मामनुज्ञातुमर्हसि ॥ ८ ॥

'राजेन्द्र! मैं शत्रुओंके रक्त और मांसद्वारा पिताकी पूजा करके उनके वधका बदला लेना चाहता हूँ। आप इसके लिये मुझे आज्ञा दें' ॥ ८ ॥

तमब्रवीत् ततो राजा प्रीयमाणः पुनः पुनः ।
द्रोणकर्णादिभिः सार्धं पर्याप्तोऽहं द्विषद्वधे ॥ ९ ॥
त्वं तु गच्छ मयाऽऽज्ञप्तो जहि युद्धे घटोत्कचम् ।
राक्षसं क्रूरकर्माणं रक्षोमानुषसम्भवम् ॥ १० ॥

तब राजा दुर्योधनने अत्यन्त प्रसन्न होकर बारबार उससे कहा—'वीरवर! द्रोणाचार्य और कर्ण आदिके साथ मिलकर मैं स्वयं ही तुम्हारे शत्रुओंका वध करनेमें समर्थ हूँ। तुम तो मेरी आज्ञासे घटोत्कचके पास जाओ और युद्धमें उसे मार डालो। वह क्रूरकर्मा निशाचर मनुष्य और राक्षस दोनोंके अंशसे उत्पन्न हुआ है ॥ ९-१० ॥

पाण्डवानां हितं नित्यं हस्त्यश्वरथघातिनम् ।
वैहायसगतं युद्धे प्रेषयेर्यमसादनम् ॥ ११ ॥

'हाथियों, घोड़ों तथा रथोंका विनाश करनेवाला आकाशचारी राक्षस घटोत्कच सदा पाण्डवोंके हितमें तत्पर रहता है। तुम युद्धमें उसे मारकर यमलोक भेज दो' ॥ ११ ॥

तथेत्युक्त्वा महाकायः समाहूय घटोत्कचम् ।
जाटासुरिर्भैमसेनिं नानाशस्त्रैरवाकिरत् ॥ १२ ॥

जटासुरके पुत्रका नाम अलम्बुष था। उस विशालकाय राक्षसने दुर्योधनसे 'तथास्तु' कहकर भीमसेनपुत्र घटोत्कचको ललकारा और उसके ऊपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ १२ ॥

अलम्बुषं च कर्णं च कुरुसैन्यं च दुस्तरम् ।
हैडिम्बिः प्रममाथैको महावातोऽम्बुदानिव ॥ १३ ॥

जैसे आँधी बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार अकेले हिडिम्बाकुमार घटोत्कचने अलम्बुष, कर्ण तथा उस दुर्लङ्घ्य कौरवसेनाको भी मथ डाला ॥ १३ ॥

ततो मायाबलं दृष्ट्वा रक्षस्तूर्णमलम्बुषः ।
घटोत्कचं शरव्रातैर्नानालिङ्गैः समार्पयत् ॥ १४ ॥

राक्षस अलम्बुषने घटोत्कचका मायाबल देखकर उसके ऊपर तुरंत ही नाना प्रकारके बाणसमूहोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ १४ ॥

विद्ध्वा च बहुभिर्बाणैर्भैमसेनिं महाबलः ।
व्यद्रावयच्छरव्रातैः पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ १५ ॥

उस महाबली निशाचरने भीमसेनकुमारको बहुत-से बाणोंद्वारा घायल करके अपने बाणसमूहोंसे पाण्डवसेनाको खदेड़ना आरम्भ किया ॥ १५ ॥

तेन विद्राव्यमाणानि पाण्डुसैन्यानि भारत ।
निशीथे विप्रकीर्यन्ते वातनुन्ना घना इव ॥ १६ ॥

भारत! उसके खदेड़े हुए पाण्डवसैनिक हवाके उड़ाये हुए बादलोंके समान उस निशीथकालमें चारों ओर बिखर गये॥

घटोत्कचशरैर्नुन्ना तथैव तव वाहिनी ।
निशीथे प्राद्रवद् राजन्नुत्सृज्योल्काः सहस्रशः ॥ १७ ॥

राजन्! इसी प्रकार घटोत्कचके बाणोंसे छिन्न-भिन्न हुई आपकी सेना भी सहस्रों मशालें फेंककर आधी रातके समय सब ओर भाग चली ॥ १७ ॥

अलम्बुषस्ततः क्रुद्धो भैमसेनिं महामृधे ।
आजघ्ने दशभिर्बाणैस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ १८ ॥

तब क्रोधमें भरे हुए अलम्बुषने उस महासमरमें भीमसेनकुमार घटोत्कचको दस बाणोंसे घायल कर दिया, मानो महावतने महान् गजराजको अङ्कुशोंसे मार दिया हो ॥ १८ ॥

तिलशस्तस्य संवाहं सूतं सर्वायुधानि च ।
घटोत्कचः प्रचिच्छेद प्रणदंश्चातिदारुणम् ॥ १९ ॥

यह देख अत्यन्त भयंकर गर्जना करते हुए घटोत्कचने अलम्बुषके सारथि, घोड़ों और सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंको तिल-तिल करके काट डाला ॥ १९ ॥

ततः कर्णं शरव्रातैः कुरूनन्यान् सहस्रशः ।
अलम्बुषं चाभ्यवर्षन्मेघो मेरुमिवाचलम् ॥ २० ॥

तत्पश्चात् जैसे मेघ मेरुपर्वतपर जलकी वर्षा करता है, उसी प्रकार उसने भी कर्णपर, अन्यान्य सहस्रों कौरव-योद्धाओंपर तथा अलम्बुषपर भी बाणसमूहोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ २० ॥

ततः संचुक्षुभे सैन्यं कुरूणां राक्षसार्दितम् ।
उपर्युपरि चान्योन्यं चतुरङ्गं ममर्द ह ॥ २१ ॥

उस राक्षससे पीड़ित हुई सम्पूर्ण चतुरङ्गिणी कौरव-सेना विक्षुब्ध हो उठी और आपसमें ही एक-दूसरेको नष्ट करने लगी ॥

जाटासुरिर्महाराज विरथो हतसारथिः ।
घटोत्कचं रणे क्रुद्धो मुष्टिनाभ्यहनद् दृढम् ॥ २२ ॥

महाराज ! उस समय सारथिके मारे जानेपर रथहीन हुए अलम्बुषने रणभूमिमें कुपित हो घटोत्कचको बड़े जोरसे मुक्का मारा ॥ २२ ॥

मुष्टिनाभ्याहतस्तेन प्रचचाल घटोत्कचः ।
क्षितिकम्पे यथा शैलः सवृक्षस्तृणगुल्मवान् ॥ २३ ॥

उसके मुक्केकी मार खाकर घटोत्कच उसी प्रकार काँप उठा, जैसे भूकम्प होनेपर वृक्ष, तृण और गुल्मोंसहित पर्वत हिलने लगता है ॥ २३ ॥

ततः स परिघाभेन द्विट्संघघ्नेन बाहुना ।
जाटासुरिं भैमसेनिरवधीन्मुष्टिना भृशम् ॥ २४ ॥

तत्पश्चात् भीमसेनपुत्र घटोत्कचने शत्रुसमूहोंका नाश करनेवाली अपनी परिघ-जैसी मोटी बाँहके मुक्केसे जटासुरके पुत्रको बहुत मारा ॥ २४ ॥

तं प्रमथ्य ततः क्रुद्धस्तूर्णं हैडिम्बिराक्षिपत् ।
दोर्भ्यामिन्द्रध्वजाभाभ्यां निष्पिपेष च भूतले ॥ २५ ॥

क्रोधमें भरे हुए हिडिम्बाकुमारने उसे अच्छी तरह मथकर तुरंत ही धरतीपर दे मारा और इन्द्र-ध्वजके समान अपनी दोनों भुजाओंद्वारा उसे भूतलपर रगड़ना आरम्भ किया ॥

जाटासुरिर्मोक्षयित्वा आत्मानं च घटोत्कचात् ।
पुनरुत्थाय वेगेन घटोत्कचमुपाद्रवत् ॥ २६ ॥

तब जटासुरका पुत्र अपने आपको घटोत्कचके बन्धनसे छुड़ाकर पुनः उठ गया और बड़े वेगसे उसकी ओर झपटा ॥

अलम्बुषोऽपि विक्षिप्य समुत्क्षिप्य च राक्षसम् ।
घटोत्कचं रणे रोषान्निष्पिपेष च भूतले ॥ २७ ॥

अलम्बुषने भी झटका देकर रणभूमिमें राक्षस घटोत्कचको उठाकर पटक दिया और रोषपूर्वक वह उसे पृथ्वीपर रगड़ने लगा ॥ २७ ॥

तयोः समभवद् युद्धं गर्जतोरतिकाययोः ।
घटोत्कचालम्बुषयोस्तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ २८ ॥

गरजते हुए उन दोनों विशालकाय राक्षस घटोत्कच और अलम्बुषका वह युद्ध बड़ा ही भयंकर और रोमाञ्चकारी था ॥

विशेषयन्तावन्योन्यं मायाभिरतिमायिनौ ।
युयुधाते महावीर्याविन्द्रवैरोचनाविव ॥ २९ ॥

इन्द्र और बलिके समान महापराक्रमी वे दोनों अत्यन्त मायावी राक्षस अपनी मायाओंद्वारा एक दूसरेसे बढ़ जानेकी चेष्टा करते हुए परस्पर युद्ध कर रहे थे ॥ २९ ॥

पावकाम्बुनिधी भूत्वा पुनर्गरुडतक्षकौ ।
पुनर्मेघमहावातौ पुनर्वज्रमहाचलौ ॥ ३० ॥

एकने आग बनकर आक्रमण किया तो दूसरेने महासागर बनकर उसे बुझा दिया । इसी प्रकार एक तक्षक नाग बना तो दूसरा गरुड़ । फिर एक मेघ बना तो दूसरा प्रचण्ड वायु । तत्पश्चात् एक महान् पर्वत बनकर खड़ा हुआ तो दूसरा वज्र बनकर उसपर टूट पड़ा ॥ ३० ॥

पुनः कुञ्जरशार्दूलौ पुनः स्वर्भानुभास्करौ ।
एवं मायाशतसृजावन्योन्यवधकाङ्क्षिणौ ॥ ३१ ॥
भृशं चित्रमयुध्येतामलम्बुषघटोत्कचौ ।

फिर वे क्रमशः हाथी और सिंह तथा सूर्य और राहु बन गये । इस प्रकार वे अलम्बुष और घटोत्कच एक दूसरेके वधकी इच्छासे सैकड़ों मायाओंकी सृष्टि करते हुए परस्पर अत्यन्त विचित्र युद्ध करने लगे ॥ ३१½ ॥

परिघैश्च गदाभिश्च प्रासमुद्गरपट्टिशैः ॥ ३२ ॥
मुसलैः पर्वताग्रैश्च तावन्योन्यं विजघ्नतुः ।

वे दोनों निशाचर परिघ, गदा, प्रास, मुद्गर, पट्टिश, मुसल तथा पर्वतशिखरोंसे एक दूसरेपर चोट करने लगे ॥

हयाभ्यां च गजाभ्यां च रथाभ्यां च पदातिभिः ॥ ३३ ॥
युयुधाते महामायौ राक्षसप्रवरौ युधि ।

उस युद्धस्थलमें वे महामायावी श्रेष्ठ राक्षस अपने हाथियों, घोड़ों, रथों और पैदल सैनिकोंके द्वारा एक दूसरेपर प्रहार करते हुए युद्ध कर रहे थे ॥ ३३½ ॥

ततो घटोत्कचो राजन्नलम्बुषवधेप्सया ॥ ३४ ॥
उत्पपात भृशं क्रुद्धः श्येनवन्निपपात च ।

राजन् ! तदनन्तर घटोत्कच अलम्बुषके वधकी इच्छासे

अत्यन्त कुपित होकर ऊपर उछला और जैसे बाज (चिड़िया-पर) झपटता है, उसी प्रकार उसके ऊपर टूट पड़ा॥३४½॥

गृहीत्वा च महाकायं राक्षसेन्द्रमलम्बुषम् ॥ ३५ ॥
उद्यम्य न्यवधीद् भूमौ मयं विष्णुरिवाहवे ।

विशालकाय राक्षसराज अलम्बुषको दोनों हाथोंसे पकड़कर घटोत्कचने युद्धस्थलमें उसे उठाकर धरतीपर दे मारा, मानो भगवान् विष्णुने मयासुरको पछाड़ दिया हो ॥३५½॥

ततो घटोत्कचः खड्गमुद्धृत्याद्भुतदर्शनम् ॥ ३६ ॥
रौद्रस्य कायाच्छिरो भीमं विकृतदर्शनम् ।
स्फुरतस्तस्य समरे नदतश्चातिभैरवम् ॥ ३७ ॥
निचकर्त महाराज शत्रोरमितविक्रमः ।

महाराज ! तब अमितपराक्रमी घटोत्कचने अद्भुत दिखायी देनेवाली अपनी तलवार उठाकर समराङ्गणमें अत्यन्त भयंकर गर्जना करते और उछल-कूद मचाते हुए शत्रु अलम्बुषके भयंकर एवं विकराल मस्तकको उस भयानक राक्षसकी कायासे काटकर अलग कर दिया। ३६-३७½



शिरस्तच्चापि संगृह्य केशेषु रुधिरोक्षितम् ॥ ३८ ॥
ययौ घटोत्कचस्तूर्णं दुर्योधनरथं प्रति ।
अभ्येत्य च महाबाहुः स्मयमानः स राक्षसः ॥ ३९ ॥
शिरो रथेऽस्य निक्षिप्य विकृताननमूर्धजम् ।
प्राणदद् भैरवं नादं प्रावृषीव बलाहकः ॥ ४० ॥

खूनसे भीगे हुए उस मस्तकके केश पकड़कर महाबाहु राक्षस घटोत्कच दुर्योधनके रथकी ओर चल दिया और पास जाकर मुसकराते हुए उसने विकराल मुख एवं केशवाले उस सिरको उसके रथपर फेंककर वर्षाकालके मेघकी भाँति भयंकर गर्जना की ॥ ३८–४० ॥

अब्रवीच्च ततो राजन् दुर्योधनमिदं वचः ।
एष ते निहतो बन्धुस्त्वया दृष्टोऽस्य विक्रमः ॥ ४१ ॥

राजन् ! तत्पश्चात् वह दुर्योधनसे इस प्रकार बोला—'यह है तेरा सहायक बन्धु, इसे मैंने मार डाला । तूने देख लिया न इसका पराक्रम ? ॥ ४१ ॥

पुनर्द्रष्टासि कर्णस्य निष्ठामेतां तथाऽऽत्मनः ।
स्वधर्ममर्थं कामं च त्रितयं योऽभिवाञ्छति ॥ ४२ ॥
रिक्तपाणिर्न पश्येत राजानं ब्राह्मणं स्त्रियम् ।

'अब तू कर्णकी तथा अपनी भी फिर ऐसी ही अवस्था देखेगा । जो अपने धर्म, अर्थ और काम तीनोंकी इच्छा रखता है, उसे राजा, ब्राह्मण और स्त्रीसे खाली हाथ नहीं मिलना चाहिये (इसीलिये तेरे मित्रका यह मस्तक मैं भेंटके तौरपर लाया हूँ) ॥ ४२½ ॥

तिष्ठस्व तावत् सुप्रीतो यावत् कर्णं वधाम्यहम्॥ ४३ ॥
एवमुक्त्वा ततः प्रायात् कर्णं प्रति नरेश्वर ।
किरञ्छरगणांस्तीक्ष्णान् रुषितो रणमूर्धनि ॥ ४४ ॥

'तू तबतक यहाँ प्रसन्नतापूर्वक खड़ा रह, जबतक कि मैं कर्णका वध नहीं कर लेता ।' नरेश्वर ! ऐसा कहकर क्रोधमें भरा हुआ घटोत्कच तीखे बाणसमूहोंकी वर्षा करता हुआ युद्धके मुहानेपर कर्णके पास चला गया ॥ ४३–४४ ॥

ततः समभवद् युद्धं घोररूपं भयानकम् ।
विस्मापनं महाराज नरराक्षसयोर्मृधे ॥ ४५ ॥

महाराज ! तदनन्तर रणभूमिमें सबको विस्मयमें डालनेवाला मनुष्य और राक्षसका वह घोर एवं भयानक युद्ध आरम्भ हो गया ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे अलम्बुषवधे चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसंगमें अलम्बुषवधविषयक एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥

पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

घटोत्कच और उसके रथ आदिके स्वरूपका वर्णन तथा कर्ण और घटोत्कचका घोर संग्राम

धृतराष्ट्र उवाच

यत्तद् वैकर्तनः कर्णो राक्षसश्च घटोत्कचः ।
निशीथे समसज्जेतां तद् युद्धमभवत् कथम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! आधी रातके समय सूर्यपुत्र

कर्ण तथा राक्षस घटोत्कच जो एक दूसरेसे भिड़े हुए थे, उनका वह युद्ध किस प्रकार हुआ ? ॥ १ ॥

कीदृशं चाभवद् रूपं तस्य घोरस्य रक्षसः।
रथश्च कीदृशस्तस्य हयाः सर्वायुधानि च ॥ २ ॥

उस भयंकर राक्षसका रूप उस समय कैसा था ? उसका रथ कैसा था ? उसके घोड़े और सम्पूर्ण आयुध कैसे थे ? ॥

किंप्रमाणा हयास्तस्य रथकेतुर्धनुस्तथा।
कीदृशं वर्म चैवास्य शिरस्त्राणं च कीदृशम् ॥ ३ ॥
पृष्टस्त्वमेतदाचक्ष्व कुशलो ह्यसि संजय।

उसके घोड़े कितने बड़े थे, रथकी ध्वजाकी ऊँचाई और धनुषकी लम्बाई कितनी थी ? उसके कवच और शिरस्त्राण कैसे थे, संजय ! मेरे प्रश्नके अनुसार ये सारी बातें बताओ; क्योंकि तुम इस कार्यमें कुशल हो ॥ ३½ ॥

संजय उवाच

लोहिताक्षो महाकायस्ताम्रास्यो निम्नितोदरः॥ ४ ॥
ऊर्ध्वरोमा हरिश्मश्रुः शङ्कुकर्णो महाहनुः।
आकर्णदारितास्यश्च तीक्ष्णदंष्ट्रः करालवान् ॥ ५ ॥

संजयने कहा—राजन् ! घटोत्कचका शरीर बहुत बड़ा था । उसकी आँखें सुर्ख रंगकी थीं । मुँह ताँबेके रंगका और पेट धँसा हुआ था । उसके रोएँ ऊपरकी ओर उठे हुए थे, दाढ़ी-मूँछ काली थी, ठोड़ी बड़ी दिखायी देती थी। मुँह कानोंतक फटा हुआ था, दाढ़ें तीखी होनेके कारण वह विकराल जान पड़ता था ॥ ४–५ ॥

सुदीर्घताम्रजिह्वोष्ठो लम्बभ्रूः स्थूलनासिकः।
नीलाङ्गो लोहितग्रीवो गिरिवर्ष्मा भयंकरः ॥ ६ ॥

जीभ और ओठ ताँबेके समान लाल और लम्बे थे, भौंहें बड़ी-बड़ी, नाक मोटी, शरीरका रंग काला, गर्दन लाल और शरीर पर्वताकार था । वह देखनेमें बड़ा भयंकर जान पड़ता था ॥ ६ ॥

महाकायो महाबाहुर्महाशीर्षो महाबलः।
विकृतः परुषस्पर्शो विकटोद्‍बृद्धपिण्डकः ॥ ७ ॥

उसकी देह, भुजा और मस्तक सभी विशाल थे । उसका बल भी महान् था । आकृति बेडौल थी । उसका स्पर्श कठोर था । उसकी पिंडलियाँ विकट एवं सुदृढ़ थीं ॥ ७ ॥

स्थूलस्फिग्गूढनाभिश्च शिथिलोपचयो महान्।
तथैव हस्ताभरणी महामायोऽङ्गदी तथा ॥ ८ ॥

उसके नितम्बभाग स्थूल थे । उसकी नाभि छोटी होनेके कारण छिपी हुई थी । उसके शरीरकी बढ़ती रुक गयी थी । वह लंबे कदका था । उसने हाथोंमें आभूषण पहन रक्खे थे । भुजाओंमें बाजूबन्द धारण कर रक्खे थे । वह बड़ी-बड़ी मायाओंका जानकार था ॥ ८ ॥



उरसा धारयन् निष्कमग्निमालां यथाचलः।
तस्य हेममयं चित्रं बहुरूपाङ्गशोभितम् ॥ ९ ॥
तोरणप्रतिमं शुभ्रं किरीटं मूर्ध्न्यशोभत।

वह अपनी छातीपर सुवर्णमय निष्क (पदक) पहनकर अग्निकी माला धारण किये पर्वतके समान प्रतीत होता था। उसके मस्तकपर सोनेका बना हुआ विचित्र उज्ज्वल मुकुट तोरणके समान सुशोभित हो रहा था । उस मुकुटकी विविध अङ्गोंसे बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ९½ ॥

कुण्डले बालसूर्याभे मालां हेममयीं शुभाम् ॥ १० ॥
धारयन् विपुलं कांस्यं कवचं च महाप्रभम्।

वह प्रभातकालके सूर्यकी भाँति कान्तिमान् दो कुण्डल, सोनेकी सुन्दर माला और काँसीका विशाल एवं चमकीला कवच धारण किये हुए था ॥ १०½ ॥

किंकिणीशतनिर्घोषं रक्तध्वजपताकिनम् ॥ ११ ॥
ऋक्षचर्मावनद्धाङ्गं नल्वमात्रं महारथम्।

उसके रथमें सैकड़ों क्षुद्र घण्टिकाओंका मधुर घोष होता था । उसपर लाल रंगकी ध्वजा-पताका फहरा रही थी। उस रथके सम्पूर्ण अङ्गोंपर रीछकी खाल मढ़ी गयी थी । वह विशाल रथ चारों ओरसे चार सौ हाथ लंबा था ॥ ११½ ॥

सर्वायुधवरोपेतमास्थितो ध्वजशालिनम् ॥ १२ ॥
अष्टचक्रसमायुक्तं मेघगम्भीरनिःस्वनम्।

उसपर सभी प्रकारके श्रेष्ठ आयुध रखे गये थे । उसमें आठ पहिये लगे थे और चलते समय उस रथसे मेघ-गर्जनाके समान गम्भीर ध्वनि होती थी । विशाल ध्वज उस रथकी शोभा बढ़ा रहा था । उसीपर घटोत्कच आरूढ़ था ॥ १२½ ॥

मत्तमातङ्गसंकाशा लोहिताक्षा विभीषणाः ॥ १३ ॥
कामवर्णजवा युक्ता बलवन्तः शतं हयाः ।

मतवाले हाथीके समान प्रतीत होनेवाले सौ बलवान् एवं भयंकर घोड़े उस रथमें जुते हुए थे। जिनकी आँखें लाल थीं तथा जो इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले और मनचाहे वेगसे चलनेवाले थे ॥ १३½ ॥

वहन्तो राक्षसं घोरं वालवन्तो जितश्रमाः ॥ १४ ॥
विपुलाभिः सटाभिस्ते ह्रेषमाणा मुहुर्मुहुः ।

उन घोड़ोंके कंधोंपर लंबे-लंबे बाल थे। वे परिश्रमको जीत चुके थे। वे सभी अपने विशाल केसरों (गर्दनके लंबे बालों) से सुशोभित थे और उस भयानक राक्षसका भार वहन करते हुए वे बारंबार हिनहिना रहे थे ॥ १४½ ॥



राक्षसोऽस्य विरूपाक्षः सूतो दीप्तास्यकुण्डलः ॥ १५ ॥
रश्मिभिः सूर्यरश्म्याभैः संजग्राह हयान् रणे ।
स तेन सहितस्तस्थावरुणेन यथा रविः ॥ १६ ॥

दीप्तिमान् मुख और कुण्डलोंसे युक्त विरूपाक्ष नामक राक्षस घटोत्कचका सारथि था, जो रणभूमिमें सूर्यकी किरणों-के समान चमकीली बागडोर पकड़कर उन घोड़ोंको काबूमें रखता था। उसके साथ रथपर बैठा हुआ घटोत्कच ऐसा जान पड़ता था, मानो अरुण नामक सारथिके साथ सूर्यदेव अपने रथपर विराजमान हों ॥ १५-१६ ॥

संसक्त इव चाभ्रेण यथाद्रिर्महता महान् ।
दिवःस्पृक् सुमहान् केतुः स्यन्दनेऽस्य समुच्छ्रितः॥ १७॥
रक्तोत्तमाङ्गः क्रव्यादो गृध्रः परमभीषणः ।

जैसे महान् पर्वत किसी महामेघसे संयुक्त हो जाय, उसी प्रकार अपने सारथिके साथ बैठे हुए घटोत्कचकी शोभा हो रही थी। उसके रथपर बहुत ऊँचा गगन-चुम्बिनी पताका फहरा रही थी, जिसपर एक लाल सिरवाला अत्यन्त भयंकर मांसभोजी गीध दिखायी देता था ॥ १७½ ॥

वासवाशनिनिर्घोषं दृढज्यमतिविक्षिपन् ॥ १८ ॥
व्यक्तं किष्कुपरीणाहं द्वादशारत्निकार्मुकम् ।
रथाक्षमात्रैरिषुभिः सर्वाः प्रच्छादयन् दिशः ॥ १९ ॥
तस्यां वीरापहारिण्यां निशायां कर्णमभ्ययात् ।

वीरोंका संहार करनेवाली उस रात्रिमें इन्द्रके वज्रकी भाँति भयानक टंकार करनेवाले और सुदृढ़ प्रत्यञ्चावाले एक हाथ चौड़े एवं बारह अरत्नि लंबे धनुषको खींचता और रथके धुरेके समान मोटे बाणोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित करता हुआ घटोत्कच (पूर्वोक्त रथपर आरूढ़ हो) कर्णकी ओर चला ॥ १८-१९½ ॥

तस्य विक्षिपतश्चापं रथे विष्टभ्य तिष्ठतः ॥ २० ॥
अश्रूयत धनुर्घोषो विस्फूर्जितमिवाशनेः ।

रथपर स्थिरतापूर्वक खड़े हो जब वह अपने धनुषको खींच रहा था, उस समय उसकी टंकार वज्रकी गड़गड़ाहट-के समान सुनायी देती थी ॥ २०½ ॥

तेन वित्रास्यमानानि तव सैन्यानि भारत ॥ २१ ॥
समकम्पन्त सर्वाणि सिन्धोरिव महोर्मयः ।

भारत ! उस घोर शब्दसे डरायी हुई आपकी सारी सेनाएँ समुद्रकी बड़ी-बड़ी लहरोंके समान काँपने लगीं ॥ २१½ ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य विरूपाक्षं विभीषणम् ॥ २२ ॥
उत्स्मयन्निव राधेयस्त्वरमाणोऽभ्यवारयत् ।

विकराल नेत्रोंवाले उस भयानक राक्षसको आते देख राधापुत्र कर्णने मुसकराते हुए-से शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़कर उसे रोका ॥ २२½ ॥

ततः कर्णोऽभ्ययादेनमस्यन्नस्यन्तमन्तिकात् ॥ २३ ॥
मातङ्ग इव मातङ्गं यूथर्षभमिवर्षभः ।

जैसे एक यूथपति गजराजका सामना करनेके लिये दूसरे यूथका अधिपति गजराज चढ़ आता है, उसी प्रकार बाणोंकी वर्षा करते हुए घटोत्कचपर बाणोंकी बौछार करते हुए कर्णने उसके ऊपर निकटसे आक्रमण किया ॥ २३½ ॥

स संनिपातस्तुमुलस्तयोरासीद् विशाम्पते ॥ २४ ॥
कर्णराक्षसयो राजन्निन्द्रशम्बरयोरिव ।

प्रजानाथ ! राजन् ! पूर्वकालमें जैसे इन्द्र और शम्बरा-सुरमें युद्ध हुआ था, उसी प्रकार कर्ण और राक्षसका वह संग्राम बड़ा भयंकर हुआ ॥ २४½ ॥

तौ प्रगृह्य महावेगे धनुषी भीमनिःस्वने ॥ २५ ॥
प्राच्छादयतामन्योन्यं तक्षमाणौ महेषुभिः ।

वे दोनों भयंकर टंकार करनेवाले अत्यन्त वेगशाली धनुष लेकर बड़े-बड़े बाणोंद्वारा एक दूसरेको क्षत-विक्षत करते हुए आच्छादित करने लगे ॥ २५½ ॥

ततः पूर्णायतोत्सृष्टैरिषुभिर्नतपर्वभिः ॥ २६ ॥
न्यवारयेतामन्योन्यं कांस्ये निर्भिद्य वर्मणी ।

तदनन्तर वे दोनों वीर धनुषको पूर्णतः खींचकर छोड़े गये झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा परस्पर कांस्यनिर्मित कवचोंको छिन्न-भिन्न करके एक दूसरेको रोकने लगे ॥ २६½ ॥

तौ नखैरिव शार्दूलौ दन्तैरिव महाद्विपौ ॥ २७ ॥
रथशक्तिभिरन्योन्यं विशिखैश्च ततक्षतुः ।

जैसे दो सिंह नखोंसे और दो महान् गजराज दाँतोंसे परस्पर प्रहार करते हैं, उसी प्रकार वे दोनों योद्धा रथशक्तियों और बाणोंद्वारा एक दूसरेको घायल करने लगे ॥ २७½ ॥

संछिन्दन्तौ च गात्राणि संदधानौ च सायकान् ॥ २८ ॥
दहन्तौ च शरोल्काभिर्दुष्प्रेक्ष्यौ च बभूवतुः ।

वे सायकोंका संधान करके एक दूसरेके अङ्गोंको छेदते और बाणमयी उल्काओंसे दग्ध करते थे । उससे उन दोनों-की ओर देखना अत्यन्त कठिन हो रहा था ॥ २८½ ॥

तौ तु विक्षतसर्वाङ्गौ रुधिरौघपरिप्लुतौ ॥ २९ ॥
व्यभ्राजेतां यथा वारि स्रवन्तौ गैरिकाचलौ ।

उन दोनोंके सारे अङ्ग घावोंसे भर गये थे और दोनों ही खूनसे लथपथ हो गये थे । उस समय वे जलका स्रोत बहाते हुए गेरूके दो पर्वतोंके समान शोभा पा रहे थे ॥ २९½ ॥

तौ शराग्रविनुन्नाङ्गौ निर्भिन्दन्तौ परस्परम् ॥ ३० ॥
नाकम्पयेतामन्योन्यं यतमानौ महाद्युती ।

दोनोंके अङ्ग बाणोंके अग्रभागसे छिदकर छलनी हो रहे थे । दोनों ही एक दूसरेको विदीर्ण कर रहे थे, तो भी वे महातेजस्वी वीर परस्पर विजयके प्रयत्नमें लगे रहे और एक दूसरेको कम्पित न कर सके ॥ ३०½ ॥

तत् प्रवृत्तं निशायुद्धं चिरं सममिवाभवत् ॥ ३१ ॥
प्राणयोर्दीव्यतो राजन् कर्णराक्षसयोर्मृधे ।

राजन् ! युद्धके जूएमें प्राणोंकी बाजी लगाकर खेलते हुए कर्ण और राक्षसका वह रात्रियुद्ध दीर्घकालतक समान-रूपमें ही चलता रहा ॥ ३१½ ॥

तस्य संदधतस्तीक्ष्णाञ्छरांश्चासक्तमस्यतः ॥ ३२ ॥
धनुर्घोषेण वित्रस्ताः स्वे परे च तदाभवन् ।

घटोत्कच तीखे बाणोंका संहार करके उन्हें इस प्रकार छोड़ता कि वे एक दूसरेसे सटे हुए निकलते थे । उसके धनुषकी टंकारसे अपने और शत्रुपक्षके योद्धा भी भयसे थर्रा उठते थे ॥ ३२½ ॥

घटोत्कचं यदा कर्णो विशेषयति नो नृप ॥ ३३ ॥
ततः प्रादुष्करोद् दिव्यमस्त्रमस्त्रविदां वरः ।

नरेश्वर ! जब कर्ण घटोत्कचसे बढ़ न सका, तब उस अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ वीरने दिव्यास्त्र प्रकट किया ॥ ३३½ ॥

कर्णेन संधितं दृष्ट्वा दिव्यमस्त्रं घटोत्कचः ॥ ३४ ॥
प्रादुश्चक्रे महामायां राक्षसीं पाण्डुनन्दनः ।

कर्णको दिव्यास्त्रका संधान करते देख पाण्डवनन्दन घटोत्कचने अपनी राक्षसी महामाया प्रकट की ॥ ३४½ ॥

शूलमुद्गरधारिण्या शैलपादपहस्तया ॥ ३५ ॥
रक्षसां घोररूपाणां महत्या सेनया वृतः ।

वह तत्काल ही शूल, मुद्गर, शिलाखण्ड और वृक्ष हाथमें लिये हुए घोररूपधारी राक्षसोंकी विशाल सेनासे घिर गया ॥ ३५½ ॥

तमुद्यतमहाचापं दृष्ट्वा ते व्यथिता नृपाः ॥ ३६ ॥
भूतान्तकमिवायान्तं कालदण्डोग्रधारिणम् ।

भयानक कालदण्ड धारण किये, समस्त भूतोंके प्राण-हन्ता यमराजके समान उसे विशाल धनुष उठाये आते देख वहाँ उपस्थित हुए वे सभी नरेश व्यथित हो उठे ॥ ३६½ ॥

घटोत्कचप्रयुक्तेन सिंहनादेन भीषिताः ॥ ३७ ॥
प्रसुस्रुवुर्गजा मूत्रं विव्यथुश्च नरा भृशम् ।

घटोत्कचके सिंहनादसे भयभीत हो हाथियोंके पेशाब झरने लगे और मनुष्य भी अत्यन्त व्यथित हो गये ॥ ३७½ ॥

ततोऽश्मवृष्टिरत्युग्रा महत्यासीत् समन्ततः ॥ ३८ ॥
अर्धरात्रेऽधिकबलैर्विमुक्ता रक्षसां बलैः ।

तदनन्तर चारों ओरसे पत्थरोंकी अत्यन्त भयंकर एवं भारी वर्षा होने लगी । आधी रातके समय अधिक बलशाली हुए राक्षसोंके समुदाय वह प्रस्तर-वर्षा कर रहे थे ॥ ३८½ ॥

आयसानि च चक्राणि भुशुण्ड्यः शक्तितोमराः ॥ ३९ ॥
पतन्त्यविरलाः शूलाः शतघ्न्यः पट्टिशास्तथा ।

लोहेके चक्र, भुशुण्डी, शक्ति, तोमर, शूल, शतघ्नी और पट्टिश आदि अस्त्र-शस्त्रोंकी अविरल धाराएँ गिर रही थीं ॥

तदुग्रमतिरौद्रं च दृष्ट्वा युद्धं नराधिप ॥ ४० ॥
पुत्राश्च तव योधाश्च व्यथिता विप्रदुद्रुवुः ।

नरेश्वर ! उस अत्यन्त भयंकर और उग्र संग्रामको देख-कर आपके पुत्र और योद्धा भयभीत होकर भाग चले ॥

तत्रैकोऽस्त्रबलश्लाघी कर्णो मानी न विव्यथे ॥ ४१ ॥
व्यधमच्च शरैर्मायां तां घटोत्कचनिर्मिताम् ।

अपने अस्त्रबलकी प्रशंसा करनेवाला एकमात्र अभिमानी कर्ण ही वहाँ खड़ा रहा । उसके मनमें तनिक भी व्यथा नहीं हुई । उसने अपने बाणोंसे घटोत्कचद्वारा निर्मित मायाको नष्ट कर दिया ॥ ४१½ ॥

मायायां तु प्रहीणायाममर्षाच्च घटोत्कचः ॥ ४२ ॥
विससर्ज शरान् घोरान् सूतपुत्रं त आविशन् ।

उस मायाके नष्ट हो जानेपर घटोत्कचने अमर्षमें भरकर भयंकर बाण छोड़े, जो सूतपुत्रके शरीरमें समा गये ॥४२½॥

ततस्ते रुधिराभ्यक्ता भित्त्वा कर्णं महाहवे ॥ ४३ ॥
विविशुर्धरणीं बाणाः संक्रुद्धा इव पन्नगाः ।

तदनन्तर वे रुधिरसे रँगे हुए बाण उस महासमरमें कर्णको छेदकर कुपित हुए सर्पोंके समान धरतीमें समा गये॥

सूतपुत्रस्तु संक्रुद्धो लघुहस्तः प्रतापवान् ॥ ४४ ॥
घटोत्कचमतिक्रम्य बिभेद दशभिः शरैः ।

इससे शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाला प्रतापी वीर सूतपुत्र कर्ण अत्यन्त कुपित हो उठा । उसने घटोत्कचका उल्लङ्घन करके उसे दस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ४४½ ॥

घटोत्कचो विनिर्भिन्नः सूतपुत्रेण मर्मसु ॥ ४५ ॥
चक्रं दिव्यं सहस्रारमगृह्णाद् व्यथितो भृशम् ।

सूतपुत्रके द्वारा मर्मस्थानोंमें विदीर्ण होकर अत्यन्त व्यथित हुए घटोत्कचने दिव्य सहस्रार चक्र हाथमें लिया ॥

क्षुरान्तं बालसूर्याभं मणिरत्नविभूषितम् ॥ ४६ ॥
चिक्षेपाधिरथेः क्रुद्धो भैमसेनिर्जिघांसया ।

उस चक्रके किनारे-किनारे छुरे लगे हुए थे । मणि एवं रत्नोंसे विभूषित हुआ वह चक्र प्रातःकालीन सूर्यके समान प्रतीत होता था । क्रोधमें भरे हुए भीमसेनकुमार घटोत्कचने अधिरथपुत्र कर्णको मार डालनेकी इच्छासे उस चक्रको चला दिया ॥ ४६½ ॥

प्रविद्धमतिवेगेन विक्षिप्तं कर्णसायकैः ॥ ४७ ॥
अभाग्यस्येव संकल्पस्तन्मोघमपतद् भुवि ।

परंतु अत्यन्त वेगसे फेंका गया वह घूमता हुआ चक्र कर्णके बाणोंद्वारा आहत हो भाग्यहीनके संकल्पकी भाँति व्यर्थ होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ४७½ ॥

घटोत्कचस्तु संक्रुद्धो दृष्ट्वा चक्रं निपातितम् ॥ ४८ ॥
कर्णं प्राच्छादयद् बाणैः स्वर्भानुरिव भास्करम् ।

चक्रको गिराया हुआ देख क्रोधमें भरे हुए घटोत्कचने अपने बाणोंद्वारा कर्णको उसी प्रकार आच्छादित कर दिया, जैसे राहु सूर्यको ढक देता है ॥ ४८½ ॥

सूतपुत्रस्त्वसम्भ्रान्तो रुद्रोपेन्द्रेन्द्रविक्रमः ॥ ४९ ॥
घटोत्कचरथं तूर्णं छादयामास पत्रिभिः ।

परंतु रुद्र, विष्णु और इन्द्रके समान पराक्रमी सूतपुत्र कर्णको इससे तनिक भी घबराहट नहीं हुई । उसने तुरंत ही पंखदार बाणोंसे घटोत्कचके रथको आच्छादित कर दिया ॥

घटोत्कचेन क्रुद्धेन गदा हेमाङ्गदा तदा ॥ ५० ॥
क्षिप्ताऽऽभ्राम्य शरैःसापि कर्णेनाभ्याहतापतत् ।

तब कुपित हुए घटोत्कचने सोनेके कड़ेसे विभूषित गदा घुमाकर चलायी, किंतु कर्णके बाणोंसे आहत होकर वह भी नीचे गिर पड़ी ॥ ५०½ ॥

ततोऽन्तरिक्षमुत्पत्य कालमेघ इवोन्नदन् ॥ ५१ ॥
प्रववर्ष महाकायो द्रुमवर्षं नभस्तलात् ।

तदनन्तर अन्तरिक्षमें उछलकर वह विशालकाय राक्षस प्रलयकालके मेघकी भाँति गर्जना करता हुआ आकाशसे वृक्षोंकी वर्षा करने लगा ॥ ५१½ ॥

ततो मायाविनं कर्णो भीमसेनसुतं दिवि ॥ ५२ ॥
मार्गणैरभिविव्याध घनं सूर्य इवांशुभिः ।

तब कर्ण भीमसेनके मायावी पुत्रको अपने बाणोंद्वारा आकाशमें उसी प्रकार बींधने लगा, जैसे सूर्य अपनी किरणोंद्वारा मेघोंको विद्ध कर देते हैं ॥ ५२½ ॥

तस्य सर्वान् हयान् हत्वा संछिद्य शतधा रथम् ॥५३॥
अभ्यवर्षच्छरैः कर्णः पर्जन्य इव वृष्टिमान् ।

उसके सारे घोड़ोंको मारकर और रथके सैकड़ों टुकड़े करके कर्णने वर्षा करनेवाले मेघकी भाँति बाणोंकी वृष्टि आरम्भ कर दी ॥ ५३½ ॥

न चास्यासीदनिर्भिन्नं गात्रे द्व्यङ्गुलमन्तरम् ॥५४॥
सोऽदृश्यत मुहूर्तेन श्वाविच्छललितो यथा ।

घटोत्कचके शरीरमें दो अंगुल भी ऐसा स्थान नहीं बचा था, जो बाणोंसे विदीर्ण न हो गया हो । वह दो ही घड़ीमें काँटोंसे युक्त साहीके समान दिखायी देने लगा ॥ ५४½ ॥

न हयान्न रथं तस्य न ध्वजं न घटोत्कचम् ॥ ५५ ॥
दृष्टवन्तः स्म समरे शरौघैरभिसंवृतम् ।

समराङ्गणमें बाणोंके समूहसे घिरे हुए घटोत्कचको, उसके घोड़ोंको, रथको तथा ध्वजको भी कोई नहीं देख पाते थे ॥

स तु कर्णस्य तद् दिव्यमस्त्रमस्त्रेण शातयन् ॥ ५६ ॥
मायायुद्धेन मायावी सूतपुत्रमयोधयत् ।

वह मायावी राक्षस कर्णके दिव्यास्त्रको अपने अस्त्रद्वारा काटते हुए वहाँ सूतपुत्रके साथ मायामय युद्ध करने लगा ॥

सोऽयोधयत् तदा कर्णं मायया लाघवेन च ॥ ५७ ॥
अलक्ष्यमाणानि दिवि शरजालानि चापतन् ।

उस समय माया तथा शीघ्रकारिताके द्वारा वह कर्णको लड़ा रहा था । आकाशसे कर्णपर अलक्षित बाणसमूहोंकी वर्षा हो रही थी ॥ ५७½ ॥

भैमसेनिर्महामायो मायया कुरुसत्तम ॥ ५८ ॥
विचचार महाकायो मोहयन्निव भारत ।

कुरुश्रेष्ठ ! भरतनन्दन ! वह विशालकाय महामायावी भीमसेनकुमार घटोत्कच मायासे सबको मोहित करता हुआ-सा सब ओर विचरने लगा ॥ ५८½ ॥

स तु कृत्वा विरूपाणि वदनान्यशुभानि च ॥ ५९ ॥
अग्रसत् सूतपुत्रस्य दिव्यान्यस्त्राणि मायया ।

उसने मायाद्वारा बहुत-से विकराल एवं अमङ्गलसूचक मुख बनाकर सूतपुत्रके दिव्यास्त्रोंको अपना ग्रास बना लिया ॥

पुनश्चापि महाकायः संछिन्नः शतधा रणे ॥ ६० ॥
गतसत्त्वो निरुत्साहः पतितः खाद्व्यदृश्यत ।

फिर वह महाकाय राक्षस धैर्यहीन एवं उत्साहशून्य-सा होकर रणभूमिमें आकाशसे सैकड़ों टुकड़ोंमें कटकर गिरा हुआ दिखायी दिया ॥ ६०½ ॥

तं हतं मन्यमानाः स्म प्राणदन् कुरुपुङ्गवाः ॥ ६१ ॥
अथ देहैर्नवैरन्यैर्दिक्षु सर्वास्वदृश्यत ।

उस समय उसे मरा हुआ मानकर कौरव-दलके प्रमुख वीर जोर-जोरसे गर्जना करने लगे । इतनेहीमें वह दूसरे बहुत-से नये-नये शरीर धारण करके सम्पूर्ण दिशाओंमें दिखायी देने लगा ॥ ६१½ ॥

पुनश्चापि महाकायः शतशीर्षः शतोदरः ॥ ६२ ॥
व्यदृश्यत महाबाहुर्मैनाक इव पर्वतः ।

फिर वह बड़ी-बड़ी बाहोंवाला एक ही विशालकाय रूप धारण करके मैनाक पर्वतके समान दृष्टिगोचर हुआ । उस समय उसके सौ मस्तक तथा सौ पेट हो गये थे ॥ ६२½ ॥

अङ्गुष्ठमात्रो भूत्वा च पुनरेव स राक्षसः ॥ ६३ ॥
सागरोर्मिरिवोद्धूतस्तिर्यगूर्ध्वमवर्तत ।

तत्पश्चात् वह राक्षस अँगूठेके बराबर होकर उछलती हुई समुद्रकी लहरके समान कभी ऊपर और कभी इधर-उधर होने लगा ॥ ६३½ ॥

वसुधां दारयित्वा च पुनरप्सु न्यमज्जत ॥ ६४ ॥
अदृश्यत तदा तत्र पुनरुन्मज्जितोऽन्यतः ।

फिर पृथ्वीको फाड़कर वह पानीमें डूब गया और दूसरी जगह पुनः जलसे ऊपर आकर दिखायी देने लगा ॥६४½॥

सोऽवतीर्य पुनस्तस्थौ रथे हेमपरिष्कृते ॥ ६५ ॥
क्षितिं खं च दिशश्चैव माययाभ्येत्य दंशितः ।
गत्वा कर्णरथाभ्याशं व्यचरत् कुण्डलाननः ॥ ६६ ॥

इसके बाद आकाशसे उतरकर वह पुनः अपने सुवर्ण-मण्डित रथपर स्थित हो गया और मायासे ही पृथ्वी, आकाश एवं सम्पूर्ण दिशाओंमें घूमता हुआ कवचसे सुसज्जित हो कर्णके रथके समीप जाकर विचरने लगा । उस समय उसका मुख कुण्डलोंसे सुशोभित हो रहा था ॥ ६५-६६ ॥

प्राह वाक्यमसम्भ्रान्तः सूतपुत्रं विशाम्पते ।
तिष्ठेदानीं क्व मे जीवन् सूतपुत्र गमिष्यसि ॥ ६७ ॥
युद्धश्रद्धामहं तेऽद्य विनेष्यामि रणाजिरे ।

प्रजानाथ ! अब घटोत्कच सम्भ्रमरहित हो सूतपुत्र कर्णसे बोला—'सारथिके बेटे ! खड़ा रह । अब तू मुझसे जीवित बचकर कहाँ जायगा ? आज मैं समराङ्गणमें तेरा युद्धका हौसला मिटा दूँगा' ॥ ६७½ ॥

इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षं रक्षः क्रूरपराक्रमम् ॥ ६८ ॥
उत्पपातान्तरिक्षं च जहास च सुविस्तरम् ।
कर्णमभ्यहनच्चैव गजेन्द्रमिव केसरी ॥ ६९ ॥

क्रोधसे लाल आँखें किये वह क्रूर पराक्रमी राक्षस उपर्युक्त बात कहकर आकाशमें उछला और बड़े जोरसे अट्टहास करने लगा फिर जैसे सिंह गजराजपर चोट करता है, उसी प्रकार वह कर्णपर आघात करने लगा ॥ ६८-६९ ॥

रथाक्षमात्रैरिषुभिरभ्यवर्षद् घटोत्कचः ।
रथिनामृषभं कर्णं धाराभिरिव तोयदः ॥ ७० ॥

जैसे बादल पर्वतपर जलकी धारा बरसाता है, उसी प्रकार घटोत्कच रथियोंमें श्रेष्ठ कर्णपर रथके धुरेके समान मोटे-मोटे बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ७० ॥

शरवृष्टिं च तां कर्णो दूरात् प्राप्तामशातयत् ।
दृष्ट्वा च विहतां मायां कर्णेन भरतर्षभ ॥ ७१ ॥
घटोत्कचस्ततो मायां ससर्जान्तर्हितः पुनः ।

अपने ऊपर प्राप्त हुई उस बाणवर्षाको कर्णने दूरसे ही काट गिराया । भरतश्रेष्ठ ! कर्णके द्वारा अपनी मायाको नष्ट हुई देख घटोत्कचने अदृश्य होकर पुनः दूसरी मायाकी सृष्टि की ॥ ७१½ ॥

सोऽभवद् गिरिरत्युच्चः शिखरैस्तरुसंकटैः ॥ ७२ ॥
शूलप्रासासिमुसलजलप्रस्रवणो महान् ।

वह वृक्षावलियोंद्वारा हरे-भरे शिखरोंसे सुशोभित एक अत्यन्त ऊँचा महान् पर्वत बन गया और उससे पानीके झरनेकी भाँति शूल, प्रास, खड्ग और मूसल आदि अस्त्र-शस्त्रोंका स्रोत बहने लगा ॥ ७२½ ॥

तमञ्जनचयप्रख्यं कर्णो दृष्ट्वा महीधरम् ॥ ७३ ॥
प्रपातैरायुधान्युग्राण्युद्वहन्तं न चुक्षुभे ।
स्मयन्निव ततः कर्णो दिव्यमस्त्रमुदैरयत् ॥ ७४ ॥

घटोत्कचको अञ्जनराशिके समान काला पर्वत बनकर अपने झरनोंद्वारा भयंकर अस्त्र-शस्त्रोंको प्रवाहित करते देखकर भी कर्णके मनमें तनिक भी क्षोभ नहीं हुआ । उसने मुसकराते हुए-से अपना दिव्यास्त्र प्रकट किया ॥७३-७४॥

ततः सोऽस्त्रेण शैलेन्द्रो विक्षिप्तो वै व्यनश्यत ।
ततः स तोयदो भूत्वा नीलः सेन्द्रायुधो दिवि ॥ ७५ ॥
अश्मवृष्टिभिरत्युग्रः सूतपुत्रमवाकिरत् ।

उस दिव्यास्त्रद्वारा दूर फेंका गया वह पर्वतराज क्षणभरमें अदृश्य हो गया और पुनः आकाशमें इन्द्रधनुषसहित काला मेघ बनकर वह अत्यन्त भयंकर राक्षस सूतपुत्र कर्णपर पत्थरोंकी वर्षा करने लगा ॥ ७५½ ॥

अथ संधाय वायव्यमस्त्रमस्त्रविदां वरः ॥ ७६ ॥
व्यधमत् कालमेघं तं कर्णो वैकर्तनो वृषः ।

तब अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ वैकर्तन दानी कर्णने वायव्यास्त्र-का संधान करके उस काले मेघको नष्ट कर दिया ॥ ७६½ ॥

स मार्गणगणैः कर्णो दिशः प्रच्छाद्य सर्वशः ॥ ७७ ॥
जघानास्त्रं महाराज घटोत्कचसमीरितम् ।

महाराज ! कर्णने अपने बाणसमूहोंद्वारा सारी दिशाओंको आच्छादित करके घटोत्कचद्वारा चलाये गये अस्त्रोंको काट डाला॥

ततः प्रहस्य समरे भैमसेनिर्महाबलः ॥ ७८ ॥
प्रादुश्चक्रे महामायां कर्णं प्रति महारथम् ।

तब महाबली भीमसेनकुमारने जोर-जोरसे हँसकर समरभूमिमें महारथी कर्णके प्रति अपनी महामाया प्रकट की ॥

स दृष्ट्वा पुनरायान्तं रथेन रथिनां वरम् ॥ ७९ ॥
घटोत्कचमसम्भ्रान्तं राक्षसैर्बहुभिर्वृतम् ।
सिंहशार्दूलसदृशैर्मत्तमातङ्गविक्रमैः ॥ ८० ॥

उस समय कर्णने रथियोंमें श्रेष्ठ घटोत्कचको पुनः रथपर बैठकर आते देखा । उसके मनमें तनिक भी घबराहट नहीं थी । सिंह, शार्दूल और मतवाले गजराजके समान पराक्रमी बहुत-से राक्षस उसे घेरे हुए थे ॥ ७९-८० ॥

गजस्थैश्च रथस्थैश्च वाजिपृष्ठगतैस्तथा ।
नानाशस्त्रधरैर्घोरैर्नानाकवचभूषणैः ॥ ८१ ॥

उन राक्षसोंमेंसे कुछ हाथियोंपर, कुछ रथोंपर और कुछ घोड़ोंकी पीठोंपर सवार थे । वे भयंकर निशाचर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र, कवच और आभूषण धारण किये हुए थे॥

वृतं घटोत्कचं क्रूरैर्मरुद्भिरिव वासवम् ।
दृष्ट्वा कर्णो महेष्वासो योधयामास राक्षसम् ॥ ८२ ॥

देवताओंसे घिरे हुए इन्द्रके समान क्रूर राक्षसोंसे आवृत घटोत्कचको सामने देखकर महाधनुर्धर कर्णने उस निशाचरके साथ युद्ध आरम्भ किया ॥ ८२ ॥

घटोत्कचस्ततः कर्णं विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः ।
ननाद भैरवं नादं भीषयन् सर्वपार्थिवान् ॥ ८३ ॥

तदनन्तर घटोत्कचने कर्णको पाँच बाणोंसे घायल करके समस्त राजाओंको भयभीत करते हुए वहाँ भयानक गर्जना की ॥

भूयश्चाञ्जलिकेनाथ सम्मार्गणगणं महत् ।
कर्णहस्तस्थितं चापं चिच्छेदाशु घटोत्कचः ॥ ८४ ॥

तत्पश्चात् अञ्जलिक नामक बाण मारकर घटोत्कचने कर्णके हाथमें स्थित हुए विशाल धनुषको बाणसमूहोंसहित शीघ्र काट डाला ॥ ८४ ॥

अथान्यद् धनुरादाय दृढं भारसहं महत् ।
विचकर्ष बलात् कर्ण इन्द्रायुधमिवोच्छ्रितम् ॥ ८५ ॥

तब कर्णने भार सहन करनेमें समर्थ दूसरा विशाल, सुदृढ़ एवं इन्द्रधनुषके समान ऊँचा धनुष हाथमें लेकर उसे बलपूर्वक खींचा ॥ ८५ ॥

ततः कर्णो महाराज प्रेषयामास सायकान् ।
सुवर्णपुङ्खाञ्छत्रुघ्नान् खेचरान् राक्षसान् प्रति ॥८६॥

महाराज ! तदनन्तर कर्णने उन आकाशचारी राक्षसोंको लक्ष्य करके सोनेके पंखवाले बहुत-से शत्रुनाशक बाण चलाये॥

तद् बाणैरर्दितं यूथं रक्षसां पीनवक्षसाम् ।
सिंहेनेवार्दितं वन्यं गजानामाकुलं कुलम् ॥ ८७ ॥

उन बाणोंसे पीड़ित हुआ चौड़ी छातीवाले राक्षसोंका वह समूह सिंहके सताये हुए जंगली हाथियोंके झुंडकी भाँति व्याकुल हो उठा ॥ ८७ ॥

विधम्य राक्षसान् बाणैः साश्वसूतगजान् विभुः ।
ददाह भगवान् वह्निर्भूतानीव युगक्षये ॥ ८८ ॥

जैसे प्रलयकालमें भगवान् अग्निदेव सम्पूर्ण भूतोंको भस्म कर डालते हैं, उसी प्रकार शक्तिशाली कर्णने अपने बाणोंद्वारा घोड़े, सारथि और हाथियोंसहित उन राक्षसोंको संतप्त करके जला डाला ॥ ८८ ॥

स हत्वा राक्षसीं सेनां शुशुभे सूतनन्दनः ।
पुरेव त्रिपुरं दग्ध्वा दिवि देवो महेश्वरः ॥ ८९ ॥

जैसे पूर्वकालमें भगवान् महेश्वर आकाशमें त्रिपुरासुरका दाह करके सुशोभित हुए थे, उसी प्रकार उस राक्षस-सेनाका संहार करके सूतनन्दन कर्ण बड़ी शोभा पाने लगा ॥ ८९ ॥

तेषु राजसहस्रेषु पाण्डवेयेषु मारिष ।
नैनं निरीक्षितुमपि कश्चिच्छक्नोति पार्थिवः ॥ ९० ॥

माननीय नरेश ! पाण्डवपक्षके सहस्रों राजाओंमेंसे कोई भी भूपाल उस समय कर्णकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकता था ॥ ९० ॥

ऋते घटोत्कचाद् राजन् राक्षसेन्द्रान्महाबलात् ।
भीमवीर्यबलोपेतात् क्रुद्धाद् वैवस्वतादिव ॥ ९१ ॥

राजन् ! क्रोधमें भरे हुए यमराजके समान भयंकर बल-पराक्रमसे सम्पन्न महाबली राक्षसराज घटोत्कचको छोड़कर दूसरा कोई कर्णका सामना न कर सका ॥ ९१ ॥

तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां पावकः समजायत ।
महोल्काभ्यां यथा राजन् सार्चिषः स्नेहबिन्दवः ॥९२॥

नरेश्वर ! जैसे मशालोंसे जलती हुई तेलकी बूँदें गिरती हैं, उसी प्रकार क्रुद्ध हुए घटोत्कचके दोनों नेत्रोंसे आगकी चिनगारियाँ छूटने लगीं ॥ ९२ ॥

तलं तलेन संहत्य संदश्य दशनच्छदम् ।
रथमास्थाय च पुनर्मायया निर्मितं तदा ॥ ९३ ॥
युक्तं गजनिभैर्वाहैः पिशाचवदनैः खरैः ।
स सूतमब्रवीत् क्रुद्धः सूतपुत्राय मां वह ॥ ९४ ॥

उसने उस समय हाथसे हाथ मलकर, दाँतोंसे ओठ चबाकर, पुनः हाथी-जैसे बलवान् एवं पिशाचोंके-से मुखवाले प्रखर गधोंसे जुते हुए मायानिर्मित रथपर बैठकर अपने सारथिसे कहा—'तुम मुझे सूतपुत्र कर्णके पास ले चलो' ॥

स ययौ घोररूपेण रथेन रथिनां वरः ।
द्वैरथं सूतपुत्रेण पुनरेव विशाम्पते ॥ ९५ ॥

प्रजानाथ ! ऐसा कहकर रथियोंमें श्रेष्ठ घटोत्कच पुनः उस भयंकर रथके द्वारा सूतपुत्र कर्णके साथ द्वैरथ युद्ध करनेके लिये गया ॥ ९५ ॥

स चिक्षेप पुनः क्रुद्धः सूतपुत्राय राक्षसः ।
अष्टचक्रां महाघोरामशनिं रुद्रनिर्मिताम् ॥ ९६ ॥
द्वियोजनसमुत्सेधां योजनायामविस्तराम् ।
आयसीं निचितां शूलैः कदम्बमिव केसरैः ॥ ९७ ॥

उस राक्षसने कुपित होकर पुनः सूतपुत्र कर्णपर आठ चक्रोंसे युक्त एक अत्यन्त भयंकर रुद्रनिर्मित अशनि चलायी, जिसकी ऊँचाई दो योजन और लम्बाई-चौड़ाई एक-एक योजन-की थी। लोहेकी बनी हुई उस शक्तिमें शूल चुने गये थे। इससे वह केसरोंसे युक्त कदम्ब-पुष्पके समान जान पड़ती थी॥

तामवप्लुत्य जग्राह कर्णो न्यस्य महद् धनुः ।
चिक्षेप चैनां तस्यैव स्यन्दनात् सोऽवपुप्लुवे ॥ ९८ ॥

कर्णने अपना विशाल धनुष नीचे रख दिया और उछलकर उस अशनिको हाथसे पकड़ लिया; फिर उसे घटोत्कचपर ही चला दिया। घटोत्कच शीघ्र ही उस रथसे कूद पड़ा ॥

साश्वसूतध्वजं यानं भस्म कृत्वा महाप्रभा ।
विवेश वसुधां भित्त्वा सुरास्तत्र विसिस्मियुः ॥ ९९ ॥

वह अतिशय प्रभापूर्ण अशनि घोड़े, सारथि और ध्वज-सहित घटोत्कचके रथको भस्म करके धरती फाड़कर समा गयी। यह देख वहाँ खड़े हुए सब देवता आश्चर्यचकित हो उठे ॥ ९९ ॥

कर्णं तु सर्वभूतानि पूजयामासुरञ्जसा ।
यदवप्लुत्य जग्राह देवसृष्टां महाशनिम् ॥१००॥

उस समय वहाँ सम्पूर्ण प्राणी कर्णकी प्रशंसा करने लगे; क्योंकि उसने महादेवजीकी बनायी हुई उस विशाल अशनि-को अनायास ही उछलकर पकड़ लिया था ॥ १०० ॥

एवं कृत्वा रणे कर्ण आरुरोह रथं पुनः ।
ततो मुमोच नाराचान् सूतपुत्रः परंतप ॥१०१॥

रणभूमिमें ऐसा पराक्रम करके कर्ण पुनः अपने रथपर आ बैठा। शत्रुओंको संताप देनेवाले नरेश ! फिर सूतपुत्र कर्ण नाराचोंकी वर्षा करने लगा ॥ १०१ ॥

अशक्यं कर्तुमन्येन सर्वभूतेषु मानद ।
यदकार्षीत् तदा कर्णः संग्रामे भीमदर्शने ॥१०२॥

दूसरोंको सम्मान देनेवाले महाराज ! उस भयंकर संग्राममें कर्णने उस समय जो कार्य किया था, उसे सम्पूर्ण प्राणियोंमें दूसरा कोई नहीं कर सकता था ॥ १०२ ॥

स हन्यमानो नाराचैर्धाराभिरिव पर्वतः ।
गन्धर्वनगराकारः पुनरन्तरधीयत ॥१०३॥

जैसे पर्वतपर जलकी धाराएँ गिरती हैं, उसी प्रकार नाराचोंके प्रहारसे आहत हुआ घटोत्कच गन्धर्वनगरके समान पुनः अदृश्य हो गया ॥ १०३ ॥

एवं स वै महाकायो मायया लाघवेन च ।
अस्त्राणि तानि दिव्यानि जघान रिपुसूदनः ॥१०४॥

इस प्रकार शत्रुओंका संहार करनेवाले विशालकाय घटोत्कचने अपनी माया तथा अस्त्र-संचालनकी शीघ्रतासे कर्णके उन दिव्यास्त्रोंको नष्ट कर दिया ॥ १०४ ॥

निहन्यमानेष्वस्त्रेषु मायया तेन रक्षसा ।
असम्भ्रान्तस्तदा कर्णस्तद् रक्षः प्रत्ययुध्यत ॥१०५॥

उस राक्षसके द्वारा मायासे अपने अस्त्रोंके नष्ट हो जाने-पर भी उस समय कर्णके मनमें तनिक भी घबराहट नहीं हुई। वह उस राक्षसके साथ युद्ध करता ही रहा ॥ १०५ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज भैमसेनिर्महाबलः ।
चकार बहुधाऽऽत्मानं भीषयाणो महारथान् ॥१०६॥

महाराज ! तत्पश्चात् क्रोधमें भरे हुए महाबली भीमसेन-कुमार घटोत्कचने महारथियोंको भयभीत करते हुए अपने बहुत-से रूप बना लिये ॥ १०६ ॥

ततो दिग्भ्यः समापेतुः सिंहव्याघ्रतरक्षवः ।
अग्निजिह्वाश्च भुजगा विहगाश्चाप्ययोमुखाः ॥१०७॥

तदनन्तर सम्पूर्ण दिशाओंसे सिंह, व्याघ्र, तरक्षु (जरख) अग्निमयी जिह्वावाले सर्प तथा लोहमय चंचुवाले पक्षी आक्रमण करने लगे ॥ १०७ ॥

स कीर्यमाणो विशिखैः कर्णचापच्युतैः शरैः ।
नागराडिव दुष्प्रेक्ष्यस्तत्रैवान्तरधीयत ॥१०८॥

नागराजके समान घटोत्कचकी ओर देखना कठिन हो रहा था। वह कर्णके धनुषसे छूटे हुए शिखाहीन बाणोंद्वारा आच्छादित हो वहीं अन्तर्धान हो गया ॥ १०८ ॥

राक्षसाश्च पिशाचाश्च यातुधानास्तथैव च ।
शालावृकाश्च बहवो वृकाश्च विकृताननाः ॥१०९॥
ते कर्णं क्षपयिष्यन्तः सर्वतः समुपाद्रवन् ।
अथैनं वाग्भिरुग्राभिस्त्रासयांचक्रिरे तदा ॥११०॥

उस समय बहुत-से राक्षस, पिशाच, यातुधान, कुत्ते और विकराल मुखवाले भेड़िये कर्णको काटनेके लिये सब ओरसे उसपर टूट पड़े और अपनी भयंकर गर्जनाओंद्वारा उसे भयभीत करने लगे ॥ १०९-११० ॥

उद्यतैर्बहुभिर्घोरैरायुधैः शोणितोक्षितैः ।
तेषामनेकैरेकैकं कर्णो विव्याध सायकैः ॥१११॥

कर्णने खूनसे रँगे हुए अपने बहुत-से भयंकर आयुधों तथा बाणोंद्वारा उनमेंसे प्रत्येकको बींध डाला ॥ १११ ॥

प्रतिहत्य तु तां मायां दिव्येनास्त्रेण राक्षसीम् ।

आजघान हयानस्य शरैः संनतपर्वभिः ॥११२॥

अपने दिव्यास्त्रसे उस राक्षसी मायाका विनाश करके उसने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे घटोत्कचके घोड़ोंको मार डाला ॥ ११२ ॥

ते भग्ना विक्षताङ्गाश्च भिन्नपृष्ठाश्च सायकैः ।
वसुधामन्वपद्यन्त पश्यतस्तस्य रक्षसः ॥११३॥

उन घोड़ोंके सारे अङ्ग क्षत-विक्षत हो गये थे, बाणोंकी मारसे उनके पृष्ठभाग फट गये थे, अतः उस राक्षसके देखते-देखते वे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ११३ ॥

स भग्नमायो हैडिम्बिः कर्णं वैकर्तनं तदा ।
एष ते विदधे मृत्युमित्युक्त्वान्तरधीयत ॥११४॥

इस प्रकार अपनी माया नष्ट हो जानेपर हिडिम्बाकुमार घटोत्कचने सूर्यपुत्र कर्णसे कहा—'यह ले, मैं अभी तेरी मृत्युका आयोजन करता हूँ' ऐसा कहकर वह वहीं अदृश्य हो गया ॥ ११४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे कर्णघटोत्कचयुद्धे पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसङ्गमें कर्ण और घटोत्कचका युद्धविषयक एक सौ पचहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७५ ॥

षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

अलायुधका युद्धस्थलमें प्रवेश तथा उसके स्वरूप और रथ आदिका वर्णन

संजय उवाच

तस्मिंस्तथा वर्तमाने कर्णराक्षसयोर्मृधे ।
अलायुधो राक्षसेन्द्रो वीर्यवानभ्यवर्तत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! इस प्रकार कर्ण और घटोत्कचका वह युद्ध चल ही रहा था कि पराक्रमी राक्षसराज अलायुध वहाँ उपस्थित हुआ ॥ १ ॥

महत्या सेनया युक्तो दुर्योधनमुपागमत् ।
राक्षसानां विरूपाणां सहस्रैः परिवारितः ॥ २ ॥

वह सहस्रों विकराल रूपवाले राक्षसोंसे घिरकर अपनी विशाल सेनाके साथ दुर्योधनके पास आया ॥ २ ॥

नानारूपधरैर्वीरैः पूर्ववैरमनुस्मरन् ।
तस्य ज्ञातिर्हि विक्रान्तो ब्राह्मणादो बको हतः ॥ ३ ॥

उसके साथ अनेक रूप धारण करनेवाले वीर राक्षस मौजूद थे। वह पहलेके वैरका स्मरण करके वहाँ आया था। उसका कुटुम्बी बन्धु ब्राह्मणभक्षी पराक्रमी बकासुर भीमसेनके द्वारा मारा गया था ॥ ३ ॥

किर्मीरश्च महातेजा हैडिम्बश्च सखा तदा ।
स दीर्घकालाध्युषितं पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ४ ॥

उसके सखा हिडिम्ब और महातेजस्वी किर्मीर भी उन्हींके हाथसे मारे गये थे। इस प्रकार दीर्घकालसे मनमें रक्खे हुए पहलेके वैरको उस समय वह बारंबार स्मरण कर रहा था ॥

विज्ञायैतन्निशायुद्धं जिघांसुर्भीममाहवे ।
स मत्त इव मातङ्गः संक्रुद्ध इव चोरगः ॥ ५ ॥
दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीद् युद्धलालसः ।

रात्रिमें होनेवाले इस संग्रामका समाचार पाकर रणभूमिमें भीमसेनको मार डालनेकी इच्छासे वह मतवाले हाथी और क्रोधमें भरे हुए सर्पकी भाँति युद्धकी लालसा मनमें रखकर दुर्योधनसे इस प्रकार बोला— ॥ ५½ ॥

विदितं ते महाराज यथा भीमेन राक्षसाः ॥ ६ ॥
हिडिम्बबककिर्मीरा निहता मम बान्धवाः ।

'महाराज! आपको तो मालूम ही होगा कि भीमसेनने हमारे राक्षस भाई-बन्धु हिडिम्ब, बक और किर्मीरका किस प्रकार वध कर डाला है ॥ ६½ ॥

परामर्शश्च कन्याया हिडिम्बायाः कृतः पुरा ॥ ७ ॥
किमन्यद् राक्षसानन्यानस्मांश्च परिभूय ह ।

'इतना ही नहीं, उन्होंने मेरा तथा दूसरे राक्षसोंका अपमान करके पूर्वकालमें राक्षसकन्या हिडिम्बाके साथ भी बलात्कार किया था। इससे बढ़कर दूसरा अपराध क्या हो सकता है? ॥ ७½ ॥

तमहं सगणं राजन् सवाजिरथकुञ्जरम् ॥ ८ ॥
हैडिम्बिं च सहामात्यं हन्तुमभ्यागतः स्वयम् ।

'अतः राजन्! मैं सैन्यसमूह, घोड़े, हाथी और रथोंसहित भीमसेनको तथा मन्त्रियोंसहित हिडिम्बापुत्र घटोत्कचको मार डालनेके लिये स्वयं यहाँ आया हूँ ॥ ८½ ॥

अद्य कुन्तीसुतान् सर्वान् वासुदेवपुरोगमान् ॥ ९ ॥
हत्वा सम्भक्षयिष्यामि सर्वैरनुचरैः सह ।

'श्रीकृष्ण जिनके अगुआ हैं, उन सभी कुन्तीपुत्रोंको मारकर आज मैं समस्त अनुचरोंके साथ उन्हें खा जाऊँगा ॥ ९½ ॥

निवारय बलं सर्वं वयं योत्स्याम पाण्डवान् ॥ १० ॥
तस्यैतद् वचनं श्रुत्वा हृष्टो दुर्योधनस्तदा ।
प्रतिगृह्याब्रवीद् वाक्यं भ्रातृभिः परिवारितः ॥ ११ ॥

'अतः आप अपनी सारी सेनाको रोक दीजिये। पाण्डवोंके साथ हमलोग युद्ध करेंगे।' उसकी यह बात सुनकर भाइयोंसे घिरे हुए राजा दुर्योधनको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने अलायुधका प्रस्ताव स्वीकार करते हुए कहा— ॥ १०-११ ॥

त्वां पुरस्कृत्य सगणं वयं योत्स्यामहे परान् ।
न हि वैरान्तमनसः स्थास्यन्ति मम सैनिकाः ॥ १२ ॥

'राक्षसराज ! सैनिकोंसहित तुम्हें आगे रखकर हमलोग भी शत्रुओंके साथ युद्ध करेंगे; क्योंकि जिनका मन वैरका अन्त करनेमें लगा हुआ है, वे मेरे सैनिक चुपचाप खड़े नहीं रहेंगे' ॥ १२ ॥

एवमस्त्विति राजानमुक्त्वा राक्षसपुङ्गवः ।
अभ्ययात् त्वरितो भैमिं सहितः पुरुषादकैः ॥ १३ ॥

'अच्छा, ऐसा ही हो।' राजा दुर्योधनसे इस प्रकार कहकर राक्षसराज अलायुध तुरंत ही राक्षसोंके साथ भीमसेन-पुत्र घटोत्कचके सामने गया ॥ १३ ॥

दीप्यमानेन वपुषा रथेनादित्यवर्चसा ।
तादृशेनैव राजेन्द्र यादृशेन घटोत्कचः ॥ १४ ॥

राजेन्द्र ! उसका शरीर देदीप्यमान हो रहा था । वह भी सूर्यके समान तेजस्वी वैसे ही रथपर आरूढ़ होकर गया, जैसे रथसे घटोत्कच आया था ॥ १४ ॥

तस्याप्यतुलनिर्घोषो बहुतोरणचित्रितः ।
ऋक्षचर्मावनद्धाङ्गो नल्वमात्रो महारथः ॥ १५ ॥

उसका विशाल रथ भी अनेक तोरणोंसे विचित्र शोभा पा रहा था । उसकी घर्घराहट भी अनुपम थी । उसके ऊपर भी रीछका चाम मढ़ा हुआ था और उसकी लम्बाई-चौड़ाई भी चार सौ हाथ थी ॥ १५ ॥

तस्यापि तुरगाः शीघ्रा हस्तिकायाः खरस्वनाः ।
शतं युक्ता महाकाया मांसशोणितभोजनाः ॥ १६ ॥

उसके रथमें जुते हुए घोड़े भी हाथीके समान मोटे शरीरवाले, शीघ्रगामी और गदहोंके समान उच्चस्वरसे हिन-हिनानेवाले थे । उनकी संख्या सौ थी । वे विशालकाय अश्व मांस और रक्त भोजन करते थे ॥ १६ ॥

तस्यापि रथनिर्घोषो महामेघरवोपमः ।
तस्यापि सुमहच्चापं दृढज्यं कनकोज्ज्वलम् ॥ १७ ॥

उसके रथका गम्भीर घोष भी महामेघकी गर्जनाके समान जान पड़ता था । उसका धनुष भी विशाल, सुदृढ़ प्रत्यञ्चासे युक्त तथा सुवर्णजटित होनेके कारण प्रकाशमान था ॥ १७ ॥

तस्याप्यक्षसमा बाणा रुक्मपुङ्खाः शिलाशिताः ।
सोऽपि वीरो महाबाहुर्यथैव स घटोत्कचः ॥ १८ ॥

उसके बाण भी शिलापर तेज किये हुए थे । वे भी धुरेके समान मोटे और सुवर्णमय पंखोंसे सुशोभित थे । अलायुध भी वैसा ही महाबाहु वीर था, जैसा कि घटोत्कच था ॥ १८ ॥

तस्यापि गोमायुबलाभिगुप्तो
बभूव केतुर्ज्वलनार्कतुल्यः ।
स चापि रूपेण घटोत्कचस्य
श्रीमत्तमो व्याकुलदीपितास्यः ॥ १९ ॥

अलायुधका ध्वज भी अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी था । वह गीदड़-समूहसे चिह्नित दिखायी देता था । उसका स्वरूप भी घटोत्कचके ही समान अत्यन्त कान्तिमान् था । उसका मुख भी विकराल एवं प्रज्वलित जान पड़ता था ॥ १९ ॥

दीप्ताङ्गदो दीप्तकिरीटमाली
बद्धस्रगुष्णीषनिबद्धखड्गः ।
गदी भुशुण्डी मुसली हली च
शरासनी वारणतुल्यवर्ष्मा ॥ २० ॥

उसकी भुजाओंमें बाजूबंद चमक रहे थे । मस्तकपर दीप्तिमान् मुकुट प्रकाशित हो रहा था । उसने हार पहन रक्खे थे । उसकी पगड़ीमें तलवार बँधी हुई थी । उसका शरीर हाथीके समान था तथा वह गदा, भुशुण्डी, मुसल, हल और धनुष आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न था ॥ २० ॥

रथेन तेनानलवर्चसा तदा
विद्रावयन् पाण्डववाहिनीं ताम् ।
रराज संख्ये परिवर्तमानो
विद्युन्माली मेघ इवान्तरिक्षे ॥ २१ ॥

अग्निके समान तेजस्वी पूर्वोक्त रथके द्वारा उस समय पाण्डवसेनाको खदेड़ता हुआ अलायुध युद्धस्थलमें सब ओर घूमकर आकाशमें विद्युन्मालासे प्रकाशित मेघके समान सुशोभित हो रहा था ॥ २१ ॥

ते चापि सर्वप्रवरा नरेन्द्रा
महाबला वर्मिणश्चर्मिणश्च ।
हर्षान्विता युयुधुस्तस्य राजन्
समन्ततः पाण्डवयोधवीराः ॥ २२ ॥

राजन् ! तब पाण्डवपक्षके सर्वश्रेष्ठ महाबली वीर योद्धा नरेश भी कवच और ढालसे सुसज्जित हो हर्ष और उत्साहमें भरकर सब ओरसे उस राक्षसके साथ युद्ध करने लगे ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धेऽलायुधयुद्धे षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसङ्गमें अलायुधयुद्धविषयक एक सौ छिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७६ ॥

सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेन और अलायुधका घोर युद्ध

संजय उवाच

तमागतमभिप्रेक्ष्य भीमकर्माणमाहवे ।
हर्षमाहारयांचक्रुः कुरवः सर्व एव ते ॥ १ ॥

संजय कहते हैं--राजन् ! युद्धस्थलमें भयंकर कर्म करनेवाले अलायुधको आया हुआ देख सभी कौरव-योद्धा बड़े प्रसन्न हुए ॥ १ ॥

तथैव तव पुत्रास्ते दुर्योधनपुरोगमाः ।
अप्लवाः प्लवमासाद्य तर्तुकामा इवार्णवम् ॥ २ ॥

उसी प्रकार आपके दुर्योधन आदि पुत्रोंको भी बड़ा हर्ष हुआ, मानो समुद्रके पार जानेकी इच्छावाले नौकाहीन पुरुषोंको जहाज मिल गया हो ॥ २ ॥

पुनर्जातमिवात्मानं मन्वानाः पुरुषर्षभाः ।
अलायुधं राक्षसेन्द्रं स्वागतेनाभ्यपूजयन् ॥ ३ ॥

वे पुरुषप्रवर कौरव अपना नया जन्म हुआ मानने लगे । उन्होंने राक्षसराज अलायुधका स्वागतपूर्वक सत्कार किया ॥ ३ ॥

तस्मिंस्त्वमानुषे युद्धे वर्तमाने महाभये ।
कर्णराक्षसयोर्नक्तं दारुणप्रतिदर्शने ॥ ४ ॥
(न द्रौणिर्न कृपो द्रोणो न शल्यो न च माधवः।
एक एव तु तेनासीद् योद्धा कर्णो रणे वृषा ॥)

उस रात्रिकालमें जब कर्ण और घटोत्कचका अत्यन्त भयंकर और दारुण अमानुषिक युद्ध चल रहा था । उस समय न तो अश्वत्थामा, न कृपाचार्य, न द्रोणाचार्य, न शल्य और न कृतवर्मा ही घटोत्कचका सामना कर सके। अकेला दानवीर कर्ण ही रणभूमिमें उसके साथ जूझ रहा था ॥ ४ ॥

उपप्रैक्षन्त पञ्चालाः स्मयमानाः सराजकाः ।
तथैव तावका राजन् वीक्षमाणास्ततस्ततः ॥ ५ ॥

राजन् ! पाञ्चाल योद्धा अन्यान्य राजाओंके साथ विस्मित होकर वह युद्ध देखने लगे । उसी प्रकार आपके सैनिक भी इधर-उधरसे उसी युद्धका दृश्य देख रहे थे ॥५॥

चुक्रुशुर्नेदमस्तीति द्रोणद्रौणिकृपादयः ।
तत् कर्म दृष्ट्वा सम्भ्रान्ता हैडिम्बस्य रणाजिरे ॥ ६ ॥

समराङ्गणमें हिडिम्बाकुमार घटोत्कचका वह अलौकिक कर्म देखकर घबराये हुए द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और कृपाचार्य आदि चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगे कि 'अब हमारी यह सेना नहीं बचेगी' ॥ ६ ॥

सर्वमाविग्नमभवद्धाहाभूतमचेतनम् ।
तव सैन्यं महाराज निराशं कर्णजीविते ॥ ७ ॥

महाराज ! कर्णके जीवनसे निराश होकर आपकी सारी सेना उद्विग्न हो उठी थी । सर्वत्र हाहाकार मचा था । सबके होश उड़ गये थे ॥ ७ ॥

दुर्योधनस्तु सम्प्रेक्ष्य कर्णमार्तिं परां गतम् ।
अलायुधं राक्षसेन्द्रं समाहूयेदमब्रवीत् ॥ ८ ॥

उस समय कर्णको बड़े भारी संकटमें पड़ा देख दुर्योधनने राक्षसराज अलायुधको बुलाकर इस प्रकार कहा-॥ ८ ॥

एष वैकर्तनः कर्णो हैडिम्बेन समागतः ।
कुरुते कर्म सुमहद् यदस्यौपयिकं मृधे ॥ ९ ॥

'वीरवर ! देखो, यह सूर्यपुत्र कर्ण हिडिम्बाकुमार घटोत्कचके साथ जूझ रहा है । युद्धस्थलमें जहाँतक इसके प्रयत्नसे होना सम्भव है, वहाँतक यह महान् पराक्रम प्रकट कर रहा है ॥ ९ ॥

पश्यैतान् पार्थिवान् शूरान् निहतान् भैमसेनिना ।
नानाशस्त्रैरभिहतान् पादपानिव दन्तिना ॥ १० ॥

'भीमसेनके पुत्रने नाना प्रकारके शस्त्रोंद्वारा जिन शूर-वीर नरेशोंको घायल करके मार डाला है, वे हाथीके गिराये हुए वृक्षोंके समान यहाँ पड़े हैं, इन्हें देखो ॥ १० ॥

तवैष भागः समरे राजमध्ये मया कृतः ।
तवैवानुमते वीर तं विक्रम्य निबर्हय ॥ ११ ॥

'वीर ! तुम्हारी अनुमतिसे ही समराङ्गणमें सम्पूर्ण राजाओंके बीच इस घटोत्कचको मैंने तुम्हारा भाग नियत किया है, अतः तुम पराक्रम करके इसे मार डालो ॥ ११ ॥

पुरा वैकर्तनं कर्णमेष पापो घटोत्कचः ।
मायाबलं समाश्रित्य कर्षयत्यरिकर्शन ॥ १२ ॥

'शत्रुसूदन ! कहीं ऐसा न हो कि यह पापी घटोत्कच मायाबलका आश्रय ले वैकर्तन कर्णको पहले ही नष्ट कर दे' ॥ १२ ॥

एवमुक्तः स राज्ञा तु राक्षसो भीमविक्रमः ।
तथेत्युक्त्वा महाबाहुर्घटोत्कचमुपाद्रवत् ॥ १३ ॥

राजा दुर्योधनके ऐसा कहनेपर उस भयंकर पराक्रमी महाबाहु राक्षसने 'बहुत अच्छा' कहकर घटोत्कचपर धावा किया ॥ १३ ॥

ततः कर्णं समुत्सृज्य भैमसेनिरपि प्रभो ।
प्रत्यमित्रमुपायान्तमर्दयामास मार्गणैः ॥ १४ ॥

प्रभो ! तब घटोत्कचने भी कर्णको छोड़कर अपने समीप आते हुए शत्रुको बाणोंद्वारा पीड़ित करना आरम्भ किया ॥ १४ ॥

तयोः समभवद् युद्धं क्रुद्धयो राक्षसेन्द्रयोः।
मत्तयोर्वासिताहेतोर्द्विपयोरिव कानने ॥ १५ ॥

फिर तो क्रोधमें भरे हुए उन दोनों राक्षसराजोंमें वनके भीतर हथिनीके लिये लड़नेवाले दो मतवाले हाथियोंके समान घोर युद्ध होने लगा ॥ १५ ॥

रक्षसा विप्रमुक्तस्तु कर्णोऽपि रथिनां वरः।
अभ्यद्रवद् भीमसेनं रथेनादित्यवर्चसा ॥ १६ ॥

राक्षससे छूटनेपर रथियोंमें श्रेष्ठ कर्णने भी सूर्यके समान तेजस्वी रथके द्वारा भीमसेनपर धावा किया ॥ १६ ॥

तमायान्तमनादृत्य दृष्ट्वा ग्रस्तं घटोत्कचम्।
अलायुधेन समरे सिंहेनेव गवां पतिम् ॥ १७ ॥
रथेनादित्यवपुषा भीमः प्रहरतां वरः।
किरञ्छरौघान् प्रययावलायुधरथं प्रति ॥ १८ ॥

आते हुए कर्णकी उपेक्षा करके समराङ्गणमें सिंहके चंगुलमें फँसे हुए साँड़की भाँति घटोत्कचको अलायुधका ग्रास बनते देख योद्धाओंमें श्रेष्ठ भीमसेन सूर्यके समान तेजस्वी रथके द्वारा बाणसमूहोंकी वर्षा करते हुए अलायुधके रथकी ओर बड़े वेगसे बढ़े ॥ १७-१८ ॥

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य स तदालायुधः प्रभो।
घटोत्कचं समुत्सृज्य भीमसेनं समाह्वयत् ॥ १९ ॥

प्रभो ! उस समय उन्हें आते देख अलायुधने घटोत्कचको छोड़कर भीमसेनको ललकारा ॥ १९ ॥

तं भीमः सहसाभ्येत्य राक्षसान्तकरः प्रभो।
सगणं राक्षसेन्द्रं तं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ २० ॥

राजन् ! राक्षसोंका विनाश करनेवाले भीमने सहसा निकट जाकर सैनिक-गणोंसहित राक्षसराज अलायुधको अपने बाणोंकी वर्षासे ढक दिया ॥ २० ॥

तथैवालायुधो राजञ्छिलाधौतैरजिह्मगैः।
अभ्यवर्षत कौन्तेयं पुनः पुनररिंदम ॥ २१ ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले नरेश ! उसी प्रकार अलायुध भी कुन्तीकुमार भीमसेनपर शिलापर तेज किये हुए बाणोंकी बारंबार वर्षा करने लगा ॥ २१ ॥

तथा ते राक्षसाः सर्वे भीमसेनमुपाद्रवन्।
नानाप्रहरणा भीमास्त्वत्सुतानां जयैषिणः ॥ २२ ॥

आपके पुत्रोंकी विजय चाहनेवाले वे समस्त भयंकर राक्षस हाथोंमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लेकर भीमसेनपर टूट पड़े ॥ २२ ॥

स ताड्यमानो बहुभिर्भीमसेनो महाबलः।
पञ्चभिः पञ्चभिः सर्वांस्तानविध्यच्छितैः शरैः ॥ २३ ॥

बहुत-से योद्धाओंकी मार खाकर महाबली भीमसेनने उन सबको पाँच-पाँच तीखे बाणोंसे घायल कर दिया ॥ २३ ॥

ते वध्यमाना भीमेन राक्षसाः क्रूरबुद्धयः।
विनेदुस्तुमुलान्नादान् दुद्रुवुस्ते दिशो दश ॥ २४ ॥

भीमसेनके बाणोंकी चोट खाकर वे क्रूरबुद्धि राक्षस भयंकर चीत्कार करने और दसों दिशाओंमें भागने लगे ॥ २४ ॥

तांस्त्रास्यमानान् भीमेन दृष्ट्वा रक्षो महाबलम्।
अभिदुद्राव वेगेन शरैश्चैनमवाकिरत् ॥ २५ ॥

भीमके द्वारा उन राक्षसोंको भयभीत होते देख महाबली राक्षस अलायुधने बड़े वेगसे भीमसेनपर धावा किया और उन्हें बाणोंसे ढक दिया ॥ २५ ॥

तं भीमसेनः समरे तीक्ष्णाग्रैरक्षिणोच्छरैः।
अलायुधस्तु तानस्तान् भीमेन विशिखान् रणे ॥ २६ ॥
चिच्छेद कांश्चित् समरे त्वरया कांश्चिदग्रहीत्।

तब भीमसेनने समराङ्गणमें तीखी धारवाले बाणोंसे अलायुधको क्षत-विक्षत कर दिया । अलायुधने भीमसेनके चलाये हुए कुछ बाणोंको रणभूमिमें काट दिया और कुछ बाणोंको बड़ी शीघ्रताके साथ हाथसे पकड़ लिया ॥ २६½ ॥

स तं दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रं भीमो भीमपराक्रमः ॥ २७ ॥
गदां चिक्षेप वेगेन वज्रपातोपमां तदा।

भयंकर पराक्रमी भीमसेनने राक्षसराज अलायुधको ऐसा पराक्रम करते देख उस समय उसके ऊपर वज्रपातके समान अपनी भयंकर गदा बड़े वेगसे चलायी ॥ २७½ ॥

तामापतन्तीं वेगेन गदां ज्वालाकुलां ततः ॥ २८ ॥
गदया ताडयामास सा गदा भीममाव्रजत्।

ज्वालासे व्याप्त हुई उस गदाको वेगसे आती देख अलायुधने उसपर अपनी गदासे आघात किया। फिर वह गदा भीमके पास ही लौट आयी ॥ २८½ ॥

स राक्षसेन्द्रं कौन्तेयः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ २९ ॥
तानप्यस्याकरोन्मोघान् राक्षसो निशितैः शरैः।

फिर कुन्तीकुमार भीमसेनने राक्षसराज अलायुधपर बाणोंकी झड़ी लगा दी; परंतु उस राक्षसने अपने तीखे बाणोंद्वारा उनके वे सभी बाण व्यर्थ कर दिये ॥ २९½ ॥

ते चापि राक्षसाः सर्वे रजन्यां भीमरूपिणः ॥ ३० ॥
शासनाद् राक्षसेन्द्रस्य निजघ्नू रथकुञ्जरान्।

उस रातमें भयंकर रूपधारी सम्पूर्ण राक्षसोंने भी राक्षसराज अलायुधकी आज्ञासे कितने ही रथों और हाथियोंको नष्ट कर दिया ॥ ३०½ ॥

पञ्चालाः सृंजयाश्चैव वाजिनः परमद्विपाः ॥ ३१ ॥
न शान्तिं लेभिरे तत्र राक्षसैर्भृशपीडिताः।

उन राक्षसोंसे अत्यन्त पीड़ित होकर पाञ्चाल और सृंजयवंशी क्षत्रिय तथा उनके घोड़े और बड़े-बड़े हाथी भी शान्ति न पा सके ॥ ३१½ ॥

तं तु दृष्ट्वा महाघोरं वर्तमानं महाहवम् ॥ ३२ ॥
अब्रवीत् पुण्डरीकाक्षो धनंजयमिदं वचः ।
पश्य भीमं महाबाहुं राक्षसेन्द्रवशं गतम् ॥ ३३ ॥
पदमस्यानुगच्छ त्वं मा विचारय पाण्डव ।

उस महाभयंकर वर्तमान महायुद्धको देखकर कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे इस प्रकार कहा—'पाण्डुनन्दन ! देखो, महाबाहु भीमसेन राक्षसराज अलायुधके वशमें पड़ गये हैं । तुम शीघ्र उन्हींके मार्गपर चलो । कोई दूसरा विचार मनमें न लाओ ॥ ३२-३३½ ॥

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ ३४ ॥
सहितौ द्रौपदेयाश्च कर्णं यान्तु महारथाः ।

'धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, साथ रहनेवाले युधामन्यु और उत्तमौजा तथा द्रौपदीके पाँचों पुत्र—ये सभी महारथी एक साथ होकर कर्णपर धावा करें ॥ ३४½ ॥

नकुलः सहदेवश्च युयुधानश्च वीर्यवान् ॥ ३५ ॥
इतरान् राक्षसान् घ्नन्तु शासनात् तव पाण्डव ।

'पाण्डुपुत्र ! नकुल, सहदेव और पराक्रमी सात्यकि—ये तुम्हारे आदेशसे अन्य राक्षसोंका वध करें ॥ ३५½ ॥

त्वमपीमां महाबाहो चमूं द्रोणपुरस्कृताम् ॥ ३६ ॥
वारयस्व नरव्याघ्र महद्धि भयमागतम् ।

'महाबाहु ! तुम भी द्रोण जिसके अगुआ हैं, इस कौरवसेनाको आगे बढ़नेसे रोको; क्योंकि नरव्याघ्र ! पाण्डवसेनापर महान् भय आ पहुँचा है' ॥ ३६½ ॥

एवमुक्ते तु कृष्णेन यथोद्दिष्टा महारथाः ॥ ३७ ॥
जग्मुर्वैकर्तनं कर्णं राक्षसांश्चैव तान् रणे ।

श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर वे सभी महारथी उनके आदेशके अनुसार रणभूमिमें वैकर्तन कर्ण तथा उन राक्षसोंका सामना करनेके लिये चले गये ॥ ३७½ ॥

अथ पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैराशीविषोपमैः ॥ ३८ ॥
धनुश्चिच्छेद भीमस्य राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ।

तदनन्तर प्रतापी राक्षसराज अलायुधने धनुषको पूर्णतः खींचकर छोड़े गये विषधर सर्पके समान भयंकर बाणोंद्वारा भीमसेनके धनुषको काट डाला ॥ ३८½ ॥

हयांश्चास्य शितैर्बाणैः सारथिं च महाबलः ॥ ३९ ॥
जघान मिषतः संख्ये भीमसेनस्य राक्षसः ।

साथ ही, उस महाबली निशाचरने युद्धमें भीमसेनके देखते-देखते पैने बाणोंद्वारा उनके सारथि और घोड़ोंको भी मार डाला ॥ ३९½ ॥

सोऽवतीर्य रथोपस्थाद्धताश्वो हतसारथिः ॥ ४० ॥
तस्मै गुर्वीं गदां घोरां विनदन्नुत्ससर्ज ह ।

घोड़ों और सारथिके मारे जानेपर रथकी बैठकसे नीचे उतरकर गर्जते हुए भीमसेनने उस राक्षसपर अपनी भारी एवं भयंकर गदा दे मारी ॥ ४०½ ॥



ततस्तां भीमनिर्घोषामापतन्तीं महागदाम् ॥ ४१ ॥
गदया राक्षसो घोरो निजघान ननाद च ।

भयानक शब्द करनेवाली उस विशाल गदाको आती देख भयंकर राक्षस अलायुधने अपनी गदासे उसपर आघात किया और बड़े जोरसे गर्जना की ॥ ४१½ ॥

तद् दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रस्य घोरं कर्म भयावहम् ॥ ४२ ॥
भीमसेनः प्रहृष्टात्मा गदामाशु परामृशत् ।

राक्षसराज अलायुधके उस भयदायक घोर कर्मको देखकर भीमसेनका हृदय हर्ष और उत्साहसे भर गया और उन्होंने शीघ्र ही गदा हाथमें ले ली ॥ ४२½ ॥

तयोः समभवद् युद्धं तुमुलं नरराक्षसोः ॥ ४३ ॥
गदानिपातसंह्रादैर्भुवं कम्पयतोर्भृशम् ।

फिर गदाओंके टकरानेकी आवाजसे भूतलको अत्यन्त कम्पित करते हुए उन दोनों मनुष्य और राक्षसोंमें वहाँ भयंकर युद्ध होने लगा ॥ ४३½ ॥

गदाविमुक्तौ तौ भूयः समासाद्येतरेतरम् ॥ ४४ ॥
मुष्टिभिर्वज्रसंह्रादैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ।

गदासे छूटते ही वे दोनों फिर एक दूसरेसे गुथ गये और वज्रपातकी-सी आवाज करनेवाले मुक्कोंसे एक दूसरेको मारने लगे ॥ ४४½ ॥

रथचक्रैर्युगैरक्षैरधिष्ठानैरुपस्करैः ॥ ४५ ॥
यथासन्नमुपादाय निजघ्नतुरमर्षणौ ।

तत्पश्चात् अमर्षमें भरकर वे दोनों रथके पहियों, जूओं, धुरों, बैठकों और अन्य उपकरणोंसे तथा जो भी वस्तु समीप मिल जाती, उसीको लेकर एक दूसरेपर चोट करने लगे ॥ ४५½ ॥

तौ विक्षरन्तौ रुधिरं समासाद्येतरेतरम् ॥ ४६ ॥
मत्ताविव महानागौ चकृषाते पुनः पुनः ।

वे मदस्रावी मतवाले गजराजोंके समान अपने अङ्गोंसे रुधिरकी धारा बहाते हुए एक दूसरेसे भिड़कर बारंबार खींचातानी करने लगे ॥ ४६½ ॥

तदपश्यद्धृषीकेशः पाण्डवानां हिते रतः ।
स भीमसेनरक्षार्थं हैडिम्बिं पर्यचोदयत् ॥ ४७ ॥

पाण्डवोंके हितमें तत्पर रहनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने जब वह युद्ध देखा, तब भीमसेनकी रक्षाके लिये हिडिम्बाकुमार घटोत्कचको भेजा ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धेऽलायुधयुद्धे सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसंगमें अलायुधयुद्धविषयक एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७७ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ४८ श्लोक हैं)

अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

दोनों सेनाओंमें परस्पर घोर युद्ध और घटोत्कचके द्वारा अलायुधका वध एवं दुर्योधनका पश्चात्ताप

संजय उवाच

संदृश्य समरे भीमं रक्षसा ग्रस्तमन्तिकात् ।
वासुदेवोऽब्रवीद् राजन् घटोत्कचमिदं वचः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! समरभूमिमें राक्षसके चंगुलमें फँसे हुए भीमसेनको निकटसे देखकर भगवान् श्रीकृष्णने घटोत्कचसे यह बात कही—॥ १ ॥

पश्य भीमं महाबाहो रक्षसा ग्रस्तमाहवे ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां तव चैव महाद्युते ॥ २ ॥

'महातेजस्वी महाबाहु वीर ! देखो, युद्धस्थलमें उस राक्षसने सम्पूर्ण सेनाके और तुम्हारे देखते-देखते भीमसेनको वशमें कर लिया है ॥ २ ॥

स कर्णं त्वं समुत्सृज्य राक्षसेन्द्रमलायुधम् ।
जहि क्षिप्रं महाबाहो पश्चात् कर्णं वधिष्यसि ॥ ३ ॥

महाबाहो ! अतः तुम कर्णको छोड़कर पहले राक्षसराज अलायुधको शीघ्रतापूर्वक मार डालो । पीछे कर्णका वध करना' ॥

स वार्ष्णेयवचः श्रुत्वा कर्णमुत्सृज्य वीर्यवान् ।
युयुधे राक्षसेन्द्रेण बकभ्रात्रा घटोत्कचः ॥ ४ ॥

भगवान् श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर पराक्रमी वीर घटोत्कचने कर्णको छोड़कर बकके भाई राक्षसराज अलायुधके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया ॥ ४ ॥

तयोः सुतुमुलं युद्धं बभूव निशि रक्षसोः ।
अलायुधस्य चैवाग्रं हैडिम्बेश्चापि भारत ॥ ५ ॥

भरतनन्दन ! उस रात्रिके समय अलायुध और हिडिम्बाकुमार घटोत्कच दोनों राक्षसोंमें अत्यन्त भयंकर एवं घमासान युद्ध होने लगा ॥ ५ ॥

अलायुधस्य योधांश्च राक्षसान् भीमदर्शनान् ।
वेगेनापततः शूरान् प्रगृहीतशरासनान् ॥ ६ ॥
आत्तायुधः सुसंक्रुद्धो युयुधानो महारथः ।
नकुलः सहदेवश्च चिच्छिदुर्निशितैः शरैः ॥ ७ ॥

अलायुधके सैनिक राक्षस देखनेमें बड़े भयंकर और शूरवीर थे । वे हाथमें धनुष लेकर बड़े वेगसे आक्रमण करते थे । परंतु अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए महारथी युयुधान, नकुल और सहदेवने उन सबको अपने पैने बाणोंसे काट डाला ॥ ६-७ ॥

सर्वांश्च समरे राजन् किरीटी क्षत्रियर्षभान् ।
परिचिक्षेप बीभत्सुः सर्वतः प्रकिरञ्छरान् ॥ ८ ॥

राजन् ! किरीटधारी अर्जुनने समराङ्गणमें सब ओर बाणोंकी वर्षा करके कौरवपक्षके समस्त क्षत्रिय शिरोमणियोंको मार भगाया ॥ ८ ॥

कर्णश्च समरे राजन् व्यद्रावयत पार्थिवान् ।
धृष्टद्युम्नशिखण्ड्यादीन् पञ्चालानां महारथान् ॥ ९ ॥

नरेश्वर ! कर्णने भी रणभूमिमें धृष्टद्युम्न और शिखण्डी आदि पाञ्चाल महारथी नरेशोंको दूर भगा दिया ॥ ९ ॥

तान् वध्यमानान् दृष्ट्वाथ भीमो भीमपराक्रमः ।
अभ्ययात् त्वरितः कर्णं विशिखान् प्रकिरन् रणे ॥ १० ॥

उन सबको बाणोंकी मारसे पीड़ित होते देख भयंकर पराक्रमी भीमसेनने युद्धस्थलमें अपने बाणोंकी वर्षा करते हुए वहाँ तुरंत ही कर्णपर आक्रमण किया ॥ १० ॥

ततस्तेऽप्याययुर्हत्वा राक्षसान् यत्र सूतजः ।
नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथः ॥ ११ ॥

तत्पश्चात् वे नकुल, सहदेव और महारथी सात्यकि भी राक्षसोंको मारकर वहीं आ पहुँचे, जहाँ सूतपुत्र कर्ण था ॥

ते कर्णं योधयामासुः पञ्चाला द्रोणमेव तु ।
अलायुधस्तु संक्रुद्धो घटोत्कचमरिंदमम् ।

परिघेणातिकायेन ताडयामास मूर्धनि ॥ १२ ॥

वे तीनों योद्धा कर्णके साथ युद्ध करने लगे और पाञ्चालदेशीय वीरोंने द्रोणाचार्यका सामना किया। उधर क्रोधमें भरे हुए अलायुधने एक विशाल परिघके द्वारा शत्रुदमन घटोत्कचके मस्तकपर आघात किया॥

स तु तेन प्रहारेण भैमसेनिर्महाबलः।
ईषन्मूर्छितमात्मानमस्तम्भयत वीर्यवान् ॥ १३ ॥

उस प्रहारसे भीमसेनपुत्र घटोत्कचको कुछ मूर्छा आ गयी। परंतु उस महाबली और पराक्रमी वीरने पुनः अपने आपको सँभाल लिया ॥ १३ ॥

ततो दीप्ताग्निसंकाशां शतघण्टामलंकृताम्।
चिक्षेप तस्मै समरे गदां काञ्चनभूषिताम् ॥ १४ ॥

तदनन्तर घटोत्कचने समराङ्गणमें प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्विनी, एक सौ घंटियोंसे अलंकृत और सुवर्णभूषित अपनी गदा उसके ऊपर चलायी ॥ १४ ॥

सा हयांश्च रथं चास्य सारथिं च महास्वना।
चूर्णयामास वेगेन विसृष्टा भीमकर्मणा ॥ १५ ॥

भयंकर कर्म करनेवाले उस राक्षसद्वारा वेगपूर्वक फेंकी गयी उस भारी आवाज करनेवाली गदाने अलायुधके रथ, सारथि और घोड़ोंको चूर-चूर कर दिया ॥ १५ ॥

स भग्नहयचक्राक्षाद् विशीर्णध्वजकूबरात्।
उत्पपात रथात् तूर्णं मायामास्थाय राक्षसीम् ॥ १६ ॥

जिसके घोड़े, पहिये और धुरे नष्ट हो गये थे, ध्वज और कूबर बिखर गये थे, उस रथसे अलायुध राक्षसी मायाका आश्रय लेकर तुरंत ही ऊपरको उड़ गया ॥ १६ ॥

स समास्थाय मायां तु ववर्ष रुधिरं बहु।
विद्युद्विभ्राजितं चासीत् तुमुलाभ्राकुलं नभः ॥१७॥

उसने मायाका आश्रय लेकर बहुत रक्तकी वर्षा की। उस समय आकाशमें भयंकर मेघोंकी घटा घिर आयी थी और बिजली चमक रही थी ॥ १७ ॥

ततो वज्रनिपाताश्च साशनिस्तनयित्नवः।
महांश्चटचटाशब्दस्तत्रासीच्च महाहवे ॥ १८ ॥

तत्पश्चात् उस महासमरमें वज्रपात, मेघगर्जनाके साथ विद्युत्की गड़गड़ाहट तथा महान् चटचट शब्द होने लगे ॥

तां प्रेक्ष्य महतीं मायां राक्षसो राक्षसस्य च।
ऊर्ध्वमुत्पत्य हैडिम्बिस्तां मायां माययावधीत् ॥१९॥

राक्षसकी उस विशाल मायाको देखकर राक्षसजातीय हिडिम्बाकुमार घटोत्कचने ऊपर उड़कर अपनी मायासे उस मायाको नष्ट कर दिया ॥ १९ ॥

सोऽभिवीक्ष्य हतां मायां मायावी माययैव हि।
अश्मवर्षं सुतुमुलं विससर्ज घटोत्कचे ॥ २० ॥

अपनी मायाको मायासे ही नष्ट हुई देखकर मायावी अलायुध घटोत्कचपर पत्थरोंकी भयंकर वर्षा करने लगा ॥

अश्मवर्षं स तं घोरं शरवर्षेण वीर्यवान्।
दिक्षु विध्वंसयामास तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २१ ॥

किंतु पराक्रमी घटोत्कचने बाणोंकी वृष्टि करके उस भयंकर प्रस्तरवर्षाका उन-उन दिशाओंमें ही विध्वंस कर दिया। वह अद्भुत-सा कार्य हुआ ॥ २१ ॥

ततो नानाप्रहरणैरन्योन्यमभिवर्षताम्।
आयसैः परिघैः शूलैर्गदामुसलमुद्गरैः ॥ २२ ॥
पिनाकैः करवालैश्च तोमरप्रासकम्पनैः।
नाराचैर्निशितैर्भल्लैः शरैश्चक्रैः परश्वधैः।
अयोगुडैर्भिन्दिपालैर्गोशीर्षोलूखलैरपि ॥ २३ ॥
उत्पाटितैर्महाशाखैर्विविधैर्जगतीरुहैः।
शमीपीलुकदम्बैश्च चम्पकैश्चैव भारत ॥ २४ ॥
इङ्गुदैर्बदरीभिश्च कोविदारैश्च पुष्पितैः।
पलाशैश्चारिमेदैश्च प्लक्षन्यग्रोधपिप्पलैः ॥ २५ ॥
महद्भिः समरे तस्मिन्नन्योन्यमभिजघ्नतुः।
विपुलैः पर्वताग्रैश्च नानाधातुभिराचितैः ॥ २६ ॥

भारत! तत्पश्चात् वे एक दूसरेपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। लोहेके परिघ, शूल, गदा, मुसल, मुद्गर, पिनाक, खड्ग, तोमर, प्रास, कम्पन, तीखे नाराच, भल्ल, बाण, चक्र, फरसे, लोहेकी गोली, भिन्दिपाल, गोशीर्ष, उलूखल, बड़ी-बड़ी शाखाओंवाले उखाड़े हुए नाना प्रकारके वृक्ष—शमी, पीलु, कदम्ब, चम्पा, इङ्गुद, बेर, विकसित कोविदार, पलाश, अरिमेद, बड़े-बड़े पाकड़, बरगद और पीपल—इन सबके द्वारा उस महासमरमें वे एक दूसरेपर चोट करने लगे। नाना प्रकारकी धातुओंसे व्याप्त विशाल पर्वतशिखरोंद्वारा भी वे परस्पर आघात करते थे ॥ २२—२६ ॥

तेषां शब्दो महानासीद् वज्राणां भिद्यतामिव।
युद्धं समभवद् घोरं भैम्यलायुधयोर्नृप ॥ २७ ॥
हरीन्द्रयोर्यथा राजन् वालिसुग्रीवयोः पुरा।

उन पर्वत-शिखरोंके टकरानेसे ऐसा महान् शब्द होता था, मानो वज्र फट पड़े हों। नरेश्वर! घटोत्कच और अलायुधका वह भयंकर युद्ध वैसा ही हो रहा था, जैसे पहले त्रेतायुगमें वानरराज बाली और सुग्रीवका युद्ध सुना गया है ॥ २७½ ॥

तौ युद्ध्वा विविधैर्घोरैरायुधैर्विशिखैस्तथा।
प्रगृह्य च शितौ खड्गावन्योन्यमभिपेततुः ॥ २८ ॥

नाना प्रकारके भयंकर आयुधों और बाणोंसे युद्ध करके वे दोनों राक्षस तीखी तलवारें लेकर एक दूसरेपर टूट पड़े ॥

तावन्योन्यमभिद्रुत्य केशेषु सुमहाबलौ ।
भुजाभ्यां पर्यगृह्णीतां महाकायौ महाबलौ ॥ २९ ॥

उन दोनों महाबली और विशालकाय राक्षसोंने परस्पर आक्रमण करके दोनों हाथोंसे दोनोंके केश पकड़ लिये । २९।

तौ स्विन्नगात्रौ प्रस्वेदं सुस्रुवाते जनाधिप ।
रुधिरं च महाकायावतिवृष्टाविवाम्बुदौ ॥ ३० ॥

नरेश्वर ! अत्यन्त वर्षा करनेवाले दो मेघोंके समान उन विशालकाय राक्षसोंके शरीर पसीनेसे तर हो रहे थे । वे अपने अंगोंसे पसीनोंके साथ-साथ खून भी बहा रहे थे ॥

अथाभिपत्य वेगेन समुद्भ्राम्य च राक्षसम् ।
बलेनाक्षिप्य हैडिम्बिश्चकर्तास्य शिरो महत् ॥ ३१ ॥

तदनन्तर बड़े वेगसे झपटकर हिडिम्बाकुमार घटोत्कचने उस राक्षसको पकड़ लिया और उसे घुमाकर बलपूर्वक पटक दिया । फिर उसके विशाल मस्तकको उसने काट डाला ॥

सोऽपहृत्य शिरस्तस्य कुण्डलाभ्यां विभूषितम् ।
तदा सुतुमुलं नादं ननाद सुमहाबलः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार महाबली घटोत्कचने उसके कुण्डलमण्डित मस्तकको काटकर उस समय बड़ी भयानक गर्जना की ॥

हतं दृष्ट्वा महाकायं बकज्ञातिमरिंदमम् ।
पञ्चालाः पाण्डवाश्चैव सिंहनादान् विनेदिरे ॥ ३३ ॥

बकासुरके विशालकाय भ्राता शत्रुदमन अलायुधको मारा गया देख पाञ्चाल और पाण्डव सिंहनाद करने लगे ॥

ततो भेरीसहस्राणि शङ्खानामयुतानि च ।
अवादयन् पाण्डवेया राक्षसे निहते युधि ॥ ३४ ॥

युद्धस्थलमें उस राक्षसके मारे जानेपर पाण्डवदलके सैनिकोंने सहस्रों नगाड़े और हजारों शङ्ख बजाये ॥ ३४ ॥

अतीव सा निशा तेषां बभूव विजयावहा ।
विद्योतमाना विबभौ समन्ताद् दीपमालिनी ॥ ३५ ॥

चारों ओरसे दीपावलियोंद्वारा प्रकाशित होनेवाली वह रात्रि उनके लिये विजयदायिनी होकर अत्यन्त शोभा पाने लगी ॥ ३५ ॥

अलायुधस्य तु शिरो भैमसेनिर्महाबलः ।
दुर्योधनस्य प्रमुखे चिक्षेप गतचेतसः ॥ ३६ ॥

उस समय दुर्योधन अचेत-सा हो रहा था । महाबली घटोत्कचने अलायुधका वह मस्तक दुर्योधनके सामने फेंक दिया ॥ ३६ ॥

अथ दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा हतमलायुधम् ।
बभूव परमोद्विग्नः सह सैन्येन भारत ॥ ३७ ॥

भारत ! अलायुधको मारा गया देख सेनासहित राजा दुर्योधन अत्यन्त उद्विग्न हो उठा ॥ ३७ ॥

तेन ह्यस्य प्रतिज्ञातं भीमसेनमहं युधि ।
हन्तेति स्वयमागम्य स्मरता वैरमुत्तमम् ॥ ३८ ॥

अलायुधने अपने भारी बैरीको याद करते हुए स्वयं आकर दुर्योधनके सामने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं युद्धमें भीमसेनको मार डालूँगा ॥ ३८ ॥

ध्रुवं स तेन हन्तव्य इत्यमन्यत पार्थिवः ।
जीवितं चिरकालं हि भ्रातृणां चाप्यमन्यत ॥ ३९ ॥

इससे राजा दुर्योधन यह मान बैठा था कि अलायुध निश्चय ही भीमसेनको मार डालेगा और यही सोचकर उसने यह भी समझ लिया था कि अभी मेरे भाइयोंका जीवन चिरस्थायी है ॥

स तं दृष्ट्वा विनिहतं भीमसेनात्मजेन वै ।
प्रतिज्ञां भीमसेनस्य पूर्णामेवाभ्यमन्यत ॥ ४० ॥

परंतु भीमसेनपुत्र घटोत्कचके द्वारा अलायुधको मारा गया देख उसने यह निश्चित रूपसे मान लिया कि अब भीमसेनकी प्रतिज्ञा पूरी होकर ही रहेगी ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धेऽलायुधवधेऽष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके समय अलायुधका वधविषयक एक सौ अठहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७८ ॥

एकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

घटोत्कचका घोर युद्ध तथा कर्णके द्वारा चलायी हुई इन्द्रप्रदत्त शक्तिसे उसका वध

संजय उवाच

निहत्यालायुधं रक्षः प्रहृष्टात्मा घटोत्कचः ।
ननाद विविधान् नादान् वाहिन्याः प्रमुखे तव ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! राक्षस अलायुधका वध करके घटोत्कच मन-ही-मन बड़ा प्रसन्न हुआ और वह आपकी सेनाके सामने खड़ा हो नाना प्रकारसे सिंहनाद करने लगा ॥

तस्य तं तुमुलं शब्दं श्रुत्वा कुञ्जरकम्पनम् ।
तावकानां महाराज भयमासीत् सुदारुणम् ॥ २ ॥

महाराज ! उसकी वह भयंकर गर्जना हाथियोंको भी कँपा देनेवाली थी । उसे सुनकर आपके योद्धाओंके मनमें अत्यन्त दारुण भय समा गया ॥ २ ॥

अलायुधविषक्तं तु भैमसेनिं महाबलम् ।

दृष्ट्वा कर्णो महाबाहुः पञ्चालान् समुपाद्रवत् ॥ ३ ॥

जिस समय महाबली घटोत्कच अलायुधके साथ उलझा हुआ था, उस समय उसे उस अवस्थामें देखकर महाबाहु कर्णने पाञ्चालोंपर धावा किया ॥ ३ ॥

दशभिर्दशभिर्बाणैर्धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ।
दृढैः पूर्णायतोत्सृष्टैर्बिभेद नतपर्वभिः ॥ ४ ॥

उसने पूर्णतः खींचकर छोड़े गये झुकी हुई गाँठवाले दस-दस सुदृढ़ बाणोंद्वारा धृष्टद्युम्न और शिखण्डीको घायल कर दिया ॥ ४ ॥

ततः परमनाराचैर्युधामन्यूत्तमौजसौ ।
सात्यकिं च रथोदारं कम्पयामास मार्गणैः ॥ ५ ॥

तत्पश्चात् उसने अच्छे-अच्छे नाराचोंद्वारा युधामन्यु और उत्तमौजाको तथा अनेक बाणोंसे उदार महारथी सात्यकिको भी कम्पित कर दिया ॥ ५ ॥

तेषामप्यस्यतां संख्ये सर्वेषां सव्यदक्षिणम् ।
मण्डलान्येव चापानि व्यदृश्यन्त जनाधिप ॥ ६ ॥

नरेश्वर ! वे सात्यकि आदि भी बायें-दायें बाण चला रहे थे। उस समय उन सबके धनुष भी मण्डलाकार ही दिखायी देते थे ॥ ६ ॥

तेषां ज्यातलनिर्घोषो रथनेमिस्वनश्च ह ।
मेघानामिव घर्मान्ते बभूव तुमुलो निशि ॥ ७ ॥

उस रात्रिके समय उनकी प्रत्यञ्चाकी टंकार तथा रथके पहियोंकी घर्घराहटका शब्द वर्षाकालके मेघोंकी गर्जनाके समान भयंकर जान पड़ता था ॥ ७ ॥

ज्यानेमिघोषस्तनयित्नुमान् वै
धनुस्तडिन्मण्डलकेतुशृङ्गः ।
शरौघवर्षाकुलवृष्टिमांश्च
संग्राममेघः स बभूव राजन् ॥ ८ ॥

राजन् ! वह संग्राम वर्षाकालीन मेघके समान प्रतीत होता था। प्रत्यञ्चाकी टंकार और पहियोंकी घर्घराहटका शब्द ही उस मेघकी गर्जनाके समान था। धनुष ही विद्युन्मण्डलके समान प्रकाशित होता था और ध्वजाका अग्र-भाग ही उस मेघका उच्चतम शिखर था तथा बाण-समूहोंकी वृष्टि ही उसके द्वारा की जानेवाली वर्षा थी ॥ ८ ॥

तदद्भुतं शैल इवाप्रकम्पो
वर्षं महाशैलसमानसारः ।
विध्वंसयामास रणे नरेन्द्र
वैकर्तनः शत्रुगणावमर्दी ॥ ९ ॥

नरेन्द्र ! महान् पर्वतके समान शक्तिशाली एवं अविचल रहनेवाले शत्रुदलसंहारक सूर्यपुत्र कर्णने रणभूमिमें उस अद्भुत बाण-वर्षाको नष्ट कर दिया ॥ ९ ॥

ततोऽतुलैर्वज्रनिपातकल्पैः
शितैः शरैः काञ्चनचित्रपुङ्खैः ।
शत्रून् व्यपोहत् समरे महात्मा
वैकर्तनः पुत्रहिते रतस्ते ॥ १० ॥

तत्पश्चात् आपके पुत्रके हितमें तत्पर रहनेवाले महामनस्वी वैकर्तन कर्णने समराङ्गणमें सोनेके विचित्र पंखोंसे युक्त एवं वज्रपातके तुल्य भयंकर, तुलनारहित तीखे बाणोंद्वारा शत्रुओंका संहार आरम्भ किया ॥ १० ॥

संछिन्नभिन्नध्वजिनश्च केचित्
केचिच्छरैरर्दितभिन्नदेहाः ।
केचिद् विसूता विहयाश्च केचिद्
वैकर्तनेनाशु कृता बभूवुः ॥ ११ ॥

वैकर्तन कर्णने वहाँ शीघ्र ही किन्हींकी ध्वजाके टुकड़े-टुकड़े कर दिये, किन्हींके शरीरोंको बाणोंसे पीड़ित करके विदीर्ण कर डाला, किन्हींके सारथि नष्ट कर दिये और किन्हींके घोड़े मार डाले ॥ ११ ॥

अविन्दमानास्त्वथ शर्म संख्ये
यौधिष्ठिरं ते बलमभ्यपद्यन् ।
तान् प्रेक्ष्य भग्नान् विमुखीकृतांश्च
घटोत्कचो रोषमतीव चक्रे ॥ १२ ॥

योद्धालोग युद्धमें किसी तरह चैन न पाकर युधिष्ठिरकी सेनामें घुसने लगे। उन्हें तितर-बितर और युद्धसे विमुख हुआ देख घटोत्कचको बड़ा रोष हुआ ॥ १२ ॥

आस्थाय तं काञ्चनरत्नचित्रं
रथोत्तमं सिंहवत् संननाद ।
वैकर्तनं कर्णमुपेत्य चापि
विव्याध वज्रप्रतिमैः पृषत्कैः ॥ १३ ॥

वह सुवर्ण एवं रत्नोंसे जटित होनेके कारण विचित्र शोभायुक्त उत्तम रथपर आरूढ़ हो सिंहके समान गर्जना करने लगा और वैकर्तन कर्णके पास जाकर उसे वज्रतुल्य बाणोंद्वारा बींधने लगा ॥ १३ ॥

तौ कर्णिनाराचशिलीमुखैश्च
नालीकदण्डासनवत्सदन्तैः ।
वराहकर्णैः सविपाठशृङ्गैः
क्षुरप्रवर्षैश्च विनेदतुः खम् ॥ १४ ॥

वे दोनों कर्णी, नाराच, शिलीमुख, नालीक, दण्ड, असन, वत्सदन्त, वाराहकर्ण, विपाठ, सींग तथा क्षुरप्रोंकी वर्षा करते हुए अपनी गर्जनासे आकाशको गुँजाने लगे ॥

तद् बाणधारावृतमन्तरिक्षं
तिर्यग्गताभिः समरे रराज ।
सुवर्णपुङ्खज्वलितप्रभाभि-
र्विचित्रपुष्पाभिरिव स्रजाभिः ॥ १५ ॥

समराङ्गणमें बाणधाराओंसे भरा हुआ आकाश उन बाणोंके सुवर्णमय पंखोंकी तिरछी दिशामें फैलनेवाली देदीप्यमान प्रभाओंसे ऐसी शोभा पा रहा था, मानो वह विचित्र पुष्पोंवाली मनोहर मालाओंसे अलंकृत हो ॥ १५ ॥

समाहितावप्रतिमप्रभावा-
वन्योन्यमाजघ्नतुरुत्तमास्त्रैः ।
तयोर्हि वीरोत्तमयोर्न कश्चिद्
ददर्श तस्मिन् समरे विशेषम् ॥ १६ ॥

दोनोंके ही चित्त एकाग्र थे; दोनों ही अनुपम प्रभावशाली थे और उत्तम अस्त्रोंद्वारा एक दूसरेको चोट पहुँचा रहे थे। उन दोनों वीरशिरोमणियोंमेंसे कोई भी युद्धमें अपनी विशेषता न दिखा सका ॥ १६ ॥

अतीव तच्चित्रमतुल्यरूपं
बभूव युद्धं रविभीमसून्वोः ।
समाकुलं शस्त्रनिपातघोरं
दिवीव राह्वंशुमतोः प्रमत्तम् ॥ १७ ॥

सूर्यपुत्र कर्ण और भीमकुमार घटोत्कचका वह अत्यन्त विचित्र एवं घमासान युद्ध आकाशमें राहु और सूर्यके उन्मत्त संग्राम-सा प्रतीत होता था। उसकी कहीं तुलना नहीं थी। शस्त्रोंके प्रहारसे वह बड़ा भयंकर जान पड़ता था ॥ १७ ॥

संजय उवाच

घटोत्कचं यदा कर्णो न विशेषयते नृप ।
ततः प्रादुश्चकारोग्रमस्त्रमस्त्रविदां वरः ॥ १८ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! जब अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ कर्ण घटोत्कचसे अपनी विशेषता न दिखा सका, तब उसने एक भयंकर अस्त्र प्रकट किया ॥ १८ ॥

तेनास्त्रेणावधीत् तस्य रथं सहयसारथिम् ।
विरथश्चापि हैडिम्बिः क्षिप्रमन्तरधीयत ॥ १९ ॥

उस अस्त्रके द्वारा उसने घटोत्कचके रथको घोड़े और सारथिसहित नष्ट कर दिया। रथहीन होनेपर घटोत्कच शीघ्र ही वहाँसे अदृश्य हो गया ॥ १९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

तस्मिन्नन्तर्हिते तूर्णं कूटयोधिनि राक्षसे ।
मामकैः प्रतिपन्नं यत् तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ २० ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! बताओ, माया-युद्ध करनेवाले उस राक्षसके तत्काल अदृश्य हो जानेपर मेरे पुत्रोंने क्या सोचा और क्या किया ? ॥ २० ॥

संजय उवाच

अन्तर्हितं राक्षसेन्द्रं विदित्वा
सम्प्राक्रोशन् कुरवः सर्व एव ।
कथं नायं राक्षसः कूटयोधी
हन्यात् कर्णं समरेऽदृश्यमानः ॥ २१ ॥

संजयने कहा—महाराज! राक्षसराज घटोत्कचको अदृश्य हुआ जानकर समस्त कौरव-योद्धा चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगे 'मायाद्वारा युद्ध करनेवाला यह निशाचर जब रणभूमिमें स्वयं दिखायी ही नहीं देता है, तब कर्णको कैसे नहीं मार डालेगा ?' ॥ २१ ॥

ततः कर्णो लघुचित्रास्त्रयोधी
सर्वा दिशः प्रावृणोद् बाणजालैः।
न वै किञ्चित् प्रापतत् तत्र भूतं
तमोभूते सायकैरन्तरिक्षे ॥ २२ ॥

तब शीघ्रतापूर्वक विचित्र रीतिसे अस्त्रयुद्ध करनेवाले कर्णने अपने बाणोंके समूहसे सम्पूर्ण दिशाओंको ढक दिया। उस समय बाणोंसे आकाशमें अँधेरा छा गया था तो भी वहाँ कोई प्राणी ऊपरसे मरकर गिरा नहीं ॥ २२ ॥

नैवाददानो न च संदधानो
न चेषुधीः स्पृश्यमानः कराग्रैः ।
अदृश्यद् वै लाघवात् सूतपुत्रः
सर्वं बाणैश्छादयानोऽन्तरिक्षम् ॥ २३ ॥

सूतपुत्र कर्ण जब शीघ्रतापूर्वक बाणोंद्वारा समूचे आकाशको आच्छादित कर रहा था, उस समय यह नहीं दिखायी देता था कि वह कब अपने हाथकी अंगुलियोंसे तरकसको छूता है, कब बाण निकालता है और कब उसे धनुषपर रखता है ॥ २३ ॥

ततो मायां दारुणामन्तरिक्षे
घोरां भीमां विहितां राक्षसेन ।
अपश्याम लोहिताभ्रप्रकाशां
देदीप्यन्तीमग्निशिखामिवोग्राम् ॥ २४ ॥

तदनन्तर हमने अन्तरिक्षमें उस राक्षसद्वारा रची गयी घोर, दारुण एवं भयंकर माया देखी। पहले तो वह लाल रंगके बादलोंके रूपमें प्रकाशित हुई, फिर आगकी भयंकर लपटोंके समान प्रज्वलित हो उठी ॥ २४ ॥

ततस्तस्यां विद्युतः प्रादुरास-
न्नुल्काश्चापि ज्वलिताः कौरवेन्द्र ।
घोषश्चास्याः प्रादुरासीत् सुघोरः
सहस्रशो नदतां दुन्दुभीनाम् ॥ २५ ॥

कौरवराज! तत्पश्चात् उससे बिजलियाँ प्रकट हुईं और जलती हुई उल्काएँ गिरने लगीं। साथ ही, हजारों दुन्दुभियोंके बजनेके समान बड़ी भयानक आवाज होने लगी ॥ २५ ॥

ततः शराः प्रापतन् रुक्मपुङ्खाः
शक्त्यृष्टिप्रासमुसलान्यायुधानि ।

परश्वधास्तैलधौताश्च खड्गाः
प्रदीप्ताग्रास्तोमराः पट्टिशाश्च ॥ २६ ॥
मयूखिनः परिघा लोहबद्धा
गदाश्चित्राः शितधाराश्च शूलाः ।
गुर्व्यो गदा हेमपट्टावनद्धाः
शतघ्न्यश्च प्रादुरासन् समन्तात् ॥ २७ ॥

फिर उससे सोनेके पंखवाले बाण गिरने लगे। शक्ति, ऋष्टि, प्रास, मुसल आदि आयुध, फरसे, तेलमें साफ किये गये खड्ग, चमचमाती हुई धारवाले तोमर, पट्टिश, तेजस्वी परिघ, लोहेसे बँधी हुई विचित्र गदा, तीखी धारवाले शूल, सोनेके पत्रसे मढी गयी भारी गदाएँ और शतघ्नियाँ चारों ओर प्रकट होने लगीं ॥ २६-२७ ॥

महाशिलाश्चापतंस्तत्र तत्र
सहस्रशः साशनयश्च वज्राः ।
चक्राणि चानेकशतक्षुराणि
प्रादुर्बभूवुर्ज्वलनप्रभाणि ॥ २८ ॥

जहाँ-तहाँ हजारों बड़ी-बड़ी शिलाएँ गिरने लगीं, बिजलियोंसहित वज्र पड़ने लगे और अग्निके समान दीप्तिमान् कितने ही चक्रों तथा सैकड़ों छुरोंका प्रादुर्भाव होने लगा ॥ २८ ॥

तां शक्तिपाषाणपरश्वधानां
प्रासासिवज्राशनिमुद्गराणाम् ।
वृष्टिं विशालां ज्वलितां पतन्तीं
कर्णः शरौघैर्न शशाक हन्तुम् ॥ २९ ॥

शक्ति, प्रस्तर, फरसे, प्रास, खड्ग, वज्र, बिजली और मुद्गरोंकी गिरती हुई उस ज्वालापूर्ण विशाल वर्षाको कर्ण अपने बाणसमूहोंद्वारा नष्ट न कर सका ॥ २९ ॥

शराहतानां पततां हयानां
वज्राहतानां च तथा गजानाम् ।
शिलाहतानां च महारथानां
महान् निनादः पततां बभूव ॥ ३० ॥

बाणोंसे घायल होकर गिरते हुए घोड़ों, वज्रसे आहत होकर धराशायी होते हुए हाथियों तथा शिलाओंकी मार खाकर गिरते हुए महारथियोंका महान् आर्तनाद वहाँ सुनायी देता था ॥ ३० ॥

सुभीमनानाविधशस्त्रपातै-
र्घटोत्कचेनाभिहतं समन्तात् ।
दौर्योधनं वै बलमार्तरूप-
मावर्तमानं ददृशे भ्रमत् तत् ॥ ३१ ॥

घटोत्कचके द्वारा चलाये हुए अत्यन्त भयंकर एवं नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहारसे हताहत हुई दुर्योधनकी सेना आर्त होकर चारों ओर घूमती और चक्कर काटती दिखायी देने लगी ॥ ३१ ॥

हाहाकृतं सम्परिवर्तमानं
संलीयमानं च विषण्णरूपम् ।
ते त्वार्यभावात् पुरुषप्रवीराः
पराङ्मुखा नो बभूवुस्तदानीम् ॥ ३२ ॥

साधारण सैनिक विषादकी मूर्ति बनकर हाहाकार करते हुए सब ओर भाग-भागकर छिपने लगे; परंतु जो पुरुषोंमें श्रेष्ठ वीर थे, वे आर्यपुरुषोंके धर्मपर स्थित रहनेके कारण उस समय भी युद्धसे विमुख नहीं हुए ॥ ३२ ॥

तां राक्षसीं भीमरूपां सुघोरां
वृष्टिं महाशस्त्रमयीं पतन्तीम् ।
दृष्ट्वा बलौघांश्च निपात्यमानान्
महद् भयं तव पुत्रान् विवेश ॥ ३३ ॥

राक्षसद्वारा की हुई बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्रोंकी वह अत्यन्त घोर एवं भयानक वर्षा तथा अपने सैन्य-समूहोंका विनाश देखकर आपके पुत्रोंके मनमें बड़ा भारी भय समा गया ॥ ३३ ॥

शिवाश्च वैश्वानरदीप्तजिह्वाः
सुभीमनादाः शतशो नदन्तीः ।
रक्षोगणान् नर्दतश्चापि वीक्ष्य
नरेन्द्र योधा व्यथिता बभूवुः ॥ ३४ ॥

नरेन्द्र ! अग्निके समान जलती हुई जीभ और भयंकर शब्द-वाली सैकड़ों गीदड़ियोंको चीत्कार करते तथा राक्षस-समूहों-को गर्जते देखकर आपके सैनिक व्यथित हो उठे ॥ ३४ ॥

ते दीप्तजिह्वानलतीक्ष्णदंष्ट्रा
विभीषणाः शैलनिकाशकायाः ।
नभोगताः शक्तिविषक्तहस्ता
मेघा व्यमुञ्चन्निव वृष्टिमुग्राम् ॥ ३५ ॥

पर्वतके समान विशाल शरीरवाले और प्रज्वलित जिह्वासे आग उगलनेवाले तीखी दाढ़ोंसे युक्त भयानक राक्षस हाथोंमें शक्ति लिये आकाशमें पहुँचकर मेघोंके समान कौरवदलपर शस्त्रोंकी उग्र वर्षा करने लगे ॥

तैराहतास्ते शरशक्तिशूलै-
र्गदाभिरुग्रैः परिघैश्च दीप्तैः ।
वज्रैः पिनाकैरशनिप्रहारैः
शतघ्निचक्रैर्मथिताश्च पेतुः ॥ ३६ ॥

उन निशाचरोंके बरसाये हुए बाण, शक्ति, शूल, गदा, उग्र प्रज्वलित परिघ, वज्र, पिनाक, बिजली, शतघ्नी और चक्र आदि अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहारोंसे रौंदे गये कौरव-योद्धा मर-मरकर पृथ्वीपर गिरने लगे ॥ ३६ ॥

शूला भुशुण्ड्योऽश्मगुडाः शतघ्न्यः
स्थूणाश्च कार्ष्णायसपट्टनद्धाः ।
तेऽवाकिरंस्तव पुत्रस्य सैन्यं
ततो रौद्रं कश्मलं प्रादुरासीत् ॥ ३७ ॥

राजन् ! वे राक्षस आपके पुत्रकी सेनापर लगातार शूल, भुशुण्डी, पत्थरोंके गोले, शतघ्नी और लोहेके पत्रोंसे मढ़े गये स्थूणाकार[१] शस्त्र बरसाने लगे । इससे आपके सैनिकोंपर भयंकर मोह छा गया ॥ ३७ ॥

विकीर्णान्त्रा विहतैरुत्तमाङ्गैः
सम्भग्नाङ्गाः शिश्यिरे तत्र शूराः ।
छिन्ना हयाः कुञ्जराश्चापि भग्नाः
संचूर्णिताश्चैव रथाः शिलाभिः ॥ ३८ ॥

उस समय पत्थरोंकी मारसे आपके शूरवीरोंके मस्तक कुचल गये थे, अङ्ग भङ्ग हो गये थे, उनकी आँतें बाहर निकलकर बिखर गयी थीं और इस अवस्थामें वे वहाँ पृथ्वीपर पड़े हुए थे । घोड़ोंके टुकड़े-टुकड़े हो गये थे, हाथियोंके सारे अङ्ग कुचल गये थे और रथ चूर-चूर हो गये ॥ ३८ ॥

एवं महच्छस्त्रवर्षं सृजन्त-
स्ते यातुधाना भुवि घोररूपाः ।
मायासृष्टास्तत्र घटोत्कचेन
नामुञ्चन् वै याचमानं न भीतम् ॥ ३९ ॥

इस प्रकार बड़ी भारी शस्त्रवर्षा करते हुए वे निशाचर इस भूतलपर भयंकर रूप धारण करके प्रकट हुए थे। घटोत्कचकी मायासे उनकी सृष्टि हुई थी। वे डरे हुए तथा प्राणोंकी भिक्षा माँगते हुएको भी नहीं छोड़ते थे ॥ ३९ ॥

तस्मिन् घोरे कुरुवीरावमर्दे
कालोत्सृष्टे क्षत्रियाणामभावे ।
ते वै भग्नाः सहसा व्यद्रवन्त
प्राक्रोशन्तः कौरवाः सर्व एव ॥ ४० ॥

कौरव-वीरोंका विनाश करनेवाला वह घोर संग्राम मानो क्षत्रियोंका अन्त करनेके लिये साक्षात् कालद्वारा उपस्थित किया गया था । उसमें विद्यमान सभी कौरवयोद्धा हतोत्साह हो निम्नाङ्कित रूपसे चीखते-चिल्लाते हुए सहसा भाग चले ॥

पलायध्वं कुरवो नैतदस्ति
सेन्द्रा देवा घ्नन्ति नः पाण्डवार्थे ।
तथा तेषां मज्जतां भारतानां
तस्मिन् द्वीपः सूतपुत्रो बभूव ॥ ४१ ॥

'कौरवो ! भागो, भागो, अब किसी तरह यह सेना बच नहीं सकती । पाण्डवोंके लिये इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता हमें आकर मार रहे हैं ।' इस प्रकार उस समर-सागरमें डूबते हुए कौरव-सैनिकोंके लिये सूतपुत्र कर्ण द्वीपके समान आश्रयदाता बन गया ॥ ४१ ॥

तस्मिन् संक्रन्दे तुमुले वर्तमाने
सैन्ये भग्ने लीयमाने कुरूणाम् ।
अनीकानां प्रविभागेऽप्रकाशे
नाज्ञायन्त कुरवो नेतरे च ॥ ४२ ॥

उस घमासान युद्धके आरम्भ होनेपर जब कौरव-सेना भागकर छिप गयी और सैनिकोंके विभाग लुप्त हो गये, उस समय कौरव अथवा पाण्डव योद्धा पहचाने नहीं जाते थे ॥ ४२ ॥

निर्मर्यादे विद्रवे घोररूपे
सर्वा दिशः प्रेक्षमाणाः स्म शून्याः ।
तां शस्त्रवृष्टिमुरसा गाहमानं
कर्णं स्मैकं तत्र राजन्नपश्यन् ॥ ४३ ॥

उस मर्यादारहित और भयंकर युद्धमें जब भगदड़ पड़ गयी, उस समय भागे हुए सैनिक सारी दिशाओंको सूनी देखते थे । राजन् ! वहाँ लोगोंको एकमात्र कर्ण ही उस शस्त्रवर्षाको छातीपर झेलता हुआ दिखायी दिया ॥४३॥

ततो बाणैरावृणोदन्तरिक्षं
दिव्यां मायां योधयन् राक्षसस्य ।
ह्रीमान् कुर्वन् दुष्करं चार्यकर्म
नैवामुह्यत् संयुगे सूतपुत्रः ॥ ४४ ॥

तदनन्तर राक्षसकी दिव्य मायाके साथ युद्ध करते हुए लज्जाशील सूतपुत्र कर्णने आकाशको अपने बाणोंसे ढक दिया और युद्धमें वह श्रेष्ठ वीरोचित दुष्कर कर्म करता हुआ भी मोहके वशीभूत नहीं हुआ ॥ ४४ ॥

ततो भीताः समुदैक्षन्त कर्णं
राजन् सर्वे सैन्धवा बाह्लिकाश्च ।
असम्मोहं पूजयन्तोऽस्य संख्ये
सम्पश्यन्तो विजयं राक्षसस्य ॥ ४५ ॥

राजन् ! तब सिन्ध और बाह्लीकदेशके योद्धा युद्धस्थलमें राक्षसकी विजय देखकर भी कर्णके मोहित न होनेकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए उसकी ओर भयभीत होकर देखने लगे॥

तेनोत्सृष्टा चक्रयुक्ता शतघ्नी
समं सर्वांश्चतुरोऽश्वाञ्जघान ।
ते जानुभिर्जगतीमन्वपद्यन्
गतासवो निर्दशनाक्षिजिह्वाः ॥ ४६ ॥

इसी समय घटोत्कचने एक शतघ्नी छोड़ी, जिसमें पहिये लगे हुए थे । उस शतघ्नीने कर्णके चारों घोड़ोंको एक साथ ही मार डाला । उन घोड़ोंने प्राणशून्य होकर धरतीपर घुटने टेक दिये । उनके दाँत, नेत्र और जीभें बाहर निकल आयी थीं ॥ ४६ ॥

१. खंभेके समान आकृतिवाले ।

ततो हताश्वादवरुह्य याना-
दन्तर्मनाः कुरुषु प्राद्रवत्सु ।
दिव्ये चास्त्रे मायया वध्यमाने
नैवामुह्यच्चिन्तयन् प्राप्तकालम् ॥ ४७ ॥

तब कर्ण उस अश्वहीन रथसे उतरकर मनको एकाग्र करके कुछ सोचने लगा । उस समय सारे कौरव सैनिक भाग रहे थे । उसके दिव्यास्त्र भी घटोत्कचकी मायासे नष्ट होते जा रहे थे, तो भी वह समयोचित कर्तव्यका चिन्तन करता हुआ मोहमें नहीं पड़ा ॥ ४७ ॥

ततोऽब्रुवन् कुरवः सर्व एव
कर्णं दृष्ट्वा घोररूपां च मायाम् ।
शक्त्या रक्षो जहि कर्णाद्य तूर्णं
नश्यन्त्येते कुरवो धार्तराष्ट्राः ॥ ४८ ॥

तत्पश्चात् राक्षसकी उस भयंकर मायाको देखकर सभी कौरव कर्णसे इस प्रकार बोले—'कर्ण ! तुम आज (इन्द्रकी दी हुई) शक्तिसे तुरंत इस राक्षसको मार डालो, नहीं तो ये धृतराष्ट्रके पुत्र और कौरव नष्ट होते जा रहे हैं ॥ ४८ ॥

करिष्यतः किञ्च नो भीमपार्थौ
तपन्तमेनं जहि पापं निशीथे ।
यो नः संग्रामाद् घोररूपाद् विमुच्येत्
स नः पार्थान् सबलान् योधयेत॥ ४९॥

'भीमसेन और अर्जुन हमारा क्या कर लेंगे ? आधी रातके समय संताप देनेवाले इस पापी राक्षसको मार डालो । हममेंसे जो भी इस भयानक संग्रामसे छुटकारा पायेगा वही सेनासहित पाण्डवोंके साथ युद्ध करेगा ॥ ४९ ॥

तस्मादेनं राक्षसं घोररूपं
शक्त्या जहि त्वं दत्तया वासवेन ।
मा कौरवाः सर्व एवेन्द्रकल्पा
रात्रियुद्धे कर्ण नेशुः सयोधाः ॥ ५० ॥

'इसलिये तुम इन्द्रकी दी हुई शक्तिसे इस घोर रूपधारी राक्षसको मार डालो । कर्ण ! कहीं ऐसा न हो कि ये इन्द्रके समान पराक्रमी समस्त कौरव रात्रियुद्धमें अपने योद्धाओंके साथ नष्ट हो जायँ' ॥ ५० ॥

स वध्यमानो रक्षसा वै निशीथे
दृष्ट्वा राजंस्त्रास्यमानं बलं च ।
महच्छ्रुत्वा निनदं कौरवाणां
मतिं दध्रे शक्तिमोक्षाय कर्णः ॥ ५१ ॥

राजन् ! निशीथकालमें राक्षसके प्रहारसे घायल होते हुए कर्णने अपनी सेनाको भयभीत देख कौरवोंका महान् आर्तनाद सुनकर घटोत्कचपर शक्ति छोड़नेका निश्चय कर लिया ॥५१॥

स वै क्रुद्धः सिंह इवात्यमर्षी
नामर्षयत् प्रतिघातं रणेऽसौ ।
शक्तिं श्रेष्ठां वैजयन्तीमसह्यां
समाददे तस्य वधं चिकीर्षन् ॥ ५२ ॥

क्रोधमें भरे हुए सिंहके समान अत्यन्त अमर्षशील कर्ण रणभूमिमें घटोत्कचद्वारा अपने अस्त्रोंका प्रतिघात न सह सका । उसने उस राक्षसका वध करनेकी इच्छासे श्रेष्ठ एवं असह्य वैजयन्तीनामक शक्तिको हाथमें लिया ॥ ५२ ॥

यासौ राजन्निहिता वर्षपूगान्
वधायाजौ सत्कृता फाल्गुनस्य ।
यां वै प्रादात् सूतपुत्राय शक्रः
शक्तिं श्रेष्ठां कुण्डलाभ्यां निमाय ॥ ५३॥
तां वै शक्तिं लेलिहानां प्रदीप्तां
पाशैर्युक्तामन्तकस्येव जिह्वाम् ।
मृत्योः स्वसारं ज्वलितामिवोल्कां
वैकर्तनः प्राहिणोद् राक्षसाय ॥ ५४ ॥

राजन् ! जिसे उसने युद्धमें अर्जुनका वध करनेके लिये कितने ही वर्षोंसे सत्कारपूर्वक रख छोड़ा था, जिस श्रेष्ठ शक्तिको इन्द्रने सूतपुत्र कर्णके हाथमें उसके दोनों कुण्डलोंके बदलेमें दिया था, जो सबको चाट जानेके लिये उद्यत हुई यमराजके जिह्वाके समान जान पड़ती थी तथा जो मृत्युकी सगी बहिन एवं जलती हुई उल्काके समान प्रतीत होती थी, उसी पाशोंसे युक्त, प्रज्वलित दिव्य शक्तिको सूर्यपुत्र कर्णने राक्षस घटोत्कचपर चला दिया ॥ ५३-५४ ॥



तामुत्तमां परकायावहन्त्रीं
दृष्ट्वा शक्तिं बाहुसंस्थां ज्वलन्तीम् ।
भीतं रक्षो विप्रदुद्राव राजन्
कृत्वाऽऽत्मानं विन्ध्यतुल्यप्रमाणम्॥५५॥

राजन्! दूसरेके शरीरको विदीर्ण कर डालनेवाली उस उत्तम एवं प्रज्वलित शक्तिको कर्णके हाथमें देखकर भयभीत हुआ राक्षस घटोत्कच अपने शरीरको विन्ध्य पर्वतके समान विशाल बनाकर भागा ॥ ५५ ॥

दृष्ट्वा शक्तिं कर्णबाह्वन्तरस्थां
नेदुर्भूतान्यन्तरिक्षे नरेन्द्र।
ववुर्वातास्तुमुलाश्चापि राजन्
सनिर्घाता चाशनिर्गां जगाम ॥ ५६ ॥

नरेन्द्र! कर्णके हाथमें उस शक्तिको स्थित देख आकाशके प्राणी भयसे कोलाहल करने लगे। राजन्! उस समय भयंकर आँधी चलने लगी और घोर गड़गड़ाहटके साथ पृथ्वीपर वज्रपात हुआ ॥ ५६ ॥

सा तां मायां भस्म कृत्वा ज्वलन्ती
भित्त्वा गाढं हृदयं राक्षसस्य।
ऊर्ध्वं ययौ दीप्यमाना निशायां
नक्षत्राणामन्तराण्याविवेश ॥ ५७ ॥

वह प्रज्वलित शक्ति राक्षस घटोत्कचकी उस मायाको भस्म करके उसके वक्षःस्थलको गहराईतक चीरकर रात्रिके समय प्रकाशित होती हुई ऊपरको चली गयी और नक्षत्रोंमें जाकर विलीन हो गयी ॥ ५७ ॥

स निर्भिन्नो विविधैरस्त्रपूगै-
र्दिव्यैर्नागैर्मानुषै राक्षसैश्च।
नदन् नादान् विविधान् भैरवांश्च
प्राणानिष्टांस्त्याजितः शक्रशक्त्या ॥५८॥

घटोत्कचका शरीर पहलेसे ही दिव्य नाग, मनुष्य और राक्षससम्बन्धी नाना प्रकारके अस्त्र-समूहोंद्वारा छिन्न-भिन्न हो गया था। वह विविध प्रकारसे भयंकर आर्तनाद करता हुआ इन्द्रशक्तिके प्रभावसे अपने प्यारे प्राणोंसे वञ्चित हो गया ॥

इदं चान्यच्चित्रमाश्चर्यरूपं
चकारासौ कर्म शत्रुक्षयाय।
तस्मिन् काले शक्तिनिर्भिन्नमर्मा
बभौ राजञ्शैलमेघप्रकाशः ॥ ५९ ॥

राजन्! मरते समय उसने शत्रुओंका संहार करनेके लिये यह दूसरा विचित्र एवं आश्चर्ययुक्त कर्म किया। यद्यपि शक्तिके प्रहारसे उसके मर्मस्थल विदीर्ण हो चुके थे तो भी वह अपना शरीर बढ़ाकर पर्वत और मेघके समान लंबा-चौड़ा प्रतीत होने लगा ॥ ५९ ॥

ततोऽन्तरिक्षादपतद् गतासुः
स राक्षसेन्द्रो भुवि भिन्नदेहः।
अवाक्शिराः स्तब्धगात्रो विजिह्वो
घटोत्कचो महदास्थाय रूपम् ॥ ६० ॥

इस प्रकार विशाल रूप धारण करके विदीर्ण शरीरवाला राक्षसराज घटोत्कच नीचे सिर करके प्राणशून्य हो आकाशसे पृथ्वीपर गिर पड़ा। उस समय उसका अंग-अंग अकड़ गया था और जीभ बाहर निकल आयी थी ॥ ६० ॥

स तद् रूपं भैरवं भीमकर्मा
भीमं कृत्वा भैमसेनिः पपात।
हतोऽप्येवं तव सैन्यैकदेश-
मपोथयत् स्वेन देहेन राजन् ॥ ६१ ॥

महाराज! भयंकर कर्म करनेवाला भीमसेनपुत्र घटोत्कच अपना वह भीषण रूप बनाकर नीचे गिरा। इस प्रकार मरकर भी उसने अपने शरीरसे आपकी सेनाके एक भागको कुचलकर मार डाला ॥ ६१ ॥

पतद् रक्षः स्वेन कायेन तूर्ण-
मतिप्रमाणेन विवर्धता च।
प्रियं कुर्वन् पाण्डवानां गतासु-
रक्षौहिणीं तव तूर्णं जघान ॥ ६२ ॥

पाण्डवोंका प्रिय करनेवाले उस राक्षसने प्राणशून्य हो जानेपर भी अपने बढ़ते हुए अत्यन्त विशाल शरीरसे गिरकर आपकी एक अक्षौहिणी सेनाको तुरंत नष्ट कर दिया ॥६२॥



ततो मिश्राः प्राणदन् सिंहनादै-
र्भेर्यः शङ्खा मुरजाश्चानकाश्च।
दग्धां मायां निहतं राक्षसं च
दृष्ट्वा हृष्टाः प्राणदन् कौरवेयाः ॥ ६३ ॥



घटोत्कचने गिरते समय कौरवोंकी एक अक्षौहिणी सेना पीस डाली

तदनन्तर सिंहनादोंके साथ-साथ भेरी, शङ्ख, नगाड़े और आनक आदि बाजे बजने लगे। माया भस्म हुई और राक्षस मारा गया—यह देखकर हर्षमें भरे हुए कौरव सैनिक जोर-जोरसे गर्जना करने लगे ॥ ६३ ॥

ततः कर्णः कुरुभिः पूज्यमानो
यथा शक्रो वृत्रवधे मरुद्भिः।
अन्वारूढस्तव पुत्रस्य यानं
हृष्टश्चापि प्राविशत् तत् स्वसैन्यम् ॥ ६४ ॥

तत्पश्चात् जैसे वृत्रासुरका वध होनेपर देवताओंने इन्द्रका सत्कार किया था, उसी प्रकार कौरवोंसे पूजित होते हुए कर्णने आपके पुत्रके रथपर आरूढ़ हो बड़े हर्षके साथ अपनी उस सेनामें प्रवेश किया ॥ ६४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे घटोत्कचवधे एकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके समय घटोत्कचका वधविषयक एक सौ उन्यासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७९ ॥

अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

घटोत्कचके वधसे पाण्डवोंका शोक तथा श्रीकृष्णकी प्रसन्नता और उसका कारण

संजय उवाच

हैडिम्बिं निहतं दृष्ट्वा विशीर्णमिव पर्वतम्।
बभूवुः पाण्डवाः सर्वे शोकबाष्पाकुलेक्षणाः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! जैसे पर्वत ढह गया हो, उसी प्रकार हिडिम्बाकुमार घटोत्कचको मारा गया देख समस्त पाण्डवोंके नेत्रोंमें शोकके आँसू भर आये ॥ १ ॥

वासुदेवस्तु हर्षेण महताभिपरिप्लुतः।
ननाद सिंहनादं वै पर्यष्वजत फाल्गुनम् ॥ २ ॥

परंतु वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण बड़े हर्षमें मग्न होकर सिंहनाद करने लगे। उन्होंने अर्जुनको छातीसे लगा लिया ॥ २ ॥

स विनद्य महानादमभीषून् संनियम्य च।
ननर्त हर्षसंवीतो वातोद्धूत इव द्रुमः ॥ ३ ॥

वे बड़े जोरसे गर्जना करके घोड़ोंकी रास रोककर हवाके हिलाये हुए वृक्षके समान हर्षसे झूमकर नाचने लगे ॥ ३ ॥

ततः परिष्वज्य पुनः पार्थमास्फोट्य चासकृत्।
रथोपस्थगतो धीमान् प्राणदत् पुनरच्युतः ॥ ४ ॥

तत्पश्चात् पुनः अर्जुनको हृदयसे लगाकर बारंबार उनकी पीठ ठोंककर रथके पिछले भागमें बैठे हुए बुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्ण फिर जोर-जोरसे गर्जना करने लगे ॥ ४ ॥

प्रहृष्टमनसं ज्ञात्वा वासुदेवं महाबलः।
अर्जुनोऽथाब्रवीद् राजन्नातिहृष्टमना इव ॥ ५ ॥

राजन्! भगवान् श्रीकृष्णके मनमें अधिक प्रसन्नता हुई जानकर महाबली अर्जुन कुछ अप्रसन्न-से होकर बोले— ॥ ५ ॥

अतिहर्षोऽयमस्थाने तवाद्य मधुसूदन।
शोकस्थाने तु सम्प्राप्ते हैडिम्बस्य वधेन तु ॥ ६ ॥

'मधुसूदन! हिडिम्बाकुमार घटोत्कचके वधसे आज हमारे लिये तो शोकका अवसर प्राप्त हुआ है, परंतु आपको यह बेमौके अधिक हर्ष हो रहा है ॥ ६ ॥

विमुखानीह सैन्यानि हतं दृष्ट्वा घटोत्कचम्।
वयं च भृशमुद्विग्ना हैडिम्बेस्तु निपातनात् ॥ ७ ॥

'घटोत्कचको मारा गया देख हमारी सेनाएँ यहाँ युद्धसे विमुख होकर भागी जा रही हैं। हिडिम्बाकुमारके धराशायी होनेसे हमलोग भी अत्यन्त उद्विग्न हो उठे हैं ॥ ७ ॥

नैतत्कारणमल्पं हि भविष्यति जनार्दन।
तदद्य शंस मे पृष्टः सत्यं सत्यवतां वर ॥ ८ ॥

'परंतु जनार्दन! आपको जो इतनी खुशी हो रही है उसका कोई छोटा-मोटा कारण न होगा। वही मैं आपसे पूछता हूँ। सत्यवक्ताओंमें श्रेष्ठ प्रभो! आप इसका मुझे यथार्थ कारण बताइये ॥ ८ ॥

यद्येतन्न रहस्यं ते वक्तुमर्हस्यरिंदम।
धैर्यस्य वैकृतं ब्रूहि त्वमद्य मधुसूदन ॥ ९ ॥

'शत्रुदमन! यदि कोई गोपनीय बात न हो तो मुझे अवश्य बतावें। मधुसूदन! आपके इस हर्ष-प्रदर्शनसे आज हमारा धैर्य छूटा जा रहा है, अतः आप इसका कारण अवश्य बतावें ॥ ९ ॥

समुद्रस्येव संशोषं मेरोरिव विसर्पणम्।
तथैतदद्य मन्येऽहं तव कर्म जनार्दन ॥ १० ॥

'जनार्दन! जैसे समुद्रका सूखना और मेरु पर्वतका विचलित होना आश्चर्यकी बात है, उसी प्रकार आज मैं आपके इस हर्षप्रकाशनरूपी कर्मको आश्चर्यजनक मानता हूँ' ॥

श्रीवासुदेव उवाच

अतिहर्षमिमं प्राप्तं शृणु मे त्वं धनंजय।
अतीव मनसः सद्यः प्रसादकरमुत्तमम् ॥ ११ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—धनंजय! आज वास्तवमें मुझे यह अत्यन्त हर्षका अवसर प्राप्त हुआ है, इसका क्या कारण है, यह तुम मुझसे सुनो। मेरे मनको तत्काल अत्यन्त प्रसन्नता प्रदान करनेवाला वह उत्तम कारण इस प्रकार है ॥

शक्तिं घटोत्कचेनेमां व्यंसयित्वा महाद्युते।
कर्णं निहतमेवाजौ विद्धि सद्यो धनंजय ॥ १२ ॥

महातेजस्वी धनंजय ! इन्द्रकी दी हुई शक्तिको घटोत्कचके द्वारा कर्णके हाथसे दूर कराकर अब तुम युद्धमें कर्णको शीघ्र मरा हुआ ही समझो ॥ १२ ॥

शक्तिहस्तं पुनः कर्णं को लोकेऽस्ति पुमानिह।
य एनमभितस्तिष्ठेत् कार्तिकेयमिवाहवे ॥ १३ ॥

इस संसारमें कौन ऐसा पुरुष है, जो युद्धस्थलमें कार्तिकेयके समान शक्तिशाली कर्णके सामने खड़ा हो सके ॥ १३ ॥

दिष्ट्यापनीतकवचो दिष्ट्यापहृतकुण्डलः।
दिष्ट्या सा व्यंसिता शक्तिरमोघास्य घटोत्कचे ॥ १४ ॥

सौभाग्यकी बात है कि कर्णका दिव्य कवच उतर गया, सौभाग्यसे ही उसके कुण्डल छीने गये तथा सौभाग्यसे ही उसकी वह अमोघशक्ति घटोत्कचपर गिरकर उसके हाथसे निकल गयी ॥ १४ ॥

यदि हि स्यात् सकवचस्तथैव स्यात् सकुण्डलः।
सामरानपि लोकांस्त्रीनेकः कर्णो जयेद् रणे ॥ १५ ॥

यदि कर्ण कवच और कुण्डलोंसे सम्पन्न होता तो वह अकेला ही रणभूमिमें देवताओंसहित तीनों लोकोंको जीत सकता था ॥ १५ ॥

वासवो वा कुबेरो वा वरुणो वा जलेश्वरः।
यमो वा नोत्सहेत् कर्णं रणे प्रतिसमासितुम् ॥ १६ ॥

उस अवस्थामें इन्द्र, कुबेर, जलेश्वर वरुण अथवा यमराज भी रणभूमिमें कर्णका सामना नहीं कर सकते थे ॥

गाण्डीवमुद्यम्य भवांश्चक्रं चाहं सुदर्शनम्।
न शक्तौ स्वो रणे जेतुं तथायुक्तं नरर्षभम् ॥ १७ ॥

तुम गाण्डीव उठाकर और मैं सुदर्शन चक्र लेकर दोनों एक साथ जाते तो भी समराङ्गणमें कवच-कुण्डलोंसे युक्त नरश्रेष्ठ कर्णको नहीं जीत सकते थे ॥ १७ ॥

त्वद्धितार्थं तु शक्रेण मायापहृतकुण्डलः।
विहीनकवचश्चायं कृतः परपुरंजयः ॥ १८ ॥

तुम्हारे हितके लिये इन्द्रने शत्रु-नगरीपर विजय पानेवाले कर्णके दोनों कुण्डल मायासे हर लिये और उसे कवचसे भी वञ्चित कर दिया ॥ १८ ॥

उत्कृत्य कवचं यस्मात् कुण्डले विमले च ते।
प्रादाच्छक्राय कर्णो वै तेन वैकर्तनः स्मृतः ॥ १९ ॥

कर्णने कवच तथा उन निर्मल कुण्डलोंको स्वयं ही अपने शरीरसे कुतरकर इन्द्रको दे दिया था; इसीलिये उसका नाम वैकर्तन हुआ ॥ १९ ॥

आशीविष इव क्रुद्धो जृम्भितो मन्त्रतेजसा।
तथाद्य भाति कर्णो मे शान्तज्वाल इवानलः ॥ २० ॥

जैसे क्रोधमें भरे हुए सर्पको मन्त्रके तेजसे स्तब्ध कर दिया जाय तथा प्रज्वलित आगकी ज्वालाको बुझा दिया जाय, शक्तिसे वञ्चित हुआ कर्ण भी आज मुझे वैसा ही प्रतीत होता है ॥ २० ॥

यदाप्रभृति कर्णाय शक्तिर्दत्ता महात्मना।
वासवेन महाबाहो क्षिप्ता यासौ घटोत्कचे ॥ २१ ॥
कुण्डलाभ्यां निमायाथ दिव्येन कवचेन च।
तां प्राप्यामन्यत वृषः सततं त्वां हतं रणे ॥ २२ ॥

महाबाहो ! जबसे महात्मा इन्द्रने कर्णको उसके दिव्य कवच और कुण्डलोंके बदलेमें अपनी शक्ति दी थी, जिसे उसने घटोत्कचपर चला दिया है, उस शक्तिको पाकर धर्मात्मा कर्ण सदा तुम्हें रणभूमिमें मारा गया ही मानता था॥

एवंगतोऽपि शक्योऽयं हन्तुं नान्येन केनचित्।
ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र शपे सत्येन चानघ ॥ २३ ॥

पुरुषसिंह ! आज ऐसी अवस्थामें आकर भी कर्ण तुम्हारे सिवा किसी दूसरे योद्धासे नहीं मारा जा सकता। अनघ! मैं सत्यकी शपथ खाकर यह बात कहता हूँ ॥ २३ ॥

ब्रह्मण्यः सत्यवादी च तपस्वी नियतव्रतः।
रिपुष्वपि दयावांश्च तस्मात् कर्णो वृषः स्मृतः ॥ २४ ॥

कर्ण ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी, तपस्वी, नियम और व्रतका पालक तथा शत्रुओंपर भी दया करनेवाला है; इसीलिये उसे वृष (धर्मात्मा) कहा गया है ॥ २४ ॥

युद्धशौण्डो महाबाहुर्नित्योद्यतशरासनः।
केसरीव वने नर्दन् मातङ्ग इव यूथपान् ॥ २५ ॥
विमदान् रथशार्दूलान् कुरुते रणमूर्धनि।

महाबाहु कर्ण युद्धमें कुशल है। उसका धनुष सदा उठा ही रहता है। वनमें दहाड़नेवाले सिंहके समान वह सदा गर्जता रहता है। जैसे मतवाला हाथी कितने ही यूथपतियोंको मदरहित कर देता है, उसी प्रकार कर्ण युद्धके मुहानेपर सिंहके समान पराक्रमी महारथियोंका भी घमंड चूर कर देता है ॥ २५½ ॥

मध्यं गत इवादित्यो यो न शक्यो निरीक्षितुम् ॥ २६ ॥
त्वदीयैः पुरुषव्याघ्र योधमुख्यैर्महात्मभिः।
शरजालसहस्रांशुः शरदीव दिवाकरः ॥ २७ ॥

पुरुषसिंह ! तुम्हारे महामनस्वी श्रेष्ठ योद्धा दोपहरके तपते हुए सूर्यकी भाँति कर्णकी ओर देख भी नहीं सकते। जैसे शरद्‌ऋतुके निर्मल आकाशमें सूर्य अपनी सहस्रों किरणें बिखेरता है, उसी प्रकार कर्ण युद्धमें अपने बाणोंका जाल-सा बिछा देता है ॥ २६-२७ ॥

तपान्ते जलदो यद्वच्छरधाराः क्षरन् मुहुः।
दिव्यास्त्रजलदः कर्णः पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ २८ ॥

जैसे वर्षाकालमें बरसनेवाला मेघ पानीकी धारा गिराता है, उसी प्रकार दिव्यास्त्ररूपी जल प्रदान करनेवाला कर्णरूपी मेघ बारंबार बाणधाराकी वर्षा करता रहता है ॥ २८ ॥

त्रिदशैरपि चास्यद्भिः शरवर्षं समन्ततः ।
अशक्यस्तदयं जेतुं स्रवद्भिर्मांसशोणितम् ॥ २९ ॥

चारों ओर बाणोंकी वृष्टि करके शत्रुओंके शरीरोंसे रक्त और मांस बहानेवाले देवता भी कर्णको परास्त नहीं कर सकते॥

कवचेन विहीनश्च कुण्डलाभ्यां च पाण्डव ।
सोऽद्य मानुषतां प्राप्तो विमुक्तः शक्रदत्तया ॥ ३० ॥

पाण्डुनन्दन ! कर्ण कवच और कुण्डलसे हीन तथा इन्द्रकी दी हुई शक्तिसे शून्य होकर अब साधारण मनुष्यके समान हो गया है ॥ ३० ॥

एको हि योगोऽस्य भवेद् वधाय
च्छिद्रे ह्येनं स्वप्रमत्तः प्रमत्तम् ।
कृच्छ्रं प्राप्तं रथचक्रे विमग्ने
हन्याः पूर्वं त्वं तु संज्ञां विचार्य ॥ ३१ ॥

इतनेपर भी इसके वधका एक ही उपाय है । कोई छिद्र प्राप्त होनेपर जब वह असावधान हो, तुम्हारे साथ युद्ध होते समय जब कर्णके रथका पहिया (शापवश) धरतीमें धँस जाय और वह संकटमें पड़ जाय, उस समय तुम पूर्ण सावधान हो मेरे संकेतपर ध्यान देकर उसे पहले ही मार डालना॥

न ह्युद्यतास्त्रं युधि हन्यादजय्य-
मप्येकवीरो बलभित् सवज्रः ।
जरासंधश्चेदिराजो महात्मा
महाबाहुश्चैकलव्यो निषादः ॥ ३२ ॥
एकैकशो निहताः सर्व एते
योगैस्तैस्तैस्त्वद्धितार्थं मयैव ।

अन्यथा जब वह युद्धके लिये अस्त्र उठा लेगा, उस समय उस अजेय वीर कर्णको त्रिलोकीके एकमात्र शूरवीर वज्रधारी इन्द्र भी नहीं मार सकेंगे । मगधराज जरासंध, महामनस्वी चेदिराज शिशुपाल और निषादजातीय महाबाहु एकलव्य—इन सबको मैंने ही तुम्हारे हितके लिये विभिन्न उपायोंद्वारा एक-एक करके मार डाला है ॥ ३२½ ॥

अथापरे निहता राक्षसेन्द्रा
हिडिम्बकिर्मीरबकप्रधानाः ।
अलायुधः परचक्रावमर्दी
घटोत्कचश्चोग्रकर्मा तरस्वी ॥ ३३ ॥

इनके सिवा हिडिम्ब, किर्मीर और बक आदि दूसरे-दूसरे राक्षसराज, शत्रुदलका संहार करनेवाला अलायुध और भयंकर कर्म करनेवाला वेगशाली घटोत्कच भी तुम्हारे हितके लिये ही मारे और मरवाये गये हैं ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे घटोत्कचवधे श्रीकृष्णहर्षे ऽशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके समय घटोत्कचका वध होनेपर श्रीकृष्णका हर्षविषयक एक सौ अस्सीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८० ॥

एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्णका अर्जुनको जरासंध आदि धर्मद्रोहियोंके वध करनेका कारण बताना

अर्जुन उवाच

कथमस्मद्धितार्थं ते कैश्च योगैर्जनार्दन ।
जरासंधप्रभृतयो घातिताः पृथिवीश्वराः ॥ १ ॥

अर्जुनने पूछा—जनार्दन ! आपने हमलोगोंके हितके लिये कैसे किन-किन उपायोंसे जरासंध आदि राजाओंका वध कराया है ? ॥ १ ॥

श्रीवासुदेव उवाच

जरासंधश्चेदिराजो नैषादिश्च महाबलः ।
यदि स्युर्न हताः पूर्वमिदानीं स्युर्भयंकराः ॥ २ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—अर्जुन ! जरासंध, शिशुपाल और महाबली एकलव्य यदि ये पहले ही मारे न गये होते तो इस समय बड़े भयंकर सिद्ध होते ॥ २ ॥

दुर्योधनस्तानवश्यं वृणुयाद् रथसत्तमान् ।
तेऽस्मासु नित्यविद्विष्टाः संश्रयेयुश्च कौरवान् ॥ ३ ॥

दुर्योधन उन श्रेष्ठ रथियोंसे अपनी सहायताके लिये अवश्य प्रार्थना करता और वे हमसे सर्वदा द्वेष रखनेके कारण निश्चय ही कौरवोंका पक्ष लेते ॥ ३ ॥

ते हि वीरा महेष्वासाः कृतास्त्रा दृढयोधिनः ।
धार्तराष्ट्रीं चमूं कृत्स्नां रक्षेयुरमरा इव ॥ ४ ॥

वे वीर महाधनुर्धर, अस्त्रविद्याके ज्ञाता तथा दृढ़तापूर्वक युद्ध करनेवाले थे; अतः दुर्योधनकी सारी सेनाकी देवताओंके समान रक्षा कर सकते थे ॥ ४ ॥

सूतपुत्रो जरासंधश्चेदिराजो निषादजः ।
सुयोधनं समाश्रित्य जयेयुः पृथिवीमिमाम् ॥ ५ ॥

सूतपुत्र कर्ण, जरासंध, चेदिराज शिशुपाल और निषादनन्दन एकलव्य—ये चारों मिलकर यदि दुर्योधनका पक्ष लेते तो इस पृथ्वीको अवश्य ही जीत लेते ॥ ५ ॥

योगैरपि हता यैस्ते तन्मे शृणु धनंजय ।
अजय्या हि विना योगैर्मृधे ते दैवतैरपि ॥ ६ ॥

धनंजय ! वे जिन उपायोंसे मारे गये हैं, उन्हें बतलाता हूँ, मुझसे सुनो। बिना उपाय किये तो उन्हें युद्धमें देवता भी नहीं जीत सकते थे ॥ ६ ॥

एकैको हि पृथक् तेषां समस्तां सुरवाहिनीम्।
योधयेत् समरे पार्थ लोकपालाभिरक्षिताम् ॥ ७ ॥

कुन्तीनन्दन ! उनमेंसे अलग-अलग एक-एक वीर ऐसा था, जो लोकपालोंसे सुरक्षित समस्त देवसेनाके साथ समराङ्गणमें अकेला ही युद्ध कर सकता था ॥ ७ ॥

जरासंधो हि रुषितो रौहिणेयप्रधर्षितः।
अस्मद्वधार्थं चिक्षेप गदां वै सर्वघातिनीम् ॥ ८ ॥

एक समयकी बात है, रोहिणीनन्दन बलरामजीने युद्धमें जरासंधको पछाड़ दिया था। इससे कुपित होकर जरासंधने हमलोगोंके वधके लिये अपनी सर्वघातिनी गदाका प्रहार किया ॥ ८ ॥

सीमन्तमिव कुर्वाणा नभसः पावकप्रभा।
अदृश्यतापतन्ती सा शक्रमुक्ता यथाशनिः ॥ ९ ॥

अग्निके समान प्रज्वलित वह गदा इन्द्रके चलाये हुए वज्रकी भाँति आकाशमें सीमन्त-रेखा-सी बनाती हुई वहाँ गिरती दिखायी दी ॥ ९ ॥

तामापतन्तीं दृष्ट्वैव गदां रोहिणिनन्दनः।
प्रतिघातार्थमस्त्रं वै स्थूणाकर्णमवासृजत् ॥ १० ॥

वहाँ गिरती हुई उस गदाको देखते ही उसके प्रतिघात (निवारण) के लिये रोहिणीनन्दन बलरामजीने स्थूणाकर्ण नामक अस्त्रका प्रयोग किया ॥ १० ॥

अस्त्रवेगप्रतिहता सा गदा प्रापतद् भुवि।
दारयन्ती धरां देवीं कम्पयन्तीव पर्वतान् ॥ ११ ॥

उस अस्त्रके वेगसे प्रतिहत होकर वह गदा पृथ्वीदेवीको विदीर्ण करती और पर्वतोंको कँपाती हुई-सी भूतलपर गिर पड़ी ॥ ११ ॥

तत्र सा राक्षसी घोरा जरानाम्नी सुविक्रमा।
संदधे सा हि संजातं जरासंधमरिंदमम् ॥ १२ ॥

जिस स्थानपर गदा गिरी, वहाँ उत्तम बल-पराक्रमसे सम्पन्न जरा नामक एक भयंकर राक्षसी रहती थी। उसीने जन्मके पश्चात् शत्रुदमन जरासंधके शरीरको जोड़ा था॥१२॥

द्वाभ्यां जातो हि मातृभ्यामर्धदेहः पृथक् पृथक्।
जरया संधितो यस्माज्जरासंधस्ततोऽभवत् ॥ १३ ॥

उसका आधा-आधा शरीर अलग-अलग दो माताओंके पेटसे पैदा हुआ था। जराने उसे जोड़ा था; इसीलिये उसका नाम जरासंध हुआ ॥ १३ ॥

सा तु भूमिं गता पार्थ हता ससुतबान्धवा।
गदया तेन चास्त्रेण स्थूणाकर्णेन राक्षसी ॥ १४ ॥

पार्थ ! भूमिके भीतर रहनेवाली वह राक्षसी उस गदासे तथा स्थूणाकर्ण नामक अस्त्रके आघातसे पुत्र और बन्धु-बान्धवोंसहित मारी गयी ॥ १४ ॥

विनाभूतः स गदया जरासंधो महामृधे।
निहतो भीमसेनेन पश्यतस्ते धनंजय ॥ १५ ॥

धनंजय ! उस महासमरमें जरासंध बिना गदाके हो गया था; इसीलिये तुम्हारे देखते-देखते भीमसेनने उसे मार डाला ॥ १५ ॥

यदि हि स्याद् गदापाणिर्जरासंधः प्रतापवान्।
सेन्द्रा देवा न तं हन्तुं रणे शक्ता नरोत्तम ॥ १६ ॥

नरश्रेष्ठ ! यदि प्रतापी जरासंधके हाथमें वह गदा होती तो इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी उसे युद्धमें मार नहीं सकते थे ॥ १६ ॥

त्वद्धितार्थं च नैषादिरङ्गुष्ठेन वियोजितः।
द्रोणेनाचार्यकं कृत्वा छद्मना सत्यविक्रमः ॥ १७ ॥

तुम्हारे हितके लिये ही द्रोणाचार्यने सत्यपराक्रमी एकलव्यका आचार्यत्व करके छलपूर्वक उसका अँगूठा कटवा दिया था ॥ १७ ॥

स तु बद्धाङ्गुलित्राणो नैषादिर्दृढविक्रमः।
अतिमानी वनचरो बभौ राम इवापरः ॥ १८ ॥

सुदृढ़ पराक्रमसे सम्पन्न अत्यन्त अभिमानी एकलव्य जब हाथोंमें दस्ताने पहनकर वनमें विचरता, उस समय दूसरे परशुरामके समान जान पड़ता था ॥ १८ ॥

एकलव्यं हि साङ्गुष्ठमशक्ता देवदानवाः।
सराक्षसोरगाः पार्थ विजेतुं युधि कर्हिचित् ॥ १९ ॥

कुन्तीकुमार ! यदि एकलव्यका अँगूठा सुरक्षित होता तो देवता, दानव, राक्षस और नाग—ये सब मिलकर भी युद्धमें उसे कभी परास्त नहीं कर सकते थे ॥ १९ ॥

किमु मानुषमात्रेण शक्यः स्यात् प्रतिवीक्षितुम्।
दृढमुष्टिः कृती नित्यमस्यमानो दिवानिशम् ॥ २० ॥

फिर कोई मनुष्यमात्र तो उसकी ओर देख ही कैसे सकता था ? उसकी मुट्ठी मजबूत थी। वह अस्त्र-विद्याका विद्वान् था और सदा दिन-रात बाण चलानेका अभ्यास करता था ॥ २० ॥

त्वद्धितार्थं तु स मया हतः संग्राममूर्धनि।
चेदिराजश्च विक्रान्तः प्रत्यक्षं निहतस्तव ॥ २१ ॥

तुम्हारे हितके लिये मैंने ही युद्धके मुहानेपर उसे मार डाला था। पराक्रमी चेदिराज शिशुपाल तो तुम्हारी आँखोंके सामने ही मारा गया था ॥ २१ ॥

स चाप्यशक्यः संग्रामे जेतुं सर्वसुरासुरैः।
वधार्थं तस्य जातोऽहमन्येषां च सुरद्विषाम् ॥ २२ ॥
त्वत्सहायो नरव्याघ्र लोकानां हितकाम्यया।

वह भी संग्राममें सम्पूर्ण देवताओं और असुरोंद्वारा जीता नहीं जा सकता था। नरव्याघ्र! मैं सम्पूर्ण लोकोंके हितके लिये और शिशुपाल एवं अन्य देवद्रोहियोंका वध करनेके लिये ही तुम्हारे साथ इस जगत्‌में अवतीर्ण हुआ हूँ॥

हिडिम्बबककिर्मीरा भीमसेनेन पातिताः॥ २३॥
रावणेन समप्राणा ब्रह्मयज्ञविनाशनाः।

हिडिम्ब, बक और किर्मीर—ये रावणके समान बलवान् थे और ब्राह्मणों तथा यज्ञोंका विनाश किया करते थे। इन तीनोंको भीमसेनने मार गिराया है॥ २३½॥

हतस्तथैव मायावी हैडिम्बेनाप्यलायुधः॥ २४॥
हैडिम्बश्चाप्युपायेन शक्त्या कर्णेन घातितः।

मायावी अलायुध घटोत्कचके हाथसे मारा गया है और घटोत्कचको भी मैंने ही युक्ति लगाकर कर्णकी चलायी हुई शक्तिसे मरवा दिया है॥ २४½॥

यदि ह्येनं नाहनिष्यत् कर्णः शक्त्या महामृधे॥२५॥
मया वध्योऽभविष्यत् स भैमसेनिर्घटोत्कचः।

यदि महासमरमें कर्ण अपनी शक्तिद्वारा भीमसेनपुत्र घटोत्कचको नहीं मारता तो एक दिन मुझे उसका वध करना पड़ता॥ २५½॥

मया न निहतः पूर्वमेष युष्मत्प्रियेप्सया॥ २६॥
एष हि ब्राह्मणद्वेषी यज्ञद्वेषी च राक्षसः।
धर्मस्य लोप्ता पापात्मा तस्मादेष निपातितः॥ २७॥

तुमलोगोंका प्रिय करनेकी इच्छासे ही मैंने इसे पहले नहीं मारा था। यह ब्राह्मणों और यज्ञोंसे द्वेष रखनेवाला तथा धर्मका लोप करनेवाला पापात्मा राक्षस था; इसीलिये इसे मरवा दिया है॥ २६-२७॥

व्यंसिता चाप्युपायेन शक्रदत्ता मयानघ।
ये हि धर्मस्य लोप्तारो वध्यास्ते मम पाण्डव॥ २८॥

निष्पाप पाण्डुनन्दन! इसी उपायसे मैंने इन्द्रकी दी हुई शक्ति भी कर्णके हाथसे दूर कर दी है। धर्मका लोप करनेवाले सभी प्राणी मेरे वध्य हैं॥ २८॥

धर्मसंस्थापनार्थं हि प्रतिज्ञैषा ममाव्यया।
ब्रह्म सत्यं दमः शौचं धर्मो ह्रीः श्रीर्धृतिः क्षमा॥ २९॥
यत्र तत्र रमे नित्यमहं सत्येन ते शपे।

धर्मकी स्थापनाके लिये ही मैंने यह अटल प्रतिज्ञा कर रक्खी है, मैं तुमसे सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ, जहाँ वेद, सत्य, दम, शौच, धर्म, लज्जा, श्री, धृति और क्षमाका निवास है, वहीं मैं सदा सुखपूर्वक रहता हूँ॥ २९½॥

न विषादस्त्वया कार्यः कर्णं वैकर्तनं प्रति॥ ३०॥
उपदेक्ष्याम्युपायं ते येन तं प्रसहिष्यसि।

तुम्हें वैकर्तन कर्णके विषयमें चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है। मैं तुम्हें ऐसा उपाय बताऊँगा, जिससे तुम उसका सामना कर सकोगे॥ ३०½॥

सुयोधनं चापि रणे हनिष्यति वृकोदरः॥ ३१॥
तस्यापि च वधोपायं वक्ष्यामि तव पाण्डव।

पाण्डुनन्दन! युद्धमें दुर्योधनका भी वध भीमसेन करेंगे। उसके वधका उपाय भी मैं तुम्हें बताऊँगा॥ ३१½॥

वर्धते तुमुलस्त्वेष शब्दः परचमूं प्रति॥ ३२॥
विद्रवन्ति च सैन्यानि त्वदीयानि दिशो दश।

शत्रुओंकी सेनामें यह भयंकर गर्जनाका शब्द बढ़ता जा रहा है और तुम्हारे सैनिक दसों दिशाओंमें भाग रहे हैं॥

लब्धलक्ष्या हि कौरव्या विधमन्ति चमूं तव।
दहत्येष च वः सैन्यं द्रोणः प्रहरतां वरः॥ ३३॥

कौरवोंका निशाना अचूक हो रहा है। वे तुम्हारी सेनाका विनाश कर रहे हैं। इधर ये योद्धाओंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य तुम्हारे सैनिकोंको दग्ध किये देते हैं॥ ३३॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे कृष्णवाक्ये एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रि-युद्धके समय श्रीकृष्णका कथनविषयक एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८१॥

द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

कर्णने अर्जुनपर शक्ति क्यों नहीं छोड़ी, इसके उत्तरमें संजयका धृतराष्ट्रसे और श्रीकृष्णका सात्यकिसे रहस्ययुक्त कथन

धृतराष्ट्र उवाच

एकवीरवधे मोघा शक्तिः सूतात्मजे यदा।
कस्मात् सर्वान् समुत्सृज्य स तां पार्थे न मुक्तवान्॥ १॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! कर्णके पास जो शक्ति थी, वह यदि एक ही वीरका वध करके निष्फल हो जानेवाली थी तो उसने सबको छोड़कर अर्जुनपर ही उसका प्रहार क्यों नहीं किया?॥ १॥

तस्मिन् हते हता हि स्युः सर्वे पाण्डवसृञ्जयाः।
एकवीरवधे कस्माद् युद्धे न जयमादधे॥ २॥

अर्जुनके मारे जानेपर समस्त सृंजय और पाण्डव अपने

आप नष्ट हो जाते। अतः एक वीर अर्जुनका ही वध करके उसने युद्धमें क्यों नहीं विजय प्राप्त की ? ॥ २ ॥

आहूतो न निवर्तेयमिति तस्य महाव्रतम्।
स्वयं मार्गयितव्यः स सूतपुत्रेण फाल्गुनः ॥ ३ ॥

अर्जुनका तो यह महान् व्रत ही है कि युद्धमें किसीके बुलानेपर मैं पीछे नहीं लौट सकता; ऐसी दशामें सूतपुत्र कर्णको स्वयं ही अर्जुनकी खोज करनी चाहिये थी ॥ ३ ॥

ततो द्वैरथमानीय फाल्गुनं शक्रदत्तया।
जघान न वृषः कस्मात् तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ४ ॥

संजय ! इस प्रकार अर्जुनको द्वैरथ-युद्धमें लाकर धर्मात्मा कर्णने इन्द्रकी दी हुई शक्तिसे उन्हें क्यों नहीं मार डाला ? यह मुझे बताओ ॥ ४ ॥

नूनं बुद्धिविहीनश्चाप्यसहायश्च मे सुतः।
शत्रुभिर्व्यंसितः पापः कथं नु स जयेदरीन् ॥ ५ ॥

निश्चय ही मेरा पुत्र दुर्योधन बुद्धिहीन और असहाय है। शत्रुओंने उसे ठग लिया। अब वह पापी अपने शत्रुओं-पर कैसे विजय पा सकता है ? ॥ ५ ॥

या ह्यस्य परमा शक्तिर्जयस्य च परायणम्।
सा शक्तिर्वासुदेवेन व्यंसिता च घटोत्कचे ॥ ६ ॥

जो इसकी सबसे बड़ी शक्ति और विजयका आधार-स्तम्भ थी, उस दिव्य शक्तिको घटोत्कचपर चलवाकर श्रीकृष्ण-ने व्यर्थ कर दिया ॥ ६ ॥

कुणेर्यथा हस्तगतं ह्रियेत् फलं बलीयसा।
तथा शक्तिरमोघा सा मोघीभूता घटोत्कचे ॥ ७ ॥

जैसे कोई बलवान् पुरुष लुंजे (टूंटे) के हाथका फल छीन ले, उसी प्रकार श्रीकृष्णने उस अमोघ शक्तिको घटोत्कचपर चलवाकर अन्यत्रके लिये निष्फल कर दिया ॥

यथा वराहस्य शुनश्च युध्यतो-
स्तयोरभावे श्वपचस्य लाभः।
मन्ये विद्वन् वासुदेवस्य तद्वद्
युद्धे लाभः कर्णहैडिम्बयोर्वै ॥ ८ ॥

विद्वन् ! जैसे सूअर और कुत्तेके आपसमें लड़नेपर उन दोनोंमेंसे किसीकी भी मृत्यु हो जाय तो चाण्डालको लाभ ही होता है, उसी प्रकार कर्ण और घटोत्कचके युद्धमें मैं वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णका ही लाभ हुआ मानता हूँ ॥ ८ ॥

घटोत्कचो यदि हन्याद्धि कर्णं
परो लाभः स भवेत् पाण्डवानाम्।
वैकर्तनो वा यदि तं निहन्यात्
तथापि कृत्यं शक्तिनाशात् कृतं स्यात् ॥ ९ ॥

घटोत्कच यदि कर्णको मार देगा तो पाण्डवोंको बहुत बड़ा लाभ होगा और यदि वैकर्तन कर्ण घटोत्कचको मार डालेगा तो भी इन्द्रकी दी हुई शक्तिका नाश हो जानेसे उनका ही प्रयोजन सिद्ध होगा ॥ ९ ॥

इति प्राज्ञः प्रज्ञयैतद् विचिन्त्य
घटोत्कचं सूतपुत्रेण युद्धे।
अघातयद् वासुदेवो नृसिंहः
प्रियं कुर्वन् पाण्डवानां हितं च ॥ १० ॥

मनुष्योंमें सिंहके समान पराक्रमी बुद्धिमान् वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने अपनी बुद्धिसे यही सोचकर पाण्डवोंका प्रिय तथा हित करते हुए युद्धमें सूतपुत्र कर्णके द्वारा घटोत्कचको मरवा दिया ॥ १० ॥

संजय उवाच

एतच्चिकीर्षितं ज्ञात्वा कर्णस्य मधुसूदनः।
नियोजयामास तदा द्वैरथे राक्षसेश्वरम् ॥ ११ ॥
घटोत्कचं महावीर्यं महाबुद्धिर्जनार्दनः।
अमोघाया विघातार्थं राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ १२ ॥

संजयने कहा—राजन् ! कर्ण भी उस शक्तिसे अर्जुनकी ही वध करना चाहता था। उसके इस अभिप्रायको जानकर परम बुद्धिमान् मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्णने उस अमोघ शक्तिको नष्ट करनेके लिये ही कर्णके साथ द्वैरथ युद्धमें उस समय महापराक्रमी राक्षसराज घटोत्कचको लगाया। महाराज ! यह सब आपकी कुमन्त्रणाका ही फल है ॥ ११-१२ ॥

तदैव कृतकार्या हि वयं स्याम कुरूद्वह।
न रक्षेद् यदि कृष्णस्तं पार्थं कर्णान्महारथात् ॥ १३ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! यदि श्रीकृष्ण महारथी कर्णसे कुन्तीकुमार अर्जुनकी रक्षा न करते तो हमलोग उसी समय कृतकार्य हो गये होते ॥ १३ ॥

साश्वध्वजरथः संख्ये धृतराष्ट्र पतेद् भुवि।
विना जनार्दनं पार्थो योगानामीश्वरं प्रभुम् ॥ १४ ॥

महाराज धृतराष्ट्र ! यदि योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण न हों तो अर्जुन घोड़े, ध्वज और रथसहित निश्चय ही युद्धमें धराशायी हो जायँ ॥ १४ ॥

तैस्तैरुपायैर्बहुभी रक्ष्यमाणः स पार्थिव।
जयत्यभिमुखः शत्रून् पार्थः कृष्णेन पालितः ॥ १५ ॥

राजन् ! नाना प्रकारके विभिन्न उपायोंसे श्रीकृष्णद्वारा सुरक्षित रहकर ही अर्जुन सम्मुख युद्धमें शत्रुओंपर विजय पाते हैं ॥ १५ ॥

स विशेषात् त्वमोघायाः कृष्णोऽरक्षत पाण्डवम्।
हन्यात् क्षिप्रं हि कौन्तेयं शक्तिर्वृक्षमिवाशनिः ॥ १६ ॥

श्रीकृष्णने विशेष प्रयत्न करके उस अमोघ शक्तिसे पाण्डुपुत्र अर्जुनकी रक्षा की है, नहीं तो जैसे वज्र गिरकर वृक्षको भस्म कर देता है, उसी प्रकार वह शक्ति कुन्तीकुमार अर्जुनको शीघ्र ही नष्ट कर देती ॥ १६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

विरोधी च कुमन्त्री च प्राज्ञमानी ममात्मजः।
यस्यैव समतिक्रान्तो वधोपायो जयं प्रति ॥ १७ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय ! मेरा पुत्र दुर्योधन सबका विरोधी और अपनेको ही सबसे अधिक बुद्धिमान् समझनेवाला है। उसके मन्त्री भी अच्छे नहीं हैं; इसीलिये अर्जुनके वध और विजय-लाभका यह अमोघ उपाय उसके हाथसे निकल गया है ॥ १७ ॥

स वा कर्णो महाबुद्धिः सर्वशस्त्रभृतां वरः।
न मुक्तवान् कथं सूतताममोघां धनंजये ॥ १८ ॥

सूत ! समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कर्ण तो बड़ा बुद्धिमान् है; उसने स्वयं ही उस अमोघ शक्तिको अर्जुनपर कैसे नहीं छोड़ा ? ॥ १८ ॥

तवापि समतिक्रान्तमेतद् गावल्गणे कथम्।
एतमर्थं महाबुद्धे यत् त्वया नावबोधितः ॥ १९ ॥

परम बुद्धिमान् गवल्गणकुमार ! तुम्हारे ध्यानसे यह बात कैसे निकल गयी कि तुमने कर्णको इसके विषयमें कुछ नहीं समझाया ॥ १९ ॥

संजय उवाच

दुर्योधनस्य शकुनेर्मम दुःशासनस्य च।
रात्रौ रात्रौ भवत्येषा नित्यमेव समर्थना ॥ २० ॥
श्वः सर्वसैन्यान्युत्सृज्य जहि कर्ण धनंजयम्।
प्रेष्यवत् पाण्डुपञ्चालानुपभोक्ष्यामहे ततः ॥ २१ ॥

संजयने कहा—राजन् ! प्रतिदिन रातको दुर्योधन, शकुनि और दुःशासनका तथा मेरा भी कर्णसे यही आग्रह रहता था कि 'कर्ण ! कल सबेरे तुम सारी सेनाओंको छोड़कर अर्जुनको मार डालो। फिर तो पाण्डवों और पाञ्चालोंका हम भृत्योंके समान उपभोग करेंगे ॥ २०-२१ ॥

अथवा निहते पार्थे पाण्डवान्यतमं ततः।
स्थापयेद् यदि वार्ष्णेयस्तस्मात्कृष्णो हि हन्यताम्॥२२॥

'यदि ऐसा सोचो कि अर्जुनके मारे जानेपर श्रीकृष्ण दूसरे किसी पाण्डवको युद्धके लिये खड़ा कर लेंगे तो श्रीकृष्णको ही मार डालो ॥ २२ ॥

कृष्णो हि मूलं पाण्डूनां पार्थः स्कन्ध इवोद्गतः।
शाखा इवेतरे पार्थाः पञ्चालाः पत्रसंज्ञिताः ॥ २३ ॥

'श्रीकृष्ण ही पाण्डवोंकी जड़ हैं, अर्जुन ऊपरके तनेके समान हैं, अन्य कुन्तीपुत्र शाखाएँ हैं तथा पाञ्चाल सैनिक पत्तोंके समान हैं ॥ २३ ॥

कृष्णाश्रयाः कृष्णबलाः कृष्णनाथाश्च पाण्डवाः।
कृष्णः परायणं चैषां ज्योतिषामिव चन्द्रमाः ॥ २४ ॥

'श्रीकृष्ण ही पाण्डवोंके आश्रय, बल और रक्षक हैं। जैसे नक्षत्रोंके परम आश्रय चन्द्रमा हैं, उसी प्रकार इन पाण्डवोंका सबसे बड़ा सहारा श्रीकृष्ण हैं ॥ २४ ॥

तस्मात् पर्णानि शाखाश्च स्कन्धं चोत्सृज्य सूतज।
कृष्णं हि विद्धि पाण्डूनां मूलं सर्वत्र सर्वदा ॥ २५ ॥

'अतः सूतनन्दन ! तुम पत्तों, डालियों और तनेको छोड़कर जड़को ही काट दो। सर्वत्र और सदा श्रीकृष्णको ही पाण्डवोंकी जड़ समझो' ॥ २५ ॥

हन्याद् यदि हि दाशार्हं कर्णो यादवनन्दनम्।
कृत्स्ना वसुमती राजन् वशे तस्य न संशयः ॥ २६ ॥

राजन् ! यदि कर्ण यादवनन्दन श्रीकृष्णको मार डालता, तो यह सारी पृथ्वी उसके वशमें हो जाती, इसमें संशय नहीं है॥

यदि हि स निहतः शयीत भूमौ
यदुकुलपाण्डवनन्दनो महात्मा।
ननु तव वसुधा नरेन्द्र सर्वा
सगिरिसमुद्रवना वशं व्रजेत ॥ २७ ॥

नरेन्द्र ! यदि यदुकुल और पाण्डवोंको आनन्दित करनेवाले महात्मा श्रीकृष्ण उस शक्तिसे मारे जाकर रणभूमिमें सो जाते, तो पर्वत, समुद्र और वनोंसहित यह सारी पृथ्वी आपके वशमें आ जाती ॥ २७ ॥

सा तु बुद्धिः कृताप्येवं जाग्रति त्रिदशेश्वरे।
अप्रमेये हृषीकेशे युद्धकालेऽप्यमुह्यत ॥ २८ ॥

ऐसा निश्चय कर लेनेके बाद भी जब वह युद्धके समय सदा सजग रहनेवाले अप्रमेयस्वरूप देवेश्वर भगवान् श्रीकृष्णके समीप जाता तो उसपर मोह छा जाता था ॥ २८ ॥

अर्जुनं चापि राधेयात् सदा रक्षति केशवः।
न ह्येनमैच्छत् प्रमुखे सौतेः स्थापयितुं रणे ॥ २९ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनको सदा राधानन्दन कर्णसे बचाये रखते थे। उन्होंने रणभूमिमें अर्जुनको सूतपुत्र कर्णके सम्मुख खड़ा करनेकी कभी इच्छा नहीं की ॥ २९ ॥

अन्यांश्चास्मै रथोदारानुपास्थापयदच्युतः।
अमोघां तां कथं शक्तिं मोघां कुर्यामिति प्रभो ॥ ३० ॥

प्रभो ! अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण अन्यान्य महारथियोंको कर्णके पास इसलिये भेजा करते थे कि किसी प्रकार उस अमोघ शक्तिको व्यर्थ कर दूँ॥

यश्चैवं रक्षते पार्थं कर्णात् कृष्णो महामनाः।
आत्मानं स कथं राजन् न रक्षेत् पुरुषोत्तमः ॥ ३१ ॥

राजन् ! जो महामनस्वी पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण कर्णसे अर्जुनकी इस प्रकार रक्षा करते हैं, वे अपनी रक्षा कैसे नहीं करेंगे ? ॥ ३१ ॥

परिचिन्त्य तु पश्यामि चक्रायुधमरिंदमम्।
न सोऽस्ति त्रिषु लोकेषु यो जयेत जनार्दनम् ॥ ३२ ॥

मैं भलीभाँति सोच-विचारकर देखता हूँ तो तीनों लोकोंमें कोई ऐसा वीर उपलब्ध नहीं होता, जो शत्रुओंका दमन करनेवाले चक्रधारी भगवान् श्रीकृष्णको जीत सके ॥ ३२ ॥

ततः कृष्णं महाबाहुं सात्यकिः सत्यविक्रमः।
पप्रच्छ रथशार्दूलः कर्णं प्रति महारथः ॥ ३३ ॥

तदनन्तर रथियोंमें सिंहके समान शूरवीर सत्यपराक्रमी महारथी सात्यकिने महाबाहु श्रीकृष्णसे कर्णके विषयमें इस प्रकार प्रश्न किया—॥ ३३ ॥

अयं च प्रत्ययः कर्णे शक्तिश्चामितविक्रमा।
किमर्थं सूतपुत्रेण न मुक्ता फाल्गुने तु सा ॥ ३४ ॥

'प्रभो ! कर्णको उस शक्तिके प्रभावपर विश्वास तो था ही। वह अमित पराक्रम कर दिखानेवाली दिव्य शक्ति उसके हाथमें मौजूद भी थी, तथापि सूतपुत्रने अर्जुनपर उसका प्रयोग कैसे नहीं किया ?' ॥ ३४ ॥

श्रीवासुदेव उवाच

दुःशासनश्च कर्णश्च शकुनिश्च ससैन्धवः।
सततं मन्त्रयन्ति स्म दुर्योधनपुरोगमाः ॥ ३५ ॥
कर्ण कर्ण महेष्वास रणेऽमितपराक्रम।
नान्यस्य शक्तिरेषा ते मोक्तव्या जयतां वर ॥ ३६ ॥
ऋते महारथात् कर्ण कुन्तीपुत्राद् धनंजयात्।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—सात्यके ! दुःशासन, कर्ण, शकुनि और जयद्रथ—ये दुर्योधनको आगे रखकर सदा गुप्त मन्त्रणा करते और कर्णको यह सलाह देते थे कि 'रणभूमिमें अनन्त पराक्रम प्रकट करनेवाले, विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ महाधनुर्धर कर्ण ! तुम कुन्तीपुत्र महारथी अर्जुनको छोड़कर दूसरे किसीपर इस शक्तिको न छोड़ना ॥ ३५-३६½ ॥

स हि तेषामतियशा देवानामिव वासवः ॥ ३७ ॥
तस्मिन् विनिहते पार्थे पाण्डवाः सृञ्जयैः सह।
भविष्यन्ति गतात्मानः सुरा इव निरग्नयः ॥ ३८ ॥

'क्योंकि देवताओंमें इन्द्रके समान उन पाण्डवोंमें अर्जुन ही सबसे अधिक यशस्वी हैं। अर्जुनके मारे जानेपर संजयोंसहित पाण्डव मुखस्वरूप अग्निसे हीन देवताओंके समान मृतप्राय हो जायँगे' ॥ ३७-३८ ॥

तथेति च प्रतिज्ञातं कर्णेन शिनिपुङ्गव।
हृदि नित्यं च कर्णस्य वधो गाण्डीवधन्वनः ॥ ३९ ॥

शिनिप्रवर ! कर्णने वैसा ही करनेकी उनके सामने प्रतिज्ञा भी की थी। कर्णके हृदयमें नित्य निरन्तर गाण्डीवधारी अर्जुनके वधका संकल्प उठता रहता था ॥ ३९ ॥

अहमेव तु राधेयं मोहयामि युधां वर।
ततो नावासृजच्छक्तिं पाण्डवे श्वेतवाहने ॥ ४० ॥

योद्धाओंमें श्रेष्ठ सात्यके ! परंतु मैं ही राधापुत्र कर्णको मोहित किये रहता था; इसीलिये श्वेतवाहन अर्जुनपर उसने वह शक्ति नहीं छोड़ी ॥ ४० ॥

फाल्गुनस्य हि सा मृत्युरिति चिन्तयतोऽनिशम्।
न निद्रा न च मे हर्षो मनसोऽस्ति युधां वर ॥ ४१ ॥

वीरवर ! वह शक्ति अर्जुनके लिये मृत्युस्वरूप है, इस चिन्तामें निरन्तर डूबे रहनेके कारण न तो मुझे नींद आती थी और न मेरे मनमें कभी हर्षका उदय होता था ॥ ४१ ॥

घटोत्कचे व्यंसितां तु दृष्ट्वा तां शिनिपुङ्गव।
मृत्योरास्यान्तरान्मुक्तं पश्याम्यद्य धनंजयम् ॥ ४२ ॥

शिनिवंशशिरोमणे ! वह शक्ति घटोत्कचपर छोड़ दी गयी, यह देखकर आज मैं यह समझता हूँ कि अर्जुन मौतके मुखसे निकल आये हैं ॥ ४२ ॥

न पिता न च मे माता न यूयं भ्रातरस्तथा।
न च प्राणास्तथा रक्ष्या यथा बीभत्सुराहवे ॥ ४३ ॥

मुझे युद्धमें अर्जुनकी रक्षा जितनी आवश्यक प्रतीत होती है, उतनी पिता, माता, तुम-जैसे भाइयों तथा अपने प्राणोंकी रक्षा भी नहीं प्रतीत होती ॥ ४३ ॥

त्रैलोक्यराज्याद् यत् किंचिद् भवेदन्यत् सुदुर्लभम्।
नेच्छेयं सात्वताहं तद् विना पार्थं धनंजयम् ॥ ४४ ॥

सात्यके ! तीनों लोकोंके राज्यसे भी बढ़कर यदि कोई अत्यन्त दुर्लभ वस्तु हो तो उसे भी मैं कुन्तीनन्दन अर्जुनके बिना नहीं पाना चाहता ॥ ४४ ॥

अतः प्रहर्षः सुमहान् युयुधानाद्य मेऽभवत्।
मृतं प्रत्यागतमिव दृष्ट्वा पार्थं धनंजयम् ॥ ४५ ॥

युयुधान ! इसीलिये जैसे कोई मरकर लौट आया हो उसी प्रकार कुन्तीपुत्र अर्जुनको देखकर आज मुझे बड़ा भारी हर्ष हुआ था ॥ ४५ ॥

अतश्च प्रहितो युद्धे मया कर्णाय राक्षसः।
न ह्यन्यः समरे रात्रौ शक्तः कर्णं प्रबाधितुम् ॥ ४६ ॥

इसी उद्देश्यसे मैंने युद्धमें कर्णका सामना करनेके लिये उस राक्षसको भेजा था। उसके सिवा दूसरा कोई रात्रिके समय समराङ्गणमें कर्णको पीड़ित नहीं कर सकता था ॥ ४६ ॥

संजय उवाच

इति सात्यकये प्राह तदा देवकिनन्दनः।
धनंजयहिते युक्तस्तत्प्रिये सततं रतः ॥ ४७ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! इस प्रकार अर्जुनके हितमें संलग्न और उनके प्रिय साधनमें निरन्तर तत्पर रहनेवाले भगवान् देवकीनन्दनने उस समय सात्यकिसे यह बात कही थी ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे कृष्णवाक्ये द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके समय श्रीकृष्णवाक्यविषयक एक सौ बयासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८२ ॥

त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका पश्चात्ताप, संजयका उत्तर एवं राजा युधिष्ठिरका शोक और भगवान् श्रीकृष्ण तथा महर्षि व्यासद्वारा उसका निवारण

धृतराष्ट्र उवाच

कर्णदुर्योधनादीनां शकुनेः सौबलस्य च।
अपनीतं महत् तात तव चैव विशेषतः ॥ १ ॥
यदि जानीथ तां शक्तिमेकघ्नीं सततं रणे।
अनिवार्यामसह्यां च देवैरपि सवासवैः ॥ २ ॥
सा किमर्थं तु कर्णेन प्रवृत्ते समरे पुरा।
न देवकीसुते मुक्ता फाल्गुने वापि संजय ॥ ३ ॥

धृतराष्ट्र बोले—तात संजय ! कर्ण, दुर्योधन और सुबलपुत्र शकुनिका तथा विशेषतः तुम्हारा इस विषयमें महान् अन्याय है। यदि तुम लोग जानते थे कि यह शक्ति रणभूमिमें सदा किसी एक ही वीरको मार सकती है तथा इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी न तो इसे रोक सकते हैं और न इसका आघात ही सह सकते हैं, तब तुम्हारे सुझानेसे युद्ध आरम्भ होनेपर कर्णने पहले ही देवकीनन्दन श्रीकृष्ण अथवा अर्जुनपर वह शक्ति क्यों नहीं छोड़ी ? ॥ १–३ ॥

संजय उवाच

संग्रामाद् विनिवृत्तानां सर्वेषां नो विशाम्पते।
रात्रौ कुरुकुलश्रेष्ठ मन्त्रोऽयं समजायत ॥ ४ ॥
प्रभातमात्रे श्वोभूते केशवायार्जुनाय वा।
शक्तिरेषा हि मोक्तव्या कर्ण कर्णेति नित्यशः ॥ ५ ॥

संजयने कहा—प्रजानाथ ! कुरुकुलश्रेष्ठ ! प्रतिदिन संग्रामसे लौटनेपर रात्रिमें हमलोगोंकी यही सलाह हुआ करती थी कि 'कर्ण ! तुम कल सबेरा होते ही श्रीकृष्ण अथवा अर्जुनपर यह शक्ति चला देना' ॥ ४-५ ॥

ततः प्रभातसमये राजन् कर्णस्य दैवतैः।
अन्येषां चैव योधानां सा बुद्धिर्नाश्यते पुनः ॥ ६ ॥

परंतु राजन् ! प्रातःकाल आनेपर देवतालोग कर्ण तथा अन्य योद्धाओंके उस विचारको पुनः नष्ट कर देते थे ॥ ६ ॥

दैवमेव परं मन्ये यत् कर्णो हस्तसंस्थया।
न जघान रणे पार्थं कृष्णं वा देवकीसुतम् ॥ ७ ॥

मैं तो दैव (प्रारब्ध) को ही सबसे बड़ा मानता हूँ, जिससे कर्णने हाथमें आयी हुई शक्तिके द्वारा रणभूमिमें कुन्तीकुमार अर्जुन अथवा देवकीनन्दन श्रीकृष्णका वध नहीं किया ॥ ७ ॥

तस्य हस्तस्थिता शक्तिः कालरात्रिरिवोद्यता।
दैवोपहतबुद्धित्वान्न तां कर्णो विमुक्तवान् ॥ ८ ॥
कृष्णे वा देवकीपुत्रे मोहितो देवमायया।
पार्थे वा शक्रकल्पे वै वधार्थं वासवीं प्रभो ॥ ९ ॥

कर्णके हाथमें स्थित हुई वह शक्ति कालरात्रिके समान शत्रुवधके लिये उद्यत थी; परंतु दैवके द्वारा बुद्धि मारी जानेके कारण देवमायासे मोहित हुए कर्णने इन्द्रकी दी हुई उस शक्तिको देवकीनन्दन श्रीकृष्ण अथवा इन्द्रके समान पराक्रमी अर्जुनपर उनके वधके लिये नहीं छोड़ा ॥ ८-९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

दैवेनोपहता यूयं स्वबुद्ध्या केशवस्य च।
गता हि वासवी हत्वा तृणभूतं घटोत्कचम् ॥ १० ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! निश्चय ही तुमलोग दैवके द्वारा मारे गये थे। श्रीकृष्णकी अपनी बुद्धिसे वह इन्द्रकी शक्ति तिनकेके समान घटोत्कचका वध करके चली गयी ॥ १० ॥

कर्णश्च मम पुत्राश्च सर्वे चान्ये च पार्थिवाः।
तेन वै दुष्प्रणीतेन गता वैवस्वतक्षयम् ॥ ११ ॥

अब तो मैं समझता हूँ कि उस दुर्नीतिके कारण कर्ण, मेरे सभी पुत्र तथा अन्य भूपाल यमलोकमें जा पहुँचे ॥ ११ ॥

भूय एव तु मे शंस यथा युद्धमवर्तत।
कुरूणां पाण्डवानां च हैडिम्बे निहते तदा ॥ १२ ॥

अब घटोत्कचके मारे जानेपर कौरवों तथा पाण्डवोंमें पुनः जिस प्रकार युद्ध आरम्भ हुआ, उसीका मुझसे वर्णन करो ॥ १२ ॥

ये च तेऽभ्यद्रवन् द्रोणं व्यूढानीकाः प्रहारिणः।
सृंजयाः सह पञ्चालैस्तेऽप्यकुर्वन् कथं रणम् ॥ १३ ॥

प्रहार करनेमें कुशल जिन संजयों और पाञ्चालोंने अपनी सेनाका व्यूह बनाकर द्रोणाचार्यपर धावा किया था, उन्होंने किस प्रकार संग्राम किया ? ॥ १३ ॥

सौमदत्तेर्वधाद् द्रोणमायान्तं सैन्धवस्य च ।
अमर्षाज्जीवितं त्यक्त्वा गाहमानं वरूथिनीम् ॥ १४ ॥
जृम्भमाणमिव व्याघ्रं व्यात्ताननमिवान्तकम् ।
कथं प्रत्युद्ययुर्द्रोणमस्यन्तं पाण्डुसृञ्जयाः ॥ १५ ॥

भूरिश्रवा तथा जयद्रथके वधसे कुपित हो जब द्रोणाचार्य आये और जीवनका मोह छोड़कर पाण्डव-सेनामें उसका मन्थन करते हुए प्रवेश करने लगे, उस समय जँभाई लेते हुए व्याघ्र तथा मुँह बाये हुए यमराजके समान बाणवर्षा करते हुए द्रोणाचार्यके सम्मुख पाण्डव और संजय योद्धा कैसे आ सके ? ॥ १४-१५ ॥

आचार्यं ये च तेऽरक्षन् दुर्योधनपुरोगमाः ।
द्रौणिकर्णकृपास्तात ते वाकुर्वन् किमाहवे ॥ १६ ॥

तात ! अश्वत्थामा, कर्ण, कृपाचार्य तथा दुर्योधन आदि जो महारथी रणभूमिमें आचार्य द्रोणकी रक्षा करते थे, उन्होंने वहाँ क्या किया ? ॥ १६ ॥

भारद्वाजं जिघांसन्तौ सव्यसाचिवृकोदरौ ।
समार्च्छन् मामका युद्धे कथं संजय शंस मे ॥ १७ ॥

संजय ! द्रोणाचार्यको मार डालनेकी इच्छावाले अर्जुन और भीमसेनपर युद्धस्थलमें मेरे सैनिकोंने किस प्रकार आक्रमण किया ? यह मुझे बताओ ॥ १७ ॥

सिन्धुराजवधेनेमे घटोत्कचवधेन ते ।
अमर्षिताः सुसंक्रुद्धा रणं चक्रुः कथं निशि ॥ १८ ॥

सिंधुराज जयद्रथके वधसे अमर्षमें भरे हुए कौरवों तथा घटोत्कचके मारे जानेसे अत्यन्त कुपित हुए पाण्डवोंने रात्रिमें किस प्रकार युद्ध किया ? ॥ १८ ॥

संजय उवाच

हते घटोत्कचे राजन् कर्णेन निशि राक्षसे ।
प्रणदत्सु च हृष्टेषु तावकेषु युयुत्सुषु ॥ १९ ॥
आपतत्सु च वेगेन वध्यमाने बलेऽपि च ।
विगाढायां रजन्यां च राजा दैन्यं परं गतः ॥ २० ॥

संजयने कहा—राजन् ! जब रातमें कर्णके द्वारा राक्षस घटोत्कच मारा गया, आपके सैनिक हर्षमें भरकर युद्धकी इच्छासे गर्जना करते हुए वेगपूर्वक आक्रमण करने लगे तथा पाण्डवसेना मारी जाने लगी, उस समय प्रगाढ़ रजनीमें राजा युधिष्ठिर अत्यन्त दीन एवं दुखी हो गये ॥ १९-२० ॥

अब्रवीच्च महाबाहुर्भीमसेनमिदं वचः ।
आवारय महाबाहो धार्तराष्ट्रस्य वाहिनीम् ॥ २१ ॥
हैडिम्बेश्चैव घातेन मोहो मामाविशन्महान् ।

उन महाबाहु नरेशने भीमसेनसे इस प्रकार कहा— 'महाबाहो ! तुम्हीं दुर्योधनकी सेनाको रोको । घटोत्कचके मारे जानेसे मेरे मनमें महान् मोह छा गया है' ॥ २१½ ॥

एवं भीमं समादिश्य स्वरथे समुपाविशत् ॥ २२ ॥
अश्रुपूर्णमुखो राजा निःश्वसंश्च पुनः पुनः ।
कश्मलं प्राविशद् घोरं दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥ २३ ॥

इस प्रकार भीमको आदेश देकर राजा युधिष्ठिर बारंबार सिसकते हुए अपने रथपर जा बैठे । उस समय उनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी । वे कर्णका पराक्रम देखकर घोर चिन्तामें डूब गये थे ॥ २२-२३ ॥

तं तथा व्यथितं दृष्ट्वा कृष्णो वचनमब्रवीत् ।
मा व्यथां कुरु कौन्तेय नैतत् त्वय्युपपद्यते ॥ २४ ॥
वैक्लव्यं भरतश्रेष्ठ यथा प्राकृतपूरुषे ।

उन्हें इस प्रकार व्यथित देखकर भगवान् श्रीकृष्ण बोले—'कुन्तीनन्दन ! भरतश्रेष्ठ ! आप दुःख न मानिये। आपके लिये मूढ़ मनुष्योंकी-सी यह व्याकुलता शोभा नहीं देती ॥ २४½ ॥

उत्तिष्ठ राजन् युद्ध्यस्व वह गुर्वीं धुरं विभो ॥ २५ ॥
त्वयि वैक्लव्यमापन्ने संशयो विजये भवेत् ।

'राजन् ! उठिये और युद्ध कीजिये । इस महासंग्रामका गुरुतर भार सँभालिये । प्रभो ! आपके घबरा जानेपर विजय मिलनेमें संदेह है' ॥ २५½ ॥

श्रुत्वा कृष्णस्य वचनं धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ २६ ॥
विमृज्य नेत्रे पाणिभ्यां कृष्णं वचनमब्रवीत् ।

श्रीकृष्णका कथन सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने दोनों हाथोंसे अपनी आँखें पोंछकर उनसे इस प्रकार कहा—॥ २६½ ॥

विदिता मे महाबाहो धर्माणां परमा गतिः ॥ २७ ॥
ब्रह्महत्या फलं तस्य यैः कृतं नावबुध्यते ।

'महाबाहो ! मुझे धर्मकी श्रेष्ठ गति विदित है । जो मनुष्य किसीके किये हुए उपकारको याद नहीं रखता, उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है ॥ २७½ ॥

अस्माकं हि वनस्थानां हैडिम्बेन महात्मना ॥ २८ ॥
बालेनापि सता तेन कृतं साह्यं जनार्दन ।

'जनार्दन ! जब हमलोग वनमें थे, उन दिनों महामनस्वी हिडिम्बाकुमारने बालक होनेपर भी हमारी बड़ी भारी सहायता की थी ॥ २८½ ॥

अस्त्रहेतोर्गतं ज्ञात्वा पाण्डवं श्वेतवाहनम् ॥ २९ ॥
असौ कृष्ण महेष्वासः काम्यके मामुपस्थितः ।
उषितश्च सहास्माभिर्यावन्नासीद् धनंजयः ॥ ३० ॥

'श्रीकृष्ण ! श्वेतवाहन अर्जुनको अस्त्र-प्राप्तिके लिये अन्यत्र गया हुआ जानकर महाधनुर्धर घटोत्कच काम्यकवनमें मेरे पास आया और जबतक अर्जुन लौट नहीं आये तबतक हमारे साथ ही रहा ॥ २९-३० ॥

गन्धमादनयात्रायां दुर्गेभ्यश्च स तारिताः ।

पाञ्चाली च परिश्रान्ता पृष्ठेनोढा महात्मना ॥ ३१ ॥

'गन्धमादनकी यात्रामें उसने बड़े-बड़े संकटोंसे हमें बचाया है; पाञ्चालराजकुमारी द्रौपदी जब थक गयीं तो उस महाकाय वीरने उन्हें अपनी पीठपर बिठाकर ढोया ॥ ३१ ॥

आरम्भाच्चैव युद्धानां यदेष कृतवान् प्रभो।
मदर्थे दुष्करं कर्म कृतं तेन महाहवे ॥ ३२ ॥

'प्रभो ! युद्धके आरम्भसे ही इसने मेरा बहुत सहयोग किया है, इसने महायुद्धमें मेरे लिये दुष्कर कर्म कर दिखाया है ॥ ३२ ॥

स्वभावाद् या च मे प्रीतिः सहदेवे जनार्दन।
सैव मे परमा प्रीती राक्षसेन्द्रे घटोत्कचे ॥ ३३ ॥

'जनार्दन ! सहदेवपर जो मेरा स्वाभाविक प्रेम है, वही उत्तम प्रेम राक्षसराज घटोत्कचपर भी रहा है ॥ ३३ ॥

भक्तश्च मे महाबाहुः प्रियोऽस्याहं प्रियश्च मे।
तेन विन्दामि वार्ष्णेय कश्मलं शोकतापितः ॥ ३४ ॥

'वार्ष्णेय ! वह महाबाहु मेरा भक्त था। मैं उसे प्रिय था और वह मुझे; इसीलिये उसके शोकसे संतप्त होकर मैं मोहको प्राप्त हो रहा हूँ ॥ ३४ ॥

पश्य सैन्यानि वार्ष्णेय द्राव्यमाणानि कौरवैः।
द्रोणकर्णौ तु संयत्तौ पश्य युद्धे महारथौ ॥ ३५ ॥

'वृष्णिनन्दन ! देखिये, कौरव किस प्रकार मेरी सेनाओंको खदेड़ रहे हैं तथा महारथी द्रोण और कर्ण किस प्रकार युद्धमें प्रयत्नपूर्वक लगे हुए हैं ? ॥ ३५ ॥

निशीथे पाण्डवं सैन्यमेतत् सैन्यप्रमर्दितम्।
गजाभ्यामिव मत्ताभ्यां यथा नलवनं महत् ॥ ३६ ॥

'जैसे दो मतवाले हाथी नरकुलके विशाल वनको रौंद रहे हों, उसी प्रकार इस आधीरातके समय उनकी सेनाद्वारा यह पाण्डवसेना कुचल दी गयी है ॥ ३६ ॥

अनादृत्य बलं बाह्वोर्भीमसेनस्य माधव।
चित्रास्त्रतां च पार्थस्य विक्रमन्ति स्म कौरवाः ॥ ३७ ॥

'माधव ! भीमसेनके बाहुबल और अर्जुनके विचित्र अस्त्र-कौशलका अनादर करके कौरव योद्धा अपना पराक्रम प्रकट कर रहे हैं ॥ ३७ ॥

एष द्रोणश्च कर्णश्च राजा चैव सुयोधनः।
निहत्य राक्षसं युद्धे हृष्टाः नर्दन्ति संयुगे ॥ ३८ ॥

'ये द्रोण, कर्ण तथा राजा दुर्योधन युद्धमें राक्षस घटोत्कचका वध करके बड़े हर्षके साथ सिंहनाद कर रहे हैं ॥ ३८ ॥

कथं वाऽस्मासु जीवत्सु त्वयि चैव जनार्दन।
हैडिम्बिः प्राप्तवान् मृत्युं सूतपुत्रेण सङ्गतः ॥ ३९ ॥

'जनार्दन ! हमारे और आपके जीते-जी हिडिम्बाकुमार घटोत्कच सूतपुत्रके साथ संग्राम करके मृत्युको कैसे प्राप्त हुआ ? ॥ ३९ ॥

कदर्थीकृत्य नः सर्वान् पश्यतः सव्यसाचिनः।
निहतो राक्षसः कृष्ण भैमसेनिर्महाबलः ॥ ४० ॥

'श्रीकृष्ण ! हम सबकी अवहेलना करके सव्यसाची अर्जुनके देखते-देखते भीमसेनकुमार महाबली राक्षस घटोत्कच मारा गया है ॥ ४० ॥

यदाभिमन्युर्निहतो धार्तराष्ट्रैर्दुरात्मभिः।
नासीत् तत्र रणे कृष्ण सव्यसाची महारथः ॥ ४१ ॥

'श्रीकृष्ण ! धृतराष्ट्रके दुरात्मा पुत्रोंने जब युद्धमें अभिमन्युको मारा था, उस समय महारथी अर्जुन वहाँ उपस्थित नहीं थे ॥ ४१ ॥

निरुद्धाश्च वयं सर्वे सैन्धवेन दुरात्मना।
निमित्तमभवद् द्रोणः सपुत्रस्तत्र कर्मणि ॥ ४२ ॥

'दुरात्मा जयद्रथने हम सब लोगोंको भी व्यूहके बाहर ही रोक लिया था। वहाँ अभिमन्युके वधमें पुत्रसहित द्रोणाचार्य ही कारण हुए थे ॥ ४२ ॥

उपदिष्टो वधोपायः कर्णस्य गुरुणा स्वयम्।
व्यायच्छतश्च खड्गेन द्विधा खड्गं चकार ह ॥ ४३ ॥

'गुरु द्रोणाचार्यने स्वयं ही कर्णको अभिमन्युके वधका उपाय बताया था और जब वह तलवार लेकर परिश्रमपूर्वक युद्ध कर रहा था, उस समय उन्होंने ही उसकी तलवारके दो टुकड़े कर दिये थे ॥ ४३ ॥

व्यसने वर्तमानस्य कृतवर्मा नृशंसवत्।
अश्वाञ्जघान सहसा तथोभौ पार्ष्णिसारथी ॥ ४४ ॥

'इस प्रकार जब वह संकटमें पड़ गया, तब कृतवर्माने क्रूर मनुष्यकी भाँति सहसा उसके घोड़ों तथा दोनों पार्श्व-रक्षकोंको मार डाला ॥ ४४ ॥

तथेतरे महेष्वासाः सौभद्रं युध्यपातयन्।
अल्पे च कारणे कृष्ण हतो गाण्डीवधन्वना ॥ ४५ ॥
सैन्धवो यादवश्रेष्ठ तच्च नातिप्रियं मम।

'इसी प्रकार दूसरे महाधनुर्धरोंने सुभद्राकुमारको युद्धमें मार गिराया था। यादवश्रेष्ठ श्रीकृष्ण ! अभिमन्युके वधमें जयद्रथका बहुत कम अपराध था, तो भी उस छोटेसे कारणको लेकर ही गाण्डीवधारी अर्जुनने जयद्रथको मार डाला है। यह कार्य मुझे अधिक प्रिय नहीं लगा है ॥ ४५½ ॥

यदि शत्रुवधो न्याय्यो भवेत् कर्तुं हि पाण्डवैः ॥ ४६ ॥
कर्णद्रोणौ रणे पूर्वं हन्तव्याविति मे मतिः।

'यदि पाण्डवोंके लिये अपने शत्रुका वध करना न्याय-संगत है, तो युद्धभूमिमें सबसे पहले कर्ण और द्रोणाचार्यको ही मार डालना चाहिये; मेरा तो यही मत है ॥ ४६½ ॥

एतौ हि मूलं दुःखानामस्माकं पुरुषर्षभ ॥ ४७ ॥
एतौ रणे समासाद्य समाश्वस्तः सुयोधनः ।

'पुरुषोत्तम ! ये कर्ण और द्रोण ही हमारे दुःखोंके मूल कारण हैं । रणभूमिमें इन्हींका सहारा लेकर दुर्योधनका ढाढ़स बँधा हुआ है ॥ ४७½ ॥

यत्र वध्यो भवेद् द्रोणः सूतपुत्रश्च सानुगः ॥ ४८ ॥
तत्रावधीन्महाबाहुः सैन्धवं दूरवासिनम् ।

'जहाँ द्रोणाचार्यका वध होना चाहिये था तथा जहाँ सेवकोंसहित सूतपुत्र कर्णको मार गिराना चाहिये था, वहाँ महाबाहु अर्जुनने दूर रहनेवाले सिंधुराज जयद्रथका वध किया है ॥ ४८½ ॥

अवश्यं तु मया कार्यः सूतपुत्रस्य निग्रहः ॥ ४९ ॥
ततो यास्याम्यहं वीर स्वयं कर्णजिघांसया ।
भीमसेनो महाबाहुर्द्रोणानीकेन सङ्गतः ॥ ५० ॥

'मुझे तो अवश्य ही सूतपुत्र कर्णका दमन करना चाहिये । अतः वीर ! मैं स्वयं ही कर्णका वध करनेकी इच्छासे युद्धभूमिमें जाऊँगा । महाबाहु भीमसेन द्रोणाचार्यकी सेनाके साथ युद्ध कर रहे हैं' ॥ ४९-५० ॥

एवमुक्त्वा ययौ तूर्णं त्वरमाणो युधिष्ठिरः ।
स विस्फार्य महच्चापं शङ्खं प्रध्माप्य भैरवम् ॥ ५१ ॥

ऐसा कहकर राजा युधिष्ठिर भयंकर शङ्ख बजाकर अपने विशाल धनुषकी टंकार करते हुए बड़ी उतावलीके साथ तुरंत वहाँसे चल दिये ॥ ५१ ॥

ततो रथसहस्रेण गजानां च शतैस्त्रिभिः ।
वाजिभिः पञ्चसाहस्रैः पञ्चालैः सप्रभद्रकैः ॥ ५२ ॥
वृतः शिखण्डी त्वरितो राजानं पृष्ठतोऽन्वयात् ।

तदनन्तर शिखण्डी, एक सहस्र रथ, तीन सौ हाथी, पाँच हजार घोड़े तथा पाञ्चालों और प्रभद्रकोंकी सेना साथ ले उनसे घिरा हुआ शीघ्रतापूर्वक राजा युधिष्ठिरके पीछे-पीछे गया ॥ ५२½ ॥

ततो भेरीः समाजघ्नुः शङ्खान् दध्मुश्च दंशिताः ॥ ५३ ॥
पञ्चालाः पाण्डवाश्चैव युधिष्ठिरपुरोगमाः ।

तब पाञ्चालों और पाण्डवोंने युधिष्ठिरको आगे करके कवच आदिसे सुसज्जित हो डंके पीटे और शङ्ख बजाये ॥ ५३½ ॥

ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्वासुदेवो धनंजयम् ॥ ५४ ॥
एष प्रयाति त्वरितः क्रोधाविष्टो युधिष्ठिरः ।
जिघांसुः सूतपुत्रस्य तस्योपेक्षा न युज्यते ॥ ५५ ॥

उस समय महाबाहु भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'ये राजा युधिष्ठिर क्रोधके आवेशसे युक्त हो सूतपुत्र कर्णका वध करनेकी इच्छासे शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़े जा रहे हैं । इस समय इन्हें अकेले छोड़ देना उचित नहीं है' ॥५४-५५॥

एवमुक्त्वा हृषीकेशः शीघ्रमश्वानचोदयत् ।
दूरं प्रयान्तं राजानमन्वगच्छज्जनार्दनः ॥ ५६ ॥

ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्णने शीघ्र ही घोड़ोंको हाँका और दूर जाते हुए राजाका अनुसरण किया ॥ ५६ ॥

तं दृष्ट्वा सहसा यान्तं सूतपुत्रजिघांसया ।
शोकोपहतसंकल्पं दह्यमानमिवाग्निना ॥ ५७ ॥
अभिगम्याब्रवीद् व्यासो धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।

धर्मराज युधिष्ठिरका संकल्प (विचार-शक्ति) शोकसे नष्ट-सा हो गया था। वे क्रोधकी आगमें जलते हुए-से जान पड़ते थे । उन्हें सूतपुत्रके वधकी इच्छासे सहसा जाते देख महर्षि व्यास उनके समीप प्रकट हो गये और इस प्रकार बोले ॥ ५७½ ॥



व्यास उवाच

कर्णमासाद्य संग्रामे दिष्ट्या जीवति फाल्गुनः ॥ ५८ ॥
सव्यसाचिवधाकांक्षी शक्तिं रक्षितवान् हि सः ।

व्यासने कहा—राजन् ! बड़े सौभाग्यकी बात है कि संग्राममें कर्णका सामना करके भी अर्जुन अभी जीवित हैं; क्योंकि उसने उन्हींके वधकी इच्छासे अपने पास इन्द्रकी दी हुई शक्ति रख छोड़ी थी ॥ ५८½ ॥

न चागाद् द्वैरथं जिष्णुर्दिष्ट्या तेन महारणे ॥ ५९ ॥
सृजेतां स्पर्धिनावेतौ दिव्यान्यस्त्राणि सर्वशः ।
वध्यमानेषु चास्त्रेषु पीडितः सूतनन्दनः ॥ ६० ॥
वासवीं समरे शक्तिं ध्रुवं मुञ्चेद् युधिष्ठिर ।
ततो भवेत् ते व्यसनं घोरं भरतसत्तम ॥ ६१ ॥

उस महासमरमें कर्णके साथ द्वैरथयुद्ध करनेके लिये अर्जुन नहीं गये, यह बहुत अच्छा हुआ। ये दोनों वीर एक दूसरेसे स्पर्धा रखते हैं; अतः युधिष्ठिर! यदि ये सब प्रकारसे दिव्यास्त्रोंका प्रयोग करते तो फिर अपने अस्त्रोंके नष्ट होनेपर सूतनन्दन कर्ण पीड़ित हो समराङ्गणमें इन्द्रकी दी हुई शक्तिको निश्चय ही अर्जुनपर चला देता। भरतश्रेष्ठ! उस दशामें तुमपर और भयंकर विपत्ति टूट पड़ती ॥ ५९-६१ ॥

दिष्ट्या रक्षो हतं युद्धे सूतपुत्रेण मानद।
वासवीं कारणं कृत्वा कालेनोपहतो ह्यसौ ॥ ६२ ॥

मानद! यह हर्षकी बात है कि युद्धमें सूतपुत्र कर्णने उस राक्षसको ही मारा है। वास्तवमें इन्द्रकी शक्तिको निमित्त बनाकर कालने ही उसका वध किया है ॥ ६२ ॥

तवैव कारणाद् रक्षो निहतं तात संयुगे।
मा क्रुधो भरतश्रेष्ठ मा च शोके मनः कृथाः ॥ ६३ ॥
प्राणिनामिह सर्वेषामेषा निष्ठा युधिष्ठिर।

तात! भरतश्रेष्ठ! तुम्हारे हितके लिये ही वह राक्षस युद्धमें मारा गया है; ऐसा समझकर न तो तुम किसीपर क्रोध करो और न मनमें शोकको ही स्थान दो। युधिष्ठिर! इस जगत्के समस्त प्राणियोंकी अन्तमें यही गति होती है ॥ ६३½ ॥

भ्रातृभिः सहितः सर्वैः पार्थिवैश्च महात्मभिः ॥ ६४ ॥
कौरवान् समरे राजन् प्रतियुध्यस्व भारत।
पञ्चमे दिवसे तात पृथिवी ते भविष्यति ॥ ६५ ॥

भरतवंशी नरेश! तुम अपने समस्त भाइयों तथा महामना भूपालोंके साथ जाकर समरभूमिमें कौरवोंका सामना करो। तात! आजके पाँचवें दिन यह सारी पृथ्वी तुम्हारी हो जायगी ॥ ६४-६५ ॥

नित्यं च पुरुषव्याघ्र धर्ममेवानुचिन्तय।
आनृशंस्यं तपो दानं क्षमां सत्यं च पाण्डव ॥ ६६ ॥
सेवेथाः परमप्रीतो यतो धर्मस्ततो जयः।

पुरुषसिंह पाण्डुनन्दन! तुम सदा धर्मका ही चिन्तन करो तथा कोमलता (दयाभाव), तपस्या, दान, क्षमा और सत्य आदि सद्गुणोंका ही अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक सेवन करो; क्योंकि जिस पक्षमें धर्म है, उसीकी विजय होती है ॥ ६६½ ॥

इत्युक्त्वा पाण्डवं व्यासस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ६७ ॥

पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरसे ऐसा कहकर महर्षि व्यास वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ ६७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि घटोत्कचवधपर्वणि रात्रियुद्धे व्यासवाक्ये त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत घटोत्कचवधपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसङ्गमें व्यासवाक्यविषयक एक सौ तिरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८३ ॥

(द्रोणवधपर्व)

चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

निद्रासे व्याकुल हुए उभयपक्षके सैनिकोंका अर्जुनके कहनेसे सो जाना और चन्द्रोदयके बाद पुनः उठकर युद्धमें लग जाना

संजय उवाच

व्यासेनैवमथोक्तस्तु धर्मराजो युधिष्ठिरः।
स्वयं कर्णवधाद् वीरो निवृत्तो भरतर्षभ ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—भरतश्रेष्ठ! व्यासजीके ऐसा कहनेपर वीर धर्मराज युधिष्ठिर स्वयं कर्णका वध करनेके विचारसे हट गये ॥ १ ॥

घटोत्कचे तु निहते सूतपुत्रेण तां निशाम्।
दुःखामर्षवशं प्राप्तो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ २ ॥

सूतपुत्रके द्वारा घटोत्कचके मारे जानेपर उस रातमें धर्मराज युधिष्ठिर दुःख और अमर्षके वशीभूत हो गये ॥ २ ॥

दृष्ट्वा भीमेन महतीं वार्यमाणां चमूं तव।
धृष्टद्युम्नमुवाचेदं कुम्भयोनिं निवारय ॥ ३ ॥

भीमसेनके द्वारा आपकी विशाल सेनाका निवारण होता देख उन्होंने धृष्टद्युम्नसे इस प्रकार कहा—'वीर! तुम द्रोणाचार्यको आगे बढ़नेसे रोको ॥ ३ ॥

त्वं हि द्रोणविनाशाय समुत्पन्नो हुताशनात्।
सशरः कवची खड्गी धन्वी च परतापनः ॥ ४ ॥

'तुम तो शत्रुओंको संताप देनेवाले हो और द्रोणका विनाश करनेके लिये ही बाण, कवच, खड्ग और धनुषसहित अग्निकुण्डसे उत्पन्न हुए हो ॥ ४ ॥

अभिद्रव रणे हृष्टो मा च ते भीः कथंचन।
जनमेजयः शिखण्डी च दौर्मुखिश्च यशोधरः ॥ ५ ॥
अभिद्रवन्तु संहृष्टाः कुम्भयोनिं समन्ततः।

'अतः हर्षमें भरकर रणभूमिमें द्रोणाचार्यपर धावा करो। तुम्हें किसी प्रकार भय नहीं होना चाहिये। जनमेजय, शिखण्डी तथा दुर्मुखपुत्र यशोधर—ये हर्ष और उत्साहमें भरकर चारों ओरसे द्रोणाचार्यपर धावा करें ॥ ५½ ॥

नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ॥ ६ ॥
द्रुपदश्च विराटश्च पुत्रभ्रातृसमन्वितौ ।
सात्यकिः केकयाश्चैव पाण्डवश्च धनंजयः ॥ ७ ॥
अभिद्रवन्तु वेगेन कुम्भयोनिवधेप्सया ।

'नकुल, सहदेव, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, प्रभद्रकगण, पुत्रों और भाइयोंसहित द्रुपद और विराट, सात्यकि, केकय तथा पाण्डुपुत्र अर्जुन—ये द्रोणाचार्यके वधकी इच्छासे वेगपूर्वक उनपर धावा बोल दें ॥ ६-७½ ॥

तथैव रथिनः सर्वे हस्त्यश्वं यच्च किञ्चन ॥ ८ ॥
पदाताश्च रणे द्रोणं पातयन्तु महारथम् ।

'इसी प्रकार हमारे समस्त रथी, हाथी-घोड़ोंकी जो कुछ भी सेना अवशिष्ट है वह और पैदल सैनिक—ये सभी रणभूमिमें महारथी द्रोणाचार्यको मार गिरावें' ॥ ८½ ॥

तथाऽऽज्ञप्तास्तु ते सर्वे पाण्डवेन महात्मना ॥ ९ ॥
अभ्यद्रवन्त वेगेन कुम्भयोनिवधेप्सया ।

पाण्डुनन्दन महात्मा युधिष्ठिरके इस प्रकार आदेश देनेपर वे सब वीर द्रोणाचार्यके वधकी इच्छासे वेगपूर्वक उनपर टूट पड़े॥

आगच्छतस्तान् सहसा सर्वोद्योगेन पाण्डवान्॥ १० ॥
प्रतिजग्राह समरे द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।

उन समस्त पाण्डव सैनिकोंको पूरे उद्योगके साथ सहसा आक्रमण करते देख शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यने समरभूमिमें आगे बढ़कर उनका सामना किया ॥ १०½ ॥

ततो दुर्योधनो राजा सर्वोद्योगेन पाण्डवान् ॥ ११ ॥
अभ्यद्रवत् सुसंक्रुद्ध इच्छन् द्रोणस्य जीवितम्।

उस समय द्रोणाचार्यके जीवनकी रक्षा चाहते हुए राजा दुर्योधनने अत्यन्त कुपित हो पूरे प्रयत्नके साथ पाण्डवोंपर धावा किया ॥ ११½ ॥

ततः प्रववृते युद्धं श्रान्तवाहनसैनिकम् ॥ १२ ॥
पाण्डवानां कुरूणां च गर्जतामितरेतरम् ।

तदनन्तर एक दूसरेको लक्ष्य करके गर्जते हुए पाण्डव तथा कौरव योद्धाओंमें पुनः युद्ध आरम्भ हो गया । वहाँ जितने वाहन और सैनिक थे, वे सभी थक गये थे ॥१२½॥

निद्रान्धास्ते महाराज परिश्रान्ताश्च संयुगे ॥ १३ ॥
नाभ्यपद्यन्त समरे काञ्चिच्चेष्टां महारथाः ।

महाराज ! युद्धमें अत्यन्त थके हुए महारथी योद्धा निद्रासे अंधे हो रहे थे; अतः संग्राममें कोई चेष्टा नहीं कर पाते थे ॥ १३½ ॥

त्रियामा रजनी चैषा घोररूपा भयानका ॥ १४ ॥
सहस्रयामप्रतिमा बभूव प्राणहारिणी ।

यह तीन पहरकी रात उनके लिये सहस्रों प्रहरोंकी रात्रिके समान घोर, भयानक एवं प्राणहारिणी प्रतीत होती थी ॥

वध्यतां च तथा तेषां क्षतानां च विशेषतः ॥ १५ ॥
अर्धरात्रिः समाजज्ञे निद्रान्धानां विशेषतः ।

वहाँ बाणोंकी चोट सहते और विशेषतः क्षत-विक्षत होते हुए निद्रान्ध सैनिकोंकी आधी रात बीत गयी ॥ १५½ ॥

सर्वे ह्यासन् निरुत्साहाः क्षत्रिया दीनचेतसः ॥ १६ ॥
तव चैव परेषां च गतास्त्रा विगतेषवः ।

उस समय आपकी और शत्रुओंकी सेनाके समस्त क्षत्रिय उत्साहहीन एवं दीनचित्त हो गये थे; उनके हाथोंसे अस्त्र और बाण गिर गये थे ॥ १६½ ॥

ते तदापारयन्तश्च ह्रीमन्तश्च विशेषतः ॥ १७ ॥
स्वधर्ममनुपश्यन्तो न जहुः स्वामनीकिनीम् ।

वे उस समय अच्छी तरह युद्ध नहीं कर पा रहे थे, तो भी विशेषतः लज्जाशील होनेके कारण अपने धर्मपर दृष्टि रखते हुए अपनी सेना छोड़कर जा न सके ॥ १७½ ॥

अस्त्राण्यन्ये समुत्सृज्य निद्रान्धाः शेरते जनाः ॥ १८ ॥
रथेष्वन्ये गजेष्वन्ये हयेष्वन्ये च भारत ।

भारत ! दूसरे बहुत-से सैनिक अपने अस्त्र-शस्त्र छोड़कर नींदसे अन्धे होकर सो रहे थे । कुछ लोग रथोंपर, कुछ हाथियोंपर और कुछ लोग घोड़ोंपर ही सो गये थे ॥१८½॥

निद्रान्धा नो बुबुधिरे काञ्चिच्चेष्टां नराधिप ॥ १९ ॥
तानन्ये समरे योधाः प्रेषयन्तो यमक्षयम् ।

नरेश्वर ! नींदसे बेसुध होनेके कारण वे किसी भी चेष्टाको समझ नहीं पाते थे और उन्हें दूसरे योद्धा समराङ्गणमें यमलोक भेज देते थे ॥ १९½ ॥

स्वप्नायमानास्त्वपरे परानतिविचेतसः ॥ २० ॥
आत्मानं समरे जघ्नुः स्वानेव च परानपि ।
नानावाचो विमुञ्चन्तो निद्रान्धास्ते महारणे ॥ २१ ॥

दूसरे सैनिक शत्रुओंको स्वप्नमें पड़कर अत्यन्त बेसुध हुए देख उन्हें मार बैठते थे । कुछ लोग उस महासमरमें निद्रान्ध होकर नाना प्रकारकी बातें कहते हुए कभी अपने आपपर ही प्रहार कर बैठते थे, कभी अपने पक्षके ही लोगोंको मार डालते थे और कभी शत्रुओंका भी वध करते थे ॥

अस्माकं च महाराज परेभ्यो बहवो जनाः ।
योद्धव्यमिति तिष्ठन्तो निद्रासंरक्तलोचनाः ॥ २२ ॥

महाराज ! हमारे पक्षके भी बहुत-से सैनिक शत्रुओंके साथ युद्ध करना है, ऐसा समझकर खड़े थे, परंतु नींदसे उनकी आँखें लाल हो गयी थीं ॥ २२ ॥

संसर्पन्तो रणे केचिन्निद्रान्धास्ते तथा परान् ।
जघ्नुः शूरा रणे शूरांस्तस्मिंस्तमसि दारुणे ॥ २३ ॥

कुछ शूरवीर निद्रान्ध होकर भी रणभूमिमें विचरते थे और उस दारुण अन्धकारमें शत्रुपक्षके शूरवीरोंका वध कर डालते थे ॥ २३ ॥

हन्यमानमथात्मानं परेभ्यो बहवो जनाः ।
नाभ्यजानन्त समरे निद्रया मोहिता भृशम् ॥ २४ ॥

बहुत-से मनुष्य निद्रासे अत्यन्त मोहित हो जानेके कारण शत्रुओंकी ओरसे समरभूमिमें अपनेको जो मारनेकी चेष्टा होती थी, उसे समझ ही नहीं पाते थे ॥ २४ ॥

तेषामेतादृशीं चेष्टां विज्ञाय पुरुषर्षभः ।
उवाच वाक्यं बीभत्सुरुच्चैः संनादयन् दिशः ॥ २५ ॥

उनकी ऐसी अवस्था जानकर पुरुषप्रवर अर्जुनने सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करते हुए उच्च स्वरसे इस प्रकार कहा—॥ २५ ॥

श्रान्ता भवन्तो निद्रान्धाः सर्व एव सवाहनाः ।
तमसा च वृते सैन्ये रजसा बहुलेन च ॥ २६ ॥
ते यूयं यदि मन्यध्वमुपारमत सैनिकाः ।
निमीलयत चात्रैव रणभूमौ मुहूर्तकम् ॥ २७ ॥

'सैनिको ! तुम सब लोग अपने वाहनोंसहित थक गये हो और नींदसे अन्धे हो रहे हो । इधर यह सारी सेना घोर अन्धकार और बहुत-सी धूलसे ढक गयी है । अतः यदि तुम ठीक समझो तो युद्ध बंद कर दो और दो घड़ीतक इस रणभूमिमें ही सो लो ॥ २६-२७ ॥

ततो विनिद्रा विश्रान्ताश्चन्द्रमस्युदिते पुनः ।
संसाधयिष्यथान्योन्यं संग्रामं कुरुपाण्डवाः ॥ २८ ॥

'तत्पश्चात् चन्द्रोदय होनेपर विश्राम करनेके अनन्तर निद्रारहित हो तुम समस्त कौरव-पाण्डव योद्धा परस्पर पूर्ववत् संग्राम आरम्भ कर देना' ॥ २८ ॥

तद् वचः सर्वधर्मज्ञा धार्मिकस्य विशाम्पते ।
अरोचयन्त सैन्यानि तथा चान्योन्यमब्रुवन् ॥ २९ ॥

प्रजानाथ ! धर्मात्मा अर्जुनका यह वचन समस्त धर्मज्ञों-को ठीक लगा । सारी सेनाओंने उसे पसंद किया और सब लोग परस्पर यही बात कहने लगे ॥ २९ ॥

चुक्रुशुः कर्ण कर्णेति तथा दुर्योधनेति च ।
उपारमत पाण्डूनां विरता हि वरूथिनी ॥ ३० ॥

कौरव सैनिक 'हे कर्ण ! हे कर्ण ! हे राजा दुर्योधन !' इस प्रकार पुकारते हुए उच्चस्वरसे बोले—'आपलोग युद्ध बंद कर दें; क्योंकि पाण्डवसेना युद्धसे विरत हो गयी है' ॥

तथा विक्रोशमानस्य फाल्गुनस्य ततस्ततः ।
उपारमत पाण्डूनां सेना तव च भारत ॥ ३१ ॥

भारत ! जब अर्जुनने सब ओर इधर-उधर उच्चस्वरसे पूर्वोक्त प्रस्ताव उपस्थित किया, तब पाण्डवोंकी तथा आपकी सेना भी युद्धसे निवृत्त हो गयी ॥ ३१ ॥

तामस्य वाचं देवाश्च ऋषयश्च महात्मनः ।
सर्वसैन्यानि चाक्षुद्रां प्रहृष्टाः प्रत्यपूजयन् ॥ ३२ ॥

महात्मा अर्जुनके इस श्रेष्ठ वचनका सम्पूर्ण देवताओं, ऋषियों और समस्त सैनिकोंने बड़े हर्षके साथ स्वागत किया॥

तत् सम्पूज्य वचोऽक्रूरं सर्वसैन्यानि भारत ।
मुहूर्तमस्वपन् राजञ्श्रान्तानि भरतर्षभ ॥ ३३ ॥

भरतवंशी नरेश ! भरतकुलभूषण ! अर्जुनके उस क्रूरता-शून्य वचनका आदर करके थकी हुई सारी सेनाएँ दो घड़ी तक सोती रहीं ॥ ३३ ॥

सा तु सम्प्राप्य विश्रामं ध्वजिनी तव भारत ।
सुखमाप्तवती वीरमर्जुनं प्रत्यपूजयत् ॥ ३४ ॥

भारत ! आपकी सेना विश्रामका अवसर पाकर सुखका अनुभव करने लगी । उसने वीर अर्जुनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहा—॥ ३४ ॥

त्वयि वेदास्तथास्त्राणि त्वयि बुद्धिपराक्रमौ ।
धर्मस्त्वयि महाबाहो दया भूतेषु चानघ ॥ ३५ ॥

'महाबाहु निष्पाप अर्जुन ! तुममें वेद तथा अस्त्रोंका ज्ञान है । तुममें बुद्धि और पराक्रम है तथा तुममें धर्म एवं सम्पूर्ण भूतोंके प्रति दया है ॥ ३५ ॥

यच्चाश्वस्तास्तवेच्छामः शर्म पार्थ तदस्तु ते ।
मनसश्च प्रियानर्थान् वीर क्षिप्रमवाप्नुहि ॥ ३६ ॥

'कुन्तीनन्दन ! हमलोग तुम्हारी प्रेरणासे सुस्ताकर सुखी हुए हैं; इसलिये तुम्हारा कल्याण चाहते हैं । तुम्हें सुख प्राप्त हो । वीर ! तुम शीघ्र ही अपने मनको प्रिय लगने-वाले पदार्थ प्राप्त करो' ॥ ३६ ॥

इति ते तं नरव्याघ्रं प्रशंसन्तो महारथाः ।
निद्रया समवाक्षिप्तास्तूष्णीमासन् विशाम्पते॥ ३७ ॥

प्रजानाथ ! इस प्रकार आपके महारथी नरश्रेष्ठ अर्जुनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए निद्राके वशीभूत हो मौन हो गये॥

अश्वपृष्ठेषु चाप्यन्ये रथनीडेषु चापरे ।
गजस्कन्धगताश्चान्ये शेरते चापरे क्षितौ ॥ ३८ ॥
सायुधाः सगदाश्चैव सखड्गाः सपरश्वधाः ।
सप्रासकवचाश्चान्ये नराः सुप्ताः पृथक् पृथक्॥ ३९ ॥

कुछ लोग घोड़ोंकी पीठोंपर, दूसरे रथोंकी बैठकोंमें, कुछ अन्य योद्धा हाथियोंपर तथा दूसरे बहुत-से सैनिक पृथ्वीपर ही सो रहे । कुछ लोग सभी प्रकारके आयुध लिये हुए थे । किन्हींके हाथोंमें गदाएँ थीं । कुछ लोग तलवार और फरसे लिये हुए थे तथा दूसरे बहुत-से मनुष्य प्रास और कवचसे सुशोभित थे । वे सभी अलग-अलग सो रहे थे ॥ ३८-३९ ॥

गजास्ते पन्नगाभोगैर्हस्तैर्भूरेणुगुण्ठितैः ।
निद्रान्धा वसुधां चक्रुर्घ्राणनिःश्वासशीतलाम्॥ ४० ॥

नींदसे अंधे हुए हाथी सर्पोंके समान धूलमें सनी हुई सूँड़ोंसे लंबी-लंबी साँसें छोड़कर इस वसुधाको शीतल करने लगे ॥ ४० ॥

सुप्ताः शुशुभिरे तत्र निःश्वसन्तो महीतले ।
विकीर्णा गिरयो यद्वन्निःश्वसद्भिर्महोरगैः ॥ ४१ ॥

धरतीपर सोकर निःश्वास खींचते हुए गजराज ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानो पर्वत बिखरे पड़े हों और उनमें रहनेवाले बड़े-बड़े सर्प लंबी साँसें छोड़ रहे हों ॥ ४१ ॥

समां च विषमां चक्रुः खुराग्रैर्विकृतां महीम् ।
हयाः काञ्चनयोक्त्रास्ते केसरालम्बिभिर्युगैः ॥ ४२ ॥

सोनेकी बागडोरमें बँधे हुए घोड़े अपने गर्दनके बालोंपर रथके जूए लिये टापोंसे खोद-खोदकर समतल भूमिको भी विषम बना रहे थे ॥ ४२ ॥

सुषुपुस्तत्र राजेन्द्र युक्ता वाहेषु सर्वशः ।
एवं हयाश्च नागाश्च योधाश्च भरतर्षभ ।
युद्धाद् विरम्य सुषुपुः श्रमेण महतान्विता ॥ ४३ ॥

राजेन्द्र ! वे रथोंमें जुते हुए ही चारों ओर सो गये । भरतश्रेष्ठ ! इस प्रकार घोड़े, हाथी और सैनिक भारी थकावटसे युक्त होनेके कारण युद्धसे विरत हो सो गये ॥ ४३ ॥

तत् तथा निद्रया भग्नमबोधं प्रास्वपद् भृशम् ।
कुशलैः शिल्पिभिर्न्यस्तं पटे चित्रमिवाद्भुतम् ॥ ४४ ॥

इस प्रकार निद्रासे बेसुध हुआ वह सैन्यसमूह गहरी नींदमें सो रहा था । वह देखनेमें ऐसा जान पड़ता था, मानो किन्हीं कुशल कलाकारोंने पटपर अद्भुत चित्र अङ्कित कर दिया हो ॥ ४४ ॥

ते क्षत्रियाः कुण्डलिनो युवानः
परस्परं सायकविक्षताङ्गाः ।
कुम्भेषु लीनाः सुषुपुर्गजानां
कुचेषु लग्ना इव कामिनीनाम् ॥ ४५ ॥

वे कुण्डलधारी तरुण क्षत्रिय परस्पर सायकोंकी मारसे सम्पूर्ण अङ्गोंमें क्षत-विक्षत हो हाथियोंके कुम्भस्थलोंसे सटकर ऐसे सो रहे थे, मानो कामिनियोंके कुचोंका आलिङ्गन करके सोये हों ॥ ४५ ॥

ततः कुमुदनाथेन कामिनीगण्डपाण्डुना ।
नेत्रानन्देन चन्द्रेण माहेन्द्री दिगलङ्कृता ॥ ४६ ॥

तत्पश्चात् कामिनियोंके कपोलोंके समान श्वेतपीत वर्णवाले नयनानन्ददायी कुमुदनाथ चन्द्रमाने पूर्व दिशाको सुशोभित किया ॥ ४६ ॥

दशशताक्षककुब्दरिनिःसृतः
किरणकेसरभासुरपिञ्जरः ।
तिमिरवारणयूथविदारणः
समुदियादुदयाचलकेसरी ॥ ४७ ॥

उदयाचलके शिखरपर चन्द्रमारूपी सिंहका उदय हुआ, जो पूर्व दिशारूपी कन्दरासे निकला था । वह किरणरूपी केसरोंसे प्रकाशित एवं पिङ्गलवर्णका था और अन्धकाररूपी गजराजोंके यूथको विदीर्ण कर रहा था ॥ ४७ ॥

हरवृषोत्तमगात्रसमद्युतिः
स्मरशरासनपूर्णसमप्रभः ।
नववधूस्मितचारुमनोहरः
प्रविसृतः कुमुदाकरबान्धवः ॥ ४८ ॥

भगवान् शंकरके वृषभ नन्दिकेश्वरकेउत्तम अङ्गोंके समान जिसकी श्वेत कान्ति है, जो कामदेवके श्वेत पुष्पमय धनुषके समान पूर्णतः उज्ज्वल प्रभासे प्रकाशित होता है और नववधूकी मन्द मुसकानके सदृश सुन्दर एवं मनोहर जान पड़ता है; वह कुमुदकुल-बान्धव चन्द्रमा क्रमशः ऊपर उठकर आकाशमें अपनी चाँदनी छिटकाने लगा ॥ ४८ ॥

ततो मुहूर्ताद् भगवान् पुरस्ताच्छशलक्षणः ।
अरुणं दर्शयामास ग्रसन् ज्योतिःप्रभाः प्रभुः॥ ४९ ॥

उस समय दो घड़ीके बाद शशचिह्नसे सुशोभित प्रभावशाली भगवान् चन्द्रमाने अपनी ज्योत्स्नासे नक्षत्रोंकी प्रभाको क्षीण करते हुए पहले अरुण कान्तिका दर्शन कराया ॥४९॥

अरुणस्य तु तस्यानु जातरूपसमप्रभम् ।
रश्मिजालं महच्चन्द्रो मन्दं मन्दमवासृजत् ॥ ५० ॥

अरुण कान्तिके पश्चात् चन्द्रदेवने धीरे-धीरे सुवर्णके समान प्रभावाले विशाल किरण-जालका प्रसार आरम्भ किया॥

उत्सारयन्तः प्रभया तमस्ते चन्द्ररश्मयः ।
पर्यगच्छञ्छनैः सर्वा दिशः खं च क्षितिं तथा ॥ ५१ ॥

फिर वे चन्द्रमाकी किरणें अपनी प्रभासे अन्धकारका निवारण करती हुई शनैः-शनैः सम्पूर्ण दिशाओं, आकाश और भूमण्डलमें फैलने लगीं ॥ ५१ ॥

ततो मुहूर्ताद् भुवनं ज्योतिर्भूतमिवाभवत् ।
अप्रख्यमप्रकाशं च जगामाशु तमस्तथा ॥ ५२ ॥

तदनन्तर एक ही मुहूर्तमें समस्त संसार ज्योतिर्मय-सा हो गया । अन्धकारका कहीं नाम भी नहीं रह गया । वह अदृश्यभावसे तत्काल कहीं चला गया ॥ ५२ ॥

प्रतिप्रकाशिते लोके दिवाभूते निशाकरे ।
विचेरुर्न विचेरुश्च राजन् नक्तञ्चरास्ततः ॥ ५३ ॥

चन्द्रदेवके पूर्णतः प्रकाशित होनेपर जगत्में दिनका-सा उजाला हो गया । राजन् ! उस समय रात्रिमें विचरनेवाले कुछ प्राणी विचरण करने लगे और कुछ जहाँ-के-तहाँ पड़े रहे ॥

बोध्यमानं तु तत् सैन्यं राजंश्चन्द्रस्य रश्मिभिः ।
बुबुधे शतपत्राणां वनं सूर्यांशुभिर्यथा ॥ ५४ ॥

नरेश्वर ! चन्द्रमाकी किरणोंके स्पर्शसे सारी सेना उसी प्रकार जाग उठी, जैसे सूर्यरश्मियोंका स्पर्श पाकर कमलोंका

समूह खिल उठता है ॥ ५४ ॥

यथा चन्द्रोदयोद्धूतः क्षुभितः सागरोऽभवत्।
तथा चन्द्रोदयोद्धूतः स बभूव बलार्णवः ॥ ५५ ॥

जैसे पूर्णिमाके चन्द्रमाका उदय होनेपर उससे प्रभावित होनेवाले महासागरमें ज्वार उठने लगता है, उसी प्रकार उस समय चन्द्रोदय होनेसे उस सारे सैन्यसमुद्रमें खलबली मच गयी ॥ ५५ ॥

ततः प्रववृते युद्धं पुनरेव विशाम्पते।
लोके लोकविनाशाय परं लोकमभीप्सताम् ॥ ५६ ॥

प्रजानाथ ! तदनन्तर इस जगत्में महान् जनसंहारके लिये परलोककी इच्छा रखनेवाले योद्धाओंका वह युद्ध पुनः आरम्भ हो गया ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि रात्रियुद्धे सैन्यनिद्रायां चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणवधपर्वमें रात्रियुद्धके समय सेनाकी निद्राविषयक एक सौ चौरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८४ ॥

पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

दुर्योधनका उपालम्भ और द्रोणाचार्यका व्यंगपूर्ण उत्तर

संजय उवाच

ततो दुर्योधनो द्रोणमभिगम्याब्रवीदिदम्।
अमर्षवशमापन्नो जनयन् हर्षतेजसी ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर अमर्षमें भरे हुए दुर्योधनने द्रोणाचार्यके पास जाकर उनमें हर्षोत्साह और उत्तेजना पैदा करते हुए इस प्रकार कहा ॥ १ ॥



दुर्योधन उवाच

न मर्षणीयाः संग्रामे विश्रमन्तः श्रमान्विताः।
सपत्ना ग्लानमनसो लब्धलक्ष्या विशेषतः ॥ २ ॥

दुर्योधन बोला—आचार्य ! युद्धमें विशेषतः वे शत्रु, जो लक्ष्य वेधनेमें कभी चूकते न हों, यदि थककर विश्राम ले रहे हों और मनमें ग्लानि भरी होनेसे युद्धविषयक उत्साह खो बैठे हों, उनके प्रति कभी क्षमा नहीं दिखानी चाहिये ॥

यत् तु मर्षितमस्माभिर्भवतः प्रियकाम्यया।
त एते परिविश्रान्ताः पाण्डवा बलवत्तराः ॥ ३ ॥

इस समय जो हमने क्षमा की है—सोते समय शत्रुओंपर प्रहार नहीं किया है, वह केवल आपका प्रिय करनेकी इच्छासे ही हुआ है। इसका फल यह हुआ कि ये पाण्डव-सैनिक पूर्णतः विश्राम करके पुनः अत्यन्त प्रबल हो गये हैं ॥ ३ ॥

सर्वथा परिहीनाः स्म तेजसा च बलेन च।
भवता पाल्यमानास्ते विवर्धन्ते पुनः पुनः ॥ ४ ॥

हमलोग तेज और बलसे सर्वथा हीन हो गये हैं और वे पाण्डव आपसे सुरक्षित होनेके कारण बारंबार बढ़ते जा रहे हैं ॥ ४ ॥

दिव्यान्यस्त्राणि सर्वाणि ब्राह्मादीनि च यानि ह।
तानि सर्वाणि तिष्ठन्ति भवत्येव विशेषतः ॥ ५ ॥

ब्रह्मास्त्र आदि जितने भी दिव्यास्त्र हैं, वे सब-के-सब विशेषरूपसे आपहीमें प्रतिष्ठित हैं ॥ ५ ॥

न पाण्डवेया न वयं नान्ये लोके धनुर्धराः।
युध्यमानस्य ते तुल्याः सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ६ ॥

युद्ध करते समय आपकी समानता न तो पाण्डव, न हमलोग और न संसारके दूसरे धनुर्धर ही कर सकते हैं, यह मैं आपसे सच्ची बात कहता हूँ ॥ ६ ॥

ससुरासुरगन्धर्वानिमाँल्लोकान् द्विजोत्तम।
सर्वास्त्रविद् भवान् हन्याद् दिव्यैरस्त्रैर्न संशयः ॥ ७ ॥

द्विजश्रेष्ठ ! आप सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञाता हैं। अतः चाहें तो अपने दिव्यास्त्रोंद्वारा देवता, असुर और गन्धर्वोंसहित इन सम्पूर्ण लोकोंका विनाश कर सकते हैं, इसमें संशय नहीं है ॥

स भवान् मर्षयत्येतांस्त्वत्तो भीतान् विशेषतः।
शिष्यत्वं वा पुरस्कृत्य मम वा मन्दभाग्यताम् ॥ ८ ॥

फिर भी आप इन पाण्डवोंको क्षमा करते जाते हैं। यद्यपि वे आपसे विशेष भयभीत रहते हैं, तो भी वे आपके शिष्य हैं, इस बातको सामने रखकर या मेरे दुर्भाग्यका विचार करके आप उनकी उपेक्षा करते हैं ॥ ८ ॥

संजय उवाच

एवमुद्धर्षितो द्रोणः कोपितश्च सुतेन ते।
समन्युरब्रवीद् राजन् दुर्योधनमिदं वचः ॥ ९ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! जब इस प्रकार आपके पुत्रने द्रोणाचार्यको उत्साहित करते हुए उनका क्रोध बढ़ाया, तब वे कुपित होकर दुर्योधनसे इस प्रकार बोले—॥ ९ ॥

स्थविरः सन् परं शक्त्या घटे दुर्योधनाहवे।
अतः परं मया कार्यं क्षुद्रं विजयगृद्धिना ॥ १० ॥

'दुर्योधन! यद्यपि मैं बूढ़ा हो गया, तथापि युद्धस्थलमें अपनी पूरी शक्ति लगाकर तुम्हारी विजयके लिये चेष्टा करता हूँ, परंतु जान पड़ता है, अब तुम्हारी जीतकी इच्छासे मुझे नीच कार्य भी करना पड़ेगा ॥ १० ॥

अनस्त्रविदयं सर्वो हन्तव्योऽस्त्रविदा जनः।
यद् भवान् मन्यते चापि शुभं वा यदि वाशुभम् ॥ ११ ॥
तद् वै कर्तास्मि कौरव्य वचनात् तव नान्यथा।

'ये सब लोग दिव्यास्त्रोंको नहीं जानते और मैं जानता हूँ, इसलिये मुझे उन्हीं अस्त्रोंद्वारा इन सबको मारना पड़ेगा। कुरुनन्दन! तुम शुभ या अशुभ जो कुछ भी कराना उचित समझो, वह तुम्हारे कहनेसे करूँगा; उसके विपरीत कुछ नहीं करूँगा ॥ ११½ ॥

निहत्य सर्वपञ्चालान् युद्धे कृत्वा पराक्रमम् ॥ १२ ॥
विमोक्ष्ये कवचं राजन् सत्येनायुधमालभे।

'राजन्! मैं सत्यकी शपथ खाकर अपने धनुषको छूते हुए कहता हूँ कि 'युद्धमें पराक्रम करके समस्त पाञ्चालोंका वध किये बिना कवच नहीं उतारूँगा' ॥ १२½ ॥

मन्यसे यच्च कौन्तेयमर्जुनं श्रान्तमाहवे ॥ १३ ॥
तस्य वीर्यं महाबाहो शृणु सत्येन कौरव।

'परंतु तुम जो कुन्तीकुमार अर्जुनको युद्धमें थका हुआ समझते हो, वह तुम्हारी भूल है। महाबाहु कुरुराज! मैं उनके पराक्रमका सच्चाईके साथ वर्णन करता हूँ, सुनो ॥

तं न देवा न गन्धर्वा न यक्षा न च राक्षसाः ॥ १४ ॥
उत्सहन्ते रणे जेतुं कुपितं सव्यसाचिनम्।

'युद्धमें कुपित हुए सव्यसाची अर्जुनको न देवता, न गन्धर्व, न यक्ष और न राक्षस ही जीत सकते हैं ॥ १४½ ॥

खाण्डवे येन भगवान् प्रत्युद्यातः सुरेश्वरः ॥ १५ ॥
सायकैर्वारितश्चापि वर्षमाणो महात्मना।

'उस महामनस्वी वीरने खाण्डववनमें वर्षा करते हुए भगवान् देवराज इन्द्रका सामना किया और अपने बाणोंद्वारा उन्हें रोक दिया ॥ १५½ ॥

यक्षा नागास्तथा दैत्या ये चान्ये बलगर्विताः ॥ १६ ॥
निहताः पुरुषेन्द्रेण तच्चापि विदितं तव।

'पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनने उस समय यक्ष, नाग, दैत्य तथा दूसरे भी जो बलका घमंड रखनेवाले वीर थे, उन सबको मार डाला था। यह बात तुम्हें मालूम ही है ॥ १६½ ॥

गन्धर्वा घोषयात्रायां चित्रसेनादयो जिताः ॥ १७ ॥
यूयं तैर्ह्रियमाणाश्च मोक्षिता दृढधन्वना।

'घोषयात्राके समय जब चित्रसेन आदि गन्धर्व तुम्हें हरकर लिये जा रहे थे, उस समय सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले अर्जुनने ही उन सबको परास्त किया और तुम्हें बन्धनसे छुड़ाया ॥ १७½ ॥

निवातकवचाश्चापि देवानां शत्रवस्तथा ॥ १८ ॥
सुरैरवध्याः संग्रामे तेन वीरेण निर्जिताः।

'देवशत्रु निवातकवच नामक दानव, जिन्हें संग्राममें देवता भी नहीं मार सकते थे, उसी वीर अर्जुनसे पराजित हुए हैं ॥ १८½ ॥

दानवानां सहस्राणि हिरण्यपुरवासिनाम् ॥ १९ ॥
विजिग्ये पुरुषव्याघ्रः स शक्यो मानुषैः कथम्।

'जिन पुरुषसिंह अर्जुनने हिरण्यपुरनिवासी सहस्रों दानवोंपर विजय पायी है, वे मनुष्योंद्वारा कैसे जीते जा सकते हैं ? ॥ १९½ ॥

प्रत्यक्षं चैव ते सर्वं यथाबलमिदं तव ॥ २० ॥
क्षपितं पाण्डुपुत्रेण चेष्टतां नो विशाम्पते।

'प्रजानाथ! हमारे बहुत चेष्टा करनेपर भी पाण्डुपुत्र अर्जुनने जिस प्रकार तुम्हारी इस सेनाका संहार कर डाला है, यह सब तो तुम्हारी आँखोंके सामने ही है' ॥ २०½ ॥

संजय उवाच

तं तदाभिप्रशंसन्तमर्जुनं कुपितस्तदा ॥ २१ ॥
द्रोणं तव सुतो राजन् पुनरेवेदमब्रवीत्।

संजय कहते हैं—राजन्! इस प्रकार अर्जुनकी प्रशंसा करते हुए द्रोणाचार्यसे उस समय आपके पुत्रने कुपित होकर पुनः इस प्रकार कहा—॥ २१½ ॥

अहं दुःशासनः कर्णः शकुनिर्मातुलश्च मे ॥ २२ ॥
हनिष्यामोऽर्जुनं संख्ये द्विधा कृत्वाद्य भारतीम्।
(तिष्ठ स त्वं महाबाहो नित्यं शिष्यः प्रियस्तव॥)

'आज मैं, दुःशासन, कर्ण और मेरे मामा शकुनि कौरव-सेनाको दो भागोंमें बाँटकर युद्धमें अर्जुनको मार डालेंगे। महाबाहो! आप चुपचाप खड़े रहिये, क्योंकि अर्जुन सदासे ही आपके प्रिय शिष्य हैं' ॥ २२½ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा भारद्वाजो हसन्निव ॥ २३ ॥
अन्ववर्तत राजानं स्वस्ति तेऽस्त्विति चाब्रवीत् ।

दुर्योधनकी यह बात सुनकर द्रोणाचार्यने हँसते हुए-से उसकी बातका अनुमोदन किया और 'तुम्हारा कल्याण हो' ऐसा कहकर वे राजा दुर्योधनसे पुनः इस प्रकार बोले—॥

को हि गाण्डीवधन्वानं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ २४ ॥
अक्षयं क्षपयेत् कश्चित् क्षत्रियः क्षत्रियर्षभम् ।

'नरेश्वर ! अपने तेजसे प्रज्वलित होनेवाले क्षत्रिय-शिरोमणि गाण्डीवधारी अविनाशी अर्जुनको कौन क्षत्रिय मार सकता है ? ॥ २४½ ॥

तं न वित्तपतिर्नेन्द्रो न यमो न जलेश्वरः ॥ २५ ॥
नासुरोरगरक्षांसि क्षपयेयुः सहायुधम् ।

'हाथमें धनुष धारण किये हुए अर्जुनको न तो धनाध्यक्ष कुबेर, न इन्द्र, न यमराज, न जलके स्वामी वरुण और न असुर, नाग एवं राक्षस ही नष्ट कर सकते हैं ॥ २५½ ॥

मूढास्त्वेतानि भाषन्ते यानीमान्यात्थ भारत ॥ २६ ॥
युद्धे ह्यर्जुनमासाद्य स्वस्तिमान् को व्रजेद् गृहान् ।

'भारत ! तुम जो कुछ कह रहे हो, ऐसी बातें मूर्ख मनुष्य कहा करते हैं । भला, युद्धमें अर्जुनका सामना करके कौन कुशलपूर्वक घरको लौट सकता है ? ॥ २६½ ॥

त्वं तु सर्वाभिशङ्कित्वान्निष्ठुरः पापनिश्चयः ॥ २७ ॥
श्रेयसस्त्वद्धिते युक्तांस्तत्तद् वक्तुमिहेच्छसि।

'तुम निष्ठुर और पापपूर्ण विचार रखनेवाले हो; अतः तुम्हारे मनमें सबपर संदेह बना रहता है, इसीलिये तुम्हारे हितमें ही तत्पर रहनेवाले श्रेष्ठ पुरुषोंको भी तुम ऐसी-ऐसी बातें सुनानेकी इच्छा रखते हो ॥ २७½ ॥

गच्छ त्वमपि कौन्तेयमात्मार्थे जहि मा चिरम्॥ २८ ॥
त्वमप्याशंससे योद्धुं कुलजः क्षत्रियो ह्यसि ।
इमान् किं क्षत्रियान् सर्वान् घातयिष्यस्यनागसः॥२९॥

'तुम भी जाओ, अपने हितके लिये कुन्तीकुमार अर्जुनको शीघ्र ही मार डालो । तुम भी तो कुलीन क्षत्रिय हो । मैं आशा करता हूँ, तुममें भी युद्ध करनेकी शक्ति है ही, फिर इन सम्पूर्ण निरपराध क्षत्रियोंको क्यों व्यर्थ कटवाओगे ? ॥ २८-२९ ॥

त्वमस्य मूलं वैरस्य तस्मादासादयार्जुनम् ।
एष ते मातुलः प्राज्ञः क्षत्रधर्ममनुव्रतः ॥ ३० ॥
दुर्द्यूतदेवी गान्धारे प्रयात्वर्जुनमाहवे ।

'तुम इस वैरकी जड़ हो, अतः स्वयं ही जाकर अर्जुनका सामना करो, गान्धारीनन्दन ! ये कपटद्यूतके खिलाड़ी तुम्हारे मामा शकुनि भी बड़े बुद्धिमान् और क्षत्रियधर्ममें तत्पर रहनेवाले हैं । ये ही युद्धमें अर्जुनपर चढ़ाई करें ॥ ३०½ ॥

एषोऽक्षकुशलो जिह्मो द्यूतकृत् कितवः शठः ॥ ३१ ॥
देविता निकृतिप्रज्ञो युधि जेष्यति पाण्डवान् ।

'ये पासे फेंकनेमें बड़े कुशल हैं । कुटिलता, शठता और धूर्तता तो इनमें कूट-कूटकर भरी है । ये जूएके खिलाड़ी तो हैं ही, छल-विद्याके भी अच्छे जानकार हैं । युद्धमें पाण्डवोंको अवश्य जीत लेंगे ॥ ३१½ ॥

त्वया कथितमत्यर्थं कर्णेन सह हृष्टवत् ॥ ३२ ॥
असकृच्छून्यवन्मोहाद् धृतराष्ट्रस्य शृण्वतः ।
अहं च तात कर्णश्च भ्राता दुःशासनश्च मे ॥ ३३ ॥
पाण्डुपुत्रान् हनिष्यामः सहिताः समरे त्रयः ।
इति ते कत्थमानस्य श्रुतं संसदि संसदि ॥ ३४ ॥

'दुर्योधन ! तुमने एकान्तस्थानके समान भरी सभामें धृतराष्ट्रके सुनते हुए कर्णके साथ अत्यन्त प्रसन्न-से होकर मोहवश बारंबार बहुत जोर देकर यह बात कही है कि 'तात ! मैं, कर्ण और भाई दुःशासन—ये तीन ही समरभूमिमें एक साथ होकर पाण्डवोंका वध कर डालेंगे ।' प्रत्येक सभामें ऐसी ही शेखी बघारते हुए तुम्हारी बात मैंने सुनी है ॥

अनुतिष्ठ प्रतिज्ञां तां सत्यवाग् भव तैः सह ।
एष ते पाण्डवः शत्रुरविशङ्कोऽग्रतः स्थितः ॥ ३५ ॥
क्षत्रधर्ममवेक्षस्व श्लाघ्यस्तव वधो जयात् ।

'अपनी उस प्रतिज्ञाको पूर्ण करो । उन सबके साथ सत्यवादी बनो । ये तुम्हारे शत्रु पाण्डुपुत्र अर्जुन निर्भय होकर सामने खड़े हैं । क्षत्रियधर्मकी ओर दृष्टिपात करो । युद्धमें विजयकी अपेक्षा अर्जुनके हाथसे तुम्हारा वध भी हो जाय तो वह तुम्हारे लिये प्रशंसाकी बात होगी ॥ ३५½ ॥

दत्तं भुक्तमधीतं च प्राप्तमैश्वर्यमीप्सितम् ॥ ३६ ॥
कृतकृत्योऽनृणश्चासि मा भैर्युध्यस्व पाण्डवम् ।

'तुमने बहुत-सा दान कर लिया, भोग भोग लिये, स्वाध्याय भी कर लिया और मनमाना ऐश्वर्य भी पा लिया । अब तुम कृतकृत्य और देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंके ऋणसे मुक्त हो गये; अतः डरो मत । पाण्डुपुत्र अर्जुनके साथ युद्ध करो' ॥ ३६½ ॥

इत्युक्त्वा समरे द्रोणो न्यवर्तत यतः परे ।
द्वैधीकृत्य ततः सेनां युद्धं समभवत् तदा ॥ ३७ ॥

ऐसा कहकर द्रोणाचार्य समरभूमिमें जिस ओर शत्रुओं-की सेना थी, उधर ही लौट पड़े । तत्पश्चात् सेनाके दो विभाग करके उसी क्षण युद्ध आरम्भ हो गया ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि द्रोणदुर्योधनभाषणे पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणवधपर्वमें द्रोणाचार्य और दुर्योधनका सम्भाषणविषयक एक सौ पचासीवाँ अध्याय पूरा हुआ॥१८५॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ३७½ श्लोक हैं)

षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

पाण्डव-वीरोंका द्रोणाचार्यपर आक्रमण, द्रुपदके पौत्रों तथा द्रुपद एवं विराट आदिका वध, धृष्टद्युम्नकी प्रतिज्ञा और दोनों दलोंमें घमासान युद्ध

संजय उवाच

त्रिभागमात्रशेषायां रात्र्यां युद्धमवर्तत।
कुरूणां पाण्डवानां च संहृष्टानां विशाम्पते ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—प्रजानाथ! उस समय जब रात्रिके पंद्रह मुहूर्तोंमेंसे तीन मुहूर्त ही शेष रह गये थे, हर्ष तथा उत्साहमें भरे हुए कौरवों तथा पाण्डवोंका युद्ध आरम्भ हुआ ॥ १ ॥

अथ चन्द्रप्रभां मुष्णन्नादित्यस्य पुरःसरः।
अरुणोऽभ्युदयांचक्रे ताम्रीकुर्वन्निवाम्बरम् ॥ २ ॥

तदनन्तर सूर्यके आगे चलनेवाले अरुणका उदय हुआ; जो चन्द्रमाकी प्रभाको छीनते हुए पूर्व दिशाके आकाशमें लालिमा-सी फैला रहे थे ॥ २ ॥

प्राच्यां दिशि सहस्रांशोररुणेनारुणीकृतम्।
तपनीयं यथा चक्रं भ्राजते रविमण्डलम् ॥ ३ ॥

प्राचीमें अरुणके द्वारा अरुण किया हुआ सूर्यदेवका मण्डल सुवर्णमय चक्रके समान सुशोभित होने लगा ॥ ३ ॥

ततो रथाश्वांश्च मनुष्ययाना-
न्युत्सृज्य सर्वे कुरुपाण्डुयोधाः।
दिवाकरस्याभिमुखं जपन्तः
संध्यागताः प्राञ्जलयो बभूवुः ॥ ४ ॥

तब समस्त कौरव-पाण्डव सैनिक रथ, घोड़े तथा पालकी आदि सवारियोंको छोड़कर संध्या-वन्दनमें तत्पर हो सूर्यके सम्मुख हाथ जोड़कर वेदमन्त्रका जप करते हुए खड़े हो गये ॥ ४ ॥

ततो द्वैधीकृते सैन्ये द्रोणः सोमकपाण्डवान्।
अभ्यद्रवत् सपाञ्चालान् दुर्योधनपुरोगमः ॥ ५ ॥

तदनन्तर सेनाके दो भागोंमें विभक्त हो जानेपर द्रोणाचार्यने दुर्योधनके आगे होकर सोमकों, पाण्डवों तथा पाञ्चालोंपर धावा किया ॥ ५ ॥

द्वैधीकृतान् कुरून् दृष्ट्वा माधवोऽर्जुनमब्रवीत्।
सपत्नान् सव्यतः कृत्वा अपसव्यमिमं कुरु ॥ ६ ॥

कौरव-सेनाको दो भागोंमें विभक्त देख भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'पार्थ! तुम अन्य शत्रुओंको बायें करके इन द्रोणाचार्यको दायें करो (और इनके बीचसे होकर आगे बढ़ चलो)' ॥ ६ ॥

स माधवमनुज्ञाय कुरुष्वेति धनंजयः।
द्रोणकर्णौ महेष्वासौ सव्यतः पर्यवर्तत ॥ ७ ॥

'अच्छा, ऐसा ही कीजिये' भगवान् श्रीकृष्णको यह अनुमति दे अर्जुन महाधनुर्धर द्रोणाचार्य और कर्णके बायेंसे होकर निकल गये ॥ ७ ॥

अभिप्रायं तु कृष्णस्य ज्ञात्वा परपुरंजयः।
आजिशीर्षगतं पार्थं भीमसेनोऽभ्युवाच ह ॥ ८ ॥

श्रीकृष्णके इस अभिप्रायको जानकर शत्रु-नगरीपर विजय पानेवाले भीमसेनने युद्धके मुहानेपर पहुँचे हुए अर्जुनसे इस प्रकार कहा ॥ ८ ॥

भीमसेन उवाच

अर्जुनार्जुन बीभत्सो शृणुष्वैतद् वचो मम।
यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः ॥ ९ ॥

भीमसेन बोले—अर्जुन! अर्जुन! बीभत्सो! मेरी यह बात सुनो। क्षत्राणी माता जिसके लिये बेटा पैदा करती है, उसे कर दिखानेका यह अवसर आ गया है ॥

अस्मिंश्चेदागते काले श्रेयो न प्रतिपत्स्यसे।
असम्भावितरूपस्त्वं सुनृशंसं करिष्यसि ॥ १० ॥

यदि इस अवसरके आनेपर भी तुम अपने पक्षका कल्याण-साधन नहीं करोगे तो तुमसे जिस शौर्य और पराक्रमकी सम्भावना की जाती है, उसके विपरीत तुम्हें पराक्रम-शून्य समझा जायगा और उस दशामें मानो तुम हमलोगोंपर अत्यन्त क्रूरतापूर्ण बर्ताव करनेवाले सिद्ध होओगे ॥ १० ॥

सत्यश्रीधर्मयशसां वीर्येणानृण्यमाप्नुहि।
भिन्ध्यनीकं युधां श्रेष्ठ अपसव्यमिमान् कुरु ॥ ११ ॥

योद्धाओंमें श्रेष्ठ वीर! तुम अपने पराक्रमद्वारा सत्य, लक्ष्मी, धर्म और यशका ऋण उतार दो। इन शत्रुओंको दाहिने करो और स्वयं बायें रहकर शत्रुसेनाको चीर डालो ॥ ११ ॥

संजय उवाच

स सव्यसाची भीमेन चोदितः केशवेन च।
कर्णद्रोणावतिक्रम्य समन्तात् पर्यवारयत् ॥ १२ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण और भीमसेनसे इस प्रकार प्रेरित होकर सव्यसाची अर्जुनने कर्ण और द्रोणको लाँघकर शत्रुसेनापर चारों ओरसे घेरा डाल दिया ॥ १२ ॥

तमाजिशीर्षमायान्तं दहन्तं क्षत्रियर्षभान्।
पराक्रान्तं पराक्रम्य ततः क्षत्रियपुङ्गवाः ॥ १३ ॥
नाशक्नुवन् वारयितुं वर्धमानमिवानलम्।

अर्जुन क्षत्रियशिरोमणि वीरोंको दग्ध करते हुए युद्धके मुहानेपर आ रहे थे। उस समय वे क्षत्रियप्रवर योद्धा जलती आगके समान बढ़नेवाले पराक्रमी अर्जुनको पराक्रम करके भी आगे बढ़नेसे रोक न सके ॥ १३½ ॥

अथ दुर्योधनः कर्णः शकुनिश्चापि सौबलः ॥ १४ ॥
अभ्यवर्षञ्छरव्रातैः कुन्तीपुत्रं धनंजयम् ।

तदनन्तर दुर्योधन, कर्ण तथा सुबलपुत्र शकुनि तीनों मिलकर कुन्तीपुत्र धनंजयपर बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगे ॥

तेषामस्त्राणि सर्वेषामुत्तमास्त्रविदां वरः ॥ १५ ॥
कदर्थीकृत्य राजेन्द्र शरवर्षैरवाकिरत् ।

राजेन्द्र ! तब उत्तम अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ अर्जुनने उन सबके अस्त्रोंको नष्ट करके उन्हें बाणोंकी वर्षासे ढक दिया ॥ १५½ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य लघुहस्तो जितेन्द्रियः ॥ १६ ॥
सर्वानविध्यत्त्रिशितैर्दशभिर्दशभिः शरैः ।

शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले जितेन्द्रिय अर्जुनने अपने अस्त्रोंद्वारा शत्रुओंके अस्त्रोंका निवारण करके उन सबको दस-दस तीखे बाणोंसे बींध डाला ॥ १६½ ॥

उद्धूता रजसो वृष्टिः शरवृष्टिस्तथैव च ॥ १७ ॥
तमश्च घोरं शब्दश्च तदा समभवन्महान् ।

उस समय धूलकी वर्षा ऊपर छा गयी। साथ ही बाणोंकी भी वृष्टि हो रही थी। इससे वहाँ घोर अन्धकार छा गया और बड़े जोरसे कोलाहल होने लगा ॥ १७½ ॥

न द्यौर्न भूमिर्न दिशः प्राज्ञायन्त तथागते ॥ १८ ॥
सैन्येन रजसा मूढं सर्वमन्धमिवाभवत् ।

उस अवस्थामें न आकाशका, न पृथ्वीका और न दिशाओंका ही पता लगता था। सेनाद्वारा उड़ायी हुई धूलसे आच्छादित होकर वहाँ सब कुछ अन्धकारमय हो गया था ॥ १८½ ॥

नैव ते न वयं राजन् प्राज्ञासिष्म परस्परम् ॥ १९ ॥
उद्देशेन हि तेन स्म समयुध्यन्त पार्थिवाः ।

राजन् ! वे शत्रुसैनिक तथा हमलोग आपसमें कोई किसीको पहचान नहीं पाते थे। इसलिये नाम बतानेसे ही राजालोग एक दूसरेके साथ युद्ध करते थे ॥ १९½ ॥

विरथा रथिनो राजन् समासाद्य परस्परम् ॥ २० ॥
केशेषु समसज्जन्त कवचेषु भुजेषु च ।

महाराज ! रथीलोग रथहीन हो जानेपर परस्पर भिड़कर एक दूसरेके केश, कवच और बाँहें पकड़कर जूझने लगे ॥ २०½ ॥

हताश्वा हतसूताश्च निश्चेष्टा रथिनो हताः ॥ २१ ॥
जीवन्त इव तत्र स्म व्यदृश्यन्त भयार्दिताः ।

बहुत-से रथी घोड़े और सारथिके मारे जानेपर भयसे पीड़ित हो ऐसे निश्चेष्ट हो गये थे कि जीवित होते हुए भी वहाँ मरेके समान दिखायी देते थे ॥ २१½ ॥

हतान् गजान् समाश्लिष्य पर्वतानिव वाजिनः ॥ २२ ॥
गतसत्त्वा व्यदृश्यन्त तथैव सह सादिभिः ।

कितने ही घोड़े और घुड़सवार मरे हुए पर्वताकार हाथियोंसे सटकर प्राणशून्य दिखायी देते थे ॥ २२½ ॥

ततस्त्वभ्यवसृत्यैव संग्रामादुत्तरां दिशम् ॥ २३ ॥
अतिष्ठदाहवे द्रोणो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ।

उधर द्रोणाचार्य उस युद्धस्थलसे उत्तर दिशाकी ओर जाकर धूमरहित अग्निके समान प्रज्वलित होते हुए रणभूमिमें खड़े हो गये ॥ २३½ ॥

तमाजिशीर्षादेकान्तमपक्रान्तं निशम्य तु ॥ २४ ॥
समकम्पन्त सैन्यानि पाण्डवानां विशाम्पते ।

प्रजानाथ ! उन्हें युद्धके मुहानेसे हटकर एक किनारे आया देख उधर खड़ी हुई पाण्डवोंकी सेनाएँ थर-थर काँपने लगीं ॥ २४½ ॥

भ्राजमानं श्रिया युक्तं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥ २५ ॥
द्रोणं दृष्ट्वा परे त्रेसुश्चेरुर्मम्लुश्च भारत ।

भारत ! तेजसे प्रज्वलित हुए-से श्रीसम्पन्न द्रोणाचार्यको वहाँ प्रकाशित होते देख शत्रु-सैनिक थर्रा उठे। कितने ही वहाँसे भाग चले और बहुतेरे मन उदास किये खड़े रहे ॥

आह्वयन्तं परानीकं प्रभिन्नमिव वारणम् ॥ २६ ॥
नैनमाशंसिरे जेतुं दानवा वासवं यथा ।

जैसे दानव इन्द्रको नहीं जीत सकते, वैसे ही शत्रु-सैनिक शत्रुसेनाको ललकारते हुए मदस्रावी गजराजके समान द्रोणाचार्यको जीतनेका साहस नहीं कर सके ॥ २६½ ॥

केचिदासन् निरुत्साहाः केचित् क्रुद्धा मनस्विनः ॥ २७ ॥
विस्मिताश्चाभवन् केचित् केचिदासन्नमर्षिताः ।

कुछ योद्धा लड़नेका उत्साह खो बैठे, कुछ मनस्वी वीर रोषमें भर गये, कितने ही योद्धा उनका पराक्रम देख आश्चर्यचकित हो उठे और कितने ही अमर्षके वशीभूत हो गये ॥ २७½ ॥

हस्तैर्हस्ताग्रमपरे प्रत्यपिंषन् नराधिपाः ॥ २८ ॥
अपरे दशनैरोष्ठानदशन् क्रोधमूर्च्छिताः ।

कोई-कोई नरेश हाथसे हाथ मलने लगे। कुछ क्रोधसे आतुर हो दाँतोंसे ओठ चबाने लगे ॥ २८½ ॥

व्याक्षिपन्नायुधान्यन्ये ममृदुश्चापरे भुजान् ॥ २९ ॥
अन्ये चान्वपतन् द्रोणं त्यक्तात्मानो महौजसः ।

कुछ लोग अपने आयुधोंको उछालने और धनुषकी

प्रत्यञ्चा खींचने लगे। दूसरे योद्धा अपनी भुजाओंको मसलने लगे तथा अन्य बहुत-से महातेजस्वी वीर अपने प्राणोंका मोह छोड़कर द्रोणाचार्यपर टूट पड़े ॥२९½॥

पञ्चालास्तु विशेषेण द्रोणसायकपीडिताः ॥ ३० ॥
समसज्जन्त राजेन्द्र समरे भृशवेदनाः ।

राजेन्द्र ! पाञ्चाल सैनिक द्रोणाचार्यके बाणोंद्वारा विशेषरूपसे पीड़ित हो अधिक वेदना सहते हुए भी समरभूमिमें डटे रहे ॥ ३०½ ॥

ततो विराटद्रुपदौ द्रोणं प्रययतू रणे ॥ ३१ ॥
तथा चरन्तं संग्रामे भृशं समरदुर्जयम् ।

इस प्रकार संग्राममें विचरते हुए रणदुर्जय द्रोणाचार्यपर राजा विराट और द्रुपदने एक साथ चढ़ाई की॥

द्रुपदस्य ततः पौत्रास्त्रय एव विशाम्पते ॥ ३२ ॥
चेदयश्च महेष्वासा द्रोणमेवाभ्ययुर्युधि ।

प्रजानाथ ! तदनन्तर राजा द्रुपदके तीनों ही पौत्रों तथा चेदिदेशीय महाधनुर्धर योद्धाओंने भी युद्धस्थलमें द्रोणाचार्य-पर ही आक्रमण किया ॥ ३२½ ॥

तेषां द्रुपदपौत्राणां त्रयाणां निशितैः शरैः ॥ ३३ ॥
त्रिभिर्द्रोणोऽहरत् प्राणांस्ते हता न्यपतन् भुवि ।

तब द्रोणाचार्यने तीन तीखे बाणोंका प्रहार करके द्रुपदके तीनों पौत्रोंके प्राण हर लिये। वे तीनों मरकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ३३½ ॥

ततो द्रोणोऽजयद् युद्धे चेदिकैकेयसृंजयान् ॥ ३४ ॥
मत्स्यांश्चैवाजयत् कृत्स्नान् भारद्वाजो महारथान् ।

तत्पश्चात् भरद्वाजनन्दन द्रोणाचार्यने युद्धमें चेदि, केकय, सृंजय तथा मत्स्य देशके सम्पूर्ण महारथियोंको परास्त कर दिया ॥ ३४½ ॥

ततस्तु द्रुपदः क्रोधाच्छरवर्षमवासृजत् ॥ ३५ ॥
द्रोणं प्रति महाराज विराटश्चैव संयुगे ।

महाराज ! इसके बाद राजा द्रुपद और विराटने द्रोणाचार्यपर समराङ्गणमें क्रोधपूर्वक बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ३५½ ॥

तं निहत्येषुवर्षं तु द्रोणः क्षत्रियमर्दनः ॥ ३६ ॥
तौ शरैश्छादयामास विराटद्रुपदावुभौ ।

क्षत्रियमर्दन द्रोणाचार्यने अपने बाणोंद्वारा उस बाण-वर्षाको नष्ट करके विराट और द्रुपद दोनोंको ढक दिया ॥

द्रोणेन च्छाद्यमानौ तु क्रुद्धौ संग्राममूर्धनि ॥ ३७ ॥
द्रोणं शरैर्विव्यधतुः परमं क्रोधमास्थितौ ।

द्रोणाचार्यके द्वारा आच्छादित किये जानेपर क्रोधमें भरे हुए वे दोनों नरेश अत्यन्त कुपित हो युद्धके मुहानेपर बाणोंद्वारा द्रोणको घायल करने लगे ॥ ३७½ ॥

ततो द्रोणो महाराज क्रोधामर्षसमन्वितः ॥ ३८ ॥
भल्लाभ्यां भृशतीक्ष्णाभ्यां चिच्छेद धनुषी तयोः ।

महाराज ! तब आचार्य द्रोणने क्रोध और अमर्षसे युक्त हो दो अत्यन्त तीखे भल्लोंद्वारा उन दोनोंके धनुष काट डाले॥

ततो विराटः कुपितः समरे तोमरान् दश ॥ ३९ ॥
दश चिक्षेप च शरान् द्रोणस्य वधकाङ्क्षया ।

इससे कुपित हुए विराटने रणभूमिमें द्रोणाचार्यके वधकी इच्छासे दस तोमर और दस बाण चलाये ॥ ३९½ ॥

शक्तिं च द्रुपदो घोरामायसीं स्वर्णभूषिताम् ॥ ४० ॥
चिक्षेप भुजगेन्द्राभां क्रुद्धो द्रोणरथं प्रति ।

साथ ही क्रोधमें भरे हुए राजा द्रुपदने लोहेकी बनी हुई स्वर्णभूषित भयंकर शक्ति, जो नागराजके समान प्रतीत होती थी, द्रोणाचार्यपर चलायी ॥ ४०½ ॥

ततो भल्लैः सुनिशितैश्छित्त्वा तांस्तोमरान् दश॥४१॥
शक्तिं कनकवैदूर्यां द्रोणश्चिच्छेद सायकैः ।

यह देख द्रोणाचार्यने तीखे भल्लोंसे उन दसों तोमरों-को काटकर अपने बाणोंके द्वारा सुवर्ण एवं वैदूर्यमणिसे विभूषित उस शक्तिके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ४१½ ॥

ततो द्रोणः सुपीताभ्यां भल्लाभ्यामरिमर्दनः ॥ ४२ ॥
द्रुपदं च विराटं च प्रेषयामास मृत्यवे ।

तत्पश्चात् शत्रुमर्दन आचार्य द्रोणने दो पानीदार भल्लोंसे मारकर राजा द्रुपद और विराटको यमराजके पास भेज दिया ॥ ४२½ ॥

हते विराटे द्रुपदे केकयेषु तथैव च ॥ ४३ ॥
तथैव चेदिमत्स्येषु पञ्चालेषु तथैव च ।
हतेषु त्रिषु वीरेषु द्रुपदस्य च नप्तृषु ॥ ४४ ॥
द्रोणस्य कर्म तद् दृष्ट्वा कोपदुःखसमन्वितः ।
शशाप रथिनां मध्ये धृष्टद्युम्नो महामनाः ॥ ४५ ॥

विराट, द्रुपद, केकय, चेदि, मत्स्य और पाञ्चाल योद्धाओं तथा राजा द्रुपदके तीनों वीर पौत्रोंके मारे जानेपर द्रोणाचार्यका वह कर्म देखकर क्रोध और दुःखसे भरे हुए महामनस्वी धृष्टद्युम्नने रथियोंके बीचमें इस प्रकार शपथ खायी—॥ ४३–४५ ॥

इष्टापूर्तात् तथा क्षात्राद् ब्राह्मण्याच्च स नश्यतु ।
द्रोणो यस्याद्य मुच्येत यं वा द्रोणः पराभवेत् ॥ ४६ ॥

'आज जिसके हाथसे द्रोणाचार्य जीवित छूट जायँ अथवा जिसे वे पराजित कर दें, वह यज्ञ करने तथा कुआँ-बावली बनवाने एवं बगीचे लगाने आदिके पुण्योंसे वञ्चित हो जाय। क्षत्रियत्व और ब्राह्मणत्वसे भी गिर जाय' ॥४६॥

१. द्रुपदकुलमें उत्पन्न होनेके कारण धृष्टद्युम्नका क्षत्रिय होना तो प्रसिद्ध ही है। परंतु याज और उपयाज नामक दो तपस्वी ब्राह्मणोंकी तपस्यासे उनकी उत्पत्ति हुई थी तथा परमेश्वरके मुखसे प्रकट हुए ब्राह्मणस्वरूप अग्निसे उनका प्रादुर्भाव हुआ था। इससे उनमें ब्राह्मणत्व भी था।

इति तेषां प्रतिश्रुत्य मध्ये सर्वधनुष्मताम् ।
आयाद् द्रोणं सहानीकः पाञ्चाल्यः परवीरहा॥ ४७ ॥

इस प्रकार उन सम्पूर्ण धनुर्धरोंके बीचमें प्रतिज्ञा करके शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न अपनी सेनाके साथ द्रोणाचार्यपर चढ़ आये ॥ ४७ ॥

पञ्चालास्त्वेकतो द्रोणमभ्यघ्नन् पाण्डवैः सह ।
दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिश्चापि सौबलः ॥ ४८ ॥
सोदर्याश्च यथामुख्यास्तेऽरक्षन् द्रोणमाहवे ।

एक ओरसे पाण्डवोंसहित पाञ्चाल सैनिक द्रोणाचार्यको मार रहे थे और दूसरी ओरसे दुर्योधन, कर्ण, सुबलपुत्र शकुनि तथा दुर्योधनके मुख्य-मुख्य भाई उस युद्धमें आचार्यकी रक्षा कर रहे थे ॥ ४८½ ॥

रक्ष्यमाणं तथा द्रोणं सर्वैस्तैस्तु महारथैः ॥ ४९ ॥
यतमानास्तु पञ्चाला न शेकुः प्रतिवीक्षितुम् ।

उन सम्पूर्ण महारथियोंद्वारा सुरक्षित हुए द्रोणाचार्यकी ओर पाञ्चाल सैनिक प्रयत्न करनेपर भी आँख उठाकर देखतक न सके ॥ ४९½ ॥

तत्राकुध्यद् भीमसेनो धृष्टद्युम्नस्य मारिष ॥ ५० ॥
स एनं वाग्भिरुग्राभिस्ततक्ष पुरुषर्षभः ।

आर्य ! तब वहाँ पुरुषप्रवर भीमसेन धृष्टद्युम्नपर कुपित हो उठे और उन्हें भयंकर वाग्बाणोंद्वारा छेदने लगे ॥

भीमसेन उवाच

द्रुपदस्य कुले जातः सर्वास्त्रेष्वस्त्रवित्तमः ॥ ५१ ॥
कः क्षत्रियो मन्यमानः प्रेक्षेतारिमवस्थितम् ।

भीमसेन बोले—द्रुपदके कुलमें जन्म लेकर और सम्पूर्ण अस्त्रोंका सबसे बड़ा विद्वान् होकर भी कौन स्वाभिमानी क्षत्रिय शत्रुको सामने खड़ा हुआ देख सकेगा ? ॥

पितृपुत्रवधं प्राप्य पुमान् कः परिपालयेत् ॥ ५२ ॥
विशेषतस्तु शपथं शपित्वा राजसंसदि ।

शत्रुके हाथसे पिता और पुत्रका वध पाकर, विशेषतः राजाओंकी मण्डलीमें शपथ खाकर कौन पुरुष उस शत्रुकी रक्षा करेगा ?॥ ५२½ ॥

एष वैश्वानर इव समिद्धः स्वेन तेजसा ॥ ५३ ॥
शरचापेन्धनो द्रोणः क्षत्रं दहति तेजसा ।

धनुष-बाणरूपी ईंधनसे युक्त हो तेजसे अग्निके समान प्रज्वलित होनेवाले ये द्रोणाचार्य अपने प्रभावसे क्षत्रियोंको दग्ध कर रहे हैं ॥ ५३½ ॥

पुरा करोति निःशेषां पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ ५४ ॥
स्थिताः पश्यत मे कर्म द्रोणमेव व्रजाम्यहम् ।

ये जबतक पाण्डवसेनाको समाप्त नहीं कर लेते, उसके पहले ही मैं द्रोणपर आक्रमण करता हूँ । वीरो ! तुम खड़े होकर मेरा पराक्रम देखो ॥ ५४½ ॥

इत्युक्त्वा प्राविशत् क्रुद्धो द्रोणानीकं वृकोदरः ॥ ५५ ॥
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैर्द्रावयंस्तव वाहिनीम् ।

ऐसा कहकर भीमसेनने कुपित हो धनुषको पूर्णतः खींचकर छोड़े गये बाणोंद्वारा आपकी सेनाको खदेड़ते हुए द्रोणाचार्यके सैन्यदलमें प्रवेश किया ॥ ५५½ ॥

धृष्टद्युम्नोऽपि पाञ्चाल्यः प्रविश्य महतीं चमूम् ॥ ५६ ॥
आससाद रणे द्रोणं तदाऽऽसीत् तुमुलं महत् ।

इसी प्रकार पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नने भी आपकी विशाल सेनामें घुसकर रणभूमिमें द्रोणाचार्यपर चढ़ाई की । उस समय बड़ा भयंकर युद्ध होने लगा ॥ ५६½ ॥

नैव नस्तादृशं युद्धं दृष्टपूर्वं न च श्रुतम् ॥ ५७ ॥
यथा सूर्योदये राजन् समुत्पिञ्जोऽभवन्महान् ।

राजन् ! उस दिन सूर्योदयके समय जैसा महान् जनसंहारकारी संग्राम हुआ, वैसा हमने पहले न तो कभी देखा था और न सुना ही था ॥ ५७½ ॥

संसक्तान्येव चादृश्यन् रथवृन्दानि मारिष ॥ ५८ ॥
हतानि च विकीर्णानि शरीराणि शरीरिणाम् ।

माननीय नरेश ! उस युद्धमें रथोंके समूह परस्पर सटे हुए ही दिखायी देते थे और देहधारियोंके शरीर मरकर बिखरे हुए थे ॥ ५८½ ॥

केचिदन्यत्र गच्छन्तः पथि चान्यैरुपद्रुताः ॥ ५९ ॥
विमुखाः पृष्ठतश्चान्ये ताड्यन्ते पार्श्वतः परे ।

कुछ योद्धा अन्यत्र जाते हुए मार्गमें दूसरे योद्धाओंके आक्रमणके शिकार हो जाते थे । कुछ लोग युद्धसे विमुख होकर भागते समय पीठ और पार्श्वभागोंमें विपक्षियोंके बाणोंकी चोट सहते थे ॥ ५९½ ॥

तथा संसक्तयुद्धं तदभवद् भृशदारुणम् ।
अथ संध्यागतः सूर्यः क्षणेन समपद्यत ॥ ६० ॥

इस प्रकार वह अत्यन्त भयंकर घमासान युद्ध हो ही रहा था कि क्षणभरमें प्रातःसंध्याकी वेलामें सूर्यदेवका पूर्णतः उदय हो गया ॥ ६० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि संकुलयुद्धे षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणवधपर्वमें संकुलयुद्धविषयक एक सौ छियासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८६ ॥

सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

युद्धस्थलकी भीषण अवस्थाका वर्णन और नकुलके द्वारा दुर्योधनकी पराजय

संजय उवाच

ते तथैव महाराज दंशिता रणमूर्धनि।
संध्यागतं सहस्रांशुमादित्यमुपतस्थिरे ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! वे समस्त योद्धा पूर्ववत् कवच बाँधे हुए ही युद्धके मुहानेपर प्रातः-संध्याके समय सहस्रों किरणोंसे सुशोभित भगवान् सूर्यका उपस्थान करने लगे ॥ १ ॥

उदिते तु सहस्रांशौ तप्तकाञ्चनसप्रभे।
प्रकाशितेषु लोकेषु पुनर्युद्धमवर्तत ॥ २ ॥

तपाये हुए सुवर्णके समान कान्तिमान् सूर्यदेवका उदय होनेपर जब सम्पूर्ण लोकोंमें प्रकाश छा गया, तब पुनः युद्ध होने लगा ॥ २ ॥

द्वन्द्वानि तत्र यान्यासन् संसक्तानि पुरोदयात्।
तान्येवाभ्युदिते सूर्ये समसज्जन्त भारत ॥ ३ ॥

भरतनन्दन! सूर्योदयसे पहले जिन लोगोंमें द्वन्द्व-युद्ध चल रहा था, सूर्योदयके बाद भी पुनः वे ही लोग परस्पर जूझने लगे ॥ ३ ॥

रथैर्हया हयैर्नागाः पादातैश्चापि कुञ्जराः।
हयैर्हयाः समाजग्मुः पादाताश्च पदातिभिः ॥ ४ ॥

रथोंसे घोड़े, घोड़ोंसे हाथी, पैदलोंसे हाथीसवार, घोड़ोंसे घोड़े तथा पैदलोंसे पैदल भिड़ गये ॥ ४ ॥

रथा रथैरिभैर्नागास्तथैव भरतर्षभ।
संसक्ताश्च वियुक्ताश्च योधाः संन्यपतन् रणे ॥ ५ ॥

भरतश्रेष्ठ! रथोंसे रथ और हाथियोंसे हाथी गुँथ जाते थे। इस प्रकार कभी सटकर और कभी विलग होकर वे योद्धा रणभूमिमें गिरने लगे ॥ ५ ॥

ते रात्रौ कृतकर्माणः श्रान्ताः सूर्यस्य तेजसा।
क्षुत्पिपासापरीताङ्गा विसंज्ञा बहवोऽभवन् ॥ ६ ॥

वे सभी रातमें युद्ध करके थक गये थे। फिर सबेरे सूर्यकी धूप लगनेसे उनके अङ्ग-अङ्गमें भूख-प्यास व्याप्त हो गयी, जिससे बहुतेरे सैनिक अपनी सुध-बुध खो बैठे ॥ ६ ॥

शङ्खभेरीमृदङ्गानां कुञ्जराणां च गर्जताम्।
विस्फारितविकृष्टानां कार्मुकाणां च कूजताम्॥ ७ ॥
शब्दः समभवद् राजन् दिविस्पृग् भरतर्षभ।

राजन्! भरतश्रेष्ठ! उस समय शङ्ख, भेरी और मृदङ्गोंकी ध्वनि, गरजते हुए गजराजोंका चीत्कार और फैलाये तथा खींचे गये धनुषोंकी टङ्कार इन सबका सम्मिलित शब्द आकाशमें गूँज उठा था ॥ ७½ ॥

द्रवतां च पदातीनां शस्त्राणां पततामपि ॥ ८ ॥
हयानां ह्रेषतां चापि रथानां च निवर्तताम्।
क्रोशतां गर्जतां चैव तदाऽऽसीत् तुमुलं महत् ॥ ९ ॥

दौड़ते हुए पैदलों, गिरते हुए शस्त्रों, हिनहिनाते हुए घोड़ों, लौटते हुए रथों तथा चीखते-चिल्लाते और गरजते हुए शूरवीरोंका मिला हुआ महाभयंकर शब्द वहाँ गूँज रहा था ॥ ८-९ ॥

विवृद्धस्तुमुलः शब्दो द्यामगच्छन्महांस्तदा।
नानायुधनिकृत्तानां चेष्टतामातुरः स्वनः ॥ १० ॥
भूमावश्रूयत महांस्तदाऽऽसीत् कृपणं महत्।
पततां पात्यमानानां पत्त्यश्वरथदन्तिनाम् ॥ ११ ॥

वह बढ़ा हुआ अत्यन्त भयानक शब्द उस समय स्वर्गलोकतक जा पहुँचा था। नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे कटकर छटपटाते हुए योद्धाओंका महान् आर्तनाद धरतीपर सुनायी दे रहा था। गिरते और गिराये जाते हुए पैदल, घोड़े, रथ और हाथियोंकी अत्यन्त दयनीय दशा दिखायी देती थी ॥ १०—११ ॥

तेषु सर्वेष्वनीकेषु व्यतिषक्तेष्वनेकशः।
स्वे स्वाञ्जघ्नुः परे स्वांश्च स्वान् परेषां परे परान्॥१२॥

उन सभी सेनाओंमें बारंबार मुठभेड़ होती थी और उसमें अपने ही पक्षके लोग अपने ही पक्षवालोंको मार डालते थे। शत्रुपक्षके लोग भी अपने पक्षके लोगोंको मारते थे। शत्रुपक्षके जो स्वजन थे उनको तथा शत्रुओंको भी शत्रुपक्षके योद्धा मार डालते थे ॥ १२ ॥

वीरबाहुविसृष्टाश्च योधेषु च गजेषु च।
राशयः प्रत्यदृश्यन्त वाससां नेजनेष्विव ॥ १३ ॥

जैसे कपड़े धोनेके घाटोंपर ढेर-के-ढेर वस्त्र दिखायी देते हैं, उसी प्रकार योद्धाओं और हाथियोंपर वीरोंकी भुजाओंद्वारा छोड़े गये अस्त्र-शस्त्रोंकी राशियाँ दिखायी देती थीं ॥ १३ ॥

उद्यतप्रतिपिष्टानां खड्गानां वीरबाहुभिः।
स एव शब्दस्तद्रूपो वाससां निज्यतामिव ॥ १४ ॥

शूरवीरोंके हाथोंमें उठकर विपक्षी योद्धाओंके शस्त्रोंसे टकराये हुए खड्गोंका शब्द वैसा ही जान पड़ता था, जैसे धोबियोंके पटहोंपर पीटे जानेवाले कपड़ोंका शब्द होता है ॥

अर्धासिभिस्तथा खड्गैस्तोमरैः सपरश्वधैः।
निकृष्टयुद्धं संसक्तं महदासीत् सुदारुणम् ॥ १५ ॥

एक ओर धारवाली और दुधारी तलवारों, तोमरों तथा फरसोंद्वारा जो अत्यन्त निकटसे युद्ध चल रहा था, वह भी बहुत ही क्रूरतापूर्ण एवं भयंकर था ॥ १५ ॥

गजाश्वकायप्रभवां नरदेहप्रवाहिनीम्।
शस्त्रमत्स्यसुसम्पूर्णां मांसशोणितकर्दमाम् ॥ १६ ॥
आर्तनादस्वनवतीं पताकाशस्त्रफेनिलाम्।
नदीं प्रावर्तयन् वीराः परलोकौघगामिनीम् ॥ १७ ॥

वहाँ युद्ध करनेवाले वीरोंने खूनकी नदी बहा दी; जिसका प्रवाह परलोककी ओर ले जानेवाला था। वह रक्तकी नदी हाथी और घोड़ोंकी लाशोंसे प्रकट हुई थी। मनुष्योंके शरीरोंको बहाये लिये जाती थी। उसमें शस्त्ररूपी मछलियाँ भरी थीं। मांस और रक्त ही उसकी कीचड़ थे। पीड़ितोंके आर्तनाद ही उसकी कलकल ध्वनि थे तथा पताका और शस्त्र उसमें फेनके समान जान पड़ते थे ॥

शरशक्त्यर्दिताः क्लान्ता रात्रिमूढाल्पचेतसः।
विष्टभ्य सर्वगात्राणि व्यतिष्ठन् गजवाजिनः ॥ १८ ॥

रात्रिके युद्धसे मोहित, अल्प चेतनावाले, बाणों और शक्तियोंसे पीड़ित तथा थके-माँदे हाथी एवं घोड़े आदि वाहन अपने सारे अङ्गोंको स्तब्ध करके वहाँ खड़े थे ॥ १८ ॥

बाहुभिः कवचैश्चित्रैः शिरोभिश्चारुकुण्डलैः।
युद्धोपकरणैश्चान्यैस्तत्र तत्र चकाशिरे ॥ १९ ॥

योद्धाओंकी कटी हुई भुजाओं, विचित्र कवचों, मनोहर कुण्डलमण्डित मस्तकों तथा इधर-उधर बिखरी हुई अन्यान्य युद्ध-सामग्रियोंसे रणभूमिके विभिन्न प्रदेश प्रकाशित हो रहे थे ॥ १९ ॥

क्रव्यादसङ्घैराकीर्णं मृतैरर्धमृतैरपि।
नासीद् रथपथस्तत्र सर्वमायोधनं प्रति ॥ २० ॥

कहीं कच्चा मांस खानेवाले प्राणियोंका समुदाय भरा था, कहीं मरे और अधमरे जीव पड़े थे। इन सबके कारण उस सारी युद्धभूमिमें कहीं भी रथ जानेके लिये रास्ता नहीं मिलता था ॥ २० ॥

मज्जत्सु चक्रेषु रथान् सत्त्वमास्थाय वाजिनः।
कथंचिदवहञ्श्रान्ता वेपमानाः शरार्दिताः ॥ २१ ॥
कुलसत्त्वबलोपेता वाजिनो वारणोपमाः।

रथोंके पहिये रक्तकी कीचमें डूब जाते थे, तो भी उन रथोंको बाणोंसे पीड़ित हो काँपते हुए और परिश्रमसे थके-माँदे घोड़े किसी प्रकार धैर्य धारण करके ढोते थे। वे सभी घोड़े उत्तम कुल, साहस और बलसे सम्पन्न तथा हाथियोंके समान विशालकाय थे (इसीलिये ऐसा पराक्रम कर पाते थे) ॥ २१½ ॥

विह्वलं तूर्णमुद्भ्रान्तं सभयं भारतातुरम् ॥ २२ ॥
बलमासीत् तदा सर्वमृते द्रोणार्जुनावुभौ।
तावेवास्तां निलयनं तावार्तायनमेव च ॥ २३ ॥
तावेवान्ये समासाद्य जग्मुर्वैवस्वतक्षयम्।

भारत! उस समय द्रोणाचार्य और अर्जुन—इन दो वीरोंको छोड़कर शेष सारी सेना तुरंत विह्वल, उद्भ्रान्त, भयभीत और आतुर हो गयी। वे ही दोनों अपने-अपने पक्षके योद्धाओंके लिये छिपनेके स्थान थे और वे ही पीड़ितोंके आश्रय बने हुए थे। परंतु विपक्षी योद्धा इन्हीं दोनोंके समीप जाकर यमलोक पहुँच जाते थे ॥ २२-२३½ ॥

आविग्नमभवत् सर्वं कौरवाणां महद् बलम् ॥ २४ ॥
पञ्चालानां च संसक्तं न प्राज्ञायत किंचन।
अन्तकाक्रीडसदृशं भीरूणां भयवर्धनम् ॥ २५ ॥

कौरवों तथा पाञ्चालोंके सारे विशाल सैन्य परस्पर मिलकर व्यग्र हो उठे थे। उस समय उनमेंसे किसी दलको अलग-अलग पहचाना नहीं जाता था। वह समराङ्गण यमराजका क्रीडास्थल-सा हो रहा था और कायरोंका भय बढ़ा रहा था ॥ २४-२५ ॥

पृथिव्यां राजवंश्यानामुत्थिते महति क्षये।
न तत्र कर्णं द्रोणं वा नार्जुनं न युधिष्ठिरम् ॥ २६ ॥
न भीमसेनं न यमौ न पाञ्चाल्यं न सात्यकिम्।
न च दुःशासनं द्रौणिं न दुर्योधनसौबलौ ॥ २७ ॥
न कृपं मद्रराजं च कृतवर्माणमेव च।
न चान्यान् नैव चात्मानं न क्षितिं न दिशस्तथा ॥ २८ ॥
पश्याम राजन् संसक्तान् सैन्येन रजसाऽऽवृतान्।

राजन्! भूमण्डलके राजवंशमें उत्पन्न हुए क्षत्रियोंका वह महान् संहार उपस्थित होनेपर वहाँ युद्धमें तत्पर हुए सब लोग सेनाद्वारा उड़ायी हुई धूलसे ढक गये थे। इसीलिये हमलोग वहाँ न तो कर्णको देख पाते थे, न द्रोणाचार्यको। न अर्जुन दिखायी देते थे, न युधिष्ठिर। भीमसेन, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न और सात्यकिको भी हम नहीं देख पाते थे। दुःशासन, अश्वत्थामा, दुर्योधन, शकुनि, कृपाचार्य, शल्य, कृतवर्मा तथा अन्य महारथी भी हमारी दृष्टिमें नहीं आते थे। औरोंकी तो बात ही क्या है? हम अपने शरीरको भी नहीं देख पाते थे, पृथिवी और दिशाएँ भी नहीं सूझती थीं ॥ २६-२८½ ॥

सम्भ्रान्ते तुमुले घोरे रजोमेघे समुत्थिते ॥ २९ ॥
द्वितीयामिव सम्प्राप्ताममन्यन्त निशां तदा।

वहाँ धूलरूपी मेघकी भयंकर एवं घोर घटा घुमड़-घुमड़कर घिर आयी थी, जिससे सब लोगोंको उस समय ऐसा मालूम होता था, मानो दूसरी रात्रि आ पहुँची हो ॥ २९½ ॥

न ज्ञायन्ते कौरवेया न पञ्चाला न पाण्डवाः ॥ ३० ॥
न दिशो द्यौर्न चोर्वी च न समं विषमं तथा।

उस अन्धकारमें न तो कौरव पहचाने जाते थे और न पाञ्चाल तथा पाण्डव ही। दिशा, आकाश, भूमण्डल

और सम-विषम स्थान आदिका भी पता नहीं चलता था ॥ ३०½ ॥

हस्तसंस्पर्शमापन्नान् परानप्यथवा स्वकान् ॥ ३१ ॥
न्यपातयंस्तदा युद्धे नराः स्म विजयैषिणः ।

जो हाथकी पकड़में आ गये या छू गये, वे अपने हों या पराये, विजयकी इच्छा रखनेवाले मनुष्य उन्हें तत्काल युद्धमें मार गिराते थे ॥ ३१½ ॥

उद्भूतत्वात् तु रजसः प्रसेकाच्छोणितस्य च ॥ ३२ ॥
प्राशाम्यत रजो भौमं शीघ्रत्वादनिलस्य च ।

उस समय तेज हवा चलनेसे कुछ धूल तो ऊपर उड़ गयी और कुछ योद्धाओंके रक्तसे सिंचकर नीचे बैठ गयी। इससे भूतलकी वह सारी धूलराशि शान्त हो गयी ॥ ३२½ ॥

तत्र नागा हया योधा रथिनोऽथ पदातयः ॥ ३३ ॥
पारिजातवनानीव व्यरोचन् रुधिरोक्षिताः ।

तदनन्तर वहाँ खूनसे लथपथ हुए हाथी, घोड़े, रथी और पैदल सैनिक पारिजातके जंगलोंके समान सुशोभित होने लगे ॥ ३३½ ॥

ततो दुर्योधनः कर्णो द्रोणो दुःशासनस्तथा ॥ ३४ ॥
पाण्डवैः समसज्जन्त चतुर्भिश्चतुरो रथाः ।

उस समय दुर्योधन, कर्ण, द्रोणाचार्य और दुःशासन—ये चार महारथी चार पाण्डवोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ ३४½ ॥

दुर्योधनः सह भ्रात्रा यमाभ्यां समसज्जत ॥ ३५ ॥
वृकोदरेण राधेयो भारद्वाजेन चार्जुनः ।

दुर्योधन अपने भाई दुःशासनको साथ लेकर नकुल और सहदेवसे भिड़ गया। राधापुत्र कर्ण भीमसेनके साथ और अर्जुन आचार्य द्रोणके साथ युद्ध करने लगे ॥ ३५½ ॥

तद् घोरं महदाश्चर्यं सर्वे प्रैक्षन्त सर्वतः ॥ ३६ ॥
रथर्षभाणामुग्राणां संनिपातममानुषम् ।

उन उग्र महारथियोंका वह घोर, अत्यन्त आश्चर्यजनक और अमानुषिक संग्राम वहाँ सब लोग सब ओरसे देखने लगे ॥ ३६½ ॥

रथमार्गैर्विचित्रैस्तैर्विचित्ररथसंकुलम् ॥ ३७ ॥
अपश्यन् रथिनो युद्धं विचित्रं चित्रयोधिनाम् ।

रथके विचित्र पैंतरोंसे विचरनेवाले तथा विचित्र युद्ध करनेवाले उन महारथियोंका विचित्र रथोंसे व्याप्त वह विचित्र युद्ध वहाँ सब रथी दर्शककी भाँति देखने लगे ॥ ३७½ ॥

यतमानाः पराक्रान्ताः परस्परजिगीषवः ॥ ३८ ॥
जीमूता इव घर्मान्ते शरवर्षैरवाकिरन् ।

एक दूसरेको जीतनेकी इच्छावाले वे वीर योद्धा प्रयत्नपूर्वक पराक्रममें तत्पर हो वर्षाकालके मेघोंकी भाँति बाणरूपी जलकी वर्षा कर रहे थे ॥ ३८½ ॥

ते रथान् सूर्यसंकाशानास्थिताः पुरुषर्षभाः ॥ ३९ ॥
अशोभन्त यथा मेघाः शारदाश्चलविद्युतः ।

सूर्यके समान तेजस्वी रथोंपर बैठे हुए वे पुरुषप्रवर योद्धा चञ्चल चपलाओंकी चमकसे युक्त शरत्कालके मेघोंकी भाँति शोभा पा रहे थे ॥ ३९½ ॥

योधास्ते तु महाराज क्रोधामर्षसमन्विताः ॥ ४० ॥
स्पर्धिनश्च महेष्वासाः कृतयत्ना धनुर्धराः ।
अभ्यगच्छंस्तथान्योन्यं मत्ता गजवृषा इव ॥ ४१ ॥

महाराज ! क्रोध और अमर्षमें भरे हुए वे परस्पर स्पर्धा रखनेवाले, विजयके लिये प्रयत्नशील और विशाल धनुष धारण करनेवाले धनुर्धर योद्धा मतवाले गजराजोंके समान एक दूसरेसे जूझ रहे थे ॥ ४०-४१ ॥

न नूनं देहभेदोऽस्ति काले राजन्ननागते ।
यत्र सर्वे न युगपद् व्यशीर्यन्त महारथाः ॥ ४२ ॥

राजन् ! निश्चय ही अन्तकाल आये बिना किसीके शरीरका नाश नहीं होता है, तभी तो उस संग्राममें क्षत-विक्षत हुए वे समस्त महारथी एक साथ ही नष्ट नहीं हो गये ॥ ४२ ॥

बाहुभिश्चरणैश्छिन्नैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
कार्मुकैर्विशिखैः प्रासैः खड्गैः परशुपट्टिशैः ॥ ४३ ॥
नालीकैः क्षुद्रनाराचैर्नखरैः शक्तितोमरैः ।
अन्यैश्च विविधाकारैर्धौतैः प्रहरणोत्तमैः ॥ ४४ ॥
विचित्रैर्विविधाकारैः शरीरावरणैरपि ।
विचित्रैश्च रथैर्भग्नैर्हतैश्च गजवाजिभिः ॥ ४५ ॥
शून्यैश्च नगराकारैर्हतयोधध्वजै रथैः ।
अमनुष्यैर्हयैस्त्रस्तैः कृष्यमाणैस्ततस्ततः ॥ ४६ ॥
वातायमानैरसकृद्धतवीरैरलङ्कृतैः ।
व्यजनैः कङ्कटैश्चैव ध्वजैश्च विनिपातितैः ॥ ४७ ॥
छत्रैराभरणैर्वस्त्रैर्माल्यैश्च ससुगन्धिभिः ।
हारैः किरीटैर्मुकुटैरुष्णीषैः किङ्किणीगणैः ॥ ४८ ॥
उरस्थैर्मणिभिर्निष्कैश्चूडामणिभिरेव च ।
आसीदायोधनं तत्र नभस्तारागणैरिव ॥ ४९ ॥

उस समय योद्धाओंके कटे हुए हाथ, पैर, कुण्डलमण्डित मस्तक, धनुष, बाण, प्रास, खड्ग, परशु, पट्टिश, नालीक, छोटे नाराच, नखर, शक्ति, तोमर, अन्यान्य नाना प्रकारके साफ किये हुए उत्तम आयुध, भाँति-भाँतिके विचित्र कवच, टूटे हुए विचित्र रथ तथा मारे गये हाथी, घोड़े, इधर-उधर पड़े थे। वायुके समान वेगशाली, सारथिशून्य, भयभीत घोड़े जिन्हें बारंबार इधर-उधर खींच रहे थे, जिनके रथी योद्धा और ध्वज नष्ट हो गये थे, ऐसे नगराकार सुनसान रथ भी वहाँ दृष्टिगोचर हो रहे थे। आभूषणोंसे विभूषित वीरोंके मृतशरीर यत्र-तत्र गिरे हुए थे, काटकर

गिराये हुए व्यजन, कवच, ध्वज, छत्र, आभूषण, वस्त्र, सुगन्धित फूलोंके हार, रत्नोंके हार, किरीट, मुकुट, पगड़ी, किङ्किणीसमूह, छातीपर धारण की जानेवाली मणि, सोनेके निष्क और चूड़ामणि आदि वस्तुएँ भी इधर-उधर बिखरी पड़ी थीं। इन सबसे भरा हुआ वह युद्धस्थल वहाँ नक्षत्रोंसे व्याप्त आकाशके समान सुशोभित हो रहा था ॥ ४३-४९ ॥

ततो दुर्योधनस्यासीन्नकुलेन समागमः।
अमर्षितेन क्रुद्धस्य क्रुद्धेनामर्षितस्य च ॥ ५० ॥

इसी समय क्रुद्ध और असहिष्णु दुर्योधनका रोष और अमर्षसे भरे हुए नकुलके साथ युद्ध आरम्भ हुआ ॥५०॥

अपसव्यं चकाराथ माद्रीपुत्रस्तवात्मजम्।
किरञ्छरशतैर्हृष्टस्तत्र नादो महानभूत् ॥ ५१ ॥

माद्रीपुत्र नकुलने आपके पुत्र दुर्योधनको दाहिने कर दिया और हर्षमें भरकर उसपर सैकड़ों बाणोंकी झड़ी लगा दी; फिर तो वहाँ महान् कोलाहल हुआ ॥ ५१ ॥

अपसव्यं कृतं संख्ये भ्रातृव्येनात्यमर्षिणा।
नामृष्यत तमप्याजौ प्रतिचक्रेऽपसव्यतः ॥ ५२ ॥
पुत्रस्तव महाराज राजा दुर्योधनो द्रुतम्।

अमर्षशील शत्रुके द्वारा युद्धस्थलमें अपने आपको दाहिने किया हुआ देख दुर्योधन इसे सहन न कर सका। महाराज! फिर आपके पुत्र राजा दुर्योधनने भी तुरंत ही रणभूमिमें नकुलको भी अपने दाहिने ला देनेका प्रयत्न किया ॥५२½॥

ततः प्रतिचिकीर्षन्तमपसव्यं तु ते सुतम् ॥ ५३ ॥
न्यवारयत तेजस्वी नकुलश्चित्रमार्गवित्।

तेजस्वी नकुल युद्धकी विचित्र प्रणालियोंके ज्ञाता थे। उन्होंने यह देखकर कि धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन मुझे दाहिने लानेकी चेष्टा कर रहा है, उसे सहसा रोक दिया ॥५३½॥

स सर्वतो निवार्यैनं शरजालेन पीडयन् ॥ ५४ ॥
विमुखं नकुलश्चक्रे तत् सैन्याः समपूजयन्।

नकुलने दुर्योधनको अपने बाणसमूहोंद्वारा पीड़ित करते हुए उसे सब ओरसे रोककर युद्धसे विमुख कर दिया। उनके इस पराक्रमकी समस्त सैनिक सराहना करने लगे ॥ ५४½ ॥

तिष्ठ तिष्ठेति नकुलो बभाषे तनयं तव।
संस्मृत्य सर्वदुःखानि तव दुर्मन्त्रितं च तत् ॥ ५५ ॥

उस समय आपकी कुमन्त्रणा तथा अपनेको प्राप्त हुए सम्पूर्ण दुःखोंको स्मरण करके नकुलने आपके पुत्रको ललकारते हुए कहा—'अरे! खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ ५५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि नकुलयुद्धे सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणवधपर्वमें नकुलका युद्धविषयक एक सौ सतासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८७ ॥

अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

दुःशासन और सहदेवका, कर्ण और भीमसेनका तथा द्रोणाचार्य और अर्जुनका घोर युद्ध

संजय उवाच

ततो दुःशासनः क्रुद्धः सहदेवमुपाद्रवत्।
रथवेगेन तीव्रेण कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर अपने रथके तीव्र वेगसे पृथ्वीको कँपाते हुए-से दुःशासनने कुपित होकर सहदेवपर आक्रमण किया ॥ १ ॥

तस्यापतत एवाशु भल्लेनामित्रकर्शनः।
माद्रीपुत्रः शिरो यन्तुः सशिरस्त्राणमच्छिनत् ॥ २ ॥

उसके आते ही शत्रुसूदन माद्रीकुमार सहदेवने शीघ्र ही एक भल्ल मारकर दुःशासनके सारथिका मस्तक शिरस्त्राण-सहित काट डाला ॥ २ ॥

नैनं दुःशासनः सूतं नापि कश्चन सैनिकः।
कृत्तोत्तमाङ्गमाशुत्वात् सहदेवेन बुद्धवान् ॥ ३ ॥

इस कार्यमें उन्होंने ऐसी फुर्ती दिखायी कि न तो दुःशासन और न दूसरा ही कोई सैनिक इस बातको जान सका कि सहदेवने सारथिका सिर काट डाला है ॥ ३ ॥

यदा त्वसंगृहीतत्वात् प्रयान्त्यश्वा यथासुखम्।
ततो दुःशासनः सूतं बुबुधे गतचेतसम् ॥ ४ ॥

जब रास छूट जानेके कारण घोड़े अपनी मौजसे इधर-उधर भागने लगे, तब दुःशासनको यह ज्ञात हुआ कि मेरा सारथि मारा गया ॥ ४ ॥

स हयान् संनिगृह्याजौ स्वयं हयविशारदः।
युयुधे रथिनां श्रेष्ठो लघु चित्रं च सुष्ठु च ॥ ५ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ दुःशासन अश्व-संचालनकी कलामें निपुण था। वह रणभूमिमें स्वयं ही घोड़ोंको काबूमें करके शीघ्रता-पूर्वक विचित्र रीतिसे अच्छी तरह युद्ध करने लगा ॥ ५ ॥

तदस्यापूजयन् कर्म स्वे परे चापि संयुगे।
हतसूतरथेनाजौ व्यचरद् यदभीतवत् ॥ ६ ॥

सारथिके मारे जानेपर भी दुःशासन उस रथके द्वारा युद्धभूमिमें निर्भय-सा विचरता रहा; उसके इस कर्मकी अपने और शत्रुपक्षके लोगोंने भी प्रशंसा की ॥ ६ ॥

सहदेवस्तु तानश्वांस्तीक्ष्णैर्बाणैरवाकिरत्।
पीड्यमानाः शरैश्चाशु प्राद्रवंस्ते ततस्ततः ॥ ७ ॥

सहदेव उन घोड़ोंपर तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगे। उन बाणोंसे पीड़ित हुए वे घोड़े शीघ्र ही इधर-उधर भागने लगे ॥ ७ ॥

स रश्मिषु विषक्तत्वादुत्ससर्ज शरासनम्।
धनुषा कर्म कुर्वंस्तु रश्मींश्च पुनरुत्सृजत्॥ ८ ॥

दुःशासन जब घोड़ोंकी रास सँभालने लगता तो धनुष छोड़ देता और जब धनुषसे काम लेता तो विवश होकर घोड़ोंकी रास छोड़ देता था ॥ ८ ॥

छिद्रेष्वेतेषु तं बाणैर्माद्रीपुत्रोऽभ्यवाकिरत्।
परीप्संस्त्वत्सुतं कर्णस्तदन्तरमवाप तत्॥ ९ ॥

उसकी दुर्बलताके इन्हीं अवसरोंपर माद्रीकुमार सहदेव उसे बाणोंसे ढक देते थे। उस समय आपके पुत्रकी रक्षाके लिये कर्ण बीचमें कूद पड़ा ॥ ९ ॥

वृकोदरस्ततः कर्णं त्रिभिर्भल्लैः समाहितः।
आकर्णपूर्णैरभ्यघ्नद् बाह्वोरुरसि चानदत्॥ १० ॥

तब भीमसेनने भी सावधान होकर धनुषको कानतक खींचकर छोड़े गये तीन भल्लोंद्वारा कर्णकी दोनों भुजाओं और छातीमें गहरी चोट पहुँचायी। फिर वे जोर-जोरसे गर्जना करने लगे ॥ १० ॥

स निवृत्तस्ततः कर्णः संघट्टित इवोरगः।
भीममावारयामास विकिरन् निशिताञ्छरान्॥ ११ ॥

तदनन्तर पैरोंसे कुचले गये सर्पके समान कुपित हो कर्ण लौट पड़ा और तीखे बाणोंकी वर्षा करके भीमको रोकने लगा॥११॥

ततोऽभूत् तुमुलं युद्धं भीमराधेययोस्तदा।
तौ वृषाविव नर्दन्तौ विवृत्तनयनावुभौ॥ १२ ॥

फिर तो भीमसेन और राधापुत्र कर्णमें घोर युद्ध होने लगा। दोनों ही एक दूसरेकी ओर विकृत दृष्टिसे देखते हुए साँड़ोंके समान गर्जने लगे ॥ १२ ॥

वेगेन महतान्योन्यं संरब्धावभिपेततुः।
अभिसंश्लिष्टयोस्तत्र तयोराहवशौण्डयोः॥ १३ ॥
विच्छिन्नशरपातत्वाद् गदायुद्धमवर्तत ।

फिर दोनों परस्पर अत्यन्त कुपित हो बड़े वेगसे टूट पड़े। उन युद्धकुशल योद्धाओंके परस्पर अत्यन्त निकट आ जानेके कारण उनके बाण चलानेका क्रम टूट गया; इसलिये उनमें गदायुद्ध आरम्भ हो गया ॥ १३½ ॥

गदया भीमसेनस्तु कर्णस्य रथकूबरम्॥ १४ ॥
बिभेद शतधा राजंस्तदद्भुतमिवाभवत्।

राजन्! भीमसेनने अपनी गदासे कर्णके रथका कूबर तोड़कर उसके सौ टुकड़े कर दिये, वह अद्भुत-सा कार्य हुआ ॥ १४½ ॥

ततो भीमस्य राधेयो गदामाविध्य वीर्यवान्॥ १५ ॥
अवासृजद् रथे तां तु बिभेद गदया गदाम्।

फिर पराक्रमी राधापुत्र कर्णने भीमकी ही गदा उठा ली और उसे घुमाकर उन्हींके रथपर फेंका; किंतु भीमने दूसरी गदासे उस गदाको तोड़ डाला ॥ १५½ ॥

ततो भीमः पुनर्गुर्वीं चिक्षेपाधिरथेर्गदाम्॥ १६ ॥
तां गदां बहुभिः कर्णः सुपुङ्खैः सुप्रवेजितैः।
प्रत्यविध्यत् पुनश्चान्यैः सा भीमं पुनराव्रजत्॥ १७ ॥

तत्पश्चात् उन्होंने अधिरथपुत्र कर्णपर पुनः एक भारी गदा छोड़ी। परंतु कर्णने तेज किये हुए सुन्दर पंखवाले दूसरे-दूसरे बहुत-से बाण मारकर उस गदाको बींध डाला। इससे वह पुनः भीमपर ही लौट आयी ॥ १६-१७ ॥

व्यालीव मन्त्राभिहता कर्णबाणैरभिद्रुता।
तस्याः प्रतिनिपातेन भीमस्य विपुलो ध्वजः॥ १८ ॥
पपात सारथिश्चास्य मुमोह च गदाहतः।

कर्णके बाणोंसे आहत हो वह गदा मन्त्रसे मारी गयी सर्पिणीके समान लौटकर भीमसेनके ही रथपर गिरी। उसके गिरनेसे भीमसेनकी विशाल ध्वजा धराशायी हो गयी और उस गदाकी चोट खाकर उनका सारथि भी मूर्छित हो गया ॥ १८½ ॥

स कर्णे सायकानष्टौ व्यसृजत् क्रोधमूर्च्छितः॥ १९ ॥
तैस्तस्य निशितैस्तीक्ष्णैर्भीमसेनो महाबलः।
चिच्छेद परवीरघ्नः प्रहसन्निव भारत॥ २० ॥
ध्वजं शरासनं चैव शरावापं च भारत।

तब क्रोधसे व्याकुल हुए भीमसेनने कर्णको आठ बाण मारे। भारत! शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले महाबली भीमसेनने हँसते हुए-से उन तेज धारवाले तीखे बाणोंद्वारा कर्णके ध्वज, धनुष और तरकसको काट गिराया॥१९-२०½॥

कर्णोऽप्यन्यद् धनुर्गृह्य हेमपृष्ठं दुरासदम्॥ २१ ॥
ततः पुनस्तु राधेयो हयानस्य रथेषुभिः।
ऋक्षवर्णाञ्जघानाशु तथोभौ पार्ष्णिसारथी॥ २२ ॥

तत्पश्चात् राधापुत्र कर्णने पुनः सोनेकी पीठवाला दूसरा दुर्जय धनुष हाथमें लेकर रथपर रक्खे हुए बाणोंद्वारा भीमसेनके रीछके समान रंगवाले काले घोड़ों और दोनों पार्श्वरक्षकोंको शीघ्र ही मार डाला ॥ २१-२२ ॥

स विपन्नरथो भीमो नकुलस्याप्लुतो रथम्।
हरिर्यथा गिरेः शृङ्गं समाक्रामदरिंदमः॥ २३ ॥

इस तरह रथ नष्ट हो जानेसे शत्रुदमन भीमसेन जैसे सिंह पर्वतके शिखरपर चढ़ जाता है, उसी प्रकार उछलकर नकुलके रथपर जा बैठे ॥ २३ ॥

तथा द्रोणार्जुनौ चित्रमयुध्येतां महारथौ।
आचार्यशिष्यौ राजेन्द्र कृतप्रहरणौ युधि॥ २४ ॥

राजेन्द्र! इसी प्रकार उस युद्धस्थलमें आचार्य और शिष्य महारथी द्रोण तथा अर्जुन परस्पर प्रहार करते हुए विचित्र रीतिसे युद्ध कर रहे थे ॥ २४ ॥

लघुसंधानयोगाभ्यां रथयोश्च रणेन च।

मोहयन्तौ मनुष्याणां चक्षूंषि च मनांसि च ॥ २५ ॥

शीघ्रतापूर्वक बाणोंके संधान और रथोंके योगसे अपने संग्रामद्वारा वे दोनों वीर लोगोंके नेत्रों और मनको भी मोह लेते थे ॥ २५ ॥

उपारमन्त ते सर्वे योधा भरतसत्तम।
अदृष्टपूर्वं पश्यन्तस्तद् युद्धं गुरुशिष्ययोः ॥ २६ ॥

भरतश्रेष्ठ ! गुरु और शिष्यके उस अपूर्व युद्धको देखते हुए सब योद्धा संग्रामसे विरत हो गये ॥ २६ ॥

विचित्रान् पृतनामध्ये रथमार्गानुदीर्य तौ।
अन्योन्यमपसव्यं च कर्तुं वीरौ तदेषतुः ॥ २७ ॥

वे दोनों वीर सेनाके बीचमें रथके विचित्र पैंतरे प्रकट करते हुए उस समय एक दूसरेको दायें कर देनेकी चेष्टा करने लगे ॥ २७ ॥

पराक्रमं तयोर्योधा ददृशुस्ते सुविस्मिताः।
तयोः समभवद् युद्धं द्रोणपाण्डवयोर्महत् ॥ २८ ॥
आमिषार्थे महाराज गगने श्येनयोरिव।

उन द्रोणाचार्य और पाण्डुपुत्र अर्जुनके पराक्रमको वे सब सैनिक अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर देख रहे थे। महाराज ! जैसे मांसके टुकड़ेके लिये आकाशमें दो बाज लड़ रहे हों, उसी प्रकार राज्यके लिये उन दोनों गुरु-शिष्योंमें बड़ा भारी युद्ध हो रहा था ॥ २८½ ॥

यद् यच्चकार द्रोणस्तु कुन्तीपुत्रजिगीषया ॥ २९ ॥
तत् तत् प्रतिजघानाशु प्रहसंस्तस्य पाण्डवः।

द्रोणाचार्य कुन्तीपुत्र अर्जुनको जीतनेकी इच्छासे जिस-जिस अस्त्रका प्रयोग करते थे, उस-उसको पाण्डुपुत्र अर्जुन हँसते हुए तत्काल काट देते थे ॥ २९½ ॥

यदा द्रोणो न शक्नोति पाण्डवं स विशेषितुम् ॥ ३० ॥
ततः प्रादुश्चकारास्त्रमस्त्रमार्गविशारदः।

जब द्रोणाचार्य पाण्डुपुत्र अर्जुनकी अपेक्षा अपनी विशेषता न सिद्ध कर सके, तब अस्त्रमार्गोंके ज्ञाता गुरुदेवने दिव्यास्त्रोंको प्रकट किया ॥ ३०½ ॥

ऐन्द्रं पाशुपतं त्वाष्ट्रं वायव्यमथ वारुणम् ॥ ३१ ॥
मुक्तं मुक्तं द्रोणचापात् तज्जघान धनंजयः।

द्रोणाचार्यके धनुषसे क्रमशः छूटे हुए ऐन्द्र, पाशुपत, त्वाष्ट्र, वायव्य तथा वारुण नामक अस्त्रको अर्जुनने तत्काल शान्त कर दिया ॥ ३१½ ॥

अस्त्राण्यस्त्रैर्यदा तस्य विधिवद्धन्ति पाण्डवः ॥ ३२ ॥
ततोऽस्त्रैः परमैर्दिव्यैर्द्रोणः पार्थमवाकिरत्।

जब पाण्डुकुमार अर्जुन आचार्यके सभी अस्त्रोंको अपने अस्त्रोंद्वारा विधिपूर्वक नष्ट करने लगे, तब द्रोणने परम दिव्य अस्त्रोंद्वारा अर्जुनको ढक दिया ॥ ३२½ ॥

यद् यदस्त्रं स पार्थाय प्रयुङ्क्ते विजिगीषया ॥ ३३ ॥
तस्य तस्य विघाताय तत् तद्धि कुरुतेऽर्जुनः।

परंतु विजयकी इच्छासे वे पार्थपर जिस-जिस अस्त्रका प्रयोग करते थे, उस-उसके विनाशके लिये अर्जुन वैसे ही अस्त्रोंका प्रयोग करते थे ॥ ३३½ ॥

स वध्यमानेष्वस्त्रेषु दिव्येष्वपि यथाविधि ॥ ३४ ॥
अर्जुनेनार्जुनं द्रोणो मनसैवाभ्यपूजयत्।

जब अर्जुनके द्वारा उनके विधिपूर्वक चलाये हुए दिव्यास्त्र भी प्रतिहत होने लगे, तब द्रोणने अर्जुनकी मन-ही-मन सराहना की ॥ ३४½ ॥

मेने चात्मानमधिकं पृथिव्यामधि भारत ॥ ३५ ॥
तेन शिष्येण सर्वेभ्यः शस्त्रविद्भ्यः परंतपः।

भारत ! शत्रुओंको संताप देनेवाले द्रोणाचार्य उस शिष्यके द्वारा अपने आपको भूमण्डलके सभी शस्त्रवेत्ताओंसे श्रेष्ठ मानने लगे ॥ ३५½ ॥

वार्यमाणस्तु पार्थेन तथा मध्ये महात्मनाम् ॥ ३६ ॥
यतमानोऽर्जुनं प्रीत्या प्रत्यवारयदुत्स्मयन्।

महामनस्वी वीरोंके बीचमें अर्जुनके द्वारा इस प्रकार रोके जाते हुए द्रोणाचार्य प्रयत्न करके प्रसन्नतापूर्वक मुसकराते हुए स्वयं भी अर्जुनको आगे बढ़नेसे रोकने लगे ॥ ३६½ ॥

ततोऽन्तरिक्षे देवाश्च गन्धर्वाश्च सहस्रशः ॥ ३७ ॥
ऋषयः सिद्धसंघाश्च व्यतिष्ठन्त दिदृक्षया।

तदनन्तर वह युद्ध देखनेकी इच्छासे आकाशमें बहुत-से देवता, सहस्रों गन्धर्व, ऋषि और सिद्धसमुदाय खड़े हो गये ॥ ३७½ ॥

तदप्सरोभिराकीर्णं यक्षगन्धर्वसंकुलम् ॥ ३८ ॥
श्रीमदाकाशमभवद् भूयो मेघाकुलं यथा।

अप्सराओं, यक्षों और गन्धर्वोंसे भरा हुआ आकाश ऐसी विशिष्ट शोभा पा रहा था, मानो उसमें मेघोंकी घटा घिर आयी हो ॥ ३८½ ॥

तत्र स्मान्तर्हिता वाचो व्यचरन्त पुनः पुनः ॥ ३९ ॥
द्रोणपार्थस्तवोपेता व्यश्रूयन्त नराधिप।

नरेश्वर ! वहाँ द्रोणाचार्य और अर्जुनकी स्तुतिसे युक्त अदृश्य व्यक्तियोंके मुखोंसे निकली हुई बातें बारंबार सुनायी देने लगीं ॥ ३९½ ॥

विसृज्यमानेष्वस्त्रेषु ज्वालयत्सु दिशो दश ॥ ४० ॥
अब्रुवंस्तत्र सिद्धाश्च ऋषयश्च समागताः।

जब दिव्यास्त्रोंके प्रयोग होने लगे और उनके तेजसे दसों दिशाएँ प्रकाशित हो उठीं, उस समय आकाशमें एकत्र हुए सिद्ध और ऋषि इस प्रकार वार्तालाप करने लगे— ॥ ४०½ ॥

नैवेदं मानुषं युद्धं नासुरं न च राक्षसम् ॥ ४१ ॥
न दैवं न च गान्धर्वं ब्राह्मं ध्रुवमिदं परम् ।
विचित्रमिदमाश्चर्यं न नो दृष्टं न च श्रुतम् ॥ ४२ ॥

'यह युद्ध न तो मनुष्योंका है, न असुरोंका, न राक्षसोंका है और न देवताओं एवं गन्धर्वोंका ही। निश्चय ही यह परम उत्तम ब्राह्म युद्ध है। ऐसा विचित्र एवं आश्चर्यजनक संग्राम हमलोगोंने न तो कभी देखा था और न सुना ही था ॥ ४१-४२ ॥

अति पाण्डवमाचार्यो द्रोणं चाप्यति पाण्डवः ।
नानयोरन्तरं शक्यं द्रष्टुमन्येन केनचित् ॥ ४३ ॥

'आचार्य द्रोण पाण्डुपुत्र अर्जुनसे बढ़कर हैं और पाण्डुपुत्र अर्जुन भी आचार्य द्रोणसे बढ़कर हैं। इन दोनोंमें कितना अन्तर है, इसे दूसरा कोई नहीं देख सकता ॥४३॥

यदि रुद्रो द्विधाकृत्य युध्येतात्मानमात्मना ।
तत्र शक्योपमा कर्तुमन्यत्र तु न विद्यते ॥ ४४ ॥

'यदि भगवान् शङ्कर अपने दो रूप बनाकर स्वयं ही अपने साथ युद्ध करें तो उसी युद्धसे इनकी उपमा दी जा सकती है; और कहीं इन दोनोंकी समता नहीं है ॥ ४४ ॥

ज्ञानमेकस्थमाचार्ये ज्ञानं योगश्च पाण्डवे ।
शौर्यमेकस्थमाचार्ये बलं शौर्यं च पाण्डवे ॥ ४५ ॥

'आचार्य द्रोणमें सारा ज्ञान एकत्र संचित है; परंतु पाण्डुपुत्र अर्जुनमें ज्ञानके साथ-साथ योग भी है। इसी प्रकार आचार्य द्रोणमें सारा शौर्य एक स्थानपर आ गया है; परंतु पाण्डुनन्दन अर्जुनमें शौर्यके साथ बल भी है ॥ ४५ ॥

नेमौ शक्यौ महेष्वासौ युद्धे क्षपयितुं परैः ।
इच्छमानौ पुनरिमौ हन्येतां सामरं जगत् ॥ ४६ ॥

'ये दोनों महाधनुर्धर वीर युद्धमें दूसरे किन्हीं योद्धाओंके द्वारा नहीं मारे जा सकते। परंतु यदि ये दोनों चाहें तो देवताओंसहित सम्पूर्ण जगत्का विनाश कर सकते हैं' ॥४६॥

इत्यब्रुवन् महाराज दृष्ट्वा तौ पुरुषर्षभौ ।
अन्तर्हितानि भूतानि प्रकाशानि च सर्वशः ॥ ४७ ॥

महाराज ! उन दोनों पुरुषप्रवर वीरोंको देखकर आकाशमें छिपे हुए तथा प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाले प्राणी भी सब ओर यही बातें कह रहे थे ॥ ४७ ॥

ततो द्रोणो ब्राह्ममस्त्रं प्रादुश्चक्रे महामतिः ।
संतापयन् रणे पार्थं भूतान्यन्तर्हितानि च ॥ ४८ ॥

तत्पश्चात् परम बुद्धिमान् द्रोणाचार्यने रणभूमिमें अर्जुनको तथा आकाशवर्ती अदृश्य प्राणियोंको संताप देते हुए ब्रह्मास्त्र प्रकट किया ॥ ४८ ॥

ततश्चचाल पृथिवी सपर्वतवनद्रुमा ।
ववौ च विषमो वायुः सागराश्चापि चुक्षुभुः ॥ ४९ ॥

फिर तो पर्वत, वन और वृक्षोंसहित धरती डोलने लगी, आँधी उठ गयी और समुद्रोंमें ज्वार आ गया ॥४९॥

ततस्त्रासो महानासीत् कुरुपाण्डवसेनयोः ।
सर्वेषां चैव भूतानामुद्यतेऽस्त्रे महात्मना ॥ ५० ॥

महामना द्रोणके द्वारा ब्रह्मास्त्रके उठाये जाते ही कौरवों और पाण्डवोंकी सेनाओंपर तथा समस्त प्राणियोंमें बड़ा भारी आतङ्क छा गया ॥ ५० ॥

ततः पार्थोऽप्यसंभ्रान्तस्तदस्त्रं प्रतिजघ्निवान् ।
ब्रह्मास्त्रेणैव राजेन्द्र ततः सर्वमशीशमत् ॥ ५१ ॥

राजेन्द्र ! तब अर्जुनने भी बिना किसी घबराहटके ब्रह्मास्त्रसे ही द्रोणाचार्यके उस अस्त्रको दबा दिया; फिर सारा उपद्रव शान्त हो गया ॥ ५१ ॥

यदा न गम्यते पारं तयोरन्यतरस्य वा ।
ततः संकुलयुद्धेन तद् युद्धं व्याकुलीकृतम् ॥५२॥

जब द्रोणाचार्य और अर्जुनमेंसे कोई भी किसीको परास्त न कर सका, तब सामूहिक युद्धके द्वारा उस संग्रामको व्यापक बना दिया गया ॥ ५२ ॥

नाज्ञायत ततः किंचित् पुनरेव विशाम्पते ।
प्रवृत्ते तुमुले युद्धे द्रोणपाण्डवयोर्मृधे ॥ ५३ ॥

प्रजानाथ ! रणभूमिमें द्रोणाचार्य और अर्जुनमें घमासान युद्ध छिड़ जानेपर फिर किसीको कुछ सूझ नहीं रहा था ॥ ५३ ॥

(द्रोणो मुक्त्वा रणे पार्थं पञ्चालानन्वधावत ।
अर्जुनोऽपि रणे द्रोणं त्यक्त्वा प्राद्रावयत् कुरून् ॥

द्रोणाचार्यने युद्धस्थलमें अर्जुनको छोड़कर पाञ्चालोंपर धावा किया और अर्जुनने भी वहाँ द्रोणाचार्यका मुकाबला छोड़कर कौरव-सैनिकोंको वेगपूर्वक खदेड़ना आरम्भ किया ॥

शरौघैरथ ताभ्यां तु छायाभूतं महामृधे ।
तुमुलं प्रबभौ राजन् सर्वस्य जगतो भयम् ॥)

राजन् ! उस महासमरमें उन दोनोंने अपने बाणसमूहों द्वारा सब कुछ अन्धकारसे आच्छन्न कर दिया। वह तुमुल युद्ध सम्पूर्ण जगत्के लिये भयदायक प्रतीत हो रहा था ॥

शरजालैः समाकीर्णे मेघजालैरिवाम्बरे ।
नापतच्च ततः कश्चिदन्तरिक्षचरस्तदा ॥ ५४ ॥

आकाशमें इस प्रकार बाणोंका जाल बिछ गया, मानो वहाँ मेघोंकी घटा घिर आयी हो। इससे वहाँ उस समय कोई आकाशचारी पक्षी भी कहीं उड़कर न जा सका ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि संकुलयुद्धे अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणवधपर्वमें घमासान युद्धविषयक एक सौ अट्ठासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २ श्लोक मिलाकर कुल ५६ श्लोक हैं)

एकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः

धृष्टद्युम्नका दुःशासनको हराकर द्रोणाचार्यपर आक्रमण, नकुल-सहदेवद्वारा उनकी रक्षा, दुर्योधन तथा सात्यकिका संवाद तथा युद्ध, कर्ण और भीमसेनका संग्राम और अर्जुनका कौरवोंपर आक्रमण

संजय उवाच

तस्मिंस्तथा वर्तमाने गजाश्वनरसंक्षये ।
दुःशासनो महाराज धृष्टद्युम्नमयोधयत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! इस प्रकार हाथी, घोड़ों और मनुष्योंका संहार करनेवाले उस वर्तमान युद्धमें दुःशासन धृष्टद्युम्नके साथ जूझने लगा ॥ १ ॥

स तु रुक्मरथासक्तो दुःशासनशरार्दितः ।
अमर्षात् तव पुत्रस्य शरैर्वाहानवाकिरत् ॥ २ ॥

धृष्टद्युम्न पहले द्रोणाचार्यके साथ उलझे हुए थे; दुःशासनके बाणोंसे पीड़ित होकर उन्होंने आपके पुत्रके घोड़ोंपर रोषपूर्वक बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ २ ॥

क्षणेन स रथस्तस्य सध्वजः सहसारथिः ।
नादृश्यत महाराज पार्षतस्य शरैश्चितः ॥ ३ ॥

महाराज ! एक ही क्षणमें धृष्टद्युम्नके बाणोंका ऐसा ढेर लग गया कि दुःशासनका रथ ध्वजा और सारथिसहित अदृश्य हो गया ॥ ३ ॥

दुःशासनस्तु राजेन्द्र पाञ्चाल्यस्य महात्मनः ।
नाशकत् प्रमुखे स्थातुं शरजालप्रपीडितः ॥ ४ ॥

राजेन्द्र ! महामना धृष्टद्युम्नके बाणसमूहोंसे अत्यन्त पीड़ित हो दुःशासन उनके सामने ठहर न सका ॥ ४ ॥

स तु दुःशासनं बाणैर्विमुखीकृत्य पार्षतः ।
किरञ्छरसहस्राणि द्रोणमेवाभ्ययाद् रणे ॥ ५ ॥

इस प्रकार अपने बाणोंद्वारा दुःशासनको सामनेसे भगाकर सहस्रों बाणोंकी वर्षा करते हुए धृष्टद्युम्नने रणभूमिमें पुनः द्रोणाचार्यपर ही आक्रमण किया ॥ ५ ॥

अभ्यपद्यत हार्दिक्यः कृतवर्मा त्वनन्तरम् ।
सोदर्याणां त्रयश्चैव त एनं पर्यवारयन् ॥ ६ ॥

यह देख हृदिकपुत्र कृतवर्मा तथा दुःशासनके तीन भाई बीचमें आ धमके । वे चारों मिलकर धृष्टद्युम्नको रोकने लगे ॥ ६ ॥

तं यमौ पृष्ठतोऽन्वैतां रक्षन्तौ पुरुषर्षभौ ।
द्रोणायाभिमुखं यान्तं दीप्यमानमिवानलम् ॥ ७ ॥

प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी धृष्टद्युम्नको द्रोणाचार्यके सम्मुख जाते देख नरश्रेष्ठ नकुल और सहदेव उनकी रक्षा करते हुए पीछे-पीछे चले ॥ ७ ॥

सम्प्रहारमकुर्वंस्ते सर्वे च सुमहारथाः ।
अमर्षिताः सत्त्ववन्तः कृत्वा मरणमग्रतः ॥ ८ ॥

उस समय अमर्षसे भरे हुए उन सभी धैर्यशाली महारथियोंने मृत्युको सामने रखकर परस्पर युद्ध आरम्भ कर दिया ॥ ८ ॥

शुद्धात्मानः शुद्धवृत्ता राजन् स्वर्गपुरस्कृताः ।
आर्यं युद्धमकुर्वन्त परस्परजिगीषवः ॥ ९ ॥

राजन् ! उन सबके हृदय शुद्ध और आचार-व्यवहार निर्मल थे । वे सभी स्वर्गकी प्राप्तिरूप लक्ष्यको अपने सामने रखते थे; अतः परस्पर विजयकी अभिलाषासे वे आर्यजनोचित युद्ध करने लगे ॥ ९ ॥

शुक्लाभिजनकर्माणो मतिमन्तो जनाधिप ।
धर्मयुद्धमयुध्यन्त प्रेप्सन्तो गतिमुत्तमाम् ॥ १० ॥

जनेश्वर ! उन सबके वंश शुद्ध और कर्म निष्कलङ्क थे; अतः वे बुद्धिमान् योद्धा उत्तम गति पानेकी इच्छासे धर्मयुद्धमें तत्पर हो गये ॥ १० ॥

न तत्रासीदधर्मिष्ठमशस्तं युद्धमेव च ।
नात्र कर्णी न नालीको न लिप्तो न च बस्तिकः ॥ ११ ॥

वहाँ अधर्मपूर्ण और निन्दनीय युद्ध नहीं हो रहा था, उसमें कर्णी, नालीक, विष लगाये हुए बाण और बस्तिक नामक अस्त्रका प्रयोग नहीं होता था ॥ ११ ॥

न सूची कपिशो नैव न गवास्थिर्गजास्थिजः ।
इषुरासीन्न संश्लिष्टो न पूतिर्न च जिह्मगः ॥ १२ ॥

न सूची, न कपिश, न गायकी हड्डीका बना हुआ, न हाथीकी हड्डीका बना हुआ, न दो फलों या काँटोंवाला,

१. जिधर बाणके फलका रुख हो, उससे विपरीत रुखवाले दो काँटोंसे युक्त बाणको 'कर्णी' कहते हैं । शरीरमें धँस जानेपर यदि उसे निकाला जाय तो वह आँतोंको भी अपने साथ खींच लेता है, इसलिये निन्द्य है । २. 'नालीक' नामक बाण अत्यन्त छोटा होता है, वह शरीरमें पूरा-का-पूरा डूब जाता है, अतः उसे निकालना कठिन हो जाता है । ३. बाणके डंडे और फलके संधि-स्थानमें, जो अत्यन्त पतला होता है, उस बाणको 'बस्तिक' कहते हैं । उसे शरीरसे निकालनेपर वह बीचसे टूट जाता है, फल भीतर रह जाता है और केवल डंडा बाहर निकल पाता है । ४. 'सूची' नामक बाण भी कर्णीके ही समान होता है । अन्तर इतना ही है कि इसमें बहुत-से कण्टक होते हैं । ५. कुछ लोग 'कपिश' को भी सूचीके ही समान मानते हैं । किन्हींके मतमें 'कपिश' का फल बंदरकी हड्डीका बना होता है । अधिकांश लोगोंका मत है कि 'कपिश' काले लोहेका बना होता है, उसका हलका आघात लगनेपर भी वह शरीरमें गहराईतक घुस जाता है । मेदिनीकोषके अनुसार कपिशका अर्थ काला है भी । ६–७. जिस-

न दुर्गन्धयुक्त और न जिह्मग (टेढ़ा जानेवाला) बाण ही काममें लाया जाता था ॥ १२ ॥

ऋजून्येव विशुद्धानि सर्वे शस्त्राण्यधारयन् ।
सुयुद्धेन पराँल्लोकानीप्सन्तः कीर्तिमेव च ॥ १३ ॥

वे सब योद्धा न्याययुक्त युद्धके द्वारा उत्तम लोक और कीर्ति पानेकी अभिलाषा रखकर सरल और शुद्ध शस्त्रोंको ही धारण करते थे ॥ १३ ॥

तदाऽऽसीत् तुमुलं युद्धं सर्वदोषविवर्जितम् ।
चतुर्णां तव योधानां तैस्त्रिभिः पाण्डवैः सह ॥ १४ ॥

आपके चार योद्धाओंका तीन पाण्डव वीरोंके साथ जो घमासान युद्ध चल रहा था, वह सब प्रकारके दोषोंसे रहित था ॥ १४ ॥

धृष्टद्युम्नस्तु तान् दृष्ट्वा तव राजन् रथर्षभान् ।
यमाभ्यां वारितान् वीराञ्छीघ्रास्त्रो द्रोणमभ्ययात् ॥ १५ ॥

राजन् ! धृष्टद्युम्न शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलानेवाले थे। वे नकुल और सहदेवके द्वारा कौरवपक्षके उन वीर महारथियोंको रोका गया देख स्वयं द्रोणाचार्यकी ओर बढ़ गये ॥ १५ ॥

निवारितास्तु ते वीरास्तयोः पुरुषसिंहयोः ।
समसज्जन्त चत्वारो वाताः पर्वतयोरिव ॥ १६ ॥

वहाँ रोके गये वे चारों वीर उन दोनों पुरुषसिंह पाण्डवोंके साथ इस प्रकार भिड़ गये मानो चौआई हवा दो पर्वतोंसे टकरा रही हो ॥ १६ ॥

द्वाभ्यां द्वाभ्यां यमौ सार्धं रथाभ्यां रथपुङ्गवौ ।
समासक्तौ ततो द्रोणं धृष्टद्युम्नोऽभ्यवर्तत ॥ १७ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ नकुल और सहदेव दो-दो कौरव रथियोंके साथ जूझने लगे। इतनेहीमें धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यके सामने जा पहुँचे ॥ १७ ॥

दृष्ट्वा द्रोणाय पाञ्चाल्यं व्रजन्तं युद्धदुर्मदम् ।
यमाभ्यां तांश्च संसक्तांस्तदन्तरमुपाद्रवत् ॥ १८ ॥
दुर्योधनो महाराज किरञ्छोणितभोजनान् ।

महाराज ! रणदुर्मद धृष्टद्युम्नको द्रोणाचार्यकी ओर जाते और अपने दलके उन चारों वीरोंको नकुल-सहदेवके साथ युद्ध करते देख राजा दुर्योधन रक्त पीनेवाले बाणोंकी वर्षा करता हुआ उनके बीचमें आ धमका ॥ १८½ ॥

तं सात्यकिः शीघ्रतरं पुनरेवाभ्यवर्तत ॥ १९ ॥
तौ परस्परमासाद्य समीपे कुरुमाधवौ ।
हसमानौ नृशार्दूलावभीतौ समसज्जताम् ॥ २० ॥

यह देख सात्यकि बड़ी शीघ्रताके साथ पुनः दुर्योधनके सम्मुख आ गये। वे दोनों मनुष्योंमें सिंहके समान पराक्रमी थे। कुरुवंशी दुर्योधन और मधुवंशी सात्यकि एक दूसरेको समीप पाकर निर्भय हो हँसते हुए युद्ध करने लगे ॥ १९-२० ॥

बाल्यवृत्तानि सर्वाणि प्रीयमाणौ विचिन्त्य तौ ।
अन्योन्यं प्रेक्षमाणौ च स्मयमानौ पुनः पुनः ॥ २१ ॥

बचपनकी सारी बातें याद करके वे दोनों वीर एक दूसरेकी ओर देखते हुए बारंबार प्रसन्नतापूर्वक मुसकरा उठते थे ॥ २१ ॥

अथ दुर्योधनो राजा सात्यकिं समभाषत ।
प्रियं सखायं सततं गर्हयन् वृत्तमात्मनः ॥ २२ ॥

तदनन्तर राजा दुर्योधनने अपने बर्तावकी निरन्तर निन्दा करते हुए वहाँ अपने प्रिय सखा सात्यकिसे इस प्रकार कहा—॥ २२ ॥

धिक् क्रोधं धिक् सखे लोभं धिङ्मोहं धिगमर्षितम् ।
धिगस्तु क्षात्रमाचारं धिगस्तु बलमौरसम् ॥ २३ ॥

'सखे ! क्रोधको धिक्कार है, लोभको धिक्कार है, मोहको धिक्कार है, अमर्षको धिक्कार है, इस क्षत्रियोचित आचारको धिक्कार है तथा औरस बलको भी धिक्कार है ॥ २३ ॥

यत्र मामभिसंधत्से त्वां चाहं शिनिपुङ्गव ।
त्वं हि प्राणैः प्रियतरो ममाहं च सदा तव ॥ २४ ॥

'शिनिप्रवर ! इन क्रोध, लोभ आदिके ही अधीन होकर तुम मुझे अपने बाणोंका निशाना बनाते हो और तुम्हें मैं। वैसे तो तुम मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय रहे हो और मैं भी तुम्हारा सदा ही प्रीतिपात्र रहा हूँ ॥ २४ ॥

स्मरामि तानि सर्वाणि बाल्यवृत्तानि यानि नौ ।
तानि सर्वाणि जीर्णानि साम्प्रतं नो रणाजिरे ॥ २५ ॥

'हम दोनोंके बचपनमें परस्पर जो बर्ताव रहे हैं, उन सबको इस समय मैं याद कर रहा हूँ; परंतु अब इस समराङ्गणमें हमारे वे सभी सद्व्यवहार जीर्ण हो गये हैं ॥

किमन्यत्क्रोधलोभाभ्यां युद्धमेवाद्य सात्वत ।
तं तथावादिनं तत्र सात्यकिः प्रत्यभाषत ॥ २६ ॥
प्रहसन् विशिखांस्तीक्ष्णानुद्यम्य परमास्त्रवित् ।

'सात्वत वीर ! आजका यह युद्ध ही क्रोध और लोभके सिवा दूसरा क्या है ?' उत्तम अस्त्रोंके ज्ञाता सात्यकिने हँसते हुए तीखे बाणोंको ऊपर उठाकर वहाँ पूर्वोक्त बातें करनेवाले दुर्योधनको इस प्रकार उत्तर दिया—॥ २६½ ॥

नेयं सभा राजपुत्र नाचार्यस्य निवेशनम् ॥ २७ ॥
यत्र क्रीडितमस्माभिस्तदा राजन् समागतैः ।

'राजकुमार ! कौरवनरेश ! न तो यह सभा है और न आचार्यका घर ही है जहाँ एकत्र होकर हम सब लोग खेला करते थे' ॥ २७½ ॥

का फल गायकी हड्डीका बना हो, वह 'गवास्थिज' और जिसका हाथीकी हड्डीका बना हो, वह 'गजास्थिज' कहलाता है। इसका असर भी विषलिप्त बाणके समान ही होता है।

दुर्योधन उवाच

क्व सा क्रीडा गतास्माकं बाल्ये वै शिनिपुङ्गव ॥ २८ ॥
क्व च युद्धमिदं भूयः 'कालो हि दुरतिक्रमः' ।

दुर्योधन बोला—शिनिप्रवर ! हमारा बचपनका वह खेल कहाँ चला गया और फिर यह युद्ध कहाँसे आ धमका ! हाय ! कालका उल्लंघन करना अत्यन्त ही कठिन है ॥

किं नु नो विद्यते कृत्यं धनेन धनलिप्सया ॥ २९ ॥
यत्र युध्यामहे सर्वे धनलोभात् समागताः ।

हमें धनसे या धन पानेकी इच्छासे क्या प्रयोजन है ? जो हम सब लोग यहाँ धनके लोभसे एकत्र होकर जूझ रहे हैं ॥ २९½ ॥

संजय उवाच

तं तथावादिनं तत्र राजानं माधवोऽब्रवीत् ॥ ३० ॥
एवंवृत्तं सदा क्षात्रं युध्यन्तीह गुरूनपि ।
यदि तेऽहं प्रियो राजन् जहि मां मा चिरं कृथाः ॥ ३१ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! ऐसी बात कहनेवाले राजा दुर्योधनसे सात्यकिने इस प्रकार कहा—'राजन् ! क्षत्रियोंका सनातन आचार ही ऐसा है कि वे यहाँ गुरुजनोंके साथ भी युद्ध करते हैं । यदि मैं तुम्हारा प्रिय हूँ तो तुम मुझे शीघ्र मार डालो, विलम्ब न करो ॥ ३०–३१ ॥

त्वत्कृते सुकृतांल्लोकान् गच्छेयं भरतर्षभ ।
या ते शक्तिर्बलं यच्च तत् क्षिप्रं मयि दर्शय ॥ ३२ ॥
नेच्छामि तदहं द्रष्टुं मित्राणां व्यसनं महत् ।

'भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारे ऐसा करनेपर मैं पुण्यवानोंके लोकोंमें जाऊँगा । तुममें जितनी शक्ति और बल है, वह सब शीघ्र मेरे ऊपर दिखाओ; क्योंकि मैं अपने मित्रोंका वह महान् संकट नहीं देखना चाहता हूँ' ॥ ३२½ ॥

इत्येवं व्यक्तमाभाष्य प्रतिभाष्य च सात्यकिः ॥ ३३ ॥
अभ्ययात् तूर्णमव्यग्रो दयां नाकुरुतात्मनि ।

इस प्रकार स्पष्ट बोलकर दुर्योधनकी बातका उत्तर दे सात्यकि निःशङ्क होकर तुरंत आगे बढ़े, उन्होंने अपने ऊपर दया नहीं दिखायी ॥ ३३½ ॥

तमायान्तं महाबाहुं प्रत्यगृह्णात् तवात्मजः ॥ ३४ ॥
शरैश्चावाकिरद् राजञ्शैनेयं तनयस्तव ।

राजन् ! सामने आते हुए उन महाबाहु सात्यकिको आपके पुत्रने रोका और उन्हें बाणोंसे ढक दिया ॥ ३४½ ॥

ततः प्रववृते युद्धं कुरुमाधवसिंहयोः ॥ ३५ ॥
अन्योन्यं क्रुद्धयोर्घोरं यथा द्विरदसिंहयोः ।

तदनन्तर हाथी और सिंहके समान क्रोधमें भरे हुए उन कुरुवंशी और मधुवंशी सिंहोंमें परस्पर घोर युद्ध होने लगा ॥ ३५½ ॥

ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः सात्वतं युद्धदुर्मदम् ॥ ३६ ॥
दुर्योधनः प्रत्यविध्यत् कुपितो दशभिः शरैः ।

तत्पश्चात् कुपित हुए दुर्योधनने धनुषको पूर्णतः खींचकर छोड़े गये दस बाणोंद्वारा रणदुर्मद सात्यकिको घायल कर दिया ॥ ३६½ ॥

तं सात्यकिः प्रत्यविध्यत् तथैवावाकिरच्छरैः ॥ ३७ ॥
पञ्चाशता पुनश्चाजौ त्रिंशता दशभिश्च ह ।

इसी प्रकार सात्यकिने भी युद्धस्थलमें पहले पचास, फिर तीस और फिर दस बाणोंद्वारा दुर्योधनको बींध डाला और उसे भी अपने बाणोंकी वर्षासे ढक दिया ॥

सात्यकिं तु रणे राजन् प्रहसंस्तनयस्तव ॥ ३८ ॥
आकर्णपूर्णैर्निशितैर्विव्याध त्रिंशता शरैः ।

राजन् ! तब हँसते हुए आपके पुत्रने धनुषको कानतक खींचकर छोड़े हुए तीस तीखे बाणोंद्वारा रणभूमिमें सात्यकिको क्षत-विक्षत कर डाला ॥ ३८½ ॥

ततोऽस्य सशरं चापं क्षुरप्रेण द्विधाच्छिनत् ॥ ३९ ॥
सोऽन्यत् कार्मुकमादाय लघुहस्तस्ततो दृढम् ।
सात्यकिर्व्यसृजच्चापि शरश्रेणीं सुतस्य ते ॥ ४० ॥

इसके बाद उसने क्षुरप्रसे सात्यकिके बाणसहित धनुषको काटकर उसके दो टुकड़े कर डाले । तब सात्यकिने दूसरा सुदृढ़ धनुष हाथमें लेकर शीघ्रतापूर्वक हाथ चलाते हुए वहाँ आपके पुत्रपर बाणोंकी श्रेणियाँ बरसानी आरम्भ कर दीं ॥ ३९–४० ॥

तामापतन्तीं सहसा शरश्रेणीं जिघांसया ।
चिच्छेद बहुधा राजा तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ ४१ ॥

वधके लिये अपने ऊपर सहसा आती हुई उन बाण-पंक्तियोंके राजा दुर्योधनने अनेक टुकड़े कर डाले; इससे सब लोग हर्षध्वनि करने लगे ॥ ४१ ॥

सात्यकिं च त्रिसप्तत्या पीडयामास वेगितः ।
स्वर्णपुङ्खैः शिलाधौतैराकर्णापूर्णनिःसृतैः ॥ ४२ ॥

फिर शिलापर साफ किये हुए सुनहरी पाँखवाले तिहत्तर बाणोंसे, जो धनुषको कानतक खींचकर छोड़े गये थे, दुर्योधनने वेगपूर्वक सात्यकिको पीड़ित कर दिया ॥ ४२ ॥

तस्य संदधतश्चेषुं संहितेषुं च कार्मुकम् ।
अच्छिनत् सात्यकिस्तूर्णं शरैश्चैवाप्यवीविधत् ॥ ४३ ॥

तब सात्यकिने संधान करते हुए दुर्योधनके बाणको और जिसपर वह बाण रक्खा गया था उस धनुषको तुरंत ही काट डाला तथा बहुत-से बाण मारकर दुर्योधनको भी घायल कर दिया ॥ ४३ ॥

स गाढविद्धो व्यथितः प्रत्यपायाद् रथान्तरे ।
दुर्योधनो महाराज दाशार्हशरपीडितः ॥ ४४ ॥

महाराज ! उस समय दुर्योधन सात्यकिके बाणोंसे गहरी चोट खाकर पीड़ित एवं व्यथित हो उठा और रथके भीतर चला गया ॥ ४४ ॥

समाश्वस्य तु पुत्रस्ते सात्यकिं पुनरभ्ययात् ।
विसृजन्निषुजालानि युयुधानरथं प्रति ॥ ४५ ॥

फिर धीरे-धीरे कुछ आराम मिलनेपर आपका पुत्र पुनः सात्यकिपर चढ़ आया और उनके रथपर बाणोंके जाल बिछाने लगा ॥ ४५ ॥

तथैव सात्यकिर्बाणान् दुर्योधनरथं प्रति ।
सततं विसृजन् राजंस्तत् संकुलमवर्तत ॥ ४६ ॥

राजन् ! इसी प्रकार सात्यकि भी दुर्योधनके रथपर निरन्तर बाण-वर्षा करने लगे । इससे वह संग्राम संकुल (घमासान) युद्धके रूपमें परिणत हो गया ॥ ४६ ॥

तत्रेषुभिः क्षिप्यमाणैः पतद्भिश्च शरीरिषु ।
अग्नेरिव महाकक्षे शब्दः समभवन्महान् ॥ ४७ ॥

वहाँ चलाये गये बाण जब देहधारियोंके ऊपर पड़ते थे, उस समय सूखे बाँस आदिके भारी ढेरमें लगी हुई आगके समान बड़े जोरसे शब्द होता था ॥ ४७ ॥

तयोः शरसहस्रैश्च संछन्नं वसुधातलम् ।
अगम्यरूपं च शरैराकाशं समपद्यत ॥ ४८ ॥

उन दोनोंके हजारों बाणोंसे पृथ्वी ढक गयी और आकाशमें भी बाणोंके कारण (पक्षियोंतकका) चलना-फिरना बंद हो गया ॥ ४८ ॥

तत्राप्यधिकमालक्ष्य माधवं रथसत्तमम् ।
क्षिप्रमभ्यपतत् कर्णः परीप्संस्तनयं तव ॥ ४९ ॥

उस युद्धमें महारथी सात्यकिको प्रबल होते देख कर्ण आपके पुत्रकी रक्षाके लिये शीघ्र ही बीचमें कूद पड़ा ॥४९॥

न तु तं मर्षयामास भीमसेनो महाबलः ।
सोऽभ्ययात्त्वरितः कर्णं विसृजन् सायकान् बहून् ॥५०॥

परंतु महाबली भीमसेन उसका यह कार्य सहन न कर सके, अतः बहुत-से बाणोंकी वर्षा करते हुए उन्होंने तुरंत ही कर्णपर धावा किया ॥ ५० ॥

तस्य कर्णः शितान् बाणान् प्रतिहत्य हसन्निव ।
धनुः शरांश्च चिच्छेद सूतं चाभ्यहनच्छरैः ॥ ५१ ॥

तब कर्णने हँसते हुए-से उनके तीखे बाणोंको नष्ट करके धनुष और बाण भी काट डाले; फिर अनेक बाणोंद्वारा उनके सारथिको भी मार डाला ॥ ५१ ॥

भीमसेनस्तु संक्रुद्धो गदामादाय पाण्डवः ।
ध्वजं धनुश्च सूतं च सम्ममर्दाहवे रिपोः ॥ ५२ ॥

इससे अत्यन्त कुपित होकर पाण्डुनन्दन भीमसेनने गदा हाथमें ले ली और उसके द्वारा युद्धस्थलमें शत्रुके ध्वज, धनुष और सारथिको भी कुचल डाला ॥ ५२ ॥

रथचक्रं च कर्णस्य बभञ्ज स महाबलः ।
भग्नचक्रे रथेऽतिष्ठदकम्पः शैलराडिव ॥ ५३ ॥

इतना ही नहीं, महाबली भीमने कर्णके रथका एक पहिया भी तोड़ डाला तो भी कर्ण टूटे पहियेवाले उस रथपर गिरिराजके समान अविचल भावसे खड़ा रहा ॥ ५३ ॥

एकचक्रं रथं तस्य तमूहुः सुचिरं हयाः ।
एकचक्रमिवार्कस्य रथं सप्त हया यथा ॥ ५४ ॥

कर्णके घोड़े उसके एक पहियेवाले रथको बहुत देरतक ढोते रहे, मानो सूर्यके सात अश्व उनके एक चक्रवाले रथको खींच रहे हैं ॥ ५४ ॥

अमृष्यमाणः कर्णस्तु भीमसेनमयुध्यत ।
विविधैरिषुजालैश्च नानाशस्त्रैश्च संयुगे ॥ ५५ ॥

कर्णको भीमसेनका यह पराक्रम सहन नहीं हुआ। वह नाना प्रकारके बाणसमूहों तथा अनेकानेक शस्त्रोंसे रणभूमिमें उनके साथ युद्ध करने लगा ॥ ५५ ॥

भीमसेनस्तु संक्रुद्धः सूतपुत्रमयोधयत् ।
तस्मिंस्तथा वर्तमाने क्रुद्धो धर्मसुतोऽब्रवीत् ॥ ५६ ॥
पञ्चालानां नरव्याघ्रान् मत्स्यांश्च पुरुषर्षभान् ।

इससे भीमसेन अत्यन्त कुपित हो उठे और सूतपुत्र कर्णके साथ घोर युद्ध करने लगे । इस प्रकार जब वह युद्ध चल रहा था, उसी समय क्रोधमें भरे हुए धर्मपुत्र युधिष्ठिरने पाञ्चालोंके नरव्याघ्र वीरों और पुरुषरत्न मत्स्यदेशीय योद्धाओंसे कहा—॥ ५६½ ॥

ये नः प्राणाः शिरो ये च ये नो योधा महारथाः ॥ ५७ ॥
त एते धार्तराष्ट्रेषु विषक्ताः पुरुषर्षभाः ।
किं तिष्ठत यथा मूढाः सर्वे विगतचेतसः ॥ ५८ ॥

'जो पुरुषशिरोमणि महारथी योद्धा हमारे प्राण और मस्तक हैं, वे ही धृतराष्ट्रपुत्रोंके साथ जूझ रहे हैं, फिर तुम सब लोग मूर्ख और अचेत मनुष्योंके समान यहाँ क्यों खड़े हो ? ॥ ५७–५८ ॥

तत्र गच्छत यत्रैते युध्यन्ते मामका रथाः ।
क्षात्रधर्मं पुरस्कृत्य सर्व एव गतज्वराः ॥ ५९ ॥

'वहाँ जाओ, जहाँ ये मेरे सब रथी क्षत्रियधर्मको सामने रखकर निश्चिन्त भावसे युद्ध कर रहे हैं ॥ ५९ ॥

जयन्तो वध्यमानाश्च गतिमिष्टां गमिष्यथ ।
जित्वा वा बहुभिर्यज्ञैर्यजध्वं भूरिदक्षिणैः ॥ ६० ॥
हता वा देवसाद् भूत्वा लोकान् प्राप्स्यथ पुष्कलान् ।

'तुमलोग विजयी होओ अथवा मारे जाओ, दोनों ही दशाओंमें उत्तम गति प्राप्त करोगे । जीतकर तो तुम प्रचुर दक्षिणाओंसे युक्त बहुसंख्यक यज्ञोंद्वारा भगवान् यज्ञपुरुषकी आराधना करो अथवा मारे जानेपर देवरूप होकर बहुत-से पुण्यलोक प्राप्त करो' ॥ ६०½ ॥

ते राज्ञा चोदिता वीरा योत्स्यमाना महारथाः ॥ ६१ ॥
क्षात्रधर्मं पुरस्कृत्य त्वरिता द्रोणमभ्ययुः ।

राजा युधिष्ठिरसे इस प्रकार प्रेरित हो उन वीर महारथियोंने युद्धके लिये उद्यत होकर क्षत्रियधर्मको सामने रखते हुए बड़ी उतावलीके साथ द्रोणाचार्यपर आक्रमण किया ॥ ६१½ ॥

पञ्चालास्त्वेकतो द्रोणमभ्यघ्नन् निशितैः शरैः ॥ ६२ ॥
भीमसेनपुरोगाश्चाप्येकतः पर्यवारयन् ।

एक ओरसे पाञ्चाल वीर तीखे बाणोंसे द्रोणाचार्यको मारने लगे और दूसरी ओरसे भीमसेन आदि वीरोंने उन्हें घेर रक्खा था ॥ ६२½ ॥

आसंस्तु पाण्डुपुत्राणां त्रयो जिह्मा महारथाः ॥ ६३ ॥
यमौ च भीमसेनश्च प्राक्रोशंस्ते धनंजयम् ।
अभिद्रवार्जुन क्षिप्रं कुरून् द्रोणादपानुद ॥ ६४ ॥

पाण्डवोंके तीन महारथी कुछ कुटिल स्वभावके थे—नकुल, सहदेव और भीमसेन । इन तीनोंने अर्जुनको पुकारा—'अर्जुन ! दौड़ो, दौड़ो और शीघ्र ही द्रोणाचार्यके पाससे इन कौरवोंको भगाओ ॥ ६३-६४ ॥

तत एनं हनिष्यन्ति पञ्चाला हतरक्षिणम् ।
कौरवेयांस्ततः पार्थः सहसा समुपाद्रवत् ॥ ६५ ॥

'जब इनके रक्षक मारे जायँगे, तभी पाञ्चाल वीर इन्हें मार सकेंगे ।' तब अर्जुनने सहसा कौरवयोद्धाओंपर आक्रमण किया ॥ ६५ ॥

पञ्चालानेव तु द्रोणो धृष्टद्युम्नपुरोगमान् ।
ममर्दुस्तरसा वीराः पञ्चमेऽहनि भारत ॥ ६६ ॥

भारत ! उधरसे द्रोणने धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चालोंपर ही धावा किया । उस पाँचवें दिनके युद्धमें वे सभी वीर वेगपूर्वक एक दूसरेको रौंदने लगे ॥ ६६ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि संकुलयुद्धे एकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणवधपर्वमें संकुलयुद्धविषयक एक सौ नवासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१८९॥

नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्रोणाचार्यका घोर कर्म, ऋषियोंका द्रोणको अस्त्र त्यागनेका आदेश तथा अश्वत्थामाकी मृत्यु सुनकर द्रोणका जीवनसे निराश होना

संजय उवाच

पञ्चालानां ततो द्रोणोऽप्यकरोत् कदनं महत् ।
यथा क्रुद्धो रणे शक्रो दानवानां क्षयं पुरा ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर द्रोणाचार्यने कुपित होकर रणभूमिमें पाञ्चालोंका उसी प्रकार संहार आरम्भ किया, जैसे पूर्वकालमें इन्द्रने दानवोंका विनाश किया था ॥ १ ॥

द्रोणास्त्रेण महाराज वध्यमानाः परे युधि ।
नात्रसन्त रणे द्रोणात् सत्त्ववन्तो महारथाः ॥ २ ॥

महाराज ! द्रोणाचार्यके अस्त्रसे मारे जानेवाले शत्रुदलके महारथी वीर बड़े धैर्यशाली थे, अतः वे रणभूमिमें उनसे तनिक भी भयभीत न हुए ॥ २ ॥

युध्यमाना महाराज पञ्चालाः सृंजयास्तथा ।
द्रोणमेवाभ्ययुर्युद्धे योधयन्तो महारथाः ॥ ३ ॥

राजेन्द्र ! युद्धपरायण पाञ्चाल और सृंजय महारथी संग्राममें द्रोणाचार्यके साथ युद्ध करते हुए उन्हींकी ओर बढ़े आ रहे थे ॥ ३ ॥

तेषां तु च्छाद्यमानानां पञ्चालानां समन्ततः ।
अभवद् भैरवो नादो वध्यतां शरवृष्टिभिः ॥ ४ ॥

बाणोंकी वर्षासे आच्छादित हो सब ओरसे मारे जानेवाले पाञ्चाल वीरोंका भयंकर आर्तनाद सुनायी देने लगा ॥ ४ ॥

वध्यमानेषु संग्रामे पञ्चालेषु महात्मना ।
उदीर्यमाणे द्रोणास्त्रे पाण्डवान् भयमाविशत् ॥ ५ ॥

संग्राममें जब इस प्रकार महामनस्वी द्रोणाचार्यके द्वारा पाञ्चाल सैनिक मारे जाने लगे और आचार्य द्रोणके अस्त्र लगातार बरसने लगे, तब पाण्डवोंके मनमें बड़ा भय समा गया ॥ ५ ॥

दृष्ट्वाश्वनरयोधानां विपुलं च क्षयं युधि ।
पाण्डवेया महाराज नाशशंसुर्जयं तदा ॥ ६ ॥

महाराज ! युद्धस्थलमें घोड़ों और मनुष्य-योद्धाओंका वह महान् विनाश देखकर पाण्डवोंकी अपनी विजयकी आशा जाती रही ॥ ६ ॥

कच्चिद् द्रोणो न नः सर्वान् क्षपयेत् परमास्त्रवित् ।
समिद्धः शिशिरापाये दहन् कक्षमिवानलः ॥ ७ ॥

(वे सोचने लगे—) 'जैसे ग्रीष्म-ऋतुमें प्रज्वलित अग्नि सूखे जंगल या घास-फूसको जलाकर भस्म कर देती है, उसी प्रकार उत्तम अस्त्रोंके ज्ञाता आचार्य द्रोण कहीं हम सब लोगोंका संहार न कर डालें ॥ ७ ॥

न चैनं संयुगे कश्चित् समर्थः प्रतिवीक्षितुम् ।
न चैनमर्जुनो जातु प्रतियुध्येत धर्मवित् ॥ ८ ॥

'रणभूमिमें दूसरा कोई योद्धा उनकी ओर देखनेमें भी समर्थ नहीं है (युद्ध करना तो दूरकी बात है) और धर्मके

शाता अर्जुन कदापि उनके साथ (मन लगाकर) युद्ध नहीं करेंगे' ॥ ८ ॥

त्रस्तान् कुन्तीसुतान् दृष्ट्वा द्रोणसायकपीडितान्।
मतिमाञ्छ्रेयसे युक्तः केशवोऽर्जुनमब्रवीत् ॥ ९ ॥

कुन्तीके पुत्रोंको द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीड़ित एवं भयभीत देखकर उनके कल्याणमें लगे हुए बुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे इस प्रकार कहा—॥ ९ ॥

नैष युद्धे न संग्रामे जेतुं शक्यः कथञ्चन।
सधनुर्धन्विनां श्रेष्ठो देवैरपि सवासवैः ॥ १० ॥

'पार्थ ! ये द्रोणाचार्य सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ हैं, जबतक इनके हाथोंमें धनुष रहेगा, तबतक इन्हें युद्धमें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी किसी प्रकार जीत नहीं सकते ॥ १० ॥

न्यस्तशस्त्रस्तु संग्रामे शक्यो हन्तुं भवेन्नृभिः।
आस्थीयतां जये योगो धर्ममुत्सृज्य पाण्डवाः ॥ ११ ॥
यथा वः संयुगे सर्वान् न हन्याद् रुक्मवाहनः।

'जब ये संग्राममें हथियार डाल देंगे, तभी मनुष्योंद्वारा मारे जा सकते हैं। अतः पाण्डवो ! 'गुरुका वध करना उचित नहीं है' इस धर्मभावनाको छोड़कर उनपर विजय पानेके लिये कोई यत्न करो; जिससे सुवर्णमय रथवाले द्रोणाचार्य तुम सब लोगोंका वध न कर डालें ॥ ११½ ॥

अश्वत्थाम्नि हते नैष युध्येदिति मतिर्मम ॥ १२ ॥
तं हतं संयुगे कश्चिदस्मै शंसतु मानवः।

'मेरा विश्वास है कि अश्वत्थामाके मारे जानेपर ये युद्ध नहीं कर सकते। कोई मनुष्य उनसे जाकर कहे कि 'युद्धमें अश्वत्थामा मारा गया'' ॥ १२½ ॥

एतन्नारोचयद् राजन् कुन्तीपुत्रो धनंजयः ॥ १३ ॥
अन्ये त्वरोचयन् सर्वे कृच्छ्रेण तु युधिष्ठिरः।

राजन् ! कुन्तीपुत्र अर्जुनको यह बात अच्छी नहीं लगी, किंतु अन्य सब लोगोंने इस युक्तिको पसंद कर लिया। केवल कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर बड़ी कठिनाईसे इस बातपर राजी हुए ॥ १३½ ॥

ततो भीमो महाबाहुरनीके स्वे महागजम् ॥ १४ ॥
जघान गदया राजन्नश्वत्थामानमित्युत।
परप्रमथनं घोरं मालवस्येन्द्रवर्मणः ॥ १५ ॥

राजन् ! तब महाबाहु भीमसेनने अपनी ही सेनाके एक विशाल हाथीको गदासे मार डाला। उसका नाम था अश्वत्थामा। शत्रुओंको मथ डालनेवाला वह भयंकर गजराज मालवाके राजा इन्द्रवर्माका था ॥ १४-१५ ॥

भीमसेनस्तु सव्रीडमुपेत्य द्रोणमाहवे।
अश्वत्थामा हत इति शब्दमुच्चैश्चकार ह ॥ १६ ॥

उसे मारकर भीमसेन लजाते-लजाते युद्धस्थलमें द्रोणाचार्यके पास गये और बड़े जोरसे बोले—'अश्वत्थामा मारा गया' ॥ १६ ॥



अश्वत्थामेति हि गजः ख्यातो नाम्ना हतोऽभवत्।
कृत्वा मनसि तं भीमो मिथ्या व्याहृतवांस्तदा ॥ १७ ॥

'अश्वत्थामा' नामसे विख्यात हाथी मारा गया था, उसीको मनमें रखकर भीमसेनने उस समय वह झूठी बात कही थी ॥ १७ ॥

भीमसेनवचः श्रुत्वा द्रोणस्तत् परमाप्रियम्।
मनसा सन्नगात्रोऽभूद् यथा सैकतमम्भसि ॥ १८ ॥

भीमसेनका वह अत्यन्त अप्रिय वचन सुनकर द्रोणाचार्य मन-ही-मन शोकसे व्याकुल हो सन्न रह गये। जैसे पानी पड़ते ही बालू गल जाता है, उसी प्रकार उस दुःखद संवादसे उनका सारा शरीर शिथिल हो गया ॥ १८ ॥

शङ्कमानः स तन्मिथ्या वीर्यज्ञः स्वसुतस्य वै।
हतः स इति च श्रुत्वा नैव धैर्यादकम्पत ॥ १९ ॥

फिर उनके मनमें यह संदेह हुआ कि सम्भव है, यह बात झूठी हो; क्योंकि वे अपने पुत्रके बल-पराक्रमको जानते थे; अतः उसके मारे जानेकी बात सुनकर भी धैर्यसे विचलित न हुए ॥ १९ ॥

स लब्ध्वा चेतनां द्रोणः क्षणेनैव समाश्वसत्।
अनुचिन्त्यात्मनः पुत्रमविषह्यमरातिभिः ॥ २० ॥

उनके मनमें बारंबार यह विचार आया कि मेरा पुत्र तो शत्रुओंके लिये असह्य है; अतः क्षणभरमें ही सचेत होकर उन्होंने अपने आपको सँभाल लिया ॥ २० ॥

स पार्षतमभिद्रुत्य जिघांसुर्मृत्युमात्मनः।
अवाकिरत् सहस्रेण तीक्ष्णानां कङ्कपत्रिणाम् ॥ २१ ॥

तत्पश्चात् अपनी मृत्युस्वरूप धृष्टद्युम्नको मार डालनेकी इच्छासे वे उसपर टूट पड़े और कङ्कपत्रयुक्त सहस्रों तीखे बाणोंद्वारा उन्हें आच्छादित करने लगे ॥ २१ ॥

तं विंशतिसहस्राणि पञ्चालानां नरर्षभाः।
तथा चरन्तं संग्रामे सर्वतोऽवाकिरञ्छरैः ॥ २२ ॥

इस प्रकार संग्राममें विचरते हुए द्रोणाचार्यपर बीस हजार नरश्रेष्ठ पाञ्चाल-वीर सब ओरसे बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २२ ॥

शरैस्तैराचितं द्रोणं नापश्याम महारथम्।
भास्करं जलदै रुद्धं वर्षास्विव विशाम्पते ॥ २३ ॥

प्रजानाथ ! जैसे वर्षाकालमें मेघोंकी घटासे आच्छादित हुए सूर्य नहीं दिखायी देते हैं, उसी प्रकार उन बाणोंके ढेरसे दबे हुए महारथी द्रोणको हमलोग नहीं देख पाते थे ॥ २३ ॥

विधूय तान् बाणगणान् पञ्चालानां महारथः।
प्रादुश्चक्रे ततो द्रोणो ब्राह्ममस्त्रं परंतपः ॥ २४ ॥
वधाय तेषां शूराणां पञ्चालानाममर्षितः।

तब शत्रुओंको संताप देनेवाले महारथी द्रोणाचार्यने पाञ्चालोंके उन बाण-समूहोंको नष्ट करके शूरवीर पाञ्चालोंके वधके लिये अमर्षयुक्त होकर ब्रह्मास्त्र प्रकट किया ॥ २४½ ॥

ततो व्यरोचत द्रोणो विनिघ्नन् सर्वसैनिकान् ॥ २५ ॥
शिरांस्यपातयच्चापि पञ्चालानां महामृधे।
तथैव परिघाकारान् बाहून् कनकभूषणान् ॥ २६ ॥

तदनन्तर सम्पूर्ण सैनिकोंका विनाश करते हुए द्रोणाचार्यकी बड़ी शोभा होने लगी। उन्होंने उस महासमरमें पाञ्चालवीरोंके मस्तक और सुवर्णभूषित परिघ-जैसी मोटी भुजाएँ काट गिरायीं ॥ २५-२६ ॥

ते वध्यमानाः समरे भारद्वाजेन पार्थिवाः।
मेदिन्यामन्वकीर्यन्त वातनुन्ना इव द्रुमाः ॥ २७ ॥

समराङ्गणमें द्रोणाचार्यके द्वारा मारे जानेवाले वे पाञ्चाल-नरेश आँधीके उखाड़े हुए वृक्षोंके समान धरतीपर बिछ गये ॥ २७ ॥

कुञ्जराणां च पततां हयौघानां च भारत।
अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ॥ २८ ॥

भरतनन्दन ! धराशायी होते हुए हाथियों और अश्व-समूहोंके मांस तथा रक्तसे कीच जम जानेके कारण वहाँकी भूमिपर चलना-फिरना असम्भव हो गया ॥ २८ ॥

हत्वा विंशतिसाहस्रान् पञ्चालानां रथव्रजान्।
अतिष्ठदाहवे द्रोणो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ २९ ॥

उस समय पाञ्चालोंके बीस हजार रथियोंका संहार करके द्रोणाचार्य युद्धस्थलमें धूमरहित प्रज्वलित अग्निके समान खड़े थे ॥ २९ ॥

तथैव च पुनः क्रुद्धो भारद्वाजः प्रतापवान्।
वसुदानस्य भल्लेन शिरः कायादपाहरत् ॥ ३० ॥

प्रतापी भरद्वाजनन्दनने पुनः पूर्ववत् कुपित होकर एक भल्लके द्वारा वसुदानका मस्तक धड़से अलग कर दिया ॥ ३० ॥

पुनः पञ्चशतान् मत्स्यान् षट्सहस्रांश्च सृंजयान्।
हस्तिनामयुतं हत्वा जघानाश्वायुतं पुनः ॥ ३१ ॥

इसके बाद मत्स्यदेशके पचास योद्धाओंका, सृंजयवंशके छः हजार सैनिकोंका तथा दस हजार हाथियोंका संहार करके उन्होंने पुनः दस हजार घुड़सवारोंकी सेनाका सफाया कर दिया ॥ ३१ ॥

क्षत्रियाणामभावाय दृष्ट्वा द्रोणमवस्थितम्।
ऋषयोऽभ्यागतास्तूर्णं हव्यवाहपुरोगमाः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार द्रोणाचार्यको क्षत्रियोंका विनाश करनेके लिये उद्यत देख तुरंत ही अग्निदेवको आगे करके बहुत-से महर्षि वहाँ आये ॥ ३२ ॥

विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोऽथ गौतमः।
वसिष्ठः कश्यपोऽत्रिश्च ब्रह्मलोकं निनीषवः ॥ ३३ ॥

विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, वसिष्ठ, कश्यप और अत्रि—ये सब लोग उन्हें ब्रह्मलोक ले जानेकी इच्छासे वहाँ पधारे थे ॥ ३३ ॥

सिकताः पृश्नयो गर्गा वालखिल्या मरीचिपाः।
भृगवोऽङ्गिरसश्चैव सूक्ष्माश्चान्ये महर्षयः ॥ ३४ ॥

साथ ही सिकत, पृश्नि, गर्ग, सूर्यकी किरणोंका पान करनेवाले वालखिल्य, भृगु, अङ्गिरा तथा अन्य सूक्ष्मरूपधारी महर्षि भी वहाँ आये थे ॥ ३४ ॥

त एनमब्रुवन् सर्वे द्रोणमाहवशोभिनम्।
अधर्मतः कृतं युद्धं समयो निधनस्य ते ॥ ३५ ॥
न्यस्यायुधं रणे द्रोण समीक्षास्मानवस्थितान्।
नातः क्रूरतरं कर्म पुनः कर्तुमिहार्हसि ॥ ३६ ॥

उन सबने संग्राममें शोभा पानेवाले द्रोणाचार्यसे इस प्रकार कहा—'द्रोण ! तुम हथियार नीचे डालकर यहाँ खड़े हुए हमलोगोंकी ओर देखो। अबतक तुमने अधर्मसे युद्ध किया है, अब तुम्हारी मृत्युका समय आ गया है, इसलिये अब फिर यह क्रूरतापूर्ण कर्म न करो ॥ ३५-३६ ॥

वेदवेदाङ्गविदुषः सत्यधर्मरतस्य ते।
ब्राह्मणस्य विशेषेण तवैतन्नोपपद्यते ॥ ३७ ॥

'तुम वेद और वेदाङ्गोंके विद्वान् हो, विशेषतः सत्य और धर्ममें तत्पर रहनेवाले ब्राह्मण हो, तुम्हारे लिये यह क्रूर कर्म शोभा नहीं देता ॥ ३७ ॥

त्यजायुधममोघेषो तिष्ठ वर्त्मनि शाश्वते।
परिपूर्णश्च कालस्ते वस्तुं लोकेऽद्य मानुषे ॥ ३८ ॥

'अमोघ बाणवाले द्रोणाचार्य ! अस्त्र-शस्त्रोंका परित्याग कर दो और अपने सनातन मार्गपर स्थित हो जाओ। आज इस मनुष्य-लोकमें तुम्हारे रहनेका समय पूरा हो गया ॥३८॥

ब्रह्मास्त्रेण त्वया दग्धा अनस्त्रज्ञा नरा भुवि।
यदेतदीदृशं विप्र कृतं कर्म न साधु तत् ॥ ३९ ॥

'इस भूतलपर जो लोग ब्रह्मास्त्र नहीं जानते थे, उन्हें भी तुमने ब्रह्मास्त्रसे ही दग्ध किया है। ब्रह्मन् ! तुमने जो ऐसा कर्म किया है, यह कदापि उत्तम नहीं है ॥ ३९ ॥

न्यस्यायुधं रणे विप्र द्रोण मा त्वं चिरं कृथाः।
मा पापिष्ठतरं कर्म करिष्यसि पुनर्द्विज ॥ ४० ॥

'विप्रवर द्रोण ! रणभूमिमें अपना अस्त्र-शस्त्र रख दो, इस कार्यमें विलम्ब न करो। ब्रह्मन् ! अब फिर ऐसा अत्यन्त पापपूर्ण कर्म न करना' ॥ ४० ॥

इति तेषां वचः श्रुत्वा भीमसेनवचश्च तत्।
धृष्टद्युम्नं च सम्प्रेक्ष्य रणे स विमनाऽभवत् ॥ ४१ ॥

उन ऋषियोंकी यह बात सुनकर, भीमसेनके कथनपर विचार कर और रणभूमिमें धृष्टद्युम्नको सामने देखकर आचार्य द्रोणका मन उदास हो गया ॥ ४१ ॥

संदिह्यमानो व्यथितः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्।
अहतं वा हतं वेति पप्रच्छ सुतमात्मनः ॥ ४२ ॥

वे संदेहमें पड़े हुए थे, अतः उन्होंने व्यथित होकर अपने पुत्रके मारे जाने या नहीं मारे जानेका समाचार कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरसे पूछा ॥ ४२ ॥

स्थिरा बुद्धिर्हि द्रोणस्य न पार्थो वक्ष्यतेऽनृतम्।
त्रयाणामपि लोकानामैश्वर्यार्थे कथञ्चन ॥ ४३ ॥

द्रोणाचार्यके मनमें यह दृढ़ विश्वास था कि कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर तीनों लोकोंके राज्यके लिये भी किसी प्रकार झूठ नहीं बोलेंगे ॥ ४३ ॥

तस्मात् तं परिपप्रच्छ नान्यं कञ्चिद् द्विजर्षभः।
तस्मिंस्तस्य हि सत्याशा बाल्यात् प्रभृति पाण्डवे ॥४४॥

अतः उन द्विजश्रेष्ठने उन्हींसे वह बात पूछी, दूसरे किसीसे नहीं; क्योंकि बचपनसे ही पाण्डुपुत्रकी सचाईमें आचार्यका विश्वास था ॥ ४४ ॥

ततो निष्पाण्डवामुर्वीं करिष्यन्तं युधां पतिम्।
द्रोणं ज्ञात्वा धर्मराजं गोविन्दो व्यथितोऽब्रवीत् ॥४५॥

उस समय योद्धाओंमें श्रेष्ठ द्रोण इस पृथ्वीको पाण्डव-रहित कर डालनेके लिये उद्यत थे। उनका यह विचार जानकर भगवान् श्रीकृष्णने व्यथित हो धर्मराज युधिष्ठिरसे कहा—॥ ४५ ॥

यद्यर्धदिवसं द्रोणो युध्यते मन्युमास्थितः।
सत्यं ब्रवीमि ते सेना विनाशं समुपैष्यति ॥ ४६ ॥

'राजन् ! यदि क्रोधमें भरे हुए द्रोणाचार्य आधे दिन भी युद्ध करते रहें, तो मैं सच कहता हूँ, तुम्हारी सेनाका सर्वनाश हो जायगा ॥ ४६ ॥

स भवांस्त्रातु नो द्रोणात् सत्याज्ज्यायोऽनृतं वचः।
अनृतं जीवितस्यार्थे वदन्न स्पृश्यतेऽनृतैः ॥ ४७ ॥

'अतः तुम द्रोणसे हमलोगोंको बचाओ; इस अवसरपर असत्यभाषणका महत्त्व सत्यसे भी बढ़कर है। किसीकी प्राणरक्षाके लिये यदि कदाचित् असत्य बोलना पड़े तो उस बोलनेवालेको झूठका पाप नहीं लगता' ॥ ४७ ॥

तयोः संवदतोरेवं भीमसेनोऽब्रवीदिदम् ॥ ४८ ॥
श्रुत्वैवं तु महाराज वधोपायं महात्मनः।
गाहमानस्य ते सेनां मालवस्येन्द्रवर्मणः ॥ ४९ ॥
अश्वत्थामेति विख्यातो गजः शक्रगजोपमः।
निहतो युधि विक्रम्य ततोऽहं द्रोणमब्रुवम् ॥ ५० ॥
अश्वत्थामा हतो ब्रह्मन्निवर्तस्वाहवादिति।
नूनं नाश्रद्दधद् वाक्यमेष मे पुरुषर्षभः ॥ ५१ ॥

वे दोनों इस प्रकार बातें कर ही रहे थे कि भीमसेन बोल उठे—'महाराज ! महामना द्रोणके वधका ऐसा उपाय सुनकर मैंने आपकी सेनामें विचरनेवाले मालव-नरेश इन्द्रवर्माके अश्वत्थामानामसे विख्यात गजराजको, जो ऐरावतके समान शक्तिशाली था, युद्धमें पराक्रम करके मार डाला। फिर द्रोणाचार्यके पास जाकर कहा—'ब्रह्मन् ! अश्वत्थामा मारा गया, अब युद्धसे निवृत्त हो जाइये।' परंतु इन पुरुषप्रवर द्रोणने निश्चय ही मेरी बातपर विश्वास नहीं किया है ॥ ४८—५१ ॥

स त्वं गोविन्दवाक्यानि मानयस्व जयैषिणः।
द्रोणाय निहतं शंस राजञ्शारद्वतीसुतम् ॥ ५२ ॥

'नरेश्वर ! अतः आप विजय चाहनेवाले भगवान् श्रीकृष्णकी बात मान लीजिये और द्रोणाचार्यसे कह दीजिये कि 'अश्वत्थामा मारा गया' ॥ ५२ ॥

त्वयोक्तो नैव युध्येत जातु राजन् द्विजर्षभः।
सत्यवान् हि त्रिलोकेऽस्मिन् भवान् ख्यातो जनाधिप ॥

'राजन् ! जनेश्वर ! आपके कह देनेपर द्विजश्रेष्ठ द्रोण कदापि युद्ध नहीं करेंगे; क्योंकि आप तीनों लोकोंमें सत्यवादीके रूपमें विख्यात हैं' ॥ ५३ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा कृष्णवाक्यप्रचोदितः।
भावित्वाच्च महाराज वक्तुं समुपचक्रमे ॥ ५४ ॥

'महाराज ! भीमकी यह बात सुनकर श्रीकृष्णके आदेशसे प्रेरित हो भावीवश राजा युधिष्ठिर वह झूठी बात कहनेको तैयार हो गये ॥ ५४ ॥

तमतथ्यभये मग्नो जये सक्तो युधिष्ठिरः ।
(अश्वत्थामा हत इति शब्दमुच्चैश्चकार ह ।)
अव्यक्तमब्रवीद् राजन् हतः कुञ्जर इत्युत ॥ ५५ ॥

एक ओर तो वे असत्यके भयमें डूबे हुए थे और दूसरी ओर विजयकी प्राप्तिके लिये भी आसक्तिपूर्वक प्रयत्नशील थे; अतः राजन् ! उन्होंने 'अश्वत्थामा मारा गया' यह बात तो उच्चस्वरसे कही, परंतु 'हाथीका वध हुआ है,' यह बात धीरेसे कही ॥ ५५ ॥

तस्य पूर्वं रथः पृथ्व्याश्चतुरङ्गुलमुच्छ्रितः ।
बभूवैवं च तेनोक्ते तस्य वाहाः स्पृशन्महीम् ॥ ५६ ॥

इसके पहले युधिष्ठिरका रथ पृथ्वीसे चार अंगुल ऊँचे रहा करता था, किंतु उस दिन उनके इस प्रकार असत्य बोलते ही उनके रथके घोड़े धरतीका स्पर्श करके चलने लगे ॥ ५६ ॥

युधिष्ठिरात् तु तद् वाक्यं श्रुत्वा द्रोणो महारथः ।
पुत्रव्यसनसंतप्तो निराशो जीवितेऽभवत् ॥ ५७ ॥

युधिष्ठिरके मुँहसे यह वचन सुनकर महारथी द्रोणाचार्य पुत्रशोकसे संतप्त हो अपने जीवनसे निराश हो गये ॥ ५७ ॥

आगस्कृतमिवात्मानं पाण्डवानां महात्मनाम् ।
ऋषिवाक्येन मन्वानः श्रुत्वा च निहतं सुतम् ॥ ५८ ॥

अपने पुत्रके मारे जानेकी बात सुनकर महर्षियोंके कथनानुसार वे अपने आपको महात्मा पाण्डवोंका अपराधी-सा मानने लगे ॥ ५८ ॥



विचेताः परमोद्विग्नो धृष्टद्युम्नमवेक्ष्य च ।
योद्धुं नाशक्नुवद् राजन् यथापूर्वमरिंदमः ॥ ५९ ॥

उनकी चेतनाशक्ति लुप्त होने लगी । वे अत्यन्त उद्विग्न हो उठे । राजन् ! उस समय धृष्टद्युम्नको सामने देखकर भी शत्रुओंका दमन करनेवाले द्रोणाचार्य पूर्ववत् युद्ध न कर सके ॥ ५९ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि युधिष्ठिरासत्यकथने नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणवधपर्वमें युधिष्ठिरका असत्यभाषणविषयक एक सौ नब्बेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ५९½ श्लोक हैं)

एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नका युद्ध तथा सात्यकिकी शूरवीरता और प्रशंसा

संजय उवाच

तं दृष्ट्वा परमोद्विग्नं शोकोपहतचेतसम् ।
पाञ्चालराजस्य सुतो धृष्टद्युम्नः समाद्रवत् ॥ १ ॥
य इष्ट्वा मनुजेन्द्रेण द्रुपदेन महामखे ।
लब्धो द्रोणविनाशाय समिद्धाद्धव्यवाहनात् ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! राजा द्रुपदने एक महान् यज्ञमें देवाराधन करके द्रोणाचार्यका विनाश करनेके लिये प्रज्वलित अग्निसे जिस पुत्रको प्राप्त किया था, उस पाञ्चाल-राजकुमार धृष्टद्युम्नने जब देखा कि आचार्य द्रोण बड़े उद्विग्न हैं और उनका चित्त शोकसे व्याकुल है, तब उन्होंने उनपर धावा कर दिया ॥ १-२ ॥

स धनुर्जैत्रमादाय घोरं जलदनिःस्वनम् ।
दृढज्यमजरं दिव्यं शरं चाशीविषोपमम् ॥ ३ ॥
संदधे कार्मुके तस्मिंस्ततस्तमनलोपमम् ।
द्रोणं जिघांसुः पाञ्चाल्यो महाज्वालमिवानलम् ॥ ४ ॥

उस पाञ्चालपुत्रने द्रोणाचार्यके वधकी इच्छा रखकर सुदृढ़ प्रत्यञ्चासे युक्त, मेघगर्जनाके समान गम्भीर ध्वनि करनेवाले, कभी जीर्ण न होनेवाले, भयंकर तथा विजय-शील दिव्य धनुष हाथमें लेकर उसके ऊपर विषधर सर्पके समान भयदायक और प्रचण्ड लपटोंवाले अग्निके तुल्य तेजस्वी एक बाण रक्खा ॥ ३-४ ॥

तस्य रूपं शरस्यासीद् धनुर्ज्यामण्डलान्तरे ।

द्योततो भास्करस्येव घनान्ते परिवेषिणः ॥ ५ ॥

धनुषकी प्रत्यञ्चा खींचनेसे जो मण्डलाकार घेरा बन गया था, उसके भीतर उस तेजस्वी बाणका रूप शरत्कालमें परिधिके भीतर प्रकाशित होनेवाले सूर्यके समान जान पड़ता था ॥ ५ ॥

पार्षतेन परामृष्टं ज्वलन्तमिव तद् धनुः।
अन्तकालमनुप्राप्तं मेनिरे वीक्ष्य सैनिकाः ॥ ६ ॥

धृष्टद्युम्नके हाथमें आये हुए उस प्रज्वलित अग्निके सदृश तेजस्वी धनुषको देखकर सब सैनिक यह समझने लगे कि 'मेरा अन्तकाल आ पहुँचा है' ॥ ६ ॥

तमिषुं संहितं तेन भारद्वाजः प्रतापवान्।
दृष्ट्वामन्यत देहस्य कालपर्यायमागतम् ॥ ७ ॥

द्रुपद-पुत्रके द्वारा उस बाणको धनुषपर रखा गया देख प्रतापी द्रोणने भी यह मान लिया कि 'अब इस शरीरका काल आ गया' ॥ ७ ॥

ततः प्रयत्नमातिष्ठदाचार्यस्तस्य वारणे।
न चास्यास्त्राणि राजेन्द्र प्रादुरासन्महात्मनः ॥ ८ ॥

राजेन्द्र ! तदनन्तर आचार्यने उस अस्त्रको रोकनेका प्रयत्न किया, परंतु उन महात्माके अन्तःकरणमें वे दिव्यास्त्र पूर्ववत् प्रकट न हो सके ॥ ८ ॥

तस्य त्वहानि चत्वारि क्षपा चैकास्यतो गता।
तस्य चाह्नस्त्रिभागेन क्षयं जग्मुः पतत्रिणः ॥ ९ ॥

उनके निरन्तर बाण चलाते चार दिन और एक रातका समय बीत चुका था। उस दिनके पंद्रह भागोंमेंसे तीन ही भागमें उनके सारे बाण समाप्त हो गये ॥ ९ ॥

स शरक्षयमासाद्य पुत्रशोकेन चार्दितः।
विविधानां च दिव्यानामस्त्राणामप्रसादतः ॥ १० ॥
उत्स्रष्टुकामः शस्त्राणि ऋषिवाक्यप्रचोदितः।
तेजसा पूर्यमाणश्च युयुधे न यथा पुरा ॥ ११ ॥

बाणोंके समाप्त हो जानेसे पुत्रशोकसे पीड़ित हुए द्रोणाचार्य नाना प्रकारके दिव्यास्त्रोंके प्रकट न होनेसे महर्षियोंकी आज्ञा मानकर अब हथियार डाल देनेको उद्यत हो गये; इसीलिये तेजसे परिपूर्ण होनेपर भी वे पूर्ववत् युद्ध नहीं करते थे ॥ १०-११ ॥

भूयश्चान्यत् समादाय दिव्यमाङ्गिरसं धनुः।
शरांश्च ब्रह्मदण्डाभान् धृष्टद्युम्नमयोधयत् ॥ १२ ॥

इसके बाद द्रोणाचार्यने पुनः आङ्गिरस नामक दिव्य धनुष तथा ब्रह्मदण्डके समान बाण हाथमें लेकर धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया ॥ १२ ॥

ततस्तं शरवर्षेण महता समवाकिरत्।
व्यद्यातयच्च संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नममर्षणम् ॥ १३ ॥

उन्होंने अत्यन्त कुपित होकर अमर्षमें भरे हुए धृष्टद्युम्नको अपनी भारी बाणवर्षासे ढक दिया और उन्हें क्षत-विक्षत कर दिया ॥ १३ ॥

शरांश्च शतधा तस्य द्रोणश्चिच्छेद सायकैः।
ध्वजं धनुश्च निशितैः सारथिं चाप्यपातयत् ॥ १४ ॥

इतना ही नहीं, द्रोणाचार्यने अपने तीखे बाणोंद्वारा धृष्टद्युम्नके बाण, ध्वज और धनुषके सैकड़ों टुकड़े कर डाले और सारथिको भी मार गिराया ॥ १४ ॥

धृष्टद्युम्नः प्रहस्यान्यत् पुनरादाय कार्मुकम्।
शितेन चैनं बाणेन प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ॥ १५ ॥

तब धृष्टद्युम्नने हँसकर फिर दूसरा धनुष उठाया और तीखे बाणद्वारा आचार्यकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासोऽसम्भ्रान्त इव संयुगे।
भल्लेन शितधारेण चिच्छेदास्य पुनर्धनुः ॥ १६ ॥

युद्धस्थलमें अत्यन्त घायल होकर भी महाधनुर्धर द्रोणने बिना किसी घबराहटके तीखी धारवाले भल्लसे पुनः उनका धनुष काट दिया ॥ १६ ॥

यच्चास्य बाणविकृतं धनूंषि च विशाम्पते।
सर्वं चिच्छेद दुर्धर्षो गदां खड्गं च वर्जयन् ॥ १७ ॥

प्रजानाथ ! धृष्टद्युम्नके जो-जो बाण, तरकस और धनुष आदि थे, उनमेंसे गदा और खड्गको छोड़कर शेष सारी वस्तुओंको दुर्धर्ष द्रोणाचार्यने काट डाला ॥ १७ ॥

धृष्टद्युम्नं च विव्याध नवभिर्निशितैः शरैः।
जीवितान्तकरैः क्रुद्धः क्रुद्धरूपं परंतपः ॥ १८ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले द्रोणने कुपित होकर क्रोधमें भरे हुए धृष्टद्युम्नको नौ प्राणान्तकारी तीक्ष्ण बाणोंद्वारा बींध डाला ॥ १८ ॥

धृष्टद्युम्नोऽथ तस्याश्वान् स्वरथाश्वैर्महारथः।
व्यामिश्रयदमेयात्मा ब्राह्ममस्त्रमुदीरयन् ॥ १९ ॥

तब अमेय आत्मबलसे सम्पन्न महारथी धृष्टद्युम्नने ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करनेके लिये अपने रथके घोड़ोंको आचार्यके घोड़ोंसे मिला दिया ॥ १९ ॥

ते मिश्रा बह्वशोभन्त जवना वातरंहसः।
पारावतसवर्णाश्च शोणाश्वा भरतर्षभ ॥ २० ॥

भरतश्रेष्ठ ! वे वायुके समान वेगशाली, कबूतरके समान रंगवाले और लाल घोड़े परस्पर मिलकर बड़ी शोभा पाने लगे ॥ २० ॥

यथा सविद्युतो मेघा नदन्तो जलदागमे।
तथा रेजुर्महाराज मिश्रिता रणमूर्धनि ॥ २१ ॥

महाराज ! जैसे वर्षाकालमें गर्जते हुए विद्युत्सहित

मेघ सुशोभित होते हैं, उसी प्रकार युद्धके मुहानेपर परस्पर मिले हुए वे घोड़े शोभा पाते थे ॥ २१ ॥

ईषाबन्धं चक्रबन्धं रथबन्धं तथैव च ।
प्राणाशयदमेयात्मा धृष्टद्युम्नस्य स द्विजः ॥ २२ ॥

उस समय अमेय बलसम्पन्न विप्रवर द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नके रथके ईषाबन्ध, चक्रबन्ध तथा रथबन्धको नष्ट कर दिया ॥ २२ ॥

स च्छिन्नधन्वा पाञ्चाल्यो निकृत्तध्वजसारथिः ।
उत्तमामापदं प्राप्य गदां वीरः परामृशत् ॥ २३ ॥

धनुष, ध्वज और सारथिके नष्ट हो जानेपर भारी विपत्तिमें पड़कर पाञ्चालराजकुमार वीर धृष्टद्युम्नने गदा उठायी ॥ २३ ॥

तामस्य विशिखैस्तीक्ष्णैः क्षिप्यमाणां महारथः ।
निजघान शरैर्द्रोणः क्रुद्धः सत्यपराक्रमः ॥ २४ ॥

उसके द्वारा चलायी जानेवाली उस गदाको सत्यपराक्रमी महारथी द्रोणने कुपित हो बाणोंद्वारा नष्ट कर दिया ॥ २४ ॥

तां तु दृष्ट्वा नरव्याघ्रो द्रोणेन निहतां शरैः ।
विमलं खड्गमादत्त शतचन्द्रं च भानुमत् ॥ २५ ॥

उस गदाको द्रोणाचार्यके बाणोंसे नष्ट हुई देख पुरुषसिंह धृष्टद्युम्नने सौ चन्द्राकार चिह्नोंसे युक्त चमकीली ढाल और चमचमाती हुई तलवार हाथमें ले ली ॥ २५ ॥

असंशयं तथाभूतः पाञ्चाल्यः साध्वमन्यत ।
वधमाचार्यमुख्यस्य प्राप्तकालं महात्मनः ॥ २६ ॥

उस अवस्थामें पाञ्चालराजकुमारने यह निःसंदेह ठीक मान लिया कि अब आचार्यप्रवर महात्मा द्रोणके वधका समय आ पहुँचा है ॥ २६ ॥

ततः स रथनीडस्थं स्वरथस्य रथेषया ।
अगच्छदसिमुद्यम्य शतचन्द्रं च भानुमत् ॥ २७ ॥

उस समय उन्होंने तलवार और सौ चन्द्रचिह्नोंवाली ढाल लेकर अपने रथकी ईषाके मार्गसे रथकी बैठकमें बैठे हुए द्रोणपर आक्रमण किया ॥ २७ ॥

चिकीर्षुर्दुष्करं कर्म धृष्टद्युम्नो महारथः ।
इयेष वक्षो भेत्तुं स भारद्वाजस्य संयुगे ॥ २८ ॥

तत्पश्चात् महारथी धृष्टद्युम्नने दुष्कर कर्म करनेकी इच्छासे उस रणभूमिमें आचार्य द्रोणकी छातीमें तलवार भोंक देनेका विचार किया ॥ २८ ॥

सोऽतिष्ठद् युगमध्ये वै युगसन्नहनेषु च ।
जघनार्धेषु चाश्वानां तत् सैन्याः समपूजयन् ॥ २९ ॥

वे रथके जूएके ठीक बीचमें, जूएके बन्धनोंपर और द्रोणाचार्यके घोड़ोंके पिछले भागोंपर पैर जमाकर खड़े हो गये । उनके इस कार्यकी सभी सैनिकोंने भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ २९ ॥

तिष्ठतो युगपालीषु शोणानप्यधितिष्ठतः ।
नापश्यदन्तरं द्रोणस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ३० ॥

वे जूएके मध्यभागमें और द्रोणाचार्यके लाल घोड़ोंकी पीठपर पैर रखकर खड़े थे । उस अवस्थामें द्रोणाचार्यको उनके ऊपर प्रहार करनेका कोई अवसर ही नहीं दिखायी देता था, यह एक अद्भुत-सी बात हुई ॥ ३० ॥

क्षिप्रं श्येनस्य चरतो यथैवामिषगृद्धिनः ।
तद्वदासीदभीसारो द्रोणपार्षतयो रणे ॥ ३१ ॥

जैसे मांसके टुकड़ेके लोभसे विचरते हुए बाजका बड़े वेगसे आक्रमण होता है, उसी प्रकार रणभूमिमें द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नके परस्पर वेगपूर्वक आक्रमण होते थे ॥ ३१ ॥

तस्य पारावतानश्वान् रथशक्त्या पराभिनत् ।
सर्वानेकैकशो द्रोणो रक्तानश्वान् विवर्जयन् ॥ ३२ ॥

द्रोणाचार्यने लाल घोड़ोंको बचाते हुए रथशक्तिका प्रहार करके बारी-बारीसे कबूतरके समान रंगवाले सभी घोड़ोंको मार डाला ॥ ३२ ॥

ते हता न्यपतन् भूमौ धृष्टद्युम्नस्य वाजिनः ।
शोणास्तु पर्यमुच्यन्त रथबन्धाद् विशाम्पते ॥ ३३ ॥

प्रजानाथ ! धृष्टद्युम्नके वे घोड़े मारे जाकर पृथ्वीपर गिर पड़े और लाल रंगवाले घोड़े रथके बन्धनसे मुक्त हो गये ॥ ३३ ॥

तान् हयान् निहतान् दृष्ट्वा द्विजाग्र्येण स पार्षतः ।
नामृष्यत युधां श्रेष्ठो याज्ञसेनिर्महारथः ॥ ३४ ॥

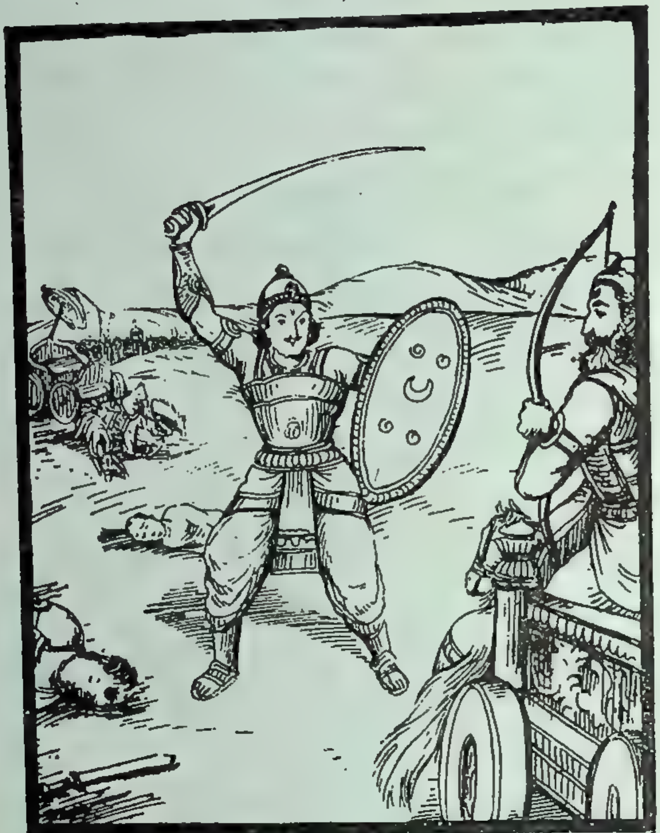
विप्रवर द्रोणके द्वारा अपने घोड़ोंको मारा गया देख योद्धाओंमें श्रेष्ठ पार्षतवंशी महारथी द्रुपदकुमार सहन न कर सके ॥ ३४ ॥

विरथः स गृहीत्वा तु खड्गं खड्गभृतां वर ।
द्रोणमभ्यपतद् राजन् वैनतेय इवोरगम् ॥ ३५ ॥

राजन् ! रथहीन हो जानेपर खड्गधारियोंमें श्रेष्ठ धृष्टद्युम्न खड्ग हाथमें लेकर द्रोणाचार्यपर उसी प्रकार टूट पड़े, जैसे गरुड़ किसी सर्पपर झपटते हैं ॥ ३५ ॥

तस्य रूपं बभौ राजन् भारद्वाजं जिघांसतः ।
यथा रूपं पुरा विष्णोर्हिरण्यकशिपोर्वधे ॥ ३६ ॥

नरेश्वर ! द्रोणके वधकी इच्छा रखनेवाले धृष्टद्युम्नका रूप पूर्वकालमें हिरण्यकशिपुके वधके लिये उद्यत हुए नृसिंहरूपधारी भगवान् विष्णुके समान प्रतीत होता था ॥ ३६ ॥



स तदा विविधान् मार्गान् प्रवरांश्चैकविंशतिम् ।
दर्शयामास कौरव्य पार्षतो विचरन् रणे ॥ ३७ ॥

कुरुनन्दन ! रणमें विचरते हुए धृष्टद्युम्नने उस समय तलवारके इक्कीस प्रकारके विविध उत्तम हाथ दिखाये ॥ ३७ ॥

भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं प्रसृतं सृतम् ।
परिवृत्तं निवृत्तं च खड्गं चर्म च धारयन् ॥ ३८ ॥
सम्पातं समुदीर्णं च दर्शयामास पार्षतः ।
भारतं कौशिकं चैव सात्वतं चैव शिक्षया ॥ ३९ ॥

उन्होंने ढाल-तलवार लेकर भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, आप्लुत, प्रसृत, सृत, परिवृत्त, निवृत्त, सम्पात, समुदीर्ण, भारत, कौशिक तथा सात्वत आदि मार्गोंको* अपनी शिक्षाके अनुसार दिखलाया ॥ ३८-३९ ॥

---

* तलवारको मण्डलाकार घुमाना 'भ्रान्त' कहलाता है । वही कार्य बाँह ऊपर उठाकर किया जाय तो उसे 'उद्भ्रान्त' कहा गया है । अपने चारों ओर तलवारको घुमाया जाय तो उसे 'आविद्ध' कहते हैं । ये तीन कार्य शत्रुके चलाये हुए शस्त्रका निवारण करनेके लिये किये जाते हैं, शत्रुपर आक्रमण करनेके लिये जाना 'आप्लुत' माना गया है । तलवारकी नोकसे शत्रुके शरीरका स्पर्श करना 'प्रसृत' कहा गया है । चकमा देकर शत्रुपर शस्त्रका आघात करना 'सृत' बताया गया है । शत्रुके दायें-बायें तलवार चलाना 'परिवृत्त' कहा गया है । पीछे हटना 'निवृत्त' है । दोनों योद्धाओं-का परस्पर आघात-प्रत्याघात 'सम्पात' कहलाता है । अपनी विशेषता स्थापित करना 'समुदीर्ण' है । अङ्ग-प्रत्यङ्गमें तलवार भाँजना 'भारत' माना गया है । विचित्र रीतिसे तलवार चलानेकी कला दिखाना 'कौशिक' कहा गया है । अपनेको ढालकी आड़में छिपाकर तलवार चलानेका नाम 'सात्वत' है ।

दर्शयन् व्यचरद् युद्धे द्रोणस्यान्तचिकीर्षया ।
चरतस्तस्य तान् मार्गान् विचित्रान् खड्गचर्मिणः ॥ ४० ॥
व्यस्मयन्त रणे योधा देवताश्च समागताः ।

वे द्रोणाचार्यका अन्त करनेकी इच्छासे युद्धमें तलवारके उपर्युक्त हाथ दिखाते हुए विचर रहे थे । ढाल-तलवार लेकर विचरते हुए धृष्टद्युम्नके उन विचित्र पैंतरोंको देखकर रणभूमिमें आये हुए योद्धा और देवता आश्चर्य-चकित हो उठे थे ॥ ४०½ ॥

ततः शरसहस्रेण शतचन्द्रमपातयत् ॥ ४१ ॥
चर्म खड्गं च सम्बाधे धृष्टद्युम्नस्य स द्विजः ।
ये तु वैतस्तिका नाम शरा आसन्नयोधिनः ॥ ४२ ॥
निकृष्टयुद्धे द्रोणस्य नान्येषां सन्ति ते शराः ।

तदनन्तर, उस युद्ध-संकटके समय विप्रवर द्रोणाचार्यने एक हजार बाणोंसे धृष्टद्युम्नकी सौ चाँदवाली ढाल और तलवार काट गिरायी । निकटसे युद्ध करते समय उपयोगमें आनेवाले जो एक बित्तेके बराबर वैतस्तिक नामक बाण होते हैं, वे समीपसे भी युद्ध करनेमें कुशल द्रोणाचार्यके ही पास थे, दूसरोंके नहीं ॥ ४१-४२½ ॥

ऋते शारद्वतात् पार्थाद् द्रौणेर्वैकर्तनात् तथा ॥ ४३ ॥
प्रद्युम्नयुयुधानाभ्यामभिमन्योश्च भारत ।

भारत ! कृपाचार्य, अर्जुन, अश्वत्थामा, वैकर्तन कर्ण, प्रद्युम्न, सात्यकि और अभिमन्युको छोड़कर और किसीके पास वैसे बाण नहीं थे ॥ ४३½ ॥

अथास्येषुं समाधत्त दृढं परमसम्मतम् ॥ ४४ ॥
अन्तेवासिनमाचार्यो जिघांसुः पुत्रसम्मितम् ।

तत्पश्चात् पुत्रतुल्य शिष्यको मार डालनेकी इच्छासे आचार्यने धनुषपर परम उत्तम सुदृढ़ बाण रक्खा ॥

तं शरैर्दशभिस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद शिनिपुङ्गवः ॥ ४५ ॥
पश्यतस्तव पुत्रस्य कर्णस्य च महात्मनः ।
ग्रस्तमाचार्यमुख्येन धृष्टद्युम्नममोचयत् ॥ ४६ ॥

परंतु उस बाणको शिनिप्रवर सात्यकिने महामना कर्ण और आपके पुत्रके देखते-देखते दस तीखे बाणोंसे काट डाला और आचार्यप्रवरके द्वारा प्राणसंकटमें पड़े हुए धृष्टद्युम्नको छुड़ा लिया ॥ ४५-४६ ॥

चरन्तं रथमार्गेषु सात्यकिं सत्यविक्रमम् ।
द्रोणकर्णान्तरगतं कृपस्यापि च भारत ॥ ४७ ॥
अपश्येतां महात्मानौ विष्वक्सेनधनंजयौ ।
अपूजयेतां वार्ष्णेयं ब्रुवाणौ साधु साध्विति ॥ ४८ ॥
दिव्यान्यस्त्राणि सर्वेषां युधि निघ्नन्तमच्युतम् ।

भारत ! उस समय सत्यपराक्रमी सात्यकि द्रोण, कर्ण और कृपाचार्यके बीचमें होकर रथके मार्गोंपर विचर रहे

थे। उन्हें उस अवस्थामें महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुनने देखा और 'साधु-साधु' कहकर सात्यकिकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। वे युद्धमें अविचल भावसे डटे रहकर समस्त विरोधियोंके दिव्यास्त्रोंका निवारण कर रहे थे ॥ ४७-४८½ ॥

अभिपत्य ततः सेनां विष्वक्सेनधनंजयौ ॥ ४९ ॥
धनंजयस्ततः कृष्णमब्रवीत् पश्य केशव।
आचार्यरथमुख्यानां मध्ये क्रीडन् मधूद्वहः ॥ ५० ॥

तदनन्तर श्रीकृष्ण और अर्जुन शत्रुसेनामें टूट पड़े। उस समय अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा—'केशव! देखिये, यह मधुवंशशिरोमणि सात्यकि आचार्यकी रक्षा करनेवाले मुख्य महारथियोंके बीचमें खेल रहा है ॥ ४९-५० ॥

आनन्दयति मां भूयः सात्यकिः परवीरहा।
माद्रीपुत्रौ च भीमं च राजानं च युधिष्ठिरम् ॥ ५१ ॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाला सात्यकि मुझे बारंबार आनन्द दे रहा है और नकुल, सहदेव, भीमसेन तथा राजा युधिष्ठिरको भी आनन्दित कर रहा है ॥ ५१ ॥

यच्छिक्षयानुद्धतः सन् रणे चरति सात्यकिः।
महारथानुपक्रीडन् वृष्णीनां कीर्तिवर्धनः ॥ ५२ ॥
तमेते प्रतिनन्दन्ति सिद्धाः सैन्याश्च विस्मिताः।
अजय्यं समरे दृष्ट्वा साधु साध्विति सात्यकिम्।
योधाश्चोभयतः सर्वे कर्मभिः समपूजयन् ॥ ५३ ॥

'वृष्णिवंशका यश बढ़ानेवाला सात्यकि उत्तम शिक्षासे युक्त होनेपर भी अभिमानशून्य हो महारथियोंके साथ क्रीड़ा करता हुआ रणभूमिमें विचर रहा है। इसलिये ये सिद्धगण और सैनिक आश्चर्यचकित हो समराङ्गणमें परास्त न होनेवाले सात्यकिकी ओर देखकर 'साधु-साधु' कहते हुए इसका अभिनन्दन करते हैं और दोनों दलोंके समस्त योद्धाओंने इसके वीरोचित कर्मोंसे प्रभावित हो इसकी बड़ी प्रशंसा की है' ॥ ५२-५३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि संकुलयुद्धे एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणवधपर्वमें संकुलयुद्धविषयक एक सौ इक्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९१ ॥

द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

उभयपक्षके श्रेष्ठ महारथियोंका परस्पर युद्ध, धृष्टद्युम्नका आक्रमण, द्रोणाचार्यका अस्त्र त्यागकर योगधारणाके द्वारा ब्रह्मलोक-गमन और धृष्टद्युम्नद्वारा उनके मस्तकका उच्छेद

संजय उवाच

सात्वतस्य तु तत् कर्म दृष्ट्वा दुर्योधनादयः।
शैनेयं सर्वतः क्रुद्धा वारयामासुरञ्जसा ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! सात्वतवंशी सात्यकिका वह कर्म देखकर दुर्योधन आदि कौरव योद्धा कुपित हो उठे और उन्होंने अनायास ही शिनिपौत्रको सब ओरसे घेर लिया ॥ १ ॥

कृपकर्णौ च समरे पुत्राश्च तव मारिष।
शैनेयं त्वरयाभ्येत्य विनिघ्नन् निशितैः शरैः ॥ २ ॥

मान्यवर! समराङ्गणमें कृपाचार्य, कर्ण और आपके पुत्र तुरंत ही सात्यकिके पास पहुँचकर उन्हें पैने बाणोंसे घायल करने लगे ॥ २ ॥

युधिष्ठिरस्ततो राजा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ।
भीमसेनश्च बलवान् सात्यकिं पर्यवारयन् ॥ ३ ॥

तब राजा युधिष्ठिर, पाण्डुकुमार नकुल-सहदेव तथा बलवान् भीमसेनने सात्यकिकी रक्षाके लिये उन्हें अपने बीचमें कर लिया ॥ ३ ॥

कर्णश्च शरवर्षेण गौतमश्च महारथः।
दुर्योधनादयस्ते च शैनेयं पर्यवारयन् ॥ ४ ॥

कर्ण, महारथी कृपाचार्य और दुर्योधन आदिने बाणोंकी वर्षा करके चारों ओरसे सात्यकिको अवरुद्ध कर दिया ॥ ४ ॥

तां वृष्टिं सहसा राजन्नुत्थितां घोररूपिणीम्।
वारयामास शैनेयो योधयंस्तान् महारथान् ॥ ५ ॥

राजन्! उन महारथियोंके साथ युद्ध करते हुए शिनिपौत्र सात्यकिने सहसा उठी हुई उस भयंकर बाणवर्षाको अपने अस्त्रोंद्वारा रोक दिया ॥ ५ ॥

तेषामस्त्राणि दिव्यानि संहितानि महात्मनाम्।
वारयामास विधिवद् दिव्यैरस्त्रैर्महामृधे ॥ ६ ॥

उन्होंने उस महासमरमें विधिपूर्वक दिव्यास्त्रोंका प्रयोग करके उन महामनस्वी वीरोंके छोड़े हुए दिव्य अस्त्रोंका निवारण कर दिया ॥ ६ ॥

क्रूरमायोधनं जज्ञे तस्मिन् राजसमागमे।
रुद्रस्येव हि क्रुद्धस्य निघ्नतस्तान् पशून् पुरा ॥ ७ ॥

राजाओंमें वह संघर्ष छिड़ जानेपर उस युद्धस्थलमें क्रूरताका ताण्डव होने लगा। जैसे पूर्व (प्रलय) कालमें क्रोधमें भरे हुए रुद्रदेवके द्वारा पशुओं (प्राणियों) का संहार होते समय निर्दयताका दृश्य उपस्थित हुआ था ॥ ७ ॥

हस्तानामुत्तमाङ्गानां कार्मुकाणां च भारत।
छत्राणां चापविद्धानां चामराणां च संचयैः ॥ ८ ॥
राशयः स्म व्यदृश्यन्त तत्र तत्र रणाजिरे।

भारत! कटकर गिरे हुए हाथों, मस्तकों, धनुषों,

छत्रों और चँवरोंके समूहोंसे उस समराङ्गणके विभिन्न प्रदेशों-में उक्त वस्तुओंके ढेर-के-ढेर दिखायी दे रहे थे ॥ ८½ ॥

भग्नचक्रै रथैश्चापि पातितैश्च महाध्वजैः ॥ ९ ॥
सादिभिश्च हतैः शूरैः संकीर्णा वसुधाभवत्।

टूटे पहियेवाले रथों, गिराये हुए विशाल ध्वजों और मारे गये शूरवीर घुड़सवारोंसे वहाँकी भूमि आच्छादित हो गयी थी ॥ ९½ ॥

बाणपातनिकृत्तास्तु योधास्ते कुरुसत्तम ॥ १० ॥
चेष्टन्तो विविधाश्चेष्टा व्यदृश्यन्त महाहवे।

कुरुश्रेष्ठ ! बाणोंके आघातसे कटे हुए योद्धा उस महा-समरमें अनेक प्रकारकी चेष्टाएँ करते और छटपटाते दिखायी देते थे ॥ १०½ ॥

वर्तमाने तथा युद्धे घोरे देवासुरोपमे ॥ ११ ॥
अब्रवीत् क्षत्रियांस्तत्र धर्मराजो युधिष्ठिरः।
अभिद्रवत संयत्ताः कुम्भयोनिं महारथाः ॥ १२ ॥

देवासुर-संग्रामके समान जब वह घोर युद्ध चल रहा था, उस समय धर्मराज युधिष्ठिरने अपने पक्षके क्षत्रिय योद्धाओंसे इस प्रकार कहा—'महारथियो ! तुम सब लोग पूर्णतः सावधान होकर द्रोणाचार्यपर धावा करो ॥ ११-१२ ॥

एषो हि पार्षतो वीरो भारद्वाजेन संगतः।
घटते च यथाशक्ति भारद्वाजस्य नाशने ॥ १३ ॥

'ये वीर द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यके साथ जूझ रहे हैं और उनके विनाशके लिये यथाशक्ति चेष्टा कर रहे हैं ॥ १३ ॥

यादृशानि हि रूपाणि दृश्यन्तेऽस्य महारणे।
अद्य द्रोणं रणे क्रुद्धो घातयिष्यति पार्षतः ॥ १४ ॥
ते यूयं सहिता भूत्वा युध्यध्वं कुम्भसम्भवम्।

'आज महासमरमें इनके जैसे रूप दिखायी देते हैं, उनसे यह ज्ञात होता है कि रणभूमिमें कुपित हुए धृष्टद्युम्न सब प्रकारसे द्रोणाचार्यका वध कर डालेंगे । इसलिये तुम सब लोग एक साथ होकर कुम्भजन्मा द्रोणाचार्यके साथ युद्ध करो' ॥ १४½ ॥

युधिष्ठिरसमाज्ञप्ताः सृञ्जयानां महारथाः ॥ १५ ॥
अभ्यद्रवन्त संयत्ता भारद्वाजजिघांसवः।

युधिष्ठिरकी यह आज्ञा पाकर संजय महारथी द्रोणाचार्य-को मार डालनेकी अभिलाषासे पूर्ण सावधान हो उनपर टूट पड़े ॥ १५½ ॥

तान् समापततः सर्वान् भारद्वाजो महारथः ॥ १६ ॥
अभ्यवर्तत वेगेन मर्तव्यमिति निश्चितः।

महारथी द्रोणाचार्यने मरनेका निश्चय करके उन समस्त आक्रमणकारियोंका बड़े वेगसे सामना किया ॥ १६½ ॥

प्रयाते सत्यसंधे तु समकम्पत मेदिनी ॥ १७ ॥
ववुर्वाताः सनिर्घातास्त्रासयाना वरूथिनीम्।

सत्यप्रतिज्ञ द्रोणाचार्यके आगे बढ़ते ही पृथ्वी काँपने लगी और वज्रपातकी आवाजके साथ ही प्रचण्ड आँधी चलने लगी, जो सारी सेनाको डरा रही थी ॥ १७½ ॥

पपात महती चोल्का आदित्यान्निश्चरन्त्युत ॥ १८ ॥
दीपयन्ती उभे सेने शंसन्तीव महद् भयम्।

सूर्यमण्डलसे बड़ी भारी उल्का निकलकर दोनों सेनाओं-को प्रकाशित करती और महान् भयकी सूचना-सी देती हुई पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ १८½ ॥

जज्वलुश्चैव शस्त्राणि भारद्वाजस्य मारिष ॥ १९ ॥
रथाः स्वनन्ति चात्यर्थं हयाश्चाश्रूण्यवासृजन्।

माननीय नरेश ! द्रोणाचार्यके शस्त्र जलने लगे, रथसे बड़े जोरकी आवाज उठने लगी और घोड़े आँसू बहाने लगे ॥ १९½ ॥

हतौजा इव चाप्यासीद् भारद्वाजो महारथः ॥ २० ॥
प्रास्फुरन्नयनं चास्य वामं बाहुस्तथैव च।

महारथी द्रोणाचार्य उस समय तेजोहीन-से हो रहे थे। उनकी बायीं आँख और बायीं भुजा फड़क रही थीं ॥ २०½ ॥

विमनाश्चाभवद् युद्धे दृष्ट्वा पार्षतमग्रतः ॥ २१ ॥
ऋषीणां ब्रह्मवादानां स्वर्गस्य गमनं प्रति।
सुयुद्धेन ततः प्राणानुत्स्रष्टुमुपचक्रमे ॥ २२ ॥

वे युद्धमें अपने सामने धृष्टद्युम्नको देखकर मन-ही-मन उदास हो गये । साथ ही ब्रह्मवादी महर्षियोंके ब्रह्मलोकमें चलनेके सम्बन्धमें कहे हुए वचनोंका स्मरण करके उन्होंने उत्तम युद्धके द्वारा अपने प्राणोंको त्याग देनेका विचार किया ॥ २१–२२ ॥

ततश्चतुर्दिशं सैन्यैर्द्रुपदस्याभिसंवृतः।
निर्दहन् क्षत्रियव्रातान् द्रोणः पर्यचरद् रणे ॥ २३ ॥

तदनन्तर द्रुपदकी सेनाओंद्वारा चारों ओरसे घिरे हुए द्रोणाचार्य क्षत्रियसमूहोंको दग्ध करते हुए रणभूमिमें विचरने लगे ॥ २३ ॥

हत्वा विंशतिसाहस्रान् क्षत्रियानरिमर्दनः।
दशायुतानि करिणामवधीद् विशिखैः शितैः ॥ २४ ॥

शत्रुमर्दन द्रोणने वहाँ बीस हजार क्षत्रियोंका संहार करके अपने तीखे बाणोंद्वारा एक लाख हाथियोंका वध कर डाला ॥ २४ ॥

सोऽतिष्ठदाहवे यत्तो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन्।
क्षत्रियाणामभावाय ब्राह्ममस्त्रं समास्थितः ॥ २५ ॥

फिर वे क्षत्रियोंका विनाश करनेके लिये ब्रह्मास्त्रका सहारा ले बड़ी सावधानीके साथ युद्धभूमिमें खड़े हो गये और

धूमरहित प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित होने लगे ॥ २५ ॥

पाञ्चाल्यं विरथं भीमो हतसर्वायुधं बली ।
सुविषण्णं महात्मानं त्वरमाणः समभ्ययात् ॥ २६ ॥
ततः स्वरथमारोप्य पाञ्चाल्यमरिमर्दनः ।
अब्रवीदभिसम्प्रेक्ष्य द्रोणमस्यन्तमन्तिकात् ॥ २७ ॥

पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न रथहीन हो गये थे । उनके सारे अस्त्र-शस्त्र नष्ट हो चुके थे और वे भारी विषादमें डूब गये थे । उस अवस्थामें शत्रुमर्दन बलवान् भीमसेन उन महामनस्वी पाञ्चाल वीरके पास तुरंत आ पहुँचे और उन्हें अपने रथपर बिठाकर द्रोणाचार्यको निकटसे बाण चलाते देख इस प्रकार बोले—॥ २६-२७ ॥

न त्वदन्य इहाचार्यं योद्धुमुत्सहते पुमान् ।
त्वरस्व प्राग् वधायैव त्वयि भारः समाहितः ॥ २८ ॥

'धृष्टद्युम्न ! यहाँ तुम्हारे सिवा दूसरा कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जो आचार्यके साथ जूझनेका साहस कर सके । अतः तुम पहले उनके वधके लिये ही शीघ्रतापूर्वक प्रयत्न करो । तुमपर ही इसका सारा भार रक्खा गया है' ॥ २८ ॥

स तथोक्तो महाबाहुः सर्वभारसहं धनुः ।
अभिपत्याददे क्षिप्रमायुधप्रवरं दृढम् ॥ २९ ॥

भीमसेनके ऐसा कहनेपर महाबाहु धृष्टद्युम्नने उछलकर शीघ्रतापूर्वक सारा भार सहन करनेमें समर्थ सुदृढ़ एवं श्रेष्ठ आयुध धनुषको उठा लिया ॥ २९ ॥

संरब्धश्च शरानस्यन् द्रोणं दुर्वारणं रणे ।
विवारयिषुराचार्यं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३० ॥

फिर क्रोधमें भरकर बाण चलाते हुए उन्होंने रणभूमिमें कठिनतासे रोके जानेवाले द्रोणाचार्यको रोक देनेकी इच्छासे उन्हें बाणोंकी वर्षाद्वारा ढक दिया ॥ ३० ॥

तौ न्यवारयतां श्रेष्ठौ संरब्धौ रणशोभिनौ ।
उदीरयेतां ब्राह्माणि दिव्यान्यस्त्राण्यनेकशः ॥ ३१ ॥

संग्रामभूमिमें शोभा पानेवाले वे दोनों श्रेष्ठ वीर कुपित हो नाना प्रकारके दिव्यास्त्र एवं ब्रह्मास्त्र प्रकट करते हुए एक दूसरेको आगे बढ़नेसे रोकने लगे ॥ ३१ ॥

स महास्त्रैर्महाराज द्रोणमाच्छादयद् रणे ।
निहत्य सर्वाण्यस्त्राणि भारद्वाजस्य पार्षतः ॥ ३२ ॥

महाराज ! धृष्टद्युम्नने रणभूमिमें द्रोणाचार्यके सभी अस्त्रोंको नष्ट करके उन्हें अपने महान् अस्त्रोंद्वारा आच्छादित कर दिया ॥ ३२ ॥

सवसातीञ्छिबींश्चैव बाह्लीकान् कौरवानपि ।
रक्षिष्यमाणान् संग्रामे द्रोणं व्यधमदच्युतः ॥ ३३ ॥

कभी विचलित न होनेवाले पाञ्चालवीरने संग्राममें द्रोणाचार्यकी रक्षा करनेवाले वसाति, शिबि, बाह्लीक और कौरव योद्धाओंका भी संहार कर डाला ॥ ३३ ॥

धृष्टद्युम्नस्तथा राजन् गभस्तिभिरिवांशुमान् ।
बभौ प्रच्छादयन्नाशाः शरजालैः समन्ततः ॥ ३४ ॥

राजन् ! अपने बाणोंके समूहसे सम्पूर्ण दिशाओंको सब ओरसे आच्छादित करते हुए धृष्टद्युम्न किरणोंद्वारा अंशुमाली सूर्यके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ ३४ ॥

तस्य द्रोणो धनुश्छित्त्वा विद्ध्वा चैनं शिलीमुखैः ।
मर्माण्यभ्यहनद् भूयः स व्यथां परमामगात् ॥ ३५ ॥

तदनन्तर द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नका धनुष काटकर उन्हें बाणोंद्वारा घायल कर दिया और पुनः उनके मर्मस्थानोंको गहरी चोट पहुँचायी; इससे उन्हें बड़ी व्यथा हुई ॥ ३५ ॥

ततो भीमो दृढक्रोधो द्रोणस्याश्लिष्य तं रथम् ।
शनकैरिव राजेन्द्र द्रोणं वचनमब्रवीत् ॥ ३६ ॥

राजेन्द्र ! तब अपने क्रोधको दृढ़तापूर्वक बनाये रखनेवाले भीमसेन द्रोणाचार्यके उस रथसे सटकर उनसे धीरे-धीरे इस प्रकार बोले—॥ ३६ ॥

यदि नाम न युध्येरञ्शिक्षिता ब्रह्मबन्धवः ।
स्वकर्मभिरसंतुष्टा न स्म क्षत्रं क्षयं व्रजेत् ॥ ३७ ॥

'यदि शिक्षित ब्राह्मण अपने कर्मोंसे असंतुष्ट हो परधर्मका आश्रय ले युद्ध न करते तो क्षत्रियोंका यह संहार न होता ॥ ३७ ॥

अहिंसां सर्वभूतेषु धर्मं ज्यायस्तरं विदुः ।
तस्य च ब्राह्मणो मूलं भवांश्च ब्रह्मवित्तमः ॥ ३८ ॥

'प्राणियोंकी हिंसा न करनेको ही सबसे श्रेष्ठ धर्म माना गया है । उसकी जड़ है ब्राह्मण और आप तो उन ब्राह्मणोंमें भी सबसे उत्तम ब्रह्मवेत्ता हैं ॥ ३८ ॥

श्वपाकवन्म्लेच्छगणान् हत्वा चान्यान् पृथग्विधान् ।
अज्ञानान्मूढवद् ब्रह्मन् पुत्रदारधनेप्सया ॥ ३९ ॥

'ब्रह्मन् ! ब्रह्मवेत्ता होकर भी आपने स्त्री, धन और पुत्रकी लिप्सासे मूर्ख चाण्डालोंके समान कितने ही म्लेच्छों तथा अन्य नाना प्रकारके क्षत्रियसमूहोंका संहार कर डाला है ॥ ३९ ॥

एकस्यार्थे बहून् हत्वा पुत्रस्याधर्मविद्यया ।
स्वकर्मस्थान् विकर्मस्थो न व्यपत्रपसे कथम् ॥ ४० ॥

'आप अपने एक पुत्रकी जीविकाके लिये विपरीत कर्मका आश्रय ले इस पाप-विद्याके द्वारा स्वधर्मपरायण बहुसंख्यक क्षत्रियोंका वध करके लज्जित कैसे नहीं हो रहे हैं ! ॥ ४० ॥

यस्यार्थे शस्त्रमादाय यमपेक्ष्य च जीवसि ।
स चाद्य पतितः शेते पृष्ठे नावेदितस्तव ॥ ४१ ॥
धर्मराजस्य तद् वाक्यं नाभिशङ्कितुमर्हसि ।

'जिसके लिये आपने शस्त्र उठाया, जिसके जीवनकी अभिलाषा रखकर आप जी रहे हैं, वह तो आज पीछे समरभूमिमें गिरकर चिरनिद्रामें सो रहा है और आपको इसकी सूचनातक नहीं दी गयी। धर्मराज युधिष्ठिरके उस कथनपर तो आपको संदेह या अविश्वास नहीं करना चाहिये' ॥ ४१½ ॥

एवमुक्तस्ततो द्रोणो भीमेनोत्सृज्य तद् धनुः ॥ ४२ ॥
सर्वाण्यस्त्राणि धर्मात्मा हातुकामोऽभ्यभाषत ।

भीमसेनके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा द्रोणाचार्य वह धनुष फेंककर अन्य सब अस्त्र-शस्त्रोंको भी त्याग देनेकी इच्छासे इस प्रकार बोले—॥ ४२½ ॥

कर्ण कर्ण महेष्वास कृप दुर्योधनेति च ॥ ४३ ॥
संग्रामे क्रियतां यत्नो ब्रवीम्येष पुनः पुनः ।
पाण्डवेभ्यः शिवं वोऽस्तु शस्त्रमभ्युत्सृजाम्यहम् ॥ ४४ ॥

'कर्ण! कर्ण! महाधनुर्धर कृपाचार्य! और दुर्योधन! अब तुमलोग स्वयं ही युद्धमें विजय पानेके लिये प्रयत्न करो, यही मैं तुमसे बारंबार कहता हूँ। पाण्डवोंसे तुम लोगोंका कल्याण हो। अब मैं अस्त्र-शस्त्रोंका त्याग कर रहा हूँ' ॥ ४३–४४ ॥

इति तत्र महाराज प्राक्रोशद् द्रौणिमेव च ।
उत्सृज्य च रणे शस्त्रं रथोपस्थे निविश्य च ॥ ४५ ॥
अभयं सर्वभूतानां प्रददौ योगमीयिवान् ।

महाराज! यह कहकर उन्होंने वहाँ अश्वत्थामाका नाम ले-लेकर पुकारा। फिर सारे अस्त्र-शस्त्रोंको रणभूमिमें फेंककर वे रथके पिछले भागमें जा बैठे। फिर उन्होंने सम्पूर्ण भूतोंको अभयदान दे दिया और समाधि लगा ली ॥ ४५½ ॥

तस्य तच्छिद्रमाज्ञाय धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ॥ ४६ ॥
सशरं तद् धनुर्घोरं संन्यस्याथ रथे ततः ।
खड्गी रथादवप्लुत्य सहसा द्रोणमभ्ययात् ॥ ४७ ॥

उनपर प्रहार करनेका वह अच्छा अवसर हाथ लगा जान प्रतापी धृष्टद्युम्न बाणसहित अपने भयंकर धनुषको रथपर ही रखकर तलवार हाथमें ले उस रथसे उछलकर सहसा द्रोणाचार्यके पास जा पहुँचा ॥ ४६–४७ ॥

हाहाकृतानि भूतानि मानुषाणीतराणि च ।
द्रोणं तथागतं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नवशं गतम् ॥ ४८ ॥

उस अवस्थामें द्रोणाचार्यको धृष्टद्युम्नके अधीन हुआ देख मनुष्य तथा अन्य प्राणी भी हाहाकार कर उठे ॥४८॥

हाहाकारं भृशं चक्रुरहो धिगिति चाब्रुवन् ।
द्रोणोऽपि शस्त्राण्युत्सृज्य परमं सांख्यमास्थितः ॥४९॥

वहाँ सबने भारी हाहाकार मचाया और सभी कहने



लगे 'अहो! धिक्कार है, धिक्कार है'। इधर आचार्य द्रोण भी शस्त्रोंका परित्याग करके परम शान्तस्वरूपमें स्थित हो गये ॥ ४९ ॥

तथोक्त्वा योगमास्थाय ज्योतिर्भूतो महातपाः ।
पुराणं पुरुषं विष्णुं जगाम मनसा परम् ॥ ५० ॥

वे महातपस्वी द्रोण पूर्वोक्त बात कहकर योगका आश्रय ले ज्योतिःस्वरूप परब्रह्मसे अभिन्नताका अनुभव करते हुए मन-ही-मन सर्वोत्कृष्ट पुराणपुरुष भगवान् विष्णुका ध्यान करने लगे ॥ ५० ॥

मुखं किंचित् समुन्नाम्य विष्टभ्य उरमग्रतः ।
निमीलिताक्षः सत्त्वस्थो निक्षिप्य हृदि धारणाम् ॥ ५१ ॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ज्योतिर्भूतो महातपाः ।
स्मरित्वा देवदेवेशमक्षरं परमं प्रभुम् ॥ ५२ ॥
दिवमाक्रामदाचार्यः साक्षात् सद्भिर्दुराक्रमाम् ।

उन्होंने मुँहको कुछ ऊपर उठाकर छातीको आगेकी ओर स्थिर किया। फिर विशुद्ध सत्त्वमें स्थित हो नेत्र बंद करके हृदयमें धारणाको दृढ़तापूर्वक धारण किया। साथ ही 'ओम्' इस एकाक्षर ब्रह्मका जप करते हुए वे महातपस्वी आचार्य द्रोण प्रणवके अर्थभूत देवदेवेश्वर अविनाशी परम प्रभु परमात्माका चिन्तन करते-करते ज्योतिःस्वरूप हो साक्षात् उस ब्रह्मलोकको चले गये, जहाँ पहुँचना बड़े-बड़े संतोंके लिये भी दुर्लभ है ॥ ५१–५२½ ॥

द्वौ सूर्याविति नो बुद्धिरासीत् तस्मिंस्तथागते ॥ ५३ ॥

आचार्य द्रोणके उस प्रकार उत्क्रमण करनेपर हमें ऐसा



द्रोणाचार्यका ध्यानावस्थामें देहत्याग एवं तेजस्वी-स्वरूपसे ऊर्ध्वलोक-गमन

भान होने लगा, मानो आकाशमें दो सूर्य उदित हो गये हों ॥ ५३ ॥

एकाग्रमिव चासीच्च ज्योतिर्भिः पूरितं नभः ।
समपद्यत चार्काभे भारद्वाजदिवाकरे ॥ ५४ ॥

सूर्यके समान तेजस्वी द्रोणाचार्यरूपी दिवाकरके उदित होनेपर सारा आकाश तेजसे परिपूर्ण हो उस ज्योतिके साथ एकाग्र-सा हो रहा था ॥ ५४ ॥

निमेषमात्रेण च तज्ज्योतिरन्तरधीयत ।
आसीत् किलकिलाशब्दः प्रहृष्टानां दिवौकसाम् ॥ ५५ ॥
ब्रह्मलोकगते द्रोणे धृष्टद्युम्ने च मोहिते ।

पलक मारते-मारते वह ज्योति आकाशमें जाकर अदृश्य हो गयी । द्रोणाचार्यके ब्रह्मलोक चले जाने और धृष्टद्युम्नके अपमानसे मोहित हो जानेपर हर्षोल्लाससे भरे हुए देवताओंका कोलाहल सुनायी देने लगा ॥ ५५½ ॥

वयमेव तदाद्राक्ष्म पञ्च मानुषयोनयः ॥ ५६ ॥
योगयुक्तं महात्मानं गच्छन्तं परमां गतिम् ।
अहं धनंजयः पार्थो कृपः शारद्वतस्तथा ॥ ५७ ॥
वासुदेवश्च वार्ष्णेयो धर्मपुत्रश्च पाण्डवः ।

उस समय मैं, कुन्तीपुत्र अर्जुन, शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्य, वृष्णिवंशी भगवान् श्रीकृष्ण तथा धर्मपुत्र पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर—इन पाँच मनुष्योंने ही योगयुक्त महात्मा द्रोणको परम धामकी ओर जाते देखा था ॥ ५६-५७½ ॥

अन्ये तु सर्वे नापश्यन् भारद्वाजस्य धीमतः ॥ ५८ ॥
महिमानं महाराज योगयुक्तस्य गच्छतः ।

महाराज ! अन्य सब लोगोंने योगयुक्त हो ऊर्ध्वगतिको जाते हुए बुद्धिमान् द्रोणाचार्यकी महिमाका साक्षात्कार नहीं किया ॥ ५८½ ॥

ब्रह्मलोकं महद् दिव्यं देवगुह्यं हि तत् परम् ॥ ५९ ॥
गतिं परमिकां प्राप्तमजानन्तो नृयोनयः ।
नापश्यन् गच्छमानं हि तं सार्धमृषिपुङ्गवैः ॥ ६० ॥
आचार्यं योगमास्थाय ब्रह्मलोकमरिंदमम् ।

ब्रह्मलोक महान्, दिव्य, देवगुह्य, उत्कृष्ट तथा परम गतिस्वरूप है । शत्रुदमन आचार्य द्रोण योगका आश्रय लेकर श्रेष्ठ महर्षियोंके साथ उसी ब्रह्मलोकको प्राप्त हुए हैं । अज्ञानी मनुष्योंने उन्हें वहाँ जाते समय नहीं देखा था ॥ ५९-६०½ ॥

वितुन्नाङ्गं शरव्रातैर्न्यस्तायुधमसृक्क्षरम् ॥ ६१ ॥
धिक्कृतः पार्षतस्तं तु सर्वभूतैः परामृशत् ।

उनका सारा शरीर बाणसमूहोंसे क्षत-विक्षत हो गया था । उससे रक्तकी धारा बह रही थी और वे अपना अस्त्र-शस्त्र नीचे डाल चुके थे । उस दशामें धृष्टद्युम्नने उनके शरीरका स्पर्श किया । उस समय सारे प्राणी उन्हें धिक्कार रहे थे ॥ ६१½ ॥

तस्य मूर्धानमालम्ब्य गतसत्त्वस्य देहिनः ॥ ६२ ॥
किंचिदब्रुवतः कायाद् विचकर्तासिना शिरः ।

देहधारी द्रोणके शरीरसे प्राण निकल गये थे, अतः वे कुछ भी बोल नहीं रहे थे । इस अवस्थामें उनके मस्तकका बाल पकड़कर धृष्टद्युम्नने तलवारसे उनके सिरको धड़से काट लिया ॥ ६२½ ॥

हर्षेण महता युक्तो भारद्वाजे निपातिते ॥ ६३ ॥
सिंहनादरवं चक्रे भ्रामयन् खड्गमाहवे ।

इस प्रकार द्रोणाचार्यको मार गिरानेपर धृष्टद्युम्नको महान् हर्ष हुआ और वे रणभूमिमें तलवार घुमाते हुए जोर जोरसे सिंहनाद करने लगे ॥ ६३½ ॥

आकर्णपलितः श्यामो वयसाशीतिपञ्चकः ॥ ६४ ॥
त्वत्कृते व्यचरत् संख्ये स तु षोडशवर्षवत् ।

आचार्यके शरीरका रंग साँवला था । उनकी अवस्था चार सौ वर्षकी हो चुकी थी और उनके ऊपरसे लेकर कानतकके बाल सफेद हो गये थे, तो भी आपके हितके लिये वे संग्राममें सोलह वर्षकी उम्रवाले तरुणके समान विचरते थे ॥ ६४½ ॥

उक्तवांश्च महाबाहुः कुन्तीपुत्रो धनंजयः ॥ ६५ ॥
जीवन्तमानयाचार्यं मा वधीर्द्रुपदात्मज ।
न हन्तव्यो न हन्तव्य इति ते सैनिकाश्च ह ॥ ६६ ॥

यद्यपि उस समय महाबाहु कुन्तीकुमार अर्जुनने बहुत कहा—'ओ द्रुपदकुमार ! तुम आचार्यको जीते-जी ले आओ । उनका वध न करना ।' आपके सैनिक भी बारंबार कहते ही रह गये कि 'न मारो, न मारो' ॥ ६५-६६ ॥

उत्क्रोशन्नर्जुनस्त्वेव सानुक्रोशस्तमाव्रजत् ।
क्रोशमानेऽर्जुने चैव पार्थिवेषु च सर्वशः ॥ ६७ ॥
धृष्टद्युम्नोऽवधीद् द्रोणं रथतल्पे नरर्षभम् ।

अर्जुन तो दयावश चिल्लाते हुए धृष्टद्युम्नके पास आने लगे । परंतु उनके तथा अन्य सब राजाओंके पुकारते रहने पर भी धृष्टद्युम्नने रथकी बैठकमें नरश्रेष्ठ द्रोणका वध कर ही डाला ॥ ६७½ ॥

शोणितेन परिक्लिन्नो रथाद् भूमिमथापतत् ॥ ६८ ॥
लोहिताङ्ग इवादित्यो दुर्धर्षः समपद्यत ।

दुर्धर्ष द्रोणाचार्यका शरीर खूनसे लथपथ हो रथसे पृथ्वीपर गिर पड़ा, मानो लाल अङ्गकान्तिवाले सूर्य डूब गये हों ॥ ६८½ ॥

एवं तं निहतं संख्ये ददर्श सैनिको जनः ॥ ६९ ॥
धृष्टद्युम्नस्तु तद् राजन् भारद्वाजशिरोऽहरत् ।

तावकानां महेष्वासः प्रमुखे तत् समाक्षिपत् ॥ ७० ॥

इस प्रकार सब सैनिकोंने द्रोणाचार्यका मारा जाना अपनी आँखोंसे देखा। राजन्! महाधनुर्धर धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यका वह सिर उठा लिया और उसे आपके पुत्रोंके सामने फेंक दिया ॥ ६९-७० ॥

ते तु दृष्ट्वा शिरो राजन् भारद्वाजस्य तावकाः।
पलायनकृतोत्साहा दुद्रुवुः सर्वतो दिशम् ॥ ७१ ॥

महाराज! द्रोणाचार्यके उस कटे हुए सिरको देखकर आपके सारे सैनिकोंने केवल भागनेमें ही उत्साह दिखाया और वे सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गये ॥ ७१ ॥

द्रोणस्तु दिवमास्थाय नक्षत्रपथमाविशत्।
अहमेव तदाद्राक्षं द्रोणस्य निधनं नृप ॥ ७२ ॥
ऋषेः प्रसादात् कृष्णस्य सत्यवत्याः सुतस्य च।

नरेश्वर! द्रोणाचार्य आकाशमें पहुँचकर नक्षत्रोंके पथमें प्रविष्ट हो गये। उस समय सत्यवतीनन्दन महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायनके प्रसादसे मैंने भी द्रोणाचार्यकी वह दिव्य मृत्यु प्रत्यक्ष देख ली ॥ ७२½ ॥

विधूमामिह संयान्तीमुल्कां प्रज्वलितामिव ॥ ७३ ॥
अपश्याम दिवं स्तब्ध्वा गच्छन्तं तं महाद्युतिम्।

महातेजस्वी द्रोण जब आकाशको स्तब्ध करके ऊपरको जा रहे थे, उस समय हमलोगोंने वहाँसे उन्हें एक स्थानसे दूसरे स्थानको जाती हुई धूमरहित प्रज्वलित उल्काके समान देखा था ॥ ७३½ ॥

हते द्रोणे निरुत्साहान् कुरून् पाण्डवसृञ्जयाः ॥ ७४ ॥
अभ्यद्रवन् महावेगास्ततः सैन्यं व्यदीर्यत।

द्रोणाचार्यके मारे जानेपर कौरव सैनिक युद्धका उत्साह खो बैठे, फिर पाण्डवों और सृंजयोंने उनपर बड़े वेगसे आक्रमण कर दिया। इससे कौरवसेनामें भगदड़ मच गयी ॥ ७४½ ॥

निहता हतभूयिष्ठाः संग्रामे निशितैः शरैः ॥ ७५ ॥
तावका निहते द्रोणे गतासव इवाभवन्।

युद्धमें आपके बहुत योद्धा तीखे बाणोंद्वारा मारे गये थे और बहुत-से अधमरे हो रहे थे। द्रोणाचार्यके मारे जानेपर वे सभी निष्प्राण-से हो गये ॥ ७५½ ॥

पराजयमथावाप्य परत्र च महद् भयम् ॥ ७६ ॥
उभयेनैव ते हीना नाविन्दन् धृतिमात्मनः।

इस लोकमें पराजय और परलोकमें महान् भय पाकर दोनों ही लोकोंसे वञ्चित हो वे अपने भीतर धैर्य न धारण कर सके ॥ ७६½ ॥

अन्विच्छन्तः शरीरं तु भारद्वाजस्य पार्थिवाः ॥ ७७ ॥
नान्वगच्छन् महाराज कबन्धायुतसंकुले।

महाराज! हमारे पक्षके राजाओंने द्रोणाचार्यके शरीरको बहुत खोजा, परंतु हजारों लाशोंसे भरे हुए युद्धस्थलमें वे उसे पा न सके ॥ ७७½ ॥

पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा परत्र च महद् यशः ॥ ७८ ॥
बाणशङ्खरवांश्चक्रुः सिंहनादांश्च पुष्कलान्।

पाण्डव इस लोकमें विजय और परलोकमें महान् यश पाकर वे धनुषपर बाण रखकर उसकी टंकार करने, शङ्ख बजाने और बारंबार सिंहनाद करने लगे ॥ ७८½ ॥

भीमसेनस्ततो राजन् धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ७९ ॥
वरूथिन्यामनृत्येतां परिष्वज्य परस्परम्।

राजन्! तदनन्तर भीमसेन और द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न एक दूसरेको हृदयसे लगाकर सेनाके बीचमें हर्षके मारे नाचने लगे ॥ ७९½ ॥

अब्रवीच्च तदा भीमः पार्षतं शत्रुतापनम् ॥ ८० ॥
भूयोऽहं त्वां विजयिनं परिष्वज्यामि पार्षत।
सूतपुत्रे हते पापे धार्तराष्ट्रे च संयुगे ॥ ८१ ॥

उस समय भीमसेनने शत्रुओंको संताप देनेवाले धृष्टद्युम्नसे कहा—'द्रुपदनन्दन! जब सूतपुत्र कर्ण और पापी दुर्योधन मारे जायँगे, उस समय विजयी हुए तुमको मैं फिर इसी प्रकार छातीसे लगाऊँगा' ॥ ८०-८१ ॥

एतावदुक्त्वा भीमस्तु हर्षेण महता युतः।
बाहुशब्देन पृथिवीं कम्पयामास पाण्डवः ॥ ८२ ॥

इतना कहकर अत्यन्त हर्षमें भरे हुए पाण्डुनन्दन भीमसेन अपनी भुजाओंपर ताल ठोककर पृथ्वीको कम्पित-सी करने लगे ॥ ८२ ॥

तस्य शब्देन वित्रस्ताः प्राद्रवंस्तावका युधि।
क्षत्रधर्मं समुत्सृज्य पलायनपरायणाः ॥ ८३ ॥

उनके उस शब्दसे भयभीत हो आपके सारे सैनिक युद्धसे भाग चले। वे क्षत्रियधर्मको छोड़कर पीठ दिखाने लग गये ॥ ८३ ॥

पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा हृष्टा ह्यासन् विशाम्पते।
अरिक्षयं च संग्रामे तेन ते सुखमाप्नुवन् ॥ ८४ ॥

प्रजानाथ! पाण्डव विजय पाकर हर्षसे खिल उठे। संग्राममें जो शत्रुओंका भारी संहार हुआ था, उससे उन्हें बड़ा सुख मिला ॥ ८४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि द्रोणवधपर्वणि द्रोणवधे द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत द्रोणवधपर्वमें द्रोणवधविषयक एक सौ बानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९२ ॥

(नारायणास्त्रमोक्षपर्व)

त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

कौरव-सैनिकों तथा सेनापतियोंका भागना, अश्वत्थामाके पूछनेपर कृपाचार्यका उसे द्रोणवधका वृत्तान्त सुनाना

संजय उवाच

ततो द्रोणे हते राजन् कुरवः शस्त्रपीडिताः।
हतप्रवीरा विध्वस्ता भृशं शोकपरायणाः॥ १॥

संजय कहते हैं—महाराज ! द्रोणाचार्यके मारे जानेपर शस्त्रोंके आघातसे पीड़ित हुए कौरव अपने प्रमुख वीरोंके मारे जानेसे भारी विध्वंसको प्राप्त हो अत्यन्त शोकमग्न हो गये॥ १॥

उदीर्णांश्च परान् दृष्ट्वा कम्पमानाः पुनः पुनः।
अश्रुपूर्णेक्षणास्त्रस्ता दीनास्त्वासन् विशाम्पते॥ २॥

प्रजानाथ ! शत्रुओंको उत्कर्ष प्राप्त करते देख वे दीन और भयभीत हो बारंबार काँपने और नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे॥ २॥

विचेतसो हतोत्साहाः कश्मलाभिहतौजसः।
आर्तस्वरेण महता पुत्रं ते पर्यवारयन्॥ ३॥

उनकी चेतना लुप्त-सी हो गयी थी। मोहवश उनका तेज और बल नष्ट हो चला था। वे हतोत्साह होकर अत्यन्त आर्तस्वरसे विलाप करते हुए आपके पुत्रको घेरकर खड़े हो गये॥ ३॥

रजस्वला वेपमाना वीक्षमाणा दिशो दश।
अश्रुकण्ठा यथा दैत्या हिरण्याक्षे पुरा हते॥ ४॥

पूर्वकालमें हिरण्याक्षके मारे जानेपर दैत्योंकी जैसी अवस्था हुई थी, वैसी ही उनकी भी हो गयी। वे धूल-धूसर शरीरसे काँपते हुए दसों दिशाओंकी ओर देख रहे थे। आँसुओंसे उनका गला भर आया॥ ४॥

स तैः परिवृतो राजा त्रस्तैः क्षुद्रमृगैरिव।
अशक्नुवन्नवस्थातुमपायात् तनयस्तव॥ ५॥

डरे हुए क्षुद्र मृगोंके समान उन सैनिकोंसे घिरा हुआ आपका पुत्र राजा दुर्योधन वहाँ खड़ा न रह सका। वह भागकर अन्यत्र चला गया॥ ५॥

क्षुत्पिपासापरिम्लानास्ते योधास्तव भारत।
आदित्येनेव संतप्ता भृशं विमनसोऽभवन्॥ ६॥

भारत ! आपके सभी सैनिक भूख-प्याससे व्याकुल एवं मलिन हो रहे थे, मानो सूर्यने उन्हें अपनी प्रचण्ड किरणोंसे झुलस दिया हो। वे अत्यन्त उदास हो गये थे॥ ६॥

भास्करस्येव पतनं समुद्रस्येव शोषणम्।
विपर्यासं यथा मेरोर्वासवस्येव निर्जयम्॥ ७॥
अमर्षणीयं तद् दृष्ट्वा भारद्वाजस्य पातनम्।
त्रस्तरूपतरा राजन् कौरवाः प्राद्रवन् भयात्॥ ८॥

राजन् ! जैसे सूर्यका पृथ्वीपर गिर पड़ना, समुद्रका सूख जाना, मेरुपर्वतका उलटी दिशामें चला जाना और इन्द्रका पराजित हो जाना असम्भव है, उसी प्रकार द्रोणाचार्यका मारा जाना भी असम्भव समझा जाता था; परंतु द्रोणाचार्यके उस असहनीय वधको सम्भव हुआ देख सारे कौरव थर्रा उठे और भयके मारे भागने लगे॥ ७-८॥

गान्धारराजः शकुनिस्त्रस्तस्त्रस्ततरैः सह।
हतं रुक्मरथं श्रुत्वा प्राद्रवत् सहितो रथैः॥ ९॥

सुवर्णमय रथवाले आचार्य द्रोणके मारे जानेका समाचार सुनकर गान्धारराज शकुनि त्रस्त हो उठा और अत्यन्त डरे हुए अपने रथियोंके साथ युद्ध-भूमिसे भाग चला॥ ९॥

वरूथिनीं वेगवतीं विद्रुतां सपताकिनीम्।
परिगृह्य महासेनां सूतपुत्रोऽपयाद् भयात्॥ १०॥

सूतपुत्र कर्ण भी ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित एवं बड़े वेगसे भागी हुई अपनी विशाल सेनाको साथ ले भयके मारे वहाँसे भाग खड़ा हुआ॥ १०॥

रथनागाश्वकलिलां पुरस्कृत्य तु वाहिनीम्।
मद्राणामीश्वरः शल्यो वीक्षमाणोऽपयाद् भयात्॥ ११॥

मद्रराज शल्य भी रथ, हाथी और घोड़ोंसे भरी हुई अपनी सेनाको आगे करके भयके मारे इधर-उधर देखते हुए भागने लगे॥ ११॥

हतप्रवीरैर्भूयिष्ठैर्ध्वजैर्बहुपताकिभिः।
वृतः शारद्वतोऽगच्छत् कष्टं कष्टमिति ब्रुवन्॥ १२॥

शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य बहुसंख्यक ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित बहुत-से सैनिकोंद्वारा घिरे हुए थे। उनकी सेनाके प्रमुख वीर मारे गये थे। वे भी 'हाय ! बड़े कष्टकी बात है; बड़े कष्टकी बात है' ऐसा कहते हुए युद्धभूमिसे खिसक गये॥

भोजानीकेन शिष्टेन कलिङ्गारट्टबाह्लिकैः।
कृतवर्मा वृतो राजन् प्रायात् सुजवनैर्हयैः॥ १३॥

राजन् ! कृतवर्मा भी भोजवंशियोंकी अवशिष्ट सेना तथा कलिङ्ग, अरट्ट और बाह्लिकोंकी विशाल वाहिनी साथ ले अत्यन्त वेगशाली घोड़ोंसे जुते हुए रथके द्वारा भाग निकला॥ १३॥

पदातिगणसंयुक्तस्त्रस्तो राजन् भयार्दितः।
उलूकः प्राद्रवत् तत्र दृष्ट्वा द्रोणं निपातितम् ॥ १४ ॥

नरेश्वर ! द्रोणाचार्यको वहाँ मारा गया देख उलूक भी भयसे पीड़ित हो थर्रा उठा और पैदल योद्धाओंके साथ जोर-जोरसे भागने लगा ॥ १४ ॥

दर्शनीयो युवा चैव शौर्येण कृतलक्षणः।
दुःशासनो भृशोद्विग्नः प्राद्रवद् गजसंवृतः ॥ १५ ॥

जिसके शरीरमें शौर्यके चिह्न बन गये थे, वह दर्शनीय युवक दुःशासन भी भयसे अत्यन्त उद्विग्न हो अपनी गज-सेनाके साथ भाग खड़ा हुआ ॥ १५ ॥

रथानामयुतं गृह्य त्रिसाहस्रं च दन्तिनाम्।
वृषसेनो ययौ तूर्णं दृष्ट्वा द्रोणं निपातितम् ॥ १६ ॥

द्रोणाचार्य धराशायी हो गये, यह देखकर वृषसेन भी दस हजार रथों और तीन हजार हाथियोंकी सेना साथ ले तुरंत वहाँसे चल दिया ॥ १६ ॥

गजाश्वरथसंयुक्तो वृतश्चैव पदातिभिः।
दुर्योधनो महाराज प्रायात् तत्र महारथः ॥ १७ ॥

महाराज ! हाथी, घोड़े और रथोंकी सेनासे युक्त तथा पैदल सैनिकोंसे घिरा हुआ महारथी दुर्योधन भी रणभूमिसे भाग चला ॥ १७ ॥

संशप्तकगणान् गृह्य हतशेषान् किरीटिना।
सुशर्मा प्राद्रवद् राजन् दृष्ट्वा द्रोणं निपातितम् ॥१८॥

राजन् ! द्रोणाचार्यको रणभूमिमें गिराया गया देख अर्जुनके मारनेसे बचे हुए संशप्तकोंको साथ ले सुशर्मा वहाँसे भाग निकला ॥ १८ ॥

गजान् रथान् समारुह्य व्युदस्य च हयाञ्जनाः।
प्राद्रवन् सर्वतः संख्ये दृष्ट्वा रुक्मरथं हतम् ॥ १९ ॥

युद्धस्थलमें सुवर्णमय रथवाले द्रोणका वध हुआ देख बहुतेरे सैनिक हाथियों और रथोंपर आरूढ़ हो तथा कितने ही योद्धा अपने घोड़ोंको भी छोड़कर सब ओरसे पलायन करने लगे ॥ १९ ॥

त्वरयन्तः पितॄनन्ये भ्रातॄनन्येऽथ मातुलान्।
पुत्रानन्ये वयस्यांश्च प्राद्रवन् कुरवस्तदा ॥ २० ॥

कुछ कौरव पिता, ताऊ और चाचा आदिको, कुछ भाइयोंको, कुछ मामाओंको तथा कितने ही पुत्रों और मित्रोंको जल्दीसे भागनेकी प्रेरणा देते हुए उस समय मैदान छोड़कर चल दिये ॥ २० ॥

चोदयन्तश्च सैन्यानि स्वस्रीयांश्च तथापरे।
सम्बन्धिनस्तथान्ये च प्राद्रवन्त दिशो दश ॥ २१ ॥

कितने ही योद्धा अपनी सेनाओंको, दूसरे लोग भानजों-को और कितने ही अपने सगे-सम्बन्धियोंको भागनेकी आज्ञा देते हुए दसों दिशाओंकी ओर भाग खड़े हुए ॥ २१ ॥

प्रकीर्णकेशा विध्वस्ता न द्वावेकत्र धावतः।
नेदमस्तीति मन्वाना हतोत्साहा हतौजसः ॥ २२ ॥

उन सबके बाल बिखरे हुए थे। वे गिरते-पड़ते भाग रहे थे। दो सैनिक एक साथ या एक ओर नहीं भागते थे। उन्हें विश्वास हो गया था कि अब यह सेना नहीं बचेगी; इसीलिये उनके उत्साह और बल नष्ट हो गये थे ॥ २२ ॥

उत्सृज्य कवचानन्ये प्राद्रवंस्तावका विभो।
अन्योन्यं ते समाक्रोशन् सैनिका भरतर्षभ ॥ २३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! प्रभो ! आपके कितने ही सैनिक कवच उतारकर एक-दूसरेको पुकारते हुए भाग रहे थे ॥ २३ ॥

तिष्ठ तिष्ठेति न च ते स्वयं तत्रावतस्थिरे।
धुर्यानुन्मुच्य च रथाद्धतसूतात् स्वलंकृतान्।
अधिरुह्य हयान् योधाः क्षिप्रं पद्भिरचोदयन् ॥ २४ ॥

कुछ योद्धा दूसरोंसे 'ठहरो, ठहरो' कहते, परंतु स्वयं नहीं ठहरते थे। कितने ही योद्धा सारथिशून्य रथसे सजे-सजाये घोड़ोंको खोलकर उनपर सवार हो जाते और पैरोंसे ही शीघ्रतापूर्वक उन्हें हाँकने लगते थे ॥ २४ ॥

द्रवमाणे तथा सैन्ये त्रस्तरूपे हतौजसि।
प्रतिस्रोत इव ग्राहो द्रोणपुत्रः परानियात् ॥ २५ ॥

इस प्रकार जब सारी सेना भयभीत हो बल और उत्साह खोकर भाग रही थी, उसी समय द्रोणपुत्र अश्वत्थामा शत्रुओंकी ओर बढ़ा आ रहा था, मानो कोई ग्राह नदीके प्रवाहके प्रतिकूल जा रहा हो ॥ २५ ॥

तस्यासीत् सुमहद् युद्धं शिखण्डिप्रमुखैर्गणैः।
प्रभद्रकैश्च पाञ्चालैश्चेदिभिश्च सकेकयैः ॥ २६ ॥

इससे पहले अश्वत्थामाका उन प्रभद्रक, पाञ्चाल, चेदि और केकय आदि गणोंके साथ महान् युद्ध हो रहा था, जिनका प्रधान नेता शिखण्डी था (इसीलिये उसे पिताकी मृत्युका समाचार नहीं ज्ञात हुआ।) ॥ २६ ॥

हत्वा बहुविधाः सेनाः पाण्डूनां युद्धदुर्मदः।
कथंचित् संकटान्मुक्तो मत्तद्विरदविक्रमः ॥ २७ ॥

मतवाले हाथीके समान पराक्रमी रणदुर्मद अश्वत्थामा पाण्डवोंकी विविध सेनाओंका संहार करके किसी प्रकार उस युद्ध-संकटसे मुक्त हुआ था ॥ २७ ॥

द्रवमाणं बलं दृष्ट्वा पलायनकृतक्षणम्।
दुर्योधनं समासाद्य द्रोणपुत्रोऽब्रवीदिदम् ॥ २८ ॥

इतनेहीमें उसने देखा कि सारी कौरव-सेना भागी जा रही है और सभी लोग पलायन करनेमें उत्साह दिखा रहे हैं। तब द्रोणपुत्रने दुर्योधनके पास जाकर इस प्रकार पूछा—॥ २८ ॥

किमियं द्रवते सेना त्रस्तरूपेव भारत।
द्रवमाणां च राजेन्द्र नावस्थापयसे रणे ॥ २९ ॥

'भरतनन्दन ! क्यों यह सेना भयभीत-सी होकर भागी जा रही है ? राजेन्द्र ! इस भागती हुई सेनाको आप युद्धमें ठहरानेका प्रयत्न क्यों नहीं करते ? ॥ २९ ॥

त्वं चापि न यथापूर्वं प्रकृतिस्थो नराधिप।
कर्णप्रभृतयश्चेमे नावतिष्ठन्ति पार्थिव ॥ ३० ॥

'नरेश्वर ! तुम भी पहलेके समान स्वस्थ नहीं दिखायी देते। भूपाल! ये कर्ण आदि वीर भी रणभूमिमें खड़े नहीं हो रहे हैं। इसका क्या कारण है ? ॥ ३० ॥

अन्येष्वपि च युद्धेषु नैव सेनाद्रवत् तदा।
कच्चित् क्षेमं महाबाहो तव सैन्यस्य भारत ॥ ३१ ॥

'अन्य संग्रामोंमें भी आपकी सेना इस प्रकार नहीं भागी थी। महाबाहु भरतनन्दन ! आपकी सेना सकुशल तो है न ? ॥ ३१ ॥

कस्मिन्निदं हते राजन् रथसिंहे बलं तव।
एतामवस्थां सम्प्राप्तं तन्ममाचक्ष्व कौरव ॥ ३२ ॥

'राजन् ! कुरुनन्दन ! किस सिंहके समान पराक्रमी रथीके मारे जानेपर आपकी यह सेना इस दुरवस्थाको पहुँच गयी है। यह मुझे बताइये' ॥ ३२ ॥

तत्तु दुर्योधनः श्रुत्वा द्रोणपुत्रस्य भाषितम्।
घोरमप्रियमाख्यातुं नाशक्नोत् पार्थिवर्षभः ॥ ३३ ॥

द्रोणपुत्र अश्वत्थामाकी यह बात सुनकर नृपश्रेष्ठ दुर्योधन यह घोर अप्रिय समाचार स्वयं उससे न कह सका॥

भिन्ना नौरिव ते पुत्रो मग्नः शोकमहार्णवे।
बाष्पेणापिहितो दृष्ट्वा द्रोणपुत्रं रथे स्थितम् ॥ ३४ ॥

मानो आपके पुत्रकी नाव मझधारमें टूट गयी थी और वह शोकके समुद्रमें डूब रहा था। रथपर बैठे हुए द्रोणकुमारको देखकर उसके नेत्रोंमें आँसू भर आये थे॥

ततः शारद्वतं राजा सव्रीडमिदमब्रवीत्।
शंसात्र भद्रं ते सर्वं यथा सैन्यमिदं द्रुतम् ॥ ३५ ॥

उस समय राजा दुर्योधनने कृपाचार्यसे संकोचपूर्वक कहा—'गुरुदेव ! आपका कल्याण हो। आप ही वह सब समाचार बता दीजिये, जिससे यह सब सेना भागी जा रही है' ॥ ३५ ॥

अथ शारद्वतो राजन्नार्तिमार्च्छन् पुनः पुनः।
शशंस द्रोणपुत्राय यथा द्रोणो निपातितः ॥ ३६ ॥

राजन् ! उस समय शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्य बारंबार पीड़ाका अनुभव करते हुए जिस प्रकार द्रोणाचार्य मारे गये थे, वह समाचार उनके पुत्रको सुनाने लगे ॥ ३६ ॥

कृप उवाच

वयं द्रोणं पुरस्कृत्य पृथिव्यां प्रवरं रथम्।
प्रावर्तयाम संग्रामं पञ्चालैरेव केवलम् ॥ ३७ ॥

कृपाचार्य बोले—वत्स ! हमलोगोंने भूमण्डलके श्रेष्ठ महारथी आचार्य द्रोणको आगे करके केवल पाञ्चालोंके साथ युद्ध आरम्भ किया था ॥ ३७ ॥

ततः प्रवृत्ते संग्रामे विमिश्राः कुरुसोमकाः।
अन्योन्यमभिगर्जन्तः शस्त्रैर्देहानपातयन् ॥ ३८ ॥

युद्ध आरम्भ हो जानेपर कौरव तथा सोमक योद्धा परस्पर मिश्रित हो गये और एक-दूसरेके निकट गर्जना करते हुए शस्त्रोंद्वारा अपने-अपने शत्रुओंके शरीरोंको धराशायी करने लगे ॥ ३८ ॥

वर्तमाने तथा युद्धे क्षीयमाणेषु संयुगे।
धार्तराष्ट्रेषु संक्रुद्धः पिता तेऽस्त्रमुदैरयत् ॥ ३९ ॥

इस प्रकार युद्ध चालू होनेपर जब कौरव योद्धा क्षीण होने लगे, तब तुम्हारे पिताने अत्यन्त कुपित होकर ब्रह्मास्त्र प्रकट किया ॥ ३९ ॥

ततो द्रोणो ब्राह्ममस्त्रं विकुर्वाणो नरर्षभः।
व्यहनच्छात्रवान् भल्लैः शतशोऽथ सहस्रशः॥ ४० ॥

ब्रह्मास्त्र प्रकट करते हुए नरश्रेष्ठ द्रोणने सैकड़ों और हजारों भल्लोंद्वारा शत्रु-सैनिकोंका संहार कर डाला ॥ ४० ॥

पाण्डवाः केकया मत्स्याः पञ्चालाश्च विशेषतः।
संख्ये द्रोणरथं प्राप्य व्यनशन् कालचोदिताः॥४१॥

पाण्डव, केकय, मत्स्य तथा विशेषतः पाञ्चाल योद्धा कालसे प्रेरित हो युद्धमें द्रोणाचार्यके रथके पास आकर नष्ट हो गये ॥ ४१ ॥

सहस्रं नरसिंहानां द्विसाहस्रं च दन्तिनाम्।
द्रोणो ब्रह्मास्त्रयोगेन प्रेषयामास मृत्यवे ॥ ४२ ॥

द्रोणाचार्यने ब्रह्मास्त्रके प्रयोगद्वारा मनुष्योंमें सिंहके समान पराक्रमी एक हजार श्रेष्ठ योद्धाओं तथा दो हजार हाथियोंको मौतके हवाले कर दिया ॥ ४२ ॥

आकर्णपलितः श्यामो वयसाशीतिपञ्चकः।
रणे पर्यचरद् द्रोणो वृद्धः षोडशवर्षवत् ॥ ४३ ॥

जिनकी अङ्ग-कान्ति श्याम थी, जिनके कानोंतकके बाल पक गये थे तथा जो चार सौ वर्षकी अवस्था पूरे कर चुके थे, वे बूढ़े द्रोणाचार्य रणभूमिमें सोलह वर्षके तरुणकी भाँति सब ओर विचरते रहे ॥ ४३ ॥

क्लिश्यमानेषु सैन्येषु वध्यमानेषु राजसु।
अमर्षवशमापन्नाः पञ्चाला विमुखाऽभवन् ॥ ४४ ॥

जब इस प्रकार सेनाएँ कष्ट पाने लगीं तथा बहुत-से नरेश कालके गालमें जाने लगे, तब अमर्षमें भरे हुए पाञ्चाल युद्धसे विमुख हो गये ॥ ४४ ॥

तेषु किंचित् प्रभग्नेषु विमुखेषु सपत्नजित्।
दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणो बभूवार्क इवोदितः ॥ ४५ ॥

वे कुछ हतोत्साह होकर जब युद्धसे विमुख हो गये, तब दिव्य अस्त्र प्रकट करनेवाले शत्रुविजयी द्रोणाचार्य उदित हुए सूर्यके समान प्रकाशित होने लगे ॥ ४५ ॥

स मध्यं प्राप्य पाण्डूनां शररश्मिः प्रतापवान्।
मध्यंगत इवादित्यो दुष्प्रेक्ष्यस्ते पिताभवत् ॥ ४६ ॥

पाण्डव सेनाके बीचमें आकर बाणमयी रश्मियोंसे सुशोभित तुम्हारे प्रतापी पिता द्रोण दोपहरके सूर्यकी भाँति तपने लगे। उस समय उनकी ओर देखना कठिन हो रहा था ॥ ४६ ॥

ते दह्यमाना द्रोणेन सूर्येणेव विराजता।
दग्धवीर्या निरुत्साहा बभूवुर्गतचेतसः ॥ ४७ ॥

प्रकाशमान सूर्यके समान तेजस्वी द्रोणाचार्यद्वारा दग्ध किये जाते हुए पाञ्चालोंके बल और पराक्रम भी दग्ध हो गये थे। वे उत्साहशून्य तथा अचेत हो गये थे ॥ ४७ ॥

तान् दृष्ट्वा पीडितान् बाणैर्द्रोणेन मधुसूदनः।
जयैषी पाण्डुपुत्राणामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ४८ ॥

उन सबको द्रोणाचार्यके बाणोंद्वारा पीड़ित देख पाण्डवोंकी विजय चाहनेवाले मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार कहा— ॥ ४८ ॥

नैष जातु नरैः शक्यो जेतुं शस्त्रभृतां वरः।
अपि वृत्रहणा संख्ये रथयूथपयूथपः ॥ ४९ ॥

'ये द्रोणाचार्य शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ एवं रथयूथपतियोंके भी यूथपति हैं। इन्हें युद्धमें मनुष्य कदापि नहीं जीत सकते। देवराज इन्द्रके लिये भी इनपर विजय पाना असम्भव है ॥

ते यूयं धर्ममुत्सृज्य जयं रक्षत पाण्डवाः।
यथा वः संयुगे सर्वान् न हन्याद् रुक्मवाहनः ॥ ५० ॥

'अतः पाण्डव! तुमलोग धर्मका विचार छोड़कर विजयकी रक्षाका प्रयत्न करो, जिससे सुवर्णमय रथवाले द्रोणाचार्य युद्धस्थलमें तुम सब लोगोंका संहार न कर सकें ॥ ५० ॥

अश्वत्थाम्नि हते नैष युध्यदिति मतिर्मम।
हतं तं संयुगे कश्चिदाख्यात्वस्मै मृषा नरः ॥ ५१ ॥

'मेरा ऐसा विश्वास है कि अश्वत्थामाके मारे जानेपर ये युद्ध नहीं कर सकते; अतः कोई मनुष्य इनसे झूठे ही कह दे कि 'युद्धमें अश्वत्थामा मारा गया' ॥ ५१ ॥

एतन्नारोचयद् वाक्यं कुन्तीपुत्रो धनंजयः।
अरोचयंस्तु सर्वेऽन्ये कृच्छ्रेण तु युधिष्ठिरः ॥ ५२ ॥

कुन्तीकुमार अर्जुनको यह बात अच्छी नहीं लगी। परंतु और सब लोगोंको जँच गयी। युधिष्ठिर बड़ी कठिनाईसे इसके लिये तैयार हुए ॥ ५२ ॥

भीमसेनस्तु सव्रीडमब्रवीत् पितरं तव।
अश्वत्थामा हत इति तं नाबुध्यत ते पिता ॥ ५३ ॥

तब भीमसेनने लजाते-लजाते तुम्हारे पितासे कहा—'अश्वत्थामा मारा गया'। परंतु उनकी इस बातपर तुम्हारे पिताको विश्वास नहीं हुआ ॥ ५३ ॥

स शङ्कमानस्तन्मिथ्या धर्मराजमपृच्छत।
हतं वाप्यहतं वाऽऽजौ त्वां पिता पुत्रवत्सलः ॥ ५४ ॥

उनके मनमें यह संदेह हुआ कि यह समाचार झूठा है; अतः तुम्हारे पुत्रवत्सल पिताने युद्धभूमिमें धर्मराज युधिष्ठिरसे पूछा कि 'अश्वत्थामा मारा गया या नहीं' ॥ ५४ ॥

तमतथ्यभये मग्नो जये सक्तो युधिष्ठिरः।
अश्वत्थामानमायोधे हतं दृष्ट्वा महागजम् ॥ ५५ ॥
भीमेन गिरिवर्ष्माणं मालवस्येन्द्रवर्मणः।
उपसृत्य तदा द्रोणमुच्चैरिदमुवाच ह ॥ ५६ ॥

युधिष्ठिर असत्यके भयमें डूबे होनेपर भी विजयमें आसक्त थे, अतः मालवनरेश इन्द्रवर्माके पर्वताकार महान् गजराज अश्वत्थामाको भीमसेनके द्वारा युद्धस्थलमें मारा गया देख द्रोणाचार्यके पास जाकर वे उच्चस्वरसे इस प्रकार बोले— ॥ ५५-५६ ॥

यस्यार्थे शस्त्रमादत्से यमवेक्ष्य च जीवसि।
पुत्रस्ते दयितो नित्यं सोऽश्वत्थामा निपातितः ॥ ५७ ॥
शेते विनिहतो भूमौ वने सिंहशिशुर्यथा ॥ ५८ ॥

'आचार्य! तुम जिसके लिये हथियार उठाते हो और जिसका मुँह देखकर जीते हो, वह तुम्हारा सदाका प्यारा पुत्र अश्वत्थामा पृथ्वीपर मार गिराया गया है। जैसे वनमें सिंहका बच्चा सोता है, उसी प्रकार वह रणभूमिमें मरा पड़ा है' ॥

जानन्नप्यनृतस्याथ दोषान् स द्विजसत्तमम्।
अव्यक्तमब्रवीद् राजा हतः कुञ्जर इत्युत ॥ ५९ ॥

असत्य बोलनेके दोषोंको जानते हुए भी राजा युधिष्ठिरने द्विजश्रेष्ठ द्रोणसे वैसी बात कह दी। फिर वे अस्फुट स्वरमें बोले—'वास्तवमें इस नामका हाथी मारा गया' ॥ ५९ ॥

स त्वां निहतमाक्रन्दे श्रुत्वा संतापतापितः।
नियम्य दिव्यान्यस्त्राणि नायुध्यत यथा पुरा ॥ ६० ॥

इस प्रकार युद्धमें तुम्हारे मारे जानेकी बात सुनकर वे शोकाग्निके तापसे संतप्त हो उठे और अपने दिव्यास्त्रोंका प्रयोग बंद करके उन्होंने पहलेके समान युद्ध करना छोड़ दिया ॥ ६० ॥

तं दृष्ट्वा परमोद्विग्नं शोकातुरमचेतसम्।
पाञ्चालराजस्य सुतः क्रूरकर्मा समाद्रवत् ॥ ६१ ॥

उन्हें अत्यन्त उद्विग्न, शोकाकुल और अचेत हुआ देख पाञ्चालराजका क्रूरकर्मा पुत्र धृष्टद्युम्न उनकी ओर दौड़ा ॥ ६१ ॥

तं दृष्ट्वा विहितं मृत्युं लोकतत्त्वविचक्षणः।
दिव्यान्यस्त्राण्यथोत्सृज्य रणे प्रायमुपाविशत्॥ ६२॥

लोकतत्त्वके ज्ञानमें निपुण आचार्य अपनी दैवविहित मृत्युरूप धृष्टद्युम्नको सामने देख दिव्यास्त्रोंका परित्याग करके आमरण उपवासका नियम ले रणभूमिमें बैठ गये॥ ६२॥

ततोऽस्य केशान् सव्येन गृहीत्वा पाणिना तदा।
पार्षतः क्रोशमानानां वीराणामच्छिनच्छिरः॥ ६३॥

तब उस द्रुपदपुत्रने समस्त वीरोंके पुकार-पुकारकर मना करनेपर भी उनकी बातें अनसुनी करके बायें हाथसे आचार्यके केश पकड़ लिये और दाहिने हाथसे उनका सिर काट लिया॥ ६३॥

न हन्तव्यो न हन्तव्य इति ते सर्वतोऽब्रुवन्।
तथैव चार्जुनो वाहादवरुह्यैनमाद्रवत्॥ ६४॥

वे सब वीर चारों ओरसे यही कह रहे थे कि 'न मारो, न मारो'। अर्जुन भी यही कहते हुए अपने रथसे उतरकर उसकी ओर दौड़ पड़े॥ ६४॥

उद्यम्य त्वरितो बाहुं ब्रुवाणश्च पुनः पुनः।
जीवन्तमानयाचार्यं मा वधीरिति धर्मवित्॥ ६५॥

वे धर्मके ज्ञाता हैं, अतः अपनी एक बाँह उठाकर बड़ी उतावलीके साथ बारंबार यह कहने लगे कि 'आचार्यको जीते-जी ले आओ, मारो मत'॥ ६५॥

तथा निवार्यमाणेन कौरवैरर्जुनेन च।
हत एव नृशंसेन पिता तव नरर्षभ॥ ६६॥

नरश्रेष्ठ! इस प्रकार कौरवों तथा अर्जुनके रोकनेपर भी उस नृशंसने तुम्हारे पिताकी हत्या कर ही डाली॥ ६६॥

सैनिकाश्च ततः सर्वे प्राद्रवन्त भयार्दिताः।
वयं चापि निरुत्साहा हते पितरि तेऽनघ॥ ६७॥

अनघ! इस प्रकार तुम्हारे पिताके मारे जानेपर समस्त सैनिक भयसे पीड़ित होकर भाग चले हैं और हमलोग उत्साह-शून्य होकर लौटे आ रहे हैं॥ ६७॥

संजय उवाच

तच्छ्रुत्वा द्रोणपुत्रस्तु निधनं पितुराहवे।
क्रोधमाहारयत् तीव्रं पदाहत इवोरगः॥ ६८॥

संजय कहते हैं—राजन्! युद्धमें इस प्रकार पिताके मारे जानेका वृत्तान्त सुनकर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा पैरोंसे ठुकराये हुए सर्पके समान अत्यन्त कुपित हो उठा॥ ६८॥

ततः क्रुद्धो रणे द्रौणिर्भृशं जज्वाल मारिष।
यथेन्धनं महत् प्राप्य प्राज्वलद्धव्यवाहनः॥ ६९॥

माननीय नरेश! जैसे अग्निदेव सूखे काठकी बहुत बड़ी राशि पाकर प्रचण्डरूपसे प्रज्वलित हो उठते हैं, उसी प्रकार रणभूमिमें अश्वत्थामा अत्यन्त क्रोधसे जलने लगा॥ ६९॥

तलं तलेन निष्पिष्य दन्तैर्दन्तानुपास्पृशत्।
निःश्वसन्नुरगो यद्वल्लोहिताक्षोऽभवत् तदा॥ ७०॥

उसने हाथसे हाथ मलकर दाँतोंसे दाँत पीसे और फुफकारते हुए सर्पके समान वह लंबी साँसें खींचने लगा, उस समय उसकी आँखें लाल हो गयी थीं॥ ७०॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वण्यश्वत्थामक्रोधे त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत नारायणास्त्रमोक्षपर्वमें अश्वत्थामाका क्रोधविषयक एक सौ तिरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९३॥

चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका प्रश्न

धृतराष्ट्र उवाच

अधर्मेण हतं श्रुत्वा धृष्टद्युम्नेन संजय।
ब्राह्मणं पितरं वृद्धमश्वत्थामा किमब्रवीत्॥ १॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! अपने बूढ़े पिता ब्राह्मण द्रोणाचार्यके धृष्टद्युम्नद्वारा अधर्मपूर्वक मारे जानेका समाचार सुनकर अश्वत्थामाने क्या कहा?॥ १॥

मानवं वारुणाग्नेयं ब्राह्ममस्त्रं च वीर्यवान्।
ऐन्द्रं नारायणं चैव यस्मिन् नित्यं प्रतिष्ठितम्॥ २॥
तमधर्मेण धर्मिष्ठं धृष्टद्युम्नेन संयुगे।
श्रुत्वा निहतमाचार्यं सोऽश्वत्थामा किमब्रवीत्॥ ३॥

जिनमें मानव, वारुण, आग्नेय, ब्राह्म, ऐन्द्र और नारायण नामक अस्त्र सदा प्रतिष्ठित थे, उन धर्मात्मा आचार्यको धृष्टद्युम्नद्वारा अधर्मपूर्वक युद्धमें मारा गया सुनकर पराक्रमी अश्वत्थामाने क्या कहा?॥ २-३॥

येन रामादवाप्येह धनुर्वेदं महात्मना।
प्रोक्तान्यस्त्राणि दिव्यानि पुत्राय गुणकाङ्क्षिणा॥ ४॥

गुणोंकी अभिलाषा रखनेवाले उन महात्मा द्रोणने इस लोकमें परशुरामजीसे धनुर्वेदकी शिक्षा पाकर वे समस्त दिव्यास्त्र अपने पुत्रको भी सिखाये थे॥ ४॥

एकमेव हि लोकेऽस्मिन्नात्मनो गुणवत्तरम्।
इच्छन्ति पुरुषाः पुत्रं लोके नान्यं कथंचन॥ ५॥

मनुष्य इस जगत्में केवल पुत्रको ही अपनेसे भी अधिक गुणवान् बनाना चाहते हैं, दूसरेको किसी प्रकार भी नहीं॥ ५॥

आचार्याणां भवन्त्येव रहस्यानि महात्मनाम्।
तानि पुत्राय वा दद्युः शिष्यायानुगताय वा ॥ ६ ॥

महात्मा आचार्योंके पास बहुत-सी रहस्यकी बातें होती हैं, जिन्हें या तो वे अपने पुत्रको दे सकते हैं या अनुगत शिष्यको ॥ ६ ॥

स शिष्यः प्राप्य तत् सर्वं सविशेषं च संजय।
शूरः शारद्वतीपुत्रः संख्ये द्रोणादनन्तरः ॥ ७ ॥

संजय ! कृपीका शूरवीर पुत्र अश्वत्थामा शिष्यभावसे विशेष रहस्यसहित सारा धनुर्वेद अपने पिता द्रोणाचार्यसे प्राप्त करके युद्धस्थलमें उनके बाद वही उस योग्यताका रह गया है ॥

रामस्य तु समः शस्त्रे पुरंदरसमो युधि।
कार्तवीर्यसमो वीर्ये बृहस्पतिसमो मतौ ॥ ८ ॥
महीधरसमः स्थैर्ये तेजसाग्निसमो युवा।
समुद्र इव गाम्भीर्ये क्रोधे चाशीविषोपमः ॥ ९ ॥
स रथी प्रथमो लोके दृढधन्वा जितक्लमः।
शीघ्रोऽनिल इवाक्रन्दे चरन् क्रुद्ध इवान्तकः ॥ १० ॥

शस्त्रविद्यामें परशुरामके समान, युद्धकलामें इन्द्रके समान, बल-पराक्रममें कृतवीर्यपुत्र अर्जुनके समान, बुद्धिमें बृहस्पतिके सदृश, स्थिरता एवं धैर्यमें पर्वतके तुल्य, तेजमें अग्निके समान, गम्भीरतामें समुद्रके सदृश और क्रोधमें विषधर सर्पके समान नवयुवक अश्वत्थामा संसारका प्रधान रथी और सुदृढ़ धनुर्धर है। उसने श्रम और थकावटको जीत लिया है। वह संग्राममें वायुके समान वेगपूर्वक विचरनेवाला तथा क्रोधमें भरे हुए यमराजके समान भयंकर है ॥ ८–१० ॥

अस्यता येन संग्रामे धरण्यभिनिपीडिता।
यो न व्यथति संग्रामे वीरः सत्यपराक्रमः ॥ ११ ॥
वेदस्नातो व्रतस्नातो धनुर्वेदे च पारगः।
महोदधिरिवाक्षोभ्यो रामो दाशरथिर्यथा ॥ १२ ॥

अश्वत्थामा जब रणभूमिमें बाणोंकी वर्षा करने लगता है, तब धरती भी अत्यन्त पीड़ित हो उठती है। वह सत्य-पराक्रमी वीर संग्राममें कभी व्यथित नहीं होता है। वह वेदाध्ययन समाप्त करके स्नातक बन चुका है। ब्रह्मचर्यव्रतकी अवधि पूरी करके उसका भी स्नातक हो चुका है और धनुर्वेदका भी पारंगत विद्वान् है। महासागर तथा दशरथ-पुत्र श्रीरामके समान उसे कोई क्षुब्ध नहीं कर सकता ॥ ११-१२ ॥

तमधर्मेण धर्मिष्ठं धृष्टद्युम्नेन संयुगे।
श्रुत्वा निहतमाचार्यमश्वत्थामा किमब्रवीत् ॥ १३ ॥

उसी अश्वत्थामाने अपने धर्मिष्ठ पिता आचार्य द्रोणको युद्धमें धृष्टद्युम्नके हाथसे अधर्मपूर्वक मारा गया सुनकर क्या कहा ? ॥ १३ ॥

धृष्टद्युम्नस्य यो मृत्युः सृष्टस्तेन महात्मना।
यथा द्रोणस्य पाञ्चाल्यो यज्ञसेनसुतोऽभवत् ॥ १४ ॥

(हमने सुन रखा है कि) जैसे द्रोणाचार्यका वध करनेके लिये पाञ्चालदेशीय द्रुपदकुमारका जन्म हुआ था, उसी प्रकार महात्मा द्रोणने धृष्टद्युम्नकी मृत्युके लिये अश्वत्थामाको जन्म दिया था ॥ १४ ॥

तं नृशंसेन पापेन क्रूरेणादीर्घदर्शिना।
श्रुत्वा निहतमाचार्यमश्वत्थामा किमब्रवीत् ॥ १५ ॥

उस नृशंस, पापी, क्रूर और अदूरदर्शी धृष्टद्युम्नके हाथसे आचार्यका वध हुआ सुनकर अश्वत्थामाने क्या कहा ? ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि धृतराष्ट्रप्रश्ने चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत नारायणास्त्रमोक्षपर्वमें धृतराष्ट्र-प्रश्नविषयक एक सौ चौरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९४ ॥

पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अश्वत्थामाके क्रोधपूर्ण उद्गार और उसके द्वारा नारायणास्त्रका प्राकट्य

संजय उवाच

छद्मना निहतं श्रुत्वा पितरं पापकर्मणा।
बाष्पेणापूर्यत द्रौणी रोषेण च नरर्षभ ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—नरश्रेष्ठ ! पापी धृष्टद्युम्नने मेरे पिताको छलसे मार डाला है, यह सुनकर अश्वत्थामाके नेत्रोंमें आँसू भर आये। फिर वह रोषसे जल उठा ॥ १ ॥

तस्य क्रुद्धस्य राजेन्द्र वपुर्दीप्तमदृश्यत।
अन्तकस्येव भूतानि जिहीर्षोः कालपर्यये ॥ २ ॥

राजेन्द्र ! जैसे प्रलयकालमें समस्त प्राणियोंके संहारकी इच्छावाले यमराजका तेजोमय शरीर प्रज्वलित हो उठता है, उसी प्रकार वहाँ देखा गया कि क्रोधसे भरे हुए अश्वत्थामाका शरीर तमतमा उठा है ॥ २ ॥

अश्रुपूर्णे ततो नेत्रे व्यपमृज्य पुनः पुनः।
उवाच कोपान्निःश्वस्य दुर्योधनमिदं वचः ॥ ३ ॥

अपने आँसूभरे नेत्रोंको बारंबार पोंछकर क्रोधसे लंबी साँस खींचते हुए अश्वत्थामाने दुर्योधनसे इस प्रकार कहा— ॥ ३ ॥

पिता मम यथा क्षुद्रैर्न्यस्तशस्त्रो निपातितः।
धर्मध्वजवता पापं कृतं तद् विदितं मम ॥ ४ ॥

'राजन् ! मेरे पिताने जिस प्रकार हथियार डाल दिया, जिस तरह उन नीचोंने उन्हें मार गिराया तथा धर्मका ढोंग रचनेवाले युधिष्ठिरने जो पाप किया है, वह सब मुझे मालूम हो गया ॥ ४ ॥



अनार्यं सुनृशंसं च धर्मपुत्रस्य मे श्रुतम्।
युद्धेष्वपि प्रवृत्तानां ध्रुवं जयपराजयौ॥ ५ ॥
द्वयमेतद् भवेद् राजन् वधस्तत्र प्रशस्यते।

'धर्मपुत्र युधिष्ठिरका क्रूरतापूर्ण नीच कर्म मैंने सुन लिया। राजन् ! जो लोग युद्धमें प्रवृत्त होते हैं, उन्हें विजय और पराजय अवश्य प्राप्त होती है। परंतु युद्धमें होनेवाले वधकी अधिक प्रशंसा की गयी है ॥ ५½ ॥

न्यायवृत्तो वधो यस्तु संग्रामे युध्यतो भवेत्॥ ६ ॥
न स दुःखाय भवति तथा दृष्टो हि स द्विजैः।

'संग्राममें जूझते हुए वीरको यदि न्यायानुकूल वध प्राप्त हो जाय, तो वह दुःखका कारण नहीं होता; क्योंकि द्विजोंने युद्धके इस परिणामको देखा है ॥ ६½ ॥

गतः स वीरलोकाय पिता मम न संशयः ॥ ७ ॥
न शोच्यः पुरुषव्याघ्र यस्तदा निधनं गतः।

'पुरुषसिंह ! इसमें संशय नहीं कि मेरे पिता वीरगतिको प्राप्त हुए हैं। उस समय वे मारे गये, इस बातको लेकर उनके लिये शोक करना उचित नहीं है ॥ ७½ ॥

यत् तु धर्मप्रवृत्तः सन् केशग्रहणमाप्तवान् ॥ ८ ॥
पश्यतां सर्वसैन्यानां तन्मे मर्माणि कृन्तति।

'परंतु धर्ममें तत्पर रहनेपर भी जो समस्त सैनिकोंके देखते-देखते उनका केश पकड़ा गया, वह अपमान ही मेरे मर्मस्थानोंको विदीर्ण किये देता है ॥ ८½ ॥

मयि जीवति यत् तातः केशग्रहमवाप्तवान् ॥ ९ ॥
कथमन्ये करिष्यन्ति पुत्रेभ्यः पुत्रिणः स्पृहाम्।

'मेरे जीते-जी यदि पिताको अपने केश पकड़े जानेका अपमानपूर्ण कष्ट उठाना पड़ा, तब दूसरे पुत्रवान् पुरुष किस लिये पुत्रोंकी अभिलाषा करेंगे ? ॥ ९½ ॥

कामात् क्रोधादविज्ञानाद्धर्षाद् बाल्येन वा पुनः॥१०॥
विधर्मकाणि कुर्वन्ति तथा परिभवन्ति च।
तदिदं पार्षतेनेह महदाधर्मिकं कृतम् ॥ ११ ॥
अवज्ञाय च मां नूनं नृशंसेन दुरात्मना।
तस्यानुबन्धं द्रष्टासौ धृष्टद्युम्नः सुदारुणम् ॥ १२ ॥

'लोग काम, क्रोध, अज्ञान, हर्ष अथवा बालोचित चपलताके कारण धर्मके विरुद्ध कार्य करते तथा श्रेष्ठ पुरुषोंका अपमान कर बैठते हैं। क्रूर एवं दुरात्मा द्रुपदपुत्रने निश्चय ही मेरी अवहेलना करके यह महान् पाप कर्म कर डाला है। अतः उस धृष्टद्युम्नको उस पापका अत्यन्त भयंकर परिणाम भोगना पड़ेगा ॥ १०–१२ ॥

अकार्यं परमं कृत्वा मिथ्यावादी च पाण्डवः।
यो ह्यसौ छद्मनाऽऽचार्यं शस्त्रं संन्यासयत् तदा ॥१३॥
तस्याद्य धर्मराजस्य भूमिः पास्यति शोणितम्।

'साथ ही मिथ्यावादी पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको भी यह अत्यन्त नीच कर्म करनेके कारण इसका दारुण परिणाम देखना पड़ेगा। जिसने छल करके आचार्यसे उस समय शस्त्र रखवा दिया था, उस धर्मराज युधिष्ठिरका रक्त आज यह पृथ्वी पीयेगी ॥ १३½ ॥

शपे सत्येन कौरव्य इष्टापूर्तेन चैव ह ॥ १४ ॥
अहत्वा सर्वपाञ्चालान् जीवेयं न कथंचन।
सर्वोपायैर्यतिष्यामि पञ्चालानामहं वधे ॥ १५ ॥

'कुरुनन्दन ! मैं अपने सत्य, इष्ट (यज्ञ-यागादि) और आपूर्त (वापी-तड़ागनिर्माण आदि) कर्मोंकी शपथ खाकर कहता हूँ कि समस्त पाञ्चालोंका वध किये बिना किसी तरह जीवित नहीं रह सकूँगा। सभी उपायोंसे पाञ्चालोंको मार डालनेका प्रयत्न करूँगा ॥ १४-१५ ॥

धृष्टद्युम्नं च समरे हन्ताहं पापकारिणम्।
कर्मणा येन तेनेह मृदुना दारुणेन च ॥ १६ ॥

'समरभूमिमें पापाचारी धृष्टद्युम्नको मैं कोमल और कठोर जिस किसी भी कर्मके द्वारा अवश्य मार डालूँगा ॥

पञ्चालानां वधं कृत्वा शान्तिं लब्धास्मि कौरव।
यदर्थं पुरुषव्याघ्र पुत्रानिच्छन्ति मानवाः ॥ १७ ॥
प्रेत्य चेह च सम्प्राप्तास्त्रायन्ते महतो भयात्।

'कुरुनन्दन ! पाञ्चालोंका वध करके ही मैं शान्ति पा सकूँगा । पुरुषसिंह ! मनुष्य इसीलिये पुत्रोंकी इच्छा करते हैं कि वे प्राप्त होनेपर इह लोक और परलोकमें भी महान् भयसे रक्षा करेंगे ॥ १७½ ॥

पित्रा तु मम सावस्था प्राप्ता निर्बन्धुना यथा ॥ १८ ॥
मयि शैलप्रतीकाशे पुत्रे शिष्ये च जीवति ।

'मेरे पिताने मुझ पर्वत-सरीखे पुत्र और शिष्यके जीते-जी बन्धुहीनकी भाँति वह दुरवस्था प्राप्त की है ॥ १८½ ॥

धिङ्ममास्त्राणि दिव्यानि धिग् बाहू धिक् पराक्रमम् १९
यं स्म द्रोणः सुतं प्राप्य केशग्रहमवाप्तवान् ।

'मेरे दिव्यास्त्रोंको धिक्कार है ! मेरे इन दोनों भुजाओंको धिक्कार है ! तथा मेरे पराक्रमको धिक्कार है !! जब कि मेरे-जैसे पुत्रको पाकर आचार्य द्रोणने केशग्रहणका अपमान उठाया ॥ १९½ ॥

स तथाहं करिष्यामि यथा भरतसत्तम ॥ २० ॥
परलोकगतस्यापि भविष्याम्यनृणः पितुः ।

'भरतश्रेष्ठ ! अब मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे परलोकमें गये हुए पिताके ऋणसे मुक्त हो सकूँ ॥ २०½ ॥

आर्येण हि न वक्तव्या कदाचित् स्तुतिरात्मनः ॥ २१ ॥
पितुर्वधममृष्यंस्तु वक्ष्याम्यद्येह पौरुषम् ।

'यद्यपि श्रेष्ठ पुरुषको कभी अपनी प्रशंसा नहीं करनी चाहिये, तथापि अपने पिताके वधको न सह सकनेके कारण आज मैं यहाँ अपने पुरुषार्थका वर्णन कर रहा हूँ ॥ २१½ ॥

अद्य पश्यन्तु मे वीर्यं पाण्डवाः सजनार्दनाः ॥ २२ ॥
मृद्नतः सर्वसैन्यानि युगान्तमिव कुर्वतः ।

'आज मैं सारी सेनाओंको रौंदता हुआ प्रलयकालका दृश्य उपस्थित करूँगा । अतः आज श्रीकृष्णसहित समस्त पाण्डव मेरा पराक्रम देखें ॥ २२½ ॥

न हि देवा न गन्धर्वा नासुरा न च राक्षसाः ॥ २३ ॥
अद्य शक्ता रणे जेतुं रथस्थं मां नरर्षभाः ।

'आज रणभूमिमें रथपर बैठे हुए मुझ अश्वत्थामाको न तो देवता, न गन्धर्व, न असुर, न राक्षस और न कोई श्रेष्ठ मानव वीर ही परास्त कर सकते हैं ॥ २३½ ॥

मदन्यो नास्ति लोकेऽस्मिन्नर्जुनाद् वास्त्रवित् कश्चित् २४
अहं हि ज्वलतां मध्ये मयूखानामिवांशुमान् ।
प्रयोक्ता देवसृष्टानामस्त्राणां पृतनागतः ॥ २५ ॥

'इस संसारमें मुझसे या अर्जुनसे बढ़कर दूसरा कोई अस्त्रवेत्ता कहीं नहीं है । आज मैं शत्रुकी सेनामें घुसकर प्रकाशमान अंशुधारियोंके बीच अंशुमाली सूर्यके समान तपता हुआ देवनिर्मित अस्त्रोंका प्रयोग करूँगा ॥ २४-२५ ॥

भुजमिष्वसनादद्य मत्प्रयुक्ता महाहवे ।
दर्शयन्तः शरा वीर्यं प्रमथिष्यन्ति पाण्डवान् ॥ २६ ॥

'आज महासमरमें धनुषसे मेरे द्वारा छोड़े हुए बाण मेरा महान् पराक्रम दिखाते हुए पाण्डव योद्धाओंको मथ डालेंगे ॥ २६ ॥

अद्य सर्वा दिशो राजन् धाराभिरिव संकुलाः ।
आवृताः पत्रिभिस्तीक्ष्णैर्द्रष्टारो मामकैरिह ॥ २७ ॥

'राजन् ! जैसे बरसती हुई जलधाराओंसे सम्पूर्ण दिशाएँ ढक जाती हैं, उसी प्रकार आज सब लोग मेरे तीखे बाणोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित हुई देखेंगे ॥ २७ ॥

विकिरञ्छरजालानि सर्वतो भैरवस्वनान् ।
शत्रून् निपातयिष्यामि महावात इव द्रुमान् ॥ २८ ॥

'जैसे आँधी वृक्षोंको गिरा देती है, उसी प्रकार मैं सब ओर बाणसमूहोंकी वर्षा करके भयंकर गर्जना करनेवाले शत्रुओंको मार गिराऊँगा ॥ २८ ॥

न हि जानाति बीभत्सुस्तदस्त्रं न जनार्दनः ।
न भीमसेनो न यमौ न च राजा युधिष्ठिरः ॥ २९ ॥
न पार्षतो दुरात्मासौ न शिखण्डी न सात्यकिः ।
यदिदं मयि कौरव्य सकल्पं सनिवर्तनम् ॥ ३० ॥

'आज मैं जिस अस्त्रका प्रयोग करूँगा, उसे न अर्जुन जानते हैं न श्रीकृष्ण, भीमसेन, नकुल-सहदेव और राजा युधिष्ठिरको भी उसका पता नहीं है । वह दुरात्मा धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और सात्यकि भी उसके ज्ञानसे शून्य हैं । कुरुनन्दन ! वह तो प्रयोग और उपसंहारसहित केवल मेरे ही पास है ॥ २९-३० ॥

नारायणाय मे पित्रा प्रणम्य विधिपूर्वकम् ।
उपहारः पुरा दत्तो ब्रह्मरूप उपस्थितः ॥ ३१ ॥
तं स्वयं प्रतिगृह्याथ भगवान् स वरं ददौ ।
वव्रे पिता मे परममस्त्रं नारायणं ततः ॥ ३२ ॥

'पूर्वकालकी बात है, मेरे पिताने भगवान् नारायणको प्रणाम करके उन्हें विधिपूर्वक वेदस्वरूप उपहार समर्पित किया (वैदिक मन्त्रोंद्वारा उनकी स्तुति की) । भगवान्ने स्वयं उपस्थित होकर वह उपहार ग्रहण किया और पिताको वर दिया । मेरे पिताने वरके रूपमें उनसे सर्वोत्तम नारायणास्त्रकी याचना की ॥ ३१-३२ ॥

अथैनमब्रवीद् राजन् भगवान् देवसत्तमः ।
भविता त्वत्समो नान्यः कश्चिद् युधि नरः क्वचित् ॥ ३३ ॥
न त्विदं सहसा ब्रह्मन् प्रयोक्तव्यं कथंचन ।
न ह्येतदस्त्रमन्यत्र वधाच्छत्रोर्निवर्तते ॥ ३४ ॥

'राजन् ! तब देवश्रेष्ठ भगवान् नारायणने वह अस्त्र देकर उनसे इस प्रकार कहा—'ब्रह्मन् ! अब युद्धमें तुम्हारे समानन' करनेवाला दूसरा कोई मनुष्य कहीं नहीं रह

जायगा, परंतु तुम्हें सहसा इसका प्रयोग किसी तरह नहीं करना चाहिये; क्योंकि यह अस्त्र शत्रुका वध किये बिना पीछे नहीं लौटता है ॥ ३३-३४ ॥

न चैतच्छक्यते ज्ञातुं कं न वध्येदिति प्रभो।
अवध्यमपि हन्याद्धि तस्मान्नैतत् प्रयोजयेत् ॥ ३५ ॥

'प्रभो! यह नहीं जाना जा सकता कि यह अस्त्र किसको नहीं मारेगा। यह अवध्यका भी वध कर सकता है; अतः सहसा इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ ३५ ॥

अथ संख्ये रथस्यैव शस्त्राणां च विसर्जनम्।
प्रयाचनं च शत्रूणां गमनं शरणस्य च ॥ ३६ ॥
एते प्रशमने योगा महास्त्रस्य परंतप।
सर्वथा पीडितो हि स्यादवध्यान् पीडयन् रणे॥ ३७ ॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले द्रोण! युद्धभूमिमें रथ छोड़कर उतर जाना, अपने अस्त्र-शस्त्र रख देना, अभयकी याचना करना और शत्रुकी शरण लेना—ये इस महान् अस्त्रको शान्त करनेके उपाय हैं। जो रणभूमिमें इस अस्त्रके द्वारा अवध्य मनुष्योंको पीड़ा देता है, वह स्वयं भी सब प्रकारसे पीड़ित हो सकता है' ॥ ३६-३७ ॥

तज्जग्राह पिता मह्यमब्रवीच्चैव स प्रभुः।
त्वं वधिष्यसि सर्वाणि शस्त्रवर्षाण्यनेकशः ॥ ३८ ॥
अनेनास्त्रेण संग्रामे तेजसा च ज्वलिष्यसि।
एवमुक्त्वा स भगवान् दिवमाचक्रमे प्रभुः ॥ ३९ ॥

'तदनन्तर मेरे पिताने वह अस्त्र ग्रहण किया और उन पूज्य पिताने मुझे उसका उपदेश किया। (पिताको अस्त्र देते समय भगवान्‌ने यह भी कहा था—) 'ब्रह्मन्! तुम संग्राममें इस अस्त्रके द्वारा सम्पूर्ण शस्त्र-वर्षाओंको बार-बार नष्ट करोगे और स्वयं भी तेजसे प्रकाशित होते रहोगे।' ऐसा कहकर भगवान् नारायण अपने दिव्य धामको चले गये ॥ ३८-३९ ॥

एतन्नारायणादस्त्रं तत् प्राप्तं पितृबन्धुना।
तेनाहं पाण्डवांश्चैव पञ्चालान् मत्स्यकेकयान् ॥ ४० ॥
विद्रावयिष्यामि रणे शचीपतिरिवासुरान्।

'इस प्रकार पिताने भगवान् नारायणसे यह अस्त्र प्राप्त किया और उनसे मुझे इसकी प्राप्ति हुई है। उसी अस्त्रसे मैं रणभूमिमें पाण्डव, पाञ्चाल, मत्स्य और केकय योद्धाओंको उसी प्रकार खदेड़ूँगा, जैसा शचीपति इन्द्रने असुरोंको मार भगाया था ॥ ४०½ ॥

यथा यथाहमिच्छेयं तथा भूत्वा शरा मम ॥ ४१ ॥
निपतेयुः सपत्नेषु विक्रमत्स्वपि भारत।

'भारत! मैं जैसा-जैसा चाहूँगा, वैसा ही रूप धारण करके मेरे बाण शत्रुओंके पराक्रम करनेपर भी उनपर पड़ेंगे ॥

यथेष्टमश्मवर्षेण प्रवर्षिष्ये रणे स्थितः ॥ ४२ ॥
अयोमुखैश्च विहगैर्द्रावयिष्ये महारथान्।
परश्वधांश्च निशितानुत्स्रक्ष्येऽहमसंशयम् ॥ ४३ ॥

'मैं युद्धमें स्थित होकर अपनी इच्छाके अनुसार पत्थरोंकी वर्षा करूँगा, लोहेकी चोंचवाले पक्षियोंद्वारा बड़े-बड़े महारथियोंको भगा दूँगा तथा शत्रुओंपर तेज धारवाले फरसे भी बरसाऊँगा; इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥४२-४३॥

सोऽहं नारायणास्त्रेण महता शत्रुतापनः।
शत्रून् विध्वंसयिष्यामि कदर्थीकृत्य पाण्डवान्॥ ४४ ॥

'इस प्रकार शत्रुओंको संताप देनेवाला मैं महान् नारायणास्त्रका प्रयोग करके पाण्डवोंको पीड़ा देता हुआ अपने समस्त शत्रुओंका विध्वंस कर डालूँगा ॥ ४४ ॥

मित्रब्रह्मगुरुद्रोही जाल्मकः सुविगर्हितः।
पाञ्चालापसदश्चाद्य न मे जीवन् विमोक्ष्यते ॥ ४५ ॥

'मित्र, ब्राह्मण तथा गुरुसे द्रोह करनेवाला अत्यन्त निन्दित वह पाञ्चालकुलकलङ्क पामर धृष्टद्युम्न भी आज मेरे हाथसे जीवित नहीं छूट सकेगा' ॥ ४५ ॥

तच्छ्रुत्वा द्रोणपुत्रस्य पर्यवर्तत वाहिनी।
ततः सर्वे महाशङ्खान् दध्मुः पुरुषसत्तमाः ॥ ४६ ॥

द्रोणपुत्र अश्वत्थामाकी वह बात सुनकर कौरवोंकी सेना लौट आयी। फिर तो सभी पुरुषश्रेष्ठ वीर बड़े-बड़े शङ्ख बजाने लगे ॥ ४६ ॥

भेरीश्चाभ्यहनन् हृष्टा डिण्डिमांश्च सहस्रशः।
तथा ननाद वसुधा खुरनेमिप्रपीडिता ॥ ४७ ॥
स शब्दस्तुमुलः खं द्यां पृथिवीं च व्यनादयत्।

सबने प्रसन्न होकर रणभेरियाँ बजायीं, सहस्रों डंके पीटे, घोड़ोंकी टापों और रथोंके पहियोंसे पीड़ित हुई रणभूमि मानो आर्तनाद करने लगी। वह तुमुल ध्वनि आकाश, अन्तरिक्ष और भूतलको गुँजाने लगी ॥ ४७½ ॥

तं शब्दं पाण्डवाः श्रुत्वा पर्जन्यनिनदोपमम् ॥ ४८ ॥
समेत्य रथिनां श्रेष्ठाः सहिताश्चाप्यमन्त्रयन्।

मेघकी गम्भीर गर्जनाके समान उस तुमुलनादको सुनकर श्रेष्ठ पाण्डव महारथी एकत्र होकर गुप्त मन्त्रणा करने लगे ॥ ४८½ ॥

तथोक्त्वा द्रोणपुत्रस्तु वार्युपस्पृश्य भारत ॥ ४९ ॥
प्रादुश्चकार तद् दिव्यमस्त्रं नारायणं तदा ॥ ५० ॥

भारत! द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने पूर्वोक्त बात कहकर जलसे आचमन करके उस समय उस दिव्य नारायणास्त्रको प्रकट किया ॥ ४९-५० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि अश्वत्थामक्रोधे पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत नारायणास्त्रमोक्षपर्वमें अश्वत्थामाका क्रोधविषयक एक सौ पंचानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१९५॥

षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः

कौरवसेनाका सिंहनाद सुनकर युधिष्ठिरका अर्जुनसे कारण पूछना और अर्जुनके द्वारा अश्वत्थामाके क्रोध एवं गुरुहत्याके भीषण परिणामका वर्णन

संजय उवाच

प्रादुर्भूते ततस्तस्मिन्नस्त्रे नारायणे प्रभो।
प्रावात् सपृषतो वायुरनभ्रे स्तनयित्नुमान्॥ १ ॥

संजय कहते हैं—प्रभो! तदनन्तर उस नारायणास्त्रके प्रकट होनेपर जलकी बूँदोंके साथ प्रचण्ड वायु चलने लगी। बिना बादलोंके ही आकाशमें मेघोंकी गर्जना होने लगी॥ १॥

चचाल पृथिवी चापि चुक्षुभे च महोदधिः।
प्रतिस्रोतः प्रवृत्ताश्च गन्तुं तत्र समुद्रगाः॥ २ ॥

पृथ्वी काँप उठी, समुद्रमें ज्वार आ गया और समुद्रमें मिलनेवाली बड़ी-बड़ी नदियाँ अपने प्रवाहकी प्रतिकूल दिशामें बहने लगीं॥ २॥

शिखराणि व्यशीर्यन्त गिरीणां तत्र भारत।
अपसव्यं मृगाश्चैव पाण्डुसेनां प्रचक्रिरे॥ ३ ॥

भारत! पर्वतोंके शिखर टूट-टूटकर गिरने लगे। हरिणोंके झुंड पाण्डवसेनाको अपने दायें करके चले गये॥ ३॥

तमसा चावकीर्यन्त सूर्यश्च कलुषोऽभवत्।
सम्पतन्ति च भूतानि क्रव्यादानि प्रहृष्टवत्॥ ४ ॥

सम्पूर्ण दिशाओंमें अन्धकार छा गया, सूर्य मलिन हो गये और मांसभोजी जीव-जन्तु प्रसन्न-से होकर दौड़ लगाने लगे॥ ४॥

देवदानवगन्धर्वास्त्रस्तास्त्वासन् विशाम्पते।
कथंकथाभवत् तीव्रा दृष्ट्वा तद् व्याकुलं महत्॥ ५ ॥

प्रजानाथ! वह महान् उत्पात देखकर देवता, दानव और गन्धर्व भी त्रस्त हो उठे तथा सब लोगोंमें यह तीव्र गतिसे चर्चा होने लगी कि 'अब क्या करना चाहिये'॥ ५॥

व्यथिताः सर्वराजानस्त्रस्ताश्चासन् विशाम्पते।
तद् दृष्ट्वा घोररूपं वै द्रौणेरस्त्रं भयावहम्॥ ६ ॥

महाराज! अश्वत्थामाके उस घोर एवं भयंकर अस्त्रको देखकर समस्त भूपाल व्यथित एवं भयभीत हो गये॥ ६॥

धृतराष्ट्र उवाच

निवर्तितेषु सैन्येषु द्रोणपुत्रेण संयुगे।
भृशं शोकाभितप्तेन पितुर्वधममृष्यता॥ ७ ॥
कुरूनापततो दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नस्य रक्षणे।
को मन्त्रः पाण्डवेष्वासीत् तन्ममाचक्ष्व संजय॥ ८ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! अपने पिताके वधको सहन न कर सकनेवाले अत्यन्त शोकसंतप्त द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके साथ जब सारी सेनाएँ युद्धस्थलमें लौट आयीं, तब कौरवोंको आते देख पाण्डवदलमें धृष्टद्युम्नकी रक्षाके लिये क्या विचार हुआ, वह मुझे बताओ॥ ७-८॥

संजय उवाच

प्रागेव विद्रुतान् दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् युधिष्ठिरः।
पुनश्च तुमुलं शब्दं श्रुत्वार्जुनमथाब्रवीत्॥ ९ ॥

संजयने कहा—राजन्! राजा युधिष्ठिरने पहले तो आपके सैनिकोंको भागते देखा था। फिर उन्होंने वह भयंकर शब्द सुनकर अर्जुनसे कहा॥ ९॥

युधिष्ठिर उवाच

आचार्ये निहते द्रोणे धृष्टद्युम्नेन संयुगे।
निहते वज्रहस्तेन यथा वृत्रे महासुरे॥ १०॥
नाशंसन्तो जयं युद्धे दीनात्मानो धनंजय।
आत्मत्राणे मतिं कृत्वा प्राद्रवन् कुरवो रणात्॥ ११॥

युधिष्ठिर बोले—धनंजय! पूर्वकालमें जैसे वज्रधारी इन्द्रने महान् असुर वृत्रासुरको मार डाला था, उसी प्रकार युद्धस्थलमें धृष्टद्युम्नद्वारा आचार्य द्रोणके मारे जानेपर युद्धमें अपनी विजयसे निराश हो दीनचित्त कौरव आत्मरक्षाका विचार करके रणभूमिसे भागे जा रहे थे॥ १०-११॥

केचिद् भ्रान्तै रथैस्तूर्णं निहतैः पार्ष्णियन्तृभिः।
विपताकध्वजच्छत्रैः पार्थिवाः शीर्णकूबरैः॥ १२॥
भग्ननीडैराकुलाश्वैः प्रारुग्णाश्च विशेषतः।
भग्नाक्षयुगचक्रैश्च व्याकृष्यन्त समन्ततः॥ १३॥

जिनके पार्श्वरक्षक और सारथि मारे गये थे, ध्वजा, पताका और छत्र नष्ट हो गये थे, कूबर टूटकर बिखर गये थे, बैठनेके स्थान चौपट हो चुके थे तथा धुरे, जूए और पहिये भी टूट-फूट गये थे, वैसे रथ भी व्याकुल घोड़ोंसे आकृष्ट हो वहाँ चक्कर लगा रहे थे और उनके द्वारा कुछ विशेष घायल हुए नरेश चारों ओर खिंचे चले जा रहे थे॥ १२-१३॥

भीताः पादैर्हयान् केचित् त्वरयन्तः स्वयं रथान्।
रथान् विशीर्णानुत्सृज्य पद्भिः केचिच्च विद्रुताः॥ १४॥

कुछ लोग भयभीत हो घोड़ोंको पैरोंसे मार-मारकर स्वयं ही जल्दी-जल्दी रथ हाँक रहे थे और कुछ लोग टूटे हुए रथोंको छोड़कर पैदल ही भागने लगे थे॥ १४॥

हयपृष्ठगताश्चान्ये कृष्यन्तेऽर्धच्युतासनाः।
गजस्कन्धेषु संस्यूता नाराचैश्चलितासनाः॥ १५॥
शरार्तैर्विद्रुतैर्नागैर्हृताः केचिद् दिशो दश।

कितने ही योद्धा घोड़ोंकी पीठपर बैठे, परंतु उनका आधा आसन खिसक गया और उसी अवस्थामें घोड़ोंके साथ खिंचे चले गये। कुछ लोग नाराचोंकी मार खाकर अपने आसनसे भ्रष्ट हो हाथियोंके कंधोंसे चिपक गये थे और उसी अवस्थामें बाणोंसे पीड़ित हो भागते हुए हाथी उन्हें दसों दिशाओंमें लिये जाते थे ॥ १५½ ॥

विशस्त्रकवचाश्चान्ये वाहनेभ्यः क्षितिं गताः ॥ १६ ॥
संछिन्ना नेमिभिश्चैव मृदिताश्च हयद्विपैः ।

कुछ लोगोंके अस्त्र-शस्त्र और कवच कट गये और वे अपने वाहनोंसे पृथ्वीपर गिर पड़े। उस दशामें रथके पहियोंकी नेमिसे दबकर उनके शरीरके टुकड़े-टुकड़े हो गये और कितने ही घोड़ों तथा हाथियोंसे कुचल गये ॥ १६½ ॥

क्रोशन्तस्तात पुत्रेति पलायन्ते परे भयात् ॥ १७ ॥
नाभिजानन्ति चान्योन्यं कश्मलाभिहतौजसः ।

दूसरे बहुत-से योद्धा 'हा तात ! हा पुत्र !' की रट लगाते हुए भयभीत होकर भाग रहे थे। मोहसे बल और उत्साह नष्ट हो जानेके कारण वे ऐसे अचेत हो रहे थे कि एक-दूसरेको पहचान भी नहीं पाते थे ॥ १७½ ॥

पुत्रान् पितॄन् सखीन् भ्रातॄन् समारोप्य दृढक्षतान्॥१८॥
जलेन क्लेदयन्त्यन्ये विमुच्य कवचान्यपि ।

कितने ही सैनिक अधिक चोट खाये हुए अपने पुत्र, पिता, मित्र और भाइयोंको रथपर चढ़ाकर तथा उनके कवच खोलकर उनके घावोंको जलसे भिगो रहे थे ॥१८½॥

अवस्थां तादृशीं प्राप्य हते द्रोणे द्रुतं बलम् ॥ १९ ॥
पुनरावर्तितं केन यदि जानासि शंस मे ।

आचार्य द्रोणके मारे जानेपर वैसी दुरवस्थामें पड़कर जो सेना भाग गयी थी, उसे फिर किसने लौटाया है ? यदि तुम जानते हो तो मुझे बताओ ॥ १९½ ॥

हयानां ह्रेषतां शब्दः कुञ्जराणां च बृंहताम् ॥ २० ॥
रथनेमिस्वनैश्चात्र विमिश्रः श्रूयते महान् ।

रथके पहियोंकी घर्घराहटसे मिला हुआ हिनहिनाते हुए घोड़ों और गर्जते हुए गजराजोंका महान् शब्द सुनायी पड़ता है ॥ २०½ ॥

एते शब्दा भृशं तीव्राः प्रवृत्ताः कुरुसागरे ॥ २१ ॥
मुहुर्मुहुरुदीर्यन्ते कम्पयन्त्यपि मामकान् ।

कौरवसेनारूपी समुद्रमें यह कोलाहल अत्यन्त तीव्र वेगसे होने लगा है और बारंबार बढ़ता जा रहा है, जो मेरे सैनिकोंको कम्पित किये देता है ॥ २१½ ॥

य एष तुमुलः शब्दः श्रूयते लोमहर्षणः ॥ २२ ॥
सेन्द्रानप्येष लोकांस्त्रीन् ग्रसेदिति मतिर्मम ।

यह जो महाभयंकर रोमाञ्चकारी शब्द सुनायी देता है, यह इन्द्रसहित तीनों लोकोंको ग्रस लेगा, ऐसा मुझे जान पड़ता है ॥ २२½ ॥

मन्ये वज्रधरस्यैष निनादो भैरवस्वनः ॥ २३ ॥
द्रोणे हते कौरवार्थं व्यक्तमभ्येति वासवः ।

मैं समझता हूँ, यह भयंकर शब्द वज्रधारी इन्द्रकी गर्जना है। द्रोणाचार्यके मारे जानेपर कौरवोंकी सहायताके लिये साक्षात् इन्द्र आ रहे हैं, यह स्पष्ट जान पड़ता है ॥

प्रहृष्टरोमकूपाश्च संविग्ना रथपुङ्गवाः ॥ २४ ॥
धनंजय गुरुं श्रुत्वा तत्र नादं सुभीषणम् ।

धनंजय ! यह अत्यन्त भीषण और भारी सिंहनाद सुनकर हमारे श्रेष्ठ रथी भी उद्विग्न हो उठे हैं और इनके रोंगटे खड़े हो गये हैं ॥ २४½ ॥

क एष कौरवान् दीर्णानवस्थाप्य महारथः ॥ २५ ॥
निवर्तयति युद्धार्थं मृधे देवेश्वरो यथा ।

देवराज इन्द्रके समान यह कौन महारथी भागे हुए कौरवोंको खड़ा करके उन्हें पुनः युद्धके लिये रणभूमिमें लौटा रहा है ? ॥ २५½ ॥

अर्जुन उवाच

उद्यम्यात्मानमुग्राय कर्मणे वीर्यमास्थिताः ॥ २६ ॥
धमन्ति कौरवाः शङ्खान् यस्य वीर्यं समाश्रिताः ।
यत्र ते संशयो राजन् न्यस्तशस्त्रे गुरौ हते ॥ २७ ॥
धार्तराष्ट्रानवस्थाप्य क एष नदतीति हि ।
ह्रीमन्तं तं महाबाहुं मत्तद्विरदगामिनम् ॥ २८ ॥
(इन्द्रविष्णुसमं वीर्ये कोपेऽन्तकमिव स्थितम् ।
बृहस्पतिसमं बुद्ध्या नीतिमन्तं महारथम् ॥)
आख्यास्याम्युग्रकर्माणं कुरूणामभयंकरम् ।

अर्जुनने कहा—राजन् ! जिसके विषयमें आपको यह संदेह होता है कि शस्त्रोंका परित्याग कर देनेवाले गुरुदेव द्रोणाचार्यके मारे जानेपर यह कौन वीर कौरव-सैनिकोंको दृढ़तापूर्वक स्थापित करके सिंहनाद कर रहा है तथा जिसके बल और पराक्रमका आश्रय लेकर पराक्रमी कौरव अपनेको भयंकर कर्म करनेके लिये उद्यत करके शङ्खध्वनि कर रहे हैं; जो महाबाहु मतवाले हाथीके समान मस्तानी चालसे चलनेवाला और लज्जाशील है, जो बलमें इन्द्र और विष्णुके समान, क्रोधमें यमराजके सदृश तथा बुद्धिमें बृहस्पतिके तुल्य है, जो नीतिमान्, महारथी, उग्र कर्म करनेमें समर्थ तथा कौरवोंको अभयदान देनेवाला है, उस वीरका परिचय देता हूँ, सुनिये ॥ २६–२८½ ॥

यस्मिञ्जाते ददौ द्रोणो गवां दशशतं धनम् ॥ २९ ॥
ब्राह्मणेभ्यो महार्हेभ्यः सोऽश्वत्थामैष गर्जति ।

जिसके जन्म लेनेपर आचार्य द्रोणने परम सुयोग्य ब्राह्मणों-

को एक सहस्र गौएँ दान की थीं, वही अश्वत्थामा यह गर्जना कर रहा है ॥ २९½ ॥

जातमात्रेण वीरेण येनोच्चैःश्रवसा यथा ॥ ३० ॥
हेषता कम्पिता भूमिर्लोकाश्च सकलास्त्रयः ।
तच्छ्रुत्वान्तर्हितं भूतं नाम तस्याकरोत् तदा॥ ३१ ॥
अश्वत्थामेति सोऽद्यैष शूरो नदति पाण्डव ।

पाण्डुनन्दन ! जिस वीरने जन्म लेते ही उच्चैःश्रवा अश्वके समान हिनहिनाकर पृथ्वी तथा तीनों लोकोंको कम्पित कर दिया था और उस शब्दको सुनकर किसी अदृश्य प्राणीने उस समय उसका नाम 'अश्वत्थामा' रख दिया था, यह वही शूरवीर अश्वत्थामा सिंहनाद कर रहा है ॥३०-३१½॥

यो ह्यनाथ इवाक्रम्य पार्षतेन हतस्तथा ॥ ३२ ॥
कर्मणा सुनृशंसेन तस्य नाथो व्यवस्थितः ।

द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नने जिनपर आक्रमण करके अत्यन्त क्रूरतापूर्ण कर्मके द्वारा जिन्हें अनाथके समान मार डाला था, उन्हींका यह रक्षक या सहायक उठ खड़ा हुआ है ॥३२½॥

गुरुं मे यत्र पाञ्चाल्यः केशपक्षे परामृशत् ॥ ३३ ॥
तन्न जातु क्षमेद् द्रौणिर्जानन् पौरुषमात्मनः ।

पाञ्चालराजकुमारने जो मेरे गुरुदेवका केश पकड़कर खींचा था, उसे अपने पुरुषार्थको जाननेवाला अश्वत्थामा कभी क्षमा नहीं कर सकता ॥ ३३½ ॥

उपचीर्णो गुरुर्मिथ्या भवता राज्यकारणात् ॥ ३४ ॥
धर्मज्ञेन सता नाम सोऽधर्मः सुमहान् कृतः ।

आपने धर्मज्ञ होते हुए भी राज्यके लोभसे झूठ बोलकर जो अपने गुरुको धोखा दिया, वह महान् पाप किया है ॥

चिरं स्थास्यति चाकीर्तिस्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ३५ ॥
रामे वालिवधाद् यद्वदेवं द्रोणे निपातिते ।

अतः छिपकर बालीका वध करनेके कारण जैसे श्रीरामचन्द्रजीको अपयश मिला, उसी प्रकार झूठ बोलकर द्रोणाचार्यको मरवा देनेके कारण चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंमें आपकी अकीर्ति चिरस्थायिनी हो जायगी ॥ ३५½ ॥

सर्वधर्मोपपन्नोऽयं स मे शिष्यश्च पाण्डवः ॥ ३६ ॥
नायं वदति मिथ्येति प्रत्ययं कृतवांस्त्वयि ।

आचार्यने यह समझकर आपपर विश्वास किया था कि पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर सब धर्मोंके ज्ञाता और मेरे शिष्य हैं। ये कभी झूठ नहीं बोलते हैं ॥ ३६½ ॥

स सत्यकञ्चुकं नाम प्रविष्टेन ततोऽनृतम् ॥ ३७ ॥
आचार्य उक्तो भवता हतः कुञ्जर इत्युत ।

परंतु आपने सत्यका चोला पहनकर आचार्यसे झूठे ही कह दिया कि 'अश्वत्थामा मारा गया।' उसी नामका हाथी मारा गया था, इसलिये आपने उसकी आड़ लेकर झूठ कहा ॥

ततः शस्त्रं समुत्सृज्य निर्ममो गतचेतनः ॥ ३८ ॥
आसीत् सुविह्वलो राजन् यथा दृष्टस्त्वया विभुः।

फिर वे हथियार डालकर अपने प्राणोंकी ममतासे रहित हो अचेत हो गये। राजन् ! उस समय शक्तिशाली होनेपर भी वे कितने व्याकुल हो गये थे, यह आपने प्रत्यक्ष देखा था ॥

स तु शोकसमाविष्टो विमुखः पुत्रवत्सलः ॥ ३९ ॥
शाश्वतं धर्ममुत्सृज्य गुरुः शस्त्रेण घातितः ।

पुत्रवत्सल गुरुदेव बेटेके शोकमें मग्न होकर युद्धसे विमुख हो गये थे। उस अवस्थामें आपने सनातन-धर्मकी अवहेलना करके उन्हें शस्त्रसे मरवा डाला ॥ ३९½ ॥

न्यस्तशस्त्रमधर्मेण घातयित्वा गुरुं भवान् ॥ ४० ॥
रक्षत्विदानीं सामात्यो यदि शक्तोऽसि पार्षतम्।
ग्रस्तमाचार्यपुत्रेण क्रुद्धेन हतबन्धुना ॥ ४१ ॥

जिसके पिता मारे गये हैं, वह आचार्यपुत्र अश्वत्थामा आज कुपित होकर धृष्टद्युम्नको कालका ग्रास बनाना चाहता है। अस्त्र त्यागकर निहत्थे हुए गुरुदेवको अधर्मपूर्वक मरवाकर अब आप मन्त्रियोंसहित उसके सामने जाइये और यदि शक्ति हो तो धृष्टद्युम्नकी रक्षा कीजिये ॥ ४०-४१ ॥

सर्वे वयं परित्रातुं न शक्ष्यामोऽद्य पार्षतम् ।
सौहार्दं सर्वभूतेषु यः करोत्यतिमानुषः ।
सोऽद्य केशग्रहं श्रुत्वा पितुर्धक्ष्यति नो रणे ॥ ४२ ॥

आज हम सब लोग मिलकर भी धृष्टद्युम्नको नहीं बचा सकेंगे। जो अश्वत्थामा अतिमानव (अलौकिक पुरुष) है और समस्त प्राणियोंके प्रति मैत्रीका भाव रखता है, वही आज अपने पिताके केश पकड़े जानेकी बात सुनकर समराङ्गणमें हम सब लोगोंको जलाकर भस्म कर देगा ॥४२॥

विक्रोशमाने हि मयि भृशमाचार्यगृद्धिनि ।
अपाकीर्य स्वयं धर्मं शिष्येण निहतो गुरुः ॥ ४३ ॥

मैं आचार्यके प्राणोंकी रक्षा चाहता हुआ बारंबार पुकारता ही रह गया, परंतु स्वयं शिष्य होकर भी धृष्टद्युम्नने धर्मको लात मारकर अपने गुरुकी हत्या कर डाली ॥ ४३ ॥

यदा गतं वयो भूयः शिष्टमल्पतरं च नः ।
तस्येदानीं विकारोऽयमधर्मोऽयं कृतो महान् ॥ ४४ ॥

अब हमलोगोंकी आयुका अधिकांश भाग बीत चुका है और बहुत थोड़ा ही शेष रह गया है। इसीसे इस समय हमारा मस्तिष्क खराब हो गया और हमलोगोंने यह महान् पाप कर डाला है ॥ ४४ ॥

पितेव नित्यं सौहार्दात् पितेव हि च धर्मतः ।
सोऽल्पकालस्य राज्यस्य कारणाद् घातितो गुरुः॥४५॥

जो सदा पिताकी भाँति हमलोगोंपर स्नेह रखते और हमारा हित चाहते थे, धर्मदृष्टिसे भी जो हमारे पिताके ही

तुल्य थे, उन्हीं गुरुदेवको हमने इस क्षणभङ्गुर राज्यके लिये मरवा दिया ॥ ४५ ॥

धृतराष्ट्रेण भीष्माय द्रोणाय च विशाम्पते।
विसृष्टा पृथिवी सर्वा सह पुत्रैश्च तत्परैः ॥ ४६ ॥

प्रजानाथ ! धृतराष्ट्रने भीष्म और द्रोणको उनकी सेवामें रहनेवाले अपने पुत्रोंके साथ ही इस सारी पृथ्वीका राज्य सौंप दिया था ॥ ४६ ॥

सम्प्राप्य तादृशीं वृत्तिं सत्कृतः सततं परैः।
अवृणीत सदा पुत्रान् मामेवाभ्यधिकं गुरुः ॥ ४७ ॥

हमारे शत्रु सदा आचार्यका सत्कार किया करते थे। उनके द्वारा वैसी उत्तम जीविका-वृत्ति पाकर भी आचार्य सदा मुझे ही अपने पुत्रसे बढ़कर मानते रहे हैं ॥ ४७ ॥

अवेक्षमाणस्त्वां मां च न्यस्तास्त्रश्चाहवे हतः।
न त्वेनं युध्यमानं वै हन्यादपि शतक्रतुः ॥ ४८ ॥

उन्होंने आपको और मुझको देखकर युद्धमें हथियार डाल दिया और मारे गये। यदि वे युद्ध करते होते तो साक्षात् इन्द्र भी उन्हें मार नहीं सकते थे ॥ ४८ ॥

तस्याचार्यस्य वृद्धस्य द्रोहो नित्योपकारिणः।
कृतो ह्यनार्यैरस्माभी राज्यार्थे लुब्धबुद्धिभिः ॥ ४९ ॥

हमारी बुद्धि लोभसे ग्रस्त है, हम नीचोंने राज्यके लिये सदा उपकार करनेवाले बूढ़े आचार्यके साथ द्रोह किया है ॥ ४९ ॥

अहो बत महत् पापं कृतं कर्म सुदारुणम्।
यद् राज्यसुखलोभेन द्रोणोऽयं साधु घातितः॥ ५० ॥

ओह ! हमने यह अत्यन्त भयंकर महान् पापकर्म कर डाला है, जो कि राज्य-सुखके लोभमें पड़कर इन आचार्य द्रोणकी पूर्णतः हत्या करा दी ॥ ५० ॥

पुत्रान् भ्रातॄन् पितॄन् दारांजीवितं चैव वासविः।
त्यजेत् सर्वं मम प्रेम्णा जानात्येवं हि मे गुरुः ॥ ५१ ॥

मेरे गुरुदेव ऐसा समझते थे कि अर्जुन मेरे प्रेमवश आवश्यकता हो तो अपने पिता, पुत्र, भाई, स्त्री तथा प्राण—सबका त्याग कर सकता है ॥ ५१ ॥

स मया राज्यकामेन हन्यमानो ह्युपेक्षितः।
तस्मादवाक्शिरा राजन् प्राप्तोऽस्मि नरकं प्रभो ॥ ५२ ॥

किंतु मैंने राज्यके लोभमें पड़कर उनके मारे जानेकी उपेक्षा कर दी। राजन् ! प्रभो ! इस पापके कारण अब मैं नीचे सिर करके नरकमें डाला जाऊँगा ॥ ५२ ॥

ब्राह्मणं वृद्धमाचार्यं न्यस्तशस्त्रं महामुनिम्।
घातयित्वाद्य राज्यार्थे मृतं श्रेयो न जीवितम्॥ ५३ ॥

एक तो वे ब्राह्मण, दूसरे वृद्ध और तीसरे अपने आचार्य थे। इसके सिवा उन्होंने हथियार नीचे डाल दिया था और महान् मुनिवृत्तिका आश्रय लेकर बैठे हुए थे। इस अवस्थामें राज्यके लिये उनकी हत्या कराकर मैं जीनेकी अपेक्षा मर जाना ही अच्छा समझता हूँ ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि अर्जुनवाक्ये षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत नारायणास्त्रमोक्षपर्वमें अर्जुनवाक्यविषयक एक सौ छानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९६ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ५४ श्लोक हैं)

सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

भीमसेनके वीरोचित उद्गार और धृष्टद्युम्नके द्वारा अपने कृत्यका समर्थन

संजय उवाच

अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा नोचुस्तत्र महारथाः।
अप्रियं वा प्रियं वापि महाराज धनंजयम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! अर्जुनकी यह बात सुनकर वहाँ बैठे हुए सब महारथी मौन रह गये। उनसे प्रिय या अप्रिय कुछ नहीं बोले ॥ १ ॥

ततः क्रुद्धो महाबाहुर्भीमसेनोऽभ्यभाषत।
कुत्सयन्निव कौन्तेयमर्जुनं भरतर्षभ ॥ २ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तब महाबाहु भीमसेनको क्रोध चढ़ आया। उन्होंने कुन्तीकुमार अर्जुनको फटकारते हुए-से कहा—॥ २॥

मुनिर्यथारण्यगतो भाषसे धर्मसंहितम्।
न्यस्तदण्डो यथा पार्थ ब्राह्मणः संशितव्रतः ॥ ३ ॥

'पार्थ ! वनवासी मुनि अथवा किसी भी प्राणीको दण्ड न देते हुए कठोर व्रतका पालन करनेवाला ब्राह्मण जिस प्रकार धर्मका उपदेश करता है, उसी प्रकार तुम भी धर्म-सम्मत बातें कह रहे हो ॥ ३ ॥

क्षतत्राता क्षताज्जीवन् क्षन्ता स्त्रीष्वपि साधुषु।
क्षत्रियः क्षितिमाप्नोति क्षिप्रं धर्मं यशः श्रियः॥ ४ ॥

'परंतु जो क्षति (संकट) से अपना तथा दूसरोंका त्राण करता है, युद्धमें शत्रुओंको क्षति पहुँचाना ही जिसकी जीविका है तथा जो स्त्रियों और साधु पुरुषोंपर क्षमाभाव रखता है, वही क्षत्रिय है और उसे ही शीघ्र इस पृथ्वीके राज्य, धर्म, यश और लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥

स भवान् क्षत्रियगुणैर्युक्तः सर्वैः कुलोद्वहः।
अविपश्चिद् यथा वाचं व्याहरन् नाद्य शोभसे ॥५॥

'तुम समस्त क्षत्रियोचित गुणोंसे सम्पन्न और इस कुलका भार वहन करनेमें समर्थ होते हुए भी आज मूर्खके समान बातें कर रहे हो, यह तुम्हें शोभा नहीं देता है ॥ ५ ॥

पराक्रमस्ते कौन्तेय शक्रस्येव शचीपतेः।
न चाति वर्तसे धर्मं वेलामिव महोदधिः ॥ ६ ॥

'कुन्तीनन्दन ! तुम्हारा पराक्रम शचीपति इन्द्रके समान है। महासागर जैसे अपनी तट-भूमिका उल्लङ्घन नहीं करता, उसी प्रकार तुम भी कभी धर्म-मर्यादाका उल्लङ्घन नहीं करते हो ॥ ६ ॥

न पूजयेत् त्वां को न्वद्य यत् त्रयोदशवार्षिकम्।
अमर्षं पृष्ठतः कृत्वा धर्ममेवाभिकाङ्क्षसे ॥ ७ ॥

'आज तेरह वर्षोंसे संचित किये हुए अमर्षको पीछे करके जो तुम धर्मकी ही अभिलाषा रखते हो, इसके लिये कौन तुम्हारी पूजा नहीं करेगा ! ॥ ७ ॥

दिष्ट्या तात मनस्तेऽद्य स्वधर्ममनुवर्तते।
आनृशंस्ये च ते दिष्ट्या बुद्धिः सततमच्युत ॥ ८ ॥

'तात ! सौभाग्यकी बात है कि इस समय भी तुम्हारा मन अपने धर्मका ही अनुसरण करता है। धर्मसे कभी च्युत न होनेवाले मेरे भाई ! तुम्हारी बुद्धि क्रूरताकी ओर न जाकर जो सदा दयाभावमें ही रम रही है, यह भी कम सौभाग्यकी बात नहीं है ॥ ८ ॥

यत् तु धर्मप्रवृत्तस्य हृतं राज्यमधर्मतः।
द्रौपदी च परामृष्टा सभामानीय शत्रुभिः ॥ ९ ॥
वनं प्रव्राजिताश्चास्म वल्कलाजिनवाससः।
अनर्हमाणास्तं भावं त्रयोदश समाः परैः ॥ १० ॥

'परंतु धर्ममें तत्पर रहनेपर भी जो शत्रुओंने अधर्मसे हमारा राज्य छीन लिया, द्रौपदीको सभामें लाकर अपमानित किया तथा हमें वल्कल और मृगचर्म पहनाकर तेरह वर्षोंके लिये जो वनमें निर्वासित कर दिया, हम वैसे बर्तावके योग्य कदापि नहीं थे ॥ ९-१० ॥

एतान्यमर्षस्थानानि मर्षितानि मयानघ।
क्षत्रधर्मप्रसक्तेन सर्वमेतदनुष्ठितम् ॥ ११ ॥

'अनघ ! ये सारे अन्याय अमर्षके स्थान थे--असह्य थे, परंतु मैंने सब चुपचाप सह लिये। क्षत्रिय-धर्ममें आसक्त होनेके कारण ही यह सब कुछ सहन किया गया है ॥ ११ ॥

तमधर्ममपाकृष्टं स्मृत्वाद्य सहितस्त्वया।
सानुबन्धान् हनिष्यामि क्षुद्रान् राज्यहरानहम् ॥ १२ ॥

'परंतु अब उनके उन नीचतापूर्ण पापकर्मोंको याद करके मैं तुम्हारे साथ रहकर अपने राज्यका अपहरण करनेवाले इन नीच शत्रुओंको उनके सगे-सम्बन्धियों-सहित मार डालूँगा ॥ १२ ॥

त्वया हि कथितं पूर्वं युद्धायाभ्यागता वयम्।
घटामहे यथाशक्ति त्वं तु नोऽद्य जुगुप्ससे ॥ १३ ॥

'तुमने ही पहले युद्धके लिये कहा था और उसीके अनुसार हम यहाँ आकर यथाशक्ति उसके लिये प्रयत्न कर रहे हैं, परंतु आज तुम्हीं हमारी निन्दा करते हो ! ॥ १३ ॥

स्वधर्मं नेच्छसे ज्ञातुं मिथ्यावचनमेव ते।
भयार्दितानामस्माकं वाचा मर्माणि कृन्तसि ॥ १४ ॥

'तुम अपने क्षत्रिय-धर्मको नहीं जानना चाहते। तुम्हारी ये सारी बातें मिथ्या ही हैं। एक तो हम स्वयं ही भयसे पीड़ित हो रहे हैं, ऊपरसे तुम भी अपने वाग्बाणोंद्वारा हमारे मर्मस्थानोंको छेदे डालते हो ॥ १४ ॥

वपन् व्रणे क्षारमिव क्षतानां शत्रुकर्शन।
विदीर्यते मे हृदयं त्वया वाक्शल्यपीडितम् ॥ १५ ॥

'शत्रुसूदन ! जैसे कोई घायल मनुष्योंके घावपर नमक बिखेर दे (और वे वेदनासे छटपटाने लगें), उसी प्रकार तुम अपने वाग्बाणोंसे पीड़ित करके मेरे हृदयको विदीर्ण किये डालते हो ॥ १५ ॥

अधर्ममेनं विपुलं धार्मिकः सन् न बुद्ध्यसे।
यत् त्वमात्मानमस्मांश्च प्रशस्यान् न प्रशंससि ॥ १६ ॥

'यद्यपि तुम और हम प्रशंसाके पात्र हैं, तो भी तुम जो अपनी और हमारी प्रशंसा नहीं करते हो, यह बहुत बड़ा अधर्म है और तुम धार्मिक होते हुए इस अधर्मको नहीं समझ रहे हो ॥ १६ ॥

वासुदेवे स्थिते चापि द्रोणपुत्रं प्रशंससि।
यः कलां षोडशीं पूर्णां धनंजय न तेऽर्हति ॥ १७ ॥

'धनंजय ! भगवान् श्रीकृष्णके रहते हुए भी तुम द्रोणपुत्रकी प्रशंसा करते हो, जो तुम्हारी पूरी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं है ॥ १७ ॥

स्वयमेवात्मनो दोषान् ब्रुवाणः किन्न लज्जसे।
दारयेयं महीं क्रोधाद् विकिरेयं च पर्वतान् ॥ १८ ॥
आविध्यैतां गदां गुर्वीं भीमां काञ्चनमालिनीम्।
गिरिप्रकाशान् क्षितिजान् भञ्जेयमनिलो यथा ॥ १९ ॥

'स्वयं ही अपने दोषोंका वर्णन करते हुए तुम्हें लज्जा क्यों नहीं आती है ? आज मैं अपनी इस सुवर्णभूषित भयंकर एवं भारी गदाको क्रोधपूर्वक घुमाकर इस पृथ्वीको विदीर्ण कर सकता हूँ, पर्वतोंको चूर-चूर करके बिखेर सकता हूँ तथा प्रचण्ड आँधीकी तरह पर्वतपर प्रकाशित होनेवाले ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंको भी तोड़ और उखाड़ सकता हूँ ॥ १८-१९ ॥

द्रावयेयं शरैश्चापि सेन्द्रान् देवान् समागतान्।
सराक्षसगणान् पार्थ सासुरोरगमानवान् ॥ २० ॥

'पार्थ ! असुर, नाग, मानव तथा राक्षसगणोंसहित सम्पूर्ण देवता और इन्द्र भी आ जायँ तो मैं उन्हें बाणोंद्वारा मारकर भगा सकता हूँ ॥ २० ॥

स त्वमेवंविधं जानन् भ्रातरं मां नरर्षभ।
द्रोणपुत्राद् भयं कर्तुं नार्हस्यमितविक्रम ॥ २१ ॥

'अमित पराक्रमी नरश्रेष्ठ अर्जुन ! मुझ अपने भ्राताको ऐसा जानकर तुम्हें द्रोणपुत्रसे भय नहीं करना चाहिये ॥

अथवा तिष्ठ बीभत्सो सह सर्वैः सहोदरैः।
अहमेनं गदापाणिर्जेष्याम्येको महाहवे ॥ २२ ॥

'अथवा अर्जुन ! तुम अपने समस्त भाइयोंके साथ यहीं खड़े रहो। मैं हाथमें गदा लेकर इस महासमरमें अकेला ही अश्वत्थामाको परास्त करूँगा' ॥ २२ ॥

ततः पाञ्चालराजस्य पुत्रः पार्थमथाब्रवीत्।
संक्रुद्धमिव नर्दन्तं हिरण्यकशिपुर्हरिम् ॥ २३ ॥

तदनन्तर जैसे पूर्वकालमें अत्यन्त क्रुद्ध होकर दहाड़ते हुए नृसिंहावतारधारी भगवान् विष्णुसे दैत्यराज हिरण्यकशिपुने बातें की थी, उसी प्रकार वहाँ अर्जुनसे पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नने इस प्रकार कहा ॥ २३ ॥

धृष्टद्युम्न उवाच

बीभत्सो विप्रकर्माणि विदितानि मनीषिणाम्।
याजनाध्यापने दानं तथा यज्ञप्रतिग्रहौ ॥ २४ ॥
षष्ठमध्ययनं नाम तेषां कस्मिन् प्रतिष्ठितः।
हतो द्रोणो मया ह्येवं किं मां पार्थ विगर्हसे ॥ २५ ॥
अपक्रान्तः स्वधर्माच्च क्षात्रधर्मं व्यपाश्रितः।
अमानुषेण हन्त्यस्मानस्त्रेण क्षुद्रकर्मकृत् ॥ २६ ॥

धृष्टद्युम्न बोला—अर्जुन ! यज्ञ करना और कराना, वेदोंको पढ़ना और पढ़ाना तथा दान देना और प्रतिग्रह स्वीकार करना—ये छः कर्म ही ब्राह्मणोंके लिये मनीषी पुरुषोंमें प्रसिद्ध हैं। इनमेंसे किस कर्ममें द्रोणाचार्य प्रतिष्ठित थे। अपने धर्मसे भ्रष्ट होकर उन्होंने क्षत्रिय-धर्मका आश्रय ले रक्खा था। पार्थ ! ऐसी अवस्थामें यदि मैंने द्रोणाचार्यका वध किया तो तुम इसके लिये मेरी निन्दा क्यों करते हो। वह नीच कर्म करनेवाला ब्राह्मण दिव्यास्त्रोंद्वारा हमलोगोंका संहार करता था ॥ २४—२६ ॥

तथा मायां प्रयुञ्जानमसह्यं ब्राह्मणब्रुवम्।
माययैव विहन्याद् यो न युक्तं पार्थ तत्र किम्॥ २७ ॥

कुन्तीनन्दन ! जो ब्राह्मण कहलाकर भी दूसरोंके लिये मायाका प्रयोग करता हो और असह्य हो उठा हो, उसे यदि कोई मायासे ही मार डाले तो इसमें अनुचित क्या है ? ॥ २७ ॥

तस्मिंस्तथा मया शस्ते यदि द्रौणायनी रुषा।
कुरुते भैरवं नादं तत्र किं मम हीयते ॥ २८ ॥

मेरे द्वारा द्रोणाचार्यके इस अवस्थामें मारे जानेपर यदि द्रोणपुत्र क्रोधपूर्वक भयानक गर्जना करता हो तो उसमें मेरी क्या हानि है ? ॥ २८ ॥

न चाद्भुतमिदं मन्ये यद् द्रौणिर्युद्धसंज्ञया।
घातयिष्यति कौरव्यान् परित्रातुमशक्नुवन् ॥ २९ ॥

मैं इसे कोई अद्भुत बात नहीं मान रहा हूँ; अश्वत्थामा इस युद्धके द्वारा कौरवोंको मरवा डालेगा; क्योंकि वह स्वयं उनकी रक्षा करनेमें असमर्थ है ॥ २९ ॥

यच्च मां धार्मिको भूत्वा ब्रवीषि गुरुघातिनम्।
तदर्थमहमुत्पन्नः पाञ्चालस्य सुतोऽनलात् ॥ ३० ॥

इसके सिवा तुम धार्मिक होकर जो मुझे गुरुकी हत्या करनेवाला बता रहे हो, वह भी ठीक नहीं है; क्योंकि मैं इसीलिये अग्निकुण्डसे पाञ्चालराजका पुत्र होकर उत्पन्न हुआ था ॥ ३० ॥

यस्य कार्यमकार्यं वा युध्यतः स्यात् समं रणे।
तं कथं ब्राह्मणं ब्रूयाः क्षत्रियं वा धनंजय ॥ ३१ ॥

धनंजय ! रणभूमिमें युद्ध करते समय जिसके लिये कर्तव्य और अकर्तव्य दोनों समान हों, उसे तुम ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय कैसे कह सकते हो ? ॥ ३१ ॥

यो ह्यनस्त्रविदो हन्याद् ब्रह्मास्त्रैः क्रोधमूर्च्छितः।
सर्वोपायैर्न स कथं वध्यः पुरुषसत्तम ॥ ३२ ॥

पुरुषप्रवर ! जो क्रोधसे व्याकुल होकर ब्रह्मास्त्र न जाननेवालोंको भी ब्रह्मास्त्रसे ही मार डाले, उसका सभी उपायोंसे वध करना कैसे उचित नहीं है ?॥ ३२ ॥

विधर्मिणं धर्मविद्भिः प्रोक्तं तेषां विषोपमम्।
जानन् धर्मार्थतत्त्वज्ञ किं मामर्जुन गर्हसे ॥ ३३ ॥

धर्म और अर्थका तत्त्व जाननेवाले अर्जुन ! जो अपना धर्म छोड़कर परधर्म ग्रहण कर लेता है, उस विधर्मीको धर्मज्ञ पुरुषोंने धर्मात्माओंके लिये विषके तुल्य बताया है। यह सब जानते हुए भी तुम मेरी निन्दा क्यों करते हो ? ॥ ३३ ॥

नृशंसः स मयाऽऽक्रम्य रथ एव निपातितः।
तन्मामनिन्द्यं बीभत्सो किमर्थं नाभिनन्दसे ॥ ३४ ॥

बीभत्सो ! द्रोणाचार्य क्रूर एवं नृशंस थे, इसलिये मैंने रथपर ही आक्रमण करके उनको मार गिराया। अतः मैं निन्दाका पात्र नहीं हूँ। फिर तुम किस लिये मेरा अभिनन्दन नहीं करते हो ?॥ ३४ ॥

कालानलसमं पार्थ ज्वलनार्कविषोपमम्।
भीमं द्रोणशिरश्छिन्नं न प्रशंससि मे कथम् ॥ ३५ ॥

पार्थ ! द्रोणका मस्तक प्रलयकालकी अग्निके समान अत्यन्त भयंकर तथा लौकिक अग्नि, सूर्य एवं विषके तुल्य संताप देनेवाला था, अतः मैंने उसका छेदन किया है। इसके लिये तुम मेरी प्रशंसा क्यों नहीं करते ? ॥ ३५ ॥

योऽसौ ममैव नान्यस्य बान्धवान् युधि जघ्निवान्।

छित्त्वापि तस्य मूर्धानं नैवास्मि विगतज्वरः ॥ ३६ ॥

जिसने युद्धके मैदानमें दूसरे किसीके नहीं, मेरे ही बन्धु-बान्धवोंका वध किया था, उसका मस्तक काट लेनेपर भी मेरा क्रोध और संताप शान्त नहीं हुआ है ॥ ३६ ॥

तच्च मे कृन्तते मर्म यन्न तस्य शिरो मया।
निषादविषये क्षिप्तं जयद्रथशिरो यथा ॥ ३७ ॥

जैसे तुमने जयद्रथके मस्तकको दूर फेंका था, उसी प्रकार मैंने द्रोणाचार्यके मस्तकको जो निषादोंके स्थानमें नहीं फेंक दिया, वह भूल मेरे मर्मस्थानोंका छेदन कर रही है ॥ ३७ ॥

अवध्यश्च शत्रूणामधर्मः श्रूयतेऽर्जुन।
क्षत्रियस्य हि धर्मोऽयं हन्याद्धन्येत वा पुनः ॥ ३८ ॥

अर्जुन ! सुननेमें आया है कि शत्रुओंका वध न करना भी अधर्म ही है। क्षत्रियके लिये तो यह धर्म ही है कि वह युद्धमें शत्रुको मार डाले या फिर स्वयं उसके हाथसे मारा जाय ॥ ३८ ॥

स शत्रुर्निहतः संख्ये मया धर्मेण पाण्डव।
यथा त्वया हतः शूरो भगदत्तः पितुः सखा ॥ ३९ ॥

पाण्डुनन्दन ! द्रोणाचार्य मेरे शत्रु थे, अतः मैंने युद्धमें धर्मके अनुसार ही उनका वध किया है। ठीक उसी तरह, जैसे तुमने अपने पिताके प्रिय मित्र शूरवीर भगदत्तका वध किया था ॥ ३९ ॥

पितामहं रणे हत्वा मन्यसे धर्ममात्मनः।
मया शत्रौ हते कस्मात् पापे धर्मं न मन्यसे ॥ ४० ॥

तुम युद्धमें पितामहको मारकर भी अपने लिये तो धर्म मानते हो, किंतु मेरेद्वारा एक पापी शत्रुके मारे जानेपर भी इस कार्यको धर्म नहीं समझते; इसका क्या कारण है ? ॥ ४० ॥

सम्बन्धावनतं पार्थ न मां त्वं वक्तुमर्हसि।
स्वगात्रकृतसोपानं निषण्णमिव दन्तिनम् ॥ ४१ ॥

पार्थ ! जैसे हाथी सम्बन्ध स्थापित कर लेनेपर लोगोंको अपने ऊपर चढ़ानेके लिये अपने ही शरीरकी सीढ़ी बनाकर बैठ जाता है, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे साथ सम्बन्ध होनेके कारण नतमस्तक होता हूँ; अतः तुम्हें मेरे प्रति ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिये ॥ ४१ ॥

क्षमामि ते सर्वमेव वाग्व्यतिक्रममर्जुन।
द्रौपद्या द्रौपदेयानां कृते नान्येन हेतुना ॥ ४२ ॥

अर्जुन ! मैं अपनी बहिन द्रौपदी और उसके पुत्रोंके नाते ही तुम्हारी इन सारी उलटी या कड़वी बातोंको सहे लेता हूँ, दूसरे किसी कारणसे नहीं ॥ ४२ ॥

कुलक्रमागतं वैरं ममाचार्येण विश्रुतम्।
तथा जानात्ययं लोको न यूयं पाण्डुनन्दनाः ॥ ४३ ॥

द्रोणाचार्यके साथ मेरा वंश-परम्परागत वैर चला आ रहा है, जो बहुत प्रसिद्ध है। उसे यह सारा संसार जानता है; क्या तुम पाण्डवोंको इसका पता नहीं है ? ॥ ४३ ॥

नानृती पाण्डवो ज्येष्ठो नाहं वाधार्मिकोऽर्जुन।
शिष्यद्रोही हतः पापो युध्यस्व विजयस्तव ॥ ४४ ॥

अर्जुन ! तुम्हारे बड़े भाई पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर असत्यवादी नहीं हैं और न मैं ही अधर्मी हूँ। द्रोणाचार्य पापी और शिष्यद्रोही थे, इसलिये मारे गये। अब तुम युद्ध करो; विजय तुम्हारे हाथमें है ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि धृष्टद्युम्नवाक्ये सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत नारायणास्त्रमोक्षपर्वमें धृष्टद्युम्नवाक्यविषयक एक सौ सत्तानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९७ ॥

अष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

सात्यकि और धृष्टद्युम्नका परस्पर क्रोधपूर्वक वाग्बाणोंसे लड़ना तथा भीमसेन, सहदेव और श्रीकृष्ण एवं युधिष्ठिरके प्रयत्नसे उनका निवारण

धृतराष्ट्र उवाच

साङ्गा वेदा यथान्यायं येनाधीता महात्मना।
यस्मिन् साक्षाद् धनुर्वेदो ह्रीनिषेवे प्रतिष्ठितः ॥ १ ॥
यस्य प्रसादात् कुर्वन्ति कर्माणि पुरुषर्षभाः।
अमानुषाणि संग्रामे देवैरसुकराणि च ॥ २ ॥
तस्मिन्नाक्रुश्यति द्रोणे समक्षं पापकर्मणा।
नीचात्मना नृशंसेन क्षुद्रेण गुरुघातिना ॥ ३ ॥
नामर्षं तत्र कुर्वन्ति धिक् क्षात्रं धिगमर्षिताम्।

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! जिन महात्माने विधिपूर्वक अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन किया था, जिन लज्जाशील सत्पुरुषमें साक्षात् धनुर्वेद प्रतिष्ठित था, जिनके कृपाप्रसादसे कितने ही पुरुषरत्न योद्धा संग्रामभूमिमें ऐसे-ऐसे अलौकिक पराक्रम कर दिखाते थे, जो देवताओंके लिये भी दुष्कर थे; उन्हीं द्रोणाचार्यकी वह पापी, नीच, नृशंस, क्षुद्र और गुरुघाती धृष्टद्युम्न सबके सामने निन्दा कर रहा था और लोग क्रोध नहीं प्रकट करते थे ! धिक्कार है ऐसे क्षत्रियोंको ! और धिक्कार है उनके अमर्षशील स्वभावको !! ॥ १-३½ ॥

पार्थाः सर्वे च राजानः पृथिव्यां ये धनुर्धराः॥ ४ ॥
श्रुत्वा किमाहुः पाञ्चाल्यं तन्ममाचक्ष्व संजय।

संजय ! भूमण्डलके जो-जो धनुर्धर नरेश वहाँ उपस्थित थे, उन सबने तथा कुन्तीके पुत्रोंने धृष्टद्युम्नकी बात सुनकर उससे क्या कहा ? यह मुझे बताओ ॥ ४½ ॥

संजय उवाच

श्रुत्वा द्रुपदपुत्रस्य ता वाचः क्रूरकर्मणः ॥ ५ ॥
तूष्णीं बभूवू राजानः सर्व एव विशाम्पते।
अर्जुनस्तु कटाक्षेण जिह्मं विप्रेक्ष्य पार्षतम् ॥ ६ ॥
सबाष्पमतिनिःश्वस्य धिग् धिगित्येव चाब्रवीत्।

संजयने कहा—प्रजानाथ ! क्रूरकर्मा द्रुपदपुत्रकी वे बातें सुनकर वहाँ बैठे हुए सभी नरेश मौन रह गये। केवल अर्जुन टेढ़ी नजरोंसे उसकी ओर देखकर आँसू बहाते हुए दीर्घ निःश्वास ले इतना ही बोले कि—'धिक्कार है ! धिक्कार है !!' ॥ ५-६½ ॥

युधिष्ठिरश्च भीमश्च यमौ कृष्णस्तथापरे ॥ ७ ॥
आसन् सुव्रीडिता राजन् सात्यकिस्त्वब्रवीदिदम्।

राजन् ! उस समय युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल, सहदेव, भगवान् श्रीकृष्ण तथा अन्य लोग भी अत्यन्त लज्जित हो चुप ही बैठे रहे, परंतु सात्यकि इस प्रकार बोल उठे—॥ ७½ ॥

नेहास्ति पुरुषः कश्चिद् य इमं पापपूरुषम् ॥ ८ ॥
भाषमाणमकल्याणं शीघ्रं हन्यान्नराधमम्।

'क्या यहाँ कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जो इस प्रकार अभद्रतापूर्ण वचन बोलनेवाले इस पापी नराधमको शीघ्र ही मार डाले ॥ ८½ ॥

एते त्वां पाण्डवाः सर्वे कुत्सयन्ति विकुत्सया ॥ ९ ॥
कर्मणा तेन पापेन श्वपाकं ब्राह्मणा इव।

'धृष्टद्युम्न ! जैसे ब्राह्मण चाण्डालकी निन्दा करते हैं, उसी प्रकार ये समस्त पाण्डव उस पाप कर्मके कारण अत्यन्त घृणा प्रकट करते हुए तेरी निन्दा कर रहे हैं ॥ ९½ ॥

एतत् कृत्वा महत् पापं निन्दितः सर्वसाधुभिः॥ १० ॥
न लज्जसे कथं वक्तुं समितिं प्राप्य शोभनाम्।
कथं च शतधा जिह्वा न ते मूर्धा च दीर्यते ॥ ११ ॥
गुरुमाक्रोशतः क्षुद्र न चाधर्मेण पात्यसे।

'यह महान् पाप करके तू समस्त श्रेष्ठ पुरुषोंकी दृष्टिमें निन्दाका पात्र बन गया है। साधु पुरुषोंकी इस सुन्दर सभामें पहुँचकर ऐसी बातें करते हुए तुझे लज्जा कैसे नहीं आती है ? तेरी जीभके सैकड़ों टुकड़े क्यों नहीं हो जाते और तेरा मस्तक क्यों नहीं फट जाता ? ओ नीच ! गुरुकी निन्दा करते हुए तेरा इस पापसे पतन क्यों नहीं हो जाता ? ॥ १०-११½ ॥

वाच्यस्त्वमसि पार्थैश्च सर्वैश्चान्धकवृष्णिभिः ॥ १२ ॥
यत् कर्म कलुषं कृत्वा श्लाघसे जनसंसदि।

'तू पापकर्म करके जनसमाजमें जो इस तरह अपनी बड़ाई कर रहा है, इसके कारण तू कुन्तीके सभी पुत्रों तथा अन्धक और वृष्णिवंशके यादवोंद्वारा निन्दाके योग्य हो गया है ॥ १२½ ॥

अकार्यं तादृशं कृत्वा पुनरेव गुरुं क्षिपन् ॥ १३ ॥
वध्यस्त्वं न त्वयार्थोऽस्ति मुहूर्तमपि जीवता।

'वैसा पापकर्म करके तू पुनः गुरुपर आक्षेप कर रहा है; अतः तू वध करनेके ही योग्य है। एक मुहूर्त भी तेरे जीवित रहनेका कोई प्रयोजन नहीं है ॥

कस्त्वेतद् व्यवसेदार्यस्त्वदन्यः पुरुषाधम ॥ १४ ॥
निगृह्य केशेषु वधं गुरोर्धर्मात्मनः सतः।

'पुरुषाधम ! तेरे सिवा दूसरा कौन श्रेष्ठ पुरुष धर्मात्मा सज्जन गुरुके केश पकड़कर उनके वधका विचार भी मनमें लायेगा ॥ १४½ ॥

सप्तावरे तथा पूर्वे बान्धवास्ते निमज्जिताः ॥ १५ ॥
यशसा च परित्यक्तास्त्वां प्राप्य कुलपांसनम्।

'तुझ-जैसे कुलाङ्गारको पाकर तेरे सात पीढ़ी पहलेके और सात पीढ़ी आगे होनेवाले बन्धु-बान्धव नरकमें डूब गये तथा सदाके लिये सुयशसे वञ्चित हो गये ॥१५½ ॥

उक्तवांश्चापि यत् पार्थे भीष्मं प्रति नरर्षभम् ॥ १६ ॥
तथान्तो विहितस्तेन स्वयमेव महात्मना।

तूने जो कुन्तीकुमार अर्जुनपर नरश्रेष्ठ भीष्मके वधका दोष लगाया है, वह भी व्यर्थ ही है; क्योंकि महात्मा भीष्मने स्वयं ही उसी प्रकार अपनी मृत्युका विधान किया था ॥ १६½ ॥

तस्यापि तव सोदर्यो निहन्ता पापकृत्तमः ॥ १७ ॥
नान्यः पाञ्चालपुत्रेभ्यो विद्यते भुवि पापकृत्।

'वास्तवमें भीष्मका वध करनेवाला भी तेरा महान् पापाचारी भाई ही है। इस पृथ्वीपर पाञ्चालराजके पुत्रोंके सिवा दूसरा कोई ऐसा पाप करनेवाला नहीं है ॥ १७½ ॥

स चापि सृष्टः पित्रा ते भीष्मस्यान्तकरः किल॥ १८ ॥
शिखण्डी रक्षितस्तेन स च मृत्युर्महात्मनः।

'यह प्रसिद्ध है कि उसे भी तेरे पिताने भीष्मका अन्त करनेके लिये उत्पन्न किया था; उन्होंने महात्मा भीष्मकी मूर्तिमान् मृत्युके रूपमें ही शिखण्डीको सुरक्षित रक्खा था ॥

पञ्चालाश्चलिता धर्मात् क्षुद्रा मित्रगुरुद्रुहः ॥ १९ ॥
त्वां प्राप्य सहसोदर्यं धिक्कृतं सर्वसाधुभिः।

'तू और तेरा भाई दोनों समस्त साधु पुरुषोंके धिक्कारके पात्र हैं। तुम दोनोंको पाकर सारे पाञ्चाल धर्मभ्रष्ट, नीच, मित्रद्रोही तथा गुरुद्रोही बन गये हैं ॥ १९½ ॥

पुनश्चेदीदृशीं वाचं मत्समीपे वदिष्यसि ॥ २० ॥
शिरस्ते पोथयिष्यामि गदया वज्रकल्पया ।

'यदि तू पुनः मेरे समीप ऐसी बात बोलेगा तो मैं अपनी इस वज्रतुल्य गदासे तेरा सिर कुचल दूँगा ॥२०½॥

त्वां च ब्रह्महणं दृष्ट्वा जनः सूर्यमवेक्षते ॥ २१ ॥
ब्रह्महत्या हि ते पापं प्रायश्चित्तार्थमात्मनः ।

'तुझे ब्रह्महत्याका पाप लगा है। तुझ ब्रह्महत्यारेको देखकर लोग अपने प्रायश्चित्तके लिये सूर्यदेवका दर्शन करते हैं ॥

पाञ्चालक सुदुर्वृत्त ममैव गुरुमग्रतः ॥ २२ ॥
गुरोर्गुरुं च भूयोऽपि क्षिपन्नैव हि लज्जसे ।

'दुराचारी पाञ्चाल ! तू मेरे आगे मेरे ही गुरु तथा मेरे गुरुके भी गुरुपर बारंबार आक्षेप कर रहा है, तो भी तुझे लजा नहीं आती ॥ २२½ ॥

तिष्ठ तिष्ठ सहस्वैकं गदापातमिमं मम ॥ २३ ॥
तव चापि सहिष्येऽहं गदापातानेकशः ।

'खड़ा रह, खड़ा रह', मेरी गदाकी यह एक ही चोट सह ले, फिर मैं तेरी गदाकी भी अनेक चोटें सहन करूँगा' ॥ २३½ ॥

सात्वतेनैवमाक्षिप्तः पार्षतः परुषाक्षरम् ॥ २४ ॥
संरब्धं सात्यकिं प्राह संक्रुद्धः प्रहसन्निव ।

सात्वतवंशी सात्यकिके इस प्रकार कठोर वचन कहकर आक्षेप करनेपर धृष्टद्युम्न अत्यन्त कुपित हो उठे । फिर वे भी क्रोधमें भरे हुए सात्यकिसे हँसते हुए-से बोले ॥ २४½ ॥

धृष्टद्युम्न उवाच

श्रूयते श्रूयते चेति क्षम्यते चेति माधव ॥ २५ ॥
सदानार्योऽशुभः साधुं पुरुषं क्षेप्तुमिच्छति ।

धृष्टद्युम्नने कहा—माधव ! मैं तेरी यह बात सुनता हूँ, सुनता हूँ और इसके लिये तुझे क्षमा भी करता हूँ । दुष्ट और अनार्य पुरुष सदा साधु जनोंपर ऐसे ही आक्षेप करनेकी इच्छा रखते हैं ॥ २५½ ॥

क्षमा प्रशस्यते लोके न तु पापोऽर्हति क्षमाम् ॥ २६ ॥
क्षमावन्तं हि पापात्मा जितोऽयमिति मन्यते ।

यद्यपि लोकमें क्षमाभावकी प्रशंसा की जाती है, तथापि पापात्मा मनुष्य कभी क्षमाके योग्य नहीं है; क्योंकि क्षमा कर देनेपर वह पापात्मा क्षमाशील पुरुषको ऐसा समझ लेता है कि 'यह मुझसे हार गया' ॥ २६½ ॥

स त्वं क्षुद्रसमाचारो नीचात्मा पापनिश्चयः ॥ २७ ॥
आकेशाग्रान्नखाग्राच्च वक्तव्यो वक्तुमिच्छसि ।

तू स्वयं ही दुराचारी, नीच और पापपूर्ण विचार रखनेवाला है । नखसे शिखातक पापमें डूबा होनेके कारण निन्दाके योग्य है, तथापि दूसरोंकी निन्दा करना चाहता है ॥ २७½ ॥

यः स भूरिश्रवाश्छिन्नभुजः प्रायगतस्त्वया ॥ २८ ॥
वार्यमाणेन हि हतस्ततः पापतरं नु किम् ।

भूरिश्रवाकी बाँह काट डाली गयी थी । वे आमरण उपवासका नियम लेकर चुपचाप बैठे हुए थे । उस दशामें सबके मना करनेपर भी जो तूने उनका वध किया, इससे बढ़कर महान् पापकर्म और क्या हो सकता है ? ॥ २८½ ॥

गाहमानो मया द्रोणो दिव्येनास्त्रेण संयुगे ॥ २९ ॥
विसृष्टशस्त्रो निहतः किं तत्र क्रूर दुष्कृतम् ।

ओ क्रूर ! मैंने तो पहलेसे ही युद्धके मैदानमें दिव्यास्त्र-द्वारा द्रोणाचार्यको मथ डाला था । फिर वे हथियार डालकर मारे गये, तो उसमें मैंने कौन-सा पाप कर डाला ॥ २९½ ॥

अयुध्यमानं यस्त्वाजौ तथा प्रायगतं मुनिम् ॥ ३० ॥
छिन्नबाहुं परैर्हन्यात् सात्यके स कथं वदेत् ।

सात्यके ! जो युद्धस्थलमें मुनिवृत्तिका आश्रय ले आमरण उपवासका निश्चय लेकर बैठ गया हो, जो अपने साथ युद्ध न कर रहा हो तथा जिसकी बाँह भी शत्रुओंद्वारा काट डाली गयी हो, ऐसे पुरुषको जो मार सकता है, वह दूसरे-की निन्दा कैसे कर सकता है ? ॥ ३०½ ॥

निहत्य त्वां पदा भूमौ स विकर्षति वीर्यवान् ॥ ३१ ॥
किं तदा न निहंस्येनं भूत्वा पुरुषसत्तमः ।

जिस समय पराक्रमी भूरिश्रवा तुझे लातसे मारकर धरतीपर घसीट रहे थे, तू बड़ा श्रेष्ठ पुरुष था, तो उसी समय उन्हें क्यों नहीं मार डाला ? ॥ ३१½ ॥

त्वया पुनरनार्येण पूर्वं पार्थेन निर्जितः ॥ ३२ ॥
यदा तदा हतः शूरः सौमदत्तिः प्रतापवान् ।

जब अर्जुनने पहले ही प्रतापी शूरवीर सोमदत्तकुमार भूरिश्रवाको परास्त कर दिया, उस समय तूने उनका वध किया । तू कितना नीच है ? ॥ ३२½ ॥

यत्र यत्र तु पाण्डूनां द्रोणो द्रावयते चमूम् ॥ ३३ ॥
किरञ्छरसहस्राणि तत्र तत्र प्रयाम्यहम् ।

द्रोणाचार्य जहाँ-जहाँ पाण्डव-सेनाको खदेड़ते थे, वहीं-वहीं मैं जा पहुँचता और सहस्रों बाणोंकी वर्षा करके उनके छक्के छुड़ा देता था ॥ ३३½ ॥

स त्वमेवंविधं कृत्वा कर्म चाण्डालवत् स्वयम् ॥ ३४ ॥

वक्तुमर्हसि वक्तव्यः कस्मात् त्वं परुषाण्यथ।

जब तू स्वयं ही चाण्डालके समान ऐसा पाप-कर्म करके निन्दाका पात्र बन गया है, तब दूसरेको कटु वचन सुनानेका कैसे अधिकारी हो सकता है ?॥ ३४½ ॥

कर्ता त्वं कर्मणो ह्यस्य नाहं वृष्णिकुलाधम ॥ ३५ ॥
पापानां च त्वमावासः कर्मणां मा पुनर्वद।

वृष्णिकुलकलंक ! तू ही ऐसे-ऐसे पाप करनेवाला और पाप-कर्मोंका भण्डार है, मैं नहीं । अतः फिर ऐसी बातें मुँहसे न निकालना ॥ ३५½ ॥

जोषमास्व न मां भूयो वक्तुमर्हस्यतः परम् ॥ ३६ ॥
अधरोत्तरमेतद्धि यन्मां त्वं वक्तुमर्हसि।

चुपचाप बैठा रह; अब फिर ऐसी बातें तुझे नहीं कहनी चाहिये । तू मुझसे जो कुछ कहना चाहता है, वह तेरी बड़ी भारी नीचता है ॥ ३६½ ॥

अथ वक्ष्यसि मां मौर्ख्याद् भूयः परुषमीदृशम्॥ ३७ ॥
गमयिष्यामि बाणैस्त्वां युधि वैवस्वतक्षयम्।

यदि मूर्खतावश तू पुनः मुझसे ऐसी कठोर बातें कहेगा, तो युद्धमें बाणोंद्वारा मैं अभी तुझे यमलोक भेज दूँगा ॥३७½॥

न चैवं मूर्ख धर्मेण केवलेनैव शक्यते ॥ ३८ ॥
तेषामपि ह्यधर्मेण चेष्टितं शृणु यादृशम्।

ओ मूर्ख ! केवल धर्मसे ही युद्ध नहीं जीता जा सकता । उन कौरवोंकी भी जो अधर्मपूर्ण चेष्टाएँ हुई हैं, उन्हें सुन ले ॥ ३८½ ॥

वञ्चितः पाण्डवः पूर्वमधर्मेण युधिष्ठिरः ॥ ३९ ॥
द्रौपदी च परिक्लिष्टा तथाधर्मेण सात्यके।

सात्यके ! सबसे पहले पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको अधर्मपूर्वक छला गया । फिर अधर्मसे ही द्रौपदीको अपमानित किया गया ॥ ३९½ ॥

प्रव्राजिता वनं सर्वे पाण्डवाः सह कृष्णया ॥ ४० ॥
सर्वस्वमपकृष्टं च तथाधर्मेण बालिश।

ओ मूर्ख ! समस्त पाण्डवोंको जो द्रौपदीके साथ वनमें भेज दिया गया और उनका सर्वस्व छीन लिया गया, वह भी अधर्मका ही कार्य था ॥ ४०½ ॥

अधर्मेणापकृष्टश्च मद्रराजः परेरितः ॥ ४१ ॥
अधर्मेण तथा बालः सौभद्रो विनिपातितः।

शत्रुओंने अधर्मसे ही छलकर मद्रराज शल्यको अपने पक्षमें खींच लिया और सुभद्राके बालक पुत्र अभिमन्युको भी अधर्मसे ही मार डाला था ॥ ४१½ ॥

इतोऽप्यधर्मेण हतो भीष्मः परपुरंजयः ॥ ४२ ॥
भूरिश्रवा ह्यधर्मेण त्वया धर्मविदा हतः।

इस पक्षसे भी अधर्मके द्वारा ही शत्रु-नगरीपर विजय पानेवाले भीष्म मारे गये हैं और तू बड़ा धर्मज्ञ बनता है पर तूने भी अधर्मसे ही भूरिश्रवाका वध किया है ॥ ४२½ ॥

एवं परैराचरितं पाण्डवेयैश्च संयुगे ॥ ४३ ॥
रक्षमाणैर्जयं वीरैर्धर्मज्ञैरपि सात्वत।

सात्वत ! इस प्रकार धर्मके जाननेवाले वीर पाण्डवों तथा शत्रुओंने भी युद्धके मैदानमें अपनी विजयको सुरक्षित रखनेके लिये समय समयपर अधर्मपूर्ण बर्ताव किया है ॥४३½॥

दुर्ज्ञेयः स परो धर्मस्तथाधर्मश्च दुर्विदः ॥ ४४ ॥
युध्यस्व कौरवैः सार्धं मा गाः पितृनिवेशनम्।

उत्तम धर्मका स्वरूप जानना अत्यन्त कठिन है । अधर्म क्या है ? इसे समझना भी सरल नहीं है । अब तू कौरवोंके साथ पूर्ववत् युद्ध कर । मुझसे विवाद करके पितृलोकमें जानेकी तैयारी न कर ॥ ४४½ ॥

संजय उवाच

एवमादीनि वाक्यानि क्रूराणि परुषाणि च ॥ ४५ ॥
श्रावितः सात्यकिः श्रीमानाकम्पित इवाभवत्।
तच्छ्रुत्वा क्रोधताम्राक्षः सात्यकिस्त्वाददे गदाम्॥४६ ॥
विनिःश्वस्य यथा सर्पः प्रणिधाय रथे धनुः।
ततोऽभिपत्य पाञ्चाल्यं संरम्भेणेदमब्रवीत् ॥ ४७ ॥
न त्वां वक्ष्यामि परुषं हनिष्ये त्वां वधक्षमम्।

संजय कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार कितने ही क्रूर एवं कठोर वचन धृष्टद्युम्नने श्रीमान् सात्यकिको सुनाये । उन्हें सुनकर वे क्रोधसे काँपने लगे । उनकी आँखें लाल हो गयीं तथा उन्होंने सर्पके समान लंबी साँस खींचकर धनुषको तो रथपर रख दिया और हाथमें गदा उठा ली । फिर वे धृष्टद्युम्नके पास पहुँचकर बड़े रोषके साथ इस प्रकार बोले—'अब मैं तुझसे कठोर वचन नहीं कहूँगा । तू वधके ही योग्य है, अतः तुझे मार ही डालूँगा' ॥ ४५–४७½ ॥

तमापतन्तं सहसा महाबलममर्षणम् ॥ ४८ ॥
पाञ्चाल्यायाभिसंक्रुद्धमन्तकायान्तकोपमम् ।
चोदितो वासुदेवेन भीमसेनो महाबलः ॥ ४९ ॥
अवप्लुत्य रथात् तूर्णं बाहुभ्यां समवारयत्।

महाबली, अमर्षशील एवं अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए यमराज-तुल्य सात्यकि जब सहसा कालस्वरूप धृष्टद्युम्नकी ओर बढ़े, तब भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे महाबली भीमसेनने तुरंत ही रथसे कूदकर उन्हें दोनों हाथोंसे रोक लिया ॥ ४८-४९½ ॥

द्रवमाणं तथा क्रुद्धं सात्यकिं पाण्डवो बली ॥ ५० ॥
प्रस्पन्दमानमादाय जगाम बलिनं बलात्।

क्रोधपूर्वक आगे बढ़ते और झपटते हुए बलवान् सात्यकिको महाबली पाण्डुपुत्र भीमने थामकर साथ-साथ चलना आरम्भ किया ॥ ५०½ ॥

स्थित्वा विष्टभ्य चरणौ भीमेन शिनिपुङ्गवः ॥ ५१ ॥
निगृहीतः पदे षष्ठे बलेन बलिनां वरः ।

फिर भीमने खड़े होकर अपने दोनों पैर जमा दिये और बलवानोंमें श्रेष्ठ शिनिप्रवर सात्यकिको छठे कदमपर बलपूर्वक काबूमें कर लिया ॥ ५१½ ॥

अवरुह्य रथात् तूर्णं ध्रियमाणं बलीयसा ॥ ५२ ॥
उवाच श्लक्ष्णया वाचा सहदेवो विशाम्पते ।

प्रजानाथ ! इतनेहीमें सहदेव भी तुरंत ही रथसे उतर पड़े और महाबली भीमसेनके द्वारा पकड़े गये सात्यकिसे मधुर वाणीमें इस प्रकार बोले—॥ ५२½ ॥

अस्माकं पुरुषव्याघ्र मित्रमन्यन्न विद्यते ॥ ५३ ॥
परमन्धकवृष्णिभ्यः पञ्चालेभ्यश्च मारिष ।
तथैवान्धकवृष्णीनां तथैव च विशेषतः ॥ ५४ ॥
कृष्णस्य च तथास्मत्तो मित्रमन्यन्न विद्यते ।

'माननीय पुरुषसिंह ! अन्धक और वृष्णिवंशके यादवों तथा पाञ्चालोंसे बढ़कर दूसरा कोई हमलोगोंका मित्र नहीं है । इसी प्रकार अन्धक और वृष्णिवंशके लोगोंका तथा विशेषतः श्रीकृष्णका हमलोगोंसे बढ़कर दूसरा कोई मित्र नहीं है ॥ ५३-५४½ ॥

पञ्चालानां च वार्ष्णेय समुद्रान्तां विचिन्वताम् ॥ ५५ ॥
नान्यदस्ति परं मित्रं यथा पाण्डववृष्णयः ।

'वार्ष्णेय ! पाञ्चाल लोग भी यदि समुद्रतककी सारी पृथ्वी खोज डालें, तो भी उन्हें दूसरा कोई वैसा मित्र नहीं मिलेगा, जैसे उनके लिये पाण्डव और वृष्णिवंशके लोग हैं ॥ ५५½ ॥

स भवानीदृशं मित्रं मन्यते च यथा भवान् ॥ ५६ ॥
भवन्तश्च यथास्माकं भवतां च तथा वयम् ।

'आप भी हमारे ऐसे ही मित्र हैं, जैसा कि आप स्वयं भी मानते हैं । आपलोग जैसे हमारे मित्र हैं, वैसे ही हम भी आपके हैं ॥ ५६½ ॥

स एवं सर्वधर्मज्ञ मित्रधर्ममनुस्मरन् ॥ ५७ ॥
नियच्छ मन्युं पाञ्चाल्यात् प्रशाम्य शिनिपुङ्गव ।
पार्षतस्य क्षम त्वं वै क्षमतां पार्षतश्च ते ॥ ५८ ॥
वयं क्षमयितारश्च किमन्यत्र शमाद् भवेत् ।

'सब धर्मोंके ज्ञाता शिनिप्रवर ! इस प्रकार मित्रधर्मका विचार करके आप धृष्टद्युम्नकी ओरसे अपने क्रोधको रोकें और शान्त हो जायँ, आप धृष्टद्युम्नके और धृष्टद्युम्न आपके अपराधको क्षमा कर लें । हमलोग केवल क्षमा-प्रार्थना करनेवाले हैं; शान्तिसे बढ़कर श्रेष्ठ वस्तु और क्या हो सकती है ?' ॥ ५७-५८½ ॥

प्रशाम्यमाने शैनेये सहदेवेन मारिष ॥ ५९ ॥
पाञ्चालराजस्य सुतः प्रहसन्निदमब्रवीत् ।

माननीय नरेश ! जब सहदेव सात्यकिको इस प्रकार शान्त कर रहे थे, उस समय पाञ्चालराजके पुत्रने हँसकर इस प्रकार कहा—॥ ५९½ ॥

मुञ्च मुञ्च शिनेः पौत्रं भीम युद्धमदान्वितम् ॥ ६० ॥
आसादयतु मामेष धराधरमिवानिलः ।
यावदस्य शितैर्बाणैः संरम्भं विनयाम्यहम् ॥ ६१ ॥
युद्धश्रद्धां च कौन्तेय जीवितं चास्य संयुगे ।

'भीमसेन ! शिनिके इस पौत्रको अपने युद्ध-कौशलपर बड़ा घमंड है । तुम इसे छोड़ दो, छोड़ दो । जैसे हवा पर्वतसे आकर टकराती है, उसी प्रकार यह मुझसे आकर भिड़े तो सही । कुन्तीनन्दन ! मैं अभी तीखे बाणोंसे इसका क्रोध उतार देता हूँ । साथ ही इसका युद्धका हौसला और जीवन भी समाप्त किये देता हूँ ॥ ६०-६१½ ॥

किं नु शक्यं मया कर्तुं कार्यं यदिदमुद्यतम् ॥ ६२ ॥
सुमहत् पाण्डुपुत्राणामायान्त्येते हि कौरवाः ।

'परंतु मैं इस समय क्या कर सकता हूँ । पाण्डवोंका यह दूसरा ही महान् कार्य उपस्थित हो गया । ये कौरव बढ़े चले आ रहे हैं ॥ ६२½ ॥

अथवा फाल्गुनः सर्वान् वारयिष्यति संयुगे ॥ ६३ ॥
अहमप्यस्य मूर्धानं पातयिष्यामि सायकैः ।
मन्यते छिन्नबाहुं मां भूरिश्रवसमाहवे ॥ ६४ ॥
उत्सृजैनमहं चैनमेष वा मां हनिष्यति ।

'अथवा केवल अर्जुन युद्धके मैदानमें इन समस्त कौरवोंको रोकेंगे, तबतक मैं भी अपने बाणोंद्वारा इस सात्यकिका मस्तक काट गिराऊँगा । यह मुझे भी रणभूमिमें कटी हुई बाँहवाला भूरिश्रवा समझता है । तुम छोड़ दो इसे । या तो मैं इसे मार डालूँगा या यह मुझे' ॥ ६३-६४½ ॥

शृण्वन् पाञ्चालवाक्यानि सात्यकिः सर्पवच्छ्वसन् ॥ ६५ ॥
भीमबाह्वन्तरे सक्तो विस्फुरत्यनिशं बली ।

भीमसेनकी भुजाओंमें फँसे हुए बलवान् सात्यकि धृष्टद्युम्नकी बातें सुनकर फुफकारते हुए सर्पके समान लंबी साँस खींचते हुए निरन्तर छूटनेकी चेष्टा कर रहे थे ॥ ६५½ ॥

तौ वृषाविव नर्दन्तौ बलिनौ बाहुशालिनौ ॥ ६६ ॥
त्वरया वासुदेवश्च धर्मराजश्च मारिष ।
यत्नेन महता वीरौ वारयामासतुस्ततः ॥ ६७ ॥

अपनी भुजाओंसे सुशोभित होनेवाले वे दोनों वीर दो साँड़ोंके समान गरज रहे थे । माननीय नरेश ! उस समय भगवान् श्रीकृष्ण और धर्मराज युधिष्ठिरने शीघ्रतापूर्वक महान् प्रयत्न करके उन दोनों वीरोंको रोका ॥ ६६-६७ ॥

निवार्य परमेष्वासौ कोपसंरक्तलोचनौ ।

युयुत्सूनपरान् संख्ये प्रतीयुः क्षत्रियर्षभाः ॥ ६८ ॥

क्रोधसे लाल आँखें किये उन दोनों महान् धनुर्धरोंको रोककर वे क्षत्रियशिरोमणि वीर समरभूमिमें युद्धकी इच्छासे आते हुए शत्रुओंका सामना करनेके लिये चल दिये ॥ ६८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि धृष्टद्युम्नसात्यकिक्रोधेऽष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत नारायणास्त्रमोक्षपर्वमें धृष्टद्युम्न और सात्यकिका क्रोधविषयक एक सौ अट्ठानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९८ ॥

नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अश्वत्थामाके द्वारा नारायणास्त्रका प्रयोग, राजा युधिष्ठिरका खेद, भगवान् श्रीकृष्णके बताये हुए उपायसे सैनिकोंकी रक्षा, भीमसेनका वीरोचित उद्गार और उनपर उस अस्त्रका प्रबल आक्रमण

संजय उवाच

ततः स कदनं चक्रे रिपूणां द्रोणनन्दनः ।
युगान्ते सर्वभूतानां कालसृष्ट इवान्तकः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर द्रोणकुमार अश्वत्थामाने प्रलयकालमें कालसे प्रेरित हो समस्त प्राणियोंका संहार करनेवाले यमराजके समान शत्रुओंका विनाश आरम्भ किया॥

ध्वजद्रुमं शस्त्रशृङ्गं हतनागमहाशिलम् ।
अश्वकिंपुरुषाकीर्णं शरासनलतावृतम् ॥ २ ॥
क्रव्यादपक्षिसंघुष्टं भूतयक्षगणाकुलम् ।
निहत्य शात्रवान् भल्लैः सोऽचिनोद् देहपर्वतम्॥३॥

उसने शत्रु-सैनिकोंको भल्लोंसे मार-मारकर उनकी लाशोंका पहाड़-जैसा ढेर लगा दिया । ध्वजाएँ उस पहाड़के वृक्ष, शस्त्र उसके शिखर और मारे गये हाथी उसकी बड़ी-बड़ी शिलाओंके समान थे । घोड़े मानो उस पर्वतपर निवास करनेवाले किम्पुरुष थे । धनुष लताओंके समान फैलकर उस-पर छाये हुए थे । मांसभक्षी जीव-जन्तु मानो वहाँ चहचहाने-वाले पक्षी थे और भूतोंके समुदाय उसपर विहार करनेवाले यक्ष जान पड़ते थे ॥ २-३ ॥

ततो वेगेन महता विनद्य स नरर्षभः ।
प्रतिज्ञां श्रावयामास पुनरेव तवात्मजम् ॥ ४ ॥

नरश्रेष्ठ अश्वत्थामाने फिर बड़े वेगसे गर्जना करके आपके पुत्रको पुनः अपनी प्रतिज्ञा सुनायी ॥ ४ ॥

यस्माद् युध्यन्तमाचार्यं धर्मकञ्चुकमास्थितः ।
मुञ्च शस्त्रमिति प्राह कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ५ ॥
तस्मात् सम्पश्यतस्तस्य द्रावयिष्यामि वाहिनीम् ।
विद्राव्य सर्वान् हन्तास्मि जाल्मं पाञ्चाल्यमेव तु॥६॥

'धर्मका चोला पहने हुए कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने युद्ध-परायण आचार्यसे 'शस्त्र त्याग दीजिये' ऐसा कहा था और शस्त्र रखवा दिया; इसलिये मैं उनके देखते-देखते उनकी सारी सेनाको खदेड़ दूँगा और समस्त सैनिकोंको भगाकर उस नीच पाञ्चाल-पुत्रको मार डालूँगा ॥ ५-६ ॥

सर्वानेतान् हनिष्यामि यदि योत्स्यन्ति मां रणे ।
सत्यं ते प्रतिजानामि परिवर्तय वाहिनीम् ॥ ७ ॥

'यदि ये रणभूमिमें मेरे साथ युद्ध करेंगे तो मैं इन सबका वध कर डालूँगा, यह मैं तुमसे सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ । अतः तुम अपनी सेनाको लौटाओ' ॥ ७ ॥

तच्छ्रुत्वा तव पुत्रस्तु वाहिनीं पर्यवर्तयत् ।
सिंहनादेन महता व्यपोह्य सुमहद् भयम् ॥ ८ ॥

यह सुनकर आपके पुत्रने महान् सिंहनादके द्वारा अपनी सेनाका भारी भय दूर करके फिर उसे लौटाया ॥ ८ ॥

ततः समागमो राजन् कुरुपाण्डवसेनयोः ।
पुनरेवाभवत् तीव्रः पूर्णसागरयोरिव ॥ ९ ॥

राजन् ! फिर भरे हुए दो महासागरोंके समान कौरव-पाण्डव-सेनाओंमें घोर संग्राम आरम्भ हो गया ॥ ९ ॥

संरब्धा हि स्थिरीभूता द्रोणपुत्रेण कौरवाः ।
उदग्राः पाण्डुपञ्चाला द्रोणस्य निधनेन च ॥ १० ॥

द्रोणपुत्रसे आश्वासन पाकर कौरव-सैनिक स्थिर हो युद्धके लिये रोष और उत्साहमें भर गये थे । उधर द्रोणाचार्यके मारे जानेसे पाण्डव और पाञ्चाल वीर पहलेसे ही उद्धत हो रहे थे ॥ १० ॥

तेषां परमहृष्टानां जयमात्मनि पश्यताम् ।
संरब्धानां महावेगः प्रादुरासीद् विशाम्पते ॥ ११ ॥

प्रजानाथ ! वे अत्यन्त हर्षोत्फुल्ल होकर अपनी ही विजय देख रहे थे । रोषावेषमें भरे हुए उन सैनिकोंका महान् वेग प्रकट हुआ ॥ ११ ॥

यथा शिलोच्चये शैलः सागरे सागरो यथा ।
प्रतिहन्येत राजेन्द्र तथाऽऽसन् कुरुपाण्डवाः॥ १२ ॥

राजेन्द्र ! जैसे एक पहाड़ दूसरे पहाड़से टकरा जाय तथा एक समुद्र दूसरे समुद्रसे टक्कर ले, वही अवस्था कौरव-पाण्डव योद्धाओंकी भी थी ॥ १२ ॥

ततः शङ्खसहस्राणि भेरीणामयुतानि च ।
अवादयन्त संहृष्टाः कुरुपाण्डवसैनिकाः ॥ १३ ॥

तदनन्तर हर्षमग्न हुए कौरव पाण्डव-सैनिक सहस्रों शङ्ख और हजारों रणभेरियाँ बजाने लगे ॥ १३ ॥

यथा निर्मथ्यमानस्य सागरस्य तु निःस्वनः ।
अभवत् तव सैन्यस्य सुमहानद्भुतोपमः ॥ १४ ॥

जैसे मथे जाते हुए समुद्रका महान् शब्द सब ओर गूँज उठा था, उसी प्रकार आपकी सेनाका महान् कोलाहल भी अद्भुत एवं अनुपम था ॥ १४ ॥

प्रादुश्चक्रे ततो द्रौणिरस्त्रं नारायणं तदा ।
अभिसंधाय पाण्डूनां पञ्चालानां च वाहिनीम् ॥१५॥
प्रादुरासंस्ततो बाणा दीप्ताग्राः खे सहस्रशः ।
पाण्डवान् क्षपयिष्यन्तो दीप्तास्याः पन्नगा इव॥ १६ ॥

तत्पश्चात् द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने पाण्डवों और पाञ्चालोंकी सेनाको लक्ष्य करके नारायणास्त्र प्रकट किया । उससे आकाशमें हजारों बाण प्रकट हुए । उन सबके अग्रभाग प्रज्वलित हो रहे थे । वे सभी बाण प्रज्वलित मुखवाले सर्पोंके समान आकर पाण्डव-सैनिकोंका विनाश करनेको उद्यत थे ॥



ते दिशः खं च सैन्यं च समावृण्वन् महाहवे ।
मुहूर्ताद् भास्करस्येव लोके राजन् गभस्तयः॥ १७ ॥

राजन् ! जैसे दो ही घड़ीमें सूर्यकी किरणें सारे संसारमें फैल जाती हैं, उसी प्रकार उस महासमरमें वे बाण सम्पूर्ण दिशाओं, आकाश और समस्त सेनाओंमें छा गये ॥ १७ ॥

तथापरे द्योतमाना ज्योतींषीवामलाम्बरे ।
प्रादुरासन् महाराज कार्ष्णायसमया गुडाः ॥ १८ ॥

महाराज ! इसी प्रकार वहाँ निर्मल आकाशमें प्रकाशित होनेवाले ज्योतिर्मय ग्रह-नक्षत्रोंके समान काले लोहेके जलते हुए गोले भी प्रकट हो-होकर गिरने लगे ॥ १८ ॥

चतुश्चक्रा द्विचक्राश्च शतघ्न्यो बहुला गदाः ।
चक्राणि च क्षुरान्तानि मण्डलानीव भास्वतः॥ १९ ॥

फिर चार या दो पहियोंवाली शतघ्नियाँ (तोपें), बहुत-सी गदाएँ तथा जिनके प्रान्तभागमें छुरे लगे हुए थे, ऐसे सूर्यमण्डलके समान कितने ही चक्र प्रकट होने लगे ॥

शस्त्राकृतिभिराकीर्णमतीव पुरुषर्षभ ।
दृष्ट्वान्तरिक्षमाविग्नाः पाण्डुपाञ्चालसृञ्जयाः ॥ २० ॥

पुरुषश्रेष्ठ ! उस समय आकाशको विभिन्न शस्त्रोंके आकारवाले पदार्थोंसे अत्यन्त व्याप्त हुआ-सा देख पाण्डव, पाञ्चाल और सृंजय योद्धा उद्विग्न हो उठे ॥ २० ॥

यथा यथा ह्ययुध्यन्त पाण्डवानां महारथाः ।
तथा तथा तदस्त्रं वै व्यवर्धत जनाधिप ॥ २१ ॥

जनेश्वर ! पाण्डव-महारथी जैसे-जैसे युद्ध करते थे, वैसे-ही-वैसे उस अस्त्रका वेग बढ़ता जाता था ॥ २१ ॥

वध्यमानास्तदास्त्रेण तेन नारायणेन वै ।
दह्यमानानलेनेव सर्वतोऽभ्यर्दिता रणे ॥ २२ ॥

उस नारायणास्त्रसे घायल हुए सैनिक रणभूमिमें ऐसे पीड़ित हुए मानो सब ओरसे आगमें झुलस रहे हों ॥२२॥

यथा हि शिशिरापाये दहेत् कक्षं हुताशनः ।
तथा तदस्त्रं पाण्डूनां ददाह ध्वजिनीं प्रभो ॥ २३ ॥

प्रभो ! जैसे सर्दी बीतनेपर गर्मीमें लगी हुई आग सूखे काठ या जंगलको जला डाले, उसी प्रकार वह अस्त्र पाण्डव-सेनाको भस्म करने लगा ॥ २३ ॥

आपूर्यमाणेनास्त्रेण सैन्ये क्षीयति च प्रभो ।
जगाम परमं त्रासं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २४ ॥

राजन् ! जब वह अस्त्र सब ओर व्याप्त हो गया और उसके द्वारा पाण्डव-सेना क्षीण होने लगी, तब धर्मपुत्र युधिष्ठिरको बड़ा भय हुआ ॥ २४ ॥

द्रवमाणं तु तत् सैन्यं दृष्ट्वा विगतचेतनम् ।
मध्यस्थतां च पार्थस्य धर्मपुत्रोऽब्रवीदिदम् ॥ २५ ॥

उन्होंने अपनी उस सेनाको जब अचेत होकर भागती और कुन्तीपुत्र अर्जुनको तटस्थ भावसे खड़ा देखा, तब इस प्रकार कहा— ॥ २५ ॥

धृष्टद्युम्न पलायस्व सह पाञ्चालसेनया ।
सात्यके त्वं च गच्छस्व वृष्ण्यन्धकवृतो गृहान् ॥२६॥

'धृष्टद्युम्न ! तुम पाञ्चालोंकी सेनाके साथ भाग जाओ । सात्यके ! तुम भी वृष्णिवंशी और अन्धकवंशी वीरोंको साथ लेकर घर चले जाओ ॥ २६ ॥

वासुदेवोऽपि धर्मात्मा करिष्यत्यात्मनः क्षमम् ।
श्रेयो ह्युपदिशत्येष लोकस्य किमुतात्मनः ॥ २७ ॥



अश्वत्थामाके द्वारा पाण्डव-सेनापर नारायणास्त्रका प्रयोग

'धर्मात्मा भगवान् श्रीकृष्ण भी अपने लिये जो उचित समझेंगे, करेंगे। ये सारे जगत्के कल्याणका उपदेश देते हैं, फिर अपना भला क्यों नहीं करेंगे ? ॥ २७ ॥

संग्रामस्तु न कर्तव्यः सर्वसैन्यान् ब्रवीमि वः।
अहं हि सह सोदर्यैः प्रवेक्ष्ये हव्यवाहनम् ॥ २८ ॥

'मैं तुम सभी सैनिकोंसे कह रहा हूँ; कोई भी युद्ध न करे। अब मैं भाइयोंके साथ अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा ॥

भीष्मद्रोणार्णवं तीर्त्वा संग्रामे भीरुदुस्तरे।
विमज्जिष्यामि सलिले सगणो द्रौणिगोष्पदे ॥ २९ ॥

'कायरोंके लिये दुस्तर संग्राममें भीष्म और द्रोणाचार्य-रूपी महासागरको पार करके मैं सगे-सम्बन्धियोंके साथ अश्वत्थामारूपी गायकी खुरीके जलमें डूब जाऊँगा ॥ २९ ॥

कामः सम्पद्यतामस्य बीभत्सोराशु मां प्रति।
कल्याणवृत्तिराचार्यो मया युधि निपातितः ॥ ३० ॥

'अर्जुनकी मेरे प्रति जो शुभ कामना है, वह शीघ्र पूरी हो जानी चाहिये; क्योंकि सदा अपने कल्याणमें संलग्न रहनेवाले आचार्यको मैंने युद्धमें मरवा दिया है ॥ ३० ॥

येन बालः स सौभद्रो युद्धानामविशारदः।
समर्थैर्बहुभिः क्रूरैर्घातितो नाभिपालितः ॥ ३१ ॥

'जिन्होंने युद्धकौशलसे रहित बालक सुभद्राकुमारको क्रूर स्वभाववाले बहुसंख्यक शक्तिशाली महारथियोंद्वारा मरवा दिया और उसकी रक्षा नहीं की ॥ ३१ ॥

येनाविब्रुवता प्रश्नं तथा कृष्णा सभां गता।
उपेक्षिता सपुत्रेण दासभावं नियच्छती ॥ ३२ ॥

'पुत्रसहित जिन्होंने सभामें लायी गयी द्रौपदीके प्रश्नका उत्तर न देकर उसके प्रति उपेक्षा दिखायी, उस समय वह बेचारी हमारे दासभावके निवारणका प्रयत्न कर रही थी ॥

(रक्षणे च महान् यत्नः सैन्धवस्य कृतो युधि।
अर्जुनस्य विघातार्थं प्रतिज्ञा येन रक्षिता ॥

'जिन्होंने अर्जुनके विनाशके लिये युद्धमें सिंधुराजकी रक्षाके निमित्त महान् प्रयत्न किया और अपनी प्रतिज्ञा रक्खी ॥

व्यूहद्वारि वयं चैव धृता येन जिगीषवः।
वारितं च महत् सैन्यं प्रविशत् तद् यथाबलम् ॥)

'हमलोग विजयकी अभिलाषासे आगे बढ़ना चाहते थे; किंतु जिन्होंने हमें व्यूहके दरवाजेपर ही रोक रक्खा था, यथाशक्ति उसके भीतर प्रवेश करनेकी चेष्टामें लगी हुई हमारी विशाल सेनाको भी जिन्होंने रोक ही दिया था ॥

जिघांसुर्धार्तराष्ट्रश्च श्रान्तेष्वश्वेषु फाल्गुनम्।
कवचेन तथा गुप्तो रक्षार्थं सैन्धवस्य च ॥ ३३ ॥

'अर्जुनके घोड़े जब थक गये थे और धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन जब अर्जुनके वधकी इच्छासे उनपर आक्रमण कर रहा था, उस समय जिन्होंने उसकी तथा सिंधुराजकी रक्षाके लिये उसे दिव्य कवचद्वारा सुरक्षित कर दिया था ॥ ३३ ॥

येन ब्रह्मास्त्रविदुषा पञ्चालाः सत्यजिन्मुखाः।
कुर्वाणा मज्जये यत्नं समूला विनिपातिताः ॥ ३४ ॥

'ब्रह्मास्त्रको जाननेवाले जिन आचार्यदेवने मेरी विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले सत्यजित् आदि पाञ्चालवीरोंको समूल नष्ट कर दिया ॥ ३४ ॥

येन प्रव्राज्यमानाश्च राज्याद् वयमधर्मतः।
निवार्यमाणा नु वयं नानुयातास्तदैषिणः ॥ ३५ ॥

'जब कौरव अधर्मपूर्वक हमें राज्यसे निर्वासित कर रहे थे, तब जिन्होंने हमें रोकने (शान्त करने) की ही चेष्टा की थी; किंतु उनका हित चाहनेवाले हमलोगोंका उस समय उन्होंने साथ नहीं दिया था ॥ ३५ ॥

योऽसावत्यन्तमस्मासु कुर्वाणः सौहृदं परम्।
हतस्तदर्थे मरणं गमिष्यामि सबान्धवः ॥ ३६ ॥

'जो (इस प्रकार) हमलोगोंपर अत्यन्त स्नेह करनेवाले थे वे द्रोणाचार्य मारे गये हैं; अतः उनके लिये अपने भाइयों-सहित मैं भी मर जाऊँगा' ॥ ३६ ॥

एवं ब्रुवति कौन्तेये दाशार्हस्त्वरितस्ततः।
निवार्य सैन्यं बाहुभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३७ ॥

जब कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय दशार्हकुलभूषण भगवान् श्रीकृष्णने तुरंत ही अपनी दोनों भुजाओंके संकेतसे सारी सेनाको रोककर इस प्रकार कहा—॥ ३७ ॥

शीघ्रं न्यस्यत शस्त्राणि वाहेभ्यश्चावरोहत।
एष योगोऽत्र विहितः प्रतिषेधे महात्मना ॥ ३८ ॥

'योद्धाओ ! अपने अस्त्र-शस्त्र शीघ्र नीचे डाल दो और सवारियोंसे उतर जाओ। परमात्मा नारायणने इस अस्त्रके निवारणके लिये यही उपाय निश्चित किया है ॥ ३८ ॥

द्विपाश्वस्यन्दनेभ्यश्च क्षितिं सर्वेऽवरोहत।
एवमेतन्न वो हन्यादस्त्रं भूमौ निरायुधान् ॥ ३९ ॥

'तुम सब लोग हाथी, घोड़े और रथोंसे उतरकर पृथ्वी-पर आ जाओ। इस प्रकार भूमिपर निहत्थे खड़े हुए तुम-लोगोंको यह अस्त्र नहीं मार सकेगा ॥ ३९ ॥

यथा यथा हि युध्यन्ते योधा ह्यस्त्रमिदं प्रति।
तथा तथा भवन्त्येते कौरवा बलवत्तराः ॥ ४० ॥

'हमारे योद्धा जैसे-जैसे इस अस्त्रके विरुद्ध युद्ध करते हैं, वैसे-ही-वैसे ये कौरव अत्यन्त प्रबल होते जा रहे हैं ॥ ४० ॥

निक्षेप्स्यन्ति च शस्त्राणि वाहनेभ्योऽवरुह्य ये।
(येऽञ्जलिं कुर्वते वीरा नमन्ति च विवाहनाः।)
तान्नैतदस्त्रं संग्रामे निहनिष्यति मानवान् ॥ ४१ ॥

'जो लोग अपने वाहनोंसे उतरकर हथियार नीचे डाल

देंगे और जो वीर वाहनरहित हो इसके सामने हाथ जोड़कर नमस्कार करेंगे, उन मनुष्योंको संग्रामभूमिमें यह अस्त्र नहीं मारेगा ॥ ४१ ॥

ये त्वेतत्प्रतियोत्स्यन्ति मनसापीह केचन।
निहनिष्यति तान् सर्वान् रसातलगतानपि ॥ ४२ ॥

'जो कोई मनसे भी इस अस्त्रका सामना करेंगे, वे रसातलमें चले गये हों तो भी यह अस्त्र वहाँ पहुँचकर उन सबको मार डालेगा' ॥ ४२ ॥

ते वचस्तस्य तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य भारत।
ईषुः सर्वे समुत्स्रष्टुं मनोभिः करणेन च ॥ ४३ ॥

भारत ! भगवान् वासुदेवका यह वचन सुनकर सब योद्धाओंने अन्यान्य इन्द्रियों तथा मनसे भी अस्त्रको त्याग देनेका विचार कर लिया ॥ ४३ ॥

तत उत्स्रष्टुकामांस्तानस्त्राण्यालक्ष्य पाण्डवः।
भीमसेनोऽब्रवीद् राजन्निदं संहर्षयन् वचः ॥ ४४ ॥

राजन् ! तब उन सबको अस्त्र त्यागनेके लिये उद्यत हुआ देख पाण्डुनन्दन भीमसेनने उनमें हर्ष और उत्साह पैदा करते हुए इस प्रकार कहा—॥ ४४ ॥

न कथंचन शस्त्राणि मोक्तव्यानीह केनचित्।
अहमावारयिष्यामि द्रोणपुत्रास्त्रमाशुगैः ॥ ४५ ॥

'किसी भी वीरको किसी तरह भी अपने हथियार नहीं डालने चाहिये। मैं अपने शीघ्रगामी बाणोंद्वारा द्रोणपुत्रके अस्त्रका निवारण करूँगा ॥ ४५ ॥

गदयाप्यनया गुर्व्या हेमविग्रहया रणे।
कालवत् प्रहरिष्यामि द्रौणेरस्त्रं विशातयन् ॥ ४६ ॥

'इस सुवर्णमयी भारी गदासे रणभूमिमें द्रोणपुत्रके अस्त्रोंको चूर-चूर करनेके लिये मैं कालके समान प्रहार करूँगा ॥

न हि मे विक्रमे तुल्यः कश्चिदस्ति पुमानिह।
यथैव सवितुस्तुल्यं ज्योतिरन्यन्न विद्यते ॥ ३७ ॥

'इस संसारमें मेरे पराक्रमकी समानता करनेवाला दूसरा कोई पुरुष नहीं है। ठीक वैसे ही, जैसे सूर्यके समान दूसरा कोई ज्योतिर्मय ग्रह नहीं है ॥ ४७ ॥

पश्यतेमौ हि मे बाहू नागराजकरोपमौ।
समर्थौ पर्वतस्यापि शैशिरस्य निपातने ॥ ४८ ॥

'गजराजके शुण्डोंके समान मोटी मेरी इन भुजाओंको देखो तो सही, ये हिमालयपर्वतको भी धराशायी करनेमें समर्थ हैं ॥ ४८ ॥

नागायुतसमप्राणो ह्यहमेको नरेष्विह।
शक्रो यथाप्रतिद्वन्द्वो दिवि देवेषु विश्रुतः ॥ ४९ ॥

'यहाँके मनुष्योंमें एक मैं ही ऐसा हूँ, जिसमें दस हजार हाथियोंके समान बल है। जैसे स्वर्गलोक और देवताओंमें केवल इन्द्र ही ऐसे हैं, जिनका दूसरा कोई प्रतिद्वन्द्वी योद्धा नहीं है ॥ ४९ ॥

अद्य पश्यत मे वीर्यं बाह्वोः पीनांसयोर्युधि।
ज्वलमानस्य दीप्तस्य द्रौणेरस्त्रस्य वारणे ॥ ५० ॥

'आज युद्धस्थलमें मोटे कंधेवाली मेरी इन दोनों भुजाओंका बल देखो कि ये किस प्रकार अश्वत्थामाके प्रज्वलित एवं दीप्तिमान् अस्त्रके निवारणमें समर्थ होती हैं ॥ ५० ॥

यदि नारायणास्त्रस्य प्रतियोद्धा न विद्यते।
अद्यैतत् प्रतियोत्स्यामि पश्यत्सु कुरुपाण्डुषु ॥ ५१ ॥

'यदि इस नारायणास्त्रका सामना करनेवाला दूसरा कोई योद्धा अबतक नहीं हुआ है, तो आज मैं कौरवों और पाण्डवोंके देखते-देखते इसका सामना करूँगा ॥ ५१ ॥

अर्जुनार्जुन बीभत्सो न न्यस्यं गाण्डिवं त्वया।
शशाङ्कस्येव ते पङ्को नैर्मल्यं पातयिष्यति ॥ ५२ ॥

'अर्जुन ! अर्जुन ! बीभत्सो ! कहीं तुम भी न अपने गाण्डीव धनुषको नीचे डाल देना; नहीं तो तुममें भी चन्द्रमाके समान कलंक लग जायगा और वह तुम्हारी निर्मलताको नष्ट कर देगा' ॥ ५२ ॥

अर्जुन उवाच

भीम नारायणास्त्रे मे गोषु च ब्राह्मणेषु च।
एतेषु गाण्डिवं न्यस्यमेतद्धि व्रतमुत्तमम् ॥ ५३ ॥

अर्जुन बोले—भैया भीमसेन ! नाराणास्त्र, गौ और ब्राह्मण—इनके समक्ष गाण्डीव धनुषको नीचे डाल दिया जाय; यही मेरा उत्तम व्रत है ॥ ५३ ॥

एवमुक्तस्ततो भीमो द्रोणपुत्रमरिंदमम्।
अभ्ययान्मेघघोषेण रथेनादित्यवर्चसा ॥ ५४ ॥

अर्जुनके ऐसा कहनेपर भीमसेन अकेले ही सूर्यके समान तेजस्वी तथा मेघगर्जनाके समान गम्भीर घोष करनेवाले रथके द्वारा शत्रुदमन द्रोणपुत्रका सामना करनेके लिये चल दिये ॥

(कम्पयन् मेदिनीं सर्वां त्रासयंश्च चमूं तव।
शङ्खशब्दं महत् कृत्वा भुजशब्दं च पाण्डवः ॥

पाण्डुपुत्र भीम बड़े जोरसे शङ्ख बजाकर और भुजाओंद्वारा ताल ठोंककर सारी पृथ्वीको कँपाते और आपकी सेनाको भयभीत करते हुए चले ॥

तस्य शङ्खस्वनं श्रुत्वा बाहुशब्दं च तावकाः।
समन्तात् कोष्ठकीकृत्य शरव्रातैरवाकिरन् ॥)

उनकी शङ्खध्वनि तथा भुजाओंद्वारा ताल ठोंकनेका शब्द सुनकर आपके सैनिकोंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया और उनपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥

स एनमिषुजालेन लघुत्वाच्छीघ्रविक्रमः।
निमेषमात्रेणासाद्य कुन्तीपुत्रोऽभ्यवाकिरत् ॥ ५५ ॥

शीघ्रतापूर्वक पराक्रम प्रकट करनेवाले कुन्तीकुमार भीमसेनने पलक मारते-मारते अश्वत्थामाके पास पहुँचकर बड़ी फुर्तीसे अपने बाणोंका जाल-सा बिछाते हुए उसे ढक दिया॥

ततो द्रौणिः प्रहस्यैनं द्रवन्तमभिभाष्य च ।
अवाकिरत् प्रदीप्ताग्रैः शरैस्तैरभिमन्त्रितैः ॥ ५६ ॥

तब अश्वत्थामाने धावा करनेवाले भीमसेनसे हँसकर बात की और उनपर नारायणास्त्रसे अभिमन्त्रित प्रज्वलित अग्रभागवाले बाणोंकी झड़ी लगा दी ॥ ५६ ॥

पन्नगैरिव दीप्तास्यैर्वमद्भिर्ज्वलनं रणे ।
अवकीर्णोऽभवत् पार्थः स्फुलिङ्गैरिव काञ्चनैः ॥ ५७ ॥

रणभूमिमें वे बाण प्रज्वलित मुखवाले सर्पोंके समान आग उगल रहे थे; कुन्तीकुमार भीम उनसे ढक गये, मानो उनके ऊपर स्वर्णमयी चिनगारियाँ पड़ रही हों ॥५७॥

तस्य रूपमभूद् राजन् भीमसेनस्य संयुगे ।
खद्योतैरावृतस्येव पर्वतस्य दिनक्षये ॥ ५८ ॥

राजन् ! उस समय युद्धस्थलमें भीमसेनका रूप संध्याके समय जुगुनुओंसे भरे हुए पर्वतके समान प्रतीत हो रहा था॥

तदस्त्रं द्रोणपुत्रस्य तस्मिन् प्रतिसमस्यति ।
अवर्धत महाराज यथाग्निरनिलोद्धतः ॥ ५९ ॥

महाराज ! भीमसेन जब द्रोणपुत्रके उस अस्त्रके सामने बाण मारने लगे, तब वह हवाका सहारा पाकर धधक उठने वाली आगके समान प्रचण्ड वेगसे बढ़ने लगा ॥ ५९ ॥

विवर्धमानमालक्ष्य तदस्त्रं भीमविक्रमम् ।
पाण्डुसैन्यमृते भीमं सुमहद् भयमाविशत्॥ ६० ॥

उस अस्त्रको बढ़ते देख भयंकर पराक्रमी भीमसेनको छोड़कर शेष सारी पाण्डवसेनापर महान् भय छा गया ॥६०॥

ततः शस्त्राणि ते सर्वे समुत्सृज्य महीतले ।
अवारोहन् रथेभ्यश्च हस्त्यश्वेभ्यश्च सर्वशः ॥ ६१ ॥

तब वे समस्त सैनिक अपने अस्त्र-शस्त्रोंको धरतीपर डालकर रथ, हाथी और घोड़े आदि सभी वाहनोंसे उतर गये॥

तेषु निक्षिप्तशस्त्रेषु वाहनेभ्यश्च्युतेषु च ।
तदस्त्रवीर्यं विपुलं भीममूर्धन्यथापतत् ॥ ६२ ॥

उनके हथियार डाल देने और वाहनोंसे उतर जानेपर उस अस्त्रकी विशाल शक्ति केवल भीमसेनके माथेपर आ पड़ी॥

हाहाकृतानि भूतानि पाण्डवाश्च विशेषतः ।
भीमसेनमपश्यन्त तेजसा संवृतं तथा ॥ ६३ ॥

तब सभी प्राणी विशेषतः पाण्डव हाहाकार कर उठे । उन्होंने देखा, भीमसेन उस अस्त्रके तेजसे आच्छादित हो गये हैं ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि पाण्डवसैन्यास्त्रत्यागे नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत नारायणास्त्रमोक्षपर्वमें पाण्डव-सेनाका अस्त्र-त्यागविषयक एक सौ निन्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९९ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ४½ श्लोक मिलाकर कुल ६७½ श्लोक हैं)

द्विशततमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका भीमसेनको रथसे उतारकर नारायणास्त्रको शान्त करना, अश्वत्थामाका उसके पुनः प्रयोगमें अपनी असमर्थता बताना तथा अश्वत्थामाद्वारा धृष्टद्युम्नकी पराजय, सात्यकिका दुर्योधन, कृपाचार्य, कृतवर्मा, कर्ण और वृषसेन—इन छः महारथियोंको भगा देना फिर अश्वत्थामाद्वारा मालव, पौरव और चेदिदेशके युवराजका वध एवं भीम और अश्वत्थामाका घोर युद्ध तथा पाण्डवसेनाका पलायन

संजय उवाच

भीमसेनं समाकीर्णं दृष्ट्वास्त्रेण धनंजयः ।
तेजसः प्रतिघातार्थं वारुणेन समावृणोत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! भीमसेनको उस अस्त्रसे घिरा हुआ देख अर्जुनने उन्हें उसके तेजका निवारण करनेके लिये वारुणास्त्रसे ढक दिया ॥ १ ॥

नालक्षयत तत् कश्चिद् वारुणास्त्रेण संवृतम् ।
अर्जुनस्य लघुत्वाच्च संवृतत्वाच्च तेजसः ॥ २ ॥

एक तो अर्जुनने बड़ी फुर्ती की थी, दूसरे भीमसेनपर उस अस्त्रके तेजका आवरण था, इससे कोई भी यह देख न सका कि भीमसेन वारुणास्त्रसे घिरे हुए हैं ॥ २ ॥

साश्वसूतरथो भीमो द्रोणपुत्रास्त्रसंवृतः ।
अग्नावग्निरिव न्यस्तो ज्वालामाली सुदुर्दृशः ॥ ३ ॥

घोड़े, सारथि और रथसहित भीमसेन द्रोणपुत्रके उस अस्त्रसे ढककर आगके भीतर रक्खी हुई आगके समान प्रतीत होते थे । वे ज्वालाओंसे इतने घिर गये थे कि उनकी ओर देखना कठिन हो रहा था ॥ ३ ॥

यथा रात्रिक्षये राजन् ज्योतींष्यस्तागिरिं प्रति ।
समापेतुस्तथा बाणा भीमसेनरथं प्रति ॥ ४ ॥

राजन् ! जैसे रात्रि समाप्त होनेके समय सारे ज्योतिर्मय ग्रह-नक्षत्र अस्ताचलकी ओर चले जाते हैं, उसी प्रकार अश्वत्थामाके बाण भीमसेनके रथपर गिरने लगे ॥ ४ ॥

स हि भीमो रथश्चास्य हयाः सूतश्च मारिष ।
संवृता द्रोणपुत्रेण पावकान्तर्गताऽभवन् ॥ ५ ॥

माननीय नरेश ! भीमसेन तथा उनके रथ, घोड़े और सारथि—ये सभी अश्वत्थामाके अस्त्रसे आच्छादित हो आगकी लपटोंके भीतर आ गये थे ॥ ५ ॥

यथा दग्ध्वा जगत् कृत्स्नं समये सचराचरम् ।
गच्छेद् वह्निर्विभोरास्यं तथास्त्रं भीममावृणोत्॥ ६ ॥

जैसे प्रलयकालमें संवर्तक अग्नि चराचर प्राणियों सहित सम्पूर्ण जगत्को भस्म करके परमात्माके मुखमें प्रवेश कर जाती है, उसी प्रकार उस अस्त्रने भीमसेनको चारों ओरसे ढक लिया था ॥ ६ ॥

सूर्यमग्निः प्रविष्टः स्याद् यथा चाग्निं दिवाकरः ।
तथा प्रविष्टं तत् तेजो न प्राज्ञायत पाण्डवः ॥ ७ ॥

जैसे सूर्यमें अग्नि और अग्निमें सूर्य प्रविष्ट हुए हों, उसी प्रकार उस अस्त्रका तेज तेजस्वी भीमसेनपर छा गया था; इसलिये पाण्डुपुत्र भीमसेन किसीको दिखायी नहीं पड़ते थे ॥ ७ ॥

विकीर्णमस्त्रं तद् दृष्ट्वा तथा भीमरथं प्रति ।
उदीर्यमाणं द्रौणिं च निष्प्रतिद्वन्द्वमाहवे ॥ ८ ॥
सर्वसैन्यं च पाण्डूनां न्यस्तशस्त्रमचेतनम् ।
युधिष्ठिरपुरोगांश्च विमुखांस्तान् महारथान् ॥ ९ ॥
अर्जुनो वासुदेवश्च त्वरमाणौ महाद्युती ।
अवप्लुत्य रथाद् वीरौ भीममाद्रवतां ततः ॥ १० ॥

वह अस्त्र भीमसेनके रथपर छा गया था । युद्धस्थलमें कोई प्रतिद्वन्द्वी योद्धा न होनेसे द्रोणपुत्र अश्वत्थामा प्रबल होता जा रहा था । पाण्डवोंकी सारी सेना हथियार डालकर (भयसे) अचेत हो गयी थी और युधिष्ठिर आदि महारथी युद्धसे विमुख हो गये थे । यह सब देखकर महातेजस्वी अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्ण दोनों वीर बड़ी उतावलीके साथ रथसे कूदकर भीमसेनकी ओर दौड़े ॥ ८–१० ॥

ततस्तद् द्रोणपुत्रस्य तेजोऽस्त्रबलसम्भवम् ।
विगाह्य तौ सुबलिनौ माययाऽऽविशतां तथा ॥ ११ ॥

वहाँ पहुँचकर वे दोनों अत्यन्त बलवान् वीर द्रोणपुत्रकी अस्त्र-शक्तिसे प्रकट हुई उस आगमें घुसकर माया-द्वारा उसमें प्रविष्ट हो गये ॥ ११ ॥

न्यस्तशस्त्रौ ततस्तौ तु नादहत् सोऽस्त्रजोऽनलः ।
वारुणास्त्रप्रयोगाच्च वीर्यवत्त्वाच्च कृष्णयोः ॥ १२ ॥

उन दोनोंने अपने हथियार रख दिये थे, वारुणास्त्रका प्रयोग किया था तथा वे दोनों कृष्ण अधिक शक्तिशाली थे; इसलिये वह अस्त्रजनित अग्नि उन्हें जला न सकी ॥ १२ ॥

ततश्चकृषतुर्भीमं सर्वशस्त्रायुधानि च ।
नारायणास्त्रशान्त्यर्थं नरनारायणौ बलात् ॥ १३ ॥

तदनन्तर नर-नारायणस्वरूप अर्जुन और श्रीकृष्णने उस नारायणास्त्रकी शान्तिके लिये भीमसेनको और उनके सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंको बलपूर्वक रथसे नीचे खींचा ॥ १३ ॥



आकृष्यमाणः कौन्तेयो नदत्येव महारवम् ।
वर्धते चैव तद् घोरं द्रौणेरस्त्रं सुदुर्जयम् ॥ १४ ॥

खींचे जाते समय कुन्तीकुमार भीमसेन और भी जोर-जोरसे गर्जना करने लगे । इससे अश्वत्थामाका वह परम दुर्जय घोर अस्त्र और भी बढ़ने लगा ॥ १४ ॥

तमब्रवीद् वासुदेवः किमिदं पाण्डुनन्दन ।
वार्यमाणोऽपि कौन्तेय यद् युद्धान्न निवर्तसे ॥ १५ ॥
यदि युद्धेन जेयाः स्युरिमे कौरवनन्दनाः ।
वयमप्यत्र युध्येम तथा चेमे नरर्षभाः ॥ १६ ॥

उस समय भगवान् श्रीकृष्णने उनसे कहा—'पाण्डुनन्दन ! कुन्तीकुमार ! यह क्या बात है कि तुम मना करनेपर भी युद्धसे निवृत्त नहीं हो रहे हो । यदि ये कौरवनन्दन इस समय युद्धसे ही जीते जा सकते तो हम और ये सभी नरश्रेष्ठ राजा लोग युद्ध ही करते ॥ १५-१६ ॥

रथेभ्यस्त्ववतीर्णाः स्म सर्व एव हि तावकाः ।
तस्मात् त्वमपि कौन्तेय रथात् तूर्णमपाक्रम ॥ १७ ॥

'तुम्हारे सभी सैनिक रथसे उतर गये हैं । कुन्तीकुमार ! अब तुम भी शीघ्र ही रथसे उतरकर युद्धसे अलग हो जाओ' ॥ १७ ॥

एवमुक्त्वा तु तं कृष्णो रथाद् भूमिमवर्तयत्।
निःश्वसन्तं यथा नागं क्रोधसंरक्तलोचनम् ॥ १८ ॥

ऐसा कहकर श्रीकृष्णने क्रोधसे लाल आँखें करके सर्पके समान फुफकारते हुए भीमसेनको रथसे भूमिपर उतार लिया ॥ १८ ॥

यदापकृष्टः स रथान्न्यासितश्चायुधं भुवि।
ततो नारायणास्त्रं तत् प्रशान्तं शत्रुतापनम् ॥ १९ ॥

जब ये रथसे उतर गये और उनसे अस्त्र-शस्त्रोंको भूमिपर रखवा लिया गया, तब वह शत्रुओंको संताप देनेवाला नारायणास्त्र स्वयं प्रशान्त हो गया ॥ १९ ॥

संजय उवाच

तस्मिन् प्रशान्ते विधिना तेन तेजसि दुःसहे।
बभूवुर्विमलाः सर्वा दिशः प्रदिश एव च ॥ २० ॥
प्रववुश्च शिवा वाताः प्रशान्ता मृगपक्षिणः।
वाहनानि च हृष्टानि प्रशान्तेऽस्त्रे सुदुर्जये ॥ २१ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! उस विधिसे उस दुःसह तेजके शान्त हो जानेपर सारी दिशाएँ और विदिशाएँ निर्मल हो गयीं। शीतल सुखद वायु चलने लगी। पशु-पक्षियोंका आर्तनाद बंद हो गया तथा उस दुर्जय अस्त्रके शान्त होनेपर सारे वाहन भी सुखी हो गये ॥ २०-२१ ॥

व्यपोढे च ततो घोरे तस्मिंस्तेजसि भारत।
बभौ भीमो निशापाये धीमान् सूर्य इवोदितः ॥ २२ ॥

भारत! उस भयंकर तेजके दूर हो जानेपर बुद्धिमान् भीमसेन रात बीतनेपर उगे हुए सूर्यके समान प्रकाशित होने लगे ॥ २२ ॥

हतशेषं बलं तत् तु पाण्डवानामतिष्ठत।
अस्त्रव्युपरमाद्धृष्टं तव पुत्रजिघांसया ॥ २३ ॥

पाण्डवोंकी जो सेना मरनेसे बच गयी थी, वह उस अस्त्रके शान्त हो जानेसे पुनः आपके पुत्रोंका विनाश करनेके लिये हर्षसे खिल उठी ॥ २३ ॥

व्यवस्थिते बले तस्मिन्नस्त्रे प्रतिहते तथा।
दुर्योधनो महाराज द्रोणपुत्रमथाब्रवीत् ॥ २४ ॥

महाराज! उस अस्त्रके प्रतिहत और पाण्डव-सेनाके सुव्यवस्थित हो जानेपर दुर्योधनने द्रोणपुत्रसे इस प्रकार कहा—॥ २४ ॥

अश्वत्थामन् पुनः शीघ्रमस्त्रमेतत् प्रयोजय।
अवस्थिता हि पञ्चालाः पुनरेते जयैषिणः ॥ २५ ॥

'अश्वत्थामन्! तुम पुनः शीघ्र ही इसी अस्त्रका प्रयोग करो; क्योंकि विजयकी अभिलाषा रखनेवाले ये पाञ्चाल सैनिक पुनः युद्धके लिये आकर डट गये हैं' ॥ २५ ॥

अश्वत्थामा तथोक्तस्तु तव पुत्रेण मारिष।
सुदीनमभिनिःश्वस्य राजानमिदमब्रवीत् ॥ २६ ॥

मान्यवर! आपके पुत्रके ऐसा कहनेपर अश्वत्थामाने अत्यन्त दीनभावसे उच्छ्वास लेकर राजासे इस प्रकार कहा—॥

नैतदावर्तते राजन्नस्त्रं द्विर्नोपपद्यते।
आवृत्तं हि निवर्तेत प्रयोक्तारं न संशयः ॥ २७ ॥

'राजन्! न तो यह अस्त्र फिर लौटता है और न इसका दुबारा प्रयोग ही हो सकता है। यदि इसका पुनः प्रयोग किया जाय तो यह प्रयोग करनेवालेको ही समाप्त कर देगा, इसमें संशय नहीं है ॥ २७ ॥

एष चास्त्रप्रतीघातं वासुदेवः प्रयुक्तवान्।
अन्यथा विहितः संख्ये वधः शत्रोर्जनाधिप ॥ २८ ॥

'जनेश्वर! श्रीकृष्णने इस अस्त्रके निवारणका उपाय बता दिया है और उसका प्रयोग किया है; अन्यथा आज युद्धमें सम्पूर्ण शत्रुओंका वध हो ही गया होता ॥ २८ ॥

पराजयो वा मृत्युर्वा श्रेयान् मृत्युर्न निर्जयः।
विजिताश्चारयो ह्येते शस्त्रोत्सर्गान्मृतोपमाः ॥ २९ ॥

'पराजय हो या मृत्यु, इनमें मृत्यु ही श्रेष्ठ है, पराजय नहीं। ये सारे शत्रु हार गये थे; हथियार डालकर मुर्देके समान हो गये थे' ॥ २९ ॥

दुर्योधन उवाच

आचार्यपुत्र यद्येतद् द्विरस्त्रं न प्रयुज्यते।
अन्यैर्गुरुघ्ना वध्यन्तामस्त्रैरस्त्रविदां वर ॥ ३० ॥

दुर्योधन बोला—आचार्यपुत्र! तुम तो सम्पूर्ण अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हो। यदि इस अस्त्रका दो बार प्रयोग नहीं हो सकता तो तुम दूसरे ही अस्त्रोंद्वारा इन गुरु-घातियोंका वध करो ॥ ३० ॥

त्वयि शस्त्राणि दिव्यानि त्र्यम्बके चामितौजसि।
इच्छतो न हि ते मुच्येत् संक्रुद्धो हि पुरंदरः ॥ ३१ ॥

तुममें तथा अमिततेजस्वी भगवान् शङ्करमें ही सम्पूर्ण दिव्यास्त्र प्रतिष्ठित हैं। यदि तुम मारना चाहो तो क्रोधमें भरे हुए इन्द्र भी तुमसे बचकर नहीं जा सकते ॥ ३१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

तस्मिन्नस्त्रे प्रतिहते द्रोणे चोपधिना हते।
तथा दुर्योधनेनोक्तो द्रौणिः किमकरोत् पुनः ॥ ३२ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! द्रोणाचार्य छलपूर्वक मारे गये और नारायणास्त्र भी प्रतिहत हो गया, तब दुर्योधनके वैसा कहनेपर अश्वत्थामाने फिर क्या किया? ॥ ३२ ॥

दृष्ट्वा पार्थांश्च संग्रामे युद्धाय समुपस्थितान्।
नारायणास्त्रनिर्मुक्तांश्चरतः पृतनामुखे ॥ ३३ ॥

क्योंकि उसने देख लिया था कि नारायणास्त्रसे छूटे

हुए पाण्डव संग्राममें युद्धके लिये उपस्थित हैं और युद्धके मुहानेपर विचर रहे हैं ॥ ३३ ॥

संजय उवाच

जानन् पितुः स निधनं सिंहलाङ्गूलकेतनः ।
सक्रोधो भयमुत्सृज्य सोऽभिदुद्राव पार्षतम् ॥ ३४ ॥

संजयने कहा—राजन् ! अश्वत्थामाकी ध्वजा-पताकामें सिंहकी पूँछका चिह्न बना हुआ था। उसने पिताके मारे जानेकी घटनाका स्मरण करके कुपित हो भय छोड़कर धृष्टद्युम्नपर धावा किया ॥ ३४ ॥

अभिद्रुत्य च विंशत्या क्षुद्रकाणां नरर्षभ ।
पञ्चभिश्चातिवेगेन विव्याध पुरुषर्षभः ॥ ३५ ॥

नरश्रेष्ठ ! निकट जाकर पुरुषप्रवर अश्वत्थामाने धृष्टद्युम्नको पहले क्षुद्रक नामवाले बीस बाण मारे। फिर अत्यन्त वेगसे पाँच बाणोंका प्रहार करके उन्हें घायल कर दिया ॥ ३५ ॥

धृष्टद्युम्नस्ततो राजन् ज्वलन्तमिव पावकम् ।
द्रोणपुत्रं त्रिषष्ट्या तु राजन् विव्याध पत्रिणाम्॥ ३६ ॥

राजन् ! तदनन्तर धृष्टद्युम्नने प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी द्रोणपुत्रको तिरसठ बाणोंसे बींध डाला ॥ ३६ ॥

सारथिं चास्य विंशत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।
हयांश्च चतुरोऽविध्यच्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ॥ ३७ ॥

फिर शानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले बीस बाणोंसे उसके सारथिको और चार तीखे सायकोंसे उसके चारों घोड़ोंको भी घायल कर दिया ॥ ३७ ॥

विद्ध्वा विद्ध्वानदद् द्रौणिं कम्पयन्निव मेदिनीम् ।
आददे सर्वलोकस्य प्राणानिव महारणे ॥ ३८ ॥

धृष्टद्युम्न अश्वत्थामाको बींध-बींधकर पृथ्वीको कँपाते हुए-से गरज रहे थे। मानो उस महासमरमें वे सम्पूर्ण जगत्के प्राण ले रहे हों ॥ ३८ ॥

पार्षतस्तु बली राजन् कृतास्त्रः कृतनिश्चयः ।
द्रौणिमेवाभिदुद्राव मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ३९ ॥

राजन् ! बलवान् अस्त्रवेत्ता तथा दृढ़ निश्चयवाले धृष्टद्युम्नने मृत्युको ही युद्धसे लौटनेकी अवधि निश्चित करके द्रोणपुत्रपर ही धावा किया ॥ ३९ ॥

ततो बाणमयं वर्षं द्रोणपुत्रस्य मूर्धनि ।
अवासृजदमेयात्मा पाञ्चाल्यो रथिनां वरः ॥ ४० ॥

तत्पश्चात् अमेय आत्मबलसे सम्पन्न, रथियोंमें श्रेष्ठ पाञ्चालपुत्र धृष्टद्युम्नने अश्वत्थामाके मस्तकपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ४० ॥

तं द्रौणिः समरे क्रुद्धं छादयामास पत्रिभिः ।
विव्याध चैनं दशभिः पितुर्वधमनुस्मरन् ॥ ४१ ॥

अपने पिताके वधका बारंबार स्मरण करते हुए अश्वत्थामाने भी समराङ्गणमें कुपित हुए धृष्टद्युम्नको बाणोंद्वारा आच्छादित कर दिया और दस बाणोंसे मारकर उसे गहरी चोट पहुँचायी ॥ ४१ ॥

द्वाभ्यां च सुविसृष्टाभ्यां क्षुराभ्यां ध्वजकार्मुके ।
छित्त्वा पाञ्चालराजस्य द्रौणिरन्यैः समार्दयत् ॥ ४२ ॥

इसके सिवा, अच्छी तरह छोड़े हुए दो छुरोंसे पाञ्चालराजकुमारके ध्वज और धनुषको काटकर अश्वत्थामाने दूसरे बाणोंद्वारा उन्हें भलीभाँति पीड़ित किया ॥ ४२ ॥

व्यश्वसूतरथं चैनं द्रौणिश्चक्रे महाहवे ।
तस्य चानुचरान् सर्वान् क्रुद्धः प्राद्रावयच्छरैः॥ ४३ ॥

इतना ही नहीं, द्रोणपुत्रने उस महायुद्धमें धृष्टद्युम्नको घोड़े, सारथि तथा रथसे भी वञ्चित कर दिया। साथ ही कुपित हो उनके सारे सेवकोंको भी बाणोंसे मार-मारकर खदेड़ना शुरू किया ॥ ४३ ॥

ततः प्रदुद्रुवे सैन्यं पञ्चालानां विशाम्पते ।
सम्भ्रान्तरूपमार्तं च न परस्परमैक्षत ॥ ४४ ॥

प्रजानाथ ! तदनन्तर पाञ्चालोंकी सेना भ्रान्त एवं आर्त होकर भाग चली। उसके सैनिक एक-दूसरेको देखते नहीं थे ॥ ४४ ॥

दृष्ट्वा तु विमुखान् योधान् धृष्टद्युम्नं च पीडितम्।
शैनेयोऽचोदयत् तूर्णं रथं द्रौणिरथं प्रति ॥ ४५ ॥

योद्धाओंको युद्धसे विमुख और धृष्टद्युम्नको बाणोंसे पीड़ित देख सात्यकिने तुरंत अपना रथ अश्वत्थामाके रथकी ओर बढ़ाया ॥ ४५ ॥

अष्टभिर्निशितैर्बाणैरश्वत्थामानमार्दयत् ।
विंशत्या पुनराहत्य नानारूपैरमर्षणः ॥ ४६ ॥
विव्याध च तथा सूतं चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
धनुर्ध्वजं च संयत्तश्चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ ४७ ॥

उन्होंने आठ पैने बाणोंसे अश्वत्थामाको चोट पहुँचायी। तत्पश्चात् अमर्षमें भरे हुए सात्यकिने भाँति-भाँतिके बीस बाणोंद्वारा द्रोणपुत्रको पुनः घायल करके उसके सारथिको भी बींध डाला और पूर्णरूपसे सावधान हो एक सिद्ध-हस्त योद्धाकी भाँति उन्होंने चार बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको घायल करके ध्वज और धनुषको भी काट दिया ॥४६-४७॥

स साश्वं व्यधमच्चापि रथं हेमपरिष्कृतम् ।
हृदि विव्याध समरे त्रिंशता सायकैर्भृशम् ॥ ४८ ॥

इसके बाद घोड़ोंसहित उसके सुवर्णभूषित रथको भी छिन्न-भिन्न कर डाला और समराङ्गणमें तीस बाणोंसे उसकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ ४८ ॥

एवं स पीडितो राजन्नश्वत्थामा महाबलः ।

शरजालैः परिवृतः कर्तव्यं नान्वपद्यत ॥ ४९ ॥

राजन् ! इस प्रकार बाणोंके जालसे घिरकर पीड़ित हुए महाबली अश्वत्थामाको कोई कर्तव्य नहीं सूझता था ॥

एवं गते गुरोः पुत्रे तव पुत्रो महारथः ।
कृपकर्णादिभिः सार्धं शरैः सात्वतमावृणोत् ॥ ५० ॥

गुरुपुत्रकी ऐसी अवस्था हो जानेपर आपके महारथी पुत्र दुर्योधनने कृपाचार्य और कर्ण आदिके साथ आकर सात्यकिको बाणोंसे ढक दिया ॥ ५० ॥

दुर्योधनस्तु विंशत्या कृपः शारद्वतस्त्रिभिः ।
कृतवर्माथ दशभिः कर्णः पञ्चाशता शरैः ॥ ५१ ॥
दुःशासनः शतेनैव वृषसेनश्च सप्तभिः ।
सात्यकिं विव्यधुस्तूर्णं समन्तान्निशितैः शरैः ॥ ५२ ॥

दुर्योधनने बीस, शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्यने तीन, कृतवर्माने दस, कर्णने पचास, दुःशासनने सौ तथा वृषसेनने सात पैने बाणोंद्वारा शीघ्र ही सब ओरसे सात्यकिको घायल कर दिया ॥ ५१-५२ ॥

ततः स सात्यकी राजन् सर्वानेव महारथान् ।
विरथान् विमुखांश्चैव क्षणेनैवाकरोन्नृप ॥ ५३ ॥

राजन् ! तब सात्यकिने भी उन सभी महारथियोंको क्षणभरमें रथहीन एवं युद्धसे विमुख कर दिया ॥ ५३ ॥

अश्वत्थामा तु सम्प्राप्य चेतनां भरतर्षभ ।
चिन्तयामास दुःखार्तो निःश्वसंश्च पुनः पुनः ॥ ५४ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उधर अश्वत्थामाको जब चेत हुआ, तब वह दुःखसे आतुर हो बारंबार लंबी साँस खींचता हुआ कुछ देरतक चिन्तामें डूबा रहा ॥ ५४ ॥

अथो रथान्तरं द्रौणिः समारुह्य परंतपः ।
सात्यकिं वारयामास किरञ्छरशतान् बहून् ॥ ५५ ॥

फिर दूसरे रथपर आरूढ़ हो शत्रुतापन अश्वत्थामाने कई सौ बाणोंकी वर्षा करके सात्यकिको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ५५ ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य भारद्वाजसुतं रणे ।
विरथं विमुखं चैव पुनश्चक्रे महारथः ॥ ५६ ॥

रणभूमिमें द्रोणपुत्रको अपनी ओर आते देख महारथी सात्यकिने उसे पुनः रथहीन एवं युद्धसे विमुख कर दिया ॥ ५६ ॥

ततस्ते पाण्डवा राजन् दृष्ट्वा सात्यकिविक्रमम् ।
शङ्खशब्दान् भृशं चक्रुः सिंहनादांश्च नेदिरे ॥ ५७ ॥

राजन् ! सात्यकिका यह पराक्रम देख पाण्डव बड़े जोर-जोरसे शङ्ख बजाने और सिंहनाद करने लगे ॥ ५७ ॥

एवं तं विरथं कृत्वा सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
जघान वृषसेनस्य त्रिसाहस्रान् महारथान् ॥ ५८ ॥

इस प्रकार उसे रथहीन करके सत्यपराक्रमी सात्यकिने वृषसेनकी सेनाके तीन हजार विशाल रथोंको नष्ट कर दिया ॥ ५८ ॥

अयुतं दन्तिनां सार्धं कृपस्य निजघान सः ।
पञ्चायुतानि चाश्वानां शकुनेर्निजघान ह ॥ ५९ ॥

तदनन्तर कृपाचार्यकी सेनाके पंद्रह हजार हाथियोंका वध कर डाला; इसी तरह शकुनिके पचास हजार घोड़ोंको भी उन्होंने मार गिराया ॥ ५९ ॥

ततो द्रौणिर्महाराज रथमारुह्य वीर्यवान् ।
सात्यकिं प्रतिसंक्रुद्धः प्रययौ तद्वधेप्सया ॥ ६० ॥

महाराज ! तब पराक्रमी अश्वत्थामा रथपर आरूढ़ हो सात्यकिपर क्रोध करके उनका वध करनेकी इच्छासे आगे बढ़ा ॥ ६० ॥

पुनस्तमागतं दृष्ट्वा शैनेयो निशितैः शरैः ।
अदारयत् क्रूरतरैः पुनः पुनररिंदम ॥ ६१ ॥

शत्रुदमन नरेश ! अश्वत्थामाको फिर आया देख सात्यकिने अत्यन्त क्रूर तीखे बाणोंद्वारा उसे बारंबार विदीर्ण किया ॥ ६१ ॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासो नानालिङ्गैरमर्षणः ।
युयुधानेन वै द्रौणिः प्रहसन् वाक्यमब्रवीत् ॥ ६२ ॥

जब युयुधानने नाना प्रकारके चिह्नोंवाले बाणोंद्वारा महाधनुर्धर अश्वत्थामाको अत्यन्त घायल कर दिया, तब उसने अमर्षमें भरकर उनसे हँसते हुए कहा—॥ ६२ ॥

शैनेयाभ्युपपत्तिं ते जानाम्याचार्यघातिनि ।
न चैनं त्रास्यसि मया ग्रस्तमात्मानमेव च ॥ ६३ ॥

'शिनिपौत्र ! मैं जानता हूँ, आचार्यघाती धृष्टद्युम्नके प्रति तुम्हारा विशेष सहयोग एवं पक्षपात है; परंतु मेरे चंगुलमें फँसे हुए इस धृष्टद्युम्नको और अपनेको भी तुम बचा नहीं सकोगे ॥ ६३ ॥

शपेऽऽत्मनाहं शैनेय सत्येन तपसा तथा ।
अहत्वा सर्वपाञ्चालान् यदि शान्तिमहं लभे ॥ ६४ ॥

'शैनेय ! मैं सत्य और तपस्याकी सौगंध खाकर कहता हूँ, सम्पूर्ण पाञ्चालोंका वध किये बिना मुझे कदापि शान्ति नहीं मिलेगी ॥ ६४ ॥

यद् बलं पाण्डवेयानां वृष्णीनामपि यद् बलम् ।
क्रियतां सर्वमेवेह निहनिष्यामि सोमकान् ॥ ६५ ॥

'पाण्डवों और वृष्णिवंशियोंके पास जितना भी बल है, वह सब यहीं लगा दो तो भी सोमकोंका संहार कर डालूँगा' ॥ ६५ ॥

एवमुक्त्वार्करश्म्याभं सुतीक्ष्णं तं शरोत्तमम् ।
व्यसृजत् सात्वते द्रौणिर्वज्रं वृत्रे यथा हरिः ॥ ६६ ॥

ऐसा कहकर द्रोणकुमार अश्वत्थामाने सात्यकिपर सूर्यकी किरणोंके समान तेजस्वी तथा अत्यन्त तीखा उत्तम बाण छोड़ दिया; मानो इन्द्रने वृत्रासुरपर वज्रका प्रहार किया हो ॥ ६६ ॥

स तं निर्भिद्य तेनास्तः सायकः सशरावरम्।
विवेश वसुधां भित्त्वा श्वसन् बिलमिवोरगः ॥ ६७ ॥

उसका चलाया हुआ वह बाण सात्यकिके शरीरको कवचसहित विदीर्ण करके पृथ्वीको चीरता हुआ उसके भीतर उसी प्रकार घुस गया, जैसे फुफकारता हुआ सर्प बिलमें समा जाता है ॥ ६७ ॥

स भिन्नकवचः शूरस्तोत्रार्दित इव द्विपः।
विमुच्य सशरं चापं भूरिव्रणपरिस्रवः ॥ ६८ ॥
सीदन् रुधिरसिक्तश्च रथोपस्थ उपाविशत्।
सूतेनापहृतस्तूर्णं द्रोणपुत्राद् रथान्तरम् ॥ ६९ ॥

कवच छिन्न-भिन्न हो जानेसे शूरवीर सात्यकि अंकुशोंकी मार खाये हुए हाथीके समान व्यथित हो उठे। उनके घावोंसे अधिक रक्त बह रहा था। वे शिथिल एवं खूनसे लथपथ हो धनुष-बाण छोड़कर रथके पिछले भागमें बैठ गये। तब सारथि तुरंत ही उन्हें द्रोणपुत्रके पाससे दूसरे रथीके पास हटा ले गया ॥ ६८-६९ ॥

अथान्येन सुपुङ्खेन शरेणानतपर्वणा।
आजघान भ्रुवोर्मध्ये धृष्टद्युम्नं परंतपः ॥ ७० ॥

तदनन्तर शत्रुओंको संताप देनेवाले अश्वत्थामाने सुन्दर पंख एवं झुकी हुई गाँठवाले दूसरे बाणसे धृष्टद्युम्न-की दोनों भौंहोंके बीचमें गहरा आघात किया ॥ ७० ॥

स पूर्वमतिविद्धश्च भृशं पश्चाच्च पीडितः।
ससादाथ च पाञ्चाल्यो व्यपाश्रयत च ध्वजम् ॥ ७१ ॥

पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न पहले ही बहुत घायल हो चुका था। फिर पीछे भी अत्यन्त पीड़ित हो वह रथकी बैठकमें धम्मसे बैठ गया और ध्वजापर अपने शरीरको टेक दिया ॥ ७१ ॥

तं नागमिव सिंहेन दृष्ट्वा राजञ्शरार्दितम्।
जवेनाभ्यद्रवञ्शूराः पञ्च पाण्डवतो रथाः ॥ ७२ ॥

राजन्! जैसे सिंह हाथीको सताता है, उसी प्रकार धृष्टद्युम्नको अश्वत्थामाके बाणोंसे पीड़ित देखकर पाण्डव-पक्षसे पाँच शूरवीर महारथी बड़े वेगसे वहाँ आ पहुँचे ॥

किरीटी भीमसेनश्च वृद्धक्षत्रश्च पौरवः।
युवराजश्च चेदीनां मालवश्च सुदर्शनः ॥ ७३ ॥

उनके नाम इस प्रकार हैं—किरीटधारी अर्जुन, भीमसेन, पौरव वृद्धक्षत्र, चेदिदेशके युवराज तथा मालवनरेश सुदर्शन ॥ ७३ ॥

एते हाहाकृताः सर्वे प्रगृहीतशरासनाः।
वीरं द्रौणायनिं वीराः सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ७४ ॥

इन सब वीरोंने हाहाकार करते हुए हाथमें धनुष लेकर वीर अश्वत्थामाको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ७४ ॥

ते विंशतिपदे यत्ता गुरुपुत्रममर्षणम्।
पञ्चभिः पञ्चभिर्बाणैरभ्यघ्नन् सर्वतः समम् ॥ ७५ ॥

उन सावधान रथियोंने बीसवें पगपर अमर्षशील गुरुपुत्रको पा लिया और सब ओरसे पाँच-पाँच बाणोंद्वारा एक साथ ही उसपर चोट की ॥ ७५ ॥

आशीविषाभैर्विंशत्या पञ्चभिस्तु शितैः शरैः।
चिच्छेद युगपद् द्रौणिः पञ्चविंशतिसायकान् ॥ ७६ ॥

तब द्रोणकुमारने विषैले सर्पोंके समान पचीस तीखे बाणोंद्वारा एक साथ ही उनके पचीसों बाणोंको काट डाला ॥ ७६ ॥

सप्तभिस्तु शितैर्बाणैः पौरवं द्रौणिरार्दयत्।
मालवं त्रिभिरेकेन पार्थं षड्भिर्वृकोदरम् ॥ ७७ ॥

इसके बाद द्रोणपुत्रने सात तीखे बाणोंसे पौरवको पीड़ित कर दिया। फिर तीन बाणोंसे मालवनरेशको, एकसे अर्जुनको और छः बाणोंद्वारा भीमसेनको घायल कर दिया ॥

ततस्ते विव्यधुः सर्वे द्रौणिं राजन् महारथाः।
युगपच्च पृथक् चैव रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ ७८ ॥

राजन्! तत्पश्चात् उन सब महारथियोंने एक साथ और अलग-अलग भी शिलापर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले बाणोंद्वारा द्रोणकुमारको घायल करना आरम्भ किया ॥ ७८ ॥

युवराजश्च विंशत्या द्रौणिं विव्याध पत्रिभिः।
पार्थश्च पुनरष्टाभिस्तथा सर्वे त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ७९ ॥

चेदिदेशके युवराजने बीस, अर्जुनने आठ तथा अन्य सब लोगोंने तीन-तीन बाणोंद्वारा द्रोणपुत्रको बींध डाला ॥

ततोऽर्जुनं षड्भिरथाजघान
द्रौणायनिर्दशभिर्वासुदेवम्।
भीमं दशार्धैर्युवराजं चतुर्भि-
र्द्वाभ्यां द्वाभ्यां मालवं पौरवं च ॥ ८० ॥

तदनन्तर द्रोणपुत्रने छः बाणोंसे अर्जुनको, दस बाणोंद्वारा भगवान् श्रीकृष्णको, पाँचसे भीमको, चारसे चेदिदेशके युवराजको तथा दो-दो बाणोंद्वारा क्रमशः मालवनरेश तथा पौरवको घायल कर दिया ॥ ८० ॥

सूतं विद्ध्वा भीमसेनस्य षड्भि-
र्द्वाभ्यां विद्ध्वा कार्मुकं च ध्वजं च।
पुनः पार्थं शरवर्षेण विद्ध्वा
द्रौणिर्घोरं सिंहनादं ननाद ॥ ८१ ॥

इतना ही नहीं, भीमसेनके सारथिको छः तथा उनके धनुष और ध्वजको दो बाणोंसे बींधकर पुनः बाणोंकी वर्षाद्वारा अर्जुनको घायल करके अश्वत्थामाने घोर सिंहनाद किया ॥ ८१ ॥

तस्यास्यतस्तान् निशितान् पीतधारान्
द्रौणेः शरान् पृष्ठतश्चाग्रतश्च ।
धरा वियद् द्यौः प्रदिशो दिशश्च
च्छन्ना बाणैरभवन् घोररूपैः ॥ ८२ ॥

द्रोणकुमार उन पानीदार धारवाले तीखे बाणोंको आगे और पीछे भी चला रहा था। उसके उन भयानक बाणोंसे पृथिवी, आकाश, अन्तरिक्ष, दिशाएँ और विदिशाएँ भी आच्छादित हो गयी थीं ॥ ८२ ॥

आसन्नस्य स्वरथं तीव्रतेजाः
सुदर्शनस्येन्द्रकेतुप्रकाशौ ।
भुजौ शिरश्चेन्द्रसमानवीर्य-
स्त्रिभिः शरैर्युगपत् संचकर्त ॥ ८३ ॥

उस युद्धमें इन्द्रके समान पराक्रमी एवं प्रचण्ड तेजस्वी अश्वत्थामाने अपने रथके निकट आये हुए मालवराज सुदर्शनकी इन्द्रध्वजके तुल्य प्रकाशित होनेवाली दोनों भुजाओं तथा मस्तकको तीन बाणोंद्वारा एक साथ ही काट डाला ॥ ८३ ॥

स पौरवं रथशक्त्या निहत्य
छित्त्वा रथं तिलशश्चास्य बाणैः ।
छित्त्वा च बाहू वरचन्दनाक्तौ
भल्लेन कायाच्छिर उच्चकर्त ॥ ८४ ॥

फिर उसने पौरवको रथशक्तिसे घायल करके अपने बाणोंद्वारा उनके रथके तिलके बराबर-बराबर टुकड़े कर डाले और सुन्दर चन्दनचर्चित उनकी दोनों भुजाओंको काटकर एक भल्लके द्वारा उनके मस्तकको भी धड़से अलग कर दिया ॥ ८४ ॥

युवानमिन्दीवरदामवर्णं
चेदिप्रभुं युवराजं प्रसह्य ।
बाणैस्त्वरावान् प्रज्वलिताग्निकल्पै-
र्विद्ध्वा प्रादान्मृत्यवे साश्वसूतम् ॥ ८५ ॥

तत्पश्चात् शीघ्रता करनेवाले अश्वत्थामाने प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा नीलकमलकी मालाके समान कान्तिवाले, नवयुवक चेदिदेशीय युवराजको हठपूर्वक घायल करके उन्हें घोड़ों और सारथिसहित मौतके हवाले कर दिया ॥ ८५ ॥

मालवं पौरवं चैव युवराजं च चेदिपम् ।
दृष्ट्वा समक्षं निहतं द्रोणपुत्रेण पाण्डवः ॥ ८६ ॥
भीमसेनो महाबाहुः क्रोधमाहारयत् परम् ।

मालवनरेश सुदर्शन, पुरुदेशके अधिपति वृद्धक्षत्र तथा चेदिदेशके युवराजको अपनी आँखोंके सामने द्रोणपुत्रके हाथसे मारा गया देख पाण्डुकुमार महाबाहु भीमसेनको बड़ा भारी क्रोध हुआ ॥ ८६½ ॥

ततः शरशतैस्तीक्ष्णैः संक्रुद्धाशीविषोपमैः ॥ ८७ ॥
छादयामास समरे द्रोणपुत्रं परंतपः ।

फिर तो शत्रुओंको संताप देनेवाले भीमसेनने क्रोधमें भरे हुए विषधर सर्पोंके समान सैकड़ों तीखे बाणोंद्वारा समराङ्गणमें द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको आच्छादित कर दिया ॥

ततो द्रौणिर्महातेजाः शरवर्षं निहत्य तम् ॥ ८८ ॥
विव्याध निशितैर्बाणैर्भीमसेनममर्षणः ।

तब महातेजस्वी अमर्षशील द्रोणकुमारने उस बाणवर्षाको नष्ट करके भीमसेनको पैने बाणोंसे बींध डाला ॥

ततो भीमो महाबाहुर्द्रौणेर्युधि महाबलः ॥ ८९ ॥
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा द्रौणिं विव्याध पत्रिणा ।

यह देख महाबली महाबाहु भीमसेनने युद्धस्थलमें एक क्षुरप्रसे अश्वत्थामाका धनुष काटकर पंखदार बाणसे उसको भी घायल कर दिया ॥ ८९½ ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं द्रोणपुत्रो महामनाः ॥ ९० ॥
अन्यत् कार्मुकमादाय भीमं विव्याध पत्रिभिः ।

इसके बाद महामनस्वी द्रोणपुत्रने उस कटे हुए धनुषको फेंककर दूसरा धनुष ले लिया और भीमसेनको अनेक बाण मारे ॥ ९०½ ॥

तौ द्रौणिभीमौ समरे पराक्रान्तौ महाबलौ ॥ ९१ ॥
अवर्षतां शरवर्षं वृष्टिमन्ताविवाम्बुदौ ।

अश्वत्थामा और भीमसेन दोनों वीर महान् बलवान् एवं पराक्रमी थे। वे समरभूमिमें वर्षा करनेवाले दो बादलोंके समान परस्पर बाणोंकी बौछार करने लगे ॥ ९१½ ॥

भीमनामाङ्किता बाणाः स्वर्णपुङ्खाः शिलाशिताः ॥ ९२ ॥
द्रौणिं संछादयामासुर्घनौघा इव भास्करम् ।

जैसे मेघोंकी घटाएँ सूर्यको ढक लेती हैं, उसी प्रकार भीमसेनके नामसे अङ्कित और सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुनहरी पाँखवाले बाणोंने द्रोणपुत्रको आच्छादित कर दिया ॥ ९२½ ॥

तथैव द्रौणिनिर्मुक्तैर्भीमः संनतपर्वभिः ॥ ९३ ॥
अवाकीर्यत स क्षिप्रं शरैः शतसहस्रशः ।

इसी तरह अश्वत्थामाके छोड़े हुए झुकी हुई गाँठवाले लाखों बाणोंसे भीमसेन भी तत्काल ढक गये ॥ ९३½ ॥

स च्छाद्यमानः समरे द्रौणिना रणशालिना ॥ ९४ ॥
न विव्यथे महाराज तदद्भुतमिवाभवत् ।

महाराज ! संग्राममें शोभा पानेवाले अश्वत्थामाके द्वारा समरभूमिमें ढके जानेपर भी भीमसेनको तनिक भी व्यथा नहीं हुई, वह अद्भुत-सी बात थी ॥ ९४½ ॥

ततो भीमो महाबाहुः कार्तस्वरविभूषितान् ॥ ९५ ॥
नाराचान् दश सम्प्रैषीद् यमदण्डनिभाञ्छितान् ।

तदनन्तर महाबाहु भीमसेनने सुवर्णभूषित एवं यमदण्डके समान भयंकर दस तीखे नाराच अश्वत्थामापर चलाये ॥ ९५½ ॥

ते जत्रुदेशमासाद्य द्रोणपुत्रस्य मारिष ॥ ९६ ॥
निर्भिद्य विविशुस्तूर्णं वल्मीकमिव पन्नगाः ।

माननीय नरेश ! जैसे सर्प तुरंत ही बाँबीमें घुस जाते हैं, उसी प्रकार वे बाण द्रोणपुत्रके गलेकी हँसलीको छेदकर भीतर समा गये ॥ ९६½ ॥

सोऽतिविद्धो भृशं द्रौणिः पाण्डवेन महात्मना ॥ ९७ ॥
ध्वजयष्टिं समासाद्य न्यमीलयत लोचने ।

महात्मा पाण्डुपुत्रके बाणोंसे अत्यन्त घायल हुए अश्वत्थामाने ध्वजदण्ड थामकर नेत्र बंद कर लिये ॥९७½॥

स मुहूर्तात् पुनः संज्ञां लब्ध्वा द्रौणिर्नराधिप ॥ ९८ ॥
क्रोधं परममातस्थौ समरे रुधिरोक्षितः ।

नरेश्वर ! दो ही घड़ीमें पुनः सचेत हो खूनसे लथपथ हुए अश्वत्थामाने उस समराङ्गणमें अत्यन्त क्रोध प्रकट किया ॥ ९८½ ॥

दृढं सोऽभिहतस्तेन पाण्डवेन महात्मना ॥ ९९ ॥
वेगं चक्रे महाबाहुर्भीमसेनरथं प्रति ।

महामना पाण्डुपुत्रने उसे गहरी चोट पहुँचायी थी। अतः महाबाहु अश्वत्थामाने भीमसेनके रथपर ही बड़े वेगसे आक्रमण किया ॥ ९९½ ॥

तत आकर्णपूर्णानां शराणां तिग्मतेजसाम् ॥१००॥
शतमाशीविषाभानां प्रेषयामास भारत ।

भारत ! उसने धनुषको कानतक खींचकर प्रचण्ड तेजसे युक्त और विषैले सर्पोंके समान भयंकर सौ बाण भीमसेनपर चलाये ॥ १००½ ॥

भीमोऽपि समरश्लाघी तस्य वीर्यमचिन्तयन् ॥१०१॥
तूर्णं प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि पाण्डवः ।

युद्धकी स्पृहा रखनेवाले पाण्डुकुमार भीमसेन भी उसके इस पराक्रमकी कोई परवा न करते हुए तुरंत ही उसपर भयंकर बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥१०१½॥

ततो द्रौणिर्महाराज छित्त्वास्य विशिखैर्धनुः ॥१०२॥
आजघानोरसि क्रुद्धः पाण्डवं निशितैः शरैः ।

महाराज ! तब अश्वत्थामाने कुपित हो बाणोंद्वारा भीमसेनके धनुषको काटकर उन पाण्डुपुत्रकी छातीमें पैने बाणोंका प्रहार किया ॥ १०२½ ॥

ततोऽन्यद् धनुरादाय भीमसेनो ह्यमर्षणः ॥१०३॥
विव्याध निशितैर्बाणैर्द्रौणिं पञ्चभिराहवे ।

तब अमर्षमें भरे हुए भीमसेनने दूसरा धनुष लेकर युद्धस्थलमें पाँच पैने बाणोंसे द्रोणपुत्रको घायल कर दिया ॥ १०३½ ॥

जीमूताविव घर्मान्ते तौ शरौघप्रवर्षिणौ ॥१०४॥
अन्योन्यक्रोधताम्राक्षौ छादयामासतुर्युधि ।

वे दोनों क्रोधसे लाल आँखें करके बरसातके दो बादलोंके समान बाणसमूहोंकी वर्षा करते हुए एक दूसरेको आच्छादित करने लगे ॥ १०४½ ॥

तलशब्दैस्ततो घोरैस्त्रासयन्तौ परस्परम् ॥१०५॥
अयुध्येतां सुसंरब्धौ कृतप्रतिकृतैषिणौ ।

फिर ताल ठोंकनेकी भयंकर आवाजसे परस्पर त्रास उत्पन्न करते हुए वे दोनों योद्धा बड़े रोषसे युद्ध करने लगे। दोनों ही एक दूसरेके प्रहारका प्रतीकार करना चाहते थे ॥१०५½॥

ततो विस्फार्य सुमहच्चापं रुक्मविभूषितम् ॥१०६॥
भीमं प्रैक्षत स द्रौणिः शरानस्यन्तमन्तिकात् ।
शरद्यहर्मध्यगतो दीप्तार्चिरिव भास्करः ॥१०७॥

तत्पश्चात् सुवर्णभूषित विशाल धनुषको खींचकर निकटसे बाणोंकी वर्षा करते हुए भीमसेनकी ओर अश्वत्थामाने देखा। वह शरद्‌ऋतुके मध्याह्नकालमें प्रचण्ड किरणोंवाले सूर्यदेवके समान प्रकाशित हो रहा था ॥ १०६-१०७ ॥

आददानस्य विशिखान् संदधानस्य चाशुगान् ।
विकर्षतो मुञ्चतश्च नान्तरं ददृशुर्जनाः ॥१०८॥

वह कब बाण लेता, कब उन्हें धनुषपर रखता, कब प्रत्यञ्चा खींचता और कब उन्हें छोड़ता था तथा इन कार्योंमें कितना अन्तर पड़ता था, यह सब योद्धालोग देख नहीं पाते थे ॥ १०८ ॥

अलातचक्रप्रतिमं तस्य मण्डलमायुधम् ।
द्रौणेरासीन्महाराज बाणान् विसृजतस्तदा ॥१०९॥

महाराज ! बाण छोड़ते समय अश्वत्थामाका धनुष अलातचक्रके समान मण्डलाकार दिखायी देता था ॥१०९॥

धनुश्च्युताः शरास्तस्य शतशोऽथ सहस्रशः ।
आकाशे प्रत्यदृश्यन्त शलभानामिवायतीः ॥११०॥

उसके धनुषसे छूटे हुए सैकड़ों और हजारों बाण आकाशमें टिड्डी-दलोंके समान दिखायी देते थे ॥ ११० ॥

ते तु द्रौणिविनिर्मुक्ताः शरा हेमविभूषिताः ।
अजस्रमन्वकीर्यन्त घोरा भीमरथं प्रति ॥१११॥

अश्वत्थामाके छोड़े हुए सुवर्णभूषित भयंकर बाण भीमसेनके रथपर लगातार गिरने लगे ॥ १११ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम भीमसेनस्य विक्रमम्।
बलं वीर्यं प्रभावं च व्यवसायं च भारत ॥११२॥

भारत ! वहाँ हमलोगोंने भीमसेनका अद्भुत पराक्रम, बल, वीर्य, प्रभाव और व्यवसाय देखा ॥ ११२ ॥

तां स मेघादिवोद्भूतां बाणवृष्टिं समन्ततः।
जलवृष्टिं महाघोरां तपान्त इव चिन्तयन् ॥११३॥
द्रोणपुत्रवधप्रेप्सुर्भीमो भीमपराक्रमः।
अमुञ्चच्छरवर्षाणि प्रावृषीव बलाहकः ॥११४॥

वर्षाकालमें मेघसे होनेवाली अत्यन्त घोर जलवृष्टिके समान चारों ओरसे होनेवाली अश्वत्थामाकी उस बाण-वर्षापर विचार करते हुए भयंकर पराक्रमी भीमसेनने द्रोणपुत्रके वधकी इच्छा की और वे बरसातके बादलोंके समान बाणोंकी बौछार करने लगे ॥ ११३-११४ ॥

तद् रुक्मपृष्ठं भीमस्य धनुर्घोरं महारणे।
विकृष्यमाणं विबभौ शक्रचापमिवापरम् ॥११५॥

उस महासमरमें सोनेकी पीठवाला भीमसेनका भयंकर धनुष जब खींचा जाता था, तब दूसरे इन्द्रधनुषके समान प्रतीत होता था ॥ ११५ ॥

तस्माच्छराः प्रादुरासञ्छतशोऽथ सहस्रशः।
संछादयन्तः समरे द्रौणिमाहवशोभिनम् ॥११६॥

रणभूमिमें अधिक शोभा पानेवाले द्रोणकुमार अश्वत्थामाको आच्छादित करते हुए सैकड़ों और हजारों बाण भीमसेनके उस धनुषसे प्रकट हो रहे थे ॥ ११६ ॥

तयोर्विसृजतोरेवं शरजालानि मारिष।
वायुरप्यन्तरा राजन् नाशक्नोत् प्रतिसर्पितुम्॥११७॥

माननीय नरेश ! इस प्रकार बाणसमूहोंकी वर्षा करते हुए उन दोनोंके बीचसे निकल जानेमें वायु भी असमर्थ हो गयी थी ॥ ११७ ॥

तथा द्रौणिर्महाराज शरान् हेमविभूषितान्।
तैलधौतान् प्रसन्नाग्रान् प्राहिणोद् वधकाङ्क्षया॥११८॥

महाराज ! तदनन्तर अश्वत्थामाने भीमसेनके वधकी इच्छासे तेलमें साफ किये हुए स्वच्छ अग्रभागवाले बहुत-से स्वर्णभूषित बाण चलाये ॥ ११८ ॥

तानन्तरिक्षे विशिखैस्त्रिधैकैकमशातयत्।
विशेषयन् द्रोणसुतं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥११९॥

परंतु भीमसेनने अपनी विशेषता स्थापित करते हुए अपने बाणोंद्वारा आकाशमें ही उन बाणोंमेंसे प्रत्येकके तीन-तीन टुकड़े कर डाले और द्रोणपुत्रसे कहा—'खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ ११९ ॥

पुनश्च शरवर्षाणि घोराण्युग्राणि पाण्डवः।
व्यसृजद् बलवान् क्रुद्धो द्रोणपुत्रवधेप्सया ॥१२०॥

फिर कुपित हुए पाण्डुपुत्र बलवान् भीमसेनने द्रोणपुत्रके वधकी इच्छासे उसके ऊपर पुनः घोर एवं उग्र बाणवर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ १२० ॥

ततोऽस्त्रमायया तूर्णं शरवृष्टिं निवार्य ताम्।
धनुश्चिच्छेद भीमस्य द्रोणपुत्रो महास्त्रवित् ॥१२१॥
शरैश्चैनं सुबहुभिः क्रुद्धः संख्ये पराभिनत्।

तब महान् अस्त्रवेत्ता द्रोणपुत्रने अपने अस्त्रोंकी मायासे तुरंत ही उस बाणवर्षाका निवारण करके भीमसेनका धनुष काट डाला। साथ ही क्रोधमें भरकर उसने युद्धस्थलमें बहुसंख्यक बाणोंद्वारा इन्हें क्षत-विक्षत कर दिया ॥१२१½॥

स छिन्नधन्वा बलवान् रथशक्तिं सुदारुणाम् ॥१२२॥
वेगेनाविध्य चिक्षेप द्रोणपुत्ररथं प्रति।

धनुष कट जानेपर बलवान् भीमसेनने द्रोणपुत्रके रथपर एक भयंकर रथशक्ति बड़े वेगसे घुमाकर फेंकी ॥ १२२½ ॥

तामापतन्तीं सहसा महोल्काभां शितैः शरैः ॥१२३॥
चिच्छेद समरे द्रौणिर्दर्शयन् पाणिलाघवम्।

बड़ी भारी उल्काके समान सहसा अपनी ओर आती हुई उस रथशक्तिको अश्वत्थामाने अपने हाथोंकी फुर्ती दिखाते हुए समरभूमिमें तीखे बाणोंसे काट डाला ॥१२३½॥

एतस्मिन्नन्तरे भीमो दृढमादाय कार्मुकम् ॥१२४॥
द्रौणिं विव्याध विशिखैः स्मयमानो वृकोदरः।

इसी बीचमें मुसकराते हुए भीमसेनने एक सुदृढ़ धनुष लेकर अनेक बाणोंसे द्रोणपुत्रको बींध डाला ॥ १२४½ ॥

ततो द्रौणिर्महाराज भीमसेनस्य सारथिम् ॥१२५॥
ललाटे दारयामास शरेणानतपर्वणा।

महाराज ! तब अश्वत्थामाने झुकी हुई गाँठवाले बाणसे भीमसेनके सारथिका ललाट छेद दिया ॥ १२५½ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता द्रोणपुत्रेण सारथिः ॥१२६॥
व्यामोहमगमद् राजन् रश्मीनुत्सृज्य वाजिनाम्।

राजन् ! बलवान् द्रोणपुत्रके द्वारा अत्यन्त घायल किया हुआ सारथि घोड़ोंकी बागडोर छोड़कर मूर्छित हो गया ॥ १२६½ ॥

ततोऽश्वाः प्राद्रवंस्तूर्णं मोहिते रथसारथौ ॥१२७॥
भीमसेनस्य राजेन्द्र पश्यतां सर्वधन्विनाम्।

राजेन्द्र ! सारथिके मूर्छित हो जानेपर भीमसेनके घोड़े सम्पूर्ण धनुर्धरोंके देखते-देखते तुरंत वहाँसे भाग चले ॥ १२७½ ॥

तं दृष्ट्वा प्रद्रुतैरश्वैरपकृष्टं रणाजिरात् ॥१२८॥
दध्मौ प्रमुदितः शङ्खं बृहन्तमपराजितः।

भागे हुए घोड़े भीमसेनको समराङ्गणसे दूर हटा ले गये, यह देखकर विजयी वीर अश्वत्थामाने अत्यन्त प्रसन्न हो अपना विशाल शङ्ख बजाया ॥ १२८½ ॥

ततः सर्वे च पञ्चाला भीमसेनश्च पाण्डवः ॥१२९॥
धृष्टद्युम्नरथं त्यक्त्वा भीताः सम्प्राद्रवन् दिशः ।

तब पाण्डुपुत्र भीमसेन और समस्त पाञ्चाल भयभीत हो धृष्टद्युम्नका रथ छोड़कर चारों दिशाओंमें भाग गये ॥ १२९½ ॥

तान् प्रभग्नांस्ततो द्रौणिः पृष्ठतो विकिरञ्शरान् ॥१३०॥
अभ्यवर्तत वेगेन कालयन् पाण्डुवाहिनीम् ।

उन भागते हुए सैनिकोंपर पीछेसे बाण बिखेरते और पाण्डवसेनाको खदेड़ते हुए अश्वत्थामाने बड़े वेगसे पीछा किया ॥ १३०½ ॥

ते वध्यमानाः समरे द्रोणपुत्रेण पार्थिवाः ॥१३१॥
द्रोणपुत्रभयाद् राजन् दिशः सर्वाश्च भेजिरे ॥१३२॥

राजन् ! समराङ्गणमें द्रोणपुत्रके द्वारा मारे जाते हुए समस्त राजाओंने उसके भयसे भागकर सम्पूर्ण दिशाओंकी शरण ली ॥ १३१-१३२ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वण्यश्वत्थामपराक्रमे द्विशततमोऽध्यायः ॥ २०० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत नारायणास्त्रमोक्षपर्वमें अश्वत्थामाका पराक्रमविषयक दो सौवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥२००॥

एकाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अश्वत्थामाके द्वारा आग्नेयास्त्रके प्रयोगसे एक अक्षौहिणी पाण्डवसेनाका संहार; श्रीकृष्ण और अर्जुनपर उस अस्त्रका प्रभाव न होनेसे चिन्तित हुए अश्वत्थामाको व्यासजीका शिव और श्रीकृष्णकी महिमा बताना

संजय उवाच

ततः प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रो धनंजयः ।
न्यवारयदमेयात्मा द्रोणपुत्रजयेप्सया ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर अमेय आत्मबलसे सम्पन्न कुन्तीकुमार अर्जुनने सेनाको भागती देख द्रोणपुत्रपर विजय पानेकी इच्छासे उसे रोका ॥ १ ॥

ततस्ते सैनिका राजन् नैव तत्रावतस्थिरे ।
संस्थाप्यमाना यत्नेन गोविन्देनार्जुनेन च ॥ २ ॥

नरेश्वर ! श्रीकृष्ण और अर्जुनके द्वारा प्रयत्नपूर्वक ठहराये जानेपर भी वे सैनिक वहाँ खड़े न हो सके ॥ २ ॥

एक एव च बीभत्सुः सोमकावयवैः सह ।
मत्स्यैरन्यैश्च संधाय कौरवान् संन्यवर्तत ॥ ३ ॥

अकेले अर्जुन ही सोमकोंकी टुकड़ियों, मत्स्यदेशीय योद्धाओं तथा अन्य लोगोंको साथ लेकर कौरवोंका सामना करनेके लिये लौटे ॥ ३ ॥

ततो द्रुतमतिक्रम्य सिंहलाङ्गूलकेतनम् ।
सव्यसाची महेष्वासमश्वत्थामानमब्रवीत् ॥ ४ ॥

सव्यसाची अर्जुन सिंहकी पूँछके चिह्नवाली ध्वजासे युक्त महाधनुर्धर अश्वत्थामाके पास तुरंत आकर उससे इस प्रकार बोले—॥ ४ ॥

या शक्तिर्यच्च विज्ञानं यद् वीर्यं यच्च पौरुषम् ।
धार्तराष्ट्रेषु या प्रीतिर्द्वेषोऽस्मासु च यश्च ते ॥ ५ ॥
यच्च भूयोऽस्ति तेजस्ते तत् सर्वं मयि दर्शय ।
स एव द्रोणहन्ता ते दर्पं छेत्स्यति पार्षतः ॥ ६ ॥

'आचार्यपुत्र ! तुममें जो शक्ति, जो विज्ञान, जो बल-पराक्रम, जो पुरुषार्थ, कौरवोंपर जो प्रेम तथा हमलोगोंपर जो तुम्हारा द्वेष हो, साथ ही तुममें जो तेज और प्रभाव हो, वह सब मुझपर दिखाओ। द्रोणाचार्यका वध करनेवाला वह धृष्टद्युम्न ही तुम्हारा सारा घमंड चूर कर देगा ॥ ५-६ ॥

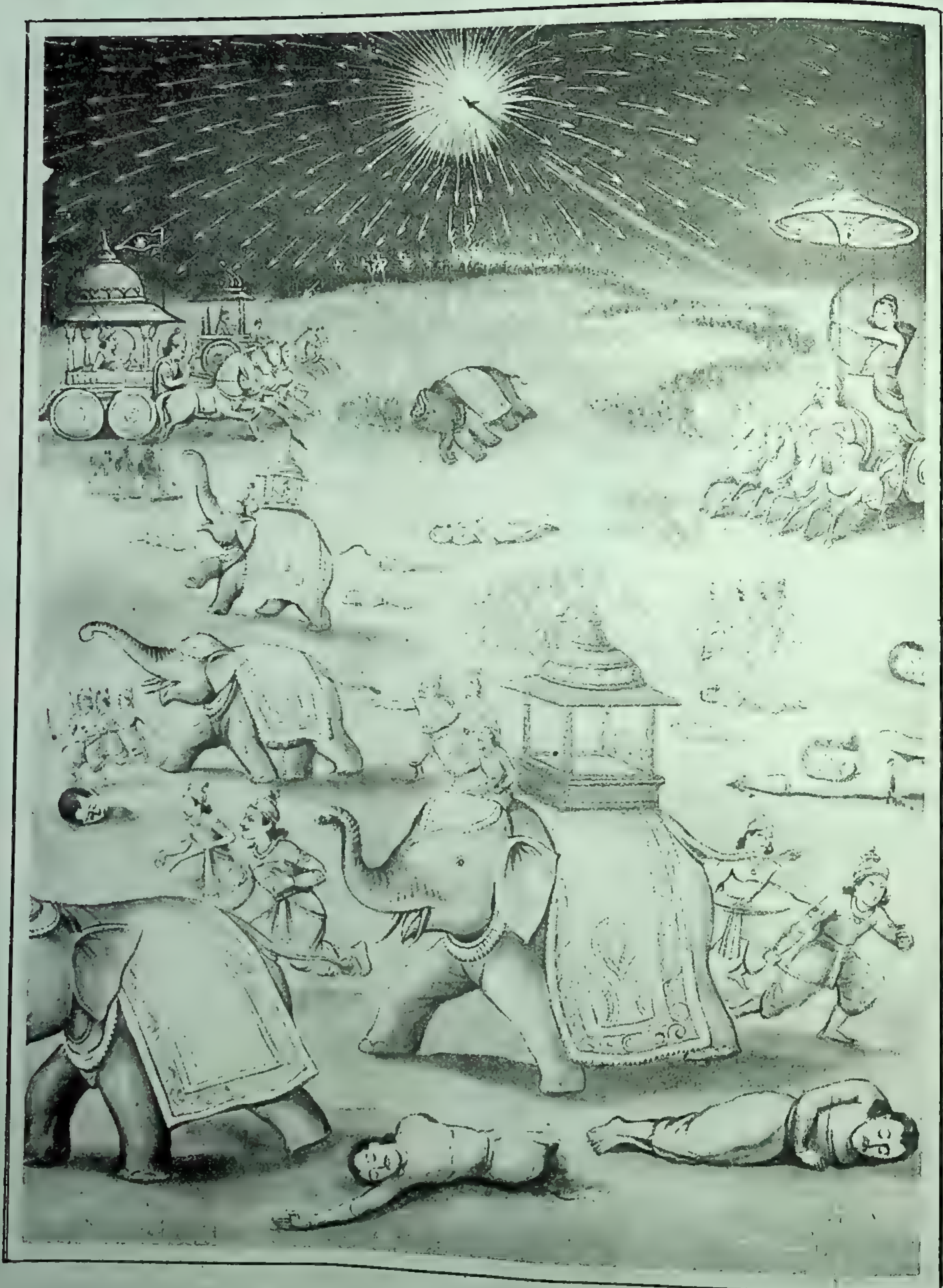
कालानलसमप्रख्यं द्विषतामन्तकोपमम् ।
समासादय पाञ्चाल्यं मां चापि सहकेशवम् ।
दर्पं नाशयितास्म्यद्य तवोद्धृतस्य संयुगे ॥ ७ ॥

'कालाग्निके समान तेजस्वी तथा शत्रुओंके लिये यमराजके समान भयंकर पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नपर तथा श्रीकृष्णसहित मुझपर भी तुम आक्रमण करो । तुम बड़े उद्दण्ड हो रहे हो। आज युद्धमें मैं तुम्हारा सारा घमंड दूर कर दूँगा' ॥ ७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

आचार्यपुत्रो मानार्हो बलवांश्चापि संजय ।
प्रीतिर्धनंजये चास्य प्रियश्चापि महात्मनः ॥ ८ ॥
न भूतपूर्वं बीभत्सोर्वाक्यं परुषमीदृशम् ।
अथ कस्मात् स कौन्तेयः सखायं रूक्षमुक्तवान् ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! आचार्यपुत्र अश्वत्थामा बलवान् और सम्मानके योग्य है । उसका अर्जुनपर प्रेम है और वह भी महात्मा अर्जुनको प्रिय है । अर्जुनका उसके प्रति ऐसा कठोर वचन पहले कभी नहीं सुना गया। फिर उस दिन कुन्तीकुमार अर्जुनने अपने मित्रके प्रति वैसी कठोर बात क्यों कही ? ॥ ८-९ ॥



अश्वत्थामाके द्वारा अर्जुनपर आग्नेयास्त्रका प्रयोग एवं उसके द्वारा पाण्डव-सेनाका संहार

संजय उवाच

युवराजे हते चैव वृद्धक्षत्रे च पौरवे।
इष्वस्त्रविधिसम्पन्ने मालवे च सुदर्शने ॥ १० ॥
धृष्टद्युम्ने सात्यकौ च भीमे चापि पराजिते।
युधिष्ठिरस्य तैर्वाक्यैर्मर्मण्यपि च घट्टिते ॥ ११ ॥
अन्तर्भेदे च संजाते दुःखं संस्मृत्य च प्रभो।
अभूतपूर्वो बीभत्सोर्दुःखान्मन्युरजायत ॥ १२ ॥

संजयने कहा—प्रभो! चेदिदेशके युवराज, पौरव वृद्धक्षत्र तथा बाणोंके प्रयोगमें कुशल मालवराज सुदर्शनके मारे जानेपर, धृष्टद्युम्न, सात्यकि और भीमसेनके परास्त हो जानेपर अर्जुनके मनमें बड़ा कष्ट हुआ था। इसके सिवा, युधिष्ठिरके उन व्यङ्ग्यवचनोंसे उनके मर्मस्थलमें बड़ी चोट पहुँची थी और पहलेके दुःखोंका स्मरण करके भी उनका हृदय फट गया था; अतः अधिक खेदके कारण अर्जुनके मनमें अभूतपूर्व क्रोध जाग उठा ॥ १०–१२ ॥

तस्मादनर्हमश्लीलमप्रियं द्रौणिमुक्तवान्।
मान्यमाचार्यतनयं रूक्षं कापुरुषं यथा ॥ १३ ॥

इसीलिये माननीय आचार्यपुत्र अश्वत्थामाके प्रति, जो कठोर वचन सुननेके योग्य नहीं था, अर्जुनने कायर मनुष्यसे कहने योग्य अश्लील, अप्रिय और कठोर बातें कह डालीं ॥ १३ ॥

एवमुक्तः श्वसन् क्रोधान्महेष्वासतमो नृप।
पार्थेन परुषं वाक्यं सर्वमर्मभिदा गिरा ॥ १४ ॥

नरेश्वर! जब अर्जुनने सारे मर्मस्थानोंको विदीर्ण कर देनेवाली वाणीद्वारा उससे ऐसी कठोर बात कह दी, तब श्रेष्ठ महाधनुर्धर अश्वत्थामा क्रोधके मारे लंबी साँस लेने लगा ॥ १४ ॥

द्रौणिश्चुकोप पार्थाय कृष्णाय च विशेषतः।
स तु यत्तो रथे स्थित्वा वार्युपस्पृश्य वीर्यवान् ॥ १५ ॥
देवैरपि सुदुर्धर्षमस्त्रमाग्नेयमाददे।

उस समय द्रोणपुत्रको अर्जुन और श्रीकृष्णपर अधिक क्रोध हुआ, उस पराक्रमी वीरने सावधानीके साथ रथपर खड़ा हो आचमन करके आग्नेयास्त्र हाथमें लिया, जो देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्जय था ॥ १५½ ॥

दृश्यादृश्यानरिगणानुद्दिश्याचार्यनन्दनः ॥ १६ ॥
सोऽभिमन्त्र्य शरं दीप्तं विधूममिव पावकम्।
सर्वतः क्रोधमाविश्य चिक्षेप परवीरहा ॥ १७ ॥

फिर धूमरहित अग्निके समान एक तेजस्वी बाणको अभिमन्त्रित करके शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले आचार्यनन्दन अश्वत्थामाने सर्वथा क्रोधावेशसे युक्त हो उसे प्रत्यक्ष और परोक्ष शत्रुओंके उद्देश्यसे चला दिया ॥ १६–१७ ॥



ततस्तुमुलमाकाशे शरवर्षमजायत।
पावकार्चिः परीतं तत् पार्थमेवाभिपुप्लुवे ॥ १८ ॥

फिर तो आकाशमें बाणोंकी भयंकर वर्षा होने लगी और सब ओर फैली हुई आगकी लपटें अर्जुनपर ही टूट पड़ीं ॥ १८ ॥

उल्काश्च गगनात् पेतुर्दिशश्च न चकाशिरे।
तमश्च सहसा रौद्रं चमूमवततार ताम् ॥ १९ ॥

आकाशसे उल्काएँ गिरने लगीं, दिशाओंका प्रकाश लुप्त हो गया और उस सेनामें सहसा भयानक अन्धकार उतर आया ॥ १९ ॥

रक्षांसि च पिशाचाश्च विनेदुरतिसङ्गताः।
ववुश्चाशिशिरा वाताः सूर्यो नैव तताप च ॥ २० ॥

राक्षस और पिशाच परस्पर मिलकर जोर-जोरसे गर्जना करने लगे, गरम हवा चलने लगी और सूर्यका ताप क्षीण हो गया ॥ २० ॥

वायसाश्चापि चाक्रन्दन् दिक्षु सर्वासु भैरवम्।
रुधिरं चापि वर्षन्तो विनेदुस्तोयदा दिवि ॥ २१ ॥

कौए सम्पूर्ण दिशाओंमें काँव-काँव करके भयानक कोलाहल मचाने लगे तथा मेघ रक्तकी वर्षा करते हुए आकाशमें गरजने लगे ॥ २१ ॥

पक्षिणः पशवो गावो विनेदुश्चापि सुव्रताः।
परमं प्रयतात्मानो न शान्तिमुपलेभिरे ॥ २२ ॥

पक्षी और गाय आदि पशु भी चीत्कार करने लगे। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले शुद्धचित्त साधु पुरुष भी अत्यन्त अशान्त हो उठे ॥ २२ ॥

भ्रान्तसर्वमहाभूतमावर्तितदिवाकरम्

त्रैलोक्यमभिसंतप्तं ज्वराविष्टमिवाभवत् ॥ २३ ॥

सम्पूर्ण महाभूत मानो चक्कर काट रहे थे। सूर्य भी घूमता-सा प्रतीत होता था। तीनों लोकोंके प्राणी ज्वरग्रस्तके समान संतप्त हो उठे थे ॥ २३ ॥

अस्त्रतेजोऽभिसंतप्ता नागा भूमिशयास्तथा।
निःश्वसन्तः समुत्पेतुस्तेजो घोरं मुमुक्षवः ॥ २४ ॥

पृथ्वीपर पड़े रहनेवाले नाग भी उस अस्त्रके तेजसे संतप्त हो भयंकर आगसे छुटकारा पानेके लिये फुफकारते हुए ऊपर उछलने लगे ॥ २४ ॥

जलजानि च सत्त्वानि दह्यमानानि भारत।
न शान्तिमुपजग्मुर्हि तप्यमानैर्जलाशयैः ॥ २५ ॥

भारत! जलाशय भी तप गये थे, जिससे दग्ध होनेवाले जलचर प्राणियोंको भी शान्ति नहीं मिल पाती थी ॥ २५ ॥

दिग्भ्यः प्रदिग्भ्यः खाद् भूमेः सर्वतः शरवृष्टयः।
उच्चावचा निपेतुर्वै गरुडानिलरंहसः ॥ २६ ॥

दिशा, विदिशा, आकाश और पृथ्वी सब ओरसे छोटे-बड़े नाना प्रकारके बाणोंकी वर्षा होने लगी, वे सभी बाण गरुड़ और वायुके समान वेगशाली थे ॥ २६ ॥

तैः शरैर्द्रोणपुत्रस्य वज्रवेगैः समाहताः।
प्रदग्धा रिपवः पेतुरग्निदग्धा इव द्रुमाः ॥ २७ ॥

द्रोणपुत्रके चलाये हुए उन वज्रके समान वेगशाली बाणोंसे घायल हुए शत्रुसैनिक आगके जलाये हुए वृक्षोंके समान दग्ध होकर गिरने लगे ॥ २७ ॥

दह्यमाना महानागाः पेतुरुर्व्यां समन्ततः।
नदन्तो भैरवान् नादाञ्जलदोपमनिःस्वनान् ॥ २८ ॥

विशालकाय गजराज दग्ध हो-होकर मेघकी गर्जनाके



समान भयंकर चीत्कार करते हुए सब ओर धराशायी होने लगे ॥ २८ ॥

अपरे प्रद्रुता नागा भयत्रस्ता विशाम्पते।
भ्रेमुर्दिशो यथा पूर्वं वने दावाग्निसंवृताः ॥ २९ ॥

प्रजानाथ! भयभीत होकर भागे हुए दूसरे बहुत-से हाथी सम्पूर्ण दिशाओंमें उसी प्रकार चक्कर काटने लगे, जैसे पहले वनमें दावानलसे घिर जानेपर वे चारों ओर चक्कर लगाते थे ॥ २९ ॥

द्रुमाणां शिखराणीव दावदग्धानि मारिष।
अश्ववृन्दान्यदृश्यन्त रथवृन्दानि भारत ॥ ३० ॥
अपतन्त रथौघाश्च तत्र तत्र सहस्रशः।

माननीय नरेश! भारत! अश्वसमूह तथा रथवृन्द दावानलसे दग्ध हुए वृक्षोंके अग्रभागके समान दिखायी दे रहे थे और जहाँ-तहाँ सहस्रों रथसमूह गिरे पड़े थे ॥ ३०½ ॥

तत् सैन्यं भयसंविग्नं ददाह युधि भारत ॥ ३१ ॥
युगान्ते सर्वभूतानि संवर्तक इवानलः।

भरतनन्दन! जैसे प्रलयकालमें संवर्तक अग्नि सब प्राणियोंको जलाकर भस्म कर देती है, उसी प्रकार उस आग्नेयास्त्रने पाण्डवोंकी उस भयभीत सेनाको युद्धस्थलमें जलाना आरम्भ कर दिया ॥ ३१½ ॥

दृष्ट्वा तु पाण्डवीं सेनां दह्यमानां महाहवे ॥ ३२ ॥
प्रहृष्टास्तावका राजन् सिंहनादान् विनेदिरे।

राजन्! उस महासमरमें पाण्डवसेनाको दग्ध होती देख आपके सैनिक अत्यन्त प्रसन्न हो जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे ॥ ३२½ ॥

ततस्तूर्यसहस्राणि नानालिङ्गानि भारत ॥ ३३ ॥
तूर्णमाजघ्निरे हृष्टास्तावका जितकाशिनः।

भारत! तदनन्तर हर्षसे उल्लसित और विजयसे सुशोभित होनेवाले आपके सैनिक नाना प्रकारके सहस्रों बाजे बजाने लगे ॥ ३३½ ॥

कृत्स्ना ह्यक्षौहिणी राजन् सव्यसाची च पाण्डवः ॥ ३४ ॥
तमसा संवृते लोके नादृश्यन्त महाहवे।

नरेश्वर! उस महासमरमें सब लोग अन्धकारसे आच्छन्न हो गये थे। पाण्डवोंकी सारी अक्षौहिणी सेना और सव्यसाची अर्जुन भी नहीं दिखायी देते थे ॥ ३४½ ॥

नैव नस्तादृशं राजन् दृष्टपूर्वं न च श्रुतम् ॥ ३५ ॥
यादृशं द्रोणपुत्रेण सृष्टमस्त्रममर्षिणा।

राजन्! अमर्षमें भरे हुए द्रोणपुत्रने जैसे अस्त्रकी सृष्टि की थी, वैसा हमलोगोंने पहले न तो कभी देखा था और न सुना ही था ॥ ३५½ ॥

अर्जुनस्तु महाराज ब्राह्ममस्त्रमुदैरयत् ॥ ३६ ॥
सर्वास्त्रप्रतिघातार्थं विहितं पद्मयोनिना।

महाराज! उस समय अर्जुनने ब्रह्मास्त्रको प्रकट किया,

जिसे ब्रह्माजीने सम्पूर्ण अस्त्रोंके विनाशके लिये बनाया है ॥ ३६½ ॥

ततो मुहूर्तादिव तत् तमो व्युपशशाम ह ॥ ३७ ॥
प्रववौ चानिलः शीतो दिशश्च विमला बभुः ।

फिर तो दो ही घड़ीमें वह सारा अन्धकार दूर हो गया, शीतल वायु बहने लगी और सारी दिशाएँ स्वच्छ हो गयीं ॥ ३७½ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम कृत्स्नामक्षौहिणीं हताम् ॥ ३८ ॥
अनभिज्ञेयरूपां च प्रदग्धामस्त्रतेजसा ।

वहाँ हमलोगोंने अद्भुत दृश्य देखा । पाण्डवोंकी वह सारी अक्षौहिणी उस अस्त्रके तेजसे इस प्रकार दग्ध एवं नष्ट हो गयी थी कि उसे पहचानना असम्भव हो गया ॥ ३८½ ॥

ततो वीरौ महेष्वासौ विमुक्तौ केशवार्जुनौ ॥ ३९ ॥
सहितौ प्रत्यदृश्येतां नभसीव तमोनुदौ ।

तदनन्तर उस अस्त्रसे मुक्त हुए महाधनुर्धर वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन एक साथ दिखायी दिये, मानो आकाशमें चन्द्रमा और सूर्य प्रकट हो गये हों ॥ ३९½ ॥

ततो गाण्डीवधन्वा च केशवश्चाक्षतावुभौ ॥ ४० ॥
सपताकध्वजहयः सानुकर्षवरायुधः ।
प्रबभौ स रथो मुक्तस्तावकानां भयंकरः ॥ ४१ ॥

उस समय गाण्डीवधारी अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्ण दोनोंके शरीरपर आँच नहीं आने पायी थी। पताका, ध्वज, अश्व, अनुकर्ष और श्रेष्ठ आयुधोंसहित मुक्त हुआ उनका वह रथ आपके सैनिकोंको भयभीत करता हुआ चमक उठा ॥ ४०-४१ ॥



ततः किलकिलाशब्दः शङ्खभेरीस्वनैः सह ।
पाण्डवानां प्रहृष्टानां क्षणेन समजायत ॥ ४२ ॥

तब पाण्डव हर्षसे खिल उठे और क्षणभरमें शङ्ख तथा भेरियोंकी ध्वनिके साथ उनका आनन्दमय कोलाहल गूँज उठा ॥ ४२ ॥

हताविति तयोरासीत् सेनयोरुभयोर्मतिः ।
तरसाभ्यागतौ दृष्ट्वा सहितौ केशवार्जुनौ ॥ ४३ ॥

श्रीकृष्ण और अर्जुनके सम्बन्धमें उन दोनों ही सेनाओंको यह विश्वास हो गया था कि वे मारे गये। फिर उन दोनोंको एक साथ वेगपूर्वक निकट आया देख सबको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ४३ ॥

तावक्षतौ प्रमुदितौ दध्मतुर्वारिजोत्तमौ ।
दृष्ट्वा प्रमुदितान् पार्थांस्त्वदीया व्यथिता भृशम्॥ ४४ ॥

उन दोनोंके शरीरमें क्षति नहीं पहुँची थी। वे दोनों वीर आनन्दमग्न हो अपने उत्तम शङ्ख बजाने लगे। कुन्तीके पुत्रोंको प्रसन्न देखकर आपके पुत्रोंके मनमें बड़ी व्यथा हुई ॥ ४४ ॥

विमुक्तौ च महात्मानौ दृष्ट्वा द्रौणिः सुदुःखितः ।
मुहूर्तं चिन्तयामास किं त्वेतदिति मारिष ॥ ४५ ॥

माननीय नरेश ! महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुनको आग्नेयास्त्रसे मुक्त देख अश्वत्थामाको बड़ा दुःख हुआ। वह दो घड़ीतक इसी चिन्तामें डूबा रहा कि 'यह क्या हो गया ?' ॥ ४५ ॥

चिन्तयित्वा तु राजेन्द्र ध्यानशोकपरायणः ।
निःश्वसन् दीर्घमुष्णं च विमनाश्चाभवत् ततः ॥ ४६ ॥

राजेन्द्र ! चिन्ता और शोकमें मग्न होकर कुछ देरतक विचार करनेके पश्चात् अश्वत्थामा गरम-गरम दीर्घ उच्छ्वास लेने लगा और मन-ही-मन उदास हो गया ॥ ४६ ॥

ततो द्रौणिर्धनुस्त्यक्त्वा रथात् प्रस्कन्द्य वेगितः।
धिग् धिक् सर्वमिदं मिथ्येत्युक्त्वा सम्प्राद्रवद् रणात् ४७

तत्पश्चात् द्रोणकुमार धनुष त्यागकर रथसे कूद पड़ा और 'धिक्कार है ! धिक्कार है !! यह सब मिथ्या है' ऐसा कहकर वह रणभूमिसे वेगपूर्वक भाग चला ॥ ४७ ॥

ततः स्निग्धाम्बुदाभासं वेदावासमकल्मषम् ।
वेदव्यासं सरस्वत्यावासं व्यासं ददर्श ह ॥ ४८ ॥

इतनेहीमें उसे स्निग्ध मेघके समान श्याम कान्तिवाले, वेद और सरस्वतीके आवास-स्थान तथा वेदोंका विस्तार करनेवाले, पापशून्य महर्षि व्यास वहाँ दिखायी दिये ॥ ४८ ॥

तं द्रौणिरग्रतो दृष्ट्वा स्थितं कुरुकुलोद्वह ।
सन्नकण्ठोऽब्रवीद् वाक्यमभिवाद्य सुदीनवत् ॥ ४९ ॥

कुरुकुलके श्रेष्ठ पुरुष ! महर्षि व्यासको सामने खड़ा

देख द्रोणकुमारका गला आँसुओंसे भर आया। उसने अत्यन्त दीनभावसे प्रणाम करके उनसे इस प्रकार पूछा—॥



भो भो माया यदृच्छा वा न विद्मः किमिदं भवेत्।
अस्त्रं त्विदं कथं मिथ्या मम कश्च व्यतिक्रमः ॥ ५० ॥

'महर्षे! यह माया है या दैवेच्छा। मेरी समझमें नहीं आता कि यह क्या है! यह अस्त्र झूठा कैसे हो गया! मुझसे कौन-सी गलती हो गयी? ॥ ५० ॥

अधरोत्तरमेतद् वा लोकानां वा पराभवः।
यदिमौ जीवतः कृष्णौ कालो हि दुरतिक्रमः ॥ ५१ ॥

'इस (आग्नेय) अस्त्रके प्रभावमें कोई उलट-फेर तो नहीं हो गया अथवा सम्पूर्ण लोकोंका पराभव होनेवाला है, जिससे ये दोनों कृष्ण जीवित बच गये। निश्चय ही कालका उल्लङ्घन करना अत्यन्त कठिन है ॥ ५१ ॥

नासुरा न च गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः।
न सर्पा यक्षपतगा न मनुष्याः कथंचन ॥ ५२ ॥
उत्सहन्तेऽन्यथा कर्तुमेतदस्त्रं मयेरितम्।
तदिदं केवलं हत्वा शान्तमक्षौहिणीं ज्वलत् ॥ ५३ ॥

'मेरे द्वारा प्रयोग किये हुए इस अस्त्रको असुर, गन्धर्व, पिशाच, राक्षस, सर्प, यक्ष, पक्षी और मनुष्य किसी तरह भी व्यर्थ नहीं कर सकते थे, तो भी यह प्रज्वलित अस्त्र केवल एक अक्षौहिणी सेनाको जलाकर शान्त हो गया ॥५२-५३॥

सर्वघाति मया मुक्तमस्त्रं परमदारुणम्।
केनेमौ मर्त्यधर्माणौ नावधीत् केशवार्जुनौ ॥ ५४ ॥

'मैंने तो अत्यन्त भयंकर एवं सर्वसंहारक अस्त्रका प्रयोग किया था; फिर उसने किस कारणसे इन मर्त्यधर्मा श्रीकृष्ण और अर्जुनका वध नहीं किया? ॥ ५४ ॥

एतत् प्रब्रूहि भगवन् मया पृष्टो यथातथम्।
श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन सर्वमेतन्महामुने ॥ ५५ ॥

'भगवन्! महामुने! मैंने जो आपसे यह प्रश्न किया है, इसका मुझे यथार्थ उत्तर दीजिये। मैं यह सब कुछ ठीक-ठीक सुनना चाहता हूँ' ॥ ५५ ॥

व्यास उवाच

महान्तमेवमथ मां यं त्वं पृच्छसि विस्मयात्।
तं प्रवक्ष्यामि ते सर्वं समाधाय मनः शृणु ॥ ५६ ॥

व्यासजी बोले—तू जिसके सम्बन्धमें आश्चर्यके साथ प्रश्न कर रहा है, उस महत्त्वपूर्ण विषयको मैं तुझसे बता रहा हूँ। तू अपने मनको एकाग्र करके सब कुछ सुन ॥

योऽसौ नारायणो नाम पूर्वेषामपि पूर्वजः।
(आदिदेवो जगन्नाथो लोककर्ता स्वयं प्रभुः।
आद्यः सर्वस्य लोकस्य अनादिनिधनोऽच्युतः॥

जो हमारे पूर्वजोंके भी पूर्वज भगवान् नारायण हैं, वे ही आदिदेव, जगन्नाथ, लोककर्ता और स्वयं ही सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। वे सम्पूर्ण जगत्के आदिकारण तथा स्वयं आदि-अन्तसे रहित हैं। अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेके कारण वे अच्युत कहलाते हैं ॥

व्याकुर्वते यस्य तत्त्वं श्रुतयो मुनयश्च ह।
अतोऽजय्यः सर्वभूतैर्मनसापि जगत्पतिः ॥)

श्रुतियाँ और महर्षिगण उन्हींके तत्त्वका विवेचन करते हैं। अतः उन जगदीश्वरको समस्त प्राणी मनसे भी जीतनेमें असमर्थ हैं ॥

अजायत च कार्यार्थं पुत्रो धर्मस्य विश्वकृत् ॥ ५७ ॥

वे विश्वविधाता भगवान् एक समय किसी विशेष कार्यके लिये धर्मके पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुए थे ॥ ५७ ॥

स तपस्तीव्रमातस्थे शिशिरं गिरिमास्थितः।
ऊर्ध्वबाहुर्महातेजा ज्वलनादित्यसंनिभः ॥ ५८ ॥

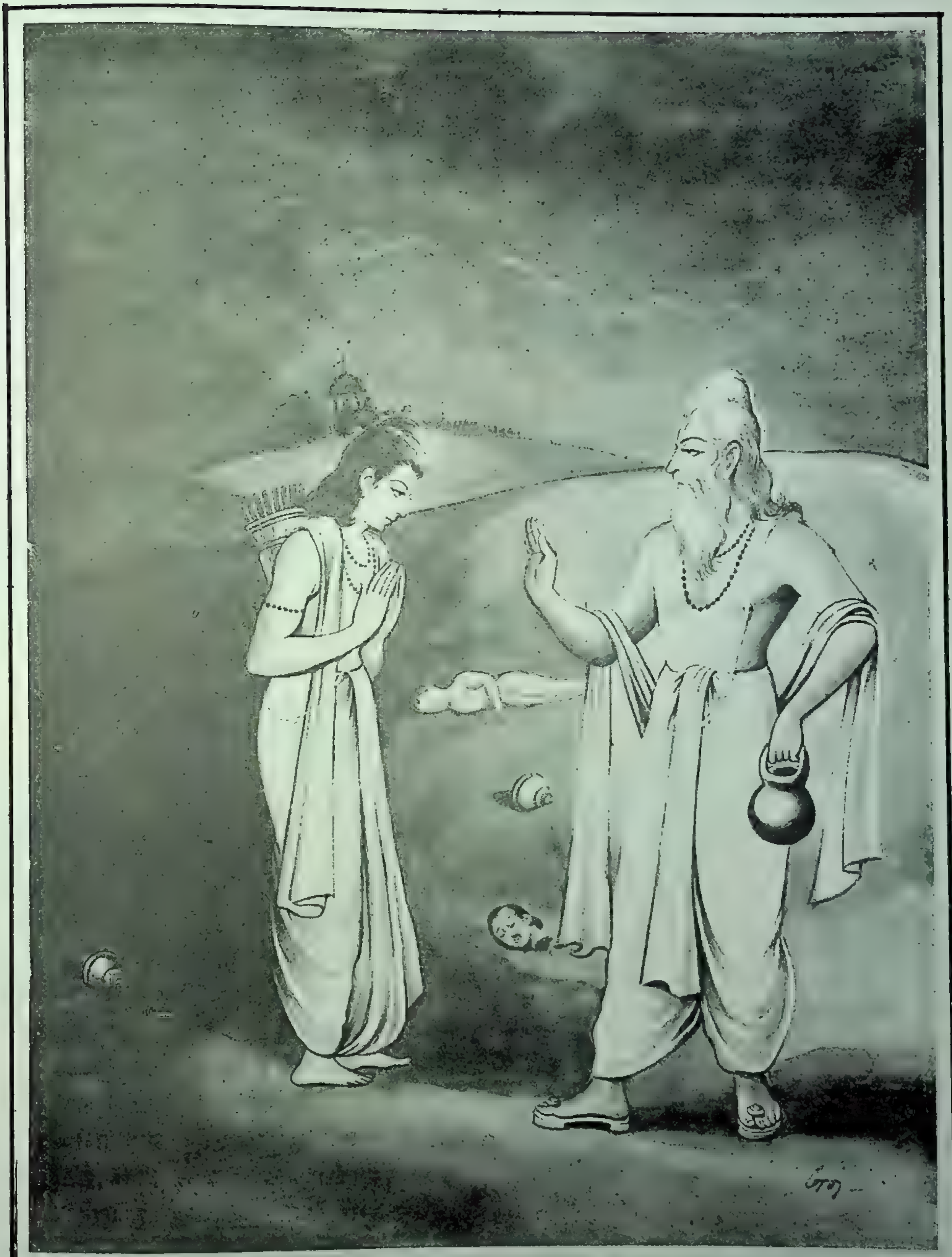
अग्नि और सूर्यके समान महातेजस्वी उन भगवान् नारायणने हिमालय पर्वतपर रहकर अपनी दोनों भुजाएँ ऊपर उठाये हुए बड़ी कठोर तपस्या की थी ॥ ५८ ॥

षष्टिं वर्षसहस्राणि तावन्त्येव शतानि च।
अशोषयत् तदाऽऽत्मानं वायुभक्षोऽम्बुजेक्षणः॥ ५९ ॥

उन कमलनयन श्रीहरिने छाछठ हजार वर्षोंतक केवल वायु पीकर उन दिनों अपनी शरीरको सुखाया ॥ ५९ ॥

अथापरं तपस्तप्त्वा द्विस्ततोऽन्यत् पुनर्महत्।
द्यावापृथिव्योर्विवरं तेजसा समपूरयत् ॥ ६० ॥

तदनन्तर उससे दुगुने कालतक फिर भारी तपस्या



वेदव्यासजीका अश्वत्थामाको आश्वासन

करके उन्होंने अपने तेजसे पृथ्वी और आकाशके मध्यवर्ती आकाशको भर दिया ॥ ६० ॥

स तेन तपसा तात ब्रह्मभूतो यदाभवत् ।
ततो विश्वेश्वरं योनिं विश्वस्य जगतः पतिम् ॥ ६१ ॥
ददर्श भृशदुर्धर्षं सर्वदेवैरभिष्टुतम् ।
अणीयांसमणुभ्यश्च बृहद्भ्यश्च बृहत्तमम् ॥ ६२ ॥

तात ! उस तपस्यासे जब वे साक्षात् ब्रह्मस्वरूपमें स्थित हो गये, तब उन्हें उन भगवान् विश्वेश्वरका दर्शन हुआ जो सम्पूर्ण विश्वके उत्पत्ति-स्थान और जगत्के पालक हैं, जिन्हें पराजित करना अत्यन्त कठिन (असम्भव) है। सम्पूर्ण देवता जिनकी स्तुति करते हैं तथा जो सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म और महान्से भी परम महान् हैं ॥

रुद्रमीशानवृषभं हरं शम्भुं कपर्दिनम् ।
चेकितानं परां योनिं तिष्ठतो गच्छतश्च ह ॥ ६३ ॥

वे 'रु' अर्थात् दुःखको दूर करनेके कारण रुद्र कहलाते हैं । ब्रह्मा आदि लोकपालोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं। पापहारी, कल्याण-की प्राप्ति करानेवाले तथा जटाजूटधारी हैं । वे ही सबको चेतना प्रदान करते हैं और वे ही स्थावर-जङ्गम प्राणियोंके परम कारण हैं ॥ ६३ ॥

दुर्वारणं दुर्दृशं तिग्ममन्युं
महात्मानं सर्वहरं प्रचेतसम् ।
दिव्यं चापमिषुधी चाददानं
हिरण्यवर्माणमनन्तवीर्यम् ॥ ६४ ॥

उन्हें कहीं कोई रोक नहीं सकता, उनका दर्शन बड़ी कठिनाईसे होता है, वे दुष्टोंपर प्रचण्ड कोप करनेवाले हैं, उनका हृदय विशाल है, वे सारे क्लेशोंको हर लेनेवाले अथवा सर्वसंहारी हैं, साधु पुरुषोंके प्रति उनका हृदय अत्यन्त उदार है, वे दिव्य धनुष और दो तरकस धारण करते हैं, उनका कवच सोनेका बना हुआ है तथा वे अनन्त बल-पराक्रमसे सम्पन्न हैं ॥ ६४ ॥

पिनाकिनं वज्रिणं दीप्तशूलं
परश्वधिं गदिनं चायतासिम् ।
शुभ्रं जटिलं मुसलिनं चन्द्रमौलिं
व्याघ्राजिनं परिघिणं दण्डपाणिम् ॥ ६५ ॥

वे अपने हाथोंमें पिनाक और वज्र धारण करते हैं, उनके एक हाथमें त्रिशूल चमकता रहता है, वे फरसा, गदा और लंबी तलवार लिये रहते हैं, मुसल, परिघ और दण्ड भी उनके हाथोंकी शोभा बढ़ाते हैं, उनकी अङ्गकान्ति उज्ज्वल है, वे मस्तकपर जटा और उसके ऊपर चन्द्रमाका मुकुट धारण करते हैं, उनके श्रीअङ्गमें बाघम्बर शोभा देता है ॥ ६५ ॥

शुभाङ्गदं नागयज्ञोपवीतं
विश्वैर्गणैः शोभितं भूतसंघैः ।
एकीभूतं तपसां संनिधानं
वयोऽतिगैः सुष्टुतमिष्टवाग्भिः ॥ ६६ ॥

उनकी भुजाओंमें सुन्दर अङ्गद (बाजूबंद) और गलेमें नागमय यज्ञोपवीत शोभा पाते हैं, वे अपने पार्षदस्वरूप सम्पूर्ण भूतसमुदायोंसे सुशोभित हैं, उन्हें एकमात्र अद्वितीय परमेश्वर समझना चाहिये, वे तपस्याकी निधि हैं और वृद्ध पुरुष प्रिय वचनोंद्वारा उनकी स्तुति करते हैं ॥ ६६ ॥

जलं दिशं खं क्षितिं चन्द्रसूर्यौ
तथा वाय्वग्नी प्रमिमाणं जगच्च ।
नालं द्रष्टुं यं जना भिन्नवृत्ता
ब्रह्मद्विषघ्नममृतस्य योनिम् ॥ ६७ ॥

जल, दिशा, आकाश, पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य, वायु, अग्नि तथा जगत्को माप लेनेवाला काल—ये सब उन्हींके स्वरूप हैं । वे ब्रह्मद्रोहियोंके नाशक और मोक्षके परम कारण हैं, दुराचारी मनुष्य उनका दर्शन पानेमें असमर्थ हैं ॥ ६७ ॥

यं पश्यन्ति ब्राह्मणाः साधुवृत्ताः
क्षीणे पापे मनसा वीतशोकाः ।
तं निष्पतन्तं तपसा धर्ममीड्यं
तद्भक्त्या वै विश्वरूपं ददर्श ।
दृष्ट्वा चैनं वाङ्मनोबुद्धिदेहैः
संहृष्टात्मा मुमुदे वासुदेवः ॥ ६८ ॥

जिन्होंने मनसे शोक-संतापको सर्वथा दूर कर दिया है, वे सदाचारी ब्राह्मण पापोंका क्षय हो जानेपर जिनका दर्शन कर पाते हैं, यह सम्पूर्ण विश्व जिनका स्वरूप है, जो साक्षात् धर्म तथा स्तवन करने योग्य परमेश्वर हैं; वे ही महेश्वर वहाँ उनकी तपस्या और भक्तिके प्रभावसे प्रकट हो गये तथा तपस्वी नारायणने उनका दर्शन किया । उनका दर्शन करके मन, वाणी, बुद्धि और शरीरके साथ ही उनकी अन्तरात्मा हर्षसे खिल उठी । उन भगवान् वासुदेवने बड़े आनन्दका अनुभव किया ॥ ६८ ॥

अक्षमालापरिक्षिप्तं ज्योतिषां परमं निधिम् ।
ततो नारायणो दृष्ट्वा ववन्दे विश्वसम्भवम् ॥ ६९ ॥

रुद्राक्षकी मालासे विभूषित तथा तेजकी परम निधिरूप उन विश्व-विधाताका दर्शन करके भगवान् नारायणने उनकी वन्दना की ॥ ६९ ॥

वरदं पृथुचार्वङ्ग्या पार्वत्या सहितं प्रभुम् ।
क्रीडमानं महात्मानं भूतसङ्घगणैर्वृतम् ॥ ७० ॥
अजमीशानमव्यक्तं कारणात्मानमच्युतम् ।

वे वरदायक प्रभु हृष्टपुष्ट एवं मनोहर अङ्गोंवाली पार्वती-

देवीके साथ क्रीड़ा करते हुए पधारे थे। उन अजन्मा, ईशान अव्यक्त, कारणस्वरूप और अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले परमात्माको उनके पार्षदस्वरूप भूतगणोंने घेर रक्खा था ॥ ७०½ ॥

(स्वजानुभ्यां महीं गत्वा कृत्वा शिरसि चाञ्जलिम्।)
अभिवाद्याथ रुद्राय सद्योऽन्धकनिपातिने।
पद्माक्षस्तं विरूपाक्षमभितुष्टाव भक्तिमान् ॥ ७१ ॥

कमलनयन भगवान् श्रीहरिने पृथ्वीपर दोनों घुटने टेककर और मस्तकपर हाथ जोड़कर अन्धकासुरका विनाश करनेवाले उन रुद्रदेवको प्रणाम किया और भक्तिभावसे युक्त हो उन भगवान् विरूपाक्षकी वे इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥

श्रीनारायण उवाच

त्वत्सम्भूता भूतकृतो वरेण्य
गोप्तारोऽस्य भुवनस्यादिदेव।
आविश्येमां धरणीं येऽभ्यरक्षन्
पुरा पुराणीं तव देवसृष्टिम् ॥ ७२ ॥

श्रीनारायण बोले—सर्वश्रेष्ठ आदिदेव! जिन्होंने इस पृथ्वीमें समाकर आपकी पुरातन दिव्य सृष्टिकी रक्षा की थी तथा जो इस विश्वकी भी रक्षा करनेवाले हैं, वे सम्पूर्ण प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले प्रजापतिगण भी आपसे ही उत्पन्न हुए हैं ॥ ७२ ॥

सुरासुरान् नागरक्षःपिशाचान्
नरान् सुपर्णानथ गन्धर्वयक्षान्।
पृथग्विधान् भूतसंघांश्च विश्वां-
स्त्वत्सम्भूतान् विद्म सर्वांस्तथैव।
ऐन्द्रं याम्यं वारुणं वैत्तपाल्यं
पैत्रं त्वाष्ट्रं कर्म सौम्यं च तुभ्यम् ॥ ७३ ॥

देवता, असुर, नाग, राक्षस, पिशाच, मनुष्य, गरुड़ आदि पक्षी, गन्धर्व तथा यक्ष आदि जो पृथक्-पृथक् प्राणियोंके अखिल समुदाय हैं, उन सबको हम आपसे ही उत्पन्न हुआ मानते हैं। इसी प्रकार इन्द्र, यम, वरुण और कुबेरका पद, पितरोंका लोक तथा विश्वकर्माकी सुन्दर शिल्पकला आदिका आविर्भाव भी आपसे ही हुआ है ॥ ७३ ॥

रूपं ज्योतिः शब्द आकाशवायुः
स्पर्शः स्वाद्यं सलिलं गन्ध उर्वी।
कालो ब्रह्मा ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च
त्वत्सम्भूतं स्थास्नु चरिष्णु चेदम् ॥ ७४ ॥

शब्द और आकाश, स्पर्श और वायु, रूप और तेज, रस और जल तथा गन्ध और पृथ्वीकी उत्पत्ति भी आपसे ही हुई है। काल, ब्रह्मा, वेद, ब्राह्मण तथा यह सम्पूर्ण चराचर जगत् भी आपसे ही उत्पन्न हुआ है ॥ ७४ ॥

अद्भ्यः स्तोका यान्ति यथा पृथक्त्वं
ताभिश्चैक्यं संक्षये यान्ति भूयः।
एवं विद्वान् प्रभवं चाप्ययं च
मत्वा भूतानां तव सायुज्यमेति ॥ ७५ ॥

जैसे जलसे उसकी बूँदें विलग हो जाती हैं और क्षीण होनेपर कालक्रमसे वे पुनः जलमें मिलकर उसके साथ एकरूप हो जाती हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण भूत आपसे ही उत्पन्न होते और आपमें ही लीन होते हैं। ऐसा जाननेवाला विद्वान् पुरुष आपका सायुज्य प्राप्त कर लेता है ॥ ७५ ॥

दिव्यामृतौ मानसौ द्वौ सुपर्णौ
वाचा शाखाः पिप्पलाः सप्त गोपाः।
दशाप्यन्ये ये पुरं धारयन्ति
त्वया सृष्टास्त्वं हि तेभ्यः परो हि ॥ ७६ ॥

अन्तःकरणमें निवास करनेवाले दो दिव्य एवं अमृतस्वरूप पक्षी (ईश्वर और जीव) हैं। सात धातुरूप सात पीपल हैं, जो उनकी रक्षा करनेवाले हैं। वेदवाणी ही उन वृक्षोंकी विविध शाखाएँ हैं। दूसरी भी दस वस्तुएँ (इन्द्रियाँ) हैं, जो पाञ्चभौतिक शरीररूपी नगरको धारण करती हैं। ये सारे पदार्थ आपके ही रचे हुए हैं, तथापि आप इन सबसे परे हैं ॥ ७६ ॥

भूतं भव्यं भविता चाप्यधृष्यं
त्वत्सम्भूता भुवनानीह विश्वा।
भक्तं च मां भजमानं भजस्व
मा रीरिषो मामहिताहितेन ॥ ७७ ॥

भूत, वर्तमान, भविष्य तथा अजेय काल—ये सब आपके ही स्वरूप हैं। यहाँ सम्पूर्ण लोक आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। मैं आपका भजन करनेवाला भक्त हूँ, आप मुझे अपनाइये। अहित करनेवालोंको रखकर मेरी हिंसा न कराइये ॥ ७७ ॥

आत्मानं त्वामात्मनोऽनन्यबोधं
विद्वानेवं गच्छति ब्रह्म शुक्रम्।
अस्तौषं त्वां तव सम्मानमिच्छन्
विचिन्वन् वै सदृशं देववर्य।
सुदुर्लभान् देहि वरान् ममेष्टा-
नभिष्टुतः प्रविकार्षीश्च मायाम् ॥ ७८ ॥

आप जीवात्मासे अभिन्न अनुभव किये जानेवाले सबके आत्मा हैं, ऐसा जाननेवाला विद्वान् पुरुष विशुद्ध ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। देववर्य! मैंने आपके सत्कारकी शुभ इच्छा लेकर यह स्तवन किया है। स्तुतिके सर्वथा योग्य आप परमेश्वरका मैं चिरकालसे अन्वेषण कर रहा था। जिनकी भलीभाँति स्तुति की गयी है ऐसे आप अपनी मायाको दूर कीजिये और मुझे अभीष्ट दुर्लभ वर प्रदान कीजिये ॥

व्यास उवाच

तस्मै वरानचिन्त्यात्मा नीलकण्ठः पिनाकधृत् ।
अर्हते देवमुख्याय प्रायच्छदृषिसंस्तुतः ॥ ७९ ॥

व्यासजी कहते हैं—द्रोणकुमार ! नारायण ऋषिके इस प्रकार स्तुति करनेपर अचिन्त्यस्वरूप, पिनाकधारी, नीलकण्ठ भगवान् शिवने वर पानेके सर्वथा योग्य उन देवप्रधान नारायणको बहुत-से वर दिये ॥ ७९ ॥

श्रीभगवानुवाच

मत्प्रसादान्मनुष्येषु देवगन्धर्वयोनिषु ।
अप्रमेयबलात्मा त्वं नारायण भविष्यसि ॥ ८० ॥

श्रीभगवान् बोले—नारायण ! तुम मेरे कृपा-प्रसादसे मनुष्यों, देवताओं तथा गन्धर्वोंमें भी असीम बल-पराक्रमसे सम्पन्न होओगे ॥ ८० ॥

न च त्वां प्रसहिष्यन्ति देवासुरमहोरगाः ।
न पिशाचा न गन्धर्वा न यक्षा न च राक्षसाः॥ ८१ ॥
न सुपर्णास्तथा नागा न च विश्वे वियोनिजाः ।
न कश्चित् त्वां च देवोऽपि समरेषु विजेष्यति ॥ ८२ ॥

देवता, असुर, बड़े-बड़े सर्प, पिशाच, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सुपर्ण, नाग तथा समस्त पशुयोनिके (सिंह, व्याघ्र आदि) प्राणी भी तुम्हारा वेग नहीं सह सकेंगे । युद्धस्थलोंमें कोई देवता भी तुम्हें जीत नहीं सकेगा ॥ ८१-८२ ॥

न शस्त्रेण न वज्रेण नाग्निना न च वायुना ।
न चार्द्रेण न शुष्केण त्रसेन स्थावरेण च ॥ ८३ ॥
कश्चित् तव रुजां कर्ता मत्प्रसादात् कथंचन ।
अपि वै समरं गत्वा भविष्यसि ममाधिकः ॥ ८४ ॥

शस्त्र, वज्र, अग्नि, वायु, गीले-सूखे पदार्थ और स्थावर एवं जङ्गम प्राणीके द्वारा भी कोई मेरी कृपासे किसी प्रकार तुम्हें चोट नहीं पहुँचा सकता । तुम समरभूमिमें पहुँचनेपर मुझसे भी अधिक बलवान् हो जाओगे ॥ ८३-८४ ॥

एवमेते वरा लब्धाः पुरस्ताद् विद्धि शौरिणा ।
स एष देवश्चरति मायया मोहयञ्जगत् ॥ ८५ ॥

तुझे मालूम होना चाहिये, इस प्रकार श्रीकृष्णने पहले ही भगवान् शङ्करसे ये अनेक वरदान पा लिये हैं । वे ही भगवान् नारायण श्रीकृष्णके रूपमें अपनी मायासे इस संसारको मोहित करते हुए विचर रहे हैं ॥ ८५ ॥

तस्यैव तपसा जातं नरं नाम महामुनिम् ।
तुल्यमेतेन देवेन तं जानीह्यर्जुनं सदा ॥ ८६ ॥

नारायणके ही तपसे महामुनि नर प्रकट हुए हैं, जो इन भगवान्के ही समान शक्तिशाली हैं । तू अर्जुनको सदा उन्हीं भगवान् नरका अवतार समझ ॥ ८६ ॥

तावेतौ पूर्वदेवानां परमोपचितावृषी ।
लोकयात्राविधानार्थं संजायेते युगे युगे ॥ ८७ ॥

ये दोनों ऋषि प्रमुख देवता, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रमेंसे विष्णुस्वरूप हैं और तपस्यामें बहुत बढ़े-चढ़े हैं । ये लोगोंको धर्म-मर्यादामें रखकर उनकी रक्षाके लिये युग-युगमें अवतार ग्रहण करते हैं ॥ ८७ ॥

तथैव कर्मणा कृत्स्नं महतस्तपसोऽपि च ।
तेजो मन्युं च विभ्रत्त्वं जातो रौद्रो महामते ॥ ८८ ॥
स भवान् देववत् प्राज्ञो ज्ञात्वा भवमयं जगत् ।
अवाकर्षस्त्वमात्मानं नियमैस्तत्प्रियेप्सया ॥ ८९ ॥

महामते ! तू भी (अपने पूर्वजन्ममें) भगवान् नारायणके ही समान ज्ञानवान् होकर उनके ही जैसे सत्कर्म तथा बड़ी भारी तपस्या करके उसके प्रभावसे पूर्ण तेज और क्रोध धारण करनेवाला रुद्रभक्त हुआ था और सम्पूर्ण जगत्को शङ्करमय जानकर उन्हें प्रसन्न करनेकी इच्छासे तूने नाना प्रकारके कठोर नियमोंका पालन करते हुए अपने शरीरको दुर्बल कर डाला था ॥

शुभ्रमत्र भवान् कृत्वा महापुरुषविग्रहम् ।
ईजिवांस्त्वं जपैर्होमैरुपहारैश्च मानद ॥ ९० ॥

मानद ! तूने यहाँ परम पुरुष भगवान् शङ्करके उज्ज्वल विग्रहकी स्थापना करके होम, जप और उपहारोंद्वारा उनकी आराधना की थी ॥ ९० ॥

स तथा पूज्यमानस्ते पूर्वदेहेऽप्यतूतुषत् ।
पुष्कलांश्च वरान् प्रादात् तव विद्वन् हृदि स्थितान्॥ ९१ ॥

विद्वन् ! इस प्रकार पूर्वजन्मके शरीरमें तुझसे पूजित होकर भगवान् शङ्कर बड़े प्रसन्न हुए थे और उन्होंने तुझे बहुत-से मनोवाञ्छित वर प्रदान किये थे ॥ ९१ ॥

जन्मकर्मतपोयोगास्तयोस्तव च पुष्कलाः ।
ताभ्यां लिङ्गेऽर्चितो देवस्त्वयार्चायां युगे युगे ॥ ९२ ॥

इस प्रकार तेरे और नर-नारायणके जन्म, कर्म, तप और योग पर्याप्त हैं । नर-नारायणने शिवलिङ्गमें तथा तूने प्रतिमामें प्रत्येक युगमें महादेवजीकी आराधना की है ॥ ९२ ॥

सर्वरूपं भवं ज्ञात्वा लिङ्गे योऽर्चयति प्रभुम् ।
आत्मयोगाश्च तस्मिन् वै शास्त्रयोगाश्च शाश्वताः॥ ९३॥

जो भगवान् शङ्करको सर्वस्वरूप जानकर शिवलिङ्गमें उनकी पूजा करता है, उसमें सनातन आत्मयोग (आत्मा-परमात्माके तत्त्वका ज्ञान) तथा शास्त्रयोग (स्वाध्यायजनित ज्ञान) प्रतिष्ठित होते हैं ॥ ९३ ॥

एवं देवा यजन्तो हि सिद्धाश्च परमर्षयः ।
प्रार्थयन्ते परं लोके स्थाणुमेकं स सर्वकृत् ॥ ९४ ॥

इस प्रकार आराधना करते हुए देवता, सिद्ध और

महर्षिगण लोकमें एकमात्र सर्वोत्कृष्ट भगवान् शङ्करसे ही अभीष्ट वस्तुकी प्रार्थना करते हैं; क्योंकि वे ही सब कुछ करनेवाले हैं ॥ ९४ ॥

स एष रुद्रभक्तश्च केशवो रुद्रसम्भवः।
कृष्ण एव हि यष्टव्यो यज्ञैश्चैव सनातनः ॥ ९५ ॥

ये श्रीकृष्ण भगवान् शङ्करके भक्त हैं और उन्हींसे प्रकट हुए हैं; अतः यज्ञोंद्वारा सनातनपुरुष श्रीकृष्णकी ही आराधना करनी चाहिये ॥ ९५ ॥

सर्वभूतभवं ज्ञात्वा लिङ्गमर्चति यः प्रभोः।
तस्मिन्नभ्यधिकां प्रीतिं करोति वृषभध्वजः ॥ ९६ ॥

जो भगवान् शिवके लिङ्गको सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्तिका स्थान जानकर उसकी पूजा करता है, उसपर भगवान् शङ्कर अधिक प्रेम करते हैं ॥ ९६ ॥

संजय उवाच

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा द्रोणपुत्रो महारथः।
नमश्चकार रुद्राय बहु मेने च केशवम् ॥ ९७ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! व्यासजीकी यह बात सुनकर द्रोणपुत्र महारथी अश्वत्थामाने मन-ही-मन भगवान् शङ्करको प्रणाम किया और श्रीकृष्णकी भी महत्ता स्वीकार कर ली ॥ ९७ ॥

हृष्टरोमा च वश्यात्मा सोऽभिवाद्य महर्षये।
वरूथिनीमभिप्रेक्ष्य ह्यवहारमकारयत् ॥ ९८ ॥

उसके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उसने विनीतभावसे महर्षिको प्रणाम किया और अपनी सेनाकी ओर देखकर उसे छावनीमें लौटनेकी आज्ञा दे दी ॥ ९८ ॥

ततः प्रत्यवहारोऽभूत् पाण्डवानां विशाम्पते।
कौरवाणां च दीनानां द्रोणे युधि निपातिते ॥ ९९ ॥

प्रजानाथ ! तदनन्तर युद्धस्थलमें द्रोणाचार्यके मारे जानेके बाद पाण्डवों तथा दीन कौरवोंकी सेनाएँ अपने-अपने शिविरकी ओर चल दीं ॥ ९९ ॥

युद्धं कृत्वा दिनान् पञ्च द्रोणो हत्वा वरूथिनीम्।
ब्रह्मलोकं गतो राजन् ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ १०० ॥

राजन् ! इस प्रकार वेदोंके पारंगत विद्वान् द्रोणाचार्य पाँच दिनोंतक युद्ध तथा शत्रुसेनाका संहार करके ब्रह्मलोकको चले गये ॥ १०० ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि व्यासवाक्ये शतरुद्रिये एकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत नारायणास्त्रमोक्षपर्वमें व्यासवाक्य तथा शतरुद्रिय स्तुतिविषयक दो सौ एकवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २०१ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २½ श्लोक मिलाकर कुल १०२½ श्लोक हैं)

द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यासजीका अर्जुनसे भगवान् शिवकी महिमा बताना तथा द्रोणपर्वके पाठ और श्रवणका फल

धृतराष्ट्र उवाच

तस्मिन्नतिरथे द्रोणे निहते पार्षतेन वै।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वन्नतः परम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! धृष्टद्युम्नके द्वारा अतिरथी वीर द्रोणाचार्यके मारे जानेपर मेरे और पाण्डुके पुत्रोंने आगे कौन-सा कार्य किया ? ॥ १ ॥

संजय उवाच

तस्मिन्नतिरथे द्रोणे निहते पार्षतेन वै।
कौरवेषु च भग्नेषु कुन्तीपुत्रो धनंजयः ॥ २ ॥
दृष्ट्वा सुमहदाश्चर्यमात्मनो विजयावहम्।
यदृच्छयाऽऽगतं व्यासं पप्रच्छ भरतर्षभ ॥ ३ ॥

संजयने कहा—भरतश्रेष्ठ ! धृष्टद्युम्नद्वारा अतिरथी वीर द्रोणाचार्यके मारे जानेपर जब समस्त कौरव भाग खड़े हुए, उस समय अपनेको विजय दिलानेवाली एक अत्यन्त आश्चर्यमयी घटना देखकर कुन्तीपुत्र अर्जुनने अकस्मात् वहाँ आये हुए वेदव्यासजीसे उसके सम्बन्धमें इस प्रकार पूछा ॥ २-३ ॥

अर्जुन उवाच

संग्रामे न्यहनं शत्रूञ्शरौघैर्विमलैरहम्।
अग्रतो लक्षये यान्तं पुरुषं पावकप्रभम् ॥ ४ ॥

अर्जुन बोले—महर्षे ! जब मैं अपने निर्मल बाणोंद्वारा शत्रुसेनाका संहार कर रहा था, उस समय मुझे दिखायी दिया कि एक अग्निके समान तेजस्वी पुरुष मेरे आगे-आगे चल रहे हैं ॥ ४ ॥

ज्वलन्तं शूलमुद्यम्य यां दिशं प्रतिपद्यते।
तस्यां दिशि विदीर्यन्ते शत्रवो मे महामुने ॥ ५ ॥

महामुने ! वे जलता हुआ शूल हाथमें लेकर जिस ओर जाते उसी दिशामें मेरे शत्रु विदीर्ण हो जाते थे ॥ ५ ॥



तेन भग्नानरीन् सर्वान् मद्भग्नान् मन्यते जनः।
तेन भग्नानि सैन्यानि पृष्ठतोऽनुव्रजाम्यहम् ॥ ६ ॥

उन्होंने ही मेरे समस्त शत्रुओंको मार भगाया है, किंतु लोग समझते हैं कि मैंने ही उन्हें मारा और भगाया है। शत्रुओंकी सारी सेनाएँ उन्हींके द्वारा नष्ट की गयीं, मैं तो केवल उनके पीछे-पीछे चलता था ॥ ६ ॥

भगवंस्तन्ममाचक्ष्व को वै स पुरुषोत्तमः।
शूलपाणिर्मया दृष्टस्तेजसा सूर्यसंनिभः ॥ ७ ॥

भगवन्! मुझे बताइये, वे महापुरुष कौन थे? मैंने उन्हें हाथमें त्रिशूल लिये देखा था। वे सूर्यके समान तेजस्वी थे ॥ ७ ॥

न पद्भ्यां स्पृशते भूमिं न च शूलं विमुञ्चति।
शूलाच्छूलसहस्राणि निष्पेतुस्तस्य तेजसा ॥ ८ ॥

वे अपने पैरोंसे पृथ्वीका स्पर्श नहीं करते थे। त्रिशूलको अपने हाथसे अलग कभी नहीं छोड़ते थे। उनके तेजसे उस एक ही त्रिशूलसे सहस्रों नये-नये शूल प्रकट होकर शत्रुओंपर गिरते थे ॥ ८ ॥

व्यास उवाच

प्रजापतीनां प्रथमं तैजसं पुरुषं प्रभुम्।
भुवनं भूर्भुवं देवं सर्वलोकेश्वरं प्रभुम् ॥ ९ ॥
ईशानं वरदं पार्थ दृष्टवानसि शङ्करम्।
तं गच्छ शरणं देवं वरदं भुवनेश्वरम् ॥ १० ॥

व्यासजीने कहा—अर्जुन! जो प्रजापतियोंमें प्रथम, तेजःस्वरूप, अन्तर्यामी तथा सर्वसमर्थ हैं, भूर्लोक, भुवर्लोक आदि समस्त भुवन जिनके स्वरूप हैं, जो दिव्य विग्रहधारी तथा सम्पूर्ण लोकोंके शासक एवं स्वामी हैं, उन्हीं वरदायक ईश्वर भगवान् शङ्करका तुमने दर्शन किया है। वे वरद देवता सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर हैं, तुम उन्हींकी शरणमें जाओ ॥ ९-१० ॥

महादेवं महात्मानमीशानं जटिलं विभुम्।
त्र्यक्षं महाभुजं रुद्रं शिखिनं चीरवाससम् ॥ ११ ॥

वे महान् देव हैं। उनका हृदय महान् है। वे सबपर शासन करनेवाले, सर्वव्यापी और जटाधारी हैं। उनके तीन नेत्र और विशाल भुजाएँ हैं, रुद्र उनकी संज्ञा है, उनके मस्तकपर शिखा तथा शरीरपर वल्कल वस्त्र शोभा देता है ॥ ११ ॥

महादेवं हरं स्थाणुं वरदं भुवनेश्वरम्।
जगत्प्रधानमजितं जगत्प्रीतिमधीश्वरम् ॥ १२ ॥

महादेव, हर और स्थाणु आदि नामोंसे प्रसिद्ध वरदायक भगवान् शिव सम्पूर्ण भुवनोंके स्वामी हैं। वे ही जगत्के कारणभूत अव्यक्त प्रकृति हैं। वे किसीसे भी पराजित नहीं होते हैं। जगत्को प्रेम और सुखकी प्राप्ति उन्हींसे होती है। वे ही सबके अध्यक्ष हैं ॥ १२ ॥

जगद्योनिं जगद्बीजं जयिनं जगतो गतिम्।
विश्वात्मानं विश्वसृजं विश्वमूर्तिं यशस्विनम् ॥ १३ ॥

वे ही जगत्की उत्पत्तिके स्थान, जगत्के बीज, विजयशील, जगत्के आश्रय, सम्पूर्ण विश्वके आत्मा, विश्वविधाता, विश्वरूप और यशस्वी हैं ॥ १३ ॥

विश्वेश्वरं विश्वनरं कर्मणामीश्वरं प्रभुम्।
शम्भुं स्वयम्भुं भूतेशं भूतभव्यभवोद्भवम् ॥ १४ ॥

वे ही विश्वेश्वर, विश्वनियन्ता, कर्मोंके फलदाता ईश्वर और प्रभावशाली हैं। वे ही सबका कल्याण करनेवाले और स्वयम्भू हैं। सम्पूर्ण भूतोंके स्वामी तथा भूत, भविष्य और वर्तमानके कारण भी वे ही हैं ॥ १४ ॥

योगं योगेश्वरं सर्वं सर्वलोकेश्वरेश्वरम्।
सर्वश्रेष्ठं जगच्छ्रेष्ठं वरिष्ठं परमेष्ठिनम् ॥ १५ ॥

वे ही योग और योगेश्वर हैं, वे ही सर्वस्वरूप और सम्पूर्ण लोकेश्वरोंके भी ईश्वर हैं। सबसे श्रेष्ठ, सम्पूर्ण जगत्से श्रेष्ठ और श्रेष्ठतम परमेष्ठी भी वे ही हैं ॥ १५ ॥

लोकत्रयविधातारमेकं लोकत्रयाश्रयम्।
शुद्धात्मानं भवं भीमं शशाङ्ककृतशेखरम् ॥ १६ ॥

तीनों लोकोंके एक मात्र स्रष्टा, त्रिलोकीके आश्रय, शुद्धात्मा, भव, भीम और चन्द्रमाका मुकुट धारण करनेवाले भी वे ही हैं ॥ १६ ॥

शाश्वतं भूधरं देवं सर्ववागीश्वरेश्वरम्।
सुदुर्जयं जगन्नाथं जन्ममृत्युजरातिगम् ॥ १७ ॥

वे सनातन देव इस पृथ्वीको धारण करनेवाले तथा सम्पूर्ण वागीश्वरोंके भी ईश्वर हैं। उन्हें जीतना असम्भव है। वे जगदीश्वर जन्म, मृत्यु और जरा आदि विकारोंसे परे हैं ॥ १७ ॥

ज्ञानात्मानं ज्ञानगम्यं ज्ञानश्रेष्ठं सुदुर्विदम्।
दातारं चैव भक्तानां प्रसादविहितान् वरान् ॥ १८ ॥

वे ज्ञानस्वरूप, ज्ञानगम्य तथा ज्ञानमें श्रेष्ठ हैं। उनके स्वरूपको समझ लेना अत्यन्त कठिन है। वे अपने भक्तोंको कृपापूर्वक मनोवाञ्छित उत्तम फल देनेवाले हैं ।१८।

तस्य पारिषदा दिव्या रूपैर्नानाविधैर्विभोः।
वामना जटिला मुण्डा ह्रस्वग्रीवा महोदराः ॥ १९ ॥
महाकाया महोत्साहा महाकर्णास्तथापरे।
आननैर्विकृतैः पादैः पार्थ वेषैश्च वैकृतैः ॥ २० ॥

भगवान् शङ्करके दिव्य पार्षद नाना प्रकारके रूपोंमें दिखायी देते हैं। उनमेंसे कोई वामन (बौने), कोई जटाधारी, कोई मुण्डित मस्तकवाले और कोई छोटी गर्दनवाले हैं। किन्हींके पेट बड़े हैं तो किन्हींके सारे शरीर ही विशाल हैं। कुछ पार्षदोंके कान बहुत बड़े-बड़े हैं। वे सब बड़े उत्साही होते हैं। कितनोंके मुख विकृत हैं और कितनोंके पैर। अर्जुन! उन सबके वेष भी बड़े विकराल हैं ॥ १९-२० ॥

ईदृशैः स महादेवः पूज्यमानो महेश्वरः।
स शिवस्तात तेजस्वी प्रसादाद् याति तेऽग्रतः ॥ २१ ॥

ऐसे स्वरूपवाले वे सभी पार्षद महान् देवता भगवान् शङ्करकी सदा ही पूजा किया करते हैं। तात! उन तेजस्वी पुरुषके रूपमें वे भगवान् शङ्कर ही कृपा करके तुम्हारे आगे-आगे चलते हैं ॥ २१ ॥

तस्मिन् घोरे सदा पार्थ संग्रामे रोमहर्षणे।
द्रौणिकर्णकृपैर्गुप्तां महेष्वासैः प्रहारिभिः ॥ २२ ॥
कस्तां सेनां तदा पार्थ मनसापि प्रधर्षयेत्।
ऋते देवान्महेष्वासाद् बहुरूपान्महेश्वरात् ॥ २३ ॥

कुन्तीनन्दन! उस रोमाञ्चकारी घोर संग्राममें अश्वत्थामा, कर्ण और कृपाचार्य आदि प्रहारकुशल बड़े-बड़े धनुर्धरोंसे सुरक्षित उस कौरव-सेनाको उस समय बहुरूपधारी महाधनुर्धर भगवान् महेश्वरके सिवा दूसरा कौन मनसे भी नष्ट कर सकता था ॥ २२-२३ ॥

स्थातुमुत्सहते कश्चिन्न तस्मिन्नग्रतः स्थिते।
न हि भूतं समं तेन त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ २४ ॥

जब वे ही सामने आकर खड़े हो जायँ तो वहाँ ठहरनेका साहस कोई नहीं कर सकता है! तीनों लोकोंमें कोई भी प्राणी उनकी समानता करनेवाला नहीं है ॥ २४ ॥

गन्धेनापि हि संग्रामे तस्य क्रुद्धस्य शत्रवः।
विसंज्ञा हतभूयिष्ठा वेपन्ति च पतन्ति च ॥ २५ ॥

संग्राममें भगवान् शङ्करके कुपित होनेपर उनकी गन्धसे भी शत्रु बेहोश होकर काँपने लगते और अधमरे होकर गिर जाते हैं ॥ २५ ॥

तस्मै नमस्तु कुर्वन्तो देवास्तिष्ठन्ति वै दिवि।
ये चान्ये मानवा लोके ते च स्वर्गजितो नराः ॥ २६ ॥

उनको नमस्कार करनेवाले देवता सदा स्वर्गलोकमें निवास करते हैं। दूसरे भी जो मानव इस लोकमें उन्हें नमस्कार करते हैं, वे भी स्वर्गलोकपर विजय पाते हैं ॥ २६ ॥

ये भक्ता वरदं देवं शिवं रुद्रमुमापतिम्।
अनन्यभावेन सदा सर्वेशं समुपासते ॥ २७ ॥
इहलोके सुखं प्राप्य ते यान्ति परमां गतिम्।

जो भक्त मनुष्य सदा अनन्यभावसे वरदायक देवता कल्याणस्वरूप, सर्वेश्वर उमानाथ भगवान् रुद्रकी उपासना करते हैं, वे भी इहलोकमें सुख पाकर अन्तमें परम गतिको प्राप्त होते हैं ॥ २७½ ॥

नमस्कुरुष्व कौन्तेय तस्मै शान्ताय वै सदा ॥ २८ ॥
रुद्राय शितिकण्ठाय कनिष्ठाय सुवर्चसे।
कपर्दिने करालाय हर्यक्षवरदाय च ॥ २९ ॥

कुन्तीनन्दन! अतः तुम भी उन शान्तस्वरूप भगवान् शिवको सदा नमस्कार किया करो। जो रुद्र, नीलकण्ठ, कनिष्ठ (सूक्ष्म या दीप्तिमान्), उत्तम तेजसे सम्पन्न, जटाजूटधारी, विकरालस्वरूप, पिङ्गल नेत्रवाले तथा कुबेरको वर देनेवाले हैं, उन भगवान् शिवको नमस्कार है ॥

याम्यायाव्यक्तकेशाय सद्वृत्ते शङ्कराय च।
काम्याय हरिनेत्राय स्थाणवे पुरुषाय च ॥ ३० ॥
हरिकेशाय मुण्डाय कृशायोत्तारणाय च।
भास्कराय सुतीर्थाय देवदेवाय रंहसे ॥ ३१ ॥

जो यमके अनुकूल रहनेवाले काल हैं, अव्यक्त स्वरूप आकाश ही जिनका केश है, जो सदाचारसम्पन्न, सबका कल्याण करनेवाले, कमनीय, पिङ्गलनेत्र, सदा स्थित रहनेवाले और अन्तर्यामी पुरुष हैं, जिनके केश भूरे एवं पिङ्गल वर्णके हैं, जिनका मस्तक मुण्डित है, जो दुबले-पतले और भवसागरसे पार उतारनेवाले हैं, जो सूर्यस्वरूप, उत्तम तीर्थ और अत्यन्त वेगशाली हैं, उन देवाधिदेव महादेवको नमस्कार है ॥ ३०-३१ ॥

बहुरूपाय सर्वाय प्रियाय प्रियवाससे।
उष्णीषिणे सुवक्त्राय सहस्राक्षाय मीढुषे ॥ ३२ ॥

जो अनेक रूप धारण करनेवाले, सर्वस्वरूप तथा सबके प्रिय हैं, वल्कल आदि वस्त्र जिन्हें प्रिय है, जो मस्तक-

पर पगड़ी धारण करते हैं, जिनका मुख सुन्दर है, जिनके सहस्रों नेत्र हैं तथा जो वर्षा करनेवाले हैं, उन भगवान् शङ्करको नमस्कार है ॥ ३२ ॥

गिरिशाय प्रशान्ताय यतये चीरवाससे।
हिरण्यबाहवे राज्ञे उग्राय पतये दिशाम् ॥ ३३ ॥

जो पर्वतपर शयन करनेवाले, परम शान्त, यति-स्वरूप, चीरवस्त्रधारी, हिरण्यबाहु (सोनेके आभूषणोंसे विभूषित बाँहवाले), राजा (दीप्तिमान्), उग्र (भयंकर) तथा दिशाओंके अधिपति हैं, (उन भगवान् शङ्करको नमस्कार है) ॥ ३३ ॥

पर्जन्यपतये चैव भूतानां पतये नमः।
वृक्षाणां पतये चैव गवां च पतये नमः ॥ ३४ ॥

जो मेघोंके अधिपति तथा सम्पूर्ण भूतोंके स्वामी हैं, उन्हें नमस्कार है। वृक्षोंके पालक और गौओंके अधिपति-रूप आपको नमस्कार है ॥ ३४ ॥

वृक्षैरावृतकायाय सेनान्ये मध्यमाय च।
स्रुवहस्ताय देवाय धन्विने भार्गवाय च ॥ ३५ ॥

जिनका शरीर वृक्षोंसे आच्छादित है, जो सेनाके अधिपति और शरीरके मध्यवर्ती (अन्तर्यामी) हैं, यजमान-रूपसे जो अपने हाथमें स्रुवा धारण करते हैं, जो दिव्य-स्वरूप, धनुर्धर और भृगुवंशी परशुरामस्वरूप हैं, उनको नमस्कार है ॥ ३५ ॥

बहुरूपाय विश्वस्य पतये मुञ्जवाससे।
सहस्रशिरसे चैव सहस्रनयनाय च ॥ ३६ ॥
सहस्रबाहवे चैव सहस्रचरणाय च।

जिनके बहुत-से रूप हैं, जो इस विश्वके पालक होकर भी मूँजका कौपीन धारण करते हैं, जिनके सहस्रों सिर, सहस्रों नेत्र, सहस्रों भुजाएँ और सहस्रों पैर हैं, उन भगवान् शङ्करको नमस्कार है ॥ ३६½ ॥

शरणं गच्छ कौन्तेय वरदं भुवनेश्वरम् ॥ ३७ ॥
उमापतिं विरूपाक्षं दक्षयज्ञनिबर्हणम्।
प्रजानां पतिमव्यग्रं भूतानां पतिमव्ययम् ॥ ३८ ॥

कुन्तीनन्दन ! तुम उन्हीं वरदायक भुवनेश्वर, उमा-वल्लभ, त्रिनेत्रधारी, दक्षयज्ञविनाशक, प्रजापति, व्यग्रता-रहित और अविनाशी भगवान् भूतनाथकी शरणमें जाओ ॥

कपर्दिनं वृषावर्तं वृषनाभं वृषध्वजम्।
वृषदर्पं वृषपतिं वृषशृङ्गं वृषर्षभम् ॥ ३९ ॥
वृषाङ्कं वृषभोदारं वृषभं वृषभेक्षणम्।
वृषायुधं वृषशरं वृषभूतं वृषेश्वरम् ॥ ४० ॥

जो जटाजूटधारी हैं, जिनका घूमना परम श्रेष्ठ है, जो श्रेष्ठ नाभिसे सुशोभित, ध्वजापर वृषभका चिह्न धारण करनेवाले, वृषदर्प (प्रबल अहंकारवाले), वृषपति (धर्मस्वरूप वृषभके अधिपति), धर्मको ही उच्चतम माननेवाले तथा धर्मसे भी सर्वश्रेष्ठ हैं, जिनके ध्वजमें साँड़का चिह्न अङ्कित है, जो धर्मात्माओंमें उदार, धर्मस्वरूप, वृषभके समान विशाल नेत्रोंवाले, श्रेष्ठ आयुध और श्रेष्ठ बाणसे युक्त, धर्मविग्रह तथा धर्मके ईश्वर, उन भगवान्‌की मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥ ३९–४० ॥

महोदरं महाकायं द्वीपिचर्मनिवासिनम्।
लोकेशं वरदं मुण्डं ब्रह्मण्यं ब्राह्मणप्रियम् ॥ ४१ ॥
त्रिशूलपाणिं वरदं खड्गचर्मधरं प्रभुम्।
पिनाकिनं खड्गधरं लोकानां पतिमीश्वरम् ॥ ४२ ॥
प्रपद्ये शरणं देवं शरण्यं चीरवाससम्।

कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंको धारण करनेके कारण जिनका उदर और शरीर विशाल है, जो व्याघ्रचर्म ओढ़ा करते हैं, जो लोकेश्वर, वरदायक, मुण्डितमस्तक, ब्राह्मणहितैषी तथा ब्राह्मणोंके प्रिय हैं। जिनके हाथमें त्रिशूल, ढाल, तलवार और पिनाक आदि अस्त्र शोभा पाते हैं, जो वरदायक, प्रभु, सुन्दर शरीरधारी, तीनों लोकोंके स्वामी तथा साक्षात् ईश्वर हैं, उन चीरवस्त्रधारी, शरणागतवत्सल भगवान् शिवकी मैं शरण लेता हूँ ॥ ४१-४२½ ॥

नमस्तस्मै सुरेशाय यस्य वैश्रवणः सखा ॥ ४३ ॥
सुवाससे नमस्तुभ्यं सुव्रताय सुधन्विने।
धनुर्धराय देवाय प्रियधन्वाय धन्विने ॥ ४४ ॥
धन्वन्तराय धनुषे धन्वाचार्याय ते नमः।
उग्रायुधाय देवाय नमः सुरवराय च ॥ ४५ ॥

कुबेर जिनके सखा हैं, उन देवेश्वर शिवको नमस्कार है। प्रभो ! आप उत्तम वस्त्र, उत्तम व्रत और उत्तम धनुष धारण करते हैं। आप धनुर्धर देवताको धनुष प्रिय है, आप धन्वी, धन्वन्तर, धनुष और धन्वाचार्य हैं, आपको नमस्कार है। भयंकर आयुध धारण करनेवाले सुरश्रेष्ठ महादेवजीको नमस्कार है ॥ ४३–४५ ॥

नमोऽस्तु बहुरूपाय नमोऽस्तु बहुधन्विने।
नमोऽस्तु स्थाणवे नित्यं नमस्तस्मै तपस्विने ॥ ४६ ॥

अनेक रूपधारी शिवको नमस्कार है, बहुत-से धनुष धारण करनेवाले रुद्रदेवको नमस्कार है, आप स्थाणुरूप हैं, आपको नमस्कार है, उन तपस्वी शिवको नित्य नमस्कार है ॥ ४६ ॥

नमोऽस्तु त्रिपुरघ्नाय भगघ्नाय च वै नमः।
वनस्पतीनां पतये नराणां पतये नमः ॥ ४७ ॥

त्रिपुरनाशक और भगनेत्रविनाशक भगवान्

शिवको बारंबार नमस्कार है। नरपतियोंके पति तथा नरपति-रूप महादेवजीको नमस्कार है ॥ ४७ ॥

मातॄणां पतये चैव गणानां पतये नमः।
गवां च पतये नित्यं यज्ञानां पतये नमः ॥ ४८ ॥

मातृकाओंके अधिपति और गणोंके पालक शिवको नमस्कार है। गोपति और यज्ञपति शङ्करको नित्य नमस्कार है ॥ ४८ ॥

अपां च पतये नित्यं देवानां पतये नमः।
पूष्णो दन्तविनाशाय त्र्यक्षाय वरदाय च ॥ ४९ ॥
नीलकण्ठाय पिङ्गाय स्वर्णकेशाय वै नमः।

जलपति तथा देवपतिको नित्य नमस्कार है। पूषाके दाँत तोड़नेवाले, त्रिनेत्रधारी वरदायक शिवको नमस्कार है। नीलकण्ठ, पिङ्गलवर्ण और सुनहरे केशवाले भगवान् शङ्करको नमस्कार है ॥ ४९½ ॥

कर्माणि यानि दिव्यानि महादेवस्य धीमतः ॥ ५० ॥
तानि ते कीर्तयिष्यामि यथाप्रज्ञं यथाश्रुतम्।

अर्जुन ! अब मैं परम बुद्धिमान् महादेवजीके जो दिव्य कर्म हैं, उनका अपनी बुद्धिके अनुसार जैसा मैंने सुन रक्खा है, वैसा ही तुम्हारे समक्ष वर्णन करता हूँ॥ ५०½ ॥

न सुरा नासुरा लोके न गन्धर्वा न राक्षसाः ॥ ५१॥
सुखमेधन्ति कुपिते तस्मिन्नपि गुहागताः।

यदि वे कुपित हो जायँ तो देवता, असुर, गन्धर्व और राक्षस इस लोकमें अथवा पातालमें छिप जानेपर भी चैनसे नहीं रहने पाते हैं ॥ ५१½ ॥

दक्षस्य यजमानस्य विधिवत् सम्भृतं पुरा ॥५२ ॥
विव्याध कुपितो यज्ञं निर्दयस्त्वभवत् तदा।
धनुषा बाणमुत्सृज्य सघोषं विननाद च ॥५३ ॥

पहलेकी बात है, वे यज्ञपरायण दक्षपर कुपित हो गये थे। उस समय उन्होंने उनके विधिपूर्वक किये जाने-वाले यज्ञको नष्ट कर दिया था। उन दिनों वे निर्दय हो गये थे और धनुषद्वारा बाण छोड़कर बड़े जोर-जोरसे गर्जना करने लगे थे ॥ ५२–५३ ॥

ते न शर्म कुतः शान्तिं लेभिरे स्म सुरास्तदा।
विद्रुते सहसा यज्ञे कुपिते च महेश्वरे ॥ ५४॥

देवताओंको उस समय कहीं भी सुख और शान्ति नहीं मिली, महेश्वरके कुपित होनेसे सहसा यज्ञमें उपद्रव खड़ा हो गया था ॥ ५४ ॥

तेन ज्यातलघोषेण सर्वे लोकाः समाकुलाः।
बभूवुर्वशगाः पार्थ निपेतुश्च सुरासुराः ॥ ५५ ॥

पार्थ ! उनके धनुषकी प्रत्यञ्चाके गम्भीर घोषसे अत्यन्त व्याकुल हो सम्पूर्ण लोक उनके अधीन हो गये। देवता और असुर सभी धरतीपर गिर पड़े ॥ ५५ ॥

आपश्चुक्षुभिरे सर्वाश्चकम्पे च वसुंधरा।
पर्वताश्च व्यशीर्यन्त दिशो नागाश्च मोहिताः ॥ ५६ ॥

समुद्रके जलमें ज्वार आ गया, धरती काँपने लगी, पर्वत टूट-फूटकर बिखरने लगे और दिग्गज मूर्छित हो गये॥

अन्धेन तमसा लोका न प्राकाशन्त संवृताः।
जघ्निवान् सह सूर्येण सर्वेषां ज्योतिषां प्रभाः ॥ ५७ ॥

घोर अन्धकारसे आच्छादित हो जानेके कारण सम्पूर्ण लोकोंमें कहीं भी प्रकाश नहीं रह गया। भगवान् शिवने सूर्यसहित सम्पूर्ण ज्योतियोंकी प्रभा नष्ट कर दी ॥ ५७ ॥

चुक्षुभुर्भयभीताश्च शान्तिं चक्रुस्तथैव च।
ऋषयः सर्वभूतानामात्मनश्च सुखैषिणः ॥ ५८ ॥

महर्षि भी भयभीत एवं क्षुब्ध हो उठे। वे सम्पूर्ण भूतोंके तथा अपने लिये भी सुख चाहते हुए पुण्याहवाचन आदि शान्ति कर्म करने लगे ॥ ५८ ॥

पूषाणमभ्यद्रवत शंकरः प्रहसन्निव।
पुरोडाशं भक्षयतो दशनान् वै व्यशातयत् ॥ ५९ ॥

उस समय हँसते हुए-से भगवान् शङ्करने पूषापर आक्रमण किया। वे पुरोडाश खा रहे थे। उन्होंने उनके सारे दाँत तोड़ डाले ॥ ५९ ॥

ततो निश्चक्रमुर्देवा वेपमाना नताः स्म ते।
पुनश्च संदधे दीप्तान् देवानां निशिताञ्शरान् ॥ ६० ॥

तदनन्तर सारे देवता नतमस्तक हो भयसे थरथर काँपते हुए यज्ञशालासे बाहर निकल गये। तब भगवान् शिवने देवताओंको लक्ष्य करके तीखे और तेजस्वी बाणोंका संधान किया ॥ ६० ॥

सधूमान् सस्फुलिङ्गांश्च विद्युत्तोयदसंनिभान्।
तं दृष्ट्वा तु सुराः सर्वे प्रणिपत्य महेश्वरम् ॥ ६१ ॥
रुद्रस्य यज्ञभागं च विशिष्टं ते त्वकल्पयन्।

धूम और चिनगारियोंसहित वे बाण बिजली सहित मेघोंके समान जान पड़ते थे। तब सम्पूर्ण देवताओंने भगवान् महेश्वरको कुपित देख उनके चरणोंमें प्रणाम किया और रुद्रके लिये उन्होंने विशिष्ट यज्ञभागकी कल्पना की

भयेन त्रिदशा राजञ्छरणं च प्रपेदिरे ॥ ६२ ॥
तेन चैवातिकोपेन स यज्ञः संधितस्तदा।
भग्नाश्चापि सुरा आसन् भीताश्चाद्यापि तं प्रति ॥ ६३ ॥

राजन् ! सब देवता भयभीत हो भगवान् शङ्करकी शरणमें आये। तब क्रोध शान्त होनेपर उन्होंने उस यज्ञको पूर्ण किया। उन दिनों देवता लोग भाग खड़े हुए थे, तभीसे आजतक वे देवता उनसे डरते रहते हैं ॥ ६२–६३ ॥

असुराणां पुराण्यासंस्त्रीणि वीर्यवतां दिवि ।
आयसं राजतं चैव सौवर्णं परमं महत् ॥ ६४ ॥

पूर्वकालमें परम पराक्रमी तीन असुरोंके आकाशमें तीन नगर थे । एक लोहेका, दूसरा चाँदीका और तीसरा अत्यन्त विशाल नगर सोनेका बना हुआ था ॥ ६४ ॥

सौवर्णं कमलाक्षस्य तारकाक्षस्य राजतम् ।
तृतीयं तु पुरं तेषां विद्युन्मालिन आयसम् ॥ ६५ ॥

उनमेंसे सोनेका नगर कमलाक्षके, चाँदीका तारकाक्षके तथा तीसरा लोहेका बना हुआ नगर विद्युन्मालीके अधिकारमें था ॥ ६५ ॥

न शक्तस्तानि मघवान् भेत्तुं सर्वायुधैरपि ।
अथ सर्वे सुरा रुद्रं जग्मुः शरणमर्दिताः ॥ ६६ ॥

इन्द्र सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग करके भी उन नगरोंका भेदन न कर सके । तब उनसे पीड़ित हुए सम्पूर्ण देवता भगवान् शङ्करकी शरणमें गये ॥ ६६ ॥

ते तमूचुर्महात्मानं सर्वे देवाः सवासवाः ।
ब्रह्मदत्तवरा ह्येते घोरास्त्रिपुरवासिनः ॥ ६७ ॥
पीडयन्त्यधिकं लोकं यस्मात् ते वरदर्पिताः ।

इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंने महात्मा भगवान् शङ्करसे कहा—'प्रभो ! ब्रह्माजीसे वरदान पाकर ये त्रिपुर-निवासी घोर दैत्य सम्पूर्ण जगत्को अधिकाधिक पीड़ा दे रहे हैं; क्योंकि वरदान प्राप्त होनेसे उनका घमंड बहुत बढ़ गया है ॥ ६७½ ॥

त्वदृते देवदेवेश नान्यः शक्तः कथंचन ॥ ६८ ॥
हन्तुं दैत्यान् महादेव जहि तांस्त्वं सुरद्विषः ।

'देवदेवेश्वर महादेव ! आपके सिवा दूसरा कोई उन दैत्योंका वध करनेमें समर्थ नहीं है; अतः आप उन देव द्रोहियोंको मार डालिये ॥ ६८½ ॥

रुद्र रौद्रा भविष्यन्ति पशवः सर्वकर्मसु ॥ ६९ ॥
निपातयिष्यसे चैतानसुरान् भुवनेश्वर ।

'भुवनेश्वर ! रुद्र ! आप जब इन असुरोंका विनाश कर डालेंगे, तबसे सम्पूर्ण यज्ञकर्मोंमें जो पशु (यज्ञके साधनभूत उपकरण) होंगे, वे रुद्रके भाग समझे जायँगे' ॥

स तथोक्तस्तथेत्युक्त्वा देवानां हितकाम्यया ॥ ७० ॥
गन्धमादनविन्ध्यौ च कृत्वा वंशध्वजौ हरः ।
पृथ्वीं ससागरवनां रथं कृत्वा तु शङ्करः ॥ ७१ ॥
अक्षं कृत्वा तु नागेन्द्रं शेषं नाम त्रिलोचनः ।
चक्रे कृत्वा तु चन्द्रार्कौ देवदेवः पिनाकधृक् ॥ ७२ ॥
अणी कृत्वैलपत्रं च पुष्पदन्तं च त्र्यम्बकः ।
यूपं कृत्वा तु मलयमवनाहं च तक्षकम् ॥ ७३ ॥

देवताओंके ऐसा कहनेपर भगवान् शिवने 'तथास्तु' कहकर उनके हितकी इच्छासे गन्धमादन और विन्ध्याचल इन दो पर्वतोंको अपने रथके दो पार्श्ववर्ती ध्वज बनाये । फिर समुद्र और पर्वतोंसहित समूची पृथ्वीको रथ बनाकर नागराज शेषको उस रथका धुरा बनाया । तत्पश्चात् त्रिनेत्र-धारी पिनाकपाणि देवाधिदेव महादेवने चन्द्रमा और सूर्य दोनोंको रथके दो पहिये बनाये । एलपत्रके पुत्र और पुष्प-दन्तको जूएकी कीलें बनाया । फिर त्र्यम्बकने मलयाचलको यूप और तक्षक नागको जूआ बाँधनेकी रस्सी बना लिया ॥

योक्त्राङ्गानि च सत्त्वानि कृत्वा शर्वः प्रतापवान् ।
वेदान् कृत्वाऽथ चतुरश्चतुरश्वान् महेश्वरः ॥ ७४ ॥

इसी प्रकार प्रतापी भगवान् महेश्वरने अन्य प्राणियोंको जोते और बागडोर आदिके रूपमें रखकर चारों वेद ही रथके चार घोड़े बना लिये ॥ ७४ ॥

उपवेदान् खलीनांश्च कृत्वा लोकत्रयेश्वरः ।
गायत्रीं प्रग्रहं कृत्वा सावित्रीं च महेश्वरः ॥ ७५ ॥

तत्पश्चात् तीनों लोकोंके स्वामी महेश्वरने उपवेदोंको लगाम बनाकर गायत्री और सावित्रीको प्रग्रह बना लिया ॥

कृत्वोङ्कारं प्रतोदं च ब्रह्माणं चैव सारथिम् ।
गाण्डीवं मन्दरं कृत्वा गुणं कृत्वा तु वासुकिम् ॥७६॥
विष्णुं शरोत्तमं कृत्वा शल्यमग्निं तथैव च ।
वायुं कृत्वाथ वाजाभ्यां पुङ्खे वैवस्वतं यमम् ॥ ७७ ॥

फिर ओङ्कारको चाबुक, ब्रह्माजीको सारथि, मन्दराचल-को गाण्डीव धनुष, वासुकिनागको उसकी प्रत्यञ्चा, भगवान् विष्णुको उत्तम बाण, अग्निदेवको उस बाणका फल, वायुको उसके पङ्ख और वैवस्वत यमको उसकी पूँछ बनाया ।७६-७७।

विद्युत् कृत्वाथ निश्राणं मेरुं कृत्वाथ वै ध्वजम् ।
आरुह्य स रथं दिव्यं सर्वदेवमयं शिवः ॥ ७८ ॥
त्रिपुरस्य वधार्थाय स्थाणुः प्रहरतां वरः ।
असुराणामन्तकरः श्रीमानतुलविक्रमः ॥ ७९ ॥

बिजलीको उस बाणकी तीखी धार बनाकर मेरु पर्वतको प्रधान ध्वजके स्थानमें रक्खा । इस प्रकार सर्वदेवमय दिव्य रथ तैयार करके असुरोंका अन्त करनेवाले, अतुल पराक्रमी, योद्धाओंमें श्रेष्ठ तथा सदा स्थिर रहनेवाले श्रीमान् भगवान् शिव त्रिपुरवधके लिये उसपर आरूढ़ हुए ॥ ७८–७९ ॥

स्तूयमानः सुरैः पार्थ ऋषिभिश्च तपोधनैः ।
स्थानं माहेश्वरं कृत्वा दिव्यमप्रतिमं प्रभुः ॥ ८० ॥
अतिष्ठत् स्थाणुभूतः स सहस्रं परिवत्सरान् ।

पार्थ ! उस समय सम्पूर्ण देवता और तपोधन महर्षि

भगवान् शङ्करकी स्तुति करने लगे। उन भगवान्ने उस अनुपम एवं दिव्य माहेश्वर स्थान (रथ) का निर्माण करके उसपर एक हजार वर्षोंतक स्थिरभावसे खड़े रहे ॥ ८०½ ॥

यदा त्रीणि समेतानि अन्तरिक्षे पुराणि च ॥ ८१ ॥
त्रिपर्वणा त्रिशल्येन तदा तानि बिभेद सः ।

जब वे तीनों पुर आकाशमें एकत्र हुए, तब उन्होंने तीन गाँठ और तीन फलवाले बाणसे उन तीनों पुरोंको विदीर्ण कर डाला ॥ ८१½ ॥

पुराणि न च तं शेकुर्दानवाः प्रतिवीक्षितुम् ॥ ८२ ॥
शरं कालाग्निसंयुक्तं विष्णुसोमसमायुतम् ।

उस समय दानव उन नगरोंकी ओर और कालाग्निसे संयुक्त एवं विष्णु तथा सोमकी शक्तिसे सम्पन्न उस बाणकी ओर भी आँख उठाकर देख न सके ॥ ८२½ ॥

पुराणि दग्धवन्तं तं देवी याता प्रवीक्षितुम् ॥ ८३ ॥
बालमङ्कगतं कृत्वा स्वयं पञ्चशिखं पुनः ।

जिस समय वे तीनों पुरोंको दग्ध कर रहे थे, उस समय पार्वती देवी भी उन्हें देखनेके लिये एक पाँच शिखावाले बालकको गोदमें लेकर वहाँ गयीं ॥ ८३½ ॥

उमा जिज्ञासमाना वै कोऽयमित्यब्रवीत् सुरान् ॥ ८४ ॥
असूयतश्च शक्रस्य वज्रेण प्रहरिष्यतः ।
बाहुं सवज्रं तं तस्य क्रुद्धस्यास्तम्भयत् प्रभुः ॥ ८५ ॥
प्रहस्य भगवांस्तूर्णं सर्वलोकेश्वरो विभुः ।

पार्वतीदेवीने देवताओंसे पूछा—'पहचानते हो, यह कौन है ?' उनके इस प्रश्नसे इन्द्रके हृदयमें असूया और क्रोधकी आग जल उठी, वे उस बालकपर वज्रका प्रहार करना ही चाहते थे कि सर्वलोकेश्वर सर्वव्यापी भगवान् शङ्करने हँसकर उनकी वज्रसहित बाँहको स्तम्भित कर दिया ॥८४-८५½॥

ततः स स्तम्भितभुजः शक्रो देवगणैर्वृतः ॥ ८६ ॥
जगाम ससुरस्तूर्णं ब्रह्माणं प्रभुमव्ययम् ।

तदनन्तर स्तम्भित हुई भुजाके साथ ही देवताओंसहित इन्द्र तुरंत ही वहाँसे अविनाशी भगवान् ब्रह्माजीके पास गये ॥

ते तं प्रणम्य शिरसा प्रोचुः प्राञ्जलयस्तदा ॥ ८७ ॥
किमप्यङ्कगतं ब्रह्मन् पार्वत्या भूतमद्भुतम् ।
बालरूपधरं दृष्ट्वा नास्माभिरभिलक्षितः ॥ ८८ ॥

देवताओंने मस्तक झुकाकर ब्रह्माजीको प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा—'ब्रह्मन् ! पार्वतीजीकी गोदमें बालरूपधारी एक अद्भुत प्राणी था, जिसे देखकर भी हमलोग पहचान नहीं सके हैं ॥ ८७—८८ ॥

तस्मात् त्वां प्रष्टुमिच्छामो निर्जिता येन वै वयम् ।
अयुध्यता हि बालेन लीलया सपुरंदराः ॥ ८९ ॥

'अतः हमलोग आपसे उसके विषयमें पूछना चाहते हैं, उस बालकने बिना युद्धके ही खेल-खेलमें इन्द्रसहित हम देवताओंको परास्त कर दिया' ॥ ८९ ॥

तेषां तद् वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ।
ध्यात्वा स शम्भुं भगवान् बालं चामिततेजसम् ॥९०॥

उनकी यह बात सुनकर ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ भगवान् ब्रह्माने ध्यान करके अमिततेजस्वी बालरूपधारी शङ्करको पहचान लिया ॥ ९० ॥

उवाच भगवान् ब्रह्मा शक्रादींश्च सुरोत्तमान् ।
चराचरस्य जगतः प्रभुः स भगवान् हरः ॥ ९१ ॥
तस्मात् परतरं नान्यत् किंचिदस्ति महेश्वरात् ।
यो दृष्टो ह्युमया सार्धं युष्माभिरमितद्युतिः ॥ ९२ ॥
स पार्वत्याः कृते शर्वः कृतवान् बालरूपताम् ।
ते मया सहिता यूयं प्रापयध्वं तमेव हि ॥ ९३ ॥

तत्पश्चात् भगवान् ब्रह्माने उन देवश्रेष्ठ इन्द्र आदिसे कहा—'देवताओ ! वे चराचर जगत्के स्वामी साक्षात् भगवान् शङ्कर थे। उन महेश्वरसे बढ़कर दूसरी कोई सत्ता नहीं है। तुमलोगोंने पार्वतीजीके साथ जिस अमिततेजस्वी बालकका दर्शन किया है, उसके रूपमें भगवान् शङ्कर ही थे। उन्होंने पार्वतीजीकी प्रसन्नताके लिये बालरूप धारण कर लिया था; अतः तुमलोग मेरे साथ उन्हींकी शरणमें चलो' ॥९१-९३॥

स एष भगवान् देवः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ।
न सम्बुबुधिरे चैनं देवास्तं भुवनेश्वरम् ॥ ९४ ॥
सप्रजापतयः सर्वे बालार्कसदृशप्रभम् ।

उस बालकके रूपमें ये सर्वलोकेश्वर प्रभु भगवान् महादेव ही थे, किंतु प्रजापतियोंसहित सम्पूर्ण देवता बालसूर्यके सदृश कान्तिमान् उन जगदीश्वरको पहचान न सके ॥

अथाभ्येत्य ततो ब्रह्मा दृष्ट्वा स च महेश्वरम् ॥ ९५ ॥
अयं श्रेष्ठ इति ज्ञात्वा ववन्दे तं पितामहः ।

तदनन्तर ब्रह्माजीने निकट जाकर भगवान् महेश्वरको देखा और ये ही सबसे श्रेष्ठ हैं, ऐसा जानकर उनकी वन्दना की॥९५½॥

ब्रह्मोवाच

त्वं यज्ञो भुवनस्यास्य त्वं गतिस्त्वं परायणम् ॥ ९६ ॥
त्वं भवस्त्वं महादेवस्त्वं धाम परमं पदम् ।
त्वया सर्वमिदं व्याप्तं जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥ ९७ ॥

ब्रह्माजी बोले—भगवन् ! आप ही यज्ञ, आप ही इस विश्वके सहारे और आप ही सबको शरण देनेवाले हैं, आप ही सबको उत्पन्न करनेवाले भव हैं, आप ही महादेव हैं और

आप ही परमधाम एवं परमपद हैं। आपने ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत्को व्याप्त कर रक्खा है ॥ ९६–९७ ॥

भगवन् भूतभव्येश लोकनाथ जगत्पते।
प्रसादं कुरु शक्रस्य त्वया क्रोधार्दितस्य वै ॥ ९८ ॥

भूत, वर्तमान और भविष्यके स्वामी भगवन्! लोकनाथ! जगत्पते! ये इन्द्र आपके क्रोधसे पीड़ित हो रहे हैं। आप इनपर कृपा कीजिये ॥ ९८ ॥

व्यास उवाच

पद्मयोनिवचः श्रुत्वा ततः प्रीतो महेश्वरः।
प्रसादाभिमुखो भूत्वा अट्टहासमथाकरोत् ॥ ९९ ॥

व्यासजी कहते हैं—पार्थ! ब्रह्माजीकी बात सुनकर भगवान् महेश्वर प्रसन्न हो गये और कृपाके लिये उद्यत हो ठठाकर हँस पड़े ॥ ९९ ॥

ततः प्रसादयामासुरुमां रुद्रं च ते सुराः।
अभवच्च पुनर्बाहुर्यथाप्रकृति वज्रिणः ॥१००॥

तब देवताओंने पार्वती देवी तथा भगवान् शङ्करको प्रसन्न किया। फिर वज्रधारी इन्द्रकी बाँह जैसी पहले थी, वैसी हो गयी ॥ १०० ॥

तेषां प्रसन्नो भगवान् सपत्नीको वृषध्वजः।
देवानां त्रिदशश्रेष्ठो दक्षयज्ञविनाशनः ॥१०१॥

दक्षयज्ञका विनाश करनेवाले देवश्रेष्ठ भगवान् वृषध्वज अपनी पत्नी उमाके साथ देवताओंपर प्रसन्न हो गये ॥१०१॥

स वै रुद्रः स च शिवः सोऽग्निः सर्वश्च सर्ववित्।
स चेन्द्रश्चैव वायुश्च सोऽश्विनौ च स विद्युतः ॥१०२॥

वे ही रुद्र हैं, वे ही शिव हैं, वे ही अग्नि हैं, वे ही सर्वस्वरूप एवं सर्वज्ञ हैं। वे ही इन्द्र और वायु हैं, वे ही दोनों अश्विनीकुमार तथा विद्युत् हैं ॥ १०२ ॥

स भवः स च पर्जन्यो महादेवः सनातनः।
स चन्द्रमाः स चेशानः स सूर्यो वरुणश्च सः ॥१०३॥

वे ही भव, वे ही मेघ और वे ही सनातन महादेव हैं। चन्द्रमा, ईशान, सूर्य और वरुण भी वे ही हैं ॥ १०३ ॥

स कालः सोऽन्तको मृत्युः स यमो रात्र्यहानि तु।
मासार्धमासा ऋतवः संध्ये संवत्सरश्च सः ॥१०४॥

वे ही काल, अन्तक, मृत्यु, यम, रात्रि, दिन, मास, पक्ष, ऋतु, संध्या और संवत्सर हैं ॥ १०४ ॥

धाता च स विधाता च विश्वात्मा विश्वकर्मकृत्।
सर्वासां देवतानां च धारयत्यवपुर्वपुः ॥१०५॥

वे ही धाता, विधाता, विश्वात्मा और विश्वरूपी कार्यके कर्ता हैं। वे शरीररहित होकर भी सम्पूर्ण देवताओंके शरीर धारण करते हैं ॥ १०५ ॥

सर्वैर्देवैः स्तुतो देवः सैकधा बहुधा च सः।
शतधा सहस्रधा चैव भूयः शतसहस्रधा ॥१०६॥

सम्पूर्ण देवता सदा उनकी स्तुति करते हैं। वे महादेवजी एक होकर भी अनेक हैं। सौ, हजार और लाखों रूपोंमें वे ही विराज रहे हैं ॥ १०६ ॥

द्वे तनू तस्य देवस्य वेदज्ञा ब्राह्मणा विदुः।
घोरा चान्या शिवा चान्या ते तनू बहुधा पुनः॥१०७॥

वेदज्ञ ब्राह्मण उनके दो शरीर मानते हैं, एक घोर और दूसरा शिव। ये दोनों पृथक्-पृथक् हैं और उन्हींसे पुनः बहुसंख्यक शरीर प्रकट हो जाते हैं ॥ १०७ ॥

घोरा तु या तनुस्तस्य सोऽग्निर्विष्णुः स भास्करः।
सौम्या तु पुनरेवास्य आपो ज्योतींषि चन्द्रमाः ॥१०८॥

उनका जो घोर शरीर है, वही अग्नि, विष्णु और सूर्य है और उनका सौम्य (शिव) शरीर ही जल, ग्रह, नक्षत्र और चन्द्रमा है ॥ १०८ ॥

वेदाः साङ्गोपनिषदः पुराणाध्यात्मनिश्चयाः।
यदत्र परमं गुह्यं स वै देवो महेश्वरः ॥१०९॥

वेद, वेदाङ्ग, उपनिषद्, पुराण और अध्यात्मशास्त्रके जो सिद्धान्त हैं तथा उनमें भी जो परम रहस्य है, वह भगवान् महेश्वर ही हैं ॥ १०९ ॥

ईदृशश्च महादेवो भूयांश्च भगवानजः।
न हि सर्वे मया शक्या वक्तुं भगवतो गुणाः ॥११०॥
अपि वर्षसहस्रेण सततं पाण्डुनन्दन।

अर्जुन! यह है अजन्मा भगवान् महादेवका महामहिमस्वरूप। मैं सहस्रों वर्षोंतक लगातार वर्णन करता रहूँ तो भी भगवान्के समस्त गुणोंका पार नहीं पा सकता ॥११०½॥

सर्वैर्ग्रहैर्गृहीतान् वै सर्वपापसमन्वितान् ॥१११॥
स मोचयति सुप्रीतः शरण्यः शरणागतान्।

जो सब प्रकारकी ग्रहबाधाओंसे पीड़ित हैं और सम्पूर्ण पापोंमें डूबे हुए हैं, वे भी यदि शरणमें आ जायँ तो शरणागतवत्सल भगवान् शिव अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्हें पाप-तापसे मुक्त कर देते हैं ॥ १११½ ॥

आयुरारोग्यमैश्वर्यं वित्तं कामांश्च पुष्कलान् ॥११२॥
स ददाति मनुष्येभ्यः स चैवाक्षिपते पुनः।

वे ही प्रसन्न होनेपर मनुष्योंको आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन और प्रचुरमात्रामें मनोवाञ्छित पदार्थ देते हैं तथा वे ही

कुपित होनेपर फिर उन सबका संहार कर डालते हैं॥ ११२½ ॥

सेन्द्रादिषु च देवेषु तस्य चैश्वर्यमुच्यते ॥११३॥
स चैव व्यापृतो लोके मनुष्याणां शुभाशुभे।
ऐश्वर्याच्चैव कामानामीश्वरश्च स उच्यते ॥११४॥

इन्द्र आदि देवताओंमें उन्हींका ऐश्वर्य बताया जाता है, वे ही ईश्वर होनेके कारण लोकमें मनुष्योंके शुभाशुभ कर्मोंके फल देनेमें संलग्न रहते हैं। सम्पूर्ण कामनाओंके ईश्वर भी वे ही बताये जाते हैं ॥ ११३-११४ ॥

महेश्वरश्च महतां भूतानामीश्वरश्च सः।
बहुभिर्बहुधा रूपैर्विश्वं व्याप्नोति वै जगत् ॥११५॥

महाभूतोंके ईश्वर होनेसे वे ही महेश्वर कहलाते हैं। वे नाना प्रकारके बहुसंख्यक रूपोंद्वारा सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त हैं ॥

तस्य देवस्य यद् वक्त्रं समुद्रे तदधिष्ठितम्।
वडवामुखेति विख्यातं पिबत् तोयमयं हविः ॥११६॥

उन महादेवजीका जो मुख है, वह समुद्रमें स्थित है। वह 'वडवामुख' नामसे विख्यात होकर जलमय हविष्यका पान करता है ॥ ११६ ॥

एष चैव श्मशानेषु देवो वसति नित्यशः।
यजन्त्येनं जनास्तत्र वीरस्थान इतीश्वरम् ॥११७॥

ये ही महादेवजी श्मशानभूमि (काशीपुरी) में नित्य निवास करते हैं। वहाँ मनुष्य 'वीरस्थानेश्वर' के नामसे इनकी आराधना करते हैं ॥ ११७ ॥

अस्य दीप्तानि रूपाणि घोराणि च बहूनि च।
लोके यान्यस्य पूज्यन्ते मनुष्याः प्रवदन्ति च ॥११८॥

इनके बहुत-से तेजस्वी घोर रूप हैं, जो लोकमें पूजित होते हैं और मनुष्य उनका कीर्तन करते रहते हैं ॥ ११८ ॥

नामधेयानि लोकेषु बहून्यस्य यथार्थवत्।
निरुच्यन्ते महत्त्वाच्च विभुत्वात् कर्मणस्तथा ॥११९॥

उनकी महत्ता, सर्वव्यापकता तथा कर्मके अनुसार लोकमें इनके बहुत-से यथार्थ नाम बताये जाते हैं ॥ ११९ ॥

वेदे चास्य समाम्नातं शतरुद्रियमुत्तमम्।
नाम्ना चानन्तरुद्रेति ह्युपस्थानं महात्मनः ॥१२०॥

यजुर्वेदमें भी परमात्मा शिवकी 'शतरुद्रिय' नामक उत्तम स्तुति बतायी गयी है। अनन्तरुद्रनामसे इनका उपस्थान बताया गया है ॥ १२० ॥

स कामानां प्रभुर्देवो ये दिव्या ये च मानुषाः।
स विभुः स प्रभुर्देवो विश्वं व्याप्नोति वै महत् ॥१२१॥

जो दिव्य तथा मानव भोग हैं, उन सबके स्वामी ये महादेवजी ही हैं। ये देव इस विशाल विश्वमें व्याप्त हैं; इसलिये विभु और प्रभु कहलाते हैं ॥ १२१ ॥

ज्येष्ठं भूतं वदन्त्येनं ब्राह्मणा मुनयस्तथा।
प्रथमो ह्येष देवानां मुखादस्यानलोऽभवत् ॥१२२॥

ब्राह्मण और मुनिजन इन्हें सबसे ज्येष्ठ बताते हैं, ये देवताओंमें सबसे प्रथम हैं; इन्हींके मुखसे अग्निदेवका प्रादुर्भाव हुआ है ॥ १२२ ॥

सर्वथा यत् पशून् पाति तैश्च यद् रमते पुनः।
तेषामधिपतिर्यच्च तस्मात् पशुपतिः स्मृतः ॥१२३॥

ये सर्वथा पशुओं (प्राणियों) का पालन करते और उन्हींके साथ खेला करते हैं तथा उन पशुओंके अधिपति हैं; इसलिये 'पशुपति' कहे गये हैं ॥ १२३ ॥

दिव्यं च ब्रह्मचर्येण लिङ्गमस्य यथा स्थितम्।
महयत्येष लोकांश्च महेश्वर इति स्मृतः ॥१२४॥

इनका दिव्य लिङ्ग ब्रह्मचर्यसे स्थित है। ये सम्पूर्ण लोकोंको महिमान्वित करते हैं; इसलिये महेश्वर कहे गये हैं ॥

ऋषयश्चैव देवाश्च गन्धर्वाप्सरसस्तथा।
लिङ्गमस्यार्चयन्ति स्म तच्चाप्यूर्ध्वं समास्थितम् ॥१२५॥

ऋषि, देवता, गन्धर्व और अप्सराएँ इनके ऊर्ध्वलोक-स्थित लिङ्गविग्रह (प्रतीक) की पूजा करती हैं ॥ १२५ ॥

पूज्यमाने ततस्तस्मिन् मोदते स महेश्वरः।
सुखी प्रीतश्च भवति प्रहृष्टश्चैव शङ्करः ॥१२६॥

उस लिङ्ग अर्थात् प्रतीककी पूजा होनेपर कल्याणकारी भगवान् महेश्वर आनन्दित होते हैं। सुखी, प्रसन्न तथा हर्षोल्लाससे परिपूर्ण होते हैं ॥ १२६ ॥

यदस्य बहुधा रूपं भूतभव्यभवस्थितम्।
स्थावरं जङ्गमं चैव बहुरूपस्ततः स्मृतः ॥१२७॥

भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालोंमें इनके स्थावर-जङ्गम बहुतसे रूप स्थित होते हैं; इसलिये इन्हें 'बहुरूप' नाम दिया गया है ॥ १२७ ॥

एकाक्षो जाज्वलन्नास्ते सर्वतोऽक्षिमयोऽपि वा।
क्रोधाद् यश्चाविशल्लोकांस्तस्मात् सर्व इति स्मृतः ॥१२८॥

यद्यपि उनके सब ओर नेत्र हैं, तथापि उनका एक विलक्षण अग्निमय नेत्र अलग भी है, जो सदा क्रोधसे प्रज्वलित रहता है; वे सब लोकोंमें समाविष्ट होनेके कारण 'सर्व' कहे गये हैं ॥ १२८ ॥

धूम्ररूपं च यत् तस्य धूर्जटिस्तेन चोच्यते।
विश्वेदेवाश्च यत् तस्मिन् विश्वरूपस्ततः स्मृतः ॥१२९॥

उनका रूप धूम्रवर्णका है; इसलिये वे 'धूर्जटि' कहलाते हैं। विश्वेदेव उन्हींमें प्रतिष्ठित हैं, इसलिये उनका एक नाम 'विश्वरूप' है ॥ १२९ ॥

तिस्रो देवीर्यदा चैव भजते भुवनेश्वरः।
द्यामपः पृथिवीं चैव त्र्यम्बकश्च ततः स्मृतः ॥१३०॥

वे भगवान् भुवनेश्वर आकाश, जल और पृथ्वी इन अम्बास्वरूपा तीन देवियोंको अपनाते, उनकी रक्षा करते हैं, इसलिये त्र्यम्बक कहे गये हैं ॥ १३० ॥

समेधयति यन्नित्यं सर्वार्थान् सर्वकर्मसु।
शिवमिच्छन् मनुष्याणां तस्मादेष शिवः स्मृतः॥१३१॥

ये मनुष्योंका कल्याण चाहते हुए उनके समस्त कर्मोंमें सम्पूर्ण अभिलषित पदार्थोंकी समृद्धि (सिद्धि) करते हैं, इसलिये 'शिव' कहे गये हैं ॥ १३१ ॥

सहस्राक्षोऽयुताक्षो वा सर्वतोऽक्षिमयोऽपि वा।
यच्च विश्वं महत् पाति महादेवस्ततः स्मृतः ॥१३२॥

उनके सहस्र अथवा दस हजार नेत्र हैं अथवा वे सब ओरसे नेत्रमय ही हैं। भगवान् शिव महान् विश्वका पालन करते हैं; इसलिये 'महादेव' कहे गये हैं ॥ १३२ ॥

महत् पूर्वं स्थितो यच्च प्राणोत्पत्तिस्थितश्च यत्।
स्थितलिङ्गश्च यन्नित्यं तस्मात् स्थाणुरिति स्मृतः॥१३३॥

वे पूर्वकालसे ही महान् रूपमें स्थित हैं, प्राणोंकी उत्पत्ति और स्थितिके कारण हैं तथा उनका लिङ्गमय शरीर सदा स्थित रहता है; इसलिये उन्हें 'स्थाणु' कहते हैं ॥१३३॥

सूर्याचन्द्रमसोर्लोके प्रकाशन्ते रुचश्च याः।
ताः केशसंज्ञितास्त्र्यक्षे व्योमकेशस्ततः स्मृतः॥१३४॥

लोकमें जो सूर्य और चन्द्रमाकी किरणें प्रकाशित होती हैं, वे भगवान् त्रिलोचनके केश कही गयी हैं। वे व्योम (आकाश) में प्रकाशित होती हैं; इसलिये उनका नाम 'व्योमकेश' है ॥ १३४ ॥

भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं जगदशेषतः।
भव एव ततो यस्माद् भूतभव्यभवोद्भवः ॥१३५॥

भूत, वर्तमान और भविष्य सम्पूर्ण जगत् भगवान् शङ्करसे ही विस्तारको प्राप्त हुआ है; इसलिये वे 'भूतभव्यभवोद्भव' कहे गये हैं ॥ १३५ ॥

कपिः श्रेष्ठ इति प्रोक्तो धर्मश्च वृष उच्यते।
स देवदेवो भगवान् कीर्त्यतेऽतो वृषाकपिः ॥१३६॥

कपि कहते हैं श्रेष्ठको और वृष नाम है धर्मका। वृष और कपि दोनों होनेके कारण देवाधिदेव भगवान् शङ्कर 'वृषाकपि' कहलाते हैं ॥ १३६ ॥

ब्रह्माणमिन्द्रं वरुणं यमं धनदमेव च।
निगृह्य हरते यस्मात् तस्माद्धर इति स्मृतः ॥१३७॥

वे ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण, यम तथा कुबेरको भी काबूमें करके उनसे उनका ऐश्वर्य हर लेते हैं; इसलिये 'हर' कहे गये हैं ॥ १३७ ॥

निमीलिताभ्यां नेत्राभ्यां बलाद् देवो महेश्वरः।
ललाटे नेत्रमसृजत् तेन त्र्यक्षः स उच्यते ॥१३८॥

उन भगवान् महेश्वरने दोनों नेत्रोंको बंद करके अपने ललाटमें बलपूर्वक तीसरे नेत्रकी सृष्टि की, इसलिये उन्हें त्रिनेत्र कहते हैं ॥ १३८ ॥

विषमस्थः शरीरेषु समश्च प्राणिनामिह।
स वायुर्विषमस्थेषु प्राणोऽपानः शरीरिषु ॥१३९॥

वे प्राणियोंके शरीरोंमें विषम संख्यावाले पाँच प्राणोंके साथ निवास करते हुए सदा समभावसे स्थित रहते हैं। विषम परिस्थितियोंमें पड़े हुए समस्त देहधारियोंके भीतर वे ही प्राणवायु और अपानवायुके रूपमें विराजमान हैं ॥१३९॥

पूजयेद् विग्रहं यस्तु लिङ्गं चापि महात्मनः।
लिङ्गं पूजयिता नित्यं महतीं श्रियमश्नुते ॥१४०॥

जो कोई भी मनुष्य हो, उसे महात्मा शिवके अर्चा-विग्रह अथवा लिङ्ग (प्रतीक) की पूजा करनी चाहिये। लिङ्ग अथवा प्रतिमाकी पूजा करनेवाला पुरुष बड़ी भारी सम्पत्ति प्राप्त कर लेता है ॥ १४० ॥

ऊरुभ्यामर्धमाग्नेयं सोमार्धं च शिवा तनुः।
आत्मनोऽर्धं तथा चाग्निः सोमोऽर्धं पुनरुच्यते॥१४१॥

दोनों जाँघोंसे नीचे भगवान् शिवका आधा शरीर आग्नेय अथवा घोर है तथा उससे ऊपरका आधा शरीर सोम एवं शिव है। किसी-किसीके मतमें उनके सम्पूर्ण शरीरका आधा भाग 'अग्नि' और आधा भाग 'सोम' कहलाता है ॥ १४१ ॥

तैजसी महती दीप्ता देवेभ्योऽस्य शिवा तनुः।
भास्वती मानुषेष्वस्य तनुर्घोराग्निरुच्यते ॥१४२॥

उनका जो शिव शरीर है, वह तेजोमय और परम कान्तिमान् है। वह देवताओंके उपयोगमें आता है तथा मनुष्यलोकमें उनका प्रकाशमान घोर शरीर 'अग्नि' कहलाता है॥

ब्रह्मचर्यं चरत्येष शिवा यास्य तनुस्तया।
यास्य घोरतरा मूर्तिः सर्वानत्ति तयेश्वरः ॥१४३॥

उनकी जो शिव मूर्ति है, वह जगत्की रक्षाके लिये ब्रह्मचर्यका पालन करती है और उनकी जो घोरतर मूर्ति है, उसके द्वारा भगवान् शङ्कर सम्पूर्ण जगत्का संहार करते हैं ॥

यन्निर्दहति यत् तीक्ष्णो यदुग्रो यत् प्रतापवान्।
मांसशोणितमज्जादो यत् ततो रुद्र उच्यते ॥१४४॥

ये प्रतापी देवता प्रलयकालमें अत्यन्त तीक्ष्ण एवं उग्र रूप धारण करके सबको दग्ध कर डालते हैं और प्राणियोंके रक्त, मांस एवं मज्जाको भी भक्षण करते हैं; अतः रौद्रभावके कारण 'रुद्र' कहलाते हैं ॥ १४४ ॥

एष देवो महादेवो योऽसौ पार्थ तवाग्रतः।
संग्रामे शात्रवान् निघ्नंस्त्वया दृष्टः पिनाकधृक्॥१४५॥

अर्जुन ! संग्रामभूमिमें जो तुम्हारे आगे शत्रुओंका संहार करते हुए दिखायी दिये हैं, वे ये ही पिनाकधारी भगवान् महादेव हैं ॥ १४५ ॥

सिन्धुराजवधार्थाय प्रतिज्ञाते त्वयानघ।
कृष्णेन दर्शितः स्वप्ने यस्तु शैलेन्द्रमूर्धनि ॥१४६॥
एष वै भगवान् देवः संग्रामे याति तेऽग्रतः।
येन दत्तानि तेऽस्त्राणि यैस्त्वया दानवा हताः ॥१४७॥

निष्पाप अर्जुन ! जब तुमने सिंधुराजके वधकी प्रतिज्ञा की थी, उस समय स्वप्नमें भगवान् श्रीकृष्णने तुम्हें गिरिराजके शिखरपर जिनका दर्शन कराया था, ये वे ही भगवान् शङ्कर संग्राममें तुम्हारे आगे-आगे चल रहे हैं । उन्होंने ही तुम्हें वे दिव्यास्त्र प्रदान किये थे, जिनके द्वारा तुमने दानवोंका संहार किया है ॥ १४६-१४७ ॥

धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम्।
देवदेवस्य ते पार्थ व्याख्यातं शतरुद्रियम् ॥१४८॥

पार्थ ! यह देवाधिदेव भगवान् शिवके 'शतरुद्रिय' स्तोत्रकी व्याख्या की गयी है । यह स्तोत्र वेदोंके समान परम पवित्र तथा धन, यश और आयुकी वृद्धि करनेवाला है॥१४८॥

सर्वार्थसाधनं पुण्यं सर्वकिल्बिषनाशनम्।
सर्वपापप्रशमनं सर्वदुःखभयापहम् ॥१४९॥

इसके पाठसे सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि होती है । यह पवित्र स्तोत्र सम्पूर्ण किल्बिषोंका नाशक, सब पापोंका निवारक तथा सब प्रकारके दुःख और भयको दूर करनेवाला है ॥ १४९ ॥

चतुर्विधमिदं स्तोत्रं यः शृणोति नरः सदा।
विजित्य शत्रून् सर्वान् स रुद्रलोके महीयते ॥१५०॥

जो मनुष्य भगवान् शङ्करके ब्रह्मा, विष्णु, महेश और निर्गुण निराकार—इन चतुर्विध स्वरूपका प्रतिपादन करनेवाले इस स्तोत्रको सदा सुनता है, वह सम्पूर्ण शत्रुओंको जीतकर रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है ॥ १५० ॥

चरितं महात्मनो नित्यं सांग्रामिकमिदं स्मृतम्।
पठन् वै शतरुद्रीयं शृण्वंश्च सततोत्थितः ॥१५१॥
भक्तो विश्वेश्वरं देवं मानुषेषु च यः सदा।
वरान् कामान् स लभते प्रसन्ने त्र्यम्बके नरः ॥१५२॥

परमात्मा शिवका यह चरित सदा संग्राममें विजय दिलानेवाला है, जो सदा उद्यत रहकर शतरुद्रियको पढ़ता और सुनता है तथा मनुष्योंमें जो कोई भी निरन्तर भगवान् विश्वेश्वरका भक्तिभावसे भजन करता है, वह उन त्रिलोचनके प्रसन्न होनेपर समस्त उत्तम कामनाओंको प्राप्त कर लेता है ॥

गच्छ युद्ध्यस्व कौन्तेय न तवास्ति पराजयः।
यस्य मन्त्री च गोप्ता च पार्श्वस्थो हि जनार्दनः ॥१५३॥

कुन्तीनन्दन ! जाओ, युद्ध करो । तुम्हारी पराजय नहीं



हो सकती; क्योंकि तुम्हारे मन्त्री, रक्षक और पार्श्ववर्ती साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण हैं ॥ १५३ ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वार्जुनं संख्ये पराशरसुतस्तदा।

जगाम भरतश्रेष्ठ यथागतमरिंदम ॥१५४॥

संजय कहते हैं—शत्रुओंका दमन करनेवाले भरतश्रेष्ठ! युद्धस्थलमें अर्जुनसे ऐसा कहकर पराशरनन्दन व्यासजी जैसे आये थे, वैसे चले गये ॥ १५४ ॥

युद्धं कृत्वा महद् घोरं पञ्चाहानि महाबलः ।
ब्राह्मणो निहतो राजन् ब्रह्मलोकमवाप्तवान् ॥१५५॥

राजन्! पाँच दिनोंतक अत्यन्त घोर युद्ध करके महाबली ब्राह्मण द्रोणाचार्य मारे गये और ब्रह्मलोकमें चले गये ॥

स्वधीते यत् फलं वेदे तदस्मिन्नपि पर्वणि ।
क्षत्रियाणामभीरूणां युक्तमत्र महद् यशः ॥१५६॥

वेदोंके स्वाध्यायसे जो फल मिलता है, वही इस पर्वके पाठ और श्रवणसे भी प्राप्त होता है। इसमें निर्भय होकर युद्ध करनेवाले वीर क्षत्रियोंके महान् यशका वर्णन है ॥१५६॥

य इदं पठते पर्व शृणुयाद् वापि नित्यशः ।
स मुच्यते महापापैः कृतैर्घोरैश्च कर्मभिः ॥१५७॥

जो प्रतिदिन इस पर्वको पढ़ता अथवा सुनता है, वह पहलेके किये हुए बड़े-बड़े पापों तथा घोर कर्मोंसे मुक्त हो जाता है ॥ १५७ ॥

यज्ञावाप्तिर्ब्राह्मणस्येह नित्यं
घोरे युद्धे क्षत्रियाणां यशश्च ।
शेषौ वर्णौ काममिष्टं लभेते
पुत्रान् पौत्रान् नित्यमिष्टांस्तथैव ॥१५८॥

इसको प्रतिदिन पढ़ने और सुननेसे ब्राह्मणको यज्ञका फल प्राप्त होता है, क्षत्रियोंको घोर युद्धमें सुयशकी प्राप्ति होती है, शेष दो वर्णके लोगोंको भी पुत्र, पौत्र आदि अभीष्ट एवं प्रिय वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं ॥ १५८ ॥

इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि नारायणास्त्रमोक्षपर्वणि द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत द्रोणपर्वके अन्तर्गत नारायणास्त्रमोक्षपर्वमें दो सौ दोवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २०२ ॥

द्रोणपर्व सम्पूर्णम्

	अनुष्टुप् छन्द	(अन्य बड़े छन्द)	बड़े छन्दोंको ३२ अक्षरोंके अनुष्टुप् मानकर गिननेपर	कुलयोग
उत्तर भारतीय पाठसे लिये गये श्लोक	९३७९॥	(२९१॥)	४००॥।-	९७८०।-
दक्षिण भारतीय पाठसे लिये गये श्लोक	१३०	(५)	६॥।=	१३६॥।=
द्रोणपर्वकी सम्पूर्ण श्लोक-संख्या				९९१७≡

श्रवण-महिमा

स्वधीते यत् फलं वेदे तदस्मिन्नपि पर्वणि ।
क्षत्रियाणामभीरूणां युक्तमत्र महद् यशः ॥ १ ॥
य इदं पठते पर्व शृणुयाद् वापि नित्यशः ।
स मुच्यते महापापैः कृतैर्घोरैश्च कर्मभिः ॥ २ ॥

यज्ञावाप्तिर्ब्राह्मणस्येह नित्यं
घोरे युद्धे क्षत्रियाणां यशश्च ।
शेषौ वर्णौ काममिष्टं लभेते
पुत्रान् पौत्रान् नित्यमिष्टांस्तथैव ॥ ३ ॥





कर्ण और अर्जुनका युद्ध

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमहाभारतम्

कर्णपर्व

प्रथमोऽध्यायः

कर्णवधका संक्षिप्त वृत्तान्त सुनकर जनमेजयका वैशम्पायनजीसे उसे विस्तारपूर्वक कहनेका अनुरोध

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

'अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उन लीलाओंका संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय (महाभारत) का पाठ करना चाहिये॥

वैशम्पायन उवाच

ततो द्रोणे हते राजन् दुर्योधनमुखा नृपाः।
भृशमुद्विग्नमनसो द्रोणपुत्रमुपागमन्॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! द्रोणाचार्यके मारे जानेपर दुर्योधन आदि राजाओंका मन अत्यन्त उद्विग्न हो गया था। वे सब-के-सब द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके पास आये॥ १॥

ते द्रोणमनुशोचन्तः कश्मलाभिहतौजसः।
पर्युपासन्त शोकार्तास्ततः शारद्वतीसुतम्॥ २॥

मोहवश उनका बल और उत्साह नष्ट-सा हो गया था। वे द्रोणाचार्यके लिये बारंबार चिन्ता करते हुए शोकसे व्याकुल हो कृपीकुमार अश्वत्थामाके पास उसके चारों ओर बैठ गये॥ २॥

ते मुहूर्तं समाश्वस्य हेतुभिः शास्त्रसम्मितैः।
रात्र्यागमे महीपालाः स्वानि वेश्मानि भेजिरे॥ ३॥

वे शास्त्रानुकूल युक्तियोंद्वारा दो घड़ीतक अश्वत्थामाको सान्त्वना देते रहे। फिर रात हो जानेपर समस्त भूपाल अपने-अपने शिविरमें चले गये॥ ३॥

ते वेश्मस्वपि कौरव्य पृथ्वीशा नाप्नुवन् सुखम्।
चिन्तयन्तः क्षयं तीव्रं दुःखशोकसमन्विताः॥ ४॥

कुरुनन्दन! शिविरोंमें भी वे भूपगण सुख न पा सके। संग्राममें जो घोर विनाश हुआ था, उसका चिन्तन करते हुए दुःख और शोकमें डूब गये॥ ४॥

विशेषतः सूतपुत्रो राजा चैव सुयोधनः।
दुःशासनश्च शकुनिः सौबलश्च महाबलः॥ ५॥
उषितास्ते निशां तां तु दुर्योधननिवेशने।
चिन्तयन्तः परिक्लेशान् पाण्डवानां महात्मनाम्॥ ६॥

विशेषतः सूतपुत्र कर्ण, राजा दुर्योधन, दुःशासन तथा महाबली सुबलपुत्र शकुनि—ये चारों उस रातको दुर्योधनके ही शिविरमें रहे और महात्मा पाण्डवोंको जो बड़े-बड़े क्लेश दिये गये थे, उनका चिन्तन करते रहे॥ ५-६॥

यत् तद् द्यूते परिक्लिष्टा कृष्णा चानायिता सभाम्।
तत् स्मरन्तोऽनुशोचन्तो भृशमुद्विग्नचेतसः॥ ७॥

द्यूत-क्रीडाके समय जो द्रुपदकुमारी कृष्णाको सभामें लाया गया और उसे सर्वथा क्लेश पहुँचाया गया, उसका बारंबार स्मरण करके वे शोकमग्न हो जाते और मन-ही-मन अत्यन्त उद्विग्न हो उठते थे॥ ७॥

तथा तु संचिन्तयतां तान् क्लेशान् द्यूतकारितान्।
दुःखेन क्षणदा राजन् जगामाब्दशतोपमा॥ ८॥

राजन्! इस प्रकार पाण्डवोंको जूएके द्वारा प्राप्त कराये गये उन क्लेशोंका चिन्तन करते-करते उनकी वह रात सौ वर्षोंके समान बड़े कष्टसे व्यतीत हुई॥ ८॥

ततः प्रभाते विमले स्थिता दिष्टस्य शासने।
चक्रुरावश्यकं सर्वे विधिदृष्टेन कर्मणा॥ ९॥

तदनन्तर निर्मल प्रभातकाल आनेपर दैवके अधीन हुए समस्त कौरवोंने शास्त्रोक्त विधिके अनुसार शौच, स्नान, संध्या-वन्दन आदि आवश्यक कार्य पूर्ण किया॥ ९॥

ते कृत्वावश्यकार्याणि समाश्वस्य च भारत।
योगमाज्ञापयामासुर्युद्धाय च विनिर्ययुः॥ १०॥
कर्णं सेनापतिं कृत्वा कृतकौतुकमङ्गलाः।
पूजयित्वा द्विजश्रेष्ठान् दधिपात्रघृताक्षतैः॥ ११॥
गोभिरश्वैश्च निष्कैश्च वासोभिश्च महाधनैः।
वन्द्यमाना जयाशीर्भिः सूतमागधवन्दिभिः॥ १२॥

भरतनन्दन ! प्रतिदिनके आवश्यक कार्य सम्पन्न करके आश्वस्त हो उन्होंने सैनिकोंको कवच आदि धारण करके तैयार हो जानेकी आज्ञा दी तथा कौतुक एवं माङ्गलिक कृत्य पूर्ण करके कर्णको सेनापति बनाकर वे सब-के-सब दही, पात्र, घृत, अक्षत, गौ, अश्व, कण्ठभूषण तथा बहुमूल्य वस्त्रोंद्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका आदर-सत्कार करके सूत, मागध और वन्दीजनोंद्वारा विजयसूचक आशीर्वादोंसे अभिवन्दित हो युद्धके लिये निकले ॥१०–१२॥

तथैव पाण्डवा राजन् कृतपूर्वाह्णिकक्रियाः।
शिबिरान्निर्ययुस्तूर्णं युद्धाय कृतनिश्चयाः ॥ १३ ॥

राजन् ! इसी प्रकार पाण्डव भी पूर्वाह्णमें किये जानेवाले नित्य कर्मोंका अनुष्ठान करके तुरंत ही शिबिरसे बाहर निकले। उन्होंने युद्धके लिये दृढ़ निश्चय कर लिया था ॥ १३ ॥

ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम्।
कुरूणां पाण्डवानां च परस्परजयैषिणाम् ॥ १४ ॥

तदनन्तर एक दूसरेको जीतनेकी इच्छावाले कौरवों और पाण्डवोंमें भयंकर रोमाञ्चकारी युद्ध आरम्भ हो गया ॥ १४ ॥

तयोर्द्वौ दिवसौ युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः।
कर्णे सेनापतौ राजन् बभूवाद्भुतदर्शनम् ॥ १५ ॥

राजन् ! कर्णके सेनापति हो जानेपर उन कौरव-पाण्डव सेनाओंमें दो दिनोंतक अद्भुत युद्ध हुआ ॥ १५ ॥

ततः शत्रुक्षयं कृत्वा सुमहान्तं रणे वृषः।
पश्यतां धार्तराष्ट्राणां फाल्गुनेन निपातितः ॥ १६ ॥

उस युद्धमें शत्रुओंका महान् संहार करके कर्ण धृतराष्ट्र-पुत्रोंके देखते-देखते अर्जुनके हाथसे मारा गया ॥ १६ ॥

ततस्तु संजयः सर्वं गत्वा नागपुरं द्रुतम्।
आचष्ट धृतराष्ट्राय यद् वृत्तं कुरुजाङ्गले ॥ १७ ॥

तदनन्तर संजयने तुरंत हस्तिनापुरमें जाकर कुरुक्षेत्रमें जो घटना घटित हुई थी, वह सब धृतराष्ट्रसे कह सुनायी ॥

जनमेजय उवाच

आपगेयं हतं श्रुत्वा द्रोणं चापि महारथम्।
आजगाम परामार्तिं वृद्धो राजाम्बिकासुतः ॥ १८ ॥

जनमेजय बोले—ब्रह्मन् ! गङ्गानन्दन भीष्म तथा महारथी द्रोणको मारा गया सुनकर ही बूढ़े राजा अम्बिका-नन्दन धृतराष्ट्रको बड़ी भारी वेदना हुई थी ॥ १८ ॥

स श्रुत्वा निहतं कर्णं दुर्योधनहितैषिणम्।
कथं द्विजवर प्राणानधारयत दुःखितः ॥ १९ ॥

द्विजश्रेष्ठ ! फिर दुर्योधनके हितैषी कर्णके मारे जानेका समाचार सुनकर अत्यन्त दुखी हो उन्होंने अपने प्राण कैसे धारण किये ? ॥ १९ ॥

यस्मिञ्जयाशां पुत्राणां सममन्यत पार्थिवः।
तस्मिन् हते स कौरव्यः कथं प्राणानधारयत् ॥ २० ॥

कुरुवंशी राजाने जिसके ऊपर अपने पुत्रोंकी विजयकी आशा बाँध रक्खी थी, उसके मारे जानेपर उन्होंने कैसे प्राण धारण किये ? ॥ २० ॥

दुर्मरं तदहं मन्ये नृणां कृच्छ्रेऽपि वर्तताम्।
यत्र कर्णं हतं श्रुत्वा नात्यजज्जीवितं नृपः ॥ २१ ॥

मैं समझता हूँ कि बड़े भारी संकटमें पड़ जानेपर भी मनुष्योंके लिये अपने प्राणोंका परित्याग करना अत्यन्त कठिन है, तभी तो कर्णवधका वृत्तान्त सुनकर भी राजा धृतराष्ट्रने इस जीवनका त्याग नहीं किया ॥ २१ ॥

तथा शान्तनवं वृद्धं ब्रह्मन् बाह्लीकमेव च।
द्रोणं च सोमदत्तं च भूरिश्रवसमेव च ॥ २२ ॥
तथैव चान्यान् सुहृदः पुत्रान् पौत्रांश्च पातितान्।
श्रुत्वा यन्नाजहात् प्राणांस्तन्मन्ये दुष्करं द्विज ॥ २३ ॥

ब्रह्मन् ! उन्होंने वृद्ध शान्तनुनन्दन भीष्म, बाह्लीक, द्रोण, सोमदत्त तथा भूरिश्रवाको और अन्यान्य सुहृदों, पुत्रों एवं पौत्रोंको भी शत्रुओंद्वारा मारा गया सुनकर भी जो अपने प्राण नहीं छोड़े, उससे मुझे यही मालूम होता है कि मनुष्यके लिये स्वेच्छापूर्वक मरना बहुत कठिन है ॥

एतन्मे सर्वमाचक्ष्व विस्तरेण महामुने।
न हि तृप्यामि पूर्वेषां शृण्वानश्चरितं महत् ॥ २४ ॥

महामुने ! यह सारा वृत्तान्त आप मुझसे विस्तारपूर्वक कहें। मैं अपने पूर्वजोंका महान् चरित्र सुनकर तृप्त नहीं हो रहा हूँ ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि जनमेजयवाक्यं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें जनमेजयवाक्यनामक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

धृतराष्ट्र और संजयका संवाद

वैशम्पायन उवाच

हते कर्णे महाराज निशि गावल्गणिस्तदा।
दीनो ययौ नागपुरमश्वैर्वातसमैर्जवे ॥ १ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—महाराज ! कर्णके मारे जानेपर गवल्गणपुत्र संजय अत्यन्त दुखी हो वायुके समान वेगशाली घोड़ोंद्वारा उसी रातमें हस्तिनापुर जा पहुँचे ॥

स हास्तिनपुरं गत्वा भृशमुद्विग्नचेतनः ।
जगाम धृतराष्ट्रस्य क्षयं प्रक्षीणबान्धवम् ॥ २ ॥

उस समय उनका चित्त अत्यन्त उद्विग्न हो रहा था । हस्तिनापुरमें पहुँचकर वे धृतराष्ट्रके उस महलमें गये, जहाँ रहनेवाले बन्धु-बान्धव प्रायः नष्ट हो चुके थे ॥

स तमुद्वीक्ष्य राजानं कश्मलाभिहतौजसम् ।
ववन्दे प्राञ्जलिर्भूत्वा मूर्ध्ना पादौ नृपस्य ह ॥ ३ ॥

मोहवश जिनके बल और उत्साह नष्ट हो गये थे, उन राजा धृतराष्ट्रका दर्शन करके संजयने उनके चरणोंमें मस्तक झुकाकर हाथ जोड़ प्रणाम किया ॥ ३ ॥

सम्पूज्य च यथान्यायं धृतराष्ट्रं महीपतिम् ।
हा कष्टमिति चोक्त्वा स ततो वचनमाददे ॥ ४ ॥

राजा धृतराष्ट्रका यथायोग्य सम्मान करके संजयने 'हाय ! बड़े कष्टकी बात है' ऐसा कहकर फिर इस प्रकार वार्तालाप आरम्भ किया—॥ ४ ॥

संजयोऽहं क्षितिपते कच्चिदास्ते सुखं भवान् ।
स्वदोषैरापदं प्राप्य कच्चिन्नाद्य विमुह्यति ॥ ५ ॥

'पृथ्वीनाथ ! मैं संजय हूँ । आप सुखसे तो हैं न ? अपने ही अपराधोंसे विपत्तिमें पड़कर आज आप मोहित तो नहीं हो रहे हैं ? ॥ ५ ॥

हितान्युक्तानि विदुरद्रोणगाङ्गेयकेशवैः ।
अगृहीतान्यनुस्मृत्य कच्चिन्न कुरुषे व्यथाम् ॥ ६ ॥

'विदुर, द्रोणाचार्य, भीष्म और श्रीकृष्णके कहे हुए हितकारक वचन आपने स्वीकार नहीं किये थे । अब उन वचनोंको बारंबार याद करके क्या आपको व्यथा नहीं होती है ? ॥ ६ ॥

रामनारदकण्वाद्यैर्हितमुक्तं सभातले ।
न गृहीतमनुस्मृत्य कच्चिन्न कुरुषे व्यथाम् ॥ ७ ॥

'सभामें परशुराम, नारद और महर्षि कण्व आदिकी कही हुई हितकर बातें आपने नहीं मानी थीं । अब उन्हें स्मरण करके क्या आपके मनमें कष्ट नहीं हो रहा है ? ॥७॥

सुहृदस्त्वद्धिते युक्तान् भीष्मद्रोणमुखान् परैः ।
निहतान् युधि संस्मृत्य कच्चिन्न कुरुषे व्यथाम् ॥ ८ ॥

'आपके हितमें लगे हुए भीष्म, द्रोण आदि जो सुहृद् युद्धमें शत्रुओंके हाथसे मारे गये हैं, उन्हें याद करके क्या आप व्यथाका अनुभव नहीं करते हैं ?' ॥ ८ ॥

तमेवंवादिनं राजा सूतपुत्रं कृताञ्जलिम् ।
सुदीर्घमथ निःश्वस्य दुःखार्त इदमब्रवीत् ॥ ९ ॥

हाथ जोड़कर ऐसी बातें कहनेवाले सूतपुत्र संजयसे दुःखातुर राजा धृतराष्ट्रने लंबी साँस खींचकर इस प्रकार कहा ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

आपगेये हते शूरे दिव्यास्त्रवति संजय ।
द्रोणे च परमेष्वासे भृशं मे व्यथितं मनः ॥ १० ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता शूरवीर गङ्गानन्दन भीष्म तथा महाधनुर्धर द्रोणाचार्यके मारे जानेसे मेरे मनमें बड़ी भारी व्यथा हो रही है ॥ १० ॥

यो रथानां सहस्राणि दंशितानां दशैव तु ।
अहन्यहनि तेजस्वी निजघ्ने वसुसम्भवः ॥ ११ ॥
तं हतं यज्ञसेनस्य पुत्रेणेह शिखण्डिना ।
पाण्डवेयाभिगुप्तेन श्रुत्वा मे व्यथितं मनः ॥ १२ ॥

जो तेजस्वी भीष्म साक्षात् वसुके अवतार थे और युद्धमें प्रतिदिन दस हजार कवचधारी रथियोंका संहार करते थे । उन्हींको यहाँ पाण्डुपुत्र अर्जुनसे सुरक्षित द्रुपदकुमार शिखण्डीने मार डाला है, यह सुनकर मेरे मनमें बड़ी व्यथा हो रही है ॥ ११-१२ ॥

भार्गवः प्रददौ यस्मै परमास्त्रं महात्मने ।
साक्षाद् रामेण यो बाल्ये धनुर्वेद उपाकृतः ॥ १३ ॥
यस्य प्रसादात् कौन्तेया राजपुत्रा महारथाः ।
महारथत्वं सम्प्राप्तास्तथान्ये वसुधाधिपाः ॥ १४ ॥
तं द्रोणं निहतं श्रुत्वा धृष्टद्युम्नेन संयुगे ।
सत्यसंधं महेष्वासं भृशं मे व्यथितं मनः ॥ १५ ॥

जिन महात्माको भृगुनन्दन परशुरामने उत्तम अस्त्र प्रदान किया था, जिन्हें बाल्यावस्थामें धनुर्वेदकी शिक्षा देनेके लिये साक्षात् परशुरामजीने अपना शिष्य बनाया था, जिनकी कृपासे कुन्तीके पुत्र राजकुमार पाण्डव महारथी हो गये तथा अन्यान्य नरेशोंने भी महारथी कहलानेकी योग्यता प्राप्त की थी, उन्हीं सत्य-प्रतिज्ञ महाधनुर्धर द्रोणाचार्यको युद्धस्थलमें धृष्टद्युम्नके हाथसे मारा गया सुनकर मेरे मनमें बड़ी पीड़ा हो रही है ॥ १३–१५ ॥

ययोर्लोके पुमानस्त्रे न समोऽस्ति चतुर्विधे ।
तौ द्रोणभीष्मौ श्रुत्वा तु हतौ मे व्यथितं मनः ॥ १६ ॥

संसारमें चार[1] प्रकारके अस्त्रोंकी विद्यामें जिनकी

---

१. अस्त्रोंके चार भेद इस प्रकार हैं—मुक्त, अमुक्त, यन्त्र-मुक्त तथा मुक्तामुक्त । जो धनुष या हाथसे शत्रुपर फेंके जाते हैं, वे मुक्त कहलाते हैं, जैसे बाण आदि । जिन्हें हाथमें लिये हुए ही प्रहार किया जाता है, उन अस्त्रोंको अमुक्त कहते हैं, जैसे तलवार आदि । जो यन्त्रसे फेंके जाते हैं, वे यन्त्रमुक्त कहलाते हैं, जैसे गोला आदि । तथा जिस अस्त्रको छोड़कर पुनः उसका उपसंहार किया जाता है, अर्थात् जो शत्रुपर चोट करके पुनः प्रयोग करनेवालेके हाथमें आ जाते हैं, वे मुक्तामुक्त कहलाते हैं, जैसे श्रीकृष्णका सुदर्शन चक्र और इन्द्रका वज्र आदि ।

समानता करनेवाला दूसरा कोई पुरुष नहीं है, उन्हीं द्रोणाचार्य और भीष्मको मारा गया सुनकर मेरे मनमें बड़ा दुःख हो रहा है ॥ १६ ॥

त्रैलोक्ये यस्य चास्त्रेषु न पुमान् विद्यते समः।
तं द्रोणं निहतं श्रुत्वा किमकुर्वत मामकाः ॥ १७ ॥

तीनों लोकोंमें दूसरा कोई पुरुष जिनके समान अस्त्रवेत्ता नहीं है, उन द्रोणाचार्यको मारा गया सुनकर मेरे पुत्रोंने क्या किया ? ॥ १७ ॥

संशप्तकानां च बले पाण्डवेन महात्मना।
धनंजयेन विक्रम्य गमिते यमसादनम् ॥ १८ ॥
नारायणास्त्रे च हते द्रोणपुत्रस्य धीमतः।
विप्रद्रुतेष्वनीकेषु किमकुर्वत मामकाः ॥ १९ ॥

महात्मा पाण्डुपुत्र अर्जुनने पराक्रम करके संशप्तकोंकी सारी सेनाको यमलोक पहुँचा दिया और बुद्धिमान् द्रोणकुमार अश्वत्थामाका नारायणास्त्र भी जब शान्त हो गया, उस समय अपनी सेनाओंमें भगदड़ मच जानेपर मेरे पुत्रोंने क्या किया ? ॥ १८-१९ ॥

विप्रद्रुतानहं मन्ये निमग्नाञ्शोकसागरे।
प्लवमानान् हते द्रोणे सन्ननौकानिवार्णवे ॥ २० ॥

मैं तो समझता हूँ, द्रोणाचार्यके मारे जानेपर मेरे सारे सैनिक भाग चले होंगे, शोकके समुद्रमें डूब गये होंगे, उनकी दशा समुद्रमें नाव मारी जानेपर वहाँ हाथोंसे तैरनेवाले मनुष्यों-के समान संकटपूर्ण हो गयी होगी ॥ २० ॥

दुर्योधनस्य कर्णस्य भोजस्य कृतवर्मणः।
मद्रराजस्य शल्यस्य द्रौणेश्चैव कृपस्य च ॥ २१ ॥
मत्पुत्रस्य च शेषस्य तथान्येषां च संजय।
विप्रद्रुतेष्वनीकेषु मुखवर्णोऽभवत् कथम् ॥ २२ ॥

संजय ! जब सारी सेनाएँ भाग गयीं, तब दुर्योधन, कर्ण, भोजवंशी कृतवर्मा, मद्रराज शल्य, द्रोणकुमार अश्वत्थामा, कृपाचार्य, मरनेसे बचे हुए मेरे पुत्र तथा अन्य लोगोंके मुखकी कान्ति कैसी हो गयी थी ? ॥ २१-२२ ॥

एतत् सर्वं यथावृत्तं तथा गावल्गणे मम।
आचक्ष्व पाण्डवेयानां मामकानां च विक्रमम् ॥ २३ ॥

गवल्गणकुमार ! मेरे तथा पाण्डुके पुत्रोंके पराक्रमसे सम्बन्ध रखनेवाला यह सारा वृत्तान्त यथार्थरूपसे मुझे कह सुनाओ ॥ २३ ॥

संजय उवाच

तवापराधाद् यद् वृत्तं कौरवेयेषु मारिष।
तच्छ्रुत्वा मा व्यथां कार्षीर्दिष्टे न व्यथते बुधः॥ २४ ॥

संजयने कहा—माननीय नरेश ! आपके अपराधसे कौरवोंपर जो कुछ बीता है, उसे सुनकर दुःख न मानियेगा; क्योंकि दैववश जो दुःख प्राप्त होता है, उससे विद्वान् पुरुष व्यथित नहीं होते हैं ॥ २४ ॥

यस्मादभावी भावी वा भवेदर्थो नरं प्रति।
अप्राप्तौ तस्य वा प्राप्तौ न कश्चिद् व्यथते बुधः॥ २५ ॥

प्रारब्धवश मनुष्यको अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति हो भी जाती है और नहीं भी होती है। अतः उसकी प्राप्ति हो या न हो, किसी भी दशामें कोई ज्ञानी पुरुष (हर्ष या) कष्टका अनुभव नहीं करता है ॥ २५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

न व्यथाभ्यधिका काचिद् विद्यते मम संजय।
दिष्टमेतत् पुरा मन्ये कथयस्व यथेच्छकम् ॥ २६ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! मुझे इससे अधिक कोई व्यथा नहीं होगी, मैं पहलेसे ही ऐसा मानता हूँ कि यह अवश्यंभावी दैवका विधान है; अतः तुम इच्छानुसार सारा वृत्तान्त कहो ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि धृतराष्ट्रसंजयसंवादे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें धृतराष्ट्र-संजयसंवादविषयक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

दुर्योधनके द्वारा सेनाको आश्वासन देना तथा सेनापति कर्णके युद्ध और वधका संक्षिप्त वृत्तान्त

संजय उवाच

हते द्रोणे महेष्वासे तव पुत्रा महारथाः।
बभूवुरस्वस्थमुखा विषण्णा गतचेतसः ॥ १ ॥

संजयने कहा—महाराज ! महाधनुर्धर द्रोणाचार्यके मारे जानेपर आपके महारथी पुत्र विषादग्रस्त और अचेत-से हो गये । उनके मुखपर अस्वस्थताका चिह्न स्पष्ट दिखायी देने लगा ॥ १ ॥

अवाङ्मुखाः शस्त्रभृतः सर्व एव विशाम्पते।
अप्रेक्षमाणाः शोकार्ता नाभ्यभाषन् परस्परम् ॥ २ ॥

प्रजानाथ ! सभी शस्त्रधारी सैनिक मुँह नीचे किये शोकसे व्याकुल हो गये। वे एक दूसरेकी ओर न तो देखते थे और न बात ही करते थे ॥ २ ॥

तान् दृष्ट्वा व्यथिताकारान् सैन्यानि तव भारत।
ऊर्ध्वमेव निरैक्षन्त दुःखत्रस्तान्यनेकशः ॥ ३ ॥

भरतनन्दन ! उन सबको विषादमें डूबा हुआ देख

आपकी अनेक सेनाएँ भी दुःखसे संत्रस्त हो ऊपरकी ओर ही दृष्टिपात करने लगीं ॥ ३ ॥

शस्त्राण्येषां तु राजेन्द्र शोणिताक्तानि सर्वशः ।
प्राभ्रश्यन्त कराग्रेभ्यो दृष्ट्वा द्रोणं हतं युधि ॥ ४ ॥

राजेन्द्र ! युद्धमें द्रोणाचार्यको मारा गया देख खूनसे रँगे हुए इन सैनिकोंके शस्त्र हाथोंसे छूटकर गिर पड़े ॥ ४ ॥

तानि बद्धान्यरिष्टानि लम्बमानानि भारत ।
अदृश्यन्त महाराज नक्षत्राणि यथा दिवि ॥ ५ ॥

भरतवंशी महाराज ! कमर आदिमें बँधकर लटकते हुए वे अस्त्र-शस्त्र आकाशसे टूटते हुए नक्षत्रोंके समान दिखायी दे रहे थे ॥ ५ ॥

तथा तु स्तिमितं दृष्ट्वा गतसत्त्वमवस्थितम् ।
बलं तव महाराज राजा दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ ६ ॥

नरेश्वर ! इस प्रकार आपकी सेनाको प्राणहीन-सी निश्चल खड़ी देख राजा दुर्योधनने कहा—॥ ६ ॥

भवतां बाहुवीर्यं हि समाश्रित्य मया युधि ।
पाण्डवेयाः समाहूता युद्धं चेदं प्रवर्तितम् ॥ ७ ॥

'वीरो ! आपलोगोंके बाहुबलका भरोसा करके मैंने युद्धके लिये पाण्डवोंको ललकारा है और यह युद्ध आरम्भ किया है ॥ ७ ॥

तदिदं निहते द्रोणे विषण्णमिव लक्ष्यते ।
युध्यमानाश्च समरे योधा वध्यन्ति सर्वशः ॥ ८ ॥
जयो वापि वधो वापि युध्यमानस्य संयुगे ।
भवेत् किमत्र चित्रं वै युध्यध्वं सर्वतोमुखाः ॥ ९ ॥

'परंतु द्रोणाचार्यके मारे जानेपर यह सारी सेना विषादमें डूबी हुई-सी दिखायी देती है । समरभूमिमें युद्ध करनेवाले प्रायः सभी योद्धा शत्रुओंके हाथसे मारे जाते हैं । रणभूमिमें जूझनेवाले वीरको कभी विजय भी प्राप्त होती है और कभी उसका वध भी हो जाता है । इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है ? अतः आपलोग सब ओर मुँह करके उत्साहपूर्वक युद्ध करें ॥ ८-९ ॥

पश्यध्वं च महात्मानं कर्णं वैकर्तनं युधि ।
प्रचरन्तं महेष्वासं दिव्यैरस्त्रैर्महाबलम् ॥ १० ॥

'देखिये, महामना, महाधनुर्धर और महाबली वैकर्तन कर्ण अपने दिव्यास्त्रोंके साथ किस प्रकार युद्धमें विचर रहा है ! ॥ १० ॥

यस्य वै युधि संत्रासात् कुन्तीपुत्रो धनंजयः ।
निवर्तते सदा मन्दः सिंहात् क्षुद्रमृगो यथा ॥ ११ ॥

'जिसके भयसे वह कुन्तीका मूर्ख पुत्र अर्जुन सदा उसी प्रकार मुँह मोड़ लेता है, जैसे सिंहके सामनेसे क्षुद्र मृग भाग जाता है ॥ ११ ॥

येन नागायुतप्राणो भीमसेनो महाबलः ।
मानुषेणैव युद्धेन तामवस्थां प्रवेशितः ॥ १२ ॥

'जिसने दस हजार हाथियोंके समान बलवाले महाबली भीमसेनको मानव-युद्धके द्वारा ही वैसी दुरवस्थामें डाल दिया था ॥ १२ ॥

येन दिव्यास्त्रविच्छूरो मायावी स घटोत्कचः ।
अमोघया रणे शक्त्या निहतो भैरवं नदन् ॥ १३ ॥

'जिसने रणभूमिमें भयंकर गर्जना करनेवाले दिव्यास्त्रवेत्ता, शूरवीर मायावी घटोत्कचको अपनी अमोघ शक्तिसे मार डाला था ॥ १३ ॥

तस्य दुर्वारवीर्यस्य सत्यसंधस्य धीमतः ।
बाह्वोर्द्रविणमक्षय्यमद्य द्रक्ष्यथ संयुगे ॥ १४ ॥

'जिसके पराक्रमको रोकना अत्यन्त कठिन है, उस सत्यप्रतिज्ञ बुद्धिमान् कर्णके अक्षय बाहुबलको आज आप लोग समराङ्गणमें देखेंगे ॥ १४ ॥

द्रोणपुत्रस्य विक्रान्तं राधेयस्यैव चोभयोः ।
पश्यन्तु पाण्डुपुत्रास्ते विष्णुवासवयोरिव ॥ १५ ॥

'आज पाण्डव भगवान् विष्णु और इन्द्रके समान शक्तिशाली द्रोणपुत्र तथा राधापुत्र दोनोंके पराक्रमको देखें ॥

सर्व एव भवन्तश्च शक्ताः प्रत्येकशोऽपि वा ।
पाण्डुपुत्रान् रणे हन्तुं ससैन्यान् किमु संहताः ॥ १६ ॥
वीर्यवन्तः कृतास्त्राश्च द्रक्ष्यथाद्य परस्परम् ।

'आप सभी योद्धाओंमेंसे प्रत्येक वीर रणभूमिमें सेनासहित पाण्डवोंको मार डालनेकी शक्ति रखता है । फिर जब आपलोग संगठित होकर युद्ध करें तो क्या नहीं कर सकते हैं ? आप पराक्रमी और अस्त्रविद्याके विद्वान् हैं; अतः आज एक दूसरेको अपना-अपना पुरुषार्थ दिखावें' ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा ततः कर्णं चक्रे सेनापतिं तदा ।
तव पुत्रो महावीर्यो भ्रातृभिः सहितोऽनघ ॥ १७ ॥

संजय कहते हैं—निष्पाप नरेश ! ऐसा कहकर आपके महापराक्रमी पुत्र दुर्योधनने अपने भाइयोंके साथ मिलकर कर्णको सेनापति बनाया ॥ १७ ॥

सैनापत्यमथावाप्य कर्णो राजन् महारथः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः प्रायुध्यत रणोत्कटः ॥ १८ ॥

राजन् ! सेनापतिका पद पाकर महारथी कर्ण उच्चस्वरसे सिंहनाद करके रणोन्मत्त होकर युद्ध करने लगा ॥

स सृंजयानां सर्वेषां पञ्चालानां च मारिष ।
केकयानां विदेहानां चकार कदनं महत् ॥ १९ ॥

मान्यवर ! उसने समस्त सृंजयों, पाञ्चालों, केकयों और विदेहोंका महान् संहार किया ॥ १९ ॥

तस्येषुधाराः शतशः प्रादुरासञ्छरासनात् ।

अग्रे पुङ्खे च संसक्ता यथा भ्रमरपङ्क्तयः ॥ २० ॥

उसके धनुषसे सैकड़ों बाणधाराएँ, जो अग्रभाग और पुच्छभागमें परस्पर सटी हुई थीं, भ्रमरपंक्तियोंके समान प्रकट होने लगीं ॥ २० ॥

स पीडयित्वा पञ्चालान् पाण्डवांश्च तरस्विनः ।
हत्वा सहस्रशो योधानर्जुनेन निपातितः ॥ २१ ॥

वह पाञ्चालों और वेगशाली पाण्डवोंको पीड़ित करके सहस्रों योद्धाओंको मारकर अन्तमें अर्जुनके हाथसे मारा गया ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संजयवाक्यं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संजयवाक्यनामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका शोक और समस्त स्त्रियोंकी व्याकुलता

वैशम्पायन उवाच

एतच्छ्रुत्वा महाराज धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
शोकस्यान्तमपश्यन् वै हतं मेने सुयोधनम् ॥ १ ॥
विह्वलः पतितो भूमौ नष्टचेता इव द्विपः ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज ! यह सुनकर अम्बिकानन्दन धृतराष्ट्रने यह मान लिया कि अब दुर्योधन भी मारा ही गया । उन्हें अपने शोकका कहीं अन्त नहीं दिखायी देता था । वे अचेत हुए हाथीके समान व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १½ ॥

तस्मिन् निपतिते भूमौ विह्वले राजसत्तमे ॥ २ ॥
आर्तनादो महानासीत् स्त्रीणां भरतसत्तम ।

भरतश्रेष्ठ जनमेजय ! राजाओंमें सर्वश्रेष्ठ धृतराष्ट्रके व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर जानेसे महलमें स्त्रियोंका महान् आर्तनाद गूँज उठा ॥ २½ ॥

स शब्दः पृथिवीं कृत्स्नां पूरयामास सर्वशः ॥ ३ ॥
शोकार्णवे महाघोरे निमग्ना भरतस्त्रियः ।
रुरुदुर्दुःखशोकार्ता भृशमुद्विग्नचेतसः ॥ ४ ॥

रोदनका वह शब्द वहाँके समूचे भूमण्डलमें व्याप्त हो गया । भरतकुलकी स्त्रियाँ अत्यन्त घोर शोक-समुद्रमें डूब गयीं, उनका चित्त अत्यन्त उद्विग्न हो गया और वे दुःख-शोकसे कातर हो फूट-फूटकर रोने लगीं ॥ ३-४ ॥

राजानं च समासाद्य गान्धारी भरतर्षभ ।
निःसंज्ञा पतिता भूमौ सर्वाण्यन्तःपुराणि च ॥ ५ ॥

भरतभूषण ! गान्धारी देवी राजा धृतराष्ट्रके समीप आकर बेहोश हो भूमिपर गिर गयीं । अन्तःपुरकी सारी स्त्रियोंकी यही दशा हुई ॥ ५ ॥

ततस्ताः संजयो राजन् समाश्वासयदातुराः ।
मुह्यमानाः सुबहुशो मुञ्चन्त्यो वारि नेत्रजम् ॥ ६ ॥

राजन् ! तब संजयने नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहाती हुई राजमहलकी उन बहुसंख्यक महिलाओंको, जो आतुर एवं मूर्छित हो रही थीं, धीरे-धीरे धीरज बँधाया ॥ ६ ॥

समाश्वस्ताः स्त्रियस्तास्तु वेपमाना मुहुर्मुहुः ।
कदल्य इव वातेन धूयमानाः समन्ततः ॥ ७ ॥

आश्वासन पाकर भी वे स्त्रियाँ चारों ओरसे वायुद्वारा हिलाये जाते हुए केलेके वृक्षोंकी भाँति बारंबार काँप रही थीं ॥

राजानं विदुरश्चापि प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम् ।
आश्वासयामास तदा सिञ्चंस्तोयेन कौरवम् ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् विदुरने भी ऐश्वर्यशाली कुरुवंशी प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्रके ऊपर जल छिड़ककर उन्हें होशमें लानेकी चेष्टा की ॥ ८ ॥

स लब्ध्वा शनकैः संज्ञां ताश्च दृष्ट्वा स्त्रियो नृपः ।
उन्मत्त इव राजेन्द्र स्थितस्तूष्णीं विशाम्पते ॥ ९ ॥

राजेन्द्र ! प्रजानाथ ! धीरे-धीरे होशमें आनेपर धृतराष्ट्र अपने घरकी स्त्रियोंको वहाँ उपस्थित जान पागलके समान चुपचाप बैठे रह गये ॥ ९ ॥

ततो ध्यात्वा चिरं कालं निःश्वस्य च पुनः पुनः ।
स्वान् पुत्रान् गर्हयामास बहु मेने च पाण्डवान् ॥ १० ॥

तदनन्तर दीर्घकालतक चिन्ता करनेके पश्चात् वे बारंबार लंबी साँस खींचते हुए अपने पुत्रोंकी निन्दा और पाण्डवोंकी अधिक प्रशंसा करने लगे ॥ १० ॥

गर्हयंश्चात्मनो बुद्धिं शकुनेः सौबलस्य च ।
ध्यात्वा तु सुचिरं कालं वेपमानो मुहुर्मुहुः ॥ ११ ॥

उन्होंने अपनी और सुबलपुत्र शकुनिकी बुद्धिको भी कोसा । फिर बहुत देरतक चिन्तामग्न रहनेके पश्चात् वे बारंबार काँपने लगे ॥ ११ ॥

संस्तभ्य च मनो भूयो राजा धैर्यसमन्वितः ।
पुनर्गावल्गणिं सूतं पर्यपृच्छत संजयम् ॥ १२ ॥

फिर मनको किसी तरह स्थिर करके राजाने धैर्य धारण किया और गवल्गणके पुत्र सारथि संजयसे इस प्रकार पूछा—॥

यत् त्वया कथितं वाक्यं श्रुतं संजय तन्मया ।
कच्चिद् दुर्योधनः सूत न गतो वै यमक्षयम् ॥ १३ ॥
जये निराशः पुत्रो मे सततं जयकामुकः ।
ब्रूहि संजय तत्त्वेन पुनरुक्तां कथामिमाम् ॥ १४ ॥

'संजय ! तुमने जो बात कही है, वह तो मैंने सुन ली, किंतु एक बात बताओ। निरन्तर विजयकी इच्छा रखनेवाला मेरा पुत्र दुर्योधन अपनी विजयसे निराश हो कहीं यमराजके लोकमें तो नहीं चला गया ? संजय ! तुम इस कही हुई बातको भी फिर यथार्थरूपसे कह सुनाओ' ॥ १३-१४ ॥

एवमुक्तोऽब्रवीत् सूतो राजानं जनमेजय ।
हतो वैकर्तनो राजन् सह पुत्रैर्महारथः ॥ १५ ॥
भ्रातृभिश्च महेष्वासैः सूतपुत्रैस्तनुत्यजैः ।

जनमेजय ! उनके ऐसा कहनेपर सारथि संजय राजासे इस प्रकार बोला—'राजन् ! महारथी वैकर्तन कर्ण अपने पुत्रों तथा शरीरका मोह छोड़कर युद्ध करनेवाले महाधनुर्धर सूतजातीय भाइयोंके साथ मार डाला गया ॥ १५½ ॥

दुःशासनश्च निहतः पाण्डवेन यशस्विना ।
पीतं च रुधिरं कोपाद् भीमसेनेन संयुगे ॥ १६ ॥

'साथ ही यशस्वी पाण्डुपुत्र भीमसेनने रणभूमिमें दुःशासनको मार दिया और क्रोधपूर्वक उसका खून भी पी लिया' ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि धृतराष्ट्रशोको नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें धृतराष्ट्रका शोकनामक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

संजयका धृतराष्ट्रको कौरवपक्षके मारे गये प्रमुख वीरोंका परिचय देना

वैशम्पायन उवाच

इति श्रुत्वा महाराज धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
अब्रवीत् संजयं सूतं शोकसंविग्नमानसः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज ! उपर्युक्त समाचार सुनकर अम्बिकानन्दन धृतराष्ट्रका हृदय शोकसे व्याकुल हो गया । वे अपने सारथि संजयसे इस प्रकार बोले—॥ १ ॥

दुष्प्रणीतेन मे तात पुत्रस्यादीर्घजीविनः ।
हतं वैकर्तनं श्रुत्वा शोको मर्माणि कृन्तति ॥ २ ॥

'तात ! अपने अल्पायु पुत्रके अन्यायसे वैकर्तन कर्णके मारे जानेका समाचार सुनकर जो शोक उमड़ आया है, वह मेरे मर्मस्थानोंको छेदे डालता है ॥ २ ॥

तस्य मे संशयं छिन्धि दुःखपारं तितीर्षतः ।
कुरूणां सृञ्जयानां च के च जीवन्ति के मृताः ॥ ३ ॥

'मैं इस अपार दुःखसे पार पाना चाहता हूँ । तुम मेरे इस संदेहका निवारण करो कि कौरवों तथा सृंजयोंमेंसे कौन-कौन जीवित हैं और कौन-कौन मर गये हैं ?' ॥ ३ ॥

संजय उवाच

हतः शान्तनवो राजन् दुराधर्षः प्रतापवान् ।
हत्वा पाण्डवयोधानामर्बुदं दशभिर्दिनैः ॥ ४ ॥

संजयने कहा—राजन् ! दुर्जय एवं प्रतापी वीर शान्तनुनन्दन भीष्म दस दिनोंमें पाण्डवदलके दस करोड़ योद्धाओंका संहार करके मारे गये हैं ॥ ४ ॥

तथा द्रोणो महेष्वासः पञ्चालानां रथव्रजान् ।
निहत्य युधि दुर्धर्षः पश्चाद् रुक्मरथो हतः ॥ ५ ॥

इसी प्रकार सुवर्णमय रथवाले दुर्धर्ष वीर महाधनुर्धर द्रोणाचार्य भी पाञ्चालरथियोंके समुदायोंका संहार करके मारे गये हैं ॥ ५ ॥

हतशेषस्य भीष्मेण द्रोणेन च महात्मना ।
अर्धं निहत्य सैन्यस्य कर्णो वैकर्तनो हतः ॥ ६ ॥

भीष्म और महात्मा द्रोणके मारनेसे जो पाण्डवसेना बच गयी थी, उसके आधे भागका विनाश करके वैकर्तन कर्ण मारा गया है ॥ ६ ॥

विविंशतिर्महाराज राजपुत्रो महाबलः ।
आनर्तयोधाञ्शतशो निहत्य निहतो रणे ॥ ७ ॥

महाराज ! महाबली राजकुमार विविंशति रणभूमिमें सैकड़ों आनर्तदेशीय योद्धाओंको मारकर मरा है ॥ ७ ॥

तथा पुत्रो विकर्णस्ते क्षत्रव्रतमनुस्मरन् ।
क्षीणवाहायुधः शूरः स्थितोऽभिमुखतः परान्॥ ८ ॥
घोररूपान् परिक्लेशान् दुर्योधनकृतान् बहून् ।
प्रतिज्ञां स्मरता चैव भीमसेनेन पातितः ॥ ९ ॥

इसी प्रकार आपका शूरवीर पुत्र विकर्ण क्षत्रियोचित व्रतका स्मरण करके वाहनों और आयुधोंके नष्ट हो जानेपर भी शत्रुओंके सामने डटा हुआ था, परंतु दुर्योधनके दिये हुए बहुत-से भयंकर क्लेशों और अपनी प्रतिज्ञाको याद करके भीमसेनने उसे मार गिराया ॥ ८-९ ॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ राजपुत्रौ महारथौ ।
कृत्वा त्वसुकरं कर्म गतौ वैवस्वतक्षयम् ॥ १० ॥

अवन्तीदेशके महारथी राजकुमार विन्द और अनुविन्द भी दुष्कर कर्म करके यमलोकको चले गये ॥ १० ॥

सिंधुराष्ट्रमुखानीह दश राष्ट्राणि यानि ह ।
वशे तिष्ठन्ति वीरस्य यः स्थितस्तव शासने ॥ ११ ॥
अक्षौहिणीर्दशैकां च विनिर्जित्य शितैः शरैः ।
अर्जुनेन हतो राजन् महावीर्यो जयद्रथः ॥ १२ ॥

राजन् ! जिस वीरके शासनमें सिन्धु सौवीर आदि दस राष्ट्र थे, जो सदा आपकी आज्ञाके अधीन रहा करता था,

उस महापराक्रमी जयद्रथको अर्जुनने आपकी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओंको हराकर तीखे बाणोंसे मार डाला ॥११-१२॥

तथा दुर्योधनसुतस्तरस्वी युद्धदुर्मदः ।
वर्तमानः पितुः शास्त्रे सौभद्रेण निपातितः ॥ १३ ॥

दुर्योधनके रणदुर्मद वेगशाली पुत्र लक्ष्मणको, जो सदा पिताकी आज्ञाके अधीन रहता था, सुभद्राकुमारने मार गिराया ॥

तथा दौःशासनिः शूरो बाहुशाली रणोत्कटः ।
द्रौपदेयेन सङ्गम्य गमितो यमसादनम् ॥ १४ ॥

अपने बाहुबलसे सुशोभित होनेवाला रणोन्मत्त शूर दुःशासनकुमार द्रौपदीके पुत्रसे टक्कर लेकर यमलोकमें जा पहुँचा ॥ १४ ॥

किरातानामधिपतिः सागरानूपवासिनाम् ।
देवराजस्य धर्मात्मा प्रियो बहुमतः सखा ॥ १५ ॥
भगदत्तो महीपालः क्षत्रधर्मरतः सदा ।
धनंजयेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ १६ ॥

जो सागर-तटवर्ती किरातोंके स्वामी तथा देवराज इन्द्रके अत्यन्त आदरणीय प्रिय सखा थे, सदा क्षत्रिय-धर्ममें तत्पर रहनेवाले वे धर्मात्मा राजा भगदत्त भी अर्जुनके साथ पराक्रम दिखाकर यमराजके लोकमें चले गये ॥ १५-१६ ॥

तथा कौरवदायादो न्यस्तशस्त्रो महायशाः ।
हतो भूरिश्रवा राजञ्शूरः सात्यकिना युधि ॥ १७ ॥

राजन् ! कौरववंशी महायशस्वी शूरवीर भूरिश्रवा, जो अपने अस्त्र-शस्त्रोंका परित्याग कर चुके थे, युद्धस्थलमें सात्यकिके हाथसे मारे गये ॥ १७ ॥

श्रुतायुरपि चाम्बष्ठः क्षत्रियाणां धुरंधरः ।
चरन्नभीतवत् संख्ये निहतः सव्यसाचिना॥ १८ ॥

अम्बष्ठदेशके राजा क्षत्रिय-धुरंधर श्रुतायु भी, जो समराङ्गणमें निर्भय-से विचरते थे, सव्यसाची अर्जुनके हाथसे मारे गये ॥ १८ ॥

तव पुत्रः सदामर्षी कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ।
दुःशासनो महाराज भीमसेनेन पातितः ॥ १९ ॥

महाराज ! जो अस्त्र-विद्याका विद्वान् तथा युद्धमें उन्मत्त होकर लड़नेवाला था, सदा अमर्षमें भरे रहनेवाले आपके उस पुत्र दुःशासनको भीमसेनने मार गिराया ॥ १९ ॥

यस्य राजन् गजानीकं बहुसाहस्रमद्भुतम् ।
सुदक्षिणः स संग्रामे निहतः सव्यसाचिना ॥ २० ॥

राजन् ! जिसके अधिकारमें कई हजार हाथियोंकी अद्भुत सेना थी, वह सुदक्षिण भी संग्राममें सव्यसाची अर्जुनके बाणोंका निशाना बन गया ॥ २० ॥

कोसलानामधिपतिर्हत्वा बहुमतान् परान् ।
सौभद्रेण हि विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ २१ ॥

कोशलनरेश शत्रुपक्षके अत्यन्त सम्मानित वीरोंका वध करके सुभद्राकुमार अभिमन्युके साथ पराक्रम दिखाते हुए यमलोकके पथिक बन गये ॥ २१ ॥

बहुशो योधयित्वा तु भीमसेनं महारथम् ।
मद्रराजात्मजः शूरः परेषां भयवर्धनः ।
असिचर्मधरः श्रीमान् सौभद्रेण निपातितः ॥ २२ ॥

जो महारथी भीमसेनके साथ भी कई बार युद्ध कर चुका था, ढाल और तलवार लेकर शत्रुओंका भय बढ़ानेवाला वह मद्रराजका शूरवीर तेजस्वी पुत्र सुभद्राकुमार अभिमन्युके द्वारा मार डाला गया ॥ २२ ॥

समः कर्णस्य समरे यः स कर्णस्य पश्यतः ।
वृषसेनो महातेजाः शीघ्रास्त्रो दृढविक्रमः ॥ २३ ॥
अभिमन्योर्वधं श्रुत्वा प्रतिज्ञामपि चात्मनः ।
धनंजयेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ २४ ॥

जो समरभूमिमें कर्णके समान ही पराक्रमी था, शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलानेवाला, सुदृढ़ बल-विक्रमसे सम्पन्न और महान् तेजस्वी था, वह कर्णपुत्र वृषसेन अभिमन्युका वध सुनकर की हुई अपनी प्रतिज्ञाको याद रखनेवाले अर्जुनके साथ भिड़कर कर्णके देखते-देखते उनके द्वारा यमलोक पहुँचा दिया गया ॥ २३-२४ ॥

नित्यं प्रसक्तवैरो यः पाण्डवैः पृथिवीपतिः ।
विश्राव्य वैरं पार्थेन श्रुतायुः स निपातितः ॥ २५ ॥

जो पाण्डवोंके साथ सदा वैर बाँधे रखता था, उस राजा श्रुतायुको कुन्तीकुमार अर्जुनने उसकी शत्रुताका स्मरण कराकर मार डाला ॥ २५ ॥

शल्यपुत्रस्तु विक्रान्तः सहदेवेन मारिष ।
हतो रुक्मरथो राजन् भ्राता मातुलजो युधि ॥ २६ ॥

माननीय नरेश ! शल्यका पराक्रमी पुत्र रुक्मरथ, जो सहदेवका ममेरा भाई था, युद्धमें सहदेवके ही हाथसे मारा गया ॥ २६ ॥

राजा भगीरथो वृद्धो बृहत्क्षत्रश्च केकयः ।
पराक्रमन्तौ विक्रान्तौ निहतौ वीर्यवत्तरौ ॥ २७ ॥

बूढ़े राजा भगीरथ और केकयनरेश बृहत्क्षत्र ये दोनों अत्यन्त बलवान् और पराक्रमी वीर थे, जो युद्धमें पराक्रम दिखाते हुए मारे गये ॥ २७ ॥

भगदत्तसुतो राजन् कृतप्रज्ञो महाबलः ।
श्येनवच्चरता संख्ये नकुलेन निपातितः ॥ २८ ॥

राजन् ! भगदत्तके विद्वान् और महाबली पुत्रको युद्धमें बाजकी तरह झपटनेवाले नकुलने मार गिराया ॥ २८ ॥

पितामहस्तव तथा बाह्लीकः सह बाह्लिकैः ।
निहतो भीमसेनेन महाबलपराक्रमः ॥ २९ ॥

आपके पितामह बाह्लीक भी महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न थे। वे भीमसेनके हाथसे बाह्लीक योद्धाओंसहित मारे गये ॥

जयत्सेनस्तथा राजञ्जारासंधिर्महाबलः ।
मागधो निहतः संख्ये सौभद्रेण महात्मना ॥ ३० ॥

राजन्! जरासंधके महाबलवान् पुत्र मगधवासी जयत्सेनको महामना सुभद्राकुमारने युद्धमें मार डाला ॥ ३० ॥

पुत्रस्ते दुर्मुखो राजन् दुःसहश्च महारथः ।
गदया भीमसेनेन निहतौ शूरमानिनौ ॥ ३१ ॥

नरेश्वर! आपके पुत्र दुर्मुख और महारथी दुःसह ये दोनों अपनेको शूरवीर माननेवाले योद्धा थे, जो भीमसेनकी गदासे मारे गये ॥ ३१ ॥

दुर्मर्षणो दुर्विषहो दुर्जयश्च महारथः ।
कृत्वा त्वसुकरं कर्म गता वैवस्वतक्षयम् ॥ ३२ ॥

इसी प्रकार दुर्मर्षण, दुर्विषह और महारथी दुर्जय दुष्कर कर्म करके यमराजके लोकमें जा पहुँचे हैं ॥ ३२ ॥

उभौ कलिङ्गवृषकौ भ्रातरौ युद्धदुर्मदौ ।
कृत्वा चासुकरं कर्म गतौ वैवस्वतक्षयम् ॥ ३३ ॥

युद्धदुर्मद कलिङ्ग और वृषक ये दोनों भाई भी दुष्कर पराक्रम प्रकट करके यमलोकके अतिथि हो चुके हैं ॥ ३३ ॥

सचिवो वृषवर्मा ते शूरः परमवीर्यवान् ।
भीमसेनेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ ३४ ॥

आपके मन्त्री परम पराक्रमी शूरवीर वृषवर्मा भीमसेनके द्वारा बलपूर्वक यमलोक पहुँचा दिये गये ॥ ३४ ॥

तथैव पौरवो राजा नागायुतबलो महान् ।
समरे पाण्डुपुत्रेण निहतः सव्यसाचिना ॥ ३५ ॥

इसी प्रकार दस हजार हाथियोंके समान बलशाली महान् राजा पौरवको समराङ्गणमें पाण्डुकुमार सव्यसाची अर्जुनने मार डाला ॥ ३५ ॥

वसातयो महाराज द्विसाहस्राः प्रहारिणः ।
शूरसेनाश्च विक्रान्ताः सर्वे युधि निपातिताः ॥ ३६ ॥

महाराज! प्रहारकुशल दो हजार वसातिलोग और पराक्रमी शूरसेन—ये सबके सब युद्धमें मार डाले गये हैं ॥ ३६ ॥

अभीषाहाः कवचिनः प्रहरन्तो रणोत्कटाः ।
शिबयश्च रथोदाराः कालिङ्गसहिता हताः ॥ ३७ ॥

रणमें उन्मत्त होकर प्रहार करनेवाले कवचधारी अभीषाह और उदार रथी शिबि—ये सब कलिङ्गराजसहित मारे गये हैं ॥ ३७ ॥

गोकुले नित्यसंवृद्धा युद्धे परमकोपनाः ।
तेऽपावृत्तकवीराश्च निहताः सव्यसाचिना ॥ ३८ ॥

जो सदा गोकुलमें पले हैं, युद्धमें अत्यन्त कुपित होकर लड़ते हैं और जिन्होंने कभी युद्धमें पीठ दिखाना नहीं सीखा है, वे गोपाल भी अर्जुनके हाथसे मारे जा चुके हैं ॥

श्रेणयो बहुसाहस्राः संशप्तकगणाश्च ये ।
ते सर्वे पार्थमासाद्य गता वैवस्वतक्षयम् ॥ ३९ ॥

संशप्तकगणोंकी कई हजार श्रेणियाँ थीं। वे सभी अर्जुनका सामना करके यमराजके लोकमें चले गये ॥ ३९ ॥

स्यालौ तव महाराज राजानौ वृषकाचलौ ।
त्वदर्थमतिविक्रान्तौ निहतौ सव्यसाचिना ॥ ४० ॥

महाराज! आपके दोनों साले राजा वृषक और अचल, जो आपके लिये अत्यन्त पराक्रम प्रकट करते थे, अर्जुनके द्वारा मार डाले गये ॥ ४० ॥

उग्रकर्मा महेष्वासो नामतः कर्मतस्तथा ।
शाल्वराजो महाबाहुर्भीमसेनेन पातितः ॥ ४१ ॥

जो महान् धनुर्धर तथा नाम और कर्मसे भी उग्रकर्मा थे, उन महाबाहु शाल्वराजको भीमसेनने मार गिराया ॥ ४१ ॥

ओघवांश्च महाराज बृहन्तः सहितौ रणे ।
पराक्रमन्तौ मित्रार्थे गतौ वैवस्वतक्षयम् ॥ ४२ ॥

महाराज! मित्रके लिये रणभूमिमें पराक्रम प्रकट करनेवाले ओघवान् और बृहन्त—ये दोनों एक साथ यमलोकको प्रस्थान कर चुके हैं ॥ ४२ ॥

तथैव रथिनां श्रेष्ठः क्षेमधूर्तिर्विशाम्पते ।
निहतो गदया राजन् भीमसेनेन संयुगे ॥ ४३ ॥

प्रजानाथ! नरेश्वर! इसी प्रकार रथियोंमें श्रेष्ठ क्षेमधूर्तिको भी युद्धस्थलमें भीमसेनने अपनी गदासे मार डाला ॥ ४३ ॥

तथा राजन् महेष्वासो जलसंधो महाबलः ।
सुमहत् कदनं कृत्वा हतः सात्यकिना रणे ॥ ४४ ॥

राजन्! महाधनुर्धर महाबली जलसंध रणभूमिमें शत्रुसेनाका महान् संहार करके अन्तमें सात्यकिके हाथसे मारे गये ॥ ४४ ॥

अलम्बुषो राक्षसेन्द्रः खरबन्धुरयानवान् ।
घटोत्कचेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ ४५ ॥

घटोत्कचने पराक्रम करके गर्दभयुक्त सुन्दर रथवाले राक्षसराज अलम्बुषको यमलोक पहुँचा दिया है ॥ ४५ ॥

राधेयः सूतपुत्रश्च भ्रातरश्च महारथाः ।
केकयाः सर्वशश्चापि निहताः सव्यसाचिना ॥ ४६ ॥

सूतपुत्र राधानन्दन कर्ण, उसके महारथी भाई तथा समस्त केकय भी सव्यसाची अर्जुनके हाथसे मारे गये ॥ ४६ ॥

मालवा मद्रकाश्चैव द्राविडाश्चोग्रकर्मिणः ।
यौधेयाश्च ललित्थाश्च क्षुद्रकाश्चाप्युशीनराः ॥ ४७ ॥
मावेल्लकास्तुण्डिकेराः सावित्रीपुत्रकाश्च ये ।
प्राच्योदीच्याः प्रतीच्याश्च दाक्षिणात्याश्च मारिष ॥ ४८ ॥
पत्तीनां निहताः संघा हयानां प्रयुतानि च ।
रथव्रजाश्च निहता हताश्च वरवारणाः ॥ ४९ ॥

मालव, मद्रक, भयंकर कर्म करनेवाले द्राविड, यौधेय, ललित्थ, क्षुद्रक, उशीनर, मावेल्लक, तुण्डिकेर, सावित्रीपुत्र, प्राच्य, प्रतीच्य, उदीच्य और दाक्षिणात्य, पैदल-समूह, दस लाख घोड़े, रथोंके समूह और बड़े-बड़े गजराज अर्जुनके हाथसे मारे गये हैं ॥ ४७–४९ ॥

सध्वजाः सायुधाः शूराः सवर्माम्बरभूषणाः।
कालेन महता यत्ताः कुशलैर्ये च वर्धिताः ॥ ५० ॥
ते हताः समरे राजन् पार्थेनाक्लिष्टकर्मणा।

राजन् ! पालननिपुण पुरुषोंने जिनका दीर्घकालसे पालन-पोषण किया था, जो युद्धमें सदा सावधान रहनेवाले शूरवीर थे, वे सभी अनायास ही महान् कर्म करनेवाले अर्जुनके हाथसे ध्वज, आयुध, कवच, वस्त्र और आभूषणोंसहित समराङ्गणमें मारे गये ॥ ५०½ ॥

अन्ये तथामितबलाः परस्परवधैषिणः ॥ ५१ ॥
एते चान्ये च बहवो राजानः सगणा रणे।
हताः सहस्रशो राजन् यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ५२ ॥

महाराज ! एक दूसरेके वधकी इच्छा रखनेवाले असीम बलशाली अन्यान्य योद्धा भी मौतके घाट उतर चुके हैं। राजन् ! ये तथा और भी बहुत-से नरेश रणभूमिमें अपने दलबलके साथ सहस्रोंकी संख्यामें मारे गये हैं। आप मुझसे जो कुछ पूछ रहे थे, वह सब मैंने बता दिया ॥ ५१-५२ ॥

एवमेष क्षयो वृत्तः कर्णार्जुनसमागमे।
महेन्द्रेण यथा वृत्रो यथा रामेण रावणः ॥ ५३ ॥
यथा कृष्णेन नरको मुरुश्च नरकारिणा।
कार्तवीर्यश्च रामेण भार्गवेण यथा हतः ॥ ५४ ॥
सज्ञातिबान्धवः शूरः समरे युद्धदुर्मदः।
रणे कृत्वा महद् युद्धं घोरं त्रैलोक्यमोहनम् ॥ ५५ ॥
यथा स्कन्देन महिषो यथा रुद्रेण चान्धकः।
तथार्जुनेन स हतो द्वैरथे युद्धदुर्मदः ॥ ५६ ॥
सामात्यबान्धवो राजन् कर्णः प्रहरता वरः।

राजन् ! इस प्रकार कर्ण और अर्जुनके संग्राममें यह भारी संहार हुआ है। जैसे देवराज इन्द्रने वृत्रासुरको, श्रीरामचन्द्र-जीने रावणको, नरकशत्रु श्रीकृष्णने नरक और मुरुको तथा भृगुवंशी परशुरामने तीनों लोकोंको मोहित करनेवाला अत्यन्त घोर युद्ध करके समराङ्गणमें रणदुर्मद शूरवीर कृतवीर्यकुमार अर्जुनको उसके भाई-बन्धुओंसहित मार डाला था, जैसे स्कन्दने महिषासुरका और रुद्रने अन्धकासुरका संहार किया था, उसी प्रकार अर्जुनने योद्धाओंमें श्रेष्ठ युद्धदुर्मद कर्णको द्वैरथयुद्धमें उसके मन्त्री और बन्धुओंसहित मार डाला ॥ ५३–५६½ ॥

जयाशा धार्तराष्ट्राणां वैरस्य च मुखं यतः ॥ ५७ ॥
तीर्णस्तत् पाण्डवो राजन् यत् पुरा नावबुध्यसे।
उच्यमानो महाराज बन्धुभिर्हितकाङ्क्षिभिः ॥ ५८ ॥
तदिदं समनुप्राप्तं व्यसनं सुमहात्ययम्।

जिससे आपके पुत्रोंने विजयकी आशा लगा रक्खी थी, जो वैरका मुख बना हुआ था, उससे पाण्डुपुत्र अर्जुन पार हो गये। महाराज ! पहले आपने हितैषी बन्धुओंके कहनेपर भी जिसकी ओर ध्यान नहीं दिया, वही यह महान् विनाशकारी संकट प्राप्त हुआ है ॥ ५७-५८½ ॥

पुत्राणां राज्यकामानां त्वया राजन् हितैषिणा ॥ ५९ ॥
अहितान्येव चीर्णानि तेषां तत् फलमागतम् ॥ ६० ॥

राजन् ! आपने राज्यकी कामना रखनेवाले अपने पुत्रोंके हितकी इच्छा रखते हुए सदा उन पाण्डवोंके अहित ही किये हैं; आपके उन्हीं कर्मोंका यह फल प्राप्त हुआ है ॥५९-६०॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संजयवाक्ये पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संजय-वाक्यविषयक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

कौरवोंद्वारा मारे गये प्रधान-प्रधान पाण्डव-पक्षके वीरोंका परिचय

धृतराष्ट्र उवाच

आख्याता मामकास्तात निहता युधि पाण्डवैः।
हतांश्च पाण्डवेयानां मामकैर्ब्रूहि संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—तात संजय ! तुमने युद्धमें पाण्डवों-द्वारा मारे गये मेरे पक्षके वीरोंके नाम बताये हैं। अब मेरे योद्धाओंद्वारा मारे गये पाण्डव-योद्धाओंका परिचय दो ॥ १ ॥

संजय उवाच

कुन्तयो युधि विक्रान्ता महासत्त्वा महाबलाः।
सानुबन्धाः सहामात्या गाङ्गेयेन निपातिताः ॥ २ ॥

संजयने कहा—राजन् ! अत्यन्त धीर, महान् बलवान् और पराक्रमी जो कुन्तिभोजदेशके योद्धा थे, उन्हें गङ्गा-नन्दन भीष्मने मन्त्रियों तथा सगे-सम्बन्धियोंसहित मार गिराया ॥ २ ॥

नारायणा बलभद्राः शूराश्च शतशोऽपरे।
अनुरक्ताश्च वीरेण भीष्मेण युधि पातिताः ॥ ३ ॥

पाण्डवोंमें अनुराग रखनेवाले जो नारायण और बलभद्र नामवाले सैकड़ों शूरवीर थे, उन्हें भी वीरवर भीष्मने युद्धमें धराशायी कर दिया ॥ ३ ॥

समः किरीटिना संख्ये वीर्येण च बलेन च ।
सत्यजित् सत्यसंधेन द्रोणेन निहतो युधि ॥ ४ ॥

सत्यजित् संग्राममें किरीटधारी अर्जुनके समान बल और पराक्रमसे सम्पन्न था, जिसे युद्धस्थलमें सत्यप्रतिज्ञ द्रोणाचार्यने मार डाला ॥ ४ ॥

पञ्चालानां महेष्वासाः सर्वे युद्धविशारदाः ।
द्रोणेन सह संगम्य गता वैवस्वतक्षयम् ॥ ५ ॥

युद्धकी कलामें कुशल सम्पूर्ण पाञ्चाल महाधनुर्धर द्रोणाचार्यसे टक्कर लेकर यमलोकमें जा पहुँचे हैं ॥ ५ ॥

तथा विराटद्रुपदौ वृद्धौ सहसुतौ नृपौ ।
पराक्रमन्तौ मित्रार्थे द्रोणेन निहतौ रणे ॥ ६ ॥

मित्रके लिये पराक्रम करनेवाले बूढ़े राजा विराट और द्रुपद अपने पुत्रोंसहित द्रोणाचार्यके द्वारा रणभूमिमें मारे गये हैं ॥ ६ ॥

यो बाल एव समरे सम्मितः सव्यसाचिना ।
केशवेन च दुर्धर्षो बलदेवेन वा विभो ॥ ७ ॥
परेषां कदनं कृत्वा महारथविशारदः ।
परिवार्य महामात्रैः षड्भिः परमकै रथैः ॥ ८ ॥
अशक्नुवद्भिर्बीभत्सुमभिमन्युर्निपातितः ।

जो बाल्यावस्थामें ही दुर्धर्ष वीर था और सव्यसाची अर्जुन, भगवान् श्रीकृष्ण अथवा बलदेवजीके समान समझा जाता था तथा जो महान् रथयुद्धमें विशेष कुशल था, वह अभिमन्यु शत्रुओंका संहार करके छः बड़े-बड़े महारथियोंद्वारा, जिनका अर्जुनपर वश नहीं चलता था, चारों ओरसे घेरकर मार डाला गया ॥ ७-८½ ॥

कृतं तं विरथं वीरं क्षत्रधर्मे व्यवस्थितम् ॥ ९ ॥
दौःशासनिर्महाराज सौभद्रं हतवान् रणे ।

महाराज ! क्षत्रिय-धर्ममें तत्पर रहनेवाला वीर सुभद्राकुमार अभिमन्यु रथहीन कर दिया गया था, उस अवस्थामें दुःशासनके पुत्रने उसे रणभूमिमें मारा था ॥ ९½ ॥

सपत्नानां निहन्ता च महत्या सेनया वृतः ॥ १० ॥
अम्बष्ठस्य सुतः श्रीमान् मित्रहेतोः पराक्रमन् ।
आसाद्य लक्ष्मणं वीरं दुर्योधनसुतं रणे ॥ ११ ॥
सुमहत् कदनं कृत्वा गतो वैवस्वतक्षयम् ।

शत्रुहन्ता श्रीमान् अम्बष्ठपुत्र अपनी विशाल सेनासे घिरकर मित्रोंके लिये पराक्रम दिखा रहा था । वह शत्रुसेनाका महान् संहार करके रणभूमिमें दुर्योधनके वीर पुत्र लक्ष्मणसे टक्कर ले यमलोकमें जा पहुँचा ॥ १०-११½ ॥

बृहन्तः सुमहेष्वासः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ॥ १२ ॥
दुःशासनेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ।

अस्त्र-विद्याके विशेषज्ञ रणदुर्मद महाधनुर्धर बृहन्तको दुःशासनने बलपूर्वक यमलोक पहुँचाया था ॥ १२½ ॥

मणिमान् दण्डधारश्च राजानौ युद्धदुर्मदौ ॥ १३ ॥
पराक्रमन्तौ मित्रार्थे द्रोणेन युधि पातितौ ।

युद्धमें उन्मत्त होकर जूझनेवाले राजा मणिमान् और दण्डधार मित्रोंके लिये पराक्रम दिखाते थे । उन दोनोंको द्रोणाचार्यने युद्धमें मार गिराया है ॥ १३½ ॥

अंशुमान् भोजराजस्तु सहसैन्यो महारथः ॥ १४ ॥
भारद्वाजेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ।

सेनासहित भोजराज महारथी अंशुमान्को भरद्वाजनन्दन द्रोणने पराक्रम करके यमलोक पहुँचाया है ॥ १४½ ॥

सामुद्रश्चित्रसेनश्च सह पुत्रेण भारत ॥ १५ ॥
समुद्रसेनेन बलाद् गमितो यमसादनम् ।

भारत ! समुद्रतटवर्ती राज्यके अधिपति चित्रसेन अपने पुत्रके साथ युद्धमें आकर समुद्रसेनके द्वारा बलपूर्वक यमलोक भेज दिया गया ॥ १५½ ॥

अनूपवासी नीलश्च व्याघ्रदत्तश्च वीर्यवान् ॥ १६ ॥
अश्वत्थाम्ना विकर्णेन गमितो यमसादनम् ।

समुद्र-तटवासी नील और पराक्रमी व्याघ्रदत्त इन दोनोंको क्रमशः अश्वत्थामा और विकर्णने यमलोक पहुँचा दिया ॥

चित्रायुधश्चित्रयोधी कृत्वा च कदनं महत् ॥ १७ ॥
चित्रमार्गेण विक्रम्य विकर्णेन हतो मृधे ।

विचित्र युद्ध करनेवाले चित्रायुध समरमें विचित्र रीतिसे पराक्रम करते हुए कौरव-सेनाका महान् संहार करके अन्तमें विकर्णके हाथसे मारे गये ॥ १७½ ॥

वृकोदरसमो युद्धे वृतः कैकेययोधिभिः ॥ १८ ॥
कैकेयेन च विक्रम्य भ्रात्रा भ्राता निपातितः ।

केकयदेशीय योद्धाओंसे घिरे हुए भीमके समान पराक्रमी केकयराजकुमारको उन्हींके भाई दूसरे केकयराजकुमारने बलपूर्वक मार गिराया ॥ १८½ ॥

जनमेजयो गदायोधी पर्वतीयः प्रतापवान् ॥ १९ ॥
दुर्मुखेन महाराज तव पुत्रेण पातितः ।

महाराज ! प्रतापी पर्वतीय राजा जनमेजय गदायुद्धमें कुशल थे । उन्हें आपके पुत्र दुर्मुखने धराशायी कर दिया ॥

रोचमानौ नरव्याघ्रौ रोचमानौ ग्रहाविव ॥ २० ॥
द्रोणेन युगपद् राजन् दिवं सम्प्रापितौ शरैः ।

राजन् ! दो चमकते हुए ग्रहोंके समान नरश्रेष्ठ रोचमान, जो एक ही नामके दो भाई थे, द्रोणाचार्यके द्वारा बाणोंसे एक साथ ही स्वर्गलोक पहुँचा दिये गये ॥ २०½ ॥

नृपाश्च प्रतियुध्यन्तः पराक्रान्ता विशाम्पते ॥ २१ ॥
कृत्वा नसुकरं कर्म गता वैवस्वतक्षयम् ।

प्रजानाथ ! और भी बहुत-से पराक्रमी नरेश आपकी

सेनाका सामना करते हुए दुष्कर पराक्रम करके यमलोकमें जा पहुँचे हैं ॥ २१½ ॥

पुरुजित् कुन्तिभोजश्च मातुलौ सव्यसाचिनः॥ २२ ॥
संग्रामनिर्जिताँल्लोकान् गमितौ द्रोणसायकैः ।

पुरुजित् और कुन्तिभोज दोनों सव्यसाची अर्जुनके मामा थे। द्रोणाचार्यके सायकोंने उन्हें भी उन लोकोंमें पहुँचा दिया, जो संग्राममें मारे जानेवाले वीरोंको प्राप्त होते हैं ॥ २२½ ॥

अभिभूः काशिराजश्च काशिकैर्बहुभिर्वृतः ॥ २३ ॥
वसुदानस्य पुत्रेण न्यासितो देहमाहवे ।

काशिराज अभिभू बहुतेरे काशीनिवासी योद्धाओंसे घिरे हुए थे। वसुदानके पुत्रने युद्धस्थलमें उनसे उनके शरीरका परित्याग करवा दिया ॥ २३½ ॥

अमितौजा युधामन्युरुत्तमौजाश्च वीर्यवान् ॥ २४ ॥
निहत्य शतशः शूरानस्मदीयैर्निपातिताः ।

अमितौजा, युधामन्यु तथा पराक्रमी उत्तमौजा ये सैकड़ों शूरवीरोंका संहार करके हमारे सैनिकोंद्वारा मारे गये ॥२४½॥

मित्रवर्मा च पाञ्चाल्यः क्षत्रधर्मा च भारत ॥ २५ ॥
द्रोणेन परमेष्वासौ गमितौ यमसादनम् ।

भारत ! पाञ्चालयोद्धा मित्रवर्मा और क्षत्रधर्मा महाधनुर्धर थे। उन्हें भी द्रोणाचार्यने यमलोक पहुँचा दिया ॥ २५½ ॥

शिखण्डितनयो युद्धे क्षत्रदेवो युधां पतिः ॥ २६ ॥
लक्ष्मणेन हतो राजंस्तव पौत्रेण भारत ।

भरतवंशी नरेश ! आपके पौत्र लक्ष्मणने युद्धमें योद्धाओंके स्वामी क्षत्रदेवको, जो शिखण्डीका पुत्र था, मार डाला ॥

सुचित्रश्चित्रवर्मा च पितापुत्रौ महारथौ ॥ २७ ॥
प्रचरन्तौ महावीरौ द्रोणेन निहतौ रणे।

सुचित्र और चित्रवर्मा ये दो महावीर महारथी परस्पर पिता-पुत्र थे। रणभूमिमें विचरते हुए इन दोनोंको द्रोणाचार्यने मार डाला।

वार्द्धक्षेमिर्महाराज समुद्र इव पर्वणि ॥ २८ ॥
आयुधक्षयमासाद्य प्रशान्तिं परमां गतः ।

महाराज ! जैसे पूर्णिमाके दिन समुद्र उमड़ पड़ता है, उसी प्रकार वृद्धक्षेमका पुत्र भी युद्धमें उद्धत हो उठा था, परंतु उसके सारे अस्त्र-शस्त्र नष्ट हो गये थे, इसलिये वह प्राणशून्य हो सदाके लिये परम शान्त हो गया ॥ २८½ ॥

सेनाबिन्दुसुतः श्रेष्ठः शात्रवान् प्रहरन् युधि ॥ २९ ॥
बाह्लिकेन महाराज कौरवेन्द्रेण पातितः ।

राजाधिराज ! सेनाबिन्दुका श्रेष्ठ पुत्र रणभूमिमें शत्रुओंपर प्रहार कर रहा था। उस समय कौरवेन्द्र बाह्लीकने उसे मार गिराया॥

धृष्टकेतुर्महाराज चेदीनां प्रवरो रथः ॥ ३० ॥
कृत्वा नसुकरं कर्म गतो वैवस्वतक्षयम् ।

महाराज ! चेदिदेशका श्रेष्ठ रथी धृष्टकेतु भी युद्धमें दुष्कर कर्म करके यमलोकका पथिक हो गया ॥ ३०½ ॥

तथा सत्यधृतिर्वीरः कृत्वा कदनमाहवे॥ ३१ ॥
पाण्डवार्थे पराक्रान्तो गमितो यमसादनम्।

पाण्डवोंके लिये पराक्रम प्रकट करनेवाले वीर सत्यधृतिने भी रणभूमिमें शत्रुओंका संहार करके यमलोककी राह ली॥

सेनाबिन्दुः कुरुश्रेष्ठ कृत्वा कदनमाहवे ॥ ३२ ॥
पुत्रस्तु शिशुपालस्य सुकेतुः पृथिवीपतिः ।
निहत्य शात्रवान् संख्ये द्रोणेन निहतो युधि ॥ ३३ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! सेनाबिन्दु भी युद्धमें शत्रुओंका संहार करके कालके गालमें चला गया। शिशुपालका पुत्र राजा सुकेतु भी युद्धमें शत्रुसैनिकोंका वध करके स्वयं भी द्रोणाचार्यके हाथसे मारा गया ॥ ३२-३३ ॥

तथा सत्यधृतिर्वीरो मदिराश्वश्च वीर्यवान् ।
सूर्यदत्तश्च विक्रान्तो निहतो द्रोणसायकैः ॥ ३४ ॥

इसी प्रकार वीर सत्यधृति, पराक्रमी मदिराश्व और बलविक्रमशाली सूर्यदत्त भी द्रोणाचार्यके बाणोंसे मारे गये हैं ॥

श्रेणिमांश्च महाराज युध्यमानः पराक्रमी ।
कृत्वा नसुकरं कर्म गतो वैवस्वतक्षयम् ॥ ३५ ॥

महाराज ! पराक्रमपूर्वक युद्ध करनेवाले श्रेणिमान्ने युद्धमें दुष्कर कर्म करके यमलोकके मार्गका आश्रय लिया है ॥

तथैव युधि विक्रान्तो मागधः परमास्त्रवित् ।
भीष्मेण निहतो राजञ्शेतेऽद्य परवीरहा ॥ ३६ ॥

राजन् ! इसी प्रकार शत्रुवीरोंका संहार करनेवाला और उत्तम अस्त्रोंका ज्ञाता पराक्रमी मागध वीर भी भीष्मजीके हाथसे मारा जाकर आज रणभूमिमें सो रहा है ॥ ३७ ॥

विराटपुत्रः शङ्खस्तु उत्तरश्च महारथः ।
कुर्वन्तौ सुमहत् कर्म गतौ वैवस्वतक्षयम् ॥ ३७ ॥

राजा विराटके पुत्र शङ्ख और महारथी उत्तर ये दोनों युद्धमें महान् कर्म करके यमलोकमें जा पहुँचे हैं ॥ ३७ ॥

वसुदानश्च कदनं कुर्वाणोऽतीव संयुगे ।
भारद्वाजेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥ ३८ ॥

वसुदान भी युद्धस्थलमें बड़ा भारी संहार मचा रहा था। परंतु भरद्वाजनन्दन द्रोणने पराक्रम करके उसे यमलोक पहुँचा दिया ॥ ३८ ॥

(पाण्ड्यराजश्च विक्रान्तो बलवान् बाहुशालिना।
अश्वत्थाम्ना हतस्तत्र गमितो वै यमक्षयम् ॥)

अपने बाहुबलसे सुशोभित होनेवाले अश्वत्थामाने बलवान् एवं पराक्रमी पाण्ड्यराजको मारकर यमलोक पहुँचा दिया ॥

एते चान्ये च बहवः पाण्डवानां महारथाः ।

हता द्रोणेन विक्रम्य यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ ३९ ॥

ये तथा और भी बहुतसे पाण्डव महारथी, जिनके बारेमें आप मुझसे पूछ रहे थे, द्रोणाचार्यके द्वारा बलपूर्वक मार डाले गये ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संजयवाक्ये षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संजय-वाक्यविषयक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ४० श्लोक हैं)

सप्तमोऽध्यायः

कौरवपक्षके जीवित योद्धाओंका वर्णन और धृतराष्ट्रकी मूर्छा

धृतराष्ट्र उवाच

मामकस्यास्य सैन्यस्य हतोत्सेकस्य संजय।
अवशेषं न पश्यामि ककुदे मृदिते सति ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय ! प्रधान पुरुष भीष्म, द्रोण और कर्ण आदिके मारे जानेसे मेरी सेनाका घमंड चूर-चूर हो गया है । मैं देखता हूँ, अब यह बच नहीं सकेगी ॥ १ ॥

तौ हि वीरौ महेष्वासौ मदर्थे कुरुसत्तमौ।
भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा नार्थो वै जीवितेऽसति॥ २ ॥

वे दोनों कुरुश्रेष्ठ महाधनुर्धर वीर भीष्म और द्रोणाचार्य मेरे लिये मारे गये; यह सुन लेनेपर इस अधम जीवनको रखनेका अब कोई प्रयोजन नहीं है ॥ २ ॥

न च मृष्यामि राधेयं हतमाहवशोभनम्।
यस्य बाह्वोर्बलं तुल्यं कुञ्जराणां शतं शतम् ॥ ३ ॥

जिसकी दोनों भुजाओंमें समानरूपसे दस-दस हजार हाथियोंका बल था, युद्धमें शोभा पानेवाले उस राधापुत्र कर्णके मारे जानेका समाचार सुनकर मैं इस शोकको सहन नहीं कर पाता हूँ ॥ ३ ॥

हतप्रवरसैन्यं मे यथा शंससि संजय।
अहतानपि मे शंस येऽत्र जीवन्ति केचन ॥ ४ ॥

संजय ! जैसा कि तुम कह रहे हो कि मेरी सेनाके प्रमुख वीर मारे जा चुके हैं, उसी प्रकार यह भी बताओ कि कौन-कौन वीर नहीं मारे गये हैं । इस सेनामें जो कोई भी श्रेष्ठ वीर जीवित हैं, उनका परिचय दो ॥ ४ ॥

एतेषु हि मृतेष्वद्य ये त्वया परिकीर्तिताः।
येऽपि जीवन्ति ते सर्वे मृता इति मतिर्मम ॥ ५ ॥

आज तुमने जिन लोगोंके नाम लिये हैं, उनकी मृत्यु हो जानेपर तो जो भी अब जीवित हैं वे सभी मरे हुएके ही समान हैं, ऐसा मेरा विश्वास है ॥ ५ ॥

संजय उवाच

यस्मिन् महास्त्राणि समर्पितानि
चित्राणि शुभ्राणि चतुर्विधानि।
दिव्यानि राजन् विहितानि चैव
द्रोणेन वीरे द्विजसत्तमेन ॥ ६ ॥
महारथः कृतिमान् क्षिप्रहस्तो
दृढायुधो दृढमुष्टिर्दृढेषुः।
स वीर्यवान् द्रोणपुत्रस्तरस्वी
व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥ ७ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! द्विजश्रेष्ठ द्रोणाचार्यने जिस वीरको चित्र (अद्भुत), शुभ्र (प्रकाशमान), दिव्य तथा धनुर्वेदोक्त चार प्रकारके महान् अस्त्र समर्पित किये थे, जो सफल प्रयत्न करनेवाला महारथी वीर है, जिसके हाथ बड़ी शीघ्रतासे चलते हैं, जिसका धनुष, जिसकी मुट्ठी और जिसके बाण सभी सुदृढ़ हैं, वह वेगशाली तथा पराक्रमी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा आपके लिये युद्धकी इच्छा रखकर समरभूमिमें डटा हुआ है ॥ ६-७ ॥

आनर्तवासी हृदिकात्मजोऽसौ
महारथः सात्वतानां वरिष्ठः।
स्वयं भोजः कृतवर्मा कृतास्त्रो
व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥ ८ ॥

सात्वतकुलका श्रेष्ठ महारथी, आनर्तनिवासी, भोजवंशी अस्त्रवेत्ता, हृदिकपुत्र कृतवर्मा भी आपके लिये युद्ध करनेको दृढ़ निश्चयके साथ डटा हुआ है ॥ ८ ॥

आर्तायनिः समरे दुष्प्रकम्प्यः
सेनाग्रणीः प्रथमस्तावकानाम्।
यः स्वस्रीयान् पाण्डवेयान् विसृज्य
सत्यां वाचं तां चिकीर्षुस्तरस्वी॥ ९ ॥
तेजोवधं सूतपुत्रस्य संख्ये
प्रतिश्रुत्याजातशत्रोः पुरस्तात्।
दुराधर्षः शक्रसमानवीर्यः
शल्यः स्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥१०॥

जिन्हें युद्धमें विचलित करना अत्यन्त कठिन है, जो आपके सैनिकोंके प्रथम सेनापति एवं वेगशाली वीर हैं, जो अपनी बात सच्ची कर दिखानेके लिये अपने सगे भानजे पाण्डवोंको छोड़कर तथा अजातशत्रु युधिष्ठिरके सामने युद्धस्थलमें सूतपुत्र कर्णके तेज और उत्साहको नष्ट करनेकी प्रतिज्ञा करके आपके पक्षमें चले आये थे, वे बलवान् दुर्धर्ष तथा इन्द्रके समान पराक्रमी ऋतायनपुत्र शल्य आपके लिये युद्ध करनेको तैयार हैं ॥

आजानेयैः सैन्धवैः पर्वतीयै-
र्नदीजकाम्बोजवनायुजैश्च ।
गान्धारराजः स्वबलेन युक्तो
व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥ ११ ॥

अच्छी नस्लके सिंधी, पहाड़ी, दरियाई, काबुली और वनायु देशके बहुसंख्यक घोड़ों तथा अपनी सेनाके साथ गान्धारराज शकुनि आपके लिये युद्ध करनेको डटा हुआ है॥

शारद्वतो गौतमश्चापि राजन्
महाबाहुर्बहुचित्रास्त्रयोधी ।
धनुश्चित्रं सुमहद् भारसाहं
व्यवस्थितो योद्धुकामः प्रगृह्य ॥ १२ ॥

राजन्! अनेक प्रकारके विचित्र अस्त्रोंद्वारा युद्ध करनेवाले, गौतमवंशीय शरद्वान्के पुत्र महाबाहु कृपाचार्य भी महान् भार सहन करनेमें समर्थ विचित्र धनुष हाथमें लेकर आपके लिये युद्ध करनेको तैयार हैं ॥ १२ ॥

महारथः केकयराजपुत्रः
सदश्वयुक्तं च पताकिनं च ।
रथं समारुह्य कुरुप्रवीर
व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥ १३ ॥

कुरुकुलके श्रेष्ठ वीर! महारथी केकयराजकुमार भी सुन्दर घोड़ोंसे जुते हुए, ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित रथपर आरूढ़ हो आपके लिये युद्ध करनेकी इच्छासे डटा हुआ है ॥

तथा सुतस्ते ज्वलनार्कवर्णं
रथं समास्थाय कुरुप्रवीरः ।
व्यवस्थितः पुरुमित्रो नरेन्द्र
व्यभ्रे सूर्यो भ्राजमानो यथा खे ॥ १४ ॥

नरेन्द्र! कुरुकुलका प्रमुख वीर आपका पुत्र पुरुमित्र अग्नि और सूर्यके समान कान्तिमान् रथपर आरूढ़ हो बिना बादलोंके आकाशमें सूर्यके समान प्रकाशित होता हुआ युद्धके लिये खड़ा है ॥ १४ ॥

दुर्योधनो नागकुलस्य मध्ये
व्यवस्थितः सिंह इवावभासे ।
रथेन जाम्बूनदभूषणेन
व्यवस्थितः समरे योत्स्यमानः ॥ १५ ॥

हाथियोंकी सेनाके बीच जो अपने सुवर्णभूषित रथके द्वारा उपस्थित हो सिंहके समान सुशोभित होता है, वह राजा दुर्योधन भी समराङ्गणमें जूझनेके लिये खड़ा है ॥ १५ ॥

स राजमध्ये पुरुषप्रवीरो
रराज जाम्बूनदचित्रवर्मा ।
पद्मप्रभो वह्निरिवाल्पधूमो
मेघान्तरे सूर्य इव प्रकाशः ॥ १६ ॥

पुरुषोंमें प्रधान वीर और कमलके समान कान्तिमान् दुर्योधन सोनेका बना हुआ विचित्र कवच धारण करके राजाओंके समुदायमें अल्प धूमवाली अग्नि एवं बादलोंके बीचमें सूर्यके समान प्रकाशित हो रहा है ॥ १६ ॥

तथा सुषेणोऽप्यसिचर्मपाणि-
स्तवात्मजः सत्यसेनश्च वीरः ।
व्यवस्थितौ चित्रसेनेन सार्धं
हृष्टात्मानौ समरे योद्धुकामौ ॥ १७ ॥

हाथमें ढाल-तलवार लिये हुए आपके वीर पुत्र सुषेण और सत्यसेन मनमें हर्ष और उत्साह लिये समरमें जूझनेकी इच्छा रखकर चित्रसेनके साथ खड़े हैं ॥ १७ ॥

ह्रीनिषेवो भारत राजपुत्र
उग्रायुधः क्षणभोजी सुदर्शः ।
जारासंधिः प्रथमश्चादृढश्च
चित्रायुधः श्रुतवर्मा जयश्च ॥ १८ ॥
शलश्च सत्यव्रतदुःशलौ च
व्यवस्थिताः सहसैन्या नराग्र्याः ।

भारत! लज्जाशील भयंकर आयुधोंवाला शीघ्रभोजी और देखनेमें सुन्दर जरासंधका प्रथम पुत्र राजकुमार अदृढ़, चित्रायुध, श्रुतवर्मा, जय, शल, सत्यव्रत और दुःशल—ये सभी श्रेष्ठ पुरुष युद्धके लिये अपनी सेनाओंके साथ खड़े हैं ॥

कैतव्यानामधिपः शूरमानी
रणे रणे शत्रुहा राजपुत्रः ॥ १९ ॥
रथी हयी नागपत्तिप्रयायी
व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ।

प्रत्येक युद्धमें शत्रुओंका संहार करनेवाला और अपनेको शूरवीर माननेवाला एक राजकुमार, जो जुआरिओंका सरदार है तथा रथ, घोड़े, हाथी और पैदलोंकी चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर चलता है, आपके लिये युद्ध करनेको तैयार खड़ा है॥

वीरः श्रुतायुश्च धृतायुधश्च
चित्राङ्गदश्चित्रसेनश्च वीरः ॥ २० ॥
व्यवस्थिता योद्धुकामा नराग्र्याः
प्रहारिणो मानिनः सत्यसंधाः ।

वीर श्रुतायु, धृतायुध, चित्राङ्गद और वीर चित्रसेन—ये सभी प्रहारकुशल स्वाभिमानी और सत्यप्रतिज्ञ नरश्रेष्ठ आपके लिये युद्ध करनेको तैयार खड़े हैं ॥ २०½ ॥

कर्णात्मजः सत्यसंधो महात्मा
व्यवस्थितः समरे योद्धुकामः ॥ २१ ॥
अथापरौ कर्णसुतौ वरास्त्रौ
व्यवस्थितौ लघुहस्तौ नरेन्द्र ।
बलं महद् दुर्भिदमल्पधैर्यैः
समाश्रितौ योत्स्यमानौ त्वदर्थे ॥ २२ ॥

नरेन्द्र ! कर्णका महामना एवं सत्यप्रतिज्ञ पुत्र समराङ्गणमें युद्धकी इच्छासे डटा हुआ है। इसके सिवा कर्णके दो पुत्र और हैं, जो उत्तम अस्त्रोंके ज्ञाता और शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले हैं, वे भी आपकी ओरसे युद्धके लिये तैयार खड़े हैं। इन दोनोंने ऐसी विशाल सेनाको अपने साथ ले रक्खा है, जिसका अल्प धैर्यवाले वीरोंके लिये भेदन करना कठिन है ॥

एतैश्च मुख्यैरपरैश्च राजन्
योधप्रवीरैरमितप्रभावैः ।
व्यवस्थितो नागकुलस्य मध्ये
यथा महेन्द्रः कुरुराजो जयाय ॥ २३ ॥

राजन् ! इनसे तथा अन्य अनन्त प्रभावशाली श्रेष्ठ एवं प्रधान योद्धाओंसे घिरा हुआ कुरुराज दुर्योधन हाथियोंके समूहमें देवराज इन्द्रके समान विजयके लिये खड़ा है ॥२३॥

धृतराष्ट्र उवाच

आख्याता जीवमाना येऽपरे सैन्या यथायथम् ।
इतीदमवगच्छामि व्यक्तमर्थाभिपत्तितः ॥ २४ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय ! अपने पक्षके जो जीवित योद्धा हैं, एवं उनसे भिन्न जो मारे जा चुके हैं, उनका तुमने यथार्थरूपसे वर्णन कर दिया। इससे जो परिणाम होनेवाला है, उसे अर्थापत्ति प्रमाणके द्वारा मैं स्पष्टरूपसे समझ रहा हूँ (मेरे पक्षकी हार सुनिश्चित है) ॥ २४ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं ब्रुवन्नेव तदा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
हतप्रवीरं विध्वस्तं किंचिच्छेषं स्वकं बलम् ॥ २५ ॥
श्रुत्वा व्यामोहमागच्छच्छोकव्याकुलितेन्द्रियः ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! यह कहते हुए ही अम्बिकानन्दन धृतराष्ट्र उस समय यह सुनकर कि अपनी सेनाके प्रमुख वीर मारे गये, अधिकांश सेना नष्ट हो गयी और बहुत थोड़ी शेष रह गयी है, मूर्छित हो गये । उनकी इन्द्रियाँ शोकसे व्याकुल हो उठीं ॥ २५½ ॥

मुह्यमानोऽब्रवीच्चापि मुहूर्तं तिष्ठ संजय ॥ २६ ॥
व्याकुलं मे मनस्तात श्रुत्वा सुमहदप्रियम् ।
मनो मुह्यति चाङ्गानि न च शक्नोमि धारितुम् ॥ २७ ॥

वे अचेत होते-होते बोले—'संजय ! दो घड़ी ठहर जाओ। तात ! यह महान् अप्रिय संवाद सुनकर मेरा मन व्याकुल हो गया है, चेतना लुप्त-सी हो रही है और मैं अपने अङ्गोंको धारण करनेमें असमर्थ हो रहा हूँ' ॥ २६-२७ ॥

इत्येवमुक्त्वा वचनं धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
भ्रान्तचित्तस्ततः सोऽथ बभूव जगतीपतिः ॥ २८ ॥

ऐसा कहकर अम्बिकानन्दन राजा धृतराष्ट्र भ्रान्तचित्त (मूर्छित) हो गये ॥ २८॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संजयवाक्यं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संजय-वाक्यविषयक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका विलाप

जनमेजय उवाच

श्रुत्वा कर्णं हतं युद्धे पुत्रांश्चैव निपातितान् ।
नरेन्द्रः किंचिदाश्वस्तो द्विजश्रेष्ठ किमब्रवीत् ॥ १ ॥

जनमेजय बोले—द्विजश्रेष्ठ ! युद्धमें कर्ण मारा गया और पुत्र भी धराशायी हो गये, यह सुनकर अचेत हुए राजा धृतराष्ट्रको जब पुनः कुछ चेत हुआ, तब उन्होंने क्या कहा ? ॥ १ ॥

प्राप्तवान् परमं दुःखं पुत्रव्यसनजं महत् ।
तस्मिन् यदुक्तवान् काले तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥२॥

धृतराष्ट्रको अपने पुत्रोंके मारे जानेके कारण बड़ा भारी दुःख प्राप्त हुआ था, उस समय उन्होंने जो कुछ कहा, उसे मैं पूछ रहा हूँ; आप मुझे बताइये ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वा कर्णस्य निधनमश्रद्धेयमिवाद्भुतम् ।
भूतसम्मोहनं भीमं मेरोः संसर्पणं यथा ॥ ३ ॥
चित्तमोहमिवायुक्तं भार्गवस्य महामतेः ।
पराजयमिवेन्द्रस्य द्विषद्भ्यो भीमकर्मणः ॥ ४ ॥
दिवः प्रपतनं भानोरुर्व्यामिव महाद्युतेः ।
संशोषणमिवाचिन्त्यं समुद्रस्याक्षयाम्भसः ॥ ५ ॥
महीवियद्दिगम्बूनां सर्वनाशमिवाद्भुतम् ।
कर्मणोरिव वैफल्यमुभयोः पुण्यपापयोः ॥ ६ ॥
संचिन्त्य निपुणं बुद्ध्या धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
नेदमस्तीति संचिन्त्य कर्णस्य समरे वधम् ॥ ७ ॥
प्राणिनामेवमन्येषां स्यादपीति विनाशनम् ।
शोकाग्निना दह्यमानो धम्यमान इवाशये ॥ ८ ॥
विस्रस्ताङ्गः श्वसन् दीनो हाहेत्युक्त्वा सुदुःखितः ।
विललाप महाराज धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ॥ ९ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! कर्णका मारा जाना अद्भुत और अविश्वसनीय-सा लग रहा था । वह भयंकर कर्म उसी प्रकार समस्त प्राणियोंको मोहमें डालनेवाला था, जैसे मेरु पर्वतका अपने स्थानसे हटकर अन्यत्र चला जाना ।

परम बुद्धिमान् भृगुनन्दन परशुरामजीके चित्तमें मोह उत्पन्न होना जैसे सम्भव नहीं है, जैसे भयंकर कर्म करनेवाले देवराज इन्द्रका अपने शत्रुओंसे पराजित होना असम्भव है, जैसे महातेजस्वी सूर्यके आकाशसे पृथ्वीपर गिरने और अक्षय जलवाले समुद्रके सूख जानेकी बात मनमें सोची तक नहीं जा सकती; पृथ्वी, आकाश, दिशा और जलका सर्वनाश होना एवं पाप तथा पुण्य—दोनों प्रकारके कर्मोंका निष्फल हो जाना जैसे आश्चर्यजनक घटना है; उसी प्रकार समरमें कर्ण-वधरूपी असम्भव कर्मको भी सम्भव हुआ सुनकर और उसपर बुद्धि-द्वारा अच्छी तरह विचार करके राजा धृतराष्ट्र यह सोचने लगे कि 'अब यह कौरवदल बच नहीं सकता। कर्णकी ही भाँति अन्य प्राणियोंका भी विनाश हो सकता है।' यह सब सोचते ही उनके हृदयमें शोककी आग प्रज्वलित हो उठी और वे उससे तपने एवं दग्ध-से होने लगे। उनके सारे अङ्ग शिथिल हो गये। महाराज! वे अम्बिकानन्दन धृतराष्ट्र दीन-भावसे लंबी साँस खींचने और अत्यन्त दुखी हो 'हाय! हाय!' कहकर विलाप करने लगे॥ ३—९॥

धृतराष्ट्र उवाच

संजयाधिरथिर्वीरः सिंहद्विरदविक्रमः।
वृषभप्रतिमस्कन्धो वृषभाक्षगतिश्चरन्॥ १०॥
वृषभो वृषभस्येव यो युद्धे न निवर्तते।
शत्रोरपि महेन्द्रस्य वज्रसंहननो युवा॥ ११॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय! अधिरथका वीर पुत्र कर्ण सिंह और हाथीके समान पराक्रमी था। उसके कंधे साँड़के कंधोंके समान हृष्ट-पुष्ट थे। उसकी आँखें और चाल-ढाल भी साँड़के ही सदृश थीं। वह स्वयं भी दानकी वर्षा करनेके कारण वृषभ-स्वरूप था। रणभूमिमें विचरता हुआ कर्ण इन्द्र-जैसे शत्रुसे पाला पड़नेपर भी साँड़के समान कभी युद्धसे पीछे नहीं हटता था। उसकी युवा-अवस्था थी। उसका शरीर इतना सुदृढ़ था, मानो वज्रसे गढ़ा गया हो॥ १०-११॥

यस्य ज्यातलशब्देन शरवृष्टिरवेण च।
रथाश्वनरमातङ्गा नावतिष्ठन्ति संयुगे॥ १२॥

जिसकी प्रत्यञ्चाकी टंकार तथा बाणवर्षाके भयंकर शब्दसे भयभीत हो रथी, घुड़सवार, गजारोही और पैदल सैनिक युद्धमें सामने नहीं ठहर पाते थे॥ १२॥

यमाश्रित्य महाबाहुं द्विषां जयकाङ्क्षया।
दुर्योधनोऽकरोद् वैरं पाण्डुपुत्रैर्महारथैः॥ १३॥

जिस महाबाहुका भरोसा करके शत्रुओंपर विजय पानेकी इच्छा रखते हुए दुर्योधनने महारथी पाण्डवोंके साथ वैर बाँध रक्खा था॥ १३॥

स कथं रथिनां श्रेष्ठः कर्णः पार्थेन संयुगे।
निहतः पुरुषव्याघ्रः प्रसह्यासह्यविक्रमः॥ १४॥

जिसका पराक्रम शत्रुओंके लिये असह्य था, वह रथियोंमें श्रेष्ठ पुरुषसिंह कर्ण युद्धस्थलमें कुन्तीपुत्र अर्जुनके द्वारा बलपूर्वक कैसे मारा गया?॥ १४॥

यो नामन्यत वै नित्यमच्युतं च धनंजयम्।
न वृष्णीन् सहितानन्यान् स्वबाहुबलदर्पितः॥ १५॥

जो अपने बाहुबलके घमंडमें भरकर श्रीकृष्णको, अर्जुनको तथा एक साथ आये हुए अन्यान्य वृष्णिवंशियोंको भी कभी कुछ नहीं समझता था॥ १५॥

शार्ङ्गगाण्डीवधन्वानौ सहितावपराजितौ।
अहं दिव्याद् रथादेकः पातयिष्यामि संयुगे॥ १६॥
इति यः सततं मन्दमवोचल्लोभमोहितम्।
दुर्योधनमवाचीनं राज्यकामुकमातुरम्॥ १७॥

जो राज्यकी इच्छा रखनेवाले तथा चिन्तासे आतुर हो मुँह लटकाये बैठे हुए मेरे लोभमोहित मूर्ख पुत्र दुर्योधनसे सदा यही कहा करता था कि 'मैं अकेला ही युद्धस्थलमें शार्ङ्ग और गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले दोनों अपराजित वीर श्रीकृष्ण और अर्जुनको उनके दिव्यरथसे एक साथ ही मार गिराऊँगा'॥ १६-१७॥

योऽजयत् सर्वकाम्बोजानावन्त्यान् केकयैः सह।
गान्धारान्मद्रकान् मत्स्यांस्त्रिगर्तांस्तङ्गणाञ्शकान्॥१८
पञ्चालांश्च विदेहांश्च कुलिन्दान् काशिकोसलान्।
सुह्मानङ्गांश्च वङ्गांश्च निषादान् पुण्ड्रचीरकान्॥१९॥
वत्सान् कलिङ्गांस्तरलानश्मकानृषिकानपि।
(शबरान् परहूणांश्च प्रहूणान् सरलानपि।
म्लेच्छराष्ट्राधिपांश्चैव दुर्गानाटविकांस्तथा॥)
जित्वैतान् समरे वीरश्चक्रे बलिभृतः पुरा॥ २०॥

जिस वीरने पहले समस्त काम्बोज, आवन्त्य, केकय, गान्धार, मद्र, मत्स्य, त्रिगर्त, तङ्गण, शक, पाञ्चाल, विदेह, कुलिन्द, काशी, कोसल, सुह्म, अङ्ग, वङ्ग, निषाद, पुण्ड्र, चीरक, वत्स, कलिङ्ग, तरल, अश्मक तथा ऋषिक—इन सभी देशोंतथा शबर, परहूण, प्रहूण और सरल जातिके लोगों, म्लेच्छ-राज्यके अधिपतियों तथा दुर्ग एवं वनोंमें रहनेवाले योद्धाओं-को समरभूमिमें जीतकर कर देनेवाला बना दिया था॥१८—२०॥

शरव्रातैः सुनिशितैः सुतीक्ष्णैः कङ्कपत्रिभिः।
(करमाहारयामास जित्वा सर्वानरींस्तथा।)
दुर्योधनस्य वृद्ध्यर्थं राधेयो रथिनां वरः॥ २१॥
दिव्यास्त्रविन्महातेजाः कर्णो वैकर्तनो वृषः।
सेनागोपश्च स कथं शत्रुभिः परमास्त्रवित्॥ २२॥
घातितः पाण्डवैः शूरैः समरे वीर्यशालिभिः।

रथियोंमें श्रेष्ठ जिस राधापुत्रने दुर्योधनकी वृद्धिके लिये कङ्कपत्र-युक्त, तीखी धारवाले पैने बाण-समूहोंद्वारा समस्त

शत्रुओंको परास्त करके उनसे कर वसूल किया था, जो दिव्यास्त्रोंका ज्ञाता, उत्तम अस्त्रोंका जानकार और हमारी सेनाओंका रक्षक था, वह महातेजस्वी धर्मात्मा वैकर्तन कर्ण अपने शूरवीर एवं बलशाली शत्रु पाण्डवोंद्वारा कैसे मारा गया ? ॥ २१–२२½ ॥

वृषो महेन्द्रो देवेषु वृषः कर्णो नरेष्वपि ॥ २३ ॥
तृतीयमन्यं लोकेषु वृषं नैवानुशुश्रुम ।

देवताओंमें देवराज इन्द्रको वृष कहा गया है (क्योंकि वे जलकी वर्षा करते हैं), इसी प्रकार मनुष्योंमें भी कर्णको वृष कहा जाता था (क्योंकि वह याचकोंके लिये धनकी वर्षा करता था); इन दोके सिवा किसी तीसरे पुरुषको तीनों लोकोंमें वृष नाम दिया गया हो, यह मैंने नहीं सुना ॥२३½॥

उच्चैःश्रवा वरोऽश्वानां राज्ञां वैश्रवणो वरः ॥ २४ ॥
वरो महेन्द्रो देवानां कर्णः प्रहरतां वरः ।

जैसे घोड़ोंमें उच्चैःश्रवा, राजाओंमें कुबेर और देवताओंमें महेन्द्र श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार कर्ण योद्धाओंमें ऊँचा स्थान रखता था ॥ २४½ ॥

योऽजितः पार्थिवैः शूरैः समर्थैर्वीर्यशालिभिः ॥ २५ ॥
दुर्योधनस्य वृद्ध्यर्थं कृत्स्नामुर्वीमथाजयत् ।
यं लब्ध्वा मागधो राजा सान्त्वमानोऽथ सौहृदैः॥२६॥
अरौत्सीत् पार्थिवं क्षत्रमृते यादवकौरवान् ।
तं श्रुत्वा निहतं कर्णं द्वैरथे सव्यसाचिना ॥ २७ ॥
शोकार्णवे निमग्नोऽहं भिन्ना नौरिव सागरे ।

जो पराक्रमशाली, समर्थ एवं शूरवीर नरेशोंद्वारा भी कभी जीता न जा सका, जिसने दुर्योधनकी वृद्धिके लिये समस्त भूमण्डलपर विजय पायी थी, जिसे अपना सहायक पाकर मगधनरेश जरासंधने भी सौहार्दवश शान्त हो यादवों और कौरवोंको छोड़कर भूतलके अन्य नरेशोंको ही अपने कारागारमें कैद किया था; उसी कर्णको सव्यसाची अर्जुनने द्वैरथयुद्धमें मार डाला, यह सुनकर मैं शोकके समुद्रमें डूब गया हूँ, मानो मेरी नाव बीच समुद्रमें जाकर टूट गयी हो।२५-२७½।

तं वृषं निहतं श्रुत्वा द्वैरथे रथिनां वरम् ॥ २८ ॥
शोकार्णवे निमग्नोऽहमप्लवः सागरे यथा ।

रथियोंमें श्रेष्ठ उस धर्मात्मा कर्णको द्वैरथयुद्धमें मारा गया सुनकर मैं समुद्रमें नौकारहित पुरुषकी भाँति शोक-सागरमें निमग्न हो गया हूँ ॥ २८½ ॥

ईदृशैर्यद्यहं दुःखैर्न विनश्यामि संजय ॥ २९ ॥
वज्राद् दृढतरं मन्ये हृदयं मम दुर्भिदम् ।

संजय ! यदि ऐसे दुःखोंसे भी मेरी मृत्यु नहीं हो रही है तो मैं ऐसा समझता हूँ कि मेरा यह हृदय वज्रसे भी अधिक सुदृढ़ और दुर्भेद्य है ॥ २९½ ॥

ज्ञातिसम्बन्धिमित्राणामिमं श्रुत्वा पराभवम् ॥ ३० ॥
को मदन्यः पुमाँल्लोके न जह्यात् सूत जीवितम् ।

सूत ! कुटुम्बीजनों, सगे-सम्बन्धियों और मित्रोंके पराभवका यह समाचार सुनकर संसारमें मेरे सिवा दूसरा कौन पुरुष होगा, जो अपने जीवनका परित्याग न कर दे ॥३०½॥

विषमग्निं प्रपातं च पर्वताग्रादहं वृणे ।
न हि शक्ष्यामि दुःखानि सोढुं कष्टानि संजय ॥३१॥

संजय ! मैं विष खाकर, अग्निमें प्रविष्ट होकर तथा पर्वतके शिखरसे नीचे गिरकर भी मृत्युका वरण कर लूँगा । परंतु अब ये कष्टदायक दुःख नहीं सह सकूँगा ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्येऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें धृतराष्ट्रवाक्यविषयक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १½ श्लोक मिलाकर कुल ३२½ श्लोक हैं)

नवमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका संजयसे विलाप करते हुए कर्णवधका विस्तारपूर्वक वृत्तान्त पूछना

संजय उवाच

श्रिया कुलेन यशसा तपसा च श्रुतेन च ।
त्वामद्य सन्तो मन्यन्ते ययातिमिव नाहुषम् ॥ १ ॥

संजयने कहा—महाराज ! साधु पुरुष इस समय आपको धन-सम्पत्ति, कुल-मर्यादा, सुयश, तपस्या और शास्त्रज्ञानमें नहुषनन्दन ययातिके समान मानते हैं ॥ १ ॥

श्रुते महर्षिप्रतिमः कृतकृत्योऽसि पार्थिव ।
पर्यवस्थापयात्मानं मा विषादे मनः कृथाः ॥ २ ॥

राजन् ! वेद-शास्त्रोंके ज्ञानमें आप महर्षियोंके तुल्य हैं । आपने अपने जीवनके सम्पूर्ण कर्तव्योंका पालन कर लिया है; अतः अपने मनको स्थिर कीजिये, उसे विषादमें न डुबाइये ॥ २ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

दैवमेव परं मन्ये धिक् पौरुषमनर्थकम् ।
यत्र शालप्रतीकाशः कर्णोऽहन्यत संयुगे ॥ ३ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—मैं तो दैवको ही प्रधान मानता हूँ । पुरुषार्थ व्यर्थ है, उसे धिक्कार है, जिसका आश्रय लेकर शालवृक्षके समान ऊँचे शरीरवाला कर्ण भी युद्धमें मारा गया ॥ ३ ॥

हत्वा युधिष्ठिरानीकं पञ्चालानां रथव्रजान् ।

प्रताप्य शरवर्षेण दिशः सर्वा महारथः ॥ ४ ॥
मोहयित्वा रणे पार्थान् वज्रहस्त इवासुरान्।
स कथं निहतः शेते वायुरुग्ण इव द्रुमः ॥ ५ ॥

युधिष्ठिरकी सेना तथा पाञ्चाल रथियोंके समुदायका संहार करके जिस महारथी वीरने अपने बाणोंकी वर्षासे सम्पूर्ण दिशाओंको संतप्त कर दिया और वज्रधारी इन्द्र जैसे असुरोंको अचेत कर देते हैं, उसी प्रकार जिसने रणभूमिमें कुन्ती-कुमारोंको मोहमें डाल दिया था, वही किस तरह मारा जाकर आँधीके उखाड़े हुए वृक्षके समान धरतीपर पड़ा है? ॥४-५॥

शोकस्यान्तं न पश्यामि पारं जलनिधेरिव।
चिन्ता मे वर्धतेऽतीव मुमूर्षा चापि जायते ॥ ६ ॥

जैसे समुद्रका पार नहीं दिखायी देता, उसी प्रकार मैं इस शोकका अन्त नहीं देख पाता हूँ। मेरी चिन्ता अधिकाधिक बढ़ती जाती है और मरनेकी इच्छा प्रबल हो उठी है ॥

कर्णस्य निधनं श्रुत्वा विजयं फाल्गुनस्य च।
अश्रद्धेयमहं मन्ये वधं कर्णस्य संजय ॥ ७ ॥

संजय! मैं कर्णकी मृत्यु और अर्जुनकी विजयका समाचार सुनकर भी कर्णके वधको विश्वासके योग्य नहीं मानता ॥ ७ ॥

वज्रसारमयं नूनं हृदयं दुर्भिदं मम।
यच्छ्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं हतं कर्णं न दीर्यते ॥ ८ ॥

निश्चय ही मेरा हृदय वज्रके सारतत्त्वका बना हुआ है, अतः दुर्भेद्य है; तभी तो पुरुष-सिंह कर्णको मारा गया सुनकर भी यह विदीर्ण नहीं हो रहा है ॥ ८ ॥

आयुर्नूनं सुदीर्घं मे विहितं दैवतैः पुरा।
यत्र कर्णं हतं श्रुत्वा जीवामीह सुदुःखितः ॥ ९ ॥

अवश्य ही पूर्वकालमें देवताओंने मेरी आयु बहुत बड़ी बना दी थी, जिसके अधीन होनेके कारण मैं कर्ण-वधका समाचार सुनकर अत्यन्त दुखी होनेपर भी यहाँ जी रहा हूँ ॥९॥

धिग्जीवितमिदं चैव सुहृद्धीनस्य संजय।
अद्य चाहं दशामेतां गतः संजय गर्हिताम् ॥ १० ॥

संजय! मेरे इस जीवनको धिक्कार है। आज मैं सुहृदोंसे हीन होकर इस घृणित दशाको पहुँच गया हूँ ॥ १० ॥

कृपणं वर्तयिष्यामि शोच्यः सर्वस्य मन्दधीः।
अहमेव पुरा भूत्वा सर्वलोकस्य सत्कृतः ॥ ११ ॥
परिभूतः कथं सूत परैः शक्ष्यामि जीवितुम्।

अब मैं मन्दबुद्धि मानव सबके लिये शोचनीय होकर दीन-दुखी मनुष्योंके समान जीवन बिताऊँगा। सूत! मैं ही पहले सब लोगोंके सम्मानका पात्र था; किंतु अब शत्रुओंसे अपमानित होकर कैसे जीवित रह सकूँगा? ॥ ११½ ॥

दुःखात् सुदुःखव्यसनं प्राप्तवानस्मि संजय ॥ १२ ॥
भीष्मद्रोणवधेनैव कर्णस्य च महात्मनः।

संजय! भीष्म, द्रोण और महामना कर्णके वधसे मुझपर लगातार एक-से-एक बढ़कर अत्यन्त दुःख तथा सङ्कट आता गया है ॥ १२½ ॥

नावशेषं प्रपश्यामि सूतपुत्रे हते युधि ॥ १३ ॥
स हि पारो महानासीत् पुत्राणां मम संजय।

युद्धमें सूतपुत्र कर्णके मारे जानेपर मैं अपने पक्षके किसी भी वीरको ऐसा नहीं देखता, जो जीवित रह सके। संजय! कर्ण ही मेरे पुत्रोंको पार उतारनेवाला महान् अवलम्ब था ॥

युद्धे हि निहतः शूरो विसृजन् सायकान् बहून् ॥ १४ ॥
को हि मे जीवितेनार्थस्तमृते पुरुषर्षभम्।

शत्रुओंपर असंख्य बाणोंकी वर्षा करनेवाला वह शूरवीर युद्धमें मार डाला गया। उस पुरुषशिरोमणिके बिना मेरे इस जीवनसे क्या प्रयोजन है? ॥ १४½ ॥

रथादाधिरथिर्नूनं न्यपतत् सायकार्दितः ॥ १५ ॥
पर्वतस्येव शिखरं वज्रपाताद् विदारितम्।

जैसे वज्रके आघातसे विदीर्ण किया हुआ पर्वतशिखर धराशायी हो जाता है, उसी प्रकार बाणोंसे पीड़ित हुआ अधिरथपुत्र कर्ण निश्चय ही रथसे नीचे गिर पड़ा होगा ॥

स शेते पृथिवीं नूनं शोभयन् रुधिरोक्षितः ॥ १६ ॥
मातङ्ग इव मत्तेन द्विपेन्द्रेण निपातितः।

जैसे मतवाले गजराजद्वारा गिराया हुआ हाथी पड़ा हो, उसी प्रकार कर्ण खूनसे लथपथ होकर अवश्य इस पृथ्वीकी शोभा बढ़ाता हुआ सो रहा है ॥ १६½ ॥

यो बलं धार्तराष्ट्राणां पाण्डवानां यतो भयम् ॥ १७ ॥
सोऽर्जुनेन हतः कर्णः प्रतिमानं धनुष्मताम्।

जो मेरे पुत्रोंका बल था, पाण्डवोंको जिससे सदा भय बना रहता था तथा जो धनुर्धर वीरोंके लिये आदर्श था, वह कर्ण अर्जुनके हाथसे मारा गया ॥ १७½ ॥

स हि वीरो महेष्वासो मित्राणामभयंकरः ॥ १८ ॥
शेते विनिहतो वीरो देवेन्द्रेण इवाचलः।

जैसे देवराज इन्द्रके द्वारा वज्रसे मारा गया पर्वत पृथ्वीपर पड़ा हो, उसी प्रकार मित्रोंको अभय-दान देनेवाला वह महाधनुर्धर वीर कर्ण अर्जुनके हाथसे मारा जाकर रणभूमिमें सो रहा है ॥ १८½ ॥

पङ्गोरिवाध्वगमनं दरिद्रस्येव कामितम् ॥ १९ ॥
दुर्योधनस्य चाकूतं तृषितस्येव विप्रुषः।

जैसे पङ्गु मनुष्यके लिये रास्ता चलना कठिन है, दरिद्रका मनोरथ पूर्ण होना असम्भव है तथा जलकी कुछ ही बूँदें जैसे प्यासेकी प्यास बुझानेमें असमर्थ हैं, उसी प्रकार दुर्योधनका अभिप्राय असम्भव अथवा सफलतासे कोसों दूर है ॥१९½॥

अन्यथा चिन्तितं कार्यमन्यथा तत् तु जायते ॥२०॥

अहो नु बलवद् दैवं कालश्च दुरतिक्रमः।

किसी कार्यको अन्य प्रकारसे सोचा जाता है, किंतु वह दैववश और ही प्रकारका हो जाता है। अहो ! निश्चय ही दैव प्रबल और काल दुर्लङ्घ्य है ॥ २०½ ॥

पलायमानः कृपणो दीनात्मा दीनपौरुषः ॥ २१ ॥
कच्चिद् विनिहतः सूत पुत्रो दुःशासनो मम।
कच्चिन्न दीनाचरितं कृतवांस्तात संयुगे ॥ २२ ॥
कच्चिन्न निहतः शूरो यथान्ये क्षत्रियर्षभाः।

सूत ! क्या मेरा पुत्र दुःशासन दीनचित्त और पुरुषार्थ-शून्य होकर कायरके समान भागता हुआ मारा गया । तात ! उसने युद्धस्थलमें कोई दीनतापूर्ण बर्ताव तो नहीं किया था। जैसे अन्य क्षत्रियशिरोमणि मारे गये हैं, क्या उसी प्रकार शूरवीर दुःशासन नहीं मारा गया है ? ॥ २१-२२½ ॥

युधिष्ठिरस्य वचनं मा युध्यस्वेति सर्वदा ॥ २३ ॥
दुर्योधनो नाभ्यगृह्णान्मूढः पथ्यमिवौषधम्।

युधिष्ठिर सदा यही कहते रहे कि 'युद्ध न करो।' परंतु मूर्ख दुर्योधनने हितकारक औषधके समान उनके उस वचनको ग्रहण नहीं किया ॥ २३½ ॥

शरतल्पे शयानेन भीष्मेण सुमहात्मना ॥ २४ ॥
पानीयं याचितः पार्थः सोऽविध्यन्मेदिनीतलम्।
जलस्य धारां जनितां दृष्ट्वा पाण्डुसुतेन च ॥ २५ ॥
अब्रवीत् स महाबाहुस्तात संशाम्य पाण्डवैः।
प्रशमाद्धि भवेच्छान्तिर्मदन्तं युद्धमस्तु वः ॥ २६ ॥
भ्रातृभावेन पृथिवीं भुङ्क्ष्व पाण्डुसुतैः सह।

बाण-शय्यापर सोये हुए महात्मा भीष्मने अर्जुनसे पानी माँगा और उन्होंने इसके लिये पृथ्वीको छेद दिया । इस प्रकार पाण्डुपुत्र अर्जुनके द्वारा प्रकट की हुई उस जल-धाराको देखकर महाबाहु भीष्मने दुर्योधनसे कहा—'तात ! पाण्डवोंके साथ संधि कर लो । संधिसे वैरकी शान्ति हो जायगी, तुमलोगोंका यह युद्ध मेरे जीवनके साथ ही समाप्त हो जाय । तुम पाण्डवोंके साथ भ्रातृभाव बनाये रखकर पृथ्वीका उपभोग करो' ॥ २४–२६½ ॥

अकुर्वन् वचनं तस्य नूनं शोचति पुत्रकः ॥ २७ ॥
तदिदं समनुप्राप्तं वचनं दीर्घदर्शिनः।

उनकी उस बातको न माननेके कारण अवश्य ही मेरा पुत्र शोक कर रहा है। दूरदर्शी भीष्मजीकी वह बात आज सफल होकर सामने आयी है ॥ २७½ ॥

अहं तु निहतामात्यो हतपुत्रश्च संजय ॥ २८ ॥
द्यूततः कृच्छ्रमापन्नो लूनपक्ष इव द्विजः।

संजय ! मेरे मन्त्री और पुत्र मारे गये। मैं तो पंख कटे हुए पक्षीके समान जूएके कारण भारी संकटमें पड़ गया हूँ ॥ २८½ ॥

यथा हि शकुनिं गृह्य छित्त्वा पक्षौ च संजय ॥ २९ ॥
विसर्जयन्ति संहृष्टाः क्रीडमानाः कुमारकाः।
लूनपक्षतया तस्य गमनं नोपपद्यते ॥ ३० ॥
तथाहमपि सम्प्राप्तो लूनपक्ष इव द्विजः।

सूत ! जैसे खेलते हुए बालक किसी पक्षीको पकड़कर उसकी दोनों पाँखें काट लेते और प्रसन्नतापूर्वक उसे छोड़ देते हैं। फिर पंख कट जानेके कारण उसका उड़कर कहीं जाना सम्भव नहीं हो पाता। उसी कटे हुए पंखवाले पक्षीके समान मैं भी भारी दुर्दशामें पड़ गया हूँ ॥ २९-३०½ ॥

क्षीणः सर्वार्थहीनश्च निर्ज्ञातिर्बन्धुवर्जितः।
कां दिशं प्रतिपत्स्यामि दीनः शत्रुवशं गतः ॥ ३१ ॥

मैं शरीरसे दुर्बल, सारी धन-सम्पत्तिसे वञ्चित तथा कुटुम्बीजनों और बन्धु-बान्धवोंसे रहित हो शत्रुके वशमें पड़कर दीनभावसे किस दिशाको जाऊँगा ? ॥ ३१ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्येवं धृतराष्ट्रोऽथ विलप्य बहु दुःखितः।
प्रोवाच संजयं भूयः शोकव्याकुलमानसः ॥ ३२ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—इस प्रकार विलाप करके अत्यन्त दुखी और शोकसे व्याकुलचित्त हो धृतराष्ट्रने पुनः संजयसे इस प्रकार कहा ॥ ३२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

योऽजयत् सर्वकाम्बोजानम्बष्ठान् केकयैः सह।
गान्धारांश्च विदेहांश्च जित्वा कार्यार्थमाहवे ॥ ३३ ॥
दुर्योधनस्य वृद्ध्यर्थं योऽजयत् पृथिवीं प्रभुः।
स जितः पाण्डवैः शूरैः समरे बाहुशालिभिः॥ ३४ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! जिसने हमारे कार्यके लिये युद्धस्थलमें सम्पूर्ण काम्बोज-निवासियों, अम्बष्ठों, केकयों, गान्धारों और विदेहोंपर विजय पायी । इन सबको जीतकर जिसने दुर्योधनकी वृद्धिके लिये समस्त भूमण्डलको जीत लिया था। वही सामर्थ्यशाली कर्ण अपने बाहुबलसे सुशोभित होनेवाले शूरवीर पाण्डवोंद्वारा समराङ्गणमें परास्त हो गया ॥

तस्मिन् हते महेष्वासे कर्णे युधि किरीटिना।
के वीराः पर्यतिष्ठन्त तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ३५ ॥

संजय ! युद्धस्थलमें किरीटधारी अर्जुनके द्वारा उस महा-धनुर्धर कर्णके मारे जानेपर कौन-कौन-से वीर ठहर सके; यह मुझे बताओ ॥ ३५ ॥

कच्चिन्नैकः परित्यक्तः पाण्डवैर्निहतो रणे।
उक्तं त्वया पुरा तात यथा वीरो निपातितः ॥ ३६ ॥

तात ! कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि कर्णको अकेला छोड़ दिया गया हो और समस्त पाण्डवोंने मिलकर उसे मार डाला हो; क्योंकि तुम पहले बता चुके हो कि वीर कर्ण मारा गया ॥ ३६ ॥

भीष्ममप्रतियुद्ध्यन्तं शिखण्डी सायकोत्तमैः।
पातयामास समरे सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥ ३७ ॥

समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ भीष्म जब युद्ध नहीं कर रहे थे, उस दशामें शिखण्डीने अपने उत्तम बाणोंद्वारा उन्हें समराङ्गणमें मार गिराया ॥ ३७ ॥

तथा द्रौपदिना द्रोणो न्यस्तसर्वायुधो युधि।
युक्तयोगो महेष्वासः शरैर्बहुभिराचितः ॥ ३८ ॥
निहतः खड्गमुद्यम्य धृष्टद्युम्नेन संजय।
अन्तरेण हतावेतौ छलेन च विशेषतः ॥ ३९ ॥

इसी प्रकार जब महाधनुर्धर द्रोणाचार्य युद्धस्थलमें अपने सारे अस्त्र-शस्त्रोंको नीचे डालकर ब्रह्मका ध्यान लगाये हुए बैठे थे, उस अवस्थामें द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्नने उन्हें बहुसंख्यक बाणोंसे ढक दिया और तलवार उठाकर उनका सिर काट लिया। संजय! इस प्रकार ये दोनों वीर छिद्र मिल जानेसे विशेषतः छलपूर्वक मारे गये ॥ ३८-३९ ॥

अश्रौषमहमेतद् वै भीष्मद्रोणौ निपातितौ।
भीष्मद्रोणौ हि समरे न हन्याद् वज्रभृत् स्वयम्॥४०॥
न्यायेन युध्यमानौ हि तद् वै सत्यं ब्रवीमि ते।

मैंने यह समाचार भी सुना था कि भीष्म और द्रोणाचार्य मार गिराये गये, परंतु मैं तुमसे यह सच्ची बात कहता हूँ कि ये भीष्म और द्रोण यदि समरभूमिमें न्यायपूर्वक युद्ध करते होते तो इन्हें साक्षात् वज्रधारी इन्द्र भी नहीं मार सकते थे ॥ ४०½ ॥

कर्णं त्वस्यन्तमस्त्राणि दिव्यानि च बहूनि च ॥ ४१ ॥
कथमिन्द्रोपमं वीरं मृत्युर्युद्धे समस्पृशत्।

मैं पूछता हूँ कि युद्धमें बहुत-से दिव्यास्त्रोंकी वर्षा करते हुए इन्द्रके समान पराक्रमी वीर कर्णको मृत्यु कैसे छू सकी? ॥

यस्य विद्युत्प्रभां शक्तिं दिव्यां कनकभूषणाम् ॥ ४२ ॥
प्रायच्छद् द्विषतां हन्त्रीं कुण्डलाभ्यां पुरंदरः।
यस्य सर्पमुखो दिव्यः शरः काञ्चनभूषणः ॥ ४३ ॥
अशेत निशितः पत्री समरेष्वरिसूदनः।
भीष्मद्रोणमुखान् वीरान् योऽवमन्ये महारथान्॥४४॥
जामदग्न्यान्महाघोरं ब्राह्ममस्त्रमशिक्षत।
यश्च द्रोणमुखान् दृष्ट्वा विमुखानर्दिताञ्शरैः ॥ ४५ ॥
सौभद्रस्य महाबाहुर्व्यधमत् कार्मुकं शितैः।
यश्च नागायुतप्राणं वज्ररंहसमच्युतम् ॥ ४६ ॥
विरथं सहसा कृत्वा भीमसेनमथाहसत्।
सहदेवं च निर्जित्य शरैः संनतपर्वभिः ॥ ४७ ॥
कृपया विरथं कृत्वा नाहनद् धर्मचिन्तया।
यश्च मायासहस्राणि विकुर्वाणं जयैषिणम् ॥ ४८ ॥
घटोत्कचं राक्षसेन्द्रं शक्रशक्त्या निजघ्निवान्।
एतांश्च दिवसान् यस्य युद्धे भीतो धनंजयः ॥ ४९ ॥
नागमद् द्वैरथं वीरः स कथं निहतो रणे।

जिसे देवराज इन्द्रने दो कुण्डलोंके बदलेमें विद्युत्के समान प्रकाशित होनेवाली तथा शत्रुओंका नाश करनेमें समर्थ सुवर्ण-भूषित दिव्य शक्ति प्रदान की थी, जिसके तूणीरमें सर्पके समान मुखवाला दिव्य, सुवर्णभूषित, कङ्कपत्रयुक्त एवं युद्धमें शत्रु-संहारक तीखा बाण सदा शयन करता था, जो भीष्म-द्रोण आदि महारथी वीरोंकी भी अवहेलना करता था, जिसने जमदग्निनन्दन परशुरामजीसे अत्यन्त घोर ब्रह्मास्त्रकी शिक्षा पायी थी और जिस महाबाहु वीरने सुभद्राकुमारके बाणोंसे पीड़ित हुए द्रोणाचार्य आदिको युद्धसे विमुख हुआ देख अपने तीखे बाणोंसे उसका धनुष काट डाला था, जिसने दस हजार हाथियोंके समान बलशाली, वज्रके समान तीव्र वेग-वाले, अपराजित वीर भीमसेनको सहसा रथहीन करके उनकी हँसी उड़ायी थी, जिसने सहदेवको जीतकर झुकी हुई गाँठ-वाले बाणोंद्वारा उन्हें रथहीन करके भी धर्मके विचारसे दयावश उनके प्राण नहीं लिये; जिसने सहस्रों मायाओंकी सृष्टि करनेवाले विजयाभिलाषी राक्षसराज घटोत्कचको इन्द्रकी दी हुई शक्तिसे मार डाला तथा इतने दिनोंतक अर्जुन जिससे भयभीत होकर उसके साथ द्वैरथ-युद्धमें सम्मिलित नहीं हो सके, वही वीर कर्ण रणभूमिमें मारा कैसे गया? ॥ ४२–४९½ ॥

संशप्तकानां योधा ये आह्वयन्त सदान्यतः ॥ ५० ॥
एतान् हत्वा हनिष्यामि पश्चाद् वैकर्तनं रणे।
इति व्यपदिशन् पार्थो वर्जयन् सूतजं रणे ॥ ५१ ॥
स कथं निहतो वीरः पार्थेन परवीरहा।

'संशप्तकोंमेंसे जो योद्धा सदा मुझे दूसरी ओर युद्धके लिये बुलाया करते हैं, इन्हें पहले मारकर पीछे वैकर्तन कर्णका रणभूमिमें वध करूँगा।' ऐसा बहाना बनाकर अर्जुन जिस सूतपुत्रको युद्धस्थलमें छोड़ दिया करते थे, उसी शत्रुवीरोंके संहारक वीरवर कर्णको अर्जुनने किस प्रकार मारा? ॥ ५०-५१½ ॥

रथभङ्गो न चेत् तस्य धनुर्वा न व्यशीर्यत ॥ ५२ ॥
न चेदस्त्राणि निर्णेशुः स कथं निहतः परैः।

यदि उसका रथ नहीं टूट गया था, धनुषके टुकड़े-टुकड़े नहीं हो गये थे और अस्त्र नहीं नष्ट हुए थे, तब शत्रुओं-ने उसे किस प्रकार मार दिया? ॥ ५२½ ॥

को हि शक्तो रणे कर्णं विधुन्वानं महद् धनुः॥ ५३ ॥
विमुञ्चन्तं शरान् घोरान् दिव्यान्यस्त्राणि चाहवे।
जेतुं पुरुषशार्दूलं शार्दूलमिव वेगिनम् ॥ ५४ ॥

सिंहके समान वेगशाली पुरुषसिंह कर्ण जब अपना विशाल धनुष कँपाता हुआ युद्धस्थलमें दिव्यास्त्र तथा भयंकर बाण छोड़ रहा हो, उस समय उसे कौन जीत सकता था? ॥ ५३-५४ ॥

ध्रुवं तस्य धनुश्छिन्नं रथो वापि महीं गतः।
अस्त्राणि वा प्रणष्टानि यथा शंससि मे हतम्॥ ५५ ॥

निश्चय ही उसका धनुष कट गया होगा या रथ धरतीमें धँस गया होगा अथवा उसके अस्त्र नष्ट हो गये होंगे, तभी जैसा कि तुम मुझे बता रहे हो, वह मारा गया होगा ॥ ५५ ॥

न ह्यन्यदपि पश्यामि कारणं तस्य नाशने।
न हन्मि फाल्गुनं यावत् तावत् पादौ न धावये॥५६॥
इति यस्य महाघोरं व्रतमासीन्महात्मनः।

उसके नष्ट होनेमें और कोई कारण मुझे नहीं दिखायी देता है, जिस महामना वीरका यह भयंकर व्रत था कि 'मैं जबतक अर्जुनको मार नहीं लूँगा, तबतक दूसरोंसे अपने पैर नहीं धुलाऊँगा' ॥ ५६½ ॥

यस्य भीतो रणे निद्रां धर्मराजो युधिष्ठिरः॥ ५७ ॥
त्रयोदश समा नित्यं नाभजत् पुरुषर्षभः।
यस्य वीर्यवतो वीर्यमुपाश्रित्य महात्मनः॥ ५८ ॥
मम पुत्रः सभां भार्यां पाण्डूनां नीतवान् बलात्।
तत्रापि च सभामध्ये पाण्डवानां च पश्यताम्॥ ५९ ॥
दासभार्येति पाञ्चालीमब्रवीत् कुरुसंनिधौ।
न सन्ति पतयः कृष्णे सर्वे षण्ढतिलैः समाः॥ ६० ॥
उपतिष्ठस्व भर्तारमन्यं वा वरवर्णिनि।
इत्येवं यः पुरा वाचो रूक्षाश्चाश्रावयद् रुषा॥ ६१ ॥
सभायां सूतजः कृष्णां स कथं निहतः परैः।

रणभूमिमें जिसके भयसे डरे हुए पुरुषशिरोमणि धर्मराज युधिष्ठिरने तेरह वर्षोंतक कभी अच्छी तरह नींद नहीं ली, जिस महामनस्वी बलवान् सूतपुत्रके बलका भरोसा करके मेरा पुत्र दुर्योधन पाण्डवोंकी पत्नीको बलपूर्वक सभामें घसीट लाया और वहाँ भी भरी सभामें उसने पाण्डवोंके देखते-देखते समस्त कुरुवंशियोंके समीप पाञ्चालराजकुमारीको दासपत्नी बतलाया, साथ ही जिसने उसे सम्बोधित करके कहा— 'कृष्णे ! तेरे पति अब नहींके बराबर हैं। ये सभी थोथे तिलोंके समान नपुंसक हो गये हैं। सुन्दरि ! अब तू दूसरे किसी पतिका आश्रय ले' पूर्वकालमें जिस सूतपुत्रने सभामें रोषपूर्वक द्रौपदीको ये कठोर बातें सुनायी थीं, वह स्वयं शत्रुओंद्वारा कैसे मारा गया ? ॥ ५७—६१½ ॥

यदि भीष्मो रणश्लाघी द्रोणो वा युधि दुर्मदः॥६२॥
न हनिष्यति कौन्तेयान् पक्षपातात् सुयोधन।
सर्वानेव हनिष्यामि व्येतु ते मानसो ज्वरः॥ ६३ ॥

जिसने मेरे पुत्रसे कहा था कि 'दुर्योधन ! यदि युद्धकी श्लाघा रखनेवाले भीष्म अथवा रणदुर्मद द्रोणाचार्य पक्षपात करनेके कारण कुन्तीपुत्रोंको नहीं मारेंगे तो मैं उन सबको मार डालूँगा। तुम्हारी मानसिक चिन्ता दूर हो जानी चाहिये'॥

किं करिष्यति गाण्डीवमक्षय्यौ च महेषुधी।
स्निग्धचन्दनदिग्धस्य मच्छरस्याभिधावतः॥ ६४ ॥
स नूनमृषभस्कन्धो ह्यर्जुनेन कथं हतः।

'गाण्डीव धनुष अथवा दोनों अक्षय तरकस मेरे उस बाणका क्या कर लेंगे, जो चिकने चन्दनसे चर्चित हो शत्रुओंपर बड़े वेगसे धावा करता है' ऐसी बातें कहनेवाला कर्ण, जिसके कंधे बैलोंके समान हृष्ट-पुष्ट थे, निश्चय ही अर्जुनके हाथसे कैसे मारा गया ? ॥ ६४½ ॥

यश्च गाण्डीवमुक्तानां स्पर्शमुग्रमचिन्तयन्॥ ६५ ॥
अपतिर्ह्यसि कृष्णेति ब्रुवन् पार्थानवैक्षत।
यस्य नासीद् भयं पार्थैः सपुत्रैः सजनार्दनैः॥ ६६ ॥
स्वबाहुबलमाश्रित्य मुहूर्तमपि संजय।
तस्य नाहं वधं मन्ये देवैरपि सवासवैः॥ ६७ ॥
प्रतीपमभिधावद्भिः किं पुनस्तात पाण्डवैः।

संजय ! जिसने गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंके आघातकी तनिक भी परवा न करके 'कृष्णे ! अब तू पतिहीना हो गयी' ऐसा कहते हुए कुन्तीपुत्रोंकी ओर देखा था, जिसे अपने बाहुबलके भरोसे कभी दो घड़ीके लिये भी पुत्रोंसहित पाण्डवों और भगवान् श्रीकृष्णसे भी भय नहीं हुआ। तात ! यदि शत्रुपक्षकी ओरसे इन्द्र-सहित सम्पूर्ण देवता भी धावा करें तो उनके द्वारा भी कर्णके वध होनेका विश्वास मुझे नहीं हो सकता था, फिर पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है ? ॥ ६५—६७½ ॥

न हि ज्यां संस्पृशानस्य तलत्रे वापि गृह्णतः॥ ६८ ॥
पुमानाधिरथेः स्थातुं कश्चित् प्रमुखतोऽर्हति।
अपि स्यान्मेदिनी हीना सोमसूर्यप्रभांशुभिः॥ ६९ ॥
न वधः पुरुषेन्द्रस्य संयुगेष्वपलायिनः।

जब अधिरथपुत्र कर्ण अपने धनुषकी प्रत्यञ्चाका स्पर्श कर रहा हो अथवा दस्ताने पहन चुका हो, उस समय कोई पुरुष उसके सामने नहीं ठहर सकता था। सम्भव है यह पृथ्वी चन्द्रमा और सूर्यकी प्रकाशमयी किरणोंसे वञ्चित हो जाय, परंतु युद्धमें पीठ न दिखानेवाले पुरुषशिरोमणि कर्णके वधकी कदापि सम्भावना नहीं थी ॥ ६८—६९½ ॥

येन मन्दः सहायेन भ्रात्रा दुःशासनेन च॥ ७० ॥
वासुदेवस्य दुर्बुद्धिः प्रत्याख्यानमरोचत।
स नूनं वृषभस्कन्धं कर्णं दृष्ट्वा निपातितम्॥ ७१ ॥
दुःशासनं च निहतं मन्ये शोचति पुत्रकः।

जिस कर्ण और भाई दुःशासनको अपना सहायक पाकर मूर्ख एवं दुर्बुद्धि दुर्योधनने श्रीकृष्णके प्रस्तावको ठुकरा देना ही उचित समझा था, मैं समझता हूँ, आज बैलोंके समान पुष्ट कंधेवाले कर्णको गिरा हुआ तथा दुःशासनको भी मारा गया देख मेरा वह पुत्र निश्चय ही शोकमें मग्न हो गया होगा ॥ ७०-७१½ ॥

हतं वैकर्तनं श्रुत्वा द्वैरथे सव्यसाचिना ॥ ७२ ॥
जयतः पाण्डवान् दृष्ट्वा किंस्विद् दुर्योधनोऽब्रवीत्।

द्वैरथयुद्धमें सव्यसाची अर्जुनके हाथसे कर्णको मारा गया सुनकर और पाण्डवोंकी विजय होती देखकर दुर्योधनने क्या कहा था ? ॥ ७२½ ॥

दुर्मर्षणं हतं दृष्ट्वा वृषसेनं च संयुगे ॥ ७३ ॥
प्रभग्नं च बलं दृष्ट्वा वध्यमानं महारथैः।
पराङ्मुखांश्च राज्ञस्तु पलायनपरायणान् ॥ ७४ ॥
विद्रुतान् रथिनो दृष्ट्वा मन्ये शोचति पुत्रकः।

दुर्मर्षण और वृषसेन भी युद्धमें मारे गये, महारथी पाण्डवोंकी मार खाकर सेनामें भगदड़ मच गयी, सहायक नरेश युद्धसे विमुख हो पलायन करने लगे और रथियोंने पीठ दिखा दी। यह सब देखकर मेरा बेटा शोक कर रहा होगा; ऐसा मुझे मालूम हो रहा है ॥ ७३-७४½ ॥

अनेयश्चाभिमानी च दुर्बुद्धिरजितेन्द्रियः ॥ ७५ ॥
हतोत्साहं बलं दृष्ट्वा किंस्विद् दुर्योधनोऽब्रवीत्।

जो किसीकी सीख नहीं मानता है, जिसे अपनी विद्वत्ता और बुद्धिमत्ताका अभिमान है, उस दुर्बुद्धि, अजितेन्द्रिय दुर्योधनने अपनी सेनाको हतोत्साह देखकर क्या कहा ? ॥ ७५½ ॥

स्वयं वैरं महत् कृत्वा वार्यमाणः सुहृद्गणैः ॥ ७६ ॥
प्रधने हतभूयिष्ठैः किंस्विद् दुर्योधनोऽब्रवीत्।

हितैषी सुहृदोंके मना करनेपर भी पाण्डवोंके साथ स्वयं बड़ा भारी वैर ठानकर दुर्योधनने, जब संग्राममें उसके अधिकांश सैनिक मार डाले गये, तब क्या कहा ? ॥ ७६½ ॥

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा भीमसेनेन संयुगे ॥ ७७ ॥
रुधिरे पीयमाने च किंस्विद् दुर्योधनोऽब्रवीत्।

युद्धस्थलमें अपने भाई दुःशासनको भीमसेनके द्वारा मारा गया देख जब कि उसका रक्त पीया जा रहा था, दुर्योधनने क्या कहा ? ॥ ७७½ ॥

सह गान्धारराजेन सभायां यदभाषत ॥ ७८ ॥
कर्णोऽर्जुनं रणे हन्ता हते तस्मिन् किमब्रवीत्।

गान्धारराज शकुनिके साथ सभामें दुर्योधनने जो यह कहा था कि 'कर्ण अर्जुनको मार डालेगा', उसके विपरीत जब कर्ण स्वयं मारा गया तब उसने क्या कहा ? ॥ ७८½ ॥

द्यूतं कृत्वा पुरा हृष्टो वञ्चयित्वा च पाण्डवान् ॥ ७९ ॥
शकुनिः सौबलस्तात हते कर्णे किमब्रवीत्।

तात ! पहले द्यूतक्रीड़ाका आयोजन करके पाण्डवोंको ठग लेनेके बाद जिसे बड़ा हर्ष हुआ था, वह सुबलपुत्र शकुनि कर्णके मारे जानेपर क्या बोला ? ॥ ७९½ ॥

कृतवर्मा महेष्वासः सात्वतानां महारथः ॥ ८० ॥
हतं वैकर्तनं दृष्ट्वा हार्दिक्यः किमभाषत।

वैकर्तन कर्णको मारा गया देख सात्वतवंशके महाधनुर्धर महारथी हृदिकपुत्र कृतवर्माने क्या कहा ? ॥ ८०½ ॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या यस्य शिक्षामुपासते ॥ ८१ ॥
धनुर्वेदं चिकीर्षन्तो द्रोणपुत्रस्य धीमतः।
युवा रूपेण सम्पन्नो दर्शनीयो महायशाः ॥ ८२ ॥
अश्वत्थामा हते कर्णे किमभाषत संजय।

संजय ! धनुर्वेद प्राप्त करनेकी इच्छावाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जिस बुद्धिमान् द्रोणपुत्रके पास आकर शिक्षा ग्रहण करते हैं, जो सुन्दर रूपसे सम्पन्न, युवक, दर्शनीय तथा महायशस्वी है; उस अश्वत्थामाने कर्णके मारे जानेपर क्या कहा ? ॥ ८१-८२½ ॥

आचार्यो यो धनुर्वेदे गौतमो रथसत्तमः ॥ ८३ ॥
कृपः शारद्वतस्तात हते कर्णे किमब्रवीत्।

तात ! धनुर्वेदके आचार्य एवं रथियोंमें श्रेष्ठ, गौतमवंशी, शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्यने कर्णके मारे जानेपर क्या कहा ? ॥

मद्रराजो महेष्वासः शल्यः समितिशोभनः ॥ ८४ ॥
दृष्ट्वा विनिहतं कर्णं सारथ्ये रथिनां वरः।
किमभाषत वीरोऽसौ मद्राणामधिपो बली ॥ ८५ ॥

युद्धमें शोभा पानेवाले, रथियोंमें श्रेष्ठ, मद्रदेशके अधिपति, बलवान् वीर, महाधनुर्धर मद्रराज शल्यने अपने सारथित्वमें कर्णको मारा गया देखकर क्या कहा ? ॥

दृष्ट्वा विनिहतं सर्वे योधा वा रणदुर्जयाः।
ये च केचन राजानः पृथिव्यां योद्धुमागताः।
वैकर्तनं हतं दृष्ट्वा कान्यभाषन्त संजय ॥ ८६ ॥

संजय ! भूमण्डलके जो कोई भी नरेश युद्धके लिये आये थे, वे समस्त रणदुर्जय योद्धा वैकर्तन कर्णको मारा गया देखकर क्या बातें कर रहे थे ? ॥ ८६ ॥

द्रोणे तु निहते वीरे रथव्याघ्रे नरर्षभे।
के वा मुखमनीकानामासन् संजय भागशः ॥ ८७ ॥

संजय ! रथियोंमें सिंह नरश्रेष्ठ वीरवर द्रोणाचार्यके मारे जानेपर कौन-कौनसे वीर सेनाओंके मुख (अग्रभाग) की रक्षा करते रहे ? ॥ ८७ ॥

मद्रराजः कथं शल्यो नियुक्तो रथिनां वरः।
वैकर्तनस्य सारथ्ये तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ८८ ॥

संजय ! रथियोंमें श्रेष्ठ मद्रराज शल्यको कर्णके सारथिके कार्यमें कैसे नियुक्त किया गया ? यह मुझे बताओ ॥

केऽरक्षन् दक्षिणं चक्रं सूतपुत्रस्य युध्यतः।
वामं चक्रं ररक्षुर्वा के वा वीरस्य पृष्ठतः ॥ ८९ ॥

युद्ध करते समय भी वीर सूतपुत्रके दाहिने पहियेकी रक्षा कौन-कौन कर रहे थे ? अथवा उसके बायें पहिये या पृष्ठभागकी रक्षामें कौन-कौन वीर नियुक्त थे ? ॥ ८९ ॥

के कर्णं न जहुः शूराः के क्षुद्राः प्राद्रवंस्ततः ।
कथं च वः समेतानां हतः कर्णो महारथः ॥ ९० ॥

किन शूरवीरोंने कर्णका साथ नहीं छोड़ा ? और कौन-कौन-से नीच सैनिक वहाँसे भाग गये ? तुम सब लोग जब एक साथ होकर लड़ रहे थे, तब महारथी कर्ण कैसे मारा गया ?॥ ९० ॥

पाण्डवाश्च स्वयं शूराः प्रत्युदीयुर्महारथाः ।
सृजन्तः शरवर्षाणि वारिधारा इवाम्बुदाः ॥ ९१ ॥
स च सर्पमुखो दिव्यो महेषुप्रवरस्तदा ।
व्यर्थः कथं समभवत् तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ९२ ॥

संजय ! जिस समय शूरवीर महारथी पाण्डव पानीकी धारा बरसानेवाले बादलोंके समान स्वयं ही बाणोंकी वृष्टि करते हुए आगे बढ़ने लगे, उस समय महान् बाणोंमें सर्वश्रेष्ठ दिव्य सर्पमुख बाण व्यर्थ कैसे हो गया ? यह मुझे बताओ ॥ ९१-९२ ॥

मामकस्यास्य सैन्यस्य हतोत्सेधस्य संजय ।
अवशेषं न पश्यामि ककुदे मृदिते सति ॥ ९३ ॥

संजय ! मेरी इस सेनाका उत्कर्ष अथवा उत्साह नष्ट हो गया है । इसके प्रमुख वीर कर्णके मारे जानेपर अब यह बच सकेगी, ऐसा मुझे नहीं दिखायी देता है ॥ ९३ ॥

तौ हि वीरौ महेष्वासौ मदर्थे त्यक्तजीवितौ ।
भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा को न्वर्थो जीवितेन मे ॥९४॥

मेरे लिये प्राणोंका मोह छोड़ देनेवाले महाधनुर्धर वीर भीष्म और द्रोणाचार्य मारे गये, यह सुनकर मेरे जीवित रहनेका क्या प्रयोजन है ?॥ ९४॥

पुनः पुनर्न मृष्यामि हतं कर्णं च पाण्डवैः ।
यस्य बाह्वोर्बलं तुल्यं कुञ्जराणां शतं शतैः ॥ ९५ ॥

जिसकी भुजाओंमें दस हजार हाथियोंका बल था, वह कर्ण पाण्डवोंद्वारा मारा गया, यह बारंबार सुनकर मुझसे सहा नहीं जाता ॥ ९५ ॥

द्रोणे हते च यद् वृत्तं कौरवाणां परैः सह ।
संग्रामे नरवीराणां तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ९६ ॥

संजय ! द्रोणाचार्यके मारे जानेपर संग्राममें नरवीर कौरवोंका शत्रुओंके साथ जैसा बर्ताव हुआ, वह मुझे बताओ ॥ ९६ ॥

यथा कर्णश्च कौन्तेयैः सह युद्धमयोजयत् ।
यथा च द्विषतां हन्ता रणे शान्तस्तदुच्यताम्॥ ९७ ॥

शत्रुहन्ता कर्णने कुन्ती-पुत्रोंके साथ जिस प्रकार युद्धका आयोजन किया और जिस प्रकार वह रणभूमिमें शान्त हो गया, वह सारा वृत्तान्त मुझे बताओ ॥ ९७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि धृतराष्ट्रप्रश्ने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥
इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें धृतराष्ट्रका प्रश्नविषयक नवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

कर्णको सेनापति बनानेके लिये अश्वत्थामाका प्रस्ताव और सेनापतिके पदपर उसका अभिषेक

संजय उवाच

हते द्रोणे महेष्वासे तस्मिन्नहनि भारत ।
कृते च मोघसंकल्पे द्रोणपुत्रे महारथे ॥ १ ॥
द्रवमाणे महाराज कौरवाणां बलार्णवे ।
व्यूह्य पार्थः स्वकं सैन्यमतिष्ठद् भ्रातृभिर्वृतः ॥ २ ॥

संजयने कहा—भरतनन्दन महाराज ! उस दिन जब महाधनुर्धर द्रोणाचार्य मारे गये, महारथी द्रोणपुत्रका संकल्प व्यर्थ हो गया और समुद्रके समान विशाल कौरव-सेना भागने लगी, उस समय कुन्तीकुमार अर्जुन अपनी सेनाका व्यूह बनाकर अपने भाइयोंके साथ रणभूमिमें डटे रहे ॥ १-२ ॥

तमवस्थितमाज्ञाय पुत्रस्ते भरतर्षभ ।
विद्रुतं स्वबलं दृष्ट्वा पौरुषेण न्यवारयत् ॥ ३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उन्हें युद्धके लिये डटा हुआ जान आपके पुत्रने अपनी सेनाको भागती देख उसे पराक्रमपूर्वक रोका ॥ ३ ॥

स्वमनीकमवस्थाप्य बाहुवीर्यमुपाश्रितः ।
युद्ध्वा च सुचिरं कालं पाण्डवैः सह भारत॥ ४ ॥
लब्धलक्ष्यैः परैर्हृष्टैर्व्यायच्छद्भिश्चिरं तदा ।
संध्याकालं समासाद्य प्रत्याहारमकारयत् ॥ ५ ॥

भारत ! इस प्रकार अपनी सेनाको स्थापित करके, जिन्हें अपना लक्ष्य प्राप्त हो गया था और इसीलिये जो बड़े हर्षके साथ परिश्रमपूर्वक युद्ध कर रहे थे, उन विपक्षी पाण्डवोंके साथ दुर्योधनने अपने ही बाहुबलके भरोसे दीर्घकालतक युद्ध करके संध्याकाल आनेपर सैनिकोंको शिविरमें लौटनेकी आज्ञा दे दी ॥ ४-५ ॥

कृत्वावहारं सैन्यानां प्रविश्य शिबिरं स्वकम् ।
कुरवः सुहितं मन्त्रं मन्त्रयाञ्चक्रिरे मिथः ॥ ६ ॥

सेनाको लौटाकर अपने शिविरमें प्रवेश करनेके पश्चात् समस्त कौरव परस्पर अपने हितके लिये गुप्त मन्त्रणा करने लगे ॥ ६ ॥

पर्यङ्केषु परार्ध्येषु स्पर्ध्यास्तरणवत्सु च ।
वरासनेषूपविष्टाः सुखशय्यास्विवामराः ॥ ७ ॥

उस समय वे सब लोग बहुमूल्य बिछौनोंसे युक्त मूल्यवान्

पलंगों तथा श्रेष्ठ सिंहासनोंपर बैठे हुए थे, मानो देवता सुखद शय्याओंपर विराज रहे हों ॥ ७ ॥

ततो दुर्योधनो राजा साम्ना परमवल्गुना।
तानाभाष्य महेष्वासान् प्राप्तकालमभाषत ॥ ८ ॥
मतं मतिमतां श्रेष्ठाः सर्वे प्रब्रूत मा चिरम्।
एवं गते तु किं कार्यं किं च कार्यतरं नृपाः ॥ ९ ॥

उस समय राजा दुर्योधनने सान्त्वनापूर्ण परम मधुर वाणीद्वारा उन महाधनुर्धर नरेशोंको सम्बोधित करके यह समयोचित बात कही—'बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ नरेश्वरो ! तुम सब लोग शीघ्र बोलो, विलम्ब न करो, इस अवस्थामें हमलोगोंको क्या करना चाहिये और सबसे अधिक आवश्यक कर्तव्य क्या है ?' ॥ ८-९ ॥

संजय उवाच

एवमुक्ते नरेन्द्रेण नरसिंहा युयुत्सवः।
चक्रुर्नानाविधाश्चेष्टाः सिंहासनगतास्तदा ॥ १० ॥

संजय कहते हैं—राजा दुर्योधनके ऐसा कहनेपर वे सिंहासनपर बैठे हुए पुरुषसिंह नरेश युद्धकी इच्छासे नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करने लगे ॥ १० ॥

तेषां निशाम्येङ्गितानि युद्धे प्राणाञ्जुहूषताम्।
समुद्वीक्ष्य मुखं राज्ञो बालार्कसमवर्चसम् ॥ ११ ॥
आचार्यपुत्रो मेधावी वाक्यज्ञो वाक्यमाददे।

युद्धमें प्राणोंकी आहुति देनेकी इच्छा रखनेवाले उन नरेशोंकी चेष्टाएँ देखकर राजा दुर्योधनके प्रातःकालीन सूर्यके समान तेजस्वी मुखकी ओर दृष्टिपात करके वाक्यविशारद, मेधावी आचार्यपुत्र अश्वत्थामाने यह बात कही—॥ ११½ ॥

रागो योगस्तथा दाक्ष्यं नयश्चेत्यर्थसाधकाः ॥ १२ ॥
उपायाः पण्डितैः प्रोक्तास्ते तु दैवमुपाश्रिताः।

'विद्वानोंने अभीष्ट अर्थकी सिद्धि करानेवाले चार उपाय बताये हैं—राग (राजाके प्रति सैनिकोंकी भक्ति), योग (साधन-सम्पत्ति), दक्षता (उत्साह, बल एवं कौशल) तथा नीति; परंतु वे सभी दैवके अधीन हैं ॥

लोकप्रवीरा येऽस्माकं देवकल्पा महारथाः ॥ १३ ॥
नीतिमन्तस्तथा युक्ता दक्षा रक्ताश्च ते हताः।
न त्वेव कार्यं नैराश्यमस्माभिर्विजयं प्रति ॥ १४ ॥

'हमारे पक्षमें जो देवताओंके समान पराक्रमी, विश्वविख्यात महारथी वीर, नीतिमान्, साधनसम्पन्न, दक्ष और स्वामीके प्रति अनुरक्त थे, वे सब-के-सब मारे गये, तथापि हमें अपनी विजयके प्रति निराश नहीं होना चाहिये ॥ १३-१४ ॥

सुनीतैरिह सर्वार्थैर्दैवमप्यनुलोम्यते।
ते वयं प्रवरं नृणां सर्वैर्गुणगणैर्युतम् ॥ १५ ॥
कर्णमेवाभिषेक्ष्यामः सैनापत्येन भारत।
कर्णं सेनापतिं कृत्वा प्रमथिष्यामहे रिपून् ॥ १६ ॥

'यदि सारे कार्य उत्तम नीतिके अनुसार किये जायँ तो उनके द्वारा दैवको भी अनुकूल किया जा सकता है; अतः भारत ! हमलोग सर्वगुणसम्पन्न नरश्रेष्ठ कर्णका ही सेनापतिके पदपर अभिषेक करेंगे और इन्हें सेनापति बनाकर हमलोग शत्रुओंको मथ डालेंगे ॥ १५-१६ ॥

एष ह्यतिबलः शूरः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः।
वैवस्वत इवासह्यः शक्तो जेतुं रणे रिपून् ॥ १७ ॥

'ये अत्यन्त बलवान्, शूरवीर, अस्त्रोंके ज्ञाता, रणदुर्मद और सूर्यपुत्र यमराजके समान शत्रुओंके लिये असह्य हैं। इसलिये ये रणभूमिमें हमारे विपक्षियोंपर विजय पा सकते हैं'॥

एतदाचार्यतनयाच्छ्रुत्वा राजंस्तवात्मजः।
आशां बहुमतीं चक्रे कर्णं प्रति स वै तदा ॥ १८ ॥

राजन् ! उस समय आचार्यपुत्र अश्वत्थामाके मुखसे यह बात सुनकर आपके पुत्र दुर्योधनने कर्णके प्रति विशेष आशा बाँध ली ॥ १८ ॥

हते भीष्मे च द्रोणे च कर्णो जेष्यति पाण्डवान्।
तामाशां हृदये कृत्वा समाश्वस्य च भारत ॥ १९ ॥
ततो दुर्योधनः प्रीतः प्रियं श्रुत्वास्य तद् वचः।
प्रीतिसत्कारसंयुक्तं तथ्यमात्महितं शुभम् ॥ २० ॥
स्वं मनः समवस्थाप्य बाहुवीर्यमुपाश्रितः।
दुर्योधनो महाराज राधेयमिदमब्रवीत् ॥ २१ ॥

भरतनन्दन ! भीष्म और द्रोणाचार्यके मारे जानेपर कर्ण पाण्डवोंको जीत लेगा, इस आशाको हृदयमें रखकर दुर्योधनको बड़ी सान्त्वना मिली। महाराज ! वह अश्वत्थामाके उस प्रिय वचनको सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ। तत्पश्चात् अपने बाहुबलका आश्रय ले मनको सुस्थिर करके दुर्योधनने राधापुत्र कर्णसे बड़े प्रेम और सत्कारके साथ अपने लिये हितकर यथार्थ और मङ्गलकारक वचन इस प्रकार कहा—॥

कर्ण जानामि ते वीर्यं सौहृदं परमं मयि।
तथापि त्वां महाबाहो प्रवक्ष्यामि हितं वचः ॥ २२ ॥

'कर्ण ! मैं तुम्हारे पराक्रमको जानता हूँ और यह भी अनुभव करता हूँ कि मेरे प्रति तुम्हारा स्नेह बहुत अधिक है। महाबाहो ! तथापि मैं तुमसे अपने हितकी बात कहना चाहता हूँ ॥ २२ ॥

श्रुत्वा यथेष्टं च कुरु वीर यत् तव रोचते।
भवान् प्राज्ञतमो नित्यं मम चैव परा गतिः ॥ २३ ॥

'वीर ! मेरी यह बात सुनकर तुम अपनी इच्छाके अनुसार जो तुम्हें अच्छा लगे, वह करो। तुम बहुत बड़े बुद्धिमान् तो हो ही, सदाके लिये मेरे सबसे बड़े सहारे भी हो ॥ २३ ॥

भीष्मद्रोणावतिरथौ हतौ सेनापती मम।
सेनापतिर्भवानस्तु ताभ्यां द्रविणवत्तरः॥ २४॥

'मेरे दो सेनापति पितामह भीष्म और आचार्य द्रोण, जो अतिरथी वीर थे, युद्धमें मारे गये। अब तुम मेरे सेनानायक बनो; क्योंकि तुम उन दोनोंसे भी अधिक शक्तिशाली हो॥ २४॥

वृद्धौ च तौ महेष्वासौ सापेक्षौ च धनंजये।
मानितौ च मया वीरौ राधेय वचनात् तव॥ २५॥

'वे दोनों महाधनुर्धर होते हुए भी बूढ़े थे और अर्जुनके प्रति उनके मनमें पक्षपात था। राधानन्दन! मैंने तुम्हारे कहनेसे ही उन दोनों वीरोंको सेनापति बनाकर सम्मानित किया था॥ २५॥

पितामहत्वं सम्प्रेक्ष्य पाण्डुपुत्रा महारणे।
रक्षितास्तात भीष्मेण दिवसानि दशैव तु॥ २६॥

'तात! भीष्मने पितामहके नातेकी ओर दृष्टिपात करके उस महासमरमें दस दिनोंतक पाण्डवोंकी रक्षा की है॥२६॥

न्यस्तशस्त्रे च भवति हतो भीष्मः पितामहः।
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य फाल्गुनेन महाहवे॥ २७॥

'उन दिनों तुमने हथियार रख दिया था; इसलिये महासमरमें अर्जुनने शिखण्डीको आगे करके पितामह भीष्मको मार डाला था॥ २७॥

हते तस्मिन् महेष्वासे शरतल्पगते तथा।
त्वयोक्ते पुरुषव्याघ्र द्रोणो ह्यासीत् पुरःसरः॥ २८॥

'पुरुषसिंह! उन महाधनुर्धर भीष्मके घायल होकर बाण-शय्यापर सो जानेके बाद तुम्हारे कहनेसे ही द्रोणाचार्य हमारी सेनाके अगुआ बनाये गये थे॥ २८॥

तेनापि रक्षिताः पार्थाः शिष्यत्वादिति मे मतिः।
स चापि निहतो वृद्धो धृष्टद्युम्नेन सत्वरम्॥ २९॥

'मेरा विश्वास है कि उन्होंने भी अपना शिष्य समझकर कुन्तीके पुत्रोंकी रक्षा की है। वे बूढ़े आचार्य भी शीघ्र ही धृष्टद्युम्नके हाथसे मारे गये॥ २९॥

निहताभ्यां प्रधानाभ्यां ताभ्याममितविक्रम।
त्वत्समं समरे योधं नान्यं पश्यामि चिन्तयन्॥ ३०॥

'अमितपराक्रमी वीर! उन प्रधान सेनापतियोंके मारे जानेके पश्चात् मैं बहुत सोचनेपर भी समराङ्गणमें तुम्हारे समान दूसरे किसी योद्धाको नहीं देखता॥ ३०॥

भवानेव तु नः शक्तो विजयाय न संशयः।
पूर्वं मध्ये च पश्चाच्च तथैव विहितं हितम्॥ ३१॥

'हमलोगोंमेंसे तुम्हीं शत्रुओंपर विजय पानेमें समर्थ हो, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। तुमने पहले, बीचमें और पीछे भी हमारा हित ही किया है॥ ३१॥

स भवान् धुर्यवत् संख्ये धुरमुद्वोढुमर्हति।
अभिषेचय सैनान्ये स्वयमात्मानमात्मना॥ ३२॥

'तुम धुरन्धर पुरुषकी भाँति युद्धस्थलमें सेना-संचालन-का भार वहन करनेके योग्य हो; इसलिये स्वयं ही अपने आपको सेनापतिके पदपर अभिषिक्त कराओ॥ ३२॥

देवतानां यथा स्कन्दः सेनानीः प्रभुरव्ययः।
तथा भवानिमां सेनां धार्तराष्ट्रीं बिभर्तु वै॥ ३३॥

'जैसे अविनाशी भगवान् स्कन्द देवताओंकी सेनाका संचालन करते हैं, उसी प्रकार तुम भी धृतराष्ट्रपुत्रोंकी सेनाको अपनी अध्यक्षतामें ले लो॥ ३३॥

जहि शत्रुगणान् सर्वान् महेन्द्रो दानवानिव।
अवस्थितं रणे दृष्ट्वा पाण्डवास्त्वां महारथाः॥ ३४॥
द्रविष्यन्ति च पञ्चाला विष्णुं दृष्ट्वेव दानवाः।
तस्मात् त्वं पुरुषव्याघ्र प्रकर्षैतां महाचमूम्॥ ३५॥

'जैसे देवराज इन्द्रने दानवोंका संहार किया था, उसी प्रकार तुम भी समस्त शत्रुओंका वध करो। जैसे दानव भगवान् विष्णुको देखते ही भाग जाते हैं, उसी प्रकार पाण्डव तथा पाञ्चाल महारथी तुम्हें रणभूमिमें सेनापतिके रूपमें उपस्थित देखकर भाग खड़े होंगे; अतः पुरुषसिंह! तुम इस विशाल सेनाका संचालन करो॥ ३४–३५॥

भवत्यवस्थिते यत्ते पाण्डवा मन्दचेतसः।
द्रविष्यन्ति सहामात्याः पञ्चालाः सृंजयाश्च ह॥३६॥

'तुम्हारे सावधानीके साथ खड़े होते ही मूर्ख पाण्डव, पाञ्चाल और सृंजय अपने मन्त्रियोंसहित भाग जायँगे॥३६॥

यथा ह्यभ्युदितः सूर्यः प्रतपन् स्वेन तेजसा।
व्यपोहति तमस्तीव्रं तथा शत्रून् प्रतापय॥ ३७॥

'जैसे उदित हुआ सूर्य अपने तेजसे तपकर घोर अन्ध-कारको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार तुम भी शत्रुओंको संतप्त एवं नष्ट करो'॥ ३७॥

संजय उवाच

आशा बलवती राजन् पुत्रस्य तव याभवत्।
हते भीष्मे च द्रोणे च कर्णो जेष्यति पाण्डवान्।३८।
तामाशां हृदये कृत्वा कर्णमेवं तदाब्रवीत्।
सूतपुत्र न ते पार्थः स्थित्वाग्रे संयुयुत्सति॥ ३९॥

संजय कहते हैं—राजन्! आपके पुत्रके मनमें जो यह प्रबल आशा हो गयी थी कि भीष्म और द्रोणके मारे जानेपर कर्ण पाण्डवोंको जीत लेगा, वही आशा मनमें लेकर उस समय उसने कर्णसे इस प्रकार कहा—'सूतपुत्र! अर्जुन तुम्हारे सामने खड़े होकर कभी युद्ध करना नहीं चाहते हैं'॥ ३८-३९॥

कर्ण उवाच

उक्तमेतन्मया पूर्वं गान्धारे तव संनिधौ।
जेष्यामि पाण्डवान् सर्वान् सपुत्रान् सजनार्दनान्॥४०॥

कर्णने कहा—गान्धारीनन्दन! मैंने तुम्हारे समीप

पहले ही यह बात कह दी है कि मैं पाण्डवोंको, उनके पुत्रों और श्रीकृष्णके साथ ही परास्त कर दूँगा ॥ ४० ॥

सेनापतिर्भविष्यामि तवाहं नात्र संशयः।
स्थिरो भव महाराज जितान् विद्धि च पाण्डवान्॥४१॥

महाराज ! तुम धैर्य धारण करो । मैं तुम्हारा सेनापति बनूँगा, इसमें कोई संदेह नहीं है । अब पाण्डवोंको पराजित हुआ ही समझो ॥ ४१ ॥

संजय उवाच

एवमुक्तो महाराज ततो दुर्योधनो नृपः।
उत्तस्थौ राजभिः सार्धं देवैरिव शतक्रतुः ॥ ४२ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! कर्णके ऐसा कहनेपर राजा दुर्योधन अन्य सामन्त नरेशोंके साथ उसी प्रकार उठकर खड़ा हो गया, जैसे देवताओंके साथ इन्द्र खड़े होते हैं ॥ ४२ ॥

सैनापत्येन सत्कर्तुं कर्णं स्कन्दमिवामराः।
ततोऽभिषिषिचुः कर्णं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ४३ ॥
दुर्योधनमुखा राजन् राजानो विजयैषिणः।

जैसे देवताओंने स्कन्दको सेनापति बनाकर उनका सत्कार किया था, उसी प्रकार समस्त कौरव कर्णको सेनापति बनाकर उसका सत्कार करनेके लिये उद्यत हुए । राजन् ! विजयाभिलाषी दुर्योधन आदि राजाओंने शास्त्रोक्त विधिके द्वारा कर्णका अभिषेक किया ॥ ४३½ ॥



शातकुम्भमयैः कुम्भैर्माहेयैश्चाभिमन्त्रितैः ॥ ४४ ॥
तोयपूर्णैर्विषाणैश्च द्विपखड्गमहर्षभैः।
मणिमुक्तायुतैश्चान्यैः पुण्यगन्धैस्तथौषधैः ॥ ४५ ॥
औदुम्बरे सुखासीनमासने क्षौमसंवृते।
शास्त्रदृष्टेन विधिना सम्भारैश्च सुसम्भृतैः ॥ ४६ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्तथा शूद्राश्च सम्मताः।
तुष्टुवुस्तं महात्मानमभिषिक्तं वरासने ॥ ४७ ॥

अभिषेकके लिये सोने तथा मिट्टीके घड़ोंमें अभिमन्त्रित जल रक्खे गये थे । हाथीके दाँत तथा गैंडे और बैलके सींगोंके बने हुए पात्रोंमें भी पृथक्-पृथक् जल रक्खा गया था । उन पात्रोंमें मणि और मोती भी थे । अन्यान्य पवित्र गन्धशाली पदार्थ और औषध भी डाले गये थे । कर्ण गूलरकाठकी बनी हुई चौकीपर, जिसके ऊपर रेशमी कपड़ा बिछा हुआ था, सुखपूर्वक बैठा था । उस अवस्थामें शास्त्रीय विधिके अनुसार पूर्वोक्त सुसज्जित सामग्रियोंद्वारा ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों तथा सम्मानित शूद्रोंने उसका अभिषेक किया और अभिषेक हो जानेपर श्रेष्ठ आसनपर बैठे हुए महामना कर्णकी उन सब लोगोंने स्तुति की ॥ ४४–४७ ॥

ततोऽभिषिक्ते राजेन्द्र निष्कैर्गोभिर्धनेन च।
वाचयामास विप्राग्र्यान् राधेयः परवीरहा ॥ ४८ ॥

राजेन्द्र ! इस प्रकार अभिषेक-कार्य सम्पन्न हो जानेपर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले राधापुत्र कर्णने स्वर्णमुद्राएँ गौएँ तथा धन देकर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराया ॥

(स व्यरोचत राधेयः सूतमागधवन्दिभिः।
स्तूयमानो यथा भानुरुदये ब्रह्मवादिभिः ॥

उस समय सूत, मागध और वन्दीजनोंद्वारा की हुई अपनी स्तुति सुनता हुआ राधापुत्र कर्ण वेदवादी ब्राह्मणों-द्वारा अभिमन्त्रित उदयकालीन सूर्यके समान सुशोभित हो रहा था ॥

ततः पुण्याहघोषेण वादित्रनिनदेन च।
जयशब्देन शूराणां तुमुलः सर्वतोऽभवत् ॥
जयेत्यूचुर्नृपाः सर्वे राधेयं तत्र संगताः ॥)

तत्पश्चात् पुण्याहवाचनके शब्दसे, वाद्योंकी गंभीर ध्वनिसे तथा शूरवीरोंके जय-जयकारसे मिली-जुली हुई भयंकर आवाज वहाँ सब ओर गूँज उठी । उस स्थानपर एकत्र हुए सभी राजाओंने 'राधापुत्र कर्णकी जय' के नारे लगाये ॥

जय पार्थान् सगोविन्दान् सानुगांस्तान् महामृधे।
इति तं वन्दिनः प्राहुर्द्विजाश्च पुरुषर्षभम् ॥ ४९ ॥
जहि पार्थान् सपाञ्चालान् राधेय विजयाय नः।
उद्यन्निव सदा भानुस्तमांस्युग्रैर्गभस्तिभिः ॥ ५० ॥

वन्दीजनों तथा ब्राह्मणोंने उस समय पुरुषशिरोमणि कर्णको आशीर्वाद देते हुए कहा—'राधापुत्र ! तुम कुन्तीके पुत्रोंको, उनके सेवकों तथा श्रीकृष्णके साथ महासमरमें जीत लो और हमारी विजयके लिये कुन्तीकुमारोंको पाञ्चालों-सहित मार डालो । ठीक उसी तरह, जैसे सूर्य अपनी उग्र किरणोंद्वारा सदा उदय होते ही अन्धकारका विनाश कर देता है ॥ ४९-५० ॥

न ह्यलं त्वद्विसृष्टानां शराणां वै सकेशवाः।
उलूकाः सूर्यरश्मीनां ज्वलतामिव दर्शने ॥ ५१ ॥

'जैसे उल्लू सूर्यकी प्रज्वलित किरणोंकी ओर देखनेमें असमर्थ होते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे छोड़े हुए बाणोंकी ओर श्रीकृष्णसहित समस्त पाण्डव नहीं देख सकते ॥ ५१ ॥

न हि पार्थाः सपाञ्चालाः स्थातुं शक्तास्तवाग्रतः ।
आत्तशस्त्रस्य समरे महेन्द्रस्येव दानवाः ॥ ५२ ॥

'जैसे हाथमें वज्र लिये हुए इन्द्रके सामने दानव नहीं खड़े हो सकते, उसी प्रकार समराङ्गणमें तुम्हारे सामने पाञ्चाल और पाण्डव नहीं टहर सकते हैं' ॥ ५२ ॥

अभिषिक्तस्तु राधेयः प्रभया सोऽमितप्रभः ।
अत्यरिच्यत रूपेण दिवाकर इवापरः ॥ ५३ ॥

राजन् ! इस प्रकार अभिषेकसम्पन्न हो जानेपर अमिततेजस्वी राधापुत्र कर्ण अपनी प्रभा तथा रूपसे दूसरे सूर्यके समान अधिक प्रकाशित होने लगा ॥ ५३ ॥

सैनापत्ये तु राधेयमभिषिच्य सुतस्तव ।
अमन्यत तदाऽऽत्मानं कृतार्थं कालचोदितः ॥ ५४ ॥

कालसे प्रेरित हुआ आपका पुत्र दुर्योधन राधाकुमार कर्णको सेनापतिके पदपर अभिषिक्त करके अपने आपको कृतकृत्य मानने लगा ॥ ५४ ॥

कर्णोऽपि राजन् सम्प्राप्य सैनापत्यमरिंदमः ।
योगमाज्ञापयामास सूर्यस्योदयनं प्रति ॥ ५५ ॥

राजन् ! शत्रुदमन कर्णने भी सेनापतिका पद प्राप्त करके सूर्योदयके समय सेनाको युद्धके लिये तैयार होनेकी आज्ञा दे दी ॥

तव पुत्रैर्वृतः कर्णः शुशुभे तत्र भारत ।
देवैरिव यथा स्कन्दः संग्रामे तारकामये ॥ ५६ ॥

भारत ! वहाँ आपके पुत्रोंसे घिरा हुआ कर्ण तारकामय संग्राममें देवताओंसे घिरे हुए स्कन्दके समान सुशोभित हो रहा था ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णाभिषेके दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्णका अभिषेकविषयक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २½ श्लोक मिलाकर कुल ५८½ श्लोक हैं)

एकादशोऽध्यायः

कर्णके सेनापतित्वमें कौरव-सेनाका युद्धके लिये प्रस्थान और मकरव्यूहका निर्माण तथा पाण्डवसेनाके अर्धचन्द्राकार व्यूहकी रचना और युद्धका आरम्भ

धृतराष्ट्र उवाच

सैनापत्यं तु सम्प्राप्य कर्णो वैकर्तनस्तदा ।
तथोक्तश्च स्वयं राज्ञा स्निग्धं भ्रातृसमं वचः ॥ १ ॥
योगमाज्ञाप्य सेनानामादित्येऽभ्युदिते तदा ।
अकरोत् किं महाप्राज्ञस्तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ २ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! सेनापतिका पद पाकर जब परम बुद्धिमान् वैकर्तन कर्ण युद्धके लिये तैयार हुआ और जब स्वयं राजा दुर्योधनने उससे भाईके समान स्नेहपूर्ण वचन कहा, उस समय सूर्योदयकालमें सेनाको युद्धके लिये तैयार होनेकी आज्ञा देकर उसने क्या किया ? यह मुझे बताओ ॥ १-२ ॥

संजय उवाच

कर्णस्य मतमाज्ञाय पुत्रास्ते भरतर्षभ ।
योगमाज्ञापयामासुर्नन्दितूर्यपुरःसरम् ॥ ३ ॥

संजयने कहा—भरतश्रेष्ठ ! कर्णका मत जानकर आपके पुत्रोंने आनन्दमय वाद्योंके साथ सेनाको तैयार होनेका आदेश दिया ॥ ३ ॥

महत्यपररात्रे च तव सैन्यस्य मारिष ।
योगो योगेति सहसा प्रादुरासीन्महास्वनः ॥ ४ ॥

माननीय नरेश ! अत्यन्त प्रातःकालसे ही आपकी सेनामें सहसा 'तैयार हो जाओ, तैयार हो जाओ' का शब्द गूँज उठा॥

कल्प्यतां नागमुख्यानां रथानां च वरूथिनाम् ।
संनह्यतां नराणां च वाजिनां च विशाम्पते ॥ ५ ॥
क्रोशतां चैव योधानां त्वरितानां परस्परम् ।
बभूव तुमुलः शब्दो दिवस्पृक् सुमहांस्ततः ॥ ६ ॥

प्रजानाथ ! सजाये जाते हुए बड़े-बड़े गजराजों, आवरण-युक्त रथों, कवच धारण करते हुए मनुष्यों, कसे जाते हुए घोड़ों तथा उतावलीपूर्वक एक दूसरेको पुकारते हुए योद्धाओं-का महान् तुमुल-नाद आकाशमें बहुत ऊँचेतक गूँज रहा था॥

ततः श्वेतपताकेन बलाकावर्णवाजिना ।
हेमपृष्ठेन धनुषा नागकक्ष्येण केतुना ॥ ७ ॥
तूणीरशतपूर्णेन सगदेन वरूथिना ।
शतघ्नीकिंकिणीशक्तिशूलतोमरधारिणा ॥ ८ ॥
कार्मुकैरुपपन्नेन विमलादित्यवर्चसा ।
रथेनाभिपताकेन सूतपुत्रोऽभ्यदृश्यत ॥ ९ ॥

तदनन्तर सूतपुत्र कर्ण निर्मल सूर्यके समान तेजस्वी और सब ओरसे पताकाओंद्वारा सुशोभित रथके द्वारा रणयात्राके लिये उद्यत दिखायी दिया। उस रथमें श्वेत पताका फहरा रही थी। बगुलोंके समान सफेद रंगके घोड़े जुते हुए थे। उस-पर एक ऐसा धनुष रक्खा हुआ था, जिसके पृष्ठभागपर सोना मढ़ा गया था। उस रथकी पताकापर हाथीके रस्सेका चिह्न बना हुआ था। उसमें गदाके साथ ही सैकड़ों तरकस रक्खे गये थे। रथकी रक्षाके लिये ऊपरसे आवरण लगाया गया था। उसमें शतघ्नी, किंकिणी, शक्ति, शूल और तोमर सञ्चित करके रक्खे गये थे तथा वह रथ अनेक धनुषोंसे सम्पन्न था ॥७–९॥

ध्मापयन् वारिजं राजन् हेमजालविभूषितम् ।
विधुन्वानो महच्चापं कार्तस्वरविभूषितम् ॥ १० ॥

राजन् ! कर्ण सोनेकी जालियोंसे विभूषित शङ्खको बजाता हुआ अपने सुवर्णसज्जित विशाल धनुषकी टङ्कार कर रहा था॥

दृष्ट्वा कर्णं महेष्वासं रथस्थं रथिनां वरम् ।
भानुमन्तमिवोद्यन्तं तमो घ्नन्तं दुरासदम् ॥ ११ ॥
न भीष्मव्यसनं केचिन्नापि द्रोणस्य मारिष ।
नान्येषां पुरुषव्याघ्र मेनिरे तत्र कौरवाः ॥ १२ ॥

पुरुषसिंह ! माननीय नरेश ! रथियोंमें श्रेष्ठ महाधनुर्धर दुर्जय वीर कर्ण रथपर बैठकर उदयकालीन सूर्यके समान तम (दुःख या अन्धकार) का निवारण कर रहा था । उसे देखकर कोई भी कौरव भीष्म, द्रोण तथा दूसरे महारथियोंके मारे जानेके दुःखको कुछ नहीं समझते थे ॥ ११-१२ ॥

ततस्तु त्वरयन् योधाञ्शङ्खशब्देन मारिष ।
कर्णो निष्कर्षयामास कौरवाणां महद् बलम् ॥ १३ ॥

मान्यवर ! तदनन्तर शङ्खध्वनिके द्वारा योद्धाओंको जल्दी करनेका आदेश देते हुए कर्णने कौरवोंकी विशाल वाहिनीको शिबिरोंसे बाहर निकाला ॥ १३ ॥

व्यूहं व्यूह्य महेष्वासो मकरं शत्रुतापनः ।
प्रत्युद्ययौ तथा कर्णः पाण्डवान् विजिगीषया ॥ १४ ॥

तत्पश्चात् शत्रुओंको संताप देनेवाला महाधनुर्धर कर्ण पाण्डवोंको जीत लेनेकी इच्छासे अपनी सेनाका मकर-व्यूह बनाकर आगे बढ़ा ॥ १४ ॥

मकरस्य तु तुण्डे वै कर्णो राजन् व्यवस्थितः ।
नेत्राभ्यां शकुनिः शूर उलूकश्च महारथः ॥ १५ ॥

राजन् ! उस मकरव्यूहके मुखभागमें स्वयं कर्ण खड़ा हुआ, नेत्रोंके स्थानमें शूरवीर शकुनि तथा महारथी उलूक खड़े किये गये ॥ १५ ॥

द्रोणपुत्रस्तु शिरसि ग्रीवायां सर्वसोदराः ।
मध्ये दुर्योधनो राजा बलेन महता वृतः ॥ १६ ॥

शीर्षस्थानमें द्रोणकुमार अश्वत्थामा और ग्रीवाभागमें दुर्योधनके समस्त भाई स्थित हुए । मध्यस्थान (कटिप्रदेश) में विशाल सेनासे घिरा हुआ राजा दुर्योधन खड़ा हुआ ॥

वामपादे तु राजेन्द्र कृतवर्मा व्यवस्थितः ।
नारायणबलैर्युक्तो गोपालैर्युद्धदुर्मदैः ॥ १७ ॥

राजेन्द्र ! उस मकरव्यूहके बायें पैरकी जगह नारायणी सेनाके रणदुर्मद गोपालोंके साथ कृतवर्मा खड़ा किया गया था॥

पादे तु दक्षिणे राजन् गौतमः सत्यविक्रमः ।
त्रिगर्तैः सुमहेष्वासैर्दाक्षिणात्यैश्च संवृतः ॥ १८ ॥

राजन् ! व्यूहके दाहिने पैरके स्थानमें महाधनुर्धर त्रिगर्तों और दाक्षिणात्योंसे घिरे हुए सत्यपराक्रमी कृपाचार्य खड़े थे ॥

अनुपादे तु यो वामस्तत्र शल्यो व्यवस्थितः ।
महत्या सेनया सार्धं मद्रदेशसमुत्थया ॥ १९ ॥

बायें पैरके पिछले भागमें मद्रदेशकी विशाल सेनाके साथ स्वयं राजा शल्य उपस्थित थे ॥ १९ ॥

दक्षिणे तु महाराज सुषेणः सत्यसंगरः ।
वृतो रथसहस्रेण दन्तिनां च त्रिभिः शतैः ॥ २० ॥

महाराज ! दाहिने पैरके पिछले भागमें एक सहस्र रथियों और तीन सौ हाथियोंसे घिरे हुए सत्यप्रतिज्ञ सुषेण खड़े किये गये ॥ २० ॥

पुच्छे ह्यास्तां महावीर्यौ भ्रातरौ पार्थिवौ तदा ।
चित्रश्च चित्रसेनश्च महत्या सेनया वृतौ ॥ २१ ॥

व्यूहके पुच्छभागमें महापराक्रमी दोनों भाई राजा चित्र और चित्रसेन अपनी विशाल सेनाके साथ उपस्थित हुए ॥

तथा प्रयाते राजेन्द्र कर्णे नरवरोत्तमे ।
धनंजयमभिप्रेक्ष्य धर्मराजोऽब्रवीदिदम् ॥ २२ ॥

राजेन्द्र ! मनुष्योंमें श्रेष्ठ कर्णके इस प्रकार यात्रा करनेपर धर्मराज युधिष्ठिरने अर्जुनकी ओर देखकर इस प्रकार कहा—॥

पश्य पार्थ यथा सेना धार्तराष्ट्रीह संयुगे ।
कर्णेन विहिता वीर गुप्ता वीरैर्महारथैः ॥ २३ ॥

'वीर पार्थ ! देखो, इस समय युद्धस्थलमें धृतराष्ट्रपुत्रोंकी सेना कैसी स्थितिमें है ? कर्णने वीर महारथियोंद्वारा इसे किस प्रकार सुरक्षित कर दिया है ? ॥ २३ ॥

हतवीरतमा ह्येषा धार्तराष्ट्री महाचमूः ।
फल्गुशेषा महाबाहो तृणैस्तुल्या मता मम ॥ २४ ॥

'महाबाहो ! कौरवोंकी इस विशाल सेनाके प्रमुख वीर तो मारे जा चुके हैं । अब इसके तुच्छ सैनिक ही शेष रह गये हैं । इस समय तो यह मुझे तिनकोंके समान जान पड़ती है॥

एको ह्यत्र महेष्वासः सूतपुत्रो विराजते ।
सदेवासुरगन्धर्वैः सकिन्नरमहोरगैः ॥ २५ ॥
चराचरैस्त्रिभिर्लोकैर्योऽजय्यो रथिनां वरः ।
तं हत्वाद्य महाबाहो विजयस्तव फाल्गुन ॥ २६ ॥
उद्धृतश्च भवेच्छल्यो मम द्वादशवार्षिकः ।
एवं ज्ञात्वा महाबाहो व्यूहं व्यूह यथेच्छसि ॥ २७ ॥

'इस सेनामें एकमात्र महाधनुर्धर सूतपुत्र कर्ण विराजमान है, जो रथियोंमें श्रेष्ठ है तथा जिसे देवता, असुर, गन्धर्व, किन्नर, बड़े-बड़े नाग एवं चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंके लोग मिलकर भी नहीं जीत सकते । महाबाहु फाल्गुन ! आज उसी कर्णको मारकर तुम्हारी विजय होगी और मेरे हृदयमें बारह वर्षोंसे जो सेल कसक रहा है, वह निकल जायगा । महाबाहो ! ऐसा जानकर तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसे व्यूहकी रचना करो' ॥ २५—२७ ॥

भ्रातुरेतद् वचः श्रुत्वा पाण्डवः श्वेतवाहनः ।
अर्धचन्द्रेण व्यूहेन प्रत्यव्यूहत तां चमूम् ॥ २८ ॥

भाईकी यह बात सुनकर श्वेतवाहन पाण्डुपुत्र अर्जुनने इस कौरव-सेनाके मुकाबलेमें अपनी सेनाके अर्द्धचन्द्राकार व्यूहकी रचना की ॥ २८ ॥

वामपार्श्वे तु तस्याथ भीमसेनो व्यवस्थितः ।

दक्षिणे च महेष्वासो धृष्टद्युम्नो व्यवस्थितः ॥ २९ ॥
मध्ये व्यूहस्य राजा तु पाण्डवश्च धनंजयः ।
नकुलः सहदेवश्च धर्मराजस्य पृष्ठतः ॥ ३० ॥

उस व्यूहके वाम पार्श्वमें भीमसेन और दाहिने पार्श्वमें महाधनुर्धर धृष्टद्युम्न खड़े हुए। उसके मध्यभागमें राजा युधिष्ठिर और पाण्डुपुत्र धनंजय खड़े थे। धर्मराजके पृष्ठभागमें नकुल और सहदेव थे ॥ २९-३० ॥

चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ ।
नार्जुनं जहतुर्युद्धे पाल्यमानौ किरीटिना ॥ ३१ ॥

पाञ्चाल महारथी युधामन्यु और उत्तमौजा अर्जुनके चक्ररक्षक थे। किरीटधारी अर्जुनसे सुरक्षित होकर उन दोनोंने युद्धमें कभी उनका साथ नहीं छोड़ा ॥ ३१ ॥

शेषा नृपतयो वीराः स्थिता व्यूहस्य दंशिताः ।
यथाभागं यथोत्साहं यथायत्नं च भारत ॥ ३२ ॥

भारत ! शेष वीर नरेश कवच धारण करके व्यूहके विभिन्न भागोंमें अपने उत्साह और प्रयत्नके अनुसार खड़े हुए थे ॥

एवमेतन्महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः ।
तावकाश्च महेष्वासा युद्धायैव मनो दधुः ॥ ३३ ॥

भरतनन्दन ! इस प्रकार इस महाव्यूहकी रचना करके पाण्डवों तथा आपके महाधनुर्धरोंने युद्धमें ही मन लगाया ॥

दृष्ट्वा व्यूढां तव चमूं सूतपुत्रेण संयुगे ।
निहतान् पाण्डवान् मेने धार्तराष्ट्रः सबान्धवः ॥ ३४ ॥

युद्धस्थलमें सूतपुत्र कर्णके द्वारा व्यूह-रचनापूर्वक खड़ी की गयी आपकी सेनाको देखकर भाइयोंसहित दुर्योधनने यह मान लिया कि 'अब तो पाण्डव मारे गये' ॥ ३४ ॥

तथैव पाण्डवीं सेनां व्यूढां दृष्ट्वा युधिष्ठिरः ।
धार्तराष्ट्रान् हतान् मेने सकर्णान् वै जनाधिपः॥ ३५ ॥

उसी प्रकार पाण्डवसेनाका व्यूह देखकर राजा युधिष्ठिरने भी कर्णसहित आपके सभी पुत्रोंको मारा गया ही समझ लिया ॥

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकदुन्दुभिः ।
डिण्डिमाश्चाप्यहन्यन्त झर्झराश्च समन्ततः ॥ ३६ ॥
सेनयोरुभयो राजन् प्रावाद्यन्त महास्वनाः ।
सिंहनादश्च संजज्ञे शूराणां जयगृद्धिनाम् ॥ ३७ ॥

राजन् ! तदनन्तर दोनों सेनाओंमें चारों ओर महान् शब्द करनेवाले शङ्ख, भेरी, पणव, आनक, दुन्दुभि और झाँझ आदि बाजे बज उठे। नगाड़े पीटे जाने लगे। साथ ही विजयकी अभिलाषा रखनेवाले शूरवीरोंका सिंहनाद भी होने लगा ॥ ३६-३७ ॥

हयहेषितशब्दाश्च वारणानां च बृंहताम् ।
रथनेमिस्वनाश्चोग्राः सम्बभूवुर्जनाधिप ॥ ३८ ॥

जनेश्वर ! घोड़ोंके हींसने, हाथियोंके चिग्घाड़ने तथा रथके पहियोंके घरघरानेके भयंकर शब्द प्रकट होने लगे ॥

न द्रोणव्यसनं कश्चिज्जानीते तत्र भारत ।
दृष्ट्वा कर्णं महेष्वासं मुखे व्यूहस्य दंशितम् ॥ ३९ ॥

भारत ! व्यूहके मुख्य द्वारपर कवच धारण किये महाधनुर्धर कर्णको खड़ा देख कोई भी सैनिक द्रोणाचार्यके मारे जानेके दुःखका अनुभव न कर सका ॥ ३९ ॥

उभे सैन्ये महाराज प्रहृष्टनरसंकुले ।
योद्धुकामे स्थिते राजन् हन्तुमन्योन्यमोजसा ॥ ४० ॥

महाराज ! वे दोनों सेनाएँ हर्षोत्फुल्ल मनुष्योंसे भरी थीं। राजन् ! वे बलपूर्वक परस्पर चोट करने और जूझनेकी इच्छासे मैदानमें आकर खड़ी हो गयीं ॥४०॥

तत्र यत्तौ सुसंरब्धौ दृष्ट्वान्योन्यं व्यवस्थितौ ।
अनीकमध्ये राजेन्द्र चेरतुः कर्णपाण्डवौ ॥ ४१ ॥

राजेन्द्र ! वहाँ रोषमें भरकर सावधानीके साथ खड़े हुए कर्ण और पाण्डव अपनी-अपनी सेनामें विचरने लगे ॥ ४१ ॥

नृत्यमाने च ते सेने समेयातां परस्परम् ।
तयोः पक्षप्रपक्षेभ्यो निर्जग्मुस्ते युयुत्सवः ॥ ४२ ॥

वे दोनों सेनाएँ परस्पर नृत्य करती हुई-सी भिड़ गयीं। युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले वीर उन दोनों व्यूहोंके पक्ष और प्रपक्षसे निकलने लगे ॥ ४२ ॥

ततः प्रववृते युद्धं नरवारणवाजिनाम् ।
रथानां च महाराज अन्योन्यमभिनिघ्नताम् ॥ ४३ ॥

महाराज ! तदनन्तर एक दूसरेपर आघात करनेवाले मनुष्य, हाथी, घोड़ों और रथोंका वह महान् युद्ध आरम्भ हो गया ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि व्यूहनिर्माणे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें व्यूहनिर्माणविषयक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

दोनों सेनाओंका घोर युद्ध और भीमसेनके द्वारा क्षेमधूर्तिका वध

संजय उवाच

ते सेनेऽन्योन्यमासाद्य प्रहृष्टाश्वनरद्विपे ।
बृहत्यौ सम्प्रजह्राते देवासुरसमप्रभे ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! उन दोनों सेनाओंके हाथी, घोड़े और मनुष्य बहुत प्रसन्न थे। देवताओं तथा असुरोंके समान प्रकाशित होनेवाली वे दोनों विशाल सेनाएँ परस्पर भिड़कर अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करने लगीं ॥ १ ॥

ततो नररथाश्वेभाः पत्तयश्चोग्रविक्रमाः।
सम्प्रहारान् भृशं चक्रुर्देहपाप्मासुनाशनान् ॥ २ ॥

तत्पश्चात् भयंकर पराक्रमी रथी, हाथीसवार, घुड़सवार और पैदल सैनिक शरीर, प्राण और पापोंका विनाश करनेवाले घोर प्रहार बड़े जोर-जोरसे करने लगे ॥ २ ॥

पूर्णचन्द्रार्कपद्मानां कान्तिभिर्गन्धतः समैः।
उत्तमाङ्गैर्नृसिंहानां नृसिंहास्तस्तरुर्महीम् ॥ ३ ॥

मनुष्योंमें सिंहके समान पराक्रमी वीरोंने विपक्षी पुरुष-सिंहोंके मस्तकोंको काट-काटकर उनके द्वारा धरतीको पाटने लगे। उनके वे मस्तक पूर्ण चन्द्रमा और सूर्यके समान कान्तिमान् तथा कमलोंके समान सुगन्धित थे ॥ ३ ॥

अर्धचन्द्रैस्तथा भल्लैः क्षुरप्रैरसिपट्टिशैः।
परश्वधैश्चाप्यकृन्तन्नुत्तमाङ्गानि युध्यताम् ॥ ४ ॥

अर्द्धचन्द्र, भल्ल, क्षुरप्र, खड्ग, पट्टिश और फरसोंद्वारा वे योद्धाओंके मस्तक काटने लगे ॥ ४ ॥

व्यायतायतबाहूनां व्यायतायतबाहुभिः।
बाहवः पातिता रेजुर्धरण्यां सायुधाङ्गदाः ॥ ५ ॥

हृष्ट-पुष्ट और लंबी भुजाओंवाले वीरोंने, हृष्ट-पुष्ट और लंबी बाँहोंवाले योद्धाओंकी बाँहें पृथ्वीपर काट गिरायीं। वे भुजाएँ आयुधों और अङ्गदोंसहित शोभा पा रही थीं ॥५॥

तैः स्फुरद्भिर्मही भाति रक्ताङ्गुलितलैस्तथा।
गरुडप्रहितैरुग्रैः पञ्चास्यैरुरगैरिव॥ ६ ॥

जिनके तलवे और अङ्गुलियाँ लाल रंगकी थीं, उन तड़पती हुई भुजाओंसे रणभूमिकी वैसी ही शोभा हो रही थी; मानो वहाँ गरुड़के गिराये हुए भयंकर पञ्चमुख सर्प छटपटा रहे हों ॥ ६ ॥

द्विरदस्यन्दनाश्वेभ्यः पेतुर्वीरा द्विषद्धताः।
विमानेभ्यो यथा क्षीणे पुण्ये स्वर्गसदस्तथा ॥ ७ ॥

शत्रुओंद्वारा मारे गये वीर हाथी, रथ और घोड़ोंसे उसी प्रकार गिर रहे थे, जैसे स्वर्गवासी जीव पुण्य क्षीण होनेपर वहाँके विमानोंसे नीचे गिर पड़ते हैं ॥ ७ ॥

गदाभिरन्ये गुर्वीभिः परिघैर्मुसलैरपि।
पोथिताः शतशः पेतुर्वीरा वीरतरै रणे ॥ ८ ॥

अन्य सैकड़ों वीर बड़े-बड़े वीरोंद्वारा भारी गदाओं, परिघों और मुसलोंसे कुचले जाकर रणभूमिमें गिर रहे थे ॥ ८ ॥

रथा रथैर्विमथिता मत्ता मत्तैर्द्विपा द्विपैः।
सादिनः सादिभिश्चैव तस्मिन् परमसंकुले ॥ ९ ॥

उस भारी घमासान युद्धमें रथोंने रथोंको मथ डाला, मतवाले हाथियोंने मदमत्त गजराजोंको धराशायी कर दिया और घुड़सवारोंने घुड़सवारोंको कुचल डाला ॥ ९ ॥

रथैर्नरा रथा नागैरश्वारोहाश्च पत्तिभिः।
अश्वारोहैः पदाताश्च निहता युधि शेरते ॥ १० ॥

रथियोंद्वारा मारे गये पैदल मनुष्य, हाथियोंद्वारा कुचले गये रथ और रथी, पैदलोंद्वारा मारे गये घुड़सवार और घुड़सवारोंद्वारा कालके गालमें भेजे गये पैदल सिपाही उस युद्धभूमिमें सो रहे थे ॥ १० ॥

रथाश्वपत्तयो नागै रथाश्वेभाश्च पत्तिभिः।
रथपत्तिद्विपाश्चाश्वै रथैश्चापि नरद्विपाः ॥ ११ ॥

गजों और गजारोहियोंने रथियों, घुड़सवारों और पैदलोंको मार गिराया; पैदलोंने रथियों, घुड़सवारों और हाथीसवारोंको धराशायी कर दिया, घुड़सवारोंने रथियों, पैदलों और गजारोहियोंको मार डाला तथा रथियोंने भी पैदल मनुष्यों और गजारोहियोंको मार गिराया ॥ ११ ॥

रथाश्वेभनराणां तु नराश्वेभरथैः कृतम्।
पाणिपादैश्च शस्त्रैश्च रथैश्च कदनं महत् ॥ १२ ॥

पैदल, घुड़सवार, हाथीसवार तथा रथियोंने रथियों, घुड़सवारों, हाथीसवारों और पैदलोंका हाथों, पैरों, अस्त्र-शस्त्रों एवं रथोंद्वारा महान् संहार कर डाला ॥ १२ ॥

तथा तस्मिन् बले शूरैर्वध्यमाने हतेऽपि च।
अस्मानभ्याययुः पार्था वृकोदरपुरोगमाः ॥ १३ ॥

इस प्रकार जब शूरवीरोंद्वारा वह सेना मारी जाने लगी और मारी गयी, तब कुन्तीके पुत्रोंने भीमसेनको आगे रखकर हमलोगोंपर आक्रमण किया ॥ १३ ॥

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः।
सात्यकिश्चेकितानश्च द्राविडैः सैनिकैः सह ॥ १४ ॥
वृता व्यूहेन महता पाण्ड्याश्चोलाः सकेरलाः।

धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रौपदीके पुत्र, प्रभद्रक, सात्यकि, चेकितान, द्राविड सैनिकोंसहित महान् व्यूहसे घिरे हुए पाण्ड्य, चोल तथा केरल योद्धाओंने धावा किया ॥ १४½ ॥

व्यूढोरस्का दीर्घभुजाः प्रांशवः पृथुलोचनाः ॥ १५ ॥
आपीडिनो रक्तदन्ता मत्तमातङ्गविक्रमाः।

इन सबकी छाती चौड़ी और भुजाएँ तथा आँखें बड़ी थीं। वे सब-के-सब ऊँचे कदके थे। उन्होंने भाँति-भाँतिके शिरोभूषण एवं हार धारण किये थे। उनके दाँत लाल थे और वे मतवाले हाथीके समान पराक्रमी थे ॥ १५½ ॥

नानाविरागवसना गन्धचूर्णावचूर्णिताः ॥ १६ ॥
बद्धासयः पाशहस्ता वारणप्रतिवारणाः।

उन्होंने अनेक प्रकारके रंगीन वस्त्र पहन रक्खे थे और अपने अङ्गोंमें सुगन्धित चूर्ण लगा रक्खा था। उनकी कमरमें तलवार बँधी थी, वे हाथमें पाश लिये हुए थे और हाथियोंको भी रोक देनेकी शक्ति रखते थे ॥ १६½ ॥

समानमृत्यवो राजन् नात्यजन्त परस्परम् ॥ १७ ॥
कलापिनश्चापहस्ता दीर्घकेशाः प्रियंवदाः।
पत्तयः सादिनश्चान्ये घोररूपपराक्रमाः ॥ १८ ॥

राजन्! वे सभी सैनिक समानरूपसे मृत्युको वरण करनेकी प्रतिज्ञा करके एक दूसरेका साथ नहीं छोड़ते थे। वे मस्तकपर मोरपंख धारण किये हुए थे। उनके हाथोंमें धनुष शोभा पाता था। उनके केश बहुत बड़े थे और वे प्रिय वचन बोलते थे। अन्यान्य पैदल और घुड़सवार भी बड़े भयंकर पराक्रमी थे॥ १७-१८॥

अथापरे पुनः शूराश्चेदिपञ्चालकेकयाः।
कारूषाः कोसलाः काञ्च्या मागधाश्चापि दुद्रुवुः॥१९॥

तदनन्तर पुनः दूसरे शूरवीर चेदि, पाञ्चाल, केकय, कारूष, कोसल, काञ्चीनिवासी और मागध सैनिक भी हमी लोगोंपर चढ़ आये॥ १९॥

तेषां रथाश्वनागाश्च प्रवराश्चोग्रपत्तयः।
नानावाद्यधरैर्हृष्टा नृत्यन्ति च हसन्ति च॥२०॥

उनके रथ, घोड़े और हाथी उत्तम कोटिके थे। पैदल सैनिक भी बड़े भयंकर थे। वे नाना प्रकारके बाजे बजानेवालोंके साथ हर्षमें भरकर नाचते-कूदते और हँसते थे॥

तस्य सैन्यस्य महतो महामात्रवरैर्वृतः।
मध्ये वृकोदरोऽभ्यायात् त्वदीयान् नागधूर्गतः॥ २१॥

उस विशाल सेनाके मध्यभागमें हाथीकी पीठपर बड़े-बड़े महावतोंसे घिरकर बैठे हुए भीमसेन आपके सैनिकोंकी ओर बढ़े आ रहे थे॥ २१॥

स नागप्रवरोऽत्युग्रो विधिवत् कल्पितो बभौ।
उदयाद्र्यग्र्यभवनं यथाभ्युदितभास्करम्॥ २२॥

उस अत्यन्त भयंकर गजराजको विधिपूर्वक सजाया गया था, वह सूर्योदयसे युक्त उदयाचलके उच्चतम शिखरके समान सुशोभित होता था॥ २२॥

तस्यायसं वर्म वरं वररत्नविभूषितम्।
ताराव्याप्तस्य नभसः शारदस्य समत्विषम्॥ २३॥

उसका लोहेका बना हुआ उत्तम कवच श्रेष्ठ रत्नोंसे विभूषित होकर ताराओंसे भरे हुए शरत्कालीन आकाशके समान प्रकाशित हो रहा था॥ २३॥

स तोमरव्यग्रकरश्चारुमौलिः स्वलंकृतः।
शरन्मध्यंदिनार्काभस्तेजसा व्यदहद् रिपून्॥ २४॥

उस समय सुन्दर मुकुट और आभूषणोंसे विभूषित हो हाथमें तोमर लेकर शरत्कालके मध्याह्न सूर्यके समान प्रकाशित होनेवाले भीमसेन अपने तेजसे शत्रुओंको दग्ध करने लगे॥

तं दृष्ट्वा द्विरदं दूरात् क्षेमधूर्तिर्द्विपस्थितः।
आह्वयन्नभिदुद्राव प्रमनाः प्रमनस्तरम्॥ २५॥

उनके उस हाथीको दूरसे ही देखकर हाथीपर ही बैठे हुए महामना क्षेमधूर्तिने महामनस्वी भीमसेनको ललकारते हुए उनपर धावा किया॥ २५॥

तयोः समभवद् युद्धं द्विपयोरुग्ररूपयोः।
यदृच्छया द्रुमवतोर्महापर्वतयोरिव॥ २६॥

जैसे वृक्षोंसे भरे हुए दो महान् पर्वत दैवेच्छासे परस्पर टकरा रहे हों, उसी प्रकार उन भयानक रूपधारी दोनों गजराजोंमें भारी युद्ध छिड़ गया॥ २६॥

संसक्तनागौ तौ वीरौ तोमरैरितरेतरम्।
बलवत् सूर्यरश्म्याभैर्भित्त्वान्योन्यं विनेदतुः॥ २७॥

जिनके हाथी एक दूसरेसे उलझे हुए थे, वे दोनों वीर क्षेमधूर्ति और भीमसेन सूर्यकी किरणोंके समान चमकीले तोमरोंद्वारा एक दूसरेको बलपूर्वक विदीर्ण करते हुए जोर-जोरसे गर्जने लगे॥ २७॥

व्यपसृत्य तु नागाभ्यां मण्डलानि विचेरतुः।
प्रगृह्य चोभौ धनुषी जघ्नतुर्वै परस्परम्॥ २८॥

फिर हाथियोंद्वारा ही पीछे हटकर वे दोनों मण्डलाकार विचरने और धनुष लेकर एक दूसरेपर बाणोंका प्रहार करने लगे॥ २८॥

क्ष्वेडितास्फोटितरवैर्बाणशब्दैस्तु सर्वतः।
तौ जनं हर्षयन्तौ च सिंहनादं प्रचक्रतुः॥ २९॥

वे गर्जने, ताल ठोंकने और बाणोंके शब्दसे चारों ओरके योद्धाओंको हर्ष प्रदान करते हुए सिंहनाद कर रहे थे॥

समुद्यतकराभ्यां तौ द्विपाभ्यां कृतिनावुभौ।
वातोद्धूतपताकाभ्यां युयुधाते महाबलौ॥ ३०॥

वे दोनों महाबली और विद्वान् योद्धा उन सूँड़ उठाये हुए दोनों हाथियोंद्वारा युद्ध कर रहे थे। उस समय उन हाथियोंके ऊपर लगी हुई पताकाएँ हवाके वेगसे फहरा रही थीं॥

तावन्योन्यस्य धनुषी छित्त्वान्योन्यं विनेदतुः।
शक्तितोमरवर्षेण प्रावृण्मेघाविवाम्बुभिः॥ ३१॥

जैसे वर्षाकालके दो मेघ पानी बरसा रहे हों, उसी प्रकार शक्ति और तोमरोंकी वर्षासे एक दूसरेके धनुषको काटकर वे दोनों ही परस्पर गर्जन-तर्जन करने लगे॥ ३१॥

क्षेमधूर्तिस्तदा भीमं तोमरेण स्तनान्तरे।
निर्बिभेदातिवेगेन षड्भिश्चाप्यपरैर्नदन्॥ ३२॥

उस समय क्षेमधूर्तिने भीमसेनकी छातीमें बड़े वेगसे एक तोमर धँसा दिया। फिर गर्जना करते हुए उसने उन्हें छः तोमर और मारे॥ ३२॥

स भीमसेनः शुशुभे तोमरैरङ्गमाश्रितैः।
क्रोधदीप्तवपुर्मेघैः सप्तसप्तिरिवांशुमान्॥ ३३॥

अपने शरीरमें धँसे हुए उन तोमरोंद्वारा क्रोधसे उद्दीप्त शरीरवाले भीमसेन मेघोंद्वारा सात घोड़ोंवाले सूर्यके समान सुशोभित हो रहे थे॥ ३३॥

ततो भास्करवर्णाभमञ्जोगतिमयस्मयम्।
ससर्ज तोमरं भीमः प्रत्यमित्राय यत्नवान्॥ ३४॥

तब भीमसेनने सूर्यके समान प्रकाशमान तथा सीधी

गतिसे जानेवाले एक लोहमय तोमरको अपने शत्रुपर प्रयत्नपूर्वक छोड़ा ॥ ३४ ॥

ततः कुलूताधिपतिश्चापमानम्य सायकैः ।
दशभिस्तोमरं भित्त्वा षष्ट्या विव्याध पाण्डवम् ॥ ३५ ॥

यह देख कुलूतदेशके राजा क्षेमधूर्तिने अपने धनुषको नवाकर दस सायकोंसे उस तोमरको काट डाला और साठ बाण मारकर भीमसेनको भी घायल कर दिया ॥ ३५ ॥

अथ कार्मुकमादाय भीमो जलदनिःस्वनम् ।
रिपोरभ्यर्दयन्नागमुन्नदन् पाण्डवः शरैः ॥ ३६ ॥

तत्पश्चात् गर्जते हुए पाण्डुपुत्र भीमसेनने मेघ-गर्जनाके समान गम्भीर घोष करनेवाले धनुषको लेकर अपने बाणोंद्वारा शत्रुके हाथीको पीड़ित कर दिया ॥ ३६ ॥

स शरौघार्दितो नागो भीमसेनेन संयुगे ।
गृह्यमाणोऽपि नातिष्ठद् वातोद्धूत इवाम्बुदः ॥ ३७ ॥

युद्धस्थलमें भीमसेनके बाणसमूहोंसे पीड़ित हुआ वह गजराज हवाके उड़ाये हुए बादलोंके समान रोकनेपर भी वहाँ रुक न सका ॥ ३७ ॥

तमभ्यधावद् द्विरदं भीमो भीमस्य नागराट् ।
महावातेरितं मेघं वातोद्धूत इवाम्बुदः ॥ ३८ ॥

जैसे आँधीके उड़ाये हुए मेघके पीछे वायुप्रेरित दूसरा मेघ जा रहा हो, उसी प्रकार भीमसेनका भयंकर गजराज क्षेमधूर्तिके उस हाथीका पीछा करने लगा ॥ ३८ ॥

संनिवार्यात्मनो नागं क्षेमधूर्तिः प्रतापवान् ।
विव्याधाभिद्रुतं बाणैर्भीमसेनस्य कुञ्जरम् ॥ ३९ ॥

उस समय प्रतापी क्षेमधूर्तिने अपने हाथीको किसी प्रकार रोककर सामने आते हुए भीमसेनके हाथीको बाणोंसे बींध डाला ॥ ३९ ॥

ततः साधुविसृष्टेन क्षुरेणानतपर्वणा ।
छित्त्वा शरासनं शत्रोर्नागमामित्रमार्दयत् ॥ ४० ॥

इसके बाद अच्छी तरह छोड़े हुए झुकी हुई गाँठवाले क्षुर नामक बाणसे भीमसेनने शत्रुके धनुषको काटकर उसके हाथीको पुनः अच्छी तरह पीड़ित किया ॥ ४० ॥

ततः क्रुद्धो रणे भीमं क्षेमधूर्तिः पराभिनत् ।
जघान चास्य द्विरदं नाराचैः सर्वमर्मसु ॥ ४१ ॥

तब क्षेमधूर्तिने कुपित हो रणभूमिमें भीमसेनको गहरी चोट पहुँचायी और अनेक नाराचोंद्वारा उनके हाथीके सम्पूर्ण मर्मस्थानोंमें आघात किया ॥ ४१ ॥

स पपात महानागो भीमसेनस्य भारत ।
पुरा नागस्य पतनादवप्लुत्य स्थितो महीम् ॥ ४२ ॥

भारत ! इससे भीमसेनका महान् गजराज पृथ्वीपर गिर पड़ा । उसके गिरनेसे पहले ही भीमसेन कूदकर भूमिपर खड़े हो गये ॥ ४२ ॥

तस्य भीमोऽपि द्विरदं गदया समपोथयत् ।
तस्मात् प्रमथितान्नागात् क्षेमधूर्तिमवप्लुतम् ॥ ४३ ॥
उद्यतायुधमायान्तं गदयाहन् वृकोदरः ।
स पपात हतः सासिर्व्यसुस्तमभितो द्विपम् ॥ ४४ ॥

तदनन्तर भीमने भी अपनी गदासे क्षेमधूर्तिके हाथीको मार डाला । फिर जब उस मरे हुए हाथीसे कूदकर क्षेमधूर्ति तलवार उठाये सामने आने लगा, उस समय भीमसेनने उस-



पर भी गदासे प्रहार किया । गदाकी चोट खाकर उसके प्राणपखेरू उड़ गये और वह तलवार लिये हुए अपने हाथीके पास ही गिर पड़ा ॥ ४३-४४ ॥

वज्रप्रभग्नमचलं सिंहो वज्रहतो यथा ।
तं हतं नृपतिं दृष्ट्वा कुलूतानां यशस्करम् ।
प्राद्रवद् व्यथिता सेना त्वदीया भरतर्षभ ॥ ४५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! जैसे वज्रके आघातसे टूट-फूटकर गिरे हुए पर्वतके समीप वज्रका मारा हुआ सिंह गिरा हो, उसी प्रकार उस हाथीके समीप क्षेमधूर्ति धराशायी हो रहे थे । कुलूतोंका यश बढ़ानेवाले राजा क्षेमधूर्तिको मारा गया देख आपकी सेना व्यथित होकर भागने लगी ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि क्षेमधूर्तिवधे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें क्षेमधूर्तिका वधविषयक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

दोनों सेनाओंका परस्पर घोर युद्ध तथा सात्यकिके द्वारा विन्द और अनुविन्दका वध

संजय उवाच

ततः कर्णो महेष्वासः पाण्डवानामनीकिनीम्।
जघान समरे शूरः शरैः संनतपर्वभिः॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! तत्पश्चात् महाधनुर्धर शूरवीर कर्णने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा समराङ्गणमें पाण्डव-सेनाका संहार आरम्भ किया॥ १॥

तथैव पाण्डवा राजंस्तव पुत्रस्य वाहिनीम्।
कर्णस्य प्रमुखे क्रुद्धा निजघ्नुस्ते महारथाः॥ २॥

राजन्! इसी प्रकार क्रोधमें भरे हुए महारथी पाण्डव भी कर्णके सामने ही आपके बेटेकी सेनाका विनाश करने लगे॥

कर्णोऽपि राजन् समरे व्यहनत् पाण्डवीं चमूम्।
नाराचैरर्करश्म्याभैः कर्मारपरिमार्जितैः॥ ३॥

महाराज! कर्णके नाराच कारीगरोंद्वारा धोकर साफ किये गये थे, इसलिये सूर्यकी किरणोंके समान चमक रहे थे। उनके द्वारा वह भी रणभूमिमें पाण्डव-सेनाका वध करने लगा॥ ३॥

तत्र भारत कर्णेन नाराचैस्ताडिता गजाः।
नेदुः सेदुश्च मम्लुश्च बभ्रमुश्च दिशो दश॥ ४॥

भरतनन्दन! वहाँ कर्णके चलाये हुए नाराचोंकी मार खाकर झुंड-के-झुंड हाथी चिग्घाड़ने, पीड़ासे कराहने, मलिन होने और दसों दिशाओंमें चक्कर काटने लगे॥ ४॥

वध्यमाने बले तस्मिन् सूतपुत्रेण मारिष।
नकुलोऽभ्यद्रवत् तूर्णं सूतपुत्रं महारणे॥ ५॥

माननीय नरेश! सूतपुत्रके द्वारा उस महासमरमें जब अपनी सेना मारी जाने लगी, तब नकुलने तुरंत ही कर्णपर धावा किया॥ ५॥

भीमसेनस्तथा द्रौणिं कुर्वाणं कर्म दुष्करम्।
विन्दानुविन्दौ कैकेयौ सात्यकिः समवारयत्॥ ६॥

भीमसेनने दुष्कर कर्म करते हुए अश्वत्थामाको तथा सात्यकिने केकयदेशीय विन्द और अनुविन्दको रोका॥

श्रुतकर्माणमायान्तं चित्रसेनो महीपतिः।
प्रतिविन्ध्यस्तथा चित्रं चित्रकेतनकार्मुकम्॥ ७॥

सामने आते हुए श्रुतकर्माको राजा चित्रसेनने रोका तथा प्रतिविंध्यने विचित्र ध्वज और धनुषवाले चित्रका सामना किया॥ ७॥

दुर्योधनस्तु राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्।
संशप्तकगणान् क्रुद्धो ह्यभ्यधावद् धनंजयः॥ ८॥

दुर्योधनने धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरपर और क्रोधमें भरे हुए अर्जुनने संशप्तकगणोंपर धावा किया॥ ८॥

धृष्टद्युम्नः कृपेणाथ तस्मिन् वीरवरक्षये।
शिखण्डी कृतवर्माणं समासादयदच्युतम्॥ ९॥

बड़े-बड़े वीरोंका संहार करनेवाले उस संग्राममें धृष्टद्युम्न कृपाचार्यके साथ युद्ध करने लगे और शिखण्डी कभी पीछे न हटनेवाले कृतवर्मासे भिड़ गया॥ ९॥

श्रुतकीर्तिस्तथा शल्यं माद्रीपुत्रः सुतं तव।
दुःशासनं महाराज सहदेवः प्रतापवान्॥ १०॥

महाराज! श्रुतकीर्तिने शल्यपर और प्रतापी माद्रीकुमार सहदेवने आपके पुत्र दुःशासनपर आक्रमण किया॥१०॥

कैकेयौ सात्यकिं युद्धे शरवर्षेण भास्वता।
सात्यकिः केकयौ चापि च्छादयामास भारत॥ ११॥

भरतनन्दन! केकयराजकुमार विन्द और अनुविन्दने युद्धमें चमकीले बाणोंकी वर्षा करके सात्यकिको और सात्यकिने दोनों केकयराजकुमारोंको आच्छादित कर दिया॥ ११॥

तावेनं भ्रातरौ वीरौ जघ्नतुर्हृदये भृशम्।
विषाणाभ्यां यथा नागौ प्रतिनागं महावने॥ १२॥

जैसे विशाल वनमें दो हाथी अपने विरोधी हाथीपर दोनों दाँतोंसे प्रहार करते हों, उसी प्रकार वे दोनों वीर भ्राता विन्द और अनुविन्द सात्यकिकी छातीमें गहरी चोट पहुँचाने लगे॥ १२॥

शरसम्भिन्नवर्माणौ तावुभौ भ्रातरौ रणे।
सात्यकिं सत्यकर्माणं राजन् विव्यधतुः शरैः॥ १३॥

राजन्! उन दोनोंके कवच बाणोंसे छिन्न-भिन्न हो गये थे, तो भी उन दोनों भाइयोंने रणभूमिमें सत्यकर्मा सात्यकिको बाणोंसे घायल कर दिया॥ १३॥

तौ सात्यकिर्महाराज प्रहसन् सर्वतोदिशः।
छादयञ्छरवर्षेण वारयामास भारत॥ १४॥

महाराज! भरतनन्दन! सात्यकिने हँसते-हँसते सम्पूर्ण दिशाओंको अपने बाणोंकी वर्षासे आच्छादित करके उन दोनों भाइयोंको रोक दिया॥ १४॥

वार्यमाणौ ततस्तौ हि शैनेयशरवृष्टिभिः।
शैनेयस्य रथं तूर्णं छादयामासतुः शरैः॥ १५॥

सात्यकिकी बाणवर्षासे रोके जाते हुए उन दोनों राजकुमारोंने तुरंत ही उनके रथको बाणोंसे आच्छादित कर दिया॥ १५॥

तयोस्तु धनुषी चित्रे छित्त्वा शौरिर्महायशाः।
अथ तौ सायकैस्तीक्ष्णैर्वारयामास संयुगे॥ १६॥

तब महायशस्वी सात्यकिने अपने तीखे बाणोंसे उन दोनोंके विचित्र धनुषोंको काटकर उन्हें युद्धस्थलमें आगे बढ़नेसे रोक दिया॥ १६॥

अथान्ये धनुषी चित्रे प्रगृह्य च महाशरान्।

सात्यकिं छादयन्तौ तौ चेरतुर्लघु सुष्टु च ॥ १७ ॥

फिर वे दोनों भाई दूसरे विचित्र धनुष और उत्तम बाण लेकर सात्यकिको आच्छादित करते हुए सुन्दर एवं शीघ्र गतिसे सब ओर विचरने लगे ॥ १७ ॥

ताभ्यां मुक्ता महाबाणाः कङ्कबर्हिणवाससः ।
द्योतयन्तो दिशः सर्वाः सम्पेतुः स्वर्णभूषणाः ॥ १८ ॥

उन दोनोंके छोड़े हुए स्वर्णभूषित महान् बाण, जो कङ्क और मोरके पंखोंसे सुशोभित थे, सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते हुए गिरने लगे ॥ १८ ॥

बाणान्धकारमभवत् तयो राजन् महामृधे ।
अन्योन्यस्य धनुश्चैव चिच्छिदुस्ते महारथाः ॥ १९ ॥

राजन् ! उस महासमरमें उन दोनोंके बाणोंसे अन्धकार छा गया। फिर उन तीनों महारथियोंने एक दूसरेके धनुष काट डाले ॥ १९ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज सात्वतो युद्धदुर्मदः ।
धनुरन्यत् समादाय सज्यं कृत्वा च संयुगे ॥ २० ॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन अनुविन्दशिरोऽहरत् ।

महाराज ! फिर तो रणदुर्मद सात्यकि कुपित हो उठे। उन्होंने युद्धस्थलमें दूसरा धनुष लेकर उसकी प्रत्यञ्चा चढ़ायी और एक अत्यन्त तीखे क्षुरप्रके द्वारा अनुविन्दका सिर काट लिया ॥ २०½ ॥



अपतत् तच्छिरो राजन् कुण्डलोपचितं महत् ॥ २१ ॥
शम्बरस्य शिरो यद्वन्निहतस्य महारणे ।
शोचयन् केकयान् सर्वाञ्जगामाशु वसुन्धराम् ॥ २२ ॥

राजन् ! उस महासमरमें मारे गये अनुविन्दका कुण्डलमण्डित महान् मस्तक शम्बरासुरके सिरके समान कटकर गिरा और समस्त केकयोंको शोकमें डालता हुआ शीघ्र पृथ्वीपर जा पड़ा ॥ २१-२२ ॥

तं दृष्ट्वा निहतं शूरं भ्राता तस्य महारथः ।
सज्यमन्यद् धनुः कृत्वा शैनेयं पर्यवारयत् ॥ २३ ॥

शूरवीर अनुविन्दको मारा गया देख उसके महारथी भाई विन्दने अपने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर सात्यकिको चारों ओरसे रोका ॥ २३ ॥

स षष्ट्या सात्यकिं विद्ध्वा स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।
ननाद बलवन्नादं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २४ ॥

उसने शिलापर तेज किये गये सुवर्णपंखयुक्त साठ बाणोंद्वारा सात्यकिको घायल करके बड़े जोरकी गर्जना की और कहा—'खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ २४ ॥

सात्यकिं च ततस्तूर्णं केकयानां महारथः ।
शरैरनेकसाहस्रैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ २५ ॥

तदनन्तर केकय-महारथी विन्दने तुरंत ही सात्यकिकी दोनों भुजाओं और छातीमें कई हजार बाण मारे ॥ २५ ॥

स शरैः क्षतसर्वाङ्गः सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
रराज समरे राजन् सपुष्प इव किंशुकः ॥ २६ ॥

राजन् ! उन बाणोंसे समराङ्गणमें सत्यपराक्रमी सात्यकिके सारे अङ्ग क्षत-विक्षत हो लहू-लुहान हो गये और वे खिले हुए पलाशके समान सुशोभित होने लगे ॥ २६ ॥

सात्यकिः समरे विद्धः कैकेयेन महात्मना ।
कैकेयं पञ्चविंशत्या विव्याध प्रहसन्निव ॥ २७ ॥

महामना कैकेय (विन्द) के द्वारा समराङ्गणमें घायल हुए सात्यकिने हँसते हुए-से पचीस बाण मारकर कैकेयको भी घायल कर दिया ॥ २७ ॥

तावन्योन्यस्य समरे संछिद्य धनुषी शुभे ।
हत्वा च सारथी तूर्णं हयांश्च रथिनां वरौ ॥ २८ ॥

उन दोनों महारथियोंने युद्धस्थलमें एक दूसरेके सुन्दर धनुष काटकर तुरंत ही सारथि और घोड़े भी मार डाले ॥ २८ ॥

विरथावसियुद्धाय समाजग्मतुराहवे ।
शतचन्द्रचिते गृह्य चर्मणी सुभुजौ तथा ॥ २९ ॥

फिर वे सुन्दर भुजाओंवाले दोनों वीर रथहीन होकर सौ चन्द्राकार चिह्नोंसे युक्त ढाल और तलवार लिये खड्ग-युद्धके लिये उद्यत हो युद्धस्थलमें एक दूसरेके सामने आये ॥ २९ ॥

व्यरोचेतां महारङ्गे निस्त्रिंशवरधारिणौ ।
यथा देवासुरे युद्धे जम्भशक्रौ महाबलौ ॥ ३० ॥

जैसे देवासुर-संग्राममें महाबली इन्द्र और जम्भासुर

शोभा पाते थे, उसी प्रकार युद्धके उस महान् रङ्गस्थलमें उत्तम खड्ग धारण किये हुए वे दोनों योद्धा सुशोभित हो रहे थे ॥ ३० ॥

मण्डलानि ततस्तौ तु विचरन्तौ महारणे।
अन्योन्यमभितस्तूर्णं समाजग्मतुराहवे ॥ ३१ ॥

उस महासमरमें मण्डलाकार विचरते और पैंतरे दिखाते हुए वे दोनों वीर तुरंत ही एक दूसरेके समीप आ गये ॥ ३१ ॥

अन्योन्यस्य वधे चैव चक्रतुर्यत्नमुत्तमम्।
कैकेयस्य द्विधा चर्म ततश्चिच्छेद सात्वतः ॥ ३२ ॥
सात्यकेस्तु तथैवासौ चर्म चिच्छेद पार्थिवः।

फिर वे एक दूसरेके वधके लिये भारी यत्न करने लगे। तदनन्तर सात्यकिने विन्दकी ढालके दो टुकड़े कर दिये। इसी प्रकार राजकुमार विन्दने भी सात्यकिकी ढाल टूक-टूक कर दी ॥ ३२½ ॥

चर्म च्छित्त्वा तु कैकेयस्तारागणशतैर्वृतम् ॥ ३३ ॥
चचार मण्डलान्येव गतप्रत्यागतानि च।

सैकड़ों तारक-चिह्नोंसे भरी हुई सात्यकिकी ढाल काटकर विन्द गत और प्रत्यागत आदि पैंतरे बदलने लगा ॥ ३३½ ॥

तं चरन्तं महारङ्गे निस्त्रिंशवरधारिणम् ॥ ३४ ॥
अपहस्तेन चिच्छेद शैनेयस्त्वरयान्वितः।

युद्धके उस महान् रङ्गस्थलमें श्रेष्ठ खड्ग धारण करके विचरते हुए विन्दको सात्यकिने तिरछे हाथसे शीघ्रतापूर्वक काट डाला ॥ ३४½ ॥

सवर्मा केकयो राजन् द्विधा छिन्नो महारणे ॥ ३५ ॥
निपपात महेष्वासो वज्राहत इवाचलः।

राजन्! इस प्रकार महायुद्धमें दो टुकड़ोंमें कटा हुआ कवचसहित महाधनुर्धर केकयराज वज्रके मारे हुए पर्वतके समान गिर पड़ा ॥ ३५½ ॥

तं निहत्य रणे शूरः शैनेयो रथसत्तमः ॥ ३६ ॥
युधामन्युरथं तूर्णमारुरोह परंतपः।

रथियोंमें श्रेष्ठ शत्रुदमन रणशूर सात्यकि विन्दका वध करके तुरंत ही युधामन्युके रथपर चढ़ गये ॥ ३६½ ॥

ततोऽन्यं रथमास्थाय विधिवत्कल्पितं पुनः।
केकयानां महत् सैन्यं व्यधमत् सात्यकिः शरैः ॥ ३७ ॥

तत्पश्चात् विधिपूर्वक सजाकर लाये हुए दूसरे रथपर आरूढ़ हो सात्यकि अपने बाणोंद्वारा केकयोंकी विशाल सेनाका संहार करने लगे ॥ ३७ ॥

सा वध्यमाना समरे केकयानां महाचमूः।
तमुत्सृज्य रणे शत्रुं प्रदुद्राव दिशो दश ॥ ३८ ॥

समरभूमिमें मारी जाती हुई केकयोंकी वह विशाल सेना रणमें शत्रुको त्यागकर दसों दिशाओंमें भाग गयी ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि विन्दानुविन्दवधे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें विन्द और अनुविन्दका वधविषयक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

द्रौपदीपुत्र श्रुतकर्मा और प्रतिविन्ध्यद्वारा क्रमशः चित्रसेन एवं चित्रका वध, कौरवसेनाका पलायन तथा अश्वत्थामाका भीमसेनपर आक्रमण

संजय उवाच

श्रुतकर्मा ततो राजंश्चित्रसेनं महीपतिम्।
आजघ्ने समरे क्रुद्धः पञ्चाशद्भिः शिलीमुखैः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर श्रुतकर्माने समराङ्गणमें कुपित हो राजा चित्रसेनको पचास बाण मारे ॥

अभिसारस्तु तं राजन् नवभिर्नतपर्वभिः।
श्रुतकर्माणमाहत्य सूतं विव्याध पञ्चभिः ॥ २ ॥

नरेश्वर! अभिसारके राजा चित्रसेनने झुकी हुई गाँठवाले नौ बाणोंसे श्रुतकर्माको घायल करके पाँचसे उसके सारथिको भी बींध डाला ॥ २ ॥

श्रुतकर्मा ततः क्रुद्धश्चित्रसेनं चमूमुखे।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन मर्मदेशे समार्पयत् ॥ ३ ॥

तब क्रोधमें भरे हुए श्रुतकर्माने सेनाके मुहानेपर तीखे नाराचसे चित्रसेनके मर्मस्थलपर आघात किया ॥ ३ ॥

सोऽतिविद्धो महाराज नाराचेन महात्मना।
मूर्छामभिययौ वीरः कश्मलं चाविवेश ह ॥ ४ ॥

महामना श्रुतकर्माके नाराचसे अत्यन्त घायल होनेपर वीर चित्रसेनको मूर्छा आ गयी। वे अचेत हो गये ॥ ४ ॥

एतस्मिन्नन्तरे चैनं श्रुतकीर्तिर्महायशाः।
नवत्या जगतीपालं छादयामास पत्रिभिः ॥ ५ ॥

इसी बीचमें महायशस्वी श्रुतकीर्तिने नब्बे बाणोंसे भूपाल चित्रसेनको आच्छादित कर दिया ॥ ५ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां चित्रसेनो महारथः।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन तं च विव्याध सप्तभिः ॥ ६ ॥

तदनन्तर होशमें आकर महारथी चित्रसेनने एक भल्लसे श्रुतकर्माका धनुष काट डाला और उसे भी सात बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ६ ॥

सोऽन्यत् कार्मुकमादाय वेगघ्नं रुक्मभूषितम्।
चित्ररूपधरं चक्रे चित्रसेनं शरोर्मिभिः ॥ ७ ॥

तब श्रुतकर्माने शत्रुओंके वेगको नष्ट करनेवाला दूसरा

सुवर्णभूषित धनुष लेकर चित्रसेनको अपने बाणोंकी लहरोंसे विचित्र रूपधारी बना दिया ॥ ७ ॥

स शरैश्चित्रितो राजा चित्रमाल्यधरो युवा ।
अशोभत महारङ्गे श्वाविच्छललतो यथा ॥ ८ ॥

विचित्र माला धारण करनेवाले नवयुवक राजा चित्रसेन उन बाणोंसे चित्रित हो युद्धके महान् रङ्गस्थलमें काँटोंसे भरे हुए साहीके समान सुशोभित होने लगे ॥ ८ ॥

श्रुतकर्माणमथ वै नाराचेन स्तनान्तरे ।
बिभेद तरसा शूरस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ९ ॥

तब उस शूरवीर नरेशने श्रुतकर्माकी छातीमें बड़े वेगसे नाराचका प्रहार किया और कहा—'खड़ा रह, खड़ा रह' ॥

श्रुतकर्मापि समरे नाराचेन समर्पितः ।
सुस्राव रुधिरं तत्र गैरिकार्द्र इवाचलः ॥ १० ॥

उस समय नाराचसे घायल हुआ श्रुतकर्मा समराङ्गणमें उसी प्रकार रक्त बहाने लगा, जैसे गेरूसे भीगा हुआ पर्वत लाल रंगकी जलधारा बहाता है ॥ १० ॥

ततः स रुधिराक्ताङ्गो रुधिरेण कृतच्छविः ।
रराज समरे वीरः सपुष्प इव किंशुकः ॥ ११ ॥

तत्पश्चात् खूनसे लथपथ अंगोंवाला वीर श्रुतकर्मा समराङ्गणमें उस रुधिरसे अभिनव शोभा धारण करके खिले हुए पलाशवृक्षके समान सुशोभित हुआ ॥ ११ ॥

श्रुतकर्मा ततो राजञ्शत्रुणा समभिद्रुतः ।
शत्रुसंवारणं क्रुद्धो द्विधा चिच्छेद कार्मुकम् ॥ १२ ॥

राजन् ! शत्रुके द्वारा इस प्रकार आक्रान्त होनेपर श्रुतकर्मा कुपित हो उठा और उसने राजा चित्रसेनके शत्रु-निवारक धनुषके दो टुकड़े कर डाले ॥ १२ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं नाराचानां शतैस्त्रिभिः ।
छादयन् समरे राजन् विव्याध च सुपत्रिभिः ॥ १३ ॥

महाराज ! धनुष कट जानेपर चित्रसेनको आच्छादित करते हुए श्रुतकर्माने सुन्दर पंखवाले तीन सौ नाराचोंद्वारा उसे घायल कर दिया ॥ १३ ॥

ततोऽपरेण भल्लेन तीक्ष्णेन निशितेन च ।
जहार सशिरस्त्राणं शिरस्तस्य महात्मनः ॥ १४ ॥

तदनन्तर एक पैनी धारवाले तीखे भल्लसे उसने महामना चित्रसेनके शिरस्त्राणसहित मस्तकको काट लिया ॥ १४ ॥

तच्छिरो न्यपतद् भूमौ चित्रसेनस्य दीप्तिमत् ।
यदृच्छया यथा चन्द्रश्च्युतः स्वर्गान्महीतलम् ॥ १५ ॥

चित्रसेनका वह दीप्तिशाली मस्तक पृथ्वीपर गिर पड़ा, मानो चन्द्रमा दैवेच्छावश स्वर्गसे भूतलपर आ गिरा हो ॥ १५ ॥

राजानं निहतं दृष्ट्वा तेऽभिसारं तु मारिष ।
अभ्यद्रवन्त वेगेन चित्रसेनस्य सैनिकाः ॥ १६ ॥

माननीय नरेश ! अभिसार देशके अधिपति राजा चित्रसेनको मारा गया देख उनके सैनिक बड़े वेगसे भाग चले ॥

ततः क्रुद्धो महेष्वासस्तत्सैन्यं प्राद्रवच्छरैः ।
अन्तकाले यथा क्रुद्धः सर्वभूतानि प्रेतराट् ॥ १७ ॥

तत्पश्चात् क्रोधमें भरे हुए महाधनुर्धर श्रुतकर्माने अपने बाणोंद्वारा उस सेनापर आक्रमण किया, मानो प्रलयकालमें कुपित हुए यमराज समस्त प्राणियोंपर धावा बोल रहे हों ॥ १७ ॥

ते वध्यमानाः समरे तव पौत्रेण धन्विना ।
व्यद्रवन्त दिशस्तूर्णं दावदग्धा इव द्विपाः ॥ १८ ॥

युद्धमें आपके धनुर्धर पौत्र श्रुतकर्माद्वारा मारे जाते हुए वे सैनिक दावानलसे झुलसे हुए हाथियोंके समान तुरंत ही सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गये ॥ १८ ॥

तांस्तु विद्रवतो दृष्ट्वा निरुत्साहान् द्विषज्जये ।
द्रावयन्निषुभिस्तीक्ष्णैः श्रुतकर्मा व्यरोचत ॥ १९ ॥

शत्रुओंपर विजय पानेका उत्साह छोड़कर भागते हुए उन सैनिकोंको देखकर अपने तीखे बाणोंसे उन्हें खदेड़ते हुए श्रुतकर्माकी अपूर्व शोभा हो रही थी ॥ १९ ॥

प्रतिविन्ध्यस्ततश्चित्रं भित्त्वा पञ्चभिराशुगैः ।
सारथिं च त्रिभिर्विद्ध्वा ध्वजमेकेषुणापि च ॥ २० ॥

दूसरी ओर प्रतिविन्ध्यने पाँच बाणोंद्वारा चित्रको क्षत-विक्षत करके तीन बाणोंसे सारथिको घायल कर दिया और एक बाणसे उसके ध्वजको भी बींध डाला ॥ २० ॥

तं चित्रो नवभिर्भल्लैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ।
स्वर्णपुङ्खैः प्रसन्नाग्रैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥ २१ ॥

तब चित्रने कङ्क और मयूरकी पाँखोंसे युक्त स्वच्छ धार और सुनहरे पंखवाले नौ भल्लोंसे प्रतिविन्ध्यकी दोनों भुजाओं और छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ २१ ॥

प्रतिविन्ध्यो धनुश्छित्त्वा तस्य भारत सायकैः ।
पञ्चभिर्निशितैर्बाणैरथैनं स हि जघ्निवान् ॥ २२ ॥

भारत ! प्रतिविन्ध्यने अपने बाणोंद्वारा उसके धनुषको काटकर पाँच तीखे बाणोंसे चित्रको भी घायल कर दिया ॥ २२ ॥

ततः शक्तिं महाराज स्वर्णघण्टां दुरासदाम् ।
प्राहिणोत् तव पौत्राय घोरामग्निशिखामिव ॥ २३ ॥

महाराज ! तदनन्तर चित्रने आपके पौत्रपर घोर अग्नि-शिखाके समान सुवर्णमय घंटोंसे सुशोभित एक दुर्धर्ष शक्ति चलायी ॥ २३ ॥

तामापतन्तीं सहसा महोल्काप्रतिमां तदा ।
द्विधा चिच्छेद समरे प्रतिविन्ध्यो हसन्निव ॥ २४ ॥

समराङ्गणमें बड़ी भारी उल्काके समान सहसा आती हुई उस शक्तिको प्रतिविन्ध्यने हँसते हुए-से दो टुकड़ोंमें काट डाला ॥ २४ ॥

सा पपात द्विधा छिन्ना प्रतिविन्ध्यशरैः शितैः ।
युगान्ते सर्वभूतानि त्रासयन्ती यथाशनिः ॥ २५ ॥

प्रतिविन्ध्यके तीखे बाणोंसे दो टूक होकर वह शक्ति प्रलयकालमें सम्पूर्ण प्राणियोंको भयभीत करनेवाली अशनिके समान गिर पड़ी ॥ २५ ॥

शक्तिं तां प्रहतां दृष्ट्वा चित्रो गृह्य महागदाम्।
प्रतिविन्ध्याय चिक्षेप रुक्मजालविभूषिताम् ॥ २६॥

उस शक्तिको नष्ट हुई देख चित्रने सोनेकी जालियोंसे विभूषित एक विशाल गदा हाथमें ले ली और उसे प्रतिविन्ध्यपर छोड़ दिया ॥ २६ ॥

सा जघान हयांस्तस्य सारथिं च महारणे ।
रथं प्रमृद्य वेगेन धरणीमन्वपद्यत ॥ २७ ॥

उस गदाने महासमरमें प्रतिविन्ध्यके घोड़ों और सारथिको मार डाला और रथको भी चूर-चूर करती हुई वह बड़े वेगसे पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ २७ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु रथादाप्लुत्य भारत ।
शक्तिं चिक्षेप चित्राय स्वर्णदण्डामलंकृताम् ॥ २८ ॥

भारत ! इसी बीचमें रथसे कूदकर प्रतिविन्ध्यने चित्रपर एक सुवर्णमय दण्डवाली सुसज्जित शक्ति चलायी ॥ २८ ॥

तामापतन्तीं जग्राह चित्रो राजन् महामनाः ।
ततस्तामेव चिक्षेप प्रतिविन्ध्याय पार्थिवः ॥ २९ ॥

राजन् ! महामना राजा चित्रने अपनी ओर आती हुई उस शक्तिको हाथसे पकड़ लिया और फिर उसीको प्रतिविन्ध्यपर दे मारा ॥ २९ ॥

समासाद्य रणे शूरं प्रतिविन्ध्यं महाप्रभा ।
निर्भिद्य दक्षिणं बाहुं निपपात महीतले ।
पतिताभासयच्चैव तं देशमशनिर्यथा ॥ ३० ॥

वह अत्यन्त कान्तिमती शक्ति रणभूमिमें शूरवीर प्रतिविन्ध्यको जा लगी और उसकी दाहिनी भुजाको विदीर्ण करती हुई पृथ्वीपर गिर पड़ी । वह जहाँ गिरी, उस स्थानको बिजलीके समान प्रकाशित करने लगी ॥ ३० ॥

प्रतिविन्ध्यस्ततो राजंस्तोमरं हेमभूषितम् ।
प्रेषयामास संक्रुद्धश्चित्रस्य वधकाङ्क्षया ॥ ३१ ॥

राजन् ! तब अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए प्रतिविन्ध्यने चित्रके वधकी इच्छासे उसके ऊपर एक सुवर्णभूषित तोमरका प्रहार किया ॥ ३१ ॥

स तस्य गात्रावरणं भित्त्वा हृदयमेव च ।
जगाम धरणीं तूर्णं महोरग इवाशयम् ॥ ३२ ॥

वह तोमर उसके कवच और वक्षःस्थलको विदीर्ण करता हुआ तुरंत धरतीमें समा गया, जैसे कोई बड़ा सर्प बिलमें घुस गया हो ॥ ३२ ॥

स पपात तदा राजा तोमरेण समाहतः ।
प्रसार्य विपुलौ बाहू पीनौ परिघसंनिभौ ॥ ३३ ॥

तोमरसे अत्यन्त आहत हो राजा चित्र अपनी परिघके



समान मोटी और विशाल भुजाओंको फैलाकर तत्काल पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३३ ॥

चित्रं सम्प्रेक्ष्य निहतं तावका रणशोभिनः ।
अभ्यद्रवन्त वेगेन प्रतिविन्ध्यं समन्ततः ॥ ३४ ॥

चित्रको मारा गया देख संग्राममें शोभा पानेवाले आपके योद्धा प्रतिविन्ध्यपर चारों ओरसे वेगपूर्वक टूट पड़े ॥ ३४ ॥

सृजन्तो विविधान् बाणाञ्शतघ्नीश्च सकिंकिणीः ।
तमवच्छादयामासुः सूर्यमभ्रगणा इव ॥ ३५ ॥

जैसे बादल सूर्यको ढक लेते हैं, उसी प्रकार उन योद्धाओंने नाना प्रकारके बाणों और छोटी-छोटी घंटियोंसहित शतघ्नियोंका प्रहार करके उसे आच्छादित कर दिया ॥ ३५ ॥

तान् विधम्य महाबाहुः शरजालेन संयुगे ।
व्यद्रावयत् तव चमूं वज्रहस्त इवासुरीम् ॥ ३६ ॥

जैसे वज्रधारी इन्द्र असुरोंकी सेनाको खदेड़ते हैं, उसी प्रकार युद्धस्थलमें महाबाहु प्रतिविन्ध्यने अपने बाणसमूहोंसे उन अस्त्र-शस्त्रोंको नष्ट करके आपकी सेनाको मार भगाया ॥

ते वध्यमानाः समरे तावकाः पाण्डवैर्नृप ।
विप्राकीर्यन्त सहसा वातनुन्ना घना इव ॥ ३७ ॥

नरेश्वर ! समरभूमिमें पाण्डवोंकी मार खाकर आपके सैनिक हवाके उड़ाये हुए बादलोंके समान सहसा छिन्न-भिन्न होकर बिखर गये ॥ ३७ ॥

विप्रद्रुते बले तस्मिन् वध्यमाने समन्ततः ।
द्रौणिरेकोऽभ्ययात् तूर्णं भीमसेनं महाबलम् ॥ ३८ ॥

उनके द्वारा मारी जाती हुई आपकी वह सेना जब चारों ओर भागने लगी, तब अकेले अश्वत्थामाने तुरंत ही महाबली भीमसेनपर आक्रमण कर दिया ॥ ३८ ॥

ततः समागमो घोरो बभूव सहसा तयोः ।
यथा देवासुरे युद्धे वृत्रवासवयोरिव ॥ ३९ ॥

फिर तो देवासुर-संग्राममें वृत्रासुर और इन्द्रके समान उन दोनों वीरोंमें सहसा घोर युद्ध छिड़ गया ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि चित्रवधे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें चित्रसेन और चित्रका वधविषयक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

अश्वत्थामा और भीमसेनका अद्भुत युद्ध तथा दोनोंका मूर्छित हो जाना

संजय उवाच

भीमसेनं ततो द्रौणी राजन् विव्याध पत्रिणा ।
परया त्वरया युक्तो दर्शयन्नस्त्रलाघवम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं--राजन् ! तदनन्तर द्रोणकुमार अश्वत्थामाने बड़ी उतावलीके साथ अस्त्र चलानेमें अपनी फुर्ती दिखाते हुए एक बाणसे भीमसेनको बींध डाला ॥ १ ॥

अथैनं पुनराजघ्ने नवत्या निशितैः शरैः ।
सर्वमर्माणि सम्प्रेक्ष्य मर्मज्ञो लघुहस्तवत् ॥ २ ॥

फिर शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले कुशल योद्धाके समान मर्मज्ञ अश्वत्थामाने भीमसेनके सारे मर्मस्थानोंको लक्ष्य करके पुनः उनपर नब्बे तीखे बाणोंका प्रहार किया ॥ २ ॥

भीमसेनः समाकीर्णो द्रौणिना निशितैः शरैः ।
रराज समरे राजन् रश्मिवानिव भास्करः ॥ ३ ॥

राजन् ! अश्वत्थामाके तीखे बाणोंसे समराङ्गणमें आच्छादित हुए भीमसेन किरणोंवाले सूर्यके समान सुशोभित होने लगे ॥ ३ ॥

ततः शरसहस्रेण सुप्रयुक्तेन पाण्डवः ।
द्रोणपुत्रमवच्छाद्य सिंहनादममुञ्चत ॥ ४ ॥

तदनन्तर पाण्डुपुत्र भीमने अच्छी तरह चलाये हुए एक हजार बाणोंसे द्रोणपुत्रको आच्छादित करके घोर सिंहनाद किया ॥ ४ ॥

शरैः शरांस्ततो द्रौणिः संवार्य युधि पाण्डवम् ।
ललाटेऽभ्याहनद् राजन् नाराचेन स्मयन्निव ॥ ५ ॥

राजन् ! अश्वत्थामाने अपने बाणोंसे भीमसेनके बाणोंका निवारण करके युद्धस्थलमें उन पाण्डुपुत्रके ललाटमें मुसकराते हुए-से एक नाराचका प्रहार किया ॥ ५ ॥

ललाटस्थं ततो बाणं धारयामास पाण्डवः ।
यथा शृङ्गं वने दृप्तः खड्गो धारयते नृप ॥ ६ ॥

नरेश्वर ! जैसे वनमें बलोन्मत्त गैंडा सींग धारण करता है, उसी प्रकार पाण्डुपुत्र भीमने अपने ललाटमें धँसे हुए उस बाणको धारण कर रक्खा था ॥ ६ ॥

ततो द्रौणिं रणे भीमो यतमानं पराक्रमी ।
त्रिभिर्विव्याध नाराचैर्ललाटे विस्मयन्निव ॥ ७ ॥

तत्पश्चात् पराक्रमी भीमसेनने रणभूमिमें विजयके लिये प्रयत्नशील अश्वत्थामाके ललाटमें भी मुसकराते हुए-से तीन नाराचोंका प्रहार किया ॥ ७ ॥

ललाटस्थैस्ततो बाणैर्ब्राह्मणोऽसौ व्यशोभत ।
प्रावृषीव यथा सिक्तस्त्रिशृङ्गः पर्वतोत्तमः ॥ ८ ॥

ललाटमें धँसे हुए उन तीनों बाणोंद्वारा वह ब्राह्मण वर्षाकालमें भीगे हुए तीन शिखरोंवाले उत्तम पर्वतके समान अद्भुत शोभा पाने लगा ॥ ८ ॥

ततः शरशतैर्द्रौणिरर्दयामास पाण्डवम् ।
न चैनं कम्पयामास मातरिश्वेव पर्वतम् ॥ ९ ॥

तब अश्वत्थामाने सैकड़ों बाणोंसे पाण्डुपुत्र भीमसेनको पीड़ित किया; परंतु जैसे हवा पर्वतको नहीं हिला सकती, उसी प्रकार वह उन्हें कम्पित न कर सका ॥ ९ ॥

तथैव पाण्डवो युद्धे द्रौणिं शरशतैः शितैः ।
नाकम्पयत संहृष्टो वार्योघ इव पर्वतम् ॥ १० ॥

इसी प्रकार हर्ष और उत्साहमें भरे हुए पाण्डुपुत्र भीमसेन भी युद्धमें सैकड़ों तीखे बाणोंका प्रहार करके द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको विचलित न कर सके। ठीक उसी तरह, जैसे जलका महान् प्रवाह किसी पर्वतको हिला-डुला नहीं सकता ॥ १० ॥

तावन्योन्यं शरैर्घोरैश्छादयानौ महारथौ ।
रथवर्यगतौ वीरौ शुशुभाते बलोत्कटौ ॥ ११ ॥

वे दोनों बलोन्मत्त महारथी वीर श्रेष्ठ रथोंपर बैठकर एक दूसरेको भयंकर बाणोंद्वारा आच्छादित करते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे ॥ ११ ॥

आदित्याविव संदीप्तौ लोकक्षयकरावुभौ ।
स्वरश्मिभिरिवान्योन्यं तापयन्तौ शरोत्तमैः ॥ १२ ॥

जैसे सम्पूर्ण लोकोंका विनाश करनेके लिये उगे हुए दो तेजस्वी सूर्य अपनी किरणोंद्वारा परस्पर ताप दे रहे हों, उसी प्रकार वे दोनों वीर अपने उत्तम बाणोंद्वारा एक दूसरेको संतप्त कर रहे थे ॥ १२ ॥

ततः प्रतिकृते यत्नं कुर्वाणौ तौ महारणे ।
कृतप्रतिकृते यत्तौ शरसङ्घैरभीतवत् ॥ १३ ॥

उस महासमरमें बदला लेनेका यत्न करते हुए वे दोनों योद्धा निर्भय-से होकर अपने बाण-समूहोंद्वारा परस्पर अस्त्रोंके घात-प्रतिघातके लिये प्रयत्नशील थे ॥ १३ ॥

व्याघ्राविव च संग्रामे चेरतुस्तौ नरोत्तमौ ।
शरदंष्ट्रौ दुराधर्षौ चापवक्त्रौ भयंकरौ ॥ १४ ॥

वे दोनों नरश्रेष्ठ संग्रामभूमिमें दो व्याघ्रोंके समान विचर

रहे थे, धनुष ही उन व्याघ्रोंके मुख और बाण ही उनकी दाढ़ें थीं। वे दोनों ही दुर्धर्ष एवं भयंकर प्रतीत होते थे ॥१४॥

अभूतां तावदृश्यौ च शरजालैः समन्ततः।
मेघजालैरिव च्छन्नौ गगने चन्द्रभास्करौ ॥ १५ ॥

आकाशमें मेघोंकी घटासे आच्छादित हुए चन्द्रमा और सूर्यके समान वे दोनों वीर सब ओरसे बाण-समूहोंद्वारा ढक कर अदृश्य हो गये थे ॥ १५ ॥

चकाशेते मुहूर्तेन ततस्तावप्यरिंदमौ।
विमुक्तावभ्रजालेन अङ्गारकबुधाविव ॥ १६ ॥

फिर दो ही घड़ीमें मेघोंके आवरणसे मुक्त हुए मंगल और बुध नामक ग्रहोंके समान वे दोनों शत्रुदमन वीर एक दूसरेके बाणोंको नष्ट करके प्रकाशित होने लगे ॥ १६ ॥

अथ तत्रैव संग्रामे वर्तमाने सुदारुणे।
अपसव्यं ततश्चक्रे द्रौणिस्तत्र वृकोदरम् ॥ १७ ॥

इस प्रकार चलनेवाले उस भयंकर संग्राममें वहीं द्रोण-पुत्र अश्वत्थामाने भीमसेनको अपने दाहिने भागमें कर दिया ॥

किरञ्छरशतैरुग्रैर्धाराभिरिव पर्वतम्।
न तु तन्ममृषे भीमः शत्रोर्विजयलक्षणम् ॥ १८ ॥

फिर जैसे मेघ जलकी धाराओंसे पर्वतको ढक-सा देता है, उसी प्रकार भयंकर एवं सैकड़ों बाणोंद्वारा वह भीमसेनको आच्छादित करने लगा; परंतु भीमसेन शत्रुके इस विजय-सूचक लक्षणको सहन न कर सके ॥ १८ ॥

प्रतिचक्रे ततो राजन् पाण्डवोऽप्यपसव्यतः।
मण्डलानां विभागेषु गतप्रत्यागतेषु च ॥ १९ ॥

राजन्! पाण्डुपुत्र भीमने भी गत-प्रत्यागत आदि मण्डल-भागों (विभिन्न पैंतरों) में अश्वत्थामाको दाहिने करके बदला चुका लिया ॥ १९ ॥

बभूव तुमुलं युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः।
चरित्वा विविधान् मार्गान् मण्डलस्थानमेव च ॥ २० ॥

उन दोनों पुरुषसिंहोंमें मण्डलाकार घूमकर भाँति-भाँतिके पैंतरे दिखाते हुए भयंकर युद्ध होने लगा ॥ २० ॥

शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः।
अन्योन्यस्य वधे चैव चक्रतुर्यत्नमुत्तमम् ॥ २१ ॥

वे कानतक खींचकर छोड़े हुए बाणोंसे परस्पर चोट पहुँचाने और एक दूसरेके वधके लिये भारी यत्न करने लगे ॥

ईषतुर्विरथं चैव कर्तुमन्योन्यमाहवे।
ततो द्रौणिर्महास्त्राणि प्रादुश्चक्रे महारथः ॥ २२ ॥
तान्यस्त्रैरेव समरे प्रतिजघ्नेऽथ पाण्डवः।

दोनों ही युद्धस्थलमें एक दूसरेको रथहीन कर देनेकी इच्छा करने लगे। तदनन्तर महारथी अश्वत्थामाने बड़े-बड़े अस्त्र प्रकट किये; परंतु पाण्डुपुत्र भीमसेनने समराङ्गणमें अपने अस्त्रोंद्वारा ही उन सबको नष्ट कर दिया ॥ २२½ ॥

ततो घोरं महाराज अस्त्रयुद्धमवर्तत ॥ २३ ॥
ग्रहयुद्धं यथा घोरं प्रजासंहरणे ह्यभूत्।

महाराज! फिर तो जैसे प्रजाके संहारकालमें ग्रहोंका घोर युद्ध होने लगता है, उसी प्रकार उन दोनोंमें भयंकर अस्त्र-युद्ध छिड़ गया ॥ २३½ ॥

ते बाणाः समसज्जन्त मुक्तास्ताभ्यां तु भारत ॥ २४ ॥
द्योतयन्तो दिशः सर्वास्तच्च सैन्यं समन्ततः।

भारत! उन दोनोंके छोड़े हुए वे बाण सम्पूर्ण दिशाओं-को प्रकाशित करते हुए आपकी सेनाके चारों ओर गिरने लगे ॥

बाणसङ्घैर्वृतं घोरमाकाशं समपद्यत ॥ २५ ॥
उल्कापातावृतं युद्धं प्रजानां संक्षये नृप।

नरेश्वर! उस समय बाण-समूहोंसे व्याप्त हुआ आकाश बड़ा भयंकर प्रतीत होने लगा; ठीक उसी तरह, जैसे प्रजाके संहारकालमें होनेवाला युद्ध उल्कापातसे व्याप्त होनेके कारण अत्यन्त भयानक दिखायी देता है ॥ २५½ ॥

बाणाभिघातात् संजज्ञे तत्र भारत पावकः ॥ २६ ॥
सविस्फुलिङ्गो दीप्तार्चिर्योऽदहद् वाहिनीद्वयम्।

भरतनन्दन! वहाँ बाणोंके परस्पर टकरानेसे चिनगारियों तथा प्रज्वलित लपटोंके साथ आग प्रकट हो गयी, जो दोनों सेनाओंको दग्ध किये देती थी ॥ २६½ ॥

तत्र सिद्धा महाराज सम्पतन्तोऽब्रुवन् वचः ॥ २७ ॥
युद्धानामति सर्वेषां युद्धमेतदिति प्रभो।
सर्वयुद्धानि चैतस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ २८ ॥

प्रभो! महाराज! उस समय वहाँ उड़कर आते हुए सिद्ध परस्पर इस प्रकार कहने लगे—'यह युद्ध तो सभी युद्धोंसे बढ़कर हो रहा है, अन्य सब युद्ध तो इसकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं थे ॥ २७-२८ ॥

नेदृशं च पुनर्युद्धं भविष्यति कदाचन।
अहो ज्ञानेन सम्पन्नावुभौ ब्राह्मणक्षत्रियौ ॥ २९ ॥

'ऐसा युद्ध फिर कभी नहीं होगा। ये ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों ही अद्भुत ज्ञानसे सम्पन्न हैं ॥ २९ ॥

अहो शौर्येण सम्पन्नावुभौ चोग्रपराक्रमौ।
अहो भीमबलो भीम एतस्य च कृतास्त्रता ॥ ३० ॥

'भयंकर पराक्रम दिखानेवाले ये दोनों योद्धा अद्भुत शौर्य-शाली हैं। अहो! भीमसेनका बल भयंकर है। इनका अस्त्र-ज्ञान अद्भुत है! ॥ ३० ॥

अहो वीर्यस्य सारत्वमहो सौष्ठवमेतयोः।
स्थितावेतौ हि समरे कालान्तकयमोपमौ ॥ ३१ ॥

'अहो! इनके वीर्यकी सारता विलक्षण है। इन दोनोंके युद्धसौन्दर्य आश्चर्यजनक है। ये दोनों समराङ्गणमें कालान्तक एवं यमके समान जान पड़ते हैं ॥ ३१ ॥

रुद्रौ द्वाविव सम्भूतौ यथा द्वाविव भास्करौ।

यमौ वा पुरुषव्याघ्रौ घोररूपावुभौ रणे ॥ ३२ ॥

'ये भयंकर रूपधारी दोनों पुरुषसिंह रणभूमिमें दो रुद्र, दो सूर्य अथवा दो यमराजके समान प्रकट हुए हैं' ॥ ३२ ॥

इति वाचः स्म श्रूयन्ते सिद्धानां वै मुहुर्मुहुः ।
सिंहनादश्च संजज्ञे समेतानां दिवौकसाम् ॥ ३३ ॥

इस प्रकार सिद्धोंकी बातें वहाँ बारंबार सुनायी देती थीं। आकाशमें एकत्र हुए देवताओंका सिंहनाद भी प्रकट हो रहा था ॥ ३३ ॥

अद्भुतं चाप्यचिन्त्यं च दृष्ट्वा कर्म तयो रणे ।
सिद्धचारणसंघानां विस्मयः समपद्यत ॥ ३४ ॥

रणभूमिमें उन दोनोंके अद्भुत एवं अचिन्त्य कर्मको देखकर सिद्धों और चारणोंके समूहोंको बड़ा विस्मय हो रहा था ॥ ३४ ॥

प्रशंसन्ति तदा देवाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
साधु द्रौणे महाबाहो साधु भीमेति चाब्रुवन् ॥ ३५ ॥

उस समय देवता, सिद्ध और महर्षिगण उन दोनोंकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे—'महाबाहु द्रोणकुमार ! तुम्हें साधुवाद ! भीमसेन ! तुम्हारे लिये भी साधुवाद !' ॥ ३५ ॥

तौ शूरौ समरे राजन् परस्परकृतागसौ ।
परस्परमुदीक्षेतां क्रोधादुद्वृत्य चक्षुषी ॥ ३६ ॥

राजन् ! परस्पर अपराध करनेवाले वे दोनों शूरवीर समराङ्गणमें क्रोधसे आँखें फाड़-फाड़कर एक दूसरेकी ओर देख रहे थे ॥ ३६ ॥

क्रोधरक्तेक्षणौ तौ तु क्रोधात् प्रस्फुरिताधरौ ।
क्रोधात् संदष्टदशनौ तथैव दशनच्छदौ ॥ ३७ ॥

क्रोधसे उन दोनोंकी आँखें लाल हो गयी थीं। क्रोधसे उनके ओठ फड़क रहे थे और क्रोधसे ही वे ओठ चबाते एवं दाँत पीसते थे ॥ ३७ ॥

अन्योन्यं छादयन्तौ स्म शरवृष्ट्या महारथौ ।
शराम्बुधारौ समरे शस्त्रविद्युत्प्रकाशिनौ ॥ ३८ ॥

वे दोनों महारथी धनुषरूपी विद्युत्से प्रकाशित होनेवाले मेघके समान हो बाणरूपी जल धारण करते थे और समराङ्गणमें बाण-वर्षा करके एक दूसरेको ढके देते थे ॥ ३८ ॥

तावन्योन्यं ध्वजं विद्ध्वा सारथिं च महारणे ।
अन्योन्यस्य हयान् विद्ध्वा बिभिदाते परस्परम् ॥ ३९ ॥

वे उस महासमरमें परस्परके ध्वज, सारथि और घोड़ोंको बींधकर एक दूसरेको क्षत-विक्षत कर रहे थे ॥ ३९ ॥

ततः क्रुद्धौ महाराज बाणौ गृह्य महाहवे ।
उभौ चिक्षिपतुस्तूर्णमन्योन्यस्य वधैषिणौ ॥ ४० ॥

महाराज ! तदनन्तर उस महासमरमें कुपित हो उन दोनोंने एक दूसरेके वधकी इच्छासे तुरंत दो बाण लेकर चलाये ॥ ४० ॥

तौ सायकौ महाराज द्योतमानौ चमूमुखे ।
आजघ्नतुः समासाद्य वज्रवेगौ दुरासदौ ॥ ४१ ॥

राजेन्द्र ! वे दोनों बाण सेनाके मुहानेपर चमक उठे। उन दोनोंका वेग वज्रके समान था। उन दुर्जय बाणोंने दोनोंके पास पहुँचकर उन्हें घायल कर दिया ॥ ४१ ॥

तौ परस्परवेगाच्च शराभ्यां च भृशाहतौ ।
निपेततुर्महावीर्यौ रथोपस्थे तयोस्तदा ॥ ४२ ॥

परस्परके वेगसे छूटे हुए उन बाणोंद्वारा अत्यन्त घायल हो वे महापराक्रमी वीर अपने-अपने रथकी बैठकमें तत्काल गिर पड़े ॥ ४२ ॥

ततस्तु सारथिर्ज्ञात्वा द्रोणपुत्रमचेतनम् ।
अपोवाह रणाद् राजन् सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ४३ ॥

राजन् ! तत्पश्चात् सारथि द्रोणपुत्रको अचेत जानकर सारी सेनाके देखते-देखते उसे रणक्षेत्रसे बाहर हटा ले गया ॥ ४३ ॥

तथैव पाण्डवं राजन् विह्वलन्तं मुहुर्मुहुः ।
अपोवाह रथेनाजौ सारथिः शत्रुतापनम् ॥ ४४ ॥

महाराज ! इसी प्रकार बारंबार विह्वल होते हुए शत्रुतापन पाण्डुपुत्र भीमसेनको भी रथद्वारा उनका सारथि विशोक युद्धस्थलसे अन्यत्र हटा ले गया ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अश्वत्थामभीमसेनयोर्युद्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें अश्वत्थामा और भीमसेनका युद्धविषयक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

अर्जुनका संशप्तकों तथा अश्वत्थामाके साथ अद्भुत युद्ध

धृतराष्ट्र उवाच

यथा संशप्तकैः सार्धमर्जुनस्याभवद् रणः ।
अन्येषां च महीपानां पाण्डवैस्तद् ब्रवीहि मे ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय ! संशप्तकोंके साथ अर्जुनका तथा अन्य पाण्डवोंके साथ दूसरे-दूसरे राजाओंका जिस प्रकार युद्ध हुआ, वह मुझे बताओ ॥ १ ॥

अश्वत्थाम्नस्तु यद् युद्धमर्जुनस्य च संजय ।
अन्येषां च महीपानां पाण्डवैस्तद् ब्रवीहि मे ॥ २ ॥

सूत ! अश्वत्थामा और अर्जुनका जो युद्ध हुआ था तथा अन्य पाण्डवोंके साथ अन्यान्य नरेशोंका जैसा संग्राम हुआ था, उसका मुझसे वर्णन करो ॥ २ ॥

संजय उवाच

शृणु राजन् यथा वृत्तं संग्रामं ब्रुवतो मम ।
वीराणां शत्रुभिः सार्धं देहपाप्मासुनाशनम् ॥ ३ ॥

संजयने कहा—राजन्! कौरव-वीरोंका शत्रुओंके साथ देह, पाप और प्राणोंका नाश करनेवाला संग्राम जिस प्रकार हुआ था, वह बता रहा हूँ। आप मुझसे सारी बातें सुनिये ॥ ३ ॥

पार्थः संशप्तकबलं प्रविश्यार्णवसंनिभम्।
व्यक्षोभयदमित्रघ्नो महावात इवार्णवम् ॥ ४ ॥

शत्रुनाशक अर्जुनने समुद्रके समान अपार संशप्तक-सेनामें प्रवेश करके उसे उसी प्रकार क्षुब्ध कर डाला, जैसे प्रचण्ड वायु सागरमें ज्वार उठा देती है ॥ ४ ॥

शिरांस्युन्मथ्य वीराणां शितैर्भल्लैर्धनंजयः।
पूर्णचन्द्राभवक्त्राणि स्वक्षिभ्रूदशनानि च ॥ ५ ॥
संतस्तार क्षितिं क्षिप्रं विनालैर्नलिनैरिव।

धनंजयने अपने तीखे भल्लोंसे वीरोंके सुन्दर नेत्र, भौंह और दाँतोंसे सुशोभित, पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले मस्तकोंको काट-काटकर तुरंत ही वहाँकी धरतीको पाट दिया, मानो वहाँ बिना नालके कमल बिछा दिये हों ॥ ५½ ॥

सुवृत्तानायतान् पुष्टांश्चन्दनागुरुभूषितान् ॥ ६ ॥
सायुधान् सतलत्रांश्च पञ्चास्योरगसंनिभान्।
बाहून् क्षुरैरमित्राणां चिच्छेद समरेऽर्जुनः ॥ ७ ॥

अर्जुनने समरभूमिमें अपने क्षुरोंद्वारा शत्रुओंकी उन भुजाओंको भी काट डाला, जो पाँच मुखवाले सर्पोंके समान दिखायी देती थीं, जो गोल, लंबी, पुष्ट तथा अगुरु एवं चन्दनसे चर्चित थीं और जिनमें आयुध एवं दस्ताने भी मौजूद थे ॥ ६-७ ॥

धुर्यान् धुर्यगतान् सूतान् ध्वजांश्चापानि सायकान्।
पाणीन् सरत्नानसकृद् भल्लैश्चिच्छेद पाण्डवः ॥ ८ ॥

पाण्डुपुत्र धनंजयने शत्रुओंके रथोंमें जुते हुए भारवाही घोड़ों, सारथियों, ध्वजों, धनुषों, बाणों और रत्नभूषणभूषित हाथोंको बारबार काट डाला ॥ ८ ॥

रथान् द्विपान् हयांश्चैव सारोहानर्जुनो युधि।
शरैरनेकसाहस्रैर्निन्ये राजन् यमक्षयम् ॥ ९ ॥

राजन्! अर्जुनने युद्धस्थलमें कई हजार बाण मारकर रथों, हाथियों, घोड़ों और उन सबके सवारोंको भी यमलोक पहुँचा दिया ॥ ९ ॥

तं प्रवीराः सुसंरब्धा नर्दमाना इवर्षभाः।
वासितार्थमिव क्रुद्धमभिद्रुत्य मदोत्कटाः ॥ १० ॥
निघ्नन्तमभिजघ्नुस्ते शरैः शृङ्गैरिवर्षभाः।

उस समय संशप्तक वीर अत्यन्त रोषमें भरकर मैथुनकी इच्छावाली गायके लिये लड़नेवाले मदमत्त साँड़ोंके समान गर्जन एवं हुङ्कार करते हुए कुपित अर्जुनकी ओर टूट पड़े और जैसे साँड़ एक दूसरेको सींगोंसे मारते हैं, उसी प्रकार वे अपने ऊपर प्रहार करते हुए अर्जुनको बाणोंद्वारा चोटें पहुँचाने लगे ॥

तस्य तेषां च तद् युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ॥ ११ ॥
त्रैलोक्यविजये यद्वद् दैत्यानां सह वज्रिणा।

अर्जुन और संशप्तकोंका वह घोर युद्ध त्रैलोक्य-विजयके लिये वज्रधारी इन्द्रके साथ घटित हुए दैत्योंके संग्रामके समान रोंगटे खड़े कर देनेवाला था ॥ ११½ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्विषतां सर्वतोऽर्जुनः ॥ १२ ॥
इषुभिर्बहुभिस्तूर्णं विद्ध्वा प्राणाञ्जहार सः।

अर्जुनने सब ओरसे शत्रुओंके अस्त्रोंका अपने अस्त्रोंद्वारा निवारण कर उन्हें तुरंत ही अनेक बाणोंसे घायल करके उन सबके प्राण हर लिये ॥ १२½ ॥

छिन्नत्रिवेणुचक्राक्षान् हतयोधाश्वसारथीन् ॥ १३ ॥
विध्वस्तायुधतूणीरान् समुन्मथितकेतनान्।
संछिन्नयोक्त्ररश्मीकान् विवरूथान् विकूबरान्॥१४॥
विध्वस्तबन्धुरयुगान् विस्रस्ताक्षप्रमण्डलान्।
रथान् विशकलीकुर्वन् महाभ्राणीव मारुतः ॥ १५ ॥
विस्मापयन् प्रेक्षणीयं द्विषतां भयवर्धनम्।
महारथसहस्रस्य समं कर्माकरोज्जयः ॥ १६ ॥

अर्जुनने संशप्तकोंके रथके त्रिवेणु, चक्र और धुरोंको छिन्न-भिन्न कर दिया। योद्धाओं, अश्वों तथा सारथियोंको मार डाला। आयुधों और तरकसोंका विध्वंस कर डाला। ध्वजाओंके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। जोत और लगाम काट डाले। रक्षाके लिये लगाये गये चर्ममय आवरण और कूबर नष्ट कर दिये। रथतल्प और जूए तोड़ दिये तथा रथकी बैठक और धुरोंको जोड़नेवाले काष्ठके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। जैसे हवा महान् मेघोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार विजयशील अर्जुनने रथोंके खण्ड-खण्ड करके सबको आश्चर्यमें डालते हुए अकेले ही सहस्रों महारथियोंके समान दर्शनीय पराक्रम किया, जो शत्रुओंका भय बढ़ानेवाला था ॥ १३—१६ ॥

सिद्धदेवर्षिसंघाश्च चारणाश्चापि तुष्टुवुः।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवर्षाणि चापतन् ॥ १७ ॥
केशवार्जुनयोर्मूर्ध्नि प्राह वाचाशरीरिणी।

सिद्धों तथा देवर्षियोंके समुदायों एवं चारणोंने भी अर्जुनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं, आकाशसे श्रीकृष्ण और अर्जुनके मस्तकपर फूलोंकी वर्षा होने लगी तथा इस प्रकार आकाशवाणी हुई—॥ १७½ ॥

चन्द्राग्न्यनिलसूर्याणां कान्तिदीप्तिबलद्युतीः ॥ १८ ॥
यौ सदा बिभ्रतुर्वीराविमौ तौ केशवार्जुनौ।
ब्रह्मेशानाविवाजय्यौ वीरावेकरथे स्थितौ ॥ १९ ॥
सर्वभूतवरौ वीरौ नरनारायणाविमौ।

'जो सदा चन्द्रमाकी कान्ति, अग्निकी दीप्ति, वायुका बल और सूर्यका तेज धारण करते हैं, वे ही ये दोनों वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं। एक ही रथपर बैठे हुए ये दोनों वीर ब्रह्मा तथा भगवान् शङ्करके समान सर्वथा अजेय हैं। ये ही सम्पूर्ण भूतोंमें सर्वश्रेष्ठ वीर नर और नारायण हैं' ॥ १८-१९½ ॥

इत्येतन्महदाश्चर्यं दृष्ट्वा श्रुत्वा च भारत ॥ २० ॥

अश्वत्थामा सुसंयत्तः कृष्णावभ्यद्रवद् रणे ।

भरतनन्दन! यह महान् आश्चर्यकी बात देख और सुनकर अश्वत्थामाने सावधान हो रणभूमिमें श्रीकृष्ण और अर्जुनपर धावा किया ॥ २०½ ॥

अथ पाण्डवमस्यन्तममित्रघ्नकराञ्छरान् ॥ २१ ॥
सेषुणा पाणिनाऽऽहूय प्रहसन् द्रौणिरब्रवीत् ।

तदनन्तर शत्रुनाशक बाणोंका प्रहार करते हुए पाण्डुपुत्र अर्जुनको बाणयुक्त हाथसे बुलाकर अश्वत्थामाने हँसते हुए कहा—॥ २१½ ॥

यदि मां मन्यसे वीर प्राप्तमर्हमिहातिथिम् ॥ २२ ॥
ततः सर्वात्मना त्वद्य युद्धातिथ्यं प्रयच्छ मे ।

'वीर ! यदि तुम मुझे यहाँ आया हुआ पूजनीय अतिथि मानो तो सब प्रकारसे आज युद्धके द्वारा मेरा आतिथ्य-सत्कार करो' ॥ २२½ ॥

एवमाचार्यपुत्रेण समाहूतो युयुत्सया ॥ २३ ॥
बहु मेनेऽर्जुनोऽऽत्मानमिति चाह जनार्दनम् ।

आचार्यपुत्रके द्वारा इस प्रकार युद्धकी इच्छासे बुलाये जानेपर अर्जुनने अपना अहोभाग्य माना और भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा—॥ २३½ ॥

संशप्तकाश्च मे वध्या द्रौणिराह्वयते च माम् ॥ २४ ॥
यदत्रानन्तरं प्राप्तं शंस मे तद्धि माधव ।
आतिथ्यकर्माभ्युत्थाय दीयतां यदि मन्यसे ॥ २५ ॥

'माधव ! एक ओर तो मुझे संशप्तकोंका वध करना है, दूसरी ओर द्रोणकुमार अश्वत्थामा युद्धके लिये मेरा आह्वान कर रहा है। अतः यहाँ मेरे लिये जो पहले कर्तव्य प्राप्त हो, उसे मुझे बताइये। यदि आप ठीक समझें तो पहले उठकर अश्वत्थामाको ही आतिथ्य ग्रहण करनेका अवसर दिया जाय' ॥ २४-२५ ॥

एवमुक्तोऽवहत् पार्थं कृष्णो द्रोणात्मजान्तिके ।
जैत्रेण विधिनाऽऽहूतं वायुरिन्द्रमिवाध्वरे ॥ २६ ॥

अर्जुनके ऐसा कहनेपर श्रीकृष्णने उन्हें विजयशील रथके द्वारा द्रोणकुमारके निकट पहुँचा दिया। ठीक वैसे ही, जैसे वैदिक विधिसे आवाहित इन्द्र देवताको वायुदेव यज्ञमें पहुँचा देते हैं ॥

तमामन्त्र्यैकमनसं केशवो द्रौणिमब्रवीत् ।
अश्वत्थामन् स्थिरो भूत्वा प्रहराशु सहस्व च ॥ २७ ॥

तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णने एकाग्रचित्त द्रोणकुमारको सम्बोधित करके कहा—'अश्वत्थामन् ! स्थिर होकर शीघ्रता-पूर्वक प्रहार करो और अपने ऊपर किये गये प्रहारको सहन करो ॥

निर्वेष्टुं भर्तृपिण्डं हि कालोऽयमुपजीविनाम् ।
सूक्ष्मो विवादो विप्राणां स्थूलौ क्षात्रौ जयाजयौ ॥ २८ ॥

'क्योंकि स्वामीके आश्रित रहकर जीवननिर्वाह करनेवाले पुरुषोंके लिये अपने रक्षकके अन्नको सफल करनेका यही अवसर आया है, ब्राह्मणोंका विवाद सूक्ष्म (बुद्धिके द्वारा साध्य) होता है; परंतु क्षत्रियोंकी जय-पराजय स्थूल अस्त्रोंद्वारा सम्पन्न होती हैं ॥ २८ ॥

यामभ्यर्थयसे मोहाद् दिव्यां पार्थस्य सत्क्रियाम् ।
तामाप्तुमिच्छन् युध्यस्व स्थिरो भूत्वाद्य पाण्डवम् ॥

'तुम मोहवश अर्जुनसे जिस दिव्य सत्कारकी प्रार्थना कर रहे हो, उसे पानेकी इच्छासे आज तुम स्थिर होकर पाण्डुपुत्र धनंजयके साथ युद्ध करो' ॥ २९ ॥

इत्युक्तो वासुदेवेन तथेत्युक्त्वा द्विजोत्तमः ।
विव्याध केशवं षष्ट्या नाराचैरर्जुनं त्रिभिः ॥ ३० ॥

भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर द्विजश्रेष्ठ अश्वत्थामाने 'बहुत अच्छा' कहकर केशवको साठ और अर्जुनको तीन बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ३० ॥

तस्यार्जुनः सुसंक्रुद्धस्त्रिभिर्बाणैः शरासनम् ।
चिच्छेद चान्यदादत्त द्रौणिर्घोरतरं धनुः ॥ ३१ ॥

तब अर्जुनने अत्यन्त कुपित होकर तीन बाणोंसे अश्वत्थामाका धनुष काट दिया; परंतु द्रोणकुमारने उससे भी भयंकर दूसरा धनुष हाथमें ले लिया ॥ ३१ ॥

सज्यं कृत्वा निमेषाच्च विव्याधार्जुनकेशवौ ।
त्रिभिः शतैर्वासुदेवं सहस्रेण च पाण्डवम् ॥ ३२ ॥

उसने पलक मारते-मारते उस धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर अर्जुन और श्रीकृष्णको बींध डाला। श्रीकृष्णको तीन सौ और अर्जुनको एक हजार बाण मारे ॥ ३२ ॥

ततः शरसहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
ससृजे द्रौणिरायस्तः संस्तभ्य च रणेऽर्जुनम् ॥ ३३ ॥

तदनन्तर द्रोणकुमार अश्वत्थामाने प्रयत्नपूर्वक अर्जुनको युद्धस्थलमें स्तम्भित करके उनके ऊपर हजारों, लाखों और अरबों बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ३३ ॥

इषुधेर्धनुषश्चैव ज्यायाश्चैवाथ मारिष ।
बाह्वोः कराभ्यामुरसो वदनघ्राणनेत्रतः ॥ ३४ ॥
कर्णाभ्यां शिरसोऽङ्गेभ्यो लोमवर्मभ्य एव च ।
रथध्वजेभ्यश्च शरा निष्पेतुर्ब्रह्मवादिनः ॥ ३५ ॥

मान्यवर ! उस समय वेदवादी अश्वत्थामाके तरकस, धनुष, प्रत्यञ्चा, बाँह, हाथ, छाती, मुख, नाक, आँख, कान, सिर, भिन्न-भिन्न अङ्ग, रोम, कवच, रथ और ध्वजोंसे भी बाण निकल रहे थे ॥ ३४-३५ ॥

शरजालेन महता विद्ध्वा माधवपाण्डवौ ।
ननाद मुदितो द्रौणिर्महामेघौघनिःस्वनम् ॥ ३६ ॥

इस प्रकार बाणोंके महान् समुदायसे श्रीकृष्ण और अर्जुनको घायल करके आनन्दित हुआ द्रोणकुमार महान् मेघोंके गम्भीर घोषके समान गर्जना करने लगा ॥ ३६ ॥

(तैः पतद्भिर्महाराज द्रौणिमुक्तैः समन्ततः ।
संछादितौ रथस्थौ तावुभौ कृष्णधनंजयौ ॥

महाराज ! अश्वत्थामाके धनुषसे छूटकर सब ओर गिरने-

वाले उन बाणोंद्वारा रथपर बैठे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों ढक गये॥

ततः शरशतैस्तीक्ष्णैर्भारद्वाजः प्रतापवान्।
निश्चेष्टौ तावुभौ चक्रे रणे माधवपाण्डवौ॥

तत्पश्चात् प्रतापी भरद्वाजकुलनन्दन अश्वत्थामाने सैकड़ों तीखे बाणोंसे रणभूमिमें श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंको निश्चेष्ट कर दिया॥

हाहाकृतमभूत् सर्वं स्थावरं जङ्गमं तथा।
चराचरस्य गोप्तारौ दृष्ट्वा संछादितौ शरैः॥

चराचरकी रक्षा करनेवाले उन दोनों महापुरुषोंको बाणोंद्वारा आच्छादित देख समस्त स्थावर-जङ्गम जगत्में हाहाकार मच गया॥

सिद्धचारणसंघाश्च सम्पेतुर्वै समन्ततः।
अपि स्वस्ति भवेदद्य लोकानामिति चाब्रुवन्॥

सिद्ध और चारणोंके समुदाय सब ओरसे वहाँ आ पहुँचे और बोले—'आज तीनों लोकोंका मङ्गल हो'॥

न मया तादृशो राजन् दृष्टपूर्वः पराक्रमः।
संजज्ञे यादृशो द्रौणेः कृष्णौ छादयतो रणे॥

राजन्! मैंने इससे पहले अश्वत्थामाका वैसा पराक्रम नहीं देखा था, जैसा कि रणभूमिमें श्रीकृष्ण और अर्जुनको आच्छादित करते समय प्रकट हुआ था॥

द्रौणेस्तु धनुषः शब्दं रथानां त्रासनं रणे।
अश्रौषं बहुशो राजन् सिंहस्य नदतो यथा॥

नरेश्वर! रणभूमिमें द्रोणकुमारके धनुषकी टङ्कार बड़े-बड़े रथियोंको भयभीत करनेवाली थी। दहाड़ते हुए सिंहके समान उसके शब्दको मैंने बहुत बार सुना था॥

ज्या चास्य चरतो युद्धे सव्यं दक्षिणमस्यतः।
विद्युदम्भोधरस्येव भ्राजमाना व्यदृश्यत॥

युद्धमें विचरते हुए अश्वत्थामाके धनुषकी प्रत्यञ्चा बायें-दायें बाण छोड़ते समय बादलमें बिजलीके समान चमकती दिखायी देती थी॥

स तदा क्षिप्रकारी च दृढहस्तश्च पाण्डवः।
प्रमोहं परमं गत्वा प्रेक्षन्नास्ते धनंजयः॥

शीघ्रता करने और दृढ़तापूर्वक हाथ चलानेवाले पाण्डुपुत्र धनंजय उस समय भारी मोहमें पड़कर केवल देखते रह गये थे॥

विक्रमं च हृतं मेने आत्मनस्तेन संयुगे।
तदास्य समरे राजन् वपुरासीत् सुदुर्दृशम्॥
द्रौणेस्तत् कुर्वतः कर्म यादृग्रूपं पिनाकिनः।

उन्हें युद्धमें ऐसा मालूम होता था कि अश्वत्थामाने मेरा पराक्रम हर लिया है। राजन्! उस समय समराङ्गणमें वैसा पराक्रम करते हुए द्रोणकुमार अश्वत्थामाका शरीर ऐसा डरावना हो गया था कि उसकी ओर देखना कठिन हो रहा था। पिनाकपाणि भगवान् रुद्रका जैसा रूप दिखायी देता है, वैसा ही उसका भी था॥

वर्धमाने ततस्तत्र द्रोणपुत्रे विशाम्पते॥
हीयमाने च कौन्तेये कृष्णं रोषः समाविशत्।

प्रजानाथ! जब वहाँ द्रोणपुत्र बढ़ने लगा और कुन्तीकुमारका पराक्रम घटने लगा, तब श्रीकृष्णको बड़ा रोष हुआ॥

स रोषान्निःश्वसन् राजन् निर्दहन्निव चक्षुषा॥
द्रौणिं ददर्श संग्रामे फाल्गुनं च मुहुर्मुहुः।
ततः क्रुद्धोऽब्रवीत् कृष्णः पार्थं सप्रणयं वचः॥

राजन्! वे क्रोधपूर्वक लंबी साँस खींचते हुए संग्रामभूमिमें अश्वत्थामाकी ओर इस प्रकार देखने लगे, मानो उसे अपनी दृष्टिद्वारा दग्ध कर देंगे। अर्जुनकी ओर भी वे बारंबार दृष्टिपात करने लगे। फिर कुपित हुए श्रीकृष्णने अर्जुनसे प्रेमपूर्वक कहा॥

श्रीभगवानुवाच

अत्यद्भुतमहं पार्थ त्वयि पश्यामि संयुगे।
यत् त्वां विशेषयत्याजौ द्रोणपुत्रोऽद्य भारत॥
कच्चित्ते गाण्डिवं हस्ते मुष्टिर्वा न व्यशीर्यत।
कच्चिद् वीर्यं यथापूर्वं भुजयोर्वा बलं तव॥
उदीर्यमाणं हि रणे पश्यामि द्रौणिमाहवे।

श्रीभगवान् बोले—पार्थ! भरतनन्दन! मैं इस युद्धमें तुम्हारे अंदर यह अत्यन्त अद्भुत परिवर्तन देख रहा हूँ कि आज द्रोणकुमार रणभूमिमें तुमसे आगे बढ़ा जा रहा है। क्या तुम्हारे हाथमें गाण्डीव धनुष है? या तुम्हारी मुट्ठी ढीली पड़ गयी? क्या तुम्हारी दोनों भुजाओंमें पहलेके समान ही बल और पराक्रम है? क्योंकि इस समय संग्राममें द्रोणपुत्रको मैं तुमसे बढ़ा-चढ़ा देख रहा हूँ॥

गुरुपुत्र इति ह्येनं मानयन् भरतर्षभ॥
उपेक्षां मा कृथाः पार्थ नायं कालो ह्युपेक्षितुम्॥)

भरतश्रेष्ठ! यह मेरे गुरुका पुत्र है, ऐसा समझकर इसे सम्मान देते हुए तुम इसकी उपेक्षा न करो। पार्थ! यह उपेक्षाका अवसर नहीं है॥

तस्य तं निनदं श्रुत्वा पाण्डवोऽच्युतमब्रवीत्।
पश्य माधव दौरात्म्यं गुरुपुत्रस्य मां प्रति॥ ३७॥

(भगवान् श्रीकृष्णका यह कथन तथा) अश्वत्थामाके उस सिंहनादको सुनकर पाण्डुपुत्र अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा—'माधव! देखिये तो सही गुरुपुत्र अश्वत्थामा मेरे प्रति कैसी दुष्टता कर रहा है!॥ ३७॥

वधं प्राप्तौ मन्यते नौ प्रवेश्य शरवेश्मनि।
एषोऽस्मि हन्मि संकल्पं शिक्षया च बलेन च॥ ३८॥

'यह अपने बाणोंके घेरेमें डालकर हम दोनोंको मारा गया समझता है। मैं अभी अपनी शिक्षा और बलसे इसके इस मनोरथको नष्ट किये देता हूँ'॥ ३८॥

अश्वत्थाम्नः शरानस्तान् छित्त्वैकैकं त्रिधा त्रिधा।

व्यधमद् भरतश्रेष्ठो नीहारमिव मारुतः ॥ ३९ ॥

ऐसा कहकर भरतश्रेष्ठ अर्जुनने अश्वत्थामाके चलाये हुए उन बाणोंमेंसे प्रत्येकके तीन-तीन टुकड़े करके उन सबको उसी प्रकार नष्ट कर दिया, जैसे हवा कुहरेको उड़ा देती है ॥ ३९ ॥

ततः संशप्तकान् भूयः साश्वसूतरथद्विपान् ।
ध्वजपत्तिगणानुग्रैर्बाणैर्विव्याध पाण्डवः ॥ ४० ॥

तदनन्तर पाण्डुकुमार अर्जुनने पुनः घोड़े, सारथि, रथ, हाथी, पैदलसमूह और ध्वजोंसहित संशप्तक-सैनिकोंको अपने भयंकर बाणोंद्वारा बींध डाला ॥ ४० ॥

ये ये ददृशिरे तत्र यद्यद्रूपास्तदा जनाः ।
ते ते तत्र शरैर्व्याप्तं मेनिरेऽऽत्मानमात्मना ॥ ४१ ॥

उस समय वहाँ जो-जो मनुष्य जिस-जिस रूपमें दिखायी देते थे, वे-वे स्वयं ही अपने आपको बाणोंसे व्याप्त मानने लगे ॥

ते गाण्डीवप्रमुक्तास्तु नानारूपाः पतत्रिणः ।
क्रोशे साग्रे स्थितान् घ्नन्ति द्विपांश्च पुरुषान् रणे ।४२।

गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए नाना प्रकारके बाण रणभूमिमें एक कोससे अधिक दूरीपर खड़े हुए हाथियों और मनुष्योंको भी मार डालते थे ॥ ४२ ॥

भल्लैश्छिन्नाः कराः पेतुः करिणां मदवर्षिणाम् ।
यथा वने परशुभिर्निकृत्ताः सुमहाद्रुमाः ॥ ४३ ॥

जैसे जंगलमें कुल्हाड़ोंसे काटनेपर बड़े-बड़े वृक्ष धराशायी हो जाते हैं, उसी प्रकार वहाँ मदकी वर्षा करनेवाले गजराजोंके शुण्डदण्ड भल्लोंसे कट-कटकर धरतीपर गिरने लगे ॥ ४३ ॥

पश्चात्तु शैलवत् पेतुस्ते गजाः सह सादिभिः ।
वज्रिवज्रप्रमथिता यथैवाद्रिचयास्तथा ॥ ४४ ॥

सूँड़ कटनेके पश्चात् वे पर्वतोंके समान हाथी अपने सवारोंसहित उसी प्रकार गिर जाते थे, जैसे वज्रधारी इन्द्रके वज्रसे विदीर्ण होकर गिरे हुए पहाड़ोंके ढेर लगे हों ॥ ४४ ॥

गन्धर्वनगराकारान् रथांश्चैव सुकल्पितान् ।
विनीतैर्जवनैर्युक्तानास्थितान् युद्धदुर्मदैः ॥ ४५ ॥
शरैर्विशकलीकुर्वन्नमित्रानभ्यवीवृषत् ।
स्वलंकृतानश्वसादीन् पत्तींश्चाहन् धनंजयः ॥ ४६ ॥

धनंजय अपने बाणोंद्वारा सुशिक्षित घोड़ोंसे जुते हुए, रणदुर्मद रथियोंकी सवारीमें आये हुए एवं गन्धर्वनगरके समान आकारवाले सुसज्जित रथोंके टुकड़े-टुकड़े करते हुए शत्रुओंपर बाण बरसाते और सजे-सजाये घुड़सवारों एवं पैदलोंको भी मार गिराते थे ॥ ४५-४६ ॥

धनंजययुगान्ताकः संशप्तकमहार्णवम् ।
व्यशोषयत दुःशोषं तीक्ष्णैः शरगभस्तिभिः ॥ ४७ ॥

अर्जुनरूपी प्रलयकालिक सूर्यने जिसका शोषण करना कठिन था, ऐसे संशप्तक-सैन्यरूपी महासागरको अपनी बाणमयी प्रचण्ड किरणोंसे सोख लिया ॥ ४७ ॥

पुनर्द्रौणिं महाशैलं नाराचैर्वज्रसंनिभैः ।
निर्बिभेद महावेगैस्त्वरन् वज्रीव पर्वतम् ॥ ४८ ॥

जैसे वज्रधारी इन्द्रने पर्वतोंको विदीर्ण किया था, उसी प्रकार अर्जुनने महान् वेगशाली वज्रतुल्य नाराचोंद्वारा अश्वत्थामारूपी महान् शैलको पुनः वेधना आरम्भ किया ॥ ४८ ॥

तमाचार्यसुतः क्रुद्धः साश्वयन्तारमाशुगैः ।
युयुत्सुराभ्यमद् योद्धुं पार्थस्तानच्छिनच्छरान् ॥ ४९ ॥

तब क्रोधमें भरा हुआ आचार्यपुत्र सारथि श्रीकृष्णसहित अर्जुनके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे बाणोंद्वारा उनके सामने उपस्थित हुआ; परंतु कुन्तीकुमार अर्जुनने उसके सभी बाण काट गिराये ॥

ततः परमसंक्रुद्धः पाण्डवेऽस्त्राण्यवासृजत् ।
अश्वत्थामाभिरूपाय गृहानतिथये यथा ॥ ५० ॥

तदनन्तर अत्यन्त कुपित हुआ अश्वत्थामा पाण्डुपुत्र अर्जुनको उसी प्रकार अपने अस्त्र अर्पित करने लगा, जैसे कोई गृहस्थ योग्य अतिथिको अपना सारा घर सौंप देता है ॥

अथ संशप्तकांस्त्यक्त्वा पाण्डवो द्रौणिमभ्ययात् ।
अपाङ्क्तेयानिव त्यक्त्वा दाता पाङ्क्तेयमर्थिनम् ॥ ५१ ॥

तब पाण्डुपुत्र अर्जुन संशप्तकोंको छोड़कर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके सामने आये । ठीक उसी तरह, जैसे दाता पंक्तिमें बैठनेके अयोग्य ब्राह्मणोंको छोड़कर याचना करनेवाले पंक्तिपावन ब्राह्मणकी ओर जाता है ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अश्वत्थामार्जुनसंवादे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें अश्वत्थामा और अर्जुनका संवादविषयक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १५½ श्लोक मिलाकर कुल ६६½ श्लोक हैं)

सप्तदशोऽध्यायः

अर्जुनके द्वारा अश्वत्थामाकी पराजय

संजय उवाच

ततः समभवद् युद्धं शुक्राङ्गिरसवर्चसोः ।
नक्षत्रमभितो व्योम्नि शुक्राङ्गिरसयोरिव ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर आकाशमें नक्षत्रमण्डलके निकट परस्पर युद्ध करनेवाले शुक्राचार्य और बृहस्पतिके समान वहाँ रणभूमिमें श्रीकृष्णके निकट शुक्र और बृहस्पतिके तुल्य तेजस्वी अश्वत्थामा और अर्जुनका युद्ध होने लगा ॥

संतापयन्तावन्योन्यं दीप्तैः शरगभस्तिभिः ।
लोकत्रासकरावास्तां विमार्गस्थौ ग्रहाविव ॥ २ ॥

जैसे वक्र या अतिचार गतिसे चलनेवाले दो ग्रह सम्पूर्ण जगत्के लिये त्रास उत्पन्न करनेवाले हो जाते हैं, उसी प्रकार वे दोनों वीर अपनी बाणमयी प्रज्वलित किरणोंद्वारा एक दूसरेको संताप देने लगे ॥ २ ॥

ततोऽविध्यद् भ्रुवोर्मध्ये नाराचेनार्जुनो भृशम् ।

स तेन विबभौ द्रौणिरूर्ध्वरश्मिर्यथा रविः ॥ ३ ॥

तत्पश्चात् अर्जुनने एक नाराचसे अश्वत्थामाकी दोनों भौंहोंके मध्यभागमें गहरा आघात पहुँचाया। ललाटमें धँसे हुए उस बाणसे अश्वत्थामा ऊपरकी ओर उठी हुई किरणोंवाले सूर्यके समान सुशोभित होने लगा ॥ ३ ॥

अथ कृष्णौ शरशतैरश्वत्थाम्नार्दितौ भृशम्।
स्वरश्मिजालविकचौ युगान्तार्काविवासतुः ॥ ४ ॥

इसके बाद अश्वत्थामाने भी श्रीकृष्ण और अर्जुनको अपने सैकड़ों बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी। उस समय वे दोनों अपनी किरणोंका प्रसार करनेवाले प्रलयकालके दो सूर्योंके समान प्रतीत होते थे ॥ ४ ॥

ततोऽर्जुनः सर्वतोधारमस्त्र-
मवासृजद् वासुदेवेऽभिभूते।
द्रौणायनिं चाभ्यहनत् पृषत्कै-
र्वज्राग्निवैवस्वतदण्डकल्पैः ॥ ५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके घायल होनेपर अर्जुनने एक ऐसे अस्त्रका प्रयोग किया, जिसकी धार सब ओर थी। उन्होंने वज्र, अग्नि और यमदण्डके समान अमोघ, दाहक और प्राणहारी बाणोंद्वारा द्रोणकुमार अश्वत्थामाको घायल कर दिया ॥ ५ ॥

स केशवं चार्जुनं चातितेजा
विव्याध मर्मस्वतिरौद्रकर्मा।
बाणैः सुयुक्तैरतितीव्रवेगै-
र्यैराहतो मृत्युरपि व्यथेत ॥ ६ ॥

फिर अत्यन्त भयंकर कर्म करनेवाले महातेजस्वी अश्वत्थामाने भी अच्छी तरह छोड़े हुए अत्यन्त तीव्र वेगवाले बाणोंद्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुनके मर्मस्थानोंमें आघात किया। वे बाण ऐसे थे जिनकी चोट खाकर मौतको भी व्यथा हो सकती थी॥

द्रौणेरिषूनर्जुनः संनिवार्य
व्यायच्छतस्तद्द्विगुणैः सुपुङ्खैः।
तं साश्वसूतध्वजमेकवीर-
मावृत्य संशप्तकसैन्यमार्च्छत् ॥ ७ ॥

अर्जुनने परिश्रमपूर्वक बाण चलानेवाले द्रोणकुमारके उन बाणोंका सुन्दर पंखवाले उनसे दुगुने बाणोंद्वारा निवारण करके घोड़े, सारथि और ध्वजसहित उस एक वीरको आच्छादित कर दिया। फिर वे संशप्तकसेनाकी ओर चल दिये ॥ ७ ॥

धनूंषि बाणानिषुधीर्धनुर्ज्याः
पाणीन् भुजान् पाणिगतं च शस्त्रम्।
छत्राणि केतूंस्तुरगान् रथेषां
वस्त्राणि माल्यान्यथ भूषणानि ॥ ८ ॥
चर्माणि वर्माणि मनोरमाणि
प्रियाणि सर्वाणि शिरांसि चैव।
चिच्छेद पार्थो द्विषतां सुयुक्तै-
र्बाणैः स्थितानामपराङ्मुखानाम् ॥ ९ ॥

कुन्तीकुमार अर्जुनने उत्तम रीतिसे छोड़े गये बाणोंद्वारा युद्धमें पीठ न दिखाकर सामने खड़े हुए शत्रुओंके धनुष, बाण, तरकस, प्रत्यञ्चा, हाथ, भुजा, हाथमें रक्खे हुए शस्त्र, छत्र, ध्वज, अश्व, रथ, ईषादण्ड, वस्त्र, माला, आभूषण, ढाल, सुन्दर कवच, समस्त प्रिय वस्तु तथा मस्तक—इन सबको काट डाला ॥ ८-९ ॥

सुकल्पिताः स्यन्दनवाजिनागाः
समास्थिताः कृतयत्नैर्नृवीरैः।
पार्थेरितैर्बाणशतैर्निरस्ता-
स्तैरेव सार्धं नृवरैर्निपेतुः ॥ १० ॥

सुन्दर सजे-सजाये रथ, घोड़े और हाथी खड़े थे और उनपर प्रयत्नपूर्वक युद्ध करनेवाले नरवीर बैठे थे; परंतु अर्जुनके चलाये हुए सैकड़ों बाणोंसे घायल हो वे सारे वाहन उन नरवीरोंके साथ ही धराशायी हो गये ॥ १० ॥

पद्मार्कपूर्णेन्दुनिभाननानि
किरीटमाल्याभरणोज्ज्वलानि।
भल्लार्धचन्द्रक्षुरकर्तितानि
प्रपेतुरुर्व्यां नृशिरांस्यजस्रम् ॥ ११ ॥

जिनके मुखकमल, सूर्य और पूर्ण चन्द्रमाके समान सुन्दर, तेजस्वी एवं मनोरम थे तथा मुकुट, माला एवं आभूषणोंसे प्रकाशित हो रहे थे, ऐसे असंख्य नरमुण्ड भल्ल, अर्द्धचन्द्र तथा क्षुरनामक बाणोंसे कट-कटकर लगातार पृथ्वीपर गिर रहे थे ॥ ११ ॥

अथ द्विपैर्देवपतिद्विपाभै-
र्देवारिदर्पापहमत्युदग्रम्।
कलिङ्गवङ्गाङ्गनिषादवीरा
जिघांसवः पाण्डवमभ्यधावन् ॥ १२ ॥

तत्पश्चात् कलिङ्ग, अङ्ग, वङ्ग और निषाद देशोंके वीर देवराज इन्द्रके ऐरावत हाथीके समान विशाल गजराजोंपर सवार हो, देवद्रोहियोंका दर्प दलन करनेवाले प्रचण्ड वीर पाण्डुकुमार अर्जुनपर उन्हें मार डालनेकी इच्छासे चढ़ आये ॥ १२ ॥

तेषां द्विपानां निचकर्त पार्थो
वर्माणि चर्माणि करान् नियन्तॄन्।
ध्वजान् पताकांश्च ततः प्रपेतु-
र्वज्राहतानीव गिरेः शिरांसि ॥ १३ ॥

कुन्तीकुमार अर्जुनने उनके हाथियोंके कवच, चर्म, सूँड, महावत, ध्वजा और पताका—सबको काट डाला। इससे वे वज्रके मारे हुए पर्वतीय शिखरोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़े ॥

तेषु प्रभग्नेषु गुरोस्तनूजं
बाणैः किरीटी नवसूर्यवर्णैः।
प्रच्छादयामास महाभ्रजालै-
र्वायुः समुद्यन्तमिवांशुमन्तम् ॥ १४ ॥

उनके नष्ट हो जानेपर किरीटधारी अर्जुनने प्रभातकालके

सूर्यकी कान्तिके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा गुरुपुत्र अश्वत्थामाको ढक दिया, मानो वायुने उगते हुए किरणोंवाले सूर्यको मेघोंकी बड़ी भारी घटाओंसे आच्छादित कर दिया हो ॥ १४ ॥

ततोऽर्जुनेषूनिषुभिर्निरस्य
द्रौणिः शितैरर्जुनवासुदेवौ।
प्रच्छादयित्वा दिवि चन्द्रसूर्यौ
ननाद सोऽम्भोद इवातपान्ते ॥ १५ ॥

तब द्रोणकुमार अश्वत्थामाने अपने तीखे बाणोंद्वारा अर्जुनके बाणोंका निवारण करके श्रीकृष्ण और अर्जुनको ढक दिया और आकाशमें चन्द्रमा तथा सूर्यको आच्छादित करके गर्जनेवाले वर्षाकालके मेघकी भाँति वह गम्भीर गर्जना करने लगा॥

तमर्जुनस्तांश्च पुनस्त्वदीया-
नभ्यर्दितस्तैरभिसृत्य शस्त्रैः।
बाणान्धकारं सहसैव कृत्वा
विव्याध सर्वानिषुभिः सुपुङ्खैः ॥ १६ ॥

उसके बाणोंसे पीडित हुए अर्जुनने आगे बढ़कर सहसा शस्त्रोंद्वारा शत्रुके बाणजनित अन्धकारको नष्ट करके उत्तम पंखवाले अपने बाणोंद्वारा अश्वत्थामा तथा आपके अन्य समस्त सैनिकोंको पुनः घायल कर दिया ॥ १६ ॥

नाप्याददत् संदधन्नैव मुञ्चन्
बाणान् रथेऽदृश्यत सव्यसाची।
रथांश्च नागांस्तुरगान् पदातीन्
संस्यूतदेहान् ददृशुर्हतांश्च ॥ १७ ॥

रथपर बैठे हुए सव्यसाची अर्जुन कब तरकससे बाण लेते, कब उन्हें धनुषपर रखते और कब छोड़ते हैं, यह नहीं दिखायी देता था। सब लोग यही देखते थे कि रथियों, हाथियों, घोड़ों और पैदल सैनिकोंके शरीर उनके बाणोंसे गुँथे हुए हैं और वे प्राणशून्य हो गये हैं ॥ १७ ॥

संधाय नाराचवरान् दशाशु
द्रौणिस्त्वरन्नेकमिवोत्ससर्ज।
तेषां च पञ्चार्जुनमभ्यविध्यन्
पञ्चाच्युतं निर्बिभिदुः सुपुङ्खाः ॥ १८ ॥

तब अश्वत्थामाने बड़ी उतावलीके साथ अपने धनुषपर दस उत्तम नाराच रक्खे और उन सबको एकके ही समान एक साथ छोड़ दिया। उनमेंसे पाँच सुन्दर पंखवाले नाराचोंने अर्जुनको बींध डाला और पाँचने श्रीकृष्णको क्षत-विक्षत कर दिया॥

तैराहतौ सर्वमनुष्यमुख्या-
वसृक् स्रवन्तौ धनदेन्द्रकल्पौ।
समाप्तविद्येन तथाभिभूतौ
हतौ रणे ताविति मेनिरेऽन्ये ॥ १९ ॥

उन बाणोंसे आहत होकर सम्पूर्ण मनुष्योंमें श्रेष्ठ, कुबेर और इन्द्रके समान पराक्रमी वे दोनों वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन अपने अङ्गोंसे रक्त बहाने लगे। जिसकी विद्या पूरी हो चुकी थी, उस अश्वत्थामाके द्वारा इस प्रकार पराभवको प्राप्त हुए उन दोनोंको अन्य सब लोगोंने यही समझा कि 'वे रणभूमिमें मारे गये' ॥ १९ ॥

अथार्जुनं प्राह दशार्हनाथः
प्रमाद्यसे किं जहि योधमेतम्।
कुर्याद्धि दोषं समुपेक्षितोऽयं
कष्टो भवेद् व्याधिरिवाक्रियावान् ॥ २० ॥

तब दशार्हवंशके स्वामी श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'पार्थ! तुम क्यों प्रमाद कर रहे हो? इस योद्धाको मार डालो। इसकी उपेक्षा की जायगी तो यह और भी नये-नये अपराध करेगा और जिसकी चिकित्सा न की गयी हो, उस रोगके समान अधिक कष्टदायक हो जायगा' ॥ २० ॥

तथेति चोक्त्वाच्युतमप्रमादी
द्रौणिं प्रयत्नादिषुभिस्ततक्ष।
भुजौ वरौ चन्दनसारदिग्धौ
वक्षः शिरोऽथाप्रतिमौ तथोरू ॥ २१ ॥

'बहुत अच्छा, ऐसा ही करूँगा' श्रीकृष्णसे ऐसा कहकर सतत सावधान रहनेवाले अर्जुन अपने बाणोंद्वारा प्रयत्नपूर्वक अश्वत्थामाको—उसके चन्दनसारचर्चित श्रेष्ठ भुजाओं, वक्षःस्थल, सिर और अनुपम जाँघोंको क्षत-विक्षत करने लगे॥

गाण्डीवमुक्तैः कुपितोऽविकर्णै-
र्द्रौणिं शरैः संयति निर्बिभेद।
छित्त्वा तु रश्मींस्तुरगानविध्यत्
ते तं रणादूहुरतीव दूरम् ॥ २२ ॥

क्रोधमें भरे हुए अर्जुनने गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए भेड़के कान-जैसे अग्रभागवाले बाणोंद्वारा युद्धस्थलमें द्रोणपुत्रको विदीर्ण कर डाला। घोड़ोंकी बागडोर काटकर उन्हें अत्यन्त घायल कर दिया। इससे वे घोड़े अश्वत्थामाको रणभूमिसे बहुत दूर भगा ले गये ॥ २२ ॥

स तैर्हृतो वातजवैस्तुरङ्गै-
र्द्रौणिर्दृढं पार्थशराभिभूतः।
इयेष नावृत्य पुनस्तु योद्धुं
पार्थेन सार्धं मतिमान् विमृश्य।
जानञ्जयं नियतं वृष्णिवीरे
धनंजये चाङ्गिरसां वरिष्ठः ॥ २३ ॥

अश्वत्थामा अर्जुनके बाणोंसे बहुत पीड़ित हो गया था। जब वायुके समान वेगशाली घोड़े उसे रणभूमिसे बहुत दूर हटा ले गये, तब उस बुद्धिमान् वीरने मन-ही-मन विचार करके पुनः लौटकर अर्जुनके साथ युद्ध करनेकी इच्छा त्याग दी। अङ्गिरा गोत्रवाले ब्राह्मणोंमें सर्वश्रेष्ठ अश्वत्थामा यह जान गया था कि वृष्णिवीर श्रीकृष्ण और अर्जुनकी विजय निश्चित है॥

नियम्य स हयान् द्रौणिः समाश्वास्य च मारिष।
रथाश्वनरसम्बाधं कर्णस्य प्राविशद् बलम् ॥ २४ ॥

मान्यवर! अपने घोड़ोंको रोककर थोड़ी देर उनको

स्वस्थ कर लेनेके बाद द्रोणकुमार अश्वत्थामा रथ, घोड़े और पैदल मनुष्योंसे भरी हुई कर्णकी सेनामें प्रविष्ट हो गया ॥

प्रतीपकारिणि रणादश्वत्थाम्नि हृते हयैः ।
मन्त्रौषधिक्रियायोगैर्व्याधौ देहादिवाहृते ॥ २५ ॥
संशप्तकानभिमुखौ प्रयातौ केशवार्जुनौ ।
वातोद्धूतपताकेन स्यन्दनेनौघनादिना ॥ २६ ॥

जैसे मन्त्र, औषध, चिकित्सा और योगके द्वारा शरीरसे रोग दूर हो जाता है, उसी प्रकार जब प्रतिकूल कार्य करनेवाला अश्वत्थामा चारों घोड़ोंद्वारा रणभूमिसे दूर हटा दिया गया, तब वायुसे फहराती हुई पताकाओंसे युक्त और जलप्रवाहके समान गम्भीर घोष करनेवाले रथके द्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुन फिर संशप्तकोंकी ओर चल दिये ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अश्वत्थामपराजये सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें अश्वत्थामाकी पराजयविषयक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

अर्जुनके द्वारा हाथियोंसहित दण्डधार और दण्ड आदिका वध तथा उनकी सेनाका पलायन

संजय उवाच

अथोत्तरेण पाण्डूनां सेनायां ध्वनिरुत्थितः ।
रथनागाश्वपत्तीनां दण्डधारेण वध्यताम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर पाण्डव-सेनाके उत्तर भागमें दण्डधारके द्वारा मारे जाते हुए रथी, हाथी, घोड़े और पैदलोंका आर्तनाद गूँज उठा ॥ १ ॥

निवर्तयित्वा तु रथं केशवोऽर्जुनमब्रवीत् ।
वाहयन्नेव तुरगान् गरुडानिलरंहसः ॥ २ ॥

उस समय भगवान् श्रीकृष्णने अपना रथ लौटाकर गरुड़ और वायुके समान वेगवाले घोड़ोंको हाँकते हुए ही अर्जुनसे कहा—॥ २ ॥

मागधोऽप्यतिविक्रान्तो द्विरदेन प्रमाथिना ।
भगदत्तादनवरः शिक्षया च बलेन च ॥ ३ ॥

'पार्थ! यह मगधनिवासी दण्डधार भी बड़ा पराक्रमी है। इसके पास शत्रुओंको मथ डालनेवाला गजराज है। इसे युद्धकी उत्तम शिक्षा मिली है तथा यह बलवान् भी है, इन सब विशेषताओंके कारण यह पराक्रममें भगदत्तसे तनिक भी कम नहीं है ॥ ३ ॥

एनं हत्वा निहन्तासि पुनः संशप्तकानिति ।
वाक्यान्ते प्रापयत् पार्थं दण्डधारान्तिकं प्रति ॥ ४ ॥

'अतः पहले इसका वध करके तुम पुनः संशप्तकोंका संहार करना।' इतना कहते-कहते श्रीकृष्णने अर्जुनको दण्डधारके निकट पहुँचा दिया ॥ ४ ॥

स मागधानां प्रवरोऽङ्कुशग्रहे
ग्रहेऽप्रसह्यो विकचो यथा ग्रहः ।
सपत्नसेनां प्रममाथ दारुणो
महीं समग्रां विकचो यथा ग्रहः ॥ ५ ॥

मागध वीरोंमें सर्वश्रेष्ठ दण्डधार अङ्कुश धारण करके हाथीद्वारा युद्ध करनेमें अपना सानी नहीं रखते थे। जैसे ग्रहोंमें केतुग्रहका वेग असह्य होता है, उसी प्रकार उनका आक्रमण भी शत्रुओंके लिये असहनीय था। जैसे धूमकेतु नामक उत्पातग्रह सम्पूर्ण भूमण्डलके लिये अनिष्टकारक होता है, उसी प्रकार उस भयंकर वीरने वहाँ शत्रुओंकी सम्पूर्ण सेनाको मथ डाला ॥ ५ ॥

सुकल्पितं दानवनागसंनिभं
महाभ्रनिर्ह्रादममित्रमर्दनम् ।
रथाश्वमातङ्गगणान् सहस्रशः
समास्थितो हन्ति शरैर्नरानपि ॥ ६ ॥

उनका हाथी खूब सजाया गया था, वह गजासुरके समान बलशाली, महामेघके समान गर्जना करनेवाला तथा शत्रुओंको रौंद डालनेवाला था। उसपर आरूढ़ होकर दण्डधार अपने बाणोंसे सहस्रों रथों, घोड़ों, मतवाले हाथियों और पैदल मनुष्योंका भी संहार करने लगे ॥ ६ ॥

रथानधिष्ठाय सवाजिसारथीन्
नरांश्च पादैर्द्विरदो व्यपोथयत् ।
द्विपांश्च पद्भ्यां ममृदे करेण
द्विपोत्तमो हन्ति च कालचक्रवत् ॥ ७ ॥

उनका वह हाथी रथोंपर पैर रखकर सारथि और घोड़ोंसहित उन्हें चूर-चूर कर डालता था। पैदल मनुष्योंको भी पैरोंसे ही कुचल डालता था। हाथियोंको भी दोनों पैरों तथा सूँडसे मसल देता था। इस प्रकार वह गजराज कालचक्रके समान शत्रु-सेनाका संहार करने लगा ॥ ७ ॥

नरांस्तु कार्ष्णायसवर्मभूषणान्
निपात्य साश्वानपि पत्तिभिः सह ।
व्यपोथयद् दन्तिवरेण शुष्मिणा
स शब्दवत् स्थूलनलं यथा तथा ॥ ८ ॥

वे अपने बलवान् एवं श्रेष्ठ गजराजके द्वारा लोहेके कवच तथा उत्तम आभूषण धारण करनेवाले घुड़सवारोंको घोड़ों और पैदलोंसहित पृथ्वीपर गिराकर कुचलवा देते थे। उस समय जैसे मोटे नरकुलोंके कुचले जाते समय 'चर-चर' की आवाज होती है, उसी प्रकार उन सैनिकोंके कुचले जानेपर भी होती थी ॥ ८ ॥

अथार्जुनो ज्यातलनेमिनिःस्वने
मृदङ्गभेरीबहुशङ्खनादिते ।

रथाश्वमातङ्गसहस्रसंकुले
रथोत्तमेनाभ्यपतद् द्विपोत्तमम् ॥ ९ ॥

तदनन्तर जहाँ धनुषकी टंकार और पहियोंकी घर्घराहटका शब्द गूँज रहा था, मृदङ्ग, भेरी और बहुसंख्यक शङ्खोंकी ध्वनि हो रही थी तथा जहाँ रथ, घोड़े और हाथी सहस्रोंकी संख्यामें भरे हुए थे, उस समराङ्गणमें पूर्वोक्त गजराजके समीप अर्जुन अपने उत्तम रथके द्वारा जा पहुँचे ॥ ९ ॥

ततोऽर्जुनं द्वादशभिः शरोत्तमै-
र्जनार्दनं षोडशभिः समार्पयत् ।
स दण्डधारस्तुरगांस्त्रिभिस्त्रिभि-
स्ततो ननाद प्रजहास चासकृत् ॥१०॥

तब दण्डधारने अर्जुनको बारह और भगवान् श्रीकृष्णको सोलह उत्तम बाण मारे। फिर तीन-तीन बाणोंसे उनके घोड़ोंको घायल करके वे बारंबार गर्जने और अट्टहास करने लगे ॥

ततोऽस्य पार्थः सगुणेषुकार्मुकं
चकर्त भल्लैर्ध्वजमप्यलंकृतम् ।
पुनर्नियन्तॄन् सह पादगोप्तृ-
स्ततः स चुक्रोध गिरिव्रजेश्वरः॥ ११ ॥

तत्पश्चात् अर्जुनने अपने भल्लोंद्वारा प्रत्यञ्चा और बाणों-सहित दण्डधारके धनुष तथा सजे-सजाये ध्वजको भी काट गिराया। फिर हाथीके महावतों तथा पादरक्षकोंको भी मार डाला। इससे गिरिव्रजके स्वामी दण्डधार अत्यन्त कुपित हो उठे ॥११॥

ततोऽर्जुनं भिन्नकटेन दन्तिना
घनाघनेनानिलतुल्यवर्चसा ।
अतीव चुक्षोभयिषुर्जनार्दनं
धनंजयं चाभिजघान तोमरैः ॥ १२ ॥

उन्होंने गण्डस्थलसे मदकी धारा बहानेवाले, वायुके समान वेगशाली, मदोन्मत्त गजराजके द्वारा अर्जुन और श्रीकृष्णको अत्यन्त घबराहटमें डालनेकी इच्छासे उसे उन दोनोंकी ओर बढ़ाया और तोमरोंसे उन दोनोंपर प्रहार किया ॥

अथास्य बाहू द्विपहस्तसंनिभौ
शिरश्च पूर्णेन्दुनिभाननं त्रिभिः ।
क्षुरैः प्रचिच्छेद सहैव पाण्डव-
स्ततो द्विपं बाणशतैः समार्पयत्॥ १३ ॥

तब अर्जुनने हाथीकी सूँड़के समान मोटी दण्डधारकी दोनों भुजाओं तथा पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले उनके मस्तकको भी तीन छुरोंसे एक साथ ही काट डाला। फिर उन्होंने उनके हाथीको सौ बाण मारे ॥ १३ ॥

स पार्थबाणैस्तपनीयभूषणैः
समाचितः काञ्चनवर्मभृद् द्विपः ।
तथा चकाशे निशि पर्वतो यथा
दावाग्निना प्रज्वलितौषधिद्रुमः॥ १४ ॥

उसके सारे शरीरमें अर्जुनके सुवर्णभूषित बाण चुभ गये थे। इससे सुवर्णमय कवच धारण करनेवाला वह हाथी उसी प्रकार शोभा पाने लगा, जैसे रात्रिमें दावानलसे जलती हुई ओषधियों और वृक्षोंसे युक्त पर्वत प्रकाशित होता है ॥

स वेदनार्तोऽम्बुदनिस्वनो नदं-
श्चरन् भ्रमन् प्रस्खलितान्तरोऽद्रवत्।
पपात रुग्णः सनियन्तृकस्तथा
यथा गिरिर्वज्रविदारितस्तथा ॥ १५॥

वह हाथी वेदनासे पीड़ित हो मेघके समान गर्जना करता, सब ओर विचरता, घूमता और बीच-बीचमें लड़खड़ाता हुआ भागने लगा। अधिक घायल हो जानेके कारण वह महावतोंके साथ ही पृथ्वीपर गिर पड़ा; मानो वज्र-द्वारा विदीर्ण किया हुआ पर्वत धराशायी हो गया हो ॥ १५ ॥

हिमावदातेन सुवर्णमालिना
हिमाद्रिकूटप्रतिमेन दन्तिना ।
हते रणे भ्रातरि दण्ड आव्रज-
ज्जिघांसुरिन्द्रावरजं धनंजयम् ॥ १६ ॥

रणभूमिमें अपने भाई दण्डधारके मारे जानेपर दण्ड श्रीकृष्ण और अर्जुनका वध करनेकी इच्छासे बर्फके समान सफेद, सुवर्णमालाधारी तथा हिमालयके शिखरके समान विशालकाय गजराजके द्वारा वहाँ आ पहुँचा ॥ १६ ॥

स तोमरैरर्ककरप्रभैस्त्रिभि-
र्जनार्दनं पञ्चभिरर्जुनं शितैः ।
समर्पयित्वा विननाद नर्दयं-
स्ततोऽस्य बाहू निचकर्त पाण्डवः ॥ १७ ॥

उसने सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशित होनेवाले तीन तीखे तोमरोंसे श्रीकृष्णको और पाँचसे अर्जुनको घायल करके बड़े जोरसे गर्जना की। इतनेहीमें पाण्डुपुत्र अर्जुनने उसकी दोनों बाँहें काट डालीं ॥ १७ ॥

क्षुरप्रकृत्तौ सुभृशं सतोमरौ
शुभाङ्गदौ चन्दनरूषितौ भुजौ ।
गजात् पतन्तौ युगपद् विरेजतु-
र्यथाद्रिशृङ्गाद् रुचिरौ महोरगौ ॥ १८ ॥

क्षुरसे कटी हुई, सुन्दर बाजूबन्दसे विभूषित, चन्दन-चर्चित तथा तोमरसहित वे विशाल भुजाएँ हाथीसे एक साथ गिरते समय पर्वतके शिखरसे गिरनेवाले दो सुन्दर एवं बड़े-बड़े सर्पोंके समान विभूषित हुईं ॥ १८ ॥

तथार्धचन्द्रेण हतं किरीटिना
पपात दण्डस्य शिरः क्षितिं द्विपात्।
तच्छोणितार्द्रं निपतद् विरेजे
दिवाकरोऽस्तादिव पश्चिमां दिशम्॥ १९ ॥

तत्पश्चात् किरीटधारी अर्जुनके चलाये हुए अर्धचन्द्रसे कटकर दण्डका मस्तक हाथीसे पृथ्वीपर गिर पड़ा। उस समय खूनसे लथपथ हो गिरता हुआ वह मस्तक अस्ताचलसे पश्चिम दिशाकी ओर डूबते हुए सूर्यके समान शोभायमान हुआ ॥

अथ द्विपं श्वेतवराभ्रसंनिभं
दिवाकरांशुप्रतिमैः शरोत्तमैः।
बिभेद पार्थः स पपात नादयन्
हिमाद्रिकूटं कुलिशाहतं यथा ॥ २० ॥

इसके बाद अर्जुनने श्वेत महामेघके समान सफेद रंगवाले उस हाथीको सूर्यकी किरणोंके सदृश तेजस्वी उत्तम बाणोंद्वारा विदीर्ण कर डाला। फिर तो वह वज्रके मारे हुए हिमालयके शिखरके समान धमाकेकी आवाजके साथ धराशायी हो गया ॥

ततोऽपरे तत्प्रतिमा गजोत्तमा
जिगीषवः संयति सव्यसाचिना।
तथा कृतास्ते च यथैव तौ द्विपौ
ततः प्रभग्नं सुमहद्रिपोर्बलम् ॥ २१ ॥

तदनन्तर उसीके समान जो दूसरे-दूसरे गजराज विजयकी इच्छासे युद्धके लिये आगे बढ़े, उन सबकी सव्यसाची अर्जुनने वैसी ही दशा कर डाली, जैसी कि पूर्वोक्त दोनों हाथियोंकी कर दी थी। इससे शत्रुकी उस विशाल सेनामें भगदड़ मच गयी ॥ २१ ॥

गजा रथाश्वाः पुरुषाश्च संघशः
परस्परघ्नाः परिपेतुराहवे।
परस्परं प्रस्खलिताः समाहता
भृशं निपेतुर्बहुभाषिणो हताः ॥ २२ ॥

झुंड-के-झुंड हाथी, रथ, घोड़े और पैदल मनुष्य परस्पर आघात-प्रत्याघात करते हुए युद्धस्थलमें चारों ओरसे टूट पड़े थे। वे आपसमें एक दूसरेकी चोटसे अत्यन्त घायल हो लड़खड़ाते और बहुत बकझक करते हुए मरकर गिर जाते थे ॥

अथार्जुनं स्वे परिवार्य सैनिकाः
पुरन्दरं देवगणा इवाब्रुवन्।
अभैष्म यस्मान्मरणादिव प्रजाः
स वीर दिष्ट्या निहतस्त्वया रिपुः ॥ २३ ॥

इसके बाद इन्द्रको घेरकर खड़े हुए देवताओंके समान अपनी ही सेनाके लोग अर्जुनको घेरकर इस प्रकार बोले—'वीर! जैसे प्रजा मौतसे डरती है, उसी प्रकार हमलोग जिससे भयभीत हो रहे थे, उस शत्रुको आपने मार डाला; यह बड़े सौभाग्यकी बात है! ॥ २३ ॥

न चेदरक्षिष्य इमं जनं भयाद्
द्विषद्भिरेवं बलिभिः प्रपीडितम्।
तथाभविष्यद् द्विषतां प्रमोदनं
यथा हतेष्वेष्विह नोऽरिसूदन ॥ २४ ॥

'शत्रुसूदन! यदि आप बलवान् शत्रुओंसे इस प्रकार पीड़ित हुए इन स्वजनोंकी भयसे रक्षा नहीं करते तो इन शत्रुओंको वैसी ही प्रसन्नता होती, जैसी इस समय इनके मारे जानेपर यहाँ हमलोगोंको हो रही है' ॥ २४ ॥

इतीव भूयश्च सुहृद्भिरीरिता
निशम्य वाचः सुमनास्ततोऽर्जुनः।
यथानुरूपं प्रतिपूज्य तं जनं
जगाम संशप्तकसंघहा पुनः ॥ २५ ॥

इस प्रकार अपने सुहृदोंकी कही हुई ये बातें बारंबार सुनकर अर्जुनको मन-ही-मन बड़ी प्रसन्नता हुई। वे उन लोगोंका यथायोग्य आदर-सत्कार करके पुनः संशप्तकगणका वध करनेके लिये वहाँसे चल दिये ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि दण्डवधेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें दण्डधार और दण्डका वधविषयक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

अर्जुनके द्वारा संशप्तक-सेनाका संहार, श्रीकृष्णका अर्जुनको युद्धस्थलका दृश्य दिखाते हुए उनके पराक्रमकी प्रशंसा करना तथा पाण्ड्यनरेशका कौरवसेनाके साथ युद्धारम्भ

संजय उवाच

प्रत्यागत्य पुनर्जिष्णुर्जघ्ने संशप्तकान् बहून्।
वक्रातिवक्रगमनादङ्गारक इव ग्रहः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! जैसे मङ्गल नामक ग्रह वक्र और अतिचार गतिसे चलकर लोकके लिये अनिष्टकारी होता है, उसी प्रकार विजयशील अर्जुनने दण्डधारकी सेनासे पुनः लौटकर बहुत-से संशप्तकोंका संहार आरम्भ कर दिया ॥ १ ॥

पार्थबाणहता राजन् नराश्वरथकुञ्जराः।
विचेलुर्बभ्रमुर्नेशुः पेतुर्मम्लुश्च भारत ॥ २ ॥

भरतवंशी नरेश! अर्जुनके बाणोंसे आहत हो हाथी, घोड़े, रथ और पैदल मनुष्य विचलित, भ्रान्त, पतित, मलिन तथा नष्ट होने लगे ॥ २ ॥

धुर्यान् धुर्यगतान् सूतान् ध्वजांश्चापासिसायकान्।
पाणीन् पाणिगतं शस्त्रं बाहूनपि शिरांसि च ॥ ३ ॥
भल्लैः क्षुरैरर्धचन्द्रैर्वत्सदन्तैश्च पाण्डवः।
चिच्छेदामित्रवीराणां समरे प्रतियुध्यताम् ॥ ४ ॥

पाण्डुनन्दन अर्जुनने भल्ल, क्षुर, अर्धचन्द्र और वत्सदन्त नामक अस्त्रोंद्वारा समराङ्गणमें सामना करनेवाले विपक्षी वीरोंके रथोंमें जुते हुए धुरंधर अश्वों, सारथियों, ध्वजों, धनुषों, सायकों, तलवारों, हाथों, हाथमें रक्खे हुए शस्त्रों, भुजाओं तथा मस्तकोंको भी काट डाला ॥ ३-४ ॥

वासितार्थे युयुत्सन्तो वृषभा वृषभं यथा।
निपतन्त्यर्जुनं शूराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५ ॥

जैसे मैथुनकी वासनावाली गायके लिये युद्धकी इच्छासे

बहुतेरे साँड किसी एक साँडपर टूट पड़ते हों, उसी प्रकार सैकड़ों और हजारों शूरवीर अर्जुनपर धावा बोलने लगे ॥ ५॥

तेषां तस्य च तद् युद्धमभवल्लोमहर्षणम्।
त्रैलोक्यविजये यादृग् दैत्यानां सह वज्रिणा ॥ ६ ॥

उन योद्धाओं तथा अर्जुनका वह युद्ध वैसा ही रोमाञ्चकारी था, जैसा कि त्रैलोक्य-विजयके समय वज्रधारी इन्द्रके साथ दैत्योंका हुआ था ॥ ६ ॥

तमविध्यत् त्रिभिर्बाणैर्दन्दशूकैरिवाहिभिः ।
उग्रायुधसुतस्तस्य शिरः कायादपाहरत् ॥ ७ ॥

उस समय उग्रायुधके पुत्रने अत्यन्त डँस लेनेके स्वभाववाले सर्पोंके समान तीन बाणोंद्वारा अर्जुनको बींध डाला। तब अर्जुनने उसके सिरको धड़से उतार लिया ॥ ७ ॥

तेऽर्जुनं सर्वतः क्रुद्धा नानाशस्त्रैरवीवृषन्।
मरुद्भिः प्रेरिता मेघा हिमवन्तमिवोष्णगे ॥ ८ ॥

वे संशप्तक योद्धा कुपित हो अर्जुनपर सब ओरसे नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे, मानो वर्षाकालमें पवनप्रेरित मेघ हिमालयपर जलकी वृष्टि कर रहे हों ॥ ८ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्विषतां सर्वतोऽर्जुनः।
सम्यगस्तैः शरैः सर्वानहितानहनद् बहून् ॥ ९ ॥

अर्जुनने अपने अस्त्रोंद्वारा शत्रुओंके अस्त्रोंका सब ओरसे निवारण करके अच्छी तरह चलाये हुए बाणोंद्वारा समस्त विपक्षियोंमेंसे बहुतोंको मार डाला ॥ ९ ॥

छिन्नत्रिवेणुसंघातान् हताश्वान् पार्ष्णिसारथीन्।
विस्रस्तहस्ततूणीरान् विचक्ररथकेतनान् ॥ १० ॥
संछिन्नरश्मियोक्त्राक्षान् व्यनुकर्षयुगान् रथान्।
विध्वस्तसर्वसंनाहान् बाणैश्चक्रेऽर्जुनस्तदा ॥ ११ ॥

अर्जुनने उस समय अपने बाणोंद्वारा शत्रुओंके रथोंकी बड़ी बुरी दशा कर डाली। उनके त्रिवेणुसमूह काट डाले, घोड़ों और पार्श्वरक्षकोंको मार डाला। उन योद्धाओंके हाथोंसे खिसककर तूणीर गिर गये तथा उनके रथोंके पहिये और ध्वज भी नष्ट हो गये। घोड़ोंकी बागडोर, जोत और रथके धुरे भी काट डाले गये। उनके अनुकर्ष और जूए भी चौपट हो गये थे॥

ते रथास्तत्र विध्वस्ताः परार्ध्या भान्त्यनेकशः।
धनिनामिव वेश्मानि हतान्यग्न्यनिलाम्बुभिः ॥ १२ ॥

वे बहुमूल्य और बहुसंख्यक रथ, जो वहाँ टूट-फूटकर गिरे पड़े थे, आग, हवा और पानीसे नष्ट हुए धनवानोंके घरोंके समान जान पड़ते थे ॥ १२ ॥

द्विपाः सम्भिन्नवर्माणो वज्राशनिसमैः शरैः।
पेतुर्गिर्यग्रवेश्मानि वज्रवाताग्निभिर्यथा ॥ १३ ॥

वज्र और बिजलीके समान तेजस्वी बाणोंसे कवच विदीर्ण हो जानेके कारण हाथी वज्र, वायु तथा आगसे नष्ट हुए पर्वत-शिखरोंपर बने हुए गृहोंके समान गिर पड़ते थे ॥ १३ ॥

सारोहास्तुरगाः पेतुर्बहवोऽर्जुनताडिताः।
निर्जिह्वान्त्राः क्षितौ क्षीणा रुधिरार्द्राः सुदुर्दृशः॥ १४॥

अर्जुनके मारे हुए बहुसंख्यक घोड़े और घुड़सवार पृथ्वीपर क्षत-विक्षत होकर पड़े थे। उनकी जीभ तथा आँतें बाहर निकल आयी थीं। वे खूनसे लथपथ हो रहे थे। उनकी ओर देखना अत्यन्त कठिन हो गया था ॥ १४ ॥

नराश्वनागा नाराचैः संस्यूताः सव्यसाचिना।
बभ्रमुश्चस्खलुः पेतुर्नेदुर्मम्लुश्च मारिष ॥ १५॥

मान्यवर! सव्यसाची अर्जुनके नाराचोंसे गुथे हुए हाथी, घोड़े और मनुष्य चक्कर काटते, लड़खड़ाते, गिरते, चिल्लाते और मन मारकर रह जाते थे ॥ १५ ॥

अनेकैश्च शिलाधौतैर्वज्राशनिविषोपमैः।
शरैर्निजघ्निवान् पार्थो महेन्द्र इव दानवान् ॥ १६॥

जैसे देवराज इन्द्र दानवोंका संहार करते हैं, उसी प्रकार कुन्तीकुमार अर्जुनने शिलापर तेज किये हुए वज्र, अशनि तथा विषके तुल्य अनेक भयंकर बाणोंद्वारा उन संशप्तक वीरोंका वध कर डाला ॥ १६ ॥

महार्हवर्माभरणा नानारूपाम्बरायुधाः।
सरथाः सध्वजा वीरा हताः पार्थेन शेरते ॥ १७॥

अर्जुनद्वारा मारे गये संशप्तक वीर बहुमूल्य कवच, आभूषण, भाँति-भाँतिके वस्त्र, आयुध, रथ और ध्वजोंसहित रणभूमिमें सो रहे थे ॥ १७ ॥

विजिताः पुण्यकर्माणो विशिष्टाभिजनश्रुताः।
गताः शरीरैर्वसुधामूर्जितैः कर्मभिर्दिवम् ॥ १८॥

वे पुण्यात्मा, उत्तम कुलमें उत्पन्न तथा विशिष्ट शास्त्रज्ञानसे सम्पन्न वीर पराजित होकर अपने शरीरोंसे तो पृथ्वीपर गिरे, परंतु प्रबल उत्तम कर्मोंके द्वारा स्वर्गलोकमें जा पहुँचे॥

अथार्जुनं रथवरं त्वदीयाः समभिद्रवन्।
नानाजनपदाध्यक्षाः सगणा जातमन्यवः ॥ १९॥

तदनन्तर आपके सैनिक रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनपर टूट पड़े। वे विभिन्न जनपदोंके अधिपति थे और अपने दलबलके साथ कुपित होकर चढ़ आये थे ॥ १९ ॥

उह्यमाना रथाश्वेभैः पत्तयश्च जिघांसवः।
समभ्यधावन्नस्यन्तो विविधं क्षिप्रमायुधम् ॥ २०॥

रथों, घोड़ों और हाथियोंके सवार तथा पैदल सैनिक उन्हें मार डालनेकी इच्छासे नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करते हुए शीघ्रतापूर्वक धावा बोलने लगे ॥ २० ॥

तदायुधमहावर्षं मुक्तं योधमहाम्बुदैः।
व्यधमन्निशितैर्बाणैः क्षिप्रमर्जुनमारुतः ॥ २१॥

परंतु अर्जुनरूपी वायुने संशप्तक सैनिकरूपी महामेघोंद्वारा की हुई अस्त्र-शस्त्रोंकी उस महावृष्टिको तीखे बाणोंद्वारा छिन्न-भिन्न कर डाला ॥ २१ ॥

साश्वपत्तिद्विपरथं महाशस्त्रौघसम्प्लवम्।
सहसा संतितीर्षन्तं पार्थं शस्त्रास्त्रसेतुना ॥ २२॥

अथाब्रवीद् वासुदेवः पार्थं किं क्रीडसेऽनघ।
संशप्तकान् प्रमथ्यैनांस्ततः कर्णवधे त्वर ॥ २३ ॥

अर्जुन हाथी, घोड़े, रथ और पैदल-समूहोंसे युक्त तथा महान् अस्त्र-शस्त्रोंके प्रवाहसे परिपूर्ण उस सैन्य-समुद्रको अपने अस्त्र-शस्त्ररूपी पुलके द्वारा सहसा पार कर जाना चाहते थे। उस समय भगवान् श्रीकृष्णने उनसे कहा—'निष्पाप पार्थ ! यह क्या खिलवाड़ कर रहे हो ? इन संशप्तकोंका संहार करके कर्णके वधका शीघ्रतापूर्वक प्रयत्न करो' ॥ २२-२३ ॥

तथेत्युक्त्वार्जुनः कृष्णं शिष्टान् संशप्तकांस्तदा।
आक्षिप्य शस्त्रेण बलाद् दैत्यानिन्द्र इवावधीत्॥ २४ ॥

तब श्रीकृष्णसे 'बहुत अच्छा' कहकर अर्जुन दैत्योंका वध करनेवाले इन्द्रके समान उस समय शेष संशप्तक-सेनाको अस्त्र-शस्त्रोंसे छिन्न-भिन्न करके उसका बलपूर्वक विनाश करने लगे॥

आददत् संदधन्नेषून् दृष्टः कैश्चिद् रणेऽर्जुनः।
विमुञ्चन् वा शराञ्शीघ्रं दृश्यन्ते वै नरा हताः॥ २५ ॥

उस समय रणभूमिमें किसीने यह नहीं देखा कि अर्जुन कब बाण लेते, कब उनका संधान करते अथवा कब उन्हें छोड़ते हैं ? केवल उनके द्वारा शीघ्रतापूर्वक मारे गये मनुष्य ही दृष्टिगोचर होते थे॥

आश्चर्यमिति गोविन्दो ब्रुवन्नश्वानचोदयत्।
हंसांशुगौरास्ते सेनां हंसाः सर इवाविशन् ॥ २६ ॥

'आश्चर्य है' ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्णने घोड़ोंको आगे बढ़ाया। हंस तथा चन्द्र-किरणोंके समान श्वेत वर्णवाले वे घोड़े शत्रुसेनामें उसी प्रकार घुस गये, जैसे हंस तालाबमें प्रवेश करते हैं ॥ २६ ॥

ततः संग्रामभूमिं च वर्तमाने जनक्षये।
अवेक्षमाणो गोविन्दः सव्यसाचिनमब्रवीत् ॥ २७ ॥

जब इस प्रकार जनसंहार होने लगा, उस समय रणभूमिकी ओर देखते हुए भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे इस प्रकार बोले—॥

एष पार्थ महारौद्रो वर्तते भरतक्षयः।
पृथिव्यां पार्थिवानां वै दुर्योधनकृते महान् ॥ २८ ॥

'पार्थ ! दुर्योधनके कारण यह भूमण्डलके भूपालों तथा भरतवंशियोंकी सेनाका महाभयंकर एवं महान् संहार हो रहा है॥

पश्य भारत चापानि रुक्मपृष्ठानि धन्विनाम्।
महतां चापविद्धानि कलापानिषुधींस्तथा ॥ २९ ॥

'भरतनन्दन ! देखो, बड़े-बड़े धनुर्धरोंके ये सुवर्णजटित पृष्ठभागवाले धनुष, आभूषण और तरकस पड़े हुए हैं ॥२९॥

जातरूपमयैः पुङ्खैः शरांश्च नतपर्वणः।
तैलधौतांश्च नाराचान् विमुक्तानिव पन्नगान् ॥ ३० ॥

'सुनहरी पाँखोंसे युक्त झुकी हुई गाँठवाले ये बाण तथा तेलमें धोकर साफ किये हुए नाराच धनुषसे छूटकर सर्पोंके समान पड़े हुए हैं, इनपर दृष्टिपात करो ॥ ३० ॥

आकीर्णांस्तोमरांश्चापि विचित्रान् हेमभूषितान्।
चर्माणि चापविद्धानि रुक्मपृष्ठानि भारत ॥ ३१ ॥

'भारत ! देखो, ये सुवर्णभूषित विचित्र तोमर चारों ओर बिखरे पड़े हैं और ये फेंकी हुई ढालें हैं, जिनके पृष्ठ-भागपर सोना जड़ा हुआ था ॥ ३१ ॥

सुवर्णविकृतान् प्रासाञ्शक्तीः कनकभूषिताः।
जाम्बूनदमयैः पट्टैर्बद्धाश्च विपुला गदाः ॥ ३२ ॥
जातरूपमयीश्चर्ष्टीः पट्टिशान् हेमभूषितान्।
दण्डैः कनकचित्रैश्च विप्रविद्धान् परश्वधान् ॥ ३३ ॥

'सोनेके बने हुए प्रास, सुवर्णभूषित शक्तियाँ, सोनेके पत्रोंसे जड़ी हुई विशाल गदाएँ, स्वर्णमयी ऋष्टि, सुवर्णभूषित पट्टिश तथा स्वर्णचित्रित डंडोंके साथ बहुतसे फरसे फेंके पड़े हैं, इनपर दृष्टिपात करो ॥ ३२-३३॥

परिघान् भिन्दिपालांश्च भुशुण्डीः कुणपानपि।
अयस्कुन्तांश्च पतितान् मुसलानि गुरूणि च ॥ ३४ ॥

'देखो, ये परिघ, भिन्दिपाल, भुशुण्डी, कुणप, लोहेके बने हुए भाले तथा भारी-भारी मुसल पड़े हुए हैं ॥ ३४ ॥

नानाविधानि शस्त्राणि प्रगृह्य जयगृद्धिनः।
जीवन्त इव दृश्यन्ते गतसत्त्वास्तरस्विनः ॥ ३५ ॥

'विजयकी अभिलाषा रखनेवाले वेगशाली वीर सैनिक हाथोंमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये प्राणशून्य हो गये हैं तो भी जीवित-से दिखायी देते हैं ॥ ३५ ॥

गदाविमथितैर्गात्रैर्मुसलैर्भिन्नमस्तकान् ।
गजवाजिरथैः क्षुण्णान् पश्य योधान् सहस्रशः॥ ३६ ॥

'देखो, ये सहस्रों योद्धा हाथी, घोड़ों और रथोंसे कुचल गये हैं। गदाओंके आघातसे इनके अंग चूर-चूर हो गये हैं और मुसलोंकी मारसे मस्तक फट गये हैं ॥ ३६ ॥

मनुष्यगजवाजीनां शरशक्त्यृष्टितोमरैः।
निस्त्रिंशैः पट्टिशैः प्रासैर्नखरैर्लगुडैरपि ॥ ३७ ॥
शरीरैर्बहुधा छिन्नैः शोणितौघपरिप्लुतैः।
गतासुभिरमित्रघ्न संवृता रणभूमयः ॥ ३८ ॥

'शत्रुसूदन अर्जुन ! बाण, शक्ति, ऋष्टि, तोमर, खड्ग, पट्टिश, प्रास, नखर और लगुडोंकी मारसे हाथी, घोड़े और मनुष्योंके शरीरोंके कई टुकड़े हो गये हैं। वे सब-के-सब खूनसे लथपथ हो प्राणशून्य होकर पड़े हैं और उनके द्वारा सारी रणभूमि पट गयी है ॥ ३७-३८ ॥

बाहुभिश्चन्दनादिग्धैः साङ्गदैः शुभभूषणैः।
सतलत्रैः सकेयूरैर्भाति भारत मेदिनी ॥ ३९ ॥

'भारत ! बाजूबंद और सुन्दर आभूषणोंसे विभूषित, चन्दनसे चर्चित, दस्ताने और केयूरोंसे सुशोभित कटी भुजाओंद्वारा रणभूमिकी अद्भुत शोभा हो रही है ॥ ३९ ॥

साङ्गुलित्रैर्भुजाग्रैश्च विप्रविद्धैरलंकृतैः।
हस्तिहस्तोपमैश्छिन्नैरूरुभिश्च तरस्विनाम् ॥ ४० ॥
बद्धचूडामणिवरैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः।

'अंगुलित्र और अलंकारोंसे अलंकृत हाथ फेंके पड़े हैं।

वेगवान् वीरोंकी हाथीकी सूँड़के समान मोटी जाँघें कटकर गिरी हैं और जिनपर सुन्दर चूड़ामणि बँधी है वे योद्धाओंके कुण्डल-मण्डित मस्तक भी खण्डित होकर इधर-उधर बिखरे पड़े हैं। उन सबसे रणभूमिकी अपूर्व शोभा हो रही है ॥४०½॥

रथांश्च बहुधा भग्नान् हेमकिङ्किणिनः शुभान् ॥ ४१ ॥
अश्वांश्च बहुधा पश्य शोणितेन परिप्लुतान्।
अनुकर्षानुपासङ्गान् पताका विविधान् ध्वजान्॥ ४२॥
योधानां च महाशङ्खान् पाण्डुरांश्च प्रकीर्णकान्।
निरस्तजिह्वान् मातङ्गान् शयानान् पर्वतोपमान् ॥४३॥

'देखो,सोनेकी छोटी-छोटी घंटियोंसे सुशोभित बहुसंख्यक रथोंके कितने ही टुकड़े हो गये हैं और नाना प्रकारके घोड़े लहूलुहान होकर पड़े हैं। अनुकर्ष, उपासंग, पताका, नाना प्रकारके ध्वज, योद्धाओंके सब ओर बिखरे हुए बड़े-बड़े श्वेत शङ्ख तथा कितने ही पर्वताकार हाथी जीभ निकाले सोये पड़े हैं॥

वैजयन्तीर्विचित्राश्च हतांश्च गजयोधिनः।
वारणानां परिस्तोमान् संयुक्तानेककम्बलान् ॥ ४४ ॥

'कहीं विचित्र वैजयन्ती पताकाएँ पड़ी हैं, कहीं हाथी-सवार मरकर गिरे हैं और कहीं अनेक कम्बलोंसे युक्त हाथियोंके झूल बिखरे पड़े हैं। इनकी ओर दृष्टिपात करो ॥ ४४॥

विपाटितविचित्राश्च रूपचित्राः कुथास्तथा।
भिन्नाश्च बहुधा घण्टाः पतद्भिश्चूर्णिता गजैः ॥ ४५ ॥

'हाथीकी पीठपर विछाये जानेवाले कितने ही विचित्र कम्बल फट जानेके कारण विचित्र दशाको पहुँच गये हैं। कटकर गिरे हुए नाना प्रकारके घंटे गिरते हुए हाथियोंसे दबकर चूर-चूर हो गये हैं ॥ ४५ ॥

वैदूर्यमणिदण्डांश्च पतितांश्चाङ्कुशान् भुवि।
अश्वानां च युगापीडान् रत्नचित्रानुरश्छदान्॥ ४६ ॥

'देखो, वैदूर्यमणिके बने हुए दण्ड और अंकुश भूतलपर पड़े हैं, घोड़ोंके युगापीड तथा रत्नचित्रित कवच इधर-उधर गिरे हैं॥

विद्धाः सादिध्वजाग्रेषु सुवर्णविकृताः कुथाः।
विचित्रान् मणिचित्रांश्च जातरूपपरिष्कृतान् ॥ ४७ ॥
अश्वास्तरपरिस्तोमान् राङ्कवान् पतितान् भुवि।

'घुड़सवारोंकी ध्वजाओंके अग्रभागमें हाथियोंके सुनहरे कंबल उलझ गये हैं। घोड़ोंकी पीठपर बिछाये जानेवाले विचित्र, मणिजटित एवं सुवर्णभूषित रंकुमृगके चमड़ेके बने हुए झूल और जीन धरतीपर पड़े हैं, इन्हें देखो ॥ ४७½ ॥

चूडामणीन् नरेन्द्राणां विचित्राः काञ्चनस्रजः ॥ ४८ ॥
छत्राणि चापविद्धानि चामरव्यजनानि च।

'राजाओंकी चूड़ामणियाँ, विचित्र स्वर्णमालाएँ, छत्र, चँवर और व्यजन फेंके पड़े हैं ॥ ४८½॥

चन्द्रनक्षत्रभासैश्च वदनैश्चारुकुण्डलैः ॥ ४९ ॥
क्लृप्तश्मश्रुभिराकीर्णां पूर्णचन्द्रनिभैर्महीम्।

'यहाँकी भूमि राजाओंके मनोहर कुण्डलयुक्त, चन्द्रमा और नक्षत्रोंके समान कान्तिमान् एवं दाढ़ी-मूँछवाले पूर्ण चन्द्र-तुल्य मुखोंसे ढक गयी है ॥ ४९½ ॥

कुमुदोत्पलपद्मानां खण्डैः फुल्लं यथा सरः ॥ ५० ॥
तथा महीभृतां वक्त्रैः कुमुदोत्पलसंनिभैः।

'जैसे तालाब कुमुद, उत्पल और कमलोंके समूहसे विकसित दिखायी देता है, उसी प्रकार राजाओंके कुमुद और उत्पल-सदृश मुखोंसे यह रणभूमि सुशोभित हो रही है ॥५०½॥

तारागणविचित्रस्य निर्मलेन्दुद्युतित्विषः ॥ ५१ ॥
पश्येमां नभसस्तुल्यां शरन्नक्षत्रमालिनीम्।

'तारागणोंसे जिसकी विचित्र शोभा होती है तथा जहाँ निर्मल चन्द्रमाकी चाँदनी छिटकी रहती है, उस आकाशके समान इस रणभूमिकी शोभाको देखो। जान पड़ता है कि यह शरद्ऋतुके नक्षत्रोंकी मालाओंसे अलंकृत है ॥ ५१½ ॥

एतत् तवैवानुरूपं कर्मार्जुन महाहवे ॥ ५२ ॥
दिवि वा देवराजस्य त्वया यत् कृतमाहवे।

'अर्जुन ! महासमरमें ऐसा पराक्रम, जो तूने किया है, या तो तुम्हारे ही योग्य है या स्वर्गमें देवराज इन्द्रके योग्य'॥

एवं तां दर्शयन् कृष्णो युद्धभूमिं किरीटिने ॥ ५३ ॥
गच्छन्नेवाशृणोच्छब्दं दुर्योधनबले महत्।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषं भेरीपणवनिःस्वनम् ॥ ५४ ॥
रथाश्वगजनादांश्च शस्त्रशब्दांश्च दारुणान्।

इस प्रकार किरीटधारी अर्जुनको उस युद्धभूमिका दर्शन कराते हुए श्रीकृष्णने जाते-जाते ही दुर्योधनकी सेनामें महान् कोलाहल सुना। वहाँ शङ्खों और दुन्दुभियोंकी ध्वनि छा रही थी। भेरी और पणव आदि बाजे बज रहे थे। रथके घोड़ों और हाथियोंके हींसने एवं चिग्घाड़नेके तथा शस्त्रोंके परस्पर टकरानेके भयानक शब्द भी सुनायी पड़ते थे ॥ ५३-५४½ ॥

प्रविश्य तद् बलं कृष्णस्तुरगैर्वातवेगितैः ॥ ५५ ॥
पाण्ड्येनाभ्यर्दितं सैन्यं त्वदीयं वीक्ष्य विस्मितः।

तब श्रीकृष्णने वायुके समान वेगशाली अश्वोंद्वारा उस सेनामें प्रवेश करके देखा कि पाण्ड्यनरेशने आपकी सेनाको अत्यन्त पीड़ित कर दिया है; यह देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ॥

स हि नानाविधैर्बाणैरिष्वस्त्रप्रवरो युधि ॥ ५६ ॥
न्यहनद् द्विषतां पूगान् गतासूनन्तको यथा।

जैसे यमराज आयुरहित प्राणियोंके प्राण हर लेते हैं, उसी प्रकार धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ पाण्ड्य युद्धस्थलमें नाना प्रकारके बाणोंद्वारा शत्रुसमूहोंका नाश कर रहे थे ॥ ५६½ ॥

गजवाजिमनुष्याणां शरीराणि शितैः शरैः ॥ ५७ ॥
भित्त्वा प्रहरतां श्रेष्ठो विदेहासूनपातयत्।

प्रहार करनेवाले योद्धाओंमें श्रेष्ठ पाण्ड्य अपने तीखे बाणोंसे हाथी, घोड़े और मनुष्योंके शरीरोंको विदीर्ण करके उन्हें देह और प्राणोंसे शून्य एवं धराशायी कर देते थे ॥५७½॥

शत्रुप्रवीरैरस्त्राणि नानाशस्त्राणि सायकैः ।

छित्त्वा तानवधीच्छत्रून् पाण्ड्यः शक्र इवासुरान् ५८

जैसे इन्द्र असुरोंका संहार करते हैं, उसी प्रकार पाण्ड्य-नरेश शत्रुवीरोंद्वारा चलाये गये नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंको अपने बाणोंद्वारा नष्ट करके उन शत्रुओंका वध कर डालते थे ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः

अश्वत्थामाके द्वारा पाण्ड्यनरेशका वध

धृतराष्ट्र उवाच

प्रोक्तस्त्वया पूर्वमेव प्रवीरो लोकविश्रुतः ।
न त्वस्य कर्म संग्रामे त्वया संजय कीर्तितम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! तुमने पाण्ड्यको पहले ही लोकविख्यात वीर बतलाया था; परंतु संग्राममें उनके किये हुए वीरोचित कर्मका वर्णन नहीं किया ॥ १ ॥

तस्य विस्तरशो ब्रूहि प्रवीरस्याद्य विक्रमम् ।
शिक्षां प्रभावं वीर्यं च प्रमाणं दर्पमेव च ॥ २ ॥

आज उन प्रमुख वीरके पराक्रम, शिक्षा, प्रभाव, बल, प्रमाण और दर्पका विस्तारपूर्वक वर्णन करो ॥ २ ॥

संजय उवाच

भीष्मद्रोणकृपद्रौणिकर्णार्जुनजनार्दनान् ।
समाप्तविद्यान् धनुषि श्रेष्ठान् यान् मन्यसे रथान् ॥ ३ ॥
यो ह्याक्षिपति वीर्येण सर्वानेतान् महारथान् ।
न मेने चात्मना तुल्यं कंचिदेव नरेश्वरम् ॥ ४ ॥
तुल्यतां द्रोणभीष्माभ्यामात्मनो यो न मृष्यते ।
वासुदेवार्जुनाभ्यां च न्यूनतां नैच्छतात्मनि ॥ ५ ॥
स पाण्ड्यो नृपतिश्रेष्ठः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
कर्णस्यानीकमहनत् पराभूत इवान्तकः ॥ ६ ॥

संजयने कहा—राजन् ! भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, अर्जुन तथा श्रीकृष्ण आदि जिन वीरोंको आप पूर्ण विद्वान्, धनुर्वेदमें श्रेष्ठ तथा महारथी मानते हैं, इन सब महारथियोंको जो अपने पराक्रमके समक्ष तुच्छ समझता था, जो किसी भी नरेशको अपने समान नहीं मानता था, जो द्रोण और भीष्मके साथ अपनी तुलना नहीं सह सकता था और जिसने श्रीकृष्ण तथा अर्जुनसे भी अपनेमें तनिक भी न्यूनता माननेकी इच्छा नहीं की, उसी सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ नृपशिरोमणि पाण्ड्यने अपमानित हुए यमराजके समान कुपित हो कर्णकी सेनाका वध आरम्भ किया ॥ ३—६ ॥

तदुदीर्णरथाश्वेभं पत्तिप्रवरसंकुलम् ।
कुलालचक्रवद् भ्रान्तं पाण्ड्येनाभ्याहतं बलात् ॥ ७ ॥

कौरवसेनामें रथ, घोड़े और हाथियोंकी संख्या बढ़ी-चढ़ी थी, श्रेष्ठ पैदल सैनिकोंसे भी वह सेना भरी हुई थी, तथापि पाण्ड्यनरेशके द्वारा बलपूर्वक आहत होकर वह कुम्हारके चाककी भाँति चक्कर काटने लगी ॥ ७ ॥

व्यश्वसूतध्वजरथान् विप्रविद्धायुधद्विपान् ।
सम्यगस्तैः शरैः पाण्ड्यो वायुर्मेघानिवाक्षिपत् ८

जैसे वायु मेघोंको उड़ा देती है, उसी प्रकार पाण्ड्यनरेशने अच्छी तरह चलाये हुए बाणोंद्वारा समस्त सैनिकोंको घोड़े, सारथि, ध्वज और रथोंसे हीन कर दिया। उनके आयुधों और हाथियोंको भी मार गिराया ॥ ८ ॥

द्विरदान् द्विरदारोहान् विपताकायुधध्वजान् ।
सपादरक्षानहनद् वज्रेणाद्रीनिवाद्रिहा ॥ ९ ॥

जैसे पर्वतोंका हनन करनेवाले इन्द्रने वज्रद्वारा पर्वतोंपर आघात किया था, उसी प्रकार पाण्ड्यनरेशने पादरक्षकोंसहित हाथियों और हाथीसवारोंको ध्वजा, पताका तथा आयुधोंसे वञ्चित करके मार डाला ॥ ९ ॥

सशक्तिप्रासतूणीरानश्वारोहान् हयानपि ।
पुलिन्दखसबाह्लीकनिषादान्ध्रककुन्तलान् ॥ १० ॥
दाक्षिणात्यांश्च भोजांश्च शूरान् संग्रामकर्कशान् ।
विशस्त्रकवचान् बाणैः कृत्वा चैवाकरोद् व्यसून् ॥ ११ ॥

शक्ति, प्रास और तरकसोंसहित घुड़सवारों तथा घोड़ोंको भी यमलोक पहुँचा दिया। पुलिन्द, खस, बाह्लीक, निषाद, आन्ध्र, कुन्तल, दाक्षिणात्य तथा भोजप्रदेशीय रणकर्कश शूर-वीरोंको अपने बाणोंद्वारा अस्त्र-शस्त्र तथा कवचोंसे हीन करके उनके प्राण हर लिये ॥ १०-११ ॥

चतुरङ्गं बलं बाणैर्निघ्नन्तं पाण्ड्यमाहवे ।
दृष्ट्वा द्रौणिरसम्भ्रान्तमसम्भ्रान्तस्ततोऽभ्ययात् ॥ १२ ॥

राजा पाण्ड्यको समराङ्गणमें बिना किसी घबराहटके अपने बाणोंद्वारा कौरवोंकी चतुरङ्गिणी सेनाका विनाश करते देख अश्वत्थामाने निर्भय होकर उनका सामना किया ॥ १२ ॥

आभाष्य चैनं मधुरमभीतं तमभीतवत् ।
प्राह प्रहरतां श्रेष्ठः स्मितपूर्वं समाह्वयन् ॥ १३ ॥

साथ ही उन निर्भय नरेशको मधुर वाणीमें सम्बोधित करके योद्धाओंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामाने मुसकराकर युद्धके लिये उनका आह्वान करते हुए निर्भीकके समान कहा—॥ १३ ॥

राजन् कमलपत्राक्ष विशिष्टाभिजनश्रुत ।
वज्रसंहननप्रख्य प्रख्यातबलपौरुष ॥ १४ ॥

'राजन् ! कमलनयन ! तुम्हारा कुल और शास्त्रज्ञान सर्वश्रेष्ठ है। तुम्हारा सुगठित शरीर वज्रके समान कान्तिमान् है, तुम्हारे बल और पुरुषार्थ भी प्रसिद्ध हैं ॥ १४ ॥

मुष्टिश्लिष्टायतज्यं च व्यायताभ्यां महद् धनुः ।

दोर्भ्यां विस्फारयन् भासि महाजलदवद् भृशम् ॥ १५ ॥

'तुम्हारे धनुषकी प्रत्यञ्चा एक ही समय तुम्हारी मुट्ठीमें सटी हुई तथा गोलाकार फैली हुई दिखायी देती है। जब तुम अपनी दोनों बड़ी-बड़ी भुजाओंसे विशाल धनुषको खींचने और उसकी टङ्कार करने लगते हो, उस समय महान् मेघके समान तुम्हारी बड़ी शोभा होती है ॥ १५ ॥

शरवर्षैर्महावेगैरमित्रानभिवर्षतः।
मदन्यं नानुपश्यामि प्रतिवीरं तवाहवे ॥ १६ ॥

'जब तुम अपने शत्रुओंपर बड़े वेगसे बाण-वर्षा करने लगते हो, उस समय मैं अपने सिवा दूसरे किसी वीरको ऐसा नहीं देखता, जो समराङ्गणमें तुम्हारा सामना कर सके ॥ १६ ॥

रथद्विरदपत्त्यश्वानेकः प्रमथसे बहून्।
मृगसंघानिवारण्ये विभीर्भीमबलो हरिः ॥ १७ ॥

तुम अकेले ही बहुत-से रथ, हाथी, पैदल और घोड़ोंको मथ डालते हो। ठीक उसी तरह, जैसे वनमें भयंकर बलशाली सिंह बिना किसी भयके मृग-समूहोंका संहार कर डालता है ॥

महता रथघोषेण दिवं भूमिं च नादयन्।
वर्षान्ते सस्यहा मेघो भासि ह्रादीव पार्थिव ॥ १८ ॥

'राजन्! तुम अपने रथके गम्भीर घोषसे आकाश और पृथ्वीको प्रतिध्वनित करते हुए शरत्कालमें गर्जना करनेवाले सस्यनाशक मेघके समान जान पड़ते हो ॥ १८ ॥

संस्पृशानः शरांस्तीक्ष्णांस्तूणादाशीविषोपमान्।
मयैवैकेन युध्यस्व त्र्यम्बकेनान्धको यथा ॥ १९ ॥

'अब तुम अपने तरकससे विषधर सर्पोंके समान तीखे बाण लेकर जैसे महादेवजीके साथ अन्धकासुरने संग्राम किया था, उसी प्रकार केवल मेरे साथ युद्ध करो' ॥ १९ ॥

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा प्रहरेति च ताडितः।
कर्णिना द्रोणतनयं विव्याध मलयध्वजः ॥ २० ॥

अश्वत्थामाके ऐसा कहनेपर पाण्ड्यनरेश बोले— 'अच्छा ऐसा ही होगा। पहले तुम प्रहार करो।' इस प्रकार आक्षेपयुक्त वचन सुनकर अश्वत्थामाने उनपर अपने बाणका प्रहार किया। तब मलयध्वज पाण्ड्य-नरेशने कर्णी नामक बाणके द्वारा द्रोणपुत्रको बींध डाला ॥

मर्मभेदिभिरत्युग्रैर्बाणैरग्निशिखोपमैः।
स्मयन्नभ्यहनद् द्रौणिः पाण्ड्यमाचार्यसत्तमः ॥ २१ ॥

तब आचार्यप्रवर अश्वत्थामाने अत्यन्त भयंकर तथा अग्निशिखाके समान तेजस्वी मर्मभेदी बाणोंद्वारा पाण्ड्यनरेशको मुसकराते हुए घायल कर दिया ॥ २१ ॥

ततोऽपरान् सुतीक्ष्णाग्रान् नाराचान् मर्मभेदिनः।
गत्या दशम्या संयुक्तानश्वत्थामाप्यवासृजत् ॥ २२ ॥

तत्पश्चात् अश्वत्थामाने तीखे अग्रभागवाले दूसरे बहुत-से मर्मभेदी नाराच चलाये, जो दसवीं गतिका आश्रय लेकर छोड़े गये थे* ॥ २२ ॥

ताञ्शरानच्छिनत् पाण्ड्यो नवभिर्निशितैः शरैः।
चतुर्भिरर्दयच्चाश्वानाशु ते व्यसवोऽभवन् ॥ २३ ॥

परंतु पाण्ड्यनरेशने नौ तीखे सायकोंद्वारा उन सब बाणोंके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। फिर चार बाणोंसे उसके अश्वोंको अत्यन्त पीड़ा दी, जिससे वे शीघ्र ही अपने प्राण छोड़ बैठे ॥

अथ द्रोणसुतस्येषूंस्ताञ्छित्त्वा निशितैः शरैः।
धनुर्ज्यां विततां पाण्ड्यश्चिच्छेदादित्यतेजसः ॥ २४ ॥

तत्पश्चात् पाण्ड्यराजने अपने तीखे बाणोंद्वारा सूर्यके समान तेजस्वी अश्वत्थामाके उन बाणोंको छिन्न-भिन्न करके उसके धनुषकी फैली हुई डोरी भी काट डाली ॥ २४ ॥

दिव्यं धनुरथाधिज्यं कृत्वा द्रौणिरमित्रहा।
प्रेक्ष्य चाशु रथे युक्तान् नरैरन्यान् हयोत्तमान् ॥ २५ ॥
ततः शरसहस्राणि प्रेषयामास वै द्विजः।
इषुसम्बाधमाकाशमकरोद् दिश एव च ॥ २६ ॥

तब शत्रुसूदन द्रोणपुत्र विप्रवर अश्वत्थामाने अपने दिव्य धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर तथा यह भी देखकर कि मेरे रथमें सेवकोंने शीघ्र ही दूसरे उत्तम घोड़े लाकर जोत दिये हैं, सहस्रों बाण छोड़े तथा आकाश और दिशाओंको अपने बाणोंसे खचाखच भर दिया ॥ २५-२६ ॥

ततस्तानस्यतः सर्वान् द्रौणेर्बाणान् महात्मनः।
जानानोऽप्यक्षयान् पाण्ड्योऽशातयत् पुरुषर्षभः ॥ २७ ॥

पुरुषशिरोमणि पाण्ड्यने बाण चलाते हुए महामनस्वी अश्वत्थामाके उन सब बाणोंको अक्षय जानते हुए भी काट डाला ॥

प्रयुक्तांस्तान् प्रयत्नेन छित्त्वा द्रौणेरिषूनरिः।
चक्ररक्षौ रणे तस्य प्राणुदन्निशितैः शरैः ॥ २८ ॥

इस प्रकार अश्वत्थामाके चलाये हुए उन बाणोंको प्रयत्न-पूर्वक काटकर उसके शत्रु पाण्ड्यनरेशने पैने बाणोंद्वारा रण-भूमिमें उसके दोनों चक्ररक्षकोंको मार डाला ॥ २८ ॥

* बाणोंकी दस गतियाँ बतायी गयी हैं, जो इस प्रकार हैं— १–उन्मुखी, २–अभिमुखी, ३–तिर्यक्, ४–मन्दा, ५–गोमूत्रिका, ६–ध्रुवा, ७–स्खलिता, ८–यमकाक्रान्ता, ९–क्रुष्टा, और १०–अतिक्रुष्टा। इनमेंसे पूर्वकी तीन गतियाँ क्रमशः मस्तक, हृदय तथा पार्श्वदेशका स्पर्श करनेवाली हैं। अर्थात् उन्मुखी गतिसे छोड़ा हुआ बाण मस्तकपर, अभिमुखी गतिसे प्रेरित बाण वक्षःस्थलपर और तिर्यक् गतिसे चलाया हुआ बाण पार्श्वभागमें आघात करता है। मन्दा गतिसे छोड़े गये बाण त्वचाको कुछ-कुछ छेद पाते हैं। गोमूत्रिका गतिसे चलाये गये बाण बायें और दायें दोनों ओर जाते तथा कवचको भी काट देते हैं। ध्रुवा गति निश्चितरूपसे लक्ष्यका भेदन करानेवाली होती है। स्खलिता कहते हैं, लक्ष्यसे विचलित होनेवाली गतिको। उसके द्वारा संचालित बाण लक्ष्यभ्रष्ट होते हैं। यमकाक्रान्ता वह गति है, जिसके द्वारा प्रेरित बाण बारंबार लक्ष्य वेधकर निकल जाते हैं। क्रुष्टा उस गतिका नाम है, जो लक्ष्यके एक अवयव भुजा आदिका छेदन कराती है। दसवीं गतिका नाम है अतिक्रुष्टा; जिसके द्वारा चलाया गया बाण शत्रुका मस्तक काटकर उसके साथ ही दूर जा गिरता है। (नीलकण्ठीके आधारपर)

अथारेर्लाघवं दृष्ट्वा मण्डलीकृतकार्मुकः।
प्रास्यद् द्रोणसुतो बाणान् वृष्टिं पूषानुजो यथा॥ २९ ॥

शत्रुकी यह फुर्ती देखकर द्रोणकुमारने अपने धनुषको खींच कर मण्डलाकार बना दिया और जैसे पूषाका भाई पर्जन्य जलकी वर्षा करता है, उसी प्रकार उसने बाणोंकी वृष्टि आरम्भ कर दी॥

अष्टावष्टगवान्यूहुः शकटानि यदायुधम्।
अह्नस्तदष्टभागेन द्रौणिश्चिक्षेप मारिष॥ ३० ॥

मान्यवर! आठ बैलोंसे जुते हुए आठ छकड़ोंने जितने आयुध ढोये थे, उन सबको अश्वत्थामाने उस दिनके आठवें भागमें चलाकर समाप्त कर दिया॥ ३०॥

तमन्तकमिव क्रुद्धमन्तकस्यान्तकोपमम्।
ये ये ददृशिरे तत्र विसंज्ञाः प्रायशोऽभवन्॥ ३१ ॥

यमराजके समान क्रोधमें भरा हुआ अश्वत्थामा उस समय कालका भी काल-सा जान पड़ता था। जिन-जिन लोगोंने वहाँ उसे देखा, वे प्रायः बेहोश हो गये॥ ३१॥

पर्जन्य इव घर्मान्ते वृष्ट्या साद्रिद्रुमां महीम्।
आचार्यपुत्रस्तां सेनां बाणवृष्ट्या व्यवीवृषत्॥ ३२ ॥

जैसे वर्षाकालमें मेघ पर्वत और वृक्षोंसहित इस पृथ्वीपर जलकी वर्षा करता है, उसी प्रकार आचार्यपुत्र अश्वत्थामाने उस सेनापर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी॥ ३२॥

द्रौणिपर्जन्यमुक्तां तां बाणवृष्टिं सुदुःसहाम्।
वायव्यास्त्रेण संक्षिप्य मुदा पाण्ड्यानिलोऽनुदत्॥३३॥

अश्वत्थामारूपी मेघद्वारा की हुई उस दुःसह बाणवर्षाको पाण्ड्यराजरूपी वायुने वायव्यास्त्रसे छिन्न-भिन्न करके प्रसन्नतापूर्वक उड़ा दिया॥ ३३॥

तस्य नानदतः केतुं चन्दनागुरुरूषितम्।
मलयप्रतिमं द्रौणिश्छित्त्वाश्वांश्चतुरोऽहनत्॥ ३४ ॥

उस समय द्रोणकुमार अश्वत्थामाने बारंबार गर्जना करते हुए पाण्ड्यके मलयाचल-सदृश ऊँचे तथा चन्दन और अगुरुसे चर्चित ध्वजको काटकर उनके चारों घोड़ोंको भी मार डाला॥

सूतमेकेषुणा हत्वा महाजलदनिःस्वनम्।
धनुश्छित्त्वार्धचन्द्रेण तिलशो व्यधमद् रथम्॥ ३५ ॥

फिर एक बाणसे सारथिको मारकर महान् मेघके समान गम्भीर शब्द करनेवाले उनके धनुषको भी अर्धचन्द्राकार बाणके द्वारा काट दिया और उनके रथको तिल-तिल करके नष्ट कर डाला॥ ३५॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य छित्त्वा सर्वायुधानि च।
प्राप्तमप्यहितं द्रौणिर्न जघान रणेप्सया॥ ३६ ॥

इस प्रकार अस्त्रोंद्वारा पाण्ड्यके अस्त्रोंका निवारण करके अश्वत्थामाने उनके सारे आयुध काट डाले, तथापि युद्धकी अभिलाषासे उसने अपने वशमें आये हुए शत्रुका भी वध नहीं किया॥ ३६॥

एतस्मिन्नन्तरे कर्णो गजानीकमुपाद्रवत्।
द्रावयामास स तदा पाण्डवानां महद् बलम्॥ ३७ ॥

इसी बीचमें कर्णने पाण्डवोंकी गजसेनापर आक्रमण किया। उस समय उसने पाण्डवोंकी विशाल सेनाको खदेड़ना आरम्भ किया॥ ३७॥

विरथान् रथिनश्चक्रे गजानश्वांश्च भारत।
गजान् बहुभिरानर्छच्छरैः संनतपर्वभिः॥ ३८ ॥

भारत! उसने बहुत-से रथियोंको रथहीन कर दिया, हाथीसवारों और घुड़सवारोंके हाथी और घोड़े मार डाले तथा झुकी हुई गाँठवाले बहुसंख्यक बाणोंद्वारा कितने ही हाथियोंको अत्यन्त पीड़ित कर दिया॥ ३८॥

अथ द्रौणिर्महेष्वासः पाण्ड्यं शत्रुनिबर्हणम्।
विरथं रथिनां श्रेष्ठं नाहनद् युद्धकाङ्क्षया॥ ३९ ॥

इधर महाधनुर्धर अश्वत्थामाने शत्रुसंहारक, रथियोंमें श्रेष्ठ पाण्ड्यको रथहीन करके भी उनका वध इसलिये नहीं किया कि वह उनके साथ अभी युद्ध करना चाहता था॥ ३९॥

हतेश्वरो दन्तिवरः सुकल्पित-
स्त्वराभिसृष्टः प्रतिशब्दगो बली।
तमाद्रवद् द्रौणिशराहतस्त्वरन्
जवेन कृत्वा प्रतिहस्तिगर्जितम्॥ ४० ॥

इतनेहीमें एक सजा-सजाया श्रेष्ठ एवं बलवान् गजराज बड़ी उतावलीके साथ छूटकर प्रतिध्वनिका अनुसरण करता हुआ उधर आ निकला, उसके मालिक और महावत मारे जा चुके थे। अश्वत्थामाके बाणोंसे आहत होकर वह शीघ्रतापूर्वक पाण्ड्यराजकी ओर दौड़ा। उसने प्रतिपक्षी हाथीकी गर्जनाका शब्द सुनकर बड़े वेगसे उसी ओर धावा किया था॥४०॥

तं वारणं वारणयुद्धकोविदो
द्विपोत्तमं पर्वतसानुसंनिभम्।
समभ्यतिष्ठन्मलयध्वजस्त्वरन्
यथाद्रिशृङ्गं हरिरुन्नदंस्तथा॥ ४१ ॥

परंतु गजयुद्धविशारद मलयध्वज पाण्ड्यनरेश पर्वतशिखरके समान ऊँचे उस श्रेष्ठ गजराजपर उतनी ही शीघ्रताके साथ चढ़ गये, जैसे दहाड़ता हुआ सिंह किसी पहाड़की चोटीपर चढ़ जाता है॥ ४१॥

स तोमरं भास्कररश्मिवर्चसं
बलास्त्रसर्गोत्तमयत्नमन्युभिः।
ससर्ज शीघ्रं परिपीडयन् गजं
गुरोः सुतायाद्रिपतीश्वरो नदन्॥ ४२ ॥

गिरिराज मलयके स्वामी पाण्ड्यराजने तुरंत अग्रसर होनेके लिये उस हाथीको पीड़ा दी और अस्त्र-प्रहारके लिये उत्तम यत्न, बल तथा क्रोधसे प्रेरित हो सूर्यकी किरणोंके समान तेजस्वी एक तोमर हाथमें लेकर गर्जना करते हुए उसे शीघ्र ही आचार्यपुत्रपर चला दिया॥ ४२॥

मणिप्रवेकोत्तमवज्रहाटकै-
रलंकृतं चांशुकमाल्यमौक्तिकैः ।
हतो हतोऽसीत्यसकृन्मुदा नदन्
पराहनद् द्रौणिवराङ्गभूषणम् ॥ ४३ ॥

उस तोमरद्वारा उन्होंने उत्तम मणि, श्रेष्ठ हीरक, स्वर्ण, वस्त्र, माला और मुक्तासे विभूषित अश्वत्थामाके मुकुटपर बारंबार यह कहते हुए प्रसन्नतापूर्वक आघात किया कि 'तुम मारे गये, मारे गये' ॥ ४३ ॥

तदर्कचन्द्रग्रहपावकत्विषं
भृशातिपातात् पतितं विचूर्णितम् ।
महेन्द्रवज्राभिहतं महास्वनं
यथाद्रिशृङ्गं धरणीतले तथा ॥ ४४ ॥

सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह और अग्निके समान प्रकाशमान वह मुकुट उस तोमरके गहरे आघातसे चूर-चूर होकर महान् शब्दके साथ उसी प्रकार पृथ्वीपर गिर पड़ा, जैसे इन्द्रके वज्रसे आहत हो किसी पर्वतका शिखर भारी आवाजके साथ धराशायी हो जाता है ॥ ४४ ॥

ततः प्रजज्वाल परेण मन्युना
पादाहतो नागपतिर्यथा तथा ।
समाददे चान्तकदण्डसंनिभा-
निषूनमित्रार्तिकरांश्चतुर्दश ॥ ४५ ॥

तब अश्वत्थामा पैरोंसे ठुकराये हुए नागराजके समान शीघ्र ही अत्यन्त क्रोधसे जल उठा । फिर तो उसने यमदण्डके समान शत्रुओंको संताप देनेवाले चौदह बाण हाथमें लिये ॥

द्विपस्य पादाग्रकरान् स पञ्चभि-
र्नृपस्य बाहू च शिरोऽथ च त्रिभिः ।
जघान षड्भिः षडनुत्तमत्विषः
स पाण्ड्यराजानुचरान् महारथान् ॥ ४६ ॥

उसने पाँच बाणोंसे उस हाथीके पैर तथा सूँड़ काट लिये । फिर तीन बाणोंसे पाण्ड्यनरेशकी दोनों भुजाओं और मस्तकको शरीरसे अलग कर दिया । इसके बाद छः बाणोंसे पाण्ड्यराजके पीछे चलनेवाले उत्तम कान्तिसे सुशोभित छः महारथियोंको भी मार डाला ॥ ४६ ॥

सुदीर्घवृत्तौ वरचन्दनोक्षितौ
सुवर्णमुक्तामणिवज्रभूषणौ ।
भुजौ धरायां पतितौ नृपस्य तौ
विचेष्टतुस्तार्क्ष्यहताविवोरगौ ॥ ४७ ॥

उत्तम, विशाल, गोलाकार, श्रेष्ठ चन्दनसे चर्चित, सुवर्ण, मुक्ता, मणि तथा हीरोंसे विभूषित पाण्ड्यनरेशकी वे दोनों भुजाएँ पृथ्वीपर गिरकर गरुड़के मारे हुए दो सर्पोंके समान छटपटाने लगीं ॥ ४७ ॥

शिरश्च तत् पूर्णशशिप्रभाननं
सरोषताम्रायतनेत्रमुन्नसम् ।
क्षितावपि भ्राजति तत् सकुण्डलं
विशाखयोर्मध्यगतः शशी यथा ॥ ४८ ॥

जिसका मुखमण्डल पूर्ण चन्द्रमाके सदृश प्रकाशमान तथा नेत्र क्रोधके कारण अरुणवर्ण थे, जिसकी नासिका ऊँची थी, वह पाण्ड्यराजका कुण्डलमण्डित मस्तक पृथ्वीपर गिरकर भी दो विशाखा नक्षत्रोंके बीचमें विराजमान चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहा था ॥ ४८ ॥

स तु द्विपः पञ्चभिरुत्तमेषुभिः
कृतः षडंशश्चतुरो नृपस्त्रिभिः ।
कृतो दशांशः कुशलेन युध्यता
यथा हविस्तद्दशदैवतं तथा ॥ ४९ ॥

युद्धकुशल अश्वत्थामाने पाँच उत्तम बाण मारकर उस हाथीके छः टुकड़े कर दिये और फिर तीन बाणसे राजाके भी चार टुकड़े कर डाले । इस प्रकार दोनों मिलाकर दस भाग कर दिये । जैसे कि कर्मनिपुण पुरोहित दस हविर्धान यज्ञमें इन्द्र आदि दस देवताओंके लिये हविष्यके दस भाग कर देता है ॥ ४९ ॥

स पादशो राक्षसभोजनान् बहून्
प्रदाय पाण्ड्योऽश्वमनुष्यकुञ्जरान् ।
स्वधामिवाप्य ज्वलनः पितृप्रिय-
स्ततः प्रशान्तः सलिलप्रवाहतः ॥ ५० ॥

जैसे पितरोंकी प्रिय चिताग्नि मृत शरीरको पाकर प्रज्वलित हो उसे जलाती है और अन्तमें जलका अभिषेक पाकर शान्त हो जाती है, उसी प्रकार पाण्ड्यनरेश घोड़े, हाथी और मनुष्योंके टुकड़े-टुकड़े करके उन्हें प्रचुर मात्रामें राक्षसोंके लिये भोजन देकर अन्तमें अश्वत्थामाके बाणसे सदाके लिये शान्त हो गये ॥

समाप्तविद्यं तु गुरोः सुतं नृपः
समाप्तकर्माणमुपेत्य ते सुतः ।
सुहृद्वृतोऽत्यर्थमपूजयन्मुदा
जिते बलौ विष्णुमिवामरेश्वरः ॥ ५१ ॥

जिसने पूरी विद्या समाप्त कर ली है तथा समस्त कर्तव्यकर्म पूर्ण कर लिये हैं, उस गुरुपुत्र अश्वत्थामाके पास सुहृदोंसहित आकर आपके पुत्र दुर्योधनने प्रसन्नतापूर्वक उसकी बड़ी पूजा की । ठीक उसी तरह, जैसे बलिके पराजित होनेपर देवराज इन्द्रने विष्णुका पूजन किया था ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि पाण्ड्यवधे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें पाण्ड्यवधविषयक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः

कौरव-पाण्डव-दलोंका भयंकर घमासान युद्ध

धृतराष्ट्र उवाच

पाण्ड्ये हते किमकरोदर्जुनो युधि संजय।
एकवीरेण कर्णेन द्रावितेषु परेषु च॥ १॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! जब युद्धस्थलमें अश्वत्थामा-द्वारा पाण्ड्यनरेश मार डाले गये और मेरे पक्षके अद्वितीय वीर कर्णने जब शत्रुसैनिकोंको मार भगाया, उस समय अर्जुनने क्या किया?॥ १॥

समाप्तविद्यो बलवान् युक्तो वीरः स पाण्डवः।
सर्वभूतेष्वनुज्ञातः शङ्करेण महात्मना॥ २॥

पाण्डुकुमार अर्जुन युद्धविद्याकी शिक्षा समाप्त कर चुके हैं। वे विजयके प्रयत्नमें लगे हुए बलवान् वीर हैं। भगवान् शङ्करने उन्हें कृपापूर्वक अनुगृहीत करते हुए यह कह दिया है कि 'तुम समस्त प्राणियोंमें प्रधान एवं अजेय होओगे'॥ २॥

तस्मान्महद् भयं तीव्रममित्रघ्नाद् धनंजयात्।
स यत् तत्राकरोत् पार्थस्तन्ममाचक्ष्व संजय॥ ३॥

इसलिये उन शत्रुनाशक धनंजयसे मुझे अत्यन्त तीव्र एवं महान् भय बना रहता है। अतः संजय! वहाँ कुन्तीकुमार अर्जुनने जो कुछ किया हो, वह मुझे बताओ॥ ३॥

संजय उवाच

हते पाण्ड्येऽर्जुनं कृष्णस्त्वरन्नाह वचो हितम्।
पश्यामि नाहं राजानमपयातांश्च पाण्डवान्॥ ४॥

संजयने कहा—राजन्! पाण्ड्यनरेशके मारे जानेपर श्रीकृष्णने बड़ी उतावलीके साथ अर्जुनसे यह हितकर वचन कहा—"पार्थ! मैं राजा युधिष्ठिरको नहीं देख रहा हूँ। युद्धस्थलसे हटे हुए अन्य पाण्डव भी मुझे नहीं दिखायी दे रहे हैं॥

निवृत्तैश्च पुनः पार्थैर्भग्नं शत्रुबलं महत्।
अश्वत्थाम्नश्च सङ्कल्पाद्धताः कर्णेन सृञ्जयाः॥ ५॥
तथाश्वरथनागानां कृतं च कदनं महत्।

'पुनः लौटे हुए पाण्डव-योद्धाओंने विशाल शत्रुसेनामें भगदड़ मचा दी थी; परंतु अश्वत्थामाके संकल्पके अनुसार कर्णने सृंजयोंका संहार कर डाला तथा अपनी सेनाके हाथी, घोड़े एवं रथोंका भारी विनाश कर दिया'॥ ५½॥

सर्वमाख्यातवान् वीरो वासुदेवः किरीटिने॥ ६॥
एतच्छ्रुत्वा च दृष्ट्वा च भ्रातुर्घोरं महद् भयम्।
वाहयाश्वान् हृषीकेश क्षिप्रमित्याह पाण्डवः॥ ७॥

वीर वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने किरीटधारी अर्जुनको ये सारी बातें बतायीं। यह सुनकर तथा अपने भाईके ऊपर आये हुए इस घोर एवं महान् भयको देखकर पाण्डुकुमार अर्जुनने कहा—'हृषीकेश! आप शीघ्र ही इन घोड़ोंको बढ़ाइये'॥ ६-७॥

ततः प्रायाद्धृषीकेशो रथेनाप्रतियोधिना।
दारुणश्च पुनस्तत्र प्रादुरासीत् समागमः॥ ८॥

तब भगवान् हृषीकेश जिसका सामना करनेवाला दूसरा कोई योद्धा नहीं था उस रथके द्वारा आगे बढ़े। उस समय वहाँ पुनः बड़ा भयंकर संग्राम छिड़ा हुआ था॥ ८॥

ततः पुनः समाजग्मुरभीताः कुरुपाण्डवाः।
भीमसेनमुखाः पार्थाः सूतपुत्रमुखा वयम्॥ ९॥

कौरव तथा पाण्डव योद्धा पुनः निर्भय होकर एक दूसरेसे भिड़ गये थे। पाण्डव-सैनिकोंके प्रधान थे भीमसेन और हम लोगोंका प्रधान था सूतपुत्र कर्ण॥ ९॥

ततः प्रववृते भूयः संग्रामो राजसत्तम।
कर्णस्य पाण्डवानां च यमराष्ट्रविवर्धनः॥ १०॥

नृपश्रेष्ठ! उस समय कर्णका पाण्डव-सैनिकोंके साथ जो पुनः संग्राम आरम्भ हुआ था, वह यमराजके राज्यकी श्री-वृद्धि करनेवाला था॥ १०॥

धनूंषि बाणान् परिघानसिपट्टिशतोमरान्।
मुसलानि भुशुण्डीश्च सशक्त्यृष्टिपरश्वधान्॥ ११॥
गदाः प्रासाञ्छितान् कुन्तान् भिन्दिपालान् महाङ्कुशान्।
प्रगृह्य क्षिप्रमापेतुः परस्परजिघांसया॥ १२॥

दोनों दलोंके सैनिक एक दूसरेको मार डालनेकी इच्छासे धनुष, बाण, परिघ, खड्ग, पट्टिश, तोमर, मुसल, भुशुण्डी, शक्ति, ऋष्टि, फरसे, गदा, प्रास, तीखे कुन्त, भिन्दिपाल और बड़े-बड़े अङ्कुश लेकर शीघ्रतापूर्वक युद्धके मैदानमें कूद पड़े थे॥

बाणज्यातलशब्देन द्यां दिशः प्रदिशो वियत्।
पृथिवीं नेमिघोषेण नादयन्तोऽभ्ययुः परान्॥ १३॥

रथी वीर अपने बाणसहित धनुषकी प्रत्यञ्चाकी टंकारध्वनि एवं रथके पहियोंकी घर्घराहटसे आकाश, अन्तरिक्ष, दिशा, विदिशा तथा भूतलको शब्दायमान करते हुए शत्रुओंपर चढ़ आये॥ १३॥

तेन शब्देन महता संहृष्टाश्चक्रुराहवम्।
वीरा वीरैर्महाघोरं कलहान्तं तितीर्षवः॥ १४॥

कलहके पार जानेकी इच्छा रखनेवाले वे सभी वीर उस महान् शब्दसे हर्ष एवं उत्साहमें भरकर विपक्षी वीरोंके साथ अत्यन्त घोर संग्राम करने लगे॥ १४॥

ज्यातलत्रधनुःशब्दः कुञ्जराणां च बृंहताम्।
पादातानां च पततां नृणां नादो महानभूत्॥ १५॥

प्रत्यञ्चा, हस्तत्राण और धनुषका शब्द, चिग्घाड़ते हुए हाथियोंकी आवाज तथा रणभूमिमें गिरते हुए पैदल मनुष्योंके महान् आर्तनादकी तुमुल ध्वनि वहाँ गूँजने लगी॥ १५॥

तालशब्दांश्च विविधाञ्शूराणां चाभिगर्जताम्।

श्रुत्वा तत्र भृशं त्रेसुः पेतुर्मम्लुश्च सैनिकाः ॥ १६ ॥

सामने गर्जना करनेवाले शूरवीरोंके ताल ठोंकनेके विविध शब्द सुनकर कितने ही सैनिक वहाँ भयसे थर्रा उठते थे, कितने ही गिर पड़ते थे और कितने ही ग्लानिसे भर जाते थे॥

तेषां निनदतां चैव शस्त्रवर्षं च मुञ्चताम्।
बहूनाधिरथिर्वीरः प्रममाथेषुभिः परान् ॥ १७ ॥

जोर-जोरसे गर्जते तथा अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करते हुए उन शत्रुसैनिकोंमेंसे बहुतोंको वीर कर्णने अपने बाणोंसे मथ डाला ॥ १७ ॥

पञ्च पाञ्चालवीराणां रथान् दश च पञ्च च।
साश्वसूतध्वजान् कर्णः शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ १८ ॥

उसने अपने बाणोंद्वारा पाञ्चाल वीरोंमेंसे पहले पाँच, फिर दस और फिर पाँच रथियोंको घोड़े, सारथि एवं ध्वजों-सहित मारकर यमलोक पहुँचा दिया ॥ १८ ॥

योधमुख्या महावीर्याः पाण्डूनां कर्णमाहवे।
शीघ्रास्त्रास्तूर्णमावृत्य परिवव्रुः समन्ततः ॥ १९ ॥

तब समराङ्गणमें पाण्डवदलके शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलानेवाले महापराक्रमी प्रधान-प्रधान योद्धाओंने तुरंत आकर कर्णको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १९ ॥

ततः कर्णो द्विषत्सेनां शरवर्षैर्विलोडयन्।
विजगाहाण्डजाकीर्णां पद्मिनीमिव यूथपः ॥ २० ॥

तदनन्तर कर्णने अपने बाणोंकी वर्षासे शत्रुसेनाका मन्थन करते हुए उसके भीतर उसी प्रकार प्रवेश किया, जैसे यूथपति गजराज पक्षियोंसे भरे हुए कमलपूर्ण सरोवरमें घुसकर उसे मथने लगता है ॥ २० ॥

द्विषन्मध्यमवस्कन्द्य राधेयो धनुरुत्तमम्।
विधुन्वानः शितैर्बाणैः शिरांस्युन्मथ्य पातयत् ॥ २१ ॥

राधापुत्र कर्ण क्रमशः शत्रुसेनाके मध्यभागमें पहुँचकर अपने उत्तम धनुषको कम्पित करता हुआ पैने बाणोंसे शत्रुओंके सिर काट-काटकर गिराने लगा ॥ २१ ॥

चर्मवर्माणि संछिन्नान्यपतन् भुवि देहिनाम्।
विषेहुर्नास्य संस्पर्शं द्वितीयस्य पतत्रिणः ॥ २२ ॥

उस समय देहधारियोंके चमड़े और कवच कट-कटकर भूतलपर गिर रहे थे। शत्रुसैनिक कर्णके द्वितीय बाणका स्पर्श नहीं सहन कर पाते थे ॥ २२ ॥

वर्मदेहासुमथनैर्धनुषः प्रच्युतैः शरैः।
मौर्व्या तलत्रे न्यहनत् कशया वाजिनो यथा ॥ २३ ॥

जैसे घुड़सवार घोड़ोंको कोड़ेसे पीटता है, उसी प्रकार कर्ण धनुषसे छूटकर कवच, शरीर और प्राणोंको मथ डालनेवाले बाणोंद्वारा शत्रुओंके हस्तत्राणपर भी प्रहार करने लगा॥

पाण्डुसृञ्जयपञ्चालाञ्शरगोचरमागतान्।
ममर्द तरसा कर्णः सिंहो मृगगणानिव ॥ २४ ॥

जैसे सिंह अपनी दृष्टिमें पड़े हुए मृगोंको वेगपूर्वक मसल डालता है, उसी प्रकार कर्णने अपने बाणोंकी पहुँचके भीतर आये हुए पाण्डव, सृंजय तथा पाञ्चाल योद्धाओंको बड़े वेगसे रौंद डाला ॥ २४ ॥

ततः पाञ्चालराजश्च द्रौपदेयाश्च मारिष।
यमौ च युयुधानश्च सहिताः कर्णमभ्ययुः ॥ २५ ॥

मान्यवर ! तब पाञ्चालराज धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पुत्र तथा नकुल, सहदेव और सात्यकि--इन सबने एक साथ आकर कर्णपर आक्रमण किया ॥ २५ ॥

तेषु व्यायच्छमानेषु कुरुपाञ्चालपाण्डुषु।
प्रियानसून् रणे त्यक्त्वा योधा जघ्नुः परस्परम् ॥२६॥

उस समय जब कौरव, पाञ्चाल तथा पाण्डव योद्धा परिश्रमपूर्वक युद्धमें लगे हुए थे, सभी सैनिक रणभूमिमें अपने प्यारे प्राणोंका मोह छोड़कर एक दूसरेको मारने लगे ॥

सुसंनद्धाः कवचिनः सशिरस्त्राणभूषणाः।
गदाभिर्मुसलैश्चान्ये परिघैश्च महाबलाः ॥ २७ ॥
समभ्यधावन्त भृशं कालदण्डैरिवोद्यतैः।
नर्दन्तश्चाह्वयन्तश्च प्रवल्गन्तश्च मारिष ॥ २८ ॥

माननीय नरेश ! कमर कसे, कवच बाँधे तथा शिरस्त्राण एवं आभूषण धारण किये हुए महाबली योद्धा गरजते, उछलते-कूदते और एक दूसरेको ललकारते हुए कालदण्डके समान गदा, मुसल और परिघ उठाये परस्पर धावा बोल रहे थे ॥ २७-२८ ॥

ततो निजघ्नुरन्योन्यं पेतुश्चान्योन्यताडिताः।
वमन्तो रुधिरं गात्रैर्विमस्तिष्केक्षणायुधाः ॥ २९ ॥

तदनन्तर वे एक दूसरेका वध करने, परस्पर चोट खाकर धराशायी होने तथा शरीरसे रक्त बहाने लगे। उनके मस्तिष्क, नेत्र और आयुध नष्ट हो गये थे ॥ २९ ॥

दन्तपूर्णैः सरुधिरैर्वक्त्रैर्दाडिमसंनिभैः।
जीवन्त इव चाप्येके तस्थुः शस्त्रोपबृंहिताः ॥ ३० ॥

कितने ही वीरोंके शरीर अस्त्र-शस्त्रोंसे व्याप्त एवं प्राणशून्य होकर पड़े थे; परंतु उनके खुले हुए मुखमें जो रक्तरञ्जित दाँत थे, उनके द्वारा वे फटे हुए अनारके फलों-जैसे जान पड़ते थे और उस तरहके मुखोंद्वारा वे जीवित-से प्रतीत होते थे ॥ ३० ॥

परश्वधैश्चाप्यपरे पट्टिशैरसिभिस्तथा।
शक्तिभिर्भिन्दिपालैश्च नखरप्रासतोमरैः ॥ ३१ ॥
ततक्षुश्चिच्छिदुश्चान्ये बिभिदुश्चिक्षिपुस्तथा।
संचकर्तुश्च जघ्नुश्च क्रुद्धा रणमहार्णवे ॥ ३२ ॥

महासागरके समान उस विशाल युद्धस्थलमें परस्पर कुपित हुए अन्यान्य योद्धा परशु, पट्टिश, खड्ग, शक्ति, भिन्दिपाल, नखर, प्रास तथा तोमरोंद्वारा यथासम्भव एक

दूसरेका छेदन-भेदन, विदारण, क्षेपण, कर्तन और हनन करने लगे ॥ ३१-३२ ॥

पेतुरन्योन्यनिहता व्यसवो रुधिरोक्षिताः ।
क्षरन्तः सुरसं रक्तं प्रकृत्ताश्चन्दना इव ॥ ३३ ॥

जैसे लाल चन्दनके वृक्ष कट जानेपर रक्त वर्णका रस बहाने लगते हैं, उसी प्रकार परस्परके आघातसे मारे गये योद्धा खूनसे लथपथ एवं प्राणशून्य होकर युद्धभूमिमें पड़े थे और अपने अङ्गोंसे रक्त बहा रहे थे ॥ ३३ ॥

रथै रथा विनिहता हस्तिभिश्चापि हस्तिनः ।
नरैर्नरा हताः पेतुरश्वाश्चाश्वैः सहस्रशः ॥ ३४ ॥

रथियोंसे रथी, हाथियोंसे हाथी, पैदल मनुष्योंसे मनुष्य और घोड़ोंसे घोड़े मारे जाकर रणभूमिमें सहस्रोंकी संख्यामें पड़े थे ॥ ३४ ॥

ध्वजाः शिरांसि च्छत्राणि द्विपहस्ता नृणां भुजाः ।
क्षुरैर्भल्लार्धचन्द्रैश्च च्छिन्नाः पेतुर्महीतले ॥ ३५ ॥

ध्वज, मस्तक, छत्र, हाथीकी सूँड़ तथा मनुष्योंकी भुजाएँ—ये सबके सब क्षुरों, भल्लों तथा अर्धचन्द्रोंद्वारा कट-कर भूतलपर पड़े थे ॥ ३५ ॥

नरांश्च नागान् सरथान् हयान् ममृदुराहवे ।
अश्वारोहैर्हताः शूराश्छिन्नहस्ताश्च दन्तिनः ॥ ३६ ॥
सपताकाध्वजाः पेतुर्विशीर्णा इव पर्वताः ।

घुड़सवारोंने कितने ही शूरवीरोंको मार डाला और बड़े-बड़े दन्तार हाथियोंकी सूँड़ें काट लीं। सूँड़ कट जानेपर उन हाथियोंने युद्धस्थलमें बहुत-से मनुष्यों, हाथियों, रथों और घोड़ोंको कुचल डाला। फिर वे पताका और ध्वजोंसहित टूटे-फूटे पर्वतोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ३६½ ॥

पत्तिभिश्च समाप्लुत्य द्विरदाः स्यन्दनास्तथा ॥ ३७ ॥
हताश्च हन्यमानाश्च पतिताश्चैव सर्वशः ।

पैदल वीरोंद्वारा उछल-उछलकर मारे गये और मारे जाते हुए कितने ही हाथी और रथ सवारोंसहित सब ओर पड़े थे ॥ ३७½ ॥

अश्वारोहाः समासाद्य त्वरिताः पत्तिभिर्हताः ॥ ३८ ॥
सादिभिः पत्तिसंघाश्च निहता युधि शेरते ।

कितने ही घुड़सवार बड़ी उतावलीके साथ पैदल वीरोंके पास जाकर उनके द्वारा मारे गये तथा झुंड-के-झुंड पैदल सैनिक भी घुड़सवारोंकी चोटसे मारे जाकर युद्धस्थलमें सदाके लिये सो गये थे ॥ ३८½ ॥

मृदितानीव पद्मानि प्रम्लाना इव च स्रजः ॥ ३९ ॥
हतानां वदनान्यासन् गात्राणि च महाहवे ।

उस महासमरमें मारे गये योद्धाओंके मुख और शरीर कुचले हुए कमलों और कुम्हलायी हुई मालाओंके समान श्रीहीन हो गये थे ॥ ३९½ ॥

रूपाण्यत्यर्थकान्तानि द्विरदाश्वनृणां नृप ।
समुन्नानीव वस्त्राणि ययुर्दुर्दर्शतां पराम् ॥ ४० ॥

नरेश्वर ! हाथी, घोड़े और मनुष्योंके अत्यन्त सुन्दर रूप भी वहाँ कीचड़में सने हुए वस्त्रोंके समान घिनौने हो गये थे। उनकी ओर देखना कठिन हो रहा था ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

पाण्डवसेनापर भयानक गज-सेनाका आक्रमण, पाण्डवोंद्वारा पुण्ड्रकी पराजय तथा बङ्गराज और अङ्गराजका वध, गजसेनाका विनाश और पलायन

संजय उवाच

हस्तिभिस्तु महामात्रास्तव पुत्रेण चोदिताः ।
धृष्टद्युम्नं जिघांसन्तः क्रुद्धाः पार्षतमभ्ययुः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! आपके पुत्र दुर्योधनकी आज्ञा पाकर बहुत-से महावत धृष्टद्युम्नको मार डालनेकी इच्छासे क्रोधपूर्वक हाथियोंके साथ आकर उनपर टूट पड़े ॥

प्राच्याश्च दाक्षिणात्याश्च प्रवरा गजयोधिनः ।
अङ्गा वङ्गाश्च पुण्ड्राश्च मागधास्ताम्रलिप्तकाः ॥ २ ॥
मेकलाः कोसला मद्रा दशार्णा निषधास्तथा ।
गजयुद्धेषु कुशलाः कलिङ्गैः सह भारत ॥ ३ ॥
शरतोमरनाराचैर्वृष्टिमन्त इवाम्बुदाः ।
सिषिचुस्ते ततः सर्वे पाञ्चालबलमाहवे ॥ ४ ॥

भारत ! पूर्व और दक्षिण दिशाके श्रेष्ठ गजयोद्धा तथा अंग, बंग, पुण्ड्र, मगध, ताम्रलिप्त, मेकल, कोसल, मद्र, दशार्ण तथा निषध देशोंके समस्त गजयुद्धनिपुण वीर कलिङ्गोंके साथ मिलकर वर्षा करनेवाले मेघोंके समान समराङ्गणमें पाञ्चाल-सेनापर बाण, तोमर और नाराचोंकी वृष्टि करने लगे ॥

तान् सम्मिमर्दिषून् नागान् पार्ष्ण्यङ्गुष्ठाङ्कुशैर्भृशम् ।
चोदितान् पार्षतो बाणैर्नाराचैरभ्यवीवृषत् ॥ ५ ॥

वे नाग शत्रुओंकी सारी सेनाको कुचल डालनेकी इच्छा रखते थे और उन्हें पैरोंकी एड़ी, अँगूठों तथा अङ्कुशोंकी मारसे बारंबार आगे बढ़नेके लिये प्रेरित किया जा रहा था। यह देखकर द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नने उनपर नाराच नामक बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ५ ॥

एकैकं दशभिः षड्भिरष्टाभिरपि भारत ।

द्विरदानभिविव्याध क्षिप्तैर्गिरिनिभाञ्शरैः ॥ ६ ॥

भरतनन्दन ! धृष्टद्युम्नने उन पर्वताकार हाथियोंमेंसे प्रत्येकको अपने चलाये हुए दस-दस, छः-छः और आठ-आठ बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ६ ॥

प्रच्छाद्यमानं द्विरदैर्मेघैरिव दिवाकरम् ।
प्रययुः पाण्डुपञ्चाला नदन्तो निशितायुधाः ॥ ७ ॥

उस समय मेघोंकी घटासे ढके हुए सूर्यके समान धृष्टद्युम्नको उन हाथियोंसे आच्छादित हुआ देख पाण्डव और पाञ्चाल सैनिक तीखे आयुध लिये गर्जना करते हुए आगे बढ़े ॥ ७ ॥

तान् नागानभिवर्षन्तो ज्यातन्त्रीतलनादितैः ।
वीरनृत्यं प्रनृत्यन्तः शूरतालप्रचोदितैः ।
नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ॥ ८ ॥
सात्यकिश्च शिखण्डी च चेकितानश्च वीर्यवान् ।
समन्तात् सिषिचुर्वीरा मेघास्तोयैरिवाचलान् ॥ ९ ॥

वे प्रत्यञ्चारूपी वीणाके तारको झंकारते, शूरवीरोंके दिये हुए तालसे प्रेरणा लेते तथा वीरोचित नृत्य करते हुए उन हाथियोंपर बाणोंकी वर्षा कर रहे थे । नकुल, सहदेव, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, प्रभद्रकगण, सात्यकि, शिखण्डी तथा पराक्रमी चेकितान—ये सभी वीर चारों ओरसे उन हाथियोंपर उसी प्रकार बाणोंकी वृष्टि करने लगे, जैसे बादल पर्वतोंपर पानी बरसाते हैं ॥ ८-९ ॥

ते म्लेच्छैः प्रेषिता नागा नरानश्वान् रथानपि ।
हस्तैराक्षिप्य ममृदुः पद्भिश्चाप्यतिमन्यवः ॥ १० ॥

म्लेच्छोंद्वारा आगे बढ़ाये हुए वे अत्यन्त क्रोधी गजराज मनुष्यों, घोड़ों और रथोंको अपनी सूँड़ोंसे उठाकर फेंक देते और उन्हें पैरोंसे मसल डालते थे ॥ १० ॥



बिभिदुश्च विषाणाग्रैः समाक्षिप्य च चिक्षिपुः ।
विषाणलग्नाश्चाप्यन्ये परिपेतुर्विभीषणाः ॥ ११ ॥

कितनोंको अपने दाँतोंके अग्रभागसे विदीर्ण कर देते और बहुतोंको सूँड़ोंसे खींचकर दूर फेंक देते थे । कितने ही योद्धा उनके दाँतोंमें गुँथकर बड़ी भयानक अवस्थामें नीचे गिरते थे ॥

प्रमुखे वर्तमानं तु द्विपं वङ्गस्य सात्यकिः ।
नाराचेनोग्रवेगेन भित्त्वा मर्माण्यपातयत् ॥ १२ ॥

इसी समय सात्यकिने अपने सामने उपस्थित हुए वंगराजके हाथीके मर्मस्थानोंको भयंकर वेगवाले नाराचसे विदीर्ण करके उसे धराशायी कर दिया ॥ १२ ॥

तस्यावर्जितकायस्य द्विरदादुत्पतिष्यतः ।
नाराचेनाहनद् वक्षःसात्यकिःसोऽपतद् भुवि ॥ १३ ॥

वंगराज अपने शरीरको सिकोड़कर उस हाथीसे कूदना ही चाहता था कि सात्यकिने नाराचद्वारा उसकी छाती छेद डाली; अतः वह घायल होकर भूतलपर गिर पड़ा ॥ १३ ॥

पुण्ड्रस्यापततो नागं चलन्तमिव पर्वतम् ।
सहदेवः प्रयत्नास्तैर्नाराचैरहनत् त्रिभिः ॥ १४ ॥

दूसरी ओर पुण्ड्रराज अक्रमण कर रहे थे । उनका हाथी चलते-फिरते पर्वतके समान जान पड़ता था । सहदेवने प्रयत्नपूर्वक चलाये हुए तीन नाराचोंद्वारा उसे घायल कर दिया ॥

विपताकं वियन्तारं विवर्मध्वजजीवितम् ।
तं कृत्वा द्विरदं भूयः सहदेवोऽङ्गमभ्ययात् ॥ १५ ॥

इस प्रकार उस हाथीको पताका, महावत, कवच, ध्वज तथा प्राणोंसे हीन करके सहदेव पुनः अङ्गराजकी ओर बढ़े ॥१५॥

सहदेवं तु नकुलो वारयित्वाङ्गमार्दयत् ।
नाराचैर्यमदण्डाभैस्त्रिभिर्नागं शतेन तम् ॥ १६ ॥

परंतु नकुलने सहदेवको रोककर स्वयं ही अङ्गराजको पीड़ित किया । उन्होंने यमदण्डके समान तीन भयानक नाराचोंद्वारा उनके हाथीको और सौ नाराचोंसे अङ्गराजको घायल कर दिया ॥ १६ ॥

दिवाकरकरप्रख्यानङ्गश्चिक्षेप तोमरान् ।
नकुलाय शतान्यष्टौ त्रिधैकैकं तु सोऽच्छिनत् ॥ १७ ॥

अङ्गराजने नकुलपर सूर्यकिरणोंके समान तेजस्वी आठ सौ तोमर चलाये; परंतु नकुलने उनमेंसे प्रत्येकके तीन-तीन टुकड़े कर डाले ॥ १७ ॥

तथार्धचन्द्रेण शिरस्तस्य चिच्छेद पाण्डवः ।
स पपात हतो म्लेच्छस्तेनैव सह दन्तिना ॥ १८ ॥

तत्पश्चात् पाण्डुकुमार नकुलने एक अर्धचन्द्रके द्वारा अङ्गराजका सिर काट लिया । इस प्रकार मारा गया म्लेच्छजातीय अङ्गराज अपने हाथीके साथ ही पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥

अथाङ्गपुत्रे निहते हस्तिशिक्षाविशारदे ।
अङ्गाः क्रुद्धा महामात्रा नागैर्नकुलमभ्ययुः ॥ १९ ॥

गजशिक्षामें कुशल अङ्गराजके पुत्रके मारे जानेपर कुपित हुए अङ्गदेशीय महावतोंने हाथियोंद्वारा नकुलपर आक्रमण किया ॥ १९ ॥

चलत्पताकैः सुमुखैर्हेमकक्षातनुच्छदैः ।
मिमर्दिषन्तस्त्वरिताः प्रदीप्तैरिव पर्वतैः ॥ २० ॥
मेकलोत्कलकालिङ्गा निषधास्ताम्रलिप्तकाः ।
शरतोमरवर्षाणि विमुञ्चन्तो जिघांसवः ॥ २१ ॥

उन हाथियोंपर पताकाएँ फहरा रही थीं। उनके मुख बहुत सुन्दर थे। उनको कसनेके लिये बनी हुई रस्सी और कवच सुवर्णमय थे। वे प्रज्वलित पर्वतोंके समान जान पड़ते थे। उन हाथियोंके द्वारा नकुलको कुचलवा देनेकी इच्छा रखकर मेकल, उत्कल, कलिङ्ग, निषध तथा ताम्रलिप्त-देशीय योद्धा बड़ी उतावलीके साथ बाणों और तोमरोंकी वर्षा कर रहे थे। वे सब-के-सब उन्हें मार डालनेको उतारू थे ॥

तैश्छाद्यमानं नकुलं दिवाकरमिवाम्बुदैः ।
परिपेतुः सुसंरब्धाः पाण्डुपाञ्चालसोमकाः ॥ २२ ॥

बादलोंसे ढके हुए सूर्यके समान नकुलको उनके द्वारा आच्छादित होते देख क्रोधमें भरे हुए पाण्डव, पाञ्चाल और सोमक योद्धा तुरंत उन म्लेच्छोंपर टूट पड़े ॥ २२ ॥

ततस्तदभवद् युद्धं रथिनां हस्तिभिः सह ।
सृजतां शरवर्षाणि तोमरांश्च सहस्रशः ॥ २३ ॥

तब उन रथियोंका हाथियोंके साथ युद्ध छिड़ गया। वे रथी वीर उनके ऊपर सहस्रों तोमरों और बाणोंकी वर्षा कर रहे थे ॥ २३ ॥

नागानां प्रास्फुटन् कुम्भा मर्माणि विविधानि च ।
दन्ताश्चैवातिविद्धानां नाराचैर्भूषणानि च ॥ २४ ॥

नाराचोंसे अत्यन्त घायल हुए उन हाथियोंके कुम्भस्थल फूट गये, विभिन्न मर्मस्थान विदीर्ण हो गये तथा उनके दाँत और आभूषण कट गये ॥ २४ ॥

तेषामष्टौ महानागांश्चतुःषष्ट्या सुतेजनैः ।
सहदेवो जघानाशु तेऽपतन् सह सादिभिः ॥ २५ ॥

सहदेवने उनमेंसे आठ महागजोंको चौसठ पैने बाणोंसे शीघ्र मार डाला। वे सब-के-सब सवारोंके साथ धराशायी हो गये ॥ २५ ॥

अञ्जोगतिभिरायम्य प्रयत्नाद् धनुरुत्तमम् ।
नाराचैरहनन्नागान् नकुलः कुलनन्दनः ॥ २६ ॥

अपने कुलको आनन्दित करनेवाले नकुलने भी प्रयत्न-पूर्वक उत्तम धनुषको खींचकर अनायास ही दूरतक जानेवाले नाराचोंद्वारा बहुतसे हाथियोंका वध कर डाला ॥ २६ ॥

ततः पाञ्चालशैनेयौ द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ।
शिखण्डी च महानागान् सिषिचुः शरवृष्टिभिः ॥ २७ ॥

तदनन्तर धृष्टद्युम्न, सात्यकि, द्रौपदीके पुत्र, प्रभद्रकगण तथा शिखण्डीने भी उन महान् गजराजोंपर अपने बाणोंकी वर्षा की ॥ २७ ॥

ते पाण्डुयोधाम्बुधरैः शत्रुद्विरदपर्वताः ।
बाणवर्षैर्हताः पेतुर्वज्रवर्षैरिवाचलाः ॥ २८ ॥

जैसे वज्रोंकी वर्षासे पर्वत ढह जाते हैं, उसी प्रकार पाण्डव-सैनिकरूपी बादलोंद्वारा की हुई बाणोंकी वृष्टिसे आहत हो शत्रुओंके हाथीरूपी पर्वत धराशायी हो गये ॥ २८ ॥

एवं हत्वा तव गजांस्ते पाण्डुरथकुञ्जराः ।
द्रुतां सेनामवैक्षन्त भिन्नकूलामिवापगाम् ॥ २९ ॥

इस प्रकार उन श्रेष्ठ पाण्डव महारथियोंने आपके हाथियोंका संहार करके देखा कि आपकी सेना किनारा तोड़कर बहनेवाली नदीके समान सब ओर भाग रही है ॥ २९ ॥

तां ते सेनां समालोड्य पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ।
विक्षोभयित्वा च पुनः कर्णं समभिदुद्रुवुः ॥ ३० ॥

पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके उन सैनिकोंने आपकी उस सेनाको मथकर उसमें हलचल पैदा करके पुनः कर्णपर धावा किया ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

सहदेवके द्वारा दुःशासनकी पराजय

संजय उवाच

सहदेवं तथा क्रुद्धं दहन्तं तव वाहिनीम् ।
दुःशासनो महाराज भ्राता भ्रातरमभ्ययात् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! सहदेव क्रोधमें भरकर आपकी विशाल सेनाको दग्ध करने लगे। उस समय भाई दुःशासनने अपने उस भ्राताका सामना किया ॥ १ ॥

तौ समेतौ महायुद्धे दृष्ट्वा तत्र महारथाः ।
सिंहनादरवांश्चक्रुर्वासांस्याधुधुवुश्च ह ॥ २ ॥

उस महायुद्धमें उन दोनों भाइयोंको एकत्र हुआ देख वहाँ खड़े हुए महारथी योद्धा सिंहनाद करने और वस्त्र हिलाने लगे ॥ २ ॥

ततो भारत क्रुद्धेन तव पुत्रेण धन्विना ।
पाण्डुपुत्रस्त्रिभिर्बाणैर्वक्षस्यभिहतो बली ॥ ३ ॥

भारत ! उस समय कुपित हुए आपके धनुर्धर पुत्रने

अपने तीन बाणोंद्वारा बलवान् पाण्डुपुत्र सहदेवकी छातीमें गहरा आघात किया ॥ ३ ॥

सहदेवस्ततो राजन् नाराचेन तवात्मजम् ।
विद्ध्वा विव्याध सप्तत्या सारथिं च त्रिभिः शरैः ॥

राजन् ! तब सहदेवने आपके पुत्रको एक नाराचसे घायल करके पुनः सत्तर बाणोंसे बींध डाला । तत्पश्चात् उनके सारथिको भी तीन बाण मारे ॥ ४ ॥

दुःशासनस्ततश्चापं छित्त्वा राजन् महाहवे ।
सहदेवं त्रिसप्तत्या बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ५ ॥

राजन् ! उस महासमरमें दुःशासनने सहदेवका धनुष काटकर उनकी दोनों भुजाओं और छातीमें तिहत्तर बाण मारे॥

सहदेवस्तु संक्रुद्धः खड्गं गृह्य महाहवे ।
आविध्य प्रासृजत् तूर्णं तव पुत्ररथं प्रति ॥ ६ ॥

तब सहदेवने अत्यन्त कुपित होकर उस महासमरमें तलवार उठा ली और उसे घुमाकर तुरंत ही आपके पुत्रके रथकी ओर फेंका॥

समार्गणगुणं चापं छित्त्वा तस्य महानसिः ।
निपपात ततो भूमौ च्युतः सर्प इवाम्बरात् ॥ ७ ॥

उनकी वह लंबी तलवार दुःशासनके धनुष, बाण और प्रत्यञ्चाको काटकर आकाशसे भ्रष्ट हुए सर्पकी भाँति वहाँ पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ७ ॥

अथान्यद् धनुरादाय सहदेवः प्रतापवान् ।
दुःशासनाय चिक्षेप बाणमन्तकरं ततः ॥ ८ ॥

तदनन्तर प्रतापी सहदेवने दूसरा धनुष लेकर दुःशासनपर एक विनाशकारी बाणका प्रहार किया ॥ ८ ॥

तमापतन्तं विशिखं यमदण्डोपमत्विषम् ।
खड्गेन शितधारेण द्विधा चिच्छेद कौरवः ॥ ९ ॥

यमदण्डके समान प्रकाशित होनेवाले उस बाणको आते देख कुरुवंशी दुःशासनने तीखी धारवाले खड्गसे उसके दो टुकड़े कर डाले ॥ ९ ॥

ततस्तं निशितं खड्गमाविध्य युधि सत्वरः।
धनुश्चान्यत् समादाय शरं जग्राह वीर्यवान् ॥ १० ॥

तत्पश्चात् दुःशासनने युद्धस्थलमें तुरंत ही तीखी तलवार घुमाकर सहदेवपर दे मारी; फिर उस पराक्रमी वीरने दूसरा धनुष लेकर उसपर बाणका संधान किया ॥ १० ॥

तमापतन्तं सहसा निस्त्रिंशं निशितैः शरैः ।
पातयामास समरे सहदेवो हसन्निव ॥ ११ ॥

सहदेवने हँसते हुए-से सहसा अपनी ओर आती हुई उस तलवारको तीखे बाणोंसे समरभूमिमें गिरा दिया ॥ ११ ॥

ततो बाणांश्चतुःषष्टिं तव पुत्रो महारणे ।
सहदेवरथं तूर्णं प्रेषयामास भारत ॥ १२ ॥

भारत ! इतनेहीमें आपके पुत्रने उस महासमरमें सहदेवपर तुरंत ही चौसठ बाण चलाये ॥ १२ ॥

तांञ्छरान् समरे राजन् वेगेनापततो बहून् ।
एकैकं पञ्चभिर्बाणैः सहदेवो न्यकृन्तत ॥ १३ ॥

राजन् ! सहदेवने रणभूमिमें वेगसे आते हुए उन बहुसंख्यक बाणोंमेंसे प्रत्येकको पाँच-पाँच बाण मारकर काट गिराया ॥ १३ ॥

संनिवार्य महाबाणांस्तव पुत्रेण प्रेषितान् ।
अथास्मै सुबहून् बाणान् प्रेषयामास संयुगे ॥ १४ ॥

इस प्रकार आपके पुत्रके चलाये हुए उन महाबाणोंका निवारण करके युद्धस्थलमें सहदेवने उसके ऊपर भी बहुत-से बाण छोड़े ॥ १४ ॥

तान् बाणांस्तव पुत्रोऽपि छित्त्वैकैकं त्रिभिः शरैः ।
ननाद सुमहानादं दारयाणो वसुन्धराम् ॥ १५ ॥

आपके पुत्रने भी सहदेवके उन बाणोंमेंसे प्रत्येकको तीन-तीन बाणोंसे काटकर पृथ्वीको विदीर्ण-सी करते हुए बड़े जोरसे गर्जना की ॥ १५ ॥

ततो दुःशासनो राजन् विद्ध्वा पाण्डुसुतं रणे ।
सारथिं नवभिर्बाणैर्माद्रेयस्य समार्पयत् ॥ १६ ॥

राजन् ! इसके बाद दुःशासनने रणभूमिमें पाण्डुकुमार सहदेवको घायल करके उन माद्रीकुमारके सारथिको भी नौ बाण मारे ॥ १६ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज सहदेवः प्रतापवान् ।
समाधत्त शरं घोरं मृत्युकालान्तकोपमम् ॥ १७ ॥

महाराज ! इससे कुपित होकर प्रतापी सहदेवने अपने धनुषपर मृत्यु, काल और यमराजके समान भयंकर बाण रक्खा॥

विकृष्य बलवच्चापं तव पुत्राय सोऽसृजत् ।
स तं निर्भिद्य वेगेन भित्त्वा च कवचं महत् ॥ १८ ॥
प्राविशद् धरणीं राजन् वल्मीकमिव पन्नगः ।
ततः सम्मुमुहे राजंस्तव पुत्रो महारथः ॥ १९ ॥

फिर उस धनुषको बलपूर्वक खींचकर उसने आपके पुत्रपर वह बाण छोड़ दिया । राजन् ! वह बाण दुःशासनको तथा उसके विशाल कवचको भी वेगपूर्वक विदीर्ण करके बाँबीमें घुसनेवाले सर्पके समान धरतीमें समा गया । महाराज! इससे आपका महारथी पुत्र मूर्छित हो गया ॥ १८-१९ ॥

मूढं चैनं समालोक्य सारथिस्त्वरितो रथम् ।
अपोवाह भृशं त्रस्तो वध्यमानः शितैः शरैः ॥ २० ॥

उसे मूर्छित देख उसका सारथि तीखे बाणोंकी मार खाकर अत्यन्त भयभीत हो तुरंत ही रथको रणभूमिसे दूर हटा ले गया ॥ २० ॥

पराजित्य रणे तं तु कौरव्यं पाण्डुनन्दनः ।
दुर्योधनबलं दृष्ट्वा प्रममाथ समन्ततः ॥ २१ ॥

कुरुवंशी दुःशासनको रणभूमिमें पराजित करके पाण्डुनन्दन सहदेवने दुर्योधनकी सेनाको वहाँ उपस्थित देख उसे

सब ओरसे मथ डाला ॥ २१ ॥

पिपीलिकपुटं राजन् यथा मृद्नन्नरो रुषा।
तथा सा कौरवी सेना मृदिता तेन भारत ॥ २२ ॥

भरतवंशी नरेश! जैसे मनुष्य रोषमें आकर चींटियोंके दलको मसल डालता है, उसी प्रकार सहदेवने उस कौरव-सेनाको धूलमें मिला दिया ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि सहदेवदुःशासनयुद्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें सहदेव और दुःशासनका युद्धविषयक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

नकुल और कर्णका घोर युद्ध तथा कर्णके द्वारा नकुलकी पराजय और पाञ्चाल-सेनाका संहार

संजय उवाच

नकुलं रभसं युद्धे द्रावयन्तं वरूथिनीम्।
कर्णो वैकर्तनो राजन् वारयामास वै रुषा ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! युद्धस्थलमें कौरव-सेनाको खदेड़ते हुए वेगशाली वीर नकुलको वैकर्तन कर्णने रोषपूर्वक रोका ॥ १ ॥

नकुलस्तु ततः कर्णं प्रहसन्निदमब्रवीत्।
चिरस्य बत दृष्टोऽहं दैवतैः सौम्यचक्षुषा ॥ २ ॥
पश्य मां त्वं रणे पाप चक्षुर्विषयमागतम्।
त्वं हि मूलमनर्थानां वैरस्य कलहस्य च ॥ ३ ॥
त्वद्दोषात् कुरवः क्षीणाः समासाद्य परस्परम्।
त्वामद्य समरे हत्वा कृतकृत्योऽस्मि विज्वरः ॥ ४ ॥

तब नकुलने कर्णसे हँसते हुए इस प्रकार कहा—'आज दीर्घकालके पश्चात् देवताओंने मुझे सौम्य दृष्टिसे देखा है; यह बड़े हर्षकी बात है। पापी कर्ण! मैं रणभूमिमें तेरी आँखोंके सामने आ गया हूँ। तू अच्छी तरह मुझे देख ले। तू ही इन सारे अनर्थोंकी तथा वैर एवं कलहकी जड़ है। तेरे ही दोषसे कौरव आपसमें लड़-भिड़कर क्षीण हो गये। आज मैं तुझे समरभूमिमें मारकर कृतकृत्य एवं निश्चिन्त हो जाऊँगा'॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच नकुलं सूतनन्दनः।
सदृशं राजपुत्रस्य धन्विनश्च विशेषतः ॥ ५ ॥
प्रहरस्व च मे वीर पश्यामस्तव पौरुषम्।
कर्म कृत्वा रणे शूर ततः कत्थितुमर्हसि ॥ ६ ॥

नकुलके ऐसा कहनेपर सूतनन्दन कर्णने उनसे कहा—'वीर! तुम एक राजपुत्रके विशेषतः धनुर्धर योद्धाके योग्य कार्य करते हुए मुझपर प्रहार करो। हम तुम्हारा पुरुषार्थ देखेंगे। शूर! पहले रणभूमिमें पराक्रम प्रकट करके फिर उसके विषयमें तुम्हें बढ़-बढ़कर बातें बनानी चाहिये ॥५-६॥

अनुक्त्वा समरे तात शूरा युध्यन्ति शक्तितः।
प्रयुध्यस्व मया शक्त्या हनिष्ये दर्पमेव ते ॥ ७ ॥

'तात! शूरवीर समराङ्गणमें बातें न बनाकर अपनी शक्तिके अनुसार युद्ध करते हैं। तुम पूरी शक्ति लगाकर मेरे साथ युद्ध करो। मैं तुम्हारा घमंड चूर कर दूँगा' ॥ ७ ॥

इत्युक्त्वा प्राहरत् तूर्णं पाण्डुपुत्राय सूतजः।
विव्याध चैनं समरे त्रिसप्तत्या शिलीमुखैः ॥ ८ ॥

ऐसा कहकर सूतपुत्र कर्णने पाण्डुकुमार नकुलपर तुरंत ही प्रहार किया। उन्हें युद्धस्थलमें तिहत्तर बाणोंसे बींध डाला॥

नकुलस्तु ततो विद्धः सूतपुत्रेण भारत।
अशीत्याशीविषप्रख्यैः सूतपुत्रमविध्यत ॥ ९ ॥

भारत! सूतपुत्रके द्वारा घायल होकर नकुलने उसे भी विषधर सर्पोंके समान अस्सी बाणोंसे क्षत-विक्षत कर दिया ॥

तस्य कर्णो धनुश्छित्त्वा स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः।
त्रिंशता परमेष्वासः शरैः पाण्डवमार्दयत् ॥ १० ॥

तब महाधनुर्धर कर्णने शिलापर तेज किये हुए स्वर्णमय पंखवाले बाणोंसे नकुलके धनुषको काटकर उन्हें तीस बाणोंसे पीड़ित कर दिया ॥ १० ॥

ते तस्य कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे।
आशीविषा यथा नागा भित्त्वा गां सलिलं पपुः॥ ११ ॥

जैसे विषधर नाग धरती फोड़कर जल पी लेते हैं, उसी प्रकार उन बाणोंने नकुलका कवच छिन्न-भिन्न करके युद्ध-स्थलमें उनका रक्त पी लिया ॥ ११ ॥

अथान्यद् धनुरादाय हेमपृष्ठं दुरासदम्।
कर्णं विव्याध सप्तत्या सारथिं च त्रिभिः शरैः॥ १२ ॥

तत्पश्चात् नकुलने सोनेकी पीठवाला दूसरा दुर्जय धनुष हाथमें लेकर कर्णको सत्तर और उसके सारथिको तीन बाणोंसे घायल कर दिया ॥ १२ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज नकुलः परवीरहा।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन कर्णस्य धनुराच्छिनत् ॥ १३ ॥

महाराज! इसके बाद शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले नकुल-ने कुपित होकर एक अत्यन्त तीखे क्षुरप्रसे कर्णका धनुष काट दिया ॥ १३ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं सायकानां शतैस्त्रिभिः।
आजघ्ने प्रहसन् वीरः सर्वलोकमहारथम् ॥ १४ ॥

धनुष कट जानेपर सम्पूर्ण लोकोंके विख्यात महारथी कर्णको वीर नकुलने हँसते-हँसते तीन सौ बाण मारे ॥ १४ ॥

कर्णमभ्यर्दितं दृष्ट्वा पाण्डुपुत्रेण मारिष।
विस्मयं परमं जग्मू रथिनः सह दैवतैः ॥ १५ ॥

मान्यवर! पाण्डुपुत्र नकुलके द्वारा कर्णको इस तरह

पीड़ित हुआ देख देवताओंसहित सम्पूर्ण रथियोंको महान् आश्चर्य हुआ ॥ १५ ॥

अथान्यद् धनुरादाय कर्णो वैकर्तनस्तदा ।
नकुलं पञ्चभिर्बाणैर्जत्रुदेशे समार्पयत् ॥ १६ ॥

तब वैकर्तन कर्णने दूसरा धनुष लेकर नकुलके गलेकी हँसलीपर पाँच बाण मारे ॥ १६ ॥

तत्रस्थैरथ तैर्बाणैर्माद्रीपुत्रो व्यरोचत ।
स्वरश्मिभिरिवादित्यो भुवने विसृजन् प्रभाम् ॥ १७ ॥

वहाँ धँसे हुए उन बाणोंसे माद्रीकुमार नकुल उसी प्रकार सुशोभित हुए, जैसे सम्पूर्ण जगत्में प्रभा बिखेरनेवाले भगवान् सूर्य अपनी किरणोंसे प्रकाशित होते हैं ॥ १७ ॥

नकुलस्तु ततः कर्णं विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः ।
अथास्य धनुषः कोटिं पुनश्चिच्छेद मारिष ॥ १८ ॥

माननीय नरेश ! तदनन्तर नकुलने कर्णको सात बाणोंसे घायल करके उसके धनुषका एक कोना पुनः काट डाला ॥

सोऽन्यत् कार्मुकमादाय समरे वेगवत्तरम् ।
नकुलस्य ततो बाणैः सर्वतोऽवारयद् दिशः ॥ १९ ॥

तब कर्णने समराङ्गणमें दूसरा अत्यन्त वेगशाली धनुष लेकर नकुलके चारों ओर सम्पूर्ण दिशाओंको बाणोंसे आच्छादित कर दिया ॥ १९ ॥

संछाद्यमानः सहसा कर्णचापच्युतैः शरैः ।
चिच्छेद स शरांस्तूर्णं शरैरेव महारथः ॥ २० ॥

कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा सहसा आच्छादित होते हुए महारथी नकुलने तुरंत ही उसके बाणोंको अपने बाणोंद्वारा ही काट गिराया ॥ २० ॥

ततो बाणमयं जालं विततं व्योम्नि दृश्यते ।
खद्योतानामिव व्रातैः सम्पतद्भिर्यथा नभः ॥ २१ ॥

तत्पश्चात् आकाशमें बाणोंका जाल-सा बिछा हुआ दिखायी देने लगा, मानो वहाँ जुगनुओंके समूह उड़ रहे हों ॥ २१ ॥

तैर्विमुक्तैः शरशतैश्छादितं गगनं तदा ।
शलभानां यथा व्रातैस्तद्वदासीद् विशाम्पते ॥ २२ ॥

प्रजानाथ ! उस समय धनुषसे छूटे हुए सौ-सौ बाणोंद्वारा आच्छादित हुआ आकाश पतंगोंके समूहसे भरा हुआ-सा प्रतीत होता था ॥ २२ ॥

ते शरा हेमविकृताः सम्पतन्तो मुहुर्मुहुः ।
श्रेणीकृता व्यकाशन्त क्रौञ्चाः श्रेणीकृता इव ॥ २३ ॥

बारंबार गिरते हुए वे सुवर्णभूषित बाण श्रेणिबद्ध होकर ऐसी शोभा पा रहे थे, मानो बहुत-से क्रौञ्चपक्षी एक पंक्तिमें होकर उड़ रहे हों ॥ २३ ॥

बाणजालावृते व्योम्नि च्छादिते च दिवाकरे ।
न स्म सम्पतते भूम्यां किंचिदप्यन्तरिक्षगम् ॥ २४ ॥

बाणोंके जालसे आकाश और सूर्यके ढक जानेपर अन्तरिक्षकी कोई भी वस्तु उस समय पृथ्वीपर नहीं गिरती थी ॥ २४ ॥

निरुद्धे तत्र मार्गे च शरसंघैः समन्ततः ।
व्यरोचेतां महात्मानौ कालसूर्याविवोदितौ ॥ २५ ॥

बाणोंके समूहसे वहाँ सब ओरका मार्ग अवरुद्ध हो जानेपर वे दोनों महामनस्वी वीर नकुल और कर्ण प्रलयकालमें उदित हुए दो सूर्योंके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ २५ ॥

कर्णचापच्युतैर्बाणैर्वध्यमानास्तु सोमकाः ।
अवालीयन्त राजेन्द्र वेदनार्ता भृशार्दिताः ॥ २६ ॥

राजेन्द्र ! कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंकी मार खाकर सोमक-योद्धा वेदनासे कराह उठे और अत्यन्त पीड़ित हो इधर-उधर छिपने लगे ॥ २६ ॥

नकुलस्य तथा बाणैर्हन्यमाना चमूस्तव ।
व्यशीर्यत दिशो राजन् वातनुन्ना इवाम्बुदाः ॥ २७ ॥

राजन् ! नकुलके बाणोंसे मारी जाती हुई आपकी सेना भी हवासे उड़ाये गये बादलोंके समान सम्पूर्ण दिशाओंमें बिखर गयी ॥ २७ ॥

ते सेने हन्यमाने तु ताभ्यां दिव्यैर्महाशरैः ।
शरपातमपाक्रम्य तस्थतुः प्रेक्षिके तदा ॥ २८ ॥

उन दोनोंके दिव्य महाबाणोंद्वारा आहत होती हुई दोनों सेनाएँ उस समय उनके बाणोंके गिरनेके स्थानसे दूर हटकर खड़ी हो गयीं और दर्शक बनकर तमाशा देखने लगीं ॥२८॥

प्रोत्सारितजने तस्मिन् कर्णपाण्डवयोः शरैः ।
अविध्येतां महात्मानावन्योन्यं शरवृष्टिभिः ॥ २९ ॥

कर्ण और नकुलके बाणोंद्वारा जब सब लोग वहाँसे दूर हटा दिये गये, तब वे दोनों महामनस्वी वीर अपने बाणोंकी वर्षासे एक दूसरेको चोट पहुँचाने लगे ॥ २९ ॥

विदर्शयन्तौ दिव्यानि शस्त्राणि रणमूर्धनि ।
छादयन्तौ च सहसा परस्परवधैषिणौ ॥ ३० ॥

युद्धके मुहानेपर वे दोनों दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंका प्रदर्शन करते हुए एक दूसरेको मार डालनेकी इच्छासे सहसा बाणोंद्वारा आच्छादित करने लगे ॥ ३० ॥

नकुलेन शरा मुक्ताः कङ्कबर्हिणवाससः ।
सूतपुत्रमवच्छाद्य व्यतिष्ठन्त यथाम्बरे ॥ ३१ ॥
तथैव सूतपुत्रेण प्रेषिताः परमाहवे ।
पाण्डुपुत्रमवच्छाद्य व्यतिष्ठन्ताम्बरे शराः ॥ ३२ ॥

नकुलके बाणोंमें कङ्क और मयूरके पंख लगे हुए थे। वे उनके धनुषसे छूटकर सूतपुत्रको आच्छादित करके जिस प्रकार आकाशमें स्थित होते थे, उसी प्रकार उस महासमरमें सूतपुत्रके चलाये हुए बाण पाण्डुकुमार नकुलको आच्छादित करके आकाशमें छा जाते थे ॥ ३१-३२ ॥

शरवेश्मप्रविष्टौ तौ ददृशाते न कैश्चन ।
सूर्याचन्द्रमसौ राजञ्छाद्यमानौ घनैरिव ॥ ३३ ॥

राजन्! जैसे मेघोंद्वारा ढक जानेपर सूर्य और चन्द्रमा दिखायी नहीं देते, उसी प्रकार बाणनिर्मित भवनमें प्रविष्ट हुए उन दोनों वीरोंपर किसीकी दृष्टि नहीं पड़ती थी ॥ ३३ ॥

ततः क्रुद्धो रणे कर्णः कृत्वा घोरतरं वपुः।
पाण्डवं छादयामास समन्ताच्छरवृष्टिभिः ॥ ३४ ॥

तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए कर्णने रणभूमिमें अत्यन्त भयंकर स्वरूप प्रकट करके चारों ओरसे बाणोंकी वर्षाद्वारा पाण्डुपुत्र नकुलको ढक दिया ॥ ३४ ॥

सोऽतिच्छन्नो महाराज सूतपुत्रेण पाण्डवः।
न चकार व्यथां राजन् भास्करो जलदैर्यथा ॥ ३५ ॥

महाराज! सूतपुत्रके द्वारा अत्यन्त आच्छन्न कर दिये जानेपर भी बादलोंसे ढके हुए सूर्यके समान नकुलने अपने मनमें तनिक भी व्यथाका अनुभव नहीं किया ॥ ३५ ॥

ततः प्रहस्याधिरथिः शरजालानि मारिष।
प्रेषयामास समरे शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३६ ॥

मान्यवर! तत्पश्चात् सूतपुत्रने बड़े जोरसे हँसकर पुनः समराङ्गणमें बाणोंके जाल बिछा दिये। उसने सैकड़ों और हजारों बाण चलाये ॥ ३६ ॥

एकच्छायमभूत् सर्वं तस्य बाणैर्महात्मनः।
अभ्रच्छायेव संजज्ञे सम्पतद्भिः शरोत्तमैः ॥ ३७ ॥

उस महामनस्वी वीरके गिरते हुए उत्तम बाणोंसे घिर जानेके कारण वहाँ सब कुछ एकमात्र अन्धकारमें निमग्न हो गया। ठीक उसी तरह, जैसे बादलोंकी घोर घटा घिर आनेपर सब ओर अँधेरा छा जाता है ॥ ३७ ॥

ततः कर्णो महाराज धनुश्छित्त्वा महात्मनः।
सारथिं पातयामास रथनीडाद्धसन्निव ॥ ३८ ॥

महाराज! तदनन्तर हँसते हुए-से कर्णने महामना नकुलका धनुष काटकर उनके सारथिको रथकी बैठकसे मार गिराया ॥ ३८ ॥

ततोऽश्वांश्चतुरश्चास्य चतुर्भिर्निशितैः शरैः।
यमस्य भवनं तूर्णं प्रेषयामास भारत ॥ ३९ ॥

भारत! फिर चार तीखे बाणोंसे उनके चारों घोड़ोंको भी तुरंत ही यमराजके घर भेज दिया ॥ ३९ ॥

अथास्य तं रथं दिव्यं तिलशो व्यधमच्छरैः।
पताकां चक्ररक्षांश्च गदां खड्गं च मारिष ॥ ४० ॥
शतचन्द्रं च तच्चर्म सर्वोपकरणानि च।

मान्यवर! इसके बाद उसने अपने बाणोंद्वारा नकुलके उस दिव्य रथको तिल-तिल करके काट दिया और पताका, चक्ररक्षकों, गदा एवं खड्गको भी छिन्न-भिन्न कर दिया। साथ ही सौ चन्द्राकार चिह्नोंसे सुशोभित उनकी ढाल तथा अन्य सब उपकरणोंको भी उसने नष्ट कर दिया ॥ ४०½ ॥

हताश्वो विरथश्चैव विवर्मा च विशाम्पते ॥ ४१ ॥
अवतीर्य रथात्तूर्णं परिघं गृह्य धिष्ठितः।

प्रजापालक नरेश! घोड़े, रथ और कवचके नष्ट हो जानेपर नकुल तुरंत उस रथसे उतरकर हाथमें परिघ लिये खड़े हो गये ॥ ४१½ ॥

तमुद्यतं महाघोरं परिघं तस्य सूतजः ॥ ४२ ॥
व्यहनत् सायकै राजन् सुतीक्ष्णैर्भारसाधनैः।

राजन्! उनके उठे हुए उस महाभयंकर परिघको सूतपुत्रने अत्यन्त तीखे तथा दुष्कर कार्यको सिद्ध करनेवाले बाणोंद्वारा काट डाला ॥ ४२½ ॥

व्यायुधं चैनमालक्ष्य शरैः संनतपर्वभिः ॥ ४३ ॥
आर्पयद् बहुभिः कर्णो न चैनं समपीडयत्।

उन्हें अस्त्र-शस्त्रोंसे हीन देखकर कर्णने झुकी हुई गाँठ-वाले बहुसंख्यक बाणोंद्वारा और भी घायल कर दिया; परंतु उन्हें घातक पीड़ा नहीं दी ॥ ४३½ ॥

स हन्यमानः समरे कृतास्त्रेण बलीयसा ॥ ४४ ॥
प्राद्रवत् सहसा राजन् नकुलो व्याकुलेन्द्रियः।

अत्यन्त बलवान् तथा अस्त्रविद्याके विद्वान् कर्णके द्वारा समराङ्गणमें आहत हो सहसा नकुल भाग चले। उस समय उनकी सारी इन्द्रियाँ व्याकुल हो रही थीं ॥ ४४½ ॥

तमभिद्रुत्य राधेयः प्रहसन् वै पुनः पुनः ॥ ४५ ॥
सज्यमस्य धनुः कण्ठे व्यवासृजत भारत।

भारत! राधापुत्र कर्णने बारंबार हँसते हुए उनका पीछा करके उनके गलेमें प्रत्यञ्चासहित अपना धनुष डाल दिया ॥ ४५½ ॥

ततः स शुशुभे राजन् कण्ठासक्तमहाधनुः ॥ ४६ ॥
परिवेषमनुप्राप्तो यथा स्याद् व्योम्नि चन्द्रमाः।
यथैव चासितो मेघः शक्रचापेन शोभितः ॥ ४७ ॥

राजन्! कण्ठमें पड़े हुए उस महाधनुषसे युक्त नकुल ऐसी शोभा पाने लगे, मानो आकाशमें चन्द्रमापर घेरा पड़ गया हो अथवा कोई श्याम मेघ इन्द्रधनुषसे सुशोभित हो रहा हो ॥ ४६-४७ ॥

तमब्रवीत्ततः कर्णो व्यर्थं व्याहृतवानसि।
वदेदानीं पुनर्हृष्टो वध्यमानः पुनः पुनः ॥ ४८ ॥
मा योत्सीः कुरुभिः सार्धं बलवद्भिश्च पाण्डव।
सदृशैस्तात युध्यस्व व्रीडां मा कुरु पाण्डव ॥ ४९ ॥
गृहं वा गच्छ माद्रेय यत्र वा कृष्णफाल्गुनौ।
एवमुक्त्वा महाराज व्यसर्जयत तं तदा ॥ ५० ॥

उस समय कर्णने नकुलसे कहा—'पाण्डुकुमार! तुमने व्यर्थ ही बढ़-चढ़कर बातें बनायी थीं। अब इस समय बारंबार मेरे बाणोंकी मार खाकर पुनः उसी हर्षके साथ तुम वैसी ही बातें करो तो सही। बलवान् कौरव-योद्धाओंके साथ आजसे युद्ध न करना। तात! जो तुम्हारे समान हों, उन्हीं

के साथ युद्ध किया करो। माद्रीकुमार! लज्जित न होओ। इच्छा हो तो घर चले जाओ अथवा जहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुन हों, वहीं भाग जाओ।' महाराज! ऐसा कहकर उस समय कर्णने नकुलको छोड़ दिया ॥ ४८–५० ॥

वधप्राप्तं तु तं शूरो नाहनद् धर्मवित्तदा ।
स्मृत्वा कुन्त्या वचो राजंस्तत एनं व्यसर्जयत्॥ ५१ ॥

राजन्! यद्यपि नकुल वधके योग्य अवस्थामें आ पहुँचे थे, तो भी कुन्तीको दिये हुए वचनको याद करके धर्मज्ञ वीर कर्णने उस समय उन्हें मारा नहीं, जीवित छोड़ दिया ॥ ५१ ॥

विसृष्टः पाण्डवो राजन् सूतपुत्रेण धन्विना ।
व्रीडन्निव जगामाथ युधिष्ठिररथं प्रति ॥ ५२ ॥

नरेश्वर! धनुर्धर सूतपुत्रके छोड़ देनेपर पाण्डुकुमार नकुल लजाते हुए-से वहाँसे युधिष्ठिरके रथके पास चले गये ॥

आरुरोह रथं चापि सूतपुत्रप्रतापितः ।
निःश्वसन् दुःखसंतप्तः कुम्भस्थ इव पन्नगः ॥ ५३ ॥

सूतपुत्रके द्वारा सताये हुए नकुल दुःखसे संतप्त हो घड़ेमें बंद किये हुए सर्पके समान दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए युधिष्ठिरके रथपर चढ़ गये ॥ ५३ ॥

तं विजित्याथ कर्णोऽपि पञ्चालांस्त्वरितो ययौ ।
रथेनातिपताकेन चन्द्रवर्णहयेन च ॥ ५४ ॥

इस प्रकार नकुलको पराजित करके कर्ण भी चन्द्रमाके समान श्वेत रंगवाले घोड़ों और ऊँची पताकाओंसे युक्त रथके द्वारा तुरंत ही पाञ्चालोंकी ओर चला गया ॥ ५४ ॥

तत्राक्रन्दो महानासीत् पाण्डवानां विशाम्पते ।
दृष्ट्वा सेनापतिं यान्तं पञ्चालानां रथव्रजान् ॥ ५५ ॥

प्रजानाथ! कौरव-सेनापति कर्णको पाञ्चाल रथियोंकी ओर जाते देख पाण्डव-सैनिकोंमें महान् कोलाहल मच गया ॥ ५५ ॥

तत्राकरोन्महाराज कदनं सूतनन्दनः ।
मध्यं प्राप्ते दिनकरे चक्रवद् विचरन् प्रभुः॥ ५६ ॥

महाराज! दोपहर होते-होते शक्तिशाली सूतनन्दन कर्णने चक्रके समान चारों ओर विचरण करते हुए वहाँ पाण्डव-सैनिकोंका महान् संहार मचा दिया ॥ ५६ ॥

भग्नचक्रै रथैः कांश्चिच्छिन्नध्वजपताकिभिः ।
हताश्वैर्हतसूतैश्च भग्नाक्षैश्चैव मारिष ॥ ५७ ॥
ह्रियमाणानपश्याम पञ्चालानां रथव्रजान् ।

माननीय नरेश! उस समय हमलोगोंने कितने ही रथियोंको ऐसी अवस्थामें देखा कि उनके रथके पहिये टूट गये हैं, ध्वजा, पताकाएँ छिन्न-भिन्न हो गयी हैं, घोड़े और सारथि मारे गये हैं और उन रथोंके धुरे भी खण्डित हो गये हैं। उस अवस्थामें समूह-के-समूह पाञ्चाल महारथी हमें भागते दिखायी दिये ॥ ५७½ ॥

तत्र तत्र च सम्भ्रान्ता विचेरुर्मत्तकुञ्जराः ॥ ५८ ॥
दावाग्निपरिदग्धाङ्गा यथैव स्युर्महावने ।

बहुत-से मतवाले हाथी वहाँ बड़ी घबराहटमें पड़कर इधर-उधर चक्कर काट रहे थे, मानो किसी बड़े भारी जंगलमें दावानलसे उनके सारे अङ्ग झुलस गये हों ॥ ५८½ ॥

भिन्नकुम्भार्द्ररुधिराश्छिन्नहस्ताश्च वारणाः ॥ ५९ ॥
छिन्नगात्रावराश्चैव च्छिन्नवालधयोऽपरे ।
छिन्नाभ्राणीव सम्पेतुर्हन्यमाना महात्मना ॥ ६० ॥

कितने ही हाथियोंके कुम्भस्थल फट गये थे और वे खूनसे भीग गये थे। कितनोंकी सूँड़ें कट गयी थीं, कितनोंके कवच छिन्न-भिन्न हो गये थे, बहुतोंकी पूँछें कट गयी थीं और कितने ही हाथी महामना कर्णकी मार खाकर खण्डित हुए मेघोंके समान पृथ्वीपर गिर गये थे ॥ ५९-६० ॥

अपरे त्रासिता नागा नाराचशरतोमरैः ।
तमेवाभिमुखं जग्मुः शलभा इव पावकम् ॥ ६१ ॥

दूसरे बहुत-से गजराज कर्णके नाराचों, शरों और तोमरोंसे संत्रस्त हो जैसे पतंग आगमें कूद पड़ते हैं, उसी प्रकार कर्णके सम्मुख चले जाते थे ॥

अपरे निष्टनन्तश्च व्यदृश्यन्त महाद्विपाः ।
क्षरन्तः शोणितं गात्रैर्नगा इव जलस्रवाः ॥ ६२ ॥

अन्य बहुत-से बड़े-बड़े हाथी झरने बहानेवाले पर्वतोंके समान अपने अङ्गोंसे रक्तकी धारा बहाते और आर्तनाद करते दिखायी देते थे ॥ ६२ ॥

उरश्छदैर्वियुक्तांश्च वालबन्धैश्च वाजिनः ।
राजतैश्च तथा कांस्यैः सौवर्णैश्चैव भूषणैः ॥ ६३ ॥
हीनांश्चाभरणैश्चैव खलीनैश्च विवर्जितान् ।
चामरैश्च कुथाभिश्च तूणीरैः पतितैरपि ॥ ६४ ॥
निहतैः सादिभिश्चैव शूरैराहवशोभितैः ।
अपश्याम रणे तत्र भ्राम्यमाणान् हयोत्तमान् ॥ ६५ ॥

कितने ही घोड़ोंके उनकी छातीको छिपानेवाले कवच कटकर गिर गये थे, बालबन्ध छिन्न-भिन्न हो गये थे, सोने, चाँदी और कांस्यके आभूषण नष्ट हो गये थे, दूसरे साज-बाज भी चौपट हो गये थे, उनके मुखोंसे लगाम भी निकल गये थे, चँवर, झूल और तरकस धराशायी हो गये थे तथा संग्रामभूमिमें शोभा पानेवाले उनके शूरवीर सवार भी मारे जा चुके थे। ऐसी दशामें रणभूमिमें भ्रान्त होकर भटकते हुए बहुत-से उत्तम घोड़ोंको हमने देखा था ॥ ६३–६५ ॥

प्रासैः खड्गैश्च रहितानृष्टिभिश्चापि भारत ।
हयसादीनपश्याम कञ्चुकोष्णीषधारिणः ॥ ६६ ॥

निहतान् वध्यमानांश्च वेपमानांश्च भारत।
नानाङ्गावयवैर्हीनांस्तत्र तत्रैव भारत॥ ६७॥

भारत! कवच और पगड़ी धारण करनेवाले कितने ही घुड़सवारोंको हमने प्रास, खड्ग और ऋष्टि आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे रहित होकर मारा गया देखा। कितने ही कर्णके बाणोंकी मार खाते हुए थरथर काँप रहे थे और बहुत-से अपने शरीरके विभिन्न अवयवोंसे रहित हो यत्र-तत्र मरे पड़े थे॥ ६६-६७॥

रथान् हेमपरिष्कारान् संयुक्ताञ्जवनैर्हयैः।
भ्राम्यमाणानपश्याम हतेषु रथिषु द्रुतम्॥ ६८॥

वेगशाली घोड़ोंसे जुते हुए कितने ही सुवर्णभूषित रथ सारथि और रथियोंके मारे जानेसे वेगपूर्वक दौड़ते दिखायी देते थे॥ ६८॥

भग्नाक्षकूबरान् कांश्चिद् भग्नचक्रांश्च भारत।
विपताकध्वजांश्चान्याञ्छिन्नेषादण्डबन्धुरान्॥ ६९॥

भरतनन्दन! कितने हो रथोंके धुरे और कूबर टूट गये थे, पहिये टूक-टूक हो गये थे, पताका और ध्वज खण्डित हो गये थे तथा ईषादण्ड और बन्धुरोंके टुकड़े-टुकड़े हो गये थे॥ ६९॥

विहतान् रथिनस्तत्र धावमानांस्ततस्ततः।
सूतपुत्रशरैस्तीक्ष्णैर्हन्यमानान् विशाम्पते॥ ७०॥
विशस्त्रांश्च तथैवान्यान् सशस्त्रांश्च हतान् बहून्।

प्रजानाथ! सूतपुत्रके तीखे बाणोंसे हताहत होकर बहुतेरे रथी वहाँ इधर-उधर भागते देखे गये। कितने ही रथी शस्त्रहीन होकर तथा दूसरे बहुत-से सशस्त्र रहकर ही मारे गये थे॥ ७०½॥

तारकाजालसंछन्नान् वरघण्टाविशोभितान्॥ ७१॥
नानावर्णविचित्राभिः पताकाभिरलंकृतान्।
वारणाननुपश्याम धावमानान् समन्ततः॥ ७२॥

नक्षत्रसमूहोंके चिह्नवाले कवचोंसे आच्छादित, उत्तम घंटोंसे सुशोभित तथा अनेक रंगकी विचित्र ध्वजा-पताकाओंसे अलंकृत हाथियोंको हमने चारों ओर भागते देखा था॥

शिरांसि बाहूनूरूंश्च छिन्नानन्यांस्तथैव च।
कर्णचापच्युतैर्बाणैरपश्याम समन्ततः॥ ७३॥

हमने यह भी देखा कि कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा योद्धाओंके मस्तक, भुजाएँ और जाँघें कट-कटकर चारों ओर गिर रही हैं॥ ७३॥

महान् व्यतिकरो रौद्रो योधानामन्वपद्यत।
कर्णसायकनुन्नानां युध्यतां च शितैः शरैः॥ ७४॥

कर्णके बाणोंसे आहत हो तीखे बाणोंसे युद्ध करते हुए योद्धाओंमें वहाँ अत्यन्त भयंकर और महान् संग्राम मच गया था॥ ७४॥

ते वध्यमानाः समरे सूतपुत्रेण सृञ्जयाः।
तमेवाभिमुखं यान्ति पतङ्गा इव पावकम्॥ ७५॥

समराङ्गणमें सृंजयोंपर कर्णके बाणोंकी मार पड़ रही थी, तो भी पतंग जैसे अग्निपर टूट पड़ते हैं, उसी प्रकार वे कर्णके ही सम्मुख बढ़ते जा रहे थे॥ ७५॥

तं दहन्तमनीकानि तत्र तत्र महारथम्।
क्षत्रिया वर्जयामासुर्युगान्ताग्निमिवोल्बणम्॥ ७६॥

महारथी कर्ण प्रलयकालके प्रचण्ड अग्निके समान जहाँ-तहाँ पाण्डव-सेनाओंको दग्ध कर रहा था। उस समय क्षत्रिय लोग उसे छोड़कर दूर हट जाते थे॥ ७६॥

हतशेषास्तु ये वीराः पञ्चालानां महारथाः।
तान् प्रभग्नान् द्रुतान् वीरः पृष्ठतो विकिरञ्छरैः॥७७॥
अभ्यधावत तेजस्वी विशीर्णकवचध्वजान्।
तापयामास तान् बाणैः सूतपुत्रो महाबलः।
मध्यंदिनमनुप्राप्तो भूतानीव तमोनुदः॥ ७८॥

पाञ्चालोंके जो वीर महारथी मरनेसे बच गये थे, उन्हें भागते देख तेजस्वी वीर कर्ण पीछेसे उनपर बाणोंकी वर्षा करता हुआ उनकी ओर दौड़ा। उन योद्धाओंके कवच और ध्वज छिन्न-भिन्न हो गये थे। जैसे मध्याह्नकालका सूर्य सम्पूर्ण प्राणियोंको अपनी किरणोंद्वारा तपाता है, उसी प्रकार महाबली सूतपुत्र अपने बाणोंसे उन शत्रु-सैनिकोंको संतप्त करने लगा॥ ७७-७८॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णयुद्धे चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्णका युद्धविषयक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

युयुत्सु और उलूकका युद्ध, युयुत्सुका पलायन, शतानीक और धृतराष्ट्रपुत्र श्रुतकर्माका तथा सुतसोम और शकुनिका घोर युद्ध एवं शकुनिद्वारा पाण्डवसेनाका विनाश

संजय उवाच

युयुत्सुं तव पुत्रस्य द्रावयन्तं बलं महत्।
उलूको न्यपतत्तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्॥ १॥

संजय कहते हैं—महाराज! दूसरी ओर युयुत्सु आपके पुत्रकी विशाल सेनाको खदेड़ रहा था। यह देख उलूक तुरंत वहाँ आ धमका और युयुत्सुसे बोला—'अरे! खड़ा रह, खड़ा रह'॥ १॥

युयुत्सुश्च ततो राजञ्शितधारेण पत्रिणा।

उलूकं ताडयामास वज्रेणेन्द्र इवाचलम् ॥ २ ॥

राजन् ! तब युयुत्सुने तीखी धारवाले बाणसे महाबली उलूकको उसी प्रकार पीट दिया, जैसे इन्द्र पर्वतपर वज्रका प्रहार करते हैं ॥ २ ॥

उलूकस्तु ततः क्रुद्धस्तव पुत्रस्य संयुगे।
क्षुरप्रेण धनुश्छित्त्वा ताडयामास कर्णिना ॥ ३ ॥

इससे उलूकको बड़ा क्रोध हुआ। उसने युद्धस्थलमें एक क्षुरप्रके द्वारा आपके पुत्रका धनुष काटकर उसपर कर्णीनामक बाणका प्रहार किया ॥ ३ ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं युयुत्सुर्वेगवत्तरम्।
अन्यदादत्त सुमहच्चापं संरक्तलोचनः ॥ ४ ॥

युयुत्सुने उस कटे हुए धनुषको फेंककर क्रोधसे आँखें लाल करके दूसरा अत्यन्त वेगशाली एवं विशाल धनुष हाथमें लिया॥

शाकुनिं तु ततः षष्ट्या विव्याध भरतर्षभ।
सारथिं त्रिभिरानर्छत्तं च भूयो व्यविध्यत ॥ ५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उसने शकुनिपुत्र उलूकको साठ बाणोंसे बेध दिया और तीन बाणोंसे उसके सारथिको पीड़ित किया। तत्पश्चात् उसे और भी घायल कर दिया ॥ ५ ॥

उलूकस्तं तु विंशत्या विद्ध्वा स्वर्णविभूषितैः।
अथास्य समरे क्रुद्धो ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम् ॥ ६ ॥

तब उलूकने संग्रामभूमिमें कुपित हो स्वर्णभूषित बीस बाणोंसे युयुत्सुको घायल करके उनके सुवर्णमय ध्वजको भी काट डाला ॥ ६ ॥

सच्छिन्नयष्टिः सुमहाञ्शीर्यमाणो महाध्वजः।
पपात प्रमुखे राजन् युयुत्सोः काञ्चनध्वजः ॥ ७ ॥

राजन् ! ध्वजका दण्ड कट जानेपर युयुत्सुका वह विशाल काञ्चनध्वज छिन्न-भिन्न हो उसके सामने ही गिर पड़ा ॥ ७ ॥

ध्वजमुन्मथितं दृष्ट्वा युयुत्सुः क्रोधमूर्छितः।
उलूकं पञ्चभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥ ८ ॥

अपने ध्वजका यह विध्वंस देखकर युयुत्सु क्रोधसे मूर्छित-सा हो गया और उसने पाँच बाणोंसे उलूककी छाती छेद डाली ॥ ८ ॥

उलूकस्तस्य समरे तैलधौतेन मारिष।
शिरश्चिच्छेद भल्लेन यन्तुर्भरतसत्तम ॥ ९ ॥

माननीय भरतभूषण ! उलूकने तेलसे साफ किये हुए भल्लके द्वारा युयुत्सुके सारथिका मस्तक काट डाला ॥

तच्छिन्नमपतद् भूमौ युयुत्सोः सारथेस्तदा।
तारारूपं यथा चित्रं निपपात महीतले ॥ १० ॥

उस समय युयुत्सुके सारथिका वह कटा हुआ मस्तक पृथ्वीपर उसी भाँति गिरा, मानो आकाशसे भूतलपर कोई विचित्र तारा टूट पड़ा हो ॥ १० ॥

जघान चतुरोऽश्वांश्च तं च विव्याध पञ्चभिः।
सोऽतिविद्धो बलवता प्रत्यपायाद् रथान्तरम् ॥ ११ ॥

तत्पश्चात् उलूकने युयुत्सुके चारों घोड़ोंको भी मार डाला और पाँच बाणोंसे उसे भी घायल कर दिया। उस बलवान् वीरके द्वारा अत्यन्त घायल हो युयुत्सु दूसरे रथपर आरूढ़ हो वहाँसे भाग गया ॥ ११ ॥

तं निर्जित्य रणे राजन्नुलूकस्त्वरितो ययौ।
पञ्चालान् सृञ्जयांश्चैव विनिघ्नन् निशितैः शरैः ॥ १२ ॥

राजन् ! रणभूमिमें युयुत्सुको पराजित करके उलूक तुरंत ही पाञ्चालों और सृंजयोंकी ओर चला गया और उन्हें तीखे बाणोंसे मारने लगा ॥ १२ ॥

शतानीकं महाराज श्रुतकर्मा सुतस्तव।
व्यश्वसूतरथं चक्रे निमेषार्धादसम्भ्रमः ॥ १३ ॥

महाराज ! दूसरी ओर आपके पुत्र श्रुतकर्माने बिना किसी घबराहटके आधे निमेषमें ही शतानीकके रथको घोड़ों और सारथिसे शून्य कर दिया ॥ १३ ॥

हताश्वे तु रथे तिष्ठञ्शतानीको महारथः।
गदां चिक्षेप संक्रुद्धस्तव पुत्रस्य मारिष ॥ १४ ॥

मान्यवर ! महारथी शतानीकने कुपित होकर अपने अश्वहीन रथपर खड़े रहकर ही आपके पुत्रके ऊपर गदाका प्रहार किया ॥ १४ ॥

सा कृत्वा स्यन्दनं भस्म हयांश्चैव ससारथीन्।
पपात धरणीं तूर्णं दारयन्तीव भारत ॥ १५ ॥

भारत ! वह गदा तुरंत ही श्रुतकर्माके रथ, घोड़ों और सारथिको भस्म करके पृथ्वीको विदीर्ण करती हुई-सी गिर पड़ी ॥ १५ ॥

तावुभौ विरथौ वीरौ कुरूणां कीर्तिवर्धनौ।
व्यपाक्रमेतां युद्धात्तु प्रेक्षमाणौ परस्परम् ॥ १६ ॥

कुरुकुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले वे दोनों वीर रथहीन हो एक दूसरेको देखते हुए युद्धस्थलसे हट गये ॥ १६ ॥

पुत्रस्तु तव सम्भ्रान्तो विवित्सो रथमारुहत्।
शतानीकोऽपि त्वरितः प्रतिविन्ध्यरथं गतः ॥ १७ ॥

आपका पुत्र श्रुतकर्मा घबरा गया था। वह विवित्सुके रथपर जा चढ़ा और शतानीक भी तुरंत ही प्रतिविन्ध्यके रथपर चला गया ॥ १७ ॥

सुतसोमं तु शकुनिर्विद्ध्वा तु निशितैः शरैः।
नाकम्पयत संक्रुद्धो वार्योघ इव पर्वतम् ॥ १८ ॥

दूसरी ओर शकुनि अत्यन्त कुपित हो अपने तीखे बाणोंसे सुतसोमको घायल करके भी उसे विचलित न कर सका। ठीक उसी तरह, जैसे जलका प्रवाह पर्वतको नहीं हिला सकता ॥ १८ ॥

सुतसोमस्तु तं दृष्ट्वा पितुरत्यन्तवैरिणम्।
शरैरनेकसाहस्रैश्छादयामास भारत ॥ १९ ॥

भरतनन्दन ! सुतसोमने अपने पिताके अत्यन्त वैरी शकुनिको सामने देखकर उसे कई हजार बाणोंसे आच्छादित कर दिया ॥ १९ ॥

तान्शरान्शकुनिस्तूर्णं चिच्छेदान्यैः पतत्रिभिः।
लघ्वस्त्रश्चित्रयोधी च जितकाशी च संयुगे ॥ २० ॥
निवार्य समरे चापि शरांस्तान् निशितैः शरैः।
आजघान सुसंक्रुद्धः सुतसोमं त्रिभिः शरैः ॥ २१ ॥

परंतु शकुनिने तुरंत ही दूसरे बाणोंद्वारा सुतसोमके बाणोंको काट डाला। वह शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलानेवाला, विचित्र युद्धमें कुशल और युद्धस्थलमें विजयश्रीसे सुशोभित होनेवाला था। उसने समराङ्गणमें अपने तीखे बाणोंसे सुतसोमके बाणोंका निवारण करके अत्यन्त कुपित हो तीन बाणोंद्वारा सुतसोमको भी घायल कर दिया ॥ २०-२१ ॥

तस्याश्वान् केतनं सूतं तिलशो व्यधमच्छरैः।
स्यालस्तव महाराज तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ २२ ॥

महाराज ! आपके सालेने सुतसोमके घोड़ोंको तथा ध्वज और सारथिको भी अपने बाणोंसे तिल-तिल करके काट डाला; इससे सब लोग हर्षसूचक कोलाहल करने लगे ॥

हताश्वो विरथश्चैव छिन्नकेतुश्च मारिष।
धन्वी धनुर्वरं गृह्य रथाद् भूमावतिष्ठत ॥ २३ ॥

मान्यवर ! घोड़े, रथ और ध्वजके नष्ट हो जानेपर धनुर्धर सुतसोम अपने हाथमें श्रेष्ठ धनुष लिये रथसे उतरकर धरतीपर खड़ा हो गया ॥ २३ ॥

व्यसृजत् सायकांश्चैव स्वर्णपुङ्खाञ्शिलाशितान्।
छादयामास समरे तव स्यालस्य तं रथम् ॥ २४ ॥

फिर उसने शिलापर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले बहुत-से बाण छोड़े। उन बाणोंद्वारा समरभूमिमें उसने आपके सालेके रथको ढक दिया ॥ २४ ॥

शलभानामिव व्रातान्शरव्रातान् महारथः।
रथोपगान् समीक्ष्यैवं विव्यथे नैव सौबलः ॥ २५ ॥
प्रममाथ शरांस्तस्य शरव्रातैर्महायशाः।

उसके बाणसमूह टिड्डीदलोंके समान जान पड़ते थे। उन्हें अपने रथके समीप देखकर भी महारथी सुबलपुत्र शकुनिके मनमें तनिक भी व्यथा नहीं हुई। उस महायशस्वी वीरने अपने बाणसमूहोंद्वारा सुतसोमके सारे बाणोंको पूर्णतया मथ डाला ॥ २५½ ॥

तत्रातुष्यन्त योधाश्च सिद्धाश्चापि दिवि स्थिताः ॥ २६ ॥
सुतसोमस्य तत् कर्म दृष्ट्वा श्रद्धेयमद्भुतम्।
रथस्थं शकुनिं यस्तु पदातिः समयोधयत् ॥ २७ ॥

सुतसोम जो वहाँ पैदल होकर भी रथपर बैठे हुए शकुनिके साथ युद्ध कर रहा था। उसके इस अविश्वसनीय और अद्भुत कर्मको देखकर वहाँ खड़े हुए समस्त योद्धा तथा आकाशमें स्थित हुए सिद्धगण भी बहुत संतुष्ट हुए ॥ २६-२७ ॥

तस्य तीक्ष्णैर्महावेगैर्भल्लैः संनतपर्वभिः।
व्यहनत् कार्मुकं राजंस्तूणीरांश्चैव सर्वशः ॥ २८ ॥

राजन् ! उस समय शकुनिने अत्यन्त वेगशाली और झुकी हुई गाँठवाले तीखे भल्लोंद्वारा सुतसोमके धनुष, तरकस तथा अन्य सब उपकरणोंको भी नष्ट कर दिया ॥ २८ ॥

स च्छिन्नधन्वा विरथः खड्गमुद्यम्य चानदत्।
वैदूर्योत्पलवर्णाभं दन्तिदन्तमयत्सरुम् ॥ २९ ॥

रथ तो नष्ट हो ही चुका था, जब धनुष भी कट गया, तब सुतसोमने वैदूर्यमणि तथा नील कमलके समान श्याम रंगवाले, हाथीके दाँतकी बनी हुई मूठसे युक्त खड्गको ऊपर उठाकर बड़े जोरसे गर्जना की ॥ २९ ॥

भ्राम्यमाणं ततस्तं तु विमलाम्बरवर्चसम्।
कालदण्डोपमं मेने सुतसोमस्य धीमतः ॥ ३० ॥

बुद्धिमान् सुतसोमके उस निर्मल आकाशके समान कान्तिवाले खड्गको घुमाया जाता देख शकुनिने उसे अपने लिये कालदण्डके समान माना ॥ ३० ॥

सोऽचरत् सहसा खड्गी मण्डलानि समन्ततः।
चतुर्दश महाराज शिक्षाबलसमन्वितः ॥ ३१ ॥

महाराज ! सुतसोम शिक्षा और बल दोनोंसे सम्पन्न था, वह खड्ग लेकर सहसा उसके चौदह मण्डल (पैंतरे) दिखाता हुआ रणभूमिमें सब ओर विचरने लगा ॥ ३१ ॥

भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं विप्लुतं सृतम्।
सम्पातसमुदीर्णे च दर्शयामास संयुगे ॥ ३२ ॥

उसने युद्धस्थलमें भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, आप्लुत, प्लुत, सृत, सम्पात और समुदीर्ण आदि गतियोंको दिखाया ॥

सौबलस्तु ततस्तस्य शरांश्चिक्षेप वीर्यवान्।
तानापतत एवाशु चिच्छेद परमासिना ॥ ३३ ॥

तब पराक्रमी सुबलपुत्रने सुतसोमपर बहुत-से बाण चलाये; परंतु उसने अपने उत्तम खड्गसे निकट आते ही उन सब बाणोंको काट गिराया ॥ ३३ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज सौबलः परवीरहा।
प्राहिणोत् सुतसोमाय शरानाशीविषोपमान् ॥ ३४ ॥

महाराज ! इससे शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले सुबलपुत्र शकुनिको बड़ा क्रोध हुआ। उसने सुतसोमपर विषधर सर्पोंके समान बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ३४ ॥

चिच्छेद तांस्तु खड्गेन शिक्षया च बलेन च।
दर्शयँल्लाघवं युद्धे तार्क्ष्यतुल्यपराक्रमः ॥ ३५ ॥

१. भ्रान्त, उद्भ्रान्त आदि सात गतियोंको अनुलोम और विलोम-क्रमसे दिखानेपर उनके चौदह भेद हो जाते हैं। भ्रान्त और उद्भ्रान्त आदिकी व्याख्या पहले पृष्ठ ३६९६में की जा चुकी है।

परंतु गरुड़के तुल्य पराक्रमी सुतसोमने अपनी शिक्षा और बलके अनुसार युद्धमें फुर्ती दिखाते हुए खड्गसे उन सब बाणोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ३५ ॥

तस्य संचरतो राजन् मण्डलावर्तने तदा।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन खड्गं चिच्छेद सुप्रभम् ॥ ३६ ॥

राजन् ! सुतसोम जब अपनी चमकीली तलवारको मण्डलाकार घुमा रहा था, उसी समय शकुनिने तीखे क्षुरप्रसे उसके दो टुकड़े कर दिये ॥ ३६ ॥

स च्छिन्नः सहसा भूमौ निपपात महानसिः।
अर्धमस्य स्थितं हस्ते सुतसरोस्तत्र भारत ॥ ३७ ॥

वह महान् खड्ग कटकर सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ा। भारत ! सुन्दर मूठवाले उस खड्गका आधा भाग सुतसोमके हाथमें ही रह गया ॥ ३७ ॥

छिन्नमाज्ञाय निस्त्रिंशमवप्लुत्य पदानि षट्।
प्राविध्यत ततः शेषं सुतसोमो महारथः ॥ ३८ ॥

अपने उस खड्गको कटा हुआ जान महारथी सुतसोमने छः पग ऊँचे उछलकर उसके शेष भागको ही शकुनिपर दे मारा ॥ ३८ ॥

तच्छित्त्वा सगुणं चापं रणे तस्य महात्मनः।
पपात धरणीं तूर्णं स्वर्णवज्रविभूषितम् ॥ ३९ ॥

वह स्वर्ण और हीरेसे विभूषित कटा हुआ खड्ग रणभूमिमें महामना शकुनिके धनुषको प्रत्यञ्चासहित काटकर तुरंत ही पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३९ ॥

सुतसोमस्ततोऽगच्छच्छ्रुतकीर्तेर्महारथम्।
सौबलोऽपि धनुर्गृह्य घोरमन्यत् सुदुर्जयम् ॥ ४० ॥
अभ्ययात् पाण्डवानीकं निघ्नञ्शत्रुगणान् बहून्।

तत्पश्चात् सुतसोम श्रुतकीर्तिके विशाल रथपर चढ़ गया। उधर शकुनि भी दूसरा अत्यन्त दुर्जय एवं भयंकर धनुष लेकर बहुत-से शत्रुओंका संहार करता हुआ पाण्डव-सेनाकी ओर चल दिया ॥ ४०½ ॥

तत्र नादो महानासीत् पाण्डवानां विशाम्पते ॥ ४१ ॥
सौबलं समरे दृष्ट्वा विचरन्तमभीतवत्।

प्रजानाथ ! सुबलपुत्र शकुनिको समरभूमिमें निर्भयसे विचरते देख पाण्डव-दलमें महान् सिंहनाद होने लगा ॥४१½॥

तान्यनीकानि दृप्तानि शस्त्रवन्ति महान्ति च ॥ ४२ ॥
द्राव्यमाणान्यदृश्यन्त सौबलेन महात्मना।

महामना शकुनिने घमंडमें भरे हुए उन शस्त्रसम्पन्न महान् सैनिकोंको भगा दिया। यह सब हमने अपनी आँखों देखा ॥

यथा दैत्यचमूं राजन् देवराजो ममर्द ह।
तथैव पाण्डवीं सेनां सौबलेयो व्यनाशयत् ॥ ४३ ॥

राजन् ! जिस प्रकार देवराज इन्द्रने दैत्योंकी सेनाको कुचल दिया था, उसी प्रकार सुबलपुत्र शकुनिने पाण्डव-सेनाका विनाश कर डाला ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि सुतसोमसौबलयुद्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें सुतसोम और शकुनिका युद्धविषयक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः

कृपाचार्यसे धृष्टद्युम्नका भय तथा कृतवर्माके द्वारा शिखण्डीकी पराजय

संजय उवाच

धृष्टद्युम्नं कृपो राजन् वारयामास संयुगे।
यथा दृष्ट्वा वने सिंहं शरभो वारयेद् युधि ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! कृपाचार्यने धृष्टद्युम्नको आक्रमण करते देख युद्धभूमिमें उसी प्रकार उन्हें आगे बढ़नेसे रोका, जैसे वनमें शरभ[1] सिंहको रोक देता है ॥ १ ॥

निरुद्धः पार्षतस्तेन गौतमेन बलीयसा।
पदात् पदं विचलितुं नाशकत्तत्र भारत ॥ २ ॥

भारत ! अत्यन्त बलवान् गौतम-गोत्रीय कृपाचार्यसे अवरुद्ध होकर धृष्टद्युम्न एक पग भी चलनेमें समर्थ न हो सका॥

गौतमस्य रथं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नरथं प्रति।
वित्रेसुः सर्वभूतानि क्षयं प्राप्तं च मेनिरे ॥ ३ ॥

कृपाचार्यके रथको धृष्टद्युम्नके रथकी ओर जाते देख समस्त प्राणी भयसे थर्रा उठे और धृष्टद्युम्नको नष्ट हुआ ही मानने लगे ॥ ३ ॥

तत्रावोचन् विमनसो रथिनः सादिनस्तथा।
द्रोणस्य निधनान्नूनं संक्रुद्धो द्विपदां वरः ॥ ४ ॥
शारद्वतो महातेजा दिव्यास्त्रविदुदारधीः।
अपि स्वस्ति भवेदद्य धृष्टद्युम्नस्य गौतमात् ॥ ५ ॥

वहाँ सभी रथी और घुड़सवार उदास होकर कहने लगे कि 'निश्चय ही द्रोणाचार्यके मारे जानेसे दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता, उदारबुद्धि, महातेजस्वी, नरश्रेष्ठ, शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य अत्यन्त कुपित हो उठे होंगे। क्या आज कृपाचार्यसे धृष्टद्युम्न कुशलपूर्वक सुरक्षित रह सकेंगे ? ॥ ४-५ ॥

अपीयं वाहिनी कृत्स्ना मुच्येत महतो भयात्।
अप्ययं ब्राह्मणः सर्वान् न नो हन्यात् समागतान् ॥ ६॥

१. शरभ आठ पैरोंका एक जानवर है, जिसका आधा शरीर पशुका और आधा पक्षीका होता है। भगवान् नृसिंहकी भाँति उसका शरीर भी द्विविध आकृतियोंके सम्मिश्रणसे बना है। वह इतना प्रबल है कि सिंहको भी मार सकता है।

'क्या यह सारी सेना महान् भयसे मुक्त हो सकती है ? कहीं ऐसा न हो कि ये ब्राह्मण देवता यहाँ आये हुए हम सब लोगोंका वध कर डालें ? ॥ ६ ॥

यादृशं दृश्यते रूपमन्तकप्रतिमं भृशम्।
गमिष्यत्यद्य पदवीं भारद्वाजस्य गौतमः॥ ७॥

'इनका यमराजके समान जैसा अत्यन्त भयंकर रूप दिखायी देता है, उससे जान पड़ता है, आज कृपाचार्य भी द्रोणाचार्यके पथपर ही चलेंगे ॥ ७ ॥

आचार्यः क्षिप्रहस्तश्च विजयी च सदा युधि।
अस्त्रवान् वीर्यसम्पन्नः क्रोधेन च समन्वितः॥ ८॥

'कृपाचार्य शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले तथा युद्धमें सर्वथा विजय प्राप्त करनेवाले हैं। वे अस्त्रवेत्ता, पराक्रमी और क्रोधसे युक्त हैं ॥ ८ ॥

पार्षतश्च महायुद्धे विमुखोऽद्याभिलक्ष्यते।
इत्येवं विविधा वाचस्तावकानां परैः सह॥ ९॥
व्यश्रूयन्त महाराज तयोस्तत्र समागमे।

'आज इस महायुद्धमें धृष्टद्युम्न विमुख होता दिखायी देता है।' महाराज ! इस प्रकार वहाँ धृष्टद्युम्न और कृपाचार्यका समागम होनेपर आपके सैनिकोंकी शत्रुओंके साथ होनेवाली नाना प्रकारकी बातें सुनायी देने लगीं ॥ ९½ ॥

विनिःश्वस्य ततः क्रोधात् कृपः शारद्वतो नृप॥ १०॥
पार्षतं चार्दयामास निश्चेष्टं सर्वमर्मसु।

नरेश्वर ! तदनन्तर शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्यने क्रोधसे लंबी साँस खींचकर निश्चेष्ट खड़े हुए धृष्टद्युम्नके सम्पूर्ण मर्मस्थानोंमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ १०½ ॥

स हन्यमानः समरे गौतमेन महात्मना॥ ११॥
कर्तव्यं न स जानाति मोहेन महताऽऽवृतः।

समराङ्गणमें महामना कृपाचार्यके द्वारा आहत होनेपर भी धृष्टद्युम्नको कोई कर्तव्य नहीं सूझता था। वे महान् मोहसे आच्छन्न हो गये थे ॥ ११½ ॥

तमब्रवीत्ततो यन्ता कच्चित् क्षेमं तु पार्षत॥ १२॥
ईदृशं व्यसनं युद्धे न ते दृष्टं मया क्वचित्।

तब उनके सारथिने उनसे कहा—'द्रुपदनन्दन ! कुशल तो है न ? युद्धमें आपपर कभी ऐसा संकट आया हो, यह मैंने नहीं देखा है ॥ १२½ ॥

दैवयोगात्तु ते बाणा नापतन् मर्मभेदिनः॥ १३॥
प्रेषिता द्विजमुख्येन मर्माण्युद्दिश्य सर्वतः।

'द्विजश्रेष्ठ कृपाचार्यने सब ओरसे आपके मर्मस्थानोंको लक्ष्य करके बाण चलाये थे; परंतु दैवयोगसे ही वे मर्मभेदी बाण आपके मर्मस्थानोंपर नहीं पड़े हैं ॥ १३½ ॥

व्यावर्तये रथं तूर्णं नदीवेगमिवार्णवात्॥ १४॥
अवध्यं ब्राह्मणं मन्ये येन ते विक्रमो हतः।

'जैसे कोई शक्तिशाली पुरुष समुद्रसे नदीके वेगको पीछे लौटा दे, उसी प्रकार मैं आपके इस रथको तुरंत लौटा ले चलूँगा। मेरी समझमें ये ब्राह्मण देवता अवध्य हैं, जिनसे आज आपका पराक्रम प्रतिहत हो गया' ॥ १४½ ॥

धृष्टद्युम्नस्ततो राजञ्शनकैरब्रवीद् वचः॥ १५॥
मुह्यते मे मनस्तात गात्रस्वेदश्च जायते।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च सारथे॥ १६॥

राजन् ! यह सुनकर धृष्टद्युम्नने धीरेसे कहा—'सारथे ! मेरे मनपर मोह छा रहा है और शरीरसे पसीना छूटने लगा है। मेरे सारे अङ्ग काँप रहे हैं और रोमाञ्च हो आया है ॥

वर्जयन् ब्राह्मणं युद्धे शनैर्याहि यतोऽर्जुनः।
अर्जुनं भीमसेनं वा समरे प्राप्य सारथे॥ १७॥
क्षेममद्य भवेदेवमेषा मे नैष्ठिकी मतिः।

'तुम युद्धस्थलमें ब्राह्मण कृपाचार्यको छोड़ते हुए धीरे-धीरे जहाँ अर्जुन हैं, उसी ओर चल दो। समराङ्गणमें अर्जुन अथवा भीमसेनके पास पहुँचकर ही आज मैं सकुशल रह सकता हूँ, ऐसा मेरा दृढ़ विचार है' ॥ १७½ ॥

ततः प्रायान्महाराज सारथिस्त्वरयन् हयान्॥ १८॥
यतो भीमो महेष्वासो युयुधे तव सैनिकैः।

महाराज ! तब सारथि घोड़ोंको तेजीसे हाँकता हुआ उसी ओर चल दिया जहाँ महाधनुर्धर भीमसेन आपके सैनिकोंके साथ-युद्ध कर रहे थे ॥ १८½ ॥

प्रद्रुतं च रथं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नस्य मारिष॥ १९॥
किरञ्शरशतान्येव गौतमोऽनुययौ तदा।

मान्यवर नरेश ! धृष्टद्युम्नके रथको वहाँसे भागते देख कृपाचार्यने सैकड़ों बाणोंकी वर्षा करते हुए उनका पीछा किया॥

शङ्खं च पूरयामास मुहुर्मुहुररिंदमः॥ २०॥
पार्षतं त्रासयामास महेन्द्रो नमुचिं यथा।

शत्रुओंका दमन करनेवाले कृपाचार्यने बारंबार शङ्खध्वनि की और जैसे इन्द्रने नमुचिको डराया था, उसी प्रकार उन्होंने धृष्टद्युम्नको भयभीत कर दिया॥ २०½ ॥

शिखण्डिनं तु समरे भीष्ममृत्युं दुरासदम्॥ २१॥
हार्दिक्यो वारयामास स्मयन्निव मुहुर्मुहुः।

दूसरी ओर समराङ्गणमें दुर्जय वीर शिखण्डीको, जो भीष्मके लिये मृत्युस्वरूप था, कृतवर्माने बारंबार मुस्कराते हुए-से रोका ॥ २१½ ॥

शिखण्डी तु समासाद्य हृदिकानां महारथम्॥ २२॥
पञ्चभिर्निशितैर्भल्लैर्जत्रुदेशे समाहनत्।

हृदिकवंशी यादवोंके महारथी वीर कृतवर्माको सामने पाकर शिखण्डीने उसके गलेकी हँसलीपर पाँच तीखे भल्लों-द्वारा प्रहार किया ॥ २२½ ॥

कृतवर्मा तु संक्रुद्धो भित्त्वा षष्ट्या पतत्रिभिः॥ २३॥

धनुरेकेन चिच्छेद हसन् राजन् महारथः ।

राजन् ! तब महारथी कृतवर्माने अत्यन्त कुपित हो साठ बाणोंसे शिखण्डीको घायल करके एकसे हँसते-हँसते उसका धनुष काट डाला ॥ २३½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय द्रुपदस्यात्मजो बली ॥ २४ ॥
तिष्ठ तिष्ठेति संक्रुद्धो हार्दिक्यं प्रत्यभाषत ।

तत्पश्चात् द्रुपदके बलवान् पुत्रने दूसरा धनुष हाथमें लेकर कृतवर्मासे क्रोधपूर्वक कहा—'अरे ! खड़ा रह, खड़ा रह' ॥

ततोऽस्य नवतिं बाणान् रुक्मपुङ्खान् सुतेजनान् ॥ २५ ॥
प्रेषयामास राजेन्द्र तेऽस्याभ्रश्यन्त वर्मणः ।

राजेन्द्र ! फिर सोनेकी पाँखवाले नब्बे पैने बाण उसने चलाये, परंतु वे कृतवर्माके कवचसे फिसलकर गिर गये ॥

वितथांस्तान् समालक्ष्य पतितांश्च महीतले ॥ २६ ॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन कार्मुकं चिच्छिदे भृशम् ।

उन्हें व्यर्थ होकर पृथ्वीपर गिरा देख शिखण्डीने तीखे क्षुरप्रसे कृतवर्माके धनुषके टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ २६½ ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं भग्नश्रृङ्गमिवर्षभम् ॥ २७ ॥
अशीत्या मार्गणैः क्रुद्धो बाह्वोरुरसि चार्पयत् ।

धनुष कट जानेपर कृतवर्माकी दशा टूटे सींगवाले बैलके समान हो गयी । उस समय शिखण्डीने कुपित होकर उसकी दोनों भुजाओं तथा छातीमें अस्सी बाण मारे ॥ २७½ ॥

कृतवर्मा तु संक्रुद्धो मार्गणैः क्षतविक्षतः ॥ २८ ॥
ववाम रुधिरं गात्रैः कुम्भवक्त्रादिवोदकम् ।

कृतवर्मा उन बाणोंसे क्षत-विक्षत होकर अत्यन्त कुपित हो उठा और जैसे घड़ेके मुँहसे जल गिर रहा हो, उसी प्रकार वह अपने अङ्गोंसे रक्त वमन करने लगा ॥ २८½ ॥

रुधिरेण परिक्लिन्नः कृतवर्मा त्वराजत ॥ २९ ॥
वर्षेण क्लेदितो राजन् यथा गैरिकपर्वतः ।

राजन् ! खूनसे लथपथ हुआ कृतवर्मा वर्षासे भीगे हुए गेरूके पहाड़के समान शोभा पा रहा था ॥ २९½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय समार्गणगुणं प्रभुः ॥ ३० ॥
शिखण्डिनं बाणगणैः स्कन्धदेशे व्यताडयत् ।

तदनन्तर शक्तिशाली कृतवर्माने बाण और प्रत्यञ्चासहित दूसरा धनुष हाथमें लेकर शिखण्डीके कंधोंपर अपने बाणसमूहोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३०½ ॥

स्कन्धदेशस्थितैर्बाणैः शिखण्डी तु व्यराजत ॥ ३१ ॥
शाखाप्रशाखाविपुलः सुमहान् पादपो यथा ।

कंधोंमें धँसे हुए उन बाणोंसे शिखण्डी वैसी ही शोभा पाने लगा, जैसे कोई महान् वृक्ष अपनी शाखा-प्रशाखाओंके कारण अधिक विस्तृत दिखायी देता हो ॥ ३१½ ॥

तावन्योन्यं भृशं विद्ध्वा रुधिरेण समुक्षितौ ॥ ३२ ॥
(पोप्लूयमानौ हि यथा महान्तौ शोणितह्रदे ।)

वे दोनों महान् वीर एक दूसरेको अत्यन्त घायल करके खूनसे इस प्रकार नहा गये थे, मानो रक्तके सरोवरमें बारंबार डुबकी लगाकर आये हों ॥ ३२ ॥

अन्योन्यश्रृङ्गाभिहतौ रेजतुर्वृषभाविव ।

उस समय एक दूसरेके सींगोंसे चोट खाये हुए दो साँड़के समान उन दोनोंकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ३२½ ॥

अन्योन्यस्य वधे यत्नं कुर्वाणौ तौ महारथौ ॥ ३३ ॥
रथाभ्यां चेरतुस्तत्र मण्डलानि सहस्रशः ।

एक दूसरेके वधके लिये प्रयत्न करते हुए वे दोनों महारथी अपने रथके द्वारा वहाँ सहस्रों बार मण्डलाकार गतिसे विचरते थे ॥ ३३½ ॥

कृतवर्मा महाराज पार्षतं निशितैः शरैः ॥ ३४ ॥
रणे विव्याध सप्तत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।

महाराज ! कृतवर्माने रणभूमिमें सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पङ्खवाले सत्तर बाणोंसे द्रुपदपुत्र शिखण्डीको घायल कर दिया ॥ ३४½ ॥

ततोऽस्य समरे बाणं भोजः प्रहरतां वरः ॥ ३५ ॥
जीवितान्तकरं घोरं व्यसृजत्त्वरयान्वितः ।

तत्पश्चात् प्रहार करनेवाले योद्धाओंमें श्रेष्ठ कृतवर्माने उसके ऊपर समराङ्गणमें बड़ी उतावलीके साथ एक भयंकर प्राणान्तकारी बाण छोड़ा ॥ ३५½ ॥

स तेनाभिहतो राजन् मूर्च्छामाशु समाविशत् ॥ ३६ ॥
ध्वजयष्टिं च सहसा शिश्रिये कश्मलावृतः ।

राजन् ! उस बाणसे आहत हो शिखण्डी तत्काल मूर्छित हो गया । उसने सहसा मोहाच्छन्न होकर ध्वजदण्डका सहारा ले लिया ॥ ३६½ ॥

अपोवाह रणात्तूर्णं सारथी रथिनां वरम् ॥ ३७ ॥
हार्दिक्यशरसंतप्तं निःश्वसन्तं पुनः पुनः ।

कृतवर्माके बाणोंसे संतप्त हो बारंबार लंबी साँस खींचते हुए रथियोंमें श्रेष्ठ शिखण्डीको उसका सारथि तुरंत रणभूमिसे बाहर हटा ले गया ॥ ३७½ ॥

पराजिते ततः शूरे द्रुपदस्यात्मजे प्रभो ।
व्यद्रवत् पाण्डवी सेना वध्यमाना समन्ततः ॥ ३८ ॥

प्रभो ! शूरवीर द्रुपदपुत्रके पराजित हो जानेपर सब ओरसे मारी जाती हुई पाण्डव-सेना भागने लगी ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुल-युद्धविषयक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २६ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ३८½ श्लोक हैं)

सप्तविंशोऽध्यायः

अर्जुनद्वारा राजा श्रुतंजय, सौश्रुति, चन्द्रदेव और सत्यसेन आदि महारथियोंका वध एवं संशप्तक-सेनाका संहार

संजय उवाच

श्वेताश्वोऽथ महाराज व्यधमत्तावकं बलम्।
यथा वायुः समासाद्य तूलराशिं समन्ततः॥ १॥

संजय कहते हैं—महाराज! एक ओर श्वेतवाहन अर्जुन आपकी सेनाको उसी प्रकार छिन्न-भिन्न कर रहे थे, जैसे वायु रूईके ढेरको पाकर उसे सब ओर बिखेर देती है॥

प्रत्युद्ययुस्त्रिगर्तास्तं शिबयः कौरवैः सह।
शाल्वाः संशप्तकाश्चैव नारायणबलं च तत्॥ २॥

उस समय उनका सामना करनेके लिये त्रिगर्त, शिबि, कौरवोंसहित शाल्व, संशप्तकगण तथा नारायणी-सेनाके सैनिक आगे बढ़े॥ २॥

सत्यसेनश्चन्द्रदेवो मित्रदेवः श्रुतंजयः।
सौश्रुतिश्चित्रसेनश्च मित्रवर्मा च भारत॥ ३॥
त्रिगर्तराजः समरे भ्रातृभिः परिवारितः।
पुत्रैश्चैव महेष्वासैर्नानाशस्त्रविशारदैः॥ ४॥

भरतनन्दन! सत्यसेन, चन्द्रदेव, मित्रदेव, श्रुतंजय, सौश्रुति, चित्रसेन तथा मित्रवर्मा—इन सात भाइयों तथा नाना प्रकारके शस्त्रोंके प्रहारमें कुशल महाधनुर्धर पुत्रोंसे घिरा हुआ त्रिगर्तराज सुशर्मा समराङ्गणमें उपस्थित हुआ॥ ३-४॥

ते सृजन्तः शरव्रातान् किरन्तोऽर्जुनमाहवे।
अभ्यवर्तन्त सहसा वार्योघा इव सागरम्॥ ५॥

वे सभी वीर युद्धस्थलमें अर्जुनपर बाणसमूहोंकी वर्षा करते हुए जैसे जलका प्रवाह समुद्रकी ओर जाता है, उसी प्रकार सहसा उनके सामने आ पहुँचे॥ ५॥

ते त्वर्जुनं समासाद्य योधाः शतसहस्रशः।
अगच्छन् विलयं सर्वे तार्क्ष्यं दृष्ट्वेव पन्नगाः॥ ६॥

परंतु जैसे गरुड़को देखते ही सर्प अपने प्राण खो देते हैं, उसी प्रकार वे सब-के-सब लाखों योद्धा अर्जुनके पास पहुँचते ही कालके गालमें चले गये॥ ६॥

ते हन्यमानाः समरे नाजहुः पाण्डवं रणे।
हन्यमाना महाराज शलभा इव पावकम्॥ ७॥

जैसे पतङ्ग जलते रहनेपर भी आगमें टूटे पड़ते हैं, उसी प्रकार रणभूमिमें मारे जानेपर भी वे समस्त योद्धा युद्धमें पाण्डुकुमार अर्जुनको छोड़कर भाग न सके॥ ७॥

सत्यसेनस्त्रिभिर्बाणैर्विव्याध युधि पाण्डवम्।
मित्रदेवस्त्रिषष्ट्या तु चन्द्रदेवस्तु सप्तभिः॥ ८॥
मित्रवर्मा त्रिसप्तत्या सौश्रुतिश्चापि सप्तभिः।
श्रुतंजयस्तु विंशत्या सुशर्मा नवभिः शरैः॥ ९॥

सत्यसेनने तीन, मित्रदेवने तिरसठ, चन्द्रदेवने सात, मित्रवर्माने तिहत्तर, सौश्रुतिने सात, श्रुतंजयने बीस तथा सुशर्माने नौ बाणोंसे युद्धस्थलमें पाण्डुपुत्र अर्जुनको बींध डाला॥

स विद्धो बहुभिः संख्ये प्रतिविव्याध तान् नृपान्।
सौश्रुतिं सप्तभिर्विद्ध्वा सत्यसेनं त्रिभिः शरैः॥ १०॥

इस प्रकार रणभूमिमें बहुसंख्यक योद्धाओंद्वारा घायल किये जानेपर बदलेमें अर्जुनने भी उन सभी नरेशोंको क्षत-विक्षत कर दिया। उन्होंने सौश्रुतिको सात बाणोंसे घायल करके सत्यसेनको तीन बाण मारे॥ १०॥

श्रुतंजयं च विंशत्या चन्द्रदेवं तथाष्टभिः।
मित्रदेवं शतेनैव श्रुतसेनं त्रिभिः शरैः॥ ११॥
नवभिर्मित्रवर्माणं सुशर्माणं तथाष्टभिः।

श्रुतंजयको बीस, चन्द्रदेवको आठ, मित्रदेवको सौ, श्रुतसेन (चित्रसेन) को तीन, मित्रवर्माको नौ तथा सुशर्माको आठ बाणोंसे घायल कर दिया॥ ११½॥

श्रुतंजयं च राजानं हत्वा तत्र शिलाशितैः॥ १२॥
सौश्रुतेः सशिरस्त्राणं शिरः कायादपाहरत्।
त्वरितश्चन्द्रदेवं च शरैर्निन्ये यमक्षयम्॥ १३॥

फिर सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए कई बाणोंसे राजा श्रुतंजयका वध करके सौश्रुतिके शिरस्त्राणसहित सिरको धड़से अलग कर दिया। फिर तुरंत ही चन्द्रदेवको भी अपने बाणोंद्वारा यमलोक पहुँचा दिया॥ १२-१३॥

तथेतरान् महाराज यतमानान् महारथान्।
पञ्चभिः पञ्चभिर्बाणैरेकैकं प्रत्यवारयत्॥ १४॥

महाराज! इसी प्रकार विजयके लिये प्रयत्नशील अन्य महारथियोंमेंसे प्रत्येकको पाँच-पाँच बाण मारकर रोक दिया॥

सत्यसेनस्तु संक्रुद्धस्तोमरं व्यसृजन्महत्।
समुद्दिश्य रणे कृष्णं सिंहनादं ननाद च॥ १५॥

तब सत्यसेनने अत्यन्त कुपित होकर रणभूमिमें श्रीकृष्णको लक्ष्य करके एक विशाल तोमरका प्रहार किया और सिंहके समान गर्जना की॥ १५॥

स निर्भिद्य भुजं सव्यं माधवस्य महात्मनः।
अयस्मयो हेमदण्डो जगाम धरणीं तदा॥ १६॥

सुवर्णमय दण्डवाला वह लोहनिर्मित तोमर महात्मा श्रीकृष्णकी बायीं भुजापर चोट करके तत्काल धरतीपर गिर पड़ा॥

माधवस्य तु विद्धस्य तोमरेण महारणे।
प्रतोदः प्रापतद्धस्ताद् रश्मयश्च विशाम्पते॥ १७॥

प्रजानाथ! उस महासमरमें तोमरसे घायल हुए श्रीकृष्णके हाथसे चाबुक और बागडोर गिर पड़ी॥ १७॥

वासुदेवं विभिन्नाङ्गं दृष्ट्वा पार्थो धनंजयः।

क्रोधमाहारयत्तीव्रं कृष्णं चेदमुवाच ह ॥ १८ ॥

श्रीकृष्णके शरीरमें घाव देखकर कुन्तीकुमार अर्जुनको बड़ा क्रोध हुआ। वे उनसे इस प्रकार बोले ॥ १८ ॥

प्रापयाश्वान् महाबाहो सत्यसेनं प्रति प्रभो।
यावदेनं शरैस्तीक्ष्णैर्नयामि यमसादनम् ॥ १९ ॥

'प्रभो! महाबाहो! आप घोड़ोंको सत्यसेनके निकट पहुँचाइये। मैं अपने तीखे बाणोंसे पहले इसीको यमलोक भेज दूँगा' ॥ १९ ॥

प्रतोदं गृह्य सोऽन्यत्तु रश्मीनपि यथा पुरा।
वाहयामास तानश्वान् सत्यसेनरथं प्रति ॥ २० ॥

तब भगवान् श्रीकृष्णने दूसरा चाबुक लेकर पूर्ववत् घोड़ोंकी बागडोर सँभाली और उन घोड़ोंको सत्यसेनके रथके समीप पहुँचा दिया ॥ २० ॥

विष्वक्सेनं तु निर्भिन्नं दृष्ट्वा पार्थो धनंजयः।
सत्यसेनं शरैस्तीक्ष्णैर्वारयित्वा महारथः ॥ २१ ॥
ततः सुनिशितैर्भल्लै राज्ञस्तस्य महच्छिरः।
कुण्डलोपचितं कायाच्चकर्त पृतनान्तरे ॥ २२ ॥

कुन्तीकुमार महारथी अर्जुनने श्रीकृष्णको घायल हुआ देख सत्यसेनको तीखे बाणोंसे रोककर तेज धारवाले भल्लोंसे सेनाके मध्यभागमें उस राजकुमारके कुण्डल-मण्डित महान् मस्तकको धड़से काट डाला ॥ २१-२२ ॥

तन्निकृत्य शितैर्बाणैर्मित्रवर्माणमाक्षिपत्।
वत्सदन्तेन तीक्ष्णेन सारथिं चास्य मारिष ॥ २३ ॥

मान्यवर! सत्यसेनको मारकर तीखे बाणोंद्वारा मित्रवर्माको और एक पैने वत्सदन्तसे उसके सारथिको भी मार गिराया॥

ततः शरशतैर्भूयः संशप्तकगणान् बली
पातयामास संक्रुद्धः शतशोऽथ सहस्रशः॥२४॥

तदनन्तर अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए बलवान् अर्जुनने पुनः हजारों और सैकड़ों संशप्तकगणोंको सैकड़ों बाणोंसे मारकर धरतीपर सुला दिया ॥ २४ ॥

ततो रजतपुङ्खेन राजञ्शीर्षं महात्मनः।
मित्रदेवस्य चिच्छेद क्षुरप्रेण महारथः ॥ २५ ॥

राजन्! फिर महारथी धनंजयने रजतमय पंखवाले क्षुरप्रसे महामना मित्रदेवके मस्तकको काट डाला ॥ २५ ॥

सुशर्माणं सुसंक्रुद्धो जत्रुदेशे समाहनत्।
ततः संशप्तकाः सर्वे परिवार्य धनंजयम् ॥ २६ ॥
शस्त्रौघैर्ममृदुः क्रुद्धा नादयन्तो दिशो दश।

साथ ही अत्यन्त कुपित होकर अर्जुनने सुशर्माके गलेकी हँसलीपर भी गहरी चोट पहुँचायी। फिर तो क्रोधमें भरे हुए सभी संशप्तक दसों दिशाओंको अपनी गर्जनासे प्रतिध्वनित करते हुए अर्जुनको चारों ओरसे घेरकर अपने अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा पीड़ा देने लगे ॥ २६½ ॥

अभ्यर्दितस्तु तैर्जिष्णुः शक्रतुल्यपराक्रमः ॥ २७ ॥
ऐन्द्रमस्त्रममेयात्मा प्रादुश्चक्रे महारथः।

उनसे पीड़ित होकर इन्द्रके तुल्य पराक्रमी तथा अमेय आत्मबलसे सम्पन्न महारथी अर्जुनने ऐन्द्रास्त्र प्रकट किया ॥

ततः शरसहस्राणि प्रादुरासन् विशाम्पते ॥ २८ ॥
ध्वजानां छिद्यमानानां कार्मुकाणां च मारिष।
रथानां सपताकानां तूणीराणां युगैः सह ॥ २९ ॥
अक्षाणामथ चक्राणां योक्त्राणां रश्मिभिः सह।
कूबराणां वरूथाणां पृषत्कानां च संयुगे ॥ ३० ॥
अश्वानां पततां चापि प्रासानामृष्टिभिः सह।
गदानां परिघानां च शक्तितोमरपट्टिशैः ॥ ३१ ॥
शतघ्नीनां सचक्राणां भुजानां चोरुभिः सह।
कण्ठसूत्राङ्गदानां च केयूराणां च मारिष ॥ ३२ ॥
हाराणामथ निष्काणां तनुत्राणां च भारत।
छत्राणां व्यजनानां च शिरसां मुकुटैः सह ॥ ३३ ॥
अश्रूयत महाञ्शब्दस्तत्र तत्र विशाम्पते।

प्रजानाथ! फिर तो वहाँ हजारों बाण प्रकट होने लगे। माननीय भरतवंशी प्रजापालक नरेश! उस समय कट-कटकर गिरनेवाले ध्वज, धनुष, रथ, पताका, तरकस, जूए, धुरे, पहिये, जोत, बागडोर, कूबर, वरूथ (रथका चर्ममय आवरण), बाण, घोड़े, प्रास, ऋष्टि, गदा, परिघ, शक्ति, तोमर, पट्टिश, चक्रयुक्त शतघ्नी, बाँह-जाँघ, कण्ठसूत्र, अङ्गद, केयूर, हार, निष्क, कवच, छत्र, व्यजन और मुकुटसहित मस्तकोंका महान् शब्द युद्धस्थलमें जहाँ-तहाँ सब ओर सुनायी देने लगा ॥ २८-३३½ ॥

सकुण्डलानि स्वक्षीणि पूर्णचन्द्रनिभानि च ॥ ३४ ॥
शिरांस्युर्व्यामदृश्यन्त ताराजालमिवाम्बरे।

पृथ्वीपर गिरे हुए कुण्डल और सुन्दर नेत्रोंसे युक्त पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मस्तक आकाशमें ताराओंके समूहकी भाँति दिखायी देते थे ॥ ३४½ ॥

सुस्रग्वीणि सुवासांसि चन्दनेनोक्षितानि च ॥ ३५ ॥
शरीराणि व्यदृश्यन्त निहतानां महीतले।

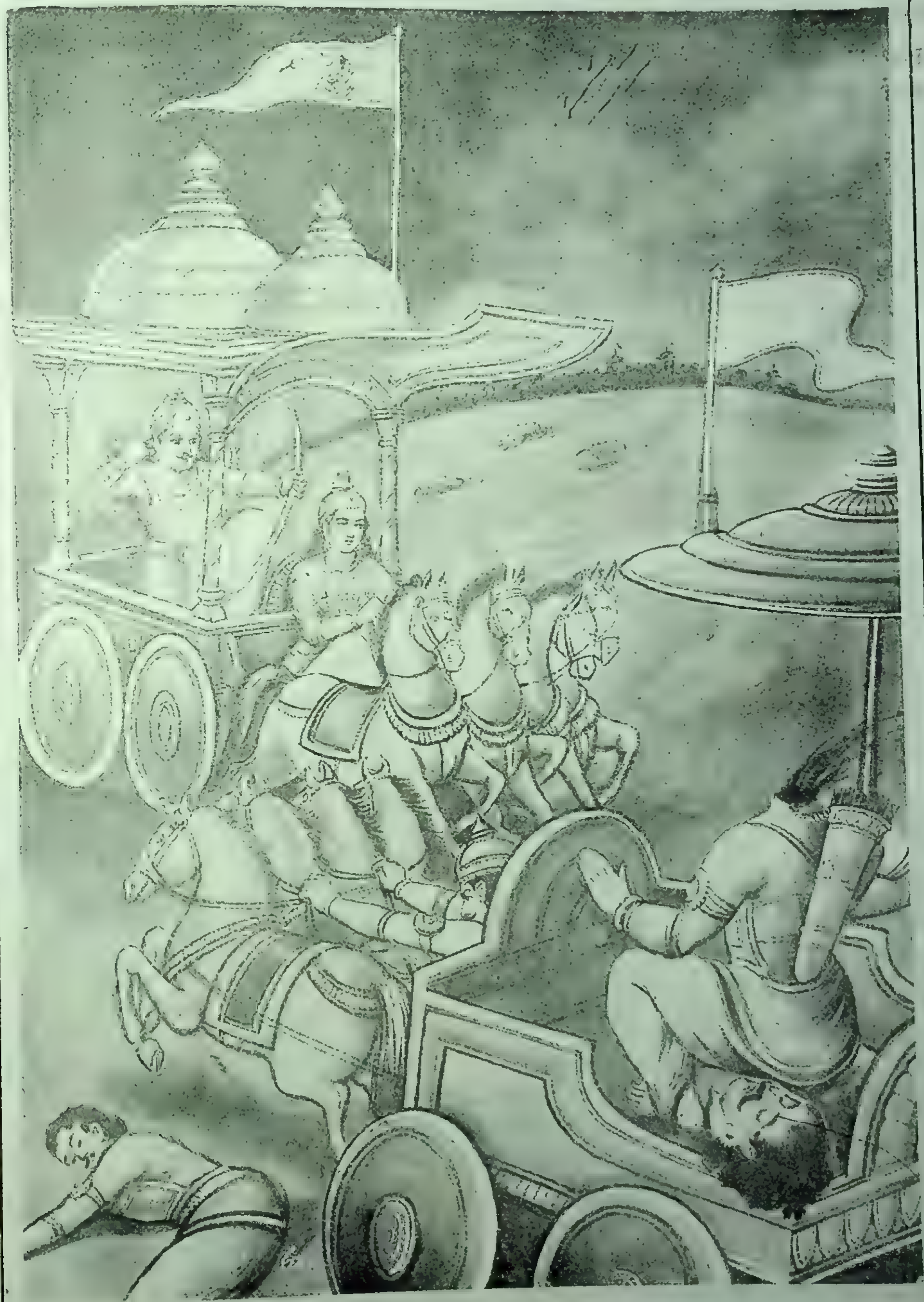
वहाँ मारे गये राजाओंके सुन्दर हारोंसे सुशोभित, उत्तम वस्त्रोंसे सम्पन्न तथा चन्दनसे चर्चित शरीर पृथ्वीपर पड़े देखे जाते थे ॥ ३५½ ॥

गन्धर्वनगराकारं घोरमायोधनं तदा ॥ ३६ ॥
निहतै राजपुत्रैश्च क्षत्रियैश्च महाबलैः।

उस समय वहाँ मारे गये राजकुमारों तथा महाबली क्षत्रियोंकी लाशोंसे वह युद्धस्थल गन्धर्वनगरके समान भयानक जान पड़ता था ॥ ३६½ ॥

हस्तिभिः पतितैश्चैव तुरङ्गैश्चाभवन्मही ॥ ३७ ॥
अगम्यरूपा समरे विशीर्णैरिव पर्वतैः।

समराङ्गणमें टूट-फूटकर गिरे हुए पर्वतोंके समान धरा-



अर्जुनके द्वारा मित्रसेनका शिरश्छेद

शायी हुए हाथियों और घोड़ोंके कारण वहाँकी भूमिपर चलना-फिरना असम्भव हो गया था ॥ ३७½ ॥

नासीच्चक्रपथस्तत्र पाण्डवस्य महात्मनः ॥ ३८ ॥
निघ्नतः शात्रवान् भल्लैर्हस्त्यश्वं चास्यतो महत् ।

अपने भल्लोंसे शत्रुसैनिकों तथा उनके हाथी-घोड़ेके महान् समुदायको मारते-गिराते हुए महामना पाण्डुकुमार अर्जुनके रथके पहियोंके लिये मार्ग नहीं मिलता था ॥ ३८½ ॥

आतङ्कादिव सीदन्ति रथचक्राणि मारिष ॥ ३९ ॥
चरतस्तस्य संग्रामे तस्मिँल्लोहितकर्दमे ।

मान्यवर ! उस संग्राममें रक्तकी कीच मच गयी थी। उसमें विचरते हुए अर्जुनके रथके पहिये मानो भयसे शिथिल होते जा रहे थे ॥ ३९½ ॥

सीदमानानि चक्राणि समूहुस्तुरगा भृशम् ॥ ४० ॥
श्रमेण महता युक्ता मनोमारुतरंहसः ।

मन और वायुके समान वेगशाली घोड़े भी वहाँ धँसते हुए पहियोंको बड़े परिश्रमसे खींच पाते थे ॥ ४०½ ॥

वध्यमानं तु तत् सैन्यं पाण्डुपुत्रेण धन्विना ॥ ४१ ॥
प्रायशो विमुखं सर्वं नावतिष्ठत भारत ।

धनुर्धर पाण्डुकुमारकी मार खाकर आपकी वह सारी सेना प्रायः पीठ दिखाकर भाग चली। वहाँ क्षणभरके लिये भी ठहर न सकी ॥ ४१½ ॥

ताञ्जित्वा समरे जिष्णुः संशप्तकगणान् बहून् ॥ ४२ ॥
विरराज तदा पार्थो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ ४३ ॥

उस समय समराङ्गणमें उन बहुसंख्यक संशप्तकगणोंको परास्त करके विजयी कुन्तीकुमार अर्जुन धूमरहित प्रज्वलित अग्निके समान शोभा पा रहे थे ॥ ४२-४३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संशप्तकजये सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संशप्तकोंकी पराजयविषयक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

युधिष्ठिर और दुर्योधनका युद्ध, दुर्योधनकी पराजय तथा उभयपक्षकी सेनाओंका अमर्यादित भयंकर संग्राम

संजय उवाच

युधिष्ठिरं महाराज विसृजन्तं शरान् बहून् ।
स्वयं दुर्योधनो राजा प्रत्यगृह्णादभीतवत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! बहुत-से बाणोंकी वर्षा करते हुए युधिष्ठिरका स्वयं राजा दुर्योधनने एक निर्भीक वीरकी भाँति सामना किया ॥ १ ॥

तमापतन्तं सहसा तव पुत्रं महारथम् ।
धर्मराजो द्रुतं विद्ध्वा तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २ ॥

सहसा आते हुए आपके महारथी पुत्रको धर्मराज युधिष्ठिरने तुरंत ही घायल करके कहा—'अरे ! खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ २ ॥

स तु तं प्रतिविव्याध नवभिर्निशितैः शरैः ।
सारथिं चास्य भल्लेन भृशं क्रुद्धोऽभ्यताडयत् ॥ ३ ॥

इससे दुर्योधनको बड़ा क्रोध हुआ। उसने युधिष्ठिरको नौ तीखे बाणोंसे बेधकर बदला चुकाया और उनके सारथिपर भी एक भल्लका प्रहार किया ॥ ३ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजन् स्वर्णपुङ्खाञ्छिलीमुखान् ।
दुर्योधनाय चिक्षेप त्रयोदश शिलाशितान् ॥ ४ ॥

राजन् ! तब युधिष्ठिरने सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले तेरह बाण दुर्योधनपर चलाये ॥ ४ ॥

चतुर्भिश्चतुरो वाहांस्तस्य हत्वा महारथः ।
पञ्चमेन शिरः कायात् सारथेश्च समाक्षिपत् ॥ ५ ॥

महारथी युधिष्ठिरने उनमेंसे चार बाणोंद्वारा दुर्योधनके चारों घोड़ोंको मारकर पाँचवेंसे उसके सारथिका भी मस्तक धड़से काट गिराया ॥ ५ ॥

षष्ठेन तु ध्वजं राज्ञः सप्तमेन तु कार्मुकम् ।
अष्टमेन तथा खड्गं पातयामास भूतले ॥ ६ ॥

फिर छठे बाणसे राजा दुर्योधनके ध्वजको, सातवेंसे उसके धनुषको और आठवेंसे उसकी तलवारको भी पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ६ ॥

पञ्चभिर्नृपतिं चापि धर्मराजोऽर्दयद् भृशम् ।

तदनन्तर पाँच बाणोंसे धर्मराजने राजा दुर्योधनको भी गहरी चोट पहुँचायी ॥ ६½ ॥

हताश्वात्तु रथात्तस्मादवप्लुत्य सुतस्तव ॥ ७ ॥
उत्तमं व्यसनं प्राप्तो भूमावेवावतिष्ठत ।

उस अश्वहीन रथसे कूदकर आपका पुत्र भारी संकटमें पड़नेपर भी वहाँ पृथ्वीपर ही खड़ा रहा (युद्ध छोड़कर भागा नहीं) ॥ ७½ ॥

तं तु कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा कर्णद्रौणिकृपादयः ॥ ८ ॥
अभ्यवर्तन्त सहसा परीप्सन्तो नराधिपम् ।

उसे संकटमें पड़ा देख कर्ण, अश्वत्थामा तथा कृपाचार्य आदि वीर अपने राजाकी रक्षा चाहते हुए सहसा युधिष्ठिरके सामने आ पहुँचे ॥ ८½ ॥

अथ पाण्डुसुताः सर्वे परिवार्य युधिष्ठिरम् ॥ ९ ॥
अन्वयुः समरे राजंस्ततो युद्धमवर्तत ।

राजन् ! तत्पश्चात् समस्त पाण्डव भी युधिष्ठिरको सब

ओरसे घेरकर उनका अनुसरण करने लगे; फिर तो दोनों दलोंमें भारी युद्ध छिड़ गया ॥ ९½ ॥

ततस्तूर्यसहस्राणि प्रावाद्यन्त महामृधे ॥ १० ॥
ततः किलकिलाशब्दाः प्रादुरासन् महीपते ।

भूपाल ! तदनन्तर उस महासमरमें सहस्रों बाजे बजने लगे और वहाँ किलकिलाहटकी आवाज गूँज उठी ॥ १०½ ॥

यत्राभ्यगच्छन् समरे पञ्चालाः कौरवैः सह ॥ ११ ॥
नरा नरैः समाजग्मुर्वारणा वरवारणैः ।
रथाश्च रथिभिः सार्धं हयाश्च हयसादिभिः ॥ १२ ॥

उस युद्धमें समस्त पाञ्चाल कौरवोंके साथ भिड़ गये । पैदल पैदलोंके, हाथी हाथियोंके, रथी रथियोंके और घुड़सवार घुड़सवारोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ ११-१२ ॥

द्वन्द्वान्यासन् महाराज प्रेक्षणीयानि संयुगे ।
विविधान्यप्यचिन्त्यानि शस्त्रवन्त्युत्तमानि च ॥ १३ ॥

महाराज ! उस रणभूमिमें होनेवाले नाना प्रकारके अचिन्तनीय, शस्त्रयुक्त तथा उत्तम द्वन्द्वयुद्ध देखने ही योग्य थे ॥ १३ ॥

ते शूराः समरे सर्वे चित्रं लघु च सुष्ठु च ।
अयुध्यन्त महावेगाः परस्परवधैषिणः ॥ १४ ॥

वे महान् वेगशाली समस्त शूरवीर समराङ्गणमें एक दूसरेके वधकी इच्छासे विचित्र, शीघ्रतापूर्ण तथा सुन्दर रीतिसे युद्ध करने लगे ॥ १४ ॥

अन्योन्यं समरे जघ्नुर्योधव्रतमनुष्ठिताः ।
न हि ते समरं चक्रुः पृष्ठतो वै कथञ्चन ॥ १५ ॥

वे वीर योद्धाके व्रतका पालन करते हुए युद्धस्थलमें एक दूसरेको मारते थे । उन्होंने किसी तरह भी युद्धमें पीठ नहीं दिखायी ॥ १५ ॥

मुहूर्तमेव तद् युद्धमासीन्मधुरदर्शनम् ।
तत उन्मत्तवद् राजन् निर्मर्यादमवर्तत ॥ १६ ॥

राजन् ! दो ही घड़ीतक वह युद्ध देखनेमें मधुर जान पड़ा । फिर तो वहाँ उन्मत्तके समान मर्यादाशून्य बर्ताव होने लगा ॥ १६ ॥

रथी नागं समासाद्य दारयन् निशितैः शरैः ।
प्रेषयामास कालाय शरैः संनतपर्वभिः ॥ १७ ॥

रथी हाथीका सामना करके झुकी हुई गाँठवाले तीखे बाणोंद्वारा उसे विदीर्ण करते हुए कालके गालमें भेजने लगे ॥

नागा हयान् समासाद्य विक्षिपन्तो बहून् रणे ।
दारयामासुरत्युग्रं तत्र तत्र तदा तदा ॥ १८ ॥

हाथी बहुत-से घोड़ोंको पकड़-पकड़कर रणभूमिमें इधर-उधर फेंकने और विदीर्ण करने लगे । उससे वहाँ उस समय बड़ा भयंकर दृश्य उपस्थित हो गया ॥ १८ ॥

हयारोहाश्च बहवः परिवार्य गजोत्तमान् ।
तलशब्दरवांश्चक्रुः सम्पतन्तस्ततस्ततः ॥ १९ ॥
धावमानांस्ततस्तांस्तु द्रवमाणान् महागजान् ।
पार्श्वतः पृष्ठतश्चैव निजघ्नुर्हयसादिनः ॥ २० ॥

बहुत-से घुड़सवार उत्तम गजराजोंको चारों ओरसे घेरकर इधर-उधर दौड़ने और ताली पीटने लगे । इससे जब वे विशालकाय हाथी दौड़ने और भागने लगते, तब वे घुड़सवार अगल-बगलसे और पीछेकी ओरसे उनपर बाणोंकी चोट करते थे ॥ १९-२० ॥

विद्राव्य च बहूनश्वान् नागा राजन् मदोत्कटाः ।
विषाणैश्चापरे जघ्नुर्ममृदुश्चापरे भृशम् ॥ २१ ॥

राजन् ! कितने ही मदोन्मत्त हाथी भी बहुत-से घोड़ोंको खदेड़कर उन्हें दाँतोंसे दबाकर मार डालते अथवा वेगपूर्वक पैरोंसे कुचल डालते थे ॥ २१ ॥

साश्वारोहांश्च तुरगान् विषाणैर्विव्यधू रुषा ।
अपरे चिक्षिपुर्वेगात् प्रगृह्यातिबलास्तदा ॥ २२ ॥

कितने ही हाथियोंने रोषमें भरकर सवारोंसहित घोड़ोंको अपने दाँतोंसे विदीर्ण कर डाला तथा कुछ अत्यन्त बलवान् गजराजोंने उन घोड़ोंको पकड़कर वेगपूर्वक दूर फेंक दिया ॥

पादातैराहता नागा विवरेषु समन्ततः ।
चक्रुरार्तस्वरं घोरं दुद्रुवुश्च दिशो दश ॥ २३ ॥

प्रहारका अवसर मिलनेपर पैदल सैनिक भी चारों ओरसे हाथियोंको गहरी चोट पहुँचाते और वे घोर आर्तनाद करते हुए सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर भाग जाते थे ॥ २३ ॥

पदातीनां तु सहसा प्रद्रुतानां महाहवे ।
उत्सृज्याभरणं तूर्णमवप्लुत्य रणाजिरे ॥ २४ ॥
निमित्तं मन्यमानास्तु परिणाम्य महागजाः ।
जगृहुर्बिभिदुश्चैव चित्राण्याभरणानि च ॥ २५ ॥

पैदल सैनिक युद्धस्थलमें अपने आभूषण त्यागकर तुरंत उछल-उछलकर बड़े वेगसे भागने लगे । उस समय सहसा भागते हुए उन पैदलोंके उन विचित्र आभूषणोंको अपने ऊपर प्रहार होनेमें निमित्त मानकर हाथी उन्हें सूँड़से उठा लेते और फिर दाँतोंसे दबाकर फोड़ डालते थे ॥ २४-२५ ॥

तांस्तु तत्र प्रसक्तान् वै परिवार्य पदातयः ।
हस्त्यारोहान् निजघ्नुस्ते महावेगा बलोत्कटाः॥ २६ ॥

इस प्रकार आभूषणोंमें उलझे हुए उन हाथियों और उनके सवारोंको चारों ओरसे घेरकर महान् वेगशाली तथा बलोन्मत्त पैदल योद्धा मार डालते थे ॥ २६ ॥

अपरे हस्तिभिर्हस्तैः खं विक्षिप्ता महाहवे ।
निपतन्तो विषाणाग्रैर्भृशं विद्धाः सुशिक्षितैः ॥ २७ ॥

कितने ही पैदल सैनिक उस महासमरमें सुशिक्षित हाथियोंकी सूँड़ोंसे आकाशमें फेंक दिये जाते और उधरसे गिरते समय उन हाथियोंके दन्ताग्रभागोंद्वारा अत्यन्त विदीर्ण कर दिये जाते थे ॥ २७ ॥

अपरे सहसा गृह्य विषाणैरेव सूदिताः ।
सेनान्तरं समासाद्य केचित् तत्र महागजैः ॥ २८ ॥
क्षुण्णगात्रा महाराज विक्षिप्य च पुनः पुनः ।
अपरे व्यजनानीव विभ्राम्य निहता मृधे ॥ २९ ॥

कितने ही योद्धा हाथियोंद्वारा पकड़े जाकर उनके दाँतोंसे ही मार डाले गये । महाराज ! बहुत-से विशालकाय गजराज सेनाके भीतर घुसकर कितने ही पैदलोंको सहसा पकड़कर उनके शरीरोंको बारंबार पटक-झटककर चूर-चूर कर देते और कितनोंको व्यजनोंके समान घुमाकर युद्धमें मार डालते थे ॥ २८-२९ ॥

पुरःसराश्च नागानामपरेषां विशाम्पते ।
शरीराण्यतिविद्धानि तत्र तत्र रणाजिरे ॥ ३० ॥

प्रजानाथ ! जो हाथियोंके आगे चलनेवाले पैदल थे, वे दूसरे पक्षके हाथियोंके शरीरोंको जहाँ-तहाँ रणभूमिमें अत्यन्त घायल कर देते थे ॥ ३० ॥

प्रतिमानेषु कुम्भेषु दन्तवेष्टेषु चापरे ।
निगृहीता भृशं नागाः प्रासतोमरशक्तिभिः ॥ ३१ ॥

कहीं-कहीं पैदल सैनिक प्रास, तोमर और शक्तिद्वारा शत्रुपक्षके हाथियोंके दोनों दाँतोंके बीचके स्थानमें, कुम्भस्थलमें और ओठोंके ऊपर प्रहार करके उन्हें अत्यन्त काबूमें कर लेते थे ॥ ३१ ॥

निगृह्य च गजाः केचित् पार्श्वस्थैर्भृशदारुणैः ।
रथाश्वसादिभिस्तत्र सम्भिन्ना न्यपतन् भुवि ॥ ३२ ॥

कितने ही हाथियोंको अवरुद्ध करके पार्श्वभागमें खड़े हुए अत्यन्त भयंकर रथी और घुड़सवार उन्हें बाणोंसे विदीर्ण कर डालते, जिससे वे हाथी वहीं पृथ्वीपर गिर जाते थे ॥३२॥

सहसा सादिनस्तत्र तोमरेण महामृधे ।
भूमावमृद्नन् वेगेन सचर्माणं पदातिनम् ॥ ३३ ॥

उस महासमरमें कितने ही हाथीसवार सहसा तोमरका प्रहार करके ढालसहित पैदल योद्धाको गिराकर उसे वेगपूर्वक धरतीपर रौंद डालते थे ॥ ३३ ॥

तथा सावरणान् कांश्चित्तत्र तत्र विशाम्पते ।
रथान् नागाः समासाद्य परिगृह्य च मारिष ॥ ३४ ॥
व्याक्षिपन् सहसा तत्र घोररूपे भयानके ।
नाराचैर्निहताश्चापि गजाः पेतुर्महाबलाः ॥ ३५ ॥
पर्वतस्येव शिखरं वज्ररुग्णं महीतले ।

माननीय नरेश ! उस घोर एवं भयानक युद्धमें कितने ही हाथी निकट आकर अपनी सूँड़ोंसे कुछ आवरणयुक्त रथोंको पकड़ लेते और उन्हें वेगपूर्वक खींचकर सहसा दूर फेंक देते थे । फिर वे महाबली हाथी भी नाराचोंसे मारे जाकर वज्रके तोड़े हुए पर्वत-शिखरकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ते थे ॥ ३४-३५½ ॥

योधा योधान् समासाद्य मुष्टिभिर्व्यहनन् युधि ॥ ३६ ॥
केशेष्वन्योन्यमाक्षिप्य चिक्षिपुर्बिभिदुश्च ह ।

बहुत-से पैदल योद्धा दूसरे योद्धाओंको निकट पाकर युद्धस्थलमें उनपर मुक्कोंसे प्रहार करने लगते थे । कितने ही एक दूसरेकी चुटिया पकड़कर परस्पर झटकते-फेंकते और एक दूसरेको घायल करते थे ॥ ३६½ ॥

उद्यम्य च भुजावन्यो निक्षिप्य च महीतले ॥ ३७ ॥
पदा चोरः समाक्रम्य स्फुरतोऽपाहरच्छिरः ।

दूसरा योद्धा अपनी दोनों भुजाओंको उठाकर उनके द्वारा शत्रुको पृथ्वीपर पटक देता और एक पैरसे उसकी छातीको दबाकर उसके छटपटाते रहनेपर भी उसका सिर काट लेता था ॥ ३७½ ॥

पततश्चापरो राजन् विजहारासिना शिरः ॥ ३८ ॥
जीवतश्च तथैवान्यः शस्त्रं काये न्यमज्जयत् ।

राजन् ! दूसरा सैनिक किसी गिरते हुए योद्धाका सिर अपनी तलवारसे काट लेता था और कोई जीवित शत्रुके ही शरीरमें अपना शस्त्र घुसेड़ देता था ॥ ३८½ ॥

मुष्टियुद्धं महच्चासीद् योधानां तत्र भारत ॥ ३९ ॥
तथा केशग्रहश्चोग्रो बाहुयुद्धं च भैरवम् ।

भारत ! वहाँ योद्धाओंमें बहुत बड़ा मुष्टियुद्ध हो रहा था । साथ ही भयंकर केशग्रहण और भयानक बाहुयुद्ध भी चालू था ॥ ३९½ ॥

समासक्तस्य चान्येन अविज्ञातस्तथापरः ॥ ४० ॥
जहार समरे प्राणान् नानाशस्त्रैरनेकधा ।

कोई-कोई योद्धा दूसरेके साथ उलझे हुए सैनिकसे स्वयं अपरिचित रहकर नाना प्रकारके अनेक अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा युद्धमें उसके प्राण हर लेता था ॥ ४०½ ॥

संसक्तेषु च योधेषु वर्तमाने च संकुले ॥ ४१ ॥
कबन्धान्युत्थितानि स्युः शतशोऽथ सहस्रशः ।

इस प्रकार जब सभी योद्धा युद्धमें लगे थे और तुमुल संग्राम चल रहा था, उस समय सैकड़ों और हजारों कबन्ध (धड़) उठ खड़े हुए थे ॥ ४१½ ॥

शोणितैः सिच्यमानानि शस्त्राणि कवचानि च ॥ ४२ ॥
महारागानुरक्तानि वस्त्राणीव चकाशिरे ।

खूनसे भीगे हुए शस्त्र और कवच गाढ़े रंगमें रंगे हुए वस्त्रोंके समान सुशोभित होते थे ॥ ४२½ ॥

एवमेतन्महद् युद्धं दारुणं शस्त्रसंकुलम् ॥ ४३ ॥
उन्मत्तगङ्गाप्रतिमं शब्देनापूरयज्जगत् ।

इस प्रकार अस्त्र-शस्त्रोंसे परिपूर्ण यह महाभयानक युद्ध बढ़ी हुई गङ्गाके समान जगत्को कोलाहलसे परिपूर्ण कर रहा था ॥ ४३½ ॥

नैव स्वे न परे राजन् विज्ञायन्ते शरातुराः ॥ ४४ ॥
योद्धव्यमिति युध्यन्ते राजानो जयगृद्धिनः ।

राजन्! बाणोंकी चोटसे व्याकुल हुए अपने और पराये योद्धा पहचानमें नहीं आते थे। विजयकी अभिलाषा रखनेवाले राजालोग 'युद्ध करना अपना कर्तव्य है' यह समझकर जूझ रहे थे ॥ ४४½ ॥

स्वान् स्वे जघ्नुर्महाराज परांश्चैव समागतान्॥ ४५ ॥
उभयोः सेनयोर्वीरैर्व्याकुलं समपद्यत ।

महाराज! सामने आये हुए अपने और शत्रुपक्षके योद्धाओंको भी अपने ही पक्षके लोग मार डालते थे। दोनों सेनाओंके वीर मर्यादाशून्य युद्धमें प्रवृत्त हो गये थे ॥ ४५½ ॥

रथैर्भग्नैर्महाराज वारणैश्च निपातितैः ॥ ४६ ॥
हयैश्च पतितैस्तत्र नरैश्च विनिपातितैः ।
अगम्यरूपा पृथिवी क्षणेन समपद्यत ॥ ४७ ॥

राजेन्द्र! टूटे हुए रथों, धराशायी हुए हाथियों, मरकर गिरे हुए घोड़ों और गिराये गये पैदल सैनिकोंसे क्षणभरमें यह पृथ्वी ऐसी हो गयी कि वहाँ चलना-फिरना असम्भव हो गया ॥ ४६-४७ ॥

क्षणेनासीन्महीपाल क्षतजौघप्रवर्तिनी ।
पञ्चालानहनत् कर्णस्त्रिगर्तांश्च धनंजयः ॥ ४८ ॥

भूपाल! क्षणभरमें वहाँ भूतलपर खूनकी नदी बह चली। कर्णने पञ्चालोंका और अर्जुनने त्रिगर्तोंका संहार कर डाला ॥ ४८ ॥

भीमसेनः कुरून् राजन् हस्त्यनीकं च सर्वशः ।
एवमेष क्षयो वृत्तः कुरुपाण्डवसेनयोः ।
अपराह्णे गते सूर्ये काङ्क्षतां विपुलं यशः ॥ ४९ ॥

राजन्! भीमसेनने कौरवों तथा आपकी गजसेनाको सर्वथा नष्ट कर दिया। इस प्रकार सूर्यदेवके अपराह्णकालमें जाते-जाते कौरव और पाण्डव दोनों सेनाओंमें महान् यशकी अभिलाषा रखनेवाले वीरोंका यह विनाश-कार्य सम्पन्न हुआ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें तुमुलयुद्धविषयक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

युधिष्ठिरके द्वारा दुर्योधनकी पराजय

धृतराष्ट्र उवाच

अतितीव्राणि दुःखानि दुःसहानि बहूनि च ।
त्वत्तोऽहं संजयाश्रौषं पुत्राणां चैव संक्षयम् ॥ १ ॥
यथा त्वं मे कथयसे तथा युद्धमवर्तत ।
न सन्ति सूत कौरव्या इति मे निश्चिता मतिः ॥ २ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय! तुमसे मैंने अबतक अत्यन्त तीव्र और दुःसह दुःख देनेवाली बहुत-सी घटनाएँ सुनी हैं। अपने पुत्रोंके विनाशकी बात भी सुन ली। सूत! जैसा तुम मुझसे कह रहे हो और जिस प्रकार वह युद्ध सम्पन्न हुआ, उसे देखते हुए मेरा यह दृढ़ निश्चय हो रहा है कि अब कुरुवंशी जीवित नहीं रहे ॥ १-२ ॥

दुर्योधनश्च विरथः कृतस्तत्र महारथः ।
धर्मपुत्रः कथं चक्रे तस्य वा नृपतिः कथम् ॥ ३ ॥

सुनता हूँ महारथी दुर्योधन भी वहाँ रथहीन कर दिया गया। धर्मपुत्र युधिष्ठिरने उसके साथ किस प्रकार युद्ध किया अथवा राजा दुर्योधनने युधिष्ठिरके प्रति कैसा बर्ताव किया? ॥ ३ ॥

अपराह्णे कथं युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ।
तन्ममाचक्ष्व तत्त्वेन कुशलो ह्यसि संजय ॥ ४ ॥

संजय! अपराह्णकालमें किस प्रकार वह रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ था? यह मुझे ठीक-ठीक बताओ; क्योंकि तुम उसका वर्णन करनेमें कुशल हो ॥ ४ ॥

संजय उवाच

संसक्तेषु तु सैन्येषु वध्यमानेषु भागशः ।
रथमन्यं समास्थाय पुत्रस्तव विशाम्पते ॥ ५ ॥
क्रोधेन महता युक्तः सविषो भुजगो यथा ।

संजयने कहा—प्रजानाथ! जब सारी सेनाएँ विभिन्न भागोंमें बँटकर जूझने और मरने लगीं, तब आपका पुत्र दुर्योधन दूसरे रथपर बैठकर विषधर सर्पके समान अत्यन्त कुपित हो उठा ॥ ५½ ॥

(सर्वसैन्यमुदीक्ष्यैव क्रोधादुद्वृत्तलोचनः ।
दृष्ट्वा धर्मसुतं चापि सैन्यमध्ये व्यवस्थितम् ॥
श्रिया ज्वलन्तं कौन्तेयं यथा वज्रधरं युधि ।)
दुर्योधनः समालक्ष्य धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ ६ ॥
प्रोवाच सूतं त्वरितो याहि याहीति भारत ।
तत्र मां प्रापय क्षिप्रं सारथे यत्र पाण्डवः ॥ ७ ॥
ध्रियमाणातपत्रेण राजा राजति दंशितः ।

सारी सेनाओंपर दृष्टिपात करके क्रोधसे उसकी आँखें घूमने लगीं। उस समय युद्धस्थलमें धर्मपुत्र कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर वज्रधारी इन्द्रके समान अपनी दिव्य कान्तिसे प्रकाशित होते हुए सेनाके बीचमें खड़े थे। भारत! उन धर्मराज युधिष्ठिरको देखकर दुर्योधनने तुरंत अपने सारथिसे कहा—'सारथे! चलो, चलो, जहाँ पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर कवच बाँध-

कर छत्र धारण किये सुशोभित हो रहे हैं, वहाँ मुझे शीघ्र पहुँचा दो' ॥ ६-७½ ॥

स सूतश्चोदितो राज्ञा राज्ञः स्यन्दनमुत्तमम् ॥ ८ ॥
युधिष्ठिरस्याभिमुखं प्रेषयामास संयुगे ।

राजा दुर्योधनसे इस प्रकार प्रेरित होकर सारथिने उस उत्तम रथको राजा युधिष्ठिरके सामने बढ़ाया ॥ ८½ ॥

ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धः प्रभिन्न इव कुञ्जरः ॥ ९ ॥
सारथिं चोदयामास याहि यत्र सुयोधनः ।

तब मदस्रावी हाथीके समान कुपित हुए राजा युधिष्ठिरने भी अपने सारथिको आज्ञा दी, 'जहाँ दुर्योधन है, वहीं चलो' ॥ ९½ ॥

तौ समाजग्मतुर्वीरौ भ्रातरौ रथसत्तमौ ॥ १० ॥
समेत्य च महावीरौ संरब्धौ युद्धदुर्मदौ ।
ववर्षतुर्महेष्वासौ शरैरन्योन्यमाहवे ॥ ११ ॥

इस प्रकार वे महाधनुर्धर, महावीर और महारथी दोनों रणदुर्मद बन्धु एक दूसरेके सामने आ गये और क्रोधपूर्वक आपसमें भिड़कर युद्धस्थलमें परस्पर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १०-११ ॥

ततो दुर्योधनो राजा धर्मशीलस्य मारिष ।
शिलाशितेन भल्लेन धनुश्चिच्छेद संयुगे ॥ १२ ॥

मान्यवर ! तदनन्तर युद्धस्थलमें राजा दुर्योधनने सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए भल्लसे धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरका धनुष काट दिया ॥ १२ ॥

तं नामृष्यत संक्रुद्धो ह्यवमानं युधिष्ठिरः ।
अपविध्य धनुश्छिन्नं क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ १३ ॥
अन्यत् कार्मुकमादाय धर्मपुत्रश्चमूमुखे ।
दुर्योधनस्य चिच्छेद ध्वजं कार्मुकमेव च ॥ १४ ॥

राजा युधिष्ठिर उस अपमानको सहन न कर सके। उनका क्रोध बहुत बढ़ गया। उनकी आँखें रोषसे लाल हो गयीं। उन्होंने उस कटे हुए धनुषको फेंककर दूसरा हाथमें ले लिया। फिर उन धर्मपुत्रने सेनाके मुहानेपर दुर्योधनके ध्वज और धनुषको भी काट डाला ॥

अथान्यद् धनुरादाय प्राविध्यत युधिष्ठिरम् ।
तावन्योन्यं सुसंक्रुद्धौ शस्त्रवर्षाण्यमुञ्चताम् ॥ १५ ॥

तत्पश्चात् दुर्योधनने दूसरा धनुष लेकर युधिष्ठिरको बींध डाला। वे दोनों वीर अत्यन्त क्रोधमें भरकर एक दूसरेपर अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे ॥ १५ ॥

सिंहाविव सुसंरब्धौ परस्परजिगीषया ।
जघ्नतुस्तौ रणेऽन्योन्यं नर्दमानौ वृषाविव ॥ १६ ॥

परस्पर विजयकी इच्छासे रोषमें भरे हुए दो सिंहोंके समान दहाड़ते अथवा दो साँड़ोंके समान गरजते हुए वे रणभूमिमें एक दूसरेपर चोट करते थे ॥ १६ ॥

अन्तरं मार्गमाणौ च चेरतुस्तौ महारथौ ।
ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैस्तौ तु कृतव्रणौ ॥ १७ ॥
विरेजतुर्महाराज किंशुकाविव पुष्पितौ ।

वे दोनों महारथी एक दूसरेका अन्तर (प्रहार करनेका अवसर) ढूँढ़ते हुए रणभूमिमें विचर रहे थे। महाराज ! धनुषको पूर्णतः खींचकर छोड़े गये बाणोंद्वारा वे दोनों वीर क्षत-विक्षत होकर फूले हुए दो पलाश वृक्षोंके समान शोभा पा रहे थे ॥ १७½ ॥

ततो राजन् विमुञ्चन्तौ सिंहनादान् मुहुर्मुहुः ॥ १८ ॥
तलयोश्च तथा शब्दान् धनुषश्च महाहवे ।
शङ्खशब्दवरांश्चैव चक्रतुस्तौ नरेश्वरौ ॥ १९ ॥

राजन् ! तब वे दोनों नरेश बारंबार सिंहनाद करते हुए उस महासमरमें तालियाँ बजाने, धनुषकी टंकार करने और उत्तम शङ्खनाद फैलाने लगे ॥ १८-१९ ॥

अन्योन्यं तौ महाराज पीडयाञ्चक्रतुर्भृशम् ।
ततो युधिष्ठिरो राजा पुत्रं तव शरैस्त्रिभिः ॥ २० ॥
आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रवेगैर्दुरासदैः ।

महाराज ! वे दोनों एक दूसरेको अत्यन्त पीड़ा दे रहे थे। तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने वज्रके समान वेगशाली एवं दुर्जय तीन बाणोंद्वारा आपके पुत्रकी छातीमें क्रोधपूर्वक प्रहार किया ॥ २०½ ॥

प्रतिविव्याध तं तूर्णं तव पुत्रो महीपतिः ॥ २१ ॥
पञ्चभिर्निशितैर्बाणैः स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।

आपके पुत्र राजा दुर्योधनने भी शिलापर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले पाँच पैने बाणोंद्वारा युधिष्ठिरको घायल करके तुरंत बदला चुकाया ॥ २१½ ॥

ततो दुर्योधनो राजा शक्तिं चिक्षेप भारत ॥ २२ ॥
सर्वपारशवीं तीक्ष्णां महोल्काप्रतिमां तदा ।

भारत ! इसके बाद राजा दुर्योधनने सम्पूर्णतः लोहेकी बनी हुई एक तीखी शक्ति चलायी, जो उस समय बड़ी भारी उल्काके समान प्रतीत हो रही थी ॥ २२½ ॥

तामापतन्तीं सहसा धर्मराजः शितैः शरैः ॥ २३ ॥
त्रिभिश्चिच्छेद सहसा तं च विव्याध पञ्चभिः ।

सहसा अपने ऊपर आती हुई उस शक्तिको धर्मराज युधिष्ठिरने तीन तीखे बाणोंसे तत्काल काट डाला और दुर्योधनको भी पाँच बाणोंसे घायल कर दिया ॥ २३½ ॥

निपपात ततः साथ स्वर्णदण्डा महास्वना ॥ २४ ॥
निपतन्ती महोल्केव व्यराजच्छिखिसंनिभा ।

सुवर्णमय दण्डवाली वह शक्ति आकाशसे गिरती हुई बड़ी भारी उल्काके समान महान् शब्दके साथ गिर पड़ी। उस समय वह अग्निके तुल्य प्रकाशित हो रही थी ॥ २४½ ॥

शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा पुत्रस्तव विशाम्पते ॥ २५ ॥

नवभिर्निशितैर्भल्लैर्निजघान युधिष्ठिरम् ।

प्रजानाथ ! उस शक्तिको नष्ट हुई देख आपके पुत्रने नौ तीखे भल्लोंसे युधिष्ठिरको गहरी चोट पहुँचायी ॥२५½॥

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुतापनः ॥ २६ ॥
दुर्योधनं समुद्दिश्य बाणं जग्राह सत्वरः ।
समाधत्त च तं बाणं धनुर्मध्ये महाबलः ॥ २७ ॥

बलवान् शत्रुके द्वारा अत्यन्त घायल किये जानेपर शत्रुओंको संताप देनेवाले महाबली युधिष्ठिरने दुर्योधनको लक्ष्य करके एक बाण हाथमें लिया और उसे धनुषके मध्यभागमें रखा ॥ २६-२७ ॥

चिक्षेप च महाराज ततः क्रुद्धः पराक्रमी ।
स तु बाणः समासाद्य तव पुत्रं महारथम् ॥ २८ ॥
व्यामोहयत राजानं धरणीं च ददार ह ।

महाराज ! तत्पश्चात् पराक्रमी युधिष्ठिरने उस बाणको क्रोधपूर्वक चला दिया । उस बाणने आपके महारथी पुत्र दुर्योधनको घायल करके उसे मूर्च्छित कर दिया और पृथ्वीको भी विदीर्ण कर डाला ॥ २८½ ॥

ततो दुर्योधनः क्रुद्धो गदामुद्यम्य वेगितः ॥ २९ ॥
विधित्सुः कलहस्यान्तं धर्मराजमुपाद्रवत् ।

उसके बाद क्रोधमें भरे हुए दुर्योधनने वेगपूर्वक गदा उठाकर कलहका अन्त कर देनेकी इच्छासे धर्मराज युधिष्ठिरपर आक्रमण किया ॥ २९½ ॥

तमुद्यतगदं दृष्ट्वा दण्डहस्तमिवान्तकम् ॥ ३० ॥
धर्मराजो महाशक्तिं प्राहिणोत् तव सूनवे ।
दीप्यमानां महावेगां महोल्कां ज्वलितामिव ॥ ३१ ॥

दण्डधारी यमराजके समान उसे गदा उठाये देख धर्मराजने आपके उस पुत्रपर अत्यन्त वेगशालिनी महाशक्तिका प्रहार किया, जो प्रज्वलित हुई बड़ी भारी उल्काके समान देदीप्यमान हो रही थी ॥ ३०-३१ ॥

रथस्थः स तया विद्धो वर्म भित्त्वा स्तनान्तरे ।
भृशं संविग्नहृदयः पपात च मुमोह च ॥ ३२ ॥

रथपर बैठे हुए ही दुर्योधनका कवच फाड़कर वह शक्ति उसकी छातीमें चुभ गयी । इससे अत्यन्त उद्विग्न-चित्त होकर दुर्योधन गिरा और मूर्छित हो गया ॥ ३२ ॥

भीमस्तमाह च ततः प्रतिज्ञामनुचिन्तयन् ।
नायं वध्यस्तव नृप इत्युक्तः स न्यवर्तत ॥ ३३ ॥

उस समय भीमसेनने अपनी प्रतिज्ञाका विचार करते हुए युधिष्ठिरसे कहा—'महाराज ! यह राजा दुर्योधन आपका वध्य नहीं है ।' उनके ऐसा कहनेपर राजा युधिष्ठिर उसके वधसे निवृत्त हो गये ॥ ३३ ॥

ततस्त्वरितमागम्य कृतवर्मा तवात्मजम् ।
प्रत्यपद्यत राजानं निमग्नं व्यसनार्णवे ॥ ३४ ॥

तब कृतवर्मा विपत्तिके समुद्रमें डूबे हुए आपके पुत्र राजा दुर्योधनके पास तुरंत आकर उसकी रक्षाके लिये उद्यत हो गया ॥ ३४ ॥

गदामादाय भीमोऽपि हेमपट्टपरिष्कृताम् ।
अभिदुद्राव वेगेन कृतवर्माणमाहवे ॥ ३५ ॥

यह देख भीमसेन भी सुवर्णपत्रजटित गदा हाथमें लेकर युद्धस्थलमें बड़े वेगसे कृतवर्मापर टूट पड़े ॥ ३५ ॥

एवं तदभवद् युद्धं त्वदीयानां परैः सह ।
अपराह्णे महाराज काङ्क्षतां विजयं युधि ॥ ३६ ॥

महाराज ! इस प्रकार अपराह्णके समय रणक्षेत्रमें विजय चाहनेवाले आपके योद्धाओंका शत्रुओंके साथ भीषण युद्ध होने लगा ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें तुमुलयुद्धविषयक उन्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः

सात्यकि और कर्णका युद्ध तथा अर्जुनके द्वारा कौरव-सेनाका संहार और पाण्डवोंकी विजय

संजय उवाच

ततः कर्णं पुरस्कृत्य त्वदीया युद्धदुर्मदाः ।
पुनरावृत्य संग्रामं चक्रुर्देवासुरोपमम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर आपके रण-दुर्मद योद्धा कर्णको आगे करके पुनः लौटकर देवताओं और असुरोंके समान संग्राम करने लगे ॥ १ ॥

द्विरदनररथाश्वशङ्खशब्दैः
परिहृषिता विविधैश्च शस्त्रपातैः ।
द्विरदरथपदातिसादिसंघाः
परिकुपिताभिमुखाः प्रजह्निरे ते ॥ २ ॥

हाथी, मनुष्य, रथ, घोड़ों और शङ्खके शब्दोंसे अत्यन्त हर्ष और उत्साहमें भरे हाथीसवार, रथी, पैदल और घुड़सवारोंके समुदाय क्रोधपूर्वक सामना करते हुए नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करके एक दूसरेको मारने लगे ॥ २ ॥

शितपरश्वधसासिपट्टिशै-
रिषुभिरनेकविधैश्च सूदिताः ।
द्विरदरथहया महाहवे
वरपुरुषैः पुरुषाश्च वाहनैः ॥ ३ ॥

उस महायुद्धमें श्रेष्ठ वीर पुरुषोंने वाहनों तथा तीखे

फरसों, तलवारों, पट्टिशों और अनेक प्रकारके बाणोंद्वारा सवारोंसहित हाथियों, रथों, घोड़ों एवं पैदल मनुष्योंका संहार कर डाला ॥ ३ ॥

कमलदिनकरेन्दुसंनिभैः
सितदशनैः सुमुखाक्षिनासिकैः ।
रुचिरमुकुटकुण्डलैर्मही
पुरुषशिरोभिरुपस्तृता बभौ ॥ ४ ॥

उस समय नरमुण्डोंसे ढकी हुई रणभूमिकी अद्भुत शोभा हो रही थी। वीरोंके वे कटे हुए मस्तक कमल, सूर्य और चन्द्रमाके समान कान्तिमान् थे। उनके सफेद दाँत चमक रहे थे। उनके मुख, नेत्र और नासिकाएँ भी बड़ी सुन्दर थीं और वे मनोहर मुकुट तथा कुण्डलोंसे मण्डित थे ॥ ४ ॥

परिघमुसलशक्तितोमरै-
र्नखरभुशुण्डिगदाशतैर्हताः ।
द्विरदनरहयाः सहस्रशो
रुधिरनदीप्रवहास्तदाभवन् ॥ ५ ॥

उस समय परिघ, मुसल, शक्ति, तोमर, नखर, भुशुण्डी और गदाओंकी सौ-सौ चोटें खाकर हजारों हाथी, मनुष्य और घोड़े खूनकी नदी बहाने लगे ॥ ५ ॥

प्रहतरथनराश्वकुञ्जरं
प्रतिभयदर्शनमुल्बणव्रणम् ।
तदहितहतमाबभौ बलं
पितृपतिराष्ट्रमिव प्रजाक्षये ॥ ६ ॥

नष्ट हुए रथ, मनुष्य, घोड़े और हाथियोंसे भरी एवं शत्रुओंकी मारी हुई वह सेना गहरे आघातोंसे युक्त हो प्रलयकालमें यमराजके राज्यकी भाँति बड़ी भयंकर दिखायी देती थी ॥ ६ ॥

अथ तव नरदेव सैनिका-
स्तव च सुताः सुरसूनुसंनिभाः ।
अमितबलपुरःसरा रणे
कुरुवृषभाः शिनिपौत्रमभ्ययुः ॥ ७ ॥

नरदेव ! तदनन्तर आपके सैनिक तथा देवकुमारोंके समान तेजस्वी कुरुकुलभूषण आपके पुत्र असंख्य सेना साथ लेकर रणभूमिमें शिनिपौत्र सात्यकिपर चढ़ आये ॥ ७ ॥

तदतिरुधिरभीममाबभौ
पुरुषवराश्वरथद्विपाकुलम् ।
लवणजलसमुद्धतस्वनं
बलमसुरामरसैन्यसप्रभम् ॥ ८ ॥

पैदल मनुष्यों, श्रेष्ठ घोड़ों, रथों और हाथियोंसे भरी और खारे पानीके समुद्रके समान भयंकर गर्जना करनेवाली वह सेना अत्यन्त रक्तरंजित होकर देवताओं और असुरोंकी सेनाके समान भयानक प्रतीत होती थी ॥ ८ ॥

सुरपतिसमविक्रमस्तत-
स्त्रिदशवरावरजोपमं युधि ।
दिनकरकिरणप्रभैः पृषत्कै
रवितनयोऽभ्यहनच्छिनिप्रवीरम् ॥ ९ ॥

उस समय देवराज इन्द्रके समान पराक्रमी सूर्यपुत्र कर्णने युद्धस्थलमें इन्द्रके छोटे भाई उपेन्द्रके समान शक्तिशाली शिनिवंशके प्रमुख वीर सात्यकिको सूर्यकी किरणोंके समान तेजस्वी बाणोंद्वारा घायल कर दिया ॥ ९ ॥

तमपि सरथवाजिसारथिं
शिनिवृषभो विविधैः शरैस्त्वरन् ।
भुजगविषसमप्रभै रणे
पुरुषवरं समवास्तृणोत् तदा ॥ १० ॥

तब शिनिवंशशिरोमणि सात्यकिने बड़ी उतावलीके साथ विषधर सर्पोंके समान विषैले नाना प्रकारके बाणोंद्वारा रथ, घोड़े और सारथिसहित नरश्रेष्ठ कर्णको भी आच्छादित कर दिया ॥ १० ॥

शिनिवृषभशरैर्निपीडितं
तव सुहृदो वसुषेणमभ्ययुः ।
त्वरितमतिरथा रथर्षभं
द्विरदरथाश्वपदातिभिः सह ॥ ११ ॥

उस समय आपके हितैषी सुहृद् अतिरथी वीर वहाँ शिनिवंशशिरोमणि सात्यकिके शरोंसे अत्यन्त पीड़ित हुए महारथी कर्णके पास हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंकी चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर तुरंत आ पहुँचे ॥ ११ ॥

तदुदधिनिभमाद्रवद् बलं
त्वरिततरैः समभिद्रुतं परैः ।
द्रुपदसुतमुखैस्तदाभवत्
पुरुषरथाश्वगजक्षयो महान् ॥ १२ ॥

तत्पश्चात् धृष्टद्युम्न आदि शीघ्रकारी शत्रुओंने आपकी समुद्र-सदृश विशाल वाहिनीपर आक्रमण किया और आपकी सेना भी शत्रुओंकी ओर दौड़ी। फिर तो वहाँ मनुष्यों, रथों, घोड़ों और हाथियोंका महान् संहार होने लगा ॥ १२ ॥

अथ पुरुषवरौ कृताह्निकौ
भवमभिपूज्य यथाविधि प्रभुम् ।
अरिवधकृतनिश्चयौ द्रुतं
तव बलमर्जुनकेशवौ सृतौ ॥ १३ ॥

तदनन्तर अपराह्नकालके कृत्य समाप्त करके विधिपूर्वक भगवान् शङ्करकी पूजा करनेके पश्चात् नरश्रेष्ठ अर्जुन और श्रीकृष्ण शत्रुओंके वधका निश्चय करके तुरंत आपकी सेनापर चढ़ आये ॥ १३ ॥

जलदनिनदनिःस्वनं रथं
पवनविधूतपताककेतनम् ।

सितहयमुपयान्तमन्तिकं
हतमनसो ददृशुस्तदारयः ॥ १४ ॥

अर्जुनके रथसे मेघकी गर्जनाके समान गम्भीर ध्वनि हो रही थी, पवनकी प्रेरणा पाकर उसकी ऊँची पताका फहरा रही थी और उसमें श्वेत घोड़े जुते हुए थे। उस समय शत्रुओंने उत्साहशून्य हृदयसे उस रथको समीप आते देखा ॥ १४ ॥

अथ विस्फार्य गाण्डीवं रथे नृत्यन्निवार्जुनः।
शरसम्बाधमकरोत् खं दिशः प्रदिशस्तथा ॥ १५ ॥

इसके बाद रथपर नृत्य करते हुए-से अर्जुनने गाण्डीव धनुषको फैलाकर आकाश, दिशा और विदिशाओंको बाणोंसे भर दिया ॥ १५ ॥

रथान् विमानप्रतिमान् मज्जयन् सायुधध्वजान्।
ससारथींस्तदा बाणैरभ्राणीवानिलोऽवधीत् ॥ १६ ॥

जैसे वायु मेघोंकी घटाको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार उस समय अर्जुनने अपने बाणोंद्वारा विमान-जैसे रथोंको आयुध, ध्वज और सारथियोंसहित नष्ट कर दिया ॥ १६ ॥

गजान् गजप्रयन्तॄंश्च वैजयन्त्यायुधध्वजान्।
सादिनोऽश्वांश्च पत्तींश्च शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ १७ ॥

उन्होंने अपने तीखे बाणोंसे पताका, ध्वज और आयुधोंसहित गजों एवं गजारोहियोंको, घोड़ों और घुड़सवारोंको तथा पैदल मनुष्योंको भी यमलोक भेज दिया ॥

तमन्तकमिव क्रुद्धमनिवार्यं महारथम्।
दुर्योधनोऽभ्ययादेको निघ्नन् बाणैरजिह्मगैः ॥ १८ ॥

इस प्रकार क्रोधमें भरे हुए यमराजके समान अबाध गतिवाले महारथी अर्जुनपर सीधे जानेवाले बाणोंसे प्रहार करता हुआ अकेला दुर्योधन उनका सामना करनेके लिये गया ॥ १८ ॥

तस्यार्जुनो धनुः सूतमश्वान् केतुं च सायकैः।
हत्वा सप्तभिरेकेन छत्रं चिच्छेद पत्त्रिणा ॥ १९ ॥

अर्जुनने सात बाणोंसे दुर्योधनके धनुष, सारथि, घोड़ों और ध्वजको नष्ट करके एक बाणसे उसका छत्र भी काट डाला ॥ १९ ॥

नवमं च समाधाय व्यसृजत् प्राणघातिनम्।
दुर्योधनायेषुवरं तं द्रौणिः सप्तधाच्छिनत् ॥ २० ॥

फिर नवें प्राणघातक बाणको धनुषपर रखकर उन्होंने दुर्योधनकी ओर चला दिया; परंतु अश्वत्थामाने उस उत्तम बाणके सात टुकड़े कर डाले ॥ २० ॥

ततो द्रौणेर्धनुश्छित्त्वा हत्वा चाश्वरथाञ्शरैः।
कृपस्यापि तदत्युग्रं धनुश्चिच्छेद पाण्डवः ॥ २१ ॥

तब पाण्डुकुमार अर्जुनने अश्वत्थामाका धनुष काटकर उसके रथ और घोड़ोंको नष्ट करके अपने बाणोंद्वारा कृपाचार्यके अत्यन्त भयंकर धनुषको भी खण्डित कर दिया ॥ २१ ॥

हार्दिक्यस्य धनुश्छित्त्वा
ध्वजं चाश्वांस्तदावधीत्।
दुःशासनस्येष्वसनं
छित्त्वा राधेयमभ्ययात् ॥ २२ ॥

इसके बाद उन्होंने कृतवर्माका धनुष काटकर उसके ध्वज और घोड़ोंको भी तत्काल नष्ट कर दिया। फिर दुःशासनके धनुषके टुकड़े-टुकड़े करके राधापुत्र कर्णपर आक्रमण किया ॥ २२ ॥

अथ सात्यकिमुत्सृज्य
त्वरन् कर्णोऽर्जुनं त्रिभिः।
विद्ध्वा विव्याध विंशत्या
कृष्णं पार्थं पुनः पुनः ॥ २३ ॥

तदनन्तर कर्णने सात्यकिको छोड़कर अर्जुनको तीन बाणोंसे बींध डाला। फिर बीस बाण मारकर श्रीकृष्णको भी घायल कर दिया। इस प्रकार वह दोनोंको बारंबार चोट पहुँचाने लगा ॥ २३ ॥

न ग्लानिरासीत् कर्णस्य
क्षिपतः सायकान् बहून्।
रणे विनिघ्नतः शत्रून्
क्रुद्धस्येव शतक्रतोः ॥ २४ ॥

उस समय कर्ण क्रोधमें भरे हुए इन्द्रके समान रणभूमिमें बहुत-से बाणोंकी वर्षा करके शत्रुओंका संहार कर रहा था; परंतु उसे इस कार्यमें तनिक भी क्लेश अथवा थकावटका अनुभव नहीं होता था ॥ २४ ॥

अथ सात्यकिरागत्य कर्णं विद्ध्वा शितैः शरैः।
नवत्या नवभिश्चोग्रैः शतेन पुनरार्पयत् ॥ २५ ॥

फिर सात्यकिने भी लौटकर कर्णको तीखे बाणोंसे घायल करके पुनः उसे एक सौ निन्यानबे भयंकर बाण मारे ॥

ततः प्रवीराः पार्थानां सर्वे कर्णमपीडयन्।
युधामन्युः शिखण्डी च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ॥ २६ ॥
उत्तमौजा युयुत्सुश्च यमौ पार्षत एव च।
चेदिकारूषमत्स्यानां केकयानां च यद् बलम् ॥ २७ ॥
चेकितानश्च बलवान् धर्मराजश्च सुव्रतः।
एते रथाश्वद्विरदैः पत्तिभिश्चोग्रविक्रमैः ॥ २८ ॥
परिवार्य रणे कर्णं नानाशस्त्रैरवाकिरन्।
भाषन्तो वाग्भिरुग्राभिः सर्वे कर्णवधे धृताः ॥ २९ ॥

इसके बाद कुन्तीपुत्रोंकी सेनाके सभी प्रमुख वीर कर्णको पीड़ा देने लगे। युधामन्यु, शिखण्डी, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, प्रभद्रकगण, उत्तमौजा, युयुत्सु, नकुल-सहदेव,

धृष्टद्युम्न, चेदि, कारूष, मत्स्य और केकय देशोंकी सेनाएँ, बलवान् चेकितान तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाले धर्मराज युधिष्ठिर—ये भयंकर पराक्रम प्रकट करनेवाले रथी, घुड़सवार, हाथीसवार और पैदल सैनिकों-द्वारा रणभूमिमें कर्णको चारों ओरसे घेरकर उसके ऊपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। सभी भयंकर वचन बोलते हुए वहाँ कर्णके वधका निश्चय कर चुके थे ॥

तां शस्त्रवृष्टिं बहुधा कर्णश्छित्त्वा शितैः शरैः ।
अपोवाहास्त्रवीर्येण द्रुमं भङ्क्त्वेव मारुतः ॥ ३० ॥

जैसे प्रचण्ड वायु वृक्षको तोड़कर गिरा देती है, उसी प्रकार कर्ण अपने तीखे बाणोंसे शत्रुओंकी उस शस्त्रवर्षाको बहुधा छिन्न-भिन्न करके अपने अस्त्रबलसे दूर हटा दिया ॥ ३० ॥

रथिनः समहामात्रान् गजानश्वान् ससादिनः ।
पत्तिव्रातांश्च संक्रुद्धो निघ्नन् कर्णो व्यदृश्यत ॥ ३१ ॥

क्रोधमें भरा हुआ कर्ण रथियों, महावतोंसहित हाथियों, सवारोंसहित घोड़ों तथा पैदल-समूहोंका वध करता देखा जा रहा था ॥ ३१ ॥

तद् वध्यमानं पाण्डूनां बलं कर्णास्त्रतेजसा ।
विशस्त्रपत्रदेहासु प्राय आसीत् पराङ्मुखम् ॥ ३२ ॥

कर्णके अस्त्रोंके तेजसे मारी जाती हुई पाण्डवोंकी सेना शस्त्र, वाहन, शरीर और प्राणोंसे रहित हो प्रायः रणभूमिसे विमुख होकर भाग चली ॥ ३२ ॥

अथ कर्णास्त्रमस्त्रेण प्रतिहत्यार्जुनः स्मयन् ।
दिशं खं चैव भूमिं च प्रावृणोच्छरवृष्टिभिः ॥ ३३ ॥

तब अर्जुनने मुस्कराते हुए अपने अस्त्रसे कर्णके अस्त्रको नष्ट करके बाणोंकी वर्षाद्वारा आकाश, दिशा और पृथ्वीको आच्छादित कर दिया ॥ ३३ ॥

मुसलानीव सम्पेतुः परिघा इव चेषवः ।
शतघ्न्य इव चाप्यन्ये वज्राण्युग्राणि चापरे ॥ ३४ ॥

उनके कुछ बाण मुसलोंके समान गिरते थे, कुछ परिघोंके समान, कुछ शतघ्नियोंके तुल्य तथा कुछ दूसरे बाण भयंकर वज्रोंके समान शत्रुओंपर पड़ते थे ॥ ३४ ॥

तैर्वध्यमानं तत् सैन्यं सपत्त्यश्वरथद्विपम् ।
निमीलिताक्षमत्यर्थं बभ्राम च ननाद च ॥ ३५ ॥

उन बाणोंसे हताहत होती हुई पैदल, घोड़े, रथ और हाथियोंसे युक्त कौरवसेना आँख मूँदकर जोर-जोरसे चिल्लाने और चक्कर काटने लगी ॥ ३५ ॥

निष्कैवल्यं तदा युद्धं प्रापुरश्वनरद्विपाः ।
हन्यमानाः शरैरार्तास्तदा भीताः प्रदुद्रुवुः ॥ ३६ ॥

उस समय घोड़े, हाथी और मनुष्योंको ऐसा युद्ध प्राप्त हुआ, जिसमें मृत्यु निश्चित है। उन सब लोगोंपर जब बाणोंकी मार पड़ने लगी, तब वे सब-के-सब आर्त और भयभीत होकर भाग चले ॥ ३६ ॥

त्वदीयानां तदा युद्धे संसक्तानां जयैषिणाम् ।
गिरिमस्तं समासाद्य प्रत्यपद्यत भानुमान् ॥ ३७ ॥

इस प्रकार जब आपके विजयाभिलाषी सैनिक युद्धमें संलग्न हो रहे थे, उसी समय सूर्यदेव अस्ताचल पहुँचकर डूब गये ॥ ३७ ॥

तमसा च महाराज रजसा च विशेषतः ।
न किंचित् प्रत्यपश्याम शुभं वा यदि वाशुभम् ॥ ३८ ॥

महाराज! उस समय अन्धकार और विशेषतः धूलसे सब कुछ आच्छादित होनेके कारण हमलोग किसी भी शुभ या अशुभ वस्तुको देख नहीं पाते थे ॥ ३८ ॥

ते त्रसन्तो महेष्वासा रात्रियुद्धस्य भारत ।
अपयानं ततश्चक्रुः सहिताः सर्वयोधिभिः ॥ ३९ ॥

भारत! वे महाधनुर्धर योद्धा रात्रियुद्धसे डरते थे। इसलिये समस्त सैनिकोंके साथ उन्होंने वहाँसे शिविरको प्रस्थान कर दिया ॥ ३९ ॥

कौरवेष्वपयातेषु तदा राजन् दिनक्षये ।
जयं सुमनसः प्राप्य पार्थाः स्वशिबिरं ययुः ॥ ४० ॥
वादित्रशब्दैर्विविधैः सिंहनादैः सगर्जितैः ।
परानुपहसन्तश्च स्तुवन्तश्चाच्युतार्जुनौ ॥ ४१ ॥

राजन्! दिनके अन्तमें कौरवोंके हट जानेपर पाण्डव भी विजय पाकर प्रसन्नचित्त हो भाँति-भाँतिके बाजोंकी आवाज, सिंहनाद और गर्जनाके द्वारा शत्रुओंका उपहास और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनकी स्तुति करते हुए अपने शिबिरको लौट गये ॥ ४०-४१ ॥

कृतेऽवहारे तैर्वीरैः सैनिकाः सर्व एव ते ।
आशीर्वाचः पाण्डवेषु प्रायुञ्जन्त नरेश्वराः ॥ ४२ ॥

उन वीरोंके द्वारा युद्धका उपसंहार कर दिये जानेपर समस्त सैनिक और नरेश पाण्डवोंको आशीर्वाद देने लगे ॥

ततः कृतेऽवहारे च प्रहृष्टास्तत्र पाण्डवाः ।
निशायां शिबिरं गत्वा न्यवसन्त नरेश्वराः ॥ ४३ ॥

इस प्रकार सैनिकोंके लौटा लिये जानेपर हर्षमें भरे हुए पाण्डव-पक्षीय नरेश रातको शिबिरमें जाकर सो रहे ॥ ४३ ॥

ततो रक्षःपिशाचाश्च श्वापदाश्चैव संघशः ।
जग्मुरायोधनं घोरं रुद्रस्याक्रीडसंनिभम् ॥ ४४ ॥

तदनन्तर रुद्रके क्रीडास्थल (श्मशान) सदृश उस भयंकर युद्धभूमिमें राक्षस, पिशाच और झुंड-के-झुंड हिंसक जीव-जन्तु जा पहुँचे ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि प्रथमे युद्धदिवसे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्णके सेनापतित्वमें प्रथम दिनका युद्धविषयक तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

रात्रिमें कौरवोंकी मन्त्रणा, धृतराष्ट्रके द्वारा दैवकी प्रबलताका प्रतिपादन, संजयद्वारा धृतराष्ट्रपर दोषारोप तथा कर्ण और दुर्योधनकी बातचीत

धृतराष्ट्र उवाच

स्वेनच्छन्देन नः सर्वानवधीद् व्यक्तमर्जुनः।
न ह्यस्य समरे मुच्येदन्तकोऽप्याततायिनः॥ १॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय! निश्चय ही अर्जुनने अपनी इच्छासे हमारे सब सैनिकोंका वध किया। समराङ्गणमें यदि वे शस्त्र उठा लें तो यमराज भी उनके हाथसे जीवित नहीं छूट सकता॥ १॥

पार्थश्चैकोऽहरद् भद्रामेकश्चाग्निमतर्पयत्।
एकश्चेमां महीं जित्वा चक्रे बलिभृतो नृपान्॥ २॥

अर्जुनने अकेले ही सुभद्राका अपहरण किया, अकेले ही खाण्डव वनमें अग्निदेवको तृप्त किया और अकेले ही इस पृथ्वीको जीतकर सम्पूर्ण नरेशोंको कर देनेवाला बना दिया॥

एको निवातकवचानहनद् दिव्यकार्मुकः।
एकः किरातरूपेण स्थितं शर्वमयोधयत्॥ ३॥

उन्होंने दिव्य धनुष धारण करके अकेले ही निवातकवचोंका संहार कर डाला और किरातरूप धारण करके खड़े हुए महादेवजीके साथ भी अकेले ही युद्ध किया॥ ३॥

एको ह्यरक्षद् भरतानेको भवमतोषयत्।
तेनैकेन जिताः सर्वे महीपा ह्युग्रतेजसा॥ ४॥

अर्जुनने अकेले ही घोषयात्राके समय दुर्योधन आदि भरतवंशियोंकी रक्षा की, अकेले ही अपने पराक्रमसे महादेवजीको संतुष्ट किया और उन उग्रतेजस्वी वीरने अकेले ही (विराटनगरमें) कौरव-दलके समस्त भूमिपालोंको पराजित किया था॥

न ते निन्द्याः प्रशस्यास्ते यत्ते चक्रुर्ब्रवीहि तत्।
ततो दुर्योधनः सूत पश्चात् किमकरोत् तदा॥ ५॥

इसलिये वे हमारे पक्षके सैनिक या नरेश निन्दनीय नहीं हैं, प्रशंसाके ही पात्र हैं। उन्होंने जो कुछ किया हो, बताओ। सूत! सेनाके शिबिरमें लौट आनेके पश्चात् उस समय दुर्योधनने क्या किया?॥ ५॥

संजय उवाच

हतप्रहतविध्वस्ता विवर्मायुधवाहनाः।
दीनस्वरा दूयमाना मानिनः शत्रुनिर्जिताः॥ ६॥

संजय बोले—राजन्! कौरव सैनिक बाणोंसे घायल, छिन्न-भिन्न अवयवोंसे युक्त और अपने वाहनोंसे भ्रष्ट हो गये थे। उनके कवच, आयुध और वाहन नष्ट हो गये थे। उनके स्वरोंमें दीनता थी। शत्रुओंसे पराजित होनेके कारण वे स्वाभिमानी कौरव मन-ही-मन बहुत दुःख पा रहे थे॥ ६॥

शिबिरस्थाः पुनर्मन्त्रं मन्त्रयन्ति स्म कौरवाः।
भग्नदंष्ट्रा हतविषाः पादाक्रान्ता इवोरगाः॥ ७॥

शिबिरमें आनेपर वे कौरव पुनः गुप्त मन्त्रणा करने लगे। उस समय उनकी दशा पैरसे कुचले गये उन सर्पोंके समान हो रही थी, जिनके दाँत तोड़ दिये और विष नष्ट कर दिये गये हों॥ ७॥

तानब्रवीत् ततः कर्णः क्रुद्धः सर्प इव श्वसन्।
करं करेण निष्पीड्य प्रेक्षमाणस्तवात्मजम्॥ ८॥

उस समय क्रोधमें भरकर फुफकारते हुए सर्पके समान कर्णने हाथ-से-हाथ दबाकर आपके पुत्रकी ओर देखते हुए उन कौरव वीरोंसे इस प्रकार कहा—॥ ८॥

यत्तो दृढश्च दक्षश्च धृतिमानर्जुनस्तदा।
सम्बोधयति चाप्येनं यथाकालमधोक्षजः॥ ९॥

'अर्जुन सावधान, दृढ़, चतुर और धैर्यवान् हैं। साथ ही उन्हें समय-समयपर श्रीकृष्ण भी कर्तव्यका ज्ञान कराते रहते हैं॥ ९॥

सहसास्त्रविसर्गेण वयं तेनाद्य वञ्चिताः।
श्वस्त्वहं तस्य संकल्पं सर्वं हन्ता महीपते॥ १०॥

'इसीलिये उन्होंने सहसा अस्त्रोंका प्रयोग करके आज हमें ठग लिया है; परंतु भूपाल! कल मैं उनके सारे मनसूबेको नष्ट कर दूँगा'॥ १०॥

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा सोऽनुजज्ञे नृपोत्तमान्।
तेऽनुज्ञाता नृपाः सर्वे स्वानि वेश्मानि भेजिरे॥ ११॥

कर्णके ऐसा कहनेपर दुर्योधनने 'तथास्तु' कहकर समस्त श्रेष्ठ राजाओंको विश्रामके लिये जानेकी आज्ञा दी। आज्ञा पाकर वे सब नरेश अपने-अपने शिबिरोंमें चले गये॥ ११॥

सुखोषितास्तां रजनीं हृष्टा युद्धाय निर्ययुः।
तेऽपश्यन् विहितं व्यूहं धर्मराजेन दुर्जयम्॥ १२॥
प्रयत्नात् कुरुमुख्येन बृहस्पत्युशनोमते।

वहाँ रातभर सुखसे रहे। फिर प्रसन्नतापूर्वक युद्धके लिये निकले। निकलकर उन्होंने देखा कि कुरुवंशके श्रेष्ठ पुरुष धर्मराज युधिष्ठिरने बृहस्पति और शुक्राचार्यके मतके अनुसार प्रयत्नपूर्वक अपनी सेनाका दुर्जय व्यूह बना रक्खा है॥ १२½॥

अथ प्रतीपकर्तारं प्रवीरं परवीरहा॥ १३॥
सस्मार वृषभस्कन्धं कर्णं दुर्योधनस्तदा।

तदनन्तर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले दुर्योधनने शत्रुओंके विरुद्ध व्यूह-रचनामें समर्थ और वृषभके समान पुष्ट कंधोंवाले प्रमुख वीर कर्णका स्मरण किया॥ १३½॥

पुरंदरसमं युद्धे मरुद्गणसमं बले॥ १४॥
कार्तवीर्यसमं वीर्ये कर्णं राज्ञोऽगमन्मनः।

कर्ण युद्धमें इन्द्रके समान पराक्रमी, मरुद्गणोंके समान बलवान् तथा कार्तवीर्य अर्जुनके समान शक्तिशाली था। राजा दुर्योधनका मन उसीकी ओर गया ॥ १४½ ॥

सर्वेषां चैव सैन्यानां कर्णमेवागमन्मनः।
सूतपुत्रं महेष्वासं बन्धुमात्ययिकेष्विव ॥ १५ ॥

जैसे प्राण-संकटकालमें लोग अपने बन्धुजनोंका स्मरण करते हैं, उसी प्रकार समस्त सेनाओंमेंसे केवल महाधनुर्धर सूतपुत्र कर्णकी ओर ही उसका मन गया ॥ १५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

ततो दुर्योधनः सूत पश्चात् किमकरोत्तदा।
यद्वोऽगमन्मनो मन्दाः कर्णं वैकर्तनं प्रति ॥ १६ ॥
अप्यपश्यत राधेयं शीतार्ता इव भास्करम्।

धृतराष्ट्रने पूछा—सूत ! तत्पश्चात् दुर्योधनने क्या किया। मूर्खो ! तुमलोगोंका मन जो वैकर्तन कर्णकी ओर गया था, उसका क्या कारण है। जैसे शीतसे पीड़ित हुए प्राणी सूर्यकी ओर देखते हैं, क्या उसी प्रकार तुमलोग भी राधापुत्र कर्णकी ओर देखते थे ? ॥ १६½ ॥

कृतेऽवहारे सैन्यानां प्रवृत्ते च रणे पुनः ॥ १७ ॥
कथं वैकर्तनः कर्णस्तत्रायुध्यत संजय।
कथं च पाण्डवाः सर्वे युयुधुस्तत्र सूतजम् ॥ १८ ॥

संजय ! सेनाको शिविरकी ओर लौटानेके बाद जब रात बीती और प्रातःकाल पुनः संग्राम आरम्भ हुआ, उस समय वैकर्तन कर्णने वहाँ किस प्रकार युद्ध किया तथा समस्त पाण्डवोंने सूतपुत्र कर्णके साथ किस प्रकार युद्ध आरम्भ किया ?॥

कर्णो ह्येको महाबाहुर्हन्यात् पार्थान् ससृंजयान्।
कर्णस्य भुजयोर्वीर्यं शक्रविष्णुसमं युधि ॥ १९ ॥
तस्य शस्त्राणि घोराणि विक्रमश्च महात्मनः।
कर्णमाश्रित्य संग्रामे मत्तो दुर्योधनो नृपः ॥ २० ॥

'अकेला महाबाहु कर्ण सृंजयोंसहित समस्त कुन्तीपुत्रोंको मार सकता है। युद्धमें कर्णका बाहुबल इन्द्र और विष्णुके समान है। उसके अस्त्र-शस्त्र भयंकर हैं तथा उस महामनस्वी वीरका पराक्रम भी अद्भुत है।' यह सब सोचकर राजा दुर्योधन संग्राममें कर्णका सहारा ले मतवाला हो उठा था ॥

दुर्योधनं ततो दृष्ट्वा पाण्डवेन भृशार्दितम्।
पराक्रान्तान् पाण्डुसुतान् दृष्ट्वा चापि महारथः ॥ २१ ॥

किंतु उस समय पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरद्वारा दुर्योधनको अत्यन्त पीड़ित होते और पाण्डुपुत्रोंको पराक्रम प्रकट करते देखकर भी महारथी कर्णने क्या किया ?॥ २१ ॥

कर्णमाश्रित्य संग्रामे मन्दो दुर्योधनः पुनः।
जेतुमुत्सहते पार्थान् सपुत्रान् सहकेशवान् ॥ २२ ॥

मूर्ख दुर्योधन संग्राममें कर्णका आश्रय लेकर पुनः पुत्रों-सहित कुन्तीकुमारों और श्रीकृष्णको जीतनेके लिये उत्साहित हुआ था ॥ २२ ॥

अहो बत महद् दुःखं यत्र पाण्डुसुतान् रणे।
नातरद् रभसः कर्णो दैवं नूनं परायणम्' ॥ २३ ॥

अहो ! यह महान् दुःखकी बात है कि वेगशाली वीर कर्ण भी रणभूमिमें पाण्डवोंसे पार न पा सका। अवश्य दैव ही सबका परम आश्रय है ॥ २३ ॥

अहो द्यूतस्य निष्ठेयं घोरा सम्प्रति वर्तते।
अहो तीव्राणि दुःखानि दुर्योधनकृतान्यहम् ॥ २४ ॥
सोढा घोराणि बहुशः शल्यभूतानि संजय।

अहो ! द्यूतक्रीडाका यह घोर परिणाम इस समय प्रकट हुआ है। संजय ! आश्चर्य है कि मैंने दुर्योधनके कारण बहुत-से तीव्र एवं भयंकर दुःख, जो काँटोंके समान कसक रहे हैं, सहन किये हैं ॥ २४½ ॥

सौबलं च तदा तात नीतिमानिति मन्यते ॥ २५ ॥
कर्णश्च रभसो नित्यं राजा तं चाप्यनुव्रतः।

तात ! दुर्योधन उन दिनों शकुनिको बड़ा नीतिज्ञ मानता था तथा वेगशाली वीर कर्ण भी नीतिज्ञ है, ऐसा समझकर राजा दुर्योधन उसका भी भक्त बना रहा ॥ २५½ ॥

यदेवं वर्तमानेषु महायुद्धेषु संजय ॥ २६ ॥
अश्रौषं निहतान् पुत्रान् नित्यमेव विनिर्जितान्।
न पाण्डवानां समरे कश्चिदस्ति निवारकः ॥ २७ ॥
स्त्रीमध्यमिव गाहन्ते दैवं तु बलवत्तरम्।

संजय ! इस प्रकार वर्तमान महान् युद्धोंमें जो मैं प्रतिदिन ही अपने कुछ पुत्रोंको मारा गया और कुछको पराजित हुआ सुनता आ रहा हूँ, इससे मुझे यह विश्वास हो गया है कि समराङ्गणमें कोई भी ऐसा वीर नहीं है, जो पाण्डवोंको रोक सके। जैसे लोग स्त्रियोंके बीचमें निर्भय प्रवेश कर जाते हैं, उसी प्रकार पाण्डव मेरी सेनामें बेखटके घुस जाते हैं। अवश्य इस विषयमें दैव ही अत्यन्त प्रबल है ॥ २६-२७½ ॥

संजय उवाच

राजन् पूर्वनिमित्तानि धर्मिष्ठानि विचिन्तय ॥ २८ ॥
अतिक्रान्तं हि यत् कार्यं पश्चाच्चिन्तयते नरः।
तच्चास्य न भवेत् कार्यं चिन्तया च विनश्यति ॥ २९ ॥

संजयने कहा—राजन् ! पूर्वकालमें आपने जो द्यूतक्रीडा आदि धर्मसङ्गत कारण उपस्थित किये थे, उन्हें याद तो कीजिये। जो मनुष्य बीती हुई बातके लिये पीछे चिन्ता करता है, उसका वह कार्य तो सिद्ध होता नहीं, केवल चिन्ता करनेसे वह स्वयं नष्ट हो जाता है ॥ २८-२९ ॥

तदिदं तव कार्यं तु दूरप्राप्तं विजानता।
न कृतं यत् त्वया पूर्वं प्राप्ताप्राप्तविचारणम् ॥ ३० ॥

पाण्डवोंके राज्यके अपहरणरूपी इस कार्यमें सफलता मिलनी आपके लिये दूरकी बात थी। यह जानते हुए भी आपने पहले इस बातका विचार नहीं किया कि यह उचित है या अनुचित ॥ ३० ॥

उक्तोऽसि बहुधा राजन् मा युध्यस्वेति पाण्डवैः।
गृह्णीषे न च तन्मोहाद् वचनं च विशाम्पते ॥ ३१ ॥

राजन्! पाण्डवोंने तो आपसे बारंबार कहा था कि 'आप युद्ध न छेड़िये।' किंतु प्रजानाथ! आपने मोहवश उनकी बात नहीं मानी ॥ ३१ ॥

त्वया पापानि घोराणि समाचीर्णानि पाण्डुषु।
त्वत्कृते वर्तते घोरः पार्थिवानां जनक्षयः ॥ ३२ ॥

आपने पाण्डवोंपर भयंकर अत्याचार किये हैं। आपके ही कारण राजाओंद्वारा यह घोर नरसंहार हो रहा है ॥ ३२ ॥

तत्त्विदानीमतिक्रान्तं मा शुचो भरतर्षभ।
शृणु सर्वं यथावृत्तं घोरं वैशसमुच्यते ॥ ३३ ॥

भरतश्रेष्ठ! वह बात तो अब बीत गयी। उसके लिये शोक न करें। युद्धका सारा वृत्तान्त यथावत् रूपसे सुनें। मैं उस भयंकर विनाशका वर्णन करता हूँ ॥ ३३ ॥

प्रभातायां रजन्यां तु कर्णो राजानमभ्ययात्।
समेत्य च महाबाहुर्दुर्योधनमथाब्रवीत् ॥ ३४ ॥

जब रात बीती और प्रातःकाल हो गया, तब महाबाहु कर्ण राजा दुर्योधनके पास आया और उससे मिलकर इस प्रकार बोला ॥ ३४ ॥

कर्ण उवाच

अद्य राजन् समेष्यामि पाण्डवेन यशस्विना।
निहनिष्यामि तं वीरं स वा मां निहनिष्यति ॥ ३५ ॥

कर्णने कहा—राजन्! आज मैं यशस्वी पाण्डुपुत्र अर्जुनके साथ संग्राम करूँगा। या तो मैं ही उस वीरको मार डालूँगा या वही मेरा वध कर डालेगा ॥ ३५ ॥

बहुत्वान्मम कार्याणां तथा पार्थस्य भारत।
नाभूत् समागमो राजन् मम चैवार्जुनस्य च ॥ ३६ ॥

भरतवंशी नरेश! मेरे तथा अर्जुनके सामने बहुत-से कार्य आते गये; इसीलिये अबतक मेरा और उनका द्वैरथ युद्ध न हो सका ॥ ३६ ॥

इदं तु मे यथाप्राज्ञं शृणु वाक्यं विशाम्पते।
अनिहत्य रणे पार्थं नाहमेष्यामि भारत ॥ ३७ ॥

प्रजानाथ! भरतनन्दन! मैं अपनी बुद्धिके अनुसार निश्चय करके यह जो बात कह रहा हूँ, उसे ध्यान देकर सुनो। आज मैं रणभूमिमें अर्जुनका वध किये बिना नहीं लौटूँगा ॥ ३७ ॥

हतप्रवीरे सैन्येऽस्मिन् मयि चावस्थिते युधि।
अभियास्यति मां पार्थः शक्रशक्तिविनाकृतम् ॥ ३८ ॥

हमारी इस सेनाके प्रमुख वीर मारे गये हैं। अतः मैं युद्धमें जब इस सेनाके भीतर खड़ा होऊँगा, उस समय अर्जुन मुझे इन्द्रकी दी हुई शक्तिसे वञ्चित जानकर अवश्य मुझपर आक्रमण करेंगे ॥ ३८ ॥

ततः श्रेयस्करं यच्च तन्निबोध जनेश्वर।
आयुधानां च मे वीर्यं दिव्यानामर्जुनस्य च ॥ ३९ ॥

जनेश्वर! अब जो यहाँ हितकर बात है, उसे सुनिये। मेरे तथा अर्जुनके पास भी दिव्यास्त्रोंका समान बल है ॥ ३९ ॥

कायस्य महतो भेदे लाघवे दूरपातने।
सौष्ठवे चास्त्रपाते च सव्यसाची न मत्समः ॥ ४० ॥

हाथी आदिके विशाल शरीरका भेदन करने, शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलाने, दूरका लक्ष्य वेधने, सुन्दर रीतिसे युद्ध करने तथा दिव्यास्त्रोंके प्रयोगमें भी सव्यसाची अर्जुन मेरे समान नहीं हैं ॥ ४० ॥

प्राणे शौर्येऽथ विज्ञाने विक्रमे चापि भारत।
निमित्तज्ञानयोगे च सव्यसाची न मत्समः ॥ ४१ ॥

भारत! शारीरिक बल, शौर्य, अस्त्रविज्ञान, पराक्रम तथा शत्रुओंपर विजय पानेके उपायको ढूँढ़ निकालनेमें भी सव्यसाची अर्जुन मेरी समानता नहीं कर सकते ॥ ४१ ॥

सर्वायुधमहामात्रं विजयं नाम तद्धनुः।
इन्द्रार्थं प्रियकामेन निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ ४२ ॥

मेरे धनुषका नाम विजय है। यह समस्त आयुधोंमें श्रेष्ठ है। इसे इन्द्रका प्रिय चाहनेवाले विश्वकर्माने उन्हींके लिये बनाया था ॥ ४२ ॥

येन दैत्यगणान् राजञ्जितवान् वै शतक्रतुः।
यस्य घोषेण दैत्यानां व्यामुह्यन्त दिशो दश ॥ ४३ ॥
तद् भार्गवाय प्रायच्छच्छक्रः परमसम्मतम्।
तद् दिव्यं भार्गवो मह्यमददाद् धनुरुत्तमम् ॥ ४४ ॥

राजन्! इन्द्रने जिसके द्वारा दैत्योंको जीता था, जिसकी टङ्कारसे दैत्योंको दसों दिशाओंके पहचाननेमें भ्रम हो जाता था, उसी अपने परम प्रिय दिव्य धनुषको इन्द्रने परशुरामजीको दिया था और परशुरामजीने वह दिव्य उत्तम धनुष मुझे दे दिया है ॥ ४३-४४ ॥

तेन योत्स्ये महाबाहुमर्जुनं जयतां वरम्।
यथेन्द्रः समरे सर्वान् दैतेयान् वै समागतान् ॥ ४५ ॥

उसी धनुषके द्वारा मैं विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ महाबाहु अर्जुनके साथ युद्ध करूँगा। ठीक वैसे ही, जैसे समराङ्गणमें आये हुए समस्त दैत्योंके साथ इन्द्रने युद्ध किया था ॥ ४५ ॥

धनुर्घोरं रामदत्तं गाण्डीवात् तद् विशिष्यते।
त्रिस्सप्तकृत्वः पृथिवी धनुषा येन निर्जिता ॥ ४६ ॥

परशुरामजीका दिया हुआ वह घोर धनुष गाण्डीवसे श्रेष्ठ है। यह वही धनुष है, जिसके द्वारा परशुरामजीने पृथ्वीपर इक्कीस बार विजय पायी थी ॥ ४६ ॥

धनुषो ह्यस्य कर्माणि दिव्यानि प्राह भार्गवः।
तद् रामो ह्यददान्मह्यं तेन योत्स्यामि पाण्डवम् ॥ ४७ ॥

स्वयं भृगुनन्दन परशुरामने ही मुझे उस धनुषके दिव्य

कर्म बताये हैं और उसे उन्होंने मुझे अर्पित कर दिया है; उसी धनुषके द्वारा मैं पाण्डुकुमार अर्जुनके साथ युद्ध करूँगा॥

अद्य दुर्योधनाहं त्वां नन्दयिष्ये सबान्धवम्।
निहत्य समरे वीरमर्जुनं जयतां वरम्॥ ४८॥

दुर्योधन! आज मैं समरभूमिमें विजयी पुरुषोंमें श्रेष्ठ वीर अर्जुनका वध करके बन्धु-बान्धवोंसहित तुम्हें आनन्दित करूँगा॥ ४८॥

सपर्वतवनद्वीपा हतवीरा ससागरा।
पुत्रपौत्रप्रतिष्ठा ते भविष्यत्यद्य पार्थिव॥ ४९॥

भूपाल! आज उस वीरके मारे जानेपर पर्वत, वन, द्वीप और समुद्रोंसहित यह सारी पृथ्वी तुम्हारे पुत्र-पौत्रोंकी परम्परामें प्रतिष्ठित हो जायगी॥ ४९॥

नाशक्यं विद्यते मेऽद्य त्वत्प्रियार्थं विशेषतः।
सम्यग्धर्मानुरक्तस्य सिद्धिरात्मवतो यथा॥ ५०॥

जैसे उत्तम धर्ममें अनुरक्त हुए मनस्वी पुरुषके लिये सिद्धि दुर्लभ नहीं है, उसी प्रकार आज विशेषतः तुम्हारा प्रिय करनेके हेतु मेरे लिये कुछ भी असम्भव नहीं है॥ ५०॥

न हि मां समरे सोढुं संशक्तोऽग्निं तरुर्यथा।
अवश्यं तु मया वाच्यं येन हीनोऽस्मि फाल्गुनात्॥ ५१॥

जैसे वृक्ष अग्निका आक्रमण नहीं सह सकता, उसी प्रकार अर्जुनमें ऐसी शक्ति नहीं है कि मेरा वेग सह सकें; परंतु जिस बातमें मैं अर्जुनसे कम हूँ, वह भी मुझे अवश्य ही बता देना उचित है॥ ५१॥

ज्या तस्य धनुषो दिव्या तथाक्षय्ये महेषुधी।
सारथिस्तस्य गोविन्दो मम तादृङ् न विद्यते॥ ५२॥

उनके धनुषकी प्रत्यञ्चा दिव्य है। उनके पास दो बड़े-बड़े दिव्य तरकस हैं, जो कभी खाली नहीं होते तथा उनके सारथि श्रीकृष्ण हैं, ये सब मेरे पास वैसे नहीं हैं॥ ५२॥

तस्य दिव्यं धनुः श्रेष्ठं गाण्डीवमजितं युधि।
विजयं च महद्दिव्यं ममापि धनुरुत्तमम्॥ ५३॥

यदि उनके पास युद्धमें अजेय, श्रेष्ठ, दिव्य गाण्डीव धनुष है तो मेरे पास भी विजय नामक महान् दिव्य एवं उत्तम धनुष मौजूद है॥ ५३॥

तत्राहमधिकः पार्थाद् धनुषा तेन पार्थिव।
येन चाप्यधिको वीरः पाण्डवस्तन्निबोध मे॥ ५४॥

राजन्! धनुषकी दृष्टिसे तो मैं ही अर्जुनसे बढ़ा-चढ़ा हूँ; परंतु वीर पाण्डुकुमार अर्जुन जिसके कारण मुझसे बढ़ जाते हैं, वह भी सुन लो॥ ५४॥

रश्मिग्राहश्च दाशार्हः सर्वलोकनमस्कृतः।
अग्निदत्तश्च वै दिव्यो रथः काञ्चनभूषणः॥ ५५॥
अच्छेद्यः सर्वतो वीर वाजिनश्च मनोजवाः।
ध्वजश्च दिव्यो द्युतिमान् वानरो विस्मयंकरः॥ ५६॥

सर्वलोकवन्दित, दशार्हकुलनन्दन श्रीकृष्ण उनके घोड़ोंकी रास सँभालते हैं। वीर! उनके पास अग्निका दिया हुआ सुवर्णभूषित दिव्य रथ है, जिसे किसी प्रकार नष्ट नहीं किया जा सकता। उनके घोड़े भी मनके समान वेगशाली हैं। उनका तेजस्वी ध्वज दिव्य है, जिसके ऊपर सबको आश्चर्यमें डालनेवाला वानर बैठा रहता है॥ ५५-५६॥

कृष्णश्च स्रष्टा जगतो रथं तमभिरक्षति।
एतैर्द्रव्यैरहं हीनो योद्धुमिच्छामि पाण्डवम्॥ ५७॥

श्रीकृष्ण जगत्के स्रष्टा हैं। वे अर्जुनके उस रथकी रक्षा करते हैं। इन्हीं वस्तुओंसे हीन होकर मैं पाण्डुपुत्र अर्जुनसे युद्धकी इच्छा रखता हूँ॥ ५७॥

अयं तु सदृशः शौरेः शल्यः समितिशोभनः।
सारथ्यं यदि मे कुर्याद् ध्रुवस्ते विजयो भवेत्॥ ५८॥

अवश्य ही, ये युद्धमें शोभा पानेवाले राजा शल्य श्रीकृष्णके समान हैं, यदि ये मेरे सारथिका कार्य कर सकें तो तुम्हारी विजय निश्चित है॥ ५८॥

तस्य मे सारथिः शल्यो भवत्वसुकरः परैः।
नाराचान् गार्ध्रपत्रांश्च शकटानि वहन्तु मे॥ ५९॥

शत्रुओंसे सुगमतापूर्वक जीते न जा सकनेवाले राजा शल्य मेरे सारथि हो जायँ और बहुत-से छकड़े मेरे पास गीधकी पाँखोंसे युक्त नाराच पहुँचाते रहें॥ ५९॥

रथाश्च मुख्या राजेन्द्र युक्ता वाजिभिरुत्तमैः।
आयान्तु पश्चात् सततं मामेव भरतर्षभ॥ ६०॥

राजेन्द्र! भरतश्रेष्ठ! उत्तम घोड़ोंसे जुते हुए अच्छे-अच्छे रथ सदा मेरे पीछे चलते रहें॥ ६०॥

एवमभ्यधिकः पार्थाद् भविष्यामि गुणैरहम्।
शल्योऽप्यधिकः कृष्णादर्जुनादपि चाप्यहम्॥ ६१॥

ऐसी व्यवस्था होनेपर मैं गुणोंमें पार्थसे बढ़ जाऊँगा। शल्य भी श्रीकृष्णसे बढ़े-चढ़े हैं और मैं भी अर्जुनसे श्रेष्ठ हूँ॥

यथाश्वहृदयं वेद दाशार्हः परवीरहा।
तथा शल्यो विजानीते हयज्ञानं महारथः॥ ६२॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले दशार्हवंशी श्रीकृष्ण अश्वविद्याके रहस्यको जिस प्रकार जानते हैं, उसी प्रकार महारथी शल्य भी अश्वविज्ञानके विशेषज्ञ हैं॥ ६२॥

बाहुवीर्ये समो नास्ति मद्रराजस्य कश्चन।
तथास्त्रे मत्समो नास्ति कश्चिदेव धनुर्धरः॥ ६३॥

बाहुबलमें मद्रराज शल्यकी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। उसी प्रकार अस्त्रविद्यामें मेरे समान कोई भी धनुर्धर नहीं है॥ ६३॥

तथा शल्यसमो नास्ति हयज्ञाने हि कश्चन।
सोऽयमभ्यधिकः कृष्णाद् भविष्यति रथो मम॥ ६४॥

अश्वविज्ञानमें भी शल्यके समान कोई नहीं है। शल्यके

सारथि होनेपर मेरा यह रथ अर्जुनके रथसे बढ़ जायगा ॥

एवं कृते रथस्थोऽहं गुणैरभ्यधिकोऽर्जुनात्।
भवे युधि जयेयं च फाल्गुनं कुरुसत्तम ॥ ६५ ॥
समुद्यातुं न शक्ष्यन्ति देवा अपि सवासवाः।

ऐसी व्यवस्था कर लेनेपर जब मैं रथमें बैठूँगा, उस समय सभी गुणोंद्वारा अर्जुनसे बढ़ जाऊँगा। कुरुश्रेष्ठ ! फिर तो मैं युद्धमें अर्जुनको अवश्य जीत लूँगा। इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी मेरा सामना नहीं कर सकेंगे ॥ ६५½ ॥

एतत् कृतं महाराज त्वयेच्छामि परंतप ॥ ६६ ॥
क्रियतामेष कामो मे मा वः कालोऽत्यगादयम्।

शत्रुओंको संताप देनेवाले महाराज ! मैं चाहता हूँ कि आपके द्वारा यही व्यवस्था हो जाय। मेरा यह मनोरथ पूर्ण किया जाय। अब आपलोगोंका यह समय व्यर्थ नहीं बीतना चाहिये ॥ ६६½ ॥

एवं कृते कृतं साह्यं सर्वकामैर्भविष्यति ॥ ६७ ॥
ततो द्रक्ष्यसि संग्रामे यत् करिष्यामि भारत।
सर्वथा पाण्डवान् संख्ये विजेष्ये वै समागतान् ॥ ६८ ॥

ऐसा करनेपर मेरी सम्पूर्ण इच्छाओंके अनुसार सहायता सम्पन्न हो जायगी। भारत ! उस समय मैं संग्राममें जो कुछ करूँगा, उसे तुम स्वयं देख लोगे। युद्धस्थलमें आये हुए समस्त पाण्डवोंको निश्चय ही मैं सब प्रकारसे जीत लूँगा ॥

न हि मे समरे शक्ताः समुद्यातुं सुरासुराः।
किमु पाण्डुसुता राजन् रणे मानुषयोनयः ॥ ६९ ॥

राजन् ! समराङ्गणमें देवता और असुर भी मेरा सामना नहीं कर सकते, फिर मनुष्य-योनिमें उत्पन्न हुए पाण्डव तो कर ही कैसे सकते हैं ॥ ६९ ॥

संजय उवाच

एवमुक्तस्तव सुतः कर्णेनाहवशोभिना।
सम्पूज्य सम्प्रहृष्टात्मा ततो राधेयमब्रवीत् ॥ ७० ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! युद्धमें शोभा पानेवाले कर्णके ऐसा कहनेपर आपके पुत्र दुर्योधनका मन प्रसन्न हो गया। फिर उसने राधापुत्र कर्णका पूर्णतः सम्मान करके उससे कहा ॥

दुर्योधन उवाच

एवमेतत् करिष्यामि यथा त्वं कर्ण मन्यसे।
सोपासङ्गा रथाः साश्वाः स्वनुयास्यन्ति संयुगे ॥ ७१ ॥

दुर्योधन बोला—कर्ण ! जैसा तुम ठीक समझते हो उसीके अनुसार यह सारा कार्य मैं करूँगा। युद्धस्थलमें अनेक तरकसोंसे भरे हुए बहुत-से अश्वयुक्त रथ तुम्हारे पीछे-पीछे जायँगे ॥ ७१ ॥

नाराचान् गार्ध्रपत्रांश्च शकटानि वहन्तु ते।
अनुयास्याम कर्ण त्वां वयं सर्वे च पार्थिवाः ॥ ७२ ॥

कई छकड़े तुम्हारे पास गीधकी पाँखोंसे युक्त नाराच पहुँचाया करेंगे। कर्ण ! हमलोग तथा समस्त भूपालगण तुम्हारे पीछे-पीछे चलेंगे ॥ ७२ ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा महाराज तव पुत्रः प्रतापवान्।
अभिगम्याब्रवीद् राजा मद्रराजमिदं वचः ॥ ७३ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! ऐसा कहकर आपके प्रतापी पुत्र राजा दुर्योधनने मद्रराज शल्यके पास जाकर इस प्रकार कहा ॥ ७३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णदुर्योधनसंवादे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण और दुर्योधनका संवादविषयक इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

दुर्योधनकी शल्यसे कर्णका सारथि बननेके लिये प्रार्थना और शल्यका इस विषयमें घोर विरोध करना, पुनः श्रीकृष्णके समान अपनी प्रशंसा सुनकर उसे स्वीकार कर लेना

संजय उवाच

पुत्रस्तव महाराज मद्रराजं महारथम्।
विनयेनोपसंगम्य प्रणयाद् वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! आपका पुत्र दुर्योधन मद्रराज महारथी शल्यके पास विनीतभावसे जाकर प्रेमपूर्वक इस प्रकार बोला— ॥ १ ॥

सत्यव्रत महाभाग द्विषतां तापवर्धन।
मद्रेश्वर रणे शूर परसैन्यभयंकर ॥ २ ॥
श्रुतवानसि कर्णस्य ब्रुवतो वदतां वर।
यथा नृपतिसिंहानां मध्ये त्वां वरये स्वयम् ॥ ३ ॥

'महाभाग ! सत्यव्रत ! शत्रुओंका संताप बढ़ानेवाले मद्रराज ! रणवीर ! शत्रुसैन्यभयंकर ! वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! आपने कर्णकी बात सुनी है। उसीके अनुसार इन राजसिंहोंके बीचमें मैं स्वयं आपका वरण करता हूँ ॥ २-३ ॥

तत्त्वामप्रतिवीर्याद्य शत्रुपक्षक्षयावह।
मद्रेश्वर प्रयाचेऽहं शिरसा विनयेन च ॥ ४ ॥
तस्मात् पार्थविनाशार्थं हितार्थं मम चैव हि।
सारथ्यं रथिनां श्रेष्ठ प्रणयात् कर्तुमर्हसि ॥ ५ ॥

'शत्रुपक्षका विनाश करनेवाले, अनुपम शक्तिशाली, रथियोंमें श्रेष्ठ मद्रराज ! मैं मस्तक झुकाकर विनयपूर्वक आपसे



दुर्योधनकी शल्यसे कर्णका सारथि बननेके लिये प्रार्थना

यह याचना करता हूँ कि आप अर्जुनके विनाश और मेरे हितके लिये प्रेमपूर्वक कर्णका सारथ्य कीजिये ॥ ४-५ ॥

त्वयि यन्तरि राधेयो विद्विषो मे विजेष्यते।
अभीषूणां हि कर्णस्य ग्रहीतान्यो न विद्यते ॥ ६ ॥
ऋते हि त्वां महाभाग वासुदेवसमं युधि।

'आपके सारथि होनेपर राधापुत्र कर्ण मेरे शत्रुओंको जीत लेगा। कर्णके रथकी बागडोर पकड़नेवाला आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है। महाभाग! आप युद्धमें वसुदेव-नन्दन श्रीकृष्णके समान हैं ॥ ६½ ॥

स पाहि सर्वथा कर्णं यथा ब्रह्मा महेश्वरम् ॥ ७ ॥
यथा च सर्वथाऽऽपत्सु वार्ष्णेयः पाति पाण्डवम्।
तथा मद्रेश्वराद्य त्वं राधेयं प्रतिपालय ॥ ८ ॥

'जैसे ब्रह्माजीने सारथि बनकर महादेवजीकी रक्षा की थी और जैसे सब प्रकारकी आपत्तियोंसे श्रीकृष्ण अर्जुनकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप कर्णकी सर्वथा रक्षा कीजिये। मद्रराज! आज आप राधापुत्रका प्रतिपालन कीजिये ॥ ७-८ ॥

भीष्मो द्रोणः कृपः कर्णो भवान् भोजश्च वीर्यवान्।
शकुनिः सौबलो द्रौणिरहमेव च नो बलम् ॥ ९ ॥

'भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, आप, पराक्रमी कृतवर्मा, सुबलपुत्र शकुनि, द्रोणकुमार अश्वत्थामा और मैं—ये ही हमारे बल हैं ॥ ९ ॥

एवमेष कृतो भागो नवधा पृथिवीपते।
न च भागोऽत्र भीष्मस्य द्रोणस्य च महात्मनः ॥ १० ॥
ताभ्यामतीत्य तौ भागौ निहता मम शत्रवः।

'पृथ्वीपते! इस प्रकार मेरी सेनाके ये नौ भाग किये गये थे। अब यहाँ भीष्म तथा महात्मा द्रोणाचार्यका भाग नहीं रह गया है। उन दोनोंने उनके लिये निर्धारित भागोंसे और आगे बढ़कर मेरे शत्रुओंका संहार किया है ॥ १०½ ॥

वृद्धौ हि तौ महेष्वासौ छलेन निहतौ युधि ॥ ११ ॥
कृत्वा नसुकरं कर्म गतौ स्वर्गमितोऽनघ।
तथान्ये पुरुषव्याघ्राः परैर्विनिहता युधि ॥ १२ ॥

'वे दोनों महाधनुर्धर योद्धा बूढ़े हो गये थे, इसलिये युद्धमें शत्रुओंद्वारा छलपूर्वक मारे गये। अनघ! वे दुष्कर कर्म करके यहाँसे स्वर्गलोकमें चले गये। इसी प्रकार दूसरे पुरुषसिंह वीर भी युद्धमें शत्रुओंद्वारा मारे गये हैं ॥ ११-१२ ॥

अस्मदीयाश्च बहवः स्वर्गायोपगता रणे।
त्यक्त्वा प्राणान् यथाशक्ति चेष्टां कृत्वा च पुष्कलाम् १३

'मेरे पक्षके बहुत-से योद्धा विजयके लिये यथाशक्ति पूरी चेष्टा करके रणभूमिमें प्राण त्यागकर स्वर्गलोकको चले गये ॥ १३ ॥

तदिदं हतभूयिष्ठं बलं मम नराधिप।
पूर्वमप्यल्पकैः पार्थैर्हतं किमुत साम्प्रतम् ॥ १४ ॥

'नरेश्वर! इस प्रकार मेरी इस सेनाका अधिकांश भाग नष्ट हो चुका है। पहले भी जब अपनी सारी सेना मौजूद थी, अल्पसंख्यक कुन्तीकुमारोंने कौरवसेनाका नाश कर दिया था। फिर इस समय तो कहना ही क्या है? ॥ १४ ॥

बलवन्तो महात्मानः कौन्तेयाः सत्यविक्रमाः।
बलं शेषं न हन्युर्मे यथा तत् कुरु पार्थिव ॥ १५ ॥

'भूपाल! बलवान्, महामनस्वी और सत्यपराक्रमी कुन्ती-कुमार मेरी शेष सेनाको जिस तरह भी नष्ट न कर सकें, ऐसा उपाय कीजिये ॥ १५ ॥

हतवीरमिदं सैन्यं पाण्डवैः समरे विभो।
कर्णो ह्येको महाबाहुरस्मत्प्रियहिते रतः ॥ १६ ॥

'प्रभो! पाण्डवोंने समराङ्गणमें मेरी सेनाके प्रमुख वीरों-को मार डाला है। एक महाबाहु कर्ण ही ऐसा है, जो हमारे प्रिय एवं हितसाधनमें लगा हुआ है ॥ १६ ॥

भवांश्च पुरुषव्याघ्र सर्वलोकमहारथः।
शल्य कर्णोऽर्जुनेनाद्य योद्धुमिच्छति संयुगे ॥ १७ ॥

'पुरुषसिंह शल्य! दूसरे आप भी सम्पूर्ण विश्वमें विख्यात महारथी होकर हमारे हितसाधनमें संलग्न हैं। आज कर्ण रणभूमिमें अर्जुनके साथ युद्ध करना चाहता है ॥ १७ ॥

तस्मिञ्जयाशा विपुला मद्रराज नराधिप।
तस्याभीषुग्रहवरो नान्योऽस्ति भुवि कश्चन ॥ १८ ॥

'मद्रराज! नरेश्वर! उसके मनमें विजयकी बड़ी भारी आशा है, परंतु उसके घोड़ोंकी रास पकड़नेवाला (आपके समान) दूसरा कोई इस भूतलपर नहीं है ॥ १८ ॥

पार्थस्य समरे कृष्णो यथाभीषुग्रहो वरः।
तथा त्वमपि कर्णस्य रथेऽभीषुग्रहो भव ॥ १९ ॥

'जैसे संग्रामभूमिमें अर्जुनके रथकी बागडोर सँभालनेवाले श्रेष्ठ सारथि श्रीकृष्ण हैं, उसी प्रकार आप भी कर्णके रथपर बैठ-कर उसकी बागडोर अपने हाथमें लीजिये ॥ १९ ॥

तेन युक्तो रणे पार्थो रक्ष्यमाणश्च पार्थिव।
यानि कर्माणि कुरुते प्रत्यक्षाणि तथैव तत् ॥ २० ॥

'राजन्! श्रीकृष्णसे संयुक्त एवं सुरक्षित होकर पार्थ रणभूमिमें जो-जो कर्म करते हैं, वे सब आपकी आँखोंके सामने हैं ॥ २० ॥

पूर्वं न समरे ह्येवमवधीदर्जुनो रिपून्।
इदानीं विक्रमो ह्यस्य कृष्णेन सहितस्य च ॥ २१ ॥

'पहले युद्धमें अर्जुन इस प्रकार शत्रुओंका वध नहीं

करते थे । इस समय श्रीकृष्णके साथ होनेसे ही इनका पराक्रम बढ़ गया है ॥ २१ ॥

कृष्णेन सहितः पार्थो धार्तराष्ट्रीं महाचमूम् ।
अहन्यहनि मद्रेश द्रावयन् दृश्यते युधि ॥ २२ ॥

'मद्रराज ! श्रीकृष्णके साथ अर्जुन प्रतिदिन हमारी विशाल सेनाको युद्धभूमिमें खदेड़ते देखे जाते हैं ॥ २२ ॥

भागोऽवशिष्टः कर्णस्य तव चैव महाद्युते ।
तं भागं सह कर्णेन युगपन्नाशयाद्य हि ॥ २३ ॥

'महातेजस्वी नरेश ! अब कर्णका और आपका भाग शेष रह गया है । अतः आप कर्णके साथ रहकर शत्रुसेनाके उस भागको एक साथ ही नष्ट कर दीजिये ॥ २३ ॥

अरुणेन यथा सार्धं तमः सूर्यो व्यपोहति ।
तथा कर्णेन सहितो जहि पार्थं महाहवे ॥ २४ ॥

'जैसे अरुणके साथ सूर्य अन्धकारका नाश करते हैं, उसी प्रकार आप महासमरमें कर्णके साथ रहकर कुन्तीकुमार अर्जुनका वध कीजिये ॥ २४ ॥

उद्यन्तौ च यथा सूर्यौ बालसूर्यसमप्रभौ ।
कर्णशल्यौ रणे दृष्ट्वा विद्रवन्तु महारथाः ॥ २५ ॥

'प्रातःकालीन सूर्यके तुल्य तेजस्वी कर्ण और शल्यको उदित होते हुए दो सूर्योंके समान रणभूमिमें देखकर शत्रुसेनाके महारथी भाग जायँ ॥ २५ ॥

सूर्यारुणौ यथा दृष्ट्वा तमो नश्यति मारिष ।
तथा नश्यन्तु कौन्तेयाः सपञ्चालाः ससृंजयाः ॥ २६ ॥

'मान्यवर ! जैसे सूर्य और अरुणको देखते ही अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार आप दोनोंको देखकर कुन्तीके पुत्र, पाञ्चाल और सृंजय नष्ट हो जायँ ॥ २६ ॥

रथिनां प्रवरः कर्णो यन्तॄणां प्रवरो भवान् ।
संयोगो युवयोर्लोके नाभून्न च भविष्यति ॥ २७ ॥

'कर्ण रथियोंमें श्रेष्ठ हैं और आप सारथियोंके शिरोमणि हैं । संसारमें आप दोनोंका संयोग जो आज बन गया है, न तो कभी हुआ था और न आगे कभी होगा ॥ २७ ॥

यथा सर्वास्ववस्थासु वार्ष्णेयः पाति पाण्डवम् ।
तथा भवान् परित्रातु कर्णं वैकर्तनं रणे ॥ २८ ॥

'जैसे श्रीकृष्ण सभी अवस्थाओंमें पाण्डुपुत्र अर्जुनकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप रणभूमिमें वैकर्तन कर्णकी रक्षा करें ॥ २८ ॥

(सारथ्यं क्रियतां तस्य युध्यमानस्य संयुगे ।)
त्वया सारथिना ह्येष अप्रधृष्यो भविष्यति ।
देवतानामपि रणे सशक्राणां महीपते ।
किं पुनः पाण्डवेयानां मा विशंकीर्वचो मम ॥ २९ ॥

'युद्धस्थलमें युद्ध करते समय कर्णके सारथिका कार्य सँभालिये । राजन् ! आपके सारथि होनेसे यह कर्ण रणभूमिमें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंके लिये भी अजेय हो जायगा, फिर पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है । आप मेरे इस कथनमें संदेह न कीजिये' ॥ २९ ॥

संजय उवाच

दुर्योधनवचः श्रुत्वा शल्यः क्रोधसमन्वितः ।
त्रिशिखां भ्रुकुटिं कृत्वा धुन्वन् हस्तौ पुनः पुनः ॥ ३० ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! दुर्योधनकी बात सुनकर शल्यको बड़ा क्रोध हुआ । वे अपनी भौंहोंको तीन जगहसे टेढ़ी करके बारंबार हाथ हिलाने लगे ॥ ३० ॥

क्रोधरक्ते महानेत्रे परिवृत्य महाभुजः ।
कुलैश्वर्यश्रुतबलैर्दृप्तः शल्योऽब्रवीदिदम् ॥ ३१ ॥

महाबाहु शल्यको अपने कुल, ऐश्वर्य, शास्त्रज्ञान और बलका बड़ा अभिमान था । वे क्रोधसे लाल हुए विशाल नेत्रोंको घुमाकर इस प्रकार बोले ॥ ३१ ॥

शल्य उवाच

अवमन्यसि गान्धारे ध्रुवं च परिशङ्कसे ।
यन्मां ब्रवीषि विश्रब्धं सारथ्यं क्रियतामिति ॥ ३२ ॥

शल्यने कहा—गान्धारीपुत्र ! तुम मेरा अपमान कर रहे हो, निश्चय ही तुम्हारे मनमें मेरे प्रति संदेह है, तभी तुम निर्भय होकर कह रहे हो कि आप 'सारथिका कार्य कीजिये' ॥

असत्तोऽभ्यधिकं कर्णं मन्यमानः प्रशंससि ।
न चाहं युधि राधेयं गणये तुल्यमात्मनः ॥ ३३ ॥

तुम कर्णको मुझसे श्रेष्ठ मानकर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हो; परंतु युद्धस्थलमें राधापुत्र कर्णको मैं अपने समान नहीं गिनता हूँ ॥ ३३ ॥

आदिश्यतामभ्यधिको ममांशः पृथिवीपते ।
तमहं समरे जित्वा गमिष्यामि यथागतम् ॥ ३४ ॥

राजन् ! तुम शत्रुसेनाके अधिक-से-अधिक भागको मेरे हिस्सेमें दे दो, मैं उसे जीतकर जैसे आया हूँ, वैसे लौट जाऊँगा ॥

अथवाप्येक एवाहं योत्स्यामि कुरुनन्दन ।
पश्य वीर्यं ममाद्य त्वं संग्रामे दहतो रिपून् ॥ ३५ ॥

अथवा कुरुनन्दन ! आज मैं अकेला ही युद्ध करूँगा । तुम संग्राममें शत्रुओंको दग्ध करते हुए मेरे पराक्रमको देख लेना ॥

न चापि कामान् कौरव्य निधाय हृदये पुमान् ।
अस्मद्विधः प्रवर्तेत मा मां त्वमभिशङ्किथाः ॥ ३६ ॥

कौरव्य ! मेरे-जैसा पुरुष अपने मनमें कुछ कामनाएँ

रखकर युद्धमें प्रवृत्त नहीं होता। अतः तुम मुझपर संदेह न करो ॥ ३६ ॥

युधि वाप्यवमानो मे न कर्तव्यः कथञ्चन।
पश्य पीनौ मम भुजौ वज्रसंहननौ दृढौ ॥ ३७ ॥
धनुः पश्य च मे चित्रं शरांश्चाशीविषोपमान्।
रथं पश्य च मे क्लृप्तं सदश्वैर्वातवेगितैः ॥ ३८ ॥
गदां च पश्य गान्धारे हेमपट्टविभूषिताम्।

तुम्हें युद्धमें किसी प्रकार मेरा अपमान नहीं करना चाहिये। तुम मेरी मोटी और वज्रके समान गँठीली इन सुदृढ़ भुजाओंको तो देखो। मेरे इस विचित्र धनुष और विषधर सर्पके समान इन विषैले बाणोंकी ओर तो दृष्टिपात करो। गान्धारीकुमार! वायुके समान वेगशाली उत्तम घोड़ोंसे जुते हुए मेरे इस सजे-सजाये रथ और सुवर्णपत्रसे मढ़ी हुई गदापर भी तो दृष्टि डालो ॥ ३७-३८½ ॥

दारयेयं महीं कृत्स्नां विकिरेयं च पर्वतान् ॥ ३९ ॥
शोषयेयं समुद्रांश्च तेजसा स्वेन पार्थिव।

राजन्! मैं सारी पृथ्वीको विदीर्ण कर सकता हूँ, पर्वतोंको तोड़-फोड़कर बिखेर सकता हूँ और अपने तेजसे समुद्रोंको भी सुखा सकता हूँ ॥ ३९½ ॥

तं मामेवंविधं राजन् समर्थमरिनिग्रहे ॥ ४० ॥
कस्माद् युनक्षि सारथ्ये नीचस्याधिरथे रणे।

नरेश्वर! इस प्रकार शत्रुओंका दमन करनेमें पूर्णतया समर्थ होनेपर भी तुम मुझे इस नीच सूतपुत्र कर्णके सारथिके कामपर कैसे नियुक्त कर रहे हो? ॥ ४०½॥

न मामधुरि राजेन्द्र नियोक्तुं त्वमिहार्हसि ॥ ४१ ॥
न हि पापीयसः श्रेयान् भूत्वा प्रेष्यत्वमुत्सहे।

राजेन्द्र! तुम्हें मुझे नीचकर्ममें नहीं लगाना चाहिये। मैं श्रेष्ठ होकर अत्यन्त नीच पापी पुरुषकी दासता नहीं कर सकता ॥ ४१½ ॥

यो ह्यभ्युपगतं प्रीत्या गरीयांसं वशे स्थितम् ॥ ४२ ॥
वशे पापीयसो धत्ते तत् पापमधरोत्तरम्।

जो पुरुष प्रेमवश अपने पास आकर अपनी आज्ञाके अधीन रहनेवाले किसी श्रेष्ठतम पुरुषको नीचतम मनुष्यके अधीन कर देता है, उसे उच्चको नीच और नीचको उच्च करनेका महान् पाप लगता है ॥ ४२½ ॥

ब्रह्मणा ब्राह्मणाः सृष्टा मुखात् क्षत्रं च बाहुतः ४३
ऊरुभ्यामसृजद् वैश्याञ्शूद्रान् पद्भ्यामिति श्रुतिः।

ब्रह्माजीने ब्राह्मणोंको अपने मुखसे, क्षत्रियोंको भुजाओंसे, वैश्योंको जाँघोंसे और शूद्रोंको पैरोंसे उत्पन्न किया है, ऐसा श्रुतिका मत है ॥ ४३½ ॥

तेभ्यो वर्णविशेषाश्च प्रतिलोमानुलोमजाः ॥ ४४ ॥
अथान्योन्यस्य संयोगाच्चातुर्वर्ण्यस्य भारत।

भारत! इन्हींसे अनुलोम और विलोम क्रमसे विभिन्न वर्णोंकी उत्पत्ति होती है। चारों वर्णोंके पारस्परिक संयोगसे अन्य जातियाँ उत्पन्न हुई हैं ॥ ४४½ ॥

गोप्तारः संगृहीतारो दातारः क्षत्रियाःस्मृताः ॥ ४५ ॥
याजनाध्यापनैर्विप्रा विशुद्धैश्च प्रतिग्रहैः।
लोकस्यानुग्रहार्थाय स्थापिता ब्रह्मणा भुवि ॥ ४६ ॥

इनमें क्षत्रिय-जातिके लोग सबकी रक्षा करनेवाले, सबसे कर लेनेवाले और दान देनेवाले बताये गये हैं। ब्राह्मण यज्ञ कराने, वेद पढ़ाने और विशुद्ध दान ग्रहण करनेके द्वारा जीवन-निर्वाह करते हुए सम्पूर्ण जगत्पर अनुग्रह करनेके लिये इस भूतलपर ब्रह्माजीके द्वारा स्थापित किये गये हैं ॥

कृषिश्च पाशुपाल्यं च विशां दानं च धर्मतः।
ब्रह्मक्षत्रविशां शूद्रा विहिताः परिचारकाः ॥ ४७ ॥

कृषि, पशुपालन और धर्मानुसार दान देना वैश्योंका कर्म है तथा शूद्रलोग ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंकी सेवाके काममें नियुक्त किये गये हैं ॥ ४७ ॥

ब्रह्मक्षत्रस्य विहिताः सूता वै परिचारकाः।
न क्षत्रियो वै सूतानां शृणुयाच्च कथञ्चन ॥ ४८ ॥

सूतजातिके लोग ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके सेवक नियुक्त किये गये हैं, क्षत्रिय सूतोंका सेवक हो, यह कोई किसी प्रकार कहीं नहीं सुन सकता ॥ ४८ ॥

अहं मूर्धाभिषिक्तो हि राजर्षिकुलजो नृपः।
महारथः समाख्यातः सेव्यः स्तुत्यश्च वन्दिनाम्॥४९॥

मैं राजर्षियोंके कुलमें उत्पन्न हुआ मूर्द्धाभिषिक्त नरेश हूँ, विश्वविख्यात महारथी हूँ, सूतोंद्वारा सेव्य और वन्दीजनोंद्वारा स्तुतिके योग्य हूँ ॥ ४९ ॥

सोऽहमेतादृशो भूत्वा नेहारिबलसूदनः।
सूतपुत्रस्य संग्रामे सारथ्यं कर्तुमुत्सहे ॥ ५० ॥

ऐसा प्रतिष्ठित एवं शत्रुसेनाका संहार करनेमें समर्थ होकर मैं यहाँ युद्धस्थलमें एक सूतपुत्रके सारथिका कार्य कदापि नहीं कर सकता ॥ ५० ॥

अवमानमहं प्राप्य न योत्स्यामि कथञ्चन।
आपृच्छे त्वाद्य गान्धारे गमिष्यामि गृहाय वै ॥५१ ॥

गान्धारीनन्दन! आज इस अपमानको पाकर अब मैं किसी प्रकार युद्ध नहीं करूँगा। अतः तुमसे आज्ञा चाहता हूँ। आज ही अपने घरको लौट जाऊँगा ॥ ५१ ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा महाराज शल्यः समितिशोभनः।

उत्थाय प्रययौ तूर्णं राजमध्यादमर्षितः ॥ ५२ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! ऐसा कहकर युद्धमें शोभा पानेवाले शल्य अमर्षमें भर गये और राजाओंके बीचसे उठकर तुरंत चल दिये ॥ ५२ ॥

प्रणयाद् बहुमानाच्च तं निगृह्य सुतस्तव ।
अब्रवीन्मधुरं वाक्यं साम्ना सर्वार्थसाधकम् ॥ ५३ ॥

तब आपके पुत्रने बड़े प्रेम और आदरसे उन्हें रोका



तथा सान्त्वनापूर्ण मधुर स्वरमें उनसे यह सर्वार्थसाधक वचन कहा—॥ ५३ ॥

यथा शल्य विजानीषे एवमेतदसंशयम् ।
अभिप्रायस्तु मे कश्चित् तं निबोध जनेश्वर ॥ ५४ ॥

'महाराज शल्य ! आप अपने विषयमें जैसा समझते हैं ऐसी ही बात है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है । मेरा कोई और ही अभिप्राय है, उसे ध्यान देकर सुनिये ॥ ५४ ॥

न कर्णोऽभ्यधिकस्त्वत्तो न शङ्के त्वां च पार्थिव ।
न हि मद्रेश्वरो राजा कुर्याद् यदनृतं भवेत् ॥ ५५ ॥

'भूपाल ! न तो कर्ण आपसे श्रेष्ठ है और न आपके प्रति मैं संदेह ही करता हूँ । मद्रदेशके स्वामी राजा शल्य कोई ऐसा कार्य नहीं कर सकते, जो उनकी सत्य प्रतिज्ञाके विपरीत हो ॥

ऋतमेव हि पूर्वास्ते वदन्ति पुरुषोत्तमाः ।
तस्मादार्तायनिः प्रोक्तो भवानिति मतिर्मम ॥ ५६ ॥

'आपके पूर्वज श्रेष्ठ पुरुष थे और सदा सत्य ही बोला करते थे, इसीलिये आप 'आर्तायनि' कहलाते हैं; मेरी ऐसी ही धारणा है ॥ ५६ ॥

शल्यभूतस्तु शत्रूणां यस्मात्त्वं युधि मानद ।
तस्माच्छल्यो हि ते नाम कथ्यते पृथिवीतले ॥ ५७ ॥

'मानद ! आप युद्धस्थलमें शत्रुओंके लिये शल्य (काँटे) के समान हैं, इसीलिये इस भूतलपर आपका शल्य नाम विख्यात है ॥ ५७ ॥

यदेतद् व्याहृतं पूर्वं भवता भूरिदक्षिण ।
तदेव कुरु धर्मज्ञ मदर्थं यद् यदुच्यते ॥ ५८ ॥

'यज्ञोंमें प्रचुर दक्षिणा देनेवाले धर्मज्ञ नरेश्वर ! आपने पहले यह जो कुछ कहा है और इस समय जो कुछ कह रहे हैं, उसीको मेरे लिये पूर्ण करें ॥ ५८ ॥

न च त्वत्तो हि राधेयो न चाहमपि वीर्यवान् ।
वृणेऽहं त्वां हयाग्र्याणां यन्तारमिह संयुगे ॥ ५९ ॥

'आपकी अपेक्षा न तो राधापुत्र कर्ण बलवान् है और न मैं ही ।आप उत्तम अश्वोंके सर्वश्रेष्ठ संचालक (अश्वविद्याके सर्वोत्तम ज्ञाता) हैं, इसलिये इस युद्धस्थलमें आपका वरण कर रहा हूँ ॥ ५९ ॥

मन्ये चाभ्यधिकं शल्य गुणैः कर्णं धनंजयात् ।
भवन्तं वासुदेवाच्च लोकोऽयमिति मन्यते ॥ ६० ॥

'शल्य ! मैं कर्णको अर्जुनसे अधिक गुणवान् मानता हूँ और यह सारा जगत् आपको वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णसे श्रेष्ठ मानता है ॥ ६० ॥

कर्णो ह्यभ्यधिकः पार्थादस्त्रैरेव नरर्षभ ।
भवानभ्यधिकः कृष्णादश्वज्ञाने बले तथा ॥ ६१ ॥

'नरश्रेष्ठ ! कर्ण तो अर्जुनसे केवल अस्त्र-ज्ञानमें ही बढ़ा-चढ़ा है, परंतु आप श्रीकृष्णसे अश्वविद्या और बल दोनोंमें बड़े हैं ॥

यथाश्वहृदयं वेद वासुदेवो महामनाः ।
द्विगुणं त्वं तथा वेत्सि मद्रराजेश्वरात्मज ॥ ६२ ॥

'मद्रराजकुमार ! महामनस्वी श्रीकृष्ण जिस प्रकार अश्वविद्याका रहस्य जानते हैं, वैसा ही, बल्कि उससे भी दूना आप जानते हैं' ॥ ६२ ॥

शल्य उवाच

यन्मां ब्रवीषि गान्धारे मध्ये सैन्यस्य कौरव ।
विशिष्टं देवकीपुत्रात् प्रीतिमानस्म्यहं त्वयि ॥ ६३ ॥

शल्यने कहा—कौरव ! गान्धारीपुत्र ! तुम सारी सेनाके बीचमें जो मुझे देवकीनन्दन श्रीकृष्णसे भी बढ़कर बता रहे हो, इससे मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ ॥ ६३ ॥

एष सारथ्यमातिष्ठे राधेयस्य यशस्विनः ।
युध्यतः पाण्डवाग्र्येण यथा त्वं वीर मन्यसे ॥ ६४ ॥

वीर ! जैसा तुम चाहते हो उसके अनुसार मैं पाण्डव-शिरोमणि अर्जुनके साथ युद्ध करते हुए यशस्वी कर्णका सारथिकर्म अब स्वीकार किये लेता हूँ ॥ ६४ ॥

समयश्च हि मे वीर कश्चिद् वैकर्तनं प्रति ।
उत्सृजेयं यथाश्रद्धमहं वाचोऽस्य संनिधौ ॥ ६५ ॥

परंतु वीरवर ! कर्णके साथ मेरी एक शर्त रहेगी। 'मैं इसके समीप, जैसी मेरी इच्छा हो, वैसी बातें कर सकता हूँ' ॥

संजय उवाच

तथेति राजन् पुत्रस्ते सह कर्णेन भारत।
अब्रवीन्मद्रराजस्य मतं भरतसत्तम ॥ ६६ ॥

संजयने कहा—भारत ! भरतभूषण नरेश ! इसपर कर्णसहित आपके पुत्रने 'बहुत अच्छा' कहकर शल्यकी शर्त स्वीकार कर ली ॥ ६६ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि शल्यसारथ्ये द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें शल्यका सारथिकर्मविषयक बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३२ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ६६½ श्लोक हैं)

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

दुर्योधनका शल्यसे त्रिपुरोंकी उत्पत्तिका वर्णन, त्रिपुरोंसे भयभीत इन्द्र आदि देवताओंका ब्रह्माजीके साथ भगवान् शङ्करके पास जाकर उनकी स्तुति करना

दुर्योधन उवाच

भूय एव तु मद्रेश यत्ते वक्ष्यामि तच्छृणु।
यथा पुरावृत्तमिदं युद्धे देवासुरे विभो ॥ १ ॥
यदुक्तवान् पितुर्मह्यं मार्कण्डेयो महानृषिः।
तदशेषेण ब्रुवतो मम राजर्षिसत्तम ॥ २ ॥
निबोध मनसा चात्र न ते कार्या विचारणा।

दुर्योधन बोला—मद्रराज ! मैं पुनः आपसे जो कुछ कह रहा हूँ, उसे सुनिये। प्रभो ! पूर्वकालमें देवासुर-संग्रामके अवसरपर जो घटना घटित हुई थी तथा जिसे महर्षि मार्कण्डेयने मेरे पिताजीको सुनाया था, वह सब मैं पूर्णरूपसे बता रहा हूँ। राजर्षिप्रवर ! आप मन लगाकर इसे सुनिये, इसके विषयमें आपको कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये ॥

देवानामसुराणां च परस्परजिगीषया ॥ ३ ॥
बभूव प्रथमो राजन् संग्रामस्तारकामयः।

राजन् ! देवताओं और असुरोंमें परस्पर विजय पानेकी इच्छासे सर्वप्रथम तारकामय संग्राम हुआ था ॥ ३½ ॥

निर्जिताश्च तदा दैत्या दैवतैरिति नः श्रुतम् ॥ ४ ॥
निर्जितेषु च दैत्येषु तारकस्य सुतास्त्रयः।
ताराक्षः कमलाक्षश्च विद्युन्माली च पार्थिव ॥ ५ ॥
तप उग्रं समास्थाय नियमे परमे स्थिताः।

उस समय देवताओंने दैत्योंको परास्त कर दिया था, यह हमारे सुननेमें आया है। राजन् ! दैत्योंके परास्त हो जानेपर तारकासुरके तीन पुत्र ताराक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली उग्र तपस्याका आश्रय ले उत्तम नियमोंका पालन करने लगे ॥

तपसा कर्शयामासुर्देहान् स्वान् शत्रुतापन ॥ ६ ॥
दमेन तपसा चैव नियमेन समाधिना।

शत्रुओंको संताप देनेवाले नरेश ! उन तीनोंने तपस्याके द्वारा अपने शरीरोंको सुखा दिया। वे इन्द्रिय-संयम, तप, नियम और समाधिसे संयुक्त रहने लगे ॥ ६½ ॥

तेषां पितामहः प्रीतो वरदः प्रददौ वरम् ॥ ७ ॥
अवध्यत्वं च ते राजन् सर्वभूतस्य सर्वदा।
सहिता वरयामासुः सर्वलोकपितामहम् ॥ ८ ॥

राजन् ! उनपर प्रसन्न होकर वरदायक भगवान् ब्रह्मा उन्हें वर देनेको उद्यत हुए। उस समय उन तीनोंने एक साथ होकर सम्पूर्ण लोकोंके पितामह ब्रह्मासे यह वर माँगा कि 'हम सदा सम्पूर्ण भूतोंसे अवध्य हों ॥ ७-८ ॥

तानब्रवीत्तदा देवो लोकानां प्रभुरीश्वरः।
नास्ति सर्वामरत्वं वै निवर्तध्वमितोऽसुराः ॥ ९ ॥
अन्यं वरं वृणीध्वं वै यादृशं सम्प्ररोचते।

तब लोकनाथ भगवान् ब्रह्माने उनसे कहा—'असुरो ! सबके लिये अमरत्व सम्भव नहीं है। तुम इस तपस्यासे निवृत्त हो जाओ और दूसरा कोई वर जैसा तुम्हें रुचे माँग लो' ॥९½॥

ततस्ते सहिता राजन् सम्प्रधार्यासकृत् प्रभुम् ॥ १० ॥
सर्वलोकेश्वरं वाक्यं प्रणम्येदमथाब्रुवन्।

राजन् ! तब उन सबने एक साथ बारंबार विचार करके सर्वलोकेश्वर भगवान् ब्रह्माको शीश नवाकर उनसे इस प्रकार कहा—॥ १०½ ॥

अस्मभ्यं त्वं वरं देव सम्प्रयच्छ पितामह ॥ ११ ॥
(वस्तुमिच्छाम नगरं कृत्वा कामगमं शुभम्।
सर्वकामसमृद्धार्थमवध्यं देवदानवैः ॥
यक्षरक्षोरगगणैर्नानाजातिभिरेव च।
न कृत्याभिर्न शस्त्रैश्च न शापैर्ब्रह्मवादिनाम् ॥
वध्येत त्रिपुरं देव प्रसन्ने त्वयि सादरम् ॥

'पितामह ! देव ! हम सबको आप वर प्रदान कीजिये। हमलोग इच्छानुसार चलनेवाला नगराकार सुन्दर विमान बनाकर उसमें निवास करना चाहते हैं। हमारा वह पुर सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंसे सम्पन्न तथा देवताओं और दानवोंके लिये अवध्य हो। देव ! आपके सादर प्रसन्न होनेसे हमारे तीनों पुर यक्ष, राक्षस, नाग तथा नाना जातिके अन्य प्राणियोंद्वारा भी विनष्ट न हों। उन्हें न तो कृत्याएँ नष्ट कर सकें, न शस्त्र छिन्न-भिन्न कर सकें और न ब्रह्मवादियोंके शापोंद्वारा ही इनका विनाश हो' ॥ ११ ॥

ब्रह्मोवाच

विलयः समयस्यान्ते मरणं जीवितस्य च।
इति चिन्त्य वधोपायं कश्चिदेव निशाम्यत ॥)

ब्रह्माजीने कहा—दैत्यो ! समय पूरा होनेपर सबका लय होता है। जो आज जीवित है, उसकी भी एक दिन मृत्यु होती है। इस बातको अच्छी तरह समझ लो और इन तीनों पुरोंके वधका कोई निमित्त कह सुनाओ।

दैत्या ऊचुः

वयं पुराणि त्रीण्येव समास्थाय महीमिमाम्।
विचरिष्याम लोकेऽस्मिंस्त्वत्प्रसादपुरस्कृताः॥ १२ ॥

दैत्य बोले—भगवन् ! हम तीनों पुरोंमें ही रहकर इस पृथ्वीपर एवं इस जगत्में आपके कृपा-प्रसादसे विचरेंगे॥ १२॥

ततो वर्षसहस्रे तु समेष्यामः परस्परम्।
एकीभावं गमिष्यन्ति पुराण्येतानि चानघ ॥ १३ ॥
समागतानि चैतानि यो हन्याद् भगवंस्तदा।
एकेषुणा देववरः स नो मृत्युर्भविष्यति ॥ १४ ॥

अनघ ! तदनन्तर एक हजार वर्ष पूर्ण होनेपर हमलोग एक दूसरेसे मिलेंगे। भगवन् ! ये तीनों पुर जब एकत्र होकर एकीभावको प्राप्त हो जायँ, उस समय जो एक ही बाणसे इन तीनों पुरोंको नष्ट कर सके, वही देवेश्वर हमारी मृत्युका कारण होगा॥ १३-१४॥

एवमस्त्विति तान् देवः प्रत्युक्त्वा प्राविशद् दिवम्।
ते तु लब्धवराः प्रीताः सम्प्रधार्य परस्परम् ॥ १५ ॥
पुरत्रयविसृष्ट्यर्थं मयं वव्रुर्महासुरम्।
विश्वकर्माणमजरं दैत्यदानवपूजितम् ॥ १६ ॥

'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) यों कहकर भगवान् ब्रह्मा अपने धामको चले गये। वरदान पाकर वे तीनों असुर बड़े प्रसन्न हुए और परस्पर विचार करके उन्होंने दैत्य-दानव-पूजित, अजर-अमर विश्वकर्मा महान् असुर मयका तीन पुरोंके निर्माणके लिये वरण किया॥ १५-१६॥

ततो मयः स्वतपसा चक्रे धीमान् पुराणि च।
त्रीणि काञ्चनमेकं वै रौप्यं कार्ष्णायसं तथा ॥ १७ ॥

तब बुद्धिमान् मयासुरने अपनी तपस्याद्वारा तीन पुरोंका निर्माण किया। उनमेंसे एक सोनेका, दूसरा चाँदीका और तीसरा पुर लोहेका बना था॥ १७॥

काञ्चनं दिवि तत्रासीदन्तरिक्षे च राजतम्।
आयसं चाभवद् भौमं चक्रस्थं पृथिवीपते ॥ १८ ॥

पृथ्वीपते ! सोनेका बना हुआ पुर स्वर्गलोकमें स्थित हुआ। चाँदीका अन्तरिक्षलोकमें और लोहेका भूलोकमें स्थित हुआ; जो आज्ञाके अनुसार सर्वत्र विचरनेवाला था॥ १८॥

एकैकं योजनशतं विस्तारायामतः समम्।
गृहाट्टालकसंयुक्तं बहुप्राकारतोरणम् ॥ १९ ॥

प्रत्येक नगरकी लंबाई-चौड़ाई बराबर-बराबर सौ योजनकी थी। सबमें बड़े-बड़े महल और अट्टालिकाएँ थीं। अनेकानेक प्राकार (परकोटे) और तोरण (फाटक) सुशोभित थे॥ १९॥

गृहप्रवरसम्बाधमसम्बाधमहापथम्।
प्रासादैर्विविधैश्चापि द्वारैश्चैवोपशोभितम् ॥ २० ॥

बड़े-बड़े घरोंसे वह नगर भरा था। उसकी विशाल सड़कें संकीर्णतासे रहित एवं विस्तृत थीं। नाना प्रकारके प्रासाद और द्वार उन पुरोंकी शोभा बढ़ाते थे॥ २०॥

पुरेषु चाभवन् राजन् राजानो वै पृथक् पृथक्।
काञ्चनं तारकाक्षस्य चित्रमासीन्महात्मनः ॥ २१॥

राजन् ! उन तीनों पुरोंके राजा अलग-अलग थे। सुवर्णमय विचित्र पुर महामना तारकाक्षके अधिकारमें था॥ २१॥

राजतं कमलाक्षस्य विद्युन्मालिन आयसम्।
त्रयस्ते दैत्यराजानस्त्रींल्लोकानस्त्रतेजसा ॥ २२ ॥
आक्रम्य तस्थुरूचुश्च कश्च नाम प्रजापतिः।

चाँदीका बना हुआ पुर कमलाक्षके और लोहेका विद्युन्मालीके अधिकारमें था। वे तीनों दैत्यराज अपने अस्त्रोंके तेजसे तीनों लोकोंको दबाकर रहते और कहते थे कि 'प्रजापति कौन है ?' ॥ २२½ ॥

तेषां दानवमुख्यानां प्रयुतान्यर्बुदानि च ॥ २३ ॥
कोट्यश्चाप्रतिवीराणां समाजग्मुस्ततस्ततः।

उन दानवशिरोमणियोंके पास लाखों, करोड़ों और अरबों अप्रतिम वीर दैत्य इधर-उधरसे आ गये थे॥ २३½ ॥

मांसाशिनः सुदृप्ताश्च सुरैर्विनिकृताः पुरा ॥ २४ ॥
महदैश्वर्यमिच्छन्तस्त्रिपुरं दुर्गमाश्रिताः।

वे सब-के-सब मांसभक्षी और अत्यन्त अभिमानी थे। पूर्वकालमें देवताओंने उनके साथ बहुत छल-कपट किया था। अतः वे महान् ऐश्वर्यकी इच्छा रखते हुए त्रिपुर-दुर्गके आश्रयमें आये थे॥ २४½ ॥

सर्वेषां च पुनश्चैषां सर्वयोगवहो मयः ॥ २५ ॥
तमाश्रित्य हि ते सर्वे वर्तयन्तेऽकुतोभयाः।

मयासुर इन सबको सब प्रकारकी अप्राप्त वस्तुएँ प्राप्त कराता था। उसका आश्रय लेकर वे सम्पूर्ण दैत्य निर्भय होकर रहते थे॥ २५½ ॥

यो हि यन्मनसा कामं दध्यौ त्रिपुरसंश्रयः ॥ २६ ॥
तस्मै कामं मयस्तं तं विदधे मायया तदा।

उक्त तीनों पुरोंमें निवास करनेवाला जो भी असुर अपने मनसे जिस अभीष्ट भोगका चिन्तन करता था, उसके लिये मयासुर अपनी मायासे वह-वह भोग तत्काल प्रस्तुत कर देता था॥ २६½ ॥

तारकाक्षसुतो वीरो हरिर्नाम महाबलः ॥ २७ ॥
तपस्तेपे परमकं येनातुष्यत् पितामहः।

तारकाक्षका महाबली वीर पुत्र 'हरि' नामसे प्रसिद्ध था, उसने बड़ी भारी तपस्या की, जिससे ब्रह्माजी उसपर संतुष्ट हो गये॥ २७½ ॥

संतुष्टमवृणोद् देवं वापी भवतु नः पुरे ॥ २८ ॥
शस्त्रैर्विनिहता यत्र क्षिप्ताः स्युर्बलवत्तराः।

संतुष्ट हुए ब्रह्माजीसे उसने यह वर माँगा कि 'हमारे पुरोंमें एक-एक ऐसी बावड़ी हो जाय, जिसके भीतर डाल दिये जानेपर शस्त्रोंके आघातसे मरे हुए दैत्य वीर और भी प्रबल होकर जीवित हो उठें' ॥ २८½ ॥

स तु लब्ध्वा वरं वीरस्तारकाक्षसुतो हरिः ॥ २९ ॥
ससृजे तत्र वापीं तां मृतानां जीविनीं प्रभो ।

प्रभो ! वह वरदान पाकर तारकाक्षके वीर पुत्र हरिने उन पुरोंमें एक-एक बावड़ीका निर्माण किया, जो मृतकोंको जीवन प्रदान करनेवाली थी ॥ २९½ ॥

येन रूपेण दैत्यस्तु येन वेषेण चैव ह ॥ ३० ॥
मृतस्तस्यां परिक्षिप्तस्तादृशेनैव जज्ञिवान् ।

जो दैत्य जिस रूप और जैसे वेषमें रहता था, मरनेपर उस बावड़ीमें डालनेके पश्चात् वैसे ही रूप और वेषसे सम्पन्न होकर प्रकट हो जाता था ॥ ३०½ ॥

तां प्राप्य ते पुनस्तांस्तु लोकान् सर्वान् बबाधिरे॥३१॥
महता तपसा सिद्धाः सुराणां भयवर्धनाः ।
न तेषामभवद् राजन् क्षयो युद्धे कदाचन ॥ ३२ ॥

उस वापीमें पहुँच जानेपर नया जीवन धारण करके वे दैत्य पुनः उन सभी लोकोंको बाधा पहुँचाने लगते थे। राजन् ! वे महान् तपसे सिद्ध हुए असुर देवताओंका भय बढ़ा रहे थे । युद्धमें कभी उनका विनाश नहीं होता था ॥

ततस्ते लोभमोहाभ्यामभिभूता विचेतसः ।
निर्ह्रीकाः संस्थिताः सर्वे स्थापिताः समलूलुपन् । ३३।

उन पुरोंमें बसाये गये सभी दैत्य लोभ और मोहके वशीभूत हो विवेकहीन और निर्लज्ज होकर सब ओर लूटपाट करने लगे ॥ ३३ ॥

विद्राव्य सगणान् देवांस्तत्र तत्र तदा तदा ।
विचेरुः स्वेन कामेन वरदानेन दर्पिताः ॥ ३४ ॥

वरदान पानेके कारण उनका घमंड बढ़ गया था। वे विभिन्न स्थानोंमें देवताओं और उनके गणोंको भगाकर वहाँ अपनी इच्छाके अनुसार विचरते थे ॥ ३४ ॥

देवोद्यानानि सर्वाणि प्रियाणि च दिवौकसाम् ।
ऋषीणामाश्रमान् पुण्यान् रम्याञ्जनपदांस्तथा ॥३५॥
व्यनाशयन्नमर्यादा दानवा दुष्टचारिणः ।

स्वर्गवासियोंके परम प्रिय समस्त देवोद्यानों, ऋषियोंके पवित्र आश्रमों तथा रमणीय जनपदोंको भी वे मर्यादाशून्य दुराचारी दानव नष्ट-भ्रष्ट कर देते थे ॥ ३५½ ॥

(निःस्थानाश्च कृता देवा ऋषयः पितृभिः सह ।
दैत्यैस्त्रिभिस्त्रयो लोका ह्याक्रान्तास्तैः सुरेतरैः ॥)

उन देवविरोधी तीनों दैत्योंने देवताओं, पितरों और ऋषियोंको भी उनके स्थानोंसे हटाकर निराश्रय कर दिया। वे ही नहीं, तीनों लोकोंके निवासी उनके द्वारा पददलित हो रहे थे ॥

पीड्यमानेषु लोकेषु ततः शक्रो मरुद्‌वृतः ॥ ३६ ॥
पुराण्यायोधयांचक्रे वज्रपातैः समन्ततः ।

जब सम्पूर्ण लोकोंके प्राणी पीडित होने लगे, तब देवताओं-सहित इन्द्र चारों ओरसे वज्रपात करते हुए उन तीनों पुरोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ ३६½ ॥

नाशकत् तान्यभेद्यानि यदा भेत्तुं पुरंदरः ॥ ३७ ॥
पुराणि वरदत्तानि धात्रा तेन नराधिप ।
तदा भीतः सुरपतिर्मुक्त्वा तानि पुराण्यथ ॥ ३८ ॥
तैरेव विबुधैः सार्धं पितामहमरिंदम ।
जगामाथ तदाख्यातुं विप्रकारं सुरेतरैः ॥ ३९ ॥

शत्रुदमननरेश्वर ! जब देवराज इन्द्र ब्रह्माजीका वर पाये हुए उन अभेद्य पुरोंका भेदन न कर सके, तब वे भयभीत हो उन पुरोंको छोड़कर उन्हीं देवताओंके साथ ब्रह्माजीके पास उन दैत्योंका अत्याचार बतानेके लिये गये ॥ ३७—३९ ॥

ते तत्त्वं सर्वमाख्याय शिरोभिः सम्प्रणम्य च ।
वधोपायमपृच्छन्त भगवन्तं पितामहम् ॥ ४० ॥

उन्होंने मस्तक झुकाकर भगवान् ब्रह्माजीको प्रणाम किया और सारी बातें ठीक-ठीक बताकर उनसे उन दैत्योंके वधका उपाय पूछा ॥ ४० ॥

श्रुत्वा तद् भगवान् देवो देवानिदमुवाच ह ।
ममापि सोऽपराध्नोति यो युष्माकमसौम्यकृत् ॥ ४१ ॥

वह सब सुनकर भगवान् ब्रह्माने उन देवताओंसे इस प्रकार कहा—'देवगण ! जो तुम्हारी बुराई करता है, वह मेरा भी अपराधी है ॥ ४१ ॥

असुरा हि दुरात्मानः सर्वे एव सुरद्विषः ।
अपराध्यन्ति सततं ये युष्मान् पीडयन्त्युत ॥ ४२ ॥

'वे समस्त देवद्रोही दुरात्मा असुर, जो सदा तुम्हें पीडा देते रहते हैं, निश्चय ही मेरा भी महान् अपराध करते हैं ॥ ४२ ॥

अहं हि तुल्यः सर्वेषां भूतानां नात्र संशयः ।
अधार्मिकास्तु हन्तव्या इति मे व्रतमाहितम् ॥ ४३ ॥

'इसमें संशय नहीं कि समस्त प्राणियोंके प्रति मेरा समान भाव है, तथापि मैंने यह व्रत ले रखा है कि पापात्माओंका वध कर दिया जाय ॥ ४३ ॥

एकेषुणा विभेद्यानि तानि दुर्गाणि नान्यथा ।
न च स्थाणुमृते शक्तो भेत्तुमेकेषुणा पुरः ॥ ४४ ॥

'वे तीनों पुर एक ही बाणसे वेध दिये जायँ तो नष्ट हो सकते हैं, अन्यथा नहीं; परंतु महादेवजीके सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो उन तीनोंको एक साथ एक ही बाणसे वेध सके ॥ ४४ ॥

ते यूयं स्थाणुमीशानं जिष्णुमक्लिष्टकारिणम् ।
योद्धारं वृणुतादित्याः स तान् हन्ता सुरेतरान् ॥४५॥

'अतः अदितिकुमारो ! तुमलोग अनायास ही महान् कर्म करनेवाले, विजयशील, ईश्वर, महादेवजीका योद्धाके रूपमें वरण करो । वे ही उन दैत्योंको मार सकते हैं' ॥ ४५ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा देवाः शक्रपुरोगमाः ।
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा वृषाङ्कं शरणं ययुः ॥ ४६ ॥

उनकी यह बात सुनकर इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता ब्रह्माजीको आगे करके महादेवजीकी शरणमें गये ॥

तपो नियममास्थाय गृणन्तो ब्रह्म शाश्वतम् ।
ऋषिभिः सह धर्मज्ञा भवं सर्वात्मना गताः ॥ ४७ ॥

तप और नियमका आश्रय ले ऋषियोंसहित धर्मज्ञ देवता सनातन ब्रह्मस्वरूप महादेवजीकी स्तुति करते हुए सम्पूर्ण हृदयसे उनकी शरणमें गये ॥ ४७ ॥

तुष्टुवुर्वाग्भिरिष्टाभिर्भयेष्वभयदं नृप ।
सर्वात्मानं महात्मानं येनाप्तं सर्वमात्मना ॥ ४८ ॥

नरेश्वर ! जिन्होंने आत्मस्वरूपसे सबको व्याप्त कर रखा है तथा जो भयके अवसरोंपर अभय प्रदान करनेवाले हैं, उन सर्वात्मा, महात्मा भगवान् शिवकी उन देवताओंने अभीष्ट वाणीद्वारा स्तुति की ॥ ४८ ॥

तपोविशेषैर्विविधैर्योगं यो वेद चात्मनः ।
यः सांख्यमात्मनो वेत्ति यस्य चात्मा वशे सदा॥४९॥
तं ते ददृशुरीशानं तेजोराशिमुमापतिम् ।
अनन्यसदृशं लोके भगवन्तमकल्मषम् ॥ ५० ॥

जो नाना प्रकारकी विशेष तपस्याओंद्वारा मनकी सम्पूर्ण वृत्तियोंके निरोधका उपाय जानते हैं, जिन्हें अपनी ज्ञानस्वरूपताका बोध नित्य बना रहता है, जिनका अन्तःकरण सदा अपने वशमें रहता है, जगत्में जिनकी कहीं भी तुलना नहीं है, उन निष्पाप, तेजोराशि, महेश्वर भगवान् उमापतिका उन देवताओंने दर्शन किया ॥ ४९–५० ॥

एकं च भगवन्तं ते नानारूपमकल्पयन् ।
आत्मनः प्रतिरूपाणि रूपाण्यथ महात्मनि ॥ ५१ ॥
परस्परस्य चापश्यन् सर्वे परमविस्मिताः ।

उन्होंने एक ही भगवान् शिवको अपनी भावनाके अनुसार अनेक रूपोंमें कल्पित किया । उन परमात्मामें अपने तथा दूसरोंके प्रतिबिम्ब देखे । यह सब देखकर परस्पर दृष्टिपात करके वे सब-के-सब अत्यन्त आश्चर्यचकित हो उठे ॥ ५१½ ॥

सर्वभूतमयं दृष्ट्वा तमजं जगतः पतिम् ॥ ५२ ॥
देवा ब्रह्मर्षयश्चैव शिरोभिर्धरणीं गताः ।

उन सर्वभूतमय अजन्मा जगदीश्वरको देखकर सम्पूर्ण देवताओं तथा ब्रह्मर्षियोंने धरतीपर मस्तक टेक दिये ॥

तान् स्वस्तिवादेनाभ्यर्च्य समुत्थाप्य च शङ्करः ॥५३॥
ब्रूत ब्रूतेति भगवान् स्मयमानोऽभ्यभाषत ।

तब भगवान् शङ्करने 'तुम्हारा कल्याण हो' ऐसा कहकर उनका समादर करते हुए उनको उठाया और मुसकराते हुए कहा—'बोलो, बोलो; क्या है ?' ॥ ५३½ ॥

त्र्यम्बकेणाभ्यनुज्ञातास्ततस्ते स्वस्थचेतसः ॥ ५४ ॥
नमो नमो नमस्तेऽस्तु प्रभो इत्यब्रुवन् वचः ।

भगवान् त्रिलोचनकी आज्ञा पाकर स्वस्थचित्त हुए वे देवगण इस प्रकार उनकी स्तुति करने लगे—'प्रभो ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है ॥ ५४½ ॥

नमो देवाधिदेवाय धन्विने वनमालिने ॥ ५५ ॥
प्रजापतिमखघ्नाय प्रजापतिभिरीड्यते ।
नमः स्तुताय स्तुत्याय स्तूयमानाय शम्भवे ॥ ५६ ॥

'आप देवताओंके अधिदेवता, धनुर्धर और वनमालाधारी हैं । आपको नमस्कार है । आप दक्षप्रजापतिके यज्ञका विध्वंस करनेवाले हैं, प्रजापति भी आपकी स्तुति करते हैं, सबके द्वारा आपकी ही स्तुति की गयी है, आप ही स्तुतिके योग्य हैं तथा सब लोग आपकी ही स्तुति करते हैं। आप कल्याणस्वरूप शम्भुको नमस्कार है ॥ ५५-५६ ॥

विलोहिताय रुद्राय नीलग्रीवाय शूलिने ।
अमोघाय मृगाक्षाय प्रवरायुधयोधिने ॥ ५७ ॥

'आप विशेषतः लालवर्णके हैं, पापियोंको रुलानेवाले रुद्र हैं, नीलकण्ठ और त्रिशूलधारी हैं, आपका दर्शन अमोघ फल देनेवाला है, आपके नेत्र मृगोंके समान हैं तथा आप श्रेष्ठ आयुधोंद्वारा युद्ध करनेवाले हैं । आपको नमस्कार है ॥ ५७ ॥

अर्हाय चैव शुद्धाय क्षयाय क्रथनाय च ।
दुर्वारणाय शुक्राय ब्रह्मणे ब्रह्मचारिणे ॥ ५८ ॥
ईशानायाप्रमेयाय नियन्त्रे चर्मवाससे ।
तपोरताय पिङ्गाय व्रतिने कृत्तिवाससे ॥ ५९ ॥

'आप पूजनीय, शुद्ध, प्रलयकालमें सबका संहार करनेवाले हैं । आपको रोकना या पराजित करना सर्वथा कठिन है । आप शुक्लवर्ण, ब्रह्म, ब्रह्मचारी, ईशान, अप्रमेय, नियन्ता तथा व्याघ्रचर्ममय वस्त्र धारण करनेवाले हैं । आप सदा तपस्यामें तत्पर रहनेवाले, पिङ्गलवर्ण, व्रतधारी और कृत्तिवासा हैं । आपको नमस्कार है ॥ ५८-५९ ॥

कुमारपित्रे त्र्यक्षाय प्रवरायुधधारिणे ।
प्रपन्नार्तिविनाशाय ब्रह्मद्विट्संघघातिने ॥ ६० ॥

'आप कुमार कार्तिकेयके पिता, त्रिनेत्रधारी, उत्तम आयुध धारण करनेवाले, शरणागतदुःखभञ्जन तथा

ब्रह्मद्रोहियोंके समुदायका विनाश करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है ॥ ६० ॥

वनस्पतीनां पतये नराणां पतये नमः।
गवां च पतये नित्यं यज्ञानां पतये नमः ॥ ६१ ॥

'आप वनस्पतियोंके पालक और मनुष्योंके अधिपति हैं। आप ही गौओंके स्वामी और सदा यज्ञोंके अधीश्वर हैं। आपको बारंबार नमस्कार है ॥ ६१ ॥

नमोऽस्तु ते ससैन्याय त्र्यम्बकायामितौजसे।
मनोवाक्कर्मभिर्देव त्वां प्रपन्नान् भजस्व नः ॥ ६२ ॥

'सेनासहित आप अमिततेजस्वी भगवान् त्र्यम्बकको नमस्कार है। देव! हम मन, वाणी और क्रियाद्वारा आपकी शरणमें आये हैं। आप हमें अपनाइये' ॥ ६२ ॥

ततः प्रसन्नो भगवान् स्वागतेनाभिनन्द्य च।
प्रोवाच व्येतु वस्त्रासो ब्रूत किं करवाणि वः ॥ ६३ ॥

तब भगवान् शङ्करने प्रसन्न होकर स्वागत-सत्कारके द्वारा देवताओंको आनन्दित करके कहा—'देवगण! तुम्हारा भय दूर हो जाना चाहिये; बोलो, मैं तुम्हारे लिये क्या करूँ?' ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि त्रिपुराख्याने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें त्रिपुराख्यानविषयक तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ४½ श्लोक मिलाकर कुल ६७½ श्लोक हैं)

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

दुर्योधनका शल्यको शिवके विचित्ररथका विवरण सुनाना और शिवजीद्वारा त्रिपुर-वधका उपाख्यान सुनाना एवं परशुरामजीके द्वारा कर्णको दिव्य अस्त्र मिलनेकी बात कहना

दुर्योधन उवाच

पितृदेवर्षिसंघेभ्योऽभये दत्ते महात्मना।
सत्कृत्य शङ्करं प्राह ब्रह्मा लोकहितं वचः ॥ १ ॥

दुर्योधन बोला—राजन्! परमात्मा शिवने जब देवताओं, पितरों तथा ऋषियोंके समुदायको अभय दे दिया, तब ब्रह्माजीने उन भगवान् शङ्करका सत्कार करके यह लोक-हितकारी वचन कहा—॥ १ ॥

तवातिसर्गाद् देवेश प्राजापत्यमिदं पदम्।
मयाधितिष्ठता दत्तो दानवेभ्यो महान् वरः ॥ २ ॥

'देवेश्वर! आपके आदेशसे इस प्रजापतिपदपर स्थित रहते हुए मैंने दानवोंको एक महान् वर दे दिया है ॥ २ ॥

तानतिक्रान्तमर्यादान् नान्यः संहर्तुमर्हति।
त्वामृते भूतभव्येश त्वं ह्येषां प्रत्यरिर्वधे ॥ ३ ॥

'उस वरको पाकर वे मर्यादाका उल्लङ्घन कर चुके हैं। भूत, वर्तमान और भविष्यके स्वामी महेश्वर! आपके सिवा दूसरा कोई भी उनका संहार नहीं कर सकता। उनके वधके लिये आप ही प्रतिपक्षी शत्रु हो सकते हैं ॥ ३ ॥

स त्वं देव प्रपन्नानां याचतां च दिवौकसाम्।
कुरु प्रसादं देवेश दानवाञ्जहि शङ्कर ॥ ४ ॥

'देव! हम सब देवता आपकी शरणमें आकर याचना करते हैं। देवेश्वर शङ्कर! आप हमपर कृपा कीजिये और इन दानवोंको मार डालिये ॥ ४॥

त्वत्प्रसादाज्जगत् सर्वं सुखमैधत मानद।
शरण्यस्त्वं हि लोकेश ते वयं शरणं गताः ॥ ५ ॥

'मानद! आपके प्रसादसे सम्पूर्ण जगत् सुखपूर्वक उन्नति करता आया है, लोकेश्वर! आप ही आश्रयदाता हैं; इसलिये हम आपकी शरणमें आये हैं' ॥ ५ ॥

स्थाणुरुवाच

हन्तव्याः शत्रवः सर्वे युष्माकमिति मे मतिः।
न त्वेक उत्सहे हन्तुं बलस्था हि सुरद्विषः ॥ ६ ॥

भगवान् शिवने कहा—देवताओ! मेरा ऐसा विचार है कि तुम्हारे सभी शत्रुओंका वध किया जाय, परंतु मैं अकेला ही उन सबको नहीं मार सकता; क्योंकि वे देवद्रोही दैत्य बड़े बलवान् हैं ॥ ६ ॥

ते यूयं संहताः सर्वे मदीयेनार्धतेजसा।
जयध्वं युधि ताञ्शत्रून् संहता हि महाबलाः ॥ ७ ॥

अतः तुम सब लोग एक साथ सङ्घ बनाकर मेरे आधे तेजसे पुष्ट हो युद्धमें उन शत्रुओंको जीत लो; क्योंकि जो संघटित होते हैं, वे महान् बलशाली हो जाते हैं ॥ ७ ॥

देवा ऊचुः

अस्मत्तेजोबलं यावत् तावद्द्विगुणमाहवे।
तेषामिति हि मन्यामो दृष्टतेजोबला हि ते ॥ ८ ॥

देवता बोले—प्रभो! युद्धमें हमलोगोंका जितना भी तेज और बल है, उससे दूना उन दैत्योंका है, ऐसा हम मानते हैं; क्योंकि उनके तेज और बलको हमने देख लिया है ॥ ८ ॥

स्थाणुरुवाच

वध्यास्ते सर्वतः पापा ये युष्मास्वपराधिनः।
मम तेजोबलार्धेन सर्वान् निघ्नत शात्रवान् ॥ ९ ॥

भगवान् शिव बोले—देवताओ! जो पापी तुमलोगोंके अपराधी हैं, वे सब प्रकारसे वधके ही योग्य हैं। मेरे तेज और बलके आधे भागसे युक्त हो तुमलोग समस्त शत्रुओंको मार डालो॥

देवा ऊचुः

बिभर्तुं भवतोऽर्धं तु न शक्ष्यामो महेश्वर।
सर्वेषां नो बलार्धेन त्वमेव जहि शात्रवान् ॥ १० ॥

देवताओंने कहा—महेश्वर ! हम आपका आधा बल धारण नहीं कर सकते; अतः आप ही हम सब लोगोंके आधे बलसे युक्त हो शत्रुओंका वध कीजिये ॥ १० ॥

स्थाणुरुवाच

यदि शक्तिर्न वः काचिद् बिभर्तुं मामकं बलम्।
अहमेतान् हनिष्यामि युष्मत्तेजोऽर्धबृंहितः ॥ ११॥

भगवान् शिव बोले—देवगण ! यदि मेरे बलको धारण करनेमें तुम्हारी सामर्थ्य नहीं है तो मैं ही तुमलोगोंके आधे तेजसे परिपुष्ट हो इन दैत्योंका वध करूँगा ॥ ११ ॥

ततस्तथेति देवेशस्तैरुक्तो राजसत्तम।
अर्धमादाय सर्वेषां तेजसाभ्यधिकोऽभवत् ॥ १२ ॥

नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर देवताओंने देवेश्वर भगवान् शिवसे 'तथास्तु' कह दिया और उन सबके तेजका आधा भाग लेकर वे अधिक तेजस्वी हो गये ॥ १२ ॥

स तु देवो बलेनासीत् सर्वेभ्यो बलवत्तरः।
महादेव इति ख्यातस्ततः प्रभृति शङ्करः ॥ १३ ॥

वे देव बलके द्वारा उन सबकी अपेक्षा अधिक बलशाली हो गये। इसलिये उसी समयसे उन भगवान् शङ्करका महादेव नाम विख्यात हो गया ॥ १३ ॥

ततोऽब्रवीन्महादेवो धनुर्बाणधरो ह्यहम्।
हनिष्यामि रथेनाजौ तान् रिपून् वो दिवौकसः ॥ १४ ॥

तत्पश्चात् महादेवजीने कहा—'देवताओ ! मैं धनुष-बाण धारण करके रथपर बैठकर युद्धस्थलमें तुम्हारे उन शत्रुओंका वध करूँगा ॥ १४ ॥

ते यूयं मे रथं चैव धनुर्बाणं तथैव च।
पश्यध्वं यावदद्यैतान् पातयामि महीतले ॥ १५ ॥

'अतः तुमलोग मेरे लिये रथ और धनुष-बाणकी खोज करो, जिसके द्वारा आज इन दैत्योंको भूतलपर मार गिराऊँ' ॥

देवा ऊचुः

मूर्तीः सर्वाः समाधाय त्रैलोक्यस्य ततस्ततः।
रथं ते कल्पयिष्यामो देवेश्वर सुवर्चसम् ॥ १६ ॥
तथैव बुद्ध्या विहितं विश्वकर्मकृतं शुभम्।

देवता बोले—देवेश्वर ! हमलोग तीनों लोकोंके तेजकी सारी मात्राओंको एकत्र करके आपके लिये परम तेजस्वी रथका निर्माण करेंगे। विश्वकर्माका बुद्धिपूर्वक बनाया हुआ वह रथ बहुत ही सुन्दर होगा ॥ १६½ ॥

ततो विबुधशार्दूलास्ते रथं समकल्पयन् ॥ १७ ॥
विष्णुं सोमं हुताशं च तस्येषुं समकल्पयन्।

तदनन्तर उन देवसंघोंने रथका निर्माण किया और विष्णु, चन्द्रमा तथा अग्नि—इन तीनोंको उनका बाण बनाया ॥ १७½ ॥

शृङ्गमग्निर्बभूवास्य भल्लः सोमो विशाम्पते ॥ १८ ॥
कुड्मलश्चाभवद् विष्णुस्तस्मिन्निषुवरे तदा।

प्रजानाथ ! उस बाणका शृङ्ग (गाँठ) अग्नि हुए। उसका भल्ल (फल) चन्द्रमा हुए और उस श्रेष्ठ बाणके अग्रभागमें भगवान् विष्णु प्रतिष्ठित हुए ॥ १८½ ॥

रथं वसुन्धरां देवीं विशालपुरमालिनीम् ॥ १९ ॥
सपर्वतवनद्वीपां चक्रुर्भूतधरां तदा।

बड़े-बड़े नगरोंसे सुशोभित, पर्वत, वन और द्वीपोंसे युक्त, प्राणियोंकी आधारभूता पृथ्वी देवीको उस समय देवताओंने रथ बनाया ॥ १९½ ॥

मन्दरः पर्वतश्चाक्षो जङ्घा तस्य महानदी ॥ २० ॥
दिशश्च प्रदिशश्चैव परिवारो रथस्य तु।

मन्दराचल उस रथका धुरा था, महानदी गङ्गा जंघा (धुरेका आश्रय) बनी थीं, दिशाएँ और विदिशाएँ उस रथका आवरण थीं ॥ २०½ ॥

ईषा नक्षत्रवंशश्च युगः कृतयुगोऽभवत् ॥ २१ ॥
कूबरश्च रथस्यासीद् वासुकिर्भुजगोत्तमः।
अपस्करमधिष्ठाने हिमवान् विन्ध्यपर्वतः।
उदयास्तावधिष्ठाने गिरी चक्रुः सुरोत्तमाः ॥ २२ ॥

नक्षत्रोंका समूह ईषादण्ड हुआ और कृतयुगने जुएका रूप धारण किया। नागराज वासुकि उस रथका कूबर बन गये थे। हिमालय पर्वत अपस्कर (रथके पीछेका काठ) और विन्ध्याचलने उसके आधारकाष्ठका रूप धारण किया। उदयाचल और अस्ताचल दोनोंको उन श्रेष्ठ देवताओंने पहियोंका आधारभूत काष्ठ बनाया ॥ २१-२२ ॥

समुद्रमक्षमसृजन् दानवालयमुत्तमम् ।
सप्तर्षिमण्डलं चैव रथस्यासीत् परिष्करः ॥ २३ ॥

दानवोंके उत्तम निवासस्थान समुद्रको बन्धनरज्जु बनाया। सप्तर्षियोंका समुदाय रथका परिस्कर (चक्ररक्षा आदिका साधन) बन गया ॥ २३ ॥

गङ्गा सरस्वती सिन्धुर्धुरमाकाशमेव च।
उपस्करो रथस्यासन्नापः सर्वाश्च निम्नगाः ॥ २४ ॥

गङ्गा, सरस्वती और सिंधु—इन तीनों नदियोंके साथ आकाश त्रिवेणुकाष्ठयुक्त धुरेका भाग हुआ। उस रथके बन्धन आदिकी सामग्री जल तथा सम्पूर्ण नदियाँ थीं ॥ २४ ॥

अहोरात्रं कलाश्चैव काष्ठाश्च ऋतवस्तथा।
अनुकर्षं ग्रहा दीप्ता वरूथं चापि तारकाः ॥ २५ ॥

दिन, रात, कला, काष्ठा और छहों ऋतुएँ उस रथका अनुकर्ष (नीचेका काष्ठ) बन गयीं। चमकते हुए ग्रह और तारे वरूथ (रथकी रक्षाके लिये आवरण) हुए ॥ २५ ॥

धर्मार्थकामं संयुक्तं त्रिवेणुं दारु बन्धुरम्।
ओषधीर्वीरुधश्चैव घण्टाः पुष्पफलोपगाः ॥ २६ ॥

त्रिवेणु-तुल्य धर्म, अर्थ और काम—तीनोंको संयुक्त करके

रथकी बैठक बनाया। फल और फूलोंसे युक्त ओषधियों एवं लताओंको घण्टाका रूप दिया ॥ २६ ॥

सूर्याचन्द्रमसौ कृत्वा चक्रे रथवरोत्तमे।
पक्षौ पूर्वापरौ तत्र कृते रात्र्यहनी शुभे ॥ २७ ॥

उस श्रेष्ठ रथमें सूर्य और चन्द्रमाको दोनों पहिये बनाकर सुन्दर रात्रि और दिनको वहाँ पूर्वपक्ष और अपरपक्षके रूपमें प्रतिष्ठित किया ॥ २७ ॥

दश नागपतीनीषां धृतराष्ट्रमुखांस्तदा।
योक्त्राणि चक्रुर्नागांश्च निःश्वसन्तो महोरगान्॥ २८॥

धृतराष्ट्र आदि दस नागराजोंको भी ईषादण्डमें ही स्थान दिया। फुफकारते हुए बड़े-बड़े सर्पोंको उस रथके जोत बनाये ॥ २८ ॥

द्यां युगं युगचर्माणि संवर्तकबलाहकान्।
कालपृष्ठोऽथ नहुषः कर्कोटकधनंजयौ ॥ २९ ॥
इतरे चाभवन् नागा हयानां बालबन्धनाः।
दिशश्च प्रदिशश्चैव रश्मयो रथवाजिनाम् ॥ ३० ॥

द्युलोकको भी जूएमें ही स्थान दिया। प्रलयकालके मेघोंको युगचर्म बनाया। कालपृष्ठ, नहुष, कर्कोटक, धनंजय तथा दूसरे-दूसरे नाग घोड़ोंके केसर बाँधनेकी रस्सी बनाये गये। दिशाओं और विदिशाओंने रथमें जुते हुए घोड़ोंकी बागडोरका भी रूप धारण किया ॥ २९-३० ॥

संध्यां धृतिं च मेधां च स्थितिं संनतिमेव च।
ग्रहनक्षत्रताराभिश्चर्म चित्रं नभस्तलम् ॥ ३१ ॥

संध्या, धृति, मेधा, स्थिति और सनतिसहित आकाशको, जो ग्रह, नक्षत्र और तारोंसे विचित्र शोभा धारण करता है, चर्म (रथका ऊपरी आवरण) बनाया ॥ ३१ ॥

सुराम्बुप्रेतवित्तानां पतीँल्लोकेश्वरान् हयान्।
सिनीवालीमनुमतिं कुहूं राकां च सुव्रताम् ॥ ३२ ॥
योक्त्राणि चक्रुर्वाहानां रोहकांस्तत्र कण्टकान्।

इन्द्र, वरुण, यम और कुबेर—इन चार लोकपालोंको देवताओंने उस रथके घोड़े बनाये। सिनीवाली, अनुमति, कुहू तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाली राका इनकी अधिष्ठात्री देवियोंको घोड़ोंके जोतेका रूप दिया और इनके अधिकारी देवताओंको घोड़ोंकी लगामोंके काँटे बनाया॥

धर्मः सत्यं तपोऽर्थश्च विहितास्तत्र रश्मयः ॥ ३३ ॥
अधिष्ठानं मनश्चासीत् परिरथ्या सरस्वती।
नानावर्णाश्च चित्राश्च पताकाः पवनेरिताः ॥ ३४ ॥
विद्युदिन्द्रधनुर्नद्धं रथं दीप्तं व्यदीपयन्।

धर्म, सत्य, तप और अर्थ—इनको वहाँ लगाम बनाया गया। रथकी आधारभूमि मन हुआ और सरस्वती देवी रथके आगे बढ़नेका मार्ग थीं। नाना रंगोंकी विचित्र पताकाएँ पवनसे प्रेरित होकर फहरा रही थीं, जो बिजली और इन्द्रधनुषसे बँधे हुए उस देदीप्यमान रथकी शोभा बढ़ाती थीं ॥ ३३-३४½ ॥

वषट्कारः प्रतोदोऽभूद् गायत्री शीर्षबन्धना ॥ ३५ ॥

वषट्कार घोड़ोंका चाबुक हुआ और गायत्री उस रथके ऊपरी भागकी बन्धन-रज्जु बनीं ॥ ३५ ॥

यो यज्ञे विहितः पूर्वमीशानस्य महात्मनः।
संवत्सरो धनुस्तद् वै सावित्री ज्या महास्वना ॥ ३६ ॥

पूर्वकालमें जो महात्मा महादेवजीके यज्ञमें निर्मित हुआ था, वह संवत्सर ही उनके लिये धनुष बना और सावित्री उस धनुषकी महान् टंकार करनेवाली प्रत्यञ्चा बनी ॥ ३६ ॥

दिव्यं च वर्म विहितं महार्हं रत्नभूषितम्।
अभेद्यं विरजस्कं वै कालचक्रबहिष्कृतम् ॥ ३७ ॥

महादेवजीके लिये एक दिव्य कवच तैयार किया गया, जो बहुमूल्य, रत्नभूषित, रजोगुणरहित (अथवा धूलरहित स्वच्छ), अभेद्य तथा कालचक्रकी पहुँचसे परे था ॥ ३७ ॥

ध्वजयष्टिरभून्मेरुः श्रीमान् कनकपर्वतः।
पताकाश्चाभवन् मेघास्तडिद्भिः समलङ्कृताः ॥ ३८ ॥
रेजुरध्वर्युमध्यस्था ज्वलन्त इव पावकाः।

कान्तिमान् कनकमय मेरुपर्वत रथके ध्वजका दण्ड बना था। बिजलियोंसे विभूषित बादल ही पताकाओंका काम दे रहे थे, जो यजुर्वेदी ऋत्विजोंके बीचमें स्थित हुई अग्नियोंके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ ३८½ ॥

क्लृप्तं तु तं रथं दृष्ट्वा विस्मिता देवताऽभवन् ॥ ३९ ॥
सर्वलोकस्य तेजांसि दृष्ट्वैकस्थानि मारिष।
युक्तं निवेदयामासुर्देवास्तस्मै महात्मने ॥ ४० ॥

मान्यवर ! वह रथ क्या था, सम्पूर्ण जगत्के तेजका पुञ्ज एकत्र हो गया था। उसे निर्मित हुआ देख सम्पूर्ण देवता आश्चर्यचकित हो उठे। फिर उन्होंने महात्मा महादेवजीसे यह निवेदन किया कि रथ तैयार है ॥ ३९-४० ॥

एवं तस्मिन् महाराज कल्पिते रथसत्तमे।
देवैर्मनुजशार्दूल द्विषतामभिमर्दने ॥ ४१ ॥
स्वान्यायुधानि मुख्यानि न्यदधाच्छङ्करो रथे।
ध्वजयष्टिं वियत् कृत्वा स्थापयामास गोवृषम्॥ ४२ ॥

पुरुषसिंह ! महाराज ! इस प्रकार देवताओंद्वारा शत्रुओंका मर्दन करनेवाले उस श्रेष्ठ रथका निर्माण हो जानेपर भगवान् शङ्करने उसके ऊपर अपने मुख्य-मुख्य अस्त्र-शस्त्र रख दिये और ध्वजदण्डको आकाशव्यापी बनाकर उसके ऊपर अपने वृषभ नन्दीको स्थापित कर दिया ॥ ४१-४२ ॥

ब्रह्मदण्डः कालदण्डो रुद्रदण्डस्तथा ज्वरः।
परिस्कन्दा रथस्यासन् सर्वतोदिशमुद्यताः ॥ ४३ ॥

तत्पश्चात् ब्रह्मदण्ड, कालदण्ड, रुद्रदण्ड तथा ज्वर—ये

उस रथके पार्श्वरक्षक बनकर चारों ओर शस्त्र लेकर खड़े हो गये ॥ ४३ ॥

अथर्वाङ्गिरसावास्तां चक्ररक्षौ महात्मनः ।
ऋग्वेदः सामवेदश्च पुराणं च पुरःसराः ॥ ४४ ॥

अथर्वा और अङ्गिरा महात्मा शिवके उस रथके पहियोंकी रक्षा करने लगे । ऋग्वेद, सामवेद और समस्त पुराण उस रथके आगे चलनेवाले योद्धा हुए ॥ ४४ ॥

इतिहासयजुर्वेदौ पृष्ठरक्षौ बभूवतुः ।
दिव्या वाचश्च विद्याश्च परिपार्श्वचराः स्थिताः ॥ ४५ ॥

इतिहास और यजुर्वेद पृष्ठरक्षक हो गये तथा दिव्य वाणी और विद्याएँ पार्श्ववर्ती बनकर खड़ी हो गयीं ॥

स्तोत्रादयश्च राजेन्द्र वषट्कारस्तथैव च ।
ओंकारश्च मुखे राजन्नतिशोभाकरोऽभवत् ॥ ४६ ॥

राजेन्द्र ! स्तोत्र-कवच आदि, वषट्कार तथा ओङ्कार—ये मुखभागमें स्थित होकर अत्यन्त शोभा बढ़ाने लगे ॥

विचित्रमृतुभिः षड्भिः कृत्वा संवत्सरं धनुः ।
छायामेवात्मनश्चक्रे धनुर्ज्यामक्षयां रणे ॥ ४७ ॥

छहों ऋतुओंसे युक्त संवत्सरको विचित्र धनुष बनाकर अपनी छायाको ही महादेवजीने उस धनुषकी प्रत्यञ्चा बनायी, जो रणभूमिमें कभी नष्ट होनेवाली नहीं थी ॥

कालो हि भगवान् रुद्रस्तस्य संवत्सरो धनुः ।
तस्माद् रौद्री कालरात्रिर्ज्या कृता धनुषोऽजरा ॥ ४८ ॥

भगवान् रुद्र ही काल हैं, अतः कालका अवयवभूत संवत्सर ही उनका धनुष हुआ । कालरात्रि भी रुद्रका ही अंश है, अतः उसीको उन्होंने अपने धनुषकी अटूट प्रत्यञ्चा बना लिया ॥ ४८ ॥

इषुश्चाप्यभवद् विष्णुर्ज्वलनः सोम एव च ।
अग्नीषोमौ जगत् कृत्स्नं वैष्णवं चोच्यते जगत् ॥ ४९ ॥

भगवान् विष्णु, अग्नि और चन्द्रमा—ये ही बाण हुए थे; क्योंकि सम्पूर्ण जगत् अग्नि और सोमका ही स्वरूप है । साथ ही सारा संसार वैष्णव (विष्णुमय) भी कहा जाता है ॥ ४९ ॥

विष्णुश्चात्मा भगवतो भवस्यामिततेजसः ।
तस्माद् धनुर्ज्यासंस्पर्शं न विषेहुर्हरस्य ते ॥ ५० ॥

अमिततेजस्वी भगवान् शङ्करके आत्मा हैं विष्णु । अतः वे दैत्य भगवान् शिवके धनुषकी प्रत्यञ्चा एवं बाणका स्पर्श न सह सके ॥ ५० ॥

तस्मिञ्शरे तिग्ममन्युं मुमोचासह्यमीश्वरः ।
भृग्वङ्गिरोमन्युभवं क्रोधाग्निमतिदुःसहम् ॥ ५१ ॥

महेश्वरने उस बाणमें अपने असह्य एवं प्रचण्ड कोपको तथा भृगु और अङ्गिराके रोषसे उत्पन्न हुई अत्यन्त दुःसह क्रोधाग्निको भी स्थापित कर दिया ॥ ५१ ॥

स नीललोहितो धूम्रः कृत्तिवासा भयंकरः ।
आदित्यायुतसंकाशस्तेजोज्वालावृतो ज्वलन् ॥ ५२ ॥

तत्पश्चात् धूम्रवर्ण, व्याघ्रचर्मधारी, देवताओंको अभय तथा दैत्योंको भय देनेवाले, सहस्रों सूर्योंके समान तेजस्वी नीललोहित भगवान् शिव तेजोमयी ज्वालासे आवृत हो प्रकाशित होने लगे ॥ ५२ ॥

दुश्च्यावच्यावनो जेता हन्ता ब्रह्मद्विषां हरः ।
नित्यं त्राता च हन्ता च धर्माधर्माश्रितान् नरान् ॥ ५३ ॥

जिस लक्ष्यको मार गिराना अत्यन्त कठिन है, उसको भी गिरानेमें समर्थ, विजयशील, ब्रह्मद्रोहियोंके विनाशक भगवान् शिव धर्मका आश्रय लेनेवाले मनुष्योंकी सदा रक्षा और पापियोंका विनाश करनेवाले हैं ॥ ५३ ॥

प्रमाथिभिर्भीमबलैर्भीमरूपैर्मनोजवैः ।
विभाति भगवान् स्थाणुस्तैरेवात्मगुणैर्वृतः ॥ ५४ ॥

उनके जो अपने उपयोगमें आनेवाले रथ आदि गुणवान् उपकरण थे, वे शत्रुओंको मथ डालनेमें समर्थ, भयानक बलशाली, भयंकररूपधारी और मनके समान वेगवान् थे । उनसे घिरे हुए भगवान् शिवकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ५४ ॥

तस्याङ्गानि समाश्रित्य स्थितं विश्वमिदं जगत् ।
जङ्गमाजङ्गमं राजञ्शुशुभेऽद्भुतदर्शनम् ॥ ५५ ॥

राजन् ! उनके पञ्चभूतस्वरूप अङ्गोंका आश्रय लेकर ही यह अद्भुत दिखायी देनेवाला सारा चराचर जगत् स्थित एवं सुशोभित है ॥ ५५ ॥

दृष्ट्वा तु तं रथं युक्तं कवची स शरासनी ।
बाणमादाय तं दिव्यं सोमविष्णवग्निसम्भवम् ॥ ५६ ॥

उस रथको जुता हुआ देख भगवान् शङ्कर कवच और धनुषसे युक्त हो चन्द्रमा, विष्णु और अग्निसे प्रकट हुए उस दिव्य बाणको लेकर युद्धके लिये उद्यत हुए ॥५६॥

तस्य राजंस्तदा देवाः कल्पयाञ्चक्रिरे प्रभो ।
पुण्यगन्धवहं राजञ्श्वसनं देवसत्तमम् ॥ ५७ ॥

राजन् ! प्रभो ! उस समय देवताओंने पवित्र सुगन्ध वहन करनेवाले देवश्रेष्ठ वायुको उनके लिये हवा करनेके कामपर नियुक्त किया ॥ ५७ ॥

तमास्थाय महादेवस्त्रासयन् दैवतान्यपि ।
आरुरोह तदा यत्तः कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ ५८ ॥

तब महादेवजी दानवोंके वधके लिये प्रयत्नशील हो देवताओंको भी डराते और पृथ्वीको कम्पित करते हुए-से उस रथको थामकर उसपर चढ़ने लगे ॥ ५८ ॥

तमारुरुक्षुं देवेशं तुष्टुवुः परमर्षयः ।
गन्धर्वा देवसङ्घाश्च तथैवाप्सरसां गणाः ॥ ५९ ॥

देवेश्वर शिव रथपर चढ़ना चाहते हैं, यह देखकर

महर्षियों, गन्धर्वों, देवसमूहों तथा अप्सराओंके समुदायोंने उनकी स्तुति की ॥ ५९ ॥

ब्रह्मर्षिभिः स्तूयमानो वन्द्यमानश्च वन्दिभिः ।
तथैवाप्सरसां वृन्दैर्नृत्यद्भिर्नृत्यकोविदैः ॥ ६० ॥
स शोभमानो वरदः खड्गी बाणी शरासनी ।
हसन्निवाब्रवीद् देवान् सारथिः को भविष्यति ॥ ६१ ॥

ब्रह्मर्षियोंद्वारा प्रशंसित, वन्दीजनोंद्वारा वन्दित तथा नाचती हुई नृत्य-कुशल अप्सराओंसे सुशोभित होते हुए वरदायक भगवान् शिव खड्ग, बाण और धनुष ले देवताओंसे हँसते हुए-से बोले—'मेरा सारथि कौन होगा ?' ॥ ६०-६१ ॥

तमब्रुवन् देवगणा यं भवान् संनियोक्ष्यते ।
स भविष्यति देवेश सारथिस्ते न संशयः ॥ ६२ ॥

यह सुनकर देवताओंने उनसे कहा—'देवेश ! आप जिसको इस कार्यमें नियुक्त करेंगे, वही आपका सारथि होगा, इसमें संशय नहीं है' ॥ ६२ ॥

तानब्रवीत् पुनर्देवो मत्तः श्रेष्ठतरो हि यः ।
तं सारथिं कुरुध्वं मे स्वयं संचिन्त्य मा चिरम् ॥ ६३ ॥

तब महादेवजीने फिर कहा—'तुमलोग स्वयं ही सोच-विचारकर जो मुझसे भी श्रेष्ठतर हो, उसे मेरा सारथि बना दो, विलम्ब न करो' ॥ ६३ ॥

एतच्छ्रुत्वा ततो देवा वाक्यमुक्तं महात्मना ।
गत्वा पितामहं देवाः प्रसाद्येदं वचोऽब्रुवन् ॥ ६४ ॥

उन महात्माके कहे हुए इस वचनको सुनकर सब देवता ब्रह्माजीके पास गये और उन्हें प्रसन्न करके इस प्रकार बोले—॥

यथा त्वत्कथितं देव त्रिदशारिविनिग्रहे ।
तथा च कृतमस्माभिः प्रसन्नो नो वृषध्वजः ॥ ६५ ॥

'देव ! देवशत्रुओंका दमन करनेके विषयमें आपने जैसा कहा था, वैसा ही हमने किया है । भगवान् शङ्कर हम लोगोंपर प्रसन्न हैं ॥ ६५ ॥

रथश्च विहितोऽस्माभिर्विचित्रायुधसंवृतः ।
सारथिं च न जानीमः कः स्यात् तस्मिन् रथोत्तमे ॥ ६६ ॥

'हमने उनके लिये विचित्र आयुधोंसे सम्पन्न रथ तैयार कर दिया है; परंतु उस उत्तम रथपर कौन सारथि होकर बैठेगा ? यह हम नहीं जानते हैं' ॥ ६६ ॥

तस्माद् विधीयतां कश्चित् सारथिर्देवसत्तम ।
सफलां तां गिरं देव कर्तुमर्हसि नो विभो ॥ ६७ ॥

'अतः देवश्रेष्ठ प्रभो ! आप किसीको सारथि बनाइये । देव ! आपने हमें जो वचन दिया है, उसे सफल कीजिये ॥ ६७ ॥

एवमस्मासु हि पुरा भगवन्नुक्तवानसि ।
हितकर्तास्मि भवतामिति तत् कर्तुमर्हसि ॥ ६८ ॥

'भगवन् ! आपने पहले हमलोगोंसे कहा था कि 'मैं तुम लोगोंका हित करूँगा ।' अतः उसे पूर्ण कीजिये ॥ ६८ ॥

स देव युक्तो रथसत्तमो नो
दुराधरो द्रावणः शात्रवाणाम् ।
पिनाकपाणिर्विहितोऽत्र योद्धा
विभीषयन् दानवानुद्यतोऽसौ ॥ ६९ ॥

'देव ! हमारा तैयार किया हुआ वह श्रेष्ठ रथ शत्रुओंको मार भगानेवाला और दुर्धर्ष है । पिनाकपाणि भगवान् शङ्करको उसपर योद्धा बनाकर बैठा दिया गया है और वे दानवोंको भयभीत करते हुए युद्धके लिये उद्यत हैं ॥ ६९ ॥

तथैव वेदाश्चतुरो हयाग्र्या
धरा सशैला च रथो महात्मनः ।
नक्षत्रवंशानुगतो वरूथी
हरो योद्धा सारथिर्नाभिलक्ष्यः ॥ ७० ॥

'इसी प्रकार चारों वेद उन महात्माके उत्तम घोड़े हैं और पर्वतोंसहित पृथ्वी उनका उत्तम रथ बनी हुई है । नक्षत्र-समुदायरूपी ध्वजसे युक्त तथा आवरणसे सुशोभित भगवान् शिव उस रथपर रथी योद्धा बनकर बैठे हुए हैं; परंतु कोई सारथि नहीं दिखायी देता ॥ ७० ॥

तत्र सारथिरेष्टव्यः सर्वैरेतैर्विशेषवान् ।
तत्प्रतिष्ठो रथो देव हया योद्धा तथैव च ॥ ७१ ॥

'देव ! उस रथके लिये ऐसे सारथिका अनुसंधान करना चाहिये, जो इन सबसे बढ़कर हो; क्योंकि रथ, घोड़े और योद्धा इन सबकी प्रतिष्ठा सारथिपर ही निर्भर है ॥ ७१ ॥

कवचानि सशस्त्राणि कार्मुकं च पितामह ।
त्वामृते सारथिं तत्र नान्यं पश्यामहे वयम् ॥ ७२ ॥
त्वं हि सर्वगुणैर्युक्तो दैवतेभ्योऽधिकः प्रभो ।

'पितामह ! कवच, शस्त्र और धनुषकी सफलता भी सारथिपर ही निर्भर है । हमलोग आपके सिवा दूसरे किसीको वहाँ सारथि होनेके योग्य नहीं देखते हैं । प्रभो ! क्योंकि आप सभी देवताओंसे श्रेष्ठ और सर्वगुणसम्पन्न हैं ॥ ७२½ ॥

(त्वं देव शक्तो लोकेऽस्मिन् नियन्तुं प्रद्रुतानिमान् ।
वेदाश्वान् सोपनिषदः सारथिर्भव नः स्वयम् ॥

'देव ! आप ही इस जगत्में इन भागते हुए उपनिषद्-सहित वेदरूपी अश्वोंको नियन्त्रणमें रख सकते हैं; अतः आप स्वयं ही सारथि हो जाइये ॥

योद्धुं बलेन सत्त्वेन वीर्येण विनयेन च ।
अधिकः सारथिः कार्यो नास्ति चान्योऽधिको भवात् ॥

'बल, धैर्य, पराक्रम और विनय इन सभी गुणोंद्वारा जो रथीसे भी श्रेष्ठ हो, उसे ही युद्धके लिये सारथि बनाना चाहिये; दूसरा कोई ऐसा नहीं है जो भगवान् शङ्करसे भी बढ़कर हो ॥

स भवांस्तारयत्वस्मान् कुरु सारथ्यमव्ययम् ।
भवानभ्यधिकस्त्वत्तो नान्योऽस्तीह पितामह ॥

'पितामह ! आप अक्षय सारथिकर्म कीजिये और हमें इस सङ्कटसे उबारिये । आप ही सबसे श्रेष्ठ हैं; आपसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है ॥

त्वं हि देवेश सर्वेस्तु विशिष्टो वदतां वर ।)
स रथं तूर्णमारुह्य संयच्छ परमान् हयान् ॥ ७३ ॥
जयाय त्रिदेवेशानां वधाय त्रिदशद्विषाम् ।

'वक्ताओंमें श्रेष्ठ देवेश्वर ! आप सभी गुणोंसे श्रेष्ठ हैं; इसलिये देवद्रोहियोंके वध और देवताओंकी विजयके लिये तुरंत रथपर आरूढ़ होकर इन उत्तम घोड़ोंको काबूमें रखिये ॥ ७३ ॥

(तव प्रसादाद् वध्येरन् देव दैवतकण्टकाः ।
स नो रक्ष महाबाहो दैत्येभ्यो महतो भयात् ॥

'देव ! आपके प्रसादसे देवताओंके लिये यह कण्टकरूप दैत्य मारे जायँगे । महाबाहो ! आप दैत्योंके महान् भयसे हमारी रक्षा करें ॥

त्वं हि नो गतिरव्यग्र त्वं नो गोप्ता महाव्रत ।
त्वत्प्रसादात् सुराः सर्वे पूज्यन्ते त्रिदिवे प्रभो ॥)

'व्यग्रताशून्य महान् व्रतधारी प्रभो ! आप ही हमारे आश्रय तथा संरक्षक हैं; आपकी कृपासे ही समस्त देवता स्वर्गलोकमें पूजित होते हैं' ॥

इति ते शिरसा गत्वा त्रिलोकेशं पितामहम् ॥ ७४ ॥
देवाः प्रसादयामासुः सारथ्यायेति नः श्रुतम् ।

इस प्रकार देवताओंने तीनों लोकोंके ईश्वर पितामह ब्रह्माजीके आगे मस्तक टेककर उन्हें सारथि बननेके लिये प्रसन्न किया । यह बात हमारे सुननेमें आयी है ॥ ७४½ ॥

पितामह उवाच

नात्र किंचिन्मृषा वाक्यं यदुक्तं त्रिदिवौकसः ॥ ७५ ॥
संयच्छामि हयानेष युध्यतो वै कपर्दिनः ।

पितामह बोले—देवताओ ! तुमने जो कुछ कहा है, उसमें तनिक भी मिथ्या नहीं है । मैं युद्ध करते समय भगवान् शङ्करके घोड़ोंको काबूमें रक्खूँगा ॥ ७५½ ॥

ततः स भगवान् देवो लोकस्रष्टा पितामहः ॥ ७६ ॥
(एवमुक्त्वा जटाभारं संयम्य प्रपितामहः ।
परिधायाजिनं गाढं संन्यस्य च कमण्डलुम् ॥
प्रतोदपाणिर्भगवानारुरोह रथं तदा ।)

तदनन्तर लोकस्रष्टा भगवान् पितामह देवने जो जगत्के प्रपितामह हैं, उपर्युक्त बात कहकर अपनी जटाओंके बोझको बाँध लिया और मृगचर्मके वस्त्रको अच्छी तरह कसकर कमण्डलुको अलग रख दिया । तत्पश्चात् वे भगवान् ब्रह्मा हाथमें चाबुक लेकर तत्काल उस रथपर जा चढ़े ॥ ७६ ॥

सारथ्ये कल्पितो देवैरीशानस्य महात्मनः ।
तस्मिन्नारोहति क्षिप्रं स्यन्दने लोकपूजिते ॥ ७७ ॥
शिरोभिरगमन् भूमिं ते हया वातरंहसः ।

इस प्रकार देवताओंने भगवान् शङ्करके सारथिके पदपर उन्हें प्रतिष्ठित कर दिया । जब उस लोकपूजित रथपर ब्रह्माजी चढ़ रहे थे, उस समय वायुके समान वेगशाली घोड़े धरतीपर माथा टेककर बैठ गये थे ॥ ७७½ ॥

आरुह्य भगवान् देवो दीप्यमानः स्वतेजसा ॥ ७८ ॥
अभीषून् हि प्रतोदं च संजग्राह पितामहः ।

अपने तेजसे प्रकाशित होते हुए भगवान् ब्रह्माने रथारूढ़ होकर घोड़ोंकी बागडोर और चाबुक दोनों वस्तुएँ अपने हाथमें ले लीं ॥ ७८½ ॥

तत उत्थाप्य भगवांस्तान् हयाननिलोपमान् ॥ ७९ ॥
बभाषे च तदा स्थाणुमारोहेति सुरोत्तमः ।

तत्पश्चात् वायुके समान तीव्रगतिवाले उन घोड़ोंको उठाकर सुरश्रेष्ठ भगवान् ब्रह्माने महादेवजीसे कहा—'अब आप रथपर आरूढ़ होइये' ॥ ७९½ ॥

ततस्तमिषुमादाय विष्णुसोमाग्निसम्भवम् ॥ ८० ॥
आरुरोह तदा स्थाणुर्धनुषा कम्पयन् परान् ।

तब विष्णु, चन्द्रमा और अग्निसे उत्पन्न हुए उस बाणको हाथमें लेकर महादेवजी अपने धनुषके द्वारा शत्रुओंको कम्पित करते हुए उस रथपर चढ़ गये ॥ ८०½ ॥

तमारूढं तु देवेशं तुष्टुवुः परमर्षयः ॥ ८१ ॥
गन्धर्वा देवसंघाश्च तथैवाप्सरसां गणाः ।

रथपर आरूढ़ हुए देवेश्वर शिवकी महर्षियों, गन्धर्वों, देवसमूहों तथा अप्सराओंके समुदायोंने स्तुति की ॥ ८१½ ॥

स शोभमानो वरदः खड्गी बाणी शरासनी ॥ ८२ ॥
प्रदीपयन् रथे तस्थौ त्रींल्लोकान् स्वेन तेजसा।

खड्ग, धनुष और बाण लेकर शोभा पाते हुए वरदायक महादेवजी अपने तेजसे तीनों लोकोंको प्रकाशित करते हुए रथपर स्थित हो गये ॥ ८२½ ॥

ततो भूयोऽब्रवीद् देवो देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥ ८३ ॥
न हन्यादिति कर्तव्यो न शोको वः कथञ्चन ।
हतानित्येव जानीत बाणेनानेन चासुरान् ॥ ८४ ॥

तब महादेवजीने पुनः इन्द्र आदि देवताओंसे कहा—'शायद ये दैत्योंको न मारें' ऐसा समझकर तुम्हें किसी प्रकार भी शोक नहीं करना चाहिये । तुमलोग असुरोंको इस बाणसे 'मरा हुआ' ही समझो' ॥ ८३-८४ ॥

ते देवाः सत्यमित्याहुर्निहता इति चाब्रुवन् ।
न च तद् वचनं मिथ्या यदाह भगवान् प्रभुः॥८५॥
इति संचिन्त्य वै देवाः परां तुष्टिमवाप्नुवन् ।

यह सुनकर उन देवताओंने कहा—'प्रभो ! आपका कथन सत्य है । अवश्य ही वे दैत्य मारे गये । शक्तिशाली भगवान् जो कुछ कह रहे हैं, वह वचन मिथ्या नहीं हो सकता' यह सोचकर देवताओंको बड़ा संतोष हुआ ॥८५½॥

ततः प्रयातो देवेशः सर्वैर्देवगणैर्वृतः ॥ ८६ ॥

रथेन महता राजन्नुपमा नास्ति यस्य ह।

राजन्! तदनन्तर जिसकी कहीं उपमा नहीं थी, उस विशाल रथके द्वारा देवेश्वर महादेवजी समस्त देवताओंसे घिरे हुए वहाँसे चल दिये ॥ ८६½ ॥

स्वैश्च पारिषदैर्देवः पूज्यमानो महायशाः ॥ ८७ ॥
नृत्यद्भिरपरैश्चैव मांसभक्षैर्दुरासदैः ।
धावमानैः समन्ताच्च तर्जमानैः परस्परम् ॥ ८८ ॥

उस समय उनके अपने पार्षद भी महायशस्वी महादेवजीकी पूजा कर रहे थे। शिवके वे दुर्धर्ष पार्षद नृत्य करते और परस्पर एक दूसरेको डाँटते हुए चारों ओर दौड़ लगाते थे। अन्य कितने ही पार्षद (भूत-प्रेतादि) मांसभक्षी थे ॥ ८७-८८ ॥

ऋषयश्च महाभागास्तपोयुक्ता महागुणाः ।
आशंसुर्वै जना देवा महादेवस्य सर्वशः ॥ ८९ ॥

महान् भाग्यशाली और उत्तम गुणसम्पन्न तपस्वी ऋषियों, देवताओं तथा अन्य लोगोंने भी सब प्रकारसे महादेवजीकी विजयके लिये शुभाशंसा की ॥ ८९ ॥

एवं प्रयाते देवेशे लोकानामभयंकरे ।
तुष्टमासीज्जगत् सर्वं देवताश्च नरोत्तम ॥ ९० ॥

नरश्रेष्ठ! सम्पूर्ण लोकोंको अभय देनेवाले देवेश्वर महादेवजीके इस प्रकार प्रस्थान करनेपर सारा जगत् संतुष्ट हो गया। देवता भी बड़े प्रसन्न हुए ॥ ९० ॥

ऋषयस्तत्र देवेशं स्तुवन्तो बहुभिः स्तवैः ।
तेजश्चास्मै वर्धयन्तो राजन्नासन् पुनः पुनः ॥ ९१ ॥

राजन्! ऋषिगण नाना प्रकारके स्तोत्रोंका पाठ करके देवेश्वर महादेवकी स्तुति करते हुए बारंबार उनका तेज बढ़ा रहे थे ॥ ९१ ॥

गन्धर्वाणां सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
वादयन्ति प्रयाणेऽस्य वाद्यानि विविधानि च ॥ ९२ ॥

उनके प्रस्थानके समय सहस्रों, लाखों और अरबों गन्धर्व नाना प्रकारके बाजे बजा रहे थे ॥ ९२ ॥

ततोऽधिरूढे वरदे प्रयाते चासुरान् प्रति ।
साधु साध्विति विश्वेशः स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ ९३ ॥

रथपर आरूढ़ हो वरदायक भगवान् शङ्कर जब असुरोंकी ओर चले, तब वे विश्वनाथ ब्रह्माजीको साधुवाद देते हुए मुसकराकर बोले—॥ ९३ ॥

याहि देव यतो दैत्याश्चोदयाश्वानतन्द्रितः ।
पश्य बाह्वोर्बलं मेऽद्य निघ्नतः शात्रवान् रणे ॥ ९४ ॥

'देव! जिस ओर दैत्य हैं, उधर ही चलिये और सावधान होकर घोड़ोंको हाँकिये। आज रणभूमिमें जब मैं शत्रुसेनाका संहार करने लगूँ, उस समय आप मेरी इन दोनों भुजाओंका बल देखियेगा' ॥ ९४ ॥

ततोऽश्वांश्चोदयामास मनोमारुतरंहसः ।
येन तत् त्रिपुरं राजन् दैत्यदानवरक्षितम् ॥ ९५ ॥

राजन्! तब ब्रह्माजीने मन और पवनके समान वेगशाली घोड़ोंको उसी ओर बढ़ाया, जिस ओर दैत्यों और दानवोंद्वारा सुरक्षित वे तीनों पुर थे ॥ ९५ ॥

पिबद्भिरिव चाकाशं तैर्हयैर्लोकपूजितैः ।
जगाम भगवान् क्षिप्रं जयाय त्रिदिवौकसाम् ॥ ९६ ॥

वे लोकपूजित अश्व ऐसे तीव्र वेगसे चल रहे थे, मानो सारे आकाशको पी जायँगे। उस समय भगवान् शिव उन अश्वोंके द्वारा देवताओंकी विजयके लिये बड़ी शीघ्रताके साथ जा रहे थे ॥ ९६ ॥

प्रयाते रथमास्थाय त्रिपुराभिमुखे भवे ।
ननाद सुमहानादं वृषभः पूरयन् दिशः ॥ ९७ ॥

रथपर आरूढ़ हो जब महादेवजी त्रिपुरकी ओर प्रस्थित हुए, उस समय नन्दी वृषभने सम्पूर्ण दिशाओंको गुँजाते हुए बड़े जोरसे सिंहनाद किया ॥ ९७ ॥

वृषभस्यास्य निनदं श्रुत्वा भयकरं महत् ।
विनाशमगमंस्तत्र तारकाः सुरशत्रवः ॥ ९८ ॥

उस वृषभका वह अत्यन्त भयंकर सिंहनाद सुनकर बहुतसे देवशत्रु तारक नामवाले दैत्यगण वहीं विनष्ट हो गये ॥

अपरेऽवस्थितास्तत्र युद्धायाभिमुखास्तदा ।
ततः स्थाणुर्महाराज शूलधृक् क्रोधमूर्छितः ॥ ९९ ॥

दूसरे जो दैत्य वहाँ खड़े थे, वे युद्धके लिये महादेवजीके सामने आये। महाराज! तब त्रिशूलधारी महादेवजी क्रोधसे आतुर हो उठे ॥ ९९ ॥

त्रस्तानि सर्वभूतानि त्रैलोक्यं भूः प्रकम्पते ।
निमित्तानि च घोराणि तत्र संदधतः शरम् ॥ १०० ॥
तस्मिन् सोमाग्निविष्णूनां क्षोभेण ब्रह्मरुद्रयोः ।
स रथो धनुषः क्षोभादतीव ह्यवसीदति ॥ १०१ ॥

फिर तो समस्त प्राणी भयभीत हो उठे। सारी त्रिलोकी और भूमि काँपने लगी। जब वे वहाँ धनुषपर बाणका संधान करने लगे, तब उसमें चन्द्रमा, अग्नि, विष्णु, ब्रह्मा और रुद्रके क्षोभसे बड़े भयंकर निमित्त प्रकट हुए। धनुषके क्षोभसे वह रथ अत्यन्त शिथिल होने लगा ॥ १००-१०१ ॥

ततो नारायणस्तस्माच्छरभागाद् विनिःसृतः ।
वृषरूपं समास्थाय उज्जहार महारथम् ॥ १०२ ॥

तब भगवान् नारायणने उस बाणके एक भागसे बाहर निकलकर वृषभका रूप धारण करके भगवान् शिवके विशाल रथको ऊपर उठाया ॥ १०२ ॥

सीदमाने रथे चैव नर्दमानेषु शत्रुषु ।
स सम्भ्रमात् तु भगवान् नादं चक्रे महाबलः ॥ १०३ ॥

जब रथ शिथिल होने लगा और शत्रु गर्जना करने लगे,

तब महाबली भगवान् शिवने बड़े वेगसे घोर गर्जना की ॥

वृषभस्य स्थितो मूर्ध्नि हयपृष्ठे च मानद ।
तदा स भगवान् रुद्रो निरैक्षद् दानवं पुरम् ॥१०४॥
वृषभस्यास्थितो रुद्रो हयस्य च नरोत्तम ।
स्तनांस्तदाऽशातयत खुरांश्चैव द्विधाकरोत् ॥१०५॥

मानद ! उस समय वे वृषभके मस्तक और घोड़ेकी पीठपर खड़े थे । नरोत्तम ! भगवान् रुद्रने वृषभ तथा घोड़ेकी भी पीठपर सवार हो उस दानव-नगरको देखा । तब उन्होंने वृषभके खुरोंको चीरकर उन्हें दो भागोंमें बांट दिया और घोड़ोंके स्तन काट डाले ॥ १०४-१०५ ॥

ततःप्रभृति भद्रं ते गवां द्वैधीकृताः खुराः ।
हयानां च स्तना राजंस्तदाप्रभृति नाभवन् ॥१०६॥
पीडितानां बलवता रुद्रेणाद्भुतकर्मणा ।

राजन् ! आपका कल्याण हो । तभीसे बैलोंके दो खुर हो गये और तभीसे अद्भुत कर्म करनेवाले बलवान् रुद्रके द्वारा पीड़ित हुए घोड़ोंके स्तन नहीं उगे ॥ १०६½ ॥

अथाधिज्यं धनुः कृत्वा शर्वः संधाय तं शरम् ॥१०७॥
युक्त्वा पाशुपतास्त्रेण त्रिपुरं समचिन्तयत् ।

तदनन्तर भगवान् रुद्रने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर उसके ऊपर पूर्वोक्त बाणको रक्खा और उसे पाशुपतास्त्रसे संयुक्त करके तीनों पुरोंके एकत्र होनेका चिन्तन किया ॥

तस्मिन् स्थिते महाराज रुद्रे विधृतकार्मुके ॥१०८॥
पुराणि तानि कालेन जग्मुरेवैकतां तदा ।

महाराज ! इस प्रकार जब रुद्रदेव धनुष चढ़ाकर खड़े हो गये, उसी समय कालकी प्रेरणासे वे तीनों पुर मिलकर एक हो गये ॥ १०८½ ॥

एकीभावं गते चैव त्रिपुरत्वमुपागते ॥१०९॥
बभूव तुमुलो हर्षो देवतानां महात्मनाम् ।

जब तीनों एक होकर त्रिपुर-भावको प्राप्त हुए, तब महामनस्वी देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ ॥ १०९½ ॥

ततो देवगणाः सर्वे सिद्धाश्च परमर्षयः ॥११०॥
जयेति वाचो मुमुचुः संस्तुवन्तो महेश्वरम् ।

उस समय समस्त देवता, महर्षि और सिद्धगण महेश्वरकी स्तुति करते हुए उनकी जय-जयकार करने लगे ॥ ११०½ ॥

ततोऽग्रतः प्रादुरभूत् त्रिपुरं निघ्नतोऽसुरान् ॥१११॥
अनिर्देश्योग्रवपुषो देवस्यासह्यतेजसः ।

तब असुरोंका संहार करते हुए अवर्णनीय भयङ्कर रूपवाले असह्य तेजस्वी महादेवजीके सामने वह तीनों पुरोंका समुदाय सहसा प्रकट हो गया ॥ १११½ ॥

स तद् विकृष्य भगवान् दिव्यं लोकेश्वरो धनुः॥११२॥
त्रैलोक्यसारं तमिषुं मुमोच त्रिपुरं प्रति ।

फिर तो सम्पूर्ण जगत्के स्वामी भगवान् रुद्रने अपने उस दिव्य धनुषको खींचकर उसपर रक्खे हुए त्रिलोकीके सारभूत उस बाणको त्रिपुरपर छोड़ दिया ॥ ११२½ ॥

उत्सृष्टे वै महाभाग तस्मिन्निषुवरे तदा ॥११३॥
महानार्तस्वरो ह्यासीत् पुराणां पततां भुवि ।
तान् सोऽसुरगणान् दग्ध्वा प्राक्षिपत् पश्चिमार्णवे॥११४॥

महाभाग ! उस समय उस श्रेष्ठ बाणके छूटते ही भूतलपर गिरते हुए उन तीनों पुरोंका महान् आर्तनाद प्रकट हुआ। भगवान्ने उन असुरोंको भस्म करके पश्चिम समुद्रमें डाल दिया ॥ ११३-११४ ॥

एवं तु त्रिपुरं दग्धं दानवाश्चाप्यशेषतः ।
महेश्वरेण क्रुद्धेन त्रैलोक्यस्य हितैषिणा ॥११५॥

इस प्रकार तीनों लोकोंका हित चाहनेवाले महेश्वरने कुपित होकर उन तीनों पुरों तथा उनमें निवास करनेवाले दानवोंको दग्ध कर दिया ॥ ११५ ॥

स चात्मक्रोधजो वह्निर्हाहेत्युक्त्वा निवारितः ।
मा कार्षीर्भस्मसाल्लोकानिति त्र्यक्षोऽब्रवीच्च तम् ॥११६॥

उनके अपने क्रोधसे जो अग्नि प्रकट हुई थी, उसे भगवान् त्रिलोचनने 'हा-हा' कहकर रोक दिया और उससे कहा—'तू सम्पूर्ण जगत्को भस्म न कर' ॥ ११६ ॥

ततः प्रकृतिमापन्ना देवा लोकास्तथर्षयः ।
तुष्टुवुर्वाग्भिरग्र्याभिः स्थाणुमप्रतिमौजसम् ॥११७॥

तब समस्त देवता, महर्षि तथा तीनों लोकोंके प्राणी स्वस्थ हो गये । सबने श्रेष्ठ वचनोंद्वारा अप्रतिम शक्तिशाली महादेवजीका स्तवन किया ॥ ११७ ॥

तेऽनुज्ञाता भगवता जग्मुः सर्वे यथागतम् ।
कृतकामाः प्रयत्नेन प्रजापतिमुखाः सुराः ॥११८॥

फिर भगवान्की आज्ञा लेकर अपने प्रयत्नसे पूर्णकाम हुए प्रजापति आदि सम्पूर्ण देवता जैसे आये थे, वैसे चले गये ॥ ११८ ॥

एवं स भगवान् देवो लोकस्रष्टा महेश्वरः ।
देवासुरगणाध्यक्षो लोकानां विदधे शिवम् ॥११९॥

इस प्रकार देवताओं तथा असुरोंके भी अध्यक्ष जगत्स्रष्टा भगवान् महेश्वर देवने तीनों लोकोंका कल्याण किया था ॥

यथैव भगवान् ब्रह्मा लोकधाता पितामहः ।
सारथ्यमकरोत्तत्र रुद्रस्य परमोऽव्ययः ॥१२०॥
तथा भवानपि क्षिप्रं रुद्रस्येव पितामहः ।
संयच्छतु हयानस्य राधेयस्य महात्मनः ॥१२१॥

वहाँ विश्वविधाता सर्वोत्कृष्ट अविनाशी पितामह भगवान् ब्रह्माने जिस प्रकार रुद्रका सारथि-कर्म किया था तथा जिस प्रकार उन पितामहने रुद्रदेवके घोड़ोंकी बागडोर सँभाली थी, उसी प्रकार आप भी शीघ्र ही इस महामनस्वी राधापुत्र कर्णके घोड़ोंको काबूमें कीजिये ॥ १२०-१२१ ॥

त्वं हि कृष्णाच्च कर्णाच्च फाल्गुनाच्च विशेषतः।
विशिष्टो राजशार्दूल नास्ति तत्र विचारणा ॥१२२॥

नृपश्रेष्ठ ! आप श्रीकृष्णसे, कर्णसे और अर्जुनसे भी श्रेष्ठ हैं, इसमें कोई अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ १२२ ॥

युद्धे ह्ययं रुद्रकल्पस्त्वं च ब्रह्मसमो नये।
तस्माच्छक्तो भवाञ्जेतुं मच्छत्रूंस्तानिवासुरान्॥१२३॥

यह कर्ण युद्धक्षेत्रमें रुद्रके समान है और आप भी नीतिमें ब्रह्माजीके तुल्य हैं; अतः आप उन असुरोंकी भाँति मेरे शत्रुओंको जीतनेमें समर्थ हैं ॥ १२३ ॥

यथा शल्याद्य कर्णोऽयं श्वेताश्वं कृष्णसारथिम्।
प्रमथ्य हन्यात् कौन्तेयं तथा शीघ्रं विधीयताम्॥१२४॥

शल्य ! आप शीघ्र ऐसा प्रयत्न कीजिये, जिससे यह कर्ण उस श्वेतवाहन अर्जुनको, जिसके सारथि श्रीकृष्ण हैं, मथकर मार डाले ॥ १२४ ॥

त्वयि मद्रेश राज्याशा जीविताशा तथैव च।
विजयश्च तथैवाद्य कर्णसाचिव्यकारितः ॥१२५॥

मद्रराज ! आपपर ही मेरी राज्यप्राप्तिविषयक अभिलाषा और जीवनकी आशा निर्भर है। आपके द्वारा कर्णका सारथि-कर्म सम्पादित होनेपर जो आज विजय मिलनेवाली है, उसकी सफलता भी आपपर ही निर्भर है ॥ १२५ ॥

त्वयि कर्णश्च राज्यं च वयं चैव प्रतिष्ठिताः।
विजयश्चैव संग्रामे संयच्छाद्य हयोत्तमान् ॥१२६॥

आपपर ही कर्ण, राज्य, हम और हमारी विजय प्रतिष्ठित हैं। इसलिये आज संग्राममें आप इन उत्तम घोड़ोंको अपने वशमें कीजिये ॥ १२६ ॥

इमं चाप्यपरं भूय इतिहासं निबोध मे।
पितुर्मम सकाशे यद् ब्राह्मणः प्राह धर्मवित् ॥१२७॥

राजन् ! आप मुझसे फिर यह दूसरा इतिहास भी सुनिये, जिसे एक धर्मज्ञ ब्राह्मणने मेरे पिताके समीप कहा था॥१२७॥

श्रुत्वा चैतद् वचश्चित्रं हेतुकार्यार्थसंहितम्।
कुरु शल्य विनिश्चित्य माभूदत्र विचारणा ॥१२८॥

शल्य ! कारण और कार्यसे युक्त इस विचित्र ऐतिहासिक वार्ताको सुनकर आप अच्छी तरह सोच-विचार लेनेके पश्चात् मेरा कार्य करें, इस विषयमें आपके मनमें कोई अन्यथा विचार नहीं होना चाहिये ॥ १२८ ॥

भार्गवाणां कुले जातो जमदग्निर्महायशाः।
तस्य रामेति विख्यातः पुत्रस्तेजोगुणान्वितः ॥१२९॥

भार्गववंशमें महायशस्वी महर्षि जमदग्नि प्रकट हुए थे, जिनके तेजस्वी और गुणवान् पुत्र परशुरामके नामसे विख्यात हैं ॥ १२९ ॥

स तीव्रं तप आस्थाय प्रसादयितवान् भवम्।
अस्त्रहेतोः प्रसन्नात्मा नियतः संयतेन्द्रियः ॥१३०॥

उन्होंने अस्त्र-प्राप्तिके लिये मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए प्रसन्न हृदयसे भारी तपस्या करके भगवान् शङ्करको प्रसन्न किया ॥ १३० ॥

तस्य तुष्टो महादेवो भक्त्या च प्रशमेन च।
हृद्गतं चास्य विज्ञाय दर्शयामास शङ्करः ॥१३१॥
(प्रत्यक्षेण महादेवः स्वां तनुं सर्वशङ्करः।)

उनकी भक्ति और मनःसंयमसे संतुष्ट हो सबका कल्याण करनेवाले महादेवजीने उनके मनोगत भावको जानकर उन्हें अपने दिव्य शरीरका प्रत्यक्ष दर्शन कराया ॥ १३१ ॥

महेश्वर उवाच

राम तुष्टोऽस्मि भद्रं ते विदितं मे तवेप्सितम्।
कुरुष्व पूतमात्मानं सर्वमेतदवाप्स्यसि ॥१३२॥

महादेवजी बोले—राम ! तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम क्या चाहते हो, यह मुझे विदित है। अपने हृदयको शुद्ध करो। तुम्हें यह सब कुछ प्राप्त हो जायगा ॥ १३२ ॥

दास्यामि ते तदास्त्राणि यदा पूतो भविष्यसि।
अपात्रमसमर्थं च दहन्त्यस्त्राणि भार्गव ॥१३३॥

जब तुम पवित्र हो जाओगे, तब तुम्हें अपने अस्त्र दूँगा, भृगुनन्दन ! अपात्र और असमर्थ पुरुषको तो ये अस्त्र जलाकर भस्म कर डालते हैं ॥ १३३ ॥

इत्युक्तो जामदग्न्यस्तु देवदेवेन शूलिना।
प्रत्युवाच महात्मानं शिरसावनतः प्रभुम् ॥१३४॥

त्रिशूलधारी देवाधिदेव महादेवजीके ऐसा कहनेपर जमदग्निनन्दन परशुरामने उन महात्मा भगवान् शिवको मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—॥ १३४ ॥

यदा जानाति देवेशः पात्रं मामस्त्रधारणे।
तदा शुश्रूषवेऽस्त्राणि भवान् मे दातुमर्हति ॥१३५॥

'यदि आप देवेश्वर प्रभु मुझे अस्त्रधारणका पात्र समझें तभी मुझ सेवकको दिव्यास्त्र प्रदान करें' ॥ १३५ ॥

दुर्योधन उवाच

ततः स तपसा चैव दमेन नियमेन च।
पूजोपहारबलिभिर्होममन्त्रपुरस्कृतैः ॥१३६॥
आराधयितवान् शर्वं बहून् वर्षगणांस्तदा।

दुर्योधन कहता है—तदनन्तर परशुरामने बहुत वर्षोंतक तपस्या, इन्द्रिय-संयम, मनोनिग्रह, पूजा, उपहार, भेंट, अर्पण, होम और मन्त्र-जप आदि साधनोंद्वारा भगवान् शिवकी आराधना की ॥ १३६½ ॥

प्रसन्नश्च महादेवो भार्गवस्य महात्मनः ॥१३७॥
अब्रवीत् तस्य बहुशो गुणान् देव्याः समीपतः।
भक्तिमानेष सततं मयि रामो दृढव्रतः ॥१३८॥

इससे महादेवजी महात्मा परशुरामपर प्रसन्न हो गये और उन्होंने पार्वती देवीके समीप उनके गुणोंका बारंबार वर्णन किया—'ये दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाले परशुराम मेरे प्रति सदा भक्तिभाव रखते हैं' ॥ १३७-१३८ ॥

एवं तस्य गुणान् प्रीतो बहुशोऽकथयत् प्रभुः ।
देवतानां पितॄणां च समक्षमरिसूदन ॥१३९॥

शत्रुसूदन ! इसी प्रकार प्रसन्न हुए भगवान् शिवने देवताओं और पितरोंके समक्ष भी बारंबार प्रसन्नतापूर्वक उनके गुणोंका वर्णन किया ॥ १३९ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु दैत्या ह्यासन् महाबलाः ।
तैस्तदा दर्पमोहाद्यैरबाध्यन्त दिवौकसः ॥१४०॥

इन्हीं दिनोंकी बात है, दैत्यलोग महान् बलसे सम्पन्न हो गये थे । वे दर्प और मोह आदिके वशीभूत हो उस समय देवताओंको सताने लगे ॥ १४० ॥

ततः सम्भूय विबुधास्तान् हन्तुं कृतनिश्चयाः ।
चक्रुः शत्रुवधे यत्नं न शेकुर्जेतुमेव तान् ॥१४१॥

तब सम्पूर्ण देवताओंने एकत्र हो उन्हें मारनेका निश्चय करके शत्रुओंके वधके लिये यत्न किया; परंतु वे उन्हें जीत न सके ॥ १४१ ॥

अभिगम्य ततो देवा महेश्वरमुमापतिम् ।
प्रासादयंस्तदा भक्त्या जहि शत्रुगणानिति ॥१४२॥

तत्पश्चात् देवताओंने उमावल्लभ महेश्वरके समीप जाकर भक्तिपूर्वक उन्हें प्रसन्न किया और कहा—'प्रभो ! हमारे शत्रुओं-का संहार कीजिये' ॥ १४२ ॥

प्रतिज्ञाय ततो देवो देवतानां रिपुक्षयम् ।
रामं भार्गवमाहूय सोऽभ्यभाषत शङ्करः ॥१४३॥

तब कल्याणकारी महादेवजीने देवताओंके समक्ष उनके शत्रुओंका संहार करनेकी प्रतिज्ञा करके भृगुनन्दन परशुरामको बुलाकर इस प्रकार कहा— ॥ १४३ ॥

रिपून् भार्गव देवानां जहि सर्वान् समागतान् ।
लोकानां हितकामार्थं मत्प्रीत्यर्थं तथैव च ॥१४४॥

'भार्गव ! तुम तीनों लोकोंके हितकी इच्छासे तथा मेरी प्रसन्नताके लिये देवताओंके समस्त समागत शत्रुओंका वध करो' ॥ १४४ ॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच त्र्यम्बकं वरदं प्रभुम् ।

उनके ऐसा कहनेपर परशुरामने वरदायक भगवान् त्रिलोचनको इस प्रकार उत्तर दिया ॥ १४४½ ॥

राम उवाच

का शक्तिर्मम देवेश अकृतास्त्रस्य संयुगे ॥१४५॥
निहन्तुं दानवान् सर्वान् कृतास्त्रान् युद्धदुर्मदान् ।

परशुराम बोले—देवेश्वर ! मैं तो अस्त्रविद्याका ज्ञाता नहीं हूँ । फिर युद्धस्थलमें अस्त्रविद्याके ज्ञाता तथा रणदुर्मद समस्त दानवोंका वध करनेके लिये मुझमें क्या शक्ति है ? ॥

महेश्वर उवाच

गच्छ त्वं मदनुज्ञातो निहनिष्यसि शात्रवान् ॥१४६॥
विजित्य च रिपून् सर्वान् गुणान् प्राप्स्यसि पुष्कलान् ।

महेश्वरने कहा—राम ! तुम मेरी आज्ञासे जाओ। निश्चय ही देव-शत्रुओंका संहार करोगे । उन समस्त वैरियों पर विजय पाकर प्रचुर गुण प्राप्त कर लोगे ॥ १४६½ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं प्रतिगृह्य च सर्वशः ॥१४७॥
रामः कृतस्वस्त्ययनः प्रययौ दानवान् प्रति ।
अब्रवीद् देवशत्रूंस्तान् महादर्पबलान्वितान् ॥१४८॥

उनकी यह बात सुनकर उसे सब प्रकारसे शिरोधार्य करके परशुराम स्वस्तिवाचन आदि मङ्गलकृत्य करनेके पश्चात् दानवोंका सामना करनेके लिये गये और महान् दर्प एवं बलसे सम्पन्न उन देवशत्रुओंसे इस प्रकार बोले— ॥१४७-१४८॥

मम युद्धं प्रयच्छध्वं दैत्या युद्धमदोत्कटाः ।
प्रेषितो देवदेवेन वो निजेतुं महासुराः ॥१४९॥

'युद्धके मदसे उन्मत्त रहनेवाले दैत्यो ! मुझे युद्ध प्रदान करो । महान् असुरगण ! मुझे देवाधिदेव महादेवजीने तुम्हें परास्त करनेके लिये भेजा है' ॥ १४९ ॥

इत्युक्ता भार्गवेणाथ दैत्या युद्धं प्रचक्रमुः ।
स तान् निहत्य समरे दैत्यान् भार्गवनन्दनः ॥१५०॥
वज्राशनिसमस्पर्शैः प्रहारैरेव भार्गवः ।
स दानवैः क्षततनुर्जामदग्न्यो द्विजोत्तमः ॥१५१॥

भृगुवंशी परशुरामके ऐसा कहनेपर दैत्य उनके साथ युद्ध करने लगे । भार्गवनन्दन रामने समराङ्गणमें वज्र और विद्युत् के समान स्पर्शवाले प्रहारोंद्वारा उन दैत्योंका वध कर डाला। साथ ही उन द्विजश्रेष्ठ जमदग्निकुमारके शरीरको भी दानवोंने क्षत-विक्षत कर दिया ॥ १५०-१५१ ॥

संस्पृष्टः स्थाणुना सद्यो निर्व्रणः समजायत ।
प्रीतश्च भगवान् देवः कर्मणा तेन तस्य वै ॥१५२॥

परंतु महादेवजीके हाथोंका स्पर्श पाकर परशुरामजीके सारे घाव तत्काल दूर हो गये । परशुरामके उस शत्रुविजय-रूपी कर्मसे भगवान् शङ्कर बड़े प्रसन्न हुए ॥ १५२ ॥

वरान् प्रादाद् बहुविधान् भार्गवाय महात्मने ।
उक्तश्च देवदेवेन प्रीतियुक्तेन शूलिना ॥१५३॥

उन देवाधिदेव त्रिशूलधारी भगवान् शिवने बड़ी प्रसन्नता-के साथ महात्मा भार्गवको नाना प्रकारके वर प्रदान किये ॥

निपातात्तव शस्त्राणां शरीरे याभवद् रुजा ।
तया ते मानुषं कर्म व्यपोढं भृगुनन्दन ॥१५४॥
गृहाणास्त्राणि दिव्यानि मत्सकाशाद् यथेप्सितम् ।

उन्होंने कहा—'भृगुनन्दन ! दैत्योंके अस्त्र-शस्त्रोंके आघात-से तुम्हारे शरीरमें जो चोट पहुँची है, उससे तुम्हारा मानवो-

चित कर्म नष्ट हो गया (अब तुम देवताओंके ही समान हो गये); अतः मुझसे अपनी इच्छाके अनुसार दिव्यास्त्र ग्रहण करो ॥' १५४½ ॥

दुर्योधन उवाच

ततोऽस्त्राणि समस्तानि वरांश्च मनसेप्सितान् ॥१५५॥
लब्ध्वा बहुविधान् रामः प्रणम्य शिरसा भवम्।
अनुज्ञां प्राप्य देवेशाज्जगाम स महातपाः ॥१५६॥

दुर्योधन कहता है—राजन् ! तब रामने भगवान् शिवसे समस्त दिव्यास्त्र और नाना प्रकारके मनोवाञ्छित वर पाकर उनके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया। फिर वे महातपस्वी परशुराम देवेश्वर शिवसे आज्ञा लेकर चले गये ॥

एवमेतत् पुरावृत्तं तदा कथितवानृषिः ।
भार्गवोऽपि ददौ दिव्यं धनुर्वेदं महात्मने ॥१५७॥
कर्णाय पुरुषव्याघ्र सुप्रीतेनान्तरात्मना ।

राजन् ! इस प्रकार यह पुरातन वृत्तान्त उस समय ऋषि-ने मेरे पिताजीसे कहा था। पुरुषसिंह ! भृगुनन्दन परशुराम-ने भी अत्यन्त प्रसन्न हृदयसे महामना कर्णको दिव्य धनुर्वेद प्रदान किया है ॥ १५७½ ॥

वृजिनं हि भवेत् किंचिद् यदि कर्णस्य पार्थिव ॥१५८॥
नास्मै ह्यस्त्राणि दिव्यानि प्रादास्यद् भृगुनन्दनः।

भूपाल ! यदि कर्णमें कोई पाप या दोष होता तो भृगु-नन्दन परशुराम इसे दिव्यास्त्र न देते ॥ १५८½ ॥

नापि सूतकुले जातं कर्णं मन्ये कथंचन ॥१५९॥
देवपुत्रमहं मन्ये क्षत्रियाणां कुलोद्भवम्।
विसृष्टमवबोधार्थं कुलस्येति मतिर्मम ॥१६०॥

राजन् ! मैं किसी तरह इस बातपर विश्वास नहीं करता कि कर्ण सूतकुलमें उत्पन्न हुआ है। मैं इसे क्षत्रियकुलमें उत्पन्न देवपुत्र मानता हूँ। मेरा तो यह विश्वास है कि इसकी माताने अपने गुप्त रहस्यको छिपानेके लिये तथा इसे अन्य कुलका बालक विख्यात करनेके लिये ही सूतकुलमें छोड़ दिया होगा ॥ १५९-१६० ॥

सर्वथा न ह्ययं शल्य कर्णः सूतकुलोद्भवः ।
सकुण्डलं सकवचं दीर्घबाहुं महारथम् ॥१६१॥
कथमादित्यसदृशं मृगी व्याघ्रं जनिष्यति ।

शल्य ! मैं सर्वथा इस बातपर विश्वास करता हूँ कि इस कर्णका जन्म सूतकुलमें नहीं हुआ है। इस महाबाहु महारथी और सूर्यके समान तेजस्वी कुण्डल-कवचविभूषित पुत्रको सूतजातिकी स्त्री कैसे पैदा कर सकती है ? क्या कोई हरिणी अपने पेटसे बाघको जन्म दे सकी है ? ॥ १६१½ ॥

यथा ह्यस्य भुजौ पीनौ नागराजकरोपमौ ॥१६२॥
वक्षः पश्य विशालं च सर्वशत्रुनिबर्हणम् ।
न त्वेष प्राकृतः कश्चित् कर्णो वैकर्तनो वृषः ।
महात्मा ह्येष राजेन्द्र रामशिष्यः प्रतापवान् ॥१६३॥

राजेन्द्र ! गजराजके शुण्डदण्डके समान जैसी इसकी मोटी भुजाएँ हैं तथा समस्त शत्रुओंका संहार करनेमें समर्थ जैसा इसका विशाल वक्षःस्थल है, उससे सूचित होता है कि परशुरामजीका यह प्रतापी शिष्य महामनस्वी धर्मात्मा वैकर्तन कर्ण कोई प्राकृत पुरुष नहीं है ॥ १६२-१६३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि त्रिपुरवधोपाख्याने चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें त्रिपुरवधोपाख्यानविषयक चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३४ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ७½ श्लोक मिलाकर कुल १७०½ श्लोक हैं)

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

शल्य और दुर्योधनका वार्तालाप, कर्णका सारथि होनेके लिये शल्यकी स्वीकृति

दुर्योधन उवाच

एवं स भगवान् देवः सर्वलोकपितामहः ।
सारथ्यमकरोत् तत्र ब्रह्मा रुद्रोऽभवद् रथी ॥ १ ॥

दुर्योधन बोला—राजन् ! इस प्रकार सर्वलोकपितामह भगवान् ब्रह्माने वहाँ सारथिका कार्य किया और रथी हुए रुद्र॥

रथिनोऽभ्यधिको वीर कर्तव्यो रथसारथिः ।
तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र नियच्छ तुरगान् युधि ॥ २ ॥

वीर ! रथका सारथि तो उसीको बनाना चाहिये, जो रथीसे भी बढ़कर हो। अतः पुरुषसिंह ! आप युद्धमें कर्णके घोड़ोंको काबूमें रखिये ॥ २ ॥

यथा देवगणैस्तत्र वृतो यत्नात् पितामहः ।
तथास्माभिर्भवान् यत्नात् कर्णादभ्यधिको वृतः ॥ ३ ॥

जैसे देवताओंने वहाँ यत्नपूर्वक ब्रह्माजीका वरण किया था, उसी प्रकार हमलोगोंने विशेष चेष्टा करके कर्णसे भी अधिक बलवान् आपका सारथि-कर्मके लिये वरण किया ॥ ३ ॥

यथा देवैर्महाराज ईश्वरादधिको वृतः ।
तथा भवानपि क्षिप्रं रुद्रस्येव पितामहः ॥ ४ ॥
नियच्छ तुरगान् युद्धे राधेयस्य महाद्युते ।

महाराज ! जैसे देवताओंने महादेवजीसे भी बड़े ब्रह्माजी-को उनका सारथि चुना था, उसी प्रकार हमने भी आपको चुना है। अतः महातेजस्वी नरेश ! आप युद्धमें राधापुत्र कर्णके घोड़ोंका नियन्त्रण कीजिये ॥ ४½ ॥

शल्य उवाच

मयाप्येतन्नरश्रेष्ठ बहुशोऽमरसिंहयोः ॥ ५ ॥

कथ्यमानं श्रुतं दिव्यमाख्यानमतिमानुषम्।
यथा च चक्रे सारथ्यं भवस्य प्रपितामहः ॥ ६ ॥
यथासुराश्च निहता इषुणैकेन भारत।

शल्यने कहा— भारत! नरश्रेष्ठ! मैंने भी देवश्रेष्ठ ब्रह्मा और महादेवजीके इस अलौकिक एवं दिव्य उपाख्यानको विद्वानोंके मुखसे सुना है कि किस प्रकार प्रपितामह ब्रह्माजीने महादेवजीका सारथि-कर्म किया था? और कैसे एक ही बाणसे समस्त असुर मारे गये? ॥ ५—६½ ॥

कृष्णस्य चापि विदितं सर्वमेतत् पुरा ह्यभूत् ॥ ७ ॥
यथा पितामहो जज्ञे भगवान् सारथिस्तदा।

भगवान् ब्रह्मा उस समय जिस प्रकार महादेवजीके सारथि हुए थे, यह सारा पुरातन वृत्तान्त श्रीकृष्णको भी विदित ही होगा ॥ ७½ ॥

अनागतमतिक्रान्तं वेद कृष्णोऽपि तत्त्वतः ॥ ८ ॥
एतदर्थं विदित्वापि सारथ्यमुपजग्मिवान्।
स्वयंभूरिव रुद्रस्य कृष्णः पार्थस्य भारत ॥ ९ ॥

क्योंकि श्रीकृष्ण भी भूत और भविष्यको यथार्थरूपसे जानते हैं। भारत! इस विषयको अच्छी तरह जानकर ही रुद्रके सारथि ब्रह्माजीके समान श्रीकृष्ण पार्थके सारथि बने हुए हैं॥

यदि हन्याच्च कौन्तेयं सूतपुत्रः कथंचन।
दृष्ट्वा पार्थं हि निहतं स्वयं योत्स्यति केशवः ॥ १० ॥
शङ्खचक्रगदापाणिर्धक्ष्यते तव वाहिनीम्।

यदि सूतपुत्र कर्ण किसी प्रकार कुन्तीकुमार अर्जुनको मार डालेगा तो अर्जुनको मारा गया देख श्रीकृष्ण स्वयं ही युद्ध करेंगे। उनके हाथमें शङ्ख, चक्र और गदा होगी। वे तुम्हारी सेनाको जलाकर भस्म कर देंगे ॥ १०½ ॥

न चापि तस्य क्रुद्धस्य वार्ष्णेयस्य महात्मनः ॥ ११ ॥
स्थास्यते प्रत्यनीकेषु कश्चिदत्र नृपस्तव।

महात्मा श्रीकृष्ण कुपित होकर जब हथियार उठायेंगे, उस समय तुम्हारे पक्षका कोई भी नरेश उनके सामने ठहर नहीं सकेगा ॥ ११½ ॥

संजय उवाच

तं तथा भाषमाणं तु मद्रराजमरिंदमः ॥ १२ ॥
प्रत्युवाच महाबाहुरदीनात्मा सुतस्तव।

संजय कहते हैं— राजन्! मद्रराज शल्यको ऐसी बातें करते देख आपके शत्रुदमन पुत्र महाबाहु दुर्योधनने मनमें तनिक भी दीनता न लाकर उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया—॥ १२½ ॥

मावमंस्था महाबाहो कर्णं वैकर्तनं रणे ॥ १३ ॥
सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठं सर्वशास्त्रार्थपारगम्।

'महाबाहो! तुम रणक्षेत्रमें वैकर्तन कर्णका अपमान न करो। वह सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थका पारङ्गत विद्वान् है ॥ १३½ ॥

यस्य ज्यातलनिर्घोषं श्रुत्वा भयकरं महत् ॥ १४ ॥
पाण्डवेयानि सैन्यानि विद्रवन्ति दिशो दश।

'यह वही वीर है जिसकी प्रत्यञ्चाकी अत्यन्त भयानक टङ्कार सुनकर पाण्डव-सेना दसों दिशाओंमें भागने लगती है॥

प्रत्यक्षं ते महाबाहो यथा रात्रौ घटोत्कचः ॥ १५ ॥
मायाशतानि कुर्वाणो हतो मायापुरस्कृतः।

'महाबाहो! यह तो तुमने अपनी आँखों देखा था कि किस प्रकार उस दिन रातमें सैकड़ों मायाओंका प्रयोग करनेवाला मायावी घटोत्कच कर्णके हाथसे मारा गया ॥ १५½ ॥

न चातिष्ठत बीभत्सुः प्रत्यनीके कथंचन ॥ १६ ॥
एतांश्च दिवसान् सर्वान् भयेन महता वृतः।

'इन सारे दिनोंमें महान् भयसे घिरे हुए अर्जुन किसी तरह भी कर्णके सामने खड़े न हो सके थे ॥ १६½ ॥

भीमसेनश्च बलवान् धनुष्कोट्याभिचोदितः ॥ १७ ॥
उक्तश्च संज्ञया राजन् मूढ औदरिको यथा।

'राजन्! बलवान् भीमसेनको भी इसने अपने धनुषकी कोटिसे दबाकर युद्धके लिये प्रेरित किया था और उन्हें मूर्ख, पेटू आदि नामोंसे पुकारा था ॥ १७½ ॥

माद्रीपुत्रौ तथा शूरौ येन जित्वा महारणे ॥ १८ ॥
कमप्यर्थं पुरस्कृत्य न हतौ युधि मारिष।

'मान्यवर! इसने महासमरमें शूरवीर नकुल-सहदेवको भी परास्त करके किसी विशेष प्रयोजनको सामने रखकर उन दोनोंको युद्धमें मार नहीं डाला ॥ १८½ ॥

येन वृष्णिप्रवीरस्तु सात्यकिः सात्वतां वरः ॥ १९ ॥
निर्जित्य समरे शूरो विरथश्च बलात् कृतः।

'इसने वृष्णिवंशके प्रमुख वीर सात्वतशिरोमणि शूरवीर सात्यकिको समराङ्गणमें परास्त करके उन्हें बलपूर्वक रथहीन कर दिया था ॥ १९½ ॥

सृञ्जयाश्चेतरे सर्वे धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ॥ २० ॥
असकृन्निर्जिताः संख्ये स्मयमानेन संयुगे।

'इसके सिवा धृष्टद्युम्न आदि समस्त सृञ्जयोंको भी इसने युद्धस्थलमें हँसते-हँसते अनेक बार परास्त किया है ॥ २०½ ॥

तं कथं पाण्डवा युद्धे विजेष्यन्ति महारथम् ॥ २१ ॥
यो हन्यात् समरे क्रुद्धो वज्रहस्तं पुरंदरम्।

'जो कुपित होनेपर वज्रधारी इन्द्रको भी समरभूमिमें मार डालनेकी शक्ति रखता है, उस महारथी वीर कर्णको पाण्डव-लोग युद्धमें कैसे जीत लेंगे? ॥ २१½ ॥

त्वं च सर्वास्त्रविद् वीरः सर्वविद्यास्त्रपारगः ॥ २२ ॥
बाहुवीर्येण ते तुल्यः पृथिव्यां नास्ति कश्चन।

'आप भी सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञाता, समस्त विद्याओं तथा अस्त्रोंके पारङ्गत विद्वान् एवं वीर हैं। इस भूतलपर बाहुबलके द्वारा आपकी समानता करनेवाला कोई नहीं है ॥ २२½ ॥

त्वं शल्यभूतः शत्रूणामविषह्यः पराक्रमे ॥ २३ ॥
ततस्त्वमुच्यसे राजञ्शल्य इत्यरिसूदन ।

'शत्रुसूदन नरेश ! आप पराक्रम प्रकट करते समय शत्रुओंके लिये असह्य हो उठते हैं, उनके लिये आप शल्यभूत (कण्टकस्वरूप) हैं; इसीलिये आपको शल्य कहा जाता है ॥

तव बाहुबलं प्राप्य न शेकुः सर्वसात्वताः ॥ २४ ॥
तव बाहुबलाद् राजन् किं नु कृष्णो बलाधिकः ।

'राजन् ! आपके बाहुबलको सामने पाकर सम्पूर्ण सात्वतवंशी क्षत्रिय कभी युद्धमें टिक न सके हैं । क्या आपके बाहुबलसे श्रीकृष्णका बल अधिक है ? ॥ २४½ ॥

यथा हि कृष्णेन बलं धार्यं वै फाल्गुने हते ॥ २५ ॥
तथा कर्णात्ययीभावे त्वया धार्यं महद् बलम् ।

'जैसे अर्जुनके मारे जानेपर श्रीकृष्ण पाण्डव-सेनाकी रक्षा करेंगे, उसी प्रकार यदि कर्ण मारा गया तो आपको मेरी विशाल वाहिनीका संरक्षण करना होगा ॥ २५½ ॥

किमर्थं समरे सैन्यं वासुदेवो न्यवारयत् ॥ २६ ॥
किमर्थं च भवान् सैन्यं न हनिष्यति मारिष ।

'मान्यवर ! वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण क्यों कौरव-सेनाका निवारण करेंगे और क्यों आप पाण्डव-सेनाका वध नहीं करेंगे?॥

त्वत्कृते पदवीं गन्तुमिच्छेयं युधि मारिष ।
सोदराणां च वीराणां सर्वेषां च महीक्षिताम् ॥ २७ ॥

'माननीय नरेश ! मैं तो आपके ही भरोसे युद्धमें मारे गये अपने वीर भाइयों तथा समस्त राजाओंके (ऋणसे मुक्त होनेके लिये उन्हींके) पथपर चलनेकी इच्छा करता हूँ' ॥

शल्य उवाच

यन्मां ब्रवीषि गान्धारे अग्रे सैन्यस्य मानद ।
विशिष्टं देवकीपुत्रात् प्रीतिमानस्म्यहं त्वयि ॥ २८ ॥

शल्यने कहा—मानद ! गान्धारीनन्दन ! तुम सम्पूर्ण सेनाके आगे जो मुझे देवकीपुत्र श्रीकृष्णसे बढ़कर बता रहे हो, इससे मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ ॥ २८ ॥

एष सारथ्यमातिष्ठे राधेयस्य यशस्विनः ।
युध्यतः पाण्डवाग्र्येण यथा त्वं वीर मन्यसे ॥ २९ ॥

वीर ! मैं यशस्वी राधापुत्र कर्णका पाण्डवशिरोमणि अर्जुनके साथ युद्ध करते समय सारथ्य करूँगा जैसा कि तुम चाहते हो ॥ २९ ॥

समयश्च हि मे वीर कश्चिद् वैकर्तनं प्रति ।
उत्सृजेयं यथाश्रद्धमहं वाचोऽस्य संनिधौ ॥ ३० ॥

वीरवर ! परंतु वैकर्तन कर्णको मेरी एक शर्तका पालन करना होगा । मैं इसके समीप जो जीमें आयेगा, वैसी बातें करूँगा ॥ ३० ॥

संजय उवाच

तथेति राजन् पुत्रस्ते सह कर्णेन मारिष ।
अब्रवीन्मद्रराजानं सर्वक्षत्रस्य संनिधौ ॥ ३१ ॥

संजय कहते हैं—माननीय नरेश ! तब समस्त क्षत्रियोंके समीप कर्णसहित आपके पुत्रने मद्रराज शल्यसे कहा—'बहुत अच्छा, आपकी शर्त स्वीकार है' ॥ ३१ ॥

सारथ्यस्याभ्युपगमाच्छल्येनाश्वासितस्तदा ।
दुर्योधनस्तदा हृष्टः कर्णं तमभिषस्वजे ॥ ३२ ॥

सारथ्य स्वीकार करके जब शल्यने आश्वासन दिया, तब राजा दुर्योधनने बड़े हर्षके साथ कर्णको हृदयसे लगा लिया ॥

अब्रवीच्च पुनः कर्णं स्तूयमानः सुतस्तव ।
जहि पार्थान् रणे सर्वान् महेन्द्रो दानवानिव ॥ ३३ ॥

तत्पश्चात् वन्दीजनोंद्वारा अपनी स्तुति सुनते हुए आपके पुत्रने कर्णसे फिर कहा—'वीर ! तुम रणक्षेत्रमें कुन्तीके समस्त पुत्रोंको उसी प्रकार मार डालो, जैसे देवराज इन्द्र दानवोंका संहार करते हैं' ॥ ३३ ॥

स शल्येनाभ्युपगते हयानां संनियच्छने ।
कर्णो हृष्टमना भूयो दुर्योधनमभाषत ॥ ३४ ॥

शल्यके द्वारा अश्वोंका नियन्त्रण स्वीकार कर लिये जानेपर कर्ण प्रसन्नचित्त हो पुनः दुर्योधनसे बोला—॥ ३४ ॥

नातिहृष्टमना ह्येष मद्रराजोऽभिभाषते ।
राजन् मधुरया वाचा पुनरेनं ब्रवीहि वै ॥ ३५ ॥

'राजन् ! ये मद्रराज शल्य अधिक प्रसन्न होकर बात नहीं कर रहे हैं; अतः तुम मधुर वाणीद्वारा इन्हें फिरसे समझाते हुए कुछ कहो' ॥ ३५ ॥

ततो राजा महाप्राज्ञः सर्वास्त्रकुशलो बली ।
दुर्योधनोऽब्रवीच्छल्यं मद्रराजं महीपतिम् ॥ ३६ ॥
पूरयन्निव घोषेण मेघगम्भीरया गिरा ।

तब सम्पूर्ण अस्त्रोंके संचालनमें कुशल, परम बुद्धिमान् एवं बलवान् राजा दुर्योधनने मद्रदेशके राजा पृथ्वीपति शल्यको सम्बोधित करके अपने स्वरसे वहाँके प्रदेशको गुँजाते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीद्वारा इस प्रकार कहा—॥ ३६½ ॥

शल्य कर्णोऽर्जुनेनाद्य योद्धव्यमिति मन्यते ॥ ३७ ॥
तस्य त्वं पुरुषव्याघ्र नियच्छ तुरगान् युधि ।

'शल्य ! आज कर्ण अर्जुनके साथ युद्ध करनेकी इच्छा रखता है । पुरुषसिंह ! आप रणस्थलमें इसके घोड़ोंको काबूमें रक्खें ॥ ३७½ ॥

कर्णो हत्वेतरान् सर्वान् फाल्गुनं हन्तुमिच्छति ॥ ३८ ॥
तस्याभीषुग्रहे राजन् प्रयाचे त्वां पुनः पुनः ।

'कर्ण अन्य सब शत्रुवीरोंका संहार करके अर्जुनका वध करना चाहता है । राजन् ! आपसे उसके घोड़ोंकी बागडोर सँभालनेके लिये मैं बारंबार याचना करता हूँ ॥ ३८½ ॥

पार्थस्य सचिवः कृष्णो यथाभीषुग्रहो वरः ।
तथा त्वमपि राधेयं सर्वतः परिपालय ॥ ३९ ॥

'जैसे श्रीकृष्ण अर्जुनके श्रेष्ठ सचिव तथा सारथि हैं, उसी प्रकार आप भी राधापुत्र कर्णकी सर्वथा रक्षा कीजिये' ॥ ३९ ॥

संजय उवाच

ततः शल्यः परिष्वज्य सुतं ते वाक्यमब्रवीत् ।
दुर्योधनममित्रघ्नं प्रीतो मद्राधिपस्तदा ॥ ४० ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! तब मद्रराज शल्यने प्रसन्न हो आपके पुत्र शत्रुसूदन दुर्योधनको हृदयसे लगाकर कहा ॥ ४० ॥

शल्य उवाच

एवं चेन्मन्यसे राजन् गान्धारे प्रियदर्शन ।
तस्मात् ते यत् प्रियं किंचित् तत् सर्वं करवाण्यहम् ॥ ४१ ॥

शल्य बोले—गान्धारीनन्दन ! प्रियदर्शन नरेश ! यदि तुम ऐसा समझते हो तो तुम्हारा जो कुछ प्रिय कार्य है, वह सब मैं करूँगा ॥ ४१ ॥

यत्रास्मि भरतश्रेष्ठ योग्यः कर्मणि कर्हिचित् ।
तत्र सर्वात्मना युक्तो वक्ष्ये कार्यधुरं तव ॥ ४२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! मैं जहाँ कहीं कभी भी जिस कर्मके योग्य होऊँ, वहाँ उस कर्ममें तुम्हारे द्वारा नियुक्त कर दिये जानेपर मैं सम्पूर्ण हृदयसे उस कार्यभारको वहन करूँगा ॥ ४२ ॥

यत्तु कर्णमहं ब्रूयां हितकामः प्रियाप्रिये ।
मम तत् क्षमतां सर्वं भवान् कर्णश्च सर्वशः ॥ ४३ ॥

परंतु मैं हितकी इच्छा रखते हुए कर्णसे जो भी प्रिय अथवा अप्रिय वचन कहूँ, वह सब तुम और कर्ण सर्वथा क्षमा करो ॥ ४३ ॥

कर्ण उवाच

ईशानस्य यथा ब्रह्मा यथा पार्थस्य केशवः ।
तथा नित्यं हिते युक्तो मद्रराज भवस्व नः ॥ ४४ ॥

कर्णने कहा—मद्रराज ! जैसे ब्रह्मा महादेवजीके और श्रीकृष्ण अर्जुनके हितमें सदा तत्पर रहते हैं, उसी प्रकार आप भी निरन्तर हमारे हितसाधनमें संलग्न रहें ॥ ४४ ॥

शल्य उवाच

आत्मनिन्दाऽऽत्मपूजा च परनिन्दा परस्तवः ।
अनाचरितमार्याणां वृत्तमेतच्चतुर्विधम् ॥ ४५ ॥

शल्य बोले—अपनी निन्दा और प्रशंसा, परायी निन्दा और परायी स्तुति—ये चार प्रकारके बर्ताव श्रेष्ठ पुरुषोंने कभी नहीं किये हैं ॥ ४५ ॥

यत् तु विद्वन् प्रवक्ष्यामि प्रत्ययार्थमहं तव ।
आत्मनः स्तवसंयुक्तं तन्निबोध यथातथम् ॥ ४६ ॥

परंतु विद्वन् ! मैं तुम्हें विश्वास दिलानेके लिये जो अपनी प्रशंसासे भरी बात कहता हूँ, उसे तुम यथार्थरूपसे सुनो ॥

अहं शक्रस्य सारथ्ये योग्यो मातलिवत् प्रभो ।
अप्रमादात् प्रयोगाच्च ज्ञानविद्याचिकित्सनैः ॥ ४७ ॥

प्रभो ! मैं सावधानी, अश्वसंचालन, ज्ञान, विद्या तथा चिकित्सा आदि सद्गुणोंकी दृष्टिसे इन्द्रके सारथि-कर्ममें नियुक्त मातलिके समान सुयोग्य हूँ ॥ ४७ ॥

ततः पार्थेन संग्रामे युध्यमानस्य तेऽनघ ।
वाहयिष्यामि तुरगान् विज्वरो भव सूतज ॥ ४८ ॥

निष्पाप सूतपुत्र कर्ण ! जब तुम युद्धस्थलमें अर्जुनके साथ युद्ध करोगे, तब मैं तुम्हारे घोड़े अवश्य हाँकूँगा । तुम निश्चिन्त रहो ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि शल्यसारथ्यस्वीकारे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें शल्यके सारथिकर्मको स्वीकार करनेसे सम्बन्ध रखनेवाला पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

कर्णका युद्धके लिये प्रस्थान और शल्यसे उसकी बातचीत

दुर्योधन उवाच

अयं ते कर्ण सारथ्यं मद्रराजः करिष्यति ।
कृष्णादभ्यधिको यन्ता देवेशस्येव मातलिः ॥ १ ॥

दुर्योधन बोला—कर्ण ! ये मद्रराज शल्य तुम्हारा सारथ्यकर्म करेंगे । देवराज इन्द्रके सारथि मातलिके समान ये श्रीकृष्णसे भी श्रेष्ठ रथसंचालक हैं ॥ १ ॥

यथा हरिहयैर्युक्तं संगृह्णाति स मातलिः ।
शल्यस्तथा तवाद्यायं संयन्ता रथवाजिनाम् ॥ २ ॥

जैसे मातलि इन्द्रके घोड़ोंसे जुते हुए रथकी बागडोर सँभालते हैं, उसी प्रकार ये तुम्हारे रथके घोड़ोंको काबूमें रखेंगे ॥ २ ॥

योधे त्वयि रथस्थे च मद्रराजे च सारथौ ।
रथश्रेष्ठो ध्रुवं संख्ये पार्थानभिभविष्यति ॥ ३ ॥

जब तुम योद्धा बनकर रथपर बैठोगे और मद्रराज शल्य सारथिके रूपमें प्रतिष्ठित होंगे, उस समय वह श्रेष्ठ रथ निश्चय ही युद्धस्थलमें कुन्तीपुत्रोंको पराजित कर देगा ॥ ३ ॥

संजय उवाच

ततो दुर्योधनो भूयो मद्रराजं तरस्विनम् ।
उवाच राजन् संग्रामेऽभ्युषिते पर्युपस्थिते ॥ ४ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर दुर्योधनने प्रातःकाल युद्ध उपस्थित होनेपर पुनः वेगशाली मद्रराज शल्यसे कहा—॥ ४ ॥

कर्णस्य यच्छ संग्रामे मद्रराज हयोत्तमान्।
त्वयाभिगुप्तो राधेयो विजेष्यति धनंजयम्॥ ५॥

'मद्रराज ! आप संग्राममें कर्णके इन उत्तम घोड़ोंको वशमें कीजिये। आपसे सुरक्षित होकर राधापुत्र कर्ण निश्चय ही अर्जुनको जीत लेगा' ॥ ५ ॥

इत्युक्तो रथमास्थाय तथेति प्राह भारत।
शल्येऽभ्युपगते कर्णः सारथिं सुमनाब्रवीत्॥ ६॥
त्वं सूत स्यन्दनं मह्यं कल्पयेत्यसकृत् त्वरन्।

भारत ! दुर्योधनके ऐसा कहनेपर शल्यने रथका स्पर्श करके कहा—'तथास्तु।' जब शल्यने सारथि होना पूर्णरूपसे स्वीकार कर लिया, तब कर्णने प्रसन्नचित्त होकर बारंबार अपने पूर्व सारथिसे शीघ्रतापूर्वक कहा—'सूत ! तुम मेरा रथ सजाकर तैयार करो' ॥ ६½ ॥

ततो जैत्रं रथवरं गन्धर्वनगरोपमम्॥ ७॥
विधिवत् कल्पितं भद्रं जयेत्युक्त्वा न्यवेदयत्।

तब सारथिने गन्धर्वनगरके समान विशाल, विजयशील श्रेष्ठ और मङ्गलकारक रथको विधिपूर्वक सुसज्जित करके सूचित किया—'स्वामिन् ! आपकी जय हो ! रथ तैयार है' ॥ ७½ ॥

तं रथं रथिनां श्रेष्ठः कर्णोऽभ्यर्च्य यथाविधि॥ ८॥
सम्पादितं ब्रह्मविदा पूर्वमेव पुरोधसा।
कृत्वा प्रदक्षिणं यत्नादुपस्थाय च भास्करम्॥ ९॥
समीपस्थं मद्रराजमारोह त्वमथाब्रवीत्।

रथियोंमें श्रेष्ठ कर्णने वेदज्ञ पुरोहितद्वारा पहलेसे ही जिसका माङ्गलिक कृत्य सम्पन्न कर दिया गया था, उस रथकी विधिपूर्वक पूजा और प्रदक्षिणा की। तत्पश्चात् सूर्यदेवका प्रयत्नपूर्वक उपस्थान करके पास ही खड़े हुए मद्रराजसे कहा 'पहले आप रथपर बैठिये' ॥ ८-९½ ॥

ततः कर्णस्य दुर्धर्षं स्यन्दनप्रवरं महत्॥ १०॥
आरुरोह महातेजाः शल्यः सिंह इवाचलम्।

तदनन्तर जैसे सिंह पर्वतपर चढ़ता है, उसी प्रकार महातेजस्वी शल्य कर्णके दुर्जय, विशाल एवं श्रेष्ठ रथपर आरूढ़ हुए ॥ १०½ ॥

ततः शल्याश्रितं दृष्ट्वा कर्णः स्वं रथमुत्तमम्॥ ११॥
अध्यतिष्ठद् यथाम्भोदं विद्युत्वन्तं दिवाकरः।

कर्ण अपने उत्तम रथको सारथि शल्यसे सनाथ हुआ देख स्वयं भी उसपर आरूढ़ हुआ, मानो सूर्यदेव बिजलियोंसे युक्त मेघपर प्रतिष्ठित हुए हों ॥ ११½ ॥

तावेकरथमारूढावादित्याग्निसमत्विषौ॥ १२॥
अभ्राजेतां यथा मेघं सूर्याग्नी सहितौ दिवि।

जैसे आकाशमें किसी महान् मेघखण्डपर एक साथ बैठे हुए सूर्य और अग्नि प्रकाशित हो रहे हों, उसी प्रकार सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी कर्ण और शल्य उस एक ही रथपर आरूढ़ हो बड़ी शोभा पाने लगे ॥ १२½ ॥

संस्तूयमानौ तौ वीरौ तदास्तां द्युतिमत्तमौ॥ १३॥
ऋत्विक्सदस्यैरिन्द्राग्नी स्तूयमानाविवाध्वरे।

उस समय उन दोनों परम तेजस्वी वीरोंकी उसी प्रकार स्तुति होने लगी, जैसे यज्ञमण्डपमें ऋत्विजों और सदस्योंद्वारा इन्द्र और अग्नि देवताका स्तवन किया जाता है॥



स शल्यसंगृहीताश्वे रथे कर्णः स्थितो बभौ॥ १४॥
धनुर्विस्फारयन् घोरं परिवेषीव भास्करः।

शल्यने घोड़ोंकी बागडोर हाथमें ले ली। उस रथपर बैठा हुआ कर्ण अपने भयंकर धनुषको फैलाकर उसी प्रकार सुशोभित हो रहा था, मानो सूर्यमण्डलपर घेरा पड़ा हो॥

आस्थितः स रथश्रेष्ठं कर्णः शरगभस्तिमान्॥ १५॥
प्रबभौ पुरुषव्याघ्रो मन्दरस्थ इवांशुमान्।

उस श्रेष्ठ रथपर चढ़ा हुआ पुरुषसिंह कर्ण अपनी बाणमयी किरणोंसे युक्त हो मन्दराचलके शिखरपर देदीप्यमान होनेवाले सूर्यके समान प्रकाशित हो रहा था ॥ १५½ ॥

तं रथस्थं महाबाहुं युद्धायामिततेजसम्॥ १६॥
दुर्योधनस्तु राधेयमिदं वचनमब्रवीत्।
अकृतं द्रोणभीष्माभ्यां दुष्करं कर्म संयुगे॥ १७॥
कुरुष्वाधिरथे वीर मिषतां सर्वधन्विनाम्।

युद्धके लिये रथपर बैठे हुए अमिततेजस्वी महाबाहु

राधापुत्र कर्णसे दुर्योधनने इस प्रकार कहा—'वीर ! अधिरथकुमार ! युद्धस्थलमें द्रोणाचार्य और भीष्म भी जिसे न कर सके, वही दुष्कर कर्म तुम सम्पूर्ण धनुर्धरोंके देखते-देखते कर डालो ॥ १६–१७½ ॥

मनोगतं मम ह्यासीद् भीष्मद्रोणौ महारथौ ॥ १८ ॥
अर्जुनं भीमसेनं च निहन्ताराविति ध्रुवम् ।

'मेरे मनमें यह विश्वास था कि 'महारथी भीष्म और द्रोणाचार्य अर्जुन और भीमसेनको अवश्य ही मार डालेंगे' ॥

ताभ्यां यदकृतं वीर वीरकर्म महामृधे ॥ १९ ॥
तत् कर्म कुरु राधेय वज्रपाणिरिवापरः ।

'वीर राधापुत्र ! वे दोनों जिसे न कर सके, वही वीरोचित कर्म आज महासमरमें दूसरे वज्रधारी इन्द्रके समान तुम निश्चय ही पूर्ण करो ॥ १९½ ॥

गृहाण धर्मराजं वा जहि वा त्वं धनंजयम् ॥ २० ॥
भीमसेनं च राधेय माद्रीपुत्रौ यमावपि ।

'राधानन्दन ! या तो तुम धर्मराज युधिष्ठिरको कैद कर लो या अर्जुन, भीमसेन तथा माद्रीकुमार नकुल-सहदेवको मार डालो ॥ २०½ ॥

जयश्च तेऽस्तु भद्रं ते प्रयाहि पुरुषर्षभ ॥ २१ ॥
पाण्डुपुत्रस्य सैन्यानि कुरु सर्वाणि भस्मसात् ।

'पुरुषप्रवर ! तुम्हारी जय हो । कल्याण हो । अब तुम जाओ और पाण्डुपुत्रकी सारी सेनाओंको भस्म करो' ॥२१½॥

ततस्तूर्यसहस्राणि भेरीणामयुतानि च ॥ २२ ॥
वाद्यमानान्यराजन्त मेघशब्दो यथा दिवि ।

तदनन्तर सहस्रों तूर्य और कई सहस्र रणभेरियाँ बज उठीं, जो आकाशमें मेघोंकी गर्जनाके समान प्रतीत हो रही थीं २२½

प्रतिगृह्य तु तद् वाक्यं रथस्थो रथसत्तमः ॥ २३ ॥
अभ्यभाषत राधेयः शल्यं युद्धविशारदम् ।
चोदयाश्वान् महाबाहो यावद्धन्मि धनंजयम् ॥ २४ ॥
भीमसेनं यमौ चोभौ राजानं च युधिष्ठिरम् ।

रथपर बैठे हुए रथियोंमें श्रेष्ठ राधापुत्र कर्णने दुर्योधनके उस आदेशको शिरोधार्य करके युद्धकुशल राजा शल्यसे कहा—'महाबाहो ! मेरे घोड़ोंको बढ़ाइये, जिससे कि मैं अर्जुन, भीमसेन, दोनों भाई नकुल-सहदेव तथा राजा युधिष्ठिरका वध कर सकूँ ॥

अद्य पश्यतु मे शल्य बाहुवीर्यं धनंजयः ॥ २५ ॥
अस्यतः कङ्कपत्राणां सहस्राणि शतानि च ।

'शल्य ! आज सैकड़ों और सहस्रों कङ्कपत्रयुक्त बाणोंकी वर्षा करते हुए मुझ कर्णके बाहुबलको अर्जुन देखें ॥ २५½ ॥

अद्य क्षेप्स्याम्यहं शल्य शरान् परमतेजनान् ॥ २६ ॥
पाण्डवानां विनाशाय दुर्योधनजयाय च ।

'शल्य ! आज मैं पाण्डवोंके विनाश और दुर्योधनकी विजयके लिये अत्यन्त तीखे बाण चलाऊँगा' ॥ २६½ ॥

शल्य उवाच

सूतपुत्र कथं नु त्वं पाण्डवानवमन्यसे ॥ २७ ॥
सर्वास्त्रज्ञान् महेष्वासान् सर्वानेव महाबलान् ।
अनिवर्तिनो महाभागानजय्यान् सत्यविक्रमान् ॥ २८ ॥

शल्यने कहा—सूतपुत्र ! तुम पाण्डवोंकी अवहेलना कैसे करते हो ! वे सब-के-सब तो सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञाता, महाधनुर्धर, महाबलवान्, युद्धसे पीछे न हटनेवाले, अजेय तथा सत्यपराक्रमी हैं ॥ २७-२८ ॥

अपि संजनयेयुर्ये भयं साक्षाच्छतक्रतोः ।
यदा श्रोष्यसि निर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः ॥ २९ ॥
राधेय गाण्डिवस्याजौ तदा नैवं वदिष्यसि ।

वे साक्षात् इन्द्रके मनमें भी भय उत्पन्न कर सकते हैं। राधापुत्र ! जब तुम युद्धस्थलमें वज्रकी गड़गड़ाहटके समान गाण्डीव धनुषका गम्भीर घोष सुनोगे, तब ऐसी बातें नहीं कहोगे ॥ २९½ ॥

यदा द्रक्ष्यसि भीमेन कुञ्जरानीकमाहवे ॥ ३० ॥
विशीर्णदन्तं निहतं तदा नैवं वदिष्यसि ।

जब तुम देखोगे कि भीमसेनने संग्रामभूमिमें गजराजोंकी सेनाके दाँत तोड़-तोड़कर उसका संहार कर डाला है, तब तुम इस प्रकार नहीं बोल सकोगे ॥ ३०½ ॥

यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे धर्मपुत्रं यमौ तथा ॥ ३१ ॥
शितैः पृषत्कैः कुर्वाणानभ्रच्छायामिवाम्बरे ।
अस्यतः क्षिण्वतश्चारील्लँघुहस्तान् दुरासदान् ।
पार्थिवानपि चान्यांस्त्वं तदा नैवं वदिष्यसि ॥ ३२ ॥

जब तुम्हें यह दिखायी देगा कि संग्राममें धर्मपुत्र युधिष्ठिर, नकुल-सहदेव तथा अन्यान्य दुर्जय भूपाल बड़ी शीघ्रताके साथ हाथ चला रहे हैं, अपने तीखे बाणोंद्वारा आकाशमें मेघोंकी छायाके समान छाया कर रहे हैं, निरन्तर बाणवर्षा करते और शत्रुओंका संहार किये डालते हैं, तब तुम ऐसी बातें मुँहसे न निकाल सकोगे ॥ ३१-३२ ॥

संजय उवाच

अनादृत्य तु तद् वाक्यं मद्रराजेन भाषितम् ।
याहीत्येवाब्रवीत् कर्णो मद्रराजं तरस्विनम् ॥ ३३ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! मद्रराजकी कही हुई उस बातकी उपेक्षा करके कर्णने उन वेगशाली मद्रनरेशसे कहा—'चलिये, चलिये' ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि शल्यसंवादे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें शल्यसंवादविषयक छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

कौरवसेनामें अपशकुन, कर्णकी आत्मप्रशंसा, शल्यके द्वारा उसका उपहास और अर्जुनके बल-पराक्रमका वर्णन

संजय उवाच

दृष्ट्वा कर्णं महेष्वासं युयुत्सुं समवस्थितम्।
चुक्रुशुः कुरवः सर्वे हृष्टरूपाः समन्ततः॥ १॥

संजय कहते हैं—महाराज ! जब महाधनुर्धर कर्ण युद्धकी इच्छासे समराङ्गणमें डटकर खड़ा हो गया, तब समस्त कौरव बड़े हर्षमें भरकर सब ओर कोलाहल करने लगे॥

ततो दुन्दुभिनिर्घोषैर्भेरीणां निनदेन च।
बाणशब्दैश्च विविधैर्गर्जितैश्च तरस्विनाम्॥ २॥
निर्ययुस्तावका युद्धे मृत्युं कृत्वा निवर्तनम्।

तदनन्तर आपके पक्षके समस्त वीर दुन्दुभि और भेरियोंकी ध्वनि, बाणोंकी सनसनाहट और वेगशाली वीरोंकी विविध गर्जनाओंके साथ युद्धके लिये निकल पड़े। उनके मनमें यह निश्चय था कि अब मौत ही हमें युद्धसे निवृत्त कर सकेगी॥

प्रयाते तु ततः कर्णे योधेषु मुदितेषु च॥ ३॥
चचाल पृथिवी राजन् ववाश च सुविस्तरम्।

राजन् ! कर्ण और कौरव योद्धाओंके प्रसन्नतापूर्वक प्रस्थान करनेपर धरती डोलने और बड़े जोर-जोरसे अव्यक्त शब्द करने लगी॥ ३½॥

निःसरन्तो व्यदृश्यन्त सूर्यात् सप्त महाग्रहाः॥ ४॥
उल्कापाताश्च संजज्ञुर्दिशां दाहास्तथैव च।
शुष्काशन्यश्च सम्पेतुर्ववुर्वाताश्च भैरवाः॥ ५॥

उस समय सूर्यमण्डलसे सात बड़े-बड़े ग्रह निकलते दिखायी दिये, उल्कापात होने लगे, दिशाओंमें आग-सी जल उठी, बिना वर्षाके ही बिजलियाँ गिरने लगीं और भयानक आँधी चलने लगी॥ ४-५॥

मृगपक्षिगणाश्चैव पृतनां बहुशस्तव।
अपसव्यं तदा चक्रुर्वेदयन्तो महाभयम्॥ ६॥

बहुतेरे मृग और पक्षी महान् भयकी सूचना देते हुए अनेक बार आपकी सेनाको दाहिने करके चले गये॥ ६॥

प्रस्थितस्य च कर्णस्य निपेतुस्तुरगा भुवि।
अस्थिवर्षं च पतितमन्तरिक्षाद् भयानकम्॥ ७॥

कर्णके प्रस्थान करते ही उसके घोड़े पृथ्वीपर गिर पड़े और आकाशसे हड्डियोंकी भयंकर वर्षा होने लगी॥ ७॥

जज्वलुश्चैव शस्त्राणि ध्वजाश्चैव चकम्पिरे।
अश्रूणि च व्यमुञ्चन्त वाहनानि विशाम्पते॥ ८॥

प्रजानाथ ! कौरवोंके शस्त्र जल उठे, ध्वज हिलने लगे और वाहन आँसू बहाने लगे॥ ८॥

एते चान्ये च बहव उत्पातास्तत्र दारुणाः।
समुत्पेतुर्विनाशाय कौरवाणां सुदारुणाः॥ ९॥

ये तथा और भी बहुतसे भयंकर उत्पात वहाँ प्रकट हुए, जो कौरवोंके विनाशकी सूचना दे रहे थे॥ ९॥

न च तान् गणयामासुः सर्वे दैवेन मोहिताः।
प्रस्थितं सूतपुत्रं च जयेत्यूचुर्नराधिपाः।
निर्जितान् पाण्डवांश्चैव मेनिरे तत्र कौरवाः॥ १०॥

परंतु दैवसे मोहित होनेके कारण उन सबने उन उत्पातोंको कुछ गिना ही नहीं। सूतपुत्रके प्रस्थान करनेपर सब राजा उसकी जय-जयकार बोलने लगे। कौरवोंको यह विश्वास हो गया कि अब पाण्डव परास्त हो जायँगे॥ १०॥

ततो रथस्थः परवीरहन्ता
भीष्मद्रोणावस्तवीर्यौ समीक्ष्य।
समुज्ज्वलद्भास्करपावकाभो
वैकर्तनोऽसौ रथकुञ्जरो नृप॥ ११॥
स शल्यमाभाष्य जगाद वाक्यं
पार्थस्य कर्मातिशयं विचिन्त्य।
मानेन दर्पेण विदह्यमानः
क्रोधेन दीप्यन्निव निःश्वसंश्च॥ १२॥

नरेश्वर ! तदनन्तर प्रकाशमान सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी, शत्रुवीरोंका संहार करनेमें समर्थ एवं रथपर बैठा हुआ रथिश्रेष्ठ कर्ण यह देखकर कि भीष्म और द्रोणाचार्यके पराक्रमका लोप हो गया, अर्जुनके अलौकिक कर्मका चिन्तन करके अभिमान और दर्पसे दग्ध हो उठा तथा क्रोधसे जलता हुआ-सा लंबी-लंबी साँस खींचने लगा। उस समय उसने शल्यको सम्बोधित करके कहा—॥ ११-१२॥

नाहं महेन्द्रादपि वज्रपाणेः
क्रुद्धाद् बिभेम्यायुधवान् रथस्थः।
दृष्ट्वा हि भीष्मप्रमुखाञ्शयाना-
नतीव मां ह्यस्थिरता जहाति॥ १३॥

'राजन् ! मैं हाथमें आयुध लेकर रथपर बैठा रहूँ, उस अवस्थामें यदि वज्र धारण करनेवाले इन्द्र भी कुपित होकर आ जायँ तो उनसे भी मुझे भय न होगा। भीष्म आदि महारथियोंको रणभूमिमें सदाके लिये सोया हुआ देखकर भी अस्थिरता (घबराहट) मुझसे दूर ही रहती है॥ १३॥

महेन्द्रविष्णुप्रतिमावनिन्दितौ
रथाश्वनागप्रवरप्रमाथिनौ।
अवध्यकल्पौ निहतौ यदा परै-
स्ततो न मेऽप्यस्ति रणेऽद्य साध्वसम्॥ १४॥

'भीष्म और द्रोणाचार्य देवराज इन्द्र और विष्णुके समान पराक्रमी, सबके द्वारा प्रशंसित, रथों, घोड़ों और गजराजोंको भी मथ डालनेवाले तथा अवध्य-तुल्य थे, जब उन्हें भी शत्रुओंने मार डाला, तब मेरी क्या गिनती है ? यह सोचकर भी आज मुझे रणभूमिमें कोई भय नहीं हो रहा है ॥ १४ ॥

समीक्ष्य संख्येऽतिबलान् नराधिपान्
ससूतमातङ्गरथान् परैर्हतान् ।
कथं न सर्वानहितान् रणेऽवधीद्
महास्त्रविद् ब्राह्मणपुङ्गवो गुरुः॥ १५ ॥

'युद्धस्थलमें अत्यन्त बलवान् नरेशोंको सारथि, रथ और हाथियोंसहित शत्रुओंद्वारा मारा गया देखकर भी महान् अस्त्रवेत्ता ब्राह्मणशिरोमणि आचार्य द्रोणने रणभूमिमें समस्त शत्रुओंका वध क्यों नहीं कर डाला ? ॥ १५ ॥

स संस्मरन् द्रोणमहं महाहवे
ब्रवीमि सत्यं कुरवो निबोधत ।
न वा मदन्यः प्रसहेद् रणेऽर्जुनं
समागतं मृत्युमिवोग्ररूपिणम् ॥ १६ ॥

'अतः महासमरमें मारे गये द्रोणाचार्यका स्मरण करके मैं सत्य कहता हूँ, कौरवो ! तुमलोग ध्यान देकर सुनो। मेरे सिवा दूसरा कोई रणभूमिमें अर्जुनका वेग नहीं सह सकता। वे सामने आये हुए भयानक रूपधारी मृत्युके समान हैं ॥

शिक्षाप्रमादश्च बलं धृतिश्च
द्रोणे महास्त्राणि च संनतिश्च ।
स चेदगान्मृत्युवशं महात्मा
सर्वानन्यानातुरानद्य मन्ये ॥ १७ ॥

'शिक्षा, सावधानी, बल, धैर्य, महान् अस्त्र और विनय— ये सभी सद्गुण द्रोणाचार्यमें विद्यमान थे। वे महात्मा द्रोण भी यदि मृत्युके वशमें पड़ गये तो अन्य सब लोगोंको भी मैं मरणासन्न ही समझता हूँ ॥ १७ ॥

नेह ध्रुवं किंचिदपि प्रचिन्तयन्
विद्यां लोके कर्मणो नित्ययोगात् ।
सूर्योदये को हि विमुक्तसंशयो
भावं कुर्वीताद्य गुरौ निपातिते ॥ १८ ॥

'बहुत सोचनेपर भी मैं कर्म-सम्बन्धकी अनित्यताके कारण इस लोकमें किसी भी वस्तुको नित्य नहीं मानता। जब आचार्य द्रोण भी मार दिये गये, तब कौन संदेहरहित होकर आगामी सूर्योदयतक जीवित रहनेका दृढ़ विश्वास कर सकता है ? ॥ १८ ॥

न नूनमस्त्राणि बलं पराक्रमः
क्रियाः सुनीतं परमायुधानि वा ।
अलं मनुष्यस्य सुखाय वर्तितुं
तथा हि युद्धे निहतः परैर्गुरुः ॥ १९ ॥

'निश्चय ही अस्त्र, बल, पराक्रम, क्रिया, अच्छी नीति अथवा उत्तम आयुध आदि किसी मनुष्यको सुख पहुँचानेके लिये पर्याप्त नहीं हैं; क्योंकि इन सब साधनोंके होते हुए भी आचार्यको शत्रुओंने युद्धमें मार डाला है ॥ १९ ॥

हुताशनादित्यसमानतेजसं
पराक्रमे विष्णुपुरन्दरोपमम् ।
नये बृहस्पत्युशनोः सदा समं
न चैनमस्त्रं तदुपास्त दुःसहम् ॥ २० ॥

'अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी, विष्णु और इन्द्रके समान पराक्रमी तथा सदा बृहस्पति और शुक्राचार्यके समान नीतिमान् इन गुरुदेवको बचानेके लिये इनके दुःसह अस्त्र आदि पास न आ सके अर्थात् उनकी रक्षा नहीं कर सके॥

सम्प्राक्रुष्टे रुदितस्त्रीकुमारे
पराभूते पौरुषे धार्तराष्ट्रे ।
मया कृत्यमिति जानामि शल्य
प्रयाहि तस्माद् द्विषतामनीकम् ॥ २१ ॥

'शल्य ! (द्रोणाचार्यके मारे जानेपर) जब सब ओर त्राहि-त्राहिकी पुकार हो रही है, स्त्रियाँ और बच्चे बिलख-बिलखकर रो रहे हैं तथा दुर्योधनका पुरुषार्थ दब गया है, ऐसे समयमें दुर्योधनको मेरी सहायताकी विशेष आवश्यकता है। मैं अपने इस कर्तव्यको अच्छी तरह समझता हूँ। इसलिये तुम शत्रुओंकी सेनाकी ओर चलो ॥ २१ ॥

यत्र राजा पाण्डवः सत्यसंधो
व्यवस्थितो भीमसेनार्जुनौ च ।
वासुदेवः सात्यकिः सृञ्जयाश्च
यमौ च कस्तान् विषहेन्मदन्यः ॥ २२ ॥

'जहाँ सत्यप्रतिज्ञ पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर खड़े हैं, जहाँ भीमसेन, अर्जुन, वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण, सात्यकि, सृंजय वीर तथा नकुल और सहदेव डटे हुए हैं, वहाँ मेरे सिवा दूसरा कौन उन वीरोंका वेग सह सकता है ? ॥ २२ ॥

तस्मात् क्षिप्रं मद्रपते प्रयाहि
रणे पञ्चालान् पाण्डवान् सृञ्जयांश्च।
तान् वा हनिष्यामि समेत्य संख्ये
यास्यामि वा द्रोणपथा यमाय ॥ २३ ॥

'इसलिये मद्रराज ! तुम शीघ्र ही रणभूमिमें पाञ्चाल, पाण्डव तथा सृंजय वीरोंकी ओर रथ ले चलो। आज युद्धस्थलमें उन सबके साथ भिड़कर या तो उन्हें ही मार डालूँगा या स्वयं ही द्रोणाचार्यके मार्गसे यमलोक चला जाऊँगा ॥ २३ ॥

न त्वेवाहं न गमिष्यामि मध्ये
तेषां शूराणामिति मां शल्य विद्धि ।
मित्रद्रोहो मर्षणीयो न मेऽयं
त्यक्त्वा प्राणाननुयास्यामि द्रोणम् ॥ २४ ॥

'शल्य ! मैं उन शूरवीरोंके बीचमें नहीं जाऊँगा, ऐसा मुझे न समझो; क्योंकि संग्रामसे पीछे हटनेपर मित्रद्रोह होगा और यह मित्रद्रोह मेरे लिये असह्य है। इसलिये मैं प्राणोंका परित्याग करके द्रोणाचार्यका ही अनुसरण करूँगा ॥

प्राज्ञस्य मूढस्य च जीवितान्ते
नास्ति प्रमोक्षोऽन्तकसत्कृतस्य ।
अतो विद्वन्नभियास्यामि पार्थान्
दिष्टं न शक्यं व्यतिवर्तितुं वै ॥ २५ ॥

'विद्वान् हो या मूर्ख, आयुकी समाप्ति होनेपर सभीका यमराजके द्वारा यथायोग्य सत्कार होता है। उससे किसीको छुटकारा नहीं मिलता । अतः विद्वन् ! मैं कुन्तीके पुत्रोंपर अवश्य चढ़ाई करूँगा । निश्चय ही दैवके विधानको कोई पलट नहीं सकता ॥ २५ ॥

कल्याणवृत्तः सततं हि राजा
वैचित्रवीर्यस्य सुतो ममासीत् ।
तस्यार्थसिद्ध्यर्थमहं त्यजामि
प्रियान् भोगान् दुस्त्यजं जीवितं च ॥२६॥

'धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधन सदा ही मेरे कल्याण-साधनमें तत्पर रहा है; अतः आज उसके मनोरथकी सिद्धिके लिये मैं अपने प्रिय भोगोंको और जिसे त्यागना अत्यन्त कठिन है, उस जीवनको भी त्याग दूँगा ॥ २६ ॥

वैयाघ्रचर्माणमकूजनाक्षं
हैमत्रिकोषं रजतत्रिवेणुम् ।
रथप्रबर्हं तुरगप्रबर्है-
र्युक्तं प्रादान्मह्यमिमं हि रामः ॥ २७ ॥

'गुरुवर परशुरामजीने मुझे यह व्याघ्रचर्मसे आच्छादित और उत्तम अश्वोंसे जुता हुआ श्रेष्ठ रथ प्रदान किया है। इसमें तीन सुवर्णमय कोष और रजतमय त्रिवेणु सुशोभित हैं। इसके धुरों और पहियोंसे कोई आवाज नहीं निकलती है ॥

धनूंषि चित्राणि निरीक्ष्य शल्य
ध्वजान् गदाः सायकांश्चोग्ररूपान् ।
असिं च दीप्तं परमायुधं च
शङ्खं च शुभ्रं स्वनवन्तमुग्रम् ॥ २८ ॥

'शल्य ! तत्पश्चात् उन्होंने भलीभाँति इस रथका निरीक्षण करके बहुत-से विचित्र धनुष, भयंकर बाण, ध्वज, गदा, खड्ग, चमचमाते हुए उत्तम आयुध तथा गम्भीर ध्वनिसे युक्त भयंकर श्वेत शङ्ख भी दिये थे ॥ २८ ॥

पताकिनं वज्रनिपातनिःस्वनं
सिताश्वयुक्तं शुभतूणशोभितम् ।
इमं समास्थाय रथं रथर्षभं
रणे हनिष्याम्यहमर्जुनं बलात् ॥ २९ ॥

'यह रथ सब रथोंसे उत्तम है। इसमें पताकाएँ फहरा रही हैं, सफेद घोड़े जुते हुए हैं और सुन्दर तरकस इसकी शोभा बढ़ाते हैं। चलते समय इस रथकी धमकसे वज्रपातके समान शब्द होता है । मैं इस रथपर बैठकर रणभूमिमें अर्जुनको बलपूर्वक मार डालूँगा ॥ २९ ॥

तं चेन्मृत्युः सर्वहरोऽभिरक्षेत्
सदाप्रमत्तः समरे पाण्डुपुत्रम् ।
तं वा हनिष्यामि रणे समेत्य
यास्यामि वा भीष्ममुखो यमाय ॥ ३० ॥

'यदि सबका संहार करनेवाली मृत्यु सदा सावधान रहकर समराङ्गणमें पाण्डुपुत्र अर्जुनकी रक्षा करे तो रणक्षेत्रमें उससे भी भिड़कर या तो मैं उसे ही मार डालूँगा या स्वयं ही भीष्मके सम्मुख यमलोकको चला जाऊँगा ॥ ३० ॥

यमवरुणकुबेरवासवा वा
यदि युगपत्सगणा महाहवे ।
जुगुपिषव इहैत्य पाण्डवं
किमु बहुना सह तैर्जयामि तम् ॥ ३१ ॥

'अधिक कहनेसे क्या लाभ ? यदि इस महासमरमें अपने गणोंसहित यम, वरुण, कुबेर और इन्द्र भी एक साथ आकर यहाँ पाण्डुपुत्र अर्जुनकी रक्षा करना चाहें तो मैं उन सबके साथ ही उन्हें जीत लूँगा' ॥ ३१ ॥

संजय उवाच

इति रणरभसस्य कत्थत-
स्तदुत निशम्य वचः स मद्रराट् ।
अवहसदवमन्य वीर्यवान्
प्रतिषिषिधे च जगाद चोत्तरम् ॥ ३२॥

संजय कहते हैं—राजन् ! पराक्रमी मद्रराज शल्य युद्धके उत्साहमें भरकर बढ़-बढ़कर बातें बनानेवाले कर्णके उस कथनको सुनकर उसकी अवहेलना करके उपहास करने लगे। उन्होंने फिर ऐसी बातें कहनेसे कर्णको रोका और इस प्रकार उत्तर दिया ॥ ३२ ॥

शल्य उवाच

विरम विरम कर्ण कत्थना-
दतिरभसोऽप्यतिवाचमुक्तवान् ।
क च हि नरवरो धनंजयः
क पुनरहो पुरुषाधमो भवान् ॥ ३३ ॥

शल्यने कहा—कर्ण ! बस, अब बढ़-बढ़कर बातें बनाना बंद करो, बंद करो । तुम अधिक जोशमें आकर अपनी शक्तिसे बहुत बड़ी बात कह गये । भला, कहाँ नर-

श्रेष्ठ अर्जुन और कहाँ मनुष्योंमें अधम तुम ! ॥ ३३ ॥



यदुसदनमुपेन्द्रपालितं
त्रिदशमिवामरराजरक्षितम् ।
प्रसभमतिविलोड्य को हरेत्
पुरुषवरावरजामृतेऽर्जुनात् ॥ ३४ ॥

बताओ तो सही, अर्जुनके सिवा दूसरा कौन ऐसा वीर है, जो साक्षात् विष्णु भगवान्‌से सुरक्षित यदुवंशियोंकी पुरीको, जिसकी उपमा देवराज इन्द्रद्वारा पालित देवनगरी अमरावतीसे दी जाती है, बलपूर्वक मथकर पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी छोटी बहिन सुभद्राका अपहरण कर सके ॥ ३४ ॥

त्रिभुवनविभुमीश्वरेश्वरं
क इह पुमान् भवमाह्वयेद् युधि ।
मृगवधकलहे ऋतेऽर्जुनात्
सुरपतिवीर्यसमप्रभावतः ॥ ३५ ॥

देवराज इन्द्रके समान बल और प्रभाव रखनेवाले अर्जुनको छोड़कर इस संसारमें दूसरा कौन ऐसा वीर पुरुष है, जो एक वन्य पशुको मारनेके विषयमें उठे हुए विवादके अवसरपर ईश्वरोंके भी ईश्वर त्रिलोकीनाथ भगवान् शङ्करको भी युद्धके लिये ललकार सके ॥ ३५ ॥

असुरसुरमहोरगान् नरान्
गरुडपिशाचसयक्षराक्षसान् ।
इषुभिरजयदग्निगौरवात्
स्वभिलषितं च हविर्ददौ जयः ॥ ३६ ॥

अर्जुनने अग्निदेवका गौरव मानकर गरुड़, पिशाच, यक्ष, राक्षस, देवता, असुर, बड़े-बड़े नाग तथा मनुष्योंको भी बाणोंद्वारा परास्त कर दिया और अग्निको अभीष्ट हविष्य प्रदान किया था ॥ ३६ ॥

स्मरसि ननु यदा परैर्हृतः
स च धृतराष्ट्रसुतोऽपि मोक्षितः ।
दिनकरसदृशैः शरोत्तमैर्युधा
कुरुषु बहून् विनिहत्य तानरीन् ॥ ३७ ॥

कर्ण ! याद है वह घटना, जब कि कुरुजाङ्गल-प्रदेशमें घोषयात्राके समय गन्धर्वोंने शत्रु बनकर दुर्योधनका अपहरण कर लिया था, उस समय इन्हीं अर्जुनने सूर्यकिरणोंके समान तेजस्वी उत्तमोत्तम बाणोंद्वारा उन बहुसंख्यक शत्रुओंको मारकर धृतराष्ट्रपुत्रको बन्धनसे मुक्त किया था ॥ ३७ ॥

प्रथममपि पलायिते त्वयि
प्रियकलहा धृतराष्ट्रसूनवः ।
स्मरसि ननु यदा प्रमोचिताः
खचरगणानवजित्य पाण्डवैः ॥ ३८ ॥

उस युद्धमें तुम सबसे पहले भाग गये थे । उस समय पाण्डवोंने गन्धर्वोंको पराजित करके कलहप्रिय धृतराष्ट्रपुत्रोंको कैदसे छुड़ाया था । क्या ये सब बातें तुम्हें याद हैं ?॥

समुदितबलवाहनाः पुनः
पुरुषवरेण जिताः स्थ गोग्रहे ।
सगुरुगुरुसुताः सभीष्मकाः
किमु न जितः स तदा त्वयार्जुनः ॥ ३९ ॥

विराटनगरमें गोहरणके समय पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनने विशाल बल-वाहनसे सम्पन्न तुम सब लोगोंको द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और भीष्मके सहित परास्त कर दिया था । उस समय तुमने अर्जुनको क्यों नहीं जीत लिया ? ॥ ३९ ॥

इदमपरमुपस्थितं पुन-
स्तव निधनाय सुयुद्धमद्य वै ।
यदि न रिपुभयात् पलायसे
समरगतोऽद्य हतोऽसि सूतज ॥ ४० ॥

सूतपुत्र ! अब आज तुम्हारे वधके लिये पुनः यह दूसरा उत्तम युद्ध उपस्थित हुआ है । यदि तुम शत्रुके भयसे भाग नहीं गये तो समराङ्गणमें पहुँचकर अवश्य मारे जाओगे ॥

संजय उवाच

इति बहु परुषं प्रभाषति
प्रमनसि मद्रपतौ रिपुस्तवम् ।
भृशमभिरुषितः परंतपः
कुरुपृतनापतिराह मद्रपम् ॥ ४१ ॥

संजयने कहा—राजन् ! जब महामना मद्रराज शल्य इस प्रकार शत्रुकी प्रशंसासे सम्बन्ध रखनेवाली बहुत-सी कड़वी बातें सुनाने लगे, तब कौरव-सेनापति शत्रुसंतापी कर्ण अत्यन्त क्रोधसे जल उठा और शल्यसे बोला ॥ ४१ ॥

कर्ण उवाच

भवतु भवतु किं विकत्थसे
ननु मम तस्य हि युद्धमुद्यतम् ।
यदि स जयति मामिहाहवे
तत इदमस्तु सुकत्थितं तव ॥ ४२ ॥

कर्णने कहा—रहने दो, रहने दो। क्यों बहुत बढ़-बढ़कर बातें बना रहे हो। अब तो मेरा और उनका युद्ध उपस्थित हो ही गया है। यदि अर्जुन यहाँ युद्धमें मुझे परास्त कर दें, तब तुम्हारा यह बढ़-बढ़कर बातें करना ठीक और अच्छा समझा जायगा ॥ ४२ ॥

संजय उवाच

एवमस्त्विति मद्रेश उक्त्वा नोत्तरमुक्तवान् ।
याहि शल्येति चाप्येनं कर्णः प्राह युयुत्सया ॥ ४३ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तब मद्रराज शल्य 'एवमस्तु' कहकर चुप हो गये। उन्होंने कर्णकी उस बातका कोई उत्तर नहीं दिया। तब कर्णने युद्धकी इच्छासे उनसे कहा—'शल्य! रथ आगे ले चलो' ॥ ४३ ॥

स रथः प्रययौ शत्रूञ्श्वेताश्वः शल्यसारथिः ।
निघ्नन्नमित्रान् समरे तमो घ्नन् सविता यथा ॥ ४४ ॥

तत्पश्चात् शल्य जिसके सारथि थे और जिसमें श्वेत घोड़े जुते हुए थे, वह विशाल रथ अन्धकारका विनाश करनेवाले सूर्यदेवके समान शत्रुओंका संहार करता हुआ आगे बढ़ा ॥

ततः प्रायात् प्रीतिमान् वै रथेन
वैयाघ्रेण श्वेतयुजाथ कर्णः ।
स चालोक्य ध्वजिनीं पाण्डवानां
धनंजयं त्वरया पर्यपृच्छत् ॥ ४५ ॥

तदनन्तर व्याघ्रचर्मसे आच्छादित और श्वेत अश्वोंसे युक्त उस रथके द्वारा कर्ण बड़ी प्रसन्नताके साथ प्रस्थित हुआ। उसने सामने ही पाण्डवोंकी सेनाको खड़ी देख बड़ी उतावलीके साथ धनंजयका पता पूछा ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण और शल्यका संवादविषयक सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३७ ॥

अष्टात्रिंशोऽध्यायः

कर्णके द्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुनका पता बतानेवालेको नाना प्रकारकी भोगसामग्री और इच्छानुसार धन देनेकी घोषणा

संजय उवाच

प्रयाणे च ततः कर्णो हर्षयन् वाहिनीं तव ।
एकैकं समरे दृष्ट्वा पाण्डवान् पर्यपृच्छत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! प्रस्थानकालमें आपकी सेनाका हर्ष बढ़ाता हुआ कर्ण समराङ्गणमें पाण्डव-सैनिकोंको देखकर प्रत्येकसे पूछने और कहने लगा— ॥ १ ॥

यो मामद्य महात्मानं दर्शयेच्छ्वेतवाहनम् ।
तस्मै दद्यामभिप्रेतं धनं यन्मनसेच्छति ॥ २ ॥

'जो आज मुझे महात्मा श्वेतवाहन अर्जुनको दिखा देगा, उसे मैं उसका अभीष्ट धन, जिसे वह मनसे लेना चाहे, दे दूँगा ॥

न चेत् तदभिमन्येत तस्मै दद्यामहं पुनः ।
शकटं रत्नसम्पूर्णं यो मे ब्रूयाद् धनंजयम् ॥ ३ ॥

'यदि उतने धनसे वह संतुष्ट न होगा तो मैं उसे और धन दूँगा। जो मुझे अर्जुनका पता बता देगा, उसे मैं रत्नोंसे भरा हुआ छकड़ा दूँगा ॥ ३ ॥

न चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ।
शतं दद्यां गवां तस्मै नैत्यिकं कांस्यदोहनम् ॥ ४ ॥

'यदि अर्जुनको दिखानेवाला पुरुष उस धनको पर्याप्त न माने तो मैं उसे प्रतिदिन दूध देनेवाली सौ गौएँ और काँसका दुग्ध-पात्र प्रदान करूँगा ॥ ४ ॥

शतं ग्रामवरांश्चैव दद्यामर्जुनदर्शिने ।
तथा तस्मै पुनर्दद्यां श्वेतमश्वतरीरथम् ॥ ५ ॥
युक्तमञ्जनकेशीभिर्यो मे ब्रूयाद् धनंजयम् ।

'इतना ही नहीं, मैं अर्जुनको दिखा देनेवाले व्यक्तिके लिये सौ बड़े-बड़े गाँव दूँगा तथा जो अर्जुनका पता बता देगा उसे खच्चरियोंसे जुता हुआ एक श्वेत रथ भी भेंट करूँगा; जिसमें काले केशवाली युवतियाँ बैठी होंगी ॥ ५½ ॥

न चेत् तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥ ६ ॥
अन्यं वास्मै पुनर्दद्यां सौवर्णं हस्तिषड्गवम् ।
तथाप्यस्मै पुनर्दद्यां स्त्रीणां शतमलंकृतम् ॥ ७ ॥
श्यामानां निष्ककण्ठीनां गीतवाद्यविपश्चिताम् ।

'यदि अर्जुनका पता बतानेवाला पुरुष उस धनको पूरा न समझे तो उसे दूसरा सोनेका बना हुआ रथ प्रदान करूँगा, जिसमें हाथीके समान हृष्ट-पुष्ट छः बैल जुते होंगे। साथ ही उसे वस्त्राभूषणोंसे विभूषित सौ ऐसी स्त्रियाँ दूँगा, जो श्यामा (सोलह वर्षकी अवस्थावाली), सुवर्णमय कण्ठहारसे अलंकृत तथा गाने-बजानेकी कलामें विदुषी होंगी ॥ ६—७½ ॥

न चेत् तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥ ८ ॥
तस्मै दद्यां शतं नागाञ्शतं ग्रामाञ्शतं रथान् ।
सुवर्णस्य च मुख्यस्य हयाग्र्याणां शतं शतान् ॥ ९ ॥
ऋद्ध्या गुणैः सुदान्तांश्च धुर्यवाहान् सुशिक्षितान् ।

'अर्जुनको दिखानेवाला पुरुष यदि उसे भी पूरा न समझे

तो मैं उसे सौ हाथी, सौ गाँव, पक्के सोनेके बने हुए सौ रथ तथा दस हजार अच्छे घोड़े भी दूँगा। वे घोड़े हृष्ट-पुष्ट, गुणवान्, विनीत, सुशिक्षित तथा रथका भार वहन करनेमें समर्थ होंगे ॥ ८-९½ ॥

तथा सुवर्णशृङ्गीणां गोधेनूनां चतुःशतम् ॥ १० ॥
दद्यां तस्मै सवत्सानां यो मे ब्रूयाद् धनंजयम् ।

'जो मुझे अर्जुनका पता बता देगा, उसे मैं चार सौ सवत्सा दुधारू गौएँ दूँगा, जिनके सींगोंमें सोने मढ़े होंगे ॥

न चेत् तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥ ११ ॥
अन्यदस्मै वरं दद्यां श्वेतान् पञ्चशतान् हयान् ।
हेमभाण्डपरिच्छन्नान् सुमृष्टमणिभूषणान् ॥ १२ ॥

'यदि अर्जुनको दिखानेवाला पुरुष उस धनको पूर्ण नहीं समझेगा तो उसे और भी उत्तम धन, श्वेत रङ्गके पाँच सौ घोड़े दूँगा, जो सोनेके साज-बाजसे सुसज्जित तथा विशुद्ध मणियोंके आभूषणोंसे विभूषित होंगे ॥ ११-१२ ॥

सुदान्तानपि चैवाहं दद्यामष्टादशापरान् ।
रथं च शुभ्रं सौवर्णं दद्यां तस्मै स्वलंकृतम् ॥ १३ ॥
युक्तं परमकाम्बोजैर्यो मे ब्रूयाद् धनंजयम् ।

'इनके सिवा, अठारह और भी घोड़े दूँगा, जो अच्छी तरह रथमें सधे हुए होंगे। जो मुझे अर्जुनका पता बता देगा, उसे मैं परम उज्ज्वल और अलंकारोंसे सजाया हुआ एक सुवर्णमय रथ दूँगा, जिसमें अच्छी नस्लके काबुली घोड़े जुते होंगे ॥ १३½ ॥

न चेत् तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥ १४ ॥
अन्यदस्मै वरं दद्यां कुञ्जराणां शतानि षट् ।
काञ्चनैर्विविधैर्भाण्डैराच्छन्नान् हेममालिनः ॥ १५ ॥
उत्पन्नानपरान्तेषु विनीतान् हस्तिशिक्षकैः ।

'यदि अर्जुनको दिखानेवाला पुरुष उसे भी पूरा न समझे तो उसे मैं और भी श्रेष्ठ धन दूँगा। नाना प्रकारके सुवर्णमय आभूषणोंसे सुशोभित तथा सोनेकी मालाओंसे अलंकृत छः सौ ऐसे हाथी प्रदान करूँगा, जो भारतवर्षकी पश्चिमी सीमाके जङ्गलोंमें उत्पन्न हुए हैं और जिन्हें गजशिक्षकोंने अच्छी तरह सुशिक्षित कर लिया है ॥ १४-१५½ ॥

न चेत् तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥ १६ ॥
अन्यदस्मै वरं दद्यां वैश्यग्रामांश्चतुर्दश ।
सुस्फीतान् धनसंयुक्तान् प्रत्यासन्नवनोदकान् ।
अकुतोभयान् सुसम्पन्नान् राजभोज्यांश्चतुर्दश ॥ १७ ॥

'यदि अर्जुनको दिखानेवाला पुरुष उसे भी पूरा न समझे तो मैं उसे दूसरा श्रेष्ठ धन प्रदान करूँगा। जिनमें वैश्य निवास करते हों ऐसे चौदह समृद्धिशाली और धनसम्पन्न ग्राम दूँगा, जिनके आसपास जङ्गल और जलकी सुविधा होगी और जहाँ किसी प्रकारका भय नहीं होगा। वे चौदहों गाँव अधिक सम्पन्न तथा राजोचित भोगोंसे परिपूर्ण होंगे ॥ १६-१७ ॥

दासीनां निष्ककण्ठीनां मागधीनां शतं तथा ।
प्रत्यग्रवयसां दद्यां यो मे ब्रूयाद् धनंजयम् ॥ १८ ॥

'जो मुझे अर्जुनका पता बता देगा, उसे मैं सोनेके कण्ठहारोंसे विभूषित मगध देशकी सौ नवयुवती दासियाँ दूँगा ॥

न चेत् तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ।
अन्यं तस्मै वरं दद्यां यमसौ कामयेत् स्वयम् ॥ १९ ॥

'यदि अर्जुनको दिखानेवाला पुरुष उसे भी पर्याप्त न समझे तो मैं उसे दूसरा वर प्रदान करूँगा, जिसकी वह स्वयं इच्छा करे ॥ १९ ॥

पुत्रदारान् विहारांश्च यदन्यद् वित्तमस्ति मे ।
तच्च तस्मै पुनर्दद्यां यद् यच्च मनसेच्छति ॥ २० ॥

'स्त्री, पुत्र, विहारस्थान तथा दूसरा भी जो कुछ धन-वैभव मेरे पास है, उसमेंसे जिस-जिस वस्तुको वह अपने मनसे चाहेगा, वह सब कुछ मैं उसे दे डालूँगा' ॥ २० ॥

हत्वा च सहितौ कृष्णौ तयोर्वित्तानि सर्वशः ।
तस्मै दद्यामहं यो मे प्रब्रूयात् केशवार्जुनौ ॥ २१ ॥

'जो मुझे श्रीकृष्ण और अर्जुनका पता बता देगा, उसे मैं उन दोनोंको मारकर उनका सारा धन-वैभव दे दूँगा' ॥ २१ ॥

एता वाचः सुबहुशः कर्ण उच्चारयन् युधि ।
दध्मौ सागरसम्भूतं सुस्वरं शङ्खमुत्तमम् ॥ २२ ॥

इन सब बातोंको बारंबार कहते हुए कर्णने युद्धस्थलमें समुद्रसे उत्पन्न हुए अपने उत्तम शङ्खको उच्च स्वरसे बजाया ॥

ता वाचः सूतपुत्रस्य तथा युक्ता निशम्य तु ।
दुर्योधनो महाराज संहृष्टः सानुगोऽभवत् ॥ २३ ॥

महाराज ! सूतपुत्रकी कही हुई उस अवसरके अनुरूप उन बातोंको सुनकर दुर्योधन अपने सेवकोंसहित बड़ा प्रसन्न हुआ ॥ २३ ॥

ततो दुन्दुभिनिर्घोषो मृदङ्गानां च सर्वशः ।
सिंहनादः सवादित्रः कुञ्जराणां च निःस्वनः ॥ २४ ॥

फिर तो सब ओर दुन्दुभियोंकी गम्भीर ध्वनि होने लगी, मृदङ्ग बजने लगे, वाद्योंकी ध्वनिके साथ-साथ वीरोंका सिंहनाद तथा हाथियोंके चिग्घाड़नेका शब्द वहाँ गूँज उठा ॥ २४ ॥

प्रादुरासीत् तदा राजन् सैन्येषु पुरुषर्षभ ।
योधानां सम्प्रहृष्टानां तथा समभवत् स्वनः ॥ २५ ॥

पुरुषप्रवर नरेश ! उस समय सभी सेनाओंमें हर्ष और उत्साहसे भरे हुए योद्धाओंका गम्भीर गर्जन होने लगा ॥ २५ ॥

तथा प्रहृष्टे सैन्ये तु प्लवमानं महारथम् ।
विकत्थमानं च तदा राधेयमरिकर्षणम् ।

मद्रराजः प्रहस्येदं वचनं प्रत्यभाषत ॥ २६ ॥

इस प्रकार हर्षसे उल्लसित हुई सेनामें जाते और बढ़-बढ़कर बातें बनाते हुए शत्रुसूदन राधापुत्र महारथी कर्णसे मद्रराज शल्यने हँसकर इस प्रकार कहा ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णावलेपे अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्णका अभिमानविषयक अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

शल्यका कर्णके प्रति अत्यन्त आक्षेपपूर्ण वचन कहना

शल्य उवाच

मा सूतपुत्र दानेन सौवर्णं हस्तिषड्गवम् ।
प्रयच्छ पुरुषायाद्य द्रक्ष्यसि त्वं धनंजयम् ॥ १ ॥

शल्य बोले—सूतपुत्र ! तुम किसी पुरुषको हाथीके समान हृष्ट-पुष्ट छः बैलोंसे जुता हुआ सोनेका रथ न दो। आज अवश्य ही अर्जुनको देखोगे ॥ १ ॥

बाल्यादिह त्वं त्यजसि वसु वैश्रवणो यथा ।
अयत्नेनैव राधेय द्रष्टास्यद्य धनंजयम् ॥ २ ॥

राधापुत्र ! तुम मूर्खतासे ही यहाँ कुबेरके समान धन लुटा रहे हो, आज अर्जुनको तो तुम बिना यत्न किये ही देख लोगे ॥ २ ॥

परान् सृजसि यद् वित्तं किंचित्त्वं बहु मूढवत् ।
अपात्रदाने ये दोषास्तान् मोहान्नावबुध्यसे ॥ ३ ॥

मूढ़ पुरुषोंके समान तुम अपना बहुत कुछ धन जो दूसरोंको दे रहे हो, इससे जान पड़ता है कि अपात्रको धनका दान देनेसे जो दोष पैदा होते हैं, उन्हें मोहवश तुम नहीं समझ रहे हो ॥ ३ ॥

यत् त्वं प्रेरयसे वित्तं बहु तेन खलु त्वया ।
शक्यं बहुविधैर्यज्ञैर्यष्टुं सूत यजस्व तैः ॥ ४ ॥

सूत ! तुम जो बहुत धन देनेकी यहाँ घोषणा कर रहे हो, निश्चय ही उसके द्वारा नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान कर सकते हो; अतः तुम उन धन-वैभवोंद्वारा यज्ञोंका ही अनुष्ठान करो ॥ ४ ॥

यच्च प्रार्थयसे हन्तुं कृष्णौ मोहाद् वृथैव तत् ।
न हि शुश्रुम सम्मर्दे क्रोष्ट्रा सिंहौ निपातितौ ॥ ५ ॥

और जो तुम मोहवश श्रीकृष्ण तथा अर्जुनको मारना चाहते हो, वह मनसूबा तो व्यर्थ ही है; क्योंकि हमने यह बात कभी नहीं सुनी है कि किसी गीदड़ने युद्धमें दो सिंहोंको मार गिराया हो ॥ ५ ॥

अप्रार्थितं प्रार्थयसे सुहृदो न हि सन्ति ते ।
ये त्वां न वारयन्त्याशु प्रपतन्तं हुताशने ॥ ६ ॥

तुम ऐसी चीज चाहते हो, जिसकी अबतक किसीने इच्छा नहीं की थी। जान पड़ता है तुम्हारे कोई सुहृद् नहीं हैं, जो शीघ्र ही आकर तुम्हें जलती आगमें गिरनेसे रोक नहीं रहे हैं ॥ ६ ॥

कार्याकार्यं न जानीषे कालपक्वोऽस्यसंशयम् ।
बह्वबद्धमकर्णीयं को हि ब्रूयाज्जिजीविषुः ॥ ७ ॥

तुम्हें कर्तव्य और अकर्तव्यका कुछ भी ज्ञान नहीं है। निःसंदेह तुम्हें कालने पका दिया है। (अतः तुम पके हुए फलके समान गिरनेवाले ही हो); अन्यथा जो जीवित रहना चाहता है, ऐसा कौन पुरुष ऐसी बहुत-सी न सुनने योग्य अटपटांग बातें कह सकता है ? ॥ ७ ॥

समुद्रतरणं दोर्भ्यां कण्ठे बद्ध्वा यथा शिलाम् ।
गिर्यग्राद् वा निपतनं तादृक् तव चिकीर्षितम् ॥ ८ ॥

जैसे कोई गलेमें पत्थर बाँधकर दोनों हाथोंसे समुद्र पार करना चाहे अथवा पहाड़की चोटीसे पृथ्वीपर कूदनेकी इच्छा करे, ऐसी ही तुम्हारी सारी चेष्टा और अभिलाषा है ॥ ८ ॥

सहितः सर्वयोधैस्त्वं व्यूढानीकैः सुरक्षितः ।
धनंजयेन युध्यस्व श्रेयश्चेत् प्राप्तुमिच्छसि ॥ ९ ॥

यदि तुम कल्याण प्राप्त करना चाहते हो तो व्यूहरचना-पूर्वक खड़े हुए समस्त सैनिकोंके साथ सुरक्षित रहकर अर्जुन-से युद्ध करो ॥ ९ ॥

हितार्थं धार्तराष्ट्रस्य ब्रवीमि त्वां न हिंसया ।
श्रद्धस्वैवं मया प्रोक्तं यदि तेऽस्ति जिजीविषा ॥ १० ॥

दुर्योधनके हितके लिये ही मैं ऐसा कह रहा हूँ, हिंसा-भावसे नहीं। यदि तुम्हें जीनेकी इच्छा है तो मेरे इस कथन-पर विश्वास करो ॥ १० ॥

कर्ण उवाच

स्वबाहुवीर्यमाश्रित्य प्रार्थयाम्यर्जुनं रणे ।
त्वं तु मित्रमुखः शत्रुर्मां भीषयितुमिच्छसि ॥ ११ ॥

कर्ण बोला—शल्य ! मैं अपने बाहुबलका भरोसा करके रणक्षेत्रमें अर्जुनको पाना चाहता हूँ; परंतु तुम तो मुँहसे मित्र बने हुए वास्तवमें शत्रु हो, जो मुझे यहाँ डराना चाहते हो ॥ ११ ॥

न मामस्मादभिप्रायात् कश्चिदद्य निवर्तयेत् ।
अपीन्द्रो वज्रमुद्यम्य किमु मर्त्यः कथंचन ॥ १२ ॥

परंतु मुझे इस अभिप्रायसे आज कोई भी पीछे नहीं लौटा सकता। वज्र उठाये हुए इन्द्र भी मुझे किसी तरह इस निश्चयसे डिगा नहीं सकते, फिर मनुष्यकी तो बात ही क्या है ? ॥ १२ ॥

संजय उवाच

इति कर्णस्य वाक्यान्ते शल्यः प्राहोत्तरं वचः।
चुकोपयिषुरत्यर्थं कर्णं मद्रेश्वरः पुनः ॥ १३ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! कर्णकी यह बात समाप्त होते ही मद्रराज शल्य उसे अत्यन्त कुपित करनेकी इच्छासे पुनः इस प्रकार उत्तर देने लगे—॥ १३ ॥

यदा वै त्वां फाल्गुनवेगयुक्ता
ज्याचोदिता हस्तवता विसृष्टाः।
अन्वेतारः कङ्कपत्राः सिताग्रा-
स्तदा तप्स्यस्यर्जुनस्यानुयोगात् ॥ १४ ॥

'कर्ण! अर्जुनके वेगसे युक्त हो उनकी प्रत्यञ्चासे प्रेरित और सुशिक्षित हाथोंसे छोड़े हुए तीखी धारवाले कङ्कपत्र-विभूषित बाण जब तुम्हारे शरीरमें घुसने लगेंगे, तब जो तुम अर्जुनको पूछते फिरते हो, इसके लिये पश्चात्ताप करोगे ॥

यदा दिव्यं धनुरादाय पार्थः
प्रतापयन् पृतनां सव्यसाची।
त्वां मर्दयिष्यन्निशितैः पृषत्कै-
स्तदा पश्चात् तप्स्यसे सूतपुत्र ॥ १५ ॥

'सूतपुत्र! जब सव्यसाची कुन्तीकुमार अर्जुन अपने हाथमें दिव्य धनुष लेकर शत्रुसेनाको तपाते हुए पैने बाणों-द्वारा तुम्हें रौंदने लगेंगे, तब तुम्हें अपने कियेपर पछतावा होगा ॥ १५ ॥

बालश्चन्द्रं मातुरङ्के शयानो
यथा कश्चित् प्रार्थयतेऽपहर्तुम्।
तद्वन्मोहाद् द्योतमानं रथस्थं
सम्प्रार्थयस्यर्जुनं जेतुमद्य ॥ १६ ॥

'जैसे अपनी माँकी गोदमें सोया हुआ कोई बालक चन्द्रमाको पकड़ लाना चाहता हो, उसी प्रकार तुम भी रथपर बैठे हुए तेजस्वी अर्जुनको आज मोहवश परास्त करना चाहते हो ॥ १६ ॥

त्रिशूलमाश्रित्य सुतीक्ष्णधारं
सर्वाणि गात्राणि विघर्षसि त्वम्।
सुतीक्ष्णधारोपमकर्मणा त्वं
युयुत्ससे योऽर्जुनेनाद्य कर्ण ॥ १७ ॥

'कर्ण! अर्जुनका पराक्रम अत्यन्त तीखी धारवाले त्रिशूलके समान है। उन्हीं अर्जुनके साथ आज जो तुम युद्ध करना चाहते हो, वह दूसरे शब्दोंमें यों है कि तुम पैनी धारवाले त्रिशूलको लेकर उसीसे अपने सारे अङ्गोंको रगड़ना या खुजलाना चाहते हो ॥ १७ ॥

क्रुद्धं सिंहं केसरिणं बृहन्तं
बालो मूढः क्षुद्रमृगस्तरस्वी।
समाह्वयेत् तद्वदेतत् तवाद्य
समाह्वानं सूतपुत्रार्जुनस्य ॥ १८ ॥

'सूतपुत्र! जैसे बालक, मूढ़ और वेगसे चौकड़ी भरनेवाला क्षुद्र मृग क्रोधमें भरे हुए विशालकाय, केसरयुक्त सिंहको ललकारे, तुम्हारा आज यह अर्जुनका युद्धके लिये आह्वान करना भी वैसा ही है ॥ १८ ॥

मा सूतपुत्राह्वय राजपुत्रं
महावीर्यं केसरिणं यथैव।
वने शृगालः पिशितेन तृप्तो
मा पार्थमासाद्य विनङ्क्ष्यसि त्वम् ॥ १९ ॥

'सूतपुत्र! तुम महापराक्रमी राजकुमार अर्जुनका आह्वान न करो। जैसे वनमें मांस-भक्षणसे तृप्त हुआ गीदड़ महाबली सिंहके पास जाकर नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार तुम भी अर्जुनसे भिड़कर विनाशके गर्तमें न गिरो ॥ १९ ॥

ईषादन्तं महानागं प्रभिन्नकरटामुखम्।
शशको ह्वयसे युद्धे कर्ण पार्थं धनंजयम् ॥ २० ॥

'कर्ण! जैसे कोई खरगोश ईषादण्डके समान दाँतोंवाले महान् मदस्रावी गजराजको अपने साथ युद्धके लिये बुलाता हो, उसी प्रकार तुम भी कुन्तीपुत्र धनंजयका रणक्षेत्रमें आह्वान करते हो ॥ २० ॥

बिलस्थं कृष्णसर्पं त्वं बाल्यात् काष्ठेन विध्यसि।
महाविषं पूर्णकोपं यत् पार्थं योद्धुमिच्छसि ॥ २१ ॥

'तुम यदि पूर्णतः क्रोधमें भरे हुए अर्जुनके साथ जूझना चाहते हो तो मूर्खतावश बिलमें बैठे हुए महाविषैले काले सर्पको किसी काठकी छड़ीसे बींध रहे हो ॥ २१ ॥

सिंहं केसरिणं क्रुद्धमतिक्रम्याभिनर्दसे।
शृगाल इव मूढस्त्वं नृसिंहं कर्ण पाण्डवम् ॥ २२ ॥

'कर्ण! तुम मूर्ख हो; जैसे गीदड़ क्रोधमें भरे हुए केसरी सिंहका अनादर करके गर्जना करे, उसी प्रकार तुम भी मनुष्योंमें सिंहके समान पराक्रमी और क्रोधमें भरे हुए पाण्डुकुमार अर्जुनका लङ्घन करके गरज रहे हो ॥ २२ ॥

सुपर्णं पतगश्रेष्ठं वैनतेयं तरस्विनम्।
भोगीवाह्वयसे पाते कर्ण पार्थं धनंजयम् ॥ २३ ॥

'कर्ण! जैसे कोई सर्प अपने पतनके लिये ही पक्षियोंमें श्रेष्ठ वेगशाली विनतानन्दन गरुडका आह्वान करता है, उसी प्रकार तुम भी अपने विनाशके लिये ही कुन्तीकुमार अर्जुनको ललकार रहे हो ॥ २३ ॥

सर्वाम्भसां निधिं भीमं मूर्तिमन्तं झषायुतम्।
चन्द्रोदये विवर्धन्तमप्लवः संतितीर्षसि ॥ २४ ॥

'अरे! तुम चन्द्रोदयके समय बढ़ते हुए, जलजन्तुओंसे पूर्ण तथा उत्ताल तरङ्गोंसे व्याप्त अगाध जलराशिवाले भयंकर समुद्रको बिना किसी नावके ही केवल दोनों हाथोंके सहारे पार करना चाहते हो ॥ २४ ॥

ऋषभं दुन्दुभिग्रीवं तीक्ष्णशृङ्गं प्रहारिणम्।
वत्स आह्वयसे युद्धे कर्ण पार्थं धनंजयम् ॥ २५ ॥

'बेटा कर्ण! दुन्दुभिकी ध्वनिके समान जिसका कंठस्वर गम्भीर है, जिसके सींग तीखे हैं तथा जो प्रहार करनेमें कुशल है, उस साँडके समान पराक्रमी पृथापुत्र अर्जुनको तुम युद्धके लिये ललकार रहे हो ॥ २५ ॥

महामेघं महाघोरं दर्दुरः प्रतिनर्दसि ।
बाणतोयप्रदं लोके नरपर्जन्यमर्जुनम् ॥ २६ ॥

'जैसे महाभयंकर महामेघके मुकाबिलेमें कोई मेढक टर्र-टर्र कर रहा हो, उसी प्रकार तुम संसारमें बाणरूपी जलकी वर्षा करनेवाले मानवमेघ अर्जुनको लक्ष्य करके गर्जना करते हो ॥ २६ ॥

यथा च स्वगृहस्थः श्वा व्याघ्रं वनगतं भषेत् ।
तथा त्वं भषसे कर्ण नरव्याघ्रं धनंजयम् ॥ २७ ॥

'कर्ण! जैसे अपने घरमें बैठा हुआ कोई कुत्ता वनमें रहनेवाले बाघकी ओर भूँके, उसी प्रकार तुम भी नरव्याघ्र अर्जुनको लक्ष्य करके भूँक रहे हो ॥ २७ ॥

शृगालोऽपि वने कर्ण शशैः परिवृतो वसन् ।
मन्यते सिंहमात्मानं यावत् सिंहं न पश्यति ॥ २८ ॥

'कर्ण! वनमें खरगोशोंके साथ रहनेवाला गीदड़ भी जबतक सिंहको नहीं देखता, तबतक अपनेको सिंह ही मानता रहता है ॥ २८ ॥

तथा त्वमपि राधेय सिंहमात्मानमिच्छसि ।
अपश्यञ्शत्रुदमनं नरव्याघ्रं धनंजयम् ॥ २९ ॥

'राधानन्दन! उसी प्रकार तुम भी शत्रुओंका दमन करनेवाले पुरुषसिंह अर्जुनको न देखनेके कारण ही अपनेको सिंह समझना चाहते हो ॥ २९ ॥

व्याघ्रं त्वं मन्यसेऽऽत्मानं यावत् कृष्णौ न पश्यसि ।
समास्थितावेकरथे सूर्याचन्द्रमसाविव ॥ ३० ॥

'एक रथपर बैठे हुए सूर्य और चन्द्रमाके समान सुशोभित श्रीकृष्ण और अर्जुनको जबतक तुम नहीं देख रहे हो, तभी-तक अपनेको बाघ माने बैठे हो ॥ ३० ॥

यावद् गाण्डीवघोषं त्वं न शृणोषि महाहवे ।
तावदेव त्वया कर्ण शक्यं वक्तुं यथेच्छसि ॥ ३१ ॥

'कर्ण! महासमरमें जबतक गाण्डीवकी टङ्कार नहीं सुनते हो, तभीतक तुम जैसा चाहो, बक सकते हो ॥ ३१ ॥

रथशब्दधनुःशब्दैर्नादयन्तं दिशो दश ।
नर्दन्तमिव शार्दूलं दृष्ट्वा क्रोष्टा भविष्यसि ॥ ३२ ॥

'रथकी घर्घराहट और धनुषकी टंकारसे दसों दिशाओंको निनादित करते हुए सिंहसदृश अर्जुनको जब दहाड़ते देखोगे, तब तुरंत गीदड़ बन जाओगे ॥ ३२ ॥

नित्यमेव शृगालस्त्वं नित्यं सिंहो धनंजयः ।
वीरप्रद्वेषणान्मूढ तस्मात् क्रोष्टेव लक्ष्यसे ॥ ३३ ॥

'ओ मूढ! तुम सदासे ही गीदड़ हो और अर्जुन सदासे ही सिंह हैं। वीरोंके प्रति द्वेष रखनेके कारण ही तुम गीदड़-जैसे दिखायी देते हो ॥ ३३ ॥

यथाखुः स्याद् विडालश्च श्वा व्याघ्रश्च बलाबले ।
यथा शृगालः सिंहश्च यथा च शशकुञ्जरौ ॥ ३४ ॥

'जैसे चूहा और बिलाव, कुत्ता और बाघ, गीदड़ और सिंह तथा खरगोश और हाथी अपनी निर्बलता और प्रबलता-के लिये प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार तुम निर्बल हो और अर्जुन सबल हैं ॥ ३४ ॥

यथानृतं च सत्यं च यथा चापि विषामृते ।
तथा त्वमपि पार्थश्च प्रख्यातावात्मकर्मभिः ॥ ३५ ॥

'जैसे झूठ और सच तथा विष और अमृत अपना अलग-अलग प्रभाव रखते हैं, उसी प्रकार तुम और अर्जुन भी अपने-अपने कर्मोंके लिये सर्वत्र विख्यात हो' ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्याधिक्षेपे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्णके प्रति शल्यका आक्षेपविषयक उनतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

कर्णका शल्यको फटकारते हुए मद्रदेशके निवासियोंकी निन्दा करना एवं उसे मार डालनेकी धमकी देना

संजय उवाच

अधिक्षिप्तस्तु राधेयः शल्येनामिततेजसा ।
शल्यमाह सुसंक्रुद्धो वाक्शल्यमवधारयन् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! अमिततेजस्वी शल्यके इस प्रकार आक्षेप करनेपर राधापुत्र कर्ण अत्यन्त कुपित हो उठा और यह वचनरूपी शल्य (बाण) छोड़नेके कारण ही इसका नाम शल्य पड़ा है, ऐसा निश्चय करके शल्यसे इस प्रकार बोला ॥ १ ॥

कर्ण उवाच

गुणान् गुणवतां शल्य गुणवान् वेत्ति नागुणः ।
त्वं तु शल्य गुणैर्हीनः किं ज्ञास्यसि गुणागुणम् ॥ २ ॥

कर्णने कहा—शल्य! गुणवान् पुरुषोंके गुणोंको गुणवान् ही जानता है, गुणहीन नहीं। तुम तो समस्त गुणोंसे शून्य हो; फिर गुण-अवगुण क्या समझोगे? ॥ २ ॥

अर्जुनस्य महास्त्राणि क्रोधं वीर्यं धनुः शरान् ।
अहं शल्याभिजानामि विक्रमं च महात्मनः ॥ ३ ॥

शल्य ! मैं महात्मा अर्जुनके महान् अस्त्र, क्रोध, बल, धनुष, बाण और पराक्रमको अच्छी तरह जानता हूँ ॥ ३ ॥

तथा कृष्णस्य माहात्म्यमृषभस्य महीक्षिताम्।
यथाहं शल्य जानामि न त्वं जानासि तत् तथा ॥ ४ ॥

शल्य ! इसी प्रकार महीपालशिरोमणि श्रीकृष्णके माहात्म्यको जैसा मैं जानता हूँ, वैसा तुम नहीं जानते ॥ ४ ॥

एवमेवात्मनो वीर्यमहं वीर्यं च पाण्डवे।
जानन्नेवाह्वये युद्धे शल्य गाण्डीवधारिणम् ॥ ५ ॥

शल्य ! मैं अपना और पाण्डुपुत्र अर्जुनका बल-पराक्रम समझकर ही गाण्डीवधारी पार्थको युद्धके लिये बुलाता हूँ ॥ ५ ॥

अस्ति वायमिषुः शल्य सुपुङ्खो रक्तभोजनः।
एकतूणीशयः पत्री सुधौतः समलंकृतः ॥ ६ ॥

शल्य ! मेरा यह सुन्दर पंखोंसे युक्त बाण शत्रुओंका रक्त पीनेवाला है। यह अकेले ही एक तरकसमें रक्खा जाता है, जो बहुत ही स्वच्छ, कङ्कपत्रयुक्त और भलीभाँति अलंकृत है ॥ ६ ॥

शेते चन्दनचूर्णेषु पूजितो बहुलाः समाः।
आहेयो विषवानुग्रो नराश्वद्विपसंघहा ॥ ७ ॥

यह सर्पमय भयानक विषैला बाण बहुत वर्षोंतक चन्दन-के चूर्णमें रखकर पूजित होता आया है, जो मनुष्यों, हाथियों और घोड़ोंके समुदायका संहार करनेवाला है ॥ ७ ॥

घोररूपो महारौद्रस्तनुत्रास्थिविदारणः।
निर्भिन्द्यां येन रुष्टोऽहमपि मेरुं महागिरिम् ॥ ८ ॥

यह अत्यन्त भयङ्कर घोर बाण कवच तथा हड्डियोंको भी चीर देनेवाला है। मैं कुपित होनेपर इस बाणके द्वारा महान् पर्वत मेरुको भी विदीर्ण कर सकता हूँ ॥ ८ ॥

तमहं जातु नास्येयमन्यस्मिन् फाल्गुनादृते।
कृष्णाद् वा देवकीपुत्रात् सत्यं चापि शृणुष्व मे ॥ ९ ॥

इस बाणको मैं अर्जुन अथवा देवकीपुत्र श्रीकृष्णको छोड़कर दूसरे किसीपर कभी नहीं छोड़ूँगा। मेरी सच्ची बातको तुम कान खोलकर सुन लो ॥ ९ ॥

तेनाहमिषुणा शल्य वासुदेवधनंजयौ।
योत्स्ये परमसंक्रुद्धस्तत् कर्म सदृशं मम ॥ १० ॥

शल्य ! मैं अत्यन्त कुपित होकर उस बाणके द्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुनके साथ युद्ध करूँगा और वह कार्य मेरे योग्य होगा ॥ १० ॥

सर्वेषां वृष्णिवीराणां कृष्णे लक्ष्मीः प्रतिष्ठिता।
सर्वेषां पाण्डुपुत्राणां जयः पार्थे प्रतिष्ठितः ॥ ११ ॥
उभयं तु समासाद्य को निवर्तितुमर्हति।

समस्त वृष्णिवंशी वीरोंकी सम्पत्ति श्रीकृष्णपर ही प्रतिष्ठित है और पाण्डुके सभी पुत्रोंकी विजय अर्जुनपर ही अवलम्बित है; फिर उन दोनोंको एक साथ युद्धमें पाकर कौन वीर पीछे लौट सकता है ? ॥ ११½ ॥

तावेतौ पुरुषव्याघ्रौ समेतौ स्यन्दने स्थितौ ॥ १२ ॥
मामेकमभिसंयातौ सुजातं पश्य शल्य मे।

शल्य ! वे दोनों पुरुषसिंह एक साथ रथपर बैठकर एकमात्र मुझपर आक्रमण करनेवाले हैं। देखो, मेरा जन्म कितना उत्तम है ! ॥ १२½ ॥

पितृष्वसामातुलजौ भ्रातरावपराजितौ ॥ १३ ॥
मणी सूत्र इव प्रोतौ द्रष्टासि निहतौ मया।

धागेमें पिरोयी हुई दो मणियोंके समान प्रेमसूत्रमें बँधे हुए उन दोनों फुफेरे और ममेरे भाइयोंको, जो किसीसे पराजित नहीं होते, तुम मेरे द्वारा मारा गया देखोगे ॥ १३½ ॥

अर्जुने गाण्डिवं कृष्णे चक्रं तार्क्ष्यकपिध्वजौ ॥ १४ ॥
भीरूणां त्रासजननं शल्य हर्षकरं मम।

अर्जुनके हाथमें गाण्डीव धनुष और श्रीकृष्णके हाथमें सुदर्शन चक्र है। एक कपिध्वज है तो दूसरा गरुड़ध्वज। शल्य ! ये सब वस्तुएँ कायरोंको भय देनेवाली हैं; परंतु मेरा हर्ष बढ़ाती हैं ॥ १४½ ॥

त्वं तु दुष्प्रकृतिर्मूढो महायुद्धेष्वकोविदः ॥ १५ ॥
भयावदीर्णः संत्रासादबद्धं बहु भाषसे।

तुम तो दुष्ट स्वभावके मूर्ख मनुष्य हो। बड़े-बड़े युद्धोंमें कैसे शत्रुका सामना किया जाता है, इस बातसे अनभिज्ञ हो। भयसे तुम्हारा हृदय विदीर्ण-सा हो रहा है; अतः डरके मारे बहुत-सी असङ्गत बातें कह रहे हो ॥ १५½ ॥

संस्तौषि तौ तु केनापि हेतुना त्वं कुदेशज ॥ १६ ॥
तौ हत्वा समरे हन्ता त्वामद्य सहबान्धवम्।
पापदेशज दुर्बुद्धे क्षुद्र क्षत्रियपांसन ॥ १७ ॥

दुष्ट और पापी देशमें उत्पन्न हुए नीच क्षत्रियकुलाङ्गार दुर्बुद्धि शल्य ! तुम उन दोनोंकी किसी स्वार्थसिद्धिके लिये स्तुति करते हो; परंतु आज समराङ्गणमें उन दोनोंको मारकर बन्धु-बान्धवोंसहित तुम्हारा भी वध कर डालूँगा ॥ १६-१७ ॥

सुहृद् भूत्वा रिपुः किं मां कृष्णाभ्यां भीषयिष्यसि।
तौ वा मामद्य हन्तारौ हनिष्ये वापि तावहम् ॥ १८ ॥

तुम मेरे शत्रु होकर भी सुहृद् बनकर मुझे श्रीकृष्ण और अर्जुनसे क्यों डरा रहे हो। आज या तो वे ही दोनों मुझे मार डालेंगे या मैं ही उन दोनोंका संहार कर दूँगा ॥ १८ ॥

नाहं बिभेमि कृष्णाभ्यां विजानन्नात्मनो बलम्।

वासुदेवसहस्रं वा फाल्गुनानां शतानि वा ॥ १९ ॥
अहमेको हनिष्यामि जोषमास्स्व कुदेशज ।

मैं अपने बलको अच्छी तरह जानता हूँ; इसलिये श्रीकृष्ण और अर्जुनसे कदापि नहीं डरता हूँ। नीच देशमें उत्पन्न शल्य ! तुम चुप रहो। मैं अकेला ही सहस्रों श्रीकृष्णों और सैकड़ों अर्जुनोंको मार डालूँगा ॥ १९½ ॥

स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च प्रायः क्रीडागता जनाः ॥ २० ॥
या गाथाः सम्प्रगायन्ति कुर्वन्तोऽध्ययनं यथा ।
ता गाथाः शृणु मे शल्य मद्रकेषु दुरात्मसु ॥ २१ ॥
ब्राह्मणैः कथिताः पूर्वं यथावद् राजसंनिधौ ।
श्रुत्वा चैकमना मूढ क्षम वा ब्रूहि चोत्तरम् ॥ २२ ॥

मूर्ख शल्य ! स्त्रियाँ, बच्चे और बूढ़े लोग, खेल-कूदमें लगे हुए मनुष्य और स्वाध्याय करनेवाले पुरुष भी दुरात्मा मद्रनिवासियोंके विषयमें जिन गाथाओंको गाया करते हैं तथा ब्राह्मणोंने पहले राजाके समीप आकर यथावत् रूपसे जिनका वर्णन किया है, उन गाथाओंको एकाग्रचित्त होकर मुझसे सुनो और सुनकर चुपचाप सह लो या जवाब दो ॥ २०–२२ ॥

मित्रध्रुङ्मद्रको नित्यं यो नो द्वेष्टि स मद्रकः ।
मद्रके संगतं नास्ति क्षुद्रवाक्ये नराधमे ॥ २३ ॥

मद्रदेशका अधम मनुष्य सदा मित्रद्रोही होता है। जो हमलोगोंसे अकारण द्वेष करता है, वह मद्रदेशका ही अधम मनुष्य है। क्षुद्रतापूर्ण वचन बोलनेवाले मद्रदेशके निवासीमें किसीके प्रति सौहार्दकी भावना नहीं होती ॥ २३ ॥

दुरात्मा मद्रको नित्यं नित्यमानृतिकोऽनृजुः ।
यावदन्त्यं हि दौरात्म्यं मद्रकेष्विति नः श्रुतम् ॥ २४ ॥

मद्रनिवासी मनुष्य सदा ही दुरात्मा, सर्वदा झूठ बोलनेवाला और सदा ही कुटिल होता है। हमने सुन रक्खा है कि मद्रनिवासियोंमें मरते दमतक दुष्टता बनी रहती है ॥ २४ ॥

पिता पुत्रश्च माता च श्वश्रूश्वशुरमातुलाः ।
जामाता दुहिता भ्राता नप्तान्ये ते च बान्धवाः ॥ २५ ॥
वयस्याभ्यागताश्चान्ये दासीदासं च संगतम् ।
पुम्भिर्विमिश्रा नार्यश्च ज्ञाताज्ञाताः स्वयेच्छया ॥ २६ ॥
येषां गृहेष्वशिष्टानां सक्तुमत्स्याशिनां तथा ।
पीत्वा सीधु सगोमांसं क्रन्दन्ति च हसन्ति च ॥ २७ ॥
गायन्ति चाप्यबद्धानि प्रवर्तन्ते च कामतः ।
कामप्रलापिनोऽन्योन्यं तेषु धर्मः कथं भवेत् ॥ २८ ॥
मद्रकेष्ववलिप्तेषु प्रख्याताशुभकर्मसु ।

सत्तू और मांस खानेवाले जिन अशिष्ट मद्रनिवासियोंके घरोंमें पिता, पुत्र, माता, सास, ससुर, मामा, बेटी, दामाद, भाई, नाती, पोते, अन्यान्य बन्धु-बान्धव, समवयस्क मित्र, दूसरे अभ्यागत अतिथि और दास-दासी—ये सभी अपनी इच्छाके अनुसार एक दूसरेसे मिलते हैं। परिचित-अपरिचित सभी स्त्रियाँ सभी पुरुषोंसे सम्पर्क स्थापित कर लेती हैं और गोमांससहित मदिरा पीकर रोती, हँसती, गाती, असङ्गत बातें करती तथा कामभावसे किये जानेवाले कार्योंमें प्रवृत्त होती हैं। जिनके यहाँ सभी स्त्री-पुरुष एक दूसरेसे कामसम्बन्धी प्रलाप करते हैं, जिनके पापकर्म सर्वत्र विख्यात हैं, उन घमंडी मद्रनिवासियोंमें धर्म कैसे रह सकता है ? ॥ २५–२८½ ॥

नापि वैरं न सौहार्दं मद्रकेण समाचरेत् ॥ २९ ॥
मद्रके संगतं नास्ति मद्रको हि सदामलः ।

मद्रनिवासीके साथ न तो वैर करे और न मित्रता ही स्थापित करे, क्योंकि उसमें सौहार्दकी भावना नहीं होती। मद्रनिवासी सदा पापमें ही डूबा रहता है ॥ २९½ ॥

मद्रकेषु च संसृष्टं शौचं गान्धारकेषु च ॥ ३० ॥
राजयाजकयाज्ये च नष्टं दत्तं हविर्भवेत् ।
शूद्रसंस्कारको विप्रो यथा याति पराभवम् ॥ ३१ ॥
यथा ब्रह्मद्विषो नित्यं गच्छन्तीह पराभवम् ।
यथैव संगतं कृत्वा नरः पतति मद्रकैः ॥ ३२ ॥
मद्रके संगतं नास्ति हतं वृश्चिक ते विषम् ।
आथर्वणेन मन्त्रेण यथा शान्तिः कृता मया ॥ ३३ ॥

'ओ बिच्छू ! जैसे मद्रनिवासियोंके पास रक्खी हुई धरोहर और गान्धारनिवासियोंमें शौचाचार नष्ट हो जाते हैं, जहाँ क्षत्रिय पुरोहित हो उस यजमानके यज्ञमें दिया हुआ हविष्य जैसे नष्ट हो जाता है, जैसे शूद्रोंका संस्कार करानेवाला ब्राह्मण पराभवको प्राप्त होता है, जैसे ब्रह्मद्रोही मनुष्य इस जगत्‌में सदा ही तिरस्कृत होते रहते हैं, जैसे मद्रनिवासियोंके साथ मित्रता करके मनुष्य पतित हो जाता है तथा जिस प्रकार मद्रनिवासीमें सौहार्दकी भावना सर्वथा नष्ट हो गयी है, उसी प्रकार तेरा यह विष भी नष्ट हो गया। मैंने अथर्ववेदके मन्त्रसे तेरे विषको शान्त कर दिया' ॥ ३०–३३ ॥

इति वृश्चिकदष्टस्य विषवेगहतस्य च ।
कुर्वन्ति भेषजं प्राज्ञाः सत्यं तच्चापि दृश्यते ॥ ३४ ॥

ये उपर्युक्त बातें कहकर जो बुद्धिमान् विषवैद्य बिच्छूके काटनेपर उसके विषके वेगसे पीड़ित हुए मनुष्यकी चिकित्सा या औषध करते हैं, उनका वह कथन सत्य ही दिखायी देता है ॥ ३४ ॥

एवं विद्वञ्जोषमास्स्व शृणु चात्रोत्तरं वचः ।
वासांस्युत्सृज्य नृत्यन्ति स्त्रियो या मद्यमोहिताः ३५

मैथुनेऽसंयताश्चापि यथाकामवराश्च ताः।
तासां पुत्रः कथं धर्मं मद्रको वक्तुमर्हति ॥ ३६ ॥

विद्वान् राजा शल्य ! ऐसा समझकर तुम चुपचाप बैठे रहो और इसके बाद जो बात मैं कह रहा हूँ, उसे भी सुन लो। जो स्त्रियाँ मद्यसे मोहित हो कपड़े उतारकर नाचती हैं, मैथुनमें संयम एवं मर्यादाको छोड़कर प्रवृत्त होती हैं और अपनी इच्छाके अनुसार जिस किसी पुरुषका वरण कर लेती हैं, उनका पुत्र मद्रनिवासी नराधम दूसरोंको धर्मका उपदेश कैसे कर सकता है ? ॥ ३५-३६ ॥

यास्तिष्ठन्त्यः प्रमेहन्ति यथैवोष्ट्रदशेरकाः।
तासां विभ्रष्टधर्माणां निर्लज्जानां ततस्ततः ॥ ३७ ॥
त्वं पुत्रस्तादृशीनां हि धर्मं वक्तुमिहेच्छसि।

जो ऊँटों और गदहोंके समान खड़ी-खड़ी मूतती हैं तथा जो धर्मसे भ्रष्ट होकर लज्जाको तिलाञ्जलि दे चुकी हैं, वैसी मद्रनिवासिनी स्त्रियोंके पुत्र होकर तुम मुझे यहाँ धर्मका उपदेश करना चाहते हो ॥ ३७½ ॥

सुवीरकं याच्यमाना मद्रिका कर्षति स्फिचौ॥ ३८ ॥
अदातुकामा वचनमिदं वदति दारुणम्।
मा मां सुवीरकं कश्चिद् याचतां दयितं मम ॥ ३९॥
पुत्रं दद्यां पतिं दद्यां न तु दद्यां सुवीरकम्।

यदि कोई पुरुष मद्रदेशकी किसी स्त्रीसे कांजी माँगता है तो वह उसकी कमर पकड़कर खींच ले जाती है और कांजी न देनेकी इच्छा रखकर यह कठोर वचन बोलती है—'कोई मुझसे कांजी न माँगे, क्योंकि वह मुझे अत्यन्त प्रिय है। मैं अपने पुत्रको दे दूँगी, पतिको भी दे दूँगी; परंतु कांजी नहीं दे सकती' ॥ ३८-३९½ ॥

गौर्यो बृहत्यो निर्ह्रीका मद्रिकाः कम्बलावृताः ॥ ४० ॥
घस्मरा नष्टशौचाश्च प्राय इत्यनुशुश्रुम।

मद्रदेशकी स्त्रियाँ प्रायः गोरी, लंबे कदवाली, निर्लज्ज, कम्बलसे शरीरको ढकनेवाली, बहुत खानेवाली और अत्यन्त अपवित्र होती हैं, ऐसा हमने सुन रक्खा है ॥ ४०½ ॥

एवमादि मयान्यैर्वा शक्यं वक्तुं भवेद् बहु ॥ ४१ ॥
आकेशाग्रान्नखाग्राच्च वक्तव्येषु कुकर्मसु।

मद्रनिवासी सिरकी चोटीसे लेकर पैरोंके नखाग्रभाग-तक निन्दाके ही योग्य हैं। वे सब-के-सब कुकर्ममें लगे रहते हैं। उनके विषयमें हम तथा दूसरे लोग भी ऐसी बहुत-सी बातें कह सकते हैं ॥ ४१½ ॥

मद्रकाः सिन्धुसौवीरा धर्मं विद्युः कथं त्विह ॥४२ ॥
पापदेशोद्भवा म्लेच्छा धर्माणामविचक्षणाः।

मद्र तथा सिन्धु-सौवीर देशके लोग पापपूर्ण देशमें उत्पन्न हुए म्लेच्छ हैं। उन्हें धर्म-कर्मका पता नहीं है। वे इस जगत्में धर्मकी बातें कैसे समझ सकते हैं ? ॥ ४२½ ॥

एष मुख्यतमो धर्मः क्षत्रियस्येति नः श्रुतम् ॥ ४३ ॥
यदाजौ निहतः शेते सद्भिः समभिपूजितः।

हमने सुना है कि क्षत्रियके लिये सबसे श्रेष्ठ धर्म यह है कि वह युद्धमें मारा जाकर रणभूमिमें सो जाय और सत्पुरुषोंके आदरका पात्र बने ॥ ४३½ ॥

आयुधानां साम्पराये यन्मुच्येयमहं ततः ॥ ४४ ॥
ममैष प्रथमः कल्पो निधने स्वर्गमिच्छतः।

मैं अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा किये जानेवाले युद्धमें अपने प्राणोंका परित्याग करूँ, यही मेरे लिये प्रथम श्रेणीका कार्य है; क्योंकि मैं मृत्युके पश्चात् स्वर्ग पानेकी अभिलाषा रखता हूँ ॥ ४४½ ॥

सोऽयं प्रियः सखा चास्मि धार्तराष्ट्रस्य धीमतः॥४५॥
तदर्थे हि मम प्राणा यच्च मे विद्यते वसु।
व्यक्तं त्वमप्युपहितः पाण्डवैः पापदेशज ॥ ४६ ॥
यथा चामित्रवत् सर्वं त्वमस्मासु प्रवर्तसे।

मैं बुद्धिमान् दुर्योधनका प्रिय मित्र हूँ। अतः मेरे पास जो कुछ धन-वैभव है, वह और मेरे प्राण भी उसीके लिये हैं। परंतु पापदेशमें उत्पन्न हुए शल्य ! यह स्पष्ट जान पड़ता है कि पाण्डवोंने तुम्हें हमारा भेद लेनेके लिये ही यहाँ रख छोड़ा है; क्योंकि तुम हमारे साथ शत्रुके समान ही सारा बर्ताव कर रहे हो ॥ ४५-४६½ ॥

कामं न खलु शक्योऽहं त्वद्विधानां शतैरपि ॥ ४७ ॥
संग्रामाद् विमुखः कर्तुं धर्मज्ञ इव नास्तिकैः।

जैसे सैकड़ों नास्तिक मिलकर भी धर्मज्ञ पुरुषको धर्मसे विचलित नहीं कर सकते, उसी प्रकार तुम्हारे-जैसे सैकड़ों मनुष्योंके द्वारा भी मुझे संग्रामसे विमुख नहीं किया जा सकता, यह निश्चय है ॥ ४७½ ॥

सारङ्ग इव घर्मार्तः कामं विलप शुष्य च ॥ ४८ ॥
नाहं भीषयितुं शक्यः क्षत्रवृत्ते व्यवस्थितः।

तुम धूपसे संतप्त हुए हरिणके समान चाहे विलाप करो चाहे सूख जाओ। क्षत्रियधर्ममें स्थित हुए मुझ कर्णको तुम डरा नहीं सकते ॥ ४८½ ॥

तनुत्यजां नृसिंहानामाहवेष्वनिवर्तिनाम् ॥ ४९ ॥
या गतिर्गुरुणा प्रोक्ता पुरा रामेण तां स्मरे।

पूर्वकालमें गुरुवर परशुरामजीने युद्धमें पीठ न दिखाने-वाले एवं शत्रुका सामना करते हुए प्राण विसर्जन कर देनेवाले पुरुषसिंहोंके लिये जो उत्तम गति बतायी है, उसे मैं सदा याद रखता हूँ ॥ ४९½ ॥

तेषां त्राणार्थमुद्यन्तं वधार्थे द्विषतामपि ॥ ५० ॥
विद्धि मामास्थितं वृत्तं पौरूरवसमुत्तमम् ।

शल्य ! तुम यह जान लो कि मैं धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी रक्षाके लिये वैरियोंका वध करनेके लिये उद्यत हो राजा पुरूरवाके उत्तम[1] चरित्रका आश्रय लेकर युद्धभूमिमें डटा हुआ हूँ ॥ ५०½ ॥

न तद् भूतं प्रपश्यामि त्रिषु लोकेषु मद्रप ॥ ५१ ॥
यो मामस्मादभिप्रायाद् वारयेदिति मे मतिः ।

मद्रराज ! मैं तीनों लोकोंमें किसी ऐसे प्राणीको नहीं देखता, जो मुझे मेरे इस संकल्पसे विचलित कर दे, यह मेरा दृढ़ निश्चय है ॥ ५१½ ॥

एवं विद्वञ्जोषमास्स्व त्रासात् किं बहु भाषसे ॥ ५२ ॥
मा त्वां हत्वा प्रदास्यामि क्रव्याद्भ्यो मद्रकाधम ।

समझदार शल्य ! ऐसा जानकर चुपचाप बैठे रहो । डरके मारे बहुत बड़बड़ाते क्यों हो ? मद्रदेशके नराधम ! यदि तुम चुप न हुए तो तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े करके मांसभक्षी प्राणियोंको बाँट दूँगा ॥ ५२½ ॥

मित्रप्रतीक्षया शल्य धृतराष्ट्रस्य चोभयोः ॥ ५३ ॥
अपवादतितिक्षाभिस्त्रिभिरेतैर्हि जीवसि ।

शल्य ! एक तो मैं मित्र दुर्योधन और राजा धृतराष्ट्र दोनोंके कार्यकी ओर दृष्टि रखता हूँ, दूसरे अपनी निन्दासे डरता हूँ और तीसरे मैंने क्षमा करनेका वचन दिया है—इन्हीं तीन कारणोंसे तुम अबतक जीवित हो ॥ ५३½ ॥

पुनश्चेदीदृशं वाक्यं मद्रराज वदिष्यसि ॥ ५४ ॥
शिरस्ते पातयिष्यामि गदया वज्रकल्पया ।

मद्रराज ! यदि फिर ऐसी बात बोलोगे तो मैं अपनी वज्र-सरीखी गदासे तुम्हारा मस्तक चूर-चूर करके गिरा दूँगा ॥ ५४½ ॥

श्रोतारस्त्विदमद्येह द्रष्टारो वा कुदेशज ॥ ५५ ॥
कर्णं वा जघ्नतुः कृष्णौ कर्णो वा निजघान तौ ।

नीच देशमें उत्पन्न शल्य ! आज यहाँ सुननेवाले सुनेंगे और देखनेवाले देख लेंगे कि 'श्रीकृष्ण और अर्जुनने कर्णको मारा या कर्णने ही उन दोनोंको मार गिराया' ॥ ५५½ ॥

एवमुक्त्वा तु राधेयः पुनरेव विशाम्पते ।
अब्रवीन्मद्रराजानं याहि याहीत्यसम्भ्रमम् ॥ ५६ ॥

प्रजानाथ ! ऐसा कहकर राधापुत्र कर्णने बिना किसी घबराहटके पुनः मद्रराज शल्यसे कहा—'चलो, चलो' ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णमद्राधिपसंवादे चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण और शल्यका संवादविषयक चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

राजा शल्यका कर्णको एक हंस और कौएका उपाख्यान सुनाकर उसे श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा करते हुए उनकी शरणमें जानेकी सलाह देना

संजय उवाच

मारिषाधिरथेः श्रुत्वा वाचो युद्धाभिनन्दिनः ।
शल्योऽब्रवीत् पुनः कर्णं निदर्शनमिदं वचः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—माननीय नरेश ! युद्धका अभिनन्दन करनेवाले अधिरथपुत्र कर्णकी पूर्वोक्त बात सुनकर फिर शल्यने उससे यह दृष्टान्तयुक्त बात कही— ॥ १ ॥

जातोऽहं यज्वनां वंशे संग्रामेष्वनिवर्तिनाम् ।
राज्ञां मूर्धाभिषिक्तानां स्वयं धर्मपरायणः ॥ २ ॥

'सूतपुत्र ! मैं युद्धमें पीठ न दिखानेवाले यज्ञपरायण, मूर्धाभिषिक्त नरेशोंके कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ और स्वयं भी धर्ममें तत्पर रहता हूँ ॥ २ ॥

यथैव मत्तो मद्येन त्वं तथा लक्ष्यसे वृष ।
तथाद्य त्वां प्रमाद्यन्तं चिकित्सेयं सुहृत्तया ॥ ३ ॥

किंतु वृषभस्वरूप कर्ण ! जैसे कोई मदिरासे मतवाला हो गया हो, उसी प्रकार तुम भी उन्मत्त दिखायी दे रहे हो; अतः मैं हितैषी सुहृद् होनेके नाते तुम-जैसे प्रमत्तकी आज चिकित्सा करूँगा ॥ ३ ॥

इमां काकोपमां कर्ण प्रोच्यमानां निबोध मे ।
श्रुत्वा यथेष्टं कुर्यास्त्वं निहीन कुलपांसन ॥ ४ ॥

ओ नीच कुलाङ्गार कर्ण ! मेरेद्वारा बताये जानेवाले कौएके इस दृष्टान्तको सुनो और सुनकर जैसी इच्छा हो वैसा करो ॥ ४ ॥

नाहमात्मनि किंचिद् वै किल्बिषं कर्ण संस्मरे ।
येन मां त्वं महाबाहो हन्तुमिच्छस्यनागसम् ॥ ५ ॥

महाबाहु कर्ण ! मुझे अपना कोई ऐसा अपराध नहीं याद आता है, जिसके कारण तुम मुझ निरपराधको भी मार डालनेकी इच्छा रखते हो ॥ ५ ॥

अवश्यं तु मया वाच्यं बुद्ध्यता त्वद्धिताहितम् ।
विशेषतो रथस्थेन राज्ञश्चैव हितैषिणा ॥ ६ ॥

मैं राजा दुर्योधनका हितैषी हूँ और विशेषतः रथपर सारथि बनकर बैठा हूँ; इसलिये तुम्हारे हिताहितको जानते हुए मेरा आवश्यक कर्तव्य है कि तुम्हें वह सब बता दूँ ॥ ६ ॥

---

१. युद्धसे पीछे न हटना ही राजा पुरूरवाका उत्तम चरित्र है ।

समं च विषमं चैव रथिनश्च बलाबलम् ।
श्रमः खेदश्च सततं हयानां रथिना सह ॥ ७ ॥
आयुधस्य परिज्ञानं रुतं च मृगपक्षिणाम् ।
भारश्चाप्यतिभारश्च शल्यानां च प्रतिक्रिया ॥ ८ ॥
अस्त्रयोगश्च युद्धं च निमित्तानि तथैव च ।
सर्वमेतन्मया ज्ञेयं रथस्यास्य कुटुम्बिना ॥ ९ ॥
अतस्त्वां कथये कर्ण निदर्शनमिदं पुनः ।

सम और विषम अवस्था, रथीकी प्रबलता और निर्बलता, रथीके साथ ही घोड़ोंके सतत परिश्रम और कष्ट, अस्त्र हैं या नहीं, इसकी जानकारी, जय और पराजयकी सूचना देनेवाली पशु-पक्षियोंकी बोली, भार, अतिभार, शल्य-चिकित्सा, अस्त्रप्रयोग, युद्ध और शुभाशुभ निमित्त—इन सारी बातोंका ज्ञान रखना मेरे लिये आवश्यक है; क्योंकि मैं इस रथका एक कुटुम्बी हूँ। कर्ण ! इसीलिये मैं पुनः तुमसे इस दृष्टान्तका वर्णन करता हूँ ॥ ७–९½ ॥

वैश्यः किल समुद्रान्ते प्रभूतधनधान्यवान् ॥ १० ॥
यज्वा दानपतिः क्षान्तः स्वकर्मस्थोऽभवच्छुचिः ।
बहुपुत्रः प्रियापत्यः सर्वभूतानुकम्पकः ॥ ११ ॥
राज्ञो धर्मप्रधानस्य राष्ट्रे वसति निर्भयः ।

कहते हैं समुद्रके तटपर किसी धर्मप्रधान राजाके राज्यमें एक प्रचुर धन-धान्यसे सम्पन्न वैश्य रहता था। वह यज्ञ-यागादि करनेवाला, दानपति, क्षमाशील, अपने वर्णानुकूल कर्ममें तत्पर, पवित्र, बहुत-से पुत्रवाला, संतानप्रेमी और समस्त प्राणियोंपर दया करनेवाला था ॥ १०–११½ ॥

पुत्राणां तस्य बालानां कुमाराणां यशस्विनाम् ॥ १२ ॥
काको बहूनामभवदुच्छिष्टकृतभोजनः ।

उसके जो बहुत-से अल्पवयस्क यशस्वी पुत्र थे, उन सबकी जूठन खानेवाला एक कौआ भी वहाँ रहा करता था ॥ १२½ ॥

तस्मै सदा प्रयच्छन्ति वैश्यपुत्राः कुमारकाः ॥ १३ ॥
मांसौदनं दधि क्षीरं पायसं मधुसर्पिषी ।

वैश्यके बालक उस कौएको सदा मांस, भात, दही, दूध, खीर, मधु और घी आदि दिया करते थे ॥ १३½ ॥

स चोच्छिष्टभृतः काको वैश्यपुत्रैः कुमारकैः ॥ १४ ॥
सदृशान् पक्षिणो दृप्तः श्रेयसश्चाधिचिक्षिपे ।

वैश्यके बालकोंद्वारा जूठन खिला-खिलाकर पाला हुआ वह कौआ बड़े घमंडमें भरकर अपने समान तथा अपनेसे श्रेष्ठ पक्षियोंका भी अपमान करने लगा ॥ १४½ ॥

अथ हंसाः समुद्रान्ते कदाचिदतिपातिनः ॥ १५ ॥
गरुडस्य गतौ तुल्याश्चक्राङ्गा हृष्टचेतसः ।

एक दिनकी बात है, उस समुद्रके तटपर गरुड़के समान लंबी उड़ानें भरनेवाले मानसरोवरनिवासी राजहंस आये। उनके अङ्गोंमें चक्रके चिह्न थे और वे मन-ही-मन बहुत प्रसन्न थे ॥ १५½ ॥

कुमारकास्तदा हंसान् दृष्ट्वा काकमथाब्रुवन् ॥ १६ ॥
भवानेव विशिष्टो हि पतत्रिभ्यो विहङ्गम ।
(पतेऽतिपातिनः पश्य विहङ्गान् वियदाश्रितान् ।
एभिस्त्वमपि शक्तो हि कामान्न पतितं त्वया ॥)

उस समय उन हंसोंको देखकर कुमारोंने कौएसे इस प्रकार कहा—'विहङ्गम ! तुम्हीं समस्त पक्षियोंमें श्रेष्ठ हो। देखो, ये आकाशचारी हंस आकाशमें जाकर बड़ी दूरकी उड़ानें भरते हैं। तुम भी इन्हींके समान दूरतक उड़नेमें समर्थ हो। तुमने अपनी इच्छासे ही अबतक वैसी उड़ान नहीं भरी' ॥ १६½ ॥

प्रतार्यमाणस्तैः सर्वैरल्पबुद्धिभिरण्डजः ॥ १७ ॥
तद्वचः सत्यमित्येव मौर्ख्याद् दर्पाच्च मन्यते ।

उन सारे अल्पबुद्धि बालकोंद्वारा ठगा गया वह पक्षी मूर्खता और अभिमानसे उनकी बातको सत्य मानने लगा ॥ १७½ ॥

तान् सोऽभिपत्य जिज्ञासुः क एषां श्रेष्ठभागिति ॥ १८ ॥
उच्छिष्टदर्पितः काको बहूनां दूरपातिनाम् ।
तेषां यं प्रवरं मेने हंसानां दूरपातिनाम् ॥ १९ ॥
तमाह्वयत दुर्बुद्धिः पताव इति पक्षिणम् ।

फिर वह जूठनपर घमंड करनेवाला कौआ इन हंसोंमें सबसे श्रेष्ठ कौन है ? यह जाननेकी इच्छासे उड़कर उनके पास गया और दूरतक उड़नेवाले उन बहुसंख्यक हंसोंमेंसे जिस पक्षीको उसने श्रेष्ठ समझा, उसीको उस दुर्बुद्धिने ललकारते हुए कहा—'चलो, हम दोनों उड़ें' ॥ १८-१९½ ॥

तच्छ्रुत्वा प्राहसन् हंसा ये तत्रासन् समागताः ॥ २० ॥
भाषतो बहु काकस्य बलिनः पततां वराः ।
इदमूचुः स्म चक्राङ्गा वचः काकं विहङ्गमाः ॥ २१ ॥

बहुत काँव-काँव करनेवाले उस कौएकी वह बात सुनकर वहाँ आये हुए वे पक्षियोंमें श्रेष्ठ आकाशचारी बलवान् चक्राङ्ग हँस पड़े और कौएसे इस प्रकार बोले ॥ २०-२१ ॥

हंसा ऊचुः

वयं हंसाश्चरामेमां पृथिवीं मानसौकसः ।
पक्षिणां च वयं नित्यं दूरपातेन पूजिताः ॥ २२ ॥

हंसोंने कहा—काक ! हम मानसरोवरनिवासी हंस हैं, जो सदा इस पृथ्वीपर विचरते रहते हैं। दूरतक उड़नेके कारण हमलोग सदा सभी पक्षियोंमें सम्मानित होते आये हैं ॥

कथं हंसं तु बलिनं चक्राङ्गं दूरपातिनम् ।
काको भूत्वा निपतने समाह्वयसि दुर्मते ॥ २३ ॥
कथं त्वं पतिता काक सहास्माभिर्ब्रवीहि तत् ।

ओ खोटी बुद्धिवाले काग ! तू कौआ होकर लंबी उड़ान भरनेवाले और अपने अङ्गोंमें चक्रका चिह्न धारण करनेवाले

एक बलवान् हंसको अपने साथ उड़नेके लिये कैसे ललकार रहा है ? काग ! बता तो सही, तू हमारे साथ किस प्रकार उड़ेगा ?॥ २३½ ॥

अथ हंसवचो मूढः कुत्सयित्वा पुनः पुनः ।
प्रजगादोत्तरं काकः कत्थनो जातिलाघवात् ॥ २४ ॥

हंसकी बात सुनकर बढ़-चढ़कर बातें बनानेवाले मूर्ख कौएने अपनी जातिगत क्षुद्रताके कारण बारंबार उसकी निन्दा करके उसे इस प्रकार उत्तर दिया ॥ २४ ॥

काक उवाच

शतमेकं च पातानां पतितास्मि न संशयः ।
शतयोजनमेकैकं विचित्रं विविधं तथा ॥ २५ ॥

कौआ बोला—हंस ! मैं एक सौ एक प्रकारकी उड़ानें उड़ सकता हूँ, इसमें संशय नहीं है । उनमेंसे प्रत्येक उड़ान सौ-सौ योजनकी होती है और वे सभी विभिन्न प्रकारकी एवं विचित्र हैं ॥ २५ ॥

उड्डीनमवडीनं च प्रडीनं डीनमेव च ।
निडीनमथ संडीनं तिर्यग्डीनगतानि च ॥ २६ ॥
विडीनं परिडीनं च पराडीनं सुडीनकम् ।
अभिडीनं महाडीनं निर्डीनमतिडीनकम् ॥ २७ ॥
अवडीनं प्रडीनं च संडीनं डीनडीनकम् ।
संडीनोड्डीनडीनं च पुनर्डीनविडीनकम् ॥ २८ ॥
सम्पातं समुदीषं च ततोऽन्यद् व्यतिरिक्तकम् ।
गतागतप्रतिगतं बह्वींश्च निकुलीनकाः ॥ २९ ॥

उनमेंसे कुछ उड़ानोंके नाम इस प्रकार हैं—उड्डीन (ऊँचा उड़ना), अवडीन (नीचा उड़ना),प्रडीन (चारों ओर उड़ना), डीन (साधारण उड़ना), निडीन (धीरे-धीरे उड़ना), संडीन (ललित गतिसे उड़ना), तिर्यग्डीन (तिरछा उड़ना), विडीन (दूसरोंकी चालकी नकल करते हुए उड़ना), परिडीन (सब ओर उड़ना), पराडीन (पीछेकी ओर उड़ना), सुडीन (स्वर्गकी ओर उड़ना), अभिडीन (सामनेकी ओर उड़ना), महाडीन (बहुत वेगसे उड़ना), निर्डीन (परोंको हिलाये बिना ही उड़ना), अतिडीन (प्रचण्डतासे उड़ना), संडीन डीन-डीन (सुन्दर गतिसे आरम्भ करके फिर चक्कर काटकर नीचेकी ओर उड़ना), संडीनोड्डीनडीन (सुन्दर गतिसे आरम्भ करके फिर चक्कर काटकर ऊँचा उड़ना), डीनविडीन (एक प्रकारकी उड़ानमें दूसरी उड़ान दिखाना), सम्पात (क्षणभर सुन्दरतासे उड़कर फिर पंख फड़फड़ाना), समुदीष (कभी ऊपरकी ओर और कभी नीचेकी ओर उड़ना)और व्यतिरिक्तक (किसी लक्ष्यका संकल्प करके उड़ना),—ये छब्बीस उड़ानें हैं । इनमेंसे महाडीनके सिवा अन्य सब उड़ानोंके 'गत' (किसी लक्ष्यकी ओर जाना), 'आगत' (लक्ष्यतक पहुँचकर लौट आना) और 'प्रतिगत (पलटा खाना)—ये तीन भेद हैं (इस प्रकार कुल छिहत्तर भेद हुए)। इसके सिवा बहुत-से (अर्थात् पचीस) निपात भी हैं ।* (ये सब मिलकर एक सौ एक उड़ानें होती हैं) ॥ २६-२९ ॥

कर्तास्मि मिषतां वोऽद्य ततो द्रक्ष्यथ मे बलम् ।
तेषामन्यतमेनाहं पतिष्यामि विहायसम् ॥ ३० ॥
प्रदिशध्वं यथान्यायं केन हंसाः पताम्यहम् ।

आज मैं तुमलोगोंके देखते-देखते जब इतनी उड़ानें भरूँगा, उस समय मेरा बल तुम देखोगे । मैं इनमेंसे किसी भी उड़ानसे आकाशमें उड़ सकूँगा । हंसो ! तुमलोग यथोचितरूपसे विचार करके बताओ कि 'मैं किस उड़ानसे उड़ूँ ?' ॥ ३०½ ॥

ते वै ध्रुवं विनिश्चित्य पतध्वं न मया सह ॥ ३१ ॥
पातैरेभिः खलु खगाः पतितुं खे निराश्रये ।

अतः पक्षियो ! तुम सब लोग दृढ़ निश्चय करके आश्रयरहित आकाशमें इन विभिन्न उड़ानोंद्वारा उड़नेके लिये मेरे साथ चलो न ॥ ३१½ ॥

एवमुक्ते तु काकेन प्रहस्यैको विहंगमः ॥ ३२ ॥
उवाच काकं राधेय वचनं तन्निबोध मे ।

राधापुत्र ! कौएके ऐसा कहनेपर एक आकाशचारी हंसने हँसकर उससे जो कुछ कहा, वह मुझसे सुनो ॥३२½॥

हंस उवाच

शतमेकं च पातानां त्वं काक पतिता ध्रुवम् ॥ ३३ ॥
एकमेव तु यं पातं विदुः सर्वे विहंगमाः ।
तमहं पतिता काक नान्यं जानामि कञ्चन ॥ ३४ ॥
पत त्वमपि ताम्राक्ष येन पातेन मन्यसे ।

हंस बोला—काग ! तू अवश्य एक सौ एक उड़ानोंद्वारा उड़ सकता है । परंतु मैं तो जिस एक उड़ानको सारे पक्षी जानते हैं उसीसे उड़ सकता हूँ, दूसरी किसी उड़ानका मुझे पता नहीं है । लाल नेत्रवाले कौए ! तू भी जिस उड़ानसे उचित समझे, उसीसे उड़ ॥ ३३–३४½ ॥

अथ काकाः प्रजहसुर्ये तत्रासन् समागताः ॥ ३५ ॥
कथमेकेन पातेन हंसः पातशतं जयेत् ।
एकेनैव शतस्यैष पातेनाभिभविष्यति ॥ ३६ ॥
हंसस्य पतितं काको बलवानाशुविक्रमः ।

तब वहाँ आये हुए सारे कौए जोर-जोरसे हँसने लगे और आपसमें बोले—'भला यह हंस एक ही उड़ानसे सौ प्रकारकी उड़ानोंको कैसे जीत सकता है ? यह कौआ बलवान् और शीघ्रतापूर्वक उड़नेवाला है; अतः सौमेंसे एक ही

---

* महाडीनके सिवा, जो अन्य पचीस उड़ानें कही गयी हैं, उन सबका पृथक्-पृथक् एक-एक संपात (पंख फड़फड़ानेकी क्रिया) भी है. ये पचीस संपात जोड़नेसे एक सौ एक संख्याकी पूर्ति होती है।

उड़ानद्वारा हंसकी उड़ानको पराजित कर देगा' ॥ ३५-३६½ ॥
प्रपेततुः स्पर्धया च ततस्तौ हंसवायसौ ॥ ३७ ॥
एकपाती च चक्राङ्गः काकः पातशतेन च।
पेतिवानथ चक्राङ्गः पेतिवानथ वायसः ॥ ३८ ॥

तदनन्तर हंस और कौआ दोनों होड़ लगाकर उड़े। चक्राङ्ग हंस एक ही गतिसे उड़नेवाला था और कौआ सौ उड़ानोंसे। इधरसे चक्राङ्ग उड़ा और उधरसे कौआ ३७-३८

विसिस्मापयिषुः पातैराचक्षाणोऽऽत्मनः क्रियाः।
अथ काकस्य चित्राणि पतितानि मुहुर्मुहुः ॥ ३९ ॥
दृष्ट्वा प्रमुदिताः काका विनेदुरधिकैः स्वरैः।

कौआ विभिन्न उड़ानोंद्वारा दर्शकोंको आश्चर्यचकित करनेकी इच्छासे अपने कार्योंका बखान करता जा रहा था। उस समय कौएकी विचित्र उड़ानोंको बारंबार देखकर दूसरे कौए बड़े प्रसन्न हुए और जोर-जोरसे काँव-काँव करने लगे ॥ ३९½ ॥

हंसांश्चावहसन्ति स्म प्रावदन्नप्रियाणि च ॥ ४० ॥
उत्पत्योत्पत्य च मुहुर्मुहूर्तमिति चेति च।
वृक्षाग्रेभ्यः स्थलेभ्यश्च निपतन्त्युत्पतन्ति च ॥ ४१ ॥
कुर्वाणा विविधान् रावानाशंसन्तो जयं तथा।

वे दो-दो घड़ीपर बारंबार उड़-उड़कर कहते—'देखो, कौएकी यह उड़ान, वह उड़ान'। ऐसा कहकर वे हंसोंका उपहास करते और उन्हें कटु वचन सुनाते थे। साथ ही कौएकी विजयके लिये शुभाशंसा करते और भाँति-भाँतिकी बोली बोलते हुए वे कभी वृक्षोंकी शाखाओंसे भूतलपर और कभी भूतलसे वृक्षोंकी शाखाओंपर नीचे-ऊपर उड़ते रहते थे ॥ ४०-४१½ ॥

हंसस्तु मृदुनैकेन विक्रान्तुमुपचक्रमे ॥ ४२ ॥
प्रत्यहीयत काकाच्च मुहूर्तमिव मारिष।

आर्य! हंसने एक ही मृदुल गतिसे उड़ना आरम्भ किया था; अतः दो घड़ीतक वह कौएसे हारता-सा प्रतीत हुआ ॥ ४२½ ॥

अवमन्य च हंसांस्तानिदं वचनमब्रुवन् ॥ ४३ ॥
योऽसावुत्पतितो हंसः सोऽसावेवं प्रहीयते।

तब कौओंने हंसोंका अपमान करके इस प्रकार कहा—'वह जो हंस उड़ा था, वह तो इस प्रकार कौएसे पिछड़ता जा रहा है!' ॥ ४३½ ॥

अथ हंसः स तच्छ्रुत्वा प्रापतत् पश्चिमां दिशम् ॥ ४४ ॥
उपर्युपरि वेगेन सागरं मकरालयम्।

उड़नेवाले हंसने कौओंकी वह बात सुनकर बड़े वेगसे मकरालय समुद्रके ऊपर-ऊपर पश्चिम दिशाकी ओर उड़ना आरम्भ किया ॥ ४४½ ॥

ततो भीः प्राविशत् काकं तदा तत्र विचेतसम् ॥ ४५ ॥
द्वीपद्रुमानपश्यन्तं निपातार्थे श्रमान्वितम्।

इधर कौआ थक गया था। उसे कहीं आश्रय लेनेके लिये द्वीप या वृक्ष नहीं दिखायी दे रहे थे; अतः उसके मनमें भय समा गया और वह घबराकर अचेत-सा हो उठा ॥ ४५½ ॥

निपतेयं क नु श्रान्त इति तस्मिञ्जलार्णवे ॥ ४६ ॥
अविषह्यः समुद्रो हि बहुसत्त्वगणालयः।
महासत्त्वशतोद्भासी नभसोऽपि विशिष्यते ॥ ४७ ॥

कौआ सोचने लगा, 'मैं थक जानेपर इस जलराशिमें कहाँ उतरूँगा? बहुत-से जल-जन्तुओंका निवासस्थान समुद्र मेरे लिये असह्य है। असंख्य महाप्राणियोंसे उद्भासित होनेवाला यह महासागर तो आकाशसे भी बढ़कर है' ४६-४७

गाम्भीर्याद्धि समुद्रस्य न विशेषं हि सूतज।
दिगम्बराम्भसः कर्ण समुद्रस्था विदुर्जनाः ॥ ४८ ॥
विदूरपातात् तोयस्य किं पुनः कर्ण वायसः।

सूतपुत्र कर्ण! समुद्रमें विचरनेवाले मनुष्य भी उसकी गम्भीरताके कारण दिशाओंद्वारा आवृत उसकी जलराशिकी थाह नहीं जान पाते, फिर वह कौआ कुछ दूरतक उड़ने मात्रसे उस समुद्रके जलसमूहका पार कैसे पा सकता था! ४८½

अथ हंसोऽप्यतिक्रम्य मुहूर्तमिति चेति च ॥ ४९ ॥
अवेक्षमाणस्तं काकं नाशकद् व्यपसर्पितुम्।

उधर हंस दो घड़ीतक उड़कर इधर-उधर देखता हुआ कौएकी प्रतीक्षामें आगे न जा सका ॥ ४९½ ॥

अतिक्रम्य च चक्राङ्गः काकं तं समुदैक्षत ॥ ५० ॥
यावद् गत्वा पतत्येष काको मामिति चिन्तयन्।

चक्राङ्ग कौएको लाँघकर आगे बढ़ चुका था तो भी यह सोचकर उसकी प्रतीक्षा करने लगा कि यह कौआ भी उड़कर मेरे पास आ जाय ॥ ५०½ ॥

ततः काको भृशं श्रान्तो हंसमभ्यागमत्तदा ॥ ५१ ॥
तं तथा हीयमानं तु हंसो दृष्ट्वाब्रवीदिदम्।
उज्जिहीर्षुर्निमज्जन्तं स्मरन् सत्पुरुषव्रतम् ॥ ५२ ॥

तदनन्तर उस समय अत्यन्त थका-मादा कौआ हंसके समीप आया। हंसने देखा, कौएकी दशा बड़ी शोचनीय हो गयी है। अब यह पानीमें डूबनेहीवाला है। तब उसने सत्पुरुषोंके व्रतका स्मरण करके उसके उद्धारकी इच्छा मन में लेकर इस प्रकार कहा ॥ ५१-५२ ॥

हंस उवाच

बहूनि पतितानि त्वमाचक्षाणो मुहुर्मुहुः।
पातस्य व्याहरंश्चेदं न नो गुह्यं प्रभाषसे ॥ ५३ ॥

हंस बोला—काग! तू तो बारंबार अपनी बहुत-सी उड़ानोंका बखान कर रहा था; परंतु उन उड़ानोंका वर्णन करते समय उनमेंसे इस गोपनीय रहस्ययुक्त उड़ानकी बात तो तूने नहीं बतायी थी ॥ ५३ ॥



शल्य कर्णको हंस और कौएका उपाख्यान सुनाकर अपमानित कर रहे हैं

किं नाम पतितं काक यत्त्वं पतसि साम्प्रतम्।
जलं स्पृशसि पक्षाभ्यां तुण्डेन च पुनः पुनः ॥ ५४ ॥

कौए! बता तो सही, तू इस समय जिस उड़ानसे उड़ रहा है, उसका क्या नाम है? इस उड़ानमें तो तू अपने दोनों पंखों और चोंचके द्वारा जलका बार-बार स्पर्श करने लगा है ॥ ५४ ॥

प्रब्रूहि कतमे तत्र पाते वर्तसि वायस।
एह्येहि काक शीघ्रं त्वमेष त्वां प्रतिपालये ॥ ५५॥

वायस! बता, बता। इस समय तू कौन-सी उड़ानमें स्थित है। कौए! आ, शीघ्र आ। मैं अभी तेरी रक्षा करता हूँ ॥ ५५ ॥

शल्य उवाच

स पक्षाभ्यां स्पृशन्नार्तस्तुण्डेन च जलं तदा।
दृष्टो हंसेन दुष्टात्मन्निदं हंसं ततोऽब्रवीत् ॥ ५६ ॥
अपश्यन्नम्भसः पारं निपतंश्च श्रमान्वितः।
पातवेगप्रमथितो हंसं काकोऽब्रवीदिदम् ॥ ५७ ॥

शल्य कहते हैं— दुष्टात्मा कर्ण! वह कौआ अत्यन्त पीड़ित हो जब अपनी दोनों पाँखों और चोंचसे जलका स्पर्श करने लगा, उस अवस्थामें हंसने उसे देखा। वह उड़ानके वेगसे थककर शिथिलांग हो गया था और जलका कहीं आर-पार न देखकर नीचे गिरता जा रहा था। उस समय उसने हंससे इस प्रकार कहा—॥ ५६-५७ ॥

वयं काकाः कुतो नाम चरामः काकवाशिकाः।
हंस प्राणैः प्रपद्ये त्वामुदकान्तं नयस्व माम् ॥ ५८॥

'भाई हंस! हम तो कौए हैं। व्यर्थ काँव-काँव किया करते हैं। हम उड़ना क्या जानें? मैं अपने इन प्राणोंके साथ तुम्हारी शरणमें आया हूँ। तुम मुझे जलके किनारे तक पहुँचा दो' ॥ ५८ ॥

स पक्षाभ्यां स्पृशन्नार्तस्तुण्डेन च महार्णवे।
काको दृढपरिश्रान्तः सहसा निपपात ह ॥ ५९ ॥

ऐसा कहकर अत्यन्त थका-मादा कौआ दोनों पाँखों और चोंचसे जलका स्पर्श करता हुआ सहसा उस महासागर-में गिर पड़ा। उस समय उसे बड़ी पीड़ा हो रही थी ॥५९॥

सागराम्भसि तं दृष्ट्वा पतितं दीनचेतसम्।
म्रियमाणमिदं काकं हंसो वाक्यमुवाच ह ॥ ६० ॥

समुद्रके जलमें गिरकर अत्यन्त दीनचित्त हो मृत्युके निकट पहुँचे हुए उस कौएसे हंसने इस प्रकार कहा—॥६०॥

शतमेकं च पातानां पताम्यहमनुस्मर।
श्लाघमानस्त्वमात्मानं काक भाषितवानसि ॥ ६१॥

'काग! तूने अपनी प्रशंसा करते हुए कहा था कि मैं एक सौ एक उड़ानोंद्वारा उड़ सकता हूँ। अब उन्हें याद कर ॥ ६१ ॥

स त्वमेकशतं पातं पतन्नभ्यधिको मया।
कथमेवं परिश्रान्तः पतितोऽसि महार्णवे ॥ ६२ ॥

'सौ उड़ानोंसे उड़नेवाला तू तो मुझसे बहुत बढ़ा-चढ़ा है। फिर इस प्रकार थककर महासागरमें कैसे गिर पड़ा?' ॥

प्रत्युवाच ततः काकः सीदमान इदं वचः।
उपरिष्टं तदा हंसमभिवीक्ष्य प्रसादयन् ॥ ६३ ॥

तब जलमें अत्यन्त कष्ट पाते हुए कौएने जलके ऊपर ठहरे हुए हंसकी ओर देखकर उसे प्रसन्न करनेके लिये कहा ॥ ६३ ॥

काक उवाच

उच्छिष्टदर्पितो हंस मन्येऽऽत्मानं सुपर्णवत्।
अवमन्य बहूंश्चाहं काकानन्यांश्च पक्षिणः ॥ ६४ ॥

कौआ बोला—भाई हंस! मैं जूठन खा-खाकर घमंडमें भर गया था और बहुत-से कौओं तथा दूसरे पक्षियों-का तिरस्कार करके अपने आपको गरुड़के समान शक्तिशाली समझने लगा था ॥ ६४ ॥

प्राणैर्हंस प्रपद्ये त्वां द्वीपान्तं प्रापयस्व माम्।
यद्यहं स्वस्तिमान् हंस स्वं देशं प्राप्नुयां प्रभो॥६५॥
न कंचिदवमन्येऽहमापदो मां समुद्धर।

हंस! अब मैं अपने प्राणोंके साथ तुम्हारी शरणमें आया हूँ। तुम मुझे द्वीपके पास पहुँचा दो। शक्तिशाली हंस! यदि मैं कुशलपूर्वक अपने देशमें पहुँच जाऊँ तो अब कभी किसीका अपमान नहीं करूँगा। तुम इस विपत्तिसे मेरा उद्धार करो ॥ ६५½ ॥

तमेवं वादिनं दीनं विलपन्तमचेतनम् ॥ ६६ ॥
काक काकेति वाशन्तं निमज्जन्तं महार्णवे।
कृपयाऽऽदाय हंसस्तं जलक्लिन्नं सुदुर्दशम् ॥ ६७॥
पद्भ्यामुत्क्षिप्य वेगेन पृष्ठमारोपयच्छनैः।

कर्ण! इस प्रकार कहकर कौआ अचेत-सा होकर दीन-भावसे विलाप करने और काँव-काँव करते हुए महासागरके जलमें डूबने लगा। उस समय उसकी ओर देखना कठिन हो रहा था। वह पानीसे भीग गया था। हंसने कृपापूर्वक उसे पंजोंसे उठाकर बड़े वेगसे ऊपरको उछाला और धीरेसे अपनी पीठपर चढ़ा लिया ॥ ६६—६७½ ॥

आरोप्य पृष्ठं हंसस्तं काकं तूर्णं विचेतनम् ॥ ६८ ॥
आजगाम पुनर्द्वीपं स्पर्धया पेततुर्यतः।

अचेत हुए कौएको पीठपर बिठाकर हंस तुरंत ही फिर उसी द्वीपमें आ पहुँचा, जहाँसे होड़ लगाकर दोनों उड़े थे ॥ ६८½ ॥

संस्थाप्य तं चापि पुनः समाश्वास्य च खेचरम्॥६९॥
गतो यथेप्सितं देशं हंसो मन इवाशुगः।

उस कौएको उसके स्थानपर रखकर उसे आश्वासन

दे मनके समान शीघ्रगामी हंस पुनः अपने अभीष्ट देशको चला गया ॥ ६९३ ॥

एवमुच्छिष्टपुष्टः स काको हंसपराजितः ॥ ७० ॥
बलवीर्यमदं कर्ण त्यक्त्वा क्षान्तिमुपागतः ।

कर्ण ! इस प्रकार जूठन खाकर पुष्ट हुआ कौआ उस हंससे पराजित हो अपने महान् बल-पराक्रमका घमंड छोड़कर शान्त हो गया ॥७०३ ॥

उच्छिष्टभोजनः काको यथा वैश्यकुले पुरा ॥ ७१ ॥
एवं त्वमुच्छिष्टभृतो धार्तराष्ट्रैर्न संशयः ।
सदृशाञ्छ्रेयसश्चापि सर्वान् कर्णावमन्यसे॥ ७२ ॥

पूर्वकालमें वह कौआ जैसे वैश्यकुलमें सबकी जूठन खाकर पला था, उसी प्रकार धृतराष्ट्रके पुत्रोंने तुम्हें जूठन खिला-खिलाकर पाला है, इसमें संशय नहीं है । कर्ण ! इसीसे तुम अपने समान तथा अपनेसे श्रेष्ठ पुरुषोंका भी अपमान करते हो ॥ ७१–७२ ॥

द्रोणद्रौणिकृपैर्गुप्तो भीष्मेणान्यैश्च कौरवैः ।
विराटनगरे पार्थमेकं किं नावधीस्तदा ॥ ७३ ॥

विराटनगरमें तो द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, भीष्म तथा अन्य कौरव वीर भी तुम्हारी रक्षा कर रहे थे । फिर उस समय तुमने अकेले सामने आये हुए अर्जुनका वध क्यों नहीं कर डाला ? ॥ ७३ ॥

यत्र व्यस्ताः समस्ताश्च निर्जिताः स्थ किरीटिना ।
शृगाला इव सिंहेन क ते वीर्यमभूत् तदा ॥ ७४ ॥

वहाँ तो किरीटधारी अर्जुनने अलग-अलग और सब लोगोंसे एक साथ लड़कर भी तुमलोगोंको उसी प्रकार परास्त कर दिया था, जैसे एक ही सिंहने बहुत-से सियारोंको मार भगाया हो । कर्ण ! उस समय तुम्हारा पराक्रम कहाँ था ? ॥ ७४ ॥

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा समरे सव्यसाचिना ।
पश्यतां कुरुवीराणां प्रथमं त्वं पलायितः ॥ ७५ ॥

सव्यसाची अर्जुनके द्वारा समराङ्गणमें अपने भाईको मारा गया देखकर कौरव वीरोंके समक्ष सबसे पहले तुम्हीं भागे थे ॥ ७५ ॥

तथा द्वैतवने कर्ण गन्धर्वैः समभिद्रुतः ।
कुरून् समग्रानुत्सृज्य प्रथमं त्वं पलायितः ॥ ७६ ॥

कर्ण ! इसी प्रकार जब द्वैतवनमें गन्धर्वोंने आक्रमण किया था, उस समय समस्त कौरवोंको छोड़कर पहले तुमने ही पीठ दिखायी थी ॥ ७६ ॥

हत्वा जित्वा च गन्धर्वांश्चित्रसेनमुखान् रणे ।
कर्ण दुर्योधनं पार्थः सभार्यं सममोक्षयत् ॥ ७७ ॥

कर्ण ! वहाँ कुन्तीकुमार अर्जुनने ही रणभूमिमें चित्रसेन आदि गन्धर्वोंको मार-पीटकर उनपर विजय पायी थी और स्त्रियोंसहित दुर्योधनको उनकी कैदसे छुड़ाया था ॥ ७७ ॥

पुनः प्रभावः पार्थस्य पौराणः केशवस्य च ।
कथितः कर्ण रामेण सभायां राजसंसदि ॥ ७८ ॥

कर्ण ! पुनः तुम्हारे गुरु परशुरामजीने भी उस दिन राजसभामें अर्जुन और श्रीकृष्णके पुरातन प्रभावका वर्णन किया था ॥ ७८ ॥

सततं च त्वमश्रौषीर्वचनं द्रोणभीष्मयोः ।
अवध्यौ वदतः कृष्णौ संनिधौ च महीक्षिताम् ॥ ७९ ॥

तुमने समस्त भूपालोंके समीप द्रोणाचार्य और भीष्मकी कही हुई बातें सदा सुनी हैं । वे दोनों श्रीकृष्ण और अर्जुनको अवध्य बताया करते थे ॥ ७९ ॥

कियत् तत् तत् प्रवक्ष्यामि येन येन धनंजयः ।
त्वत्तोऽतिरिक्तः सर्वेभ्यो भूतेभ्यो ब्राह्मणो यथा॥८०॥

मैं कहाँतक गिन-गिनकर बताऊँ कि किन-किन गुणोंके कारण अर्जुन तुमसे बढ़े-चढ़े हैं । जैसे ब्राह्मण समस्त प्राणियोंसे श्रेष्ठ है, उसी प्रकार अर्जुन तुमसे श्रेष्ठ हैं ॥ ८० ॥

इदानीमेव द्रष्टासि प्रधाने स्यन्दने स्थितौ ।
पुत्रं च वसुदेवस्य कुन्तीपुत्रं च पाण्डवम् ॥ ८१ ॥

तुम इसी समय प्रधान रथपर बैठे हुए वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण तथा कुन्तीकुमार पाण्डुपुत्र अर्जुनको देखोगे ॥८१॥

यथाश्रयत चक्राङ्गं वायसो बुद्धिमास्थितः ।
तथाश्रयस्व वार्ष्णेयं पाण्डवं च धनंजयम् ॥ ८२ ॥

जैसे कौआ उत्तम बुद्धिका आश्रय लेकर चक्राङ्गकी शरणमें गया था, उसी प्रकार तुम भी वृष्णिनन्दन श्रीकृष्ण और पाण्डुपुत्र अर्जुनकी शरण लो ॥ ८२ ॥

यदा त्वं युधि विक्रान्तौ वासुदेवधनंजयौ ।
द्रष्टास्येकरथे कर्ण तदा नैवं वदिष्यसि ॥ ८३ ॥

कर्ण ! जब तुम युद्धस्थलमें पराक्रमी श्रीकृष्ण और अर्जुनको एक रथपर बैठे देखोगे, तब ऐसी बातें नहीं बोल सकोगे ॥ ८३ ॥

यदा शरशतैः पार्थो दर्पं तव वधिष्यति ।
तदा त्वमन्तरं द्रष्टा आत्मनश्चार्जुनस्य च ॥ ८४ ॥

जब अर्जुन अपने सैकड़ों बाणोंद्वारा तुम्हारा घमंड चूर-चूर कर देंगे, तब तुम स्वयं ही देख लोगे कि तुममें और अर्जुनमें कितना अन्तर है ? ॥ ८४ ॥

देवासुरमनुष्येषु प्रख्यातौ यौ नरोत्तमौ ।
तौ मावमंस्था मौर्ख्यात् त्वं खद्योत इव रोचनौ ॥८५॥

जैसे जुगनू प्रकाशमान सूर्य और चन्द्रमाका तिरस्कार करे, उसी प्रकार तुम देवताओं, असुरों और मनुष्योंमें भी विख्यात उन दोनों नरश्रेष्ठ वीर श्रीकृष्ण और अर्जुनका मूर्खतावश अपमान न करो ॥ ८५ ॥

सूर्याचन्द्रमसौ यद्वत् तद्वदर्जुनकेशवौ ।
प्राकाश्येनाभिविख्यातौ त्वं तु खद्योतवन्नृषु॥ ८६ ॥

जैसे सूर्य और चन्द्रमा हैं, वैसे श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं। वे दोनों अपने तेजसे सर्वत्र विख्यात हैं; परंतु तुम तो मनुष्योंमें जुगनूके ही समान हो ॥ ८६ ॥

एवं विद्वान् मावमंस्थाः सूतपुत्राच्युतार्जुनौ।
नृसिंहौ तौ महात्मानौ जोषमास्स्व विकत्थने ॥ ८७ ॥

सूतपुत्र! तुम महात्मा पुरुषसिंह श्रीकृष्ण और अर्जुनको ऐसा जानकर उनका अपमान न करो। बढ़-बढ़कर बातें बनाना बंद करके चुपचाप बैठे रहो ॥ ८७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे हंसकाकीयोपाख्याने एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण-शल्य-संवादके अन्तर्गत हंसकाकीयोपाख्यानविषयक इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४१ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ८८ श्लोक हैं)

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

कर्णका श्रीकृष्ण और अर्जुनके प्रभावको स्वीकार करते हुए अभिमानपूर्वक शल्यको फटकारना और उनसे अपनेको परशुरामजीद्वारा और ब्राह्मणद्वारा प्राप्त हुए शापोंकी कथा सुनाना

संजय उवाच

मद्राधिपस्याधिरथिर्महात्मा
वचो निशम्याप्रियमप्रतीतः।
उवाच शल्यं विदितं ममैतद्
यथाविधावर्जुनवासुदेवौ ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! मद्रराज शल्यकी ये अप्रिय बातें सुनकर महामनस्वी अधिरथपुत्र कर्णने असंतुष्ट होकर उनसे कहा—'शल्य! अर्जुन और श्रीकृष्ण कैसे हैं, यह बात मुझे अच्छी तरह ज्ञात है ॥ १ ॥

शौरे रथं वाहयतोऽर्जुनस्य
बलं महास्त्राणि च पाण्डवस्य।
अहं विजानामि यथावदद्य
परोक्षभूतं तव तत् तु शल्य ॥ २ ॥

'मद्रराज! अर्जुनका रथ हाँकनेवाले श्रीकृष्णके बल और पाण्डुपुत्र अर्जुनके महान् दिव्यास्त्रोंको इस समय मैं भलीभाँति जानता हूँ। तुम स्वयं उनसे अपरिचित हो ॥ २ ॥

तौ चाप्यहं शस्त्रभृतां वरिष्ठौ
व्यपेतभीर्योधयिष्यामि कृष्णौ।
संतापयत्यभ्यधिकं तु रामा-
च्छापोऽद्य मां ब्राह्मणसत्तमाच्च ॥ ३ ॥

'वे दोनों कृष्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ हैं तो भी मैं उनके साथ निर्भय होकर युद्ध करूँगा। परंतु परशुरामजीसे तथा एक ब्राह्मणशिरोमणिसे मुझे जो शाप प्राप्त हुआ है, वह आज मुझे अधिक संताप दे रहा है ॥ ३ ॥

अवसं वै ब्राह्मणच्छद्मनाहं
रामे पुरा दिव्यमस्त्रं चिकीर्षुः।
तत्रापि मे देवराजेन विघ्नो
हितार्थिना फाल्गुनस्यैव शल्य ॥ ४ ॥

कृतो विभेदेन ममोरुमेत्य
प्रविश्य कीटस्य तनुं विरूपाम्।
ममोरुमेत्य प्रबिभेद कीटः
सुप्ते गुरौ तत्र शिरो निधाय ॥ ५ ॥

'पूर्वकालकी बात है, मैं दिव्य अस्त्रोंको प्राप्त करनेकी इच्छासे ब्राह्मणका वेष बनाकर परशुरामजीके पास रहता था। शल्य! वहाँ भी अर्जुनका ही हित चाहनेवाले देवराज इन्द्रने मेरे कार्यमें विघ्न उपस्थित कर दिया था। एक दिन गुरुदेव मेरी जाँघपर अपना मस्तक रखकर सो गये थे। उस समय इन्द्रने एक कीड़ेके भयङ्कर शरीरमें प्रवेश करके मेरी जाँघके पास आकर उसे काट लिया, काटकर उसमें भारी घाव कर दिया और इस कार्यके द्वारा इन्होंने मेरे मनोरथमें विघ्न डाल दिया ॥ ४–५ ॥

ऊरुप्रभेदाच्च महान् बभूव
शरीरतो मे घनशोणितौघः।
गुरोर्भयाच्चापि न चेलिवानहं
ततो विबुद्धो ददृशे स विप्रः ॥ ६ ॥

'जाँघमें घाव हो जानेके कारण मेरे शरीरसे गाढ़े रक्तका महान् प्रवाह बह चला; परंतु गुरुके जागनेके भयसे मैं तनिक भी विचलित नहीं हुआ। तत्पश्चात् जब गुरुजी जागे, तब उन्होंने यह सब कुछ देखा ॥ ६ ॥

स धैर्ययुक्तं प्रसमीक्ष्य मां वै
न त्वं विप्रः कोऽसि सत्यं वदेति।
तस्मै तदाऽऽत्मानमहं यथाव-
दाख्यातवान् सूत इत्येव शल्य ॥ ७ ॥

'शल्य! उन्होंने मुझे ऐसे धैर्यसे युक्त देखकर पूछा—'अरे! तू ब्राह्मण तो है नहीं; फिर कौन है? सच-सच बता दे।' तब मैंने उनसे अपना यथार्थ परिचय देते हुए इस प्रकार कहा—'भगवन्! मैं सूत हूँ' ॥ ७ ॥

स मां निशम्याथ महातपस्वी
संशप्तवान् रोषपरीतचेताः।
सूतोपधावाप्तमिदं तवास्त्रं
न कर्मकाले प्रतिभास्यति त्वाम् ॥ ८ ॥

'तदनन्तर मेरा वृत्तान्त सुनकर महातपस्वी परशुरामजीके मनमें मेरे प्रति अत्यन्त रोष भर गया और उन्होंने मुझे शाप देते हुए कहा—'सूत! तूने छल करके यह ब्रह्मास्त्र प्राप्त किया

है। इसलिये काम पड़नेपर तेरा यह अस्त्र तुझे याद न आयेगा ॥ ८ ॥

अन्यत्र तस्मात् तव मृत्युकाला-
दब्राह्मणे ब्रह्म न हि ध्रुवं स्यात्।
तदद्य पर्याप्तमतीव चास्त्र-
मस्मिन् संग्रामे तुमुलेऽतीव भीमे ॥ ९ ॥

'तेरी मृत्युके समयको छोड़कर अन्य अवसरोंपर ही यह अस्त्र तेरे काम आ सकता है; क्योंकि ब्राह्मणेतर मनुष्यमें यह ब्रह्मास्त्र सदा स्थिर नहीं रह सकता।' वह अस्त्र आज इस अत्यन्त भयङ्कर तुमुल संग्राममें पर्याप्त काम दे सकता है ॥ ९ ॥

योऽयं शल्य भरतेषूपपन्नः
प्रकर्षणः सर्वहरोऽतिभीमः।
सोऽभिमन्ये क्षत्रियाणां प्रवीरान्
प्रतापिता बलवान् वै विमर्दः ॥ १० ॥

'शल्य ! वीरोंको आकृष्ट करनेवाला, सर्वसंहारक और अत्यन्त भयङ्कर जो यह प्रबल संग्राम भरतवंशी क्षत्रियोंपर आ पड़ा है, वह क्षत्रिय-जातिके प्रधान-प्रधान वीरोंको निश्चय ही संतप्त करेगा, ऐसा मेरा विश्वास है ॥ १० ॥

शल्योग्रधन्वानमहं वरिष्ठं
तरस्विनं भीममसह्यवीर्यम्।
सत्यप्रतिज्ञं युधि पाण्डवेयं
धनंजयं मृत्युमुखं नयिष्ये ॥ ११ ॥

'शल्य ! आज मैं युद्धमें भयङ्कर धनुष धारण करनेवाले सर्वश्रेष्ठ, वेगवान्, भयङ्कर, असह्यपराक्रमी और सत्यप्रतिज्ञ पाण्डुपुत्र अर्जुनको मौतके मुखमें भेज दूँगा ॥ ११ ॥

अस्त्रं ततोऽन्यत् प्रतिपन्नमद्य
येन क्षेप्स्ये समरे शत्रुपूगान्।
प्रतापिनं बलवन्तं कृतास्त्रं
तमुग्रधन्वानममितौजसं च ॥ १२ ॥
क्रूरं शूरं रौद्रममित्रसाहं
धनंजयं संयुगेऽहं हनिष्ये।

'उस ब्रह्मास्त्रसे भिन्न एक दूसरा अस्त्र भी मुझे प्राप्त है, जिससे आज समराङ्गणमें मैं शत्रुसमूहोंको मार भगाऊँगा तथा उन भयङ्कर धनुर्धर, अमिततेजस्वी, प्रतापी, बलवान्, अस्त्रवेत्ता, क्रूर, शूर, रौद्ररूपधारी तथा शत्रुओंका वेग सहन करनेमें समर्थ अर्जुनको भी युद्धमें मार डालूँगा ॥ १२½ ॥

अपां पतिर्वेगवानप्रमेयो
निमज्जयिष्यन् बहुलाः प्रजाश्च ॥ १३ ॥
महावेगं संकुरुते समुद्रो
वेला चैनं धारयत्यप्रमेयम्।

'जलका स्वामी, वेगवान् और अप्रमेय समुद्र बहुत लोगोंको निमग्न कर देनेके लिये अपना महान् वेग प्रकट करता है; परंतु तटकी भूमि उस अनन्त महासागरको भी रोक लेती है ॥ १३½ ॥

प्रमुञ्चन्तं बाणसंघानमेयान्
मर्मच्छिदो वीरहणः सुपत्रान् ॥ १४ ॥
कुन्तीपुत्रं यत्र योत्स्यामि युद्धे
ज्यां कर्षतामुत्तममद्य लोके।

'उसी प्रकार मैं भी मर्मस्थलको विदीर्ण कर देनेवाले, सुन्दर पंखोंसे युक्त, असंख्य, वीरविनाशक बाणसमूहोंका प्रयोग करनेवाले उन कुन्तीकुमार अर्जुनके साथ रणभूमिमें युद्ध करूँगा, जो इस जगत्के भीतर प्रत्यञ्चा खींचनेवाले वीरोंमें सबसे उत्तम हैं ॥ १४½ ॥

एवं बलेनातिबलं महास्त्रं
समुद्रकल्पं सुदुरापमुग्रम् ॥ १५ ॥
शरौघिणं पार्थिवान् मज्जयन्तं
वेलेव पार्थमिषुभिः संसहिष्ये।

'कुन्तीकुमार अर्जुन अत्यन्त बलशाली, महान् अस्त्रधारी, समुद्रके समान दुर्लङ्घ्य, भयङ्कर, बाणसमूहोंकी धारा बहानेवाले और बहुसंख्यक भूपालोंको डुबो देनेवाले हैं; तथापि मैं समुद्रको रोकनेवाली तट-भूमिके समान अपने बाणोंद्वारा अर्जुनको बलपूर्वक रोकूँगा और उनका वेग सहन करूँगा ॥ १५½ ॥

अद्याहवे यस्य न तुल्यमन्यं
मन्ये मनुष्यं धनुराददानम् ॥ १६ ॥
सुरासुरान् युधि वै यो जयेत
तेनाद्य मे पश्य युद्धं सुघोरम्।

'आज मैं युद्धमें जिनके समान इस समय किसी दूसरे मनुष्यको नहीं मानता, जो हाथमें धनुष लेकर रणभूमिमें देवताओं और असुरोंको भी परास्त कर सकते हैं, उन्हीं वीर अर्जुनके साथ आज मेरा अत्यन्त घोर युद्ध होगा; उसे तुम देखना ॥ १६½ ॥

अतीव मानी पाण्डवो युद्धकामो
ह्यमानुषैरेष्यति मे महास्त्रैः ॥ १७ ॥
तस्यास्त्रमस्त्रैः प्रतिहत्य संख्ये
बाणोत्तमैः पातयिष्यामि पार्थम्।

'अत्यन्त मानी पाण्डुपुत्र अर्जुन युद्धकी इच्छासे महान् दिव्यास्त्रोंद्वारा मेरे सामने आयेंगे। उस समय मैं अपने अस्त्रोंद्वारा उनके अस्त्रका निवारण करके युद्धस्थलमें उत्तम बाणोंसे कुन्तीकुमार अर्जुनको मार गिराऊँगा ॥ १७½ ॥

सहस्ररश्मिप्रतिमं ज्वलन्तं
दिशश्च सर्वाः प्रतपन्तमुग्रम् ॥ १८ ॥
तमोनुदं मेघ इवातिमात्रं
धनंजयं छादयिष्यामि बाणैः।

'सहस्रों किरणोंवाले सूर्यके सदृश प्रकाशित हो सम्पूर्ण दिशाओंको तार देते हुए भयङ्कर वीर अर्जुनको मैं अपने बाणोंद्वारा उसी प्रकार अत्यन्त आच्छादित कर दूँगा, जैसे मेघ अन्धकारनाशक सूर्यदेवको ढक देता है ॥ १८½ ॥

वैश्वानरं धूमशिखं ज्वलन्तं
तेजस्विनं लोकमिदं दहन्तम् ॥ १९ ॥
पर्जन्यभूतः शरवर्षैर्यथाग्निं
तथा पार्थं शमयिष्यामि युद्धे ।

'जैसे प्रलयकालका मेघ इस जगत्को दग्ध करनेवाले तेजस्वी एवं प्रज्वलित धूममयी शिखावाले संवर्तक अग्निको बुझा देता है, उसी प्रकार मैं मेघ बनकर बाणोंकी वर्षाद्वारा युद्धमें अग्निरूपी अर्जुनको शान्त कर दूँगा ॥ १९½ ॥

आशीविषं दुर्धरमप्रमेयं
सुतीक्ष्णदंष्ट्रं ज्वलनप्रभावम् ॥ २० ॥
क्रोधप्रदीप्तं त्वहितं महान्तं
कुन्तीपुत्रं शमयिष्यामि भल्लैः ।

'तीखे दाढ़ोंवाले विषधर सर्पके समान दुर्धर्ष, अप्रमेय, अग्निके समान प्रभावशाली तथा क्रोधसे प्रज्वलित अपने महान् शत्रु कुन्तीपुत्र अर्जुनको मैं भल्लोंद्वारा शान्त कर दूँगा ॥ २०½ ॥

प्रमाथिनं बलवन्तं प्रहारिणं
प्रभञ्जनं मातरिश्वानमुग्रम् ॥ २१ ॥
युद्धे सहिष्ये हिमवानिवाचलो
धनंजयं क्रुद्धममृष्यमाणम् ।

'वृक्षोंको तोड़-उखाड़ देनेवाली प्रचण्ड वायुके समान प्रमथनशील, बलवान्, प्रहारकुशल, तोड़-फोड़ करनेवाले तथा अमर्षशील क्रुद्ध अर्जुनका वेग आज मैं युद्धस्थलमें हिमालय पर्वतके समान अचल रहकर सहन करूँगा ॥ २१½ ॥

विशारदं रथमार्गेषु शक्तं
धुर्यं नित्यं समरेषु प्रवीरम् ॥ २२ ॥
लोके वरं सर्वधनुर्धराणां
धनंजयं संयुगे संसहिष्ये ।

'रथके मार्गोंपर विचरनेमें कुशल, शक्तिशाली, समराङ्गणमें सदा महान् भार वहन करनेवाले, संसारके समस्त धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ, प्रमुख वीर अर्जुनका आज युद्धस्थलमें मैं डटकर सामना करूँगा ॥ २२½ ॥

अद्याहवे यस्य न तुल्यमन्यं
मन्ये मनुष्यं धनुराददानम् ॥ २३ ॥
सर्वामिमां यः पृथिवीं विजिग्ये
तेन प्रयोद्धास्मि समेत्य संख्ये ।

'युद्धमें जिनके समान धनुर्धर मैं दूसरे किसी मनुष्यको नहीं मानता, जिन्होंने इस सारी पृथ्वीपर विजय पायी है, आज समराङ्गणमें उन्हींसे भिड़कर मैं बलपूर्वक युद्ध करूँगा ॥ २३½ ॥

यः सर्वभूतानि सदैवतानि
प्रस्थेऽजयत् खाण्डवे सव्यसाची ॥ २४ ॥
को जीवितं रक्षमाणो हि तेन
युयुत्सेद् वै मानुषो मामृतेऽन्यः ।

'जिन सव्यसाची अर्जुनने खाण्डववनमें देवताओंसहित समस्त प्राणियोंको जीत लिया था, उनके साथ मेरे सिवा दूसरा कौन मनुष्य, जो अपने जीवनकी रक्षा करना चाहता हो, युद्धकी इच्छा करेगा ॥ २४½ ॥

मानी कृतास्त्रः कृतहस्तयोगो
दिव्यास्त्रविच्छ्वेतहयः प्रमाथी ॥ २५ ॥
तस्याहमद्यातिरथस्य कायाच्छिरो हरिष्यामि शितैः पृषत्कैः ।

'श्वेतवाहन अर्जुन मानी, अस्त्रवेत्ता, सिद्धहस्त, दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता और शत्रुओंको मथ डालनेवाले हैं। आज मैं अपने पैने बाणोंद्वारा उन्हीं अतिरथी वीर अर्जुनका मस्तक धड़से काट लूँगा ॥ २५½ ॥

योत्स्याम्येनं शल्य धनंजयं वै
मृत्युं पुरस्कृत्य रणे जयं वा ॥ २६ ॥
अन्यो हि न ह्येकरथेन मर्त्यो
युध्येत यः पाण्डवमिन्द्रकल्पम् ।

'शल्य ! मैं रणभूमिमें मृत्यु अथवा विजयको सामने रखकर इन धनंजयके साथ युद्ध करूँगा। मेरे सिवा दूसरा कोई मनुष्य ऐसा नहीं है, जो इन्द्रके समान पराक्रमी पाण्डुपुत्र अर्जुनके साथ एकमात्र रथके द्वारा युद्ध कर सके ॥ २६½ ॥

तस्याहवे पौरुषं पाण्डवस्य
ब्रूयां हृष्टः समितौ क्षत्रियाणाम् ॥ २७ ॥
किं त्वं मूर्खः प्रसभं मूढचेता
ममावोचः पौरुषं फाल्गुनस्य ।

'मैं इस युद्धस्थलमें क्षत्रियोंके समाजमें बड़े हर्ष और उल्लासके साथ पाण्डुपुत्र अर्जुनके उत्साहका वर्णन कर सकता हूँ। तुम्हारे मनमें तो मूढ़ता भरी हुई है। तुम मूर्ख हो। फिर तुमने मुझसे अर्जुनके पुरुषार्थका हठपूर्वक वर्णन क्यों किया है? ॥ २७½ ॥

अप्रियो यः पुरुषो निष्ठुरो हि
क्षुद्रः क्षेप्ता क्षमिणश्चाक्षमावान् ॥ २८ ॥
हन्यामहं तादृशानां शतानि
क्षमाम्यहं क्षमया कालयोगात् ।

'जो अप्रिय, निष्ठुर, क्षुद्र हृदय और क्षमाशून्य मनुष्य क्षमाशील पुरुषोंकी निन्दा करता है; ऐसे सौ-सौ मनुष्योंका मैं वध कर सकता हूँ; परंतु कालयोगसे क्षमाभावद्वारा मैं यह सब कुछ सह लेता हूँ ॥ २८½ ॥

अवोचस्त्वं पाण्डवार्थेऽप्रियाणि
प्रधर्षयन् मां मूढवत् पापकर्मन् ॥ २९ ॥

मय्यार्जवे जिह्ममतिर्हतस्त्वं
मित्रद्रोही साप्तपदं हि मैत्रम्।

'ओ पापी ! मूर्खके समान तुमने पाण्डुपुत्र अर्जुनके लिये मेरा तिरस्कार करते हुए मेरे प्रति अप्रिय वचन सुनाये हैं। मेरे प्रति सरलताका व्यवहार करना तुम्हारे लिये उचित था; परंतु तुम्हारी बुद्धिमें कुटिलता भरी हुई है, अतः तुम मित्रद्रोही होनेके कारण अपने पापसे ही मारे गये। किसीके साथ सात पग चल देने मात्रसे ही मैत्री सम्पन्न हो जाती है। (किंतु तुम्हारे मनमें उस मैत्रीका उदय नहीं हुआ)॥२९½॥

कालस्त्वयं प्रत्युपयाति दारुणो
दुर्योधनो युद्धमुपागमद् यत्॥३०॥
अस्यार्थसिद्धिं त्वभिकाङ्क्षमाण-
स्तन्मन्यसे यत्र नैकान्त्यमस्ति।

'यह बड़ा भयङ्कर समय सामने आ रहा है। राजा दुर्योधन रणभूमिमें आ पहुँचा है। मैं उसके मनोरथकी सिद्धि चाहता हूँ; किंतु तुम्हारा मन उधर लगा हुआ है, जिससे उसके कार्यकी सिद्धि होनेकी कोई सम्भावना नहीं है॥३०½॥

मित्रं मिन्देर्नन्दतेः प्रीयतेर्वा
संत्रायतेर्मिनुतेर्मोदतेर्वा॥३१॥
ब्रवीमि ते सर्वमिदं ममास्ति
तच्चापि सर्वं मम वेत्ति राजा।

'मिद, नन्द, प्री, त्रा, मि अथवा मुद्* धातुओंसे निपातनद्वारा मित्र शब्दकी सिद्धि होती है। मैं तुमसे सत्य कहता हूँ—इन सभी धातुओंका पूरा-पूरा अर्थ मुझमें मौजूद है। राजा दुर्योधन इन सब बातोंको अच्छी तरह जानते हैं॥३१½॥

शत्रुः शदेः शासतेर्वा श्यतेर्वा
शृणातेर्वा श्वसतेः सीदतेर्वा॥३२॥
उपसर्गाद् बहुधा सूदतेश्च
प्रायेण सर्वं त्वयि तच्च मह्यम्।

'शद्, शास्, शो, शृ, श्वस् अथवा षद् तथा नाना प्रकारके उपसर्गोंसे युक्त सूद† धातुसे भी शत्रु शब्दकी सिद्धि होती है। मेरे प्रति इन सभी धातुओंका सारा तात्पर्य तुममें संघटित होता है॥३२½॥

दुर्योधनार्थं तव च प्रियार्थं
यशोऽर्थमात्मार्थमपीश्वरार्थम्॥३३॥
तस्मादहं पाण्डववासुदेवौ
योत्स्ये यत्नात् कर्म तत् पश्य मेऽद्य।

'अतः मैं दुर्योधनका हित, तुम्हारा प्रिय, अपने लिये यश और प्रसन्नताकी प्राप्ति तथा परमेश्वरकी प्रीतिका सम्पादन करनेके लिये पाण्डुपुत्र अर्जुन और श्रीकृष्णके साथ प्रयत्नपूर्वक युद्ध करूँगा। आज मेरे इस कर्मको तुम देखो॥३३½॥

अस्त्राणि पश्याद्य ममोत्तमानि
ब्राह्माणि दिव्यान्यथ मानुषाणि॥३४॥
आसादयिष्याम्यहमुग्रवीर्यं
द्विपो द्विपं मत्तमिवातिमत्तः।

'आज मेरे उत्तम ब्रह्मास्त्र, दिव्यास्त्र और मानुषास्त्रोंको देखो। मैं इनके द्वारा भयङ्कर पराक्रमी अर्जुनके साथ उसी प्रकार युद्ध करूँगा, जैसे कोई अत्यन्त मतवाला हाथी दूसरे मतवाले हाथीके साथ भिड़ जाता है॥३४½॥

अस्त्रं ब्राह्मं मनसा युध्यजेयं
क्षेप्स्ये पार्थायाप्रमेयं जयाय।
तेनापि मे नैव मुच्येत युद्धे
न चेत् पतेद् विषमे मेऽद्य चक्रम्॥३५॥

'मैं युद्धमें अजेय तथा असीम शक्तिशाली ब्रह्मास्त्रका मन-ही-मन स्मरण करके अपनी विजयके लिये अर्जुनपर प्रहार करूँगा। यदि मेरे रथका पहिया किसी विषम स्थानमें न फँस जाय तो उस अस्त्रसे अर्जुन रणभूमिमें जीवित नहीं छूट सकते॥

वैवस्वताद् दण्डहस्ताद्वरुणाद् वापि पाशिनः।
सगदाद् वा धनपतेः सवज्राद् वापि वासवात्॥३६॥
अन्यस्मादपि कस्माच्चिदमित्रादाततायिनः।
इति शल्य विजानीहि यथा नाहं बिभेम्यतः॥
तस्मान्न मे भयं पार्थान्नापि चैव जनार्दनात्॥३७॥
सह युद्धं हि मे ताभ्यां साम्पराये भविष्यति।

'शल्य ! मैं दण्डधारी सूर्यपुत्र यमराजसे, पाशधारी वरुणसे, गदा हाथमें लिये हुए कुबेरसे, वज्रधारी इन्द्रसे अथवा दूसरे किसी आततायी शत्रुसे भी कभी नहीं डरता। इस बातको तुम अच्छी तरह समझ लो। इसीलिये मुझे अर्जुन और श्रीकृष्णसे भी कोई भय नहीं है। उन दोनोंके साथ रणक्षेत्रमें मेरा युद्ध अवश्य होगा॥३६-३७½॥

कदाचिद् विजयस्याहमस्त्रहेतोरटन्नृप॥३८॥
अज्ञानाद्धि क्षिपन् बाणान् घोररूपान् भयानकान्।
होमधेन्वा वत्समस्य प्रमत्त इषुणाहनम्॥३९॥

'नरेश्वर ! एक समयकी बात है, मैं शस्त्रोंके अभ्यासके लिये विजय नामक एक ब्राह्मणके आश्रमके आसपास विचरण कर रहा था। उस समय घोर एवं भयंकर बाण चलाते हुए मैंने अनजानमें ही असावधानीके कारण उस ब्राह्मणकी होम-धेनुके बछड़ेको एक बाणसे मार डाला॥३८-३९॥

* मिद आदि धातुओंका अर्थ क्रमशः स्नेह, आनन्द, प्रीणन (तृप्त करना), प्राण (रक्षा), सस्नेह दर्शन और आमोद है।

† शद् आदि धातुओंका अर्थ क्रमशः इस प्रकार है—शातन (काटना या छेदना), शासन करना, तनूकरण (क्षीण कर देना), हिंसा करना, अवसादन (शिथिल करना) और निषूदन (वध)।

चरन्तं विजने शल्य ततोऽनुव्याजहार माम् ।
यस्मात् त्वया प्रमत्तेन होमधेन्वा हतः सुतः ॥ ४० ॥
श्वभ्रे ते पततां चक्रमिति मां ब्राह्मणोऽब्रवीत् ।
युध्यमानस्य संग्रामे प्राप्तस्यैकायनं भयम् ॥ ४१ ॥

'शल्य ! तब उस ब्राह्मणने एकान्तमें घूमते हुए मुझसे आकर कहा—'तुमने प्रमादवश मेरी होमधेनुके बछड़ेको मार डाला है । इसलिये तुम जिस समय रणक्षेत्रमें युद्ध करते-करते अत्यन्त भयको प्राप्त होओ, उसी समय तुम्हारे रथका पहिया गड्ढेमें गिर जाय' ॥ ४०-४१ ॥



तस्माद् बिभेमि बलवद् ब्राह्मणव्याहृतादहम् ।
एते हि सोमराजान ईश्वराः सुखदुःखयोः ॥ ४२ ॥

'ब्राह्मणके उस शापसे मुझे अधिक भय हो रहा है । ये ब्राह्मण, जिनके राजा चन्द्रमा हैं, अपने शाप या वरदानद्वारा दूसरोंको दुःख एवं सुख देनेमें समर्थ हैं ॥ ४२ ॥

अदां तस्मै गोसहस्रं बलीवर्दांश्च षट्शतान् ।
प्रसादं न लभे शल्य ब्राह्मणान्मद्रकेश्वर ॥ ४३ ॥

'मद्रराज शल्य ! मैं ब्राह्मणको एक हजार गौएँ और छः सौ बैल दे रहा था; परंतु उससे उसका कृपाप्रसाद न प्राप्त कर सका ॥ ४३ ॥

ईषादन्तान् सप्तशतान् दासीदासशतानि च ।
ददतो द्विजमुख्यो मे प्रसादं न चकार सः ॥ ४४ ॥

'हलदण्डके समान दाँतोंवाले सात सौ हाथी और सैकड़ों दास-दासियोंके देनेपर भी उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने मुझपर कृपा नहीं की ॥ ४४ ॥

कृष्णानां श्वेतवत्सानां सहस्राणि चतुर्दश ।
आहरं न लभे तस्मात् प्रसादं द्विजसत्तमात् ॥ ४५ ॥

'श्वेत बछड़ेवाली चौदह हजार काली गौएँ मैं उसे देनेके लिये ले आया तो भी उस श्रेष्ठ ब्राह्मणसे अनुग्रह न पा सका॥

ऋद्धं गृहं सर्वकामैर्यच्च मे वसु किंचन ।
तत् सर्वमस्मै सत्कृत्य प्रयच्छामि न चेच्छति ॥ ४६ ॥

'मैं सम्पूर्ण भोगोंसे सम्पन्न समृद्धिशाली घर और जो कुछ भी धन मेरे पास था, वह सब उस ब्राह्मणको सत्कारपूर्वक देने लगा; परंतु उसने कुछ भी लेनेकी इच्छा नहीं की ॥

ततोऽब्रवीन्मां याचन्तमपराधं प्रयत्नतः ।
व्याहृतं यन्मया सूत तत् तथा न तदन्यथा ॥ ४७ ॥

'उस समय मैं प्रयत्नपूर्वक अपने अपराधके लिये क्षमा-याचना करने लगा । तब ब्राह्मणने कहा—'सूत ! मैंने जो कह दिया, वह वैसा ही होकर रहेगा । वह पलट नहीं सकता॥

अनृतोक्तं प्रजां हन्यात् ततः पापमवाप्नुयाम् ।
तस्माद् धर्माभिरक्षार्थं नानृतं वक्तुमुत्सहे ॥ ४८ ॥

''असत्य भाषण प्रजाका नाश कर देता है, अतः मैं झूठ बोलनेसे पापका भागी होऊँगा; इसीलिये धर्मकी रक्षाके उद्देश्यसे मैं मिथ्या भाषण नहीं कर सकता ॥ ४८ ॥

मा त्वं ब्रह्मगतिं हिंस्याः प्रायश्चित्तं कृतं त्वया ।
मद्वाक्यं नानृतं लोके कश्चित् कुर्यात् समाप्नुहि ॥ ४९ ॥

''तुम (लोभ देकर) ब्राह्मणकी उत्तम गतिका विनाश न करो । तुमने पश्चात्ताप और दानद्वारा उस वत्सवधका प्रायश्चित्त कर लिया । जगत्में कोई भी मेरे कहे हुए वचनको मिथ्या नहीं कर सकता; इसलिये मेरा शाप तुझे प्राप्त होगा ही' ॥ ४९ ॥

इत्येतत्ते मया प्रोक्तं क्षिप्तेनापि सुहृत्तया ।
जानामि त्वां विक्षिपन्तं जोषमास्स्वोत्तरं शृणु ॥ ५० ॥

'मद्रराज ! यद्यपि तुमने मुझपर आक्षेप किये हैं, तथापि सुहृद् होनेके नाते मैंने तुमसे ये सारी बातें कह दी हैं । मैं जानता हूँ, तुम अब भी निन्दा करनेसे बाज न आओगे, तो भी कहता हूँ कि चुप होकर बैठो और अबसे जो कुछ कहूँ, उसे सुनो' ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण और शल्यका संवादविषयक बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

कर्णका आत्मप्रशंसापूर्वक शल्यको फटकारना

संजय उवाच

ततः पुनर्महाराज मद्रराजमरिंदमः ।
अभ्यभाषत राधेयः संनिवार्योत्तरं वचः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! तदनन्तर शत्रुओंका दमन करनेवाले राधापुत्र कर्णने शल्यको रोककर पुनः उनसे इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

यत् त्वं निदर्शनार्थं मां शल्य जल्पितवानसि ।
नाहं शक्यस्त्वया वाचा बिभीषयितुमाहवे ॥ २ ॥

'शल्य ! तुमने दृष्टान्तके लिये मेरे प्रति जो वाग्जाल फैलाया है, उसके उत्तरमें निवेदन है कि तुम इस युद्धस्थलमें मुझे अपनी बातोंसे नहीं डरा सकते ॥ २ ॥

यदि मां देवताः सर्वा योधयेयुः सवासवाः ।
तथापि मे भयं न स्यात् किमु पार्थात् सकेशवात्॥ ३ ॥

'यदि इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता मुझसे युद्ध करने लगें तो भी मुझे उनसे कोई भय नहीं होगा । फिर श्रीकृष्ण-सहित अर्जुनसे क्या भय हो सकता है ? ॥ ३ ॥

नाहं भीषयितुं शक्यो वाङ्मात्रेण कथंचन ।
अन्यं जानीहि यः शक्यस्त्वया भीषयितुं रणे ॥ ४ ॥

'मुझे केवल बातोंसे किसी प्रकार भी डराया नहीं जा सकता, जिसे तुम रणभूमिमें डरा सको, ऐसे किसी दूसरे ही पुरुषका पता लगाओ ॥ ४ ॥

नीचस्य बलमेतावत् पारुष्यं यत्त्वमात्थ माम् ।
अशक्तो मद्गुणान् वक्तुं वल्गसे बहु दुर्मते ॥ ५ ॥

'तुमने मेरे प्रति जो कटु वचन कहा है, इतना ही नीच पुरुषका बल है । दुर्बुद्धे ! तुम मेरे गुणोंका वर्णन करनेमें असमर्थ होकर बहुत-सी ऊटपटांग बातें बकते जा रहे हो ॥ ५ ॥

न हि कर्णः समुद्भूतो भयार्थमिह मद्रक ।
विक्रमार्थमहं जातो यशोऽर्थं च तथाऽऽत्मनः ॥ ६ ॥

'मद्रनिवासी शल्य ! कर्ण इस संसारमें भयभीत होनेके लिये नहीं पैदा हुआ है । मैं तो पराक्रम प्रकट करने और अपने यशको फैलानेके लिये ही उत्पन्न हुआ हूँ ॥ ६ ॥

सखिभावेन सौहार्दान्मित्रभावेन चैव हि ।
कारणैस्त्रिभिरेतैस्त्वं शल्य जीवसि साम्प्रतम् ॥ ७ ॥

'शल्य ! एक तो तुम सारथि बनकर मेरे सखा हो गये हो, दूसरे सौहार्दवश मैंने तुम्हें क्षमा कर दिया है और तीसरे मित्र दुर्योधनकी अभीष्टसिद्धिका मेरे मनमें विचार है-इन्हीं तीन कारणोंसे तुम अबतक जीवित हो ॥ ७ ॥

राज्ञश्च धार्तराष्ट्रस्य कार्यं सुमहदुद्यतम् ।
मयि तच्चाहितं शल्य तेन जीवसि मे क्षणम् ॥ ८ ॥

'राजा दुर्योधनका महान् कार्य उपस्थित हुआ है और उसका सारा भार मुझपर रक्खा गया है । शल्य ! इसीलिये तुम क्षणभर भी जीवित हो ॥ ८ ॥

कृतश्च समयः पूर्वं क्षन्तव्यं विप्रियं तव ।
ऋते शल्यसहस्रेण विजयेयमहं परान् ।
मित्रद्रोहस्तु पापीयानिति जीवसि साम्प्रतम् ॥ ९ ॥

'इसके सिवा, मैंने पहले ही यह शर्त कर दी है कि तुम्हारे अप्रिय वचनोंको क्षमा करूँगा । वैसे तो हजारों शल्य न रहें तो भी मैं शत्रुओंपर विजय पा सकता हूँ; परंतु मित्रद्रोह महान् पाप है, इसीलिये तुम अबतक जीवित हो' ॥ ९ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण और शल्यका संवादविषयक तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

कर्णके द्वारा मद्र आदि बाहीक देशवासियोंकी निन्दा

शल्य उवाच

ननु प्रलापाः कर्णैते यान् ब्रवीषि परान् प्रति ।
ऋते कर्णसहस्रेण शक्या जेतुं परे युधि ॥ १ ॥

शल्य बोले—कर्ण ! तुम दूसरोंके प्रति जो आक्षेप करते हो, ये तुम्हारे प्रलापमात्र हैं । तुम-जैसे हजारों कर्ण न रहें तो भी युद्धस्थलमें शत्रुओंपर विजय पायी जा सकती है॥

संजय उवाच

तथा ब्रुवन्तं परुषं कर्णो मद्राधिपं तदा ।
परुषं द्विगुणं भूयः प्रोवाचाप्रियदर्शनम् ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! ऐसी कठोर बात बोलते हुए मद्रराज शल्यसे कर्णने पुनः दूनी कठोरता लिये अप्रिय वचन कहना आरम्भ किया ॥ २ ॥

कर्ण उवाच

इदं तु ते त्वमेकाग्रः शृणु मद्रजनाधिप ।
संनिधौ धृतराष्ट्रस्य प्रोच्यमानं मया श्रुतम् ॥ ३ ॥

कर्ण बोला—मद्रनरेश ! तुम एकाग्रचित्त होकर मेरी ये बातें सुनो । राजा धृतराष्ट्रके समीप कही जाती हुई इन सब बातोंको मैंने सुना था ॥ ३ ॥

देशांश्च विविधांश्चित्रान् पूर्ववृत्तांश्च पार्थिवान्।
ब्राह्मणाः कथयन्ति स्म धृतराष्ट्रनिवेशने ॥ ४ ॥

एक दिन महाराज धृतराष्ट्रके घरमें बहुत-से ब्राह्मण आ-आकर नाना प्रकारके विचित्र देशों तथा पूर्ववर्ती भूपालोंके वृत्तान्त सुना रहे थे ॥ ४ ॥

तत्र वृद्धः पुरावृत्ताः कथाः कश्चिद् द्विजोत्तमः।
वाहीकदेशं मद्रांश्च कुत्सयन् वाक्यमब्रवीत् ॥ ५ ॥

वहीं किसी वृद्ध एवं श्रेष्ठ ब्राह्मणने बाहीक और मद्रदेशकी निन्दा करते हुए वहाँकी पूर्वघटित बातें कही थीं—॥५॥

बहिष्कृता हिमवता गङ्गया च बहिष्कृताः।
सरस्वत्या यमुनया कुरुक्षेत्रेण चापि ये ॥ ६ ॥
पञ्चानां सिन्धुषष्ठानां नदीनां येऽन्तराश्रिताः।
तान् धर्मबाह्यानशुचीन् वाहीकानपि वर्जयेत् ॥ ७ ॥

'जो प्रदेश हिमालय, गङ्गा, सरस्वती, यमुना और कुरुक्षेत्रकी सीमासे बाहर हैं तथा जो सतलज, व्यास, रावी, चिनाब और झेलम—इन पाँचों एवं छठी सिंधु नदीके बीचमें स्थित हैं, उन्हें बाहीक कहते हैं। वे धर्मबाह्य और अपवित्र हैं। उन्हें त्याग देना चाहिये ॥ ६-७ ॥

गोवर्धनो नाम वटः सुभद्रं नाम चत्वरम्।
एतद् राजकुलद्वारमाकुमारात् स्मराम्यहम् ॥ ८ ॥

'गोवर्द्धन नामक वटवृक्ष और सुभद्र नामक चबूतरा—ये दोनों वहाँके राजभवनके द्वारपर स्थित हैं, जिन्हें मैं बचपनसे ही भूल नहीं पाता हूँ ॥ ८ ॥

कार्येणात्यर्थगूढेन वाहीकेषूषितं मया।
तत एषां समाचारः संवासाद् विदितो मम ॥ ९ ॥

'मैं अत्यन्त गुप्त कार्यवश कुछ दिनोंतक बाहीक देशमें रहा था। इससे वहाँके निवासियोंके सम्पर्कमें आकर मैंने उनके आचार-व्यवहारकी बहुत-सी बातें जान ली थीं ॥ ९ ॥

शाकलं नाम नगरमापगा नाम निम्नगा।
जर्तिका नाम वाहीकास्तेषां वृत्तं सुनिन्दितम्॥ १० ॥

'वहाँ शाकल नामक एक नगर और आपगा नामकी एक नदी है, जहाँ जर्तिक नामवाले बाहीक निवास करते हैं। उनका चरित्र अत्यन्त निन्दित है ॥ १० ॥

धाना गौड्यासवं पीत्वा गोमांसं लशुनैः सह।
अपूपमांसवाट्यानामाशिनः शीलवर्जिताः ॥ ११ ॥

'वे भुने हुए जौ और लहसुनके साथ गोमांस खाते और गुड़से बनी हुई मदिरा पीकर मतवाले बने रहते हैं। पूआ, मांस और बाटी खानेवाले बाहीक देशके लोग शील और आचारसे शून्य हैं ॥ ११ ॥

गायन्त्यथ च नृत्यन्ति स्त्रियो मत्ता विवाससः।
नगरागारवप्रेषु बहिर्माल्यानुलेपनाः ॥ १२ ॥

'वहाँकी स्त्रियाँ बाहर दिखायी देनेवाली माला और अङ्गराग धारण करके मतवाली तथा नंगी होकर नगर एवं घरोंकी चहारदिवारियोंके पास गाती और नाचती हैं ॥ १२ ॥

मत्तावगीतैर्विविधैः खरोष्ट्रनिनदोपमैः।
अनावृता मैथुने ताः कामचाराश्च सर्वशः ॥ १३ ॥

'वे गदहोंके रेंकने और ऊँटोंके बलबलानेकी-सी आवाजसे मतवालेपनमें ही भाँति-भाँतिके गीत गाती हैं और मैथुन-कालमें भी परदेके भीतर नहीं रहती हैं। वे सब-की-सब सर्वथा स्वेच्छाचारिणी होती हैं ॥ १३ ॥

आहुरन्योन्यसूक्तानि प्रब्रुवाणा मदोत्कटाः।
हे हते हे हतेत्येवं स्वामिभर्तृहतेति च ॥ १४ ॥
आक्रोशन्त्यः प्रनृत्यन्ति व्रात्याः पर्वस्वसंयताः।

'मदसे उन्मत्त होकर परस्पर सरस विनोदयुक्त बातें करती हुई वे एक दूसरीको 'ओ घायल की हुई! ओ किसीकी मारी हुई! हे पतिमर्दिते!' इत्यादि कहकर पुकारती और नृत्य करती हैं। पर्वों और त्योहारोंके अवसरपर तो उन संस्कारहीन रमणियोंके संयमका बाँध और भी टूट जाता है॥

तासां किलावलिप्तानां निवसन् कुरुजाङ्गले ॥ १५ ॥
कश्चिद् वाहीकदुष्टानां नातिहृष्टमना जगौ।

'उन्हीं बाहीकदेशी मदमत्त एवं दुष्ट स्त्रियोंका कोई सम्बन्धी वहाँसे आकर कुरुजाङ्गल प्रदेशमें निवास करता था। वह अत्यन्त खिन्नचित्त होकर इस प्रकार गुनगुनाया करता था—॥ १५½ ॥

सा नूनं बृहती गौरी सूक्ष्मकम्बलवासिनी ॥ १६ ॥
मामनुस्मरती शेते वाहीकं कुरुजाङ्गले।

''निश्चय ही वह लंबी, गोरी और महीन कम्बलकी साड़ी पहननेवाली मेरी प्रेयसी कुरुजाङ्गल प्रदेशमें निवास करनेवाले मुझ बाहीकको निरन्तर याद करती हुई सोती होगी॥ १६½ ॥

शतद्रुकामहं तीर्त्वा तां च रम्यामिरावतीम् ॥ १७ ॥
गत्वा स्वदेशं द्रक्ष्यामि स्थूलशङ्खाः शुभाः स्त्रियः।

''मैं कब सतलज और उस रमणीय रावी नदीको पार करके अपने देशमें पहुँचकर शङ्खकी बनी हुई मोटी-मोटी चूड़ियोंको धारण करनेवाली वहाँकी सुन्दरी स्त्रियोंको देखूँगा॥

मनःशिलोज्ज्वलापाङ्गयो गौर्यस्त्रिककुदाञ्जनाः॥ १८ ॥
कम्बलाजिनसंवीताः कूर्दन्त्यः प्रियदर्शनाः।
मृदङ्गानकशङ्खानां मर्दलानां च निःस्वनैः ॥ १९ ॥

''जिनके नेत्रोंके प्रान्तभाग मैनसिलके आलेपसे उज्ज्वल हैं, दोनों नेत्र और ललाट अञ्जनसे सुशोभित हैं तथा जिनके सारे अङ्ग कम्बल और मृगचर्मसे आवृत हैं, वे गोरे रंगवाली प्रियदर्शना (परम सुन्दरी) रमणियाँ मृदङ्ग, ढोल, शङ्ख और मर्दल आदि वाद्योंकी ध्वनिके साथ-साथ कब नृत्य करती दिखायी देंगी ॥ १८-१९ ॥

खरोष्ट्राश्वतरैश्चैव मत्ता यास्यामहे सुखम् ।
शमीपीलुकरीराणां वनेषु सुखवर्त्मसु ॥ २० ॥

''कब हमलोग मदोन्मत्त हो गदहे, ऊँट और खच्चरों-की सवारीद्वारा सुखद मार्गोंवाले शमी, पीलु और करीलोंके जंगलोंमें सुखसे यात्रा करेंगे ॥ २० ॥

अपूपान् सक्तुपिण्डांश्च प्राश्नन्तो मथितान्वितान् ।
पथि सुप्रबला भूत्वा कदा सम्पततोऽध्वगान् ॥२१॥
चेलापहारं कुर्वाणास्ताडयिष्याम भूयसः ।

'मार्गमें तक्रके साथ पूए और सत्तूके पिण्ड खाकर अत्यन्त प्रबल हो कब चलते हुए बहुत-से राहगीरोंको उनके कपड़े छीनकर हम अच्छी तरह पीटेंगे' ॥ २१½ ॥

एवंशीलेषु व्रात्येषु वाहीकेषु दुरात्मसु ॥ २२ ॥
कश्चेतयानो निवसेन्मुहूर्तमपि मानवः ।

संस्कारशून्य दुरात्मा वाहीक ऐसे ही स्वभावके होते हैं। उनके पास कौन सचेत मनुष्य दो घड़ी भी निवास करेगा ?'॥

ईदृशा ब्राह्मणेनोक्ता वाहीका मोघचारिणः ॥ २३ ॥
येषां षड्भागहर्ता त्वमुभयोः शुभपापयोः ।

ब्राह्मणने निरर्थक आचार-विचारवाले बाहीकोंको ऐसा ही बताया है, जिनके पुण्य और पाप दोनोंका छठा भाग तुम लिया करते हो ॥ २३½ ॥

इत्युक्त्वा ब्राह्मणः साधुरुत्तरं पुनरुक्तवान् ॥ २४ ॥
वाहीकेष्वविनीतेषु प्रोच्यमानं निबोध तत् ।

शल्य ! उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने ये सब बातें बताकर उद्दण्ड बाहीकोंके विषयमें पुनः जो कुछ कहा था, वह भी बताता हूँ, सुनो—॥ २४½ ॥

तत्र स्म राक्षसी गाति सदा कृष्णचतुर्दशीम् ॥ २५ ॥
नगरे शाकले स्फीते आहत्य निशि दुन्दुभिम् ।

'उस देशमें एक राक्षसी रहती है, जो सदा कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको समृद्धिशाली शाकल नगरमें रातके समय दुन्दुभि बजाकर इस प्रकार गाती है—॥ २५½ ॥

कदा वाहेयिका गाथाः पुनर्गास्यामि शाकले ॥ २६ ॥
गव्यस्य तृप्ता मांसस्य पीत्वा गौडं सुरासवम् ।
गौरीभिः सह नारीभिर्बृहतीभिः स्वलंकृताः ॥ २७ ॥
पलाण्डुगंडूषयुतान् खादन्ती चैडकान् बहून् ।

''मैं वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो गोमांस खाकर और गुड़की बनी हुई मदिरा पीकर तृप्त हो अञ्जलि भर प्याजके साथ बहुत-सी भेड़ोंको खाती हुई गोरे रंगकी लंबी युवती स्त्रियोंके साथ मिलकर इस शाकल नगरमें पुनः कब इस तरहकी बाहीकसम्बन्धी गाथाओंका गान करूँगी ॥ २६-२७½ ॥

वाराहं कौक्कुटं मांसं गव्यं गार्दभमौष्ट्रिकम् ॥ २८ ॥
ऐडं च ये न खादन्ति तेषां जन्म निरर्थकम् ।

''जो सूअर, मुर्गा, गाय, गदहा, ऊँट और भेड़के मांस नहीं खाते, उनका जन्म व्यर्थ है' ॥ २८½ ॥

इति गायन्ति ये मत्ताः सीधुना शाकलाश्च ये ॥ २९ ॥
सबालवृद्धाः क्रन्दन्तस्तेषु धर्मः कथं भवेत् ।

'जो शाकलनिवासी आबालवृद्ध नरनारी मदिरासे उन्मत्त हो चिल्ला-चिल्लाकर ऐसी गाथाएँ गाया करते हैं, उनमें धर्म कैसे रह सकता है ?' ॥ २९½ ॥

इति शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते ॥ ३० ॥
यदन्योऽप्युक्तवानस्मान् ब्राह्मणः कुरुसंसदि ।

शल्य ! इस बातको अच्छी तरह समझ लो। हर्षका विषय है कि इसके सम्बन्धमें मैं तुम्हें कुछ और बातें बता रहा हूँ, जिन्हें दूसरे ब्राह्मणने कौरव-सभामें हमलोगोंसे कहा था—॥ ३०½ ॥

पञ्च नद्यो वहन्त्येता यत्र पीलुवनान्युत ॥ ३१ ॥
शतद्रुश्च विपाशा च तृतीयैरावती तथा ।
चन्द्रभागा वितस्ता च सिन्धुषष्ठा बहिर्गिरेः ॥ ३२ ॥
आरट्टा नाम ते देशा नष्टधर्मा न तान् व्रजेत् ।

'जहाँ शतद्रु (सतलज), विपाशा (व्यास), तीसरी इरावती (रावी), चन्द्रभागा (चिनाव) और वितस्ता (झेलम)—ये पाँच नदियाँ छठी सिंधु नदीके साथ बहती हैं, जहाँ पीलु नामक वृक्षोंके कई जंगल हैं, वे हिमालयकी सीमासे बाहरके प्रदेश 'आरट्ट' नामसे विख्यात हैं। वहाँका धर्म-कर्म नष्ट हो गया है। उन देशोंमें कभी न जाय ॥ ३१-३२½ ॥

व्रात्यानां दासमीयानां वाहीकानामयज्वनाम् ॥ ३३ ॥
न देवाः प्रतिगृह्णन्ति पितरो ब्राह्मणास्तथा ।
तेषां प्रणष्टधर्माणां वाहीकानामिति श्रुतिः ॥ ३४ ॥

'जिनके धर्म-कर्म नष्ट हो गये हैं, वे संस्कारहीन, जारज बाहीक यज्ञ-कर्मसे रहित होते हैं। उनके दिये हुए द्रव्यको देवता, पितर और ब्राह्मण भी नहीं ग्रहण करते हैं, यह बात सुननेमें आयी है' ॥ ३३-३४ ॥

ब्राह्मणेन तथा प्रोक्तं विदुषा साधुसंसदि ।
काष्ठकुण्डेषु वाहीका मृन्मयेषु च भुञ्जते ॥ ३५ ॥
सक्तुमद्यावलिप्तेषु श्वावलीढेषु निर्घृणाः ।
आविकं चौष्ट्रिकं चैव क्षीरं गार्दभमेव च ॥ ३६ ॥
तद्विकारांश्च वाहीकाः खादन्ति च पिबन्ति च ।

किसी विद्वान् ब्राह्मणने साधु पुरुषोंकी सभामें यह भी कहा था कि 'बाहीक देशके लोग काठके कुण्डों तथा मिट्टीके बर्तनोंमें जहाँ सत्तू और मदिरा लिपटे होते हैं और जिन्हें कुत्ते चाटते रहते हैं, घृणाशून्य होकर भोजन करते हैं। बाहीक देशके निवासी भेड़, ऊँटनी और गदहीके दूध पीते और उसी दूधके बने हुए दही-घी आदि भी खाते हैं।३५-३६½

पुत्रसंकरिणो जाल्माः सर्वान्नक्षीरभोजनाः ॥ ३७ ॥
आरट्टा नाम वाहीका वर्जनीया विपश्चिता ।

'वे जारज पुत्र उत्पन्न करनेवाले नीच आरट्ट नामक बाहीक सबका अन्न खाते और सभी पशुओंके दूध पीते हैं। अतः विद्वान् पुरुषको उन्हें दूरसे ही त्याग देना चाहिये।' ३७½

हन्त शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते ॥ ३८ ॥
यदन्योऽप्युक्तवान् मह्यं ब्राह्मणः कुरुसंसदि ।

शल्य ! इस बातको याद कर लो। अभी तुमसे और भी बातें बताऊँगा, जिन्हें किसी दूसरे ब्राह्मणने कौरवसभामें स्वयं मुझसे कहा था—॥ ३८½ ॥

युगन्धरे पयः पीत्वा प्रोष्य चाप्यच्युतस्थले ॥ ३९ ॥
तद्वद् भूतिलये स्नात्वा कथं स्वर्गं गमिष्यति ।

'युगन्धर नगरमें दूध पीकर अच्युतस्थल नामक नगरमें एक रात रहकर तथा भूतिलयमें स्नान करके मनुष्य कैसे स्वर्गमें जायगा ?'॥ ३९½ ॥

पञ्च नद्यो वहन्त्येता यत्र निःसृत्य पर्वतात् ॥ ४० ॥
आरट्टा नाम वाहीका न तेष्वार्यो द्व्यहं वसेत् ।

जहाँ पर्वतसे निकलकर ये पूर्वोक्त पाँचों नदियाँ बहती हैं, वे आरट्ट नामसे प्रसिद्ध बाहीक प्रदेश हैं। उनमें श्रेष्ठ पुरुष दो दिन भी निवास न करे ॥ ४०½ ॥

बहिश्च नाम हीकश्च विपाशायां पिशाचकौ ॥ ४१ ॥
तयोरपत्यं वाहीका नैषा सृष्टिः प्रजापतेः ।
ते कथं विविधान् धर्मान् ज्ञास्यन्ते हीनयोनयः ॥

विपाशा (व्यास) नदीमें दो पिशाच रहते हैं। एकका नाम है बहि और दूसरेका नाम है हीक। इन्हीं दोनोंकी संतानें बाहीक कहलाती हैं। ब्रह्माजीने इनकी सृष्टि नहीं की है। वे नीच योनिमें उत्पन्न हुए मनुष्य नाना प्रकारके धर्मोंको कैसे जानेंगे ? ॥ ४१-४२ ॥

कारस्करान्माहिषकान् कुरण्डान् केरलांस्तथा ।
कर्कोटकान् वीरकांश्च दुर्धर्मांश्च विवर्जयेत् ॥ ४३ ॥

कारस्कर, माहिषक, कुरंड, केरल, कर्कोटक और वीरक—इन देशोंके धर्म (आचार-व्यवहार) दूषित हैं; अतः इनका त्याग कर देना चाहिये ॥ ४३ ॥

इति तीर्थानुसर्तारं राक्षसी काचिदब्रवीत् ।
एकरात्रशयी गेहे महोलूखलमेखला ॥ ४४ ॥

विशाल ओखलियोंकी मेखला (करधनी) धारण करनेवाली किसी राक्षसीने किसी तीर्थयात्रीके घरमें एक रात रहकर उससे इस प्रकार कहा था ॥ ४४ ॥

आरट्टा नाम ते देशा वाहीकं नाम तज्जलम् ।
ब्राह्मणापसदा यत्र तुल्यकालाः प्रजापतेः ॥ ४५ ॥

जहाँ ब्रह्माजीके समकालीन (अत्यन्त प्राचीन) वेद-विरुद्ध आचरणवाले नीच ब्राह्मण निवास करते हैं, वे आरट्ट नामक देश हैं और वहाँके जलका नाम बाहीक है ॥ ४५ ॥

वेदा न तेषां वेद्यश्च यज्ञा यजनमेव च ।
व्रात्यानां दासमीयानामन्नं देवा न भुञ्जते ॥ ४६ ॥

उन अधम ब्राह्मणोंको न तो वेदोंका ज्ञान है, न वहाँ यज्ञकी वेदियाँ हैं और न उनके यहाँ यज्ञ-याग ही होते हैं। वे संस्कार-हीन एवं दासोंसे समागम करनेवाली कुलटा स्त्रियोंकी संतानें हैं; अतः देवता उनका अन्न नहीं ग्रहण करते हैं ॥ ४६ ॥

प्रस्थला मद्रगान्धारा आरट्टा नामतः खशाः ।
वसातिसिन्धुसौवीरा इति प्रायोऽतिकुत्सिताः॥४७॥

प्रस्थल, मद्र, गान्धार, आरट्ट, खस, वसाति, सिंधु तथा सौवीर—ये देश प्रायः अत्यन्त निन्दित हैं ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण और शल्यका संवादविषयक चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

कर्णका मद्र आदि बाहीक निवासियोंके दोष बताना, शल्यका उत्तर देना और दुर्योधनका दोनोंको शान्त करना

कर्ण उवाच

हन्त शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते ।
उच्यमानं मया सम्यक् त्वमेकाग्रमनाः शृणु ॥ १ ॥

कर्ण बोला—शल्य ! पहले जो बातें बतायी गयी हैं, उन्हें समझो। अब मैं पुनः तुमसे कुछ कहता हूँ। मेरी कही हुई इस बातको तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥ १ ॥

ब्राह्मणः किल नो गेहमध्यगच्छत् पुरातिथिः ।
आचारं तत्र सम्प्रेक्ष्य प्रीतो वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

पूर्वकालमें एक ब्राह्मण अतिथिरूपसे हमारे घरपर ठहरा था। उसने हमारे यहाँका आचार-विचार देखकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए यह बात कही—॥ २ ॥

मया हिमवतः शृङ्गमेकेनाध्युषितं चिरम् ।
दृष्टाश्च बहवो देशा नानाधर्मसमावृताः ॥ ३ ॥

'मैंने अकेले ही दीर्घकालतक हिमालयके शिखरपर निवास किया है और विभिन्न धर्मोंसे सम्पन्न बहुत-से देश देखे हैं ॥

न च केन च धर्मेण विरुध्यन्ते प्रजा इमाः ।
सर्वं हि तेऽब्रुवन् धर्मं यदुक्तं वेदपारगैः ॥ ४ ॥

'इन सब देशोंके लोग किसी भी निमित्तसे धर्मके विरुद्ध नहीं जाते। वेदोंके पारगामी विद्वानोंने जैसा बताया है, उसी रूपमें वे लोग सम्पूर्ण धर्मको मानते और बतलाते हैं ॥ ४ ॥

अटता तु ततो देशान् नानाधर्मसमाकुलान् ।
आगच्छता महाराज वाहीकेषु निशामितम् ॥ ५ ॥

'महाराज ! विभिन्न धर्मोंसे युक्त अनेक देशोंमें घूमता-घामता जब मैं बाहीक देशमें आ रहा था, तब वहाँ ऐसी बातें देखने और सुननेमें आयीं ॥ ५ ॥

तत्र वै ब्राह्मणो भूत्वा ततो भवति क्षत्रियः ।
वैश्यः शूद्रश्च वाहीकस्ततो भवति नापितः ॥ ६ ॥
नापितश्च ततो भूत्वा पुनर्भवति ब्राह्मणः ।
द्विजो भूत्वा च तत्रैव पुनर्दासोऽभिजायते ॥ ७ ॥

'उस देशमें एक ही बाहीक पहले ब्राह्मण होकर फिर क्षत्रिय होता है । तत्पश्चात् वैश्य और शूद्र भी बन जाता है । उसके बाद वह नाई होता है । नाई होकर फिर ब्राह्मण हो जाता है । ब्राह्मण होनेके पश्चात् फिर वही दास बन जाता है * ॥ ६-७ ॥

भवन्त्येककुले विप्राः प्रसृष्टाः कामचारिणः ।
गान्धारा मद्रकाश्चैव वाहीकाश्चाल्पचेतसः ॥ ८ ॥

'वहाँ एक ही कुलमें कुछ लोग ब्राह्मण और कुछ लोग स्वेच्छाचारी वर्णसंकर संतान उत्पन्न करनेवाले होते हैं । गान्धार, मद्र और बाहीक—इन सभी देशोंके लोग मन्दबुद्धि हुआ करते हैं ॥ ८ ॥

एतन्मया श्रुतं तत्र धर्मसंकरकारकम् ।
कृत्स्नामटित्वा पृथिवीं वाहीकेषु विपर्ययः ॥ ९ ॥

'उस देशमें मैंने इस प्रकार धर्मसंकरता फैलानेवाली बातें सुनीं । सारी पृथ्वीमें घूमकर केवल बाहीक देशमें ही मुझे धर्मके विपरीत आचार-व्यवहार दिखायी दिया' ॥ ९ ॥

हन्त शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते ।
यदप्यन्योऽब्रवीद् वाक्यं वाहीकानां च कुत्सितम् ॥ १० ॥

शल्य ! ये सब बातें जान लो । अभी और कहता हूँ । एक दूसरे यात्रीने भी बाहीकोंके सम्बन्धमें जो घृणित बातें बतायी थीं, उन्हें सुनो ॥ १० ॥

सती पुरा हृता काचिदारट्टात् किल दस्युभिः ।
अधर्मतश्चोपयाता सा तानभ्यशपत् ततः ॥ ११ ॥

'कहते हैं, प्राचीन कालमें लुटेरे डाकुओंने आरट्ट देशसे किसी सती स्त्रीका अपहरण कर लिया और अधर्मपूर्वक उसके साथ समागम किया । तब उसने उन्हें यह शाप दे दिया—॥ ११

बालां बन्धुमतीं यन्मामधर्मेणोपगच्छथ ।
तस्मान्नार्यो भविष्यन्ति बन्धक्यो वै कुलेषु च ॥ १२ ॥
न चैवास्मात् प्रमोक्ष्यध्वं घोरात् पापान्नराधमाः ।

'मैं अभी बालिका हूँ और मेरे भाई-बन्धु मौजूद हैं तो भी तुमलोगोंने अधर्मपूर्वक मेरे साथ समागम किया है । इसलिये इस कुलकी सारी स्त्रियाँ व्यभिचारिणी होंगी । नराधमो ! तुम्हें इस घोर पापसे कभी छुटकारा नहीं मिलेगा' ॥

तस्मात् तेषां भागहरा भागिनेया न सूनवः ॥ १३ ॥

'इसलिये उनकी धन-सम्पत्तिके उत्तराधिकारी भानजे होते हैं, पुत्र नहीं ॥ १३ ॥

कुरवः सहपाञ्चालाः शाल्वा मत्स्याः सनैमिषाः ।
कोसलाः काशयोऽङ्गाश्च कालिङ्गा मागधास्तथा ॥ १४ ॥
चेदयश्च महाभागा धर्मं जानन्ति शाश्वतम् ।

'कुरु, पाञ्चाल, शाल्व, मत्स्य, नैमिष, कोसल, काशी, अङ्ग, कलिङ्ग, मगध और चेदिदेशोंके बड़भागी मनुष्य सनातन धर्मको जानते हैं ॥ १४½ ॥

नानादेशेषु सन्तश्च प्रायो बाह्यालयादृते ॥ १५ ॥
आ मत्स्येभ्यः कुरुपञ्चालदेश्या
आ नैमिषाच्चेदयो ये विशिष्टाः ।
धर्मं पुराणमुपजीवन्ति सन्तो
मद्रानृते पाञ्चनदांश्च जिह्मान् ॥ १६ ॥

'भिन्न-भिन्न देशोंमें बाहीकनिवासियोंको छोड़कर प्रायः सर्वत्र श्रेष्ठ पुरुष उपलब्ध होते हैं । मत्स्यसे लेकर कुरु और पाञ्चाल देशतक, नैमिषारण्यसे लेकर चेदिदेशतक जो लोग निवास करते हैं, वे सभी श्रेष्ठ एवं साधु पुरुष हैं और प्राचीन धर्मका आश्रय लेकर जीवननिर्वाह करते हैं । मद्र और पञ्चनद प्रदेशोंमें ऐसी बात नहीं है । वहाँके लोग कुटिल होते हैं' ॥ १५-१६ ॥

एवं विद्वान् धर्मकथासु राजं-
स्तूष्णींभूतो जडवच्छल्य भूयाः ।
त्वं तस्य गोप्ता च जनस्य राजा
षड्भागहर्ता शुभदुष्कृतस्य ॥ १७ ॥

राजा शल्य ! ऐसा जानकर तुम जड पुरुषोंके समान धर्मोपदेशकी ओरसे मुँह मोड़कर चुपचाप बैठे रहो । तुम बाहीक देशके लोगोंके राजा और रक्षक हो; अतः उनके पुण्य और पापका भी छठा भाग ग्रहण करते हो ॥ १७ ॥

अथवा दुष्कृतस्य त्वं हर्ता तेषामरक्षिता ।
रक्षिता पुण्यभाग् राजा प्रजानां त्वं ह्यपुण्यभाक् ॥ १८ ॥

अथवा उनकी रक्षा न करनेके कारण तुम केवल उनके पापमें ही हिस्सा बँटाते हो । प्रजाकी रक्षा करनेवाला राजा ही उसके पुण्यका भागी होता है; तुम तो केवल पापके ही भागी हो ॥ १८ ॥

पूज्यमाने पुरा धर्मे सर्वदेशेषु शाश्वते ।
धर्मं पाञ्चनदं दृष्ट्वा धिगित्याह पितामहः ॥ १९ ॥

पूर्वकालमें समस्त देशोंमें प्रचलित सनातन धर्मकी जब प्रशंसा की जा रही थी, उस समय ब्रह्माजीने पञ्चनदवासियोंके धर्मपर दृष्टिपात करके कहा था कि 'धिक्कार है इन्हें !' ॥ १९ ॥

* विभिन्न जातियोंके कर्मको अपनानेके कारण वह उन जातियोंके नामसे निर्दिष्ट होने लगता है ।

व्रात्यानां दासमीयानां कृतेऽप्यशुभकर्मणाम्।
ब्रह्मणा निन्दिते धर्मे स त्वं लोके किमब्रवीः ॥ २० ॥

संस्कारहीन, जारज और पापकर्मी पञ्चनदवासियोंके धर्मकी जब ब्रह्माजीने सत्ययुगमें भी निन्दा की, तब तुम उसी देशके निवासी होकर जगत्‌में क्यों धर्मोपदेश करने चले हो ? ॥ २० ॥

इति पाञ्चनदं धर्ममवमेने पितामहः।
स्वधर्मस्थेषु वर्षेषु सोऽप्येतान् नाभ्यपूजयत् ॥ २१ ॥

पितामह ब्रह्माने पञ्चनदनिवासियोंके आचार-व्यवहाररूपी धर्मका इस प्रकार अनादर किया है। अपने धर्ममें तत्पर रहनेवाले अन्य देशोंकी तुलनामें उन्होंने इनका आदर नहीं किया ॥ २१ ॥

हन्त शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते।
कल्माषपादः सरसि निमज्जन् राक्षसोऽब्रवीत् ॥ २२ ॥

शल्य ! इन सब बातोंको अच्छी तरह जान लो। अभी इस विषयमें तुमसे कुछ और भी बातें बता रहा हूँ, जिन्हें सरोवरमें डूबते हुए राक्षस कल्माषपादने कहा था—॥२२॥

क्षत्रियस्य मलं भैक्ष्यं ब्राह्मणस्याश्रुतं मलम्।
मलं पृथिव्यां वाहीकाः स्त्रीणां मद्रस्त्रियो मलम् ॥ २३ ॥

'क्षत्रियका मल है भिक्षावृत्ति, ब्राह्मणका मल है वेदशास्त्रोंके विपरीत आचरण, पृथ्वीके मल हैं वाहीक और स्त्रियोंका मल हैं मद्रदेशकी स्त्रियाँ' ॥ २३ ॥

निमज्जमानमुद्धृत्य कश्चिद् राजा निशाचरम्।
अपृच्छत् तेन चाख्यातं प्रोक्तवांस्तन्निबोध मे ॥ २४ ॥

उस डूबते हुए राक्षसका किसी राजाने उद्धार करके उससे कुछ प्रश्न किया। उनके उस प्रश्नके उत्तरमें राक्षसने जो कुछ कहा था, उसे सुनो—॥ २४ ॥

मानुषाणां मलं म्लेच्छा म्लेच्छानां शौण्डिका मलम्।
शौण्डिकानां मलं षण्ढाः षण्ढानां राजयाजकाः ॥२५॥

'मनुष्योंके मल हैं म्लेच्छ, म्लेच्छोंके मल हैं शराब बेचनेवाले कलाल, कलालोंके मल हैं हींजड़े और हींजड़ोंके मल हैं राजपुरोहित ॥

राजयाजकयाज्यानां मद्रकाणां च यन्मलम्।
तद् भवेद् वै तव मलं यद्यस्मान्न विमुञ्चसि ॥ २६ ॥

'राजपुरोहितोंके पुरोहितों तथा मद्रदेशवासियोंका जो मल है, वह सब तुम्हें प्राप्त हो, यदि इस सरोवरसे तुम मेरा उद्धार न कर दो' ॥ २६ ॥

इति रक्षोपसृष्टेषु विषवीर्यहतेषु च।
राक्षसं भैषजं प्रोक्तं संसिद्धवचनोत्तरम् ॥ २७ ॥

जिनपर राक्षसोंका उपद्रव है तथा जो विषके प्रभावसे मारे गये हैं, उनके लिये यह उत्तम सिद्ध वाक्य ही राक्षसके प्रभावका निवारण करनेवाला एवं जीवनरक्षक औषध बताया गया है ॥ २७ ॥

ब्राह्मं पञ्चालाः कौरवेयास्तु धर्म्यं
सत्यं मत्स्याः शूरसेनाश्च यज्ञम्।
प्राच्या दासा वृषला दाक्षिणात्याः
स्तेना वाहीकाः संकरा वै सुराष्ट्राः ॥ २८ ॥

पाञ्चाल देशके लोग वेदोक्त धर्मका आश्रय लेते हैं, कुरुदेशके निवासी धर्मानुकूल कार्य करते हैं, मत्स्यदेशके लोग सत्य बोलते और शूरसेननिवासी यज्ञ करते हैं। पूर्वदेशके लोग दासकर्म करनेवाले, दक्षिणके निवासी वृषल, वाहीक देशके लोग चोर और सौराष्ट्रनिवासी वर्णसङ्कर होते हैं ॥ २८ ॥

कृतघ्नता परवित्तापहारो
मद्यपानं गुरुदारावमर्दः।
वाक्पारुष्यं गोवधो रात्रिचर्या
बहिर्गेहं परवस्त्रोपभोगः ॥ २९ ॥
येषां धर्मस्तान् प्रति नास्त्यधर्मो
ह्यारट्टानां पञ्चनदान् धिगस्तु।

कृतघ्नता, दूसरोंके धनका अपहरण, मदिरापान, गुरुपत्नी गमन, कटुवचनका प्रयोग, गोवध, रातके समय घरसे बाहर घूमना और दूसरोंके वस्त्रका उपभोग करना—ये सब जिनके धर्म हैं, उन आरट्टों और पञ्चनदवासियोंके लिये अधर्म नामकी कोई वस्तु है ही नहीं। उन्हें धिक्कार है !॥२९½

आ पाञ्चाल्येभ्यः कुरवो नैमिषाश्च
मत्स्याश्चैतेऽप्यथ जानन्ति धर्मम्।
अथोदीच्याश्चाङ्गका मागधाश्च
शिष्टान् धर्मानुपजीवन्ति वृद्धाः ॥ ३० ॥

पाञ्चाल, कौरव, नैमिष और मत्स्यदेशोंके निवासी धर्मको जानते हैं। उत्तर, अङ्ग तथा मगध देशोंके वृद्ध पुरुष शास्त्रोक्त धर्मोंका आश्रय लेकर जीवन निर्वाह करते हैं ॥३०॥

प्राचीं दिशं श्रिता देवा जातवेदःपुरोगमाः।
दक्षिणां पितरो गुप्तां यमेन शुभकर्मणा ॥ ३१ ॥
प्रतीचीं वरुणः पाति पालयानः सुरान् बली।
उदीचीं भगवान् सोमो ब्राह्मणैः सह रक्षति ॥ ३२ ॥

अग्नि आदि देवता पूर्वदिशाका आश्रय लेकर रहते हैं, पितर पुण्यकर्मा यमराजके द्वारा सुरक्षित दक्षिण दिशामें निवास करते हैं, बलवान् वरुण देवताओंका पालन करते हुए पश्चिम दिशाकी रक्षामें तत्पर रहते हैं और भगवान् सोम ब्राह्मणोंके साथ उत्तर दिशाकी रक्षा करते हैं ॥ ३१-३२ ॥

तथा रक्षःपिशाचाश्च हिमवन्तं नगोत्तमम्।
गुह्यकाश्च महाराज पर्वतं गन्धमादनम् ॥ ३३ ॥
ध्रुवः सर्वाणि भूतानि विष्णुः पाति जनार्दनः।

महाराज ! राक्षस, पिशाच और गुह्यक—ये गिरिराज हिमालय तथा गन्धमादन पर्वतकी रक्षा करते हैं और

अविनाशी एवं सर्वव्यापी भगवान् जनार्दन समस्त प्राणियों-का पालन करते हैं (परंतु बाहीक देशपर किसी भी देवता-का विशेष अनुग्रह नहीं है) ॥ ३३½ ॥

इङ्गितज्ञाश्च मगधाः प्रेक्षितज्ञाश्च कोसलाः ॥ ३४ ॥
अर्धोक्ताः कुरुपञ्चालाः शाल्वाः कृत्स्नानुशासनाः।
पर्वतीयाश्च विषमा यथैव शिबयस्तथा ॥ ३५ ॥

मगधदेशके लोग इशारेसे ही सब बात समझ लेते हैं, कोसलनिवासी नेत्रोंकी भावभङ्गीसे मनका भाव जान लेते हैं, कुरु तथा पाञ्चालदेशके लोग आधी बात कहनेपर ही पूरी बात समझ लेते हैं, शाल्वदेशके निवासी पूरी बात कह देनेपर उसे समझ पाते हैं, परंतु शिबिदेशके लोगोंकी भाँति पर्वतीय प्रान्तोंके निवासी इन सबसे विलक्षण होते हैं। वे पूरी बात कहनेपर भी नहीं समझ पाते ॥ ३४–३५ ॥

सर्वज्ञा यवना राजञ्शूराश्चैव विशेषतः।
म्लेच्छाः स्वसंज्ञानियता नानुक्तमितरे जनाः ॥ ३६ ॥
प्रतिरब्धास्तु वाहीका न च केचन मद्रकाः।

राजन्! यद्यपि यवनजातीय म्लेच्छ सभी उपायोंसे बात समझ लेनेवाले और विशेषतः शूर होते हैं, तथापि अपने द्वारा कल्पित संज्ञाओंपर ही अधिक आग्रह रखते हैं (वैदिक धर्मको नहीं मानते)। अन्य देशोंके लोग बिना कहे हुए कोई बात नहीं समझते हैं, परंतु बाहीक देशके लोग सब काम उलटे ही करते हैं (उनकी समझ उलटी ही होती है) और मद्रदेशके कुछ निवासी तो ऐसे होते हैं कि कुछ भी नहीं समझ पाते ॥ ३६½ ॥

स त्वमेतादृशः शल्य नोत्तरं वक्तुमर्हसि।
पृथिव्यां सर्वदेशानां मद्रको मलमुच्यते ॥ ३७ ॥

शल्य! ऐसे ही तुम हो। अब मेरी बातका जवाब नहीं दोगे। मद्रदेशके निवासीको पृथ्वीके सम्पूर्ण देशोंका मल बताया जाता है ॥ ३७ ॥

सीधोः पानं गुरुतल्पावमर्दो
भ्रूणहत्या परवित्तापहारः।
येषां धर्मस्तान् प्रति नास्त्यधर्म
आरट्टजान् पञ्चनदान् धिगस्तु ॥ ३८ ॥

मदिरापान, गुरुकी शय्याका उपभोग, भ्रूणहत्या और दूसरोंके धनका अपहरण—ये जिनके लिये धर्म हैं, उनके लिये अधर्म नामकी कोई वस्तु है ही नहीं। ऐसे आरट्ट और पञ्चनददेशके लोगोंको धिक्कार है! ॥ ३८ ॥

एतज्ज्ञात्वा जोषमास्स्व प्रतीपं मा स्म वै कृथाः।
मा त्वां पूर्वमहं हत्वा हनिष्ये केशवार्जुनौ ॥ ३९ ॥

यह जानकर तुम चुपचाप बैठे रहो। फिर कोई प्रतिकूल बात मुँहसे न निकालो। अन्यथा पहले तुम्हींको मारकर पीछे श्रीकृष्ण और अर्जुनका वध करूँगा ॥ ३९ ॥

शल्य उवाच

आतुराणां परित्यागः स्वदारसुतविक्रयः।
अङ्गे प्रवर्तते कर्ण येषामधिपतिर्भवान् ॥ ४० ॥

शल्य बोले—कर्ण! तुम जहाँके राजा बनाये गये हो, उस अङ्गदेशमें क्या होता है? अपने सगे-सम्बन्धी जब रोगसे पीड़ित हो जाते हैं तो उनका परित्याग कर दिया जाता है। अपनी ही स्त्री और बच्चोंको वहाँके लोग सरे बाजार बेचते हैं ॥ ४० ॥

रथातिरथसंख्यायां यत् त्वां भीष्मस्तदाब्रवीत्।
तान् विदित्वाऽऽत्मनो दोषान् निर्मन्युर्भव मा क्रुधः॥४१॥

उस दिन रथी और अतिरथियोंकी गणना करते समय भीष्मजीने तुमसे जो कुछ कहा था, उसके अनुसार अपने उन दोषोंको जानकर क्रोधरहित हो शान्त हो जाओ ॥ ४१ ॥

सर्वत्र ब्राह्मणाः सन्ति सन्ति सर्वत्र क्षत्रियाः।
वैश्याः शूद्रास्तथा कर्ण स्त्रियः साध्व्यश्च सुव्रताः॥४२॥

कर्ण! सर्वत्र ब्राह्मण हैं। सब जगह क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं तथा सभी देशोंमें उत्तम व्रतका पालन करनेवाली साध्वी स्त्रियाँ होती हैं ॥ ४२ ॥

रमन्ते चोपहासेन पुरुषाः पुरुषैः सह।
अन्योन्यमवतक्षन्तो देशे देशे समैथुनाः ॥ ४३ ॥

सभी देशोंके पुरुष दूसरे पुरुषोंके साथ बात करते समय उपहासके द्वारा एक दूसरेको चोट पहुँचाते हैं और स्त्रियोंके साथ रमण करते हैं ॥ ४३ ॥

परवाच्येषु निपुणः सर्वो भवति सर्वदा।
आत्मवाच्यं न जानीते जानन्नपि च मुह्यति ॥ ४४ ॥

दूसरोंके दोष बतानेमें सभी लोग सदा ही निपुण होते हैं; परंतु अपने दोषोंका उन्हें पता नहीं रहता, अथवा जानकर भी अनजान बने रहते हैं ॥ ४४ ॥

सर्वत्र सन्ति राजानः स्वं स्वं धर्ममनुव्रताः।
दुर्मनुष्यान् निगृह्णन्ति सन्ति सर्वत्र धार्मिकाः॥ ४५॥

सभी देशोंमें अपने-अपने धर्मका पालन करनेवाले राजा रहते हैं, जो दुष्टोंका दमन करते हैं तथा सर्वत्र ही धर्मात्मा मनुष्य निवास करते हैं ॥ ४५ ॥

न कर्ण देशसामान्यात् सर्वः पापं निषेवते।
यादृशाः स्वस्वभावेन देवा अपि न तादृशाः ॥ ४६ ॥

कर्ण! एक देशमें रहनेमात्रसे सब लोग पापका ही सेवन नहीं करते हैं। उसी देशमें मनुष्य अपने श्रेष्ठ शील-स्वभावके कारण ऐसे महापुरुष हो जाते हैं कि देवता भी उनकी बराबरी नहीं कर सकते ॥ ४६ ॥

संजय उवाच

ततो दुर्योधनो राजा कर्णशल्याववारयत्।
सखिभावेन राधेयं शल्यं स्वाञ्जल्यकेन च ॥ ४७ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तब राजा दुर्योधनने कर्ण तथा शल्य दोनोंको रोक दिया। उसने कर्णको तो मित्रभाव-

से समझाकर मना किया और शल्यको हाथ जोड़कर रोका ॥

ततो निवारितः कर्णो धार्तराष्ट्रेण मारिष।
कर्णोऽपि नोत्तरं प्राह शल्योऽप्यभिमुखः परान्।
ततः प्रहस्य राधेयः पुनर्याहीत्यचोदयत् ॥ ४८ ॥

मान्यवर ! दुर्योधनके मना करनेपर कर्णने कोई उत्तर नहीं दिया और शल्यने भी शत्रुओंकी ओर मुँह फेर लिया। तब राधापुत्र कर्णने हँसकर शल्यको रथ बढ़ानेकी आज्ञा देते हुए कहा—'चलो, चलो' ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण और शल्यका संवादविषयक पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

कौरव-सेनाकी व्यूहरचना, युधिष्ठिरके आदेशसे अर्जुनका आक्रमण, शल्यके द्वारा पाण्डवसेनाके प्रमुख वीरोंका वर्णन तथा अर्जुनकी प्रशंसा

संजय उवाच

ततः परानीकसहं व्यूहमप्रतिमं कृतम्।
समीक्ष्य कर्णः पार्थानां धृष्टद्युम्नाभिरक्षितम् ॥ १ ॥
प्रययौ रथघोषेण सिंहनादरवेण च।
वादित्राणां च निनदैः कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ २ ॥
वेपमान इव क्रोधाद् युद्धशौण्डः परंतपः।
प्रतिव्यूह्य महातेजा यथावद् भरतर्षभ ॥ ३ ॥
व्यधमत् पाण्डवीं सेनामासुरीं मघवानिव।
युधिष्ठिरं चाभ्यहनदपसव्यं चकार ह ॥ ४ ॥

संजय कहते हैं—भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर यह देखकर कि कुन्तीकुमारोंकी सेनाका अनुपम व्यूह बनाया गया है, जो शत्रुदलके आक्रमणको सह सकनेमें समर्थ और धृष्टद्युम्नद्वारा सुरक्षित है, शत्रुओंको संताप देनेवाला युद्धकुशल कर्ण रथकी घर्घराहट, सिंहकी-सी गर्जना तथा वाद्योंकी गम्भीर ध्वनिसे पृथ्वीको कँपाता और स्वयं भी क्रोधसे काँपता हुआ-सा आगे बढ़ा। उस महातेजस्वी वीरने शत्रुओंके मुकाबलेमें अपनी सेनाकी यथोचित व्यूहरचना करके, जैसे इन्द्र आसुरी सेनाका संहार करते हैं, उसी प्रकार पाण्डव-सेनाका विनाश आरम्भ कर दिया और युधिष्ठिरको भी घायल करके दाहिने कर दिया ॥ १–४ ॥

(तानि सर्वाणि सैन्यानि कर्णं दृष्ट्वा विशाम्पते।
बभूवुः सम्प्रहृष्टानि तावकानि युयुत्सया ॥
अश्रूयन्त ततो वाचस्तावकानां विशाम्पते।

प्रजानाथ ! (उस समय) आपके सभी सैनिक कर्णको देखकर युद्धकी इच्छासे हर्ष और उत्साहमें भर गये। राजन् ! उस समय आपके योद्धाओंकी कही हुई ये बातें सुनायी देने लगीं ॥

सैनिका ऊचुः

कर्णार्जुनमहायुद्धमेतदद्य भविष्यति।
अद्य दुर्योधनो राजा हतामित्रो भविष्यति ॥

सैनिक बोले—आज यह कर्ण और अर्जुनका महान् युद्ध होगा। आज राजा दुर्योधनके सारे शत्रु मार डाले जायँगे॥

अद्य कर्णं रणे दृष्ट्वा फाल्गुनो विद्रविष्यति।
अद्य तावद् वयं युद्धे कर्णस्यैवानुगामिनः ॥
कर्णबाणमयं भीमं युद्धं द्रक्ष्याम संयुगे।

आज अर्जुन रणभूमिमें कर्णको देखते ही भाग खड़े होंगे। आज युद्धमें हमलोग कर्णके ही अनुगामी होकर समराङ्गणमें कर्णके बाणोंसे भरा हुआ भीषण संग्राम देखेंगे ॥

चिरकालागतमिदमद्येदानीं भविष्यति ॥
अद्य द्रक्ष्याम संग्रामं घोरं देवासुरोपमम्।

दीर्घकालसे जिसकी सम्भावना की जाती थी, वह आज इसी समय उपस्थित होगा। आज हमलोग देवासुर-संग्रामके समान भयंकर युद्ध देखेंगे ॥

अद्येदानीं महद् युद्धं भविष्यति भयानकम् ॥
अद्येदानीं जयो नित्यमेकस्यैकस्य वा रणे।

आज अभी बड़ा भयानक युद्ध छिड़नेवाला है। आज रणभूमिमें इन दोनोंमेंसे एक-न-एककी विजय अवश्य होगी॥

अर्जुनं किल राधेयो वधिष्यति महारणे ॥
अथवा कं नरं लोके न स्पृशन्ति मनोरथाः।

निश्चय ही राधापुत्र कर्ण इस महायुद्धमें अर्जुनका वध कर डालेगा अथवा इस जगत्में किस मनुष्यके अंदर बड़े-बड़े मनसूबे नहीं उठते हैं ॥

संजय उवाच

इत्युक्त्वा विविधा वाचः कुरवः कुरुनन्दन।
आजघ्नुः पटहांश्चैव तूर्यांश्चैव सहस्रशः ॥

संजय कहते हैं—कुरुनन्दन ! इस तरह नाना प्रकारकी बातें कहकर कौरवोंने सहस्रों नगाड़े पीटे और दूसरे-दूसरे बाजे भी बजवाये ॥

भेरीनादांश्च विविधान् सिंहनादांश्च पुष्कलान्।
मुरजानां महाशब्दानानकानां महारवान् ॥

भाँति-भाँतिकी भेरी-ध्वनि हुई और बारंबार सैनिकोंद्वारा सिंहनाद किये गये। गम्भीर ध्वनि करनेवाले ढोल और मृदंगके महान् शब्द वहाँ सब ओर गूँजने लगे ॥

नृत्यमानाश्च बहवस्तर्जमानाश्च मारिष ।
अन्योन्यमभ्ययुर्युद्धे युद्धरङ्गगता नराः ॥

मान्यवर नरेश ! युद्धके रङ्गभूमिमें उतरे हुए बहुसंख्यक मनुष्य नृत्य तथा गर्जन-तर्जन करते हुए एक दूसरेका सामना करनेके लिये आगे बढ़े ॥

तेषां पदाता नागानां पादरक्षाः समन्ततः ।
पट्टिशासिधराः शूराश्चापबाणभुशुण्डिनः ॥
भिन्दिपालधराश्चैव शूलहस्ताः सुचक्रिणः ।
तेषां समागमो घोरो देवासुररणोपमः ॥)

उनमें शूरवीर पैदल सैनिक चारों ओरसे पट्टिश, खड्ग, धनुष-बाण, भुशुण्डी, भिन्दिपाल, त्रिशूल और चक्र हाथमें लेकर हाथियोंके पैरोंकी रक्षा कर रहे थे। उनमें देवासुर-संग्रामके समान भयंकर युद्ध छिड़ गया ॥

धृतराष्ट्र उवाच

कथं संजय राधेयः प्रत्यव्यूहत पाण्डवान् ।
धृष्टद्युम्नमुखान् सर्वान् भीमसेनाभिरक्षितान् ॥ ५ ॥
सर्वानेव महेष्वासानजय्यानमरैरपि ।
के च प्रपक्षौ पक्षौ वा मम सैन्यस्य संजय ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा संजय ! राधापुत्र कर्णने देवताओंके लिये भी अजेय तथा भीमसेनद्वारा सुरक्षित धृष्टद्युम्न आदि सम्पूर्ण महाधनुर्धर पाण्डव-वीरोंके जवाबमें किस प्रकार व्यूहका निर्माण किया ? संजय ! मेरी सेनाके दोनों पक्ष और प्रपक्षके रूपमें कौन-कौनसे वीर थे ? ॥ ५-६ ॥

प्रविभज्य यथान्यायं कथं वा समवस्थिताः ।
कथं पाण्डुसुताश्चापि प्रत्यव्यूहन्त मामकान् ॥ ७ ॥

वे किस प्रकार यथोचित रूपसे योद्धाओंका विभाजन करके खड़े हुए थे ? पाण्डवोंने भी मेरे पुत्रोंके मुकाबलेमें कैसे व्यूहका निर्माण किया था ? ॥ ७ ॥

कथं चैव महद् युद्धं प्रावर्तत सुदारुणम् ।
क्व च बीभत्सुरभवद् यत् कर्णोऽयाद् युधिष्ठिरम् ॥८॥

यह अत्यन्त भयंकर महायुद्ध किस प्रकार आरम्भ हुआ ! अर्जुन कहाँ थे कि कर्णने युधिष्ठिरपर आक्रमण कर दिया ? ॥

को ह्यर्जुनस्य सान्निध्ये शक्तोऽभ्येतुं युधिष्ठिरम् ।
सर्वभूतानि यो ह्येकः खाण्डवे जितवान् पुरा ।
कस्तमन्यस्तु राधेयात् प्रतियुद्ध्येज्जिजीविषुः ॥ ९ ॥

जिन्होंने पूर्वकालमें अकेले ही खाण्डववनमें समस्त प्राणियोंको परास्त कर दिया था, उन अर्जुनके समीप रहते हुए युधिष्ठिरपर कौन आक्रमण कर सकता था ? राधापुत्र कर्णके सिवा दूसरा कौन है, जो जीवित रहनेकी इच्छा रखते हुए भी अर्जुनके सामने युद्ध कर सके ॥ ९ ॥

संजय उवाच

शृणु व्यूहस्य रचनामर्जुनश्च यथा गतः ।
परिवार्य नृपं स्वं स्वं संग्रामश्चाभवद् यथा ॥ १० ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! व्यूहकी रचना किस प्रकार हुई थी, अर्जुन कैसे और कहाँ चले गये थे और अपने-अपने राजाको सब ओरसे घेरकर दोनों दलोंके योद्धाओंने किस प्रकार संग्राम किया था ? यह सब बताता हूँ, सुनिये ॥

कृपः शारद्वतो राजन् मागधाश्च तरस्विनः ।
सात्वतः कृतवर्मा च दक्षिणं पक्षमाश्रिताः ॥ ११ ॥
तेषां प्रपक्षे शकुनिरुलूकश्च महारथः ।
सादिभिर्विमलप्रासैस्तवानीकमरक्षताम् ॥ १२ ॥

नरेश्वर ! शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य, वेगशाली मागध वीर और सात्वतवंशी कृतवर्मा—ये व्यूहके दाहिने पक्षका आश्रय लेकर खड़े थे। महारथी शकुनि और उलूक चमचमाते हुए प्रासोंसे सुशोभित घुड़सवारोंके साथ उनके प्रपक्षमें स्थित हो आपके व्यूहकी रक्षा कर रहे थे ॥ ११-१२ ॥

गान्धारिभिरसम्भ्रान्तैः पर्वतीयैश्च दुर्जयैः ।
शलभानामिव व्रातैः पिशाचैरिव दुर्दृशैः ॥ १३ ॥

उनके साथ कभी घबराहटमें न पड़नेवाले गान्धारदेशीय सैनिक और दुर्जय पर्वतीय वीर भी थे। पिशाचोंके समान उन योद्धाओंकी ओर देखना कठिन हो रहा था और वे टिड्डीदलोंके समान यूथ बनाकर चलते थे ॥ १३ ॥

चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि रथानामनिवर्तिनाम् ।
संशप्तका युद्धशौण्डा वामं पार्श्वमपालयन् ॥ १४ ॥
समन्वितास्तव सुतैः कृष्णार्जुनजिघांसवः ।

श्रीकृष्ण और अर्जुनको मार डालनेकी इच्छावाले युद्धनिपुण संशप्तक योद्धा युद्धसे कभी पीछे न हटनेवाले रथी वीर थे। उनकी संख्या चौंतीस हजार थी। वे आपके पुत्रोंके साथ रहकर व्यूहके वाम पार्श्वकी रक्षा करते थे ॥ १४½ ॥

तेषां प्रपक्षाः काम्बोजाः शकाश्च यवनैः सह ॥ १५ ॥
निदेशात् सूतपुत्रस्य सरथाः साश्वपत्तयः ।
आह्वयन्तोऽर्जुनं तस्थुः केशवं च महाबलम् ॥ १६ ॥

उनके प्रपक्षस्थानमें सूतपुत्रकी आज्ञासे रथों, घुड़सवारों और पैदलोंसहित काम्बोज, शक तथा यवन महाबली श्रीकृष्ण और अर्जुनको ललकारते हुए खड़े थे ॥ १५-१६ ॥

मध्ये सेनामुखे कर्णोऽप्यवातिष्ठत दंशितः ।
चित्रवर्माङ्गदः स्रग्वी पालयन् वाहिनीमुखम् ॥ १७ ॥

कर्ण भी विचित्र कवच, अङ्गद और हार धारण करके सेनाके मुखभागकी रक्षा करता हुआ व्यूहके मुहानेपर ठीक बीचो-बीचमें खड़ा था ॥ १७ ॥

रक्ष्यमाणैः सुसंरब्धैः पुत्रैः शस्त्रभृतां वरः ।
वाहिनीं प्रमुखे वीरः सम्प्रकर्षन्नशोभत ॥ १८ ॥

अभ्यवर्तन्महाबाहुः सूर्यवैश्वानरप्रभः ।

सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी और शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाबाहु कर्ण रोष और जोशमें भरकर सेनापतिकी रक्षामें तत्पर हुए आपके पुत्रोंके साथ प्रमुख भागमें स्थित हो कौरवसेनाको अपने साथ खींचता हुआ बड़ी शोभा पा रहा था, वह शत्रुओंके सामने डटा हुआ था ॥ १८½ ॥

महाद्विपस्कन्धगतः पिङ्गाक्षः प्रियदर्शनः ॥ १९ ॥
दुःशासनो वृतः सैन्यैः स्थितो व्यूहस्य पृष्ठतः ।

व्यूहके पृष्ठभागमें पिङ्गल नेत्रोंवाला प्रियदर्शन दुःशासन सेनाओंसे घिरा हुआ खड़ा था । वह एक विशाल गजराजकी पीठपर विराजमान था ॥ १९½ ॥

तमन्वयान्महाराज स्वयं दुर्योधनो नृपः ॥ २० ॥
चित्रास्त्रैश्चित्रसंनाहैः सोदर्यैरभिरक्षितः ।
रक्ष्यमाणो महावीर्यैः सहितैर्मद्रकेकयैः ॥ २१ ॥
अशोभत महाराज देवैरिव शतक्रतुः ।

महाराज ! विचित्र अस्त्र और कवच धारण करनेवाले सहोदर भाइयों तथा एक साथ आये हुए मद्र और केकय-देशके महापराक्रमी योद्धाओंद्वारा सुरक्षित साक्षात् राजा दुर्योधन दुःशासनके पीछे-पीछे चल रहा था । महाराज ! उस समय देवताओंसे घिरे हुए देवराज इन्द्रके समान उसकी शोभा हो रही थी ॥ २०–२१½ ॥

अश्वत्थामा कुरूणां च ये प्रवीरा महारथाः ॥ २२ ॥
नित्यमत्ताश्च मातङ्गाः शूरैर्म्लेच्छैः समन्विताः ।
अन्वयुस्तद् रथानीकं क्षरन्त इव तोयदाः ॥ २३ ॥

अश्वत्थामा, कौरवपक्षके प्रमुख महारथी वीर, शौर्य-सम्पन्न म्लेच्छ सैनिकोंसे युक्त नित्य मतवाले हाथी वर्षा करनेवाले मेघोंके समान मदकी धारा बहाते हुए उस रथसेनाके पीछे-पीछे चल रहे थे ॥ २२–२३ ॥

ते ध्वजैर्वैजयन्तीभिर्ज्वलद्भिः परमायुधैः ।
सादिभिश्चास्थिता रेजुर्द्रुमवन्त इवाचलाः ॥ २४ ॥

वे हाथी ध्वजों, वैजयन्ती पताकाओं, प्रकाशमान अस्त्र-शस्त्रों तथा सवारोंसे सुशोभित हो वृक्षसमूहोंसे युक्त पर्वतोंके समान शोभा पा रहे थे ॥ २४ ॥

तेषां पदातिनागानां पादरक्षाः सहस्रशः ।
पट्टिशासिधराः शूरा बभूवुरनिवर्तिनः ॥ २५ ॥

पट्टिश और खड्ग धारण किये तथा युद्धसे कभी पीछे न हटनेवाले सहस्रों शूर सैनिक उन पैदलों एवं हाथियोंके पादरक्षक थे ॥ २५ ॥

सादिभिः स्यन्दनैर्नागैरधिकं समलङ्कृतः ।
स व्यूहराजो विबभौ देवासुरचमूपमः ॥ २६ ॥

अधिकाधिक सुसज्जित हाथियों, रथों और घुड़सवारोंसे सम्पन्न वह व्यूहराज देवताओं और असुरोंकी सेनाके समान सुशोभित हो रहा था ॥ २६ ॥

बार्हस्पत्यः सुविहितो नायकेन विपश्चिता ।
नृत्यतीव महाव्यूहः परेषां भयमादधत् ॥ २७ ॥

विद्वान् सेनापति कर्णके द्वारा बृहस्पतिकी बतायी हुई रीतिके अनुसार भलीभाँति रचा गया वह महान् व्यूह शत्रुओंके मनमें भय उत्पन्न करता हुआ नृत्य-सा कर रहा था ॥

तस्य पक्षप्रपक्षेभ्यो निष्पतन्ति युयुत्सवः ।
पत्त्यश्वरथमातङ्गाः प्रावृषीव बलाहकाः ॥ २८ ॥

उसके पक्ष और प्रपक्षोंसे युद्धके इच्छुक पैदल, घुड़सवार, रथी और गजारोही योद्धा उसी प्रकार निकल पड़ते थे, जैसे वर्षाकालमें मेघ प्रकट होते हैं ॥ २८ ॥

ततः सेनामुखे कर्णं दृष्ट्वा राजा युधिष्ठिरः ।
धनंजयममित्रघ्नमेकवीरमुवाच ह ॥ २९ ॥

तदनन्तर सेनाके मुहानेपर कर्णको खड़ा देख राजा युधिष्ठिरने शत्रुओंका संहार करनेवाले अद्वितीय वीर धनंजयसे इस प्रकार कहा—॥ २९ ॥

पश्यार्जुन महाव्यूहं कर्णेन विहितं रणे ।
युक्तं पक्षैः प्रपक्षैश्च परानीकं प्रकाशते ॥ ३० ॥

'अर्जुन ! रणभूमिमें कर्णद्वारा रचित उस महाव्यूहको देखो । पक्षों और प्रपक्षोंसे युक्त शत्रुकी वह व्यूहबद्ध सेना कैसी प्रकाशित हो रही है ! ॥ ३० ॥



तदेतद् वै समालोक्य प्रत्यमित्रं महद् बलम् ।
यथा नाभिभवत्यस्मांस्तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ ३१ ॥

'अतः इस विशाल शत्रुसेनाकी ओर देखकर तुम ऐसी नीतिका निर्माण करो, जिससे वह हमें परास्त न कर सके' ॥

एवमुक्तोऽर्जुनो राज्ञा प्राञ्जलिर्नृपमब्रवीत् ।

यथा भवानाह तथा तत् सर्वं न तदन्यथा ॥ ३२ ॥

राजा युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर अर्जुन हाथ जोड़कर उनसे बोले—'भारत ! आप जैसा कहते हैं वह सब वैसा ही है। उसमें थोड़ा-सा भी अन्तर नहीं है ॥ ३२ ॥

यस्त्वस्य विहितो घातस्तं करिष्यामि भारत।
प्रधानवध एवास्य विनाशस्तं करोम्यहम् ॥ ३३ ॥

'युद्धशास्त्रमें इस व्यूहके विनाशके लिये जो उपाय बताया गया है, उसीका सम्पादन करूँगा। प्रधान सेनापतिका वध होनेपर ही इसका विनाश हो सकता है; अतः मैं वही करूँगा' ॥ ३३ ॥

युधिष्ठिर उवाच

तस्मात् त्वमेव राधेयं भीमसेनः सुयोधनम्।
वृषसेनं च नकुलः सहदेवोऽपि सौबलम् ॥ ३४ ॥
दुःशासनं शतानीको हार्दिक्यं शिनिपुङ्गवः।
धृष्टद्युम्नो द्रोणसुतं स्वयं योत्स्याम्यहं कृपम् ॥ ३५ ॥

युधिष्ठिर बोले—अर्जुन ! तब तुम्हीं राधापुत्र कर्णके साथ भिड़ जाओ ! भीमसेन दुर्योधनसे, नकुल वृषसेनसे, सहदेव शकुनिसे, शतानीक दुःशासनसे, सात्यकि कृतवर्मासे और धृष्टद्युम्न अश्वत्थामासे युद्ध करें तथा स्वयं मैं कृपाचार्यके साथ युद्ध करूँगा ॥ ३४-३५ ॥

द्रौपदेया धार्तराष्ट्राञ्छिष्टान् सह शिखण्डिना।
ते ते च तांस्तानहितानस्माकं घ्नन्तु मामकाः ॥ ३६ ॥

द्रौपदीके पुत्र शिखण्डीके साथ रहकर धृतराष्ट्रके शेष बचे हुए पुत्रोंपर धावा करें। इसी प्रकार हमारे विभिन्न सैनिक हमलोगोंके उन-उन शत्रुओंका विनाश करें ॥ ३६ ॥

संजय उवाच

इत्युक्तो धर्मराजेन तथेत्युक्त्वा धनंजयः।
व्यादिदेश स्वसैन्यानि स्वयं चागाच्चमूमुखम् ॥ ३७ ॥

धर्मराजके ऐसा कहनेपर अर्जुनने 'तथास्तु' कहकर अपनी सेनाओंको युद्धके लिये आदेश दे दिया और स्वयं वे सेनाके मुहानेपर जा पहुँचे ॥ ३७ ॥

(धनंजयो महाराज दक्षिणं पक्षमास्थितः।
भीमसेनो महाबाहुर्वामं पक्षमुपाश्रितः ॥
सात्यकिर्द्रौपदेयाश्च स्वयं राजा च पाण्डवः।
व्यूहस्य प्रमुखे तस्थुः स्वेनानीकेन संवृताः ॥
स्वबलेनारिसैन्यं तत् प्रत्यवस्थाप्य पाण्डवः।
प्रत्यव्यूहत् पुरस्कृत्य धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥
तत् सादिनागकलिलं पदातिरथसंकुलम्।
धृष्टद्युम्नमुखं व्यूहमशोभत महाबलम् ॥)

महाराज ! अर्जुन दाहिने पक्षमें खड़े हुए और महाबाहु भीमसेनने बायें पक्षका आश्रय लिया। सात्यकि, द्रौपदीके पुत्र तथा स्वयं राजा युधिष्ठिर अपनी सेनासे घिरकर व्यूहके मुहानेपर खड़े हुए। युधिष्ठिरने अपनी सेना द्वारा प्रतिरोध करके शत्रुकी उस सेनाको ठहर जानेके लिये विवश कर दिया और धृष्टद्युम्न तथा शिखण्डीको आगे करके उसके मुकाबलेमें अपनी सेनाका व्यूह बनाया। घुड़सवारों, हाथियों, पैदलों और रथोंसे भरा हुआ वह प्रबल व्यूह, जिसके प्रमुख भागमें धृष्टद्युम्न थे, बड़ी शोभा पा रहा था ॥

अग्निर्वैश्वानरः पूर्वो ब्रह्मेद्धः सवितां गतः।
तस्माद् यः प्रथमं जातस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ३८ ॥

वेद-मन्त्रोंद्वारा प्रज्वलित और सबसे पहले प्रकट हुए सम्पूर्ण विश्वके नेता अग्निदेव, जो ब्रह्माजीके मुखसे सर्वप्रथम उत्पन्न हैं और इसी कारण देवता जिन्हें ब्राह्मण मानते हैं, अर्जुनके उस दिव्य रथके अश्व बने हुए थे ॥ ३८ ॥

ब्रह्मेशानेन्द्रवरुणान् क्रमशो योऽवहत् पुरा।
तमाद्यं रथमास्थाय प्रयातौ केशवार्जुनौ ॥ ३९ ॥

जो प्राचीन कालमें क्रमशः ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र और वरुणकी सवारीमें आ चुका था, उसी आदि रथपर बैठकर श्रीकृष्ण और अर्जुन शत्रुओंकी ओर बढ़े चले जा रहे थे ॥ ३९ ॥

अथ तं रथमायान्तं दृष्ट्वात्यद्भुतदर्शनम्।
उवाचाधिरथिं शल्यः पुनस्तं युद्धदुर्मदम् ॥ ४० ॥

अत्यन्त अद्भुत दिखायी देनेवाले उस रथको आते देख शल्यने रणदुर्मद सूतपुत्र कर्णसे पुनः इस प्रकार कहा— ॥ ४० ॥

अयं स रथ आयातः श्वेताश्वः कृष्णसारथिः।
दुर्वारः सर्वसैन्यानां विपाकः कर्मणामिव ॥ ४१ ॥
निघ्नन्नमित्रान् कौन्तेयो यं कर्ण परिपृच्छसि।

'कर्ण ! तुम जिन्हें बारंबार पूछ रहे थे, वे ही ये कुन्तीकुमार अर्जुन शत्रुओंका संहार करते हुए रथके साथ आ पहुँचे। उनके घोड़े श्वेत रंगके हैं, श्रीकृष्ण उनके सारथि हैं और वे कर्मोंके फलकी भाँति तुम्हारी सम्पूर्ण सेनाओंके लिये दुर्निवार्य हैं ॥ ४१½ ॥

श्रूयते तुमुलः शब्दो यथा मेघस्वनो महान् ॥ ४२ ॥
ध्रुवमेतौ महात्मानौ वासुदेवधनंजयौ।

'उनके रथका भयंकर शब्द ऐसा सुनायी दे रहा है, मानो महान् मेघकी गर्जना हो रही हो। निश्चय ही वे महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन ही आ रहे हैं ॥ ४२½ ॥

एष रेणुः समुद्भूतो दिवमावृत्य तिष्ठति ॥ ४३ ॥
चक्रनेमिप्रणुन्नेव कम्पते कर्ण मेदिनी।

'कर्ण ! यह ऊपर उठी हुई धूल आकाशको आच्छादित करके स्थित हो रही है और यह पृथ्वी अर्जुनके रथके पहियोंद्वारा संचालित-सी होकर काँपने लगी है ॥ ४३½ ॥

प्रवात्येष महावायुरभितस्तव वाहिनीम् ॥ ४४ ॥
क्रव्यादा व्याहरन्त्येते मृगाः क्रन्दन्ति भैरवम्।

'तुम्हारी सेनाके सब ओर यह प्रचण्ड वायु बह रही है, ये मांसभक्षी पशु-पक्षी बोल रहे हैं और मृगगण भयंकर क्रन्दन कर रहे हैं ॥ ४४½ ॥

पश्य कर्ण महाघोरं भयदं लोमहर्षणम् ॥ ४५ ॥
कबन्धं मेघसंकाशं भानुमावृत्य संस्थितम् ।

'कर्ण ! वह देखो, रोंगटे खड़े कर देनेवाला भयदायक मेघसदृश महाघोर कबन्धाकार केतु नामक ग्रह सूर्यमण्डलको घेरकर खड़ा है ॥ ४५½ ॥

पश्य यूथैर्बहुविधैर्मृगाणां सर्वतोदिशम् ॥ ४६ ॥
बलिभिर्दृप्तशार्दूलैरादित्योऽभिनिरीक्ष्यते ।

'देखो, चारों दिशाओंमें नाना प्रकारके पशुसमुदाय तथा बलवान् एवं स्वाभिमानी सिंह सूर्यकी ओर देख रहे हैं ॥

पश्य कङ्कांश्च गृध्रांश्च समवेतान् सहस्रशः ॥ ४७ ॥
स्थितानभिमुखान् घोरानन्योन्यमभिभाषतः ।

'देखो, सहस्रों घोर कङ्क और गीध एकत्र होकर सामने खड़े हैं और आपसमें कुछ बोल भी रहे हैं ॥ ४७½ ॥

रञ्जिताश्चामरा युक्तास्तव कर्ण महारथे ॥ ४८ ॥
प्रवराः प्रज्वलन्त्येते ध्वजश्चैव प्रकम्पते ।

'कर्ण ! तुम्हारे विशाल रथमें बँधे हुए ये रंगीन और श्रेष्ठ चँवर सहसा प्रज्वलित हो उठे हैं और तुम्हारी ध्वजा भी जोर-जोरसे हिलने लगी है ॥ ४८½ ॥

सवेपथून् हयान् पश्य महाकायान् महाजवान् ।४९।
प्लवमानान् दर्शनीयानाकाशे गरुडानिव ।

'देखो, ये तुम्हारे विशालकाय, महान् वेगशाली, दर्शनीय तथा आकाशमें गरुडके समान उड़नेवाले घोड़े थर्थर काँप रहे हैं ॥ ४९½ ॥

ध्रुवमेषु निमित्तेषु भूमिमाश्रित्य पार्थिवाः ॥ ५० ॥
स्वप्स्यन्ति निहताः कर्ण शतशोऽथ सहस्रशः ।

'कर्ण ! जब ऐसे अपशकुन प्रकट हो रहे हैं तो निश्चय ही आज सैकड़ों और हजारों नरेश मारे जाकर रणभूमिमें शयन करेंगे ॥ ५०½ ॥

शङ्खानां तुमुलः शब्दः श्रूयते लोमहर्षणः ॥ ५१ ॥
आनकानां च राधेय मृदङ्गानां च सर्वशः ।

'राधानन्दन ! सब ओर शङ्खों, ढोलों और मृदङ्गोंकी रोमाञ्चकारी तुमुल-ध्वनि सुनायी दे रही है ॥ ५१½ ॥

बाणशब्दान् बहुविधान् नराश्वरथनिस्वनान् ॥ ५२ ॥
ज्यातलत्रेषुशब्दांश्च शृणु कर्ण महात्मनाम् ।

'कर्ण ! बाणोंके भाँति-भाँतिके शब्द, मनुष्यों, घोड़ों और रथोंके कोलाहल तथा महामनस्वी वीरोंकी प्रत्यञ्चा और दस्तानोंके शब्द सुनो ॥ ५२½ ॥

हेमरूप्यप्रसृष्टानां वाससां शिल्पिनिर्मिताः ॥ ५३ ॥
नानावर्णा रथे भान्ति श्वसनेन प्रकम्पिताः ।

'रथोंकी ध्वजाओंपर सोने और चाँदीके तारोंसे खचित वस्त्रोंकी बनी हुई शिल्पियोंद्वारा निर्मित बहुरंगी पताकाएँ हवाके झोंकेसे हिलती हुई कैसी शोभा पा रही हैं ॥ ५३½ ॥

सहेमचन्द्रतारार्काः पताकाः किङ्किणीयुताः ॥ ५४ ॥
पश्य कर्णार्जुनस्यैताः सौदामन्य इवाम्बुदे ।

'कर्ण ! देखो, अर्जुनके रथकी इन पताकाओंमें सुवर्णमय चन्द्रमा, सूर्य और तारोंके चिह्न बने हुए हैं और छोटी-छोटी घंटियाँ लगी हुई हैं। रथपर फहराती हुई ये पताकाएँ मेघोंकी घटामें बिजलीके समान प्रकाशित हो रही हैं ॥५४½॥

ध्वजाः कणकणायन्ते वातेनाभिसमीरिताः ॥ ५५ ॥
विभ्राजन्ति रथे कर्ण विमाने दैवते यथा ।

'कर्ण ! देवताओंके विमान-जैसे रथपर ये ध्वज हवाके झोंके खा-खाकर कड़कड़ शब्द करते हुए शोभा पा रहे हैं ॥

सपताका रथाश्चैते पञ्चालानां महात्मनाम् ॥ ५६ ॥
पश्य कुन्तीसुतं वीरं बीभत्सुमपराजितम् ।
प्रधर्षयितुमायान्तं कपिप्रवरकेतनम् ॥ ५७ ॥

'ये महामनस्वी पाञ्चाल वीरोंके रथ हैं, जिनपर पताकाएँ फहरा रही हैं। यह देखो; श्रेष्ठ वानरयुक्त ध्वजावाले अपराजित वीर कुन्तीकुमार अर्जुन आक्रमण करनेके लिये इधर ही आ रहे हैं ॥ ५६-५७ ॥

एष ध्वजाग्रे पार्थस्य प्रेक्षणीयः समन्ततः ।
दृश्यते वानरो भीमो द्विषतामघवर्धनः ॥ ५८ ॥

'अर्जुनके ध्वजके अग्रभागपर यह सब ओरसे देखने योग्य भयंकर वानर दृष्टिगोचर होता है, जो शत्रुओंका दुःख बढ़ानेवाला है ॥ ५८ ॥

एतच्चक्रं गदा शार्ङ्गं शङ्खः कृष्णस्य धीमतः ।
अत्यर्थं भ्राजते कृष्णे कौस्तुभस्तु मणिस्ततः ॥ ५९ ॥

'ये बुद्धिमान् श्रीकृष्णके शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष अत्यन्त शोभा पा रहे हैं। उनके वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणि सबसे अधिक प्रकाशित हो रही है ॥ ५९ ॥

एष शङ्खगदापाणिर्वासुदेवोऽतिवीर्यवान् ।
वाहयन्नेति तुरगान् पाण्डुरान् वातरंहसः ॥ ६० ॥

'हाथोंमें शङ्ख और गदा धारण करनेवाले ये अत्यन्त पराक्रमी वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण वायुके समान वेगशाली श्वेत घोड़ोंको हाँकते हुए इधर ही आ रहे हैं ॥ ६० ॥

एतत् कूजति गाण्डीवं विकृष्टं सव्यसाचिना ।
एते हस्तवता मुक्ता घ्नन्त्यमित्राञ्शिताः शराः ॥ ६१ ॥

'सव्यसाची अर्जुनके हाथसे खींचे गये गाण्डीव धनुषकी यह टङ्कार होने लगी। उनके कुशल हाथोंसे छोड़े गये ये पैने बाण शत्रुओंके प्राण ले रहे हैं ॥ ६१ ॥

विशालायतताम्राक्षैः पूर्णचन्द्रनिभाननैः ।
एषा भूः कीर्यते राज्ञां शिरोभिरपलायिनाम् ॥ ६२ ॥

'युद्ध छोड़कर पीछे न हटनेवाले राजाओंके मस्तकोंसे रणभूमि पटती जा रही है। वे मस्तक पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुख और लाल-लाल विशाल नेत्रोंसे सुशोभित हैं ॥

एते सुपरिघाकाराः पुण्यगन्धानुलेपनाः।
उद्यतायुधशौण्डानां पात्यन्ते सायुधा भुजाः॥ ६३॥

'अस्त्र उठाये हुए युद्ध-कुशल वीरोंकी ये परिघ-जैसी मोटी और पवित्र सुगन्धयुक्त चन्दनसे चर्चित भुजाएँ आयुधोंसहित काटकर गिरायी जाने लगी हैं ॥ ६३ ॥

निरस्तनेत्रजिह्वान्त्रा वाजिनः सह सादिभिः।
पतिताः पात्यमानाश्च क्षितौ क्षीणाश्च शेरते॥ ६४॥

'जिनके नेत्र, जीभ और आँतें बाहर निकल आयी हैं, वे गिरे और गिराये जाते हुए घुड़सवारोंसहित घोड़े क्षत-विक्षत होकर पृथ्वीपर सो रहे हैं ॥ ६४ ॥

एते पर्वतशृङ्गाणां तुल्यरूपा हता द्विपाः।
संछिन्नभिन्नाः पार्थेन प्रपतन्त्यद्रयो यथा॥ ६५॥

'ये पर्वतशिखरोंके समान विशालकाय हाथी अर्जुनके द्वारा मारे जाकर छिन्न-भिन्न हो पर्वतोंके समान धराशायी हो रहे हैं ॥ ६५ ॥

गन्धर्वनगराकारा रथा हतनरेश्वराः।
विमानानीव पुण्यानि स्वर्गिणां निपतन्त्यमी॥ ६६॥

'जिनके नरेश मारे गये हैं, वे गन्धर्वनगरके समान विशाल रथ स्वर्गवासियोंके पुण्यमय विमानोंके समान नीचे गिर रहे हैं ॥ ६६ ॥

व्याकुलीकृतमत्यर्थं पश्य सैन्यं किरीटिना।
नानामृगसहस्राणां यूथं केसरिणा यथा॥ ६७॥

'देखो, किरीटधारी अर्जुनने कौरवसेनाको उसी प्रकार अत्यन्त व्याकुल कर दिया है, जैसे सिंह नाना जातिके सहस्रों मृगोंको भयभीत कर देता है ॥ ६७ ॥

घ्नन्त्येते पार्थिवान् वीराः पाण्डवाः समभिद्रुताः।
नागाश्वरथपत्त्योघांस्तावकान् समभिघ्नतः॥ ६८॥

'तुम्हारे सैनिकोंके आक्रमण करनेपर ये वीर पाण्डव-योद्धा अपने ऊपर प्रहार करनेवाले राजाओं तथा हाथी, घोड़े, रथ और पैदलसमूहोंको मार रहे हैं ॥ ६८ ॥

एष सूर्य इवाम्भोदैश्छन्नः पार्थो न दृश्यते।
ध्वजाग्रं दृश्यते त्वस्य ज्याशब्दश्चापि श्रूयते॥ ६९॥

'जैसे सूर्य बादलोंसे ढक जाते हैं, उसी प्रकार आड़में पड़ जानेके कारण ये अर्जुन नहीं दिखायी देते हैं; परंतु इनके ध्वजका अग्रभाग दीख रहा है और प्रत्यञ्चाकी टंकार भी सुनायी पड़ती है ॥ ६९ ॥

अद्य द्रक्ष्यसि तं वीरं श्वेताश्वं कृष्णसारथिम्।
निघ्नन्तं शात्रवान् संख्ये यं कर्ण परिपृच्छसि॥ ७०॥

'कर्ण ! तुम जिन्हें पूछ रहे थे, युद्धस्थलमें शत्रुओंका संहार करते हुए उन कृष्णसारथि श्वेतवाहन वीर अर्जुनको अभी देखोगे ॥ ७० ॥

अद्य तौ पुरुषव्याघ्रौ लोहिताक्षौ परंतपौ।
वासुदेवार्जुनौ कर्ण द्रष्टास्येकरथे स्थितौ॥ ७१॥

'कर्ण ! लाल नेत्रोंवाले उन शत्रुसंतापी पुरुषसिंह श्रीकृष्ण और अर्जुनको आज तुम एक रथपर बैठे हुए देखोगे ॥ ७१॥

सारथिर्यस्य वार्ष्णेयो गाण्डीवं यस्य कार्मुकम्।
तं चेद्धन्तासि राधेय त्वं नो राजा भविष्यसि॥ ७२॥

'राधापुत्र ! श्रीकृष्ण जिनके सारथि हैं और गाण्डीव जिनका धनुष है, उन अर्जुनको यदि तुमने मार लिया तो तुम हमारे राजा हो जाओगे ॥ ७२ ॥

एष संशप्तकाहूतस्तानेवाभिमुखो गतः।
करोति कदनं चैषां संग्रामे द्विषतां बली॥ ७३॥

'यह देखो, संशप्तकोंकी ललकार सुनकर महाबली अर्जुन उन्हींकी ओर चल पड़े और अब संग्राममें उन शत्रुओंका संहार कर रहे हैं' ॥ ७३ ॥

इति ब्रुवाणं मद्रेशं कर्णः प्राहातिमन्युना।
पश्य संशप्तकैः क्रुद्धैः सर्वतः समभिद्रुतः॥ ७४॥

ऐसी बातें कहते हुए मद्रराज शल्यसे कर्णने अत्यन्त क्रोधपूर्वक कहा—'तुम्हीं देखो न, रोषमें भरे हुए संशप्तकोंने उनपर चारों ओरसे आक्रमण कर दिया है ॥ ७४ ॥

एष सूर्य इवाम्भोदैश्छन्नः पार्थो न दृश्यते।
एतदन्तोऽर्जुनः शल्य निमग्नो योधसागरे॥ ७५॥

'यह लो, बादलोंसे ढके हुए सूर्यके समान अर्जुन अब नहीं दिखायी देते हैं। शल्य ! अब अर्जुनका यहीं अन्त हुआ समझो। वे योद्धाओंके समुद्रमें डूब गये' ॥ ७५ ॥

शल्य उवाच

वरुणं कोऽम्भसा हन्यादिन्धनेन च पावकम्।
को वानिलं निगृह्णीयात् पिबेद् वा को महार्णवम्॥ ७६॥

शल्यने कहा—कर्ण ! कौन ऐसा वीर है, जो जलसे वरुणको और ईंधनसे अग्निको मार सके ? वायुको कौन कैद कर सकता है अथवा महासागरको कौन पी सकता है ?॥ ७६॥

ईदृग्रूपमहं मन्ये पार्थस्य युधि विग्रहम्।
न हि शक्योऽर्जुनो जेतुं युधि सेन्द्रैः सुरासुरैः॥ ७७॥

मैं युद्धमें अर्जुनके स्वरूपको ऐसा ही समझता हूँ। संग्रामभूमिमें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओं तथा असुरोंके द्वारा भी अर्जुन नहीं जीते जा सकते ॥ ७७ ॥

अथवा परितोषस्ते वाचोक्त्वा सुमना भव।
न स शक्यो युधा जेतुमन्यं कुरु मनोरथम्॥ ७८॥

अथवा यदि तुम्हें इसीसे संतोष होता है तो वाणीमात्रसे अर्जुनके वधकी चर्चा करके मन-ही-मन प्रसन्न हो लो। परंतु वास्तवमें युद्धके द्वारा कोई भी अर्जुनको जीत नहीं

सकता। अतः अब तुम कोई और ही मनसूबा बाँधो ॥७८॥

बाहुभ्यामुद्धरेद् भूमिं दहेत् क्रुद्ध इमाः प्रजाः।
पातयेत् त्रिदिवाद् देवान् योऽर्जुनं समरे जयेत् ॥७९॥

जो समराङ्गणमें अर्जुनको जीत ले, वह मानो अपनी दोनों भुजाओंसे पृथ्वीको उठा सकता है, कुपित होनेपर इस सारी प्रजाको दग्ध कर सकता है तथा देवताओंको भी स्वर्गसे नीचे गिरा सकता है ॥ ७९ ॥

पश्य कुन्तीसुतं वीरं भीममक्लिष्टकारिणम्।
प्रभासन्तं महाबाहुं स्थितं मेरुमिवापरम् ॥ ८० ॥

लो देख लो, अनायास ही महान् कर्म करनेवाले भयंकर वीर महाबाहु कुन्तीकुमार अर्जुन दूसरे मेरुपर्वतके समान अविचल भावसे खड़े हुए प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ८० ॥

अमर्षी नित्यसंरब्धश्चिरं वैरमनुस्मरन्।
एष भीमो जयप्रेप्सुर्युधि तिष्ठति वीर्यवान् ॥ ८१ ॥

सदा क्रोधमें भरे रहकर दीर्घकालतक वैरको याद रखनेवाले ये अमर्षशील पराक्रमी भीमसेन विजयकी अभिलाषा लेकर युद्धके लिये खड़े हैं ॥ ८१ ॥

एष धर्मभृतां श्रेष्ठो धर्मराजो युधिष्ठिरः।
तिष्ठत्यसुकरः संख्ये परैः परपुरञ्जयः ॥ ८२ ॥

शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले, ये धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर भी युद्धभूमिमें खड़े हैं। शत्रुओंके लिये इन्हें पराजित करना आसान नहीं है ॥ ८२ ॥

एतौ च पुरुषव्याघ्रावश्विनाविव सोदरौ।
नकुलः सहदेवश्च तिष्ठतो युधि दुर्जयौ ॥ ८३ ॥

ये अश्विनीकुमारोंके समान सुन्दर दोनों भाई पुरुषप्रवर नकुल और सहदेव भी युद्धस्थलमें खड़े हैं। इन्हें पराजित करना अत्यन्त कठिन है ॥ ८३ ॥

अमी स्थिता द्रौपदेयाः पञ्च पञ्चाचला इव।
व्यवस्थिता योद्धुकामाः सर्वेऽर्जुनसमा युधि ॥ ८४ ॥

ये द्रौपदीके पाँचों पुत्र पाँच पर्वतोंके समान अविचल भावसे युद्धके लिये खड़े हैं। रणभूमिमें ये सब-के-सब अर्जुनके समान पराक्रमी हैं ॥ ८४ ॥

एते द्रुपदपुत्राश्च धृष्टद्युम्नपुरोगमाः।
स्फीताः सत्यजितो वीरास्तिष्ठन्ति परमौजसः ॥ ८५ ॥

ये समृद्धिशाली, सत्यविजयी तथा परम बलवान् द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न आदि वीर युद्धके लिये डटे हुए हैं ॥ ८५ ॥

असाविन्द्र इवासह्यः सात्यकिः सात्वतां वरः।
युयुत्सुरुपयात्यस्मान् क्रुद्धान्तकसमः पुरः ॥ ८६ ॥

वह सामने सात्वतवंशके श्रेष्ठ वीर सात्यकि, जो शत्रुओंके लिये इन्द्रके समान असह्य हैं, क्रोधमें भरे हुए यमराजके समान युद्धकी इच्छा लेकर सामनेसे हमलोगोंकी ओर आ रहे हैं ॥ ८६ ॥

इति संवदतोरेव तयोः पुरुषसिंहयोः।
ते सेने समसज्जेतां गङ्गायमुनवद् भृशम् ॥ ८७ ॥

राजन्! वे दोनों पुरुषसिंह शल्य और कर्ण इस प्रकार बातें कर ही रहे थे कि कौरव और पाण्डवकी दोनों सेनाएँ गङ्गा और यमुनाके समान एक दूसरीसे वेगपूर्वक जा मिलीं ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण और शल्यका संवादविषयक छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४६ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १६ श्लोक मिलाकर कुल १०३ श्लोक हैं)

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

कौरवों और पाण्डवोंकी सेनाओंका भयंकर युद्ध तथा अर्जुन और कर्णका पराक्रम

धृतराष्ट्र उवाच

तथा व्यूढेष्वनीकेषु संसक्तेषु च संजय।
संशप्तकान् कथं पार्थो गतः कर्णश्च पाण्डवान् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! इस प्रकार जब सारी सेनाओंकी व्यूहरचना हो गयी और दोनों दलोंके योद्धा परस्पर युद्ध करने लगे, तब कुन्तीपुत्र अर्जुनने संशप्तकोंपर और कर्णने पाण्डव-योद्धाओंपर कैसे धावा किया? ॥ १ ॥

एतद् विस्तरशो युद्धं प्रब्रूहि कुशलो ह्यसि।
न हि तृप्यामि वीराणां शृण्वानो विक्रमान् रणे ॥२॥

सूत! तुम युद्धसम्बन्धी इस समाचारका विस्तारपूर्वक वर्णन करो, क्योंकि इस कार्यमें कुशल हो। रणभूमिमें वीरोंके पराक्रमका वर्णन सुनकर मुझे तृप्ति नहीं हो रही है ॥२॥

संजय उवाच

तदास्थितमवज्ञाय प्रत्यमित्रबलं महत्।
अव्यूहतार्जुनो व्यूहं पुत्रस्य तव दुर्नये ॥ ३ ॥

संजयने कहा—महाराज! आपके पुत्रकी दुर्नीतिके कारण शत्रुओंकी उस विशाल सेनाको युद्धमें उपस्थित जानकर अर्जुनने अपनी सेनाका भी व्यूह बनाया ॥ ३ ॥

तत् सादिनागकलिलं पदातिरथसंकुलम्।
धृष्टद्युम्नमुखं व्यूहमशोभत महद् बलम् ॥ ४ ॥

घुड़सवारों, हाथियों, रथों तथा पैदलोंसे भरे हुए उस व्यूहके मुखभागमें धृष्टद्युम्न खड़े थे, जिससे उस विशाल सेनाकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ४ ॥

पारावतसवर्णाश्वश्चन्द्रादित्यसमद्युतिः।
पार्षतः प्रबभौ धन्वी कालो विग्रहवानिव ॥ ५ ॥

महाराज ! इस प्रकार समराङ्गणमें अलौकिक कर्म करनेवाले कर्णको पाञ्चाल रथियोंने चारों ओरसे घेर लिया ॥

ततः संधाय विशिखान् पञ्च भारत दुःसहान् ।
पञ्चालानवधीत् पञ्च कर्णो वैकर्तनो वृषः ॥ १४ ॥
भानुदेवं चित्रसेनं सेनाविन्दुं च भारत ।
तपनं शूरसेनं च पञ्चालानहनद् रणे ॥ १५ ॥

भारत ! तब उस रणक्षेत्रमें धर्मात्मा वैकर्तन कर्णने पाँच दुःसह बाणोंका संधान करके भानुदेव, चित्रसेन, सेनाविन्दु, तपन तथा शूरसेन—इन पाँच पाञ्चाल वीरोंका संहार कर दिया ॥ १४-१५ ॥

पञ्चालेषु च शूरेषु वध्यमानेषु सायकैः ।
हाहाकारो महानासीत् पञ्चालानां महाहवे ॥ १६ ॥

उस महासमरमें बाणोंद्वारा उन शूरवीर पाञ्चालोंके मारे जानेपर पाञ्चालोंकी सेनामें महान् हाहाकार मच गया ॥१६॥

परिवव्रुर्महाराज पञ्चालानां रथा दश ।
पुनरेव च तान् कर्णो जघानाशु पतत्त्रिभिः ॥१७ ॥

महाराज ! फिर दस पाञ्चाल महारथियोंने आकर कर्णको घेर लिया, परंतु कर्णने अपने बाणोंद्वारा पुनः उन सबको तत्काल मार डाला ॥ १७ ॥

चक्ररक्षौ तु कर्णस्य पुत्रौ मारिष दुर्जयौ ।
सुषेणः सत्यसेनश्च त्यक्त्वा प्राणानयुध्यताम् ॥ १८ ॥

माननीय नरेश ! कर्णके दो दुर्जय पुत्र सुषेण और चित्रसेन उसके पहियोंकी रक्षामें तत्पर हो प्राणोंका मोह छोड़कर युद्ध करते थे ॥ १८ ॥

पृष्ठगोप्ता तु कर्णस्य ज्येष्ठः पुत्रो महारथः ।
वृषसेनः स्वयं कर्णं पृष्ठतः पर्यपालयत् ॥ १९ ॥

कर्णका ज्येष्ठ पुत्र महारथी वृषसेन पृष्ठरक्षक था । वह स्वयं ही कर्णके पृष्ठभागकी रक्षा कर रहा था ॥ १९ ॥

धृष्टद्युम्नः सात्यकिश्च द्रौपदेया वृकोदरः ।
जनमेजयः शिखण्डी च प्रवीराश्च प्रभद्रकाः ॥ २० ॥
चेदिकेकयपाञ्चाला यमौ मत्स्याश्च दंशिताः ।
समभ्यधावन् राधेयं जिघांसन्तः प्रहारिणम् ॥ २१ ॥

उस समय प्रहार करनेवाले राधापुत्र कर्णको मार डालनेकी इच्छासे धृष्टद्युम्न, सात्यकि, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, भीमसेन, जनमेजय, शिखण्डी, प्रमुख प्रभद्रक वीर, चेदि, केकय और पाञ्चाल देशके योद्धा, नकुल-सहदेव तथा मत्स्यदेशीय सैनिकोंने कवचसे सुसज्जित हो उसपर धावा बोल दिया २०-२१

त एनं विविधैः शस्त्रैः शरधाराभिरेव च ।
अभ्यवर्षन् विमर्दन्तं प्रावृषीवाम्बुदा गिरिम् ॥ २२ ॥

जैसे वर्षा ऋतुमें बादल पर्वतपर जलकी धारा गिराते हैं, उसी प्रकार उन पाण्डव वीरोंने अपनी सेनाका मर्दन करनेवाले कर्णपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रों और बाणधाराओंकी वृष्टि की ॥ २२ ॥

पितरं तु परीप्सन्तः कर्णपुत्राः प्रहारिणः ।
त्वदीयाश्चापरे राजन् वीरा वीरानवारयन् ॥ २३ ॥

राजन् ! उस समय अपने पिताकी रक्षा चाहनेवाले प्रहारकुशल कर्णपुत्र तथा आपकी सेनाके दूसरे-दूसरे वीर पूर्वोक्त पाण्डववीरोंका निवारण करने लगे ॥ २३ ॥

सुषेणो भीमसेनस्य छित्त्वा भल्लेन कार्मुकम् ।
नाराचैः सप्तभिर्विद्ध्वा हृदि भीमं ननाद ह ॥ २४ ॥

सुषेणने एक भल्लसे भीमसेनके धनुषको काटकर उनकी छातीमें सात नाराचोंका प्रहार करके भयंकर गर्जना की २४

अथान्यद् धनुरादाय सुदृढं भीमविक्रमः ।
सज्यं वृकोदरः कृत्वा सुषेणस्याच्छिनद् धनुः॥ २५॥

तदनन्तर भीषण पराक्रम प्रकट करनेवाले भीमसेनने दूसरा सुदृढ़ धनुष लेकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और सुषेणके धनुषको काट डाला ॥ २५ ॥

विव्याध चैनं दशभिः क्रुद्धो नृत्यन्निवेषुभिः ।
कर्णं च तूर्णं विव्याध त्रिसप्तत्या शितैः शरैः ॥ २६॥

साथ ही कुपित हो नृत्य-से करते हुए भीमने दस बाणोंद्वारा उसे घायल कर दिया और तिहत्तर पैने बाणोंसे तुरंत ही कर्णको भी पीट दिया ॥ २६ ॥

भानुसेनं च दशभिः साश्वसूतायुधध्वजम् ।
पश्यतां सुहृदां मध्ये कर्णपुत्रमपातयत् ॥ २७॥

इतना ही नहीं, उन्होंने हितैषी सुहृदोंके बीचमें उनके देखते-देखते कर्णके पुत्र भानुसेनको दस बाणोंसे घोड़े, सारथि, आयुध और ध्वजोंसहित मार गिराया ॥ २७ ॥



क्षुरप्रणुन्नं तत्तस्य शिरश्चन्द्रनिभाननम् ।
शुभदर्शनमेवासीन्नालभ्रष्टमिवाम्बुजम् ॥ २८॥

भीमसेनके क्षुरसे कटा हुआ चन्द्रोपम मुखसे युक्त भानुसेनका वह मस्तक नालसे कटकर गिरे हुए कमलपुष्पके समान सुन्दर ही दिखायी दे रहा था ॥ २८ ॥

हत्वा कर्णसुतं भीमस्तावकान् पुनरार्दयत्।
कृपहार्दिक्ययोश्छित्त्वा चापौ तावप्यथार्दयत् ॥ २९ ॥

कर्णके पुत्रका वध करके भीमसेनने पुनः आपके सैनिकोंका मर्दन आरम्भ किया। कृपाचार्य और कृतवर्माके धनुषोंको काटकर उन दोनोंको भी गहरी चोट पहुँचायी॥२९॥

दुःशासनं त्रिभिर्विद्ध्वा शकुनिं षड्भिरायसैः।
उलूकं च पतत्रिं च चकार विरथावुभौ ॥ ३० ॥

तीन बाणोंसे दुःशासनको और छः लोहेके बाणोंसे शकुनिको भी घायल करके उलूक और पतत्रि दोनों वीरोंको रथहीन कर दिया ॥ ३० ॥

सुषेणं च हतोऽसीति ब्रुवन्नादत्त सायकम्।
तमस्य कर्णश्चिच्छेद त्रिभिश्चैनमताडयत् ॥ ३१ ॥

फिर सुषेणसे यह कहते हुए बाण हाथमें लिया कि 'अब तू मारा गया।' किंतु कर्णने भीमसेनके उस बाणको काट डाला और तीन बाणोंसे उन्हें भी घायल कर दिया ॥३१॥

अथान्यं परिजग्राह सुपर्वाणं सुतेजनम्।
सुषेणायासृजद् भीमस्तमप्यस्याच्छिनद् वृषः ॥ ३२ ॥

तब भीमसेनने सुन्दर गाँठ और तेज धारवाले दूसरे बाणको हाथमें लिया और उसे सुषेणपर चला दिया; किंतु कर्णने उसको भी काट डाला ॥ ३२ ॥

पुनः कर्णस्त्रिसप्तत्या भीमसेनमथेषुभिः।
पुत्रं परीप्सन् विव्याध क्रूरं क्रूरैर्जिघांसया ॥ ३३ ॥

फिर पुत्रके प्राण बचानेकी इच्छासे कर्णने क्रूर भीमसेनको मार डालनेकी अभिलाषा लेकर उनपर तिहत्तर बाणोंका प्रहार किया ॥ ३३ ॥

सुषेणस्तु धनुर्गृह्य भारसाधनमुत्तमम्।
नकुलं पञ्चभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ३४ ॥

तब सुषेणने महान् भारको सह लेनेवाले श्रेष्ठ धनुषको हाथमें लेकर नकुलकी दोनों भुजाओं और छातीमें पाँच बाणोंका प्रहार किया ॥ ३४ ॥

नकुलस्तं तु विंशत्या विद्ध्वा भारसहैर्दृढैः।
ननाद बलवन्नादं कर्णस्य भयमादधत् ॥ ३५ ॥

नकुलने भी भार सहन करनेमें समर्थ बीस सुदृढ़ बाणोंद्वारा सुषेणको घायल करके कर्णके मनमें भय उत्पन्न करते हुए बड़े जोरसे गर्जना की ॥ ३५ ॥

तं सुषेणो महाराज विद्ध्वा दशभिराशुगैः।
चिच्छेद च धनुः शीघ्रं क्षुरप्रेण महारथः ॥ ३६ ॥

महाराज ! महारथी सुषेणने दस बाणोंसे नकुलको चोट पहुँचाकर शीघ्र ही एक क्षुरप्रके द्वारा उनका धनुष काट दिया ॥ ३६ ॥

अथान्यद् धनुरादाय नकुलः क्रोधमूर्छितः।
सुषेणं नवभिर्बाणैर्वारयामास संयुगे ॥ ३७ ॥

तब क्रोधसे अचेत-से होकर नकुलने दूसरा धनुष हाथमें लिया और सुषेणको नौ बाण मारकर उसे युद्धस्थलमें आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ३७ ॥

स तु बाणैर्दिशो राजन्नाच्छाद्य परवीरहा।
आजघ्ने सारथिं चास्य सुषेणं च ततस्त्रिभिः ॥ ३८ ॥
चिच्छेद चास्य सुदृढं धनुर्भल्लैस्त्रिभिस्त्रिधा।

राजन् ! शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले नकुलने अपने बाणोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित करके फिर तीन बाणोंसे सुषेण और उसके सारथिको भी घायल कर दिया। साथ ही तीन भल्ल मारकर उसके सुदृढ़ धनुषके तीन टुकड़े कर डाले ॥ ३८½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय सुषेणः क्रोधमूर्छितः ॥ ३९ ॥
आविध्यन्नकुलं षष्ट्या सहदेवं च सप्तभिः।

तब क्रोधसे मूर्छित हुए सुषेणने दूसरा धनुष लेकर नकुलको साठ और सहदेवको सात बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ३९½ ॥

तद् युद्धं सुमहद् घोरमासीद् देवासुरोपमम् ॥ ४० ॥
निघ्नतां सायकैस्तूर्णमन्योन्यस्य वधं प्रति।

बाणोंद्वारा शीघ्रतापूर्वक एक दूसरेके वधके लिये चोट करते हुए वीरोंका वह महान् युद्ध देवासुर-संग्रामके समान भयंकर जान पड़ता था ॥ ४०½ ॥

(सात्यकिर्वृषसेनं तु विद्ध्वा सप्तभिरायसैः।
पुनर्विव्याध सप्तत्या सारथिं च त्रिभिः शरैः॥

सात्यकिने लोहेके बने हुए सात बाणोंसे वृषसेनको घायल करके फिर सत्तर बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी। साथ ही तीन बाणोंसे उसके सारथिको भी बींध डाला ॥

वृषसेनस्तु शैनेयं शरेणानतपर्वणा।
आजघान महाराज शङ्खदेशे महारथम् ॥

महाराज ! वृषसेनने झुकी हुई गाँठवाले बाणसे महारथी सात्यकिके कपालमें आघात किया ॥

शैनेयो वृषसेनेन पत्रिणा परिपीडितः।
कोपं चक्रे महाराज क्रुद्धो वेगं च दारुणम् ॥
जग्राहेषुवरान् वीरः शीघ्रं वै दश पञ्च च।)

महाराज ! वृषसेनके उस बाणसे अत्यन्त पीड़ित होनेपर वीर सात्यकिको बड़ा क्रोध हुआ। क्रुद्ध होनेपर उन्होंने भयंकर वेग प्रकट किया और शीघ्र ही पंद्रह श्रेष्ठ बाण हाथमें ले लिये ॥

सात्यकिर्वृषसेनस्य सूतं हत्वा त्रिभिः शरैः ॥ ४१ ॥
धनुश्चिच्छेद भल्लेन जघानाश्वांश्च सप्तभिः।
ध्वजमेकेषुणोन्मथ्य त्रिभिस्तं हृद्यताडयत् ॥ ४२ ॥

उनमेंसे तीन बाणोंद्वारा सात्यकिने वृषसेनके सारथिको

मारकर एकसे उसका धनुष काट दिया और सात बाणोंसे उसके घोड़ोंको मार डाला। फिर एक बाणसे उसके ध्वजाको खण्डित करके तीन बाणोंसे वृषसेनकी छातीमें भी चोट पहुँचायी ॥ ४१-४२ ॥

अथावसन्नः स्वरथे मुहूर्तात् पुनरुत्थितः ।
स रणे युयुधानेन विसूताश्वरथध्वजः ॥ ४३ ॥
कृतो जिघांसुः शैनेयं खड्गचर्मधृगभ्ययात् ।

इस प्रकार रणक्षेत्रमें युयुधानके द्वारा सारथि, अश्व एवं रथकी ध्वजासे रहित किया हुआ वृषसेन दो घड़ीतक अपने रथपर ही शिथिल-सा होकर बैठा रहा। फिर उठकर सात्यकिको मार डालनेकी इच्छासे ढाल और तलवार लेकर उनकी ओर बढ़ा ॥ ४३½ ॥

तस्य चापततः शीघ्रं वृषसेनस्य सात्यकिः ॥ ४४ ॥
वाराहकर्णैर्दशभिरविध्यदसिचर्मणी ।

इस प्रकार आक्रमण करते हुए वृषसेनकी तलवार और ढालको सात्यकिने नाराहकर्ण नामक दस बाणोंद्वारा शीघ्र ही खण्डित कर दिया ॥ ४४½ ॥

दुःशासनस्तु तं दृष्ट्वा विरथं व्यायुधं कृतम् ॥ ४५ ॥
आरोप्य स्वरथं तूर्णमपोवाह रणातुरम् ।

तब दुःशासनने वृषसेनको रथ और अस्त्र-शस्त्रोंसे हीन हुआ देख उसे रणसे व्याकुल हुआ मानकर तुरंत ही अपने रथपर बिठा लिया और वहाँसे दूर हटा दिया ॥ ४५½ ॥

अथान्यं रथमास्थाय वृषसेनो महारथः ॥ ४६ ॥
द्रौपदेयांस्त्रिसप्तत्या युयुधानं च पञ्चभिः ।
भीमसेनं चतुःषष्ट्या सहदेवं च पञ्चभिः ॥ ४७ ॥
नकुलं त्रिंशता बाणैः शतानीकं च सप्तभिः ।
शिखण्डिनं च दशभिर्धर्मराजं शतेन च ॥ ४८ ॥
एतांश्चान्यांश्च राजेन्द्र प्रवीराञ्जयगृद्धिनः ।
अभ्यर्दयन्महेष्वासः कर्णपुत्रो विशाम्पते ॥ ४९ ॥
कर्णस्य युधि दुर्धर्षस्ततः पृष्ठमपालयत् ।

तदनन्तर महारथी वृषसेनने दूसरे रथपर बैठकर तिहत्तर बाणोंसे द्रौपदीके पुत्रोंको, पाँचसे युयुधानको, चौंसठसे भीमसेनको, पाँचसे सहदेवको, तीस बाणोंसे नकुलको, सातसे शतानीकको, दस बाणोंसे शिखण्डीको और सौ बाणोंद्वारा धर्मराज युधिष्ठिरको घायल कर दिया। राजेन्द्र! प्रजानाथ! महाधनुर्धर कर्णपुत्रने विजयकी अभिलाषा रखनेवाले इन सभी प्रमुख वीरोंको तथा दूसरोंको भी अपने बाणोंसे पीड़ित कर दिया। तत्पश्चात् वह दुर्धर्ष वीर युद्धस्थलमें पुनः कर्णके पृष्ठभागकी रक्षा करने लगा ॥ ४६–४९½ ॥

दुःशासनं च शैनेयो नवैर्नवभिरायसैः ॥ ५० ॥
विसूताश्वरथं कृत्वा ललाटे त्रिभिरार्पयत् ।

सात्यकिने लोहेके बने हुए नौ नूतन बाणोंसे दुःशासनको सारथि, घोड़ों और रथसे वञ्चित करके उसके ललाटमें तीन बाण मारे ॥ ५०½ ॥

स त्वन्यं रथमास्थाय विधिवत् कल्पितं पुनः ॥ ५१ ॥
युयुधे पाण्डुभिः सार्धं कर्णस्याप्याययन् बलम् ।

दुःशासन विधिपूर्वक सजाये हुए दूसरे रथपर बैठकर कर्णके बलको बढ़ाता हुआ पुनः पाण्डवोंके साथ युद्ध करने लगा ॥ ५१½ ॥

धृष्टद्युम्नस्ततः कर्णमविध्यद् दशभिः शरैः ॥ ५२ ॥
द्रौपदेयास्त्रिसप्तत्या युयुधानस्तु सप्तभिः ।
भीमसेनश्चतुःषष्ट्या सहदेवश्च सप्तभिः ॥ ५३ ॥
नकुलस्त्रिंशता बाणैः शतानीकस्तु सप्तभिः ।
शिखण्डी दशभिर्वीरो धर्मराजः शतेन तु ॥ ५४ ॥

तदनन्तर धृष्टद्युम्नने कर्णको दस बाणोंसे बींध डाला। फिर द्रौपदीके पुत्रोंने तिहत्तर, सात्यकिने सात, भीमसेनने चौंसठ, सहदेवने सात, नकुलने तीस, शतानीकने सात, शिखण्डीने दस और वीर धर्मराज युधिष्ठिरने सौ बाण कर्णको मारे ॥५२-५४॥

एते चान्ये च राजेन्द्र प्रवीरा जयगृद्धिनः ।
अभ्यर्दयन् महेष्वासं सूतपुत्रं महामृधे ॥ ५५ ॥

राजेन्द्र! विजयकी अभिलाषा रखनेवाले इन प्रमुख वीरों तथा दूसरोंने भी उस महासमरमें महाधनुर्धर सूतपुत्र कर्णको बाणोंद्वारा पीड़ित कर दिया ॥ ५५ ॥

तान् सूतपुत्रो विशिखैर्दशभिर्दशभिः शरैः ।
रथेनानुचरन् वीरः प्रत्यविध्यदरिंदमः ॥ ५६ ॥

रथसे विचरनेवाले शत्रुदमन वीर सूतपुत्र कर्णने भी उन सबको दस-दस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ५६ ॥

तत्रास्त्रवीर्यं कर्णस्य लाघवं च महात्मनः ।
अपश्याम महाभाग तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ५७ ॥

महाभाग! हमने महामना कर्णके अस्त्र-बल और फुर्तीको वहाँ अपनी आँखों देखा था। वह सब कुछ अद्भुत-सा प्रतीत होता था ॥ ५७ ॥

न ह्याददानं ददृशुः संदधानं च सायकान् ।
विमुञ्चन्तं च संरम्भादपश्यन्त हतानरीन् ॥ ५८ ॥

वह कब तरकससे बाण निकालता है, कब धनुषपर रखता है और कब क्रोधपूर्वक शत्रुओंपर छोड़ देता है, यह सब किसीने नहीं देखा। सब लोग मारे जाते हुए शत्रुओंको ही देखते थे ॥ ५८ ॥

(प्रतीच्यां दिशि तं दृष्ट्वा प्राच्यां पश्याम लाघवात् ।
न तं पश्याम राजेन्द्र क नु कर्णोऽधितिष्ठति ॥

राजेन्द्र! हमलोग एक ही क्षणमें कर्णको पश्चिम दिशामें देखकर उसकी फुर्तीके कारण उसे पूर्व दिशामें भी देखते थे। इस समय कर्ण कहाँ खड़ा है, यह हमलोग नहीं देख पाते थे।

इषूनेव स्म पश्यामो विनिकीर्णान् समन्ततः।
छादयानान् दिशो राजञ्शलभानामिव व्रजान्॥)

राजन्! सब ओर बिखरे हुए उसके बाण ही हमें दिखायी देते थे, जो टिड्डीदलोंके समान सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित किये रहते थे॥

द्यौर्वियद्भूर्दिशश्चैव प्रपूर्णा निशितैः शरैः।
अरुणाभ्रावृताकारं तस्मिन् देशे बभौ वियत्॥ ५९॥

द्युलोक, आकाश, भूमि और सम्पूर्ण दिशाएँ पैने बाणोंसे खचाखच भर गयी थीं। उस प्रदेशमें आकाश अरुण रंगके बादलोंसे ढका हुआ-सा जान पड़ता था॥ ५९॥

नृत्यन्निव हि राधेयश्चापहस्तः प्रतापवान्।
यैर्विद्धः प्रत्यविद्ध्यत् तानेकैकं त्रिगुणैः शरैः॥ ६०॥

प्रतापी राधापुत्र कर्ण हाथमें धनुष लेकर नृत्य-सा कर रहा था। जिन-जिन योद्धाओंने उसे एक बाणसे घायल किया, उनमेंसे प्रत्येकको उसने तीन गुने बाणोंसे बींध डाला॥६०॥

दशभिर्दशभिश्चैतान् पुनर्विद्ध्वा ननाद च।
साश्वसूतरथच्छत्रांस्ततस्ते विवरं ददुः॥ ६१॥

फिर दस-दस बाणोंसे घोड़ों, सारथि, रथ और छत्रोंसहित इन सबको घायल करके कर्णने सिंहके समान दहाड़ना आरम्भ किया। फिर तो उन शत्रुओंने उसे आगे बढ़नेके लिये जगह दे दी॥ ६१॥

तान् प्रमथ्य महेष्वासान् राधेयः शरवृष्टिभिः।
राजानीकमसम्बाधं प्राविशच्छत्रुकर्शनः॥ ६२॥

शत्रुओंका संहार करनेवाले राधापुत्र कर्णने अपने बाणोंकी वर्षाद्वारा उन महाधनुर्धरोंको रौंदकर राजा युधिष्ठिरकी सेनामें बेरोक-टोक प्रवेश किया॥ ६२॥

स रथांस्त्रिशतं हत्वा चेदीनामनिवर्तिनाम्।
राधेयो निशितैर्बाणैस्ततोऽभ्याच्छंद् युधिष्ठिरम्॥ ६३॥

उसने युद्धसे पीछे न हटनेवाले तीन सौ चेदिदेशीय रथियोंको अपने पैने बाणोंद्वारा मारकर युधिष्ठिरपर आक्रमण किया॥ ६३॥

ततस्ते पाण्डवा राजञ्शिखण्डी चससात्यकिः।
राधेयात् परिरक्षन्तो राजानं पर्यवारयन्॥ ६४॥

राजन्! तब पाण्डवों, शिखण्डी और सात्यकिने राधापुत्र कर्णसे राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करनेके लिये उन्हें चारों ओरसे घेर लिया॥ ६४॥

तथैव तावकाः सर्वे कर्णं दुर्वारणं रणे।
यत्ताः शूरा महेष्वासाः पर्यरक्षन्त सर्वशः॥ ६५॥

इसी प्रकार आपके सभी महाधनुर्धर शूरवीर योद्धा रणमें अनिवार्य गतिसे विचरनेवाले कर्णकी सब ओरसे प्रयत्नपूर्वक रक्षा करने लगे॥ ६५॥

नानावादित्रघोषाश्च प्रादुरासन् विशाम्पते।
सिंहनादश्च संजज्ञे शूराणामभिगर्जताम्॥ ६६॥

प्रजानाथ! उस समय नाना प्रकारके रणवाद्योंकी ध्वनि होने लगी और सब ओरसे गर्जना करनेवाले शूरवीरोंका सिंहनाद सुनायी देने लगा॥ ६६॥

ततः पुनः समाजग्मुरभीताः कुरुपाण्डवाः।
युधिष्ठिरमुखाः पार्थाः सूतपुत्रमुखा वयम्॥ ६७॥

तदनन्तर पुनः कौरव और पाण्डव योद्धा निर्भय होकर एक दूसरेसे भिड़ गये। एक ओर युधिष्ठिर आदि कुन्तीपुत्र थे और दूसरी ओर कर्ण आदि हमलोग॥ ६७॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४८॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ५½ श्लोक मिलाकर कुल ७२½ श्लोक हैं)

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कर्ण और युधिष्ठिरका संग्राम, कर्णकी मूर्छा, कर्णद्वारा युधिष्ठिरकी पराजय और तिरस्कार तथा पाण्डवोंके हजारों योद्धाओंका वध और रक्त-नदीका वर्णन तथा पाण्डव महारथियोंद्वारा कौरव-सेनाका विध्वंस और उसका पलायन

संजय उवाच

विदार्य कर्णस्तां सेनां युधिष्ठिरमथाद्रवत्।
रथहस्त्यश्वपत्तीनां सहस्रैः परिवारितः॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! सहस्रों रथ, हाथी, घोड़े और पैदलोंसे घिरे हुए कर्णने उस सेनाको विदीर्ण करके युधिष्ठिरपर धावा किया॥ १॥

नानायुधसहस्राणि प्रेरितान्यरिभिर्वृषः।
छित्त्वा बाणशतैरुग्रैस्तानविध्यदसम्भ्रमात्॥ २॥

धर्मात्मा कर्णने शत्रुओंके चलाये हुए नाना प्रकारके हजारों अस्त्र-शस्त्रोंको काटकर उन सबको सैकड़ों उग्र बाणोंद्वारा बिना किसी घबराहटके बींध डाला॥ २॥

निचकर्त शिरांस्येषां बाहूनूरूंश्च सूतजः।
ते हता वसुधां पेतुर्भग्नाश्चान्ये विदुद्रुवुः॥ ३॥

सूतपुत्रने पाण्डव सैनिकोंके मस्तकों, भुजाओं और जाँघोंको काट डाला। वे मरकर पृथ्वीपर गिर पड़े और दूसरे बहुत-से योद्धा घायल होकर भाग गये॥ ३॥

द्राविडास्तु निषादास्तु पुनः सात्यकिचोदिताः।
अभ्यद्रवञ्जिघांसन्तः पत्तयः कर्णमाहवे॥ ४॥

तब सात्यकिसे प्रेरित होकर द्रविड और निषाद देशोंके पैदल सैनिक कर्णको युद्धमें मार डालनेकी इच्छासे पुनः उसपर टूट पड़े ॥ ४ ॥

ते विबाहुशिरस्त्राणाः प्रहताः कर्णसायकैः ।
पेतुः पृथिव्यां युगपच्छिन्नं शालवनं यथा ॥ ५ ॥

परंतु कर्णके बाणोंसे घायल होकर बाहु, मस्तक और कवच आदिसे रहित हो वे कटे हुए शालवनके समान एक साथ ही पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ५ ॥

एवं योधशतान्याजौ सहस्राण्ययुतानि च ।
हतानीयुर्महीं देहैर्यशसा पूरयन् दिशः ॥ ६ ॥

इस प्रकार युद्धस्थलमें मारे गये सैकड़ों, हजार और दस हजार योद्धा शरीरसे तो इस पृथ्वीपर गिर पड़े, किंतु अपने यशसे उन्होंने सम्पूर्ण दिशाओंको पूर्ण कर दिया ॥ ६ ॥

अथ वैकर्तनं कर्णं रणे क्रुद्धमिवान्तकम् ।
रुरुधुः पाण्डुपाञ्चाला व्याधिं मन्त्रौषधैरिव ॥ ७ ॥

तदनन्तर रणक्षेत्रमें कुपित हुए यमराजके समान वैकर्तन कर्णको पाण्डवों और पाञ्चालोंने अपने बाणोंद्वारा उसी प्रकार रोक दिया, जैसे चिकित्सक मन्त्रों और औषधोंसे रोगोंकी रोक-थाम कर लेते हैं ॥ ७ ॥

स तान् प्रमृद्याभ्यपतत् पुनरेव युधिष्ठिरम् ।
मन्त्रौषधिक्रियातीतो व्याधिरत्युल्बणो यथा ॥ ८ ॥

परंतु मन्त्र और ओषधियोंकी क्रियासे असाध्य भयानक रोगकी भाँति कर्णने उन सबको रौंदकर पुनः युधिष्ठिरपर ही आक्रमण किया ॥ ८ ॥

स राजगृद्धिभी रुद्धः पाण्डुपाञ्चालकेकयैः ।
नाशकत् तानतिक्रान्तुं मृत्युर्ब्रह्मविदो यथा ॥ ९ ॥

राजाकी रक्षा चाहनेवाले पाण्डवों, पाञ्चालों और केकयोंने पुनः कर्णको रोक दिया। जैसे मृत्यु ब्रह्मवेत्ताओंको नहीं लाँघ सकती, उसी प्रकार कर्ण उन सबको लाँघकर आगे न बढ़ सका ॥ ९ ॥

ततो युधिष्ठिरः कर्णमदूरस्थं निवारितम् ।
अब्रवीत् परवीरघ्नं क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ १० ॥

उस समय युधिष्ठिरने क्रोधसे लाल आँखें करके शत्रु-वीरोंका संहार करनेवाले कर्णसे, जो पास ही रोक दिया गया था, इस प्रकार कहा— ॥ १० ॥

कर्ण कर्ण वृथादृष्टे सूतपुत्र वचः शृणु ।
सदा स्पर्धसि संग्रामे फाल्गुनेन तरस्विना ॥ ११ ॥
तथास्मान् बाधसे नित्यं धार्तराष्ट्रमते स्थितः ।

'कर्ण ! कर्ण ! मिथ्यादर्शी सूतपुत्र ! मेरी बात सुनो । तुम संग्राममें वेगशाली वीर अर्जुनके साथ सदा डाह रखते और दुर्योधनके मतमें रहकर सर्वदा हमें बाधा पहुँचाते हो ॥ ११½ ॥

यद् बलं यच्च ते वीर्यं प्रद्वेषो यस्तु पाण्डुषु ॥ १२ ॥
तत् सर्वं दर्शयस्वाद्य पौरुषं महदास्थितः ।
युद्धश्रद्धां च तेऽद्याहं विनेष्यामि महाहवे ॥ १३ ॥

'परंतु आज तुम्हारे पास जितना बल हो, जो पराक्रम हो तथा पाण्डवोंके प्रति तुम्हारे मनमें जो विद्वेष हो, वह सब महान् पुरुषार्थका आश्रय लेकर दिखाओ । आज महासमरमें मैं तुम्हारा युद्धका हौसला मिटा दूँगा' ॥ १२-१३ ॥

एवमुक्त्वा महाराज कर्णं पाण्डुसुतस्तदा ।
सुवर्णपुङ्खैर्दशभिर्विव्याधायस्मयैः शरैः ॥ १४ ॥

महाराज ! ऐसा कहकर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने लोहेके बने हुए सुवर्णपंखयुक्त दस बाणोंद्वारा कर्णको बींध डाला ॥ १४ ॥

तं सूतपुत्रो दशभिः प्रत्यविद्ध्यदरिंदमः ।
वत्सदन्तैर्महेष्वासः प्रहसन्निव भारत ॥ १५ ॥

भारत ! तब शत्रुओंका दमन करनेवाले महाधनुर्धर सूतपुत्रने हँसते हुए-से वत्सदन्त नामक दस बाणोंद्वारा युधिष्ठिरको घायल कर दिया ॥ १५ ॥

सोऽवज्ञाय तु निर्विद्धः सूतपुत्रेण मारिष ।
प्रजज्वाल ततः क्रोधाद्धविषेव हुताशनः ॥ १६ ॥

माननीय नरेश ! सूतपुत्रके द्वारा अवज्ञापूर्वक घायल किये जानेपर फिर राजा युधिष्ठिर घीकी आहुतिसे प्रज्वलित हुई अग्निके समान क्रोधसे जल उठे ॥ १६ ॥

ज्वालामालापरिक्षिप्तो राज्ञो देहो व्यदृश्यत ।
युगान्ते दग्धुकामस्य संवर्ताग्नेरिवापरः ॥ १७ ॥

ज्वालामालाओंसे घिरा हुआ युधिष्ठिरका शरीर प्रलय-कालमें जगत्को दग्ध करनेकी इच्छावाले द्वितीय संवर्तक अग्निके समान दिखायी देता था ॥ १७ ॥

ततो विस्फार्य सुमहच्चापं हेमपरिष्कृतम् ।
समाधत्त शितं बाणं गिरीणामपि दारणम् ॥ १८ ॥

तदनन्तर उन्होंने अपने सुवर्णभूषित विशाल धनुषको फैलाकर उसपर पर्वतोंको भी विदीर्ण कर देनेवाले तीखे बाणका संधान किया ॥ १८ ॥

ततः पूर्णायतोत्कृष्टं यमदण्डनिभं शरम् ।
मुमोच त्वरितो राजा सूतपुत्रजिघांसया ॥ १९ ॥

तत्पश्चात् राजा युधिष्ठिरने सूतपुत्रको मार डालनेकी इच्छासे तुरंत ही धनुषको पूर्णरूपसे खींचकर वह यमदण्डके समान बाण उसके ऊपर छोड़ दिया ॥ १९ ॥

स तु वेगवता मुक्तो बाणो वज्राशनिस्वनः ।
विवेश सहसा कर्णं सव्ये पार्श्वे महारथम् ॥ २० ॥

वेगवान् युधिष्ठिरका छोड़ा हुआ वज्र और बिजलीके समान शब्द करनेवाला वह बाण सहसा महारथी कर्णकी बायीं पसलीमें घुस गया ॥ २० ॥

स तु तेन प्रहारेण पीडितः प्रमुमोह वै ।
स्रस्तगात्रो महाबाहुर्धनुरुत्सृज्य स्यन्दने ॥ २१ ॥

उस प्रहारसे पीड़ित हो महाबाहु कर्ण धनुष छोड़कर रथपर ही मूर्छित हो गया । उसका सारा शरीर शिथिल हो गया था ॥ २१ ॥

गतासुरिव निश्चेताः शल्यस्याभिमुखोऽपतत् ।
राजापि भूयो नाजघ्ने कर्णं पार्थहितेप्सया ॥ २२ ॥

वह शल्यके सामने ही अचेत होकर ऐसे गिर पड़ा, मानो उसके प्राण निकल गये हों । राजा युधिष्ठिरने अर्जुनके हितकी इच्छासे कर्णपर पुनः प्रहार नहीं किया ॥ २२ ॥

ततो हाहाकृतं सर्वं धार्तराष्ट्रबलं महत् ।
विवर्णमुखभूयिष्ठं कर्णं दृष्ट्वा तथागतम् ॥ २३ ॥

तब कर्णको उस अवस्थामें देखकर दुर्योधनकी सारी विशाल सेनामें हाहाकार मच गया और अधिकांश सैनिकोंके मुखका रंग विषादसे फीका पड़ गया ॥ २३ ॥

सिंहनादश्च संजज्ञे क्ष्वेलाः किलकिलास्तथा ।
पाण्डवानां महाराज दृष्ट्वा राज्ञः पराक्रमम् ॥ २४ ॥

महाराज ! राजाका वह पराक्रम देखकर पाण्डव-सैनिकोंमें सिंहनाद, आनन्द, कलरव और किलकिल शब्द होने लगा ॥

प्रतिलभ्य तु राधेयः संज्ञां नातिचिरादिव ।
दध्रे राजविनाशाय मनः क्रूरपराक्रमः ॥ २५ ॥

तब क्रूर पराक्रमी राधापुत्र कर्णने थोड़ी ही देरमें होशमें आकर राजा युधिष्ठिरको मार डालनेका विचार किया ॥२५॥

स हेमविकृतं चापं विस्फार्य विजयं महत् ।
अवाकिरदमेयात्मा पाण्डवं निशितैः शरैः ॥ २६ ॥

उस अमेय आत्मबलसे सम्पन्न वीरने विजय नामक अपने विशाल सुवर्ण-जटित धनुषको खींचकर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको पैने बाणोंसे ढक दिया ॥ २६ ॥

ततः क्षुराभ्यां पाञ्चाल्यौ चक्ररक्षौ महात्मनः ।
जघान चन्द्रदेवं च दण्डधारं च संयुगे ॥ २७ ॥

तत्पश्चात् दो क्षुरोंसे महात्मा युधिष्ठिरके चक्ररक्षक दो पाञ्चाल वीर चन्द्रदेव और दण्डधारको युद्धस्थलमें मार डाला ॥२७॥

तावुभौ धर्मराजस्य प्रवीरौ परिपार्श्वतः ।
रथाभ्याशे चकाशेते चन्द्रस्येव पुनर्वसू ॥ २८ ॥

धर्मराजके रथके समीप पार्श्वभागोंमें वे दोनों प्रमुख पाञ्चाल वीर चन्द्रमाके पास रहनेवाले दो पुनर्वसु नामक नक्षत्रोंके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ २८ ॥

युधिष्ठिरः पुनः कर्णमविद्ध्यत् त्रिंशता शरैः ।
सुषेणं सत्यसेनं च त्रिभिस्त्रिभिरताडयत् ॥ २९ ॥

युधिष्ठिरने पुनः तीस बाणोंसे कर्णको बींध डाला तथा सुषेण और सत्यसेनको भी तीन-तीन बाणोंसे घायल कर दिया॥

शल्यं नवत्या विव्याध त्रिसप्तत्या च सूतजम् ।
तांस्तस्य गोप्तॄन् विव्याध त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः॥३०॥

उन्होंने शल्यको नब्बे और सूतपुत्र कर्णको तिहत्तर बाण मारे । साथ ही उनके रक्षकोंको सीधे जानेवाले तीन-तीन बाणोंसे बेध दिया ॥ ३० ॥

ततः प्रहस्याधिरथिर्विधुन्वानः स कार्मुकम् ।
भित्त्वा भल्लेन राजानं विद्ध्वा षष्ट्यानदत्तदा॥ ३१॥

तब अधिरथपुत्र कर्णने अपने धनुषको हिलाते हुए हँसकर एक भल्लद्वारा राजा युधिष्ठिरके धनुषको काट दिया और उन्हें भी साठ बाणोंसे घायल करके सिंहके समान गर्जना की॥

ततः प्रवीराः पाण्डूनामभ्यधावन्नमर्षिताः ।
युधिष्ठिरं परीप्सन्तः कर्णमभ्यर्दयञ्छरैः ॥ ३२ ॥

तदनन्तर अमर्षमें भरे हुए प्रमुख पाण्डव वीर युधिष्ठिर-की रक्षाके लिये दौड़े आये और कर्णको अपने बाणोंसे पीड़ित करने लगे ॥ ३२ ॥

सात्यकिश्चेकितानश्च युयुत्सुः पाण्ड्य एव च ।
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ॥ ३३ ॥
यमौ च भीमसेनश्च शिशुपालस्य चात्मजः ।
कारूषा मत्स्यशेषाश्च केकयाः काशिकोसलाः ॥ ३४ ॥
एते च त्वरिता वीरा वसुषेणमताडयन् ।

सात्यकि, चेकितान, युयुत्सु, पाण्ड्य, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, प्रभद्रकगण, नकुल-सहदेव, भीमसेन और शिशुपालपुत्र एवं करूष, मत्स्य, केकय, काशि और कोसल-देशोंके योद्धा—ये सभी वीर सैनिक तुरंत ही वसुषेण (कर्ण) को घायल करने लगे ॥ ३३-३४½ ॥

जनमेजयश्च पाञ्चाल्यः कर्णं विव्याध सायकैः ॥३५॥
वाराहकर्णनाराचैर्नालीकैर्निशितैः शरैः ।
वत्सदन्तैर्विपाठैश्च क्षुरप्रैश्चटकामुखैः ॥ ३६ ॥
नानाप्रहरणैश्चोग्रै रथहस्त्यश्वसादिभिः ।
सर्वतोऽभ्यद्रवत् कर्णं परिवार्य जिघांसया ॥ ३७ ॥

पाञ्चालवीर जनमेजयने रथ, हाथी और घुड़सवारोंकी सेना साथ लेकर सब ओरसे कर्णपर धावा किया और उसे मार डालनेकी इच्छासे घेरकर बाण,वाराहकर्ण,नाराच,नालीक, पैने बाण, वत्सदन्त, विपाठ, क्षुरप्र, चटकामुख तथा नाना प्रकारके भयंकर अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा चोट पहुँचाना आरम्भ किया॥

स पाण्डवानां प्रवरैः सर्वतः समभिद्रुतः ।
उदीरयन् ब्राह्ममस्त्रं शरैरापूरयद् दिशः ॥ ३८ ॥

पाण्डवपक्षके प्रमुख वीरोंद्वारा सब ओरसे आक्रान्त होनेपर कर्णने ब्रह्मास्त्र प्रकट करके बाणोंद्वारा सम्पूर्ण दिशाओं-को आच्छादित कर दिया ॥ ३८ ॥

(ततः पुनरमेयात्मा चेदीनां प्रवरान् दश ।
न्यहनद् भरतश्रेष्ठ कर्णो वैकर्तनस्तदा ॥

भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर अप्रमेय आत्मबलसे सम्पन्न वैकर्तन

कर्णने चेदिदेशके दस प्रधान वीरोंको पुनः मार डाला ॥

तस्य बाणसहस्राणि सम्प्रपन्नानि मारिष।
दृश्यन्ते दिक्षु सर्वासु शलभानामिव व्रजाः ॥

माननीय नरेश ! कर्णके गिरते हुए सहस्रों बाण सम्पूर्ण दिशाओंमें टिड्डीदलोंके समान दिखायी देते थे ॥

कर्णनामाङ्किता बाणाः स्वर्णपुङ्खाः सुतेजनाः।
नराश्वकायान् निर्भिद्य पेतुरुर्व्यां समन्ततः ॥

उसके नामसे अंकित सुवर्णमय पंखवाले तेज बाण मनुष्यों और घोड़ोंके शरीरोंको विदीर्ण करके सब ओरसे पृथ्वीपर गिरने लगे ॥

कर्णेनैकेन समरे चेदीनां प्रवरा रथाः।
सृंजयानां च सर्वेषां शतशो निहता रणे ॥

समराङ्गणमें अकेले कर्णने चेदिदेशके प्रधान रथियोंका तथा सम्पूर्ण सृंजयोंके सैकड़ों योद्धाओंका भी संहार कर डाला॥

कर्णस्य शरसंछन्नं बभूव विपुलं तमः।
नाज्ञायत ततः किञ्चित् परेषामात्मनोऽपि वा ॥

कर्णके बाणोंसे सारी दिशाएँ ढक जानेके कारण वहाँ महान् अन्धकार छा गया। उस समय शत्रुपक्षकी तथा अपने पक्षकी भी कोई वस्तु पहचानी नहीं जाती थी ॥

तस्मिंस्तमसि भूते च क्षत्रियाणां भयंकरे।
विचचार महाबाहुर्निर्दहन् क्षत्रियान् बहून् ॥)

शत्रुओंके लिये भयदायक उस घोर अन्धकारमें महाबाहु कर्ण बहुसंख्यक राजपूतोंको दग्ध करता हुआ विचरने लगा॥

ततः शरमहाज्वालो वीर्योष्मा कर्णपावकः।
निर्दहन् पाण्डववनं वीरः पर्यचरद् रणे ॥ ३९ ॥

उस समय वीर कर्ण अग्निके समान हो रहा था। बाण ही उसकी ऊँचेतक उठती हुई ज्वालाओंके समान थे, पराक्रम ही उसका ताप था और वह पाण्डवरूपी वनको दग्ध करता हुआ रणभूमिमें विचर रहा था ॥ ३९ ॥

(ततस्तेषां महाराज पाण्डवानां महारथाः।
सृञ्जयानां च सर्वेषां शतशोऽथ सहस्रशः ॥
अस्त्रैः कर्णं महेष्वासं समन्तात् पर्यवारयन्।)

महाराज ! तब सम्पूर्ण सृंजयों और पाण्डवोंके सैकड़ों-हजारों महारथियोंने महाधनुर्धर कर्णपर बाणोंकी वर्षा करते हुए उसे चारों ओरसे घेर लिया ॥

स संधाय महास्त्राणि महेष्वासो महामनाः।
प्रहस्य पुरुषेन्द्रस्य शरैश्चिच्छेद कार्मुकम् ॥ ४० ॥

महाधनुर्धर महामना कर्णने हँसकर महान् अस्त्रोंका संधान किया और अपने बाणोंसे महाराज युधिष्ठिरका धनुष काट दिया ॥ ४० ॥

ततः संधाय नवतिं निमेषान्नतपर्वणाम्।
बिभेद कवचं राज्ञो रणे कर्णः शितैः शरैः ॥ ४१ ॥

तत्पश्चात् पलक मारते-मारते झुकी हुई गाँठवाले नब्बे बाणोंका संधान करके कर्णने उन पैने बाणोंद्वारा रणभूमिमें राजा युधिष्ठिरके कवचको छिन्न-भिन्न कर डाला ॥ ४१ ॥

तद् वर्म हेमविकृतं रत्नचित्रं बभौ पतत्।
सविद्युदभ्रं सवितुः श्लिष्टं वातहतं यथा ॥ ४२ ॥

उनका वह सुवर्णभूषित रत्नजटित कवच गिरते समय ऐसी शोभा पा रहा था, मानो सूर्यसे सटा हुआ बिजली-सहित बादल वायुका आघात पाकर नीचे गिर रहा हो ॥४२॥

तदङ्गात् पुरुषेन्द्रस्य भ्रष्टं वर्म व्यरोचत।
रत्नैरलंकृतं चित्रैर्व्यभ्रं निशि यथा नभः ॥ ४३ ॥
छिन्नवर्मा शरैः पार्थो रुधिरेण समुक्षितः।

जैसे रात्रिमें बिना बादलका आकाश नक्षत्रमण्डलसे विचित्र शोभा धारण करता है, उसी प्रकार नरेन्द्र युधिष्ठिरके शरीरसे गिरा हुआ वह कवच विचित्र रत्नोंसे अलंकृत होनेके कारण अद्भुत शोभा पा रहा था। बाणोंसे कवच कट जानेपर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर रक्तसे भीग गये ॥ ४३½ ॥

(बभासे पुरुषश्रेष्ठ उद्यन्निव दिवाकरः।
स शराचितसर्वाङ्गश्छिन्नवर्माथ संयुगे ॥
क्षत्रधर्मं समास्थाय सिंहनादमकुर्वत।)

उस समय युद्धस्थलमें पुरुषश्रेष्ठ युधिष्ठिर उगते हुए सूर्यके समान लाल दिखायी देते थे। उनके सारे अङ्गोंमें बाण धँसे हुए थे और कवच छिन्न-भिन्न हो गया था, तो भी वे क्षत्रिय-धर्मका आश्रय लेकर वहाँ सिंहके समान दहाड़ रहे थे॥

ततः सर्वायसीं शक्तिं चिक्षेपाधिरथिं प्रति ॥ ४४ ॥
तां ज्वलन्तीमिवाकाशे शरैश्चिच्छेद सप्तभिः।
सा छिन्ना भूमिमगमन्महेष्वासस्य सायकैः ॥ ४५ ॥

उन्होंने अधिरथपुत्र कर्णपर सम्पूर्णतः लोहेकी बनी हुई शक्ति चलायी, परंतु उसने सात बाणोंद्वारा उस प्रज्वलित शक्तिको आकाशमें ही काट डाला। महाधनुर्धर कर्णके सायकों-से कटी हुई वह शक्ति पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ४४-४५ ॥

ततो बाह्वोर्ललाटे च हृदि चैव युधिष्ठिरः।
चतुर्भिस्तोमरैः कर्णं ताडयित्वानदन्मुदा ॥ ४६ ॥

तत्पश्चात् युधिष्ठिरने कर्णकी दोनों भुजाओं, ललाट और छातीमें चार तोमरोंका प्रहार करके सानन्द सिंहनाद किया ॥

उद्भिन्नरुधिरः कर्णः क्रुद्धः सर्प इव श्वसन्।
ध्वजं चिच्छेद भल्लेन त्रिभिर्विव्याध पाण्डवम् ॥४७॥
इषुधी चास्य चिच्छेद रथं च तिलशोऽच्छिनत्।

कर्णके शरीरसे रक्त बहने लगा। फिर तो क्रोधमें भरे हुए सर्पके समान फुफकारते हुए कर्णने एक भल्लसे युधिष्ठिरकी ध्वजा काट डाली और तीन बाणोंसे उन पाण्डुपुत्रको भी घायल कर दिया। उनके दोनों तरकस काट दिये और रथके भी तिल-तिल करके टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ४७½ ॥

(एतस्मिन्नन्तरे शूराः पाण्डवानां महारथाः ।
ववृषुः शरवर्षाणि राधेयं प्रति भारत ॥

भारत ! इसी बीचमें शूरवीर पाण्डव महारथी राधापुत्र कर्णपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥

सात्यकिः पञ्चविंशत्या शिखण्डी नवभिः शरैः ।
अवर्षतां महाराज राधेयं शत्रुकर्शनम् ॥

महाराज ! सात्यकिने शत्रुसूदन राधापुत्रपर पचीस और शिखण्डीने नौ बाणोंकी वर्षा की ॥

शैनेयं तु ततः क्रुद्धः कर्णः पञ्चभिरायसैः ।
विव्याध समरे राजंस्त्रिभिश्चान्यैः शिलीमुखैः॥

राजन् ! तब क्रोधमें भरे हुए कर्णने समराङ्गणमें सात्यकिको पहले लोहेके बने हुए पाँच बाणोंसे घायल करके फिर दूसरे तीन बाणोंद्वारा उन्हें बींध डाला ॥

दक्षिणं तु भुजं तस्य त्रिभिः कर्णोऽप्यविध्यत ।
सव्यं षोडशभिर्बाणैर्यन्तारं चास्य सप्तभिः ॥

इसके बाद कर्णने सात्यकिकी दाहिनी भुजाको तीन, बायीं भुजाको सोलह और सारथिको सात बाणोंसे क्षत-विक्षत कर दिया ॥

अथास्य चतुरो वाहांश्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ।
सूतपुत्रोऽनयत् क्षिप्रं यमस्य सदनं प्रति ॥

तदनन्तर चार पैने बाणोंसे सूतपुत्रने सात्यकिके चारों घोड़ोंको भी तुरंत ही यमलोक पहुँचा दिया ॥

अपरेणाथ भल्लेन धनुश्छित्त्वा महारथः ।
सारथेः सशिरस्त्राणं शिरः कायादपाहरत् ॥

फिर दूसरे भल्लसे महारथी कर्णने उनका धनुष काटकर उनके सारथिके शिरस्त्राणसहित मस्तकको शरीरसे अलग कर दिया ॥

हताश्वसूते तु रथे स्थितः स शिनिपुङ्गवः ।
शक्तिं चिक्षेप कर्णाय वैडूर्यमणिभूषिताम् ॥

जिसके घोड़े और सारथि मारे गये थे, उसी रथपर खड़े हुए शिनिप्रवर सात्यकिने कर्णके ऊपर वैदूर्यमणिसे विभूषित शक्ति चलायी ॥

तामापतन्तीं सहसा द्विधा चिच्छेद भारत ।
कर्णो वै धन्विनां श्रेष्ठस्तांश्च सर्वानवारयत् ॥
ततस्तान् निशितैर्बाणैः पाण्डवानां महारथान् ।
न्यवारयदमेयात्मा शिक्षया च बलेन च ॥

भारत ! धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ कर्णने अपने ऊपर आती हुई उस शक्तिके सहसा दो टुकड़े कर डाले और उन सब महारथियोंको आगे बढ़नेसे रोक दिया, फिर अमेय आत्मबलसे सम्पन्न कर्णने अपनी शिक्षा और बलके प्रभावसे तीखे बाणोंद्वारा उन सभी पाण्डव-महारथियोंकी गति अवरुद्ध कर दी ॥

अर्दयित्वा शरैस्तांस्तु सिंहः क्षुद्रमृगानिव ।
पीडयन् धर्मराजानं शरैः संनतपर्वभिः ॥
अभ्यद्रवत राधेयो धर्मपुत्रं शितैः शरैः ।)

जैसे सिंह छोटे मृगोंको पीड़ा देता है, उसी प्रकार राधापुत्र कर्णने उन महारथियोंको बाणोंसे पीड़ित करके झुकी हुई गाँठवाले तीखे बाणोंसे चोट पहुँचाते हुए वहाँ धर्मराज धर्मपुत्र युधिष्ठिरपर पुनः आक्रमण किया ॥

कालवालास्तु ये पार्थं दन्तवर्णावहन् हयाः ॥ ४८ ॥
तैर्युक्तं रथमास्थाय प्रायाद् राजा पराङ्मुखः ।

उस समय दाँतोंके समान सफेद रंग और काली पूँछवाले जो घोड़े युधिष्ठिरकी सवारीमें थे, उन्हींसे जुते हुए दूसरे रथपर बैठकर राजा युधिष्ठिर रणभूमिसे विमुख हो शिविरकी ओर चल दिये ॥ ४८½ ॥

एवं पार्थोऽभ्यपायात् स निहतः पार्ष्णिसारथिः॥ ४९ ॥
अशक्नुवन् प्रमुखतः स्थातुं कर्णस्य दुर्मनाः ।

युधिष्ठिरका पृष्ठरक्षक पहले ही मार दिया गया था । उनका मन बहुत दुखी था, इसलिये वे कर्णके सामने ठहर न सके और युद्धस्थलसे हट गये ॥ ४९½ ॥

अभिद्रुत्य तु राधेयः पाण्डुपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ५० ॥
वज्रच्छत्रांकुशैर्मत्स्यैर्ध्वजकूर्माम्बुजादिभिः ।
लक्षणैरुपपन्नेन पाण्डुना पाण्डुनन्दनम् ॥ ५१ ॥
पवित्रीकर्तुमात्मानं स्कन्धे संस्पृश्य पाणिना ।
ग्रहीतुमिच्छन् स बलात् कुन्तीवाक्यं च सोऽस्मरत् ॥

उस समय राधापुत्र कर्ण पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरका पीछा करके वज्र, छत्र, अङ्कुश, मत्स्य, ध्वज, कूर्म और कमल आदि शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न गोरे हाथसे उनका कंधा छूकर, मानो अपने आपको पवित्र करनेके लिये उन्हें बलपूर्वक पकड़नेकी इच्छा करने लगा । उसी समय उसे कुन्तीदेवीको दिये हुए अपने वचनका स्मरण हो आया ॥ ५०–५२ ॥

तं शल्यः प्राह मा कर्ण गृहीथाः पार्थिवोत्तमम् ।
गृहीतमात्रो हत्वा त्वां मा करिष्यति भस्मसात्॥५३॥

उस समय राजा शल्यने कहा—'कर्ण ! इन नृपश्रेष्ठ युधिष्ठिरको हाथ न लगाना, अन्यथा वे पकड़ते ही तुम्हारा वध करके अपनी क्रोधाग्निसे तुम्हें भस्म कर डालेंगे' ॥५३॥

अब्रवीत् प्रहसन् राजन् कुत्सयन्निव पाण्डवम् ।
कथं नाम कुले जातः क्षत्रधर्मे व्यवस्थितः ॥ ५४ ॥
प्रजह्यात् समरं भीतः प्राणान् रक्षन् महाहवे ।
न भवान् क्षत्रधर्मेषु कुशलो हीति मे मतिः ॥ ५५ ॥

राजन् ! तब कर्ण जोर-जोरसे हँस पड़ा और पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरकी निन्दा-सी करता हुआ बोला—'युधिष्ठिर ! जो क्षत्रिय-कुलमें उत्पन्न हो, क्षत्रिय-धर्ममें तत्पर रहता हो, वह महासमरमें प्राणोंकी रक्षाके लिये भयभीत हो युद्ध छोड़कर भाग कैसे सकता है ? मेरा तो ऐसा विश्वास है कि तुम क्षत्रिय-धर्ममें निपुण नहीं हो ॥ ५४-५५ ॥

ब्राह्मे बले भवान् युक्तः स्वाध्याये यज्ञकर्मणि ।
मा स्म युद्ध्यस्व कौन्तेय मा स्म वीरान् समासदः॥५६॥

'कुन्तीकुमार ! तुम ब्राह्मबल, स्वाध्याय एवं यज्ञ-कर्ममें ही कुशल हो; अतः न तो युद्ध किया करो और न वीरोंके सामने ही जाओ ॥ ५६ ॥

मा चैतानप्रियं ब्रूहि मा वै व्रज महारणम् ।
वक्तव्या मारिषान्ये तु न वक्तव्यास्तु मादृशाः ॥ ५७॥

'माननीय नरेश ! न इन वीरोंसे कभी अप्रिय वचन बोलो और न महान् युद्धमें पैर ही रक्खो । यदि अप्रिय वचन बोलना ही हो तो दूसरोंसे बोलना; मेरे-जैसे वीरोंसे नहीं ॥

मादृशान् विब्रुवन् युद्धे एतदन्यच्च लप्स्यसे ।
स्वगृहं गच्छ कौन्तेय यत्र तौ केशवार्जुनौ ॥ ५८ ॥
न हि त्वां समरे राजन् हन्यात् कर्णः कथञ्चन ।

'युद्धमें मेरे-जैसे लोगोंसे अप्रिय वचन बोलनेपर तुम्हें यही तथा दूसरा कुफल भी भोगना पड़ेगा । अतः कुन्तीनन्दन ! अपने घर चले जाओ अथवा जहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुन हों वहीं पधारो । राजन् ! कर्ण समराङ्गणमें किसी तरह भी तुम्हारा वध नहीं करेगा' ॥ ५८½ ॥

एवमुक्त्वा ततः पार्थं विसृज्य च महाबलः ॥ ५९ ॥
न्यहनत् पाण्डवीं सेनां वज्रहस्त इवासुरीम् ।

महाबली कर्णने युधिष्ठिरसे ऐसा कहकर फिर उन्हें छोड़ दिया और जैसे वज्रधारी इन्द्र असुरसेनाका संहार करते हैं, उसी प्रकार पाण्डवसेनाका विनाश आरम्भ कर दिया ॥

ततोऽपायाद् द्रुतं राजन् व्रीडन्निव नरेश्वरः ॥ ६० ॥
अथापयातं राजानं मत्वान्वीयुस्तमच्युतम् ।
चेदिपाण्डवपाञ्चालाः सात्यकिश्च महारथः ॥ ६१ ॥
द्रौपदेयास्तथा शूरा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।

राजन् ! तब राजा युधिष्ठिर लजाते हुए-से तुरंत रण-भूमिसे भाग गये । राजाको रणक्षेत्रसे हटा हुआ जानकर चेदि, पाण्डव और पाञ्चाल वीर, महारथी सात्यकि, द्रौपदीके शूरवीर पुत्र तथा पाण्डुनन्दन माद्रीकुमार नकुल-सहदेव भी धर्म-मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले युधिष्ठिरके पीछे-पीछे चल दिये ॥ ६०-६१½ ॥

ततो युधिष्ठिरानीकं दृष्ट्वा कर्णः पराङ्मुखम् ॥ ६२ ॥
कुरुभिः सहितो वीरः प्रहृष्टः पृष्ठतोऽन्वगात् ।

तदनन्तर युधिष्ठिरकी सेनाको युद्धसे विमुख हुई देख हर्षमें भरे हुए वीर कर्णने कौरवसैनिकोंको साथ लेकर कुछ दूरतक उसका पीछा किया ॥ ६२½ ॥

भेरीशङ्खमृदङ्गानां कार्मुकाणां च निःस्वनः ॥ ६३ ॥
बभूव धार्तराष्ट्राणां सिंहनादरवस्तथा ।

उस समय भेरी, शङ्ख, मृदङ्ग और धनुषोंकी ध्वनि सब ओर फैल रही थी तथा दुर्योधनके सैनिक सिंहके समान दहाड़ रहे थे ॥ ६३½ ॥

युधिष्ठिरस्तु कौरव्य रथमारुह्य सत्वरम् ॥ ६४ ॥
श्रुतकीर्तेर्महाराज दृष्टवान् कर्णविक्रमम् ।

कुरुवंशी महाराज ! युधिष्ठिरके घोड़े थक गये थे; अतः उन्होंने तुरंत ही श्रुतकीर्तिके रथपर आरूढ़ हो कर्णके पराक्रम-को देखा ॥ ६४½ ॥

काल्यमानं बलं दृष्ट्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ६५ ॥
स्वान् योधानब्रवीत् क्रुद्धो निघ्नतैतान् किमासत ।

अपनी सेनाको खदेड़ी जाती हुई देख धर्मराज युधिष्ठिर-ने कुपित हो अपने पक्षके योद्धाओंसे कहा—'अरे ! क्यों चुप बैठे हो ? इन शत्रुओंको मार डालो' ॥ ६५½ ॥

ततो राज्ञाभ्यनुज्ञाताः पाण्डवानां महारथाः ॥ ६६ ॥
भीमसेनमुखाः सर्वे पुत्रांस्ते प्रत्युपाद्रवन् ।

राजाकी यह आज्ञा पाते ही भीमसेन आदि समस्त पाण्डव महारथी आपके पुत्रोंपर टूट पड़े ॥ ६६½ ॥

अभवत् तुमुलः शब्दो योधानां तत्र भारत ॥ ६७ ॥
रथहस्त्यश्वपत्तीनां शस्त्राणां च ततस्ततः ।

भारत ! फिर तो वहाँ इधर-उधर सब ओर रथी, हाथी-सवार, घुड़सवार और पैदल योद्धाओं एवं अस्त्र-शस्त्रोंका भयंकर शब्द गूँजने लगा ॥ ६७½ ॥

उत्तिष्ठत प्रहरत प्रैताभिपततेति च ॥ ६८ ॥
इति ब्रुवाणा ह्यन्योन्यं जघ्नुर्योधा महारणे ।

'उठो, मारो, आगे बढ़ो, टूट पड़ो' इत्यादि वाक्य बोलते हुए सब योद्धा उस महासमरमें एक दूसरेको मारने लगे ॥

अभ्रच्छायेव तत्रासीच्छरवृष्टिभिरम्बरे ॥ ६९ ॥
समावृतैर्नरवरैर्निघ्नद्भिरितरेतरम् ।

उस समय वहाँ अस्त्रोंसे आवृत हो परस्पर आघात करने-वाले नरश्रेष्ठ वीरोंके चलाये हुए बाणोंकी वृष्टिसे आकाशमें मेघोंकी छाया-सी छा रही थी ॥ ६९½ ॥

विपताकध्वजच्छत्रा व्यश्वसूतायुधा रणे ॥ ७० ॥
व्यङ्गाङ्गावयवाः पेतुः क्षितौ क्षीणाः क्षितीश्वराः ।

कितने ही घायल नरेश पताका, ध्वज, छत्र, अश्व, सारथि, आयुध, शरीर तथा उसके अवयवोंसे रहित हो रणभूमिमें गिर पड़े ॥ ७०½ ॥

प्रवणादिव शैलानां शिखराणि द्विपोत्तमाः ॥ ७१ ॥
सारोहा निहताः पेतुर्वज्रभिन्ना इवाद्रयः ।

जैसे पर्वतोंके शिखर टूटकर निम्न देशसे लुढ़कते हुए नीचे गिर पड़ते हैं तथा जैसे वज्रसे विदीर्ण किये हुए पर्वत धराशायी हो जाते हैं, उसी प्रकार वहाँ मारे गये हाथी अपने सवारोंसहित पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ७१½ ॥

छिन्नभिन्नविपर्यस्तैर्वर्मालङ्कारभूषणैः ॥ ७२ ॥
सारोहास्तुरगाः पेतुर्हतवीराः सहस्रशः ।

टूटे-फूटे और अस्त-व्यस्त हुए कवच, अलंकार एवं आभूषणोंसहित सहस्रों घोड़े अपने बहादुर सवारोंके मारे जाने-पर उनके साथ ही गिर पड़ते थे ॥ ७२½ ॥

विप्रविद्धायुधाङ्गाश्च द्विरदाश्वरथैर्हताः ॥ ७३ ॥
प्रतिवीरैश्च सम्मर्दे पत्तिसंघाः सहस्रशः ।

उस संघर्षमें विपक्षी वीरों, हाथियों, घोड़ों तथा रथोंद्वारा मारे गये सहस्रों पैदल योद्धाओंके समुदाय रणभूमिमें सो रहे थे । उनके अस्त्र-शस्त्र और शरीरके अवयव क्षत-विक्षत होकर बिखर गये थे ॥ ७३½ ॥

विशालायतताम्राक्षैः पद्मेन्दुसदृशाननैः ॥ ७४ ॥
शिरोभिर्युद्धशौण्डानां सर्वतः संवृता मही ।
यथा भुवि तथा व्योम्नि निःस्वनं शुश्रुवुर्जनाः ॥ ७५ ॥
विमानैरप्सरःसङ्घैर्गीतवादित्रनिःस्वनैः ।

युद्धकुशल वीरोंके विशाल, विस्तृत एवं लाल-लाल आँखों और कमल तथा चन्द्रमाके समान मुखवाले मस्तकोंसे सारी युद्धभूमि सब ओरसे ढक गयी थी । भूतलपर जैसा कोलाहल हो रहा था, वैसा ही आकाशमें भी लोगोंको सुनायी देता था। वहाँ विमानोंपर बैठी हुई झुंड-की-झुंड अप्सराएँ गीत और वाद्योंकी मधुर ध्वनि फैला रही थीं ॥ ७४-७५½ ॥

हतानभिमुखान् वीरान् वीरैः शतसहस्रशः ॥ ७६ ॥
आरोप्यारोप्य गच्छन्ति विमानेष्वप्सरोगणाः।

वीरोंके द्वारा सम्मुख लड़कर मारे गये लाखों वीरोंको अप्सराएँ विमानोंपर बिठा-बिठाकर स्वर्गलोकमें ले जाती थीं ॥

तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं प्रत्यक्षं स्वर्गलिप्सया ॥ ७७ ॥
प्रहृष्टमनसः शूराः क्षिप्रं जघ्नुः परस्परम् ।

यह महान् आश्चर्यकी बात प्रत्यक्ष देखकर हर्ष और उत्साहमें भरे हुए शूरवीर स्वर्गकी लिप्सासे एक दूसरेको शीघ्रतापूर्वक मारने लगे ॥ ७७½ ॥

रथिनो रथिभिः सार्धं चित्रं युयुधुराहवे ॥ ७८ ॥
पत्तयः पत्तिभिर्नागाः सह नागैर्हयैर्हयाः ।

युद्धस्थलमें रथियोंके साथ रथी, पैदलोंके साथ पैदल, हाथियोंके साथ हाथी और घोड़ोंके साथ घोड़े विचित्र युद्ध करते थे ॥ ७८½ ॥

एवं प्रवृत्ते संग्रामे गजवाजिनरक्षये ॥ ७९ ॥
सैन्येन रजसा व्याप्ते स्वे स्वाञ्जघ्नुः परे परान् ।

इस प्रकार हाथी, घोड़ों और मनुष्योंका संहार करनेवाले उस संग्रामके आरम्भ होनेपर सैनिकोंद्वारा उड़ायी हुई धूलसे वहाँका सारा प्रदेश आच्छादित हो जानेपर अपने और शत्रु-पक्षके योद्धा अपने ही पक्षवालोंका संहार करने लगे ॥७९½॥

कचाकचि युद्धमासीद् दन्तादन्ति नखानखि ॥ ८० ॥
मुष्टियुद्धं नियुद्धं च देहपाप्मासुनाशनम् ।

दोनों दलोंके सैनिक एक दूसरेके केश पकड़कर खींचते, दाँतोंसे काटते, नखोंसे बखोटते, मुक्कोंसे मारते और परस्पर मल्लयुद्ध करने लगते थे । इस प्रकार वह युद्ध सैनिकोंके शरीर, प्राण और पापोंका विनाश करनेवाला हो रहा था ॥

तथा वर्तति संग्रामे गजवाजिनरक्षये ॥ ८१ ॥
नराश्वनागदेहेभ्यः प्रसृता लोहितापगा ।
गजाश्वनरदेहान् सा व्युवाह पतितान् बहून्॥ ८२ ॥

हाथी, घोड़े और मनुष्योंका विनाश करनेवाला वह संग्राम उसी रूपमें चलने लगा । मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंके शरीरोंसे खूनकी नदी बह चली, जो अपने भीतर पड़े हुए हाथी, घोड़े और मनुष्योंकी बहुसंख्यक लाशोंको बहाये जा रही थी ॥ ८१-८२ ॥

नराश्वगजसम्बाधे नराश्वगजसादिनाम् ।
लोहितोदा महाघोरा मांसशोणितकर्दमा ॥ ८३ ॥
नराश्वगजदेहान् सा वहन्ती भीरुभीषणा ।

मनुष्य, घोड़े और हाथियोंसे भरे हुए युद्धस्थलमें मनुष्य, अश्व, हाथी और सवारोंके रक्त ही उस नदीके जल थे । उनका मांस और गाढ़ा खून उस नदीकी कीचड़के समान जान पड़ता था । मनुष्य, घोड़े और हाथियोंके शरीरोंको बहाती हुई वह महाभयंकर नदी भीरु मनुष्योंको भयभीत कर रही थी ॥ ८३½ ॥

तस्याः पारमपारं च व्रजन्ति विजयैषिणः ॥ ८४ ॥
गाधेन चाप्लवन्तश्च निमज्ज्योन्मज्ज्य चापरे ।

विजयकी अभिलाषा रखनेवाले कितने ही वीर जहाँ थोड़ा रक्तमय जल था वहाँ तैरकर और जहाँ अथाह था, वहाँ गोते लगा-लगाकर उसके दूसरे पार पहुँच जाते थे ॥ ८४½ ॥

ते तु लोहितदिग्धाङ्गा रक्तवर्मायुधाम्बराः ॥ ८५ ॥
सस्नुस्तस्यां पपुश्चास्यां मम्लुश्च भरतर्षभ ।

उन सबके शरीर रक्तसे रँग गये थे । कवच, आयुध और वस्त्र भी रक्तरंजित हो गये थे । भरतश्रेष्ठ ! कितने ही योद्धा उसमें नहा लेते, कितनोंके मुँहमें रक्तकी घूँट चली जाती और कितने ही ग्लानिसे भर जाते थे ॥ ८५½ ॥

रथानश्वान् नरान् नागानायुधाभरणानि च ॥ ८६ ॥
वसनान्यथ वर्माणि वध्यमानान् हतानपि ।
भूमिं खं द्यां दिशश्चैव प्रायः पश्याम लोहिताः॥८७॥

मारे गये तथा मारे जाते हुए हाथी, घोड़े, रथ, मनुष्य, अस्त्र-शस्त्र, आभूषण, वस्त्र, कवच, पृथ्वी, आकाश, द्युलोक और सम्पूर्ण दिशाएँ—ये सब हमें प्रायः लाल-ही-लाल दिखायी देते थे ॥ ८६-८७ ॥

लोहितस्य तु गन्धेन स्पर्शेन च रसेन च ।
रूपेण चातिरक्तेन शब्देन च विसर्पता ॥ ८८ ॥
विषादः सुमहानासीत् प्रायः सैन्यस्य भारत ।

भारत ! सब ओर फैली और बढ़ी हुई उस रक्त-राशिकी

गन्धसे, स्पर्शसे, रससे, रूपसे और शब्दसे भी प्रायः सारी सेनाके मनमें बड़ा विषाद हो रहा था ॥ ८८½ ॥

तत् तु विप्रहतं सैन्यं भीमसेनमुखास्तदा ॥ ८९ ॥
भूयः समाद्रवन् वीराः सात्यकिप्रमुखास्तदा ।

भीमसेन तथा सात्यकि आदि वीरोंने विशेषरूपसे विनष्ट हुई उस कौरवसेनापर पुनः बड़े वेगसे आक्रमण किया ।८९½।

तेषामापततां वेगमविषह्यं निरीक्ष्य च ॥ ९० ॥
पुत्राणां ते महासैन्यमासीद् राजन् पराङ्मुखम् ।

राजन् ! उन आक्रमणकारी वीरोंके असह्य वेगको देखकर आपके पुत्रोंकी विशाल सेना युद्धसे विमुख होकर भाग चली ॥ ९०½ ॥

तत् प्रकीर्णरथाश्वेभं नरवाजिसमाकुलम् ॥ ९१ ॥
विध्वस्तवर्मकवचं प्रविद्धायुधकार्मुकम् ।
व्यद्रवत् तावकं सैन्यं लोड्यमानं समन्ततः ।
सिंहार्दितमिवारण्ये यथा गजकुलं तथा ॥ ९२ ॥

जैसे जंगलमें सिंहसे पीड़ित हुआ हाथियोंका यूथ व्याकुल होकर भागता है, उसी प्रकार शत्रुओंद्वारा सब ओरसे रौंदी जाती हुई मनुष्यों और घोड़ोंसे परिपूर्ण आपकी विशाल सेना भाग चली । उसके रथ, हाथी और घोड़े तितर-बितर हो गये, आवरण और कवच नष्ट हो गये तथा अस्त्र-शस्त्र और धनुष छिन्न-भिन्न होकर पृथ्वीपर पड़े थे॥९१-९२॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४९ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १९½ श्लोक मिलाकर कुल १११½ श्लोक हैं)

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कर्ण और भीमसेनका युद्ध तथा कर्णका पलायन

संजय उवाच

तानभिद्रवतो दृष्ट्वा पाण्डवांस्तावकं बलम् ।
दुर्योधनो महाराज वारयामास सर्वशः ॥ १ ॥
योधांश्च स्वबलं चैव समन्ताद् भरतर्षभ ।
क्रोशतस्तव पुत्रस्य न स्म राजन् न्यवर्तत ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! पाण्डवोंको आपकी सेनापर आक्रमण करते देख दुर्योधनने सब ओरसे सब प्रकारके प्रयत्नोंद्वारा उन योद्धाओंको रोकने तथा अपनी सेनाको भी स्थिर करनेका प्रयत्न किया । भरतश्रेष्ठ ! नरेश्वर ! आपके पुत्रके बहुत चीखने-चिल्लानेपर भी भागती हुई सेना पीछे न लौटी ॥ १-२ ॥

ततः पक्षः प्रपक्षश्च शकुनिश्चापि सौबलः ।
तदा सशस्त्राः कुरवो भीममभ्यद्रवन् रणे ॥ ३ ॥

तदनन्तर व्यूहके पक्ष और प्रपक्षभागमें खड़े हुए सैनिक, सुबलपुत्र शकुनि तथा सशस्त्र कौरववीर उस समय रणक्षेत्रमें भीमसेनपर टूट पड़े ॥ ३ ॥

कर्णोऽपि दृष्ट्वा द्रवतो धार्तराष्ट्रान् सराजकान् ।
मद्रराजमुवाचेदं याहि भीमरथं प्रति ॥ ४ ॥

उधर कर्णने भी राजा दुर्योधन और उसके सैनिकोंको भागते देख मद्रराज शल्यसे कहा—'भीमसेनके रथके समीप चलो' ॥ ४ ॥

एवमुक्तश्च कर्णेन शल्यो मद्राधिपस्तदा
हंसवर्णान् हयानग्र्यान् प्रैषीद् यत्र वृकोदरः ॥ ५ ॥

कर्णके ऐसा कहनेपर मद्रराज शल्यने हंसके समान श्वेत वर्णवाले श्रेष्ठ घोड़ोंको उधर ही हाँक दिया, जहाँ भीमसेन खड़े थे ॥ ५ ॥

ते प्रेरिता महाराज शल्येनाहवशोभिना ।
भीमसेनरथं प्राप्य समसज्जन्त वाजिनः ॥ ६ ॥

महाराज ! संग्राममें शोभा पानेवाले शल्यसे संचालित हो वे घोड़े भीमसेनके रथके समीप जाकर पाण्डवसेनामें मिल गये ॥ ६ ॥

दृष्ट्वा कर्णं समायान्तं भीमः क्रोधसमन्वितः ।
मतिं चक्रे विनाशाय कर्णस्य भरतर्षभ ॥ ७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! कर्णको आते देख क्रोधमें भरे हुए भीमसेनने उसके विनाशका विचार किया ॥ ७ ॥

सोऽब्रवीत् सात्यकिं वीरं धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ।
यूयं रक्षत राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ॥ ८ ॥
संशयान्महतो मुक्तं कथंचित् प्रेक्षतो मम ।

उन्होंने वीर सात्यकि तथा द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नसे कहा—'तुमलोग धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करो । वे अभी-अभी मेरे देखते-देखते किसी प्रकार महान् प्राण-संकटसे मुक्त हुए हैं ॥ ८½ ॥

अग्रतो मे कृतो राजा छिन्नसर्वपरिच्छदः ॥ ९ ॥
दुर्योधनस्य प्रीत्यर्थं राधेयेन दुरात्मना ।

'दुरात्मा राधापुत्र कर्णने दुर्योधनकी प्रसन्नताके लिये मेरे सामने ही धर्मराजकी समस्त युद्ध-सामग्रीको छिन्न-भिन्न कर डाला है ॥ ९½ ॥

अन्तमद्य गमिष्यामि तस्य दुःखस्य पार्षत ॥ १० ॥
हन्तास्म्यद्य रणे कर्णं स वा मां निहनिष्यति ।
संग्रामेण सुघोरेण सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ११ ॥

'द्रुपदकुमार ! इससे मुझे बड़ा दुःख हुआ है; अतः अब मैं उसका बदला लूँगा । आज रणभूमिमें अत्यन्त घोर संग्राम करके या तो मैं ही कर्णको मार डालूँगा या वही मेरा वध करेगा; यह मैं तुमसे सच्ची बात कहता हूँ ॥ १०-११ ॥

राजानमद्य भवतां न्यासभूतं ददानि वै।
तस्य संरक्षणे सर्वे यतध्वं विगतज्वराः ॥ १२ ॥

'इस समय राजाको धरोहरके रूपमें मैं तुम्हें सौंप रहा हूँ। तुम सब लोग निश्चिन्त होकर इनकी रक्षाके लिये पूर्ण प्रयत्न करना' ॥ १२ ॥

एवमुक्त्वा महाबाहुः प्रायादाधिरथिं प्रति।
सिंहनादेन महता सर्वाः संनादयन् दिशः ॥ १३ ॥

ऐसा कहकर महाबाहु भीमसेन अपने महान् सिंहनादसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करते हुए सूतपुत्र कर्णकी ओर बढ़े ॥ १३ ॥

दृष्ट्वा त्वरितमायान्तं भीमं युद्धाभिनन्दिनम्।
सूतपुत्रमथोवाच मद्राणामीश्वरो विभुः ॥ १४ ॥

युद्धका अभिनन्दन करनेवाले भीमसेनको बड़ी उतावली-के साथ आते देख मद्रदेशके स्वामी शक्तिशाली शल्यने सूत-पुत्र कर्णसे कहा ॥ १४ ॥

शल्य उवाच

पश्य कर्ण महाबाहुं संक्रुद्धं पाण्डुनन्दनम्।
दीर्घकालार्जितं क्रोधं मोक्तुकामं त्वयि ध्रुवम् ॥ १५॥

शल्य बोले—कर्ण! क्रोधमें भरे हुए पाण्डुनन्दन महाबाहु भीमसेनको देखो, जो दीर्घकालसे संचित किये हुए क्रोधको आज तुम्हारे ऊपर छोड़नेका दृढ़ निश्चय किये हुए हैं॥

ईदृशं नास्य रूपं मे दृष्टपूर्वं कदाचन।
अभिमन्यौ हते कर्ण राक्षसे च घटोत्कचे ॥ १६ ॥

कर्ण! अभिमन्यु तथा घटोत्कच राक्षसके मारे जानेपर भी पहले कभी मैंने इनका ऐसा रूप नहीं देखा था ॥ १६ ॥

त्रैलोक्यस्य समस्तस्य शक्तः क्रुद्धो निवारणे।
बिभर्ति सदृशं रूपं युगान्ताग्निसमप्रभम् ॥ १७ ॥

ये इस समय कुपित हो समस्त त्रिलोकीको रोक देनेमें समर्थ हैं; क्योंकि प्रलयकालके अग्निके समान तेजस्वी रूप धारण कर रहे हैं ॥ १७ ॥

संजय उवाच

इति ब्रुवति राधेयं मद्राणामीश्वरे नृप।
अभ्यवर्तत वै कर्ण क्रोधदीप्तो वृकोदरः ॥ १८ ॥

संजय कहते हैं—नरेश्वर! मद्रराज शल्य राधापुत्र कर्णसे ऐसी बातें कह ही रहे थे कि क्रोधसे प्रज्वलित हुए भीमसेन उसके सामने आ पहुँचे ॥ १८ ॥

अथागतं तु सम्प्रेक्ष्य भीमं युद्धाभिनन्दिनम्।
अब्रवीद् वचनं शल्यं राधेयः प्रहसन्निव ॥ १९ ॥

युद्धका अभिनन्दन करनेवाले भीमसेनको सामने आया देख हँसते हुए-से राधापुत्र कर्णने शल्यसे इस प्रकार कहा—॥

यदुक्तं वचनं मेऽद्य त्वया मद्रजनेश्वर।
भीमसेनं प्रति विभो तत् सत्यं नात्र संशयः ॥ २० ॥

'मद्रराज! प्रभो! आज तुमने भीमसेनके विषयमें मेरे सामने जो बात कही है, यह सर्वथा सत्य है—इसमें संशय नहीं है ॥ २० ॥

एष शूरश्च वीरश्च क्रोधनश्च वृकोदरः।
निरपेक्षः शरीरे च प्राणतश्च बलाधिकः ॥ २१ ॥

'ये भीमसेन शूरवीर, क्रोधी, अपने शरीर और प्राणोंका मोह न करनेवाले तथा अधिक बलशाली हैं ॥ २१ ॥

अज्ञातवासं वसता विराटनगरे तदा।
द्रौपद्याः प्रियकामेन केवलं बाहुसंश्रयात् ॥ २२ ॥
गूढभावं समाश्रित्य कीचकः सगणो हतः।

'विराटनगरमें अज्ञातवास करते समय इन्होंने द्रौपदीका प्रिय करनेकी इच्छासे छिपे-छिपे जाकर केवल बाहुबलसे कीचकको उसके साथियोंसहित मार डाला था ॥ २२½ ॥

सोऽद्य संग्रामशिरसि संनद्धः क्रोधमूर्छितः ॥ २३ ॥
किं करोद्यतदण्डेन मृत्युनापि व्रजेद् रणम्।

'वे ही आज क्रोधसे आतुर हो कवच बाँधकर युद्धके मुहानेपर उपस्थित हैं; परंतु क्या ये दण्ड धारण किये यमराज-के साथ भी युद्धके लिये रणभूमिमें उतर सकते हैं? ॥ २३½ ॥

चिरकालाभिलषितो ममायं तु मनोरथः ॥ २४ ॥
अर्जुनं समरे हन्यां मां वा हन्याद् धनंजयः।
स मे कदाचिदद्यैव भवेद् भीमसमागमात् ॥ २५ ॥

'मेरे हृदयमें दीर्घकालसे यह अभिलाषा बनी हुई है कि समराङ्गणमें अर्जुनका वध करूँ अथवा वे ही मुझे मार डालें। कदाचित् भीमसेनके साथ समागम होनेसे मेरी वह इच्छा आज ही पूरी हो जाय ॥ २४-२५ ॥

निहते भीमसेने वा यदि वा विरथीकृते।
अभियास्यति मां पार्थस्तन्मे साधु भविष्यति ॥ २६ ॥
अत्र यन्मन्यसे प्राप्तं तच्छीघ्रं सम्प्रधारय।

'यदि भीमसेन मारे गये अथवा रथहीन कर दिये गये तो अर्जुन अवश्य मुझपर आक्रमण करेंगे, जो मेरे लिये अधिक अच्छा होगा। तुम जो यहाँ उचित समझते हो, वह शीघ्र निश्चय करके बताओ' ॥ २६½ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं राधेयस्यामितौजसः ॥ २७ ॥
उवाच वचनं शल्यः सूतपुत्रं तथागतम्।

अमित शक्तिशाली राधापुत्र कर्णका यह वचन सुनकर राजा शल्यने सूतपुत्रसे उस अवसरके लिये उपयुक्त वचन कहा—॥ २७½ ॥

अभियाहि महाबाहो भीमसेनं महाबलम् ॥ २८ ॥
निरस्य भीमसेनं तु ततः प्राप्स्यसि फाल्गुनम्।

'महाबाहो! तुम महाबली भीमसेनपर चढ़ाई करो। भीमसेनको परास्त कर देनेपर निश्चय ही अर्जुनको अपने सामने पा जाओगे ॥ २८½ ॥

यस्ते कामोऽभिलषितश्चिरात् प्रभृति हृद्गतः ॥ २९ ॥
स वै सम्पत्स्यते कर्ण सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ।

'कर्ण ! तुम्हारे हृदयमें चिरकालसे जो अभीष्ट मनोरथ संचित है, वह निश्चय ही सफल होगा, यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ' ॥ २९½ ॥

एवमुक्ते ततः कर्णः शल्यं पुनरभाषत ॥ ३० ॥
हन्ताहमर्जुनं संख्ये मां वा हन्याद् धनंजयः ।
युद्धे मनः समाधाय याहि यत्र वृकोदरः ॥ ३१ ॥

उनके ऐसा कहनेपर कर्णने शल्यसे फिर कहा—'मद्रराज ! मैं युद्धमें अर्जुनको मारूँ या अर्जुन ही मुझे मार डालें। इस उद्देश्यसे युद्धमें मन लगाकर जहाँ भीमसेन हैं, उधर ही चलो' ॥ ३०-३१ ॥

संजय उवाच

ततः प्रायाद् रथेनाशु शल्यस्तत्र विशाम्पते ।
यत्र भीमो महेष्वासो व्यद्रावयत वाहिनीम् ॥ ३२ ॥

संजय कहते हैं—प्रजानाथ ! तदनन्तर शल्य रथके द्वारा तुरंत ही वहाँ जा पहुँचे, जहाँ महाधनुर्धर भीमसेन आपकी सेनाको खदेड़ रहे थे ॥ ३२ ॥

ततस्तूर्यनिनादश्च भेरीणां च महास्वनः ।
उदतिष्ठच्च राजेन्द्र कर्णभीमसमागमे ॥ ३३ ॥

राजेन्द्र ! कर्ण और भीमसेनका संघर्ष उपस्थित होनेपर फिर तूर्य और भेरियोंकी गम्भीर ध्वनि होने लगी ॥ ३३ ॥

भीमसेनोऽथ संक्रुद्धस्तस्य सैन्यं दुरासदम् ।
नाराचैर्विमलैस्तीक्ष्णैर्दिशः प्राद्रावयद् बली ॥ ३४ ॥

बलवान् भीमसेनने अत्यन्त कुपित होकर चमचमाते हुए तीखे नाराचोंसे आपकी दुर्जय सेनाको सम्पूर्ण दिशाओंमें खदेड़ दिया ॥ ३४ ॥

स संनिपातस्तुमुलो घोररूपो विशाम्पते ।
आसीद् रौद्रो महाराज कर्णपाण्डवयोर्मृधे ॥ ३५ ॥

प्रजानाथ ! महाराज ! कर्ण और भीमसेनके उस युद्धमें बड़ी भयङ्कर, भीषण और घोर मार-काट हुई ॥ ३५ ॥

ततो मुहूर्ताद् राजेन्द्र पाण्डवः कर्णमाद्रवत् ।
समापतन्तं सम्प्रेक्ष्य कर्णो वैकर्तनो वृषः ॥ ३६ ॥
आजघान सुसंक्रुद्धो नाराचेन स्तनान्तरे ।
पुनश्चैनममेयात्मा शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ३७ ॥

राजेन्द्र ! पाण्डुपुत्र भीमसेनने दो ही घड़ीमें कर्णपर आक्रमण कर दिया । उन्हें अपनी ओर आते देख अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए धर्मात्मा वैकर्तन कर्णने एक नाराचद्वारा उनकी छातीमें प्रहार किया । फिर अमेय आत्मबलसे सम्पन्न उस वीरने उन्हें अपने बाणोंकी वर्षासे ढक दिया ॥३६-३७॥

स विद्धः सूतपुत्रेण छादयामास पत्रिभिः ।
विव्याध निशितैः कर्णं नवभिर्नतपर्वभिः ॥ ३८ ॥

सूतपुत्रके द्वारा घायल होनेपर उन्होंने भी उसे बाणोंसे आच्छादित कर दिया और झुकी हुई गाँठवाले नौ तीखे बाणोंसे कर्णको बींध डाला ॥ ३८ ॥

तस्य कर्णो धनुर्मध्ये द्विधा चिच्छेद पत्रिभिः ।
अथैनं छिन्नधन्वानं प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ॥ ३९ ॥
नाराचेन सुतीक्ष्णेन सर्वावरणभेदिना ।

तब कर्णने कई बाण मारकर भीमसेनके धनुषके बीचसे ही दो टुकड़े कर दिये । धनुष कट जानेपर उनकी छातीमें समस्त आवरणोंका भेदन करनेवाले अत्यन्त तीखे नाराचसे गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३९½ ॥

सोऽन्यत् कार्मुकमादाय सूतपुत्रं वृकोदरः ॥ ४० ॥
राजन् मर्मसु मर्मज्ञो विव्याध निशितैः शरैः ।
ननाद बलवन्नादं कम्पयन्निव रोदसी ॥ ४१ ॥

राजन् ! मर्मज्ञ भीमसेनने दूसरा धनुष लेकर सूतपुत्रके मर्मस्थानोंमें पैने बाणोंद्वारा प्रहार किया और पृथ्वी तथा आकाशको कँपाते हुए-से उन्होंने बड़े जोरसे गर्जना की ॥

तं कर्णः पञ्चविंशत्या नाराचेन समार्पयत् ।
मदोत्कटं वने दृप्तमुल्काभिरिव कुञ्जरम् ॥ ४२ ॥

कर्णने भीमसेनको पचीस नाराच मारे, मानो किसी शिकारीने वनमें दर्पयुक्त मदोन्मत्त गजराजपर उल्काओंद्वारा प्रहार किया हो ॥ ४२ ॥

ततः सायकभिन्नाङ्गः पाण्डवः क्रोधमूर्छितः ।
संरम्भामर्षताम्राक्षः सूतपुत्रवधेप्सया ॥ ४३ ॥
स कार्मुके महावेगं भारसाधनमुत्तमम् ।
गिरीणामपि भेत्तारं सायकं समयोजयत् ॥ ४४ ॥

फिर कर्णके बाणोंसे सारा शरीर घायल हो जानेके कारण पाण्डुपुत्र भीमसेन क्रोधसे मूर्छित हो उठे । रोष और अमर्षसे उनकी आँखें लाल हो गयीं । उन्होंने सूतपुत्रके वधकी इच्छासे अपने धनुषपर एक अत्यन्त वेगशाली, भारसाधनमें समर्थ, उत्तम और पर्वतोंको भी विदीर्ण कर देनेवाले बाणका संधान किया ॥ ४३-४४ ॥

विकृष्य बलवच्चापमाकर्णादतिमारुतिः ।
तं मुमोच महेष्वासः क्रुद्धः कर्णजिघांसया ॥ ४५ ॥

फिर हनुमान्‌जीसे भी अधिक पराक्रम प्रकट करनेवाले महाधनुर्धर भीमसेनने धनुषको जोर-जोरसे कानतक खींचकर कर्णको मार डालनेकी इच्छासे उस बाणको क्रोधपूर्वक छोड़ दिया ॥ ४५ ॥

स विसृष्टो बलवता बाणो वज्राशनिस्वनः ।
अदारयद् रणे कर्णं वज्रवेगो यथाचलम् ॥ ४६ ॥

बलवान् भीमसेनके हाथसे छूटकर वज्र और विद्युत्‌के समान शब्द करनेवाले उस बाणने रणभूमिमें कर्णको चीर डाला, मानो वज्रके वेगने पर्वतको विदीर्ण कर दिया हो ॥

स भीमसेनाभिहतः सूतपुत्रः कुरूद्वह।
निषसाद रथोपस्थे विसंज्ञः पृतनापतिः ॥ ४७ ॥

कुरुश्रेष्ठ! भीमसेनकी गहरी चोट खाकर सेनापति सूतपुत्र कर्ण अचेत हो रथकी बैठकमें धम्मसे बैठ गया॥

(रुधिरेणावसिक्ताङ्गो गतासुवदरिंदमः।
एतस्मिन्नन्तरे दृष्ट्वा मद्रराजो वृकोदरम्॥
जिह्वां छेत्तुं समायान्तं सान्त्वयन्निदमब्रवीत्।

उसका सारा शरीर रक्तसे सिंच गया। शत्रुओंका दमन करनेवाला वह वीर प्राणहीन-सा हो गया था। इसी समय भीमसेनको कर्णकी जीभ काटनेके लिये आते देख मद्रराज शल्यने उन्हें सान्त्वना देते हुए इस प्रकार कहा॥

शल्य उवाच

भीमसेन महाबाहो यत् त्वां वक्ष्यामि तच्छृणु।
वचनं हेतुसम्पन्नं श्रुत्वा चैतत् तथा कुरु॥

शल्य बोले—महाबाहु भीमसेन! मैं तुमसे जो युक्तियुक्त वचन कह रहा हूँ, उसे सुनो और सुनकर उसका पालन करो॥

अर्जुनेन प्रतिज्ञातो वधः कर्णस्य शुष्मिणः॥
तां तथा कुरु भद्रं ते प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः।

अर्जुनने पराक्रमी कर्णके वधकी प्रतिज्ञा की है। तुम्हारा कल्याण हो। तुम सव्यसाची अर्जुनके उस प्रतिज्ञाको सफल करो॥

भीम उवाच

दृढव्रतत्वं पार्थस्य जानामि नृपसत्तम।
राज्ञस्तु धर्षणं पापः कृतवान् मम संनिधौ॥
ततः कोपाभिभूतेन शेषं न गणितं मया।

भीमसेनने कहा—नृपश्रेष्ठ! मैं अर्जुनकी दृढ़प्रतिज्ञता-को जानता हूँ; परंतु इस पापी कर्णने मेरे समीप ही राजा युधिष्ठिरका तिरस्कार किया है, अतः क्रोधके वशीभूत होकर मैंने और किसी बातकी परवा नहीं की है॥

पतिते चापि राधेये न मे मन्युः शमं गतः॥
जिह्वोद्धरणमेवास्य प्राप्तकालं मतं मम।

यद्यपि राधापुत्र कर्ण गिर गया है तो भी मेरा क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ है। मैं तो इस समय इसकी जीभ खींच लेना ही उचित समझता हूँ॥

अनेन सुनृशंसेन समवेतेषु राजसु॥
अस्माकं शृण्वतां कृष्णा यानि वाक्यानि मातुल।
असह्यानि च नीचेन बहूनि श्रावितानि भोः॥
नूनं चैतत् परिज्ञातं दूरस्थस्यापि पार्थिव।
छेदनं चास्य जिह्वायास्तदेवाकाङ्क्षितं मया॥

मामाजी! इस नीच नृशंसने जहाँ बहुत-से राजा एकत्र हुए थे, वहाँ हमारे सुनते हुए द्रौपदीके प्रति बहुत-से असह्य कटुवचन सुनाये थे। राजन्! आप दूर होनेपर भी निश्चय ही यह समझ गये हैं कि मेरे द्वारा इसकी जीभ काटी जानेवाली है। वास्तवमें इस समय मैंने इसकी जीभ काटनेकी ही इच्छा की थी॥

राज्ञस्तु प्रियकामेन कालोऽयं परिपालितः।
भवता तु यदुक्तोऽस्मि वाक्यं हेत्वर्थसंहितम्॥
तद् गृहीतं महाराज कटुकस्थमिवौषधम्।

केवल राजा युधिष्ठिरका प्रिय करनेके लिये मैंने आज तक प्रतीक्षा की है। महाराज! आपने जो युक्तियुक्त बात मुझसे कही है, उसे कड़वी दवाके समान मैंने ग्रहण कर लिया है॥

हीनप्रतिज्ञो बीभत्सुर्न हि जीवेत कर्हिचित्॥
अस्मिन् विनष्टे नष्टाः स्मः सर्व एव सकेशवाः।

क्योंकि यदि अर्जुनकी प्रतिज्ञा भङ्ग हो जायगी तो वे कभी जीवित नहीं रह सकेंगे; उनके नष्ट होनेपर श्रीकृष्ण-सहित हम सब लोग भी नष्ट ही हो जायँगे॥

अद्य चैव नृशंसात्मा पापः पापकृतां वरः॥
गमिष्यति पराभावं दृष्टमात्रः किरीटिना।

आज किरीटधारी अर्जुनकी दृष्टि पड़ते ही यह पापाचारियों-में श्रेष्ठ पापात्मा क्रूर कर्ण पराभवको प्राप्त हो जायगा॥

युधिष्ठिरस्य कोपेन पूर्वं दग्धो नृशंसकृत्॥
त्वया संरक्षितस्त्वस्य मत्समीपादुपायतः॥)

यह नृशंस कर्ण महाराज युधिष्ठिरके क्रोधसे पहले ही दग्ध हो चुका था। आज आपने उचित उपायद्वारा मेरे निकटसे इसकी रक्षा कर ली है॥

ततो मद्राधिपो दृष्ट्वा विसंज्ञं सूतनन्दनम्।
अपोवाह रथेनाजौ कर्णमाहवशोभिनम्॥ ४८॥

तदनन्तर मद्रराज शल्य संग्राममें शोभा पानेवाले सूतपुत्र कर्णको अचेत हुआ देख रथके द्वारा युद्धस्थलसे दूर हटा ले गये॥ ४८॥

ततः पराजिते कर्णे धार्तराष्ट्रीं महाचमूम्।
व्यद्रावयद् भीमसेनो यथेन्द्रो दानवान् पुरा॥ ४९॥

कर्णके पराजित हो जानेपर भीमसेन दुर्योधनकी विशाल सेनाको पुनः खदेड़ने लगे। ठीक वैसे ही, जैसे पूर्वकालमें इन्द्रने दानवोंको मार भगाया था॥ ४९॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णापयाने पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्णका पलायनविषयक पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५०॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १२ श्लोक मिलाकर कुल ६२ श्लोक हैं)

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भीमसेनके द्वारा धृतराष्ट्रके छः पुत्रोंका वध, भीम और कर्णका युद्ध, भीमके द्वारा गजसेना, रथसेना और घुड़सवारोंका संहार तथा उभयपक्षकी सेनाओंका घोर युद्ध

धृतराष्ट्र उवाच

सुदुष्करमिदं कर्म कृतं भीमेन संजय।
येन कर्णो महाबाहू रथोपस्थे निपातितः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! भीमसेनने तो यह अत्यन्त दुष्कर कर्म कर डाला कि महाबाहु कर्णको रथकी बैठकमें गिरा दिया ॥ १ ॥

कर्णो ह्येको रणे हन्ता पाण्डवान् सृञ्जयैः सह।
इति दुर्योधनः सूत प्राब्रवीन्मां मुहुर्मुहुः ॥ २ ॥

सूत ! दुर्योधन मुझसे बारंबार कहा करता था कि 'कर्ण अकेला ही रणभूमिमें सृंजयोंसहित समस्त पाण्डवोंका वध कर सकता है' ॥ २ ॥

पराजितं तु राधेयं दृष्ट्वा भीमेन संयुगे।
ततः परं किमकरोत् पुत्रो दुर्योधनो मम ॥ ३ ॥

परंतु उस दिन युद्धस्थलमें राधापुत्र कर्णको भीमसेनके द्वारा पराजित हुआ देखकर मेरे पुत्र दुर्योधनने क्या किया ?॥

संजय उवाच

विमुखं प्रेक्ष्य राधेयं सूतपुत्रं महाहवे।
पुत्रस्तव महाराज सोदर्यान् समभाषत ॥ ४ ॥

संजयने कहा—महाराज ! सूतपुत्र राधाकुमार कर्णको महासमरमें पराङ्मुख हुआ देख आपका पुत्र अपने भाइयोंसे बोला—॥ ४ ॥

शीघ्रं गच्छत भद्रं वो राधेयं परिरक्षत।
भीमसेनभयागाधे मज्जन्तं व्यसनार्णवे ॥ ५ ॥

'तुम्हारा कल्याण हो। तुमलोग शीघ्र जाओ और राधापुत्र कर्णकी रक्षा करो। वह भीमसेनके भयसे भरे हुए संकटके अगाध महासागरमें डूब रहा है' ॥ ५ ॥

ते तु राज्ञा समादिष्टा भीमसेनं जिघांसवः।
अभ्यवर्तन्त संक्रुद्धाः पतङ्गाः पावकं यथा ॥ ६ ॥

राजा दुर्योधनकी आज्ञा पाकर आपके पुत्र अत्यन्त कुपित हो भीमसेनको मार डालनेकी इच्छासे उनके सामने गये, मानो पतंग आगके समीप जा पहुँचे हों ॥ ६ ॥

श्रुतर्वा दुर्धरः क्राथो विवित्सुर्विकटः समः।
निषङ्गी कवची पाशी तथा नन्दोपनन्दकौ ॥ ७ ॥
दुष्प्रधर्षः सुबाहुश्च वातवेगसुवर्चसौ।
धनुर्ग्राहो दुर्मदश्च जलसंधः शलः सहः ॥ ८ ॥
एते रथैः परिवृता वीर्यवन्तो महाबलाः।
भीमसेनं समासाद्य समन्तात् पर्यवारयन् ॥ ९ ॥

श्रुतर्वा, दुर्धर, क्राथ (क्रथन), विवित्सु, विकट (विकटानन), सम, निषङ्गी, कवची, पाशी, नन्द, उपनन्द, दुष्प्रधर्ष, सुबाहु, वातवेग, सुवर्चा, धनुर्ग्राह, दुर्मद, जलसन्ध, शल और सह—ये महाबली और पराक्रमी आपके पुत्रगण, बहुसंख्यक रथोंसे घिरकर भीमसेनके पास जा पहुँचे और उन्हें सब ओरसे घेरकर खड़े हो गये ॥ ७-९ ॥

ते व्यमुञ्चञ्छरव्रातान् नानालिङ्गान् समन्ततः।
स तैरभ्यर्द्यमानस्तु भीमसेनो महाबलः ॥ १० ॥
तेषामापततां क्षिप्रं सुतानां ते जनाधिप।
रथैः पञ्चाशता सार्धं पञ्चाशदहनद् रथान् ॥ ११ ॥

वे चारों ओरसे नाना प्रकारके चिह्नोंसे युक्त बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगे। नरेश्वर ! उनसे पीड़ित होकर महाबली भीमसेनने पचास रथोंके साथ आये हुए आपके पुत्रोंके उन पचासों रथियोंको शीघ्र ही नष्ट कर दिया ॥ १०-११ ॥

विवित्सोस्तु ततः क्रुद्धो भल्लेनापाहरच्छिरः।
भीमसेनो महाराज तत् पपात हतं भुवि ॥ १२ ॥
सकुण्डलशिरस्त्राणं पूर्णचन्द्रोपमं तथा।

महाराज ! तत्पश्चात् कुपित हुए भीमसेनने एक भल्लसे



विवित्सुका सिर काट लिया। उसका वह कुण्डल और शिरस्त्राणसहित कटा हुआ मस्तक पूर्ण चन्द्रमाके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ १२½ ॥

तं दृष्ट्वा निहतं शूरं भ्रातरः सर्वतः प्रभो ॥ १३ ॥
अभ्यद्रवन्त समरे भीमं भीमपराक्रमम्।



भीमसेनके द्वारा धृतराष्ट्रके कई पुत्रों एवं कौरवयोद्धाओंका संहार

प्रभो ! उस शूरवीरको मारा गया देख उसके भाई समरभूमिमें भयंकर पराक्रमी भीमसेनपर सब ओरसे टूट पड़े ॥ १३½ ॥

ततोऽपराभ्यां भल्लाभ्यां पुत्रयोस्ते महाहवे ॥ १४ ॥
जहार समरे प्राणान् भीमो भीमपराक्रमः ।

तब भयानक पराक्रमसे सम्पन्न भीमसेनने उस महायुद्धमें दूसरे दो भल्लोंद्वारा रणभूमिमें आपके दो पुत्रोंके प्राण हर लिये ॥ १४½ ॥

तौ धरामन्वपद्येतां वातरुग्णाविव द्रुमौ ॥ १५ ॥
विकटश्च समश्चोभौ देवपुत्रोपमौ नृप ।

नरेश्वर ! वे दोनों थे विकट (विकटानन) और सम । देवपुत्रोंके समान सुशोभित होनेवाले वे दोनों वीर आँधीके उखाड़े हुए दो वृक्षोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १५½ ॥

ततस्तु त्वरितो भीमः क्राथं निन्ये यमक्षयम् ॥ १६ ॥
नाराचेन सुतीक्ष्णेन स हतो न्यपतद् भुवि ।

फिर लगे हाथ भीमसेनने क्राथ (क्रथन)को भी एक तीखे नाराचसे मारकर यमलोक पहुँचा दिया । वह राजकुमार प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ १६½ ॥

हाहाकारस्ततस्तीव्रः सम्बभूव जनेश्वर ॥ १७ ॥
वध्यमानेषु वीरेषु तव पुत्रेषु धन्विषु ।

जनेश्वर ! फिर आपके वीर धनुर्धर पुत्रोंके इस प्रकार वहाँ मारे जानेपर भयंकर हाहाकार मच गया ॥ १७½ ॥

तेषां सुलुलिते सैन्ये पुनर्भीमो महाबलः ॥ १८ ॥
नन्दोपनन्दौ समरे प्रैषयद् यमसादनम् ।

उनकी सेना चञ्चल हो उठी । फिर महाबली भीमसेनने समराङ्गणमें नन्द और उपनन्दको भी यमलोक भेज दिया१८½

ततस्ते प्राद्रवन् भीताः पुत्रास्ते विह्वलीकृताः ॥ १९ ॥
भीमसेनं रणे दृष्ट्वा कालान्तकयमोपमम् ।

तदनन्तर आपके शेष पुत्र रणभूमिमें काल, अन्तक और यमके समान भयानक भीमसेनको देखकर भयसे व्याकुल हो वहाँसे भाग गये ॥ १९½ ॥

पुत्रांस्ते निहतान् दृष्ट्वा सूतपुत्रः सुदुर्मनाः ॥ २० ॥
हंसवर्णान् हयान् भूयः प्रैषयद् यत्र पाण्डवः ।

आपके पुत्रोंको मारा गया देख सूतपुत्र कर्णके मनमें बड़ा दुःख हुआ । उसने हंसके समान अपने श्वेत घोड़ोंको पुनः वहीं हँकवाया, जहाँ पाण्डुपुत्र भीमसेन मौजूद थे २०½

ते प्रेषिता महाराज मद्रराजेन वाजिनः ॥ २१ ॥
भीमसेनरथं प्राप्य समसज्जन्त वेगिताः ।

महाराज ! मद्रराजके हाँके हुए वे घोड़े बड़े वेगसे भीमसेनके रथके पास जाकर उनसे सट गये ॥ २१½ ॥

स संनिपातस्तुमुलो घोररूपो विशाम्पते ॥ २२ ॥
आसीद् रौद्रो महाराज कर्णपाण्डवयोर्मृधे ।

प्रजानाथ ! महाराज ! युद्धस्थलमें कर्ण और भीमसेनका वह संघर्ष घोर, रौद्र और अत्यन्त भयंकर था ॥२२½॥

दृष्ट्वा मम महाराज तौ समेतौ महारथौ ॥ २३ ॥
आसीद् बुद्धिः कथं युद्धमेतदद्य भविष्यति ।

राजेन्द्र ! वे दोनों महारथी जब परस्पर भिड़ गये, उस समय वह देखकर मेरे मनमें यह विचार उठने लगा कि न जाने यह युद्ध कैसा होगा ? ॥ २३½ ॥

ततो भीमो रणश्लाघी छादयामास पत्रिभिः ॥२४ ॥
कर्णं रणे महाराज पुत्राणां तव पश्यताम् ।

महाराज ! तदनन्तर युद्धका हौसला रखनेवाले भीमसेनने अपने बाणोंसे आपके पुत्रोंके देखते-देखते कर्णको आच्छादित कर दिया ॥ २४½ ॥

ततः कर्णो भृशं क्रुद्धो भीमं नवभिरायसैः ॥ २५ ॥
विव्याध परमास्त्रज्ञो भल्लैः संनतपर्वभिः ।

तब उत्तम अस्त्रोंके ज्ञाता कर्णने अत्यन्त कुपित हो लोहेके बने हुए और झुकी हुई गाँठवाले नौ भल्लोंसे भीमसेनको घायल कर दिया ॥ २५½ ॥

आहतः स महाबाहुर्भीमो भीमपराक्रमः ॥ २६ ॥
आकर्णपूर्णैर्विशिखैः कर्णं विव्याध सप्तभिः ।

उन भल्लोंसे आहत हो भयंकर पराक्रमी महाबाहु भीमसेनने कर्णको भी कानतक खींचकर छोड़े गये सात बाणोंसे पीट दिया ॥ २६½ ॥

ततः कर्णो महाराज आशीविष इव श्वसन् ॥ २७ ॥
शरवर्षेण महता छादयामास पाण्डवम् ।

महाराज ! तब विषधर सर्पके समान फुफकारते हुए कर्णने बाणोंकी भारी वर्षा करके पाण्डुपुत्र भीमसेनको आच्छादित कर दिया ॥ २७½ ॥

भीमोऽपि तं शरव्रातैश्छादयित्वा महारथम् ॥ २८ ॥
पश्यतां कौरवेयाणां विननर्द महाबलः ।

महाबली भीमसेनने भी कौरववीरोंके देखते-देखते महारथी कर्णको बाणसमूहोंसे आच्छादित करके विकट गर्जना की ॥ २८½ ॥

ततः कर्णो भृशं क्रुद्धो दृढमादाय कार्मुकम् ॥ २९ ॥
भीमं विव्याध दशभिः कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ।
कार्मुकं चास्य चिच्छेद भल्लेन निशितेन च ॥ ३० ॥

तब कर्णने अत्यन्त कुपित हो सुदृढ़ धनुष हाथमें लेकर सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए कङ्कपत्रयुक्त दस बाणोंद्वारा भीमसेनको घायल कर दिया । साथ ही एक तीखे भल्लसे उनके धनुषको भी काट डाला ॥ २९-३० ॥

ततो भीमो महाबाहुर्हेमपट्टविभूषितम् ।
परिघं घोरमादाय मृत्युदण्डमिवापरम् ॥ ३१ ॥
कर्णस्य निधनाकाङ्क्षी चिक्षेपातिबलो नदन् ।

तब अत्यन्त बलवान् महाबाहु भीमसेनने कर्णके वधकी इच्छासे द्वितीय मृत्युदण्डके समान एक भयंकर स्वर्णपत्र-जटित परिघ हाथमें ले उसे गरजकर कर्णपर दे मारा ॥३१½॥

तमापतन्तं परिघं वज्राशनिसमस्वनम् ॥ ३२ ॥
चिच्छेद बहुधा कर्णः शरैराशीविषोपमैः ।

वज्र और बिजलीके समान गड़गड़ाहट पैदा करनेवाले उस परिघको अपने ऊपर आते देख कर्णने विषधर सर्पके समान भयंकर बाणोंद्वारा उसके बहुत-से टुकड़े कर डाले३२½

ततः कार्मुकमादाय भीमो दृढतरं तदा ॥ ३३ ॥
छादयामास विशिखैः कर्णं परबलार्दनम् ।

तत्पश्चात् भीमसेनने अत्यन्त सुदृढ़ धनुष हाथमें लेकर अपने बाणोंद्वारा शत्रुसैन्यसंतापी कर्णको आच्छादित कर दिया ॥ ३३½ ॥

ततो युद्धमभूद् घोरं कर्णपाण्डवयोर्मृधे ॥ ३४ ॥
हरीन्द्रयोरिव मुहुः परस्परवधैषिणोः ।

फिर तो एक दूसरेके वधकी इच्छावाले दो सिंहोंके समान कर्ण और भीमसेनमें वहाँ अत्यन्त भयंकर युद्ध होने लगा३४½

ततः कर्णो महाराज भीमसेनं त्रिभिः शरैः ॥ ३५ ॥
आकर्णमूलं विव्याध दृढमायम्य कार्मुकम् ।

महाराज ! उस समय कर्णने अपने सुदृढ़ धनुषको कानके पासतक खींचकर तीन बाणोंसे भीमसेनको क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ३५½ ॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासः कर्णेन बलिनां वरः ॥ ३६ ॥
घोरमादत्त विशिखं कर्णकायावदारणम् ।

कर्णके द्वारा अत्यन्त घायल होकर बलवानोंमें श्रेष्ठ महा-धनुर्धर भीमसेनने एक भयंकर बाण हाथमें लिया, जो कर्णके शरीरको विदीर्ण करनेमें समर्थ था ॥ ३६½ ॥

तस्य भित्त्वा तनुत्राणं भित्त्वा कायं च सायकः ॥ ३७ ॥
प्राविशद् धरणीं राजन् वल्मीकमिव पन्नगः ।

राजन् ! जैसे साँप बाँबीमें घुस जाता है, उसी प्रकार वह बाण कर्णके कवच और शरीरको छेदकर धरतीमें समा गया ॥३७½ ॥

स तेनातिप्रहारेण व्यथितो विह्वलन्निव ॥ ३८ ॥
संचचाल रथे कर्णः क्षितिकम्पे यथाचलः ।

उस प्रबल प्रहारसे व्यथित और विह्वल-सा होकर कर्ण रथपर ही काँपने लगा । ठीक उसी तरह, जैसे भूकम्पके समय पर्वत हिलने लगता है ॥ ३८½ ॥

ततः कर्णो महाराज रोषामर्षसमन्वितः ॥ ३९ ॥
पाण्डवं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्पयत् ।
आजघ्ने बहुभिर्बाणैर्ध्वजमेकेषुणाहनत् ॥ ४० ॥

महाराज ! तब रोष और अमर्षमें भरे हुए कर्णने पाण्डुपुत्र भीमसेनपर पचीस नाराचोंका प्रहार किया । साथ ही अन्य बहुत-से बाणोंद्वारा उन्हें घायल कर दिया और एक बाणसे उनकी ध्वजा काट डाली ॥ ३९-४० ॥

सारथिं चास्य भल्लेन प्रेषयामास मृत्यवे ।
छित्त्वा च कार्मुकं तूर्णं पाण्डवस्याशु पत्रिणा ॥ ४१ ॥
ततो मुहूर्ताद् राजेन्द्र नातिकृच्छ्राद्धसन्निव ।
विरथं भीमकर्माणं भीमं कर्णश्चकार ह ॥ ४२ ॥

राजेन्द्र ! फिर एक भल्लसे उनके सारथिको यमलोक भेज दिया और तुरंत ही एक बाणसे उनके धनुषको भी काटकर बिना विशेष कष्टके ही मुहूर्तभरमें हँसते हुए-से कर्णने भयंकर पराक्रमी भीमसेनको रथहीन कर दिया ४१-४२

विरथो भरतश्रेष्ठ प्रहसन्ननिलोपमः ।
गदां गृह्य महाबाहुरपतत् स्यन्दनोत्तमात् ॥ ४३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! रथहीन होनेपर वायुके समान बलशाली महाबाहु भीमसेन गदा हाथमें लेकर हँसते हुए उस उत्तम रथसे कूद पड़े ॥ ४३ ॥

अवप्लुत्य च वेगेन तव सैन्यं विशाम्पते ।
व्यधमद् गदया भीमः शरन्मेघानिवानिलः ॥ ४४ ॥

प्रजानाथ ! जैसे वायु शरत्कालके बादलोंको शीघ्र ही उड़ा देती है, उसी प्रकार भीमसेनने बड़े वेगसे कूदकर अपनी गदाकी चोटसे आपकी सेनाका विध्वंस आरम्भ किया॥

नागान् सप्तशतान् राजन्नीषादन्तान् प्रहारिणः ।
व्यधमत् सहसा भीमः क्रुद्धरूपः परंतपः ॥ ४५ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले भीमसेनने क्रुद्ध होकर प्रहार करनेमें कुशल और ईषादण्डके समान दाँतोंवाले सात सौ हाथियोंका सहसा संहार कर डाला ॥ ४५ ॥

दन्तवेष्टेषु नेत्रेषु कुम्भेषु च कटेषु च ।
मर्मस्वपि च मर्मज्ञस्तान् नागानवधीद् बली ॥ ४६ ॥

मर्मस्थलोंको जाननेवाले बलवान् भीमसेनने उन गजराजों के मर्मस्थानों, ओठों, नेत्रों, कुम्भस्थलों और कपोलोंपर भी गदासे चोट पहुँचायी ॥ ४६ ॥

ततस्ते प्राद्रवन् भीताः प्रतीपं प्रहिताः पुनः ।
महामात्रैस्तमावव्रुर्मेघा इव दिवाकरम् ॥ ४७ ॥

फिर तो वे हाथी भयभीत होकर भागने लगे । तत्पश्चात् महावतोंने जब उन्हें पीछे लौटाया, तब वे भीमसेनको घेरकर खड़े हो गये, मानो बादलोंने सूर्यदेवको ढक लिया हो ।४७।

तान् स सप्तशतान् नागान् सारोहायुधकेतनान् ।
भूमिष्ठो गदया जघ्ने वज्रेणेन्द्र इवाचलान् ॥ ४८ ॥

जैसे इन्द्र अपने वज्रके द्वारा पर्वतोंपर आघात करते हैं, उसी प्रकार पृथ्वीपर खड़े हुए भीमसेनने सवारों, आयुधों और ध्वजाओंसहित उन सात सौ गजराजोंको गदासे ही मार डाला ॥ ४८ ॥



ततः सुबलपुत्रस्य नागानतिबलान् पुनः ।
पोथयामास कौन्तेयो द्विपञ्चाशदरिंदमः ॥ ४९ ॥

तत्पश्चात् शत्रुओंका दमन करनेवाले कुन्तीकुमार भीमने सुबलपुत्र शकुनिके अत्यन्त बलवान् बावन हाथियोंको मार गिराया ॥ ४९ ॥

तथा रथशतं साग्रं पत्तींश्च शतशोऽपरान् ।
न्यहनत् पाण्डवो युद्धे तापयंस्तव वाहिनीम् ॥ ५० ॥

इसी प्रकार उस युद्धस्थलमें आपकी सेनाको संताप देते हुए पाण्डुकुमार भीमसेनने सौसे भी अधिक रथों और दूसरे सैकड़ों पैदल सैनिकोंका संहार कर डाला ॥ ५० ॥

प्रताप्यमानं सूर्येण भीमेन च महात्मना ।
तव सैन्यं संचुकोच चर्माग्नावाहितं यथा ॥ ५१ ॥

ऊपरसे सूर्य तपा रहे थे और नीचे महामनस्वी भीमसेन संतप्त कर रहे थे । उस अवस्थामें आपकी सेना आगपर रक्खे हुए चमड़ेके समान सिकुड़कर छोटी हो गयी ॥ ५१ ॥

ते भीमभयसंत्रस्तास्तावका भरतर्षभ ।
विहाय समरे भीमं दुद्रुवुर्वै दिशो दश ॥ ५२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! भीमके भयसे डरे हुए आपके समस्त सैनिक समराङ्गणमें उनका सामना करना छोड़कर दसों दिशाओंमें भागने लगे ॥ ५२ ॥

रथाः पञ्चशताश्चान्ये ह्लादिनश्चर्मवर्मिणः ।
भीममभ्यद्रवन् घ्नन्तः शरपूगैः समन्ततः ॥ ५३ ॥

तदनन्तर चर्ममय आवरणोंसे युक्त पाँच सौ रथ घर्घराहटकी आवाज फैलाते हुए चारों ओरसे भीमसेनपर चढ़ आये और बाणसमूहोंद्वारा उन्हें घायल करने लगे ॥ ५३ ॥

तान् स पञ्चशतान् वीरान् सपताकध्वजायुधान् ।
पोथयामास गदया भीमो विष्णुरिवासुरान् ॥ ५४ ॥

जैसे भगवान् विष्णु असुरोंका संहार करते हैं, उसी प्रकार भीमसेनने पताका, ध्वज और आयुधोंसहित उन पाँच सौ रथी वीरोंको गदाके आघातसे चूर-चूर कर डाला ॥

ततः शकुनिनिर्दिष्टाः सादिनः शूरसम्मताः ।
त्रिसाहस्राभ्ययुर्भीमं शक्त्यृष्टिप्रासपाणयः ॥ ५५ ॥

तदनन्तर शकुनिके आदेशसे शूर वीरोंद्वारा सम्मानित तीन हजार घुड़सवारोंने हाथोंमें शक्ति, ऋष्टि और प्रास लेकर भीमसेनपर धावा बोल दिया ॥ ५५ ॥

प्रत्युद्गम्य जवेनाशु साश्वारोहांस्तदारिहा ।
विविधान् विचरन् मार्गान् गदया समपोथयत् ॥ ५६ ॥

यह देख शत्रुओंका संहार करनेवाले भीमसेनने बड़े वेगसे आगे जाकर भाँति-भाँतिके पैंतरे बदलते हुए अपनी गदासे उन घोड़ों और घुड़सवारोंको मार गिराया ॥ ५६ ॥

तेषामासीन्महाञ्छब्दस्ताडितानां च सर्वशः ।
अश्मभिर्विध्यमानानां नगानामिव भारत ॥ ५७ ॥

भारत ! जैसे वृक्षोंपर पत्थरोंसे चोट की जाय, उसी प्रकार गदासे ताडित होनेवाले उन अश्वारोहियोंके शरीरसे सब ओर महान् शब्द प्रकट होता था ॥ ५७ ॥

एवं सुबलपुत्रस्य त्रिसाहस्रान् हयोत्तमान् ।
हत्वान्यं रथमास्थाय क्रुद्धो राधेयमभ्ययात् ॥ ५८ ॥

इस प्रकार शकुनिके तीन हजार घुड़सवारोंको मारकर क्रोधमें भरे हुए भीमसेन दूसरे रथपर आरूढ़ हो राधापुत्र कर्णके सामने आ पहुँचे ॥ ५८ ॥

कर्णोऽपि समरे राजन् धर्मपुत्रमरिंदमम् ।
स शरैश्छादयामास सारथिं चाप्यपातयत् ॥ ५९ ॥

राजन् ! कर्णने भी समराङ्गणमें शत्रुओंका दमन करनेवाले धर्मपुत्र युधिष्ठिरको बाणोंसे आच्छादित कर दिया और सारथिको भी मार गिराया ॥ ५९ ॥

ततः स प्रद्रुतं संख्ये रथं दृष्ट्वा महारथः ।
अन्वधावत् किरन् बाणैः कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ॥ ६० ॥

फिर महारथी कर्ण युधिष्ठिरके सारथिरहित रथको रणभूमिमें इधर-उधर घूमते देख कङ्कपत्रयुक्त सीधे जानेवाले बाणोंकी वर्षा करता हुआ उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगा ॥६०॥

राजानमभिधावन्तं शरैरावृत्य रोदसी ।
क्रुद्धः प्रच्छादयामास शरजालेन मारुतिः ॥ ६१ ॥

कर्णको राजा युधिष्ठिरपर धावा करते देख वायुपुत्र भीमसेन कुपित हो उठे । उन्होंने बाणोंसे कर्णको ढककर पृथ्वी और आकाशको भी शरसमूहसे आच्छादित कर दिया ॥

संनिवृत्तस्ततस्तूर्णं राधेयः शत्रुकर्शनः ।
भीमं प्रच्छादयामास समन्तान्निशितैः शरैः ॥ ६२ ॥

तब शत्रुसूदन राधापुत्र कर्णने तुरंत ही लौटकर सब ओरसे पैने बाणोंकी वर्षा करके भीमसेनको ढक दिया ।६२।

भीमसेनरथव्यग्रं कर्णं भारत सात्यकिः ।
अभ्यर्दयदमेयात्मा पार्ष्णिग्रहणकारणात् ॥ ६३ ॥

भारत ! तत्पश्चात् अमेय आत्मबलसे सम्पन्न सात्यकिने भीमसेनके रथसे उलझे हुए कर्णको पीड़ा देना आरम्भ किया, क्योंकि वे भीमसेनके पृष्ठभागकी रक्षा कर रहे थे ॥ ६३ ॥

अभ्यवर्तत कर्णस्तमर्दितोऽपि शरैर्भृशम् ।
तावन्योन्यं समासाद्य वृषभौ सर्वधन्विनाम् ॥ ६४ ॥
विसृजन्तौ शरान् दीप्तान् व्यभ्राजेतां मनस्विनौ ।

कर्ण सात्यकिके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित होनेपर भी भीमसेनका सामना करनेके लिये डटा रहा। वे दोनों ही सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ एवं मनस्वी वीर थे और एक दूसरेसे भिड़कर चमकीले बाणोंकी वर्षा करते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे ॥ ६४½ ॥

ताभ्यां वियति राजेन्द्र विततं भीमदर्शनम् ॥ ६५ ॥
क्रौञ्चपृष्ठारुणं रौद्रं बाणजालं व्यदृश्यत ।

राजेन्द्र ! उन दोनोंने आकाशमें बाणोंका भयंकर जाल-सा बिछा दिया, जो क्रौञ्च पक्षीके पृष्ठभागके समान लाल और भयानक दिखायी देता था ॥ ६५½ ॥

नैव सूर्यप्रभा राजन् न दिशः प्रदिशस्तथा ॥ ६६ ॥
प्राज्ञासिष्म वयं ते वा शरैर्मुक्तैः सहस्रशः ।

राजन् ! वहाँ छूटे हुए सहस्रों बाणोंसे न तो सूर्यकी प्रभा दिखायी देती थी, न दिशाएँ और न विदिशाएँ ही दृष्टिगोचर होती थीं। हम या हमारे शत्रु भी पहचाने नहीं जाते थे ॥ ६६½ ॥

मध्याह्ने तपतो राजन् भास्करस्य महाप्रभाः ॥ ६७ ॥
हताः सर्वाः शरौघैस्तैः कर्णपाण्डवयोस्तदा ।

नरेश्वर ! कर्ण और भीमसेनके बाणसमूहोंसे मध्याह्न-कालमें तपते हुए सूर्यकी सारी प्रचण्ड किरणें भी फीकी पड़ गयी थीं ॥ ६७½ ॥

सौबलं कृतवर्माणं द्रौणिमाधिरथिं कृपम् ॥ ६८ ॥
संसक्तान् पाण्डवैर्दृष्ट्वा निवृत्ताः कुरवः पुनः ।

उस समय शकुनि, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, कर्ण और कृपाचार्यको पाण्डवोंके साथ जूझते देख भागे हुए कौरव-सैनिक फिर लौट आये ॥ ६८½ ॥

तेषामापततां शब्दस्तीव्र आसीद् विशाम्पते ॥ ६९ ॥
उद्वृत्तानां यथा वृष्ट्या सागराणां भयावहः ।

प्रजानाथ ! उस समय उनके आनेसे बड़ा भारी कोलाहल होने लगा, मानो वर्षासे बढ़े हुए समुद्रोंकी भयानक गर्जना हो रही हो ॥ ६९½ ॥

ते सेने भृशसंसक्ते दृष्ट्वान्योन्यं महाहवे ॥ ७० ॥
हर्षेण महता युक्ते परिगृह्य परस्परम् ।

उस महासमरमें एक दूसरीसे उलझी हुई दोनों सेनाएँ परस्पर दृष्टिपात करके बड़े हर्ष और उत्साहके साथ युद्ध करने लगीं ॥ ७०½ ॥

ततः प्रववृते युद्धं मध्यं प्राप्ते दिवाकरे ॥ ७१ ॥
तादृशं न कदाचिद्धि दृष्टपूर्वं न च श्रुतम् ।

तदनन्तर सूर्यके मध्याह्नकी वेलामें आ जानेपर अत्यन्त घोर युद्ध आरम्भ हुआ। वैसा न तो पहले कभी देखा गया था और न सुननेमें ही आया था ॥ ७१½ ॥

बलौघस्तु समासाद्य बलौघं सहसा रणे ॥ ७२ ॥
उपासर्पत वेगेन वार्योघ इव सागरम् ।
आसीन्निनादः सुमहान् बाणौघानां परस्परम् ॥ ७३ ॥
गर्जतां सागरौघाणां यथा स्यान्निःस्वनो महान् ।

जैसे जलका प्रवाह वेगके साथ समुद्रमें जाकर मिलता है, उसी प्रकार रणभूमिमें एक सैन्यसमुदाय दूसरे सैन्यसमुदाय-से सहसा जा मिला और परस्पर टकरानेवाले बाणसमूहोंका महान् शब्द उसी प्रकार प्रकट होने लगा, जैसे गरजते हुए सागरसमुदायोंका गम्भीर नाद प्रकट हो रहा हो ।७२-७३½।

ते तु सेने समासाद्य वेगवत्यौ परस्परम् ॥ ७४ ॥
एकीभावमनुप्राप्ते नद्याविव समागमे ।

जैसे दो नदियाँ परस्पर संगम होनेपर एक हो जाती हैं, उसी प्रकार वे वेगवती सेनाएँ परस्पर मिलकर एकीभावको प्राप्त हो गयीं ॥ ७४½ ॥

ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं विशाम्पते ॥ ७५ ॥
कुरूणां पाण्डवानां च लिप्सतां सुमहद् यशः ।

प्रजानाथ ! फिर महान् यश पानेकी इच्छावाले कौरवों और पाण्डवोंमें घोर युद्ध आरम्भ हो गया ॥ ७५½ ॥

शूराणां गर्जतां तत्र ह्यविच्छेदकृता गिरः ॥ ७६ ॥
श्रूयन्ते विविधा राजन् नामान्युद्दिश्य भारत ।

भरतवंशी नरेश ! उस समय नाम ले-लेकर गरजते हुए शूरवीरोंकी भाँति-भाँतिकी बातें अविच्छिन्नरूपसे सुनायी पड़ती थीं ॥ ७६½ ॥

यस्य यद्धि रणे व्यङ्गं पितृतो मातृतोऽपि वा ॥ ७७ ॥
कर्मतः शीलतो वापि स तच्छ्रावयते युधि ।

रणभूमिमें जिसकी जो कुछ पिता-माता, कर्म अथवा शील-स्वभावके कारण विशेषता थी, वह युद्धस्थलमें उसको सुनाता था ॥ ७७½ ॥

तान् दृष्ट्वा समरे शूरांस्तर्जमानान् परस्परम् ॥ ७८ ॥
अभवन्मे मती राजन् नैषामस्तीति जीवितम् ।

राजन् ! समराङ्गणमें एक दूसरेको डाँट बताते हुए उन शूरवीरोंको देखकर मेरे मनमें यह विचार उठता था कि अब इनका जीवन नहीं रहेगा ॥ ७८½ ॥

तेषां दृष्ट्वा तु क्रुद्धानां वपूंष्यमिततेजसाम् ॥ ७९ ॥

अभवन्मे भयं तीव्रं कथमेतद् भविष्यति।

क्रोधमें भरे हुए उन अमिततेजस्वी वीरोंके शरीर देखकर मुझे बड़ा भारी भय होता था कि यह युद्ध कैसा होगा ? ॥ ७९½ ॥

ततस्ते पाण्डवा राजन् कौरवाश्च महारथाः।
ततक्षुः सायकैस्तीक्ष्णैर्निघ्नन्तो हि परस्परम् ॥ ८० ॥

राजन् ! तदनन्तर पाण्डव और कौरव महारथी तीखे बाणोंसे प्रहार करते हुए एक दूसरेको क्षत-विक्षत करने लगे॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दोनों सेनाओंका घोर युद्ध और कौरवसेनाका व्यथित होना

संजय उवाच

क्षत्रियास्ते महाराज परस्परवधैषिणः।
अन्योन्यं समरे जघ्नुः कृतवैराः परस्परम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! एक दूसरेके वधकी इच्छावाले वे क्षत्रिय परस्पर वैरभाव रखकर समराङ्गणमें एक दूसरेको मारने लगे ॥ १ ॥

रथौघाश्च हयौघाश्च नरौघाश्च समन्ततः।
गजौघाश्च महाराज संसक्ताश्च परस्परम् ॥ २ ॥

राजेन्द्र ! रथसमूह, अश्वसमूह, हाथियोंके झुंड और पैदल मनुष्योंके समुदाय सब ओर एक दूसरेसे उलझे हुए थे॥

गदानां परिघाणां च कणपानां च क्षिप्यताम्।
प्रासानां भिन्दिपालानां भुशुण्डीनां च सर्वशः॥ ३ ॥
सम्पातं चानुपश्याम संग्रामे भृशदारुणे।
शलभा इव सम्पेतुः समन्ताच्छरवृष्टयः ॥ ४ ॥

उस अत्यन्त दारुण संग्राममें हमलोग निरन्तर चलाये जानेवाले परिघों, गदाओं, कणपों, प्रासों, भिन्दिपालों और भुशुण्डियोंकी धारा-सी गिरती देख रहे थे। सब ओर टिड्डी-दलोंके समान बाणोंकी वर्षा हो रही थी ॥ ३-४ ॥

नागान् नागाः समासाद्य व्यधमन्त परस्परम्।
हया हयांश्च समरे रथिनो रथिनस्तथा ॥ ५ ॥
पत्तयः पत्तिसंघांश्च हयसंघांश्च पत्तयः।
पत्तयो रथमातङ्गान् रथा हस्त्यश्वमेव च ॥ ६ ॥
नागाश्च समरे त्र्यङ्गं ममृदुः शीघ्रगा नृप।

हाथी हाथियोंसे भिड़कर एक दूसरेको संताप देने लगे। उस समराङ्गणमें घोड़े घोड़ों, रथी रथियों एवं पैदल पैदल-समूहों, अश्वसमुदायों तथा रथों और हाथियोंका भी मर्दन कर रहे थे। नरेश्वर ! इसी प्रकार रथी हाथी और घोड़ोंका तथा शीघ्रगामी हाथी उस युद्धस्थलमें हाथी सेनाके अन्य तीन अङ्गोंको रौंदने लगे ॥ ५-६½ ॥

वध्यतां तत्र शूराणां क्रोशतां च परस्परम् ॥ ७ ॥
घोरमायोधनं जज्ञे पशूनां वैशसं यथा।

वहाँ मारे जाते और एक दूसरेको कोसते हुए शूरवीरोंके आर्तनादसे वह युद्धस्थल वैसा ही भयंकर जान पड़ता था, मानो वहाँ पशुओंका वध किया जा रहा हो ॥ ७½ ॥

रुधिरेण समास्तीर्णा भाति भारत मेदिनी ॥ ८ ॥
शक्रगोपगणाकीर्णा प्रावृषीव यथा धरा।

भारत ! खूनसे ढकी हुई यह पृथ्वी वर्षाकालमें वीरबहूटी नामक लाल रंगके कीड़ोंसे व्याप्त हुई भूमिके समान शोभा पाती थी ॥ ८½ ॥

यथा वा वाससी शुक्ले महारजनरञ्जिते ॥ ९ ॥
बिभृयाद् युवती श्यामा तद्वदासीद् वसुंधरा।
मांसशोणितचित्रेव शातकुम्भमयीव च ॥ १० ॥

अथवा जैसे कोई श्यामवर्णा युवती श्वेत रंगके वस्त्रोंको हल्दीके गाढ़े रंगमें रँगकर पहन ले, वैसी ही वह रणभूमि प्रतीत होती थी। मांस और रक्तसे चित्रित-सी जान पड़नेवाली वह भूमि सुवर्णमयी-सी प्रतीत होती थी ॥ ९-१० ॥

भिन्नानां चोत्तमाङ्गानां बाहूनां चोरुभिः सह।
कुण्डलानां प्रवृद्धानां भूषणानां च भारत ॥ ११ ॥
निष्काणामथ शूराणां शरीराणां च धन्विनाम्।
चर्मणां सपताकानां संघास्तत्रापतन् भुवि ॥ १२ ॥

भारत ! वहाँ भूतलपर कटे हुए मस्तकों, भुजाओं, जाँघों, बड़े-बड़े कुण्डलों, अन्यान्य आभूषणों, निष्कों धनुर्धर शूरवीरोंके शरीरों, ढालों और पताकाओंके ढेर-के-ढेर पड़े थे ॥

गजा गजान् समासाद्य विषाणैरार्दयन् नृप।
विषाणाभिहतास्तत्र भ्राजन्ते द्विरदास्तथा ॥ १३ ॥
रुधिरेणावसिक्ताङ्गा गैरिकप्रस्रवा इव।
यथा भ्राजन्ति स्यन्दन्तः पर्वता धातुमण्डिताः ॥१४ ॥

नरेश्वर ! हाथी हाथियोंसे भिड़कर अपने दाँतोंसे परस्पर पीड़ा दे रहे थे। दाँतोंकी चोटसे घायल हो खूनसे भीगे शरीरवाले हाथी गेरूके रंगसे मिले हुए जलका स्रोत बहानेवाले झरनोंसे युक्त धातुमण्डित पर्वतोंके समान शोभा पाते थे॥

तोमरान् सादिभिर्मुक्तान् प्रतीपानास्थितान् बहून्।
हस्तैर्विचेरुस्ते नागा बभञ्जुश्चापरे तथा ॥ १५ ॥

कितने ही हाथी घुड़सवारोंके छोड़े हुए तोमरों तथा अनेक विपक्षियोंको भी सूँड़ोंसे पकड़कर रणभूमिमें विचरते थे तथा दूसरे उनको टुकड़े-टुकड़े कर डालते थे ॥ १५ ॥

नाराचैश्छिन्नवर्माणो भ्राजन्ति स्म गजोत्तमाः ।
हिमागमे यथा राजन् व्यभ्रा इव महीधराः ॥ १६ ॥

राजन् ! नाराचोंसे कवच छिन्न-भिन्न होनेके कारण गजराजोंकी वैसी ही शोभा हो रही थी, जैसे हेमन्त ऋतुमें बिना बादलोंके पर्वत शोभित होते हैं ॥ १६ ॥

शरैः कनकपुङ्खैश्च चित्रा रेजुर्गजोत्तमाः ।
उल्काभिः सम्प्रदीप्ताग्राः पर्वता इव भारत ॥ १७ ॥

भरतनन्दन ! विचित्र प्रकारसे सजे हुए उत्तम हाथी सुवर्णमय पंखवाले बाणोंके लगनेसे उल्काओंद्वारा उद्दीप्त शिखरोंवाले पर्वतोंके समान शोभा पा रहे थे ॥ १७ ॥

केचिदभ्याहता नागैर्नागा नगनिभोपमाः ।
विनेशुः समरे तस्मिन् पक्षवन्त इवाद्रयः ॥ १८ ॥

उस संग्राममें पर्वतोंके समान प्रतीत होनेवाले कितने ही हाथी हाथियोंसे घायल हो पंखधारी शैलसमूहोंके समान नष्ट हो गये ॥ १८ ॥

अपरे प्राद्रवन् नागाः शल्यार्ता व्रणपीडिताः ।
प्रतिमानैश्च कुम्भैश्च पेतुरुर्व्यां महाहवे ॥ १९ ॥

दूसरे बहुत-से हाथी बाणोंसे व्यथित और घावोंसे पीड़ित हो भाग चले और कितने ही उस महासमरमें दोनों दाँतों और कुम्भस्थलोंको धरतीपर टेककर धराशायी हो गये ॥ १९ ॥

विनेदुः सिंहवच्चान्ये नदन्तो भैरवान् रवान् ।
बभ्रमुर्बहवो राजंश्चुकुशुश्चापरे गजाः ॥ २० ॥

राजन् ! दूसरे अनेक गजराज भयंकर गर्जना करते हुए सिंहके समान दहाड़ रहे थे और दूसरे बहुतेरे हाथी इधर-उधर चक्कर काटते और चीखते-चिल्लाते थे ॥ २० ॥

हयाश्च निहता बाणैर्हेमभाण्डविभूषिताः ।
निषेदुश्चैव मम्लुश्च बभ्रमुश्च दिशो दश ॥ २१ ॥

सोनेके आभूषणोंसे विभूषित बहुसंख्यक घोड़े बाणोंद्वारा घायल होकर बैठ जाते, मलिन हो जाते और दसों दिशाओंमें भागने लगते थे ॥ २१ ॥

अपरे कृष्यमाणाश्च विचेष्टन्तो महीतले ।
भावान् बहुविधांश्चक्रुस्ताडिताः शरतोमरैः ॥ २२ ॥

बाणों और तोमरोंद्वारा ताड़ित होकर कितने ही अश्व धरतीपर लोट जाते और हाथियोंद्वारा खींचे जानेपर छटपटाते हुए नाना प्रकारके भाव व्यक्त करते थे ॥ २२ ॥

नरास्तु निहता भूमौ कूजन्तस्तत्र मारिष ।
दृष्ट्वा च बान्धवानन्ये पितॄनन्ये पितामहान् ॥ २३ ॥

आर्य ! वहाँ घायल होकर पृथ्वीपर पड़े हुए कितने ही मनुष्य अपने बान्धव-जनोंको देखकर कराह उठते थे। कितने ही अपने बाप-दादोंको देखकर कुछ अस्फुट स्वरमें बोलने लगते थे ॥ २३ ॥

धावमानान् परांश्चान्यान् दृष्ट्वान्ये तत्र भारत ।
गोत्रनामानि ख्यातानि शशंसुरितरेतरम् ॥ २४ ॥

भरतनन्दन ! दूसरे बहुत-से मनुष्य अन्यान्य लोगोंको दौड़ते देख एक-दूसरेसे अपने प्रसिद्ध नाम और गोत्र बताने लगते थे ॥ २४ ॥

तेषां छिन्ना महाराज भुजाः कनकभूषणाः ।
उद्वेष्टन्ते विचेष्टन्ते पतन्ते चोत्पतन्ति च ॥ २५ ॥
निपतन्ति तथैवान्ये स्फुरन्ति च सहस्रशः ।

महाराज ! मनुष्योंकी कटी हुई सहस्रों सुवर्णभूषित भुजाएँ कभी टेढ़ी होकर किसी शरीरसे लिपट जातीं, कभी छटपटातीं, गिरतीं, ऊपरको उछलतीं, नीचे आ जातीं और तड़पने लगती थीं ॥ २५½ ॥

वेगांश्चान्ये रणे चक्रुः पञ्चास्या इव पन्नगाः ॥ २६ ॥
ते भुजा भोगिभोगाभाश्चन्दनाक्ता विशाम्पते ।
लोहितार्द्रा भृशं रेजुस्तपनीयध्वजा इव ॥ २७ ॥

प्रजानाथ ! सर्पोंके शरीरोंके समान प्रतीत होनेवाली कितनी ही चन्दनचर्चित भुजाएँ रणभूमिमें पाँच मुँहवाले सर्पोंके समान महान् वेग प्रकट करतीं तथा रक्तरंजित होनेके कारण सुवर्णमयी ध्वजाओंके समान अधिकाधिक शोभा पाती थीं ॥ २६-२७ ॥

वर्तमाने तथा घोरे संकुले सर्वतोदिशम् ।
अविज्ञाताः स्म युध्यन्ते विनिघ्नन्तः परस्परम् ॥ २८ ॥

उस घोर घमासान युद्धके चालू होनेपर सम्पूर्ण योद्धा एक-दूसरेपर चोट करते हुए बिना जाने-पहचाने ही युद्ध करते थे ॥ २८ ॥

भौमेन रजसाऽऽकीर्णे शस्त्रसम्पातसंकुले ।
नैव स्वे न परे राजन् व्यज्ञायन्त तमोवृताः ॥ २९ ॥

राजन् ! शस्त्रोंकी धारावाहिक वृष्टिसे व्याप्त तथा धरतीकी धूलसे आच्छादित हुए उस प्रदेशमें अपने और शत्रुपक्षके सैनिक अन्धकारसे आच्छादित होनेके कारण पहचानमें नहीं आते थे ॥ २९ ॥

तथा तदभवद् युद्धं घोररूपं भयानकम् ।
लोहितोदा महानद्यः प्रसस्रुस्तत्र चासकृत् ॥ ३० ॥

वह युद्ध ऐसा घोर एवं भयानक हो रहा था कि वहाँ बारंबार खूनकी बड़ी-बड़ी नदियाँ बह चलती थीं ॥ ३० ॥

शीर्षपाषाणसंछन्नाः केशशैवलशाद्वलाः ।
अस्थिमीनसमाकीर्णा धनुःशरगदोडुपाः ॥ ३१ ॥

योद्धाओंके कटे हुए मस्तक शिलाखण्डोंके समान उन नदियोंको आच्छादित किये रहते थे । उनके केश ही सेवार और घासके समान प्रतीत होते थे, हड्डियाँ ही उनमें मछलियोंके समान व्याप्त हो रही थीं, धनुष, बाण और गदाएँ नौकाके समान जान पड़ती थीं ॥ ३१ ॥

मांसशोणितपङ्किन्यो घोररूपाः सुदारुणाः ।
नदीः प्रवर्तयामासुः शोणितौघविवर्धिनीः ॥ ३२ ॥

उनके भीतर मांस और रक्तकी ही कीचड़ जमी थी। रक्तके प्रवाहको बढ़ानेवाली उन घोर एवं भयंकर नदियोंको वहाँ योद्धाओंने प्रवाहित किया था ॥ ३२ ॥

भीरुवित्रासकारिण्यः शूराणां हर्षवर्धनाः।
ता नद्यो घोररूपास्तु नयन्त्यो यमसादनम् ॥ ३३ ॥

वे भयानक रूपवाली नदियाँ कायरोंको डराने और शूरवीरोंका हर्ष बढ़ानेवाली थीं तथा प्राणियोंको यमलोक पहुँचाती थीं ॥ ३३ ॥

अवगाढान् मज्जयन्त्यः क्षत्रस्याजनयन् भयम्।
क्रव्यादानां नरव्याघ्र नर्दतां तत्र तत्र ह ॥ ३४ ॥
घोरमायोधनं जज्ञे प्रेतराजपुरोपमम्।

जो उनमें प्रवेश करते, उन्हें वे डुबो देती थीं और क्षत्रियोंके मनमें भय उत्पन्न करती थीं। नरव्याघ्र! वहाँ गरजते हुए मांसभक्षी जन्तुओंके शब्दसे वह युद्धस्थल प्रेतराजकी नगरीके समान भयानक जान पड़ता था ॥ ३४½ ॥

उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ॥ ३५ ॥
नृत्यन्ति वै भूतगणाः सुतृप्ता मांसशोणितैः।
पीत्वा च शोणितं तत्र वसां पीत्वा च भारत ॥ ३६ ॥

वहाँ चारों ओर उठे हुए अगणित कबन्ध और रक्त-मांससे तृप्त हुए भूतगण नृत्य कर रहे थे। भारत! ये सब-के-सब रक्त तथा वसा पीकर छके हुए थे ॥ ३५-३६ ॥

मेदोमज्जावसामत्तास्तृप्ता मांसस्य चैव ह।
धावमानाः स्म दृश्यन्ते काकगृध्रबकास्तथा ॥ ३७ ॥

मेदा, वसा, मज्जा और मांससे तृप्त एवं मतवाले कौए, गीध और बक सब ओर उड़ते दिखायी देते थे ॥ ३७ ॥

शूरास्तु समरे राजन् भयं त्यक्त्वा सुदुस्त्यजम्।
योधव्रतसमाख्याताश्चक्रुः कर्माण्यभीतवत् ॥ ३८ ॥

राजन्! उस समरमें योद्धाओंके व्रतका पालन करनेमें विख्यात शूरवीर जिसका त्याग करना अत्यन्त कठिन है, उस भयको छोड़कर निर्भयके समान पराक्रम प्रकट करते थे ॥

शरशक्तिसमाकीर्णे क्रव्यादगणसंकुले।
व्यचरन्त रणे शूराः ख्यापयन्तः स्वपौरुषम् ॥ ३९ ॥

बाण और शक्तियोंसे व्याप्त तथा मांसभक्षी जन्तुओंसे भरे हुए उस रणक्षेत्रमें शूरवीर अपने पुरुषार्थकी ख्याति बढ़ाते हुए विचर रहे थे ॥ ३९ ॥

अन्योन्यं श्रावयन्ति स्म नामगोत्राणि भारत।
पितृनामानि च रणे गोत्रनामानि वा विभो ॥ ४० ॥
श्रावयाणाश्च बहवस्तत्र योद्धा विशाम्पते।
अन्योन्यमवमृद्नन्तः शक्तितोमरपट्टिशैः ॥ ४१ ॥

भारत! प्रभो! रणभूमिमें कितने ही योद्धा एक दूसरेको अपने और पिताके नाम तथा गोत्र सुनाते थे। प्रजानाथ! नाम और गोत्र सुनाते हुए बहुतेरे योद्धा शक्ति, तोमर और पट्टिशोंद्वारा एक दूसरेको धूलमें मिला रहे थे ॥ ४०-४१ ॥

वर्तमाने तथा युद्धे घोररूपे सुदारुणे।
व्यषीदत् कौरवी सेना भिन्ना नौरिव सागरे ॥ ४२ ॥

इस प्रकार वह दारुण एवं भयंकर युद्ध चल ही रहा था कि समुद्रमें टूटी हुई नौकाके समान कौरव-सेना छिन्न-भिन्न हो गयी और विषाद करने लगी ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अर्जुनद्वारा दस हजार संशप्तक योद्धाओं और उनकी सेनाका संहार

संजय उवाच

वर्तमाने तथा युद्धे क्षत्रियाणां निमज्जने।
गाण्डीवस्य महाघोषः श्रूयते युधि मारिष ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—आर्य! जब क्षत्रियोंका संहार करनेवाला वह भयानक युद्ध चल रहा था, उसी समय दूसरी ओर बड़े जोर-जोरसे गाण्डीव धनुषकी टंकार सुनायी देती थी ॥

संशप्तकानां कदनमकरोद् यत्र पाण्डवः।
कोसलानां तथा राजन् नारायणबलस्य च ॥ २ ॥

राजन्! वहाँ पाण्डुनन्दन अर्जुन संशप्तकोंका, कोसलदेशीय योद्धाओंका तथा नारायणी-सेनाका संहार कर रहे थे ॥

संशप्तकास्तु समरे शरवृष्टीः समन्ततः।
अपातयन् पार्थमूर्ध्नि जयगृद्धाः प्रमन्यवः ॥ ३ ॥

समराङ्गणमें विजयकी इच्छा रखनेवाले संशप्तकोंने अत्यन्त कुपित होकर अर्जुनके मस्तकपर चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ३ ॥

ता वृष्टीः सहसा राजंस्तरसा धारयन् प्रभुः।
व्यगाहत रणे पार्थो विनिघ्नन् रथिनां वरान् ॥ ४ ॥

राजन्! उस बाण-वर्षाको सहसा वेगपूर्वक सहते और श्रेष्ठ रथियोंका संहार करते हुए शक्तिशाली अर्जुन रणभूमिमें विचरने लगे॥

विगाह्य तद् रथानीकं कङ्कपत्रैः शिलाशितैः।
आससाद ततः पार्थः सुशर्माणं वरायुधम् ॥ ५ ॥

सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए कङ्कपत्रयुक्त बाणोंद्वारा प्रहार करते हुए कुन्तीपुत्र अर्जुन रथियोंकी सेनामें घुसकर श्रेष्ठ आयुध धारण करनेवाले सुशर्माके पास जा पहुँचे ॥ ५ ॥

स तस्य शरवर्षाणि ववर्ष रथिनां वरः।
तथा संशप्तकाश्चैव पार्थं बाणैः समार्पयन् ॥ ६ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ सुशर्मा उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगा तथा अन्य संशप्तकोंने भी अर्जुनको अनेक बाण मारे ॥

सुशर्मा तु ततः पार्थं विद्ध्वा दशभिराशुगैः।
जनार्दनं त्रिभिर्बाणैरहनद् दक्षिणे भुजे ॥ ७ ॥

सुशर्माने दस बाणोंसे अर्जुनको घायल करके श्रीकृष्णकी दाहिनी भुजापर तीन बाण मारे ॥ ७ ॥

ततोऽपरेण भल्लेन केतुं विव्याध मारिष।
स वानरवरो राजन् विश्वकर्मकृतो महान् ॥ ८ ॥
ननाद सुमहानादं भीषयाणो जगर्ज च।

मान्यवर ! तदनन्तर दूसरे भल्लसे उनकी ध्वजाको बींध डाला। राजन् ! उस समय विश्वकर्माका बनाया हुआ वह महान् वानर सबको भयभीत करता हुआ बड़े जोर-जोरसे गर्जना करने लगा ॥ ८½ ॥

कपेस्तु निनदं श्रुत्वा संत्रस्ता तव वाहिनी ॥ ९ ॥
भयं विपुलमाधाय निश्चेष्टा समपद्यत।

वानरकी वह गर्जना सुनकर आपकी सेना संत्रस्त हो उठी और मनमें महान् भय लेकर निश्चेष्ट हो गयी ॥ ९½ ॥

ततः सा शुशुभे सेना निश्चेष्टावस्थिता नृप ॥ १० ॥
नानापुष्पसमाकीर्णं यथा चैत्ररथं वनम्।

नरेश्वर ! फिर वहाँ निश्चेष्ट खड़ी हुई आपकी वह सेना भाँति-भाँतिके पुष्पोंसे भरे हुए चैत्ररथ नामक वनके समान शोभा पाने लगी ॥ १०½ ॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां योधास्ते कुरुसत्तम ॥ ११ ॥
अर्जुनं सिषिचुर्बाणैः पर्वतं जलदा इव।

कुरुश्रेष्ठ ! तदनन्तर होशमें आकर आपके योद्धा अर्जुनपर उसी प्रकार बाणोंकी बौछार करने लगे, जैसे बादल पर्वतपर जलकी वर्षा करते हैं ॥ ११½ ॥

परिवव्रुस्ततः सर्वे पाण्डवस्य महारथम् ॥ १२ ॥
निगृह्य तं प्रचुक्रुशुर्वध्यमानाः शितैः शरैः।

उन सबने मिलकर पाण्डुपुत्र अर्जुनके उस विशाल रथको घेर लिया। यद्यपि उनपर तीखे बाणोंकी मार पड़ रही थी, तो भी वे उस रथको पकड़कर जोर-जोरसे चिल्लाने लगे॥

ते हयान् रथचक्रे च रथेषां चापि मारिष ॥ १३ ॥
निग्रहीतुमुपाक्रामन् क्रोधाविष्टाः समन्ततः।

माननीय नरेश ! क्रोधमें भरे हुए संशप्तकोंने सब ओरसे आक्रमण करके अर्जुनके रथके घोड़ों, दोनों पहियों तथा ईषादण्डको भी पकड़ना आरम्भ किया ॥ १३½ ॥

निगृह्य तं रथं तस्य योधास्ते तु सहस्रशः ॥ १४ ॥
निगृह्य बलवत् सर्वे सिंहनादमथानदन्।

इस प्रकार वे सब हजारों योद्धा रथको जबरदस्ती पकड़कर सिंहनाद करने लगे ॥ १४½ ॥

अपरे जगृहुश्चैव केशवस्य महाभुजौ ॥ १५ ॥
पार्थमन्ये महाराज रथस्थं जगृहुर्मुदा।

महाराज ! कई योद्धाओंने भगवान् श्रीकृष्णकी दोनों विशाल भुजाएँ पकड़ लीं। दूसरोंने रथपर बैठे हुए अर्जुनको भी प्रसन्नतापूर्वक पकड़ लिया ॥ १५½ ॥

केशवस्तु ततो बाहू विधुन्वन् रणमूर्धनि ॥ १६ ॥
पातयामास तान् सर्वान् दुष्टहस्तीव हस्तिपान्।

तब जैसे दुष्ट हाथी महावतोंको नीचे गिरा देता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने अपनी दोनों बाँहें झटककर उन सब लोगोंको युद्धके मुहानेपर नीचे गिरा दिया ॥ १६½ ॥

ततः क्रुद्धो रणे पार्थः संवृतस्तैर्महारथैः ॥ १७ ॥
निगृहीतं रथं दृष्ट्वा केशवं चाप्यभिद्रुतम्।

फिर उन महारथियोंसे घिरे हुए अर्जुन अपने रथको पकड़ा गया और श्रीकृष्णपर भी आक्रमण हुआ देख रणभूमिमें कुपित हो उठे ॥ १७½ ॥

रथारूढांस्तु सुबहून् पदातींश्चाप्यपातयत् ॥ १८ ॥
आसन्नांश्च तथा योधान् शरैरासन्नयोधिभिः।
छादयामास समरे केशवं चेदमब्रवीत् ॥ १९ ॥

उन्होंने अपने रथपर चढ़े हुए बहुत-से पैदल सैनिकोंको धक्के देकर नीचे गिरा दिया और आसपास खड़े हुए संशप्तक योद्धाओंको निकटसे युद्ध करनेमें उपयोगी बाणोंद्वारा ढक दिया एवं समराङ्गणमें भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा—॥

पश्य कृष्ण महाबाहो संशप्तकगणान् बहून्।
कुर्वाणान् दारुणं कर्म वध्यमानान् सहस्रशः ॥ २० ॥

'महाबाहु श्रीकृष्ण ! देखिये, ये क्रूरतापूर्ण कर्म करनेवाले बहुसंख्यक संशप्तक योद्धा किस प्रकार सहस्रोंकी संख्यामें मारे जा रहे हैं ॥ २० ॥

रथबन्धमिमं घोरं पृथिव्यां नास्ति कश्चन।
यः सहेत पुमाँल्लोके मदन्यो यदुपुङ्गव ॥ २१ ॥

'यदुपुङ्गव ! जगत्में इस भूतलपर मेरे सिवा दूसरा कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जो इस भयानक रथबन्ध (रथकी पकड़ अथवा रथोंके घेरे) का सामना कर सके' ॥ २१ ॥

इत्येवमुक्त्वा बीभत्सुर्देवदत्तमथाधमत्।
पाञ्चजन्यं च कृष्णोऽपि पूरयन्निव रोदसी ॥ २२ ॥

ऐसा कहकर अर्जुनने देवदत्त नामक शङ्ख बजाया। फिर भगवान् श्रीकृष्णने भी पृथ्वी और आकाशको गुँजाते हुए-से पाञ्चजन्य नामक शङ्खकी ध्वनि फैलायी ॥ २२ ॥

तं तु शङ्खस्वनं श्रुत्वा संशप्तकवरूथिनी।
संचचाल महाराज वित्रस्ता चाद्रवद् भृशम् ॥ २३ ॥

महाराज ! उस शङ्खनादको सुनकर संशप्तकोंकी सेना काँप उठी और भयभीत होकर जोर-जोरसे भागने लगी ॥

पादबन्धं ततश्चक्रे पाण्डवः परवीरहा।

नागमस्त्रं महाराज सम्प्रकीर्य मुहुर्मुहुः ॥ २४ ॥

नरेश्वर ! तदनन्तर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले पाण्डुनन्दन अर्जुनने बारंबार नागास्त्रका प्रयोग करके उन सबके पैर बाँध लिये ॥ २४ ॥

ते बद्धाः पादबन्धेन पाण्डवेन महात्मना ।
निश्चेष्टाश्चाभवन् राजन्नश्मसारमया इव ॥ २५ ॥

राजन् ! उन महात्मा पाण्डुपुत्र अर्जुनके द्वारा पैर बाँध दिये जानेके कारण वे संशप्तक योद्धा लोहेके बने हुए पुतलोंके समान निश्चेष्ट हो गये ॥ २५ ॥

निश्चेष्टांस्तु ततो योधानवधीत् पाण्डुनन्दनः।
यथेन्द्रः समरे दैत्यांस्तारकस्य वधे पुरा ॥ २६ ॥

फिर पूर्वकालमें इन्द्रने तारकासुरके वधके समय समराङ्गणमें जिस प्रकार दैत्योंका वध किया था, उसी प्रकार पाण्डुनन्दन अर्जुनने निश्चेष्ट हुए संशप्तक योद्धाओंका संहार आरम्भ किया ॥ २६ ॥

ते वध्यमानाः समरे मुमुचुस्तं रथोत्तमम् ।
आयुधानि च सर्वाणि विस्रष्टुमुपचक्रमुः ॥ २७ ॥

समराङ्गणमें बाणोंकी मार पड़नेपर उन्होंने अर्जुनके उस उत्तम रथको छोड़ दिया और उनके ऊपर अपने समस्त अस्त्र-शस्त्रोंको छोड़नेका प्रयास किया ॥ २७ ॥

ते बद्धाः पादबन्धेन न शेकुश्चेष्टितुं नृप ।
ततस्तानवधीत् पार्थः शरैः संनतपर्वभिः ॥ २८ ॥

नरेश्वर ! उस समय पैर बँधे होनेके कारण वे हिल भी न सके । तब अर्जुन झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा उनका वध करने लगे ॥ २८ ॥

सर्वयोधा हि समरे भुजगैर्वेष्टिताभवन् ।
यानुद्दिश्य रणे पार्थः पादबन्धं चकार ह ॥ २९ ॥

रणभूमिमें कुन्तीकुमार अर्जुनने जिन-जिन योद्धाओंको लक्ष्य करके पादबन्धास्त्रका प्रयोग किया, वे समस्त योद्धा समराङ्गणमें नागोंद्वारा जकड़ लिये गये थे ॥ २९ ॥

ततः सुशर्मा राजेन्द्र गृहीतां वीक्ष्य वाहिनीम् ।
सौपर्णमस्त्रं त्वरितः प्रादुश्चक्रे महारथः ॥ ३० ॥

राजेन्द्र ! महारथी सुशर्माने अपनी सेनाको नागोंद्वारा बँधी हुई देख तुरंत ही गारुडास्त्र प्रकट किया ॥ ३० ॥

ततः सुपर्णाः सम्पेतुर्भक्षयन्तो भुजङ्गमान् ।
ते वै विदुद्रुवुर्नागा दृष्ट्वा तान् खचरान् नृप ॥ ३१ ॥

फिर तो गरुड पक्षी प्रकट होकर उन नागोंपर टूट पड़े और उन्हें खाने लगे । नरेश्वर ! उन पक्षियोंको प्रकट हुआ देख वे सारे नाग भाग चले ॥ ३१ ॥

बभौ बलं तद्विमुक्तं पादबन्धाद् विशाम्पते ।
मेघवृन्दाद् यथा मुक्तो भास्करस्तापयन् प्रजाः॥ ३२ ॥

प्रजानाथ ! जैसे सूर्यदेव मेघोंकी घटासे मुक्त होकर सारी प्रजाको ताप देते हुए प्रकाशित हो उठते हैं, उसी प्रकार पैरोंके बन्धनसे छुटकारा पाकर वह सारी सेना बड़ी शोभा पाने लगी ॥ ३२ ॥

विप्रमुक्तास्तु ते योधाः फाल्गुनस्य रथं प्रति ।
ससृजुर्बाणसंघांश्च शस्त्रसंघांश्च मारिष ॥ ३३ ॥
विविधानि च शस्त्राणि प्रत्यविध्यन्त सर्वशः ।

आर्य ! बन्धनमुक्त होनेपर संशप्तक योद्धा अर्जुनके रथको लक्ष्य करके बाणों तथा शस्त्र-समूहोंकी वर्षा करने लगे तथा उनके नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंको सब ओरसे काटने लगे ॥ ३३½ ॥

तां महास्त्रमयीं वृष्टिं संछिद्य शरवृष्टिभिः ॥ ३४ ॥
न्यवधीच्च ततो योधान् वासविः परवीरहा ।

तदनन्तर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले इन्द्रपुत्र अर्जुनने अपने बाणोंकी वर्षासे उनकी भारी अस्त्र-वृष्टिका निवारण करके उन योद्धाओंका संहार आरम्भ कर दिया ॥ ३४½ ॥

सुशर्मा तु ततो राजन् बाणेनानतपर्वणा ॥ ३५ ॥
अर्जुनं हृदये विद्ध्वा विव्याधान्यैस्त्रिभिः शरैः ।

राजन् ! इसी समय सुशर्माने झुकी हुई गाँठवाले बाणसे अर्जुनकी छातीमें चोट पहुँचाकर अन्य तीन बाणोंद्वारा भी उन्हें घायल कर दिया ॥ ३५½ ॥

स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ॥ ३६ ॥
तत उच्चुक्रुशुः सर्वे हतः पार्थ इति स्म ह ।
ततः शङ्खनिनादाश्च भेरीशब्दाश्च पुष्कलाः ॥ ३७ ॥
नानावादित्रनिनदाः सिंहनादाश्च जज्ञिरे ।

उन बाणोंकी गहरी चोट खाकर अर्जुन व्यथित हो रथके पिछले भागमें बैठ गये। फिर तो सब लोग जोर-जोरसे चिल्लाकर कहने लगे कि 'अर्जुन मारे गये !' उस समय शङ्ख बजने लगे, भेरियोंकी गम्भीर ध्वनि फैलने लगी तथा नाना प्रकारके वाद्योंकी ध्वनिके साथ ही योद्धाओंकी सिंहगर्जना भी होने लगी॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ॥ ३८ ॥
ऐन्द्रमस्त्रममेयात्मा प्रादुश्चक्रे त्वरान्वितः ।

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण जिनके सारथि हैं, उन अमेय आत्मबलसे सम्पन्न श्वेतवाहन अर्जुनने होशमें आकर बड़ी उतावलीके साथ ऐन्द्रास्त्रका प्रयोग किया ॥ ३८½ ॥

ततो बाणसहस्राणि समुत्पन्नानि मारिष ॥ ३९ ॥
सर्वदिक्षु व्यदृश्यन्त निघ्नन्त तव वाहिनीम् ।

मान्यवर ! उससे सम्पूर्ण दिशाओंमें सहस्रों बाण प्रकट हो-होकर आपकी सेनाका संहार करते दिखायी दिये ॥३९½॥

हयान् रथांश्च समरे शस्त्रैः शतसहस्रशः ॥ ४० ॥
वध्यमाने ततः सैन्ये भयं सुमहदाविशत् ।
संशप्तकगणानां च गोपालानां च भारत ॥ ४१ ॥

समराङ्गणमें शस्त्रोंद्वारा सैकड़ों और हजारों घोड़े तथा

रथ मारे जाने लगे । भारत ! इस प्रकार जब सेनाका संहार होने लगा, तब संशप्तकगणों और नारायणी सेनाके ग्वालोंको बड़ा भय हुआ ॥ ४०-४१ ॥

न हि तत्र पुमान् कश्चिद् योऽर्जुनं प्रत्यविध्यत ।
पश्यतां तत्र वीराणामहन्यत बलं तव ॥ ४२ ॥

उस समय वहाँ कोई भी ऐसा पुरुष नहीं था, जो अर्जुनपर चोट कर सके । वहाँ सब वीरोंके देखते-देखते आपकी सेनाका वध होने लगा ॥ ४२ ॥

हन्यमानमपश्यंश्च निश्चेष्टं स पराक्रमे ।
अयुतं तत्र योधानां हत्वा पाण्डुसुतो रणे ॥ ४३ ॥
व्यभ्राजत महाराज विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ।

सारी सेना स्वयं निश्चेष्ट हो गयी थी । उससे पराक्रम करते नहीं बनता था और उस अवस्थामें वह मारी जा रही थी । मैंने यह सब अपनी आँखों देखा था । महाराज ! पाण्डुपुत्र अर्जुन रणभूमिमें वहाँ दस हजार योद्धाओंका संहार करके धूमरहित अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ ४३½ ॥

चतुर्दश सहस्राणि यानि शिष्टानि भारत ॥ ४४ ॥
रथानामयुतं चैव त्रिसाहस्राश्च दन्तिनः ।

भारत ! उस समय संशप्तकोंके चौदह हजार पैदल, दस हजार रथ और तीन हजार हाथी शेष रह गये थे ॥ ४४½ ॥

ततः संशप्तका भूयः परिवव्रुर्धनंजयम् ॥ ४५ ॥
मर्तव्यमिति निश्चित्य जयं वाप्यनिवर्तनम् ।

संशप्तकोंने पुनः यह निश्चय करके कि 'मर जायँगे अथवा विजय प्राप्त करेंगे, किंतु युद्धसे पीछे नहीं हटेंगे' अर्जुनको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४५½ ॥

तत्र युद्धं महच्चासीत् तावकानां विशाम्पते ।
शूरेण बलिना सार्धं पाण्डवेन किरीटिना ॥ ४६ ॥
(जित्वा तान् न्यहनत् पार्थः शत्रूञ्शक्र इवासुरान् ॥)

प्रजानाथ ! फिर तो वहाँ किरीटधारी बलवान् शूरवीर पाण्डुपुत्र अर्जुनके साथ आपके सैनिकोंका बड़ा भारी युद्ध हुआ । उसमें कुन्तीपुत्र अर्जुनने उन शत्रुओंको जीतकर उनका उसी प्रकार संहार कर डाला, जैसे देवराज इन्द्रने असुरोंका किया था ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक तिरपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ४६½ श्लोक हैं)

चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कृपाचार्यके द्वारा शिखण्डीकी पराजय और सुकेतुका वध तथा धृष्टद्युम्नके द्वारा कृतवर्माका परास्त होना

संजय उवाच

कृतवर्मा कृपो द्रौणिः सूतपुत्रश्च मारिष ।
उलूकः सौबलश्चैव राजा च सह सोदरैः ॥ १ ॥
सीदमानां चमूं दृष्ट्वा पाण्डुपुत्रभयार्दिताम् ।
समुज्जह्रुः स वेगेन भिन्नां नावमिवार्णवे ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—मान्यवर ! नरेश ! कृतवर्मा, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, सूतपुत्र कर्ण, उलूक, शकुनि तथा भाइयोंसहित राजा दुर्योधनने समुद्रमें टूटी हुई नावकी भाँति आपकी सेनाको पाण्डुपुत्र अर्जुनके भयसे पीड़ित और शिथिल होती देख बड़े वेगसे आकर उसका उद्धार किया ॥ १-२ ॥

ततो युद्धमतीवासीन्मुहूर्तमिव भारत ।
भीरूणां त्रासजननं शूराणां हर्षवर्धनम् ॥ ३ ॥

भारत ! तदनन्तर दो घड़ीतक वहाँ घोर युद्ध होता रहा, जो कायरोंके लिये त्रासजनक और शूरवीरोंका हर्ष बढ़ानेवाला था ॥ ३ ॥

कृपेण शरवर्षाणि प्रतिमुक्तानि संयुगे ।
सृञ्जयांश्छादयामासुः शलभानां व्रजा इव ॥ ४ ॥

कृपाचार्यने युद्धस्थलमें बाणोंकी बड़ी भारी वर्षा की । उन बाणोंने टिड्डीदलोंके समान सृञ्जयोंको आच्छादित कर दिया ॥ ४ ॥

शिखण्डी च ततः क्रुद्धो गौतमं त्वरितो ययौ ।
ववर्ष शरवर्षाणि समन्ताद् द्विजपुङ्गवम् ॥ ५ ॥

इससे शिखण्डीको बड़ा क्रोध हुआ । वह तुरंत ही विप्रवर गौतमगोत्रीय कृपाचार्यपर चढ़ आया और उनके ऊपर सब ओरसे बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ५ ॥

कृपस्तु शरवर्षं तद् विनिहत्य महास्त्रवित् ।
शिखण्डिनं रणे क्रुद्धो विव्याध दशभिः शरैः ॥ ६ ॥

महान् अस्त्रवेत्ता कृपाचार्यने शिखण्डीकी उस बाण-वर्षाका निवारण करके कुपित हो उसे दस बाणोंद्वारा घायल कर दिया ॥ ६ ॥

(महदासीत् तयोर्युद्धं मुहूर्तमिव दारुणम् ।
क्रुद्धयोः समरे राजन् रामरावणयोरिव ॥)

राजन् ! समर-भूमिमें कुपित हुए राम और रावणके समान उन दोनों वीरोंमें दो घड़ीतक बड़ा भयंकर युद्ध चलता रहा ॥ ७ ॥

ततः शिखण्डी कुपितः शरैः सप्तभिराहवे ।
कृपं विव्याध कुपितं कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ॥ ७ ॥

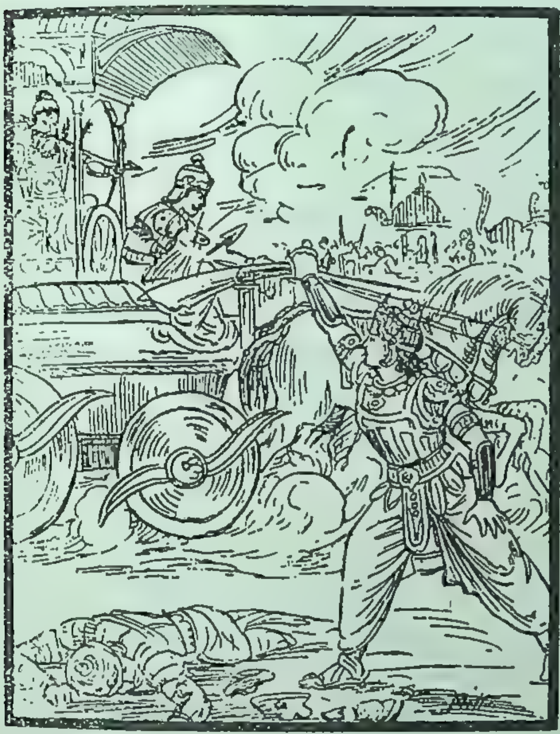
तत्पश्चात् शिखण्डीने क्रोधमें भरकर युद्धस्थलमें कङ्क-पत्रयुक्त सात सीधे बाणोंद्वारा कुपित कृपाचार्यको क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ७ ॥

ततः कृपः शरैस्तीक्ष्णैः सोऽतिविद्धो महारथः ।
व्यश्वसूतरथं चक्रे शिखण्डिनमथो द्विजः ॥ ८ ॥

उन तीखे बाणोंसे अत्यन्त घायल हुए महारथी विप्रवर कृपाचार्यने शिखण्डीको घोड़े, सारथि एवं रथसे रहित कर दिया ॥ ८ ॥

हताश्वात् तु ततो यानादवप्लुत्य महारथः ।
खड्गं चर्म तथा गृह्य सत्वरं ब्राह्मणं ययौ ॥ ९ ॥

तब महारथी शिखण्डी उस अश्वहीन रथसे कूदकर हाथोंमें ढाल और तलवार ले तुरंत ही ब्राह्मण कृपाचार्यकी ओर चला॥



तमापतन्तं सहसा शरैः संनतपर्वभिः ।
छादयामास समरे तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १० ॥

उसे अपने ऊपर सहसा आक्रमण करते देख कृपाचार्यने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा समराङ्गणमें शिखण्डीको ढक दिया, यह अद्भुत-सी बात हुई ॥ १० ॥

तत्राद्भुतमपश्याम शिलानां प्लवनं यथा ।
निश्चेष्टस्तद् रणे राजञ्छिखण्डी समतिष्ठत ॥ ११ ॥

राजन् ! रणक्षेत्रमें शिखण्डी निश्चेष्ट होकर खड़ा रहा, यह वहाँ पत्थरके तैरनेके समान हमलोगोंने अद्भुत बात देखी ॥

कृपेणच्छादितं दृष्ट्वा नृपोत्तम शिखण्डिनम् ।
प्रत्युद्ययौ कृपं तूर्णं धृष्टद्युम्नो महारथः ॥ १२ ॥

नृपश्रेष्ठ ! शिखण्डीको कृपाचार्यके बाणोंसे आच्छादित हुआ देख महारथी धृष्टद्युम्न तुरंत ही उनका सामना करनेके लिये आये ॥ १२ ॥

धृष्टद्युम्नं ततो यान्तं शारद्वतरथं प्रति ।
प्रतिजग्राह वेगेन कृतवर्मा महारथः ॥ १३ ॥

धृष्टद्युम्नको कृपाचार्यके रथकी ओर जाते देख महारथी कृतवर्माने वेगपूर्वक उन्हें रोक दिया ॥ १३ ॥

युधिष्ठिरमथायान्तं शारद्वतरथं प्रति ।
सपुत्रं सहसैन्यं च द्रोणपुत्रो न्यवारयत् ॥ १४ ॥

इसी प्रकार पुत्र और सेनासहित युधिष्ठिरको कृपाचार्यके रथपर चढ़ाई करते देख द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने रोका ॥१४॥

नकुलं सहदेवं च त्वरमाणौ महारथौ ।
प्रतिजग्राह ते पुत्रः शरवर्षेण वारयन् ॥ १५ ॥

महारथी नकुल और सहदेव भी बड़ी उतावलीके साथ चढ़े आ रहे थे, उन्हें भी आपके पुत्रने बाण-वर्षासे रोक दिया॥

भीमसेनं करूषांश्च केकयान् सह सृंजयैः ।
कर्णो वैकर्तनो युद्धे वारयामास भारत ॥ १६ ॥

भारत ! भीमसेनको तथा करूष, केकय और सृञ्जय योद्धाओंको वैकर्तन कर्णने युद्धमें आगे बढ़नेसे रोका ॥१६॥

शिखण्डिनस्ततो बाणान् कृपः शारद्वतो युधि ।
प्राहिणोत् त्वरया युक्तो दिधक्षुरिव मारिष ॥ १७ ॥

मान्यवर ! शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य युद्धस्थलमें, मानो वे शिखण्डीको दग्ध कर डालना चाहते हों, बड़ी उतावलीके साथ उसके ऊपर बाण चलाये ॥ १७ ॥

ताञ्छरान् प्रेषितांस्तेन समन्तात् स्वर्णभूषितान् ।
चिच्छेद खड्गमाविध्य भ्रामयंश्च पुनः पुनः ॥ १८ ॥

उनके चलाये हुए उन सुवर्णभूषित बाणोंको शिखण्डीने बारंबार तलवार घुमाकर सब ओरसे काट डाला ॥ १८ ॥

शतचन्द्रं च तच्चर्म गौतमस्तस्य भारत ।
व्यधमत् सायकैस्तूर्णं तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ १९ ॥

भरतनन्दन ! तब कृपाचार्यने अपने बाणोंसे शिखण्डीकी सौ चन्द्राकार चिह्नोंसे युक्त ढालको तुरंत ही छिन्न-भिन्न कर डाला । इससे सब लोग कोलाहल करने लगे ॥ १९ ॥

स विचर्मा महाराज खड्गपाणिरुपाद्रवत् ।
कृपस्य वशमापन्नो मृत्योरास्यमिवातुरः ॥ २० ॥

महाराज ! जैसे रोगी मौतके मुँहमें पहुँच गया हो, उसी प्रकार कृपाचार्यके वशमें पड़ा हुआ शिखण्डी अपनी ढाल कट जानेपर केवल तलवार हाथमें लिये उनकी ओर दौड़ा॥

शारद्वतशरैर्ग्रस्तं क्लिश्यमानं महाबलः ।
चित्रकेतुसुतो राजन् सुकेतुस्त्वरितो ययौ ॥ २१ ॥

राजन् ! शिखण्डीको कृपाचार्यके बाणोंका ग्रास बनकर पीड़ित होते देख चित्रकेतुका पुत्र महाबली सुकेतु उसकी सहायताके लिये तुरंत आगे बढ़ा ॥ २१ ॥

विकिरन् ब्राह्मणं युद्धे बहुभिर्निशितैः शरैः ।
अभ्यापतदमेयात्मा गौतमस्य रथं प्रति ॥ २२ ॥

सुकेतु अमेय आत्मबलसे सम्पन्न था । वह युद्धस्थलमें बहुसंख्यक पैने बाणोंद्वारा ब्राह्मण कृपाचार्यको आच्छादित

करता हुआ उनके रथके समीप आ पहुँचा ॥ २२ ॥

दृष्ट्वा च युक्तं तं युद्धे ब्राह्मणं चरितव्रतम् ।
अपयातस्ततस्तूर्णं शिखण्डी राजसत्तम ॥ २३ ॥

नृपश्रेष्ठ ! ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करनेवाले ब्राह्मण कृपाचार्यको सुकेतुके साथ युद्धमें तत्पर देख शिखण्डी तुरंत वहाँसे भाग निकला ॥ २३ ॥

सुकेतुस्तु ततो राजन् गौतमं नवभिः शरैः ।
विद्ध्वा विव्याध सप्तत्या पुनश्चैनं त्रिभिः शरैः ॥ २४ ॥

राजन् ! तदनन्तर सुकेतुने कृपाचार्यको पहले नौ बाणोंसे बींधकर फिर तिहत्तर तीरोंसे उन्हें घायल कर दिया ॥ २४ ॥

अथास्य सशरं चापं पुनश्चिच्छेद मारिष ।
सारथिं च शरेणास्य भृशं मर्मस्वताडयत् ॥ २५ ॥

आर्य ! तत्पश्चात् बाणसहित उनके धनुषको काट दिया और एक बाणद्वारा उनके सारथिके मर्मस्थानोंमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ २५ ॥

गौतमस्तु ततः क्रुद्धो धनुर्गृह्य नवं दृढम् ।
सुकेतुं त्रिंशता बाणैः सर्वमर्मस्वताडयत् ॥ २६ ॥

इससे कृपाचार्य अत्यन्त कुपित हो उठे । उन्होंने दूसरा नूतन सुदृढ़ धनुष लेकर सुकेतुके सम्पूर्ण मर्मस्थानोंमें तीस बाणोंद्वारा प्रहार किया ॥ २६ ॥

स विह्वलितसर्वाङ्गः प्रचचाल रथोत्तमे ।
भूमिकम्पे यथा वृक्षश्चचाल कम्पितो भृशम् ॥ २७ ॥

इससे सुकेतुका सारा शरीर विह्वल होकर उस उत्तम रथपर काँपने लगा; मानो भूकम्प आनेपर कोई वृक्ष जोर-जोरसे काँपने और झूमने लगा हो ॥ २७ ॥

चलतस्तस्य कायात् तु शिरो ज्वलितकुण्डलम् ।
सोष्णीषं सशिरस्त्राणं क्षुरप्रेण त्वपातयद् ॥ २८ ॥

उसी अवस्थामें कृपाचार्यने एक क्षुरप्रद्वारा सुकेतुके जगमगाते हुए कुण्डलोंसे युक्त पगड़ी और शिरस्त्राणसहित मस्तकको उसकी काँपती हुई कायासे काट गिराया ॥ २८ ॥

तच्छिरः प्रापतद् भूमौ श्येनाहृतमिवामिषम् ।
ततोऽस्य कायो वसुधां पश्चात् प्रापतदच्युत ॥ २९ ॥

राजन् ! वह सिर बाजके लाये हुए मांसके टुकड़ेके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा । उसके बाद सुकेतुका धड़ भी धराशायी हो गया ॥ २९ ॥

तस्मिन् हते महाराज त्रस्तास्तस्य पुरोगमाः ।
गौतमं समरे त्यक्त्वा दुद्रुवुस्ते दिशो दश ॥ ३० ॥

महाराज ! सुकेतुके मारे जानेपर उसके अग्रगामी सैनिक भयभीत हो समराङ्गणमें कृपाचार्यको छोड़कर दसों दिशाओंकी ओर भाग निकले ॥ ३० ॥

धृष्टद्युम्नं तु समरे संनिवार्य महारथः ।
कृतवर्माब्रवीद्धृष्टस्तिष्ठ तिष्ठेति भारत ॥ ३१ ॥

भारत ! दूसरी ओर महारथी कृतवर्माने समराङ्गणमें धृष्टद्युम्नको रोककर बड़े हर्षके साथ कहा—'खड़ा रह, खड़ा रह' ॥

तदभूत् तुमुलं युद्धं वृष्णिपार्षतयो रणे ।
आमिषार्थे यथा युद्धं श्येनयोः क्रुद्धयोर्नृप ॥ ३२ ॥

नरेश्वर ! जैसे मांसके टुकड़ेके लिये दो बाज क्रोधपूर्वक लड़ रहे हों, उसी प्रकार उस रणक्षेत्रमें कृतवर्मा और धृष्टद्युम्नका घोर युद्ध होने लगा ॥ ३२ ॥

धृष्टद्युम्नस्तु समरे हार्दिक्यं नवभिः शरैः ।
आजघानोरसि क्रुद्धः पीडयन् हृदिकात्मजम् ॥ ३३ ॥

धृष्टद्युम्नने कुपित होकर कृतवर्माको पीड़ा देते हुए उसकी छातीमें नौ बाण मारे ॥ ३३ ॥

कृतवर्मा तु समरे पार्षतेन दृढाहतः ।
पार्षतं सरथं साश्वं छादयामास सायकैः ॥ ३४ ॥

धृष्टद्युम्नका गहरा आघात पाकर समरभूमिमें कृतवर्माने बाणोंकी वर्षा करके घोड़ों और रथसहित धृष्टद्युम्नको आच्छादित कर दिया ॥ ३४ ॥

सरथश्छादितो राजन् धृष्टद्युम्नो न दृश्यते ।
मेघैरिव परिच्छन्नो भास्करो जलधारिभिः ॥ ३५ ॥

राजन् ! जैसे जलकी धारा गिरानेवाले मेघोंसे आच्छन्न हुए सूर्यका दर्शन नहीं होता, उसी प्रकार कृतवर्माके बाणोंसे रथसहित आच्छादित हुए धृष्टद्युम्न दिखायी नहीं देते थे ॥

विधूय तं बाणगणं शरैः कनकभूषणैः ।
व्यरोचत रणे राजन् धृष्टद्युम्नः कृतव्रणः ॥ ३६ ॥

महाराज ! यद्यपि धृष्टद्युम्न घायल हो गये थे तो भी अपने सुवर्ण-भूषित बाणोंद्वारा कृतवर्माके शरसमूहको छिन्न-भिन्न करके प्रकाशित होने लगे ॥ ३६ ॥

ततस्तु पार्षतः क्रुद्धः शस्त्रवृष्टिं सुदारुणाम् ।
कृतवर्माणमासाद्य व्यसृजत् पृतनापतिः ॥ ३७ ॥

फिर क्रोधमें भरे हुए सेनापति धृष्टद्युम्नने कृतवर्माके निकट जाकर उसके ऊपर अस्त्र-शस्त्रोंकी भयंकर वर्षा आरम्भ कर दी ॥ ३७ ॥

तामापतन्तीं सहसा शस्त्रवृष्टिं सुदारुणाम् ।
शरैरनेकसाहस्रैर्हार्दिक्योऽवारयद् युधि ॥ ३८ ॥

अपने ऊपर सहसा आती हुई उस भयंकर बाणवर्षाको युद्धस्थलमें कृतवर्माने कई हजार बाण मारकर रोक दिया ॥

दृष्ट्वा तु वारितां युद्धे शस्त्रवृष्टिं दुरासदाम् ।
कृतवर्माणमासाद्य वारयामास पार्षतः ॥ ३९ ॥
सारथिं चास्य तरसा प्राहिणोद् यमसादनम् ।
भल्लेन शितधारेण स हतः प्रापतद् रथात् ॥ ४० ॥

रणभूमिमें उस दुर्जय शस्त्रवर्षाको रोकी गयी देख धृष्टद्युम्नने कृतवर्मापर आक्रमण करके उसे आगे बढ़नेसे रोक दिया और उसके सारथिको तीखी धारवाले भल्लसे वेगपूर्वक

मारकर यमलोक भेज दिया। मारा गया सारथि रथसे नीचे गिर पड़ा ॥ ३९-४० ॥

(कृतवर्मा तु संक्रुद्धो विधक्षुरिव पावकः ।
धृष्टद्युम्नमुखान् सर्वान् पाण्डवान् पर्यवारयत् ॥

कृतवर्मा अत्यन्त क्रोधमें भरकर जलानेको उद्यत हुई आगके समान धृष्टद्युम्न आदि समस्त पाण्डवोंको रोकने लगा।

ततो राजन् महेष्वासं कृतवर्माणमाशु वै ।
गदां गृह्य पुनर्वेगात् कृतवर्माणमाहनत् ॥

राजन्! तब धृष्टद्युम्नने गदा हाथमें लेकर पुनः बड़े वेगसे महाधनुर्धर कृतवर्मापर शीघ्र ही आघात किया॥

सोऽतिविद्धो बलवता न्यपतन्मूर्च्छया हतः।
श्रुतर्वा रथमारोप्य अपोवाह रणाजिरात् ॥)

उस बलवान् वीरके गहरे आघातसे अत्यन्त पीड़ित एवं मूर्छित हो कृतवर्मा गिर पड़ा। तब श्रुतर्वा उसे अपने रथपर बिठाकर रणभूमिसे दूर हटा ले गया॥

धृष्टद्युम्नस्तु बलवाञ्जित्वा शत्रुं महाबलम्।
कौरवान् समरे तूर्णं वारयामास सायकैः ॥ ४१ ॥

इस प्रकार बलवान् धृष्टद्युम्नने उस महाबली शत्रुको जीतकर बाणोंकी वर्षा करके समराङ्गणमें समस्त कौरवोंको तुरंत आगे बढ़नेसे रोक दिया॥ ४१ ॥

ततस्ते तावका योधा धृष्टद्युम्नमुपाद्रवन्।
सिंहनादरवं कृत्वा ततो युद्धमवर्तत ॥ ४२ ॥

तब आपके समस्त योद्धा सिंहनाद करके धृष्टद्युम्नपर टूट पड़े। फिर वहाँ घोर युद्ध होने लगा॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५४ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ४ श्लोक मिलाकर कुल ४६ श्लोक हैं)

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अश्वत्थामाका घोर युद्ध, सात्यकिके सारथिका वध एवं युधिष्ठिरका अश्वत्थामाको छोड़कर दूसरी ओर चले जाना

संजय उवाच

द्रौणिर्युधिष्ठिरं दृष्ट्वा शैनेयेनाभिरक्षितम्।
द्रौपदेयैस्तथा शूरैरभ्यवर्तत हृष्टवत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! सात्यकि तथा शूरवीर द्रौपदी-पुत्रोंद्वारा सुरक्षित युधिष्ठिरको देखकर अश्वत्थामा बड़े हर्षके साथ उनका सामना करनेके लिये गया॥ १ ॥

किरन्निषुगणान् घोरान् स्वर्णपुङ्खाञ्छिलाशितान्।
दर्शयन् विविधान् मार्गान् शिक्षाश्च लघुहस्तवत् ।२।
ततः खं पूरयामास शरैर्दिव्यास्त्रमन्त्रितैः।
युधिष्ठिरं च समरे परिवार्य महास्त्रवित् ॥ ३ ॥

वह बड़े-बड़े अस्त्रोंका ज्ञाता था; इसलिये शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले योद्धाके समान सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखोंसे युक्त भयंकर शरसमूहोंकी वर्षा करता और नाना प्रकारके मार्ग एवं शिक्षाका प्रदर्शन करता हुआ दिव्यास्त्रोंसे अभिमन्त्रित बाणोंद्वारा समराङ्गणमें युधिष्ठिरको अवरुद्ध करके आकाशको उन बाणोंसे भरने लगा॥ २-३ ॥

द्रौणायनिशरच्छन्नं न प्राज्ञायत किञ्चन।
बाणभूतमभूत् सर्वमायोधनशिरो महत् ॥ ४ ॥

द्रोणपुत्रके बाणोंसे आच्छन्न हो जानेके कारण वहाँ कुछ भी ज्ञात नहीं होता था। युद्धका वह सारा विशाल मैदान बाणमय हो रहा था॥ ४ ॥

बाणजालं दिविच्छन्नं स्वर्णजालविभूषितम्।
शुशुभे भरतश्रेष्ठ वितानमिव धिष्ठितम् ॥ ५ ॥

भरतश्रेष्ठ! स्वर्णजाल-विभूषित वह बाणोंका जाल आकाशमें फैलकर वहाँ तने हुए वितान (चँदोवे) के समान सुशोभित होता था॥ ५ ॥

तेनच्छन्नं नभो राजन् बाणजालेन भास्वता।
अभ्रच्छायेव संजज्ञे बाणरुद्धे नभस्तले ॥ ६ ॥

राजन्! उन प्रकाशमान बाणसमूहोंसे सारा आकाश-मण्डल ढक गया था। बाणोंसे रुँधे हुए आकाशमें मेघोंकी छाया-सी बन गयी थी॥ ६ ॥

तत्राश्चर्यमपश्याम बाणभूते तथाविधे।
न स्म सम्पतते भूतं किंचिदेवान्तरिक्षगम् ॥ ७ ॥

इस प्रकार आकाशके बाणमय हो जानेपर हमलोगोंने वहाँ यह आश्चर्यकी बात देखी कि आकाशचारी कोई भी प्राणी उधरसे उड़कर नीचे नहीं आ सकता था॥ ७ ॥

सात्यकिर्यतमानस्तु धर्मराजश्च पाण्डवः।
तथेतराणि सैन्यानि न स्म चक्रुः पराक्रमम् ॥ ८ ॥

उस समय प्रयत्नशील सात्यकि, धर्मराज पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर यथा अन्यान्य सैनिक कोई पराक्रम न कर सके॥

लाघवं द्रोणपुत्रस्य दृष्ट्वा तत्र महारथाः।
व्यस्मयन्त महाराज न चैनं प्रत्युदीक्षितुम् ॥ ९ ॥
शेकुस्ते सर्वराजानस्तपन्तमिव भास्करम्।

महाराज! द्रोणपुत्रकी वह फुर्ती देखकर वहाँ खड़े हुए सभी महारथी नरेश आश्चर्यचकित हो उठे और तपते हुए सूर्यके समान तेजस्वी अश्वत्थामाकी ओर आँख उठाकर देख भी न सके॥ ९३ ॥

वध्यमाने ततः सैन्ये द्रौपदेया महारथाः ॥ १० ॥

सात्यकिर्धर्मराजश्च पञ्चालाश्चापि संगताः ।
त्यक्त्वा मृत्युभयं घोरं द्रौणायनिमुपाद्रवन् ॥ ११ ॥

तदनन्तर जब पाण्डवसेना मारी जाने लगी, तब महारथी द्रौपदीपुत्र और सात्यकि तथा धर्मराज युधिष्ठिर और पाञ्चाल सैनिक संगठित हो घोर मृत्युभयको छोड़कर द्रोणकुमारपर टूट पड़े ॥ १०–११ ॥

सात्यकिः सप्तविंशत्या द्रौणिं विद्ध्वा शिलीमुखैः ।
पुनर्विव्याध नाराचैः सप्तभिः स्वर्णभूषितैः ॥ १२ ॥

सात्यकिने सत्ताईस बाणोंसे अश्वत्थामाको घायल करके पुनः सात स्वर्णभूषित नाराचोंद्वारा उसे बींध डाला ॥ १२ ॥

युधिष्ठिरस्त्रिसप्तत्या प्रतिविन्ध्यश्च सप्तभिः ।
श्रुतकर्मा त्रिभिर्बाणैः श्रुतकीर्तिश्च सप्तभिः ॥ १३ ॥
सुतसोमस्तु नवभिः शतानीकश्च सप्तभिः ।
अन्ये च बहवः शूरा विव्यधुस्तं समन्ततः ॥ १४ ॥

युधिष्ठिरने तिहत्तर, प्रतिविन्ध्यने सात, श्रुतकर्माने तीन, श्रुतकीर्तिने सात, सुतसोमने नौ और शतानीकने उसे सात बाण मारे तथा दूसरे बहुत-से शूरवीरोंने भी अश्वत्थामाको चारों ओरसे घायल कर दिया ॥ १३-१४ ॥

स तु क्रुद्धस्ततो राजन्नाशीविष इव श्वसन् ।
सात्यकिं पञ्चविंशत्या प्रत्यविध्यच्छिलीमुखैः॥१५ ॥

राजन् ! तब क्रोधमें भरकर विषधर सर्पके समान फुफकारते हुए अश्वत्थामाने सात्यकिको पच्चीस बाणोंसे घायल करके बदला चुकाया ॥ १५ ॥

श्रुतकीर्तिं च नवभिः सुतसोमं च पञ्चभिः ।
अष्टभिः श्रुतकर्माणं प्रतिविन्ध्यं त्रिभिः शरैः ॥ १६ ॥
शतानीकं च नवभिर्धर्मपुत्रं च पञ्चभिः ।
तथेतरांस्ततः शूरान् द्वाभ्यां द्वाभ्यामताडयत् ॥१७ ॥
श्रुतकीर्तेस्तथा चापं चिच्छेद निशितैः शरैः ।

फिर श्रुतकीर्तिको नौ, सुतसोमको पाँच, श्रुतकर्माको आठ, प्रतिविन्ध्यको तीन, शतानीकको नौ, धर्मपुत्र युधिष्ठिरको पाँच तथा अन्य शूरवीरोंको दो-दो बाणोंसे पीट दिया । इसके सिवा उसने पैने बाणोंद्वारा श्रुतकीर्तिके धनुषको भी काट दिया॥ १६-१७½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय श्रुतिकीर्तिर्महारथः ॥ १८ ॥
द्रौणायनिं त्रिभिर्विद्ध्वा विव्याधान्यैः शितैः शरैः ।

तब महारथी श्रुतकीर्तिने दूसरा धनुष लेकर द्रोणकुमारको पहले तीन बाणोंसे घायल करके फिर दूसरे-दूसरे पैने बाणोंद्वारा बींध डाला ॥ १८½ ॥

ततो द्रौणिर्महाराज शरवर्षेण मारिष ॥ १९ ॥
छादयामास तत् सैन्यं समन्ताद् भरतर्षभ ।

मान्यवर भरतभूषण महाराज ! तत्पश्चात् द्रोणकुमारने अपने बाणोंकी वर्षासे युधिष्ठिरकी उस सेनाको सब ओरसे ढक दिया ॥ १९½ ॥

ततः पुनरमेयात्मा धर्मराजस्य कार्मुकम् ॥ २० ॥
द्रौणिश्चिच्छेद विहसन् विव्याध च शरैस्त्रिभिः ।

उसके बाद अमेय आत्मबलसे सम्पन्न द्रोणकुमारने धर्मराजके धनुषको काट डाला और हँसते-हँसते तीन बाणोंद्वारा पुनः उन्हें घायल कर दिया ॥ २०½ ॥

ततो धर्मसुतो राजन् प्रगृह्यान्यन्महद् धनुः ॥ २१ ॥
द्रौणिं विव्याध सप्तत्या बाह्वोरुरसि चार्पयत् ।

राजन् ! तब धर्मपुत्र युधिष्ठिरने दूसरा विशाल धनुष हाथमें लेकर अश्वत्थामाको बींध दिया एवं उसकी दोनों भुजाओं और छातीमें सत्तर बाण मारे ॥ २१½ ॥

सात्यकिस्तु ततः क्रुद्धो द्रौणेः प्रहरतो रणे ॥ २२ ॥
अर्धचन्द्रेण तीक्ष्णेन धनुश्छित्त्वानदद् भृशम् ।

इसके बाद कुपित हुए सात्यकिने रणभूमिमें प्रहार करनेवाले अश्वत्थामाके धनुषको तीखे अर्धचन्द्रसे काटकर बड़े जोरसे गर्जना की ॥ २२½ ॥

छिन्नधन्वा ततो द्रौणिः शक्त्या शक्तिमतां वरः ॥२३॥
सारथिं पातयामास शैनेयस्य रथाद् द्रुतम् ।

धनुष कट जानेपर शक्तिशालियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामाने शक्ति चलाकर शिनिपौत्र सात्यकिके सारथिको शीघ्र ही रथसे नीचे गिरा दिया ॥ २३½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ॥ २४ ॥
शैनेयं शरवर्षेणच्छादयामास भारत ।

भारत ! तत्पश्चात् प्रतापी द्रोणपुत्रने दूसरा धनुष लेकर सात्यकिको शरसमूहोंकी वर्षाद्वारा आच्छादित कर दिया २४½

तस्याश्वाः प्रद्रुताः संख्ये पतिते रथसारथौ ॥ २५ ॥
तत्र तत्रैव धावन्तः समदृश्यन्त भारत ।

भरतनन्दन ! उनके रथका सारथि धराशायी हो चुका था, इसलिये उनके घोड़े युद्धस्थलमें बेलगाम भागने लगे। वे विभिन्न स्थानोंमें भागते हुए ही दिखायी दे रहे थे ।२५½।

युधिष्ठिरपुरोगास्तु द्रौणिं शस्त्रभृतां वरम् ॥ २६ ॥
अभ्यवर्षन्त वेगेन विसृजन्तः शिताञ्छरान् ।

युधिष्ठिर आदि पाण्डव महारथी शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामापर बड़े वेगसे पैने बाणोंकी वर्षा करने लगे २६½

आगच्छमानांस्तान् दृष्ट्वा क्रुद्धरूपान् परंतपः ॥ २७ ॥
प्रहसन् प्रतिजग्राह द्रोणपुत्रो महारणे ।

शत्रुओंको संताप देनेवाले द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने उस महासमरमें उन पाण्डव महारथियोंको क्रोधपूर्वक आक्रमण करते देख हँसते हुए उनका सामना किया ॥ २७½ ॥

ततः शरशतज्वालः सेनाकक्षं महारथः ॥ २८ ॥
द्रौणिर्ददाह समरे कक्षमग्निर्यथा वने ।

जैसे आग वनमें सूखे काठ और घास-फूँसको जला देती है, उसी प्रकार महारथी अश्वत्थामाने समराङ्गणमें सैकड़ों बाणरूपी ज्वालाओंसे प्रज्वलित हो पाण्डवसेनारूपी सूखे काठ एवं घास-फूँसको जलाना आरम्भ किया ॥ २८½ ॥

तद् बलं पाण्डुपुत्रस्य द्रोणपुत्रप्रतापितम् ॥ २९ ॥
चुक्षुभे भरतश्रेष्ठ तिमिनेव नदीमुखम्।

भरतश्रेष्ठ ! जैसे तिमिनामक मत्स्य नदीके प्रवाहको विक्षुब्ध कर देता है, उसी प्रकार द्रोणपुत्रके द्वारा संतप्त की हुई पाण्डवसेनामें हलचल मच गयी ॥ २९½ ॥

दृष्ट्वा चैव महाराज द्रोणपुत्रपराक्रमम् ॥ ३० ॥
निहतान् मेनिरे सर्वान् पाण्डून् द्रोणसुतेन वै।

महाराज ! द्रोणपुत्रका पराक्रम देखकर सब लोगोंने यही समझा कि द्रोणकुमार अश्वत्थामाके द्वारा सारे पाण्डव मार डाले जायँगे ॥ ३०½ ॥

युधिष्ठिरस्तु त्वरितो द्रोणशिष्यो महारथः ॥ ३१ ॥
अब्रवीद् द्रोणपुत्राय रोषामर्षसमन्वितः।

तदनन्तर रोष और अमर्षमें भरे हुए द्रोणशिष्य महारथी युधिष्ठिरने द्रोणपुत्र अश्वत्थामासे कहा ॥ ३१½ ॥

(*युधिष्ठिर उवाच*

जानामि त्वां युधि श्रेष्ठं वीर्यवन्तं महाबलम्।
कृतास्त्रं कृतिनं चैव तथा लघुपराक्रमम् ॥

युधिष्ठिर बोले—द्रोणकुमार ! मैं जानता हूँ कि तुम युद्धमें पराक्रमी, महाबली, अस्त्रवेत्ता, विद्वान् और शीघ्रतापूर्वक पुरुषार्थ प्रकट करनेवाले श्रेष्ठ वीर हो ॥

बलमेतद् भवान् सर्वं पार्षते यदि दर्शयेत्।
ततस्त्वां बलवन्तं च कृतविद्यं च विद्महे ॥

परंतु यदि तुम अपना यह सारा बल द्रुपदपुत्रपर दिखा सको तो हम समझेंगे कि तुम बलवान् तथा अस्त्र-विद्याके विद्वान् हो ॥

न हि वै पार्षतं दृष्ट्वा समरे शत्रुसूदनम्।
भवेत् तव बलं किंचिद् ब्रवीमि त्वा न तु द्विजम् ॥)

शत्रुसूदन धृष्टद्युम्नको समरभूमिमें देखकर तुम्हारा बल कुछ भी काम न करेगा। (तुम्हारे कर्मको देखते हुए) मैं तुम्हें ब्राह्मण नहीं कहूँगा ॥

नैव नाम तव प्रीतिर्नैव नाम कृतज्ञता ॥ ३२ ॥
यतस्त्वं पुरुषव्याघ्र मामेवाद्य जिघांससि।

पुरुषसिंह ! तुम जो आज मुझे ही मार डालना चाहते हो, यह न तो तुम्हारा प्रेम है और न कृतज्ञता ॥ ३२½ ॥

ब्राह्मणेन तपः कार्यं दानमध्ययनं तथा ॥ ३३ ॥
क्षत्रियेण धनुर्नाम्यं स भवान् ब्राह्मणब्रुवः।

ब्राह्मणको तप, दान और वेदाध्ययन करना चाहिये। धनुष झुकाना तो क्षत्रियका काम है; अतः तुम नाममात्रके ब्राह्मण हो ॥ ३३½ ॥

मिषतस्ते महाबाहो युधि जेष्यामि कौरवान् ॥ ३४ ॥
कुरुष्व समरे कर्म ब्रह्मबन्धुरसि ध्रुवम्।

महाबाहो ! आज मैं तुम्हारे देखते-देखते युद्धमें कौरवोंको जीतूँगा। तुम समरमें पराक्रम प्रकट करो। निश्चय ही तुम एक स्वधर्मभ्रष्ट ब्राह्मण हो ॥ ३४½ ॥

एवमुक्तो महाराज द्रोणपुत्रः स्मयन्निव ॥ ३५ ॥
युक्तं तत्त्वं च संचिन्त्य नोत्तरं किंचिदब्रवीत्।

महाराज ! उनके ऐसा कहनेपर द्रोणपुत्र मुस्कराने-सा लगा। इनका कथन युक्तियुक्त तथा यथार्थ है, ऐसा सोचकर उसने कुछ उत्तर नहीं दिया ॥ ३५½ ॥

अनुक्त्वा च ततः किंचिच्छरवर्षेण पाण्डवम् ॥ ३६ ॥
छादयामास समरे क्रुद्धोऽन्तक इव प्रजाः।

उसने कोई जवाब न देकर समराङ्गणमें कुपित हो बाणोंकी वर्षासे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको उसी प्रकार ढक दिया, जैसे प्रलयकालमें क्रुद्ध यमराज सारी प्रजाको अदृश्य कर देता है ॥

स च्छाद्यमानस्तु तदा द्रोणपुत्रेण मारिष ॥ ३७ ॥
पार्थोऽपयातः शीघ्रं वै विहाय महतीं चमूम्।

आर्य ! द्रोणपुत्रके बाणोंसे आच्छादित हो कुन्तीकुमार युधिष्ठिर उस समय अपनी विशाल सेनाको छोड़कर शीघ्र ही वहाँसे पलायन कर गये ॥ ३७½ ॥

अपयाते ततस्तस्मिन् धर्मपुत्रे युधिष्ठिरे ॥ ३८ ॥
द्रोणपुत्रस्ततो राजन् प्रत्यगात् स महामनाः।

राजन् ! तत्पश्चात् धर्मपुत्र युधिष्ठिरके हट जानेपर फिर महामना द्रोणपुत्र अश्वत्थामा दूसरी ओर चला गया ॥ ३८½ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजंस्त्यक्त्वा द्रौणिं महाहवे।
प्रययौ तावकं सैन्यं युक्तः क्रूराय कर्मणे ॥ ३९ ॥

नरेश्वर ! फिर उस महायुद्धमें अश्वत्थामाको छोड़कर युधिष्ठिर पुनः क्रूरतापूर्ण कर्म करनेके लिये आपकी सेनाकी ओर बढ़े ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि पार्थापयाने पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें युधिष्ठिरका लायनविषयक पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५५ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३ श्लोक मिलाकर कुल ४२ श्लोक हैं)

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नकुल-सहदेवके साथ दुर्योधनका युद्ध, धृष्टद्युम्नसे दुर्योधनकी पराजय, कर्णद्वारा पाञ्चाल सेनासहित योद्धाओंका संहार, भीमसेनद्वारा कौरव योद्धाओंका सेनासहित विनाश, अर्जुनद्वारा संशप्तकोंका वध तथा अश्वत्थामाका अर्जुनके साथ घोर युद्ध करके पराजित होना

संजय उवाच

भीमसेनं सपाञ्चाल्यं चेदिकेकयसंवृतम्।
वैकर्तनः स्वयं रुद्ध्वा वारयामास सायकैः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! पाञ्चालों, चेदियों और

केकयोंसे घिरे हुए भीमसेनको स्वयं वैकर्तन कर्णने बाणोंद्वारा अवरुद्ध करके उन्हें आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ १ ॥

ततस्तु चेदिकारूषान् सृञ्जयांश्च महारथान्।
कर्णो जघान समरे भीमसेनस्य पश्यतः ॥ २ ॥

तदनन्तर समराङ्गणमें कर्णने भीमसेनके देखते-देखते चेदि, कारूष और सृंजय महारथियोंका संहार आरम्भ कर दिया ॥ २ ॥

भीमसेनस्ततः कर्णं विहाय रथसत्तमम्।
प्रययौ कौरवं सैन्यं कक्षमग्निरिव ज्वलन् ॥ ३ ॥

तब भीमसेनने भी रथियोंमें श्रेष्ठ कर्णको छोड़कर जैसे आग घास-फूँसको जलाती है, उसी प्रकार कौरव-सेनाको दग्ध करनेके लिये उसपर आक्रमण किया ॥ ३ ॥

सूतपुत्रोऽपि समरे पञ्चालान् केकयांस्तथा।
सृञ्जयांश्च महेष्वासान् निजघान सहस्रशः ॥ ४ ॥

सूतपुत्र कर्णने समराङ्गणमें सहस्रों पाञ्चाल, केकय तथा संजय योद्धाओंको, जो महाधनुर्धर थे, मार डाला ॥ ४ ॥

संशप्तकेषु पार्थश्च कौरवेषु वृकोदरः।
पञ्चालेषु तथा कर्णः क्षयं चक्रुर्महारथाः ॥ ५ ॥

अर्जुन संशप्तकोंकी, भीमसेन कौरवोंकी तथा कर्ण पाञ्चालोंकी सेनामें घुसकर युद्ध करते थे। इन तीनों महारथियोंमे बहुत-से शत्रुओंका संहार कर डाला ॥ ५ ॥

ते क्षत्रिया दह्यमानास्त्रिभिस्तैः पावकोपमैः।
जग्मुर्विनाशं समरे राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ ६ ॥

अग्निके समान तेजस्वी इन तीनों वीरोंद्वारा दग्ध होते हुए क्षत्रिय समराङ्गणमें विनाशको प्राप्त हो रहे थे। राजन्! यह सब आपकी कुमन्त्रणाका फल है ॥ ६ ॥

ततो दुर्योधनः क्रुद्धो नकुलं नवभिः शरैः।
विव्याध भरतश्रेष्ठ चतुरश्चास्य वाजिनः ॥ ७ ॥

भरतश्रेष्ठ! तब दुर्योधनने कुपित होकर नौ बाणोंसे नकुल तथा उनके चारों घोड़ोंको घायल कर दिया ॥ ७ ॥

ततः पुनरमेयात्मा तव पुत्रो जनाधिप।
क्षुरेण सहदेवस्य ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम् ॥ ८ ॥

जनेश्वर! इसके बाद अमेय आत्मबलसे सम्पन्न आपके पुत्रने एक क्षुरके द्वारा सहदेवकी सुवर्णमयी ध्वजा काट डाली॥

नकुलस्तु ततः क्रुद्धस्तव पुत्रं च सप्तभिः।
जघान समरे राजन् सहदेवश्च पञ्चभिः ॥ ९ ॥

राजन्! तत्पश्चात् समर-भूमिमें आपके पुत्रको क्रोधमें भरे हुए नकुलने सात और सहदेवने पाँच बाण मारे ॥ ९ ॥

तावुभौ भरतश्रेष्ठौ ज्येष्ठौ सर्वधनुष्मताम्।
विव्याधोरसि संक्रुद्धः पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ॥ १० ॥

वे दोनों श्रेष्ठ वीर समस्त धनुर्धारियोंमें प्रधान थे। दुर्योधनने कुपित होकर उन दोनोंकी छातीमें पाँच-पाँच बाण मारे ॥ १० ॥

ततोऽपराभ्यां भल्लाभ्यां धनुषी समकृन्तत।
यमयोः सहसा राजन् विव्याध च त्रिसप्तभिः ॥ ११ ॥

राजन्! फिर सहसा उसने दो भल्लोंसे नकुल और सहदेवके धनुष काट डाले तथा उन दोनोंको भी इक्कीस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ११ ॥

तावन्ये धनुषी श्रेष्ठे शक्रचापनिभे शुभे।
प्रगृह्य रेजतुः शूरौ देवपुत्रसमौ युधि ॥ १२ ॥

फिर वे दोनों वीर इन्द्रधनुषके समान सुन्दर दूसरे श्रेष्ठ धनुष लेकर युद्धस्थलमें देवकुमारोंके समान सुशोभित होने लगे॥

ततस्तौ रभसौ युद्धे भ्रातरौ भ्रातरं युधि।
शरैर्ववृषतुर्घोरैर्महामेघौ यथाचलम् ॥ १३ ॥

तत्पश्चात् जैसे दो महामेघ किसी पर्वतपर जलकी वर्षा करते हों, उसी प्रकार दोनों वेगशाली बन्धु नकुल और सहदेव भाई दुर्योधनपर युद्धमें भयंकर बाणोंकी वृष्टि करने लगे ॥ १३ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज तव पुत्रो महारथः।
पाण्डुपुत्रौ महेष्वासौ वारयामास पत्रिभिः ॥ १४ ॥

महाराज! तब आपके महारथी पुत्रने कुपित होकर उन दोनों महाधनुर्धर पाण्डुपुत्रोंको बाणोंद्वारा आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ १४ ॥

धनुर्मण्डलमेवास्य दृश्यते युधि भारत।
सायकाश्चैव दृश्यन्ते निश्चरन्तः समन्ततः ॥ १५ ॥
आच्छादयन् दिशः सर्वाः सूर्यस्येवांशवो यथा।

भारत! उस समय केवल उसका मण्डलाकार धनुष ही दिखायी देता था और उससे चारों ओर छूटनेवाले बाण सूर्यकी किरणोंके समान सम्पूर्ण दिशाओंको ढके हुए दृष्टिगोचर होते थे ॥ १५½ ॥

बाणभूते ततस्तस्मिन् संछन्ने च नभस्तले ॥ १६ ॥
यमाभ्यां ददृशे रूपं कालान्तकयमोपमम्।

उस समय जब आकाश आच्छादित होकर बाणमय हो रहा था, तब नकुल और सहदेवने आपके पुत्रका स्वरूप काल, अन्तक एवं यमराजके समान भयंकर देखा ॥ १६½ ॥

पराक्रमं तु तं दृष्ट्वा तव सूनोर्महारथाः ॥ १७ ॥
मृत्योरुपान्तिकं प्राप्तौ माद्रीपुत्रौ स्म मेनिरे।

आपके पुत्रका वह पराक्रम देखकर सब महारथी ऐसा मानने लगे कि माद्रीके दोनों पुत्र मृत्युके निकट पहुँच गये॥

ततः सेनापती राजन् पाण्डवस्य महारथः ॥ १८ ॥
पार्षतः प्रययौ तत्र यत्र राजा सुयोधनः।

राजन्! तब पाण्डव-सेनापति द्रुपदपुत्र महारथी धृष्टद्युम्न जहाँ राजा दुर्योधन था, वहाँ जा पहुँचे ॥ १८½ ॥

माद्रीपुत्रौ ततः शूरौ व्यतिक्रम्य महारथौ ॥ १९ ॥
धृष्टद्युम्नस्तव सुतं वारयामास सायकैः।

महारथी शूरवीर माद्रीकुमार नकुल-सहदेवको लाँघकर धृष्टद्युम्नने अपने बाणोंकी मारसे आपके पुत्रको रोक दिया ॥

तमविध्यदमेयात्मा तव पुत्रो ह्यमर्षणः ॥ २० ॥
पाञ्चाल्यं पञ्चविंशत्या प्रहसन् पुरुषर्षभः ।

तब अमेय आत्मबलसे सम्पन्न आपके अमर्षशील पुत्र पुरुष-रत्न दुर्योधनने हँसते हुए पचीस बाण मारकर धृष्टद्युम्नको घायल कर दिया ॥ २०½ ॥

ततः पुनरमेयात्मा तव पुत्रो ह्यमर्षणः ॥ २१ ॥
विद्ध्वा ननाद पाञ्चाल्यं षष्ट्या पञ्चभिरेव च ।

तदनन्तर अमेय आत्मबलसे सम्पन्न आपके अमर्षशील पुत्रने पैंसठ बाणोंसे धृष्टद्युम्नको घायल करके बड़े जोरसे गर्जना की ॥ २१½ ॥

तथास्य सशरं चापं हस्तावापं च मारिष ॥ २२ ॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन राजा चिच्छेद संयुगे ।

आर्य ! फिर राजा दुर्योधनने युद्धस्थलमें एक तीखे क्षुरप्रसे धृष्टद्युम्नके बाणसहित धनुष और दस्तानेको भी काट दिया ॥ २२½ ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं पाञ्चाल्यः शत्रुकर्शनः ॥ २३ ॥
अन्यदादत्त वेगेन धनुर्भारसहं नवम् ।

शत्रुसूदन धृष्टद्युम्नने उस कटे हुए धनुषको फेंककर वेगपूर्वक दूसरा धनुष हाथमें ले लिया, जो भार सहनेमें समर्थ और नवीन था ॥ २३½ ॥

प्रज्वलन्निव वेगेन संरम्भाद् रुधिरेक्षणः ॥ २४ ॥
अशोभत महेष्वासो धृष्टद्युम्नः कृतव्रणः ।

उस समय उनकी आँखें क्रोधसे लाल हो रही थीं। सारे शरीरमें घाव हो रहे थे; अतः वे महाधनुर्धर धृष्टद्युम्न वेगसे जलते हुए अग्निदेवके समान शोभा पा रहे थे॥ २४½ ॥

स पञ्चदश नाराचाञ्छ्वसतः पन्नगानिव ॥ २५ ॥
जिघांसुर्भरतश्रेष्ठं धृष्टद्युम्नो व्यपासृजत् ।

धृष्टद्युम्नने भरतश्रेष्ठ दुर्योधनको मार डालनेकी इच्छासे उसके ऊपर फुफकारते हुए सर्पोंके समान पंद्रह नाराच छोड़े॥

ते वर्म हेमविकृतं भित्त्वा राज्ञः शिलाशिताः ॥ २६ ॥
विविशुर्वसुधां वेगात् कङ्कबर्हिणवाससः ।

शिलापर तेज किये हुए कङ्क और मयूरके पंखोंसे युक्त वे बाण राजा दुर्योधनके सुवर्णमय कवचको छेदकर बड़े वेगसे पृथ्वीमें समा गये ॥ २६½ ॥

सोऽतिविद्धो महाराज पुत्रस्तेऽतिव्यराजत ॥ २७ ॥
वसन्तकाले सुमहान् प्रफुल्ल इव किंशुकः ।

महाराज ! उस समय अत्यन्त घायल हुआ आपका पुत्र वसन्त ऋतुमें खिले हुए महान् पलाश वृक्षके समान अत्यन्त सुशोभित हो रहा था ॥ २७½ ॥

सच्छिन्नवर्मा नाराचप्रहारैर्जर्जरीकृतः ॥ २८ ॥
धृष्टद्युम्नस्य भल्लेन क्रुद्धश्चिच्छेद कार्मुकम् ।

उसका कवच कट गया था और शरीर नाराचोंके प्रहारसे जर्जर कर दिया गया था। उस अवस्थामें उसने कुपित होकर एक भल्लसे धृष्टद्युम्नके धनुषको काट डाला ॥

अथैनं छिन्नधन्वानं त्वरमाणो महीपतिः ॥ २९ ॥
सायकैर्दशभी राजन् भ्रुवोर्मध्ये समार्पयत् ।

राजन् ! धनुष कट जानेपर धृष्टद्युम्नकी दोनों भौहोंके मध्यभागमें राजा दुर्योधनने तुरंत ही दस बाणोंका प्रहार किया ॥

तस्य तेऽशोभयन् वक्त्रं कर्मारपरिमार्जिताः ॥ ३० ॥
प्रफुल्लं पङ्कजं यद्वद् भ्रमरा मधुलिप्सवः ।

कारीगरके द्वारा साफ किये गये वे बाण धृष्टद्युम्नके मुखकी ऐसी शोभा बढ़ाने लगे, मानो मधुलोभी भ्रमर प्रफुल्ल कमल-पुष्पका रसास्वादन कर रहे हों ॥ ३०½ ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं धृष्टद्युम्नो महामनाः ॥ ३१
अन्यदादत्त वेगेन धनुर्भल्लांश्च षोडश ।

महामना धृष्टद्युम्नने उस कटे हुए धनुषको फेंककर बड़े वेगसे दूसरा धनुष और सोलह भल्ल हाथमें ले लिये ॥३१½॥

ततो दुर्योधनस्याश्वान् हत्वा सूतं च पञ्चभिः ॥ ३२ ॥
धनुश्चिच्छेद भल्लेन जातरूपपरिष्कृतम् ।

उनमेंसे पाँच भल्लोंद्वारा दुर्योधनके सारथि और घोड़ोंको मारकर एक भल्लसे उसके सुवर्ण-भूषित धनुषको काट डाला ॥ ३२½ ॥

रथं सोपस्करं छत्रं शक्तिं खड्गं गदां ध्वजम् ॥ ३३ ॥
भल्लैश्चिच्छेद दशभिः पुत्रस्य तव पार्षतः ।

तत्पश्चात् दस भल्लोंसे द्रुपदकुमारने आपके पुत्रके सब सामग्रियोंसहित रथ, छत्र, शक्ति, खड्ग, गदा और ध्वज काट दिये ॥ ३३½ ॥

तपनीयाङ्गदं चित्रं नागं मणिमयं शुभम् ॥ ३४ ॥
ध्वजं कुरुपतेश्छिन्नं ददृशुः सर्वपार्थिवाः ।

समस्त राजाओंने देखा कि कुरुराज दुर्योधनका सोनेके अङ्गदोंसे विभूषित, नाग-चिह्नयुक्त विचित्र, मणिमय एवं सुन्दर ध्वज कटकर धराशायी हो गया है ॥ ३४½ ॥

दुर्योधनं तु विरथं छिन्नवर्मायुधं रणे ॥ ३५ ॥
भ्रातरः पर्यरक्षन्त सोदरा भरतर्षभ ।

भरतश्रेष्ठ ! रणभूमिमें जिसके कवच और आयुध छिन्न-भिन्न हो गये थे, उस रथहीन दुर्योधनकी उसके सगे भाई सब ओरसे रक्षा करने लगे ॥ ३५½ ॥

तमारोप्य रथे राजन् दण्डधारो नराधिपम् ॥ ३६ ॥
अपाहरदसम्भ्रान्तो धृष्टद्युम्नस्य पश्यतः ।

राजन् ! इसी समय दण्डधार धृष्टद्युम्नके देखते-देखते राजा दुर्योधनको अपने रथपर बिठाकर बिना किसी घबराहटके रणभूमिसे दूर हटा ले गया ॥ ३६½ ॥

कर्णस्तु सात्यकिं जित्वा राजगृद्धी महाबलः ॥ ३७ ॥
द्रोणहन्तारमुग्रेषुं ससाराभिमुखो रणे ।

राजा दुर्योधनका हित चाहनेवाला महाबली कर्ण सात्यकिको परास्त करके रणभूमिमें भयंकर बाण धारण करनेवाले द्रोणहन्ता धृष्टद्युम्नके सामने गया ॥ ३७½ ॥

तं पृष्ठतोऽभ्ययात् तूर्णं शैनेयो वितुदञ्छरैः ॥ ३८ ॥
वारणं जघनोपान्ते विषाणाभ्यामिव द्विपः ।

उस समय शिनिपौत्र सात्यकि अपने बाणोंसे कर्णको पीड़ा देते हुए तुरंत उसके पीछे-पीछे गये, मानो कोई गजराज अपने दोनों दाँतोंसे दूसरे गजराजकी जाँघोंमें चोट पहुँचाता हुआ उसका पीछा कर रहा हो ॥ ३८½ ॥

स भारत महानासीद् योधानां सुमहात्मनाम् ॥ ३९ ॥
कर्णपार्षतयोर्मध्ये त्वदीयानां महारणः ।

भारत ! कर्ण और धृष्टद्युम्नके बीचमें खड़े हुए आपके महामनस्वी योद्धाओंका पाण्डव-सैनिकोंके साथ महान् संग्राम हुआ ॥

न पाण्डवानां नास्माकं योधः कश्चित् पराङ्मुखः॥ ४० ॥
प्रत्यदृश्यत् ततः कर्णः पञ्चालांस्त्वरितो ययौ ।

उस समय पाण्डवों तथा हमलोगोंमेंसे कोई भी योद्धा युद्धसे मुँह फेरकर पीछे हटता नहीं दिखायी दिया । तब कर्णने तुरंत ही पाञ्चालोंपर आक्रमण किया ॥ ४०½ ॥

तस्मिन् क्षणे नरश्रेष्ठ गजवाजिजनक्षयः ॥ ४१ ॥
प्रादुरासीदुभयतो राजन् मध्यगतेऽहनि ।

नरश्रेष्ठ नरेश्वर ! मध्याह्नकी उस वेलामें दोनों पक्षोंके हाथी, घोड़ों और मनुष्योंका संहार होने लगा ॥ ४१½ ॥

पञ्चालास्तु महाराज त्वरिता विजिगीषवः ॥ ४२ ॥
ते सर्वेऽभ्यद्रवन् कर्णं पतत्रिण इव द्रुमम् ।

महाराज ! विजयकी इच्छा रखनेवाले समस्त पाञ्चाल योद्धा कर्णपर उसी प्रकार टूट पड़े, जैसे पक्षी वृक्षकी ओर उड़े जाते हैं ॥ ४२½ ॥

तांस्तथाधिरथिः क्रुद्धो यतमानान् मनस्विनः ॥ ४३ ॥
विचिन्वन्निव बाणौघैः समासादयदग्रगान् ।

अधिरथपुत्र कर्ण कुपित हो विजयके लिये प्रयत्नशील, मनस्वी एवं अग्रगामी वीरोंको मानो चुन-चुनकर बाण-समूहोंद्वारा मारने लगा ॥ ४३½ ॥

व्याघ्रकेतुं सुशर्माणं चित्रं चोग्रायुधं जयम् ॥ ४४ ॥
शुक्लं च रोचमानं च सिंहसेनं च दुर्जयम् ।

वह व्याघ्रकेतु, सुशर्मा[१], चित्र, उग्रायुध, जय, शुक्ल, रोचमान और दुर्जय वीर सिंहसेनपर जा चढ़ा ॥ ४४½ ॥

ते वीरा रथमार्गेण परिवव्रुर्नरोत्तमम् ॥ ४५ ॥
सृजन्तं सायकान् क्रुद्धं कर्णमाहवशोभिनम् ।

उन सभी वीरोंने रथ-मार्गसे आकर युद्धभूमिमें शोभा पाने तथा कुपित होकर बाणोंकी वर्षा करनेवाले नरश्रेष्ठ कर्णको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४५½ ॥

युध्यमानांस्तु तान् दूरान्मनुजेन्द्र प्रतापवान् ॥ ४६ ॥
अष्टाभिरष्टौ राधेयोऽभ्यर्दयन्निशितैः शरैः ।

नरेन्द्र ! प्रतापी राधापुत्र कर्णने दूरसे युद्ध करनेवाले उन आठों वीरोंको आठ पैने बाणोंसे घायल कर दिया॥ ४६½ ॥

अथापरान् महाराज सूतपुत्रः प्रतापवान् ॥ ४७ ॥
जघान बहुसाहस्रान् योधान् युद्धविशारदान् ।

महाराज ! तदनन्तर प्रतापी सूतपुत्रने कई हजार युद्धकुशल योद्धाओंको मार डाला ॥ ४७½ ॥

जिष्णुं च जिष्णुकर्माणं देवापिं भद्रमेव च ॥ ४८ ॥
दण्डं च राजन् समरे चित्रं चित्रायुधं हरिम् ।
सिंहकेतुं रोचमानं शलभं च महारथम् ॥ ४९ ॥
निजघान सुसंक्रुद्धश्चेदीनां च महारथान् ।

राजन् ! तत्पश्चात् क्रोधमें भरे हुए कर्णने समराङ्गणमें जिष्णु, जिष्णुकर्मा, देवापि, भद्र, दण्ड, चित्र, चित्रायुध, हरि, सिंहकेतु, रोचमान तथा महारथी शलभ—इन चेदिदेशीय महारथियोंका संहार कर डाला ॥ ४८-४९½ ॥

तेषामाददतः प्राणानासीदाधिरथेर्वपुः ॥ ५० ॥
शोणिताभ्युक्षिताङ्गस्य रुद्रस्येवोर्जितं महत् ।

इन वीरोंके प्राण लेते समय रक्तसे भीगे अङ्गोंवाले सूतपुत्र कर्णका शरीर प्राणियोंका संहार करनेवाले भगवान् रुद्रके विशाल शरीरकी भाँति देदीप्यमान हो रहा था॥ ५०½ ॥

तत्र भारत कर्णेन मातङ्गास्ताडिताः शरैः ॥ ५१ ॥
सर्वतोऽभ्यद्रवन् भीताः कुर्वन्तो महदाकुलम् ।

भारत ! वहाँ कर्णके बाणोंसे घायल हुए हाथी विशाल सेनाको व्याकुल करते हुए भयभीत हो चारों ओर भागने लगे॥

निपेतुरुर्व्यां समरे कर्णसायकताडिताः ॥ ५२ ॥
कुर्वन्तो विविधान् नादान् वज्रनुन्ना इवाचलाः ।

कर्णके बाणोंसे आहत होकर समराङ्गणमें नाना प्रकारके आर्तनाद करते हुए वज्रके मारे हुए पर्वतोंके समान धराशायी हो रहे थे ॥ ५२½ ॥

गजवाजिमनुष्यैश्च निपतद्भिः समन्ततः ॥ ५३ ॥
रथैश्चाधिरथेर्मार्गे समास्तीर्यत मेदिनी ।

सूतपुत्र कर्णके रथके मार्गमें सब ओर गिरते हुए हाथियों, घोड़ों, मनुष्यों और रथोंके द्वारा वहाँ सारी पृथ्वी पट गयी थी॥

नैवं भीष्मो न च द्रोणो नान्ये युधि च तावकाः ॥ ५४ ॥
चक्रुः स तादृशं कर्म यादृशं वै कृतं रणे ।

कर्णने उस समय रणभूमिमें जैसा पराक्रम किया था, वैसा न तो भीष्म, न द्रोणाचार्य और न आपके दूसरे कोई योद्धा ही कर सके थे ॥ ५४½ ॥

१. संशप्तकोंके सेनापति त्रिगर्तराज सुशर्मा कौरवोंके पक्षमें था । यह सुशर्मा उससे भिन्न पाण्डव-पक्षका योद्धा था ।

सूतपुत्रेण नागेषु हयेषु च रथेषु च ॥ ५५ ॥
नरेषु च महाराज कृतं स्म कदनं महत् ।

महाराज ! सूतपुत्रने हाथियों, घोड़ों, रथों और पैदल मनुष्योंके दलमें घुसकर बड़ा भारी संहार मचा दिया था ॥

मृगमध्ये यथा सिंहो दृश्यते निर्भयश्चरन् ॥ ५६ ॥
पञ्चालानां तथा मध्ये कर्णोऽचरदभीतवत् ।

जैसे सिंह मृगोंके झुंडमें निर्भय विचरता दिखायी देता है, उसी प्रकार कर्ण पाञ्चालोंकी सेनामें निर्भीकके समान विचरण करता था ॥ ५६½ ॥

यथा मृगगणांस्त्रस्तान् सिंहो द्रावयते दिशः ॥ ५७ ॥
पञ्चालानां रथव्रातान् कर्णो व्यद्रावयत् तथा ।

जैसे भयभीत हुए मृगसमूहोंको सिंह सब ओर खदेड़ता है, उसी प्रकार कर्ण पाञ्चालोंके रथसमूहोंको भगा रहा था ॥

सिंहास्यं च यथा प्राप्य न जीवन्ति मृगाः क्वचित् ॥ ५८ ॥
तथा कर्णमनुप्राप्य न जिजीवुर्महारथाः ।

जैसे मृग सिंहके मुखके समीप पहुँचकर जीवित नहीं बचते, उसी प्रकार पाञ्चाल महारथी कर्णके निकट पहुँचकर जीवित नहीं रह पाते थे ॥ ५८½ ॥

वैश्वानरं यथा प्राप्य प्रतिदह्यन्ति वै जनाः ॥ ५९ ॥
कर्णाग्निना रणे तद्वद् दग्धा भारत सृञ्जयाः ।

भरतनन्दन ! जैसे जलती आगमें पड़ जानेपर सभी मनुष्य दग्ध हो जाते हैं, उसी प्रकार सृंजय-सैनिक रणभूमिमें कर्णरूपी अग्निसे जलकर भस्म हो गये ॥ ५९½ ॥

कर्णेन चेदिकैकेयपाञ्चालेषु च भारत ॥ ६० ॥
विश्राव्य नाम निहता बहवः शूरसम्मताः ।

भारत ! कर्णने चेदि, केकय और पाञ्चाल योद्धाओंमेंसे बहुत-से शूरसम्मत रथियोंको नाम सुनाकर मार डाला ॥

मम चासीन्मती राजन् दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥ ६१ ॥
नैकोऽप्याधिरथेर्जीवन् पाञ्चाल्यो मोक्ष्यते युधि ।
पञ्चालान् व्यधमत् संख्ये सूतपुत्रः पुनः पुनः ॥ ६२ ॥

राजन् ! कर्णका पराक्रम देखकर मेरे मनमें यही निश्चय हुआ कि युद्धस्थलमें एक भी पाञ्चाल योद्धा सूतपुत्रके हाथसे जीवित नहीं छूट सकता; क्योंकि सूतपुत्र बारंबार युद्धस्थलमें पाञ्चालोंका ही विनाश कर रहा था ॥ ६१-६२ ॥

पञ्चालानथ निघ्नन्तं कर्णं दृष्ट्वा महारणे ।
अभ्यधावत् सुसंक्रुद्धो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ६३ ॥

उस महासमरमें कर्णको पाञ्चालोंका संहार करते देख धर्मराज युधिष्ठिरने अत्यन्त कुपित होकर उसपर धावा बोल दिया ॥ ६३ ॥

धृष्टद्युम्नश्च राधेयं द्रौपदेयाश्च मारिष ।
परिवव्रुरमित्रघ्नं शतशश्चापरे जनाः ॥ ६४ ॥

आर्य ! धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पुत्र तथा दूसरे सैकड़ों मनुष्य शत्रुनाशक राधापुत्र कर्णको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये ॥

शिखण्डी सहदेवश्च नकुलो नाकुलिस्तथा ।
जनमेजयः शिनेर्नप्ता बहवश्च प्रभद्रकाः ॥ ६५ ॥
एते पुरोगमा भूत्वा धृष्टद्युम्नस्य संयुगे ।
कर्णमस्यन्तमिष्वस्त्रैर्विचेरुरमितौजसः ॥ ६६ ॥

शिखण्डी, सहदेव, नकुल, शतानीक, जनमेजय, सात्यकि तथा बहुत-से प्रभद्रकगण—ये सभी अमिततेजस्वी वीर युद्धस्थलमें धृष्टद्युम्नके आगे होकर बाण बरसानेवाले कर्णपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करते हुए विचरने लगे ॥

तांस्तत्राधिरथिः संख्ये चेदिपाञ्चालपाण्डवान् ।
एको बहूनभ्यपतद् गरुत्मान् पन्नगानिव ॥ ६७ ॥

सूतपुत्रने समराङ्गणमें अकेला होनेपर भी जैसे गरुड़ अनेक सर्पोंपर एक साथ आक्रमण करते हैं, उसी प्रकार बहुसंख्यक चेदि, पाञ्चाल और पाण्डवोंपर आक्रमण किया ॥

तैः कर्णस्याभवद् युद्धं घोररूपं विशाम्पते ।
तादृग् यादृक् पुरा वृत्तं देवानां दानवैः सह ॥ ६८ ॥

प्रजानाथ ! उन सबके साथ कर्णका वैसा ही भयानक युद्ध हुआ, जैसा पूर्वकालमें देवताओंका दानवोंके साथ हुआ था ॥ ६८ ॥

तान् समेतान् महेष्वासाञ्शरवर्षौघवर्षिणः ।
एको व्यधमदव्यग्रस्तमांसीव दिवाकरः ॥ ६९ ॥

जैसे एक ही सूर्य सम्पूर्ण अन्धकार-राशिको नष्ट कर देते हैं, उसी प्रकार एक ही कर्णने ढेर-के-ढेर बाण-वर्षा करनेवाले उन समस्त महाधनुर्धरोंको बिना किसी व्यग्रताके नष्ट कर दिया ॥

भीमसेनस्तु संसक्ते राधेये पाण्डवैः सह ।
सर्वतोऽभ्यहनत् क्रुद्धो यमदण्डनिभैः शरैः ।
बाह्लीकान् केकयान् मत्स्यान् वासात्यान् मद्रसैन्धवान् ।
एकः संख्ये महेष्वासो योधयन् बह्वशोभत ।

जिस समय राधापुत्र कर्ण पाण्डवोंके साथ उलझा हुआ था, उसी समय महाधनुर्धर भीमसेन क्रोधमें भरकर यमदण्डके समान भयंकर बाणोंद्वारा बाह्लीक, केकय, मत्स्य, वसातीय, मद्र तथा सिंधुदेशीय सैनिकोंका सब ओरसे संहार कर रहे थे। वे युद्धभूमिमें अकेले ही इन सबके साथ युद्ध करते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे ॥ ७०½ ॥

तत्र मर्मसु भीमेन नाराचैस्ताडिता गजाः ॥ ७१ ॥
प्रपतन्तो हतारोहाः कम्पयन्ति स्म मेदिनीम् ।

वहाँ भीमसेनके नाराचोंद्वारा मर्मस्थानोंमें घायल हुए हाथी सवारोंसहित धराशायी हो इस पृथ्वीको कम्पित कर देते थे ॥

वाजिनश्च हतारोहाः पत्तयश्च गतासवः ॥ ७२ ॥
शेरते युधि निर्भिन्ना वमन्तो रुधिरं बहु ।

जिनके सवार मारे गये थे, वे घोड़े और पैदल सैनिक भी युद्धस्थलमें छिन्न-भिन्न हो मुँहसे बहुत-सा रक्त वमन करते हुए प्राणशून्य होकर पड़े थे ॥ ७२½ ॥

सहस्रशश्च रथिनः पातिताः पतितायुधाः ॥ ७३ ॥
ते क्षताः समदृश्यन्त भीमभीता गतासवः ।

सहस्रों रथी रथसे नीचे गिरा दिये गये थे। उनके अस्त्र-शस्त्र भी गिर चुके थे। वे सब-के-सब क्षत-विक्षत हो भीमसेनके भयसे भीत एवं प्राणहीन दिखायी दे रहे थे ॥ ७३½ ॥

रथिभिः सादिभिः सूतैः पादातैर्वाजिभिर्गजैः ॥ ७४ ॥
भीमसेनशरैश्छिन्नैराच्छन्ना वसुधाभवत् ।

भीमसेनके बाणोंसे छिन्न-भिन्न हुए रथियों, घुड़सवारों, सारथियों, पैदलों, घोड़ों और हाथियोंकी लाशोंसे वहाँकी धरती आच्छादित हो गयी थी ॥ ७४½ ॥

तद् स्तम्भितमिवातिष्ठद्भीमसेनभयार्दितम् ॥ ७५ ॥
दुर्योधनबलं सर्वं निरुत्साहं कृतव्रणम् ।
निश्चेष्टं तुमुलं दीनं बभौ तस्मिन् महारणे ॥ ७६ ॥

उस महासमरमें दुर्योधनकी सारी सेना भीमसेनके भयसे पीड़ित हो स्तब्ध-सी खड़ी थी। उत्साह-शून्य, घायल, निश्चेष्ट, भयंकर और अत्यन्त दीन-सी प्रतीत होती थी ॥ ७५-७६ ॥

प्रसन्नसलिले काले यथा स्यात् सागरो नृप ।
तद्वत् तव बलं तद् वै निश्चलं समवस्थितम् ॥ ७७ ॥

नरेश्वर ! जिस समय ज्वार न उठनेसे जल स्वच्छ एवं शान्त हो, उस समय जैसे समुद्र निश्चल दिखायी देता है, उसी प्रकार आपकी सारी सेना निश्चेष्ट खड़ी थी ॥ ७७ ॥

मन्युवीर्यबलोपेतं दर्पात् प्रत्यवरोपितम् ।
अभवत् तव पुत्रस्य तत् सैन्यं निष्प्रभं तदा ॥ ७८ ॥

यद्यपि आपके सैनिकोंमें क्रोध, पराक्रम और बलकी कमी नहीं थी तो भी उनका घमंड चूर-चूर हो गया था; इसलिये उस समय आपके पुत्रकी वह सारी सेना तेजोहीन-सी प्रतीत होती थी ॥ ७८ ॥

तद् बलं भरतश्रेष्ठ वध्यमानं परस्परम् ।
रुधिरौघपरिक्लिन्नं रुधिरार्द्रं बभूव ह ॥ ७९ ॥
जगाम भरतश्रेष्ठ वध्यमानं परस्परम् ।

भरतश्रेष्ठ ! परस्पर मार खाती हुई वह सेना रक्तके प्रवाहमें डूबकर खूनसे लथपथ हो गयी थी और एक दूसरेकी चोट खाकर विनाशको प्राप्त हो रही थी ॥ ७९½ ॥

सूतपुत्रो रणे क्रुद्धः पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ ८० ॥
भीमसेनः कुरूंश्चापि द्रावयन्तौ विरेजतुः ।

सूतपुत्र कर्ण रणभूमिमें कुपित हो पाण्डवसेनाको और भीमसेन कौरव-सैनिकोंको खदेड़ते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे॥

वर्तमाने तथा रौद्रे संग्रामेऽद्भुतदर्शने ॥ ८१ ॥
निहत्य पृतनामध्ये संशप्तकगणान् बहून् ।
अर्जुनो जयतां श्रेष्ठो वासुदेवमथाब्रवीत् ॥ ८२ ॥

जब इस प्रकार अद्भुत दिखायी देनेवाला वह भयंकर संग्राम चल ही रहा था, उस समय दूसरी ओर विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ अर्जुन सेनाके मध्यभागमें बहुत-से संशप्तकोंका संहार करके भगवान् श्रीकृष्णसे बोले—॥ ८१-८२ ॥

प्रभग्नं बलमेतद्धि योत्स्यमानं जनार्दन ।
एते द्रवन्ति सगणाः संशप्तकमहारथाः ॥ ८३ ॥
अपारयन्तो मद्बाणान् सिंहशब्दं मृगा इव ।

'जनार्दन ! युद्ध करती हुई इस संशप्तक-सेनाके पाँव उखड़ गये हैं। ये संशप्तक महारथी अपने-अपने दलके साथ भागे जा रहे हैं। जैसे मृग सिंहकी गर्जना सुनकर हतोत्साह हो जाते हैं, उसी प्रकार ये लोग मेरे बाणोंकी चोट सहन करनेमें असमर्थ हो गये हैं ॥ ८३½ ॥

दीर्यते च महत् सैन्यं सृञ्जयानां महारणे ॥ ८४ ॥
हस्तिकक्षो ह्यसौ कृष्ण केतुः कर्णस्य धीमतः ।
दृश्यते राजसैन्यस्य मध्ये विचरतो मुदा ॥ ८५ ॥

'उधर वह सृंजयोंकी विशाल सेना भी महासमरमें विदीर्ण हो रही है। श्रीकृष्ण ! वह हाथीकी रस्सीके चिह्नसे युक्त बुद्धिमान् कर्णका ध्वज दिखायी दे रहा है। वह राजाओंकी सेनाके बीच सानन्द विचरण कर रहा है ॥ ८४-८५ ॥

न च कर्णं रणे शक्ता जेतुमन्ये महारथाः ।
जानीते हि भवान् कर्णं वीर्यवन्तं पराक्रमे ॥ ८६ ॥

'जनार्दन ! आप तो जानते ही हैं कि कर्ण कितना बलवान् तथा पराक्रम प्रकट करनेमें समर्थ है। अतः रणभूमिमें दूसरे महारथी उसे जीत नहीं सकते हैं ॥ ८६ ॥

तत्र याहि यतः कर्णो द्रावयत्येष नो बलम् ।
वर्जयित्वा रणे याहि सूतपुत्रं महारथम् ॥ ८७ ॥
एतन्मे रोचते कृष्ण यथा वा तव रोचते ।

'श्रीकृष्ण ! जहाँ यह कर्ण हमारी सेनाको खदेड़ रहा है, वहीं चलिये। रणभूमिमें संशप्तकोंको छोड़कर अब महारथी सूतपुत्रके ही पास रथ ले चलिये। 'मुझे यही ठीक जान पड़ता है अथवा आपको जैसा जँचे, वैसा कीजिये' ॥ ८७½ ॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य गोविन्दः प्रहसन्निव ॥ ८८ ॥
अब्रवीदर्जुनं तूर्णं कौरवाञ्जहि पाण्डव ।

अर्जुनकी यह बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने उनसे हँसते हुए-से कहा—'पाण्डुनन्दन ! तुम शीघ्र ही कौरव-सैनिकोंका संहार करो' ॥ ८८½ ॥

ततस्तव महासैन्यं गोविन्दप्रेरिता हयाः ॥ ८९ ॥
हंसवर्णाः प्रविविशुर्वहन्तः कृष्णपाण्डवौ ।

राजन् ! तदनन्तर श्रीकृष्णके द्वारा हाँके गये हंसके समान श्वेत रंगवाले घोड़े श्रीकृष्ण और अर्जुनको लेकर आपकी विशाल सेनामें घुस गये ॥ ८९½ ॥

केशवप्रेरितैरश्वैः श्वेतैः काञ्चनभूषणैः ॥ ९० ॥
प्रविशद्भिस्तव बलं चतुर्दिशमभिद्यत ।



अर्जुनके द्वारा संशप्तकोंका संहार

श्रीकृष्णद्वारा संचालित हुए उन सुवर्णभूषित श्वेत अश्वोंके प्रवेश करते ही आपकी सेनामें चारों ओर भगदड़ मच गयी ॥ ९०½ ॥

मेघस्तनितनिर्ह्रादः स रथो वानरध्वजः ॥ ९१ ॥
चलत्पताकस्तां सेनां विमानं द्यामिवाविशत् ।

जैसे कोई विमान स्वर्गलोकमें प्रवेश कर रहा हो, उसी प्रकार चञ्चल पताकाओंसे युक्त वह कपिध्वज रथ मेघोंकी गर्जनाके समान गम्भीर घोष करता हुआ उस सेनामें जा घुसा॥

तौ विदार्य महासेनां प्रविष्टौ केशवार्जुनौ ॥ ९२ ॥
क्रुद्धौ संरम्भरक्ताक्षौ व्यभ्राजेतां महाद्युती ।

उस विशाल सेनाको विदीर्ण करके उसके भीतर प्रविष्ट हुए वे दोनों श्रीकृष्ण और अर्जुन अपने महान् तेजसे प्रकाशित हो रहे थे। उनके मनमें शत्रुओंके प्रति क्रोध भरा हुआ था और उनकी आँखें रोषसे लाल हो रही थीं ॥ ९२½ ॥

युद्धशौण्डौ समाहूतावागतौ तौ रणाध्वरम् ॥ ९३ ॥
यज्वभिर्विधिनाहूतौ मखे देवाविवाश्विनौ ।

जैसे यज्ञमें ऋत्विजोंद्वारा विधिपूर्वक आवाहन किये जानेपर दोनों अश्विनीकुमार नामक देवता पदार्पण करते हैं, उसी प्रकार युद्धनिपुण वे श्रीकृष्ण और अर्जुन भी मानो आह्वान किये जानेपर उस रणयज्ञमें पधारे थे ॥ ९३½ ॥

क्रुद्धौ तौ तु नरव्याघ्रौ वेगवन्तौ बभूवतुः ॥ ९४ ॥
तलशब्देन रुषितौ यथा नागौ महावने ।

जैसे विशाल वनमें तालीकी आवाजसे कुपित हुए दो हाथी दौड़े आ रहे हों, उसी प्रकार क्रोधमें भरे हुए वे दोनों पुरुषसिंह बड़े वेगसे बढ़े आ रहे थे ॥ ९४½ ॥

विगाह्य तु रथानीकमश्वसंघांश्च फाल्गुनः ॥ ९५ ॥
व्यचरत् पृतनामध्ये पाशहस्त इवान्तकः ।

अर्जुन रथसेना और घुड़सवारोंके समूहमें घुसकर पाशधारी यमराजके समान कौरव-सेनाके मध्यभागमें विचरने लगे ॥

तं दृष्ट्वा युधि विक्रान्तं सेनायां तव भारत ॥ ९६ ॥
संशप्तकगणान् भूयः पुत्रस्ते समचूचुदत् ।

भारत ! युद्धमें पराक्रम प्रकट करनेवाले अर्जुनको आपकी सेनामें घुसा हुआ देख आपके पुत्र दुर्योधनने पुनः संशप्तकगणोंको उनपर आक्रमण करनेके लिये प्रेरित किया ॥

ततो रथसहस्रेण द्विरदानां त्रिभिः शतैः ॥ ९७ ॥
चतुर्दशसहस्रैस्तु तुरगाणां महाहवे ।
द्वाभ्यां शतसहस्राभ्यां पदातीनां च धन्विनाम् ॥ ९८ ॥
शूराणां लब्धलक्ष्याणां विदितानां समन्ततः ।
अभ्यवर्तन्त कौन्तेयं छादयन्तो महारथाः ॥ ९९ ॥
शरवर्षैर्महाराज सर्वतः पाण्डुनन्दनम् ।

महाराज ! तब एक हजार रथ, तीन सौ हाथी, चौदह हजार घोड़े और लक्ष्य वेधनेमें निपुण, सर्वत्र विख्यात एवं शौर्यसम्पन्न दो लाख पैदल सैनिक साथ लेकर संशप्तक महारथी कुन्तीकुमार पाण्डुनन्दन अर्जुनको अपने बाणोंकी वर्षासे आच्छादित करते हुए उनपर चढ़ आये ॥९७–९९½॥

स च्छाद्यमानः समरे शरैः परबलार्दनः ॥१००॥
दर्शयन् रौद्रमात्मानं पाशहस्त इवान्तकः ।
निघ्नन् संशप्तकान् पार्थः प्रेक्षणीयतरोऽभवत्॥१०१॥

उस समय समराङ्गणमें उनके बाणोंसे आच्छादित होते हुए शत्रुसैन्यसंहारक कुन्तीकुमार अर्जुन पाशधारी यमराजके समान अपना भयंकर रूप दिखाते और संशप्तकोंका वध करते हुए अत्यन्त दर्शनीय हो रहे थे ॥ १००-१०१ ॥

ततो विद्युत्प्रभैर्बाणैः कार्तस्वरविभूषितैः ।
निरन्तरमिवाकाशमासीच्छन्नं किरीटिना ॥१०२॥

तदनन्तर किरीटधारी अर्जुनके चलाये हुए विद्युत्के समान प्रकाशमान सुवर्णभूषित बाणोंद्वारा आच्छादित हो आकाश ठसाठस भर गया ॥ १०२ ॥

किरीटिभुजनिर्मुक्तैः सम्पतद्भिर्महाशरैः ।
समाच्छन्नं बभौ सर्वं काद्रवेयैरिव प्रभो ॥१०३॥

प्रभो ! किरीटधारी अर्जुनकी भुजाओंसे छूटकर सब ओर गिरनेवाले बड़े-बड़े बाणोंसे आवृत होकर वहाँका सारा प्रदेश सर्पोंसे व्याप्त-सा प्रतीत हो रहा था ॥ १०३ ॥

रुक्मपुङ्खान् प्रसन्नाग्राञ्छरान् संनतपर्वणः ।
अवासृजदमेयात्मा दिक्षु सर्वासु पाण्डवः ॥१०४॥

अमेय आत्मबलसे सम्पन्न पाण्डुनन्दन अर्जुन सम्पूर्ण दिशाओंमें सुवर्णमय पङ्ख, स्वच्छ धार और झुकी हुई गाँठवाले बाणोंकी वर्षा कर रहे थे ॥ १०४ ॥

मही वियद् दिशः सर्वाः समुद्रा गिरयोऽपि वा ।
स्फुटन्तीति जना जज्ञुः पार्थस्य तलनिःस्वनात्॥१०५॥

वहाँ सब लोग यही समझने लगे कि 'अर्जुनके तल-शब्द (हथेलीकी आवाज) से पृथ्वी, आकाश, सम्पूर्ण दिशाएँ समुद्र और पर्वत भी फटे जा रहे हैं ॥ १०५ ॥

हत्वा दशसहस्राणि पार्थिवानां महारथः ।
संशप्तकानां कौन्तेयः प्रत्यक्षं त्वरितोऽभ्ययात्॥१०६॥

महारथी कुन्तीकुमार अर्जुन सबके देखते-देखते दस हजार संशप्तक नरेशोंका वध करके तुरंत आगे बढ़ गये ॥

प्रत्यक्षं च समासाद्य पार्थः काम्बोजरक्षितम् ।
प्रममाथ बलं बाणैर्दानवानिव वासवः ॥१०७॥

जैसे इन्द्रने दानवोंका विनाश किया था, उसी प्रकार अर्जुनने हमारी आँखोंके सामने काम्बोजराजके द्वारा सुरक्षित सेनाके पास पहुँचकर अपने बाणोंद्वारा उसका संहार कर डाला॥

प्रचिच्छेदाशु भल्लेन द्विषतामाततायिनाम् ।
शस्त्रं पाणिं तथा बाहुं तथापि च शिरांस्युत॥१०८॥

वे अपने भल्लके द्वारा आततायी शत्रुओंके शस्त्र, हाथ,

भुजा तथा मस्तकोंको बड़ी फुर्तीसे काट रहे थे ॥ १०८ ॥

अङ्गाङ्गावयवैश्छिन्नैर्व्यायुधास्तेऽपतन् भुवि।
विष्वग्वाताभिसम्भग्ना बहुशाखा इव द्रुमाः ॥१०९॥

जैसे सब ओरसे उठी हुई आँधीके उखाड़े हुए अनेक शाखाओंवाले वृक्ष धराशायी हो जाते हैं, उसी प्रकार अपने शरीरका एक-एक अवयव कट जानेसे वे शस्त्रहीन शत्रु भूतलपर गिर पड़ते थे ॥ १०९ ॥

हस्त्यश्वरथपत्तीनां व्रातान् निघ्नन्तमर्जुनम्।
सुदक्षिणादवरजः शरवृष्ट्याभ्यवीवृषत् ॥११०॥

तब हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंके समूहोंका संहार करनेवाले अर्जुनपर काम्बोजराज सुदक्षिणका छोटा भाई अपने बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥११०॥

तस्यास्यतोऽर्धचन्द्राभ्यां बाहू परिघसंनिभौ।
पूर्णचन्द्राभवक्त्रं च क्षुरेणाभ्यहरच्छिरः ॥१११॥

उस समय अर्जुनने बाण-वर्षा करनेवाले उस वीरकी परिघके समान मोटी और सुदृढ़ भुजाओंको दो अर्धचन्द्राकार बाणोंसे काट डाला और एक छुरेके द्वारा पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले उसके मस्तकको भी धड़से अलग कर दिया ॥ १११ ॥

स पपात ततो वाहात् सुलोहितपरिस्रवः।
मनःशिलागिरेः शृङ्गं वज्रेणेवावदारितम् ॥११२॥

फिर तो वह रक्तका झरना-सा बहाता हुआ अपने वाहनसे नीचे गिर पड़ा, मानो मैनसिलके पहाड़का शिखर वज्रसे विदीर्ण होकर भूतलपर आ गिरा हो ॥ ११२ ॥

सुदक्षिणादवरजं काम्बोजं ददृशुर्हतम्।
प्रांशुं कमलपत्राक्षमत्यर्थं प्रियदर्शनम् ॥११३॥
काञ्चनस्तम्भसदृशं भिन्नं हेमगिरिं यथा।

उस समय सब लोगोंने देखा कि सुदक्षिणका छोटा भाई काम्बोजदेशीय वीर जो देखनेमें अत्यन्त प्रिय, कमल-दलके समान नेत्रोंसे सुशोभित तथा सोनेके खम्भेके समान ऊँचा कदका था, मारा जाकर विदीर्ण हुए सुवर्णमय पर्वतके समान धरतीपर पड़ा है ॥ ११३½ ॥

ततोऽभवत् पुनर्युद्धं घोरमत्यर्थमद्भुतम् ॥११४॥
नानावस्थाश्च योधानां बभूवुस्तत्र युद्ध्यताम्।

तदनन्तर पुनः अत्यन्त घोर एवं अद्भुत युद्ध होने लगा। वहाँ युद्ध करते हुए योद्धाओंकी विभिन्न अवस्थाएँ प्रकट होने लगीं ॥ ११४½ ॥

एकेषुनिहतैरश्वैः काम्बोजैर्यवनैः शकैः ॥११५॥
शोणिताक्तैस्तदा रक्तं सर्वमासीद् विशाम्पते।

प्रजानाथ ! एक-एक बाणसे मारे गये रक्तरंजित काबुली घोड़ों, यवनों और शकोंके खूनसे वह सारा युद्धस्थल लाल हो गया था ॥ ११५½ ॥

रथैर्हताश्वसूतैश्च हतारोहैश्च वाजिभिः ॥११६॥
द्विरदैश्च हतारोहैर्महामात्रैर्हतद्विपैः।
अन्योन्येन महाराज कृतो घोरो जनक्षयः ॥११७॥

रथोंके घोड़े और सारथि, घोड़ोंके सवार, हाथियोंके आरोही, महावत और स्वयं हाथी भी मारे गये थे। महाराज! इन सबने परस्पर प्रहार करके घोर जनसंहार मचा दिया था॥

तस्मिन् प्रपक्षे पक्षे च निहते सव्यसाचिना।
अर्जुनं जयतां श्रेष्ठं त्वरितो द्रौणिरभ्ययात् ॥११८॥
विधुन्वानो महच्चापं कार्तस्वरविभूषितम्।
आददानः शरान् घोरान् स्वरश्मीनिव भास्करः॥११९॥

उस युद्धमें जब सव्यसाची अर्जुनने शत्रुओंके पक्ष और प्रपक्ष दोनोंको मार गिराया, तब द्रोणपुत्र अश्वत्थामा अपने सुवर्णभूषित विशाल धनुषको हिलाता और अपनी किरणोंको धारण करनेवाले सूर्यदेवके समान भयंकर बाण हाथमें लेता हुआ तुरंत विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ अर्जुनके सामने आ पहुँचा ॥ ११८-११९ ॥

क्रोधामर्षविवृत्तास्यो लोहिताक्षो बभौ बली।
अन्तकाले यथा क्रुद्धो मृत्युः किङ्करदण्डभृत् ॥१२०॥

उस समय क्रोध और अमर्षसे उसका मुँह खुला हुआ था, नेत्र रक्तवर्ण हो रहे थे तथा वह बलवान् अश्वत्थामा अन्तकालमें किङ्कर नामक दण्ड धारण करनेवाले कुपित यमराजके समान जान पड़ता था ॥ १२० ॥

ततः प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि संघशः।
तैर्विसृष्टैर्महाराज व्यद्रवत् पाण्डवी चमूः ॥१२१॥

महाराज ! तत्पश्चात् वह समूह-के-समूह भयंकर बाणोंकी वर्षा करने लगा। उसके छोड़े हुए बाणोंसे व्यथित हो पाण्डवसेना भागने लगी ॥ १२१ ॥

स दृष्ट्वैव तु दाशार्हं स्यन्दनस्थं विशाम्पते।
पुनः प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि मारिष ॥१२२॥

माननीय प्रजानाथ ! वह रथपर बैठे हुए श्रीकृष्णकी ओर देखकर ही पुनः उनके ऊपर भयानक बाणोंकी वृष्टि करने लगा ॥ १२२ ॥

तैः पतद्भिर्महाराज द्रौणिमुक्तैः समन्ततः।
संछादितौ रथस्थौ तावुभौ कृष्णधनंजयौ ॥१२३॥

महाराज अश्वत्थामाके हाथोंसे छूटकर सब ओर गिरनेवाले उन बाणोंसे रथपर बैठे हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों ही ढक गये ॥ १२३ ॥

ततः शरशतैस्तीक्ष्णैरश्वत्थामा प्रतापवान्।
निश्चेष्टौ तावुभौ युद्धे चक्रे माधवपाण्डवौ ॥१२४॥

तत्पश्चात् प्रतापी अश्वत्थामाने सैकड़ों तीखे बाणोंद्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंको युद्धस्थलमें निश्चेष्ट कर दिया ॥

हाहाकृतमभूत् सर्वं स्थावरं जङ्गमं तथा।
चराचरस्य गोप्तारौ दृष्ट्वा संछादितौ शरैः ॥१२५॥

चराचर जगत्की रक्षा करनेवाले उन दोनों वीरोंको बाणोंसे आच्छादित हुआ देख स्थावर-जङ्गम समस्त प्राणी हाहाकार कर उठे ॥ १२५ ॥

सिद्धचारणसंघाश्च सम्पेतुस्ते समन्ततः ।
चिन्तयन्तो भवेदद्य लोकानां स्वस्त्यपीति च ॥१२६॥

सिद्धों और चारणोंके समुदाय सब ओरसे वहाँ आ पहुँचे और यह चिन्तन करने लगे कि 'आज सम्पूर्ण जगत्का कल्याण हो' ॥ १२६ ॥

न मया तादृशो राजन् दृष्टपूर्वः पराक्रमः ।
संग्रामे यादृशो द्रौणेः कृष्णौ संछादयिष्यतः॥१२७॥

राजन् ! समराङ्गणमें श्रीकृष्ण और अर्जुनको बाणोंद्वारा आच्छादित करनेवाले अश्वत्थामाका जैसा पराक्रम उस दिन देखा गया, वैसा मैंने पहले कभी नहीं देखा था ॥ १२७ ॥

द्रौणेस्तु धनुषः शब्दमहितत्रासनं रणे ।
अश्रौषं बहुशो राजन् सिंहस्य निनदो यथा ॥१२८॥

महाराज ! मैंने रणभूमिमें अश्वत्थामाके धनुषकी शत्रुओंको भयभीत कर देनेवाली टंकार बारंबार सुनी, मानो किसी सिंहके दहाड़नेकी आवाज हो रही हो ॥ १२८ ॥

ज्या चास्य चरतो युद्धे सव्यदक्षिणमस्यतः ।
विद्युदम्बुदमध्यस्था भ्राजमानेव साभवत् ॥१२९॥

जैसे मेघोंकी घटाके बीचमें बिजली चमकती है, उसी प्रकार युद्धमें दायें-बायें बाणवर्षापूर्वक विचरते हुए अश्वत्थामाके धनुषकी प्रत्यञ्चा भी प्रकाशित हो रही थी ॥ १२९ ॥

स तथा क्षिप्रकारी च दृढहस्तश्च पाण्डवः ।
प्रमोहं परमं गत्वा प्रेक्ष्य तं द्रोणजं ततः ॥१३०॥
विक्रमं विहतं मेन आत्मनः स महायशाः ।
तस्यास्य समरे राजन् वपुरासीत् सुदुर्दृशम् ॥१३१॥

युद्धमें फुर्ती करने और दृढ़तापूर्वक हाथ चलानेवाले महायशस्वी पाण्डुनन्दन अर्जुन द्रोणकुमारकी ओर देखकर भारी मोहमें पड़ गये और अपने पराक्रमको प्रतिहत हुआ मानने लगे । राजन् ! उस समराङ्गणमें अश्वत्थामाके शरीरकी ओर देखना भी अत्यन्त कठिन हो रहा था ॥ १३०-१३१॥

द्रौणिपाण्डवयोरेवं वर्तमाने महारणे ।
वर्धमाने च राजेन्द्र द्रोणपुत्रे महाबले ॥१३२॥
हीयमाने च कौन्तेये कृष्णे रोषः समाविशत् ।

राजेन्द्र ! इस प्रकार अश्वत्थामा और अर्जुनमें महान् युद्ध आरम्भ होनेपर जब महाबली द्रोणपुत्र बढ़ने लगा और कुन्तीकुमार अर्जुनका पराक्रम मन्द पड़ने लगा, तब भगवान् श्रीकृष्णको बड़ा क्रोध हुआ ॥ १३२½ ॥

स रोषान्निःश्वसन् राजन् निर्दहन्निव चक्षुषा ॥१३३॥
द्रौणिं ह्यपश्यत् संग्रामे फाल्गुनं च मुहुर्मुहुः ।

राजन् ! वे रोषसे लंबी साँस खींचते और अपने नेत्रोंद्वारा दग्ध-सा करते हुए युद्धस्थलमें अश्वत्थामा और अर्जुनकी ओर बारंबार देखने लगे ॥ १३३½ ॥

ततः क्रुद्धोऽब्रवीत् कृष्णः पार्थं सप्रणयं तदा ॥१३४॥
अत्यद्भुतमिदं पार्थ तव पश्यामि संयुगे ।
अतिशेते हि यत्र त्वां द्रोणपुत्रोऽद्य भारत ॥१३५॥

तत्पश्चात् क्रोधमें भरे हुए श्रीकृष्ण उस समय अर्जुनसे प्रेमपूर्वक बोले—'पार्थ ! युद्धस्थलमें तुम्हारा यह उपेक्षायुक्त अद्भुत बर्ताव देख रहा हूँ । भारत ! आज द्रोणपुत्र अश्वत्थामा तुमसे सर्वथा बढ़ता जा रहा है ॥ १३४-१३५ ॥

कच्चिद् वीर्यं यथापूर्वं भुजयोर्वा बलं तव ।
कच्चित् ते गाण्डिवं हस्ते रथे तिष्ठसि चार्जुन ॥१३६॥

'अर्जुन ! तुम्हारी शारीरिक शक्ति पहलेके समान ही ठीक है न ? अथवा तुम्हारी भुजाओंमें पूर्ववत् बल तो है न ? तुम्हारे हाथमें गाण्डीव धनुष तो है न ? और तम रथपर ही खड़े हो न ? १३६ ॥

कच्चित् कुशलिनौ बाहू मुष्टिर्वा न व्यशीर्यत ।
उदीर्यमाणं हि रणे पश्यामि द्रौणिमाहवे ॥१३७॥

'क्या तुम्हारी दोनों भुजाएँ सकुशल हैं ? तुम्हारी मुट्ठी तो ढीली नहीं हो गयी है ? अर्जुन ! मैं देखता हूँ कि युद्धस्थलमें अश्वत्थामा तुमसे बढ़ा जा रहा है ॥ १३७ ॥

गुरुपुत्र इति ह्येनं मानयन् भरतर्षभ ।
उपेक्षां कुरु मा पार्थ नायं काल उपेक्षितुम् ॥१३८॥

'भरतश्रेष्ठ ! कुन्तीनन्दन ! यह मेरे गुरुका पुत्र है, ऐसा मानकर तुम इसके प्रति उपेक्षा-भाव न करो । यह समय उपेक्षा करनेका नहीं है' ॥ १३८ ॥

एवमुक्तस्तु कृष्णेन गृह्य भल्लांश्चतुर्दश ।
त्वरमाणस्त्वराकाले द्रौणेर्धनुरथाच्छिनत् ॥१३९॥
ध्वजं छत्रं पताकाश्च खड्गं शक्तिं गदां तथा ।
जत्रुदेशे च सुभृशं वत्सदन्तैरताडयत् ॥१४०॥

भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर अर्जुनने चौदह भल्ल हाथमें लेकर शीघ्रता करनेके अवसरपर फुर्ती दिखायी और अश्वत्थामाके धनुषको काट डाला । साथ ही उसके ध्वज, छत्र, पताका, खड्ग, शक्ति और गदाके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये । तदनन्तर अश्वत्थामाके गलेकी हँसलीपर 'वत्सदन्त' नामक बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥ १३९-१४० ॥

स मूर्च्छां परमां गत्वा ध्वजयष्टिं समाश्रितः ।
तं विसंज्ञं महाराज शत्रुणा भृशपीडितम् ॥१४१॥
अपोवाह रणात् सूतो रक्षमाणो धनंजयात् ।

महाराज ! उस आघातसे भारी मूर्छामें पड़कर अश्वत्थामा ध्वजदण्डके सहारे लुढ़क गया । शत्रुसे अत्यन्त पीड़ित एवं अचेत हुए अश्वत्थामाको उसका सारथि अर्जुनसे उसकी रक्षा करता हुआ रणभूमिसे दूर हटा ले गया ॥ १४१½ ॥

एतस्मिन्नेव काले च विजयः शत्रुतापनः ॥ १४२ ॥
व्यहनत् तावकं सैन्यं शतशोऽथ सहस्रशः ।
पश्यतस्तस्य वीरस्य तव पुत्रस्य भारत ॥ १४३ ॥

भारत ! इसी समय शत्रुओंको संताप देनेवाले अर्जुनने आपकी सेनाके सैकड़ों और हजारों योद्धाओंको आपके वीर पुत्रके देखते-देखते मार डाला ॥ १४२-१४३ ॥

एवमेष क्षयो वृत्तस्तावकानां परैः सह ।
क्रूरो विशसनो घोरो राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ १४४ ॥

राजन् ! इस प्रकार आपकी कुमन्त्रणाके फलस्वरूप शत्रुओंके साथ आपके योद्धाओंका यह विनाशकारी, भयंकर एवं क्रूरतापूर्ण संग्राम हुआ ॥ १४४ ॥

संशप्तकांश्च कौन्तेयः कुरूंश्चापि वृकोदरः ।
वसुषेणश्च पञ्चालान् क्षणेन व्यधमद् रणे ॥ १४५ ॥

उस समय रणभूमिमें कुन्तीकुमार अर्जुनने संशप्तकोंका, भीमसेनने कौरवोंका और कर्णने पाञ्चालसैनिकोंका क्षणभरमें संहार कर डाला ॥ १४५ ॥

वर्तमाने तथा रौद्रे राजन् वीरवरक्षये ।
उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ॥ १४६ ॥

राजन् ! जब बड़े-बड़े वीरोंका विनाश करनेवाला वह भीषण संग्राम हो रहा था, उस समय चारों ओर असंख्य कबन्ध खड़े दिखायी देते थे ॥ १४६ ॥

युधिष्ठिरोऽपि संग्रामे प्रहारैर्गाढवेदनः ।
क्रोशमात्रमपक्रम्य तस्थौ भरतसत्तम ॥ १४७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! संग्राममें युधिष्ठिरपर बहुत अधिक प्रहार किये गये थे, जिससे उन्हें गहरी वेदना हो रही थी। वे रणभूमिसे एक कोस दूर हटकर खड़े थे ॥ १४७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक छप्पनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दुर्योधनका सैनिकोंको प्रोत्साहन देना और अश्वत्थामाकी प्रतिज्ञा

संजय उवाच

दुर्योधनस्ततः कर्णमुपेत्य भरतर्षभ ।
अब्रवीन्मद्रराजं च तथैवान्यांश्च पार्थिवान् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर दुर्योधन कर्णके पास जाकर मद्रराज शल्य तथा अन्य राजाओंसे बोला—।

यदृच्छयैतत् सम्प्राप्तं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः कर्ण लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥ २ ॥

'कर्ण ! यह स्वर्गका खुला हुआ द्वाररूप युद्ध बिना इच्छाके अपने आप प्राप्त हुआ है। ऐसे युद्धको सुखी क्षत्रियगण ही पाते हैं ॥ २ ॥

सदृशैः क्षत्रियैः शूरैः शूराणां युद्ध्यतां युधि ।
इष्टं भवति राधेय तदिदं समुपस्थितम् ॥ ३ ॥

'राधानन्दन ! अपने समान बलवाले शूरवीर क्षत्रियोंके साथ रणभूमिमें जूझनेवाले शूरवीरोंको जो अभीष्ट होता है, वही यह संग्राम हमारे सामने उपस्थित है ॥ ३ ॥

हत्वा च पाण्डवान् युद्धे स्फीतामुर्वीमवाप्स्यथ ।
निहता वा परैर्युद्धे वीरलोकमवाप्स्यथ ॥ ४ ॥

'तुम सब लोग युद्धस्थलमें पाण्डवोंका वध करके भूतलका समृद्धिशाली राज्य प्राप्त करोगे अथवा शत्रुओंद्वारा युद्धमें मारे जाकर वीरगति पाओगे' ॥ ४ ॥

दुर्योधनस्य तच्छ्रुत्वा वचनं क्षत्रियर्षभाः ।
हृष्टा नादानुदक्रोशन् वादित्राणि च सर्वशः ॥ ५ ॥

दुर्योधनकी वह बात सुनकर क्षत्रियशिरोमणि वीर हर्षमें भरकर सिंहनाद करने और सब प्रकारके बाजे बजाने लगे ॥

ततः प्रमुदिते तस्मिन् दुर्योधनबले तदा ।
हर्षयंस्तावकान् योधान् द्रौणिर्वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥

तदनन्तर आनन्दमग्न हुई दुर्योधनकी उस सेनामें अश्वत्थामाने आपके योद्धाओंका हर्ष बढ़ाते हुए कहा—॥ ६ ॥

प्रत्यक्षं सर्वसैन्यानां भवतां चापि पश्यताम् ।
न्यस्तशस्त्रो मम पिता धृष्टद्युम्नेन पातितः ॥ ७ ॥

'समस्त सैनिकोंके सामने आपलोगोंके देखते-देखते जिन्होंने हथियार डाल दिया था, उन मेरे पिताको धृष्टद्युम्नने मार गिराया था ॥ ७ ॥

स तेनाहममर्षेण मित्रार्थे चापि पार्थिवाः ।
सत्यं वः प्रतिजानामि तद् वाक्यं मे निबोधत ॥ ८ ॥

'राजाओ ! उससे होनेवाले अमर्षके कारण तथा मित्र दुर्योधनके कार्यकी सिद्धिके लिये मैं आपलोगोंसे सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, आपलोग मेरी यह बात सुनिये ॥ ८ ॥

धृष्टद्युम्नमहत्वाहं न विमोक्ष्यामि दंशनम् ।
अनृतायां प्रतिज्ञायां नाहं स्वर्गमवाप्नुयाम् ॥ ९ ॥

'मैं धृष्टद्युम्नको मारे बिना अपना कवच नहीं उतारूँगा।' यदि यह मेरी प्रतिज्ञा झूठी हो जाय तो मुझे स्वर्गलोककी प्राप्ति न हो ॥ ९ ॥

अर्जुनो भीमसेनश्च योधो यो रक्षिता रणे ।
धृष्टद्युम्नस्य तं संख्ये निहनिष्यामि सायकैः ॥ १० ॥

'अर्जुन और भीमसेन आदि जो योद्धा रणभूमिमें धृष्टद्युम्नकी रक्षा करेगा, उसे मैं युद्धस्थलमें अपने बाणोंद्वारा मार डालूँगा' ॥ १० ॥

एवमुक्ते ततः सर्वा सहिता भारतीचमूः।
अभ्यद्रवत कौन्तेयांस्तथा ते चापि पाण्डवाः॥ ११॥

अश्वत्थामाके ऐसा कहनेपर सारी कौरवसेना एक साथ होकर कुन्तीपुत्रोंके सैनिकोंपर टूट पड़ी तथा पाण्डवोंने भी कौरवोंपर धावा बोल दिया॥ ११॥

स संनिपातो रथयूथपानां
बभूव राजन्नतिभीमरूपः।
जनक्षयः कालयुगान्तकल्पः
प्रावर्तताग्रे कुरुसृञ्जयानाम्॥ १२॥

राजन्! रथयूथपतियोंका वह संघर्ष बड़ा भयंकर था। कौरवों और सृंजयोंके आगे प्रलयकालके समान जनसंहार आरम्भ हो गया था॥ १२॥

ततः प्रवृत्ते युधि सम्प्रहारे
भूतानि सर्वाणि सदैवतानि।
आसन् समेतानि सहाप्सरोभि-
र्दिदृक्षमाणानि नरप्रवीरान्॥ १३॥

तदनन्तर युद्धस्थलमें जब भीषण मार-काट होने लगी, उस समय देवताओं तथा अप्सराओंसहित समस्त प्राणी उन नरवीरोंको देखनेकी इच्छासे एकत्र हो गये थे॥ १३॥

दिव्यैश्च माल्यैर्विविधैश्च गन्धै-
र्दिव्यैश्च रत्नैर्विविधैर्नराग्र्यान्।
रणे स्वकर्मोद्वहतः प्रवीरा-
नवाकिरन्नप्सरसः प्रहृष्टाः॥ १४॥

रणभूमिमें अपने कर्मका ठीक-ठीक भार वहन करनेवाले मनुष्योंमें श्रेष्ठ प्रमुख वीरोंपर हर्षमें भरी हुई अप्सराएँ दिव्य हारों, भाँति-भाँतिके सुगन्धित पदार्थों एवं नाना प्रकारके दिव्य रत्नोंकी वर्षा करती थीं॥ १४॥

समीरणस्तांश्च निषेव्य गन्धान्
सिषेव सर्वानपि योधमुख्यान्।
निषेव्यमाणास्त्वनिलेन योधाः
परस्परघ्ना धरणीं निपेतुः॥ १५॥

वायु उन सुगन्धोंको ग्रहण करके समस्त श्रेष्ठ योद्धाओंकी सेवामें लग जाती थी और उस वायुसे सेवित योद्धा एक दूसरेको मारकर धराशायी हो जाते थे॥ १५॥

सा दिव्यमाल्यैरवकीर्यमाणा
सुवर्णपुङ्खैश्च शरैर्विचित्रैः।
नक्षत्रसंघैरिव चित्रिता द्यौः
क्षितिर्बभौ योधवरैर्विचित्रा॥ १६॥

दिव्य मालाओं तथा सुवर्णमय पंखवाले विचित्र बाणोंसे आच्छादित और श्रेष्ठ योद्धाओंसे विचित्र शोभाको प्राप्त हुई वह रणभूमि नक्षत्रसमूहोंसे चित्रित आकाशके समान सुशोभित हो रही थी॥ १६॥

ततोऽन्तरिक्षादपि साधुवादै-
र्वादित्रघोषैः समुदीर्यमाणः।
ज्याघोषनेमिस्वननादचित्रः
समाकुलः सोऽभवत् सम्प्रहारः॥ १७॥

तत्पश्चात् आकाशसे भी साधुवाद एवं वाद्योंकी ध्वनि आने लगी, जिससे प्रत्यञ्चाकी टंकारों और रथोंके पहियोंके घर्घर शब्दोंसे युक्त वह संग्राम अधिक कोलाहलपूर्ण हो उठा था॥ १७॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अश्वत्थामप्रतिज्ञायां सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें अश्वत्थामाकी प्रतिज्ञाविषयक सत्तावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५७॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अर्जुनका श्रीकृष्णसे युधिष्ठिरके पास चलनेका आग्रह तथा श्रीकृष्णका उन्हें युद्धभूमि दिखाते और वहाँका समाचार बताते हुए रथको आगे बढ़ाना

संजय उवाच

एवमेष महानासीत् संग्रामः पृथिवीक्षिताम्।
क्रुद्धेऽर्जुने तथा कर्णे भीमसेने च पाण्डवे॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! इस प्रकार अर्जुन, कर्ण एवं पाण्डुपुत्र भीमसेनके कुपित होनेपर राजाओंका वह संग्राम उत्तरोत्तर बढ़ने लगा॥ १॥

द्रोणपुत्रं पराजित्य जित्वा चान्यान् महारथान्।
अब्रवीदर्जुनो राजन् वासुदेवमिदं वचः॥ २॥

नरेश्वर! द्रोणपुत्र तथा अन्यान्य महारथियोंको हराकर और उनपर विजय पाकर अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा—॥ २॥

पश्य कृष्ण महाबाहो द्रवन्तीं पाण्डवीं चमूम्।
कर्णं पश्य च संग्रामे कालयन्तं महारथान्॥ ३॥

'महाबाहु श्रीकृष्ण! देखिये, वह पाण्डवसेना भागी जा रही है तथा कर्ण समराङ्गणमें बड़े-बड़े महारथियोंको कालके गालमें भेज रहा है॥ ३॥

न च पश्यामि दाशार्ह धर्मराजं युधिष्ठिरम्।
नापि केतुर्युधां श्रेष्ठ धर्मराजस्य दृश्यते॥ ४॥

'दाशार्ह! इस समय मुझे धर्मराज युधिष्ठिर नहीं दिखायी दे रहे हैं। योद्धाओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण! धर्मराजके ध्वजका भी दर्शन नहीं हो रहा है॥ ४॥

त्रिभागश्चावशिष्टोऽयं दिवसस्य जनार्दन।

न च मां धार्तराष्ट्रेषु कश्चिद् युध्यति संयुगे ॥ ५ ॥

'जनार्दन ! इस सम्पूर्ण दिनके ये तीन भाग ही शेष रह गये हैं। दुर्योधनकी सेनाओंमेंसे कोई भी मेरे साथ युद्ध नहीं कर रहा है ॥ ५ ॥

तस्मात् त्वं मत्प्रियं कुर्वन् याहि यत्र युधिष्ठिरः।
दृष्ट्वा कुशलिनं युद्धे धर्मपुत्रं सहानुजम् ॥ ६ ॥
पुनर्योद्धास्मि वार्ष्णेय शत्रुभिः सह संयुगे।

'अतः आप मेरा प्रिय करनेके लिये वहीं चलिये, जहाँ राजा युधिष्ठिर हैं। वार्ष्णेय ! भाइयोंसहित धर्मपुत्र युधिष्ठिरको युद्धमें सकुशल देखकर मैं पुनः समराङ्गणमें शत्रुओंके साथ युद्ध करूँगा' ॥ ६½ ॥

ततः प्रायाद् रथेनाशु बीभत्सोर्वचनाद्धरिः ॥ ७ ॥
यतो युधिष्ठिरो राजा सृञ्जयाश्च महारथाः।

तदनन्तर अर्जुनके कथनानुसार श्रीकृष्ण तुरंत ही रथके द्वारा उसी ओर चल दिये, जहाँ राजा युधिष्ठिर और संजय महारथी मौजूद थे ॥ ७½ ॥

अयुध्यंस्तावकैः सार्धं मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ८ ॥
ततः संग्रामभूमिं तां वर्तमाने जनक्षये।
अवेक्षमाणो गोविन्दः सव्यसाचिनमब्रवीत् ॥ ९ ॥

वे मृत्युको ही युद्धसे निवृत्त होनेका निमित्त बनाकर आपके योद्धाओंके साथ युद्ध कर रहे थे। तदनन्तर जहाँ वह भारी जनसंहार हो रहा था, उस संग्रामभूमिको देखते हुए भगवान् श्रीकृष्ण सव्यसाची अर्जुनसे इस प्रकार बोले—॥ ८-९ ॥

पश्य पार्थ महारौद्रो वर्तते भरतक्षयः।
पृथिव्यां क्षत्रियाणां वै दुर्योधनकृते महान् ॥ १० ॥

'कुन्तीनन्दन ! देखो, दुर्योधनके कारण भरतवंशियोंका तथा भूमण्डलके अन्य क्षत्रियोंका महाभयंकर विनाश हो रहा है ॥ १० ॥

पश्य भारत चापानि रुक्मपृष्ठानि धन्विनाम्।
मृतानामपविद्धानि कलापांश्च महाधनान् ॥ ११ ॥

'भरतनन्दन ! देखो, मरे हुए धनुर्धरोंके ये सोनेके पृष्ठभागवाले धनुष और बहुमूल्य तरकस फेंके पड़े हैं ॥ ११ ॥

जातरूपमयैः पुङ्खैः शरांश्चानतपर्वणः।
तैलधौतांश्च नाराचान् निर्मुक्तान् पन्नगानिव ॥ १२ ॥

'सुवर्णमय पंखोंसे युक्त झुकी हुई गाँठवाले बाण तथा तेलमें धोये हुए नाराच केंचुल छोड़कर निकले हुए सर्पोंके समान दिखायी दे रहे हैं ॥ १२ ॥

हस्तिदन्तत्सरून् खड्गान् जातरूपपरिष्कृतान्।
वर्माणि चापविद्धानि रुक्मगर्भाणि भारत ॥ १३ ॥

'भारत ! हाथीके दाँतकी बनी हुई मूँठवाले सुवर्णजटित खड्ग तथा स्वर्णभूषित कवच भी फेंके पड़े हैं ॥ १३ ॥

सुवर्णविकृतान् प्रासाञ्शक्तीः कनकभूषणाः।
जाम्बूनदमयैः पट्टैर्बद्धाश्च विपुला गदाः ॥ १४ ॥

'देखो, ये सुवर्णमय प्रास, स्वर्ण-भूषित शक्तियाँ तथा सोनेके बने हुए पत्रोंसे मढ़ी हुई विशाल गदाएँ पड़ी हैं ॥ १४ ॥

जातरूपमयीश्चर्ष्टीः पट्टिशान् हेमभूषणान्।
दण्डैः कनकचित्रैश्च विप्रविद्धान् परश्वधान् ॥ १५ ॥

'स्वर्णमयी ऋष्टि, हेमभूषित पट्टिश तथा सुवर्णजटित दण्डोंसे युक्त फरसे फेंके हुए हैं ॥ १५ ॥

अयःकुन्तांश्च पतितान् मुसलानि गुरूणि च।
शतघ्नीः पश्य चित्राश्च विपुलान् परिघांस्तथा ॥ १६ ॥

'लोहेके कुन्त (भाले), भारी मुसल, विचित्र शतघ्नियाँ और विशाल परिघ इधर-उधर पड़े हैं ॥ १६ ॥

चक्राणि चापविद्धानि तोमरांश्च महारणे।
नानाविधानि शस्त्राणि प्रगृह्य जयगृद्धिनः ॥ १७ ॥
जीवन्त इव दृश्यन्ते गतसत्त्वास्तरस्विनः।

'इस महासमरमें फेंके गये इन चक्रों और तोमरोंको भी देखो। विजयकी अभिलाषा रखनेवाले वेगशाली योद्धा नाना प्रकारके शस्त्रोंको हाथमें लिये हुए ही अपने प्राण खो बैठे हैं; तथापि जीवित-से दिखायी देते हैं ॥ १७½ ॥

गदाविमथितैर्गात्रैर्मुसलैर्भिन्नमस्तकान् ॥ १८ ॥
गजवाजिरथक्षुण्णान् पश्य योधान् सहस्रशः।

'देखो, सहस्रों योद्धाओंके शरीर गदाओंके आघातसे चूर-चूर हो रहे हैं। मुसलोंकी मारसे उनके मस्तक फट गये हैं तथा हाथी, घोड़े एवं रथोंसे वे कुचल दिये गये हैं ॥ १८½ ॥

मनुष्यहयनागानां शरशक्त्यृष्टिपट्टिशैः ॥ १९ ॥
परिघैरायसैर्घोरैरयःकुन्तैः परश्वधैः।
शरीरैर्बहुभिश्छिन्नैः शोणितौघपरिप्लुतैः ॥ २० ॥
गतासुभिरमित्रघ्न संवृता रणभूमयः।

'शत्रुसूदन ! बाण, शक्ति, ऋष्टि, पट्टिश, लोहमय परिघ, भयंकर लोहनिर्मित कुन्त और फरसोंसे मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंके बहु-संख्यक शरीर छिन्न-भिन्न होकर खूनसे लथपथ और प्राणशून्य हो गये हैं और उनके द्वारा रणभूमि आच्छादित दिखायी देती है ॥ १९-२०½ ॥

बाहुभिश्चन्दनादिग्धैः साङ्गदैर्हेमभूषितैः ॥ २१ ॥
सतलत्रैः सकेयूरैर्भाति भारत मेदिनी।

'भारत ! चन्दनचर्चित, अङ्गदों और केयूरोंसे अलंकृत, सोनेके अन्य आभूषणोंसे विभूषित तथा दस्तानोंसे युक्त वीरोंकी कटी हुई भुजाओंसे युद्धभूमिकी अद्भुत शोभा हो रही है ॥

साङ्गुलित्रैर्भुजाग्रैश्च विप्रविद्धैरलंकृतैः ॥ २२ ॥
हस्तिहस्तोपमैश्छिन्नैरूरुभिश्च तरस्विनाम्।
बद्धचूडामणिवरैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ॥ २३ ॥
पतितैर्ऋषभाक्षाणां विराजति वसुंधरा।

'साँडके समान विशाल नेत्रोंवाले वेगशाली वीरोंके दस्तानों-

सहित आभूषण-भूषित हाथ कटकर गिरे हैं। हाथियोंके शुण्ड-दण्डोंके समान मोटी जाँघें खण्डित होकर पड़ी हैं तथा श्रेष्ठ चूड़ामणि धारण किये कुण्डल-मण्डित मस्तक भी धड़से अलग होकर पड़े हैं। इन सबके द्वारा रणभूमिकी अपूर्व शोभा हो रही है ॥ २२-२३½ ॥

कबन्धैः शोणितादिग्धैश्छिन्नगात्रशिरोधरैः ॥ २४ ॥
भूर्भाति भरतश्रेष्ठ शान्तार्चिर्भिरिवाग्निभिः ।

'भरतश्रेष्ठ ! जिनकी गर्दन कट गयी है, विभिन्न अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये हैं तथा जो खूनसे लथपथ होकर लाल दिखायी देते हैं, उन कबन्धों (धड़ों) से रणभूमि ऐसी जान पड़ती है, मानो वहाँ जगह-जगह बुझी हुई लपटोंवाले आगके अङ्गारे पड़े हों ॥ २४½ ॥

रथांश्च बहुधा भग्नान् हेमकिङ्किणिनः शुभान् ॥ २५ ॥
वाजिनश्च हतान् पश्य निष्कीर्णान्त्राञ्शराहतान् ।

'देखो, जिनमें सोनेकी छोटी-छोटी घंटियाँ लगी हैं, ऐसे बहुत-से सुन्दर रथ टुकड़े-टुकड़े होकर पड़े हैं। वे बाणोंसे घायल हुए घोड़े मरे पड़े हैं और उनकी आँतें बाहर निकल आयी हैं ॥ २५½ ॥

अनुकर्षानुपासंगान् पताका विविधध्वजान् ॥ २६ ॥
रथिनां च महाशङ्खान् पाण्डुरांश्च प्रकीर्णकान् ।

'अनुकर्ष, उपासङ्ग, पताका, नाना प्रकारके ध्वज तथा रथियोंके बड़े-बड़े श्वेत शङ्ख बिखरे पड़े हैं ॥ २६½ ॥

निरस्तजिह्वान् मातङ्गाञ्शयानान् पर्वतोपमान् ॥ २७ ॥
वैजयन्तीर्विचित्राश्च हतांश्च गजवाजिनः ।

'जिनकी जीभें बाहर निकल आयी हैं, ऐसे अगणित पर्वताकार हाथी धरतीपर सदाके लिये सो गये हैं। विचित्र वैजयन्ती पताकाएँ खण्डित होकर पड़ी हैं तथा हाथी और घोड़े मारे गये हैं ॥ २७½ ॥

वारणानां परिस्तोमांस्तथैवाजिनकम्बलान् ॥ २८ ॥
विपाटितविचित्रांश्च रूप्यचित्रान् कुथाङ्कुशान् ।
भिन्नाश्च बहुधा घण्टा महद्भिः पतितैर्गजैः ॥ २९ ॥

'हाथियोंके विचित्र झूल, मृगचर्म और कम्बल चिथड़े-चिथड़े होकर गिरे हैं। चाँदीके तारोंसे चित्रित झूल, अङ्कुश और अनेक टुकड़ोंमें बँटे हुए बहुत-से घंटे महान् गजराजोंके साथ ही धरतीपर गिरे पड़े हैं ॥ २८-२९ ॥

वैदूर्यदण्डांश्च शुभान् पतितानङ्कुशान् भुवि ।
बद्धाः सादिभुजाग्रेषु सुवर्णविकृताः कशाः ॥ ३० ॥

'जिनमें वैदूर्यमणिके डंडे लगे हुए हैं, ऐसे बहुत-से सुन्दर अङ्कुश पृथ्वीपर पड़े हैं। सवारोंके हाथोंमें सटे हुए कितने ही सुवर्णनिर्मित कोड़े कटकर गिरे हैं ॥ ३० ॥

विचित्रमणिचित्रांश्च जातरूपपरिष्कृतान् ।
अश्वास्तरपरिस्तोमान् राङ्कवान् पतितान् भुवि ॥ ३१ ॥

'विचित्र मणियोंसे जटित और सोनेके तारोंसे विभूषित रङ्कुमृगके चमड़ेके बने हुए, घोड़ोंकी पीठपर बिछाये जानेवाले बहुत-से झूल भूमिपर पड़े हैं ॥ ३१ ॥

चूडामणीन् नरेन्द्राणां विचित्राः काञ्चनस्रजः ।
छत्राणि चापविद्धानि चामरव्यजनानि च ॥ ३२ ॥

'नरपतियोंके मणिमय मुकुट, विचित्र स्वर्णमय हार, छत्र, चँवर और व्यजन फेंके पड़े हैं ॥ ३२ ॥

चन्द्रनक्षत्रभासैश्च वदनैश्चारुकुण्डलैः ।
क्लृप्तश्मश्रुभिरत्यर्थं वीराणां समलंकृतैः ॥ ३३ ॥
वदनैः पश्य संछन्नां महीं शोणितकर्दमाम् ।

'देखो, चन्द्रमा और नक्षत्रोंके समान कान्तिमान्, मनोहर कुण्डलोंसे विभूषित तथा दाढ़ी-मूँछसे युक्त वीरोंके आभूषण-भूषित मुखोंसे रणभूमि अत्यन्त आच्छादित हो गयी है और इसपर रक्तकी कीच जम गयी है ॥ ३३½ ॥

सजीवांश्चापरान् पश्य कूजमानान् समन्ततः ॥ ३४ ॥
उपास्यमानान् बहुशो न्यस्तशस्त्रैर्विशाम्पते ।
ज्ञातिभिः सहितांस्तत्र रोदमानैर्मुहुर्मुहुः ॥ ३५ ॥

'प्रजापालक अर्जुन ! उन दूसरे योद्धाओंपर दृष्टिपात करो, जिनके प्राण अभीतक शेष हैं और जो चारों ओर कराह रहे हैं। उनके बहुसंख्यक कुटुम्बी जन हथियार डालकर उनके निकट आ बैठे हैं और बारंबार रो रहे हैं ॥

व्युत्क्रान्तानपरान् योधांश्छादयित्वा तरस्विनः ।
पुनर्युद्धाय गच्छन्ति जयगृद्धाः प्रमन्यवः ॥ ३६ ॥

'जिनके प्राण निकल गये हैं, उन योद्धाओंको वस्त्र आदिसे ढककर विजयाभिलाषी वेगशाली वीर पुनः अत्यन्त क्रोधपूर्वक युद्धके लिये जा रहे हैं ॥ ३६ ॥

अपरे तत्र तत्रैव परिधावन्ति मानवाः ।
ज्ञातिभिः पतितैः शूरैर्याच्यमानास्तथोदकम् ॥ ३७ ॥

'दूसरे बहुत-से सैनिक रणभूमिमें गिरे हुए अपने शूरवीर कुटुम्बी जनोंके पानी माँगनेपर वहीं इधर-उधर दौड़ रहे हैं ॥

जलार्थं च गताः केचिन्निष्प्राणा बहवोऽर्जुन ।
संनिवृत्ताश्च ते शूरास्तान् वै दृष्ट्वा विचेतसः ॥ ३८ ॥
जलं त्यक्त्वा प्रधावन्ति क्रोशमानाः परस्परम् ।

'अर्जुन ! कितने ही योद्धा पानी लानेके लिये गये, इसी बीचमें पानी चाहनेवाले बहुत-से वीरोंके प्राण निकल गये। वे शूरवीर जब पानी लेकर लौटे हैं, तब अपने उन सम्बन्धियोंको चेतनारहित देखकर पानीको वहीं फेंक परस्पर चीखते-चिल्लाते हुए चारों ओर दौड़ रहे हैं ॥ ३८½ ॥

जलं पीत्वा मृतान् पश्य पिबतोऽन्यांश्च मारिष ॥ ३९ ॥
परित्यज्य प्रियानन्ये बान्धवान् बान्धवप्रियाः ।
व्युत्क्रान्ताः समदृश्यन्त तत्र तत्र महारणे ॥ ४० ॥

'श्रेष्ठ वीर अर्जुन ! उधर देखो, कुछ लोग पानी पीकर

मर गये और कुछ लोग पीते-पीते ही अपने प्राण खो बैठे। कितने ही बान्धवजनोंके प्रेमी सैनिक अपने प्रिय बान्धवोंको छोड़कर उस महासमरमें जहाँ-तहाँ प्राण-शून्य हुए दिखायी देते हैं ॥ ३९-४० ॥

तथापरान् नरश्रेष्ठ संदष्टौष्ठपुटान् पुनः।
भ्रुकुटीकुटिलैर्वक्त्रैः प्रेक्षमाणान् समन्ततः ॥ ४१ ॥

'नरश्रेष्ठ! उन दूसरे योद्धाओंको देखो, जो दाँतोंसे ओठ चबाते हुए टेढ़ी भौंहोंसे युक्त मुखोंद्वारा चारों ओर दृष्टिपात कर रहे हैं' ॥ ४१ ॥

एवं ब्रुवंस्तदा कृष्णो ययौ यत्र युधिष्ठिरः।
अर्जुनश्चापि नृपतेर्दर्शनार्थं महारणे ॥ ४२ ॥

इस प्रकार बातें करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन उस महासमरमें राजाका दर्शन करनेके लिये उस स्थानकी ओर चल दिये, जहाँ राजा युधिष्ठिर विद्यमान थे ॥ ४२ ॥

याहि याहीति गोविन्दं मुहुर्मुहुरचोदयत्।
तां युद्धभूमिं पार्थस्य दर्शयित्वा च माधवः ॥ ४३ ॥
त्वरमाणस्ततः कृष्णः पार्थमाह शनैरिदम्।
पश्य पाण्डव राजानमुपयातांश्च पार्थिवान् ॥ ४४ ॥

अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णसे बारंबार कहते थे, 'चलिये, चलिये'। भगवान् श्रीकृष्ण बड़ी उतावलीके साथ अर्जुनको युद्धभूमिका दर्शन कराते हुए आगे बढ़े और धीरे-धीरे उनसे इस प्रकार बोले—'पाण्डुनन्दन! देखो, राजाके पास बहुत-से भूपाल जा पहुँचे हैं ॥ ४३-४४ ॥

कर्णं पश्य महारङ्गे ज्वलन्तमिव पावकम्।
असौ भीमो महेष्वासः संनिवृत्तो रणं प्रति ॥ ४५ ॥

'उधर दृष्टिपात करो। कर्ण युद्धके महान् रङ्गमञ्चपर प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो रहा है और महाधनुर्धर भीमसेन युद्धस्थलकी ओर लौट पड़े हैं ॥ ४५ ॥

तमेते विनिवर्तन्ते धृष्टद्युम्नपुरोगमाः।
पाञ्चालसृञ्जयानां च पाण्डवानां च ये मुखम् ॥ ४६ ॥

'पाञ्चालों, सृञ्जयों और पाण्डवोंके जो धृष्टद्युम्न आदि प्रमुख वीर हैं, वे भी भीमसेनके साथ ही युद्धके लिये लौट रहे हैं ॥ ४६ ॥

निवृत्तैश्च पुनः पार्थैर्भग्नं शत्रुबलं महत्।
कौरवान् द्रवतो ह्येष कर्णो रोधयतेऽर्जुन ॥ ४७ ॥

'अर्जुन! वह देखो, लौटे हुए पाण्डव योद्धाओंने शत्रुओंकी विशाल वाहिनीके पाँव उखाड़ दिये। भागते हुए कौरव-वीरोंको यह कर्ण रोक रहा है ॥ ४७ ॥

अन्तकप्रतिमो वेगे शक्रतुल्यपराक्रमः।
असौ गच्छति कौरव्य द्रौणिः शस्त्रभृतां वरः ॥ ४८ ॥

'कुरुनन्दन! जो वेगमें यमराज और पराक्रममें इन्द्रके समान है, वह शस्त्र-धारियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामा उधर ही जा रहा है ॥ ४८ ॥

तमेव प्रद्रुतं संख्ये धृष्टद्युम्नो महारथः।
अनुप्रयाति संग्रामे हतान् पश्य च सृञ्जयान् ॥ ४९ ॥

'महारथी धृष्टद्युम्न युद्धस्थलमें बड़े वेगसे जाते हुए अश्वत्थामाका ही पीछा कर रहे हैं। वह देखो, संग्राममें बहुत-से संजय वीर मार डाले गये' ॥ ४९ ॥

सर्वमाह सुदुर्धर्षो वासुदेवः किरीटिने।
ततो राजन् महाघोरः प्रादुरासीन्महारणः ॥ ५० ॥

राजन्! अत्यन्त दुर्जय वीर भगवान् श्रीकृष्णने किरीट-धारी अर्जुनसे ये सारी बातें बतायीं। तत्पश्चात् वहाँ अत्यन्त भयंकर महायुद्ध होने लगा ॥ ५० ॥

सिंहनादरवाश्चैव प्रादुरासन् समागमे।
उभयोः सेनयो राजन् मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ५१ ॥

नरेश्वर! दोनों सेनाओंमें मृत्युको ही युद्धसे निवृत्त होनेकी अवधि नियत करके संघर्ष छिड़ गया और वीरोंके सिंहनाद होने लगे ॥ ५१ ॥

एवमेष क्षयो वृत्तः पृथिव्यां पृथिवीपते।
तावकानां परेषां च राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ ५२ ॥

पृथ्वीनाथ! इस प्रकार इस भूतलपर आपकी और शत्रुओंकी सेनाओंका महान् संहार हुआ है। राजन्! यह सब आपकी कुमन्त्रणाका ही फल है ॥ ५२ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि वासुदेववाक्ये अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें भगवान् श्रीकृष्णका वाक्यविषयक अट्ठावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

धृष्टद्युम्न और कर्णका युद्ध, अश्वत्थामाका धृष्टद्युम्नपर आक्रमण तथा अर्जुनके द्वारा धृष्टद्युम्नकी रक्षा और अश्वत्थामाकी पराजय

संजय उवाच

ततः पुनः समाजग्मुरभीताः कुरुसृञ्जयाः।
युधिष्ठिरमुखाः पार्थाः सूतपुत्रमुखा वयम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर पुनः कौरव और संजय योद्धा निर्भय होकर एक दूसरेसे भिड़ गये। एक ओर युधिष्ठिर आदि पाण्डव-दलके लोग थे और दूसरी ओर कर्ण आदि हमलोग ॥ १ ॥

ततः प्रववृते भीमः संग्रामो लोमहर्षणः।

कर्णस्य पाण्डवानां च यमराष्ट्रविवर्धनः ॥ २ ॥

उस समय कर्ण और पाण्डवोंका बड़ा भयंकर और रोमाञ्चकारी संग्राम आरम्भ हुआ, जो यमराजके राज्यकी वृद्धि करनेवाला था ॥ २ ॥

तस्मिन् प्रवृत्ते संग्रामे तुमुले शोणितोदके।
संशप्तकेषु शूरेषु किंचिच्छिष्टेषु भारत ॥ ३ ॥
धृष्टद्युम्नो महाराज सहितः सर्वराजभिः।
कर्णमेवाभिदुद्राव पाण्डवाश्च महारथाः ॥ ४ ॥

भारत! जहाँ खून पानीके समान बहाया जाता था, उस भयंकर संग्रामके छिड़ जानेपर तथा थोड़े-से ही संशप्तक वीरोंके शेष रह जानेपर समस्त राजाओंसहित धृष्टद्युम्नने कर्णपर ही आक्रमण किया। महाराज! अन्य पाण्डव महारथियोंने भी उन्हींका साथ दिया ॥ ३-४ ॥

आगच्छमानांस्तान् संख्ये प्रहृष्टान् विजयैषिणः।
दधारैको रणे कर्णो जलौघानिव पर्वतः ॥ ५ ॥

युद्धस्थलमें विजयकी अभिलाषा लेकर हर्ष और उल्लासके साथ आते हुए उन वीरोंको रणभूमिमें अकेले कर्णने उसी प्रकार रोक दिया, जैसे जलके प्रवाहोंको पर्वत रोक देता है ॥

समासाद्य तु ते कर्णं व्यशीर्यन्त महारथाः।
यथाचलं समासाद्य वार्योघाः सर्वतोदिशम् ॥ ६ ॥

कर्णके पास पहुँचकर वे सब महारथी बिखर गये, ठीक वैसे ही, जैसे जलके प्रवाह किसी पर्वतके पास पहुँचकर सम्पूर्ण दिशाओंमें फैल जाते हैं ॥ ६ ॥

तयोरासीन्महाराज संग्रामो लोमहर्षणः।
धृष्टद्युम्नस्तु राधेयं शरेणानतपर्वणा ॥ ७ ॥
ताडयामास समरे तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्।

महाराज! उस समय उन दोनोंमें रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा। धृष्टद्युम्नने समराङ्गणमें झुकी हुई गाँठवाले बाणसे राधापुत्र कर्णको चोट पहुँचायी और कहा—'खड़ा रह, खड़ा रह' ॥ ७½ ॥

विजयं च धनुःश्रेष्ठं विधुन्वानो महारथः ॥ ८ ॥
पार्षतस्य धनुश्छित्त्वा शरांश्चाशीविषोपमान्।
ताडयामास संक्रुद्धः पार्षतं नवभिः शरैः ॥ ९ ॥

तब महारथी कर्णने अपने विजय नामक श्रेष्ठ धनुषको कम्पित करके धृष्टद्युम्नके धनुष और विषधर सर्पके समान विषैले बाणोंको भी काट डाला। फिर क्रोधमें भरकर नौ बाणोंसे धृष्टद्युम्नको भी घायल कर दिया ॥ ८-९ ॥

ते वर्म हेमविकृतं भित्त्वा तस्य महात्मनः।
शोणिताक्ता व्यराजन्त शक्रगोपा इवानघ ॥ १० ॥

निष्पाप नरेश! वे बाण महामना धृष्टद्युम्नके सुवर्णनिर्मित कवचको छेदकर उनके रक्तसे रञ्जित हो इन्द्रगोप (वीरबहूटी) नामक कीड़ोंके समान सुशोभित होने लगे ॥ १० ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं धृष्टद्युम्नो महारथः।
अथान्यद् धनुरादाय शरांश्चाशीविषोपमान् ॥ ११ ॥
कर्णं विव्याध सप्तत्या शरैः संनतपर्वभिः।

महारथी धृष्टद्युम्नने उस कटे हुए धनुषको फेंककर दूसरा धनुष और विषधर सर्पके समान विषैले बाण हाथमें लेकर झुकी हुई गाँठवाले सत्तर बाणोंसे कर्णको बींध डाला ॥

तथैव राजन् कर्णोऽपि पार्षतं शत्रुतापनम् ॥ १२ ॥
छादयामास समरे शरैराशीविषोपमैः।
द्रोणशत्रुर्महेष्वासो विव्याध निशितैः शरैः ॥ १३ ॥

राजन्! इसी प्रकार कर्णने भी समराङ्गणमें विषधर सर्पोंके समान विषैले बाणोंद्वारा शत्रुओंको संताप देनेवाले धृष्टद्युम्नको आच्छादित कर दिया। फिर द्रोणशत्रु महाधनुर्धर धृष्टद्युम्नने भी कर्णको पैने बाणोंसे घायल कर दिया ॥ १२-१३ ॥

तस्य कर्णो महाराज शरं कनकभूषणम्।
प्रेषयामास संक्रुद्धो मृत्युदण्डमिवापरम् ॥ १४ ॥

महाराज! तब कर्णने अत्यन्त कुपित हो धृष्टद्युम्नपर द्वितीय मृत्युदण्डके समान एक सुवर्णभूषित बाण चलाया ॥

तमापतन्तं सहसा घोररूपं विशाम्पते।
चिच्छेद शतधा राजञ्शैनेयः कृतहस्तवत् ॥ १५ ॥

प्रजानाथ! नरेश! सहसा आते हुए उस भयंकर बाणके सात्यकिने सिद्धहस्त योद्धाकी भाँति सौ टुकड़े कर डाले ॥

दृष्ट्वा विनिहतं बाणं शरैः कर्णो विशाम्पते।
सात्यकिं शरवर्षेण समन्तात् पर्यवारयत् ॥ १६ ॥

प्रजापालक नरेश! सात्यकिके बाणोंसे अपने बाणको नष्ट हुआ देख कर्णने चारों ओरसे बाण बरसाकर सात्यकिको ढक दिया ॥ १६ ॥

विव्याध चैनं समरे नाराचैस्तत्र सप्तभिः।
तं प्रत्यविध्यच्छैनेयः शरैर्हेमपरिष्कृतैः ॥ १७ ॥

साथ ही समराङ्गणमें सात नाराचोंद्वारा उन्हें घायल कर दिया। तब सात्यकिने भी सुवर्णभूषित बाणोंसे कर्णको घायल करके बदला चुकाया ॥ १७ ॥

ततो युद्धं महाराज चक्षुःश्रोत्रभयानकम्।
आसीद् घोरं च चित्रं च प्रेक्षणीयं समन्ततः ॥ १८ ॥

महाराज! तब नेत्रोंसे देखने और कानोंसे सुननेपर भी भय उत्पन्न करनेवाला घोर एवं विचित्र युद्ध छिड़ गया, जो सब ओरसे देखने ही योग्य था ॥ १८ ॥

सर्वेषां तत्र भूतानां लोमहर्षोऽभ्यजायत।
तद् दृष्ट्वा समरे कर्म कर्णशैनेययोर्नृप ॥ १९ ॥

नरेश्वर! समरभूमिमें कर्ण और सात्यकिका वह कर्म देखकर समस्त प्राणियोंके रोंगटे खड़े हो गये ॥ १९ ॥

एतस्मिन्नन्तरे द्रौणिरभ्ययात् सुमहाबलम्।
पार्षतं शत्रुदमनं शत्रुवीर्यासुनाशनम् ॥ २० ॥

इसी समय शत्रुओंके बल और प्राणोंका नाश करनेवाले शत्रुसूदन महाबली धृष्टद्युम्नके पास द्रोणकुमार अश्वत्थामा आ पहुँचा ॥ २० ॥

अभ्यभाषत संक्रुद्धो द्रौणिः परपुरंजयः।
तिष्ठ तिष्ठाद्य ब्रह्मघ्न न मे जीवन् विमोक्ष्यसे ॥ २१ ॥

शत्रुओंकी राजधानीपर विजय पानेवाला द्रोणपुत्र अश्वत्थामा वहाँ पहुँचते ही अत्यन्त कुपित होकर बोला— 'ब्रह्महत्या करनेवाले पापी ! खड़ा रह, खड़ा रह, आज तू मेरे हाथसे जीवित नहीं छूट सकेगा' ॥ २१ ॥

इत्युक्त्वा सुभृशं वीरं शीघ्रकृन्निशितैः शरैः।
पार्षतं छादयामास घोररूपैः सुतेजनैः ॥ २२ ॥
यतमानं परं शक्त्या यतमानो महारथः।

ऐसा कहकर शीघ्रता करनेवाले प्रयत्नशील महारथी अश्वत्थामाने अत्यन्त तेज, घोर एवं पैने बाणोंद्वारा यथाशक्ति विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले वीर धृष्टद्युम्नको ढक दिया ॥

यथा हि समरे द्रोणः पार्षतं वीक्ष्य मारिष ॥ २३ ॥
तथा द्रौणिं रणे दृष्ट्वा पार्षतः परवीरहा।
नातिहृष्टमना भूत्वा मन्यते मृत्युमात्मनः ॥ २४ ॥

आर्य ! जैसे द्रोणाचार्य समरभूमिमें धृष्टद्युम्नको देखकर मन-ही-मन खिन्न हो उसे अपनी मृत्यु मानते थे, उसी प्रकार शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले धृष्टद्युम्न भी रणक्षेत्रमें अश्वत्थामाको देखकर अप्रसन्न हो उसे अपनी मृत्यु समझते थे॥

स ज्ञात्वा समरेऽऽत्मानं शस्त्रेणावध्यमेव तु।
जवेनाभ्याययौ द्रौणिं कालः कालमिव क्षये ॥ २५ ॥

वे अपने आपको समरभूमिमें शस्त्रद्वारा अवध्य मानकर बड़े वेगसे अश्वत्थामाके सामने आये, मानो प्रलयके समय काल ही कालपर टूट पड़ा हो ॥ २५ ॥

द्रौणिस्तु दृष्ट्वा राजेन्द्र धृष्टद्युम्नमवस्थितम्।
क्रोधेन निःश्वसन् वीरः पार्षतं समुपाद्रवत् ॥ २६ ॥

राजेन्द्र ! वीर अश्वत्थामाने द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नको सामने खड़ा देख क्रोधसे लंबी साँस खींचते हुए उनपर आक्रमण किया ॥ २६ ॥

तावन्योन्यं तु दृष्ट्वैव संरम्भं जग्मतुः परम्।
अथाब्रवीन्महाराज द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ॥ २७ ॥
धृष्टद्युम्नं समीपस्थं त्वरमाणो विशाम्पते।

महाराज ! वे दोनों एक दूसरेको देखते ही अत्यन्त क्रोधमें भर गये। प्रजानाथ ! फिर प्रतापी द्रोणपुत्रने बड़ी उतावलीके साथ अपने पास ही खड़े हुए धृष्टद्युम्नसे कहा—॥

पाञ्चालापसदाद्य त्वां प्रेषयिष्यामि मृत्यवे ॥ २८ ॥
पापं हि यत् त्वया कर्म घ्नता द्रोणं पुरा कृतम्।
अद्य त्वां तप्स्यते तद् वै यथा न कुशलं तथा ॥२९ ॥

'पाञ्चालकुल-कलङ्क ! आज मैं तुझे मौतके मुँहमें भेज दूँगा। तुमने पूर्वकालमें द्रोणाचार्यका वध करके जो पापकर्म किया है, वह एक अमङ्गलकारी कर्मकी भाँति आज तुझे संताप देगा ॥ २८-२९ ॥

अरक्ष्यमाणः पार्थेन यदि तिष्ठसि संयुगे।
नापक्रामसि वा मूढ सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ३० ॥

'ओ मूर्ख ! यदि तू अर्जुनसे अरक्षित रहकर युद्धभूमिमें खड़ा रहेगा, भाग नहीं जायगा तो अवश्य तुझे मार डालूँगा, यह मैं तुझसे सत्य कहता हूँ' ॥ ३० ॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच धृष्टद्युम्नः प्रतापवान्।
प्रतिवाक्यं स एवासिर्मामको दास्यते तव ॥ ३१ ॥
येनैव ते पितुर्दत्तं यतमानस्य संयुगे।

अश्वत्थामाके ऐसा कहनेपर प्रतापी धृष्टद्युम्नने उससे इस प्रकार उत्तर दिया—'अरे ! तेरी इस बातका जवाब तुझे मेरी वही तलवार देगी, जिसने युद्धस्थलमें विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले तेरे पिताको दिया था ॥ ३१½ ॥

यदि तावन्मया द्रोणो निहतो ब्राह्मणब्रुवः ॥ ३२ ॥
त्वामिदानीं कथं युद्धे न हनिष्यामि विक्रमात्।

'यदि मैंने नाममात्रके ब्राह्मण द्रोणाचार्यको पहले मार डाला था, तो इस समय पराक्रम करके तुझे भी मैं कैसे नहीं मार डालूँगा' ॥ ३२½ ॥

एवमुक्त्वा महाराज सेनापतिरमर्षणः ॥ ३३ ॥
निशितेनातिबाणेन द्रौणिं विव्याध पार्षतः।

महाराज ! ऐसा कहकर अमर्षशील सेनापति द्रुपदकुमारने अत्यन्त तीखे बाणसे द्रोणपुत्रको बींध डाला ॥ ३३½ ॥

ततो द्रौणिः सुसंक्रुद्धः शरैः संनतपर्वभिः ॥ ३४ ॥
आच्छादयद् दिशो राजन् धृष्टद्युम्नस्य संयुगे।

इससे अश्वत्थामाका क्रोध बहुत बढ़ गया। राजन् ! उसने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे युद्धस्थलमें धृष्टद्युम्नकी सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित कर दिया ॥ ३४½ ॥

नैवान्तरिक्षं न दिशो नापि योधाः समन्ततः ॥ ३५ ॥
दृश्यन्ते वै महाराज शरैश्छन्नाः सहस्रशः।

महाराज ! उस समय सब ओरसे बाणोंद्वारा आच्छादित होनेके कारण न तो आकाश दिखायी देता था, न दिशाएँ दीखती थीं और न सहस्रों योद्धा ही दृष्टिगोचर होते थे ॥ ३५½ ॥

तथैव पार्षतो राजन् द्रौणिमाहवशोभिनम् ॥ ३६ ॥
शरैः संछादयामास सूतपुत्रस्य पश्यतः।

राजन् ! उसी प्रकार युद्धमें शोभा पानेवाले अश्वत्थामाको धृष्टद्युम्नने भी कर्णके देखते-देखते बाणोंसे ढक दिया ॥

राधेयोऽपि महाराज पञ्चालान् सह पाण्डवैः ॥ ३७ ॥
द्रौपदेयान् युधामन्युं सात्यकिं च महारथम्।
एकः संवारयामास प्रेक्षणीयः समन्ततः ॥ ३८ ॥

महाराज ! सब ओरसे दर्शनीय राधापुत्र कर्णने भी

पाण्डवोंसहित पाञ्चालों, द्रौपदीके पाँचों पुत्रों, युधामन्यु और महारथी सात्यकिको अकेले ही आगे बढ़नेसे रोक दिया था॥

धृष्टद्युम्नस्तु समरे द्रौणेश्चिच्छेद कार्मुकम्।
तदपास्य धनुर्द्रौणिरन्यदादाय कार्मुकम्॥ ३९॥
वेगवान् समरे घोरे शरांश्चाशीविषोपमान्।
स पार्षतस्य राजेन्द्र धनुः शक्तिं गदां ध्वजम्॥ ४०॥
हयान् सूतं रथं चैव निमेषाद् व्यधमच्छरैः।

धृष्टद्युम्नने समराङ्गणमें अश्वत्थामाके धनुषको काट डाला। राजेन्द्र! तब वेगवान् अश्वत्थामाने उस कटे हुए धनुषको फेंककर दूसरा धनुष और विषधर सर्पोंके समान भयंकर बाण हाथमें लेकर उनके द्वारा पलक मारते-मारते धृष्टद्युम्नके धनुष, शक्ति, गदा, ध्वज, अश्व, सारथि एवं रथको तहस-नहस कर दिया॥ ३९-४०½॥

स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः॥ ४१॥
खड्गमादत्त विपुलं शतचन्द्रं च भानुमत्।

धनुष कट जाने और घोड़ों तथा सारथिके मारे जानेपर रथहीन हुए धृष्टद्युम्नने विशाल खड्ग और सौ चन्द्राकार चिह्नोंसे युक्त चमकती हुई ढाल हाथमें ले ली॥ ४१½॥

द्रौणिस्तदपि राजेन्द्र भल्लैः क्षिप्रं महारथः॥ ४२॥
चिच्छेद समरे वीरः क्षिप्रहस्तो दृढायुधः।
रथादनवरूढस्य तदद्भुतमिवाभवत्॥ ४३॥

राजेन्द्र! शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले सुदृढ़ आयुधधारी वीर महारथी अश्वत्थामाने समराङ्गणमें अनेक भल्लोंद्वारा रथसे उतरनेके पहले ही धृष्टद्युम्नकी उस ढाल-तलवारको भी काट दिया। वह एक अद्भुत-सी बात हुई॥ ४२-४३॥



धृष्टद्युम्नं हि विरथं हताश्वं छिन्नकार्मुकम्।
शरैश्च बहुधा विद्धमस्त्रैश्च शकलीकृतम्॥ ४४॥
नाशकद् भरतश्रेष्ठ यतमानो महारथः।

भरतश्रेष्ठ! यद्यपि धृष्टद्युम्न रथहीन हो गये थे, उनके घोड़े मारे जा चुके थे, धनुष कट गया था तथा वे बाणोंसे बारंबार घायल और अस्त्र-शस्त्रोंसे जर्जर हो गये थे तो भी महारथी अश्वत्थामा लाख प्रयत्न करनेपर भी उन्हें मार न सका॥ ४४½॥

तस्यान्तमिषुभी राजन् यदा द्रौणिर्न जग्मिवान्॥ ४५॥
अथ त्यक्त्वा धनुर्वीरः पार्षतं त्वरितोऽन्वगात्।

राजन्! जब वीर द्रोणकुमार बाणोंद्वारा उनका वध न कर सका, तब वह धनुष फेंककर तुरंत ही धृष्टद्युम्नकी ओर दौड़ा॥ ४५½॥

आसीदाप्लवतो वेगस्तस्य राजन् महात्मनः॥ ४६॥
गरुडस्येव पततो जिघृक्षोः पन्नगोत्तमम्।

नरेश्वर! रथसे उछलकर दौड़ते हुए महामना अश्वत्थामाका वेग बहुत बड़े सर्पको पकड़नेके लिये झपटे हुए गरुड़के समान प्रतीत हुआ॥ ४६½॥

एतस्मिन्नेव काले तु माधवोऽर्जुनमब्रवीत्॥ ४७॥
पश्य पार्थ यथा द्रौणिः पार्षतस्य वधं प्रति।
यत्नं करोति विपुलं हन्याच्चैनं न संशयः॥ ४८॥

इसी समय श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'पार्थ! वह देखो, द्रोणकुमार अश्वत्थामा धृष्टद्युम्नके वधके लिये कैसा महान् प्रयत्न कर रहा है? वह इन्हें मार सकता है, इसमें संशय नहीं है॥ ४७-४८॥

तं मोचय महाबाहो पार्षतं शत्रुकर्शन।
द्रौणेरास्यमनुप्राप्तं मृत्योरास्यगतं यथा॥ ४९॥

'महाबाहो! शत्रुसूदन! जैसे कोई मौतके मुखमें पड़ गया हो, उसी प्रकार अश्वत्थामाके मुखमें पहुँचे हुए धृष्टद्युम्नको छुड़ाओ'॥ ४९॥

एवमुक्त्वा महाराज वासुदेवः प्रतापवान्।
प्रैषयत् तुरगांस्तत्र यत्र द्रौणिर्व्यवस्थितः॥ ५०॥

महाराज! ऐसा कहकर प्रतापी वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने अपने घोड़ोंको उसी ओर हाँका, जहाँ द्रोणकुमार अश्वत्थामा खड़ा था॥ ५०॥

ते हयाश्चन्द्रसंकाशाः केशवेन प्रचोदिताः।
आपिबन्त इव व्योम जग्मुर्द्रौणिरथं प्रति॥ ५१॥

भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा हाँके गये वे चन्द्रमाके समान श्वेत रंगवाले घोड़े अश्वत्थामाके रथकी ओर इस प्रकार दौड़े, मानो आकाशको पीते जा रहे हों॥ ५१॥

दृष्ट्वाऽऽयातौ महावीर्यावुभौ कृष्णधनंजयौ।
धृष्टद्युम्नवधे यत्नं चक्रे राजन् महाबलः॥ ५२॥

राजन् ! महापराक्रमी श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंको आते देख महाबली अश्वत्थामा धृष्टद्युम्नके वधके लिये विशेष प्रयत्न करने लगा ॥ ५२ ॥

विकृष्यमाणं दृष्ट्वैव धृष्टद्युम्नं नरेश्वर।
शरांश्चिक्षेप वै पार्थो द्रौणिं प्रति महाबलः ॥ ५३ ॥

नरेश्वर ! धृष्टद्युम्नको खींचे जाते देख महाबली अर्जुनने अश्वत्थामापर बहुत-से बाण चलाये ॥ ५३ ॥

ते शरा हेमविकृता गाण्डीवप्रेषिता भृशम्।
द्रौणिमासाद्य विविशुर्वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ ५४ ॥

गाण्डीव धनुषसे वेगपूर्वक छूटे हुए वे सुवर्ण-निर्मित बाण अश्वत्थामाके पास पहुँचकर उसके शरीरमें उसी प्रकार घुस गये, जैसे सर्प बाँबीमें प्रवेश करते हैं ॥ ५४ ॥

स विद्धस्तैः शरैर्घोरैर्द्रोणपुत्रः प्रतापवान्।
उत्सृज्य समरे राजन् पाञ्चाल्यममितौजसम् ॥ ५५ ॥
रथमारुरुहे वीरो धनंजयशरार्दितः।
प्रगृह्य च धनुः श्रेष्ठं पार्थं विव्याध सायकैः ॥ ५६ ॥

राजन् ! उन भयंकर बाणोंसे घायल हुआ प्रतापी वीर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा समराङ्गणमें अमित बलशाली धृष्टद्युम्नको छोड़कर अपने रथपर जा चढ़ा। वह धनंजयके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित हो चुका था; इसलिये उसने भी श्रेष्ठ धनुष हाथमें लेकर बाणोंद्वारा अर्जुनको घायल कर दिया ॥५५-५६॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरः सहदेवो जनाधिप।
अपोवाह रथेनाजौ पार्षतं शत्रुतापनम् ॥ ५७ ॥

नरेश्वर ! इसी बीचमें वीर सहदेव शत्रुओंको संताप देनेवाले धृष्टद्युम्नको अपने रथके द्वारा रणभूमिमें अन्यत्र हटा ले गये॥

अर्जुनोऽपि महाराज द्रौणिं विव्याध पत्रिभिः।
तं द्रोणपुत्रः संक्रुद्धो बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ५८ ॥

महाराज ! अर्जुनने भी अपने बाणोंसे अश्वत्थामाको घायल कर दिया। तब द्रोणपुत्रने अत्यन्त कुपित हो अर्जुनकी छाती और दोनों भुजाओंमें प्रहार किया ॥ ५८ ॥

क्रोधितस्तु रणे पार्थो नाराचं कालसम्मितम्।
द्रोणपुत्राय चिक्षेप कालदण्डमिवापरम् ॥ ५९ ॥

रणमें कुपित हुए कुन्तीकुमारने द्रोणपुत्रपर द्वितीय कालदण्डके समान साक्षात् कालस्वरूप नाराच चलाया ॥५९॥

ब्राह्मणस्यांसदेशे स निपपात महाद्युतिः।
स विह्वलो महाराज शरवेगेन संयुगे ॥ ६० ॥
निषसाद रथोपस्थे वैक्लव्यं च परं ययौ।

महाराज ! वह महातेजस्वी नाराच उस ब्राह्मणके कंधेपर जा लगा। अश्वत्थामा युद्धस्थलमें उस बाणके वेगसे व्याकुल हो रथकी बैठकमें धम्म-से बैठ गया और अत्यन्त मूर्छित हो गया ॥ ६०½ ॥

ततः कर्णो महाराज व्याक्षिपद् विजयं धनुः ॥ ६१ ॥
अर्जुनं समरे क्रुद्धः प्रेक्षमाणो मुहुर्मुहुः।
द्वैरथं चापि पार्थेन कामयानो महारणे ॥ ६२ ॥

राजराजेश्वर ! तत्पश्चात् कर्णने समराङ्गणमें कुपित हो अर्जुनकी ओर बारंबार देखते हुए विजयनामक धनुषकी टङ्कार की। वह महासमरमें अर्जुनके साथ द्वैरथ युद्धकी अभिलाषा करता था ॥ ६१-६२ ॥

विह्वलं तं तु वीक्ष्याथ द्रोणपुत्रं च सारथिः।
अपोवाह रथेनाजौ त्वरमाणो रणाजिरात् ॥ ६३ ॥

द्रोणकुमारको विह्वल देखकर उसका सारथि बड़ी उतावलीके साथ उसे रथके द्वारा समराङ्गणसे दूर हटा ले गया ॥ ६३ ॥

अथोत्क्रुष्टं महाराज पञ्चालैर्जितकाशिभिः।
मोक्षितं पार्षतं दृष्ट्वा द्रोणपुत्रं च पीडितम् ॥ ६४ ॥

महाराज ! धृष्टद्युम्नको संकटसे मुक्त और द्रोणपुत्रको पीड़ित देख विजयसे उल्लसित होनेवाले पाञ्चालोंने बड़े जोरसे गर्जना की ॥ ६४ ॥

वादित्राणि च दिव्यानि प्रावाद्यन्त सहस्रशः।
सिंहनादांश्च चक्रुस्ते दृष्ट्वा संख्ये तदद्भुतम् ॥ ६५ ॥

उस समय सहस्रों दिव्य वाद्य बजने लगे। वे पाञ्चाल-सैनिक युद्धस्थलमें वह अद्भुत कार्य देखकर सिंहनाद करने लगे॥

एवं कृत्वाब्रवीत् पार्थो वासुदेवं धनंजयः।
याहि संशप्तकान् कृष्ण कार्यमेतत् परं मम ॥ ६६ ॥

ऐसा पराक्रम करके कुन्तीपुत्र धनंजयने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'श्रीकृष्ण ! अब संशप्तकोंकी ओर चलिये। इस समय यही मेरा सबसे प्रधान कार्य है' ॥ ६६ ॥

ततः प्रयातो दाशार्हः श्रुत्वा पाण्डवभाषितम्।
रथेनातिपताकेन मनोमारुतरंहसा ॥ ६७ ॥

श्रीकृष्ण अर्जुनका वह कथन सुनकर मन और वायुके समान वेगशाली तथा अत्यन्त ऊँची पताकावाले रथके द्वारा वहाँसे चल दिये ॥ ६७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि द्रौण्यपयाने एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें अश्वत्थामाका पलायनविषयक उनसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५९ ॥

षष्टितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णका अर्जुनसे दुर्योधन और कर्णके पराक्रमका वर्णन करके कर्णको मारनेके लिये अर्जुनको उत्साहित करना तथा भीमसेनके दुष्कर पराक्रमका वर्णन करना

संजय उवाच

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णः पार्थं वचनमब्रवीत्।
दर्शयन्निव कौन्तेयं धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इसी समय भगवान्

श्रीकृष्णने अर्जुनको धर्मराज युधिष्ठिरका दर्शन कराते हुए-से इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

एष पाण्डव ते भ्राता धार्तराष्ट्रैर्महाबलैः।
जिघांसुभिर्महेष्वासैर्द्रुतं पार्थोऽनुसार्यते ॥ २ ॥

'पाण्डुनन्दन ! ये तुम्हारे भाई कुन्तीकुमार युधिष्ठिर हैं, जिन्हें मार डालनेकी इच्छासे महाबली महाधनुर्धर धृतराष्ट्र-पुत्र शीघ्रतापूर्वक इनका पीछा कर रहे हैं ॥ २ ॥

तं चानुयान्ति संरब्धाः पञ्चाला युद्धदुर्मदाः।
युधिष्ठिरं महात्मानं परीप्सन्तो महाबलाः ॥ ३ ॥

'रणदुर्मद महाबली पाञ्चाल-सैनिक महात्मा युधिष्ठिरकी रक्षा करते हुए बड़े रोष और आवेशमें भरकर उनके साथ जा रहे हैं ॥ ३ ॥

एष दुर्योधनः पार्थ रथानीकेन दंशितः।
राजा सर्वस्य लोकस्य राजानमनुधावति ॥ ४ ॥

'पार्थ ! यह सम्पूर्ण जगत्‌का राजा दुर्योधन कवच धारण करके रथसेनाके साथ राजा युधिष्ठिरका पीछा कर रहा है ॥

जिघांसुः पुरुषव्याघ्र भ्रातृभिः सहितो बली।
आशीविषसमस्पर्शैः सर्वयुद्धविशारदैः ॥ ५ ॥

'पुरुषसिंह ! जिनका स्पर्श विषधर सर्पोंके समान भयंकर है तथा जो सम्पूर्ण युद्ध-कलाओंमें निपुण हैं, उन भाइयोंके साथ बली दुर्योधन राजा युधिष्ठिरको मार डालनेकी इच्छासे उनके पीछे लगा हुआ है ॥ ५ ॥

एते जिघृक्षवो यान्ति द्विपाश्वरथपत्तयः।
युधिष्ठिरं धार्तराष्ट्रा नरोत्तममिवार्थिनः ॥ ६ ॥

'जैसे याचक किसी श्रेष्ठ पुरुषको पाना चाहते हैं, उसी प्रकार हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसहित ये दुर्योधनके सैनिक युधिष्ठिरको पकड़नेके लिये उनपर चढ़ाई करते हैं ॥ ६ ॥

पश्य सात्वतभीमाभ्यां निरुद्धाधिष्ठिताः पुनः।
जिहीर्षवोऽमृतं दैत्याः शक्राग्निभ्यामिवासकृत्॥ ७ ॥

'देखो, जैसे अमृतका अपहरण करनेकी इच्छावाले दैत्योंको इन्द्र और अग्निने बारंबार रोका था, उसी प्रकार ये दुर्योधनके सैनिक सात्यकि और भीमसेनके द्वारा अवरुद्ध होकर पुनः खड़े हो गये हैं ॥ ७ ॥

एते बहुत्वात्त्वरिताः पुनर्गच्छन्ति पाण्डवम्।
समुद्रमिव वार्योघाः प्रावृट्काले महारथाः ॥ ८ ॥

'जैसे वर्षाकालमें जलके प्रवाह अधिक होनेके कारण समुद्र-तक चले जाते हैं, उसी प्रकार ये कौरव महारथी बहुसंख्यक होनेके कारण पुनः बड़ी उतावलीके साथ पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरपर चढ़े जा रहे हैं ॥ ८ ॥

नदन्तः सिंहनादांश्च धमन्तश्चापि वारिजान्।
बलवन्तो महेष्वासा विधुन्वन्तो धनूंषि च ॥ ९ ॥

'वे बलवान् और महाधनुर्धर कौरव सिंहनाद करते, शङ्ख बजाते और अपने धनुषोंको कँपाते हुए आगे बढ़ रहे हैं ॥

मृत्योर्मुखगतं मन्ये कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्।
हुतमग्नौ च कौन्तेयं दुर्योधनवशं गतम् ॥ १० ॥

'मैं तो समझता हूँ कि इस समय कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर दुर्योधनके अधीन हो मृत्युके मुखमें चले गये हैं अथवा प्रज्वलित अग्निकी आहुति बन गये हैं ॥ १० ॥

यथाविधमनीकं तु धार्तराष्ट्रस्य पाण्डव।
नास्य शक्रोऽपि मुच्येत सम्प्राप्तो बाणगोचरम् ॥ ११ ॥

'पाण्डुनन्दन ! दुर्योधनकी सेनाका जैसा व्यूह दिखायी दे रहा है, उससे यह जान पड़ता है कि उसके बाणोंके मार्गमें आ जानेपर इन्द्र भी जीवित नहीं छूट सकते ॥ ११ ॥

दुर्योधनस्य वीरस्य शरौघाञ्शीघ्रमस्यतः।
संक्रुद्धस्यान्तकस्येव को वेगं संसहेद् रणे ॥ १२ ॥

'क्रोधमें भरे हुए यमराजके समान शीघ्रतापूर्वक बाण-समूहोंकी वर्षा करनेवाले वीर दुर्योधनका वेग इस युद्धमें कौन सह सकता है ? ॥ १२ ॥

दुर्योधनस्य वीरस्य द्रौणेः शारद्वतस्य च।
कर्णस्य चेषुवेगो वै पर्वतानपि शातयेत् ॥ १३ ॥

'वीर दुर्योधन, अश्वत्थामा, कृपाचार्य तथा कर्णके बाणोंका वेग पर्वतोंको भी विदीर्ण कर सकता है ॥ १३ ॥

कर्णेन च कृतो राजा विमुखः शत्रुतापनः।
बलवाँल्लघुहस्तश्च कृती युद्धविशारदः ॥ १४ ॥

'कर्णने शत्रुओंको संताप देनेवाले, शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले, बलवान्, विद्वान् और युद्धकुशल राजा युधिष्ठिर-को युद्धसे विमुख कर दिया है ॥ १४ ॥

राधेयः पाण्डवश्रेष्ठं शक्तः पीडयितुं रणे।
सहितो धृतराष्ट्रस्य पुत्रैः शूरैर्महाबलैः ॥ १५ ॥

'धृतराष्ट्रके महाबली शूरवीर पुत्रोंके साथ रहकर राधा-पुत्र कर्ण रणभूमिमें पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिरको अवश्य पीड़ा दे सकता है ॥ १५ ॥

तस्यैभिर्युध्यमानस्य संग्रामे संयतात्मनः।
अन्यैरपि च पार्थस्य हृतं वर्म महारथैः ॥ १६ ॥

'संग्राममें जूझते हुए संयतचित्त कुन्तीकुमार युधिष्ठिरके कवचको इन दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र-पुत्रों तथा अन्य महारथियोंने नष्ट कर दिया है ॥ १६ ॥

उपवासकृशो राजा भृशं भरतसत्तमः।
ब्राह्मे बले स्थितो ह्येष न क्षात्रे हि बले विभुः ॥ १७ ॥

'भरतकुलशिरोमणि राजा युधिष्ठिर उपवास करनेसे अत्यन्त दुर्बल हो गये हैं। ये ब्राह्मबलमें स्थित हैं, क्षात्रबल प्रकट करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ १७ ॥

कर्णेन चाभियुक्तोऽयं भूपतिः शत्रुतापनः।
संशयं समनुप्राप्तः पाण्डवो वै युधिष्ठिरः ॥ १८ ॥

'शत्रुओंको तपानेवाले ये पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर कर्णके साथ युद्ध करके प्राणसंकटकी अवस्थामें पहुँच गये हैं ॥ १८ ॥

न जीवति महाराजो मन्ये पार्थ युधिष्ठिरः ।
यद् भीमसेनः सहते सिंहनादममर्षणः ॥ १९ ॥
नदतां धार्तराष्ट्राणां पुनः पुनररिंदमः ।
धमतां च महाशङ्खान् संग्रामे जितकाशिनाम् ॥ २० ॥

'पार्थ ! मुझे जान पड़ता है कि महाराज युधिष्ठिर जीवित नहीं हैं; क्योंकि अमर्षशील शत्रुदमन भीमसेन संग्राममें विजयसे उल्लसित हो बड़े-बड़े शङ्ख बजाते और बारंबार गर्जते हुए धृतराष्ट्रपुत्रोंका सिंहनाद चुपचाप सहन करते हैं ॥ १९-२० ॥

युधिष्ठिरं पाण्डवेयं हतेति भरतर्षभ ।
संचोदयत्यसौ कर्णो धार्तराष्ट्रान् महाबलान् ॥ २१ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! वह कर्ण महाबली धृतराष्ट्रपुत्रोंको यह प्रेरणा दे रहा है कि तुम सब लोग मिलकर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको मार डालो ॥ २१ ॥

स्थूणाकर्णेन्द्रजालेन पार्थ पाशुपतेन च ।
प्रच्छादयन्ति राजानं शस्त्रजालैर्महारथाः ॥ २२ ॥

'पार्थ ! कौरव महारथी स्थूणाकर्ण, इन्द्रजाल, पाशुपत तथा अन्य प्रकारके शस्त्रसमूहोंसे राजा युधिष्ठिरको आच्छादित कर रहे हैं ॥ २२ ॥

आतुरो हि कृतो राजा संनिषेव्यश्च भारत ।
यथैनमनुवर्तन्ते पञ्चालाः सह पाण्डवैः ॥ २३ ॥

'भारत ! राजा युधिष्ठिर आतुर एवं सेवाके योग्य कर दिये गये हैं; जैसा कि पाण्डवोंसहित पाञ्चाल उनके पीछे-पीछे सेवाके लिये जा रहे हैं ॥ २३ ॥

त्वरमाणास्त्वराकाले सर्वशस्त्रभृतां वराः ।
मज्जन्तमिव पाताले बलिनोऽप्युज्जिहीर्षवः ॥ २४ ॥

'शीघ्रताके अवसरपर शीघ्रता करनेवाले सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ बलवान् पाण्डव-योद्धा युधिष्ठिरका ऐसी अवस्थामें उद्धार करनेके लिये उत्सुक दिखायी देते हैं, मानो वे पातालमें डूब रहे हों ॥ २४ ॥

न केतुर्दृश्यते राज्ञः कर्णेन निहतः शरैः ।
पश्यतोर्यमयोः पार्थ सात्यकेश्च शिखण्डिनः ॥ २५ ॥
धृष्टद्युम्नस्य भीमस्य शतानीकस्य वा विभो ।
पञ्चालानां च सर्वेषां चेदीनां चैव भारत ॥ २६ ॥

'पार्थ ! राजाका ध्वज नहीं दिखायी देता है। कर्णने अपने बाणोंद्वारा उसे काट डाला है। भरतनन्दन ! प्रभो ! यह कार्य उसने नकुल-सहदेव, सात्यकि, शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, भीमसेन, शतानीक, समस्त पाञ्चाल-सैनिक तथा चेदिदेशीय योद्धाओंके देखते-देखते किया है ॥ २५-२६ ॥

एष कर्णो रणे पार्थ पाण्डवानामनीकिनीम् ।
शरैर्विध्वंसयति वै नलिनीमिव कुञ्जरः ॥ २७ ॥

'कुन्तीनन्दन ! जैसे हाथी कमलोंसे भरी हुई पुष्करिणीको मथ डालता है, उसी प्रकार यह कर्ण रणभूमिमें अपने बाणोंद्वारा पाण्डवसेनाका विध्वंस कर रहा है ॥ २७ ॥

एते द्रवन्ति रथिनस्त्वदीयाः पाण्डुनन्दन ।
पश्य पश्य यथा पार्थ गच्छन्त्येते महारथाः ॥ २८ ॥

'पाण्डुनन्दन ! ये तुम्हारे रथी भागे जा रहे हैं। पार्थ ! देखो, देखो, ये महारथी भी कैसे खिसके जा रहे हैं ॥ २८ ॥

एते भारत मातङ्गाः कर्णेनाभिहताः शरैः ।
आर्तनादान् विकुर्वाणा विद्रवन्ति दिशो दश ॥ २९ ॥

'भारत ! कर्णके बाणोंसे मारे गये ये मतवाले हाथी आर्तनाद करते हुए दसों दिशाओंमें भाग रहे हैं ॥ २९ ॥

रथानां द्रवते वृन्दमेतच्चैव समन्ततः ।
द्राव्यमाणं रणे पार्थ कर्णेनामित्रकर्षिणा ॥ ३० ॥

'कुन्तीकुमार ! रणभूमिमें शत्रुसूदन कर्णके द्वारा खदेड़ा हुआ यह रथियोंका समूह सब ओर पलायन कर रहा है ॥ ३० ॥

हस्तिकक्ष्यां रणे पश्य चरन्तीं तत्र तत्र ह ।
रथस्थं सूतपुत्रस्य केतुं केतुमतां वर ॥ ३१ ॥

'ध्वज धारण करनेवाले रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन ! देखो, सूतपुत्रके रथपर कैसी ध्वजा फहरा रही है ! हाथीकी रस्सीके चिह्नसे युक्त उसकी पताका रणभूमिमें यत्र-तत्र कैसे विचरण कर रही है ॥ ३१ ॥

असौ धावति राधेयो भीमसेनरथं प्रति ।
किरञ्शरशतान्येव विनिघ्नंस्तव वाहिनीम् ॥ ३२ ॥

'वह राधापुत्र कर्ण सैकड़ों बाणोंकी वर्षा करके तुम्हारी सेनाका संहार करता हुआ भीमसेनके रथपर धावा कर रहा है ॥ ३२ ॥

एतान् पश्य च पञ्चालान् द्राव्यमाणान् महारथान् ।
शक्रेणेव यथा दैत्यान् हन्यमानान् महाहवे ॥ ३३ ॥

'जैसे देवराज इन्द्र दैत्योंको खदेड़ते और मारते हैं, उसी प्रकार महासमरमें कर्णके द्वारा खदेड़े और मारे जानेवाले इन पाञ्चाल महारथियोंको देखो ॥ ३३ ॥

एष कर्णो रणे जित्वा पञ्चालान् पाण्डुसृञ्जयान् ।
दिशो विप्रेक्षते सर्वास्त्वदर्थमिति मे मतिः ॥ ३४ ॥

'यह कर्ण रणभूमिमें पाञ्चालों, पाण्डवों और सृंजयोंको जीतकर अब तुम्हें परास्त करनेके लिये सारी दिशाओंमें दृष्टिपात कर रहा है; ऐसा मेरा मत है ॥ ३४ ॥

पश्य पार्थ धनुः श्रेष्ठं विकर्षन् साधु शोभते ।
शत्रुं जित्वा यथा शक्रो देवसंघैः समावृतः ॥ ३५ ॥

'अर्जुन ! देखो, जैसे देवराज इन्द्र शत्रुपर विजय पाकर देवसमूहोंसे घिरे हुए शोभा पाते हैं, उसी प्रकार यह कर्ण कौरवोंके बीचमें अपने श्रेष्ठ धनुषको खींचता हुआ सुशोभित हो रहा है ॥ ३५ ॥

एते नर्दन्ति कौरव्या दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम्।
त्रासयन्तो रणे पाण्डून् सृञ्जयांश्च समन्ततः ॥ ३६ ॥

'कर्णका पराक्रम देखकर ये कौरवयोद्धा रणभूमिमें पाण्डवों और सृंजयोंको सब ओरसे डराते हुए जोर-जोरसे गर्जना करते हैं ॥ ३६ ॥

एष सर्वात्मना पाण्डूंस्त्रासयित्वा महारणे।
अभिभाषति राधेयः सर्वसैन्यानि मानद ॥ ३७ ॥

'मानद ! यह राधापुत्र कर्ण महासमरमें पाण्डवसैनिकोंको सर्वथा भयभीत करके अपनी सम्पूर्ण सेनाओंसे इस प्रकार कह रहा है ॥ ३७ ॥

अभिद्रवत भद्रं वो द्रुतं द्रवत कौरवाः।
यथा जीवन्न वः कश्चिन्मुच्येत युधि सृञ्जयः ॥ ३८ ॥
तथा कुरुत संयत्ता वयं यास्याम पृष्ठतः।

'कौरवो ! तुम्हारा कल्याण हो। दौड़ो और वेगपूर्वक धावा करो। आज युद्धस्थलमें कोई सृंजय तुम्हारे हाथसे जिस प्रकार भी जीवित न छूटने पावे, सावधान होकर वैसा ही प्रयत्न करो। हम सब लोग तुम्हारे पीछे-पीछे चलेंगे' ३८½

एवमुक्त्वा गतो ह्येष पृष्ठतो विकिरञ्छरान् ॥ ३९ ॥
पश्य कर्णं रणे पार्थ श्वेतच्छत्रविराजितम्।
उदयं पर्वतं यद्वच्छशाङ्केनाभिशोभितम् ॥ ४० ॥

'ऐसा कहकर यह कर्ण पीछेसे बाण-वर्षा करता हुआ गया है। पार्थ ! रणभूमिमें श्वेतच्छत्रसे विराजमान कर्णको देखो। वह चन्द्रमासे सुशोभित उदयाचलके समान जान पड़ता है ॥ ३९-४० ॥

पूर्णचन्द्रनिकाशेन मूर्ध्निच्छत्रेण भारत।
ध्रियमाणेन समरे श्रीमच्छतशलाकिना ॥ ४१ ॥
एष त्वां प्रेक्षते कर्णः सकटाक्षं विशाम्पते।
उत्तमं जवमास्थाय ध्रुवमेष्यति संयुगे ॥ ४२ ॥

'भारत ! प्रजानाथ ! समराङ्गणमें जिसके मस्तकपर सौ तेजस्वी शलाकाओंसे युक्त और पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशमान श्वेत छत्र तना हुआ है, वही यह कर्ण तुम्हारी ओर कटाक्षपूर्वक देख रहा है। निश्चय ही यह युद्धस्थलमें उत्तम वेगका आश्रय लेकर तुम्हारे सामने आयेगा ॥ ४१-४२ ॥

पश्य ह्येनं महाबाहो विधुन्वानं महद् धनुः।
शरांश्चाशीविषाकारान् विसृजन्तं महारणे ॥ ४३ ॥

'महाबाहो ! इसे देखो, यह अपना विशाल धनुष हिलाता हुआ महासमरमें विषधर सर्पोंके समान विषैले बाणोंकी वृष्टि कर रहा है ॥ ४३ ॥

असौ निवृत्तो राधेयो दृष्ट्वा ते वानरध्वजम्।
प्रार्थयन् समरे पार्थ त्वया सह परंतप ॥ ४४ ॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले कुन्तीकुमार ! वह देखो, तुम्हारे वानरध्वजको देखकर समरमें तुम्हारे साथ द्वैरथ युद्ध चाहता हुआ राधापुत्र कर्ण इधर लौट पड़ा है ॥ ४४ ॥

वधाय चात्मनोऽभ्येति दीप्तास्यं शलभो यथा।
कर्णमेकाकिनं दृष्ट्वा रथानीकेन भारत ॥ ४५ ॥
रिरक्षिषुः सुसंवृत्तो धार्तराष्ट्रो निवर्तते।

'जैसे पतङ्ग प्रज्वलित आगके मुखमें आ पड़ता है, उसी प्रकार यह कर्ण अपने वधके लिये ही तुम्हारे पास आ रहा है। भारत ! कर्णको अकेला देख उसकी रक्षाके लिये धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन भी रथसेनासे घिरा हुआ इधर ही लौट रहा है ॥ ४५½ ॥

सर्वैः सहैभिर्दुष्टात्मा वध्यतां च प्रयत्नतः ॥ ४६ ॥
त्वया यशश्च राज्यं च सुखं चोत्तममिच्छता।

'तुम यश, राज्य और उत्तम सुखकी अभिलाषा रखकर इन सबके साथ दुष्टात्मा कर्णका प्रयत्नपूर्वक वध कर डालो ४६½

अदीनयोर्विश्रुतयोर्युवयोर्योत्स्यमानयोः ॥ ४७ ॥
देवासुरे पार्थ मृधे देवदानवयोरिव।
पश्यन्तु कौरवाः सर्वे तव पार्थ पराक्रमम् ॥ ४८ ॥

'पार्थ ! जैसे देवासुरसंग्राममें देवताओं और दानवोंका युद्ध हुआ था, उसी प्रकार जब तुम दोनों विश्वविख्यात वीरोंमें सोत्साह युद्ध होने लगे, उस समय समस्त कौरव तुम्हारा पराक्रम देखें ॥ ४७-४८ ॥

त्वां च दृष्ट्वातिसंरब्धं कर्णं च भरतर्षभ।
असौ दुर्योधनः क्रुद्धो नोत्तरं प्रतिपद्यते ॥ ४९ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए तुमको और कर्णको देखकर उस क्रोधी दुर्योधनको कोई उत्तर नहीं सूझ पड़ेगा ॥ ४९ ॥

आत्मानं च कृतात्मानं समीक्ष्य भरतर्षभ।
कृतागसं च राधेयं धर्मात्मनि युधिष्ठिरे।
प्रतिपद्यस्व कौन्तेय प्राप्तकालमनन्तरम् ॥ ५० ॥

'भरतभूषण कुन्तीकुमार ! तुम अपनेको पुण्यात्मा तथा राधापुत्र कर्णको धर्मात्मा युधिष्ठिरका अपराधी समझकर अब समयोचित कर्तव्यका पालन करो ॥ ५० ॥

आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा प्रत्येहि रथयूथपम्।
पञ्च ह्येतानि मुख्यानि रथानां रथसत्तम ॥ ५१ ॥
शतान्यायान्ति समरे बलिनां तिग्मतेजसाम्।
पञ्च नागसहस्राणि द्विगुणा वाजिनस्तथा ॥ ५२ ॥
अभिसंहत्य कौन्तेय पदातिप्रयुतानि च।

'युद्धविषयक श्रेष्ठ बुद्धिका आश्रय लेकर तुम रथयूथपति कर्णपर चढ़ाई करो। रथियोंमें श्रेष्ठ वीर ! देखो, समरभूमिमें ये प्रचण्ड तेजस्वी, महाबली एवं मुख्य-मुख्य पाँच सौ रथी आ रहे हैं। इनके साथ ही पाँच हजार हाथी और दस हजार घोड़े हैं। कुन्तीनन्दन ! ये सब-के-सब संगठित हो दस लाख पैदल योद्धाओंको साथ ले आ रहे हैं ।५१-५२½।

अन्योन्यरक्षितं वीर बलं त्वामभिवर्तते ॥ ५३ ॥
द्रोणपुत्रं पुरस्कृत्य तच्छीघ्रं संनिषूदय ।

'वीर ! द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको आगे करके एक दूसरेके द्वारा सुरक्षित यह सेना तुमपर आक्रमण कर रही है। तुम शीघ्र ही इसका संहार कर डालो ॥ ५३½ ॥

निकृत्यैतद्रथानीकं बलिनं लोकविश्रुतम् ॥ ५४ ॥
सूतपुत्रं महेष्वासं दर्शयात्मानमात्मना ।

'इस रथसेनाका संहार करके विश्वविख्यात महाधनुर्धर बलवान् सूतपुत्र कर्णके सामने स्वयं ही अपने आपको प्रकट करो ॥ ५४½ ॥

उत्तमं जवमास्थाय प्रत्येहि भरतर्षभ ॥ ५५ ॥
असौ कर्णः सुसंरब्धः पञ्चालानभिधावति ।
केतुमस्य हि पश्यामि धृष्टद्युम्नरथं प्रति ॥ ५६ ॥

'भरतभूषण ! तुम उत्तम वेगका आश्रय लेकर शत्रुदल-पर आक्रमण करो। वह क्रोधमें भरा हुआ कर्ण पाञ्चालोंपर धावा बोल रहा है। मैं उसकी ध्वजाको धृष्टद्युम्नके रथके पास देख रहा हूँ ॥ ५५-५६ ॥

समुपैष्यति पञ्चालानिति मन्ये परंतप ।
आचक्षे च प्रियं पार्थ तवेदं भरतर्षभ ॥ ५७ ॥
राजासौ कुशली श्रीमान् धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
असौ भीमो महाबाहुः संनिवृत्तश्चमूमुखे ॥ ५८ ॥

'परंतप ! मैं समझता हूँ, कर्ण पाञ्चालोंपर अवश्य ही आक्रमण करेगा । भरतश्रेष्ठ पार्थ ! मैं तुमसे एक प्रिय समाचार कह रहा हूँ—धर्मपुत्र श्रीमान् राजा युधिष्ठिर सकुशल हैं; क्योंकि वे महाबाहु भीमसेन सेनाके मुहानेपर लौट रहे हैं ॥ ५७-५८ ॥

वृतः सृञ्जयसैन्येन शैनेयेन च भारत ।
वध्यन्त एते समरे कौरवा निशितैः शरैः ॥ ५९ ॥
भीमसेनेन कौन्तेय पञ्चालैश्च महात्मभिः ।

'भारत ! उनके साथ सृंजयोंकी सेना और सात्यकि भी हैं। कुन्तीकुमार ! भीमसेन तथा महामनस्वी पाञ्चाल वीर समराङ्गणमें अपने तीखे बाणोंद्वारा इन कौरवोंका वध कर रहे हैं ॥ ५९½ ॥

सेना हि धार्तराष्ट्रस्य विमुखा विक्षरद्व्रणा ॥ ६० ॥
विप्रधावति वेगेन भीमस्याभिहता शरैः ।

'भीमके बाणोंसे घायल हो दुर्योधनकी सेना युद्धसे मुँह फेरकर बड़े वेगसे भाग रही है। उसके घावोंसे रक्तकी धारा बह रही है ॥ ६०½ ॥

विपन्नसस्येव मही रुधिरेण समुक्षिता ॥ ६१ ॥
भारती भरतश्रेष्ठ सेना कृपणदर्शना ।

'भरतश्रेष्ठ ! खूनसे लथपथ हुई कौरव-सेना, जहाँकी खेती नष्ट हो गयी है उस भूमिके समान अत्यन्त दयनीय दिखायी देती है ॥ ६१½ ॥

निवृत्तं पश्य कौन्तेय भीमसेनं युधां पतिम् ॥ ६२ ॥
आशीविषमिव क्रुद्धं द्रावयन्तं वरूथिनीम् ।

'कुन्तीनन्दन ! देखो, योद्धाओंके अधिपति भीमसेन लौटकर विषधर सर्पके समान कुपित हो कौरवसेनाको खदेड़ रहे हैं ॥ ६२½ ॥

पीतरक्तासितसितास्ताराचन्द्रार्कमण्डिताः ॥ ६३ ॥
पताका विप्रकीर्यन्ते छत्राण्येतानि चार्जुन ।

'अर्जुन ! तारों और सूर्य-चन्द्रमाके चिह्नोंसे अलंकृत ये लाल, पीली, काली और सफेद पताकाएँ तथा ये श्वेत छत्र बिखरे पड़े हैं ॥ ६३½ ॥

सौवर्णा राजताश्चैव तैजसाश्च पृथग्विधाः ॥ ६४ ॥
केतवोऽभिनिपात्यन्ते हस्त्यश्वं च प्रकीर्यते ।

'सोने, चाँदी तथा पीतल आदि तैजस द्रव्योंके बने हुए नाना प्रकारके ध्वज काट-काटकर गिराये जा रहे हैं। हाथी और घोड़े तितर-बितर हो गये हैं ॥ ६४½ ॥

रथेभ्यः प्रपतन्त्येते रथिनो विगतासवः ॥ ६५ ॥
नानावर्णैर्हता बाणैः पञ्चालैरपलायिभिः ।

'युद्धसे पीठ न दिखानेवाले पाञ्चाल-वीरोंके विभिन्न रंगोंवाले बाणोंसे मारे जाकर ये प्राणशून्य रथी रथोंसे नीचे गिर रहे हैं ॥ ६५½ ॥

निर्मनुष्यान् गजानश्वान् रथांश्चैव धनंजय ॥ ६६ ॥
समाद्रवन्ति पञ्चाला धार्तराष्ट्रांस्तरस्विनः ।
विमृद्नन्ति नरव्याघ्रा भीमसेनबलाश्रयात् ॥ ६७ ॥

'धनंजय ! ये वेगशाली पुरुषसिंह पाञ्चालयोद्धा भीमसेन-के बलका आश्रय लेकर मनुष्योंसे रहित हाथियों, घोड़ों, रथों और वेगशाली धृतराष्ट्र-सैनिकोंपर आक्रमण करते और उन्हें धूलमें मिलाते जा रहे हैं ॥ ६६-६७ ॥

बलं परेषां दुर्धर्षास्त्यक्त्वा प्राणानरिंदम ।
एते नर्दन्ति पञ्चाला ध्मापयन्ति च वारिजान् ॥ ६८ ॥

'शत्रुदमन वीर ! दुर्जय पाञ्चाल सैनिक प्राणोंका मोह छोड़कर शत्रुओंकी सेनाको नष्ट करते हुए गरजते और शङ्ख बजाते हैं ॥ ६८ ॥

अभिद्रवन्ति च रणे मृद्नन्तः सायकैः परान् ।
पश्यस्वैषां च माहात्म्यं पञ्चाला हि पराक्रमात् ॥ ६९ ॥
धार्तराष्ट्रान् विनिघ्नन्ति क्रुद्धाः सिंहा इव द्विपान् ।

'अर्जुन ! देखो, इन वीरोंकी कैसी महिमा है ? जैसे क्रोधमें भरे हुए सिंह हाथियोंको मार डालते हैं, उसी प्रकार ये पाञ्चाल-योद्धा पराक्रम करके अपने बाणोंद्वारा शत्रुओंको रौंदते हुए रणभूमिमें सब ओर दौड़ रहे हैं ॥ ६९½ ॥

शस्त्रमाच्छिद्य शत्रूणां सायुधानां निरायुधाः ॥ ७० ॥
तेनैवैतानमोघास्त्रा निघ्नन्ति च नदन्ति च ।

'वे स्वयं अस्त्र-शस्त्रोंसे रहित होनेपर भी आयुधधारी

शत्रुओंके शस्त्र छीनकर उसीसे उन्हें मार डालते और गर्जना करते हैं; उनके अस्त्रोंका निशाना कभी खाली नहीं जाता ७०½

शिरांस्येतानि पात्यन्ते शत्रूणां बाहवोऽपि च ॥ ७१ ॥
रथनागहया वीरा यशस्याः सर्व एव च ।

'ये शत्रुओंके मस्तक, भुजाएँ, रथ, हाथी, घोड़े और समस्त यशस्वी वीर धरतीपर गिराये जा रहे हैं ॥ ७१½ ॥

सर्वतश्चाभिपन्नैषा धार्तराष्ट्री महाचमूः ॥ ७२॥
पञ्चालैर्मानसादेत्य हंसैर्गङ्गेव वेगितैः ।

'जैसे वेगशाली हंस मानसरोवरसे निकलकर गङ्गाजीपर सब ओरसे छा जाते हैं, उसी प्रकार पाञ्चाल-सैनिकोंद्वारा दुर्योधनकी यह विशाल सेना चारों ओरसे आक्रान्त हो रही है ॥ ७२½ ॥

सुभृशं च पराक्रान्ताः पञ्चालानां निवारणे ॥ ७३ ॥
कृपकर्णादयो वीरा ऋषभाणामिवर्षभाः ।

'कृपाचार्य और कर्ण आदि वीर इन पाञ्चालोंको रोकनेके लिये अत्यन्त पराक्रम दिखा रहे हैं। ठीक उसी तरह, जैसे साँड़ दूसरे साँड़ोंको दबानेकी चेष्टा करते हैं ॥ ७३½ ॥

भीमास्त्रेण सुनिर्भग्नान् धार्तराष्ट्रान् महारथान् ॥७४॥
धृष्टद्युम्नमुखा वीरा घ्नन्ति शत्रून् सहस्रशः ।

'भीमसेनके बाणोंसे हतोत्साह होकर भागनेवाले कौरव-महारथियों तथा सहस्रों शत्रुओंको धृष्टद्युम्न आदि वीर मार रहे हैं ॥ ७४½ ॥

पञ्चालेष्वभिभूतेषु द्विषद्भिरपभीर्नदन् ॥ ७५ ॥
शत्रुपक्षमवस्कन्द्य शरानस्यति मारुतिः ।

'शत्रुओंद्वारा पाञ्चालोंके पराजित होनेपर ये वायुपुत्र भीमसेन निर्भय गर्जना करते हुए शत्रुदलपर आक्रमण करके बाणोंकी वर्षा कर रहे हैं ॥७५½॥

विषण्णभूयिष्ठतरा धार्तराष्ट्री महाचमूः ॥ ७६ ॥
रथाश्चैते सुवित्रस्ता भीमसेनभयार्दिताः ।

'दुर्योधनकी विशाल सेनाके अधिकांश वीर अत्यन्त खिन्न हो उठे हैं और ये रथी भीमसेनके भयसे पीड़ित हो संत्रस्त हो गये हैं ॥ ७६½ ॥

पश्य भीमेन नाराचैर्भिन्ना नागाः पतन्त्यमी ॥ ७७ ॥
वज्रिवज्रहतानीव शिखराणि धराभृताम् ।

'देखो, इन्द्रके वज्रसे आहत होकर गिरनेवाले पर्वत-शिखरोंके समान ये बड़े-बड़े हाथी भीमसेनके चलाये हुए नाराचोंसे विदीर्ण होकर पृथ्वीपर गिर रहे हैं ॥ ७७½ ॥

भीमसेनस्य निर्विद्धा बाणैः संनतपर्वभिः ॥ ७८ ॥
स्वान्यनीकानि मृद्नन्तो द्रवन्त्येते महागजाः ।

'भीमसेनके झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे अत्यन्त घायल हुए ये विशालकाय हाथी अपनी ही सेनाओंको कुचलते हुए भागते हैं ॥ ७८½ ॥

(एते द्रवन्ति कुरवो भीमसेनभयार्दिताः ।
त्यक्त्वा गजान् हयांश्चैव रथांश्चैव सहस्रशः॥
हस्त्यश्वरथपत्तीनां द्रवतां निःस्वनं शृणु ।
भीमसेनस्य निनदं द्रावयाणस्य कौरवान् ॥)

'ये भीमसेनके भयसे पीड़ित हुए कौरव-योद्धा अपने सहस्रों हाथियों, रथों और घोड़ोंको छोड़-छोड़कर भाग रहे हैं। भागते हुए हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंका वह आर्तनाद तथा कौरवोंको खदेड़ते हुए भीमसेनकी यह गर्जना सुन लो ॥

अभिजानीहि भीमस्य सिंहनादं सुदुःसहम् ॥ ७९ ॥
नदतोऽर्जुन संग्रामे वीरस्य जितकाशिनः ।

'अर्जुन! विजयश्रीसे सुशोभित हो गर्जना करनेवाले वीर भीमसेनका संग्राममें जो अत्यन्त दुःसह सिंहनाद हो रहा है, उसे पहचानो ॥ ७९½ ॥

एष नैषादिरभ्येति द्विपमुख्येन पाण्डवम् ॥ ८० ॥
जिघांसुस्तोमरैः क्रुद्धो दण्डपाणिरिवान्तकः ।

'यह निषादपुत्र श्रेष्ठ गजराजपर आरूढ़ हो तोमरोंद्वारा भीमसेनको मार डालनेकी इच्छासे क्रोधमें भरे हुए दण्डपाणि यमराजके समान उनपर आक्रमण कर रहा है ॥ ८०½ ॥

सतोमरावस्य भुजौ छिन्नौ भीमेन गर्जतः ॥ ८१ ॥
तीक्ष्णैरग्निरविप्रख्यैर्नाराचैर्दशभिर्हतः ।

'देखो, भीमसेनने गरजते हुए निषादपुत्रकी तोमरसहित दोनों भुजाओंको काट दिया और अग्नि एवं सूर्यके समान तेजस्वी दस तीखे नाराचोंद्वारा उसे मार डाला ॥ ८१½ ॥

हत्वैनं पुनरायाति नागानन्यान् प्रहारिणः ॥ ८२ ॥
पश्य नीलाम्बुदनिभान् महामात्रैरधिष्ठितान् ।
शक्तितोमरसंघातैर्विनिघ्नन्तं वृकोदरम् ॥ ८३ ॥

'इस निषादपुत्रका वध करके वे पुनः प्रहार करनेवाले दूसरे-दूसरे हाथियोंपर आक्रमण कर रहे हैं। देखो, भीमसेन शक्ति और तोमरोंके समूहोंसे काले मेघोंकी घटाके समान हाथियोंको, जिनके कंधोंपर महावत बैठे हैं, मार रहे हैं ॥ ८२-८३ ॥

सप्तसप्त च नागांस्तान् वैजयन्तीश्च सध्वजाः ।
निहत्य निशितैर्बाणैश्छिन्नाः पार्थाग्रजेन ते ॥ ८४ ॥

'पार्थ! तुम्हारे बड़े भाई भीमसेनने अपने पैने बाणोंसे ध्वजसहित वैजयन्ती पताकाओंको नष्ट करके उनचास हाथियोंको काट गिराया है ॥ ८४ ॥

दशभिर्दशभिश्चैको नाराचैर्निहतो गजः ।
न चासौ धार्तराष्ट्राणां श्रूयते निनदस्तथा ॥ ८५ ॥
पुरंदरसमे क्रुद्धे निवृत्ते भरतर्षभ ।

'उन्होंने दस-दस नाराचोंसे एक-एक हाथीका वध किया है। भरतभूषण! इन्द्रके समान पराक्रमी भीमसेनके

क्रोधपूर्वक लौटनेपर धृतराष्ट्रपुत्रोंका वह सिंहनाद अब नहीं सुनायी दे रहा है ॥ ८५½ ॥

अक्षौहिण्यस्तथा तिस्रो धार्तराष्ट्रस्य संहताः ।
क्रुद्धेन भीमसेनेन नरसिंहेन वारिताः ॥ ८६ ॥

'कुपित हुए पुरुषसिंह भीमसेनने दुर्योधनकी संगठित हुई तीन अक्षौहिणी सेनाओंको आगे बढ़नेसे रोक दिया है ॥ ८६ ॥

न शक्नुवन्ति वै पार्थं पार्थिवाः समुदीक्षितुम् ।
मध्यंदिनगतं सूर्यं यथा दुर्बलचक्षुषः ॥ ८७ ॥

'जैसे दुर्बल नेत्रोंवाले प्राणी दोपहरके सूर्यकी ओर नहीं देख सकते, उसी प्रकार राजा लोग कुन्तीकुमार भीमसेनकी ओर आँख उठाकर देख नहीं पा रहे हैं ॥ ८७ ॥

एते भीमस्य संत्रस्ताः सिंहस्येवेतरे मृगाः ।
शरैः संत्रासिताः संख्ये न लभन्ते सुखं क्वचित् ॥ ८८ ॥

'जैसे सिंहसे डरे हुए दूसरे मृग चैन नहीं पाते हैं, उसी प्रकार ये भीमसेनके बाणोंसे भयभीत हुए कौरवसैनिक युद्ध-स्थलमें कहीं सुख नहीं पा रहे हैं ॥ ८८ ॥

(राजानं च महाबाहुं पीडयन्त्यात्तमन्यवः ।
राधेयो बहुभिः सार्धमसौ गच्छति वेगतः ॥
वर्जयित्वा तु भीमं तं पार्श्वतो ह्यानयन् धनुः ।
तं पालयन् महाराजं धार्तराष्ट्रं बलान्वितः ॥)

'पाण्डव-सैनिक क्रोधमें भरकर महाबाहु दुर्योधनको पीड़ा दे रहे हैं। बलशाली राधापुत्र कर्ण भीमसेनको छोड़कर बगलमें धनुष लिये महाराज दुर्योधनकी रक्षाके लिये बहुतेरे सैनिकोंके साथ वेगपूर्वक उसके पास जा रहा है ॥'

संजय उवाच

एतच्छ्रुत्वा महाबाहुर्वासुदेवाद् धनंजयः ।
भीमसेनेन तत् कर्म कृतं दृष्ट्वा सुदुष्करम् ॥ ८९ ॥
अर्जुनो व्यधमच्छिष्टानहितान् निशितैः शरैः ।

संजय कहते हैं—राजन् ! वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णके मुखसे यह सब सुनकर और भीमसेनके द्वारा किये हुए उस अत्यन्त दुष्कर कर्मको अपनी आँखों देखकर महाबाहु अर्जुनने अपने पैने बाणोंद्वारा शेष शत्रुओंको मार भगाया ॥ ८९½ ॥

ते वध्यमानाः समरे संशप्तकगणाः प्रभो ॥ ९० ॥
प्रभग्नाः समरे भीता दिशो दश महाबलाः ।
शक्रस्यातिथितां गत्वा विशोका ह्यभवंस्तदा ॥ ९१ ॥

प्रभो ! समराङ्गणमें मारे जाते हुए महाबली संशप्तकगण हतोत्साह एवं भयभीत हो दसों दिशाओंमें भाग गये और कितने ही वीर इन्द्रके अतिथि बनकर तत्काल शोकसे छुटकारा पा गये ॥ ९०-९१ ॥

पार्थश्च पुरुषव्याघ्रः शरैः संनतपर्वभिः ।
जघान धार्तराष्ट्रस्य चतुर्विधबलां चमूम् ॥ ९२ ॥

पुरुषसिंह पार्थने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा दुर्योधनकी चतुरङ्गिणी सेनाका संहार कर डाला ॥ ९२ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कृष्णार्जुनसंवादे षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें श्रीकृष्ण और अर्जुनका संवादविषयक साठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ४ श्लोक मिलाकर कुल ९६ श्लोक हैं)

एकषष्टितमोऽध्यायः

कर्णद्वारा शिखण्डीकी पराजय, धृष्टद्युम्न और दुःशासनका तथा वृषसेन और नकुलका युद्ध, सहदेवद्वारा उलूककी तथा सात्यकिद्वारा शकुनिकी पराजय, कृपाचार्यद्वारा युधामन्युकी एवं कृतवर्माद्वारा उत्तमौजाकी पराजय तथा भीमसेन-द्वारा दुर्योधनकी पराजय, गजसेनाका संहार और पलायन

धृतराष्ट्र उवाच

निवृत्ते भीमसेने च पाण्डवे च युधिष्ठिरे ।
वध्यमाने बले चापि मामके पाण्डुसृञ्जयैः ॥ १ ॥
द्रवमाणे बलौघे च निरानन्दे मुहुर्मुहुः ।
किमकुर्वन्त कुरवस्तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ २ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! जब भीमसेन और पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर लौट आये, पाण्डव और सृंजय मेरी सेनाका वध करने लगे और मेरा सैन्यसमुदाय आनन्दशून्य होकर बारंबार भागने लगा, उस समय कौरवोंने क्या किया ? यह मुझे बताओ ॥ १-२ ॥

संजय उवाच

(क्षयस्तेषां महाज्ञानो राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥)
दृष्ट्वा भीमं महाबाहुं सूतपुत्रः प्रतापवान् ।
क्रोधरक्तेक्षणो राजन् भीमसेनमुपाद्रवत् ॥ ३ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! आपकी कुमन्त्रणाके फलस्वरूप उन कौरवोंका महान् संहार हुआ है। महाराज !

प्रतापी सूतपुत्र महाबाहु भीमसेनको देखकर क्रोधसे लाल आँखें किये उनपर टूट पड़ा ॥ ३ ॥

तावकं तु बलं दृष्ट्वा भीमसेनात् पराङ्मुखम् ।
यत्नेन महता राजन् पर्यवस्थापयद् बली ॥ ४ ॥

राजन् ! आपकी सेनाको भीमसेनके भयसे विमुख हुई देख बलवान् कर्णने बड़े यत्नसे उसे स्थिर किया ॥ ४ ॥

व्यवस्थाप्य महाबाहुस्तव पुत्रस्य वाहिनीम् ।
प्रत्युद्ययौ तदा कर्णः पाण्डवान् युद्धदुर्मदान् ॥ ५ ॥

महाबाहु कर्ण आपके पुत्रकी सेनाको स्थिर करके रण-दुर्मद पाण्डवोंकी ओर बढ़ा ॥ ५ ॥

प्रत्युद्ययुस्तु राधेयं पाण्डवानां महारथाः ।
धुन्वानाः कार्मुकाण्याजौ विक्षिपन्तश्च सायकान् ॥ ६ ॥

उस समय पाण्डव-महारथी भी राधापुत्र कर्णका सामना करनेके लिये अपने धनुष हिलाते और बाणोंकी वर्षा करते हुए रणभूमिमें आगे बढ़े ॥ ६ ॥

भीमसेनः शिनेर्नप्ता शिखण्डी जनमेजयः ।
धृष्टद्युम्नश्च बलवान् सर्वे चापि प्रभद्रकाः ॥ ७ ॥
जिघांसन्तो नरव्याघ्राः समन्तात् तव वाहिनीम् ।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धाः समरे जितकाशिनः ॥ ८ ॥

भीमसेन, सात्यकि, शिखण्डी, जनमेजय, बलवान् धृष्टद्युम्न और समस्त प्रभद्रकगण—ये सभी पुरुषसिंह वीर समराङ्गणमें विजयसे उल्लसित होते हुए क्रोधमें भरकर आपकी सेनाको मार डालनेकी इच्छासे चारों ओरसे उसके ऊपर टूट पड़े ॥ ७-८ ॥

तथैव तावका राजन् पाण्डवानामनीकिनीम् ।
अभ्यद्रवन्त त्वरिता जिघांसन्तो महारथाः ॥ ९ ॥

राजन् ! इसी प्रकार आपके महारथी वीर भी पाण्डव-सेनाका वध करनेके लिये बड़े वेगसे उसकी ओर दौड़े ॥९॥

रथनागाश्वकलिलं पत्तिध्वजसमाकुलम् ।
बभूव पुरुषव्याघ्र सैन्यमद्भुतदर्शनम् ॥ १० ॥

पुरुषसिंह ! रथ, हाथी, घोड़े, पैदल योद्धा और ध्वजोंसे व्याप्त हुई वह सारी सेना अद्भुत दिखायी दे रही थी ॥१०॥

शिखण्डी च ययौ कर्णं धृष्टद्युम्नः सुतं तव ।
दुःशासनं महाराज महत्या सेनया वृतम् ॥ ११ ॥

महाराज ! शिखण्डीने कर्णपर और धृष्टद्युम्नने विशाल सेनासे घिरे हुए आपके पुत्र दुःशासनपर आक्रमण किया ॥

नकुलो वृषसेनं तु चित्रसेनं युधिष्ठिरः ।
उलूकं समरे राजन् सहदेवः समभ्ययात् ॥ १२ ॥

राजन् ! नकुलने वृषसेनपर, युधिष्ठिरने चित्रसेनपर तथा सहदेवने समराङ्गणमें उलूकपर चढ़ाई की ॥ १२ ॥

सात्यकिः शकुनिं चापि द्रौपदेयाश्च कौरवान् ।
अर्जुनं च रणे यत्तो द्रोणपुत्रो महारथः ॥ १३ ॥

सात्यकिने शकुनिपर, द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंने अन्य कौरवोंपर तथा युद्धमें सावधान रहनेवाले महारथी अश्वत्थामाने अर्जुनपर धावा किया ॥ १३ ॥

युधामन्युं महेष्वासं गौतमोऽभ्यपतद्रणे ।
कृतवर्मा च बलवानुत्तमौजसमाद्रवत् ॥ १४ ॥

कृपाचार्य युद्धस्थलमें महाधनुर्धर युधामन्युपर टूट पड़े और बलवान् कृतवर्माने उत्तमौजापर आक्रमण किया ॥१४॥

भीमसेनः कुरून् सर्वान् पुत्रांश्च तव मारिष ।
सहानीकान् महाबाहुरेक एव न्यवारयत् ॥ १५ ॥

आर्य ! महाबाहु भीमसेनने अकेले ही सेनासहित समस्त कौरवों और आपके पुत्रोंको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥१५॥

शिखण्डी तु ततः कर्णं विचरन्तमभीतवत् ।
भीष्महन्ता महाराज वारयामास पत्रिभिः ॥ १६ ॥

महाराज ! तदनन्तर भीष्महन्ता शिखण्डीने निर्भय-से विचरते हुए कर्णको अपने बाणोंके प्रहारसे रोका ॥ १६ ॥

प्रतिरुद्धस्ततः कर्णो रोषात् प्रस्फुरिताधरः ।
शिखण्डिनं त्रिभिर्बाणैर्भ्रुवोर्मध्येऽभ्यताडयत् ॥ १७ ॥

अपनी गति अवरुद्ध हो जानेपर रोषके मारे कर्णके ओठ फड़कने लगे । उसने तीन बाणोंद्वारा शिखण्डीको उसकी दोनों भौंहोंके मध्यभागमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ १७ ॥

धारयंस्तु स तान् बाणाञ्छिखण्डी बह्वशोभत ।
राजतः पर्वतो यद्वत् त्रिभिः श्रृङ्गैरिवोत्थितैः ॥ १८ ॥

उन बाणोंको ललाटमें धारण किये शिखण्डी तीन उठे हुए शिखरोंसे संयुक्त रजतमय पर्वतके समान बड़ी शोभा पाने लगा ॥ १८ ॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासः सूतपुत्रेण संयुगे ।
कर्णं विव्याध समरे नवत्या निशितैः शरैः ॥ १९ ॥

युद्धस्थलमें सूतपुत्रके द्वारा अत्यन्त घायल किये हुए महाधनुर्धर शिखण्डीने नब्बे पैने बाणोंद्वारा कर्णको भी समर-भूमिमें घायल कर दिया ॥ १९ ॥

तस्य कर्णो हयान् हत्वा सारथिं च त्रिभिः शरैः ।
उन्ममाथ ध्वजं चास्य क्षुरप्रेण महारथः ॥ २० ॥

महारथी कर्णने शिखण्डीके घोड़ोंको मारकर तीन बाणों-द्वारा इसके सारथिको भी नष्ट कर दिया । फिर एक क्षुरप्र-द्वारा उसकी ध्वजाको काट गिराया ॥ २० ॥

हताश्वात्तु ततो यानादवप्लुत्य महारथः ।
शक्तिं चिक्षेप कर्णाय संक्रुद्धः शत्रुतापनः ॥ २१ ॥

उस अश्वहीन रथसे कूदकर कुपित हुए शत्रुसंतापी महारथी शिखण्डीने कर्णपर शक्ति चलायी ॥ २१ ॥

तां छित्त्वा समरे कर्णस्त्रिभिर्भारत सायकैः ।
शिखण्डिनमथाविध्यन्नवभिर्निशितैः शरैः ॥ २२ ॥

भारत ! समराङ्गणमें तीन बाणोंद्वारा उस शक्तिको काटकर कर्णने नौ तीखे बाणोंसे शिखण्डीको भी घायल कर दिया॥

कर्णचापच्युतान् बाणान् वर्जयंस्तु नरोत्तमः ।
अपयातस्ततस्तूर्णं शिखण्डी भृशविक्षतः ॥ २३ ॥

तब अत्यन्त घायल हुआ नरश्रेष्ठ शिखण्डी कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे बचनेके लिये तुरंत वहाँसे भाग निकला ॥ २३ ॥

ततः कर्णो महाराज पाण्डुसैन्यान्यशातयत् ।
तूलराशिं समासाद्य यथा वायुर्महाबलः ॥ २४ ॥

महाराज ! तदनन्तर महाबली कर्ण रूईके ढेरको वायुकी भाँति पाण्डव-सेनाओंको तहस-नहस करने लगा ॥ २४ ॥

धृष्टद्युम्नो महाराज तव पुत्रेण पीडितः ।
दुःशासनं त्रिभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ॥ २५ ॥

राजेन्द्र ! आपके पुत्र दुःशासनसे पीड़ित हो धृष्टद्युम्नने तीन बाणोंसे उसकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ २५ ॥

तस्य दुःशासनो बाहुं सव्यं विव्याध मारिष ।
स तेन रुक्मपुङ्खेन भल्लेनानतपर्वणा ॥ २६ ॥
धृष्टद्युम्नस्तु निर्विद्धः शरं घोरममर्षणः ।
दुःशासनाय संक्रुद्धः प्रेषयामास भारत ॥ २७ ॥

आर्य ! दुःशासनने भी उसकी बायीं भुजाको बींध डाला। भारत ! सुनहरे पंख और झुकी हुई गाँठवाले भल्लसे घायल हुए अमर्षशील धृष्टद्युम्नने अत्यन्त कुपित हो दुःशासनपर एक भयंकर बाण चलाया ॥ २६-२७ ॥

आपतन्तं महावेगं धृष्टद्युम्नसमीरितम् ।
शरैश्चिच्छेद पुत्रस्ते त्रिभिरेव विशाम्पते ॥ २८ ॥

प्रजानाथ ! धृष्टद्युम्नके चलाये हुए उस भयंकर वेगशाली बाणको अपनी ओर आते देख आपके पुत्रने तीन ही बाणोंद्वारा उसे काट डाला ॥ २८ ॥

अथान्यैः सप्तदशभिर्भल्लैः कनकभूषणैः ।
धृष्टद्युम्नं समासाद्य बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ २९ ॥

तत्पश्चात् धृष्टद्युम्नके पास पहुँचकर उसने सुवर्ण-भूषित दूसरे सत्रह भल्लोंसे उसकी दोनों भुजाओं और छातीमें प्रहार किया ॥ २९ ॥

ततः स पार्षतः क्रुद्धो धनुश्चिच्छेद मारिष ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ ३० ॥

आर्य ! तब कुपित हुए द्रुपदकुमारने अत्यन्त तीखे क्षुरप्रसे दुःशासनके धनुषको काट दिया। यह देख सब लोग कोलाहल कर उठे ॥ ३० ॥

अथान्यद् धनुरादाय पुत्रस्ते प्रहसन्निव ।
धृष्टद्युम्नं शरव्रातैः समन्तात् पर्यवारयत् ॥ ३१ ॥

तदनन्तर आपके पुत्रने हँसते हुए-से दूसरा धनुष हाथमें लेकर अपने बाणसमूहोंद्वारा धृष्टद्युम्नको सब ओरसे अवरुद्ध कर दिया ॥ ३१ ॥

तव पुत्रस्य ते दृष्ट्वा विक्रमं सुमहात्मनः ।
व्यस्मयन्त रणे योधाः सिद्धाश्चाप्सरसां गणाः ॥ ३२ ॥

आपके महामनस्वी पुत्रका वह पराक्रम देखकर रणभूमिमें सब योद्धा विस्मित हो गये तथा आकाशमें सिद्धों और अप्सराओंके समूह भी आश्चर्य करने लगे ॥ ३२ ॥

धृष्टद्युम्नं न पश्याम घटमानं महाबलम् ।
दुःशासनेन संरुद्धं सिंहेनेव महागजम् ॥ ३३ ॥

जैसे सिंह किसी महान् गजराजको काबूमें कर ले, उसी प्रकार दुःशासनसे अवरुद्ध हो यथाशक्ति छूटनेकी चेष्टा करनेवाले महाबली धृष्टद्युम्नको हम देख नहीं पाते थे ॥ ३३ ॥

ततः सरथनागाश्वाः पञ्चालाः पाण्डुपूर्वज ।
सेनापतिं परीप्सन्तो रुरुधुस्तनयं तव ॥ ३४ ॥

पाण्डुके ज्येष्ठ भ्राता राजन् ! तब सेनापति धृष्टद्युम्नकी रक्षाके लिये रथों, हाथियों और घोड़ोंसहित पाञ्चालोंने आपके पुत्रको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ३४ ॥

ततः प्रववृते युद्धं तावकानां परैः सह ।
घोरं प्राणभृतां काले भीमरूपं परंतप ॥ ३५ ॥

परंतप ! फिर तो उस समय शत्रुओंके साथ आपके सैनिकोंका घोर युद्ध होने लगा, जो समस्त प्राणियोंके लिये भयंकर था ॥ ३५ ॥

नकुलं वृषसेनस्तु भित्त्वा पञ्चभिरायसैः ।
पितुः समीपे तिष्ठन् वै त्रिभिरन्यैरविध्यत ॥ ३६ ॥

अपने पिताके पास खड़े हुए वृषसेनने लोहेके पाँच बाणोंसे नकुलको घायल करके दूसरे तीन बाणोंद्वारा पुनः बींध डाला ॥ ३६ ॥

नकुलस्तु ततः शूरो वृषसेनं हसन्निव ।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन विव्याध हृदये भृशम् ॥ ३७ ॥

तब शूरवीर नकुलने हँसते हुए-से अत्यन्त तीखे नाराचद्वारा वृषसेनकी छातीमें गहरा आघात किया ॥ ३७ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुकर्षण ।
शत्रुं विव्याध विंशत्या स च तं पञ्चभिः शरैः ॥ ३८ ॥

शत्रुसूदन ! बलवान् शत्रुके द्वारा अत्यन्त घायल हुए वृषसेनने अपने वैरी नकुलको बीस बाणोंसे बींध डाला। फिर नकुलने भी उसे पाँच बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ३८ ॥

ततः शरसहस्रेण तावुभौ पुरुषर्षभौ ।
अन्योन्यमाच्छादयतामथोऽभज्यत वाहिनी ॥ ३९ ॥

तदनन्तर उन दोनों नरश्रेष्ठ वीरोंने सहस्रों बाणोंद्वारा एक दूसरेको आच्छादित कर दिया। इसी समय कौरव-सेनामें भगदड़ मच गयी ॥ ३९ ॥

स दृष्ट्वा प्रद्रुतां सेनां धार्तराष्ट्रस्य सूतजः ।
निवारयामास बलादनुसृत्य विशाम्पते ॥ ४० ॥

प्रजानाथ ! दुर्योधनकी सेनाको भागती देख सूतपुत्र कर्णने बलपूर्वक पीछा करके उसे रोका ॥ ४० ॥

निवृत्ते तु ततः कर्णे नकुलः कौरवान् ययौ ।
कर्णपुत्रस्तु समरे हित्वा नकुलमेव तु ॥ ४१ ॥
जुगोप चक्रं त्वरितो राधेयस्यैव मारिष ।

आर्य ! कर्णके लौट जानेपर नकुल कौरव-सैनिकोंकी ओर बढ़ चले और कर्णका पुत्र नकुलको छोड़कर समरभूमिमें शीघ्रतापूर्वक राधापुत्र कर्णके पहियोंकी ही रक्षा करने लगा ॥

उलूकस्तु रणे क्रुद्धः सहदेवेन वारितः ॥ ४२ ॥
तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सहदेवः प्रतापवान् ।
सारथिं प्रेषयामास यमस्य सदनं प्रति ॥ ४३ ॥

उसी प्रकार रणभूमिमें कुपित हुए उलूकको सहदेवने रोक दिया । प्रतापी सहदेवने उलूकके चारों घोड़ोंको मारकर उसके सारथिको भी यमलोक भेज दिया ॥ ४२-४३ ॥

उलूकस्तु ततो यानादवप्लुत्य विशाम्पते ।
त्रिगर्तानां बलं तूर्णं जगाम पितृनन्दनः ॥ ४४ ॥

प्रजानाथ ! तदनन्तर पिताको आनन्द देनेवाला उलूक उस रथसे कूदकर तुरंत ही त्रिगर्तोंकी सेनामें चला गया ॥

सात्यकिः शकुनिं विद्ध्वा विंशत्या निशितैः शरैः ।
ध्वजं चिच्छेद भल्लेन सौबलस्य हसन्निव ॥ ४५ ॥

सात्यकिने बीस पैने बाणोंसे शकुनिको घायल करके हँसते हुए-से एक भल्लद्वारा सुबलपुत्रके ध्वजको भी काट दिया ॥ ४५ ॥

सौबलस्तस्य समरे क्रुद्धो राजन् प्रतापवान् ।
विदार्य कवचं भूयो ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम् ॥ ४६ ॥

राजन् ! समराङ्गणमें कुपित हुए प्रतापी सुबलपुत्रने सात्यकिके कवचको छिन्न-भिन्न करके उनके सुवर्णमय ध्वजको भी काट दिया ॥ ४६ ॥

तथैनं निशितैर्बाणैः सात्यकिः प्रत्यविध्यत ।
सारथिं च महाराज त्रिभिरेव समार्पयत् ॥ ४७ ॥

महाराज ! इसी प्रकार सात्यकिने भी उसे पैने बाणोंद्वारा घायल कर दिया और उसके सारथिपर भी तीन बाणोंका प्रहार किया ॥ ४७ ॥

अथास्य वाहांस्त्वरितः शरैर्निन्ये यमक्षयम् ।
ततोऽवप्लुत्य सहसा शकुनिर्भरतर्षभ ॥ ४८ ॥
आरुरोह रथं तूर्णमुलूकस्य महात्मनः ।

तत्पश्चात् उन्होंने शीघ्रतापूर्वक बाण मारकर शकुनिके घोड़ोंको यमलोक पहुँचा दिया । भरतश्रेष्ठ ! तब शकुनि भी सहसा अपने रथसे कूदकर महामनस्वी उलूकके रथपर तुरंत जा चढ़ा ॥ ४८½ ॥

अपोवाहाथ शीघ्रं स शैनेयाद् युद्धशालिनः ॥ ४९ ॥
सात्यकिस्तु रणे राजंस्तावकानामनीकिनीम् ।
अभिदुद्राव वेगेन ततोऽनीकमभज्यत ॥ ५० ॥

उलूक युद्धमें शोभा पानेवाले सात्यकिके निकटसे अपने रथको शीघ्र दूर हटा ले गया । राजन् ! तदनन्तर सात्यकिने रणभूमिमें आपके पुत्रोंकी सेनापर बड़े वेगसे आक्रमण किया । इससे उस सेनामें भगदड़ मच गयी ॥ ४९-५० ॥

शैनेयशरसंछन्नं तव सैन्यं विशाम्पते ।
भेजे दश दिशस्तूर्णं न्यपतच्च गतासुवत् ॥ ५१ ॥

प्रजानाथ ! सात्यकिके बाणोंसे ढकी हुई आपकी सेना शीघ्र ही दसों दिशाओंकी ओर भाग चली और प्राणहीन-सी होकर पृथ्वीपर गिरने लगी ॥ ५१ ॥

भीमसेनं तव सुतो वारयामास संयुगे ।
तं तु भीमो मुहूर्तेन व्यश्वसूतरथध्वजम् ॥ ५२ ॥
चक्रे लोकेश्वरं तत्र तेनातुष्यन्त वै जनाः ।

आपके पुत्र दुर्योधनने युद्धस्थलमें भीमसेनको रोका । भीमसेनने दो ही घड़ीमें इस जगत्के स्वामी दुर्योधनको घोड़े, सारथि, रथ और ध्वजसे वञ्चित कर दिया; इससे सब लोग बड़े प्रसन्न हुए ॥ ५२½ ॥

ततोऽपायान्नृपस्तत्र भीमसेनस्य गोचरात् ॥ ५३ ॥
कुरुसैन्यं ततः सर्वं भीमसेनमुपाद्रवत् ।
तत्र नादो महानासीद् भीमसेनं जिघांसताम् ॥ ५४ ॥

तब राजा दुर्योधन वहाँ भीमसेनके रास्तेसे दूर हट गया । फिर तो सारी कौरव-सेना भीमसेनपर टूट पड़ी । भीमसेनको मारनेकी इच्छासे आये हुए कौरवोंका महान् सिंहनाद सब ओर गूँज उठा ॥ ५३-५४ ॥

युधामन्युः कृपं विद्ध्वा धनुरस्याशु चिच्छिदे ।
अथान्यद् धनुरादाय कृपः शस्त्रभृतां वरः ॥ ५५ ॥
युधामन्योर्ध्वजं सूतं छत्रं चापातयत् क्षितौ ।
ततोऽपायाद् रथेनैव युधामन्युर्महारथः ॥ ५६ ॥

दूसरी ओर युधामन्युने कृपाचार्यको घायल करके तुरंत ही उनके धनुषको काट दिया । तदनन्तर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कृपाचार्यने दूसरा धनुष हाथमें लेकर युधामन्युके ध्वज, सारथि और छत्रको धराशायी कर दिया । फिर तो महारथी युधामन्यु रथके द्वारा ही वहाँसे पलायन कर गया ॥५५-५६॥

उत्तमौजाश्च हार्दिक्यं भीमं भीमपराक्रमम् ।
छादयामास सहसा मेघो वृष्ट्येव पर्वतम् ॥ ५७ ॥

दूसरी ओर उत्तमौजाने भयंकर पराक्रमी और भयानक रूपवाले कृतवर्माको अपने बाणोंद्वारा सहसा उसी प्रकार आच्छादित कर दिया, जैसे मेघ जलकी वर्षाद्वारा पर्वतको ढक देता है ॥ ५७ ॥

तद् युद्धमासीत् सुमहद् घोररूपं परंतप ।
यादृशं न मया युद्धं दृष्टपूर्वं विशाम्पते ॥ ५८ ॥

परंतप ! उन दोनोंका वह महान् युद्ध बड़ा भयंकर

था। प्रजानाथ ! वैसा युद्ध मैंने पहले कभी नहीं देखा था ॥

कृतवर्मा ततो राजन्नुत्तमौजसमाहवे।
हृदि विव्याध सहसा रथोपस्थ उपाविशत् ॥ ५९ ॥

राजन् ! तदनन्तर कृतवर्माने युद्धस्थलमें सहसा उत्तमौजाकी छातीमें गहरा आघात किया। उत्तमौजा अचेत-सा होकर रथके पिछले भागमें बैठ गया ॥ ५९ ॥

सारथिस्तमपोवाह रथेन रथिनां वरम्।
कुरुसैन्यं ततः सर्वं भीमसेनमुपाद्रवत् ॥ ६० ॥

तब उसका सारथि रथियोंमें श्रेष्ठ उत्तमौजाको रथके द्वारा वहाँसे दूर हटा ले गया। फिर तो सारी कौरव-सेना भीमसेनपर टूट पड़ी ॥ ६० ॥

दुःशासनः सौबलश्च गजानीकेन पाण्डवम्।
महता परिवार्यैव क्षुद्रकैरभ्यताडयत् ॥ ६१ ॥

दुःशासन और शकुनिने विशाल गजसेनाके द्वारा पाण्डुपुत्र भीमसेनको चारों ओरसे घेरकर उनपर बाणोंका प्रहार आरम्भ कर दिया ॥ ६१ ॥

ततो भीमः शरशतैर्दुर्योधनममर्षणम्।
विमुखीकृत्य तरसा गजानीकमुपाद्रवत् ॥ ६२ ॥

उस समय भीमसेनने सैकड़ों बाणोंकी मारसे अमर्षशील दुर्योधनको युद्धसे विमुख करके हाथियोंकी उस सेनापर वेगपूर्वक आक्रमण किया ॥ ६२ ॥

तमापतन्तं सहसा गजानीकं वृकोदरः।
दृष्ट्वैव सुभृशं क्रुद्धो दिव्यमस्त्रमुदैरयत् ॥ ६३ ॥

सहसा अपनी ओर आती हुई उस गजसेनाको देखते ही भीमसेन अत्यन्त कुपित हो उठे और दिव्यास्त्रोंका प्रयोग करने लगे ॥ ६३ ॥

गजैर्गजानभ्यहनद् वज्रेणेन्द्र इवासुरान्।
ततोऽन्तरिक्षं बाणौघैः शलभैरिव पादपम् ॥ ६४ ॥
छादयामास समरे गजान् निघ्नन् वृकोदरः।

जैसे इन्द्र वज्रके द्वारा असुरोंका संहार करते हैं, उसी प्रकार भीमसेनने हाथियोंसे ही हाथियोंको मार डाला। तत्पश्चात् हाथियोंका संहार करते हुए भीमसेनने समरभूमिमें अपने बाणसमूहोंद्वारा सारे आकाशको उसी प्रकार ढक दिया, जैसे टिड्डियोंके दलोंसे वृक्ष आच्छादित हो जाता है ॥६४½॥

ततः कुञ्जरयूथानि समेतानि सहस्रशः ॥ ६५ ॥
व्यधमत् तरसा भीमो मेघसङ्घानिवानिलः।

इसके बाद भीमसेनने जैसे वायु मेघोंकी घटाको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार वहाँ एकत्र हुए हाथियोंके सहस्रों समूहोंको वेगपूर्वक नष्ट कर दिया ॥ ६५½ ॥

सुवर्णजालापिहिता मणिजालैश्च कुञ्जराः ॥ ६६ ॥
रेजुरभ्यधिकं संख्ये विद्युत्वन्त इवाम्बुदाः।

सोने और मणियोंकी जालियोंसे ढके हुए वे हाथी युद्धस्थलमें बिजलियोंसहित मेघोंके समान अधिक प्रकाशित हो रहे थे ॥ ६६½ ॥

ते वध्यमाना भीमेन गजा राजन् विदुद्रुवुः ॥ ६७ ॥
केचिद् विभिन्नहृदयाः कुञ्जरा न्यपतन् भुवि।

राजन् ! भीमसेनकी मार खाकर सारे हाथी भाग चले। कितने ही गजराज हृदय फट जानेके कारण पृथ्वीपर गिर पड़े॥

पतितैर्निपतद्भिश्च गजैर्हेमविभूषितैः ॥ ६८ ॥
अशोभत मही तत्र विशीर्णैरिव पर्वतैः।

गिरे और गिरते हुए सुवर्णभूषित हाथियोंसे ढकी हुई रणभूमि ऐसी शोभा पा रही थी, मानो वहाँ ढेर-के-ढेर पर्वत-खण्ड बिखरे पड़े हों ॥ ६८½ ॥

दीप्ताभै रत्नवद्भिश्च पतितैर्गजयोधिभिः ॥ ६९ ॥
रराज भूमिः पतितैः क्षीणपुण्यैरिव ग्रहैः।

दीप्तिमती प्रभा तथा रत्नोंके आभूषण धारण करके गिरे हुए हाथीसवारोंसे वह भूमि वैसी ही शोभा पा रही थी, मानो पुण्य क्षीण हो जानेपर स्वर्गलोकके ग्रह वहाँ भूतलपर गिर पड़े हों ॥ ६९½ ॥

ततो भिन्नकटा नागा भिन्नकुम्भकरास्तथा ॥ ७० ॥
दुद्रुवुः शतशः संख्ये भीमसेनशराहताः।

तदनन्तर भीमसेनके बाणोंसे आहत हो फूटे गण्डस्थल, विदीर्ण कुम्भस्थल और छिन्न-भिन्न शुण्डदण्डवाले सैकड़ों हाथी युद्धस्थलमें भागने लगे ॥ ७०½ ॥

केचिद् वमन्तो रुधिरं भयार्ताः पर्वतोपमाः ॥ ७१ ॥
व्यद्रवञ्छरविद्धाङ्गा धातुचित्रा इवाचलाः।

भयसे पीड़ित हुए कितने ही पर्वताकार हाथी अपने सारे अङ्गोंमें बाणोंसे विद्ध होकर भयसे पीड़ित हो रक्त वमन करते हुए भागे जा रहे थे। उस समय विभिन्न धातुओंके कारण विचित्र दिखायी देनेवाले पर्वतोंके समान उनकी शोभा हो रही थी ॥ ७१½ ॥

महाभुजगसंकाशौ चन्दनागुरुरूषितौ ॥ ७२ ॥
अपश्यं भीमसेनस्य धनुर्विक्षिपतो भुजौ।

धनुष खींचते हुए भीमसेनकी चन्दन और अगुरुसे चर्चित भुजाएँ मुझे दो बड़े सर्पोंके समान दिखायी देती थीं॥

तस्य ज्यातलनिर्घोषं श्रुत्वाशनिसमस्वनम् ॥ ७३ ॥
विमुञ्चन्तः शकृन्मूत्रं गजाः प्राद्रुद्रुवुर्भृशम्।

बिजलीकी गड़गड़ाहटके समान उनकी प्रत्यञ्चाकी भयंकर टङ्कार सुनकर बहुत-से हाथी मल-मूत्र करते हुए बड़े जोरसे भाग रहे थे ॥ ७३½ ॥

भीमसेनस्य तद् कर्म राजन्नेकस्य धीमतः।
निघ्नतः सर्वभूतानि रुद्रस्येव च निर्बभौ ॥ ७४ ॥

राजन्! अकेले बुद्धिमान् भीमसेनका वह कर्म समस्त प्राणियोंका संहार करते हुए रुद्रके समान जान पड़ता था ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक इकसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६१ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ½ श्लोक मिलाकर कुल ७४½ श्लोक हैं)

द्विषष्टितमोऽध्यायः

युधिष्ठिरपर कौरवसैनिकोंका आक्रमण

संजय उवाच

ततः श्वेताश्वसंयुक्ते नारायणसमाहिते।
तिष्ठन् रथवरे श्रीमानर्जुनः समपद्यत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णद्वारा सावधानीसे संचालित और श्वेत घोड़ोंसे युक्त उत्तमरथपर खड़े हुए श्रीमान् अर्जुन वहाँ आ पहुँचे ॥ १ ॥

तद् बलं नृपतिश्रेष्ठ तावकं विजयो रणे।
व्यक्षोभयदुदीर्णाश्वं महोदधिमिवानिलः ॥ २ ॥

नृपश्रेष्ठ! जैसे प्रचण्ड वायु महासागरको विक्षुब्ध कर देती है, उसी प्रकार रणभूमिमें स्थित प्रचण्ड अश्वोंसे युक्त आपकी सेनामें अर्जुनने हलचल मचा दी ॥ २ ॥

दुर्योधनस्तव सुतः प्रमत्ते श्वेतवाहने।
अभ्येत्य सहसा क्रुद्धः सैन्यार्धेनाभिसंवृतः ॥ ३ ॥
पर्यवारयदायान्तं युधिष्ठिरममर्षणम्।
क्षुरप्राणां त्रिसप्तत्या ततोऽविध्यत पाण्डवम् ॥ ४ ॥

जब श्वेतवाहन अर्जुन असावधान थे, उसी समय क्रोधमें भरे हुए दुर्योधनने सहसा आधी सेनाके साथ आकर अपनी ओर आते हुए अमर्षशील पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको चारों ओरसे घेर लिया। साथ ही तिहत्तर क्षुरप्रोंद्वारा उन्हें घायल कर दिया ॥ ३-४ ॥

अक्रुध्यत भृशं तत्र कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
स भल्लांस्त्रिशतस्तूर्णं तव पुत्रे न्यवेशयत् ॥ ५ ॥

तब वहाँ कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर अत्यन्त कुपित हो उठे। उन्होंने आपके पुत्रपर तीस भल्लोंका प्रहार किया ॥ ५ ॥

ततोऽधावन्त कौरव्या जिघृक्षन्तो युधिष्ठिरम्।
दुष्टभावान् पराञ्ज्ञात्वा समवेता महारथाः ॥ ६ ॥
आजग्मुस्तं परीप्सन्तः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्।

तदनन्तर कौरव-सैनिक युधिष्ठिरको पकड़नेके लिये दौड़े। शत्रुओंकी यह दुर्भावना जानकर एकत्र हुए पाण्डव-महारथी कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये वहाँ आ पहुँचे ६½

नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ७ ॥
अक्षौहिण्या परिवृतास्तेऽभ्यधावन् युधिष्ठिरम्।

नकुल, सहदेव और द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न—ये एक अक्षौहिणी सेना साथ लेकर युधिष्ठिरके पास दौड़े आये ॥ ७½ ॥

भीमसेनश्च समरे मृद्नंस्तव महारथान् ॥ ८ ॥
अभ्यधावदभिप्रेप्सू राजानं शत्रुभिर्वृतम्।

भीमसेन भी शत्रुओंसे घिरे हुए राजा युधिष्ठिरको बचानेके लिये समराङ्गणमें आपके महारथियोंको रौंदते हुए उनके पास दौड़े आये ॥ ८½ ॥

तांस्तु सर्वान् महेष्वासान् कर्णो वैकर्तनो नृप ॥ ९ ॥
शरवर्षेण महता प्रत्यवारयदागतान्।

नरेश्वर! वैकर्तन कर्णने वहाँ आये हुए सम्पूर्ण महाधनुर्धरोंको अपने बाणोंकी भारी वर्षासे रोक दिया ॥ ९½ ॥

शरौघान् विसृजन्तस्ते प्रेरयन्तश्च तोमरान् ॥ १० ॥
न शेकुर्यत्नवन्तोऽपि राधेयं प्रतिवीक्षितुम्।

वे सब महारथी प्रयत्नपूर्वक बाणसमूहोंकी वर्षा और तोमरोंका प्रहार करते हुए भी राधापुत्रको देख न सके १०½

तांश्च सर्वान् महेष्वासान् सर्वशस्त्रास्त्रपारगः ॥ ११ ॥
महता शरवर्षेण राधेयः प्रत्यवारयत्।

सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंके पारंगत विद्वान् राधापुत्र कर्णने बड़ी भारी बाणवर्षा करके उन समस्त धनुर्धरोंको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ११½ ॥

दुर्योधनं च विंशत्या शीघ्रमस्त्रमुदीरयन् ॥ १२ ॥
अविध्यत् तूर्णमभ्येत्य सहदेवः प्रतापवान्।

इसी समय प्रतापी सहदेवने आकर शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलाते हुए तुरंत ही बीस बाणोंसे दुर्योधनको बींध डाला १२½

स विद्धः सहदेवेन रराजाचलसंनिभः ॥ १३ ॥
प्रभिन्न इव मातङ्गो रुधिरेण परिप्लुतः।

सहदेवके बाणोंसे विद्ध होकर दुर्योधन अनेक शिखरोंवाले पर्वतके समान सुशोभित हुआ। खूनसे लथपथ होकर वह मदकी धारा बहानेवाले मदमत्त हाथीके समान जान पड़ता था ॥ १३½ ॥

दृष्ट्वा तव सुतं तत्र गाढविद्धं सुतेजनैः ॥ १४ ॥
अभ्यधावद् दृढं क्रुद्धो राधेयो रथिनां वरः।

रथियोंमें श्रेष्ठ राधापुत्र कर्ण आपके पुत्रको तेज बाणोंसे अत्यन्त घायल हुआ देख कुपित होकर दौड़ा ॥ १४½ ॥

दुर्योधनं तथा दृष्ट्वा शीघ्रमस्त्रमुदैरयत् ॥ १५ ॥
तेन यौधिष्ठिरं सैन्यमवधीत् पार्षतं तथा ।

दुर्योधनकी वैसी अवस्था देख उसने शीघ्र अपना अस्त्र प्रकट किया और उसीके द्वारा युधिष्ठिरकी सेना एवं द्रुपदपुत्रको घायल कर दिया ॥ १५½ ॥

ततो यौधिष्ठिरं सैन्यं वध्यमानं महात्मना ॥ १६ ॥
सहसा प्राद्रवद् राजन् सूतपुत्रशरार्दितम् ।

राजन् ! महामना सूतपुत्र कर्णकी मार खाकर उसके बाणोंसे पीड़ित हो युधिष्ठिरकी सेना सहसा भाग चली ।१६½।

विविधा विशिखास्तत्र सम्पतन्तः परस्परम् ॥ १७ ॥
फलैः पुङ्खान् समाजग्मुः सूतपुत्रधनुश्च्युताः ।

सूतपुत्र कर्णके धनुषसे छूटकर परस्पर गिरते हुए नाना प्रकारके बाण अपने फलोंद्वारा पहलेके गिरे हुए बाणोंके पंखोंमें जुड़ जाते थे ॥ १७½ ॥

अन्तरिक्षे शरौघाणां पततां च परस्परम् ॥ १८ ॥
संघर्षेण महाराज पावकः समजायत।

महाराज ! आकाशमें परस्पर टकराते हुए बाणसमूहोंकी रगड़से आग प्रकट हो जाती थी ॥ १८½ ॥

ततो दश दिशः कर्णः शलभैरिव यायिभिः ॥ १९ ॥
अभ्यहंस्तरसा राजञ्शरैः परशरीरगैः ।

राजन् ! तदनन्तर कर्णने पतङ्गोंकी तरह चलकर शत्रुओंके शरीरोंमें घुस जानेवाले बाणोंद्वारा वेगपूर्वक दसों दिशाओंमें प्रहार आरम्भ किया ॥ १९½ ॥

रक्तचन्दनसंदिग्धौ मणिहेमविभूषितौ ॥ २० ॥
बाहू व्यत्यक्षिपत् कर्णः परमास्त्रं विदर्शयन्।

दिव्यास्त्रोंका प्रदर्शन करता हुआ कर्ण मणि एवं सुवर्णके आभूषणोंसे विभूषित तथा लाल चन्दनसे चर्चित दोनों भुजाओंको बारंबार हिला रहा था ॥ २०½ ॥

ततः सर्वा दिशो राजन् सायकैर्विप्रमोहयन् ॥ २१ ॥
अपीडयद् भृशं कर्णो धर्मराजं युधिष्ठिरम्।

राजन् ! तत्पश्चात् अपने बाणोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको मोहित करते हुए कर्णने धर्मराज युधिष्ठिरको अत्यन्त पीड़ित कर दिया ॥ २१½ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २२ ॥
निशितैरिषुभिः कर्णं पञ्चाशद्भिः समार्पयत् ।

महाराज ! इससे कुपित हुए धर्मपुत्र युधिष्ठिरने कर्णपर पचास पैने बाणोंका प्रहार किया ॥ २२½ ॥

बाणान्धकारमभवत्तद् युद्धं घोरदर्शनम् ॥ २३ ॥
हाहाकारो महानासीत्तावकानां विशाम्पते ।
वध्यमाने तदा सैन्ये धर्मपुत्रेण मारिष ॥ २४ ॥

उस समय भयंकर दिखायी देनेवाला वह युद्ध बाणोंके अन्धकारसे व्याप्त हो गया । माननीय प्रजानाथ ! जब धर्मपुत्र युधिष्ठिर कौरवसेनाका वध करने लगे, उस समय आपके योद्धाओंका महान् हाहाकार सब ओर गूँज उठा ॥ २३-२४ ॥

सायकैर्विविधैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रैः शिलाशितैः।
भल्लैरनेकैर्विविधैः शक्त्यृष्टिमुसलैरपि ॥ २५ ॥
यत्र यत्र स धर्मात्मा दुष्टां दृष्टिं व्यसर्जयत्।
तत्र तत्र व्यशीर्यन्त तावका भरतर्षभ ॥ २६ ॥

भरतश्रेष्ठ ! धर्मात्मा युधिष्ठिर शिलापर तेज किये हुए कङ्कपत्रयुक्त एवं नाना प्रकारके पैने बाणों, भाँति-भाँतिके बहुसंख्यक भल्लों तथा शक्ति, ऋष्टि एवं मुसलोंद्वारा प्रहार करते हुए जहाँ-जहाँ क्रोधरूपी दोषसे पूर्ण दृष्टि डालते थे, वहीं-वहीं आपके सैनिक छिन्न-भिन्न होकर बिखर जाते थे ॥ २५–२६ ॥

कर्णोऽपि भृशसंक्रुद्धो धर्मराजं युधिष्ठिरम्।
नाराचैरर्धचन्द्रैश्च वत्सदन्तैश्च संयुगे ॥ २७ ॥
अमर्षी क्रोधनश्चैव रोषप्रस्फुरिताननः।
सायकैरप्रमेयात्मा युधिष्ठिरमभिद्रवत् ॥ २८ ॥

कर्ण भी अत्यन्त क्रोधमें भरा हुआ था । वह अमर्षशील और क्रोधी तो था ही, रोषसे उसका मुख फड़क रहा था। अप्रमेय आत्मबलसे सम्पन्न उस वीरने युद्धस्थलमें नाराचों, अर्धचन्द्रों तथा वत्सदन्तोंद्वारा धर्मराज युधिष्ठिरपर धावा किया ॥ २७–२८ ॥

युधिष्ठिरश्चापि स तं स्वर्णपुङ्खैः शितैः शरैः।
प्रहसन्निव तं कर्णः कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ॥ २९ ॥
उरस्यविध्यद् राजानं त्रिभिर्भल्लैश्च पाण्डवम्।

इसी प्रकार युधिष्ठिरने भी कर्णको सोनेकी पाँखवाले पैने बाणोंद्वारा घायल कर दिया । तब कर्णने हँसते हुए-से शिलापर तेज किये गये कङ्कपत्रयुक्त तीन भल्लोंद्वारा पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ २९½ ॥

स पीडितो भृशं तेन धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३० ॥
उपविश्य रथोपस्थे सूतं याहीत्यचोदयत्।

उस प्रहारसे अत्यन्त पीड़ित हो धर्मराज युधिष्ठिर रथके पिछले भागमें बैठ गये और सारथिको आदेश देते हुए बोले—'यहाँसे अन्यत्र रथ ले चलो' ॥ ३०½ ॥

अक्रोशन्त ततः सर्वे धार्तराष्ट्राः सराजकाः ॥ ३१ ॥
गृह्णीध्वमिति राजानमभ्यधावन्त सर्वशः।

उस समय राजा दुर्योधनसहित आपके सभी पुत्र इस प्रकार कोलाहल करने लगे—'राजा युधिष्ठिरको पकड़ लो' ऐसा कहकर वे सभी ओरसे उनकी ओर दौड़ पड़े ॥ ३१½ ॥

ततः शताः सप्तदश केकयानां प्रहारिणाम् ॥ ३२ ॥
पञ्चालैः सहिता राजन् धार्तराष्ट्रान् न्यवारयन्।

राजन्! तब प्रहारकुशल सत्रह सौ केकय योद्धा पाञ्चालों-के साथ आकर आपके पुत्रोंको रोकने लगे ॥ ३२½ ॥

तस्मिन् सुतुमुले युद्धे वर्तमाने जनक्षये ॥ ३३ ॥
दुर्योधनश्च भीमश्च समेयातां महाबलौ ॥ ३४ ॥

जिस समय वह जनसंहारकारी भयंकर युद्ध चल रहा था, उस समय महाबली दुर्योधन और भीमसेन एक दूसरेसे जूझने लगे ॥ ३३-३४ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक बासठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

कर्णद्वारा नकुल-सहदेवसहित युधिष्ठिरकी पराजय एवं पीड़ित होकर युधिष्ठिरका अपनी छावनीमें जाकर विश्राम करना

संजय उवाच

कर्णोऽपि शरजालेन केकयानां महारथान्।
व्यधमत् परमेष्वासानग्रतः पर्यवस्थितान् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! कर्ण भी अपने बाण-समूहसे सामने खड़े हुए महाधनुर्धर केकय-महारथियोंका विनाश करने लगा ॥ १ ॥

तेषां प्रयतमानानां राधेयस्य निवारणे।
रथान् पञ्चशतान् कर्णः प्राहिणोद् यमसादनम् ॥ २ ॥

राधापुत्र कर्णको रोकनेके लिये प्रयत्न करनेवाले पाँच सौ रथियोंको उसने यमलोक पहुँचा दिया ॥ २ ॥

अविषह्यं ततो दृष्ट्वा राधेयं युधि योधिनः।
भीमसेनमुपागच्छन् कर्णबाणप्रपीडिताः ॥ ३ ॥

कर्णके बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित हुए पाण्डव-योद्धा युद्ध-स्थलमें राधापुत्र कर्णको असह्य देखकर भीमसेनके पास चले आये ॥ ३ ॥

रथानीकं विदार्यैव शरजालैरनेकधा।
कर्ण एकरथेनैव युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ ४ ॥

तदनन्तर कर्णने अपने बाणोंके समूहसे पाण्डवोंकी रथ-सेनाको अनेक भागोंमें विदीर्ण करके एकमात्र रथके द्वारा ही युधिष्ठिरपर धावा किया ॥ ४ ॥

सेनानिवेशमार्च्छन्तं मार्गणैः क्षतविक्षतम्।
यमयोर्मध्यगं वीरं शनैर्यान्तं विचेतसम् ॥ ५ ॥
समासाद्य तु राजानं दुर्योधनहितेप्सया।
सूतपुत्रस्त्रिभिस्तीक्ष्णैर्विव्याध परमेषुभिः ॥ ६ ॥

उस समय वीर युधिष्ठिर बाणोंसे क्षत-विक्षत होकर अचेत-से हो रहे थे और नकुल-सहदेवके बीचमें होकर धीरे-धीरे छावनीकी ओर जा रहे थे। उस अवस्थामें राजा युधिष्ठिरके पास पहुँचकर सूतपुत्र कर्णने दुर्योधनके हितकी इच्छासे परम उत्तम तीन तीखे बाणोंद्वारा उन्हें पुनः घायल कर दिया ॥ ५-६ ॥

तथैव राजा राधेयं प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे।
शरैस्त्रिभिश्च यन्तारं चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ ७ ॥

इसी प्रकार राजा युधिष्ठिरने भी राधापुत्र कर्णकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी। फिर तीन बाणोंसे सारथिको और चारसे चारों घोड़ोंको घायल कर दिया ॥ ७ ॥

चक्ररक्षौ तु पार्थस्य माद्रीपुत्रौ परंतपौ।
तावप्यधावतां कर्णं राजानं मा वधीरिति ॥ ८ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले माद्रीकुमार नकुल और सहदेव राजा युधिष्ठिरके चक्ररक्षक थे। वे दोनों भी यह सोचकर कर्णकी ओर दौड़े कि यह राजा युधिष्ठिरका वध न कर डाले ॥

तौ पृथक् शरवर्षाभ्यां राधेयमभ्यवर्षताम्।
नकुलः सहदेवश्च परमं यत्नमास्थितौ ॥ ९ ॥

नकुल और सहदेव दोनों भाई उत्तम प्रयत्नका सहारा लेकर राधापुत्र कर्णपर पृथक्-पृथक् बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥

तथैव तौ प्रत्यविध्यत् सूतपुत्रः प्रतापवान्।
भल्लाभ्यां शितधाराभ्यां महात्मानावरिंदमौ ॥ १० ॥

इसी प्रकार प्रतापी सूतपुत्रने भी तेज धारवाले दो भल्लों-द्वारा शत्रुओंका दमन करनेवाले उन दोनों महामनस्वी वीरों-को घायल कर दिया ॥ १० ॥

दन्तवर्णांस्तु राधेयो निजघान मनोजवान्।
युधिष्ठिरस्य संग्रामे कालवालान् हयोत्तमान् ॥ ११ ॥

जिनकी पूँछ और गर्दनके बाल काले तथा शरीरका रंग श्वेत था और जो मनके समान तीव्र वेगसे चलनेवाले थे, युधिष्ठिरके उन उत्तम घोड़ोंको संग्रामभूमिमें राधापुत्र कर्णने मार डाला ॥ ११ ॥

ततोऽपरेण भल्लेन शिरस्त्राणमपातयत्।
कौन्तेयस्य महेष्वासः प्रहसन्निव सूतजः ॥ १२ ॥

तत्पश्चात् महाधनुर्धर सूतपुत्रने हँसते हुए-से एक दूसरे भल्लके द्वारा कुन्तीकुमारके शिरस्त्राणको नीचे गिरा दिया ॥

तथैव नकुलस्यापि हयान् हत्वा प्रतापवान् ।
ईषां धनुश्च चिच्छेद माद्रीपुत्रस्य धीमतः ॥ १३ ॥

इसी प्रकार प्रतापी कर्णने बुद्धिमान् माद्रीकुमार नकुलके भी घोड़ोंको मारकर ईषादण्ड और धनुषको भी काट दिया ॥

तौ हताश्वौ हतरथौ पाण्डवौ भृशविक्षतौ ।
भ्रातरावारुरुहतुः सहदेवरथं तदा ॥ १४ ॥

घोड़ों एवं रथोंके नष्ट हो जानेपर अत्यन्त घायल हुए वे दोनों भाई पाण्डव उस समय सहदेवके रथपर जा चढ़े ॥

तौ दृष्ट्वा मातुलस्तत्र विरथौ परवीरहा ।
अभ्यभाषत राधेयं मद्रराजोऽनुकम्पया ॥ १५ ॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले मामा मद्रराज शल्यने उन दोनों भाइयोंको रथहीन हुआ देख कृपापूर्वक राधापुत्र कर्णसे कहा—॥ १५ ॥

योद्धव्यमद्य पार्थेन फाल्गुनेन त्वया सह ।
किमर्थं धर्मराजेन युध्यसे भृशरोषितः ॥ १६ ॥

'कर्ण ! आज तुम्हें कुन्तीकुमार अर्जुनके साथ युद्ध करना है । फिर अत्यन्त रोषमें भरकर धर्मराजके साथ किस लिये जूझ रहे हो ? ॥ १६ ॥

क्षीणशस्त्रास्त्रकवचः क्षीणबाणो विबाणधिः ।
श्रान्तसारथिवाहश्च च्छन्नोऽस्त्रैररिभिस्तथा ॥ १७ ॥
पार्थमासाद्य राधेय उपहास्यो भविष्यसि ।

'इनके अस्त्र-शस्त्र और कवच नष्ट हो गये हैं। तीर और तरकस भी कट गये हैं । सारथि और घोड़े भी थके हुए हैं तथा शत्रुओंने इन्हें अस्त्रोंद्वारा आच्छादित कर दिया है । राधानन्दन ! अर्जुनके सामने पहुँचकर तुम उपहासके पात्र बन जाओगे' ॥ १७½ ॥

एवमुक्तोऽपि कर्णस्तु मद्रराजेन संयुगे ॥ १८ ॥
तथैव कर्णः संरब्धो युधिष्ठिरमताडयत् ।
शरैस्तीक्ष्णैः पराविध्य माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ १९ ॥
प्रहस्य समरे कर्णश्चकार विमुखं शरैः ।

युद्धस्थलमें मद्रराज शल्यके ऐसा कहनेपर भी कर्ण पूर्ववत् रोषमें भरकर युधिष्ठिरको बाणोंद्वारा पीड़ित करता रहा। माद्रीकुमार पाण्डुपुत्र नकुल-सहदेवको तीखे बाणोंसे घायल करके कर्णने हँसकर समराङ्गणमें बाणोंके प्रहारसे] युधिष्ठिरको युद्धसे विमुख कर दिया ॥ १८-१९½ ॥

ततः शल्यः प्रहस्येदं कर्णं पुनरुवाच ह ॥ २० ॥
रथस्थमतिसंरब्धं युधिष्ठिरवधे धृतम् ।

तब शल्यने हँसकर युधिष्ठिरके बधका दृढ़ निश्चय किये अत्यन्त क्रोधमें भरकर रथपर बैठे हुए कर्णसे पुनः इस प्रकार कहा—॥ २०½ ॥

यदर्थं धार्तराष्ट्रेण सततं मानितो भवान् ॥ २१ ॥
तं पार्थं जहि राधेय किं ते हत्वा युधिष्ठिरम् ।

'राधापुत्र ! दुर्योधनने जिनसे जूझनेके लिये तुम्हारा सदा सम्मान किया है, उन कुन्तीकुमार अर्जुनको मारो। युधिष्ठिरका वध करनेसे तुम्हें क्या मिलेगा ? ॥ २१½ ॥

(हते ह्यस्मिन् ध्रुवं पार्थः सर्वाञ्जेष्यति नो रथान् ।
तस्मिन् हि धार्तराष्ट्रस्य निहते तु ध्रुवो जयः ॥

'इनके मारे जानेपर अर्जुन निश्चय ही हमारे सारे महारथियोंको जीत लेंगे । परंतु अर्जुनके मारे जानेपर धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनकी विजय अवश्यम्भावी है ॥

ध्वजोऽसौ दृश्यते तस्य रोचमानोंऽशुमानिव ।
एनं जहि महाबाहो किं ते हत्वा युधिष्ठिरम् ॥)

'महाबाहो ! अर्जुनका यह सूर्यके समान प्रकाशमान ध्वज दिखायी देता है । तुम इन्हींको मारो, युधिष्ठिरका वध करनेसे तुम्हारा क्या लाभ है ? ॥

शङ्खयोर्ध्मायतोः शब्दः सुमहानेष कृष्णयोः ॥ २२ ॥
श्रूयते चापघोषोऽयं प्रावृषीवाम्बुदस्य ह ।

'श्रीकृष्ण और अर्जुन शङ्ख बजा रहे हैं, जिनका यह महान् शब्द सुनायी पड़ता है । वर्षाकालके मेघकी गर्जनाके समान उनके धनुषका यह गम्भीर घोष कानोंमें पड़ रहा है ॥ २२½ ॥

असौ निघ्नन् रथोदारानर्जुनः शरवृष्टिभिः ॥ २३ ॥
सर्वां ग्रसति नः सेनां कर्ण पश्यैनमाहवे ।

'कर्ण ! ये अर्जुन अपने बाणोंकी वर्षासे बड़े-बड़े रथियोंका संहार करते हुए हमारी सारी सेनाको कालका ग्रास बना रहे हैं । युद्धस्थलमें इनकी ओर तो देखो ॥ २३½ ॥

पृष्ठरक्षौ च शूरस्य युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ २४ ॥
उत्तरं चास्य वै शूरश्चक्रं रक्षति सात्यकिः ।
धृष्टद्युम्नस्तथा चास्य चक्रं रक्षति दक्षिणम् ॥ २५ ॥

'शूरवीर अर्जुनके पृष्ठभागकी रक्षा युधामन्यु और उत्तमौजा कर रहे हैं । शौर्यसम्पन्न सात्यकि उनके उत्तर (बायें) चक्रकी रक्षा करते हैं और धृष्टद्युम्न दाहिने चक्रकी ॥ २४-२५ ॥

भीमसेनश्च वै राज्ञा धार्तराष्ट्रेण युध्यते ।
यथा न हन्यात् तं भीमः सर्वेषां नोऽद्य पश्यताम् ॥ २६ ॥
तथा राधेय क्रियतां राजा मुच्येत नो यथा ।

'भीमसेन राजा दुर्योधनके साथ युद्ध करते हैं । राधानन्दन ! हम सब लोगोंके देखते-देखते आज भीमसेन जिस प्रकार उसे मार न डालें, वैसा प्रयत्न करो । जैसे भी सम्भव हो, हमारे राजाको भीमसेनसे छुटकारा मिलना ही चाहिये २६½

पश्यैनं भीमसेनेन ग्रस्तमाहवशोभिनम् ॥ २७ ॥
यदि त्वासाद्य मुच्येत विस्मयः सुमहान् भवेत् ।

'देखो, युद्धमें शोभा पानेवाले दुर्योधनको भीमसेनने ग्रस लिया है । यदि तुम्हें पाकर वह संकटसे छूट जाय तो

यह महान् आश्चर्यकी घटना होगी ॥ २७½ ॥

परित्राह्येनमभ्येत्य संशयं परमं गतम् ॥ २८ ॥
किं नु माद्रीसुतौ हत्वा राजानं च युधिष्ठिरम् ।

'तुम चलकर जीवनके भारी संशयमें पड़े हुए राजा दुर्योधनको बचाओ । आज माद्रीकुमार नकुल-सहदेव तथा राजा युधिष्ठिरका वध करके क्या होगा ?' ॥ २८½ ॥

इति शल्यवचः श्रुत्वा राधेयः पृथिवीपते ॥ २९ ॥
दृष्ट्वा दुर्योधनं चैव भीमग्रस्तं महाहवे ।
राजगृद्धी भृशं चैव शल्यवाक्यप्रचोदितः ॥ ३० ॥
अजातशत्रुमुत्सृज्य माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
तव पुत्रं परित्रातुमभ्यधावत वीर्यवान् ॥ ३१ ॥

पृथ्वीनाथ ! शल्यकी यह बात सुनकर तथा महासमरमें दुर्योधनको भीमसेनसे ग्रस्त हुआ देखकर शल्यके वचनोंसे प्रेरित हो राजाको अधिक चाहनेवाला पराक्रमी कर्ण अजातशत्रु युधिष्ठिर और माद्रीकुमार पाण्डुपुत्र नकुल-सहदेवको छोड़कर आपके पुत्रकी रक्षा करनेके लिये दौड़ा ॥२९–३१॥

मद्रराजप्रणुदितैरश्वैराकाशगैरिव ।
गते कर्णे तु कौन्तेयः पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३२ ॥
अपायाज्जवनैरश्वैः सहदेवश्च मारिष ।

माननीय नरेश ! मद्रराज शल्यके हाँके हुए घोड़े ऐसे भाग रहे थे, मानो आकाशमें उड़ रहे हों । कर्णके चले जानेपर कुन्तीकुमार पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर और सहदेव तीव्रगामी घोड़ोंद्वारा वहाँसे भाग गये ॥ ३२½ ॥

ताभ्यां स सहितस्तूर्णं व्रीडन्निव नरेश्वरः ॥ ३३ ॥
प्राप्य सेनानिवेशं च मार्गणैः क्षतविक्षतः ।
अवतीर्णो रथात्तूर्णमाविशच्छयनं शुभम् ॥ ३४ ॥

नकुल और सहदेवके साथ वे नरेश लज्जित होते हुए-से तुरंत छावनीमें पहुँचकर रथसे उतर पड़े और सुन्दर शय्यापर लेट गये । उस समय उनका सारा शरीर बाणोंसे क्षत-विक्षत हो रहा था ॥ ३३-३४ ॥

अपनीतशल्यः सुभृशं हृच्छल्याभिनिपीडितः ।
सोऽब्रवीद्भ्रातरौ राजा माद्रीपुत्रौ महारथौ ॥ ३५ ॥

वहाँ उनके शरीरसे बाण निकाल दिये गये तो भी हृदयमें जो अपमानका काँटा गड़ गया था, उससे वे अत्यन्त पीड़ित हो रहे थे । उस समय राजा दोनों भाई माद्रीकुमार महारथी नकुल-सहदेवसे इस प्रकार बोले ॥ ३५ ॥



(*युधिष्ठिर उवाच*
गच्छतां त्वरितौ वीरौ यत्र भीमो व्यवस्थितः ॥)
अनीकं भीमसेनस्य पाण्डवावाशु गच्छताम् ।
जीमूत इव नर्दंस्तु युध्यते स वृकोदरः ॥ ३६ ॥

युधिष्ठिरने कहा—वीर पाण्डुकुमारो ! तुम दोनों शीघ्रतापूर्वक जहाँ भीमसेन खड़े हैं, वहाँ उनकी सेनामें जाओ । वहाँ भीमसेन मेघके समान गम्भीर गर्जना करते हुए युद्ध कर रहे हैं ॥ ३६ ॥

ततोऽन्यं रथमास्थाय नकुलो रथपुङ्गवः ।
सहदेवश्च तेजस्वी भ्रातरौ शत्रुकर्षणौ ॥ ३७ ॥
तुरगैरग्र्यरंहोभिर्यात्वा भीमस्य शुष्मिणौ ।
अनीकैः सहितौ तत्र भ्रातरौ समवस्थितौ ॥ ३८ ॥

तदनन्तर दूसरे रथपर बैठकर रथियोंमें श्रेष्ठ नकुल और तेजस्वी सहदेव वे दोनों शत्रुसूदन बन्धु तीव्र वेगवाले घोड़ोंद्वारा भीमसेनके पास जा पहुँचे । फिर वे दोनों बलवान् भाई भीमसेनके सैनिकोंके साथ खड़े होकर युद्ध करने लगे ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि धर्मापयाने त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें युधिष्ठिरका पलायन विषयक तिरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २½ श्लोक मिलाकर कुल ४०½ श्लोक हैं)

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

अर्जुनद्वारा अश्वत्थामाकी पराजय, कौरवसेनामें भगदड़ एवं दुर्योधनसे प्रेरित कर्णद्वारा भार्गवास्त्रसे पाञ्चालोंका संहार

संजय उवाच
द्रौणिस्तु रथवंशेन महता परिवारितः ।
अपतत्सहसा राजन् यत्र पार्थो व्यवस्थितः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! द्रोणपुत्र अश्वत्थामा विशाल

रथसेनासे घिरा सहसा वहाँ आ पहुँचा, जहाँ अर्जुन खड़े थे॥

समापतन्तं सहसा शूरः शौरिसहायवान्।
दधार सहसा पार्थो वेलेव मकरालयम्॥ २॥

भगवान् श्रीकृष्ण जिनके सहायक थे, उन शूरवीर कुन्तीकुमार अर्जुनने सहसा अपनी ओर आते हुए अश्वत्थामाको तत्काल उसी तरह रोक दिया, जैसे तटभूमि समुद्रको आगे बढ़नेसे रोकती है॥ २॥

ततः क्रुद्धो महाराज द्रोणपुत्रः प्रतापवान्।
अर्जुनं वासुदेवं च छादयामास सायकैः॥ ३॥

महाराज! तब क्रोधमें भरे हुए प्रतापी द्रोणपुत्रने अर्जुन और श्रीकृष्णको अपने बाणोंसे ढक दिया॥ ३॥

अवच्छन्नौ ततः कृष्णौ दृष्ट्वा तत्र महारथाः।
विस्मयं परमं गत्वा प्रैक्षन्त कुरवस्तदा॥ ४॥

उस समय उन दोनोंको बाणोंद्वारा आच्छादित हुआ देख समस्त कौरव महारथी महान् आश्चर्यमें पड़कर उधर ही देखने लगे॥ ४॥

अर्जुनस्तु ततो दिव्यमस्त्रं चक्रे हसन्निव।
तदस्त्रं वारयामास ब्राह्मणो युधि भारत॥ ५॥

भारत! तब अर्जुनने हँसते हुए-से दिव्यास्त्र प्रकट किया; परंतु ब्राह्मण अश्वत्थामाने युद्धस्थलमें उनके उस दिव्यास्त्रका निवारण कर दिया॥ ५॥

यद् यद्धि व्याक्षिपद् युद्धे पाण्डवोऽस्त्रजिघांसया।
तत् तदस्त्रं महेष्वासो द्रोणपुत्रो व्यशातयत्॥ ६॥

रणभूमिमें पाण्डुकुमार अर्जुन अश्वत्थामाके अस्त्रोंको नष्ट करनेके लिये जो-जो अस्त्र चलाते थे, महाधनुर्धर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा उनके उस-उस अस्त्रको काट गिराता था॥ ६॥

अस्त्रयुद्धे ततो राजन् वर्तमाने महाभये।
अपश्याम रणे द्रौणिं व्यात्ताननमिवान्तकम्॥ ७॥

राजन्! इस प्रकार महाभयंकर अस्त्र-युद्ध आरम्भ होनेपर हमलोगोंने रणक्षेत्रमें द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको मुँह बाये हुए यमराजके समान देखा था॥ ७॥

स दिशः प्रदिशश्चैव च्छादयित्वा ह्यजिह्मगैः।
वासुदेवं त्रिभिर्बाणैरविध्यद् दक्षिणे भुजे॥ ८॥

उसने सीधे जानेवाले बाणोंके द्वारा सम्पूर्ण दिशाओं और कोणोंको आच्छादित करके श्रीकृष्णकी दाहिनी भुजामें तीन बाण मारे॥ ८॥

ततोऽर्जुनो हयान् हत्वा सर्वांस्तस्य महात्मनः।
चकार समरे भूमिं शोणितौघतरङ्गिणीम्॥ ९॥

तब अर्जुनने उस महामनस्वी वीरके समस्त घोड़ोंको मारकर समरभूमिमें खूनकी नदी-सी बहा दी॥ ९॥

सर्वलोकवहां रौद्रां परलोकवहां नदीम्।
सरथान् रथिनः सर्वान् पार्थचापच्युतैः शरैः॥ १०॥

द्रौणेरपहृतान् संख्ये ददृशुः स च तां तथा।
प्रावर्तयन्महाघोरां नदीं परवहां तदा॥ ११॥

वह रक्तमयी भयंकर सरिता परलोकवाहिनी थी और सब लोगोंको अपने प्रवाहमें बहाये लिये जाती थी। वहाँ खड़े हुए सब लोगोंने देखा कि अश्वत्थामाके सारे रथी अर्जुनके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा युद्धभूमिमें मारे गये। स्वयं अश्वत्थामाने भी उनकी वह अवस्था देखी। उस समय उसने भी महाभयंकर परलोकवाहिनी नदी बहा दी॥ १०-११॥

तयोस्तु व्याकुले युद्धे द्रौणेः पार्थस्य दारुणे।
अमर्यादं योधयन्तः पर्यधावन्त पृष्ठतः॥ १२॥

अश्वत्थामा और अर्जुनके उस भयंकर एवं घमासान युद्धमें सब योद्धा मर्यादारहित होकर युद्ध करते हुए आगे-पीछे सब ओर भागने लगे॥ १२॥

रथैर्हताश्वसूतैश्च हतारोहैश्च वाजिभिः।
द्विरदैश्च हतारोहैर्महामात्रैर्हतद्विपैः॥ १३॥
पार्थेन समरे राजन् कृतो घोरो जनक्षयः।
विहता रथिनः पेतुः पार्थचापच्युतैः शरैः॥ १४॥

रथोंके घोड़े और सारथि मार दिये गये। घोड़ोंके सवार नष्ट हो गये। गजारोही मार डाले गये और हाथी बचे रहे एवं कहीं हाथी ही मार डाले गये तथा महावत बचे रहे। राजन्! इस प्रकार समराङ्गणमें अर्जुनने घोर जनसंहार मचा दिया। उनके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा मारे जाकर बहुत-से रथी धराशायी हो गये॥ १३-१४॥

हयाश्च पर्यधावन्त मुक्तयोक्त्रास्ततस्ततः।
तद् दृष्ट्वा कर्म पार्थस्य द्रौणिराहवशोभिनः॥ १५॥
अर्जुनं जयतां श्रेष्ठं त्वरितोऽभ्येत्य वीर्यवान्।
विधुन्वानो महच्चापं कार्तस्वरविभूषितम्॥ १६॥
अवाकिरत्ततो द्रौणिः समन्तान्निशितैः शरैः।

घोड़ोंके बन्धन खुल गये और वे चारों ओर दौड़ लगाने लगे। युद्धमें शोभा पानेवाले अर्जुनका वह पराक्रम देखकर पराक्रमी द्रोणकुमार अश्वत्थामा तुरंत उनके पास आ गया और अपने सुवर्णभूषित विशाल धनुषको हिलाते हुए उसने विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ अर्जुनको पैने बाणोंद्वारा सब ओरसे ढक दिया॥ १५-१६½॥

भूयोऽर्जुनं महाराज द्रौणिरायम्य पत्रिणा॥ १७॥
वक्षोदेशे भृशं पार्थं ताडयामास निर्दयम्।

महाराज! तदनन्तर द्रोणकुमारने धनुष खींचकर छोड़े हुए पंखयुक्त बाणसे कुन्तीकुमार अर्जुनकी छातीपर पुनः बड़े जोरसे निर्दयतापूर्वक प्रहार किया॥ १७½॥

सोऽतिविद्धो रणे तेन द्रोणपुत्रेण भारत॥ १८॥
गाण्डीवधन्वा प्रसभं शरवर्षैरुदारधीः।
संछाद्य समरे द्रौणिं चिच्छेदास्य च कार्मुकम्॥ १९॥

भारत ! रणभूमिमें द्रोणपुत्रके द्वारा अत्यन्त घायल किये गये उदारबुद्धि गाण्डीवधारी अर्जुनने समराङ्गणमें बलपूर्वक बाणोंकी वर्षा करके अश्वत्थामाको ढक दिया और उसके धनुषको भी काट डाला ॥ १८-१९ ॥

स छिन्नधन्वा परिघं वज्रस्पर्शसमं युधि ।
आदाय चिक्षेप तदा द्रोणपुत्रः किरीटिने ॥ २० ॥

धनुष कट जानेपर द्रोणपुत्रने युद्धस्थलमें एक ऐसा परिघ हाथमें लिया, जिसका स्पर्श वज्रके समान कठोर था। उसने उस परिघको तत्काल ही किरीटधारी अर्जुनपर दे मारा॥

तमापतन्तं परिघं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ।
चिच्छेद सहसा राजन् प्रहसन्निव पाण्डवः ॥ २१ ॥

राजन् ! उस सुवर्णभूषित परिघको सहसा अपने ऊपर आते देख पाण्डुपुत्र अर्जुनने हँसते हुए-से उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥ २१ ॥

स पपात तदा भूमौ निकृत्तः पार्थसायकैः ।
विकीर्णः पर्वतो राजन् यथा वज्रेण ताडितः ॥ २२ ॥

नरेश्वर ! जैसे वज्रका मारा हुआ पर्वत टूट-फूटकर सब ओर बिखर जाता है, उसी प्रकार अर्जुनके बाणोंसे कटा हुआ वह परिघ उस समय पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २२ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज द्रोणपुत्रो महारथः ।
ऐन्द्रेण चास्त्रवेगेन बीभत्सुं समवाकिरत् ॥ २३ ॥

महाराज ! तब महारथी द्रोणपुत्रने कुपित होकर अर्जुनपर ऐन्द्रास्त्रद्वारा वेगपूर्वक बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥

तस्येन्द्रजालावततं समीक्ष्य
पार्थो राजन् गाण्डिवमाददे सः ।
ऐन्द्रं जालं प्रत्यहरत् तरस्वी
वरास्त्रमादाय महेन्द्रसृष्टम् ॥ २४ ॥

राजन् ! अर्जुनने अश्वत्थामाद्वारा किये हुए इन्द्रजालका विस्तार देखकर बड़े वेगसे गाण्डीव धनुष हाथमें लिया और महेन्द्रद्वारा निर्मित उत्तम अस्त्रका आश्रय लेकर उस इन्द्रजालका संहार कर दिया ॥ २४ ॥

विदार्य तज्जालमथेन्द्रमुक्तं
पार्थस्ततो द्रौणिरथं क्षणेन ।
प्रच्छादयामास ततोऽभ्युपेत्य
द्रौणिस्तदा पार्थशराभिभूतः ॥ २५ ॥

इस प्रकार इन्द्रास्त्रद्वारा छोड़े गये उस बाण-जालको विदीर्ण करके अर्जुनने निकटवर्ती होकर क्षणभरमें अश्वत्थामाके रथको ढक दिया। उस समय अश्वत्थामा अर्जुनके बाणोंसे अभिभूत हो गया था ॥ २५ ॥

विगाह्य तां पाण्डवबाणवृष्टिं
शरैः परं नाम ततः प्रकाश्य ।
शतेन कृष्णं सहसाभ्यविद्ध्यत्
त्रिभिः शतैरर्जुनं क्षुद्रकाणाम् ॥ २६ ॥

तदनन्तर अश्वत्थामाने अपने बाणोंद्वारा अर्जुनकी उस बाण-वर्षाका निवारण करके अपना नाम प्रकाशित करते हुए सहसा सौ बाणोंसे श्रीकृष्णको घायल कर दिया और अर्जुनपर भी तीन सौ बाणोंका प्रहार किया ॥ २६ ॥

ततोऽर्जुनः सायकानां शतेन
गुरोः सुतं मर्मसु निर्बिभेद ।
अश्वांश्च सूतं च तथा धनुर्ज्या-
मवाकिरत् पश्यतां तावकानाम् ॥ २७ ॥

इसके बाद अर्जुनने सौ बाणोंसे गुरुपुत्रके मर्मस्थानोंको विदीर्ण कर दिया तथा आपके पुत्रोंके देखते-देखते उसके घोड़ों, सारथि, धनुष और प्रत्यञ्चापर बाणोंकी झड़ी लगा दी॥

स विद्ध्वा मर्मसु द्रौणिं पाण्डवः परवीरहा ।
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ २८ ॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले पाण्डुपुत्र अर्जुनने अश्वत्थामाके मर्मस्थानोंमें चोट पहुँचाकर एक भल्लसे उसके सारथिको रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया ॥ २८ ॥

स संगृह्य स्वयं वाहान् कृष्णौ प्राच्छादयच्छरैः ।
तत्राद्भुतमपश्याम द्रौणेराशु पराक्रमम् ॥ २९ ॥
प्रायच्छत्तुरगान् यच्च फाल्गुनं चाप्ययोधयत् ।
यदस्य समरे राजन् सर्वे योधा अपूजयन् ॥ ३० ॥

तब उसने स्वयं ही घोड़ोंकी बागडोर हाथमें लेकर श्रीकृष्ण और अर्जुनको बाणोंसे ढक दिया। वहाँ हमने द्रोणपुत्रका शीघ्र प्रकट होनेवाला वह अद्भुत पराक्रम देखा कि वह घोड़ोंको भी काबूमें रखता था और अर्जुनके साथ युद्ध भी करता था। राजन् ! समराङ्गणमें सभी योद्धाओंने उसके इस कार्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ २९-३० ॥

ततः प्रहस्य बीभत्सुर्द्रोणपुत्रस्य संयुगे ।
क्षिप्रं रश्मीनथाश्वानां क्षुरप्रैश्चिच्छिदे जयः ॥ ३१ ॥

तदनन्तर विजयी अर्जुनने हँसकर युद्धस्थलमें द्रोणपुत्रके घोड़ोंकी बागडोरोंको क्षुरप्रोंद्वारा शीघ्रतापूर्वक काट दिया॥

प्राद्रवंस्तुरगास्ते तु शरवेगप्रपीडिताः ।
ततोऽभून्निनदो घोरस्तव सैन्यस्य भारत ॥ ३२ ॥

भारत ! इसके बाद बाणोंके वेगसे अत्यन्त पीड़ित हुए उसके घोड़े वहाँसे भाग चले। उस समय वहाँ आपकी सेनामें भयंकर कोलाहल मच गया ॥ ३२ ॥

पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा तव सैन्यं समाद्रवन् ।
समन्तान्निशितान् बाणान् विमुञ्चन्तो जयैषिणः ॥ ३३ ॥

पाण्डव विजय पाकर आपकी सेनापर टूट पड़े और पुनः विजयकी अभिलाषा ले चारों ओरसे पैने बाणोंका प्रहार करने लगे ॥ ३३ ॥

पाण्डवैस्तु महाराज धार्तराष्ट्री महाचमूः ।
पुनः पुनरथो वीरैरभज्जि जितकाशिभिः ॥ ३४ ॥

महाराज ! विजयसे उल्लसित होनेवाले पाण्डवोंने दुर्योधनकी विशाल सेनामें बारंबार भगदड़ मचा दी ॥ ३४ ॥

पश्यतां ते महाराज पुत्राणां चित्रयोधिनाम् ।
शकुनेः सौबलेयस्य कर्णस्य च विशाम्पते ॥ ३५ ॥

नरेश्वर ! प्रजानाथ ! विचित्रयुद्ध करनेवाले आपके पुत्रोंके, सुबलपुत्र शकुनिके तथा कर्णके देखते-देखते यह सब हो रहा था॥

वध्यमाना महासेना पुत्रैस्तव जनेश्वर ।
न वारितापि संग्रामे पीड्यमाना समन्ततः ॥ ३६ ॥

जनेश्वर ! सब ओरसे पीड़ित हुई आपकी विशाल सेना आपके पुत्रोंके बहुत रोकनेपर भी युद्धभूमिमें खड़ी न रह सकी ॥ ३६ ॥

ततो योधैर्महाराज पलायद्भिः समन्ततः ।
अभवद् व्याकुलं भीतं पुत्राणां ते महद् बलम् ॥३७॥

महाराज ! सब ओर भागनेवाले योद्धाओंके कारण आपके पुत्रोंकी वह विशाल सेना भयभीत और व्याकुल हो उठी ॥ ३७ ॥

तिष्ठ तिष्ठेति च ततः सूतपुत्रस्य जल्पतः ।
नावतिष्ठति सा सेना वध्यमाना महात्मभिः ॥ ३८ ॥

सूतपुत्र कर्ण 'ठहरो, ठहरो' की पुकार करता ही रह गया; परंतु महामनस्वी पाण्डवोंकी मार खाती हुई वह सेना किसी तरह ठहर न सकी ॥ ३८ ॥

जयोत्कुष्टं महाराज पाण्डवैर्जितकाशिभिः ।
धार्तराष्ट्रबलं दृष्ट्वा विद्रुतं वै समन्ततः ॥ ३९ ॥

महाराज ! दुर्योधनकी सेनाको सब ओर भागती देख विजयसे उल्लसित होनेवाले पाण्डव जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे ॥ ३९ ॥

ततो दुर्योधनः कर्णमब्रवीत् प्रणयादिव ।
पश्य कर्ण महासेना पञ्चालैरर्दिता भृशम् ॥ ४० ॥

उस समय दुर्योधनने कर्णसे प्रेमपूर्वक कहा—'कर्ण ! देखो, पाञ्चालोंने मेरी इस विशाल सेनाको अत्यन्त पीड़ित कर दिया है ॥ ४० ॥

त्वयि तिष्ठति संत्रासात् पलायनपरायणा ।
एतज्ज्ञात्वा महाबाहो कुरु प्राप्तमरिंदम ॥ ४१ ॥

'शत्रुदमन महाबाहु वीर ! तुम्हारे रहते हुए भयके कारण मेरी सेना भाग रही है; यह जानकर इस समय जो कर्तव्य प्राप्त हो उसे करो ॥ ४१ ॥

सहस्राणि च योधानां त्वामेव पुरुषोत्तम ।
क्रोशन्ति समरे वीर द्राव्यमाणानि पाण्डवैः ॥ ४२ ॥

'पुरुषोत्तम ! वीर ! पाण्डवोंद्वारा खदेड़े जानेवाले सहस्रों कौरव सैनिक समराङ्गणमें तुम्हें ही पुकार रहे हैं' ॥ ४२ ॥

एतच्छ्रुत्वापि राधेयो दुर्योधनवचो महान् ।
मद्रराजमिदं वाक्यमब्रवीत् प्रहसन्निव ॥ ४३ ॥

महावीर राधापुत्र कर्णने दुर्योधनकी यह बात सुनकर मद्रराज शल्यसे हँसते हुए-से इस प्रकार कहा—॥ ४३ ॥

पश्य मे भुजयोर्वीर्यमस्त्राणां च जनेश्वर ।
अद्य हन्मि रणे सर्वान् पञ्चालान् पाण्डुभिः सह ॥४४॥
वाहयाश्वान् नरव्याघ्र भद्रेणैव न संशयः ।

'नरेश्वर ! आज तुम मेरी दोनों भुजाओं और अस्त्रोंका बल देखो । मैं रणभूमिमें पाण्डवोंसहित समस्त पाञ्चालोंका वध किये देता हूँ, इसमें संशय नहीं है। पुरुषसिंह ! आप कल्याण-चिन्तनपूर्वक ही इन घोड़ोंको आगे बढ़ाइये' ॥४४½॥

एवमुक्त्वा महाराज सूतपुत्रः प्रतापवान् ॥ ४५ ॥
प्रगृह्य विजयं वीरो धनुः श्रेष्ठं पुरातनम् ।
सज्यं कृत्वा महाराज संगृह्य च पुनः पुनः ॥ ४६ ॥
संनिवार्य च योधान् स सत्येन शपथेन च ।
प्रायोजयदमेयात्मा भार्गवास्त्रं महाबलः ॥ ४७ ॥

महाराज ! ऐसा कहकर प्रतापी वीर सूतपुत्र कर्णने अपने विजय नामक श्रेष्ठ एवं पुरातन धनुषको लेकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी; फिर उसे बारंबार हाथमें लेकर सत्यकी शपथ दिलाते हुए समस्त योद्धाओंको रोका । इसके बाद अमेय आत्मबलसे सम्पन्न उस महाबली वीरने भार्गवास्त्रका प्रयोग किया ॥

ततो राजन् सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
कोटिशश्च शरास्तीक्ष्णा निरगच्छन् महामृधे ॥ ४८ ॥

राजन् ! फिर तो उस महासमरमें सहस्रों, लाखों, करोड़ों और अरबों तीखे बाण उस अस्त्रसे प्रकट होने लगे ॥ ४८ ॥

ज्वलितैस्तैः शरैर्घोरैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ।
संछन्ना पाण्डवी सेना न प्राज्ञायत किंचन ॥ ४९ ॥

कङ्क और मोरकी पाँखवाले उन प्रज्वलित एवं भयंकर बाणोंद्वारा पाण्डव-सेना आच्छादित हो गयी । कुछ भी सूझ नहीं पड़ता था ॥ ४९ ॥

हाहाकारो महानासीत् पञ्चालानां विशाम्पते ।
पीडितानां बलवता भार्गवास्त्रेण संयुगे ॥ ५० ॥

प्रजानाथ ! प्रबल भार्गवास्त्रसे समराङ्गणमें पीड़ित होनेवाले पाञ्चालोंका महान् हाहाकार सब ओर गूँजने लगा॥५०॥

निपतद्भिर्गजै राजन्नश्वैश्चापि सहस्रशः ।
रथैश्चापि नरव्याघ्र नरैश्चैव समन्ततः ॥ ५१ ॥
प्राकम्पत मही राजन् निहतैस्तैः समन्ततः ।
व्याकुलं सर्वमभवत् पाण्डवानां महद् बलम् ॥ ५२ ॥

राजन् ! गिरते हुए हाथियों, सहस्रों घोड़ों, रथों और मारे गये पैदल मनुष्योंके गिरनेसे सारी पृथ्वी सब ओर कम्पित होने लगी । पाण्डवोंकी सारी विशाल सेना व्याकुल हो गयी ॥ ५१–५२ ॥

कर्णस्त्वेको युधां श्रेष्ठो विधूम इव पावकः ।
दहञ्शत्रून् नरव्याघ्र शुशुभे स परंतपः ॥ ५३ ॥

नरव्याघ्र ! शत्रुओंको तपानेवाला योद्धाओंमें श्रेष्ठ एक-

मात्र कर्ण ही धूमरहित अग्निके समान शत्रुओंको दग्ध करता हुआ शोभा पा रहा था ॥ ५३ ॥

ते वध्यमानाः कर्णेन पञ्चालाश्चेदिभिः सह ।
तत्र तत्र व्यमुह्यन्त वनदाहे यथा द्विपाः ॥ ५४ ॥

जैसे वनमें आग लगनेपर उसमें रहनेवाले हाथी जहाँ-तहाँ दग्ध होकर मूर्छित हो जाते हैं, उसी प्रकार कर्णके द्वारा मारे जानेवाले पाञ्चाल और चेदि योद्धा यत्र-तत्र मूर्छित होकर पड़े थे ॥ ५४ ॥

चुक्रुशुश्च नरव्याघ्र यथा व्याघ्रा नरोत्तमाः ।
तेषां तु क्रोशतामासीद् भीतानां रणमूर्धनि ॥ ५५ ॥
धावतां च ततो राजंस्त्रस्तानां च समन्ततः ।
आर्तनादो महांस्तत्र भूतानामिव सम्प्लवे ॥ ५६ ॥

पुरुषसिंह ! वे श्रेष्ठ योद्धा व्याघ्रोंके समान चीत्कार करते थे । राजन् ! युद्धके मुहानेपर भयभीत हो चिल्लाते और डरकर सब ओर भागते हुए उन सैनिकोंका महान् आर्तनाद प्रलयकालमें समस्त प्राणियोंके चीत्कारके समान जान पड़ता था ॥ ५५-५६ ॥

वध्यमानांस्तु तान् दृष्ट्वा सूतपुत्रेण मारिष ।
वित्रेसुः सर्वभूतानि तिर्यग्योनिगतान्यपि ॥ ५७ ॥

आर्य ! सूतपुत्रके द्वारा मारे जाते हुए उन योद्धाओंको देखकर समस्त प्राणी पशु-पक्षी भी भयसे थर्रा उठे ॥ ५७ ॥

ते वध्यमानाः समरे सूतपुत्रेण संजयाः ।
अर्जुनं वासुदेवं च क्रोशन्ति च मुहुर्मुहुः ॥ ५८ ॥
प्रेतराजपुरे यद्वत् प्रेतराजं विचेतसः ।

सूतपुत्रद्वारा समराङ्गणमें मारे जाते हुए संजय बारंबार अर्जुन और श्रीकृष्णको पुकारते थे । ठीक उसी तरह, जैसे प्रेतराजके नगरमें क्लेशसे अचेत हुए प्राणी प्रेतराजको ही पुकारते हैं ॥ ५८½ ॥

श्रुत्वा तु निनदं तेषां वध्यतां कर्णसायकैः ॥ ५९ ॥
अथाब्रवीद् वासुदेवं कुन्तीपुत्रो धनंजयः ।
भार्गवास्त्रं महाघोरं दृष्ट्वा तत्र समीरितम् ॥ ६० ॥

कर्णके बाणोंद्वारा मारे जाते हुए उन सैनिकोंका आर्तनाद सुनकर तथा वहाँ महाभयंकर भार्गवास्त्रका प्रयोग हुआ देखकर कुन्तीपुत्र अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—॥

पश्य कृष्ण महाबाहो भार्गवास्त्रस्य विक्रमम् ।
नैतदस्त्रं हि समरे शक्यं हन्तुं कथञ्चन ॥ ६१ ॥

'महाबाहु श्रीकृष्ण ! यह भार्गवास्त्रका पराक्रम देखिये । समराङ्गणमें किसी तरह इस अस्त्रको नष्ट नहीं किया जा सकता॥

सूतपुत्रं च संरब्धं पश्य कृष्ण महारणे ।
अन्तकप्रतिमं वीर्ये कुर्वाणं कर्म दारुणम् ॥ ६२ ॥

'श्रीकृष्ण ! देखिये, क्रोधमें भरा हुआ सूतपुत्र, जो पराक्रममें यमराजके समान है, महासमरमें कैसा दारुण कर्म कर रहा है ॥ ६२ ॥

अभीक्ष्णं चोदयन्नश्वान् प्रेक्षते मां मुहुर्मुहुः ।
न च पश्यामि समरे कर्णं प्रति पलायितुम् ॥ ६३ ॥

'वह निरन्तर घोड़ोंको हाँकता हुआ बारंबार मेरी ही ओर देख रहा है । समरभूमिमें कर्णके सामनेसे पलायन करना मैं उचित नहीं समझता ॥ ६३ ॥

जीवन् प्राप्नोति पुरुषः संख्ये जयपराजयौ ।
मृतस्य तु हृषीकेश भङ्ग एव कुतो जयः ॥ ६४ ॥

'मनुष्य जीवित रहे तो वह युद्धमें विजय और पराजय दोनों पाता है । हृषीकेश ! मरे हुए मनुष्यका तो नाश ही हो जाता है; फिर उसकी विजय कहाँसे हो सकती है' ॥६४॥

एवमुक्तस्तु पार्थेन कृष्णो मतिमतां वरम् ।
धनंजयमुवाचेदं प्राप्तकालमरिंदमम् ॥ ६५ ॥

अर्जुनके ऐसा कहनेपर श्रीकृष्णने बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ शत्रुदमन अर्जुनसे यह समयोचित बात कही—॥ ६५ ॥

कर्णेन हि दृढं राजा कुन्तीपुत्रः परिक्षितः ।
तं दृष्ट्वाऽऽश्वास्य च पुनः कर्णं पार्थ वधिष्यसि॥ ६६ ॥

'पार्थ ! कर्णने राजा युधिष्ठिरको अत्यन्त क्षत-विक्षत कर दिया है । उनसे मिलकर उन्हें धीरज बँधाकर फिर तुम कर्णका वध करना' ॥ ६६ ॥

एवमुक्त्वा पुनः प्रायाद् द्रष्टुमिच्छन् युधिष्ठिरम् ।
श्रमेण ग्राहयिष्यंश्च युद्धे कर्णं विशाम्पते ॥ ६७ ॥

प्रजानाथ ! ऐसा कहकर वे पुनः युधिष्ठिरसे मिलनेकी इच्छासे तथा कर्णको युद्धमें अधिक थकावट प्राप्त करानेके लिये वहाँसे चल दिये ॥ ६७ ॥

ततो धनंजयो द्रष्टुं राजानं बाणपीडितम् ।
रथेन प्रययौ क्षिप्रं संग्रामात् केशवाज्ञया ॥ ६८ ॥

तत्पश्चात् अर्जुन श्रीकृष्णकी आज्ञासे बाणपीड़ित राजा युधिष्ठिरको देखनेके लिये रथके द्वारा युद्धस्थलसे शीघ्रतापूर्वक गये ॥ ६८ ॥

गच्छन्नेव तु कौन्तेयो धर्मराजदिदृक्षया ।
सैन्यमालोकयामास नापश्यत् तत्र चाग्रजम् ॥ ६९ ॥
युद्धं कृत्वा तु कौन्तेयो द्रोणपुत्रेण भारत ।
दुःसहं वज्रिणा संख्ये पराजित्य गुरोः सुतम् ॥ ७० ॥

भारत ! कुन्तीकुमार अर्जुनने द्रोणपुत्रके साथ युद्ध करके रणभूमिमें वज्रधारी इन्द्रके लिये भी दुःसह उस गुरुपुत्रको पराजित करनेके पश्चात् जाते समय धर्मराजको देखनेकी इच्छासे सारी सेनापर दृष्टिपात किया । परंतु वहाँ कहीं भी अपने बड़े भाईको नहीं देखा ॥ ६९-७० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि धर्मराजशोधने चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें युधिष्ठिरकी खोजविषयक चौसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

भीमसेनको युद्धका भार सौंपकर श्रीकृष्ण और अर्जुनका युधिष्ठिरके पास जाना

संजय उवाच

द्रौणिं पराजित्य ततोऽग्रधन्वा
कृत्वा महद् दुष्करं शूरकर्म ।
आलोकयामास ततः स्वसैन्यं
धनंजयः शत्रुभिरप्रधृष्यः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! तदनन्तर उत्तम धनुष धारण करनेवाले तथा शत्रुओंके लिये अजेय अर्जुनने दूसरोंके लिये दुष्कर वीरोचित कर्म करके अश्वत्थामाको हराकर फिर अपनी सेनाका निरीक्षण किया ॥ १ ॥

स युध्यमानान् पृतनामुखस्थाञ्
शूरः शूरान् हर्षयन् सव्यसाची ।
पूर्वप्रहारैर्मथितान् प्रशंसन्
स्थिरांश्चकारात्मरथाननीके ॥ २ ॥

सव्यसाची शूरवीर अर्जुन युद्धके मुहानेपर खड़े होकर युद्ध करनेवाले अपने शूरवीर सैनिकोंका हर्ष बढ़ाते हुए तथा पहलेके प्रहारोंसे क्षत-विक्षत हुए अपने रथियोंकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए उन सबको अपनी सेनामें स्थिरतापूर्वक स्थापित किया ॥ २ ॥

अपश्यमानस्तु किरीटमाली
युधिष्ठिरं भ्रातरमाजमीढम् ।
उवाच भीमं तरसाभ्युपेत्य
राज्ञः प्रवृत्तिं त्विह कुत्र राजा ॥ ३ ॥

परंतु वहाँ अपने भाई अजमीढकुल-नन्दन युधिष्ठिरको न देखकर किरीटधारी अर्जुनने बड़े वेगसे भीमसेनके पास जा उनसे राजाका समाचार पूछते हुए कहा—'भैया ! इस समय हमारे महाराज कहाँ हैं ?' ॥ ३ ॥

भीमसेन उवाच

अपयात इतो राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
कर्णबाणाभितप्ताङ्गो यदि जीवेत् कथञ्चन ॥ ४ ॥

भीमसेनने कहा—धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर यहाँसे हट गये हैं। कर्णके बाणोंसे उनके सारे अङ्ग संतप्त हो रहे हैं। सम्भव है, वे किसी प्रकार जी रहे हों ॥ ४ ॥

अर्जुन उवाच

तस्माद् भवाञ्शीघ्रमितः प्रयातु
राज्ञः प्रवृत्त्यै कुरुसत्तमस्य ।
नूनं स विद्धोऽतिभृशं पृषत्कैः
कर्णेन राजा शिबिरं गतोऽसौ ॥ ५ ॥

अर्जुन बोले—यदि ऐसी बात है तो आप कुरुश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरका समाचार लानेके लिये शीघ्र ही यहाँसे जायँ। निश्चय ही कर्णके बाणोंसे अत्यन्त घायल होकर राजा शिबिरमें चले गये हैं ॥ ५ ॥

यः सम्प्रहारैर्निशितैः पृषत्कै-
र्द्रोणेन विद्धोऽतिभृशं तरस्वी ।
तस्थौ स तत्रापि जयप्रतीक्षो
द्रोणोऽपि यावन्न हतः किलासीत् ॥ ६ ॥
स संशयं गमितः पाण्डवाग्र्यः
संख्येऽद्य कर्णेन महानुभावः ।
ज्ञातुं प्रयाह्याशु तमद्य भीम
स्थास्याम्यहं शत्रुगणान् निरुद्ध्य ॥ ७ ॥

भैया भीमसेन ! जो वेगशाली वीर युधिष्ठिर द्रोणाचार्यके द्वारा किये गये प्रहारों तथा अत्यन्त तीखे बाणोंसे अच्छी तरह घायल किये जानेपर भी विजयकी प्रतीक्षामें तबतक युद्धस्थलमें डटे रहे, जबतक कि आचार्य द्रोण मारे नहीं गये। वे महानुभाव पाण्डव-शिरोमणि आज कर्णके द्वारा संग्राममें संशयापन्न अवस्थामें डाल दिये गये हैं; अतः आप शीघ्र ही उनका समाचार जाननेके लिये जाइये, मैं यहाँ शत्रुओंको रोके रहूँगा ॥ ६-७ ॥

भीमसेन उवाच

त्वमेव जानीहि महानुभाव
राज्ञः प्रवृत्तिं भरतर्षभस्य ।
अहं हि यद्यर्जुन यास्यमित्रा
वदन्ति मां भीत इति प्रवीराः ॥ ८ ॥

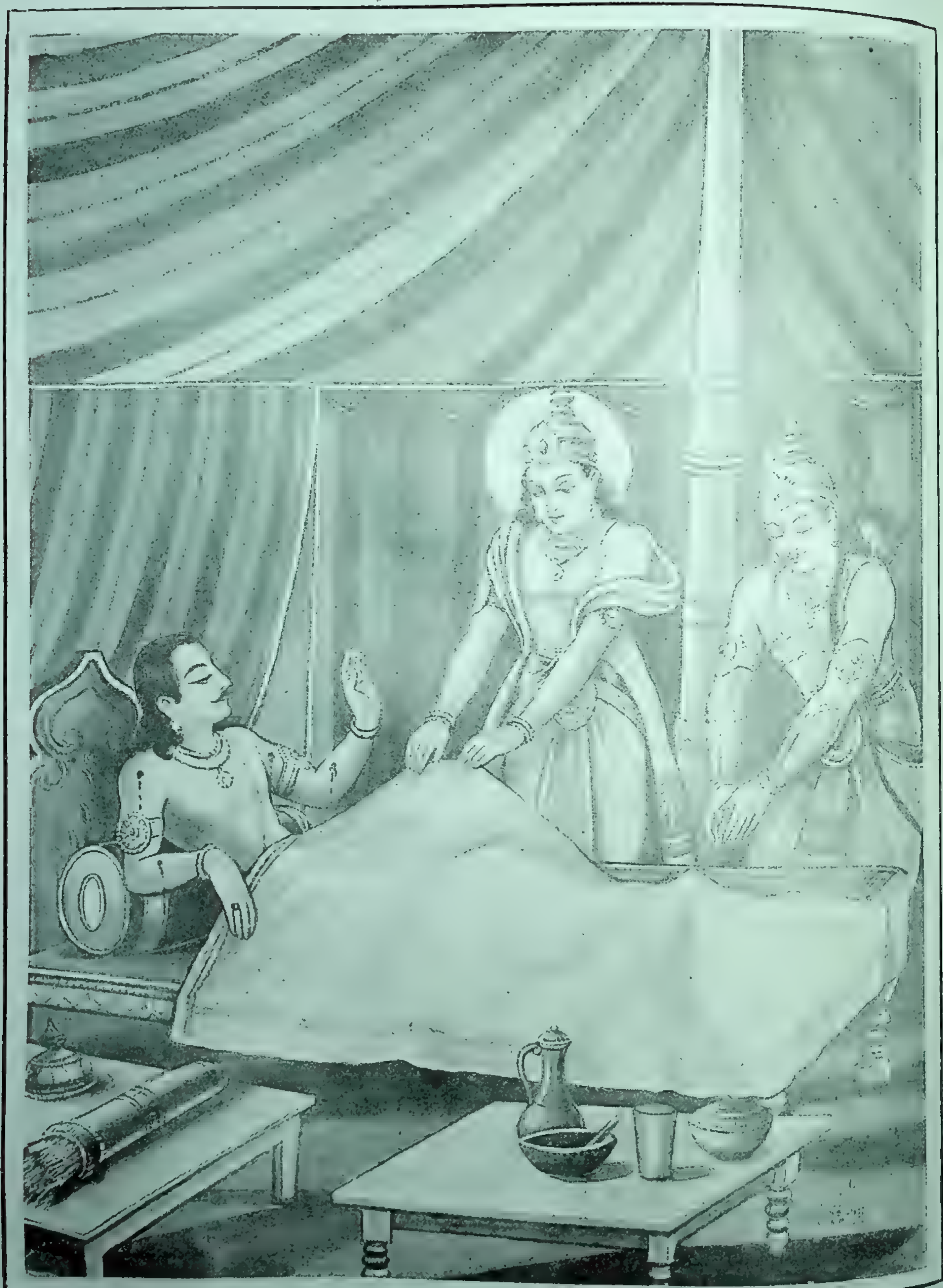
भीमसेनने कहा—महानुभाव ! तुम्हीं जाकर भरत-कुल-भूषण नरेशका समाचार जानो। अर्जुन ! यदि मैं यहाँसे जाऊँगा तो मेरे वीर शत्रु मुझे डरपोक कहेंगे ॥ ८ ॥

ततोऽब्रवीदर्जुनो भीमसेनं
संशप्तकाः प्रत्यनीकं स्थिता मे ।
एतानहत्वाद्य मया न शक्य-
मितोऽपयातुं रिपुसङ्घगोष्ठात् ॥ ९ ॥

तब अर्जुनने भीमसेनसे कहा—'भैया ! संशप्तकगण मेरे विपक्षमें खड़े हैं। इन्हें मारे बिना आज मैं इस शत्रु-समुदायरूपी गोष्ठसे बाहर नहीं जा सकता' ॥ ९ ॥

अथाब्रवीदर्जुनं भीमसेनः
स्ववीर्यमासाद्य कुरुप्रवीर ।
संशप्तकान् प्रतियोत्स्यामि संख्ये
सर्वानहं याहि धनंजय त्वम् ॥ १० ॥

यह सुनकर भीमसेनने अर्जुनसे कहा—'कुरुकुलके श्रेष्ठ वीर धनंजय ! मैं अपने ही बलका भरोसा करके संग्राम-भूमिमें सम्पूर्ण संशप्तकोंके साथ युद्ध करूँगा, तुम जाओ' ॥ १० ॥



धर्मराजके चरणोंमें श्रीकृष्ण एवं अर्जुन प्रणाम कर रहे हैं

संजय उवाच

तद् भीमसेनस्य वचो निशम्य
सुदुष्करं भ्रातुरमित्रमध्ये ।
संशप्तकानीकमसह्यमेकः
सुदुष्करं धारयामीति पार्थः ॥ ११ ॥
उवाच नारायणमप्रमेयं
कपिध्वजः सत्यपराक्रमस्य ।
श्रुत्वा वचो भ्रातुरदीनसत्त्व-
स्तदाहवे सत्यवचो महात्मा ।
द्रष्टुं कुरुश्रेष्ठमभिप्रयास्यन्
प्रोवाच वृष्णिप्रवरं तदानीम् ॥ १२ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! शत्रुओंकी मण्डलीमें अपने भाई भीमसेनका यह अत्यन्त दुष्कर वचन सुनकर कि 'मैं अकेला ही असह्य संशप्तक सेनाका सामना करूँगा' उदार हृदय-वाले महात्मा कपिध्वज अर्जुनने सत्यपराक्रमी भाई भीमके उस सत्य वचनको श्रवणगोचर करके उसे अप्रमेय, वृष्णिवंशा-वतंस नारायणावतार भगवान् श्रीकृष्णको बताया और उस समय कुरुश्रेष्ठ युधिष्ठिरका दर्शन करनेकी इच्छासे जानेको उद्यत हो इस प्रकार कहा ॥ ११-१२ ॥

अर्जुन उवाच

चोदयाश्वान् हृषीकेश विहायैतद् बलार्णवम् ।
अजातशत्रुं राजानं द्रष्टुमिच्छामि केशव ॥ १३ ॥

अर्जुन बोले—हृषीकेश ! अब आप इस शत्रुसेनारूपी समुद्रको छोड़कर घोड़ोंको यहाँसे हाँक ले चलें । केशव ! मैं अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरका दर्शन करना चाहता हूँ ॥ १३ ॥

संजय उवाच

ततो हयान् सर्वदाशार्हमुख्यः
प्रचोदयन् भीममुवाच चेदम् ।
नैतच्चित्रं तव कर्माद्य भीम
यास्याम्यहं जहि पार्थारिसंघान् ॥ १४ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर सम्पूर्ण दाशार्ह-वंशियोंमें प्रधान भगवान् श्रीकृष्ण अपने घोड़े हाँकते हुए वहाँ भीमसेनसे इस प्रकार बोले 'कुन्तीनन्दन भीम ! आज यह पराक्रम तुम्हारे लिये कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । मैं जा रहा हूँ । तुम शत्रु-समूहोंका संहार करो' ॥ १४ ॥

ततो ययौ हृषीकेशो यत्र राजा युधिष्ठिरः ।
शीघ्राच्छीघ्रतरं राजन् वाजिभिर्गरुडोपमैः ॥ १५ ॥

राजन् ! यह कहकर भगवान् हृषीकेश गरुड़के समान वेगशाली घोड़ोंद्वारा शीघ्र-से-शीघ्र वहाँ जा पहुँचे, जहाँ राजा युधिष्ठिर विश्राम कर रहे थे ॥ १५ ॥

प्रत्यनीके व्यवस्थाप्य भीमसेनमरिंदमम् ।
संदिश्य चैतं राजेन्द्र युद्धं प्रति वृकोदरम् ॥ १६ ॥

ततस्तु गत्वा पुरुषप्रवीरौ
राजानमासाद्य शयानमेकम् ।
रथादुभौ प्रत्यवरुह्य तस्माद्
ववन्दतुर्धर्मराजस्य पादौ ॥ १७ ॥

राजेन्द्र ! शत्रुओंका सामना करनेके लिये शत्रुदमन वृकोदर भीमसेनको स्थापित करके और युद्धके विषयमें उन्हें पूर्वोक्त संदेश देकर वे दोनों पुरुष-शिरोमणि अकेले सोये हुए राजा युधिष्ठिरके पास जा रथसे नीचे उतरे और उन्होंने धर्मराजके चरणोंमें प्रणाम किया ॥ १६-१७ ॥

तं दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रं क्षेमिणं पुरुषर्षभम् ।
मुदाभ्युपगतौ कृष्णावश्विनाविव वासवम् ॥ १८ ॥
तावभ्यनन्दद् राजापि विवस्वानश्विनाविव ।
हते महासुरे जम्भे शक्रविष्णू यथा गुरुः ॥ १९ ॥

पुरुषसिंह पुरुषप्रवर श्रीकृष्ण एवं अर्जुनको सकुशल देखकर तथा दोनों कृष्णोंको इन्द्रके पास गये हुए अश्विनी-कुमारोंके समान प्रसन्नतापूर्वक अपने समीप आया जान राजा युधिष्ठिरने उनका उसी तरह अभिनन्दन किया, जैसे सूर्य दोनों अश्विनीकुमारोंका स्वागत करते हैं । अथवा जैसे महान् असुर जम्भके मारे जानेपर बृहस्पतिने इन्द्र और विष्णुका अभिनन्दन किया था ॥ १८-१९ ॥

मन्यमानो हतं कर्णं धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
हर्षगद्गदया वाचा प्रीतः प्राह परंतपः ॥ २० ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले धर्मराज युधिष्ठिरने कर्णको मारा गया मानकर हर्षगद्गद वाणीसे प्रसन्नतापूर्वक वार्तालाप आरम्भ किया ॥ २० ॥

अथोपयातौ पृथुलोहिताक्षौ
शराचिताङ्गौ रुधिरप्रदिग्धौ ।
समीक्ष्य सेनाग्रनरप्रवीरौ
युधिष्ठिरो वाक्यमिदं बभाषे ॥ २१ ॥

सेनाके अग्रभागमें युद्ध करनेवाले पुरुषोंमें प्रमुख वीर विशाल एवं लाल नेत्रोंवाले श्रीकृष्ण और अर्जुन जब समीप आये, तब उनके सारे अङ्गोंमें बाण धँसे हुए थे । वे खूनसे लथपथ हो रहे थे; उन्हें देखकर युधिष्ठिरने निम्नाङ्कित रूपसे बातचीत आरम्भ की ॥ २१ ॥

महासत्त्वौ हि तौ दृष्ट्वा सहितौ केशवार्जुनौ ।
हतमाधिरथिं मेने संख्ये गाण्डीवधन्वना ॥ २२ ॥

एक साथ आये हुए महान् शक्तिशाली श्रीकृष्ण और अर्जुनको देखकर उन्हें यह पक्का विश्वास हो गया था कि गाण्डीवधारी अर्जुनने युद्धस्थलमें अधिरथपुत्र कर्णको मार डाला है ॥ २२ ॥

तावभ्यनन्दत् कौन्तेयः साम्ना परमवल्गुना ।
स्मितपूर्वममित्रघ्नं पूजयन् भरतर्षभ ॥ २३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! यही सोचकर कुन्तीकुमार युधिष्ठिरने मुस्कराकर शत्रुसूदन श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा करते हुए परम मधुर और सान्त्वनापूर्ण वचनोंद्वारा उन दोनोंका अभिनन्दन किया ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि युधिष्ठिरं प्रति श्रीकृष्णार्जुनागमे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें युधिष्ठिरके पास श्रीकृष्ण और अर्जुनका आगमनविषयक पैंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमोऽध्यायः

युधिष्ठिरका अर्जुनसे भ्रमवश कर्णके मारे जानेका वृत्तान्त पूछना

युधिष्ठिर उवाच

स्वागतं देवकीमातः स्वागतं ते धनंजय।
प्रियं मे दर्शनं गाढं युवयोरच्युतार्जुनौ ॥ १ ॥
अक्षताभ्यामरिष्टाभ्यां हतः कर्णो महारथः।

युधिष्ठिर बोले—देवकीनन्दन ! तुम्हारा स्वागत हो। धनंजय ! तुम्हारा भी स्वागत है। श्रीकृष्ण और अर्जुन ! इस समय तुम दोनोंका दर्शन मुझे अत्यन्त प्रिय लगा है; क्योंकि तुम दोनोंने स्वयं किसी प्रकारकी क्षति न उठाकर सकुशल रहते हुए महारथी कर्णको मार डाला है ॥ १½ ॥

आशीविषसमं युद्धे सर्वशस्त्रविशारदम् ॥ २ ॥
अग्रगं धार्तराष्ट्राणां सर्वेषां शर्म वर्म च।
रक्षितं वृषसेनेन सुषेणेन च धन्विना ॥ ३ ॥

कर्ण युद्धमें विषधर सर्पके समान भयंकर, सम्पूर्ण शस्त्र-विद्याओंमें निपुण तथा कौरवोंका अगुआ था। वह शत्रुपक्षमें सबका कल्याण-साधक और कवच बना हुआ था। वृषसेन और सुषेण-जैसे धनुर्धर उसकी रक्षा करते थे ॥ २-३ ॥

अनुज्ञातं महावीर्यं रामेणास्त्रे सुदुर्जयम्।
अग्र्यं सर्वस्य लोकस्य रथिनं लोकविश्रुतम् ॥ ४ ॥

परशुरामजीसे अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करके वह महान् शक्तिशाली और अत्यन्त दुर्जय हो गया था। समस्त संसारका सर्वश्रेष्ठ रथी एवं विश्वविख्यात वीर था ॥ ४ ॥

त्रातारं धार्तराष्ट्राणां गन्तारं वाहिनीमुखे।
हन्तारं परसैन्यानाममित्रगणमर्दनम् ॥ ५ ॥

धृतराष्ट्र-पुत्रोंका रक्षक, सेनाके मुहानेपर जाकर युद्ध करनेवाला, शत्रु-सैनिकोंका संहार करनेमें समर्थ तथा विरोधियोंका मान मर्दन करनेवाला था ॥ ५ ॥

दुर्योधनहिते युक्तमस्मद्दुःखाय चोद्यतम्।
अप्रधृष्यं महायुद्धे देवैरपि सवासवैः ॥ ६ ॥

वह सदा दुर्योधनके हितमें संलग्न रहकर हमलोगोंको दुःख देनेके लिये उद्यत रहता था। महायुद्धमें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी उसे परास्त नहीं कर सकते थे ॥ ६ ॥

अनलानिलयोस्तुल्यं तेजसा च बलेन च।
पातालमिव गम्भीरं सुहृदां नन्दिवर्धनम् ॥ ७ ॥
अन्तकं मम मित्राणां हत्वा कर्णं महामृधे।
दिष्ट्या युवामनुप्राप्तौ जित्वासुरमिवामरौ ॥ ८ ॥

वह तेजमें अग्नि, बलमें वायु और गम्भीरतामें पातालके समान था। अपने मित्रोंका आनन्द बढ़ानेवाला और मेरे मित्रोंके लिये यमराजके समान था। किसी असुरको जीतकर आये हुए दो देवताओंके समान तुम दोनों मित्र महासमरमें कर्णको मारकर यहाँ आ गये, यह बड़े सौभाग्यकी बात है ॥

घोरं युद्धमदीनेन मया ह्यद्याच्युतार्जुनौ।
कृतं तेनान्तकेनेव प्रजाः सर्वा जिघांसता ॥ ९ ॥

श्रीकृष्ण और अर्जुन ! सम्पूर्ण प्रजाका संहार करनेकी इच्छा रखनेवाले कालके समान उस कर्णने आज मेरे साथ घोर युद्ध किया था। फिर भी मैंने उसमें दीनता नहीं दिखायी॥

तेन केतुश्च मे छिन्नो हतौ च पार्ष्णिसारथी।
हतवाहस्ततश्चास्मि युयुधानस्य पश्यतः ॥ १० ॥
धृष्टद्युम्नस्य यमयोर्वीरस्य च शिखण्डिनः।
पश्यतां द्रौपदेयानां पञ्चालानां च सर्वशः ॥ ११ ॥

उसने सात्यकि, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव, वीर शिखण्डी, द्रौपदीपुत्र तथा पाञ्चालोंके देखते-देखते मेरी ध्वजा काट डाली, पार्श्वरक्षकोंको मार डाला और मेरे घोड़ोंका भी संहार कर डाला था ॥ १०-११ ॥

एताञ्जित्वा महावीर्यः कर्णः शत्रुगणान् बहून्।
जितवान् मां महाबाहो यतमानो महारणे ॥ १२ ॥

महाबाहो ! महायुद्धमें विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले महापराक्रमी कर्णने इन बहुसंख्यक शत्रुगणोंको परास्त करके मुझपर विजय पायी थी ॥ १२ ॥

अभिसृत्य च मां युद्धे परुषाण्युक्तवान् बहु।
तत्र तत्र युधां श्रेष्ठ परिभूय न संशयः ॥ १३ ॥
भीमसेनप्रभावात्तु यज्जीवामि धनंजय।
बहुनात्र किमुक्तेन नाहं तत् सोढुमुत्सहे ॥ १४ ॥

योद्धाओंमें श्रेष्ठ वीर ! उसने युद्धमें मेरा पीछा करके जहाँ-तहाँ मुझे अपमानित करते हुए बहुत-से कटुवचन सुनाये हैं—इसमें संशय नहीं है। धनंजय ! मैं इस समय भीमसेनके प्रभावसे ही जीवित हूँ। यहाँ अधिक कहनेसे क्या लाभ ! मैं उस अपमानको किसी प्रकार सह नहीं सकता ॥ १३-१४ ॥

त्रयोदशाहं वर्षाणि यस्माद् भीतो धनंजय।
न स्म निद्रां लभे रात्रौ न चाहनि सुखं क्वचित् ॥ १५ ॥

अर्जुन ! मैं जिससे भयभीत होकर तेरह वर्षोंतक न

तो रातमें अच्छी तरह नींद ले सका और न दिनमें ही कहीं सुख पा सका ॥ १५ ॥

तस्य द्वेषेण संयुक्तः परिदह्ये धनंजय ।
आत्मनो मरणे यातो वार्ध्रीणस इव द्विपः ॥ १६ ॥

धनंजय ! मैं उसके द्वेषसे निरन्तर जलता रहा। जैसे वार्ध्रीणस नामक पशु अपनी मौतके लिये ही वधस्थानमें पहुँच जाय, उसी प्रकार मैं भी अपनी मृत्युके लिये कर्णका सामना करने चला गया था ॥ १६ ॥

तस्यायमगमत् कालश्चिन्तयानस्य मे चिरम् ।
कथं कर्णो मया शक्यो युद्धे क्षपयितुं भवेत् ॥ १७ ॥

मैं कर्णको युद्धमें कैसे मार सकता हूँ, यही सोचते हुए मेरा यह दीर्घकाल व्यतीत हुआ है ॥ १७ ॥

जाग्रत्स्वपंश्च कौन्तेय कर्णमेव सदा ह्यहम् ।
पश्यामि तत्र तत्रैव कर्णभूतमिदं जगत् ॥ १८ ॥

कुन्तीनन्दन ! मैं जागते और सोते समय सदा कर्णको ही देखा करता था। यह सारा जगत् मेरे लिये जहाँ-तहाँ कर्णमय हो रहा था ॥ १८ ॥

यत्र यत्र हि गच्छामि कर्णाद् भीतो धनंजय ।
तत्र तत्र हि पश्यामि कर्णमेवाग्रतः स्थितम् ॥ १९ ॥

धनंजय ! मैं जहाँ-जहाँ भी जाता, कर्णसे भयभीत होनेके कारण सदा उसीको अपने सामने खड़ा देखता था ॥ १९ ॥

सोऽहं तेनैव वीरेण समरेष्वपलायिना ।
सहयः सरथः पार्थ जित्वा जीवन् विसर्जितः ॥ २० ॥

पार्थ ! मैं समरभूमिमें कभी पीठ न दिखानेवाले उसी वीर कर्णके द्वारा रथ और घोड़ोंसहित परास्त करके केवल जीवित छोड़ दिया गया हूँ ॥ २० ॥

को नु मे जीवितेनार्थो राज्येनार्थो भवेत् पुनः ।
ममैवं विक्षतस्याद्य कर्णेनाहवशोभिना ॥ २१ ॥

अब मुझे इस जीवनसे तथा राज्यसे क्या प्रयोजन है ? जब कि आज युद्धमें शोभा पानेवाले कर्णने मुझे इस प्रकार क्षत-विक्षत कर डाला है ॥ २१ ॥

न प्राप्तपूर्वं यद् भीष्मात् कृपद्रोणाच्च संयुगे ।
तत् प्राप्तमद्य मे युद्धे सूतपुत्रान्महारथात् ॥ २२ ॥

पहले कभी भीष्म, द्रोण और कृपाचार्यसे भी मुझे युद्धस्थलमें जो अपमान नहीं प्राप्त हुआ था, वही आज महारथी सूतपुत्रसे युद्धमें प्राप्त हो गया है ॥ २२ ॥

स त्वां पृच्छामि कौन्तेय यथाद्य कुशलं तथा ।
तन्ममाचक्ष्व कार्त्स्न्येन यथा कर्णो हतस्त्वया ॥ २३ ॥

कुन्तीनन्दन ! इसीलिये मैं तुमसे पूछता हूँ कि आज जिस प्रकार सकुशल रहकर तुमने कर्णको मारा है, वह सारा समाचार मुझे पूर्णरूपसे बताओ ॥ २३ ॥

शक्रतुल्यबलो युद्धे यमतुल्यः पराक्रमे ।
रामतुल्यस्तथास्त्रेण स कथं वै निषूदितः ॥ २४ ॥

जो युद्धमें इन्द्रके समान बलवान्, यमराजके समान पराक्रमी और परशुरामजीके समान अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञाता था, वह कर्ण कैसे मारा गया ॥ २४ ॥

महारथः समाख्यातः सर्वयुद्धविशारदः ।
धनुर्धराणां प्रवरः सर्वेषामेकपूरुषः ॥ २५ ॥
पूजितो धृतराष्ट्रेण सपुत्रेण महाबलः ।
त्वदर्थमेव राधेयः स कथं निहतस्त्वया ॥ २६ ॥

जो सम्पूर्ण युद्धकी कलामें कुशल, विख्यात महारथी, धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ तथा सब शत्रुओंमें प्रधान पुरुष था, जिसे पुत्रसहित धृतराष्ट्रने तुम्हारा सामना करनेके लिये ही सम्मानपूर्वक रक्खा था, वह महाबली राधापुत्र कर्ण तुम्हारे द्वारा कैसे मारा गया ? ॥ २५-२६ ॥

धार्तराष्ट्रो हि योधेषु सर्वेष्वेव सदार्जुन ।
तव मृत्युं रणे कर्णं मन्यते पुरुषर्षभ ॥ २७ ॥

पुरुषप्रवर अर्जुन ! दुर्योधन रणक्षेत्रमें सम्पूर्ण योद्धाओंमेंसे कर्णको ही तुम्हारी मृत्यु मानता था ॥ २७ ॥

स त्वया पुरुषव्याघ्र कथं युद्धे निषूदितः ।
तन्ममाचक्ष्व कौन्तेय यथा कर्णो हतस्त्वया ॥ २८ ॥

कुन्तीपुत्र ! पुरुषसिंह ! तुमने कैसे युद्धमें उस कर्णको मारा है ? कर्ण जिस प्रकार तुम्हारे द्वारा मारा गया है, वह सब समाचार मुझे बताओ ॥ २८ ॥

युध्यमानस्य च शिरः पश्यतां सुहृदां हृतम् ।
त्वया पुरुषशार्दूल सिंहेनेव यथा रुरोः ॥ २९ ॥

पुरुषसिंह ! जैसे सिंह रुरु नामक मृगका मस्तक काट लेता है, उसी प्रकार तुमने समस्त सुहृदोंके देखते-देखते जो जूझते हुए कर्णका सिर धड़से अलग कर दिया है, वह किस प्रकार सम्भव हुआ ॥ २९ ॥

यः पर्युपासीत् प्रदिशो दिशश्च
त्वां सूतपुत्रः समरे परीप्सन् ।
दित्सुः कर्णः समरे हस्तिषड्गवं
स हीदानीं कङ्कपत्रैः सुतीक्ष्णैः ॥ ३० ॥
त्वया रणे निहतः सूतपुत्रः
कच्चिच्छेते भूमितले दुरात्मा ।
प्रियश्च मे परमो वै कृतोऽयं
त्वया रणे सूतपुत्रं निहत्य ॥ ३१ ॥

अर्जुन ! समराङ्गणमें जो सूतपुत्र कर्ण सम्पूर्ण दिशाओं और विदिशाओंमें तुम्हें पानेके लिये चक्कर लगाता था और तुम्हारा पता बतानेवालेको हाथीके समान छः बैल देना चाहता था, वही दुरात्मा सूतपुत्र क्या इस समय रणभूमिमें तुम्हारे द्वारा कङ्कपत्रयुक्त तीखे बाणोंसे मारा जाकर पृथ्वीपर सो रहा है ? आज रणक्षेत्रमें सूतपुत्रको मारकर तुमने मेरा यह परम प्रिय कार्य पूर्ण किया है ? ॥ ३०-३१ ॥

यः सर्वतः पर्यपतत्त्वदर्थे
सदार्चितो गर्वितः सूतपुत्रः।
स शूरमानी समरे समेत्य
कच्चित्त्वया निहतः संयुगेऽसौ ॥ ३२ ॥

जो सदा सम्मानित होकर घमंडमें भरा हुआ सूतपुत्र तुम्हारे लिये सब ओर धावा किया करता था, अपनेको शूर-वीर माननेवाले उस कर्णको समराङ्गणमें उसके साथ युद्ध करके क्या तुमने मार डाला है ? ॥ ३२ ॥

रौक्मं वरं हस्तिगजाश्वयुक्तं
रथं प्रदित्सुर्यः परेभ्यस्त्वदर्थे।
सदा रणे स्पर्धते यः स पापः
कच्चित्त्वया निहतस्तात युद्धे ॥ ३३ ॥

तात ! जो रणक्षेत्रमें तुम्हारा पता बतानेके लिये दूसरोंको हाथी-घोड़ोंसे युक्त सोनेका बना हुआ सुन्दर रथ देनेका हौसला रखता और सदा तुमसे होड़ लगाता था, वह पापी क्या युद्ध-स्थलमें तुम्हारे द्वारा मार डाला गया ? ॥ ३३ ॥

योऽसौ सदा शूरमदेन मत्तो
विकत्थते संसदि कौरवाणाम्।
प्रियोऽत्यर्थं तस्य सुयोधनस्य
कच्चित् सपापो निहतस्त्वयाद्य ॥ ३४ ॥

जो शौर्यके मदसे उन्मत्त हो कौरवोंकी सभामें सदा बढ़-बढ़कर बातें बनाया करता था और दुर्योधनको अत्यन्त प्रिय था, क्या उस पापी कर्णको तुमने आज मार डाला ? ॥ ३४ ॥

कच्चित् समागम्य धनुःप्रयुक्तै-
स्त्वत्प्रेषितैर्लोहिताङ्गैर्विहङ्गैः।
शेते स पापः सुविभिन्नगात्रः
कच्चिद् भग्नौ धार्तराष्ट्रस्य बाहू ॥ ३५ ॥

क्या आज युद्धमें तुमसे भिड़कर तुम्हारे द्वारा धनुषसे छोड़े गये लाल अङ्गोंवाले आकाशचारी बाणोंसे सारा शरीर छिन्न-भिन्न हो जानेके कारण वह पापी कर्ण आज पृथ्वीपर पड़ा है ? क्या उसके मरनेसे दुर्योधनकी दोनों बाँहें टूट गयीं ? ॥

योऽसौ सदा श्लाघते राजमध्ये
दुर्योधनं हर्षयन् दर्पपूर्णः।
अहं हन्ता फाल्गुनस्येति मोहात्
कच्चिद्वचस्तस्य न वै तथा तत् ॥ ३६ ॥

जो राजाओंके बीचमें दुर्योधनका हर्ष बढ़ाता हुआ घमंडमें भरकर सदा मोहवश यह डींग हाँकता था कि मैं अर्जुनका वध कर सकता हूँ। क्या उसकी वह बात आज निष्फल हो गयी ? ॥ ३६ ॥

नाहं पादौ धावयिष्ये कदाचित्
यावत् स्थितः पार्थ इत्यल्पबुद्धेः।
व्रतं तस्यैतत् सर्वदा शक्रसूनो
कच्चित् त्वया निहतः सोऽद्य कर्णः॥ ३७ ॥

इन्द्रकुमार ! उस मन्दबुद्धि कर्णने सदाके लिये यह व्रत ले रक्खा था कि जबतक कुन्तीकुमार अर्जुन जीवित हैं, तबतक मैं दूसरोंसे पैर नहीं धुलाऊँगा। क्या उस कर्णको तुमने आज मार डाला ? ॥ ३७ ॥

योऽसौ कृष्णामब्रवीद् दुष्टबुद्धिः
कर्णः सभायां कुरुवीरमध्ये।
किं पाण्डवांस्त्वं न जहासि कृष्णे
सुदुर्बलान् पतितान् हीनसत्त्वान् ॥ ३८ ॥

जिस दुष्टबुद्धिवाले कर्णने कौरव-वीरोंके बीच भरी सभामें द्रौपदीसे कहा था कि 'कृष्णे ! तू इन अत्यन्त दुर्बल, पतित और शक्तिहीन पाण्डवोंको छोड़ क्यों नहीं देती ?' ॥ ३८ ॥

योऽसौ कर्णः प्रत्यजानात्त्वदर्थे
नाहं हत्वा सह कृष्णेन पार्थम्।
इहोपयातेति स पापबुद्धिः
कच्चिच्छेते शरसम्भिन्नगात्रः ॥ ३९ ॥

'जिस कर्णने तुम्हारे लिये यह प्रतिज्ञा की थी कि 'आज मैं श्रीकृष्णसहित अर्जुनको मारे बिना यहाँ नहीं लौटूँगा' क्या वह पापात्मा तुम्हारे बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर धरतीपर पड़ा है ? ॥ ३९ ॥

कच्चित् संग्रामो विदितो वै तवायं
समागमे सृञ्जयकौरवाणाम्।
यत्रावस्थामीदृशीं प्रापितोऽहं
कच्चित् त्वया सोऽद्य हतो दुरात्मा ॥ ४० ॥

क्या तुम्हें आजके संघर्षमें सृंजयों और कौरवोंका जो यह संग्राम हुआ था, उसका समाचार ज्ञात हुआ है, जिसमें मैं ऐसी दुर्दशाको पहुँचा दिया गया। क्या तुमने आज उस दुरात्मा कर्णको मार डाला ? ॥ ४० ॥

कच्चित्त्वया तस्य सुमन्दबुद्धे-
र्गाण्डीवमुक्तैर्विशिखैर्ज्वलद्भिः।
सकुण्डलं भानुमदुत्तमाङ्गं
कायात् प्रकृत्तं युधि सव्यसाचिन् ॥ ४१ ॥

सव्यसाची अर्जुन ! क्या तुमने युद्धस्थलमें गाण्डीव धनुषसे छोड़े गये प्रज्वलित बाणोंद्वारा उस मन्दबुद्धि कर्णके कुण्डलमण्डित तेजस्वी मस्तकको धड़से काट गिराया ? ॥ ४१ ॥

यत्तन्मया बाणसमर्पितेन
ध्यातोऽसि कर्णस्य वधाय वीर।
तन्मे त्वया कच्चिदमोघमद्य
ध्यानं कृतं कर्णनिपातनेन ॥ ४२ ॥

वीर ! जिस समय मैं बाणोंसे घायल कर दिया गया, उस समय कर्णके वधके लिये मैंने तुम्हारा चिन्तन किया था। क्या तुमने कर्णको धराशायी करके मेरे उस चिन्तनको आज सफल बना दिया ? ॥ ४२ ॥

यद् दर्पपूर्णः स सुयोधनोऽस्मा-
नुदीक्षते कर्णसमाश्रयेण ।
कच्चित् त्वया सोऽद्य समाश्रयोऽस्य
भग्नः पराक्रम्य सुयोधनस्य ॥ ४३ ॥

कर्णका आश्रय लेकर दुर्योधन जो बड़े घमंडमें भरकर हमलोगोंकी ओर देखा करता था। क्या तुमने दुर्योधनके उस महान् आश्रयको आज पराक्रम करके नष्ट कर दिया ?॥

यो नः पुरा षण्ढतिलानवोचत्
सभामध्ये कौरवाणां समक्षम् ।
स दुर्मतिः कच्चिदुपेत्य संख्ये
त्वया हतः सूतपुत्रो ह्यमर्षी ॥ ४४ ॥

जिसने पूर्वकालमें सभा-भवनके भीतर कौरवोंकी आँखों-के सामने हमें थोथे तिलोंके समान नपुंसक बताया था वह अमर्षशील दुर्बुद्धि सूतपुत्र क्या आज युद्धमें आकर तुम्हारे हाथसे मारा गया ? ॥ ४४ ॥

यः सूतपुत्रः प्रहसन् दुरात्मा
पुराब्रवीन्निर्जितां सौबलेन ।
स्वयं प्रसह्यानय याज्ञसेनी-
मपीह कच्चित् स हतस्त्वयाद्य ॥ ४५ ॥

जिस दुरात्मा सूतपुत्र कर्णने हँसते-हँसते पहले दुःशासन-से यह बात कही थी कि 'सुबलपुत्रके द्वारा जीती हुई द्रुपद-कुमारीको तुम स्वयं जाकर बलपूर्वक यहाँ ले आओ' क्या तुमने आज उसे मार डाला ? ॥४५ ॥

यः शस्त्रभृच्छ्रेष्ठतमः पृथिव्यां
पितामहं व्याक्षिपदल्पचेताः ।
संख्यायमानोऽर्धरथः स कच्चित्
त्वया हतोऽद्याधिरथिर्महात्मन् ॥ ४६ ॥

महात्मन् ! जो पृथ्वीपर समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठतम समझा जाता था तथा जिस मूर्खने अर्धरथी गिना जानेपर पितामह भीष्मके ऊपर महान् आक्षेप किया था; उस अधि-रथपुत्रको क्या तुमने आज मार डाला ?॥४६ ॥

अमर्षजं निकृतिसमीरणेरितं
हृदि स्थितं ज्वलनमिमं सदा मम ।
हतो मया सोऽद्य समेत्य कर्ण
इति ब्रुवन् प्रशमयसेऽद्य फाल्गुन ॥४७॥

फाल्गुन ! मेरे हृदयमें जिस कर्णकी शठतारूपी वायुसे प्रेरित हो अमर्षकी आग सदा प्रज्वलित रहती है 'उस कर्ण-को आज युद्धमें पाकर मैंने मार डाला' ऐसा कहते हुए क्या तुम आज मेरी उस आगको बुझा दोगे ? ॥ ४७ ॥

ब्रवीहि मे दुर्लभमेतदद्य
कथं त्वया निहतः सूतपुत्रः ।
अनुध्याये त्वां सततं प्रवीर
वृत्रे हतेऽसौ भगवानिवेन्द्रः ॥ ४८ ॥

बोलो, मेरे लिये यह समाचार अत्यन्त दुर्लभ है। वीरवर ! तुमने सूतपुत्रको कैसे मारा ? मैं वृत्रासुरके मारे जानेपर भगवान् इन्द्रके समान सदा तुम्हारे विजयी स्वरूपका चिन्तन करता हूँ ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि युधिष्ठिरवाक्ये षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें युधिष्ठिरवाक्यविषयक छाछठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

अर्जुनका युधिष्ठिरसे अबतक कर्णको न मार सकनेका कारण बताते हुए उसे मारनेके लिये प्रतिज्ञा करना

संजय उवाच

तद् धर्मशीलस्य वचो निशम्य
राज्ञः क्रुद्धस्यातिरथो महात्मा ।
उवाच दुर्धर्षमदीनसत्त्वं
युधिष्ठिरं जिष्णुरनन्तवीर्यः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! क्रोधमें भरे हुए धर्मात्मा नरेशकी वह बात सुनकर अनन्त पराक्रमी अतिरथी महात्मा विजयशील अर्जुनने उदारचित्त एवं दुर्जय राजा युधिष्ठिरसे इस प्रकार कहा ॥ १ ॥

अर्जुन उवाच

संशप्तकैर्युध्यमानस्य मेऽद्य
सेनाग्रयायी कुरुसैन्येषु राजन् ।
आशीविषाभान् खगमान् प्रमुञ्चन्
द्रौणिः पुरस्तात् सहसाभ्यतिष्ठत् ॥ २ ॥

राजन् ! आज जब मैं संशप्तकोंके साथ युद्ध कर रहा था, उस समय कौरवसेनाका अगुआ द्रोणपुत्र अश्वत्थामा विषधर सर्पके समान भयंकर बाणोंका प्रहार करता हुआ सहसा मेरे सामने आकर खड़ा हो गया ॥ २ ॥

दृष्ट्वा रथं मेघरवं ममैव
समस्तसेना च रणेऽभ्यतिष्ठत् ।
तेषामहं पञ्च शतानि हत्वा
ततो द्रौणिमगमं पार्थिवाग्र्य ॥ ३ ॥

भूपालशिरोमणे ! इधर कौरवोंकी सारी सेना मेघके समान गम्भीर घर्घर ध्वनि करनेवाले मेरे रथको देखकर युद्ध-

के लिये डटकर खड़ी हो गयी, तब मैंने उस सेनामेंसे पाँच सौ वीरोंका वध करके आचार्यपुत्रपर आक्रमण किया ॥ ३॥

स मां समासाद्य नरेन्द्र यत्तः
समभ्ययात् सिंहमिव द्विपेन्द्रः ।
अकार्षीच्च रथिनामुज्जिहीर्षां
महाराज वध्यतां कौरवाणाम् ॥ ४ ॥

नरेन्द्र ! जैसे गजराज सिंहकी ओर दौड़े, उसी प्रकार अश्वत्थामाने मुझे सामने पाकर विजयके लिये प्रयत्नशील हो मुझपर आक्रमण किया। महाराज ! उसने मारे जाते हुए कौरव रथियोंका उद्धार करनेकी इच्छा की ॥ ४ ॥

ततो रणे भारत दुष्प्रकम्प्य
आचार्यपुत्रः प्रवरः कुरूणाम् ।
मामर्दयामास शितैः पृषत्कै-
र्जनार्दनं चैव विषाग्निकल्पैः ॥ ५ ॥

भारत ! तदनन्तर कौरवोंके प्रधान वीर दुर्धर्ष आचार्यपुत्रने रणक्षेत्रमें विष और अग्निके समान भयंकर तीखे बाणोंद्वारा मुझे और श्रीकृष्णको पीड़ित करना प्रारम्भ किया।५।

अष्टागवामष्ट शतानि बाणान्
मया प्रयुद्धस्य वहन्ति तस्य ।
तांस्तेन मुक्तानहमस्य बाणै-
र्व्यनाशयं वायुरिवाभ्रजालम् ॥ ६ ॥

मेरे साथ युद्ध करते समय अश्वत्थामाके लिये आठ-आठ बैलोंसे जुते हुए आठ छकड़े सैकड़ों-हजारों बाण ढोते रहते थे। उसके चलाये हुए उन सभी बाणोंको मैंने अपने बाणोंसे मारकर उसी तरह नष्ट कर दिया, जैसे वायु मेघोंके समूहको छिन्न-भिन्न कर देती है ॥ ६ ॥

ततोऽपरान् बाणसंघाननेका-
नाकर्णपूर्णायतविप्रमुक्तान् ।
ससर्ज शिक्षास्त्रबलप्रयत्नै-
स्तथा यथा प्रावृषि कालमेघः ॥ ७ ॥

तत्पश्चात् जैसे वर्षाकालमें मेघोंकी काली घटा जलकी वर्षा करती है, उसी प्रकार शिक्षा, अस्त्र, बल और प्रयत्नोंद्वारा धनुषको कानतक खींचकर छोड़े गये बहुत-से बाणसमूह उसने बरसाये ॥ ७ ॥

नैवाददानं न च संदधानं
जानीमहे कतरेणास्यतीति ।
वामेन वा यदि वा दक्षिणेन
स द्रोणपुत्रः समरे पर्यवर्तत् ॥ ८ ॥

द्रोणपुत्र अश्वत्थामा समरभूमिमें चारों ओर चक्कर लगाने लगा। वह कब बाण लेता, कब उसे धनुषपर रखता और कब किस हाथसे बायें अथवा दायेंसे छोड़ता था, यह हमलोग नहीं जान पाते थे ॥ ८ ॥

तस्याततं मण्डलमेव सज्यं
प्रदृश्यते कार्मुकं द्रोणसूनोः ।
सोऽविध्यन्मां पञ्चभिर्द्रोणपुत्रः
शितैः शरैः पञ्चभिर्वासुदेवम् ॥ ९ ॥

केवल प्रत्यञ्चासहित तना हुआ उस द्रोणपुत्रका मण्डलाकार धनुष ही दिखायी देता था। उसने पाँच तीखे बाणोंसे मुझको और पाँचसे श्रीकृष्णको भी घायल कर दिया ॥ ९ ॥

अहं हि तं त्रिंशता वज्रकल्पैः
समार्दयं निमिषस्यान्तरेण ।
क्षणाच्छ्वावित्समरूपो बभूव
समार्दितो मद्विसृष्टैः पृषत्कैः ॥ १० ॥

तब मैंने पलक मारते-मारते वज्रके समान तीस सुदृढ़ बाणोंद्वारा उसे क्षणभरमें पीड़ित कर दिया। मेरे छोड़े हुए बाणोंसे घायल होनेपर उसका स्वरूप काँटोंसे भरे साहीके समान दिखायी देने लगा ॥ १० ॥

स विक्षरन् रुधिरं सर्वगात्रे
रथानीकं सूतसूनोर्विवेश ।
मयाभिभूतान् सैनिकानां प्रबर्हा-
नसौ प्रपश्यन् रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ११ ॥

तब वह सारे शरीरसे खूनकी धारा बहाता हुआ मेरेद्वारा पीड़ित हुए समस्त सैनिक शिरोमणियोंको खूनसे लथपथ देखकर सूतपुत्र कर्णकी रथसेनामें घुस गया ॥ ११ ॥

ततोऽभिभूतं युधि वीक्ष्य सैन्यं
वित्रस्तयोधं द्रुतवाजिनागम् ।
पञ्चाशता रथमुख्यैः समेत्य
कर्णस्त्वरन् मामुपायात् प्रमाथी ॥ १२ ॥

तत्पश्चात् युद्धस्थलमें अपनी सेनाके योद्धाओंको भयसे आक्रान्त और हाथी-घोड़ोंको भागते देख पचास मुख्य-मुख्य रथियोंको साथ ले शत्रुओंको मथ डालनेवाला कर्ण बड़ी उतावलीके साथ मेरे पास आया ॥ १२ ॥

तान् सूदयित्वाहमपास्य कर्णं
द्रष्टुं भवन्तं त्वरयाभियातः ।
सर्वे पञ्चाला ह्युद्विजन्ते स्म कर्णं
दृष्ट्वा गावः केसरिणं यथैव ॥ १३ ॥

उन पचासों रथियोंका संहार करके कर्णको छोड़कर मैं बड़ी उतावलीके साथ आपका दर्शन करनेके लिये चला आया हूँ। जैसे गौएँ सिंहको देखकर डर जाती हैं, उसी प्रकार सारे पाञ्चालसैनिक कर्णको देखकर उद्विग्न हो उठते हैं ॥ १३ ॥

मृत्योरास्यं व्यात्तमिवाभिपद्य
प्रभद्रकाः कर्णमासाद्य राजन् ।
रथांस्तु तान् सप्तशतान् निमग्नां-
स्तदा कर्णः प्राहिणोन्मृत्युसद्म ॥ १४ ॥

राजन्! मृत्युके फैले हुए मुँहके समान कर्णके पास पहुँचकर प्रभद्रकगण भारी संकटमें पड़ गये। कर्णने युद्धके समुद्रमें डूबे हुए उन सात सौ रथियोंको तत्काल मृत्युके लोकमें भेज दिया था॥ १४॥

न चाप्यभूत् क्लान्तमनाः स राजन्
यावन्नास्मान् दृष्टवान् सूतपुत्रः।
श्रुत्वा तु त्वां तेन दृष्टं समेत-
मश्वत्थाम्ना पूर्वतरं क्षतं च॥ १५॥
मन्ये कालमपयानस्य राजन्
क्रूरात् कर्णात् तेऽहमचिन्त्यकर्मन्।

अचिन्त्यकर्मा नरेश्वर! जबतक सूतपुत्रने हमलोगोंको नहीं देखा था, तबतक उसके मनमें उद्वेग या खेद नहीं हुआ था। मैंने जब सुना कि उसने पहले आपपर दृष्टिपात किया था और आपसे उसका युद्ध भी हुआ था, साथ ही उससे भी पहले अश्वत्थामाने आपको क्षत-विक्षत कर दिया था, तब क्रूरकर्मा कर्णके सामनेसे आपका यहाँ चला आना ही मुझे समयोचित प्रतीत हुआ॥ १५½॥

मया कर्णस्यास्त्रमिदं पुरस्ताद्
युद्धे दृष्टं पाण्डव चित्ररूपम्॥ १६॥
न ह्यन्ययोद्धा विद्यते सृञ्जयानां
महारथं योऽद्य सहेत कर्णम्।

पाण्डुनन्दन! मैंने युद्धमें अपने सामने कर्णके इस विचित्र अस्त्रको देखा था। संजयोंमें दूसरा कोई ऐसा योद्धा नहीं है, जो आज महारथी कर्णका सामना कर सके॥१६½॥

शैनेयो मे सात्यकिश्चक्ररक्षौ
धृष्टद्युम्नश्चापि तथैव राजन्॥ १७॥
युधामन्युश्चोत्तमौजाश्च शूरौ
पृष्ठतो मां रक्षतां राजपुत्रौ।

राजन्! शिनिपौत्र सात्यकि और धृष्टद्युम्न मेरे चक्ररक्षक हों; युधामन्यु और उत्तमौजा, ये दोनों शूरवीर राजकुमार मेरे पृष्ठभागकी रक्षा करें॥ १७½॥

रथप्रवीरेण महानुभाव
द्विषत्सैन्ये वर्तता दुस्तरेण॥ १८॥
समेत्याहं सूतपुत्रेण संख्ये
वृत्रेण वज्रीव नरेन्द्रमुख्य।
योत्स्याम्यहं भारत सूतपुत्र-
मस्मिन् संग्रामे यदि वै दृश्यतेऽद्य॥१९॥

महानुभाव! भरतवंशी नृपश्रेष्ठ! शत्रुसेनामें विद्यमान रथियोंमें प्रमुख वीर दुर्जय सूतपुत्र कर्णके साथ, यदि इस संग्राममें आज वह मुझे दीख जाय तो युद्धस्थलमें मिलकर मैं उसी तरह युद्ध करूँगा, जैसे वज्रधारी इन्द्रने वृत्रासुरके साथ किया था॥ १८-१९॥

आयाहि पश्याद्य युयुत्समानं
मां सूतपुत्रस्य रणे जयाय।
महोरगस्येव मुखं प्रपन्नाः
प्रभद्रकाः कर्णमभिद्रवन्ति॥ २०॥

आइये, देखिये, आज मैं रणभूमिमें सूतपुत्रपर विजय पानेके लिये युद्ध करना चाहता हूँ। प्रभद्रकगण कर्णपर धावा कर रहे हैं, ऐसा करके वे मानो अजगरके मुखमें पड़ गये हैं॥ २०॥

षट्साहस्रा भारत राजपुत्राः
स्वर्गाय लोकाय रणे निमग्नाः।
कर्णं न चेदद्य निहन्मि राजन्
सबान्धवं युध्यमानं प्रसह्य॥ २१॥
प्रतिश्रुत्याकुर्वतो वै गतिर्या
कष्टा याता तामहं राजसिंह।

भारत! छः हजार राजकुमार स्वर्गलोकमें जानेके लिये युद्धके सागरमें मग्न हो गये हैं। राजन्! राजसिंह! यदि आज मैं बन्धुओंसहित युद्धमें तत्पर हुए कर्णको हठपूर्वक न मार डालूँ तो प्रतिज्ञा करके उसका पालन न करनेवालेको जो दुःखदायी गति प्राप्त होती है, उसीको मैं भी पाऊँगा॥२१½॥

आमन्त्रये त्वां ब्रूहि जयं रणे मे
पुरा भीमं धार्तराष्ट्रा ग्रसन्ते॥ २२॥
सौतिं हनिष्यामि नरेन्द्रसिंह
सैन्यं तथा शत्रुगणांश्च सर्वान्॥ २३॥

मैं आपसे आज्ञा चाहता हूँ। आप रणभूमिमें मेरी विजयका आशीर्वाद दीजिये। नरेन्द्रसिंह! धृतराष्ट्रके पुत्र भीमसेनको ग्रस लेनेकी चेष्टा कर रहे हैं। मैं इसके पहले ही सूतपुत्र कर्णको, उसकी सेनाको तथा सम्पूर्ण शत्रुओंको मार डालूँगा॥ २२-२३॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अर्जुनवाक्ये सप्तषष्टितमोऽध्यायः॥ ६७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें अर्जुनवाक्यविषयक सरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ६७॥

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

युधिष्ठिरका अर्जुनके प्रति अपमानजनक क्रोधपूर्ण वचन

संजय उवाच

श्रुत्वा कर्णं कल्यमुदारवीर्यं
क्रुद्धः पार्थः फाल्गुनस्यामितौजाः।
धनंजयं वाक्यमुवाच चेदं
युधिष्ठिरः कर्णशराभितप्तः॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! कर्णके बाणोंसे संतप्त हुए अमित

तेजस्वी कुन्तीकुमार राजा युधिष्ठिर अधिक बलशाली कर्णको सकुशल सुनकर अर्जुनपर कुपित हो उनसे इस प्रकार बोले—॥

विप्रद्रुता तात चमूस्त्वदीया
तिरस्कृता चाद्य यथा न साधु।
भीतो भीमं त्यज्य चायास्तथा त्वं
यन्नाशकः कर्णमथो निहन्तुम्॥ २॥

'तात! तुम्हारी सारी सेना भाग चली है। तुमने आज उसकी ऐसी उपेक्षा की है, जो किसी प्रकार अच्छी नहीं कही जा सकती। जब तुम कर्णको जीत नहीं सके तो भयभीत हो भीमसेनको वहीं छोड़कर यहाँ चले आये॥ २॥

स्नेहस्त्वया पार्थ कृतः पृथाया
गर्भे समाविश्य यथा न साधु।
त्यक्त्वा रणे यदपायाः स भीमं
यन्नाशकः सूतपुत्रं निहन्तुम्॥ ३॥

'पार्थ! तुमने कुन्तीके गर्भमें निवास करके भी अपने सगे भाईके प्रति ऐसा स्नेह निभाया, जिसे कोई अच्छा नहीं कह सकता; क्योंकि जब तुम सूतपुत्र कर्णके मारनेमें समर्थ न हो सके, तब भीमसेनको अकेले रणभूमिमें छोड़कर स्वयं वहाँसे चले आये॥ ३॥

यत् तद् वाक्यं द्वैतवने त्वयोक्तं
कर्णं हन्तास्म्येकरथेन सत्यम्।
त्यक्त्वा तं वै कथमद्यापयातः
कर्णाद् भीतो भीमसेनं विहाय॥ ४॥

'तुमने द्वैतवनमें जो यह सत्य वचन कहा था कि 'मैं एकमात्र रथके द्वारा युद्ध करके कर्णको मार डालूँगा' उस प्रतिज्ञाको तोड़कर कर्णसे भयभीत हो भीमसेनको छोड़कर आज तुम रणभूमिसे लौट कैसे आये?॥ ४॥

इदं यदि द्वैतवनेऽप्यचक्षः
कर्णं योद्धुं न प्रशक्ष्ये नृपेति।
वयं ततः प्राप्तकालं च सर्वे
कृत्यान्युपैष्याम तथैव पार्थ॥ ५॥

'पार्थ! यदि तुमने द्वैतवनमें यह कह दिया होता कि 'राजन्! मैं कर्णके साथ युद्ध नहीं कर सकूँगा' तो हम सब लोग समयोचित कर्तव्यका निश्चय करके उसीके अनुसार कार्य करते॥ ५॥

मयि प्रतिश्रुत्य वधं हि तस्य
न वै कृतं तच्च तथैव वीर।
आनीय नः शत्रुमध्यं स कस्मात्
समुत्क्षिप्य स्थण्डिले प्रत्यपिष्टा॥ ६॥

'वीर! तुमने मुझसे कर्णके वधकी प्रतिज्ञा करके उसका उसी रूपमें पालन नहीं किया। यदि ऐसा ही करना था तो हमें शत्रुओंके बीचमें लाकर पत्थरकी वेदीपर पटककर पीस क्यों डाला?॥ ६॥

अप्याशिष्म वयमर्जुन त्वयि
यियासवो बहु कल्याणमिष्टम्।
तन्नः सर्वं विफलं राजपुत्र
फलार्थिनां विफल इवातिपुष्पः॥ ७॥

'राजकुमार अर्जुन! हमने बहुत-से मङ्गलमय अभीष्ट पदार्थ प्राप्त करनेकी इच्छा रखकर तुमपर आशा लगा रक्खी थी; परंतु फल चाहनेवाले मनुष्योंको अधिक फूलोंवाला फलहीन वृक्ष जैसे निराश कर देता है, उसी प्रकार तुमसे हमारी सारी आशा निष्फल हो गयी॥ ७॥

प्रच्छादितं बडिशमिवामिषेण
संछादितं गरलमिवाशनेन।
अनर्थकं मे दर्शितवानसि त्वं
राज्यार्थिनो राज्यरूपं विनाशम्॥ ८॥

'मैं राज्य पाना चाहता था; किंतु तुमने मांससे ढके हुए वंशीके काँटे और भोजनसामग्रीसे आच्छादित हुए विषके समान मुझे राज्यके रूपमें अनर्थकारी विनाशका ही दर्शन कराया है॥ ८॥

त्रयोदशेमा हि समाः सदा वयं
त्वामन्वजीविष्म धनंजयाशया।
काले वर्षं देवमिवोप्तबीजं
तन्नः सर्वान् नरके त्वं न्यमज्जः॥ ९॥

'धनंजय! जैसे बोया हुआ बीज समयपर मेघद्वारा की हुई वर्षाकी प्रतीक्षामें जीवित रहता है, उसी प्रकार हमने तेरह वर्षोंतक सदा तुमपर ही आशा लगाकर जीवन धारण किया था; परंतु तुमने हम सब लोगोंको नरकमें डुबो दिया (भारी संकटमें डाल दिया)॥ ९॥

यत्तत् पृथां वागुवाचान्तरिक्षे
सप्ताहजाते त्वयि मन्दबुद्धे।
जातः पुत्रो वासवविक्रमोऽयं
सर्वाञ्शूराञ्शात्रवाञ्जेष्यतीति॥ १०॥

मन्दबुद्धि अर्जुन! तुम्हारे जन्म लिये अभी सात ही दिन बीते थे कि माता कुन्तीसे आकाशवाणीने इस प्रकार कहना आरम्भ किया—'देवि! तुम्हारा यह पुत्र इन्द्रके समान पराक्रमी पैदा हुआ है। यह अपने समस्त शूरवीर शत्रुओंको जीत लेगा॥ १०॥

अयं जेता खाण्डवे देवसंघान्
सर्वाणि भूतान्यपि चोत्तमौजाः।
अयं जेता मद्रकलिङ्गकेकया-
नयं कुरून् राजमध्ये निहन्ता॥ ११॥

''यह उत्तम शक्तिसे सम्पन्न बालक खाण्डववनमें देवताओंके समूहों तथा सम्पूर्ण प्राणियोंपर भी विजय प्राप्त करेगा। यह मद्र, कलिंग और केकयोंको जीतेगा तथा राजाओंकी मण्डलीमें कौरवोंका भी विनाश कर डालेगा॥ ११॥

अस्मात् परो नो भविता धनुर्धरो
नैनं भूतं किंचन जातु जेता।
इच्छन्नयं सर्वभूतानि कुर्याद्
वशे वशी सर्वसमाप्तविद्यः ॥ १२ ॥

'इससे बढ़कर दूसरा कोई धनुर्धर नहीं होगा। कोई भी प्राणी कभी भी इसे जीत नहीं सकेगा। यह अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें रखता हुआ सम्पूर्ण विद्याओंको प्राप्त कर लेगा और इच्छा करते ही सभी प्राणियोंको अपने अधीन कर सकेगा ॥ १२ ॥

कान्त्या शशाङ्कस्य जवेन वायोः
स्थैर्येण मेरोः क्षमया पृथिव्याः।
सूर्यस्य भासा धनदस्य लक्ष्म्या
शौर्येण शक्रस्य बलेन विष्णोः ॥ १३ ॥

'यह चन्द्रमाकी कान्ति, वायुके वेग, मेरुकी स्थिरता, पृथ्वीकी क्षमा, सूर्यकी प्रभा, कुबेरकी लक्ष्मी, इन्द्रके शौर्य और भगवान् विष्णुके बलसे सम्पन्न होगा ॥ १३ ॥

तुल्यो महात्मा तव कुन्ति पुत्रो
जातोऽदितेर्विष्णुरिवारिहन्ता ।
स्वेषां जयाय द्विषतां वधाय
ख्यातोऽमितौजाः कुलतन्तुकर्ता ॥ १४ ॥

'कुन्ति! तुम्हारा यह महामनापुत्र अदितिके गर्भसे प्रकट हुए शत्रुहन्ता भगवान् विष्णुके समान उत्पन्न हुआ है। यह अमितबलशाली बालक स्वजनोंकी विजय और शत्रुओंके वधके लिये प्रसिद्ध एवं अपनी कुलपरम्पराका प्रवर्तक होगा' ॥ १४ ॥

इत्यन्तरिक्षे शतशृङ्गमूर्ध्नि
तपस्विनां शृण्वतां वागुवाच।
एवंविधं तच्च नाभूत् तथा च
देवापि नूनमनृतं वदन्ति ॥ १५ ॥

'शतशृङ्ग पर्वतके शिखरपर तपस्वी महात्माओंके सुनते हुए आकाशवाणीने ये बातें कही थीं; परंतु उसका यह कथन सफल नहीं हुआ। निश्चय ही देवतालोग भी झूठ बोलते हैं ॥ १५ ॥

तथा परेषामृषिसत्तमानां
श्रुत्वा गिरः पूजयतां सदा त्वाम्।
न संनतिं प्रैमि सुयोधनस्य
न त्वां जानाम्याधिरथेर्भयार्तम् ॥ १६ ॥

'इसी प्रकार दूसरे महर्षि भी सदा तुम्हारी प्रशंसा करते हुए ऐसी ही बातें कहा करते थे। उनकी बातें सुनकर ही मैं दुर्योधनके सामने कभी नतमस्तक न हो सका; परंतु मैं यह नहीं जानता था कि तुम अधिरथपुत्र कर्णके भयसे पीड़ित हो जाओगे ॥ १६ ॥

पूर्वं यदुक्तं हि सुयोधनेन
न फाल्गुनः प्रमुखे स्थास्यतीति।
कर्णस्य युद्धे हि महाबलस्य
मौर्ख्यात् तु तन्नावबुद्धं मयाऽऽसीत् ॥ १७॥

'दुर्योधनने पहले ही जो यह बात कह दी थी कि 'अर्जुन युद्धमें महाबली कर्णके सामने नहीं खड़े हो सकेंगे' उसके इस कथनपर मैंने मूर्खतावश विश्वास नहीं किया था ॥ १७॥

तेनाद्य तप्स्ये भृशमप्रमेयं
यच्छत्रुवर्गं नरकं प्रविष्टः।
तदैव वाच्योऽसि ननु त्वयाहं
न योत्स्येऽहं सूतपुत्रं कथंचित् ॥ १८ ॥
ततो नाहं सृञ्जयान् केकयांश्च
समानयेयं सुहृदो रणाय।

'इसीलिये आज संतप्त हो रहा हूँ। शत्रुओंके समुदायमें फँसकर अत्यन्त असीम नरकतुल्य सङ्कटमें पड़ गया हूँ। अर्जुन! तुम्हें पहले ही यह कह देना चाहिये था कि 'मैं सूतपुत्र कर्णके साथ किसी प्रकार युद्ध नहीं करूँगा'। वैसी दशामें मैं सृंजयों, केकयों तथा अन्यान्य सुहृदोंको युद्धके लिये आमन्त्रित नहीं करता ॥ १८½ ॥

एवं गते किंच मयाद्य शक्यं
कार्यं कर्तुं विग्रहे सूतजस्य ॥ १९ ॥
तथैव राज्ञश्च सुयोधनस्य
ये वापि मां योद्धुकामाः समेताः।

'आज जब ऐसी परिस्थिति है, तब सूतपुत्र कर्ण, राजा दुर्योधन तथा अन्य जो लोग मेरे साथ युद्धकी इच्छासे एकत्र हुए हैं, उन सबके साथ छिड़े हुए इस संग्राममें मैं कौन-सा कार्य कर सकता हूँ? ॥ १९½ ॥

धिगस्तु मज्जीवितमद्य कृष्ण
योऽहं वशं सूतपुत्रस्य यातः ॥ २० ॥
मध्ये कुरूणां सुहृदां च मध्ये
ये चाप्यन्ये योद्धुकामाः समेताः।

'श्रीकृष्ण! मैं कौरवों, सुहृदों तथा अन्य जो लोग युद्धकी इच्छासे एकत्र हुए हैं, उन सबके बीचमें आज सूतपुत्र कर्णके अधीन हो गया। मेरे जीवनको धिक्कार है ॥

(एकस्तु मे भीमसेनोऽद्य नाथो
येनाभिपन्नोऽस्मि रणे महाभये।
विमोच्य मां चापि रुषान्वितस्ततः
शरेण तीक्ष्णेन बिभेद कर्णम् ॥

'आज एकमात्र भीमसेन ही मेरे रक्षक हैं, जिन्होंने महान् भयदायक संग्राममें सब ओरसे मेरी रक्षा की है। उन्होंने मुझे संकटसे मुक्त करके अपने पैने बाणसे कर्णको बींध डाला था।

त्यक्त्वा प्राणान् समरे भीमसेन-
श्चक्रे युद्धं कुरुभिः समेतैः ।
गदाग्रहस्तो रुधिरोक्षिताङ्ग-
श्चरन् रणे काल इवान्तकाले ॥
असौ हि भीमस्य महान् निनादो
मुहुर्मुहुः श्रूयते धार्तराष्ट्रैः ॥)

'भीमसेनका शरीर खूनसे नहा उठा था । फिर भी वे हाथमें गदा लेकर प्रलयकालके यमराजकी भाँति रणभूमिमें विचरते थे और प्राणोंका मोह छोड़कर समराङ्गणमें एकत्र हुए कौरवोंके साथ युद्ध करते थे । धृतराष्ट्रके पुत्रोंके साथ युद्ध करते हुए भीमसेनका वह महान् सिंहनाद बारंबार सुनायी दे रहा है ॥

यदि स्म जीवेत् स भवेन्निहन्ता
महारथानां प्रवरो रथोत्तमः ।
तवाभिमन्युस्तनयोऽद्य पार्थ
न चास्मि गन्ता समरे पराभवम् ॥ २१ ॥
अथापि जीवेत् समरे घटोत्कच-
स्तथापि नाहं समरे पराङ्मुखः ।

'पार्थ ! यदि महारथियोंमें श्रेष्ठ और उत्तम रथी तुम्हारा पुत्र अभिमन्यु जीवित होता तो वह शत्रुओंका वध अवश्य करता । फिर तो समरभूमिमें मुझे ऐसा अपमान नहीं उठाना पड़ता । यदि समराङ्गणमें घटोत्कच भी जीवित होता तो भी मुझे वहाँसे मुँह फेरकर भागना नहीं पड़ता ॥ २१½ ॥

(भीमस्य पुत्रः समराग्रयायी
महास्त्रविच्चापि तवानुरूपः ।
यत्नं समासाद्य रिपोर्बलं नो
निमीलिताक्षं भयविप्लुतं भवेत् ॥

'भीमसेनका वह पुत्र समरभूमिमें आगे चलनेवाला, महान् अस्त्रवेत्ता और तुम्हारे समान ही पराक्रमी था । उसके होनेपर हमारे शत्रुओंकी सेना यत्न करके भी सफल न होती और भयसे व्याकुल होकर आँखें बंद कर लेती ॥

चकार योऽसौ निशि युद्धमेक-
स्त्यक्त्वा रणं यस्य भयाद् द्रवन्ते ।
स चेत् समासाद्य महानुभावः
कर्णं रणे बाणगणैः प्रमोह्य ।
धैर्ये स्थितेनापि च सूतजेन
शक्त्या हतो वासवदत्तया तया ॥)

'उस महानुभाव वीरने अकेले ही रात्रिमें युद्ध किया था, जिससे शत्रुसैनिक भयके मारे रणभूमि छोड़कर भागने लगे थे । उसने कर्णपर आक्रमण करके रणभूमिमें अपने बाण-समूहोंद्वारा सबको मोहमें डाल दिया था; परंतु धैर्यमें स्थित हुए सूतपुत्र कर्णने इन्द्रकी दी हुई उस शक्तिके द्वारा उसे मार डाला ॥

मम ह्यभाग्यानि पुरा कृतानि
पापानि नूनं बलवन्ति युद्धे ॥ २२ ॥
तृणं च कृत्वा समरे भवन्तं
ततोऽहमेवं निकृतो दुरात्मना ।
वैकर्तनेनैव तथा कृतोऽहं
यथा ह्यशक्तः क्रियते ह्यबान्धवः ॥ २३ ॥

'निश्चय ही मेरे अभाग्य और पूर्वकृत पाप इस युद्धमें प्रबल हो रहे हैं । दुरात्मा कर्णने संग्राममें तुम्हें तिनकेके समान समझकर मेरा ऐसा अपमान किया है । किसी शक्तिहीन तथा बन्धु-बान्धवोंसे रहित असहाय मनुष्यके साथ जैसा बर्ताव किया जाता है, कर्णने वैसा ही मेरे साथ किया है ॥

आपद्गतं कश्चन यो विमोक्षेत्
स बान्धवः स्नेहयुक्तः सुहृच्च ।
एवं पुराणा मुनयो वदन्ति
धर्मः सदा सद्भिरनुष्ठितश्च ॥ २४ ॥

'जो कोई पुरुष आपत्तिमें पड़े हुए मनुष्यको संकटसे छुड़ा देता है, वही बन्धु है और वही स्नेही सुहृद् । प्राचीन महर्षि ऐसा ही कहते हैं । यही सत्पुरुषोंद्वारा सदासे पालित होनेवाला धर्म है ॥ २४ ॥

त्वष्ट्रा कृतं वाहमकूजनाक्षं
शुभं समास्थाय कपिध्वजं तम् ।
खड्गं गृहीत्वा हेमपट्टानुबद्धं
धनुश्चेदं गाण्डिवं तालमात्रम् ॥ २५ ॥
स केशवेनोह्यमानः कथं त्वं
कर्णाद् भीतो व्यपयातोऽसि पार्थ ।

'कुन्तीनन्दन ! तुम्हारा रथ साक्षात् विश्वकर्माका बनाया हुआ है, उसके धुरेसे कोई आवाज नहीं होती । उसपर वानरध्वजा फहराती रहती है, ऐसे शुभलक्षण रथपर आरूढ़ हो सुवर्णजटित खड्ग और चार हाथके श्रेष्ठ धनुष गाण्डीव-को लेकर तथा भगवान् श्रीकृष्ण-जैसे सारथिके द्वारा संचालित होकर भी तुम कर्णसे भयभीत होकर कैसे भाग आये ? ॥

धनुश्च तत् केशवाय प्रयच्छ
यन्ता भविष्यस्त्वं रणे केशवस्य ॥ २६ ॥
तदाहनिष्यत् केशवः कर्णमुग्रं
मरुत्पतिर्वृत्रमिवात्तवज्रः ।

'तुम अपना गाण्डीव धनुष भगवान् श्रीकृष्णको दे दो तथा रणभूमिमें स्वयं इनके सारथि बन जाओ । फिर जैसे इन्द्रने हाथमें वज्र लेकर वृत्रासुरका वध किया था, उसी प्रकार ये श्रीकृष्ण भयंकर वीर कर्णको मार डालेंगे ॥ २६½ ॥

राधेयमेतं यदि नाद्य शक्त-
श्चरन्तमुग्रं प्रतिबाधनाय ॥ २७ ॥
प्रयच्छान्यस्मै गाण्डिवमेतदद्य
त्वत्तो योऽस्त्रैरभ्यधिको वा नरेन्द्रः ।

'यदि तुम आज रणभूमिमें विचरते हुए इस भयानक वीर राधापुत्र कर्णका सामना करनेकी शक्ति नहीं रखते तो अब यह गाण्डीव धनुष दूसरे किसी ऐसे राजाको दे दो, जो अस्त्र-बलमें तुमसे बढ़कर हो ॥ २७½ ॥

अस्मान् नैवं पुत्रदारैर्विहीनान्
सुखाद्भ्रष्टान् राज्यनाशाच्च भूयः॥ २८ ॥
द्रष्टा लोकः पतितानप्यगाधे
पापैर्जुष्टे नरके पाण्डवेय ।

'पाण्डुनन्दन ! ऐसा हो जानेपर संसारके मनुष्य हमें फिर इस प्रकार स्त्री-पुत्रोंके संयोगसे रहित, राज्य नष्ट होनेके कारण सुखसे वञ्चित तथा पापियोंद्वारा सेवित अगाध नरक-तुल्य कष्टमें गिरा हुआ नहीं देखेंगे ॥ २८½ ॥

मासेऽपतिष्यः पञ्चमे त्वं सुकृच्छ्रे
न वा गर्भे आभविष्यः पृथायाः ॥ २९ ॥
तत् ते श्रेयो राजपुत्राभविष्य-
न्न चेत् संग्रामादपयानं दुरात्मन् ।

'दुरात्मा राजपुत्र ! यदि तुम पाँचवें महीनेमें माताके गर्भसे गिर गये होते अथवा माता कुन्तीके अत्यन्त कष्टदायक गर्भमें आये ही नहीं होते तो वह तुम्हारे लिये अच्छा होता; क्योंकि उस दशामें तुम्हें युद्धसे भाग आनेका कलङ्क तो नहीं प्राप्त होता ॥ २९½ ॥

धिग्गाण्डीवं धिक् च ते बाहुवीर्य-
मसंख्येयान् बाणगणांश्च धिक् ते ।
धिक् ते केतुं केसरिणः सुतस्य
कृशानुदत्तं च रथं च धिक् ते ॥ ३० ॥

'धिक्कार है तुम्हारे इस गाण्डीव धनुषको, धिक्कार है तुम्हारी भुजाओंके पराक्रमको, धिक्कार है तुम्हारे इन असंख्य बाणोंको, धिक्कार है हनुमान्‌जीके द्वारा उपलक्षित तुम्हारी इस ध्वजाको तथा धिक्कार है अग्निदेवके दिये हुए इस रथको' ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि युधिष्ठिरक्रोधवाक्येऽष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें युधिष्ठिरका क्रोधपूर्ण वचनविषयक अड़सठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ५ श्लोक मिलाकर कुल ३५ श्लोक हैं)

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

युधिष्ठिरका वध करनेके लिये उद्यत हुए अर्जुनको भगवान् श्रीकृष्णका बलाकव्याध और कौशिक मुनिकी कथा सुनाते हुए धर्मका तत्त्व बताकर समझाना

संजय उवाच

युधिष्ठिरेणैवमुक्तः कौन्तेयः श्वेतवाहनः ।
असिं जग्राह संक्रुद्धो जिघांसुर्भरतर्षभम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर श्वेतवाहन कुन्तीकुमार अर्जुनको बड़ा क्रोध हुआ । उन्होंने भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिरको मार डालनेकी इच्छासे तलवार उठा ली ॥

तस्य कोपं समुद्वीक्ष्य चित्तज्ञः केशवस्तदा ।
उवाच किमिदं पार्थ गृहीतः खड्ग इत्युत ॥ २ ॥

उस समय उनका क्रोध देखकर सबके मनकी बात जाननेवाले भगवान् श्रीकृष्णने पूछा—'पार्थ ! यह क्या ! तुमने तलवार कैसे उठा ली ? ॥ २ ॥

न हि पश्यामि योद्धव्यं त्वया किञ्चिद् धनंजय ।
ते ग्रस्ता धार्तराष्ट्रा हि भीमसेनेन धीमता ॥ ३ ॥

'धनंजय ! यहाँ तुम्हें किसीके साथ युद्ध करना हो, ऐसा तो नहीं दिखायी देता; क्योंकि धृतराष्ट्रके पुत्रोंको बुद्धिमान् भीमसेनने कालका ग्रास बना रक्खा है ॥ ३ ॥

अपयातोऽसि कौन्तेय राजा द्रष्टव्य इत्यपि ।
स राजा भवता दृष्टः कुशली च युधिष्ठिरः ॥ ४ ॥

'कुन्तीनन्दन ! तुम तो यह सोचकर युद्धसे हट आये थे कि राजा युधिष्ठिरका दर्शन कर लूँ । सो तुमने राजाका दर्शन कर लिया । राजा युधिष्ठिर सब प्रकारसे सकुशल हैं ॥

स दृष्ट्वा नृपशार्दूलं शार्दूलसमविक्रमम् ।
हर्षकाले च सम्प्राप्ते किमिदं मोहकारितम् ॥ ५ ॥

'सिंहके समान पराक्रमी नृपश्रेष्ठ युधिष्ठिरको स्वस्थ देखकर जब तुम्हारे लिये हर्षका अवसर आया है, ऐसे समय-में यह मोहकारित कौन-सा कृत्य होने जा रहा है ? ॥ ५ ॥

न तं पश्यामि कौन्तेय यस्ते वध्यो भविष्यति ।
प्रहर्तुमिच्छसे कस्मात् किं वा ते चित्तविभ्रमः ॥ ६ ॥

'कुन्तीनन्दन ! मैं किसी ऐसे मनुष्यको भी यहाँ नहीं देखता, जो तुम्हारेद्वारा वध करनेके योग्य हो । फिर तुम प्रहार क्यों करना चाहते हो ? तुम्हारे चित्तमें भ्रम तो नहीं हो गया है ? ॥ ६ ॥

कस्माद् भवान् महाखड्गं परिगृह्णाति सत्वरः ।
तत् त्वां पृच्छामि कौन्तेय किमिदं ते चिकीर्षितम् ॥७॥
परामृशसि यत् क्रुद्धः खड्गमद्भुतविक्रम ।

'पार्थ ! तुम क्यों इतने उतावले होकर विशाल खड्ग हाथमें ले रहे हो । अद्भुत पराक्रमी वीर ! मैं तुमसे पूछता हूँ, बताओ, इस समय तुम्हें यह क्या करनेकी इच्छा हुई है, जिससे कुपित होकर तलवार उठा रहे हो ?' ॥ ७½ ॥

एवमुक्तस्तु कृष्णेन प्रेक्षमाणो युधिष्ठिरम् ॥ ८ ॥
अर्जुनः प्राह गोविन्दं क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ।

भगवान् श्रीकृष्णके इस प्रकार पूछनेपर अर्जुनने क्रोधमें भरकर फुफकारते हुए सर्पके समान युधिष्ठिरकी ओर देखकर श्रीकृष्णसे कहा—॥ ८½ ॥

अन्यस्मै देहि गाण्डीवमिति मां योऽभिचोदयेत् ॥ ९॥
भिन्द्यामहं तस्य शिर इत्युपांशुव्रतं मम।
तदुक्तं मम चानेन राज्ञामितपराक्रम ॥ १० ॥
समक्षं तव गोविन्द न तत् क्षन्तुमिहोत्सहे।
तस्मादेनं वधिष्यामि राजानं धर्मभीरुकम् ॥ ११ ॥

''जो मुझसे यह कह दे कि तुम अपना गाण्डीव धनुष दूसरेको दे दो, उसका मैं सिर काट लूँगा ।' मैंने मन-ही-मन यह प्रतिज्ञा कर रक्खी है। अनन्त पराक्रमी गोविन्द ! आपके सामने ही इन महाराजने मुझसे वह बात कही है, अतः मैं इन्हें क्षमा नहीं कर सकता; इन धर्मभीरु नरेशका वध करूँगा॥

प्रतिज्ञां पालयिष्यामि हत्वैनं नरसत्तमम्।
एतदर्थं मया खड्गो गृहीतो यदुनन्दन ॥ १२ ॥

'यदुनन्दन ! इन नरश्रेष्ठका वध करके मैं अपनी प्रतिज्ञाका पालन करूँगा; इसीलिये मैंने यह खड्ग हाथमें लिया है॥

सोऽहं युधिष्ठिरं हत्वा सत्यस्यानृण्यतां गतः।
विशोको विज्वरश्चापि भविष्यामि जनार्दन ॥ १३ ॥

'जनार्दन ! मैं युधिष्ठिरका वध करके उस सच्ची प्रतिज्ञाके भारसे उऋण हो शोक और चिन्तासे मुक्त हो जाऊँगा ॥

किं वा त्वं मन्यसे प्राप्तमस्मिन् काल उपस्थिते ।
त्वमस्य जगतस्तात वेत्थ सर्वं गतागतम् ॥ १४ ॥
तत् तथा प्रकरिष्यामि यथा मां वक्ष्यते भवान्।

'तात ! आप इस अवसरपर क्या करना उचित समझते हैं ? आप ही इस जगत्के भूत और भविष्यको जानते हैं, अतः आप मुझे जैसी आज्ञा देंगे, वैसा ही करूँगा' ॥१४½॥

संजय उवाच

धिग् धिगित्येव गोविन्दः पार्थमुक्त्वाब्रवीत् पुनः॥१५॥

संजय कहते हैं—राजन् ! यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे 'धिक्कार है ! धिक्कार है !!' ऐसा कहकर पुनः इस प्रकार बोले ॥ १५ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

इदानीं पार्थ जानामि न वृद्धाः सेवितास्त्वया।
काले न पुरुषव्याघ्र संरम्भं यद् भवानगात् ॥ १६ ॥

श्रीकृष्णने कहा—पार्थ ! इस समय मैं समझता हूँ कि तुमने वृद्ध पुरुषोंकी सेवा नहीं की है । पुरुषसिंह ! इसीलिये तुम्हें बिना अवसरके ही क्रोध आ गया है ॥ १६ ॥

न हि धर्मविभागज्ञः कुर्यादेवं धनंजय ।
यथा त्वं पाण्डवाद्येह धर्मभीरुरपण्डितः ॥ १७ ॥

पाण्डुपुत्र धनंजय ! जो धर्मके विभागको जाननेवाला है, वह कभी ऐसा नहीं कर सकता, जैसा कि यहाँ आज तुम करना चाहते हो । वास्तवमें तुम धर्मभीरु होनेके साथ ही बुद्धिहीन भी हो ॥ १७ ॥

अकार्याणां क्रियाणां च संयोगं यः करोति वै।
कार्याणामक्रियाणां च स पार्थ पुरुषाधमः ॥ १८॥

पार्थ ! जो करने योग्य होनेपर भी असाध्य हों तथा जो साध्य होनेपर भी निषिद्ध हों ऐसे कर्मोंसे जो सम्बन्ध जोड़ता है, वह पुरुषोंमें अधम माना गया है ॥ १८ ॥

अनुसृत्य तु ये धर्मं कथयेयुरुपस्थिताः।
समासविस्तरविदां न तेषां वेत्सि निश्चयम् ॥ १९॥

जो स्वयं धर्मका अनुसरण एवं आचरण करके शिष्योंद्वारा उपासित होकर उन्हें धर्मका उपदेश देते हैं; धर्मके संक्षेप एवं विस्तारको जाननेवाले उन गुरुजनोंका इस विषयमें क्या निर्णय है, इसे तुम नहीं जानते ॥ १९ ॥

अनिश्चयज्ञो हि नरः कार्याकार्यविनिश्चये।
अवशो मुह्यते पार्थ यथा त्वं मूढ एव तु ॥ २०॥

पार्थ ! उस निर्णयको न जाननेवाला मनुष्य कर्तव्य और अकर्तव्यके निश्चयमें तुम्हारे ही समान असमर्थ, विवेक-शून्य एवं मोहित हो जाता है ॥ २० ॥

न हि कार्यमकार्यं वा सुखं ज्ञातुं कथंचन।
श्रुतेन ज्ञायते सर्वं तच्च त्वं नावबुध्यसे ॥ २१॥

कर्तव्य और अकर्तव्यका ज्ञान किसी तरह भी अनायास ही नहीं हो जाता है । वह सब शास्त्रसे जाना जाता है और शास्त्रका तुम्हें पता ही नहीं है ॥ २१ ॥

अविज्ञानाद् भवान् यच्च धर्मं रक्षति धर्मवित्।
प्राणिनां त्वं वधं पार्थ धार्मिको नावबुध्यसे॥ २२॥

कुन्तीनन्दन ! तुम अज्ञानवश अपनेको धर्मज्ञ मानकर जो धर्मकी रक्षा करने चले हो, उसमें प्राणिहिंसाका पाप है, यह बात तुम्हारे-जैसे धार्मिककी समझमें नहीं आती है ॥२२॥

प्राणिनामवधस्तात सर्वज्यायान् मतो मम।
अनृतां वा वदेद् वाचं न तु हिंस्यात् कथंचन॥ २३॥

तात ! मेरे विचारसे प्राणियोंकी हिंसा न करना ही सबसे श्रेष्ठ धर्म है । किसीकी प्राणरक्षाके लिये झूठ बोलना पड़े तो बोल दे, किंतु उसकी हिंसा किसी तरह न होने दे ॥२३॥

स कथं भ्रातरं ज्येष्ठं राजानं धर्मकोविदम्।
हन्याद् भवान् नरश्रेष्ठ प्राकृतोऽन्यः पुमानिव॥ २४॥

नरश्रेष्ठ ! तुम दूसरे गवाँर मनुष्यके समान अपने बड़े भाई धर्मज्ञ नरेशका वध कैसे करोगे? ॥ २४ ॥

अयुध्यमानस्य वधस्तथाशत्रोश्च मानद।
पराङ्मुखस्य द्रवतः शरणं चापि गच्छतः ॥ २५ ॥
कृताञ्जलेः प्रपन्नस्य प्रमत्तस्य तथैव च।
न वधः पूज्यते सद्भिस्तच्च सर्वं गुरौ तव ॥ २६ ॥

मानद ! जो युद्ध न करता हो, शत्रुता न रखता हो,

संग्रामसे विमुख होकर भागा जा रहा हो, शरणमें आता हो, हाथ जोड़कर आश्रयमें आ पड़ा हो तथा असावधान हो, ऐसे मनुष्यका वध करना श्रेष्ठ पुरुष अच्छा नहीं समझते हैं। तुम्हारे बड़े भाईमें उपर्युक्त सभी बातें हैं ॥ २५-२६ ॥

त्वया चैवं व्रतं पार्थ बालेनेव कृतं पुरा।
तस्मादधर्मसंयुक्तं मौर्ख्यात् कर्म व्यवस्यसि ॥ २७ ॥

पार्थ ! तुमने नासमझ बालकके समान पहले कोई प्रतिज्ञा कर ली थी; इसीलिये तुम मूर्खतावश अधर्मयुक्त कार्य करनेको तैयार हो गये हो ॥ २७ ॥

स गुरुं पार्थ कस्मात् त्वं हन्तुकामोऽभिधावसि।
असम्प्रधार्य धर्माणां गतिं सूक्ष्मां दुरत्ययाम् ॥ २८ ॥

कुन्तीकुमार ! बताओ तो तुम धर्मके सूक्ष्म एवं दुर्बोध स्वरूपका अच्छी तरह विचार किये बिना ही अपने ज्येष्ठ भ्राताका वध करनेके लिये कैसे दौड़ पड़े ? ॥ २८ ॥

इदं धर्मरहस्यं च तव वक्ष्यामि पाण्डव।
यद् ब्रूयात् तव भीष्मो हि पाण्डवो वा युधिष्ठिरः ॥ २९ ॥
विदुरो वा तथा क्षत्ता कुन्ती वापि यशस्विनी।
तत् ते वक्ष्यामि तत्त्वेन निबोधैतद् धनंजय ॥ ३० ॥

पाण्डुनन्दन ! मैं तुम्हें यह धर्मका रहस्य बता रहा हूँ। धनंजय ! पितामह भीष्म, पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर, विदुरजी अथवा यशस्विनी कुन्तीदेवी—ये लोग तुम्हें धर्मके जिस तत्त्वका उपदेश कर सकते हैं, उसीको मैं ठीक-ठीक बता रहा हूँ। इसे ध्यान देकर सुनो ॥ २९-३० ॥

सत्यस्य वचनं साधु न सत्याद् विद्यते परम्।
तत्त्वेनैव सुदुर्ज्ञेयं पश्य सत्यमनुष्ठितम् ॥ ३१ ॥

सत्य बोलना उत्तम है। सत्यसे बढ़कर दूसरा कुछ नहीं है; परंतु यह समझ लो कि सत्पुरुषोंद्वारा आचरणमें लाये हुए सत्यके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान अत्यन्त कठिन होता है ॥ ३१ ॥

भवेत् सत्यमवक्तव्यं वक्तव्यमनृतं भवेत्।
यत्रानृतं भवेत् सत्यं सत्यं चाप्यनृतं भवेत् ॥ ३२ ॥

जहाँ मिथ्या बोलनेका परिणाम सत्य बोलनेके समान मङ्गलकारक हो अथवा जहाँ सत्य बोलनेका परिणाम असत्य-भाषणके समान अनिष्टकारी हो, वहाँ सत्य नहीं बोलना चाहिये। वहाँ असत्य बोलना ही उचित होगा ॥ ३२ ॥

विवाहकाले रतिसम्प्रयोगे
प्राणात्यये सर्वधनापहारे।
विप्रस्य चार्थे ह्यनृतं वदेत
पञ्चानृतान्याहुरपातकानि ॥ ३३ ॥

विवाहकालमें, स्त्रीप्रसङ्गके समय, किसीके प्राणोंपर सङ्कट आनेपर, सर्वस्वका अपहरण होते समय तथा ब्राह्मणकी भलाईके लिये आवश्यकता हो तो असत्य बोल दे; इन पाँच अवसरोंपर झूठ बोलनेसे पाप नहीं होता ॥ ३३ ॥

सर्वस्वस्यापहारे तु वक्तव्यमनृतं भवेत्।
तत्रानृतं भवेत् सत्यं सत्यं चाप्यनृतं भवेत् ॥ ३४ ॥
तादृशं पश्यते बालो यस्य सत्यमनुष्ठितम्।

जब किसीका सर्वस्व छीना जा रहा हो तो उसे बचानेके लिये झूठ बोलना कर्तव्य है। वहाँ असत्य ही सत्य और सत्य ही असत्य हो जाता है। जो मूर्ख है, वही यथाकथञ्चित् व्यवहारमें लाये हुए एक-जैसे सत्यको सर्वत्र आवश्यक समझता है ॥ ३४½ ॥

भवेत् सत्यमवक्तव्यं न वक्तव्यमनुष्ठितम्।
सत्यानृते विनिश्चित्य ततो भवति धर्मवित् ॥ ३५ ॥

केवल अनुष्ठानमें लाया गया असत्यरूप सत्य बोलने योग्य नहीं होता, अतः वैसा सत्य न बोले। पहले सत्य और असत्यका अच्छी तरह निर्णय करके जो परिणाममें सत्य हो उसका पालन करे। जो ऐसा करता है, वही धर्मका ज्ञाता है ॥ ३५ ॥

किमाश्चर्यं कृतप्रज्ञः पुरुषोऽपि सुदारुणः।
सुमहत् प्राप्नुयात् पुण्यं बलाकोऽन्धवधादिव ॥ ३६ ॥

जिसकी बुद्धि शुद्ध (निष्काम) है, वह पुरुष यदि अत्यन्त कठोर होकर भी, जैसे अंधे पशुको मार देनेसे बलाक नामक व्याध पुण्यका भागी हुआ था, उसी प्रकार महान् पुण्य प्राप्त कर ले तो क्या आश्चर्य है ? ॥ ३६ ॥

किमाश्चर्यं पुनर्मूढो धर्मकामो ह्यपण्डितः।
सुमहत् प्राप्नुयात् पापमापगास्विव कौशिकः॥ ३७ ॥

इसी तरह जो धर्मकी इच्छा तो रखता है, पर है मूर्ख और अज्ञानी, वह नदियोंके संगमपर बसे हुए कौशिक मुनिकी भाँति यदि अज्ञानपूर्वक धर्म करके भी महान् पापका भागी हो जाय तो क्या आश्चर्य है ? ॥ ३७ ॥

अर्जुन उवाच

आचक्ष्व भगवन्नेतद् यथा विन्द्याम्यहं तथा।
बलाकस्यानुसम्बन्धं नदीनां कौशिकस्य च ॥ ३८ ॥

अर्जुन बोले—भगवन् ! बलाक नामक व्याध और नदियोंके संगमपर रहनेवाले कौशिक मुनिकी कथा कहिये, जिससे मैं इस विषयको अच्छी तरह समझ सकूँ ॥ ३८ ॥

वासुदेव उवाच

पुरा व्याधोऽभवत् कश्चिद् बलाको नाम भारत।
यात्रार्थं पुत्रदारस्य मृगान् हन्ति न कामतः ॥ ३९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—भारत ! प्राचीनकालमें बलाक नामसे प्रसिद्ध एक व्याध रहता था, जो अपनी स्त्री और पुत्रोंकी जीवनरक्षाके लिये ही हिंसक पशुओंको मारा करता था, कामनावश नहीं ॥ ३९ ॥

वृद्धौ च मातापितरौ बिभर्त्यन्यांश्च संश्रितान्।
स्वधर्मनिरतो नित्यं सत्यवागनसूयकः ॥ ४० ॥

वह बूढ़े माता-पिता तथा अन्य आश्रित जनोंका पालन-पोषण किया करता था। सदा अपने धर्ममें लगा रहता, सत्य बोलता और किसीकी निन्दा नहीं करता था ॥ ४० ॥

स कदाचिन्मृगं लिप्सुर्नाभ्यविन्दन्मृगं क्वचित्।
अपः पिबन्तं ददृशे श्वापदं घ्राणचक्षुषम् ॥ ४१ ॥

एक दिन वह पशुको मार लानेके लिये वनमें गया; किंतु कहीं किसी हिंसक पशुको न पा सका। इतनेहीमें उसे एक पानी पीता हुआ हिंसक जानवर दिखायी दिया, जो अंधा था; नाकसे सूँघकर ही आँखका काम निकाला करता था ॥ ४१ ॥

अदृष्टपूर्वमपि तत् सत्त्वं तेन हतं तदा।
अन्धे हते ततो व्योम्नः पुष्पवर्षं पपात च ॥ ४२ ॥

यद्यपि वैसे जानवरको व्याधने पहले कभी नहीं देखा था, तो भी उस समय उसने मार डाला। उस अंधे पशुके मारे जाते ही आकाशसे व्याधपर फूलोंकी वर्षा होने लगी॥४२॥

अप्सरोगीतवादित्रैर्नादितं च मनोरमम्।
विमानमगमत् स्वर्गान्मृगव्याधनिनीषया ॥ ४३ ॥

साथ ही उस हिंसक पशुओंको मारनेवाले व्याधको ले जानेके लिये स्वर्गसे एक सुन्दर विमान उतर आया, जो अप्सराओंके गीतों और वाद्योंकी मधुर ध्वनिसे मुखरित होनेके कारण बड़ा मनोरम जान पड़ता था ॥ ४३ ॥

तद् भूतं सर्वभूतानामभावाय किलार्जुन।
तपस्तप्त्वा वरं प्राप्तं कृतमन्धं स्वयम्भुवा ॥ ४४ ॥

अर्जुन! लोग कहते हैं कि उस जन्तुने पूर्वजन्ममें तप करके सम्पूर्ण प्राणियोंका संहार कर डालनेके लिये वर प्राप्त किया था; इसीलिये ब्रह्माजीने उसे अन्धा बना दिया था ॥

तद्धत्वा सर्वभूतानामभावकृतनिश्चयम्।
ततो बलाकः स्वरगादेवं धर्मः सुदुर्विदः ॥ ४५ ॥

इस प्रकार समस्त प्राणियोंका अन्त कर देनेके निश्चयसे युक्त उस जन्तुको मारकर बलाक स्वर्गलोकमें चला गया; अतः धर्मका स्वरूप अत्यन्त दुर्ज्ञेय है ॥ ४५ ॥

कौशिकोऽप्यभवद् विप्रस्तपस्वी नो बहुश्रुतः।
नदीनां संगमे ग्रामाददूरात् स किलावसत् ॥ ४६ ॥

इसी तरह कौशिक नामका एक तपस्वी ब्राह्मण था, जो बहुत पढ़ा-लिखा या शास्त्रज्ञ नहीं था। वह गाँवके पास ही नदियोंके संगमपर निवास करता था ॥ ४६ ॥

सत्यं मया सदा वाच्यमिति तस्याभवद् व्रतम्।
सत्यवादीति विख्यातः स तदाऽऽसीद् धनंजय॥४७॥

धनंजय! उसने यह नियम ले लिया था कि मैं सदा सत्य ही बोलूँगा। इसलिये उन दिनों वह सत्यवादीके नामसे विख्यात हो गया था ॥ ४७ ॥

अथ दस्युभयात् केचित् तदा तद् वनमाविशन्।
तत्रापि दस्यवः क्रुद्धास्तानमार्गन्त यत्नतः ॥ ४८ ॥

एक दिनकी बात है, कुछ लोग लुटेरोंके भयसे छिपनेके लिये उस वनमें घुस गये; परंतु वे लुटेरे कुपित हो वहाँ भी उन लोगोंका यत्नपूर्वक अनुसंधान करने लगे ॥ ४८ ॥

अथ कौशिकमभ्येत्य प्राहुस्ते सत्यवादिनम्।
कतमेन पथा याता भगवन् बहवो जनाः ॥ ४९ ॥
सत्येन पृष्टः प्रब्रूहि यदि तान् वेत्थ शंस नः।

उन्होंने सत्यवादी कौशिक मुनिके पास आकर पूछा-'भगवन्! बहुत-से लोग जो इधर ही आये हैं, किस रास्तेसे गये हैं? मैं सत्यकी साक्षीसे पूछता हूँ। यदि आप उन्हें जानते हों तो बताइये' ॥ ४९½ ॥

स पृष्टः कौशिकः सत्यं वचनं तानुवाच ह ॥ ५० ॥
बहुवृक्षलतागुल्ममेतद् वनमुपाश्रिताः।
इति तान् ख्यापयामास तेभ्यस्तत्त्वं स कौशिकः ॥५१॥

उनके इस प्रकार पूछनेपर कौशिक मुनिने उन्हें सच्ची बात बता दी—'इस वनमें जहाँ बहुत-से वृक्ष, लताएँ और झाड़ियाँ हैं, वहीं वे गये हैं।' इस प्रकार कौशिकने उन दस्युओंको यथार्थ बात बता दी ॥ ५०-५१ ॥

ततस्ते तान् समासाद्य क्रूरा जघ्नुरिति श्रुतिः।
तेनाधर्मेण महता वाग्दुरुक्तेन कौशिकः ॥ ५२ ॥
गतः स कष्टं नरकं सूक्ष्मधर्मेष्वकोविदः।

तब उन निर्दयी डाकुओंने उन सबका पता पाकर उन्हें मार डाला, ऐसा सुना गया है। इस तरह वाणीका दुरुपयोग करनेसे कौशिकको महान् पाप लगा, जिससे उसे नरकका कष्ट भोगना पड़ा; क्योंकि वह धर्मके सूक्ष्म स्वरूपको समझनेमें कुशल नहीं था ॥ ५२½ ॥

यथा चाल्पश्रुतो मूढो धर्माणामविभागवित् ॥ ५३ ॥
वृद्धानपृष्ट्वा संदेहं महच्छ्वभ्रमिवार्हति।

जिसे शास्त्रोंका बहुत थोड़ा ज्ञान है, जो विवेकशून्य होनेके कारण धर्मोंके विभागको ठीक-ठीक नहीं जानता, वह मनुष्य यदि वृद्ध पुरुषोंसे अपने संदेह नहीं पूछता तो अनुचित कर्म कर बैठनेके कारण वह महान् नरकके सदृश कष्ट भोगनेके योग्य हो जाता है ॥ ५३½ ॥

तत्र ते लक्षणोद्देशः कश्चिदेवं भविष्यति ॥ ५४ ॥
दुष्करं परमं ज्ञानं तर्केणानुव्यवस्यति।
श्रुतेर्धर्म इति ह्येके वदन्ति बहवो जनाः ॥ ५५ ॥

धर्माधर्मके निर्णयके लिये तुम्हें संक्षेपसे कोई संकेत बताना पड़ेगा, जो इस प्रकार होगा। कुछ लोग परम ज्ञानरूप दुष्कर धर्मको तर्कके द्वारा जाननेका प्रयत्न करते हैं; परंतु एक श्रेणीके बहुसंख्यक मनुष्य ऐसा कहते हैं कि धर्मका ज्ञान वेदोंसे होता है ॥ ५४-५५ ॥

तत् ते न प्रत्यसूयामि न च सर्वं विधीयते।
प्रभवार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम् ॥ ५६ ॥

किंतु मैं तुम्हारे निकट इन दोनों मतोंके ऊपर कोई दोषारोपण नहीं करता; परंतु केवल वेदोंके द्वारा सभी धर्म-कर्मोंका विधान नहीं होता; इसीलिये धर्मज्ञ महर्षियोंने समस्त

प्राणियोंके अभ्युदय और निःश्रेयसके लिये उत्तम धर्मका प्रतिपादन किया है ॥ ५६ ॥

यत् स्यादहिंसासंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः।
अहिंसार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम् ॥ ५७ ॥

सिद्धान्त यह है कि जिस कार्यमें हिंसा न हो, वही धर्म है। महर्षियोंने प्राणियोंकी हिंसा न होने देनेके लिये ही उत्तम धर्मका प्रवचन किया है ॥ ५७ ॥

धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।
यत् स्याद् धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः ॥ ५८ ॥

धर्म ही प्रजाको धारण करता है और धारण करनेके कारण ही उसे धर्म कहते हैं । इसलिये जो धारण—प्राण-रक्षासे युक्त हो—जिसमें किसी भी जीवकी हिंसा न की जाती हो, वही धर्म है । ऐसा ही धर्म-शास्त्रोंका सिद्धान्त है ॥ ५८ ॥

येऽन्यायेन जिहीर्षन्तो धर्ममिच्छन्ति कर्हिचित्।
अकूजनेन मोक्षं वा नानुकूजेत् कथंचन ॥ ५९ ॥

जो लोग अन्यायपूर्वक दूसरोंके धन आदिका अपहरण कर लेना चाहते हैं, वे कभी अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिये दूसरोंसे सत्यभाषणरूप धर्मका पालन कराना चाहते हों तो वहाँ उनके समक्ष मौन रहकर उनसे पिण्ड छुड़ानेकी चेष्टा करे, किसी तरह कुछ बोले ही नहीं ॥ ५९ ॥

अवश्यं कूजितव्ये वा शङ्केरन्नप्यकूजतः।
श्रेयस्तत्रानृतं वक्तुं तत् सत्यमविचारितम् ॥ ६० ॥

किंतु यदि बोलना अनिवार्य हो जाय अथवा न बोलनेसे लुटेरोंको संदेह होने लगे तो वहाँ असत्य बोलना ही ठीक है। ऐसे अवसरपर उस असत्यको ही बिना विचारे सत्य समझो ॥

यः कार्येभ्यो व्रतं कृत्वा तस्य नानोपपादयेत्।
न तत्फलमवाप्नोति एवमाहुर्मनीषिणः ॥ ६१ ॥

जो मनुष्य किसी कार्यके लिये प्रतिज्ञा करके उसका प्रकारान्तरसे उपपादन करता है, वह दम्भी होनेके कारण उसका फल नहीं पाता, ऐसा मनीषी पुरुषोंका कथन है ॥ ६१ ॥

प्राणात्यये विवाहे वा सर्वज्ञातिवधात्यये।
नर्मण्यभिप्रवृत्ते वा न च प्रोक्तं मृषा भवेत् ॥ ६२ ॥
अधर्मं नात्र पश्यन्ति धर्मतत्त्वार्थदर्शिनः।

प्राणसङ्कटकालमें, विवाहमें, समस्त कुटुम्बियोंके प्राणान्तका समय उपस्थित होनेपर तथा हँसी-परिहास आरम्भ होनेपर यदि असत्य बोला गया हो तो वह असत्य नहीं माना जाता। धर्मके तत्त्वको जाननेवाले विद्वान् उक्त अवसरोंपर मिथ्या बोलनेमें पाप नहीं समझते ॥ ६२½ ॥

यः स्तेनैः सह सम्बन्धान्मुच्यते शपथैरपि ॥ ६३ ॥
श्रेयस्तत्रानृतं वक्तुं तत् सत्यमविचारितम्।

जो झूठी शपथ खानेपर भी लुटेरोंके साथ बन्धनमें पड़नेसे छुटकारा पा सके, उसके लिये वहाँ असत्य बोलना ही ठीक है । उसे बिना विचारे सत्य समझना चाहिये ॥

न च तेभ्यो धनं देयं शक्ये सति कथंचन ॥ ६४ ॥
पापेभ्यो हि धनं दत्तं दातारमपि पीडयेत्।

जहाँतक वश चले, किसी तरह उन लुटेरोंको धन नहीं देना चाहिये; क्योंकि पापियोंको दिया हुआ धन दाताको भी दुःख देता है ॥ ६४½ ॥

तस्माद् धर्मार्थमनृतमुक्त्वा नानृतभाग् भवेत् ॥ ६५ ॥
एष ते लक्षणोद्देशो मयोद्दिष्टो यथाविधि।
यथाधर्मं यथाबुद्धि मयाद्य वै हितार्थिना ॥ ६६ ॥
एतच्छ्रुत्वा ब्रूहि पार्थ यदि वध्यो युधिष्ठिरः।

अतः धर्मके लिये झूठ बोलनेपर मनुष्य असत्यभाषणके दोषका भागी नहीं होता । अर्जुन ! मैं तुम्हारा हित चाहता हूँ, इसलिये आज मैंने अपनी बुद्धि और धर्मके अनुसार संक्षेपसे तुम्हारे लिये यह विधिपूर्वक धर्माधर्मके निर्णयका संकेत बताया है । यह सुनकर अब तुम्हीं बताओ, क्या अब भी राजा युधिष्ठिर तुम्हारे वध्य हैं ॥ ६५-६६½ ॥

अर्जुन उवाच

यथा ब्रूयान्महाप्राज्ञो यथा ब्रूयान्महामतिः ॥ ६७ ॥
हितं चैव यथास्माकं तथैतद् वचनं तव।

अर्जुन बोले—प्रभो ! कोई बहुत बड़ा विद्वान् और परम बुद्धिमान् मनुष्य जैसा उपदेश दे सकता है तथा जिसके अनुसार आचरण करनेसे हमलोगोंका हित हो सकता है, वैसा ही आपका यह भाषण हुआ है ॥ ६७½ ॥

भवान् मातृसमोऽस्माकं तथा पितृसमोऽपि च ॥ ६८ ॥
गतिश्च परमा कृष्ण त्वमेव च परायणम्।

श्रीकृष्ण ! आप हमारे माता-पिताके तुल्य हैं । आप ही परमगति और परम आश्रय हैं ॥ ६८½ ॥

न हि ते त्रिषु लोकेषु विद्यतेऽविदितं क्वचित् ॥ ६९ ॥
तस्माद् भवान् परं धर्मं वेद सर्वं यथातथम्।

तीनों लोकोंमें कहीं कोई भी ऐसी बात नहीं है, जो आपको विदित न हो; अतः आप ही परम धर्मको सम्पूर्ण और यथार्थरूपसे जानते हैं ॥ ६९½ ॥

अवध्यं पाण्डवं मन्ये धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ ७० ॥
अस्मिंस्तु मम संकल्पे ब्रूहि किंचिदनुग्रहम्।
इदं वा परमत्रैव शृणु हृत्स्थं विवक्षितम् ॥ ७१ ॥

अब मैं पाण्डुनन्दन धर्मराज युधिष्ठिरको वधके योग्य नहीं मानता । मेरी इस मानसिक प्रतिज्ञाके विषयमें आप ही कोई अनुग्रह (भाईका वध किये बिना ही प्रतिज्ञाकी रक्षाका उपाय) बताइये । मेरे मनमें जो यहाँ कहनेयोग्य उत्तम बात है, इसे पुनः सुन लीजिये ॥ ७०-७१ ॥

जानासि दाशार्ह मम व्रतं त्वं
यो मां ब्रूयात् कश्चन मानुषेषु।
अन्यस्मै त्वं गाण्डिवं देहि पार्थ
त्वत्तोऽस्त्रैर्वा वीर्यतो वा विशिष्टः॥ ७२ ॥

हन्यामहं केशव तं प्रसह्य
भीमो हन्यात् तूबरकेति चोक्तः।
तन्मे राजा प्रोक्तवांस्ते समक्षं
धनुर्देहीत्यसकृद् वृष्णिवीर ॥ ७३ ॥

दशार्हकुलनन्दन ! आप तो यह जानते ही हैं कि मेरा व्रत क्या है ? मनुष्योंमेंसे जो कोई भी मुझसे यह कह दे कि 'पार्थ ! तुम अपना गाण्डीव धनुष किसी दूसरे ऐसे पुरुषको दे दो, जो अस्त्रोंके ज्ञान अथवा बलमें तुमसे बढ़कर हो तो केशव ! मैं उसे बलपूर्वक मार डालूँ ।' इसी प्रकार भीमसेनको कोई 'मूँछ-दाढ़ीरहित' कह दे तो वे उसे मार डालेंगे, वृष्णिवीर ! राजा युधिष्ठिरने आपके सामने ही बारंबार मुझसे कहा है कि 'तुम अपना धनुष दूसरेको दे दो' ॥ ७२-७३ ॥

तं हन्यां चेत् केशव जीवलोके
स्थाता नाहं कालमप्यल्पमात्रम् ।
ध्यात्वा नूनं ह्येनसा चापि मुक्तो
वधं राज्ञो भ्रष्टवीर्यो विचेताः ॥ ७४ ॥

केशव ! यदि मैं युधिष्ठिरको मार डालूँ तो इस जीव-जगत्में थोड़ी देर भी मैं जीवित नहीं रह सकता । यदि किसी तरह पापसे छूट जाऊँ तो भी राजा युधिष्ठिरके वधका चिन्तन करके जी नहीं सकता । निश्चय ही इस समय मैं किंकर्तव्यविमूढ़ होकर पराक्रमशून्य और अचेत-सा हो गया हूँ ॥

यथा प्रतिज्ञा मम लोकबुद्धौ
भवेत् सत्या धर्मभृतां वरिष्ठ ।
यथा जीवेत् पाण्डवोऽहं च कृष्ण
तथा बुद्धिं दातुमप्यर्हसि त्वम् ॥ ७५ ॥

धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण ! संसारके लोगोंकी समझमें जिस प्रकार मेरी प्रतिज्ञा सच्ची हो जाय और जिस प्रकार पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर और मैं दोनों जीवित रह सकें, वैसी कोई सलाह आप मुझे देनेकी कृपा करें ॥ ७५ ॥

वासुदेव उवाच

राजा श्रान्तो विक्षतो दुःखितश्च
कर्णेन संख्ये निशितैर्बाणसंघैः ।
यश्चानिशं सूतपुत्रेण वीर
शरैर्भृशं ताडितोऽयुध्यमानः ॥ ७६ ॥

श्रीकृष्णने कहा—वीर ! राजा युधिष्ठिर थक गये हैं । कर्णने युद्धस्थलमें अपने तीखे बाणसमूहोंद्वारा इन्हें क्षत-विक्षत कर दिया है, इसलिये ये बहुत दुखी हैं । इतना ही नहीं, जब ये युद्ध नहीं कर रहे थे, उस समय भी सूतपुत्रने इनके ऊपर लगातार बाणोंकी वर्षा करके इन्हें अत्यन्त घायल कर दिया था ॥ ७६ ॥

अतस्त्वमेतेन सरोषमुक्तो
दुःखान्वितेनेदमयुक्तरूपम् ।
अकोपितो ह्येष यदि स्म संख्ये
कर्णं न हन्यादिति चाब्रवीत् सः ॥ ७७ ॥

इसीलिये दुखी होनेके कारण इन्होंने तुम्हारे प्रति रोषपूर्वक ये अनुचित बातें कही हैं । इन्होंने यह भी सोचा है कि यदि अर्जुनको क्रोध न दिलाया गया तो ये युद्धमें कर्णको नहीं मार सकेंगे, इस कारणसे भी वैसी बातें कह दी हैं ॥ ७७ ॥

जानाति तं पाण्डव एष चापि
पापं लोके कर्णमसह्यमन्यैः ।
ततस्त्वमुक्तो भृशरोषितेन
राज्ञा समक्षं परुषाणि पार्थ ॥ ७८ ॥

ये पाण्डुनन्दन राजा युधिष्ठिर जानते हैं कि संसारमें पापी कर्णका सामना करना तुम्हारे सिवा दूसरोंके लिये असम्भव है । पार्थ ! इसीलिये अत्यन्त रोषमें भरे हुए राजाने मेरे सामने तुम्हें कटु वचन सुनाये हैं ॥ ७८ ॥

नित्योद्युक्ते सततं चाप्रसह्ये
कर्णे द्यूतं ह्यद्य रणे निबद्धम् ।
तस्मिन् हते कुरवो निर्जिताः स्यु-
रेवं बुद्धिः पार्थिवे धर्मपुत्रे ॥ ७९ ॥

कर्ण नित्य-निरन्तर युद्धके लिये उद्यत और शत्रुओंके लिये असह्य है । आज रणभूमिमें हार-जीतका जूआ कर्णपर ही अवलम्बित है । कर्णके मारे जानेपर अन्य कौरव शीघ्र ही परास्त हो सकते हैं । धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरके मनमें ऐसा ही विचार काम कर रहा था ॥ ७९ ॥

ततो वधं नार्हति धर्मपुत्र-
स्त्वया प्रतिज्ञार्जुन पालनीया ।
जीवन्नयं येन मृतो भवेद्धि
तन्मे निबोधेह तवानुरूपम् ॥ ८० ॥

अर्जुन ! इसलिये धर्मपुत्र युधिष्ठिर वधके योग्य नहीं हैं । इधर तुम्हें अपनी प्रतिज्ञाका पालन भी करना है । अतः जिस उपायसे ये जीवित रहते हुए भी मरेके समान हो जायँ, वही तुम्हारे अनुरूप होगा । उसे बताता हूँ, सुनो ॥ ८० ॥

यदा मानं लभते माननार्ह-
स्तदा स वै जीवति जीवलोके ।
यदावमानं लभते महान्तं
तदा जीवन्मृत इत्युच्यते सः ॥ ८१ ॥

इस जीवजगत्में माननीय पुरुष जबतक सम्मान पाता है, तभीतक वह वास्तवमें जीवित है । जब वह महान् अपमान पाने लगता है, तब वह जीते-जी मरा हुआ कहलाता है ॥

सम्मानितः पार्थिवोऽयं सदैव
त्वया च भीमेन तथा यमाभ्याम् ।
वृद्धैश्च लोके पुरुषैश्च शूरै-
स्तस्यापमानं कलया प्रयुङ्क्ष्व ॥ ८२ ॥

तुमने, भीमसेनने, नकुल-सहदेवने तथा अन्य वृद्ध पुरुषों एवं शूरवीरोंने जगत्‌में राजा युधिष्ठिरका सदा सम्मान किया है; किंतु इस समय तुम उनका थोड़ा-सा अपमान कर दो ॥ ८२ ॥

त्वमित्यत्रभवन्तं हि ब्रूहि पार्थ युधिष्ठिरम् ।
त्वमित्युक्तो हि निहतो गुरुर्भवति भारत ॥ ८३ ॥

पार्थ ! तुम युधिष्ठिरको सदा आप कहते आये हो, आज उन्हें 'तू' कह दो । भारत ! यदि किसी गुरुजनको 'तू' कह दिया जाय तो यह साधु पुरुषोंकी दृष्टिमें उसका वध ही हो जाता है ॥ ८३ ॥

एवमाचर कौन्तेय धर्मराजे युधिष्ठिरे ।
अधर्मयुक्तं संयोगं कुरुष्वैनं कुरूद्वह ॥ ८४ ॥

कुन्तीनन्दन ! तुम धर्मराज युधिष्ठिरके प्रति ऐसा ही बर्ताव करो । कुरुश्रेष्ठ ! उनके लिये इस समय अधर्मयुक्त वाक्यका प्रयोग करो ॥ ८४ ॥

अथर्वाङ्गिरसी ह्येषा श्रुतीनामुत्तमा श्रुतिः ।
अविचार्यैव कार्यैषा श्रेयस्कामैर्नरैः सदा ॥ ८५ ॥

जिसके देवता अथर्वा और अङ्गिरा हैं, ऐसी एक श्रुति है, जो सब श्रुतियोंमें उत्तम है । अपनी भलाई चाहनेवाले मनुष्योंको सदा बिना विचारे ही इस श्रुतिके अनुसार बर्ताव करना चाहिये ॥ ८५ ॥

अवधेन वधः प्रोक्तो यद् गुरुस्त्वमिति प्रभुः ।
तद् ब्रूहि त्वं यन्मयोक्तं धर्मराजस्य धर्मवित् ॥ ८६ ॥

उस श्रुतिका भाव यह है—'गुरुको तू कह देना उसे बिना मारे ही मार डालना है ।' तुम धर्मज्ञ हो तो भी जैसा मैंने बताया है, उसके अनुसार धर्मराजके लिये 'तू' शब्दका प्रयोग करो ॥ ८६ ॥

वधं ह्ययं पाण्डव धर्मराज-
स्त्वत्तोऽयुक्तं वेत्स्यते चैवमेषः ।
ततोऽस्य पादावभिवाद्य पश्चात्
समं ब्रूयाः सान्त्वयित्वा च पार्थम् ॥ ८७ ॥

पाण्डुनन्दन ! तुम्हारे द्वारा किये गये इस अनुचित शब्दके प्रयोगको सुनकर ये धर्मराज अपना वध हुआ ही समझेंगे । इसके बाद तुम इनके चरणोंमें प्रणाम करके इन्हें सान्त्वना देते हुए क्षमा माँग लेना और इनके प्रति न्यायोचित वचन बोलना ॥ ८७ ॥

भ्राता प्राज्ञस्तव कोपं न जातु
कुर्याद् राजा धर्ममवेक्ष्य चापि ।
मुक्तोऽनृताद् भ्रातृवधाच्च पार्थ
हृष्टः कर्णं त्वं जहि सूतपुत्रम् ॥ ८८ ॥

कुन्तीनन्दन ! तुम्हारे भाई राजा युधिष्ठिर समझदार हैं । ये धर्मका ख्याल करके भी तुमपर कभी क्रोध नहीं करेंगे । इस प्रकार तुम मिथ्याभाषण और भ्रातृ-वधके पापसे मुक्त हो बड़े हर्षके साथ सूतपुत्र कर्णका वध करना ॥ ८८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कृष्णार्जुनसंवादे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें श्रीकृष्ण और अर्जुनका संवादविषयक उनहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६९ ॥

सप्ततितमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्णका अर्जुनको प्रतिज्ञा-भङ्ग, भ्रातृवध तथा आत्मघातसे बचाना और युधिष्ठिरको सान्त्वना देकर संतुष्ट करना

संजय उवाच

इत्येवमुक्तस्तु जनार्दनेन
पार्थः प्रशस्याथ सुहृद्वचस्तत् ।
ततोऽब्रवीदर्जुनो धर्मराज-
मनुक्तपूर्वं परुषं प्रसह्य ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर कुन्तीकुमार अर्जुनने हितैषी सखाके उस वचनकी बड़ी प्रशंसा की । फिर वे हठपूर्वक धर्मराजके प्रति ऐसे कठोर वचन कहने लगे, जैसे उन्होंने पहले कभी नहीं कहे थे ॥ १ ॥

अर्जुन उवाच

मा त्वं राजन् व्याहर व्याहरस्व
यस्तिष्ठसे क्रोशमात्रे रणाद् वै ।
भीमस्तु मामर्हति गर्हणाय
यो युध्यते सर्वलोकप्रवीरैः ॥ २ ॥

अर्जुन बोले—राजन् ! तू तो स्वयं ही युद्धसे भागकर एक कोस दूर आ बैठा है, अतः तू मुझसे न बोल, न बोल । हाँ, भीमसेनको मेरी निन्दा करनेका अधिकार है, जो कि समस्त संसारके प्रमुख वीरोंके साथ अकेले ही जूझ रहे हैं ॥ २ ॥

काले हि शत्रून् परिपीड्य संख्ये
हत्वा च शूरान् पृथिवीपतींस्तान् ।
रथप्रधानोत्तमनागमुख्यान्
सादिप्रवेकानमितांश्च वीरान् ॥ ३ ॥
यः कुञ्जराणामधिकं सहस्रं
हत्वा नदंस्तुमुलं सिंहनादम् ।
काम्बोजानामयुतं पर्वतीयान्
मृगान् सिंहो विनिहत्येव चाजौ ॥ ४ ॥
सुदुष्करं कर्म करोति वीरः
कर्तुं यथा नार्हसि त्वं कदाचित् ।

रथादवप्लुत्य गदां परामृशं-
स्तया निहन्त्यश्वरथद्विपान् रणे ॥ ५ ॥
वरासिना चापि नराश्वकुञ्जरां-
स्तथा रथाङ्गैर्धनुषा दहत्यरीन् ।
प्रमृद्य पद्भ्यामहितान् निहन्ति
पुनस्तु दोर्भ्यां शतमन्युविक्रमः ॥ ६ ॥
महाबलो वैश्रवणान्तकोपमः
प्रसह्य हन्ता द्विषतामनीकिनीम् ।
स भीमसेनोऽर्हति गर्हणां मे
न त्वं नित्यं रक्ष्यसे यः सुहृद्भिः ॥ ७ ॥

जो यथासमय शत्रुओंको पीड़ा देते हुए युद्धस्थलमें उन समस्त शौर्यसम्पन्न भूपतियों, प्रधान-प्रधान रथियों, श्रेष्ठ गजराजों, प्रमुख अश्वारोहियों, असंख्य वीरों, सहस्रसे भी अधिक हाथियों, दस हजार काम्बोज देशीय अश्वों तथा पर्वतीय वीरोंका वध करके जैसे मृगोंको मारकर सिंह दहाड़ रहा हो, उसी प्रकार भयंकर सिंहनाद करते हैं, जो वीर भीमसेन हाथमें गदा ले रथसे कूदकर उसके द्वारा रणभूमिमें हाथी, घोड़ों एवं रथोंका संहार करते हैं तथा ऐसा अत्यन्त दुष्कर पराक्रम प्रकट कर रहे हैं जैसा कि तू कभी नहीं कर सकता, जिनका पराक्रम इन्द्रके समान है, जो उत्तम खड्ग, चक्र और धनुषके द्वारा हाथी, घोड़ों, पैदल-योद्धाओं तथा अन्यान्य शत्रुओंको दग्ध किये देते हैं और जो पैरोंसे कुचलकर दोनों हाथोंसे वैरियोंका विनाश करते हैं, वे महाबली, कुबेर और यमराजके समान पराक्रमी एवं शत्रुओंकी सेनाका बलपूर्वक संहार करनेमें समर्थ भीमसेन ही मेरी निन्दा करनेके अधिकारी हैं । तू मेरी निन्दा नहीं कर सकता; क्योंकि तू अपने पराक्रमसे नहीं, हितैषी सुहृदोंद्वारा सदा सुरक्षित होता है ॥ ३—७ ॥

महारथान् नागवरान् हयांश्च
पदातिमुख्यानपि च प्रमथ्य ।
एको भीमो धार्तराष्ट्रेषु मग्नः
स मामुपालब्धुमरिंदमोऽर्हति ॥ ८ ॥

जो शत्रुपक्षके महारथियों, गजराजों, घोड़ों और प्रधान-प्रधान पैदल योद्धाओंको भी रौंदकर दुर्योधनकी सेनाओंमें घुस गये हैं, वे एकमात्र शत्रुदमन भीमसेन ही मुझे उलाहना देनेके अधिकारी हैं ॥ ८ ॥

कलिङ्गवङ्गाङ्गनिषादमागधान्
सदामदानीलबलाहकोपमान् ।
निहन्ति यः शत्रुगजाननेकान्
स मामुपालब्धुमरिंदमोऽर्हति ॥ ९ ॥

जो कलिङ्ग, वङ्ग, अङ्ग, निषाद और मगध देशोंमें उत्पन्न सदा मदमत्त रहनेवाले तथा काले मेघोंकी घटाके समान दिखायी देनेवाले शत्रुपक्षीय अनेकानेक हाथियोंका संहार करते हैं, वे शत्रुदमन भीमसेन ही मुझे उलाहना देनेके अधिकारी हैं ॥ ९ ॥

स युक्तमास्थाय रथं हि काले
धनुर्विधुन्वञ्शरपूर्णमुष्टिः ।
सृजत्यसौ शरवर्षाणि वीरो
महाहवे मेघ इवाम्बुधाराः ॥ १० ॥

वीरवर भीमसेन यथासमय जुते हुए रथपर आरूढ़ हो धनुष हिलाते हुए मुट्ठीभर बाण निकालते और जैसे मेघ जलकी धारा गिराते हैं, उसी प्रकार महासमरमें बाणोंकी वर्षा करते हैं ॥ १० ॥

शतान्यष्टौ वारणानामपश्यं
विशातितैः कुम्भकराग्रहस्तैः ।
भीमेनाजौ निहतान्यद्य बाणैः
स मां क्रूरं वक्तुमर्हत्यरिघ्नः ॥ ११ ॥

मैंने देखा है आज भीमसेनने युद्धस्थलमें अपने बाणोंद्वारा शत्रुपक्षके आठ सौ हाथियोंको उनके कुम्भस्थल, शुण्ड और शुण्डाग्रभाग काटकर मार डाला है, वे शत्रुहन्ता भीमसेन ही मुझसे कठोर वचन कहनेके अधिकारी हैं ॥ ११ ॥

(नकुलेन राजन् गजवाजियोधा
हताश्च शूराः सहसा समेत्य ।
त्यक्त्वा प्राणान् समरे युद्धकाङ्क्षी
स मामुपालब्धुमरिंदमोऽर्हति ॥

राजन् ! नकुलने समरभूमिमें प्राणोंका मोह छोड़कर सहसा आगे बढ़-बढ़कर बहुतसे हाथी, घोड़े और शूरवीर योद्धाओंका वध किया है । युद्धकी अभिलाषा रखनेवाला वह शत्रुदमन वीर भी मुझे उलाहना दे सकता है ॥

कृतं कर्म सहदेवेन दुष्करं
यो युध्यते परसैन्यावमर्दी ।
न चाब्रवीत् किंचिदिहागतो बली
पश्यान्तरं तस्य चैवात्मनश्च ॥

सहदेवने भी दुष्कर कर्म किया है । शत्रुसेनाका मर्दन करनेवाला वह बलवान् वीर निरन्तर युद्धमें लगा रहता है । वह भी यहाँ आया था, किंतु कुछ भी न बोला । देख ले, तुझमें और उसमें कितना अन्तर है ॥

धृष्टद्युम्नः सात्यकिर्द्रौपदेया
युधामन्युश्चोत्तमौजाः शिखण्डी ।
एते च सर्वे युधि सम्प्रपीडिता-
स्ते मामुपालब्धुमर्हन्ति न त्वम् ॥)

धृष्टद्युम्न, सात्यकि, द्रौपदीके पुत्र, युधामन्यु, उत्तमौजा और शिखण्डी—ये सभी वीर युद्धमें अत्यन्त पीड़ा सहन करते आये हैं ; अतः ये ही मुझे उपालम्भ दे सकते हैं, तू नहीं ।

बलं तु वाचि द्विजसत्तमानां
क्षात्रं बुधा बाहुबलं वदन्ति ।

त्वं वाग्बलो भारत निष्ठुरश्च
त्वमेव मां वेत्थ यथाबलोऽहम् ॥ १२ ॥

भरतनन्दन ! ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका बल उनकी वाणीमें होता है और क्षत्रियका बल उनकी दोनों भुजाओंमें; परंतु तेरा बल केवल वाणीमें है, तू निष्ठुर है; मैं जैसा बलवान् हूँ, उसे तू ही अच्छी तरह जानता है ॥

यतें हि नित्यं तव कर्तुमिष्टं
दारैः सुतैर्जीवितेनात्मना च ।
एवं यन्मां वाग्विशिखेन हंसि
त्वत्तः सुखं न वयं विद्म किंचित् ॥ १३ ॥

मैं सदा स्त्री, पुत्र, जीवन और यह शरीर लगाकर तेरा प्रिय कार्य सिद्ध करनेके लिये प्रयत्नशील रहता हूँ । ऐसी दशामें भी तू मुझे अपने वाग्बाणोंसे मार रहा है; हमलोग तुझसे थोड़ा-सा भी सुख न पा सके ॥ १३ ॥

मां मावमंस्था द्रौपदीतल्पसंस्थो
महारथान् प्रतिहन्मि त्वदर्थे ।
तेनातिशङ्की भारत निष्ठुरोऽसि
त्वत्तः सुखं नाभिजानामि किंचित् ॥ १४ ॥

तू द्रौपदीकी शय्यापर बैठा-बैठा मेरा अपमान न कर। मैं तेरे ही लिये बड़े-बड़े महारथियोंका संहार कर रहा हूँ । इसीसे तू मेरे प्रति अधिक संदेह करके निष्ठुर हो गया है । तुझसे कोई सुख मिला हो, इसका मुझे स्मरण नहीं है ॥

प्रोक्तः स्वयं सत्यसंधेन मृत्यु-
स्तव प्रियार्थं नरदेव युद्धे ।
वीरः शिखण्डी द्रौपदोऽसौ महात्मा
मयाभिगुप्तेन हतश्च तेन ॥ १५ ॥

नरदेव ! तेरा प्रिय करनेके लिये सत्यप्रतिज्ञ भीष्मजीने युद्धमें महामनस्वी वीर द्रुपदकुमार शिखण्डीको अपनी मृत्यु बताया था । मेरे ही द्वारा सुरक्षित होकर शिखण्डीने उन्हें मारा है ॥ १५ ॥

न चाभिनन्दामि तवाधिराज्यं
यतस्त्वमक्षेष्वहिताय सक्तः ।
स्वयं कृत्वा पापमनार्यजुष्ट-
मस्माभिर्वा तर्तुमिच्छस्यरींस्त्वम् ॥ १६ ॥

मैं तेरे राज्यका अभिनन्दन नहीं करता; क्योंकि तू अपना ही अहित करनेके लिये जूएमें आसक्त है । स्वयं नीच पुरुषोंद्वारा सेवित पापकर्म करके अब तू हमलोगोंके द्वारा शत्रुसेनारूपी समुद्रको पार करना चाहता है ॥ १६ ॥

अक्षेषु दोषा बहवो विधर्माः
श्रुतास्त्वया सहदेवोऽब्रवीद् यान् ।
तान् नैषि त्वं त्यक्तुमसाधुजुष्टां-
स्तेन स्म सर्वे निरयं प्रपन्नाः ॥ १७ ॥

जूआ खेलनेमें बहुत-से पापमय दोष बताये गये हैं, जिन्हें सहदेवने तुझसे कहा था और तूने सुना भी था, तो भी तू उन दुर्जनसेवित दोषोंका परित्याग न कर सका; इसीसे हम सब लोग नरकतुल्य कष्टमें पड़ गये ॥ १७ ॥

सुखं त्वत्तो नाभिजानीम किंचिद्
यतस्त्वमक्षैर्देवितुं सम्प्रवृत्तः ।
स्वयं कृत्वा व्यसनं पाण्डव त्व-
मस्मांस्तीव्राः श्रावयस्यद्य वाचः ॥ १८ ॥

पाण्डुकुमार ! तुझसे थोड़ा-सा भी सुख मिला हो—यह हम नहीं जानते हैं; क्योंकि तू जूआ खेलनेके व्यसनमें पड़ा हुआ है । स्वयं यह दुर्व्यसन करके अब तू हमें कठोर बातें सुना रहा है ॥ १८ ॥

शेतेऽस्माभिर्निहता शत्रुसेना
छिन्नैर्गात्रैर्भूमितले नदन्ती ।
त्वया हि तत् कर्म कृतं नृशंसं
यस्माद् दोषः कौरवाणां वधश्च ॥ १९ ॥

हमारे द्वारा मारी गयी शत्रुओंकी सेना अपने कटे हुए अङ्गोंके साथ पृथ्वीपर पड़ी-पड़ी कराह रही है । तूने वह क्रूरतापूर्ण कर्म कर डाला है, जिससे पाप तो होगा ही; कौरव-वंशका विनाश भी हो जायगा ॥ १९ ॥

हता उदीच्या निहताः प्रतीच्या
नष्टाः प्राच्या दाक्षिणात्या विशस्ताः ।
कृतं कर्माप्रतिरूपं महद्भि-
स्तेषां योधैरस्मदीयैश्च युद्धे ॥ २० ॥

उत्तर दिशाके वीर मारे गये, पश्चिमके योद्धाओंका संहार हो गया, पूर्वदेशके क्षत्रिय नष्ट हो गये और दक्षिण-देशीय योद्धा काट डाले गये । शत्रुओंके और हमारे पक्षके बड़े-बड़े योद्धाओंने युद्धमें ऐसा पराक्रम किया है, जिसकी कहीं तुलना नहीं है ॥ २० ॥

त्वं देविता त्वत्कृते राज्यनाश-
स्त्वत्सम्भवं नो व्यसनं नरेन्द्र ।
मास्मान् क्रूरैर्वाक्प्रतोदैस्तुदंस्त्वं
भूयो राजन् कोपयेस्त्वल्पभाग्यः ॥ २१ ॥

नरेन्द्र ! तू भाग्यहीन जुआरी है । तेरे ही कारण हमारे राज्यका नाश हुआ और तुझसे ही हमें घोर सङ्कटकी प्राप्ति हुई । राजन् ! अब तू अपने वचनरूपी चाबुकोंसे हमें पीड़ा देते हुए फिर कुपित न कर ॥ २१ ॥

संजय उवाच

एता वाचः परुषाः सव्यसाची
स्थिरप्रज्ञः श्रावयित्वा तु रूक्षाः ।
बभूवासौ विमना धर्मभीरुः
कृत्वा प्राज्ञः पातकं किंचिदेवम् ॥ २२ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! सव्यसाची अर्जुन धर्मभीरु हैं । उनकी बुद्धि स्थिर है तथा वे उत्तम ज्ञानसे सम्पन्न हैं ।

उस समय राजा युधिष्ठिरको वैसी रूखी और कठोर बातें सुनाकर वे ऐसे अनमने और उदास हो गये, मानो कोई पातक करके इस प्रकार पछता रहे हों ॥ २२ ॥

तदानुतेपे सुरराजपुत्रो
विनिःश्वसंश्चासिमथोद्बबर्ह ।
तमाह कृष्णः किमिदं पुनर्भवान्
विकोशमाकाशनिभं करोत्यसिम्॥ २३ ॥
ब्रवीहि मां त्वं पुनरुत्तरं वच-
स्तथा प्रवक्ष्याम्यहमर्थसिद्धये ।

देवराजकुमार अर्जुनको उस समय बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने लंबी साँस खींचते हुए फिरसे तलवार खींच ली। यह देख भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'अर्जुन ! यह क्या ? तुम आकाशके समान निर्मल इस तलवारको पुनः क्यों म्यानसे बाहर निकाल रहे हो ? तुम मुझे मेरी बातका उत्तर दो। मैं तुम्हारा अभीष्ट अर्थ सिद्ध करनेके लिये पुनः कोई योग्य उपाय बताऊँगा' ॥ २३½ ॥

इत्येवमुक्तः पुरुषोत्तमेन
सुदुःखितः केशवमर्जुनोऽब्रवीत्॥ २४ ॥
अहं हनिष्ये स्वशरीरमेव
प्रसह्य येनाहितमाचरं वै ।

पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके इस प्रकार पूछनेपर अर्जुन अत्यन्त दुखी हो उनसे इस प्रकार बोले—'भगवन् ! मैंने जिसके द्वारा हठपूर्वक भाईका अपमानरूप अहितकर कार्य कर डाला है, अपने उस शरीरको ही अब नष्ट कर डालूँगा' ॥ २४½ ॥

निशम्य तत् पार्थवचोऽब्रवीदिदं
धनंजयं धर्मभृतां वरिष्ठः ॥ २५ ॥
राजानमेतं त्वमितीदमुक्त्वा
किं कश्मलं प्राविशः पार्थ घोरम्।
त्वं चात्मानं हन्तुमिच्छस्यरिघ्न
नेदं सद्भिः सेवितं वै किरीटिन्॥ २६ ॥

अर्जुनका यह वचन सुनकर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णने उनसे कहा—'पार्थ ! राजा युधिष्ठिरको 'तू' ऐसा कहकर तुम इतने घोर दुःखमें क्यों डूब गये ? शत्रुसूदन ! क्या तुम आत्मघात करना चाहते हो ? किरीटधारी वीर ! साधुपुरुषोंने कभी ऐसा कार्य नहीं किया है ॥ २५-२६ ॥

धर्मात्मानं भ्रातरं ज्येष्ठमद्य
खड्गेन चैनं यदि हन्या नृवीर ।
धर्माद् भीतस्तत् कथं नाम ते स्यात्
किंचोत्तरं वाकरिष्यस्त्वमेव ॥ २७ ॥

'नरवीर ! यदि आज धर्मसे डरकर तुमने अपने बड़े भाई इन धर्मात्मा युधिष्ठिरको तलवारसे मार डाला होता तो तुम्हारी कैसी दशा होती और इसके बाद तुम क्या करते ? ॥

सूक्ष्मो धर्मो दुर्विदश्चापि पार्थ
विशेषतोऽज्ञैः प्रोच्यमानं निबोध।
हत्वाऽऽत्मानमात्मना प्राप्नुयास्त्वं
वधाद् भ्रातुर्नरकं चातिघोरम् ॥ २८ ॥

'कुन्तीनन्दन ! धर्मका स्वरूप सूक्ष्म है। उसको जानना या समझना बहुत कठिन है। विशेषतः अज्ञानी पुरुषोंके लिये तो उसका जानना और भी मुश्किल है। अब मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे ध्यान देकर सुनो, भाईका वध करनेसे जिस अत्यन्त घोर नरककी प्राप्ति होती है, उससे भी भयानक नरक तुम्हें स्वयं ही अपनी हत्या करनेसे प्राप्त हो सकता है ॥

ब्रवीहि वाचाद्य गुणानिहात्मन-
स्तथा हतात्मा भवितासि पार्थ ।
तथास्तु कृष्णेत्यभिनन्द्य तद्वचो
धनंजयः प्राह धनुर्विनाम्य ॥ २९ ॥
युधिष्ठिरं धर्मभृतां वरिष्ठं
शृणुष्व राजन्निति शक्रसूनुः ।

'अतः पार्थ ! अब तुम यहाँ अपनी ही वाणीद्वारा अपने गुणोंका वर्णन करो। ऐसा करनेसे यह मान लिया जायगा कि तुमने अपने ही हाथों अपना वध कर लिया।' यह सुनकर अर्जुनने उनकी बातका अभिनन्दन करते हुए कहा—'श्रीकृष्ण ! ऐसा ही हो'। फिर इन्द्रकुमार अर्जुन अपने धनुषको नवाकर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरसे इस प्रकार बोले—'राजन् ! सुनिये ॥ २९½ ॥

न मादृशोऽन्यो नरदेव विद्यते
धनुर्धरो देवमृते पिनाकिनम् ॥ ३० ॥
अहं हि तेनानुमतो महात्मना
क्षणेन हन्यां सचराचरं जगत् ।

'नरदेव ! पिनाकधारी भगवान् शङ्करको छोड़कर दूसरा कोई भी मेरे समान धनुर्धर नहीं है। उन महात्मा महेश्वरने मेरी वीरताका अनुमोदन किया है। मैं चाहूँ तो क्षणभरमें चराचर प्राणियोंसहित सम्पूर्ण जगत्को नष्ट कर डालूँ॥३०½॥

मया हि राजन् सदिगीश्वरा दिशो
विजित्य सर्वा भवतः कृता वशे॥ ३१ ॥
स राजसूयश्च समाप्तदक्षिणः
सभा च दिव्या भवतो ममौजसा।

'राजन् ! मैंने सम्पूर्ण दिशाओं और दिक्पालोंको जीतकर आपके अधीन कर दिया था। पर्याप्त दक्षिणाओंसे युक्त राजसूय यज्ञका अनुष्ठान तथा आपकी दिव्य सभाका निर्माण मेरे ही बलसे सम्भव हुआ है ॥ ३१½ ॥

पाणौ पृषत्का निशिता ममैव
धनुश्च सज्यं विततं सबाणम् ॥ ३२ ॥
पादौ च मे सरथौ सध्वजौ च
न मादृशं युद्धगतं जयन्ति ।

'मेरे ही हाथमें तीखे तीर और बाण तथा प्रत्यञ्चासहित विशाल धनुष हैं। मेरे चरणोंमें रथ और ध्वजाके चिह्न हैं। मेरे-जैसा वीर यदि युद्धभूमिमें पहुँच जाय तो उसे शत्रु जीत नहीं सकते ॥ ३२½ ॥

हता उदीच्या निहताः प्रतीच्याः
प्राच्या निरस्ता दाक्षिणात्या विशस्ताः॥३३॥
संशप्तकानां किंचिदेवास्ति शिष्टं
सर्वस्य सैन्यस्य हतं मयार्धम्।
शेते मया निहता भारतीयं
चमू राजन् देवचमूप्रकाशा ॥ ३४ ॥

'मेरेद्वारा उत्तर दिशाके वीर मारे गये, पश्चिमके योद्धाओंका संहार हो गया, पूर्वदेशके क्षत्रिय नष्ट हो गये और दक्षिणदेशीय योद्धा काट डाले गये। संशप्तकोंका भी थोड़ा-सा ही भाग शेष रह गया है। मैंने सारी कौरव-सेनाके आधे भागको स्वयं ही नष्ट किया है। राजन्! देवताओंकी सेनाके समान प्रकाशित होनेवाली भरतवंशियोंकी यह विशाल वाहिनी मेरे ही हाथों मारी जाकर रणभूमिमें सो रही है ॥ ३३-३४ ॥

ये चास्त्रज्ञास्तानहं हन्मि चास्त्रै-
स्तस्माल्लोकान्नेह करोमि भस्मसात्।
जैत्रं रथं भीममास्थाय कृष्ण
यावः शीघ्रं सूतपुत्रं निहन्तुम् ॥ ३५ ॥

'जो अस्त्रविद्याके ज्ञाता हैं, उन्हींको मैं अस्त्रोंद्वारा मारता हूँ; इसीलिये मैं यहाँ सम्पूर्ण लोकोंको भस्म नहीं करता हूँ। श्रीकृष्ण! अब हम दोनों विजयशाली एवं भयंकर रथपर बैठकर सूतपुत्रका वध करनेके लिये शीघ्र ही चल दें ॥

राजा भवत्वद्य सुनिर्वृतोऽयं
कर्णं रणे नाशयितास्मि बाणैः।
इत्येवमुक्त्वा पुनराह पार्थो
युधिष्ठिरं धर्मभृतां वरिष्ठम् ॥ ३६ ॥

'आज ये राजा युधिष्ठिर संतुष्ट हों। मैं रणभूमिमें अपने बाणोंद्वारा कर्णका नाश कर डालूँगा।' यों कहकर अर्जुन पुनः धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरसे बोले—॥ ३६ ॥

अद्यापुत्रा सूतमाता भवित्री
कुन्ती वाथो वा मया तेन वापि।
सत्यं वदाम्यद्य न कर्णमाजौ
शरैरहत्वा कवचं विमोक्ष्ये ॥ ३७ ॥

'आज मेरेद्वारा सूतपुत्रकी माता पुत्रहीन हो जायगी अथवा मेरी माता कुन्ती ही कर्णके द्वारा मुझ एक पुत्रसे हीन हो जायगी। मैं सत्य कहता हूँ, आज युद्धस्थलमें अपने बाणोंद्वारा कर्णको मारे बिना मैं कवच नहीं उतारूँगा ॥३७॥

संजय उवाच

इत्येवमुक्त्वा पुनरेव पार्थो
युधिष्ठिरं धर्मभृतां वरिष्ठम्।
विमुच्य शस्त्राणि धनुर्विसृज्य
कोशे च खड्गं विनिधाय तूर्णम् ॥ ३८ ॥
स व्रीडया नम्रशिराः किरीटी
युधिष्ठिरं प्राञ्जलिरभ्युवाच।
प्रसीद राजन् क्षम यन्मयोक्तं
काले भवान् वेत्स्यति तन्नमस्ते॥ ३९ ॥

संजय कहते हैं— महाराज! किरीटधारी कुन्तीकुमार अर्जुन धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरसे पुनः ऐसा कहकर शस्त्र खोल, धनुष नीचे डाल और तलवारको तुरंत ही म्यानमें रखकर लज्जासे नतमस्तक हो हाथ जोड़ पुनः उनसे इस प्रकार बोले—'राजन्! आप प्रसन्न हों। मैंने जो कुछ कहा है, उसके लिये क्षमा करें। समयपर आपको सब कुछ मालूम हो जायगा। इसलिये आपको मेरा नमस्कार है' ॥ ३८-३९ ॥

प्रसाद्य राजानममित्रसाह
स्थितोऽब्रवीच्चैव पुनः प्रवीरः।
नेदं चिरात् क्षिप्रमिदं भविष्य-
त्यावर्ततेऽसावभियामि चैनम् ॥ ४० ॥

इस प्रकार शत्रुओंका सामना करनेमें समर्थ राजा युधिष्ठिरको प्रसन्न करके प्रमुख वीर अर्जुन खड़े होकर फिर बोले—'महाराज! अब कर्णके वधमें देर नहीं है। यह कार्य शीघ्र ही होगा। वह इधर ही आ रहा है; अतः मैं भी उसीपर चढ़ाई कर रहा हूँ ॥ ४० ॥

याम्येष भीमं समरात् प्रमोक्तुं
सर्वात्मना सूतपुत्रं च हन्तुम्।
तव प्रियार्थं मम जीवितं हि
ब्रवीमि सत्यं तदवेहि राजन् ॥ ४१ ॥

'राजन्! मैं अभी भीमसेनको संग्रामसे छुटकारा दिलाने और सब प्रकारसे सूतपुत्र कर्णका वध करनेके लिये जा रहा हूँ। मेरा जीवन आपका प्रिय करनेके लिये ही है। यह मैं सत्य कहता हूँ। आप इसे अच्छी तरह समझ लें' ॥ ४१ ॥

इति प्रयास्यन्नुपगृह्य पादौ
समुत्थितो दीप्ततेजाः किरीटी।
एतच्छ्रुत्वा पाण्डवो धर्मराजो
भ्रातुर्वाक्यं परुषं फाल्गुनस्य ॥ ४२ ॥
उत्थाय तस्माच्छयनादुवाच
पार्थं ततो दुःखपरीतचेताः।

इस प्रकार जानेके लिये उद्यत हो राजा युधिष्ठिरके चरण छूकर उद्दीप्त तेजवाले किरीटधारी अर्जुन उठ खड़े हुए। इधर अपने भाई अर्जुनका पूर्वोक्तरूपसे कठोर वचन सुनकर पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर दुःखसे व्याकुलचित्त होकर उस शय्यासे उठ गये और अर्जुनसे इस प्रकार बोले—॥

कृतं मया पार्थ यथा न साधु
येन प्राप्तं व्यसनं वः सुघोरम् ॥ ४३ ॥

तस्माच्छिरश्छिन्धि ममेदमद्य
कुलान्तकस्याधमपूरुषस्य ।
पापस्य पापव्यसनान्वितस्य
विमूढबुद्धेरलसस्य भीरोः ॥ ४४ ॥

'कुन्तीनन्दन ! अवश्य ही मैंने अच्छा कर्म नहीं किया है; जिससे तुमलोगोंपर अत्यन्त भयङ्कर सङ्कट आ पड़ा है। मैं कुलान्तकारी नराधम पापी, पापमय दुर्व्यसनमें आसक्त, मूढ़बुद्धि, आलसी और डरपोक हूँ; इसलिये आज तुम मेरा यह मस्तक काट डालो ॥ ४३-४४ ॥

वृद्धावमन्तुः परुषस्य चैव
किं ते चिरं मे ह्यनुसृत्य रूक्षम्।
गच्छाम्यहं वनमेवाद्य पापः
सुखं भवान् वर्ततां मद्विहीनः॥ ४५॥

'मैं बड़े बूढ़ोंका अनादर करनेवाला और कठोर हूँ। तुम्हें मेरी रूखी बातोंका दीर्घकालतक अनुसरण करनेकी क्या आवश्यकता है। मैं पापी आज वनमें ही चला जा रहा हूँ। तुम मुझसे अलग होकर सुखसे रहो ॥ ४५ ॥

योग्यो राजा भीमसेनो महात्मा
क्लीबस्य वा मम किं राज्यकृत्यम्।
न चापि शक्तः परुषाणि सोढुं
पुनस्तवेमानि रुषान्वितस्य ॥ ४६ ॥

'महामनस्वी भीमसेन सुयोग्य राजा होंगे। मुझ कायरको राज्य लेनेसे क्या काम है ? अब पुनः मुझमें तुम्हारे रोषपूर्वक कहे हुए इन कठोर वचनोंको सहनेकी शक्ति नहीं है ॥४६॥

भीमोऽस्तु राजा मम जीवितेन
न कार्यमद्यावमतस्य वीर ।
इत्येवमुक्त्वा सहसोत्पपात
राजा ततस्तच्छयनं विहाय ॥ ४७ ॥
इयेष निर्गन्तुमथो वनाय
तं वासुदेवः प्रणतोऽभ्युवाच ॥ ४८ ॥

'वीर ! भीमसेन राजा हों। आज इतना अपमान हो जानेपर मुझे जीवित रहनेकी आवश्यकता नहीं है।' ऐसा कहकर राजा युधिष्ठिर सहसा पलंग छोड़कर वहाँसे नीचे कूद पड़े और वनमें जानेकी इच्छा करने लगे। तब भगवान् श्रीकृष्णने उनके चरणोंमें प्रणाम करके इस प्रकार कहा—॥४७-४८॥

राजन् विदितमेतद् वै यथा गाण्डीवधन्वनः ।
प्रतिज्ञा सत्यसंधस्य गाण्डीवं प्रति विश्रुता ॥ ४९ ॥

'राजन् ! आपको तो यह विदित ही है कि गाण्डीवधारी सत्यप्रतिज्ञ अर्जुनने गाण्डीव धनुषके विषयमें कैसी प्रतिज्ञा कर रक्खी है ? उनकी वह प्रतिज्ञा प्रसिद्ध है ॥ ४९ ॥

ब्रूयाद् य एवं गाण्डीवमन्यस्मै देयमित्युत ।
वध्योऽस्य स पुमाँल्लोके त्वया चोक्तोऽयमीदृशम् ॥

'जो अर्जुनसे यह कह दे कि 'तुम्हें अपना गाण्डीवधनुष दूसरेको दे देना चाहिये' वह मनुष्य इस जगत्में उनका वध्य है।' आपने आज अर्जुनसे ऐसी ही बात कह दी है ॥५०॥

ततः सत्यां प्रतिज्ञां तां पार्थेन प्रतिरक्षता ।
मच्छन्दादवमानोऽयं कृतस्तव महीपते ॥ ५१ ॥
गुरूणामवमानो हि वध इत्यभिधीयते ।

'अतः भूपाल ! अर्जुनने अपनी उस सच्ची प्रतिज्ञाकी रक्षा करते हुए मेरी आज्ञासे आपका यह अपमान किया; क्योंकि गुरुजनोंका अपमान ही उनका वध कहा जाता है ॥

तस्मात् त्वं वै महाबाहो मम पार्थस्य चोभयोः ॥ ५२ ॥
व्यतिक्रममिमं राजन् सत्यसंरक्षणं प्रति ।

'इसलिये महाबाहो ! राजन् ! मेरे और अर्जुन दोनोंके सत्यकी रक्षाके लिये किये गये इस अपराधको आप क्षमा करें ॥ ५२½ ॥

शरणं त्वां महाराज प्रपन्नौ स्व उभावपि ॥ ५३ ॥
क्षन्तुमर्हसि मे राजन् प्रणतस्याभियाचतः ।

'महाराज ! हम दोनों आपकी शरणमें आये हैं और मैं चरणोंमें गिरकर आपसे क्षमा-याचना करता हूँ; आप मेरे अपराधको क्षमा करें ॥ ५३½ ॥

राधेयस्याद्य पापस्य भूमिः पास्यति शोणितम् ॥ ५४ ॥
सत्यं ते प्रतिजानामि हतं विद्ध्यद्य सूतजम् ।
यस्येच्छसि वधं तस्य गतमप्यस्य जीवितम् ॥ ५५ ॥

'आज पृथ्वी पापी राधापुत्र कर्णके रक्तका पान करेगी। मैं आपसे सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, समझ लीजिये कि अब सूतपुत्र कर्ण मार दिया गया। आप जिसका वध चाहते हैं, उसका जीवन समाप्त हो गया' ॥ ५४-५५ ॥

इति कृष्णवचः श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
ससम्भ्रमं हृषीकेशमुत्थाप्य प्रणतं तदा ॥ ५६ ॥
कृताञ्जलिस्ततो वाक्यमुवाचानन्तरं वचः ।

भगवान् श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने अपने चरणोंमें पड़े हुए हृषीकेशको वेगपूर्वक उठाकर फिर दोनों हाथ जोड़कर यह बात कही—॥ ५६½ ॥

एवमेव यथाऽऽत्थ त्वमस्त्येषोऽतिक्रमो मम॥ ५७ ॥
अनुनीतोऽस्मि गोविन्द तारितश्चास्मि माधव ।
मोचिता व्यसनाद् घोराद् वयमद्य त्वयाच्युत॥ ५८ ॥

'गोविन्द ! आप जैसा कहते हैं, वह ठीक है। वास्तवमें मुझसे यह नियमका उल्लङ्घन हो गया है। माधव ! आपने अनुनयद्वारा मुझे संतुष्ट कर दिया और सङ्कटके समुद्रमें डूबनेसे बचा लिया। अच्युत ! आज आपके द्वारा हमलोग घोर विपत्तिसे बच गये ॥ ५७-५८ ॥

भवन्तं नाथमासाद्य ह्यावां व्यसनसागरात् ।
घोरादद्य समुत्तीर्णावुभावज्ञानमोहितौ ॥ ५९ ॥
त्वद्बुद्धिप्लवमासाद्य दुःखशोकार्णवाद् वयम् ।

समुत्तीर्णाः सहामात्याः सनाथाः स्म त्वयाच्युत ॥ ६० ॥

'आज आपको अपना रक्षक पाकर हम दोनों सङ्कटके भयानक समुद्रसे पार हो गये। हम दोनों ही अज्ञानसे मोहित हो रहे थे; परंतु आपकी बुद्धिरूपी नौकाका आश्रय लेकर दुःख-शोकके समुद्रसे मन्त्रियोंसहित पार हो गये। अच्युत ! हम आपसे ही सनाथ हैं' ॥ ५९-६० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि युधिष्ठिरसमाश्वासने सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें युधिष्ठिरको आश्वासनविषयक सत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३ श्लोक मिलाकर कुल ६३ श्लोक हैं)

एकसप्ततितमोऽध्यायः

अर्जुनसे भगवान् श्रीकृष्णका उपदेश, अर्जुन और युधिष्ठिरका प्रसन्नतापूर्वक मिलन एवं अर्जुनद्वारा कर्णवधकी प्रतिज्ञा, युधिष्ठिरका आशीर्वाद

संजय उवाच

धर्मराजस्य तच्छ्रुत्वा प्रीतियुक्तं वचस्ततः।
पार्थं प्रोवाच धर्मात्मा गोविन्दो यदुनन्दनः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! धर्मराजके मुखसे यह प्रेमपूर्ण वचन सुनकर यदुकुलको आनन्दित करनेवाले धर्मात्मा गोविन्द अर्जुनसे कुछ कहने लगे ॥ १ ॥

इति स्म कृष्णवचनात् प्रत्युच्चार्य युधिष्ठिरम्।
बभूव विमनाः पार्थः किंचित् कृत्वेव पातकम् ॥ २ ॥

अर्जुन श्रीकृष्णके कहनेसे युधिष्ठिरके प्रति जो तिरस्कारपूर्ण वचन बोले थे, इसके कारण वे मन-ही-मन ऐसे उदास हो गये थे, मानो कोई पाप कर बैठे हों ॥ २ ॥

ततोऽब्रवीद् वासुदेवः प्रहसन्निव पाण्डवम्।
कथं नाम भवेदेतद् यदि त्वं पार्थ धर्मजम् ॥ ३ ॥
असिना तीक्ष्णधारेण हन्या धर्मे व्यवस्थितम्।
त्वमित्युक्त्वाथ राजानमेवं कश्मलमाविशः॥ ४ ॥

उनकी यह अवस्था देख भगवान् श्रीकृष्ण हँसते हुए-से उन पाण्डुकुमारसे बोले—'पार्थ ! तुम तो राजाके प्रति केवल 'तू' कह देने मात्रसे ही इस प्रकार शोकमें डूब गये हो। फिर यदि धर्ममें स्थित रहनेवाले धर्मकुमार युधिष्ठिरको तीखी धारवाले तलवारसे मार डालते, तब तुम्हारी दशा कैसी हो जाती ? ॥ ३-४ ॥

हत्वा तु नृपतिं पार्थ अकरिष्यः किमुत्तरम्।
एवं हि दुर्विदो धर्मो मन्दप्रज्ञैर्विशेषतः ॥ ५ ॥

'कुन्तीनन्दन ! तुम राजाका वध करनेके पश्चात् क्या करते ? इस तरह धर्मका स्वरूप सभीके लिये दुर्विज्ञेय है। विशेषतः उन लोगोंके लिये, जिनकी बुद्धि मन्द है, उसके सूक्ष्म स्वरूपको समझना अत्यन्त कठिन है॥ ५ ॥

स भवान् धर्मभीरुत्वाद् ध्रुवमैष्यन्महत्तमः।
नरकं घोररूपं च भ्रातुर्ज्येष्ठस्य वै वधात् ॥ ६ ॥

'अतः तुम धर्मभीरु होनेके कारण अपने ज्येष्ठ भाईके वधसे निश्चय ही घोर नरकरूप महान् अन्धकार (दुःख) में डूब जाते ॥ ६ ॥

स त्वं धर्मभृतां श्रेष्ठं राजानं धर्मसंहितम्।
प्रसादय कुरुश्रेष्ठमेतदत्र मतं मम ॥ ७ ॥

'इसलिये इस विषयमें मेरा विचार यह है कि तुम धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ धर्मपरायण कुरुश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरको प्रसन्न करो॥

प्रसाद्य भक्त्या राजानं प्रीते चैव युधिष्ठिरे।
प्रयावस्त्वरितौ योद्धुं सूतपुत्ररथं प्रति ॥ ८ ॥

'राजा युधिष्ठिरको भक्तिभावसे प्रसन्न कर लो। जब वे प्रसन्न हो जायँ, तब हमलोग तुरंत ही युद्धके लिये सूतपुत्रके रथपर चढ़ाई करेंगे ॥ ८ ॥

हत्वा तु समरे कर्णं त्वमद्य निशितैः शरैः।
विपुलां प्रीतिमाधत्स्व धर्मपुत्रस्य मानद ॥ ९ ॥

'मानद ! आज तुम तीखे बाणोंसे समरभूमिमें कर्णका वध करके धर्मपुत्र युधिष्ठिरके हृदयमें अत्यन्त हर्षोल्लास भर दो ॥

एतदत्र महाबाहो प्राप्तकालं मतं मम।
एवं कृते कृतं चैव तव कार्यं भविष्यति ॥ १० ॥

'महाबाहो ! मुझे तो इस समय यहाँ यही करना उचित जान पड़ता है। ऐसा कर लेनेपर तुम्हारा सारा कार्य सम्पन्न हो जायगा' ॥ १० ॥

ततोऽर्जुनो महाराज लज्जया वै समन्वितः।
धर्मराजस्य चरणौ प्रपद्य शिरसा नतः ॥ ११ ॥
उवाच भरतश्रेष्ठं प्रसीदेति पुनः पुनः।
क्षमस्व राजन् यत् प्रोक्तं धर्मकामेन भीरुणा ॥ १२ ॥

'महाराज ! तब अर्जुन लज्जित हो धर्मराजके चरणोंमें गिरकर मस्तक नवाकर उन भरतश्रेष्ठ नरेशसे बारंबार बोले—'राजन् ! प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये। मैंने धर्मपालनकी इच्छासे भयभीत होकर जो अनुचित वचन कहा है, उसके लिये क्षमा कीजिये' ॥ ११-१२ ॥

दृष्ट्वा तु पतितं पद्भ्यां धर्मराजो युधिष्ठिरः।
धनंजयममित्रघ्नं रुदन्तं भरतर्षभ ॥ १३ ॥
उत्थाय भ्रातरं राजा धर्मराजो धनंजयम्।
समाश्लिष्य च सस्नेहं प्ररुरोद महीपतिः ॥ १४ ॥

भरतश्रेष्ठ ! धर्मराज युधिष्ठिरने शत्रुसूदन, भाई धनंजयको अपने चरणोंपर गिरकर रोते देख बड़े स्नेहसे उठाकर हृदयसे लगा लिया। फिर वे भूपाल धर्मराज भी फूट-फूटकर रोने लगे ॥ १३-१४ ॥

रुदित्वा सुचिरं कालं भ्रातरौ सुमहाद्युती।

कृतशौचौ महाराज प्रीतिमन्तौ बभूवतुः ॥ १५ ॥

महाराज ! वे दोनों महातेजस्वी भाई दीर्घकालतक रोते रहे। इससे उनके मनकी मैल धुल गयी और वे दोनों भाई परस्पर प्रेमसे भर गये ॥ १५ ॥

तत आश्लिष्य तं प्रेम्णा मूर्ध्नि चाघ्राय पाण्डवः।
प्रीत्या परमया युक्तो विस्मयंश्च पुनः पुनः ॥१६॥
अब्रवीत् तं महेष्वासं धर्मराजो धनंजयम्।

तदनन्तर अत्यन्त प्रसन्न हो बारंबार मुस्कराते हुए पाण्डुकुमार धर्मराज युधिष्ठिरने महाधनुर्धर धनंजयको बड़े प्रेमसे हृदयसे लगाकर उनका मस्तक सूँघा और उनसे इस प्रकार कहा—॥ १६½ ॥

कर्णेन मे महाबाहो सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥१७॥
कवचं च ध्वजं चैव धनुः शक्तिर्हयाः शराः।
शरैः कृत्ता महेष्वास यतमानस्य संयुगे ॥१८॥

'महाधनुर्धर ! महाबाहो ! मैं युद्धमें यत्नपूर्वक लगा हुआ था, किंतु कर्णने सारी सेनाके देखते-देखते अपने बाणोंद्वारा मेरे कवच, ध्वज, धनुष, शक्ति, घोड़े और बाणोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले हैं ॥ १७-१८ ॥

सोऽहं ज्ञात्वा रणे तस्य कर्म दृष्ट्वा च फाल्गुन।
व्यवसीदामि दुःखेन न च मे जीवितं प्रियम् ॥१९॥

'फाल्गुन ! रणभूमिमें उसके इस कर्मको देख और समझकर मैं दुःखसे पीड़ित हो रहा हूँ। मुझे अपना जीवन प्रिय नहीं रह गया है ॥ १९ ॥

न चेदद्य हि तं वीरं निहनिष्यसि संयुगे।
प्राणानेव परित्यक्ष्ये जीवितार्थो हि को मम ॥ २० ॥

'यदि आज युद्धस्थलमें तुम वीर कर्णका वध नहीं करोगे, तो मैं अपने प्राणोंका ही परित्याग कर दूँगा। फिर मेरे जीवनका प्रयोजन ही क्या है ?' ॥ २० ॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच विजयो भरतर्षभ।
सत्येन ते शपे राजन् प्रसादेन तथैव च।
भीमेन च नरश्रेष्ठ यमाभ्यां च महीपते ॥ २१ ॥
यथाद्य समरे कर्णं हनिष्यामि हतोऽपि वा।
महीतले पतिष्यामि सत्येनायुधमालभे ॥ २२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! उनके ऐसा कहनेपर अर्जुनने उत्तर दिया—'राजन् ! नरश्रेष्ठ महीपाल ! मैं आपसे सत्यकी, आपके कृपापूर्ण प्रसादकी, भीमसेनकी तथा नकुल और सहदेवकी शपथ खाकर सत्यके द्वारा अपने धनुषको छूकर कहता हूँ कि आज समरमें या तो कर्णको मार डालूँगा या स्वयं ही मारा जाकर पृथ्वीपर गिर जाऊँगा' ॥ २१-२२ ॥

एवमाभाष्य राजानमब्रवीन्माधवं वचः।
अद्य कर्णं रणे कृष्ण सूदयिष्ये न संशयः ॥ २३ ॥
तव बुद्ध्या हि भद्रं ते वधस्तस्य दुरात्मनः।

राजा युधिष्ठिरसे ऐसा कहकर अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णसे बोले—'श्रीकृष्ण ! आज रणभूमिमें मैं कर्णका वध करूँगा, इसमें संशय नहीं है। आपका कल्याण हो। आपकी बुद्धिसे ही उस दुरात्माका वध होगा' ॥ २३½ ॥

एवमुक्तोऽब्रवीत् पार्थं केशवो राजसत्तम ॥ २४ ॥
शक्तोऽसि भरतश्रेष्ठ हन्तुं कर्णं महाबलम्।
एष चापि हि मे कामो नित्यमेव महारथ ॥ २५ ॥
कथं भवान् रणे कर्णं निहन्यादिति सत्तम।

नृपश्रेष्ठ ! उनके ऐसा कहनेपर श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा—'भरतश्रेष्ठ ! तुम महाबली कर्णका वध करनेमें समर्थ हो। सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ महारथी वीर ! मेरे मनमें भी सदा यही इच्छा बनी रहती है कि तुम रणभूमिमें कर्णको किसी तरह मार डालो' ॥ २४-२५½ ॥

भूयश्चोवाच मतिमान् माधवो धर्मनन्दनम् ॥ २६ ॥
युधिष्ठिरेमं बीभत्सुं त्वं सान्त्वयितुमर्हसि।
अनुज्ञातुं च कर्णस्य वधायाद्य दुरात्मनः ॥ २७ ॥

फिर बुद्धिमान् भगवान् माधवने धर्मनन्दन युधिष्ठिरसे इस प्रकार कहा—'महाराज ! आप अर्जुनको सान्त्वना और दुरात्मा कर्णके वधके लिये आज्ञा प्रदान करें ॥ २६-२७ ॥

श्रुत्वा ह्यहमयं चैव त्वां कर्णशरपीडितम्।
प्रवृत्तिं ज्ञातुमायाताविहावां पाण्डुनन्दन ॥ २८ ॥

'पाण्डुनन्दन ! राजन् ! आप कर्णके बाणोंसे बहुत पीड़ित हो गये हैं—यह सुनकर मैं और ये अर्जुन दोनों आपका समाचार जाननेके लिये यहाँ आये थे ॥ २८ ॥

दिष्ट्यासि राजन् न हतो दिष्ट्या न ग्रहणं गतः।
परिसान्त्वय बीभत्सुं जयमाशाधि चानघ ॥ २९ ॥

'निष्पाप नरेश ! सौभाग्यकी बात है कि (कर्णकेद्वारा) न तो आप मारे गये और न पकड़े ही गये। अब आप अर्जुनको सान्त्वना दें और उन्हें विजयके लिये आशीर्वाद प्रदान करें' ॥ २९ ॥

युधिष्ठिर उवाच

एह्येहि पार्थ बीभत्सो मां परिष्वज पाण्डव।
वक्तव्यमुक्तोऽस्मि हितं त्वया क्षान्तं च तन्मया ॥ ३० ॥

युधिष्ठिर बोले—कुन्तीनन्दन ! बीभत्सो ! आओ, आओ ! पाण्डुकुमार ! मेरे हृदयसे लग जाओ। तुमने तो मेरे प्रति कहने योग्य और हितकी ही बात कही है तथा मैंने उसके लिये क्षमा भी कर दी ॥ ३० ॥

अहं त्वामनुजानामि जहि कर्णं धनंजय।
मन्युं च मा कृथाः पार्थ यन्मयोक्तोऽसि दारुणम् ॥३१॥

धनंजय ! मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, कर्णका वध करो। पार्थ ! मैंने जो तुमसे कठोर वचन कहा है, उसके लिये खेद न करना ॥

संजय उवाच

ततो धनंजयो राजञ्शिरसा प्रणतस्तदा।
पादौ जग्राह पाणिभ्यां भ्रातुर्ज्येष्ठस्य मारिष ॥ ३२ ॥

संजय कहते हैं—माननीय नरेश ! तब धनंजयने

मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और दोनों हाथोंसे बड़े भाईके पैर पकड़ लिये ॥ ३२ ॥

तमुत्थाप्य ततो राजा परिष्वज्य च पीडितम् ।
मूर्ध्न्युपाघ्राय चैवैनमिदं पुनरुवाच ह ॥ ३३ ॥

तत्पश्चात् राजाने मन-ही-मन पीड़ाका अनुभव करनेवाले अर्जुनको उठाकर छातीसे लगा लिया और उनका मस्तक सूँघकर पुनः उनसे इस प्रकार कहा—॥ ३३ ॥

धनंजय महाबाहो मानितोऽस्मि दृढं त्वया ।
माहात्म्यं विजयं चैव भूयः प्राप्नुहि शाश्वतम् ॥ ३४ ॥

'महाबाहु धनंजय ! तुमने मेरा बड़ा सम्मान किया है; अतः तुम्हारी महिमा बढ़े और तुम्हें पुनः सनातन विजय प्राप्त हो' ॥ ३४ ॥

अर्जुन उवाच

अद्य तं पापकर्माणं सानुबन्धं रणे शरैः ।
नयाम्यन्तं समासाद्य राधेयं बलगर्वितम् ॥ ३५ ॥

अर्जुन बोले—महाराज ! आज मैं अपने बलका घमंड रखनेवाले उस पापाचारी राधापुत्र कर्णको रणभूमिमें पाकर उसके सगे-सम्बन्धियोंसहित मृत्युके समीप भेज दूँगा ॥

येन त्वं पीडितो बाणैर्दृढमायम्य कार्मुकम् ।
तस्याद्य कर्मणः कर्णः फलमाप्स्यति दारुणम् ॥ ३६ ॥

राजन् ! जिसने धनुषको दृढ़तापूर्वक खींचकर अपने बाणोंद्वारा आपको पीड़ित किया है, वह कर्ण आज अपने उस पापकर्मका अत्यन्त भयंकर फल पायेगा ॥ ३६ ॥

अद्य त्वामनुपश्यामि कर्णं हत्वा महीपते ।
सभाजयितुमाक्रन्दादिति सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ३७ ॥

भूपाल ! आज मैं कर्णको मारकर ही आपका दर्शन करूँगा और युद्धस्थलसे आपका अभिनन्दन करनेके लिये आऊँगा । यह मैं आपसे सत्य कहता हूँ ॥ ३७ ॥

नाहत्वा विनिवर्तिष्ये कर्णमद्य रणाजिरात् ।
इति सत्येन ते पादौ स्पृशामि जगतीपते ॥ ३८ ॥

पृथ्वीपते ! आज मैं कर्णको मारे बिना समराङ्गणसे नहीं लौटूँगा । इस सत्यके द्वारा मैं आपके दोनों चरण छूता हूँ ॥ ३८ ॥

संजय उवाच

इति ब्रुवाणं सुमनाः किरीटिनं
युधिष्ठिरः प्राह वचो बृहत्तरम् ।
यशोऽक्षयं जीवितमीप्सितं ते
जयं सदा वीर्यमरिक्षयं तथा ॥ ३९ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! ऐसी बातें कहनेवाले किरीटधारी अर्जुनसे युधिष्ठिरने प्रसन्नचित्त होकर यह महत्त्वपूर्ण बात कही—'वीर ! तुम्हें अक्षय यश, पूर्ण आयु, मनोवाञ्छित कामना, विजय तथा शत्रुनाशक पराक्रम—ये सदा प्राप्त होते रहें ॥ ३९ ॥

प्रयाहि वृद्धिं च दिशन्तु देवता
यथाहमिच्छामि तवास्तु तत् तथा ।
प्रयाहि शीघ्रं जहि कर्णमाहवे
पुरंदरो वृत्रमिवात्मवृद्धये ॥ ४० ॥

'जाओ, देवता तुम्हें अभ्युदय प्रदान करें । मैं तुम्हारे लिये जैसा चाहता हूँ, वैसा ही सब कुछ तुम्हें प्राप्त हो । आगे बढ़ो और युद्धस्थलमें शीघ्र ही कर्णको मार डालो । ठीक उसी तरह, जैसे देवराज इन्द्रने अपने ही ऐश्वर्यकी वृद्धिके लिये वृत्रासुरका नाश किया था ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अर्जुनप्रतिज्ञायामेकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें अर्जुनकी प्रतिज्ञाविषयक एक सौ इकहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण और अर्जुनकी रणयात्रा, मार्गमें शुभ शकुन तथा श्रीकृष्णका अर्जुनको प्रोत्साहन देना

संजय उवाच

प्रसाद्य धर्मराजानं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
पार्थः प्रोवाच गोविन्दं सूतपुत्रवधोद्यतः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिरको प्रसन्न करके अर्जुन सूतपुत्र कर्णका वध करनेके लिये उद्यत हो प्रसन्नचित्त होकर श्रीकृष्णसे बोले—॥ १ ॥

कल्पतां मे रथो भूयो युज्यन्तां च हयोत्तमाः ।
आयुधानि च सर्वाणि सज्जन्तां मे महारथे ॥ २ ॥
उपावृत्ताश्च तुरगाः शिक्षिताश्चाश्वसादिभिः ।
रथोपकरणैः सज्जा उपायान्तु त्वरान्विताः ॥ ३ ॥
प्रयाहि शीघ्रं गोविन्द सूतपुत्रजिघांसया ।

'गोविन्द ! अब मेरा रथ तैयार हो । उसमें पुनः उत्तम घोड़े जोते जायँ और मेरे उस विशाल रथमें सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र सजाकर रख दिये जायँ । अश्वारोहियों-द्वारा सिखलाये और टहलाये गये घोड़े रथ-सम्बन्धी उपकरणों-से सुसज्जित हो शीघ्र यहाँ आवें और आप सूतपुत्रके वधकी इच्छासे जल्दी ही यहाँसे प्रस्थान कीजिये' ॥ २-३½ ॥

एवमुक्तो महाराज फाल्गुनेन महात्मना ॥ ४ ॥
उवाच दारुकं कृष्णः कुरु सर्वं यथाब्रवीत् ।
अर्जुनो भरतश्रेष्ठः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ ५ ॥

महाराज ! महात्मा अर्जुनके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने दारुकसे कहा—'सारथे ! समस्त धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ भरतभूषण अर्जुनने जैसा कहा है, उसके अनुसार सारी तैयारी करो' ॥ ४-५ ॥

आज्ञप्तस्त्वथ कृष्णेन दारुको राजसत्तम।
योजयामास स रथं वैयाघ्रं शत्रुतापनम् ॥ ६ ॥
सज्जं निवेदयामास पाण्डवस्य महात्मनः।

नृपश्रेष्ठ! श्रीकृष्णके इस प्रकार आदेश देनेपर दारुकने व्याघ्र-चर्मसे आच्छादित तथा शत्रुओंको तपानेवाले रथको जोतकर तैयार कर दिया और महामना पाण्डुकुमार अर्जुनके पास आकर निवेदन किया कि 'आपका रथ सब सामग्रियोंसे सुसज्जित है' ॥ ६½ ॥

युक्तं तु तं रथं दृष्ट्वा दारुकेण महात्मना ॥ ७ ॥
आपृच्छ्य धर्मराजानं ब्राह्मणान् स्वस्ति वाच्य च।
सुमङ्गलस्वस्त्ययनमारुरोह रथोत्तमम् ॥ ८ ॥

महामना दारुकके द्वारा जोतकर लाये हुए उस रथको देखकर अर्जुन धर्मराजसे आज्ञा ले ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर कल्याणके आश्रयभूत उस परम मङ्गलमय उत्तम रथपर आरूढ हुए ॥ ७-८ ॥

तस्य राजा महाप्राज्ञो धर्मराजो युधिष्ठिरः।
आशिषोऽयुङ्क्त स ततः प्रायात् कर्णरथं प्रति ॥ ९ ॥

उस समय महाबुद्धिमान् धर्मराज राजा युधिष्ठिरने अर्जुनको आशीर्वाद दिये। तत्पश्चात् उन्होंने कर्णके रथकी ओर प्रस्थान किया ॥ ९ ॥

तमायान्तं महेष्वासं दृष्ट्वा भूतानि भारत।
निहतं मेनिरे कर्णं पाण्डवेन महात्मना ॥ १० ॥

भारत! महाधनुर्धर अर्जुनको आते देख समस्त प्राणियोंको यह विश्वास हो गया कि अब कर्ण महामनस्वी पाण्डुपुत्र अर्जुनके हाथसे अवश्य मारा जायगा ॥ १० ॥

बभूवुर्विमलाः सर्वा दिशो राजन् समन्ततः।
चाषाश्च शतपत्राश्च क्रौञ्चाश्चैव जनेश्वर ॥ ११ ॥
प्रदक्षिणमकुर्वन्त तदा वै पाण्डुनन्दनम्।

राजन्! सम्पूर्ण दिशाएँ सब ओरसे निर्मल हो गयी थीं। नरेश्वर! नीलकण्ठ, सारस और क्रौञ्च पक्षी पाण्डुनन्दन अर्जुनको दाहिने रखते हुए जाने लगे ॥ ११½ ॥

बहवः पक्षिणो राजन् पुन्नामानः शुभाः शिवाः ॥ १२ ॥
त्वरयन्तोऽर्जुनं युद्धे हृष्टरूपा ववाशिरे।

राजन्! पुरुष जातिवाले बहुत-से शुभकारक मङ्गलदायक पक्षी अर्जुनको युद्धके लिये उतावले करते हुए बड़े हर्षमें भरकर चहचहा रहे थे ॥ १२½ ॥

कङ्का गृध्रा बकाः श्येना वायसाश्च विशाम्पते ॥ १३ ॥
अग्रतस्तस्य गच्छन्ति मांसहेतोर्भयानकाः।

प्रजानाथ! कङ्क, गृध्र, वक, बाज और कौए आदि भयानक पक्षी मांसके लिये उनके आगे-आगे जा रहे थे ॥

निमित्तानि च धन्यानि पाण्डवस्य शशंसिरे ॥ १४ ॥
विनाशमरिसैन्यानां कर्णस्य च वधं प्रति।

इस प्रकार बहुत-से शुभ शकुन पाण्डुपुत्र अर्जुनको उनके शत्रुओंके विनाश तथा कर्णके वधकी सूचना दे रहे थे ॥

प्रयातस्याथ पार्थस्य महान् स्वेदो व्यजायत ॥ १५ ॥
चिन्ता च विपुला जज्ञे कथं चेदं भविष्यति।

युद्धके लिये प्रस्थान करनेपर कुन्तीकुमार अर्जुनके शरीरमें बड़े जोरसे पसीना छूटने लगा तथा मन-ही-मन भारी चिन्ता होने लगी कि 'यह सब कैसे होगा?' ॥ १५½ ॥

ततो गाण्डीवधन्वानमब्रवीन्मधुसूदनः ॥ १६ ॥
दृष्ट्वा पार्थं तथा यान्तं चिन्तापरिगतं तदा।

रथमें बैठकर चलते समय गाण्डीवधारी अर्जुनको चिन्तामग्न देख भगवान् श्रीकृष्णने उनसे इस प्रकार कहा ॥

वासुदेव उवाच

गाण्डीवधन्वन् संग्रामे ये त्वया धनुषा जिताः ॥ १७ ॥
न तेषां मानुषो जेता त्वदन्य इह विद्यते।

श्रीकृष्ण बोले—गाण्डीवधारी अर्जुन! तुमने अपने धनुषसे जिन-जिन वीरोंपर विजय पायी है, उन्हें जीतनेवाला इस संसारमें तुम्हारे सिवा दूसरा कोई मनुष्य नहीं है ॥ १७½ ॥

दृष्टा हि बहवः शूराः शक्रतुल्यपराक्रमाः ॥ १८ ॥
त्वां प्राप्य समरे शूरं ते गताः परमां गतिम्।

मैंने देखा है इन्द्रके समान पराक्रमी बहुत-से शूरवीर समराङ्गणमें तुझ शौर्यसम्पन्न वीरके पास आकर परम गतिको प्राप्त हो गये ॥ १८½ ॥

को हि द्रोणं च भीष्मं च भगदत्तं च मारिष ॥ १९ ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजं च सुदक्षिणम्।
श्रुतायुषं महावीर्यमच्युतायुषमेव च।
प्रत्युद्गम्य भवेत् क्षेमी यो न स्यात् त्वमिव प्रभो ॥ २० ॥

प्रभो! आर्य! जो तुम्हारे-जैसा वीर न हो, ऐसा कौन पुरुष द्रोणाचार्य, भीष्म, भगदत्त, अवन्तीके राजकुमार विन्द और अनुविन्द, काम्बोजराज सुदक्षिण, महापराक्रमी श्रुतायु तथा अच्युतायुका सामना करके सकुशल रह सकता था ॥ १९-२० ॥

तव ह्यस्त्राणि दिव्यानि लाघवं बलमेव च।
असम्मोहश्च युद्धेषु विज्ञानस्य च संततिः ॥ २१ ॥
वेधः पातश्च लक्ष्येषु योगश्चैव तथार्जुन।
भवान् देवान् सगन्धर्वान् हन्यात् सह चराचरान् ॥ २२ ॥

तुम्हारे पास दिव्य अस्त्र हैं, तुममें फुर्ती है, बल है, युद्धके समय तुम्हें घबराहट नहीं होती, तुम्हें अस्त्र-शस्त्रोंका विस्तृत ज्ञान है तथा लक्ष्यको वेधने तथा गिरानेकी कला ज्ञात है। अर्जुन! लक्ष्यको वेधते समय तुम्हारा चित्त एकाग्र रहता है। गन्धर्वोंसहित सम्पूर्ण देवताओं तथा चराचर प्राणियोंको तुम एक साथ मार सकते हो ॥ २१-२२ ॥

पृथिव्यां तु रणे पार्थ न योद्धा त्वत्समः पुमान्।
धनुर्ग्राहा हि ये केचित् क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ॥ २३ ॥
आ देवात् त्वत्समं तेषां न पश्यामि शृणोमि च।

कुन्तीकुमार ! इस भूमण्डलपर दूसरा कोई पुरुष तुम्हारे समान योद्धा नहीं है । यहाँसे देवलोकतक धनुष धारण करनेवाले जो कोई भी रणदुर्मद क्षत्रिय हैं, उनमेंसे किसीको भी मैं तुम्हारे समान न तो देखता हूँ और न सुनता ही हूँ ॥

ब्रह्मणा च प्रजाः सृष्टा गाण्डीवं च महद् धनुः ॥२४॥
येन त्वं युध्यसे पार्थ तस्मान्नास्ति त्वया समः ।

पार्थ ! ब्रह्माजीने सम्पूर्ण प्रजाकी सृष्टि की है और उन्होंने ही उस विशाल धनुष गाण्डीवकी भी रचना की है, जिसके द्वारा तुम युद्ध करते हो; अतः तुम्हारी समानता करनेवाला कोई नहीं है ॥ २४½ ॥

अवश्यं तु मया वाच्यं यत् पथ्यं तव पाण्डव॥ २५ ॥
मावमंस्था महाबाहो कर्णमाहवशोभिनम् ।

पाण्डुनन्दन ! तो भी जो बात तुम्हारे लिये हितकर हो, उसे बता देना मैं आवश्यक समझता हूँ । महाबाहो ! संग्राममें शोभा पानेवाले कर्णकी अवहेलना न करना ॥ २५½ ॥

कर्णो हि बलवान् दृप्तः कृतास्त्रश्च महारथः ॥ २६ ॥
कृती च चित्रयोधी च देशकालस्य कोविदः ।

क्योंकि कर्ण बलवान्, अभिमानी, अस्त्रविद्याका विद्वान्, महारथी, युद्धकुशल, विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाला तथा देशकालको समझनेवाला है ॥ २६½ ॥

बहुनात्र किमुक्तेन संक्षेपाच्छृणु पाण्डव ॥ २७ ॥
त्वत्समं त्वद्विशिष्टं वा कर्णं मन्ये महारथम् ।
परमं यत्नमास्थाय त्वया वध्यो महाहवे ॥ २८ ॥

पाण्डुनन्दन ! इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या लाभ, संक्षेपसे ही सुन लो । मैं महारथी कर्णको तुम्हारे समान या तुमसे भी बढ़कर मानता हूँ । अतः महासमरमें महान् प्रयत्न करके तुम्हें उसका वध करना होगा ॥ २७-२८ ॥

तेजसा वह्निसदृशो वायुवेगसमो जवे ।
अन्तकप्रतिमः क्रोधे सिंहसंहननो बली ॥ २९ ॥

कर्ण तेजमें अग्निके सदृश, वेगमें वायुके समान, क्रोधमें यमराजके तुल्य, सुदृढ़ शरीरमें सिंहके सदृश तथा बलवान् है ॥ २९ ॥

अष्टरत्निर्महाबाहुर्व्यूढोरस्कः सुदुर्जयः ।
अभिमानी च शूरश्च प्रवीरः प्रियदर्शनः ॥ ३० ॥

उसके शरीरकी ऊँचाई आठ रत्नि[1] (एक सौ अड़सठ अंगुल) है । उसकी भुजाएँ बड़ी-बड़ी और छाती चौड़ी हैं। उसे जीतना अत्यन्त कठिन है । वह अभिमानी, शौर्यसम्पन्न, प्रमुख वीर और प्रियदर्शन (सुन्दर) है॥ ३० ॥

सर्वयोधगुणैर्युक्तो मित्राणामभयंकरः ।
सततं पाण्डवद्वेषी धार्तराष्ट्रहिते रतः ॥ ३१ ॥

उसमें योद्धाओंके सभी गुण हैं । वह अपने मित्रोंको अभय देनेवाला है तथा दुर्योधनके हितमें तत्पर रहकर पाण्डवोंसे सदा द्वेष रखता है ॥ ३१ ॥

सर्वैरवध्यो राधेयो देवैरपि सवासवैः ।
ऋते त्वामिति मे बुद्धिस्तदद्य जहि सूतजम् ॥ ३२ ॥

मेरा तो ऐसा विचार है कि राधापुत्र कर्ण तुम्हें छोड़कर इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंके लिये भी अवध्य है; अतः तुम आज सूतपुत्रका वध करो ॥ ३२ ॥

देवैरपि हि संयत्तैर्बिभ्रद्भिर्मांसशोणितम् ।
अशक्यः स रथो जेतुं सर्वैरपि युयुत्सुभिः ॥ ३३ ॥

समस्त देवता भी यदि रक्त-मांसयुक्त शरीरको धारण करके युद्धकी अभिलाषा लेकर विजयके लिये प्रयत्नशील हो रणभूमिमें आ जायँ तो उनके लिये रथसहित कर्णको जीतना असम्भव है ॥ ३३ ॥

दुरात्मानं पापवृत्तं नृशंसं
दुष्टप्रज्ञं पाण्डवेयेषु नित्यम् ।
हीनस्वार्थं पाण्डवेयैर्विरोधे
हत्वा कर्णं निश्चितार्थो भवाद्य ॥ ३४ ॥

अतः आज तुम दुरात्मा, पापाचारी, क्रूर, पाण्डवोंके प्रति सदा दुर्भावना रखनेवाले और किसी स्वार्थके बिना ही पाण्डव-विरोधमें तत्पर हुए कर्णका वध करके सफलमनोरथ हो जाओ ॥ ३४ ॥

तं सूतपुत्रं रथिनां वरिष्ठं
निष्कालिकं कालवशं नयाद्य ।
तं सूतपुत्रं रथिनां वरिष्ठं
हत्वा प्रीतिं धर्मराजे कुरुष्व ॥ ३५ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ सूतपुत्र अपनेको कालके वशमें नहीं समझता है । तुम उसे आज ही कालके अधीन कर दो । रथियोंमें श्रेष्ठ सूतपुत्र कर्णको मारकर धर्मराज युधिष्ठिरको प्रसन्न करो ॥ ३५ ॥

जानामि ते पार्थ वीर्यं यथावद्
दुर्वारणीयं च सुरासुरैश्च ।
सदावजानाति हि पाण्डुपुत्रा-
नसौ दर्पात् सूतपुत्रो दुरात्मा ॥ ३६ ॥

पार्थ ! मैं तुम्हारे उस बल-पराक्रमको अच्छी तरह जानता हूँ, जिसका निवारण करना देवताओं और असुरोंके लिये भी कठिन है । दुरात्मा सूतपुत्र कर्ण घमंडमें आकर सदा पाण्डवोंका अपमान करता है ॥ ३६ ॥

आत्मानं मन्यते वीरं येन पापः सुयोधनः ।
तमद्य मूलं पापानां जहि सौतिं धनंजय ॥ ३७ ॥

धनंजय ! जिसके साथ होनेसे पापी दुर्योधन अपनेको वीर मानता है, वह सूतपुत्र कर्ण ही सारे पापोंकी जड़ है; अतः आज तुम उसे मार डालो ॥ ३७ ॥

खड्गजिह्वं धनुरास्यं शरदंष्ट्रं तरस्विनम् ।
दृप्तं पुरुषशार्दूलं जहि कर्णं धनंजय ॥ ३८ ॥

1. मुट्ठी बंधे हुए हाथके मापको रत्नि कहते हैं।

अर्जुन ! कर्ण पुरुषोंमें सिंहके समान है, तलवार ही उसकी जिह्वा है, धनुष ही उसका फैला हुआ मुख है, बाण उसकी दाढ़ें हैं, वह अत्यन्त वेगशाली और अभिमानी है। तुम उसका वध करो ॥ ३८ ॥

अहं त्वामनुजानामि वीर्येण च बलेन च।
जहि कर्णं रणे शूर मातङ्गमिव केसरी ॥ ३९ ॥

जैसे सिंह मतवाले हाथीको मार डालता है, उसी प्रकार तुम भी अपने बल और पराक्रमसे रणभूमिमें शूरवीर कर्णको मार डालो। इसके लिये मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ ॥ ३९ ॥

यस्य वीर्येण वीर्यं ते धार्तराष्ट्रोऽवमन्यते।
तमद्य पार्थ संग्रामे कर्णं वैकर्तनं जहि ॥ ४० ॥

पार्थ ! जिसके बलसे दुर्योधन तुम्हारे बल-पराक्रमकी अवहेलना करता है, उस वैकर्तन कर्णको आज तुम युद्धमें मार डालो ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कृष्णार्जुनसंवादे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें श्रीकृष्ण और अर्जुनका संवादविषयक बहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

भीष्म और द्रोणके पराक्रमका वर्णन करते हुए अर्जुनके बलकी प्रशंसा करके श्रीकृष्णका कर्ण और दुर्योधनके अन्यायकी याद दिलाकर अर्जुनको कर्णवधके लिये उत्तेजित करना

संजय उवाच

ततः पुनरमेयात्मा केशवोऽर्जुनमब्रवीत्।
कृतसंकल्पमायान्तं वधे कर्णस्य भारत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—भरतनन्दन ! तदनन्तर कर्णका वध करनेके लिये कृतसंकल्प होकर जाते हुए अर्जुनसे अप्रमेयस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णने पुनः इस प्रकार कहा ॥ १ ॥

अद्य सप्तदशाहानि वर्तमानस्य भारत।
विनाशस्यातिघोरस्य नरवारणवाजिनाम् ॥ २ ॥

'भारत ! मनुष्यों, हाथियों और घोड़ोंका जो यह अत्यन्त भयंकर विनाश चल रहा है, इसे आज सत्रह दिन हो गये ॥ २ ॥

भूत्वा हि विपुला सेना तावकानां परैः सह।
अन्योन्यं समरं प्राप्य किंचिच्छेषा विशाम्पते ॥ ३ ॥

'प्रजानाथ ! शत्रुओंके साथ-साथ तुमलोगोंके पास भी विशाल सेना जुट गयी थी; परंतु परस्पर युद्ध करके प्रायः नष्ट हो गयी, अब थोड़ी-सी ही शेष रह गयी है ॥ ३ ॥

भूत्वा वै कौरवाः पार्थ प्रभूतगजवाजिनः।
त्वां वै शत्रुं समासाद्य विनष्टा रणमूर्धनि ॥ ४ ॥

'पार्थ ! कौरवपक्षके योद्धा बहुसंख्यक हाथी-घोड़ोंसे सम्पन्न थे, परंतु तुम-जैसे वीर शत्रुको पाकर युद्धके मुहानेपर नष्ट हो गये ॥ ४ ॥

एते ते पृथिवीपालाः सृञ्जयाश्च समागताः।
त्वां समासाद्य दुर्धर्षं पाण्डवाश्च व्यवस्थिताः ॥ ५ ॥

—'तुम शत्रुओंके लिये दुर्जय हो, तुम्हारे ही आश्रयमें रहकर ये तुम्हारे पक्षके भूमिपाल संजय और पाण्डव योद्धा युद्धस्थलमें डटे हुए हैं ॥ ५ ॥

पाञ्चालैः पाण्डवैर्मत्स्यैः कारूषैश्चेदिभिः सह।
त्वया गुप्तैरमित्रघ्नैः कृतः शत्रुगणक्षयः ॥ ६ ॥

'तुमसे सुरक्षित हुए इन पाण्डव, पाञ्चाल, मत्स्य, करूष तथा चेदिदेशीय शत्रुनाशक वीरोंने शत्रुसमूहोंका संहार कर डाला है ॥ ६ ॥

को हि शक्तो रणे जेतुं कौरवांस्तात संयुगे।
अन्यत्र पाण्डवान् युद्धे त्वया गुप्तान् महारथान् ॥ ७ ॥

'तात ! तुम्हारे द्वारा सुरक्षित पाण्डव महारथियोंको छोड़कर दूसरा कौन नरेश युद्धमें कौरवोंको परास्त कर सकता है ॥ ७ ॥

शक्तस्त्वं हि रणे जेतुं ससुरासुरमानुषान्।
त्रीँल्लोकान् समरे युक्तान् किं पुनः कौरवं बलम् ॥ ८ ॥

'तुम तो युद्धके लिये तैयार होकर आये हुए देवता, असुर और मनुष्योंसहित तीनों लोकोंको समरभूमिमें जीत सकते हो, फिर कौरव-सेनाकी तो बात ही क्या है ? ॥ ८ ॥

भगदत्तं च राजानं कोऽन्यः शक्तस्त्वया विना।
जेतुं पुरुषशार्दूल योऽपि स्याद् वासवोपमः ॥ ९ ॥

'पुरुषसिंह ! कोई इन्द्रके समान भी पराक्रमी क्यों न हो, तुम्हारे सिवा दूसरा कौन वीर राजा भगदत्तको जीत सकता था ? ॥ ९ ॥

तथेमां विपुलां सेनां गुप्तां पार्थ त्वयानघ।
न शेकुः पार्थिवाः सर्वे चक्षुर्भिरपि वीक्षितुम् ॥ १० ॥

'निष्पाप कुन्तीकुमार ! तुम जिसकी रक्षा करते हो, उस विशाल सेनाकी ओर सारे राजा आँख उठाकर देख भी नहीं सके हैं ॥ १० ॥

तथैव सततं पार्थ रक्षिताभ्यां त्वया रणे।
धृष्टद्युम्नशिखण्डिभ्यां भीष्मद्रोणौ निपातितौ ॥ ११ ॥

'पार्थ ! इसी प्रकार रणक्षेत्रमें सदा तुमसे सुरक्षित रहकर ही धृष्टद्युम्न और शिखण्डीने द्रोणाचार्य और भीष्मको मार गिराया है ॥ ११ ॥

को हि शक्तो रणे पार्थ भारतानां महारथौ।
भीष्मद्रोणौ युधा जेतुं शक्रतुल्यपराक्रमौ ॥ १२ ॥

'कुन्तीनन्दन ! भरतवंशियोंकी सेनाके दो महारथी इन्द्रतुल्य पराक्रमी भीष्म और द्रोणको रणभूमिमें युद्ध करते समय कौन जीत सकता था ? ॥ १२ ॥

को हि शान्तनवं भीष्मं द्रोणं वैकर्तनं कृपम्।
द्रौणिं च सौमदत्तिं च कृतवर्माणमेव च ॥ १३ ॥
सैन्धवं मद्रराजानं राजानं च सुयोधनम्।
वीरान् कृतास्त्रान् समरे सर्वानेवानिवर्तिनः ॥ १४ ॥
अक्षौहिणीपतीनुग्रान् संहतान् युद्धदुर्मदान्।
त्वामृते पुरुषव्याघ्र जेतुं शक्तः पुमानिह ॥ १५ ॥

'नरव्याघ्र! अक्षौहिणी सेनाके अधिपति, वीर, अस्त्रवेत्ता, भयंकर पराक्रमी, संगठित, रणोन्मत्त तथा कभी पीछे न हटनेवाले भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, वैकर्तन कर्ण, अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, कृतवर्मा, जयद्रथ, शल्य तथा राजा दुर्योधन-जैसे समस्त महारथियोंपर इस जगत्में तुम्हारे सिवा, दूसरा कौन पुरुष विजय पा सकता है? ॥ १३-१५ ॥

श्रेण्यश्च बहुलाः क्षीणाः प्रदीर्णाश्वरथद्विपाः।
नानाजनपदाश्चोग्राः क्षत्रियाणाममर्षिणाम् ॥ १६ ॥

'अमर्षशील क्षत्रियोंके बहुत-से दल थे, जो बड़े भयंकर और अनेक जनपदोंके निवासी थे, वे सब-के-सब नष्ट हो गये, उनके घोड़े, रथ और हाथी भी धूलमें मिल गये ॥ १६॥

गोवासदासमीयानां वसातीनां च भारत।
प्राच्यानां वाटधानानां भोजानां चाभिमानिनाम् ॥१७॥
उदीर्णाश्वगजा सेना सर्वक्षत्रस्य भारत।
त्वां समासाद्य निधनं गता भीमं च भारत ॥ १८ ॥

'भारत! गोवास, दासमीय, वसाति, प्राच्य, वाटधान और भोजदेशनिवासी अभिमानी वीरोंकी तथा सम्पूर्ण क्षत्रियोंकी सेना, जिसमें उद्दण्ड घोड़ों और उन्मत्त हाथियोंकी संख्या अधिक थी, तुम्हारे और भीमसेनके पास पहुँचकर नष्ट हो गयी ॥ १७-१८ ॥

उग्राश्च भीमकर्माणस्तुषारा यवनाः खशाः।
दार्वाभिसारा दरदाः शका माठरतङ्गणाः ॥ १९ ॥
आन्ध्रकाश्च पुलिन्दाश्च किराताश्चोग्रविक्रमाः।
म्लेच्छाश्च पर्वतीयाश्च सागरानूपवासिनः ॥ २० ॥
संरम्भिणो युद्धशौण्डा बलिनो दण्डपाणयः।
एते सुयोधनस्यार्थे संरब्धाः कुरुभिः सह ॥ २१ ॥
न शक्या युधि निर्जेतुं त्वदन्येन परंतप।

'उग्रस्वभाव, भीषण पराक्रमी एवं भयंकर कर्म करनेवाले तुषार, यवन, खश, दार्वाभिसार, दरद, शक, माठर, तङ्गण, आन्ध्र, पुलिन्द, किरात, म्लेच्छ, पर्वतीय तथा समुद्रतटवर्ती योद्धा, जो युद्धकुशल, रोषावेशसे युक्त, बलवान् एवं हाथोंमें डंडे लिये हुए हैं, क्रोधमें भरकर कौरव-सैनिकोंके साथ दुर्योधनकी सहायताके लिये आये हैं; शत्रुओंको संताप देनेवाले वीर! तुम्हारे सिवा दूसरा कोई इन्हें नहीं जीत सकता ॥ १९-२१½ ॥

धार्तराष्ट्रमुदग्रं हि व्यूढं दृष्ट्वा महद् बलम् ॥ २२ ॥
यदि त्वं न भवेस्त्राता प्रतीयात् को नु मानवः।

'यदि तुम रक्षक न होते तो व्यूहाकारमें खड़ी हुई धृतराष्ट्रपुत्रोंकी प्रचण्ड एवं विशाल सेनाको सामने देखकर कौन मनुष्य उसपर चढ़ाई कर सकता था? ॥२२½॥

तत् सागरमिवोद्धूतं रजसा संवृतं बलम् ॥ २३ ॥
विदार्य पाण्डवैः क्रुद्धैस्त्वया गुप्तैर्हतं विभो।

'प्रभो! तुमसे सुरक्षित रहकर ही क्रोधभरे पाण्डव योद्धाओंने धूलसे आच्छादित और समुद्रके समान उमड़ी हुई कौरवसेनाको छिन्न-भिन्न करके मार डाला है ॥ २३½ ॥

मगधानामधिपतिर्जयत्सेनो महाबलः ॥ २४ ॥
अद्य सप्तैव चाहानि हतः संख्येऽभिमन्युना।

'अभी सात दिन ही हुए हैं, अभिमन्युने मगधदेशके राजा-महाबली जयत्सेनको युद्धमें मार डाला था ॥ २४½ ॥

ततो दशसहस्राणि गजानां भीमकर्मणाम् ॥ २५ ॥
जघान गदया भीमस्तस्य राज्ञः परिच्छदम्।
ततोऽन्येऽभिहता नागा रथाश्च शतशो बलात् ॥ २६ ॥

'तत्पश्चात् भीमसेनने राजा जयत्सेनके भयानक कर्म करनेवाले दस हजार हाथियोंको, जो उन्हें सब ओरसे घेरकर खड़े थे, गदाके आघातसे नष्ट कर दिया। तदनन्तर और भी बहुत-से हाथी तथा सैकड़ों रथ उनके द्वारा बलपूर्वक नष्ट किये गये ॥ २५-२६ ॥

तदेवं समरे पार्थ वर्तमाने महाभये।
भीमसेनं समासाद्य त्वां च पाण्डव कौरवाः ॥ २७ ॥
सवाजिरथमातङ्गा मृत्युलोकमितो गताः।

'पाण्डुनन्दन! पार्थ! इस प्रकार महाभयंकर युद्ध आरम्भ होनेपर तुम्हारे और भीमसेनके सामने आकर बहुत-से कौरव-सैनिक घोड़े, रथ और हाथियोंसहित यहाँसे यमलोक पधार गये ॥ २७½ ॥

तथा सेनामुखे तत्र निहते पार्थ पाण्डवैः ॥ २८ ॥
भीष्मः प्रासृजदुग्राणि शरजालानि मारिष।

'माननीय कुन्तीनन्दन! पाण्डव वीरोंने जब वहाँ सेनाके प्रमुख भागका विनाश कर डाला, तब भीष्मजी भयंकर बाण-समूहोंकी वृष्टि करने लगे ॥ २८½ ॥

स चेदिकाशिपाञ्चालान् करूषान् मत्स्यकेकयान् ॥ २९ ॥
शरैः प्रच्छाद्य निधनमनयत् परमास्त्रवित्।

'वे उत्तम अस्त्रोंके ज्ञाता तो थे ही, उन्होंने पाण्डवपक्षके चेदि, काशी, पाञ्चाल, करूष, मत्स्य और केकयदेशीय योद्धाओंको अपने बाणोंसे आच्छादित करके मौतके मुखमें डाल दिया ॥ २९½ ॥

तस्य चापच्युतैर्बाणैः परदेहविदारणैः ॥ ३० ॥
पूर्णमाकाशमभवद् रुक्मपुङ्खैरजिह्मगैः।

'उनके धनुषसे छूटे हुए बाण शत्रुओंकी कायाको विदीर्ण कर देनेवाले थे, उनमें सोनेके पंख लगे थे और वे लक्ष्यकी ओर सीधे पहुँचते थे। उन बाणोंसे सम्पूर्ण आकाश भर गया ॥ ३०½ ॥

हन्याद् रथसहस्राणि एकैकेनैव मुष्टिना ॥ ३१ ॥
लक्षं नरद्विपान् हत्वा समेतान् समहाबलान् ।

'वे एक-एक मुट्ठी बाणसे ही युद्धस्थलमें एकत्र हुए लाखों महाबली पैदल मनुष्यों और हाथियोंका संहार करके सहस्रों रथियोंको मार सकते थे ॥ ३१½ ॥

गत्या दशम्या ते गत्वा जघ्नुर्वाजिरथद्विपान् ॥ ३२ ॥
हित्वा नवगतीर्दुष्टाः स बाणानाहवेऽत्यजत् ।

'भीष्मजी युद्धस्थलमें दोषयुक्त आविद्ध आदि नौ गतियोंको छोड़कर केवल दशवीं गतिसे बाण छोड़ते थे । वे बाण पाण्डवपक्षके घोड़ों, रथों और हाथियोंका संहार करने लगे ३२½

दिनानि दश भीष्मेण निघ्नता तावकं बलम् ॥ ३३ ॥
शून्याः कृता रथोपस्था हताश्च गजवाजिनः ।

'लगातार दस दिनोंतक तुम्हारी सेनाका विनाश करते हुए भीष्मजीने असंख्य रथोंकी बैठकें सूनी कर दीं, बहुत-से हाथी और घोड़े मार डाले ॥ ३३½ ॥

दर्शयित्वाऽऽत्मनो रूपं रुद्रोपेन्द्रसमं युधि ॥ ३४ ॥
पाण्डवानामनीकानि प्रगृह्यासौ व्यशातयत् ।

'उन्होंने रणभूमिमें भगवान् रुद्र और विष्णुके समान अपना भयंकर रूप दिखाकर पाण्डव-सेनाओंका बलपूर्वक विनाश कर डाला ॥ ३४½ ॥

विनिघ्नन् पृथिवीपालांश्चेदि पाञ्चालकेकयान् ॥ ३५ ॥
अदहत् पाण्डवीं सेनां रथाश्वगजसंकुलाम् ।
मज्जन्तमप्लवे मन्दमुज्जिहीर्षुः सुयोधनम् ॥ ३६ ॥

'मूर्ख दुर्योधन नौकारहित विपत्तिके सागरमें डूब रहा था; अतः भीष्मजी उसका उद्धार करना चाहते थे, उन्होंने चेदि, पाञ्चाल तथा केकयनरेशोंका वध करते हुए, रथ, घोड़ों और रथियोंसे भरी हुई पाण्डवसेनाको भस्म कर डाला ॥ ३५-३६ ॥

तथा चरन्तं समरे तपन्तमिव भास्करम् ।
पदातिकोटिसाहस्राः प्रवरायुधपाणयः ॥ ३७ ॥
न शेकुः सृंजया द्रष्टुं तथैवान्ये महीक्षितः ।
विचरन्तं तथा तं तु संग्रामे जितकाशिनम् ॥ ३८ ॥
सर्वोद्यमेन महता पाण्डवाः समभिद्रवन् ।

'कोटि सहस्र पैदल तथा हाथोंमें उत्तम आयुध धारण किये हुए संजय सैनिक और दूसरे नरेश सूर्यदेवके समान ताप देते और समराङ्गणमें विचरते हुए भीष्मकी ओर आँख उठाकर देखनेमें भी समर्थ न हो सके । उस समय संग्रामभूमिमें विचरते तथा विजयसे उल्लसित होते हुए भीष्मजीपर पाण्डवयोद्धा अपनी सारी शक्ति लगाकर बड़े वेगसे टूट पड़े ॥ ३७-३८½ ॥

स तु विद्राव्य समरे पाण्डवान् सृंजयानपि ॥ ३९ ॥
एक एव रणे भीष्म एकवीरत्वमागतः ।

'किंतु समराङ्गणमें भीष्मजी अकेले ही पाण्डवों और संजयोंको खदेड़कर युद्धमें अद्वितीय वीरके रूपमें विख्यात हुए ॥ ३९½ ॥

तं शिखण्डी समासाद्य त्वया गुप्तो महाव्रतम् ॥ ४० ॥
जघान पुरुषव्याघ्रं शरैः संनतपर्वभिः ।
स एष पतितः शेते शरतल्पे पितामहः ॥ ४१ ॥
त्वां प्राप्य पुरुषव्याघ्रं वृत्रः प्राप्येव वासवम् ।

'अर्जुन ! तुमसे सुरक्षित हुए शिखण्डीने महान् व्रतधारी पुरुषसिंह भीष्मजीपर चढ़ाई करके झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा उन्हें मार गिराया, वे ही ये पितामह भीष्म तुम-जैसे पुरुषसिंहको विपक्षमें पाकर धराशायी हो शरशय्यापर सो रहे हैं । ठीक उसी तरह, जैसे वृत्रासुर इन्द्रसे टक्कर लेकर रण-शय्यापर सो गया था ॥ ४०-४१½ ॥

द्रोणः पञ्चदिनान्युग्रो विधम्य रिपुवाहिनीम् ॥ ४२ ॥
कृत्वा व्यूहमभेद्यं च पातयित्वा महारथान् ।
जयद्रथस्य समरे कृत्वा रक्षां महारथः ॥ ४३ ॥
अन्तकप्रतिमश्चोग्रो रात्रियुद्धेऽदहत् प्रजाः ।

'तत्पश्चात् उग्रमूर्ति महारथी द्रोणाचार्य पाँच दिनोंतक अभेद्यव्यूहका निर्माण, शत्रुसेनाका विध्वंस, महारथियोंका विनाश तथा समराङ्गणमें जयद्रथकी रक्षा करनेके अनन्तर रात्रियुद्धमें यमराजके समान प्रजाको दग्ध करने लगे४२-४३½

दग्ध्वा योधाञ्छरैर्वीरो भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ४४ ॥
धृष्टद्युम्नं समासाद्य स गतः परमां गतिम् ।

'प्रतापी भरद्वाजनन्दन वीर द्रोणाचार्य अपने बाणोंद्वारा शत्रुयोद्धाओंको दग्ध करके धृष्टद्युम्नसे भिड़कर परमगतिको प्राप्त हो गये ॥ ४४½ ॥

यदि वाद्य भवान् युद्धे सूतपुत्रमुखान् रथान् ॥ ४५ ॥
नावारयिष्यः संग्रामे न स्म द्रोणो व्यनङ्क्ष्यत ।

'उस समय यदि तुम युद्धस्थलमें सूतपुत्र आदि रथियोंको न रोकते तो रणभूमिमें द्रोणाचार्यका नाश नहीं होता॥४५½॥

भवता तु बलं सर्वं धार्तराष्ट्रस्य वारितम् ॥ ४६ ॥
ततो द्रोणो हतो युद्धे पार्षतेन धनंजय ।

'धनंजय ! तुमने दुर्योधनकी सारी सेनाको रोक रक्खा था; इसीलिये धृष्टद्युम्न संग्राममें द्रोणाचार्यका वध कर सके ॥ ४६½ ॥

एवं वा को रणे कुर्यात् त्वदन्यः क्षत्रियो युधि ॥ ४७ ॥
यादृशं ते कृतं पार्थ जयद्रथवधं प्रति ।

'पार्थ ! जयद्रथका वध करते समय युद्धमें तुमने जैसा पराक्रम किया था, वैसा तुम्हारे सिवा दूसरा कौन क्षत्रिय कर सकता है ? ॥ ४७½ ॥

निवार्य सेनां महतीं हत्वा शूरांश्च पार्थिवान् ॥ ४८ ॥
निहतः सैन्धवो राजा त्वयास्त्रबलतेजसा ।

'तुमने अपने अस्त्रोंके बल और तेजसे शूरवीर राजाओंका वध करके दुर्योधनकी विशाल सेनाको रोककर सिन्धुराज जयद्रथको मार गिराया ॥ ४८½ ॥

आश्चर्यं सिन्धुराजस्य वधं जानन्ति पार्थिवाः ॥ ४९ ॥
अनाश्चर्यं हि तत् त्वत्तस्त्वं हि पार्थ महारथः ।

'पार्थ ! सब राजा जानते हैं कि सिंधुराज जयद्रथका वध एक आश्चर्यभरी घटना है, किंतु तुमसे ऐसा होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि तुम असाधारण महारथी हो ॥ ४९½ ॥

त्वां हि प्राप्य रणे क्षत्रमेकाहादिति भारत ॥ ५० ॥
नश्यमानमहं युक्तं मन्येयमिति मे मतिः ।

'रणभूमिमें तुम्हें पाकर सारा क्षत्रियसमाज एक दिनमें नष्ट हो सकता है, ऐसा कहना मैं युक्तिसंगत मानता हूँ । मेरी तो ऐसी ही धारणा है ॥ ५०½ ॥

सेयं पार्थ चमूर्घोरा धार्तराष्ट्रस्य संयुगे ॥ ५१ ॥
हतसर्वस्ववीरा हि भीष्मद्रोणौ यदा हतौ ।

'कुन्तीनन्दन ! जब भीष्म और द्रोणाचार्य युद्धमें मार डाले गये, तभीसे मानो दुर्योधनकी इस भयंकर सेनाके सारे वीर मारे गये—इसका सर्वस्व नष्ट हो गया ॥ ५१½ ॥

शीर्णप्रवरयोधाद्य हतवाजिरथद्विपा ॥ ५२ ॥
हीना सूर्येन्दुनक्षत्रैर्द्यौरिवाभाति भारती ।

'इसके प्रधान-प्रधान योद्धा नष्ट हो गये । घोड़े, रथ और हाथी भी मार डाले गये । अब यह कौरवसेना सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्रोंसे रहित आकाशके समान श्रीहीन जान पड़ती है ॥ ५२½ ॥

विध्वस्ता हि रणे पार्थ सेनेयं भीमविक्रम ॥ ५३ ॥
आसुरीव पुरा सेना शक्रस्येव पराक्रमैः ।

'भयंकर पराक्रमी पार्थ ! रणभूमिमें विध्वंसको प्राप्त हुई यह कौरवसेना पूर्वकालमें इन्द्रके पराक्रमसे नष्ट हुई असुरोंकी सेनाके समान प्रतीत होती है ॥ ५३½ ॥

तेषां हतावशिष्टास्तु सन्ति पञ्च महारथाः ॥ ५४ ॥
अश्वत्थामा कृतवर्मा कर्णो मद्राधिपः कृपः ।

'इन कौरवसैनिकोंमेंसे अश्वत्थामा, कृतवर्मा, कर्ण, शल्य और कृपाचार्य—ये पाँच प्रमुख महारथी मरनेसे बच गये हैं ॥ ५४½ ॥

तांस्त्वमद्य नरव्याघ्र हत्वा पञ्च महारथान् ॥ ५५ ॥
हतामित्रः प्रयच्छोर्वीं राज्ञे सद्वीपपत्तनाम् ।

'नरव्याघ्र ! आज इन पाँचों महारथियोंको मारकर तुम शत्रुहीन हो द्वीपों और नगरोंसहित यह सारी पृथ्वी राजा युधिष्ठिरको दे दो ॥ ५५½ ॥

साकाशजलपातालां सपर्वतमहावनाम् ॥ ५६ ॥
प्राप्नोत्वमितवीर्यश्रीरद्य पार्थो वसुन्धराम् ।

'अमित पराक्रम और कान्तिसे सम्पन्न कुन्तीकुमार युधिष्ठिर आज आकाश, जल, पाताल, पर्वत और बड़े-बड़े वनोंसहित इस वसुधाको प्राप्त कर लें ॥ ५६½ ॥

एतां पुरा विष्णुरिव हत्वा दैतेयदानवान् ॥ ५७ ॥
प्रयच्छ मेदिनीं राज्ञे शक्रायेव हरिर्यथा ।

'जैसे पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने दैत्यों और दानवोंको मारकर यह त्रिलोकी इन्द्रको दे दी थी, उसी प्रकार तुम यह पृथ्वी राजा युधिष्ठिरको सौंप दो ॥ ५७½ ॥

अद्य मोदन्तु पञ्चाला निहतेष्वरिषु त्वया ।
विष्णुना निहतेष्वेव दानवेयेषु देवताः ॥ ५८ ॥

'जैसे भगवान् विष्णुके द्वारा दानवोंके मारे जानेपर देवता प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार आज तुम्हारे द्वारा शत्रुओंका संहार हो जानेपर समस्त पाञ्चाल आनन्दित हो उठें ॥

यदि वा द्विपदां श्रेष्ठं द्रोणं मानयतो गुरुम् ।
अश्वत्थाम्नि कृपा तेऽस्ति कृपे वाचार्यगौरवात् ॥ ५९ ॥
अत्यन्तापचितान् बन्धून् मानयन् मातृबान्धवान् ।
कृतवर्माणमासाद्य न नेष्यसि यमक्षयम् ॥ ६० ॥
भ्रातरं मातुरासाद्य शल्यं मद्रजनाधिपम् ।
यदि त्वमरविन्दाक्ष दयावान् न जिघांससि ॥ ६१ ॥
इमं पापमतिं क्षुद्रमत्यन्तं पाण्डवान् प्रति ।
कर्णमद्य नरश्रेष्ठ जह्याशु सुनिशितैः शरैः ॥ ६२ ॥

'कमलनयन नरश्रेष्ठ अर्जुन ! मनुष्योंमें श्रेष्ठ गुरु द्रोणाचार्यका सम्मान करते हुए तुम्हारे हृदयमें यदि अश्वत्थामाके प्रति दया है, अथवा आचार्योचित गौरवके कारण कृपाचार्यके प्रति कृपाभाव है, यदि माता कुन्तीके अत्यन्त पूजनीय बन्धु-बान्धवोंके प्रति आदरका भाव रखते हुए तुम कृतवर्मापर आक्रमण करके उसे यमलोक भेजना नहीं चाहते तथा माता माद्रीके भाई, मद्रदेशीय जनताके अधिपति, राजा शल्यको भी तुम दयावश मारनेकी इच्छा नहीं रखते तो न सही, किंतु पाण्डवोंके प्रति सदा पापबुद्धि रखनेवाले इस अत्यन्त नीच कर्णको तो आज अपने पैने बाणोंसे मार ही डालो ॥५९-६२॥

एतत् ते सुकृतं कर्म नात्र किंचन युज्यते ।
वयमप्यनुजानीमो नात्र दोषोऽस्ति कश्चन ॥ ६३ ॥

'यह तुम्हारे लिये पुण्य कर्म होगा । इस विषयमें कोई विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है । मैं भी तुम्हें इसके लिये आज्ञा देता हूँ, अतः इसमें कोई दोष नहीं है ॥ ६३ ॥

दहने यत् सपुत्राया निशि मातुस्तवानघ ।
द्यूतार्थे यच्च युष्मासु प्रावर्तत सुयोधनः ॥ ६४ ॥
तस्य सर्वस्य दुष्टात्मा कर्णो वै मूलमित्युत ।

'निष्पाप अर्जुन ! रात्रिके समय पुत्रसहित तुम्हारी माता कुन्तीको जला देने और तुम सब लोगोंके साथ जूआ खेलनेके कार्यमें जो दुर्योधनकी प्रवृत्ति हुई थी, उन सब षड्यन्त्रोंका मूल कारण यह दुष्टात्मा कर्ण ही था ॥ ६४½ ॥

कर्णाद्धि मन्यते त्राणं नित्यमेव सुयोधनः ॥ ६५ ॥
ततो मामपि संरब्धो निग्रहीतुं प्रचक्रमे ।

'दुर्योधनको सदासे ही यह विश्वास बना हुआ है कि कर्ण मेरी रक्षा कर लेगा; इसीलिये वह आवेशमें आकर मुझे भी कैद करनेकी तैयारी करने लगा था ॥ ६५½ ॥

स्थिरा बुद्धिर्नरेन्द्रस्य धार्तराष्ट्रस्य मानद ॥ ६६ ॥
कर्णः पार्थान् रणे सर्वान् विजेष्यति न संशयः ।

'मानद ! धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधनका यह दृढ़ विचार है कि कर्ण रणभूमिमें कुन्तीके सभी पुत्रोंको निःसंदेह जीत लेगा ॥ ६६½ ॥

कर्णमाश्रित्य कौन्तेय धार्तराष्ट्रेण विग्रहः ॥ ६७ ॥
रोचितो भवता सार्धं जानतापि बलं तव ।

'कुन्तीनन्दन ! तुम्हारे बलको जानते हुए भी दुर्योधनने कर्णका भरोसा करके ही तुम्हारे साथ युद्ध छेड़ना पसंद किया है ॥ ६७½ ॥

कर्णो हि भाषते नित्यमहं पार्थान् समागतान् ॥ ६८ ॥
वासुदेवं च दाशार्हं विजेष्यामि महारथम् ।

'कर्ण सदा ही यह कहता रहता है कि 'मैं युद्धमें एक साथ आये हुए समस्त कुन्तीपुत्रों तथा वसुदेवनन्दन महारथी श्रीकृष्णको भी जीत लूँगा' ॥ ६८½ ॥

प्रोत्साहयन् दुरात्मानं धार्तराष्ट्रं सुदुर्मतिम् ॥ ६९ ॥
समितौ गर्जते कर्णस्तमद्य जहि भारत ।

'भारत ! अत्यन्त खोटी बुद्धिवाले दुरात्मा दुर्योधनका उत्साह बढ़ाता हुआ कर्ण राजसभामें उपर्युक्त बातें कहकर गर्जता रहता है; इसलिये आज तुम उसे मार डालो ॥ ६९½ ॥

यच्च युष्मासु पापं वै धार्तराष्ट्रः प्रयुक्तवान् ॥ ७० ॥
तत्र सर्वत्र दुष्टात्मा कर्णः पापमतिर्मुखम् ।

'दुर्योधनने तुमलोगोंके साथ जो-जो पापपूर्ण बर्ताव किया है, उन सबमें पापबुद्धि दुष्टात्मा कर्ण ही प्रधान कारण है ॥ ७०½ ॥

यच्च तद् धार्तराष्ट्रस्य क्रूरैः षड्भिर्महारथैः ॥ ७१ ॥
अपश्यं निहतं वीरं सौभद्रमृषभेक्षणम् ।
द्रोणद्रौणिकृपान् वीरान् कर्षयन्तं नरर्षभान् ॥ ७२ ॥
निर्मनुष्यांश्च मातङ्गान् विरथांश्च महारथान् ।
व्यश्वारोहांश्च तुरगान् पत्तीन् व्यायुधजीविनः ॥ ७३ ॥
कुर्वन्तमृषभस्कन्धं कुरुवृष्णियशस्करम् ।
विधमन्तमनीकानि व्यथयन्तं महारथान् ॥ ७४ ॥
मनुष्यवाजिमातङ्गान् प्रहिण्वन्तं यमक्षयम् ।
शरैः सौभद्रमायान्तं दहन्तमिव वाहिनीम् ॥ ७५ ॥
तन्मे दहति गात्राणि सखे सत्येन ते शपे ।
यत् तत्रापि च दुष्टात्मा कर्णोऽभ्यद्रुह्यत प्रभो ॥ ७६ ॥

'सखे ! सुभद्राका वीरपुत्र अभिमन्यु साँड़के समान बड़े-बड़े नेत्रोंसे सुशोभित तथा कुरुकुल एवं वृष्णिवंशके यशको बढ़ानेवाला था । उसके कंधे साँड़के कंधोंके समान मांसल थे । वह द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और कृपाचार्य आदि नरश्रेष्ठ वीरोंको पीड़ा दे रहा था । हाथियोंको महावतों और सवारोंसे, महारथियोंको रथोंसे, घोड़ोंको सवारोंसे तथा पैदल सैनिकोंको अस्त्र-शस्त्र एवं जीवनसे वञ्चित कर रहा था । सेनाओंका विध्वंस और महारथियोंको व्यथित करके वह मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंको यमलोक भेज रहा था । बाणोंद्वारा शत्रुसेनाको दग्ध-सी करके आते हुए सुभद्राकुमारको जो दुर्योधनके छः क्रूर महारथियोंने मार डाला और उस अवस्थामें मारे गये अभिमन्युको जो मैंने अपनी आँखोंसे देखा, वह सब मेरे अङ्गोंको दग्ध किये देता है । प्रभो ! मैं तुमसे सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ कि उसमें भी दुष्टात्मा कर्णका ही द्रोह काम कर रहा था ॥ ७१—७६ ॥

अशक्नुवंश्चाभिमन्योः कर्णः स्थातुं रणेऽग्रतः ।
सौभद्रशरनिर्भिन्नो विसंज्ञः शोणितोक्षितः ॥ ७७ ॥

'रणभूमिमें अभिमन्युके सामने खड़े होनेकी शक्ति कर्णमें नहीं रह गयी थी । वह सुभद्राकुमारके बाणोंसे छिन्न-भिन्न हो खूनसे लथपथ एवं अचेत हो गया था ॥ ७७ ॥

निःश्वसन् क्रोधसंदीप्तो विमुखः सायकार्दितः ।
अपयानकृतोत्साहो निराशश्चापि जीविते ॥ ७८ ॥

'वह क्रोधसे जलकर लंबी साँस खींचता हुआ अभिमन्युके बाणोंसे पीड़ित हो युद्धसे मुँह मोड़ चुका था । अब उसके मनमें भाग जानेका ही उत्साह था । वह जीवनसे निराश हो चुका था ॥ ७८ ॥

तस्थौ सुविह्वलः संख्ये प्रहारजनितश्रमः ।
अथ द्रोणस्य समरे तत्कालसदृशं तदा ॥ ७९ ॥
श्रुत्वा कर्णो वचः क्रूरं ततश्चिच्छेद कार्मुकम् ।

'युद्धस्थलमें प्रहारोंके कारण अधिक क्लान्त हो जानेसे वह व्याकुल होकर खड़ा रहा । तदनन्तर समराङ्गणमें द्रोणाचार्यका समयोचित क्रूर वचन सुनकर कर्णने अभिमन्युके धनुषको काट डाला ॥ ७९½ ॥

ततश्छिन्नायुधं तेन रणे पञ्च महारथाः ॥ ८० ॥
तं चैव निकृतिप्रज्ञाः प्राहरञ्छरवृष्टिभिः ।

'उसके द्वारा धनुष कट जानेपर रणभूमिमें शेष पाँच महारथी, जो शठतापूर्ण बर्ताव करनेमें प्रवीण थे, बाणोंकी वर्षाद्वारा अभिमन्युको घायल करने लगे ॥ ८०½ ॥

तस्मिन् विनिहते वीरे सर्वेषां दुःखमाविशत् ॥ ८१ ॥
प्राहसत् स तु दुष्टात्मा कर्णः स च सुयोधनः ।

'उस वीरके इस तरह मारे जानेपर प्रायः सभीको बड़ा दुःख हुआ । केवल दुष्टात्मा कर्ण और दुर्योधन ही जोर-जोरसे हँसे थे ॥ ८१½ ॥

यच्च कर्णोऽब्रवीत् कृष्णां सभायां परुषं वचः ॥ ८२ ॥
प्रमुखे पाण्डवेयानां कुरूणां च नृशंसवत् ।

'इसके सिवा, कर्णने भरी सभामें पाण्डवों और कौरवोंके सामने एक क्रूर मनुष्यकी भाँति द्रौपदीके प्रति इस तरह कठोर वचन कहे थे ॥ ८२½ ॥

विनष्टाः पाण्डवाः कृष्णे शाश्वतं नरकं गताः ॥ ८३ ॥
पतिमन्यं पृथुश्रोणि वृणीष्व मृदुभाषिणि ।
एषा त्वं धृतराष्ट्रस्य दासीभूता निवेशनम् ॥ ८४ ॥
प्रविशारालपक्ष्माक्षि न सन्ति पतयस्तव ।
न पाण्डवाः प्रभवन्ति तव कृष्णे कथञ्चन ॥ ८५ ॥

''कृष्णे ! पाण्डव तो नष्ट होकर सदाके लिये नरकमें पड़ गये । पृथुश्रोणि ! अब तू दूसरा पति वरण कर ले । मृदुभाषिणि ! आजसे तू राजा धृतराष्ट्रकी दासी हुई; अतः राजमहलमें प्रवेश कर । टेढ़ी बरौनियोंवाली कृष्णे ! पाण्डव अब तेरे पति नहीं रहे । वे तुझपर किसी तरह कोई अधिकार नहीं रखते ॥ ८३-८५ ॥

दासभार्या च पाञ्चालि स्वयं दासी च शोभने ।
अद्य दुर्योधनो ह्येकः पृथिव्यां नृपतिः स्मृतः ॥ ८६ ॥

''सुन्दरी पाञ्चालराजकुमारी ! अब तू दासोंकी भार्या और स्वयं भी दासी है । आज एकमात्र राजा दुर्योधन समस्त भूमण्डलके स्वामी मान लिये गये हैं ॥ ८६ ॥

सर्वे चास्य महीपाला योगक्षेममुपासते ।
पश्येदानीं यथा भद्रे विनष्टाः पाण्डवाः समम् ॥ ८७ ॥
अन्योन्यं समुदीक्षन्ते धार्तराष्ट्रस्य तेजसा ।

''अन्य सब नरेश इन्हींके योग-क्षेममें लगे हुए हैं । भद्रे ! देख, इस समय पाण्डव दुर्योधनके तेजसे एक साथ ही नष्टप्राय होकर एक दूसरेका मुँह देख रहे हैं ॥ ८७½ ॥

व्यक्तं षण्ढतिला ह्येते निरये च निमज्जिताः ॥ ८८ ॥
प्रेष्यवच्चापि राजानमुपस्थास्यन्ति कौरवम् ।

''निश्चय ही ये थोथे तिलोंके समान नपुंसक हैं और नरकमें डूब गये हैं । आजसे ये दासोंके समान कौरव-नरेशकी सेवामें उपस्थित होंगे' ॥ ८८½ ॥

इत्युक्तवानधर्मज्ञस्तदा परमदुर्मतिः ॥ ८९ ॥
पापः पापवचः कर्णः शृण्वतस्तव भारत ।

'भारत ! उस समय अधर्मका ही ज्ञान रखनेवाले परम दुर्बुद्धि पापी कर्णने तुम्हारे सुनते हुए ऐसे-ऐसे पापपूर्ण वचन कहे थे ॥ ८९½ ॥

अद्य पापस्य तद् वाक्यं सुवर्णविकृताः शराः ॥ ९० ॥
शमयन्तु शिलाधौतास्त्वयास्ता जीवितच्छिदः ।

'आज तुम्हारे छोड़े हुए एवं शिलापर स्वच्छ किये हुए सुवर्णनिर्मित प्राणान्तकारी बाण पापी कर्णके उन वचनोंका उत्तर देते हुए उसे सदाके लिये शान्त कर दें ॥ ९०½ ॥

यानि चान्यानि दुष्टात्मा पापानि कृतवांस्त्वयि ॥ ९१ ॥
तान्यद्य जीवितं चास्य शमयन्तु शरास्तव ।

'दुष्टात्मा कर्णने तुम्हारे प्रति और भी जो-जो पापपूर्ण बर्ताव किये हैं, उन सबको और इसके जीवनको भी आज तुम्हारे बाण नष्ट कर दें ॥ ९१½ ॥

गाण्डीवप्रहितान् घोरानद्य गात्रैः स्पृशञ्छरान् ॥ ९२ ॥
कर्णः स्मरतु दुष्टात्मा वचनं द्रोणभीष्मयोः ।

'आज दुष्टात्मा कर्ण अपने अङ्गोंपर गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए भयङ्कर बाणोंकी चोट सहता हुआ द्रोणाचार्य और भीष्मके वचनोंको याद करे ॥ ९२½ ॥

सुवर्णपुङ्खा नाराचाः शत्रुघ्ना वैद्युतप्रभाः ॥ ९३ ॥
त्वयास्तास्तस्य वर्माणि भित्त्वा पास्यन्ति शोणितम् ।

'बिजलीकी-सी प्रभा और सोनेके पङ्ख धारण करनेवाले तुम्हारे चलाये हुए शत्रुनाशक नाराच कवच छेदकर कर्णका रक्त पान करेंगे ॥ ९३½ ॥

उग्रास्त्वद्भुजनिर्मुक्ता मर्म भित्त्वा महाशराः ॥ ९४ ॥
अद्य कर्णं महावेगाः प्रेषयन्तु यमक्षयम् ।

'आज तुम्हारे हाथोंसे छूटे हुए महान् वेगशाली, भयङ्कर एवं विशाल बाण कर्णका मर्मस्थल विदीर्ण करके उसे यमलोक भेज दें ॥ ९४½ ॥

अद्य हाहाकृता दीना विषण्णास्त्वच्छरार्दिताः ॥ ९५ ॥
प्रपतन्तं रथात् कर्णं पश्यन्तु वसुधाधिपाः ।

'आज तुम्हारे बाणोंसे पीड़ित हुए भूमिपाल दीन और विषादयुक्त होकर हाहाकार मचाते हुए कर्णको रथसे नीचे गिरता देखें ॥ ९५½ ॥

अद्य शोणितसम्मग्नं शयानं पतितं भुवि ॥ ९६ ॥
अपविद्धायुधं कर्णं दीनाः पश्यन्तु बान्धवाः ।

'आज कर्ण रक्तमें डूबकर पृथ्वीपर पड़ा सो रहा हो और उसके आयुध इधर-उधर फेंके पड़े हों । इस अवस्थामें उसके बन्धु-बान्धव दीन-दुखी होकर उसे देखें ॥ ९६½ ॥

हस्तिकक्ष्यो महानस्य भल्लेनोन्मथितस्त्वया ।
प्रकम्पमानः पततु भूमावाधिरथेर्ध्वजः ॥ ९७ ॥

'आज हाथीके रस्सेके चिह्नसे युक्त अधिरथपुत्र कर्णका विशाल ध्वज तुम्हारे भल्लसे कटकर काँपता हुआ इस पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ९७ ॥

त्वया शरशतैश्छिन्नं रथं हेमविभूषितम् ।
हतयोधाश्वमुत्सृज्य भीतः शल्यः पलायताम् ॥ ९८ ॥

'आज राजा शल्य भी तुम्हारे सैकड़ों बाणोंसे छिन्न-भिन्न उस सुवर्णविभूषित रथको, जिसके रथी और घोड़े मार डाले गये हों, छोड़कर भयभीत हो भाग जायँ ॥ ९८ ॥

त्वं चेत् कर्णसुतं पार्थ सूतपुत्रस्य पश्यतः ।
प्रतिज्ञापारणार्थाय निहनिष्यसि सायकैः ॥ ९९ ॥
हतं कर्णस्तु तं दृष्ट्वा प्रियं पुत्रं दुरात्मवान् ।
स्मरतां द्रोणभीष्माभ्यां वचः क्षत्तुश्च मानद ॥ १०० ॥

'माननीय पुरुषोंको मान देनेवाले पार्थ ! यदि तुम सूतपुत्र कर्णके देखते-देखते अपनी प्रतिज्ञाकी पूर्तिके लिये उसके पुत्र वृषसेनको बाणोंद्वारा मार डालो तो अपने प्रिय पुत्रको मारा गया देख वह दुरात्मा कर्ण द्रोणाचार्य, भीष्म और विदुरजीकी कही हुई बातोंको याद करे ॥ ९९-१०० ॥

ततः सुयोधनो दृष्ट्वा हतमाधिरथिं त्वया ।
निराशो जीविते त्वद्य राज्ये चैव भवत्वरिः ॥ १०१ ॥

'तत्पश्चात् आज तुम्हारे द्वारा अधिरथपुत्र कर्णको मारा गया देख तुम्हारा शत्रु दुर्योधन अपने जीवन और राज्य दोनोंसे निराश हो जाय ॥ १०१ ॥

एते द्रवन्ति पञ्चाला वध्यमानाः शितैः शरैः ।
कर्णेन भरतश्रेष्ठ पाण्डवानुज्जिहीर्षवः ॥ १०२ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! कर्णके तीखे बाणोंकी मार खाते हुए भी ये पाञ्चालवीर पाण्डव-सैनिकोंका उद्धार करनेकी इच्छासे (कर्णकी ओर ही) दौड़े जा रहे हैं ॥ १०२ ॥

पञ्चालान् द्रौपदेयांश्च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ।
धृष्टद्युम्नतनूजांश्च शतानीकं च नाकुलिम् ॥१०३॥
नकुलं सहदेवं च दुर्मुखं जनमेजयम् ।
सुधर्माणं सात्यकिं च विद्धि कर्णवशं गतान् ॥ १०४॥

'अर्जुन ! तुम्हें ज्ञात होना चाहिये कि पाञ्चालयोद्धा, द्रौपदीके पुत्र, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, धृष्टद्युम्नके पुत्रगण, नकुलकुमार शतानीक, नकुल-सहदेव, दुर्मुख, जनमेजय, सुधर्मा और सात्यकि—ये सब-के-सब कर्णके वशमें पड़ गये हैं ॥ १०३-१०४ ॥

अभ्याहतानां कर्णेन पञ्चालानामसौ रणे ।
श्रूयते निनदो घोरस्त्वद्बन्धूनां परंतप ॥१०५॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले अर्जुन ! देखो, कर्णके द्वारा घायल हुए तुम्हारे बान्धव पाञ्चालोंका वह घोर आर्तनाद रणभूमिमें स्पष्ट सुनायी दे रहा है ॥ १०५ ॥

न त्वेव भीताः पञ्चालाः कथंचित् स्युः पराङ्मुखाः ।
न हि मृत्युं महेष्वासा गणयन्ति महारणे ॥१०६॥

'पाञ्चाल योद्धा किसी तरह भयभीत होकर युद्धसे विमुख नहीं हो सकते । वे महाधनुर्धर वीर महासमरमें मृत्युको कुछ नहीं गिनते हैं ॥ १०६ ॥

य एकः पाण्डवीं सेनां शरौघैः समवेष्टयत् ।
तं समासाद्य पञ्चाला भीष्मं नासन् पराङ्मुखाः ॥१०७॥
ते कथं कर्णमासाद्य विद्रवेयुर्महारथाः ।

'जो सारी पाण्डवसेनाको अकेले ही अपने बाणसमूहों-द्वारा लपेट लेते थे, उन भीष्मजीका सामना करके भी पाञ्चालयोद्धा कभी युद्धसे मुँह मोड़कर नहीं भागे । वे ही महारथी वीर कर्णको सामने पाकर कैसे भाग सकते हैं ? ॥

यस्त्वेकः सर्वपञ्चालानहन्यहनि नाशयन् ॥१०८॥
कालवच्चरते वीरः पञ्चालानां रथव्रजे ।
तमप्यासाद्य समरे मित्रार्थे मित्रवत्सल ॥१०९॥
तथा ज्वलन्तमस्त्राग्निं गुरुं सर्वधनुष्मताम् ।
निर्दहन्तं च समरे दुर्धर्षं द्रोणमोजसा ॥११०॥
ते नित्यमुदिता जेतुं मृधे शत्रूनरिंदम ।
न जात्वाधिरथेर्भीताः पञ्चालाः स्युः पराङ्मुखाः॥१११॥

'मित्रवत्सल ! जो वीर द्रोणाचार्य प्रतिदिन अकेले ही सम्पूर्ण पाञ्चालोंका विनाश करते हुए पाञ्चालोंकी रथसेनामें कालके समान विचरते थे, अस्त्रोंकी आगसे प्रज्वलित होते थे, सम्पूर्ण धनुर्धरोंके गुरु थे और समराङ्गणमें शत्रुसेनाको दग्ध किये देते थे, अपने बल और पराक्रमसे दुर्धर्ष उन द्रोणाचार्यको भी संग्राममें सामने पाकर वे पाञ्चाल अपने मित्र पाण्डवोंके लिये सदा डटकर युद्ध करते रहे । शत्रुदमन अर्जुन ! पाञ्चाल सैनिक युद्धमें सदा शत्रुओंको जीतनेके लिये उद्यत रहते हैं । वे सूतपुत्र कर्णसे भयभीत हो कभी युद्धसे मुँह नहीं मोड़ सकते ॥ १०८—१११ ॥

तेषामापततां शूरः पञ्चालानां तरस्विनाम् ।
आदत्तासूञ्शरैः कर्णः पतङ्गानामिवानलः ॥११२॥

'जैसे आग अपने पास आये हुए पतङ्गोंके प्राण ले लेती है, उसी प्रकार शूरवीर कर्ण बाणोंद्वारा अपने ऊपर आक्रमण करनेवाले वेगशाली पाञ्चालोंके प्राण ले रहा है ॥ ११२ ॥

एते द्रवन्ति पञ्चाला द्राव्यन्ते योधिभिर्ध्रुवम् ।
कर्णेन भरतश्रेष्ठ पश्य पश्य तथाकृतान् ॥११३॥

'भरतश्रेष्ठ ! देखो, ये पाञ्चालयोद्धा दौड़ रहे हैं । निश्चय ही कर्ण और दूसरे-दूसरे योद्धा उन्हें दौड़ा रहे हैं । देखो, वे कैसी बुरी अवस्थामें पड़ गये हैं ! ॥ ११३ ॥

तांस्तथाभिमुखान् वीरान् मित्रार्थे त्यक्तजीवितान् ।
क्षयं नयति राधेयः पञ्चालाञ्छतशो रणे ॥११४॥

'जो अपने मित्रके लिये प्राणोंका मोह छोड़कर शत्रुके सामने खड़े होकर जूझ रहे हैं, उन सैकड़ों पाञ्चालवीरोंको कर्ण रणभूमिमें नष्ट कर रहा है ॥ ११४ ॥

तद् भारत महेष्वासानगाधे मज्जतोऽप्लवे ।
कर्णार्णवे प्लवो भूत्वा पञ्चालांस्त्रातुमर्हसि ॥११५॥

'भारत ! कर्णरूपी अगाध महासागरमें महाधनुर्धर पाञ्चाल विना नावके डूब रहे हैं । तुम नौका बनकर उनका उद्धार करो ॥ ११५ ॥

अस्त्रं हि रामात् कर्णेन भार्गवादृषिसत्तमात् ।
यदुपात्तं महाघोरं तस्य रूपमुदीर्यते ॥११६॥

'कर्णने मुनिश्रेष्ठ भृगुनन्दन परशुरामजीसे जो महाघोर अस्त्र प्राप्त किया है, उसीका रूप इस समय प्रकट हो रहा है॥

तापनं सर्वसैन्यानां घोररूपं सुदारुणम् ।
समावृत्य महासेनां ज्वलन्तं स्वेन तेजसा ॥११७॥

'यह अत्यन्त भयंकर एवं घोर भार्गवास्त्र पाण्डवोंकी विशाल सेनाको आच्छादित करके अपने तेजसे प्रज्वलित हो सम्पूर्ण सैनिकोंको संतप्त कर रहा है ॥ ११७ ॥

एते चरन्ति संग्रामे कर्णचापच्युताः शराः ।
भ्रमराणामिव व्रातास्तापयन्ति स्म तावकान् ॥११८॥

'ये संग्राममें कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाण भ्रमरोंके समूहोंकी भाँति चलते और तुम्हारे योद्धाओंको संतप्त करते हैं ॥ ११८ ॥

एते द्रवन्ति पञ्चाला दिक्षु सर्वासु भारत ।
कर्णास्त्रं समरे प्राप्य दुर्निवार्यमनात्मभिः ॥११९॥

'भरतनन्दन ! जिन्होंने अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें नहीं कर रक्खा है, उनके लिये कर्णके अस्त्रको रोकना अत्यन्त कठिन है । समराङ्गणमें इसकी चोट खाकर ये पाञ्चालसैनिक सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग रहे हैं ॥ ११९ ॥

एष भीमो दृढक्रोधो वृतः पार्थ समन्ततः।
सृञ्जयैर्योधयन् कर्णं पीड्यते निशितैः शरैः ॥१२०॥

'पार्थ ! दृढतापूर्वक क्रोधको धारण करनेवाले ये भीमसेन सब ओरसे सृञ्जयोंद्वारा घिरकर कर्णके साथ युद्ध करते हुए उसके पैने बाणोंसे पीड़ित हो रहे हैं ॥ १२० ॥

पाण्डवान् सृञ्जयांश्चैव पञ्चालांश्चैव भारत।
हन्यादुपेक्षितः कर्णो रोगो देहमिवागतः ॥१२१॥

'भारत ! जैसे प्राप्त हुए रोगकी चिकित्सा न की गयी तो वह शरीरको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार यदि कर्णकी उपेक्षा की गयी तो वह पाण्डवों, सृञ्जयों और पाञ्चालोंका भी नाश कर सकता है ॥ १२१ ॥

नान्यं त्वत्तो हि पश्यामि योधं यौधिष्ठिरे बले।
यः समासाद्य राधेयं स्वस्तिमानाव्रजेद् गृहम् ॥१२२॥

'युधिष्ठिरकी सेनामें मैं तुम्हारे सिवा दूसरे किसी योद्धाको ऐसा नहीं देखता, जो राधापुत्र कर्णका सामना करके कुशलपूर्वक घर लौट सके ॥ १२२ ॥

तमद्य निशितैर्बाणैर्विनिहत्य नरर्षभ।
यथाप्रतिज्ञं पार्थ त्वं कृत्वा कीर्तिमवाप्नुहि ॥१२३॥

'नरश्रेष्ठ ! पार्थ ! आज तुम अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार तीखे बाणोंसे कर्णका वध करके उज्ज्वल कीर्ति प्राप्त करो ॥

त्वं हि शक्तो रणे जेतुं सकर्णानपि कौरवान्।
नान्यो युधि युधां श्रेष्ठ सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ १२४॥

'योद्धाओंमें श्रेष्ठ ! केवल तुम्हीं संग्राममें कर्णसहित सम्पूर्ण कौरवोंको जीत सकते हो, दूसरा कोई नहीं। यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ ॥ १२४ ॥

एतत् कृत्वा महत् कर्म हत्वा कर्णं महारथम्।
कृतार्थः सफलः पार्थ सुखी भव नरोत्तम ॥१२५॥

'पुरुषोत्तम पार्थ ! अतः महारथी कर्णको मारकर यह महान् कार्य सम्पन्न करनेके पश्चात् तुम कृतकृत्य, सफल-मनोरथ एवं सुखी हो जाओ' ॥ १२५ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि श्रीकृष्णवाक्ये त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें श्रीकृष्णवाक्यविषयक तिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

अर्जुनके वीरोचित उद्गार

संजय उवाच

स केशवस्य बीभत्सुः श्रुत्वा भारत भाषितम्।
विशोकः सम्प्रहृष्टश्च क्षणेन समपद्यत ॥ १ ॥

संजय कहते हैं— भरतनन्दन ! भगवान् श्रीकृष्णका यह भाषण सुनकर अर्जुन एक ही क्षणमें शोकरहित एवं हर्ष और उत्साहसे सम्पन्न हो गये ॥ १ ॥

ततो ज्यामभिमृज्याशु व्याक्षिपद् गाण्डिवं धनुः।
दध्रे कर्णविनाशाय केशवं चाभ्यभाषत ॥ २ ॥

तत्पश्चात् धनुषकी प्रत्यञ्चाको साफ करके उन्होंने शीघ्र ही गाण्डीवधनुषकी टङ्कार की और कर्णके विनाशका दृढ़ निश्चय कर लिया। फिर वे भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोले—॥ २ ॥

त्वया नाथेन गोविन्द ध्रुव एव जयो मम।
प्रसन्नो यस्य मेऽद्य त्वं लोके भूतभविष्यकृत् ॥ ३ ॥

'गोविन्द ! जब आप मेरे स्वामी और संरक्षक हैं, तब युद्धमें मेरी विजय निश्चित ही है। संसारके भूत और भविष्यका निर्माण करनेवाले आप ही हैं। जिसके ऊपर आप प्रसन्न हैं, उसकी (अर्थात् मेरी) विजयमें आज क्या संदेह है ॥

त्वत्सहायो ह्यहं कृष्ण त्रीँल्लोकान् वै समागतान्।
प्रापयेयं परं लोकं किमु कर्णं महाहवे ॥ ४ ॥

'श्रीकृष्ण ! आपकी सहायता मिलनेपर तो मैं युद्धके लिये सामने आये हुए तीनों लोकोंको भी परलोकका पथिक बना सकता हूँ, फिर इस महासमरमें कर्णको जीतना कौन बड़ी बात है ? ॥ ४ ॥

पश्यामि द्रवतीं सेनां पञ्चालानां जनार्दन।
पश्यामि कर्णं समरे विचरन्तमभीतवत् ॥ ५ ॥

'जनार्दन ! मैं समरभूमिमें निर्भयसे विचरते हुए कर्णको और भागती हुई पाञ्चालोंकी सेनाको भी देख रहा हूँ ॥ ५ ॥

भार्गवास्त्रं च पश्यामि ज्वलन्तं कृष्ण सर्वशः।
सृष्टं कर्णेन वार्ष्णेय शक्रेणेव यथाशनिम् ॥ ६ ॥

'श्रीकृष्ण ! वार्ष्णेय ! सब ओरसे प्रज्वलित होनेवाले भार्गवास्त्रपर भी मेरी दृष्टि है, जिसे कर्णने उसी तरह प्रकट किया है, जैसे इन्द्र वज्रका प्रयोग करते हैं ॥ ६ ॥

अयं खलु स संग्रामो यत्र कर्णं मया हतम्।
कथयिष्यन्ति भूतानि यावद् भूमिर्धरिष्यति ॥ ७ ॥

'निश्चय ही यह वह संग्राम है, जहाँ कर्ण मेरे हाथसे मारा जायगा और जबतक यह पृथ्वी विद्यमान रहेगी, तबतक समस्त प्राणी इसकी चर्चा करेंगे ॥ ७ ॥

अद्य कृष्ण विकर्णा मे कर्णं नेष्यन्ति मृत्यवे।
गाण्डीवमुक्ताः क्षिण्वन्तो मम हस्तप्रचोदिताः ॥ ८ ॥

'श्रीकृष्ण ! आज मेरे हाथसे प्रेरित और गाण्डीव धनुषसे मुक्त हुए विकर्ण नामक बाण कर्णको क्षत-विक्षत करते हुए उसे यमलोक पहुँचा देंगे ॥ ८ ॥

अद्य राजा धृतराष्ट्रः स्वां बुद्धिमवमंस्यते।
दुर्योधनमराज्यार्हं यया राज्येऽभ्यषेचयत् ॥ ९ ॥

'आज राजा धृतराष्ट्र अपनी उस बुद्धिका अनादर करेंगे, जिसके द्वारा उन्होंने राज्यके अनधिकारी दुर्योधनको राजाके पदपर अभिषिक्त कर दिया था ॥ ९ ॥

अद्य राज्यात् सुखाच्चैव श्रियो राष्ट्रात् तथा पुरात् ।
पुत्रेभ्यश्च महाबाहो धृतराष्ट्रो विमोक्ष्यति ॥ १० ॥

'महाबाहो ! आज धृतराष्ट्र अपने राज्यसे, सुखसे, लक्ष्मीसे, राष्ट्रसे, नगरसे और अपने पुत्रोंसे भी बिछुड़ जायँगे ॥

गुणवन्तं हि यो द्वेष्टि निर्गुणं कुरुते प्रभुम् ।
स शोचति नृपः कृष्ण क्षिप्रमेवागते क्षये ॥ ११ ॥

'श्रीकृष्ण ! जो गुणवान्से द्वेष करता और गुणहीन-को राजा बनाता है, वह नरेश विनाशकाल उपस्थित होनेपर शोकमग्न हो पश्चात्ताप करता है ॥ ११ ॥

यथा च पुरुषः कश्चिच्छित्त्वा चाम्रवणं महत् ।
फलं दृष्ट्वा भृशं दुःखी भविष्यति जनार्दन ।
सूतपुत्रे हते त्वद्य निराशो भविता प्रभुः ॥ १२ ॥

'जनार्दन ! जैसे कोई पुरुष आमके विशाल वनको काटकर उसके दुष्परिणामको उपस्थित देख अत्यन्त दुखी हो जाता है, उसी प्रकार आज सूतपुत्रके मारे जानेपर राजा दुर्योधन निराश हो जायगा ॥ १२ ॥

अद्य दुर्योधनो राज्याज्जीविताच्च निराशकः ।
भविष्यति हते कर्णे कृष्ण सत्यं ब्रवीमि ते ॥ १३ ॥

'श्रीकृष्ण ! मैं आपसे सच्ची बात कहता हूँ । आज कर्णका वध हो जानेपर दुर्योधन अपने राज्य और जीवन दोनोंसे निराश हो जायगा ॥ १३ ॥

अद्य दृष्ट्वा मया कर्णं शरैर्विशकलीकृतम् ।
स्मरतां तव वाक्यानि शमं प्रति जनेश्वरः ॥ १४ ॥

'आज मेरे बाणोंसे कर्णके शरीरको टूक-टूक हुआ देखकर राजा दुर्योधन सन्धिके लिये कहे हुए आपके वचनोंका स्मरण करे ॥ १४ ॥

अद्यासौ सौबलः कृष्ण ग्लहाञ्जानातु वै शरान् ।
दुरोदरं च गाण्डीवं मण्डलं च रथं प्रति ॥ १५ ॥

'श्रीकृष्ण ! आज सुबलपुत्र जुआरी शकुनिको यह मालूम हो जाय कि मेरे बाण ही दाँव हैं, गाण्डीव धनुष ही पासा है और मेरा रथ ही मण्डल (चौपड़के खाने) है ॥

अद्य कुन्तीसुतस्याहं दृढं राज्ञः प्रजागरम् ।
व्यपनेष्यामि गोविन्द हत्वा कर्णं शितैः शरैः ॥ १६ ॥

'गोविन्द ! आज मैं अपने पैने बाणोंसे कर्णको मारकर कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरके चिन्ताजनित जागरणके स्थायी रोगको दूर कर दूँगा ॥ १६ ॥

अद्य कुन्तीसुतो राजा हते सूतसुते मया ।
सुप्रहृष्टमनाः प्रीतश्चिरं सुखमवाप्स्यति ॥ १७ ॥

'आज कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर मेरेद्वारा सूतपुत्र कर्णके मारे जानेपर प्रसन्नचित्त हो दीर्घकालके लिये संतुष्ट एवं सुखी हो जायँगे ॥ १७ ॥

अद्य चाहमनाधृष्यं केशवाप्रतिमं शरम् ।
उत्स्रक्ष्यामीह यः कर्णं जीविताद् भ्रंशयिष्यति ॥ १८ ॥

'आज मैं ऐसा अनुपम और अजेय बाण छोड़ूँगा, जो कर्णको उसके प्राणोंसे वञ्चित कर देगा ॥ १८ ॥

यस्य चैतद् व्रतं मह्यं वधे किल दुरात्मनः ।
पादौ न धावये तावद् यावद्धन्यां न फाल्गुनम् ॥ १९ ॥
मृषा कृत्वा व्रतं तस्य पापस्य मधुसूदन ।
पातयिष्ये रथात् कायं शरैः संनतपर्वभिः ॥ २० ॥

'मधुसूदन ! जिस दुरात्माने मेरे वधके लिये यह व्रत लिया है कि जबतक अर्जुनको मार न लूँगा, तबतक दूसरों-से पैर न धुलाऊँगा । उस पापीके इस व्रतको मिथ्या करके झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा उसके इस शरीरको रथसे नीचे गिरा दूँगा ॥ १९-२० ॥

योऽसौ रणे नरं नान्यं पृथिव्यामनुमन्यते ।
तस्याद्य सूतपुत्रस्य भूमिः पास्यति शोणितम् ॥ २१ ॥

'जो भूमण्डलमें दूसरे किसी पुरुषको रणभूमिमें अपने समान नहीं मानता है, आज यह पृथ्वी उस सूतपुत्रके रक्त-का पान करेगी ॥ २१ ॥

अपतिर्ह्यसि कृष्णेति सूतपुत्रो यदब्रवीत् ।
धृतराष्ट्रमते कर्णः श्लाघमानः स्वकान् गुणान् ॥ २२ ॥
अनृतं तत् करिष्यन्ति मामका निशिताः शराः ।
आशीविषा इव क्रुद्धास्तस्य पास्यन्ति शोणितम् ॥ २३ ॥

'सूतपुत्र कर्णने धृतराष्ट्रके मतमें होकर अपने गुणोंकी प्रशंसा करते हुए जो द्रौपदीसे यह कहा था कि 'कृष्णे ! तू पतिहीन है' उसके इस कथनको मेरे तीखे बाण असत्य कर दिखायेंगे और क्रोधमें भरे हुए विषधर सर्पोंके समान उसके रक्तका पान करेंगे ॥ २२-२३ ॥

मया हस्तवता मुक्ता नाराचा वैद्युतत्विषः ।
गाण्डीवसृष्टा दास्यन्ति कर्णस्य परमां गतिम् ॥ २४ ॥

'मैं बाण चलानेमें सिद्धहस्त हूँ । मेरेद्वारा गाण्डीव धनुषसे छोड़े गये बिजलीके समान चमकते हुए नाराच कर्णको परम गति प्रदान करेंगे ॥ २४ ॥

अद्य तप्स्यति राधेयः पाञ्चालीं यत्तदाब्रवीत् ।
सभामध्ये वचः क्रूरं कुत्सयन् पाण्डवान् प्रति ॥ २५ ॥

'राधापुत्र कर्णने भरी सभामें पाण्डवोंकी निन्दा करते हुए द्रौपदीसे जो क्रूरतापूर्ण वचन कहा था, उसके लिये उसे बड़ा पश्चात्ताप होगा ॥ २५ ॥

ये वै षण्ढतिलास्तत्र भवितारोऽद्य ते तिलाः ।
हते वैकर्तने कर्णे सूतपुत्रे दुरात्मनि ॥ २६ ॥

'जो पाण्डव वहाँ थोथे तिलोंके समान नपुंसक कहे गये थे, वे दुरात्मा सूतपुत्र वैकर्तन कर्णके मारे जानेपर आज अच्छे तिल और शूरवीर सिद्ध होंगे ॥ २६ ॥

अहं वः पाण्डुपुत्रेभ्यस्त्रास्यामीति यदब्रवीत् ।
धृतराष्ट्रसुतान् कर्णः श्लाघमानोऽऽत्मनो गुणान्॥ २७ ॥
अनृतं तत् करिष्यन्ति मामका निशिताः शराः ।
उद्योगः पाण्डुपुत्राणां समाप्तिमुपयास्यति ॥ २८ ॥

'अपने गुणोंकी प्रशंसा करते हुए सूतपुत्र कर्णने धृतराष्ट्रके पुत्रोंसे जो यह कहा था कि 'मैं पाण्डवोंसे तुम्हारी रक्षा करूँगा' उसके इस कथनको मेरे तीखे बाण असत्य कर देंगे और पाण्डवोंका युद्धविषयक उद्योग समाप्त हो जायगा ॥ २७-२८ ॥

हन्ताहं पाण्डवान् सर्वान् सपुत्रानिति योऽब्रवीत् ।
तमद्य कर्णं हन्तास्मि मिषतां सर्वधन्विनाम् ॥ २९ ॥

'जिसने यह कहा था कि मैं 'पुत्रोंसहित समस्त पाण्डवों-को मार डालूँगा' उस कर्णको आज समस्त धनुर्धरोंके देखते-देखते मैं नष्ट कर दूँगा ॥ २९ ॥

यस्य वीर्यं समाश्रित्य धार्तराष्ट्रो महामनाः ।
अवामन्यत दुर्बुद्धिर्नित्यमस्मान् दुरात्मवान् ॥ ३० ॥
हत्वाहं कर्णमाजौ हि तोषयिष्यामि भ्रातरम् ।

'जिसके बल-पराक्रमका भरोसा करके महामनस्वी दुर्बुद्धि एवं दुरात्मा दुर्योधन सदा हमलोगोंका अपमान करता आया है, उस कर्णका आज युद्धस्थलमें वध करके मैं अपने भाई युधिष्ठिरको संतुष्ट करूँगा ॥ ३०½ ॥

शरान् नानाविधान् मुक्त्वा त्रासयिष्यामि शात्रवान् ।
आकर्णमुक्तैरिषुभिर्यमराष्ट्रविवर्धनैः ॥ ३१ ॥
भूमिशोभां करिष्यामि पातितै रथकुञ्जरैः ।

'नाना प्रकारके बाणोंका प्रहार करके मैं शत्रुसैनिकोंको भयभीत कर दूँगा । धनुषको कानतक खींचकर छोड़े गये यमराष्ट्रवर्धक बाणोंद्वारा धराशायी किये गये रथों और हाथियोंसे रणभूमिकी शोभा बढ़ाऊँगा ॥ ३१½ ॥

तत्राहं वै महासंख्ये संपन्नं युद्धदुर्मदम् ॥ ३२ ॥
अद्य कर्णमहं घोरं सूदयिष्यामि सायकैः ।

'मैं महासमरमें शक्तिसम्पन्न रणदुर्मद एवं भयंकर कर्णको आज अपने बाणोंद्वारा मार डालूँगा ॥ ३२½ ॥

अद्य कर्णे हते कृष्ण धार्तराष्ट्राः सराजकाः ॥ ३३ ॥
विद्रवन्तु दिशो भीताः सिंहत्रस्ता मृगा इव ।

'श्रीकृष्ण ! आज कर्णके मारे जानेपर राजासहित धृतराष्ट्रके सभी पुत्र सिंहसे डरे हुए मृगोंके समान भयभीत हो सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग जायँ ॥ ३३½ ॥

अद्य दुर्योधनो राजा आत्मानं चानुशोचताम् ॥ ३४ ॥
हते कर्णे मया संख्ये सपुत्रे ससुहृज्जने ।

'आज युद्धस्थलमें पुत्रों और सुहृदोंसहित कर्णके मेरे द्वारा मारे जानेपर राजा दुर्योधन अपने लिये निरन्तर शोक करे ॥

अद्य कर्णं हतं दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रोऽत्यमर्षणः ॥ ३५ ॥
जानातु मां रणे कृष्ण प्रवरं सर्वधन्विनाम् ।

'श्रीकृष्ण ! अमर्षशील दुर्योधन आज कर्णको रणभूमिमें मारा गया देख मुझे सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ समझ ले ॥

सपुत्रपौत्रं सामात्यं सभृत्यं च निराशिषम् ॥ ३६ ॥
अद्य राज्ये करिष्यामि धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ।

'मैं आज ही पुत्र, पौत्र, मन्त्री और सेवकोंसहित राजा धृतराष्ट्रको राज्यकी ओरसे निराश कर दूँगा ॥ ३६½ ॥

अद्य कर्णस्य चक्राङ्गाः क्रव्यादाश्च पृथग्विधाः ॥ ३७ ॥
शरैश्छिन्नानि गात्राणि विहरिष्यन्ति केशव ।

'केशव ! आज चक्रवाक तथा भिन्न-भिन्न मांस भोजी पक्षी बाणोंसे कटे हुए कर्णके अङ्गोंको उठा ले जायँगे ॥

अद्य राधासुतस्याहं संग्रामे मधुसूदन ॥ ३८ ॥
शिरश्छेत्स्यामि कर्णस्य मिषतां सर्वधन्विनाम् ।

'मधुसूदन ! आज संग्राममें समस्त धनुर्धरोंके देखते-देखते मैं राधापुत्र कर्णका मस्तक काट डालूँगा ॥ ३८½ ॥

अद्य तीक्ष्णैर्विपाठैश्च क्षुरैश्च मधुसूदन ॥ ३९ ॥
रणे छेत्स्यामि गात्राणि राधेयस्य दुरात्मनः ।

'श्रीकृष्ण ! आज तीखे विपाठों और क्षुरोंसे रणभूमिमें दुरात्मा राधापुत्रके अङ्गोंको काट डालूँगा ॥ ३९½ ॥

अद्य राजा महत् कृच्छ्रं संत्यक्ष्यति युधिष्ठिरः ॥ ४० ॥
संतापं मानसं वीरश्चिरसम्भृतमात्मनः ।

'आज वीर राजा युधिष्ठिर महान् कष्ट और अपने चिर-संचित मानसिक संतापसे छुटकारा पा जायँगे ॥ ४०½ ॥

अद्य केशव राधेयमहं हत्वा सबान्धवम् ॥ ४१ ॥
नन्दयिष्यामि राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।

'केशव ! आज मैं बन्धु-बान्धवोंसहित राधापुत्रको मारकर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरको आनन्दित करूँगा ॥ ४१½ ॥

अद्याहमनुगान् कृष्ण कर्णस्य कृपणान् युधि ॥ ४२ ॥
हन्ता ज्वलनसंकाशैः शरैः सर्पविषोपमैः ।

'श्रीकृष्ण ! आज मैं युद्धस्थलमें कर्णके पीछे चलनेवाले दीन-हीन सैनिकोंको सर्पविष और अग्निके समान बाणोंद्वारा भस्म कर डालूँगा ॥ ४२½ ॥

अद्याहं हेमकवचैराबद्धमणिकुण्डलैः ॥ ४३ ॥
संस्तरिष्यामि गोविन्द वसुधां वसुधाधिपैः ।

'गोविन्द ! आज मैं सुवर्णमय कवच और मणिमय कुण्डल धारण करनेवाले भूपतियोंकी लाशोंसे रणभूमिको पाट दूँगा ॥ ४३½ ॥

अद्याभिमन्योः शत्रूणां सर्वेषां मधुसूदन ॥ ४४ ॥
प्रमथिष्यामि गात्राणि शिरांसि च शितैः शरैः ।

'मधुसूदन ! आज पैने बाणोंसे मैं अभिमन्युके समस्त शत्रुओंके शरीरों और मस्तकोंको मथ डालूँगा ॥ ४४½ ॥

अद्य निर्धार्तराष्ट्रां च भ्रात्रे दास्यामि मेदिनीम् ॥ ४५ ॥
निरर्जुनां वा पृथिवीं केशवानुचरिष्यसि ।

'केशव ! या तो आज इस पृथ्वीको धृतराष्ट्रपुत्रोंसे

सूनी करके अपने भाईके अधिकारमें दे दूँगा या आप अर्जुनरहित पृथ्वीपर विचरेंगे ॥ ४५½ ॥

अद्याहमनृणः कृष्ण भविष्यामि धनुर्भृताम् ॥ ४६ ॥
कोपस्य च कुरूणां च शराणां गाण्डिवस्य च ।

'श्रीकृष्ण ! आज मैं सम्पूर्ण धनुर्धरोंके, क्रोधके, कौरवोंके, बाणोंके तथा गाण्डीव धनुषके भी ऋणसे मुक्त हो जाऊँगा ॥

अद्य दुःखमहं मोक्ष्ये त्रयोदशसमार्जितम् ॥ ४७ ॥
हत्वा कर्णं रणे कृष्ण शम्बरं मघवानिव ।

'श्रीकृष्ण ! जैसे इन्द्रने शम्बरासुरका वध किया था, उसी प्रकार मैं रणभूमिमें कर्णको मारकर आज तेरह वर्षोंसे संचित किये हुए दुःखका परित्याग कर दूँगा ॥ ४७½ ॥

अद्य कर्णे हते युद्धे सोमकानां महारथाः ॥ ४८ ॥
कृतं कार्यं च मन्यन्तां मित्रकार्येप्सवो युधि ।

'आज युद्धमें कर्णके मारे जानेपर मित्रके कार्यकी सिद्धि चाहनेवाले सोमकवंशी महारथी अपनेको कृतकार्य समझ लें ॥

न जाने च कथं प्रीतिः शैनेयस्याद्य माधव ॥ ४९ ॥
भविष्यति हते कर्णे मयि चापि जयाधिके ।

'माधव ! आज कर्णके मारे जाने और विजयके कारण मेरी प्रतिष्ठा बढ़ जानेपर न जाने शिनिपौत्र सात्यकिको कितनी प्रसन्नता होगी ? ॥ ४९½ ॥

अहं हत्वा रणे कर्णं पुत्रं चास्य महारथम् ॥ ५० ॥
प्रीतिं दास्यामि भीमस्य यमयोः सात्यकस्य च ।

'मैं रणभूमिमें कर्ण और उसके महारथी पुत्रको मारकर भीमसेन, नकुल, सहदेव तथा सात्यकिको प्रसन्न करूँगा ॥

धृष्टद्युम्नशिखण्डिभ्यां पञ्चालानां च माधव ॥ ५१ ॥
अद्यानृण्यं गमिष्यामि हत्वा कर्णं महाहवे ।

'माधव ! आज महासमरमें कर्णका वध करके मैं धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा पाञ्चालोंके ऋणसे छुटकारा पा जाऊँगा ॥

अद्य पश्यन्तु संग्रामे धनंजयममर्षणम् ॥ ५२ ॥
युध्यन्तं कौरवान् संख्ये घातयन्तं च सूतजम् ।

'आज समस्त सैनिक देखें कि संग्रामभूमिमें अमर्षशील धनंजय किस प्रकार कौरवोंसे युद्ध करता और सूतपुत्र कर्णको मारता है ॥ ५२½ ॥

भवत्सकाशे वक्ष्ये च पुनरेवात्मसंस्तवम् ॥ ५३ ॥
धनुर्वेदे मत्समो नास्ति लोके
पराक्रमे वा मम कोऽस्ति तुल्यः ।
को वाप्यन्यो मत्समोऽस्ति क्षमावां-
स्तथा क्रोधे सदृशोऽन्यो न मेऽस्ति ॥५४॥

'मैं आपके निकट पुनः अपनी प्रशंसासे भरी हुई बात कहता हूँ; धनुर्वेदमें मेरी समानता करनेवाला इस संसारमें दूसरा कोई नहीं है । फिर पराक्रममें मेरे-जैसा कौन है ? मेरे समान क्षमाशील भी दूसरा कौन है तथा क्रोधमें भी मेरे-जैसा दूसरा कोई नहीं है ॥ ५३-५४ ॥

अहं धनुष्मान् ससुरासुरांश्च
सर्वाणि भूतानि च सङ्गतानि ।
स्वबाहुवीर्याद् गमये पराभवं
मत्पौरुषं विद्धि परं परेभ्यः ॥ ५५ ॥

'मैं धनुष लेकर अपने बाहुबलसे एक साथ आये हुए देवताओं, असुरों तथा सम्पूर्ण प्राणियोंको परास्त कर सकता हूँ । मेरे पुरुषार्थको उत्कृष्टसे भी उत्कृष्ट समझो ॥ ५५ ॥

शरार्चिषा गाण्डिवेनाहमेकः
सर्वान् कुरून् बाह्लिकांश्चाभिहत्य ।
हिमात्यये कक्षगतो यथाग्नि-
स्तथा दहेयं सगणान् प्रसह्य ॥ ५६ ॥

'मैं अकेला ही बाणोंकी ज्वालासे युक्त गाण्डीव धनुषके द्वारा समस्त कौरवों और बाह्लिकोंको दल-बलसहित मारकर ग्रीष्मऋतुमें सूखे काठमें लगी हुई आगके समान सबको भस्म कर डालूँगा ॥ ५६ ॥

पाणौ पृषत्का लिखिता ममैते
धनुश्च दिव्यं विततं सबाणम् ।
पादौ च मे सरथौ सध्वजौ च
न मादृशं युद्धगतं जयन्ति ॥ ५७ ॥

'मेरे एक हाथमें बाणके चिह्न हैं और दूसरेमें फैले हुए बाणसहित दिव्य धनुषकी रेखा है । इसी प्रकार मेरे पैरोंमें भी रथ और ध्वजाके चिह्न हैं । मेरे-जैसे लक्षणोंवाला योद्धा जब युद्धमें उपस्थित होता है, तब उसे शत्रु जीत नहीं सकते हैं' ॥ ५७ ॥

इत्येवमुक्त्वार्जुन एकवीरः
क्षिप्रं रिपुघ्नः क्षतजोपमाक्षः ।
भीमं मुमुक्षुः समरे प्रयातः
कर्णस्य कायाच्च शिरो जिहीर्षुः ॥ ५८ ॥

भगवान्‌से ऐसा कहकर अद्वितीय वीर शत्रुसूदन अर्जुन क्रोधसे लाल आँखें किये समरभूमिमें भीमसेनको संकटसे छुड़ाने और कर्णके मस्तकको धड़से अलग करनेके लिये शीघ्रतापूर्वक वहाँसे चल दिये ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अर्जुनवाक्ये चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें अर्जुनवाक्यविषयक चौहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७४ ॥

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

दोनों पक्षोंकी सेनाओंमें द्वन्द्वयुद्ध तथा सुषेणका वध

धृतराष्ट्र उवाच

समागमे पाण्डवसृंजयानां
महाभये मामकानामगाधे ।
धनंजये तात रणाय याते
कर्णेन तद् युद्धमथोऽत्र कीदृक् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—तात संजय ! मेरे पुत्रों तथा पाण्डवों और सृञ्जयोंमें पहलेसे ही अगाध एवं महाभयंकर संग्राम छिड़ा हुआ था । फिर जब धनंजय भी वहाँ कर्णके साथ युद्धके लिये जा पहुँचे, तब उस युद्धका स्वरूप कैसा हो गया ? ॥ १ ॥

संजय उवाच

तेषामनीकानि बृहद्ध्वजानि
रणे समृद्धानि समागतानि ।
गर्जन्ति भेरीनिनदोन्मुखानि
नादैर्यथा मेघगणास्तपान्ते ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! ग्रीष्म ऋतु बीत जानेपर जैसे मेघसमूह गर्जना करने लगते हैं, उसी प्रकार दोनों पक्षोंकी सेनाएँ एकत्र हो रणभूमिमें गर्जना करने लगीं । उनके भीतर बड़े-बड़े ध्वज फहरा रहे थे और सभी सैनिक अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न थे । रणभेरियोंकी ध्वनि उन्हें युद्धके लिये उत्सुक किये हुए थी ॥ २ ॥

महागजाभ्राकुलमस्त्रतोयं
वादित्रनेमीतलशब्दवच्च ।
हिरण्यचित्रायुधविद्युतं च
शरासिनाराचमहास्त्रधारम् ॥ ३ ॥
तद् भीमवेगं रुधिरौघवाहि
खड्गाकुलं क्षत्रियजीवघाति ।
अनार्तवं क्रूरमनिष्टवर्षं
बभूव तत् संहरणं प्रजानाम् ॥ ४ ॥

क्रमशः वह क्रूरतापूर्ण युद्ध बिना ऋतुकी अनिष्टकारी वर्षाके समान प्रजाजनोंका संहार करने लगा । बड़े-बड़े हाथियोंका समूह मेघोंकी घटा बनकर वहाँ छाया हुआ था । अस्त्र ही जल थे, वाद्यों और पहियोंकी घर्घराहटका शब्द ही मेघ-गर्जनके समान प्रतीत होता था । सुवर्णजटित विचित्र आयुध विद्युत्के समान प्रकाशित होते थे । बाण, खड्ग और नाराच आदि बड़े-बड़े अस्त्रोंकी धारावाहिक वृष्टि हो रही थी । धीरे-धीरे उस युद्धका वेग बड़ा भयंकर हो उठा, रक्तका स्रोत बह चला । तलवारोंकी खचाखच मार होने लगी, जिससे क्षत्रियोंके प्राणोंका संहार होने लगा ॥ ३-४ ॥

एकं रथं सम्परिवार्य मृत्युं
नयन्त्यनेके च रथाः समेताः ।
एकस्तथैकं रथिनं रथाग्र्यां-
स्तथा रथश्चापि रथाननेकान् ॥ ५ ॥

बहुत-से रथी एक साथ मिलकर किसी एक रथीको घेर लेते और उसे यमलोक पहुँचा देते थे । इसी प्रकार एक रथी एक रथीको और अनेक श्रेष्ठ रथियोंको भी यमलोकका पथिक बना देता था ॥ ५ ॥

रथंससूतं सहयं च कश्चित्
कश्चिद्रथी मृत्युवशं निनाय ।
निनाय चाप्येकगजेन कश्चिद्
रथान् बहून् मृत्युवशे तथाश्वान् ॥ ६ ॥

किसी रथीने किसी एक रथीको घोड़ों और सारथिसहित मौतके हवाले कर दिया तथा किसी दूसरे वीरने एकमात्र हाथीके द्वारा बहुत-से रथियों और घोड़ोंको मौतका ग्रास बना दिया ॥ ६ ॥

रथान् ससूतान् सहयान् गजांश्च
सर्वानरीन् मृत्युवशं शरौघैः ।
निन्ये हयांश्चैव तथा ससादीन्
पदातिसङ्घांश्च तथैव पार्थः ॥ ७ ॥

उस समय अर्जुनने सारथिसहित रथों, घोड़ोंसहित हाथियों, समस्त शत्रुओं, सवारोंसहित घोड़ों तथा पैदलसमूहोंको भी अपने बाणसमूहोंद्वारा मृत्युके अधीन कर दिया ॥

कृपः शिखण्डी च रणे समेतौ
दुर्योधनं सात्यकिरभ्यगच्छत् ।
श्रुतश्रवा द्रोणपुत्रेण सार्धं
युधामन्युश्चित्रसेनेन सार्धम् ॥ ८ ॥

उस रणभूमिमें कृपाचार्य और शिखण्डी एक दूसरेसे भिड़े थे, सात्यकिने दुर्योधनपर धावा किया था, श्रुतश्रवा द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके साथ जूझ रहा था और युधामन्यु चित्रसेनके साथ युद्ध कर रहे थे ॥ ८ ॥

कर्णस्य पुत्रं तु रथी सुषेणं
समागतं सृंजयश्चोत्तमौजाः ।
गान्धारराजं सहदेवः क्षुधार्तो
महर्षभं सिंह इवाभ्यधावत् ॥ ९ ॥

सृंजयवंशी रथी उत्तमौजाने अपने सामने आये हुए कर्णपुत्र सुषेणपर आक्रमण किया था । जैसे भूखसे पीड़ित हुआ सिंह किसी साँड़पर धावा करता है, उसी प्रकार सहदेव गान्धारराज शकुनिपर टूट पड़े थे ॥ ९ ॥

शतानीको नाकुलिः कर्णपुत्रं
युवा युवानं वृषसेनं शरौघैः ।
समार्पयत् कर्णपुत्रश्च शूरः
पाञ्चालेयं शरवर्षैरनेकैः ॥ १० ॥

नकुलपुत्र नवयुवक शतानीकने कर्णके नौजवान बेटे वृषसेनको अपने बाणसमूहोंसे घायल कर दिया तथा शूरवीर कर्णपुत्र वृषसेनने भी अनेक बाणोंकी वर्षा करके पाञ्चाली-कुमार शतानीकको गहरी चोट पहुँचायी ॥ १० ॥

रथर्षभः कृतवर्माणमार्छे-
न्माद्रीपुत्रो नकुलश्चित्रयोधी।
पञ्चालानामधिपो याज्ञसेनिः
सेनापतिः कर्णमार्छत् ससैन्यम् ॥ ११ ॥

विचित्र युद्ध करनेवाले, रथियोंमें श्रेष्ठ माद्रीकुमार नकुलने कृतवर्मापर चढ़ाई की। द्रुपदकुमार पाञ्चालराज सेनापति धृष्टद्युम्नने सेनासहित कर्णपर आक्रमण किया ॥ ११ ॥

दुःशासनो भारत भारती च
संशप्तकानां पृतना समृद्धा।
भीमं रणे शस्त्रभृतां वरिष्ठं
भीमं समार्छत्तमसह्यवेगम् ॥ १२ ॥

भारत ! दुःशासन, कौरवसेना और संशप्तकोंकी समृद्धि-शालिनी वाहिनीने असह्य वेगशाली, शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ तथा युद्धमें भयंकर प्रतीत होनेवाले भीमसेनपर चढ़ाई की ॥ १२ ॥

कर्णात्मजं तत्र जघान वीर-
स्तथाच्छिनच्चोत्तमौजाः प्रसह्य।
तस्योत्तमाङ्गं निपपात भूमौ
निनादयद् गां निनदेन खं च ॥ १३ ॥

वीर उत्तमौजाने हठपूर्वक वहाँ कर्णपुत्र सुषेणपर घातक प्रहार किया और उसका मस्तक काट डाला। सुषेणका वह मस्तक अपने आर्तनादसे आकाश और पृथ्वीको प्रतिध्वनित करता हुआ भूमिपर गिर पड़ा ॥ १३ ॥

सुषेणशीर्षं पतितं पृथिव्यां
विलोक्य कर्णोऽथ तदार्तरूपः।
क्रोधाद्धयांस्तस्य रथं ध्वजं च
बाणैः सुधारैर्निशितैरकृन्तत् ॥ १४ ॥

सुषेणके मस्तकको पृथ्वीपर पड़ा देख कर्ण शोकसे आतुर हो उठा। उसने कुपित हो उत्तम धारवाले पैने बाणोंसे उत्तमौजाके रथ, ध्वज और घोड़ोंको काट डाला ॥ १४ ॥

स तूत्तमौजा निशितैः पृषत्कै-
र्विव्याध खड्गेन च भास्वरेण।
पार्ष्णिं हयांश्चैव कृपस्य हत्वा
शिखण्डिवाहं स ततोऽध्यरोहत् ॥ १५ ॥

तब उत्तमौजाने तीखे बाणोंसे कर्णको बींध डाला और (जब कृपाचार्यने बाधा दी तब) चमचमाती हुई तलवारसे कृपाचार्यके पृष्ठरक्षकों और घोड़ोंको मारकर वह शिखण्डीके रथपर आरूढ़ हो गया ॥ १५ ॥

कृपं तु दृष्ट्वा विरथं रथस्थो
नैच्छच्छरैस्ताडयितुं शिखण्डी।
तं द्रौणिरावार्य रथं कृपस्य
समुज्जह्रे पङ्कगतां यथा गाम् ॥ १६ ॥

कृपाचार्यको रथहीन देख रथपर बैठे हुए शिखण्डीने उनपर बाणोंसे आघात करनेकी इच्छा नहीं की। तब अश्वत्थामाने शिखण्डीको रोककर कीचड़में फँसी हुई गायके समान कृपाचार्यके रथका उद्धार किया ॥ १६ ॥

हिरण्यवर्मा निशितैः पृषत्कै-
स्तवात्मजानामनिलात्मजो वै।
अतापयत् सैन्यमतीव भीमः
काले शुचौ मध्यगतो यथार्कः ॥ १७ ॥

जैसे आषाढ़मासमें दोपहरका सूर्य अत्यन्त ताप प्रदान करता है, उसी प्रकार सुवर्णकवचधारी वायुपुत्र भीमसेन आपके पुत्रोंकी सेनाको तीखे बाणोंद्वारा अधिक संताप देने लगे ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलद्वन्द्वयुद्धे पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलद्वन्द्वयुद्धविषयक पचहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

भीमसेनका अपने सारथि विशोकसे संवाद

संजय उवाच

अथ त्विदानीं तुमुले विमर्दे
द्विषद्भिरेको बहुभिः समावृतः।
महारणे सारथिमित्युवाच
भीमश्चमूं वाहय धार्तराष्ट्रीम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! उस समय उस घमासान युद्धमें बहुत-से शत्रुओंद्वारा अकेले घिरे हुए भीमसेन महासमरमें अपने सारथिसे बोले—'सारथे ! अब तुम रथको धृतराष्ट्र-पुत्रोंकी सेनाकी ओर ले चलो ॥ १ ॥

त्वं सारथे याहि जवेन वाहै-
र्नयाम्येतान् धार्तराष्ट्रान् यमाय।
संचोदितो भीमसेनेन चैवं
स सारथिः पुत्रबलं त्वदीयम् ॥ २ ॥
प्रायात् ततः सत्वरमुग्रवेगो
यतो भीमस्तद् बलं गन्तुमैच्छत्।
ततोऽपरे नागरथाश्वपत्तिभिः
प्रत्युद्ययुस्तं कुरवः समन्तात् ॥ ३ ॥

'सूत ! तुम अपने वाहनोंद्वारा वेगपूर्वक आगे बढ़ो। जिससे इन धृतराष्ट्रपुत्रोंको मैं यमलोक भेज सकूँ।' भीमसेनके इस प्रकार आदेश देनेपर सारथि तुरंत ही भयंकर वेगसे युक्त हो आपके पुत्रोंकी सेनाकी ओर, जिधर भीमसेन जाना चाहते थे, चल दिया। तब अन्यान्य कौरवोंने हाथी, घोड़े,

रथ और पैदलोंकी विशाल सेना साथ ले सब ओरसे उनपर आक्रमण किया ॥ २-३ ॥

भीमस्य वाहाग्र्यमुदारवेगं
समन्ततो बाणगणैर्निजघ्नुः ।
ततः शरानापततो महात्मा
चिच्छेद बाणैस्तपनीयपुङ्खैः ॥ ४ ॥

वे भीमसेनके अत्यन्त वेगशाली श्रेष्ठ रथपर चारों ओरसे बाणसमूहोंद्वारा प्रहार करने लगे; परंतु महामनस्वी भीमसेनने अपने ऊपर आते हुए उन बाणोंको सुवर्णमय पंखवाले बाणोंद्वारा काट डाला ॥ ४ ॥

ते वै निपेतुस्तपनीयपुङ्खा
द्विधा त्रिधा भीमशरैर्निकृत्ताः ।
ततो राजन् नागरथाश्वयूनां
भीमाहतानां वरराजमध्ये ॥ ५ ॥
घोरो निनादः प्रबभौ नरेन्द्र
वज्राहतानामिव पर्वतानाम् ।

वे सोनेकी पाँखवाले बाण भीमसेनके बाणोंसे दो-दो तीन-तीन टुकड़ोंमें कटकर गिर गये । राजन् ! नरेन्द्र ! तत्पश्चात् श्रेष्ठ राजाओंकी मण्डलीमें भीमसेनके द्वारा मारे गये हाथियों, रथों, घोड़ों और पैदल युवकोंका भयंकर आर्तनाद प्रकट होने लगा, मानो वज्रके मारे हुए पहाड़ फट पड़े हों ॥५½॥

ते वध्यमानाश्च नरेन्द्रमुख्या
निर्भिद्यन्तो भीमशरप्रवेकैः ॥ ६ ॥
भीमं समन्तात् समरेऽभ्यरोहन्
वृक्षं शकुन्ता इव जातपक्षाः ।

जैसे जिनके पंख निकल आये हैं, वे पक्षी सब ओरसे उड़कर किसी वृक्षपर चढ़ बैठते हैं, उसी प्रकार भीमसेनके उत्तम बाणोंसे आहत और विदीर्ण होनेवाले प्रधान-प्रधान नरेश समराङ्गणमें सब ओरसे भीमसेनपर ही चढ़ आये ॥६½॥

ततोऽभियाते तव सैन्ये स भीमः
प्रादुश्चक्रे वेगमनन्तवेगः ॥ ७ ॥
यथान्तकाले क्षपयन् दिधक्षु-
र्भूतान्तकृत् काल इवात्तदण्डः ।

आपकी सेनाके आक्रमण करनेपर अनन्त वेगशाली भीमसेनने अपना महान् वेग प्रकट किया । ठीक उसी तरह, जैसे प्रलयकालमें समस्त प्राणियोंका संहार करनेवाला काल हाथमें दण्ड लिये सबको नष्ट और दग्ध करनेकी इच्छासे असीम वेग प्रकट करता है ॥ ७½ ॥

तस्यातिवेगस्य रणेऽतिवेगं
नाशक्नुवन् वारयितुं त्वदीयाः ॥ ८ ॥
व्यात्ताननस्यापततो यथैव
कालस्य काले हरतः प्रजा वै ।

अत्यन्त वेगशाली भीमसेनके महान् वेगको आपके सैनिक रणभूमिमें रोक न सके । जैसे प्रलयकालमें मुँह बाकर आक्रमण करनेवाले प्रजासंहारकारी कालके वेगको कोई नहीं रोक सकता ॥ ८½ ॥

ततो बलं भारत भारतानां
प्रदह्यमानं समरे महात्मना ॥ ९ ॥
भीतं दिशोऽकीर्यत भीमनुन्नं
महानिलेनाभ्रगणा यथैव ।

भारत ! तदनन्तर समराङ्गणमें महामना भीमसेनके द्वारा दग्ध होती हुई कौरवसेना भयभीत हो सम्पूर्ण दिशाओंमें बिखर गयी । जैसे आँधी बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार भीमसेनने आपके सैनिकोंको मार भगाया था ॥ ९½ ॥

ततो धीमान् सारथिमब्रवीद् बली
स भीमसेनः पुनरेव हृष्टः ॥ १० ॥
सूताभिजानीहि स्वकान् परान् वा
रथान् ध्वजांश्चापततः समेतान् ।
युद्ध्यन् ह्यहं नाभिजानामि किंचि-
न्मा सैन्यं स्वं छादयिष्ये पृषत्कैः ॥ ११ ॥

तत्पश्चात् बलवान् और बुद्धिमान् भीमसेन हर्षसे उल्लसित हो अपने सारथिसे पुनः इस प्रकार बोले—'सूत ! ये जो बहुत-से रथ और ध्वज एक साथ इधर बढ़े आ रहे हैं, उन्हें पहचानो तो सही ! ये अपने पक्षके हैं या शत्रुपक्षके ! क्योंकि युद्ध करते समय मुझे अपने-परायेका ज्ञान नहीं रहता, कहीं ऐसा न हो कि अपनी ही सेनाको बाणोंसे आच्छादित कर डालूँ ॥ १०-११ ॥

अरीन् विशोकाभिनिरीक्ष्य सर्वतो
मनस्तु चिन्ता प्रदुनोति मे भृशम् ।
राजाऽऽतुरो नागमद् यत् किरीटी
बहूनि दुःखान्यभियातोऽस्मि सूत ॥ १२ ॥

'विशोक ! सम्पूर्ण दिशाओंमें शत्रुओंको देखकर उठी हुई चिन्ता मेरे हृदयको अत्यन्त संतप्त कर रही है; क्योंकि राजा युधिष्ठिर बाणोंके आघातसे पीड़ित हैं और किरीटधारी अर्जुन अभीतक उनका समाचार लेकर लौटे नहीं । सूत ! इन सब कारणोंसे मुझे बहुत दुःख हो रहा है ॥ १२ ॥

एतद् दुःखं सारथे धर्मराजो
यन्मां हित्वा यातवाञ्शत्रुमध्ये ।
नैनं जीवं नाद्य जानाम्यजीवं
बीभत्सुं वा तन्ममाद्यातिदुःखम् ॥ १३ ॥

'सारथे ! पहले तो इस बातका दुःख हो रहा है कि धर्मराज मुझे छोड़कर स्वयं ही शत्रुओंके बीचमें चले गये । पता नहीं, वे अबतक जीवित हैं या नहीं ? अर्जुनका भी कोई समाचार नहीं मिला; इससे आज मुझे अधिक दुःख है ।

सोऽहं द्विषत्सैन्यमुदग्रकल्पं
विनाशयिष्ये परमप्रतीतः ।

एतन्निहत्याजिमध्ये समेतं
प्रीतो भविष्यामि सह त्वयाद्य ॥ १४ ॥

'अच्छा, अब मैं अत्यन्त विश्वस्त होकर शत्रुओंकी प्रचण्ड सेनाका विनाश करूँगा। यहाँ एकत्र हुई इस सेनाको युद्धस्थलमें नष्ट करके मैं तुम्हारे साथ ही आज प्रसन्नताका अनुभव करूँगा ॥ १४ ॥

सर्वांस्तूणान् सायकानामवेक्ष्य
किं शिष्टं स्यात् सायकानां रथे मे।
का वा जातिः किं प्रमाणं च तेषां
ज्ञात्वा व्यक्तं तत् समाचक्ष्व सूत॥ १५ ॥
(कति वा सहस्राणि कति वा शतानि
ह्याचक्ष्व मे सारथे क्षिप्रमेव ॥

'सूत! तुम मेरे रथपर रक्खे हुए बाणोंके सारे तरकसोंकी देख-भाल करके ठीक-ठीक समझकर मुझे स्पष्टरूपसे बताओ कि अब उनमें कितने बाण अवशिष्ट रह गये हैं? किस-किस जातिके बाण बचे हैं और उनकी संख्या कितनी है? सारथे! शीघ्र बताओ, कौन बाण कितने हजार और कितने सौ शेष हैं?' ॥ १५ ॥

विशोक उवाच

सर्वं विदित्वैवमहं वदामि
तवार्थसिद्धिप्रदमद्य वीर ॥
कैकेयकाम्बोजसुराष्ट्रबाह्लिका
म्लेच्छाश्च सुह्माः परतङ्गणाश्च।
मद्राश्च वङ्गा मगधाः कुलिन्दा
आनर्तकावर्तकाः पर्वतीयाः ॥
सर्वे गृहीतप्रवरायुधास्त्वां
संख्ये समावेष्ट्य ततो विनेदुः ॥)

विशोकने कहा—वीर! मैं आज सब कुछ पता लगाकर आपके मनोरथकी सिद्धि करनेवाली बात बता रहा हूँ, कैकेय, काम्बोज, सौराष्ट्र, बाह्लिक, म्लेच्छ, सुह्म, परतङ्गण, मद्र, वङ्ग, मगध, कुलिन्द, आनर्त, आवर्त और पर्वतीय सभी योद्धा हाथोंमें श्रेष्ठ आयुध लिये आपको चारों ओरसे घेरकर युद्धस्थलमें शत्रुओंका सामना करनेके लिये गरज रहे हैं॥

षण्मार्गणानामयुतानि वीर
क्षुराश्च भल्लाश्च तथायुताख्याः।
नाराचानां द्वे सहस्रे च वीर
त्रीण्येव च प्रदराणां स्म पार्थ ॥ १६ ॥

वीरवर! अभी अपने पास साठ हजार मार्गण हैं, दस-दस हजार क्षुर और भल्ल हैं, दो हजार नाराच शेष हैं तथा पार्थ! तीन हजार प्रदर बाकी रह गये हैं ॥ १६ ॥

अस्त्यायुधं पाण्डवेयावशिष्टं
न यद् वहेच्छकटं षड्गवीयम्।
एतद् विद्वन् मुञ्च सहस्रशोऽपि
गदासिबाहुद्रविणं च तेऽस्ति ॥ १७ ॥
प्रासाश्च मुद्गराः शक्तयस्तोमराश्च
मा भैषीस्त्वं सङ्क्षयादायुधानाम् ॥ १८ ॥

पाण्डुनन्दन! अभी इतने आयुध शेष हैं कि छः बैलोंसे जुता हुआ छकड़ा भी उन्हें नहीं खींच सकता। विद्वन्! इन सहस्रों अस्त्रोंका आप प्रयोग कीजिये। अभी तो आपके पास बहुत-सी गदाएँ, तलवारें और बाहुबलकी सम्पत्ति है। इसी प्रकार बहुतेरे प्रास, मुद्गर, शक्ति और तोमर बाकी बचे हैं। आप इन आयुधोंके समाप्त हो जानेके डरमें न रहिये १७-१८

भीमसेन उवाच

सूताद्येनं पश्य भीमप्रयुक्तैः
संछिन्दद्भिः पार्थिवानां सुवेगैः।
छन्नं बाणैराहवं घोररूपं
नष्टादित्यं मृत्युलोकेन तुल्यम् ॥ १९ ॥

भीमसेन बोले—सूत! आज इस युद्धस्थलकी ओर दृष्टिपात करो। भीमसेनके छोड़े हुए अत्यन्त वेगशाली बाणोंने राजाओंका विनाश करते हुए सारे रणक्षेत्रको आच्छादित कर दिया है, जिससे सूर्य भी अदृश्य हो गये हैं और यह भूमि यमलोकके समान भयंकर प्रतीत होती है ॥१९॥

अद्यैतद् वै विदितं पार्थिवानां
भविष्यति ह्याकुमारं च सूत।
निमग्नो वा समरे भीमसेन
एकः कुरून् वा समरे व्यजैषीत्॥ २० ॥

सूत! आज बच्चोंसे लेकर बूढ़ोंतक समस्त भूपालोंको यह विदित हो जायगा कि भीमसेन समरसागरमें डूब गये अथवा उन्होंने अकेले ही समस्त कौरवोंको युद्धमें जीत लिया ॥२०॥

सर्वे संख्ये कुरवो निष्पतन्तु
मां वा लोकाः कीर्तयन्त्वाकुमारम्।
सर्वानेकस्तानहं पातयिष्ये
ते वा सर्वे भीमसेनं तुदन्तु॥ २१ ॥

आज युद्धस्थलमें समस्त कौरव धराशायी हो जायँ अथवा बालकोंसे लेकर वृद्धोंतक सब लोग मुझ भीमसेनको ही रणभूमिमें गिरा हुआ बतावें! मैं अकेला ही उन समस्त कौरवोंको मार गिराऊँगा अथवा वे ही सब लोग मुझ भीमसेनको पीड़ित करें ॥ २१ ॥

आशास्तारः कर्म चाप्युत्तमं ये
तन्मे देवाः केवलं साधयन्तु।
आयात्विहाद्यार्जुनः शत्रुघाती
शक्रस्तूर्णं यज्ञ इवोपहूतः ॥ २२ ॥

जो उत्तम कर्मोंका उपदेश देनेवाले हैं, वे देवता लोग मेरा केवल एक कार्य सिद्ध कर दें। जैसे यज्ञमें आवाहन करनेपर इन्द्रदेव तुरंत पदार्पण करते हैं, उसी प्रकार शत्रुघाती अर्जुन यहाँ शीघ्र ही आ पहुँचें ॥ २२ ॥

(पश्यस्व पश्यस्व विशोक मे त्वं
बलं परेषामभिघातभिन्नम्।

नानास्वरान् पश्य विमुच्य सर्वे
तथा द्रवन्ते बलिनो धार्तराष्ट्राः॥)

विशोक ! देखो, देखो, मेरा बल। मेरे आघातोंसे शत्रुओंकी सेना विदीर्ण हो उठी है। देखो, धृतराष्ट्रके सभी बलवान् पुत्र नाना प्रकारके आर्तनाद करते हुए भागने लगे हैं ॥

ईक्षस्वैतां भारतीं दीर्यमाणा-
मेते कस्माद् विद्रवन्ते नरेन्द्राः।
व्यक्तं धीमान् सव्यसाची नराग्र्यः
सैन्यं ह्येतच्छादयत्याशु बाणैः ॥ २३ ॥

सारथे ! इस कौरवसेनापर तो दृष्टिपात करो। इसमें भी दरार पड़ती जा रही है। ये राजालोग क्यों भाग रहे हैं ? इससे तो स्पष्ट जान पड़ता है कि बुद्धिमान् नरश्रेष्ठ अर्जुन आ गये। वे ही अपने बाणोंद्वारा शीघ्रतापूर्वक इस सेनाको आच्छादित कर रहे हैं ॥ २३ ॥

पश्य ध्वजांश्च द्रवतो विशोक
नागान् हयान् पत्तिसंघांश्च संख्ये।
रथान् विकीर्णाञ्छरशक्तिताडितान्
पश्यस्वैतान् रथिनश्चैव सूत ॥ २४ ॥

विशोक ! युद्धस्थलमें भागते हुए रथोंकी ध्वजाओं, हाथियों, घोड़ों और पैदलसमूहोंको देखो। सूत ! बाणों और शक्तियोंसे प्रताड़ित होकर बिखरे पड़े हुए इन रथों और रथियोंपर भी दृष्टिपात करो ॥ २४ ॥

आपूर्यते कौरवी चाप्यभीक्ष्णं
सेना ह्यसौ सुभृशं हन्यमाना।
धनंजयस्याशनितुल्यवेगै-
र्ग्रस्ता शरैः काञ्चनबर्हिवाजैः ॥ २५ ॥

अर्जुनके बाण वज्रके समान वेगशाली हैं। उनमें सोने और मयूरपिच्छके पंख लगे हैं। उन बाणोंद्वारा आक्रान्त हुई यह कौरवसेना अत्यन्त मार पड़नेके कारण बारंबार आर्तनाद कर रही है ॥ २५ ॥

एते द्रवन्ति स्म रथाश्वनागाः
पदातिसङ्घानतिमर्दयन्तः ।
सम्मुह्यमानाः कौरवाः सर्व एव
द्रवन्ति नागा इव दाहभीताः ॥ २६ ॥

ये रथ, घोड़े और हाथी पैदलसमूहोंको कुचलते हुए भागे जा रहे हैं। प्रायः सभी कौरव अचेत-से होकर दावानलके दाहसे डरे हुए हाथियोंके समान पलायन कर रहे हैं २६

हाहाकृताश्चैव रणे विशोक
मुञ्चन्ति नादान् विपुलान् गजेन्द्राः ॥ २७ ॥

विशोक ! रणभूमिमें सब ओर हाहाकार मचा हुआ है। बहुसंख्यक गजराज बड़े जोर-जोरसे चीत्कार कर रहे हैं ॥२७॥

विशोक उवाच

किं भीम नैनं त्वमिहाश्रृणोषि
विस्फारितं गाण्डिवस्यातिघोरम्।
क्रुद्धेन पार्थेन विकृष्यतोऽद्य
कच्चिन्नेमौ तव कर्णौ विनष्टौ ॥ २८ ॥

विशोकने कहा--भीमसेन ! क्रोधमें भरे हुए अर्जुनके द्वारा खींचे जाते हुए गाण्डीव धनुषकी यह अत्यन्त भयंकर टंकार क्या आज आपको सुनायी नहीं दे रही है ? आपके ये दोनों कान बहरे तो नहीं हो गये हैं ?॥ २८ ॥

सर्वे कामाः पाण्डव ते समृद्धाः
कपिर्ह्यसौ दृश्यते हस्तिसैन्ये।
नीलाद् घनाद् विद्युतमुच्चरन्तीं
तथा पश्य विस्फुरन्तीं धनुर्ज्याम् ॥ २९ ॥

पाण्डुनन्दन ! आपकी सारी कामनाएँ सफल हुईं। हाथियोंकी सेनामें अर्जुनके रथकी ध्वजाका वह वानर दिखायी दे रहा है। काले मेघसे प्रकट होनेवाली बिजलीके समान चमकती हुई गाण्डीव धनुषकी प्रत्यञ्चाको देखिये ॥ २९ ॥

कपिर्ह्यसौ वीक्षते सर्वतो वै
ध्वजाग्रमारुह्य धनंजयस्य।
वित्रासयन् रिपुसंघान् विमर्दे
बिभेम्यस्मादात्मनैवाभिवीक्ष्य ॥ ३० ॥

अर्जुनकी ध्वजाके अग्रभागपर आरूढ़ हो वह वानर सब ओर देखता और युद्धस्थलमें शत्रुसमूहोंको भयभीत करता है। मैं स्वयं भी देखकर उससे डर रहा हूँ ॥ ३० ॥

विभ्राजते चातिमात्रं किरीटं
विचित्रमेतच्च धनंजयस्य।
दिवाकराभो मणिरेष दिव्यो
विभ्राजते चैव किरीटसंस्थः ॥ ३१ ॥

धनंजयका यह विचित्र मुकुट अत्यन्त प्रकाशित हो रहा है। इस मुकुटमें लगी हुई यह दिव्य मणि दिवाकरके समान देदीप्यमान होती है ॥ ३१ ॥

पार्श्वे भीमं पाण्डुराभ्रप्रकाशं
पश्यस्व शङ्खं देवदत्तं सुघोषम्।
अभीषुहस्तस्य जनार्दनस्य
विगाहमानस्य चमूं परेषाम् ॥ ३२ ॥
रविप्रभं वज्रनाभं क्षुरान्तं
पार्श्वे स्थितं पश्य जनार्दनस्य।
चक्रं यशोवर्धनं केशवस्य
सदार्चितं यदुभिः पश्य वीर ॥ ३३ ॥

वीर ! अर्जुनके पार्श्वभागमें श्वेत बादलके समान प्रकाशित होनेवाला और गम्भीर घोष करनेवाला देवदत्त नामक भयानक शङ्ख रक्खा हुआ है, उसपर दृष्टिपात कीजिये। साथ ही हाथोंमें घोड़ोंकी बागडोर लिये शत्रुओंकी सेनामें घुसे जाते हुए भगवान् श्रीकृष्णकी बगलमें सूर्यके समान प्रकाशमान चक्र विद्यमान है, जिसकी नाभिमें वज्र और किनारेके भागोंमें छुरे लगे हुए हैं। भगवान् केशवका वह

चक्र उनका यश बढ़ानेवाला है। सम्पूर्ण यदुवंशी सदा उसकी पूजा करते हैं। आप उस चक्रको भी देखिये ॥ ३२-३३ ॥

महाद्विपानां सरलद्रुमोपमाः
करा निकृत्ताः प्रपतन्त्यमी क्षुरैः।
किरीटिना तेन पुनः ससादिनः
शरैर्निकृत्ताः कुलिशैरिवाद्रयः॥ ३४ ॥

अर्जुनके छुरनामक बाणोंसे कटे हुए ये बड़े-बड़े हाथियोंके शुण्डदण्ड देवदारुके समान गिर रहे हैं। फिर उन्हीं किरीटीके बाणोंसे छिन्न-भिन्न हो वज्रके मारे हुए पर्वतोंके समान वे हाथी सवारोंसहित धराशायी हो रहे हैं ॥ ३४ ॥

तथैव कृष्णस्य च पाञ्चजन्यं
महार्हमेतं द्विजराजवर्णम्।
कौन्तेय पश्योरसि कौस्तुभं च
जाज्वल्यमानं विजयां स्रजं च ॥ ३५ ॥

कुन्तीनन्दन ! भगवान् श्रीकृष्णके इस बहुमूल्य पाञ्चजन्य शङ्खको, जो चन्द्रमाके समान श्वेतवर्ण है, देखिये। साथ ही उनके वक्षःस्थलपर अपनी प्रभासे प्रज्वलित होनेवाली कौस्तुभमणि तथा वैजयन्ती मालापर भी दृष्टिपात कीजिये ॥ ३५ ॥

ध्रुवं रथाग्र्यः समुपैति पार्थो
विद्रावयन् सैन्यमिदं परेषाम्।
सिताभ्रवर्णैरसितप्रयुक्तै-
र्हयैर्महार्हैं रथिनां वरिष्ठः ॥ ३६ ॥

निश्चय ही रथियोंमें श्रेष्ठ कुन्तीनन्दन अर्जुन शत्रुओंकी सेनाको खदेड़ते हुए इधर ही आ रहे हैं। सफेद बादलोंके समान श्वेत कान्तिवाले उनके महामूल्यवान् अश्व श्यामसुन्दर श्रीकृष्णद्वारा संचालित हो रहे हैं ॥ ३६ ॥

रथान् हयान् पत्तिगणांश्च सायकै-
र्विदारितान् पश्य पतन्त्यमी यथा।
तवानुजेनामरराजतेजसा
महावनानीव सुपर्णवायुना ॥ ३७ ॥

देखिये, जैसे गरुड़के पंखसे उठी हुई वायुके द्वारा बड़े-बड़े जंगल धराशायी हो जाते हैं, उसी प्रकार देवराज इन्द्रके तुल्य तेजस्वी आपके छोटे भाई अर्जुन बाणोंद्वारा शत्रुओंके रथों, घोड़ों और पैदलसमूहोंको विदीर्ण कर रहे हैं और वे सब-के-सब पृथ्वीपर गिरते जा रहे हैं ॥ ३७ ॥

चतुःशतान् पश्य रथानिमान् हतान्
सवाजिसूतान् समरे किरीटिना।
महेषुभिः सप्तशतानि दन्तिनां
पदातिसादींश्च रथाननेकशः ॥ ३८ ॥

वह देखिये, किरीटधारी अर्जुनने समराङ्गणमें सारथि और घोड़ोंसहित इन चार सौ रथियोंको मार डाला तथा अपने विशाल बाणोंद्वारा सात सौ हाथियों, बहुत-से पैदलों, घुड़सवारों और अनेकानेक रथोंका संहार कर डाला ॥ ३८ ॥

अयं समभ्येति तवान्तिकं बली
निघ्नन् कुरूंश्चित्र इव ग्रहोऽर्जुनः।
समृद्धकामोऽसि हतास्तवाहिता
बलं तवायुश्च चिराय वर्धताम् ॥ ३९ ॥

विचित्र ग्रहके समान ये बलवान् अर्जुन कौरवोंका संहार करते हुए आपके निकट आ रहे हैं। अब आपकी कामना सफल हुई। आपके शत्रु मारे गये। इस समय चिरकालके लिये आपका बल और आयु बढ़े ॥ ३९ ॥

भीमसेन उवाच

ददानि ते ग्रामवरांश्चतुर्दश
प्रियाख्याने सारथे सुप्रसन्नः।
दासीशतं चापि रथांश्च विंशतिं
यदर्जुनं वेदयसे विशोक ॥ ४० ॥

भीमसेनने कहा—विशोक ! तुम अर्जुनके आनेका समाचार सुना रहे हो। सारथे ! इस प्रिय संवादसे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है; अतः मैं तुम्हें चौदह बड़े-बड़े गाँवकी जागीर देता हूँ। साथ ही सौ दासियाँ तथा बीस रथ तुम्हें पारितोषिकके रूपमें प्राप्त होंगे ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि भीमसेनविशोकसंवादे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें भीमसेन और विशोकका संवादविषयक छिहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७६ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३½ श्लोक मिलाकर कुल ४३½ श्लोक हैं)

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

अर्जुन और भीमसेनके द्वारा कौरवसेनाका संहार तथा भीमसेनसे शकुनिकी पराजय एवं दुर्योधनादि धृतराष्ट्रपुत्रोंका सेनासहित भागकर कर्णका आश्रय लेना

संजय उवाच

श्रुत्वा तु रथनिर्घोषं सिंहनादं च संयुगे।
अर्जुनः प्राह गोविन्दं शीघ्रं नोदय वाजिनः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! उधर युद्धस्थलमें शत्रुओंके रथोंकी घर्घराहट और सिंहनाद सुनकर अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा—'प्रभो ! घोड़ोंको जल्दी-जल्दी हाँकिये' ॥ १ ॥

अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा गोविन्दोऽर्जुनमब्रवीत्।
एष गच्छामि सुक्षिप्रं यत्र भीमो व्यवस्थितः ॥ २ ॥

अर्जुनकी बात सुनकर श्रीकृष्णने उनसे कहा—'यह लो, मैं बहुत जल्दी उस स्थानपर जा पहुँचता हूँ, जहाँ भीमसेन खड़े हैं' ॥ २ ॥

तं यान्तमश्वैर्हिमशङ्खवर्णैः
सुवर्णमुक्तामणिजालनद्धैः ।
जम्भं जिघांसुं प्रगृहीतवज्रं
जयाय देवेन्द्रमिवोग्रमन्युम् ॥ ३ ॥
रथाश्वमातङ्गपदातिसंघा
बाणस्वनैर्नेमिखुरस्वनैश्च
संनादयन्तो वसुधां दिशश्च
क्रुद्धा नृसिंहा जयमभ्युदीयुः ॥ ४ ॥

जैसे देवराज इन्द्र हाथमें वज्र लेकर जम्भासुरको मार डालनेकी इच्छासे मनमें भयानक क्रोध भरकर चले थे, उसी प्रकार अर्जुन भी शत्रुओंको जीतनेके लिये भयंकर क्रोधसे युक्त हो सुवर्ण, मुक्ता और मणियोंके जालसे आवद्ध हुए हिम और शङ्खके समान श्वेत कान्तिवाले अश्वोंद्वारा यात्रा कर रहे थे। उस समय क्रोधमें भरे हुए शत्रुपक्षके पुरुषसिंह वीर, रथी, घुड़सवार, हाथीसवार और पैदलों-के समूह अपने बाणोंकी सनसनाहट, पहियोंकी घर्घराहट तथा टापोंके टप-टपकी आवाजसे सम्पूर्ण दिशाओं और पृथ्वीको प्रतिध्वनित करते हुए अर्जुनका सामना करने-के लिये आगे बढ़े ॥ ३–४ ॥

तेषां च पार्थस्य च मारिषासीद्
देहासुपापक्षपणं सुयुद्धम् ।
त्रैलोक्यहेतोरसुरैर्यथाऽऽसीद्
देवस्य विष्णोर्जयतां वरस्य ॥ ५ ॥

मान्यवर ! फिर तो त्रिलोकीके राज्यके लिये जैसे असुरोंके साथ भगवान् विष्णुका युद्ध हुआ था, उसी प्रकार विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ कुन्तीकुमार अर्जुनका उन योद्धाओं-के साथ घोर संग्राम होने लगा, जो उनके शरीर, प्राण और पापोंका विनाश करनेवाला था ॥ ५ ॥

तैरस्तमुच्चावचमायुधं त-
देकः प्रचिच्छेद किरीटमाली ।
क्षुरार्धचन्द्रैर्निशितैश्च भल्लैः
शिरांसि तेषां बहुधा च बाहून् ॥ ६ ॥
छत्राणि वालव्यजनानि केतू-
नश्वान् रथान् पत्तिगणान् द्विपांश्च ।
ते पेतुरुर्व्यां बहुधा विरूपा
वातप्रणुन्नानि यथा वनानि ॥ ७ ॥

उनके चलाये हुए छोटे-बड़े सभी अस्त्र-शस्त्रोंको अकेले किरीटमाली अर्जुनने क्षुर, अर्धचन्द्र तथा तीखे भल्लोंसे काट डाला। साथ ही उनके मस्तकों, भुजाओं, छत्रों, चवरों, ध्वजाओं, अश्वों, रथों, पैदलसमूहों तथा हाथियोंके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले। वे सब अनेक टुकड़ोंमें बँटकर विरूप हो आँधीके उखाड़े हुए वनोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़े ॥

सुवर्णजालावतता महागजाः
सवैजयन्तीध्वजयोधकल्पिताः ।
सुवर्णपुङ्खैरिषुभिः समाचिता-
श्चकाशिरे प्रज्वलिता यथाचलाः ॥ ८ ॥

सोनेकी जालियोंसे आच्छादित, वैजयन्ती ध्वजासे सुशो-भित तथा योद्धाओंद्वारा सुसज्जित किये हुए बड़े-बड़े हाथी सुवर्णमय पंखवाले बाणोंसे व्याप्त हो प्रज्वलित पर्वतोंके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ ८ ॥

विदार्य नागाश्वरथान् धनंजयः
शरोत्तमैर्वासववज्रसंनिभैः ।
द्रुतं ययौ कर्णजिघांसया तथा
यथा मरुत्वान् बलभेदने पुरा ॥ ९ ॥

जैसे पूर्वकालमें इन्द्रने बलासुरका विनाश करनेके लिये बड़े वेगसे यात्रा की थी, उसी प्रकार अर्जुन कर्णको मार डालनेकी इच्छासे इन्द्रके वज्रसदृश उत्तम बाणोंद्वारा शत्रुओं-के हाथी, घोड़ों और रथोंको विदीर्ण करते हुए शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़े ॥ ९ ॥

ततः स पुरुषव्याघ्रस्तव सैन्यमरिंदमः ।
प्रविवेश महाबाहुर्मकरः सागरं यथा ॥ १० ॥

तदनन्तर जैसे मगर समुद्रमें घुस जाता है, उसी प्रकार शत्रुओंका दमन करनेवाले पुरुषसिंह महाबाहु अर्जुनने आप-की सेनाके भीतर प्रवेश किया ॥ १० ॥

तं दृष्ट्वास्तावका राजन् रथपत्तिसमन्विताः ।
गजाश्वसादिबहुलाः पाण्डवं समुपाद्रवन् ॥ ११ ॥

राजन् ! उस समय हर्षमें भरे हुए आपके रथियों और पैदलोंसहित हाथीसवार तथा घुड़सवार सैनिक जिनकी संख्या बहुत अधिक थी, पाण्डुपुत्र अर्जुनपर टूट पड़े ॥ ११ ॥

तेषामापततां पार्थमारावः सुमहानभूत् ।
सागरस्येव क्षुब्धस्य यथा स्यात् सलिलस्वनः॥ १२ ॥

पार्थपर आक्रमण करते हुए उन सैनिकोंका महान् कोलाहल विक्षुब्ध समुद्रके जलकी गम्भीर ध्वनिके समान सब ओर गूँज उठा ॥ १२ ॥

ते तु तं पुरुषव्याघ्रं व्याघ्रा इव महारथाः ।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे त्यक्त्वा प्राणकृतं भयम् ॥ १३ ॥

वे महारथी संग्राममें प्राणोंका भय छोड़कर बाघके समान पुरुषसिंह अर्जुनकी ओर दौड़े ॥ १३ ॥

तेषामापततां तत्र शरवर्षाणि मुञ्चताम् ।
अर्जुनो व्यधमत् सैन्यं महावातो घनानिव ॥ १४ ॥

परंतु जैसे आँधी बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार अर्जुनने बाणोंकी वर्षापूर्वक आक्रमण करनेवाले उन समस्त योद्धाओंका संहार कर डाला ॥ १४ ॥

तेऽर्जुनं सहिता भूत्वा रथवंशैः प्रहारिणः ।
अभियाय महेष्वासा विव्यधुर्निशितैः शरैः ॥ १५ ॥

तब वे महाधनुर्धर योद्धा संगठित हो रथसमूहोंके साथ चढ़ाई करके अर्जुनको तीखे बाणोंसे घायल करने लगे ।१५।

(शक्तिभिस्तोमरैः प्रासैः कुणपैः कूटमुद्गरैः।
शूलैस्त्रिशूलैः परिघैः भिन्दिपालैः परश्वधैः ॥
करवालैर्हेमदण्डैर्यष्टिभिर्मुसलैर्हलैः ।
प्रहृष्टाश्चक्रिरे पार्थं समन्ताद् गूढमायुधैः ॥)

उन हर्षभरे योद्धाओंने शक्ति, तोमर, प्रास, कुणप, कूट, मुद्गर, शूल, त्रिशूल, परिघ, भिन्दिपाल, परशु, खड्ग, हेमदण्ड, डंडे, मुसल और हल आदि आयुधोंद्वारा अर्जुनको सब ओरसे ढक दिया ॥

ततोऽर्जुनः सहस्राणि रथवारणवाजिनाम्।
प्रेषयामास विशिखैर्यमस्य सदनं प्रति ॥ १६ ॥

तब अर्जुनने अपने बाणोंद्वारा शत्रुपक्षके सहस्रों रथों, हाथियों और घोड़ोंको यमलोक भेजना आरम्भ किया ॥१६॥

ते वध्यमानाः समरे पार्थचापच्युतैः शरैः।
तत्र तत्र स्म लीयन्ते भये जाते महारथाः ॥ १७ ॥

अर्जुनके धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा समराङ्गणमें मारे जाते हुए कौरव महारथी भयके मारे इधर-उधर छिपने लगे ॥

तेषां चतुःशतान् वीरान् यतमानान् महारथान्।
अर्जुनो निशितैर्बाणैरनयद् यमसादनम् ॥ १८ ॥

उनमेंसे चार सौ वीर महारथी यत्नपूर्वक लड़ते रहे, जिन्हें अर्जुनने अपने पैने बाणोंसे यमलोक पहुँचा दिया॥१८॥

ते वध्यमानाः समरे नानालिङ्गैः शितैः शरैः।
अर्जुनं समभित्यज्य दुद्रुवुर्वै दिशो दश ॥ १९ ॥

संग्राममें नाना प्रकारके चिह्नोंसे युक्त तीखे बाणोंकी मार खाकर वे सैनिक अर्जुनको छोड़कर दसों दिशाओंमें भाग गये ॥ १९ ॥

तेषां शब्दो महानासीद् द्रवतां वाहिनीमुखे।
महौघस्येव जलधेर्गिरिमासाद्य दीर्यतः ॥ २० ॥

युद्धके मुहानेपर भागते हुए उन योद्धाओंका महान् कोलाहल वैसा ही जान पड़ता था, जैसा कि समुद्रके महान् जलप्रवाहके पर्वतसे टकरानेपर होता है ॥ २० ॥

तां तु सेनां भृशं विद्ध्वा द्रावयित्वार्जुनः शरैः।
प्रायादभिमुखः पार्थः सूतानीकं हि मारिष ॥ २१ ॥

मान्यवर नरेश! उस सेनाको अपने बाणोंसे अत्यन्त घायल करके भगा देनेके पश्चात् कुन्तीकुमार अर्जुन कर्णकी सेनाके सामने चले ॥ २१ ॥

तस्य शब्दो महानासीत् परानभिमुखस्य वै।
गरुडस्येव पततः पन्नगार्थे यथा पुरा ॥ २२ ॥

शत्रुओंकी ओर उन्मुख हुए उनके रथका महान् शब्द वैसा ही प्रतीत होता था, जैसा कि पहले किसी सर्पको पकड़नेके लिये झपटते हुए गरुड़के पंखसे प्रकट हुआ था ॥२२॥

तं तु शब्दमभिश्रुत्य भीमसेनो महाबलः।
बभूव परमप्रीतः पार्थदर्शनलालसः ॥ २३ ॥

उस शब्दको सुनकर महाबली भीमसेन अर्जुनके दर्शनकी लालसासे बड़े प्रसन्न हुए ॥ २३ ॥

श्रुत्वैव पार्थमायान्तं भीमसेनः प्रतापवान्।
त्यक्त्वा प्राणान् महाराज सेनां तव ममर्द ह ॥ २४ ॥

महाराज! पार्थका आना सुनते ही प्रतापी भीमसेन प्राणोंका मोह छोड़कर आपकी सेनाका मर्दन करने लगे ॥

स वायुवीर्यप्रतिमो वायुवेगसमो जवे।
वायुवद् व्यचरद् भीमो वायुपुत्रः प्रतापवान् ॥ २५ ॥

प्रतापी वायुपुत्र भीमसेन वायुके समान वेगशाली थे। बल और पराक्रममें भी वायुकी ही समानता रखते थे। वे उस रणभूमिमें वायुके समान विचरण करने लगे ॥ २५ ॥

तेनार्द्यमाना राजेन्द्र सेना तव विशाम्पते।
व्यभ्रश्यत महाराज भिन्ना नौरिव सागरे ॥ २६ ॥

महाराज! प्रजानाथ! राजेन्द्र! उनसे पीड़ित हुई आपकी सेना समुद्रमें टूटी हुई नावके समान पथभ्रष्ट होने लगी ॥ २६ ॥

तां तु सेनां तदा भीमो दर्शयन् पाणिलाघवम्।
शरैरवचकर्तोग्रैः प्रेषयिष्यन् यमक्षयम् ॥ २७ ॥

उस समय भीमसेन अपने हाथोंकी फुर्ती दिखाते हुए आपकी उस सेनाको यमलोक भेजनेके लिये भयंकर बाणोंद्वारा छिन्न-भिन्न करने लगे ॥ २७ ॥

तत्र भारत भीमस्य बलं दृष्ट्वातिमानुषम्।
व्यभ्रमन्त रणे योधाः कालस्येव युगक्षये ॥ २८ ॥

भारत! उस समय प्रलयकालीन कालके समान भीमसेनके अलौकिक बलको देखकर रणभूमिमें सारे योद्धा इधर-उधर भटकने लगे ॥ २८ ॥

तथार्दितान् भीमबलान् भीमसेनेन भारत।
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा इदं वचनमब्रवीत् ॥ २९ ॥

भरतनन्दन! भयंकर बलशाली अपने सैनिकोंको भीमसेनके द्वारा इस प्रकार पीड़ित देखकर राजा दुर्योधनने उनसे निम्नाङ्कित वचन कहा ॥ २९ ॥

सैनिकांश्च महेष्वासान् योधांश्च भरतर्षभ।
समादिशन् रणे सर्वान् हत भीममिति स्म ह ॥ ३० ॥

भरतश्रेष्ठ! उसने अपने महाधनुर्धर समस्त सैनिकों और योद्धाओंको रणभूमिमें इस प्रकार आदेश देते हुए कहा—'तुम सब लोग मिलकर भीमसेनको मार डालो ॥ ३० ॥

तस्मिन् हते हतं मन्ये पाण्डुसैन्यमशेषतः।
प्रतिगृह्य च तामाज्ञां तव पुत्रस्य पार्थिवाः ॥ ३१ ॥
भीमं प्रच्छादयामासुः शरवर्षैः समन्ततः।

'उनके मारे जानेपर मैं सारी पाण्डवसेनाको मरी हुई ही मानता हूँ।' आपके पुत्रकी इस आज्ञाको शिरोधार्य करके समस्त राजाओंने चारों ओरसे बाणवर्षा करके भीमसेनको ढक दिया ॥ ३१½ ॥

गजाश्च बहुला राजन् नराश्च जयगृद्धिनः ॥ ३२ ॥
रथे स्थिताश्च राजेन्द्र परिवव्रुर्वृकोदरम्।

राजन्! राजेन्द्र ! बहुतसे हाथियों, विजयाभिलाषी पैदल मनुष्यों तथा रथियोंने भी भीमसेनको घेर लिया था ॥

स तैः परिवृतः शूरैः शूरो राजन् समन्ततः ॥ ३३ ॥
शुशुभे भरतश्रेष्ठो नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ।

नरेश्वर ! उन शूरवीरोंद्वारा सब ओरसे घिरे हुए शौर्य-सम्पन्न भरतश्रेष्ठ भीम नक्षत्रोंसे घिरे हुए चन्द्रमाके समान सुशोभित होने लगे ॥ ३३½ ॥

परिवेषी यथा सोमः परिपूर्णो विराजते ॥ ३४ ॥
स रराज तथा संख्ये दर्शनीयो नरोत्तमः ।
निर्विशेषो महाराज यथा हि विजयस्तथा ॥ ३५ ॥

जैसे घेरेसे घिरे हुए पूर्णिमाके चन्द्रमा प्रकाशित होते हों, उसी प्रकार युद्धस्थलमें दर्शनीय नरश्रेष्ठ भीमसेन शोभा पा रहे थे । महाराज ! वे अर्जुनके समान ही प्रतीत होते थे । उनमें और अर्जुनमें कोई अन्तर नहीं रह गया था ॥

तस्य ते पार्थिवाः सर्वे शरवृष्टिं समासृजन् ।
क्रोधरक्तेक्षणाः शूरा हन्तुकामा वृकोदरम् ॥ ३६ ॥

तदनन्तर क्रोधसे लाल आँखें किये वे समस्त शूरवीर भूपाल भीमसेनको मार डालनेकी इच्छासे उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३६ ॥

तां विदार्य महासेनां शरैः संनतपर्वभिः ।
निश्चक्राम रणाद् भीमो मत्स्यो जालादिवाम्भसि ॥ ३७ ॥

यह देख भीमसेन झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे उस विशाल सेनाको विदीर्ण करके उसी प्रकार उसके घेरेसे बाहर निकल आये, जैसे कोई-कोई मत्स्य पानीमें डाले हुए जालको छेदकर बाहर निकल जाता है ॥ ३७ ॥

हत्वा दशसहस्राणि गजानामनिवर्तिनाम् ।
नृणां शतसहस्रे द्वे द्वे शते चैव भारत ॥ ३८ ॥
पञ्च चाश्वसहस्राणि रथानां शतमेव च ।
हत्वा प्रास्यन्दयद् भीमो नदीं शोणितवाहिनीम् ॥ ३९ ॥

भारत ! युद्धसे पीछे न हटनेवाले दस हजार गजराजों, दो लाख और दो सौ पैदल मनुष्यों, पाँच हजार घोड़ों और सौ रथोंको नष्ट करके भीमसेनने वहाँ रक्तकी नदी बहा दी ॥ ३८-३९ ॥

शोणितोदां रथावर्तां हस्तिग्राहसमाकुलाम् ।
नरमीनाश्वनक्रान्तां केशशैवलशाद्वलाम् ॥ ४० ॥
संछिन्नभुजनागेन्द्रां बहुरत्नापहारिणीम् ।
ऊरुग्राहां मज्जपङ्कां शीर्षोपलसमावृताम् ॥ ४१ ॥
धनुष्काशां शरावापां गदापरिघपन्नगाम् ।
हंसच्छत्रध्वजोपेतामुष्णीषवरफेनिलाम् ॥ ४२ ॥
हारपद्माकरां चैव भूमिरेणूर्मिमालिनीम् ।
आर्यवृत्तवतां संख्ये सुतरां भीरुदुस्तराम् ॥ ४३ ॥
योधग्राहवतीं संख्ये वहन्तीं यमसादनम् ।
क्षणेन पुरुषव्याघ्रः प्रावर्तयत निम्नगाम् ॥ ४४ ॥
यथा वैतरणीमुग्रां दुस्तरामकृतात्मभिः ।
तथा दुस्तरणीं घोरां भीरूणां भयवर्धिनीम् ॥ ४५ ॥

रक्त ही उस नदीका जल था, रथ भँवरके समान जान पड़ते थे, हाथीरूपी ग्राहोंसे वह नदी भरी हुई थी, मनुष्य, मत्स्य और घोड़े नाकोंके समान जान पड़ते थे, सिरके बाल उसमें सेवार और घासके समान थे । कटी हुई भुजाएँ बड़े-बड़े सर्पोंका भ्रम उत्पन्न करती थीं । वह बहुतसे रत्नोंको बहाये लिये जाती थी । उसके भीतर पड़ी हुई जाँघें ग्राहोंके समान जान पड़ती थीं । मज्जा पङ्कका काम देती थी, मस्तक पत्थरके टुकड़ोंके समान वहाँ छा रहे थे, धनुष किनारे उगे हुए कासके समान जान पड़ते थे । बाण ही वहाँके अङ्कुर थे, गदा और परिघ सर्पोंके समान प्रतीत होते थे । छत्र और ध्वज उसमें हंसके सदृश दिखायी पड़ते थे । पगड़ी फेनका भ्रम उत्पन्न करती थी । हार कमलवनके समान प्रतीत होते थे । धरतीकी धूल तरङ्गमाला बनकर शोभा दे रही थी । योद्धा ग्राह आदि जलजन्तुओं-से प्रतीत होते थे । युद्धस्थलमें बहने-वाली वह रक्तनदी यमलोककी ओर जा रही थी, वैतरणीके समान वह सदाचारी पुरुषोंके लिये सुगमतासे पार होने योग्य और कायरोंके लिये दुस्तर थी । पुरुषसिंह भीमसेनने क्षणभरमें वैतरणीके समान भयंकर रक्तकी नदी बहा दी थी । वह अकृतात्मा पुरुषोंके लिये दुस्तर, घोर एवं भीरु पुरुषोंका भय बढ़ानेवाली थी ॥ ४०–४५ ॥

यतो यतः पाण्डवेयः प्रविष्टो रथसत्तमः ।
ततस्ततोऽघातयत योधाञ्शतसहस्रशः ॥ ४६ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ पाण्डुनन्दन भीमसेन जिस-जिस ओर घुसते, उसी ओर लाखों योद्धाओंका संहार कर डालते थे ॥ ४६ ॥

एवं दृष्ट्वा कृतं कर्म भीमसेनेन संयुगे ।
दुर्योधनो महाराज शकुनिं वाक्यमब्रवीत् ॥ ४७ ॥

महाराज ! युद्धस्थलमें भीमसेनके द्वारा किये गये ऐसे कर्मको देखकर दुर्योधनने शकुनिसे कहा— ॥ ४७ ॥

जहि मातुल संग्रामे भीमसेनं महाबलम् ।
अस्मिञ्जिते जितं मन्ये पाण्डवेयं महाबलम् ॥ ४८ ॥

'मामाजी ! आप संग्राममें महाबली भीमसेनको मार डालिये । यदि इनको जीत लिया गया तो मैं समझूँगा कि पाण्डवोंकी विशाल सेना ही जीत ली गयी' ॥ ४८ ॥

ततः प्रायान्महाराज सौबलेयः प्रतापवान् ।
रणाय महते युक्तो भ्रातृभिः परिवारितः ॥ ४९ ॥
स समासाद्य संग्रामे भीमं भीमपराक्रमम् ।
वारयामास तं वीरो वेलेव मकरालयम् ॥ ५० ॥

महाराज ! तब भाइयोंसे घिरा हुआ प्रतापी सुबलपुत्र शकुनि महान् युद्धके लिये उद्यत हो आगे बढ़ा । संग्राममें भयानक पराक्रमी भीमसेनके पास पहुँचकर उस वीरने उन्हें उसी तरह रोक दिया, जैसे तटकी भूमि समुद्रको रोक देती है ॥ ४९-५० ॥

संन्यवर्तत तं भीमो वार्यमाणः शितैः शरैः ।
शकुनिस्तस्य राजेन्द्र वामपार्श्वे स्तनान्तरे ॥ ५१ ॥
प्रेषयामास नाराचान् रुक्मपुङ्खाञ्छिलाशितान्।

राजेन्द्र ! उसके तीखे बाणोंसे रोके जाते हुए भीमसेन उसीकी ओर लौट पड़े ! उस समय शकुनिने उनकी बायीं पसली और छातीमें सोनेके पंखवाले और शिलापर तेज किये हुए कई नाराच मारे ॥ ५१½ ॥

वर्म भित्त्वा तु ते घोराः पाण्डवस्य महात्मनः ॥ ५२॥
न्यमज्जन्त महाराज कङ्कबर्हिणवाससः ।

महाराज ! कङ्क और मयूरके पंखवाले वे भयंकर नाराच महामनस्वी पाण्डुपुत्र भीमसेनका कवच छेदकर उनके शरीरमें डूब गये ॥ ५२½ ॥

सोऽतिविद्धो रणे भीमः शरं रुक्मविभूषितम् ॥ ५३ ॥
प्रेषयामास स रुषा सौबलं प्रति भारत ।

भारत ! तब रणभूमिमें अत्यन्त घायल हुए भीमसेनने कुपित हो शकुनिकी ओर एक सुवर्णभूषित बाण चलाया ॥

तमायान्तं शरं घोरं शकुनिः शत्रुतापनः ॥ ५४ ॥
चिच्छेद सप्तधा राजन् कृतहस्तो महाबलः ।

राजन् ! शत्रुओंको संताप देनेवाला महाबली शकुनि सिद्धहस्त था । उसने अपनी ओर आते हुए उस भयंकर बाणके सात टुकड़े कर डाले ॥ ५४½ ॥

तस्मिन् निपतिते भूमौ भीमः क्रुद्धो विशाम्पते ॥ ५५ ॥
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सौबलस्य हसन्निव ।

राजन् ! उस बाणके धराशायी हो जानेपर भीमसेनने क्रोधपूर्वक हँसते हुए-से एक भल्ल मारकर शकुनिके धनुषको काट दिया ॥ ५५½ ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं सौबलेयः प्रतापवान् ॥ ५६ ॥
अन्यदादाय वेगेन धनुर्भल्लांश्च षोडश ।

प्रतापी सुबलपुत्र शकुनिने उस कटे हुए धनुषको फेंककर बड़े वेगसे दूसरा धनुष हाथमें ले लिया और उसके द्वारा सोलह भल्ल चलाये ॥ ५६½ ॥

तैस्तस्य तु महाराज भल्लैः संनतपर्वभिः ॥ ५७ ॥
द्वाभ्यां स सारथिं ह्यार्च्छद् भीमं सप्तभिरेव च।

महाराज ! झुकी हुई गाँठवाले उन भल्लोंमेंसे दोके द्वारा शकुनिने भीमसेनके सारथिको और सातसे स्वयं भीमसेनको भी घायल कर दिया ॥ ५७½ ॥

ध्वजमेकेन चिच्छेद द्वाभ्यां छत्रं विशाम्पते ॥ ५८ ॥
चतुर्भिश्चतुरो वाहान् विव्याध सुबलात्मजः ।

प्रजानाथ ! फिर सुबलपुत्रने एक बाणसे ध्वजको, दो बाणोंसे छत्रको और चार बाणोंसे उनके चारों घोड़ोंको भी घायल कर दिया ॥ ५८½ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज भीमसेनः प्रतापवान् ॥ ५९ ॥
शक्तिं चिक्षेप समरे रुक्मदण्डामयस्मयीम् ।

महाराज ! तब क्रोधमें भरे हुए प्रतापी भीमसेनने समराङ्गणमें शकुनिपर सुवर्णमय दण्डवाली एक लोहेकी शक्ति चलायी ॥ ५९½ ॥

सा भीमभुजनिर्मुक्ता नागजिह्वेव चञ्चला ॥ ६० ॥
निपपात रणे तूर्णं सौबलस्य महात्मनः ।

भीमसेनके हाथोंसे छूटी हुई सर्पकी जिह्वाके समान वह चञ्चल शक्ति रणभूमिमें तुरंत ही महामना शकुनिपर जा पड़ी ॥ ६०½ ॥

ततस्तामेव संगृह्य शक्तिं कनकभूषणाम् ॥ ६१ ॥
भीमसेनाय चिक्षेप क्रुद्धरूपो विशाम्पते ।

राजन् ! क्रोधमें भरे हुए शकुनिने उस सुवर्णभूषित शक्तिको हाथसे पकड़ लिया और उसीको भीमसेनपर दे मारा॥

सा निर्भिद्य भुजं सव्यं पाण्डवस्य महात्मनः ॥ ६२ ॥
निपपात तदा भूमौ यथा विद्युन्नभश्च्युता ।

आकाशसे गिरी हुई बिजलीके समान वह शक्ति महामनस्वी पाण्डुपुत्र भीमसेनकी बायीं भुजाको विदीर्ण करके तत्काल भूमिपर गिर पड़ी ॥ ६२½ ॥

अथोत्क्रुष्टं महाराज धार्तराष्ट्रैः समन्ततः ॥ ६३ ॥
न तु तं ममृषे भीमः सिंहनादं तरस्विनाम् ।

महाराज ! यह देखकर धृतराष्ट्रके पुत्रोंने चारों ओरसे गर्जना की; परंतु भीमसेन उन वेगशाली वीरोंका वह सिंहनाद नहीं सह सके ॥ ६३½ ॥

अन्यद् गृह्य धनुः सज्यं त्वरमाणो महाबलः ॥ ६४ ॥
मुहूर्तादिव राजेन्द्र च्छादयामास सायकैः ।
सौबलस्य बलं संख्ये त्यक्त्वाऽऽत्मानं महाबलः॥ ६५ ॥

राजेन्द्र ! महाबली भीमने बड़ी उतावलीके साथ दूसरा धनुष लेकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और युद्धमें अपने जीवनका मोह छोड़कर सुबलपुत्रकी सेनाको उसी समय बाणोंद्वारा ढक दिया ॥ ६४-६५ ॥

तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सूतं चैव विशाम्पते ।
ध्वजं चिच्छेद भल्लेन त्वरमाणः पराक्रमी ॥ ६६ ॥

प्रजानाथ ! पराक्रमी भीमसेनने फुर्ती दिखाते हुए शकुनिके चारों घोड़ों और सारथिको मारकर एक भल्लके द्वारा उसके ध्वजको भी काट दिया ॥ ६६ ॥

हताश्वं रथमुत्सृज्य त्वरमाणो नरोत्तमः ।
तस्थौ विस्फारयंश्चापं क्रोधरक्तेक्षणः श्वसन् ॥ ६७ ॥

उस समय नरश्रेष्ठ शकुनि उस अश्वहीन रथको छोड़कर क्रोधसे लाल आँखें किये लंबी साँस खींचता और धनुषकी टङ्कार करता हुआ तुरंत भूमिपर खड़ा हो गया ॥ ६७ ॥

शरैश्च बहुधा राजन् भीममार्च्छत् समन्ततः ।
प्रतिहत्य तु वेगेन भीमसेनः प्रतापवान् ॥ ६८ ॥
धनुश्चिच्छेद संक्रुद्धो विव्याध च शितैः शरैः।

राजन् ! उसने अपने बाणोंद्वारा भीमसेनपर सब ओरसे

बारंबार प्रहार किया, किंतु प्रतापी भीमसेनने बड़े वेगसे उसके बाणोंको नष्ट करके अत्यन्त कुपित हो उसका धनुष काट डाला और पैने बाणोंसे उसे घायल कर दिया ॥ ६८½ ॥

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुकर्शनः ॥ ६९ ॥
निपपात तदा भूमौ किंचित्प्राणो नराधिपः ।

बलवान् शत्रुके द्वारा अत्यन्त घायल किया हुआ शत्रु-सूदन राजा शकुनि तत्काल पृथ्वीपर गिर पड़ा । उस समय उसमें जीवनका कुछ-कुछ लक्षण शेष था ॥ ६९½ ॥

ततस्तं विह्वलं ज्ञात्वा पुत्रस्तव विशाम्पते ॥ ७० ॥
अपोवाह रथेनाजौ भीमसेनस्य पश्यतः ।

प्रजानाथ ! उसे विह्वल जानकर आपका पुत्र दुर्योधन रणभूमिमें रथके द्वारा भीमसेनके देखते-देखते अन्यत्र हटा ले गया ॥ ७०½ ॥

रथस्थे तु नरव्याघ्रे धार्तराष्ट्राः पराङ्मुखाः ॥ ७१ ॥
प्रदुद्रुवुर्दिशो भीता भीमाज्जाते महाभये ।

पुरुषसिंह भीमसेन रथपर ही बैठे रहे । उनसे महान् भय प्राप्त होनेके कारण धृतराष्ट्रके सभी पुत्र युद्धसे मुँह मोड़, डरकर सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गये ॥ ७१½ ॥

सौबले निर्जिते राजन् भीमसेनेन धन्विना ॥ ७२ ॥
भयेन महताऽऽविष्टः पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अपायाज्जवनैरश्वैः सापेक्षो मातुलं प्रति ॥ ७३ ॥

राजन् ! धनुर्धर भीमसेनके द्वारा शकुनिके परास्त हो जानेपर आपके पुत्र दुर्योधनको बड़ा भय हुआ । वह मामाके जीवनकी रक्षा चाहता हुआ वेगशाली घोड़ोंद्वारा वहाँसे भाग निकला ॥ ७२-७३ ॥

पराङ्मुखं तु राजानं दृष्ट्वा सैन्यानि भारत ।
विप्रजग्मुः समुत्सृज्य द्वैरथानि समन्ततः ॥ ७४ ॥

भारत ! राजा दुर्योधनको युद्धसे विमुख हुआ देख सारी सेनाएँ सब ओरसे द्वैरथ युद्ध छोड़कर भाग चलीं ॥ ७४ ॥

तान् दृष्ट्वा विद्रुतान् सर्वान् धार्तराष्ट्रान् पराङ्मुखान् ।
जवेनाभ्यापतद् भीमः किरञ्शरशतान् बहून् ॥ ७५ ॥

धृतराष्ट्रके सभी पुत्रोंको युद्धसे विमुख होकर भागते देख भीमसेन कई सौ बाणोंकी वर्षा करते हुए बड़े वेगसे उनपर टूट पड़े ॥ ७५ ॥

ते वध्यमाना भीमेन धार्तराष्ट्राः पराङ्मुखाः ।
कर्णमासाद्य समरे स्थिता राजन् समन्ततः ॥ ७६ ॥

राजन् ! समराङ्गणमें भीमसेनकी मार खाकर युद्धसे विमुख हुए धृतराष्ट्रके पुत्र सब ओरसे कर्णके पास जाकर खड़े हुए ॥ ७६ ॥

स हि तेषां महावीर्यो द्वीपोऽभूत् सुमहाबलः ।
भिन्ननौका यथा राजन् द्वीपमासाद्य निर्वृताः ॥ ७७ ॥
भवन्ति पुरुषव्याघ्र नाविकाः कालपर्यये ।
तथा कर्णं समासाद्य तावकाः पुरुषर्षभ ॥ ७८ ॥
समाश्वस्ताः स्थिता राजन् सम्प्रहृष्टाः परस्परम् ।
समाजग्मुश्च युद्धाय मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ७९ ॥

उस समय महापराक्रमी महाबली कर्ण ही उन भागते हुए कौरवोंके लिये द्वीपके समान आश्रयदाता हुआ । पुरुषसिंह ! नरेश्वर ! जैसे टूटी हुई नौकावाले नाविक कुछ कालके पश्चात् किसी द्वीपकी शरण लेकर संतुष्ट होते हैं, उसी प्रकार आपके सैनिक कर्णके पास पहुँचकर परस्पर आश्वासन पाकर निर्भय खड़े हुए । फिर मृत्युको ही युद्धसे निवृत्त होनेकी सीमा निश्चित करके वे युद्धके लिये आगे बढ़े ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि शकुनिपराजये सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें शकुनिकी पराजयविषयक सतहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७७ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २ श्लोक मिलाकर कुल ८१ श्लोक हैं)

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

कर्णके द्वारा पाण्डवसेनाका संहार और पलायन

धृतराष्ट्र उवाच

ततो भग्नेषु सैन्येषु भीमसेनेन संयुगे ।
दुर्योधनोऽब्रवीत् किं नु सौबलो वापि संजय ॥ १ ॥
कर्णो वा जयतां श्रेष्ठो योधा वा मामका युधि ।
कृपो वा कृतवर्मा वा द्रौणिर्दुःशासनोऽपि वा ॥ २ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! युद्धस्थलमें भीमसेनके द्वारा जब कौरवसेनाएँ भगा दी गयीं, तब दुर्योधन, शकुनि, विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ कर्ण, मेरे अन्य योद्धा कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा अथवा दुःशासनने क्या कहा ? ॥ १-२ ॥

अत्यद्भुतमहं मन्ये पाण्डवेयस्य विक्रमम् ।
यदेकः समरे सर्वान् योधयामास मामकान् ॥ ३ ॥

मैं पाण्डुनन्दन भीमसेनका पराक्रम बड़ा अद्भुत मानता हूँ कि उन्होंने अकेले ही समराङ्गणमें मेरे समस्त योद्धाओंके साथ युद्ध किया ॥ ३ ॥

यथाप्रतिज्ञं योधानां राधेयः कृतवानपि ।
कुरूणामथ सर्वेषां कर्णः शत्रुनिषूदनः ॥ ४ ॥
शर्म वर्म प्रतिष्ठा च जीविताशा च संजय ।

शत्रुसूदन राधापुत्र कर्णने भी अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार सारा कार्य किया । संजय ! वही समस्त कौरव योद्धाओंका कल्याणकारी आश्रय, कवचके समान संरक्षक, प्रतिष्ठा और जीवनकी आशा था ॥ ४½ ॥

तत् प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा कौन्तेयेनामितौजसा ॥ ५ ॥
राधेयो वाप्याधिरथिः कर्णः किमकरोद् युधि ।
पुत्रा वा मम दुर्धर्षा राजानो वा महारथाः ।

एतन्मे सर्वमाचक्ष्व कुशलो ह्यसि संजय ॥ ६ ॥

अमिततेजस्वी कुन्तीपुत्र भीमसेनके द्वारा अपनी सेनाको भगायी गयी देख अधिरथ और राधाके पुत्र कर्णने युद्धमें कौन-सा पराक्रम किया ? मेरे पुत्रों अथवा महारथी दुर्धर्ष नरेशोंने क्या किया ? संजय ! यह सब वृत्तान्त मुझे बताओ; क्योंकि तुम कथा कहनेमें कुशल हो ॥ ५-६ ॥

संजय उवाच

अपराह्णे महाराज सूतपुत्रः प्रतापवान् ।
जघान सोमकान् सर्वान् भीमसेनस्य पश्यतः ॥ ७ ॥

संजय बोला—महाराज ! प्रतापी सूतपुत्रने अपराह्ण कालमें भीमसेनके देखते-देखते समस्त सोमकोंका संहार कर डाला ॥ ७ ॥

भीमोऽप्यतिबलं सैन्यं धार्तराष्ट्रं व्यपोथयत् ।
अथ कर्णोऽब्रवीच्छल्यं पञ्चालान् प्रापयस्व माम् ॥ ८ ॥

इसी प्रकार भीमसेनने भी कौरवोंकी अत्यन्त बलवती सेनाको मार गिराया । तत्पश्चात् कर्णने शल्यसे कहा—'मुझे पाञ्चालोंके पास ले चलो' ॥ ८ ॥

द्राव्यमाणं बलं दृष्ट्वा भीमसेनेन धीमता ।
यन्तारमब्रवीत् कर्णः पञ्चालानेव मां वह ॥ ९ ॥

बुद्धिमान् भीमसेनके द्वारा कौरवसेनाको भगायी जाती देख रथी कर्णने सारथि शल्यसे कहा—'मुझे पाञ्चालोंकी ओर ही ले चलो' ॥ ९ ॥

मद्रराजस्ततः शल्यः श्वेतानश्वान् महाजवान् ।
प्राहिणोच्चेदिपञ्चालान् करूषांश्च महाबलः ॥ १० ॥

तब महाबली मद्रराज शल्यने महान् वेगशाली श्वेत अश्वोंको चेदि, पाञ्चाल और करूषोंकी ओर हाँक दिया ॥ १० ॥

प्रविश्य च महत् सैन्यं शल्यः परबलार्दनः ।
न्ययच्छत् तुरगान् हृष्टो यत्र यत्रैच्छदग्रणीः ॥ ११ ॥

शत्रुसेनाको पीड़ित करनेवाले शल्यने उस विशाल सेनामें प्रवेश करके जहाँ सेनापतिकी इच्छा हुई, वहीं बड़े हर्षके साथ घोड़ोंको रोक दिया ॥ ११ ॥

तं रथं मेघसंकाशं वैयाघ्रपरिवारणम् ।
संदृश्य पाण्डुपञ्चालास्त्रस्ता ह्यासन् विशाम्पते ॥ १२ ॥

प्रजानाथ ! व्याघ्रचर्मसे आच्छादित और मेघगर्जनके समान गम्भीर घोष करनेवाले उस रथको देखकर पाण्डव तथा पाञ्चाल सैनिक त्रस्त हो उठे ॥ १२ ॥

ततो रथस्य निनदः प्रादुरासीन्महारणे ।
पर्जन्यसमनिर्घोषः पर्वतस्येव दीर्यतः ॥ १३ ॥

तदनन्तर उस महायुद्धमें फटते हुए पर्वत और गर्जते हुए मेघके समान उसके रथका गम्भीर घोष प्रकट हुआ ॥

ततः शरशतैस्तीक्ष्णैः कर्ण आकर्णनिःसृतैः ।
जघान पाण्डवबलं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १४ ॥

तत्पश्चात् कर्णने कानतक खींचकर छोड़े गये सैकड़ों तीखे बाणोंद्वारा पाण्डवसेनाके सैकड़ों और हजारों वीरोंका संहार कर डाला ॥ १४ ॥

तं तथा समरे कर्म कुर्वाणमपराजितम् ।
परिवव्रुर्महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः ॥ १५ ॥

संग्राममें ऐसा पराक्रम प्रकट करनेवाले उस अपराजित वीरको महाधनुर्धर पाण्डव महारथियोंने चारों ओरसे घेर लिया ॥ १५ ॥

तं शिखण्डी च भीमश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाश्च सात्यकिः ॥ १६ ॥
परिवव्रुर्जिघांसन्तो राधेयं शरवृष्टिभिः ।

शिखण्डी, भीमसेन, द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न, नकुल-सहदेव, द्रौपदीके पाँचों पुत्र और सात्यकिने अपने बाणोंकी वर्षाद्वारा राधापुत्र कर्णको मार डालनेकी इच्छासे उसे सब ओरसे घेर लिया ॥ १६½ ॥

सात्यकिस्तु तदा कर्णं विंशत्या निशितैः शरैः ॥ १७ ॥
अताडयद् रणे शूरो जत्रुदेशे नरोत्तमः ।

उस समय शूरवीर नरश्रेष्ठ सात्यकिने रणभूमिमें बीस पैने बाणोंद्वारा कर्णके गलेकी हँसलीपर प्रहार किया ॥ १७½ ॥

शिखण्डी पञ्चविंशत्या धृष्टद्युम्नश्च सप्तभिः ॥ १८ ॥
द्रौपदेयाश्चतुःषष्ट्या सहदेवश्च सप्तभिः ।
नकुलश्च शतेनाजौ कर्णं विव्याध सायकैः ॥ १९ ॥

शिखण्डीने पचीस, धृष्टद्युम्नने सात, द्रौपदीके पुत्रोंने चौसठ, सहदेवने सात और नकुलने सौ बाणोंद्वारा कर्णको युद्धमें घायल कर दिया ॥ १८-१९ ॥

भीमसेनस्तु राधेयं नवत्या नतपर्वणाम् ।
विव्याध समरे क्रुद्धो जत्रुदेशे महाबलः ॥ २० ॥

तदनन्तर महाबली भीमसेनने समरभूमिमें कुपित हो राधापुत्र कर्णके गलेकी हँसलीपर झुकी हुई गाँठवाले नब्बे बाणोंका प्रहार किया ॥ २० ॥

अथ प्रहस्याधिरथिर्व्याक्षिपद् धनुरुत्तमम् ।
मुमोच निशितान् बाणान् पीडयन् सुमहाबलः ॥ २१ ॥

तब अधिरथपुत्र महाबली कर्णने हँसकर अपने उत्तम धनुषकी टंकार की और उन सबको पीड़ा देते हुए उनपर पैने बाणोंका प्रहार आरम्भ किया ॥ २१ ॥

तान् प्रत्यविध्यद् राधेयः पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ।
सात्यकेस्तु धनुश्छित्त्वा ध्वजं च भरतर्षभ ॥ २२ ॥
तं तथा नवभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ।

भरतश्रेष्ठ ! राधापुत्र कर्णने पाँच-पाँच बाणोंसे उन सबको घायल कर दिया । फिर सात्यकिका ध्वज और धनुष काटकर उनकी छातीमें नौ बाणोंका प्रहार किया ॥ २२½ ॥

भीमसेनं ततः क्रुद्धो विव्याध त्रिंशता शरैः ॥ २३ ॥
सहदेवस्य भल्लेन ध्वजं चिच्छेद मारिष ।

आर्य ! तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए कर्णने भीमसेनको

तीस बाणोंसे घायल किया और एक भल्लसे सहदेवकी ध्वजा काट डाली ॥ २३½ ॥

सारथिं च त्रिभिर्बाणैराजघान परंतपः ॥ २४ ॥
विरथान् द्रौपदेयांश्च चकार भरतर्षभ ।
अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २५ ॥

इतना ही नहीं, शत्रुओंको संताप देनेवाले कर्णने तीन बाणोंसे सहदेवके सारथिको भी मार डाला और पलक मारते-मारते द्रौपदीके पुत्रोंको रथहीन कर दिया। भरतश्रेष्ठ ! वह अद्भुत-सा कार्य हुआ ॥ २४-२५ ॥

विमुखीकृत्य तान् सर्वाञ्शरैः संनतपर्वभिः ।
पञ्चालानहनच्छूरांश्चेदीनां च महारथान् ॥ २६ ॥

उसने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे उन समस्त वीरोंको युद्धसे विमुख करके पाञ्चालवीरों और चेदि-देशीय महारथियोंको मारना आरम्भ किया ॥ २६ ॥

ते वध्यमानाः समरे चेदिमत्स्या विशाम्पते ।
कर्णमेकमभिद्रुत्य शरसङ्घैः समार्पयन् ॥ २७ ॥

प्रजानाथ ! समरमें घायल होते हुए भी चेदि और मत्स्य देशके वीरोंने एकमात्र कर्णपर धावा करके उसे बाण-समूहोंसे ढक दिया ॥ २७ ॥

ताञ्जघान शितैर्बाणैः सूतपुत्रो महारथः ।
ते वध्यमानाः समरे चेदिमत्स्या विशाम्पते ॥ २८ ॥
प्राद्रवन्त रणे भीताः सिंहत्रस्ता मृगा इव ।

महारथी सूतपुत्रने पैने बाणोंसे उन सबको घायल कर दिया । प्रजानाथ ! समरमें मारे जाते हुए चेदि और मत्स्य देशके वीर सिंहसे डरे हुए मृगोंके समान रणभूमिमें कर्णसे भयभीत हो भागने लगे ॥ २८½ ॥

एतदत्यद्भुतं कर्म दृष्टवानस्मि भारत ॥ २९ ॥
यदेकः समरे शूरान् सूतपुत्रः प्रतापवान् ।
यतमानान् परं शक्त्या योधयानांश्च धन्विनः॥ ३० ॥
पाण्डवेयान् महाराज शरैर्वारितवान् रणे ।

भारत ! महाराज ! यह अद्भुत पराक्रम मैंने अपनी आँखों देखा था कि अकेले प्रतापी सूतपुत्रने समराङ्गणमें पूरी शक्ति लगाकर प्रयत्नपूर्वक युद्ध करनेवाले पाण्डवपक्षीय धनुर्धर वीरोंको अपने बाणोंद्वारा रणभूमिमें आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ २९-३०½ ॥

तत्र भारत कर्णस्य लाघवेन महात्मनः ॥ ३१ ॥
तुतुषुर्देवताः सर्वाः सिद्धाश्च सह चारणैः ।

भरतनन्दन ! वहाँ महामनस्वी कर्णकी फुर्ती देखकर चारणोंसहित सिद्धगण और सम्पूर्ण देवता बहुत संतुष्ट हुए ॥

अपूजयन् महेष्वासा धार्तराष्ट्रा नरोत्तमम् ॥ ३२ ॥
कर्णं रथवरश्रेष्ठं श्रेष्ठं सर्वधनुष्मताम् ।

धृतराष्ट्रके महाधनुर्धर पुत्र सम्पूर्ण धनुर्धरों तथा रथियोंमें श्रेष्ठ नरोत्तम कर्णकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ॥ ३२½ ॥

ततः कर्णो महाराज ददाह रिपुवाहिनीम् ॥ ३३ ॥
कक्षमिद्धो यथा वह्निर्निदाघे ज्वलितो महान् ।

महाराज ! जैसे ग्रीष्मऋतुमें अत्यन्त प्रज्वलित हुई आग सूखे काठ एवं घास-फूसको जला देती है, उसी प्रकार कर्ण शत्रुसेनाको दग्ध करने लगा ॥ ३३½ ॥

ते वध्यमानाः कर्णेन पाण्डवेयास्ततस्ततः ॥ ३४ ॥
प्राद्रवन्त रणे भीताः कर्णं दृष्ट्वा महारथम् ।

कर्णके द्वारा मारे जाते हुए पाण्डवसैनिक रणभूमिमें उस महारथी वीरको देखते ही भयभीत हो जहाँ-तहाँसे भागने लगे ॥ ३४½ ॥

तत्राक्रन्दो महानासीत् पञ्चालानां महारणे ॥ ३५ ॥
वध्यतां सायकैस्तीक्ष्णैः कर्णचापवरच्युतैः ।

कर्णके धनुषसे छूटे हुए तीखे बाणोंद्वारा मारे जानेवाले पाञ्चालोंका महान् आर्तनाद उस महासमरमें गूँजने लगा ॥

तेन शब्देन वित्रस्ता पाण्डवानां महाचमूः ॥ ३६ ॥
कर्णमेकं रणे योधं मेनिरे तत्र शात्रवाः ।

उस घोर शब्दसे पाण्डवोंकी विशाल सेना भयभीत हो उठी। शत्रुओंके सभी सैनिक रणभूमिमें एकमात्र कर्णको ही सर्वश्रेष्ठ योद्धा मानने लगे ॥ ३६½ ॥

तत्राद्भुतं पुनश्चक्रे राधेयः शत्रुकर्शनः ॥ ३७ ॥
यदेनं पाण्डवाः सर्वे न शेकुरभिवीक्षितुम् ।

शत्रुसूदन राधापुत्रने पुनः वहाँ अद्भुत पराक्रम प्रकट किया, जिससे समस्त पाण्डव-योद्धा उसकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सके ॥ ३७½ ॥

यथौघः पर्वतश्रेष्ठमासाद्याभिप्रदीर्यते ॥ ३८ ॥
तथा तत् पाण्डवं सैन्यं कर्णमासाद्य दीर्यते ।

जैसे जलका महान् प्रवाह किसी ऊँचे पर्वतसे टकराकर कई धाराओंमें बँट जाता है, उसी प्रकार पाण्डवसेना कर्णके पास पहुँचकर तितर-बितर हो जाती थी ॥ ३८½ ॥

कर्णोऽपि समरे राजन् विधूमोऽग्निरिव ज्वलन्॥ ३९ ॥
दहंस्तस्थौ महाबाहुः पाण्डवानां महाचमूम् ।

राजन् ! समराङ्गणमें धूमरहित अग्निके समान प्रज्वलित होनेवाला महाबाहु कर्ण भी पाण्डवोंकी विशाल सेनाको दग्ध करता हुआ स्थिरभावसे खड़ा रहा ॥ ३९½ ॥

शिरांसि च महाराज कर्णाश्चैव सकुण्डलान् ॥ ४० ॥
बाहूंश्च वीरो वीराणां चिच्छेद लघु चेषुभिः ।

महाराज ! वीर कर्णने बाणोंद्वारा पाण्डव-पक्षके वीरोंके मस्तक, कुण्डलसहित कान तथा भुजाएँ शीघ्रतापूर्वक काट डालीं ॥ ४०½ ॥

हस्तिदन्तत्सरून् खड्गान् ध्वजाञ्शक्तीर्हयान् गजान्॥
रथांश्च विविधान् राजन् पताका व्यजनानि च ।
अक्षं च युगयोक्त्राणि चक्राणि विविधानि च॥ ४२ ॥
चिच्छेद बहुधा कर्णो योधव्रतमनुष्ठितः ।

राजन् ! योद्धाओंके व्रतका पालन करनेवाले कर्णने हाथी-दाँतकी बनी हुई मूँठवाले खड्गों, ध्वजों, शक्तियों, घोड़ों, हाथियों, नाना प्रकारके रथों, पताकाओं, व्यजनों, धुरों, जूओं, जोतों और भाँति-भाँतिके पहियोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥४१-४२½॥

तत्र भारत कर्णेन निहतैर्गजवाजिभिः ॥ ४३ ॥
अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ।

भारत ! वहाँ कर्णद्वारा मारे गये हाथियों और घोड़ोंकी लाशोंसे पृथ्वीपर चलना असम्भव हो गया । रक्त और मांसकी कीच जम गयी ॥ ४३½ ॥

विषमं च समं चैव हतैरश्वपदातिभिः ॥ ४४ ॥
रथैश्च कुञ्जरैश्चैव न प्राज्ञायत किञ्चन ।

मरे हुए घोड़ों, पैदलों, रथों और हाथियोंसे पट जानेके कारण वहाँकी ऊँची-नीची भूमिका कुछ पता नहीं लगता था ॥

नापि स्वे न परे योधाः प्राज्ञायन्त परस्परम् ॥ ४५ ॥
घोरे शरान्धकारे तु कर्णास्त्रे च विजृम्भिते ।

कर्णका अस्त्र जब वेगपूर्वक बढ़ने लगा तो वहाँ बाणोंसे घोर अन्धकार छा गया । उसमें अपने और शत्रुपक्षके योद्धा परस्पर पहचाने नहीं जाते थे ॥ ४५½ ॥

राधेयचापनिर्मुक्तैः शरैः काञ्चनभूषणैः ॥ ४६ ॥
संछादिता महाराज पाण्डवानां महारथाः ।

महाराज ! राधापुत्रके धनुषसे छूटे हुए सुवर्णभूषित बाणोंद्वारा समस्त पाण्डव महारथी आच्छादित हो गये ॥

ते पाण्डवेयाः समरे राधेयेन पुनः पुनः ॥ ४७ ॥
अभज्यन्त महाराज यतमाना महारथाः ।

महाराज ! समरभूमिमें प्रयत्नपूर्वक युद्ध करनेवाले पाण्डवपक्षके महारथी राधापुत्र कर्णके द्वारा बारंबार भागनेको विवश कर दिये जाते थे ॥ ४७½ ॥

मृगसङ्घान् यथा क्रुद्धः सिंहो द्रावयते वने ॥ ४८ ॥
पञ्चालानां रथश्रेष्ठान् द्रावयञ्शात्रवांस्तथा ।
कर्णस्तु समरे योधांस्त्रासयन् सुमहायशाः ॥ ४९ ॥
कालयामास तत् सैन्यं यथा पशुगणान् वृकः ।

जैसे वनमें कुपित हुआ सिंह मृगसमूहोंको खदेड़ता रहता है, उसी प्रकार शत्रुपक्षके पाञ्चाल महारथियोंको भगाता हुआ महायशस्वी कर्ण समराङ्गणमें समस्त योद्धाओंको त्रास देने लगा । जैसे भेड़िया पशुसमूहोंको भयभीत करके भगा देता है, उसी प्रकार कर्णने पाण्डवसेनाको खदेड़ दिया ॥

दृष्ट्वा तु पाण्डवीं सेनां धार्तराष्ट्राः पराङ्मुखीम्॥ ५० ॥
तत्राजग्मुर्महेष्वासा रुवन्तो भैरवान् रवान् ।

पाण्डवसेनाको युद्धसे विमुख हुई देख आपके महाधनुर्धर पुत्र भीषण गर्जना करते हुए वहाँ आ पहुँचे ॥

दुर्योधनो हि राजेन्द्र मुदा परमया युतः ॥ ५१ ॥
वादयामास संहृष्टो नानावाद्यानि सर्वशः ।

राजेन्द्र ! उस समय दुर्योधनको बड़ी प्रसन्नता हुई । वह हर्षमें भरकर सब ओर नाना प्रकारके बाजे बजवाने लगा ॥

पञ्चालापि महेष्वासा भग्नास्तत्र नरोत्तमाः ॥ ५२ ॥
न्यवर्तन्त यथा शूरं मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ।

उस समय वहाँ भगे हुए महाधनुर्धर नरश्रेष्ठ पाञ्चाल मृत्युको ही युद्धसे लौटनेकी अवधि निश्चित करके पुनः सूतपुत्र कर्णसे जूझनेके लिये लौट आये ॥ ५२½ ॥

तान् निवृत्तान् रणे शूरान् राधेयः शत्रुतापनः॥ ५३ ॥
अनेकशो महाराज बभञ्ज पुरुषर्षभः ।

महाराज ! शत्रुओंको संताप देनेवाला पुरुषश्रेष्ठ राधापुत्र कर्ण उन लौटे हुए शूरवीरोंको रणभूमिमें बारंबार भगा देता था॥

तत्र भारत कर्णेन पञ्चाला विंशती रथाः ॥ ५४ ॥
निहताः सायकैः क्रोधाच्चेदयश्च परः शताः ।

भरतनन्दन ! कर्णने वहाँ बाणोंद्वारा बीस पाञ्चाल रथियों और सौसे भी अधिक चेदिदेशीय योद्धाओंको क्रोधपूर्वक मार डाला ॥ ५४½ ॥

कृत्वा शून्यान् रथोपस्थान् वाजिपृष्ठांश्च भारत॥ ५५ ॥
निर्मनुष्यान् गजस्कन्धान् पादातांश्चैव विद्रुतान् ।

भारत ! उसने रथकी बैठकें सूनी कर दीं, घोड़ोंकी पीठें खाली कर दीं, हाथियोंके पीठों और कंधोंपर कोई मनुष्य नहीं रहने दिये और पैदलोंको भी मार भगाया ॥ ५५½ ॥

आदित्य इव मध्याह्ने दुर्निरीक्ष्यः परंतपः ॥ ५६ ॥
कालान्तकवपुः शूरः सूतपुत्रोऽभ्यराजत ।

इस प्रकार शत्रुओंको तपानेवाला कर्ण मध्याह्नकालके सूर्यकी भाँति तप रहा था । उस समय उसकी ओर देखना कठिन हो गया था । शूरवीर सूतपुत्रका शरीर काल और अन्तकके समान सुशोभित हो रहा था ॥ ५६½ ॥

एवमेतन्महाराज नरवाजिरथद्विपान् ॥ ५७ ॥
हत्वा तस्थौ महेष्वासः कर्णोऽरिगणसूदनः ।
यथा भूतगणान् हत्वा कालस्तिष्ठेन्महाबलः ॥ ५८ ॥
तथा स सोमकान् हत्वा तस्थावेको महारथः ।

महाराज ! इस प्रकार शत्रुसूदन महाधनुर्धर कर्ण शत्रुपक्षके पैदल, घोड़े, रथ और हाथियोंका संहार करके अविचल भावसे खड़ा रहा । जैसे समस्त प्राणियोंका संहार करके काल खड़ा हो, उसी प्रकार महाबली महारथी कर्ण सोमकोंका विनाश करके युद्धभूमिमें अकेला ही डटा रहा ॥५७-५८½॥

तत्राद्भुतमपश्याम पञ्चालानां पराक्रमम् ॥ ५९ ॥
वध्यमानापि यत् कर्णं नाजह्यू रणमूर्धनि ।

वहाँ हमलोगोंने पाञ्चाल वीरोंका यह अद्भुत पराक्रम देखा कि वे मारे जानेपर भी युद्धके मुहानेपर कर्णको छोड़कर पीछे न हटे ॥ ५९½ ॥

राजा दुःशासनश्चैव कृपः शारद्वतस्तथा ॥ ६० ॥
अश्वत्थामा कृतवर्मा शकुनिश्च महाबलः ।
न्यहनन् पाण्डवीं सेनां शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६१ ॥

राजा दुर्योधन, दुःशासन, शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कृतवर्मा और महाबली शकुनिने भी पाण्डव-सेनाके सैकड़ों-हजारों वीरोंका संहार कर डाला ॥ ६०-६१ ॥

कर्णपुत्रौ तु राजेन्द्र भ्रातरौ सत्यविक्रमौ।
निजघ्नाते बलं क्रुद्धौ पाण्डवानामितस्ततः ॥ ६२ ॥

राजेन्द्र ! कर्णके दो सत्यपराक्रमी पुत्र शेष रह गये थे। वे दोनों भाई क्रोधपूर्वक इधर-उधरसे पाण्डव सेनाका विनाश करते थे ॥ ६२ ॥

तत्र युद्धं महच्चासीत् क्रूरं विशसनं महत्।
तथैव पाण्डवाः शूरा धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥ ६३ ॥
द्रौपदेयाश्च संक्रुद्धा अभ्यघ्नंस्तावकं बलम्।

इस प्रकार वहाँ महान् संहारकारी एवं क्रूरतापूर्ण भारी युद्ध हुआ। इसी तरह पाण्डववीर धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और द्रौपदीके पाँचों पुत्र आदिने भी कुपित होकर आपकी सेनाका संहार किया ॥ ६३½ ॥

एवमेष क्षयो वृत्तः पाण्डवानां ततस्ततः।
तावकानामपि रणे भीमं प्राप्य महाबलम् ॥ ६४ ॥

इस प्रकार कर्णको पाकर जहाँ-तहाँ पाण्डव योद्धाओंका संहार हुआ और महाबली भीमसेनको पाकर रणभूमिमें आपके योद्धाओंका भी महान् विनाश हुआ ॥ ६४ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धेऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक अठहत्तरवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

अर्जुनका कौरवसेनाको विनाश करके खूनकी नदी बहा देना और अपना रथ कर्णके पास ले चलनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णसे कहना तथा श्रीकृष्ण और अर्जुनको आते देख शल्य और कर्णकी बातचीत तथा अर्जुनद्वारा कौरवसेनाका विध्वंस

संजय उवाच

अर्जुनस्तु महाराज हत्वा सैन्यं चतुर्विधम्।
सूतपुत्रं च संक्रुद्धं दृष्ट्वा चैव महारणे ॥ १ ॥
शोणितोदां महीं कृत्वा मांसमज्जास्थिपङ्किलाम्।
मनुष्यशीर्षपाषाणां हस्त्यश्वकृतरोधसम् ॥ २ ॥
शूरास्थिचयसंकीर्णां काकगृध्रानुनादिताम्।
छत्रहंसप्लवोपेतां वीरवृक्षापहारिणीम् ॥ ३ ॥
हारपद्माकरवतीमुष्णीषवरफेनिलाम्।
धनुःशरध्वजोपेतां नरक्षुद्रकपालिनीम् ॥ ४ ॥
चर्मवर्मभ्रमोपेतां रथोडुपसमाकुलाम्।
जयैषिणां च सुतरां भीरूणां च सुदुस्तराम् ॥ ५ ॥
नदीं प्रवर्तयित्वा च बीभत्सुः परवीरहा।
वासुदेवमिदं वाक्यमब्रवीत् पुरुषर्षभः ॥ ६ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! उस महासमरमें शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले अर्जुनने क्रोधमें भरे हुए सूतपुत्रको देखकर कौरवोंकी चतुरङ्गिणी सेनाका विनाश करके वहाँ रक्तकी नदी बहा दी। जिसमें जलके स्थानमें इस पृथ्वीपर रक्त ही बह रहा था; मांस-मज्जा और हड्डियाँ कीचड़का काम दे रही थीं। मनुष्योंके कटे हुए मस्तक पत्थरोंके टुकड़ोंके समान जान पड़ते थे, हाथी और घोड़ोंकी लाशें कगार बनी हुई थीं, शूरवीरोंकी हड्डियोंके ढेर वहाँ सब ओर बिखरे हुए थे, कौए और गीध वहाँ अपनी बोली बोल रहे थे, छत्र ही हंस और छोटी नौकाका काम देते थे, वीरोंके शरीररूपी वृक्षको वह नदी बहाये लिये जाती थी, उसमें हार ही कमलवन और सफेद पगड़ी ही फेन थी, धनुष और बाण वहाँ मछलीके समान जान पड़ते थे, मनुष्योंकी छोटी-छोटी खोपड़ियाँ वहाँ बिखरी पड़ी थीं, ढाल और कवच ही उसमें भँवरके समान प्रतीत होते थे, रथरूपी छोटी नौकासे व्याप्त वह नदी विजयाभिलाषी वीरोंके लिये सुगमतापूर्वक पार होने योग्य और कायरोंके लिये अत्यन्त दुस्तर थी। उस नदीको बहाकर पुरुषप्रवर अर्जुनने वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा ॥ १—६ ॥

अर्जुन उवाच

एष केतू रणे कृष्ण सूतपुत्रस्य दृश्यते।
भीमसेनादयश्चैते योधयन्ति महारथम् ॥ ७ ॥

अर्जुन बोले—श्रीकृष्ण ! रणभूमिमें यह सूतपुत्र कर्णकी ध्वजा दिखायी देती है। ये भीमसेन आदि वीर महारथी कर्णसे युद्ध करते हैं ॥ ७ ॥

एते द्रवन्ति पञ्चालाः कर्णत्रस्ता जनार्दन।
एष दुर्योधनो राजा श्वेतच्छत्रेण धार्यता ॥ ८ ॥
कर्णेन भग्नान् पञ्चालान् द्रावयन् बहु शोभते।

जनार्दन ! ये पाञ्चालयोद्धा कर्णसे डरकर भाग रहे हैं, यह राजा दुर्योधन है, जिसके ऊपर श्वेत छत्र तना हुआ है और कर्णने जिनके पाँव उखाड़ दिये हैं उन पाञ्चालोंको खदेड़ता हुआ यह बड़ी शोभा पा रहा है ॥ ८½ ॥

कृपश्च कृतवर्मा च द्रौणिश्चैव महारथः ॥ ९ ॥
एते रक्षन्ति राजानं सूतपुत्रेण रक्षिताः।
अवध्यमानास्तेऽस्माभिर्घातयिष्यन्ति सोमकान् ॥ १० ॥

कृपाचार्य, कृतवर्मा और महारथी अश्वत्थामा—ये सूतपुत्रसे सुरक्षित हो राजा दुर्योधनकी रक्षा करते हैं। यदि हम इन तीनोंको नहीं मारते हैं तो ये सोमकोंका संहार कर डालेंगे ॥ ९-१० ॥

एष शल्यो रथोपस्थे रश्मिसंचारकोविदः ।
सूतपुत्ररथं कृष्ण वाहयन् बहु शोभते ॥ ११ ॥

श्रीकृष्ण ! घोड़ोंकी बागडोरका संचालन करनेकी कलामें कुशल ये राजा शल्य रथके निचले भागमें बैठकर सूतपुत्रका रथ हाँकते हुए बड़ी शोभा पाते हैं ॥ ११ ॥

तत्र मे बुद्धिरुत्पन्ना वाहयात्र महारथम् ।
नाहत्वा समरे कर्णं निवर्तिष्ये कथञ्चन ॥ १२ ॥
राधेयो ह्यन्यथा पार्थान् सृञ्जयांश्च महारथान् ।
निःशेषान् समरे कुर्यात् पश्यतां नो जनार्दन ॥ १३ ॥

जनार्दन ! यहाँ मेरा ऐसा विचार हो रहा है कि आप मेरे इस विशाल रथको वहीं हाँक ले चलें (जहाँ कर्ण खड़ा है)। मैं समराङ्गणमें कर्णका वध किये बिना किसी प्रकार पीछे नहीं लौटूँगा । अन्यथा राधापुत्र हमारे देखते-देखते पाण्डव तथा संजय महारथियोंको समरभूमिमें निःशेष कर देगा—किसीको जीवित नहीं छोड़ेगा ॥ १२-१३ ॥

ततः प्रायाद् रथेनाशु केशवस्तव वाहिनीम् ।
कर्णं प्रति महेष्वासं द्वैरथे सव्यसाचिना ॥ १४ ॥

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण रथके द्वारा शीघ्र ही सव्यसाची अर्जुनके साथ कर्णका द्वैरथ युद्ध करानेके लिये आपकी सेनामें महाधनुर्धर कर्णकी ओर चले ॥ १४ ॥

प्रयातश्च महाबाहुः पाण्डवानुज्ञया हरिः ।
आश्वासयन् रथेनैव पाण्डुसैन्यानि सर्वशः ॥ १५ ॥

अर्जुनकी अनुमतिसे महाबाहु श्रीकृष्ण रथके द्वारा ही पाण्डव-सेनाओंको सब ओरसे आश्वासन देते हुए आगे बढ़े ॥

रथघोषः स संग्रामे पाण्डवेयस्य सम्बभौ ।
वासवाशनितुल्यस्य मेघौघस्येव मारिष ॥ १६ ॥

मान्यवर नरेश ! संग्राममें पाण्डुपुत्र अर्जुनके रथका वह घर्घरघोष इन्द्रके वज्रकी गड़गड़ाहट तथा मेघसमूहोंकी गर्जनाके समान प्रतीत होता था ॥ १६ ॥

महता रथघोषेण पाण्डवः सत्यविक्रमः ।
अभ्ययादप्रमेयात्मा निर्जयंस्तव वाहिनीम् ॥ १७ ॥

सत्यपराक्रमी पाण्डव अर्जुन अप्रमेय आत्मबलसे सम्पन्न थे । वे महान् रथघोषके द्वारा आपकी सेनाको परास्त करते हुए आगे बढ़े ॥ १७ ॥

तमायान्तं समीक्ष्यैव श्वेताश्वं कृष्णसारथिम् ।
मद्रराजोऽब्रवीत् कर्णं केतुं दृष्ट्वा महात्मनः ॥ १८ ॥

श्रीकृष्ण जिनके सारथि हैं, उन श्वेतवाहन अर्जुनको आते देख और उन महात्माकी ध्वजापर दृष्टिपात करके मद्रराज शल्यने कर्णसे कहा—॥ १८ ॥

अयं स रथ आयाति श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ।
निघ्नन्नमित्रान् समरे यं कर्ण परिपृच्छसि ॥ १९ ॥

'कर्ण ! तुम जिसके विषयमें पूछ रहे थे, वही यह श्वेत घोड़ोंवाला रथ, जिसके सारथि श्रीकृष्ण हैं, समराङ्गणमें शत्रुओं-का संहार करता हुआ इधर ही आ रहा है ॥ १९ ॥

एष तिष्ठति कौन्तेयः संस्पृशन् गाण्डिवं धनुः ।
तं हनिष्यसि चेदद्य तन्नः श्रेयो भविष्यति ॥ २० ॥

'ये कुन्तीकुमार अर्जुन हाथमें गाण्डीव धनुष लिये हुए खड़े हैं । यदि तुम आज उनको मार डालोगे तो वह हम-लोगोंके लिये श्रेयस्कर होगा ॥ २० ॥

धनुर्ज्या चन्द्रताराङ्का पताकाकिङ्किणीयुता ।
पश्य कर्णार्जुनस्यैषा सौदामन्यम्बरे यथा ॥ २१ ॥

'कर्ण ! देखो, अर्जुनके धनुषकी यह प्रत्यञ्चा तथा चन्द्रमा और तारोंसे चिह्नित यह रथकी पताका है, जिसमें छोटी-छोटी घंटियाँ लगी हैं, वह आकाशमें बिजलीके समान चमक रही है ॥ २१ ॥

एष ध्वजाग्रे पार्थस्य प्रेक्षमाणः समन्ततः ।
दृश्यते वानरो भीमो वीराणां भयवर्धनः ॥ २२ ॥

'कुन्तीकुमार अर्जुनकी ध्वजाके अग्रभागमें एक भयङ्कर वानर दिखायी देता है, जो सब ओर देखता हुआ कौरव-वीरोंका भय बढ़ा रहा है ॥ २२ ॥

एतच्चक्रं गदा शङ्खः शार्ङ्गं कृष्णस्य च प्रभो ।
दृश्यते पाण्डवरथे वाहयानस्य वाजिनः ॥ २३ ॥

'पाण्डुपुत्रके रथपर बैठकर घोड़े हाँकते हुए भगवान् श्रीकृष्णके ये चक्र, गदा, शङ्ख तथा शार्ङ्ग धनुष दृष्टिगोचर हो रहे हैं ॥ २३ ॥

एतत् कूजति गाण्डीवं विसृष्टं सव्यसाचिना ।
एते हस्तवता मुक्ता घ्नन्त्यमित्राञ्शिताः शराः ॥ २४ ॥

'यह सव्यसाचीके द्वारा खींचा गया गाण्डीव धनुष टङ्कार रहा है, सिद्धहस्त अर्जुनके छोड़े हुए ये पैने बाण शत्रुओंका विनाश कर रहे हैं ॥ २४ ॥

विशालायतताम्राक्षैः पूर्णचन्द्रनिभाननैः ।
एषा भूः कीर्यते राज्ञां शिरोभिरपलायिनाम् ॥ २५ ॥

'जो युद्धसे कभी पीछे नहीं हटते, उन राजाओंके कटे हुए मस्तकोंसे यह रणभूमि पटी जा रही है । उन मस्तकोंके नेत्र बड़े-बड़े और लाल हैं तथा मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर है ॥ २५ ॥

एते परिघसंकाशाः पुण्यगन्धानुलेपनाः ।
उद्यता रणशूराणां पात्यन्ते सायुधा भुजाः ॥ २६ ॥

'रणवीरोंकी ये अस्त्र-शस्त्रोंसहित उठी हुई भुजाएँ, जो परिघोंके समान मोटी तथा पवित्र सुगन्धयुक्त चन्दनसे चर्चित हैं, काटकर गिरायी जा रही हैं ॥ २६ ॥

निरस्तजिह्वानेत्रान्ता वाजिनः सह सादिभिः ।
पतिताः पात्यमानाश्च क्षितौ क्षीणा विशेरते ॥ २७ ॥

'ये कौरवपक्षके सवारोंसहित घोड़े क्षत-विक्षत हो, अर्जुनके द्वारा गिराये जा रहे हैं । इनकी जीभें और आँखें बाहर निकल आयी हैं । ये गिरकर पृथ्वीपर सो रहे हैं ॥

एते पर्वतशृङ्गाणां तुल्या हैमवता गजाः ।
संछिन्नकुम्भाः पार्थेन प्रपतन्त्यद्रयो यथा ॥ २८ ॥

'ये हिमाचलप्रदेशके हाथी, जो पर्वत-शिखरोंके समान जान पड़ते हैं, पर्वतोंके समान धराशायी हो रहे हैं। अर्जुनने इनके कुम्भस्थल काट डाले हैं ॥ २८ ॥

गन्धर्वनगराकारा रथा वा ते नरेश्वराः।
विमानादिव पुण्यान्ते स्वर्गिणो निपतन्त्यमी ॥ २९ ॥

'ये गन्धर्व-नगरके समान विशाल रथ हैं, जिनसे ये मारे गये राजालोग उसी प्रकार नीचे गिर रहे हैं, जैसे पुण्य समाप्त होनेपर स्वर्गवासी प्राणी विमानसे नीचे गिर जाते हैं ॥

व्याकुलीकृतमत्यर्थं परसैन्यं किरीटिना।
नानामृगसहस्राणां यूथं केसरिणां यथा ॥ ३० ॥

'किरीटधारी अर्जुनने शत्रुसेनाको उसी प्रकार अत्यन्त व्याकुल कर दिया है, जैसे सिंह नाना जातिके सहस्रों मृगोंके झुंडको व्याकुल कर देता है ॥ ३० ॥

त्वामभिप्रेप्सुरायाति कर्ण निघ्नन् वरान् रथान्।
असह्यमानो राधेय तं याहि प्रति भारत ॥ ३१ ॥

'राधापुत्र कर्ण! अर्जुन बड़े-बड़े रथियोंका संहार करते हुए तुम्हें ही प्राप्त करनेके लिये इधर आ रहे हैं। ये शत्रुओंके लिये असह्य हैं। तुम इन भरतवंशी वीरका सामना करनेके लिये आगे बढ़ो ॥ ३१ ॥

(घृणां त्यक्त्वा प्रमादं च भृगोरस्त्रं च संस्मर।
दृष्टिं मुष्टिं च संधानं स्मृत्वा रामोपदेशजम्।
धनंजयं जयप्रेप्सुः प्रत्युद्गच्छ महारथम् ॥)

'कर्ण! तुम दया और प्रमाद छोड़कर भृगुवंशी परशुरामजीके दिये हुए अस्त्रका स्मरण करो, उनके उपदेशके अनुसार लक्ष्यकी ओर दृष्टि रखना, धनुषको अपनी मुट्ठीसे दृढ़तापूर्वक पकड़े रहना और बाणोंका संधान करना आदि बातें याद करके मनमें विजय पानेकी इच्छा लिये महारथी अर्जुनका सामना करनेके लिये आगे बढ़ो ॥

एषा विदीर्यते सेना धार्तराष्ट्री समन्ततः।
अर्जुनस्य भयात् तूर्णं निघ्नतः शात्रवान् बहून् ॥ ३२ ॥

'अर्जुन थोड़ी ही देरमें बहुत-से शत्रुओंका संहार कर डालते हैं, इसलिये उनके भयसे दुर्योधनकी यह सेना चारों ओरसे छिन्न-भिन्न होकर भागी जा रही है ॥ ३२ ॥

वर्जयन् सर्वसैन्यानि त्वरते हि धनंजयः।
त्वदर्थमिति मन्येऽहं यथास्योदीर्यते वपुः ॥ ३३ ॥

'इस समय अर्जुनका शरीर जैसा उत्तेजित हो रहा है उससे मैं समझता हूँ कि वे सारी सेनाओंको छोड़कर तुम्हारे पास पहुँचनेके लिये जल्दी कर रहे हैं ॥ ३३ ॥

न ह्यवस्थास्यते पार्थो युयुत्सुः केनचित् सह।
त्वामृते क्रोधदीप्तो हि पीड्यमाने वृकोदरे ॥ ३४ ॥

'भीमसेनके पीड़ित होनेसे अर्जुन क्रोधसे तमतमा उठे हैं, इसलिये आज तुम्हारे सिवा और किसीसे युद्ध करनेके लिये वे नहीं रुक सकेंगे ॥ ३४ ॥

विरथं धर्मराजं तु दृष्ट्वा सुदृढविक्षतम्।
शिखण्डिनं सात्यकिं च धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ॥ ३५ ॥
द्रौपदेयान् युधामन्युमुत्तमौजसमेव च।
नकुलं सहदेवं च भ्रातरौ द्वौ समीक्ष्य च ॥ ३६ ॥
सहसैकरथः पार्थस्त्वामभ्येति परंतपः।
क्रोधरक्तेक्षणः क्रुद्धो जिघांसुः सर्वपार्थिवान् ॥ ३७ ॥

'तुमने धर्मराज युधिष्ठिरको अत्यन्त घायल करके रथहीन कर दिया है। शिखण्डी, द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न, सात्यकि, द्रौपदीके पुत्रों, उत्तमौजा, युधामन्यु तथा दोनों भाई नकुल-सहदेवको भी तुम्हारे हाथों बहुत चोट पहुँची है। यह सब देखकर शत्रुओंको संताप देनेवाले कुन्तीकुमार अर्जुन अत्यन्त कुपित हो उठे हैं। उनके नेत्र रोषसे रक्तवर्ण हो गये हैं, अतः वे समस्त राजाओंका संहार करनेकी इच्छासे एकमात्र रथके साथ सहसा तुम्हारे ऊपर चढ़े आ रहे हैं ॥ ३५—३७ ॥

त्वरितोऽभिपतत्यस्मांस्त्यक्त्वा सैन्यान्यसंशयम्।
त्वं कर्ण प्रतियाह्येनं नास्त्यन्यो हि धनुर्धरः ॥ ३८ ॥

'इसमें संदेह नहीं कि वे सारी सेनाओंको छोड़कर बड़ी उतावलीके साथ हमलोगोंपर टूट पड़े हैं; अतः कर्ण! अब तुम भी इनका सामना करनेके लिये आगे बढ़ो, क्योंकि तुम्हारे सिवा दूसरा कोई धनुर्धर ऐसा करनेमें समर्थ नहीं है ॥

न तं पश्यामि लोकेऽस्मिंस्त्वत्तो ह्यन्यं धनुर्धरम्।
अर्जुनं समरे क्रुद्धं यो वेलामिव धारयेत् ॥ ३९ ॥

'इस संसारमें मैं तुम्हारे सिवा दूसरे किसी धनुर्धरको ऐसा नहीं देखता, जो समुद्रमें उठे हुए ज्वारके समान समराङ्गणमें कुपित हुए अर्जुनको रोक सके ॥ ३९ ॥

न चास्य रक्षां पश्यामि पार्श्वतो न च पृष्ठतः।
एक एवाभियाति त्वां पश्य साफल्यमात्मनः ॥ ४० ॥

'मैं देखता हूँ कि अगल-बगलसे या पीछेकी ओरसे उनकी रक्षाका कोई प्रबन्ध नहीं किया गया है। वे अकेले ही तुमपर चढ़ाई कर रहे हैं; अतः देखो, तुम्हें अपनी सफलताके लिये कैसा सुन्दर अवसर हाथ लगा है ॥ ४० ॥

त्वं हि कृष्णौ रणे शक्तः संसाधयितुमाहवे।
तवैव भारो राधेय प्रत्युद्याहि धनंजयम् ॥ ४१ ॥

'राधापुत्र! रणभूमिमें तुम्हीं श्रीकृष्ण और अर्जुनको परास्त करनेकी शक्ति रखते हो, तुम्हारे ऊपर ही यह भार रक्खा गया है; इसलिये तुम अर्जुनको रोकनेके लिये आगे बढ़ो ॥ ४१ ॥

समानो ह्यसि भीष्मेण द्रोणद्रौणिकृपेण च।
सव्यसाचिनमायान्तं निवारय महारणे ॥ ४२ ॥

'तुम भीष्म, द्रोण, अश्वत्थामा तथा कृपाचार्यके समान पराक्रमी हो, अतः इस महासमरमें आक्रमण करते हुए सव्यसाची अर्जुनको रोको ॥ ४२ ॥

लेलिहानं यथा सर्पं गर्जन्तमृषभं यथा।

वनस्थितं यथा व्याघ्रं जहि कर्ण धनंजयम् ॥ ४३ ॥

'कर्ण ! जीभ लपलपाते हुए सर्प, गर्जते हुए साँड़ और वनवासी व्याघ्रके समान भयङ्कर अर्जुनका तुम वध करो ॥ ४३ ॥

एते द्रवन्ति समरे धार्तराष्ट्रा महारथाः ।
अर्जुनस्य भयात् तूर्णं निरपेक्षा जनाधिपाः ॥ ४४ ॥

'देखो ! समरभूमिमें दुर्योधनकी सेनाके ये महारथी नरेश अर्जुनके भयसे आत्मीयजनोंकी भी अपेक्षा न रखकर बड़ी उतावलीके साथ भागे जा रहे हैं ॥ ४४ ॥

द्रवतामथ तेषां तु नान्योऽस्ति युधि मानवः ।
भयहा यो भवेद् वीरस्त्वामृते सूतनन्दन ॥ ४५ ॥

'सूतनन्दन ! इस युद्धस्थलमें तुम्हारे सिवा ऐसा कोई भी वीर पुरुष नहीं है, जो उन भागते हुए नरेशोंका भय दूर कर सके ॥ ४५ ॥

एते त्वां कुरवः सर्वे द्वीपमासाद्य संयुगे ।
धिष्ठिताः पुरुषव्याघ्र त्वत्तः शरणकाङ्क्षिणः ॥ ४६ ॥

'पुरुषसिंह ! इस समुद्र-जैसे युद्धस्थलमें तुम द्वीपके समान हो । ये समस्त कौरव तुमसे शरण पानेकी आशा रखकर, तुम्हारे ही आश्रयमें आकर खड़े हुए हैं ॥ ४६ ॥

वैदेहाम्बष्ठकाम्बोजास्तथा नग्नजितस्त्वया ।
गान्धाराश्च यया धृत्या जिताः संख्ये सुदुर्जयाः ।
तां धृतिं कुरु राधेय ततः प्रत्येहि पाण्डवम् ॥ ४७ ॥

'राधानन्दन ! तुमने जिस धैर्यसे पहले अत्यन्त दुर्जय विदेह, अम्बष्ठ, काम्बोज, नग्नजित् तथा गान्धारगणोंको युद्धमें पराजित किया था, उसीको पुनः अपनाओ और पाण्डुपुत्र अर्जुनका सामना करनेके लिये आगे बढ़ो ॥ ४७ ॥

वासुदेवं च वार्ष्णेयं प्रीयमाणं किरीटिना ।
प्रत्युद्याहि महाबाहो पौरुषे महति स्थितः ॥ ४८ ॥

'महाबाहो ! तुम महान् पुरुषार्थमें स्थित होकर अर्जुनसे सतत प्रसन्न रहनेवाले वृष्णिवंशी, वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णका भी सामना करो ॥ ४८ ॥

(यथैकेन त्वया पूर्वं कृतो दिग्विजयः पुरा ।
मरुत्सूनोर्यथा सूनुर्घातितः शक्रदत्तया ॥
तदेतत् सर्वमालम्ब्य जहि पार्थं धनंजयम् ।)

'जैसे पूर्वकालमें तुमने अकेले ही सम्पूर्ण दिशाओंपर विजय पायी थी, इन्द्रकी दी हुई शक्तिसे भीमपुत्र घटोत्कच-का वध किया था, उसी तरह इस सारे बल-पराक्रमका आश्रय ले कुन्तीपुत्र अर्जुनको मार डालो' ॥

कर्ण उवाच

प्रकृतिस्थोऽसि मे शल्य इदानीं सम्मतस्तथा ।
प्रतिभासि महाबाहो मा भैषीस्त्वं धनंजयात् ॥ ४९ ॥

कर्णने कहा—शल्य ! इस समय तुम अपने स्वरूपमें प्रतिष्ठित हो और मुझसे सहमत जान पड़ते हो । महाबाहो ! तुम अर्जुनसे डरो मत ॥ ४९ ॥

पश्य बाह्वोर्बलं मेऽद्य शिक्षितस्य च पश्य मे ।
एकोऽद्य निहनिष्यामि पाण्डवानां महाचमूम् ॥ ५० ॥

आज मेरी इन दोनों भुजाओंका बल देखो और मेरी शिक्षाकी शक्तिपर भी दृष्टिपात करो । आज मैं अकेला ही पाण्डवोंकी विशाल सेनाका संहार कर डालूँगा ॥ ५० ॥

कृष्णौ च पुरुषव्याघ्र ततः सत्यं ब्रवीमि ते ।
नाहत्वा युधि तौ वीरौ व्यपयास्ये कथंचन ॥ ५१ ॥

पुरुषसिंह ! मैं तुमसे सच्ची बात कहता हूँ कि युद्धस्थलमें उन दोनों वीर श्रीकृष्ण और अर्जुनका वध किये बिना मैं किसी तरह पीछे नहीं हटूँगा ॥ ५१ ॥

स्वप्स्ये वा निहतस्ताभ्यामनित्यो हि रणे जयः ।
कृतार्थोऽद्य भविष्यामि हत्वा वाप्यथवा हतः ॥ ५२ ॥

अथवा उन्हीं दोनोंके हाथों मारा जाकर सदाके लिये सो जाऊँगा; क्योंकि रणमें विजय अनिश्चित होती है । आज मैं उन दोनोंको मारकर अथवा मारा जाकर सर्वथा कृतार्थ हो जाऊँगा ॥ ५२ ॥

शल्य उवाच

अजय्यमेनं प्रवदन्ति युद्धे
महारथाः कर्ण रथप्रवीरम् ।
एकाकिनं किमु कृष्णाभिगुप्तं
विजेतुमेनं क इहोत्सहेत ॥ ५३ ॥

शल्यने कहा—कर्ण ! रथियोंमें प्रमुख वीर अर्जुन अकेले भी हों तो महारथी योद्धा उन्हें युद्धमें अजेय बताते हैं, फिर इस समय तो वे श्रीकृष्णसे सुरक्षित हैं; ऐसी दशामें कौन इन्हें जीतनेका साहस कर सकता है ? ॥ ५३ ॥

कर्ण उवाच

नैतादृशो जातु बभूव लोके
रथोत्तमो यावदुपश्रुतं नः ।
तमीदृशं प्रतियोत्स्यामि पार्थं
महाहवे पश्य च पौरुषं मे ॥ ५४ ॥

कर्ण बोला—शल्य ! मैंने जहाँतक सुना है, वहाँतक संसारमें ऐसा श्रेष्ठ महारथी वीर कभी नहीं उत्पन्न हुआ, ऐसे कुन्तीकुमार अर्जुनके साथ मैं महासमरमें युद्ध करूँगा, मेरा पुरुषार्थ देखो ॥ ५४ ॥

रणे चरत्येष रथप्रवीरः
सितैर्हयैः कौरवराजपुत्रः ।
स वाद्य मां नेष्यति कृच्छ्रमेतत्
कर्णस्यान्तादेतदन्तास्तु सर्वे ॥ ५५ ॥

ये रथियोंमें प्रधान वीर कौरवराजकुमार अर्जुन अपने श्वेत अश्वोंद्वारा रणभूमिमें विचर रहे हैं । ये आज मुझे मृत्युके संकटमें डाल देंगे और मुझ कर्णका अन्त होनेपर कौरवदलके अन्य समस्त योद्धाओंका विनाश भी निश्चित ही है ॥ ५५ ॥

अस्वेदिनौ राजपुत्रस्य हस्ता-
ववेपमानौ जातकिणौ बृहन्तौ।
दृढायुधः कृतिमान् क्षिप्रहस्तो
न पाण्डवेयेन समोऽस्ति योधः॥ ५६ ॥

राजकुमार अर्जुनके दोनों विशाल हाथोंमें कभी पसीना नहीं होता, उनमें धनुषकी प्रत्यञ्चाके चिह्न बन गये हैं और वे दोनों हाथ कभी काँपते नहीं हैं। उनके अस्त्र-शस्त्र भी सुदृढ़ हैं। वे विद्वान् एवं शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले हैं। पाण्डुपुत्र अर्जुनके समान दूसरा कोई योद्धा नहीं है॥ ५६॥

गृह्णात्यनेकानपि कङ्कपत्रा-
नेकं यथा तान् प्रतियोज्य चाशु।
ते क्रोशमात्रे निपतन्त्यमोघाः
कस्तेन योधोऽस्ति समः पृथिव्याम्॥ ५७॥

वे कङ्कपत्रयुक्त अनेक बाणोंको इस प्रकार हाथमें लेते हैं, मानो एक ही बाण हो और उन सबको शीघ्रतापूर्वक धनुषपर रखकर चला देते हैं। वे अमोघ बाण एक कोस दूर जाकर गिरते हैं; अतः इस पृथ्वीपर उनके समान दूसरा योद्धा कौन है?॥ ५७॥

अतोषयत् खाण्डवे यो हुताशं
कृष्णद्वितीयोऽतिरथस्तरस्वी।
लेभे चक्रं यत्र कृष्णो महात्मा
धनुर्गाण्डीवं पाण्डवः सव्यसाची॥ ५८॥

उन वेगशाली और अतिरथी वीर अर्जुनने अपने दूसरे साथी श्रीकृष्णके साथ जाकर खाण्डववनमें अग्निदेवको तृप्त किया था, जहाँ महात्मा श्रीकृष्णको तो चक्र मिला और पाण्डुपुत्र सव्यसाची अर्जुनने गाण्डीव धनुष प्राप्त किया॥ ५८॥

श्वेताश्वयुक्तं च सुघोषमुग्रं
रथं महाबाहुरदीनसत्त्वः।
महेषुधी चाक्षये दिव्यरूपे
शस्त्राणि दिव्यानि च हव्यवाहात्॥ ५९॥

उदार अन्तःकरणवाले महाबाहु अर्जुनने अग्निदेवसे श्वेत घोड़ोंसे जुता हुआ गम्भीर घोष करनेवाला एक भयंकर रथ, दो दिव्य विशाल और अक्षय तरकस तथा अलौकिक अस्त्र-शस्त्र प्राप्त किये॥ ५९॥

तथेन्द्रलोके निजघान दैत्या-
नसंख्येयान् कालकेयांश्च सर्वान्।
लेभे शङ्खं देवदत्तं स्म तत्र
को नाम तेनाभ्यधिकः पृथिव्याम्॥ ६०॥

उन्होंने इन्द्रलोकमें जाकर असंख्य कालकेयनामक सम्पूर्ण दैत्योंका संहार किया और वहाँ देवदत्त नामक शङ्ख प्राप्त किया; अतः इस पृथ्वीपर उनसे अधिक कौन है?॥ ६०॥

महादेवं तोषयामास योऽस्त्रैः
साक्षात् सुयुद्धेन महानुभावः।
लेभे ततः पाशुपतं सुघोरं
त्रैलोक्यसंहारकरं महास्त्रम्॥ ६१॥

जिन महानुभावने अस्त्रोंद्वारा उत्तम युद्ध करके साक्षात् महादेवजीको संतुष्ट किया और उनसे त्रिलोकीका संहार करनेमें समर्थ अत्यन्त भयंकर पाशुपतनामक महान् अस्त्र प्राप्त कर लिया॥ ६१॥

पृथक् पृथग्लोकपालाः समेता
ददुर्महास्त्राण्यप्रमेयाणि संख्ये।
यैस्ताञ्जघानाशु रणे नृसिंहः
सकालकेयानसुरान् समेतान्॥ ६२॥

भिन्न-भिन्न लोकपालोंने आकर उन्हें ऐसे महान् अस्त्र प्रदान किये, जो युद्धस्थलमें अपना सानी नहीं रखते। उन पुरुषसिंहने रणभूमिमें उन्हीं अस्त्रोंद्वारा संगठित होकर आये हुए कालकेय नामक असुरोंका शीघ्र ही संहार कर डाला॥

तथा विराटस्य पुरे समेतान्
सर्वानस्मानेकरथेन जित्वा।
जहार तद् गोधनमाजिमध्ये
वस्त्राणि चादत्त महारथेभ्यः॥ ६३॥

इसी प्रकार विराटनगरमें एकत्र हुए हम सब लोगोंको एकमात्र रथके द्वारा युद्धमें जीतकर अर्जुनने उस विराटका गोधन लौटा लिया और महारथियोंके शरीरोंसे वस्त्र भी उतार लिये॥

तमीदृशं वीर्यगुणोपपन्नं
कृष्णद्वितीयं परमं नृपाणाम्।
तमाह्वयन् साहसमुत्तमं वै
जाने स्वयं सर्वलोकस्य शल्य॥ ६४॥

शल्य! इस प्रकार जो पराक्रमसम्बन्धी गुणोंसे सम्पन्न, श्रीकृष्णकी सहायतासे युक्त और क्षत्रियोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं, उन्हें युद्धके लिये ललकारना सम्पूर्ण जगत्के लिये बहुत बड़े साहसका काम है; इस बातको मैं स्वयं भी जानता हूँ॥६४॥

अनन्तवीर्येण च केशवेन
नारायणेनाप्रतिमेन गुप्तः।
वर्षायुतैर्यस्य गुणा न शक्या
वक्तुं समेतैरपि सर्वलोकैः॥ ६५॥
महात्मनः शङ्खचक्रासिपाणे-
र्विष्णोर्जिष्णोर्वसुदेवात्मजस्य।

अर्जुन उन अनन्त पराक्रमी, उपमारहित, नारायणावतार, हाथोंमें शङ्ख, चक्र और खड्ग धारण करनेवाले, विष्णुस्वरूप, विजयशील, वसुदेवपुत्र महात्मा भगवान् श्रीकृष्णसे सुरक्षित हैं; जिनके गुणोंका वर्णन सम्पूर्ण जगत्के लोग मिलकर दस हजार वर्षोंमें भी नहीं कर सकते॥६५½॥

भयं मे वै जायते साध्वसं च
दृष्ट्वा कृष्णावेकरथे समेतौ॥ ६६॥
अतीव पार्थो युधि कार्मुकिभ्यो
नारायणश्चाप्रति चक्रयुद्धे।

एवंविधौ पाण्डववासुदेवौ
चलेत् स्वदेशाद्धिमवान् न कृष्णौ ॥ ६७ ॥

श्रीकृष्ण और अर्जुनको एक रथपर मिले हुए देखकर मुझे बड़ा भय लगता है, मेरा हृदय घबरा उठता है। अर्जुन युद्धमें समस्त धनुर्धरोंसे बढ़कर हैं और नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण भी चक्र-युद्धमें अपना सानी नहीं रखते। पाण्डुपुत्र अर्जुन और वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण दोनों ऐसे ही पराक्रमी हैं। हिमालय भले ही अपने स्थानसे हट जाय; किंतु दोनों कृष्ण अपनी मर्यादासे विचलित नहीं हो सकते॥

उभौ हि शूरौ बलिनौ दृढायुधौ
महारथौ संहननोपपन्नौ।
एतादृशौ फाल्गुनवासुदेवौ
कोऽन्यः प्रतीयान्मदृते तौ तु शल्य ॥ ६८ ॥

वे दोनों ही शौर्यसम्पन्न, बलवान्, सुदृढ़ आयुधोंवाले और महारथी हैं, उनके शरीर सुगठित एवं शक्तिशाली हैं। शल्य! ऐसे अर्जुन और श्रीकृष्णका सामना करनेके लिये मेरे सिवा दूसरा कौन जा सकता है? ॥ ६८ ॥

मनोरथो यस्तु ममाद्य तस्य
मद्रेश युद्धं प्रति पाण्डवस्य।
नैतच्चिरादाशु भविष्यतीद-
मत्यद्भुतं चित्रमतुल्यरूपम्॥ ६९ ॥
एतौ च हत्वा युधि पातयिष्ये
मां वापि कृष्णौ निहनिष्यतोऽद्य।

मद्रराज! अर्जुनके साथ युद्धके विषयमें जो आज मेरा मनोरथ है, वह अविलम्ब और शीघ्र सफल होगा। यह युद्ध अत्यन्त अद्भुत, विचित्र और अनुपम होगा। मैं युद्धस्थलमें इन दोनोंको मार गिराऊँगा अथवा वे दोनों ही कृष्ण मुझे मार डालेंगे ॥ ६९½ ॥

इति ब्रुवञ्शल्यममित्रहन्ता
कर्णो रणे मेघ इवोन्ननाद ॥ ७० ॥
अभ्येत्य पुत्रेण तवाभिनन्दितः
समेत्य चोवाच कुरुप्रवीरम्।
कृपं च भोजं च महाभुजावुभौ
तथैव गान्धारपतिं सहानुजम् ॥ ७१ ॥
गुरोः सुतं चावरजं तथाऽऽत्मनः
पदातिनोऽथ द्विपसादिनश्च तान्।
निरुन्ध्यताभिद्रवताच्युतार्जुनौ
श्रमेण संयोजयताशु सर्वशः ॥ ७२ ॥
यथा भवद्भिर्भृशविक्षितावुभौ
सुखेन हन्यामहमद्य भूमिपाः।

राजन्! शत्रुहन्ता कर्ण शल्यसे ऐसा कहकर रणभूमिमें मेघके समान उच्चस्वरसे गर्जना करने लगा। उस समय आपके पुत्र दुर्योधनने निकट आकर उसका अभिनन्दन किया। उससे मिलकर कर्णने कुरुकुलके उस प्रमुख वीरसे, महाबाहु कृपाचार्य और कृतवर्मासे, भाइयोंसहित गान्धारराज शकुनिसे, गुरुपुत्र अश्वत्थामासे, अपने छोटे भाईसे तथा पैदल और गजारोही सैनिकोंसे इस प्रकार कहा—'वीरो! श्रीकृष्ण और अर्जुनपर धावा करो, उन्हें आगे बढ़नेसे रोको तथा शीघ्र ही सब प्रकारसे प्रयत्न करके उन्हें परिश्रमसे थका दो। भूमिपालो! ऐसा करो, जिससे तुम्हारेद्वारा अत्यन्त क्षत-विक्षत हुए उन दोनों कृष्णोंको आज मैं सुखपूर्वक मार सकूँ' ॥ ७०–७२½ ॥

तथेति चोक्त्वा त्वरिताः स्म तेऽर्जुनं
जिघांसवो वीरतराः समभ्ययुः॥ ७३ ॥
शरैश्च जघ्नुर्युधि तं महारथा
धनंजयं कर्णनिदेशकारिणः।

तब 'बहुत अच्छा' कहकर वे अत्यन्त वीर सैनिक बड़ी उतावलीके साथ अर्जुनको मार डालनेके लिये एक साथ आगे बढ़े। कर्णकी आज्ञाका पालन करनेवाले वे महारथी योद्धा युद्धस्थलमें बाणोंद्वारा अर्जुनको चोट पहुँचाने लगे॥

नदीनदं भूरिजलो महार्णवो
यथा तथा तान् समरेऽर्जुनोऽग्रसत्॥ ७४ ॥
न संदधानो न तथा शरोत्तमान्
प्रमुञ्चमानो रिपुभिः प्रदृश्यते।
धनंजयास्तैस्तु शरैर्विदारिता
हता निपेतुर्नरवाजिकुञ्जराः॥ ७५ ॥

परंतु जैसे प्रचुर जलसे भरा हुआ महासागर नदियों और नदोंके जलको आत्मसात् कर लेता है, उसी प्रकार अर्जुनने समराङ्गणमें उन सब वीरोंको ग्रस लिया। वे कब धनुषपर उत्तम बाणोंका संधान करते और कब उन्हें छोड़ते हैं, यह शत्रुओंको नहीं दिखायी देता था; किंतु अर्जुनके बाणोंसे विदीर्ण हुए हाथी, घोड़े और मनुष्य प्राणशून्य हो धड़ाधड़ गिरते जा रहे थे ॥ ७४-७५ ॥

शरार्चिषं गाण्डिवचारुमण्डलं
युगान्तसूर्यप्रतिमानतेजसम्।
न कौरवाः शेकुरुदीक्षितुं जयं
यथा रविं व्याधितचक्षुषो जनाः॥ ७६ ॥

उस समय अर्जुन प्रलयकालके सूर्यकी भाँति तेजस्वी जान पड़ते थे। उनके बाण किरण-समूहोंके समान सब ओर छिटक रहे थे। खींचा हुआ गाण्डीव धनुष सूर्यके मनोहर मण्डल-सा प्रतीत होता था। जैसे रोगी नेत्रोंवाले मनुष्य सूर्यकी ओर नहीं देख सकते, उसी प्रकार कौरव अर्जुनकी ओर देखनेमें असमर्थ हो गये थे ॥ ७६ ॥

शरोत्तमान् सम्प्रहितान् महारथै-
श्चिच्छेद पार्थः प्रहसञ्छरौघैः।
भूयश्च तानहनद् बाणसङ्घान्
गाण्डीवधन्वायतपूर्णमण्डलः ॥ ७७ ॥

कौरवमहारथियोंके चलाये हुए उत्तम बाणोंको कुन्तीकुमारने अपने शरसमूहोंद्वारा हँसते-हँसते काट दिया। उनका गाण्डीव धनुष खींचा जाकर पूरा मण्डलाकार बन गया था और उसके द्वारा वे उन शत्रु-सैनिकोंपर बारंबार बाण-समूहोंका प्रहार करते थे ॥ ७७ ॥

यथोग्ररश्मिः शुचिशुक्रमध्यगः
सुखं विवस्वान् हरते जलौघान्।
तथार्जुनो बाणगणान् निरस्य
ददाह सेनां तव पार्थिवेन्द्र ॥ ७८ ॥

राजेन्द्र ! जैसे ज्येष्ठ और आषाढ़के मध्यवर्ती प्रचण्ड किरणोंवाले सूर्यदेव धरतीके जलसमूहोंको अनायास ही सोख लेते हैं, उसी प्रकार अर्जुन अपने बाणसमूहोंका प्रहार करके आपकी सेनाको भस्म करने लगे ॥ ७८ ॥

तमभ्यधावद् विसृजन् कृपः शरां-
स्तथैव भोजस्तव चात्मजः स्वयम्।
महारथो द्रोणसुतश्च सायकै-
रवाकिरंस्तोयधरा यथाचलम् ॥ ७९ ॥

उस समय कृपाचार्य उनपर बाण-समूहोंकी वर्षा करते हुए उनकी ओर दौड़े। इसी प्रकार कृतवर्मा, आपके पुत्र स्वयं राजा दुर्योधन और महारथी अश्वत्थामा भी पर्वतपर वर्षा करनेवाले बादलोंके समान अर्जुनपर बाणोंकी वृष्टि करने लगे ॥ ७९ ॥

जिघांसुभिस्तान् कुशलः शरोत्तमान्
महाहवे सम्प्रहितान् प्रयत्नतः।
शरैः प्रचिच्छेद स पाण्डवस्त्वरन्
पराभिनद् वक्षसि चेषुभिस्त्रिभिः ॥ ८० ॥

वधकी इच्छासे आक्रमण करनेवाले उन सब योद्धाओंद्वारा प्रयत्नपूर्वक चलाये गये उन उत्तम बाणोंको महासमरमें युद्धकुशल पाण्डुपुत्र अर्जुनने तुरंत ही अपने बाणोंद्वारा काट डाला और उन सबकी छातीमें तीन-तीन बाण मारे ॥

स गाण्डिवव्यायतपूर्णमण्डल-
स्तपन् रिपूनर्जुनभास्करो बभौ।
शरोग्ररश्मिः शुचिशुक्रमध्यगो
यथैव सूर्यः परिवेषवांस्तथा ॥ ८१ ॥

खींचे हुए गाण्डीव धनुषरूपी पूर्ण मण्डलसे युक्त अर्जुनरूपी सूर्य अपनी बाणरूपी प्रचण्ड किरणोंसे प्रकाशित हो शत्रुओंको संताप देते हुए ज्येष्ठ और आषाढ़के मध्यवर्ती उस सूर्यके समान सुशोभित हो रहे थे, जिसपर घेरा पड़ा हुआ हो ॥ ८१ ॥

अथाग्र्यबाणैर्दशभिर्धनंजयं
पराभिनद् द्रोणसुतोऽच्युतं त्रिभिः।
चतुर्भिरश्वांश्चतुरः कपिं ततः
शरैश्च नाराचवरैरवाकिरत् ॥ ८२ ॥

तदनन्तर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने दस बाणोंसे अर्जुनको, तीनसे भगवान् श्रीकृष्णको और चारसे उनके चारों घोड़ोंको घायल कर दिया। तत्पश्चात् वह ध्वजापर बैठे हुए वानरके ऊपर बाणों तथा उत्तम नाराचोंकी वर्षा करने लगा ॥ ८२ ॥

तथापि तं प्रस्फुरदात्तकार्मुकं
त्रिभिः शरैर्यन्तृशिरः क्षुरेण।
हयांश्चतुर्भिश्च पुनस्त्रिभिर्ध्वजं
धनंजयो द्रौणिरथादपातयत् ॥ ८३ ॥

तब अर्जुनने तीन बाणोंसे चमकते हुए उसके धनुषको, एक छुरेके द्वारा सारथिके मस्तकको, चार बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको तथा तीनसे उसके ध्वजको भी अश्वत्थामाके रथसे नीचे गिरा दिया ॥ ८३ ॥

स रोषपूर्णो मणिवज्रहाटकै-
रलङ्कृतं तक्षकभोगवर्चसम्।
महाधनं कार्मुकमन्यदाददे
यथा महाहिप्रवरं गिरेस्तटात् ॥ ८४ ॥

फिर अश्वत्थामाने रोषमें भरकर मणि, हीरा और सुवर्णसे अलंकृत तथा तक्षकके शरीरकी भाँति अरुण कान्तिवाले दूसरे बहुमूल्य धनुषको हाथमें लिया, मानो पर्वतके किनारेसे विशाल अजगरको उठा लिया हो ॥ ८४ ॥

स्वमायुधं चोपनिकीर्य भूतले
धनुश्च कृत्वा सगुणं गुणाधिकः।
समार्दयत्तावजितौ नरोत्तमौ
शरोत्तमैर्द्रौणिरविध्यदन्तिकात् ॥ ८५ ॥

अपने टूटे हुए धनुषको पृथ्वीपर फेंककर अधिक गुणशाली अश्वत्थामाने उस धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और किसीसे पराजित न होनेवाले उन दोनों नरश्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुनको उत्तम बाणोंद्वारा निकटसे पीड़ित एवं घायल करना आरम्भ किया ॥ ८५ ॥

कृपश्च भोजश्च तवात्मजश्च ते
शरैरनेकैर्युधि पाण्डवर्षभम्।
महारथाः संयुगमूर्धनि स्थिता-
स्तमोनुदं वारिधरा इवापतन् ॥ ८६ ॥

युद्धके मुहानेपर खड़े हुए कृपाचार्य, कृतवर्मा और आपके पुत्र दुर्योधन—ये तीन महारथी युद्धस्थलमें अनेक बाणोंद्वारा पाण्डवप्रवर अर्जुनको चोट पहुँचाने लगे, मानो बहुत-से मेघ सूर्यदेवपर टूट पड़े हों ॥ ८६ ॥

कृपस्य पार्थः सशरं शरासनं
हयान् ध्वजान् सारथिमेव पत्रिभिः।
समार्पयद् बाहुसहस्रविक्रम-
स्तथा यथा वज्रधरः पुरा बलेः ॥ ८७ ॥

सहस्र भुजाओंवाले कार्तवीर्य अर्जुनके समान पराक्रमी कुन्तीकुमार अर्जुनने अपने बाणोंद्वारा कृपाचार्यके बाण-

सहित धनुष, घोड़े, ध्वज और सारथिको भी उसी प्रकार बींध डाला, जैसे पूर्वकालमें वज्रधारी इन्द्रने राजा बलिके धनुष आदिको क्षतिग्रस्त कर दिया था ॥ ८७ ॥

स पार्थबाणैर्विनिपातितायुधो
ध्वजावमर्दे च कृते महाहवे।
कृतः कृपो बाणसहस्रयन्त्रितो
यथाऽऽपगेयः प्रथमं किरीटिना ॥८८॥

उस महासमरमें अर्जुनके बाणोंद्वारा जब कृपाचार्यके आयुध नीचे गिरा दिये गये और ध्वज खण्डित कर दिया गया, उस समय किरीटधारी अर्जुनने जैसे पहले भीष्मजीको सहस्रों बाणोंसे आवेष्टित कर दिया था, उसी प्रकार कृपाचार्यको हजारों बाणोंसे बाँध-सा लिया ॥ ८८ ॥

शरैः प्रचिच्छेद तवात्मजस्य
ध्वजं धनुश्च प्रचकर्त नर्दतः।
जघान चाश्वान् कृतवर्मणः शुभान्
ध्वजं च चिच्छेद ततः प्रतापवान् ॥८९॥

तत्पश्चात् प्रतापी अर्जुनने गर्जना करनेवाले आपके पुत्र दुर्योधनके ध्वज और धनुषको अपने बाणोंद्वारा काट दिया। फिर कृतवर्माके सुन्दर घोड़ोंको मार डाला और उसकी ध्वजाके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ८९ ॥

सवाजिसूतेष्वसनान् सकेतनान्
जघान नागाश्वरथांस्त्वरंश्च सः।
ततः प्रकीर्णं सुमहद् बलं तव
प्रदारितः सेतुरिवाम्भसा यथा॥ ९० ॥

इसके बाद अर्जुनने बड़ी उतावलीके साथ घोड़े, सारथि, धनुष और ध्वजाओंसहित रथों, हाथियों और अश्वोंको भी मारना आरम्भ किया। फिर तो पानीसे टूटे हुए पुलके समान आपकी वह विशाल सेना सब ओर बिखर गयी॥

ततोऽर्जुनस्याशु रथेन केशव-
श्चकार शत्रूनपसव्यमातुरान्।
ततः प्रयातं त्वरितं धनंजयं
शतक्रतुं वृत्रनिजघ्नुषं यथा ॥ ९१ ॥
समन्वधावन् पुनरुत्थितैर्ध्वजै
रथैः सुयुक्तैरपरे युयुत्सवः।

तदनन्तर श्रीकृष्णने व्याकुल हुए समस्त शत्रुओंको अपने रथके द्वारा शीघ्र ही दाहिने कर दिया। फिर वृत्रासुरको मारनेकी इच्छासे आगे बढ़नेवाले इन्द्रके समान वेगपूर्वक आगे जाते हुए धनंजयपर दूसरे योद्धाओंने ऊँचे किये ध्वजवाले सुसज्जित रथोंद्वारा पुनः धावा किया ॥ ९१½ ॥

अथाभिसृत्य प्रतिवार्य तानरीन्
धनंजयस्याभिमुखं महारथाः ॥ ९२ ॥
शिखण्डिशैनेययमाः शितैः शरै-
र्विदारयन्तो व्यनदन् सुभैरवम्।

अर्जुनके सम्मुख जाते हुए उन शत्रुओंके सामने पहुँचकर महारथी शिखण्डी, सात्यकि, नकुल और सहदेवने उन्हें रोका और पैने बाणोंद्वारा उन सबको विदीर्ण करते हुए भयंकर गर्जना की ॥ ९२½ ॥

ततोऽभिजघ्नुः कुपिताः परस्परं
शरैस्तदाञ्जोगतिभिः सुतेजनैः ॥ ९३ ॥
कुरुप्रवीराः सह सृंजयैर्यथा-
सुराः पुरा देवगणैस्तथाऽऽहवे।

तत्पश्चात् सृञ्जयोंके साथ भिड़े हुए कौरव वीर कुपित हो शीघ्रगामी और तेज बाणोंद्वारा एक दूसरेपर उसी प्रकार चोट करने लगे, जैसे पूर्वकालमें देवताओंके साथ युद्ध करनेवाले असुरोंने संग्राममें परस्पर प्रहार किया था ॥ ९३½ ॥

जयेप्सवः स्वर्गमनाय चोत्सुकाः
पतन्ति नागाश्वरथाः परंतप ॥ ९४ ॥
जगर्जुरुच्चैर्बलवच्च विव्यधुः
शरैः सुमुक्तैरितरेतरं पृथक्।

शत्रुओंको तपानेवाले नरेश! हाथीसवार, घुड़सवार तथा रथी योद्धा विजय चाहते हुए स्वर्गलोकमें जानेके लिये उत्सुक हो शत्रुओंपर टूट पड़ते, उच्च स्वरसे गर्जते और अच्छी तरह छोड़े हुए बाणोंद्वारा एक दूसरेको पृथक्-पृथक् गहरी चोट पहुँचाते थे ॥ ९४½ ॥

शरान्धकारे तु महात्मभिः कृते
महामृधे योधवरैः परस्परम्।
चतुर्दिशो वै विदिशश्च पार्थिव
प्रभा च सूर्यस्य तमोवृताभवत् ॥९५॥

महाराज! उस महासमरमें महामनस्वी श्रेष्ठ योद्धाओंने परस्पर छोड़े हुए बाणोंद्वारा घोर अन्धकार फैला दिया। चारों दिशाएँ, विदिशाएँ तथा सूर्यकी प्रभा भी उस अन्धकारसे आच्छादित हो गयीं ॥ ९५ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक उन्यासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७९ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३ श्लोक मिलाकर कुल ९८ श्लोक हैं)

अशीतितमोऽध्यायः

अर्जुनका कौरवसेनाको नष्ट करके आगे बढ़ना

संजय उवाच

राजन् कुरूणां प्रवरैर्बलैर्भीममभिद्रुतम्।
मज्जन्तमिव कौन्तेयमुज्जिहीर्षुर्धनंजयः ॥ १ ॥
विसृज्य सूतपुत्रस्य सेनां भारत सायकैः।

प्राहिणोन्मृत्युलोकाय परवीरान् धनंजयः ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! कौरवसेनाके प्रमुख वीरोंने कुन्तीपुत्र भीमसेनपर धावा किया था और वे उस सैन्य-सागरमें डूबते-से जान पड़ते थे। भारत! उस समय उनका उद्धार करनेके लिये अर्जुनने सूतपुत्रकी सेनाको छोड़कर उधर ही आक्रमण किया और बाणोंद्वारा शत्रुपक्षके बहुत-से वीरोंको यमलोक भेज दिया ॥ १-२ ॥

ततोऽस्याम्बरमाश्रित्य शरजालानि भागशः।
अदृश्यन्त तथान्ये च निघ्नन्तस्तव वाहिनीम् ॥ ३ ॥

तदनन्तर अर्जुनके बाणजाल आकाशके विभिन्न भागोंमें छा गये, वे तथा और भी बहुत-से बाण आपकी सेनाका संहार करते दिखायी दिये ॥ ३ ॥

स पक्षिसंघाचरितमाकाशं पूरयञ्शरैः।
धनंजयो महाबाहुः कुरूणामन्तकोऽभवत् ॥ ४ ॥

जहाँ पक्षियोंके झुंड उड़ा करते थे, उस आकाशको बाणोंसे भरते हुए महाबाहु धनंजय वहाँ कौरव-सैनिकोंके काल बन गये ॥ ४ ॥

ततो भल्लैः क्षुरप्रैश्च नाराचैर्विमलैरपि।
गात्राणि प्राच्छिनत् पार्थः शिरांसि च चकर्त ह ॥ ५ ॥

पार्थने भल्लों, क्षुरप्रों तथा निर्मल नाराचोंद्वारा शत्रुओंका अङ्ग-अङ्ग काट डाला और उनके मस्तक भी धड़से अलग कर दिये ॥ ५ ॥

छिन्नगात्रैर्विकवचैर्विशिरस्कैः समन्ततः।
पातितैश्च पतद्भिश्च योधैरासीत् समावृता ॥ ६ ॥

जिनके शरीरोंके टुकड़े-टुकड़े हो गये थे, कवच कटकर गिर गये थे और मस्तक भी काट डाले गये थे, ऐसे बहुत-से योद्धा वहाँ पृथ्वीपर गिरे थे और गिरते जा रहे थे, उन सबकी लाशोंसे वहाँकी भूमि सब ओरसे पट गयी थी ॥ ६ ॥

धनंजयशराभ्यस्तैः स्यन्दनाश्वरथद्विपैः।
संछिन्नभिन्नविध्वस्तैर्व्यङ्गाङ्गावयवैः स्तृता ॥ ७ ॥

जिनपर अर्जुनके बाणोंकी बारंबार मार पड़ी थी, वे रथके घोड़े, रथ और हाथी छिन्न-भिन्न और विध्वस्त हो गये थे; उनका एक-एक अङ्ग अथवा अवयव कटकर अलग हो गया था। इन सबके द्वारा वहाँकी भूमि आच्छादित हो गयी थी ॥ ७ ॥

सुदुर्गमा सुविषमा घोरात्यर्थं सुदुर्दृशा।
रणभूमिरभूद् राजन् महावैतरणी यथा ॥ ८ ॥

राजन्! उस समय रणभूमि महावैतरणी नदीके समान अत्यन्त दुर्गम, बहुत ऊँची-नीची और भयंकर हो गयी थी, उसकी ओर देखना भी अत्यन्त कठिन जान पड़ता था ॥

ईषाचक्राक्षभग्नैश्च व्यश्वैः साश्वैश्च युध्यताम्।
ससूतैर्हतसूतैश्च रथैस्तीर्णाभवन्मही ॥ ९ ॥

योद्धाओंके टूटे-फूटे रथोंसे रणभूमि ढक गयी थी। उन रथोंके ईषादण्ड, पहिये और धुरे खण्डित हो गये थे। कुछ रथोंके घोड़े और सारथि जीवित थे और कुछके अश्व एवं सारथि मार डाले गये थे ॥ ९ ॥

सुवर्णवर्णसंनाहैर्योधैः कनकभूषणैः।
आस्थिताः क्लृप्तवर्माणो भद्रा नित्यमदा द्विपाः ॥ १० ॥
क्रुद्धाः क्रूरैर्महामात्रैः पार्ष्ण्यङ्गुष्ठप्रचोदिताः।
चतुःशताः शरवरैर्हताः पेतुः किरीटिना ॥ ११ ॥
पर्यस्तानीव शृङ्गाणि ससत्त्वानि महागिरेः।
धनंजयशराभ्यस्तैः स्तीर्णा भूर्वरवारणैः ॥ १२ ॥

किरीटधारी अर्जुनके उत्तम बाणोंसे आहत होकर नित्य मद बहानेवाले, कवचधारी एवं मङ्गलमय लक्षणोंसे युक्त चार सौ रोषभरे हाथी धराशायी हो गये। उन हाथियोंपर सुवर्णमय कवच और सोनेके आभूषण धारण करनेवाले योद्धा बैठे थे और क्रूर स्वभाववाले महावत उन्हें अपने पैरोंकी एड़ियों तथा अँगूठोंसे आगे बढ़नेकी प्रेरणा दे रहे थे। उन सबके साथ गिरे हुए वे हाथी जीव-जन्तुओंसहित धराशायी हुए महान् पर्वतके शिखरोंके समान सब ओर पड़े थे। अर्जुनके बाणोंसे विशेष घायल होकर गिरे हुए उन गजराजोंके शरीरोंसे रणभूमि ढक गयी थी ॥ १०-१२ ॥

समन्ताज्जलदप्रख्यान् वारणान् मदवर्षिणः।
अभिपेदेऽर्जुनरथो घनान् भिन्दन्निवांशुमान् ॥ १३ ॥

जैसे अंशुमाली सूर्य बादलोंको छिन्न-भिन्न करते हुए प्रकाशित हो उठते हैं, उसी प्रकार अर्जुनका रथ सब ओरसे मेघोंकी घटाके समान काले मदस्रावी गजराजोंको विदीर्ण करता हुआ वहाँ आ पहुँचा था ॥ १३ ॥

हतैर्गजमनुष्याश्वैर्भिन्नैश्च बहुधा रथैः।
विशस्त्रयन्त्रकवचैर्युद्धशौण्डैर्गतासुभिः ॥ १४ ॥
अपविद्धायुधैर्मार्गः स्तीर्णोऽभूत् फाल्गुनेन वै।

मारे गये हाथियों, मनुष्यों और घोड़ोंसे; टूट-फूटकर बिखरे हुए अनेकानेक रथोंसे; शस्त्र, यन्त्र तथा कवचोंसे रहित हुए युद्धकुशल प्राणशून्य योद्धाओंसे और इधर-उधर फेंके हुए आयुधोंसे अर्जुनने वहाँके मार्गको आच्छादित कर दिया था ॥ १४½ ॥

व्यस्फारयद् वै गाण्डीवं सुमहद् भैरवारवम् ॥ १५ ॥
घोरवज्रविनिष्पेषं स्तनयित्नुरिवाम्बरे।

उन्होंने आकाशमें मेघके समान भयानक वज्रपातके शब्दको तिरस्कृत करनेवाले भयंकर स्वरमें अपने विशाल गाण्डीव धनुषकी टंकार की ॥ १५½ ॥

ततः प्रादीर्यत चमूर्धनंजयशराहता ॥ १६ ॥
महावातसमाविद्धा महानौरिव सागरे।

तदनन्तर अर्जुनके बाणोंसे आहत हुई कौरवसेना समुद्रमें उठे तूफानसे टकराये हुए जहाजके समान विदीर्ण हो उठी ॥

नानारूपाः प्राणहराः शरा गाण्डीवचोदिताः ॥ १७ ॥

अलातोल्काशनिप्रख्यास्तव सैन्यं विनिर्दहन्।

गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए प्राण लेनेवाले नाना प्रकारके बाण जो अलात, उल्का और बिजलीके समान प्रकाशित हो रहे थे, आपकी सेनाको दग्ध करने लगे ॥ १७½ ॥

महागिरौ वेणुवनं निशि प्रज्वलितं यथा ॥ १८ ॥
तथा तव महासैन्यं प्रास्फुरच्छरपीडितम्।

जैसे रात्रिकालमें किसी महान् पर्वतपर बाँसोंका वन जल रहा हो, उसी प्रकार अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित हुई आपकी विशाल सेना आगकी लपटोंसे घिरी हुई-सी प्रतीत हो रही थी ॥ १८½ ॥

संपिष्टदग्धविध्वस्तं तव सैन्यं किरीटिना ॥ १९ ॥
हृतं प्रविहतं बाणैः सर्वतः प्रद्रुतं दिशः।

किरीटधारी अर्जुनने आपकी सेनाको पीस डाला, जला दिया, विध्वस्त कर दिया, बाणोंसे बींध डाला और सम्पूर्ण दिशाओंमें भगा दिया ॥ १९½ ॥

महावने मृगगणा दावाग्नित्रासिता यथा ॥ २० ॥
कुरवः पर्यवर्तन्त निर्दग्धाः सव्यसाचिना।

जैसे विशाल वनमें दावानलसे डरे हुए मृगोंके समूह इधर-उधर भागते हैं, उसी प्रकार सव्यसाची अर्जुनके बाण-रूपी अग्निसे जलते हुए कौरवसैनिक चारों ओर चक्कर काट रहे थे ॥ २०½ ॥

उत्सृज्य च महाबाहुं भीमसेनं तथा रणे ॥ २१ ॥
बलं कुरूणामुद्विग्नं सर्वमासीत् पराङ्मुखम्।

रणभूमिमें उद्विग्न हुई सारी कौरवसेनाने महाबाहु भीमसेनको छोड़कर युद्धसे मुँह मोड़ लिया ॥ २१½ ॥

ततः कुरुषु भग्नेषु बीभत्सुरपराजितः ॥ २२ ॥
भीमसेनं समासाद्य मुहूर्तं सोऽभ्यवर्तत।

इस प्रकार कौरवसैनिकोंके भाग जानेपर कभी पराजित न होनेवाले अर्जुन भीमसेनके पास पहुँचकर दो घड़ीतक रुके रहे ॥ २२½ ॥

समागम्य च भीमेन मन्त्रयित्वा च फाल्गुनः ॥ २३ ॥
विशल्यमरुजं चास्मै कथयित्वा युधिष्ठिरम्।

फिर भीमसे मिलकर उन्होंने कुछ सलाह की और यह बताया कि राजा युधिष्ठिरके शरीरसे बाण निकाल दिये गये हैं, अतः वे इस समय स्वस्थ हैं ॥ २३½ ॥

भीमसेनाभ्यनुज्ञातस्ततः प्रायाद् धनंजयः ॥ २४ ॥
नादयन् रथघोषेण पृथिवीं द्यां च भारत।

भारत ! तत्पश्चात् भीमसेनकी आज्ञा ले अर्जुन अपने रथकी घर्घराहटसे पृथ्वी और आकाशको गुँजाते हुए वहाँसे चल दिये ॥ २४½ ॥

ततः परिवृतो वीरैर्दशभिर्योधपुङ्गवैः ॥ २५ ॥
दुःशासनादवरजैस्तव पुत्रैर्धनंजयः।

इसी समय आपके दस वीर पुत्रोंने, जो योद्धाओंमें श्रेष्ठ और दुःशासनसे छोटे थे, अर्जुनको चारों ओरसे घेर लिया ॥ २५½ ॥

ते तमभ्यर्दयन् बाणैरुल्काभिरिव कुञ्जरम् ॥ २६ ॥
आततेष्वसनाः शूरा नृत्यन्त इव भारत।

भरतनन्दन ! जैसे शिकारी लुआठोंसे हाथीको मारते हैं, उसी प्रकार अपने धनुषको ताने हुए उन शूर-वीरोंने नाचते हुए-से वहाँ अर्जुनको बाणोंद्वारा व्यथित कर डाला ॥ २६½ ॥

अपसव्यांस्तु तांश्चक्रे रथेन मधुसूदनः ॥ २७ ॥
न युक्तान् हि स तान् मेने यमायाशु किरीटिना।

उस समय भगवान् श्रीकृष्णने यह सोचकर कि अर्जुन-द्वारा इन सबको यमलोकमें भेज देना उचित नहीं है, रथके द्वारा उन्हें शीघ्र ही अपने दाहिने भागमें कर दिया ॥ २७½ ॥

तथान्ये प्राद्रवन् मूढाः पराङ्मुखरथेऽर्जुने ॥ २८ ॥
तेषामापततां केतूनश्वांश्चापानि सायकान्।
नाराचैरर्धचन्द्रैश्च क्षिप्रं पार्थो न्यपातयत् ॥ २९ ॥

जब अर्जुनका रथ दूसरी ओर जाने लगा, तब दूसरे मूढ़ कौरव योद्धा लोग उनपर टूट पड़े। उस समय कुन्तीकुमार अर्जुनने उन आक्रमणकारियोंके ध्वज, अश्व, धनुष और बाणोंको नाराचों और अर्धचन्द्रोंद्वारा शीघ्र ही काट गिराया ॥ २८-२९ ॥

अथान्यैर्बहुभिर्भल्लैः शिरांस्येषामपातयत्।
रोषसंरक्तनेत्राणि संदष्टौष्ठानि भूतले ॥ ३० ॥
तानि वक्त्राणि विबभुः कमलानीव भूरिशः।

तदनन्तर अन्य बहुत-से भल्लोंद्वारा उन सबके मस्तक काट डाले। वे मस्तक रोषसे लाल हुए नेत्रोंसे युक्त थे और उनके ओठ दाँतोंतले दबे हुए थे। पृथ्वीपर गिरे हुए उनके वे मुख बहुसंख्यक कमलपुष्पोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ ३०½ ॥

तांस्तु भल्लैर्महावेगैर्दशभिर्दश भारत ॥ ३१ ॥
रुक्माङ्गदान् रुक्मपुङ्खैर्हत्वा प्रायादमित्रहा ॥ ३२ ॥

भारत ! शत्रुओंका संहार करनेवाले अर्जुन सुवर्णमय पंखवाले महान् वेगशाली दस भल्लोंद्वारा सोनेके अंगदोंसे विभूषित उन दसों वीरोंको बींधकर आगे बढ़ गये ॥ ३१-३२ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धेऽशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक अस्सीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८० ॥

एकाशीतितमोऽध्यायः

अर्जुन और भीमसेनके द्वारा कौरव वीरोंका संहार तथा कर्णका पराक्रम

संजय उवाच

तं प्रयान्तं महावेगैरश्वैः कपिवरध्वजम्।
युद्धायाभ्यद्रवन् वीराः कुरूणां नवती रथाः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं— राजन् ! जिनकी ध्वजामें श्रेष्ठ कपि-

का चिह्न है, उन वीर अर्जुनको महावेगशाली अश्वोंद्वारा आगे बढ़ते देख कौरव-दलके नब्बे वीर रथियोंने युद्धके लिये धावा किया ॥ १ ॥

कृत्वा संशप्तका घोरं शपथं पारलौकिकम् ।
परिवव्रुर्नरव्याघ्रा नरव्याघ्रं रणेऽर्जुनम् ॥ २ ॥

उन नरव्याघ्र संशप्तक वीरोंने परलोकसम्बन्धी घोर शपथ खाकर पुरुषसिंह अर्जुनको रणभूमिमें चारों ओरसे घेर लिया ॥ २ ॥

कृष्णः श्वेतान् महावेगानश्वान् काञ्चनभूषणान्।
मुक्ताजालप्रतिच्छन्नान् प्रैषीत् कर्णरथं प्रति ॥ ३ ॥

श्रीकृष्णने सोनेके आभूषणोंसे विभूषित तथा मोतीकी जालियोंसे आच्छादित श्वेत रंगके महान् वेगशाली अश्वोंको कर्णके रथकी ओर बढ़ाया ॥ ३ ॥

ततः कर्णरथं यान्तमरिघ्नं तं धनंजयम् ।
बाणवर्षैरभिघ्नन्तः संशप्तकरथा ययुः ॥ ४ ॥

तत्पश्चात् कर्णके रथकी ओर जाते हुए शत्रुसूदन धनंजयको बाणोंकी वर्षासे घायल करते हुए संशप्तक रथियोंने उनपर आक्रमण कर दिया ॥ ४ ॥

त्वरमाणांस्तु तान् सर्वान् ससूतेष्वसनध्वजान् ।
जघान नवतिं वीरानर्जुनो निशितैः शरैः ॥ ५ ॥

सारथि, धनुष और ध्वजसहित उतावलीके साथ आक्रमण करनेवाले उन सभी नब्बे वीरोंको अर्जुनने अपने पैने बाणोंद्वारा मार गिराया ॥ ५ ॥

तेऽपतन्त हता बाणैर्नानारूपैः किरीटिना ।
सविमाना यथा सिद्धाः स्वर्गात् पुण्यक्षये तथा॥ ६ ॥

किरीटधारी अर्जुनके चलाये हुए नाना प्रकारके बाणोंसे मारे जाकर वे संशप्तक रथी पुण्यक्षय होनेपर विमानसहित स्वर्गसे गिरनेवाले सिद्धोंके समान रथसे नीचे गिर पड़े ॥६॥

ततः सरथनागाश्वाः कुरवः कुरुसत्तमम् ।
निर्भया भरतश्रेष्ठमभ्यवर्तन्त फाल्गुनम् ॥ ७ ॥

तदनन्तर रथ, हाथी और घोड़ोंसहित बहुत-से कौरव वीर निर्भय हो भरतभूषण कुरुश्रेष्ठ अर्जुनका सामना करनेके लिये चढ़ आये ॥ ७ ॥

तदायस्तमनुष्याश्वमुदीर्णवरवारणम् ।
पुत्राणां ते महासैन्यं समरौत्सीद् धनंजयम् ॥ ८ ॥

आपके पुत्रोंकी उस विशाल सेनामें मनुष्य और अश्व तो थक गये थे, परंतु बड़े-बड़े हाथी उद्धत होकर आगे बढ़ रहे थे। उस सेनाने अर्जुनकी गति रोक दी ॥ ८ ॥

शक्त्यृष्टितोमरप्रासैर्गदानिस्त्रिंशसायकैः ।
प्राच्छादयन् महेष्वासाः कुरवः कुरुनन्दनम् ॥ ९ ॥

उन महाधनुर्धर कौरवोंने कुरुकुलनन्दन अर्जुनको शक्ति, ऋष्टि, तोमर, प्रास, गदा, खड्ग और बाणोंके द्वारा ढक दिया ॥ ९ ॥

तामन्तरिक्षे विततां शस्त्रवृष्टिं समन्ततः ।
व्यधमत् पाण्डवो बाणैस्तमः सूर्य इवांशुभिः ॥ १० ॥

परंतु जैसे सूर्य अपनी किरणोंद्वारा अन्धकारको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार पाण्डुपुत्र अर्जुनने आकाशमें सब ओर फैली हुई उस बाणवर्षाको छिन्न-भिन्न कर डाला ॥ १० ॥

ततो म्लेच्छाः स्थिता मत्तैस्त्रयोदशशतैर्गजैः ।
पार्श्वतो व्यहनन् पार्थं तव पुत्रस्य शासनात् ॥ ११ ॥

तब आपके पुत्र दुर्योधनकी आज्ञासे म्लेच्छसैनिक तेरह सौ मतवाले हाथियोंके साथ आ पहुँचे और पार्श्वभागमें खड़े हो अर्जुनको घायल करने लगे ॥ ११ ॥

कर्णिनालीकनाराचैस्तोमरप्रासशक्तिभिः ।
मुसलैर्भिन्दिपालैश्च रथस्थं पार्थमार्दयन् ॥ १२ ॥

उन्होंने रथपर बैठे हुए अर्जुनको कर्णी, नालीक, नाराच, तोमर, मुसल, प्रास, भिंदिपाल और शक्तियोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥ १२ ॥

तां शस्त्रवृष्टिमतुलां द्विपहस्तैः प्रवेरिताम् ।
चिच्छेद निशितैर्भल्लैरर्धचन्द्रैश्च फाल्गुनः ॥ १३ ॥

हाथियोंकी सूँड़ोंद्वारा की हुई उस अनुपम शस्त्रवर्षाको अर्जुनने तीखे भल्लों तथा अर्धचन्द्रोंसे नष्ट कर दिया ॥१३॥

अथ तान् द्विरदान् सर्वान् नानालिङ्गैः शरोत्तमैः।
सपताकध्वजारोहान् गिरीन् वज्रैरिवाहनत् ॥ १४ ॥

फिर नाना प्रकारके चिह्नवाले उत्तम बाणोंद्वारा पताका, ध्वज और सवारोंसहित उन सभी हाथियोंको उसी तरह मार गिराया, जैसे इन्द्रने वज्रके आघातोंसे पर्वतोंको धराशायी कर दिया था ॥ १४ ॥

ते हेमपुङ्खैरिषुभिरर्दिता हेममालिनः ।
हताः पेतुर्महानागाः साग्निज्वाला इवाद्रयः ॥ १५ ॥

सोनेके पंखवाले बाणोंसे पीड़ित हुए वे सुवर्णमालाधारी बड़े-बड़े गजराज मारे जाकर आगकी ज्वालाओंसे युक्त पर्वतों-के समान धरतीपर गिर पड़े ॥ १५ ॥

ततो गाण्डीवनिर्घोषो महानासीद् विशाम्पते ।
स्तनतां कूजतां चैव मनुष्यगजवाजिनाम् ॥ १६ ॥

प्रजानाथ! तदनन्तर गाण्डीव धनुषकी टंकारध्वनि बड़े जोर-जोरसे सुनायी देने लगी। साथ ही चिग्घाड़ते और आर्तनाद करते हुए मनुष्यों, हाथियों तथा घोड़ोंकी आवाज भी वहाँ गूँज उठी ॥ १६ ॥

कुञ्जराश्च हता राजन् दुद्रुवुस्ते समन्ततः ।
अश्वाश्च पर्यधावन्त हतारोहा दिशो दश ॥ १७ ॥

राजन्! घायल हाथी सब ओर भागने लगे। जिनके सवार मार दिये गये थे, वे घोड़े भी दसों दिशाओंमें दौड़ लगाने लगे ॥ १७ ॥

रथा हीना महाराज रथिभिर्वाजिभिस्तथा ।
गन्धर्वनगराकारा दृश्यन्ते स्म सहस्रशः ॥ १८ ॥

महाराज ! गन्धर्वनगरोंके समान सहस्रों विशाल रथ रथियों और घोड़ोंसे हीन दिखायी देने लगे ॥ १८ ॥

अश्वारोहा महाराज धावमाना इतस्ततः।
तत्र तत्रैव दृश्यन्ते निहताः पार्थसायकैः ॥ १९ ॥

राजेन्द्र ! अर्जुनके बाणोंसे घायल हुए अश्वारोही भी जहाँ-तहाँ इधर-उधर भागते दिखायी दे रहे थे ॥ १९ ॥

तस्मिन् क्षणे पाण्डवस्य बाह्वोर्बलमदृश्यत।
यत् सादिनो वारणांश्च रथांश्चैकोऽजयद् युधि॥२०॥

उस समय पाण्डुपुत्र अर्जुनकी भुजाओंका बल देखा गया, उन्होंने अकेले ही युद्धमें रथों, सवारों और हाथियोंको भी परास्त कर दिया ॥ २० ॥

(असंयुक्ताश्च ते राजन् परिवृत्ता रणं प्रति।
हया नागा रथाश्चैव नदन्तोऽर्जुनमभ्ययुः ॥)

राजन् ! तदनन्तर पृथक्-पृथक् वे हाथी, घोड़े और रथ पुनः युद्धस्थलमें लौट आये और अर्जुनके सामने गर्जना करते हुए डट गये ॥

ततस्त्र्यङ्गेण महता बलेन भरतर्षभ।
दृष्ट्वा परिवृतं राजन् भीमसेनः किरीटिनम् ॥ २१ ॥
हतावशेषानुत्सृज्य त्वदीयान् कतिचिद् रथान्।
जवेनाभ्यद्रवद् राजन् धनंजयरथं प्रति ॥ २२ ॥

नरेश्वर ! भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर अर्जुनको तीन अङ्गोंवाली विशाल सेनासे घिरा देख भीमसेन मरनेसे बचे हुए आपके कतिपय रथियोंको छोड़कर बड़े वेगसे धनंजयके रथकी ओर दौड़े ॥ २१-२२ ॥

ततस्तत् प्राद्रवत् सैन्यं हतभूयिष्ठमातुरम्।
दृष्ट्वार्जुनं तदा भीमो जगाम भ्रातरं प्रति ॥ २३ ॥

उस समय आपके अधिकांश सैनिक मारे जा चुके थे, बहुत-से घायल होकर आतुर हो गये थे। फिर तो कौरव-सेनामें भगदड़ मच गयी। यह सब देखते हुए भीमसेन अपने भाई अर्जुनके पास आ पहुँचे ॥ २३ ॥

हतावशिष्टांस्तुरगानर्जुनेन महाबलान्।
भीमो व्यधमदश्रान्तो गदापाणिर्महाहवे ॥ २४ ॥

भीमसेन अभी थके नहीं थे, उन्होंने हाथमें गदा ले उस महासमरमें अर्जुनद्वारा मारे जानेसे बचे हुए महाबली घोड़ों और सवारोंका संहार कर डाला ॥ २४ ॥

कालरात्रिमिवात्युग्रां नरनागाश्वभोजनाम्।
प्राकाराट्टपुरद्वारदारणीमतिदारुणाम् ॥ २५ ॥
ततो गदां नृनागाश्वेष्वाशु भीमो व्यवासृजत्।
सा जघान बहूनश्वानश्वारोहांश्च मारिष ॥ २६ ॥

मान्यवर नरेश ! तदनन्तर भीमसेनने कालरात्रिके समान अत्यन्त भयंकर, मनुष्यों, हाथियों और घोड़ोंको कालका ग्रास बनानेवाली, परकोटों, अट्टालिकाओं और नगरद्वारोंको भी विदीर्ण कर देनेवाली अपनी अति दारुण गदाका वहाँ मनुष्यों, गजराजों तथा अश्वोंपर तीव्रवेगसे प्रहार किया। उस गदाने बहुत-से घोड़ों और घुड़सवारोंका संहार कर डाला ॥ २५-२६ ॥

कार्ष्णायसतनुत्राणान् नरानश्वांश्च पाण्डवः।
पोथयामास गदया सशब्दं तेऽपतन् हताः ॥ २७ ॥

पाण्डुपुत्र भीमने काले लोहेका कवच पहने हुए बहुत-से मनुष्यों और अश्वोंको भी गदासे मार गिराया। वे सब-के-सब आर्तनाद करते हुए प्राणशून्य होकर गिर पड़े ॥ २७ ॥

दन्तैर्दशन्तो वसुधां शेरते क्षतजोक्षिताः।
भग्नमूर्धास्थिचरणाः क्रव्यादगणभोजनाः ॥ २८ ॥

घायल हुए कौरवसैनिक खूनसे नहाकर दाँतोंसे ओठ चबाते हुए धरतीपर सो गये थे, किन्हींका माथा फट गया था, किन्हींकी हड्डियाँ चूर-चूर हो गयी थीं और किन्हींके पाँव उखड़ गये थे। वे सब-के-सब मांसभक्षी पशुओंके भोजन बन गये थे ॥ २८ ॥

असृङ्मांसवसाभिश्च तृप्तिमभ्यागता गदा।
अस्थीन्यप्यश्नती तस्थौ कालरात्रीव दुर्दशा ॥ २९ ॥

वह गदा दुर्लक्ष्य कालरात्रिके समान शत्रुओंके रक्त, मांस और चर्बीसे तृप्त होकर उनकी हड्डियोंको भी चबाये जा रही थी ॥ २९ ॥

सहस्राणि दशाश्वानां हत्वा पत्तींश्च भूयसा।
भीमोऽभ्यधावत् संक्रुद्धो गदापाणिरितस्ततः ॥ ३० ॥

दस हजार घोड़ों और बहुसंख्यक पैदलोंका संहार करके क्रोधमें भरे हुए भीमसेन हाथमें गदा लेकर इधर-उधर दौड़ने लगे ॥ ३० ॥

गदापाणिं ततो भीमं दृष्ट्वा भारत तावकाः।
मेनिरे समनुप्राप्तं कालदण्डोद्यतं यमम् ॥ ३१ ॥

भरतनन्दन ! भीमसेनको गदा हाथमें लिये देख आपके सैनिक कालदण्ड लेकर आया हुआ यमराज मानने लगे ३१

स मत्त इव मातङ्गः संक्रुद्धः पाण्डुनन्दनः।
प्रविवेश गजानीकं मकरः सागरं यथा ॥ ३२ ॥

मतवाले हाथीके समान अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए पाण्डुनन्दन भीमसेनने शत्रुओंकी गजसेनामें प्रवेश किया, मानो मगर समुद्रमें जा घुसा हो ॥ ३२ ॥

विगाह्य च गजानीकं प्रगृह्य महतीं गदाम्।
क्षणेन भीमः संक्रुद्धस्तन्निन्ये यमसादनम् ॥ ३३ ॥

विशाल गदा हाथमें ले अत्यन्त कुपित हो भीमसेनने हाथियोंकी सेनामें घुसकर उसे क्षणभरमें यमलोक पहुँचा दिया॥

गजान् सकङ्कटान् मत्तान् सारोहान् सपताकिनः।
पततः समपश्याम सपक्षान् पर्वतानिव ॥ ३४ ॥

कवचों, सवारों और पताकाओंसहित मतवाले हाथियोंको हमने पंखधारी पर्वतोंके समान धराशायी होते देखा था ॥

हत्वा तु तद् गजानीकं भीमसेनो महाबलः।
पुनः स्वरथमास्थाय पृष्ठतोऽर्जुनमभ्ययात् ॥ ३५ ॥

महाबली भीमसेन उस गजसेनाका संहार करके पुनः अपने रथपर आ बैठे और अर्जुनके पीछे-पीछे चलने लगे ॥ ३५ ॥

ततः पराङ्मुखप्रायं निरुत्साहं बलं तव।
व्यालम्बत महाराज प्रायशः शस्त्रवेष्टितम् ॥ ३६ ॥

महाराज! उस समय भीमसेन और अर्जुनके अस्त्र-शस्त्रोंसे घिरी हुई आपकी अधिकांश सेना उत्साहशून्य, विमुख और जडवत् हो गयी ॥ ३६ ॥

विलम्बमानं तत् सैन्यमप्रगल्भमवस्थितम्।
दृष्ट्वा प्राच्छादयद् बाणैरर्जुनः प्राणतापनैः ॥ ३७ ॥

उस सेनाको जडवत्, उद्योगशून्य हुई देख अर्जुनने प्राणोंको संतप्त कर देनेवाले बाणोंद्वारा उसे आच्छादित कर दिया ॥ ३७ ॥

नराश्वरथमातङ्गा युधि गाण्डीवधन्वना।
शरव्रातैश्चिता रेजुः कदम्बा इव केसरैः ॥ ३८ ॥

युद्धस्थलमें गाण्डीवधारी अर्जुनके बाणोंसे छिदे हुए मनुष्य, घोड़े, रथ और हाथी केसरयुक्त कदम्बपुष्पोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ ३८ ॥

ततः कुरूणामभवदार्तनादो महान् नृप।
नराश्वनागासुहरैर्वध्यतामर्जुनेषुभिः ॥ ३९ ॥

नरेश्वर ! तदनन्तर मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंके प्राण लेनेवाले अर्जुनके बाणोंद्वारा हताहत होते हुए कौरवोंका महान् आर्तनाद प्रकट होने लगा ॥ ३९ ॥

हाहाकृतं भृशं त्रस्तं लीयमानं परस्परम्।
अलातचक्रवत् सैन्यं तदाभ्रमत तावकम् ॥ ४० ॥

महाराज ! उस समय अत्यन्त भयभीत हो हाहाकार मचाती और एक दूसरेकी आड़में छिपती हुई आपकी सेना अलातचक्रके समान वहाँ चक्कर काटने लगी ॥ ४० ॥

ततस्तद् युद्धमभवत् कुरूणां सुमहद् बलैः।
न ह्यत्रासीदनिर्भिन्नो रथः सादी हयो गजः ॥ ४१ ॥

तत्पश्चात् कौरवोंकी सेनाके साथ महान् युद्ध होने लगा। उसमें कोई भी ऐसा रथ, सवार, घोड़ा अथवा हाथी नहीं था, जो अर्जुनके बाणोंसे विदीर्ण न हो गया हो ॥ ४१ ॥

आदीप्तमिव तत् सैन्यं शरैश्छिन्नतनुच्छदम्।
आसीत् सुशोणितक्लिन्नं फुल्लाशोकवनं यथा ॥ ४२ ॥

उस समय सारी सेना जलती हुई-सी दिखायी देती थी। बाणोंसे उसके कवच छिन्न-भिन्न हो गये थे तथा वह खूनसे लथपथ हो खिले हुए अशोकवनके समान प्रतीत होती थी ॥ ४२ ॥

(तत् सैन्यं भरतश्रेष्ठ वध्यमानं शितैः शरैः।
न जहौ समरं प्राप्य फाल्गुनं शत्रुतापनम् ॥
तत्राद्भुतमपश्याम कौरवाणां पराक्रमम्।
वध्यमानापि यत् पार्थं न जहुर्भरतर्षभ ॥)

भरतश्रेष्ठ ! शत्रुओंको तपनेवाले अर्जुनको सामने पाकर तीखे बाणोंसे मारी जाती हुई आपकी उस सेनाने युद्ध नहीं छोड़ा। भरतभूषण ! वहाँ हमलोगोंने कौरवयोद्धाओंका यह अद्भुत पराक्रम देखा कि वे मारे जानेपर भी अर्जुनको छोड़ नहीं रहे थे ॥

तं दृष्ट्वा कुरवस्तत्र विक्रान्तं सव्यसाचिनम्।
निराशाः समपद्यन्त सर्वे कर्णस्य जीविते ॥ ४३ ॥

सव्यसाची अर्जुनको इस प्रकार पराक्रम प्रकट करते देख समस्त कौरवसैनिक कर्णके जीवनसे निराश हो गये ॥ ४३ ॥

अविषह्यं तु पार्थस्य शरसम्पातमाहवे।
मत्वा न्यवर्तन् कुरवो जिता गाण्डीवधन्वना ॥ ४४ ॥

गाण्डीवधारी अर्जुनके द्वारा परास्त हुए कौरव योद्धा समराङ्गणमें उनकी बाणवर्षाको अपने लिये असह्य मानकर युद्धसे पीछे हटने लगे ॥ ४४ ॥

ते हित्वा समरे कर्णं वध्यमानाश्च सायकैः।
प्रदुद्रुवुर्दिशो भीताश्चुक्रुशुश्चापि सूतजम् ॥ ४५ ॥

बाणोंसे विंध जानेके कारण वे भयभीत हो रणभूमिमें कर्णको अकेला ही छोड़कर सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग चले; किंतु अपनी रक्षाके लिये सूतपुत्र कर्णको ही पुकारते रहे ॥ ४५ ॥

अभ्यद्रवत तान् पार्थः किरञ्शरशतान् बहून्।
हर्षयन् पाण्डवान् योधान् भीमसेनपुरोगमान् ॥ ४६ ॥

कुन्तीकुमार अर्जुन सैकड़ों बाणोंकी वर्षा करते और भीमसेन आदि पाण्डव-योद्धाओंका हर्ष बढ़ाते हुए आपके उन सैनिकोंको खदेड़ने लगे ॥ ४६ ॥

पुत्रास्तु ते महाराज जग्मुः कर्णरथं प्रति।
अगाधे मज्जतां तेषां द्वीपः कर्णोऽभवत्तदा ॥ ४७ ॥

महाराज ! इसके बाद आपके पुत्र भागकर कर्णके रथके पास गये। वे संकटके अगाध समुद्रमें डूब रहे थे। उस समय कर्ण ही द्वीपके समान उनका रक्षक हुआ ॥ ४७ ॥

कुरवो हि महाराज निर्विषाः पन्नगा इव।
कर्णमेवोपलीयन्त भयाद् गाण्डीवधन्वनः ॥ ४८ ॥

महाराज ! कौरव विषरहित सर्पोंके समान-गाण्डीवधारी अर्जुनके भयसे कर्णके ही पास छिपने लगे ॥ ४८ ॥

यथा सर्वाणि भूतानि मृत्योर्भीतानि मारिष।
धर्ममेवोपलीयन्ते कर्मवन्ति हि यानि च ॥ ४९ ॥
तथा कर्णं महेष्वासं पुत्रास्तव नराधिप।
उपालीयन्त संत्रासात् पाण्डवस्य महात्मनः ॥ ५० ॥

माननीय नरेश ! जैसे कर्म करनेवाले सब जीव मृत्युसे डरकर धर्मकी ही शरण लेते हैं, उसी प्रकार आपके पुत्र महामना पाण्डुपुत्र अर्जुनके भयसे महाधनुर्धर कर्णकी ही ओटमें छिपने लगे थे ॥ ४९-५० ॥

ताञ्शोणितपरिक्लिन्नान् विषमस्थाञ्शरातुरान्।
मा भैष्टेत्यब्रवीत् कर्णो ह्यभीतो मामितेति च ॥ ५१ ॥

कर्णने उन्हें खूनसे लथपथ, संकटमें मग्न और बाणोंकी चोटसे व्याकुल देखकर कहा—'वीरो ! डरो मत । तुम सब लोग निर्भय होकर मेरे पास आ जाओ' ॥ ५१ ॥

सम्भग्नं हि बलं दृष्ट्वा बलात् पार्थेन तावकम् ।
धनुर्विस्फारयन् कर्णस्तस्थौ शत्रुजिघांसया ॥ ५२ ॥

अर्जुनने बलपूर्वक आपकी सेनाको भगा दिया है—यह देखकर कर्ण शत्रुओंका वध करनेकी इच्छासे धनुष तानकर खड़ा हो गया ॥ ५२ ॥

तान् प्रद्रुतान् कुरून् दृष्ट्वा कर्णः शस्त्रभृतां वरः ।
संचिन्तयित्वा पार्थस्य वधे दध्रे मनः श्वसन् ॥ ५३ ॥

शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कर्णने कौरवसैनिकोंको भागते देख खूब सोच-विचारकर लंबी साँस लेते हुए मन-ही-मन अर्जुनके वधका निश्चय किया ॥ ५३ ॥

विस्फार्य सुमहच्चापं ततश्चाधिरथिर्वृषः ।
पञ्चालान् पुनराधावत् पश्यतः सव्यसाचिनः ॥ ५४ ॥

तत्पश्चात् धर्मात्मा अधिरथपुत्र कर्णने अपने विशाल धनुषको फैलाकर अर्जुनके देखते-देखते पुनः पाञ्चाल-योद्धाओंपर धावा किया ॥ ५४ ॥

ततः क्षणेन क्षितिपाः क्षतजप्रतिमेक्षणाः ।
कर्णं ववर्षुर्बाणौघैर्यथा मेघा महीधरम् ॥ ५५ ॥

यह देख पाञ्चालनरेशोंके नेत्र रोषसे लाल हो गये। जैसे बादल पर्वतपर पानी बरसाते हैं, उसी प्रकार वे क्षणभरमें कर्णपर बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगे ॥ ५५ ॥

ततः शरसहस्राणि कर्णमुक्तानि मारिष ।
व्ययोजयन्त पञ्चालान् प्राणैः प्राणभृतां वर ॥ ५६ ॥

प्राणधारियोंमें श्रेष्ठ मान्यवर नरेश ! तदनन्तर कर्णके छोड़े हुए सहस्रों बाण पाञ्चालोंको प्राणहीन करने लगे ॥ ५६ ॥

तत्र शब्दो महानासीत् पञ्चालानां महामते ।
वध्यतां सूतपुत्रेण मित्रार्थे मित्रगृद्धिना ॥ ५७ ॥

महामते ! वहाँ मित्रका हित चाहनेवाले सूतपुत्र कर्णके द्वारा मित्रकी ही भलाईके लिये मारे जानेवाले पाञ्चालोंका महान् आर्तनाद होने लगा ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें संकुलयुद्धविषयक इक्यासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८१ ॥
(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३२ श्लोक मिलाकर कुल ६० श्लोक हैं)

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

सात्यकिके द्वारा कर्णपुत्र प्रसेनका वध, कर्णका पराक्रम और दुःशासन एवं भीमसेनका युद्ध

संजय उवाच

ततः कर्णः कुरुषु प्रद्रुतेषु
वरूथिना श्वेतहयेन राजन् ।
पाञ्चालपुत्रान् व्यधमत् सूतपुत्रो
महेषुभिर्वात इवाभ्रसंघान् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! जब कौरवसैनिक बड़े वेगसे भागने लगे, उस समय जैसे वायु मेघोंके समूहको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार सूतपुत्र कर्णने श्वेत घोड़ोंवाले रथके द्वारा आक्रमण करके अपने विशाल बाणोंसे पाञ्चालराजकुमारोंका संहार आरम्भ किया ॥ १ ॥

सूतं रथादञ्जलिकैर्निपात्य
जघान चाश्वाञ्जनमेजयस्य ।
शतानीकं सुतसोमं च भल्लै-
रवाकिरद् धनुषी चाप्यकृन्तत् ॥ २ ॥

उसने अञ्जलिक नामवाले बाणोंसे जनमेजयके सारथिको रथसे नीचे गिराकर उसके घोड़ोंको भी मार डाला। फिर शतानीक तथा सुतसोमको भल्लोंसे ढक दिया और उन दोनोंके धनुष भी काट डाले ॥ २ ॥

धृष्टद्युम्नं निर्बिभेदाथ षड्भि-
र्जघानाश्वांस्तरसा तस्य संख्ये ।
हत्वा चाश्वान् सात्यकेः सूतपुत्रः
कैकेयपुत्रं न्यवधीद् विशोकम् ॥ ३ ॥

तत्पश्चात् छः बाणोंसे युद्धस्थलमें धृष्टद्युम्नको घायल कर दिया और उनके घोड़ोंको भी वेगपूर्वक मार डाला। इसके बाद सूतपुत्रने सात्यकिके घोड़ोंको नष्ट करके केकयराजकुमार विशोकका भी वध कर डाला ॥ ३ ॥

तमभ्यधावन्निहते कुमारे
कैकेयसेनापतिरुग्रकर्मा ।
शरैर्विधुन्वन् भृशमुग्रवेगैः
कर्णात्मजं चाप्यहनत् प्रसेनम् ॥ ४ ॥

केकयराजकुमारके मारे जानेपर वहाँके सेनापति उग्रकर्माने कर्णपर धावा किया। उसने धनुषको तीव्रवेगसे संचालित करते हुए भयंकर वेगवाले बाणोंद्वारा कर्णके पुत्र प्रसेनको भी घायल कर दिया ॥ ४ ॥

तस्यार्धचन्द्रैस्त्रिभिरुच्चकर्त
प्रहस्य बाहू च शिरश्च कर्णः ।
स स्यन्दनाद् गामगमद् गतासुः
परश्वधैः शाल इवावरुग्णः ॥ ५ ॥

तब कर्णने हँसकर तीन अर्धचन्द्राकार बाणोंसे उग्रकर्माकी दोनों भुजाएँ और मस्तक काट डाले। वह प्राणशून्य होकर कुल्हाड़ीके काटे हुए शाखूके पेड़के समान रथसे पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ५ ॥

हताश्वमञ्जोगतिभिः प्रसेनः
शिनिप्रवीरं निशितैः पृषत्कैः ।

प्रच्छाद्य नृत्यन्निव कर्णपुत्रः
शैनेयबाणाभिहतः पपात ॥ ६ ॥

उधर कर्णने जब सात्यकिके घोड़े मार डाले, तब कर्ण-पुत्र प्रसेनने तीव्रगामी पैने बाणोंद्वारा शिनिप्रवर सात्यकिको ढक दिया। इसके बाद सात्यकिके बाणोंकी चोट खाकर वह नाचता हुआ-सा पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ६ ॥

पुत्रे हते क्रोधपरीतचेताः
कर्णः शिनीनामृषभं जिघांसुः ।
हतोऽसि शैनेय इति ब्रुवन् स
व्यवासृजद् बाणममित्रसाहम् ॥ ७ ॥

पुत्रके मारे जानेपर क्रोधसे व्याकुलचित्त हुए कर्णने शिनिप्रवर सात्यकिका वध करनेके लिये उनपर एक शत्रु-नाशक बाण छोड़ा और कहा—'सात्यके ! अब तू मारा गया' ॥ ७ ॥

तमस्य चिच्छेद शरं शिखण्डी
त्रिभिस्त्रिभिश्च प्रतुतोद कर्णम् ।
शिखण्डिनः कार्मुकं च ध्वजं च
छित्त्वा क्षुराभ्यां न्यपतत् सुजातः॥ ८ ॥

परंतु उसके उस बाणको शिखण्डीने तीन बाणोंद्वारा काट दिया और उसे भी तीन बाणोंसे पीड़ित कर दिया। तब कर्णने दो छुरोंसे शिखण्डीकी ध्वजा और धनुष काटकर नीचे गिरा दिये ॥ ८ ॥

शिखण्डिनं षड्भिरविध्यदुग्रो
धार्ष्टद्युम्नेः स शिरश्चोच्चकर्त ।
तथाभिनत् सुतसोमं शरेण
सुसंशितेनाधिरथिर्महात्मा ॥ ९ ॥

फिर भयंकर वीर कर्णने छः बाणोंसे शिखण्डीको घायल कर दिया और धृष्टद्युम्नके पुत्रका मस्तक काट डाला। साथ ही महामनस्वी अधिरथपुत्रने अत्यन्त तीखे बाणसे सुतसोम-को भी क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ९ ॥

अथाक्रन्दे तुमुले वर्तमाने
धार्ष्टद्युम्ने निहते तत्र कृष्णः ।
अपाञ्चाल्यं क्रियते याहि पार्थ
कर्णं जहीत्यब्रवीद् राजसिंह ॥ १० ॥

राजसिंह ! इस प्रकार जब वह भयंकर घमासान युद्ध चलने लगा और धृष्टद्युम्नका पुत्र मारा गया, तब भगवान् श्रीकृष्णने वहाँ अर्जुनसे कहा—'पार्थ ! कर्ण पाञ्चालोंका संहार कर रहा है, अतः आगे बढ़ो और उसे मार डालो' ॥ १० ॥

ततः प्रहस्याशु नरप्रवीरो
रथं रथेनाधिरथेर्जगाम ।
भये तेषां त्राणमिच्छन् सुबाहु-
रभ्याहतानां रथयूथपेन ॥ ११ ॥

तदनन्तर सुन्दर भुजाओंवाले नरवीर अर्जुन हँसकर भयके अवसरपर उन घायल सैनिकोंकी रक्षाके लिये रथ-समूहोंके अधिपति विशाल रथके द्वारा सूतपुत्रके रथकी ओर शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़े ॥ ११ ॥

विस्फार्य गाण्डीवमथोग्रघोषं
ज्यया समाहत्य तले भृशं च ।
बाणान्धकारं सहसैव कृत्वा
जघान नागाश्वरथध्वजांश्च ॥ १२ ॥

उन्होंने भयानक टंकार करनेवाले गाण्डीव धनुषको फैलाकर उसकी प्रत्यञ्चाद्वारा अपनी हथेलीमें आघात करते हुए सहसा बाणोंद्वारा अन्धकार फैला दिया और शत्रुपक्षके हाथी, घोड़े, रथ एवं ध्वज नष्ट कर दिये ॥ १२ ॥

प्रतिश्रुतिः प्राचरदन्तरिक्षे
गुहा गिरीणामपतन् वयांसि ।
यन्मण्डलज्येन विजृम्भमाणो
रौद्रे मुहूर्तेऽभ्यपतत् किरीटी ॥ १३ ॥

उस भयंकर मुहूर्तमें गाण्डीव धनुषकी प्रत्यञ्चाको मण्डलाकार करके जब किरीटधारी अर्जुन शत्रुसेनापर टूट पड़े तथा बल और प्रतापमें बढ़ने लगे, उस समय धनुषकी टंकारकी प्रतिध्वनि आकाशमें गूँज उठी, जिससे डरे हुए पक्षी पर्वतोंकी कन्दराओंमें छिप गये ॥ १३ ॥

तं भीमसेनोऽनुययौ रथेन
पृष्ठे रक्षन् पाण्डवमेकवीरः ।
तौ राजपुत्रौ त्वरितौ रथाभ्यां
कर्णाय यातावरिभिर्विषक्तौ ॥ १४ ॥

प्रमुख वीर भीमसेन पीछेसे पाण्डुनन्दन अर्जुनकी रक्षा करते हुए रथके द्वारा उनका अनुसरण करने लगे। वे दोनों पाण्डवराजकुमार बड़ी उतावलीके साथ शत्रुओंसे जूझते हुए कर्णकी ओर बढ़ने लगे ॥ १४ ॥

तत्रान्तरे सुमहत् सूतपुत्र-
श्चक्रे युद्धं सोमकान् सम्प्रमृद्नन् ।
रथाश्वमातङ्गगणाञ्जघान
प्रच्छादयामास शरैर्दिशश्च ॥ १५ ॥

इसी बीचमें सूतपुत्र कर्णने सोमकोंका संहार करते हुए उनके साथ महान् युद्ध किया। उनके बहुत-से घोड़े, रथ और हाथियोंका वध कर डाला और बाणोंद्वारा सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित कर दिया ॥ १५ ॥

तमुत्तमौजा जनमेजयश्च
क्रुद्धौ युधामन्युशिखण्डिनौ च ।
कर्णं बिभिदुः सहिताः पृषत्कैः
संनर्दमानाः सह पार्षतेन ॥ १६ ॥

उस समय धृष्टद्युम्नके साथ गर्जते हुए उत्तमौजा, जन-मेजय, कुपित युधामन्यु और शिखण्डी—ये सब संगठित होकर अपने बाणोंद्वारा कर्णको घायल करने लगे ॥ १६ ॥

ते पञ्च पाञ्चालरथप्रवीरा
वैकर्तनं कर्णमभिद्रवन्तः ।
तस्माद् रथाच्च्यावयितुं न शेकु-
र्धैर्यात् कृतात्मानमिवेन्द्रियार्थाः ॥ १७ ॥

पाञ्चाल रथियोंमें प्रमुख ये पाँचों वीर वैकर्तन कर्णपर आक्रमण करके भी उसे उस रथसे नीचे न गिरा सके। ठीक उसी तरह, जैसे जिसने अपने मनको वशमें कर रक्खा है उस योगीको शब्द, स्पर्श आदि विषय धैर्यसे विचलित नहीं कर पाते हैं ॥ १७ ॥

तेषां धनूंषि ध्वजवाजिसूतां-
स्तूर्णं पताकाश्च निकृत्य बाणैः ।
तान् पञ्चभिस्त्वभ्यहनत् पृषत्कैः
कर्णस्ततः सिंह इवोन्ननाद ॥ १८ ॥

कर्णने अपने बाणोंद्वारा तुरंत ही उनके धनुष, ध्वज, घोड़े, सारथि और पताकाएँ काट डालीं और पाँच बाणोंसे उन पाँचों वीरोंको भी घायल कर दिया। तत्पश्चात् वह सिंह-के समान दहाड़ने लगा ॥ १८ ॥

तस्यास्यतस्तानभिनिघ्नतश्च
ज्याबाणहस्तस्य धनुःस्वनेन ।
साद्रिद्रुमा स्यात् पृथिवी विशीर्णे-
त्यनीव मत्वा जनता व्यषीदत् ॥ १९ ॥

कर्ण बाण छोड़ता और शत्रुओंका संहार करता जा रहा था। उसके हाथमें धनुषकी प्रत्यञ्चा और बाण सदा मौजूद रहते थे। उसके धनुषकी टंकारसे पर्वतों और वृक्षोंसहित यह सारी पृथ्वी विदीर्ण हो जायगी, ऐसा समझकर सब लोग अत्यन्त खिन्न हो उठे थे ॥ १९ ॥

स शक्रचापप्रतिमेन धन्वना
भृशायतेनाधिरथिः शरान् सृजन् ।
बभौ रणे दीप्तमरीचिमण्डलो
यथांशुमाली परिवेषवांस्तथा ॥ २० ॥

इन्द्रधनुषके समान खींचे हुए मण्डलाकार विशाल धनुषके द्वारा बाणोंकी वर्षा करता हुआ अधिरथपुत्र कर्ण रणभूमिमें प्रकाशमान किरणोंवाले परिधियुक्त अंशुमाली सूर्यके समान शोभा पा रहा था ॥ २० ॥

शिखण्डिनं द्वादशभिः पराभिन-
च्छितैः शरैः षड्भिरथोत्तमौजसम् ।
त्रिभिर्युधामन्युमविध्यदाशुगै-
स्त्रिभिस्त्रिभिः सोमकपार्षतात्मजौ ॥ २१ ॥

उसने शिखण्डीको बारह, उत्तमौजाको छः, युधामन्युको तीन तथा जनमेजय और धृष्टद्युम्नको भी तीन-तीन पैने बाणोंसे अत्यन्त घायल कर दिया ॥ २१ ॥

पराजिताः पञ्च महारथास्तु ते
महाहवे सूतसुतेन मारिष ।
निरुद्यमास्तस्थुरमित्रनन्दना
यथेन्द्रियार्थात्मवता पराजिताः ॥ २२ ॥

आर्य! जैसे मनको वशमें रखनेवाले जितेन्द्रिय पुरुषके द्वारा पराजित हुए विषय उसे आकृष्ट नहीं कर पाते, उसी प्रकार महासमरमें सूतपुत्र कर्णके द्वारा परास्त हुए वे पाँचों पाञ्चाल वीर निश्चेष्टभावसे खड़े हो गये और शत्रुओंका आनन्द बढ़ाने लगे ॥ २२ ॥

निमज्जतस्तानथ कर्णसागरे
विपन्ननावो वणिजो यथार्णवे ।
उद्दध्रिरे नौभिरिवार्णवाद् रथैः
सुकल्पितैर्द्रौपदिजाः स्वमातुलान् ॥ २३ ॥

जैसे समुद्रमें जिनकी नाव डूब गयी हो, उन डूबते हुए व्यापारियोंको दूसरी नौकाओंद्वारा लोग बचा लेते हैं, उसी प्रकार द्रौपदीके पुत्रोंने कर्णरूपी सागरमें डूबनेवाले अपने उन मामाओंको रण-सामग्रीसे सजे-सजाये रथोंद्वारा बचाया ॥

ततः शिनीनामृषभः शितैः शरै-
र्निकृत्य कर्णप्रहितानिषून् बहून् ।
विदार्य कर्णं निशितैरयस्मयै-
स्तवात्मजं ज्येष्ठमविध्यदष्टभिः ॥ २४ ॥

तत्पश्चात् शिनिप्रवर सात्यकिने कर्णके छोड़े हुए बहुत-से बाणोंको अपने तीखे बाणोंसे काटकर लोहेके पैने बाणोंसे कर्णको घायल करनेके पश्चात् आपके ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधनको आठ बाण मारकर बींध डाला ॥ २४ ॥

कृपोऽथ भोजश्च तवात्मजस्तथा
स्वयं च कर्णो निशितैरताडयत् ।
स तैश्चतुर्भिर्युयुधे यदूत्तमो
दिगीश्वरैर्दैत्यपतिर्यथा तथा ॥ २५ ॥

तब कृपाचार्य, कृतवर्मा, आपका पुत्र दुर्योधन तथा स्वयं कर्ण भी सात्यकिको तीखे बाणोंसे घायल करने लगे। यदुकुलतिलक सात्यकिने अकेले ही उन चारों वीरोंके साथ उसी प्रकार युद्ध किया, जैसे दैत्यराज हिरण्यकशिपुने चारों दिक्पालोंके साथ किया था ॥ २५ ॥

समाततेनेष्वसनेन कूजता
भृशायतेनामितबाणवर्षिणा ।
बभूव दुर्धर्षतरः स सात्यकिः
शरन्नभोमध्यगतो यथा रविः ॥ २६ ॥

जैसे शरद्ऋतुके आकाशमण्डलके बीचमें आये हुए मध्याह्नकालिक सूर्य प्रचण्ड हो उठते हैं, उसी प्रकार असंख्य बाणोंकी वर्षा करनेवाले तथा कानतक खींचे जानेके कारण गम्भीर टंकार करनेवाले अपने विशाल-धनुषके द्वारा सात्यकि उस समय शत्रुओंके लिये अत्यन्त दुर्जय हो उठे ॥ २६ ॥

पुनः समास्थाय रथान् सुदंशिताः
शिनिप्रवीरं जुगुपुः परंतपाः ।

समेत्य पाञ्चालमहारथा रणे
मरुद्गणाः शक्रमिवारिनिग्रहे ॥ २७ ॥

तदनन्तर शत्रुओंको तपानेवाले पूर्वोक्त पाञ्चाल महारथी कवच पहन रथोंपर आरूढ़ हो पुनः आकर शिनिप्रवर सात्यकिकी रणभूमिमें उसी तरह रक्षा करने लगे, जैसे मरुद्गण शत्रुओंके दमनकालमें देवराज इन्द्रकी रक्षा करते हैं ॥

ततोऽभवद् युद्धमतीव दारुणं
तवाहितानां तव सैनिकैः सह।
रथाश्वमातङ्गविनाशनं तथा
यथा सुराणामसुरैः पुराभवत्॥ २८ ॥

इसके बाद आपके शत्रुओंका आपके सैनिकोंके साथ अत्यन्त दारुण युद्ध होने लगा, जो रथों, घोड़ों और हाथियोंका विनाश करनेवाला था। वह युद्ध प्राचीन कालके देवासुर-संग्रामके समान जान पड़ता था ॥ २८ ॥

रथा द्विपा वाजिपदातयस्तथा
भवन्ति नानाविधशस्त्रवेष्टिताः।
परस्परेणाभिहताश्च चस्खलु-
र्विनेदुरार्ता व्यसवोऽपतंस्तथा॥ २९ ॥

बहुत-से रथी, सवारोंसहित हाथी, घोड़े तथा पैदल सैनिक नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे आच्छादित हो एक दूसरेसे टकराकर लड़खड़ाने लगते, आर्तनाद करते और प्राणशून्य होकर गिर पड़ते थे ॥ २९ ॥

तथागते भीममभीस्तवात्मजः
ससार राजावरजः किरञ्शरैः।
तमभ्यधावत् त्वरितो वृकोदरो
महारुरुं सिंह इवाभिपेदिवान् ॥ ३० ॥

राजन्! इस प्रकार जब वह भयंकर संग्राम चल रहा था, उसी समय राजा दुर्योधनका छोटा भाई आपका पुत्र दुःशासन निर्भय हो बाणोंकी वर्षा करता हुआ भीमसेनपर चढ़ आया। उसे देखते ही भीमसेन भी बड़े उतावले होकर उसकी ओर दौड़े और जिस प्रकार सिंह महारुरु नामक मृगपर आक्रमण करता है, उसी प्रकार उसके पास जा पहुँचे ॥

ततस्तयोर्युद्धमतीव दारुणं
प्रदीव्यतोः प्राणदुरोदरं द्वयोः।
परस्परेणाभिनिविष्टरोषयो-
रुदग्रयोः शम्बरशक्रयोर्यथा ॥ ३१ ॥

उन दोनोंके मनमें एक दूसरेके प्रति महान् रोष भरा हुआ था। दोनों ही प्राणोंकी बाजी लगाकर अत्यन्त भयंकर युद्धका जूआ खेल रहे थे। उन प्रचण्ड वीरोंका वह संग्राम शम्बरासुर और इन्द्रके समान हो रहा था ॥ ३१ ॥

शरैः शरीरार्तिकरैः सुतेजनै-
र्निजघ्नतुस्तावितरेतरं भृशम्।
सकृत्प्रभिन्नाविव वासितान्तरे
महागजौ मन्मथसक्तचेतसौ ॥ ३२ ॥

शरीरको पीड़ा देनेवाले अत्यन्त पैने बाणोंद्वारा वे दोनों वीर एक दूसरेको गहरी चोट पहुँचाने लगे; मानो मैथुनकी इच्छावाली हथिनीके लिये कामासक्त चित्त होकर दो मदस्रावी गजराज परस्पर आघात करते हों ॥ ३२ ॥

(आलोक्य तौ तत्र परस्परं ततः
समं च शूरौ च ससारथी तदा।
भीमोऽब्रवीद् याहि दुःशासनाय
दुःशासनो याहि वृकोदराय ॥

सारथिसहित उन दोनों शूरवीरोंने जब वहाँ एक दूसरेको एक साथ देखा, तब भीमने अपने सारथिसे कहा—'दुःशासनकी ओर चलो' और दुःशासनने अपने सारथिसे कहा—'भीमसेनकी ओर चलो' ॥

तयो रथौ सारथिभ्यां प्रचोदितौ
समं रणे तौ सहसा समीयतुः।
नानायुधौ चित्रपताकिनौ ध्वजौ
दिवीव पूर्वं बलशक्रयो रणे ॥

सारथियोंद्वारा एक साथ हाँके गये उन दोनोंके रथ रणभूमिमें दोनोंके पास सहसा जा पहुँचे। वे दोनों ही रथ नाना प्रकारके आयुधोंसे सम्पन्न तथा विचित्र पताकाओं और ध्वजाओंसे सुशोभित थे। जैसे पूर्वकालमें स्वर्गके निमित्त होनेवाले युद्धमें बलासुर और इन्द्रके रथ थे, उसी प्रकार दुःशासन और भीमसेनके भी थे ॥

भीम उवाच

दिष्ट्यासि दुःशासन मेऽद्य दृष्टः
ऋणं प्रतीच्छे सहवृद्धिमूलम्।
चिरोद्यतं यन्मया ते सभायां
कृष्णाभिमर्शेन गृहाण मत्तः ॥

भीमसेन बोले—दुःशासन! बड़े सौभाग्यकी बात है कि तू आज मुझे दिखायी दिया है। कौरव-सभामें द्रौपदीका स्पर्श करनेके कारण दीर्घकालसे जो तेरा ऋण मेरे ऊपर चढ़ गया है, उसे मैं आज ब्याज और मूलसहित चुकाना चाहता हूँ। तू मुझसे वह सब ग्रहण कर ॥

संजय उवाच

स एवमुक्तस्तु ततो महात्मा
दुःशासनो वाक्यमुवाच वीरः।

संजय कहते हैं—राजन्! भीमसेनके ऐसा कहनेपर महामनस्वी वीर दुःशासनने इस प्रकार कहा ॥

दुःशासन उवाच

सर्वं स्मरे नैव च विस्मरामि
उदीर्यमाणं शृणु भीमसेन ॥
स्मरामि चात्मप्रभवं चिराय
यज्जातुषे वेश्मनि राज्यहानि।
विश्वासहीना मृगयां चरन्तो
वसन्ति सर्वत्र निराकृतास्तु ॥

दुःशासन बोला—भीमसेन ! मुझे सब कुछ याद है। मैं भूलता नहीं हूँ। तुम मेरी कही हुई बात सुनो। मैं अपनी की हुई सारी बातोंको चिरकालसे याद रखता हूँ। पहले तुमलोग लाक्षागृहमें रात-दिन सशङ्क होकर निवास करते थे। फिर वहाँसे निकाले जाकर वनमें सर्वत्र शिकार खेलते हुए रहने लगे ॥

महाभये राज्यहनी स्मरन्त-
स्तथोपभोगाच्च सुखाच्च हीनाः।
वनेष्वटन्तो गिरिगह्वराणि
पाञ्चालराजस्य पुरं प्रविष्टाः ॥
मायां यूयं कामपि सम्प्रविष्टा
यतो वृतः कृष्णया फाल्गुनो वः।

रात-दिन महान् भयमें डूबे रहकर तुम चिन्तामें पड़े रहते और सुख एवं उपभोगसे वञ्चित हो जंगलों तथा पर्वतकी कन्दराओंमें घूमते थे। इसी अवस्थामें तुम सब लोग एक दिन पाञ्चालराजके नगरमें जा घुसे। वहाँ तुम लोगोंने किसी मायामें प्रविष्ट होकर अपने स्वरूपको छिपा लिया था; इसलिये द्रौपदीने तुमलोगोंमेंसे अर्जुनका वरण कर लिया ॥

सम्भूय पापैस्तदनार्यवृत्तं
कृतं तदा मातृकृतानुरूपम् ॥
एको वृतः पञ्चभिः साभिपन्ना
ह्यलज्जमानैश्च परस्परस्य।
स्मरे सभायां सुबलात्मजेन
दासीकृताः स्थ सह कृष्णया च ॥)

परंतु तुम सब पापियोंने मिलकर उसके साथ वह नीचोंका-सा बर्ताव किया, जो तुम्हारी माताकी करनीके अनुरूप था। द्रौपदीने तो एकहीका वरण किया, परंतु तुम पाँचोंने उसे अपनी पत्नी बनाया और इस कार्यमें तुम्हें एक दूसरेसे तनिक भी लज्जा नहीं हुई। मुझे यह भी याद है कि कौरवसभामें शकुनिने द्रौपदीसहित तुम सब लोगोंको दास बना लिया था ॥

संजय उवाच

(इत्येवमुक्तस्तु तवात्मजेन
पाण्डोः सुतः कोपवशं जगाम।)

तवात्मजस्याथ वृकोदरस्त्वरन्
धनुः क्षुराभ्यां ध्वजमेव चाच्छिनत्।
ललाटमप्यस्य बिभेद पत्रिणा
शिरश्च कायात् प्रजहार सारथेः ॥ ३३ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! आपके पुत्रके ऐसा कहनेपर पाण्डुकुमार भीमसेन क्रोधके वशीभूत हो गये। वृकोदरने बड़ी उतावलीके साथ दो क्षुरोंके द्वारा आपके पुत्र दुःशासनके धनुष और ध्वजको काट दिया, एक बाणसे उसके ललाटमें घाव कर दिया और दूसरेसे उसके सारथिका मस्तक भी धड़से अलग कर दिया ॥ ३३ ॥

स राजपुत्रोऽन्यदवाप्य कार्मुकं
वृकोदरं द्वादशभिः पराभिनत्।
स्वयं नियच्छंस्तुरगानजिह्मगैः
शरैश्च भीमं पुनरप्यवीवृषत् ॥ ३४ ॥

तब राजकुमार दुःशासनने भी दूसरा धनुष लेकर भीमसेनको बारह बाणोंसे बींध डाला और स्वयं ही घोड़ोंको काबूमें रखते हुए उसने पुनः उनके ऊपर सीधे जानेवाले बाणोंकी झड़ी लगा दी ॥ ३४ ॥

ततः शरं सूर्यमरीचिसप्रभं
सुवर्णवज्रोत्तमरत्नभूषितम्।
महेन्द्रवज्राशनिपातदुःसहं
मुमोच भीमाङ्गविदारणक्षमम् ॥ ३५ ॥

इसके बाद दुःशासनने सूर्यकी किरणोंके समान कान्तिमान्, सुवर्ण और हीरे आदि उत्तम रत्नोंसे विभूषित तथा देवराज इन्द्रके वज्र एवं विद्युत्-पातके समान दुःसह एक ऐसा भयंकर बाण छोड़ा, जो भीमसेनके अङ्गोंको विदीर्ण कर देनेमें समर्थ था ॥ ३५ ॥

स तेन निर्विद्धतनुर्वृकोदरो
निपातितः स्रस्ततनुर्गतासुवत्।
प्रसार्य बाहू रथवर्यमाश्रितः
पुनः स संज्ञामुपलभ्य चानदत् ॥ ३६ ॥

उससे भीमसेनका शरीर छिद गया। वे बहुत शिथिल हो गये और प्राणहीनके समान दोनों बाँहें फैलाकर अपने श्रेष्ठ रथपर लुढ़क गये। फिर थोड़ी ही देरमें होशमें आकर भीमसेन सिंहके समान दहाड़ने लगे ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि दुःशासनभीमसेनयुद्धे द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें दुःशासन और भीमसेनका युद्धविषयक बयासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८२ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ८½ श्लोक मिलाकर कुल ४४½ श्लोक हैं)

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

भीमद्वारा दुःशासनका रक्तपान और उसका वध, युधामन्युद्वारा चित्रसेनका वध तथा भीमका हर्षोद्गार

संजय उवाच

तत्राकरोद् दुष्करं राजपुत्रो
दुःशासनस्तुमुलं युद्ध्यमानः।
चिच्छेद भीमस्य धनुः शरेण
षष्ट्या शरैः सारथिमप्यविध्यत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! वहाँ तुमुल युद्ध करते हुए

राजकुमार दुःशासनने दुष्कर पराक्रम प्रकट किया। उसने एक बाणसे भीमसेनका धनुष काट डाला और साठ बाणोंसे उनके सारथिको भी घायल कर दिया ॥ १ ॥

स तत् कृत्वा राजपुत्रस्तरस्वी
विव्याध भीमं नवभिः पृषत्कैः।
ततोऽभिनद् बहुभिः क्षिप्रमेव
वरेषुभिर्भीमसेनं महात्मा ॥ २ ॥

ऐसा करके उस वेगशाली राजपुत्रने भीमसेनपर नौ बाणोंका प्रहार किया। इसके बाद महामना दुःशासनने बड़ी फुर्तीके साथ बहुत-से उत्तम बाणोंद्वारा भीमसेनको अच्छी तरह बींध डाला ॥ २ ॥

ततः क्रुद्धो भीमसेनस्तरस्वी
शक्तिं चोग्रां प्राहिणोत् ते सुताय।
तामापतन्तीं सहसातिघोरां
दृष्ट्वा सुतस्ते ज्वलितामिवोल्काम्॥ ३ ॥
आकर्णपूर्णैरिषुभिर्महात्मा
चिच्छेद पुत्रो दशभिः पृषत्कैः।

तब क्रोधमें भरे हुए वेगशाली भीमसेनने आपके पुत्रपर एक भयंकर शक्ति छोड़ी। प्रज्वलित उल्काके समान उस अत्यन्त भयानक शक्तिको सहसा अपने ऊपर आती देख आपके महामनस्वी पुत्रने कानतक खींचकर छोड़े हुए दस बाणोंके द्वारा उसे काट डाला॥ ३½ ॥

दृष्ट्वा तु तत् कर्म कृतं सुदुष्करं
प्रापूजयन् सर्वयोधाः प्रहृष्टाः ॥ ४ ॥
अथाशु भीमं च शरेण भूयो
गाढं स विव्याध सुतस्त्वदीयः।
चुक्रोध भीमः पुनराशु तस्मै
भृशं प्रजज्वाल रुषाभिवीक्ष्य ॥ ५ ॥

उसके इस अत्यन्त दुष्कर कर्मको देखकर सभी योद्धा बड़े प्रसन्न हुए और उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। फिर आपके पुत्रने तुरंत ही एक बाण मारकर भीमसेनको गहरी चोट पहुँचायी। इससे फिर उन्हें बड़ा क्रोध हुआ। वे उसकी ओर देखकर शीघ्र ही रोषसे प्रज्वलित हो उठे ॥

विद्धोऽस्मि वीराशु भृशं त्वयाद्य
सहस्व भूयोऽपि गदाप्रहारम्।
उक्त्वैवमुच्चैः कुपितोऽथ भीमो
जग्राह तां भीमगदां वधाय ॥ ६ ॥

और बोले—'वीर! तूने तो आज मुझे शीघ्रतापूर्वक बाण मारकर बहुत घायल कर दिया; किंतु अब स्वयं भी मेरी गदाका प्रहार सहन कर' उच्चस्वरसे ऐसा कहकर कुपित हुए भीमसेनने दुःशासनके वधके लिये एक भयंकर गदा हाथमें ले ली ॥ ६ ॥

उवाच चाद्याहमहं दुरात्मन्
पास्यामि ते शोणितमाजिमध्ये।
अथैवमुक्तस्तनयस्तवोग्रां
शक्तिं वेगात् प्राहिणोन्मृत्युरूपाम्॥ ७ ॥

फिर वे इस प्रकार बोले—'दुरात्मन्! आज इस संग्राममें मैं तेरा रक्त पान करूँगा।' भीमके ऐसा कहते ही आपके पुत्रने उनके ऊपर बड़े वेगसे एक भयंकर शक्ति चलायी, जो मृत्युरूप जान पड़ती थी ॥ ७ ॥

आविध्य भीमोऽपि गदां सुघोरां
विचिक्षिपे रोषपरीतमूर्तिः।
सा तस्य शक्तिं सहसा विरुज्य
पुत्रं तवाजौ ताडयामास मूर्ध्नि ॥ ८ ॥

इधरसे रोषमें भरे हुए भीमसेनने भी अपनी अत्यन्त घोर गदा घुमाकर फेंकी। वह गदा रणभूमिमें दुःशासनकी उस शक्तिको टूक-टूक करती हुई सहसा उसके मस्तकमें जा लगी॥

स विक्षरन् नाग इव प्रभिन्नो
गदामस्मै तुमुले प्राहिणोद् वै।
तयाहरद् दश धन्वन्तराणि
दुःशासनं भीमसेनः प्रसह्य ॥ ९ ॥

मदस्रावी गजराजके समान अपने घावोंसे रक्त बहाते हुए भीमसेनने उस तुमुल युद्धमें दुःशासनपर जो गदा चलायी थी, उसके द्वारा उन्होंने उसे बलपूर्वक दस धनुष (चालीस हाथ) पीछे हटा दिया ॥ ९ ॥

तया हतः पतितो वेपमानो
दुःशासनो गदया वेगवत्या।
विध्वस्तवर्माभरणाम्बरस्रग्
विचेष्टमानो भृशवेदनातुरः ॥ १० ॥

दुःशासन उस वेगवती गदाके आघातसे धरतीपर गिरकर काँपने और अत्यन्त वेदनासे व्याकुल हो छटपटाने लगा। उसका कवच टूट गया, आभूषण और हार बिखर गये तथा कपड़े फट गये थे ॥ १० ॥

हयाः ससूता निहता नरेन्द्र
चूर्णीकृतश्चास्य रथः पतन्त्या।
दुःशासनं पाण्डवाः प्रेक्ष्य सर्वे
हृष्टाः पञ्चालाः सिंहनादानमुञ्चन्॥ ११ ॥

नरेन्द्र! उस गदाने गिरते ही दुःशासनके रथको चूर-चूर कर डाला और सारथिसहित उसके घोड़ोंको भी मार डाला। दुःशासनको उस अवस्थामें देखकर समस्त पाण्डव और पाञ्चाल योधा हर्षमें भरकर सिंहनाद करने लगे ॥ ११ ॥

तं पातयित्वाथ वृकोदरोऽथ
जगर्ज हर्षेण विनादयन् दिशः।
नादेन तेनाखिलपार्श्ववर्तिनो
मूर्च्छाकुलाः पतितास्त्वाजमीढ ॥ १२ ॥

इस प्रकार वृकोदर भीम दुःशासनको धराशायी करके हर्षसे उल्लसित हो सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करते हुए

जोर-जोरसे गर्जना करने लगे। अजमीढवंशी नरेश! उस सिंहनादसे भयभीत हो आसपास खड़े हुए समस्त योद्धा मूर्च्छित होकर गिर पड़े ॥ १२ ॥

भीमोऽपि वेगादवतीर्य यानाद्
दुःशासनं वेगवानभ्यधावत्।
ततः स्मृत्वा भीमसेनस्तरस्वी
सापत्नकं यत् प्रयुक्तं सुतैस्ते ॥ १३ ॥

फिर भीमसेन भी शीघ्रतापूर्वक रथसे उतरकर बड़े वेगसे दुःशासनकी ओर दौड़े। उस समय वेगशाली भीमसेनको आपके पुत्रोंद्वारा किये गये शत्रुतापूर्ण बर्ताव याद आने लगे थे ॥

तस्मिन् सुघोरे तुमुले वर्तमाने
प्रधानभूयिष्ठतरैः समन्तात्।
दुःशासनं तत्र समीक्ष्य राजन्
भीमो महाबाहुरचिन्त्यकर्मा ॥ १४ ॥
स्मृत्वाथ केशग्रहणं च देव्या
वस्त्रापहारं च रजस्वलायाः।
अनागसो भर्तृपराङ्मुखाया
दुःखानि दत्तान्यपि विप्रचिन्त्य ॥ १५ ॥
जज्वाल क्रोधादथ भीमसेन
आज्यप्रसिक्तो हि यथा हुताशः।

राजन्! वहाँ चारों ओर जब प्रधान-प्रधान वीरोंका वह अत्यन्त घोर तुमुल युद्ध चल रहा था, उस समय अचिन्त्यपराक्रमी महाबाहु भीमसेन दुःशासनको देखकर पिछली बातें याद करने लगे—'देवी द्रौपदी रजस्वला थी। उसने कोई अपराध नहीं किया था। उसके पति भी उसकी सहायतासे मुँह मोड़ चुके थे तो भी इस दुःशासनने द्रौपदीके केश पकड़े और भरी सभामें उसके वस्त्रोंका अपहरण किया।' उसने और भी जो-जो दुःख दिये थे, उन सबको याद करके भीमसेन घीकी आहुतिसे प्रज्वलित हुई अग्निके समान क्रोधसे जल उठे ॥ १४–१५½ ॥

तत्राह कर्णं च सुयोधनं च
कृपं द्रौणिं कृतवर्माणमेव ॥ १६ ॥
निहन्मि दुःशासनमद्य पापं
संरक्ष्यतामद्य समस्तयोधाः।

उन्होंने वहाँ कर्ण, दुर्योधन, कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृतवर्माको सम्बोधित करके कहा—'आज मैं पापी दुःशासनको मारे डालता हूँ। तुम समस्त योद्धा मिलकर उसकी रक्षा कर सको तो करो' ॥ १६½ ॥

इत्येवमुक्त्वा सहसाभ्यधाव-
न्निहन्तुकामोऽतिबलस्तरस्वी ॥ १७ ॥
तथा तु विक्रम्य रणे वृकोदरो
महागजं केसरिको यथैव।
निगृह्य दुःशासनमेकवीरः
सुयोधनस्याधिरथेः समक्षम् ॥ १८ ॥
रथादवप्लुत्य गतः स भूमौ
यत्नेन तस्मिन् प्रणिधाय चक्षुः।
असिं समुद्यम्य सितं सुधारं
कण्ठे पदाऽऽक्रम्य च वेपमानम् ॥ १९ ॥

ऐसा कहकर अत्यन्त बलवान् वेगशाली एवं अद्वितीय वीर भीमसेन अपने रथसे कूदकर पृथ्वीपर आ गये और दुःशासनको मार डालनेकी इच्छासे सहसा उसकी ओर दौड़े। उन्होंने युद्धमें पराक्रम करके दुर्योधन और कर्णके सामने ही दुःशासनको उसी प्रकार धर दबाया, जैसे सिंह किसी विशाल हाथीपर आक्रमण कर रहा हो। वे यत्नपूर्वक उसीकी ओर दृष्टि जमाये हुए थे। उन्होंने उत्तम धारवाली सफेद तलवार उठा ली और उसके गलेपर लात मारी। उस समय दुःशासन थरथर काँप रहा था ॥ १७—१९ ॥

उवाच तद्गौरिति यद् ब्रुवाणो
हृष्टो वदेः कर्णसुयोधनाभ्याम्।
ये राजसूयावभृथे पवित्रा
जाताः कचा याज्ञसेन्या दुरात्मन् ॥ २० ॥
ते पाणिना कतरेणावकृष्टा-
स्तद् ब्रूहि त्वां पृच्छति भीमसेनः।

वे उससे इस प्रकार बोले—'दुरात्मन्! याद है न वह दिन, जब तुमने कर्ण और दुर्योधनके साथ बड़े हर्षमें भरकर मुझे 'बैल' कहा था। राजसूययज्ञमें अवभृथस्नानसे पवित्र हुए महारानी द्रौपदीके केश तूने किस हाथसे खींचे थे? बता, आज भीमसेन तुझसे यह पूछता और इसका उत्तर चाहता है' ॥ २०½ ॥

श्रुत्वा तु तद् भीमवचः सुघोरं
दुःशासनो भीमसेनं निरीक्ष्य ॥ २१ ॥
जज्वाल भीमं स तदा स्मयेन
संशृण्वतां कौरवसोमकानाम्।
उक्तस्तदाऽऽजौ स तथा सरोषं
जगाद भीमं परिवर्तनेत्रः ॥ २२ ॥

भीमसेनका यह अत्यन्त भयंकर वचन सुनकर दुःशासनने उनकी ओर देखा। देखते ही वह क्रोधसे जल उठा। युद्धस्थलमें उनके वैसा कहनेपर उसकी त्यौरी बदल गयी थी; अतः वह समस्त कौरवों तथा सोमकोंके सुनते-सुनते मुस्कराकर रोषपूर्वक बोला—॥ २१-२२ ॥

अयं करिकराकारः पीनस्तनविमर्दनः।
गोसहस्रप्रदाता च क्षत्रियान्तकरः करः ॥ २३ ॥
अनेन याज्ञसेन्या मे भीम केशा विकर्षिताः।
पश्यतां कुरुमुख्यानां युष्माकं च सभासदाम् ॥ २४ ॥

'यह है हाथीकी सूँड़के समान मोटा मेरा हाथ, जो रमणीके ऊँचे उरोजोंका मर्दन, सहस्रों गोदान तथा क्षत्रियोंका विनाश करनेवाला है। भीमसेन! इसी हाथसे मैंने सभामें

बैठे हुए कुरुकुलके श्रेष्ठ पुरुषों और तुमलोगोंके देखते-देखते द्रौपदीके केश खींचे थे' ॥ २३-२४ ॥

एवं त्वसौ राजसुतं निशम्य
ब्रुवन्तमाजौ विनिपीड्य वक्षः ।
भीमो बलात्तं प्रतिगृह्य दोर्भ्या-
मुच्चैर्ननादाथ समस्तयोधान् ॥ २५ ॥
उवाच यस्यास्ति बलं स रक्ष-
त्वसौ भवेदद्य निरस्तबाहुः ।
दुःशासनं जीवितं प्रोत्सृजन्त-
माक्षिप्य योधांस्तरसा महाबलः॥ २६ ॥
एवं क्रुद्धो भीमसेनः करेण
उत्पाटयामास भुजं महात्मा ।
दुःशासनं तेन स वीरमध्ये
जघान वज्राशनिसंनिभेन ॥ २७ ॥

युद्धस्थलमें ऐसी बात कहते हुए राजकुमार दुःशासनकी छातीपर चढ़कर भीमसेनने उसे दोनों हाथोंसे बलपूर्वक पकड़ लिया और उच्चस्वरसे सिंहनाद करते हुए समस्त योद्धाओंसे कहा—'आज दुःशासनकी बाँह उखाड़ी जा रही है । यह अब अपने प्राणोंको त्यागना ही चाहता है । जिसमें बल हो, वह आकर इसे मेरे हाथसे बचा ले ।' इस प्रकार समस्त योद्धाओंको ललकारकर महाबली, महामनस्वी, कुपित भीमसेनने एक ही हाथसे वेगपूर्वक दुःशासनकी बाँह उखाड़ ली । उसकी वह बाँह वज्रके समान कठोर थी । भीमसेन समस्त वीरोंके बीच उसीके द्वारा उसे पीटने लगे ॥

उत्कृत्य वक्षः पतितस्य भूमा-
वथापिबच्छोणितमस्य कोष्णम् ।
ततो निपात्यास्य शिरोऽपकृत्य
तेनासिना तव पुत्रस्य राजन् ॥ २८ ॥
सत्यां चिकीर्षुर्मतिमान् प्रतिज्ञां
भीमोऽपिबच्छोणितमस्य कोष्णम्।
आस्वाद्य चास्वाद्य च वीक्षमाणः
क्रुद्धो हि चैनं निजगाद वाक्यम्॥ २९ ॥

इसके बाद पृथ्वीपर पड़े हुए दुःशासनकी छाती फाड़कर वे उसका गरम-गरम रक्त पीनेका उपक्रम करने लगे । राजन् ! उठनेकी चेष्टा करते हुए दुःशासनको पुनः गिराकर बुद्धिमान् भीमसेनने अपनी प्रतिज्ञा सत्य करनेके लिये तलवारसे आपके पुत्रका मस्तक काट डाला और उसके कुछ-कुछ गरम रक्तको वे स्वाद ले-लेकर पीने लगे । फिर क्रोधमें भरकर उसकी ओर देखते हुए इस प्रकार बोले—॥

स्तन्यस्य मातुर्मधुसर्पिषोर्वा
माध्वीकपानस्य च सत्कृतस्य ।
दिव्यस्य वा तोयरसस्य पानात्
पयोदधिभ्यां मथिताच्च मुख्यात्॥ ३० ॥
अन्यानि पानानि च यानि लोके
सुधामृतस्वादुरसानि तेभ्यः ।
सर्वेभ्य एवाभ्यधिको रसोऽयं
ममाद्य चास्याहितलोहितस्य ॥ ३१ ॥

'मैंने माताके दूधका, मधु और घीका, अच्छी तरह तैयार किये हुए मधूक पुष्प-निर्मित पेय पदार्थका, दिव्य जलके रसका, दूध और दहीसे बिलोये हुए ताजे माखनका भी पान या रसास्वादन किया है; इन सबसे तथा इनके अतिरिक्त भी संसारमें जो अमृतके समान स्वादिष्ट पीने योग्य पदार्थ हैं, उन सबसे भी मेरे इस शत्रुके रक्तका स्वाद अधिक है ॥ ३०-३१ ॥

अथाह भीमः पुनरुग्रकर्मा
दुःशासनं क्रोधपरीतचेताः ।
गतासुमालोक्य विहस्य सुस्वरं
किं वा कुर्यां मृत्युना रक्षितोऽसि॥ ३२ ॥

तदनन्तर भयानक कर्म करनेवाले भीमसेन क्रोधसे व्याकुलचित्त हो दुःशासनको प्राणहीन हुआ देख जोर-जोरसे अट्टहास करते हुए बोले—'क्या करूँ ! मृत्युने तुझे दुर्दशासे बचा दिया' ॥ ३२ ॥

एवं ब्रुवाणं पुनराद्रवन्त-
मास्वाद्य रक्तं तमतिप्रहृष्टम् ।
ये भीमसेनं ददृशुस्तदानीं
भयेन तेऽपि व्यथिता निपेतुः ॥ ३३ ॥

ऐसा कहते हुए वे बारंबार अत्यन्त प्रसन्न हो उसके रक्तका आस्वादन करने और उछलने-कूदने लगे । उस समय जिन्होंने भीमसेनकी ओर देखा, वे भी भयसे पीड़ित हो पृथ्वीपर गिर गये ॥ ३३ ॥

ये चापि नासन् व्यथिता मनुष्या-
स्तेषां करेभ्यः पतितं हि शस्त्रम् ।
भयाच्च संचुक्रुशुरस्वरैस्ते
निमीलिताक्षा ददृशुः समन्ततः ॥ ३४ ॥

जो लोग भयसे व्याकुल नहीं हुए, उनके हाथोंसे भी हथियार तो गिर ही पड़ा । वे भयसे मन्द स्वरमें सहायकोंको पुकारने लगे और आँखें कुछ-कुछ बंद किये ही सब ओर देखने लगे ॥ ३४ ॥

तं तत्र भीमं ददृशुः समन्ताद्
दौःशासनं तद् रुधिरं पिबन्तम् ।
सर्वेऽपलायन्त भयाभिपन्ना
न वै मनुष्योऽयमिति ब्रुवाणाः ॥ ३५ ॥

जिन लोगोंने भीमसेनको दुःशासनका रक्त पीते देखा, वे सभी भयभीत हो यह कहते हुए सब ओर भागने लगे कि 'यह मनुष्य नहीं राक्षस है !' ॥ ३५ ॥

तस्मिन् कृते भीमसेनेन रूपे
दृष्ट्वा जनाः शोणितं पीयमानम् ।

सम्प्राद्रवंश्चित्रसेनेन सार्धं
भीमं रक्षो भाषमाणा भयार्ताः ॥ ३६ ॥

भीमसेनके वैसा भयानक रूप बना लेनेपर उनके द्वारा रक्तका पीया जाना देखकर सब लोग भयसे आतुर हो भीमको राक्षस बताते हुए चित्रसेनके साथ भाग चले ॥ ३६ ॥

युधामन्युः प्रद्रुतं चित्रसेनं
सहानीकस्त्वभ्ययाद् राजपुत्रः ।
विव्याध चैनं निशितैः पृषत्कै-
र्व्यपेतभीः सप्तभिराशुमुक्तैः ॥ ३७ ॥

चित्रसेनको भागते देख राजकुमार युधामन्युने अपनी सेनाके साथ उसका पीछा किया और निर्भय होकर शीघ्र छोड़े हुए सात पैने बाणोंद्वारा उसे घायल कर दिया ॥ ३७ ॥

संक्रान्तभोग इव लेलिहानो
महोरगः क्रोधविषं सिसृक्षुः ।
निवृत्य पाञ्चालजमभ्यविध्य-
त् त्रिभिः शरैः सारथिमस्य षड्भिः ॥ ३८ ॥

तब जिसका शरीर पैरोंसे कुचल गया हो, अतएव जो क्रोधजनित विषका वमन करना चाहता हो, उस जीभ लपलपानेवाले महान् सर्पके समान चित्रसेनने पुनः लौटकर उस पाञ्चालराजकुमारको तीन और उसके सारथिको छः बाण मारे ॥ ३८ ॥

ततः सुपुङ्खेन सुयन्त्रितेन
सुसंशिताग्रेण शरेण शूरः ।
आकर्णमुक्तेन समाहितेन
युधामन्युस्तस्य शिरो जहार ॥ ३९ ॥

तत्पश्चात् शूरवीर युधामन्युने धनुषको कानतक खींचकर ठीकसे संधान करके छोड़े हुए सुन्दर पंख और तीखी धारवाले सुनियन्त्रित बाणद्वारा चित्रसेनका मस्तक काट दिया॥

तस्मिन् हते भ्रातरि चित्रसेने
क्रुद्धः कर्णः पौरुषं दर्शयानः ।
व्यद्रावयत् पाण्डवानामनीकं
प्रत्युद्यातो नकुलेनामितौजाः ॥ ४० ॥

अपने भाई चित्रसेनके मारे जानेपर कर्ण क्रोधमें भर गया और अपना पराक्रम दिखाता हुआ पाण्डवसेनाको खदेड़ने लगा। उस समय अमितबलशाली नकुलने आगे आकर उसका सामना किया ॥ ४० ॥

भीमोऽपि हत्वा तत्रैव दुःशासनममर्षणम् ।
पूरयित्वाञ्जलिं भूयो रुधिरस्योग्रनिःस्वनः ॥ ४१ ॥
शृण्वतां लोकवीराणामिदं वचनमब्रवीत् ।

इधर भीमसेन भी अमर्षमें भरे हुए दुःशासनका वहीं वध करके पुनः उसके खूनसे अञ्जलि भरकर भयंकर गर्जना करते और विश्वविख्यात वीरोंके सुनते हुए इस प्रकार बोले—॥

एष ते रुधिरं कण्ठात् पिबामि पुरुषाधम ॥ ४२ ॥
ब्रूहीदानीं तु संहृष्टः पुनर्गौरिति गौरिति ।

'नराधम दुःशासन! यह देख, मैं तेरे गलेका खून पी रहा हूँ। अब इस समय पुनः हर्षमें भरकर मुझे 'बैल-बैल' कहकर पुकार तो सही ॥ ४२½ ॥

ये तदास्मान् प्रनृत्यन्ति पुनर्गौरिति गौरिति ॥ ४३ ॥
तान् वयं प्रतिनृत्यामः पुनर्गौरिति गौरिति ।

'जो लोग उस दिन कौरवसभामें हमें 'बैल बैल' कहकर खुशीके मारे नाच उठते थे, उन सबको आज बारंबार 'बैल-बैल' कहते हुए हम भी प्रसन्नतापूर्वक नृत्य कर रहे हैं।४३½।

प्रमाणकोट्यां शयनं कालकूटस्य भोजनम् ॥ ४४ ॥
दंशनं चाहिभिः कृष्णैर्दाहं च जतुवेश्मनि ।
द्यूतेन राज्यहरणमरण्ये वसतिश्च या ॥ ४५ ॥
द्रौपद्याः केशपक्षस्य ग्रहणं च सुदारुणम् ।
इष्वस्त्राणि च संग्रामेष्वसुखानि च वेश्मनि ॥ ४६ ॥
विराटभवने यश्च क्लेशोऽस्माकं पृथग्विधः ।
शकुनेर्धार्तराष्ट्रस्य राधेयस्य च मन्त्रिते ॥ ४७ ॥
अनुभूतानि दुःखानि तेषां हेतुस्त्वमेव हि ।
दुःखान्येतानि जानीमो न सुखानि कदाचन ॥ ४८ ॥
धृतराष्ट्रस्य दौरात्म्यात् सपुत्रस्य सदा वयम् ।

'मुझे प्रमाणकोटितीर्थमें विष पिलाकर नदीमें डाल दिया गया, कालकूट नामक विष खिलाया गया, काले सर्पोंसे डसाया गया, लाक्षागृहमें जलानेकी चेष्टा की गयी, जूएके द्वारा हमारे राज्यका अपहरण किया गया और हम सब लोगोंको वनवास दे दिया गया। द्रौपदीके केश खींचे गये, जो अत्यन्त दारुण कर्म था। संग्राममें हमपर बाणों तथा अन्य घातक अस्त्रोंका प्रयोग किया गया और घरमें भी चैनसे नहीं रहने दिया गया। राजा विराटके भवनमें हमें जो महान् क्लेश उठाना पड़ा, वह तो सबसे विलक्षण है। शकुनि, दुर्योधन और कर्णकी सलाहसे हमें जो-जो दुःख भोगने पड़े, उन सबकी जड़ तू ही था। पुत्रोंसहित धृतराष्ट्रकी दुष्टतासे हमें ये दुःख भोगने पड़े हैं। इन दुःखोंको तो हम जानते हैं, किंतु हमें कभी सुख मिला हो, इसका स्मरण नहीं है' ॥ ४४—४८½ ॥

इत्युक्त्वा वचनं राजञ्जयं प्राप्य वृकोदरः ।
पुनराह महाराज स्मयंस्तौ केशवार्जुनौ ॥ ४९ ॥

असृग्दिग्धो विस्रवल्लोहितास्यः
क्रुद्धोऽत्यर्थं भीमसेनस्तरस्वी ।
दुःशासने यद् रणे संश्रुतं मे
तद् वै सत्यं कृतमद्येह वीरौ ॥ ५० ॥

महाराज! ऐसी बात कहकर खूनसे भीगे और रक्तसे लाल मुखवाले, अत्यन्त क्रोधी, वेगशाली वीर भीमसेन युद्धमें विजय पाकर मुस्कराते हुए पुनः श्रीकृष्ण और अर्जुनसे बोले—'वीरो! दुःशासनके विषयमें मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, उसे आज यहाँ रणभूमिमें सत्य कर दिखाया ॥ ४९-५० ॥

अत्रैव दास्याम्यपरं द्वितीयं
दुर्योधनं यज्ञपशुं विशस्य।
शिरो मृदित्वा च पदा दुरात्मनः
शान्तिं लप्स्ये कौरवाणां समक्षम्॥ ५१ ॥

'यहीं दूसरे यज्ञपशु दुर्योधनको काटकर उसकी बलि दूँगा और समस्त कौरवोंकी आँखोंके सामने उस दुरात्माके मस्तकको पैरसे कुचलकर शान्ति प्राप्त करूँगा' ॥ ५१ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं प्रहृष्टो
ननाद चोच्चै रुधिरार्द्रगात्रः।
ननर्द चैवातिबलो महात्मा
वृत्रं निहत्येव सहस्रनेत्रः ॥ ५२ ॥

ऐसा कहकर खूनसे भीगे शरीरवाले अत्यन्त बलशाली महामना भीम वृत्रासुरका वध करके गर्जनेवाले सहस्र नेत्रधारी इन्द्रके समान उच्चस्वरसे गर्जन और सिंहनाद करने लगे॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि दुःशासनवधे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें दुःशासनवधविषयक तिरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रके दस पुत्रोंका वध, कर्णका भय और शल्यका समझाना तथा नकुल और वृषसेनका युद्ध

संजय उवाच

दुःशासने तु निहते तव पुत्रा महारथाः।
महाक्रोधविषा वीराः समरेष्वपलायिनः ॥ १ ॥
दश राजन् महावीर्या भीमं प्राच्छादयञ्शरैः।

संजय कहते हैं— राजन्! दुःशासनके मारे जानेपर युद्धसे कभी पीठ न दिखानेवाले और महान् क्रोधरूपी विषसे भरे हुए आपके दस महारथी महापराक्रमी वीर पुत्रोंने आकर भीमसेनको अपने बाणोंद्वारा आच्छादित कर दिया॥ १½ ॥

निषङ्गी कवची पाशी दण्डधारो धनुर्ग्रहः॥ २ ॥
अलोलुपः शलः सन्धो वातवेगसुवर्चसौ।
एते समेत्य सहिता भ्रातृव्यसनकर्शिताः ॥ ३ ॥
भीमसेनं महाबाहुं मार्गणैः समवारयन्।

निषङ्गी, कवची, पाशी, दण्डधार, धनुर्ग्रह (धनुग्रह), अलोलुप, शल, सन्ध (सत्यसन्ध), वातवेग और सुवर्चा (सुवर्चस्)—ये एक साथ आकर भाईकी मृत्युसे दुखी हो महाबाहु भीमसेनको अपने बाणोंद्वारा रोकने लगे ॥ २-३½॥

स वार्यमाणो विशिखैः समन्तात् तैर्महारथैः ॥ ४ ॥
भीमः क्रोधाग्निरक्ताक्षः क्रुद्धः काल इवाबभौ।

उन महारथियोंके चलाये हुए बाणोंद्वारा चारों ओरसे रोके जानेपर भीमसेनकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं और वे कुपित हुए कालके समान प्रतीत होने लगे ॥ ४½ ॥

तांस्तु भल्लैर्महावेगैर्दशभिर्दश भारतान् ॥ ५ ॥
रुक्माङ्गदान् रुक्मपुङ्खैः पार्थो निन्ये यमक्षयम्।

कुन्तीकुमार भीमने सोनेके पंखवाले महान् वेगशाली दस भल्लोंद्वारा सुवर्णमय अङ्गदोंसे विभूषित उन दसों भरतवंशी राजकुमारोंको यमलोक पहुँचा दिया ॥ ५½ ॥

हतेषु तेषु वीरेषु प्रदुद्राव बलं तव ॥ ६ ॥
पश्यतः सूतपुत्रस्य पाण्डवस्य भयार्दितम्।

उन वीरोंके मारे जानेपर पाण्डुपुत्र भीमसेनके भयसे पीड़ित हो आपकी सारी सेना सूतपुत्रके देखते-देखते भाग चली ॥ ६½ ॥

ततः कर्णो महाराज प्रविवेश महद् भयम् ॥ ७ ॥
दृष्ट्वा भीमस्य विक्रान्तमन्तकस्य प्रजास्विव।

महाराज! जैसे प्रजावर्गपर यमराजका बल काम करता है, उसी प्रकार भीमसेनका वह पराक्रम देखकर कर्णके मनमें महान् भय समा गया ॥ ७½ ॥

तस्य त्वाकारभावज्ञः शल्यः समितिशोभनः ॥ ८ ॥
उवाच वचनं कर्णं प्राप्तकालमरिंदमम्।

युद्धमें शोभा पानेवाले शल्य कर्णकी आकृति देखकर ही उसके मनका भाव समझ गये; अतः शत्रुदमन कर्णसे यह समयोचित वचन बोले—॥ ८½ ॥

मा व्यथां कुरु राधेय नैवं त्वय्युपपद्यते ॥ ९ ॥
एते द्रवन्ति राजानो भीमसेनभयार्दिताः।
दुर्योधनश्च सम्मूढो भ्रातृव्यसनकर्शितः ॥ १० ॥

'राधानन्दन! तुम खेद न करो, तुम्हें यह शोभा नहीं देता है। ये राजालोग भीमसेनके भयसे पीड़ित हो भागे जा रहे हैं। अपने भाइयोंकी मृत्युसे दुःखित हो राजा दुर्योधन भी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया है ॥ ९-१० ॥

दुःशासनस्य रुधिरे पीयमाने महात्मना।
व्यापन्नचेतसश्चैव शोकोपहतचेतसः ॥ ११ ॥
दुर्योधनमुपासन्ते परिवार्य समन्ततः।
कृपप्रभृतयश्चैते हतशेषाः सहोदराः ॥ १२ ॥

'महामना भीमसेन जब दुःशासनका रक्त पी रहे थे, तभीसे ये कृपाचार्य आदि वीर तथा मरनेसे बचे हुए सब भाई कौरव विपन्न और शोकाकुलचित्त होकर दुर्योधनको सब ओरसे घेरकर उसके पास खड़े हैं ॥ ११-१२ ॥

पाण्डवा लब्धलक्ष्याश्च धनंजयपुरोगमाः।
त्वामेवाभिमुखाः शूरा युद्धाय समुपस्थिताः ॥ १३ ॥

'अर्जुन आदि पाण्डव वीर अपना लक्ष्य सिद्ध कर चुके हैं और अब युद्धके लिये तुम्हारे ही सामने उपस्थित हो रहे हैं ॥ १३ ॥

स त्वं पुरुषशार्दूल पौरुषेण समास्थितः।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य प्रत्युद्याहि धनंजयम् ॥ १४ ॥

'पुरुषसिंह ! ऐसी अवस्थामें तुम पुरुषार्थका भरोसा करके क्षत्रिय-धर्मको सामने रखते हुए अर्जुनपर चढ़ाई करो ॥

भारो हि धार्तराष्ट्रेण त्वयि सर्वः समाहितः।
तमुद्वह महाबाहो यथाशक्ति यथाबलम्॥ १५॥

'महाबाहो ! धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनने सारा भार तुम्हींपर रख छोड़ा है। तुम अपने बल और शक्तिके अनुसार उस भारका वहन करो ॥ १५ ॥

जये स्याद् विपुला कीर्तिर्ध्रुवः स्वर्गः पराजये।
वृषसेनश्च राधेय संक्रुद्धस्तनयस्तव॥ १६॥
त्वयि मोहं समापन्ने पाण्डवानभिधावति।

'यदि विजय हुई तो तुम्हारी बहुत बड़ी कीर्ति फैलेगी और पराजय होनेपर अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति निश्चित है। राधानन्दन ! तुम्हारे मोहग्रस्त हो जानेके कारण तुम्हारा पुत्र वृषसेन अत्यन्त कुपित हो पाण्डवोंपर धावा कर रहा है' ॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं शल्यस्यामिततेजसः।
हृदि चावश्यकं भावं चक्रे युद्धाय सुस्थिरम्॥ १७॥

अमिततेजस्वी शल्यकी यह बात सुनकर कर्णने अपने हृदयमें युद्धके लिये आवश्यक भाव (उत्साह, अमर्ष आदि) को दृढ़ किया ॥ १७ ॥

ततः क्रुद्धो वृषसेनोऽभ्यधाव-
दवस्थितं प्रमुखे पाण्डवं तम्।
वृकोदरं कालमिवात्तदण्डं
गदाहस्तं योधयन्तं त्वदीयान्॥ १८॥

तत्पश्चात् क्रोधमें भरे हुए वृषसेनने सामने खड़े हुए पाण्डुपुत्र भीमसेनपर धावा किया, जो दण्डधारी कालके समान हाथमें गदा लिये आपके सैनिकोंके साथ युद्ध कर रहे थे ॥ १८ ॥

तमभ्यधावन्नकुलः प्रवीरो
रोषादमित्रं प्रतुदन् पृषत्कैः।
कर्णस्य पुत्रं समरे प्रहृष्टं
पुरा जिघांसुर्मघवेव जम्भम्॥ १९॥

यह देख प्रमुख वीर नकुलने अपने शत्रु कर्णपुत्र वृषसेनको, जो समराङ्गणमें बड़े हर्षके साथ युद्ध कर रहा था, बाणोंद्वारा पीड़ित करते हुए उसपर रोषपूर्वक चढ़ाई कर दी। ठीक उसी तरह, जैसे पूर्वकालमें इन्द्रने 'जम्भ' नामक दैत्यपर आक्रमण किया था ॥ १९ ॥

ततो ध्वजं स्फाटिकचित्रकञ्चुकं
चिच्छेद वीरो नकुलः क्षुरेण।
कर्णात्मजस्येष्वसनं च चित्रं
भल्लेन जाम्बूनदचित्रनद्धम्॥ २०॥

तदनन्तर वीर नकुलने एक क्षुरद्वारा कर्णपुत्रके उस ध्वजको काट डाला, जिसे स्फटिकमणिसे जटित विचित्र कंचुक (चोला) पहनाया गया था। साथ ही एक भल्लद्वारा उसके सुवर्णजटित विचित्र धनुषको भी खण्डित कर दिया ॥ २० ॥

अथान्यदादाय धनुः स शीघ्रं
कर्णात्मजः पाण्डवमभ्यविध्यत्।
दिव्यैरस्त्रैरभ्यवर्षच्च सोऽपि
कर्णस्य पुत्रो नकुलं कृतास्त्रः॥ २१॥

तब कर्णपुत्र वृषसेनने तुरंत ही दूसरा धनुष हाथमें लेकर पाण्डुकुमार नकुलको बींध डाला। कर्णका पुत्र अस्त्र-विद्याका ज्ञाता था, इसलिये वह नकुलपर दिव्यास्त्रोंकी वर्षा करने लगा ॥ २१ ॥

शराभिघाताच्च रुषा च राजन्
स्वया च भासास्त्रसमीरणाच्च।
जज्वाल कर्णस्य सुतोऽतिमात्र-
मिद्धो यथाऽऽज्याहुतिभिर्हुताशः॥ २२॥
कर्णस्य पुत्रो नकुलस्य राजन्
सर्वानश्वानक्षिणोदुत्तमास्त्रैः।
वनायुजान् वै नकुलस्य शुभ्रा-
नुदग्रगान् हेमजालावनद्धान्॥ २३॥

राजन् ! जैसे घीकी आहुति पड़नेसे अग्नि अत्यन्त प्रज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार कर्णका पुत्र बाणोंके प्रहारसे अपनी प्रभासे, अस्त्रोंके प्रयोगसे और रोषसे जल उठा। उसने नकुलके सब घोड़ोंको, जो वनायु देशमें उत्पन्न, श्वेत-वर्ण, तीव्रगामी और सोनेकी जालीसे आच्छादित थे, अपने अस्त्रोंद्वारा काट डाला ॥ २२-२३ ॥

ततो हताश्वादवरुह्य याना-
दादाय चर्मामलरुक्मचन्द्रम्।
आकाशसंकाशमसिं प्रगृह्य
दोधूयमानः खगवच्चचार॥ २४॥

तत्पश्चात् अश्वहीन रथसे उतरकर स्वर्णमय निर्मल चन्द्राकार चिह्नोंसे युक्त ढाल और आकाशके समान स्वच्छ तलवार ले उसे घुमाते हुए नकुल एक पक्षीके समान विचरने लगे ॥ २४ ॥

ततोऽन्तरिक्षे च रथाश्वनागं
चिच्छेद तूर्णं नकुलश्चित्रयोधी।
ते प्रापतन्नसिना गां विशस्ता
यथाश्वमेधे पशवः शमित्रा॥ २५॥

फिर विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले नकुलने बड़े-बड़े रथियों, सवारोंसहित घोड़ों और हाथियोंको तुरंत ही आकाशमें तलवार घुमाकर काट डाला। वे अश्वमेध-यज्ञमें शामित्र कर्म करनेवाले पुरुषके द्वारा मारे गये पशुओंके समान तलवारसे कटकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २५ ॥

द्विसाहस्राः पातिता युद्धशौण्डा
नानादेश्याः सुभृताः सत्यसंधाः।

एकेन संख्ये नकुलेन कृत्ता
जयेप्सुनानुत्तमचन्दनाङ्गाः ॥ २६ ॥

युद्धस्थलमें विजयकी इच्छा रखनेवाले एकमात्र वीर नकुलके द्वारा उत्तम चन्दनसे चर्चित अङ्गोंवाले, नाना देशोंमें उत्पन्न, युद्धकुशल, सत्यप्रतिज्ञ और अच्छी तरह पाले-पोसे गये दो हजार योद्धा काट डाले गये ॥ २६ ॥

तमापतन्तं नकुलं सोऽभिपत्य
समन्ततः सायकैः प्रत्यविद्धयत्।
स तुद्यमानो नकुलः पृषत्कै-
र्विव्याध वीरं स चुकोप विद्धः ॥ २७ ॥

अपने ऊपर आक्रमण करनेवाले नकुलके पास पहुँचकर वृषसेनने अपने सायकोंद्वारा उन्हें सब ओरसे बींध डाला। बाणोंसे पीड़ित हुए नकुल अत्यन्त कुपित हो उठे और स्वयं घायल होकर उन्होंने वीर वृषसेनको भी बींध डाला ॥ २७॥

महाभये रक्ष्यमाणो महात्मा
भ्रात्रा भीमेनाकरोत् तत्र भीमम्।
तं कर्णपुत्रो विधमन्तमेकं
नराश्वमातङ्गरथाननेकान् ॥ २८ ॥
क्रीडन्तमष्टादशभिः पृषत्कै-
र्विव्याध वीरं नकुलं सरोषः।

उस महान् भयके अवसरपर अपने भाई भीमसे सुरक्षित हो महामना नकुलने वहाँ भयंकर पराक्रम प्रकट किया। अकेले ही बहुत-से पैदल मनुष्यों, घोड़ों, हाथियों और रथोंका संहार करते एवं खेलते हुए-से वीर नकुलको रोषमें भरे हुए कर्णपुत्रने अठारह बाणोंद्वारा घायल कर दिया ॥२८½॥

स तेन विद्धोऽतिभृशं तरस्वी
महाहवे वृषसेनेन राजन् ॥ २९ ॥
क्रुद्धेन धावन् समरे जिघांसुः
कर्णात्मजं पाण्डुसुतो नृवीरः।

राजन्! उस महासमरमें कुपित हुए वृषसेनके द्वारा अत्यन्त घायल किये गये वेगवान् वीर पाण्डुपुत्र नकुल कर्णके पुत्रको मार डालनेकी इच्छासे उसकी ओर दौड़े ॥२९½॥

वितत्य पक्षौ सहसा पतन्तं
श्येनं यथैवामिषलुब्धमाजौ ॥ ३० ॥
अवाकिरद् वृषसेनस्ततस्तं
शितैः शरैर्नकुलमुदारवीर्यम्।

जैसे बाज मांसके लोभसे पंख फैलाकर सहसा टूट पड़ता है, उसी प्रकार युद्धस्थलमें वेगपूर्वक आक्रमण करनेवाले उदार पराक्रमी नकुलको वृषसेनने अपने पैने बाणोंसे ढक दिया ॥ ३०½ ॥

स तान् मोघांस्तस्य कुर्वञ्शरौघां-
श्चचार मार्गान् नकुलश्चित्ररूपान्॥ ३१ ॥
अथास्य तूर्णं चरतो नरेन्द्र
खड्गेन चित्रं नकुलस्य तस्य।
महेषुभिर्व्यधमत् कर्णपुत्रो
महाहवे चर्म सहस्रतारम् ॥ ३२ ॥

नकुल उसके उन बाणसमूहोंको व्यर्थ करते हुए विचित्र मार्गोंसे विचरने लगे (युद्धके अद्भुत पैंतरे दिखाने लगे)। नरेन्द्र! तलवारके विचित्र हाथ दिखाते हुए शीघ्रतापूर्वक विचरनेवाले नकुलकी सहस्र तारोंके चिह्नवाली ढालको कर्णके पुत्रने उस महायुद्धमें अपने विशाल बाणोंद्वारा नष्ट कर दिया ॥ ३१-३२ ॥

तं चायसं निशितं तीक्ष्णधारं
विकोशमुग्रं गुरुभारसाहम्।
द्विषच्छरीरान्तकरं सुघोर-
माधुन्वतः सर्पमिवोग्ररूपम् ॥ ३३ ॥
क्षिप्रं शरैः षड्भिरमित्रसाह-
श्चकर्त खड्गं निशितैः सुवेगैः।
पुनश्च दीप्तैर्निशितैः पृषत्कैः
स्तनान्तरे गाढमथाभ्यविद्धयत् ॥ ३४ ॥

इसके बाद शत्रुओंका सामना करनेमें समर्थ वृषसेनने अत्यन्त वेगशाली और तीखी धारवाले छः बाणोंद्वारा तलवार घुमाते हुए नकुलकी उस तलवारके भी शीघ्रतापूर्वक टुकड़े-टुकड़े कर डाले। वह तलवार लोहेकी बनी हुई, तेजधारवाली तीखी, भारी भार सहन करनेमें समर्थ, म्यानसे बाहर निकली हुई, भयंकर, सर्पके समान उग्र रूपधारी, अत्यन्त घोर और शत्रुओंके शरीरोंका अन्त कर देनेवाली थी। तलवार काटनेके पश्चात् उसने पुनः प्रज्वलित एवं पैने बाणोंद्वारा नकुलकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी ॥३३-३४॥

कृत्वा तु तद् दुष्करमार्यजुष्ट-
मन्यैर्नरैः कर्म रणे महात्मा।
ययौ रथं भीमसेनस्य राजञ्
शराभितप्तो नकुलस्त्वरावान् ॥ ३५ ॥

राजन्! महामना नकुल रणभूमिमें अन्य मनुष्योंके लिये दुष्कर तथा सज्जन पुरुषोंद्वारा सेवित उत्तम कर्म करके वृषसेनके बाणोंसे संतप्त हो बड़ी उतावलीके साथ भीमसेनके रथपर जा चढ़े ॥ ३५ ॥

स भीमसेनस्य रथं हताश्वो
माद्रीसुतः कर्णसुताभितप्तः।
आपुप्लुवे सिंह इवाचलाग्रं
सम्प्रेक्षमाणस्य धनंजयस्य ॥ ३६ ॥

अपने घोड़ोंके मारे जानेपर कर्णपुत्रके बाणोंसे पीड़ित हुए माद्रीकुमार नकुल अर्जुनके देखते-देखते पर्वतके शिखरपर उछलकर चढ़नेवाले सिंहके समान छलाँग मारकर भीमसेनके रथपर आरूढ़ हो गये ॥ ३६ ॥

ततः क्रुद्धो वृषसेनो महात्मा
ववर्ष ताविषुजालेन वीरः।

महारथावेकरथे समेतौ
शरैः प्रभिन्दन्निव पाण्डवेयौ ॥ ३७ ॥

इससे महामनस्वी वीर वृषसेनको बड़ा क्रोध हुआ। वह एक रथपर एकत्र हुए उन महारथी पाण्डुकुमारोंको बाणोंद्वारा विदीर्ण करता हुआ उन दोनोंपर बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगा ॥ ३७ ॥

तस्मिन् रथे निहते पाण्डवस्य
क्षिप्रं च खड्गे विशिखैर्निकृत्ते।
अन्ये च संहत्य कुरुप्रवीरा-
स्ततो न्यघ्नञ्शरवर्षैरुपेत्य ॥ ३८ ॥

जब पाण्डुपुत्र नकुलका वह रथ नष्ट हो गया और बाणोंद्वारा उनकी तलवार शीघ्रतापूर्वक काट दी गयी, तब दूसरे कौरव वीर भी संगठित हो निकट आकर उन दोनोंको बाणोंकी वर्षासे चोट पहुँचाने लगे ॥ ३८ ॥

तौ पाण्डवेयौ परितः समेतान्
संहूयमानाविव हव्यवाहौ।
भीमार्जुनौ वृषसेनाय क्रुद्धौ
ववर्षतुः शरवर्षं सुघोरम् ॥ ३९ ॥

तब वृषसेनपर कुपित हुए पाण्डुपुत्र भीमसेन और अर्जुन घीकी आहुति पाकर प्रज्वलित हुए दो अग्नियोंके समान प्रकाशित होने लगे। उन दोनोंने अपने आस-पास एकत्र हुए कौरवसैनिकोंपर अत्यन्त घोर बाणवर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ ३९ ॥

अथाब्रवीन्मारुतिः फाल्गुनं च
पश्यस्वैनं नकुलं पीड्यमानम्।
अयं च नो बाधते कर्णपुत्र-
स्तस्माद् भवान् प्रत्युपयातु कार्णिम् ॥ ४० ॥

तदनन्तर वायुपुत्र भीमसेनने अर्जुनसे कहा—'देखो, यह नकुल वृषसेनसे पीड़ित हो गया है। कर्णका यह पुत्र हमें बहुत सता रहा है, अतः तुम इस कर्णपुत्रपर आक्रमण करो' ॥ ४० ॥

स तन्निशम्यैव वचः किरीटी
रथं समासाद्य वृकोदरस्य।
अथाब्रवीन्नकुलो वीक्ष्य वीर-
मुपागतं शातय शीघ्रमेनम् ॥ ४१ ॥

भीमसेनके रथके समीप आकर जब किरीटधारी अर्जुन उनकी बात सुनकर जाने लगे, तब नकुलने भी पास आये हुए वीर अर्जुनकी ओर देखकर उनसे कहा—'भैया! आप इस वृषसेनको शीघ्र मार डालिये' ॥ ४१ ॥

इत्येवमुक्तः सहसा किरीटी
भ्रात्रा समक्षं नकुलेन संख्ये।
कपिध्वजं केशवसंगृहीतं
प्रैषीदुदग्रो वृषसेनाय वाहम् ॥ ४२ ॥

युद्धमें सामने आये हुए भाई नकुलके ऐसा कहनेपर किरीटधारी अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा काबूमें किये हुए कपिध्वज रथको सहसा वृषसेनकी ओर तीव्र वेगसे हाँक दिया ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि वृषसेनयुद्धे नकुलपराजये चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें वृषसेनका युद्ध और नकुलकी पराजयविषयक चौरासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८४ ॥

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

कौरववीरोंद्वारा कुलिन्दराजके पुत्रों और हाथियोंका संहार तथा अर्जुनद्वारा वृषसेनका वध

संजय उवाच

नकुलमथ विदित्वा छिन्नबाणासनासिं
विरथमरिशरार्तं कर्णपुत्रास्त्रभग्नम्।
पवनधुतपताकाह्लादिनो वल्गिताश्वा
वरपुरुषनियुक्तास्ते रथैः शीघ्रमीयुः ॥ १ ॥
द्रुपदसुतवरिष्ठाः पञ्च शैनेयषष्ठा
द्रुपददुहितृपुत्राः पञ्च चामित्रसाहाः।
द्विरदरथनराश्वान् सूदयन्तस्त्वदीयान्
भुजगपतिनिकाशैर्मार्गणैरात्तशस्त्राः ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! वृषसेनने नकुलके धनुष और तलवारको काट दिया है, वे रथहीन हो गये हैं, शत्रुके बाणोंसे पीड़ित हैं तथा कर्णके पुत्रने अपने अस्त्रोंद्वारा उन्हें पराजित कर दिया है; यह जानकर श्रेष्ठ पुरुष भीमसेनके आदेशसे हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र लिये शत्रुओंका सामना करनेमें समर्थ द्रुपदके पाँच श्रेष्ठ पुत्र, छठे सात्यकि तथा द्रौपदीके पाँच पुत्र—ये ग्यारह वीर आपके पक्षके हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकोंका अपने सर्पतुल्य बाणोंद्वारा संहार करते हुए रथोंद्वारा वहाँ शीघ्रतापूर्वक आ पहुँचे। उस समय उनके रथकी पताकाएँ वायुके वेगसे फहरा रही थीं। उनके घोड़े उछलते हुए आ रहे थे और वे सब-के-सब जोर-जोरसे गर्जना कर रहे थे ॥ १-२ ॥

अथ तव रथमुख्यास्तान् प्रतीयुस्त्वरन्तः
कृपहृदिकसुतौ च द्रौणिदुर्योधनौ च।
शकुनिसुतवृकौ च क्राथदेवावृधौ च
द्विरदजलदघोषैः स्यन्दनैः कार्मुकैश्च ॥ ३ ॥

तदनन्तर कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, दुर्योधन, शकुनिपुत्र उलूक, वृक, क्राथ और देवावृध—ये आपके प्रमुख महारथी बड़ी उतावलीके साथ धनुष लिये हाथी और मेघोंके समान शब्द करनेवाले रथोंपर आरूढ़ हो उन पाण्डव-वीरोंका सामना करनेके लिये आ पहुँचे ॥ ३ ॥

तव नृप रथिवर्यांस्तान् दशैकं च वीरान्
नृवर शरवराग्रैस्ताडयन्तोऽभ्यरुन्धन्।
नवजलदसवर्णैर्हस्तिभिस्तानुदीयु-
र्गिरिशिखरनिकाशैर्भीमवेगैः कुलिन्दाः॥ ४ ॥

नरश्रेष्ठ नरेश्वर! कृपाचार्य आदि आपके रथी वीरोंने अपने उत्तम बाणोंद्वारा प्रहार करते हुए वहाँ पाण्डव-पक्षके उन ग्यारह महारथी वीरोंको आगे बढ़नेसे रोक दिया। तत्पश्चात् कुलिन्ददेशके योधा नूतन मेघके समान काले, पर्वतशिखरोंके समान विशालकाय और भयंकर वेगशाली हाथियोंद्वारा कौरव-वीरोंपर चढ़ आये॥ ४॥

सुकल्पिता हैमवता मदोत्कटा
रणाभिकामैः कृतिभिः समास्थिताः।
सुवर्णजालैर्विततता बभुर्गजा-
स्तथा यथा खे जलदाः सविद्युतः॥ ५ ॥

वे हिमाचलप्रदेशके मदोन्मत्त हाथी अच्छी तरह सजाये गये थे। उनकी पीठोंपर सोनेकी जालियोंसे युक्त झूल पड़े हुए थे और उनके ऊपर युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले, रणकुशल कुलिन्द वीर बैठे हुए थे। उस समय रणभूमिमें वे हाथी आकाशमें बिजलीसहित मेघोंके समान शोभा पा रहे थे॥ ५॥

कुलिन्दपुत्रो दशभिर्महायसैः
कृपं ससूताश्वमपीडयद् भृशम्।
ततः शरद्वत्सुतसायकैर्हतः
सहैव नागेन पपात भूतले॥ ६ ॥

कुलिन्दराजके पुत्रने लोहेके बने हुए दस विशाल बाणोंसे सारथि और घोड़ोंसहित कृपाचार्यको अत्यन्त पीड़ित कर दिया। तदनन्तर शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्यके बाणोंद्वारा मारा जाकर वह हाथीके साथ ही पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ६॥

कुलिन्दपुत्रावरजस्तु तोमरै-
र्दिवाकरांशुप्रतिमैरयस्मयैः।
रथं च विक्षोभ्य ननाद नर्दत-
स्ततोऽस्य गान्धारपतिः शिरोऽहरत्॥ ७॥

कुलिन्द-राजकुमारका छोटा भाई सूर्यकी किरणोंके समान कान्तिमान् एवं लोहेके बने हुए तोमरोंद्वारा गान्धारराजके रथकी धज्जियाँ उड़ाकर जोर-जोरसे गर्जना करने लगा। इतनेहीमें गान्धारराजने उस गर्जते हुए वीरका सिर काट लिया॥ ७॥

ततः कुलिन्देषु हतेषु तेष्वथ
प्रहृष्टरूपास्तव ते महारथाः।
भृशं प्रदध्मुर्लवणाम्बुसम्भवान्
परांश्च बाणासनपाणयोऽभ्ययुः॥ ८ ॥

उन कुलिन्द वीरोंके मारे जानेपर आपके महारथी बड़े प्रसन्न हुए। वे जोर-जोरसे शङ्ख बजाने लगे और हाथमें धनुष-बाण लिये शत्रुओंपर टूट पड़े॥ ८॥

अथाभवद् युद्धमतीव दारुणं
पुनः कुरूणां सह पाण्डुसृञ्जयैः।
शरासिशक्त्यृष्टिगदापरश्वधै-
र्नराश्वनागासुहरं भृशाकुलम्॥ ९ ॥

तदनन्तर कौरवोंका पाण्डवों तथा सृंजयोंके साथ पुनः अत्यन्त भयंकर युद्ध होने लगा। वह घमासान युद्ध बाण, खड्ग, शक्ति, ऋष्टि, गदा और फरसोंकी मारसे मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंके प्राण ले रहा था॥ ९॥

रथाश्वमातङ्गपदातिभिस्ततः
परस्परं विप्रहतापतन् क्षितौ।
यथा सविद्युत्स्तनिता बलाहकाः
समाहता दिग्भ्य इवोग्रमारुतैः॥ १०॥

जैसे बिजलीकी चमक और गर्जनासे युक्त मेघ भयंकर वायुके वेगसे ताड़ित हो सम्पूर्ण दिशाओंसे गिर जाते हैं, उसी प्रकार रथों, घोड़ों, हाथियों और पैदलोंद्वारा परस्पर मारे जाकर वे युद्धपरायण योद्धा धराशायी होने लगे॥ १०॥

ततः शतानीकमतान् महागजां-
स्तथा रथान् पत्तिगणांश्च तान् बहून्।
जघान भोजस्तु हयानथापतन्
क्षणाद् विशस्ताः कृतवर्मणः शरैः॥ ११॥

तदनन्तर शतानीकद्वारा सम्मानित विशाल गजराजों, अश्वों, रथों और बहुत-से पैदलसमूहोंको कृतवर्माने मार डाला। वे कृतवर्माके बाणोंसे छिन्न-भिन्न हो क्षणभरमें धरतीपर गिर पड़े॥ ११॥

अथापरे द्रौणिहता महाद्विपा-
स्त्रयः ससर्वायुधयोधकेतनाः।
निपेतुरुर्व्यां व्यसवो निपातिता-
स्तथा यथा वज्रहता महाचलाः॥ १२॥

इसके बाद अश्वत्थामाने सम्पूर्ण आयुधों, योद्धाओं और ध्वजाओंसहित अन्य तीन विशाल गजराजोंको मार गिराया। उसके द्वारा मारे गये वे विशाल गजराज वज्रके मारे हुए महान् पर्वतोंके समान प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़े॥

कुलिन्दराजावरजादनन्तरः
स्तनान्तरे पत्रिवरैरताडयत्।
तवात्मजं तस्य तवात्मजः शरैः
शितैः शरीरं व्यहनद् द्विपं च तम्॥ १३॥

कुलिन्दराजके छोटे भाईसे भी जो छोटा था, उसने श्रेष्ठ बाणोंद्वारा आपके पुत्रकी छातीमें चोट पहुँचायी। तब आपके पुत्रने अपने तीखे बाणोंसे उसके शरीर और हाथी दोनोंको घायल कर दिया॥ १३॥

स नागराजः सह राजसूनुना
पपात रक्तं बहु सर्वतः क्षरन्।
महेन्द्रवज्रप्रहतोऽम्बुदागमे
यथा जलं गैरिकपर्वतस्तथा॥ १४॥

जैसे वर्षाकालमें इन्द्रके वज्रसे आहत हुआ गेरुका पर्वत लाल रंगका पानी बहाता है, इसी प्रकार वह गजराज अपने शरीरसे सब ओर बहुत-सा रक्त बहाता हुआ कुलिन्दराजकुमारके साथ ही धराशायी हो गया ॥ १४ ॥

कुलिन्दपुत्रप्रहितोऽपरो द्विपः
क्राथस्य सूताश्वरथं व्यपोथयत्।
ततोऽपतत् क्राथशराभिघातितः
सहेश्वरो वज्रहतो यथा गिरिः ॥ १५ ॥

अब कुलिन्दराजकुमारने दूसरा हाथी आगे बढ़ाया। उसने क्राथके सारथि, घोड़ों और रथको कुचल डाला, परंतु क्राथके बाणोंसे पीड़ित हो वह हाथी वज्रताड़ित पर्वतके समान अपने स्वामीके साथ ही धराशायी हो गया ॥ १५ ॥

रथी द्विपस्थेन हतोऽपतच्छरैः
क्राथाधिपः पर्वतजेन दुर्जयः।
सवाजिसूतेष्वसनध्वजस्तथा
यथा महावातहतो महाद्रुमः ॥ १६ ॥

तदनन्तर जैसे आँधीका उखाड़ा हुआ विशाल वृक्ष पृथ्वीपर गिर जाता है, उसी प्रकार घोड़े, सारथि, धनुष और ध्वजसहित दुर्जय महारथी क्राथ नरेश हाथीपर बैठे हुए एक पर्वतीय वीरके बाणोंसे मारा जाकर रथसे नीचे जा गिरा॥

वृको द्विपस्थं गिरिराजवासिनं
भृशं शरैर्द्वादशभिः पराभिनत्।
ततो वृकं साश्वरथं महाद्विपो
द्रुतं चतुर्भिश्चरणैर्व्यपोथयत् ॥ १७ ॥

तब वृकने उस पहाड़ी राजाको बारह बाण मारकर अत्यन्त घायल कर दिया। चोट खाकर पर्वतीय नरेशका वह विशाल गजराज वृककी ओर झपटा और उसने रथ और घोड़ोंसहित वृकको अपने चारों पैरोंसे दबाकर तुरंत ही उसका कचूमर निकाल दिया ॥ १७ ॥

स नागराजः सनियन्तृकोऽपतत्
तथा हतो बभ्रुसुतेषुभिर्भृशम्।
स चापि देवावृधसूनुरर्दितः
पपात नुन्नः सहदेवसूनुना ॥ १८ ॥

अन्तमें बभ्रुपुत्रके बाणोंसे अत्यन्त आहत होकर वह गजराज भी संचालकसहित धरतीपर लोट गया। फिर वह देवावृधकुमार भी सहदेवके पुत्रसे पीड़ित हो धराशायी हो गया॥

विषाणगात्रावरयोधपातिना
गजेन हन्तुं शकुनिं कुलिन्दजः।
जगाम वेगेन भृशार्दयंश्च तं
ततोऽस्य गान्धारपतिः शिरोऽहरत् ॥१९॥

तत्पश्चात् दूसरे कुलिन्दराजकुमारने शकुनिको मार डालनेके लिये दाँत, शरीर और सूँड़के द्वारा बड़े-बड़े योद्धाओंको मार गिरानेवाले हाथीके द्वारा उसपर वेगपूर्वक आक्रमण किया और उसे अत्यन्त घायल कर दिया। तब गान्धारराज शकुनिने उसका सिर काट लिया ॥ १९ ॥

ततः शतानीकहता महागजा
हया रथाः पत्तिगणाश्च तावकाः।
सुपर्णवातप्रहता यथोरगा-
स्तथागता गां विवशा विचूर्णिताः॥ २०॥

यह देख शतानीकने आपकी सेनापर आक्रमण किया। जैसे गरुड़के पंखोंकी हवासे आहत हुए सर्प पृथ्वीपर गिर पड़ते हैं, उसी प्रकार शतानीकद्वारा मारे गये आपके विशाल हाथी, घोड़े, रथ और पैदल विवश हो पृथ्वीपर गिरकर चूर-चूर हो गये ॥ २० ॥

ततोऽभ्यविद्धयद् बहुभिः शितैः शरैः
कलिङ्गपुत्रो नकुलात्मजं स्मयन्।
ततोऽस्य कोपाद् विचकर्त नाकुलिः
शिरः क्षुरेणाम्बुजसंनिभाननम्॥ २१॥

तदनन्तर मुस्कराते हुए कलिङ्गराजके पुत्रने अपने बहुसंख्यक पैने बाणोंद्वारा नकुलके पुत्र शतानीकको क्षत-विक्षत कर दिया। इससे नकुलकुमारको बड़ा क्रोध हुआ और उसने एक क्षुरके द्वारा कलिङ्गराजकुमारका कमलसदृश मुखवाला मस्तक काट डाला ॥ २१ ॥

ततः शतानीकमविध्यदायसै-
स्त्रिभिः शरैः कर्णसुतोऽर्जुनं त्रिभिः।
त्रिभिश्च भीमं नकुलं च सप्तभि-
र्जनार्दनं द्वादशभिश्च सायकैः॥ २२॥

तत्पश्चात् कर्णपुत्र वृषसेनने लोहेके बने हुए तीन बाणोंसे शतानीकको घायल कर दिया। फिर उसने अर्जुनको तीन, भीमसेनको तीन, नकुलको सात और श्रीकृष्णको बारह बाणोंसे बींध डाला ॥ २२ ॥

तदस्य कर्मातिमनुष्यकर्मणः
समीक्ष्य हृष्टाः कुरवोऽभ्यपूजयन्।
पराक्रमज्ञास्तु धनंजयस्य ये
हुतोऽयमग्नाविति ते तु मेनिरे॥ २३॥

अलौकिक पराक्रम करनेवाले वृषसेनके इस कर्मको देखकर समस्त कौरव हर्षमें भर गये और उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे; परंतु जो अर्जुनके पराक्रमको जानते थे, उन्होंने निश्चित रूपसे यह समझ लिया कि अब यह वृषसेन आगकी आहुति बन जायगा ॥ २३ ॥

ततः किरीटी परवीरघाती
हताश्वमालोक्य नरप्रवीरः।
माद्रीसुतं नकुलं लोकमध्ये
समीक्ष्य कृष्णं भृशविक्षतं च ॥ २४॥
समभ्यधावद् वृषसेनमाहवे
स सूतजस्य प्रमुखे स्थितस्तदा।

तदनन्तर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले मानवलोकके प्रमुख वीर किरीटधारी अर्जुनने समस्त सेनाओंके बीच माद्री-कुमार नकुलके घोड़ोंको वृषसेनद्वारा मारा गया और भगवान् श्रीकृष्णको अत्यन्त घायल हुआ देख युद्धस्थलमें वृषसेनपर धावा किया। वृषसेन उस समय कर्णके सामने खड़ा था ॥ २४½ ॥

तमापतन्तं नरवीरमुग्रं
महाहवे बाणसहस्रधारिणम् ॥ २५ ॥
अभ्यापतत् कर्णसुतो महारथं
यथा महेन्द्रं नमुचिः पुरा तथा ।

महासमरमें सहस्रों बाण धारण करनेवाले भयंकर नरवीर महारथी अर्जुनको अपनी ओर आते देख कर्णकुमार वृषसेन भी उनकी ओर उसी प्रकार दौड़ा, जैसे पूर्वकालमें नमुचिने देवराज इन्द्रपर आक्रमण किया था ॥ २५½ ॥

ततो द्रुतं चैकशरेण पार्थं
शितेन विद्ध्वा युधि कर्णपुत्रः ॥ २६ ॥
ननाद नादं सुमहानुभावो
विद्ध्वेव शक्रं नमुचिः स वीरः ।

फिर महानुभाव कर्णपुत्र वीर वृषसेन युद्धस्थलमें कुन्ती-कुमार अर्जुनको तुरंत ही एक तीखे बाणसे घायल करके बड़े जोर-जोरसे गर्जना करने लगा। ठीक वैसे ही, जैसे नमुचि-ने इन्द्रको बींधकर सिंहनाद किया था ॥ २६½ ॥

पुनः स पार्थं वृषसेन उग्रै-
र्बाणैरविद्ध्यद् भुजमूले तु सव्ये ॥ २७ ॥
तथैव कृष्णं नवभिः समार्दयत्
पुनश्च पार्थं दशभिर्जघान ।

इसके बाद वृषसेनने भयंकर बाणोंद्वारा अर्जुनकी बायीं भुजाके मूलभागमें पुनः प्रहार किया तथा नौ बाणोंसे श्रीकृष्ण-को भी चोट पहुँचाकर दस बाणोंद्वारा कुन्तीकुमार अर्जुनको फिर घायल कर दिया ॥ २७½ ॥

पूर्वं यथा वृषसेनप्रयुक्तै-
रभ्याहतः श्वेतहयः शरैस्तैः ॥ २८ ॥
संरम्भमीषद्गमितो वधाय
कर्णात्मजस्याथ मनः प्रदध्रे ।

वृषसेनके चलाये हुए उन बाणोंद्वारा पहले ही आहत होकर श्वेतवाहन अर्जुनके मनमें थोड़ा-सा क्रोध जाग्रत् हुआ। फिर उन्होंने मन ही-मन कर्णकुमारके वधका निश्चय किया ॥

ततः किरीटी रणमूर्ध्नि कोपात्
कृत्वा त्रिशाखां भ्रुकुटिं ललाटे ॥ २९ ॥
मुमोच तूर्णं विशिखान् महात्मा
वधे धृतः कर्णसुतस्य संख्ये ।

तदनन्तर किरीटधारी महात्मा अर्जुनने युद्धस्थलमें कर्णपुत्रके वधका दृढ़ निश्चय करके अपने ललाटमें स्थित भौंहोंको क्रोधपूर्वक तीन जगहसे टेढ़ी करके युद्धके मुहानेपर शीघ्रतापूर्वक बाणोंका प्रहार आरम्भ किया ॥ २९½ ॥

आरक्तनेत्रोऽन्तकशत्रुहन्ता
उवाच कर्णं भृशमुत्स्मयंस्तदा ॥ ३० ॥
दुर्योधनं द्रौणिमुखांश्च सर्वा-
नहं रणे वृषसेनं तमुग्रम् ।
सम्पश्यतः कर्ण तवाद्य संख्ये
नयामि लोकं निशितैः पृषत्कैः ॥ ३१ ॥

उस समय उनके नेत्र रोषसे कुछ लाल हो गये थे। वे यमराज-जैसे शत्रुको भी मार डालनेमें समर्थ थे। उस समय उन्होंने मुस्कराते हुए वहाँ कर्ण, दुर्योधन और अश्वत्थामा आदि सब वीरोंको लक्ष्य करके कहा—'कर्ण ! आज युद्धस्थलमें मैं तुम्हारे देखते-देखते उस उग्रपराक्रमी वीर वृषसेनको अपने पैने बाणोंद्वारा यमलोक भेज दूँगा ॥ ३०-३१ ॥

ऊनं च तावद्धि जना वदन्ति
सर्वैर्भवद्भिर्मम सूनुर्हतोऽसौ ।
एको रथो मद्विहीनस्तरस्वी
अहं हनिष्ये भवतां समक्षम् ॥ ३२ ॥
संरक्ष्यतां रथसंस्थाः सुतोऽय-
महं हनिष्ये वृषसेनमुग्रम् ।
पश्चाद् वधिष्ये त्वामपि सम्प्रमूढ-
महं हनिष्येऽर्जुन आजिमध्ये ॥ ३३ ॥

'मेरा वेगशाली वीर पुत्र महारथी अभिमन्यु अकेला था। मैं उसके साथ नहीं था। उस अवस्थामें तुम सब लोगोंने मिलकर उसका वध किया था। तुम्हारे उस कर्मको सब लोग खोटा बताते हैं; परंतु आज मैं तुम सब लोगोंके सामने वृषसेनका वध करूँगा। रथपर बैठे हुए महारथियो ! अपने इस पुत्रको बचा सको तो बचाओ। मैं अर्जुन आज रणभूमि-में पहले उग्रवीर वृषसेनको मारूँगा; फिर तुझ विवेकशून्य सूतपुत्रका भी वध कर डालूँगा ॥ ३२-३३ ॥

तमद्य मूलं कलहस्य संख्ये
दुर्योधनापाश्रयजातदर्पम् ।
त्वामद्य हन्तास्मि रणे प्रसह्य
अस्यैव हन्ता युधि भीमसेनः ॥ ३४ ॥
दुर्योधनस्याधमपूरुषस्य
यस्यानयादेष महान् क्षयोऽभवत् ।

'कर्ण ! तू ही इस कलहकी जड़ है। दुर्योधनका सहारा मिल जानेसे तेरा घमंड बहुत बढ़ गया है। आज रणक्षेत्रमें मैं हठपूर्वक तेरा वध करूँगा और जिसके अन्यायसे यह महान् संहार हुआ है, उस नराधम दुर्योधनका वध युद्धमें भीमसेन करेंगे' ॥ ३४½ ॥

स एवमुक्त्वा विनिमृज्य चापं
लक्ष्यं हि कृत्वा वृषसेनमाजौ ॥ ३५ ॥
ससर्ज बाणान् विशिखान् महात्मा
वधाय राजन् कर्णसुतस्य संख्ये ।

राजन् ! ऐसा कहकर महात्मा अर्जुनने अपने धनुषको पोंछा और कर्णपुत्र वृषसेनका वध करनेके लिये युद्धमें उसीको लक्ष्य बनाकर बाणोंका प्रहार आरम्भ किया ॥

विव्याध चैनं दशभिः पृषत्कै-
र्मर्मस्वशङ्कं प्रहसन् किरीटी ॥ ३६ ॥
चिच्छेद चास्येष्वसनं भुजौ च
क्षुरैश्चतुर्भिर्निशितैः शिरश्च ।

किरीटधारी अर्जुनने हँसते हुए-से दस बाणोंसे उसके मर्मस्थानोंमें निर्भीक होकर आघात किया। फिर चार तीखे छुरोंसे उसके धनुषको, दोनों भुजाओंको तथा मस्तकको भी काट डाला॥

स पार्थबाणाभिहतः पपात
रथाद् विबाहुर्विशिरा धरायाम् ॥ ३७ ॥
सुपुष्पितो वृक्षवरोऽतिकायो
वातेरितः शाल इवाद्रिश्टङ्गात् ।

अर्जुनके बाणोंसे आहत हो बाहु और मस्तकसे रहित होकर वृषसेन उसी प्रकार रथसे नीचे पृथ्वीपर गिर पड़ा, जैसे सुन्दर फूलोंसे भरा हुआ श्रेष्ठ एवं विशाल शालवृक्ष हवाके झोंके खाकर पर्वतशिखरसे नीचे जा गिरा हो ॥ ३७½ ॥

सम्प्रेक्ष्य बाणाभिहतं पतन्तं
रथात् सुतं सूतजः क्षिप्रकारी ॥ ३८ ॥
रथं रथेनाशु जगाम रोषात्
किरीटिनः पुत्रवधाभितप्तः ।

शीघ्रतापूर्वक कार्य करनेवाला सूतपुत्र कर्ण अपने बेटेको बाणविद्ध हो रथसे नीचे गिरते देख पुत्रके वधसे संतप्त हो उठा और रोषमें भरकर रथके द्वारा अर्जुनके रथकी ओर तीव्र वेगसे चला ॥ ३८½ ॥

ततः समक्षं स्वसुतं विलोक्य
कर्णो हतं श्वेतहयेन संख्ये ।
संरम्भमागम्य परं महात्मा
कृष्णार्जुनौ सहसैवाभ्यधावत् ॥ ३९ ॥

अपने पुत्रको अपनी आँखोंके सामने ही युद्धमें श्वेतवाहन अर्जुनद्वारा मारा गया देख महामनस्वी कर्णको महान् क्रोध हुआ तथा उसने श्रीकृष्ण और अर्जुनपर सहसा आक्रमण कर दिया ॥ ३९ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि वृषसेनवधे पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें वृषसेनका वधविषयक पचासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८५ ॥

षडशीतितमोऽध्यायः

कर्णके साथ युद्ध करनेके विषयमें श्रीकृष्ण और अर्जुनकी बातचीत तथा अर्जुनका कर्णके सामने उपस्थित होना

संजय उवाच

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य वेलोद्‌वृत्तमिवार्णवम् ।
गर्जन्तं सुमहाकायं दुर्निवारं सुरैरपि ॥ १ ॥
अर्जुनं प्राह दाशार्हः प्रहस्य पुरुषर्षभः ।
अयं स रथ आयाति श्वेताश्वः शल्यसारथिः ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! सीमाको लाँघकर आगे बढ़ते हुए महासागरके सदृश विशालकाय कर्ण गर्जना करता हुआ आगे बढ़ा। वह देवताओंके लिये भी दुर्जय था। उसे आते देख दशार्हकुलनन्दन पुरुषश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णने हँसकर अर्जुनसे कहा—'पार्थ ! जिसके सारथि शल्य हैं और रथमें श्वेत घोड़े जुते हैं, वही यह कर्ण रथसहित इधर आ रहा है ॥ १-२ ॥

येन ते सह योद्धव्यं स्थिरो भव धनंजय ।
पश्य चैनं समायुक्तं रथं कर्णस्य पाण्डव ॥ ३ ॥
श्वेतवाजिसमायुक्तं युक्तं राधासुतेन च ।

'धनंजय ! तुम्हें जिसके साथ युद्ध करना है, वह कर्ण आ गया। अब स्थिर हो जाओ। पाण्डुनन्दन ! श्वेत घोड़ोंसे जुते हुए कर्णके इस सजे-सजाये रथको, जिसपर वह स्वयं विराजमान है, देखो ॥ ३½ ॥

नानापताकाकलिलं किङ्किणीजालमालिनम् ॥ ४ ॥
उह्यमानमिवाकाशे विमानं पाण्डुरैर्हयैः ।
ध्वजं च पश्य कर्णस्य नागकक्षं महात्मनः ॥ ५ ॥

'इसपर भाँति-भाँतिकी पताकाएँ फहरा रही हैं तथा वह छोटी-छोटी घंटियोंवाली झालरसे अलंकृत है। ये सफेद घोड़े आकाशमें विमानके समान इस रथको लेकर मानो उड़े जा रहे हैं। महामनस्वी कर्णकी इस ध्वजाको तो देखो, जिसमें हाथीके रस्सेका चिह्न बना हुआ है ॥ ४-५ ॥

आखण्डलधनुःप्रख्यमुल्लिखन्तमिवाम्बरम् ।
पश्य कर्णं समायान्तं धार्तराष्ट्रप्रियैषिणम् ॥ ६ ॥
शरधारा विमुञ्चन्तं धारासारमिवाम्बुदम् ।

'वह ध्वज इन्द्रधनुषके समान प्रकाशित होता हुआ आकाशमें रेखा-सा खींच रहा है। देखो, दुर्योधनका प्रिय चाहनेवाला कर्ण इधर ही आ रहा है। वह जलकी धारा गिरानेवाले बादलके समान बाणधाराकी वर्षा कर रहा है ॥ ६½ ॥

एष मद्रेश्वरो राजा रथाग्रे पर्यवस्थितः ॥ ७ ॥
नियच्छति हयानस्य राधेयस्यामितौजसः ।

'ये मद्रदेशके स्वामी राजा शल्य रथके अग्रभागमें बैठकर अमित बलशाली इस राधापुत्र कर्णके घोड़ोंको काबूमें रख रहे हैं ॥ ७½ ॥

शृणु दुन्दुभिनिर्घोषं शङ्खशब्दं च दारुणम् ॥ ८ ॥
सिंहनादांश्च विविधाञ्शृणु पाण्डव सर्वतः ।

'पाण्डुनन्दन ! सुनो, दुन्दुभिका गम्भीर घोष और

भयंकर शङ्खध्वनि हो रही है। चारों ओर नाना प्रकारके सिंहनाद भी होने लगे हैं, इन्हें सुनो ॥ ८½ ॥

अन्तर्धाय महाशब्दान् कर्णेनामिततेजसा ॥ ९ ॥
दोधूयमानस्य भृशं धनुषः शृणु निःस्वनम्।

'अमिततेजस्वी कर्ण अपने धनुषको बड़े वेगसे हिला रहा है। उसकी टंकारध्वनि बड़ी भारी आवाजको भी दबाकर सुनायी पड़ रही है, सुनो ॥ ९½ ॥

एते दीर्यन्ति सगणाः पञ्चालानां महारथाः ॥ १० ॥
दृष्ट्वा केसरिणं क्रुद्धं मृगा इव महावने।

'जैसे महान् वनमें मृग कुपित हुए सिंहको देखकर भागने लगते हैं, उसी प्रकार ये पाञ्चाल महारथी अपने सैन्यदलके साथ कर्णको देखकर भागे जा रहे हैं ॥ १०½ ॥

सर्वयत्नेन कौन्तेय हन्तुमर्हसि सूतजम् ॥ ११ ॥
न हि कर्णशरानन्यः सोढुमुत्सहते नरः।

'कुन्तीनन्दन ! तुम्हें पूर्ण प्रयत्न करके सूतपुत्र कर्णका वध करना चाहिये। दूसरा कोई मनुष्य कर्णके बाणोंको नहीं सह सकता है ॥ ११½ ॥

सदेवासुरगन्धर्वांस्त्रीँल्लोकान् सचराचरान् ॥ १२ ॥
त्वं हि जेतुं रणे शक्तस्तथैव विदितं मम।

'देवता, असुर, गन्धर्व तथा चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंको तुम रणभूमिमें जीत सकते हो; यह मुझे अच्छी तरह मालूम है ॥ १२½ ॥

भीममुग्रं महात्मानं त्र्यक्षं शर्वं कपर्दिनम् ॥ १३ ॥
न शक्ता द्रष्टुमीशानं किं पुनर्योधितुं प्रभुम्।
त्वया साक्षान्महादेवः सर्वभूतशिवः शिवः ॥ १४ ॥
युद्धेनाराधितः स्थाणुर्देवाश्च वरदास्तव।
तस्य पार्थ प्रसादेन देवदेवस्य शूलिनः ॥ १५ ॥
जहि कर्णं महाबाहो नमुचिं वृत्रहा यथा।
श्रेयस्तेऽस्तु सदा पार्थ युद्धे जयमवाप्नुहि ॥ १६ ॥

'जिनकी मूर्ति बड़ी ही उग्र और भयंकर है, जो महात्मा हैं, जिनके तीन नेत्र और मस्तकपर जटाजूट है, उन सर्वसमर्थ ईश्वर भगवान् शंकरको दूसरे लोग देख भी नहीं सकते फिर उनके साथ युद्ध करनेकी तो बात ही क्या है ? परंतु तुमने सम्पूर्ण जीवोंका कल्याण करनेवाले उन्हीं स्थाणुस्वरूप महादेव साक्षात् भगवान् शिवकी युद्धके द्वारा आराधना की है, अन्य देवताओंने भी तुम्हें वरदान दिये हैं; इसलिये महाबाहु पार्थ ! तुम उन देवाधिदेव त्रिशूलधारी भगवान् शङ्करकी कृपासे कर्णको उसी प्रकार मार डालो, जैसे वृत्रविनाशक इन्द्रने नमुचिका वध किया था। कुन्तीनन्दन ! तुम्हारा सदा ही कल्याण हो। तुम युद्धमें विजय प्राप्त करो' १३—१६

अर्जुन उवाच

ध्रुव एव जयः कृष्ण मम नास्त्यत्र संशयः।
सर्वलोकगुरुर्यस्त्वं तुष्टोऽसि मधुसूदन ॥ १७ ॥

अर्जुनने कहा—मधुसूदन श्रीकृष्ण ! मेरी विजय अवश्य होगी, इसमें संशय नहीं है; क्योंकि सम्पूर्ण जगत्के गुरु आप मुझपर प्रसन्न हैं ॥ १७ ॥

चोदयाश्वान् हृषीकेश रथं मम महारथ।
नाहत्वा समरे कर्णं निवर्तिष्यति फाल्गुनः ॥ १८ ॥

महारथी हृषीकेश ! आप मेरे रथ और घोड़ोंको आगे बढ़ाइये। अब अर्जुन समराङ्गणमें कर्णका वध किये बिना पीछे नहीं लौटेगा ॥ १८ ॥

अद्य कर्णं हतं पश्य मच्छरैः शकलीकृतम्।
मां वा द्रक्ष्यसि गोविन्द कर्णेन निहतं शरैः ॥ १९ ॥

गोविन्द ! आज आप मेरे बाणोंसे मरकर टुकड़े-टुकड़े हुए कर्णको देखिये। अथवा मुझे ही कर्णके बाणोंसे मरा हुआ देखियेगा ॥ १९ ॥

उपस्थितमिदं घोरं युद्धं त्रैलोक्यमोहनम्।
यज्जनाः कथयिष्यन्ति यावद् भूमिर्धरिष्यति ॥ २० ॥

आज तीनों लोकोंको मोहमें डालनेवाला यह घोर युद्ध उपस्थित है। जबतक पृथ्वी कायम रहेगी, तबतक संसारके लोग इस युद्धकी चर्चा करेंगे ॥ २० ॥

एवं ब्रुवंस्तदा पार्थः कृष्णमक्लिष्टकारिणम्।
प्रत्युद्ययौ रथेनाशु गजं प्रतिगजो यथा ॥ २१ ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णसे ऐसा कहते हुए कुन्तीकुमार अर्जुन उस समय रथके द्वारा शीघ्रतापूर्वक कर्णके सामने गये, मानो किसी हाथीका सामना करनेके लिये प्रतिद्वन्द्वी हाथी जा रहा हो ॥ २१ ॥

पुनरप्याह तेजस्वी पार्थः कृष्णमरिंदमम्।
चोदयाश्वान् हृषीकेश कालोऽयमतिवर्तते ॥ २२ ॥

उस समय तेजस्वी पार्थने शत्रुदमन श्रीकृष्णसे पुनः इस प्रकार कहा—'हृषीकेश ! मेरे घोड़ोंको हाँकिये, यह समय बीता जा रहा है' ॥ २२ ॥

एवमुक्तस्तदा तेन पाण्डवेन महात्मना।
जयेन सम्पूज्य स पाण्डवं तदा
प्रचोदयामास हयान् मनोजवान्।
स पाण्डुपुत्रस्य रथो मनोजवः
क्षणेन कर्णस्य रथाग्रतोऽभवत् ॥ २३ ॥

महामना पाण्डुकुमार अर्जुनके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने विजयसूचक आशीर्वादके द्वारा उनका आदर करके उस समय मनके समान वेगशाली घोड़ोंको तीव्रवेगसे आगे बढ़ाया। पाण्डुपुत्र अर्जुनका वह मनोजव रथ एक ही क्षणमें कर्णके रथके सामने जाकर खड़ा हो गया ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णार्जुनद्वैरथे वासुदेववाक्ये षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण और अर्जुनके द्वैरथ-युद्धके प्रसंगमें भगवान् श्रीकृष्णका वाक्यविषयक छियासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

कर्ण और अर्जुनका द्वैरथयुद्धमें समागम, उनकी जय-पराजयके सम्बन्धमें सब प्राणियोंका संशय, ब्रह्मा और महादेवजीद्वारा अर्जुनकी विजयघोषणा तथा कर्णकी शल्यसे और अर्जुनकी श्रीकृष्णसे वार्ता

संजय उवाच

वृषसेनं हतं दृष्ट्वा शोकामर्षसमन्वितः ।
पुत्रशोकोद्भवं वारि नेत्राभ्यां समवासृजत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! जब कर्णने वृषसेनको मारा गया देखा, तब वह शोक और अमर्षके वशीभूत हो अपने दोनों नेत्रोंसे पुत्रशोकजनित आँसू बहाने लगा ॥ १ ॥

रथेन कर्णस्तेजस्वी जगामाभिमुखो रिपुम् ।
युद्धायामर्षताम्राक्षः समाहूय धनंजयम् ॥ २ ॥

फिर तेजस्वी कर्ण क्रोधसे लाल आँखें करके अपने शत्रु धनंजयको युद्धके लिये ललकारता हुआ रथके द्वारा उनके सामने आया ॥ २ ॥

तौ रथौ सूर्यसंकाशौ वैयाघ्रपरिवारितौ ।
समेतौ ददृशुस्तत्र द्वाविवार्कौ समुद्गतौ ॥ ३ ॥

व्याघ्रचर्मसे आच्छादित और सूर्यके समान तेजस्वी वे दोनों रथ जब एकत्र हुए, तब लोगोंने वहाँ उन्हें इस प्रकार देखा, मानो दो सूर्य उदित हुए हों ॥ ३ ॥

श्वेताश्वौ पुरुषौ दिव्यावास्थितावरिमर्दनौ ।
शुशुभाते महात्मानौ चन्द्रादित्यौ यथा दिवि ॥ ४ ॥

दोनोंके घोड़े सफेद रंगके थे। दोनों ही दिव्य पुरुष और शत्रुओंका मर्दन करनेमें समर्थ थे। वे दोनों महामनस्वी वीर आकाशमें चन्द्रमा और सूर्यके समान रणभूमिमें शोभा पा रहे थे ॥ ४ ॥

तौ दृष्ट्वा विस्मयं जग्मुः सर्वसैन्यानि मारिष ।
त्रैलोक्यविजये यत्ताविन्द्रवैरोचनाविव ॥ ५ ॥

मान्यवर ! तीनों लोकोंपर विजय पानेके लिये प्रयत्नशील हुए इन्द्र और बलिके समान उन दोनों वीरोंको आमने-सामने देखकर समस्त सेनाओंको बड़ा विस्मय हुआ ॥ ५ ॥

रथज्यातलनिर्ह्रादैर्बाणसिंहरवैस्तथा ।
तौ रथावभिधावन्तौ समालोक्य महीक्षिताम् ॥ ६ ॥
ध्वजौ च दृष्ट्वा संसक्तौ विस्मयः समपद्यत ।
हस्तिकक्षं च कर्णस्य वानरं च किरीटिनः ॥ ७ ॥

रथ, धनुषकी प्रत्यञ्चा और हथेलीके शब्द, बाणोंकी सनसनाहट तथा सिंहनादके साथ एक दूसरेके सम्मुख दौड़ते हुए उन दोनों रथोंको देखकर एवं उनकी परस्पर सटी हुई ध्वजाओंका अवलोकन करके वहाँ आये हुए राजाओंको बड़ा विस्मय हुआ। कर्णकी ध्वजामें हाथीके साँकलका चिह्न था और किरीटधारी अर्जुनकी ध्वजापर मूर्तिमान् वानर बैठा था ॥ ६-७ ॥

तौ रथौ सम्प्रसक्तौ तु दृष्ट्वा भारत पार्थिवाः ।
सिंहनादरवांश्चक्रुः साधुवादांश्च पुष्कलान् ॥ ८ ॥

भरतनन्दन ! उन दोनों रथोंको एक दूसरेसे सटा देख सब राजा सिंहनाद करने और प्रचुर साधुवाद देने लगे ॥ ८ ॥

दृष्ट्वा च द्वैरथं ताभ्यां तत्र योधाः सहस्रशः ।
चक्रुर्बाहुस्वनांश्चैव तथा चैलावधूननम् ॥ ९ ॥

उन दोनोंका द्वैरथ युद्ध प्रस्तुत देख वहाँ खड़े हुए सहस्रों योद्धा अपनी भुजाओंपर ताल ठोकने और कपड़े हिलाने लगे ॥ ९ ॥

आजघ्नुः कुरवस्तत्र वादित्राणि समन्ततः ।
कर्णं प्रहर्षयिष्यन्तः शङ्खान् दध्मुश्च सर्वशः ॥ १० ॥

तदनन्तर कर्णका हर्ष बढ़ानेके लिये कौरवसैनिक वहाँ सब ओर बाजे बजाने और शङ्खध्वनि करने लगे ॥ १० ॥

तथैव पाण्डवाः सर्वे हर्षयन्तो धनंजयम् ।
तूर्यशङ्खनिनादेन दिशः सर्वा व्यनादयन् ॥ ११ ॥

इसी प्रकार समस्त पाण्डव भी अर्जुनका हर्ष बढ़ाते हुए वाद्यों और शङ्खोंकी ध्वनिसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करने लगे ॥ ११ ॥

क्ष्वेडितास्फोटितोत्क्रुष्टैस्तुमुलं सर्वतोऽभवत् ।
बाहुशब्दैश्च शूराणां कर्णार्जुनसमागमे ॥ १२ ॥

कर्ण और अर्जुनके उस संघर्षमें शूरवीरोंके सिंहनाद करने, ताली बजाने, गर्जने और भुजाओंपर ताल ठोकनेसे सब ओर भयानक आवाज गूँज उठी ॥ १२ ॥

तौ दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रौ रथस्थौ रथिनां वरौ ।
प्रगृहीतमहाचापौ शरशक्तिध्वजायुतौ ॥ १३ ॥
वर्मिणौ बद्धनिस्त्रिंशौ श्वेताश्वौ शङ्खशोभितौ ।
तूणीरवरसम्पन्नौ द्वावप्येतौ सुदर्शनौ ॥ १४ ॥
रक्तचन्दनदिग्धाङ्गौ समदौ गोवृषाविव ।
चापविद्युद्ध्वजोपेतौ शस्त्रसम्पत्तियोधिनौ ॥ १५ ॥
चामरव्यजनोपेतौ श्वेतच्छत्रोपशोभितौ ।
कृष्णशल्यरथोपेतौ तुल्यरूपौ महारथौ ॥ १६ ॥
सिंहस्कन्धौ दीर्घभुजौ रक्ताक्षौ हेममालिनौ ।
सिंहस्कन्धप्रतीकाशौ व्यूढोरस्कौ महाबलौ ॥ १७ ॥
अन्योन्यवधमिच्छन्तावन्योन्यजयकाङ्क्षिणौ ।
अन्योन्यमभिधावन्तौ गोष्ठे गोवृषभाविव ॥ १८ ॥
प्रभिन्नाविव मातङ्गौ सुसंरब्धाविवाचलौ ।
आशीविषशिशुप्रख्यौ यमकालान्तकोपमौ ॥ १९ ॥
इन्द्रवृत्राविव क्रुद्धौ सूर्याचन्द्रसमप्रभौ ।
महाग्रहाविव क्रुद्धौ युगान्ताय समुत्थितौ ॥ २० ॥
देवगर्भौ देवबलौ देवतुल्यौ च रूपतः ।
यदृच्छया समायातौ सूर्याचन्द्रमसौ यथा ॥ २१ ॥
बलिनौ समरे दृप्तौ नानाशस्त्रधरौ युधि ।

तौ दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रौ शार्दूलाविव धिष्ठितौ।
बभूव परमो हर्षस्तावकानां विशाम्पते ॥ २२ ॥

वे दोनों पुरुषसिंह रथपर विराजमान और रथियोंमें श्रेष्ठ थे। दोनोंने विशाल धनुष धारण किये थे। दोनों ही बाण, शक्ति और ध्वजसे सम्पन्न थे। दोनों कवचधारी थे और कमरमें तलवार बाँधे हुए थे। उन दोनोंके घोड़े श्वेत रंगके थे। वे दोनों ही शङ्खसे सुशोभित, उत्तम तरकससे सम्पन्न और देखनेमें सुन्दर थे। दोनोंके ही अंगोंमें लाल चन्दनका अनुलेप लगा हुआ था। दोनों ही साँड़ोंके समान मदमत्त थे। दोनोंके धनुष और ध्वज विद्युत्के समान कान्तिमान् थे। दोनों ही शस्त्रसमूहोंद्वारा युद्ध करनेमें कुशल थे। दोनों ही चँवर और व्यजनोंसे युक्त तथा श्वेत छत्रसे सुशोभित थे। एकके सारथि श्रीकृष्ण थे तो दूसरेके शल्य। उन दोनों महारथियोंके रूप एक-से ही थे। उनके कंधे सिंहके समान, भुजाएँ बड़ी-बड़ी और आँखें लाल थीं। दोनोंने सुवर्णकी मालाएँ पहन रक्खी थीं। दोनों सिंहके समान उन्नत कंधोंसे प्रकाशित होते थे। दोनोंकी छाती चौड़ी थी और दोनों ही महान् बलशाली थे। दोनों एक दूसरेका वध चाहते और परस्पर विजय पानेकी अभिलाषा रखते थे। गोशालामें लड़नेवाले दो साँड़ोंके समान वे दोनों एक दूसरेपर धावा करते थे। मद बहानेवाले मदोन्मत्त हाथियोंके समान दोनों ही रोषावेशमें भरे हुए थे। पर्वतके समान अविचल थे। विषधर सर्पोंके शिशुओं-जैसे जान पड़ते थे। यम, काल और अन्तकके समान भयंकर प्रतीत होते थे। इन्द्र और वृत्रासुरके समान वे एक दूसरेपर कुपित थे। सूर्य और चन्द्रमाके समान अपनी प्रभा बिखेर रहे थे। क्रोधमें भरे हुए दो महान् ग्रहोंके समान प्रलय मचानेके लिये उठ खड़े हुए थे। दोनों ही देवताओंके बालक, देवताओंके समान बली और देवतुल्य रूपवान् थे। दैवेच्छासे भूतलपर उतरे हुए सूर्य और चन्द्रमाके समान शोभा पाते थे। दोनों ही समराङ्गणमें बलवान् और अभिमानी थे। युद्धके लिये नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण किये हुए थे। प्रजानाथ! आमने-सामने खड़े हुए दो सिंहोंके समान उन दोनों नरव्याघ्र वीरोंको देखकर आपके सैनिकोंको महान् हर्ष हुआ ॥ १३–२२ ॥

संशयः सर्वभूतानां विजये समपद्यत।
समेतौ पुरुषव्याघ्रौ प्रेक्ष्य कर्णधनंजयौ ॥ २३ ॥

पुरुषसिंह कर्ण और धनंजयको एकत्र हुआ देखकर समस्त प्राणियोंको किसी एककी विजयमें संदेह होने लगा ॥

उभौ वरायुधधरावुभौ रणकृतश्रमौ।
उभौ च बाहुशब्देन नादयन्तौ नभस्तलम् ॥ २४ ॥

दोनोंने श्रेष्ठ आयुध धारण कर रखे थे, दोनोंने ही युद्धकी कला सीखनेमें परिश्रम किया था और दोनों अपनी भुजाओंके शब्दसे आकाशको प्रतिध्वनित कर रहे थे ॥ २४ ॥

उभौ विश्रुतकर्माणौ पौरुषेण बलेन च।
उभौ च सदृशौ युद्धे शम्बरामरराजयोः ॥ २५ ॥

दोनोंके कर्म विख्यात थे। युद्धमें पुरुषार्थ और बलकी दृष्टिसे दोनों ही शम्बरासुर और देवराज इन्द्रके समान थे ॥ २५ ॥

कार्तवीर्यसमौ चोभौ तथा दाशरथेः समौ।
विष्णुवीर्यसमौ चोभौ तथा भवसमौ युधि ॥ २६ ॥

दोनों ही युद्धमें कार्तवीर्य अर्जुन, दशरथनन्दन श्रीराम, भगवान् विष्णु और भगवान् शङ्करके समान पराक्रमी थे ॥

उभौ श्वेतहयौ राजन् रथप्रवरवाहिनौ।
सारथी प्रवरौ चैव तयोरास्तां महारणे ॥ २७ ॥

राजन्! दोनोंके घोड़े सफेद रंगके थे। दोनों ही श्रेष्ठ रथपर सवार थे और उस महासमरमें दोनोंके सारथि श्रेष्ठ पुरुष थे ॥ २७ ॥

ततो दृष्ट्वा महाराज राजमानौ महारथौ।
सिद्धचारणसंघानां विस्मयः समपद्यत ॥ २८ ॥

महाराज! वहाँ सुशोभित होनेवाले दोनों महारथियोंको देखकर सिद्धों और चारणोंके समुदायोंको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥

तव पुत्रास्ततः कर्णं सबला भरतर्षभ।
परिवव्रुर्महात्मानं क्षिप्रमाहवशोभिनम् ॥ २९ ॥

भरतश्रेष्ठ! तदनन्तर सेनासहित आपके पुत्र युद्धमें शोभा पानेवाले महामनस्वी कर्णको शीघ्र ही सब ओरसे घेरकर खड़े हो गये ॥ २९ ॥

तथैव पाण्डवा हृष्टा धृष्टद्युम्नपुरोगमाः।
परिवव्रुर्महात्मानं पार्थमप्रतिमं युधि ॥ ३० ॥

इसी प्रकार हर्षमें भरे हुए धृष्टद्युम्न आदि पाण्डव वीर युद्धमें अपना सानी न रखनेवाले महात्मा कुन्तीकुमार अर्जुनको घेरकर खड़े हुए ॥ ३० ॥

(यमौ च चेकितानश्च प्रहृष्टाश्च प्रभद्रकाः।
नानादेश्याश्च ये शूराः शिष्टा युद्धाभिनन्दिनः ॥
ते सर्वे सहिता हृष्टाः परिवव्रुर्धनंजयम्।
रिरक्षिषन्तः शत्रुघ्नं पत्त्यश्वरथकुञ्जरैः ॥
धनंजयस्य विजये धृताः कर्णवधेऽपि च।

नकुल, सहदेव, चेकितान, हर्षमें भरे हुए प्रभद्रकगण, नाना देशोंके निवासी और युद्धका अभिनन्दन करनेवाले अवशिष्ट शूरवीर—ये सब-के-सब हर्षमें भरकर एक साथ अर्जुनको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये। वे पैदल, घुड़सवार, रथों और हाथियोंद्वारा शत्रुसूदन अर्जुनकी रक्षा करना चाहते थे। उन्होंने अर्जुनकी विजय और कर्णके वधके लिये दृढ़ निश्चय कर लिया था ॥

तथैव तावकाः सर्वे यत्ताः सेनाप्रहारिणः।
दुर्योधनमुखा राजन् कर्णं जुगुपुराहवे।)

राजन्! इसी प्रकार दुर्योधन आदि आपके सभी पुत्र

सावधान एवं शत्रुसेनाओंपर प्रहार करनेके लिये उद्यत हो युद्धस्थलमें कर्णकी रक्षा करने लगे ॥

तावकानां रणे कर्णो ग्लहो ह्यासीद् विशाम्पते ।
तथैव पाण्डवेयानां ग्लहः पार्थोऽभवत् तदा ॥ ३१ ॥

प्रजानाथ ! आपकी ओरसे युद्धरूपी जूएमें कर्णको दाँव-पर लगा दिया गया था । इसी प्रकार पाण्डवपक्षकी ओरसे कुन्तीकुमार अर्जुन दाँवपर चढ़ गये थे ॥ ३१ ॥

त एव सभ्यास्तत्रासन् प्रेक्षकाश्चाभवन् स्म ते ।
तत्रैषां ग्लहमानानां ध्रुवौ जयपराजयौ ॥ ३२ ॥

जो पहलेके जूएमें दर्शक थे, वे ही वहाँ भी सभासद् बने हुए थे । वहाँ युद्धरूपी जूआ खेलते हुए इन वीरोंमें-से एककी जय और दूसरेकी पराजय अवश्यम्भावी थी ॥ ३२ ॥

ताभ्यां द्यूतं समासक्तं विजयायेतराय च ।
अस्माकं पाण्डवानां च स्थितानां रणमूर्धनि ॥ ३३ ॥

उन दोनोंने युद्धके मुहानेपर खड़े हुए हमलोगों तथा पाण्डवोंकी विजय अथवा पराजयके लिये रणद्यूत आरम्भ किया था ॥ ३३ ॥

तौ तु स्थितौ महाराज समरे युद्धशालिनौ ।
अन्योन्यं प्रतिसंरब्धावन्योन्यवधकाङ्क्षिणौ ॥ ३४ ॥

महाराज ! युद्धमें शोभा पानेवाले वे दोनों वीर परस्पर कुपित हो एक दूसरेके वधकी इच्छासे संग्रामके लिये खड़े हुए थे ॥ ३४ ॥

तावुभौ प्रजिहीर्षन्ताविन्द्रवृत्राविव प्रभो ।
भीमरूपधरावास्तां महाधूमाविव ग्रहौ ॥ ३५ ॥

प्रभो ! इन्द्र और वृत्रासुरके समान वे दोनों एक दूसरे-पर प्रहारकी इच्छा रखते थे । उस समय उन दोनोंने दो महान् केतु—ग्रहोंके समान अत्यन्त भयंकर रूप धारण कर लिया था ॥ ३५ ॥

ततोऽन्तरिक्षे साक्षेपा विवादा भरतर्षभ ।
मिथो भेदाश्च भूतानामासन् कर्णार्जुनान्तरे ॥ ३६ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर अन्तरिक्षमें स्थित हुए समस्त भूतोंमें कर्ण और अर्जुनकी जय-पराजयको लेकर परस्पर आक्षेपयुक्त विवाद और मतभेद पैदा हो गया ॥ ३६ ॥

व्यश्रूयन्त मिथो भिन्नाः सर्वलोकास्तु मारिष ।
देवदानवगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ॥ ३७ ॥
प्रतिपक्षग्रहं चक्रुः कर्णार्जुनसमागमे ।

मान्यवर ! सब लोग परस्पर भिन्न विचार व्यक्त करते सुनायी देते थे । देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, नाग और राक्षस—इन सबने कर्ण और अर्जुनके युद्धके विषयमें पक्ष और विपक्ष ग्रहण कर लिया ॥ ३७½ ॥

द्यौरासीत् सूतपुत्रस्य पक्षे मातेव धिष्ठिता ॥ ३८ ॥
भूमिर्धनंजयस्यासीन्मातेव जयकाङ्क्षिणी ।

द्यौ (आकाशकी अधिष्ठात्री देवी) माताके समान सूतपुत्र कर्णके पक्षमें खड़ी थी; परंतु भूदेवी माताकी भाँति धनंजयकी विजय चाहती थी ॥ ३८½ ॥

गिरयः सागराश्चैव नद्यश्च सजलास्तथा ॥ ३९ ॥
वृक्षाश्चौषधयश्चैव व्याश्रयन्त किरीटिनम् ।

पर्वत, समुद्र, सजल नदियाँ, वृक्ष तथा ओषधियाँ—इन सबने अर्जुनके पक्षका आश्रय ले रक्खा था ॥ ३९½ ॥

असुरा यातुधानाश्च गुह्यकाश्च परंतप ॥ ४० ॥
ते कर्णं समपद्यन्त हृष्टरूपाः समन्ततः ।

शत्रुओंको तपानेवाले वीर ! असुर, यातुधान और गुह्यक—ये सब ओरसे प्रसन्नचित्त हो कर्णके ही पक्षमें आ गये थे ॥ ४०½ ॥

मुनयश्चारणाः सिद्धा वैनतेया वयांसि च ॥ ४१ ॥
रत्नानि निधयः सर्वे वेदाश्चाख्यानपञ्चमाः ।
सोपवेदोपनिषदः सरहस्याः ससंग्रहाः ॥ ४२ ॥
वासुकिश्चित्रसेनश्च तक्षको मणिकस्तथा ।
सर्पाश्चैव तथा सर्वे काद्रवेयाश्च सान्वयाः ॥ ४३ ॥
विषवन्तो महाराज नागाश्चार्जुनतोऽभवन् ।
ऐरावताः सौरभेया वैशालेयाश्च भोगिनः ॥ ४४ ॥
एतेऽभवन्नर्जुनतः क्षुद्रसर्पाश्च कर्णतः ।

महाराज ! मुनि, चारण, सिद्ध, गरुड़, पक्षी, रत्न, निधियाँ, उपवेद, उपनिषद्, रहस्य, संग्रह और इतिहास-पुराणसहित सम्पूर्ण वेद, वासुकि, चित्रसेन, तक्षक, मणिक, सम्पूर्ण सर्पगण, अपने वंशजोंसहित कद्रूकी संतानें, विषैले नाग, ऐरावत, सौरभेय और वैशालेय सर्प—ये सब अर्जुनके पक्षमें हो गये । छोटे-छोटे सर्प कर्णका साथ देने लगे ॥ ४१—४४½ ॥

ईहामृगा व्यालमृगा माङ्गल्याश्च मृगद्विजाः ॥ ४५ ॥
पार्थस्य विजये राजन् सर्व एवाभिसंस्थिताः ।

राजन् ! ईहामृग, व्यालमृग, मङ्गलसूचक मृग, पशु और पक्षी, सिंह तथा व्याघ्र—ये सब-के-सब अर्जुनकी ही विजयका आग्रह रखने लगे ॥ ४५½ ॥

वसवो मरुतः साध्या रुद्रा विश्वेऽश्विनौ तथा ॥ ४६ ॥
अग्निरिन्द्रश्च सोमश्च पवनोऽथ दिशो दश ।
धनंजयस्य ते पक्षे आदित्याः कर्णतोऽभवन् ॥ ४७ ॥
विशः शूद्राश्च सूताश्च ये च संकरजातयः ।
सर्वशस्ते महाराज राधेयमभजंस्तदा ॥ ४८ ॥

वसु, मरुद्गण, साध्य, रुद्र, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, सोम, पवन और दसों दिशाएँ अर्जुनके पक्षमें हो गये एवं (इन्द्रके सिवा अन्य) आदित्यगण कर्णके पक्षमें हो गये । महाराज ! वैश्य, शूद्र, सूत तथा सङ्कर जातिके लोग सब प्रकारसे उस समय राधापुत्र कर्णको ही अपनाने लगे ॥ ४६—४८ ॥

देवास्तु पितृभिः सार्धं सगणाः सपदानुगाः ।
यमो वैश्रवणश्चैव वरुणश्च यतोऽर्जुनः ॥ ४९ ॥
ब्रह्म क्षत्रं च यज्ञाश्च दक्षिणाश्चार्जुनं श्रिताः ।

अपने गणों और सेवकोंसहित देवता, पितर, यम, कुबेर और वरुण अर्जुनके पक्षमें थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, यज्ञ और दक्षिणा आदिने भी अर्जुनका ही साथ दिया ॥ ४९½ ॥

प्रेताश्चैव पिशाचाश्च क्रव्यादाश्च मृगाण्डजाः ॥ ५० ॥
राक्षसाः सह यादोभिः श्वसृगालाश्च कर्णतः ।

प्रेत, पिशाच, मांसभोजी पशु-पक्षी, राक्षस, जल-जन्तु, कुत्ते और सियार—ये कर्णके पक्षमें हो गये ॥ ५०½ ॥

देवब्रह्मनृपर्षीणां गणाः पाण्डवतोऽभवन् ॥ ५१ ॥
तुम्बुरुप्रमुखा राजन् गन्धर्वाश्च यतोऽर्जुनः ।
प्राधेयाः सहमौनेया गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥ ५२ ॥

राजन्! देवर्षि, ब्रह्मर्षि तथा राजर्षियोंके समुदाय पाण्डुपुत्र अर्जुनके पक्षमें थे। तुम्बुरु आदि गन्धर्व, प्राधा और मुनिसे उत्पन्न हुए गन्धर्व एवं अप्सराओंके समुदाय भी अर्जुनकी ही ओर थे ॥ ५१-५२ ॥

(सहाप्सरोभिः शुद्धाभिर्देवदूताश्च गुह्यकाः ।
किरीटिनं संश्रिताः स्म पुण्यगन्धा मनोरमाः ॥
अमनोज्ञाश्च ये गन्धास्ते सर्वे कर्णमाश्रिताः ।

शुद्ध अप्सराओंसहित देवदूत, गुह्यक और मनोरम पवित्र सुगन्ध—ये सब किरीटधारी अर्जुनके पक्षमें आ गये तथा मनको प्रिय न लगनेवाले जो दुर्गन्धयुक्त पदार्थ थे, उन सबने कर्णका आश्रय लिया था ॥

विपरीतान्यरिष्टानि भवन्ति विनशिष्यताम् ॥
ये त्वन्तकाले पुरुषं विपरीतमुपाश्रितम् ।
प्रविशन्ति नरं क्षिप्रं मृत्युकालेऽभ्युपागते ॥
ते भावाः सहिताः कर्णं प्रविष्टाः सूतनन्दनम् ।

विनाशोन्मुख प्राणियोंके समक्ष जो विपरीत अनिष्ट प्रकट होते हैं, अन्तकालमें विपरीत भावका आश्रय लेनेवाले पुरुषमें उसकी मृत्युकी घड़ी आनेपर जो भाव प्रवेश करते हैं, वे सभी भाव और अरिष्ट एक साथ सूतपुत्र कर्णके भीतर प्रविष्ट हुए ॥

ओजस्तेजश्च सिद्धिश्च प्रहर्षः सत्यविक्रमौ ॥
मनस्तुष्टिर्जयश्चापि तथाऽऽनन्दो नृपोत्तम ।
ईदृशानि नरव्याघ्र तस्मिन् संग्रामसागरे ॥
निमित्तानि च शुभ्राणि विविशुर्जिष्णुमाहवे ।

नरव्याघ्र! नृपश्रेष्ठ! ओज, तेज, सिद्धि, हर्ष, सत्य, पराक्रम, मानसिक संतोष, विजय तथा आनन्द—ऐसे ही भाव और शुभ निमित्त उस युद्धसागरमें विजयशील अर्जुनके भीतर प्रविष्ट हुए थे ॥

ऋषयो ब्राह्मणैः सार्धमभजन्त किरीटिनम् ॥
ततो देवगणैः सार्धं सिद्धाश्च सह चारणैः ।
द्विधाभूता महाराज व्याश्रयन्त नरोत्तमौ ॥

ब्राह्मणोंसहित ऋषियोंने किरीटधारी अर्जुनका साथ दिया। महाराज! देवसमुदायों और चारणोंके साथ सिद्ध-गण दो दलोंमें विभक्त होकर उन दोनों नरश्रेष्ठ अर्जुन और कर्णका पक्ष लेने लगे ॥

विमानानि विचित्राणि गुणवन्ति च सर्वशः ।
समारुह्य समाजग्मुर्द्वैरथं कर्णपार्थयोः ॥)

वे सब लोग विचित्र एवं गुणवान् विमानोंपर बैठकर कर्ण और अर्जुनका द्वैरथ युद्ध देखनेके लिये आये थे ॥

ईहामृगाः पक्षिगणा द्विपाश्वरथपत्तिभिः ।
उह्यमानास्तथा मेघैर्वायुना च मनीषिणः ॥ ५३ ॥
दिदृक्षवः समाजग्मुः कर्णार्जुनसमागमम् ।

क्रीडामृग, पक्षीसमुदाय तथा हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसहित दिव्य मनीषी पुरुष वायु तथा बादलोंको वाहन बनाकर कर्ण और अर्जुनका युद्ध देखनेके लिये वहाँ पधारे थे ॥

देवदानवगन्धर्वा नागयक्षाः पतत्त्रिणः ॥ ५४ ॥
महर्षयो वेदविदः पितरश्च स्वधाभुजः ।
तपोविद्यास्तथौषध्यो नानारूपबलान्विताः ॥ ५५ ॥
अन्तरिक्षे महाराज विनदन्तोऽवतस्थिरे ।

महाराज! देवता, दानव, गन्धर्व, नाग, यक्ष, पक्षी, वेदज्ञ महर्षि, स्वधाभोजी पितर, तप, विद्या तथा नाना प्रकारके रूप और बलसे सम्पन्न ओषधियाँ—ये सब-के-सब कोलाहल मचाते हुए अन्तरिक्षमें खड़े हुए थे ॥ ५४-५५½ ॥

ब्रह्मा ब्रह्मर्षिभिः सार्धं प्रजापतिभिरेव च ॥ ५६ ॥
भवश्चैव स्थितो याने दिव्ये तं देशमागमत् ।

ब्रह्मर्षियों तथा प्रजापतियोंके साथ ब्रह्मा और महादेवजी भी दिव्य विमानपर स्थित हो उस प्रदेशमें आये ॥

समेतौ तौ महात्मानौ दृष्ट्वा कर्णधनंजयौ ॥ ५७ ॥
अर्जुनो जयतां कर्णमिति शक्रोऽब्रवीत्तदा ।

उन दोनों महामनस्वी वीर कर्ण और अर्जुनको एकत्र हुआ देख उस समय इन्द्र बोल उठे—'अर्जुन कर्णपर विजय प्राप्त करे' ॥ ५७½ ॥

जयतामर्जुनं कर्ण इति सूर्योऽभ्यभाषत ॥ ५८ ॥
हत्वार्जुनं मम सुतः कर्णो जयतु संयुगे ।
हत्वा कर्णं जयत्वद्य मम पुत्रो धनंजयः ॥ ५९ ॥

यह सुनकर सूर्यदेव कहने लगे—'नहीं, कर्ण ही अर्जुनको जीत ले। मेरा पुत्र कर्ण युद्धस्थलमें अर्जुनको मारकर विजय प्राप्त करे।' (इन्द्र बोले—) 'नहीं, मेरा पुत्र अर्जुन ही आज कर्णका वध करके विजयश्रीका वरण करे' ॥ ५८-५९ ॥

इति सूर्यस्य चैवासीद् विवादो वासवस्य च ।
पक्षसंस्थितयोस्तत्र तयोर्विबुधसिंहयोः ।
द्वैपक्ष्यमासीद् देवानामसुराणां च भारत ॥ ६० ॥

इस प्रकार सूर्य और इन्द्रमें विवाद होने लगा। वे दोनों देवश्रेष्ठ वहाँ एक-एक पक्षमें खड़े थे। भारत! देवताओं और असुरोंमें भी वहाँ दो पक्ष हो गये थे ॥ ६० ॥

समेतौ तौ महात्मानौ दृष्ट्वा कर्णधनंजयौ ।

अकम्पन्त त्रयो लोकाः सहदेवर्षिचारणाः ॥ ६१ ॥

महामना कर्ण और अर्जुनको युद्धके लिये एकत्र हुआ देख देवताओं, ऋषियों तथा चारणोंसहित तीनों लोकके प्राणी काँपने लगे ॥ ६१ ॥

सर्वे देवगणाश्चैव सर्वभूतानि यानि च।
यतः पार्थस्ततो देवा यतः कर्णस्ततोऽसुराः ॥ ६२ ॥

सम्पूर्ण देवता तथा समस्त प्राणी भी भयभीत हो उठे थे। जिस ओर अर्जुन थे, उधर देवता और जिस ओर कर्ण था, उधर असुर खड़े थे ॥ ६२ ॥

रथयूथपयोः पक्षौ कुरुपाण्डववीरयोः।
दृष्ट्वा प्रजापतिं देवाः स्वयम्भुवमचोदयन् ॥ ६३ ॥

रथयूथपति कर्ण और अर्जुन कौरव तथा पाण्डव दलके प्रमुख वीर थे। उनके विषयमें दो पक्ष देखकर देवताओंने प्रजापति स्वयम्भू ब्रह्माजीसे पूछा—॥ ६३ ॥

कोऽनयोर्विजयी देव कुरुपाण्डवयोधयोः।
समोऽस्तु विजयो देव एतयोर्नरसिंहयोः ॥ ६४ ॥

'देव ! इन कौरव-पाण्डव योद्धाओंमें कौन विजयी होगा ? भगवन् ! हम चाहते हैं कि इन दोनों पुरुषसिंहोंकी एक-सी ही विजय हो ॥ ६४ ॥

कर्णार्जुनविवादेन सर्वं संशयितं जगत्।
स्वयम्भो ब्रूहि नस्तथ्यमेतयोर्विजयं प्रभो ॥ ६५ ॥
स्वयम्भो ब्रूहि तद्वाक्यं समोऽस्तु विजयोऽनयोः।

'प्रभो ! कर्ण और अर्जुनके विवादसे सारा संसार संशयमें पड़ गया। स्वयम्भू ! आप हमें इनके विजयके सम्बन्धमें सच्ची बात बताइये। आप ऐसा वचन बोलिये, जिससे इन दोनोंकी समान विजय सूचित हो' ॥ ६५½ ॥

तदुपश्रुत्य मघवा प्रणिपत्य पितामहम् ॥ ६६ ॥
व्यज्ञापयत देवेशमिदं मतिमतां वरः।

देवताओंकी वह बात सुनकर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ इन्द्रने देवेश्वर भगवान् ब्रह्माको प्रणाम करके यह निवेदन किया—॥ ६६½ ॥

पूर्वं भगवता प्रोक्तं कृष्णयोर्विजयो ध्रुवः ॥ ६७ ॥
तत् तथास्तु नमस्तेऽस्तु प्रसीद भगवन् मम।

'भगवन् ! आपने पहले कहा था कि 'इन दोनों कृष्णोंकी विजय अटल है।' आपका वह कथन सत्य हो। आपको नमस्कार है। आप मुझपर प्रसन्न होइये' ॥ ६७½ ॥

ब्रह्मेशानावथो वाक्यमूचतुस्त्रिदशेश्वरम् ॥ ६८ ॥
विजयो ध्रुवमेवास्य विजयस्य महात्मनः।
खाण्डवे येन हुतभुक् तोषितः सव्यसाचिना ॥ ६९ ॥
स्वर्गं च समनुप्राप्य साहाय्यं शक्र ते कृतम्।

तब ब्रह्मा और महादेवजीने देवेश्वर इन्द्रसे कहा—'महात्मा अर्जुनकी विजय तो निश्चित ही है। इन्द्र ! इन्हीं सव्यसाची अर्जुनने खाण्डववनमें अग्निदेवको संतुष्ट किया और स्वर्गलोकमें जाकर तुम्हारी भी सहायता की ॥

कर्णश्च दानवः पक्ष अतः कार्यः पराजयः ॥ ७० ॥
एवं कृते भवेत् कार्यं देवानामेव निश्चितम्।
आत्मकार्यं च सर्वेषां गरीयस्त्रिदशेश्वर ॥ ७१ ॥

'कर्ण दानव पक्षका पुरुष है; अतः उसकी पराजय करनी चाहिये—ऐसा करनेपर निश्चित रूपसे देवताओंका ही कार्य सिद्ध होगा। देवेश्वर ! अपना कार्य सभीके लिये गुरुतर होता है ॥ ७०-७१ ॥

महात्मा फाल्गुनश्चापि सत्यधर्मरतः सदा।
विजयस्तस्य नियतं जायते नात्र संशयः ॥ ७२ ॥

'महात्मा अर्जुन सदा सत्य और धर्ममें तत्पर रहनेवाले हैं; अतः उनकी विजय अवश्य होगी, इसमें संशय नहीं है ॥

तोषितो भगवान् येन महात्मा वृषभध्वजः।
कथं वा तस्य न जयो जायते शतलोचन ॥ ७३ ॥

'शतलोचन ! जिन्होंने महात्मा भगवान् वृषभध्वजको संतुष्ट किया है, उनकी विजय कैसे नहीं होगी ॥ ७३ ॥

यस्य चक्रे स्वयं विष्णुः सारथ्यं जगतः प्रभुः।
मनस्वी बलवाञ्शूरः कृतास्त्रोऽथ तपोधनः ॥ ७४ ॥

'साक्षात् जगदीश्वर भगवान् विष्णुने जिनका सारथ्य किया है, जो मनस्वी, बलवान्, शूरवीर, अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता और तपस्याके धनी हैं, उनकी विजय क्यों न होगी ? ॥ ७४ ॥

बिभर्ति च महातेजा धनुर्वेदमशेषतः।
पार्थः सर्वगुणोपेतो देवकार्यमिदं यतः ॥ ७५ ॥

'सर्वगुणसम्पन्न महातेजस्वी कुन्तीकुमार अर्जुन सम्पूर्ण धनुर्वेदको धारण करते हैं; अतः उनकी विजय होगी ही; क्योंकि यह देवताओंका ही कार्य है ॥ ७५ ॥

क्लिश्यन्ते पाण्डवा नित्यं वनवासादिभिर्भृशम्।
सम्पन्नस्तपसा चैव पर्याप्तः पुरुषर्षभः ॥ ७६ ॥

'पाण्डव वनवास आदिके द्वारा सदा महान् कष्ट उठाते आये हैं। पुरुषप्रवर अर्जुन तपोबलसे सम्पन्न और पर्याप्त शक्तिशाली हैं ॥ ७६ ॥

अतिक्रमेच्च माहात्म्याद् दिष्टमप्यर्थपर्ययम्।
अतिक्रान्ते च लोकानामभावो नियतं भवेत् ॥ ७७ ॥

'ये अपनी महिमासे दैवके भी निश्चित विधानको पलट सकते हैं; यदि ऐसा हुआ तो सम्पूर्ण लोकोंका अवश्य ही अन्त हो जायगा ॥ ७७ ॥

न विद्यते व्यवस्थानं क्रुद्धयोः कृष्णयोः क्वचित्।
स्रष्टारौ जगतश्चैव सततं पुरुषर्षभौ ॥ ७८ ॥

'श्रीकृष्ण और अर्जुनके कुपित होनेपर यह संसार कहीं टिक नहीं सकता; पुरुषप्रवर श्रीकृष्ण और अर्जुन ही निरन्तर जगत्की सृष्टि करते हैं ॥ ७८ ॥

नरनारायणावेतौ पुराणावृषिसत्तमौ।
अनियम्यौ नियन्तारावेतौ तस्मात् परंतपौ ॥ ७९ ॥

'ये ही प्राचीन ऋषिश्रेष्ठ नर और नारायण हैं; इन-

पर किसीका शासन नहीं चलता। ये ही सबके नियन्ता हैं; अतः ये शत्रुओंको संताप देनेमें समर्थ हैं ॥ ७९ ॥

नैतयोस्तु समः कश्चिद् दिवि वा मानुषेषु वा।
अनुगम्यास्त्रयो लोकाः सह देवर्षिचारणैः ॥ ८० ॥
सर्वदेवगणाश्चापि सर्वभूतानि यानि च।
अनयोस्तु प्रभावेण वर्तते निखिलं जगत् ॥ ८१ ॥

'देवलोक अथवा मनुष्यलोकमें कोई भी इन दोनोंकी समानता करनेवाला नहीं है। देवता, ऋषि और चारणोंके साथ तीनों लोक, समस्त देवगण और सम्पूर्ण भूत इनके ही नियन्त्रणमें रहनेवाले हैं। इन्हींके प्रभावसे सम्पूर्ण जगत् अपने-अपने कर्मोंमें प्रवृत्त होता है ॥ ८०-८१ ॥

कर्णो लोकानयं मुख्यानाप्नोतु पुरुषर्षभः।
कर्णो वैकर्तनः शूरो विजयस्त्वस्तु कृष्णयोः ॥ ८२॥

'शूरवीर पुरुषप्रवर वैकर्तन कर्ण श्रेष्ठ लोक प्राप्त करे; परंतु विजय तो श्रीकृष्ण और अर्जुनकी ही हो ॥८२॥

वसूनां समलोकत्वं मरुतां वा समाप्नुयात्।
सहितो द्रोणभीष्माभ्यां नाकलोकमवाप्नुयात्॥ ८३ ॥

'कर्ण द्रोणाचार्य और भीष्मजीके साथ वसुओं अथवा मरुद्गणोंके लोकमें जाय अथवा स्वर्गलोक ही प्राप्त करे' ॥८३॥

इत्युक्तो देवदेवाभ्यां सहस्राक्षोऽब्रवीद् वचः।
आमन्त्र्य सर्वभूतानि ब्रह्मेशानानुशासनम् ॥ ८४ ॥

देवाधिदेव ब्रह्मा और महादेवजीके ऐसा कहने-पर इन्द्रने सम्पूर्ण प्राणियोंको बुलाकर उन दोनोंकी आज्ञा सुनायी॥

श्रुतं भवद्भिर्यत् प्रोक्तं भगवद्भ्यां जगद्धितम्।
तत्तथा नान्यथा तद्धि तिष्ठध्वं विगतज्वराः ॥ ८५ ॥

वे बोले—'हमारे पूज्य प्रभुओंने संसारके हितके लिये जो कुछ कहा है, वह सब तुमलोगोंने सुन ही लिया होगा। वह वैसे ही होगा। उसके विपरीत होना असम्भव है; अतः अब निश्चिन्त हो जाओ' ॥ ८५ ॥

इति श्रुत्वेन्द्रवचनं सर्वभूतानि मारिष।
विस्मितान्यभवन् राजन् पूजायांचक्रिरे तदा ॥ ८६ ॥
व्यसृजंश्च सुगन्धीनि पुष्पवर्षाणि हर्षिताः।
नानारूपाणि विबुधा देवतूर्याण्यवादयन् ॥ ८७ ॥

माननीय नरेश! इन्द्रका यह वचन सुनकर समस्त प्राणी विस्मित हो गये और हर्षमें भरकर श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा करने लगे। साथ ही उन दोनोंके ऊपर उन्होंने दिव्य सुगन्धित फूलोंकी वर्षा की। देवताओंने नाना प्रकारके दिव्य बाजे बजाने आरम्भ कर दिये ॥ ८६-८७ ॥

दिदृक्षवश्चाप्रतिमं द्वैरथं नरसिंहयोः।
देवदानवगन्धर्वाः सर्व एवावतस्थिरे ॥ ८८ ॥

पुरुषसिंह कर्ण और अर्जुनका अनुपम द्वैरथ युद्ध देखने-की इच्छासे देवता, दानव और गन्धर्व सभी वहाँ खड़े हो गये ॥

रथौ तयोः श्वेतहयौ दिव्यौ युक्तौ महात्मनोः।
यौ तौ कर्णार्जुनौ राजन् प्रहृष्टावभ्यतिष्ठताम् ॥ ८९ ॥

राजन्! कर्ण और अर्जुन हर्षमें भरकर जिन रथोंपर बैठे हुए थे, उन महामनस्वी वीरोंके वे दोनों रथ श्वेत घोड़ों-से युक्त, दिव्य और आवश्यक सामग्रियोंसे सम्पन्न थे ॥८९॥

समागता लोकवीराः शङ्खान् दध्मुः पृथक् पृथक्।
वासुदेवार्जुनौ वीरौ कर्णशल्यौ च भारत ॥ ९० ॥

भरतनन्दन! वहाँ एकत्र हुए सम्पूर्ण जगत्के वीर पृथक्-पृथक् शङ्खध्वनि करने लगे। वीर श्रीकृष्ण और अर्जुनने तथा शल्य और कर्णने भी अपना-अपना शङ्ख बजाया॥

तद् भीरुसंत्रासकरं युद्धं समभवत्तदा।
अन्योन्यस्पर्धिनोरुग्रं शक्रशम्बरयोरिव ॥ ९१ ॥

इन्द्र और शम्बरासुरके समान एक दूसरेसे डाह रखने-वाले उन दोनों वीरोंमें उस समय घोर युद्ध आरम्भ हुआ, जो कायरोंके हृदयमें भय उत्पन्न करनेवाला था ॥ ९१ ॥

तयोर्ध्वजौ वीतमलौ शुशुभाते रथे स्थितौ।
राहुकेतू यथाऽऽकाशे उदितौ जगतः क्षये ॥ ९२ ॥

उन दोनोंके रथोंपर निर्मल ध्वजाएँ शोभा पा रही थीं, मानो संसारके प्रलयकालमें आकाशमें राहु और केतु दोनों ग्रह उदित हुए हों ॥ ९२ ॥

कर्णस्याशीविषनिभा रत्नसारमयी दृढा।
पुरन्दरधनुःप्रख्या हस्तिकक्ष्या व्यराजत ॥ ९३ ॥

कर्णके ध्वजकी पताकामें हाथीकी साँकलका चिह्न था, वह साँकल रत्नसारमयी, सुदृढ़ और विषधर सर्पके समान आकारवाली थी। वह आकाशमें इन्द्रधनुषके समान शोभा पाती थी ॥ ९३ ॥

कपिश्रेष्ठस्तु पार्थस्य व्यादितास्य इवान्तकः।
दंष्ट्राभिर्भीषयन् भाभिर्दुर्निरीक्ष्यो रविर्यथा ॥ ९४ ॥

कुन्तीकुमार अर्जुनके रथपर मुँह बाये हुए यमराजके समान एक श्रेष्ठ वानर बैठा हुआ था, जो अपनी दाढ़ोंसे सबको डराया करता था। वह अपनी प्रभासे सूर्यके समान जान पड़ता था। उसकी ओर देखना कठिन था ॥ ९४ ॥

युद्धाभिलाषुको भूत्वा ध्वजो गाण्डीवधन्वनः।
कर्णध्वजमुपातिष्ठत् स्वस्थानाद् वेगवान् कपिः॥ ९५ ॥
उत्पपात महावेगः कक्ष्यामभ्याहनत्तदा।
नखैश्च दशनैश्चैव गरुडः पन्नगं यथा ॥ ९६ ॥

गाण्डीवधारी अर्जुनका ध्वज मानो युद्धका इच्छुक होकर कर्णके ध्वजपर आक्रमण करने लगा। अर्जुनकी ध्वजाका महान् वेगशाली वानर उस समय अपने स्थानसे उछला और कर्णकी ध्वजाकी साँकलपर चोट करने लगा, जैसे गरुड़ अपने पंजों और चोंचसे सर्पपर प्रहार कर रहे हों ॥९५-९६॥

सा किङ्किणीकाभरणा कालपाशोपमाऽऽयसी।
अभ्यद्रवत् सुसंरब्धा हस्तिकक्ष्याथ तं कपिम् ॥९७॥

कर्णके ध्वजपर जो हाथीकी साँकल थी, वह कालपाशके

समान जान पड़ती थी। वह लोहनिर्मित हाथीकी साँकल छोटी-छोटी घण्टियोंसे विभूषित थी। उसने अत्यन्त कुपित होकर उस वानरपर धावा किया ॥ ९७ ॥

तयोर्घोरतरे युद्धे द्वैरथे द्यूत आहिते।
प्रकुर्वाते ध्वजौ युद्धं पूर्वं पूर्वतरं तदा ॥ ९८ ॥

उन दोनोंमें घोरतर द्वैरथ युद्धरूपी जूएका अवसर उपस्थित था, इसीलिये उन दोनोंकी ध्वजाओंने पहले स्वयं ही युद्ध आरम्भ कर दिया ॥ ९८ ॥

हया हयानभ्यहेषन् स्पर्धमानाः परस्परम्।
अविध्यत् पुण्डरीकाक्षः शल्यं नयनसायकैः ॥ ९९ ॥

एकके घोड़े दूसरेके घोड़ोंको देखकर परस्पर लाग-डाँट रखते हुए हिनहिनाने लगे। इसी समय कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने शल्यकी ओर त्यौरी चढ़ाकर देखा, मानो वे उसे नेत्ररूपी बाणोंसे बींध रहे हों ॥ ९९ ॥

शल्यश्च पुण्डरीकाक्षं तथैवाभिसमैक्षत।
तत्राजयद् वासुदेवः शल्यं नयनसायकैः ॥१००॥

इसी प्रकार शल्यने भी कमलनयन श्रीकृष्णकी ओर दृष्टिपात किया; परंतु वहाँ विजय श्रीकृष्णकी ही हुई। उन्होंने अपने नेत्ररूपी बाणोंसे शल्यको पराजित कर दिया ॥

कर्णं चाप्यजयद् दृष्ट्या कुन्तीपुत्रो धनंजयः।
अथाब्रवीत् सूतपुत्रः शल्यमाभाष्य सस्मितम् ॥१०१॥
यदि पार्थो रणे हन्यादद्य मामिह कर्हिचित्।
किं करिष्यसि संग्रामे शल्य सत्यमथोच्यताम्॥१०२॥

इसी तरह कुन्तीनन्दन धनंजयने भी अपनी दृष्टिद्वारा कर्णको परास्त कर दिया। तदनन्तर कर्णने शल्यसे मुसकराते हुए कहा—'शल्य! सच बताओ, यदि कदाचित् आज रणभूमिमें कुन्तीपुत्र अर्जुन मुझे यहाँ मार डालें तो तुम इस संग्राममें क्या करोगे?' ॥ १०१–१०२ ॥

शल्य उवाच

यदि कर्णं रणे हन्यादद्य त्वां श्वेतवाहनः।
उभावेकरथेनाहं हन्यां माधवपाण्डवौ ॥१०३॥

शल्यने कहा—कर्ण! यदि श्वेतवाहन अर्जुन आज युद्धमें तुझे मार डालें तो मैं एकमात्र रथके द्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंका वध कर डालूँगा ॥ १०३ ॥

संजय उवाच

एवमेव तु गोविन्दमर्जुनः प्रत्यभाषत।
तं प्रहस्याब्रवीत् कृष्णः सत्यं पार्थमिदं वचः ॥१०४॥

संजय कहते हैं—राजन्! इसी प्रकार अर्जुनने भी श्रीकृष्णसे पूछा। तब श्रीकृष्णने हँसकर अर्जुनसे यह सत्य बात कही—॥ १०४ ॥

पतेद् दिवाकरः स्थानाच्छुष्येदपि महोदधिः।
शैत्यमग्निरियान्न त्वां हन्यात् कर्णो धनंजय ॥१०५॥

'धनंजय! सूर्य अपने स्थानसे गिर जाय, समुद्र सूख जाय और अग्नि सदाके लिये शीतल हो जाय तो भी कर्ण तुम्हें मार नहीं सकता ॥ १०५ ॥

यदि चैतत् कथञ्चित् स्याल्लोकपर्यासनं भवेत्।
हन्यां कर्णं तथा शल्यं बाहुभ्यामेव संयुगे ॥१०६॥

'यदि किसी तरह ऐसा हो जाय तो संसार उलट जायगा। मैं अपनी दोनों भुजाओंसे ही युद्धभूमिमें कर्ण तथा शल्यको मसल डालूँगा' ॥ १०६ ॥

इति कृष्णवचः श्रुत्वा प्रहसन् कपिकेतनः।
अर्जुनः प्रत्युवाचेदं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ॥१०७॥

भगवान् श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर कपिध्वज अर्जुन हँस पड़े और अनायास ही महान् कर्म करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोले—॥ १०७ ॥

मम तावदपर्याप्तौ कर्णशल्यौ जनार्दन।
सपताकध्वजं कर्णं सशल्यरथवाजिनम् ॥१०८॥
सच्छत्रकवचं चैव सशक्तिशरकार्मुकम्।
द्रष्टास्यद्य रणे कृष्ण शरैश्छिन्नमनेकधा ॥१०९॥

'जनार्दन! ये कर्ण और शल्य तो मेरे ही लिये पर्याप्त नहीं हैं। श्रीकृष्ण! आज रणभूमिमें आप देखियेगा, मैं कवच, छत्र, शक्ति, धनुष, बाण, ध्वजा, पताका, रथ, घोड़े तथा राजा शल्यके सहित कर्णको अपने बाणोंसे टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा ॥ १०८-१०९ ॥

अद्यैव सरथं साश्वं सशक्तिकवचायुधम्।
संचूर्णितमिवारण्ये पादपं दन्तिना यथा ॥११०॥

'जैसे जंगलमें दन्तार हाथी किसी पेड़को टूक-टूक कर देता है, उसी प्रकार आज ही मैं रथ, घोड़े, शक्ति, कवच तथा अस्त्र-शस्त्रोंसहित कर्णको चूर-चूर कर डालूँगा ॥ ११० ॥

अद्य राधेयभार्याणां वैधव्यं समुपस्थितम्।
ध्रुवं स्वप्नेष्वनिष्टानि ताभिर्दृष्टानि माधव ॥१११॥

'माधव! आज राधापुत्र कर्णकी स्त्रियोंके विधवा होनेका अवसर उपस्थित है। निश्चय ही, उन्होंने स्वप्नमें अनिष्ट वस्तुओंके दर्शन किये हैं ॥ १११ ॥

द्रष्टासि ध्रुवमद्यैव विधवाः कर्णयोषितः।
न हि मे शाम्यते मन्युर्यदनेन पुरा कृतम् ॥११२॥
कृष्णां सभागतां दृष्ट्वा मूढेनादीर्घदर्शिना।
अस्मांस्तथावहसता क्षिपता च पुनः पुनः ॥११३॥

'आप निश्चय ही, आज कर्णकी स्त्रियोंको विधवा हुई देखेंगे। इस अदूरदर्शी मूर्खने सभामें द्रौपदीको आयी देख बारंबार उसकी तथा हमलोगोंकी हँसी उड़ायी और हम सब लोगोंपर आक्षेप किया। ऐसा करते हुए इस कर्णने पहले जो कुकृत्य किया है, उसे याद करके मेरा क्रोध शान्त नहीं होता है ॥ ११२-११३ ॥

अद्य द्रष्टासि गोविन्द कर्णमुन्मथितं मया।
वारणेनेव मत्तेन पुष्पितं जगतीरुहम् ॥११४॥

'गोविन्द ! जैसे मतवाला हाथी फले-फूले वृक्षको तोड़ डालता है, उसी प्रकार आज मैं इस कर्णको मथ डालूँगा। आप यह सब कुछ अपनी आँखों देखेंगे ॥ ११४ ॥

अद्य ता मधुरा वाचः श्रोतासि मधुसूदन।
दिष्ट्या जयसि वार्ष्णेय इति कर्णे निपातिते ॥११५॥

'मधुसूदन ! आज कर्णके मारे जानेपर आपको मधुर बातें सुननेको मिलेंगी। हमलोग कहेंगे—'वृष्णिनन्दन! बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज आपकी विजय हुई' ॥ ११५ ॥

अद्याभिमन्युजननीं प्रहृष्टः सान्त्वयिष्यसि।
कुन्तीं पितृष्वसारं च प्रहृष्टः सजनार्दन ॥११६॥

'जनार्दन ! आज आप अत्यन्त प्रसन्न होकर अभिमन्यु-की माता सुभद्राको और अपनी बुआ कुन्तीदेवीको सान्त्वना देंगे ॥ ११६ ॥

अद्य बाष्पमुखीं कृष्णां सान्त्वयिष्यसि माधव।
वाग्भिश्चामृतकल्पाभिर्धर्मराजं च पाण्डवम् ॥११७॥

'माधव ! आज आप मुखपर आँसुओंकी धारा बहाने-वाली द्रुपदकुमारी कृष्णा तथा पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरको अमृत-के समान मधुर वचनोंद्वारा सान्त्वना प्रदान करेंगे' ॥११७॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णार्जुनसमागमे द्वैरथे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण और अर्जुनका द्वैरथयुद्धमें समागमविषयक सतासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥८७॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ११½ श्लोक मिलाकर कुल १२८½ श्लोक हैं)

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

अर्जुनद्वारा कौरवसेनाका संहार, अश्वत्थामाका दुर्योधनसे संधिके लिये प्रस्ताव और दुर्योधनद्वारा उसकी अस्वीकृति

संजय उवाच

तद् देवनागासुरसिद्धयक्षै-
र्गन्धर्वरक्षोऽप्सरसां च संघैः।
ब्रह्मर्षिराजर्षिसुपर्णजुष्टं
बभौ वियद् विस्मयनीयरूपम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! उस समय आकाशमें देवता, नाग, असुर, सिद्ध, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, अप्सराओं-के समुदाय, ब्रह्मर्षि, राजर्षि और गरुड़—ये सब जुटे हुए थे। इनके कारण आकाशका स्वरूप अत्यन्त आश्चर्यमय प्रतीत होता था ॥ १ ॥

नानद्यमानं निनदैर्मनोज्ञै-
र्वादित्रगीतस्तुतिनृत्यहासैः।
सर्वेऽन्तरिक्षं ददृशुर्मनुष्याः
खस्थाश्च तद् विस्मयनीयरूपम् ॥ २ ॥

नाना प्रकारके मनोरम शब्दों, वाद्यों, गीतों, स्तोत्रों, नृत्यों और हास्य आदिसे आकाश मुखरित हो उठा। उस समय भूतलके मनुष्य और आकाशचारी प्राणी सभी उस आश्चर्यमय अन्तरिक्षकी ओर देख रहे थे ॥ २ ॥

ततः प्रहृष्टाः कुरुपाण्डुयोधा
वादित्रशङ्खस्वनसिंहनादैः।
विनादयन्तो वसुधां दिशश्च
स्वनेन सर्वान् द्विषतो निजघ्नुः ॥ ३ ॥

तदनन्तर कौरव और पाण्डवपक्षके समस्त योद्धा बड़े हर्षमें भरकर वाद्य, शङ्खध्वनि, सिंहनाद और कोलाहलसे रणभूमि एवं सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करते हुए समस्त शत्रुओंका संहार करने लगे ॥ ३ ॥

नराश्वमातङ्गरथैः समाकुलं
शरासिशक्त्यृष्टिनिपातदुःसहम्।
अभीरुजुष्टं हतदेहसंकुलं
रणाजिरं लोहितमाबभौ तदा ॥ ४ ॥

उस समय हाथी, अश्व, रथ और पैदल सैनिकोंसे भरा हुआ बाण, खड्ग, शक्ति और ऋष्टि आदि अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहारसे दुःसह प्रतीत होनेवाला एवं मृतकोंके शरीरोंसे व्याप्त हुआ वह वीरसेवित समराङ्गण खूनसे लाल दिखायी देने लगा ॥

बभूव युद्धं कुरुपाण्डवानां
यथा सुराणामसुरैः सहाभवत्।
तथा प्रवृत्ते तुमुले सुदारुणे
धनंजयस्याधिरथेश्च सायकैः ॥ ५ ॥
दिशश्च सैन्यं च शितैरजिह्मगैः
परस्परं प्रावृणुतां सुदंशितौ।

जैसे पूर्वकालमें देवताओंका असुरोंके साथ संग्राम हुआ था, उसी प्रकार पाण्डवोंका कौरवोंके साथ युद्ध होने लगा। अर्जुन और कर्णके बाणोंसे वह अत्यन्त दारुण तुमुल युद्ध आरम्भ होनेपर वे दोनों कवचधारी वीर अपने पैने बाणोंसे परस्पर सम्पूर्ण दिशाओं तथा सेनाको आच्छादित करने लगे ॥ ५½ ॥

ततस्त्वदीयाश्च परे च सायकैः
कृतेऽन्धकारे ददृशुर्न किंचन ॥ ६ ॥
भयातुरा एकरथौ समाश्रयं-
स्ततोऽभवत् त्वद्भुतमेव सर्वतः।

तत्पश्चात् आपके और शत्रुपक्षके सैनिक जब बाणोंसे फैले हुए अन्धकारमें कुछ भी देख न सके, तब भयसे आतुर हो उन दोनों प्रधान रथियोंकी शरणमें आ गये। फिर तो चारों ओर अद्भुत युद्ध होने लगा ॥ ६½ ॥

ततोऽस्त्रमस्त्रेण परस्परं तौ
विधूय वाताविव पूर्वपश्चिमौ ॥ ७ ॥

घनान्धकारे वितते तमोनुदौ
यथोदितौ तद्वदतीव रेजतुः ।

तदनन्तर जैसे पूर्व और पश्चिमकी हवाएँ एक दूसरीको दबाती हैं, उसी प्रकार वे दोनों वीर एक दूसरेके अस्त्रोंको अपने अस्त्रोंद्वारा नष्ट करके फैले हुए प्रगाढ़ अन्धकारमें उदित हुए सूर्य और चन्द्रमाके समान अत्यन्त प्रकाशित होने लगे ॥ ७½ ॥

न चाभिसर्तव्यमिति प्रचोदिताः
परे त्वदीयाश्च तथावतस्थिरे ॥ ८ ॥
महारथौ तौ परिवार्य सर्वतः
सुरासुराः शम्बरवासवाविव ।

'किसीको युद्धसे मुँह मोड़कर भागना नहीं चाहिये' इस नियमसे प्रेरित होकर आपके और शत्रुपक्षके सैनिक उन दोनों महारथियोंको चारों ओरसे घेरकर उसी प्रकार युद्धमें डटे रहे, जैसे पूर्वकालमें देवता और असुर, इन्द्र और शम्बरासुरको घेरकर खड़े हुए थे ॥ ८½ ॥

मृदङ्गभेरीपणवानकस्वनैः
ससिंहनादैर्नदतुर्नरोत्तमौ ॥ ९ ॥
शशाङ्कसूर्याविव मेघनिःस्वनै-
र्विरेजतुस्तौ पुरुषर्षभौ तदा ।

दोनों दलोंमें होती हुई मृदङ्ग, भेरी, पणव और आनक आदि वाद्योंकी ध्वनिके साथ वे दोनों नरश्रेष्ठ जोर-जोरसे सिंहनाद कर रहे थे, उस समय वे दोनों पुरुषरत्न मेघोंकी गम्भीर गर्जनाके साथ उदित हुए चन्द्रमा और सूर्यके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ ९½ ॥

महाधनुर्मण्डलमध्यगावुभौ
सुवर्चसौ बाणसहस्रदीधिती ॥ १० ॥
दिधक्षमाणौ सचराचरं जगद्-
युगान्तसूर्याविव दुःसहौ रणे ।

रणभूमिमें वे दोनों वीर चराचर जगत्को दग्ध करनेकी इच्छासे प्रकट हुए प्रलयकालके दो सूर्योंके समान शत्रुओंके लिये दुःसह हो रहे थे । कर्ण और अर्जुनरूप वे दोनों सूर्य अपने विशाल धनुषरूपी मण्डलके मध्यमें प्रकाशित होते थे । सहस्रों बाण ही उनकी किरण थे और वे दोनों ही महान् तेजसे सम्पन्न दिखायी देते थे ॥ १०½ ॥

उभावजेयावहितान्तकावुभा-
वुभौ जिघांसू कृतिनौ परस्परम् ॥ ११ ॥
महाहवे वीतभयौ समीयतु-
र्महेन्द्रजम्भाविव कर्णपाण्डवौ ।

दोनों ही अजेय और शत्रुओंका विनाश करनेवाले थे । दोनों ही अस्त्र-शस्त्रोंके विद्वान् और एक दूसरेके वधकी इच्छा रखनेवाले थे । कर्ण और अर्जुन दोनों वीर इन्द्र और जम्भासुरके समान उस महासमरमें निर्भय विचरते थे ॥ ११½ ॥

ततो महास्त्राणि महाधनुर्धरौ
विमुञ्चमानाविषुभिर्भयानकैः ॥ १२ ॥
नराश्वनागानमितान् निजघ्नतुः
परस्परं चापि महारथौ नृप ।

नरेश्वर ! वे महाधनुर्धर और महारथी वीर महान् अस्त्रोंका प्रयोग करते हुए अपने भयानक बाणोंद्वारा असंख्य मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंका संहार करते और आपसमें भी एक दूसरेको चोट पहुँचाते थे ॥ १२½ ॥

ततो विसस्रुः पुनरर्दिता नरा
नरोत्तमाभ्यां कुरुपाण्डवाश्रयाः ॥ १३ ॥
सनागपत्त्यश्वरथा दिशो दश
तथा यथा सिंहहता वनौकसः ।

जैसे सिंहके द्वारा घायल किये हुए जंगली पशु सब ओर भागने लगते हैं, उसी प्रकार उन नरश्रेष्ठ वीरोंके द्वारा बाणोंसे पीड़ित किये हुए कौरव तथा पाण्डवसैनिक हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसहित दसों दिशाओंमें भाग खड़े हुए ॥ १३½ ॥

ततस्तु दुर्योधनभोजसौबलाः
कृपेण शारद्वतसूनुना सह ॥ १४ ॥
महारथाः पञ्च धनंजयाच्युतौ
शरैः शरीरार्तिकरैरताडयन् ।

महाराज ! तदनन्तर दुर्योधन, कृतवर्मा, शकुनि, शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्य और कर्ण—ये पाँच महारथी शरीरको पीड़ा देनेवाले बाणोंद्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुनको घायल करने लगे ॥ १४½ ॥

धनूंषि तेषामिषुधीन् ध्वजान् हयान्
रथांश्च सूतांश्च धनंजयः शरैः ॥ १५ ॥
समं प्रमथ्याशु परान् समन्ततः
शरोत्तमैर्द्वादशभिश्च सूतजम् ।

यह देख अर्जुनने उनके धनुष, तरकस, ध्वज, घोड़े, रथ और सारथि—इन सबको अपने बाणोंद्वारा एक साथ ही प्रमथित करके चारों ओर खड़े हुए शत्रुओंको शीघ्र ही बींध डाला और सूतपुत्र कर्णपर भी बारह बाणोंका प्रहार किया ॥ १५½ ॥

अथाभ्यधावंस्त्वरिताः शतं रथाः
शतं गजाश्चार्जुनमाततायिनः ॥ १६ ॥
शकास्तुषारा यवनाश्च सादिनः
सहैव काम्बोजवरैर्जिघांसवः ।

तदनन्तर वहाँ सैकड़ों रथी और सैकड़ों हाथीसवार आततायी बनकर अर्जुनको मार डालनेकी इच्छासे दौड़े आये, उनके साथ शक, तुषार, यवन तथा काम्बोजदेशोंके अच्छे घुड़सवार भी थे ॥ १६½ ॥

वरायुधान् पाणिगतैः शरैः सह
क्षुरैर्न्यकृन्तत् प्रपतन् शिरांसि च ॥ १७ ॥
हयांश्च नागांश्च रथांश्च युध्यतो
धनंजयः शत्रुगणान् क्षितौ क्षिणोत् ।

परंतु अर्जुनने अपने हाथके बाणों और क्षुरोंद्वारा उन सबके उत्तम-उत्तम अस्त्रोंको काट डाला। शत्रुओंके मस्तक कट-कटकर गिरने लगे। अर्जुनने विपक्षियोंके घोड़ों, हाथियों और रथोंको तथा युद्धमें तत्पर हुए उन शत्रुओंको भी पृथ्वीपर काट गिराया ॥ १७½ ॥

ततोऽन्तरिक्षे सुरतूर्यनिःस्वनाः
ससाधुवादा हृषितैः समीरिताः ॥ १८ ॥
निपेतुरप्युत्तमपुष्पवृष्टयः
सुगन्धिगन्धाः पवनेरिताः शुभाः।

तत्पश्चात् आकाशमें हर्षसे उल्लसित हुए दर्शकोंद्वारा साधुवाद देनेके साथ-साथ दिव्य बाजे भी बजाये जाने लगे। वायुकी प्रेरणासे वहाँ सुन्दर सुगन्धित और उत्तम फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ १८½ ॥

तदद्भुतं देवमनुष्यसाक्षिकं
समीक्ष्य भूतानि विसिस्मियुस्तदा॥१९॥
तत्रात्मजः सूतसुतश्च न व्यथां
न विस्मयं जग्मतुरेकनिश्चयौ।

देवताओं और मनुष्योंके साक्षित्वमें होनेवाले उस अद्भुत युद्धको देखकर समस्त प्राणी उस समय आश्चर्यसे चकित हो उठे; परंतु आपका पुत्र दुर्योधन और सूतपुत्र कर्ण—ये दोनों एक निश्चयपर पहुँच चुके थे; अतः इनके मनमें न तो व्यथा हुई और न ये विस्मयको ही प्राप्त हुए ॥ १९½ ॥

अथाब्रवीद् द्रोणसुतस्तवात्मजं
करं करेण प्रतिपीड्य सान्त्वयन् ॥ २० ॥
प्रसीद दुर्योधन शाम्य पाण्डवै-
रलं विरोधेन धिगस्तु विग्रहम्।
हतो गुरुर्ब्रह्मसमो महास्त्रवित्
तथैव भीष्मप्रमुखा महारथाः ॥ २१ ॥

तदनन्तर द्रोणकुमार अश्वत्थामाने दुर्योधनका हाथ अपने हाथसे दबाकर उसे सान्त्वना देते हुए कहा—'दुर्योधन! अब प्रसन्न हो जाओ। पाण्डवोंसे संधि कर लो। विरोधसे कोई लाभ नहीं है। आपसके इस झगड़ेको धिक्कार है! तुम्हारे गुरुदेव अस्त्रविद्याके महान् पण्डित थे। साक्षात् ब्रह्माजीके समान थे तो भी इस युद्धमें मारे गये। यही दशा भीष्म आदि महारथियोंकी भी हुई है ॥ २०-२१ ॥

अहं त्ववध्यो मम चापि मातुलः
प्रशाधि राज्यं सह पाण्डवैश्चिरम्।
धनंजयः शाम्यति वारितो मया
जनार्दनो नैव विरोधमिच्छति ॥ २२ ॥

'मैं और मेरे मामा कृपाचार्य तो अवध्य हैं (इसीलिये अबतक बचे हुए हैं)। अतः अब तुम पाण्डवोंके साथ मिलकर चिरकालतक राज्यशासन करो। अर्जुन मेरे मना करनेपर शान्त हो जायँगे। श्रीकृष्ण भी तुमलोगोंमें विरोध नहीं चाहते हैं ॥ २२ ॥

युधिष्ठिरो भूतहिते रतः सदा
वृकोदरस्तद्वशगस्तथा यमौ।
त्वया तु पार्थैश्च कृते च संविदे
प्रजाः शिवं प्राप्नुयुरिच्छया तव॥ २३ ॥
व्रजन्तु शेषाः स्वपुराणि बान्धवा
निवृत्तयुद्धाश्च भवन्तु सैनिकाः।
न चेद् वचः श्रोष्यसि मे नराधिप
ध्रुवं प्रतप्तासि हतोऽरिभिर्युधि ॥ २४ ॥

'युधिष्ठिर तो सभी प्राणियोंके हितमें ही लगे रहते हैं। अतः वे भी मेरी बात मान लेंगे। बाकी रहे भीमसेन और नकुल-सहदेव, सो ये भी धर्मराजके अधीन हैं; (अतः उनकी इच्छाके विरुद्ध कुछ नहीं करेंगे) इस प्रकार पाण्डवोंके साथ तुम्हारी संधि हो जानेपर सारी प्रजाका कल्याण होगा। फिर तुम्हारी इच्छासे शेष सगे-सम्बन्धी भाई-बन्धु अपने-अपने नगरको लौट जायँ और समस्त सैनिकोंको युद्धसे छुट्टी मिल जाय। नरेश्वर! यदि मेरी बात नहीं सुनोगे तो निश्चय ही युद्धमें शत्रुओंके हाथसे मारे जाओगे और उस समय तुम्हें बड़ा पश्चात्ताप होगा ॥ २३-२४ ॥

(वृद्धं पितरमालोक्य गान्धारीं च यशस्विनीम्।
कृपालुर्धर्मराजो हि याचितः शममेष्यति ॥

'बूढ़े पिता धृतराष्ट्र और यशस्विनी माता गान्धारीकी ओर देखकर दयालु धर्मराज युधिष्ठिर मेरे अनुरोध करनेपर भी संधि कर लेंगे ॥

यथोचितं च वै राज्यमनुशास्यति ते प्रभुः।
विपश्चित् सुमतिर्धीरः सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥

'वे सामर्थ्यशाली, विद्वान्, उत्तम बुद्धिसे युक्त, धैर्यवान् तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंके तत्त्वको जाननेवाले हैं; अतः तुम्हारे लिये राज्यका जितना भाग उचित है, उसपर शासन करनेके लिये वे तुम्हें स्वयं ही आज्ञा दे देंगे ॥

वैरं नेष्यति धर्मात्मा स्वजने नास्त्यतिक्रमः।
न विग्रहमतिः कृष्णः स्वजने प्रतिनन्दति ॥

'धर्मात्मा युधिष्ठिर वैर दूर कर देंगे; क्योंकि आत्मीयजनसे कोई भूल हो जाय तो उसे अक्षम्य अपराध नहीं माना जाता। श्रीकृष्ण भी यह नहीं चाहते कि आपसमें कलह हो, वे स्वजनोंपर सदा संतुष्ट रहते हैं ॥

भीमसेनार्जुनौ चोभौ माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ।
वासुदेवमते चैव पाण्डवस्य च धीमतः ॥
स्थास्यन्ति पुरुषव्याघ्रास्तयोर्वचनगौरवात्।

'भीमसेन, अर्जुन और दोनों भाई माद्रीकुमार पाण्डुपुत्र नकुल-सहदेव—ये सब लोग भगवान् श्रीकृष्ण तथा बुद्धिमान् युधिष्ठिरकी रायसे चलते हैं; अतः ये पुरुषसिंह वीर उन दोनोंके आदेशका गौरव रखते हुए युद्धसे निवृत्त हो जायँगे ॥

रक्ष दुर्योधनात्मानमात्मा सर्वस्य भाजनम् ॥
जीवने यत्नमातिष्ठ जीवन् भद्राणि पश्यति।

'दुर्योधन ! तुम स्वयं ही अपनी रक्षा करो। आत्मा ही सब सुखोंका भाजन है। तुम जीवन-रक्षाके लिये प्रयत्न करो। जीवित रहनेवाला पुरुष ही कल्याणका दर्शन करता है ॥

राज्यं श्रीश्चैव भद्रं ते जीवमाने तु कल्पते ॥
मृतस्य खलु कौरव्य नैव राज्यं कुतः सुखम् ।

'तुम्हारा कल्याण हो; तुम जीवित रहोगे, तभी तुम्हें राज्य और लक्ष्मीकी प्राप्ति हो सकती है। कुरुनन्दन ! मरे हुएको राज्य नहीं मिलता, फिर सुख कैसे प्राप्त हो सकता है ? ॥

लोकवृत्तमिदं वृत्तं प्रवृत्तं पश्य भारत ॥
शाम्य त्वं पाण्डवैः सार्धं शेषं कुरुकुलस्य च ।

'भारत ! लोकमें घटित होनेवाले इस प्रचलित व्यवहार-की ओर दृष्टिपात करो; पाण्डवोंके साथ संधि कर लो और कौरवकुलको शेष रहने दो ॥

मा भूत् स कालः कौरव्य यदाहमहितं वचः ॥
ब्रूयां कामं महाबाहो मावमंस्था वचो मम ।

'कुरुनन्दन ! ऐसा समय कभी न आवे जब कि मैं इच्छानुसार तुमसे कोई अहितकर बात कहूँ; अतः महाबाहो! तुम मेरी बातका अनादर न करो ॥

धर्मिष्ठमिदमत्यर्थं राज्ञश्चैव कुलस्य च ॥
एतद्धि परमं श्रेयः कुरुवंशस्य वृद्धये ।

'मेरा यह कथन धर्मके अनुकूल तथा राजा और राज-कुलके लिये अत्यन्त हितकर है; यह कौरववंशकी वृद्धिके लिये परम कल्याणकारी है ॥

प्रजाहितं च गान्धारे कुलस्य च सुखावहम् ॥
पथ्यमायतिसंयुक्तं कर्णोऽप्यर्जुनमाहवे ।
न जेष्यति नरव्याघ्रमिति मे निश्चिता मतिः ॥
रोचतां ते नरश्रेष्ठ ममैतद् वचनं शुभम् ।
अतोऽन्यथा हि राजेन्द्र विनाशः सुमहान् भवेत् ॥)

'गान्धारीनन्दन ! मेरा यह वचन प्रजाजनोंके लिये हित-कर, इस कुलके लिये सुखदायक, लाभकारी तथा भविष्यमें भी मङ्गलकारक है। नरश्रेष्ठ ! मेरी यह निश्चित धारणा है कि कर्ण नरव्याघ्र अर्जुनको कदापि जीत न सकेगा; अतः मेरा यह शुभ वचन तुम्हें पसंद आना चाहिये। राजेन्द्र ! यदि ऐसा नहीं हुआ तो बड़ा भारी विनाश होगा ॥

इदं च दृष्टं जगता सह त्वया
कृतं यदेकेन किरीटमालिना ।
यथा न कुर्याद् बलभिन्न चान्तको
न चापि धाता भगवान् न यक्षराट् ॥ २५ ॥

'किरीटधारी अर्जुनने अकेले जो पराक्रम किया है, इसे सारे संसारके साथ तुमने प्रत्यक्ष देख लिया है। ऐसा पराक्रम न तो इन्द्र कर सकते हैं और न यमराज। न धाता कर सकते हैं और न भगवान् यक्षराज कुबेर ॥ २५ ॥

अतोऽपि भूयान् स्वगुणैर्धनंजयो
न चातिवर्तिष्यति मे वचोऽखिलम् ।
तवानुयात्रां च सदा करिष्यति
प्रसीद राजेन्द्र शमं त्वमाप्नुहि ॥ २६ ॥

'यद्यपि अर्जुन अपने गुणोंद्वारा इससे भी बहुत बढ़े-चढ़े हैं, तथापि मुझे विश्वास है कि वे मेरी कही हुई इन सारी बातोंको कदापि नहीं टालेंगे। यही नहीं, वे सदा तुम्हारा अनुसरण करेंगे; इसलिये राजेन्द्र ! तुम प्रसन्न होओ और संधि कर लो २६ ॥

ममापि मानः परमः सदा त्वयि
ब्रवीम्यतस्त्वां परमाच्च सौहृदात् ।
निवारयिष्यामि च कर्णमप्यहं
यदा भवान् सप्रणयो भविष्यति ॥ २७ ॥

'तुम्हारे प्रति मेरे मनमें भी सदा बड़े आदरका भाव रहा है। हम दोनोंकी जो घनिष्ठ मित्रता है, उसीके कारण मैं तुमसे यह प्रस्ताव करता हूँ। यदि तुम प्रेमपूर्वक राजी हो जाओगे तो मैं कर्णको भी युद्धसे रोक दूँगा ॥ २७ ॥

वदन्ति मित्रं सहजं विचक्षणा-
स्तथैव साम्ना च धनेन चार्जितम् ।
प्रतापतश्चोपनतं चतुर्विधं
तदस्ति सर्वं तव पाण्डवेषु ॥ २८ ॥

'विद्वान् पुरुष चार प्रकारके मित्र बतलाते हैं। एक सहज मित्र होते हैं (जिनके साथ स्वाभाविक मैत्री होती है)। दूसरे हैं संधि करके बनाये हुए मित्र। तीसरे वे हैं जो धन देकर अपनाये गये हैं। जो किसीके प्रबल प्रतापसे प्रभावित हो स्वतः शरणमें आ जाते हैं, वे चौथे प्रकारके मित्र हैं। पाण्डवोंके साथ तुम्हारी सभी प्रकारकी मित्रता सम्भव है॥

निसर्गतस्ते तव वीर बान्धवाः
पुनश्च साम्ना समवाप्नुहि प्रभो ।
त्वयि प्रसन्ने यदि मित्रतां गते
हितं कृतं स्याज्जगतस्त्वयातुलम् ॥ २९ ॥

'वीर ! एक तो वे तुम्हारे जन्मजात भाई हैं; अतः सहज मित्र हैं। प्रभो ! फिर तुम संधि करके उन्हें अपना मित्र बना लो। यदि तुम प्रसन्नतापूर्वक पाण्डवोंसे मित्रता स्वीकार कर लो तो तुम्हारेद्वारा संसारका अनुपम हित हो सकता है' ॥ २९ ॥

स एवमुक्तः सुहृदा वचो हितं
विचिन्त्य निःश्वस्य च दुर्मनाब्रवीत् ।
यथा भवानाह सखे तथैव त-
न्ममापि विज्ञापयतो वचः शृणु ॥ ३० ॥

सुहृद् अश्वत्थामाने जब इस प्रकार हितकी बात कही, तब दुर्योधन उसपर विचार करके लंबी साँस खींचकर मन-ही-मन दुखी हो इस प्रकार बोला—'सखे ! तुम जैसा कहते हो, वह सब ठीक है; परंतु इस विषयमें कुछ मैं भी निवेदन कर रहा हूँ, अतः मेरी बात भी सुन लो ॥ ३० ॥

निहत्य दुःशासनमुक्तवान् वचः
प्रसह्य शार्दूलवदेष दुर्मतिः ।
वृकोदरस्तद्धृदये मम स्थितं
न तत् परोक्षं भवतः कुतः शमः ॥ ३१ ॥

'इस दुर्बुद्धि भीमसेनने सिंहके समान हठपूर्वक दुःशासनका वध करके जो बात कही थी, वह तुमसे छिपी नहीं है। वह इस समय भी मेरे हृदयमें स्थित होकर पीड़ा दे रही है। ऐसी दशामें कैसे संधि हो सकती है ? ॥ ३१ ॥

न चापि कर्णं प्रसहेद् रणेऽर्जुनो
महागिरिं मेरुमिवोग्रमारुतः ।
न चाश्वसिष्यन्ति पृथात्मजा मयि
प्रसह्य वैरं बहुशो विचिन्त्य ॥ ३२ ॥

'इसके सिवा भयंकर वायु जैसे महापर्वत मेरुका सामना नहीं कर सकती, उसी प्रकार अर्जुन इस रणभूमिमें कर्णका वेग नहीं सह सकते । हमने हठपूर्वक बारंबार जो वैर किया है, उसे सोचकर कुन्तीके पुत्र मुझपर विश्वास भी नहीं करेंगे ॥

न चापि कर्णं गुरुपुत्र संयुगा-
दुपारमेत्यर्हसि वक्तुमच्युत ।
श्रमेण युक्तो महताद्य फाल्गुन-
स्तमेष कर्णः प्रसभं हनिष्यति ॥ ३३ ॥

'अपनी मर्यादा न छोड़नेवाले गुरुपुत्र ! तुम्हें कर्णसे युद्ध बंद करनेके लिये नहीं कहना चाहिये; क्योंकि इस समय अर्जुन महान् परिश्रमसे थक गये हैं; अतः अब कर्ण उन्हें बलपूर्वक मार डालेगा' ॥ ३३ ॥

तमेवमुक्त्वाप्यनुनीय चासकृत्
तवात्मजः स्वाननुशास्ति सैनिकान् ।
विनिघ्नताभिद्रवताहितान् मम
सबाणहस्ताः किमु जोषमासत ॥ ३४ ॥

अश्वत्थामासे ऐसा कहकर बारंबार अनुनय-विनयके द्वारा उसे प्रसन्न करके आपके पुत्रने अपने सैनिकोंको आदेश देते हुए कहा—'अरे ! तुमलोग हाथोंमें बाण लिये चुपचाप बैठे क्यों हो ? मेरे शत्रुओंपर टूट पड़ो और उन्हें मार डालो' ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि अश्वत्थामवाक्येऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें अश्वत्थामाका वचनविषयक अठासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १२ श्लोक मिलाकर कुल ४६ श्लोक हैं)

एकोननवतितमोऽध्यायः

कर्ण और अर्जुनका भयंकर युद्ध और कौरव वीरोंका पलायन

संजय उवाच

तौ शङ्खभेरीनिनदे समृद्धे
समीयतुः श्वेतहयौ नराग्र्यौ ।
वैकर्तनः सूतपुत्रोऽर्जुनश्च
दुर्मन्त्रिते तव पुत्रस्य राजन् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर आपकी कुमन्त्रणाके फलस्वरूप जब वहाँ शङ्ख और भेरियोंकी गम्भीर ध्वनि होने लगी, उस समय वहाँ श्वेत घोड़ोंवाले दोनों नरश्रेष्ठ वैकर्तन कर्ण और अर्जुन युद्धके लिये एक दूसरेकी ओर बढ़े ॥ १ ॥

(आशीविषावग्निमिवापधूमं
वैरं मुखाभ्यामभिनिःश्वसन्तौ ।
यशस्विनौ जज्वलतुर्मृधे तदा
घृतावसिक्ताविव हव्यवाहौ ॥)

वे दोनों यशस्वी वीर उस समय दो विषधर सर्पोंके समान लंबी साँस खींचकर मानो अपने मुखोंसे धूमरहित अग्निके सदृश वैरभाव प्रकट कर रहे थे। वे घीकी आहुतिसे प्रज्वलित हुई दो अग्नियोंकी भाँति युद्धभूमिमें देदीप्यमान होने लगे ॥

यथा गजौ हैमवतौ प्रभिन्नौ
प्रवृद्धदन्ताविव वासितार्थे ।
तथा समाजग्मतुरुग्रवीर्यौ
धनंजयश्चाधिरथिश्च वीरौ ॥ २ ॥

जैसे मदकी धारा बहानेवाले हिमाचलप्रदेशके बड़े-बड़े दाँतोंवाले दो हाथी किसी हथिनीके लिये लड़ रहे हों, उसी प्रकार भयंकर पराक्रमी वीर अर्जुन और कर्ण युद्धके लिये एक-दूसरेके सामने आये ॥ २ ॥

बलाहकेनेव महाबलाहको
यदृच्छया वा गिरिणा यथा गिरिः।
तथा धनुर्ज्यातलनेमिनिस्वनैः
समीयतुस्ताविषुवर्षवर्षिणौ ॥ ३ ॥

जैसे महान् मेघ किसी दूसरे मेघके साथ अथवा दैवेच्छासे एक पर्वत दूसरे पर्वतके साथ टक्कर लेनेके लिये उद्यत हो, उसी प्रकार धनुषकी प्रत्यञ्चा, हथेली तथा रथके पहियोंकी गम्भीर ध्वनिके साथ बाणोंकी वर्षा करते हुए वे दोनों वीर एक दूसरेके सामने आये ॥ ३ ॥

प्रवृद्धशृङ्गद्रुमवीरुदोषधी
प्रवृद्धनानाविधनिर्झरौकसौ ।
यथाचलौ वा चलितौ महाबलौ
तथा महास्त्रैरितरेतरं हतः ॥ ४ ॥

जिनके शिखर, वृक्ष, लता-गुल्म और ओषधि सभी विशाल एवं बढ़े हुए हों तथा जो नाना प्रकारके बड़े-बड़े झरनोंके उद्गमस्थान हों, ऐसे दो पर्वतोंके समान वे महाबली कर्ण और अर्जुन आगे बढ़कर अपने महान् अस्त्रोंद्वारा एक-दूसरेपर आघात करने लगे ॥ ४ ॥

स संनिपातस्तु तयोर्महानभूत्
सुरेशवैरोचनयोर्यथा पुरा।
शरैर्विभिन्नाङ्गनियन्तृवाहयोः
सुदुःसहोऽन्यैः कटुशोणितोदकः॥ ५ ॥

उन दोनोंका वह संग्राम वैसा ही महान् था, जैसा कि पूर्वकालमें इन्द्र और बलिका युद्ध हुआ था। बाणोंके आघातसे उन दोनोंके शरीर, सारथि और घोड़े क्षत-विक्षत हो गये थे और वहाँ कटु रक्तरूपी जलका प्रवाह बह रहा था। वह युद्ध दूसरोंके लिये अत्यन्त दुःसह था॥ ५॥

प्रभूतपद्मोत्पलमत्स्यकच्छपौ
महाह्रदौ पक्षिगणैरिवावृतौ।
सुसंनिकृष्टावनिलोद्धतौ यथा
तथा रथौ तौ ध्वजिनौ समीयतुः॥ ६ ॥

जैसे प्रचुर पद्म, उत्पल, मत्स्य और कच्छपोंसे युक्त तथा पक्षिसमूहोंसे आवृत दो अत्यन्त निकटवर्ती विशाल सरोवर वायुसे संचालित हो परस्पर मिल जायँ, उसी प्रकार ध्वजोंसे सुशोभित उनके वे दोनों रथ एक दूसरेसे भिड़ गये थे॥

उभौ महेन्द्रस्य समानविक्रमा-
वुभौ महेन्द्रप्रतिमौ महारथौ।
महेन्द्रवज्रप्रतिमैश्च सायकै-
र्महेन्द्रवृत्राविव सम्प्रजघ्नतुः॥ ७ ॥

वे दोनों वीर इन्द्रके समान पराक्रमी और उन्हींके सदृश महारथी थे। इन्द्रके वज्रतुल्य बाणोंसे इन्द्र और वृत्रासुरके समान वे एक दूसरेको चोट पहुँचाने लगे॥ ७॥

सनागपत्त्यश्वरथे उभे बले
विचित्रवर्माभरणाम्बरायुधे
चकम्पतुर्विस्मयनीयरूपे
वियद्गताश्चार्जुनकर्णसंयुगे॥ ८ ॥

विचित्र कवच, आभूषण, वस्त्र और आयुध धारण करनेवाली, हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसहित उभय पक्षकी चतुरङ्गिणी सेनाएँ अर्जुन और कर्णके उस युद्धमें भयके कारण आश्चर्यजनक-रूपसे काँपने लगीं तथा आकाशवर्ती प्राणी भी भयसे थर्रा उठे॥ ८॥

भुजाः सवस्त्राङ्गुलयः समुच्छ्रिताः
ससिंहनादैर्हृषितैर्दिदृक्षुभिः।
यदर्जुनो मत्त इव द्विपो द्विपं
समभ्ययादाधिरथिं जिघांसया॥ ९ ॥

जैसे मतवाला हाथी किसी हाथीपर आक्रमण करता है, उसी प्रकार अर्जुन जब कर्णके वधकी इच्छासे उसपर धावा करने लगे, उस समय दर्शकोंने आनन्दित हो सिंहनाद करते हुए अपने हाथ ऊपर उठा दिये और अङ्गुलियोंमें वस्त्र लेकर उन्हें हिलाना आरम्भ किया॥ ९॥

(ततः कुरूणामथ सोमकानां
शब्दो महान् प्रादुरभूत् समन्तात्।
यदार्जुनं सूतपुत्रोऽपराह्णे
महाहवे शैलमिवाम्बुदोऽछेत्॥
तदैव चासीद् रथयोः समागमो
महारणे शोणितमांसकर्दमे॥)

जब महासमरमें अपराह्नके समय पर्वतपर जानेवाले मेघके समान सूतपुत्र कर्णने अर्जुनपर आक्रमण किया, उस समय कौरवों और सोमकोंका महान् कोलाहल सब ओर प्रकट होने लगा। उसी समय उन दोनों रथोंका संघर्ष आरम्भ हुआ। उस महायुद्धमें रक्त और मांसकी कीच जम गयी थी॥

उदक्रोशन् सोमकास्तत्र पार्थं
पुरःसराश्चार्जुन भिन्धि कर्णम्।
छिन्ध्यस्य मूर्धानमलं चिरेण
श्रद्धां च राज्याद् धृतराष्ट्रसूनोः॥ १०॥

उस समय सोमकोंने आगे बढ़कर वहाँ कुन्तीकुमारसे पुकार-पुकारकर कहा—'अर्जुन! तुम कर्णको मार डालो। अब देर करनेकी आवश्यकता नहीं है। कर्णके मस्तक और दुर्योधनकी राज्य-प्राप्तिकी आशा दोनोंको एक साथ ही काट डालो'॥

तथास्माकं बहवस्तत्र योधाः
कर्णं तथा याहि याहीत्यवोचन्।
जह्यर्जुनं कर्ण शरैः सुतीक्ष्णैः
पुनर्वनं यान्तु चिराय पार्थाः॥ ११॥

इसी प्रकार हमारे पक्षके बहुत-से योद्धा कर्णको प्रेरित करते हुए बोले—'कर्ण! आगे बढ़ो, आगे बढ़ो। अपने पैने बाणोंसे अर्जुनको मार डालो, जिससे कुन्तीके सभी पुत्र पुनः दीर्घकालके लिये वनमें चले जायँ'॥ ११॥

ततः कर्णः प्रथमं तत्र पार्थं
महेषुभिर्दशभिः प्रत्यविध्यत्।
तं चार्जुनः प्रत्यविध्यच्छिताग्रैः
कक्षान्तरे दशभिः सम्प्रहस्य॥ १२॥

तदनन्तर वहाँ कर्णने पहले दस विशाल बाणोंद्वारा अर्जुनको बींध डाला, तब अर्जुनने भी हँसकर तीखी धारवाले दस बाणोंसे कर्णकी काँखमें प्रहार किया॥ १२॥

परस्परं तौ विशिखैः सुपुङ्खै-
स्ततक्षतुः सूतपुत्रोऽर्जुनश्च।
परस्परं तौ बिभिदुर्विमर्दे
सुभीममभ्यापततुश्च हृष्टौ॥ १३॥

सूतपुत्र कर्ण और अर्जुन दोनों उस युद्धमें अत्यन्त हर्षमें भरकर सुन्दर पङ्खवाले बाणोंद्वारा एक दूसरेको क्षत-विक्षत करने लगे। वे परस्पर क्षति पहुँचाते और भयानक आक्रमण करते थे॥ १३॥

ततोऽर्जुनः प्रासृजदुग्रधन्वा
भुजावुभौ गाण्डिवं चानुमृज्य।

नाराचनालीकवराहकर्णान्
क्षुरांस्तथा साञ्जलिकार्धचन्द्रान् ॥ १४ ॥

तत्पश्चात् भयंकर धनुषवाले अर्जुनने अपनी दोनों भुजाओं तथा गाण्डीव धनुषको पोंछकर नाराच, नालीक, वराहकर्ण, क्षुर, अञ्जलिक तथा अर्धचन्द्र आदि बाणोंका प्रहार आरम्भ किया ॥ १४ ॥

ते सर्वतः समकीर्यन्त राजन्
पार्थेषवः कर्णरथं विशन्तः ।
अवाङ्मुखाः पक्षिगणा दिनान्ते
विशन्ति केतार्थमिवाशु वृक्षम् ॥ १५ ॥

राजन्! वे अर्जुनके बाण कर्णके रथमें घुसकर सब ओर बिखर जाते थे। ठीक उसी तरह, जैसे संध्याके समय पक्षियों-के झुंड बसेरा लेनेके लिये नीचे मुख किये शीघ्र ही किसी वृक्षपर जा बैठते हैं ॥ १५ ॥

यानर्जुनः सभ्रुकुटीकटाक्षं
कर्णाय राजन्नसृजज्जितारिः ।
तान् सायकैर्ग्रसते सूतपुत्रः
क्षिप्तान् क्षिप्तान् पाण्डवस्याशु संघान् ॥१६॥

नरेश्वर! शत्रुविजयी अर्जुन भौंहें टेढ़ी करके कटाक्ष-पूर्वक देखते हुए कर्णपर जिन-जिन बाणोंका प्रहार करते थे, पाण्डुपुत्र अर्जुनके चलाये हुए उन सभी बाण-समूहोंको सूतपुत्र कर्ण शीघ्र ही नष्ट कर देता था ॥ १६ ॥

ततोऽस्त्रमाग्नेयममित्रसाधनं
मुमोच कर्णाय महेन्द्रसूनुः ।
भूम्यन्तरिक्षे च दिशोऽर्कमार्गं
प्रावृत्य देहोऽस्य बभूव दीप्तः ॥ १७ ॥

तब इन्द्रकुमार अर्जुनने कर्णपर शत्रुनाशक आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया। उस आग्नेयास्त्रका स्वरूप पृथ्वी, आकाश, दिशा तथा सूर्यके मार्गको व्याप्त करके वहाँ प्रज्वलित हो उठा ॥ १७ ॥

योधाश्च सर्वे ज्वलिताम्बरा भृशं
प्रदुद्रुवुस्तत्र विदग्धवस्त्राः ।
शब्दश्च घोरोऽतिबभूव तत्र
यथा वने वेणुवनस्य दह्यतः ॥ १८ ॥

इससे वहाँ समस्त योद्धाओंके वस्त्र जलने लगे। कपड़े जल जानेसे वे सब-के-सब वहाँसे भाग चले। जैसे जंगलके बीच बाँसके वनमें आग लगनेपर जोर-जोरसे चटकनेकी आवाज होती है, उसी प्रकार आगकी लपटमें झुलसते हुए सैनिकोंका अत्यन्त भयंकर आर्तनाद होने लगा ॥ १८ ॥

तद् वीक्ष्य कर्णो ज्वलनास्त्रमुद्यतं
स वारुणं तत्प्रशमार्थमाहवे ।
समुत्सृजन् सूतसुतः प्रतापवान्
स तेन वह्निं शमयाम्बभूव ॥ १९ ॥

प्रतापी सूतपुत्र कर्णने उस आग्नेयास्त्रको उद्दीप्त हुआ देखकर रणक्षेत्रमें उसकी शान्तिके लिये वारुणास्त्रका प्रयोग किया और उसके द्वारा उस आगको बुझा दिया ॥ १९ ॥

बलाहकौघश्च दिशस्तरस्वी
चकार सर्वास्तिमिरेण संवृताः ।
ततो धरित्रीधरतुल्यरोधसः
समन्ततो वै परिवार्य वारिणा ॥ २० ॥

फिर तो बड़े वेगसे मेघोंकी घटा घिर आयी और उसने सम्पूर्ण दिशाओंको अन्धकारसे आच्छादित कर दिया। दिशाओंका अन्तिम भाग काले पर्वतके समान दिखायी देने लगा। मेघोंकी घटाओंने वहाँका सारा प्रदेश जलसे आप्लावित कर दिया था ॥ २० ॥

तैश्चातिवेगात् स तथाविधोऽपि
नीतः शमं वह्निरतिप्रचण्डः ।
बलाहकैरेव दिगन्तराणि
व्याप्तानि सर्वाणि यथा नभश्च ॥ २१ ॥

उन मेघोंने वहाँ पूर्वोक्तरूपसे बढ़ी हुई अति प्रचण्ड आगको बड़े वेगसे बुझा दिया। फिर समस्त दिशाओं और आकाशमें वे ही छा गये ॥ २१ ॥

तथा च सर्वास्तिमिरेण वै दिशो
मेघैर्वृता न प्रदृश्येत किंचित् ।
अथापोवाह्याभ्रसंघान् समस्तान्
वायव्यास्त्रेणापततः स कर्णात् ॥ २२ ॥
ततोऽप्यस्त्रं दयितं देवराज्ञः
प्रादुश्चक्रे वज्रमतिप्रभावम् ।
गाण्डीवं ज्यां विशिखांश्चानुमन्त्र्य
धनंजयः शत्रुभिरप्रधृष्यः ॥ २३ ॥

मेघोंसे घिरकर सारी दिशाएँ अन्धकाराच्छन्न हो गयीं; अतः कोई भी वस्तु दिखायी नहीं देती थी। तदनन्तर कर्ण-की ओरसे आये हुए सम्पूर्ण मेघसमूहोंको वायव्यास्त्रसे छिन्न-भिन्न करके शत्रुओंके लिये अजेय अर्जुनने गाण्डीव धनुष, उसकी प्रत्यञ्चा तथा बाणोंको अभिमन्त्रित करके अत्यन्त प्रभावशाली वज्रास्त्रको प्रकट किया, जो देवराज इन्द्रका प्रिय अस्त्र है ॥ २२-२३ ॥

ततः क्षुरप्राञ्जलिकार्धचन्द्रा
नालीकनाराचवराहकर्णाः ।
गाण्डीवतः प्रादुरासन् सुतीक्ष्णाः
सहस्रशो वज्रसमानवेगाः ॥ २४ ॥

उस गाण्डीव धनुषसे क्षुरप्र, अञ्जलिक, अर्धचन्द्र, नालीक, नाराच और वराहकर्ण आदि तीखे अस्त्र हजारोंकी संख्यामें छूटने लगे। वे सभी अस्त्र वज्रके समान वेगशाली थे ॥२४॥

ते कर्णमासाद्य महाप्रभावाः
सुतेजना गार्ध्रपत्राः सुवेगाः ।

गात्रेषु सर्वेषु हयेषु चापि
शरासने युगचक्रे ध्वजे च ॥ २५ ॥

वे महाप्रभावशाली, गीधके पंखोंसे युक्त, तेज धारवाले और अतिशय वेगवान् अस्त्र कर्णके पास पहुँचकर उसके समस्त अङ्गोंमें, घोड़ोंपर, धनुषमें तथा रथके जूओं, पहियों और ध्वजोंमें जा लगे ॥ २५ ॥

निर्भिद्य तूर्णं विविशुः सुतीक्ष्णा-
स्तार्क्ष्यत्रस्ता भूमिमिवोरगास्ते ।
शराचिताङ्गो रुधिरार्द्रगात्रः
कर्णस्तदा रोषविवृत्तनेत्रः ॥ २६ ॥

जैसे गरुड़से डरे हुए सर्प धरती छेदकर उसके भीतर घुस जाते हैं, उसी प्रकार वे तीखे अस्त्र उपर्युक्त वस्तुओंको विदीर्ण कर शीघ्र ही उनके भीतर धँस गये । कर्णके सारे अङ्ग बाणोंसे भर गये । सम्पूर्ण शरीर रक्तसे नहा उठा । इससे उसके नेत्र उस समय क्रोधसे घूमने लगे ॥ २६ ॥

दृढज्यमानाम्य समुद्रघोषं
प्रादुश्चक्रे भार्गवास्त्रं महात्मा ।
महेन्द्रशस्त्राभिमुखान् विमुक्तां-
श्छित्त्वा कर्णः पाण्डवस्येषुसंघान् ॥ २७ ॥
तस्यास्त्रमस्त्रेण निहत्य सोऽथ
जघान संख्ये रथनागपत्तीन् ।
अमृष्यमाणश्च महेन्द्रकर्मा
महारणे भार्गवास्त्रप्रतापात् ॥ २८ ॥

उस महामनस्वी वीरने अपने धनुषको जिसकी प्रत्यञ्चा सुदृढ़ थी, झुकाकर समुद्रके समान गम्भीर गर्जना करनेवाले भार्गवास्त्रको प्रकट किया और अर्जुनके महेन्द्रास्त्रसे प्रकट हुए बाण-समूहोंके टुकड़े-टुकड़े करके अपने अस्त्रसे उनके अस्त्रको दबाकर युद्धस्थलमें रथों, हाथियों और पैदल-सैनिकोंका संहार कर डाला । अमर्षशील कर्ण उस महासमरमें भार्गवास्त्रके प्रतापसे देवराज इन्द्रके समान पराक्रम प्रकट कर रहा था ॥ २७-२८ ॥

पञ्चालानां प्रवरांश्चापि योधान्
क्रोधाविष्टः सूतपुत्रस्तरस्वी ।
बाणैर्विव्याधाहवे सुप्रमुक्तैः
शिलाशितै रुक्मपुङ्खैः प्रसह्य ॥ २९ ॥

क्रोधमें भरे हुए वेगशाली सूतपुत्र कर्णने अच्छी तरह छोड़े गये और शिलापर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले बाणोंद्वारा युद्धस्थलमें हठपूर्वक मुख्य-मुख्य पाञ्चालयोद्धाओंको घायल कर दिया ॥ २९ ॥

ततपञ्चालाः सोमकाश्चापि राजन्
कर्णेनाजौ पीड्यमानाः शरौघैः ।
क्रोधाविष्टा विव्यधुस्तं समन्तात्
तीक्ष्णैर्बाणैः सूतपुत्रं समेताः ॥ ३० ॥

राजन् ! समराङ्गणमें कर्णके बाणसमूहोंसे पीड़ित होते हुए पाञ्चाल और सोमक योद्धा भी क्रोधपूर्वक एकत्र हो अपने पैने बाणोंसे सूतपुत्र कर्णको बींधने लगे ॥ ३० ॥

तान् सूतपुत्रो निजघान बाणैः
पञ्चालानां रथनागाश्वसंघान् ।
अभ्यर्दयद् बाणगणैः प्रसह्य
विद्ध्वा हर्षात् सङ्गरे सूतपुत्रः ॥ ३१ ॥

किंतु उस रणक्षेत्रमें सूतपुत्र कर्णने बाणसमूहोंद्वारा हर्ष और उत्साहके साथ पाञ्चालोंके रथियों, हाथीसवारों और घुड़सवारोंको घायल करके बड़ी पीड़ा दी और उन्हें बाणोंसे मार डाला ॥ ३१ ॥

ते भिन्नदेहा व्यसवो निपेतुः
कर्णेषुभिर्भूमितले स्वनन्तः ।
क्रुद्धेन सिंहेन यथेभयूथा
महावने भीमबलेन तद्वत् ॥ ३२ ॥

कर्णके बाणोंसे उनके शरीरोंके टुकड़े-टुकड़े हो गये और वे प्राणशून्य होकर कराहते हुए पृथ्वीपर गिर पड़े । जैसे विशाल वनमें भयानक बलशाली और क्रोधमें भरे हुए सिंहके विदीर्ण किये गये हाथियोंके झुंड धराशायी हो जाते हैं, वैसी ही दशा उन पाञ्चालयोद्धाओंकी भी हुई ॥ ३२ ॥

पञ्चालानां प्रवरान् संनिहत्य
प्रसह्य योधानखिलानदीनः ।
ततः स राजन् विरराज कर्णो
यथाम्बरे भास्कर उग्ररश्मिः ॥ ३३ ॥

राजन् ! पाञ्चालोंके समस्त श्रेष्ठ योद्धाओंका बलपूर्वक वध करके उदार वीर कर्ण आकाशमें प्रचण्ड किरणोंवाले सूर्यके समान प्रकाशित होने लगा ॥ ३३ ॥

कर्णस्य मत्वा तु जयं त्वदीयाः
परां मुदं सिंहनादांश्च चक्रुः ।
सर्वे ह्यमन्यन्त भृशाहतौ च
कर्णेन कृष्णाविति कौरवेन्द्र ॥ ३४ ॥

उस समय आपके सैनिक कर्णकी विजय समझकर बड़े प्रसन्न हुए और सिंहनाद करने लगे । कौरवेन्द्र ! उन सबने यही समझा कि कर्णने श्रीकृष्ण और अर्जुनको बहुत घायल कर दिया है ॥ ३४ ॥

तत् तादृशं प्रेक्ष्य महारथस्य
कर्णस्य वीर्यं च परैरसह्यम् ।
दृष्ट्वा च कर्णेन धनंजयस्य
तथाऽऽजिमध्ये निहतं तदस्त्रम् ॥ ३५ ॥
ततस्त्वमर्षी क्रोधसंदीप्तनेत्रो
वातात्मजः पाणिना पाणिमार्च्छत् ।
भीमोऽब्रवीदर्जुनं सत्यसंध-
ममर्षितो निःश्वसञ्जातमन्युः ॥ ३६ ॥

महारथी कर्णका वह शत्रुओंके लिये असह्य वैसा पराक्रम

दृष्टिपथमें लाकर तथा रणभूमिमें कर्णद्वारा अर्जुनके उस अस्त्रको नष्ट हुआ देखकर अमर्षशील वायुपुत्र भीमसेन हाथ-से-हाथ मलने लगे । उनके नेत्र क्रोधसे प्रज्वलित हो उठे । हृदयमें अमर्ष और क्रोधका प्रादुर्भाव हो गया; अतः वे सत्यप्रतिज्ञ अर्जुनसे इस प्रकार बोले—॥ ३५-३६ ॥

कथं नु पापोऽयमपेतधर्मः
सूतात्मजः समरेऽद्य प्रसह्य ।
पञ्चालानां योधमुख्याननेकान्
निजघ्निवांस्तव जिष्णो समक्षम् ॥ ३७ ॥

'विजयी अर्जुन ! आज समराङ्गणमें धर्मसे दूर रहनेवाले इस पापी सूतपुत्र कर्णने तुम्हारी आँखोंके सामने अनेक प्रमुख पाञ्चालयोद्धाओंका वध कैसे कर डाला ? ॥ ३७ ॥

पूर्वं देवैरजितं कालकेयैः
साक्षात् स्थाणोर्बाहुसंस्पर्शमेत्य ।
कथं नु त्वां सूतपुत्रः किरीटि-
न्नथेषुभिर्दशभिः प्रागविद्ध्यत् ॥ ३८ ॥

'किरीटधारी अर्जुन ! तुम्हें तो पूर्वकालमें देवता भी नहीं जीत सके थे । कालकेय दानव भी नहीं परास्त कर सके थे । तुम साक्षात् भगवान् शङ्करकी भुजाओंसे टक्कर ले चुके हो तो भी इस सूतपुत्रने तुम्हें पहले ही दस बाण मारकर कैसे बींध डाला ? ॥ ३८ ॥

त्वया क्षिप्तांश्चाग्रसद् बाणसंघा-
नाश्चर्यमेतत् प्रतिभाति मेऽद्य ।
कृष्णापरिक्लेशमनुस्मर त्वं
यथाब्रवीत् षण्ढतिलान् स वाचः ॥ ३९ ॥
रूक्षाः सुतीक्ष्णाश्च हि पापबुद्धिः
सूतात्मजोऽयं गतभीर्दुरात्मा ।
संस्मृत्य सर्वं तदिहाद्य पापं
जह्याशु कर्णं युधि सव्यसाचिन् ॥ ४० ॥

'तुम्हारे चलाये हुए बाणसमूहोंको इसने नष्ट कर दिया, यह तो आज मुझे बड़े आश्चर्यकी बात जान पड़ती है । सव्यसाची अर्जुन ! कौरव-सभामें द्रौपदीको दिये गये उन क्लेशोंको तो याद करो । इस पापबुद्धि दुरात्मा सूतपुत्रने जो निर्भय होकर हमलोगोंको थोथे तिलोंके समान नपुंसक बताया था और बहुत-सी अत्यन्त तीखी एवं रूखी बातें सुनायी थीं, उन सबको यहाँ याद करके तुम पापी कर्णको शीघ्र ही युद्धमें मार डालो ॥ ३९-४० ॥

कस्मादुपेक्षां कुरुषे किरीटि-
न्नुपेक्षितुं नायमिहाद्य कालः ।
यया धृत्या सर्वभूतान्यजैषी-
र्ग्रासं ददत् खाण्डवे पावकाय ॥ ४१ ॥
तया धृत्या सूतपुत्रं जहि त्व-
महं चैनं गदया पोथयिष्ये ।

'किरीटधारी पार्थ ! तुम क्यों इसकी उपेक्षा करते हो ? आज यहाँ यह उपेक्षा करनेका समय नहीं है । तुमने जिस धैर्यसे खाण्डववनमें अग्निदेवको ग्रास समर्पित करते हुए समस्त प्राणियोंपर विजय पायी थी, उसी धैर्यके द्वारा सूतपुत्रको मार डालो । फिर मैं भी इसे अपनी गदासे कुचल डालूँगा' ॥ ४१½ ॥

अथाब्रवीद् वासुदेवोऽपि पार्थं
दृष्ट्वा रथेषून् प्रतिहन्यमानान् ॥ ४२ ॥
अमीमृदत् सर्वथाऽतेऽद्य कर्णो
ह्यस्त्रैरस्त्रं किमिदं भो किरीटिन् ।
स वीर किं मुह्यसि नावधत्से
नदन्त्येते कुरवः सम्प्रहृष्टाः ॥ ४३ ॥

तदनन्तर वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने भी अर्जुनके रथसम्बन्धी बाणोंको कर्णके द्वारा नष्ट होते देख उनसे इस प्रकार कहा 'किरीटधारी अर्जुन ! यह क्या बात है ? तुमने अबतक जितने बार प्रहार किये हैं, उन सबमें कर्णने तुम्हारे अस्त्रको अपने अस्त्रोंद्वारा नष्ट कर दिया है । वीर ! आज तुमपर कैसा मोह छा रहा है ? तुम सावधान क्यों नहीं होते ? देखो, ये तुम्हारे शत्रु कौरव अत्यन्त हर्षमें भरकर सिंहनाद कर रहे हैं ! ॥ ४२-४३ ॥

कर्णं पुरस्कृत्य विदुर्हि सर्वे
तवास्त्रमस्त्रैर्विनिपात्यमानम् ।
यया धृत्या निहतं तामसास्त्रं
युगे युगे राक्षसाश्चापि घोराः ॥ ४४ ॥
दम्भोद्भवाश्चासुराश्चाहवेषु
तया धृत्या जहि कर्णं त्वमद्य ।

'कर्णको आगे करके सब लोग यही समझ रहे हैं कि तुम्हारा अस्त्र उसके अस्त्रोंद्वारा नष्ट होता जा रहा है । तुमने जिस धैर्यसे प्रत्येक युगमें घोर राक्षसोंका, उनके मायामय, तामस अस्त्रका तथा दम्भोद्भव नामवाले असुरोंका युद्धस्थलोंमें विनाश किया है, उसी धैर्यसे आज तुम कर्णको भी मार डालो ॥ ४४½ ॥

अनेन चास्य क्षुरनेमिनाद्य
संछिन्धि मूर्धानमरेः प्रसह्य ॥ ४५ ॥
मया विसृष्टेन सुदर्शनेन
वज्रेण शक्रो नमुचेरिवारेः ।

'तुम मेरे दिये हुए इस सुदर्शनचक्रके द्वारा जिसके नेमिभागमें (किनारे) क्षुर लगे हुए हैं, आज बलपूर्वक शत्रुका मस्तक काट डालो । जैसे इन्द्रने वज्रके द्वारा अपने शत्रु नमुचिका सिर काट दिया था ॥ ४५½ ॥

किरातरूपी भगवान् सुधृत्या
त्वया महात्मा परितोषितोऽभूत् ॥ ४६ ॥
तां त्वं पुनर्वीर धृतिं गृहीत्वा
सहानुबन्धं जहि सूतपुत्रम् ।

'वीर ! तुमने अपने जिस उत्तम धैर्यके द्वारा किरातरूप-धारी महात्मा भगवान् शङ्करको संतुष्ट किया था, उसी धैर्यको पुनः अपनाकर सगे-सम्बन्धियोंसहित सूतपुत्रका वध कर डालो॥

ततो महीं सागरमेखलां त्वं
सपत्तनां ग्रामवतीं समृद्धाम् ॥ ४७ ॥
प्रयच्छ राज्ञे निहतारिसंघां
यशश्च पार्थातुलमाप्नुहि त्वम्।

'पार्थ ! तत्पश्चात् समुद्रसे घिरी हुई' नगरों और गाँवोंसे युक्त तथा शत्रुसमुदायसे शून्य यह समृद्धिशालिनी पृथ्वी राजा युधिष्ठिरको दे दो और अनुपम यश प्राप्त करो' ॥४७½॥

स एवमुक्तोऽतिबलो महात्मा
चकार बुद्धिं हि वधाय सौतेः ॥ ४८ ॥
स चोदितो भीमजनार्दनाभ्यां
स्मृत्वा तथाऽऽत्मानमवेक्ष्य सर्वम्।
इहात्मनश्चागमने विदित्वा
प्रयोजनं केशवमित्युवाच ॥ ४९ ॥

भीमसेन और श्रीकृष्णके इस प्रकार प्रेरणा देने और कहनेपर अत्यन्त बलशाली महात्मा अर्जुनने सूतपुत्रके वधका विचार किया । उन्होंने अपने स्वरूपका स्मरण करके सब बातोंपर दृष्टिपात किया और इस युद्धभूमिमें अपने आगमनके प्रयोजनको समझकर श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा—॥४८-४९॥

प्रादुष्करोम्येष महास्त्रमुग्रं
शिवाय लोकस्य वधाय सौतेः।
तन्मेऽनुजानातु भवान् सुराश्च
ब्रह्मा भवो वेदविदश्च सर्वे ॥ ५० ॥

'प्रभो ! मैं जगत्के कल्याण और सूतपुत्रके वधके लिये अब एक महान् एवं भयंकर अस्त्र प्रकट कर रहा हूँ । इसके लिये आप, ब्रह्माजी, शङ्करजी, समस्त देवता तथा सम्पूर्ण ब्रह्मवेत्ता मुझे आज्ञा दें' ॥ ५० ॥

इत्युच्य देवं स तु सव्यसाची
नमस्कृत्वा ब्रह्मणे सोऽमितात्मा।
तदुत्तमं ब्राह्ममसह्यमस्त्रं
प्रादुश्चक्रे मनसा यद् विधेयम् ॥ ५१ ॥

भगवान् श्रीकृष्णसे ऐसा कहकर अमितात्मा सव्यसाची अर्जुनने ब्रह्माजीको नमस्कार करके जिसका मनसे ही प्रयोग किया जाता है, उस असह्य एवं उत्तम ब्रह्मास्त्रको प्रकट किया ॥ ५१ ॥

तदस्य हत्वा विरराज कर्णो
मुक्त्वा शरान् मेघ इवाम्बुधाराः।
समीक्ष्य कर्णेन किरीटिनस्तु
तथाऽऽजिमध्ये निहतं तदस्त्रम् ॥ ५२ ॥
ततोऽमर्षी बलवान् क्रोधदीप्तो
भीमोऽब्रवीदर्जुनं सत्यसंधम्।

परंतु जैसे मेघ जलकी धारा गिराता है, उसी प्रकार बाणोंकी बौछारसे कर्ण उस अस्त्रको नष्ट करके बड़ी शोभा पाने लगा । रणभूमिमें किरीटधारी अर्जुनके उस अस्त्रको कर्णद्वारा नष्ट हुआ देख अमर्षशील बलवान् भीमसेन पुनः क्रोधसे जल उठे और सत्यप्रतिज्ञ अर्जुनसे इस प्रकार बोले—॥

ननु त्वाहुर्वेदितारं महास्त्रं
ब्राह्मं विधेयं परमं जनास्तत् ॥ ५३ ॥
तस्मादन्यद् योजय सव्यसाचि-
न्निति स्मोक्तोऽयोजयत् सव्यसाची।
ततो दिशः प्रदिशश्चापि सर्वाः
समावृणोत् सायकैर्भूरितेजाः ॥ ५४ ॥
गाण्डीवमुक्तैर्भुजगैरिवोग्रै-
र्दिवाकरांशुप्रतिमैर्ज्वलद्भिः।

'सव्यसाचिन् ! सब लोग कहते हैं कि तुम परम उत्तम एवं मनके द्वारा प्रयोग करनेयोग्य महान् ब्रह्मास्त्रके ज्ञाता हो; इसलिये तुम दूसरे किसी श्रेष्ठ अस्त्रका प्रयोग करो ।' उनके ऐसा कहनेपर सव्यसाची अर्जुनने दूसरे दिव्यास्त्रका प्रयोग किया । इससे महातेजस्वी अर्जुनने अपने गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए सर्पोंके समान भयंकर और सूर्य-किरणोंके तुल्य तेजस्वी बाणोंद्वारा सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित कर दिया, कोना-कोना ढक दिया ॥ ५३-५४½ ॥

सृष्टास्तु बाणा भरतर्षभेण
शतं शतानीव सुवर्णपुङ्खाः ॥ ५५ ॥
प्राच्छादयन् कर्णरथं क्षणेन
युगान्तवह्न्यर्ककरप्रकाशाः।

भरतश्रेष्ठ अर्जुनके छोड़े हुए प्रलयकालीन सूर्य और अग्निकी किरणोंके समान प्रकाशित होनेवाले दस हजार बाणोंने क्षणभरमें कर्णके रथको आच्छादित कर दिया ॥

ततश्च शूलानि परश्वधानि
चक्राणि नाराचशतानि चैव ॥ ५६ ॥
निश्चक्रमुर्घोरतराणि योधा-
स्ततो ह्यहन्यन्त समन्ततोऽपि।

उस दिव्यास्त्रसे शूल, फरसे, चक्र और सैकड़ों नाराच आदि घोरतर अस्त्र-शस्त्र प्रकट होने लगे, जिनसे सब ओरके योद्धाओंका विनाश होने लगा ॥ ५६½ ॥

छिन्नं शिरः कस्यचिदाजिमध्ये
पपात योधस्य परस्य कायात् ॥ ५७ ॥
भयेन सोऽप्याशु पपात भूमौ
वन्यः प्रणष्टः पतितं विलोक्य।
अन्यस्य सासिर्निपपात कृत्तो
योधस्य बाहुः करिहस्ततुल्यः ॥ ५८ ॥

उस युद्धस्थलमें किसी शत्रुपक्षीय योद्धाका सिर धड़से कटकर धरतीपर गिर पड़ा । उसे देखकर दूसरा भी भयके

मारे धराशायी हो गया । उसको गिरा हुआ देख तीसरा योद्धा वहाँसे भाग खड़ा हुआ । किसी दूसरे योद्धाकी हाथीकी सूँड़के समान मोटी दाहिनी बाँह तलवारसहित कटकर गिर पड़ी ॥ ५७-५८ ॥

अन्यस्य सव्यः सह वर्मणा च
क्षुरप्रकृत्तः पतितो धरण्याम् ।
एवं समस्तानपि योधमुख्यान्
विध्वंसयामास किरीटमाली ॥ ५९ ॥

दूसरेकी बायीं भुजा क्षुरोंद्वारा कवचके साथ कटकर भूमिपर गिर गयी । इस प्रकार किरीटधारी अर्जुनने शत्रुपक्षके सभी मुख्य-मुख्य योद्धाओंका संहार कर डाला ॥ ५९ ॥

शरैः शरीरान्तकरैः सुघोरै-
र्दौर्योधनं सैन्यमशेषमेव ।
वैकर्तनेनापि तथाऽऽजिमध्ये
सहस्रशो बाणगणा विसृष्टाः ॥ ६० ॥

उन्होंने शरीरका अन्त कर देनेवाले घोर बाणोंद्वारा दुर्योधनकी सारी सेनाका विध्वंस कर दिया । इसी प्रकार वैकर्तन कर्णने भी समराङ्गणमें सहस्रों बाणसमूहोंकी वर्षा की ॥

ते घोषिणः पाण्डवमभ्युपेयुः
पर्जन्यमुक्ता इव वारिधाराः ।
ततः स कृष्णं च किरीटिनं च
वृकोदरं चाप्रतिमप्रभावः ॥ ६१ ॥
त्रिभिस्त्रिभिर्भीमबलो निहत्य
ननाद घोरं महता स्वरेण ।

वे बाण मेघोंकी बरसायी हुई जलधाराओंके समान शब्द करते हुए पाण्डुपुत्र अर्जुनको जा लगे । तत्पश्चात् अप्रतिम प्रभावशाली और भयंकर बलवान् कर्णने तीन-तीन बाणोंसे श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेनको घायल करके बड़े जोरसे भयानक गर्जना की ॥ ६१½ ॥

स कर्णबाणाभिहतः किरीटी
भीमं तथा प्रेक्ष्य जनार्दनं च ॥ ६२ ॥
अमृष्यमाणः पुनरेव पार्थः
शरान् दशाष्टौ च समुद्बबर्ह ।

कर्णके बाणोंसे घायल हुए किरीटधारी कुन्तीकुमार अर्जुन भीमसेन तथा भगवान् श्रीकृष्णको भी उसी प्रकार क्षत-विक्षत देखकर सहन न कर सके; अतः उन्होंने अपने तरकससे पुनः अठारह बाण निकाले ॥ ६२½ ॥

स केतुमेकेन शरेण विद्ध्वा
शल्यं चतुर्भिस्त्रिभिरेव कर्णम् ॥ ६३ ॥
ततः स मुक्तैर्दशभिर्जघान
सभापतिं काञ्चनवर्मनद्धम् ।

एक बाणसे कर्णकी ध्वजाको बींधकर अर्जुनने चार बाणोंसे शल्यको और तीनसे कर्णको घायल कर दिया । तत्पश्चात् उन्होंने दस बाण छोड़कर सुवर्णमय कवच धारण करनेवाले सभापति नामक राजकुमारको मार डाला ॥ ६३½ ॥

स राजपुत्रो विशिरा विबाहु-
र्विवाजिसूतो विधनुर्विकेतुः ॥ ६४ ॥
हतो रथाग्रादपतत् स रुग्णः
परश्वधैः शाल इवावकृत्तः ।

वह राजकुमार मस्तक, भुजा, घोड़े, सारथि, धनुष और ध्वजसे रहित हो मरकर रथके अग्रभागसे नीचे गिर पड़ा, मानो फरसोंसे काटा गया शालवृक्ष टूटकर धराशायी हो गया हो ॥ ६४½ ॥

पुनश्च कर्णं त्रिभिरष्टभिश्च
द्वाभ्यां चतुर्भिर्दशभिश्च विद्ध्वा ॥ ६५ ॥
चतुःशतान् द्विरदान् सायुधान् वै
हत्वा रथानष्टशताञ्जघान ।

इसके बाद अर्जुनने पुनः तीन, आठ, दो, चार और दस बाणोंद्वारा कर्णको बारंबार घायल करके अस्त्र-शस्त्रधारी सवारोंसहित चार सौ हाथियोंको मारकर आठ सौ रथोंको नष्ट कर दिया ॥ ६५½ ॥

सहस्रशोऽश्वांश्च पुनः स सादी-
नष्टौ सहस्राणि च पत्तिवीरान् ॥ ६६ ॥
कर्णं ससूतं सरथं सकेतु-
मदृश्यमञ्जोगतिभिः प्रचक्रे ।

तदनन्तर सवारोंसहित हजारों घोड़ों और सहस्रों पैदल वीरोंको मारकर रथ, सारथि और ध्वजसहित कर्णको भी शीघ्रगामी बाणोंद्वारा ढककर अदृश्य कर दिया ॥ ६६½ ॥

अथाक्रोशन् कुरवो वध्यमाना
धनंजयेनाधिरथिं समन्तात् ॥ ६७ ॥
मुञ्चाभिविद्ध्यर्जुनमाशु कर्ण
बाणैः पुरा हन्ति कुरून् समग्रान् ।

अर्जुनकी मार खाते हुए कौरवसैनिक चारों ओरसे कर्णको पुकारने लगे—'कर्ण ! शीघ्र बाण छोड़ो और अर्जुनको घायल कर डालो । कहीं ऐसा न हो कि ये पहले ही समस्त कौरवोंका वध कर डालें' ॥ ६७½ ॥

स चोदितः सर्वयत्नेन कर्णो
मुमोच बाणान् सुबहूनभीक्ष्णम् ॥ ६८ ॥
ते पाण्डुपञ्चालगणान् निजघ्नु-
र्मर्मच्छिदः शोणितपांसुदिग्धाः ।

इस प्रकार प्रेरणा मिलनेपर कर्णने सारी शक्ति लगाकर बारंबार बहुत-से बाण छोड़े । रक्त और धूलमें सने हुए वे मर्मभेदी बाण पाण्डव और पाञ्चालोंका विनाश करने लगे ६८½

तावुत्तमौ सर्वधनुर्धराणां
महाबलौ सर्वसपत्नसाहौ ॥ ६९ ॥
निजघ्नतुश्चाहितसैन्यमुग्र-
मन्योन्यमप्यस्त्रविदौ महास्त्रैः ।

वे दोनों सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ, महाबली, सारे शत्रुओंका सामना करनेमें समर्थ और अस्त्रविद्याके विद्वान् थे; अतः भयंकर शत्रुसेनाको तथा आपसमें भी एक दूसरेको महान् अस्त्रोंद्वारा घायल करने लगे ॥ ६९½ ॥

अथोपयातस्त्वरितो दिदृक्षु-
र्मन्त्रौषधीभिर्निरुजो विशल्यः ॥ ७० ॥
कृतः सुहृद्भिर्भिषजां वरिष्ठै-
र्युधिष्ठिरस्तत्र सुवर्णवर्मा ।

तत्पश्चात् शिविरमें हितैषी वैद्यशिरोमणियोंने मन्त्र और ओषधियोंद्वारा राजा युधिष्ठिरके शरीरसे बाण निकालकर उन्हें रोगरहित (स्वस्थ) कर दिया; इसलिये वे बड़ी उतावलीके साथ सुवर्णमय कवच धारण करके वहाँ युद्ध देखनेके लिये आये ॥ ७०½ ॥

तथोपयातं युधि धर्मराजं
दृष्ट्वा मुदा सर्वभूतान्यनन्दन् ॥ ७१ ॥
राहोर्विमुक्तं विमलं समग्रं
चन्द्रं यथैवाभ्युदितं तथैव ।

धर्मराजको युद्धस्थलमें आया हुआ देख समस्त प्राणी बड़ी प्रसन्नताके साथ उनका अभिनन्दन करने लगे । ठीक उसी तरह, जैसे राहुके ग्रहणसे छूटे हुए निर्मल एवं सम्पूर्ण चन्द्रमाको उदित देख सब लोग बड़े प्रसन्न होते हैं ॥७१½॥

दृष्ट्वा तु मुख्यावथ युध्यमानौ
दिदृक्षवः शूरवरावरिघ्नौ ॥ ७२ ॥
कर्णं च पार्थं च विलोकयन्तः
खस्था महीस्थाश्च जनावतस्थुः ।

परस्पर जूझते हुए उन दोनों शत्रुनाशक एवं प्रधान शूरवीर कर्ण और अर्जुनको देखकर उन्हींकी ओर दृष्टि लगाये आकाश और भूतलमें ठहरे हुए सभी दर्शक अपनी-अपनी जगह स्थिरभावसे खड़े रहे ॥ ७२½ ॥

स कार्मुकज्यातलसंनिपातः
सुमुक्तबाणस्तुमुलो बभूव ॥ ७३ ॥
घ्नतोस्तथान्योन्यमिषुप्रवेकै-
र्धनंजयस्याधिरथेश्च तत्र ।

उस समय वहाँ अर्जुन और कर्ण उत्तम बाणोंद्वारा एक दूसरेको चोट पहुँचा रहे थे । उनके धनुष, प्रत्यञ्चा और हथेलीका संघर्ष बड़ा भयंकर होता जा रहा था और उससे उत्तमोत्तम बाण छूट रहे थे ॥ ७३½ ॥

ततो धनुर्ज्या सहसातिकृष्टा
सुघोषमच्छिद्यत पाण्डवस्य ॥ ७४ ॥
तस्मिन् क्षणे पाण्डवं सूतपुत्रः
समाचिनोत् क्षुद्रकाणां शतेन ।

इसी समय पाण्डुपुत्र अर्जुनके धनुषकी डोरी अधिक खींची जानेके कारण सहसा भारी आवाजके साथ टूट गयी । उस अवसरपर सूतपुत्र कर्णने पाण्डुकुमार अर्जुनको सौ बाण मारे ॥ ७४½ ॥

निर्मुक्तसर्पप्रतिमैरभीक्ष्णं
तैलप्रधौतैः खगपत्रवाजैः ॥ ७५ ॥
षष्ट्या बिभेदाशु च वासुदेव-
मनन्तरं फाल्गुनमष्टभिश्च ।

फिर तेलके धोये और पक्षियोंके पंख लगाये गये, केंचुल छोड़कर निकले हुए सर्पोंके समान भयंकर साठ बाणोंद्वारा वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णको भी तुरंत ही क्षत-विक्षत कर दिया। इसके बाद पुनः अर्जुनको आठ बाण मारे ॥ ७५½ ॥

पूषात्मजो मर्मसु निर्बिभेद
मरुत्सुतं चायुतशः शराग्र्यैः ॥ ७६ ॥
कृष्णं च पार्थं च तथा ध्वजं च
पार्थानुजान् सोमकान् पातयंश्च ।

तदनन्तर सूर्यकुमार कर्णने दस हजार उत्तम बाणोंद्वारा वायुपुत्र भीमसेनके मर्मस्थानोंपर गहरा आघात किया । साथ ही, श्रीकृष्ण, अर्जुन और उनके रथकी ध्वजाको, उनके छोटे भाइयोंको तथा सोमकोंको भी उसने मार गिरानेका प्रयत्न किया ॥ ७६½ ॥

प्राच्छादयंस्ते विशिखैः पृषत्कै-
र्जीमूतसंघा नभसीव सूर्यम् ॥ ७७ ॥
आगच्छतस्तान् विशिखैरनेकै-
र्व्यष्टम्भयत् सूतपुत्रः कृतास्त्रः ।

तब जैसे मेघोंके समूह आकाशमें सूर्यको ढक लेते हैं, उसी प्रकार सोमकोंने अपने बाणोंद्वारा कर्णको आच्छादित कर दिया; परंतु सूतपुत्र अस्त्रविद्याका महान् पण्डित था, उसने अनेक बाणोंद्वारा अपने ऊपर आक्रमण करते हुए सोमकोंको जहाँ-के-तहाँ रोक दिया ॥ ७७½ ॥

तैरस्तमस्त्रं विनिहत्य सर्वं
जघान तेषां रथवाजिनागान् ॥ ७८ ॥
तथा तु सैन्यप्रवरांश्च राज-
न्नभ्यर्दयन्मार्गणैः सूतपुत्रः ।

राजन् ! उनके चलाये हुए सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंका नाश करके सूतपुत्रने उनके बहुत-से रथों, घोड़ों और हाथियोंका भी संहार कर डाला और अपने बाणोंद्वारा शत्रुपक्षके प्रधान-प्रधान योद्धाओंको पीड़ा देना प्रारम्भ किया ॥ ७८½ ॥

ते भिन्नदेहा व्यसवो निपेतुः
कर्णेषुभिर्भूमितले स्वनन्तः ॥ ७९ ॥
सिंहेन क्रुद्धेन यथा श्वयूथ्या
महाबला भीमबलेन तद्वत् ।

उन सबके शरीर कर्णके बाणोंसे विदीर्ण हो गये और वे आर्तनाद करते हुए प्राणशून्य हो पृथ्वीपर गिर पड़े । जैसे क्रोधमें भरे हुए भयंकर बलशाली सिंहने कुत्तोंके महाबली समुदायको मार गिराया हो, वही दशा सोमकोंकी हुई ॥ ७९½ ॥

पुनश्च पाञ्चालवरास्तथान्ये
तदन्तरे कर्णधनंजयाभ्याम् ॥ ८० ॥
प्रस्कन्दन्तो बलिना साधुमुक्तैः
कर्णेन बाणैर्निहताः प्रसह्य ।

पाञ्चालोंके प्रधान-प्रधान सैनिक तथा दूसरे योद्धा पुनः कर्ण और अर्जुनके बीचमें आ पहुँचे; परंतु बलवान् कर्णने अच्छी तरह छोड़े हुए बाणोंद्वारा उन सबको हठपूर्वक मार गिराया ॥ ८०½ ॥

जयं मत्वा विपुलं वै त्वदीया-
स्तलान् निजघ्नुःसिंहनादांश्च नेदुः॥ ८१ ॥
सर्वे ह्यमन्यन्त वशे कृतौ तौ
कर्णेन कृष्णाविति ते विमर्दे ।

फिर तो आपके सैनिक कर्णकी बड़ी भारी विजय मानकर ताली पीटने और सिंहनाद करने लगे । उन सबने यह समझ लिया कि 'इस युद्धमें श्रीकृष्ण और अर्जुन कर्णके वशमें हो गये' ॥ ८१½ ॥

ततो धनुर्ज्यामवनाम्य शीघ्रं
शरानस्तानाधिरथेर्विधम्य ॥ ८२ ॥
सुसंरब्धः कर्णशरक्षताङ्गो
रणे पार्थः कौरवान् प्रत्यगृह्णात् ।

तब कर्णके बाणोंसे जिनका अङ्ग-अङ्ग क्षत-विक्षत हो गया था, उन कुन्तीकुमार अर्जुनने रणभूमिमें अत्यन्त कुपित हो शीघ्र ही धनुषकी प्रत्यञ्चाको झुकाकर चढ़ा दिया और कर्णके चलाये हुए बाणोंको छिन्न-भिन्न करके कौरवोंको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ८२½ ॥

ज्यां चानुमृज्याभ्यहनत् तलत्रे
बाणान्धकारं सहसा च चक्रे ॥ ८३ ॥
कर्णं च शल्यं च कुरूंश्च सर्वान्
बाणैरविध्यत् प्रसभं किरीटी ।

तत्पश्चात् किरीटधारी अर्जुनने धनुषकी प्रत्यञ्चाको हाथसे रगड़कर कर्णके दस्तानेपर आघात किया और सहसा बाणोंका जाल फैलाकर वहाँ अन्धकार कर दिया । फिर कर्ण, शल्य और समस्त कौरवोंको अपने बाणोंद्वारा बलपूर्वक घायल किया ॥ ८३½ ॥

न पक्षिणो बभ्रमुरन्तरिक्षे
तदा महास्त्रेण कृतेऽन्धकारे ॥ ८४ ॥
वायुर्वियत्स्थैरीरितो भूतसंघै-
र्ववाह दिव्यः सुरभिस्तदानीम् ।

अर्जुनके महान् अस्त्रोंद्वारा आकाशमें घोर अन्धकार फैल जानेसे उस समय वहाँ पक्षी भी नहीं उड़ पाते थे । तब अन्तरिक्षमें खड़े हुए प्राणिसमूहोंसे प्रेरित होकर तत्काल वहाँ दिव्य सुगन्धित वायु चलने लगी ॥ ८४½ ॥

शल्यं च पार्थो दशभिः पृषत्कै-
र्भृशं तनुत्रे प्रहसन्नविध्यत् ॥ ८५ ॥
ततः कर्णं द्वादशभिः सुमुक्तै-
र्विद्ध्वा पुनः सप्तभिरभ्यविद्ध्यत् ।

इसी समय कुन्तीकुमार अर्जुनने हँसते-हँसते दस बाणोंसे शल्यको गहरी चोट पहुँचायी और उनके कवचको छिन्न-भिन्न कर डाला । फिर अच्छी तरह छोड़े हुए बारह बाणोंसे कर्णको घायल करके पुनः उसे सात बाणोंसे बींध डाला ॥ ८५½ ॥

स पार्थबाणासनवेगमुक्तै-
र्दृढाहतः पत्रिभिरुग्रवेगैः ॥ ८६ ॥
विभिन्नगात्रः क्षतजोक्षिताङ्गः
कर्णो बभौ रुद्र इवाततेषुः ।
प्रक्रीडमानोऽथ श्मशानमध्ये
रौद्रे मुहूर्ते रुधिरार्द्रगात्रः ॥ ८७ ॥

अर्जुनके धनुषसे वेगपूर्वक छूटे हुए भयंकर वेगशाली बाणोंद्वारा गहरी चोट खाकर कर्णके सारे अङ्ग विदीर्ण हो गये । वह खूनसे नहा उठा और रौद्र मुहूर्तमें श्मशानके भीतर क्रीड़ा करते हुए, बाणोंसे व्याप्त एवं रक्तसे भीगे शरीरवाले रुद्रदेवके समान प्रतीत होने लगा ॥ ८६-८७ ॥

ततस्त्रिभिस्तं त्रिदशाधिपोपमं
शरैर्बिभेदाधिरथिर्धनंजयम् ।
शरांश्च पञ्च ज्वलितानिवोरगान्
प्रवेशयामास जिघांसयाच्युतम् ॥ ८८ ॥

तदनन्तर अधिरथपुत्र कर्णने देवराज इन्द्रके समान पराक्रमी अर्जुनको तीन बाणोंसे बींध डाला और श्रीकृष्णको मार डालनेकी इच्छासे उनके शरीरमें प्रज्वलित सर्पोंके समान पाँच बाण घुसा दिये ॥ ८८ ॥

ते वर्म भित्त्वा पुरुषोत्तमस्य
सुवर्णचित्रा न्यपतन् सुमुक्ताः ।
वेगेन गामाविविशुः सुवेगाः
स्नात्वा च कर्णाभिमुखाः प्रतीयुः ॥ ८९ ॥

अच्छी तरह छोड़े हुए वे सुवर्णजटित वेगशाली बाण पुरुषोत्तम श्रीकृष्णके कवचको विदीर्ण करके बड़े वेगसे धरतीमें समा गये और पातालगङ्गामें नहाकर पुनः कर्णकी ओर जाने लगे ॥ ८९ ॥

तान् पञ्च भल्लैर्दशभिः सुमुक्तै-
स्त्रिधा त्रिधैकैकमथोच्चकर्त ।
धनंजयास्तैर्न्यपतन् पृथिव्यां
महाहयस्तक्षकपुत्रपक्षाः ॥ ९० ॥

वे बाण नहीं, तक्षकपुत्र अश्वसेनके पक्षपाती पाँच विशाल सर्प थे । अर्जुनने सावधानीसे छोड़े गये दस भल्लोंद्वारा उनमेंसे प्रत्येकके तीन-तीन टुकड़े कर डाले । अर्जुनके बाणोंसे मारे जाकर वे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ९० ॥

ततः प्रजज्वाल किरीटमाली
क्रोधेन कक्षं प्रदहन्निवाग्निः ।

तथा विनुन्नाङ्गमवेक्ष्य कृष्णं
सर्वेषुभिः कर्णभुजप्रसृष्टैः ॥ ९१ ॥

कर्णके हाथोंसे छूटे हुए उन सभी बाणोंद्वारा श्रीकृष्णके श्रीअङ्गोंको घायल हुआ देख क़िरीटधारी अर्जुन सूखे काठ या घास-फूसके ढेरको जलानेवाली आगके समान क्रोधसे प्रज्वलित हो उठे ॥ ९१ ॥

स कर्णमाकर्णविकृष्टसृष्टैः
शरैः शरीरान्तकरैर्ज्वलद्भिः ।
मर्मस्वविध्यत् स चचाल दुःखाद्
दैवादवातिष्ठत धैर्यबुद्धिः ॥ ९२ ॥

उन्होंने कानतक खींचकर छोड़े गये शरीरनाशक प्रज्वलित बाणोंद्वारा कर्णके मर्मस्थानोंमें गहरी चोट पहुँचायी। कर्ण दुःखसे विचलित हो उठा; परंतु किसी तरह मनमें धैर्य धारण करके दैवयोगसे रणभूमिमें डटा रहा ॥ ९२ ॥

ततः शरौघैः प्रदिशो दिशश्च
रवेः प्रभा कर्णरथश्च राजन् ।
अदृश्यमासीत् कुपिते धनंजये
तुषारनीहारवृतं यथा नभः ॥ ९३ ॥

राजन्! तत्पश्चात् क्रोधमें भरे हुए अर्जुनने बाणसमूहोंका ऐसा जाल फैलाया कि दिशाएँ, विदिशाएँ, सूर्यकी प्रभा और कर्णका रथ सब कुछ कुहासेसे ढके हुए आकाशकी भाँति अदृश्य हो गया ॥ ९३ ॥

स चक्ररक्षानथ पादरक्षान्
पुरःसरान् पृष्ठगोपांश्च सर्वान् ।
दुर्योधनेनानुमतानरिघ्नः
समुद्यतान् स रथान् सारभूतान् ॥ ९४ ॥
द्विसाहस्रान् समरे सव्यसाची
कुरुप्रवीरानृषभः कुरूणाम् ।
क्षणेन सर्वान् सरथाश्वसूतान्
निनाय राजन् क्षयमेकवीरः ॥ ९५ ॥

नरेश्वर! कुरुकुलके श्रेष्ठ पुरुष अद्वितीय वीर शत्रुनाशक सव्यसाची अर्जुनने कर्णके चक्ररक्षक, पादरक्षक, अग्रगामी और पृष्ठरक्षक सभी कौरवदलके सारभूत प्रमुख वीरोंको, जो दुर्योधनकी आज्ञाके अनुसार चलनेवाले और युद्धके लिये सदा उद्यत रहनेवाले थे तथा जिनकी संख्या दो हजार थी, एक ही क्षणमें रथ, घोड़ों और सारथियोंसहित कालके गालमें भेज दिया ॥ ९४-९५ ॥

ततोऽपलायन्त विहाय कर्णं
तवात्मजाः कुरवो येऽवशिष्टाः ।
हतानपाकीर्य शरक्षतांश्च
लालप्यमानांस्तनयान् पितॄंश्च ॥ ९६ ॥

तदनन्तर जो मरनेसे बच गये थे, वे आपके पुत्र और कौरवसैनिक कर्णको छोड़कर तथा मारे गये और बाणोंसे घायल हो सगे-सम्बन्धियोंको पुकारनेवाले अपने पुत्रों एवं पिताओंकी भी उपेक्षा करके वहाँसे भाग गये ॥ ९६ ॥

(सर्वे प्रणेशुः कुरवो विभिन्नाः
पार्थेषुभिः सम्परिकम्पमानाः ।
सुयोधनेनाथ पुनर्वरिष्ठाः
प्रचोदिताः कर्णरथानुयाने ॥

अर्जुनके बाणोंसे संतप्त और क्षत-विक्षत हो समस्त कौरवयोद्धा जब वहाँसे भाग खड़े हुए, तब दुर्योधनने उनमेंसे श्रेष्ठ वीरोंको पुनः कर्णके रथके पीछे जानेके लिये आज्ञा दी॥

दुर्योधन उवाच

भो क्षत्रियाः शूरतमास्तु सर्वे
क्षात्रे च धर्मे निरताः स्थ यूयम् ।
न युक्तरूपं भवतां समीपात्
पलायनं कर्णमिह प्रहाय ॥

दुर्योधन बोला—क्षत्रियो! तुम सब लोग शूरवीर हो, क्षत्रियधर्ममें तत्पर रहते हो। यहाँ कर्णको छोड़कर उसके निकटसे भाग जाना तुम्हारे लिये कदापि उचित नहीं है॥

संजय उवाच

तवात्मजेनापि तथोच्यमानाः
पार्थेषुभिः सम्परितप्यमानाः ।
नैवावतिष्ठन्त भयाद् विवर्णाः
क्षणेन नष्टाः प्रदिशो दिशश्च ॥)

संजय कहते हैं—राजन्! आपके पुत्रके इस प्रकार कहनेपर भी वे योद्धा वहाँ खड़े न हो सके। अर्जुनके बाणोंसे उन्हें बड़ी पीड़ा हो रही थी। भयसे उनकी कान्ति फीकी पड़ गयी थी; इसलिये वे क्षणभरमें दिशाओं और उनके कोनोंमें जाकर छिप गये ॥

स सर्वतः प्रेक्ष्य दिशो विशून्या
भयावदीर्णैः कुरुभिर्विहीनः ।
न विव्यथे भारत तत्र कर्णः
प्रहृष्ट एवार्जुनमभ्यधावत् ॥ ९७ ॥

भारत! भयसे भागे हुए कौरवयोद्धाओंसे परित्यक्त हो सम्पूर्ण दिशाओंको सूनी देखकर भी वहाँ कर्ण अपने मनमें तनिक भी व्यथित नहीं हुआ। उसने पूरे हर्ष और उत्साहके साथ ही अर्जुनपर धावा किया ॥ ९७ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णार्जुनद्वैरथे एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्ण और अर्जुनका द्वैरथ-युद्धविषयक नवासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८९ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ५½ श्लोक मिलाकर कुल १०२½ श्लोक हैं)

नवतितमोऽध्यायः

अर्जुन और कर्णका घोर युद्ध भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा अर्जुनकी सर्पमुख बाणसे रक्षा तथा कर्णका अपना पहिया पृथ्वीमें फँस जानेपर अर्जुनसे बाण न चलानेके लिये अनुरोध करना

संजय उवाच

ततः प्रयाताः शरपातमात्र-
मवस्थिताः कुरवो भिन्नसेनाः।
विद्युत्प्रकाशं ददृशुः समन्ताद्
धनंजयास्त्रं समुदीर्यमाणम्॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर भागे हुए कौरव, जिनकी सेना तितर-बितर हो गयी थी, धनुषसे छोड़ा हुआ बाण जहाँतक पहुँचता है, उतनी दूरीपर जाकर खड़े हो गये। वहींसे उन्होंने देखा कि अर्जुनका बड़े वेगसे बढ़ता हुआ अस्त्र चारों ओर बिजलीके समान चमक रहा है॥ १॥

तदर्जुनास्त्रं ग्रसति स्म कर्णो
वियद्गतं घोरतरैः शरैस्तत्।
क्रुद्धेन पार्थेन भृशाभिसृष्टं
वधाय कर्णस्य महाविमर्दे॥ २॥

उस महासमरमें अर्जुन कुपित होकर कर्णके वधके लिये जिस-जिस अस्त्रका वेगपूर्वक प्रयोग करते थे, उसे आकाशमें ही कर्ण अपने भयंकर बाणोंद्वारा काट देता था॥ २॥

उदीर्यमाणं स्म कुरून् दहन्तं
सुवर्णपुङ्खैर्विशिखैर्ममर्द।
कर्णस्त्वमोघेष्वसनं दृढज्यं
विस्फारयित्वा विसृजञ्छरौघान्॥ ३॥

कर्णका धनुष अमोघ था। उसकी डोरी भी बहुत मजबूत थी। वह अपने धनुषको खींचकर उसके द्वारा बाण-समूहोंकी वर्षा करने लगा। कौरवसेनाको दग्ध करनेवाले अर्जुनके छोड़े हुए अस्त्रको उसने सुवर्णमय पंखवाले बाणोंद्वारा धूलमें मिला दिया॥ ३॥

रामादुपात्तेन महामहिम्ना
ह्याथर्वणेनारिविनाशनेन।
तदर्जुनास्त्रं व्यधमद् दहन्तं
कर्णस्तु बाणैर्निशितैर्महात्मा॥ ४॥

महामनस्वी वीर कर्णने परशुरामजीसे प्राप्त हुए महाप्रभावशाली शत्रुनाशक आथर्वण अस्त्रका प्रयोग करके पैने बाणोंद्वारा अर्जुनके उस अस्त्रको, जो कौरवसेनाको दग्ध कर रहा था, नष्ट कर दिया॥ ४॥

ततो विमर्दः सुमहान् बभूव
तत्रार्जुनस्याधिरथेश्च राजन्।
अन्योन्यमासादयतोः पृषत्कै-
र्विषाणघातैर्द्विपयोरिवोग्रैः॥ ५॥

राजन्! जैसे दो हाथी अपने भयंकर दाँतोंसे एक दूसरेपर चोट करते हैं, उसी प्रकार अर्जुन और कर्ण एक दूसरेपर बाणोंका प्रहार कर रहे थे। उस समय उन दोनोंमें बड़ा भारी युद्ध होने लगा॥ ५॥

तत्रास्त्रसंघातसमावृतं तदा
बभूव राजंस्तुमुलं स सर्वतः।
तत् कर्णपार्थौ शरवृष्टिसंघै-
र्निरन्तरं चक्रतुरम्बरं तदा॥ ६॥

नरेश्वर! उस समय वहाँ अस्त्रसमूहोंसे आच्छादित होकर सारा प्रदेश सब ओरसे भयंकर प्रतीत होने लगा। कर्ण और अर्जुनने अपने बाणोंकी वर्षासे आकाशको ठसाठस भर दिया॥

ततो जालं बाणमयं महान्तं
सर्वेऽद्राक्षुः कुरवः सोमकाश्च।
नान्यं च भूतं ददृशुस्तदा ते
बाणान्धकारे तुमुलेऽथ किंचित्॥ ७॥

तदनन्तर समस्त कौरवों और सोमकोंने भी देखा कि वहाँ बाणोंका विशाल जाल फैल गया है। बाणजनित उस भयानक अन्धकारमें उस समय उन्हें दूसरे किसी प्राणीका दर्शन नहीं होता था॥ ७॥

(ततस्तु तौ वै पुरुषप्रवीरौ
राजन् वरौ सर्वधनुर्धराणाम्।
त्यक्त्वाऽऽत्मदेहौ समरेऽतिघोरे
प्राप्तश्रमौ शत्रुदुरासदौ हि॥
दृष्ट्वा तु तौ संयति सम्प्रयुक्तौ
परस्परं छिद्रनिविष्टदृष्टी।
देवर्षिगन्धर्वगणाः सयक्षाः
संतुष्टुवुस्तौ पितरश्च हृष्टाः॥)

राजन! सम्पूर्ण धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ वे दोनों नरवीर उस भयानक समरमें अपने शरीरोंका मोह छोड़कर बड़ा भारी परिश्रम कर रहे थे, वे दोनों ही शत्रुओंके लिये दुर्जय थे। युद्धमें तत्पर होकर एक दूसरेके छिद्रोंकी ओर दृष्टि रखनेवाले उन दोनों वीरोंको देखकर देवता, ऋषि, गन्धर्व, यक्ष और पितर सभी हर्षमें भरकर उनकी प्रशंसा करने लगे॥

तौ संदधानावनिशं च राजन्
समस्यन्तौ चापि शराननेकान्।
संदर्शयेतां युधि मार्गान् विचित्रान्
धनुर्धरौ तौ विविधैः कृतास्त्रैः॥ ८॥

राजन्! निरन्तर अनेकानेक बाणोंका संधान और प्रहार करते हुए वे दोनों धनुर्धर वीर सिद्ध किये हुए विविध अस्त्रोंद्वारा युद्धमें अद्भुत पैंतरे दिखाने लगे॥ ८॥

तयोरेवं युद्ध्यतोराजिमध्ये
सूतात्मजोऽभूदधिकः कदाचित्।

पार्थः कदाचित् त्वधिकः किरीटी
वीर्यास्त्रमायाबलपौरुषेण ॥ ९ ॥

इस प्रकार संग्रामभूमिमें जूझते समय उन दोनों वीरोंमें पराक्रम, अस्त्रसंचालन, मायाबल तथा पुरुषार्थकी दृष्टिसे कभी सूतपुत्र कर्ण बढ़ जाता था और कभी किरीटधारी अर्जुन ॥

दृष्ट्वा तयोस्तं युधि सम्प्रहारं
परस्परस्यान्तरमीक्षमाणयोः ।
घोरं तयोर्दुर्विषहं रणेऽन्यै-
र्योधाः सर्वे विस्मयमभ्यगच्छन् ॥१०॥

युद्धस्थलमें एक दूसरेपर प्रहार करनेका अवसर देखते हुए उन दोनों वीरोंका दूसरोंके लिये दुःसह वह घोर आघात-प्रत्याघात देखकर रणभूमिमें खड़े हुए समस्त योद्धा आश्चर्यसे चकित हो उठे ॥ १० ॥

ततो भूतान्यन्तरिक्षस्थितानि
तौ कर्णपार्थौ प्रशशंसुर्नरेन्द्र ।
भोः कर्ण साध्वर्जुन साधु चेति
वियत्सु वाणी श्रूयते सर्वतोऽपि ॥ ११ ॥

नरेन्द्र ! उस समय आकाशमें स्थित हुए प्राणी कर्ण और अर्जुन दोनोंकी प्रशंसा करने लगे । 'वाह रे कर्ण !' 'शाबाश अर्जुन !' यही बात अन्तरिक्षमें सब ओर सुनायी देने लगी ॥ ११ ॥

तस्मिन् विमर्दे रथवाजिनागै-
स्तदाभिघातैर्दलिते हि भूतले ।
ततस्तु पातालतले शयानो
नागोऽश्वसेनः कृतवैरोऽर्जुनेन ॥ १२ ॥
राजंस्तदा खाण्डवदाहमुक्तो
विवेश कोपाद् वसुधातले यः ।
अथोत्पपातोर्ध्वगतिर्जवेन
संदृश्य कर्णार्जुनयोर्विमर्दम् ॥ १३ ॥

राजन् ! उस समय घमासान युद्धमें जब रथ, घोड़े और हाथियोंद्वारा सारा भूतल रौंदा जा रहा था, उस समय पाताल-निवासी अश्वसेन नामक नाग, जिसने अर्जुनके साथ वैर बाँध रक्खा था और जो खाण्डवदाहके समय जीवित बचकर क्रोधपूर्वक इस पृथ्वीके भीतर घुस गया था; कर्ण तथा अर्जुन-का वह संग्राम देखकर बड़े वेगसे ऊपरको उछला और उस युद्धस्थलमें आ पहुँचा; उसमें ऊपरको उड़नेकी भी शक्ति थी ॥ १२-१३ ॥

अयं हि कालोऽस्य दुरात्मनो वै
पार्थस्य वैरप्रतियातनाय ।
संचिन्त्य तूर्णं प्रविवेश चैव
कर्णस्य राजञ्शररूपधारी ॥ १४ ॥

नरेश्वर ! वह यह सोचकर कि 'दुरात्मा अर्जुनके वैरका बदला लेनेके लिये यही सबसे अच्छा अवसर है', बाणका रूप धारण करके कर्णके तरकसमें घुस गया ॥ १४ ॥

ततोऽस्त्रसंघातसमाकुलं तदा
बभूव जन्यं विततांशुजालम् ।
तत् कर्णपार्थौ शरसंघवृष्टिभि-
र्निरन्तरं चक्रतुरम्बरं तदा ॥ १५ ॥

तदनन्तर अस्त्रसमूहोंके प्रहारसे भरा हुआ वह युद्धस्थल ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो वहाँ किरणोंका जाल बिछ गया हो । कर्ण और अर्जुनने अपने बाणसमूहोंकी वर्षासे आकाशमें तिलभर भी अवकाश नहीं रहने दिया ॥ १५ ॥

तद् बाणजालैकमयं महान्तं
सर्वेऽत्रसन् कुरवः सोमकाश्च ।
नान्यत् किंचिद् ददृशुः सम्पतद् वै
बाणान्धकारे तुमुलेऽतिमात्रम् ॥ १६ ॥

वहाँ बाणोंका एक महाजाल-सा बना हुआ देखकर कौरव और सोमक सभी भयसे थर्रा उठे । उस अत्यन्त घोर बाणान्धकारमें उन्हें दूसरा कुछ भी गिरता नहीं दिखायी देता था ॥ १६ ॥

ततस्तौ पुरुषव्याघ्रौ सर्वलोकधनुर्धरौ ।
त्यक्तप्राणौ रणे वीरौ युद्धश्रममुपागतौ ।
समुत्क्षेपैर्वीज्यमानौ सिक्तौ चन्दनवारिणा ॥ १७ ॥
सवालव्यजनैर्दिव्यैर्दिविस्थैरप्सरोगणैः ।
शक्रसूर्यकराब्जाभ्यां प्रमार्जितमुखावुभौ ॥ १८ ॥

तदनन्तर सम्पूर्ण विश्वके विख्यात धनुर्धर वीर पुरुषसिंह कर्ण और अर्जुन प्राणोंका मोह छोड़कर युद्ध करते-करते थक गये । उस समय आकाशमें खड़ी हुई अप्सराओंने दिव्य-चँवर डुलाकर उन दोनोंको चन्दनके जलसे सींचा । फिर इन्द्र और सूर्यने अपने कर-कमलोंसे उनके मुँह पोंछे ॥ १७-१८ ॥

कर्णोऽथ पार्थं न विशेषयद् यदा
भृशं च पार्थेन शराभितप्तः ।
ततस्तु वीरः शरविक्षताङ्गो
दध्रे मनो ह्येकशयस्य तस्य ॥ १९ ॥

जब किसी तरह कर्ण युद्धमें अर्जुनसे बढ़कर पराक्रम न दिखा सका और अर्जुनने अपने बाणोंकी मारसे उसे अत्यन्त संतप्त कर दिया, तब बाणोंके आघातसे सारा शरीर क्षत-विक्षत हो जानेके कारण वीर कर्णने उस सर्पमुख बाणके प्रहारका विचार किया ॥ १९ ॥

ततो रिपुघ्नं समधत्त कर्णः
सुसंचितं सर्पमुखं ज्वलन्तम् ।
रौद्रं शरं संनतमुग्रधौतं
पार्थार्थमत्यर्थचिराभिगुप्तम् ॥ २० ॥
सदार्चितं चन्दनचूर्णशायितं
सुवर्णतूणीरशयं महार्चिषम् ।
आकर्णपूर्णं च विकृष्य कर्णः
पार्थोन्मुखः संदधे चोत्तमौजाः ॥ २१ ॥

उत्तम बलशाली कर्णने अर्जुनको मारनेके लिये ही जिसे सुदीर्घकालसे सुरक्षित रख छोड़ा था, सोनेके तरकसमें चन्दनके चूर्णके अंदर जिसे रखता था और सदा जिसकी पूजा करता था, उस शत्रुनाशक, झुकी हुई गाँठवाले, स्वच्छ, महातेजस्वी, सुसंचित, प्रज्वलित एवं भयानक सर्पमुख बाणको उसने धनुषपर रक्खा और कानतक खींचकर अर्जुनकी ओर संधान किया ॥ २०-२१ ॥

प्रदीप्तमैरावतवंशसम्भवं
शिरो जिहीर्षुर्युधि सव्यसाचिनः ।
ततः प्रजज्वाल दिशो नभश्च
उल्काश्च घोराः शतशः प्रपेतुः ॥ २२ ॥

कर्ण युद्धमें सव्यसाची अर्जुनका मस्तक काट लेना चाहता था। उसका चलाया हुआ वह प्रज्वलित बाण ऐरावतकुलमें उत्पन्न अश्वसेन ही था । उस बाणके छूटते ही सम्पूर्ण दिशाओंसहित आकाश जाज्वल्यमान हो उठा । सैकड़ों भयङ्कर उल्काएँ गिरने लगीं ॥ २२ ॥

तस्मिंस्तु नागे धनुषि प्रयुक्ते
हाहाकृता लोकपालाः सशक्राः।
न चापि तं बुबुधे सूतपुत्रो
बाणे प्रविष्टं योगबलेन नागम् ॥ २३ ॥

धनुषपर उस नागका प्रयोग होते ही इन्द्रसहित सम्पूर्ण लोकपाल हाहाकार कर उठे । सूतपुत्रको भी यह मालूम नहीं था कि मेरे इस बाणमें योगबलसे नाग घुसा बैठा है ॥

दशशतनयनोऽहिं दृश्य बाणे प्रविष्टं
निहत इति सुतो मे स्रस्तगात्रो बभूव ।
जलजकुसुमयोनिः श्रेष्ठभावो जितात्मा
त्रिदशपतिमवोचन्मा व्यथिष्ठा जये श्रीः ।२४।

सहस्रनेत्रधारी इन्द्र उस बाणमें सर्पको घुसा हुआ देख यह सोचकर शिथिल हो गये कि 'अब तो मेरा पुत्र मारा गया ।' तब मनको वशमें रखनेवाले श्रेष्ठस्वभाव कमलयोनि ब्रह्माजीने उन देवराज इन्द्रसे कहा—'देवेश्वर! दुखी न होओ । विजयश्री अर्जुनको ही प्राप्त होगी' ॥ २४ ॥

ततोऽब्रवीन्मद्रराजो महात्मा
दृष्ट्वा कर्णं प्रहितेषुं तमुग्रम् ।
न कर्ण ग्रीवामिषुरेष लप्स्यते
समीक्ष्य संधत्स्व शरं शिरोघ्नम् ॥ २५ ॥

उस समय महामनस्वी मद्रराज शल्यने कर्णको उस भयंकर बाणका प्रहार करनेके लिये उद्यत देख उससे कहा—'कर्ण ! तुम्हारा यह बाण शत्रुके कण्ठमें नहीं लगेगा; अतः सोच-विचारकर फिरसे बाणका संधान करो, जिससे वह मस्तक काट सके' ॥ २५ ॥

अथाब्रवीत् क्रोधसंरक्तनेत्रो
मद्राधिपं सूतपुत्रस्तरस्वी ।
न संधत्ते द्विः शरं शल्य कर्णो
न मादृशा जिह्मयुद्धा भवन्ति ॥ २६ ॥

यह सुनकर वेगशाली सूतपुत्र कर्णके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये । उसने मद्रराजसे कहा—'कर्ण दो बार बाणका संधान नहीं करता । मेरे-जैसे वीर कपटपूर्वक युद्ध नहीं करते हैं' ॥

इतीदमुक्त्वा विससर्ज तं शरं
प्रयत्नतो वर्षगणाभिपूजितम् ।
हतोऽसि वै फाल्गुन इत्यधिक्षिप-
न्नुवाच चोच्चैरूर्जितां वृषः ॥ २७ ॥

ऐसा कहकर कर्णने जिसकी वर्षोंसे पूजा की थी, उस बाणको प्रयत्नपूर्वक शत्रुकी ओर छोड़ दिया और आक्षेप करते हुए उच्चस्वरसे कहा 'अर्जुन ! अब तू निश्चय ही मारा गया' ॥ २७ ॥

स सायकः कर्णभुजप्रसृष्टो
हुताशनार्कप्रतिमः सुघोरः ।
गुणच्युतः कर्णधनुःप्रमुक्तो
वियद्गतः प्राज्वलदन्तरिक्षे ॥ २८ ॥

अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी वह अत्यन्त भयंकर बाण कर्णकी भुजाओंसे प्रेरित हो उसके धनुष और प्रत्यञ्चासे छूटकर आकाशमें जाते ही प्रज्वलित हो उठा ॥ २८ ॥

तं प्रेक्ष्य दीप्तं युधि माधवस्तु
त्वरान्वितं सत्वरयैव लीलया ।
पदा विनिष्पिष्य रथोत्तमं स
प्रावेशयत् पृथिवीं किंचिदेव ॥ २९ ॥
क्षितिं गता जानुभिस्तेऽथ वाहा
हेमच्छन्नाश्चन्द्रमरीचिवर्णाः ।
ततोऽन्तरिक्षे सुमहान् निनादः
सम्पूजनार्थं मधुसूदनस्य ॥ ३० ॥
दिव्याश्च वाचः सहसा बभूवु-
र्दिव्यानि पुष्पाण्यथ सिंहनादाः ।
तस्मिंस्तथा वै धरणीं निमग्ने
रथे प्रयत्नान्मधुसूदनस्य ॥ ३१ ॥

उस प्रज्वलित बाणको बड़े वेगसे आते देख भगवान् श्रीकृष्णने युद्धस्थलमें खेल-सा करते हुए अपने उत्तम रथको तुरंत ही पैरसे दबाकर उसके पहियोंका कुछ भाग पृथ्वीमें धँसा दिया । साथ ही सोनेके साज-बाजसे ढके हुए चन्द्रमाकी किरणोंके समान श्वेतवर्णवाले उनके घोड़े भी धरतीपर घुटने टेककर झुक गये । उस समय आकाशमें सब ओर महान् कोलाहल गूँज उठा । भगवान् मधुसूदनकी स्तुति-प्रशंसाके लिये कहे गये दिव्य वचन सहसा सुनायी देने लगे । श्रीमधुसूदनके प्रयत्नसे उस रथके धरतीमें धँस जानेपर भगवान्‌के ऊपर दिव्यपुष्पोंकी वर्षा होने लगी और दिव्य सिंहनाद भी प्रकट होने लगे ॥ २९–३१ ॥

ततः शरः सोऽभ्यहनत् किरीटं
तस्येन्द्रदत्तं सुदृढं च धीमतः ।

अथार्जुनस्योत्तमगात्रभूषणं
धरावियद्द्योसलिलेषु विश्रुतम् ॥ ३२ ॥

बुद्धिमान् अर्जुनके मस्तकको विभूषित करनेवाला किरीट भूतल, अन्तरिक्ष, स्वर्ग और वरुणलोकमें भी विख्यात था। वह मुकुट उन्हें इन्द्रने प्रदान किया था। कर्णका चलाया हुआ वह सर्पमुख बाण रथ नीचा हो जानेके कारण अर्जुनके उसी किरीटमें जा लगा ॥ ३२ ॥

व्यालास्त्रसर्गोत्तमयत्नमन्युभिः
शरेण मूर्ध्नः प्रजहार सूतजः।
दिवाकरेन्दुज्वलनप्रभत्विषं
सुवर्णमुक्तामणिवज्रभूषितम् ॥ ३३ ॥

सूतपुत्र कर्णने सर्पमुख बाणके निर्माणकी सफलता, उत्तम प्रयत्न और क्रोध—इन सबके सहयोगसे जिस बाणका प्रयोग किया था, उसके द्वारा अर्जुनके मस्तकसे उस किरीटको नीचे गिरा दिया, जो सूर्य, चन्द्रमा और अग्निके समान कान्तिमान् तथा सुवर्ण, मुक्ता, मणि एवं हीरोंसे विभूषित था ॥ ३३ ॥

पुरन्दरार्थं तपसा प्रयत्नतः
स्वयं कृतं यद् विभुना स्वयम्भुवा।
महार्हरूपं द्विषतां भयंकरं
बिभर्तुरत्यर्थसुखं सुगन्धिनम् ॥ ३४ ॥
जिघांसते देवरिपून् सुरेश्वरः
स्वयं ददौ यत् सुमनाः किरीटिने।
हराम्बुपाखण्डलवित्तगोप्तृभिः
पिनाकपाशाशनिसायकोत्तमैः ॥ ३५ ॥
सुरोत्तमैरप्यविषह्यमर्दितुं
प्रसह्य नागेन जहार तद् वृषः।
स दुष्टभावो वितथप्रतिज्ञः
किरीटमत्यद्भुतमर्जुनस्य ॥ ३६ ॥
नागो महार्हं तपनीयचित्रं
पार्थोत्तमाङ्गात् प्रहरत् तरस्वी।

ब्रह्माजीने तपस्या और प्रयत्न करके देवराज इन्द्रके लिये स्वयं ही जिसका निर्माण किया था, जिसका स्वरूप बहुमूल्य, शत्रुओंके लिये भयंकर, धारण करनेवालेके लिये अत्यन्त सुखदायक तथा परम सुगन्धित था, दैत्योंके वधकी इच्छावाले किरीटधारी अर्जुनको स्वयं देवराज इन्द्रने प्रसन्नचित्त होकर जो किरीट प्रदान किया था, भगवान् शिव, वरुण, इन्द्र और कुबेर—ये देवेश्वर भी अपने पिनाक, पाश, वज्र और बाणरूप उत्तम अस्त्रोंद्वारा जिसे नष्ट नहीं कर सकते थे, उसी दिव्य मुकुटको कर्णने अपने सर्पमुख बाणद्वारा बलपूर्वक हर लिया। मनमें दुर्भाव रखनेवाले उस मिथ्याप्रतिज्ञ तथा वेगशाली नागने अर्जुनके मस्तकसे उसी अत्यन्त अद्भुत, बहुमूल्य और सुवर्णचित्रित मुकुटका अपहरण कर लिया था ॥ ३४—३६½ ॥

तद्धेमजालावततं सुघोषं
ज्वलन्तमानं निपपात भूमौ ॥ ३७ ॥
तदुत्तमेषून्मथितं विषाग्निना
प्रदीप्तमर्चिष्मदथो क्षितौ प्रियम्।
पपात पार्थस्य किरीटमुत्तमं
दिवाकरोऽस्तादिव रक्तमण्डलः ॥ ३८ ॥

सोनेकी जालीसे व्याप्त वह जगमगाता हुआ मुकुट धमाकेकी आवाज़के साथ धरतीपर जा गिरा। जैसे अस्ताचलसे लाल रंगके मण्डलवाला सूर्य नीचे गिरता है, उसी प्रकार पार्थका वह प्रिय, उत्तम एवं तेजस्वी किरीट पूर्वोक्त श्रेष्ठ बाणसे मथित और विषाग्निसे प्रज्वलित हो पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३७-३८ ॥

स वै किरीटं बहुरत्नभूषितं
जहार नागोऽर्जुनमूर्धतो बलात्।
गिरेः सुजाताङ्कुरपुष्पितद्रुमं
महेन्द्रवज्रः शिखरोत्तमं यथा ॥ ३९ ॥

उस नागने नाना प्रकारके रत्नोंसे विभूषित पूर्वोक्त किरीटको अर्जुनके मस्तकसे उसी प्रकार बलपूर्वक हर लिया, जैसे इन्द्रका वज्र वृक्षों और लताओंके नवजात अङ्कुरों तथा पुष्पशाली वृक्षोंसे सुशोभित पर्वतके उत्तम शिखरको नीचे गिरा देता है ॥ ३९ ॥

महीवियद्द्योसलिलानि वायुना
यथा विरुग्णानि नदन्ति भारत।
तथैव शब्दं भुवनेषु तं तदा
जना व्यवस्यन् व्यथिताश्च चस्खलुः ॥ ४० ॥

भारत! जैसे पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग और जल—ये वायुद्वारा वेगपूर्वक संचालित हो महान् शब्द करने लगते हैं, उस समय वहाँ जगत्के सब लोगोंने वैसे ही शब्दका अनुभव किया और व्यथित होकर सभी अपने-अपने स्थानसे लड़खड़ाकर गिर पड़े ॥ ४० ॥

विना किरीटं शुशुभे स पार्थः
श्यामो युवा नील इवोच्चशृङ्गः।
ततः समुद्ग्रथ्य सितेन वाससा
स्वमूर्धजानव्यथितस्तदार्जुनः।
विभासितः सूर्यमरीचिना दृढं
शिरोगतेनोदयपर्वतो यथा ॥ ४१ ॥

मुकुट गिर जानेपर श्यामवर्ण, नवयुवक अर्जुन ऊँचे शिखरवाले नीलगिरिके समान शोभा पाने लगे। उस समय उन्हें तनिक भी व्यथा नहीं हुई। वे अपने केशोंको सफेद वस्त्रसे बाँधकर युद्धके लिये डटे रहे। श्वेत वस्त्रसे केश बाँधनेके कारण वे शिखरपर फैली हुई सूर्यदेवकी किरणोंसे प्रकाशित होनेवाले उदयाचलके समान सुशोभित हुए ॥ ४१ ॥

गोकर्णा सुमुखी कृतेन इषुणा गोपुत्रसम्प्रेषिता
गोशब्दात्मजभूषणं सुविहितं सुव्यक्तगोऽसुप्रभम्।
दृष्ट्वा गोगतकं जहार मुकुटं गोशब्दगोपूरि वै
गोकर्णासनमर्दनश्च न ययावप्राप्य मृत्योर्वशम् ॥ ४२ ॥

अंशुमाली सूर्यके पुत्र कर्णने जिसे चलाया था, जो अपने ही द्वारा उत्पादित एवं सुरक्षित बाणरूपधारी पुत्रके रूपमें मानो स्वयं उपस्थित हुई थी, गौ अर्थात् नेत्रेन्द्रियसे कानोंका काम लेनेके कारण जो गोकर्णा (चक्षुःश्रवा) और मुखसे पुत्रकी रक्षा करनेके कारण सुमुखी कही गयी हैं, उस सर्पिणीने तेज और प्राणशक्तिसे प्रकाशित होनेवाले अर्जुनके मस्तकको घोड़ोंकी लगामके सामने लक्ष्य करके (चलनेपर भी रथ नीचा होनेसे उसे न पाकर) उनके उस मुकुटको ही हर लिया, जिसे ब्रह्माजीने स्वयं सुन्दररूपसे इन्द्रके मस्तकका भूषण बनाया था और जो सूर्यसदृश किरणोंकी प्रभासे जगत्को परिपूर्ण (प्रकाशित) करनेवाला था। उक्त सर्पको अपने बाणोंकी मारसे कुचल देनेवाले अर्जुन उसे पुनः आक्रमणका अवसर न देनेके कारण मृत्युके अधीन नहीं हुए ॥

स सायकः कर्णभुजप्रसृष्टो
हुताशनार्कप्रतिमो महार्हः।
महोरगः कृतवैरोऽर्जुनेन
किरीटमाहत्य ततो व्यतीयात् ॥ ४३ ॥

कर्णके हाथोंसे छूटा हुआ वह अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी, बहुमूल्य बाण, जो वास्तवमें अर्जुनके साथ वैर रखनेवाला महानाग था, उनके किरीटपर आघात करके पुनः वहाँसे लौट पड़ा ॥ ४३ ॥

तं चापि दग्ध्वा तपनीयचित्रं
किरीटमाकृष्य तदर्जुनस्य।
इयेष गन्तुं पुनरेव तूर्णं
दृष्टश्च कर्णेन ततोऽब्रवीत् तम् ॥ ४४ ॥

अर्जुनका वह मुकुट सुवर्णमय होनेके कारण विचित्र शोभा धारण करता था। उसे खींचकर अपनी विषाग्निसे दग्ध करके वह सर्प पुनः कर्णके तरकसमें घुसना ही चाहता था कि कर्णकी दृष्टि उसपर पड़ गयी। तब उसने कर्णसे कहा—॥ ४४ ॥

मुक्तस्त्वयाहं त्वसमीक्ष्य कर्ण
शिरो हृतं यन्न मयार्जुनस्य।
समीक्ष्य मां मुञ्च रणे त्वमाशु
हन्तास्मि शत्रुं तव चात्मनश्च ॥ ४५ ॥

'कर्ण ! तुमने अच्छी तरह सोच-विचारकर मुझे नहीं छोड़ा था; इसीलिये मैं अर्जुनके मस्तकका अपहरण न कर सका। अब पुनः सोच-समझकर, ठीकसे निशाना साधकर रणभूमिमें शीघ्र ही मुझे छोड़ो, तब मैं अपने और तुम्हारे उस शत्रुका वध कर डालूँगा' ॥ ४५ ॥

स एवमुक्तो युधि सूतपुत्र-
स्तमब्रवीत् को भवानुग्ररूपः।
नागोऽब्रवीद् विद्धि कृतागसं मां
पार्थेन मातुर्वधजातवैरम् ॥ ४६ ॥

यदि स्वयं वज्रधरोऽस्य गोप्ता
तथापि याता पितृराजवेश्मनि।

युद्धस्थलमें उस नागके ऐसा कहनेपर सूतपुत्र कर्णने उससे पूछा—'पहले यह तो बताओ कि ऐसा भयानक रूप धारण करनेवाले तुम हो कौन ?' तब नागने कहा—'अर्जुनने मेरा अपराध किया है। मेरी माताका उनके द्वारा वध होनेके कारण मेरा उनसे वैर हो गया है। तुम मुझे नाग समझो। यदि साक्षात् वज्रधारी इन्द्र भी अर्जुनकी रक्षाके लिये आ जायँ तो भी आज अर्जुनको यमलोकमें जाना ही पड़ेगा' ॥ ४६½ ॥

कर्ण उवाच

न नाग कर्णोऽद्य रणे परस्य
बलं समास्थाय जयं बुभूषेत् ॥ ४७ ॥
न संदध्यां द्विः शरं चैव नाग
यद्यर्जुनानां शतमेव हन्याम्।

कर्ण बोला—नाग ! आज रणभूमिमें कर्ण दूसरेके बलका सहारा लेकर विजय पाना नहीं चाहता है। नाग ! मैं सौ अर्जुनको मार सकूँ तो भी एक बाणका दो बार संधान नहीं कर सकता ॥ ४७½ ॥

तमाह कर्णः पुनरेव नागं
तदाऽऽजिमध्ये रविसूनुसत्तमः ॥ ४८ ॥
व्यालास्त्रसर्गोत्तमयत्नमन्युभि-
र्हन्तास्मि पार्थं सुसुखी व्रज त्वम्।

इतना कहकर सूर्यके श्रेष्ठ पुत्र कर्णने युद्धस्थलमें उस नागसे फिर इस प्रकार कहा—'मेरे पास सर्पमुख बाण है। मैं उत्तम यत्न कर रहा हूँ और मेरे मनमें अर्जुनके प्रति पर्याप्त रोष भी है; अतः मैं स्वयं ही पार्थको मार डालूँगा। तुम सुखपूर्वक यहाँसे पधारो' ॥ ४८½ ॥

इत्येवमुक्तो युधि नागराजः
कर्णेन रोषादसहंस्तस्य वाक्यम् ॥ ४९ ॥
स्वयं प्रायात् पार्थवधाय राजन्
कृत्वा स्वरूपं विजिघांसुरुग्रः।

राजन् ! युद्धस्थलमें कर्णके द्वारा इस प्रकार टका-सा उत्तर पाकर वह नागराज रोषपूर्वक उसके इस वचनको सहन न कर सका। उस उग्र सर्पने अपने स्वरूपको प्रकट करके मनमें प्रतिहिंसाकी भावना लेकर पार्थके वधके लिये स्वयं ही उनपर आक्रमण किया ॥ ४९½ ॥

ततः कृष्णः पार्थमुवाच संख्ये
महोरगं कृतवैरं जहि त्वम् ॥ ५० ॥
स एवमुक्तो मधुसूदनेन
गाण्डीवधन्वा रिपुवीर्यसाहः।
उवाच को ह्येष ममाद्य नागः
स्वयं य आयाद् गरुडस्य वक्त्रम् ॥ ५१ ॥

तब भगवान् श्रीकृष्णने युद्धस्थलमें अर्जुनसे कहा—'यह विशाल नाग तुम्हारा वैरी है। तुम इसे मार डालो'। भगवान् मधुसूदनके ऐसा कहनेपर शत्रुओंके बलका सामना करनेवाले गाण्डीवधारी अर्जुनने पूछा—'प्रभो! आज मेरे पास आनेवाला यह नाग कौन है? जो स्वयं ही गरुड़के मुखमें चला आया है' ॥ ५०-५१ ॥

कृष्ण उवाच

योऽसौ त्वया खाण्डवे चित्रभानुं
संतर्पयाणेन धनुर्धरेण।
वियद्गतो जननीगुप्तदेहो
मत्वैकरूपं निहतास्य माता ॥ ५२ ॥

श्रीकृष्णने कहा—अर्जुन! खाण्डव वनमें जब तुम हाथमें धनुष लेकर अग्निदेवको तृप्त कर रहे थे, उस समय यही सर्प अपनी माताके मुँहमें घुसकर अपने शरीरको सुरक्षित करके आकाशमें उड़ा जा रहा था। तुमने उसे एक ही सर्प समझकर केवल इसकी माताका वध किया था ॥ ५२ ॥

स एष तद् वैरमनुस्मरन् वै
त्वां प्रार्थयत्यात्मवधाय नूनम्।
नभश्च्युतां प्रज्वलितामिवोल्कां
पश्यैनमायान्तममित्रसाह ॥ ५३ ॥

उसी वैरको याद करके यह अवश्य अपने वधके लिये ही तुमसे भिड़ना चाहता है। शत्रुसूदन! आकाशसे गिरती हुई प्रज्वलित उल्काके समान आते हुए इस सर्पको देखो ॥५३॥

संजय उवाच

ततः स जिष्णुः परिवृत्य रोषा-
च्चिच्छेद षड्भिर्निशितैः सुधारैः।
नागं वियत्तिर्यगिवोत्पतन्तं
स च्छिन्नगात्रो निपपात भूमौ ॥ ५४ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तब अर्जुनने रोषपूर्वक घूमकर उत्तम धारवाले छः तीखे बाणोंद्वारा आकाशमें तिरछी गतिसे उड़ते हुए उस नागके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। शरीर टूक-टूक हो जानेके कारण वह पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ५४ ॥

हते च तस्मिन् भुजगे किरीटिना
स्वयं विभुः पार्थिव भूतलादथ।
समुज्जहाराशु पुनः पतन्तं
रथं भुजाभ्यां पुरुषोत्तमस्ततः ॥ ५५ ॥

राजन्! किरीटधारी अर्जुनके द्वारा उस सर्पके मारे जानेपर स्वयं भगवान् पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने उस नीचे धँसते हुए रथको पुनः अपनी दोनों भुजाओंसे शीघ्र ही ऊपर उठा दिया ॥ ५५ ॥

तस्मिन् मुहूर्ते दशभिः पृषत्कैः
शिलाशितैर्बर्हिणबर्हवाजितैः।
विव्याध कर्णः पुरुषप्रवीरो
धनंजयं तिर्यगवेक्षमाणः ॥ ५६ ॥

उस मुहूर्तमें नरवीर कर्णने धनंजयकी ओर तिरछी दृष्टिसे देखते हुए मयूरपंखसे युक्त, शिलापर तेज किये हुए, दस बाणोंसे उन्हें घायल कर दिया ॥ ५६ ॥

ततोऽर्जुनो द्वादशभिः सुमुक्तै-
र्वराहकर्णैर्निशितैः समर्प्य।
नाराचमाशीविषतुल्यवेग-
माकर्णपूर्णायतमुत्ससर्ज ॥ ५७ ॥

तब अर्जुनने अच्छी तरह छोड़े हुए बारह वराहकर्ण नामक पैने बाणोंद्वारा कर्णको घायल करके पुनः विषधर सर्पके तुल्य एक वेगशाली नाराचको कानतक खींचकर उसकी ओर छोड़ दिया ॥ ५७ ॥

स चित्रवर्मेषुवरो विदार्य
प्राणान्निरस्यन्निव साधुमुक्तः।
कर्णस्य पीत्वा रुधिरं विवेश
वसुन्धरां शोणितदिग्धवाजः ॥ ५८ ॥

भलीभाँति छूटे हुए उस उत्तम नाराचने कर्णके विचित्र कवचको चीर-फाड़कर उसके प्राण निकालते हुए-से रक्तपान किया, फिर वह धरतीमें समा गया। उस समय उसके पंख खूनसे लथपथ हो रहे थे ॥ ५८ ॥

ततो वृषो बाणनिपातकोपितो
महोरगो दण्डविघट्टितो यथा।
तदाशुकारी व्यसृजच्छरोत्तमान्
महाविषः सर्प इवोत्तमं विषम् ॥ ५९ ॥

तब उस बाणके प्रहारसे क्रोधमें भरे हुए शीघ्रकारी कर्णने लाठीकी चोट खाये हुए महान् सर्पके समान तिलमिलाकर उसी प्रकार उत्तम बाणोंका प्रहार आरम्भ किया, जैसे महाविषैला सर्प अपने उत्तम विषका वमन करता है ॥५९॥

जनार्दनं द्वादशभिः पराभिन-
न्नवैर्नवत्या च शरैस्तथार्जुनम्।
शरेण घोरेण पुनश्च पाण्डवं
विदार्य कर्णो व्यनदज्जहास च ॥ ६० ॥

उसने बारह बाणोंसे श्रीकृष्णको और निन्यानबे बाणोंसे अर्जुनको अच्छी तरह घायल किया। तत्पश्चात् एक भयंकर बाणसे पाण्डुपुत्र अर्जुनको पुनः क्षत-विक्षत करके कर्ण सिंहके समान दहाड़ने और हँसने लगा ॥ ६० ॥

तमस्य हर्षं ममृषे न पाण्डवो
बिभेद मर्माणि ततोऽस्य मर्मवित्।
परःशतैः पत्रिभिरिन्द्रविक्रम-
स्तथा यथेन्द्रो बलमोजसा रणे ॥ ६१ ॥

उसके उस हर्षको पाण्डुपुत्र अर्जुन सहन न कर सके। वे उसके मर्मस्थलोंको जानते थे और इन्द्रके समान पराक्रमी थे। अतः जैसे इन्द्रने रणभूमिमें बलासुरको बलपूर्वक आहत किया था, उसी प्रकार अर्जुनने सौसे भी अधिक बाणोंद्वारा कर्णके मर्मस्थानोंको विदीर्ण कर दिया ॥ ६१ ॥

ततः शराणां नवतिं तदार्जुनः
ससर्ज कर्णेऽन्तकदण्डसंनिभाम् ।
तैः पत्रिभिर्विद्धतनुः स विव्यथे
तथा यथा वज्रविदारितोऽचलः ॥ ६२ ॥

तदनन्तर अर्जुनने यमदण्डके समान भयंकर नब्बे बाण कर्णपर छोड़े। उन पंखवाले बाणोंसे उसका सारा शरीर बिंध गया तथा वह वज्रसे विदीर्ण किये हुए पर्वतके समान व्यथित हो उठा ॥ ६२ ॥

मणिप्रवेकोत्तमवज्रहाटकै-
रलंकृतं चास्य वराङ्गभूषणम् ।
प्रविद्धमुर्व्यां निपपात पत्रिभि-
र्धनंजयेनोत्तमकुण्डलेऽपि च ॥ ६३ ॥

उत्तम मणियों, हीरों और सुवर्णसे अलंकृत कर्णके मस्तकका आभूषण मुकुट और उसके दोनों उत्तम कुण्डल भी अर्जुनके बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ६३ ॥

महाधनं शिल्पिवरैः प्रयत्नतः
कृतं यदस्योत्तमवर्म भास्वरम् ।
सुदीर्घकालेन ततोऽस्य पाण्डवः
क्षणेन बाणैर्बहुधा व्यशातयत् ॥ ६४ ॥

अच्छे-अच्छे शिल्पियोंने कर्णके जिस उत्तम बहुमूल्य और तेजस्वी कवचको दीर्घकालमें बनाकर तैयार किया था, उसके उसी कवचके पाण्डुपुत्र अर्जुनने अपने बाणोंद्वारा क्षणभरमें बहुत-से टुकड़े कर डाले ॥ ६४ ॥

स तं विवर्माणमथोत्तमेषुभिः
शितैश्चतुर्भिः कुपितः पराभिनत् ।
स विव्यथेऽत्यर्थमरिप्रताडितो
यथातुरः पित्तकफानिलज्वरैः ॥ ६५ ॥

कवच कट जानेपर कर्णको कुपित हुए अर्जुनने चार उत्तम तीखे बाणोंसे पुनः क्षत-विक्षत कर दिया। शत्रुके द्वारा अत्यन्त घायल किये जानेपर कर्ण वात, पित्त और कफ सम्बन्धी ज्वर (त्रिदोष या सन्निपात) से आतुर हुए मनुष्यकी भाँति अधिक पीड़ाका अनुभव करने लगा ॥ ६५ ॥

महाधनुर्मण्डलनिःसृतैः शितैः
क्रियाप्रयत्नप्रहितैर्बलेन च ।
ततक्ष कर्णं बहुभिः शरोत्तमै-
र्बिभेद मर्मस्वपि चार्जुनस्त्वरन् ॥ ६६ ॥

अर्जुनने उतावले होकर क्रिया, प्रयत्न और बलपूर्वक छोड़े गये तथा विशाल धनुर्मण्डलसे छूटे हुए बहुसंख्यक पैने और उत्तम बाणोंद्वारा कर्णके मर्मस्थानोंमें गहरी चोट पहुँचाकर उसे विदीर्ण कर दिया ॥ ६६ ॥

दृढाहतः पत्रिभिरुग्रवेगैः
पार्थेन कर्णो विविधैः शिताग्रैः ।
बभौ गिरिर्गैरिकधातुरक्तः
क्षरन् प्रपातैरिव रक्तमम्भः ॥ ६७ ॥

अर्जुनके भयंकर वेगशाली और तेजधारवाले नाना प्रकारके बाणोंद्वारा गहरी चोट खाकर कर्ण अपने अङ्गोंसे रक्तकी धारा बहाता हुआ उस पर्वतके समान सुशोभित हुआ, जो गेरु आदि धातुओंसे रँगा होनेके कारण अपने झरनोंसे लाल पानी बहाया करता है ॥ ६७ ॥

ततोऽर्जुनः कर्णमवक्रगैर्नवैः
सुवर्णपुङ्खैः सुदृढैरयस्मयैः ।
यमाग्निदण्डप्रतिमैः स्तनान्तरे
पराभिनत् क्रौञ्चमिवाद्रिमग्निजः ॥ ६८ ॥

तत्पश्चात् अर्जुनने सोनेके पंखवाले लोहनिर्मित, सुदृढ़ तथा यमदण्ड और अग्निदण्डके तुल्य भयंकर बाणोंद्वारा कर्णकी छातीको उसी प्रकार विदीर्ण कर डाला, जैसे कुमार कार्तिकेयने क्रौञ्च पर्वतको चीर डाला था ॥ ६८ ॥

ततः शरावापमपास्य सूतजो
धनुश्च तच्छक्रशरासनोपमम् ।
ततो रथस्थः स मुमोह च स्खलन्
प्रशीर्णमुष्टिः सुभृशाहतः प्रभो ॥ ६९ ॥

प्रभो! अत्यन्त आहत हो जानेके कारण सूतपुत्र कर्ण तरकस और इन्द्रधनुषके समान अपना धनुष छोड़कर रथपर ही लड़खड़ाता हुआ मूर्छित हो गया। उस समय उसकी मुट्ठी ढीली हो गयी थी ॥ ६९ ॥

न चार्जुनस्तं व्यसने तदेषिवान्
निहन्तुमार्यः पुरुषव्रते स्थितः ।
ततस्तमिन्द्रावरजः सुसम्भ्रमा-
दुवाच किं पाण्डव हे प्रमाद्यसे ॥ ७० ॥

राजन्! अर्जुन सत्पुरुषोंके व्रतमें स्थित रहनेवाले श्रेष्ठ मनुष्य हैं; अतः उन्होंने उस संकटके समय कर्णको मारनेकी इच्छा नहीं की। तब इन्द्रके छोटे भाई भगवान् श्रीकृष्णने बड़े वेगसे कहा—'पाण्डुनन्दन! तुम लापरवाही क्यों दिखाते हो? ॥ ७० ॥

नैवाहितानां सततं विपश्चितः
क्षणं प्रतीक्षन्त्यपि दुर्बलीयसाम् ।
विशेषतोऽरीन् व्यसनेषु पण्डितो
निहत्य धर्मं च यशश्च विन्दते ॥ ७१ ॥

'विद्वान् पुरुष कभी दुर्बल-से-दुर्बल शत्रुओंको भी नष्ट करनेके लिये किसी अवसरकी प्रतीक्षा नहीं करते। विशेषतः संकटमें पड़े हुए शत्रुओंको मारकर बुद्धिमान् पुरुष धर्म और यशका भागी होता है ॥ ७१ ॥

तदेकवीरं तव चाहितं सदा
त्वरस्व कर्णं सहसाभिमर्दितुम् ।
पुरा समर्थः समुपैति सूतजो
भिन्धि त्वमेनं नमुचिं यथा हरिः ॥ ७२ ॥

'इसलिये सदा तुमसे शत्रुता रखनेवाले इस अद्वितीय

वीर कर्णको सहसा कुचल डालनेके लिये तुम शीघ्रता करो। सूतपुत्र कर्ण शक्तिशाली होकर आक्रमण करे, इसके पहले ही तुम इसे उसी प्रकार मार डालो, जैसे इन्द्रने नमुचिका वध किया था' ॥ ७२ ॥

ततस्तदेवेत्यभिपूज्य सत्वरं
जनार्दनं कर्णमविध्यदर्जुनः।
शरोत्तमैः सर्वकुरूत्तमस्त्वरं-
स्तथा यथा शम्बरहा पुरा बलिम् ॥७३॥

'अच्छा, ऐसा ही होगा' यों कहकर श्रीकृष्णका समादर करते हुए सम्पूर्ण कुरुकुलके श्रेष्ठ पुरुष अर्जुन उत्तम बाणों-द्वारा शीघ्रतापूर्वक कर्णको उसी प्रकार बींधने लगे, जैसे पूर्व-कालमें शम्बर शत्रु इन्द्रने राजा बलिपर प्रहार किया था ७३

साश्वं तु कर्णं सरथं किरीटी
समाचिनोद् भारत वत्सदन्तैः।
प्रच्छादयामास दिशश्च बाणैः
सर्वप्रयत्नात्तपनीयपुङ्खैः ॥ ७४ ॥

भरतनन्दन ! किरीटधारी अर्जुनने घोड़ों और रथसहित कर्णके शरीरको वत्सदन्त नामक बाणोंसे भर दिया। फिर सारी शक्ति लगाकर सुवर्णमय पंखवाले बाणोंसे उन्होंने सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित कर दिया ॥ ७४ ॥

स वत्सदन्तैः पृथुपीनवक्षाः
समाचितः सोऽधिरथिर्विभाति।
सुपुष्पिताशोकपलाशशाल्मलि-
र्यथाचलश्चन्दनकाननायुतः ॥ ७५ ॥

चौड़े और मोटे वक्षःस्थलवाले अधिरथपुत्र कर्णका शरीर वत्सदन्तनामक बाणोंसे व्याप्त होकर खिले हुए अशोक, पलाश, सेमल और चन्दनवनसे युक्त पर्वतके समान सुशोभित होने लगा ॥ ७५ ॥

शरैः शरीरे बहुभिः समर्पितै-
र्विभाति कर्णः समरे विशाम्पते।
महीरुहैराचितसानुकन्दरो
यथा गिरीन्द्रः स्फुटकर्णिकारवान्॥७६॥

प्रजानाथ ! कर्णके शरीरमें बहुत-से बाण धँस गये थे। उनके द्वारा समराङ्गणमें उसकी वैसी ही शोभा हो रही थी, जैसे वृक्षोंसे व्याप्त शिखर और कन्दरावाले गिरिराजके ऊपर लाल कनेरके फूल खिलनेसे उसकी शोभा होती है ॥ ७६ ॥

स बाणसङ्घान् बहुधा व्यवासृजद्
विभाति कर्णः शरजालरश्मिवान्।
सलोहितो रक्तगभस्तिमण्डलो
दिवाकरोऽस्ताभिमुखो यथा तथा ॥ ७७ ॥

तदनन्तर कर्ण (सावधान होकर) शत्रुओंपर बहुत-से बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगा। उस समय जैसे अस्ताचलकी ओर जाते हुए सूर्यमण्डल और उसकी किरणें लाल हो जाती हैं, उसी प्रकार खूनसे लाल हुआ वह शरसमूहरूपी किरणोंसे सुशोभित हो रहा था ॥ ७७ ॥

बाह्वन्तरादाधिरथेर्विमुक्तान्
बाणान् महाहीनिव दीप्यमानान्।
व्यध्वंसयन्नर्जुनबाहुमुक्ताः
शराः समासाद्य दिशः शिताग्राः ॥ ७८ ॥

कर्णकी भुजाओंसे छूटकर बड़े-बड़े सर्पोंके समान प्रकाशित होनेवाले बाणोंको अर्जुनके हाथोंसे छूटे हुए तीखे बाणोंने सम्पूर्ण दिशाओंमें फैलकर नष्ट कर दिया ॥ ७८ ॥

ततः स कर्णः समवाप्य धैर्यं
बाणान् विमुञ्चन् कुपिताहिकल्पान्।
विव्याध पार्थं दशभिः पृषत्कैः
कृष्णं च षड्भिः कुपिताहिकल्पैः॥७९॥

तदनन्तर कर्ण धैर्य धारण करके कुपित सर्पोंके समान भयंकर बाण छोड़ने लगा। उसने क्रोधमें भरे हुए भुजङ्गमोंके सदृश दस बाणोंसे अर्जुनको और छःसे श्रीकृष्णको भी घायल कर दिया ॥ ७९ ॥

ततः किरीटी भृशमुग्रनिःस्वनं
महाशरं सर्पविषानलोपमम्।
अयस्मयं रौद्रमहास्त्रसम्भृतं
महाहवे क्षेप्तुमना महामतिः ॥ ८० ॥

तब परम बुद्धिमान् किरीटधारी अर्जुनने उस महासमरमें कर्णपर भयानक शब्द करनेवाले, सर्पविष और अग्निके समान तेजस्वी लोहनिर्मित तथा महारौद्रास्त्रसे अभिमन्त्रित विशाल बाण छोड़नेका विचार किया ॥ ८० ॥

कालो ह्यदृश्यो नृप विप्रकोपा-
न्निदर्शयन् कर्णवधं ब्रुवाणः।
भूमिस्तु चक्रं ग्रसतीत्यवोचत्
कर्णस्य तस्मिन् वधकाल आगते॥ ८१ ॥

नरेश्वर ! उस समय काल अदृश्य रहकर ब्राह्मणके क्रोधसे कर्णके वधकी सूचना देता हुआ उसकी मृत्युका समय उपस्थित होनेपर इस प्रकार बोला—'अब भूमि तुम्हारे पहियेको निगलना ही चाहती है' ॥ ८१ ॥

ततस्तदस्त्रं मनसः प्रणष्टं
यद् भार्गवोऽस्मै प्रददौ महात्मा।
चक्रं च वामं ग्रसते भूमिरस्य
प्राप्ते तस्मिन् वधकाले नृवीर ॥ ८२ ॥

नरवीर ! अब कर्णके वधका समय आ पहुँचा था। महात्मा परशुरामने कर्णको जो भार्गवास्त्र प्रदान किया था, वह उस समय उसके मनसे निकल गया—उसे उसकी याद न रह सकी। साथ ही, पृथ्वी उसके रथके बायें पहियेको निगलने लगी ॥ ८२ ॥

ततो रथो घूर्णितवान् नरेन्द्र
शापात्तदा ब्राह्मणसत्तमस्य।

ततश्चक्रमपतत्तस्य भूमौ
स विह्वलः समरे सूतपुत्रः ॥ ८३ ॥

नरेन्द्र ! श्रेष्ठ ब्राह्मणके शापसे उस समय उसका रथ डगमगाने लगा और उसका पहिया पृथ्वीमें धँस गया। यह देख सूतपुत्र कर्ण समराङ्गणमें व्याकुल हो उठा ॥ ८३ ॥

सवेदिकश्चैत्य इवातिमात्रः
सुपुष्पितो भूमितले निमग्नः।
घूर्णे रथे ब्राह्मणस्याभिशापाद्
रामादुपात्ते त्वविभाति चास्त्रे ॥८४॥
छिन्ने शरे सर्पमुखे च घोरे
पार्थेन तस्मिन् विषसाद कर्णः।
अमृष्यमाणो व्यसनानि तानि
हस्तौ विधुन्वन् स विगर्हमाणः॥ ८५ ॥

जैसे सुन्दर पुष्पोंसे युक्त विशाल चैत्यवृक्ष वेदीसहित पृथ्वीमें धँस जाय, वही दशा उस रथकी भी हुई। ब्राह्मणके शापसे जब रथ डगमग करने लगा, परशुरामजीसे प्राप्त हुआ अस्त्र भूल गया और घोर सर्पमुख बाण अर्जुनके द्वारा काट डाला गया, तब उस अवस्थामें उन संकटोंको सहन न कर सकनेके कारण कर्ण खिन्न हो उठा और दोनों हाथ हिला-हिलाकर धर्मकी निन्दा करने लगा ॥ ८४-८५ ॥

धर्मप्रधानं किल पाति धर्म
इत्यब्रुवन् धर्मविदः सदैव।
वयं च धर्मे प्रयताम नित्यं
चर्तुं यथाशक्ति यथाश्रुतं च ॥
स चापि निघ्नाति न पाति भक्तान्
मन्ये न नित्यं परिपाति धर्मः ॥ ८६ ॥

'धर्मज्ञ पुरुषोंने सदा ही यह बात कही है कि 'धर्म-परायण पुरुषकी धर्म सदा रक्षा करता है। हम अपनी शक्ति और ज्ञानके अनुसार सदा धर्मपालनके लिये प्रयत्न करते रहते हैं, किंतु वह भी हमें मारता ही है, भक्तोंकी रक्षा नहीं करता; अतः मैं समझता हूँ, धर्म सदा किसीकी रक्षा नहीं करता है' ॥

एवं ब्रुवन् प्रस्खलिताश्वसूतो
विचाल्यमानोऽर्जुनबाणपातैः।
मर्माभिघाताच्छिथिलः क्रियासु
पुनः पुनर्धर्ममसौ जगर्ह ॥ ८७ ॥

ऐसा कहता हुआ कर्ण जब अर्जुनके बाणोंकी मारसे विचलित हो उठा, उसके घोड़े और सारथि लड़खड़ाकर गिरने लगे और मर्मपर आघात होनेसे वह कार्य करनेमें शिथिल हो गया, तब बारंबार धर्मकी ही निन्दा करने लगा ॥८७॥

ततः शरैर्भीमतरैरविध्यत् त्रिभिराहवे।
हस्ते कृष्णं तथा पार्थमभ्यविध्यच्च सप्तभिः ॥ ८८ ॥

तदनन्तर उसने तीन भयानक बाणोंद्वारा युद्धस्थलमें श्रीकृष्णके हाथमें चोट पहुँचायी और अर्जुनको भी सात बाणोंसे बींध डाला ॥ ८८ ॥

ततोऽर्जुनः सप्तदश तिग्मवेगानजिह्मगान्।
इन्द्राशनिसमान् घोरानसृजत् पावकोपमान्॥ ८९ ॥

तत्पश्चात् अर्जुनने इन्द्रके वज्र तथा अग्निके समान प्रचण्ड वेगशाली सत्रह घोर बाण कर्णपर छोड़े ॥ ८९ ॥

निर्भिद्य ते भीमवेगा ह्यपतन् पृथिवीतले।
कम्पितात्मा ततः कर्णः शक्त्या चेष्टामदर्शयत् ॥९०॥

वे भयानक वेगशाली बाण कर्णको घायल करके पृथ्वी-पर गिर पड़े। इससे कर्ण काँप उठा। फिर भी यथाशक्ति युद्धकी चेष्टा दिखाता रहा ॥ ९० ॥

बलेनाथ स संस्तभ्य ब्रह्मास्त्रं समुदैरयत्।
ऐन्द्रं ततोऽर्जुनश्चापि तं दृष्ट्वाभ्युपमन्त्रयत् ॥ ९१ ॥

उसने बलपूर्वक धैर्य धारण करके ब्रह्मास्त्र प्रकट किया। यह देख अर्जुनने भी ऐन्द्रास्त्रको अभिमन्त्रित किया ॥९१॥

गाण्डीवं ज्यां च बाणांश्च सोऽनुमन्त्र्य परंतपः।
व्यसृजच्छरवर्षाणि वर्षाणीव पुरन्दरः ॥ ९२ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले अर्जुनने गाण्डीव धनुष, प्रत्यञ्चा और बाणोंको भी अभिमन्त्रित करके वहाँ शरसमूहों-की उसी प्रकार वर्षा आरम्भ कर दी, जैसे इन्द्र जलकी वृष्टि करते हैं ॥ ९२ ॥

ततस्तेजोमया बाणा रथात् पार्थस्य निःसृताः।
प्रादुरासन् महावीर्याः कर्णस्य रथमन्तिकात्॥ ९३ ॥

तदनन्तर कुन्तीकुमार अर्जुनके रथसे महान् शक्तिशाली और तेजस्वी बाण निकलकर कर्णके रथके समीप प्रकट होने लगे ॥ ९३ ॥

तान् कर्णस्त्वग्रतो न्यस्तान् मोघांश्चक्रे महारथः।
ततोऽब्रवीद् वृष्णिवीरस्तस्मिन्नस्त्रे विनाशिते ॥९४॥

महारथी कर्णने अपने सामने आये हुए उन सभी बाणों-को व्यर्थ कर दिया। उस अस्त्रके नष्ट कर दिये जानेपर वृष्णिवंशी वीर भगवान् श्रीकृष्णने कहा—॥ ९४ ॥

विसृजास्त्रं परं पार्थ राधेयो ग्रसते शरान्।
ततो ब्रह्मास्त्रमत्युग्रं सम्मन्त्र्य समयोजयत् ॥ ९५ ॥

'पार्थ ! दूसरा कोई उत्तम अस्त्र छोड़ो। राधापुत्र कर्ण तुम्हारे बाणोंको नष्ट करता जा रहा है।' तब अर्जुनने अत्यन्त भयंकर ब्रह्मास्त्रको अभिमन्त्रित करके धनुषपर रक्खा ॥९५॥

छादयित्वा ततो बाणैः कर्णं प्रत्यस्यदर्जुनः।
ततः कर्णः शितैर्बाणैर्ज्यां चिच्छेद सुतेजनैः ॥ ९६ ॥

और उसके द्वारा बाणोंकी वर्षा करके अर्जुनने कर्णको आच्छादित कर दिया। इसके बाद भी वे लगातार बाणोंका प्रहार करते रहे। तब कर्णने तेज किये हुए पैने बाणोंसे अर्जुनके धनुषकी डोरी काट डाली ॥ ९६ ॥

द्वितीयां च तृतीयां च चतुर्थीं पञ्चमीं तथा।
षष्ठीमथास्य चिच्छेद सप्तमीं च तथाष्टमीम् ॥ ९७ ॥

उसने क्रमशः दूसरी, तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठी, सातवीं और आठवीं डोरी भी काट दी ॥ ९७ ॥

नवमीं दशमीं चास्य तथा चैकादशीं वृषः।
ज्याशतं शतसंधानः स कर्णो नावबुध्यते ॥ ९८ ॥

इतना ही नहीं, नवीं, दसवीं और ग्यारहवीं डोरी काटकर भी सौ बाणोंका संधान करनेवाले कर्णको यह पता नहीं चला कि अर्जुनके धनुषमें सौ डोरियाँ लगी हैं ॥ ९८ ॥

ततो ज्यां विनिधायान्यामभिमन्त्र्य च पाण्डवः।
शरैरवाकिरत् कर्णं दीप्यमानैरिवाहिभिः ॥ ९९ ॥

तदनन्तर दूसरी डोरी चढ़ाकर पाण्डुकुमार अर्जुनने उसे भी अभिमन्त्रित किया और प्रज्वलित सर्पोंके समान बाणोंद्वारा कर्णको आच्छादित कर दिया ॥ ९९ ॥

तस्य ज्याछेदनं कर्णो ज्यावधानं च संयुगे।
नान्वबुध्यत शीघ्रत्वात्तदद्भुतमिवाभवत् ॥१००॥

युद्धस्थलमें अर्जुनके धनुषकी डोरी काटना और पुनः दूसरी डोरीका चढ़ जाना इतनी शीघ्रतासे होता था कि कर्णको भी उसका पता नहीं चलता था। वह एक अद्भुत-सी घटना थी ॥ १०० ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य प्रनिघ्नन् सव्यसाचिनः।
चक्रे चाप्यधिकं पार्थात् स्ववीर्यमतिदर्शयन् ॥१०१॥

कर्ण अपने अस्त्रोंद्वारा सव्यसाची अर्जुनके अस्त्रोंका निवारण करके उन सबको नष्ट कर दिया और अपने पराक्रमका प्रदर्शन करते हुए उसने अपने आपको अर्जुनसे अधिक शक्तिशाली सिद्ध कर दिखाया ॥ १०१ ॥

ततः कृष्णोऽर्जुनं दृष्ट्वा कर्णास्त्रेण च पीडितम्।
अभ्यसेत्यब्रवीत् पार्थमातिष्ठास्त्रं व्रजेति च ॥१०२॥

तब श्रीकृष्णने अर्जुनको कर्णके अस्त्रसे पीड़ित हुआ देखकर कहा—'पार्थ ! लगातार अस्त्र छोड़ो। उत्तम अस्त्रोंका प्रयोग करो और आगे बढ़े चलो' ॥ १०२ ॥

ततोऽग्निसदृशं घोरं शरं सर्पविषोपमम्।
अश्मसारमयं दिव्यमभिमन्त्र्य परंतपः ॥१०३॥
रौद्रमस्त्रं समाधाय क्षेप्तुकामः किरीटवान्।
ततोऽग्रसन्मही चक्रं राधेयस्य तदा नृप ॥ १०४ ॥

तब शत्रुओंको संताप देनेवाले अर्जुनने अग्नि और सर्पविषके समान भयंकर लोहमय दिव्य बाणको अभिमन्त्रित करके उसमें रौद्रास्त्रका आधान किया और उसे कर्णपर छोड़नेका विचार किया। नरेश्वर ! इतनेहीमें पृथ्वीने राधापुत्र कर्णके पहियेको ग्रस लिया ॥ १०३-१०४ ॥

ततोऽवतीर्य राधेयो रथादाशु समुद्यतः।
चक्रं भुजाभ्यामालम्ब्य समुत्क्षेप्तुमियेष सः ॥१०५॥

यह देख राधापुत्र कर्ण शीघ्र ही रथसे उतर पड़ा और उद्योगपूर्वक अपनी दोनों भुजाओंसे पहियेको थामकर उसे ऊपर उठानेका विचार किया ॥ १०५ ॥

सप्तद्वीपा वसुमती सशैलवनकानना।
जीर्णचक्रा समुत्क्षिप्ता कर्णेन चतुरङ्गुलम् ॥१०६॥

कर्णने उस रथको ऊपर उठाते समय ऐसा झटका दिया कि सात द्वीपोंसे युक्त, पर्वत, वन और काननोंसहित यह सारी पृथ्वी चक्रको निगले हुए ही चार अङ्गुल ऊपर उठ आयी ॥ १०६ ॥

ग्रस्तचक्रस्तु राधेयः क्रोधादश्रूण्यवर्तयत्।
अर्जुनं वीक्ष्य संरब्धमिदं वचनमब्रवीत् ॥१०७॥

पहिया फँस जानेके कारण राधापुत्र कर्ण क्रोधसे आँसू बहाने लगा और रोषावेशसे युक्त अर्जुनकी ओर देखकर इस प्रकार बोला— ॥ १०७ ॥

भो भोः पार्थ महेष्वास मुहूर्तं परिपालय।
यावच्चक्रमिदं ग्रस्तमुद्धरामि महीतलात् ॥१०८॥

'महाधनुर्धर कुन्तीकुमार ! दो घड़ी प्रतीक्षा करो, जिससे मैं इस फँसे हुए पहियेको पृथ्वीतलसे निकाल लूँ ॥ १०८ ॥

सव्यं चक्रं महीग्रस्तं दृष्ट्वा दैवादिदं मम।
पार्थ कापुरुषाचीर्णमभिसंधिं विसर्जय ॥१०९॥

'पार्थ ! दैवयोगसे मेरे इस बायें पहियेको धरतीमें फँसा हुआ देखकर तुम कापुरुषोचित कपटपूर्ण बर्तावका परित्याग करो ॥ १०९ ॥

न त्वं कापुरुषाचीर्णं मार्गमास्थातुमर्हसि।
ख्यातस्त्वमसि कौन्तेय विशिष्टो रणकर्मसु ॥११०॥
विशिष्टतरमेव त्वं कर्तुमर्हसि पाण्डव।

'कुन्तीनन्दन ! जिस मार्गपर कायर चला करते हैं, उसीपर तुम भी न चलो; क्योंकि तुम युद्धकर्ममें विशिष्ट वीरके रूपमें विख्यात हो। पाण्डुनन्दन ! तुम्हें तो अपने आपको और भी विशिष्ट ही सिद्ध करना चाहिये ॥ ११०½ ॥

प्रकीर्णकेशे विमुखे ब्राह्मणेऽथ कृताञ्जलौ ॥१११॥
शरणागते न्यस्तशस्त्रे याचमाने तथार्जुन।
अबाणे भ्रष्टकवचे भ्रष्टभग्नायुधे तथा ॥११२॥
न विमुञ्चन्ति शस्त्राणि शूराः साधुव्रते स्थिताः।

'अर्जुन ! जो केश खोलकर खड़ा हो, युद्धसे मुँह मोड़ चुका हो, ब्राह्मण हो, हाथ जोड़कर शरणमें आया हो, हथियार डाल चुका हो, प्राणोंकी भीख माँगता हो, जिसके बाण, कवच और दूसरे-दूसरे आयुध नष्ट हो गये हों, ऐसे पुरुषपर उत्तम व्रतका पालन करनेवाले शूरवीर शस्त्रोंका प्रहार नहीं करते हैं ॥ १११-११२½ ॥

त्वं च शूरतमो लोके साधुवृत्तश्च पाण्डव ॥११३॥
अभिज्ञो युद्धधर्माणां वेदान्तावभृथाप्लुतः।
दिव्यास्त्रविदमेयात्मा कार्तवीर्यसमो युधि ॥११४॥

'पाण्डुनन्दन ! तुम लोकमें महान् शूर और सदाचारी माने जाते हो। युद्धके धर्मोंको जानते हो। वेदान्तका अध्ययनरूपी यज्ञ समाप्त करके तुम उसमें अवभृथस्नान कर चुके हो। तुम्हें दिव्यास्त्रोंका ज्ञान है। तुम अमेय आत्मबलसे सम्पन्न तथा युद्धस्थलमें कार्तवीर्य अर्जुनके समान पराक्रमी हो ॥ ११३-११४ ॥



कर्णद्वारा पृथ्वीमें धँसे हुए पहियेको उठानेका प्रयत्न

यावच्चक्रमिदं ग्रस्तमुद्धरामि महाभुज।
न मां रथस्थो भूमिष्ठं विकलं हन्तुमर्हसि ॥ ११५॥

'महाबाहो! जबतक मैं इस फँसे हुए पहियेको निकाल रहा हूँ, तबतक तुम रथारूढ़ होकर भी मुझ भूमिपर खड़े हुएको बाणोंकी मारसे व्याकुल न करो॥ ११५॥

न वासुदेवात् त्वत्तो वा पाण्डवेय बिभेम्यहम्।
त्वं हि क्षत्रियदायादो महाकुलविवर्धनः।
अतस्त्वां प्रब्रवीम्येष मुहूर्तं क्षम पाण्डव ॥ ११६॥

'पाण्डुपुत्र! मैं वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण अथवा तुमसे तनिक भी डरता नहीं हूँ। तुम क्षत्रियके पुत्र हो, एक उच्च कुलका गौरव बढ़ाते हो; इसलिये तुमसे ऐसी बात कहता हूँ। पाण्डव! तुम दो घड़ीके लिये मुझे क्षमा करो'॥ ११६॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णरथचक्रग्रसने नवतितमोऽध्यायः॥ ९०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्णके रथके पहियेका पृथ्वीमें फँसना—इस विषयसे सम्बन्ध रखनेवाला नब्बेवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९०॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २ श्लोक मिलाकर कुल ११८ श्लोक हैं)

एकनवतितमोऽध्यायः

भगवान् श्रीकृष्णका कर्णको चेतावनी देना और कर्णका वध

संजय उवाच

तमब्रवीद् वासुदेवो रथस्थो
राधेय दिष्ट्या स्मरसीह धर्मम्।
प्रायेण नीचा व्यसनेषु मग्ना
निन्दन्ति दैवं कुकृतं न तु स्वम्॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! उस समय रथपर बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्णने कर्णसे कहा—'राधानन्दन! सौभाग्यकी बात है कि अब यहाँ तुम्हें धर्मकी याद आ रही है! प्रायः यह देखनेमें आता है कि नीच मनुष्य विपत्तिमें पड़नेपर दैवकी ही निन्दा करते हैं। अपने किये हुए कुकर्मोंकी नहीं॥ १॥

यद् द्रौपदीमेकवस्त्रां सभाया-
मानाययेस्त्वं च सुयोधनश्च।
दुःशासनः शकुनिः सौबलश्च
न ते कर्ण प्रत्यभात्तत्र धर्मः॥ २॥

'कर्ण! जब तुमने तथा दुर्योधन, दुःशासन और सुबलपुत्र शकुनिने एक वस्त्र धारण करनेवाली रजस्वला द्रौपदीको सभामें बुलवाया था, उस समय तुम्हारे मनमें धर्मका विचार नहीं उठा था?॥ २॥

यदा सभायां राजानमनक्षज्ञं युधिष्ठिरम्।
अजैषीच्छकुनिर्ज्ञानात् क्व ते धर्मस्तदा गतः॥ ३॥

'जब कौरवसभामें जूएके खेलका ज्ञान न रखनेवाले राजा युधिष्ठिरको शकुनिने जान-बूझकर छलपूर्वक हराया था, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था?॥ ३॥

वनवासे व्यतीते च कर्ण वर्षे त्रयोदशे।
न प्रयच्छसि यद् राज्यं क्व ते धर्मस्तदा गतः॥ ४॥

'कर्ण! वनवासका तेरहवाँ वर्ष बीत जानेपर भी जब तुमने पाण्डवोंका राज्य उन्हें वापस नहीं दिया था, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था?॥ ४॥

यद् भीमसेनं सर्पैश्च विषयुक्तैश्च भोजनैः।
आचरत् त्वन्मते राजा क्व ते धर्मस्तदा गतः॥ ५॥

'जब राजा दुर्योधनने तुम्हारी ही सलाह लेकर भीमसेनको जहर मिलाया हुआ अन्न खिलाया और उन्हें सर्पोंसे डँसवाया, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ गया था?॥ ५॥

यद् वारणावते पार्थान् सुप्ताञ्जतुगृहे तदा।
आदीपयस्त्वं राधेय क्व ते धर्मस्तदा गतः॥ ६॥

'राधानन्दन! उन दिनों वारणावतनगरमें लाक्षाभवनके भीतर सोये हुए कुन्तीकुमारोंको जब तुमने जलानेका प्रयत्न कराया था, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ गया था?॥ ६॥

यदा रजस्वलां कृष्णां दुःशासनवशे स्थिताम्।
सभायां प्राहसः कर्ण क्व ते धर्मस्तदा गतः॥ ७॥

'कर्ण! भरी सभामें दुःशासनके वशमें पड़ी हुई रजस्वला द्रौपदीको लक्ष्य करके जब तुमने उपहास किया था, तब तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था?॥ ७॥

यदनार्यैः पुरा कृष्णां क्लिश्यमानामनागसम्।
उपप्रेक्षसि राधेय क्व ते धर्मस्तदा गतः॥ ८॥

'राधानन्दन! पहले नीच कौरवोंद्वारा क्लेश पाती हुई निरपराध द्रौपदीको जब तुम निकटसे देख रहे थे, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ गया था?॥ ८॥

विनष्टाः पाण्डवाः कृष्णे शाश्वतं नरकं गताः।
पतिमन्यं वृणीष्वेति वदंस्त्वं गजगामिनीम्॥ ९॥
उपप्रेक्षसि राधेय क्व ते धर्मस्तदा गतः।

'(याद है न, तुमने द्रौपदीसे कहा था) 'कृष्णे! पाण्डव नष्ट हो गये, सदाके लिये नरकमें पड़ गये। अब तू किसी दूसरे पतिका वरण कर ले। जब तुम ऐसी बात कहते हुए गजगामिनी द्रौपदीको निकटसे आँखें फाड़-फाड़कर देख रहे थे, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था?॥ ९½॥

राज्यलुब्धः पुनः कर्ण समाव्ययसि पाण्डवान्।
यदा शकुनिमाश्रित्य क्व ते धर्मस्तदा गतः॥ १०॥

'कर्ण! फिर राज्यके लोभमें पड़कर तुमने शकुनिकी सलाहके अनुसार जब पाण्डवोंको दुबारा जूएके लिये बुलवाया, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था?॥ १०॥

यदाभिमन्युं बहवो युद्धे जघ्नुर्महारथाः।
परिवार्य रणे बालं क्व ते धर्मस्तदा गतः॥ ११॥

'जब युद्धमें तुम बहुत-से महारथियोंने मिलकर बालक अभिमन्युको चारों ओरसे घेरकर मार डाला था, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था ? ॥ ११ ॥

यद्येष धर्मस्तत्र न विद्यते हि
किं सर्वथा तालुविशोषणेन ।
अद्येह धर्म्याणि विधत्स्व सूत
तथापि जीवन्न विमोक्ष्यसे हि ॥ १२ ॥

'यदि उन अवसरोंपर यह धर्म नहीं था तो आज भी यहाँ सर्वथा धर्मकी दुहाई देकर तालु सुखानेसे क्या लाभ ? सूत ! अब यहाँ धर्मके कितने ही कार्य क्यों न कर डालो, तथापि जीते-जी तुम्हारा छुटकारा नहीं हो सकता ॥ १२ ॥

नलो ह्यक्षैर्निर्जितः पुष्करेण
पुनर्यशो राज्यमवाप वीर्यात् ।
प्राप्तास्तथा पाण्डवा बाहुवीर्यात्-
सर्वैः समेताः परिवृत्तलोभाः ॥ १३ ॥
निहत्य शत्रून् समरे प्रवृद्धान्
ससोमका राज्यमवाप्नुयुस्ते ।
तथा गता धार्तराष्ट्रा विनाशं
धर्माभिगुप्तैः सततं नृसिंहैः ॥ १४ ॥

'पुष्करने राजा नलको जूएमें जीत लिया था; किंतु उन्होंने अपने ही पराक्रमसे पुनः अपने राज्य और यश दोनोंको प्राप्त कर लिया। इसी प्रकार लोभशून्य पाण्डव भी अपनी भुजाओंके बलसे सम्पूर्ण सगे-सम्बन्धियोंके साथ रहकर समराङ्गणमें बढ़े-चढ़े शत्रुओंका संहार करके फिर अपना राज्य प्राप्त करेंगे । निश्चय ही ये सोमकोंके साथ अपने राज्यपर अधिकार कर लेंगे । पुरुषसिंह पाण्डव सदैव अपने धर्मसे सुरक्षित हैं; अतः इनके द्वारा अवश्य धृतराष्ट्रके पुत्रोंका नाश हो जायगा' ॥ १३-१४ ॥

संजय उवाच

एवमुक्तस्तदा कर्णो वासुदेवेन भारत ।
लज्जयावनतो भूत्वा नोत्तरं किञ्चिदुक्तवान् ॥ १५ ॥

संजय कहते हैं—भारत ! उस समय भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर कर्णने लज्जासे अपना सिर झुका लिया, उससे कुछ भी उत्तर देते नहीं बना ॥ १५ ॥

क्रोधात् प्रस्फुरमाणौष्ठो धनुरुद्यम्य भारत ।
योधयामास वै पार्थं महावेगपराक्रमः ॥ १६ ॥

भरतनन्दन ! वह महान् वेग और पराक्रमसे सम्पन्न हो क्रोधसे ओंठ फड़फड़ाता हुआ धनुष उठाकर अर्जुनके साथ युद्ध करने लगा ॥ १६ ॥

ततोऽब्रवीद् वासुदेवः फाल्गुनं पुरुषर्षभम् ।
दिव्यास्त्रेणैव निर्भिद्य पातयस्व महाबल ॥ १७ ॥

तब वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने पुरुषप्रवर अर्जुनसे इस प्रकार कहा— 'महाबली वीर ! तुम कर्णको दिव्यास्त्रसे ही घायल करके मार गिराओ' ॥ १७ ॥

एवमुक्तस्तु देवेन क्रोधमागात्तदार्जुनः ।
मन्युमभ्याविशद् घोरं स्मृत्वा तत्तु धनंजयः ॥ १८ ॥

भगवान्‌के ऐसा कहनेपर अर्जुन उस समय कर्णके प्रति अत्यन्त कुपित हो उठे । उसकी पिछली करतूतोंको याद करके उनके मनमें भयानक रोष जाग उठा ॥ १८ ॥

तस्य क्रुद्धस्य सर्वेभ्यः स्रोतोभ्यस्तेजसोऽर्चिषः ।
प्रादुरासंस्तदा राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १९ ॥

कुपित होनेपर उनके सभी छिद्रोंसे—रोम-रोमसे आगकी चिनगारियाँ छूटने लगीं । राजन् ! उस समय यह एक अद्भुत-सी बात हुई ॥ १९ ॥

तत् समीक्ष्य ततः कर्णो ब्रह्मास्त्रेण धनंजयम् ।
अभ्यवर्षत् पुनर्यत्नमकरोद् रथसर्जने ॥ २० ॥

यह देख कर्णने अर्जुनपर ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करके बाणोंकी झड़ी लगा दी और पुनः रथको उठानेका प्रयत्न किया ॥

ब्रह्मास्त्रेणैव तं पार्थो ववर्ष शरवृष्टिभिः ।
तदस्त्रमस्त्रेणावार्य प्रजहार च पाण्डवः ॥ २१ ॥

तब पाण्डुपुत्र अर्जुनने भी ब्रह्मास्त्रसे ही उसके अस्त्रको दबाकर उसके ऊपर बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी और उसे अच्छी तरह घायल किया ॥ २१ ॥

ततोऽन्यदस्त्रं कौन्तेयो दयितं जातवेदसः ।
मुमोच कर्णमुद्दिश्य तत् प्रजज्वाल तेजसा ॥ २२ ॥

तदनन्तर कुन्तीकुमारने कर्णको लक्ष्य करके दूसरे दिव्यास्त्रका प्रयोग किया, जो जातवेदा अग्निका प्रिय अस्त्र था । वह आग्नेयास्त्र अपने तेजसे प्रज्वलित हो उठा ॥ २२ ॥

वारुणेन ततः कर्णः शमयामास पावकम् ।
जीमूतैश्च दिशः सर्वाश्चक्रे तिमिरदुर्दिनाः ॥ २३ ॥

परंतु कर्णने वारुणास्त्रका प्रयोग करके उस अग्निको बुझा दिया । साथ ही सम्पूर्ण दिशाओंमें मेघोंकी घटा घिर आयी और सब ओर अन्धकार छा गया ॥ २३ ॥

पाण्डवेयस्त्वसम्भ्रान्तो वायव्यास्त्रेण वीर्यवान् ।
अपोवाह तदाभ्राणि राधेयस्य प्रपश्यतः ॥ २४ ॥

पराक्रमी अर्जुन इससे विचलित नहीं हुए । उन्होंने राधापुत्र कर्णके देखते-देखते वायव्यास्त्रसे उन बादलोंको उड़ा दिया ॥ २४ ॥

ततः शरं महाघोरं ज्वलन्तमिव पावकम् ।
आददे पाण्डुपुत्रस्य सूतपुत्रो जिघांसया ॥ २५ ॥

तब सूतपुत्रने पाण्डुकुमार अर्जुनका वध करनेके लिये जलती हुई आगके समान एक महाभयंकर बाण हाथमें लिया ॥

योज्यमाने ततस्तस्मिन् बाणे धनुषि पूजिते ।
चचाल पृथिवी राजन् सशैलवनकानना ॥ २६ ॥

राजन् ! उस उत्तम बाणको धनुषपर चढ़ाते ही पर्वत, वन और काननोंसहित सारी पृथ्वी डगमगाने लगी ॥ २६ ॥

ववौ सशर्करो वायुर्दिशश्च रजसा वृताः ।

हाहाकारश्च संजज्ञे सुराणां दिवि भारत ॥ २७ ॥

भारत ! कंकड़ोंकी वर्षा करती हुई प्रचण्ड वायु चलने लगी। सम्पूर्ण दिशाओंमें धूल छा गयी और स्वर्गके देवताओंमें भी हाहाकार मच गया ॥ २७ ॥

तमिषुं संधितं दृष्ट्वा सूतपुत्रेण मारिष।
विषादं परमं जग्मुः पाण्डवा दीनचेतसः ॥ २८ ॥

माननीय नरेश ! जब सूतपुत्रने उस बाणका संधान किया, उस समय उसे देखकर समस्त पाण्डव दीनचित्त हो बड़े भारी विषादमें डूब गये ॥ २८ ॥

स सायकः कर्णभुजप्रमुक्तः
शक्राशनिप्रख्यरुचिः शिताग्रः ॥ २९ ॥
भुजान्तरं प्राप्य धनंजयस्य
विवेश वल्मीकमिवोरगोत्तमः।

कर्णके हाथसे छूटा हुआ वह बाण इन्द्रके वज्रके समान प्रकाशित हो रहा था। उसका अग्रभाग बहुत तेज था। वह अर्जुनकी छातीमें जा लगा और जैसे उत्तम सर्प बाँबीमें घुस जाता है, उसी प्रकार वह उनके वक्षःस्थलमें समा गया २९½

स गाढविद्धः समरे महात्मा
विघूर्णमानः श्लथहस्तगाण्डिवः॥ ३० ॥
चचाल बीभत्सुरमित्रमर्दनः
क्षितेः प्रकम्पे च यथाचलोत्तमः।

समराङ्गणमें उस बाणकी गहरी चोट खाकर महात्मा अर्जुनको चक्कर आ गया। गाण्डीव धनुषपर रक्खा हुआ उनका हाथ ढीला पड़ गया और वे शत्रुमर्दन अर्जुन भूकम्पके समय हिलते हुए श्रेष्ठ पर्वतके समान काँपने लगे ॥३०½॥

तदन्तरं प्राप्य वृषो महारथो
रथाङ्गमुर्वीगतमुज्जिहीर्षुः ॥ ३१ ॥
रथादवप्लुत्य निगृह्य दोर्भ्यां
शशाक दैवान्न महाबलोऽपि।

इसी बीचमें मौका पाकर महारथी कर्णने धरतीमें धँसे हुए पहियेको निकालनेका विचार किया। वह रथसे कूद पड़ा और दोनों हाथोंसे पकड़कर उसे ऊपर उठानेकी कोशिश करने लगा; परंतु महाबलवान् होनेपर भी वह दैववश अपने प्रयासमें सफल न हो सका ॥ ३१½ ॥

ततः किरीटी प्रतिलभ्य संज्ञां
जग्राह बाणं यमदण्डकल्पम् ॥ ३२ ॥
ततोऽर्जुनः प्राञ्जलिकं महात्मा
ततोऽब्रवीद् वासुदेवोऽपि पार्थम्।
छिन्ध्यस्य मूर्धानमरेः शरेण
न यावदारोहति वै रथं वृषः॥ ३३ ॥

इसी समय होशमें आकर किरीटधारी महात्मा अर्जुनने यमदण्डके समान भयंकर अञ्जलिक नामक बाण हाथमें लिया। यह देख भगवान् श्रीकृष्णने भी अर्जुनसे कहा—'पार्थ ! कर्ण जबतक रथपर नहीं चढ़ जाता, तबतक ही अपने बाणके द्वारा इस शत्रुका मस्तक काट डालो' ॥ ३२-३३ ॥

तथैव सम्पूज्य स तद् वचः प्रभो-
स्ततः शरं प्रज्वलितं प्रगृह्य।
जघान कक्षाममलार्कवर्णां
महारथे रथचक्रे विमग्ने ॥ ३४ ॥

तब 'बहुत अच्छा' कहकर अर्जुनने भगवान्‌की उस आज्ञाको सादर शिरोधार्य किया और उस प्रज्वलित बाणको हाथमें लेकर जिसका पहिया फँसा हुआ था, कर्णके उस विशाल रथपर फहराती हुई सूर्यके समान प्रकाशमान ध्वजापर प्रहार किया ॥ ३४ ॥

तं हस्तिकक्षाप्रवरं च केतुं
सुवर्णमुक्तामणिवज्रपृष्ठम्।
ज्ञानप्रकर्षोत्तमशिल्पियुक्तैः
कृतं सुरूपं तपनीयचित्रम् ॥ ३५ ॥

हाथीकी साँकलके चिह्नसे युक्त उस श्रेष्ठ ध्वजाके पृष्ठभागमें सुवर्ण, मुक्ता, मणि और हीरे जड़े हुए थे। अत्यन्त ज्ञानवान् एवं उत्तम शिल्पियोंने मिलकर उस सुवर्णजटित सुन्दर ध्वजका निर्माण किया था ॥ ३५ ॥

जयास्पदं तव सैन्यस्य नित्य-
ममित्रवित्रासनमीड्यरूपम्।
विख्यातमादित्यसमं स लोके
त्विषा समं पावकभानुचन्द्रैः ॥ ३६ ॥

वह विश्वविख्यात ध्वजा आपकी सेनाकी विजयका आधार स्तम्भ होकर सदा शत्रुओंको भयभीत करती रहती थी। उसका स्वरूप प्रशंसाके ही योग्य था। वह अपनी प्रभासे सूर्य, चन्द्रमा और अग्निकी समानता करती थी ॥ ३६ ॥

ततः क्षुरप्रेण सुसंशितेन
सुवर्णपुङ्खेन हुताग्निवर्चसा।
श्रिया ज्वलन्तं ध्वजमुन्ममाथ
महारथस्याधिरथेः किरीटी ॥ ३७ ॥

किरीटधारी अर्जुनने सोनेके पंखवाले और आहुतिसे प्रज्वलित हुई अग्निके समान तेजस्वी उस तीखे क्षुरप्रसे महारथी कर्णके उस ध्वजको नष्ट कर दिया, जो अपनी प्रभासे निरन्तर देदीप्यमान होता रहता था ॥ ३७ ॥

यशश्च दर्पश्च तथा प्रियाणि
सर्वाणि कार्याणि च तेन केतुना।
साकं कुरूणां हृदयानि चापतन्
बभूव हाहेति च निःस्वनो महान्॥ ३८ ॥

कटकर गिरते हुए उस ध्वजके साथ ही कौरवोंके यश, अभिमान, समस्त प्रिय कार्य तथा हृदयका भी पतन हो गया और चारों ओर महान् हाहाकार मच गया ॥ ३८ ॥

दृष्ट्वा ध्वजं पातितमाशुकारिणा
कुरुप्रवीरेण निकृत्तमाहवे।

नाशंसिरे सूतपुत्रस्य सर्वे
जयं तदा भारत ये त्वदीयाः ॥ ३९ ॥

भारत ! शीघ्रकारी कौरव वीर अर्जुनके द्वारा युद्धस्थलमें उस ध्वजको काटकर गिराया हुआ देख उस समय आपके सभी सैनिकोंने सूतपुत्रकी विजयकी आशा त्याग दी ॥ ३९ ॥

अथ त्वरन् कर्णवधाय पार्थो
महेन्द्रवज्रानलदण्डसंनिभम् ।
आदत्त चाथाञ्जलिकं निषङ्गात्
सहस्ररश्मेरिव रश्मिमुत्तमम् ॥ ४० ॥

तदनन्तर कर्णके वधके लिये शीघ्रता करते हुए अर्जुनने अपने तरकससे एक अञ्जलिक नामक बाण निकाला, जो इन्द्रके वज्र और अग्निके दण्डके समान भयंकर तथा सूर्यकी एक उत्तम किरणके समान कान्तिमान् था ॥ ४० ॥

मर्मच्छिदं शोणितमांसदिग्धं
वैश्वानरार्कप्रतिमं महार्हम् ।
नराश्वनागासुहरं त्र्यरत्निं
षड्वाजमञ्जोगतिमुग्रवेगम् ॥ ४१ ॥
सहस्रनेत्राशनितुल्यवीर्यं
कालानलं व्यात्तमिवातिघोरम् ।
पिनाकनारायणचक्रसंनिभं
भयङ्करं प्राणभृतां विनाशनम् ॥ ४२ ॥

वह शत्रुके मर्मस्थलको छेदनेमें समर्थ, रक्त और मांससे लिप्त होनेवाला, अग्नि तथा सूर्यके तुल्य तेजस्वी, बहुमूल्य, मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंके प्राण लेनेवाला, मूठी बँधे हुए हाथसे तीन हाथ बड़ा, छः पंखोंसे युक्त, शीघ्रगामी, भयंकर वेगशाली, इन्द्रके वज्रके तुल्य पराक्रम प्रकट करनेवाला, मुँह बाये हुए कालाग्निके समान अत्यन्त भयानक, भगवान् शिवके पिनाक और नारायणके चक्र-सदृश भयदायक तथा प्राणियोंका विनाश करनेवाला था ॥ ४१-४२ ॥

जग्राह पार्थः स शरं प्रहृष्टो
यो देवसङ्घैरपि दुर्निवार्यः ।
सम्पूजितो यः सततं महात्मा
देवासुरान् यो विजयेन्महेषुः ॥ ४३ ॥

देवताओंके समुदाय भी जिनकी गतिको अनायास नहीं रोक सकते, जो सदा सबके द्वारा सम्मानित, महामनस्वी, विशाल बाण धारण करनेवाले और देवताओं तथा असुरोंपर भी विजय पानेमें समर्थ हैं, उन कुन्तीकुमार अर्जुनने अत्यन्त प्रसन्न होकर उस बाणको हाथमें लिया ॥ ४३ ॥

तं वै प्रमृष्टं प्रसमीक्ष्य युद्धे
चचाल सर्वं सचराचरं जगत् ।
स्वस्ति जगत् स्यादृषयः प्रचुक्रुशु-
स्तमुद्यतं प्रेक्ष्य महाहवेषुम् ॥ ४४ ॥

महायुद्धमें उस बाणको हाथमें लिया और ऊपर उठाया गया देख समस्त चराचर जगत् काँप उठा। महर्षिलोग जोर-जोरसे पुकार उठे कि 'जगत्का कल्याण हो !' ॥ ४४ ॥

ततस्तु तं वै शरमप्रमेयं
गाण्डीवधन्वा धनुषि व्ययोजयत् ।
युक्त्वा महास्त्रेण परेण चापं
विकृष्य गाण्डीवमुवाच सत्वरम् ॥ ४५ ॥

तत्पश्चात् गाण्डीवधारी अर्जुनने उस अप्रमेय शक्तिशाली बाणको धनुषपर रक्खा और उसे उत्तम एवं महान् दिव्यास्त्रसे अभिमन्त्रित करके तुरंत ही गाण्डीवको खींचते हुए कहा—॥

अयं महास्त्रप्रहितो महाशरः
शरीरहृच्चासुहरश्च दुर्हृदः ।
तपोऽस्ति तप्तं गुरवश्च तोषिता
मया यदीष्टं सुहृदां श्रुतं तथा ॥ ४६ ॥
अनेन सत्येन निहन्त्वयं शरः
सुसंहितः कर्णमरिं ममोर्जितम् ।
इत्यूचिवांस्तं प्रमुमोच बाणं
धनंजयः कर्णवधाय घोरम् ॥ ४७ ॥

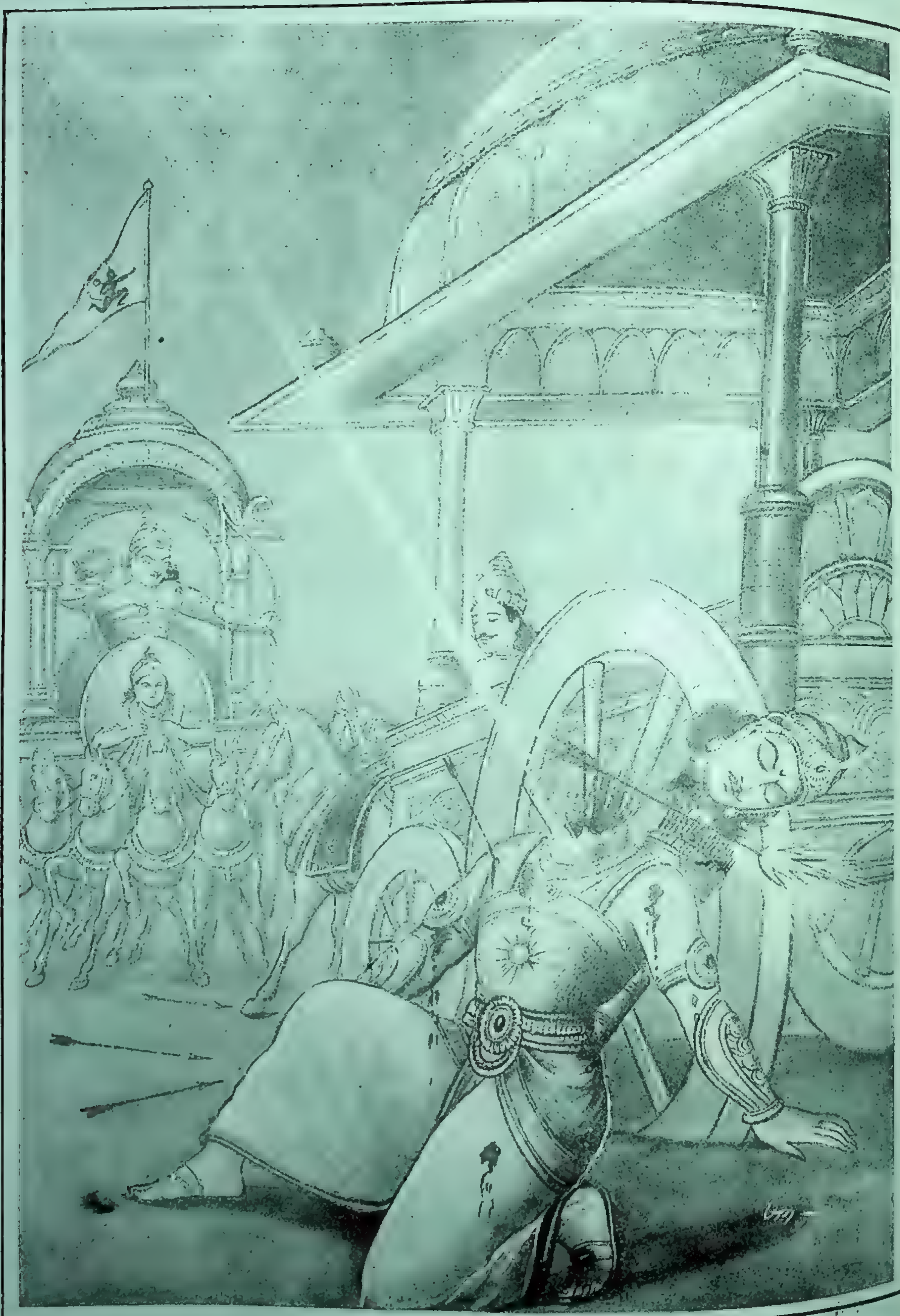
'यह महान् दिव्यास्त्रसे प्रेरित महाबाण शत्रुके शरीर, हृदय और प्राणोंका विनाश करनेवाला है। यदि मैंने तप किया हो, गुरुजनोंको सेवाद्वारा संतुष्ट रक्खा हो, यज्ञ किया हो और हितैषी मित्रोंकी बातें ध्यान देकर सुनी हो तो इस सत्यके प्रभावसे यह अच्छी तरह संधान किया हुआ बाण मेरे शक्तिशाली शत्रु कर्णका नाश कर डाले,' ऐसा कहकर धनंजयने उस घोर बाणको कर्णके वधके लिये छोड़ दिया ॥ ४६-४७ ॥

कृत्यामथर्वाङ्गिरसीमिवोग्रां
दीप्तामसह्यां युधि मृत्युनापि ।
ब्रुवन् किरीटी तमतिप्रहृष्टो
ह्ययं शरो मे विजयावहोऽस्तु ॥ ४८ ॥
जिघांसुरर्केन्दुसमप्रभावः
कर्णं ममास्तो नयतां यमाय ।

जैसे अथर्वाङ्गिरस मन्त्रोंद्वारा आभिचारिक प्रयोग करके उत्पन्न की हुई कृत्या उग्र, प्रज्वलित और युद्धमें मृत्युके लिये भी असह्य होती है, उसी प्रकार वह बाण भी था। किरीटधारी अर्जुन अत्यन्त प्रसन्न होकर उस बाणको लक्ष्य करके बोले—'मेरा यह बाण मुझे विजय दिलानेवाला हो। इसका प्रभाव चन्द्रमा और सूर्यके समान है। मेरा छोड़ा हुआ यह घातक अस्त्र कर्णको यमलोक पहुँचा दे' ॥ ४८½ ॥

तेनेषुवर्येण किरीटमाली
प्रहृष्टरूपो विजयावहेन ॥ ४९ ॥
जिघांसुरर्केन्दुसमप्रभेण
चक्रे विषक्तं रिपुमाततायी ।

किरीटधारी अर्जुन अत्यन्त प्रसन्न हो अपने शत्रुको मारनेकी इच्छासे आततायी बन गये थे। उन्होंने चन्द्रमा



कर्णवध

और सूर्यके समान प्रकाशित होनेवाले उस विजयदायक श्रेष्ठ बाणसे अपने शत्रुको बींध डाला ॥ ४९½ ॥

तथा विमुक्तो बलिनार्कतेजाः
प्रज्वालयामास दिशो नभश्च।
ततोऽर्जुनस्तस्य शिरो जहार
वृत्रस्य वज्रेण यथा महेन्द्रः ॥ ५० ॥

बलवान् अर्जुनके द्वारा इस प्रकार छोड़ा हुआ वह सूर्यके तुल्य तेजस्वी बाण आकाश एवं दिशाओंको प्रकाशित करने लगा। जैसे इन्द्रने अपने वज्रसे वृत्रासुरका मस्तक काट लिया था, उसी प्रकार अर्जुनने उस बाणद्वारा कर्णका सिर धड़से अलग कर दिया ॥ ५० ॥

शरोत्तमेनाञ्जलिकेन राजं-
स्तदा महास्त्रप्रतिमन्त्रितेन।
पार्थोऽपराह्णे शिर उच्चकर्त
वैकर्तनस्याथ महेन्द्रसूनुः ॥ ५१ ॥

राजन्! महान् दिव्यास्त्रसे अभिमन्त्रित अञ्जलिक नामक उत्तम बाणके द्वारा इन्द्रपुत्र कुन्तीकुमार अर्जुनने अपराह्न-कालमें वैकर्तन कर्णका सिर काट लिया ॥ ५१ ॥

तत् प्रापतच्चाञ्जलिकेन छिन्न-
मथास्य कायो निपपात पश्चात्।
तदुद्यतादित्यसमानतेजसं
शरन्नभोमध्यगभास्करोपमम् ॥ ५२ ॥
वराङ्गमुर्व्यामपतच्चमूमुखे
दिवाकरोऽस्तादिव रक्तमण्डलः।

अञ्जलिकसे कटा हुआ कर्णका वह मस्तक पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसके बाद उसका शरीर भी धराशायी हो गया। जैसे लाल मण्डलवाला सूर्य अस्ताचलसे नीचे गिरता है, उसी प्रकार उदित सूर्यके समान तेजस्वी तथा शरत्कालीन आकाशके मध्यभागमें तपनेवाले भास्करके समान दुःसह वह मस्तक सेनाके अग्रभागमें पृथ्वीपर जा गिरा ॥ ५२½ ॥

ततोऽस्य देहं सततं सुखोचितं
सुरूपमत्यर्थमुदारकर्मणः ॥ ५३ ॥
परेण कृच्छ्रेण शिरः समत्यजद्
गृहं महर्धीव सुसङ्गमीश्वरः।

तदनन्तर सदा सुख भोगनेके योग्य, उदारकर्मा कर्णके उस अत्यन्त सुन्दर शरीरको उसके मस्तकने बड़ी कठिनाईसे छोड़ा। ठीक उसी तरह, जैसे धनवान् पुरुष अपने समृद्धि-शाली घरको और मन एवं इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला पुरुष सत्सङ्गको बड़े कष्टसे छोड़ पाता है ॥ ५३½ ॥

शरैर्विभिन्नं व्यसु तत् सुवर्चसः
पपात कर्णस्य शरीरमुच्छ्रितम् ॥ ५४ ॥
स्रवद्व्रणं गैरिकतोयविस्रवं
गिरेर्यथा वज्रहतं महाशिरः।
देहाच्च कर्णस्य निपातितस्य
तेजः सूर्यं खं वितत्याविवेश ॥ ५५ ॥

तेजस्वी कर्णका वह ऊँचा शरीर बाणोंसे क्षत-विक्षत हो घावोंसे खूनकी धारा बहाता हुआ प्राणशून्य होकर गिर पड़ा, मानो वज्रके आघातसे भग्न हुआ किसी पर्वतका विशाल शिखर गेरुमिश्रित जलकी धारा बहा रहा हो। धरतीपर गिराये गये कर्णके शरीरसे एक तेज निकलकर आकाशमें फैल गया और ऊपर जाकर सूर्यमण्डलमें विलीन हो गया ५४-५५

तदद्भुतं सर्वमनुष्ययोधाः
संदृष्टवन्तो निहते स्म कर्णे।
ततः शङ्खान् पाण्डवा दध्मुरुच्चै-
र्दृष्ट्वा कर्णं पातितं फाल्गुनेन ॥ ५६ ॥

इस अद्भुत दृश्यको वहाँ खड़े हुए सब लोगोंने अपनी आँखों देखा था। कर्णके मारे जानेपर उसे अर्जुनद्वारा गिराया हुआ देख पाण्डवोंने उच्चस्वरसे शङ्ख बजाया ॥ ५६ ॥

तथैव कृष्णश्च धनंजयश्च
हृष्टौ यमौ दध्मतुर्वारिजातौ।
तं सोमकाः प्रेक्ष्य हतं शयानं
सैन्यैः सार्धं सिंहनादान् प्रचक्रुः ॥ ५७ ॥

इसी प्रकार श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा हर्षमें भरे हुए नकुल-सहदेवने भी शङ्ख बजाये। सोमकगण कर्णको मरकर गिरा हुआ देख अपनी सेनाओंके साथ सिंहनाद करने लगे ॥५७॥

तूर्याणि संजघ्नुरतीव हृष्टा
वासांसि चैवादुधुवुर्भुजांश्च।
संवर्धयन्तश्च नरेन्द्र योधाः
पार्थं समाजग्मुरतीव हृष्टाः ॥ ५८ ॥

वे बड़े हर्षमें भरकर बाजे-बजाने और कपड़े तथा हाथ हिलाने लगे। नरेन्द्र! अत्यन्त हर्षमें भरे हुए पाण्डव योद्धा अर्जुनको बधाई देते हुए उनके पास आकर मिले ॥ ५८ ॥

बलान्विताश्चापरे ह्यप्यनृत्य-
न्नन्योन्यमाश्लिष्य नदन्त ऊचुः।
दृष्ट्वा तु कर्णं भुवि वा विपन्नं
कृत्तं रथात् सायकैरर्जुनस्य ॥ ५९ ॥

अर्जुनके बाणोंसे छिन्न-भिन्न एवं प्राणशून्य हुए कर्णको रथसे नीचे पृथ्वीपर गिरा देख दूसरे बलवान् सैनिक एक दूसरेको गलेसे लगाकर नाचते और गर्जते हुए बातें करते थे ॥ ५९ ॥

महानिलेनाद्रिमिवापविद्धं
यज्ञावसानेऽग्निमिव प्रशान्तम्।
रराज कर्णस्य शिरो निकृत्त-
मस्तं गतं भास्करस्येव बिम्बम् ॥ ६० ॥

कर्णका वह कटा हुआ मस्तक वायुके वेगसे टूटकर गिरे हुए पर्वतखण्डके समान, यज्ञके अन्तमें बुझी हुई अग्निके सदृश तथा अस्ताचलपर पहुँचे हुए सूर्यके बिम्बकी भाँति सुशोभित हो रहा था ॥ ६० ॥

शरैराचितसर्वाङ्गः शोणितौघपरिप्लुतः।
विभाति देहः कर्णस्य स्वरश्मिभिरिवांशुमान्॥ ६१ ॥

सभी अङ्गोंमें बाणोंसे व्याप्त और खूनसे लथपथ हुआ कर्णका शरीर अपनी किरणोंसे प्रकाशित होनेवाले अंशुमाली सूर्यके समान शोभा पा रहा था ॥ ६१ ॥

प्रताप्य सेनामामित्रीं दीप्तैः शरगभस्तिभिः।
बलिनार्जुनकालेन नीतोऽस्तं कर्णभास्करः॥ ६२ ॥

बाणमयी उद्दीप्त किरणोंसे शत्रुकी सेनाको तपाकर कर्णरूपी सूर्य बलवान् अर्जुनरूपी कालसे प्रेरित हो अस्ताचलको जा पहुँचा ॥ ६२ ॥

अस्तं गच्छन् यथादित्यः प्रभामादाय गच्छति।
तथा जीवितमादाय कर्णस्येषुर्जगाम सः॥ ६३ ॥

जैसे अस्ताचलको जाता हुआ सूर्य अपनी प्रभाको लेकर चला जाता है, उसी प्रकार वह बाण कर्णके प्राण लेकर चला गया॥

अपराह्णेऽपराह्णोऽस्य सूतपुत्रस्य मारिष।
छिन्नमञ्जलिकेनाजौ सोत्सेधमपतच्छिरः॥ ६४ ॥

माननीय नरेश ! दान देते समय जो दूसरे दिनके लिये वादा नहीं करता था, उस सूतपुत्र कर्णका अञ्जलिक नामक बाणसे कटा हुआ देहसहित मस्तक अपराह्णकालमें धराशायी हो गया॥

उपर्युपरि सैन्यानामस्य शत्रोस्तदञ्जसा।
शिरः कर्णस्य सोत्सेधमिषुः सोऽप्यहरद् द्रुतम्॥ ६५ ॥

उस बाणने सारी सेनाके ऊपर-ऊपर जाकर अर्जुनके शत्रुभूत कर्णके शरीरसहित मस्तकको वेगपूर्वक अनायास ही काट डाला था ॥ ६५ ॥

कर्णं तु शूरं पतितं पृथिव्यां
शराचितं शोणितदिग्धगात्रम्।
दृष्ट्वा शयानं भुवि मद्रराज-
श्छिन्नध्वजेनाथ ययौ रथेन॥ ६६ ॥

शूरवीर कर्णको बाणसे व्याप्त और खूनसे लथपथ होकर पृथ्वीपर पड़ा हुआ देख मद्रराज शल्य उस कटी हुई ध्वजावाले रथके द्वारा ही वहाँसे भाग खड़े हुए ॥ ६६ ॥

हते कर्णे कुरवः प्राद्रवन्त
भयार्दिता गाढविद्धाश्च संख्ये।
अवेक्षमाणा मुहुरर्जुनस्य
ध्वजं महान्तं वपुषा ज्वलन्तम्॥ ६७ ॥

कर्णके मारे जानेपर युद्धमें अत्यन्त घायल हुए कौरव-सैनिक अर्जुनके प्रज्वलित होते हुए महान् ध्वजको बारंबार देखते हुए भयसे पीड़ित हो भागने लगे ॥ ६७ ॥

सहस्रनेत्रप्रतिमानकर्मणः
सहस्रपत्रप्रतिमाननं शुभम्।
सहस्ररश्मिर्दिनसंक्षये यथा
तथापतत् कर्णशिरो वसुंधराम्॥ ६८ ॥

सहस्रनेत्रधारी इन्द्रके समान पराक्रमी कर्णका सहस्रदल कमलके समान वह सुन्दर मस्तक उसी प्रकार पृथ्वीपर गिर पड़ा, जैसे सायंकालमें सहस्र किरणोंवाले सूर्यका मण्डल अस्त हो जाता है ॥ ६८ ॥

(व्यूढोरस्कं कमलनयनं तप्तहेमावभासं
कर्णं दृष्ट्वा भुवि निपतितं पार्थबाणाभितप्तम्।
पांशुग्रस्तं मलिनमसकृत् पुत्रमन्वीक्षमाणो
मन्दं मन्दं व्रजति सविता मन्दिरं मन्दरश्मिः॥)

जिसकी छाती चौड़ी और नेत्र कमलके समान सुन्दर थे तथा कान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान जान पड़ती थी, वह कर्ण अर्जुनके बाणोंसे संतप्त हो धरतीपर पड़ा, धूलमें सना मलिन हो गया था । अपने उस पुत्रकी ओर बारंबार देखते हुए मन्द किरणोंवाले सूर्यदेव धीरे-धीरे अपने मन्दिर (अस्ताचल) की ओर जा रहे थे ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कर्णवधे एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कर्णवधविषयक इक्यानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९१ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ६९ श्लोक हैं)

द्विनवतितमोऽध्यायः

कौरवोंका शोक, भीम आदि पाण्डवोंका हर्ष, कौरव-सेनाका पलायन और दुःखित शल्यका दुर्योधनको सान्त्वना देना

संजय उवाच

शल्यस्तु कर्णार्जुनयोर्विमर्दे
बलानि दृष्ट्वा मृदितानि बाणैः।
ययौ हते चाधिरथौ पदानुगे
रथेन संछिन्नपरिच्छदेन॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! कर्ण और अर्जुनके संग्राममें बाणोंद्वारा सारी सेनाएँ रौंद डाली गयी थीं और अधिरथपुत्र कर्ण पैदल होकर मारा गया था। यह सब देखकर राजा शल्य, जिसका आवरण एवं अन्य सारी सामग्री नष्ट कर दी गयी थी, उस रथके द्वारा वहाँसे चल दिये ॥ १ ॥

निपातितस्यन्दनवाजिनागं
बलं च दृष्ट्वा हतसूतपुत्रम्।
दुर्योधनोऽश्रुप्रतिपूर्णनेत्रो
दीनो मुहुर्निःश्वसंश्चार्तरूपः॥ २ ॥

कौरव-सेनाके रथ, घोड़े और हाथी मार डाले गये थे। सूतपुत्रका भी वध कर दिया गया था। उस अवस्थामें उस सेनाको देखकर दुर्योधनकी आँखोंमें आँसू भर आये और वह बारंबार लंबी साँस खींचता हुआ दीन एवं दुखी हो गया ॥

कर्णं तु शूरं पतितं पृथिव्यां
शराचितं शोणितदिग्धगात्रम्।
यदृच्छया सूर्यमिवावनिस्थं
दिदृक्षवः सम्परिवार्य तस्थुः॥ ३॥

शूरवीर कर्ण पृथ्वीपर पड़ा हुआ था। उसके शरीरमें बहुत-से बाण व्याप्त हो रहे थे तथा सारा अङ्ग खूनसे लथपथ हो रहा था। उस अवस्थामें दैवेच्छासे पृथ्वीपर उतरे हुए सूर्यके समान उसे देखनेके लिये सब लोग उसकी लाशको घेरकर खड़े हो गये॥ ३॥

प्रहृष्टवित्रस्तविषण्णविस्मिता-
स्तथा परे शोकहता इवाभवन्।
परे त्वदीयाश्च परस्परेण
यथायथैषां प्रकृतिस्तथाभवन्॥ ४॥

कोई प्रसन्न था तो कोई भयभीत। कोई विषादग्रस्त था तो कोई आश्चर्यचकित तथा दूसरे बहुत-से लोग शोकसे मृतप्राय हो रहे थे। आपके और शत्रुपक्षके सैनिकोंमेंसे जिसकी जैसी प्रकृति थी, वे परस्पर उसी भावमें मग्न थे॥४॥

प्रविद्धवर्माभरणाम्बरायुधं
धनंजयेनाभिहतं महौजसम्।
निशाम्य कर्णं कुरवः प्रदुद्रुवु-
र्हतर्षभा गाव इवाजने वने॥ ५॥

जिसके कवच, आभूषण, वस्त्र और अस्त्र-शस्त्र छिन्न-भिन्न होकर पड़े थे, उस महाबली कर्णको अर्जुनद्वारा मारा गया देख कौरवसैनिक निर्जन वनमें साँड़के मारे जानेपर भागनेवाली गायोंके समान इधर-उधर भाग चले॥ ५॥

भीमश्च भीमेन तदा स्वनेन
नादं कृत्वा रोदसीः कम्पयानः।
आस्फोटयन् वल्गते नृत्यते च
हते कर्णे त्रासयन् धार्तराष्ट्रान्॥ ६॥

कर्णके मारे जानेपर धृतराष्ट्रके पुत्रोंको भयभीत करते हुए भीमसेन भयंकर स्वरसे सिंहनाद करके आकाश और पृथ्वीको कँपाने तथा ताल ठोंककर नाचने-कूदने लगे॥ ६॥

तथैव राजन् सोमकाः सृञ्जयाश्च
शङ्खान् दध्मुः सस्वजुश्चापि सर्वे।
परस्परं क्षत्रिया हृष्टरूपाः
सूतात्मजे वै निहते तदानीम्॥ ७॥

राजन्! इसी प्रकार समस्त सोमक और सृंजय भी शङ्ख बजाने और एक दूसरेको छातीसे लगाने लगे। सूतपुत्रके मारे जानेपर उस समय पाण्डवदलके सभी क्षत्रिय परस्पर हर्षमग्न हो रहे थे॥ ७॥

कृत्वा विमर्दं महदर्जुनेन
कर्णो हतः केसरिणेव नागः।
तीर्णा प्रतिज्ञा पुरुषर्षभेण
वैरस्यान्तं गतवांश्चापि पार्थः॥ ८॥

जैसे सिंह हाथीको पछाड़ देता है, उसी प्रकार पुरुषप्रवर अर्जुनने बड़ी भारी मार-काट मचाकर कर्णका वध किया, अपनी प्रतिज्ञा पूरी की और उन्होंने वैरका अन्त कर दिया॥ ८॥

मद्राधिपश्चापि विमूढचेता-
स्तूर्णं रथेनापकृतध्वजेन।
दुर्योधनस्यान्तिकमेत्य राजन्
सबाष्पदुःखाद् वचनं बभाषे॥ ९॥

राजन्! जिसकी ध्वजा काट दी गयी थी, उस रथके द्वारा मद्रराज शल्य भी विमूढ़चित्त होकर तुरंत दुर्योधनके पास गये और दुःखसे आँसू बहाते हुए इस प्रकार बोले—॥

विशीर्णनागाश्वरथप्रवीरं
बलं त्वदीयं यमराष्ट्रकल्पम्।
अन्योन्यमासाद्य हतं महद्भि-
र्नराश्वनागैर्गिरिकूटकल्पैः॥ १०॥

'नरेश्वर! तुम्हारी सेनाके हाथी, घोड़े, रथ और प्रमुख वीर नष्ट-भ्रष्ट हो गये। सारी सेनामें यमराजका राज्य-सा हो गया है। पर्वतशिखरोंके समान विशाल हाथी, घोड़े और पैदल मनुष्य एक दूसरेसे टक्कर लेकर अपने प्राण खो बैठे हैं॥

नैतादृशं भारत युद्धमासीद्
यथा तु कर्णार्जुनयोर्बभूव।
ग्रस्तौ हि कर्णेन समेत्य कृष्णा-
वन्ये च सर्वे तव शत्रवो ये॥ ११॥

'भारत! आज कर्ण और अर्जुनमें जैसा युद्ध हुआ है, वैसा पहले कभी नहीं हुआ था। कर्णने धावा करके श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा तुम्हारे अन्य सब शत्रुओंको भी प्रायः प्राणोंके संकटमें डाल दिया था; परंतु कोई फल नहीं निकला॥

दैवं ध्रुवं पार्थवशात् प्रवृत्तं
यत् पाण्डवान् पाति हिनस्ति चास्मान्।
तवार्थसिद्ध्यर्थकरास्तु सर्वे
प्रसह्य वीरा निहता द्विषद्भिः॥ १२॥

'निश्चय ही दैव कुन्तीपुत्रोंके अधीन होकर काम कर रहा है, क्योंकि वह पाण्डवोंकी तो रक्षा करता है और हमारा विनाश। यही कारण है कि तुम्हारे अर्थकी सिद्धिके लिये प्रयत्न करनेवाले प्रायः सभी वीर शत्रुओंके हाथसे बलपूर्वक मारे गये॥ १२॥

कुबेरवैवस्वतवासवानां
तुल्यप्रभावा नृपते सुवीराः।
वीर्येण शौर्येण बलेन तेजसा
तैस्तैस्तु युक्ता विविधैर्गुणौघैः॥ १३॥

'राजन्! तुम्हारी सेनाके श्रेष्ठ वीर कुबेर, यम और इन्द्रके समान प्रभावशाली तथा बल, पराक्रम, शौर्य, तेज एवं अन्य नाना प्रकारके गुणसमूहोंसे सम्पन्न थे॥ १३॥

अवध्यकल्पा निहता नरेन्द्रा-
स्तवार्थकामा युधि पाण्डवेयैः।

तस्मा शुचो भारत दिष्टमेतत्
पर्याश्वस त्वं न सदास्ति सिद्धिः ॥ १४॥

'जो-जो राजा तुम्हारे स्वार्थकी सिद्धि चाहनेवाले और अवध्यके समान थे, उन सबको पाण्डवोंने युद्धमें मार डाला। अतः भारत ! तुम शोक न करो। यह सब प्रारब्धका खेल है। सबको सदा ही सिद्धि नहीं मिलती, ऐसा जानकर धैर्य धारण करो' ॥ १४ ॥

एतद् वचो मद्रपतेर्निशम्य
स्वं चाप्यनीतं मनसा निरीक्ष्य।
दुर्योधनो दीनमना विसंज्ञः
पुनः पुनर्न्यश्वसदार्तरूपः ॥ १५॥

मद्रराज शल्यकी ये बातें सुनकर और अपने अन्यायपर भी मन-ही-मन दृष्टि डालकर दुर्योधन बहुत उदास एवं दुखी हो गया। वह अत्यन्त पीड़ित और अचेत-सा होकर बारंबार लंबी उसाँसें भरने लगा ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि शल्यप्रत्यागमने द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें शल्यका युद्धसे प्रत्यागमनविषयक बानवेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९२ ॥

त्रिनवतितमोऽध्यायः

भीमसेनद्वारा पच्चीस हजार पैदल सैनिकोंका वध, अर्जुनद्वारा रथसेनाका विध्वंस, कौरवसेनाका पलायन और दुर्योधनका उसे रोकनेके लिये विफल प्रयास

धृतराष्ट्र उवाच

तस्मिंस्तु कर्णार्जुनयोर्विमर्दे
दग्धस्य रौद्रेऽहनि विद्रुतस्य।
बभूव रूपं कुरुसृञ्जयानां
बलस्य बाणोन्मथितस्य कीदृक् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! कर्ण और अर्जुनके उस संग्राममें, जब कि सबके लिये भयानक दिन उपस्थित हुआ था, बाणोंकी आगसे दग्ध और उन्मथित होकर भागती हुई कौरवसेना तथा सृंजयसेनाकी कैसी अवस्था हुई ? ॥ १ ॥

संजय उवाच

शृणु राजन्नवहितो यथा वृत्तो महाक्षयः।
घोरो मनुष्यदेहानामाजौ च गजवाजिनाम् ॥ २ ॥

संजयने कहा—राजन् ! उस युद्धस्थलमें मनुष्यके शरीरों, हाथियों और घोड़ोंका जैसा घोर एवं महान् विनाश हुआ, वह सब सावधान होकर सुनिये ॥ २ ॥

यत्र कर्णे हते पार्थः सिंहनादमथाकरोत्।
तदा तव सुतान् राजन्नाविवेश महद् भयम् ॥ ३ ॥

महाराज ! कर्णके मारे जानेपर अर्जुनने महान् सिंहनाद किया, उस समय आपके पुत्रोंके मनमें बड़ा भारी भय समा गया ॥ ३ ॥

न संधातुमनीकानि न चैवाशु पराक्रमे।
आसीद् बुद्धिर्हते कर्णे तव योधस्य कर्हिचित् ॥ ४ ॥

जब कर्णका वध हो गया, तब आपके किसी भी योद्धाका मन कदापि जल्दी पराक्रम दिखानेमें नहीं लगा और न सेनाको संगठित रखनेकी ओर ही किसीका ध्यान गया ॥४॥

वणिजो नावि भिन्नायामगाधे विप्लवे यथा।
अपारे पारमिच्छन्तो हते द्वीपे किरीटिना ॥ ५ ॥

अगाध एवं अपार समुद्रमें तूफान उठनेपर जब जहाज फट जाता है, उस समय पार जानेकी इच्छावाले व्यापारियोंकी जैसी अवस्था होती है, वही दशा किरीटधारी अर्जुनके द्वारा द्वीपस्वरूप कर्णके मारे जानेपर कौरवोंकी हुई ॥ ५ ॥

सूतपुत्रे हते राजन् वित्रस्ताः शस्त्रविक्षताः।
अनाथा नाथमिच्छन्तो मृगाः सिंहैरिवार्दिताः ॥ ६ ॥

राजन् ! सूतपुत्रका वध हो जानेपर सिंहसे पीड़ित हुए मृगोंके समान कौरवसैनिक भयभीत हो उठे। वे अस्त्र-शस्त्रोंसे घायल हो गये थे और अनाथ होकर अपने लिये कोई रक्षक चाहते थे ॥ ६ ॥

भग्नशृङ्गा वृषा यद्वद् भग्नदंष्ट्रा इवोरगाः।
प्रत्यपायाम सायाह्ने निर्जिताः सव्यसाचिना ॥ ७ ॥

हम सब लोग सायंकालमें सव्यसाची अर्जुनसे परास्त होकर शिविरकी ओर लौटे थे। उस समय हमारी दशा उन बैलोंके समान हो रही थी, जिनके सींग तोड़ दिये गये हों। हम उन सर्पोंके समान हो गये थे, जिनके विषैले दाँत नष्ट कर दिये गये हों ॥ ७ ॥

हतप्रवीरा विध्वस्ता निकृत्ता निशितैः शरैः।
सूतपुत्रे हते राजन् पुत्रास्ते दुद्रुवुर्भयात् ॥ ८ ॥

राजन् ! सूतपुत्रके मारे जानेपर पैने बाणोंसे क्षत-विक्षत एवं पराजित हुए आपके पुत्र भयके मारे भागने लगे। उनके प्रमुख वीर रणभूमिमें मारे जा चुके थे ॥ ८ ॥

विस्रस्तयन्त्रकवचाः कांदिग्भूता विचेतसः।
अन्योन्यमवमृद्नन्तो वीक्षमाणा भयार्दिताः ॥ ९ ॥

उनके यन्त्र और कवच गिर गये थे। वे अचेत होकर यह भी नहीं सोच पाते थे कि हम भागकर किस दिशामें जायँ ? एक दूसरेको कुचलते और चारों ओर देखते हुए भयसे पीड़ित हो गये थे ॥ ९ ॥

मामेव नूनं बीभत्सुर्मामेव च वृकोदरः।
अभियातीति मन्वानाः पेतुर्मम्लुश्च सम्भ्रमात् ॥ १० ॥

'निश्चय अर्जुन मेरा ही पीछा कर रहे हैं। भीमसेन मेरी ही ओर चढ़े आ रहे हैं' ऐसा मानते हुए कौरव सैनिक

घबराहटमें पड़कर गिर जाते थे। वे सब-के-सब उदास हो गये थे ॥ १० ॥

हयानन्ये गजानन्ये रथानन्ये महारथाः।
आरुह्य जवसम्पन्नाः पदातीन् प्रजहुर्भयात् ॥ ११ ॥

कुछ लोग घोड़ोंपर, कुछ हाथियोंपर और कुछ दूसरे महारथी रथोंपर आरूढ़ हो भयके मारे बड़े वेगसे भागने लगे। उन्होंने पैदल सैनिकोंको वहीं छोड़ दिया ॥ ११ ॥

कुञ्जरैः स्यन्दनाः क्षुण्णाः सादिनश्च महारथैः।
पदातिसंघाश्चाश्वौघैः पलायद्भिर्भयार्दितैः ॥ १२ ॥

भयभीत होकर भागते हुए हाथियोंने रथोंको चकनाचूर कर दिया। विशाल रथपर बैठे हुए महारथियोंने घुड़सवारोंको कुचल दिया और अश्वसमुदायोंने पैदलसमूहोंके कचूमर निकाल दिये ॥ १२ ॥

व्यालतस्करसंकीर्णे सार्थहीना यथा वने।
सूतपुत्रे हते राजंस्तव योधास्तथाभवन् ॥ १३ ॥

राजन्! जैसे सर्पों और चोरों-बटमारोंसे भरे हुए वनमें अपने दलसे बिछुड़े हुए लोग अनाथ हो भारी विपत्तिमें पड़ जाते हैं, सूतपुत्र कर्णके मारे जानेपर आपके योद्धाओंकी भी वैसी ही दशा हो गयी ॥ १३ ॥

हतारोहा यथा नागाश्छिन्नहस्ता यथा नराः।
सर्वे पार्थमयं लोकं सम्पश्यन्तो भयार्दिताः ॥ १४ ॥

जिनके सवार मारे गये हों वे हाथी और जिनके हाथ काट लिये गये हों वे मनुष्य जैसी दुरवस्थामें पड़ जाते हैं, वैसी ही दशामें पड़कर समस्त कौरव भयसे पीड़ित हो सारे जगत्‌को अर्जुनमय देखने लगे ॥ १४ ॥

सम्प्रेक्ष्य द्रवतः सर्वान् भीमसेनभयार्दितान्।
दुर्योधनोऽथ स्वं सूतं हा हा कृत्वेदमब्रवीत् ॥ १५ ॥

महाराज! उस समय अपने समस्त योद्धाओंको भीमसेनके भयसे व्याकुल हो भागते देख दुर्योधनने हाहाकार करके अपने सारथिसे कहा— ॥ १५ ॥

नातिक्रमेच्च मां पार्थो धनुष्पाणिमवस्थितम्।
जघने सर्वसैन्यानां शनैरश्वान् प्रचोदय ॥ १६ ॥

'सूत! तुम धीरे-धीरे रथ आगे बढ़ाओ। मैं सम्पूर्ण सेनाओंके पीछे जब हाथमें धनुष लेकर खड़ा होऊँगा, उस समय अर्जुन मुझे लाँघकर आगे नहीं बढ़ सकते ॥ १६ ॥

युध्यमानं हि कौन्तेयं हनिष्यामि न संशयः।
नोत्सहेन्मामतिक्रान्तुं वेलामिव महोदधिः ॥ १७ ॥

'यदि वे मुझसे युद्ध करेंगे तो मैं उन्हें निःसंदेह मार गिराऊँगा। जैसे महासागर अपनी तटभूमिको लाँघकर आगे नहीं बढ़ता, उसी प्रकार वे भी मुझे लाँघ नहीं सकते ॥ १७ ॥

अद्यार्जुनं सगोविन्दं मानिनं च वृकोदरम्।
हत्वा शिष्टांस्तथा शत्रून् कर्णस्यानृण्यमाप्नुयाम् ॥ १८ ॥

'आज मैं अर्जुन, श्रीकृष्ण और उस घमंडी भीमसेनको तथा बचे-खुचे दूसरे शत्रुओंको भी मार डालूँ, तभी कर्णके ऋणसे मुक्त हो सकता हूँ' ॥ १८ ॥

तच्छ्रुत्वा कुरुराजस्य शूरार्यसदृशं वचः।
सूतो हेमपरिच्छन्नाञ्शनैरश्वानचोदयत् ॥ १९ ॥

कुरुराज दुर्योधनकी वह श्रेष्ठ शूरवीरोंके योग्य बात सुनकर सारथिने सोनेके साज-बाजसे सजे हुए घोड़ोंको धीरे-धीरे आगे बढ़ाया ॥ १९ ॥

रथाश्वनागहीनास्तु पादातास्तव मारिष।
पञ्चविंशतिसाहस्रा युद्धायैव व्यवस्थिताः ॥ २० ॥

माननीय नरेश! उस समय रथों, घोड़ों और हाथियोंसे रहित आपके केवल पचीस हजार पैदल सैनिक ही युद्धके लिये डटे हुए थे ॥ २० ॥

तान् भीमसेनः संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
बलेन चतुरङ्गेण संवृत्याजघ्नतुः शरैः ॥ २१ ॥

उन सबको क्रोधमें भरे हुए भीमसेन और द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नने अपनी चतुरङ्गिणी सेनाद्वारा चारों ओरसे घेरकर बाणोंसे मारना आरम्भ किया ॥ २१ ॥

प्रत्ययुध्यन्त समरे भीमसेनं सपार्षतम्।
पार्थपार्षतयोश्चान्ये जगृहुस्तत्र नामनी ॥ २२ ॥

वे भी समराङ्गणमें भीमसेन और धृष्टद्युम्नका डटकर सामना करने लगे। उनमेंसे कितने ही योद्धा भीमसेन और धृष्टद्युम्नके नाम ले लेकर उन्हें युद्धके लिये ललकारने लगे ॥

अक्रुध्यत रणे भीमस्तैस्तदा पर्यवस्थितैः।
सोऽवतीर्य रथात्तूर्णं गदापाणिरयुध्यत ॥ २३ ॥

उस समय भीमसेन रणमें कुपित हो उठे और तुरंत ही रथसे नीचे उतरकर हाथमें गदा ले वहाँ खड़े हुए पैदल-सैनिकोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ २३ ॥

न तान् रथस्थो भूमिष्ठान् धर्मापेक्षी वृकोदरः।
योधयामास कौन्तेयो भुजवीर्यव्यपाश्रयः ॥ २४ ॥

कुन्तीनन्दन भीमसेन युद्धधर्मका पालन करनेवाले थे, इसलिये उन्होंने स्वयं रथपर बैठकर भूमिपर खड़े हुए पैदल-सैनिकोंके साथ युद्ध नहीं किया। उन्हें अपने बाहुबलका पूरा भरोसा था ॥ २४ ॥

जातरूपपरिच्छन्नां प्रगृह्य महतीं गदाम्।
अवधीत्तावकान् सर्वान् दण्डपाणिरिवान्तकः ॥ २५ ॥

वे दण्डपाणि यमराजके समान सुवर्णजटित विशाल गदा हाथमें लेकर आपके समस्त सैनिकोंका वध करने लगे ॥ २५ ॥

पदातिनोऽपि संत्यज्य प्रियं जीवितमात्मनः।
भीममभ्यद्रवन् संख्ये पतङ्गा ज्वलनं यथा ॥ २६ ॥

वे पैदल सैनिक भी अपने प्यारे प्राणोंका मोह छोड़कर उस युद्धस्थलमें भीमसेनकी ओर उसी प्रकार दौड़े, जैसे पतंग आगपर टूट पड़ते हैं ॥ २६ ॥

आसाद्य भीमसेनं तु संरब्धा युद्धदुर्मदाः।

विनेशुः सहसा दृष्ट्वा भूतग्रामा इवान्तकम् ॥ २७ ॥

जैसे प्राणियोंके समुदाय यमराजको देखते ही प्राण त्याग देते हैं, उसी प्रकार वे रोषभरे रणदुर्मद सैनिक भीमसेनसे टक्कर लेकर सहसा नष्ट हो गये ॥ २७ ॥

श्येनवद् विचरन् भीमो गदाहस्तो महाबलः।
पञ्चविंशतिसाहस्रांस्तावकान् समपोथयत् ॥ २८ ॥

हाथमें गदा लिये बाजके समान विचरते हुए महाबली भीमसेनने आपके उन पचीसों हजार सैनिकोंको मार गिराया ॥

हत्वा तत्पुरुषानीकं भीमः सत्यपराक्रमः।
धृष्टद्युम्नं पुरस्कृत्य तस्थौ तत्र महाबलः ॥ २९ ॥

सत्यपराक्रमी महाबली भीमसेन उस पैदल सेनाका संहार करके धृष्टद्युम्नको आगे किये वहीं खड़े रहे ॥ २९ ॥

धनंजयो रथानीकमभ्यवर्तत वीर्यवान्।
माद्रीपुत्रौ तु शकुनिं सात्यकिश्च महारथः ॥ ३० ॥
जवेनाभ्यपतन् हृष्टा घ्नन्तो दौर्योधनं बलम्।

दूसरी ओर पराक्रमी अर्जुनने रथसेनापर आक्रमण किया। माद्रीकुमार नकुल-सहदेव और महारथी सात्यकि हर्षमें भरकर दुर्योधनकी सेनाका संहार करते हुए बड़े वेगसे शकुनिपर टूट पड़े ॥ ३०½ ॥

तस्याश्वसादीन् सुबहूंस्ते निहत्य शितैः शरैः ॥ ३१ ॥
समभ्यधावंस्त्वरितास्तत्र युद्धमभून्महत्।

वे अपने पैने बाणोंद्वारा उसके बहुत-से घुड़सवारोंको मारकर तुरंत ही उसकी ओर भी दौड़े। फिर तो वहाँ बड़ा भारी युद्ध होने लगा ॥ ३१½ ॥

धनंजयोऽपि चाभ्येत्य रथानीकं तव प्रभो ॥ ३२ ॥
विश्रुतं त्रिषु लोकेषु गाण्डीवं व्याक्षिपद् धनुः।

प्रभो! अर्जुन भी आपकी रथसेनाके समीप जाकर त्रिभुवनविख्यात गाण्डीव धनुषकी टंकार करने लगे ॥ ३२½ ॥

कृष्णसारथिमायान्तं दृष्ट्वा श्वेतहयं रथम् ॥ ३३ ॥
अर्जुनं चापि योद्धारं त्वदीयाः प्राद्रवन् भयात्।

श्रीकृष्ण जिसके सारथि हैं, उस श्वेत घोड़ोंवाले रथ और अर्जुन-जैसे रथी योद्धाको आते देख आपके सैनिक भयसे भागने लगे ॥ ३३½ ॥

विप्रहीणरथाश्चैव शरैश्च परिकर्षिताः ॥ ३४ ॥
पञ्चविंशतिसाहस्राः कालमार्छन् पदातयः।

बहुतोंके रथ नष्ट हो गये और कितने ही बाणोंकी मारसे अत्यन्त घायल हो गये। इस प्रकार पचीस हजार पैदल सैनिक कालके गालमें चले गये ॥ ३४½ ॥

हत्वा तान् पुरुषव्याघ्रः पञ्चालानां महारथः ॥ ३५ ॥
पुत्रः पाञ्चालराजस्य धृष्टद्युम्नो महामनाः।
भीमसेनं पुरस्कृत्य नचिरात् प्रत्यदृश्यत ॥ ३६ ॥
महाधनुर्धरः श्रीमानमित्रगणतापनः।

पाञ्चालराजकुमार, पाञ्चाल महारथी और महामनस्वी पुरुषसिंह धृष्टद्युम्न उन पैदल सैनिकोंका संहार करके भीमसेनको आगे किये शीघ्र ही वहाँ दिखायी दिये। वे महाधनुर्धर, तेजस्वी और शत्रुसमूहोंको संताप देनेवाले हैं ॥ ३५-३६½ ॥

पारावतसवर्णाश्वं कोविदारमयध्वजम् ॥ ३७ ॥
धृष्टद्युम्नं रणे दृष्ट्वा त्वदीयाः प्राद्रवन् भयात्।

धृष्टद्युम्नके रथके घोड़े कबूतरके समान रंगवाले थे, उनकी ध्वजापर कचनारके वृक्षका चिह्न था। धृष्टद्युम्नको रणमें उपस्थित देख आपके योद्धा भयसे भाग खड़े हुए ३७½

गान्धारराजं शीघ्रास्त्रमनुसृत्य यशस्विनौ ॥ ३८ ॥
नचिरात् प्रत्यदृश्येतां माद्रीपुत्रौ ससात्यकी।

गान्धारराज शकुनि शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चला रहा था, यशस्वी माद्रीकुमार नकुल-सहदेव और सात्यकि तुरंत ही उसका पीछा करते दिखायी दिये ॥ ३८½ ॥

चेकितानः शिखण्डी च द्रौपदेयाश्च मारिष ॥ ३९ ॥
हत्वा त्वदीयं सुमहत् सैन्यं शङ्खांस्तथाधमन्।

माननीय नरेश! चेकितान, शिखण्डी और द्रौपदीके पाँचों पुत्र आपकी विशाल सेनाका विनाश करके शङ्ख बजाने लगे ॥ ३९½ ॥

ते सर्वे तावकान् प्रेक्ष्य द्रवतोऽपि पराङ्मुखान् ॥ ४० ॥
अभ्यवर्तन्त संरब्धान् वृषाञ्जित्वा यथा वृषाः।

उन सबने आपके सैनिकोंको पीठ दिखाकर भागते देख उनका उसी प्रकार पीछा किया, जैसे साँड़ रोषमें भरे हुए दूसरे साँड़ोंको जीतकर उन्हें खदेड़ने लगते हैं ॥ ४०½ ॥

सेनावशेषं तं दृष्ट्वा तव सैन्यस्य पाण्डवः ॥ ४१ ॥
व्यवस्थितः सव्यसाची चुक्रोध बलवान् नृप।
धनंजयो रथानीकमभ्यवर्तत वीर्यवान् ॥ ४२ ॥
विश्रुतं त्रिषु लोकेषु व्याक्षिपद् गाण्डिवं धनुः।

नरेश्वर! उस समय वहाँ खड़े हुए बलवान् पराक्रमी सव्यसाची पाण्डुपुत्र अर्जुन आपकी सेनाका कुछ भाग अवशिष्ट देखकर कुपित हो उठे और अपने त्रिलोकविख्यात गाण्डीवधनुषकी टंकार करते हुए आपकी रथसेनापर जा चढ़े ॥ ४१-४२½ ॥

तत एनाञ्शरव्रातैः सहसा समवाकिरत् ॥ ४३ ॥
तमसा संवृतेनाथ न स्म किंचिद् व्यदृश्यत।

उन्होंने अपने बाणसमूहोंद्वारा उन सबको सहसा आच्छादित कर दिया। उस समय सब ओर अन्धकार फैल गया; अतः कुछ भी दिखायी नहीं देता था ॥ ४३½ ॥

अन्धकारीकृते लोके रजोभूते महीतले ॥ ४४ ॥
योधाः सर्वे महाराज तावकाः प्राद्रवन् भयात्।

महाराज! इस प्रकार जब जगत्में अँधेरा छा गया और भूतलपर धूल-ही-धूल उड़ने लगी, तब आपके समस्त योद्धा भयभीत होकर भाग गये ॥ ४४½ ॥

सम्भज्यमाने सैन्ये तु कुरुराजो विशाम्पते ॥ ४५ ॥

पराङ्मुखांश्चैव सुतस्ते समुपाद्रवत्।
ततो दुर्योधनः सर्वानाजुहावाथ पाण्डवान् ॥ ४६ ॥
युद्धाय भरतश्रेष्ठ देवानिव पुरा बलिः।

प्रजानाथ! आपकी सेनामें भगदड़ मच जानेपर आपके पुत्र कुरुराज दुर्योधनने अपने सामने खड़े हुए शत्रुओंपर धावा किया। भरतश्रेष्ठ! जैसे पूर्वकालमें राजा बलिने देवताओंको युद्धके लिये ललकारा था, उसी प्रकार दुर्योधनने भी समस्त पाण्डवोंका युद्धके लिये आह्वान किया ॥४५-४६½॥

त एनमभिगर्जन्तः सहिताः समुपाद्रवन् ॥ ४७ ॥
नानाशस्त्रभृतः क्रुद्धा भर्त्सयन्तो मुहुर्मुहुः।

तब नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण किये कुपित पाण्डव सैनिक एक साथ गर्जना करते हुए वहाँ दुर्योधनपर टूट पड़े और बारंबार उसे फटकारने लगे ॥ ४७½ ॥

दुर्योधनोऽप्यसम्भ्रान्तस्तान् रणे निशितैः शरैः ॥४८॥
तत्रावधीत्ततः क्रुद्धः शतशोऽथ सहस्रशः।
तत् सैन्यं पाण्डवेयानां योधयामास सर्वतः ॥ ४९ ॥

इससे दुर्योधनको तनिक भी घबराहट नहीं हुई। वह रणभूमिमें कुपित हो पैने बाणोंसे शत्रुपक्षके सैकड़ों और हजारों योद्धाओंका संहार करने लगा। वह सब ओर घूम-घूमकर पाण्डवसेनाके साथ जूझ रहा था ॥ ४८-४९ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य पौरुषम्।
यदेकः सहितान् सर्वान् रणेऽयुध्यत पाण्डवान् ॥५०॥

राजन्! वहाँ हमलोगोंने आपके पुत्रका यह अद्भुत पुरुषार्थ देखा कि उसने अकेले ही रणभूमिमें एक साथ आये हुए समस्त पाण्डवोंका डटकर सामना किया ॥ ५० ॥

ततोऽपश्यन्महात्मा स स्वसैन्यं भृशदुःखितम्।
ततोऽवस्थाप्य राजेन्द्र कृतबुद्धिस्तवात्मजः ॥ ५१ ॥
हर्षयन्निव तान् योधानिदं वचनमब्रवीत्।

राजेन्द्र! उस समय आपके बुद्धिमान् पुत्र महामनस्वी दुर्योधनने अपनी सेनाको जब बहुत दुखी देखा, तब उन सबको सुस्थिर करके उनका हर्ष बढ़ाते हुए इस प्रकार कहा—॥ ५१½ ॥

न तं देशं प्रपश्यामि यत्र याता भयार्दिताः ॥ ५२ ॥
गतानां यत्र वै मोक्षः पाण्डवात् किं गतेन वः।
अल्पं च बलमेतेषां कृष्णौ च भृशविक्षतौ ॥ ५३ ॥
अद्य सर्वान् हनिष्यामि ध्रुवो हि विजयो भवेत्।

'योद्धाओ! तुम भयसे पीड़ित हो रहे हो। परंतु मैं ऐसा कोई स्थान नहीं देखता, जहाँ तुम भागकर जाओ और वहाँ जानेपर तुम्हें पाण्डुपुत्र अर्जुन या भीमसेनसे छुटकारा मिल जाय। ऐसी दशामें तुम्हारे भागनेसे क्या लाभ है? इन शत्रुओंके पास थोड़ी-सी ही सेना बच गयी है। श्रीकृष्ण और अर्जुन भी बहुत घायल हो चुके हैं; अतः आज मैं इन सब लोगोंको मार डालूँगा। हमारी विजय अवश्य होगी ॥५२-५३½॥

विप्रयातांस्तु वो भिन्नान् पाण्डवाः कृतकिल्बिषान् ॥५४
अनुसृत्य वधिष्यन्ति श्रेयान् नः समरे वधः।

'यदि तुम अलग-अलग होकर भागोगे तो पाण्डव तुम सब अपराधियोंका पीछा करके तुम्हें मार डालेंगे। ऐसी दशामें युद्धमें मारा जाना ही हमारे लिये श्रेयस्कर है ॥ ५४½ ॥

सुखं सांग्रामिको मृत्युः क्षत्रधर्मेण युध्यताम् ॥ ५५॥
मृतो दुःखं न जानीते प्रेत्य चानन्त्यमश्नुते।

'क्षत्रियधर्मके अनुसार युद्ध करनेवाले वीरोंकी संग्राममें सुखपूर्वक मृत्यु होती है। वहाँ मरे हुएको मृत्युके दुःखका अनुभव नहीं होता और परलोकमें जानेपर उसे अक्षय सुखकी प्राप्ति होती है ॥ ५५½ ॥

शृणुध्वं क्षत्रियाः सर्वे यावन्तः स्थ समागताः ॥ ५६॥
यदा शूरं च भीरुं च मारयत्यन्तको यमः।
को नु मूढो न युध्येत मादृशः क्षत्रियव्रतः ॥ ५७ ॥

'तुम जितने क्षत्रिय वीर यहाँ आये हो सभी कान खोलकर सुन लो। जब प्राणियोंका अन्त करनेवाला यमराज शूरवीर और कायर दोनोंको ही मार डालता है, तब मेरे-जैसा क्षत्रियव्रतका पालन करनेवाला होकर भी कौन ऐसा मूर्ख होगा, जो युद्ध नहीं करेगा? ॥ ५६-५७ ॥

द्विषतो भीमसेनस्य क्रुद्धस्य वशमेष्यथ।
पितामहैराचरितं न धर्मं हातुमर्हथ ॥ ५८ ॥

'हमारा शत्रु भीमसेन क्रोधमें भरा हुआ है। यदि भागोगे तो उसके वशमें पड़कर मारे जाओगे; अतः अपने बाप-दादोंके द्वारा आचरणमें लाये हुए क्षत्रिय-धर्मका परित्याग न करो॥

न ह्यधर्मोऽस्ति पापीयान् क्षत्रियस्य पलायनात्।
न युद्धधर्माच्छ्रेयो हि पन्थाः स्वर्गस्य कौरवाः।
अचिरेण हता लोकान् सद्यो योधाः समश्नुत॥ ५९ ॥

'कौरववीरो! क्षत्रियके लिये युद्धसे पीठ दिखाकर भागनेसे बढ़कर दूसरा कोई महान् पाप नहीं है तथा युद्ध-धर्मके पालनसे बढ़कर दूसरा कोई स्वर्गकी प्राप्तिका कल्याणकारी मार्ग भी नहीं है; अतः योद्धाओ! तुम युद्धमें मारे जाकर शीघ्र ही उत्तम लोकोंके सुखका अनुभव करो' ॥५९॥

संजय उवाच

एवं ब्रुवति पुत्रे ते सैनिका भृशविक्षताः।
अनवेक्ष्यैव तद्वाक्यं प्राद्रवन् सर्वतो दिशः ॥ ६० ॥

संजय कहते हैं—महाराज! आपका पुत्र इस प्रकार व्याख्यान देता ही रह गया; किंतु अत्यन्त घायल हुए सैनिक उसकी बातपर ध्यान दिये बिना ही सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गये ॥ ६० ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि कौरवसैन्यपलायने त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कौरवसेनाका पलायनविषयक तिरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९३ ॥

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

शल्यके द्वारा रणभूमिका दिग्दर्शन, कौरवसेनाका पलायन और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनका शिविरकी ओर गमन

संजय उवाच

**दृष्ट्वा तु सैन्यं परिवर्त्यमानं
पुत्रेण ते मद्रपतिस्तदानीम्।
संत्रस्तरूपः परिमूढचेता
दुर्योधनं वाक्यमिदं बभाषे ॥ १ ॥**

संजय कहते हैं—राजन्! आपके पुत्रद्वारा सेनाको पुनः लौटानेका प्रयत्न होता देख उस समय भयभीत और मूढ़चित्त हुए मद्रराज शल्यने दुर्योधनसे इस प्रकार कहा ॥ १ ॥

शल्य उवाच

**पश्येदमुग्रं नरवाजिनागै-
रायोधनं वीरहतैः सुपूर्णम्।
महीधराभैः पतितैश्च नागैः
सकृत्प्रभिन्नैः शरभिन्नदेहैः ॥ २ ॥**

**सुविह्वलद्भिश्च गतासुभिश्च
प्रध्वस्तवर्मायुधचर्मखड्गैः।
वज्रापविद्धैरिव चाचलोत्तमै-
र्विभिन्नपाषाणमहाद्रुमौषधैः ॥ ३ ॥**

**प्रविद्धघण्टाङ्कुशतोमरध्वजैः
सहेमजालै रुधिरौघसम्प्लुतैः।
शरावभिन्नैः पतितैस्तुरङ्गमैः
श्वसद्भिरार्तैः क्षतजं वमद्भिः ॥ ४ ॥**

**दीनं स्तनद्भिः परिवृत्तनेत्रै-
र्महीं दशद्भिः कृपणं नदद्भिः।
तथापविद्धैर्गजवाजियोधैः
शरापविद्धैरथ वीरसंघैः ॥ ५ ॥**

**मन्दासुभिश्चैव गतासुभिश्च
नराश्वनागैश्च रथैश्च मर्दितैः।
मन्दांशुभिश्चैव मही महाहवे
नूनं यथा वैतरणीव भाति ॥ ६ ॥**

शल्य बोले—वीर नरेश! देखो, मारे गये मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंकी लाशोंसे भरा हुआ यही युद्धस्थल कैसा भयंकर जान पड़ता है? पर्वताकार गजराज, जिनके मस्तकोंसे मदकी धारा फूटकर बहती थी, एक ही साथ बाणोंकी मारसे शरीर विदीर्ण हो जानेके कारण धराशायी हो गये हैं। उनमेंसे कितने ही वेदनासे छटपटा रहे हैं, कितनोंके प्राण निकल गये हैं। उनपर बैठे हुए सवारोंके कवच, अस्त्र-शस्त्र, ढाल और तलवार आदि नष्ट हो गये हैं! इन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो वज्रके आघातसे बड़े-बड़े पर्वत ढह गये हों और उनके प्रस्तरखण्ड, विशाल वृक्ष तथा औषध-समूह छिन्न-भिन्न हो गये हों। उन गजराजोंके घंटा, अङ्कुश, तोमर और ध्वज आदि सभी वस्तुएँ बाणोंके आघातसे टूट-फूटकर बिखर गयी हैं। उन हाथियोंके ऊपर सोनेकी जालीसे युक्त आवरण पड़ा है। उनकी लाशें रक्तके प्रवाहसे नहा गयी हैं। घोड़े बाणोंसे विदीर्ण होकर गिरे हैं, वेदनासे व्यथित हो उच्छ्वास लेते और मुखसे रक्त वमन करते हैं। वे दीनतापूर्ण आर्तनाद कर रहे हैं। उनकी आँखें घूम रही हैं। वे धरतीमें दाँत गड़ाते और करुण चीत्कार करते हैं। हाथी, घोड़े, पैदल सैनिक तथा वीरसमुदाय बाणोंसे क्षत-विक्षत हो मरे पड़े हैं। किन्हींकी साँसें कुछ-कुछ चल रही हैं और कुछ लोगोंके प्राण सर्वथा निकल गये हैं। हाथी, घोड़े, मनुष्य और रथ कुचल दिये गये हैं। इन सबकी कान्ति मन्द पड़ गयी है। इनके कारण उस महासमरकी भूमि निश्चय ही वैतरणीके समान प्रतीत होती है ॥ २–६ ॥

**गजैर्निकृत्तैर्वरहस्तगात्रै-
रुद्वेपमानैः पतितैः पृथिव्याम्।
विशीर्णदन्तैः क्षतजं वमद्भिः
स्फुरद्भिरार्तैः करुणं नदद्भिः ॥ ७ ॥**

हाथियोंके शुण्डदण्ड और शरीर छिन्न-भिन्न हो गये हैं। कितने ही हाथी पृथ्वीपर गिरकर काँप रहे हैं, कितनोंके दाँत टूट गये हैं और वे खून उगलते तथा छटपटाते हुए वेदनाग्रस्त हो करुण स्वरमें कराह रहे हैं ॥ ७ ॥

**निकृत्तचक्रेषुयुगैः सयोक्त्रैः
प्रविद्धतूणीरपताककेतुभिः।
सुवर्णजालावततैर्भृशाहतै-
र्महारथौघैर्जलदैरिवावृता ॥ ८ ॥**

बड़े-बड़े रथोंके समूह इस रणभूमिमें बादलोंके समान छा गये हैं। उनके पहिये, बाण, जूए और बन्धन कट गये हैं। तरकस, ध्वज और पताकाएँ फेंकी पड़ी हैं; सोनेके जालसे आवृत हुए वे रथ बहुत ही क्षतिग्रस्त हो गये हैं ॥

**यशस्विभिर्नागरथाश्वयोधिभिः
पदातिभिश्चाभिमुखैर्हतैः परैः।
विशीर्णवर्माभरणाम्बरायुधै-
र्वृता प्रशान्तैरिव तावकैर्मही ॥ ९ ॥**

हाथी, रथ और घोड़ोंपर सवार होकर युद्ध करनेवाले यशस्वी योद्धा और पैदल वीर सामने लड़ते हुए शत्रुओंके हाथसे मारे गये हैं। उनके कवच, आभूषण, वस्त्र और आयुध सभी छिन्न-भिन्न होकर बिखर गये हैं। इस प्रकार शान्त पड़े हुए आपके प्राणहीन योद्धाओंसे यह पृथ्वी पट गयी है ॥ ९ ॥

शरप्रहाराभिहतैर्महाबलै-
रवेक्ष्यमाणैः पतितैः सहस्रशः।
दिवश्च्युतैर्भूरतिदीप्तिमद्भि-
र्नक्तं ग्रहैर्द्यौरमलप्रदीप्तैः ॥ १० ॥

बाणोंके प्रहारसे घायल होकर गिरे हुए सहस्रों महाबली योद्धा आकाशसे नीचे गिरे हुए अत्यन्त दीप्तिमान् एवं निर्मल प्रभासे प्रकाशित ग्रहोंके समान दिखायी देते हैं और उनसे ढकी हुई यह भूमि रातके समय उन ग्रहोंसे व्याप्त हुए आकाशके सदृश सुशोभित होती है ॥ १० ॥

प्रणष्टसंज्ञैः पुनरुच्छ्वसद्भि-
र्मही बभूवानुगतैरिवाग्निभिः।
कर्णार्जुनाभ्यां शरभिन्नगात्रै-
र्हतैः प्रवीरैः कुरुसृञ्जयानाम् ॥ ११ ॥

कर्ण और अर्जुनके बाणोंसे जिनके अङ्ग-अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये हैं, उन मारे गये कौरव-सृंजय वीरोंकी लाशोंसे भरी हुई भूमि यज्ञमें स्थापित हुई अग्नियोंके द्वारा यज्ञभूमिके समान सुशोभित होती है। उनमेंसे कितने ही वीरोंकी चेतना लुप्त हो गयी है और कितने ही पुनः साँस ले रहे हैं ॥ ११॥

शरास्तु कर्णार्जुनबाहुमुक्ता
विदार्य नागाश्वमनुष्यदेहान्।
प्राणान् निरस्याशु महीं प्रतीयु-
र्महोरगा वासमिवातिताम्राः ॥ १२ ॥

कर्ण और अर्जुनके हाथोंसे छूटे हुए बाण हाथी, घोड़े और मनुष्योंके शरीरोंको विदीर्ण करके उनके प्राण निकालकर तुरंत पृथ्वीमें घुस गये थे, मानो अत्यन्त लाल रंगके विशाल सर्प अपनी बिलमें जा घुसे हों ॥ १२ ॥

हतैर्मनुष्याश्वगजैश्च संख्ये
शरापविद्धैश्च रथैर्नरेन्द्र।
धनंजयस्याधिरथेश्च मार्गणै-
रगम्यरूपा वसुधा बभूव ॥ १३ ॥

नरेन्द्र! अर्जुन और कर्णके बाणोंद्वारा मारे गये हाथी, घोड़े एवं मनुष्योंसे तथा बाणोंसे नष्ट-भ्रष्ट होकर गिरे पड़े रथोंसे इस पृथ्वीपर चलना-फिरना असम्भव हो गया है॥१३॥

रथैर्वरेषून्मथितैः सुकल्पैः
सयोधशस्त्रैश्च वरायुधैर्ध्वजैः।
विशीर्णयोक्त्रैर्विनिकृत्तबन्धनै-
र्निकृत्तचक्राक्षयुगत्रिवेणुभिः ॥ १४ ॥

सजे-सजाये रथ बाणोंके आघातसे मथ डाले गये हैं। उनके साथ जो योद्धा, शस्त्र, श्रेष्ठ आयुध और ध्वज आदि थे, उनकी भी यही दशा हुई है। उनके पहिये, बन्धन-रज्जु, धुरे, जूए और त्रिवेणु काष्ठके भी टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं ॥

विमुक्तशस्त्रैश्च तथा व्युपस्करै-
र्हतानुकर्षैर्विनिषङ्गबन्धनैः।
प्रभग्ननीडैर्मणिहेमभूषितैः
स्तृता मही द्यौरिव शारदैर्घनैः॥१५॥

उनपर जो अस्त्र-शस्त्र रक्खे गये थे, वे सब दूर जा पड़े हैं। सारी सामग्री नष्ट हो गयी है। अनुकर्ष, तूणीर और बन्धनरज्जु—ये सब-के-सब नष्ट-भ्रष्ट हो गये हैं। उन रथोंकी बैठकें टूट-फूट गयी हैं। सुवर्ण और मणियोंसे विभूषित उन रथोंद्वारा आच्छादित हुई पृथ्वी शरद्‌ऋतुके बादलोंसे ढके हुए आकाशके समान जान पड़ती है ॥ १५ ॥

विकृष्यमाणैर्जवनैस्तुरङ्गमै-
र्हतेश्वरै राजरथैः सुकल्पितैः।
मनुष्यमातङ्गरथाश्वराशिभि-
र्द्रुतं व्रजन्तो बहुधा विचूर्णिताः॥१६॥

जिनके स्वामी (रथी) मारे गये हैं, राजाओंके उन सुसज्जित रथोंको, जब वेगशाली घोड़े खींचे लिये जाते थे और झुंड-के-झुंड मनुष्य, हाथी, साधारण रथ और अश्व भी भागे जा रहे थे, उस समय उनके द्वारा शीघ्रतापूर्वक भागनेवाले बहुत-से मनुष्य कुचलकर चूर-चूर हो गये हैं ॥ १६ ॥

सहेमपट्टाः परिघाः परश्वधाः
शिताश्च शूला मुसलानि मुद्गराः।
पेतुश्च खड्गा विमला विकोशा
गदाश्च जाम्बूनदपट्टनद्धाः ॥ १७ ॥

सुवर्ण-पत्रसे जड़े गये परिघ, फरसे, तीखे शूल, मुसल, मुद्गर, म्यानसे बाहर निकाली हुई चमचमाती तलवारें और स्वर्णजटित गदाएँ जहाँ-तहाँ बिखरी पड़ी हैं ॥ १७ ॥

चापानि रुक्माङ्गदभूषणानि
शराश्च कार्तस्वरचित्रपुङ्खाः।
ऋष्टयश्च पीता विमला विकोशाः
प्रासाश्च दण्डैः कनकावभासैः ॥ १८ ॥
छत्राणि वालव्यजनानि शङ्खा-
श्छिन्नापविद्धाश्च स्रजो विचित्राः।

सुवर्णमय अङ्गदोंसे विभूषित धनुष, सोनेके विचित्र पंखवाले बाण, ऋष्टि, पानीदार एवं कोशरहित निर्मल खड्ग तथा सुनहरे डंडोंसे युक्त प्रास, छत्र, चँवर, शङ्ख और विचित्र मालाएँ छिन्न-भिन्न होकर फेंकी पड़ी हैं ॥ १८½ ॥

कुथाः पताकाम्बरभूषणानि
किरीटमाला मुकुटाश्च शुभ्राः ॥ १९ ॥
प्रकीर्णका विप्रकीर्णाश्च राजन्
प्रवालमुक्तातरलाश्च हाराः।

राजन्! हाथीकी पीठपर बिछाये जानेवाले कम्बल या झूल, पताका, वस्त्र, आभूषण, किरीटमाला, उज्ज्वल मुकुट, श्वेत चामर, मूँगे और मोतियोंके हार—ये सब-के-सब इधर-उधर बिखरे पड़े हैं ॥ १९½ ॥

आपीडकेयूरवराङ्गदानि
ग्रैवेयनिष्काः ससुवर्णसूत्राः ॥ २० ॥
मण्युत्तमा वज्रसुवर्णमुक्ता
रत्नानि चोच्चावचमङ्गलानि।

गात्राणि चात्यन्तसुखोचितानि
शिरांसि चेन्दुप्रतिमाननानि ॥ २१ ॥
देहांश्च भोगांश्च परिच्छदांश्च
त्यक्त्वा मनोज्ञानि सुखानि चैव ।
स्वधर्मनिष्ठां महतीमवाप्य
व्याप्याशु लोकान् यशसा गतास्ते ॥ २२ ॥

शिरोभूषण, केयूर, सुन्दर अङ्गद, गलेके हार, पदक, सोनेकी जंजीर, उत्तम मणि, हीरे, सुवर्ण तथा मुक्ता आदि छोटे-बड़े माङ्गलिक रत्न, अत्यन्त सुख भोगनेके योग्य शरीर, चन्द्रमाको भी लज्जित करनेवाले मुखसे युक्त मस्तक, देह, भोग, आच्छादन-वस्त्र तथा मनोरम सुख—इन सबको त्यागकर स्वधर्मकी पराकाष्ठाका पालन करते हुए सम्पूर्ण लोकोंमें अपने यशका विस्तार करके वे वीर सैनिक दिव्य लोकोंमें पहुँच गये हैं ॥

निवर्त दुर्योधन यान्तु सैनिका
व्रजस्व राजञ्छिबिराय मानद ।
दिवाकरोऽप्येष विलम्बते प्रभो
पुनस्त्वमेवात्र नरेन्द्र कारणम् ॥ २३ ॥

दूसरोंको सम्मान देनेवाले राजा दुर्योधन ! अब लौटो । इन सैनिकोंको भी जाने दो । शिबिरमें चलो । प्रभो ! ये भगवान् सूर्य भी अस्ताचलपर लटक रहे हैं । नरेन्द्र ! तुम्हीं इस नर-संहारके प्रधान कारण हो ॥ २३ ॥

इत्येवमुक्त्वा विरराम शल्यो
दुर्योधनं शोकपरीतचेताः ।
हा कर्ण हा कर्ण इति ब्रुवाण-
मार्तं विसंज्ञं भृशमश्रुनेत्रम् ॥ २४ ॥

दुर्योधनसे ऐसा कहकर राजा शल्य चुप हो गये। उनका चित्त शोकसे व्याकुल हो रहा था । दुर्योधन भी आर्त होकर 'हा कर्ण ! हा कर्ण !' पुकारने लगा । वह सुध-बुध खो बैठा था। उसके नेत्रोंसे वेगपूर्वक आँसुओंकी अविरल धारा बह रही थी ॥

तं द्रोणपुत्रप्रमुखा नरेन्द्राः
सर्वे समाश्वास्य मुहुः प्रयान्ति ।
निरीक्षमाणा मुहुरर्जुनस्य
ध्वजं महान्तं यशसा ज्वलन्तम् ॥ २५ ॥

द्रोणपुत्र अश्वत्थामा तथा अन्य सभी नरेश बारबार आकर दुर्योधनको सान्त्वना देते और अर्जुनके महान् ध्वजको, जो उनके उज्ज्वल यशसे प्रकाशित हो रहा था, देखते हुए फिर लौट जाते थे ॥ २५ ॥

नराश्वमातङ्गशरीरजेन
रक्तेन सिक्तां च तथैव भूमिम् ।
रक्ताम्बरस्रक्तपनीययोगा-
न्नारीं प्रकाशामिव सर्वगम्याम् ॥ २६ ॥

मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंके शरीरसे बहते हुए रक्तकी धारासे वहाँकी भूमि ऐसी सिंच गयी थी कि लालवस्त्र, लाल फूलोंकी माला तथा तपाये हुए सुवर्णके आभूषण धारण करके सबके सामने आयी हुई सर्वगम्या नारी (वेश्या) के समान प्रतीत होती थी ॥ २६ ॥

प्रच्छन्नरूपां रुधिरेण राजन्
रौद्रे मुहूर्तेऽतिविराजमाने ।
नैवावतस्थुः कुरवः समीक्ष्य
प्रव्राजिता देवलोकाय सर्वे ॥ २७ ॥

राजन् ! अत्यन्त शोभा पानेवाले उस रौद्रमुहूर्त (सायंकाल) में, रुधिरसे जिसका स्वरूप छिप गया था, उस भूमिको देखते हुए कौरवसैनिक वहाँ ठहर न सके । वे सब-के-सब देवलोककी यात्राके लिये उद्यत थे ॥ २७ ॥

वधेन कर्णस्य तु दुःखितास्ते
हा कर्ण हा कर्ण इति ब्रुवाणाः ।
द्रुतं प्रयाताः शिबिराणि राजन्
दिवाकरं रक्तमवेक्षमाणाः ॥ २८ ॥

महाराज ! समस्त कौरव कर्णके वधसे अत्यन्त दुखी हो 'हा कर्ण ! हा कर्ण !' की रट लगाते और लाल सूर्यकी ओर देखते हुए बड़े वेगसे शिबिरकी ओर चले ॥ २८ ॥

गाण्डीवमुक्तैस्तु सुवर्णपुङ्खैः
शिलाशितैः शोणितदिग्धवाजैः ।
शरैश्चिताङ्गो युधि भाति कर्णो
हतोऽपि सन् सूर्य इवांशुमाली ॥ २९ ॥

गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए सुवर्णमय पंखवाले और शिलापर तेज किये हुए बाणोंसे कर्णका अङ्ग-अङ्ग बिंध गया था । उन बाणोंकी पाँखें रक्तमें डूबी हुई थीं । उनके द्वारा युद्धस्थलमें पड़ा हुआ कर्ण मर जानेपर भी अंशुमाली सूर्यके समान सुशोभित हो रहा था ॥ २९ ॥

कर्णस्य देहं रुधिरावसिक्तं
भक्तानुकम्पी भगवान् विवस्वान् ।
स्पृष्ट्वांशुभिर्लोहितरक्तरूपः
सिष्णासुरभ्येति परं समुद्रम् ॥ ३० ॥

भक्तोंपर कृपा करनेवाले भगवान् सूर्य खूनसे भीगे हुए कर्णके शरीरका किरणोंद्वारा स्पर्श करके रक्तके समान ही लालरूप धारणकर मानो स्नान करनेकी इच्छासे पश्चिम समुद्रकी ओर जा रहे थे ॥ ३० ॥

इतीव संचिन्त्य सुरर्षिसंघाः
सम्प्रस्थिता यान्ति यथा निकेतनम् ।
संचिन्तयित्वा जनता विसस्रु-
र्यथासुखं खं च महीतलं च ॥ ३१ ॥

इस युद्धके ही विषयमें सोच-विचार करते हुए देवताओं तथा ऋषियोंके समुदाय वहाँसे प्रस्थित हो अपने-अपने स्थानको चल दिये और इसी विषयका चिन्तन करते हुए अन्य लोग भी सुखपूर्वक अन्तरिक्ष अथवा भूतलपर अपने-अपने निवासस्थानको चले गये ॥ ३१ ॥

तदद्भुतं प्राणभृतां भयंकरं
निशाम्य युद्धं कुरुवीरमुख्ययोः ।

धनंजयस्याधिरथेश्च विस्मिताः
प्रशंसमानाः प्रययुस्तश जनाः ॥ ३२ ॥

कौरव तथा पाण्डव पक्षके उन प्रमुख वीर अर्जुन और कर्णका वह अद्भुत तथा प्राणियोंके लिये भयंकर युद्ध देखकर सब लोग आश्चर्यचकित हो उनकी प्रशंसा करते हुए वहाँसे चले गये ॥ ३२ ॥

शरसंकृत्तवर्माणं रुधिरोक्षितवाससम् ।
गतासुमपि राधेयं नैव लक्ष्मीर्विमुञ्चति ॥ ३३ ॥

राधापुत्र कर्णका कवच बाणोंसे कट गया था । उसके सारे वस्त्र खूनसे भीग गये थे और प्राण भी निकल गये थे तो भी उसे शोभा छोड़ नहीं रही थी ॥ ३३ ॥

तप्तजाम्बूनदनिभं ज्वलनार्कसमप्रभम् ।
जीवन्तमिव तं शूरं सर्वभूतानि मेनिरे ॥ ३४ ॥

वह तपाये हुए सुवर्ण तथा अग्नि और सूर्यके समान कान्तिमान् था । उस शूरवीरको देखकर सब प्राणी जीवित-सा समझते थे ॥ ३४ ॥

हतस्यापि महाराज सूतपुत्रस्य संयुगे ।
वित्रेसुः सर्वतो योधाः सिंहस्येवेतरे मृगाः ॥ ३५ ॥

महाराज ! जैसे सिंहसे दूसरे जङ्गली पशु सदा डरते रहते हैं, उसी प्रकार युद्धस्थलमें मारे गये सूतपुत्रसे भी समस्त योद्धा भय मानते थे ॥ ३५ ॥

हतोऽपि पुरुषव्याघ्र जीववानिव लक्ष्यते ।
नाभवद् विकृतिः काचिद्धतस्यापि महात्मनः ॥ ३६ ॥

पुरुषसिंह नरेश ! वह मारा जानेपर भी जीवित-सा दीखता था, महामना कर्णके शरीरमें मरनेपर भी कोई विकार नहीं हुआ था ॥ ३६ ॥

चारुवेषधरं वीरं चारुमौलिशिरोधरम् ।
तन्मुखं सूतपुत्रस्य पूर्णचन्द्रसमद्युति ॥ ३७ ॥

सूतपुत्र कर्णका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान कान्तिमान् था । उसने मनोहर वेष धारण किया था । वह वीरोचित शोभासे सम्पन्न था । उसके मस्तक और कण्ठ भी मनोहर थे ॥

नानाभरणवान् राजंस्तप्तजाम्बूनदाङ्गदः ।
हतो वैकर्तनः शेते पादपोऽङ्कुरवानिव ॥ ३८ ॥

राजन् ! नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित तथा तपाये हुए सुवर्णका अङ्गद (बाजूबंद) धारण किये वैकर्तन कर्ण मारा जाकर अङ्कुरयुक्त वृक्षके समान पड़ा था ॥ ३८ ॥

कनकोत्तमसंकाशो ज्वलन्निव विभावसुः ।
स शान्तः पुरुषव्याघ्र पार्थसायकवारिणा ॥ ३९ ॥

नरव्याघ्र नरेश ! उत्तम सुवर्णके समान कान्तिमान् कर्ण प्रज्वलित अग्निके तुल्य प्रकाशित होता था; परंतु पार्थके बाणरूपी जलसे वह बुझ गया ॥ ३९ ॥

यथा हि ज्वलनो दीप्तो जलमासाद्य शाम्यति ।
कर्णाग्निः समरे तद्वत् पार्थमेघेन शामितः ॥ ४० ॥

जैसे प्रज्वलित आग जलको पाकर बुझ जाती है, उसी प्रकार समराङ्गणमें कर्णरूपी अग्निको अर्जुनरूपी मेघने बुझा दिया ॥ ४० ॥

आहृत्य च यशो दीप्तं सुयुद्धेनात्मनो भुवि ।
विसृज्य शरवर्षाणि प्रताप्य च दिशो दश ॥ ४१ ॥
सपुत्रः समरे कर्णः स शान्तः पार्थतेजसा ।

इस पृथ्वीपर उत्तम युद्धके द्वारा अपने लिये उत्तम यशका उपार्जन करके, बाणोंकी झड़ी लगाकर, दसों दिशाओंको संतप्त करके, पुत्रसहित कर्ण अर्जुनके तेजसे शान्त हो गया ॥

प्रताप्य पाण्डवान् सर्वान् पञ्चालांश्चास्त्रतेजसा ॥ ४२ ॥
वर्षित्वा शरवर्षेण प्रताप्य रिपुवाहिनीम् ।
श्रीमानिव सहस्रांशुर्जगत् सर्वं प्रताप्य च ॥ ४३ ॥
हतो वैकर्तनः कर्णः सपुत्रः सहवाहनः ।
अर्थिनां पक्षिसंघस्य कल्पवृक्षो निपातितः ॥ ४४ ॥

अस्त्रके तेजसे सम्पूर्ण पाण्डव और पाञ्चालोंको संताप देकर, बाणोंकी वर्षाके द्वारा शत्रुसेनाको तपाकर तथा सहस्र किरणोंवाले तेजस्वी सूर्यके समान सम्पूर्ण संसारमें अपना प्रताप बिखेरकर वैकर्तन कर्ण पुत्र और वाहनोंसहित मारा गया । याचकरूपी पक्षियोंके समुदायके लिये जो कल्पवृक्षके समान था, वह कर्ण मार गिराया गया ॥ ४२—४४ ॥

ददानीत्येव योऽवोचन्न नास्तीत्यर्थितोऽर्थिभिः ।
सद्भिः सदा सत्पुरुषः स हतो द्वैरथे वृषः ॥ ४५ ॥

जो माँगनेपर सदा यही कहता था कि 'मैं दूँगा ।' श्रेष्ठ याचकोंके माँगनेपर जिसके मुँहसे कभी 'नाहीं' नहीं निकला, वह धर्मात्मा कर्ण द्वैरथ युद्धमें मारा गया ॥ ४५ ॥

यस्य ब्राह्मणसात् सर्वं वित्तमासीन्महात्मनः ।
नादेयं ब्राह्मणेष्वासीद् यस्य स्वमपि जीवितम् ॥ ४६ ॥
सदा स्त्रीणां प्रियो नित्यं दाता चैव महारथः ।
स वै पार्थास्त्रनिर्दग्धो गतः परमिकां गतिम् ॥ ४७ ॥

जिस महामनस्वी कर्णका सारा धन ब्राह्मणोंके अधीन था, ब्राह्मणोंके लिये जिसका कुछ भी, अपना जीवन भी अदेय नहीं था, जो स्त्रियोंको सदा प्रिय लगता था और प्रतिदिन दान किया करता था, वह महारथी कर्ण पार्थके बाणोंसे दग्ध हो परम गतिको प्राप्त हो गया ॥ ४६-४७ ॥

यमाश्रित्याकरोद् वैरं पुत्रस्ते स गतो दिवम् ।
आदाय तव पुत्राणां जयाशां शर्म वर्म च ॥ ४८ ॥

राजन् ! जिसका सहारा लेकर आपके पुत्रने पाण्डवोंके साथ वैर किया था, वह कर्ण आपके पुत्रोंकी विजयकी आशा, सुख तथा कवच (रक्षा) लेकर स्वर्गलोकको चला गया ॥ ४८ ॥

हते कर्णे सरितो न प्रसस्रु-
र्जगाम चास्तं सविता दिवाकरः ।
ग्रहश्च तिर्यग् ज्वलनार्कवर्णः
सोमस्य पुत्रोऽभ्युदियाय तिर्यक् ॥ ४९ ॥

कर्णके मारे जानेपर नदियोंका प्रवाह रुक गया, सूर्यदेव अस्ताचलको चले गये और अग्नि तथा सूर्यके समान

कान्तिमान् मङ्गल एवं सोमपुत्र बुध तिरछे होकर उदित हुए॥

नभः पफालेव ननाद चोर्वी
ववुश्च वाताः परुषाः सुघोराः।
दिशो बभूवुर्ज्वलिताः सधूमा
महार्णवाः सस्वनुश्चुक्षुभुश्च ॥ ५० ॥

आकाश फटने-सा लगा, पृथ्वी चीत्कार कर उठी, भयानक और रूखी हवा चलने लगी, सम्पूर्ण दिशाएँ धूमसहित अग्निसे प्रज्वलित-सी होने लगीं और महासागर भयंकर स्वरमें गर्जने तथा विक्षुब्ध होने लगे ॥ ५० ॥

सकाननाश्चाद्रिचयाश्चकम्पिरे
प्रविव्यथुर्भूतगणाश्च सर्वे।
बृहस्पतिः सम्परिवार्य रोहिणीं
बभूव चन्द्रार्कसमो विशाम्पते ॥ ५१ ॥

वनोंसहित पर्वतसमूह काँपने लगे, सम्पूर्ण भूतसमुदाय व्यथित हो उठे। प्रजानाथ! बृहस्पति नामक ग्रह रोहिणी नक्षत्रको सब ओरसे घेरकर चन्द्रमा और सूर्यके समान प्रकाशित होने लगा ॥ ५१ ॥

हते तु कर्णे विदिशोऽपि जज्वलु-
स्तमोवृता द्यौर्विचचाल भूमिः।
पपात चोल्का ज्वलनप्रकाशा
निशाचराश्चाप्यभवन् प्रहृष्टाः ॥ ५२ ॥

कर्णके मारे जानेपर दिशाओंके कोने-कोनेमें आग-सी लग गयी, आकाशमें अँधेरा छा गया, धरती डोलने लगी, अग्निके समान प्रकाशमान उल्का गिरने लगी और निशाचर प्रसन्न हो गये ॥ ५२ ॥

शशिप्रकाशाननमर्जुनो यदा
क्षुरेण कर्णस्य शिरो न्यपातयत्।
तदान्तरिक्षे सहसैव शब्दो
बभूव हाहेति सुरैर्विमुक्तः ॥ ५३ ॥

जिस समय अर्जुनने क्षुरके द्वारा कर्णके चन्द्रमाके समान कान्तिमान् मुखवाले मस्तकको काट गिराया, उस समय आकाशमें देवताओंके मुखसे निकला हुआ हाहाकारका शब्द गूँज उठा ॥ ५३ ॥

सदेवगन्धर्वमनुष्यपूजितं
निहत्य कर्णं रिपुमाहवेऽर्जुनः।
रराज राजन् परमेण वर्चसा
यथा पुरा वृत्रवधे शतक्रतुः ॥ ५४ ॥

राजन्! देवता, गन्धर्व और मनुष्योंद्वारा पूजित अपने शत्रु कर्णको युद्धमें मारकर अर्जुन अपने उत्तम तेजसे उसी प्रकार प्रकाशित होने लगे, जैसे पूर्वकालमें वृत्रासुरका वध करके इन्द्र सुशोभित हुए थे ॥ ५४ ॥

ततो रथेनाम्बुदवृन्दनादिना
शरन्नभोमध्यदिवाकरार्चिषा।
पताकिना भीमनिनादकेतुना
हिमेन्दुशङ्खस्फटिकावभासिना ॥ ५५ ॥

महेन्द्रवाहप्रतिमेन तावुभौ
महेन्द्रवीर्यप्रतिमानपौरुषौ।
सुवर्णमुक्तामणिवज्रविद्रुमै-
रलंकृतावप्रतिमेन रंहसा ॥ ५६ ॥

नरोत्तमौ केशवपाण्डुनन्दनौ
तदाहितावग्निदिवाकराविव।
रणाजिरे वीतभयौ विरेजतुः
समानयानाविव विष्णुवासवौ ॥ ५७ ॥

तदनन्तर नरश्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुन समराङ्गणमें रथपर आरूढ़ हो अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी एक ही वाहनपर बैठे हुए भगवान् विष्णु और इन्द्रके सदृश भयरहित हो विशेष शोभा पाने लगे। वे जिस रथसे यात्रा करते थे, उससे मेघसमूहोंकी गर्जनाके समान गम्भीर ध्वनि होती थी, वह रथ शरत्कालके मध्याह्नकालीन सूर्यके समान तेजसे उद्दीप्त हो रहा था, उसपर पताका फहराती थी और उसकी ध्वजापर भयानक शब्द करनेवाला वानर बैठा था। उसकी कान्ति हिम, चन्द्रमा, शङ्ख और स्फटिकमणिके समान सुन्दर थी। वह रथ वेगमें अपना सानी नहीं रखता था और देवराज इन्द्रके रथके समान तीव्रगामी था। उसपर बैठे हुए दोनों नरश्रेष्ठ देवराज इन्द्रके समान शक्तिशाली और पुरुषार्थी थे तथा सुवर्ण, मुक्ता, मणि, हीरे और मूँगेके बने हुए आभूषण उनके श्रीअङ्गोंकी शोभा बढ़ाते थे ॥ ५५—५७ ॥

ततो धनुर्ज्यातलबाणनिःस्वनैः
प्रसह्य कृत्वा च रिपून् हतप्रभान्।
संछादयित्वा तु कुरूञ्शरोत्तमैः
कपिध्वजः पक्षिवरध्वजश्च ॥ ५८ ॥

हृष्टौ ततस्तावमितप्रभावौ
मनांस्यरीणामवदारयन्तौ।
सुवर्णजालावततौ महास्वनौ
हिमावदातौ परिगृह्य पाणिभिः।
चुचुम्बतुः शङ्खवरौ नृणां वरौ
वराननाभ्यां युगपच्च दध्मतुः ॥ ५९ ॥

तत्पश्चात् धनुषकी प्रत्यञ्चा, हथेली और बाणके शब्दोंसे शत्रुओंको बलपूर्वक श्रीहीन करके, उत्तम बाणोंद्वारा कौरव-सैनिकोंको ढककर अमित प्रभावशाली नरश्रेष्ठ गरुडध्वज श्रीकृष्ण और कपिध्वज अर्जुन हर्षमें भरकर, विपक्षियोंका हृदय विदीर्ण करते हुए हाथोंमें दो श्रेष्ठ शङ्ख ले उन्हें अपने सुन्दर मुखोंसे एक ही साथ चूमने और बजाने लगे। उनके वे दोनों शङ्ख सोनेकी जालीसे आवृत, बर्फके समान सफेद और महान् शब्द करनेवाले थे ॥ ५८-५९ ॥

पाञ्चजन्यस्य निर्घोषो देवदत्तस्य चोभयोः।
पृथिवीं चान्तरिक्षं च दिशश्चैवान्वनादयत् ॥ ६० ॥

पाञ्चजन्य तथा देवदत्त दोनों शङ्खोंकी गम्भीर ध्वनिने

पृथ्वी, आकाश तथा सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित कर दिया ॥

वित्रस्ताश्चाभवन् सर्वे कौरवा राजसत्तम।
शङ्खशब्देन तेनाथ माधवस्यार्जुनस्य च ॥ ६१ ॥

नृपश्रेष्ठ ! श्रीकृष्ण और अर्जुनकी उस शङ्खध्वनिसे समस्त कौरव संत्रस्त हो उठे ॥ ६१ ॥

तौ शङ्खशब्देन निनादयन्तौ
वनानि शैलान् सरितो गुहाश्च।
वित्रासयन्तौ तव पुत्रसेनां
युधिष्ठिरं नन्दयतां वरिष्ठौ ॥ ६२ ॥

अपने शङ्खनादसे नदियों, पर्वतों, कन्दराओं तथा काननोंको प्रतिध्वनित करके आपके पुत्रकी सेनाको भयभीत करते हुए वे दोनों श्रेष्ठतम वीर युधिष्ठिरका आनन्द बढ़ाने लगे ॥

ततः प्रयाताः कुरवो जवेन
श्रुत्वैव शङ्खस्वनमीर्यमाणम्।
विहाय मद्राधिपतिं पतिं च
दुर्योधनं भारत भारतानाम् ॥ ६३ ॥

भारत ! उस शङ्खध्वनिको सुनते ही समस्त कौरवयोद्धा मद्रराज शल्य तथा भरतवंशियोंके अधिपति दुर्योधनको वहीं छोड़कर वेगपूर्वक भागने लगे ॥ ६३ ॥

महाहवे तं बहु रोचमानं
धनंजयं भूतगणाः समेताः।
तदान्वमोदन्त जनार्दनं च
दिवाकरावभ्युदितौ यथैव ॥ ६४ ॥

उस समय उदित हुए दो सूर्योंके समान उस महासमरमें प्रकाशित होनेवाले अत्यन्त कान्तिमान् अर्जुन तथा भगवान् श्रीकृष्णके पास आकर समस्त प्राणी उनके कार्यका अनुमोदन करने लगे ॥ ६४ ॥

समाचितौ कर्णशरैः परंतपा-
वुभौ व्यभातां समरेऽच्युतार्जुनौ।
तमो निहत्याभ्युदितौ यथामलौ
शशाङ्कसूर्यौ दिवि रश्मिमालिनौ ॥ ६५ ॥

समरभूमिमें कर्णके बाणोंसे व्याप्त हुए वे दोनों शत्रुसंतापी श्रीकृष्ण और अर्जुन अन्धकारका नाश करके आकाशमें उदित हुए निर्मल अंशुमाली सूर्य और चन्द्रमाके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ ६५ ॥

विहाय तान् बाणगणानथागतौ
सुहृद्वृतावप्रतिमानविक्रमौ।
सुखं प्रविष्टौ शिबिरं स्वमीश्वरौ
सदस्यनिन्द्राविव विष्णुवासवौ ॥ ६६ ॥

उन बाणोंको निकालकर वे अनुपम पराक्रमी सर्वसमर्थ श्रीकृष्ण और अर्जुन सुहृदोंसे घिरे हुए छावनीपर आये और यज्ञमें पदार्पण करनेवाले भगवान् विष्णु तथा इन्द्रके समान वे दोनों ही सुखपूर्वक शिबिरके भीतर प्रविष्ट हुए ॥

तौ देवगन्धर्वमनुष्यचारणै-
र्महर्षिभिर्यक्षमहोरगैरपि।
जयाभिवृद्ध्या परयाभिपूजितौ
हते तु कर्णे परमाहवे तदा ॥ ६७ ॥

उस महासमरमें कर्णके मारे जानेपर देवता, गन्धर्व, मनुष्य, चारण, महर्षि, यक्ष तथा बड़े-बड़े नागोंने भी 'आपकी जय हो, वृद्धि हो' ऐसा कहते हुए बड़ी श्रद्धासे उन दोनोंका समादर किया ॥ ६७ ॥

यथानुरूपं प्रतिपूजितावुभौ
प्रशस्यमानौ स्वकृतैर्गुणौघैः।
ननन्दतुस्तौ ससुहृद्गणौ तदा
बलं नियम्येव सुरेशकेशवौ ॥ ६८ ॥

जैसे बलासुरका दमन करके देवराज इन्द्र और भगवान् विष्णु अपने सुहृदोंके साथ आनन्दित हुए थे, उसी प्रकार श्रीकृष्ण और अर्जुन कर्णका वध करके यथायोग्य पूजित तथा अपने उपार्जित गुण-समूहोंद्वारा भूरि-भूरि प्रशंसित हो हितैषी-सम्बन्धियोंसहित बड़े हर्षका अनुभव करने लगे ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि रणभूमिवर्णनं नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें रणभूमिका वर्णनविषयक चौरानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९४ ॥

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

कौरवसेनाका शिबिरकी ओर पलायन और शिबिरोंमें प्रवेश

संजय उवाच

हते वैकर्तने राजन् कुरवो भयपीडिताः।
वीक्षमाणा दिशः सर्वाः पर्यपेतुः सहस्रशः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! वैकर्तन कर्णके मारे जानेपर भयसे पीड़ित हुए सहस्रों कौरव योद्धा सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर देखते हुए भाग निकले ॥ १ ॥

कर्णं तु निहतं दृष्ट्वा शत्रुभिः परमाहवे।
भीता दिशो व्यकीर्यन्त तावकाः क्षतविक्षताः ॥ २ ॥

शत्रुओंने उस महायुद्धमें वैकर्तन कर्णको मार डाला है, यह देखकर आपके सैनिक भयभीत हो उठे थे। उनका सारा शरीर घावोंसे भर गया था। इसलिये वे भागकर सम्पूर्ण दिशाओंमें बिखर गये ॥ २ ॥

ततोऽवहारं चक्रुस्ते योधाः सर्वे समन्ततः।
निवार्यमाणाश्चोद्विग्नास्तावका भृशदुःखिताः ॥ ३ ॥

तब आपके समस्त योद्धा जो अत्यन्त दुखी और उद्विग्न हो रहे थे, मना करनेपर सब ओरसे युद्ध बंद करके लौटने लगे ॥

तेषां तन्मतमाज्ञाय पुत्रो दुर्योधनस्तव।
अवहारं ततश्चक्रे शल्यस्यानुमते नृप ॥ ४ ॥

नरेश्वर ! उन सबका अभिप्राय जानकर राजा शल्यकी अनुमति ले आपके पुत्र दुर्योधनने सेनाको लौटनेकी आज्ञा दी॥

कृतवर्मा रथैस्तूर्णं वृतो भारत तावकैः।
नारायणावशेषैश्च शिबिरायैव दुद्रुवे ॥ ५ ॥

भारत ! नारायणी-सेनाके जो वीर शेष रह गये थे, उनसे तथा आपके अन्य रथी योद्धाओंसे घिरा हुआ कृतवर्मा भी तुरंत शिबिरकी ओर ही भाग चला ॥ ५ ॥

गान्धाराणां सहस्रेण शकुनिः परिवारितः।
हतमाधिरथिं दृष्ट्वा शिबिरायैव दुद्रुवे ॥ ६ ॥

सहस्रों गान्धार योद्धाओंसे घिरा हुआ शकुनि भी अधिरथपुत्र कर्णको मारा गया देख छावनीकी ओर ही भागा ॥

कृपः शारद्वतो राजन् नागानीकेन भारत।
महामेघनिभेनाशु शिबिरायैव दुद्रुवे ॥ ७ ॥

भरतवंशी नरेश ! शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य मेघोंकी घटाके समान अपनी गजसेनाके साथ शीघ्रतापूर्वक शिबिरकी ओर ही भाग चले ॥ ७ ॥

अश्वत्थामा ततः शूरो विनिःश्वस्य पुनः पुनः।
पाण्डवानां जयं दृष्ट्वा शिबिरायैव दुद्रुवे ॥ ८ ॥

तदनन्तर शूरवीर अश्वत्थामा पाण्डवोंकी विजय देख बारंबार उच्छ्‌वास लेता हुआ छावनीकी ओर ही भागने लगा॥

संशप्तकावशिष्टेन बलेन महता वृतः।
सुशर्मापि ययौ राजन् वीक्षमाणो भयार्दितः ॥ ९ ॥

राजन् ! संशप्तकोंकी बची हुई विशाल सेनासे घिरा हुआ सुशर्मा भी भयसे पीड़ित हो इधर-उधर देखता हुआ छावनीकी ओर चल दिया ॥ ९ ॥

दुर्योधनोऽपि नृपतिर्हतसर्वस्वबान्धवः।
ययौ शोकसमाविष्टश्चिन्तयन् विमना बहु ॥ १० ॥

जिसके भाई नष्ट हो गये थे और सर्वस्व लुट गया था, वह राजा दुर्योधन भी शोकमग्न, उदास और विशेष चिन्तित होकर शिबिरकी ओर चल पड़ा ॥ १० ॥

छिन्नध्वजेन शल्यस्तु रथेन रथिनां वरः।
प्रययौ शिबिरायैव वीक्षमाणो दिशो दश ॥ ११ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ राजा शल्यने भी जिसकी ध्वजा कट गयी थी, उस रथके द्वारा दसों दिशाओंकी ओर देखते हुए छावनीकी ओर ही प्रस्थान किया ॥ ११ ॥

ततोऽपरे सुबहवो भरतानां महारथाः।
प्राद्रवन्त भयत्रस्ता ह्रियाविष्टा विचेतसः ॥ १२ ॥

भरतवंशियोंके दूसरे-दूसरे बहुसंख्यक महारथी भी भयभीत, लज्जित और अचेत होकर शिबिरकी ओर दौड़े ॥ १२ ॥

असृक् क्षरन्तः सोद्विग्ना वेपमानास्तथातुराः।
कुरवो दुद्रुवुः सर्वे दृष्ट्वा कर्णं निपातितम् ॥ १३ ॥

कर्णको मारा गया देख सभी कौरव-सैनिक खून बहाते और काँपते हुए उद्विग्न तथा आतुर होकर छावनीकी ओर भागने लगे ॥ १३ ॥

प्रशंसन्तोऽर्जुनं केचित् केचित् कर्णं महारथाः।
व्यद्रवन्त दिशो भीताः कुरवः कुरुसत्तम ॥ १४ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! कौरव-महारथियोंमेंसे कुछ लोग अर्जुनकी प्रशंसा करते थे और कुछ कर्णकी। वे सब-के-सब भयभीत होकर चारों दिशाओंमें भाग खड़े हुए ॥ १४ ॥

तेषां योधसहस्राणां तावकानां महामृधे।
नासीत्तत्र पुमान् कश्चिद् यो युद्धाय मनो दधे ॥ १५ ॥

आपके उन हजारों योद्धाओंमें वहाँ कोई भी ऐसा पुरुष नहीं था, जो अपने मनमें उस महासमरमें युद्धके लिये उत्साह रखता हो ॥ १५ ॥

हते कर्णे महाराज निराशाः कुरवोऽभवन्।
जीवितेष्वपि राज्येषु दारेषु च धनेषु च ॥ १६ ॥

महाराज ! कर्णके मारे जानेपर कौरव अपने राज्यसे, धनसे, स्त्रियोंसे और जीवनसे भी निराश हो गये ॥ १६ ॥

तान् समानीय पुत्रस्ते यत्नेन महता विभुः।
निवेशाय मनो दध्रे दुःखशोकसमन्वितः ॥ १७ ॥

दुःख और शोकमें डूबे हुए आपके पुत्र राजा दुर्योधनने बड़े यत्नसे उन सबको साथ ले आकर छावनीमें विश्राम करनेका विचार किया ॥ १७ ॥

तस्याज्ञां शिरसा योधाः परिगृह्य विशाम्पते।
विवर्णवदना राजन् न्यविशन्त महारथाः ॥ १८ ॥

प्रजानाथ ! वे सब महारथी योद्धा दुर्योधनकी आज्ञा शिरोधार्य करके शिबिरमें प्रविष्ट हुए। उन सबके मुखोंकी कान्ति फीकी पड़ गयी थी ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि शिबिरप्रयाणे पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें कौरव-सेनाका शिबिरकी ओर प्रस्थानविषयक पञ्चानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९५ ॥

षण्णवतितमोऽध्यायः

युधिष्ठिरका रणभूमिमें कर्णको मारा गया देखकर प्रसन्न हो श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा करना, धृतराष्ट्रका शोकमग्न होना तथा कर्णपर्वके श्रवणकी महिमा

संजय उवाच

तथा निपतिते कर्णे परसैन्ये च विद्रुते।
आश्लिष्य पार्थं दाशार्हो हर्षाद् वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! जब कर्ण मारा गया और शत्रुसेना भाग चली, तब दशार्हनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनको हृदयसे लगाकर बड़े हर्षके साथ इस प्रकार बोले—॥

हतो वज्रभृता वृत्रस्त्वया कर्णो धनंजय।
वृत्रकर्णवधं घोरं कथयिष्यन्ति मानवाः॥ २॥

'धनंजय! पूर्वकालमें वज्रधारी इन्द्रने वृत्रासुरका वध किया था और आज तुमने कर्णको मारा है। वृत्रासुर और कर्ण दोनोंके वधका वृत्तान्त बड़ा भयंकर है। मनुष्य सदा इसकी चर्चा करते रहेंगे॥ २॥

वज्रेण निहतो वृत्रः संयुगे भूरितेजसा।
त्वया तु निहतः कर्णो धनुषा निशितैः शरैः॥ ३॥

'वृत्रासुर युद्धमें महातेजस्वी वज्रके द्वारा मारा गया था; परंतु तुमने कर्णको धनुष एवं पैने बाणोंसे ही मार डाला है॥

तमिमं विक्रमं लोके प्रथितं ते यशस्करम्।
निवेदयावः कौन्तेय कुरुराजस्य धीमतः॥ ४॥

'कुन्तीनन्दन! चलो, हम दोनों तुम्हारे इस विश्वविख्यात और यशोवर्धक पराक्रमका वृत्तान्त बुद्धिमान् कुरुराज युधिष्ठिरको बतावें॥ ४॥

वधं कर्णस्य संग्रामे दीर्घकालचिकीर्षितम्।
निवेद्य धर्मराजाय त्वमानृण्यं गमिष्यसि॥ ५॥

'उन्हें दीर्घकालसे युद्धमें कर्णके वधकी अभिलाषा थी। आज धर्मराजको यह समाचार बताकर तुम उऋण हो जाओगे॥

वर्तमाने महायुद्धे तव कर्णस्य चोभयोः।
द्रष्टुमायोधनं पूर्वमागतो धर्मनन्दनः॥ ६॥

'जब यह महायुद्ध चल रहा था, उस समय तुम्हारा और कर्णका युद्ध देखनेके लिये धर्मनन्दन युधिष्ठिर पहले आये थे॥

भृशं तु गाढविद्धत्वान्नाशकत् स्थातुमाहवे।
ततः स शिबिरं गत्वा स्थितवान् पुरुषर्षभः॥ ७॥

'परंतु गहरी चोट खानेके कारण वे देरतक युद्धस्थलमें ठहर न सके। यहाँसे शिविरमें जाकर वे पुरुषप्रवर युधिष्ठिर विश्राम कर रहे हैं'॥ ७॥

तथेत्युक्तः केशवस्तु पार्थेन यदुपुङ्गवः।
पर्यावर्तयदव्यग्रो रथं रथवरस्य तम्॥ ८॥

तब अर्जुनने केशवसे 'तथास्तु' कहकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य की। तत्पश्चात् यदुकुलतिलक श्रीकृष्णने शान्तभावसे रथिश्रेष्ठ अर्जुनके उस रथको युधिष्ठिरके शिविरकी ओर लौटाया॥

एवमुक्त्वार्जुनं कृष्णः सैनिकानिदमब्रवीत्।
परानभिमुखा यत्तास्तिष्ठध्वं भद्रमस्तु वः॥ ९॥

अर्जुनसे पूर्वोक्त बात कहकर भगवान् श्रीकृष्ण सैनिकोंसे इस प्रकार बोले—'वीरो! तुम्हारा कल्याण हो! तुम शत्रुओंका सामना करनेके लिये सदा प्रयत्नपूर्वक डटे रहना'॥ ९॥

धृष्टद्युम्नं युधामन्युं माद्रीपुत्रौ वृकोदरम्।
युयुधानं च गोविन्द इदं वचनमब्रवीत्॥ १०॥

इसके बाद गोविन्द धृष्टद्युम्न, युधामन्यु, नकुल, सहदेव, भीमसेन और सात्यकिसे इस प्रकार बोले—॥ १०॥

यावदावेद्यते राज्ञे हतः कर्णोऽर्जुनेन वै।
तावद्भवद्भिर्यत्तैस्तु भवितव्यं नराधिपैः॥ ११॥

'अर्जुनने कर्णको मार डाला' यह समाचार जबतक हमलोग राजा युधिष्ठिरसे निवेदन करते हैं, तबतक तुम सभी नरेशोंको यहाँ शत्रुओंकी ओरसे सावधान रहना चाहिये॥

स तैः शूरैरनुज्ञातो ययौ राजनिवेशनम्।
पार्थमादाय गोविन्दो ददर्श च युधिष्ठिरम्॥ १२॥

उन शूरवीरोंने उनकी आज्ञा स्वीकार करके जब जानेकी अनुमति दे दी, तब भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको साथ लेकर राजा युधिष्ठिरका दर्शन किया॥ १२॥

शयानं राजशार्दूलं काञ्चने शयनोत्तमे।
अगृह्णीतां च मुदितौ चरणौ पार्थिवस्य तौ॥ १३॥

उस समय नृपश्रेष्ठ युधिष्ठिर सोनेके उत्तम पलंगपर सो रहे थे। उन दोनोंने वहाँ पहुँचकर बड़ी प्रसन्नताके साथ राजाके चरण पकड़ लिये॥ १३॥

तयोः प्रहर्षमालक्ष्य हर्षादश्रूण्यवर्तयत्।
राधेयं निहतं मत्वा समुत्तस्थौ युधिष्ठिरः॥ १४॥

उन दोनोंके हर्षोल्लासको देखकर राजा युधिष्ठिर यह समझ गये कि राधापुत्र कर्ण मारा गया; अतः वे शय्यासे उठ खड़े हुए और नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाने लगे॥

उवाच च महाबाहुः पुनः पुनररिंदमः।
वासुदेवार्जुनौ प्रेम्णा तावुभौ परिषस्वजे॥ १५॥

शत्रुदमन महाबाहु युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण और अर्जुनसे बारंबार प्रेमपूर्वक बोलने और उन दोनोंको हृदयसे लगाने लगे॥

तत् तस्मै तद् यथावृत्तं वासुदेवः सहार्जुनः।
कथयामास कर्णस्य निधनं यदुपुङ्गवः॥ १६॥

उस समय अर्जुनसहित यदुकुलतिलक वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने कर्णके मारे जानेका सारा समाचार उन्हें यथावत्‌रूपसे कह सुनाया॥ १६॥

ईषदुत्स्मयमानस्तु कृष्णो राजानमब्रवीत्।
युधिष्ठिरं हतामित्रं कृताञ्जलिरथाच्युतः॥ १७॥

भगवान् श्रीकृष्ण हाथ जोड़कर किञ्चित् मुस्कराते हुए, जिनका शत्रु मारा गया था, उस राजा युधिष्ठिरसे इस प्रकार बोले—॥ १७॥

दिष्ट्या गाण्डीवधन्वा च पाण्डवश्च वृकोदरः।
त्वं चापि कुशली राजन् माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ॥ १८॥

'राजन्! बड़े सौभाग्यकी बात है कि गाण्डीवधारी अर्जुन, पाण्डव भीमसेन, पाण्डुकुमार माद्रीनन्दन नकुल-सहदेव और आप भी सकुशल हैं॥ १८॥

मुक्ता वीरक्षयादस्मात् संग्रामाल्लोमहर्षणात्।
क्षिप्रमुत्तरकालानि कुरु कार्याणि पाण्डव॥ १९॥

'आप सब लोग वीरोंका विनाश करनेवाले इस रोमाञ्चकारी संग्रामसे मुक्त हो गये। पाण्डुनन्दन! अब आगे जो कार्य करने हैं, उन्हें शीघ्र पूर्ण कीजिये॥ १९॥

हतो वैकर्तनो राजन् सूतपुत्रो महारथः।
दिष्ट्या जयसि राजेन्द्र दिष्ट्या वर्धसि भारत॥ २०॥

'राजन्! महारथी सूतपुत्र वैकर्तन कर्ण मारा गया, राजेन्द्र! सौभाग्यसे आप विजयी हो रहे हैं। भारत! आपकी वृद्धि हो रही है, यह परम सौभाग्यकी बात है ॥ २० ॥

यस्तु द्यूतजितां कृष्णां प्राहसत् पुरुषाधमः।
तस्याद्य सूतपुत्रस्य भूमिः पिबति शोणितम् ॥ २१ ॥

'जिस नराधमने जूएमें जीती हुई द्रौपदीका उपहास किया था, आज पृथ्वी उस सूतपुत्र कर्णका रक्त पी रही है ॥ २१ ॥

शेतेऽसौ शरपूर्णाङ्गः शत्रुस्ते कुरुपुङ्गव।
तं पश्य पुरुषव्याघ्र विभिन्नं बहुभिः शरैः ॥ २२ ॥

'कुरुपुङ्गव! आपका वह शत्रु रणभूमिमें सो रहा है और उसके सारे शरीरमें बाण भरे हुए हैं। नरव्याघ्र! अनेक बाणोंसे क्षत-विक्षत हुए उस कर्णको आप देखिये ॥ २२ ॥

हतामित्रामिमामुर्वीमनुशाधि महाभुज।
यत्तो भूत्वा सहास्माभिर्भुङ्क्ष्व भोगांश्च पुष्कलान् ॥ २३ ॥

'महाबाहो! आप सावधान होकर हम सब लोगोंके साथ इस निष्कंटक हुई पृथ्वीका शासन और प्रचुर भोगोंका उपभोग कीजिये' ॥ २३ ॥

संजय उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य केशवस्य महात्मनः।
धर्मपुत्रः प्रहृष्टात्मा दाशार्हं वाक्यमब्रवीत् ॥ २४ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! महात्मा श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर धर्मपुत्र युधिष्ठिरका चित्त प्रसन्न हो गया। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णसे वार्तालाप आरम्भ किया ॥ २४ ॥

दिष्ट्या दिष्ट्येति राजेन्द्र वाक्यं चेदमुवाच ह।
नैतच्चित्रं महाबाहो त्वयि देवकिनन्दन ॥ २५ ॥
त्वया सारथिना पार्थो यत्नवानहनच्च तम्।
न तच्चित्रं महाबाहो युष्मद्बुद्धिप्रसादजम् ॥ २६ ॥

राजेन्द्र! 'अहो भाग्य! अहो भाग्य!' ऐसा कहकर युधिष्ठिर इस प्रकार बोले—'महाबाहु देवकीनन्दन! आपके रहते यह महान् कार्य सम्पन्न होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। आप-जैसे सारथिके होते ही पार्थने प्रयत्नपूर्वक उसका वध किया है। महाबाहो! आपकी बुद्धिके प्रसादसे ऐसा होना आश्चर्य नहीं है' ॥ २५-२६ ॥

प्रगृह्य च कुरुश्रेष्ठ साङ्गदं दक्षिणं भुजम्।
उवाच धर्मभृत् पार्थ उभौ तौ केशवार्जुनौ ॥ २७ ॥

कुरुश्रेष्ठ! इसके बाद धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरने बाजूबंद-विभूषित श्रीकृष्णका दाहिना हाथ अपने हाथमें लेकर श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंसे कहा—॥ २७ ॥

नरनारायणौ देवौ कथितौ नारदेन मे।
धर्मात्मानौ महात्मानौ पुराणावृषिसत्तमौ ॥ २८ ॥

'प्रभो! देवर्षि नारदने मुझसे कहा था कि आप दोनों धर्मात्मा, महात्मा, पुराणपुरुष तथा ऋषिप्रवर साक्षात् भगवान् नर और नारायण हैं ॥ २८ ॥

असकृच्चापि मेधावी कृष्णद्वैपायनो मम।
कथामेतां महाभाग कथयामास तत्त्ववित् ॥ २९ ॥

'महाभाग! परम बुद्धिमान् तत्त्ववेत्ता महर्षि श्रीकृष्ण-द्वैपायनने भी बारंबार मुझसे यही बात कही है ॥ २९ ॥

तव कृष्ण प्रसादेन पाण्डवोऽयं धनंजयः।
जिगायाभिमुखः शत्रून् न चासीद् विमुखः क्वचित् ॥ ३० ॥

'श्रीकृष्ण! आपके प्रसादसे ही ये पाण्डुपुत्र धनंजय सदा सामने रहकर युद्धमें शत्रुओंपर विजयी हुए हैं और कभी युद्धसे मुँह नहीं मोड़ सके हैं ॥ ३० ॥

जयश्चैव ध्रुवोऽस्माकं न त्वस्माकं पराजयः।
यदा त्वं युधि पार्थस्य सारथ्यमुपजग्मिवान् ॥ ३१ ॥

'प्रभो! जब आप युद्धमें अर्जुनके सारथि बने थे, तभी हमें यह विश्वास हो गया था कि हमलोगोंकी विजय निश्चित है, अटल है। हमारी पराजय नहीं हो सकती ॥ ३१ ॥

भीष्मो द्रोणश्च कर्णश्च महात्मा गौतमः कृपः।
अन्ये च बहवः शूरा ये च तेषां पदानुगाः ॥ ३२ ॥
त्वद्बुद्ध्या निहते कर्णे हता गोविन्द सर्वथा।

'गोविन्द! भीष्म, द्रोण, कर्ण, महात्मा गौतमवंशी कृपाचार्य तथा इनके पीछे चलनेवाले जो और भी बहुत-से शूरवीर हैं और रहे हैं, आपकी बुद्धिसे आज कर्णके मारे जानेपर उन सबका वध हो गया, ऐसा मैं मानता हूँ' ३२½

इत्युक्त्वा धर्मराजस्तु रथं हेमविभूषितम् ॥ ३३ ॥
श्वेतवर्णैर्हयैर्युक्तं कालवालैर्मनोजवैः।
आस्थाय पुरुषव्याघ्रः स्वबलेनाभिसंवृतः ॥ ३४ ॥
प्रययौ स महाबाहुर्द्रष्टुमायोधनं तदा।
कृष्णार्जुनाभ्यां वीराभ्यामनुमन्त्र्य ततः प्रियम् ॥ ३५ ॥
आभाषमाणस्तौ वीरावुभौ माधवफाल्गुनौ।
स ददर्श रणे कर्णं शयानं पुरुषर्षभम् ॥ ३६ ॥

ऐसा कहकर पुरुषसिंह महाबाहु धर्मराज युधिष्ठिर श्वेत-वर्ण और काली पूँछवाले, मनके समान वेगशाली घोड़ोंसे जुते हुए सुवर्णभूषित रथपर आरूढ़ हो अपनी सेनाके साथ युद्ध देखनेके लिये चले। श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों वीरोंके साथ प्रिय विषयपर परामर्श और उनसे वार्तालाप करते हुए युधिष्ठिरने रणभूमिमें सोये हुए पुरुषप्रवर कर्णको देखा ॥ ३३-३६ ॥

यथा कदम्बकुसुमं केसरैः सर्वतो वृतम्।
चितं शरशतैः कर्णं धर्मराजो ददर्श सः ॥ ३७ ॥

जैसे कदम्बका फूल सब ओरसे केसरोंसे भरा होता है, उसी प्रकार कर्णका शरीर सैकड़ों बाणोंसे व्याप्त था। धर्मराज युधिष्ठिरने इसी अवस्थामें उसे देखा ॥ ३७ ॥

गन्धतैलावसिक्ताभिः काञ्चनीभिः सहस्रशः।
दीपिकाभिः कृतोद्योतं पश्यते वै वृषं तदा ॥ ३८ ॥

उस समय सुगन्धित तेलसे भरे हुए सहस्रों सोनेके दीपक जलाकर प्रकाश किया गया था। उसी उजालेमें वे धर्मात्मा कर्णको देख रहे थे ॥ ३८ ॥

संछिन्नभिन्नकवचं बाणैश्च विदलीकृतम्।
सपुत्रं निहतं दृष्ट्वा कर्णं राजा युधिष्ठिरः ॥ ३९ ॥
संजातप्रत्ययोऽतीव वीक्ष्य चैवं पुनः पुनः।
प्रशशंस नरव्याघ्रावुभौ माधवपाण्डवौ ॥ ४० ॥

उसका कवच छिन्न-भिन्न हो गया था और सारा शरीर बाणोंसे विदीर्ण हो चुका था। उस अवस्थामें पुत्रसहित मरे हुए कर्णको देखकर बारंबार उसका निरीक्षण करके राजा युधिष्ठिरको इस बातपर पूरा-पूरा विश्वास हुआ। फिर वे पुरुषसिंह श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ॥ ३९-४० ॥

अद्य राजास्मि गोविन्द पृथिव्यां भ्रातृभिः सह।
त्वया नाथेन वीरेण विदुषा परिपालितः ॥ ४१ ॥

उन्होंने कहा—'गोविन्द ! आप-जैसे विद्वान् और वीर स्वामी एवं संरक्षकके द्वारा सुरक्षित होकर आज मैं भाइयोंसहित इस भूमण्डलका राजा हो गया ॥ ४१ ॥

हतं श्रुत्वा नरव्याघ्रं राधेयमतिमानिनम्।
निराशोऽद्य दुरात्मासौ धार्तराष्ट्रो भविष्यति॥ ४२ ॥
जीविते चैव राज्ये च हते राधात्मजे रणे।
त्वत्प्रसादाद् वयं चैव कृतार्थाः पुरुषर्षभ ॥ ४३ ॥

'आज दुरात्मा धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन अत्यन्त अभिमानी नरव्याघ्र राधापुत्र कर्णके मारे जानेका वृत्तान्त सुनकर राज्य और जीवनसे भी निराश हो जायगा। पुरुषोत्तम ! आपकी कृपासे रणभूमिमें राधापुत्र कर्णके मारे जानेपर हम सब लोग कृतार्थ हो गये ॥ ४२-४३ ॥

दिष्ट्या जयसि गोविन्द दिष्ट्या शत्रुर्निपातितः।
दिष्ट्या गाण्डीवधन्वा च विजयी पाण्डुनन्दनः॥ ४४॥

'गोविन्द ! बड़े भाग्यसे आपकी विजय हुई है। भाग्यसे ही हमारा शत्रु कर्ण आज मार गिराया गया है और सौभाग्यसे ही गाण्डीवधारी पाण्डुनन्दन अर्जुन विजयी हुए हैं ॥

त्रयोदश समास्तीर्णा जागरेण सुदुःखिताः।
स्वप्स्यामोऽद्य सुखं रात्रौ त्वत्प्रसादान्महाभुज॥४५॥

'महाबाहो ! अत्यन्त दुखी होकर हमलोगोंने जागते हुए तेरह वर्ष व्यतीत किये हैं। आजकी रातमें आपकी कृपासे हमलोग सुखपूर्वक सो सकेंगे' ॥ ४५ ॥

संजय उवाच

एवं स बहुशो राजा प्रशशंस जनार्दनम्।
अर्जुनं च कुरुश्रेष्ठं धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ४६ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार धर्मराज राजा युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्ण तथा कुरुश्रेष्ठ अर्जुनकी बारंबार प्रशंसा की ॥ ४६ ॥

दृष्ट्वा च निहतं कर्णं सपुत्रं पार्थसायकैः।
पुनर्जातमिवात्मानं मेने च स महीपतिः ॥ ४७ ॥

पुत्रसहित कर्णको अर्जुनके बाणोंसे मारा गया देख राजा युधिष्ठिरने अपना नया जन्म हुआ-सा माना ॥ ४७ ॥

समेत्य च महाराज कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्।
हर्षयन्ति स्म राजानं हर्षयुक्ता महारथाः ॥ ४८ ॥

महाराज ! उस समय हर्षमें भरे हुए पाण्डवपक्षके महारथी कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरसे मिलकर उनका हर्ष बढ़ाने लगे ॥ ४८ ॥

नकुलः सहदेवश्च पाण्डवश्च वृकोदरः।
सात्यकिश्च महाराज वृष्णीनां प्रवरो रथः ॥ ४९ ॥
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च पाण्डुपाञ्चालसृञ्जयाः।
पूजयन्ति स्म कौन्तेयं निहते सूतनन्दने ॥ ५० ॥

राजेन्द्र ! नकुल-सहदेव, पाण्डुपुत्र भीमसेन, वृष्णिवंशके श्रेष्ठ महारथी सात्यकि, धृष्टद्युम्न और शिखण्डी आदि पाण्डव, पाञ्चाल तथा सृंजय योद्धा सूतपुत्र कर्णके मारे जानेपर कुन्तीकुमार अर्जुनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ४९-५० ॥

ते वर्धयित्वा नृपतिं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम्।
जितकाशिनो लब्धलक्ष्या युद्धशौण्डाः प्रहारिणः॥५१॥
स्तुवन्तः स्तवयुक्ताभिर्वाग्भिः कृष्णौ परंतपौ।
जग्मुः स्वशिबिरायैव मुदा युक्ता महारथाः ॥ ५२ ॥

वे विजयसे उल्लसित हो रहे थे। उनका लक्ष्य सिद्ध हो गया था। वे युद्धकुशल महारथी योद्धा धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरको बधाई देकर स्तुतियुक्त वचनोंद्वारा शत्रुसंतापी श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा करते हुए बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने शिबिरको गये॥ ५१-५२ ॥

एवमेष क्षयो वृत्तः सुमहाँल्लोमहर्षणः।
तव दुर्मन्त्रिते राजन् किमर्थमनुशोचसि ॥ ५३ ॥

राजन् ! इस प्रकार आपकी ही कुमन्त्रणाके फलस्वरूप यह रोमाञ्चकारी महान् जनसंहार हुआ है। अब आप किसलिये बारंबार शोक करते हैं ?॥ ५३ ॥

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वैतदप्रियं राजा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः।
पपात भूमौ निश्चेष्टश्छिन्नमूल इव द्रुमः ॥ ५४ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! यह अप्रिय समाचार सुनकर अम्बिकानन्दन राजा धृतराष्ट्र निश्चेष्ट हो जड़से कटे हुए वृक्षकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ५४ ॥

तथा सा पतिता देवी गान्धारी दीर्घदर्शिनी।
शुशोच बहुलालापैः कर्णस्य निधनं युधि ॥ ५५ ॥

इसी तरह दूरतक सोचनेवाली गान्धारी देवी भी पछाड़ खाकर गिरीं और बहुत विलाप करती हुई युद्धमें कर्णकी मृत्युके लिये शोक करने लगीं ॥ ५५ ॥

तां पर्यगृह्णाद् विदुरो नृपतिं संजयस्तथा।
पर्याश्वासयतां चैव तावुभावेव भूमिपम् ॥ ५६ ॥

उस समय विदुरजीने गान्धारी देवीको और संजयने

राजा धृतराष्ट्रको सँभाला । फिर दोनों ही मिलकर राजाको समझाने-बुझाने लगे ॥ ५६ ॥

तथैवोत्थापयामासुर्गान्धारीं कुरुयोषितः ।
स दैवं परमं मत्वा भवितव्यं च पार्थिवः ॥ ५७ ॥
परां पीडां समाश्रित्य नष्टचित्तो महातपाः ।
चिन्ताशोकपरीतात्मा न जज्ञे मोहपीडितः ।
स समाश्वासितो राजा तूर्णीमासीद् विचेतनः॥ ५८ ॥

इसी प्रकार कुरुकुलकी स्त्रियोंने आकर गान्धारी देवीको उठाया । भाग्य और भवितव्यताको ही प्रबल मानकर राजा धृतराष्ट्र भारी व्यथाका अनुभव करने लगे । उनकी विवेकशक्ति नष्ट हो गयी । वे महातपस्वी नरेश चिन्ता और शोकमें डूब गये और मोहसे पीड़ित होनेके कारण उन्हें किसी भी बातकी सुध न रही । विदुर और संजयके समझानेपर राजा धृतराष्ट्र अचेत-से होकर चुपचाप बैठे रह गये ॥ ५७-५८ ॥

श्रवणमहिमा

इमं महायुद्धमखं महात्मनो-
धनंजयस्याधिरथेश्च यः पठेत् ।
स सम्यगिष्टस्य मखस्य यत् फलं
तदाप्नुयात् संश्रवणाच्च भारत ॥ ५९ ॥

भारत ! जो मनुष्य महात्मा अर्जुन और कर्णके इस महायुद्धरूपी यज्ञका पाठ अथवा श्रवण करेगा, वह विधि-पूर्वक किये हुए यज्ञानुष्ठानका फल प्राप्त कर लेगा ॥ ५९ ॥

मखो हि विष्णुर्भगवान् सनातनो
वदन्ति तच्चाग्न्यनिलेन्दुभानवः ।
अतोऽनसूयुः शृणुयात् पठेच्च यः
स सर्वलोकानुचरः सुखी भवेत्॥ ६० ॥

सनातन भगवान् विष्णु यज्ञस्वरूप हैं, इस बातको अग्नि, वायु, चन्द्रमा और सूर्य भी कहते हैं । अतः जो मनुष्य दोष-दृष्टिका परित्याग करके इस युद्धयज्ञका वर्णन पढ़ता या सुनता है, वह सम्पूर्ण लोकोंमें विचरनेवाला और सुखी होता है[1]॥

तां सर्वदा भक्तिमुपागता नराः
पठन्ति पुण्यां वरसंहितामिमाम् ।
धनेन धान्येन यशसा च मानुषा
नन्दन्ति ते नात्र विचारणास्ति ॥ ६१ ॥

जो मनुष्य सदा भक्तिभावसे इस उत्तम एवं पुण्यमयी संहिताका पाठ करते हैं, वे धन-धान्य एवं यशसे सम्पन्न हो आनन्दके भागी होते हैं । इस बातमें कोई अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ६१ ॥

अतोऽनसूयुः शृणुयात् सदा तु वै
नरः स सर्वाणि सुखानि चाप्नुयात् ।
विष्णुः स्वयंभूर्भगवान् भवश्च
तुष्यन्ति ते तस्य नरोत्तमस्य ॥ ६२ ॥

अतः जो मनुष्य दोषदृष्टिसे रहित होकर सदा इस संहिताको सुनता है, वह सम्पूर्ण सुखोंको प्राप्त कर लेता है, उस श्रेष्ठ मनुष्यपर भगवान् विष्णु, ब्रह्मा और महादेवजी भी प्रसन्न होते हैं ॥ ६२ ॥

वेदावाप्तिर्ब्राह्मणस्येह दृष्टा
रणे बलं क्षत्रियाणां जयो युधि ।
धनज्येष्ठाश्चापि भवन्ति वैश्याः
शूद्राऽऽरोग्यं प्राप्नुवन्तीह सर्वे॥ ६३ ॥

इसके पढ़ने और सुननेसे ब्राह्मणोंको वेदोंका ज्ञान प्राप्त होता है, क्षत्रियोंको बल और युद्धमें विजय प्राप्त होती है, वैश्य धनमें बढ़े-चढ़े हो जाते हैं और समस्त शूद्र आरोग्य लाभ करते हैं ॥ ६३ ॥

तथैव विष्णुर्भगवान् सनातनः
स चात्र देवः परिकीर्त्यते यतः ।
ततः स कामाल्लँभते सुखी नरो
महामुनेस्तस्य वचोऽर्चितं यथा॥ ६४ ॥

इसमें सनातन भगवान् विष्णु (श्रीकृष्ण) की महिमाका वर्णन किया गया है; अतः मनुष्य इसके स्वाध्यायसे सुखी होकर सम्पूर्ण मनोवाञ्छित कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। महामुनि व्यासदेवकी इस परम पूजित वाणीका ऐसा ही प्रभाव है ॥ ६४ ॥

कपिलानां सवत्सानां वर्षमेकं निरन्तरम् ।
यो दद्यात् सुकृतं तद्धि श्रवणात् कर्णपर्वणः॥ ६५ ॥

लगातार एक वर्षतक प्रतिदिन जो बछड़ोंसहित कपिला गौओंका दान करता है, उसे जिस पुण्यकी प्राप्ति होती है, वही कर्णपर्वके श्रवणमात्रसे मिल जाता है ॥ ६५ ॥

इति श्रीमहाभारते कर्णपर्वणि युधिष्ठिरहर्षे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत कर्णपर्वमें युधिष्ठिरका हर्षविषयक छानबेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९६ ॥

॥ कर्णपर्व सम्पूर्णम् ॥

	अनुष्टुप्	बड़े श्लोक	बड़े श्लोकोंको अनुष्टुप् माननेपर	कुल
उत्तर भारतीय पाठसे लिये गये	४०९२॥	(९०७॥)	१२४७॥।	५३४०।
दक्षिण भारतीय पाठसे लिये गये	१२५॥	(२८)	३८॥	१६४
			कर्णपर्वकी कुल श्लोक-संख्या	५५०४।

[1] 'सर्वलोकानुचरः' का यह अर्थ भी हो सकता है कि सब लोग उसके अनुचर हो जाते हैं ।

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमहाभारतम्

शल्यपर्व

प्रथमोऽध्यायः

संजयके मुखसे शल्य और दुर्योधनके वधका वृत्तान्त सुनकर राजा धृतराष्ट्रका मूर्च्छित होना और सचेत होनेपर उन्हें विदुरका आश्वासन देना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उन लीलाओंका संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय (महाभारत) का पाठ करना चाहिये ॥

जनमेजय उवाच

एवं निपातिते कर्णे समरे सव्यसाचिना।
अल्पावशिष्टाः कुरवः किमकुर्वत वै द्विज॥ १॥

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! जब इस प्रकार समराङ्गणमें सव्यसाची अर्जुनने कर्णको मार गिराया, तब थोड़े-से बचे हुए कौरवसैनिकोंने क्या किया? ॥ १ ॥

उदीर्यमाणं च बलं दृष्ट्वा राजा सुयोधनः।
पाण्डवैः प्राप्तकालं च किं प्रापद्यत कौरवः॥ २॥

पाण्डवोंका बल बढ़ता देखकर कुरुवंशी राजा दुर्योधनने उनके साथ कौन-सा समयोचित बर्ताव करनेका निश्चय किया?॥

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं तदाचक्ष्व द्विजोत्तम।
न हि तृप्यामि पूर्वेषां शृण्वानश्चरितं महत्॥ ३॥

द्विजश्रेष्ठ! मैं यह सब सुनना चाहता हूँ। मुझे अपने पूर्वजोंका महान् चरित्र सुनते-सुनते तृप्ति नहीं हो रही है, अतः आप इसका वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततः कर्णे हते राजन् धार्तराष्ट्रः सुयोधनः।
भृशं शोकार्णवे मग्नो निराशः सर्वतोऽभवत्॥ ४॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! कर्णके मारे जानेपर धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधन शोकके समुद्रमें डूब गया और सब ओरसे निराश हो गया ॥ ४ ॥

हा कर्ण हा कर्ण इति शोचमानः पुनः पुनः।
कृच्छ्रात् स्वशिबिरं प्राप्तो हतशेषैर्नृपैः सह॥ ५॥

'हा कर्ण! हा कर्ण!' ऐसा कहकर बारंबार शोकग्रस्त हो मरनेसे बचे हुए नरेशोंके साथ वह बड़ी कठिनाईसे अपने शिविरमें आया ॥ ५ ॥

स समाश्वास्यमानोऽपि हेतुभिः शास्त्रनिश्चितैः।
राजभिर्नालभच्छर्म सूतपुत्रवधं स्मरन्॥ ६॥

राजाओंने शास्त्रनिश्चित युक्तियोंद्वारा उसे बहुत समझाया-बुझाया तो भी सूतपुत्रके वधका स्मरण करके उसे शान्ति नहीं मिली ॥ ६ ॥

स दैवं बलवन्मत्वा भवितव्यं च पार्थिवः।
संग्रामे निश्चयं कृत्वा पुनर्युद्धाय निर्ययौ॥ ७॥

उस राजा दुर्योधनने दैव और भवितव्यताको प्रबल मानकर संग्राम जारी रखनेका ही दृढ़ निश्चय करके पुनः युद्धके लिये प्रस्थान किया ॥ ७ ॥

शल्यं सेनापतिं कृत्वा विधिवद् राजपुङ्गवः।
रणाय निर्ययौ राजा हतशेषैर्नृपैः सह॥ ८॥

नृपश्रेष्ठ राजा दुर्योधन शल्यको विधिपूर्वक सेनापति बनाकर मरनेसे बचे हुए राजाओंके साथ युद्धके लिये निकला॥

ततः सुतुमुलं युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः।
बभूव भरतश्रेष्ठ देवासुररणोपमम्॥ ९॥

भरतश्रेष्ठ! तदनन्तर कौरव-पाण्डव सेनाओंमें घोर युद्ध हुआ, जो देवासुर-संग्रामके समान भयंकर था ॥ ९ ॥

ततः शल्यो महाराज कृत्वा कदनमाहवे।
ससैन्योऽथ स मध्याह्ने धर्मराजेन घातितः॥ १०॥

महाराज! तत्पश्चात् सेनासहित शल्य युद्धमें बड़ा भारी संहार मचाकर मध्याह्नकालमें धर्मराज युधिष्ठिरके हाथसे मारे गये ॥ १० ॥

ततो दुर्योधनो राजा हतबन्धू रणाजिरात्।
अपसृत्य ह्रदं घोरं विवेश रिपुजाद् भयात्॥ ११॥

तदनन्तर राजा दुर्योधन अपने भाइयोंके मारे जानेपर समराङ्गणसे दूर जाकर शत्रुके भयसे भयंकर तालाबमें घुस गया ॥ ११ ॥

अथापराह्ने तस्याह्नः परिवार्य सुयोधनः ।
ह्रदादाहूय युद्धाय भीमसेनेन पातितः ॥ १२ ॥

इसके बाद उसी दिन अपराह्णकालमें दुर्योधनपर घेरा डालकर उसे युद्धके लिये तालाबसे बुलाकर भीमसेनने मार गिराया ॥ १२ ॥

तस्मिन् हते महेष्वासे हतशिष्टास्त्रयो रथाः ।
संरम्भान्निशि राजेन्द्र जघ्नुः पाञ्चालसोमकान् ॥ १३ ॥

राजेन्द्र ! उस महाधनुर्धर दुर्योधनके मारे जानेपर मरनेसे बचे हुए तीन रथी—कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामाने रातमें सोते समय पाञ्चालों और सोमकोंको रोषपूर्वक मार डाला ॥ १३ ॥

ततः पूर्वाह्णसमये शिबिरादेत्य संजयः ।
प्रविवेश पुरीं दीनो दुःखशोकसमन्वितः ॥ १४ ॥

तत्पश्चात् पूर्वाह्णकालमें दुःख और शोकमें डूबे हुए संजयने शिबिरसे आकर दीनभावसे हस्तिनापुरमें प्रवेश किया ॥

स प्रविश्य पुरीं सूतो भुजावुच्छ्रित्य दुःखितः ।
वेपमानस्ततो राज्ञः प्रविवेश निकेतनम् ॥ १५ ॥

पुरीमें प्रवेश करके दोनों बाँहें ऊपर उठाकर दुःख-मग्न हो काँपते हुए संजय राजभवनके भीतर गये ॥ १५ ॥

रुरोद च नरव्याघ्र हा राजन्निति दुःखितः ।
अहो बत विनष्टाः स्म निधनेन महात्मनः ॥ १६ ॥

और रोते हुए दुखी होकर बोले—'हा नरव्याघ्र नरेश ! हा राजन् ! बड़े शोककी बात है ! महामनस्वी कुरुराजके निधनसे हम सर्वथा नष्टप्राय हो गये ! ॥ १६ ॥

विधिश्च बलवानत्र पौरुषं तु निरर्थकम् ।
शक्रतुल्यबलाः सर्वे यथावध्यन्त पाण्डवैः ॥ १७ ॥

'इस जगत्में भाग्य ही बलवान् है । पुरुषार्थ तो निरर्थक है, क्योंकि आपके सभी पुत्र इन्द्रके तुल्य बलवान् होनेपर भी पाण्डवोंके हाथसे मारे गये !' ॥ १७ ॥

दृष्ट्वैव च पुरे राजञ्जनः सर्वः स संजयम् ।
क्लेशेन महता युक्तं सर्वतो राजसत्तम ॥ १८ ॥
रुरोद च भृशोद्विग्नो हा राजन्निति विस्वरम् ।
आकुमारं नरव्याघ्र तत्र तत्र समन्ततः ॥ १९ ॥
आर्तनादं ततश्चक्रे श्रुत्वा विनिहतं नृपम् ।

राजन् ! नृपश्रेष्ठ ! हस्तिनापुरके सभी लोग संजयको सर्वथा महान् क्लेशसे युक्त देखकर अत्यन्त उद्विग्न हो 'हा राजन् !' ऐसा कहते हुए फूट-फूटकर रोने लगे । नरव्याघ्र ! वहाँ चारों ओर बच्चोंसे लेकर बूढ़ोंतक सब लोग राजाको मारा गया सुन आर्तनाद करने लगे ॥ १८-१९½ ॥

धावतश्चाप्यपश्यामस्तत्र तान् पुरुषर्षभान् ॥ २० ॥
नष्टचित्तानिवोन्मत्ताञ्शोकेन भृशपीडितान् ।

हमलोगोंने देखा कि वे नगरके श्रेष्ठ पुरुष अचेत और उन्मत्त-से होकर शोकसे अत्यन्त पीड़ित हो वहाँ दौड़ रहे हैं॥

तथा स विह्वलः सूतः प्रविश्य नृपतिक्षयम् ॥ २१ ॥
ददर्श नृपतिश्रेष्ठं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम् ।

इस प्रकार व्याकुल हुए संजयने राजभवनमें प्रवेश करके अपने स्वामी प्रज्ञाचक्षु नृपश्रेष्ठ धृतराष्ट्रका दर्शन किया ॥

तथा चासीनमनघं समन्तात् परिवारितम् ॥ २२ ॥
स्नुषाभिर्भरतश्रेष्ठ गान्धार्या विदुरेण च ।
तथान्यैश्च सुहृद्भिश्च ज्ञातिभिश्च हितैषिभिः ॥ २३ ॥
तमेव चार्थं ध्यायन्तं कर्णस्य निधनं प्रति ।

भरतश्रेष्ठ ! वे निष्पाप नरेश अपनी पुत्रवधुओं, गान्धारी, विदुर तथा अन्य हितैषी सुहृदों एवं बन्धु-बान्धवोंद्वारा सब ओरसे घिरे हुए बैठे थे और कर्णके मारे जानेसे होनेवाले परिणामका चिन्तन कर रहे थे ॥ २२-२३½ ॥

रुदन्नेवाब्रवीद् वाक्यं राजानं जनमेजय ॥ २४ ॥
नातिहृष्टमनाः सूतो वाक्यसंदिग्धया गिरा ।
संजयोऽहं नरव्याघ्र नमस्ते भरतर्षभ ॥ २५ ॥

जनमेजय ! उस समय संजयने खिन्नचित्त होकर रोते हुए ही संदिग्ध वाणीमें कहा—'नरव्याघ्र ! भरतश्रेष्ठ ! मैं संजय हूँ । आपको नमस्कार है ॥ २४-२५ ॥

मद्राधिपो हतः शल्यः शकुनिः सौबलस्तथा ।
उलूकः पुरुषव्याघ्र कैतव्यो दृढविक्रमः ॥ २६ ॥

'पुरुषसिंह ! मद्रराज शल्य, सुबलपुत्र शकुनि तथा जुआरीका पुत्र सुदृढ़पराक्रमी, उलूक—ये सब-के-सब मारे गये ॥ २६ ॥

संशप्तका हताः सर्वे काम्बोजाश्च शकैः सह ।
म्लेच्छाश्च पर्वतीयाश्च यवना विनिपातिताः ॥ २७ ॥

'समस्त संशप्तक वीर, काम्बोज, शक, म्लेच्छ, पर्वतीय योद्धा और यवनसैनिक मार गिराये गये ॥ २७ ॥

प्राच्या हता महाराज दाक्षिणात्याश्च सर्वशः ।
उदीच्याश्च हताः सर्वे प्रतीच्याश्च नरोत्तमाः ॥ २८ ॥

'महाराज ! पूर्वदेशके योद्धा मारे गये, समस्त दाक्षिणात्योंका संहार हो गया तथा उत्तर और पश्चिमके सभी श्रेष्ठ मनुष्य मार डाले गये ॥ २८ ॥

राजानो राजपुत्राश्च सर्वे ते निहता नृप ।
दुर्योधनो हतो राजा यथोक्तं पाण्डवेन ह ॥ २९ ॥
भग्नसक्थो महाराज शेते पांसुषु रूषितः ।

'नरेश्वर ! समस्त राजा और राजकुमार कालके गालमें चले गये । महाराज ! जैसा पाण्डुपुत्र भीमसेनने कहा था, उसके अनुसार राजा दुर्योधन भी मारा गया । उसकी जाँघ टूट गयी और वह धूल-धूसर होकर पृथ्वीपर पड़ा है ॥ २९½ ॥

धृष्टद्युम्नो महाराज शिखण्डी चापराजितः ॥ ३० ॥
उत्तमौजा युधामन्युस्तथा राजन् प्रभद्रकाः ।
पञ्चालाश्च नरव्याघ्र चेदयश्च निषूदिताः ॥ ३१ ॥

'महाराज ! नरव्याघ्र नरेश ! धृष्टद्युम्न, अपराजित वीर

शिखण्डी, उत्तमौजा, युधामन्यु, प्रभद्रकगण, पाञ्चाल और चेदिदेशीय योद्धाओंका भी संहार हो गया ॥ ३०-३१ ॥

तव पुत्रा हताः सर्वे द्रौपदेयाश्च भारत।
कर्णपुत्रो हतः शूरो वृषसेनः प्रतापवान् ॥ ३२॥

'भारत ! आपके तथा द्रौपदीके भी सभी पुत्र मारे गये। कर्णका प्रतापी एवं शूरवीर पुत्र वृषसेन भी नष्ट हो गया ॥ ३२ ॥

नरा विनिहताः सर्वे गजाश्च विनिपातिताः।
रथिनश्च नरव्याघ्र हयाश्च निहता युधि ॥ ३३ ॥

'नरव्याघ्र ! युद्धस्थलमें समस्त पैदल मनुष्य, हाथीसवार, रथी और घुड़सवार भी मार गिराये गये ॥ ३३ ॥

किञ्चिच्छेषं च शिबिरं तावकानां कृतं प्रभो।
पाण्डवानां कुरूणां च समासाद्य परस्परम् ॥ ३४ ॥

'प्रभो ! पाण्डवों तथा कौरवोंमें परस्पर संघर्ष होकर आपके पुत्रों तथा पाण्डवके शिबिरमें किंचिन्मात्र ही शेष रह गया है ॥

प्रायः स्त्रीशेषमभवज्जगत् कालेन मोहितम्।
सप्त पाण्डवतः शेषा धार्तराष्ट्रास्त्रयो रथाः ॥ ३५ ॥

'प्रायः कालसे मोहित हुए सारे जगत्‌में स्त्रियाँ ही शेष रह गयी हैं। पाण्डवपक्षमें सात और आपके पक्षमें तीन रथी मरनेसे बचे हैं ॥ ३५ ॥

ते चैव भ्रातरः पञ्च वासुदेवोऽथ सात्यकिः।
कृपश्च कृतवर्मा च द्रौणिश्च जयतां वरः ॥ ३६ ॥

'उधर पाँचों भाई पाण्डव, वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण और सात्यकि शेष हैं तथा इधर कृपाचार्य, कृतवर्मा और विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामा जीवित हैं ॥ ३६ ॥

तथाप्येते महाराज रथिनो नृपसत्तम।
अक्षौहिणीनां सर्वासां समेतानां जनेश्वर ॥ ३७ ॥
एते शेषा महाराज सर्वेऽन्ये निधनं गताः।

'नृपश्रेष्ठ ! जनेश्वर ! महाराज ! उभय पक्षमें जो समस्त अक्षौहिणी सेनाएँ एकत्र हुई थीं, उनमेंसे ये ही रथी शेष रह गये हैं, अन्य सब लोग कालके गालमें चले गये ॥ ३७½ ॥

कालेन निहतं सर्वं जगद् वै भरतर्षभ ॥ ३८ ॥
दुर्योधनं वै पुरतः कृत्वा वैरं च भारत।

'भरतश्रेष्ठ ! भरतनन्दन ! कालने दुर्योधन और उसके वैरको आगे करके सम्पूर्ण जगत्‌को नष्ट कर दिया' ॥ ३८½ ॥

वैशम्पायन उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचः क्रूरं धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ॥ ३९ ॥
निपपात स राजेन्द्रो गतसत्त्वो महीतले।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! यह क्रूर वचन सुनकर राजाधिराज जनेश्वर धृतराष्ट्र प्राणहीन-से होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ३९½ ॥

तस्मिन् निपतिते भूमौ विदुरोऽपि महायशाः ॥ ४० ॥
निपपात महाराज शोकव्यसनकर्षितः।

महाराज ! उनके गिरते ही महायशस्वी विदुरजी भी शोकसंतापसे दुर्बल हो धड़ामसे गिर पड़े ॥ ४०½ ॥

गान्धारी च नृपश्रेष्ठ सर्वाश्च कुरुयोषितः ॥ ४१ ॥
पतिताः सहसा भूमौ श्रुत्वा क्रूरं वचस्तदा।
निःसंज्ञं पतितं भूमौ तदासीद् राजमण्डलम् ॥ ४२ ॥
प्रलापयुक्तं महति चित्रन्यस्तं पटे यथा।

नृपश्रेष्ठ ! उस समय वह क्रूरतापूर्ण वचन सुनकर कुरु-कुलकी समस्त स्त्रियाँ और गान्धारी देवी सहसा पृथ्वीपर गिर गयीं, राजपरिवारके सभी लोग अपनी सुध-बुध खोकर धरतीपर गिर पड़े और प्रलाप करने लगे। वे ऐसे जान पड़ते थे मानो विशाल पटपर अङ्कित किये गये चित्र हों ॥ ४१-४२½ ॥

कृच्छ्रेण तु ततो राजा धृतराष्ट्रो महीपतिः ॥ ४३ ॥
शनैरलभत प्राणान् पुत्रव्यसनकर्शितः।

तत्पश्चात् पुत्रशोकसे पीड़ित हुए पृथ्वीपति राजा धृतराष्ट्रमें बड़ी कठिनाईसे धीरे-धीरे प्राणोंका संचार हुआ ॥

लब्ध्वा तु स नृपः संज्ञां वेपमानः सुदुःखितः॥ ४४ ॥
उदीक्ष्य च दिशः सर्वाः क्षत्तारं वाक्यमब्रवीत्।
विद्वन् क्षत्तर्महाप्राज्ञ त्वं गतिर्भरतर्षभ ॥ ४५ ॥
ममानाथस्य सुभृशं पुत्रैर्हीनस्य सर्वशः।
एवमुक्त्वा ततो भूयो विसंज्ञो निपपात ह ॥ ४६ ॥

चेतना पाकर राजा धृतराष्ट्र अत्यन्त दुखी हो थर-थर काँपने लगे और सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर देखकर विदुरसे इस प्रकार बोले—'विद्वन् ! महाज्ञानी विदुर ! भरतभूषण ! अब तुम्हीं मुझ पुत्रहीन और अनाथके सर्वथा आश्रय हो'। इतना कहकर वे पुनः अचेत हो पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ४४-४६ ॥

तं तथा पतितं दृष्ट्वा बान्धवा येऽस्य केचन।
शीतैस्ते सिषिचुस्तोयैर्विव्यजुर्व्यजनैरपि ॥ ४७ ॥

उन्हें इस प्रकार गिरा हुआ देख उनके जो कोई बन्धु-बान्धव वहाँ मौजूद थे, उन्होंने राजाके शरीरपर ठंडे जलके छींटे दिये और व्यजन डुलाये ॥ ४७ ॥

स तु दीर्घेण कालेन प्रत्याश्वस्तो नराधिपः।
तूष्णीं दध्यौ महीपालः पुत्रव्यसनकर्शितः ॥ ४८ ॥

फिर बहुत देरके बाद जब राजा धृतराष्ट्रको होश हुआ, तब वे पुत्रशोकसे पीड़ित हो चिन्तामग्न हो गये ॥ ४८ ॥

निःश्वसञ्जिह्मग इव कुम्भक्षिप्तो विशाम्पते।
संजयोऽप्यरुदत् तत्र दृष्ट्वा राजानमातुरम् ॥ ४९ ॥

प्रजानाथ ! उस समय वे घड़ेमें रक्खे हुए सर्पके समान लंबी साँस खींचने लगे। राजाको इस प्रकार आतुर देखकर संजय भी वहाँ रोने लगे ॥ ४९ ॥

तथा सर्वाः स्त्रियश्चैव गान्धारी च यशस्विनी।
ततो दीर्घेण कालेन विदुरं वाक्यमब्रवीत् ॥ ५० ॥
धृतराष्ट्रो नरश्रेष्ठ मुह्यमानो मुहुर्मुहुः।

गच्छन्तु योषितः सर्वा गान्धारी च यशस्विनी ॥ ५१ ॥
तथेमे सुहृदः सर्वे भ्राम्यते मे मनो भृशम् ।

फिर सारी स्त्रियाँ और यशस्विनी गान्धारी देवी भी फूट-फूटकर रोने लगीं । नरश्रेष्ठ ! तत्पश्चात् बहुत देरके बाद बारंबार मोहित होते हुए धृतराष्ट्रने विदुरसे कहा—'ये सारी स्त्रियाँ और यशस्विनी गान्धारी देवी भी यहाँसे चली जायँ । ये समस्त सुहृद् भी अब यहाँसे पधारें; क्योंकि मेरा चित्त अत्यन्त भ्रान्त हो रहा है' ॥ ५०-५१½ ॥

एवमुक्तस्ततः क्षत्ता ताः स्त्रियो भरतर्षभ ॥ ५२ ॥
विसर्जयामास शनैर्वेपमानः पुनः पुनः ।

भरतश्रेष्ठ ! उनके ऐसा कहनेपर बारंबार काँपते हुए विदुरजीने उन सब स्त्रियोंको धीरे-धीरे विदा कर दिया ॥

निश्चक्रमुस्ततः सर्वाः स्त्रियो भरतसत्तम ॥ ५३ ॥
सुहृदश्च तथा सर्वे दृष्ट्वा राजानमातुरम् ।

भरतभूषण ! फिर वे सारी स्त्रियाँ और समस्त सुहृद्गण राजाको आतुर देखकर वहाँसे चले गये ॥ ५३½ ॥

ततो नरपतिं तत्र लब्धसंज्ञं परंतप ॥ ५४ ॥
अवैक्षत् संजयो दीनं रोदमानं भृशातुरम् ।

शत्रुओंको संताप देनेवाले नरेश ! तदनन्तर होशमें आकर अत्यन्त आतुर हो दीनभावसे विलाप करते हुए राजा धृतराष्ट्रकी ओर संजयने देखा ॥ ५४½ ॥

प्राञ्जलिर्निःश्वसन्तं च तं नरेन्द्रं मुहुर्मुहुः ।
समाश्वासयत क्षत्ता वचसा मधुरेण च ॥ ५५ ॥

उस समय बारंबार लंबी साँस खींचते हुए राजा धृतराष्ट्रको विदुरजीने हाथ जोड़कर अपनी मधुर वाणीद्वारा आश्वासन दिया ॥ ५५ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि धृतराष्ट्रप्रमोहे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें धृतराष्ट्रका मोहविषयक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

राजा धृतराष्ट्रका विलाप करना और संजयसे युद्धका वृत्तान्त पूछना

वैशम्पायन उवाच

विसृष्टास्वथ नारीषु धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
विललाप महाराज दुःखाद् दुःखान्तरं गतः ॥ १ ॥
सधूममिव निःश्वस्य करौ धुन्वन् पुनः पुनः ।
विचिन्त्य च महाराज वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं— महाराज ! स्त्रियोंके विदा हो जानेपर अम्बिकानन्दन राजा धृतराष्ट्र एक दुःखसे दूसरे दुःखमें पड़कर गरम-गरम उच्छ्वास लेते और बारंबार दोनों हाथ हिलाते हुए विलाप करने लगे और बड़ी देरतक चिन्तामग्न रहकर इस प्रकार बोले ॥ १-२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

अहो बत महद् दुःखं यदहं पाण्डवान् रणे ।
क्षेमिणश्चाव्ययांश्चैव त्वत्तः सूत शृणोमि वै ॥ ३ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—सूत ! मेरे लिये महान् दुःखकी बात है कि मैं तुम्हारे मुखसे रणभूमिमें पाण्डवोंको सकुशल और विनाशरहित सुन रहा हूँ ॥ ३ ॥

वज्रसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम ।
यच्छ्रुत्वा निहतान् पुत्रान् दीर्यते न सहस्रधा ॥ ४ ॥

निश्चय ही मेरा यह सुदृढ़ हृदय वज्रके सारतत्त्वका बना हुआ है; क्योंकि अपने पुत्रोंको मारा गया सुनकर भी इसके सहस्रों टुकड़े नहीं हो जाते हैं ॥ ४ ॥

चिन्तयित्वा वयस्तेषां बालक्रीडां च संजय ।
हतान् पुत्रानशेषेण दीर्यते मे भृशं मनः ॥ ५ ॥

संजय ! मैं उनकी अवस्था और बाल-क्रीडाका चिन्तन करके जब उन सबके मारे जानेकी बात सोचता हूँ, तब मेरा हृदय अत्यन्त विदीर्ण होने लगता है ॥ ५ ॥

अनेत्रत्वाद् यदेतेषां न मे रूपनिदर्शनम् ।
पुत्रस्नेहकृता प्रीतिर्नित्यमेतेषु धारिता ॥ ६ ॥

यद्यपि नेत्रहीन होनेके कारण मैंने उनका रूप कभी नहीं देखा था, तथापि इन सबके प्रति पुत्रस्नेहजनित प्रेमका भाव सदा ही रक्खा है ॥ ६ ॥

बालभावमतिक्रम्य यौवनस्थांश्च तानहम् ।
मध्यप्राप्तांस्तथा श्रुत्वा हृष्ट आसं तदानघ ॥ ७ ॥

निष्पाप संजय ! जब मैं यह सुनता था कि मेरे बच्चे बाल्यावस्थाको लाँघकर युवावस्थामें प्रविष्ट हुए हैं और धीरे-धीरे मध्य अवस्थातक पहुँच गये हैं, तब हर्षसे फूल उठता था ॥ ७ ॥

तानद्य निहताञ्छ्रुत्वा हतैश्वर्यान् हतौजसः ।
न लभेयं क्वचिच्छान्तिं पुत्राधिभिरभिप्लुतः ॥ ८ ॥

आज उन्हीं पुत्रोंको ऐश्वर्य और बलसे हीन एवं मारा गया सुनकर उनकी चिन्तासे व्यथित हो कहीं भी शान्ति नहीं पा रहा हूँ ॥ ८ ॥

एह्येहि पुत्र राजेन्द्र ममानाथस्य साम्प्रतम् ।
त्वया हीनो महाबाहो कां नु यास्याम्यहं गतिम् ॥ ९ ॥

(इतना कहकर राजा धृतराष्ट्र इस प्रकार विलाप करने लगे—) बेटा ! राजाधिराज ! इस समय मुझ अनाथके पास आओ, आओ ! महाबाहो ! तुम्हारे बिना न जाने मैं किस दशाको पहुँच जाऊँगा ? ॥ ९ ॥

कथं त्वं पृथिवीपालांस्त्यक्त्वा तात समागतान् ।
शेषे विनिहतो भूमौ प्राकृतः कुनृपो यथा ॥ १० ॥

तात ! तुम यहाँ पधारे हुए समस्त भूमिपालोंको छोड़कर

किसी नीच और दुष्ट राजाके समान मारे जाकर पृथ्वीपर कैसे सो रहे हो ? ॥ १० ॥

गतिर्भूत्वा महाराज ज्ञातीनां सुहृदां तथा ।
अन्धं वृद्धं च मां वीर विहाय क्व नु यास्यसि ॥ ११ ॥

वीर महाराज ! तुम भाई-बन्धुओं और सुहृदोंके आश्रय होकर भी मुझ अंधे और बूढ़ेको छोड़कर कहाँ चले जा रहे हो ? ॥ ११ ॥

सा कृपा सा च ते प्रीतिः क्व सा राजन् सुमानिता ।
कथं विनिहतः पार्थैः संयुगेष्वपराजितः ॥ १२ ॥

राजन् ! तुम्हारी वह कृपा, वह प्रीति और दूसरोंको सम्मान देनेकी वह वृत्ति कहाँ चली गयी ? तुम तो किसीसे परास्त होनेवाले नहीं थे; फिर कुन्तीके पुत्रोंके द्वारा युद्धमें कैसे मारे गये ? ॥ १२ ॥

को नु मामुत्थितं वीर तात तातेति वक्ष्यति ।
महाराजेति सततं लोकनाथेति चासकृत् ॥ १३ ॥

वीर ! अब मेरे उठनेपर मुझे सदा तात, महाराज और लोकनाथ आदि बारंबार कहकर कौन पुकारेगा ? ॥ १३ ॥

परिष्वज्य च मां कण्ठे स्नेहेन क्लिन्नलोचनः ।
अनुशाधीति कौरव्य तत् साधु वद मे वचः ॥ १४ ॥

कुरुनन्दन ! तुम पहले स्नेहसे नेत्रोंमें आँसू भरकर मेरे गलेसे लग जाते और कहते 'पिताजी ! मुझे कर्तव्यका उपदेश दीजिये,' वही सुन्दर बात फिर मुझसे कहो ॥ १४ ॥

ननु नामाहमश्रौषं वचनं तव पुत्रक ।
भूयसी मम पृथ्वीयं यथा पार्थस्य नो तथा ॥ १५ ॥

बेटा ! मैंने तुम्हारे मुँहसे यह बात सुनी थी कि 'मेरे अधिकारमें बहुत बड़ी पृथ्वी है । इतना विशाल भूभाग कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरके अधिकारमें कभी नहीं रहा ॥ १५ ॥

भगदत्तः कृपः शल्य आवन्त्योऽथ जयद्रथः ।
भूरिश्रवाः सोमदत्तो महाराजश्च बाह्लिकः ॥ १६ ॥
अश्वत्थामा च भोजश्च मागधश्च महाबलः ।
बृहद्बलश्च क्राथश्च शकुनिश्चापि सौबलः ॥ १७ ॥
म्लेच्छाश्च शतसाहस्राः शकाश्च यवनैः सह ।
सुदक्षिणश्च काम्बोजस्त्रिगर्ताधिपतिस्तथा ॥ १८ ॥
भीष्मः पितामहश्चैव भारद्वाजोऽथ गौतमः ।
श्रुतायुश्चायुतायुश्च शतायुश्चापि वीर्यवान् ॥ १९ ॥
जलसन्धोऽथार्ष्यश्रृङ्गी राक्षसश्चाप्यलायुधः ।
अलम्बुषो महाबाहुः सुबाहुश्च महारथः ॥ २० ॥
एते चान्ये च बहवो राजानो राजसत्तम ।
मदर्थमुद्यताः सर्वे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥ २१ ॥

'नृपश्रेष्ठ ! भगदत्त, कृपाचार्य, शल्य, अवन्तीके राजकुमार, जयद्रथ, भूरिश्रवा, सोमदत्त, महाराज बाह्लिक, अश्वत्थामा, कृतवर्मा, महाबली मगधनरेश बृहद्बल, क्राथ, सुबलपुत्र शकुनि, लाखों म्लेच्छ, यवन एवं शक, काम्बोजराज सुदक्षिण, त्रिगर्तराज सुशर्मा, पितामह भीष्म, भरद्वाजनन्दन द्रोणाचार्य, गौतमगोत्रीय कृपाचार्य, श्रुतायु, अयुतायु, पराक्रमी शतायु, जलसन्ध, ऋष्यश्रृङ्गपुत्र राक्षस अलायुध, महाबाहु अलम्बुष और महारथी सुबाहु—ये तथा और भी बहुत-से नरेश मेरे लिये प्राणों और धनका मोह छोड़कर सब-के-सब युद्धके लिये उद्यत हैं ॥ १६–२१ ॥

तेषां मध्ये स्थितो युद्धे भ्रातृभिः परिवारितः ।
योधयिष्याम्यहं पार्थान् पञ्चालांश्चैव सर्वशः ॥ २२ ॥

'इन सबके बीचमें रहकर भाइयोंसे घिरा हुआ मैं रणभूमिमें पाण्डवों और पाञ्चालोंके साथ युद्ध करूँगा ॥ २२ ॥

चेदींश्च नृपशार्दूल द्रौपदेयांश्च संयुगे ।
सात्यकिं कुन्तिभोजं च राक्षसं च घटोत्कचम् ॥ २३ ॥

'राजसिंह ! मैं युद्धस्थलमें चेदियों, द्रौपदीकुमारों, सात्यकि, कुन्तिभोज तथा राक्षस घटोत्कचका भी सामना करूँगा ॥ २३ ॥

एकोऽप्येषां महाराज समर्थः संनिवारणे ।
समरे पाण्डवेयानां संक्रुद्धो ह्यभिधावताम् ॥ २४ ॥
किं पुनः सहिता वीराः कृतवैराश्च पाण्डवैः ।

'महाराज ! मेरे इन सहयोगियोंमेंसे एक-एक वीर भी समराङ्गणमें कुपित होकर मुझपर आक्रमण करनेवाले समस्त पाण्डवोंको रोकनेमें समर्थ हैं । फिर यदि पाण्डवोंके साथ वैर रखनेवाले ये सारे वीर एक साथ होकर युद्ध करें तब क्या नहीं कर सकते ॥ २४½ ॥

अथवा सर्व एवैते पाण्डवस्यानुयायिभिः ॥ २५ ॥
योत्स्यन्ते सह राजेन्द्र हनिष्यन्ति च तान् मृधे ।

'राजेन्द्र ! अथवा ये सभी योद्धा पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके अनुयायियोंके साथ युद्ध करेंगे और उन सबको रणभूमिमें मार गिरायेंगे ॥ २५½ ॥

कर्ण एको मया सार्धं निहनिष्यति पाण्डवान् ॥ २६ ॥
ततो नृपतयो वीराः स्थास्यन्ति मम शासने ।

'अकेला कर्ण ही मेरे साथ रहकर समस्त पाण्डवोंको मार डालेगा । फिर सारे वीर नरेश मेरी आज्ञाके अधीन हो जायँगे ॥ २६½ ॥

यश्च तेषां प्रणेता वै वासुदेवो महाबलः ॥ २७ ॥
न स संनह्यते राजन्निति मामब्रवीद् वचः ।

'राजन् ! पाण्डवोंके जो नेता हैं, वे महाबली वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण युद्धके लिये कवच नहीं धारण करेंगे' । ऐसी बात दुर्योधन मुझसे कहता था ॥ २७½ ॥

तस्याथ वदतः सूत बहुशो मम संनिधौ ॥ २८ ॥
शक्तितो ह्यनुपश्यामि निहतान् पाण्डवान् रणे ।

सूत ! मेरे निकट दुर्योधन जब इस तरहकी बहुत-सी बातें कहने लगा तो मैं यह समझ बैठा कि 'हमारी शक्तिसे समस्त पाण्डव रणभूमिमें मारे जायँगे' ॥ २८½ ॥

तेषां मध्ये स्थिता यत्र हन्यन्ते मम पुत्रकाः ॥ २९ ॥
व्यायच्छमानाः समरे किमन्यद् भागधेयतः ।

जब ऐसे वीरोंके बीचमें रहकर भी प्रयत्नपूर्वक लड़नेवाले मेरे पुत्र समराङ्गणमें मार डाले गये, तब इसे भाग्यके सिवा और क्या कहा जा सकता है ? ॥ २९½ ॥

भीष्मश्च निहतो यत्र लोकनाथः प्रतापवान् ॥ ३० ॥
शिखण्डिनं समासाद्य मृगेन्द्र इव जम्बुकम् ।
द्रोणश्च ब्राह्मणो यत्र सर्वशस्त्रास्त्रपारगः ॥ ३१ ॥
निहतः पाण्डवैः संख्ये किमन्यद् भागधेयतः ।

जैसे सिंह सियारसे लड़कर मारा जाय, उसी प्रकार जहाँ लोकरक्षक प्रतापी वीर भीष्म शिखण्डीसे भिड़कर वध-को प्राप्त हुए, जहाँ सम्पूर्ण शस्त्रास्त्रोंकी विद्याके पारंगत विद्वान् ब्राह्मण द्रोणाचार्य पाण्डवोंद्वारा युद्धस्थलमें मार डाले गये, वहाँ भाग्यके सिवा दूसरा क्या कारण हो सकता है ? ॥

कर्णश्च निहतः संख्ये दिव्यास्त्रज्ञो महाबलः ॥ ३२ ॥
भूरिश्रवा हतो यत्र सोमदत्तश्च संयुगे ।
बाह्लिकश्च महाराजः किमन्यद् भागधेयतः ॥ ३३ ॥

जहाँ दिव्यास्त्रोंका ज्ञान रखनेवाला महाबली कर्ण युद्धमें मारा गया, जहाँ समराङ्गणमें भूरिश्रवा, सोमदत्त तथा महाराज बाह्लिकका संहार हो गया, वहाँ भाग्यके सिवा दूसरा क्या कारण बताया जा सकता है ? ॥ ३२-३३ ॥

भगदत्तो हतो यत्र गजयुद्धविशारदः ।
जयद्रथश्च निहतः किमन्यद् भागधेयतः ॥ ३४ ॥

जहाँ गजयुद्धविशारद राजा भगदत्त मारे गये और सिंधुराज जयद्रथका वध हो गया, वहाँ भाग्यके सिवा दूसरा क्या कारण हो सकता है ? ॥ ३४ ॥

सुदक्षिणो हतो यत्र जलसन्धश्च पौरवः ।
श्रुतायुश्चायुतायुश्च किमन्यद् भागधेयतः ॥ ३५ ॥

जहाँ काम्बोजराज सुदक्षिण, पौरव जलसन्ध, श्रुतायु और अयुतायु मार डाले गये, वहाँ भाग्यके सिवा और क्या कारण हो सकता है ? ॥ ३५ ॥

महाबलस्तथा पाण्ड्यः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
निहतः पाण्डवैः संख्ये किमन्यद् भागधेयतः ॥ ३६ ॥

जहाँ सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाबली पाण्ड्यनरेश युद्धमें पाण्डवोंके हाथसे मारे गये, वहाँ भाग्यके सिवा और क्या कारण है ? ॥ ३६ ॥

बृहद्बलो हतो यत्र मागधश्च महाबलः ।
उग्रायुधश्च विक्रान्तः प्रतिमानं धनुष्मताम् ॥ ३७ ॥
आवन्त्यो निहतो यत्र त्रैगर्तश्च जनाधिपः ।
संशप्तकाश्च निहताः किमन्यद् भागधेयतः ॥ ३८ ॥

जहाँ बृहद्बल, महाबली मगधनरेश, धनुर्धरोंके आदर्श एवं पराक्रमी उग्रायुध, अवन्तीके राजकुमार, त्रिगर्तनरेश सुशर्मा तथा सम्पूर्ण संशप्तक योद्धा मार डाले गये, वहाँ भाग्यके सिवा दूसरा क्या कारण हो सकता है ? ॥ ३७-३८ ॥

अलम्बुषो महाशूरो राक्षसश्चाप्यलायुधः ।
आर्ष्यशृङ्गिश्च निहतः किमन्यद् भागधेयतः ॥ ३९ ॥

जहाँ शूरवीर अलम्बुष और ऋष्यशृङ्गपुत्र राक्षस अलायुध मारे गये, वहाँ भाग्यके सिवा और क्या कारण बताया जा सकता है ? ॥ ३९ ॥

नारायणा हता यत्र गोपाला युद्धदुर्मदाः ।
म्लेच्छाश्च बहुसाहस्राः किमन्यद् भागधेयतः ॥ ४० ॥

जहाँ नारायण नामवाले रणदुर्मद ग्वाले और कई हजार म्लेच्छ योद्धा मौतके घाट उतार दिये गये, वहाँ भाग्यके सिवा और क्या कहा जा सकता है ? ॥ ४० ॥

शकुनिः सौबलो यत्र कैतव्यश्च महाबलः ।
निहतः सबलो वीरः किमन्यद् भागधेयतः ॥ ४१ ॥

जहाँ सुबलपुत्र महाबली शकुनि और उस जुआरीका पुत्र वीर उलूक दोनों ही सेनासहित मार डाले गये, वहाँ भाग्यके सिवा दूसरा क्या कारण हो सकता है ? ॥ ४१ ॥

एते चान्ये च बहवः कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ।
राजानो राजपुत्राश्च शूराः परिघबाहवः ॥ ४२ ॥
निहता बहवो यत्र किमन्यद् भागधेयतः ।

ये तथा और भी बहुत-से अस्त्रवेत्ता, रणदुर्मद, शूरवीर और परिघ-जैसी भुजाओंवाले राजा एवं राजकुमार अधिक संख्यामें मार डाले गये, वहाँ भाग्यके सिवा और क्या कारण बताया जाय ? ॥ ४२½ ॥

यत्र शूरा महेष्वासाः कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ॥ ४३ ॥
बहवो निहताः सूत महेन्द्रसमविक्रमाः ।
नानादेशसमावृत्ताः क्षत्रिया यत्र संजय ॥ ४४ ॥
निहताः समरे सर्वे किमन्यद् भागधेयतः ।

सूत संजय ! जहाँ समरभूमिमें नाना देशोंसे आये हुए देवराज इन्द्रके समान पराक्रमी बहुत-से शूरवीर महाधनुर्धर, अस्त्रवेत्ता एवं युद्धदुर्मद क्षत्रिय सारे-के-सारे मार डाले गये, वहाँ भाग्यके अतिरिक्त दूसरा क्या कारण हो सकता है ? ॥

पुत्राश्च मे विनिहताः पौत्राश्चैव महाबलाः ॥ ४५ ॥
वयस्या भ्रातरश्चैव किमन्यद् भागधेयतः ।

हाय ! मेरे महाबली पुत्र, पौत्र, मित्र और भाई-बन्धु सभी मार डाले गये, इसे दुर्भाग्यके सिवा और क्या कहूँ ? ॥

भागधेयसमायुक्तो ध्रुवमुत्पद्यते नरः ॥ ४६ ॥
यस्तु भाग्यसमायुक्तः स शुभं प्राप्नुयान्नरः ।

निश्चय ही मनुष्य अपना-अपना भाग्य लेकर उत्पन्न होता है, जो सौभाग्यसे सम्पन्न होता है, उसे ही शुभ फलकी प्राप्ति होती है ॥ ४६½ ॥

अहं वियुक्तस्तैर्भाग्यैः पुत्रैश्चैवेह संजय ॥ ४७ ॥
कथमद्य भविष्यामि वृद्धः शत्रुवशं गतः ।

संजय ! मैं उन शुभकारक भाग्योंसे वञ्चित हूँ और पुत्रोंसे भी हीन हूँ । आज इस वृद्धावस्थामें शत्रुके वशमें पड़कर न जाने मेरी कैसी दशा होगी ? ॥ ४७½ ॥

नान्यदत्र परं मन्ये वनवासादृते प्रभो ॥ ४८ ॥
सोऽहं वनं गमिष्यामि निर्बन्धुर्ज्ञातिसंक्षये ।
न हि मेऽन्यद् भवेच्छ्रेयो वनाभ्युपगमादृते ॥ ४९ ॥
इमामवस्थां प्राप्तस्य लूनपक्षस्य संजय ।

सामर्थ्यशाली संजय ! मेरे लिये वनवासके सिवा और कोई कार्य श्रेष्ठ नहीं जान पड़ता । अब कुटुम्बीजनोंका विनाश हो जानेपर बन्धु-बान्धवोंसे रहित हो मैं वनमें ही चला जाऊँगा । संजय ! पंख कटे हुए पक्षीकी भाँति इस अवस्थाको पहुँचे हुए मेरे लिये वनवास स्वीकार करनेके सिवा दूसरा कोई श्रेयस्कर कार्य नहीं है ॥ ४८-४९½ ॥

दुर्योधनो हतो यत्र शल्यश्च निहतो युधि ॥ ५० ॥
दुःशासनो विविंशश्च विकर्णश्च महाबलः ।
कथं हि भीमसेनस्य श्रोष्येऽहं शब्दमुत्तमम् ॥ ५१ ॥
एकेन समरे येन हतं पुत्रशतं मम ।

जब दुर्योधन मारा गया, शल्यका युद्धमें संहार हो गया तथा दुःशासन, विविंशति और महाबली विकर्ण भी मार डाले गये, तब मैं उस भीमसेनका उच्चस्वरसे कहा गया वचन कैसे सुनूँगा, जिसने अकेले ही समराङ्गणमें मेरे सौ पुत्रोंका वध कर डाला है ॥ ५०-५१½ ॥

असकृद्वदतस्तस्य दुर्योधनवधेन च ॥ ५२ ॥
दुःखशोकाभिसंतप्तो न श्रोष्ये परुषा गिरः ।

दुर्योधनके वधसे दुःख और शोकसे संतप्त हुआ मैं बारंबार बोलनेवाले भीमसेनकी कठोर बातें नहीं सुन सकूँगा॥

वैशम्पायन उवाच

एवं वृद्धश्च संतप्तः पार्थिवो हतबान्धवः ॥ ५३ ॥
मुहुर्मुहुर्मुह्यमानः पुत्राधिभिरभिप्लुतः ।
विलप्य सुचिरं कालं धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ॥ ५४ ॥
दीर्घमुष्णं स निःश्वस्य चिन्तयित्वा पराभवम् ।
दुःखेन महता राजन् संतप्तो भरतर्षभः ॥ ५५ ॥
पुनर्गावल्गणिं सूतं पर्यपृच्छद् यथातथम् ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार पुत्रोंकी चिन्तामें डूबकर बारंबार मूर्छित होनेवाले, संतप्त एवं बूढ़े भरतश्रेष्ठ राजा अम्बिकानन्दन धृतराष्ट्र, जिनके बन्धु-बान्धव मार डाले गये थे, दीर्घकालतक विलाप करके गरम साँस खींचते और अपने पराभवकी बात सोचते हुए महान् दुःखसे संतप्त हो उठे तथा गवल्गणपुत्र संजयसे पुनः युद्धका यथावत् समाचार पूछने लगे ॥ ५३–५५½ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा सूतपुत्रं च घातितम् ॥ ५६ ॥
सेनापतिं प्रणेतारं किमकुर्वत मामकाः ।

धृतराष्ट्रने कहा—संजय ! भीष्म और द्रोणाचार्यके वधका तथा युद्ध-संचालक सेनापति सूतपुत्र कर्णके विनाशका समाचार सुनकर मेरे पुत्रोंने क्या किया ? ॥ ५६½ ॥

यं यं सेनाप्रणेतारं युधि कुर्वन्ति मामकाः ॥ ५७ ॥
अचिरेणैव कालेन तं तं निघ्नन्ति पाण्डवाः ।

मेरे पुत्र युद्धस्थलमें जिस-जिस वीरको अपना सेनापति बनाते थे, पाण्डव उस-उसको थोड़े ही समयमें मार गिराते थे॥

रणमूर्ध्नि हतो भीष्मः पश्यतां वः किरीटिना ॥ ५८ ॥
एवमेव हतो द्रोणः सर्वेषामेव पश्यताम् ।

युद्धके मुहानेपर तुमलोगोंके देखते-देखते भीष्मजी किरीटधारी अर्जुनके हाथसे मारे गये । इसी प्रकार द्रोणाचार्यका भी तुम सब लोगोंके सामने ही संहार हो गया ॥ ५८½ ॥

एवमेव हतः कर्णः सूतपुत्रः प्रतापवान् ॥ ५९ ॥
स राजकानां सर्वेषां पश्यतां वः किरीटिना ।

इसी तरह प्रतापी सूतपुत्र कर्ण भी राजाओंसहित तुम सब लोगोंके देखते-देखते किरीटधारी अर्जुनके हाथसे मारा गया ॥ ५९½ ॥

पूर्वमेवाहमुक्तो वै विदुरेण महात्मना ॥ ६० ॥
दुर्योधनापराधेन प्रजेयं विनशिष्यति ।

महात्मा विदुरने मुझसे पहले ही कहा था कि 'दुर्योधनके अपराधसे इस प्रजाका विनाश हो जायगा' ॥ ६०½ ॥

केचिन्न सम्यक् पश्यन्ति मूढाः सम्यगवेक्ष्य च ।
तदिदं मम मूढस्य तथाभूतं वचः स्म तत् ॥ ६१ ॥

संसारमें कुछ मूढ़ मनुष्य ऐसे होते हैं, जो अच्छी तरह देखकर भी नहीं देख पाते । मैं भी वैसा ही मूढ़ हूँ । मेरे लिये वह वचन वैसा ही हुआ (मैं उसे सुनकर भी न सुन सका) ॥ ६१ ॥

यदब्रवीत् स धर्मात्मा विदुरो दीर्घदर्शिवान् ।
तत्तथा समनुप्राप्तं वचनं सत्यवादिनः ॥ ६२ ॥

दूरदर्शी धर्मात्मा विदुरने पहले जो कुछ कहा था, वह सब उसी रूपमें सामने आया है । सत्यवादी महात्माका वचन सत्य होकर ही रहा ॥ ६२ ॥

दैवोपहतचित्तेन यन्मया न कृतं पुरा ।
अनयस्य फलं तस्य ब्रूहि गावल्गणे पुनः ॥ ६३ ॥

संजय ! पहले दैवसे मेरी बुद्धि मारी गयी थी; इसलिये मैंने जो विदुरजीकी बात नहीं मानी, मेरे उस अन्यायका फल जैसे-जैसे प्रकट हुआ है, उसका वर्णन करो ॥ ६३ ॥

को वा मुखमनीकानामासीत् कर्णे निपातिते ।
अर्जुनं वासुदेवं च को वा प्रत्युद्ययौ रथी ॥ ६४ ॥

कर्णके मारे जानेपर सेनाके मुखस्थानपर खड़ा होनेवाला कौन था ? कौन रथी अर्जुन और श्रीकृष्णका सामना करनेके लिये आगे बढ़ा ? ॥ ६४ ॥

केऽरक्षन् दक्षिणं चक्रं मद्रराजस्य संयुगे ।
वामं च योद्धुकामस्य के वा वीरस्य पृष्ठतः ॥ ६५ ॥

युद्धस्थलमें जूझनेकी इच्छावाले मद्रराज शल्यके दाहिने या बायें पहियेकी रक्षा किन लोगोंने की ? अथवा उस वीर सेनापतिके पृष्ठ-रक्षक कौन थे ? ॥ ६५ ॥

कथं च वः समेतानां मद्रराजो महारथः ।

निहतः पाण्डवैः संख्ये पुत्रो वा मम संजय ॥ ६६ ॥

संजय ! तुम सब लोगोंके एक साथ रहते हुए भी महारथी मद्रराज शल्य अथवा मेरा पुत्र दुर्योधन दोनों ही तुम्हारे सामने पाण्डवोंके हाथसे कैसे मारे गये ? ॥ ६६ ॥

ब्रूहि सर्वं यथातत्त्वं भरतानां महाक्षयम् ।
यथा च निहतः संख्ये पुत्रो दुर्योधनो मम ॥ ६७ ॥

तुम भरतवंशियोंके इस महान् विनाशका सारा वृत्तान्त यथार्थ रूपसे बताओ । साथ ही यह भी कहो कि युद्धस्थलमें मेरा पुत्र दुर्योधन किस प्रकार मारा गया ? ॥ ६७ ॥

पञ्चालाश्च यथा सर्वे निहताः सपदानुगाः ।
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः ॥ ६८ ॥

समस्त पाञ्चाल-सैनिक अपने सेवकोंसहित कैसे मारे गये ? धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंका वध किस प्रकार हुआ ? ॥ ६८ ॥

पाण्डवाश्च यथा मुक्तास्तथोभौ माधवौ युधि ।
कृपश्च कृतवर्मा च भारद्वाजस्य चात्मजः ॥ ६९ ॥

पाँचों पाण्डव, दोनों मधुवंशी वीर श्रीकृष्ण और सात्यकि, कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा—ये युद्धस्थलसे किस प्रकार जीवित बच गये ? ॥ ६९ ॥

यद् यथा यादृशं चैव युद्धं वृत्तं च साम्प्रतम् ।
अखिलं श्रोतुमिच्छामि कुशलो ह्यसि संजय ॥ ७० ॥

संजय ! जो युद्धका वृत्तान्त जिस प्रकार और जैसे संघटित हुआ हो, वह सब इस समय मैं सुनना चाहता हूँ। तुम वह सब बतानेमें कुशल हो ॥ ७० ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि धृतराष्ट्रविलापे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें धृतराष्ट्रका विलापविषयक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

कर्णके मारे जानेपर पाण्डवोंके भयसे कौरवसेनाका पलायन, सामना करनेवाले पचीस हजार पैदलोंका भीमसेनद्वारा वध तथा दुर्योधनका अपने सैनिकोंको समझा-बुझाकर पुनः पाण्डवोंके साथ युद्धमें लगाना

संजय उवाच

शृणु राजन्नवहितो यथावृत्तो महान् क्षयः ।
कुरूणां पाण्डवानां च समासाद्य परस्परम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! कौरवों और पाण्डवोंके आपसमें भिड़नेसे जिस प्रकार महान् जनसंहार हुआ है, वह सब सावधान होकर सुनिये ॥ १ ॥

निहते सूतपुत्रे तु पाण्डवेन महात्मना ।
विद्रुतेषु च सैन्येषु समानीतेषु चासकृत् ॥ २ ॥
घोरे मनुष्यदेहानामाजौ नरवर क्षये ।
यत्तत् कर्णे हते पार्थः सिंहनादमथाकरोत् ॥ ३ ॥
तदा तव सुतान् राजन् प्राविशत् सुमहद् भयम् ।

नरश्रेष्ठ ! महात्मा पाण्डुकुमार अर्जुनके द्वारा सूतपुत्र कर्णके मारे जानेपर जब आपकी सेनाएँ बार-बार भागने और लौटायी जाने लगीं एवं रणभूमिमें मानवशरीरोंका भयानक संहार होने लगा, उस समय कर्णवधके पश्चात् कुन्तीकुमार अर्जुनने बड़े जोरसे सिंहनाद किया। राजन् ! उसे सुनकर आपके पुत्रोंके मनमें बड़ा भारी भय समा गया ॥ २-३½ ॥

न संधातुमनीकानि न चैवाथ पराक्रमे ॥ ४ ॥
आसीद् बुद्धिर्हते कर्णे तव योधस्य कस्यचित् ।

कर्णके मारे जानेपर आपके किसी भी योद्धाके मनमें न तो सेनाओंको एकत्र संगठित रखनेका उत्साह रह गया और न पराक्रममें ही वे मन लगा सके ॥ ४½ ॥

वणिजो नावि भिन्नायामगाधे विप्लवा इव ॥ ५ ॥
अपारे पारमिच्छन्तो हते द्वीपे किरीटिना ।
सूतपुत्रे हते राजन् वित्रस्ताः शरविक्षताः ॥ ६ ॥

राजन् ! जैसे अगाध महासागरमें नाव फट जानेपर नौका-रहित व्यापारी उस अपार समुद्रसे पार जानेकी इच्छा रखते हुए घबरा उठते हैं, उसी प्रकार किरीटधारी अर्जुनके द्वारा द्वीपस्वरूप सूतपुत्रके मारे जानेपर बाणोंसे क्षत-विक्षत हो हम सब लोग भयभीत हो गये थे ॥ ५-६ ॥

अनाथा नाथमिच्छन्तो मृगाः सिंहार्दिता इव ।
भग्नशृङ्गा इव वृषाः शीर्णदंष्ट्रा इवोरगाः ॥ ७ ॥

हम अनाथ होकर कोई रक्षक चाहते थे । हमारी दशा सिंहके सताये हुए मृगों, टूटे सींगवाले बैलों तथा जिनके दाँत तोड़ लिये गये हों उन सर्पोंकी तरह हो रही थी ॥ ७ ॥

प्रत्युपायाम सायाह्ने निर्जिताः सव्यसाचिना ।
हतप्रवीरा विध्वस्ता निकृत्ता निशितैः शरैः ॥ ८ ॥

सायंकालमें सव्यसाची अर्जुनसे परास्त होकर हम सब लोग शिबिरकी ओर लौटे । हमारी सेनाके प्रमुख वीर मारे गये थे । हम सब लोग पैने बाणोंसे घायल होकर विध्वंसके निकट पहुँच गये थे ॥ ८ ॥

सूतपुत्रे हते राजन् पुत्रास्ते प्राद्रवंस्ततः ।
विध्वस्तकवचाः सर्वे कांदिशीका विचेतसः ॥ ९ ॥

राजन् ! सूतपुत्र कर्णके मारे जानेपर आपके सब पुत्र अचेत हो वहाँसे भागने लगे । उन सबके कवच नष्ट हो गये थे । उन्हें इतनी भी सुध नहीं रह गयी थी कि हम कहाँ और किस दिशामें जायँ ॥ ९ ॥

अन्योन्यमभिनिघ्नन्तो वीक्षमाणा भयाद् दिशः ।
मामेव नूनं बीभत्सुर्मामेव च वृकोदरः ॥ १० ॥
अभियातीति मन्वानाः पेतुर्मम्लुश्च भारत ।

वे सब लोग एक दूसरेपर चोट करते और भयसे सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर देखते हुए ऐसा समझते थे कि अर्जुन और भीमसेन मेरे ही पीछे लगे हुए हैं। भारत ! ऐसा सोचकर वे हर्ष और उत्साह खो बैठते तथा लड़खड़ाकर गिर पड़ते थे॥

अश्वानन्ये गजानन्ये रथानन्ये महारथाः ॥ ११ ॥
आरुह्य जवसम्पन्नाः पादातान् प्रजहुर्भयात् ।

कुछ महारथी भयके मारे घोड़ोंपर, दूसरे लोग हाथियोंपर और कुछ लोग रथोंपर आरूढ़ हो पैदलोंको वहीं छोड़ बड़े वेगसे भागे ॥ ११½ ॥

कुञ्जरैः स्यन्दना भग्नाः सादिनश्च महारथैः ॥ १२ ॥
पदातिसंघाश्चाश्वौघैः पलायद्भिर्भृशं हताः ।

भागते हुए हाथियोंने बहुत-से रथ तोड़ डाले, बड़े-बड़े रथोंने घुड़सवारोंको कुचल दिया और दौड़ते हुए अश्व-समूहोंने पैदल सैनिकोंको अत्यन्त घायल कर दिया ॥ १२½ ॥

व्यालतस्करसंकीर्णे सार्थहीना यथा वने ॥ १३ ॥
तथा त्वदीया निहते सूतपुत्रे तदाभवन् ।

जैसे सर्पों और लुटेरोंसे भरे हुए जंगलमें अपने साथियोंसे बिछुड़े हुए लोग अनाथके समान भटकते हैं, वही दशा उस समय सूतपुत्र कर्णके मारे जानेपर आपके सैनिकोंकी हुई ॥ १३½ ॥

हतारोहास्तथा नागाश्छिन्नहस्तास्तथापरे ॥ १४ ॥
सर्वं पार्थमयं लोकमपश्यन् वै भयार्दिताः ।

कितने ही हाथियोंके सवार मारे गये, बहुत-से गजराजोंकी सूँड़ें काट डाली गयीं, सब लोग भयसे पीड़ित होकर सम्पूर्ण जगत्‌को अर्जुनमय देख रहे थे॥ १४½ ॥

तान् प्रेक्ष्य द्रवतः सर्वान् भीमसेनभयार्दितान् ॥ १५ ॥
दुर्योधनोऽथ स्वं सूतं हा हा कृत्वैवमब्रवीत् ।

भीमसेनके भयसे पीड़ित हुए समस्त सैनिकोंको भागते देख दुर्योधनने 'हाय-हाय !' करके अपने सारथिसे इस प्रकार कहा—॥ १५½ ॥

नातिक्रमिष्यते पार्थो धनुष्पाणिमवस्थितम् ॥ १६ ॥
जघने युद्ध्यमानं मां तूर्णमश्वान् प्रचोदय ।

'जब मैं सेनाके पिछले भागमें खड़ा हो हाथमें धनुष ले युद्ध करूँगा, उस समय कुन्तीकुमार अर्जुन मुझे लाँघकर आगे नहीं बढ़ सकेंगे; अतः तुम घोड़ोंको आगे बढ़ाओ ॥

समरे युद्ध्यमानं हि कौन्तेयो मां धनंजयः ॥ १७ ॥
नोत्सहेताप्यतिक्रान्तुं वेलामिव महार्णवः ।

'जैसे महासागर तटको नहीं लाँघ सकता, उसी प्रकार कुन्तीकुमार अर्जुन समराङ्गणमें युद्ध करते हुए मुझ दुर्योधनको लाँघकर आगे जानेकी हिम्मत नहीं कर सकते ॥ १७½ ॥

अद्यार्जुनं सगोविन्दं मानिनं च वृकोदरम् ॥ १८ ॥
निहत्य शिष्टाञ्शत्रूंश्च कर्णस्यानृण्यमाप्नुयाम् ।

'आज मैं श्रीकृष्ण, अर्जुन, मानी भीमसेन तथा शेष बचे हुए अन्य शत्रुओंका संहार करके कर्णके ऋणसे उऋण हो जाऊँगा' ॥ १८½ ॥

तच्छ्रुत्वा कुरुराजस्य शूरार्यसदृशं वचः ॥ १९ ॥
सूतो हेमपरिच्छन्नाञ्शनैरश्वानचोदयत् ।

कुरुराज दुर्योधनके इस श्रेष्ठ वीरोचित वचनको सुनकर सारथिने सोनेके साज-बाजसे ढके हुए अश्वोंको धीरेसे आगे बढ़ाया ॥ १९½ ॥

गजाश्वरथहीनास्तु पादाताश्चैव मारिष ॥ २० ॥
पञ्चविंशतिसाहस्राः प्राद्रवञ्शनकैरिव ।

माननीय नरेश ! उस समय हाथी, घोड़े और रथोंसे रहित पचीस हजार पैदल सैनिक धीरे-ही-धीरे पाण्डवोंपर चढ़ाई करने लगे ॥ २०½ ॥

तान् भीमसेनः संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ २१ ॥
बलेन चतुरङ्गेण परिक्षिप्याहनच्छरैः ।

तब क्रोधमें भरे हुए भीमसेन और द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नने अपनी चतुरङ्गिणी सेनाके द्वारा उन्हें तितर-बितर करके बाणोंद्वारा अत्यन्त घायल कर दिया ॥ २१½ ॥

प्रत्ययुध्यंस्तु ते सर्वे भीमसेनं सपार्षतम् ॥ २२ ॥
पार्थपार्षतयोश्चान्ये जगृहुस्तत्र नामनी ।

वे समस्त सैनिक भी भीमसेन और धृष्टद्युम्नका डटकर सामना करने लगे। दूसरे बहुत-से योद्धा वहाँ उन दोनोंके नाम ले-लेकर ललकारने लगे ॥ २२½ ॥

अक्रुद्ध्यत रणे भीमस्तैर्मृधे प्रत्यवस्थितैः ॥ २३ ॥
सोऽवतीर्य रथात्तूर्णं गदापाणिरयुध्यत ।

युद्धस्थलमें सामने खड़े हुए उन योद्धाओंके साथ जूझते समय भीमसेनको बड़ा क्रोध हुआ। वे तुरंत ही रथसे उतरकर हाथमें गदा ले उन सबके साथ युद्ध करने लगे ॥२३½॥

न तान् रथस्थो भूमिष्ठान् धर्मापेक्षी वृकोदरः॥ २४ ॥
योधयामास कौन्तेयो भुजवीर्यमुपाश्रितः ।

युद्धधर्मके पालनकी इच्छा रखनेवाले कुन्तीकुमार भीमसेनने स्वयं रथपर बैठकर भूमिपर खड़े हुए पैदल सैनिकोंके साथ युद्ध करना उचित नहीं समझा। वे अपने बाहुबलका भरोसा करके उन सबके साथ पैदल ही जूझने लगे॥

जातरूपपरिच्छन्नां प्रगृह्य महतीं गदाम् ॥ २५ ॥
न्यवधीत् तावकान् सर्वान् दण्डपाणिरिवान्तकः।

उन्होंने दण्डपाणि यमराजके समान सुवर्णपत्रसे जटित विशाल गदा लेकर उसके द्वारा आपके समस्त सैनिकोंका संहार आरम्भ किया॥ २५½ ॥

पदातयो हि संरब्धास्त्यक्तजीवितबान्धवाः ॥ २६ ॥
भीममभ्यद्रवन् संख्ये पतङ्गा इव पावकम् ।

उस समय अपने प्राणों और बन्धु-बान्धवोंका मोह छोड़कर रोष और आवेशमें भरे हुए पैदल सैनिक युद्धस्थलमें भीमसेनकी ओर उसी प्रकार दौड़े, जैसे पतङ्ग जलती हुई आगपर टूट पड़ते हैं ॥ २६½ ॥

आसाद्य भीमसेनं ते संरब्धा युद्धदुर्मदाः ॥ २७ ॥
विनेदुः सहसा दृष्ट्वा भूतग्रामा इवान्तकम् ।

क्रोधमें भरे हुए वे रणदुर्मद योद्धा भीमसेनसे भिड़कर सहसा उसी प्रकार आर्तनाद करने लगे, जैसे प्राणियोंके समुदाय यमराजको देखकर चीख उठते हैं ॥ २७½ ॥

श्येनवद् व्यचरद् भीमः खड्गेन गदया तथा ॥ २८ ॥
पञ्चविंशतिसाहस्रांस्तावकानां व्यपोथयत् ।

उस समय भीमसेन रणभूमिमें बाजकी तरह विचर रहे थे। उन्होंने तलवार और गदाके द्वारा आपके उन पचीस हजार योद्धाओंको मार गिराया ॥ २८½ ॥

हत्वा तत् पुरुषानीकं भीमः सत्यपराक्रमः ॥ २९ ॥
धृष्टद्युम्नं पुरस्कृत्य पुनस्तस्थौ महाबलः ।

सत्यपराक्रमी महाबली भीमसेन उस पैदल-सेनाका संहार करके धृष्टद्युम्नको आगे किये पुनः युद्धके लिये डट गये ॥

धनंजयो रथानीकमन्वपद्यत वीर्यवान् ॥ ३० ॥
माद्रीपुत्रौ च शकुनिं सात्यकिश्च महाबलः ।
जवेनाभ्यपतन् हृष्टा घ्नन्तो दौर्योधनं बलम् ॥ ३१ ॥

दूसरी ओर पराक्रमी अर्जुनने रथसेनापर आक्रमण किया। माद्रीकुमार नकुल-सहदेव तथा महाबली सात्यकि दुर्योधनकी सेनाका विनाश करते हुए बड़े वेगसे शकुनिपर टूट पड़े ॥

तस्याश्ववाहान् सुबहूंस्ते निहत्य शितैः शरैः ।
तमन्वधावंस्त्वरितास्तत्र युद्धमवर्तत ॥ ३२ ॥

उन सबने शकुनिके बहुत-से घुड़सवारोंको अपने पैने बाणोंसे मारकर बड़ी उतावलीके साथ वहाँ शकुनिपर धावा किया। फिर तो उनमें भारी युद्ध छिड़ गया ॥ ३२ ॥

ततो धनंजयो राजन् रथानीकमगाहत ।
विश्रुतं त्रिषु लोकेषु गाण्डीवं व्याक्षिपन् धनुः ॥ ३३ ॥

राजन्! तदनन्तर अर्जुनने अपने त्रिभुवनविख्यात गाण्डीव धनुषकी टंकार करते हुए आपके रथियोंकी सेनामें प्रवेश किया ॥ ३३ ॥

कृष्णसारथिमायान्तं दृष्ट्वा श्वेतहयं रथम् ।
अर्जुनं चापि योद्धारं त्वदीयाः प्राद्रवन् भयात् ॥ ३४ ॥

श्रीकृष्ण जिसके सारथि हैं, उस श्वेत घोड़ोंसे जुते हुए रथको और रथी योद्धा अर्जुनको आते देखकर आपके सारे रथी भयसे भाग चले ॥ ३४ ॥

विप्रहीनरथाश्वाश्च शरैश्च परिवारिताः ।
पञ्चविंशतिसाहस्राः पार्थमार्च्छन् पदातयः ॥ ३५ ॥

तब रथों और घोड़ोंसे रहित तथा बाणोंसे आच्छादित हुए पचीस हजार पैदल योद्धाओंने कुन्तीकुमार अर्जुनपर चढ़ाई की ॥ ३५ ॥

हत्वा तत् पुरुषानीकं पञ्चालानां महारथः ।
भीमसेनं पुरस्कृत्य नचिरात् प्रत्यदृश्यत ॥ ३६ ॥

उस पैदल सेनाका वध करके पाञ्चाल महारथी धृष्टद्युम्न भीमसेनको आगे किये शीघ्र ही वहाँ दृष्टिगोचर हुए ॥ ३६ ॥

महाधनुर्धरः श्रीमानमित्रगणमर्दनः ।
पुत्रः पञ्चालराजस्य धृष्टद्युम्नो महायशाः ॥ ३७ ॥

पाञ्चालराजके पुत्र धृष्टद्युम्न महाधनुर्धर, महायशस्वी, तेजस्वी तथा शत्रुसमूहका संहार करनेमें समर्थ थे ॥ ३७ ॥

पारावतसवर्णाश्वं कोविदारवरध्वजम् ।
धृष्टद्युम्नं रणे दृष्ट्वा त्वदीयाः प्राद्रवन् भयात् ॥ ३८ ॥

जिनके रथमें कबूतरके समान रंगवाले घोड़े जुते हुए थे तथा रथकी श्रेष्ठ ध्वजापर कचनारवृक्षका चिह्न बना हुआ था, उन धृष्टद्युम्नको रणभूमिमें उपस्थित देख आपके सैनिक भयसे भाग खड़े हुए ॥ ३८ ॥

गान्धारराजं शीघ्रास्त्रमनुसृत्य यशस्विनौ ।
अचिरात् प्रत्यदृश्येतां माद्रीपुत्रौ ससात्यकी ॥ ३९ ॥

सात्यकिसहित यशस्वी माद्रीकुमार नकुल और सहदेव शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलानेवाले गान्धारराज शकुनिका तुरंत पीछा करते हुए दिखायी दिये ॥ ३९ ॥

चेकितानः शिखण्डी च द्रौपदेयाश्च मारिष ।
हत्वा त्वदीयं सुमहत् सैन्यं शङ्खानथाधमन् ॥ ४० ॥

माननीय नरेश! चेकितान, शिखण्डी और द्रौपदीके पाँचों पुत्र—आपकी विशाल सेनाका संहार करके शङ्ख बजाने लगे ॥ ४० ॥

ते सर्वे तावकान् प्रेक्ष्य द्रवतो वै पराङ्मुखान् ।
अभ्यधावन्त निघ्नन्तो वृषाञ्जित्वा वृषा इव ॥ ४१ ॥

जैसे साँड़ साँड़ोंको परास्त करके उन्हें बहुत दूरतक खदेड़ते रहते हैं, उसी प्रकार उन सब पाण्डववीरोंने आपके समस्त सैनिकोंको युद्धसे विमुख होकर भागते देख बाणोंका प्रहार करते हुए दूरतक उनका पीछा किया ॥ ४१ ॥

सेनावशेषं तं दृष्ट्वा तव पुत्रस्य पाण्डवः ।
अवस्थितं सव्यसाची चुक्रोध बलवन्नृप ॥ ४२ ॥

नरेश्वर! पाण्डुकुमार सव्यसाची अर्जुन आपके पुत्रकी सेनाके उस एक भागको अवशिष्ट एवं सामने उपस्थित देख अत्यन्त कुपित हो उठे ॥ ४२ ॥

तत एनं शरै राजन् सहसा समवाकिरत् ।
रजसा चोद्गतेनाथ न स्म किंचन दृश्यते ॥ ४३ ॥

राजन्! तदनन्तर उन्होंने सहसा बाणोंद्वारा उस सेनाको आच्छादित कर दिया। उस समय इतनी धूल ऊपर उठी कि कुछ भी दिखायी नहीं देता था ॥ ४३ ॥

अन्धकारीकृते लोके शरीभूते महीतले ।
दिशः सर्वा महाराज तावकाः प्राद्रवन् भयात् ॥ ४४ ॥

महाराज! जब जगत्में उस धूलसे अन्धकार छा गया और पृथ्वीपर बाण-ही-बाण बिछ गया, उस समय आपके सैनिक भयके मारे सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गये ॥ ४४ ॥

भज्यमानेषु सर्वेषु कुरुराजो विशाम्पते ।
परेषामात्मनश्चैव सैन्ये ते समुपाद्रवत् ॥ ४५ ॥

प्रजानाथ ! उन सबके भाग जानेपर कुरुराज दुर्योधनने शत्रुपक्षकी और अपनी दोनों ही सेनाओंपर आक्रमण किया ॥

ततो दुर्योधनः सर्वानाजुहावाथ पाण्डवान् ।
युद्धाय भरतश्रेष्ठ देवानिव पुरा बलिः ॥ ४६ ॥

भरतश्रेष्ठ ! जैसे पूर्वकालमें राजा बलिने देवताओंको युद्धके लिये ललकारा था, उसी प्रकार दुर्योधनने समस्त पाण्डवोंका आह्वान किया ॥ ४६ ॥

त एनमभिगर्जन्तं सहिताः समुपाद्रवन् ।
नानाशस्त्रसृजः क्रुद्धा भर्त्सयन्तो मुहुर्मुहुः ॥ ४७ ॥

तब वे पाण्डवयोद्धा अत्यन्त कुपित हो गर्जना करनेवाले दुर्योधनको बारंबार फटकारते और क्रोधपूर्वक नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करते हुए एक साथ ही उसपर टूट पड़े ॥

दुर्योधनोऽप्यसम्भ्रान्तस्तानरीन् व्यधमच्छरैः ।
तत्राद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य पौरुषम् ॥ ४८ ॥
यदेनं पाण्डवाः सर्वे न शेकुरतिवर्तितुम् ।

दुर्योधन भी बिना किसी घबराहटके अपने बाणोंद्वारा उन शत्रुओंको छिन्न-भिन्न करने लगा । वहाँ हमलोगोंने आपके पुत्रका अद्भुत पराक्रम देखा कि समस्त पाण्डव मिलकर भी उसे लाँघकर आगे न बढ़ सके ॥ ४८½ ॥

नातिदूरापयातं च कृतबुद्धिः पलायने ॥ ४९ ॥
दुर्योधनः स्वकं सैन्यमपश्यद् भृशविक्षतम् ।

दुर्योधनने देखा कि मेरी सेना अत्यन्त घायल हो रणभूमिसे पलायन करनेका विचार रखकर भाग रही है, परंतु अधिक दूर नहीं गयी है ॥ ४९½ ॥

ततोऽवस्थाप्य राजेन्द्र कृतबुद्धिस्तवात्मजः ॥ ५० ॥
हर्षयन्निव तान् योधांस्ततो वचनमब्रवीत् ।

राजेन्द्र ! तब युद्धका ही दृढ़ निश्चय रखनेवाले आपके पुत्रने उन समस्त सैनिकोंको खड़ा करके उनका हर्ष बढ़ाते हुए कहा—॥ ५०½ ॥

न तं देशं प्रपश्यामि पृथिव्यां पर्वतेषु च ॥ ५१ ॥
यत्र यातान्न वो हन्युः पाण्डवाः किं सृतेन वः ।

'वीरो ! मैं भूतलपर और पर्वतोंमें भी कोई ऐसा स्थान नहीं देखता, जहाँ चले जानेपर तुमलोगोंको पाण्डव मार न सकें; फिर तुम्हारे भागनेसे क्या लाभ है ? ॥ ५१½ ॥

स्वल्पं चैव बलं तेषां कृष्णौ च भृशविक्षतौ ॥ ५२ ॥
यदि सर्वेऽत्र तिष्ठामो ध्रुवं नो विजयो भवेत् ।

'पाण्डवोंके पास थोड़ी-सी ही सेना शेष रह गयी है और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन भी बहुत घायल हो चुके हैं । यदि हम सब लोग यहाँ डटे रहें तो निश्चय ही हमारी विजय होगी॥५२½॥

विप्रयातांस्तु वो भिन्नान् पाण्डवाः कृतकिल्बिषान्॥५३॥
अनुसृत्य हनिष्यन्ति श्रेयो नः समरे वधः ।

'यदि तुमलोग पृथक्-पृथक् होकर भागोगे तो पाण्डव तुम सभी अपराधियोंका पीछा करके तुम्हें मार डालेंगे, अतः युद्धमें ही मारा जाना हमारे लिये श्रेयस्कर होगा ॥ ५३½ ॥

सुखः सांग्रामिको मृत्युः क्षत्रधर्मेण युध्यताम् ॥ ५४ ॥
मृतो दुःखं न जानीते प्रेत्य चानन्त्यमश्नुते ।

'क्षत्रियधर्मके अनुसार युद्ध करनेवाले वीरोंके लिये संग्रामभूमिमें होनेवाली मृत्यु ही सुखद है; क्योंकि वहाँ मरा हुआ मनुष्य मृत्युके दुःखको नहीं जानता और मृत्युके पश्चात् अक्षय सुखका भागी होता है ॥ ५४½ ॥

शृण्वन्तु क्षत्रियाः सर्वे यावन्तोऽत्र समागताः ॥ ५५ ॥
द्विषतो भीमसेनस्य वशमेष्यथ विद्रुताः ।

'जितने क्षत्रिय यहाँ आये हैं वे सब सुनें—'तुमलोग भागनेपर अपने शत्रु भीमसेनके अधीन हो जाओगे ॥५५½॥

पितामहैराचरितं न धर्मं हातुमर्हथ ॥ ५६ ॥
नान्यत् कर्मास्ति पापीयः क्षत्रियस्य पलायनात् ।

'इसलिये अपने बाप-दादोंके द्वारा आचरणमें लाये हुए धर्मका परित्याग न करो । क्षत्रियके लिये युद्ध छोड़कर भागनेसे बढ़कर दूसरा कोई अत्यन्त पापपूर्ण कर्म नहीं है ॥

न युद्धधर्माच्छ्रेयान् हि पन्थाः स्वर्गस्य कौरवाः ॥ ५७ ॥
सुचिरेणार्जिताँल्लोकान् सद्यो युद्धात् समश्नुते ।

'कौरवो ! युद्धधर्मसे बढ़कर दूसरा कोई स्वर्गका श्रेष्ठ मार्ग नहीं है । दीर्घकालतक पुण्यकर्म करनेसे प्राप्त होनेवाले पुण्य-लोकोंको वीर क्षत्रिय युद्धसे तत्काल प्राप्त कर लेता है' ॥

तस्य तद् वचनं राज्ञः पूजयित्वा महारथाः ॥ ५८ ॥
पुनरेवाभ्यवर्तन्त क्षत्रियाः पाण्डवान् प्रति ।
पराजयममृष्यन्तः कृतचित्ताश्च विक्रमे ॥ ५९ ॥

राजा दुर्योधनकी उस बातका आदर करके वे महारथी क्षत्रिय पुनः युद्ध करनेके लिये पाण्डवोंके सामने आये । उन्हें पराजय असह्य हो उठी थी; इसलिये उन्होंने पराक्रम करनेमें ही मन लगाया था ॥ ५८-५९ ॥

ततः प्रववृते युद्धं पुनरेव सुदारुणम् ।
तावकानां परेषां च देवासुररणोपमम् ॥ ६० ॥

तदनन्तर आपके और शत्रुपक्षके सैनिकोंमें पुनः देवासुर-संग्रामके समान अत्यन्त भयंकर युद्ध होने लगा ॥ ६० ॥

युधिष्ठिरपुरोगांश्च सर्वसैन्येन पाण्डवान् ।
अन्वधावन्महाराज पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ ६१ ॥

महाराज ! उस समय आपके पुत्र दुर्योधनने अपनी सारी सेनाके साथ युधिष्ठिर आदि सभी पाण्डवोंपर धावा किया था ॥ ६१ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि कौरवसैन्यापयाने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें कौरवसेनाका पलायनविषयक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

कृपाचार्यका दुर्योधनको संधिके लिये समझाना

संजय उवाच

पतितान् रथनीडांश्च रथांश्चापि महात्मनाम्।
रणे च निहतान् नागान् दृष्ट्वा पत्तींश्च मारिष ॥ १ ॥
आयोधनं चातिघोरं रुद्रस्याक्रीड संनिभम्।
अप्रख्यातिं गतानां तु राज्ञां शतसहस्रशः ॥ २ ॥
विमुखे तव पुत्रे तु शोकोपहतचेतसि।
भृशोद्विग्नेषु सैन्येषु दृष्ट्वा पार्थस्य विक्रमम् ॥ ३ ॥
ध्यायमानेषु सैन्येषु दुःखं प्राप्तेषु भारत।
बलानां मथ्यमानानां श्रुत्वा निनदमुत्तमम् ॥ ४ ॥
अभिज्ञानं नरेन्द्राणां विक्षतं प्रेक्ष्य संयुगे।
कृपाविष्टः कृपो राजन् वयःशीलसमन्वितः ॥ ५ ॥
अब्रवीत् तत्र तेजस्वी सोऽभिसृत्य जनाधिपम्।
दुर्योधनं मन्युवशाद् वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ ६ ॥

संजय कहते हैं—माननीय नरेश ! उस समय रणभूमिमें महामनस्वी वीरोंके रथ और उनकी बैठकें टूटी पड़ी थीं। सवारोंसहित हाथी और पैदल सैनिक मार डाले गये थे। वह युद्धस्थल रुद्रदेवकी क्रीडाभूमि श्मशानके समान अत्यन्त भयानक जान पड़ता था और वहाँ लाखों नरेशोंका नामोनिशान मिट गया था। यह सब देखकर जब आपके पुत्र दुर्योधनका मन शोकमें डूब गया और उसने युद्धसे मुँह मोड़ लिया, कुन्तीपुत्र अर्जुनका पराक्रम देखकर समस्त सेनाएँ जब भयसे अत्यन्त व्याकुल हो उठीं और भारी दुःखमें पड़कर चिन्तामग्न हो गयीं, उस समय मथे जाते हुए सैनिकोंका जोर-जोरसे आर्तनाद सुनकर तथा राजाओंके चिह्नस्वरूप ध्वज आदिको युद्धस्थलमें क्षत-विक्षत हुआ देखकर प्रौढ़ अवस्था और उत्तम स्वभावसे युक्त तेजस्वी कृपाचार्यके मनमें बड़ी दया आयी। भरतवंशी नरेश ! वे बातचीत करनेमें अत्यन्त कुशल थे। उन्होंने राजा दुर्योधनके निकट जाकर उसकी दीनता देखकर इस प्रकार कहा—॥ १—६ ॥

दुर्योधन निबोधेदं यत् त्वां वक्ष्यामि कौरव।
श्रुत्वा कुरु महाराज यदि ते रोचतेऽनघ ॥ ७ ॥

'कुरुवंशी महाराज दुर्योधन ! मैं इस समय तुमसे जो कुछ कहता हूँ, उसे ध्यान देकर सुनो। अनघ ! मेरी बात सुनकर यदि तुम्हें रुचे तो उसके अनुसार कार्य करो ॥ ७ ॥

न युद्धधर्माच्छ्रेयान् वै पन्था राजेन्द्र विद्यते।
यं समाश्रित्य युद्ध्यन्ते क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ ॥ ८ ॥

'राजेन्द्र ! क्षत्रियशिरोमणे ! युद्धधर्मसे बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी मार्ग नहीं है, जिसका आश्रय लेकर क्षत्रिय लोग युद्धमें तत्पर रहते हैं ॥ ८ ॥

पुत्रो भ्राता पिता चैव स्वस्रीयो मातुलस्तथा।
सम्बन्धिबान्धवाश्चैव योद्धव्या वै क्षत्रजीविना ॥ ९ ॥

'क्षत्रिय-धर्मसे जीवन-निर्वाह करनेवाले पुरुषके लिये पुत्र, भ्राता, पिता, भानजा, मामा, सम्बन्धी तथा बन्धु बान्धव—इन सबके साथ युद्ध करना कर्तव्य है ॥ ९ ॥

वधे चैव परो धर्मस्तथाधर्मः पलायने।
ते स्म घोरां समापन्ना जीविकां जीवितार्थिनः ॥ १० ॥

'युद्धमें शत्रुको मारना या उसके हाथसे मारा जाना दोनों ही उत्तम धर्म है और युद्धसे भागनेपर महान् पाप होता है। सभी क्षत्रिय जीवन-निर्वाहकी इच्छा रखते हुए उसी घोर जीविकाका आश्रय लेते हैं ॥ १० ॥

तदत्र प्रतिवक्ष्यामि किंचिदेव हितं वचः।
हते भीष्मे च द्रोणे च कर्णे चैव महारथे ॥ ११ ॥
जयद्रथे च निहते तव भ्रातृषु चानघ।
लक्ष्मणे तव पुत्रे च किं शेषं पर्युपास्महे ॥ १२ ॥

'ऐसी दशामें मैं यहाँ तुम्हारे लिये कुछ हितकी बात बताऊँगा। अनघ ! पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, महारथी कर्ण, जयद्रथ तथा तुम्हारे सभी भाई मारे जा चुके हैं। तुम्हारा पुत्र लक्ष्मण भी जीवित नहीं है। अब दूसरा कौन बच गया है, जिसका हमलोग आश्रय ग्रहण करें ॥ ११-१२ ॥

येषु भारं समासाद्य राज्ये मतिमकुर्महि।
ते संत्यज्य तनूर्याताः शूरा ब्रह्मविदां गतिम् ॥ १३ ॥

'जिनपर युद्धका भार रखकर हम राज्य पानेकी आशा करते थे, वे शूरवीर तो शरीर छोड़कर ब्रह्मवेत्ताओंकी गतिको प्राप्त हो गये ॥ १३ ॥

वयं त्विह विना भूता गुणवद्भिर्महारथैः।
कृपणं वर्तयिष्याम पातयित्वा नृपान् बहून् ॥ १४ ॥

'इस समय हमलोग यहाँ भीष्म आदि गुणवान् महारथियोंके सहयोगसे वञ्चित हो गये हैं और बहुत-से नरेशोंको मरवाकर दयनीय स्थितिमें आ गये हैं ॥ १४ ॥

सर्वैरथ च जीवद्भिर्बीभत्सुरपराजितः।
कृष्णनेत्रो महाबाहुर्देवैरपि दुरासदः ॥ १५ ॥

'जब सब लोग जीवित थे, तब भी अर्जुन किसीके द्वारा पराजित नहीं हुए। श्रीकृष्ण-जैसे नेताके रहते हुए महाबाहु अर्जुन देवताओंके लिये भी दुर्जय हैं ॥ १५ ॥

इन्द्रकार्मुकतुल्याभमिन्द्रकेतुमिवोच्छ्रितम्।
वानरं केतुमासाद्य संचचाल महाचमूः ॥ १६ ॥

'उनका वानरध्वज इन्द्रधनुषके तुल्य बहुरंगा और इन्द्रध्वजके समान अत्यन्त ऊँचा है। उसके पास पहुँचकर हमारी विशाल सेना भयसे विचलित हो उठती है ॥ १६ ॥

सिंहनादाच्च भीमस्य पाञ्चजन्यस्वनेन च।
गाण्डीवस्य च निर्घोषात् सम्मुह्यन्ते मनांसि नः ॥ १७ ॥

'भीमसेनके सिंहनाद, पाञ्चजन्य शङ्खकी ध्वनि और

गाण्डीव धनुषकी टङ्कारसे हमारा दिल दहल उठता है ॥१७॥

चरन्तीव महाविद्युन्मुष्णन्ती नयनप्रभाम् ।
अलातमिव चाविद्धं गाण्डीवं समदृश्यत ॥ १८ ॥

'जैसे चमकती हुई महाविद्युत् नेत्रोंकी प्रभाको छीनती-सी दिखायी देती है तथा जैसे अलातचक्र घूमता देखा जाता है, उसी प्रकार अर्जुनके हाथमें गाण्डीव धनुष भी दृष्टिगोचर होता है ॥ १८ ॥'

जाम्बूनदविचित्रं च धूयमानं महद् धनुः ।
दृश्यते दिक्षु सर्वासु विद्युदभ्रघनेष्विव ॥ १९ ॥

'अर्जुनके हाथमें डोलता हुआ उनका सुवर्णजटित महान् धनुष सम्पूर्ण दिशाओंमें वैसा ही दिखायी देता है, जैसे मेघोंकी घटामें बिजली ॥ १९ ॥

श्वेताश्च वेगसम्पन्नाः शशिकाशसमप्रभाः ।
पिबन्त इव चाकाशं रथे युक्तास्तु वाजिनः ॥ २० ॥

'उनके रथमें जुते हुए घोड़े श्वेत वर्णवाले, वेगशाली तथा चन्द्रमा और कासके समान उज्ज्वल कान्तिसे सुशोभित हैं । वे ऐसी तीव्र गतिसे चलते हैं, मानो आकाशको पी जायँगे ॥ २० ॥

उह्यमानांश्च कृष्णेन वायुनेव बलाहकाः ।
जाम्बूनदविचित्राङ्गा वहन्ते चार्जुनं रणे ॥ २१ ॥

'जैसे वायुकी प्रेरणासे बादल उड़ते फिरते हैं, वैसे ही भगवान् श्रीकृष्णद्वारा हाँके जाते हुए घोड़े, जो सुनहरे साजोंसे सजे होनेके कारण अङ्गोंमें विचित्र शोभा धारण करते हैं, रणभूमिमें अर्जुनकी सवारी ढोते हैं ॥ २१ ॥

तावकं तद् बलं राजन्नर्जुनोऽस्त्रविशारदः ।
गहनं शिशिरापाये ददाहाग्निरिवोल्बणः ॥ २२ ॥

'राजन् ! अर्जुन अस्त्रविद्यामें कुशल हैं, उन्होंने तुम्हारी सेनाको उसी प्रकार भस्म किया है, जैसे भयंकर आग ग्रीष्म ऋतुमें बहुत बड़े जंगलको जला डालती है ॥ २२ ॥

गाहमानमनीकानि महेन्द्रसदृशप्रभम् ।
धनंजयमपश्याम चतुर्दंष्ट्रमिव द्विपम् ॥ २३ ॥

'देवराज इन्द्रके समान तेजस्वी अर्जुनको हम चार दाँत-वाले गजराजके समान अपनी सेनामें प्रवेश करते देखते हैं ॥

विक्षोभयन्तं सेनां ते त्रासयन्तं च पार्थिवान् ।
धनंजयमपश्याम नलिनीमिव कुञ्जरम् ॥ २४ ॥

'जैसे मतवाला हाथी तालाबमें घुसकर उसे मथ डालता है, उसी प्रकार हमने अर्जुनको तुम्हारी सेनाको मथते और राजाओंको भयभीत करते देखा है ॥ २४ ॥

त्रासयन्तं तथा योधान् धनुर्घोषेण पाण्डवम् ।
भूय एनमपश्याम सिंहं मृगगणानिव ॥ २५ ॥

'जैसे सिंह मृगोंके झुंडको भयभीत कर देता है, उसी प्रकार पाण्डुकुमार अर्जुन अपने धनुषकी टङ्कारसे तुम्हारे समस्त योद्धाओंको बारंबार भयभीत करते दिखायी दिये हैं ॥

सर्वलोकमहेष्वासौ वृषभौ सर्वधन्विनाम् ।
आमुक्तकवचौ कृष्णौ लोकमध्ये विचेरतुः ॥ २६ ॥

'अपने अङ्गोंमें कवच धारण किये श्रीकृष्ण और अर्जुन, जो सम्पूर्ण विश्वके महाधनुर्धर और सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ हैं, योद्धाओंके समूहमें निर्भय विचरते हैं ॥ २६ ॥

अद्य सप्तदशाहानि वर्तमानस्य भारत ।
संग्रामस्यातिघोरस्य वध्यतां चाभितो युधि ॥ २७ ॥

'भारत ! परस्पर मार-काट मचाते हुए दोनों ओरसे योद्धाओंके इस अत्यन्त भयंकर संग्रामको आरम्भ हुए आज सत्रह दिन हो गये ॥ २७ ॥

वायुनेव विधूतानि तव सैन्यानि सर्वतः ।
शरदम्भोदजालानि व्यशीर्यन्त समन्ततः ॥ २८ ॥

'जैसे हवा शरद् ऋतुके बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार अर्जुनकी मारसे तुम्हारी सेनाएँ सब ओर तितर-बितर हो गयी हैं ॥ २८ ॥

तां नावमिव पर्यस्तां वातधूतां महार्णवे ।
तव सेनां महाराज सव्यसाची व्यकम्पयत् ॥ २९ ॥

'महाराज ! जैसे महासागरमें हवाके थपेड़े खाकर नाव डगमगाने लगती है, उसी प्रकार सव्यसाची अर्जुनने तुम्हारी सेनाको कँपा डाला है ॥ २९ ॥

क नु ते सूतपुत्रोऽभूत् क नु द्रोणः सहानुगः ।
अहं क च क चात्मा ते हार्दिक्यश्च तथा क नु ॥ ३० ॥
दुःशासनश्च ते भ्राता भ्रातृभिः सहितः क नु ।
बाणगोचरसम्प्राप्तं प्रेक्ष्य चैव जयद्रथम् ॥ ३१ ॥

'उस दिन जयद्रथको अर्जुनके बाणोंका निशाना बनते देखकर भी तुम्हारा कर्ण कहाँ चला गया था ? अपने अनु-यायियोंके साथ आचार्य द्रोण कहाँ थे ? मैं कहाँ था ? तुम कहाँ थे ? कृतवर्मा कहाँ चले गये थे और भाइयोंसहित तुम्हारा भ्राता दुःशासन भी कहाँ था ? ॥ ३०-३१ ॥

सम्बन्धिनस्ते भ्रातॄंश्च सहायान् मातुलांस्तथा ।
सर्वान् विक्रम्य मिषतो लोकमाक्रम्य मूर्धनि ॥ ३२ ॥
जयद्रथो हतो राजन् किं नु शेषमुपास्महे ।
को हीह स पुमानस्ति यो विजेष्यति पाण्डवम् ॥ ३३ ॥

'राजन् ! तुम्हारे सम्बन्धी, भाई, सहायक और मामा सब-के-सब देख रहे थे तो भी अर्जुनने उन सबको अपने पराक्रमद्वारा परास्त करके सब लोगोंके मस्तकपर पैर रखकर जयद्रथको मार डाला । अब और कौन बचा है जिसका हम भरोसा करें ? यहाँ कौन ऐसा पुरुष है जो पाण्डुपुत्र अर्जुनपर विजय पायेगा ? ॥ ३२-३३ ॥

तस्य चास्त्राणि दिव्यानि विविधानि महात्मनः ।
गाण्डीवस्य च निर्घोषो धैर्याणि हरते हि नः ॥ ३४ ॥

'महात्मा अर्जुनके पास नाना प्रकारके दिव्यास्त्र हैं । उनके गाण्डीव धनुषका गम्भीर घोष हमारा धैर्य छीन लेता है ॥

नष्टचन्द्रा यथा रात्रिः सेनेयं हतनायका।
नागभग्नद्रुमा शुष्का नदीवाकुलतां गता ॥ ३५ ॥

'जैसे चन्द्रमाके उदित न होनेपर रात्रि अन्धकारमयी दिखायी देती है, उसी प्रकार हमारी यह सेना सेनापतिके मारे जानेसे श्रीहीन हो रही है। हाथीने जिसके किनारेके वृक्षोंको तोड़ डाला हो, उस सूखी नदीके समान यह व्याकुल हो उठी है ॥ ३५ ॥

ध्वजिन्यां हतनेत्रायां यथेष्टं श्वेतवाहनः।
चरिष्यति महाबाहुः कक्षेष्वग्निरिव ज्वलन् ॥ ३६ ॥

'हमारी इस विशाल वाहिनीका नेता नष्ट हो गया है। ऐसी दशामें घास-फूसके ढेरमें प्रज्वलित होनेवाली आगके समान श्वेत घोड़ोंवाले महाबाहु अर्जुन इस सेनाके भीतर इच्छानुसार विचरेंगे ॥ ३६ ॥

सात्यकेश्चैव यो वेगो भीमसेनस्य चोभयोः।
दारयेच्च गिरीन् सर्वाञ्शोषयेच्चैव सागरान् ॥३७॥

'उधर सात्यकि और भीमसेन दोनों वीरोंका जो वेग है, वह सारे पर्वतोंको विदीर्ण कर सकता है। समुद्रोंको भी सुखा सकता है ॥ ३७ ॥

उवाच वाक्यं यद् भीमः सभामध्ये विशाम्पते।
कृतं तत् सफलं तेन भूयश्चैव करिष्यति ॥ ३८ ॥

'प्रजानाथ! द्यूतसभामें भीमसेनने जो बात कही थी, उसे उन्होंने सत्य कर दिखाया और जो शेष है, उसे भी वे अवश्य ही पूर्ण करेंगे ॥ ३८ ॥

प्रमुखस्थे तदा कर्णे बलं पाण्डवरक्षितम्।
दुरासदं तदा गुप्तं व्यूढं गाण्डीवधन्वना ॥ ३९ ॥

'जब कर्णके साथ युद्ध चल रहा था, उस समय कर्ण सामने ही था तो भी पाण्डवोंद्वारा रक्षित सेना उसके लिये दुर्जय हो गयी; क्योंकि गाण्डीवधारी अर्जुन व्यूहरचनापूर्वक उसकी रक्षा कर रहे थे ॥ ३९ ॥

युष्माभिस्तानि चीर्णानि यान्यसाधूनि साधुषु।
अकारणकृतान्येव तेषां वः फलमागतम् ॥ ४० ॥

'पाण्डव साधुपुरुष हैं तो भी तुमलोगोंने अकारण ही उनके साथ जो बहुत-से अनुचित बर्ताव किये हैं, उन्हींका यह फल तुम्हें मिला है ॥ ४० ॥

आत्मनोऽर्थे त्वया लोको यत्नतः सर्व आहृतः।
स ते संशयितस्तात आत्मा वै भरतर्षभ ॥ ४१॥

'भरतश्रेष्ठ ! तुमने अपनी रक्षाके लिये ही प्रयत्नपूर्वक सारे जगत्के लोगोंको एकत्र किया था, किंतु तुम्हारा ही जीवन संशयमें पड़ गया है ॥ ४१ ॥

रक्ष दुर्योधनात्मानमात्मा सर्वस्य भाजनम्।
भिन्ने हि भाजने तात दिशो गच्छति तद्गतम् ॥ ४२॥

'दुर्योधन ! अब तुम अपने शरीरकी रक्षा करो; क्योंकि आत्मा (शरीर) ही समस्त सुखोंका भाजन है। जैसे पात्रके फूट जानेपर उसमें रक्खा हुआ जल चारों ओर बह जाता है, उसी प्रकार शरीरके नष्ट होनेसे उसपर अवलम्बित सुखोंका भी अन्त हो जाता है ॥ ४२ ॥

हीयमानेन वै सन्धिः पर्येष्टव्यः समेन वा।
विग्रहो वर्धमानेन मतिरेषा बृहस्पतेः ॥ ४३ ॥

'बृहस्पतिकी यह नीति है कि जब अपना बल कम या बराबर जान पड़े तो शत्रुके साथ संधि कर लेनी चाहिये। लड़ाई तो उसी वक्त छेड़नी चाहिये, जब अपनी शक्ति शत्रुसे बढ़ी-चढ़ी हो ॥ ४३ ॥

ते वयं पाण्डुपुत्रेभ्यो हीना स्म बलशक्तितः।
तदत्र पाण्डवैः सार्धं सन्धिं मन्ये क्षमं प्रभो ॥ ४४ ॥

'हमलोग बल और शक्तिमें पाण्डवोंसे हीन हो गये हैं। अतः प्रभो ! इस अवस्थामें मैं पाण्डवोंके साथ संधि कर लेना ही उचित समझता हूँ ॥ ४४ ॥

न जानीते हि यः श्रेयः श्रेयसश्चावमन्यते।
स क्षिप्रं भ्रश्यते राज्यान्न च श्रेयोऽनुविन्दते ॥ ४५ ॥

'जो राजा अपनी भलाईकी बात नहीं समझता और श्रेष्ठ पुरुषोंका अपमान करता है, वह शीघ्र ही राज्यसे भ्रष्ट हो जाता है। उसे कभी कल्याणकी प्राप्ति नहीं होती ॥ ४५ ॥

प्रणिपत्य हि राजानं राज्यं यदि लभेमहि।
श्रेयः स्यान्न तु मौढ्येन राजन् गन्तुः पराभवम् ॥ ४६ ॥

'राजन् ! यदि राजा युधिष्ठिरके सामने नतमस्तक होकर हम अपना राज्य प्राप्त कर लें तो यही श्रेयस्कर होगा। मूर्खतावश पराजय स्वीकार करनेवालेका कभी भला नहीं हो सकता ॥ ४६ ॥

वैचित्रवीर्यवचनात् कृपाशीलो युधिष्ठिरः।
विनियुञ्जीत राज्ये त्वां गोविन्दवचनेन च ॥ ४७ ॥

'युधिष्ठिर दयालु हैं। वे राजा धृतराष्ट्र और भगवान् श्रीकृष्णके कहनेसे तुम्हें राज्यपर प्रतिष्ठित कर सकते हैं ॥ ४७ ॥

यद् ब्रूयाद्धि हृषीकेशो राजानमपराजितम्।
अर्जुनं भीमसेनं च सर्वे कुर्युरसंशयम् ॥ ४८ ॥

'भगवान् श्रीकृष्ण किसीसे पराजित न होनेवाले राजा युधिष्ठिर, अर्जुन और भीमसेनसे जो कुछ भी कहेंगे, वे सब लोग उसे निःसंदेह स्वीकार कर लेंगे ॥ ४८ ॥

नातिक्रमिष्यते कृष्णो वचनं कौरवस्य तु।
धृतराष्ट्रस्य मन्येऽहं नापि कृष्णस्य पाण्डवः ॥ ४९ ॥

'कुरुराज धृतराष्ट्रकी बात श्रीकृष्ण नहीं टालेंगे और श्रीकृष्णकी आज्ञाका उल्लङ्घन युधिष्ठिर नहीं कर सकेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है ॥ ४९ ॥

एतत् क्षेममहं मन्ये न च पार्थैश्च विग्रहम्।
न त्वां ब्रवीमि कार्पण्यान्न प्राणपरिरक्षणात् ॥ ५० ॥
पथ्यं राजन् ब्रवीमि त्वां तत्परासुः स्मरिष्यसि।

'राजन् ! मैं इस संधिको ही तुम्हारे लिये कल्याणकारी मानता हूँ। पाण्डवोंके साथ किये जानेवाले युद्धको नहीं। मैं

कायरता या प्राण-रक्षाकी भावनासे यह सब नहीं कहता हूँ। तुम्हारे हितकी बात बता रहा हूँ। तुम मरणासन्न अवस्थामें मेरी यह बात याद करोगे ॥ ५०½ ॥

इति वृद्धो विलप्यैतत् कृपः शारद्वतो वचः।
दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य शुशोच च मुमोह च ॥ ५१ ॥

शरद्वान्‌के पुत्र वृद्ध कृपाचार्य इस प्रकार विलाप करके गरम-गरम लंबी साँस खींचते हुए शोक और मोहके वशीभूत हो गये ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि कृपवाक्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें कृपाचार्यका वचनविषयक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

दुर्योधनका कृपाचार्यको उत्तर देते हुए सन्धि स्वीकार न करके युद्धका ही निश्चय करना

संजय उवाच

एवमुक्तस्ततो राजा गौतमेन तपस्विना।
निःश्वस्य दीर्घमुष्णं च तूष्णीमासीद् विशाम्पते ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—प्रजानाथ ! तपस्वी कृपाचार्यके ऐसा कहनेपर दुर्योधन जोर-जोरसे गरम साँस खींचता हुआ कुछ देरतक चुपचाप बैठा रहा ॥ १ ॥

ततो मुहूर्तं स ध्यात्वा धार्तराष्ट्रो महामनाः।
कृपं शारद्वतं वाक्यमित्युवाच परंतपः ॥ २ ॥

दो घड़ीतक सोच-विचार करनेके पश्चात् शत्रुओंको संताप देनेवाले आपके उस महामनस्वी पुत्रने शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्यको इस प्रकार उत्तर दिया—॥ २ ॥

यत् किंचित् सुहृदा वाच्यं तत् सर्वं श्रावितो ह्यहम्।
कृतं च भवता सर्वं प्राणान् संत्यज्य युध्यता ॥ ३ ॥

'विप्रवर ! एक हितैषी सुहृद्‌को जो कुछ कहना चाहिये, वह सब आपने कह सुनाया। इतना ही नहीं, आपने प्राणोंका मोह छोड़कर युद्ध करते हुए मेरी भलाईके लिये सब कुछ किया है ॥ ३ ॥

गाहमानमनीकानि युध्यमानं महारथैः।
पाण्डवैरतितेजोभिर्लोकस्त्वामनुदृष्टवान् ॥ ४ ॥

'सब लोगोंने आपको शत्रुओंकी सेनाओंमें घुसते और अत्यन्त तेजस्वी महारथी पाण्डवोंके साथ युद्ध करते हुए बारंबार देखा है ॥ ४ ॥

सुहृदा यदिदं वाक्यं भवता श्रावितो ह्यहम्।
न मां प्रीणाति तत् सर्वं मुमूर्षोरिव भेषजम् ॥ ५ ॥

'आप मेरे हितचिन्तक सुहृद् हैं तो भी आपने मुझे जो बात सुनायी है, वह सब मेरे मनको उसी तरह पसंद नहीं आती, जैसे मरणासन्न रोगीको दवा अच्छी नहीं लगती है ॥

हेतुकारणसंयुक्तं हितं वचनमुत्तमम्।
उच्यमानं महाबाहो न मे विप्राग्र्य रोचते ॥ ६ ॥

'महाबाहो ! विप्रवर ! आपने युक्ति और कारणोंसे सुसङ्गत, हितकारक एवं उत्तम बात कही है तो भी वह मुझे अच्छी नहीं लग रही है ॥ ६ ॥

राज्याद् विनिकृतोऽस्माभिः कथं सोऽस्मासु विश्वसेत्।
अक्षद्यूते च नृपतिर्जितोऽस्माभिर्महाधनः ॥ ७ ॥
स कथं मम वाक्यानि श्रद्दध्याद् भूय एव तु।

'हमलोगोंने राजा युधिष्ठिरके साथ छल किया है। वे महाधनी थे, हमने उन्हें जूएमें जीतकर निर्धन बना दिया। ऐसी दशामें वे हमलोगोंपर विश्वास कैसे कर सकते हैं ? हमारी बातोंपर उन्हें फिर श्रद्धा कैसे हो सकती है ? ॥ ७½ ॥

तथा दौत्येन सम्प्राप्तः कृष्णः पार्थहिते रतः ॥ ८ ॥
प्रलब्धश्च हृषीकेशस्तच्च कर्माविचारितम्।
स च मे वचनं ब्रह्मन् कथमेवाभिमन्यते ॥ ९ ॥

'ब्रह्मन् ! पाण्डवोंके हितमें तत्पर रहनेवाले श्रीकृष्ण मेरे यहाँ दूत बनकर आये थे, किंतु मैंने उन हृषीकेशके साथ धोखा किया। मेरा वह कर्म अविचारपूर्ण था। भला, अब वे मेरी बात कैसे मानेंगे ? ॥ ८-९ ॥

विललाप च यत् कृष्णा सभामध्ये समेयुषी।
न तन्मर्षयते कृष्णो न राज्यहरणं तथा ॥ १० ॥

'सभामें बलात्कारपूर्वक लायी हुई द्रौपदीने जो विलाप किया था तथा पाण्डवोंका जो राज्य छीन लिया गया था, वह बर्ताव श्रीकृष्ण सहन नहीं कर सकते ॥ १० ॥

एकप्राणावुभौ कृष्णावन्योन्यमभिसंश्रितौ।
पुरा यच्छ्रुतमेवासीदद्य पश्यामि तत् प्रभो ॥ ११ ॥

'प्रभो ! श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों दो शरीर और एक प्राण हैं। वे दोनों एक दूसरेके आश्रित हैं। पहले जो बात मैंने केवल सुन रक्खी थी, उसे अब प्रत्यक्ष देख रहा हूँ ॥

स्वस्रीयं निहतं श्रुत्वा दुःखं स्वपिति केशवः।
कृतागसो वयं तस्य स मदर्थं कथं क्षमेत् ॥ १२ ॥

'अपने भानजे अभिमन्युके मारे जानेका समाचार सुनकर श्रीकृष्ण सुखकी नींद नहीं सोते हैं। हम सब लोग उनके अपराधी हैं, फिर वे हमें कैसे क्षमा कर सकते हैं ? ॥ १२ ॥

अभिमन्योर्विनाशेन न शर्म लभतेऽर्जुनः।
स कथं मद्धिते यत्नं प्रकरिष्यति याचितः ॥ १३ ॥

'अभिमन्युके मारे जानेसे अर्जुनको भी चैन नहीं है, फिर वे प्रार्थना करनेपर भी मेरे हितके लिये कैसे यत्न करेंगे ? ॥ १३ ॥

मध्यमः पाण्डवस्तीक्ष्णो भीमसेनो महाबलः।
प्रतिज्ञातं च तेनोग्रं भज्येतापि न संनमेत् ॥ १४ ॥

'मझले पाण्डव महाबली भीमसेनका स्वभाव बड़ा ही कठोर है। उन्होंने बड़ी भयंकर प्रतिज्ञा की है। सूखे काठकी तरह वे टूट भले ही जायँ, झुक नहीं सकते ॥ १४ ॥

उभौ तौ बद्धनिस्त्रिंशावुभौ चाबद्धकङ्कटौ।
कृतवैरावुभौ वीरौ यमावपि यमोपमौ ॥ १५ ॥

'दोनों भाई नकुल और सहदेव तलवार बाँधे और कवच धारण किये हुए यमराजके समान भयंकर जान पड़ते हैं। वे दोनों वीर मुझसे वैर मानते हैं ॥ १५ ॥

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च कृतवैरौ मया सह।
तौ कथं मद्धिते यत्नं कुर्यातां द्विजसत्तम ॥ १६ ॥

'द्विजश्रेष्ठ ! धृष्टद्युम्न और शिखण्डीने भी मेरे साथ वैर बाँध रक्खा है, फिर वे दोनों मेरे हितके लिये कैसे यत्न कर सकते हैं ? ॥ १६ ॥

दुःशासनेन यत् कृष्णा एकवस्त्रा रजस्वला।
परिक्लिष्टा सभामध्ये सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ १७ ॥
तथा विवसनां दीनां स्मरन्त्यद्यापि पाण्डवाः।

'द्रौपदी एक वस्त्र पहने हुए थी, रजस्वला थी। उस अवस्थामें जो वह भरी सभामें लायी गयी और दुःशासनने सब लोगोंके सामने जो उसे महान् क्लेश पहुँचाया, उसका जो वस्त्र उतारा गया और उसे जो दयनीय दशाको पहुँचा दिया गया, उन सब बातोंको पाण्डव आज भी याद रखते हैं ॥

न निवारयितुं शक्याः संग्रामात्ते परंतपाः ॥ १८ ॥
यदा च द्रौपदी क्लिष्टा मद्विनाशाय दुःखिता।
स्थण्डिले नित्यदा शेते यावद् वैरस्य यातनम् ॥१९॥

'इसलिये अब उन शत्रुसंतापी वीरोंको युद्धसे रोका नहीं जा सकता। जबसे द्रौपदीको क्लेश दिया गया, तबसे वह दुखी हो मेरे विनाशका संकल्प लेकर प्रतिदिन मिट्टीकी वेदी-पर सोया करती है। जबतक वैरका पूरा बदला न चुका लिया जाय, तबतकके लिये उसने यह व्रत ले रक्खा है ॥१८-१९॥

उग्रं तेपे तपः कृष्णा भर्तृणामर्थसिद्धये।
निक्षिप्य मानं दर्पं च वासुदेवसहोदरा ॥ २० ॥
कृष्णायाः प्रेष्यवद् भूत्वा शुश्रूषां कुरुते सदा।
इति सर्वं समुन्नद्धं न निर्वाति कथञ्चन ॥ २१ ॥

'द्रौपदी अपने पतियोंके अभीष्ट मनोरथकी सिद्धिके लिये बड़ी कठोर तपस्या करती है और वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णकी सगी बहन सुभद्रा मान और अभिमानको दूर फेंककर सदा दासीकी भाँति द्रौपदीकी सेवा करती है। इस प्रकार इन सारे कार्योंके रूपमें वैरकी आग प्रज्वलित हो उठी है, जो किसी प्रकार बुझ नहीं सकती ॥ २०-२१ ॥

अभिमन्योर्विनाशेन स संधेयः कथं मया।
कथं च राजा भुक्त्वेमां पृथिवीं सागराम्बराम्॥ २२ ॥
पाण्डवानां प्रसादेन भोक्ष्ये राज्यमहं कथम्।

'अभिमन्युके विनाशसे जिनके हृदयमें गहरी चोट पहुँची है, उस अर्जुनके साथ मेरी सन्धि कैसे हो सकती है ? जब मैं समुद्रसे घिरी हुई सारी पृथ्वीका एकच्छत्र राजाकी हैसियतसे उपभोग कर चुका हूँ, तब इस समय पाण्डवोंकी कृपाका पात्र बनकर कैसे राज्य भोगूँगा ? ॥ २२½ ॥

उपर्युपरि राज्ञां वै ज्वलित्वा भास्करो यथा ॥ २३ ॥
युधिष्ठिरं कथं पश्चादनुयास्यामि दासवत्।

'समस्त राजाओंके ऊपर सूर्यके समान प्रकाशित होकर अब दासकी भाँति युधिष्ठिरके पीछे-पीछे कैसे चलूँगा?॥२३½॥

कथं भुक्त्वा स्वयं भोगान् दत्त्वा दायांश्च पुष्कलान् ॥
कृपणं वर्तयिष्यामि कृपणैः सह जीविकाम्।

'स्वयं बहुत-से भोग भोगकर और प्रचुर धन दान करके अब दीन पुरुषोंके साथ दीनतापूर्ण जीविकाका आश्रय ले किस प्रकार निर्वाह कर सकूँगा ? ॥ २४½ ॥

नाभ्यसूयामि ते वाक्यमुक्तं स्निग्धं हितं त्वया॥२५॥
न तु सन्धिमहं मन्ये प्राप्तकालं कथञ्चन।

'आपने स्नेहवश हितकी ही बात कही है। आपकी इस बातमें मैं दोष नहीं निकालता और न इसकी निन्दा ही करता हूँ। मेरा कथन तो इतना ही है कि अब किसी प्रकार सन्धिका अवसर नहीं रह गया है। मेरी ऐसी ही मान्यता है ॥ २५½ ॥

सुनीतमनुपश्यामि सुयुद्धेन परंतप ॥ २६ ॥
नायं क्लीबयितुं कालः संयोद्धुं काल एव नः।

'शत्रुओंको तपानेवाले वीर ! अब मैं अच्छी तरह युद्ध करनेमें ही उत्तम नीतिका पालन समझ रहा हूँ। हमारा यह समय कायरता दिखानेका नहीं, उत्साहपूर्वक युद्ध करनेका ही है ॥ २६½ ॥

इष्टं मे बहुभिर्यज्ञैर्दत्ता विप्रेषु दक्षिणाः ॥ २७ ॥
प्राप्ताः कामाः श्रुता वेदाः शत्रूणां मूर्ध्नि च स्थितम्।
भृत्या मे सुभृतास्तात दीनश्चाभ्युद्धृतो जनः ॥ २८ ॥
नोत्सहेऽद्य द्विजश्रेष्ठ पाण्डवान् वक्तुमीदृशम्।

'तात ! मैंने बहुतसे यज्ञोंका अनुष्ठान कर लिया। ब्राह्मणोंको पर्याप्त दक्षिणाएँ दे दीं। सारी कामनाएँ पूर्ण कर लीं। वेदों-का श्रवण कर लिया। शत्रुओंके माथेपर पैर रक्खा और भरण-पोषणके योग्य व्यक्तियोंके पालन-पोषणकी अच्छी व्यवस्था कर दी। इतना ही नहीं, मैंने दीनोंका उद्धारकार्य भी सम्पन्न कर दिया है। अतः द्विजश्रेष्ठ ! अब मैं पाण्डवोंसे इस प्रकार सन्धिके लिये याचना नहीं कर सकता ॥२७-२८½॥

जितानि परराष्ट्राणि स्वराष्ट्रमनुपालितम् ॥ २९ ॥
भुक्ताश्च विविधा भोगास्त्रिवर्गः सेवितो मया।
पितॄणां गतमानृण्यं क्षत्रधर्मस्य चोभयोः ॥ ३० ॥

'मैंने दूसरोंके राज्य जीते, अपने राष्ट्रका निरन्तर पालन किया, नाना प्रकारके भोग भोगे; धर्म, अर्थ और कामका सेवन किया और पितरों तथा क्षत्रियधर्म—दोनोंके ऋणसे उऋण हो गया ॥ २९-३० ॥

न ध्रुवं सुखमस्तीति कुतो राष्ट्रं कुतो यशः।
इह कीर्तिर्विधातव्या सा च युद्धेन नान्यथा ॥ ३१ ॥

'संसारमें कोई भी सुख सदा रहनेवाला नहीं है। फिर राष्ट्र और यश भी कैसे स्थिर रह सकते हैं? यहाँ तो कीर्तिका ही उपार्जन करना चाहिये और कीर्ति युद्धके सिवा किसी दूसरे उपायसे नहीं मिल सकती ॥ ३१ ॥

गृहे यत् क्षत्रियस्यापि निधनं तद् विगर्हितम्।
अधर्मः सुमहानेष यच्छय्यामरणं गृहे ॥ ३२ ॥

'क्षत्रियकी भी यदि घरमें मृत्यु हो जाय तो उसे निन्दित माना गया है। घरमें खाटपर सोकर मरना यह क्षत्रियके लिये महान् पाप है ॥ ३२ ॥

अरण्ये यो विमुच्येत संग्रामे वा तनुं नरः।
क्रतूनाहृत्य महतो महिमानं स गच्छति ॥ ३३ ॥

'जो बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान करके वनमें या संग्राममें शरीरका त्याग करता है, वही क्षत्रिय महत्त्वको प्राप्त होता है॥

कृपणं विलपन्नार्तो जरयाभिपरिप्लुतः।
म्रियते रुदतां मध्ये ज्ञातीनां न स पूरुषः ॥ ३४ ॥

'जिसका शरीर बुढ़ापेसे जर्जर हो गया हो, जो रोगसे पीड़ित हो, परिवारके लोग जिसके आसपास बैठकर रो रहे हों और उन रोते हुए स्वजनोंके बीचमें जो करुण विलाप करते-करते अपने प्राणोंका परित्याग करता है, वह पुरुष कहलानेयोग्य नहीं है ॥ ३४ ॥

त्यक्त्वा तु विविधान् भोगान् प्राप्तानां परमां गतिम्।
अपीदानीं सुयुद्धेन गच्छेयं यत्सलोकताम् ॥ ३५ ॥

'अतः जिन्होंने नाना प्रकारके भोगोंका परित्याग करके उत्तम गति प्राप्त कर ली है, इस समय युद्धके द्वारा मैं उन्हींके लोकोंमें जाऊँगा ॥ ३५ ॥

शूराणामार्यवृत्तानां संग्रामेष्वनिवर्तिनाम्।
धीमतां सत्यसंधानां सर्वेषां क्रतुयाजिनाम् ॥ ३६ ॥
शस्त्रावभृथपूतानां ध्रुवं वासस्त्रिविष्टपे।

'जिनके आचरण श्रेष्ठ हैं, जो युद्धसे कभी पीछे नहीं हटते, अपनी प्रतिज्ञाको सत्य कर दिखाते और यज्ञोंद्वारा यजन करनेवाले हैं तथा जिन्होंने शस्त्रकी धारामें अवभृथस्नान किया है, उन समस्त बुद्धिमान् पुरुषोंका निश्चय ही स्वर्गमें निवास होता है ॥ ३६½ ॥

मुदा नूनं प्रपश्यन्ति युद्धे ह्यप्सरसां गणाः ॥ ३७ ॥
पश्यन्ति नूनं पितरः पूजितान् सुरसंसदि।
अप्सरोभिः परिवृतान् मोदमानांस्त्रिविष्टपे ॥ ३८ ॥

'निश्चय ही युद्धमें प्राण देनेवालोंकी ओर अप्सराएँ बड़ी प्रसन्नतासे निहारा करती हैं। पितृगण उन्हें अवश्य ही देवताओंकी सभामें सम्मानित होते देखते हैं। वे स्वर्गमें अप्सराओंसे घिरकर आनन्दित होते देखे जाते हैं ॥३७-३८॥

पन्थानममरैर्यान्तं शूरैश्चैवानिवर्तिभिः।
अपि तत्संगतं मार्गं वयमप्यारुहेमहि ॥ ३९ ॥
पितामहेन वृद्धेन तथाऽऽचार्येण धीमता।
जयद्रथेन कर्णेन तथा दुःशासनेन च ॥ ४० ॥

'देवता तथा युद्धमें पीठ न दिखानेवाले शूरवीर जिस मार्गसे जाते हैं, क्या उसी मार्गपर अब हमलोग भी वृद्ध पितामह, बुद्धिमान् आचार्य द्रोण, जयद्रथ, कर्ण तथा दुःशासनके साथ आरूढ़ होंगे? ॥ ३९-४० ॥

घटमाना मदर्थेऽस्मिन् हताः शूरा जनाधिपाः।
शेरते लोहिताक्ताङ्गाः संग्रामे शरविक्षताः ॥ ४१ ॥

'कितने ही वीर नरेश मेरी विजयके लिये यथाशक्ति चेष्टा करते हुए बाणोंसे क्षत-विक्षत हो मारे जाकर रक्तरञ्जित शरीरसे संग्रामभूमिमें सो रहे हैं ॥ ४१ ॥

उत्तमास्त्रविदः शूरा यथोक्तक्रतुयाजिनः।
त्यक्त्वा प्राणान् यथान्यायमिन्द्रसद्मस्वधिष्ठिताः ॥४२॥

'उत्तम अस्त्रोंके ज्ञाता और शास्त्रोक्त विधिसे यज्ञ करनेवाले अन्य शूरवीर यथोचित रीतिसे युद्धमें प्राणोंका परित्याग करके इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित हो रहे हैं ॥ ४२ ॥

तैः स्वयं रचितो मार्गो दुर्गमो हि पुनर्भवेत्।
सम्पतद्भिर्महावेगैर्यास्यद्भिरिह सद्गतिम् ॥ ४३ ॥

'उन वीरोंने स्वयं ही जिस मार्गका निर्माण किया है, वह पुनः बड़े वेगसे सद्गतिको जानेवाले बहुसंख्यक वीरोंद्वारा दुर्गम हो जाय (अर्थात् इतने अधिक वीर उस मार्गसे यात्रा करें कि भीड़के मारे उसपर चलना कठिन हो जाय) ॥४३॥

ये मदर्थे हताः शूरास्तेषां कृतमनुस्मरन्।
ऋणं तत् प्रतियुञ्जानो न राज्ये मन आदधे ॥ ४४ ॥

'जो शूरवीर मेरे लिये मारे गये हैं, उनके उस उपकारका निरन्तर स्मरण करता हुआ उस ऋणको उतारनेकी चेष्टामें संलग्न होकर मैं राज्यमें मन नहीं लगा सकता ॥ ४४ ॥

घातयित्वा वयस्यांश्च भ्रातॄनथ पितामहान्।
जीवितं यदि रक्षेयं लोको मां गर्हयेद् ध्रुवम् ॥ ४५ ॥

'मित्रों, भाइयों और पितामहोंको मरवाकर यदि मैं अपने प्राणोंकी रक्षा करूँ तो सारा संसार निश्चय ही मेरी निन्दा करेगा ॥ ४५ ॥

कीदृशं च भवेद् राज्यं मम हीनस्य बन्धुभिः।
सखिभिश्च विशेषेण प्रणिपत्य च पाण्डवम् ॥ ४६ ॥

'बन्धु-बान्धवों और मित्रोंसे हीन हो युधिष्ठिरके पैरोंमें पड़नेपर मुझे जो राज्य मिलेगा, वह कैसा होगा? ॥ ४६ ॥

सोऽहमेतादृशं कृत्वा जगतोऽस्य पराभवम्।
सुयुद्धेन ततः स्वर्गं प्राप्स्यामि न तदन्यथा ॥ ४७ ॥

'इसलिये मैं जगत्‌का ऐसा विनाश करके अब उत्तम युद्धके द्वारा ही स्वर्गलोक प्राप्त करूँगा। मेरी सद्गतिके लिये दूसरा कोई उपाय नहीं है' ॥ ४७ ॥

एवं दुर्योधनेनोक्तं सर्वे सम्पूज्य तद्वचः ।
साधु साध्विति राजानं क्षत्रियाः सम्बभाषिरे ॥ ४८ ॥

इस प्रकार राजा दुर्योधनकी कही हुई यह बात सुनकर सब क्षत्रियोंने 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' कहकर उसका आदर किया और उसे भी धन्यवाद दिया ॥ ४८ ॥

पराजयमशोचन्तः कृतचित्ताश्च विक्रमे ।
सर्वे सुनिश्चिता योद्धुमुदग्रमनसोऽभवन् ॥ ४९ ॥

सबने अपनी पराजयका शोक छोड़कर मन-ही-मन पराक्रम करनेका निश्चय किया । युद्ध करनेके विषयमें सबका पक्का विचार हो गया और सबके हृदयमें उत्साह भर गया ॥

ततो वाहान् समाश्वस्य सर्वे युद्धाभिनन्दिनः ।
ऊने द्वियोजने गत्वा प्रत्यतिष्ठन्त कौरवाः ॥ ५० ॥

तत्पश्चात् सब योद्धाओंने अपने-अपने वाहनोंको विश्राम दे युद्धका अभिनन्दन किया और आठ कोससे कुछ कम दूरी-पर जाकर डेरा डाला ॥ ५० ॥

आकाशे विद्रुमे पुण्ये प्रस्थे हिमवतः शुभे ।
अरुणां सरस्वतीं प्राप्य पपुः सस्नुश्च ते जलम् ॥ ५१ ॥

आकाशके नीचे हिमालयके शिखरकी सुन्दर, पवित्र एवं वृक्षरहित चौरस भूमिपर अरुणसलिला सरस्वतीके निकट जाकर उन सबने स्नान और जलपान किया ॥ ५१ ॥

तव पुत्रकृतोत्साहाः पर्यवर्तन्त ते ततः ।
पर्यवस्थाप्य चात्मानमन्योन्येन पुनस्तदा ।
सर्वे राजन् न्यवर्तन्त क्षत्रियाः कालचोदिताः ॥ ५२ ॥

राजन् ! वे कालप्रेरित समस्त क्षत्रिय आपके पुत्रद्वारा उत्साह देनेपर एक दूसरेके द्वारा मनको स्थिर करके पुनः रणभूमिकी ओर लौटे ॥ ५२ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि दुर्योधनवाक्ये पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें दुर्योधनका वाक्यविषयक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

दुर्योधनके पूछनेपर अश्वत्थामाका शल्यको सेनापति बनानेके लिये प्रस्ताव, दुर्योधनका शल्यसे अनुरोध और शल्यद्वारा उसकी स्वीकृति

संजय उवाच

अथ हैमवते प्रस्थे स्थित्वा युद्धाभिनन्दिनः ।
सर्व एव महायोधास्तत्र तत्र समागताः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! तदनन्तर हिमालयके ऊपरकी चौरस भूमिमें डेरा डालकर युद्धका अभिनन्दन करनेवाले सभी महान् योद्धा वहाँ एकत्र हुए ॥ १ ॥

शल्यश्च चित्रसेनश्च शकुनिश्च महारथः ।
अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ॥ २ ॥
सुषेणोऽरिष्टसेनश्च धृतसेनश्च वीर्यवान् ।
जयत्सेनश्च राजानस्ते रात्रिमुषितास्ततः ॥ ३ ॥

शल्य, चित्रसेन, महारथी शकुनि, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, सात्वतवंशी कृतवर्मा, सुषेण, अरिष्टसेन, पराक्रमी धृतसेन और जयत्सेन आदि राजाओंने वहीं रात बितायी ॥ २-३ ॥

रणे कर्णे हते वीरे त्रासिता जितकाशिभिः ।
नालभञ्शर्म ते पुत्रा हिमवन्तमृते गिरिम् ॥ ४ ॥

रणभूमिमें वीर कर्णके मारे जानेपर विजयसे उल्लसित होनेवाले पाण्डवोंद्वारा डराये हुए आपके पुत्र हिमालय पर्वत-के सिवा और कहीं शान्ति न पा सके ॥ ४ ॥

तेऽब्रुवन् सहितास्तत्र राजानं शल्यसंनिधौ ।
कृतयत्ना रणे राजन् सम्पूज्य विधिवत्तदा ॥ ५ ॥

राजन् ! संग्रामभूमिमें विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले उन सब योद्धाओंने वहाँ एक साथ होकर शल्यके समीप राजा दुर्योधनका विधिपूर्वक सम्मान करके उससे इस प्रकार कहा—॥

कृत्वा सेनाप्रणेतारं परांस्त्वं योद्धुमर्हसि ।
येनाभिगुप्ताः संग्रामे जयेमासुहृदो वयम् ॥ ६ ॥

'नरेश्वर ! तुम किसीको सेनापति बनाकर शत्रुओंके साथ युद्ध करो, जिससे सुरक्षित होकर हमलोग विपक्षियोंपर विजय प्राप्त करें' ॥ ६ ॥

ततो दुर्योधनः स्थित्वा रथे रथवरोत्तमम् ।
सर्वयुद्धविभावज्ञमन्तकप्रतिमं युधि ॥ ७ ॥
स्वङ्गं प्रच्छन्नशिरसं कम्बुग्रीवं प्रियंवदम् ।
व्याकोशपद्मपत्राक्षं व्याघ्रास्यं मेरुगौरवम् ॥ ८ ॥
स्थाणोर्वृषस्य सदृशं स्कन्धनेत्रगतिस्वरैः ।
पुष्टश्लिष्टायतभुजं सुविस्तीर्णवरोरसम् ॥ ९ ॥
बले जवे च सदृशमरुणानुजवातयोः ।
आदित्यस्यार्चिषा तुल्यं बुद्ध्या चोशनसा समम् १०
कान्तिरूपमुखैश्वर्यैस्त्रिभिश्चन्द्रमसा समम् ।
काञ्चनोपलसंघातैः सदृशं श्लिष्टसंधिकम् ॥ ११ ॥
सुवृत्तोरुकटीजङ्घं सुपादं स्वङ्गुलीनखम् ।
स्मृत्वा स्मृत्वैव तु गुणान् धात्रा यत्नाद् विनिर्मितम् १२
सर्वलक्षणसम्पन्नं निपुणं श्रुतिसागरम् ।
जेतारं तरसारीणामजेयमरिभिर्बलात् ॥ १३ ॥
दशाङ्गं यश्चतुष्पादमिष्वस्त्रं वेद तत्त्वतः ।
साङ्गांस्तु चतुरो वेदान् सम्यगाख्यानपञ्चमान् ॥ १४ ॥
आराध्य त्र्यम्बकं यत्नाद् व्रतैरुग्रैर्महातपाः ।
अयोनिजायामुत्पन्नो द्रोणेनायोनिजेन यः ॥ १५ ॥
तमप्रतिमकर्माणं रूपेणाप्रतिमं भुवि ।
पारगं सर्वविद्यानां गुणार्णवमनिन्दितम् ॥ १६ ॥

तमभ्येत्यात्मजस्तुभ्यमश्वत्थामानमब्रवीत् ।

राजन्! तब आपका पुत्र दुर्योधन रथपर बैठकर अश्वत्थामाके निकट गया। अश्वत्थामा महारथियोंमें श्रेष्ठ, युद्धविषयक सभी विभिन्न भावोंका ज्ञाता और युद्धमें यमराज-के समान भयंकर है। उसके अङ्ग सुन्दर हैं, मस्तक केशोंसे आच्छादित है और कण्ठ शङ्खके समान सुशोभित होता है। वह प्रिय वचन बोलनेवाला है। उसके नेत्र विकसित कमल-दलके समान सुन्दर और मुख व्याघ्रके समान भयंकर है। उसमें मेरुपर्वतकी-सी गुरुता है। स्कन्ध, नेत्र, गति और स्वरमें वह भगवान् शङ्करके वाहन वृषभके समान है। उसकी भुजाएँ पुष्ट, सुगठित एवं विशाल हैं। वक्षःस्थलका उत्तमभाग भी सुविस्तृत है। वह बल और वेगमें गरुड़ एवं वायुकी बराबरी करनेवाला है। तेजमें सूर्य और बुद्धिमें शुक्राचार्यके समान है। कान्ति, रूप तथा मुखकी शोभा—इन तीन गुणोंमें वह चन्द्रमाके तुल्य है। उसका शरीर सुवर्णमय प्रस्तरसमूहके समान सुशोभित होता है। अङ्गोंका जोड़ या संधिस्थान भी सुगठित है। ऊरु, कटिप्रदेश और पिण्डलियाँ—ये सुन्दर और गोल हैं। उसके दोनों चरण मनोहर हैं। अङ्गुलियाँ और नख भी सुन्दर हैं, मानो विधाताने उत्तम गुणोंका बारंबार स्मरण करके बड़े यत्नसे उसके अङ्गोंका निर्माण किया हो। वह समस्त शुभलक्षणोंसे सम्पन्न, समस्त कार्योंमें कुशल और वेदविद्याका समुद्र है। अश्वत्थामा शत्रुओंपर वेगपूर्वक विजय पानेमें समर्थ है। परंतु शत्रुओंके लिये बलपूर्वक उसके ऊपर विजय पाना असम्भव है। वह दसों[1] अङ्गोंसे युक्त चारों[2] चरणोंवाले धनुर्वेदको ठीक-ठीक जानता है। छहों अङ्गोंसहित चार वेदों और इतिहास-पुराण-स्वरूप पञ्चम वेदका भी अच्छा ज्ञाता है। महातपस्वी अश्वत्थामाको उसके पिता अयोनिज द्रोणाचार्यने बड़े यत्नसे कठोर व्रतोंद्वारा तीन नेत्रोंवाले भगवान् शङ्करकी आराधना करके अयोनिजा कृपीके गर्भसे उत्पन्न किया था। उसके कर्मोंकी कहीं तुलना नहीं है। इस भूतलपर वह अनुपम रूप-सौन्दर्यसे युक्त है। सम्पूर्ण विद्याओंका पारङ्गत विद्वान् और गुणोंका महासागर है। उस अनिन्दित अश्वत्थामा-के निकट जाकर आपके पुत्र दुर्योधनने इस प्रकार कहा—॥ ७–१६½ ॥

यं पुरस्कृत्य सहिता युधि जेष्याम पाण्डवान् ॥ १७ ॥
गुरुपुत्रोऽद्य सर्वेषामस्माकं परमा गतिः ।
भवांस्तस्मान्नियोगात्ते कोऽस्तु सेनापतिर्मम ॥ १८ ॥

'ब्रह्मन्! तुम हमारे गुरुपुत्र हो और इस समय तुम्हीं हमारे सबसे बड़े सहारे हो। अतः मैं तुम्हारी आज्ञासे सेना-पतिका निर्वाचन करना चाहता हूँ। बताओ, अब कौन मेरा सेनापति हो, जिसे आगे रखकर हम सब लोग एक साथ हो युद्धमें पाण्डवोंपर विजय प्राप्त करें?' ॥ १७-१८ ॥

द्रौणिरुवाच

अयं कुलेन रूपेण तेजसा यशसा श्रिया ।
सर्वैर्गुणैः समुदितः शल्यो नोऽस्तु चमूपतिः ॥ १९ ॥

अश्वत्थामाने कहा—ये राजा शल्य उत्तम कुल, सुन्दर रूप, तेज, यश, श्री एवं समस्त सद्गुणोंसे सम्पन्न हैं, अतः ये ही हमारे सेनापति हों ॥ १९ ॥

भागिनेयान् निजांस्त्यक्त्वा कृतज्ञोऽस्मानुपागतः ।
महासेनो महाबाहुर्महासेन इवापरः ॥ २० ॥

ये ऐसे कृतज्ञ हैं कि अपने सगे भान्जोंको भी छोड़कर हमारे पक्षमें आ गये हैं। ये महाबाहु शल्य दूसरे महासेन (कार्तिकेय) के समान महती सेनासे सम्पन्न हैं ॥ २० ॥

एनं सेनापतिं कृत्वा नृपतिं नृपसत्तम ।
शक्यः प्राप्तुं जयोऽस्माभिर्देवैः स्कन्दमिवाजितम् २१

नृपश्रेष्ठ! जैसे देवताओंने किसीसे पराजित न होनेवाले स्कन्दको सेनापति बनाकर असुरोंपर विजय प्राप्त की थी, उसी प्रकार हमलोग भी इन राजा शल्यको सेनापति बनाकर शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर सकते हैं ॥ २१ ॥

तथोक्ते द्रोणपुत्रेण सर्व एव नराधिपाः ।
परिवार्य स्थिताः शल्यं जयशब्दांश्च चक्रिरे ॥ २२ ॥
युद्धाय च मतिं चक्रुरावेशं च परं ययुः ।

द्रोणपुत्रके ऐसा कहनेपर सभी नरेश राजा शल्यको घेरकर खड़े हो गये और उनकी जय-जयकार करने लगे। उन्होंने युद्धके लिये पूर्ण निश्चय कर लिया और वे अत्यन्त आवेशमें भर गये ॥ २२½ ॥

ततो दुर्योधनो भूमौ स्थित्वा रथवरे स्थितम् ॥ २३ ॥
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा द्रोणभीष्मसमं रणे ।
अयं स कालः सम्प्राप्तो मित्राणां मित्रवत्सल ॥ २४ ॥
यत्र मित्रममित्रं वा परीक्षन्ते बुधा जनाः ।

तदनन्तर राजा दुर्योधनने भूमिपर खड़ा हो रथपर बैठे हुए रणभूमिमें द्रोण और भीष्मके समान पराक्रमी राजा शल्य-से हाथ जोड़कर कहा—'मित्रवत्सल! आज आपके मित्रोंके सामने वह समय आ गया है जब कि विद्वान् पुरुष शत्रु या मित्रकी परीक्षा करते हैं ॥ २३-२४½ ॥

स भवानस्तु नः शूरः प्रणेता वाहिनीमुखे ॥ २५ ॥
रणं याते च भवति पाण्डवा मन्दचेतसः ।
भविष्यन्ति सहामात्याः पञ्चालाश्च निरुद्यमाः ॥ २६ ॥

'आप हमारे शूरवीर सेनापति होकर सेनाके मुहानेपर खड़े हों। रणभूमिमें आपके जाते ही मन्दबुद्धि पाण्डव और पाञ्चाल अपने मन्त्रियोंसहित उद्योगशून्य हो जायँगे' ॥ २५-२६ ॥

दुर्योधनवचः श्रुत्वा शल्यो मद्राधिपस्तदा ।
उवाच वाक्यं वाक्यज्ञो राजानं राजसंनिधौ ॥ २७ ॥

---

१. धनुर्वेदके दस अङ्ग इस प्रकार हैं—व्रत, प्राप्ति, धृति, पुष्टि, स्मृति, क्षेप, शत्रुभेदन, चिकित्सा, उद्दीपन और कृष्टि।

२. दीक्षा, शिक्षा, आत्मरक्षा और इसका साधन—ये धनुर्वेद-के चार चरण कहे गये हैं।

उस समय वचनके रहस्यको जाननेवाले मद्रदेशके स्वामी राजा शल्य दुर्योधनके वचन सुनकर समस्त राजाओंके सम्मुख राजा दुर्योधनसे यह वचन बोले ॥ २७ ॥

शल्य उवाच

यत्तु मां मन्यसे राजन् कुरुराज करोमि तत्।
त्वत्प्रियार्थं हि मे सर्वं प्राणा राज्यं धनानि च ॥ २८ ॥

शल्य बोले—राजन्! कुरुराज! तुम मुझसे जो कुछ चाहते हो, मैं उसे पूर्ण करूँगा; क्योंकि मेरे प्राण, राज्य और धन सब तुम्हारा प्रिय करनेके लिये ही हैं ॥ २८ ॥

दुर्योधन उवाच

सैनापत्येन वरये त्वामहं मातुलातुलम्।
सोऽस्मान् पाहि युधां श्रेष्ठ स्कन्दो देवानिवाहवे ॥ २९ ॥

दुर्योधनने कहा—योद्धाओंमें श्रेष्ठ मामाजी! आप अनुपम वीर हैं। अतः मैं सेनापति-पद ग्रहण करनेके लिये आपका वरण करता हूँ। जैसे स्कन्दने युद्धस्थलमें देवताओंकी रक्षा की थी, उसी प्रकार आप हमलोगोंका पालन कीजिये ॥

अभिषिच्यस्व राजेन्द्र देवानामिव पावकिः।
जहि शत्रून् रणे वीर महेन्द्रो दानवानिव ॥ ३० ॥

राजाधिराज! वीर! जैसे स्कन्दने देवताओंका सेनापतित्व स्वीकार किया था, उसी प्रकार आप भी हमारे सेनापतिके पदपर अपना अभिषेक कराइये तथा दानवोंका वध करनेवाले देवराज इन्द्रके समान रणभूमिमें हमारे शत्रुओंका संहार कीजिये ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्यदुर्योधनसंवादे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें शल्य और दुर्योधनका संवादविषयक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

राजा शल्यके वीरोचित उद्गार तथा श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको शल्यवधके लिये उत्साहित करना

संजय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचो राज्ञो मद्रराजः प्रतापवान्।
दुर्योधनं तदा राजन् वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! राजा दुर्योधनकी यह बात सुनकर प्रतापी मद्रराज शल्यने उससे इस प्रकार कहा—॥

दुर्योधन महाबाहो शृणु वाक्यविदां वर।
यावेतौ मन्यसे कृष्णौ रथस्थौ रथिनां वरौ ॥ २ ॥
न मे तुल्यावुभावेतौ बाहुवीर्ये कथंचन।

'वाक्यवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महाबाहु दुर्योधन! तुम रथपर बैठे हुए जिन दोनों श्रीकृष्ण और अर्जुनको रथियोंमें श्रेष्ठ समझते हो, ये दोनों बाहुबलमें किसी प्रकार मेरे समान नहीं हैं ॥ २½ ॥

उद्यतां पृथिवीं सर्वां ससुरासुरमानवाम् ॥ ३ ॥
योधयेयं रणमुखे संक्रुद्धः किमु पाण्डवान्।

'मैं युद्धके मुहानेपर कुपित हो अपने सामने युद्धके लिये आये हुए देवताओं, असुरों और मनुष्योंसहित सारे भूमण्डलके साथ युद्ध कर सकता हूँ। फिर पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है?॥ ३½ ॥

विजेष्यामि रणे पार्थान् सोमकांश्च समागतान् ॥ ४ ॥
अहं सेनाप्रणेता ते भविष्यामि न संशयः।
तं च व्यूहं विधास्यामि न तरिष्यन्ति यं परे ॥ ५ ॥
इति सत्यं ब्रवीम्येष दुर्योधन न संशयः।

'मैं रणभूमिमें कुन्तीके सभी पुत्रों और सामने आये हुए सोमकोंपर भी विजय प्राप्त कर लूँगा। इसमें भी संदेह नहीं कि मैं तुम्हारा सेनापति होऊँगा और ऐसे व्यूहका निर्माण करूँगा, जिसे शत्रु लाँघ नहीं सकेंगे। दुर्योधन! यह मैं तुमसे सच्ची बात कहता हूँ। इसमें कोई संशय नहीं है' ॥ ४-५½ ॥

एवमुक्तस्ततो राजा मद्राधिपतिमञ्जसा ॥ ६ ॥
अभ्यषिञ्चत सेनाया मध्ये भरतसत्तम।
विधिना शास्त्रदृष्टेन क्लिष्टरूपो विशाम्पते ॥ ७ ॥

भरतश्रेष्ठ! प्रजानाथ! उनके ऐसा कहनेपर क्लेशसे दबे हुए राजा दुर्योधनने शास्त्रीय विधिके अनुसार सेनाके मध्यभागमें मद्रराज शल्यका सेनापतिके पदपर अभिषेक कर दिया ॥ ६-७ ॥

अभिषिक्ते ततस्तस्मिन् सिंहनादो महानभूत्।
तव सैन्येऽभ्यवाद्यन्त वादित्राणि च भारत ॥ ८ ॥

भारत! उनका अभिषेक हो जानेपर आपकी सेनामें बड़े जोरसे सिंहनाद होने लगा और भाँति-भाँतिके बाजे बज उठे ॥

हृष्टाश्चासंस्तथा योधा मद्रकाश्च महारथाः।
तुष्टुवुश्चैव राजानं शल्यमाहवशोभिनम् ॥ ९ ॥

मद्रदेशके महारथी योद्धा हर्षमें भर गये और संग्राममें शोभा पानेवाले राजा शल्यकी स्तुति करने लगे—॥ ९ ॥

जय राजंश्चिरञ्जीव जहि शत्रून् समागतान्।
तव बाहुबलं प्राप्य धार्तराष्ट्रा महाबलाः ॥ १० ॥
निखिलाः पृथिवीं सर्वां प्रशासन्तु हतद्विषः।

'राजन्! आप चिरंजीवी हों। सामने आये हुए शत्रुओंका संहार कर डालें। आपके बाहुबलको पाकर धृतराष्ट्रके सभी महाबली पुत्र शत्रुओंका नाश करके सारी पृथ्वीका शासन करें ॥ १०½ ॥

त्वं हि शक्तो रणे जेतुं ससुरासुरमानवान् ॥ ११ ॥
मर्त्यधर्माण इह तु किमु सृञ्जयसोमकान्।

'आप रणभूमिमें सम्पूर्ण देवताओं, असुरों और मनुष्योंको जीत सकते हैं। फिर यहाँ मरणधर्मा सृंजयों और सोमकोंपर विजय पाना कौन बड़ी बात है?' ॥ ११½ ॥



शल्यका कौरवोंके सेनापति-पदपर अभिषेक

एवं सम्पूज्यमानस्तु मद्राणामधिपो बली ॥ १२ ॥
हर्षं प्राप तदा वीरो दुरापमकृतात्मभिः ।

उनके द्वारा इस प्रकार प्रशंसित होनेपर बलवान् वीर मद्रराज शल्यको वह हर्ष प्राप्त हुआ, जो अकृतात्मा (युद्धकी शिक्षासे रहित) पुरुषोंके लिये दुर्लभ है ॥ १२½ ॥

शल्य उवाच

अद्य चाहं रणे सर्वान् पञ्चालान् सह पाण्डवैः ॥१३॥
निहनिष्यामि वा राजन् स्वर्गं यास्यामि वा हतः।

शल्यने कहा—राजन् ! आज मैं रणभूमिमें पाण्डवों-सहित समस्त पाञ्चालोंको मार डालूँगा या स्वयं ही मारा जाकर स्वर्गलोकमें जा पहुँचूँगा ॥ १३½ ॥

अद्य पश्यन्तु मां लोका विचरन्तमभीतवत् ॥ १४ ॥
अद्य पाण्डुसुताः सर्वे वासुदेवः ससात्यकिः ।
पञ्चालाश्चेदयश्चैव द्रौपदेयाश्च सर्वशः ॥ १५ ॥
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च सर्वे चापि प्रभद्रकाः ।
विक्रमं मम पश्यन्तु धनुषश्च महद् बलम् ॥ १६ ॥

आज सब लोग मुझे रणभूमिमें निर्भय विचरते देखें, आज समस्त पाण्डव, श्रीकृष्ण, सात्यकि, पाञ्चाल और चेदि-देशके योद्धा, द्रौपदीके सभी पुत्र, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा समस्त प्रभद्रकगण मेरा पराक्रम तथा मेरे धनुषका महान् बल अपनी आँखों देख लें ॥ १४–१६ ॥

लाघवं चास्त्रवीर्यं च भुजयोश्च बलं युधि ।
अद्य पश्यन्तु मे पार्थाः सिद्धाश्च सह चारणैः ॥ १७ ॥
यादृशं मे बलं बाह्वोः सम्पदस्त्रेषु या च मे ।
अद्य मे विक्रमं दृष्ट्वा पाण्डवानां महारथाः ॥ १८ ॥
प्रतीकारपरा भूत्वा चेष्टन्तां विविधाः क्रियाः ।

आज कुन्तीके सभी पुत्र तथा चारणोंसहित सिद्धगण भी युद्धमें मेरी फुर्ती, अस्त्र-बल और बाहुबलको देखें । मेरी दोनों भुजाओंमें जैसा बल है तथा अस्त्रोंका मुझे जैसा ज्ञान है, उसके अनुसार आज मेरा पराक्रम देखकर पाण्डव महारथी उसके प्रतीकारमें तत्पर हो नाना प्रकारके कार्योंके लिये सचेष्ट हों ॥ १७-१८½ ॥

अद्य सैन्यानि पाण्डूनां द्रावयिष्ये समन्ततः ॥ १९ ॥
द्रोणभीष्मावति विभो सूतपुत्रं च संयुगे ।
विचरिष्ये रणे युध्यन् प्रियार्थं तव कौरव ॥ २० ॥

कुरुनन्दन ! आज मैं पाण्डवोंकी सेनाओंको चारों ओर भगा दूँगा । प्रभो ! युद्धस्थलमें तुम्हारा प्रिय करनेके लिये आज मैं द्रोणाचार्य, भीष्म तथा सूतपुत्र कर्णसे भी बढ़कर पराक्रम दिखाता और जूझता हुआ रणभूमिमें सब ओर विचरण करूँगा ॥ १९-२० ॥

संजय उवाच

अभिषिक्ते तथा शल्ये तव सैन्येषु मानद ।
न कर्णव्यसनं किंचिन्मेनिरे तत्र भारत ॥ २१ ॥

संजय कहते हैं—मानद ! भरतनन्दन ! इस प्रकार आपकी सेनाओंमें राजा शल्यका अभिषेक होनेपर समस्त योद्धाओंको कर्णके मारे जानेका थोड़ा-सा भी दुःख नहीं रह गया ॥ २१ ॥

हृष्टाः सुमनसश्चैव बभूवुस्तत्र सैनिकाः ।
मेनिरे निहतान् पार्थान् मद्रराजवशं गतान् ॥ २२ ॥

वे सब-के-सब प्रसन्नचित्त होकर हर्षसे भर गये और यह मानने लगे कि कुन्तीके पुत्र मद्रराज शल्यके वशमें पड़कर अवश्य ही मारे जायँगे ॥ २२ ॥

प्रहर्षं प्राप्य सेना तु तावकी भरतर्षभ ।
तां रात्रिमुषिता सुप्ता हर्षचित्ता च साभवत् ॥ २३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! आपकी सेना महान् हर्ष पाकर उस रातमें वहीं रही और सो गयी । उसके मनमें बड़ा उत्साह था ॥ २३ ॥

सैन्यस्य तव तं शब्दं श्रुत्वा राजा युधिष्ठिरः ।
वार्ष्णेयमब्रवीद् वाक्यं सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ॥ २४ ॥

उस समय आपकी सेनाका वह महान् हर्षनाद सुनकर राजा युधिष्ठिरने समस्त क्षत्रियोंके सामने ही भगवान् श्रीकृष्ण-से कहा—॥ २४ ॥

मद्रराजः कृतः शल्यो धार्तराष्ट्रेण माधव ।
सेनापतिर्महेष्वासः सर्वसैन्येषु पूजितः ॥ २५ ॥

'माधव ! धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनने समस्त सेनाओंद्वारा सम्मानित महाधनुर्धर मद्रराज शल्यको सेनापति बनाया है ॥

एतज्ज्ञात्वा यथाभूतं कुरु माधव यत्क्षमम् ।
भवान् नेता च गोप्ता च विधत्स्व यदनन्तरम् ॥ २६ ॥

'माधव ! यह यथार्थ रूपसे जानकर आप जो उचित हो वैसा करें; क्योंकि आप ही हमारे नेता और संरक्षक हैं । इसलिये अब जो कार्य आवश्यक हो, उसका सम्पादन कीजिये'॥

तमब्रवीन्महाराज वासुदेवो जनाधिपम् ।
आर्तायनिमहं जाने यथातत्त्वेन भारत ॥ २७ ॥

महाराज ! तब भगवान् श्रीकृष्णने राजासे कहा—'भारत ! मैं ऋतायनकुमार राजा शल्यको अच्छी तरह जानता हूँ ॥ २७ ॥

वीर्यवांश्च महातेजा महात्मा च विशेषतः ।
कृती च चित्रयोधी च संयुक्तो लाघवेन च ॥ २८ ॥

'वे बलशाली, महातेजस्वी, महामनस्वी, विद्वान्, विचित्र युद्ध करनेवाले और शीघ्रतापूर्वक अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग करने-वाले हैं ॥ २८ ॥

यादृग् भीष्मस्तथा द्रोणो यादृक् कर्णश्च संयुगे ।
तादृशस्तद्विशिष्टो वा मद्रराजो मतो मम ॥ २९ ॥

'भीष्म, द्रोणाचार्य और कर्ण—ये सब लोग युद्धमें जैसे पराक्रमी थे, वैसे ही या उनसे भी बढ़कर पराक्रमी मैं मद्रराज शल्यको मानता हूँ ॥ २९ ॥

युद्ध्यमानस्य तस्याहं चिन्तयानश्च भारत ।
योद्धारं नाधिगच्छामि तुल्यरूपं जनाधिप ॥ ३० ॥

'भारत ! नरेश्वर ! मैं बहुत सोचनेपर भी युद्धपरायण शल्यके अनुरूप दूसरे किसी योद्धाको नहीं पा रहा हूँ ॥३०॥

शिखण्ड्यर्जुनभीमानां सात्वतस्य च भारत ।

धृष्टद्युम्नस्य च तथा बलेनाभ्यधिको रणे ॥ ३१ ॥

'भरतनन्दन ! शिखण्डी, अर्जुन, भीम, सात्यकि और धृष्टद्युम्नसे भी वे रणभूमिमें अधिक बलशाली हैं ॥ ३१ ॥

मद्रराजो महाराज सिंहद्विरदविक्रमः ।
विचरिष्यत्यभीः काले कालः क्रुद्धः प्रजास्विव ॥ ३२ ॥

'महाराज ! सिंह और हाथीके समान पराक्रमी मद्रराज शल्य प्रलयकालमें प्रजापर कुपित हुए कालके समान निर्भय होकर रणभूमिमें विचरेंगे ॥ ३२ ॥

तस्याद्य न प्रपश्यामि प्रतियोद्धारमाहवे ।
त्वामृते पुरुषव्याघ्र शार्दूलसमविक्रमम् ॥ ३३ ॥

'पुरुषसिंह ! आपका पराक्रम सिंहके समान है । आज आपके सिवा युद्धस्थलमें दूसरेको ऐसा नहीं देखता, जो शल्यके सम्मुख होकर युद्ध कर सके ॥ ३३ ॥

सदेवलोके कृत्स्नेऽस्मिन् नान्यस्त्वत्तः पुमान् भवेत् ।
मद्रराजं रणे क्रुद्धं यो हन्यात् कुरुनन्दन ॥ ३४ ॥

'कुरुनन्दन ! देवताओंसहित इस सम्पूर्ण जगत्में आपके सिवा दूसरा कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जो रणमें कुपित हुए मद्रराज शल्यको मार सके ॥ ३४ ॥

अहन्यहनि युध्यन्तं क्षोभयन्तं बलं तव ।
तस्माज्जहि रणे शल्यं मघवानिव शम्बरम् ॥ ३५ ॥

'इसलिये प्रतिदिन समराङ्गणमें जूझते और आपकी सेनाको विक्षुब्ध करते हुए राजा शल्यको युद्धमें आप उसी प्रकार मार डालिये, जैसे इन्द्रने शम्बरासुरका वध किया था ॥३५॥

अजेयश्चाप्यसौ वीरो धार्तराष्ट्रेण सत्कृतः ।
तवैव हि जयो नूनं हते मद्रेश्वरे युधि ॥ ३६ ॥

'वीर शल्य अजेय हैं । दुर्योधनने उनका बड़ा सम्मान किया है । युद्धमें मद्रराजके मारे जानेपर निश्चय आपकी ही जीत होगी ॥ ३६ ॥

तस्मिन् हते हतं सर्वं धार्तराष्ट्रबलं महत् ।
एतच्छ्रुत्वा महाराज वचनं मम साम्प्रतम् ॥ ३७ ॥
प्रत्युद्याहि रणे पार्थ मद्रराजं महारथम् ।
जहि चैनं महाबाहो वासवो नमुचिं यथा ॥ ३८ ॥

'महाराज ! कुन्तीकुमार ! उनके मारे जानेपर आप समझ लें कि दुर्योधनकी सारी विशाल सेना ही मार डाली गयी । इस समय मेरी इस बातको सुनकर महारथी मद्रराजपर चढ़ाई कीजिये और महाबाहो ! जैसे इन्द्रने नमुचिका वध किया था, उसी प्रकार आप भी उन्हें मार डालिये ॥३७-३८॥

न चैवात्र दया कार्या मातुलोऽयं ममेति वै ।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य जहि मद्रजनेश्वरम् ॥ ३९ ॥

'ये मेरे मामा हैं' ऐसा समझकर आपको उनपर दया नहीं करनी चाहिये । आप क्षत्रियधर्मको सामने रखते हुए मद्रराज शल्यको मार डालें ॥ ३९ ॥

द्रोणभीष्मार्णवं तीर्त्वा कर्णपातालसम्भवम् ।
मा निमज्जस्व सगणः शल्यमासाद्य गोष्पदम् ॥ ४० ॥

'भीष्म, द्रोण और कर्णरूपी महासागरको पार करके आप अपने सेवकोंसहित शल्यरूपी गायकी खुरीमें न डूब जाइये॥४०॥

यच्च ते तपसो वीर्यं यच्च क्षात्रं बलं तव ।
तद् दर्शय रणे सर्वं जहि चैनं महारथम् ॥ ४१ ॥

'राजन् ! आपका जो तपोबल और क्षात्रबल है, वह सब रणभूमिमें दिखाइये और इन महारथी शल्यको मार डालिये'॥

एतावदुक्त्वा वचनं केशवः परवीरहा ।
जगाम शिबिरं सायं पूज्यमानोऽथ पाण्डवैः ॥ ४२ ॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण यह बात कहकर सायंकाल पाण्डवोंसे सम्मानित हो अपने शिविरमें चले गये ॥ ४२ ॥

केशवे तु तदा याते धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
विसृज्य सर्वान् भ्रातॄंश्च पञ्चालानथ सोमकान् ॥ ४३ ॥
सुष्वाप रजनीं तां तु विशल्य इव कुञ्जरः ।

श्रीकृष्णके चले जानेपर उस समय धर्मपुत्र युधिष्ठिरने अपने सब भाइयों तथा पाञ्चालों और सोमकोंको भी विदा करके रातमें अङ्कुशरहित हाथीके समान शयन किया॥ ४३½ ॥

ते च सर्वे महेष्वासाः पञ्चालाः पाण्डवास्तथा ॥ ४४ ॥
कर्णस्य निधने हृष्टाः सुषुपुस्तां निशां तदा ।

वे सभी महाधनुर्धर पाञ्चाल और पाण्डव-योद्धा कर्णके मारे जानेसे हर्षमें भरकर रात्रिमें सुखकी नींद सोये ॥४४½॥

गतज्वरं महेष्वासं तीर्णपारं महारथम् ॥ ४५ ॥
बभूव पाण्डवेयानां सैन्यं च मुदितं नृप ।
सूतपुत्रस्य निधने जयं लब्ध्वा च मारिष ॥ ४६ ॥

माननीय नरेश ! सूतपुत्र कर्णके मारे जानेसे विजय पाकर महान् धनुष एवं विशाल रथोंसे सुशोभित पाण्डव-सेना बहुत प्रसन्न हुई थी, मानो वह युद्धसे पार होकर निश्चिन्त हो गयी हो ॥ ४५-४६ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्यसैनापत्याभिषेके सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें शल्यका सेनापतिके पदपर अभिषेकविषयक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

उभय पक्षकी सेनाओंका समराङ्गणमें उपस्थित होना एवं बची हुई दोनों सेनाओंकी संख्याका वर्णन

संजय उवाच

व्यतीतायां रजन्यां तु राजा दुर्योधनस्तदा ।
अब्रवीत् तावकान् सर्वान् संनह्यन्तां महारथाः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—जब रात व्यतीत हो गयी, तब राजा दुर्योधनने आपके समस्त सैनिकोंसे कहा—'महारथीगण कवच बाँधकर युद्धके लिये तैयार हो जायँ' ॥ १ ॥

राज्ञश्च मतमाज्ञाय समनह्यत सा चमूः ।
अयोजयन् रथांस्तूर्णं पर्यधावंस्तथा परे ॥ २ ॥
अकल्प्यन्त च मातङ्गाः समनह्यन्त पत्तयः ।
रथानास्तरणोपेतांश्चक्रुरन्ये सहस्रशः ॥ ३ ॥

राजाका यह अभिप्राय जानकर सारी सेना युद्धके लिये सुसज्जित होने लगी । कुछ लोगोंने तुरंत ही रथ जोत दिये । दूसरे चारों ओर दौड़ने लगे । हाथी सुसज्जित किये जाने लगे । पैदल सैनिक कवच बाँधने लगे तथा अन्य सहस्रों सैनिकोंने रथोंपर आवरण डाल दिये ॥ २-३ ॥

वादित्राणां च निनदः प्रादुरासीद् विशाम्पते ।
आयोधनार्थं योधानां बलानां चाप्युदीर्यताम् ॥ ४ ॥

प्रजानाथ ! उस समय सब ओरसे भाँति-भाँतिके वाद्योंकी गम्भीर ध्वनि प्रकट होने लगी । युद्धके लिये उद्यत योद्धाओं और आगे बढ़ती हुई सेनाओंका महान् कोलाहल सुनायी देने लगा ॥ ४ ॥

ततो बलानि सर्वाणि हतशिष्टानि भारत ।
प्रस्थितानि व्यदृश्यन्त मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ५ ॥

भारत ! तत्पश्चात् मरनेसे बची हुई सारी सेनाएँ मृत्युको ही युद्धसे लौटनेका निमित्त बनाकर प्रस्थान करती दिखायी दीं ॥ ५ ॥

शल्यं सेनापतिं कृत्वा मद्रराजं महारथाः ।
प्रविभज्य बलं सर्वमनीकेषु व्यवस्थिताः ॥ ६ ॥

समस्त महारथी मद्रराज शल्यको सेनापति बनाकर और सारी सेनाको अनेक भागोंमें विभक्त करके भिन्न-भिन्न दलोंमें खड़े हुए ॥ ६ ॥

ततः सर्वे समागम्य पुत्रेण तव सैनिकाः ।
कृपश्च कृतवर्मा च द्रौणिः शल्योऽथ सौबलः ॥ ७ ॥
अन्ये च पार्थिवाः शेषाः समयं चक्रुरादृताः ।

तदनन्तर आपके सम्पूर्ण सैनिक कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, शल्य, शकुनि तथा बचे हुए अन्य नरेशोंने राजा दुर्योधनसे मिलकर आदरपूर्वक यह नियम बनाया—॥७½॥

न न एकेन योद्धव्यं कथञ्चिदपि पाण्डवैः ॥ ८ ॥
यो ह्येकः पाण्डवैर्युध्येद् यो वा युध्यन्तमुत्सृजेत् ।
स पञ्चभिर्भवेद् युक्तः पातकैश्चोपपातकैः ॥ ९ ॥

'हमलोगोंमेंसे कोई एक योद्धा अकेला रहकर किसी तरह भी पाण्डवोंके साथ युद्ध न करे । जो अकेला ही पाण्डवोंके साथ युद्ध करेगा अथवा जो पाण्डवोंके साथ जूझते हुए वीरको अकेला छोड़ देगा, वह पाँच पातकों और उपपातकोंसे युक्त होगा ॥ ८-९ ॥

(अद्याचार्यसुतो द्रौणिर्नैको युध्येत शत्रुभिः ।)
अन्योन्यं परिरक्षद्भिर्योद्धव्यं सहितैश्च ह ।
एवं ते समयं कृत्वा सर्वे तत्र महारथाः ॥ १० ॥
मद्रराजं पुरस्कृत्य तूर्णमभ्यद्रवन् परान् ।

'आज आचार्यपुत्र अश्वत्थामा शत्रुओंके साथ अकेले युद्ध न करें । हम सब लोगोंको एक साथ होकर एक दूसरेकी रक्षा करते हुए युद्ध करना चाहिये । ऐसा नियम बनाकर वे सब महारथी मद्रराज शल्यको आगे करके तुरंत ही शत्रुओंपर टूट पड़े ॥ १०½ ॥

तथैव पाण्डवा राजन् व्यूह्य सैन्यं महारणे ॥ ११ ॥
अभ्ययुः कौरवान् राजन् योत्स्यमानाः समन्ततः।

राजन् ! इसी प्रकार उस महासमरमें पाण्डव भी अपनी सेनाका व्यूह बनाकर सब ओरसे युद्धके लिये उद्यत हो कौरवोंपर चढ़ आये ॥ ११½ ॥

तद् बलं भरतश्रेष्ठ क्षुब्धार्णवसमस्वनम् ॥ १२ ॥
समुद्धूतार्णवाकारमुद्धूतरथकुञ्जरम् ।

भरतश्रेष्ठ ! वह सेना विक्षुब्ध महासागरके समान कोलाहल कर रही थी । उसके रथ और हाथी बड़े वेगसे आगे बढ़ रहे थे, मानो किसी महासमुद्रमें ज्वार उठ रहा हो ।१२½।

धृतराष्ट्र उवाच

द्रोणस्य चैव भीष्मस्य राधेयस्य च मे श्रुतम् ॥ १३ ॥
पातनं शंस मे भूयः शल्यस्याथ सुतस्य मे ।

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! मैंने द्रोणाचार्य, भीष्म तथा राधापुत्र कर्णके वधका सारा वृत्तान्त सुन लिया है । अब पुनः मुझे शल्य तथा मेरे पुत्र दुर्योधनके मारे जानेका सारा समाचार कह सुनाओ ॥ १३½ ॥

कथं रणे हतः शल्यो धर्मराजेन संजय ॥ १४ ॥
भीमेन च महाबाहुः पुत्रो दुर्योधनो मम ।

संजय ! रणभूमिमें राजा शल्य धर्मराजके द्वारा कैसे मारे गये तथा भीमसेनने मेरे महाबाहु पुत्र दुर्योधनका वध कैसे किया ? ॥ १४½ ॥

संजय उवाच

क्षयं मनुष्यदेहानां तथा नागाश्वसंक्षयम् ॥ १५ ॥
शृणु राजन् स्थिरो भूत्वा संग्रामं शंसतो मम ।

संजयने कहा—राजन् ! जहाँ हाथी, घोड़े और मनुष्योंके शरीरोंका महान् संहार हुआ था, उस संग्रामका मैं वर्णन करता हूँ; आप सुस्थिर होकर सुनिये ॥ १५½ ॥

आशा बलवती राजन् पुत्राणां तेऽभवत्तदा ॥ १६ ॥
हते द्रोणे च भीष्मे च सूतपुत्रे च पातिते ।
शल्यः पार्थान् रणे सर्वान् निहनिष्यति मारिष ॥ १७ ॥

माननीय नरेश ! द्रोणाचार्य, भीष्म तथा सूतपुत्र कर्णके मारे जानेपर आपके पुत्रोंके मनमें यह प्रबल आशा हो गयी कि शल्य रणभूमिमें सम्पूर्ण कुन्तीकुमारोंका वध कर डालेंगे ॥ १६-१७ ॥

तामाशां हृदये कृत्वा समाश्वस्य च भारत ।
मद्रराजं च समरे समाश्रित्य महारथम् ॥ १८ ॥
नाथवन्तं तदाऽऽत्मानममन्यन्त सुतास्तव ।

भारत ! उसी आशाको हृदयमें रखकर आपके पुत्रोंको कुछ आश्वासन मिला और वे समराङ्गणमें महारथी मद्रराज शल्यका आश्रय ले अपने-आपको सनाथ मानने लगे ॥१८½॥

यदा कर्णे हते पार्थाः सिंहनादं प्रचक्रिरे ॥ १९ ॥

तदा तु तावकान् राजन्नाविवेश महद् भयम् ।

राजन् ! कर्णके मारे जानेसे प्रसन्न हुए कुन्तीके पुत्र जब सिंहनाद करने लगे, उस समय आपके पुत्रोंके मनमें बड़ा भारी भय समा गया ॥ १९½ ॥

तान् समाश्वास्य योधांस्तु मद्रराजः प्रतापवान् ॥ २० ॥
व्यूह्य व्यूहं महाराज सर्वतोभद्रमृद्धिमत् ।
प्रत्युद्ययौ रणे पार्थान् मद्रराजः प्रतापवान् ॥ २१ ॥
विधुन्वन् कार्मुकं चित्रं भारघ्नं वेगवत्तरम् ।
रथप्रवरमास्थाय सैन्धवाश्वं महारथः ॥ २२ ॥

महाराज ! तब प्रतापी महारथी मद्रराज शल्यने उन योद्धाओंको आश्वासन दे समृद्धिशाली सर्वतोभद्रनामक व्यूह बनाकर भारनाशक, अत्यन्त वेगशाली और विचित्र धनुषको कँपाते हुए सिंधी घोड़ोंसे युक्त श्रेष्ठ रथपर आरूढ़ हो पाण्डवों-पर आक्रमण किया ॥ २०—२२ ॥

तस्य सूतो महाराज रथस्थोऽशोभयद् रथम् ।
स तेन संवृतो वीरो रथेनामित्रकर्षणः ॥ २३ ॥
तस्थौ शूरो महाराज पुत्राणां ते भयप्रणुत् ।

राजाधिराज ! शल्यके रथपर बैठा हुआ उनका सारथि उस रथकी शोभा बढ़ा रहा था। उस रथसे घिरे हुए शत्रु-सूदन शूरवीर राजा शल्य आपके पुत्रोंका भय दूर करते हुए युद्धके लिये खड़े हो गये ॥ २३½ ॥

प्रयाणे मद्रराजोऽभून्मुखं व्यूहस्य दंशितः ॥ २४ ॥
मद्रकैः सहितो वीरैः कर्णपुत्रैश्च दुर्जयैः ।

प्रस्थानकालमें कवचधारी मद्रराज शल्य उस सैन्यव्यूहके मुखस्थानमें थे। उनके साथ मद्रदेशीय वीर तथा कर्णके दुर्जय पुत्र भी थे ॥ २४½ ॥

सव्येऽभूत् कृतवर्मा च त्रिगर्तैः परिवारितः ॥ २५ ॥
गौतमो दक्षिणे पार्श्वे शकैश्च यवनैः सह ।
अश्वत्थामा पृष्ठतोऽभूत् काम्बोजैः परिवारितः ॥ २६ ॥

व्यूहके वामभागमें त्रिगर्तोंसे घिरा हुआ कृतवर्मा खड़ा था। दक्षिण पार्श्वमें शकों और यवनोंकी सेनाके साथ कृपाचार्य थे और पृष्ठभागमें काम्बोजोंसे घिरकर अश्वत्थामा खड़ा था ॥ २५-२६ ॥

दुर्योधनोऽभवन्मध्ये रक्षितः कुरुपुङ्गवैः ।
हयानीकेन महता सौबलश्चापि संवृतः ॥ २७ ॥
प्रययौ सर्वसैन्येन कैतव्यश्च महारथः ।

मध्यभागमें कुरुकुलके प्रमुख वीरोंद्वारा सुरक्षित दुर्योधन और घुड़सवारोंकी विशाल सेनासे घिरा हुआ शकुनि भी था। उसके साथ महारथी उलूक भी सम्पूर्ण सेनासहित युद्धके लिये आगे बढ़ रहा था ॥ २७½ ॥

पाण्डवाश्च महेष्वासा व्यूह्य सैन्यमरिंदमाः ॥ २८ ॥
त्रिधा भूता महाराज तव सैन्यमुपाद्रवन् ।

महाराज ! शत्रुओंका दमन करनेवाले महाधनुर्धर पाण्डव भी सेनाका व्यूह बनाकर तीन भागोंमें विभक्त हो आपकी सेनापर चढ़ आये ॥ २८½ ॥

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च सात्यकिश्च महारथः ॥ २९ ॥
शल्यस्य वाहिनीं हन्तुमभिदुद्रुवुराहवे ।

(उन तीनोंके अध्यक्ष थे—) धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और महारथी सात्यकि। इन लोगोंने युद्धस्थलमें शल्यकी सेनाका वध करनेके लिये उसपर धावा बोल दिया ॥ २९½ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा स्वेनानीकेन संवृतः ॥ ३० ॥
शल्यमेवाभिदुद्राव जिघांसुर्भरतर्षभः ।

अपनी सेनासे घिरे हुए भरतश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरने शल्य-को मार डालनेकी इच्छासे उनपर ही आक्रमण किया ॥ ३०½ ॥

हार्दिक्यं च महेष्वासमर्जुनः शत्रुसैन्यहा ॥ ३१ ॥
संशप्तकगणांश्चैव वेगितोऽभिविदुद्रुवे ।

शत्रुसेनाका संहार करनेवाले अर्जुनने महाधनुर्धर कृतवर्मा तथा संशप्तकगणोंपर बड़े वेगसे आक्रमण किया ॥

गौतमं भीमसेनो वै सोमकाश्च महारथाः ॥ ३२ ॥
अभ्यद्रवन्त राजेन्द्र जिघांसन्तः परान् युधि ।

राजेन्द्र ! भीमसेन और महारथी सोमकगणोंने युद्धमें शत्रुओंका संहार करनेकी इच्छासे कृपाचार्यपर धावा बोल दिया॥

माद्रीपुत्रौ तु शकुनिमुलूकं च महारथम् ॥ ३३ ॥
ससैन्यौ सहसैन्यौ तावुपतस्थतुराहवे ।

सेनासहित माद्रीकुमार नकुल और सहदेव युद्धस्थलमें अपनी सेनाके साथ खड़े हुए महारथी शकुनि और उलूकका सामना करनेके लिये उपस्थित थे ॥ ३३½ ॥

तथैवायुतशो योधास्तावकाः पाण्डवान् रणे ॥ ३४ ॥
अभ्यवर्तन्त संक्रुद्धा विविधायुधपाणयः ।

इसी प्रकार रणभूमिमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये क्रोधमें भरे हुए आपके पक्षके दस हजार योद्धा पाण्डवोंका सामना करने लगे ॥ ३४½ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

हते भीष्मे महेष्वासे द्रोणे कर्णे महारथे ॥ ३५ ॥
कुरुष्वल्पावशिष्टेषु पाण्डवेषु च संयुगे ।
सुसंरब्धेषु पार्थेषु पराक्रान्तेषु संजय ॥ ३६ ॥
मामकानां परेषां च किं शिष्टमभवद् बलम् ।

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! महाधनुर्धर भीष्म, द्रोण तथा महारथी कर्णके मारे जानेपर जब युद्धस्थलमें कौरव और पाण्डवयोद्धा थोड़े-से ही बच गये थे और कुन्तीके पुत्र अत्यन्त कुपित होकर पराक्रम दिखाने लगे थे, उस समय मेरे और शत्रुओंके पक्षमें कितनी सेना शेष रह गयी थी ? ॥

संजय उवाच

यथा वयं परे राजन् युद्धाय समुपस्थिताः ॥ ३७ ॥
यावच्चासीद् बलं शिष्टं संग्रामे तन्निबोध मे ।

संजयने कहा—राजन् ! हम और हमारे शत्रु जिस प्रकार युद्धके लिये उपस्थित हुए और उस समय संग्राममें हमलोगोंके पास जितनी सेना शेष रह गयी थी, वह सब बताता हूँ, सुनिये ॥ ३७½ ॥

एकादश सहस्राणि रथानां भरतर्षभ ॥ ३८ ॥

दश दन्तिसहस्राणि सप्त चैव शतानि च।
पूर्णे शतसहस्रे द्वे हयानां तत्र भारत॥ ३९॥
पत्तिकोट्यस्तथा तिस्रो बलमेतत्तदाभवत्।

भरतश्रेष्ठ! आपके पक्षमें ग्यारह हजार रथ, दस हजार सात सौ हाथी, दो लाख घोड़े तथा तीन करोड़ पैदल—इतनी सेना शेष रह गयी थी॥ ३८-३९½॥

रथानां षट्सहस्राणि षट्सहस्राश्च कुञ्जराः॥ ४०॥
दश चाश्वसहस्राणि पत्तिकोटी च भारत।
एतद् बलं पाण्डवानामभवच्छेषमाहवे॥ ४१॥

भारत! उस युद्धमें पाण्डवोंके पास छः हजार रथ, छः हजार हाथी, दस हजार घोड़े और दो करोड़ पैदल—इतनी सेना शेष थी॥ ४०-४१॥

एत एव समाजग्मुर्युद्धाय भरतर्षभ।
एवं विभज्य राजेन्द्र मद्रराजवशे स्थिताः॥ ४२॥
पाण्डवान् प्रत्युदीयुस्ते जयगृद्धाः प्रमन्यवः।

भरतश्रेष्ठ! ये ही सैनिक युद्धके लिये उपस्थित हुए थे। राजेन्द्र! इस प्रकार सेनाका विभाग करके विजयकी अभिलाषासे क्रोधमें भरे हुए आपके सैनिक मद्रराज शल्यके अधीन हो पाण्डवोंपर चढ़ आये॥ ४२½॥

तथैव पाण्डवाः शूराः समरे जितकाशिनः॥ ४३॥
उपयाता नरव्याघ्राः पञ्चालाश्च यशस्विनः।

इसी प्रकार समराङ्गणमें विजयसे सुशोभित होनेवाले शूरवीर पुरुषसिंह पाण्डव और यशस्वी पाञ्चाल वीर आपकी सेनाके समीप आ पहुँचे॥ ४३½॥

इमे ते च बलौघेन परस्परवधैषिणः॥ ४४॥
उपयाता नरव्याघ्राः पूर्वां संध्यां प्रति प्रभो।

प्रभो! इस प्रकार परस्पर वधकी इच्छावाले ये और वे पुरुषसिंह योद्धा प्रातःकाल एक दूसरेके निकट आये॥४४½॥

ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयानकम्।
तावकानां परेषां च निघ्नतामितरेतरम्॥ ४५॥

फिर तो परस्पर प्रहार करते हुए आपके और शत्रु-पक्षके सैनिकोंमें अत्यन्त भयानक घोर युद्ध छिड़ गया॥ ४५॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि व्यूहनिर्माणेऽष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें व्यूह-निर्माणविषयक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ४५½ श्लोक हैं)

नवमोऽध्यायः

उभय पक्षकी सेनाओंका घमासान युद्ध और कौरव-सेनाका पलायन

संजय उवाच

ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां भयवर्धनम्।
सृंजयैः सह राजेन्द्र घोरं देवासुरोपमम्॥ १॥

संजय कहते हैं—राजेन्द्र! तदनन्तर कौरवोंका सृंजयोंके साथ घोर युद्ध आरम्भ हो गया, जो देवासुर-संग्रामके समान भय बढ़ानेवाला था॥ १॥

नरा रथा गजौघाश्च सादिनश्च सहस्रशः।
वाजिनश्च पराक्रान्ताः समाजग्मुः परस्परम्॥ २॥

पैदल, रथी, हाथीसवार तथा सहस्रों घुड़सवार पराक्रम दिखाते हुए एक दूसरेसे भिड़ गये॥ २॥

गजानां भीमरूपाणां द्रवतां निःस्वनो महान्।
अश्रूयत यथा काले जलदानां नभस्तले॥ ३॥

जैसे वर्षाकालके आकाशमें मेघोंकी गम्भीर गर्जना होती रहती है, उसी प्रकार रणभूमिमें दौड़ लगाते हुए भीमकाय गजराजोंका महान् कोलाहल सुनायी देने लगा॥ ३॥

नागैरभ्याहताः केचित् सरथा रथिनोऽपतन्।
व्यद्रवन्त रणे वीरा द्राव्यमाणा मदोत्कटैः॥ ४॥

मदोन्मत्त हाथियोंके आघातसे कितने ही रथी रथसहित धरतीपर लोट गये। बहुत-से वीर उनसे खदेड़े जाकर इधर-उधर भागने लगे॥ ४॥

हयौघान् पादरक्षांश्च रथिनस्तत्र शिक्षिताः।
शरैः सम्प्रेषयामासुः परलोकाय भारत॥ ५॥

भारत! उस युद्धस्थलमें शिक्षाप्राप्त रथियोंने घुड़सवारों तथा पादरक्षकोंको अपने बाणोंसे मारकर यमलोक भेज दिया॥

सादिनः शिक्षिता राजन् परिवार्य महारथान्।
विचरन्तो रणेऽभ्यघ्नन् प्रासशक्त्यृष्टिभिस्तथा॥ ६॥

राजन्! रणभूमिमें विचरते हुए बहुत-से सुशिक्षित घुड़सवार बड़े-बड़े रथोंको घेरकर उनपर प्रास, शक्ति तथा ऋष्टियोंका प्रहार करने लगे॥ ६॥

धन्विनः पुरुषाः केचित् परिवार्य महारथान्।
एकं बहव आसाद्य प्रययुर्यमसादनम्॥ ७॥

कितने ही धनुर्धर पुरुष महारथियोंको घेर लेते और एक-एकपर बहुत-से योद्धा आक्रमण करके उसे यमलोक पहुँचा देते थे॥ ७॥

नागान् रथवरांश्चान्ये परिवार्य महारथाः।
सान्तरायोधिनं जघ्नुर्द्रवमाणं महारथम्॥ ८॥

अन्य महारथी कितने ही हाथियों और श्रेष्ठ रथियोंको घेर लेते और किसीकी ओटमें युद्ध करनेवाले भागते हुए महारथीको मार डालते थे॥ ८॥

तथा च रथिनं क्रुद्धं विकिरन्तं शरान् बहून्।
नागा जघ्नुर्महाराज परिवार्य समन्ततः॥ ९॥

महाराज! कई हाथियोंने क्रोधपूर्वक बहुत-से बाणोंकी वर्षा करनेवाले किसी रथीको सब ओरसे घेरकर मार डाला॥

नागो नागमभिद्रुत्य रथी च रथिनं रणे।
शक्तितोमरनाराचैर्निजघ्ने तत्र भारत॥ १०॥

भारत! वहाँ रणभूमिमें एक हाथीसवार दूसरे हाथी-

सवारपर और एक रथी दूसरे रथीपर आक्रमण करके शक्ति, तोमर और नाराचोंकी मारसे उसे यमलोक पहुँचा देता था ॥

पादातानवमृद्नन्तो रथवारणवाजिनः ।
रणमध्ये व्यदृश्यन्त कुर्वन्तो महदाकुलम् ॥ ११ ॥

समराङ्गणके बीच बहुत-से रथ, हाथी और घोड़े पैदल योद्धाओंको कुचलते तथा सबको अत्यन्त व्याकुल करते हुए दृष्टिगोचर होते थे ॥ ११ ॥

हयाश्च पर्यधावन्त चामरैरुपशोभिताः ।
हंसा हिमवतः प्रस्थे पिबन्त इव मेदिनीम् ॥ १२ ॥

जैसे हिमालयके शिखरकी चौरस भूमिपर रहनेवाले हंस नीचे पृथ्वीपर जल पीनेके लिये तीव्र गतिसे उड़ते हुए जाते हैं, उसी प्रकार चामरशोभित अश्व वहाँ सब ओर बड़े वेगसे दौड़ लगा रहे थे ॥ १२ ॥

तेषां तु वाजिनां भूमिः खुरैश्चित्रा विशाम्पते ।
अशोभत यथा नारी करजैः क्षतविक्षता ॥ १३ ॥

प्रजानाथ ! उन घोड़ोंकी टापोंसे खुदी हुई भूमि प्रियतमके नखोंसे क्षत-विक्षत हुई नारीके समान विचित्र शोभा धारण करती थी ॥ १३ ॥

वाजिनां खुरशब्देन रथनेमिस्वनेन च ।
पत्तीनां चापि शब्देन नागानां बृंहितेन च ॥ १४ ॥
वादित्राणां च घोषेण शङ्खानां निनदेन च ।
अभवन्नादिता भूमिर्निर्घातैरिव भारत ॥ १५ ॥

भारत! घोड़ोंकी टापोंके शब्द, रथके पहियोंकी घर्घराहट, पैदल योद्धाओंके कोलाहल, हाथियोंकी गर्जना तथा बाजोंके गम्भीर घोष और शङ्खोंकी ध्वनिसे प्रतिध्वनित हुई यह पृथ्वी वज्रपातकी आवाजसे गूँजती हुई-सी प्रतीत होती थी ॥

धनुषां कूजमानानां शस्त्रौघानां च दीप्यताम् ।
कवचानां प्रभाभिश्च न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ १६ ॥

टंकारते हुए धनुष, दमकते हुए अस्त्र-शस्त्रोंके समुदाय तथा कवचोंकी प्रभासे चकाचौंधके कारण कुछ भी सूझ नहीं पड़ता था ॥ १६ ॥

बहवो बाहवश्छिन्ना नागराजकरोपमाः ।
उद्वेष्टन्ते विचेष्टन्ते वेगं कुर्वन्ति दारुणम् ॥ १७ ॥

हाथीकी सूँड़के समान बहुत-सी भुजाएँ कटकर धरतीपर उछलती, लोटती और भयंकर वेग प्रकट करती थीं ॥१७॥

शिरसां च महाराज पततां धरणीतले ।
च्युतानामिव तालेभ्यस्तालानां श्रूयते स्वनः ॥ १८ ॥

महाराज ! पृथ्वीपर गिरते हुए मस्तकोंका शब्द, ताड़के वृक्षोंसे चूकर गिरे हुए फलोंके धमाकेकी आवाजके समान सुनायी देता था ॥ १८ ॥

शिरोभिः पतितैर्भाति रुधिरार्द्रैर्वसुन्धरा ।
तपनीयनिभैः काले नलिनैरिव भारत ॥ १९ ॥

भारत ! गिरे हुए रक्तरञ्जित मस्तकोंसे इस पृथ्वीकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो वहाँ सुवर्णमय कमल बिछाये गये हों ॥ १९ ॥

उद्वृत्तनयनैस्तैस्तु गतसत्त्वैः सुविक्षतैः ।
व्यभ्राजत मही राजन् पुण्डरीकैरिवावृता ॥ २० ॥

राजन् ! खुले नेत्रोंवाले प्राणशून्य घायल मस्तकोंसे ढकी हुई पृथ्वी लाल कमलोंसे आच्छादित हुई-सी शोभा पाती थी ॥ २० ॥

बाहुभिश्चन्दनादिग्धैः सकेयूरैर्महाधनैः ।
पतितैर्भाति राजेन्द्र महाशक्रध्वजैरिव ॥ २१ ॥

राजेन्द्र ! बाजूबंद तथा दूसरे बहुमूल्य आभूषणोंसे विभूषित, चन्दनचर्चित भुजाएँ कटकर पृथ्वीपर गिरी थीं, जो महान् इन्द्रध्वजके समान जान पड़ती थीं। उनके द्वारा रणभूमिकी अपूर्व शोभा हो रही थी ॥ २१ ॥

ऊरुभिश्च नरेन्द्राणां विनिकृत्तैर्महाहवे ।
हस्तिहस्तोपमैरन्यैः संवृतं तद् रणाङ्गणम् ॥ २२॥

उस महासमरमें कटी हुई नरेशोंकी जाँघें हाथीकी सूँड़ोंके समान प्रतीत होती थी । उनके द्वारा वह सारा समराङ्गण पट गया था ॥ २२ ॥

कबन्धशतसंकीर्णं छत्रचामरसंकुलम् ।
सेनावनं तच्छुशुभे वनं पुष्पाचितं यथा ॥ २३ ॥

वहाँ सैकड़ों कबन्ध सब ओर बिखरे पड़े थे। छत्र और चँवर भरे हुए थे। उन सबसे वह सेनारूपी वन फूलोंसे व्याप्त हुए विशाल विपिनके समान सुशोभित होता था ॥२३॥

तत्र योधा महाराज विचरन्तो ह्यभीतवत् ।
दृश्यन्ते रुधिराक्ताङ्गाः पुष्पिता इव किंशुकाः ॥ २४ ॥

महाराज ! वहाँ खूनसे लथपथ शरीर लेकर निर्भयसे विचरनेवाले योद्धा फूले हुए पलाशवृक्षोंके समान दिखायी देते थे ॥ २४ ॥

मातङ्गाश्चाप्यदृश्यन्त शरतोमरपीडिताः ।
पतन्तस्तत्र तत्रैव छिन्नाभ्रसदृशा रणे ॥ २५ ॥

रणभूमिमें बाणों और तोमरोंकी मारसे पीड़ित हो जहाँ-तहाँ गिरते हुए मतवाले हाथी भी कटे हुए बादलोंके समान दिखायी देते थे ॥ २५ ॥

गजानीकं महाराज वध्यमानं महात्मभिः ।
व्यदीर्यत दिशः सर्वा वातनुन्ना घना इव ॥ २६ ॥

महाराज ! वायुके वेगसे छिन्न-भिन्न हुए बादलोंके समान महामनस्वी वीरोंके बाणोंसे घायल हुई गजसेना सम्पूर्ण दिशाओंमें विदीर्ण हो रही थी ॥ २६ ॥

ते गजा घनसंकाशाः पेतुरुर्व्यां समन्ततः ।
वज्रनुन्ना इव बभुः पर्वता युगसंक्षये ॥ २७ ॥

मेघोंकी घटाके समान प्रतीत होनेवाले हाथी चारों ओरसे पृथ्वीपर पड़े थे, जो प्रलयकालमें वज्रके आघातसे विदीर्ण होकर गिरे हुए पर्वतोंके समान प्रतीत होते थे ॥ २७ ॥

हयानां सादिभिः सार्धं पतितानां महीतले ।
राशयः स्म प्रदृश्यन्ते गिरिमात्रास्ततस्ततः ॥ २८ ॥

सवारोंसहित धरतीपर गिरे हुए घोड़ोंके पहाड़ों-जैसे ढेर यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होते थे ॥ २८ ॥

संजज्ञे रणभूमौ तु परलोकवहा नदी ।
शोणितोदा रथावर्ता ध्वजवृक्षास्थिशर्करा ॥ २९ ॥
भुजनक्रा धनुःस्रोता हस्तिशैला हयोपला ।
मेदोमज्जाकर्दमिनी छत्रहंसा गदोडुपा ॥ ३० ॥
कवचोष्णीषसंछन्ना पताकारुचिरद्रुमा ।
चक्रचक्रावलीजुष्टा त्रिवेणूरगसंवृता ॥ ३१ ॥

उस समय रणभूमिमें एक रक्तकी नदी बह चली, जो परलोककी ओर प्रवाहित होनेवाली थी । रक्त ही उसका जल था, रथ भँवरके समान प्रतीत होते थे, ध्वज तटवर्ती वृक्षके समान जान पड़ते थे, हड्डियाँ कंकड़-पत्थरोंका भ्रम उत्पन्न करती थीं, कटी हुई भुजाएँ नाकोंके समान दिखायी देती थीं, धनुष उसके स्रोत थे, हाथी पार्श्ववर्ती पर्वत और घोड़े प्रस्तर-खण्डके तुल्य थे, मेदा और मज्जा ये ही उसके पङ्क थे, छत्र हंस थे, गदाएँ नौका जान पड़ती थीं, कवच और पगड़ी आदि वस्तुएँ सेवारके समान उस नदीके जलको आच्छादित किये हुए थीं, पताकाएँ सुन्दर वृक्ष-सी दिखायी देती थीं, चक्र (पहिये) चक्रवाकोंके समूहकी भाँति उस नदीका सेवन करते थे और त्रिवेणुरूपी सर्प उसमें भरे हुए थे ॥ २९–३१ ॥

शूराणां हर्षजननी भीरूणां भयवर्धनी ।
प्रावर्तत नदी रौद्रा कुरुसृञ्जयसंकुला ॥ ३२ ॥

वह भयंकर नदी शूरवीरोंके लिये हर्षजनक तथा कायरोंके लिये भय बढ़ानेवाली थी । कौरवों और संजयोंके समुदायसे वह व्याप्त हो रही थी ॥ ३२ ॥

तां नदीं परलोकाय वहन्तीमतिभैरवाम् ।
तेरुर्वाहननौभिस्तैः शूराः परिघबाहवः ॥ ३३ ॥

परलोककी ओर ले जानेवाली उस अत्यन्त भयंकर नदी-को परिघ-जैसी मोटी भुजाओंवाले शूरवीर योद्धा अपने-अपने वाहनरूपी नौकाओंद्वारा पार करते थे ॥ ३३ ॥

वर्तमाने तदा युद्धे निर्मर्यादे विशाम्पते ।
चतुरङ्गक्षये घोरे पूर्वदेवासुरोपमे ॥ ३४ ॥
व्याक्रोशन् बान्धवानन्ये तत्र तत्र परंतप ।
क्रोशद्भिर्दयितैरन्ये भयार्ता न निवर्तिरे ॥ ३५ ॥

प्रजानाथ ! परंतप ! प्राचीन देवासुर-संग्रामके समान चतुरङ्गिणी सेनाका विनाश करनेवाला वह मर्यादाशून्य घोर युद्ध जब चलने लगा; तब भयसे पीड़ित हुए कितने ही सैनिक अपने बन्धु-बान्धवोंको पुकारने लगे और बहुत-से योद्धा प्रियजनोंके पुकारनेपर भी पीछे नहीं लौटते थे ॥ ३४-३५ ॥

निर्मर्यादे तथा युद्धे वर्तमाने भयानके ।
अर्जुनो भीमसेनश्च मोहयांचक्रतुः परान् ॥ ३६ ॥

इस प्रकार वह भयानक युद्ध सारी मर्यादाको तोड़कर चल रहा था । उस समय अर्जुन और भीमसेनने शत्रुओंको मूर्छित कर दिया था ॥ ३६ ॥

सा वध्यमाना महती सेना तव नराधिप ।
अमुह्यत् तत्र तत्रैव योषिन्मदवशादिव ॥ ३७ ॥

नरेश्वर ! उनकी मार पड़नेसे आपकी विशाल सेना मदमत्त युवतीकी भाँति जहाँकी तहाँ बेहोश हो गयी ॥ ३७ ॥

मोहयित्वा च तां सेनां भीमसेनधनंजयौ ।
दध्मतुर्वारिजौ तत्र सिंहनादांश्च चक्रतुः ॥ ३८ ॥

उस कौरवसेनाको मूर्छित करके भीमसेन और अर्जुन शङ्ख बजाने तथा सिंहनाद करने लगे ॥ ३८ ॥

श्रुत्वैव तु महाशब्दं धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ।
धर्मराजं पुरस्कृत्य मद्रराजमभिद्रुतौ ॥ ३९ ॥

उस महान् शब्दको सुनते ही धृष्टद्युम्न और शिखण्डीने धर्मराज युधिष्ठिरको आगे करके मद्रराज शल्यपर धावा कर दिया ॥ ३९ ॥

तत्राश्चर्यमपश्याम घोररूपं विशाम्पते ।
शल्येन सङ्गताः शूरा यदयुध्यन्त भागशः ॥ ४० ॥

प्रजानाथ ! वहाँ हमने यह भयंकर आश्चर्यकी बात देखी कि पृथक्-पृथक् दल बनाकर आये हुए सभी शूरवीर अकेले शल्यके साथ ही जूझते रहे ॥ ४० ॥

माद्रीपुत्रौ तु रभसौ कृतास्त्रौ युद्धदुर्मदौ ।
अभ्ययातां त्वरायुक्तौ जिगीषन्तौ परंतप ॥ ४१ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले नरेश ! अस्त्रोंके ज्ञाता, रण-दुर्मद और वेगशाली वीर माद्रीकुमार नकुल-सहदेव विजयकी अभिलाषा लेकर बड़ी उतावलीके साथ राजा शल्य-पर चढ़ आये ॥ ४१ ॥

ततो न्यवर्तत बलं तावकं भरतर्षभ ।
शरैः प्रणुन्नं बहुधा पाण्डवैर्जितकाशिभिः ॥ ४२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! विजयसे उल्लसित होनेवाले पाण्डवोंने अपने बाणोंकी मारसे आपकी सेनाको बारंबार घायल किया ॥४२॥

वध्यमाना चमूः सा तु पुत्राणां प्रेक्षतां तव ।
भेजे दिशो महाराज प्रणुन्ना शरवृष्टिभिः ॥ ४३ ॥

महाराज ! इस प्रकार चोट सहती हुई वह सेना बाणोंकी वर्षासे क्षत-विक्षत हो आपके पुत्रोंके देखते-देखते सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग चली ॥ ४३ ॥

हाहाकारो महाञ्जज्ञे योधानां तव भारत ।
तिष्ठ तिष्ठेति चाप्यासीद् द्रावितानां महात्मनाम् ॥४४॥

भरतनन्दन ! वहाँ आपके योद्धाओंमें महान् हाहाकार मच गया । भागे हुए योद्धाओंके पीछे महामनस्वी पाण्डव वीरोंकी 'ठहरो, ठहरो' की आवाज सुनायी देने लगी ॥४४॥

क्षत्रियाणां तदान्योन्यं संयुगे जयमिच्छताम् ।
प्राद्रवन्नेव सम्भग्नाः पाण्डवैस्तव सैनिकाः ॥ ४५ ॥
त्यक्त्वा युद्धे प्रियान् पुत्रान् भ्रातॄनथ पितामहान् ।
मातुलान् भागिनेयांश्च वयस्यानपि भारत ॥ ४६ ॥

भारत ! युद्धमें परस्पर विजयकी अभिलाषा रखनेवाले क्षत्रियोंमेंसे पाण्डवोंद्वारा पराजित होकर आपके सैनिक युद्धमें अपने प्यारे पुत्रों, भाइयों, पितामहों, मामाओं, भानजों और मित्रोंको भी छोड़कर भाग गये ॥ ४५-४६ ॥

हयान् द्विपांस्त्वरयन्तो योधा जग्मुः समन्ततः ।

आत्मत्राणकृतोत्साहास्तावका भरतर्षभ ॥ ४७ ॥

भरतश्रेष्ठ ! अपनी रक्षामात्रके लिये उत्साह रखनेवाले आपके सैनिक घोड़ों और हाथियोंको तीव्र गतिसे हाँकते हुए सब ओर भाग चले ॥ ४७ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें संकुलयुद्धविषयक नवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

नकुलद्वारा कर्णके तीन पुत्रोंका वध तथा उभयपक्षकी सेनाओंका भयानक युद्ध

संजय उवाच

तत् प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा मद्रराजः प्रतापवान्।
उवाच सारथिं तूर्णं चोदयाश्वान् महाजवान् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! उस सेनाको इस तरह भागती देख प्रतापी मद्रराज शल्यने अपने सारथिसे कहा—'सूत ! मेरे महावेगशाली घोड़ोंको शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ाओ॥

एष तिष्ठति वै राजा पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः।
छत्रेण ध्रियमाणेन पाण्डुरेण विराजता ॥ २ ॥

'देखो, ये सामने मस्तकपर शोभाशाली श्वेत छत्र लगाये हुए पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर खड़े हैं ॥ २ ॥

अत्र मां प्रापय क्षिप्रं पश्य मे सारथे बलम्।
न समर्थो हि मे पार्थः स्थातुमद्य पुरो युधि ॥ ३ ॥

'सारथे ! मुझे शीघ्र उनके पास पहुँचा दो। फिर मेरा बल देखो। आज युद्धमें कुन्तीकुमार युधिष्ठिर मेरे सामने कदापि नहीं ठहर सकते' ॥ ३ ॥

एवमुक्तस्ततः प्रायान्मद्रराजस्य सारथिः।
यत्र राजा सत्यसंधो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ४ ॥

उनके ऐसा कहनेपर मद्रराजका सारथि वहीं जा पहुँचा, जहाँ सत्यप्रतिज्ञ धर्मपुत्र युधिष्ठिर खड़े थे ॥ ४ ॥

प्रापतत् तच्च सहसा पाण्डवानां महद् बलम्।
दधारैको रणे शल्यो वेलोद्वृत्तमिवार्णवम् ॥ ५ ॥

साथ ही पाण्डवोंकी वह विशाल सेना भी सहसा वहाँ आ पहुँची। परंतु जैसे तट उमड़ते हुए समुद्रको रोक देता है, उसी प्रकार अकेले राजा शल्यने रणभूमिमें उस सेनाको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ५ ॥

पाण्डवानां बलौघस्तु शल्यमासाद्य मारिष।
व्यतिष्ठत तदा युद्धे सिन्धोर्वेग इवाचलम् ॥ ६ ॥

माननीय नरेश ! जैसे किसी नदीका वेग किसी पर्वतके पास पहुँचकर अवरुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार पाण्डवोंकी सेनाका वह समुदाय युद्धमें राजा शल्यके पास पहुँचकर खड़ा हो गया ॥ ६ ॥

मद्रराजं तु समरे दृष्ट्वा युद्धाय धिष्ठितम्।
कुरवः संन्यवर्तन्त मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ७ ॥

समराङ्गणमें मद्रराज शल्यको युद्धके लिये डटा हुआ देख कौरव-सैनिक मृत्युको ही युद्धसे निवृत्तिकी सीमा नियत करके पुनः रणभूमिमें लौट आये ॥ ७ ॥

तेषु राजन् निवृत्तेषु व्यूढानीकेषु भागशः।
प्रावर्तत महारौद्रः संग्रामः शोणितोदकः ॥ ८ ॥

राजन् ! पृथक्-पृथक् सेनाओंकी व्यूह-रचना करके जब वे सभी सैनिक लौट आये, तब दोनों दलोंमें महाभयंकर संग्राम छिड़ गया, जहाँ पानीकी तरह खून बहाया जा रहा था ॥ ८ ॥

समार्च्छच्चित्रसेनं तु नकुलो युद्धदुर्मदः।
तौ परस्परमासाद्य चित्रकार्मुकधारिणौ ॥ ९ ॥
मेघाविव यथोद्वृत्तौ दक्षिणोत्तरवर्षिणौ।
शरतोयैः सिषिचतुस्तौ परस्परमाहवे ॥ १० ॥

इसी समय रणदुर्मद नकुलने कर्णपुत्र चित्रसेनपर आक्रमण किया। विचित्र धनुष धारण करनेवाले वे दोनों वीर एक-दूसरेसे भिड़कर दक्षिण तथा उत्तरकी ओरसे आये हुए दो बड़े जलवर्षक मेघोंके समान परस्पर बाणरूपी जलकी बौछार करने लगे ॥ ९-१० ॥

नान्तरं तत्र पश्यामि पाण्डवस्येतरस्य च।
उभौ कृतास्त्रौ बलिनौ रथचर्याविशारदौ ॥ ११ ॥
परस्परवधे यत्तौ छिद्रान्वेषणतत्परौ।

उस समय वहाँ पाण्डुपुत्र नकुल और कर्णकुमार चित्रसेनमें मुझे कोई अन्तर नहीं दिखायी देता था। दोनों ही अस्त्र-शस्त्रोंके विद्वान्, बलवान् तथा रथयुद्धमें कुशल थे। परस्पर घातमें लगे हुए वे दोनों वीर एक-दूसरेके छिद्र (प्रहारके योग्य अवसर) ढूँढ़ रहे थे ॥ ११½ ॥

चित्रसेनस्तु भल्लेन पीतेन निशितेन च ॥ १२ ॥
नकुलस्य महाराज मुष्टिदेशेऽच्छिनद् धनुः।

महाराज ! इतनेहीमें चित्रसेनने एक पानीदार पैने भल्लके द्वारा नकुलके धनुषको मुट्ठी पकड़नेकी जगहसे काट दिया॥

अथैनं छिन्नधन्वानं रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ १३ ॥
त्रिभिः शरैरसम्भ्रान्तो ललाटे वै समार्पयत्।

धनुष कट जानेपर उनके ललाटमें शिलापर तेज किये हुए सुनहरे पंखवाले तीन बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी। उस समय चित्रसेनके चित्तमें तनिक भी घबराहट नहीं हुई॥

हयांश्चास्य शरैस्तीक्ष्णैः प्रेषयामास मृत्यवे ॥ १४ ॥
तथा ध्वजं सारथिं च त्रिभिस्त्रिभिरपातयत्।

उसने अपने तीखे बाणोंद्वारा नकुलके घोड़ोंको भी मृत्युके हवाले कर दिया तथा तीन-तीन बाणोंसे उनके ध्वज और सारथिको भी काट गिराया ॥ १४½ ॥

स शत्रुभुजनिर्मुक्तैर्ललाटस्थैस्त्रिभिः शरैः ॥ १५ ॥
नकुलः शुशुभे राजंस्त्रिशृङ्ग इव पर्वतः।

राजन् ! शत्रुकी भुजाओंसे छूटकर ललाटमें धँसे हुए उन तीन बाणोंके द्वारा नकुल तीन शिखरोंवाले पर्वतके समान

शोभा पाने लगे ॥ १५½ ॥

स च्छिन्नधन्वा विरथः खड्गमादाय चर्म च ॥ १६ ॥
रथादवातरद् वीरः शैलाग्रादिव केसरी ।

धनुष कट जानेपर रथहीन हुए वीर नकुल हाथमें ढाल-तलवार लेकर पर्वतके शिखरसे उतरनेवाले सिंहके समान रथसे नीचे आ गये ॥ १६½ ॥

पद्भ्यामापततस्तस्य शरवृष्टिं समासृजत् ॥ १७ ॥
नकुलोऽप्यग्रसत् तां वै चर्मणा लघुविक्रमः ।

उस समय चित्रसेन पैदल आक्रमण करनेवाले नकुलके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करने लगा। परंतु शीघ्रतापूर्वक पराक्रम प्रकट करनेवाले नकुलने ढालके द्वारा ही रोककर उस बाण-वर्षाको नष्ट कर दिया ॥ १७½ ॥

चित्रसेनरथं प्राप्य चित्रयोधी जितश्रमः ॥ १८ ॥
आरुरोह महाबाहुः सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।

विचित्र रीतिसे युद्ध करनेवाले महाबाहु नकुल परिश्रम-को जीत चुके थे। वे सारी सेनाके देखते-देखते चित्रसेनके रथके समीप जा उसपर चढ़ गये ॥ १८½ ॥

सकुण्डलं समुकुटं सुनसं स्वायतेक्षणम् ॥ १९ ॥
चित्रसेनशिरः कायादपाहरत पाण्डवः ।

तत्पश्चात् पाण्डुकुमारने सुन्दर नासिका और विशाल नेत्रोंसे युक्त कुण्डल और मुकुटसहित चित्रसेनके मस्तकको धड़से काट लिया ॥ १९½ ॥

स पपात रथोपस्थे दिवाकरसमद्युतिः ॥ २० ॥
चित्रसेनं विशस्तं तु दृष्ट्वा तत्र महारथाः ।
साधुवादस्वनांश्चक्रुः सिंहनादांश्च पुष्कलान् ॥ २१ ॥

सूर्यके समान तेजस्वी चित्रसेन रथके पिछले भागमें गिर पड़ा। चित्रसेनको मारा गया देख वहाँ खड़े हुए पाण्डव महारथी नकुलको साधुवाद देने और प्रचुरमात्रामें सिंहनाद करने लगे ॥ २०-२१ ॥

विशस्तं भ्रातरं दृष्ट्वा कर्णपुत्रौ महारथौ ।
सुषेणः सत्यसेनश्च मुञ्चन्तौ विविधाञ्शरान् ॥ २२ ॥
ततोऽभ्यधावतां तूर्णं पाण्डवं रथिनां वरम् ।

अपने भाईको मारा गया देख कर्णके दो महारथी पुत्र सुषेण और सत्यसेन नाना प्रकारके बाणोंकी वर्षा करते हुए रथियोंमें श्रेष्ठ पाण्डुपुत्र नकुलपर तुरंत ही चढ़ आये ।२२½।

जिघांसन्तौ यथा नागं व्याघ्रौ राजन् महावने ॥ २३ ॥
तावभ्यधावतां तीक्ष्णौ द्वावप्येनं महारथम् ।
शरौघान् सम्यगस्यन्तौ जीमूतौ सलिलं यथा ॥ २४ ॥

राजन्! जैसे विशाल वनमें दो व्याघ्र किसी एक हाथी-को मार डालनेकी इच्छासे उसकी ओर दौड़ें, उसी प्रकार तीखे स्वभाववाले वे दोनों भाई इन महारथी नकुलपर अपने बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगे, मानो दो मेघ पानीकी धारावाहिक वृष्टि करते हों ॥ २३-२४ ॥

स शरैः सर्वतो विद्धः प्रहृष्ट इव पाण्डवः ।
अन्यत् कार्मुकमादाय रथमारुह्य वेगवान् ॥ २५ ॥
अतिष्ठत रणे वीरः क्रुद्धरूप इवान्तकः ।

सब ओरसे बाणोंद्वारा विद्ध होनेपर भी पाण्डुकुमार नकुल हर्ष और उत्साहमें भरे हुए वीर योद्धाकी भाँति दूसरा धनुष हाथमें लेकर बड़े वेगसे दूसरे रथपर जा चढ़े और कुपित हुए कालके समान रणभूमिमें खड़े हो गये ॥ २५½ ॥

तस्य तौ भ्रातरौ राजञ्शरैः संनतपर्वभिः ॥ २६ ॥
रथं विशकलीकर्तुं समारब्धौ विशाम्पते ।

राजन्! प्रजानाथ! उन दोनों भाइयोंने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा नकुलके रथके टुकड़े-टुकड़े करनेकी चेष्टा आरम्भ की ॥ २६½ ॥

ततः प्रहस्य नकुलश्चतुर्भिश्चतुरो रणे ॥ २७ ॥
जघान निशितैर्बाणैः सत्यसेनस्य वाजिनः ।

तब नकुलने हँसकर रणभूमिमें चार पैने बाणोंद्वारा सत्य-सेनके चारों घोड़ोंको मार डाला ॥ २७½ ॥

ततः संधाय नाराचं रुक्मपुङ्खं शिलाशितम् ॥ २८ ॥
धनुश्चिच्छेद राजेन्द्र सत्यसेनस्य पाण्डवः ।

राजेन्द्र! तत्पश्चात् सानपर चढ़ाकर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले एक नाराचका संधान करके पाण्डुपुत्र नकुलने सत्यसेनका धनुष काट दिया ॥ २८½ ॥

अथान्यं रथमास्थाय धनुरादाय चापरम् ॥ २९ ॥
सत्यसेनः सुषेणश्च पाण्डवं पर्यधावताम् ।

इसके बाद दूसरे रथपर सवार हो दूसरा धनुष हाथमें लेकर सत्यसेन और सुषेण दोनोंने पाण्डुकुमार नकुलपर धावा किया ॥ २९½ ॥

अविध्यत् तावसम्भ्रान्तो माद्रीपुत्रः प्रतापवान् ॥ ३० ॥
द्वाभ्यां द्वाभ्यां महाराज शराभ्यां रणमूर्धनि ।

महाराज! माद्रीके प्रतापी पुत्र नकुलने बिना किसी घबराहटके युद्धके मुहानेपर दो-दो बाणोंसे उन दोनों भाइयोंको घायल कर दिया ॥ ३०½ ॥

सुषेणस्तु ततः क्रुद्धः पाण्डवस्य महद् धनुः ॥ ३१ ॥
चिच्छेद प्रहसन् युद्धे क्षुरप्रेण महारथः ।

इससे सुषेणको बड़ा क्रोध हुआ। उस महारथीने हँसते-हँसते युद्धस्थलमें एक क्षुरप्रके द्वारा पाण्डुकुमार नकुलके विशाल धनुषको काट डाला ॥ ३१½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय नकुलः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ३२ ॥
सुषेणं पञ्चभिर्विद्ध्वा ध्वजमेकेन चिच्छिदे ।

फिर तो नकुल क्रोधसे तमतमा उठे और दूसरा धनुष लेकर उन्होंने पाँच बाणोंसे सुषेणको घायल करके एकसे उसकी ध्वजाको भी काट डाला ॥ ३२½ ॥

सत्यसेनस्य च धनुर्हस्तावापं च मारिष ॥ ३३ ॥
चिच्छेद तरसा युद्धे तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ।

आर्य! इसके बाद रणभूमिमें सत्यसेनके धनुष और दस्तानेके भी नकुलने वेगपूर्वक टुकड़े-टुकड़े कर डाले। इससे सब लोग जोर-जोरसे कोलाहल करने लगे ॥ ३३½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय वेगघ्नं भारसाधनम् ॥ ३४ ॥

शरैः संछादयामास समन्तात् पाण्डुनन्दनम् ।

तब सत्यसेनने शत्रुका वेग नष्ट करनेवाले दूसरे भारसाधक धनुषको हाथमें लेकर अपने बाणोंद्वारा पाण्डुनन्दन नकुलको ढक दिया ॥ ३४½ ॥

संनिवार्य तु तान् बाणान् नकुलः परवीरहा ॥ ३५ ॥
सत्यसेनं सुषेणं च द्वाभ्यां द्वाभ्यामविध्यत ।

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले नकुलने उन बाणोंका निवारण करके सत्यसेन और सुषेणको भी दो-दो बाणोंद्वारा घायल कर दिया ॥ ३५½ ॥

तावेनं प्रत्यविध्येतां पृथक् पृथगजिह्मगैः ॥ ३६ ॥
सारथिं चास्य राजेन्द्र शितैर्विव्यधतुः शरैः ।

राजेन्द्र ! फिर उन दोनों भाइयोंने भी पृथक्-पृथक् अनेक बाणोंसे नकुलको बींध डाला और पैने बाणोंद्वारा उनके सारथिको भी घायल कर दिया ॥ ३६½ ॥

सत्यसेनो रथेषां तु नकुलस्य धनुस्तथा ॥ ३७ ॥
पृथक्छराभ्यां चिच्छेद कृतहस्तः प्रतापवान् ।

तत्पश्चात् सिद्धहस्त और प्रतापी वीर सत्यसेनने पृथक्-पृथक् दो-दो बाणोंसे नकुलका धनुष और उनके रथके ईषादण्ड भी काट डाले ॥ ३७½ ॥

स रथेऽतिरथस्तिष्ठन् रथशक्तिं परामृशत् ॥ ३८ ॥
स्वर्णदण्डामकुण्ठाग्रां तैलधौतां सुनिर्मलाम् ।
लेलिहानामिव विभो नागकन्यां महाविषाम् ॥ ३९ ॥
समुद्यम्य च चिक्षेप सत्यसेनस्य संयुगे ।

तदनन्तर रथपर खड़े हुए अतिरथी वीर नकुलने एक रथशक्ति हाथमें ली, जिसमें सोनेका डंडा लगा हुआ था। उसका अग्रभाग कहीं भी कुण्ठित होनेवाला नहीं था । प्रभो! तेलमें धोकर साफ की हुई वह निर्मल शक्ति जीभ लपलपाती हुई महाविषैली नागिनके समान प्रतीत होती थी । नकुलने युद्धस्थलमें सत्यसेनको लक्ष्य करके ऊपर उठाकर वह रथशक्ति चला दी ॥ ३८-३९½ ॥

सा तस्य हृदयं संख्ये बिभेद च तथा नृप ॥ ४० ॥
स पपात रथाद् भूमिं गतसत्त्वोऽल्पचेतनः ।

नरेश्वर ! उस शक्तिने रणभूमिमें उसके वक्षःस्थलको विदीर्ण कर दिया । सत्यसेनकी चेतना जाती रही और वह प्राणशून्य होकर रथसे पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ४०½ ॥

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा सुषेणः क्रोधमूर्छितः ॥ ४१ ॥
अभ्यवर्षच्छरैस्तूर्णं पादातं पाण्डुनन्दनम् ।

भाईको मारा गया देख सुषेण क्रोधसे व्याकुल हो उठा और तुरंत ही हरसा कट जानेसे पैदल हुए-से पाण्डुनन्दन नकुलपर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ४१½ ॥

चतुर्भिश्चतुरो वाहान् ध्वजं छित्त्वा च पञ्चभिः ॥ ४२ ॥
त्रिभिर्वै सारथिं हत्वा कर्णपुत्रो ननाद ह ।

उसने चार बाणोंसे उनके चारों घोड़ोंको मार डाला और पाँचसे उनकी ध्वजा काटकर तीनसे सारथिके भी प्राण ले लिये । इसके बाद कर्णपुत्र जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगा ॥

नकुलं विरथं दृष्ट्वा द्रौपदेयो महारथम् ॥ ४३ ॥
सुतसोमोऽभिदुद्राव परीप्सन् पितरं रणे ।

महारथी नकुलको रथहीन हुआ देख द्रौपदीका पुत्र सुतसोम अपने चाचाकी रक्षाके लिये वहाँ दौड़ा आया ॥ ४३½ ॥

ततोऽधिरुह्य नकुलः सुतसोमस्य तं रथम् ॥ ४४ ॥
शुशुभे भरतश्रेष्ठो गिरिस्थ इव केसरी ।

तब सुतसोमके उस रथपर आरूढ़ हो भरतश्रेष्ठ नकुल पर्वतपर बैठे हुए सिंहके समान सुशोभित होने लगे ॥ ४४½ ॥

अन्यत् कार्मुकमादाय सुषेणं समयोधयत् ॥ ४५ ॥
तावुभौ शरवर्षाभ्यां समासाद्य परस्परम् ।
परस्परवधे यत्नं चक्रतुः सुमहारथौ ॥ ४६ ॥

उन्होंने दूसरा धनुष हाथमें लेकर सुषेणके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया । वे दोनों महारथी वीर बाणोंकी वर्षाद्वारा एक दूसरेसे टक्कर लेकर परस्पर वधके लिये प्रयत्न करने लगे ॥ ४५-४६ ॥

सुषेणस्तु ततः क्रुद्धः पाण्डवं विशिखैस्त्रिभिः ।
सुतसोमं तु विंशत्या बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ४७ ॥

उस समय सुषेणने कुपित होकर तीन बाणोंसे पाण्डुपुत्र नकुलको बींध डाला और सुतसोमकी दोनों भुजाओं एवं छातीमें बीस बाण मारे ॥ ४७ ॥

ततः क्रुद्धो महाराज नकुलः परवीरहा ।
शरैस्तस्य दिशः सर्वाश्छादयामास वीर्यवान् ॥ ४८ ॥

महाराज ! तत्पश्चात् शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले पराक्रमी नकुलने कुपित हो बाणोंकी वर्षासे सुषेणकी सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित कर दिया ॥ ४८ ॥

ततो गृहीत्वा तीक्ष्णाग्रमर्धचन्द्रं सुतेजनम् ।
सुवेगवन्तं चिक्षेप कर्णपुत्राय संयुगे ॥ ४९ ॥

इसके बाद तीखी धारवाले एक अत्यन्त तेज और वेगशाली अर्धचन्द्राकार बाण लेकर उसे समराङ्गणमें कर्णपुत्रपर चला दिया ॥ ४९ ॥

तस्य तेन शिरः कायाज्जहार नृपसत्तम ।
पश्यतां सर्वसैन्यानां तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ५० ॥

नृपश्रेष्ठ ! उस बाणसे नकुलने सम्पूर्ण सेनाओंके देखते-देखते सुषेणका मस्तक धड़से काट गिराया । वह अद्भुत-सी घटना हुई ॥ ५० ॥

स हतः प्रापतद् राजन् नकुलेन महात्मना ।
नदीवेगादिवारुग्णस्तीरजः पादपो महान् ॥ ५१ ॥

महामनस्वी नकुलके हाथसे मारा जाकर सुषेण पृथ्वीपर गिर पड़ा, मानो नदीके वेगसे कटकर महान् तटवर्ती वृक्ष धराशायी हो गया हो ॥ ५१ ॥

कर्णपुत्रवधं दृष्ट्वा नकुलस्य च विक्रमम् ।
प्रदुद्राव भयात् सेना तावकी भरतर्षभ ॥ ५२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! कर्णपुत्रोंका वध और नकुलका पराक्रम देखकर आपकी सेना भयसे भाग चली ॥ ५२ ॥

तां तु सेनां महाराज मद्रराजः प्रतापवान्।
अपालयद् रणे शूरः सेनापतिररिंदमः ॥ ५३ ॥

महाराज ! उस समय रणभूमिमें शत्रुओंका दमन करनेवाले वीर सेनापति प्रतापी मद्रराज शल्यने आपकी उस सेनाका संरक्षण किया ॥ ५३ ॥

विभीस्तस्थौ महाराज व्यवस्थाप्य च वाहिनीम्।
सिंहनादं भृशं कृत्वा धनुःशब्दं च दारुणम् ॥ ५४ ॥

राजाधिराज ! वे जोर-जोरसे सिंहनाद और धनुषकी भयंकर टंकार करके कौरवसेनाको स्थिर रखते हुए रणभूमिमें निर्भय खड़े थे ॥ ५४ ॥

तावकाः समरे राजन् रक्षिता दृढधन्वना।
प्रत्युद्ययुररातींस्तु समन्ताद् विगतव्यथाः ॥ ५५ ॥

राजन् ! सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले राजा शल्यसे सुरक्षित हो व्यथाशून्य हुए आपके सैनिक समरमें सब ओरसे शत्रुओंकी ओर बढ़ने लगे ॥ ५५ ॥

मद्रराजं महेष्वासं परिवार्य समन्ततः।
स्थिता राजन् महासेना योद्धुकामा समन्ततः ॥ ५६ ॥

नरेश्वर ! आपकी विशाल सेना महाधनुर्धर मद्रराज शल्यको चारों ओरसे घेरकर शत्रुओंके साथ युद्धके लिये खड़ी हो गयी ॥ ५६ ॥

सात्यकिर्भीमसेनश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ।
युधिष्ठिरं पुरस्कृत्य ह्रीनिषेवमरिंदमम् ॥ ५७ ॥

उधरसे सात्यकि, भीमसेन तथा माद्रीकुमार पाण्डुनन्दन नकुल-सहदेव शत्रुदमन एवं लज्जाशील युधिष्ठिरको आगे करके चढ़ आये ॥ ५७ ॥

परिवार्य रणे वीराः सिंहनादं प्रचक्रिरे।
बाणशङ्खरवांस्तीव्रान् क्ष्वेडाश्च विविधा दधुः ॥ ५८ ॥

रणभूमिमें वे सभी वीर युधिष्ठिरको बीचमें करके सिंहनाद करने, बाणों और शङ्खोंकी तीव्र ध्वनि फैलाने तथा भाँति-भाँतिसे गर्जना करने लगे ॥ ५८ ॥

तथैव तावकाः सर्वे मद्राधिपतिमञ्जसा।
परिवार्य सुसंरब्धाः पुनर्युद्धमरोचयन् ॥ ५९ ॥

इसी प्रकार आपके समस्त सैनिक मद्रराजको चारों ओरसे घेरकर रोष और आवेशसे युक्त हो पुनः युद्धमें ही रुचि दिखाने लगे ॥ ५९ ॥

ततः प्रववृते युद्धं भीरूणां भयवर्धनम्।
तावकानां परेषां च मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ६० ॥

तदनन्तर मृत्युको ही युद्धसे निवृत्तिका निमित्त बनाकर आपके और शत्रुपक्षके योद्धाओंमें घोर युद्ध आरम्भ हो गया, जो कायरोंका भय बढ़ानेवाला था ॥ ६० ॥

यथा देवासुरं युद्धं पूर्वमासीद् विशाम्पते।
अभीतानां तथा राजन् यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ ६१ ॥

राजन् ! प्रजानाथ ! जैसे पूर्वकालमें देवताओं और असुरोंका युद्ध हुआ था, उसी प्रकार भयशून्य कौरवों और पाण्डवोंमें यमराजके राज्यकी वृद्धि करनेवाला भयंकर संग्राम होने लगा ॥ ६१ ॥

ततः कपिध्वजो राजन् हत्वा संशप्तकान् रणे।
अभ्यद्रवत तां सेनां कौरवीं पाण्डुनन्दनः ॥ ६२ ॥

नरेश्वर ! तदनन्तर पाण्डुनन्दन कपिध्वज अर्जुनने भी संशप्तकोंका संहार करके रणभूमिमें उस कौरवसेनापर आक्रमण किया ॥ ६२ ॥

तथैव पाण्डवाः सर्वे धृष्टद्युम्नपुरोगमाः।
अभ्यधावन्त तां सेनां विसृजन्तः शिताञ्शरान् ॥ ६३ ॥

इसी प्रकार धृष्टद्युम्न आदि समस्त पाण्डव वीर पैने बाणोंकी वर्षा करते हुए आपकी उस सेनापर चढ़ आये ॥

पाण्डवैरवकीर्णानां सम्मोहः समजायत।
न च जज्ञुस्त्वनीकानि दिशो वा विदिशस्तथा ॥ ६४ ॥

पाण्डवोंके बाणोंसे आच्छादित हुए कौरव-योद्धाओंपर मोह छा गया। उन्हें दिशाओं अथवा विदिशाओंका भी ज्ञान न रहा ॥ ६४ ॥

आपूर्यमाणा निशितैः शरैः पाण्डवचोदितैः।
हतप्रवीरा विध्वस्ता वार्यमाणा समन्ततः ॥ ६५ ॥

पाण्डवोंके चलाये हुए पैने बाणोंसे व्याप्त हो कौरवसेनाके मुख्य-मुख्य वीर मारे गये। वह सेना नष्ट होने लगी और चारों ओरसे उसकी गति अवरुद्ध हो गयी ॥ ६५ ॥

कौरव्यवध्यत चमूः पाण्डुपुत्रैर्महारथैः।
तथैव पाण्डवं सैन्यं शरै राजन् समन्ततः ॥ ६६ ॥
रणेऽहन्यत पुत्रैस्ते शतशोऽथ सहस्रशः।

राजन् ! महारथी पाण्डुपुत्र कौरवसेनाका वध करने लगे। इसी प्रकार आपके पुत्र भी पाण्डवसेनाके सैकड़ों, हजारों वीरोंका समराङ्गणमें सब ओरसे अपने बाणोंद्वारा संहार करने लगे ॥ ६६½ ॥

ते सेने भृशसंतप्ते वध्यमाने परस्परम् ॥ ६७ ॥
व्याकुले समपद्येतां वर्षासु सरिताविव।

जैसे वर्षाकालमें दो नदियाँ एक दूसरीके जलसे भरकर व्याकुल-सी हो उठती हैं, उसी प्रकार आपसकी मार खाती हुई वे दोनों सेनाएँ अत्यन्त संतप्त हो उठीं ॥ ६७½ ॥

आविवेश ततस्तीव्रं तावकानां महद् भयम्।
पाण्डवानां च राजेन्द्र तथाभूते महाहवे ॥ ६८ ॥

राजेन्द्र ! उस अवस्थामें उस महासमरमें खड़े हुए आपके और पाण्डवयोद्धाओंके मनमें भी दुःसह एवं भारी भय समा गया ॥ ६८ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें संकुलयुद्धविषयक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

शल्यका पराक्रम, कौरव-पाण्डव योद्धाओंके द्वन्द्वयुद्ध तथा भीमसेनके द्वारा शल्यकी पराजय

संजय उवाच

तस्मिन् विलुलिते सैन्ये वध्यमाने परस्परम् ।
द्रवमाणेषु योधेषु विनदत्सु च दन्तिषु ॥ १ ॥
कूजतां स्तनतां चैव पदातीनां महाहवे ।
निहतेषु महाराज हयेषु बहुधा तदा ॥ २ ॥
प्रक्षये दारुणे घोरे संहारे सर्वदेहिनाम् ।
नानाशस्त्रसमावाये व्यतिषक्तरथद्विपे ॥ ३ ॥
हर्षणे युद्धशौण्डानां भीरूणां भयवर्धने ।
गाहमानेषु योधेषु परस्परवधैषिषु ॥ ४ ॥
प्राणादाने महाघोरे वर्तमाने दुरोदरे ।
संग्रामे घोररूपे तु यमराष्ट्रविवर्धने ॥ ५ ॥
पाण्डवास्तावकं सैन्यं व्यधमन्निशितैः शरैः ।
तथैव तावका योधा जघ्नुः पाण्डवसैनिकान् ॥ ६ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! उस महासमरमें जब दोनों पक्षोंकी सेनाएँ परस्परकी मार खाकर भयसे व्याकुल हो उठीं, दोनों दलोंके योद्धा पलायन करने लगे, हाथी चिग्घाड़ने तथा पैदल सैनिक कराहने और चिल्लाने लगे; बहुत-से घोड़े मारे गये, सम्पूर्ण देहधारियोंका घोर भयंकर एवं विनाशकारी संहार होने लगा, नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र परस्पर टकराने लगे, रथ और हाथी एक दूसरेसे उलझ गये, युद्धकुशल योद्धाओंका हर्ष और कायरोंका भय बढ़ानेवाला संग्राम होने लगा, एक दूसरेके वधकी इच्छासे उभयपक्षकी सेनाओंमें दोनों दलोंके योद्धा प्रवेश करने लगे, प्राणोंकी बाजी लगाकर महाभयंकर युद्धका जूआ आरम्भ हो गया तथा यमराजके राज्यकी वृद्धि करनेवाला घोर संग्राम चलने लगा, उस समय पाण्डव अपने तीखे बाणोंसे आपकी सेनाका संहार करने लगे । इसी प्रकार आपके योद्धा भी पाण्डवसैनिकोंके वधमें प्रवृत्त हो गये ॥ १—६ ॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने युद्धे भीरुभयावहे ।
पूर्वाह्णे चापि सम्प्राप्ते भास्करोदयनं प्रति ॥ ७ ॥
लब्धलक्षाः परे राजन् रक्षितास्तु महात्मना ।
अयोधयंस्तव बलं मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ८ ॥

राजन् ! पूर्वाह्णकाल प्राप्त होनेपर सूर्योदयके समय जब कायरोंका भय बढ़ानेवाला वर्तमान युद्ध चल रहा था, उस समय महात्मा अर्जुनसे सुरक्षित शत्रु-योद्धा, जो लक्ष्य वेधनेमें कुशल थे, मृत्युको ही युद्धसे निवृत्त होनेकी सीमा नियत करके आपकी सेनाके साथ जूझने लगे ॥ ७-८ ॥

बलिभिः पाण्डवैर्दृप्तैर्लब्धलक्षैः प्रहारिभिः ।
कौरव्यसीदत् पृतना मृगीवाग्निसमाकुला ॥ ९ ॥

पाण्डव योद्धा बलवान् और प्रहारकुशल थे । उनका निशाना कभी खाली नहीं जाता था । उनकी मार खाकर कौरवसेना दावानलसे घिरी हुई हरिणीके समान अत्यन्त ध्वस्त हो उठी ॥ ९ ॥

तां दृष्ट्वा सीदतीं सेनां पङ्के गामिव दुर्बलाम् ।
उज्जिहीर्षुस्तदा शल्यः प्रायात् पाण्डुसुतान् प्रति ॥ १० ॥

कीचड़में फँसी हुई दुर्बल गायके समान कौरवसेनाको बहुत कष्ट पाती देख उसका उद्धार करनेकी इच्छासे राजा शल्यने उस समय पाण्डवोंपर आक्रमण किया ॥ १० ॥

मद्रराजः सुसंक्रुद्धो गृहीत्वा धनुरुत्तमम् ।
अभ्यद्रवत संग्रामे पाण्डवानाततायिनः ॥ ११ ॥

मद्रराज शल्यने अत्यन्त क्रोधमें भरकर उत्तम धनुष हाथमें ले संग्राममें अपने वधके लिये उद्यत हुए पाण्डवोंपर वेगपूर्वक धावा किया ॥ ११ ॥

पाण्डवा अपि भूपाल समरे जितकाशिनः ।
मद्रराजं समासाद्य विभिदुर्निशितैः शरैः ॥ १२ ॥

भूपाल ! समरमें विजयसे सुशोभित होनेवाले पाण्डव भी मद्रराज शल्यके निकट जाकर उन्हें अपने पैने बाणोंसे बींधने लगे ॥ १२ ॥

ततः शरशतैस्तीक्ष्णैर्मद्रराजो महारथः ।
अर्दयामास तां सेनां धर्मराजस्य पश्यतः ॥ १३ ॥

तब महारथी मद्रराज धर्मराज युधिष्ठिरके देखते-देखते उनकी सेनाको अपने सैकड़ों तीखे बाणोंसे संतप्त करने लगे ॥ १३ ॥

प्रादुरासन् निमित्तानि नानारूपाण्यनेकशः ।
चचाल शब्दं कुर्वाणा मही चापि सपर्वता ॥ १४ ॥

उस समय नाना प्रकारके बहुत-से अशुभसूचक निमित्त प्रकट होने लगे । पर्वतोंसहित पृथ्वी महान् शब्द करती हुई डोलने लगी ॥ १४ ॥

सदण्डशूला दीप्ताग्राः शीर्यमाणाः समन्ततः ।
उल्का भूमिं दिवः पेतुराहत्य रविमण्डलम् ॥ १५ ॥

आकाशसे बहुत-सी उल्काएँ सूर्यमण्डलसे टकराकर पृथ्वीपर गिरने लगीं । उनके साथ दण्डयुक्त शूल भी गिर रहे थे । उन उल्काओंके अग्रभाग अपनी दीप्तिसे दमक रहे थे । वे सब-की-सब चारों ओर बिखरी पड़ती थीं ॥ १५ ॥

मृगाश्च महिषाश्चापि पक्षिणश्च विशाम्पते ।
अपसव्यं तदा चक्रुः सेनां ते बहुशो नृप ॥ १६ ॥

प्रजानाथ ! नरेश्वर ! उस समय मृग, महिष और पक्षी आपकी सेनाको बारंबार दाहिने करके जाने लगे ॥ १६ ॥

भृगुसूनुधरापुत्रौ शशिजेन समन्वितौ ।
चरमं पाण्डुपुत्राणां पुरस्तात् सर्वभूभुजाम् ॥ १७ ॥

शुक्र और मंगल बुधसे संयुक्त हो पाण्डवोंके पृष्ठभागमें तथा अन्य सब नरेशोंके सम्मुख उदित हुए थे ॥ १७ ॥

शस्त्राग्रेष्वभवज्ज्वाला नेत्राण्याहत्य वर्षती ।
शिरःस्वलीयन्त भृशं काकोलूकाश्च केतुषु ॥ १८ ॥

शस्त्रोंके अग्रभागमें ज्वाला-सी प्रकट होती और नेत्रोंमें चकाचौंध पैदा करके वह पृथ्वीपर गिर जाती थी । योद्धाओं-

के मस्तकों और ध्वजाओंमें कौए और उल्लू बारंबार छिपने लगे ॥

ततस्तद् युद्धमत्युग्रमभवत् सहचारिणाम् ।
तथा सर्वाण्यनीकानि संनिपत्य जनाधिप ॥ १९ ॥
अभ्ययुः कौरवा राजन् पाण्डवानामनीकिनीम् ।

नरेश्वर ! तत्पश्चात् एक साथ संगठित होकर जूझनेवाले दोनों पक्षोंके वीरोंका वह युद्ध बड़ा भयंकर हो गया । राजन् ! कौरव-योद्धाओंने अपनी सारी सेनाओंको एकत्र करके पाण्डव-सेनापर धावा बोल दिया ॥ १९½ ॥

शल्यस्तु शरवर्षेण वर्षन्निव सहस्रदृक् ॥ २० ॥
अभ्यवर्षत धर्मात्मा कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।

धर्मात्मा राजा शल्यने वर्षा करनेवाले इन्द्रकी भाँति कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥२०½॥

भीमसेनं शरैश्चापि रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ २१ ॥
द्रौपदेयांस्तथा सर्वान् माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
धृष्टद्युम्नं च शैनेयं शिखण्डिनमथापि च ॥ २२ ॥
एकैकं दशभिर्बाणैर्विव्याध स महाबलः ।
ततोऽसृजद् बाणवर्षं घर्मान्ते मघवानिव ॥ २३ ॥

महाबली शल्यने भीमसेन, द्रौपदीके सभी पुत्र, माद्री-कुमार नकुल-सहदेव, धृष्टद्युम्न, सात्यकि तथा शिखण्डी—इनमेंसे प्रत्येकको शिलापर तेज किये हुए सुवर्णमय पंख-वाले दस-दस बाणोंसे घायल कर दिया । तत्पश्चात् वे वर्षा-कालमें जल बरसानेवाले इन्द्रके समान बाणोंकी वृष्टि करने लगे ॥ २१–२३ ॥

ततः प्रभद्रका राजन् सोमकाश्च सहस्रशः ।
पतिताः पात्यमानाश्च दृश्यन्ते शल्यसायकैः ॥ २४ ॥

राजन् ! तत्पश्चात् सहस्रों प्रभद्रक और सोमक योद्धा शल्यके बाणोंसे घायल होकर गिरे और गिरते हुए दिखायी देने लगे ॥ २४ ॥

भ्रमराणामिव व्राताः शलभानामिव व्रजाः ।
ह्रादिन्य इव मेघेभ्यः शल्यस्य न्यपतञ्शराः ॥ २५ ॥

शल्यके बाण भ्रमरोंके समूह, टिड्डियोंके दल और मेघों-की घटासे प्रकट होनेवाली बिजलियोंके समान पृथ्वीपर गिर रहे थे ॥ २५ ॥

द्विरदास्तुरगाश्चार्ताः पत्तयो रथिनस्तथा ।
शल्यस्य बाणैरपतन् बभ्रमुर्व्यनदंस्तथा ॥ २६ ॥

शल्यके बाणोंकी मार खाकर पीड़ित हुए हाथी, घोड़े, रथी और पैदल-सैनिक गिरने, चक्कर काटने और आर्तनाद करने लगे ॥ २६ ॥

आविष्ट इव मद्रेशो मन्युना पौरुषेण च ।
प्राच्छादयदरीन् संख्ये कालसृष्ट इवान्तकः ॥ २७ ॥

प्रलयकालमें प्रकट हुए यमराजके समान मद्रराज शल्य क्रोधसे आविष्ट हुए पुरुषकी भाँति अपने पुरुषार्थसे युद्धस्थल-में शत्रुओंको बाणोंद्वारा आच्छादित करने लगे ॥ २७ ॥

विनर्दमानो मद्रेशो मेघह्रादो महाबलः ।
सा वध्यमाना शल्येन पाण्डवानामनीकिनी ॥ २८ ॥
अजातशत्रुं कौन्तेयमभ्यधावद् युधिष्ठिरम् ।

महाबली मद्रराज मेघोंकी गर्जनाके समान सिंहनाद कर रहे थे । उनके द्वारा मारी जाती हुई पाण्डवसेना भागकर अजातशत्रु कुन्तीकुमार युधिष्ठिरके पास चली गयी ॥ २८½॥

तां सम्मर्द्य ततः संख्ये लघुहस्तः शितैः शरैः॥ २९ ॥
बाणवर्षेण महता युधिष्ठिरमताडयत् ।

शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले शल्यने युद्धस्थलमें पैने बाणोंद्वारा पाण्डवसेनाका मर्दन करके बड़ी भारी बाणवर्षाके द्वारा युधिष्ठिरको भी गहरी चोट पहुँचायी ॥ २९½ ॥

तमापतन्तं पत्त्यश्वैः क्रुद्धो राजा युधिष्ठिरः ॥ ३० ॥
अवारयच्छरैस्तीक्ष्णैर्महाद्विपमिवाङ्कुशैः ।

तब क्रोधमें भरे हुए राजा युधिष्ठिरने पैदलों और घुड़-सवारोंके साथ आते हुए शल्यको अपने तीखे बाणोंसे उसी प्रकार रोक दिया, जैसे महावत अङ्कुशोंकी मारसे विशालकाय हाथीको आगे बढ़नेसे रोक देता है ॥ ३०½ ॥

तस्य शल्यः शरं घोरं मुमोचाशीविषोपमम् ॥ ३१ ॥
स निर्भिद्य महात्मानं वेगेनाभ्यपतच्च गाम् ।

उस समय शल्यने युधिष्ठिरपर विषैले सर्पके समान एक भयंकर बाणका प्रहार किया । वह बाण बड़े वेगसे महात्मा युधिष्ठिरको घायल करके पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३१½ ॥

ततो वृकोदरः क्रुद्धः शल्यं विव्याध सप्तभिः ॥ ३२ ॥
पञ्चभिः सहदेवस्तु नकुलो दशभिः शरैः ।
द्रौपदेयाश्च शत्रुघ्नं शूरमार्तायनिं शरैः ॥ ३३ ॥

यह देख भीमसेन कुपित हो उठे । उन्होंने सात बाणोंसे शल्यको बींध डाला । फिर सहदेवने पाँच, नकुलने दस और द्रौपदीके पुत्रोंने अनेक बाणोंसे शत्रुसूदन शूरवीर शल्यको घायल कर दिया ॥ ३२-३३ ॥

अभ्यवर्षन् महाराज मेघा इव महीधरम् ।
ततो दृष्ट्वा वार्यमाणं शल्यं पार्थैः समन्ततः ॥ ३४ ॥
कृतवर्मा कृपश्चैव संक्रुद्धावभ्यधावताम् ।
उलूकश्च महावीर्यः शकुनिश्चापि सौबलः ॥ ३५ ॥
समागम्याथ शनकैरश्वत्थामा महाबलः ।
तव पुत्राश्च कार्त्स्न्येन जुगुपुः शल्यमाहवे ॥ ३६ ॥

महाराज ! जैसे मेघ पर्वतपर पानी बरसाते हैं, उसी प्रकार वे शल्यपर बाणोंकी वर्षा कर रहे थे । शल्यको कुन्ती-के पुत्रोंद्वारा सब ओरसे अवरुद्ध हुआ देख कृतवर्मा और कृपाचार्य क्रोधमें भरकर उनकी ओर दौड़े आये । साथ ही महापराक्रमी उलूक, सुबलपुत्र शकुनि, महाबली अश्वत्थामा तथा आपके सम्पूर्ण पुत्र भी धीरे-धीरे वहाँ आकर रणभूमिमें शल्यकी रक्षा करने लगे ॥ ३४–३६ ॥

भीमसेनं त्रिभिर्विद्ध्वा कृतवर्मा शिलीमुखैः ।
बाणवर्षेण महता क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ३७ ॥

कृतवर्माने क्रोधमें भरे हुए भीमसेनको तीन बाणोंसे घायल करके भारी बाणवर्षाके द्वारा आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ३७॥

धृष्टद्युम्नं कृपः क्रुद्धो बाणवर्षैरपीडयत् ।
द्रौपदेयांश्च शकुनिर्यमौ च द्रौणिरभ्ययात् ॥ ३८ ॥

तत्पश्चात् कुपित हुए कृपाचार्यने धृष्टद्युम्नको अपनी बाण-वर्षाद्वारा पीड़ित कर दिया। शकुनिने द्रौपदीके पुत्रोंपर और अश्वत्थामाने नकुल-सहदेवपर धावा किया ॥ ३८ ॥

दुर्योधनो युधां श्रेष्ठ आहवे केशवार्जुनौ।
समभ्ययादुग्रतेजाः शरैश्चाप्यहनद् बली ॥ ३९ ॥

योद्धाओंमें श्रेष्ठ, भयंकर तेजस्वी और बलवान् दुर्योधनने समराङ्गणमें श्रीकृष्ण और अर्जुनपर चढ़ाई की तथा बाणोंद्वारा उन्हें गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३९ ॥

एवं द्वन्द्वशतान्यासंस्त्वदीयानां परैः सह।
घोररूपाणि चित्राणि तत्र तत्र विशाम्पते ॥ ४० ॥

प्रजानाथ! इस प्रकार जहाँ-तहाँ आपके सैनिकोंके शत्रुओंके साथ सैकड़ों भयानक एवं विचित्र द्वन्द्वयुद्ध होने लगे ॥

ऋक्षवर्णाञ्जघानाश्वान् भोजो भीमस्य संयुगे।
सोऽवतीर्य रथोपस्थाद्धताश्वात् पाण्डुनन्दनः ॥ ४१ ॥
कालो दण्डमिवोद्यम्य गदापाणिरयुध्यत।

कृतवर्माने युद्धस्थलमें भीमसेनके रीछके समान रंगवाले घोड़ोंको मार डाला। घोड़ोंके मारे जानेपर पाण्डुनन्दन भीमसेन रथकी बैठकसे नीचे उतरकर हाथमें गदा ले युद्ध करने लगे, मानो यमराज अपना दण्ड उठाकर प्रहार कर रहे हों ॥ ४१½ ॥

प्रमुखे सहदेवस्य जघानाश्वान् स मद्रराट् ॥ ४२ ॥
ततः शल्यस्य तनयं सहदेवोऽसिनावधीत्।

मद्रराज शल्यने अपने सामने आये हुए सहदेवके घोड़ोंको मार डाला। तब सहदेवने भी शल्यके पुत्रको तलवारसे मार गिराया ॥ ४२½ ॥

गौतमः पुनराचार्यो धृष्टद्युम्नमयोधयत् ॥ ४३ ॥
असम्भ्रान्तमसम्भ्रान्तो यत्नवान् यत्नवत्तरम्।

कृपाचार्य बिना किसी घबराहटके विजयके लिये यत्नशील हो सम्भ्रमरहित और अधिक प्रयत्नशील धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध करने लगे ॥ ४३½ ॥

द्रौपदेयांस्तथा वीरानेकैकं दशभिः शरैः ॥ ४४ ॥
अविध्यदाचार्यसुतो नातिक्रुद्धो हसन्निव।

आचार्य द्रोणके पुत्र अश्वत्थामाने अधिक क्रुद्ध न होकर हँसते हुए-से दस-दस बाणोंद्वारा द्रौपदीके वीर पुत्रोंमेंसे प्रत्येकको घायल कर दिया ॥ ४४½ ॥

पुनश्च भीमसेनस्य जघानाश्वांस्तथाऽऽहवे ॥ ४५ ॥
सोऽवतीर्य रथात्तूर्णं हताश्वः पाण्डुनन्दनः।
कालो दण्डमिवोद्यम्य गदां क्रुद्धो महाबलः ॥ ४६ ॥
पोथयामास तुरगान् रथं च कृतवर्मणः।
कृतवर्मा त्ववप्लुत्य रथात् तस्मादपाक्रमत् ॥ ४७ ॥

(इसी बीचमें भीमसेन दूसरे रथपर आरूढ़ हो गये थे) कृतवर्माने युद्धस्थलमें पुनः भीमसेनके घोड़ोंको मार डाला। तब घोड़ोंके मारे जानेपर महाबली पाण्डुकुमार भीमसेन शीघ्र ही रथसे उतर पड़े और कुपित हो दण्ड उठाये कालके समान गदा लेकर उन्होंने कृतवर्माके घोड़ों तथा रथको चूर-चूर कर दिया। कृतवर्मा उस रथसे कूदकर भाग गया ॥ ४५—४७ ॥

शल्योऽपि राजन् संक्रुद्धो निघ्नन् सोमकपाण्डवान्।
पुनरेव शितैर्बाणैर्युधिष्ठिरमपीडयत् ॥ ४८ ॥

राजन्! इधर शल्य भी अत्यन्त क्रोधमें भरकर सोमकों और पाण्डवयोद्धाओंका संहार करने लगे। उन्होंने पुनः पैने बाणोंद्वारा युधिष्ठिरको पीड़ा देना प्रारम्भ किया ॥ ४८ ॥

तस्य भीमो रणे क्रुद्धः संदश्य दशनच्छदम्।
विनाशायाभिसंधाय गदामादाय वीर्यवान् ॥ ४९ ॥
यमदण्डप्रतीकाशां कालरात्रिमिवोद्यताम्।
गजवाजिमनुष्याणां देहान्तकरणीमपि ॥ ५० ॥

यह देख पराक्रमी भीमसेन कुपित हो ओठ चबाते हुए रणभूमिमें शल्यके विनाशका संकल्प लेकर यमदण्डके समान भयंकर गदा लिये ठनकर टूट पड़े। हाथी, घोड़े और मनुष्योंके भी शरीरोंका विनाश करनेवाली वह गदा संहारके लिये उद्यत हुई कालरात्रिके समान जान पड़ती थी ॥ ४९-५० ॥

हेमपट्टपरिक्षिप्तामुल्कां प्रज्वलितामिव।
शैक्यां व्यालीमिवात्युग्रां वज्रकल्पामयोमयीम् ॥ ५१ ॥
चन्दनागुरुपङ्काक्तां प्रमदामीप्सितामिव।
वसामेदोपदिग्धाङ्गीं जिह्वां वैवस्वतीमिव ॥ ५२ ॥

उसके ऊपर सोनेका पत्र जड़ा गया था। वह लोहेकी बनी हुई वज्रतुल्य गदा प्रज्वलित उल्का तथा छींकेपर बैठी हुई सर्पिणीके समान अत्यन्त भयंकर प्रतीत होती थी। अङ्गोंमें चन्दन और अगुरुका लेप लगाये हुए मनचाही प्रियतमा रमणीके समान उसके सर्वाङ्गमें वसा और मेद लिपटे हुए थे। वह देखनेमें यमराजकी जिह्वाके समान भयंकर थी ५१-५२

पटुघण्टाशतरवां वासवीमशनीमिव।
निर्मुक्ताशीविषाकारां पृक्तां गजमदैरपि ॥ ५३ ॥
त्रासनीं सर्वभूतानां स्वसैन्यपरिहर्षिणीम्।
मनुष्यलोके विख्यातां गिरिशृङ्गविदारणीम् ॥ ५४ ॥

उसमें सैकड़ों घंटियाँ लगी थीं, जिनका कलरव गूँजता रहता था। वह इन्द्रके वज्रकी भाँति भयानक जान पड़ती थी। केंचुलसे छूटे हुए विषधर सर्पके समान वह सम्पूर्ण प्राणियोंके मनमें भय उत्पन्न करती थी और अपनी सेनाका हर्ष बढ़ाती रहती थी। उसमें हाथीके मद लिपटे हुए थे। पर्वतशिखरोंको विदीर्ण करनेवाली वह गदा मनुष्यलोकमें सर्वत्र विख्यात है ॥ ५३-५४ ॥

यया कैलासभवने महेश्वरसखं बली।
आह्वयामास युद्धाय भीमसेनो महाबलः ॥ ५५ ॥

यह वही गदा है, जिसके द्वारा महाबली भीमसेनने कैलासशिखरपर भगवान् शङ्करके सखा कुबेरको युद्धके लिये ललकारा था ॥ ५५ ॥

यया मायामयान् दृप्तान् सुबहून् धनदालये।
जघान गुह्यकान् क्रुद्धो नदन् पार्थो महाबलः ॥ ५६ ॥
निवार्यमाणो बहुभिर्द्रौपद्याः प्रियमास्थितः।

तथा जिसके द्वारा क्रोधमें भरे हुए महाबलवान् कुन्तीकुमार भीमने बहुतोंके मना करनेपर भी द्रौपदीका प्रिय करनेके लिये उद्यत हो गर्जना करते हुए कुबेरभवनमें रहनेवाले

बहुत-से मायामय अभिमानी गुह्यकोंका वध किया था ५६½

तां वज्रमणिरत्नौघकल्मषां वज्रगौरवाम् ॥ ५७ ॥
समुद्यम्य महाबाहुः शल्यमभ्यपतद् रणे ।

जिसमें वज्रकी गुरुता भरी है और जो हीरे, मणि तथा रत्न-समूहोंसे जटित होनेके कारण विचित्र शोभा धारण करती है, उसीको हाथमें उठाकर महाबाहु भीमसेन रणभूमिमें शल्यपर टूट पड़े ॥

गदया युद्धकुशलस्तया दारुणनादया ॥ ५८ ॥
पोथयामास शल्यस्य चतुरोऽश्वान् महाजवान् ।

युद्धकुशल भीमसेनने भयंकर शब्द करनेवाली उस गदाके द्वारा शल्यके महान् वेगशाली चारों घोड़ोंको मार गिराया ॥ ५८½ ॥

ततः शल्यो रणे क्रुद्धः पीने वक्षसि तोमरम् ॥ ५९ ॥
निचखान नदन् वीरो वर्म भित्त्वा च सोऽभ्ययात् ।

तब रणभूमिमें कुपित हो गर्जना करते हुए वीर शल्यने भीमसेनके विशाल वक्षःस्थलमें एक तोमर धँसा दिया । वह उनके कवचको छेदकर छातीमें गड़ गया ॥ ५९½ ॥

वृकोदरस्त्वसम्भ्रान्तस्तमेवोद्धृत्य तोमरम् ॥ ६० ॥
यन्तारं मद्रराजस्य निर्बिभेद ततो हृदि ।

इससे भीमसेनको तनिक भी घबराहट नहीं हुई । उन्होंने उसी तोमरको निकालकर उसके द्वारा मद्रराज शल्यके सारथिकी छाती छेद डाली ॥ ६०½ ॥

स भिन्नमर्मा रुधिरं वमन् वित्रस्तमानसः ॥ ६१ ॥
पपाताभिमुखो दीनो मद्रराजस्त्वपाक्रमत् ।

इससे सारथिका मर्मस्थल विदीर्ण हो गया और वह मुँहसे रक्तवमन करता हुआ दीन एवं भयभीतचित्त होकर शल्यके सामने ही रथसे नीचे गिर पड़ा । फिर तो मद्रराज शल्य वहाँसे पीछे हट गये ॥ ६१½ ॥

कृतप्रतिकृतं दृष्ट्वा शल्यो विस्मितमानसः ॥ ६२ ॥
गदामाश्रित्य धर्मात्मा प्रत्यमित्रमवैक्षत ।

अपने प्रहारका भरपूर उत्तर प्राप्त हुआ देख धर्मात्मा शल्यका चित्त आश्चर्यसे चकित हो उठा । वे गदा हाथमें लेकर अपने शत्रुकी ओर देखने लगे ॥ ६२½ ॥

ततः सुमनसः पार्था भीमसेनमपूजयन् ।
ते दृष्ट्वा कर्म संग्रामे घोरमक्लिष्टकर्मणः ॥ ६३ ॥

संग्राममें अनायास ही महान् कर्म करनेवाले भीमसेनका वह घोर पराक्रम देखकर कुन्तीके सभी पुत्र प्रसन्नचित्त हो उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि भीमसेनशल्ययुद्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें भीमसेन और शल्यका युद्धविषयक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

भीमसेन और शल्यका भयानक गदायुद्ध तथा युधिष्ठिरके साथ शल्यका युद्ध, दुर्योधनद्वारा चेकितानका और युधिष्ठिरद्वारा चन्द्रसेन एवं द्रुमसेनका वध, पुनः युधिष्ठिर और माद्रीपुत्रोंके साथ शल्यका युद्ध

संजय उवाच

पतितं प्रेक्ष्य यन्तारं शल्यः सर्वायसीं गदाम् ।
आदाय तरसा राजंस्तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! अपने सारथिको गिरा हुआ देख मद्रराज शल्य वेगपूर्वक लोहेकी गदा हाथमें लेकर पर्वतके समान अविचल भावसे खड़े हो गये ॥ १ ॥

तं दीप्तमिव कालाग्निं पाशहस्तमिवान्तकम् ।
सशृङ्गमिव कैलासं सवज्रमिव वासवम् ॥ २ ॥
सशूलमिव हर्यक्षं वने मत्तमिव द्विपम् ।
जवेनाभ्यपतद् भीमः प्रगृह्य महतीं गदाम् ॥ ३ ॥

वे प्रलयकालकी प्रज्वलित अग्नि, पाशधारी यमराज, शिखरयुक्त कैलास, वज्रधारी इन्द्र, त्रिशूलधारी रुद्र तथा जंगलके मतवाले हाथीके समान भयंकर जान पड़ते थे । भीमसेन बहुत बड़ी गदा हाथमें लेकर वेगपूर्वक उनके ऊपर टूट पड़े ॥

ततः शङ्खप्रणादश्च तूर्याणां च सहस्रशः ।
सिंहनादश्च संजज्ञे शूराणां हर्षवर्धनः ॥ ४ ॥

फिर तो शङ्खनाद, सहस्रों वाद्योंका गम्भीर घोष तथा शूरवीरोंका हर्ष बढ़ानेवाला सिंहनाद सब ओर होने लगा ॥

प्रेक्षन्तः सर्वतस्तौ हि योधा योधमहाद्विपौ ।
तावकाश्चापरे चैव साधु साध्वित्यपूजयन् ॥ ५ ॥

योद्धाओंमें महान् गजराजके समान पराक्रमी उन दोनों वीरोंको देखकर आपके और शत्रुपक्षके योद्धा सब ओरसे 'वाह-वाह' कहकर उनके प्रति सम्मान प्रकट करने लगे— ॥

न हि मद्राधिपादन्यो रामाद् वा यदुनन्दनात् ।
सोढुमुत्सहते वेगं भीमसेनस्य संयुगे ॥ ६ ॥

'संसारमें मद्रराज शल्य अथवा यदुनन्दन बलरामजीके सिवा दूसरा कोई ऐसा योद्धा नहीं है, जो युद्धमें भीमसेनका वेग सह सके ॥ ६ ॥

तथा मद्राधिपस्यापि गदावेगं महात्मनः ।
सोढुमुत्सहते नान्यो योधो युधि वृकोदरात् ॥ ७ ॥

'इसी प्रकार महामना मद्रराज शल्यकी गदाका वेग भी रणभूमिमें भीमसेनके सिवा दूसरा कोई योद्धा नहीं सह सकता' ॥

तौ वृषाविव नर्दन्तौ मण्डलानि विचेरतुः ।
आवर्तितौ गदाहस्तौ मद्रराजवृकोदरौ ॥ ८ ॥

शल्य और भीमसेन दोनों वीर हाथमें गदा लिये साँड़ोंकी तरह गर्जते हुए चक्कर लगाने और पैंतरे देने लगे ॥ ८ ॥

मण्डलावर्तमार्गेषु गदाविहरणेषु च ।
निर्विशेषमभूद् युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः ॥ ९ ॥

मण्डलाकार गतिसे घूमनेमें, भाँति-भाँतिके पैंतरे दिखानेकी कलामें तथा गदाका प्रहार करनेमें उन दोनों पुरुषसिंहोंमें

कोई भी अन्तर नहीं दिखायी देता था, दोनों एक-से जान पड़ते थे ॥ ९ ॥

तप्तहेममयैः शुभ्रैर्बभूव भयवर्धिनी।
अग्निजालैरिवाबद्धा पट्टैः शल्यस्य सा गदा ॥ १० ॥

तपाये हुए उज्ज्वल सुवर्णमय पत्रोंसे जड़ी हुई शल्यकी वह भयंकर गदा आगकी ज्वालाओंसे लिपटी हुई-सी प्रतीत होती थी ॥ १० ॥

तथैव चरतो मार्गान् मण्डलेषु महात्मनः।
विद्युदभ्रप्रतीकाशा भीमस्य शुशुभे गदा ॥ ११ ॥

इसी प्रकार मण्डलाकार गतिसे विचित्र पैंतरोंके साथ विचरते हुए महामनस्वी भीमसेनकी गदा बिजलीसहित मेघके समान सुशोभित होती थी ॥ ११ ॥

ताडिता मद्रराजेन भीमस्य गदया गदा।
दह्यमानेव खे राजन् सासृजत् पावकार्चिषः ॥ १२ ॥

राजन्! मद्रराजने अपनी गदासे जब भीमसेनकी गदा-पर चोट की, तब वह प्रज्वलित-सी हो उठी और उससे आग-की लपटें निकलने लगीं ॥ १२ ॥

तथा भीमेन शल्यस्य ताडिता गदया गदा।
अङ्गारवर्षं मुमुचे तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १३ ॥

इसी प्रकार भीमसेनकी गदासे ताड़ित होकर शल्यकी गदा भी अङ्गारे बरसाने लगी। वह अद्भुत-सा दृश्य हुआ ॥ १३ ॥

दन्तैरिव महानागौ शृङ्गैरिव महर्षभौ।
तोत्रैरिव तदान्योन्यं गदाग्राभ्यां निजघ्नतुः ॥ १४ ॥

जैसे दो विशाल हाथी दाँतोंसे और दो बड़े-बड़े साँड़ सींगोंसे एक दूसरेपर चोट करते हैं, उसी प्रकार अङ्कुशों-जैसी उन श्रेष्ठ गदाओंद्वारा वे दोनों वीर एक दूसरेपर आघात करने लगे ॥ १४ ॥

तौ गदाभिहतैर्गात्रैः क्षणेन रुधिरोक्षितौ।
प्रेक्षणीयतरावास्तां पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ १५ ॥

उन दोनोंके अङ्गोंमें गदाकी गहरी चोटोंसे घाव हो गये थे। अतः दोनों ही क्षणभरमें खूनसे नहा गये। उस समय खिले हुए दो पलाशवृक्षोंके समान वे दोनों वीर देखने ही योग्य जान पड़ते थे ॥ १५ ॥

गदया मद्रराजस्य सव्यदक्षिणमाहतः।
भीमसेनो महाबाहुर्न चचालाचलो तथा ॥ १६ ॥

मद्रराजकी गदासे दायें-बायें अच्छी तरह चोट खाकर भी महाबाहु भीमसेन विचलित नहीं हुए। वे पर्वतके समान अविचल भावसे खड़े रहे ॥ १६ ॥

तथा भीमगदावेगैस्ताड्यमानो मुहुर्मुहुः।
शल्यो न विव्यथे राजन् दन्तिनेव महागिरिः ॥ १७ ॥

इसी प्रकार भीमसेनकी गदाके वेगसे बारंबार आहत होनेपर भी शल्यको उसी प्रकार व्यथा नहीं हुई, जैसे दन्तार हाथीके आघातसे महान् पर्वत पीड़ित नहीं होता ॥ १७ ॥

शुश्रुवे दिक्षु सर्वासु तयोः पुरुषसिंहयोः।
गदानिपातसंह्रादो वज्रयोरिव निस्वनः ॥ १८ ॥

उस समय उन दोनों पुरुषसिंहोंकी गदाओंके टकरानेकी आवाज सम्पूर्ण दिशाओंमें दो वज्रोंके आघातके समान सुनायी देती थी ॥ १८ ॥

निवृत्य तु महावीर्यौ समुच्छ्रितमहागदौ।
पुनरन्तरमार्गस्थौ मण्डलानि विचेरतुः ॥ १९ ॥

महापराक्रमी भीमसेन और शल्य दोनों वीर अपनी विशाल गदाओंको ऊपर उठाये कभी पीछे लौट पड़ते, कभी मध्यम मार्गमें स्थित होते और कभी मण्डलाकार घूमने लगते थे ॥ १९ ॥

अथाभ्येत्य पदान्यष्टौ संनिपातोऽभवत् तयोः।
उद्यम्य लोहदण्डाभ्यामतिमानुषकर्मणोः ॥ २० ॥

वे युद्ध करते-करते आठ कदम आगे बढ़ आये और लोहेके डंडे उठाकर एक दूसरेको मारने लगे। उनका पराक्रम अलौकिक था। उन दोनोंमें उस समय भयानक संघर्ष होने लगा ॥ २० ॥

पोथयन्तौ तदान्योन्यं मण्डलानि विचेरतुः।
क्रियाविशेषं कृतिनौ दर्शयामासतुस्तदा ॥ २१ ॥

वे दोनों युद्धकलाके विद्वान् वीर, एक दूसरेको कुचलते हुए मण्डलाकार विचरते और अपना-अपना विशेष कार्य-कौशल प्रदर्शित करते थे ॥ २१ ॥

अथोद्यम्य गदे घोरे सशृङ्गाविव पर्वतौ।
तावाजघ्नतुरन्योन्यं मण्डलानि विचेरतुः ॥ २२ ॥

तदनन्तर वे पुनः अपनी भयंकर गदाएँ उठाकर शिखरयुक्त दो पर्वतोंके समान परस्पर आघात करने और मण्डलाकार गतिसे विचरने लगे ॥ २२ ॥

क्रियाविशेषकृतिनौ रणभूमितलेऽचलौ।
तौ परस्परसंरम्भाद् गदाभ्यां सुभृशाहतौ ॥ २३ ॥
युगपत् पेततुर्वीरावुभाविन्द्रध्वजाविव।
उभयोः सेनयोर्वीरास्तदा हाहाकृतोऽभवन् ॥ २४ ॥

युद्धविषयक कार्यविशेषके ज्ञाता वे दोनों वीर अविचल-भावसे रणभूमिमें डटे हुए थे। वे एक दूसरेपर क्रोधपूर्वक गदाओंका प्रहार करके अत्यन्त घायल हो गये और दो इन्द्र-ध्वजोंके समान एक ही साथ पृथ्वीपर गिर पड़े। उस समय दोनों सेनाओंके वीर हाहाकार करने लगे ॥ २३-२४ ॥

भृशं मर्माण्यभिहतावुभावास्तां सुविह्वलौ।
ततः स्वरथमारोप्य मद्राणामृषभं रणे ॥ २५ ॥
अपोवाह कृपः शल्यं तूर्णमायोधनादथ।

भीम और शल्य दोनोंके मर्मस्थानोंमें गहरी चोटें लगी थीं; इसलिये दोनों ही अत्यन्त व्याकुल हो गये थे। इतने-हीमें कृपाचार्य मद्रराज शल्यको अपने रथपर बिठाकर तुरंत ही युद्धभूमिसे दूर हटा ले गये ॥ २५½ ॥

क्षीणवद् विह्वलत्वात् तु निमेषात् पुनरुत्थितः ॥ २६ ॥
भीमसेनो गदापाणिः समाह्वयत मद्रपम्।

इधर गदाधारी भीमसेन पलक मारते-मारते पुनः होशमें आकर उठ खड़े हुए और विह्वलताके कारण मतवाले पुरुष-

के समान मद्रराजको युद्धके लिये ललकारने लगे ॥ २६½ ॥

ततस्तु तावकाः शूरा नानाशस्त्रसमायुताः ॥ २७ ॥
नानावादित्रशब्देन पाण्डुसेनामयोधयन् ।

तब आपके सैनिक नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लेकर भाँति-भाँतिके रणवाद्योंकी गम्भीर ध्वनिके साथ पाण्डवसेनासे युद्ध करने लगे ॥ २७½ ॥

भुजावुच्छ्रित्य शस्त्रं च शब्देन महता ततः ॥ २८ ॥
अभ्यद्रवन् महाराज दुर्योधनपुरोगमाः ।

महाराज ! दुर्योधन आदि कौरववीर दोनों हाथ और शस्त्र उठाकर महान् कोलाहल एवं सिंहनाद करते हुए शत्रुओंपर टूट पड़े ॥ २८½ ॥

तदनीकमभिप्रेक्ष्य ततस्ते पाण्डुनन्दनाः ॥ २९ ॥
प्रययुः सिंहनादेन दुर्योधनपुरोगमान् ।

उस कौरवदलको धावा करते देख पाण्डव-वीर सिंहके समान गर्जना करके दुर्योधन आदिकी ओर बढ़ चले ।२९½।

तेषामापततां तूर्णं पुत्रस्ते भरतर्षभ ॥ ३० ॥
प्रासेन चेकितानं वै विव्याध हृदये भृशम् ।

भरतश्रेष्ठ ! आपके पुत्रने तुरंत ही एक प्रासका प्रहार करके उन आक्रमणकारी पाण्डव योद्धाओंमेंसे चेकितानकी छातीपर गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३०½ ॥

स पपात रथोपस्थे तव पुत्रेण ताडितः ॥ ३१ ॥
रुधिरौघपरिक्लिन्नः प्रविश्य विपुलं तमः ।

आपके पुत्रद्वारा ताड़ित होकर चेकितान अत्यन्त मूर्छित हो रथकी बैठकमें गिर पड़ा । उस समय उसका सारा शरीर खूनसे लथपथ हो गया था ॥ ३१½ ॥

चेकितानं हतं दृष्ट्वा पाण्डवेया महारथाः ॥ ३२ ॥
असक्तमभ्यवर्षन्त शरवर्षाणि भागशः ।

चेकितानको मारा गया देख पाण्डव महारथी पृथक्-पृथक् बाणोंकी लगातार वर्षा करने लगे ॥ ३२½ ॥

तावकानामनीकेषु पाण्डवा जितकाशिनः ॥ ३३ ॥
व्यचरन्त महाराज प्रेक्षणीयाः समन्ततः ।

महाराज ! विजयसे उल्लसित होनेवाले पाण्डव आपकी सेनाओंमें सब ओर निर्भय विचरते थे । उस समय वे देखने ही योग्य थे ॥ ३३½ ॥

कृपश्च कृतवर्मा च सौबलश्च महारथः ॥ ३४ ॥
अयोधयन् धर्मराजं मद्रराजपुरस्कृताः ।

तत्पश्चात् कृपाचार्य, कृतवर्मा और महारथी शकुनि मद्रराज शल्यको आगे करके धर्मराज युधिष्ठिरसे युद्ध करने लगे ॥

भारद्वाजस्य हन्तारं भूरिवीर्यपराक्रमम् ॥ ३५ ॥
दुर्योधनो महाराज धृष्टद्युम्नमयोधयत् ।

राजाधिराज ! आपका पुत्र दुर्योधन अत्यन्त बल-पराक्रमसे सम्पन्न द्रोणहन्ता धृष्टद्युम्नके साथ जूझने लगा ॥३५½॥

त्रिसाहस्रास्तथा राजंस्तव पुत्रेण चोदिताः ॥ ३६ ॥
अयोधयन्त विजयं द्रोणपुत्रपुरस्कृताः ।

राजन् ! आपके पुत्रसे प्रेरित हो तीन हजार योद्धा अश्वत्थामाको अगुआ बनाकर अर्जुनके साथ युद्ध करने लगे ॥

विजये धृतसंकल्पाः समरे त्यक्तजीविताः ॥ ३७ ॥
प्राविशंस्तावका राजन् हंसा इव महत् सरः ।

नरेश्वर ! जैसे हंस महान् सरोवरमें प्रवेश करते हैं, उसी प्रकार आपके सैनिक समराङ्गणमें विजयका दृढ़ संकल्प ले प्राणोंका मोह छोड़कर शत्रुओंकी सेनामें जा घुसे ॥ ३७½ ॥

ततो युद्धमभूद् घोरं परस्परवधैषिणाम् ॥ ३८ ॥
अन्योन्यवधसंयुक्तमन्योन्यप्रीतिवर्धनम् ।

फिर तो एक दूसरेके वधकी इच्छावाले उभयपक्षके सैनिकोंमें घोर युद्ध होने लगा । सभी एक दूसरेके संहारके लिये सचेष्ट थे और वह युद्ध उनकी पारस्परिक प्रसन्नताको बढ़ा रहा था ॥ ३८½ ॥

तस्मिन् प्रवृत्ते संग्रामे राजन् वीरवरक्षये ॥ ३९ ॥
अनिलेनेरितं घोरमुत्तस्थौ पार्थिवं रजः ।

राजन् ! बड़े-बड़े वीरोंका विनाश करनेवाले उस घोर संग्रामके आरम्भ होते ही वायुकी प्रेरणासे धरतीकी भयंकर धूल ऊपरको उठने लगी ॥ ३९½ ॥

श्रवणान्नामधेयानां पाण्डवानां च कीर्तनात् ॥ ४० ॥
परस्परं विजानीमो यदयुध्यन्नभीतवत् ।

उस समय उस धूलके अन्धकारमें समस्त योद्धा निर्भय-से होकर युद्ध कर रहे थे । पाण्डव तथा कौरवयोद्धा जो अपना नाम लेकर परिचय देते थे, उसे ही सुनकर हमलोग एक दूसरेको पहचान पाते थे ॥ ४०½ ॥

तद्रजः पुरुषव्याघ्र शोणितेन प्रशामितम् ॥ ४१ ॥
दिशश्च विमला जातास्तस्मिंस्तमसि नाशिते ।

पुरुषसिंह ! उस समय इतना खून बहा कि उससे वहाँ छायी हुई सारी धूल बैठ गयी । उस धूलजनित अन्धकारका नाश होनेपर सम्पूर्ण दिशाएँ स्वच्छ हो गयीं ॥ ४१½ ॥

तथा प्रवृत्ते संग्रामे घोररूपे भयानके ॥ ४२ ॥
तावकानां परेषां च नासीत् कश्चित् पराङ्मुखः ।

इस प्रकार वह घोर एवं भयानक संग्राम चलने लगा । उस समय आपके और शत्रुपक्षके योद्धाओंमेंसे कोई भी युद्धसे विमुख नहीं हुआ ॥ ४२½ ॥

ब्रह्मलोकपरा भूत्वा प्रार्थयन्तो जयं युधि ॥ ४३ ॥
सुयुद्धेन पराक्रान्ता नराः स्वर्गमभीप्सवः ।

सबका लक्ष्य था ब्रह्मलोककी प्राप्ति । वे सभी सैनिक युद्धमें विजय चाहते और उत्तम युद्धके द्वारा पराक्रम दिखाते हुए स्वर्गलोक पानेकी अभिलाषा रखते थे ॥ ४३½ ॥

भर्तृपिण्डविमोक्षार्थं भर्तृकार्यविनिश्चिताः ॥ ४४ ॥
स्वर्गसंसक्तमनसो योधा युयुधिरे तदा ।

सभी योद्धा स्वामीके दिये हुए अन्नके ऋणसे उऋण होनेके लिये उनके कार्यको सिद्ध करनेका दृढ़ निश्चय किये मनमें स्वर्गकी अभिलाषा रखकर उस समय उत्साहपूर्वक युद्ध कर रहे थे ॥ ४४½ ॥

नानारूपाणि शस्त्राणि विसृजन्तो महारथाः ॥ ४५ ॥
अन्योन्यमभिगर्जन्तः प्रहरन्तः परस्परम् ।

नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग करके परस्पर प्रहार करनेवाले महारथी एक दूसरेको लक्ष्य करके गर्जना करते थे ॥

हत विध्यत गृह्णीत प्रहरध्वं निकृन्तत ॥ ४६ ॥
इति स्म वाचः श्रूयन्ते तव तेषां च वै बले ।

आपकी और पाण्डवोंकी सेनामें 'मारो, बींध डालो, पकड़ो, प्रहार करो और टुकड़े-टुकड़े कर डालो' ये ही बातें सुनायी देती थीं ॥ ४६½ ॥

ततः शल्यो महाराज धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ४७ ॥
विव्याध निशितैर्बाणैर्हन्तुकामो महारथम् ।

महाराज ! तदनन्तर राजा शल्यने महारथी धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरको मार डालनेकी इच्छासे पैने बाणोंद्वारा बींध डाला ॥

तस्य पार्थो महाराज नाराचान् वै चतुर्दश ॥ ४८ ॥
मर्माण्युद्दिश्य मर्मज्ञो निचखान हसन्निव ।

महाराज ! मर्मज्ञ कुन्तीकुमारने शल्यके मर्मस्थानोंको लक्ष्य करके हँसते हुए-से चौदह नाराच चलाये और उनके अङ्गोंमें धँसा दिये ॥ ४८½ ॥

आवार्य पाण्डवं बाणैर्हन्तुकामो महाबलः ॥ ४९ ॥
विव्याध समरे क्रुद्धो बहुभिः कङ्कपत्रिभिः ।

महाबली शल्य पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको रोककर उन्हें मार डालनेकी इच्छासे समराङ्गणमें कङ्कपत्रयुक्त अनेक बाणोंद्वारा उनपर क्रोधपूर्वक प्रहार करने लगे ॥ ४९½ ॥

अथ भूयो महाराज शरेणानतपर्वणा ॥ ५० ॥
युधिष्ठिरं समाजघ्ने सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।

राजाधिराज ! फिर उन्होंने सारी सेनाके देखते-देखते झुकी हुई गाँठवाले बाणसे युधिष्ठिरको घायल कर दिया ५०½

धर्मराजोऽपि संक्रुद्धो मद्रराजं महायशाः ॥ ५१ ॥
विव्याध निशितैर्बाणैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ।

तब महायशस्वी धर्मराजने भी अत्यन्त कुपित हो कङ्क और मोरकी पाँखोंवाले पैने बाणोंसे मद्रराज शल्यको क्षत-विक्षत कर दिया ॥ ५१½ ॥

चन्द्रसेनं च सप्तत्या सूतं च नवभिः शरैः ॥ ५२ ॥
द्रुमसेनं चतुःषष्ट्या निजघान महारथः ।

इसके बाद महारथी युधिष्ठिरने सत्तर बाणोंसे चन्द्रसेनको, नव बाणोंसे शल्यके सारथिको और चौंसठ बाणोंसे द्रुमसेनको मार डाला ॥ ५२½ ॥

चक्ररक्षे हते शल्यः पाण्डवेन महात्मना ॥ ५३ ॥
निजघान ततो राजंश्चेदीन् वै पञ्चविंशतिम् ।

महात्मा पाण्डवके द्वारा अपने चक्ररक्षकके मारे जानेपर राजा शल्यने पचीस चेदि-योद्धाओंका संहार कर डाला ५३½

सात्यकिं पञ्चविंशत्या भीमसेनं च पञ्चभिः ॥ ५४ ॥
माद्रीपुत्रौ शतेनाजौ विव्याध निशितैः शरैः ।

फिर सात्यकिको पचीस, भीमसेनको पाँच तथा माद्रीके पुत्रोंको सौ तीखे बाणोंसे रणभूमिमें घायल कर दिया ॥५४½॥

एवं विचरतस्तस्य संग्रामे राजसत्तम ॥ ५५ ॥
सम्प्रैषयच्छितान् पार्थः शरानाशीविषोपमान् ।

नृपश्रेष्ठ ! इस प्रकार संग्राममें विचरते हुए राजा शल्यको लक्ष्य करके कुन्तीकुमारने विषधर सर्पोंके समान भयंकर एवं तीखे बाण चलाये ॥ ५५½ ॥

ध्वजाग्रं चास्य समरे कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ५६ ॥
प्रमुखे वर्तमानस्य भल्लेनापाहरद् रथात् ।

कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने समराङ्गणमें सामने खड़े हुए शल्यकी ध्वजाके अग्रभागको एक भल्लके द्वारा रथसे काट गिराया ॥

पाण्डुपुत्रेण वै तस्य केतुं छिन्नं महात्मना ॥ ५७ ॥
निपतन्तमपश्याम गिरिशृङ्गमिवाहतम् ।

महात्मा पाण्डुपुत्रके द्वारा कटकर गिरते हुए उस ध्वजको हमलोगोंने वज्रके आघातसे टूटकर नीचे गिरनेवाले पर्वत-शिखरके समान देखा था ॥ ५७½ ॥

ध्वजं निपतितं दृष्ट्वा पाण्डवं च व्यवस्थितम् ॥ ५८ ॥
संक्रुद्धो मद्रराजोऽभूच्छरवर्षं मुमोच ह ।

ध्वज नीचे गिर पड़ा और पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर सामने खड़े हैं; यह देखकर मद्रराज शल्यको बड़ा क्रोध हुआ और वे बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ५८½ ॥

शल्यः सायकवर्षेण पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ ५९ ॥
अभ्यवर्षदमेयात्मा क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः ।

अमेय आत्मबलसे सम्पन्न क्षत्रियशिरोमणि शल्य वृष्टिकारी मेघके समान क्षत्रियोंपर बाणोंकी वर्षा कर रहे थे ५९½

सात्यकिं भीमसेनं च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ ६० ॥
एकैकं पञ्चभिर्विद्ध्वा युधिष्ठिरमपीडयत् ।

सात्यकि, भीमसेन और माद्रीकुमार पाण्डुपुत्र नकुल-सहदेव—इनमेंसे प्रत्येकको पाँच-पाँच बाणोंसे घायल करके वे युधिष्ठिरको पीड़ा देने लगे ॥ ६०½ ॥

ततो बाणमयं जालं विततं पाण्डवोरसि ॥ ६१ ॥
अपश्याम महाराज मेघजालमिवोद्गतम् ।

महाराज ! तदनन्तर हमलोगोंने पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरकी छातीपर बाणोंका जाल-सा बिछा हुआ देखा, मानो आकाशमें मेघोंकी घटा घिर आयी हो ॥ ६१½ ॥

तस्य शल्यो रणे क्रुद्धः शरैः संनतपर्वभिः ॥ ६२ ॥
दिशः संछादयामास प्रदिशश्च महारथः ।

रणभूमिमें कुपित हुए महारथी शल्यने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे युधिष्ठिरकी सम्पूर्ण दिशाओं और विदिशाओंको ढक दिया ॥ ६२½ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा बाणजालेन पीडितः ।
बभूवाद्भुतविक्रान्तो जम्भो वृत्रहणा यथा ॥ ६३ ॥

उस समय अद्भुत पराक्रमी राजा युधिष्ठिर उस बाण-समूहसे वैसे ही पीड़ित हो गये, जैसे इन्द्रने जम्भासुरको संतप्त किया था ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें संकुलयुद्धविषयक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

मद्रराज शल्यका अद्भुत पराक्रम

संजय उवाच

पीडिते धर्मराजे तु मद्रराजेन मारिष।
सात्यकिर्भीमसेनश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ १ ॥
परिवार्य रथैः शल्यं पीडयामासुराहवे।

संजय कहते हैं—आर्य ! जब मद्रराज शल्य धर्मराज युधिष्ठिरको पीड़ा देने लगे, तब सात्यकि, भीमसेन और माद्रीपुत्र पाण्डव नकुल-सहदेवने युद्धस्थलमें शल्यको रथोंद्वारा घेरकर उन्हें पीड़ा देना प्रारम्भ किया ॥ १½ ॥

तमेकं बहुभिर्दृष्ट्वा पीड्यमानं महारथैः ॥ २ ॥
साधुवादो महाञ्जज्ञे सिद्धाश्चासन् प्रहर्षिताः।
आश्चर्यमित्यभाषन्त मुनयश्चापि सङ्गताः ॥ ३ ॥

अकेले शल्यको अनेक महारथियोंद्वारा पीड़ित होते देख उनको सब ओरसे महान् साधुवाद प्राप्त होने लगा। वहाँ एकत्र हुए सिद्ध और महर्षि भी हर्षमें भरकर बोल उठे—'आश्चर्य है' ॥ २-३ ॥

भीमसेनो रणे शल्यं शल्यभूतं पराक्रमे।
एकेन विद्ध्वा बाणेन पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ ४ ॥

भीमसेनने रणभूमिमें अपने पराक्रमके लिये कण्टकरूप शल्यको पहले एक बाणसे घायल करके फिर सात बाणोंसे बींध डाला ॥ ४ ॥

सात्यकिश्च शतेनैनं धर्मपुत्रपरीप्सया।
मद्रेश्वरमवाकीर्य सिंहनादमथानदत् ॥ ५ ॥

सात्यकि भी धर्मपुत्र युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये मद्रराजको सौ बाणोंसे आच्छादित करके सिंहके समान दहाड़ने लगे ॥५॥

नकुलः पञ्चभिश्चैनं सहदेवश्च पञ्चभिः।
विद्ध्वा तं तु पुनस्तूर्णं ततो विव्याध सप्तभिः ॥ ६ ॥

नकुल और सहदेवने पाँच-पाँच बाणोंसे शल्यको घायल करके फिर सात बाणोंसे उन्हें तुरंत ही बींध डाला ॥ ६ ॥

स तु शूरो रणे यत्तः पीडितस्तैर्महारथैः।
विकृष्य कार्मुकं घोरं वेगघ्नं भारसाधनम् ॥ ७ ॥
सात्यकिं पञ्चविंशत्या शल्यो विव्याध मारिष।
भीमसेनं तु सप्तत्या नकुलं सप्तभिस्तथा ॥ ८ ॥

माननीय नरेश ! समराङ्गणमें शूरवीर शल्यने उन महारथियोंद्वारा पीड़ित होनेपर भी विजयके लिये यत्नशील हो भार सहन करनेमें समर्थ और शत्रुके वेगका नाश करनेवाले एक भयंकर धनुषको खींचकर सात्यकिको पचीस, भीमसेनको सत्तर और नकुलको सात बाण मारे ॥ ७-८ ॥

ततः सविशिखं चापं सहदेवस्य धन्विनः।
छित्त्वा भल्लेन समरे विव्याधैनं त्रिसप्तभिः ॥ ९ ॥

तत्पश्चात् समरभूमिमें एक भल्लके द्वारा धनुर्धर सहदेवके बाणसहित धनुषको काटकर शल्यने उन्हें इक्कीस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ ९ ॥

सहदेवस्तु समरे मातुलं भूरिवर्चसम्।
सज्यमन्यद् धनुः कृत्वा पञ्चभिः समताडयत् ॥ १० ॥
शरैराशीविषाकारैर्ज्वलज्ज्वलनसंनिभैः।

तब सहदेवने संग्राममें दूसरे धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर अपने अत्यन्त तेजस्वी मामाको विषधर सर्पोंके समान भयंकर और जलती हुई आगके समान प्रज्वलित पाँच बाणोंद्वारा घायल कर दिया ॥ १०½ ॥

सारथिं चास्य समरे शरेणानतपर्वणा ॥ ११ ॥
विव्याध भृशसंक्रुद्धस्तं वै भूयस्त्रिभिः शरैः।

साथ ही अत्यन्त कुपित होकर उन्होंने झुकी हुई गाँठवाले बाणसे उनके सारथिको भी पीट दिया और उन्हें भी पुनः तीन बाणोंसे घायल किया ॥ ११½ ॥

भीमसेनस्तु सप्तत्या सात्यकिर्नवभिः शरैः ॥ १२ ॥
धर्मराजस्तथा षष्ट्या गात्रे शल्यं समार्पयत्।

तत्पश्चात् भीमसेनने सत्तर, सात्यकिने नौ और धर्मराज युधिष्ठिरने साठ बाणोंसे शल्यके शरीरको चोट पहुँचायी १२½

ततः शल्यो महाराज निर्विद्धस्तैर्महारथैः ॥ १३ ॥
सुस्राव रुधिरं गात्रैर्गैरिकं पर्वतो यथा।

महाराज ! उन महारथियोंद्वारा अत्यन्त घायल कर दिये जानेपर राजा शल्य अपने अङ्गोंसे रक्तकी धारा बहाने लगे, मानो पर्वत गेरू-मिश्रित जलका झरना बहा रहा हो ॥१३½॥

तांश्च सर्वान् महेष्वासान् पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ॥१४॥
विव्याध तरसा राजंस्तदद्भुतमिवाभवत्।

राजन् ! उन्होंने उन सभी महाधनुर्धरोंको पाँच-पाँच बाणोंसे वेगपूर्वक घायल कर दिया। वह उनके द्वारा अद्भुत-सा कार्य हुआ ॥ १४½ ॥

ततोऽपरेण भल्लेन धर्मपुत्रस्य मारिष ॥ १५ ॥
धनुश्चिच्छेद समरे सज्यं स सुमहारथः।

मान्यवर ! तदनन्तर उन श्रेष्ठ महारथी शल्यने समराङ्गणमें एक दूसरे भल्लके द्वारा धर्मपुत्र युधिष्ठिरके प्रत्यञ्चासहित धनुषको काट डाला ॥ १५½ ॥

अथान्यद् धनुरादाय धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १६ ॥
साश्वसूतध्वजरथं शल्यं प्राच्छादयच्छरैः।

तब धर्मपुत्र युधिष्ठिरने दूसरा धनुष हाथमें लेकर घोड़े, सारथि, ध्वज और रथसहित शल्यको अपने बाणोंसे आच्छादित कर दिया ॥ १६½ ॥

स च्छाद्यमानः समरे धर्मपुत्रस्य सायकैः ॥ १७ ॥
युधिष्ठिरमथाविध्यद् दशभिर्निशितैः शरैः।

समराङ्गणमें धर्मपुत्रके बाणोंसे आच्छादित होते हुए शल्यने युधिष्ठिरको दस पैने बाणोंसे बींध डाला ॥ १७½ ॥

सात्यकिस्तु ततः क्रुद्धो धर्मपुत्रे शरार्दिते ॥ १८ ॥
मद्राणामधिपं शूरं शरैर्विव्याध पञ्चभिः।

जब धर्मपुत्र युधिष्ठिर शल्यके बाणोंसे पीड़ित हो गये, तब क्रोधमें भरे हुए सात्यकिने शूरवीर मद्रराजपर पाँच बाणोंका प्रहार किया ॥ १८½ ॥

स सात्यकेः प्रचिच्छेद क्षुरप्रेण महद् धनुः ॥ १९ ॥
भीमसेनमुखांस्तांश्च त्रिभिस्त्रिभिरताडयत् ।

यह देख शल्यने एक क्षुरप्रसे सात्यकिके विशाल धनुषको काट दिया और भीमसेन आदिको भी तीन-तीन बाणोंसे चोट पहुँचायी ॥ १९½ ॥

तस्य क्रुद्धो महाराज सात्यकिः सत्यविक्रमः ॥ २० ॥
तोमरं प्रेषयामास स्वर्णदण्डं महाधनम् ।

महाराज ! तब सत्यपराक्रमी सात्यकिने कुपित हो शल्यपर सुवर्णमय दण्डसे विभूषित एक बहुमूल्य तोमरका प्रहार किया ॥ २०½ ॥

भीमसेनोऽथ नाराचं ज्वलन्तमिव पन्नगम् ॥ २१ ॥
नकुलः समरे शक्तिं सहदेवो गदां शुभाम् ।
धर्मराजः शतघ्नीं च जिघांसुः शल्यमाहवे ॥ २२ ॥

भीमसेनने प्रज्वलित सर्पके समान नाराच चलाया, नकुलने संग्रामभूमिमें शल्यपर शक्ति छोड़ी, सहदेवने सुन्दर गदा चलायी और धर्मराज युधिष्ठिरने रणक्षेत्रमें शल्यको मार डालनेकी इच्छासे उनपर शतघ्नीका प्रहार किया ॥२१-२२॥

तानापतत एवाशु पञ्चानां वै भुजच्युतान् ।
वारयामास समरे शस्त्रसङ्घैः स मद्रराट् ॥ २३ ॥

परंतु मद्रराज शल्यने समराङ्गणमें अपने शस्त्रसमूहों द्वारा उन पाँचों वीरोंके हाथोंसे छूटे हुए उक्त सभी अस्त्रोंका शीघ्र ही निवारण कर दिया ॥ २३ ॥

सात्यकिप्रहितं शल्यो भल्लैश्चिच्छेद तोमरम् ।
प्रहितं भीमसेनेन शरं कनकभूषणम् ॥ २४ ॥
द्विधा चिच्छेद समरे कृतहस्तः प्रतापवान् ।

सिद्धहस्त एवं प्रतापी वीर शल्यने अपने भल्लोंद्वारा सात्यकिके चलाये हुए तोमरके टुकड़े-टुकड़े कर डाले और भीमसेनके छोड़े हुए सुवर्णभूषित बाणके दो खण्ड कर डाले ॥

नकुलप्रेषितां शक्तिं हेमदण्डां भयावहाम् ॥ २५ ॥
गदां च सहदेवेन शरौघैः समवारयत् ।

इसी प्रकार उन्होंने नकुलकी चलायी हुई स्वर्ण-दण्ड-विभूषित भयंकर शक्तिका तथा सहदेवकी फेंकी हुई गदाका भी अपने बाणसमूहोंद्वारा निवारण कर दिया ॥ २५½ ॥

शराभ्यां च शतघ्नीं तां राज्ञश्चिच्छेद भारत ॥ २६ ॥
पश्यतां पाण्डुपुत्राणां सिंहनादं ननाद च ।

भारत ! फिर शल्यने दो बाणोंसे राजा युधिष्ठिरकी उस शतघ्नीको भी पाण्डवोंके देखते-देखते काट डाला और सिंहके समान दहाड़ना आरम्भ किया ॥ २६½ ॥

नामृष्यत्तत्र शैनेयः शत्रोर्विजयमाहवे ॥ २७ ॥
अथान्यद् धनुरादाय सात्यकिः क्रोधमूर्च्छितः ।
द्वाभ्यां मद्रेश्वरं विद्ध्वा सारथिं च त्रिभिः शरैः॥२८॥

युद्धमें शत्रुकी इस विजयको शिनिपौत्र सात्यकि नहीं सहन कर सके । उन्होंने दूसरा धनुष हाथमें लेकर क्रोधसे आतुर हो दो बाणोंसे मद्रराजको घायल करके तीनसे उनके सारथिको भी बींध डाला ॥ २७-२८ ॥

ततः शल्यो रणे राजन् सर्वांस्तान् दशभिः शरैः ।
विव्याध भृशसंक्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपान् ॥ २९ ॥

राजन् ! तब राजा शल्य रणभूमिमें अत्यन्त कुपित हो उठे और जैसे महावत अङ्कुशोंसे बड़े-बड़े हाथियोंको चोट पहुँचाते हैं, उसी प्रकार उन्होंने उन सब योद्धाओंको दस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ २९ ॥

ते वार्यमाणाः समरे मद्रराज्ञा महारथाः ।
न शेकुः सम्मुखे स्थातुं तस्य शत्रुनिषूदनाः ॥ ३० ॥

समराङ्गणमें मद्रराज शल्यके द्वारा इस प्रकार रोके जाते हुए शत्रुसूदन पाण्डव-महारथी उनके सामने ठहर न सके ॥

ततो दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा शल्यस्य विक्रमम् ।
निहतान् पाण्डवान् मेने पञ्चालानथ सृञ्जयान्॥ ३१ ॥

उस समय राजा दुर्योधन शल्यका वह पराक्रम देखकर ऐसा समझने लगा कि अब पाण्डव, पाञ्चाल और संजय अवश्य मार डाले जायँगे ॥ ३१ ॥

ततो राजन् महाबाहुर्भीमसेनः प्रतापवान् ।
संत्यज्य मनसा प्राणान् मद्राधिपमयोधयत् ॥ ३२ ॥

राजन् ! तदनन्तर प्रतापी महाबाहु भीमसेन मनसे प्राणोंका मोह छोड़कर मद्रराज शल्यके साथ युद्ध करने लगे ॥

नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथः ।
परिवार्य तदा शल्यं समन्ताद् व्यकिरञ्शरैः ॥ ३३ ॥

नकुल, सहदेव और महारथी सात्यकिने भी उस समय शल्यको घेरकर उनके ऊपर चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ ३३ ॥

स चतुर्भिर्महेष्वासैः पाण्डवानां महारथैः ।
वृतस्तान् योधयामास मद्रराजः प्रतापवान् ॥ ३४ ॥

इन चार महाधनुर्धर पाण्डवपक्षके महारथियोंसे घिरे हुए प्रतापी मद्रराज शल्य उन सबके साथ युद्ध कर रहे थे ॥

तस्य धर्मसुतो राजन् क्षुरप्रेण महाहवे ।
चक्ररक्षं जघानाशु मद्रराजस्य पार्थिवः ॥ ३५ ॥

राजन् ! उस महासमरमें धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने एक क्षुरप्रद्वारा मद्रराज शल्यके चक्ररक्षकको शीघ्र ही मार डाला॥

तस्मिंस्तु निहते शूरे चक्ररक्षे महारथे ।
मद्रराजोऽपि बलवान् सैनिकानावृणोच्छरैः ॥ ३६ ॥

अपने महारथी शूरवीर चक्ररक्षकके मारे जानेपर बलवान् मद्रराजने भी बाणोंद्वारा शत्रुपक्षके समस्त योद्धाओंको आच्छादित कर दिया ॥ ३६ ॥

समावृतांस्ततस्तांस्तु राजन् वीक्ष्य स्वसैनिकान् ।
चिन्तयामास समरे धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३७ ॥

राजन् ! समराङ्गणमें अपने समस्त सैनिकोंको बाणोंसे ढका हुआ देख धर्मपुत्र युधिष्ठिर मन-ही-मन इस प्रकार चिन्ता करने लगे—॥ ३७ ॥

कथं तु समरे शक्यं तन्माधववचो महत्।
न हि क्रुद्धो रणे राजा क्षपयेत बलं मम ॥ ३८ ॥

'इस युद्धस्थलमें भगवान् श्रीकृष्णकी कही हुई वह महत्त्वपूर्ण बात कैसे सिद्ध हो सकेगी ? कहीं ऐसा न हो कि रणभूमिमें कुपित हुए महाराज शल्य मेरी सारी सेनाका संहार कर डालें ॥ ३८ ॥

(अहं मद्भ्रातरश्चैव सात्यकिश्च महारथः।
पञ्चालाः सृञ्जयाश्चैव न शक्ताः स्म हि मद्रपम् ॥
निहनिष्यति चैवाद्य मातुलोऽस्मान् महाबलः।
गोविन्दवचनं सत्यं कथं भवति किं त्विदम् ॥)

'मैं, मेरे भाई, महारथी सात्यकि तथा पाञ्चाल और सृंजय योद्धा सब मिलकर भी मद्रराज शल्यको पराजित करनेमें समर्थ नहीं हो रहे हैं। जान पड़ता है ये महाबली मामा आज हमलोगोंका वध कर डालेंगे। फिर भगवान् श्रीकृष्णकी यह बात (कि शल्य मेरे हाथसे मारे जायँगे) कैसे सिद्ध होगी ?' ॥

ततः सरथनागाश्वाः पाण्डवाः पाण्डुपूर्वज।
मद्रराजं समासेदुः पीडयन्तः समन्ततः ॥ ३९ ॥

पाण्डुके बड़े भाई महाराज धृतराष्ट्र ! तदनन्तर रथ, हाथी और घोड़ोंसहित समस्त पाण्डवयोद्धा मद्रराज शल्यको सब ओरसे पीड़ा देते हुए उनपर चढ़ आये ॥ ३९ ॥

नानाशस्त्रौघबहुलां शस्त्रवृष्टिं समुद्यताम्।
व्यधमत् समरे राजा महाभ्राणीव मारुतः ॥ ४० ॥

जैसे वायु बड़े-बड़े बादलोंको उड़ा देती है, उसी प्रकार समराङ्गणमें राजा शल्यने अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे परिपूर्ण उस उमड़ी हुई शस्त्रवर्षाको छिन्न-भिन्न कर डाला ॥

ततः कनकपुङ्खां तां शल्यक्षिप्तां वियद्गताम्।
शरवृष्टिमपश्याम शलभानामिवायतिम् ॥ ४१ ॥

तत्पश्चात् शल्यके चलाये हुए सुनहरे पंखवाले बाणोंकी वर्षा आकाशमें टिड्डीदलोंके समान छा गयी, जिसे हमने अपनी आँखों देखा था ॥ ४१ ॥

ते शरा मद्रराजेन प्रेषिता रणमूर्धनि।
सम्पतन्तः स्म दृश्यन्ते शलभानां व्रजा इव ॥ ४२ ॥

युद्धके मुहानेपर मद्रराजके चलाये हुए वे बाण शलभसमूहोंके समान गिरते दिखायी देते थे ॥ ४२ ॥

मद्रराजधनुर्मुक्तैः शरैः कनकभूषणैः।
निरन्तरमिवाकाशं सम्बभूव जनाधिप ॥ ४३ ॥

नरेश्वर ! मद्रराज शल्यके धनुषसे छूटे हुए उन सुवर्णभूषित बाणोंसे आकाश ठसाठस भर गया था ॥ ४३ ॥

न पाण्डवानां नास्माकं तत्र किञ्चिद् व्यदृश्यत।
बाणान्धकारे महति कृते तत्र महाहवे ॥ ४४ ॥

उस महायुद्धमें बाणोंद्वारा महान् अन्धकार छा गया, जिससे वहाँ हमारी और पाण्डवोंकी कोई भी वस्तु दिखायी नहीं देती थी ॥ ४४ ॥

मद्रराजेन बलिना लाघवाच्छरवृष्टिभिः।
चाल्यमानं तु तं दृष्ट्वा पाण्डवानां बलार्णवम् ॥ ४५॥
विस्मयं परमं जग्मुर्देवगन्धर्वदानवाः।

बलवान् मद्रराजके द्वारा शीघ्रतापूर्वक की जानेवाली उस बाणवर्षासे पाण्डवोंके उस सैन्यसमुद्रको विचलित होते देख देवता, गन्धर्व और दानव अत्यन्त आश्चर्यमें पड़ गये ४५½

स तु तान् सर्वतो यत्ताञ्शरैः संछाद्य मारिष ॥४६ ॥
धर्मराजमवच्छाद्य सिंहवद् व्यनदन्मुहुः।

मान्यवर ! विजयके लिये प्रयत्न करनेवाले उन समस्त योद्धाओंको सब ओरसे बाणोंद्वारा आच्छादित करके शल्य धर्मराज युधिष्ठिरको भी ढककर बारंबार सिंहके समान गर्जना करने लगे ॥ ४६½ ॥

ते छन्नाः समरे तेन पाण्डवानां महारथाः ॥ ४७ ॥
नाशक्नुवंस्तदा युद्धे प्रत्युद्यातुं महारथम्।

समराङ्गणमें उनके बाणोंसे आच्छादित हुए पाण्डवोंके महारथी उस युद्धमें महारथी शल्यकी ओर आगे बढ़नेमें समर्थ न हो सके ॥ ४७½ ॥

धर्मराजपुरोगास्तु भीमसेनमुखा रथाः।
न जहुः समरे शूरं शल्यमाहवशोभिनम् ॥ ४८ ॥

तो भी धर्मराजको आगे रखकर भीमसेन आदि रथी संग्राममें शोभा पानेवाले शूरवीर शल्यको वहाँ छोड़कर पीछे न हटे ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्ययुद्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें शल्यका युद्धविषयक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २ श्लोक मिलाकर कुल ५० श्लोक हैं)

चतुर्दशोऽध्यायः

अर्जुन और अश्वत्थामाका युद्ध तथा पाञ्चाल वीर सुरथका वध

संजय उवाच

अर्जुनो द्रौणिना विद्धो युद्धे बहुभिरायसैः।
तस्य चानुचरैः शूरैस्त्रिगर्तानां महारथैः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! दूसरी ओर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा तथा उसके पीछे चलनेवाले त्रिगर्तदेशीय शूरवीर महारथियोंने अर्जुनको लोहेके बने हुए बहुत-से बाणोंद्वारा घायल कर दिया ॥ १ ॥

द्रौणिं विव्याध समरे त्रिभिरेव शिलीमुखैः।
तथेतरान् महेष्वासान् द्वाभ्यां द्वाभ्यां धनंजयः ॥ २ ॥

तब अर्जुनने समरभूमिमें तीन बाणोंसे अश्वत्थामाको और दो-दो बाणोंसे अन्य महाधनुर्धरोंको बींध डाला ॥ २ ॥

भूयश्चैव महाराज शरवर्षैरवाकिरत्।
शरकण्टकितास्ते तु तावका भरतर्षभ ॥ ३ ॥
न जहुः पार्थमासाद्य ताड्यमानाः शितैः शरैः।

महाराज ! भरतश्रेष्ठ ! तत्पश्चात् अर्जुनने पुनः उन सबको अपने बाणोंकी वर्षासे आच्छादित कर दिया । अर्जुनके पैने बाणोंकी मार खाकर उन बाणोंसे कण्टकयुक्त होकर भी आपके सैनिक अर्जुनको छोड़ न सके ॥ ३½ ॥

अर्जुनं रथवंशेन द्रोणपुत्रपुरोगमाः ॥ ४ ॥
अयोधयन्त समरे परिवार्य महारथाः ।

समराङ्गणमें द्रोणपुत्रको आगे करके कौरव महारथी अर्जुनको रथसमूहसे घेरकर उनके साथ युद्ध करने लगे ॥४½॥

तैस्तु क्षिप्ताः शरा राजन् कार्तस्वरविभूषिताः ॥ ५ ॥
अर्जुनस्य रथोपस्थं पूरयामासुरञ्जसा ।

राजन् ! उनके चलाये हुए सुवर्णभूषित बाणोंने अर्जुनके रथकी बैठकको अनायास ही भर दिया ॥ ५½ ॥

तथा कृष्णौ महेष्वासौ वृषभौ सर्वधन्विनाम् ॥ ६ ॥
शरैर्वीक्ष्य विनुन्नाङ्गौ प्रहृष्टा युद्धदुर्मदाः ।

सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ तथा महाधनुर्धर श्रीकृष्ण और अर्जुनके सम्पूर्ण अङ्गोंको बाणोंसे व्यथित हुआ देख रणदुर्मद कौरवयोद्धा बड़े प्रसन्न हुए ॥ ६½ ॥

कूबरं रथचक्राणि ईषा योक्त्राणि वा विभो ॥ ७ ॥
युगं चैवानुकर्षं च शरभूतमभूत्तदा ।

प्रभो ! अर्जुनके रथके पहिये, कूबर, ईषादण्ड, लगाम या जोते, जूआ और अनुकर्ष—ये सब-के-सब उस समय बाणमय हो रहे थे ॥ ७½ ॥

नैतादृशं दृष्टपूर्वं राजन् नैव च नः श्रुतम् ॥ ८ ॥
यादृशं तत्र पार्थस्य तावकाः सम्प्रचक्रिरे ।

राजन् ! वहाँ आपके योद्धाओंने अर्जुनकी जैसी अवस्था कर दी थी, वैसी पहले कभी न तो देखी गयी और न सुनी ही गयी थी ॥ ८½ ॥

स रथः सर्वतो भाति चित्रपुङ्खैः शितैः शरैः ॥ ९ ॥
उल्काशतैः सम्प्रदीप्तं विमानमिव भूतले ।

विचित्र पंखवाले पैने बाणोंद्वारा सब ओरसे व्याप्त हुआ अर्जुनका रथ भूतलपर सैकड़ों मसालोंसे प्रकाशित होनेवाले विमानके समान शोभा पाता था ॥ ९½ ॥

ततोऽर्जुनो महाराज शरैः संनतपर्वभिः ॥ १० ॥
अवाकिरत्तां पृतनां मेघो वृष्ट्येव पर्वतम् ।

महाराज ! तदनन्तर अर्जुनने झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा आपकी उस सेनाको उसी प्रकार ढक दिया, जैसे मेघ पानीकी वर्षासे पर्वतको आच्छादित कर देता है ॥ १०½ ॥

ते वध्यमानाः समरे पार्थनामाङ्कितैः शरैः ॥ ११ ॥
पार्थभूतममन्यन्त प्रेक्षमाणास्तथाविधम् ।

समरभूमिमें अर्जुनके नामसे अङ्कित बाणोंकी चोट खाते हुए कौरवसैनिक उन्हें उसी रूपमें देखते हुए सब कुछ अर्जुनमय ही मानने लगे ॥ ११½ ॥

कोपोद्धतशरज्वालो धनुःशब्दानिलो महान् ॥ १२ ॥
सैन्येन्धनं ददाहाशु तावकं पार्थपावकः ।

अर्जुनरूपी महान् अग्निने क्रोधसे प्रज्वलित हुई बाणमयी ज्वालाएँ फैलाकर धनुषकी टंकाररूपी वायुसे प्रेरित हो आपके सैन्यरूपी ईंधनको शीघ्रतापूर्वक जलाना आरम्भ किया ॥१२½॥

चक्राणां पततां चापि युगानां च धरातले ॥ १३ ॥
तूणीराणां पताकानां ध्वजानां च रथैः सह ।
ईषाणामनुकर्षाणां त्रिवेणूनां च भारत ॥ १४ ॥
अक्षाणामथ योक्त्राणां प्रतोदानां च सर्वशः ।
शिरसां पततां चापि कुण्डलोष्णीषधारिणाम् ॥ १५ ॥
भुजानां च महाभाग स्कन्धानां च समन्ततः ।
छत्राणां व्यजनैः सार्धं मुकुटानां च राशयः ॥ १६ ॥
समदृश्यन्त पार्थस्य रथमार्गेषु भारत ।

भारत! महाभाग! अर्जुनके रथके मार्गोंमें धरतीपर गिरते हुए रथके पहियों, जूओं, तरकसों, पताकाओं, ध्वजों, रथों, हरसों, अनुकर्षों, त्रिवेणु नामक काष्ठों, धुरों, रस्सियों, चाबुकों, कुण्डल और पगड़ी धारण करनेवाले मस्तकों, भुजाओं, कंधों, छत्रों, व्यजनों और मुकुटोंके ढेर-के-ढेर दिखायी देने लगे। १३–१६½।

ततः क्रुद्धस्य पार्थस्य रथमार्गे विशाम्पते ॥१७॥
अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ।

प्रजानाथ ! कुपित हुए अर्जुनके रथके मार्गकी भूमिपर मांस और रक्तकी कीच जम जानेके कारण वहाँ चलना-फिरना असम्भव हो गया ॥ १७½ ॥

भीरूणां त्रासजननी शूराणां हर्षवर्धिनी ॥ १८ ॥
बभूव भरतश्रेष्ठ रुद्रस्याक्रीडनं यथा ।

भरतश्रेष्ठ ! वह रणभूमि रुद्रदेवके क्रीडास्थल (श्मशान) की भाँति कायरोंके मनमें भय उत्पन्न करनेवाली और शूरवीरोंका हर्ष बढ़ानेवाली थी ॥ १८½ ॥

हत्वा तु समरे पार्थः सहस्रे द्वे परंतपः ॥ १९ ॥
रथानां सवरूथानां विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ।

शत्रुओंको संताप देनेवाले पार्थ समराङ्गणमें आवरणसहित दो सहस्र रथोंका संहार करके धूमरहित प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ १९½ ॥

यथा हि भगवानग्निर्जगद् दग्ध्वा चराचरम् ॥ २० ॥
विधूमो दृश्यते राजंस्तथा पार्थो धनंजयः ।

राजन् ! जैसे चराचर जगत्‌को दग्ध करके भगवान् अग्निदेव धूमरहित देखे जाते हैं, उसी प्रकार कुन्तीकुमार अर्जुन भी देदीप्यमान हो रहे थे ॥ २०½ ॥

द्रौणिस्तु समरे दृष्ट्वा पाण्डवस्य पराक्रमम् ॥ २१ ॥
रथेनातिपताकेन पाण्डवं प्रत्यवारयत् ।

संग्रामभूमिमें पाण्डुपुत्र अर्जुनका वह पराक्रम देखकर द्रोणकुमार अश्वत्थामाने अत्यन्त ऊँची पताकावाले रथके द्वारा आकर उन्हें रोका ॥ २१½ ॥

तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ तावुभौ धन्विनां वरौ ॥ २२ ॥
समीयतुस्तदान्योन्यं परस्परवधैषिणौ ।

वे दोनों ही मनुष्योंमें व्याघ्रके समान पराक्रमी थे और दोनों ही धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ समझे जाते थे । उस समय परस्पर वधकी इच्छासे दोनों ही एक-दूसरेके साथ भिड़ गये ॥२२½॥

तयोरासीन्महाराज बाणवर्षं सुदारुणम् ॥ २३ ॥
जीमूतयोर्यथा वृष्टिस्तपान्ते भरतर्षभ ।

महाराज ! भरतश्रेष्ठ ! जैसे वर्षा ऋतुमें दो मेघखण्ड पानी बरसा रहे हों, उसी प्रकार उन दोनोंके बाणोंकी वहाँ अत्यन्त भयंकर वर्षा होने लगी ॥ २३½ ॥

अन्योन्यस्पर्धिनौ तौ तु शरैः संनतपर्वभिः ॥ २४ ॥
ततक्षतुस्तदान्योन्यं शृङ्गाभ्यां वृषभाविव ।

जैसे दो साँड़ परस्पर सींगोंसे प्रहार करते हैं, उसी प्रकार आपसमें लाग-डाँट रखनेवाले वे दोनों वीर झुकी हुई गाँठवाले बाणोंद्वारा एक-दूसरेको क्षत-विक्षत करने लगे ॥ २४½ ॥

तयोर्युद्धं महाराज चिरं सममिवाभवत् ॥ २५ ॥
शस्त्राणां सङ्गमश्चैव घोरस्तत्राभवत् पुनः ।

महाराज ! बहुत देरतक तो उन दोनोंका युद्ध एक-सा चलता रहा । फिर उनमें वहाँ अस्त्र-शस्त्रोंका घोर संघर्ष आरम्भ हो गया ॥ २५½ ॥

ततोऽर्जुनं द्वादशभी रुक्मपुङ्खैः सुतेजनैः ॥ २६ ॥
वासुदेवं च दशभिर्द्रौणिर्विव्याध भारत ।

भरतनन्दन ! तब अश्वत्थामाने अत्यन्त तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले बारह बाणोंसे अर्जुनको और दस सायकोंसे श्रीकृष्णको भी घायल कर दिया ॥ २६½ ॥

ततः प्रहर्षाद् बीभत्सुर्व्याक्षिपद् गाण्डिवं धनुः ॥२७॥
मानयित्वा मुहूर्तं तु गुरुपुत्रं महाहवे ।

तदनन्तर उस महासमरमें दो घड़ीतक गुरुपुत्रका आदर करके अर्जुनने बड़े हर्ष और उत्साहके साथ गाण्डीव धनुषको खींचना आरम्भ किया ॥ २७½ ॥

व्यश्वसूतरथं चक्रे सव्यसाची परंतपः ॥ २८ ॥
मृदुपूर्वं ततश्चैनं पुनः पुनरताडयत् ।

शत्रुओंको संताप देनेवाले सव्यसाचीने अश्वत्थामाके घोड़े, सारथि एवं रथको चौपट कर दिया । फिर वे हल्के हाथों बाण चलाकर बारंबार उसे घायल करने लगे ॥ २८½ ॥

हताश्वे तु रथे तिष्ठन् द्रोणपुत्रस्त्वयस्मयम् ॥ २९ ॥
मुसलं पाण्डुपुत्राय चिक्षेप परिघोपमम् ।

जिसके घोड़े मार डाले गये थे, उसी रथपर खड़े हुए द्रोणपुत्रने पाण्डुकुमार अर्जुनपर लोहेका एक मुसल चलाया, जो परिघके समान प्रतीत होता था ॥ २९½ ॥

तमापतन्तं सहसा हेमपट्टविभूषितम् ॥ ३० ॥
चिच्छेद सप्तधा वीरः पार्थः शत्रुनिबर्हणः ।

शत्रुओंका संहार करनेवाले वीर अर्जुनने सहसा अपनी ओर आते हुए उस सुवर्णपत्रविभूषित मुसलके सात टुकड़े कर डाले ॥ ३०½ ॥

स च्छिन्नं मुसलं दृष्ट्वा द्रौणिः परमकोपनः ॥ ३१ ॥
आददे परिघं घोरं नगेन्द्रशिखरोपमम् ।

अपने मुसलको कटा हुआ देख अश्वत्थामाको बड़ा क्रोध हुआ और उसने पर्वतशिखरके समान एक भयंकर परिघ हाथमें ले लिया ॥ ३१½ ॥

चिक्षेप चैव पार्थाय द्रौणिर्युद्धविशारदः ॥ ३२ ॥
तमन्तकमिव क्रुद्धं परिघं प्रेक्ष्य पाण्डवः ।
अर्जुनस्त्वरितो जघ्ने पञ्चभिः सायकोत्तमैः ॥ ३३ ॥

युद्धविशारद द्रोणपुत्रने वह परिघ अर्जुनपर दे मारा । क्रोधमें भरे हुए यमराजके समान उस परिघको देखकर पाण्डुपुत्र अर्जुनने तुरंत ही पाँच उत्तम बाणोंद्वारा उसे काट गिराया ॥ ३२-३३ ॥

स च्छिन्नः पतितो भूमौ पार्थबाणैर्महाहवे ।
दारयन् पृथिवीन्द्राणां मनांसीव च भारत ॥ ३४ ॥

भारत ! उस महासमरमें पार्थके बाणोंसे कटकर वह परिघ राजाओंके हृदयोंको विदीर्ण करता हुआ-सा पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३४ ॥

ततोऽपरैस्त्रिभिर्भल्लैर्द्रौणिं विव्याध पाण्डवः ।
सोऽतिविद्धो बलवता पार्थेन सुमहात्मना ॥ ३५ ॥
नाकम्पत तदा द्रौणिः पौरुषे स्वे व्यवस्थितः ।

तत्पश्चात् पाण्डुकुमार अर्जुनने दूसरे तीन भल्लोंसे द्रोणपुत्रको घायल कर दिया । महामनस्वी बलवान् वीर अर्जुनके द्वारा अत्यन्त घायल होकर भी अश्वत्थामा अपने पुरुषार्थका आश्रय ले तनिक भी कम्पित नहीं हुआ ॥ ३५½ ॥

सुरथं च ततो राजन् भारद्वाजो महारथम् ॥ ३६ ॥
अवाकिरच्छरव्रातैः सर्वक्षत्रस्य पश्यतः ।

राजन् ! तब भारद्वाजनन्दन अश्वत्थामाने सम्पूर्ण क्षत्रियोंके देखते-देखते महारथी सुरथको अपने बाणसमूहोंसे आच्छादित कर दिया ॥ ३६½ ॥

ततस्तु सुरथोऽप्याजौ पञ्चालानां महारथः ॥ ३७ ॥
रथेन मेघघोषेण द्रौणिमेवाभ्यधावत ।

तब युद्धस्थलमें पाञ्चाल महारथी सुरथने भी मेघके समान गम्भीर घोष करनेवाले रथके द्वारा अश्वत्थामापर ही धावा किया ॥

विकर्षन् वै धनुः श्रेष्ठं सर्वभारसहं दृढम् ॥ ३८ ॥
ज्वलनाशीविषनिभैः शरैश्चैनमवाकिरत् ।

सब प्रकारके भारोंको सहन करनेमें समर्थ, सुदृढ़ एवं उत्तम धनुषको खींचकर सुरथने अग्नि और विषैले सर्पोंके समान भयंकर बाणोंकी वर्षा करके अश्वत्थामाको ढक दिया ॥

सुरथं तं ततः क्रुद्धमापतन्तं महारथम् ॥ ३९ ॥
चुकोप समरे द्रौणिर्दण्डाहत इवोरगः ।

महारथी सुरथको क्रोधपूर्वक आक्रमण करते देख अश्वत्थामा समरमें डंडेकी चोट खाये हुए सर्पके समान अत्यन्त कुपित हो उठा ॥ ३९½ ॥

त्रिशिखां भ्रुकुटीं कृत्वा सृक्किणी परिसंलिहन् ॥४०॥
उद्वीक्ष्य सुरथं रोषाद् धनुर्ज्यामवमृज्य च ।
मुमोच तीक्ष्णं नाराचं यमदण्डोपमद्युतिम् ॥ ४१ ॥

वह भौंहोंको तीन जगहसे टेढ़ी करके अपने गलफरोंको चाटने लगा और सुरथकी ओर रोषपूर्वक देखकर धनुषकी प्रत्यञ्चाको साफ करके उसने यमदण्डके समान तेजस्वी तीखे नाराचका प्रहार किया ॥ ४०-४१ ॥

स तस्य हृदयं भित्त्वा प्रविवेशातिवेगितः।
शक्राशनिरिवोत्सृष्टो विदार्य धरणीतलम् ॥ ४२॥

जैसे इन्द्रका छोड़ा हुआ अत्यन्त वेगशाली वज्र पृथ्वी फाड़कर उसके भीतर घुस जाता है, उसी प्रकार वह नाराच वेगपूर्वक सुरथकी छाती छेदकर उसके भीतर समा गया ॥ ४२ ॥

ततः स पतितो भूमौ नाराचेन समाहतः।
वज्रेण च यथा शृङ्गं पर्वतस्येव दीर्यतः ॥ ४३ ॥

नाराचसे घायल हुआ सुरथ वज्रसे विदीर्ण हुए पर्वतके शिखरकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ४३ ॥

तस्मिन् विनिहते वीरे द्रोणपुत्रः प्रतापवान्।
आरुरोह रथं तूर्णं तमेव रथिनां वरः ॥ ४४ ॥

उस वीरके मारे जानेपर रथियोंमें श्रेष्ठ प्रतापी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा तुरंत ही उसी रथपर आरूढ हो गया ॥ ४४ ॥

ततः सज्जो महाराज द्रौणिराहवदुर्मदः।
अर्जुनं योधयामास संशप्तकवृतो रणे ॥ ४५ ॥

महाराज ! फिर युद्धसज्जासे सुसज्जित हो रणभूमिमें संशप्तकोंसे घिरा हुआ रणदुर्मद द्रोणकुमार अर्जुनके साथ युद्ध करने लगा ॥ ४५ ॥

तत्र युद्धं महच्चासीदर्जुनस्य परैः सह।
मध्यंदिनगते सूर्ये यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ ४६ ॥

वहाँ दोपहर होते-होते अर्जुनका शत्रुओंके साथ महाघोर युद्ध होने लगा, जो यमराजके राष्ट्रकी वृद्धि करनेवाला था ॥

तत्राश्चर्यमपश्याम दृष्ट्वा तेषां पराक्रमम्।
यदेको युगपद् वीरान् समयोधयदर्जुनः ॥ ४७ ॥

उस समय उन कौरवपक्षीय वीरोंका पराक्रम देखकर हमने एक और आश्चर्यकी बात यह देखी कि अर्जुन अकेले ही एक ही समय उन सभी वीरोंके साथ युद्ध कर रहे हैं ॥४७॥

विमर्दः सुमहानासीदेकस्य बहुभिः सह।
शतक्रतुर्यथा पूर्वं महत्या दैत्यसेनया ॥ ४८ ॥

जैसे पूर्वकालमें विशाल दैत्यसेनाके साथ इन्द्रका युद्ध हुआ था, उसी प्रकार एकमात्र अर्जुनका बहुसंख्यक विपक्षियोंके साथ महान् संग्राम होने लगा ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें संकुलयुद्धविषयक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

दुर्योधन और धृष्टद्युम्नका एवं अर्जुन और अश्वत्थामाका तथा शल्यके साथ नकुल और सात्यकि आदिका घोर संग्राम

संजय उवाच

दुर्योधनो महाराज धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
चक्रतुः सुमहद् युद्धं शरशक्तिसमाकुलम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! एक ओर दुर्योधन तथा द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न महान् युद्ध कर रहे थे। वह युद्ध बाणों और शक्तियोंके प्रहारसे व्याप्त हो रहा था ॥ १ ॥

तयोरासन् महाराज शरधाराः सहस्रशः।
अम्बुदानां यथा काले जलधाराः समन्ततः ॥ २ ॥

राजाधिराज ! जैसे वर्षाकालमें सब ओर मेघोंकी जलधाराएँ बरसती हैं, उसी प्रकार उन दोनोंकी ओरसे बाणोंकी सहस्रों धाराएँ गिर रही थीं ॥ २ ॥

राजा च पार्षतं विद्ध्वा शरैः पञ्चभिराशुगैः।
द्रोणहन्तारमुग्रेषुं पुनर्विव्याध सप्तभिः ॥ ३ ॥

राजा दुर्योधनने पाँच शीघ्रगामी बाणोंद्वारा भयंकर बाणवाले द्रोणहन्ता धृष्टद्युम्नको बींधकर पुनः सात बाणोंद्वारा उन्हें घायल कर दिया ॥ ३ ॥

धृष्टद्युम्नस्तु समरे बलवान् दृढविक्रमः।
सप्तत्या विशिखानां वै दुर्योधनमपीडयत् ॥ ४ ॥

तब सुदृढ़ पराक्रमी बलवान् धृष्टद्युम्नने संग्रामभूमिमें सत्तर बाण मारकर दुर्योधनको पीड़ित कर दिया ॥ ४ ॥

पीडितं वीक्ष्य राजानं सोदर्या भरतर्षभ।
महत्या सेनया सार्धं परिवव्रुः स्म पार्षतम् ॥ ५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! राजा दुर्योधनको पीड़ित हुआ देख उसके सारे भाइयोंने विशाल सेनाके साथ आकर धृष्टद्युम्नको घेर लिया ॥

स तैः परिवृतः शूरः सर्वतोऽतिरथैर्भृशम्।
व्यचरत् समरे राजन् दर्शयन्नस्त्रलाघवम् ॥ ६ ॥

राजन् ! उन अतिरथी वीरोंद्वारा सब ओरसे घिरे हुए धृष्टद्युम्न अपनी अस्त्रसंचालनकी फुर्ती दिखाते हुए समरभूमिमें विचरने लगे ॥ ६ ॥

शिखण्डी कृतवर्माणं गौतमं च महारथम्।
प्रभद्रकैः समायुक्तो योधयामास धन्विनौ ॥ ७ ॥

दूसरी ओर शिखण्डीने प्रभद्रकोंकी सेना साथ लेकर कृतवर्मा और महारथी कृपाचार्य—इन दोनों धनुर्धरोंसे युद्ध छेड़ दिया ॥ ७ ॥

तत्रापि सुमहद् युद्धं घोररूपं विशाम्पते।
प्राणान् संत्यजतां युद्धे प्राणद्यूताभिदेवने ॥ ८ ॥

प्रजानाथ ! वहाँ भी जीवनका मोह छोड़कर प्राणोंकी बाजी लगाकर खेले जानेवाले युद्धरूपी जूएमें लगे हुए समस्त सैनिकोंमें घोर संग्राम हो रहा था ॥ ८ ॥

शल्यः सायकवर्षाणि विमुञ्चन् सर्वतोदिशम्।
पाण्डवान् पीडयामास ससात्यकिवृकोदरान् ॥ ९ ॥

इधर शल्य सम्पूर्ण दिशाओंमें बाणोंकी वर्षा करते हुए युद्धमें सात्यकि और भीमसेनसहित पाण्डवोंको पीड़ा देने लगे।

तथा तौ तु यमौ युद्धे यमतुल्यपराक्रमौ।
योधयामास राजेन्द्र वीर्येणास्त्रबलेन च ॥ १० ॥

राजेन्द्र ! वे युद्धमें यमराजके तुल्य पराक्रमी नकुल और सहदेवके साथ भी अपने पराक्रम और अस्त्रबलसे युद्ध कर रहे थे ॥ १० ॥

शल्यसायकनुन्नानां पाण्डवानां महामृधे।
त्रातारं नाभ्यगच्छन्त केचित्तत्र महारथाः ॥ ११॥

जब शल्य अपने बाणोंसे पाण्डव महारथियोंको आहत कर रहे थे, उस समय उस महासमरमें उन्हें कोई अपना रक्षक नहीं मिलता था ॥ ११ ॥

ततस्तु नकुलः शूरो धर्मराजे प्रपीडिते।
अभिदुद्राव वेगेन मातुलं मातृनन्दनः ॥१२॥

जब धर्मराज युधिष्ठिर शल्यकी मारसे अत्यन्त पीड़ित हो गये, तब माताको आनन्दित करनेवाले शूरवीर नकुलने बड़े वेगसे अपने मामापर आक्रमण किया ॥ १२ ॥

संछाद्य समरे शल्यं नकुलः परवीरहा।
विव्याध चैनं दशभिः स्मयमानः स्तनान्तरे ॥ १३॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले नकुलने समराङ्गणमें शल्यको शरसमूहोंद्वारा आच्छादित करके मुसकराते हुए उनकी छातीमें दस बाण मारे ॥ १३ ॥

सर्वपारसवैर्बाणैः कर्मारपरिमार्जितैः।
स्वर्णपुङ्खैः शिलाधौतैर्धनुर्यन्त्रप्रचोदितैः ॥ १४॥

वे बाण सब-के-सब लोहेके बने थे। कारीगरने उन्हें अच्छी तरह माँज-धोकर स्वच्छ बनाया था। उनमें सोनेके पंख लगे थे और उन्हें सानपर चढ़ाकर तेज किया गया था। वे दसों बाण धनुषरूपी यन्त्रपर रखकर चलाये गये थे ॥१४॥

शल्यस्तु पीडितस्तेन स्वस्रीयेण महात्मना।
नकुलं पीडयामास पत्रिभिर्नतपर्वभिः ॥ १५॥

अपने महामनस्वी भानजेके द्वारा पीड़ित हुए शल्यने झुकी हुई गाँठवाले बहुसंख्यक बाणोंद्वारा नकुलको गहरी चोट पहुँचायी ॥ १५ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा भीमसेनोऽथ सात्यकिः।
सहदेवश्च माद्रेयो मद्रराजमुपाद्रवन् ॥ १६॥

तदनन्तर राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, सात्यकि और माद्रीकुमार सहदेवने एक साथ मद्रराज शल्यपर आक्रमण किया॥

तानापतत एवाशु पूरयाणान् रथस्वनैः।
दिशश्च विदिशश्चैव कम्पयानांश्च मेदिनीम् ॥ १७॥
प्रतिजग्राह समरे सेनापतिरमित्रजित्।

वे अपने रथकी घर्घराहटसे सम्पूर्ण दिशाओं और विदिशाओंको गुँजाते हुए पृथ्वीको कम्पित कर रहे थे। सहसा आक्रमण करनेवाले उन वीरोंको शत्रुविजयी सेनापति शल्यने समरभूमिमें आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ १७½ ॥

युधिष्ठिरं त्रिभिर्विद्ध्वा भीमसेनं च पञ्चभिः ॥ १८॥
सात्यकिं च शतेनाजौ सहदेवं त्रिभिः शरैः।
ततस्तु सशरं चापं नकुलस्य महात्मनः ॥ १९ ॥
मद्रेश्वरः क्षुरप्रेण तदा मारिष चिच्छिदे।
तदशीर्यत विच्छिन्नं धनुः शल्यस्य सायकैः ॥ २० ॥

माननीय नरेश ! मद्रराज शल्यने युद्धस्थलमें युधिष्ठिरको तीन, भीमसेनको पाँच, सात्यकिको सौ और सहदेवको तीन बाणोंसे घायल करके महामनस्वी नकुलके बाणसहित धनुषको क्षुरप्रसे काट डाला। शल्यके बाणोंसे कटा हुआ वह धनुष टूक-टूक होकर बिखर गया॥ १८–२० ॥

अथान्यद् धनुरादाय माद्रीपुत्रो महारथः।
मद्रराजरथं तूर्णं पूरयामास पत्रिभिः ॥ २१ ॥

इसके बाद माद्रीपुत्र महारथी नकुलने तुरंत ही दूसरा धनुष हाथमें लेकर मद्रराजके रथको बाणोंसे भर दिया॥२१॥

युधिष्ठिरस्तु मद्रेशं सहदेवश्च मारिष।
दशभिर्दशभिर्बाणैरुरस्येनमविध्यताम् ॥ २२ ॥

आर्य ! साथ ही युधिष्ठिर और सहदेवने दस-दस बाणोंसे उनकी छाती छेद डाली ॥ २२ ॥

भीमसेनस्तु तं षष्ट्या सात्यकिर्दशभिः शरैः।
मद्रराजमभिद्रुत्य जघ्नतुः कङ्कपत्रिभिः ॥ २३ ॥

फिर भीमसेनने साठ और सात्यकिने कङ्कपत्रयुक्त दस बाणोंसे मद्रराजपर वेगपूर्वक प्रहार किया ॥ २३ ॥

मद्रराजस्ततः क्रुद्धः सात्यकिं नवभिः शरैः।
विव्याध भूयः सप्तत्या शराणां नतपर्वणाम् ॥ २४ ॥

तब कुपित हुए मद्रराज शल्यने सात्यकिको झुकी हुई गाँठवाले नौ बाणोंसे घायल करके फिर सत्तर बाणोंद्वारा क्षत-विक्षत कर दिया ॥ २४ ॥

अथास्य सशरं चापं मुष्टौ चिच्छेद मारिष।
हयांश्च चतुरः संख्ये प्रेषयामास मृत्यवे ॥ २५॥

मान्यवर ! इसके बाद शल्यने उनके बाणसहित धनुषको मुट्ठी पकड़नेकी जगहसे काट दिया और संग्राममें उनके चारों घोड़ोंको भी मौतके घर भेज दिया ॥ २५ ॥

विरथं सात्यकिं कृत्वा मद्रराजो महारथः।
विशिखानां शतेनैनमाजघान समन्ततः ॥ २६ ॥

सात्यकिको रथहीन करके महारथी मद्रराज शल्यने सौ बाणोंद्वारा उन्हें सब ओरसे घायल कर दिया ॥ २६ ॥

माद्रीपुत्रौ च संरब्धौ भीमसेनं च पाण्डवम्।
युधिष्ठिरं च कौरव्य विव्याध दशभिः शरैः ॥ २७ ॥

कुरुनन्दन ! इतना ही नहीं, उन्होंने क्रोधमें भरे हुए माद्रीकुमार नकुल-सहदेव, पाण्डुपुत्र भीमसेन तथा युधिष्ठिरको भी दस बाणोंसे क्षत-विक्षत कर दिया ॥ २७ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम मद्रराजस्य पौरुषम्।
यदेनं सहिताः पार्था नाभ्यवर्तन्त संयुगे ॥ २८ ॥

उस महान् संग्राममें हमलोगोंने मद्रराज शल्यका यह अद्भुत पराक्रम देखा कि समस्त पाण्डव एक साथ होकर भी इन्हें युद्धमें पराजित न कर सके ॥ २८ ॥

अथान्यं रथमास्थाय सात्यकिः सत्यविक्रमः।
पीडितान् पाण्डवान् दृष्ट्वा मद्रराजवशंगतान् ॥ २९ ॥
अभिदुद्राव वेगेन मद्राणामधिपं बलात्।

तत्पश्चात् सत्यपराक्रमी सात्यकिने दूसरे रथपर आरूढ़

होकर पाण्डवोंको पीड़ित तथा मद्रराजके अधीन हुआ देख बड़े वेगसे बलपूर्वक उनपर धावा किया ॥ २९½ ॥

आपतन्तं रथं तस्य शल्यः समितिशोभनः ॥ ३० ॥
प्रत्युद्ययौ रथेनैव मत्तो मत्तमिव द्विपम् ।

युद्धमें शोभा पानेवाले शल्य उनके रथको अपनी ओर आते देख स्वयं भी रथके द्वारा ही उनकी ओर बढ़े । ठीक उसी तरह, जैसे एक मतवाला हाथी दूसरे मदमत्त हाथीका सामना करनेके लिये जाता है ॥ ३०½ ॥

स संनिपातस्तुमुलो बभूवाद्भुतदर्शनः ॥ ३१ ॥
सात्यकेश्चैव शूरस्य मद्राणामधिपस्य च ।
यादृशो वै पुरा वृत्तः शम्बरामरराजयोः ॥ ३२ ॥

शूरवीर सात्यकि और मद्रराज शल्य इन दोनोंका वह संग्राम बड़ा भयंकर और अद्भुत दिखायी देता था । वह वैसा ही था, जैसा कि पूर्वकालमें शम्बरासुर और देवराज इन्द्रका युद्ध हुआ था ॥ ३१-३२ ॥

सात्यकिः प्रेक्ष्य समरे मद्रराजमवस्थितम् ।
विव्याध दशभिर्बाणैस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ३३ ॥

सात्यकिने समराङ्गणमें खड़े हुए मद्रराजको देखकर उन्हें दस बाणोंसे बींध डाला और कहा—'खड़े रहो, खड़े रहो' ॥

मद्रराजस्तु सुभृशं विद्धस्तेन महात्मना ।
सात्यकिं प्रतिविव्याध चित्रपुङ्खैः शितैः शरैः ॥ ३४ ॥

महामनस्वी सात्यकिके द्वारा अत्यन्त घायल किये हुए मद्रराजने विचित्र पंखवाले पैने बाणोंसे सात्यकिको भी घायल करके बदला चुकाया ॥ ३४ ॥

ततः पार्था महेष्वासाः सात्वताभिसृतं नृपम् ।
अभ्यवर्तन् रथैस्तूर्णं मातुलं वधकाङ्क्षया ॥ ३५ ॥

तब महाधनुर्धर पृथापुत्रोंने सात्यकिके साथ उलझे हुए मामा मद्रराज शल्यके वधकी इच्छासे रथोंद्वारा उनपर आक्रमण किया ॥ ३५ ॥

तत आसीत् परामर्दस्तुमुलः शोणितोदकः ।
शूराणां युध्यमानानां सिंहानामिव नर्दताम् ॥ ३६ ॥

फिर तो वहाँ घोर संग्राम छिड़ गया । सिंहोंके समान गर्जते और जूझते हुए शूरवीरोंका खून पानीकी तरह बहाया जाने लगा ॥ ३६ ॥

तेषामासीन्महाराज व्यतिक्षेपः परस्परम् ।
सिंहानामामिषेप्सूनां कूजतामिव संयुगे ॥ ३७ ॥

महाराज ! जैसे मांसके लोभसे सिंह गर्जते हुए आपसमें लड़ते हों, उसी प्रकार उस युद्धस्थलमें उन समस्त योद्धाओंका एक-दूसरेके प्रति भयंकर प्रहार हो रहा था ॥ ३७ ॥

तेषां बाणसहस्रौघैराकीर्णा वसुधाभवत् ।
अन्तरिक्षं च सहसा बाणभूतमभूत्तदा ॥ ३८ ॥

उस समय उनके सहस्रों बाणसमूहोंसे रणभूमि आच्छादित हो गयी और आकाश भी सहसा बाणमय प्रतीत होने लगा ॥ ३८ ॥

शरान्धकारं सहसा कृतं तत्र समन्ततः ।
अभ्रच्छायेव संजज्ञे शरैर्मुक्तैर्महात्मभिः ॥ ३९ ॥

उन महामनस्वी वीरोंके छोड़े हुए बाणोंसे सहसा चारों ओर अन्धकार छा गया । मेघोंकी छाया-सी प्रकट हो गयी ॥

तत्र राजञ्शरैर्मुक्तैर्निर्मुक्तैरिव पन्नगैः ।
स्वर्णपुङ्खैः प्रकाशद्भिर्व्यरोचन्त दिशस्तदा ॥ ४० ॥

राजन् ! केंचुल छोड़कर निकले हुए सर्पोंके समान वहाँ छूटे हुए सुवर्णमय पंखवाले चमकीले बाणोंसे उस समय सम्पूर्ण दिशाएँ प्रकाशित हो उठी थीं ॥ ४० ॥

तत्राद्भुतं परं चक्रे शल्यः शत्रुनिबर्हणः ।
यदेकः समरे शूरो योधयामास वै बहून् ॥ ४१ ॥

उस रणभूमिमें शत्रुसूदन शूरवीर शल्यने यह बड़ा अद्भुत पराक्रम किया कि अकेले ही वे उन बहुसंख्यक वीरोंके साथ युद्ध करते रहे ॥ ४१ ॥

मद्रराजभुजोत्सृष्टैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ।
सम्पतद्भिः शरैर्घोरैरवाकीर्यत मेदिनी ॥ ४२ ॥

मद्रराजकी भुजाओंसे छूटकर गिरनेवाले कंक और मोरकी पाँखोंसे युक्त भयानक बाणोंद्वारा वहाँकी सारी पृथ्वी ढक गयी थी ॥ ४२ ॥

तत्र शल्यरथं राजन् विचरन्तं महाहवे ।
अपश्याम यथापूर्वं शक्रस्यासुरसंक्षये ॥ ४३ ॥

राजन् ! जैसे पूर्वकालमें असुरोंका विनाश करते समय इन्द्रका रथ आगे बढ़ता था, उसी प्रकार उस महासमरमें हमलोगोंने राजा शल्यके रथको विचरते देखा था ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें संकुलयुद्धविषयक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

पाण्डवसैनिकों और कौरवसैनिकोंका द्वन्द्वयुद्ध, भीमसेनद्वारा दुर्योधनकी तथा युधिष्ठिरद्वारा शल्यकी पराजय

संजय उवाच

ततः सैन्यास्तव विभो मद्रराजपुरस्कृताः ।
पुनरभ्यद्रवन् पार्थान् वेगेन महता रणे ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—प्रभो ! तदनन्तर आपके सभी सैनिक रणभूमिमें मद्रराजको आगे करके पुनः बड़े वेगसे पाण्डवोंपर टूट पड़े ॥ १ ॥

पीडितास्तावकाः सर्वे प्रधावन्तो रणोत्कटाः ।
क्षणेन चैव पार्थांस्ते बहुत्वात् समलोडयन् ॥ २ ॥

युद्धके लिये उन्मत्त रहनेवाले आपके सभी योद्धा यद्यपि पीड़ित हो रहे थे, तथापि संख्यामें अधिक होनेके कारण उन सबने धावा बोलकर क्षणभरमें पाण्डवयोद्धाओंको मथ डाला ॥ २ ॥

ते वध्यमानाः समरे पाण्डवा नावतस्थिरे ।
निवार्यमाणा भीमेन पश्यतोः कृष्णयोस्तदा ॥ ३ ॥

समराङ्गणमें कौरवोंकी मार खाकर पाण्डवयोद्धा श्रीकृष्ण और अर्जुनके देखते-देखते भीमसेनके रोकनेपर भी वहाँ ठहर न सके ॥ ३ ॥

ततो धनंजयः क्रुद्धः कृपं सह पदानुगैः ।
अवाकिरच्छरौघेण कृतवर्माणमेव च ॥ ४ ॥

तदनन्तर दूसरी ओर क्रोधमें भरे हुए अर्जुनने सेवकोंसहित कृपाचार्य और कृतवर्माको अपने बाणसमूहोंसे ढक दिया ॥ ४ ॥

शकुनिं सहदेवस्तु सहसैन्यमवाकिरत् ।
नकुलः पार्श्वतः स्थित्वा मद्रराजमवैक्षत ॥ ५ ॥

सहदेवने सेनासहित शकुनिको बाणोंसे आच्छादित कर दिया । नकुल पास ही खड़े होकर मद्रराजकी ओर देख रहे थे ॥ ५ ॥

द्रौपदेया नरेन्द्रांश्च भूयिष्ठान् समवारयन् ।
द्रोणपुत्रं च पाञ्चाल्यः शिखण्डी समवारयत् ॥ ६ ॥

द्रौपदीके पुत्रोंने बहुत-से राजाओंको आगे बढ़नेसे रोक रक्खा था । पाञ्चालराजकुमार शिखण्डीने द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको रोक दिया ॥ ६ ॥

भीमसेनस्तु राजानं गदापाणिरवारयत् ।
शल्यं तु सह सैन्येन कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ७ ॥

भीमसेनने हाथमें गदा लेकर राजा दुर्योधनको रोका और सेनासहित कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने शल्यको ॥ ७ ॥

ततः समभवत् सैन्यं संसक्तं तत्र तत्र ह ।
तावकानां परेषां च संग्रामेष्वनिवर्तिनाम् ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् संग्राममें पीठ न दिखानेवाले आपके और शत्रुपक्षके योद्धाओंकी वह सेना जहाँ-तहाँ परस्पर युद्ध करने लगी ॥ ८ ॥

तत्र पश्याम्यहं कर्म शल्यस्यातिमहद्रणे ।
यदेकः सर्वसैन्यानि पाण्डवानामयोधयत् ॥ ९ ॥

वहाँ रणभूमिमें मैंने राजा शल्यका बहुत बड़ा पराक्रम यह देखा कि वे अकेले ही पाण्डवोंकी सम्पूर्ण सेनाओंके साथ युद्ध कर रहे थे ॥ ९ ॥

व्यदृश्यत तदा शल्यो युधिष्ठिरसमीपतः ।
रणे चन्द्रमसोऽभ्याशे शनैश्चर इव ग्रहः ॥ १० ॥

उस समय शल्य युधिष्ठिरके समीप रणभूमिमें ऐसे दिखायी दे रहे थे, मानो चन्द्रमाके समीप शनैश्चर नामक ग्रह हो ॥ १० ॥

पीडयित्वा तु राजानं शरैराशीविषोपमैः ।
अभ्यधावत् पुनर्भीमं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ११ ॥

वे विषधर सर्पोंके समान भयंकर बाणोंद्वारा राजा युधिष्ठिरको पीड़ित करके पुनः भीमसेनकी ओर दौड़े और उन्हें अपने बाणोंकी वर्षासे आच्छादित करने लगे ॥ ११ ॥

तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा तथैव च कृतास्त्रताम् ।
अपूजयन्ननीकानि परेषां तावकानि च ॥ १२ ॥

उनकी वह फुर्ती और अस्त्रविद्याका ज्ञान देखकर आपके और शत्रुपक्षके सैनिकोंने भी उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥

पीड्यमानास्तु शल्येन पाण्डवा भृशविक्षताः ।
प्राद्रवन्त रणं हित्वा क्रोशमाने युधिष्ठिरे ॥ १३ ॥

शल्यके द्वारा पीड़ित एवं अत्यन्त घायल हुए पाण्डव-सैनिक युधिष्ठिरके पुकारनेपर भी युद्ध छोड़कर भाग चले ॥

वध्यमानेष्वनीकेषु मद्रराजेन पाण्डवः ।
अमर्षवशमापन्नो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ १४ ॥

जब मद्रराजके द्वारा इस प्रकार पाण्डव-सैनिकोंका संहार होने लगा, तब पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर अमर्षके वशीभूत हो गये ॥ १४ ॥

ततः पौरुषमास्थाय मद्रराजमताडयत् ।
जयो वास्तु वधो वास्तु कृतबुद्धिर्महारथः ॥ १५ ॥

तदनन्तर उन्होंने अपने पुरुषार्थका आश्रय ले मद्रराजपर प्रहार आरम्भ किया । महारथी युधिष्ठिरने यह निश्चय कर लिया कि आज या तो मेरी विजय होगी अथवा मेरा वध हो जायगा ॥ १५ ॥

समाहूयाब्रवीत् सर्वान् भ्रातॄन् कृष्णं च माधवम् ।
भीष्मो द्रोणश्च कर्णश्च ये चान्ये पृथिवीक्षितः ॥ १६ ॥
कौरवार्थे पराक्रान्ताः संग्रामे निधनं गताः ।
यथाभागं यथोत्साहं भवन्तः कृतपौरुषाः ॥ १७ ॥

उन्होंने अपने समस्त भाइयों तथा श्रीकृष्ण और सात्यकिको बुलाकर इस प्रकार कहा—'बन्धुओ ! भीष्म, द्रोण, कर्ण तथा अन्य जो-जो राजा दुर्योधनके लिये पराक्रम दिखाते थे, वे सब-के-सब संग्राममें मारे गये । तुमलोगोंने पुरुषार्थ करके उत्साहपूर्वक अपने-अपने हिस्सेका कार्य पूरा कर लिया ॥ १६-१७ ॥

भागोऽवशिष्ट एकोऽयं मम शल्यो महारथः ।
सोऽहमद्य युधा जेतुमाशंसे मद्रकाधिपम् ॥ १८ ॥

'अब एकमात्र महारथी शल्य शेष रह गये हैं, जो मेरे हिस्सेमें पड़ गये हैं । अतः आज मैं इन मद्रराज शल्यको युद्धमें जीतनेकी आशा करता हूँ ॥ १८ ॥

तत्र यन्मानसं मह्यं तत् सर्वं निगदामि वः ।
चक्ररक्षाविमौ वीरौ मम माद्रवतीसुतौ ॥ १९ ॥
अजेयौ वासवेनापि समरे शूरसम्मतौ ।

'इसके सम्बन्धमें मेरे मनमें जो संकल्प है, वह सब तुम लोगोंसे बता रहा हूँ, सुनो । जो समराङ्गणमें इन्द्रके लिये भी अजेय तथा शूरवीरोंद्वारा सम्मानित हैं, वे दोनों माद्रीकुमार वीर नकुल और सहदेव मेरे रथके पहियोंकी रक्षा करें ॥ १९½ ॥

साध्विमौ मातुलं युद्धे क्षत्रधर्मपुरस्कृतौ ॥ २० ॥
मदर्थं प्रतियुद्ध्येतां मानार्हौ सत्यसङ्गरौ ।
मां वा शल्यो रणे हन्ता तं वाहं भद्रमस्तु वः ॥ २१ ॥

'क्षत्रिय-धर्मको सामने रखते हुए ये सम्मान पानेके योग्य सत्यप्रतिज्ञ नकुल और सहदेव मेरे लिये समराङ्गणमें अपने मामाके साथ अच्छी तरह युद्ध करें । फिर या तो शल्य रण-

भूमिमें मुझे मार डालें या मैं उनका वध कर डालूँ। आपलोगोंका कल्याण हो ॥ २०-२१ ॥

इति सत्यामिमां वाणीं लोकवीरा निबोधत ।
योत्स्येऽहं मातुलेनाद्य क्षात्रधर्मेण पार्थिवाः ॥ २२ ॥
स्वमंशमभिसंधाय विजयायेतराय च ।

'विश्वविख्यात वीरो ! तुमलोग मेरा यह सत्य वचन सुन लो । राजाओ ! मैं क्षत्रियधर्मके अनुसार अपने हिस्सेका कार्य पूर्ण करनेका संकल्प लेकर अपनी विजय अथवा वधके लिये मामा शल्यके साथ आज युद्ध करूँगा ॥ २२½ ॥

तस्य मेऽप्यधिकं शस्त्रं सर्वोपकरणानि च ॥ २३ ॥
संसज्जन्तु रथे क्षिप्रं शास्त्रवद् रथयोजकाः ।

'अतः रथ जोतनेवाले लोग शीघ्र ही मेरे रथपर शास्त्रीय विधिके अनुसार अधिक-से-अधिक शस्त्र तथा अन्य सब आवश्यक सामग्री सजाकर रख दें ॥ २३½ ॥

शैनेयो दक्षिणं चक्रं धृष्टद्युम्नस्तथोत्तरम् ॥ २४ ॥
पृष्ठगोपो भवत्वद्य मम पार्थो धनंजयः ।
पुरःसरो ममाद्यास्तु भीमः शस्त्रभृतां वरः ॥ २५ ॥

'(नकुल-सहदेवके अतिरिक्त) सात्यकि मेरे दाहिने चक्रकी रक्षा करें और धृष्टद्युम्न बायें चक्रकी। आज कुन्तीकुमार अर्जुन मेरे पृष्ठभागकी रक्षामें तत्पर रहें और शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ भीमसेन मेरे आगे-आगे चलें ॥ २४-२५ ॥

एवमभ्यधिकः शल्याद् भविष्यामि महामृधे ।
एवमुक्तास्तथा चक्रुस्तदा राज्ञः प्रियैषिणः ॥ २६ ॥

'ऐसी व्यवस्था होनेपर मैं इस महायुद्धमें शल्यसे अधिक शक्तिशाली हो जाऊँगा ।' उनके ऐसा कहनेपर राजाका प्रिय करनेकी इच्छावाले भाइयोंने उस समय वैसा ही किया ।२६।

ततः प्रहर्षः सैन्यानां पुनरासीत् तदा मृधे ।
पञ्चालानां सोमकानां मत्स्यानां च विशेषतः॥ २७ ॥

तदनन्तर उस युद्धस्थलमें पुनः पाण्डवसैनिकों विशेषतः पाञ्चालों, सोमकों और मत्स्यदेशीय योद्धाओंके मनमें महान् हर्षोल्लास छा गया ॥ २७ ॥

प्रतिज्ञां तां तदा राजा कृत्वा मद्रेशमभ्ययात् ।
ततः शङ्खांश्च भेरीश्च शतशश्चैव पुष्कलान् ॥ २८ ॥
अवादयन्त पञ्चालाः सिंहनादांश्च नेदिरे ।

राजा युधिष्ठिरने उस समय पूर्वोक्त प्रतिज्ञा करके मद्रराज शल्यपर चढ़ाई की। फिर तो पाञ्चाल योद्धा शङ्ख, भेरी आदि सैकड़ों प्रकारके प्रचुर रणवाद्य बजाने और सिंहनाद करने लगे ॥ २८½ ॥

तेऽभ्यधावन्त संरब्धा मद्रराजं तरस्विनम् ॥ २९ ॥
महता हर्षजेनाथ नादेन कुरुपुङ्गवाः ।

उन कुरुकुलके श्रेष्ठ वीरोंने रोषमें भरकर महान् हर्षनादके साथ वेगशाली वीर मद्रराज शल्यपर धावा किया ॥२९½॥

ह्रादेन गजघण्टानां शङ्खानां निनदेन च ॥ ३० ॥
तूर्यशब्देन महता नादयन्तश्च मेदिनीम् ।

वे हाथियोंके घण्टोंकी आवाज, शङ्खोंकी ध्वनि तथा वाद्योंके महान् घोषसे पृथ्वीको गुँजा रहे थे ॥ ३०½ ॥

तान् प्रत्यगृह्णात् पुत्रस्ते मद्रराजश्च वीर्यवान् ॥ ३१ ॥
महामेघानिव बहूञ्शैलावस्तोदयावुभौ ।

उस समय आपके पुत्र दुर्योधन तथा पराक्रमी मद्रराज शल्यने उन सबको आगे बढ़नेसे रोका। ठीक उसी तरह, जैसे अस्ताचल और उदयाचल दोनों बहुसंख्यक महामेघोंको रोक देते हैं ॥ ३१½ ॥

शल्यस्तु समरश्लाघी धर्मराजमरिंदमम् ॥ ३२ ॥
ववर्ष शरवर्षेण शम्बरं मघवा इव ।

युद्धकी स्पृहा रखनेवाले शल्य शत्रुदमन धर्मराज युधिष्ठिरपर उसी प्रकार बाणोंकी वर्षा करने लगे, जैसे शम्बरासुरपर इन्द्र ॥ ३२½ ॥

तथैव कुरुराजोऽपि प्रगृह्य रुचिरं धनुः ॥ ३३ ॥
द्रोणोपदेशान् विविधान् दर्शयानो महामनाः ।
ववर्ष शरवर्षाणि चित्रं लघु च सुष्ठु च ॥ ३४ ॥

इसी प्रकार महामना कुरुराज युधिष्ठिरने भी सुन्दर धनुष हाथमें लेकर द्रोणाचार्यके दिये हुए नाना प्रकारके उपदेशोंका प्रदर्शन करते हुए शीघ्रतापूर्वक सुन्दर एवं विचित्र रीतिसे बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ ३३-३४ ॥

न चास्य विवरं कश्चिद् ददर्श चरतो रणे ।
तावुभौ विविधैर्बाणैस्ततक्षाते परस्परम् ॥ ३५ ॥
शार्दूलावामिषप्रेप्सू पराक्रान्ताविवाहवे ।

रणमें विचरते हुए युधिष्ठिरकी कोई भी त्रुटि किसीने नहीं देखी। मांसके लोभसे पराक्रम प्रकट करनेवाले दो सिंहोंके समान वे दोनों वीर युद्धस्थलमें नाना प्रकारके बाणोंद्वारा एक दूसरेको घायल करने लगे ॥ ३५½ ॥

भीमस्तु तव पुत्रेण युद्धशौण्डेन संगतः ॥ ३६ ॥
पाञ्चाल्यः सात्यकिश्चैव माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
शकुनिप्रमुखान् वीरान् प्रत्यगृह्णन् समन्ततः ॥ ३७ ॥

राजन् ! भीमसेन तो आपके युद्धकुशल पुत्र दुर्योधनके साथ भिड़ गये और धृष्टद्युम्न, सात्यकि तथा पाण्डुपुत्र माद्रीकुमार नकुल-सहदेव सब ओरसे शकुनि आदि वीरोंका सामना करने लगे ॥ ३६-३७ ॥

तदाऽऽसीत् तुमुलं युद्धं पुनरेव जयैषिणाम् ।
तावकानां परेषां च राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ ३८ ॥

नरेश्वर ! फिर विजयकी अभिलाषा रखनेवाले आपके और शत्रुपक्षके योद्धाओंमें उस समय घोर संग्राम छिड़ गया, जो आपकी कुमन्त्रणाका परिणाम था ॥ ३८ ॥

दुर्योधनस्तु भीमस्य शरेणानतपर्वणा ।
चिच्छेदादिश्य संग्रामे ध्वजं हेमपरिष्कृतम् ॥ ३९ ॥

दुर्योधनने घोषणा करके झुकी हुई गाँठवाले बाणसे संग्राममें भीमसेनके सुवर्णभूषित ध्वजको काट डाला ॥ ३९ ॥

स किङ्किणीकजालेन महता चारुदर्शनः ।
पपात रुचिरः संख्ये भीमसेनस्य पश्यतः ॥ ४० ॥

वह देखनेमें मनोहर और सुन्दर ध्वज भीमसेनके देखते-

देखते छोटी-छोटी घंटियोंके महान् समूहके साथ युद्धस्थलमें गिर पड़ा ॥ ४० ॥

पुनश्चास्य धनुश्चित्रं गजराजकरोपमम् ।
क्षुरेण शितधारेण प्रचकर्त नराधिपः ॥ ४१ ॥

तत्पश्चात् राजा दुर्योधनने तीखी धारवाले क्षुरसे भीमसेनके विचित्र धनुषको भी, जो हाथीकी सूँड़के समान था, काट डाला ॥ ४१ ॥

स च्छिन्नधन्वा तेजस्वी रथशक्त्या सुतं तव ।
बिभेदोरसि विक्रम्य स रथोपस्थ आविशत् ॥ ४२ ॥

धनुष कट जानेपर तेजस्वी भीमसेनने पराक्रमपूर्वक आपके पुत्रकी छातीमें रथशक्तिका प्रहार किया । उसकी चोट खाकर दुर्योधन रथके पिछले भागमें मूर्छित होकर बैठ गया ॥ ४२ ॥

तस्मिन् मोहमनुप्राप्ते पुनरेव वृकोदरः ।
यन्तुरेव शिरः कायात् क्षुरप्रेणाहरत् तदा ॥ ४३ ॥

उसके मूर्छित हो जानेपर भीमसेनने फिर क्षुरप्रके द्वारा उसके सारथिका ही सिर धड़से अलग कर दिया ॥ ४३ ॥

हतसूता हयास्तस्य रथमादाय भारत ।
व्यद्रवन्त दिशो राजन् हाहाकारस्तदाभवत् ॥ ४४ ॥

भरतवंशी नरेश ! सारथिके मारे जानेपर उसके घोड़े रथ लिये चारों दिशाओंमें दौड़ लगाने लगे । उस समय आपकी सेनामें हाहाकार मच गया ॥ ४४ ॥

तमभ्यधावत् त्राणार्थं द्रोणपुत्रो महारथः ।
कृपश्च कृतवर्मा च पुत्रं तेऽपि परीप्सवः ॥ ४५ ॥

तब महारथी द्रोणपुत्र दुर्योधनकी रक्षाके लिये दौड़ा । कृपाचार्य और कृतवर्मा भी आपके पुत्रको बचानेके लिये आ पहुँचे ॥ ४५ ॥

तस्मिन् विलुलिते सैन्ये त्रस्तास्तस्य पदानुगाः ।
गाण्डीवधन्वा विस्फार्य धनुस्तानहनच्छरैः ॥ ४६ ॥

इस प्रकार जब सारी सेनामें हलचल मच गयी, तब दुर्योधनके पीछे चलनेवाले सैनिक भयसे थर्रा उठे । उस समय गाण्डीवधारी अर्जुनने अपने धनुषको खींचकर छोड़े हुए बाणोंद्वारा उन सबको मार डाला ॥ ४६ ॥

युधिष्ठिरस्तु मद्रेशमभ्यधावदमर्षितः ।
स्वयं संनोदयन्नश्वान् दन्तवर्णान् मनोजवान् ॥ ४७ ॥

तत्पश्चात् राजा युधिष्ठिरने अमर्षमें भरकर दाँतोंके समान श्वेत वर्णवाले और मनके तुल्य वेगशाली घोड़ोंको स्वयं ही हाँकते हुए मद्रराज शल्यपर धावा किया ॥ ४७ ॥

तत्राश्चर्यमपश्याम कुन्तीपुत्रे युधिष्ठिरे ।
पुरा भूत्वा मृदुर्दान्तो यत् तदा दारुणोऽभवत् ॥ ४८ ॥

वहाँ हमने कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरमें एक आश्चर्यकी बात देखी । वे पहलेसे जितेन्द्रिय और कोमल स्वभावके होकर भी उस समय कठोर हो गये ॥ ४८ ॥

विवृताक्षश्च कौन्तेयो वेपमानश्च मन्युना ।
चिच्छेद योधान् निशितैः शरैः शतसहस्रशः ॥ ४९ ॥

क्रोधसे काँपते तथा आँखें फाड़-फाड़कर देखते हुए कुन्तीकुमारने अपने पैने बाणोंद्वारा सैकड़ों और हजारों शत्रुसैनिकोंका संहार कर डाला ॥ ४९ ॥

यां यां प्रत्युद्ययौ सेनां तां तां ज्येष्ठः स पाण्डवः ।
शरैरपातयद् राजन् गिरीन् वज्रैरिवोत्तमैः ॥ ५० ॥

राजन् ! जैसे इन्द्रने उत्तम वज्रोंके प्रहारसे पर्वतोंको धराशायी कर दिया था, उसी प्रकार वे ज्येष्ठ पाण्डव जिस-जिस सेनाकी ओर अग्रसर हुए, उसी-उसीको अपने बाणोंद्वारा मार गिराया ॥ ५० ॥

साश्वसूतध्वजरथान् रथिनः पातयन् बहून् ।
अक्रीडदेको बलवान् पवनस्तोयदानिव ॥ ५१ ॥

जैसे प्रबल वायु मेघोंको छिन्न-भिन्न करती हुई उनके साथ खेलती है, उसी प्रकार बलवान् युधिष्ठिर अकेले ही घोड़े, सारथि, ध्वज और रथोंसहित बहुत-से रथियोंको धराशायी करते हुए उनके साथ खेल-सा करने लगे ॥ ५१ ॥

साश्वारोहांश्च तुरगान् पत्तींश्चैव सहस्रधा ।
व्यपोथयत संग्रामे क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ॥ ५२ ॥

जैसे क्रोधमें भरे हुए रुद्रदेव पशुओंका संहार करते हैं, उसी प्रकार युधिष्ठिरने इस संग्राममें कुपित हो घुड़सवारों, घोड़ों और पैदलोंके सहस्रों टुकड़े कर डाले ॥ ५२ ॥

शून्यमायोधनं कृत्वा शरवर्षैः समन्ततः ।
अभ्यद्रवत मद्रेशं तिष्ठ शल्येति चाब्रवीत् ॥ ५३ ॥

उन्होंने अपने बाणोंकी वर्षाद्वारा चारों ओरसे युद्धस्थलको सूना करके मद्रराजपर धावा किया और कहा—'शल्य ! खड़े रहो, खड़े रहो' ॥ ५३ ॥

तस्य तच्चरितं दृष्ट्वा संग्रामे भीमकर्मणः ।
वित्रेसुस्तावकाः सर्वे शल्यस्त्वेनं समभ्ययात् ॥ ५४ ॥

भयंकर कर्म करनेवाले युधिष्ठिरका युद्धमें वह पराक्रम देखकर आपके सारे सैनिक थर्रा उठे; परंतु शल्यने इनपर आक्रमण कर दिया ॥ ५४ ॥

ततस्तौ भृशसंक्रुद्धौ प्रध्माय सलिलोद्भवौ ।
समाहूय तदान्योन्यं भर्त्सयन्तौ समीयतुः ॥ ५५ ॥

फिर वे दोनों वीर अत्यन्त कुपित हो शङ्ख बजाकर एक दूसरेको ललकारते और फटकारते हुए परस्पर भिड़ गये ॥

शल्यस्तु शरवर्षेण पीडयामास पाण्डवम् ।
मद्रराजं तु कौन्तेयः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ५६ ॥

शल्यने बाणोंकी वर्षा करके पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको पीड़ित कर दिया तथा कुन्तीकुमार युधिष्ठिरने भी बाणोंकी वर्षाद्वारा मद्रराज शल्यको आच्छादित कर दिया ॥ ५६ ॥

अदृश्येतां तदा राजन् कङ्कपत्रिभिराचितौ ।
उद्भिन्नरुधिरौ शूरौ मद्रराजयुधिष्ठिरौ ॥ ५७ ॥

राजन् ! उस समय शूरवीर मद्रराज और युधिष्ठिर दोनों कङ्कपत्रयुक्त बाणोंसे व्याप्त हो खून बहाते दिखायी देते थे ॥५७॥

पुष्पितौ शुशुभाते वै वसन्ते किंशुकौ यथा ।
दीप्यमानौ महात्मानौ प्राणद्यूतेन दुर्मदौ ॥ ५८ ॥
दृष्ट्वा सर्वाणि सैन्यानि नाध्यवस्यंस्तयोर्जयम् ।

जैसे वसन्त ऋतुमें फूले हुए दो पलाशके वृक्ष शोभा पाते हों, वैसे ही उन दोनोंकी शोभा हो रही थी। प्राणोंकी बाजी लगाकर युद्धका जूआ खेलते हुए उन मदमत्त महामनस्वी एवं दीप्तिमान् वीरोंको देखकर सारी सेनाएँ यह निश्चय नहीं कर पाती थीं कि इन दोनोंमें किसकी विजय होगी ॥ ५८½ ॥

हत्वा मद्राधिपं पार्थो भोक्ष्यतेऽद्य वसुन्धराम्॥ ५९ ॥
शल्यो वा पाण्डवं हत्वा दद्याद् दुर्योधनाय गाम्।
इतीव निश्चयो नाभूद् योधानां तत्र भारत ॥ ६० ॥

भरतनन्दन! 'आज कुन्तीकुमार युधिष्ठिर मद्रराजको मारकर इस भूतलका राज्य भोगेंगे अथवा शल्य ही पाण्डुकुमार युधिष्ठिरको मारकर दुर्योधनको भूमण्डलका राज्य सौंप देंगे।' इस बातका निश्चय वहाँ योद्धाओंको नहीं हो पाता था ॥ ५९-६० ॥

प्रदक्षिणमभूत् सर्वं धर्मराजस्य युध्यतः।
ततः शरशतं शल्यो मुमोचाथ युधिष्ठिरे ॥ ६१ ॥
धनुश्चास्य शिताग्रेण बाणेन निरकृन्तत।

युद्ध करते समय युधिष्ठिरके लिये सब कुछ प्रदक्षिण (अनुकूल) हो रहा था। तदनन्तर शल्यने युधिष्ठिरपर सौ बाणोंका प्रहार किया तथा तीखी धारवाले बाणसे उनके धनुषको भी काट दिया ॥ ६१½ ॥

सोऽन्यत् कार्मुकमादाय शल्यं शरशतैस्त्रिभिः॥ ६२ ॥
अविध्यत् कार्मुकं चास्य क्षुरेण निरकृन्तत।
अथास्य निजघानाश्वांश्चतुरो नतपर्वभिः ॥ ६३ ॥
द्वाभ्यामतिशिताग्राभ्यामुभौ तत् पार्ष्णिसारथी।
ततोऽस्य दीप्यमानेन पीतेन निशितेन च ॥ ६४ ॥
प्रमुखे वर्तमानस्य भल्लेनापाहरद् ध्वजम्।
ततः प्रभग्नं तत् सैन्यं दौर्योधनमरिंदम ॥ ६५ ॥

तब युधिष्ठिरने दूसरा धनुष लेकर शल्यको तीन सौ बाणोंसे घायल कर दिया और एक क्षुरके द्वारा उनके धनुषके भी दो टुकड़े कर दिये। इसके बाद झुकी हुई गाँठवाले बाणोंसे उनके चारों घोड़ोंको मार डाला। फिर दो अत्यन्त तीखे बाणोंसे दोनों पार्श्वरक्षकोंको यमलोक भेज दिया। तदनन्तर एक चमकते हुए पानीदार पैने भल्लसे सामने खड़े हुए शल्यके ध्वजको भी काट गिराया। शत्रुदमन नरेश! फिर तो दुर्योधनकी वह सेना वहाँसे भाग खड़ी हुई ॥ ६२-६५ ॥

ततो मद्राधिपं द्रौणिरभ्यधावत् तथा कृतम्।
आरोप्य चैनं स्वरथे त्वरमाणः प्रदुद्रुवे ॥ ६६ ॥

उस समय मद्रराज शल्यकी ऐसी अवस्था हुई देख अश्वत्थामा दौड़ा और उन्हें अपने रथपर बिठाकर तुरंत वहाँसे भाग गया ॥ ६६ ॥

मुहूर्तमिव तौ गत्वा नर्दमाने युधिष्ठिरे।
स्मित्वा ततो मद्रपतिरन्यं स्यन्दनमास्थितः ॥ ६७ ॥
विधिवत् कल्पितं शुभ्रं महाम्बुदनिनादिनम्।
सज्जयन्त्रोपकरणं द्विषतां लोमहर्षणम् ॥ ६८ ॥

युधिष्ठिर दो घड़ीतक उनका पीछा करके सिंहके समान दहाड़ते रहे। तत्पश्चात् मद्रराज शल्य मुस्कराकर दूसरे रथपर जा बैठे। उनका वह उज्ज्वल रथ विधिपूर्वक सजाया गया था। उससे महान् मेघके समान गम्भीर ध्वनि होती थी। उसमें यन्त्र आदि आवश्यक उपकरण सजाकर रख दिये गये थे और वह रथ शत्रुओंके रोंगटे खड़े कर देनेवाला था ॥ ६७-६८ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्ययुधिष्ठिरयुद्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें शल्य और युधिष्ठिरका युद्धविषयक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

भीमसेनद्वारा राजा शल्यके घोड़े और सारथिका तथा युधिष्ठिरद्वारा राजा शल्य और उनके भाईका वध एवं कृतवर्माकी पराजय

संजय उवाच

अथान्यद् धनुरादाय बलवान् वेगवत्तरम्।
युधिष्ठिरं मद्रपतिर्भित्त्वा सिंह इवानदत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर बलवान् मद्रराज शल्य दूसरा अत्यन्त वेगशाली धनुष हाथमें लेकर युधिष्ठिरको घायल करके सिंहके समान गर्जने लगे ॥ १ ॥

ततः स शरवर्षेण पर्जन्य इव वृष्टिमान्।
अभ्यवर्षदमेयात्मा क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः ॥ २ ॥

तत्पश्चात् अमेय आत्मबलसे सम्पन्न क्षत्रियशिरोमणि शल्य वर्षा करनेवाले मेघके समान क्षत्रियवीरोंपर बाणोंकी वृष्टि करने लगे ॥ २ ॥

सात्यकिं दशभिर्विद्ध्वा भीमसेनं त्रिभिः शरैः।
सहदेवं त्रिभिर्विद्ध्वा युधिष्ठिरमपीडयत् ॥ ३ ॥

उन्होंने सात्यकिको दस, भीमसेनको तीन तथा सहदेवको भी तीन बाणोंसे घायल करके युधिष्ठिरको भी पीड़ित कर दिया ॥

तांस्तानन्यान् महेष्वासान् साश्वान् सरथकूबरान्।
अर्दयामास विशिखैरुल्काभिरिव कुञ्जरान् ॥ ४ ॥

जैसे शिकारी जलते हुए काष्ठोंसे हाथियोंको पीड़ा देते हैं, उसी प्रकार वे दूसरे-दूसरे महाधनुर्धर वीरोंको भी घोड़े, रथ और कूबरोंसहित अपने बाणोंद्वारा पीड़ित करने लगे ॥ ४ ॥

कुञ्जरान् कुञ्जरारोहानश्वानश्वप्रयायिनः।
रथांश्च रथिनः सार्धं जघान रथिनां वरः ॥ ५ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ शल्यने हाथियों और हाथीसवारोंको, घोड़ों और घुड़सवारोंको तथा रथों और रथियोंको एक साथ ही नष्ट कर दिया ॥ ५ ॥

बाहूंश्चिच्छेद तरसा सायुधान् केतनानि च।

चकार च महीं योधैस्तीर्णां वेदीं कुशैरिव ॥ ६ ॥

उन्होंने आयुधोंसहित भुजाओं और ध्वजोंको वेगपूर्वक काट डाला और पृथ्वीपर उसी प्रकार योद्धाओंकी लाशें बिछा दीं, जैसे वेदीपर कुश बिछाये जाते हैं ॥ ६ ॥

तथा तमरिसैन्यानि घ्नन्तं मृत्युमिवान्तकम् ।
परिवव्रुर्भृशं क्रुद्धाः पाण्डुपाञ्चालसोमकाः ॥ ७ ॥

इस प्रकार मृत्यु और यमराजके समान शत्रुसेनाका संहार करनेवाले राजा शल्यको अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए पाण्डव, पाञ्चाल तथा सोमक-योद्धाओंने चारों ओरसे घेर लिया ॥ ७ ॥

तं भीमसेनश्च शिनेश्च नप्ता
माद्र्याश्च पुत्रौ पुरुषप्रवीरौ ।
समागतं भीमबलेन राज्ञा
पर्याप्तमन्योन्यमथाह्वयन्त ॥ ८ ॥

भीमसेन, शिनिपौत्र सात्यकि और माद्रीके पुत्र नरश्रेष्ठ नकुल-सहदेव—ये भयंकर बलशाली राजा युधिष्ठिरके साथ भिड़े हुए सामर्थ्यशाली वीर शल्यको परस्पर युद्धके लिये ललकारने लगे ॥ ८ ॥

ततस्तु शूराः समरे नरेन्द्र
नरेश्वरं प्राप्य युधां वरिष्ठम् ।
आवार्य चैनं समरे नृवीरा
जघ्नुः शरैः पत्रिभिरुग्रवेगैः ॥ ९ ॥

नरेन्द्र ! तत्पश्चात् वे शौर्यशाली नरवीर योद्धाओंमें श्रेष्ठ नरेश्वर शल्यको रोककर समरभूमिमें भयंकर वेगशाली बाणोंद्वारा घायल करने लगे ॥ ९ ॥

संरक्षितो भीमसेनेन राजा
माद्रीसुताभ्यामथ माधवेन ।
मद्राधिपं पत्रिभिरुग्रवेगैः
स्तनान्तरे धर्मसुतो निजघ्ने ॥ १० ॥

धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने भीमसेन, नकुल-सहदेव तथा सात्यकिसे सुरक्षित हो मद्रराज शल्यकी छातीमें उग्रवेगशाली बाणोंद्वारा प्रहार किया ॥ १० ॥

ततो रणे तावकानां रथौघाः
समीक्ष्य मद्राधिपतिं शरार्तम् ।
पर्यावव्रुः प्रवरास्ते सुसज्जा
दुर्योधनस्यानुमते पुरस्तात् ॥ ११ ॥

तब रणभूमिमें मद्रराजको बाणोंसे पीड़ित देख आपके श्रेष्ठ रथी योद्धा दुर्योधनकी आज्ञासे सुसज्जित हो उन्हें घेरकर युधिष्ठिरके आगे खड़े हो गये ॥ ११ ॥

ततो द्रुतं मद्रजनाधिपो रणे
युधिष्ठिरं सप्तभिरभ्यविद्ध्यत् ।
तं चापि पार्थो नवभिः पृषत्कै-
र्विव्याध राजंस्तुमुले महात्मा ॥ १२ ॥

इसके बाद मद्रराजने संग्राममें तुरंत ही सात बाणोंसे युधिष्ठिरको बींध डाला । राजन् ! उस तुमुल युद्धमें महात्मा युधिष्ठिरने भी नौ बाणोंसे शल्यको घायल कर दिया ॥ १२ ॥

आकर्णपूर्णायतसम्प्रयुक्तैः
शरैस्तदा संयति तैलधौतैः ।
अन्योन्यमाच्छादयतां महारथौ
मद्राधिपश्चापि युधिष्ठिरश्च ॥ १३ ॥

मद्रराज शल्य और युधिष्ठिर दोनों महारथी कानतक खींचकर छोड़े गये और तेलमें धोये हुए बाणोंद्वारा उस समय युद्धमें एक-दूसरेको आच्छादित करने लगे ॥ १३ ॥

ततस्तु तूर्णं समरे महारथौ
परस्परस्यान्तरमीक्षमाणौ ।
शरैर्भृशं विव्यधतुर्नृपोत्तमौ
महाबलौ शत्रुभिरप्रधृष्यौ ॥ १४ ॥

वे दोनों महारथी समरभूमिमें एक-दूसरेपर प्रहार करनेका अवसर देख रहे थे । दोनों ही शत्रुओंके लिये अजेय, महा-बलवान् तथा राजाओंमें श्रेष्ठ थे । अतः बड़ी उतावलीके साथ बाणोंद्वारा एक-दूसरेको गहरी चोट पहुँचाने लगे ॥ १४ ॥

तयोर्धनुर्ज्यातलनिःस्वनो महान्
महेन्द्रवज्राशनितुल्यनिःस्वनः ।
परस्परं बाणगणैर्महात्मनोः
प्रवर्षतोर्मद्रपपाण्डुवीरयोः ॥ १५ ॥

परस्पर बाणोंकी वर्षा करते हुए महामना मद्रराज तथा पाण्डववीर युधिष्ठिरके धनुषकी प्रत्यञ्चाका महान् शब्द इन्द्रके वज्रकी गड़गड़ाहटके समान जान पड़ता था ॥ १५ ॥

तौ चेरतुर्व्याघ्रशिशुप्रकाशौ
महावनेष्वामिषगृद्धिनाविव ।
विषाणिनौ नागवराविवोभौ
ततक्षतुः संयति जातदर्पौ ॥ १६ ॥

उन दोनोंका घमण्ड बढ़ा हुआ था । वे दोनों मांसके लोभसे महान् वनमें जूझते हुए व्याघ्रके दो बच्चोंके समान तथा दाँतोंवाले दो बड़े-बड़े गजराजोंकी भाँति युद्धस्थलमें परस्पर आघात करने लगे ॥ १६ ॥

ततस्तु मद्राधिपतिर्महात्मा
युधिष्ठिरं भीमबलं प्रसह्य ।
विव्याध वीरं हृदयेऽतिवेगं
शरेण सूर्याग्निसमप्रभेण ॥ १७ ॥

तत्पश्चात् महामना मद्रराज शल्यने सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी बाणसे अत्यन्त वेगवान् और भयंकर बलशाली वीर युधिष्ठिरकी छातीमें चोट पहुँचायी ॥ १७ ॥

ततोऽतिविद्धोऽथ युधिष्ठिरोऽपि
सुसम्प्रयुक्तेन शरेण राजन् ।
जघान मद्राधिपतिं महात्मा
मुदं च लेभे ऋषभः कुरूणाम् ॥ १८ ॥

राजन् ! उससे अत्यन्त घायल होनेपर भी कुरुकुल-शिरोमणि महात्मा युधिष्ठिरने अच्छी तरह चलाये हुए बाणके द्वारा मद्रराज शल्यको आहत (एवं मूर्च्छित) कर दिया । इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ १८ ॥

ततो मुहूर्तादिव पार्थिवेन्द्रो
लब्ध्वा संज्ञां क्रोधसंरक्तनेत्रः ।
शतेन पार्थं त्वरितो जघान
सहस्रनेत्रप्रतिमप्रभावः ॥ १९ ॥

तब इन्द्रके समान प्रभावशाली राजा शल्यने दो ही घड़ीमें होशमें आकर क्रोधसे लाल आँखें करके बड़ी उतावलीके साथ युधिष्ठिरको सौ बाण मारे ॥ १९ ॥

त्वरंस्ततो धर्मसुतो महात्मा
शल्यस्य कोपान्नवभिः पृषत्कैः ।
भित्त्वा ह्युरस्तपनीयं च वर्म
जघान षड्भिस्त्वपरैः पृषत्कैः ॥ २० ॥

इसके बाद धर्मपुत्र महात्मा युधिष्ठिरने कुपित हो शीघ्रतापूर्वक नौ बाण मारकर राजा शल्यकी छाती और उनके सुवर्णमय कवचको विदीर्ण कर दिया । फिर छः बाण और मारे ॥ २० ॥

ततस्तु मद्राधिपतिः प्रकृष्टं
धनुर्विकृष्य व्यसृजत् पृषत्कान् ।
द्वाभ्यां शराभ्यां च तथैव राज्ञ-
श्चिच्छेद चापं कुरुपुङ्गवस्य ॥ २१ ॥

तदनन्तर मद्रराजने अपने उत्तम धनुषको खींचकर बहुत-से बाण छोड़े । उन्होंने दो बाणोंसे कुरुकुलशिरोमणि राजा युधिष्ठिरके धनुषको काट दिया ॥ २१ ॥

नवं ततोऽन्यत् समरे प्रगृह्य
राजा धनुर्घोरतरं महात्मा ।
शल्यं तु विव्याध शरैः समन्ताद्
यथा महेन्द्रो नमुचिं शिताग्रैः ॥ २२ ॥

तब महात्मा राजा युधिष्ठिरने समराङ्गणमें दूसरे नये और अत्यन्त भयंकर धनुषको हाथमें लेकर तीखी धारवाले बाणोंसे शल्यको उसी प्रकार सब ओरसे घायल कर दिया, जैसे देवराज इन्द्रने नमुचिको ॥ २२ ॥

ततस्तु शल्यो नवभिः पृषत्कै-
र्भीमस्य राज्ञश्च युधिष्ठिरस्य ।
निकृत्य रौक्मे पटुवर्मणी तयो-
र्विदारयामास भुजौ महात्मा ॥ २३ ॥

तब महामनस्वी शल्यने नौ बाणोंसे भीमसेन तथा राजा युधिष्ठिरके सोनेके सुदृढ़ कवचोंको काटकर उन दोनोंकी भुजाओंको विदीर्ण कर डाला ॥ २३ ॥

ततोऽपरेण ज्वलनार्कतेजसा
क्षुरेण राज्ञो धनुरुन्ममाथ ।
कृपश्च तस्यैव जघान सूतं
षड्भिः शरैः सोऽभिमुखः पपात ॥ २४ ॥

इसके बाद अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी क्षुरके द्वारा उन्होंने राजा युधिष्ठिरके धनुषको मथित कर दिया। फिर कृपाचार्यने भी छः बाणोंसे उन्हींके सारथिको मार डाला। सारथि उनके सामने ही पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २४ ॥

मद्राधिपश्चापि युधिष्ठिरस्य
शरैश्चतुर्भिर्निजघान वाहान् ।
वाहांश्च हत्वा व्यकरोन्महात्मा
योधक्षयं धर्मसुतस्य राज्ञः ॥ २५ ॥

तत्पश्चात् मद्रराजने चार बाणोंसे युधिष्ठिरके चारों घोड़ोंका भी संहार कर डाला । घोड़ोंको मारकर महामनस्वी शल्यने धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरके योद्धाओंका विनाश आरम्भ कर दिया ॥ २५ ॥

(यदद्भुतं कर्म न शक्यमन्यैः
सुदुःसहं तत् कृतवन्तमेकम् ।
शल्यं नरेन्द्रस्य विषण्णभावाद्
विचिन्तयामास मृदङ्गकेतुः ॥
किमेतदिन्द्रावरजस्य वाक्यं
मोघं भवत्यद्य विधेर्बलेन ।
जहीति शल्यं ह्यवदत् तदाजौ
न लोकनाथस्य वचोऽन्यथा स्यात् ॥)

जो अद्भुत एवं दुःसह कार्य दूसरे किसीसे नहीं हो सकता, वही एकमात्र शल्यने राजा युधिष्ठिरके प्रति कर दिखाया । इससे मृदंगचिह्नित ध्वजवाले युधिष्ठिर विषादग्रस्त हो इस प्रकार चिन्ता करने लगे—'क्या आज दैवबलसे इन्द्रके छोटे भाई भगवान् श्रीकृष्णकी बात झूठी हो जायगी। उन्होंने स्पष्ट कहा था कि 'आप युद्धमें शल्यको मार डालिये' उन जगदीश्वरका कथन व्यर्थ तो नहीं होना चाहिये ॥'

तथा कृते राजनि भीमसेनो
मद्राधिपस्याथ ततो महात्मा ।
छित्त्वा धनुर्वेगवता शरेण
द्वाभ्यामविध्यत् सुभृशं नरेन्द्रम् ॥ २६ ॥

जब मद्रराज शल्यने राजा युधिष्ठिरकी ऐसी दशा कर दी, तब महामनस्वी भीमसेनने एक वेगवान् बाणद्वारा उनके धनुषको काट दिया और दो बाणोंसे उन नरेशको भी अत्यन्त घायल कर दिया ॥ २६ ॥

तथापरेणास्य जहार यन्तुः
कायाच्छिरः संहननीयमध्यात् ।
जघान चाश्वांश्चतुरः सुशीघ्रं
तथा भृशं कुपितो भीमसेनः ॥ २७ ॥

तत्पश्चात् अधिक क्रोधमें भरे हुए भीमसेनने दूसरे बाणसे शल्यके सारथिका मस्तक उसके धड़से अलग कर दिया और उनके चारों घोड़ोंको भी शीघ्र ही मार डाला ॥ २७ ॥

तमग्रणीः सर्वधनुर्धराणा-
मेकं चरन्तं समरेऽतिवेगम् ।
भीमः शतेन व्यकिरच्छराणां
माद्रीपुत्रः सहदेवस्तथैव ॥ २८ ॥

इसके बाद सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें अग्रगण्य भीमसेन तथा माद्रीकुमार सहदेवने समराङ्गणमें बड़े वेगसे एकाकी विचरनेवाले शल्यपर सैकड़ों बाणोंकी वर्षा की ॥ २८ ॥

तैः सायकैर्मोहितं वीक्ष्य शल्यं
भीमः शरैरस्य चकर्त वर्म ।
स भीमसेनेन निकृत्तवर्मा
मद्राधिपश्चर्म सहस्रतारम् ॥ २९ ॥
प्रगृह्य खड्गं च रथान्महात्मा
प्रस्कन्द्य कुन्तीसुतमभ्यधावत् ।
छित्त्वा रथेषां नकुलस्य सोऽथ
युधिष्ठिरं भीमबलोऽभ्यधावत् ॥ ३० ॥

उन बाणोंसे शल्यको मोहित हुआ देख भीमसेनने उनके कवचको भी काट डाला । भीमसेनके द्वारा अपना कवच कट जानेपर भयंकर बलशाली महामनस्वी मद्रराज शल्य सहस्र तारोंके चिह्नसे सुशोभित ढाल और तलवार लेकर उस रथसे कूद पड़े और कुन्तीपुत्रकी ओर दौड़े । उन्होंने नकुलके रथका हरसा काटकर युधिष्ठिरपर धावा किया ॥ २९-३० ॥

तं चापि राजानमथोत्पतन्तं
क्रुद्धं यथैवान्तकमापतन्तम् ।
धृष्टद्युम्नो द्रौपदेयाः शिखण्डी
शिनेश्च नप्ता सहसा परीयुः ॥ ३१ ॥

क्रोधमें भरे हुए यमराजके समान उछलकर आनेवाले राजा शल्यको धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पुत्र, शिखण्डी तथा सात्यकिने सहसा चारों ओरसे घेर लिया ॥ ३१ ॥

अथास्य चर्माप्रतिमं न्यकृन्तद्
भीमो महात्मा नवभिः पृषत्कैः ।
खड्गं च भल्लैर्निचकर्त मुष्टौ
नदन् प्रहृष्टस्तव सैन्यमध्ये ॥ ३२ ॥

महामना भीमने नौ बाणोंसे उनकी अनुपम ढालके टुकड़े-टुकड़े कर डाले । फिर आपकी सेनाके बीचमें बड़े हर्षके साथ गर्जना करते हुए उन्होंने अनेक भल्लोंद्वारा उनकी तलवारकी मुट्ठी भी काट डाली ॥ ३२ ॥

तत् कर्म भीमस्य समीक्ष्य हृष्टा-
स्ते पाण्डवानां प्रवरा रथौघाः ।
नादं च चक्रुर्भृशमुत्स्मयन्तः
शङ्खांश्च दध्मुः शशिसंनिकाशान् ॥३३॥

भीमसेनका यह अद्भुत कर्म देखकर पाण्डवदलके श्रेष्ठ रथी बड़े प्रसन्न हुए और वे हँसते हुए जोर-जोरसे सिंहनाद करने तथा चन्द्रमाके समान उज्ज्वल शङ्ख बजाने लगे ॥३३॥

तेनाथ शब्देन विभीषणेन
तथाभितप्तं बलमप्रधृष्यम् ।
कांदिग्भूतं रुधिरेणोक्षिताङ्गं
विसंज्ञकल्पं च तदा विषण्णम् ॥ ३४ ॥

उस भयानक शब्दसे संतप्त हो अजेय कौरवसेना विषादग्रस्त एवं अचेत-सी हो गयी । वह खूनसे लथपथ हो अज्ञात दिशाओंकी ओर भागने लगी ॥ ३४ ॥

स मद्रराजः सहसा विकीर्णो
भीमाग्रगैः पाण्डवयोधमुख्यैः ।
युधिष्ठिरस्याभिमुखं जवेन
सिंहो यथा मृगहेतोः प्रयातः ॥ ३५ ॥

भीम जिनके अगुआ थे, उन पाण्डवपक्षके प्रमुख वीरोंद्वारा बाणोंसे आच्छादित किये गये मद्रराज शल्य सहसा बड़े वेगसे युधिष्ठिरकी ओर दौड़े, मानो कोई सिंह किसी मृगको पकड़नेके लिये झपटा हो ॥ ३५ ॥

स धर्मराजो निहताश्वसूतः
क्रोधेन दीप्तो ज्वलनप्रकाशः ।
दृष्ट्वा च मद्राधिपतिं स तूर्णं
समभ्यधावत् तमरिं बलेन ॥ ३६ ॥

धर्मराज युधिष्ठिरके घोड़े और सारथि मारे गये थे, इसलिये वे क्रोधसे उद्दीप्त हो प्रज्वलित अग्निके समान जान पड़ते थे । उन्होंने अपने शत्रु मद्रराज शल्यको देखकर उनपर बलपूर्वक आक्रमण किया ॥ ३६ ॥

गोविन्दवाक्यं त्वरितं विचिन्त्य
दध्रे मतिं शल्यविनाशनाय ।
स धर्मराजो निहताश्वसूतो
रथे तिष्ठञ्शक्तिमेवाभ्यकाङ्क्षत् ॥३७॥

उस समय श्रीकृष्णके वचनको स्मरण करके उन्होंने शीघ्र ही शल्यको मार डालनेका निश्चय किया । धर्मराजके घोड़े और सारथि तो मारे ही जा चुके थे केवल रथ शेष था; अतः उसीपर खड़े होकर उन्होंने शल्यपर शक्तिके ही प्रयोगका विचार किया ॥ ३७ ॥

तच्चापि शल्यस्य निशम्य कर्म
महात्मनो भागमथावशिष्टम् ।
कृत्वा मनः शल्यवधे महात्मा
यथोक्तमिन्द्रावरजस्य चक्रे ॥ ३८ ॥

महात्मा युधिष्ठिरने महामना शल्यके पूर्वोक्त कर्मको देख-सुनकर और उन्हें अपना ही भाग अवशिष्ट जानकर, जैसा श्रीकृष्णने कहा था उसके अनुसार शल्यके वधका संकल्प किया॥

स धर्मराजो मणिहेमदण्डां
जग्राह शक्तिं कनकप्रकाशाम् ।
नेत्रे च दीप्ते सहसा विवृत्य
मद्राधिपं क्रुद्धमना निरैक्षत् ॥ ३९ ॥

धर्मराजने मणि और सुवर्णमय दण्डसे युक्त तथा सोनेके समान प्रकाशित होनेवाली शक्ति हाथमें ली और मन-ही-मन कुपित हो सहसा रोषसे जलती हुई आँखें फाड़कर मद्रराज शल्यकी ओर देखा ॥ ३९ ॥

निरीक्षितोऽसौ नरदेव राज्ञा
पूतात्मना निहतकल्मषेण ।
आसीन्न यद् भस्मसान्मद्रराज-
स्तदद्भुतं मे प्रतिभाति राजन् ॥ ४० ॥

नरदेव ! पापरहित, पवित्र अन्तःकरणवाले, राजा युधिष्ठिरके रोषपूर्वक देखनेपर भी मद्रराज शल्य जलकर भस्म नहीं हो गये, यह मुझे अद्भुत बात जान पड़ती है ॥ ४० ॥

ततस्तु शक्तिं रुचिरोग्रदण्डां
मणिप्रवेकोज्ज्वलितां प्रदीप्ताम् ।
चिक्षेप वेगात् सुभृशं महात्मा
मद्राधिपाय प्रवरः कुरूणाम् ॥ ४१ ॥

तदनन्तर कौरव-शिरोमणि महात्मा युधिष्ठिरने सुन्दर एवं भयंकर दण्डवाली तथा उत्तम मणियोंसे जटित होनेके कारण प्रज्वलित दिखायी देनेवाली उस देदीप्यमान शक्तिको मद्रराज शल्यके ऊपर बड़े वेगसे चलाया ॥ ४१ ॥

दीप्तामथैनां प्रहितां बलेन
सविस्फुलिङ्गां सहसा पतन्तीम् ।
प्रैक्षन्त सर्वे कुरवः समेता
दिवो युगान्ते महतीमिवोल्काम् ॥ ४२ ॥

बलपूर्वक फेंकी जानेसे प्रज्वलित हुई तथा आगकी चिनगारियाँ छोड़ती हुई उस शक्तिको, वहाँ आये हुए समस्त कौरवोंने प्रलयकालमें आकाशसे गिरनेवाली बड़ी भारी उल्काके समान सहसा शल्यपर गिरती देखा ॥ ४२ ॥

तां कालरात्रीमिव पाशहस्तां
यमस्य धात्रीमिव चोग्ररूपाम् ।
स ब्रह्मदण्डप्रतिमाममोघां
ससर्ज यत्तो युधि धर्मराजः ॥ ४३ ॥

वह शक्ति पाश हाथमें लिये हुए कालरात्रिके समान उग्र, यमराजकी धायके समान भयंकर तथा ब्रह्मदण्डके समान अमोघ थी । धर्मराजने बड़े यत्न और सावधानीके साथ युद्धमें उसका प्रयोग किया था ॥ ४३ ॥

गन्धस्रगग्र्यासनपानभोजनै-
रभ्यर्चितां पाण्डुसुतैः प्रयत्नात् ।
सांवर्तकाग्निप्रतिमां ज्वलन्तीं
कृत्यामथर्वाङ्गिरसीमिवोग्राम् ॥ ४४ ॥

पाण्डवोंने गन्ध (चन्दन), माला, उत्तम आसन, पेय-पदार्थ और भोजन आदि अर्पण करके सदा प्रयत्नपूर्वक उसकी पूजा की थी। वह प्रलयकालिक संवर्तक नामक अग्निके समान प्रज्वलित होती और अथर्वाङ्गिरस मन्त्रोंसे प्रकट की गयी कृत्याके समान अत्यन्त भयंकर जान पड़ती थी ॥४४॥

ईशानहेतोः प्रतिनिर्मितां तां
त्वष्ट्रा रिपूणामसुदेहभक्ष्याम् ।
भूम्यन्तरिक्षादिजलाशयानि
प्रसह्य भूतानि निहन्तुमीशाम् ॥ ४५ ॥

त्वष्टा प्रजापति (विश्वकर्मा) ने भगवान् शंकरके लिये उस शक्तिका निर्माण किया था । वह शत्रुओंके प्राण और शरीरको अपना ग्रास बना लेनेवाली थी तथा जल, थल एवं आकाश आदिमें रहनेवाले प्राणियोंको भी बलपूर्वक मार डालनेमें समर्थ थी ॥ ४५ ॥

घण्टापताकामणिवज्रभाजं
वैदूर्यचित्रां तपनीयदण्डाम् ।
त्वष्ट्रा प्रयत्नान्नियमेन क्लृप्तां
ब्रह्मद्विषामन्तकरीममोघाम् ॥ ४६ ॥

उसमें छोटी-छोटी घंटियाँ और पताकाएँ लगी थीं, मणि और हीरे जड़े गये थे, वैदूर्यमणिके द्वारा उसे चित्रित किया गया था । उस शक्तिका दण्ड तपाये हुए सुवर्णका बना था । विश्वकर्माने नियमपूर्वक रहकर बड़े प्रयत्नसे उसको बनाया था । वह ब्रह्मद्रोहियोंका विनाश करनेवाली तथा लक्ष्य वेधनेमें अचूक थी ॥ ४६ ॥

बलप्रयत्नादधिरूढवेगां
मन्त्रैश्च घोरैरभिमन्त्र्य यत्नात् ।
ससर्ज मार्गेण च तां परेण
वधाय मद्राधिपतेस्तदानीम् ॥ ४७ ॥

बल और प्रयत्नके द्वारा उसका वेग बहुत बढ़ गया था, युधिष्ठिरने उस समय मद्रराजका वध करनेके लिये उसे घोर मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके उत्तम मार्गके द्वारा प्रयत्नपूर्वक छोड़ा था ॥ ४७ ॥

हतोऽसि पापेत्यभिगर्जमानो
रुद्रोऽन्धकायान्तकरं यथेषुम् ।
प्रसार्य बाहुं सुदृढं सुपाणिं
क्रोधेन नृत्यन्निव धर्मराजः ॥ ४८ ॥

जैसे रुद्रने अन्धकासुरपर प्राणान्तकारी बाण छोड़ा था, उसी प्रकार क्रोधसे नृत्य-सा करते हुए धर्मराज युधिष्ठिरने सुन्दर हाथवाली अपनी सुदृढ़ बाँह फैलाकर वह शक्ति शल्यपर चला दी और गरजते हुए कहा—'ओ पापी ! तू मारा गया' ॥

(स्फुरत्प्रभामण्डलमंशुजालै-
र्धर्मात्मनो मद्रविनाशकाले ।
पुरत्रयप्रोत्सरणे पुरस्ता-
न्माहेश्वरं रूपमभूत् तदानीम् ॥)

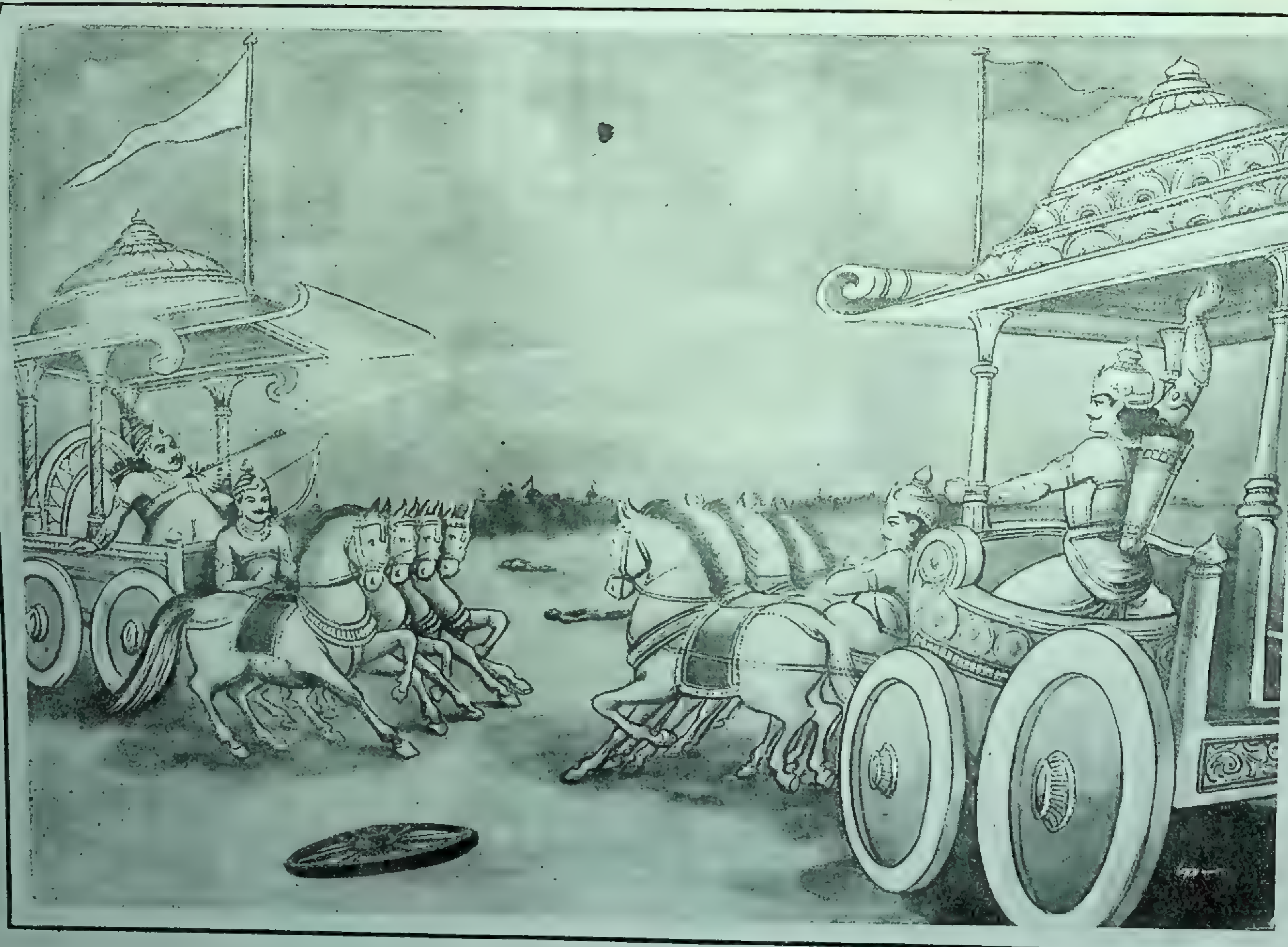
पूर्वकालमें त्रिपुरोंका विनाश करते समय भगवान् महेश्वरका जैसा स्वरूप प्रकट हुआ था, वैसा ही शल्यके संहारकालमें उस समय धर्मात्मा युधिष्ठिरका रूप जान पड़ता था । वे अपने किरणसमूहोंसे प्रभाका पुञ्ज बिखेर रहे थे ॥

तां सर्वशक्त्या प्रहितां सुशक्तिं
युधिष्ठिरेणाप्रतिवार्यवीर्याम् ।
प्रतिग्रहायाभिननर्द शल्यः
सम्यग्घुतामग्निरिवाज्यधाराम् ॥ ४९ ॥

युधिष्ठिरने उस उत्तम शक्तिको अपना सारा बल लगाकर चलाया था । इसके सिवा, उसके बल और प्रभावको रोकना किसीके लिये भी असम्भव था तो भी उसकी चोट सहनेके लिये मद्रराज शल्य गरज उठे, मानो हवन की हुई घृतधाराको ग्रहण करनेके लिये अग्निदेव प्रज्वलित हो उठे हों ॥४९॥

सा तस्य मर्माणि विदार्य शुभ्र-
मुरो विशालं च तथैव भित्त्वा ।
विवेश गां तोयमिवाप्रसक्ता
यशो विशालं नृपतेर्दहन्ती ॥ ५० ॥

परंतु वह शक्ति राजा शल्यके मर्मस्थानोंको विदीर्ण करके उनके उज्ज्वल एवं विशाल वक्षःस्थलको चीरती तथा विस्तृत



युधिष्ठिरद्वारा शल्यपर शक्तिका घातक प्रहार

यशको दग्ध करती हुई जलकी भाँति धरतीमें समा गयी। उसकी गति कहीं भी कुण्ठित नहीं होती थी ॥ ५० ॥

नासाक्षिकर्णास्यविनिःसृतेन
प्रस्यन्दता च व्रणसम्भवेन।
संसिक्तगात्रो रुधिरेण सोऽभूत्
क्रौञ्चो यथा स्कन्दहतो महाद्रिः ॥ ५१ ॥

जैसे कार्तिकेयकी शक्तिसे आहत हुआ महापर्वत क्रौञ्च गेरूमिश्रित झरनोंके जलसे भीग गया था, उसी प्रकार नाक, आँख, कान और मुखसे निकले तथा घावोंसे बहते हुए खूनसे शल्यका सारा शरीर नहा गया ॥ ५१ ॥

प्रसार्य बाहू च रथाद् गतो गां
संछिन्नवर्मा कुरुनन्दनेन।
महेन्द्रवाहप्रतिमो महात्मा
वज्राहतं शृङ्गमिवाचलस्य ॥ ५२ ॥

कुरुनन्दन! भीमसेनने जिनके कवचको छिन्न-भिन्न कर डाला था, वे इन्द्रके ऐरावत हाथीके समान विशालकाय राजा शल्य दोनों बाहें फैलाकर वज्रके मारे हुए पर्वत-शिखरकी भाँति रथसे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ५२ ॥

बाहू प्रसार्याभिमुखो धर्मराजस्य मद्रराट्।
ततो निपतितो भूमाविन्द्रध्वज इवोच्छ्रितः ॥ ५३ ॥

मद्रराज शल्य धर्मराज युधिष्ठिरके सामने ही अपनी दोनों भुजाओंको फैलाकर ऊँचे इन्द्रध्वजके समान धराशायी हो गये ॥ ५३ ॥

स तथा भिन्नसर्वाङ्गो रुधिरेण समुक्षितः।
प्रत्युद्गत इव प्रेम्णा भूम्या स नरपुङ्गवः ॥ ५४ ॥
प्रियया कान्तया कान्तः पतमान इवोरसि।

उनके सारे अङ्ग विदीर्ण हो गये थे तथा वे खूनसे नहा उठे थे। जैसे प्रियतमा कामिनी अपने वक्षःस्थलपर गिरनेकी इच्छावाले प्रियतमका प्रेमपूर्वक स्वागत करती है, उसी प्रकार पृथ्वीने अपने ऊपर गिरते हुए नरश्रेष्ठ शल्यको मानो प्रेमपूर्वक आगे बढ़कर अपनाया था ॥ ५४½ ॥

चिरं भुक्त्वा वसुमतीं प्रियां कान्तामिव प्रभुः ॥ ५५ ॥
सर्वैरङ्गैः समाश्लिष्य प्रसुप्त इव चाभवत्।

प्रियतमा कान्ताकी भाँति इस वसुधाका चिरकालतक उपभोग करनेके पश्चात् राजा शल्य मानो अपने सम्पूर्ण अङ्गोंसे उसका आलिङ्गन करके सो गये थे ॥ ५५½ ॥

धर्म्ये धर्मात्मना युद्धे निहतो धर्मसूनुना ॥ ५६ ॥
सम्यग्घुत इव स्विष्टः प्रशान्तोऽग्निरिवाध्वरे।

उस धर्मानुकूल युद्धमें धर्मात्मा धर्मपुत्र युधिष्ठिरके द्वारा मारे गये राजा शल्य यज्ञमें विधिपूर्वक घीकी आहुति पाकर शान्त होनेवाली 'स्विष्टकृत्' अग्निके समान सर्वथा शान्त हो गये ॥ ५६½ ॥

शक्त्या विभिन्नहृदयं विप्रविद्धायुधध्वजम् ॥ ५७ ॥
संशान्तमपि मद्रेशं लक्ष्मीर्नैव विमुञ्चति।

शक्तिने राजा शल्यके वक्षःस्थलको विदीर्ण कर डाला था, उनके आयुध तथा ध्वज छिन्न-भिन्न हो बिखरे पड़े थे और वे सदाके लिये शान्त हो गये थे तो भी मद्रराजको लक्ष्मी (शोभा या कान्ति) छोड़ नहीं रही थी ॥ ५७½ ॥

ततो युधिष्ठिरश्चापमादायेन्द्रधनुष्प्रभम् ॥ ५८ ॥
व्यधमद् द्विषतः संख्ये खगराडिव पन्नगान्।
देहान् सुनिशितैर्भल्लै रिपूणां नाशयन् क्षणात् ॥ ५९ ॥

तदनन्तर युधिष्ठिरने इन्द्रधनुषके समान कान्तिमान् दूसरा धनुष लेकर सर्पोंका संहार करनेवाले गरुड़की भाँति युद्धस्थलमें तीखे भल्लोंद्वारा शत्रुओंके शरीरोंका नाश करते हुए क्षणभरमें उन सबका विध्वंस कर दिया ॥ ५८-५९ ॥

ततः पार्थस्य बाणौघैरावृताः सैनिकास्तव।
निमीलिताक्षाः क्षिण्वन्तो भृशमन्योन्यमर्दिताः ॥ ६० ॥
क्षरन्तो रुधिरं देहैर्विपन्नायुधजीविताः।

युधिष्ठिरके बाणसमूहोंसे आच्छादित हुए आपके सैनिकोंने आँखें मीच लीं और आपसमें ही एक-दूसरेको घायल करके वे अत्यन्त पीडित हो गये। उस समय शरीरोंसे रक्तकी धारा बहाते हुए वे अपने अस्त्र-शस्त्र और जीवनसे भी हाथ धो बैठे॥

ततः शल्ये निपतिते मद्रराजानुजो युवा ॥ ६१ ॥
भ्रातुस्तुल्यो गुणैः सर्वै रथी पाण्डवमभ्ययात्।

तदनन्तर, मद्रराज शल्यके मारे जानेपर उनका छोटा भाई, जो अभी नवयुवक था और सभी गुणोंमें अपने भाईकी ही समानता करता था, रथपर आरूढ हो पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरपर चढ़ आया ॥ ६१½ ॥

विव्याध च नरश्रेष्ठो नाराचैर्बहुभिस्त्वरन् ॥ ६२ ॥
हतस्यापचितिं भ्रातुश्चिकीर्षुर्युद्धदुर्मदः।

मारे गये भाईका प्रतिशोध लेनेकी इच्छासे वह रणदुर्मद नरश्रेष्ठ वीर बड़ी उतावलीके साथ उन्हें बहुत-से नाराचोंद्वारा घायल करने लगा ॥ ६२½ ॥

तं विव्याधाशुगैः षड्भिर्धर्मराजस्त्वरन्निव ॥ ६३ ॥
कार्मुकं चास्य चिच्छेद क्षुराभ्यां ध्वजमेव च।

तब धर्मराजने उसे शीघ्रतापूर्वक छः बाणोंसे बींध डाला तथा दो क्षुरोंसे उसके धनुष और ध्वजको काट दिया ॥

ततोऽस्य दीप्यमानेन सुदृढेन शितेन च ॥ ६४ ॥
प्रमुखे वर्तमानस्य भल्लेनापाहरच्छिरः।

तत्पश्चात् एक चमकीले, सुदृढ़ और तीखे भल्लसे सामने खड़े हुए उस राजकुमारके मस्तकको काट गिराया ॥६४½॥

सकुण्डलं तद् ददृशे पतमानं शिरो रथात् ॥ ६५ ॥
पुण्यक्षयमनुप्राप्य पतन् स्वर्गादिव च्युतः।

पुण्य समाप्त होनेपर स्वर्गसे भ्रष्ट हो नीचे गिरनेवाले जीवकी भाँति उसका वह कुण्डलसहित मस्तक रथसे भूतलपर गिरता देखा गया ॥ ६५½ ॥

तस्यापकृत्तशीर्षं तु शरीरं पतितं रथात् ॥ ६६ ॥
रुधिरेणावसिक्ताङ्गं दृष्ट्वा सैन्यमभज्यत।

फिर खूनसे लथपथ हुआ उसका शरीर भी, जिसका सिर काट लिया गया था, रथसे नीचे गिर पड़ा। उसे देखकर आपकी सेनामें भगदड़ मच गयी ॥ ६६½ ॥

विचित्रकवचे तस्मिन् हते मद्रनृपानुजे ॥ ६७ ॥
हाहाकारं प्रकुर्वाणाः कुरवोऽभिप्रदुद्रुवुः ।

मद्रनरेशका वह छोटा भाई विचित्र कवचसे सुशोभित था, उसके मारे जानेपर समस्त कौरव हाहाकार करते हुए भाग चले ॥ ६७½ ॥

शल्यानुजं हतं दृष्ट्वा तावकास्त्यक्तजीविताः ॥ ६८ ॥
वित्रेसुः पाण्डवभयाद् रजोध्वस्तास्तदा भृशम् ।

शल्यके भाईको मारा गया देख धूलिधूसरित हुए आपके सारे सैनिक पाण्डुपुत्रके भयसे जीवनकी आशा छोड़कर अत्यन्त त्रस्त हो गये ॥ ६८½ ॥

तांस्तथा भज्यमानांस्तु कौरवान् भरतर्षभ ॥ ६९ ॥
शिनेर्नप्ता किरन् बाणैरभ्यवर्तत सात्यकिः ।

भरतश्रेष्ठ! इस प्रकार भागते हुए उन कौरवयोद्धाओंपर बाणोंकी वर्षा करते हुए शिनि-पौत्र सात्यकि उनका पीछा करने लगे ॥ ६९½ ॥

तमायान्तं महेष्वासं दुष्प्रसह्यं दुरासदम् ॥ ७० ॥
हार्दिक्यस्त्वरितो राजन् प्रत्यगृह्णादभीतवत् ।

राजन्! दुःसह एवं दुर्जय महाधनुर्धर सात्यकिको आक्रमण करते देख कृतवर्माने शीघ्रतापूर्वक एक निर्भय वीरकी भाँति उन्हें रोका ॥ ७०½ ॥

तौ समेतौ महात्मानौ वार्ष्णेयौ वरवाजिनौ ॥ ७१ ॥
हार्दिक्यः सात्यकिश्चैव सिंहाविव बलोत्कटौ ।

श्रेष्ठ घोड़ोंवाले वे महामनस्वी वृष्णिवंशी वीर सात्यकि और कृतवर्मा दो बलोन्मत्त सिंहोंके समान एक दूसरेसे भिड़ गये ॥ ७१½ ॥

इषुभिर्विमलाभासैश्छादयन्तौ परस्परम् ॥ ७२ ॥
अर्चिर्भिरिव सूर्यस्य दिवाकरसमप्रभौ ।

सूर्यके समान तेजस्वी वे दोनों वीर दिनकरकी किरणोंके सदृश निर्मल कान्तिवाले बाणोंद्वारा एक दूसरेको आच्छादित करने लगे ॥ ७२½ ॥

चापमार्गबलोद्धूतान् मार्गणान् वृष्णिसिंहयोः ॥ ७३ ॥
आकाशगानपश्याम पतङ्गानिव शीघ्रगान् ।

वृष्णिवंशके उन दोनों सिंहोंके धनुषद्वारा बलपूर्वक चलाये हुए शीघ्रगामी बाणोंको हमने टिड्डीदलोंके समान आकाशमें व्याप्त हुआ देखा था ॥ ७३½ ॥

सात्यकिं दशभिर्विद्ध्वा हयांश्चास्य त्रिभिः शरैः ॥ ७४ ॥
चापमेकेन चिच्छेद हार्दिक्यो नतपर्वणा ।

कृतवर्माने दस बाणोंसे सात्यकिको तथा तीनसे उनके घोड़ोंको घायल करके झुकी हुई गाँठवाले एक बाणसे उनके धनुषको भी काट दिया ॥ ७४½ ॥

तन्निकृत्तं धनुः श्रेष्ठमपास्य शिनिपुङ्गवः ॥ ७५ ॥
अन्यदादत्त वेगेन वेगवत्तरमायुधम् ।

उस कटे हुए श्रेष्ठ धनुषको फेंककर शिनिप्रवर सात्यकिने उससे भी अत्यन्त वेगशाली दूसरा धनुष शीघ्रतापूर्वक हाथमें ले लिया ॥ ७५½ ॥

तदादाय धनुः श्रेष्ठं वरिष्ठः सर्वधन्विनाम् ॥ ७६ ॥
हार्दिक्यं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे ।

उस श्रेष्ठ धनुषको लेकर सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें अग्रगण्य सात्यकिने कृतवर्माकी छातीमें दस बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी ॥ ७६½ ॥

ततो रथं युगेषां च च्छित्त्वा भल्लैः सुसंयतैः ॥ ७७ ॥
अश्वांस्तस्यावधीत् तूर्णमुभौ च पार्ष्णिसारथी ।

तत्पश्चात् सुसंयत भल्लोंके प्रहारसे उसके रथ, जूए और ईषादण्ड (हरसे) को काटकर शीघ्र ही घोड़ों तथा दोनों पार्श्वरक्षकोंको भी मार डाला ॥ ७७½ ॥

ततस्तं विरथं दृष्ट्वा कृपः शारद्वतः प्रभो ॥ ७८ ॥
अपोवाह ततः क्षिप्रं रथमारोप्य वीर्यवान् ।

प्रभो! कृतवर्माको रथहीन हुआ देख शरद्वान्के पराक्रमी पुत्र कृपाचार्य उसे शीघ्र ही अपने रथपर बिठाकर वहाँसे दूर हटा ले गये ॥ ७८½ ॥

मद्रराजे हते राजन् विरथे कृतवर्मणि ॥ ७९ ॥
दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत् पराङ्मुखम् ।

राजन्! जब मद्रराज मारे गये और कृतवर्मा भी रथहीन हो गया, तब दुर्योधनकी सारी सेना पुनः युद्धसे मुँह मोड़कर भागने लगी ॥ ७९½ ॥

तत् परे नान्वबुध्यन्त सैन्येन रजसा वृते ॥ ८० ॥
बलं तु हतभूयिष्ठं तत् तदाऽऽसीत् पराङ्मुखम् ।

परंतु वहाँ सब ओर धूल छा रही थी, इसलिये शत्रुओंको इस बातका पता न चला । अधिकांश योद्धाओंके मारे जानेसे उस समय वह सारी सेना युद्धसे विमुख हो गयी थी ॥ ८०½ ॥

ततो मुहूर्तात् तेऽपश्यन् रजो भीमं समुत्थितम् ॥ ८१ ॥
विविधैः शोणितस्रावैः प्रशान्तं पुरुषर्षभ ।

पुरुषप्रवर! तदनन्तर दो ही घड़ीमें उन सबने देखा कि धरतीकी जो धूल ऊपर उड़ रही थी, वह नाना प्रकारके रक्तका स्रोत बहनेसे शान्त हो गयी है ॥ ८१½ ॥

ततो दुर्योधनो दृष्ट्वा भग्नं स्वबलमन्तिकात् ॥ ८२ ॥
जवेनापततः पार्थानेकः सर्वानवारयत् ।

उस समय दुर्योधनने यह देखकर कि मेरी सेना मेरे पाससे भाग गयी है, वेगसे आक्रमण करनेवाले समस्त पाण्डवयोद्धाओंको अकेले ही रोका ॥ ८२½ ॥

पाण्डवान् सरथान् दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ॥ ८३ ॥
आनर्तं च दुराधर्षं शितैर्बाणैरवारयत् ।

रथसहित पाण्डवोंको, द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नको तथा दुर्जय वीर आनर्तनरेशको सामने देखकर उसने तीखे बाणोंद्वारा उन सबको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ८३½ ॥

तं परे नाभ्यवर्तन्त मर्त्या मृत्युमिवागतम् ॥ ८४ ॥
अथान्यं रथमास्थाय हार्दिक्योऽपि न्यवर्तत ।

जैसे मरणधर्मा मनुष्य पास आयी हुई अपनी मौतको नहीं टाल सकते, उसी प्रकार वे शत्रुपक्षके सैनिक दुर्योधनको

लाँघकर आगे न बढ़ सके। इसी समय कृतवर्मा भी दूसरे रथपर आरूढ़ हो पुनः वहीं लौट आया ॥ ८४½ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा त्वरमाणो महारथः ॥ ८५ ॥
चतुर्भिर्निजघानाश्वान् पत्रिभिः कृतवर्मणः।
विव्याध गौतमं चापि षड्भिर्भल्लैः सुतेजनैः ॥ ८६ ॥

तब महारथी राजा युधिष्ठिरने बड़ी उतावलीके साथ चार बाण मारकर कृतवर्माके चारों घोड़ोंका संहार कर डाला तथा छः तेज धारवाले भल्लोंसे कृपाचार्यको भी घायल कर दिया ॥ ८५-८६ ॥

अश्वत्थामा ततो राज्ञा हताश्वं विरथीकृतम्।
तमपोवाह हार्दिक्यं स्वरथेन युधिष्ठिरात् ॥ ८७ ॥

इसके बाद अश्वत्थामा अपने रथके द्वारा घोड़ोंके मारे जानेसे रथहीन हुए कृतवर्माको राजा युधिष्ठिरके पाससे दूर हटा ले गया ॥ ८७ ॥

ततः शारद्वतः षड्भिः प्रत्यविद्धयद् युधिष्ठिरम्।
विव्याध चाश्वान्निशितैस्तस्याष्टाभिः शिलीमुखैः॥८८॥

तब कृपाचार्यने छः बाणोंसे राजा युधिष्ठिरको बींध डाला और आठ पैने बाणोंसे उनके घोड़ोंको भी घायल कर दिया ॥

एवमेतन्महाराज युद्धशेषमवर्तत।
तव दुर्मन्त्रिते राजन् सह पुत्रस्य भारत ॥ ८९ ॥

महाराज! भरतवंशी नरेश! इस प्रकार पुत्रसहित आपकी कुमन्त्रणासे इस युद्धका अन्त हुआ ॥ ८९ ॥

तस्मिन् महेष्वासवरे विशस्ते
संग्राममध्ये कुरुपुङ्गवेन।
पार्थाः समेताः परमप्रहृष्टाः
शङ्खान् प्रदध्मुर्हतमीक्ष्य शल्यम्॥ ९० ॥

कुरुकुलशिरोमणि युधिष्ठिरके द्वारा युद्धमें श्रेष्ठ महाधनुर्धर शल्यके मारे जानेपर कुन्तीके सभी पुत्र एकत्र हो अत्यन्त हर्षमें भर गये और शल्यको मारा गया देख शङ्ख बजाने लगे ॥ ९० ॥

युधिष्ठिरं च प्रशशंसुराजौ
पुरा कृते वृत्रवधे यथेन्द्रम्।
चक्रुश्च नानाविधवाद्यशब्दान्
निनादयन्तो वसुधां समेताः ॥ ९१ ॥

जैसे पूर्वकालमें वृत्रासुरका वध करनेपर देवताओंने इन्द्रकी स्तुति की थी, उसी प्रकार सब पाण्डवोंने रणभूमिमें युधिष्ठिरकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और पृथ्वीको प्रतिध्वनित करते हुए वे सब लोग नाना प्रकारके वाद्योंकी ध्वनि फैलाने लगे ॥ ९१ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्यवधे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें शल्यका वधविषयक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३ श्लोक मिलाकर कुल ९४ श्लोक हैं)

अष्टादशोऽध्यायः

मद्रराजके अनुचरोंका वध और कौरवसेनाका पलायन

संजय उवाच

शल्येऽथ निहते राजन् मद्रराजपदानुगाः।
रथाः सप्तशता वीरा निर्ययुर्महतो बलात् ॥ १ ॥
दुर्योधनस्तु द्विरदमारुह्याचलसंनिभम्।
छत्रेण ध्रियमाणेन वीज्यमानश्च चामरैः ॥ २ ॥
न गन्तव्यं न गन्तव्यमिति मद्रानवारयत्।
दुर्योधनेन ते वीरा वार्यमाणाः पुनः पुनः ॥ ३ ॥
युधिष्ठिरं जिघांसन्तः पाण्डूनां प्राविशन् बलम्।

संजय कहते हैं—राजन्! मद्रराज शल्यके मारे जानेपर उनके अनुगामी सात सौ वीर रथी विशाल कौरव-सेनासे निकल पड़े। उस समय दुर्योधन पर्वताकार हाथीपर आरूढ़ हो सिरपर छत्र धारण किये चामरोंसे वीजित होता हुआ वहाँ आया और 'न जाओ, न जाओ' ऐसा कहकर उन मद्रदेशीय वीरोंको रोकने लगा; परंतु दुर्योधनके बारंबार रोकनेपर भी वे वीर योद्धा युधिष्ठिरके वधकी इच्छासे पाण्डवोंकी सेनामें जा घुसे ॥ १—३½ ॥

ते तु शूरा महाराज कृतचित्ताश्च योधने ॥ ४ ॥
धनुःशब्दं महत् कृत्वा सहायुध्यन्त पाण्डवैः।

महाराज! उन शूरवीरोंने युद्ध करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया था, अतः धनुषकी गम्भीर टंकार करके पाण्डवोंके साथ संग्राम आरम्भ कर दिया ॥ ४½ ॥

श्रुत्वा च निहतं शल्यं धर्मपुत्रं च पीडितम् ॥ ५ ॥
मद्रराजप्रिये युक्तैर्मद्रकाणां महारथैः।
आजगाम ततः पार्थो गाण्डीवं विक्षिपन् धनुः ॥ ६ ॥
पूरयन् रथघोषेण दिशः सर्वा महारथः।

शल्य मारे गये और मद्रराजका प्रिय करनेमें लगे हुए मद्रदेशीय महारथियोंने धर्मपुत्र युधिष्ठिरको पीडित कर रखा है; यह सुनकर कुन्तीपुत्र महारथी अर्जुन गाण्डीव धनुषकी टंकार करते और रथके गम्भीर घोषसे सम्पूर्ण दिशाओंको परिपूर्ण करते हुए वहाँ आ पहुँचे ॥ ५-६½ ॥

ततोऽर्जुनश्च भीमश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ ७ ॥
सात्यकिश्च नरव्याघ्रो द्रौपदेयाश्च सर्वशः।
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च पञ्चालाः सह सोमकैः॥ ८ ॥
युधिष्ठिरं परीप्सन्तः समन्तात् पर्यवारयन्।

तदनन्तर अर्जुन, भीमसेन, माद्रीपुत्र पाण्डुकुमार नकुल, सहदेव, पुरुषसिंह सात्यकि, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, पाञ्चाल और सोमक वीर—इन सबने युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये उन्हें चारों ओरसे घेर लिया ७-८½

ते समन्तात् परिवृताः पाण्डवाः पुरुषर्षभाः ॥ ९ ॥
क्षोभयन्ति स्म तां सेनां मकराः सागरं यथा।

युधिष्ठिरको सब ओरसे घेरकर खड़े हुए पुरुषप्रवर पाण्डव उस सेनाको उसी प्रकार क्षुब्ध करने लगे, जैसे मगर समुद्रको ॥ ९½ ॥

वृक्षानिव महावाताः कम्पयन्ति स्म तावकान् ॥ १० ॥
पुरोवातेन गङ्गेव क्षोभ्यमाणा महानदी ।
अक्षोभ्यत तदा राजन् पाण्डूनां ध्वजिनी ततः ॥ ११ ॥

जैसे महावायु (आँधी) वृक्षोंको हिला देती है, उसी प्रकार पाण्डव-वीरोंने आपके सैनिकोंको कम्पित कर दिया । राजन् ! जैसे पूर्वी हवा महानदी गङ्गाको क्षुब्ध कर देती है, उसी प्रकार उन सैनिकोंने पाण्डवोंकी सेनामें भी हलचल मचा दी ॥ १०-११ ॥

प्रस्कन्द्य सेनां महतीं महात्मानो महारथाः ।
बहवश्चुक्रुशुस्तत्र क्व स राजा युधिष्ठिरः ॥ १२ ॥
भ्रातरो वास्य ते शूरा दृश्यन्ते नेह केन च ।

वे बहुसंख्यक महामनस्वी मद्रमहारथी विशाल पाण्डव-सेनाको मथकर जोर-जोरसे पुकार-पुकारकर कहने लगे— 'कहाँ है वह राजा युधिष्ठिर ? अथवा उसके वे शूरवीर भाई ? वे सब यहाँ दिखायी क्यों नहीं देते ? ॥ १२½ ॥

धृष्टद्युम्नोऽथ शैनेयो द्रौपदेयाश्च सर्वशः ॥ १३ ॥
पञ्चालाश्च महावीर्याः शिखण्डी च महारथः ।

'धृष्टद्युम्न, सात्यकि, द्रौपदीके सभी पुत्र, महापराक्रमी पाञ्चाल और महारथी शिखण्डी—ये सब कहाँ हैं ?' ॥ १३½ ॥

एवं तान् वादिनः शूरान् द्रौपदेया महारथाः ॥ १४ ॥
अभ्यघ्नन् युयुधानश्च मद्रराजपदानुगान् ।

ऐसी बातें कहते हुए उन मद्रराजके अनुगामी वीर योद्धाओंको द्रौपदीके महारथी पुत्रों और सात्यकिने मारना आरम्भ किया ॥ १४½ ॥

चक्रैर्विमथितैः केचित् केचिच्छिन्नैर्महाध्वजैः ॥ १५ ॥
ते दृश्यन्तेऽपि समरे तावका निहताः परैः ।

समराङ्गणमें आपके वे सैनिक शत्रुओंद्वारा मारे जाने लगे । कुछ योद्धा छिन्न-भिन्न हुए रथके पहियों और कुछ कटे हुए विशाल ध्वजोंके साथ ही धराशायी होते दिखायी देने लगे ॥ १५½ ॥

आलोक्य पाण्डवान् युद्धे योधा राजन् समन्ततः ॥ १६ ॥
वार्यमाणा ययुर्वेगात् पुत्रेण तव भारत ।

राजन् ! भरतनन्दन ! वे योद्धा युद्धमें सब ओर फैले हुए पाण्डवोंको देखकर आपके पुत्रके मना करनेपर भी वेग-पूर्वक आगे बढ़ गये ॥ १६½ ॥

दुर्योधनश्च तान् वीरान् वारयामास सान्त्वयन् ॥ १७ ॥
न चास्य शासनं केचित्तत्र चक्रुर्महारथाः ।

दुर्योधनने उन वीरोंको सान्त्वना देते हुए बहुत मना किया, किंतु वहाँ किन्हीं महारथियोंने उसकी इस आज्ञाका पालन नहीं किया ॥ १७½ ॥

ततो गान्धारराजस्य पुत्रः शकुनिरब्रवीत् ॥ १८ ॥
दुर्योधनं महाराज वचनं वचनक्षमः ।

महाराज ! तब प्रवचनपटु गान्धारराजपुत्र शकुनिने दुर्योधनसे यह बात कही—॥ १८½ ॥

किं नः सम्प्रेक्षमाणानां मद्राणां हन्यते बलम् ॥ १९ ॥
न युक्तमेतत् समरे त्वयि तिष्ठति भारत ।

'भारत ! हमलोगोंके देखते-देखते मद्रदेशकी यह सेना क्यों मारी जाती है ? तुम्हारे रहते ऐसा कदापि नहीं होना चाहिये ॥ १९½ ॥

सहितैश्चापि योद्धव्यमित्येष समयः कृतः ॥ २० ॥
अथ कस्मात् परानेव घ्नतो मर्षयसे नृप ।

'यह शपथ ली जा चुकी है कि 'हम सब लोग एक साथ होकर लड़ें ।' नरेश्वर ! ऐसी दशामें शत्रुओंको अपनी सेनाका संहार करते देखकर भी तुम क्यों सहन करते हो ?' ॥ २०½ ॥

दुर्योधन उवाच

वार्यमाणा मया पूर्वं नैते चक्रुर्वचो मम ॥ २१ ॥
एते विनिहताः सर्वे प्रस्कन्नाः पाण्डुवाहिनीम् ।

दुर्योधनने कहा—मैंने पहले ही इन्हें बहुत मना किया था, परंतु इन लोगोंने मेरी बात नहीं मानी और पाण्डवसेनामें घुसकर ये प्रायः सब-के-सब मारे गये ॥ २१½ ॥

शकुनिरुवाच

न भर्तुः शासनं वीरा रणे कुर्वन्त्यमर्षिताः ॥ २२ ॥
अलं क्रोद्धुमथैतेषां नायं काल उपेक्षितुम् ।
यामः सर्वे च सम्भूय सवाजिरथकुञ्जराः ॥ २३ ॥
परित्रातुं महेष्वासान् मद्रराजपदानुगान् ।
अन्योन्यं परिरक्षामो यत्नेन महता नृप ॥ २४ ॥

शकुनि बोला—नरेश्वर ! युद्धस्थलमें रोषामर्षके वशीभूत हुए वीर स्वामीकी आज्ञाका पालन नहीं करते हैं; वैसी दशामें इनपर क्रोध करना उचित नहीं है । यह इनकी उपेक्षा करनेका समय नहीं है । हम सब लोग एक साथ हो मद्रराजके महाधनुर्धर सेवकोंकी रक्षाके लिये हाथी, घोड़े और रथसहित चलें तथा महान् प्रयत्नपूर्वक एक दूसरेकी रक्षा करें ॥ २२–२४ ॥

संजय उवाच

एवं सर्वेऽनुसंचिन्त्य प्रययुर्यत्र सैनिकाः ।
एवमुक्तस्तदा राजा बलेन महता वृतः ॥ २५ ॥
प्रययौ सिंहनादेन कम्पयन्निव मेदिनीम् ।

संजय कहते हैं—राजन् ! ऐसा विचारकर सब लोग वहीं गये, जहाँ वे सैनिक मौजूद थे । शकुनिके वैसा कहने-पर राजा दुर्योधन विशाल सेनाके साथ सिंहनाद करता और पृथ्वीको कँपाता हुआ-सा आगे बढ़ा ॥ २५½ ॥

हत विद्ध्यत गृह्णीत प्रहरध्वं निकृन्तत ॥ २६ ॥
इत्यासीत् तुमुलः शब्दस्तव सैन्यस्य भारत ।

भारत ! उस समय आपकी सेनामें 'मार डालो, घायल करो, पकड़ लो, प्रहार करो और टुकड़े-टुकड़े कर डालो' का भयंकर शब्द गूँज रहा था ॥ २६½ ॥

पाण्डवास्तु रणे दृष्ट्वा मद्रराजपदानुगान् ॥ २७ ॥
सहितानभ्यवर्तन्त गुल्ममास्थाय मध्यमम् ।

रणभूमिमें मद्रराजके सेवकोंको एक साथ धावा करते देख पाण्डवोंने मध्यम गुल्म (सेना) का आश्रय ले उनका सामना किया ॥ २७½ ॥

ते मुहूर्ताद् रणे वीरा हस्ताहस्ति विशाम्पते ॥ २८ ॥
निहताः प्रत्यदृश्यन्त मद्रराजपदानुगाः ।

प्रजानाथ ! वे मद्रराजके अनुगामी वीर रणभूमिमें दो ही घड़ीके भीतर हाथों-हाथ मारे गये दिखायी दिये ॥२८½॥

ततो नः सम्प्रयातानां हता मद्रास्तरस्विनः ॥ २९ ॥
हृष्टाः किलकिलाशब्दमकुर्वन् सहिताः परे ।

वहाँ हमारे पहुँचते ही मद्रदेशके वे वेगशाली वीर कालके गालमें चले गये और शत्रुसैनिक अत्यन्त प्रसन्न हो एक साथ किलकारियाँ भरने लगे ॥ २९½ ॥

उत्थितानि कबन्धानि समदृश्यन्त सर्वशः ॥ ३० ॥
पपात महती चोल्का मध्येनादित्यमण्डलम् ।

सब ओर कबन्ध खड़े दिखायी दे रहे थे और सूर्यमण्डलके बीचसे वहाँ बड़ी भारी उल्का गिरी ॥ ३०½ ॥

रथैर्भग्नैर्युगाक्षैश्च निहतैश्च महारथैः ॥ ३१ ॥
अश्वैर्निपतितैश्चैव संछन्नाभूद् वसुन्धरा ।

टूटे-फूटे रथों, जूओं और धुरोंसे, मारे गये महारथियोंसे तथा धराशायी हुए घोड़ोंसे भूमि ढक गयी थी ॥ ३१½॥

वातायमानैस्तुरगैर्युगासक्तैस्ततस्ततः ॥ ३२ ॥
अदृश्यन्त महाराज योधास्तत्र रणाजिरे ।

महाराज ! वहाँ समराङ्गणमें बहुत-से योद्धा जूएमें बँधे हुए वायुके समान वेगशाली घोड़ोंद्वारा इधर-उधर ले जाये जाते दिखायी देते थे ॥ ३२½ ॥

भग्नचक्रान् रथान् केचिदहरंस्तुरगा रणे ॥ ३३ ॥
रथार्धं केचिदादाय दिशो दश विबभ्रमुः ।

कुछ घोड़े रणभूमिमें टूटे पहियोंवाले रथोंको लिये जा रहे थे और कितने ही अश्व आधे ही रथको लेकर दसों दिशाओंमें चक्कर लगाते थे ॥ ३३½ ॥

तत्र तत्र व्यदृश्यन्त योक्त्रैः श्लिष्टाः स्म वाजिनः॥३४॥
रथिनः पतमानाश्च दृश्यन्ते स्म नरोत्तमाः ।
गगनात् प्रच्युताः सिद्धाः पुण्यानामिव संक्षये ॥ ३५ ॥

जहाँ-तहाँ जोतोंसे जुड़े हुए घोड़े और नरश्रेष्ठ रथी गिरते दिखायी दे रहे थे, मानो सिद्ध (पुण्यात्मा) पुरुष पुण्यक्षय होनेपर आकाशसे पृथ्वीपर गिर पड़े हों ॥ ३४-३५ ॥

निहतेषु च शूरेषु मद्रराजानुगेषु वै ।
अस्मानापततश्चापि दृष्ट्वा पार्था महारथाः ॥ ३६ ॥
अभ्यवर्तन्त वेगेन जयगृद्धाः प्रहारिणः ।
बाणशब्दरवान् कृत्वा विमिश्राञ्शङ्खनिःस्वनैः ॥ ३७ ॥

मद्रराजके उन शूरवीर सैनिकोंके मारे जानेपर हमें आक्रमण करते देख विजयकी अभिलाषा रखनेवाले महारथी पाण्डव-योद्धा शङ्खध्वनिके साथ बाणोंकी सनसनाहट फैलाते हुए हमारा सामना करनेके लिये बड़े वेगसे आये ३६-३७

अस्मांस्तु पुनरासाद्य लब्धलक्ष्यप्रहारिणः ।
शरासनानि धुन्वानाः सिंहनादान् प्रचुक्रुशुः ॥ ३८ ॥

हमारे पास पहुँचकर लक्ष्य वेधनेमें सफल और प्रहार-कुशल पाण्डव-सैनिक अपने धनुष हिलाते हुए जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे ॥ ३८ ॥

ततो हतमभिप्रेक्ष्य मद्रराजबलं महत् ।
मद्रराजं च समरे दृष्ट्वा शूरं निपातितम् ॥ ३९ ॥
दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत् पराङ्मुखम् ।

मद्रराजकी वह विशाल सेना मारी गयी तथा शूरवीर मद्रराज शल्य पहले ही समरभूमिमें धराशायी किये जा चुके हैं, यह सब अपनी आँखों देखकर दुर्योधनकी सारी सेना पुनः पीठ दिखाकर भाग चली ॥ ३९½ ॥

वध्यमानं महाराज पाण्डवैर्जितकाशिभिः ।
दिशो भेजेऽथ सम्भ्रान्तं त्रासितं दृढधन्विभिः ॥ ४० ॥

महाराज ! विजयसे उल्लसित होनेवाले दृढ़ धनुर्धर पाण्डवोंकी मार खाकर कौरव-सेना घबरा उठी और भ्रान्त-सी होकर सम्पूर्ण दिशाओंमें भागने लगी ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें संकुलयुद्धविषयक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

पाण्डवसैनिकोंका आपसमें बातचीत करते हुए पाण्डवोंकी प्रशंसा और धृतराष्ट्रकी निन्दा करना तथा कौरव-सेनाका पलायन, भीमद्वारा इक्कीस हजार पैदलोंका संहार और दुर्योधनका अपनी सेनाको उत्साहित करना

संजय उवाच

पातिते युधि दुर्धर्षे मद्रराजे महारथे ।
तावकास्तव पुत्राश्च प्रायशो विमुखाभवन् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! दुर्जय महारथी मद्रराज शल्यके मारे जानेपर आपके सैनिक और पुत्र प्रायः संग्रामसे विमुख हो गये ॥ १ ॥

वणिजो नावि भिन्नायां यथागाधेऽप्लवेऽर्णवे ।
अपारे पारमिच्छन्तो हते शूरे महात्मना ॥ २ ॥
मद्रराजे महाराज वित्रस्ताः शरविक्षताः ।

महाराज ! जैसे अगाध महासागरमें नाव टूट जानेपर उस नौकारहित अपार समुद्रसे पार जानेकी इच्छावाले व्यापारी व्याकुल हो उठते हैं, उसी प्रकार महात्मा युधिष्ठिरके द्वारा

शूरवीर मद्रराज शल्यके मारे जानेपर आपके सैनिक बाणोंसे क्षत-विक्षत एवं भयभीत हो बड़ी घबराहटमें पड़ गये ॥

अनाथा नाथमिच्छन्तो मृगाः सिंहार्दिता इव ॥ ३ ॥
वृषा यथा भग्नश्रृङ्गाः शीर्णदन्ता यथा गजाः ।

वे अपनेको अनाथ समझते हुए किसी नाथ (सहायक) की इच्छा रखते थे और सिंहके सताये हुए मृगों, टूटे सींगवाले साँड़ों तथा जीर्ण-शीर्ण दाँतोंवाले हाथियोंके समान असमर्थ हो गये थे ॥ ३½ ॥

मध्याह्ने प्रत्यपायाम निर्जिताजातशत्रुणा ॥ ४ ॥
न संधातुमनीकानि न च राजन् पराक्रमे ।
आसीद् बुद्धिर्हते शल्ये भूयो योधस्य कस्यचित् ॥ ५ ॥

राजन् ! अजातशत्रु युधिष्ठिरसे पराजित हो दोपहरके समय हमलोग युद्धसे भाग चले थे । शल्यके मारे जानेसे किसी भी योद्धाके मनमें सेनाओंको संगठित करने तथा पराक्रम दिखानेका उत्साह नहीं होता था ॥ ४-५ ॥

भीष्मे द्रोणे च निहते सूतपुत्रे च भारत ।
यद् दुःखं तव योधानां भयं चासीद् विशाम्पते ॥ ६ ॥
तद् भयं स च नः शोको भूय एवाभ्यवर्तत ।

भारत ! प्रजानाथ ! भीष्म, द्रोण और सूतपुत्र कर्णके मारे जानेपर आपके योद्धाओंको जो दुःख और भय प्राप्त हुआ था, वही भय और वही शोक पुनः (शल्यके मारे जानेपर) हमारे सामने उपस्थित हुआ ॥ ६½ ॥

निराशाश्च जये तस्मिन् हते शल्ये महारथे ॥ ७ ॥
हतप्रवीरा विध्वस्ता निकृत्ताश्च शितैः शरैः ।

जिनके प्रमुख वीर मारे गये थे, वे कौरव-सैनिक महारथी शल्यका वध हो जानेपर पैने बाणोंसे क्षत-विक्षत और विध्वस्त हो विजयकी ओरसे निराश हो गये थे ॥ ७½ ॥

मद्रराजे हते राजन् योधास्ते प्राद्रवन् भयात् ॥ ८ ॥
अश्वानन्ये गजानन्ये रथानन्ये महारथाः ।
आरुह्य जवसम्पन्नाः पादाताः प्राद्रवंस्तथा ॥ ९ ॥

राजन् ! मद्रराजकी मृत्यु हो जानेपर आपके वे सभी योद्धा भयके मारे भागने लगे । कुछ सैनिक घोड़ोंपर, कुछ हाथियोंपर और दूसरे महारथी रथोंपर आरूढ़ हो बड़े वेगसे भागे । पैदल सैनिक भी वहाँसे भाग खड़े हुए ॥

द्विसाहस्राश्च मातङ्गा गिरिरूपाः प्रहारिणः ।
सम्प्राद्रवन् हते शल्ये अङ्कुशाङ्गुष्ठनोदिताः ॥ १० ॥

दो हजार प्रहारकुशल पर्वताकार मतवाले हाथी शल्यके मारे जानेपर अङ्कुशों और पैरके अँगूठोंसे प्रेरित हो तीव्र गतिसे पलायन करने लगे ॥ १० ॥

ते रणाद् भरतश्रेष्ठ तावकाः प्राद्रवन् दिशः ।
धावतश्चाप्यपश्याम श्वसमानाञ्शराहतान् ॥ ११ ॥

भरतश्रेष्ठ ! आपके वे सैनिक रणभूमिसे सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर भागे थे । हमने देखा, वे बाणोंसे क्षत-विक्षत हो हाँफते हुए दौड़े जा रहे हैं ॥ ११ ॥

तान् प्रभग्नान् द्रुतान् दृष्ट्वा हतोत्साहान् पराजितान् ।
अभ्यवर्तन्त पञ्चालाः पाण्डवाश्च जयैषिणः ॥ १२ ॥

उन्हें हतोत्साह, पराजित एवं हताश होकर भागते देख विजयकी अभिलाषा रखनेवाले पाञ्चाल और पाण्डव उनका पीछा करने लगे ॥ १२ ॥

बाणशब्दरवाश्चापि सिंहनादाश्च पुष्कलाः ।
शङ्खशब्दश्च शूराणां दारुणः समपद्यत ॥ १३ ॥

बाणोंकी सनसनाहट, शूरवीरोंका सिंहनाद और शङ्खध्वनि इन सबकी मिली-जुली आवाज बड़ी भयानक जान पड़ती थी ॥

दृष्ट्वा तु कौरवं सैन्यं भयत्रस्तं प्रविद्रुतम् ।
अन्योन्यं समभाषन्त पञ्चालाः पाण्डवैः सह ॥ १४ ॥

कौरव-सेनाको भयसे संत्रस्त होकर भागती देख पाण्डवोंसहित पाञ्चाल योद्धा आपसमें इस प्रकार वार्तालाप करने लगे— ॥

अद्य राजा सत्यधृतिर्हतामित्रो युधिष्ठिरः ।
अद्य दुर्योधनो हीनो दीप्तया नृपतिश्रिया ॥ १५ ॥

'आज सत्यपरायण राजा युधिष्ठिर शत्रुहीन हो गये और आज दुर्योधन अपनी देदीप्यमान राजलक्ष्मीसे भ्रष्ट हो गया ॥

अद्य श्रुत्वा हतं पुत्रं धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
विह्वलः पतितो भूमौ किल्बिषं प्रतिपद्यताम् ॥ १६ ॥

'आज राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्रको मारा गया सुनकर व्याकुल हो पृथ्वीपर पछाड़ खाकर गिरें और दुःख भोगें ॥

अद्य जानातु कौन्तेयं समर्थं सर्वधन्विनाम् ।
अद्यात्मानं च दुर्मेधा गर्हयिष्यति पापकृत् ॥ १७ ॥
अद्य क्षत्तुर्वचः सत्यं स्मरतां ब्रुवतो हितम् ।

'आज वे समझ लें कि कुन्तीपुत्र अर्जुन सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ एवं सामर्थ्यशाली हैं । आज पापाचारी दुर्बुद्धि धृतराष्ट्र अपनी भरपेट निन्दा करें और विदुरजीने जो सत्य एवं हितकर वचन कहे थे, उन्हें याद करें ॥ १७½ ॥

अद्यप्रभृति पार्थं च प्रेष्यभूत इवाचरन् ॥ १८ ॥
विजानातु नृपो दुःखं यत् प्राप्तं पाण्डुनन्दनैः ।

'आजसे वे स्वयं ही दासतुल्य होकर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरकी परिचर्या करते हुए अच्छी तरह समझ लें कि 'पाण्डवोंने पहले कितना कष्ट उठाया था ?' ॥ १८½ ॥

अद्य कृष्णस्य माहात्म्यं विजानातु महीपतिः ॥ १९ ॥
अद्यार्जुनधनुर्घोषं घोरं जानातु संयुगे ।
अस्त्राणां च बलं सर्वं बाह्वोश्च बलमाहवे ॥ २० ॥

'आज राजा धृतराष्ट्र अनुभव करें कि भगवान् श्रीकृष्णका कैसा माहात्म्य है और आज वे यह भी जान लें कि युद्धस्थलमें अर्जुनके गाण्डीव धनुषकी टंकार कितनी भयंकर है ? उनके अस्त्र-शस्त्रोंकी सारी शक्ति कैसी है तथा रणभूमिमें उनकी दोनों भुजाओंका बल कितना अद्भुत है ? ॥ १९-२० ॥

अद्य ज्ञास्यति भीमस्य बलं घोरं महात्मनः ।
हते दुर्योधने युद्धे शक्रेणेवासुरे बले ॥ २१ ॥

'जैसे इन्द्रने असुरोंकी सेनाका संहार किया था, उसी प्रकार युद्धमें भीमसेनके हाथसे दुर्योधनके मारे जानेपर आज धृतराष्ट्रको यह ज्ञात हो जायगा कि 'महामनस्वी भीमका बल कैसा भयंकर है !' ॥ २१ ॥

यत् कृतं भीमसेनेन दुःशासनवधे तदा।
नान्यः कर्तास्ति लोकेऽस्मिनृते भीमान्महाबलात् ॥२२॥

'दुःशासनके वधके समय भीमसेनने जो कुछ किया था, उसे महाबली भीमसेनके सिवा इस संसारमें दूसरा कोई नहीं कर सकता ॥ २२ ॥

अद्य श्रेष्ठस्य जानीतां पाण्डवस्य पराक्रमम्।
मद्रराजं हतं श्रुत्वा देवैरपि सुदुःसहम् ॥ २३ ॥

'देवताओंके लिये भी दुःसह मद्रराज शल्यके वधका वृत्तान्त सुनकर आज धृतराष्ट्र ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिरके पराक्रमको भी अच्छी तरह जान लें ॥ २३ ॥

अद्य ज्ञास्यति संग्रामे माद्रीपुत्रौ सुदुःसहौ।
निहते सौबले वीरे प्रवीरेषु च सर्वशः ॥ २४ ॥

'आज संग्राममें सुबलपुत्र वीर शकुनि तथा दूसरे समस्त प्रमुख वीरोंके मारे जानेपर उन्हें शत्रुके लिये अत्यन्त दुःसह माद्रीकुमार नकुल-सहदेवकी शक्तिका भी ज्ञान हो जायगा ॥

कथं जयो न तेषां स्याद् येषां योद्धा धनंजयः।
सात्यकिर्भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ २५ ॥
द्रौपद्यास्तनयाः पञ्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ।
शिखण्डी च महेष्वासो राजा चैव युधिष्ठिरः ॥ २६ ॥

'जिनकी ओरसे युद्ध करनेवाले धनंजय, सात्यकि, भीमसेन, द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, माद्रीकुमार पाण्डुनन्दन नकुल-सहदेव, महाधनुर्धर शिखण्डी तथा स्वयं राजा युधिष्ठिर-जैसे वीर हैं, उनकी विजय कैसे न हो? ।२५-२६।

येषां च जगतीनाथो नाथः कृष्णो जनार्दनः।
कथं तेषां जयो न स्याद् येषां धर्मो व्यपाश्रयः ॥२७॥

'सम्पूर्ण जगत्के स्वामी जनार्दन श्रीकृष्ण जिनके रक्षक हैं और जिन्हें धर्मका आश्रय प्राप्त है, उनकी विजय क्यों न हो? ॥ २७ ॥

(लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराभवः।
येषां नाथो हृषीकेशः सर्वलोकविभुर्हरिः ॥)

'अखिल विश्वके प्रभु और सबकी इन्द्रियोंके नियन्ता भगवान् श्रीहरि जिनके स्वामी और संरक्षक हैं, उन्हींको लाभ प्राप्त होता है और उन्हींकी विजय होती है। भला उनकी पराजय कैसे हो सकती है? ॥

भीष्मं द्रोणं च कर्णं च मद्रराजानमेव च।
तथान्यान् नृपतीन् वीराञ्शतशोऽथ सहस्रशः॥ २८ ॥
कोऽन्यः शक्तो रणे जेतुमृते पार्थाद् युधिष्ठिरात्।
यस्य नाथो हृषीकेशः सदा सत्ययशोनिधिः ॥ २९ ॥

'कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरके सिवा दूसरा कौन ऐसा राजा है जो रणभूमिमें भीष्म, द्रोण, कर्ण, मद्रराज शल्य तथा अन्य सैकड़ों-हजारों नरपतियोंपर विजय प्राप्त कर सके। सदा सत्य और यशके सागर भगवान् श्रीकृष्ण जिनके स्वामी एवं रक्षक हैं, उन्हींको यह सफलता प्राप्त हो सकती है' ॥ २८-२९ ॥

इत्येवं वदमानास्ते हर्षेण महता युताः।
प्रभग्नांस्तावकान् योधान् सृंजयाः पृष्ठतोऽन्वयुः ॥३०॥

इस तरहकी बातें करते हुए सृंजयवीर अत्यन्त हर्षमें भरकर आपके भागते हुए योद्धाओंका पीछा करने लगे ॥

धनंजयो रथानीकमभ्यवर्तत वीर्यवान्।
माद्रीपुत्रौ च शकुनिं सात्यकिश्च महारथः ॥ ३१ ॥

इसी समय पराक्रमी अर्जुनने आपकी रथसेनापर धावा किया। साथ ही नकुल-सहदेव और महारथी सात्यकिने शकुनिपर चढ़ाई की ॥ ३१ ॥

तान् प्रेक्ष्य द्रवतः सर्वान् भीमसेनभयार्दितान्।
दुर्योधनस्तदा सूतमब्रवीद् विजयाय च ॥ ३२ ॥

भीमसेनके भयसे पीड़ित हुए अपने उन समस्त योद्धाओंको भागते देख दुर्योधनने विजयकी इच्छासे अपने सारथिसे कहा— ॥ ३२ ॥

मामतिक्रमते पार्थो धनुष्पाणिमवस्थितम्।
जघने सर्वसैन्यानां ममाश्वान् प्रतिपादय ॥ ३३ ॥

'सूत! मैं यहाँ हाथमें धनुष लिये खड़ा हूँ और अर्जुन मुझे लाँघ जानेकी चेष्टा कर रहे हैं। अतः तुम मेरे घोड़ोंको सारी सेनाके पिछले भागमें पहुँचा दो ॥ ३३ ॥

जघने युध्यमानं हि कौन्तेयो मां समन्ततः।
नोत्सहेदभ्यतिक्रान्तुं वेलामिव महोदधिः ॥ ३४ ॥

'पृष्ठभागमें रहकर युद्ध करते समय मुझे अर्जुन किसी ओरसे भी लाँघनेका साहस नहीं कर सकते। ठीक वैसे ही, जैसे महासागर अपने तटप्रान्तको नहीं लाँघ पाता है ॥ ३४ ॥

पश्य सैन्यं महत् सूत पाण्डवैः समभिद्रुतम्।
सैन्यरेणुं समुद्धूतं पश्यस्वैनं समन्ततः ॥ ३५ ॥

'सारथे! देखो, पाण्डव मेरी विशाल सेनाको खदेड़ रहे हैं और सैनिकोंके दौड़नेसे उठी हुई धूल जो सब ओर छा गयी है उसपर भी दृष्टिपात करो ॥ ३५ ॥

सिंहनादांश्च बहुशः शृणु घोरान् भयावहान्।
तस्माद् याहि शनैः सूत जघनं परिपालय ॥ ३६ ॥

'सूत! वह सुनो, बारंबार भय उत्पन्न करनेवाले घोर सिंहनाद हो रहे हैं। इसलिये तुम धीरे-धीरे चलो और सेनाके पृष्ठ-भागकी रक्षा करो ॥ ३६ ॥

मयि स्थिते च समरे निरुद्धेषु च पाण्डुषु।
पुनरावर्तते तूर्णं मामकं बलमोजसा ॥ ३७ ॥

'जब मैं समराङ्गणमें खड़ा होऊँगा और पाण्डवोंका बढ़ाव रुक जायगा, तब मेरी सेना पुनः शीघ्र ही लौट आयेगी और सारी शक्ति लगाकर युद्ध करेगी' ॥ ३७ ॥

तच्छ्रुत्वा तव पुत्रस्य शूरार्यसदृशं वचः।
सारथिर्हेमसंछन्नाञ्शनैरश्वानचोदयत् ॥ ३८ ॥

राजन्! आपके पुत्रका यह श्रेष्ठ वीरोचित वचन सुनकर सारथिने सोनेके साज-बाजसे सजे हुए घोड़ोंको धीरे-धीरे आगे बढ़ाया ॥ ३८ ॥

गजाश्वरथिभिर्हीनास्त्यक्तात्मानः पदातयः।
एकविंशतिसाहस्राः संयुगायावतस्थिरे ॥ ३९ ॥

उस समय वहाँ हाथीसवार, घुड़सवार तथा रथियोंसे

रहित इक्कीस हजार केवल पैदल योद्धा अपने जीवनका मोह छोड़कर युद्धके लिये डट गये ॥ ३९ ॥

नानादेशसमुद्भूता नानानगरवासिनः ।
अवस्थितास्तदा योधाः प्रार्थयन्तो महद् यशः ॥ ४० ॥

वे अनेक देशोंमें उत्पन्न और अनेक नगरोंके निवासी वीर सैनिक महान् यशकी अभिलाषा रखते हुए वहाँ युद्ध करनेके लिये खड़े हुए थे ॥ ४० ॥

तेषामापततां तत्र संहृष्टानां परस्परम् ।
सम्मर्दः सुमहाञ्जज्ञे घोररूपो भयानकः ॥ ४१ ॥

परस्पर हर्षमें भरकर एक-दूसरेपर आक्रमण करनेवाले उभय पक्षके सैनिकोंका वह घोर एवं महान् संघर्ष बड़ा भयंकर हुआ ॥ ४१ ॥

भीमसेनस्तदा राजन् धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
बलेन चतुरङ्गेण नानादेश्यानवारयत् ॥ ४२ ॥

राजन् ! उस समय भीमसेन और द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न चतुरंगिणी सेना साथ लेकर उन अनेकदेशीय सैनिकोंको रोकने लगे ॥ ४२ ॥

भीममेवाभ्यवर्तन्त रणेऽन्ये तु पदातयः ।
प्रक्ष्वेड्यास्फोट्य संहृष्टा वीरलोकं यियासवः ॥ ४३ ॥

तब रणभूमिमें अन्य पैदल योद्धा हर्ष और उत्साहमें भरकर भुजाओंपर ताल ठोंकते और सिंहनाद करते हुए वीरलोकमें जानेकी इच्छासे भीमसेनके ही सामने आ पहुँचे ॥

आसाद्य भीमसेनं तु संरब्धा युद्धदुर्मदाः ।
धार्तराष्ट्रा विनेदुर्हि नान्यामकथयन् कथाम् ॥ ४४ ॥

भीमसेनके पास पहुँचकर वे रोषभरे रणदुर्मद कौरव-योद्धा केवल गर्जना करने लगे, मुँहसे दूसरी कोई बात नहीं कहते थे ॥ ४४ ॥

परिवार्य रणे भीमं निजघ्नुस्ते समन्ततः ।
स वध्यमानः समरे पदातिगणसंवृतः ॥ ४५ ॥
न चचाल ततः स्थानान्मैनाक इव पर्वतः ।

उन्होंने रणभूमिमें भीमसेनको चारों ओरसे घेरकर उनपर प्रहार आरम्भ कर दिया । समराङ्गणमें पैदल सैनिकोंसे घिरे हुए भीमसेन उनके अस्त्र-शस्त्रोंकी चोट सहते हुए भी मैनाक पर्वतके समान अपने स्थानसे विचलित नहीं हुए ॥

ते तु क्रुद्धा महाराज पाण्डवस्य महारथम् ॥ ४६ ॥
निग्रहीतुं प्रवृत्ता हि योधांश्चान्यानवारयन् ।

महाराज ! वे सभी सैनिक कुपित हो पाण्डव महारथी भीमसेनको पकड़नेकी चेष्टामें संलग्न हो गये और दूसरे योद्धाओंको भी आगे बढ़नेसे रोकने लगे ॥ ४६½ ॥

अक्रुध्यत रणे भीमस्तैस्तदा पर्यवस्थितैः ॥ ४७ ॥
सोऽवतीर्य रथात् तूर्णं पदातिः समवस्थितः ।
जातरूपप्रतिच्छन्नां प्रगृह्य महतीं गदाम् ॥ ४८ ॥
अवधीत् तावकान् योधान् दण्डपाणिरिवान्तकः ।

उनके इस प्रकार सब ओर खड़े होनेपर उस समय रणभूमिमें भीमसेनको बड़ा क्रोध हुआ । वे तुरंत अपने रथसे उतरकर पैदल खड़े हो गये और सोनेसे जड़ी हुई विशाल गदा हाथमें लेकर दण्डधारी यमराजके समान आपके उन योद्धाओंका संहार करने लगे ॥ ४७-४८½ ॥

विप्रहीणरथाश्वांस्तानवधीत् पुरुषर्षभः ॥ ४९ ॥
एकविंशतिसाहस्रान् पदातीन् समपोथयत् ।

रथ और घोड़ोंसे रहित उन इक्कीसों हजार पैदल सैनिकोंको पुरुषप्रवर भीमने गदासे मारकर धराशायी कर दिया ॥

हत्वा तत् पुरुषानीकं भीमः सत्यपराक्रमः ॥ ५० ॥
धृष्टद्युम्नं पुरस्कृत्य नचिरात् प्रत्यदृश्यत ।

सत्यपराक्रमी भीमसेन उस पैदल सेनाका संहार करके थोड़ी ही देरमें धृष्टद्युम्नको आगे किये दिखायी दिये ॥५०½॥

पादाता निहता भूमौ शिश्यिरे रुधिरोक्षिताः ॥ ५१ ॥
सम्भग्ना इव वातेन कर्णिकाराः सुपुष्पिताः ।

मारे गये पैदल सैनिक खूनसे लथपथ हो पृथ्वीपर सदाके लिये सो गये, मानो हवाके उखाड़े हुए सुन्दर लाल फूलोंसे भरे कनेरके वृक्ष पड़े हों ॥ ५१½ ॥

नानाशस्त्रसमायुक्ता नानाकुण्डलधारिणः ॥ ५२ ॥
नानाजात्या हतास्तत्र नानादेशसमागताः ।

वहाँ नाना देशोंसे आये हुए, नाना जातिके, नाना शस्त्र धारण किये और नाना प्रकारके कुण्डलधारी योद्धा मारे गये थे ॥ ५२½ ॥

पताकाध्वजसंछन्नं पदातीनां महद् बलम् ॥ ५३ ॥
निकृत्तं विबभौ रौद्रं घोररूपं भयावहम् ।

ध्वज और पताकाओंसे आच्छादित पैदलोंकी वह विशाल सेना छिन्न-भिन्न होकर रौद्र, घोर एवं भयानक प्रतीत होती थी ॥ ५३½ ॥

युधिष्ठिरपुरोगाश्च सहसैन्या महारथाः ॥ ५४ ॥
अभ्यधावन् महात्मानं पुत्रं दुर्योधनं तव ।

तत्पश्चात् सेनासहित युधिष्ठिर आदि महारथी आपके महामनस्वी पुत्र दुर्योधनकी ओर दौड़े ॥ ५४½ ॥

ते सर्वे तावकान् दृष्ट्वा महेष्वासाः पराङ्मुखान् ॥ ५५ ॥
नात्यवर्तन्त ते पुत्रं वेलेव मकरालयम् ।

आपके योद्धाओंको युद्धसे विमुख हो भागते देख वे सब महाधनुर्धर पाण्डव-महारथी आपके पुत्रको लाँघकर आगे नहीं बढ़ सके । जैसे तटभूमि समुद्रको आगे नहीं बढ़ने देती है (उसी प्रकार दुर्योधनने उन्हें अग्रसर नहीं होने दिया) ॥

तदद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य पौरुषम् ॥ ५६ ॥
यदेकं सहिताः पार्था न शेकुरतिवर्तितुम् ।

उस समय हमलोगोंने आपके पुत्रका अद्भुत पराक्रम देखा कि कुन्तीके सभी पुत्र एक साथ प्रयत्न करनेपर भी उसे लाँघकर आगे न जा सके ॥ ५६½ ॥

नातिदूरापयातं तु कृतबुद्धिं पलायने ॥ ५७ ॥
दुर्योधनः स्वकं सैन्यमब्रवीद् भृशविक्षतम् ।

जब दुर्योधनने देखा कि मेरी सेना भागनेका निश्चय करके अभी अधिक दूर नहीं गयी है, तब उसने उन अत्यन्त घायल हुए सैनिकोंको पुकारकर कहा— ॥ ५७½ ॥

न तं देशं प्रपश्यामि पृथिव्यां पर्वतेषु च ॥ ५८ ॥
यत्र यातान्न वा हन्युः पाण्डवाः किं सृतेन वः ।

'अरे ! इस तरह भागनेसे क्या लाभ है ? मैं पृथ्वीमें या पर्वतोंपर ऐसा कोई स्थान नहीं देखता, जहाँ जानेपर तुम्हें पाण्डव मार न सकें ॥ ५८½ ॥

अल्पं च बलमेतेषां कृष्णौ च भृशविक्षतौ ॥ ५९ ॥
यदि सर्वेऽत्र तिष्ठामो ध्रुवं नो विजयो भवेत् ।

'अब तो इनके पास बहुत थोड़ी सेना शेष रह गयी है और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन भी अत्यन्त घायल हो चुके हैं, ऐसी दशामें यदि हम सब लोग साहस करके डटे रहें तो हमारी विजय अवश्य होगी ॥ ५९½ ॥

विप्रयातांस्तु वो भिन्नान् पाण्डवाः कृतविप्रियाः ॥ ६० ॥
अनुसृत्य हनिष्यन्ति श्रेयान्नः समरे वधः ।

'तुम पाण्डवोंके अपराध तो कर ही चुके हो । यदि अलग-अलग होकर भागोगे तो पाण्डव पीछा करके तुम्हें अवश्य मार डालेंगे । ऐसी दशामें हमारे लिये संग्राममें मारा जाना ही श्रेयस्कर है ॥ ६०½ ॥

शृण्वन्तु क्षत्रियाः सर्वे यावन्तोऽत्र समागताः ॥ ६१ ॥
यदा शूरं च भीरुं च मारयत्यन्तकः सदा ।
को नु मूढो न युध्येत पुरुषः क्षत्रियो ध्रुवम् ॥ ६२ ॥

'जितने क्षत्रिय यहाँ एकत्र हुए हैं, वे सब कान खोलकर सुन लें—जब शूरवीर और कायर सभीको सदा ही मौत मार डालती है, तब ऐसा कौन मूर्ख मनुष्य है, जो क्षत्रिय कहलाकर भी निश्चितरूपसे युद्ध नहीं करेगा ॥ ६१-६२ ॥

श्रेयो नो भीमसेनस्य क्रुद्धस्याभिमुखे स्थितम् ।
सुखः सांग्रामिको मृत्युः क्षत्रधर्मेण युध्यताम् ॥ ६३ ॥

'अतः क्रोधमें भरे हुए भीमसेनके सामने डटे रहना ही हमारे लिये कल्याणकारी होगा । क्षत्रिय-धर्मके अनुसार युद्ध करनेवाले वीर पुरुषोंके लिये संग्राममें होनेवाली मृत्यु ही सुखद है ॥

मर्त्येनावश्यमर्तव्यं गृहेष्वपि कदाचन ।
युध्यतः क्षत्रधर्मेण मृत्युरेष सनातनः ॥ ६४ ॥

'मरणधर्मा मनुष्यको कभी-न-कभी अवश्य मरना पड़ेगा । घरमें भी उससे छुटकारा नहीं है । अतः क्षत्रिय-धर्मके अनुसार युद्ध करते हुए ही जो मृत्यु होती है, यही क्षत्रियके लिये सनातन मृत्यु है ॥ ६४ ॥

हत्वेह सुखमाप्नोति हतः प्रेत्य महत् फलम् ।
न युद्धधर्माच्छ्रेयान् वै पन्थाः स्वर्गस्य कौरवाः ॥ ६५ ॥
अचिरेणैव ताँल्लोकान् हतो युद्धे समश्नुते ।

'कौरवो ! वीर पुरुष शत्रुको मारकर इह लोकमें सुख भोगता है और यदि मारा गया तो वह परलोकमें जाकर महान् फलका भागी होता है; अतः युद्धधर्मसे बढ़कर स्वर्गकी प्राप्तिके लिये दूसरा कोई कल्याणकारी मार्ग नहीं है । युद्धमें मारा गया वीर पुरुष थोड़ी ही देरमें उन प्रसिद्ध पुण्य-लोकोंमें जाकर सुख भोगता है' ॥ ६५½ ॥

श्रुत्वा तद् वचनं तस्य पूजयित्वा च पार्थिवाः ॥ ६६ ॥
पुनरेवाभ्यवर्तन्त पाण्डवानाततायिनः ।

दुर्योधनकी यह बात सुनकर सब राजा उसका आदर करते हुए पुनः आततायी पाण्डवोंका सामना करनेके लिये लौट आये ॥ ६६½ ॥

तानापतत एवाशु व्यूढानीकाः प्रहारिणः ॥ ६७ ॥
प्रत्युद्ययुस्तदा पार्था जयगृद्धाः प्रमन्यवः ।

उनके आक्रमण करते ही अपनी सेनाका व्यूह बनाकर प्रहारकुशल, विजयाभिलाषी तथा बढ़े हुए क्रोधवाले पाण्डव शीघ्र ही उनका सामना करनेके लिये आगे बढ़े ॥

धनंजयो रथेनाजावभ्यवर्तत वीर्यवान् ॥ ६८ ॥
विश्रुतं त्रिषु लोकेषु व्याक्षिपन् गाण्डिवं धनुः ।

पराक्रमी अर्जुन अपने त्रिलोकविख्यात गाण्डीव धनुष-की टङ्कार करते हुए रथके द्वारा युद्धके लिये वहाँ आ पहुँचे ॥

माद्रीपुत्रौ च शकुनिं सात्यकिश्च महाबलः ॥ ६९ ॥
जवेनाभ्यपतन् हृष्टा यत्ता वै तावकं बलम् ॥ ७० ॥

माद्रीपुत्र नकुल-सहदेव और महाबली सात्यकिने शकुनिपर धावा किया । ये सब लोग हर्ष और उत्साहमें भरकर बड़ी सावधानीके साथ आपकी सेनापर वेगपूर्वक टूट पड़े ॥ ६९-७० ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें संकुलयुद्धविषयक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९ ॥

(दाक्षिणात्य पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ७१ श्लोक हैं)

विंशोऽध्यायः

धृष्टद्युम्नद्वारा राजा शाल्वके हाथीका और सात्यकिद्वारा राजा शाल्वका वध

संजय उवाच

संनिवृत्ते जनौघे तु शाल्वो म्लेच्छगणाधिपः ।
अभ्यवर्तत संक्रुद्धः पाण्डवानां महद् बलम् ॥ १ ॥
आस्थाय सुमहानागं प्रभिन्नं पर्वतोपमम् ।
दृप्तमैरावतप्रख्यममित्रगणमर्दनम् ॥ २ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! जब कौरवपक्षका जन-समूह पुनः युद्धके लिये लौट आया, उस समय म्लेच्छोंका राजा शाल्व अत्यन्त कुद्ध हो मदकी धारा बहानेवाले, पर्वतके समान विशालकाय, अभिमानी तथा ऐरावतके सदृश शत्रु-समुदायका संहार करनेमें समर्थ एक महान् गजराजपर आरूढ़ हो पाण्डवोंकी विशाल सेनाका सामना करनेके लिये आया ॥

योऽसौ महाभद्रकुलप्रसूतः
सुपूजितो धार्तराष्ट्रेण नित्यम् ।
सुकल्पितः शास्त्रविनिश्चयज्ञैः
सदोपवाह्यः समरेषु राजन् ॥ ३ ॥

राजन् ! वह हाथी महाभद्र नामक गजराजके कुलमें

उत्पन्न हुआ था। धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनने नित्य ही उसका आदर किया था, गजशास्त्रके ज्ञाता पुरुषोंने उसे अच्छी तरह सजाया था और सदा ही युद्धके अवसरोंपर वह सवारीके उपयोगमें लाया जाता था ॥ ३ ॥

तमास्थितो राजवरो बभूव
यथोदयस्थः सविता क्षपान्ते।
स तेन नागप्रवरेण राज-
न्नभ्युद्ययौ पाण्डुसुतान् समेतान् ॥४॥
शितैः पृषत्कैर्विददार वेगै-
र्महेन्द्रवज्रप्रतिमैः सुघोरैः।

राजाओंमें श्रेष्ठ शाल्व उस गजराजपर बैठकर प्रातःकाल उदयाचलपर स्थित हुए सूर्यदेवके समान सुशोभित होने लगा। महाराज! वह उस श्रेष्ठ हाथीके द्वारा वहाँ एकत्र हुए समस्त पाण्डवोंपर चढ़ आया और इन्द्रके वज्रकी भाँति अत्यन्त भयंकर तीखे बाणोंसे उन सबको वेगपूर्वक विदीर्ण करने लगा ॥ ४½ ॥

ततः शरान् वै सृजतो महारणे
योधांश्च राजन् नयतो यमालयम् ॥ ५ ॥
नास्यान्तरं ददृशुः स्वे परे वा
यथा पुरा वज्रधरस्य दैत्याः।
ऐरावणस्थस्य चमूविमर्दे-
ऽदैत्याः पुरा वासवस्येव राजन् ॥ ६ ॥

राजन्! जैसे पूर्वकालमें ऐरावतपर बैठकर शत्रु-सेनाका संहार करते हुए वज्रधारी इन्द्रके बाण छोड़ने और विपक्षीको मार गिरानेके अन्तरको दैत्य और देवता नहीं देख पाते थे, उसी प्रकार उस महासमरमें शाल्वके बाण छोड़ने तथा सैनिकोंको यमलोक पहुँचानेमें कितनी देर लगती है, इसे अपने या शत्रुपक्षके योद्धा नहीं देख सके ॥ ५-६ ॥

ते पाण्डवाः सोमकाः सृञ्जयाश्च
तमेकनागं ददृशुः समन्तात्।
सहस्रशो वै विचरन्तमेकं
यथा महेन्द्रस्य गजं समीपे ॥ ७ ॥

इन्द्रके ऐरावत हाथीकी भाँति म्लेच्छराजका वह गजराज यद्यपि रणभूमिमें अकेला ही निकट विचर रहा था, तो भी पाण्डव, सृंजय और सोमक योद्धा उसे सहस्रोंकी संख्यामें देखते थे। उन्हें सब ओर वही वह दिखायी देता था ॥ ७ ॥

संद्राव्यमाणं तु बलं परेषां
परीतकल्पं विबभौ समन्ततः।
नैवावतस्थे समरे भृशं भयाद्
विमृद्यमानं तु परस्परं तदा ॥ ८ ॥

उस हाथीके द्वारा खदेड़ी जाती हुई वह सेना सब ओरसे घिरी हुई-सी जान पड़ती थी। अत्यन्त भयके कारण वह समरभूमिमें ठहर न सकी। उस समय सभी सैनिक आपसमें ही धक्के खाकर कुचले जाने लगे ॥ ८ ॥

ततः प्रभग्ना सहसा महाचमूः
सा पाण्डवी तेन नराधिपेन।
दिशश्चतस्रः सहसा विधाविता
गजेन्द्रवेगं तमपारयन्ती ॥ ९ ॥
दृष्ट्वा च तां वेगवतीं प्रभग्नां
सर्वे त्वदीया युधि योधमुख्याः।
अपूजयंस्ते तु नराधिपं तं
दध्मुश्च शङ्खाञ्शशिसंनिकाशान् ॥ १० ॥

म्लेच्छराज शाल्वने पाण्डवोंकी उस विशाल सेनामें सहसा भगदड़ मचा दी। उस गजराजके वेगको सहन न कर सकनेके कारण वह सेना तत्काल चारों दिशाओंमें भाग चली। उस वेगशालिनी सेनाको भागती देख युद्धस्थलमें खड़े हुए आपके सभी प्रधान-प्रधान योद्धा म्लेच्छराज शाल्वकी प्रशंसा करने और चन्द्रमाके समान उज्ज्वल शङ्ख बजाने लगे॥९-१०॥

श्रुत्वा निनादं त्वथ कौरवाणां
हर्षाद् विमुक्तं सह शङ्खशब्दैः।
सेनापतिः पाण्डवसृञ्जयानां
पाञ्चालपुत्रो ममृषे न कोपात् ॥ ११ ॥

शङ्खध्वनिके साथ कौरवोंका वह हर्षनाद सुनकर पाण्डवों और सृंजयोंके सेनापति पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न क्रोधपूर्वक उसे सहन न कर सके ॥ ११ ॥

ततस्तु तं वै द्विरदं महात्मा
प्रत्युद्ययौ त्वरमाणो जयाय।
जम्भो यथा शक्रसमागमे वै
नागेन्द्रमैरावणमिन्द्रवाह्यम् ॥ १२ ॥

तदनन्तर उन महामनस्वी धृष्टद्युम्नने बड़ी उतावलीके साथ विजय प्राप्त करनेके लिये उस हाथीपर चढ़ाई की। जैसे इन्द्रके साथ युद्ध छिड़नेपर जम्भासुरने इन्द्रवाहन नागराज ऐरावतपर धावा किया था ॥ १२ ॥

तमापतन्तं सहसा तु दृष्ट्वा
पाञ्चालपुत्रं युधि राजसिंहः।
तं वै द्विपं प्रेषयामास तूर्णं
वधाय राजन् द्रुपदात्मजस्य ॥ १३ ॥

राजन्! पाञ्चालपुत्र धृष्टद्युम्नको युद्धमें सहसा आक्रमण करते देख नृपश्रेष्ठ शाल्वने उस हाथीको उनके वधके लिये तुरंत ही उनकी ओर बढ़ाया ॥ १३ ॥

स तं द्विपेन्द्रं सहसा पतन्त-
मविध्यदग्निप्रतिमैः पृषत्कैः।
कर्मारधौतैर्निशितैर्ज्वलद्भि-
र्नाराचमुख्यैस्त्रिभिरुग्रवेगैः ॥ १४ ॥

उस नागराजको सहसा आते देख धृष्टद्युम्नने अग्निके समान प्रज्वलित, कारीगरके साफ किये हुए, तेजधारवाले, तीन भयंकर वेगशाली उत्तम नाराचोंद्वारा घायल कर दिया॥

ततोऽपरान् पञ्चशतान् महात्मा
नाराचमुख्यान् विससर्ज कुम्भे।
स तैस्तु विद्धः परमद्विपो रणे
तदा परावृत्य भृशं प्रदुद्रुवे ॥ १५ ॥

तत्पश्चात् महामना धृष्टद्युम्नने उसके कुम्भस्थलको लक्ष्य करके पाँच सौ उत्तम नाराच और छोड़े। उनके द्वारा अत्यन्त घायल हुआ वह महान् गजराज युद्धसे मुँह मोड़कर वेगपूर्वक भागने लगा ॥ १५ ॥

तं नागराजं सहसा प्रणुन्नं
विद्राव्यमाणं विनिवर्त्य शाल्वः ।
तोत्राङ्कुशैः प्रेषयामास तूर्णं
पाञ्चालराजस्य रथं प्रदिश्य ॥ १६ ॥

उस नागराजको सहसा पीड़ित होकर भागते देख शाल्वराजने पुनः युद्धकी ओर लौटाया और पीड़ा देनेवाले अङ्कुशोंसे मारकर उसे तुरंत ही पाञ्चालराजके रथकी ओर दौड़ाया ॥

दृष्ट्वाऽऽपतन्तं सहसा तु नागं
धृष्टद्युम्नः स्वरथाच्छीघ्रमेव ।
गदां प्रगृह्योग्रजवेन वीरो
भूमिं प्रपन्नो भयविह्वलाङ्गः ॥ १७ ॥

हाथीको सहसा आक्रमण करते देख वीर धृष्टद्युम्न हाथमें गदा ले शीघ्र ही अत्यन्त वेगपूर्वक अपने रथसे कूदकर पृथ्वीपर आ गये। उस समय उनके सारे अङ्ग भयसे व्याकुल हो रहे थे ॥ १७ ॥

स तं रथं हेमविभूषिताङ्गं
साश्वं ससूतं सहसा विमृद्य ।
उत्क्षिप्य हस्तेन नदन् महाद्विपो
विपोथयामास वसुन्धरातले ॥ १८ ॥

गर्जना करते हुए उस विशालकाय हाथीने धृष्टद्युम्नके उस सुवर्णभूषित रथको घोड़ों और सारथिसहित सहसा कुचल डाला और सूँड़से ऊपर उठाकर पृथ्वीपर दे मारा ॥

पाञ्चालराजस्य सुतं च दृष्ट्वा
तदार्दितं नागवरेण तेन ।
तमभ्यधावत् सहसा जवेन
भीमः शिखण्डी च शिनेश्च नप्ता ॥ १९ ॥

पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नको उस गजराजके द्वारा पीड़ित हुआ देख भीमसेन, शिखण्डी और सात्यकि सहसा बड़े वेगसे उसकी ओर दौड़े ॥ १९ ॥

शरैश्च वेगं सहसा निगृह्य
तस्याभितो व्यापततो गजस्य ।
स संगृहीतो रथिभिर्गजो वै
चचाल तैर्वार्यमाणश्च संख्ये ॥ २० ॥

उन रथियोंने सब ओर आक्रमण करनेवाले उस हाथीके वेगको सहसा अपने बाणोंद्वारा अवरुद्ध कर दिया। उनके द्वारा अपनी प्रगति रुक जानेके कारण वह निगृहीत-सा होकर विचलित हो उठा ॥ २० ॥

ततः पृषत्कान् प्रववर्ष राजा
सूर्यो यथा रश्मिजालं समन्तात् ।
तैराशुगैर्वध्यमाना रथौघाः
प्रदुद्रुवुः सहितास्तत्र तत्र ॥ २१ ॥

तदनन्तर जैसे सूर्यदेव सब ओर अपनी किरणोंका प्रसार करते हैं, उसी प्रकार राजा शाल्वने बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। उन शीघ्रगामी बाणोंकी मार खाकर वे पाण्डव रथी एक साथ इधर-उधर भागने लगे ॥ २१ ॥

तत् कर्म शाल्वस्य समीक्ष्य सर्वे
पाञ्चालपुत्रा नृप सृञ्जयाश्च ।
हाहाकारैर्नादयन्ति स्म युद्धे
द्विपं समन्ताद् रुरुधुर्नराग्र्याः ॥ २२ ॥

नरेश्वर! शाल्वका वह पराक्रम देखकर समस्त नरश्रेष्ठ पाञ्चाल तथा संजय अपने हाहाकारोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करने लगे। उन्होंने युद्धभूमिमें उस हाथीको चारों ओरसे घेर लिया ॥ २२ ॥

पाञ्चालपुत्रस्त्वरितस्तु शूरो
गदां प्रगृह्याचलशृङ्गकल्पाम् ।
ससम्भ्रमं भारत शत्रुघाती
जवेन वीरोऽनुससार नागम् ॥ २३ ॥

भारत! इसी समय शत्रुघाती शूरवीर पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नने तुरंत ही पर्वतशिखरके समान विशाल गदा हाथमें लेकर बड़े वेगसे उस हाथीपर आक्रमण किया ॥ २३ ॥

ततस्तु नागं धरणीधराभं
मदं स्रवन्तं जलदप्रकाशम् ।
गदां समाविद्ध्य भृशं जघान
पाञ्चालराजस्य सुतस्तरस्वी ॥ २४ ॥

पाञ्चालराजके वेगवान् पुत्रने मेघोंके समान मदकी वर्षा करनेवाले उस पर्वताकार गजराजपर अपनी गदा घुमाकर बड़े वेगसे प्रहार किया ॥ २४ ॥

स भिन्नकुम्भः सहसा विनद्य
मुखात् प्रभूतं क्षतजं विमुञ्चन् ।
पपात नागो धरणीधराभः
क्षितिप्रकम्पाच्चलितो यथाद्रिः ॥ २५ ॥

गदाके आघातसे हाथीका कुम्भस्थल फट गया और वह पर्वतके समान विशालकाय गजराज सहसा चीत्कार करके मुँहसे रक्तवमन करता हुआ गिर पड़ा, मानो भूकम्प आनेसे कोई पहाड़ ढह गया हो ॥ २५ ॥

निपात्यमाने तु तदा गजेन्द्रे
हाहाकृते तव पुत्रस्य सैन्ये ।
स शाल्वराजस्य शिनिप्रवीरो
जहार भल्लेन शिरः शितेन ॥ २६ ॥

जब वह गजराज गिराया जाने लगा, उस समय आपके पुत्रकी सेनामें हाहाकार मच गया। इतनेहीमें शिनिवंशके प्रमुख वीर सात्यकिने एक तीखे भल्लसे शाल्वराजका सिर काट दिया ॥ २६ ॥

हृतोत्तमाङ्गो युधि सात्वतेन
पपात भूमौ सह नागराज्ञा ।
यथाद्रिशृङ्गं सुमहत् प्रणुन्नं
वज्रेण देवाधिपचोदितेन ॥ २७ ॥

रणभूमिमें सात्यकिद्वारा मस्तक कट जानेपर शाल्वराज भी उस गजराजके साथ ही धराशायी हो गया, मानो देवराज इन्द्रके चलाये हुए वज्रसे कटकर कोई विशाल पर्वतशिखर पृथ्वीपर गिर पड़ा हो ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शाल्ववधे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें शाल्वका वधविषयक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः

सात्यकिद्वारा क्षेमधूर्तिका वध, कृतवर्माका युद्ध और उसकी पराजय एवं कौरवसेनाका पलायन

संजय उवाच

तस्मिंस्तु निहते शूरे शाल्वे समितिशोभने।
तवाभज्यद् बलं वेगाद् वातेनेव महाद्रुमः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! युद्धमें शोभा पानेवाले शूरवीर शाल्वके मारे जानेपर आपकी सेनाके पाँव उखड़ गये। जैसे वेगपूर्वक चली हुई वायुके झोंकेसे कोई विशाल वृक्ष उखड़ गया हो ॥ १ ॥

तत् प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा कृतवर्मा महारथः।
दधार समरे शूरः शत्रुसैन्यं महाबलः ॥ २ ॥

अपनी सेनाका व्यूह भङ्ग हुआ देखकर महाबलवान् महारथी शूरवीर कृतवर्माने समराङ्गणमें शत्रुकी सेनाको आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ २ ॥

संनिवृत्तास्तु ते शूरा दृष्ट्वा सात्वतमाहवे।
शैलोपमं स्थिरं राजन् कीर्यमाणं शरैर्युधि ॥ ३ ॥

राजन्! कृतवर्माको युद्धस्थलमें डटा हुआ देख वे भागे हुए शूरमा भी लौट आये। युद्धस्थलमें बाणोंकी वर्षासे आच्छादित होनेपर भी वह सात्वतवंशी वीर पर्वतके समान अविचल भावसे खड़ा था ॥ ३ ॥

ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां पाण्डवैः सह।
निवृत्तानां महाराज मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ ४ ॥

महाराज! तदनन्तर लौटे हुए कौरवोंका पाण्डवोंके साथ मृत्युको ही युद्धसे निवृत्तिकी सीमा नियत करके घोर संग्राम होने लगा ॥ ४ ॥

तत्राश्चर्यमभूद् युद्धं सात्वतस्य परैः सह।
यदेको वारयामास पाण्डुसेनां दुरासदाम् ॥ ५ ॥

वहाँ कृतवर्माका शत्रुओंके साथ होनेवाला युद्ध अत्यन्त आश्चर्यजनक प्रतीत होता था; क्योंकि उसने अकेले ही दुर्जय पाण्डव-सेनाकी प्रगति रोक दी थी ॥ ५ ॥

तेषामन्योन्यसुहृदां कृते कर्मणि दुष्करे।
सिंहनादः प्रहृष्टानां दिविस्पृक् सुमहानभूत् ॥ ६ ॥

एक दूसरेका हित चाहनेवाले कौरवसैनिक कृतवर्माके द्वारा यह दुष्कर पराक्रम किये जानेपर अत्यन्त हर्षमें भर गये। उनका महान् सिंहनाद आकाशमें गूँज उठा ॥ ६ ॥

तेन शब्देन वित्रस्ताः पञ्चाला भरतर्षभ।
शिनेर्नप्ता महाबाहुरन्वपद्यत सात्यकिः ॥ ७ ॥

भरतश्रेष्ठ! उनकी उस गर्जनासे पाञ्चाल सैनिक थर्रा उठे। उस समय शिनिपौत्र महाबाहु सात्यकि उन शत्रुओंका सामना करनेके लिये आये ॥ ७ ॥

स समासाद्य राजानं क्षेमधूर्तिं महाबलम्।
सप्तभिर्निशितैर्बाणैरनयद् यमसादनम् ॥ ८ ॥

उन्होंने आते ही महाबली राजा क्षेमधूर्तिको सात पैने बाणोंसे मारकर यमलोक पहुँचा दिया ॥ ८ ॥

तमायान्तं महाबाहुं प्रवपन्तं शिताञ्शरान्।
जवेनाभ्यपतद् धीमान् हार्दिक्यः शिनिपुङ्गवम् ॥ ९ ॥

तीखे बाणोंकी वर्षा करते हुए शिनि-पौत्र महाबाहु सात्यकिको आते देख बुद्धिमान् कृतवर्मा बड़े वेगसे उनका सामना करनेके लिये आ पहुँचा ॥ ९ ॥

सात्वतौ च महावीर्यौ धन्विनौ रथिनां वरौ।
अन्योन्यमभ्यधावेतां शस्त्रप्रवरधारिणौ ॥ १० ॥

फिर तो उत्तम अस्त्र-शस्त्र धारण करनेवाले, रथियोंमें श्रेष्ठ, महापराक्रमी, धनुर्धर वीर सात्वतवंशी सात्यकि और कृतवर्मा एक दूसरेपर धावा करने लगे ॥ १० ॥

पाण्डवाः सहपञ्चाला योधाश्चान्ये नृपोत्तमाः।
प्रेक्षकाः समपद्यन्त तयोर्घोरे समागमे ॥ ११ ॥

उन दोनोंके घोर संग्राममें पाञ्चालोंसहित पाण्डव और दूसरे नृपश्रेष्ठ योद्धा दर्शक होकर तमाशा देखने लगे ॥ ११ ॥

नाराचैर्वत्सदन्तैश्च वृष्ण्यन्धकमहारथौ।
अभिजघ्नतुरन्योन्यं प्रहृष्टाविव कुञ्जरौ ॥ १२ ॥

वृष्णि और अन्धकवंशके वे दोनों वीर महारथी हर्षमें भरकर लड़ते हुए दो हाथियोंके समान एक दूसरेपर नाराचों और वत्सदन्तोंका प्रहार करने लगे ॥ १२ ॥

चरन्तौ विविधान् मार्गान् हार्दिक्यशिनिपुङ्गवौ।
मुहुरन्तर्दधाते तौ बाणवृष्ट्या परस्परम् ॥ १३ ॥

कृतवर्मा और सात्यकि दोनों नाना प्रकारके पैंतरे दिखाते हुए विचरते थे और बारंबार बाणोंकी वर्षा करके वे एक दूसरेको अदृश्य कर देते थे ॥ १३ ॥

चापवेगबलोद्धूतान् मार्गणान् वृष्णिसिंहयोः।
आकाशे समपश्याम पतङ्गानिव शीघ्रगान् ॥ १४ ॥

वृष्णिवंशके उन दोनों सिंहोंके धनुषके वेग और बलसे चलाये हुए शीघ्रगामी बाणोंको हम आकाशमें छाये हुए टिड्डीदलोंके समान देखते थे ॥ १४ ॥

तमेकं सत्यकर्माणमासाद्य हृदिकात्मजः।
अविध्यन्निशितैर्बाणैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ १५ ॥

कृतवर्माने अद्वितीय वीर सत्यपराक्रमी सात्यकिके पास पहुँचकर चार पैने बाणोंसे उनके चारों घोड़ोंको घायल कर दिया ॥ १५ ॥

स दीर्घबाहुः संक्रुद्धस्तोत्त्रार्दित इव द्विपः।
अष्टभिः कृतवर्माणमविद्ध्यत् परमेषुभिः॥ १६॥

तब महाबाहु सात्यकिने अङ्कुशोंकी चोट खाये हुए गजराजके समान अत्यन्त क्रोधमें भरकर आठ उत्तम बाणोंद्वारा कृतवर्माको घायल कर दिया॥ १६॥

ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः कृतवर्मा शिलाशितैः।
सात्यकिं त्रिभिराहत्य धनुरेकेन चिच्छिदे॥ १७॥

यह देख कृतवर्माने धनुषको पूर्णतः खींचकर छोड़े गये और शिलापर तेज किये हुए तीन बाणोंसे सात्यकिको घायल करके एकसे उनके धनुषको काट डाला॥ १७॥

निकृत्तं तद् धनुः श्रेष्ठमपास्य शिनिपुङ्गवः।
अन्यदादत्त वेगेन शैनेयः सशरं धनुः॥ १८॥

उस कटे हुए श्रेष्ठ धनुषको फेंककर शिनिप्रवर सात्यकिने बाणसहित दूसरे धनुषको वेगपूर्वक हाथमें ले लिया॥ १८॥

तदादाय धनुः श्रेष्ठं वरिष्ठः सर्वधन्विनाम्।
आरोप्य च धनुः शीघ्रं महावीर्यो महाबलः॥ १९॥
अमृष्यमाणो धनुषश्छेदनं कृतवर्मणा।
कुपितोऽतिरथः शीघ्रं कृतवर्माणमभ्ययात्॥ २०॥

सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ महाबली एवं महापराक्रमी युयुधानने उस उत्तम धनुषको लेकर शीघ्र ही उसपर बाण चढ़ाया और कृतवर्माके द्वारा अपने धनुषका काटा जाना सहन न करके उन अतिरथी वीरने कुपित हो शीघ्रतापूर्वक उसपर आक्रमण किया॥ १९-२०॥

ततः सुनिशितैर्बाणैर्दशभिः शिनिपुङ्गवः।
जघान सूतं चाश्वांश्च ध्वजं च कृतवर्मणः॥ २१॥

तत्पश्चात् शिनिप्रवर सात्यकिने अत्यन्त तीखे दस बाणोंके द्वारा कृतवर्माके ध्वज, सारथि और घोड़ोंको नष्ट कर दिया॥

ततो राजन् महेष्वासः कृतवर्मा महारथः।
हताश्वसूतं सम्प्रेक्ष्य रथं हेमपरिष्कृतम्॥ २२॥
रोषेण महताऽऽविष्टः शूलमुद्यम्य मारिष।
चिक्षेप भुजवेगेन जिघांसुः शिनिपुङ्गवम्॥ २३॥

राजन्! महाधनुर्धर महारथी कृतवर्मा अपने सुवर्णभूषित रथको घोड़े और सारथिसे रहित देख महान् रोषसे भर गया। मान्यवर! फिर उसने शिनिप्रवर सात्यकिको मार डालनेकी इच्छासे एक शूल उठाकर उसे अपनी भुजाओंके सम्पूर्ण वेगसे चला दिया॥ २२-२३॥

तच्छूलं सात्वतो ह्याजौ निर्भिद्य निशितैः शरैः।
चूर्णितं पातयामास मोहयन्निव माधवम्॥ २४॥

परंतु सात्यकिने युद्धस्थलमें अपने पैने बाणोंद्वारा उस शूलको काटकर चकनाचूर कर दिया और कृतवर्माको मोहमें डालते हुए से उस चूर-चूर हुए शूलको पृथ्वीपर गिरा दिया॥

ततोऽपरेण भल्लेन हृद्येनं समताडयत्।
स युद्धे युयुधानेन हताश्वो हतसारथिः॥ २५॥
कृतवर्मा कृतस्तेन धरणीमन्वपद्यत।

इसके बाद उन्होंने कृतवर्माकी छातीमें एक भल्लद्वारा गहरी चोट पहुँचायी। तब वह युयुधानद्वारा घोड़ों और सारथिसे रहित किया हुआ कृतवर्मा रथ छोड़कर युद्धस्थलमें पृथ्वीपर खड़ा हो गया॥ २५½॥

तस्मिन् सात्यकिना वीरे द्वैरथे विरथीकृते॥ २६॥
समपद्यत सर्वेषां सैन्यानां सुमहद् भयम्।

उस द्वैरथ युद्धमें सात्यकिद्वारा वीर कृतवर्माके रथहीन हो जानेपर आपके सारे सैनिकोंके मनमें महान् भय समा गया॥

पुत्रस्य तव चात्यर्थं विषादः समजायत॥ २७॥
हतसूते हताश्वे तु विरथे कृतवर्मणि।

जब कृतवर्माके घोड़े और सारथि मारे गये तथा वह रथहीन हो गया, तब आपके पुत्र दुर्योधनके मनमें बड़ा खेद हुआ॥

हताश्वं च समालक्ष्य हतसूतमरिंदम॥ २८॥
अभ्यधावत् कृपो राजञ्जिघांसुः शिनिपुङ्गवम्।

शत्रुदमन नरेश! कृतवर्माके घोड़ों और सारथिको मारा गया देख कृपाचार्य सात्यकिको मार डालनेकी इच्छासे वहाँ दौड़े हुए आये॥ २८½॥

तमारोप्य रथोपस्थे मिषतां सर्वधन्विनाम्॥ २९॥
अपोवाह महाबाहुं तूर्णमायोधनादपि।

फिर सम्पूर्ण धनुर्धरोंके देखते-देखते महाबाहु कृतवर्माको अपने रथपर बिठाकर वे उसे तुरंत ही युद्धस्थलसे दूर हटा ले गये॥ २९½॥

शैनेयेऽधिष्ठिते राजन् विरथे कृतवर्मणि॥ ३०॥
दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत् पराङ्मुखम्।

राजन्! जब सात्यकि युद्धके लिये डटे रहे और कृतवर्मा रथहीन होकर भाग गया, तब दुर्योधनकी सारी सेना पुनः युद्धसे विमुख हो वहाँसे पलायन करने लगी॥ ३०½॥

तत् परे नान्वबुध्यन्त सैन्येन रजसा वृताः॥ ३१॥
तावकाः प्रद्रुता राजन् दुर्योधनमृते नृपम्।

परंतु सेनाद्वारा उड़ायी हुई धूलसे आच्छादित होनेके कारण शत्रुओंके सैनिक कौरव-सेनाके भागनेकी बात न जान सके। राजन्! राजा दुर्योधनके सिवा, आपके सभी योद्धा वहाँसे भाग गये॥ ३१½॥

दुर्योधनस्तु सम्प्रेक्ष्य भग्नं स्वबलमन्तिकात्॥ ३२॥
जवेनाभ्यपतत् तूर्णं सर्वांश्चैको न्यवारयत्।

दुर्योधन अपनी सेनाको निकटसे भागती देख बड़े वेगसे शत्रुओंपर टूट पड़ा और उन सबको अकेले ही शीघ्रतापूर्वक रोकने लगा॥ ३२½॥

पाण्डूंश्च सर्वान् संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नं च पार्षतम्॥ ३३॥
शिखण्डिनं द्रौपदेयान् पञ्चालानां च ये गणाः।
केकयान् सोमकांश्चैव सृञ्जयांश्चैव मारिष॥ ३४॥
असम्भ्रमं दुराधर्षः शितैर्बाणैरवाकिरत्।
अतिष्ठदाहवे यत्तः पुत्रस्तव महाबलः॥ ३५॥

माननीय नरेश! उस समय क्रोधमें भरा हुआ आपका महाबली पुत्र दुर्धर्ष दुर्योधन सावधान हो बिना किसी घबराहटके समस्त पाण्डवों, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, शिखण्डी,

द्रौपदीके पाँचों पुत्रों, पाञ्चालों, केकयों, सोमकों और सृञ्जयोंपर पैनें बाणोंकी वर्षा करने लगा तथा निर्भय होकर युद्धभूमिमें डटा रहा ॥ ३३–३५ ॥

यथा यज्ञे महानग्निर्मन्त्रपूतः प्रकाशवान्।
तथा दुर्योधनो राजा संग्रामे सर्वतोऽभवत् ॥ ३६ ॥

जैसे यज्ञमें मन्त्रोंद्वारा पवित्र हुए महान् अग्निदेव प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार संग्राममें राजा दुर्योधन सब ओरसे देदीप्यमान हो रहा था ॥ ३६ ॥

तं परे नाभ्यवर्तन्त मर्त्या मृत्युमिवाहवे।
अथान्यं रथमास्थाय हार्दिक्यः समपद्यत ॥ ३७ ॥

जैसे मरणधर्मा मनुष्य अपनी मृत्युका उल्लङ्घन नहीं कर सकते, उसी प्रकार युद्धभूमिमें शत्रुसैनिक राजा दुर्योधनका सामना न कर सके। इतनेहीमें कृतवर्मा दूसरे रथपर आरूढ़ होकर वहाँ आ पहुँचा ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि सात्यकिकृतवर्मयुद्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें सात्यकि और कृतवर्माका युद्धविषयक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

दुर्योधनका पराक्रम और उभयपक्षकी सेनाओंका घोर संग्राम

संजय उवाच

पुत्रस्तु ते महाराज रथस्थो रथिनां वरः।
दुरुत्सहो बभौ युद्धे यथा रुद्रः प्रतापवान् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! रथपर बैठा हुआ रथियोंमें श्रेष्ठ आपका प्रतापी पुत्र दुर्योधन रुद्रदेवके समान युद्धमें शत्रुओंके लिये दुःसह प्रतीत होने लगा ॥ १ ॥

तस्य बाणसहस्रैस्तु प्रच्छन्ना ह्यभवन्मही।
परांश्च सिषिचे बाणैर्धाराभिरिव पर्वतान् ॥ २ ॥

उसके सहस्रों बाणोंसे वहाँकी सारी पृथ्वी आच्छादित हो गयी। जैसे मेघ जलकी धाराओंसे पर्वतको सींचते हैं, उसी प्रकार वह शत्रुओंको अपनी बाणधारासे नहलाने लगा ॥ २ ॥

न च सोऽस्ति पुमान् कश्चित् पाण्डवानां बलार्णवे।
हयो गजो रथो वापि यः स्याद् बाणैरविक्षतः ॥ ३ ॥

पाण्डवोंके सैन्यसागरमें कोई भी ऐसा मनुष्य, घोड़ा, हाथी अथवा रथ नहीं था, जो दुर्योधनके बाणोंसे क्षत-विक्षत न हुआ हो ॥ ३ ॥

यं यं हि समरे योधं प्रपश्यामि विशाम्पते।
स स बाणैश्चितोऽभूद् वै पुत्रेण तव भारत ॥ ४ ॥

प्रजानाथ ! भरतनन्दन ! मैं समराङ्गणमें जिस-जिस योद्धाको देखता था, वही-वही आपके पुत्रके बाणोंसे व्याप्त हुआ दिखायी देता था ॥ ४ ॥

यथा सैन्येन रजसा समुद्भूतेन वाहिनी।
प्रत्यदृश्यत संछन्ना तथा बाणैर्महात्मनः ॥ ५ ॥

जैसे सैनिकोंद्वारा उड़ायी हुई धूलसे सारी सेना आच्छादित हो गयी थी, उसी प्रकार वह महामनस्वी दुर्योधनके बाणोंसे ढकी दिखायी देती थी ॥ ५ ॥

बाणभूतामपश्याम पृथिवीं पृथिवीपते।
दुर्योधनेन प्रकृतां क्षिप्रहस्तेन धन्विना ॥ ६ ॥

पृथ्वीपते ! हमने देखा कि शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले धनुर्धर वीर दुर्योधनने सारी रणभूमिको बाणमयी कर दिया है ॥ ६ ॥

तेषु योधसहस्रेषु तावकेषु परेषु च।
एको दुर्योधनो ह्यासीत् पुमानिति मतिर्मम ॥ ७ ॥

आपके या शत्रुपक्षके सहस्रों योद्धाओंमें मुझे एकमात्र दुर्योधन ही वीर पुरुष जान पड़ता था ॥ ७ ॥

तत्राद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य विक्रमम्।
यदेकं सहिताः पार्था नाभ्यवर्तन्त भारत ॥ ८ ॥

भारत ! हमने वहाँ आपके पुत्रका यह अद्भुत पराक्रम देखा कि समस्त पाण्डव एक साथ मिलकर भी उस एकाकी वीरका सामना नहीं कर सके ॥ ८ ॥

युधिष्ठिरं शतेनाजौ विव्याध भरतर्षभ।
भीमसेनं च सप्तत्या सहदेवं च पञ्चभिः ॥ ९ ॥
नकुलं च चतुःषष्ट्या धृष्टद्युम्नं च पञ्चभिः।
सप्तभिर्द्रौपदेयांश्च त्रिभिर्विव्याध सात्यकिम् ॥ १० ॥
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सहदेवस्य मारिष।

भरतश्रेष्ठ ! उसने युद्धस्थलमें युधिष्ठिरको सौ, भीमसेनको सत्तर, सहदेवको पाँच, नकुलको चौसठ, धृष्टद्युम्नको पाँच, द्रौपदीके पुत्रोंको सात तथा सात्यकिको तीन बाणोंसे घायल कर दिया। मान्यवर ! साथ ही उसने एक भल्ल मारकर सहदेवका धनुष भी काट डाला ॥ ९-१०½ ॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं माद्रीपुत्रः प्रतापवान् ॥ ११ ॥
अभ्यद्रवत राजानं प्रगृह्यान्यन्महद् धनुः।
ततो दुर्योधनं संख्ये विव्याध दशभिः शरैः ॥ १२ ॥

प्रतापी माद्रीपुत्र सहदेवने उस कटे हुए धनुषको फेंककर दूसरा विशाल धनुष हाथमें ले राजा दुर्योधनपर धावा किया और युद्धस्थलमें दस बाणोंसे उसे घायल कर दिया ॥

नकुलस्तु ततो वीरो राजानं नवभिः शरैः।
घोररूपैर्महेष्वासो विव्याध च ननाद च ॥ १३ ॥

इसके बाद महाधनुर्धर वीर नकुलने नौ भयंकर बाणोंद्वारा राजा दुर्योधनको बींध डाला और उच्चस्वरसे गर्जना की ॥ १३ ॥

सात्यकिश्चैव राजानं शरेणानतपर्वणा।
द्रौपदेयास्त्रिसप्तत्या धर्मराजश्च पञ्चभिः ॥ १४ ॥
अशीत्या भीमसेनश्च शरै राजानमार्पयन्।

फिर सात्यकिने भी झुकी हुई गाँठवाले एक बाणसे राजाको घायल कर दिया। तदनन्तर द्रौपदीके पुत्रोंने राजा

दुर्योधनको तिहत्तर, धर्मराजने पाँच और भीमसेनने अस्सी बाण मारे ॥ १४½ ॥

समन्तात् कीर्यमाणस्तु बाणसंघैर्महात्मभिः ॥ १५ ॥
न चचाल महाराज सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।

महाराज ! वे महामनस्वी वीर सारी सेनाके देखते-देखते दुर्योधनपर चारों ओरसे बाणसमूहोंकी वर्षा कर रहे थे तो भी वह विचलित नहीं हुआ ॥ १५½ ॥

लाघवं सौष्ठवं चापि वीर्यं चापि महात्मनः ॥ १६ ॥
अति सर्वाणि भूतानि ददृशुः सर्वमानवाः ।

उस महामनस्वी वीरकी फुर्ती, अस्त्र-संचालनका सुन्दर ढंग तथा पराक्रम—इन सबको सब लोगोंने सम्पूर्ण प्राणियोंसे बढ़-चढ़कर देखा ॥ १६½ ॥

धार्तराष्ट्रा हि राजेन्द्र योधास्तु स्वल्पमन्तरम् ॥ १७ ॥
अपश्यमाना राजानं पर्यवर्तन्त दंशिताः ।

राजेन्द्र ! आपके योद्धा थोड़ा-सा भी अन्तर न देखकर कवच आदिसे सुसज्जित हो राजा दुर्योधनको चारों ओरसे घेर-कर खड़े हो गये ॥ १७½ ॥

तेषामापततां घोरस्तुमुलः समपद्यत ॥ १८ ॥
क्षुब्धस्य हि समुद्रस्य प्रावृट्काले यथा स्वनः ।

जैसे वर्षाकालमें विक्षुब्ध हुए समुद्रकी भीषण गर्जना सुनायी देती है, उसी प्रकार उन आक्रमणकारी कौरवोंका घोर एवं भयंकर कोलाहल प्रकट होने लगा ॥ १८½ ॥

समासाद्य रणे ते तु राजानमपराजितम् ॥ १९ ॥
प्रत्युद्ययुर्महेष्वासाः पाण्डवानाततायिनः ।

वे महाधनुर्धर कौरवयोद्धा रणभूमिमें अपराजित राजा दुर्योधनके पास पहुँचकर आततायी पाण्डवोंपर जा चढ़े ॥

भीमसेनं रणे क्रुद्धो द्रोणपुत्रो न्यवारयत् ॥ २० ॥
नानाबाणैर्महाराज प्रमुक्तैः सर्वतोदिशम् ।
नाज्ञायन्त रणे वीरा न दिशः प्रदिशः कुतः ॥ २१ ॥

महाराज ! रणक्षेत्रमें कुपित हुए द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने सम्पूर्ण दिशाओंमें छोड़े गये अनेक प्रकारके बाणोंद्वारा भीमसेनको आगे बढ़नेसे रोक दिया। उस समय संग्राममें न तो वीरोंकी पहचान होती थी और न दिशाओंकी, फिर अवान्तर-दिशाओं (कोणों) की तो बात ही क्या है ? ॥ २०-२१ ॥

तावुभौ क्रूरकर्माणावुभौ भारत दुःसहौ ।
घोररूपमयुध्येतां कृतप्रतिकृतैषिणौ ॥ २२ ॥

भारत ! वे दोनों वीर क्रूरतापूर्ण कर्म करनेवाले और शत्रुओंके लिये दुःसह थे। अतः एक-दूसरेके प्रहारका भरपूर जवाब देनेकी इच्छा रखकर वे घोर युद्ध करने लगे ॥ २२ ॥

त्रासयन्तौ दिशः सर्वा ज्याक्षेपकठिनत्वचौ ।
शकुनिस्तु रणे वीरो युधिष्ठिरमपीडयत् ॥ २३ ॥

प्रत्यञ्चा खींचनेसे उनके हाथोंकी त्वचा बहुत कठोर हो गयी थी और वे सम्पूर्ण दिशाओंको आतङ्कित कर रहे थे। दूसरी ओर वीर शकुनि रणभूमिमें युधिष्ठिरको पीड़ा देने लगा॥

तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सुबलस्य सुतो विभो ।
नादं चकार बलवत् सर्वसैन्यानि कोपयन् ॥ २४ ॥

प्रभो ! सुबलके उस पुत्रने युधिष्ठिरके चारों घोड़ोंको मारकर सम्पूर्ण सेनाओंका क्रोध बढ़ाते हुए बड़े जोरसे सिंहनाद किया ॥ २४ ॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरं राजानमपराजितम् ।
अपोवाह रथेनाजौ सहदेवः प्रतापवान् ॥ २५ ॥

इसी बीचमें प्रतापी सहदेव युद्धमें किसीसे परास्त न होनेवाले वीर राजा युधिष्ठिरको अपने रथपर बिठाकर दूर हटा ले गये ॥ २५ ॥

अथान्यं रथमास्थाय धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
शकुनिं नवभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ॥ २६ ॥

तदनन्तर धर्मपुत्र युधिष्ठिरने दूसरे रथपर आरूढ़ हो पुनः धावा किया और शकुनिको पहले नौ बाणोंसे घायल करके फिर पाँच बाणोंसे बींध डाला ॥ २६ ॥

ननाद च महानादं प्रवरः सर्वधन्विनाम् ।
तद् युद्धमभवच्चित्रं घोररूपं च मारिष ॥ २७ ॥
प्रेक्षतां प्रीतिजननं सिद्धचारणसेवितम् ।

इसके बाद सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरने बड़े जोरसे सिंहनाद किया। मान्यवर ! उनका वह युद्ध विचित्र, भयंकर, सिद्धों और चारणोंद्वारा सेवित तथा दर्शकोंका हर्ष बढ़ानेवाला था॥

उलूकस्तु महेष्वासं नकुलं युद्धदुर्मदम् ॥ २८ ॥
अभ्यद्रवदमेयात्मा शरवर्षैः समन्ततः ।

दूसरी ओर अमेय आत्मबलसे सम्पन्न उलूकने महाधनुर्धर रणदुर्मद नकुलपर चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा करते हुए धावा किया।

तथैव नकुलः शूरः सौबलस्य सुतं रणे ॥ २९ ॥
शरवर्षेण महता समन्तात् पर्यवारयत् ।

इसी प्रकार शूरवीर नकुलने रणभूमिमें शकुनिके पुत्रको बड़ी भारी बाणवर्षाके द्वारा सब ओरसे अवरुद्ध कर दिया ॥

तौ तत्र समरे वीरौ कुलपुत्रौ महारथौ ॥ ३० ॥
योधयन्तावपश्येतां कृतप्रतिकृतैषिणौ ।

वे दोनों वीर महारथी उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए थे ! अतः समराङ्गणमें एक-दूसरेके प्रहारका प्रतीकार करनेकी इच्छा रखकर जूझते दिखायी देते थे ॥ ३०½ ॥

तथैव कृतवर्माणं शैनेयः शत्रुतापनः ॥ ३१ ॥
योधयञ्शुशुभे राजन् बलिं शक्र इवाहवे ।

राजन् ! इसी तरह शत्रुसंतापी सात्यकि कृतवर्माके साथ युद्ध करते हुए युद्धस्थलमें उसी प्रकार शोभा पाने लगे, जैसे इन्द्र बलिके साथ ॥ ३१½ ॥

दुर्योधनो धनुश्छित्त्वा धृष्टद्युम्नस्य संयुगे ॥ ३२ ॥
अथैनं छिन्नधन्वानं विव्याध निशितैः शरैः ।

दुर्योधनने युद्धस्थलमें धृष्टद्युम्नका धनुष काट दिया और धनुष कट जानेपर उन्हें पैने बाणोंसे बींध डाला ॥ ३२½ ॥

धृष्टद्युम्नोऽपि समरे प्रगृह्य परमायुधम् ॥ ३३ ॥
राजानं योधयामास पश्यतां सर्वधन्विनाम् ।

तब धृष्टद्युम्न भी दूसरा उत्तम धनुष लेकर समरभूमिमें

सम्पूर्ण धनुर्धरोंके देखते-देखते राजा दुर्योधनके साथ युद्ध करने लगे ॥ ३३½ ॥

तयोर्युद्धं महच्चासीत् संग्रामे भरतर्षभ ॥ ३४ ॥
प्रभिन्नयोर्यथा सक्तं मत्तयोर्वरहस्तिनोः ।

भरतश्रेष्ठ ! रणभूमिमें उन दोनोंका महान् युद्ध ऐसा जान पड़ता था, मानो मदकी धारा बहानेवाले दो उत्तम मतवाले हाथी आपसमें जूझ रहे हों ॥ ३४½ ॥

गौतमस्तु रणे क्रुद्धो द्रौपदेयान् महाबलान् ॥ ३५ ॥
विव्याध बहुभिः शूरः शरैः संनतपर्वभिः ।

दूसरी ओर शूरवीर कृपाचार्यने रणभूमिमें कुपित हो महाबली द्रौपदीपुत्रोंको झुकी हुई गाँठवाले बहुत-से बाणोंद्वारा घायल कर दिया ॥ ३५½ ॥

तस्य तैरभवद् युद्धमिन्द्रियैरिव देहिनः ॥ ३६ ॥
घोररूपमसंवार्यं निर्मर्यादमवर्तत ।

जैसे देहधारी जीवात्माका पाँचों इन्द्रियोंके साथ युद्ध हो रहा हो, उसी प्रकार उन पाँचों भाइयोंके साथ कृपाचार्यका युद्ध हो रहा था । धीरे-धीरे वह युद्ध अत्यन्त घोर, अनिवार्य और अमर्यादित हो गया ॥ ३६½ ॥

ते च सम्पीडयामासुरिन्द्रियाणीव बालिशम् ॥ ३७ ॥
स च तान् प्रति संरब्धः प्रत्ययोधयदाहवे ।

जैसे इन्द्रियाँ मूढ़ मनुष्यको पीड़ा देती हैं, उसी प्रकार वे पाँचों भाई कृपाचार्यको पीड़ित करने लगे । कृपाचार्य भी अत्यन्त रोषमें भरकर रणक्षेत्रमें उन सबके साथ युद्ध कर रहे थे ॥

एवं चित्रमभूद् युद्धं तस्य तैः सह भारत ॥ ३८ ॥
उत्थायोत्थाय हि यथा देहिनामिन्द्रियैर्विभो ।

भारत ! उनका उन द्रौपदीपुत्रोंके साथ ऐसा विचित्र युद्ध होने लगा, जैसे बारंबार उठ-उठकर विषयोंकी ओर प्रवृत्त होनेवाली इन्द्रियोंके साथ देहधारियोंका युद्ध होता रहता है ॥

नराश्चैव नरैः सार्धं दन्तिनो दन्तिभिस्तथा ॥ ३९ ॥
हया हयैः समासक्ता रथिनो रथिभिः सह ।
संकुलं चाभवद् भूयो घोररूपं विशाम्पते ॥ ४० ॥

प्रजानाथ ! उस समय मनुष्य मनुष्योंसे, हाथी हाथियोंसे, घोड़े घोड़ोंसे और रथी रथियोंसे भिड़ गये थे । फिर उनमें अत्यन्त घोर घमासान युद्ध होने लगा ॥ ३९-४० ॥

इदं चित्रमिदं घोरमिदं रौद्रमिति प्रभो ।
युद्धान्यासन् महाराज घोराणि च बहूनि च ॥ ४१ ॥

प्रभो ! महाराज ! यह विचित्र, यह घोर, यह रौद्र युद्ध—इस प्रकार बहुत-से भीषण युद्ध चलने लगे ॥ ४१ ॥

ते समासाद्य समरे परस्परमरिंदमाः ।
व्यनदंश्चैव जघ्नुश्च समासाद्य महाहवे ॥ ४२ ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले वे समस्त योद्धा समराङ्गणमें एक-दूसरेसे भिड़कर उस महायुद्धमें परस्पर टक्कर लेते हुए प्रहार और सिंहनाद करने लगे ॥ ४२ ॥

तेषां पत्रसमुद्भूतं रजस्तीव्रमदृश्यत ।
वातेन चोद्धतं राजन् धावद्भिश्चाश्वसादिभिः ॥ ४३ ॥

राजन् ! उनके वाहनोंसे, हवासे और दौड़ते हुए घुड़सवारोंसे उड़ायी गयी भयंकर धूल सब ओर व्याप्त दिखायी देती थी ॥

रथनेमिसमुद्भूतं निःश्वासैश्चापि दन्तिनाम् ।
रजः संध्याभ्रकलिलं दिवाकरपथं ययौ ॥ ४४ ॥

रथके पहियों और हाथियोंके उच्छ्वासोंसे ऊपर उठायी हुई धूल संध्याकालके मेघोंके समान सूर्यके मार्गमें छा गयी थी ॥

रजसा तेन सम्पृक्तो भास्करो निष्प्रभः कृतः ।
संछादिताभवद् भूमिस्ते च शूरा महारथाः ॥ ४५ ॥

उस धूलके सम्पर्कमें आकर सूर्य प्रभाहीन हो गये थे तथा पृथ्वी और वे महारथी शूरवीर भी ढक गये थे ॥ ४५ ॥

मुहूर्तादिव संवृत्तं नीरजस्कं समन्ततः ।
वीरशोणितसिक्तायां भूमौ भरतसत्तम ॥ ४६ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर दो ही घड़ीमें वीरोंके रक्तसे धरती सिंच उठी और सब ओरकी धूल बैठ जानेके कारण रणक्षेत्र निर्मल हो गया ॥ ४६ ॥

उपाशाम्यत् ततस्तीव्रं तद् रजो घोरदर्शनम् ।
ततोऽपश्यमहं भूयो द्वन्द्वयुद्धानि भारत ॥ ४७ ॥
यथाप्राणं यथाश्रेष्ठं मध्याह्ने वै सुदारुणे ।
वर्मणां तत्र राजेन्द्र व्यदृश्यन्तोज्ज्वलाः प्रभाः ॥ ४८ ॥

वह भयंकर दिखायी देनेवाली तीव्र धूलि सर्वथा शान्त हो गयी । भारत ! राजेन्द्र ! तब मैं फिर उस दारुण मध्याह्नकालमें अपने बल और श्रेष्ठताके अनुसार अनेक द्वन्द्वयुद्ध देखने लगा । योद्धाओंके कवचोंकी प्रभा वहाँ अत्यन्त उज्ज्वल दिखायी देती थी ॥ ४७-४८ ॥

शब्दश्च तुमुलः संख्ये शराणां पतताभूत् ।
महावेणुवनस्येव दह्यमानस्य पर्वते ॥ ४९ ॥

जैसे पर्वतपर जलते हुए विशाल बाँसोंके वनसे प्रकट होनेवाला चटचट शब्द सुनायी देता है, उसी प्रकार युद्धस्थलमें बाणोंके गिरनेका भयंकर शब्द वहाँ गूँज रहा था ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें संकुलयुद्धविषयक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

कौरवपक्षके सात सौ रथियोंका वध, उभयपक्षकी सेनाओंका मर्यादाशून्य घोर संग्राम तथा शकुनिका कूट युद्ध और उसकी पराजय

संजय उवाच

वर्तमाने तथा युद्धे घोररूपे भयानके ।
अभज्यत बलं तत्र तव पुत्रस्य पाण्डवैः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! जब वह भयानक घोर

युद्ध होने लगा, उस समय पाण्डवोंने आपके पुत्रकी सेनाके पाँव उखाड़ दिये ॥ १ ॥

तांस्तु यत्नेन महता संनिवार्य महारथान्।
पुत्रस्ते योधयामास पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ २ ॥

उन भागते हुए महारथियोंको महान् प्रयत्नसे रोककर आपका पुत्र पाण्डवोंकी सेनाके साथ युद्ध करने लगा ॥ २ ॥

निवृत्ताः सहसा योधास्तव पुत्रजयैषिणः।
संनिवृत्तेषु तेष्वेवं युद्धमासीत् सुदारुणम् ॥ ३ ॥

यह देख आपके पुत्रकी विजय चाहनेवाले योद्धा सहसा लौट पड़े। इस प्रकार उनके लौटनेपर उन सबमें अत्यन्त भयंकर युद्ध होने लगा ॥ ३ ॥

तावकानां परेषां च देवासुररणोपमम्।
परेषां तव सैन्ये वा नासीत् कश्चित् पराङ्मुखः ॥ ४ ॥

आपके और शत्रुओंके योद्धाओंका वह युद्ध देवासुर-संग्रामके समान भयंकर था। उस समय शत्रुओंकी अथवा आपकी सेनामें भी कोई युद्धसे विमुख नहीं होता था ॥ ४ ॥

अनुमानेन युध्यन्ते संज्ञाभिश्च परस्परम्।
तेषां क्षयो महानासीद् युध्यतामितरेतरम् ॥ ५ ॥

सब लोग अनुमानसे और नाम बतानेसे शत्रु तथा मित्रकी पहचान करके परस्पर युद्ध करते थे। परस्पर जूझते हुए उन वीरोंका वहाँ बड़ा भारी विनाश हो रहा था ॥ ५ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा क्रोधेन महता युतः।
जिगीषमाणः संग्रामे धार्तराष्ट्रान् सराजकान् ॥ ६ ॥

उस समय राजा युधिष्ठिर महान् क्रोधसे युक्त हो संग्राममें राजा दुर्योधनसहित आपके पुत्रोंको जीतना चाहते थे ॥ ६ ॥

त्रिभिः शारद्वतं विद्ध्वा रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः।
चतुर्भिर्निजघानाश्वान् नाराचैः कृतवर्मणः ॥ ७ ॥

उन्होंने शिलापर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले तीन बाणोंसे कृपाचार्यको घायल करके चार नाराचोंसे कृतवर्माके घोड़ोंको मार डाला ॥ ७ ॥

अश्वत्थामा तु हार्दिक्यमपोवाह यशस्विनम्।
अथ शारद्वतोऽष्टाभिः प्रत्यविद्ध्यद् युधिष्ठिरम् ॥ ८ ॥

तब अश्वत्थामा यशस्वी कृतवर्माको अपने रथपर बिठाकर अन्यत्र हटा ले गया। तदनन्तर कृपाचार्यने आठ बाणोंसे राजा युधिष्ठिरको बींध डाला ॥ ८ ॥

ततो दुर्योधनो राजा रथान् सप्तशतान् रणे।
प्रैषयद् यत्र राजासौ धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ९ ॥

इसके बाद राजा दुर्योधनने रणभूमिमें सात सौ रथियोंको वहाँ भेजा, जहाँ धर्मपुत्र युधिष्ठिर खड़े थे ॥ ९ ॥

ते रथा रथिभिर्युक्ता मनोमारुतरंहसः।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे कौन्तेयस्य रथं प्रति ॥ १० ॥

रथियोंसे युक्त और मन तथा वायुके समान वेगशाली वे रथ रणभूमिमें कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरके रथकी ओर दौड़े ॥

ते समन्तान्महाराज परिवार्य युधिष्ठिरम्।
अदृश्यं सायकैश्चक्रुर्मेघा इव दिवाकरम् ॥ ११ ॥

महाराज! जैसे बादल सूर्यको ढक देते हैं, उसी प्रकार उन रथियोंने युधिष्ठिरको चारों ओरसे घेरकर अपने बाणोंद्वारा उन्हें अदृश्य कर दिया ॥ ११ ॥

ते दृष्ट्वा धर्मराजानं कौरवेयैस्तथा कृतम्।
नामृष्यन्त सुसंरब्धाः शिखण्डिप्रमुखा रथाः ॥ १२ ॥

धर्मराज युधिष्ठिरको कौरवोंद्वारा वैसी दशामें पहुँचाया गया देख अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए शिखण्डी आदि रथी सहन न कर सके ॥ १२ ॥

रथैरश्ववरैर्युक्तैः किङ्किणीजालसंवृतैः।
आजग्मुरथ रक्षन्तः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ १३ ॥

वे छोटी-छोटी घंटियोंकी जालीसे ढके और श्रेष्ठ अश्वोंसे जुते हुए रथोंद्वारा कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये वहाँ आ पहुँचे ॥ १३ ॥

ततः प्रववृते रौद्रः संग्रामः शोणितोदकः।
पाण्डवानां कुरूणां च यमराष्ट्रविवर्धनः ॥ १४ ॥

तदनन्तर कौरवों और पाण्डवोंका अत्यन्त भयंकर संग्राम आरम्भ हो गया, जिसमें पानीकी तरह खून बहाया जाता था। वह युद्ध यमराजके राज्यकी वृद्धि करनेवाला था॥

रथान् सप्तशतान् हत्वा कुरूणामाततायिनाम्।
पाण्डवाः सह पञ्चालैः पुनरेवाभ्यवारयन् ॥ १५ ॥

उस समय पाञ्चालोंसहित पाण्डवोंने आततायी कौरवोंके उन सात सौ रथियोंको मारकर पुनः अन्य योद्धाओंको आगे बढ़नेसे रोका ॥ १५ ॥

तत्र युद्धं महच्चासीत् तव पुत्रस्य पाण्डवैः।
न च तत् तादृशं दृष्टं नैव चापि परिश्रुतम् ॥ १६ ॥

वहाँ आपके पुत्रका पाण्डवोंके साथ बड़ा भारी युद्ध हुआ। वैसा युद्ध मैंने न तो कभी देखा था और न मेरे सुननेमें ही आया था ॥ १६ ॥

वर्तमाने तदा युद्धे निर्मर्यादे समन्ततः।
वध्यमानेषु योधेषु तावकेष्वितरेषु च ॥ १७ ॥
विनदत्सु च योधेषु शङ्खवर्यैश्च पूरितैः।
उत्कृष्टैः सिंहनादैश्च गर्जितैश्चैव धन्विनाम् ॥ १८ ॥
अतिप्रवृत्ते युद्धे च छिद्यमानेषु मर्मसु।
धावमानेषु योधेषु जयगृद्धिषु मारिष ॥ १९ ॥
संहारे सर्वतो जाते पृथिव्यां शोकसम्भवे।
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां सीमन्तोद्धरणे तथा ॥ २० ॥
निर्मर्यादे महायुद्धे वर्तमाने सुदारुणे।
प्रादुरासन् विनाशाय तदोत्पाताः सुदारुणाः ॥ २१ ॥

माननीय नरेश! जब सब ओरसे वह मर्यादाशून्य युद्ध होने लगा, आपके और शत्रुपक्षके योद्धा मारे जाने लगे, युद्ध-परायण वीरोंकी गर्जना और श्रेष्ठ शङ्खोंकी ध्वनि होने लगी, धनुर्धरोंकी ललकार, सिंहनाद और गर्जनाओंके साथ जब वह युद्ध औचित्यकी सीमाको पार कर गया, योद्धाओंके मर्मस्थल विदीर्ण किये जाने लगे, विजयाभिलाषी योद्धा इधर-उधर दौड़ने लगे, रणभूमिमें सब ओर शोकजनक संहार होने

लगा, बहुत-सी सुन्दरी स्त्रियोंके सीमन्तके सिन्दूर मिटाये जाने लगे तथा सारी मर्यादाओंको तोड़कर अत्यन्त भयंकर महायुद्ध चलने लगा, उस समय विनाशकी सूचना देनेवाले अति दारुण उत्पात प्रकट होने लगे ॥ १७—२१ ॥

चचाल शब्दं कुर्वाणा सपर्वतवना मही।
सदण्डाः सोल्मुका राजन् कीर्यमाणाः समन्ततः ॥२२॥
उल्का पेतुर्दिवो भूमावाहत्य रविमण्डलम्।

राजन्! पर्वत और वनोंसहित पृथ्वी भयानक शब्द करती हुई डोलने लगी और आकाशसे दण्ड तथा जलते हुए काष्ठोंसहित बहुत-सी उल्काएँ सूर्यमण्डलसे टकराकर सम्पूर्ण दिशाओंमें बिखरी पड़ती थीं ॥ २२½ ॥

विष्वग्वाताः प्रादुरासन् नीचैः शर्करवर्षिणः ॥ २३ ॥
अश्रूणि मुमुचुर्नागा वेपथुं चास्पृशन् भृशम्।

चारों ओर नीचे बालू और कंकड़ बरसानेवाली हवाएँ चलने लगीं। हाथी आँसू बहाने और थरथर काँपने लगे ॥

एतान् घोराननादृत्य समुत्पातान् सुदारुणान् ॥ २४ ॥
पुनर्युद्धाय संयत्ताः क्षत्रियास्तस्थुरव्यथाः।
रमणीये कुरुक्षेत्रे पुण्ये स्वर्गं यियासवः ॥ २५ ॥

इन घोर एवं दारुण उत्पातोंकी अवहेलना करके क्षत्रिय वीर मनमें व्यथासे रहित हो पुनः युद्धके लिये तैयार हो गये और स्वर्गमें जानेकी अभिलाषा ले रमणीय एवं पुण्यमय कुरुक्षेत्रमें उत्साहपूर्वक डट गये ॥ २४-२५ ॥

ततो गान्धारराजस्य पुत्रः शकुनिरब्रवीत्।
युद्ध्यध्वमग्रतो यावत् पृष्ठतो हन्मि पाण्डवान् ॥२६॥

तत्पश्चात् गान्धारराजके पुत्र शकुनिने कौरवयोद्धाओंसे कहा—'वीरो! तुमलोग सामनेसे युद्ध करो और मैं पीछेसे पाण्डवोंका संहार करता हूँ' ॥ २६ ॥

ततो नः सम्प्रयातानां मद्रयोधास्तरस्विनः।
हृष्टाः किलकिलाशब्दमकुर्वन्तापरे तथा ॥ २७ ॥

इस सलाहके अनुसार जब हमलोग चले तो मद्रदेशके वेगशाली योद्धा तथा अन्य सैनिक हर्षसे उल्लसित हो किलकारियाँ भरने लगे ॥ २७ ॥

अस्मांस्तु पुनरासाद्य लब्धलक्ष्या दुरासदाः।
शरासनानि धुन्वन्तः शरवर्षैरवाकिरन् ॥ २८ ॥

इतनेहीमें दुर्धर्ष पाण्डव पुनः हमारे पास आ पहुँचे और हमें अपने लक्ष्यके रूपमें पाकर धनुष हिलाते हुए हम लोगोंपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ २८ ॥

ततो हतं परैस्तत्र मद्रराजबलं तदा।
दुर्योधनबलं दृष्ट्वा पुनरासीत् पराङ्मुखम् ॥ २९ ॥

थोड़ी ही देरमें शत्रुओंने वहाँ मद्रराजकी सेनाका संहार कर डाला। यह देख दुर्योधनकी सेना पुनः पीठ दिखाकर भागने लगी ॥ २९ ॥

गान्धारराजस्तु पुनर्वाक्यमाह ततो बली।
निवर्तध्वमधर्मज्ञा युध्यध्वं किं सृतेन वः ॥ ३० ॥

तब बलवान् गान्धारराज शकुनिने पुनः इस प्रकार कहा—'अपने धर्मको न जाननेवाले पापियो! इस तरह तुम्हारे भागनेसे क्या होगा? लौटो और युद्ध करो' ॥३०॥

अनीकं दशसाहस्रमश्वानां भरतर्षभ।
आसीद् गान्धारराजस्य विशालप्रासयोधिनाम् ॥ ३१ ॥
बलेन तेन विक्रम्य वर्तमाने जनक्षये।
पृष्ठतः पाण्डवानीकमभ्यघ्नन्निशितैः शरैः ॥ ३२ ॥

भरतश्रेष्ठ! उस समय गान्धारराज शकुनिके पास विशाल प्रास लेकर युद्ध करनेवाले घुड़सवारोंकी दस हजार सेना मौजूद थी। उसीको साथ लेकर वह उस जन-संहारकारी युद्धमें पाण्डव-सेनाके पिछले भागकी ओर गया और वे सब मिलकर पैने बाणोंसे उस सेनापर चोट करने लगे ॥

तदभ्रमिव वातेन क्षिप्यमाणं समन्ततः।
अभज्यत महाराज पाण्डूनां सुमहद् बलम् ॥ ३३ ॥

महाराज! जैसे वायुके वेगसे मेघोंका दल सब ओरसे छिन्न-भिन्न हो जाता है, उसी प्रकार इस आक्रमणसे पाण्डवोंकी विशाल सेनाका व्यूह भंग हो गया ॥ ३३ ॥

ततो युधिष्ठिरः प्रेक्ष्य भग्नं स्वबलमन्तिकात्।
अभ्यनोदयदव्यग्रः सहदेवं महाबलम् ॥ ३४ ॥

तब युधिष्ठिरने पास ही अपनी सेनामें भगदड़ मची देख शान्तभावसे महाबली सहदेवको पुकारा ॥ ३४ ॥

असौ सुबलपुत्रो नो जघनं पीड्य दंशितः।
सैन्यानि सूदयत्येष पश्य पाण्डव दुर्मतिम् ॥ ३५ ॥

और कहा—'पाण्डुनन्दन! कवच धारण करके आया हुआ वह सुबलपुत्र शकुनि हमारी सेनाके पिछले भागको पीड़ा देकर सारे सैनिकोंका संहार कर रहा है; इस दुर्बुद्धिको देखो तो सही ॥ ३५ ॥

गच्छ त्वं द्रौपदेयैश्च शकुनिं सौबलं जहि।
रथानीकमहं धक्ष्ये पाञ्चालसहितोऽनघ ॥ ३६ ॥

'निष्पाप वीर! तुम द्रौपदीके पुत्रोंको साथ लेकर जाओ और सुबलपुत्र शकुनिको मार डालो। मैं पाञ्चाल योद्धाओंके साथ यहीं रहकर शत्रुकी इस रथसेनाको भस्म कर डालूँगा ॥

गच्छन्तु कुञ्जराः सर्वे वाजिनश्च सह त्वया।
पादाताश्च त्रिसाहस्राः शकुनिं तैर्वृतो जहि ॥ ३७ ॥

'तुम्हारे साथ सभी हाथीसवार, घुड़सवार और तीन हजार पैदल सैनिक भी जायँ तथा उन सबसे घिरे रहकर तुम शकुनिका नाश करो' ॥ ३७ ॥

ततो गजाः सप्तशताश्चापपाणिभिरास्थिताः।
पञ्च चाश्वसहस्राणि सहदेवश्च वीर्यवान् ॥ ३८ ॥
पादाताश्च त्रिसाहस्रा द्रौपदेयाश्च सर्वशः।
रणे ह्यभ्यद्रवंस्ते तु शकुनिं युद्धदुर्मदम् ॥ ३९ ॥

तदनन्तर धर्मराजकी आज्ञाके अनुसार हाथमें धनुष लिये बैठे हुए सवारोंसे युक्त सात सौ हाथी, पाँच हजार घुड़सवार, पराक्रमी सहदेव, तीन हजार पैदल योद्धा और द्रौपदीके सभी पुत्र—इन सबने रणभूमिमें युद्ध-दुर्मद शकुनिपर धावा किया ॥ ३८-३९ ॥

ततस्तु सौबलो राजन्नभ्यतिक्रम्य पाण्डवान् ।
जघान पृष्ठतः सेनां जयगृद्धः प्रतापवान् ॥ ४० ॥

राजन् ! उधर विजयाभिलाषी प्रतापी सुबलपुत्र शकुनि पाण्डवोंका उल्लङ्घन करके पीछेकी ओरसे उनकी सेनाका संहार कर रहा था ॥ ४० ॥

अश्वारोहास्तु संरब्धाः पाण्डवानां तरस्विनाम् ।
प्राविशन् सौबलानीकमभ्यतिक्रम्य तान् रथान् ॥ ४१ ॥

वेगशाली पाण्डवोंके घुड़सवारोंने अत्यन्त कुपित होकर उन कौरव रथियोंका उल्लङ्घन करके सुबलपुत्रकी सेनामें प्रवेश किया ॥ ४१ ॥

ते तत्र सादिनः शूराः सौबलस्य महद् बलम् ।
रणमध्ये व्यतिष्ठन्त शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ४२ ॥

वे शूरवीर घुड़सवार वहाँ जाकर रणभूमिके मध्यभागमें खड़े हो गये और शकुनिकी उस विशाल सेनापर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४२ ॥

तदुद्यतगदाप्रासमकापुरुषसेवितम् ।
प्रावर्तत महद् युद्धं राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ ४३ ॥

राजन् ! फिर तो आपकी कुमन्त्रणाके फलस्वरूप वह महान् युद्ध आरम्भ हो गया, जो कायरोंसे नहीं, वीर पुरुषोंसे सेवित था। उस समय सभी योद्धाओंके हाथोंमें गदा अथवा प्रास उठे रहते थे ॥ ४३ ॥

उपारमन्त ज्याशब्दाः प्रेक्षका रथिनोऽभवन् ।
न हि स्वेषां परेषां वा विशेषः प्रत्यदृश्यत ॥ ४४ ॥

धनुषकी प्रत्यञ्चाके शब्द बंद हो गये। रथी योद्धा दर्शक बनकर तमाशा देखने लगे। उस समय अपने या शत्रुपक्षके योद्धाओंमें पराक्रमकी दृष्टिसे कोई अन्तर नहीं दिखायी देता था ॥ ४४ ॥

शूरबाहुविसृष्टानां शक्तीनां भरतर्षभ ।
ज्योतिषामिव सम्पातमपश्यन् कुरुपाण्डवाः ॥ ४५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! शूरवीरोंकी भुजाओंसे छूटी हुई शक्तियाँ शत्रुओंपर इस प्रकार गिरती थीं, मानो आकाशसे तारे टूटकर पड़ रहे हों। कौरव-पाण्डवयोद्धाओंने इसे प्रत्यक्ष देखा था ॥

ऋष्टिभिर्विमलाभिश्च तत्र तत्र विशाम्पते ।
सम्पतन्तीभिराकाशमावृतं बह्वशोभत ॥ ४६ ॥

प्रजानाथ ! वहाँ गिरती हुई निर्मल ऋष्टियोंसे व्याप्त हुए आकाशकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ४६ ॥

प्रासानां पततां राजन् रूपमासीत् समन्ततः ।
शलभानामिवाकाशे तदा भरतसत्तम ॥ ४७ ॥

भरतकुलभूषण नरेश ! उस समय सब ओर गिरते हुए प्रासोंका स्वरूप आकाशमें छाये हुए टिड्डीदलोंके समान जान पड़ता था ॥ ४७ ॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गा विप्रविद्धैर्नियन्तृभिः ।
हयाः परिपतन्ति स्म शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४८ ॥

सैकड़ों और हजारों घोड़े अपने घायल सवारोंके साथ सारे अङ्गोंमें लहू-लुहान होकर धरतीपर गिर रहे थे ॥४८॥

अन्योन्यं परिपिष्टाश्च समासाद्य परस्परम् ।
आविक्षताः स्म दृश्यन्ते वमन्तो रुधिरं मुखैः ॥ ४९ ॥

बहुत-से सैनिक परस्पर टकराकर एक दूसरेसे पिस जाते और क्षत-विक्षत हो मुखोंसे रक्त वमन करते हुए दिखायी देते थे ॥ ४९ ॥

ततोऽभवत्तमो घोरं सैन्येन रजसा वृते ।
तानपाक्रमतोऽद्राक्षं तस्माद् देशादरिंदम ॥ ५० ॥

शत्रुदमन नरेश ! तत्पश्चात् जब सेनाद्वारा उठी हुई धूलसे सब ओर घोर अन्धकार छा गया, उस समय हमने देखा कि बहुत-से योद्धा वहाँसे भागे जा रहे हैं ॥ ५० ॥

अश्वान् राजन् मनुष्यांश्च रजसा संवृते सति ।
भूमौ निपतिताश्चान्ये वमन्तो रुधिरं बहु ॥ ५१ ॥

राजन् ! धूलसे सारा रणक्षेत्र भर जानेके कारण अँधेरे-में बहुत-से घोड़ों और मनुष्योंको भी हमने भागते देखा था। कितने ही योद्धा पृथ्वीपर गिरकर मुँहसे बहुत-सा रक्त वमन कर रहे थे ॥ ५१ ॥

केशाकेशि समालग्ना न शेकुश्चेष्टितुं नराः ।
अन्योन्यमश्वपृष्ठेभ्यो विकर्षन्तो महाबलाः ॥ ५२ ॥

बहुत-से मनुष्य परस्पर केश पकड़कर इतने सट गये थे कि कोई चेष्टा नहीं कर पाते थे। कितने ही महाबली योद्धा एक दूसरेको घोड़ोंकी पीठोंसे खींच रहे थे ॥ ५२ ॥

मल्ला इव समासाद्य निजघ्नुरितरेतरम् ।
अश्वैश्च व्यपकृष्यन्त बहवोऽत्र गतासवः ॥ ५३ ॥

बहुत-से सैनिक पहलवानोंकी भाँति परस्पर भिड़कर एक दूसरेपर चोट करते थे। कितने ही प्राणशून्य होकर अश्वोंद्वारा इधर-उधर घसीटे जा रहे थे ॥ ५३ ॥

भूमौ निपतिताश्चान्ये बहवो विजयैषिणः ।
तत्र तत्र व्यदृश्यन्त पुरुषाः शूरमानिनः ॥ ५४ ॥

बहुतेरे विजयाभिलाषी तथा अपनेको शूरवीर माननेवाले पुरुष जहाँ-तहाँ पृथ्वीपर पड़े दिखायी देते थे ॥ ५४ ॥

रक्तोक्षितैश्छिन्नभुजैरवकृष्टशिरोरुहैः ।
व्यदृश्यत मही कीर्णा शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५५ ॥

कटी हुई बाँहों और खींचे गये केशोंवाले सैकड़ों और हजारों रक्तरंजित शरीरोंसे रणभूमि आच्छादित दिखायी देती थी॥

दूरं न शक्यं तत्रासीद् गन्तुमश्वेन केनचित् ।
साश्वारोहैर्हतैरश्वैरावृते वसुधातले ॥ ५६ ॥

सवारोंसहित घोड़ोंकी लाशोंसे पटे हुए भूतलपर किसीके लिये भी घोड़ेद्वारा दूरतक जाना असम्भव हो गया था ॥

रुधिरोक्षितसंनाहैरात्तशस्त्रैरुदायुधैः ।
नानाप्रहरणैर्घोरैः परस्परवधैषिभिः ॥ ५७ ॥
सुसंनिकृष्टैः संग्रामे हतभूयिष्ठसैनिकैः ।

योद्धाओंके कवच रक्तसे भीग गये थे। वे सब हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र लिये धनुष उठाये नाना प्रकारके भयंकर आयुधों-द्वारा एक दूसरेके वधकी इच्छा रखते थे। उस संग्राममें सभी योद्धा अत्यन्त निकट होकर युद्ध करते थे और उनमेंसे अधिकांश सैनिक मार डाले गये थे ॥ ५७½ ॥

स मुहूर्तं ततो युद्ध्वा सौबलोऽथ विशाम्पते ॥ ५८ ॥
षट्साहस्रैर्हयैः शिष्टैरपायाच्छकुनिस्ततः ।

प्रजानाथ ! शकुनि वहाँ दो घड़ी युद्ध करके शेष बचे हुए छः हजार घुड़सवारोंके साथ भाग निकला ॥ ५८½ ॥

तथैव पाण्डवानीकं रुधिरेण समुक्षितम् ॥ ५९ ॥
षट्साहस्रैर्हयैः शिष्टैरपायाच्छ्रान्तवाहनम् ।

इसी प्रकार खूनसे नहायी हुई पाण्डव-सेना भी शेष छः हजार घुड़सवारोंके साथ युद्धसे निवृत्त हो गयी। उसके सारे वाहन थक गये थे ॥ ५९½ ॥

अश्वारोहाश्च पाण्डूनामब्रुवन् रुधिरोक्षिताः ॥ ६० ॥
सुसंनिकृष्टे संग्रामे भूयिष्ठे त्यक्तजीविताः ।

उस समय उस निकटवर्ती महायुद्धमें प्राणोंका मोह छोड़कर जूझनेवाले पाण्डवसेनाके रक्तरंजित घुड़सवार इस प्रकार बोले—॥ ६०½ ॥

न हि शक्यं रथैर्योद्धुं कुत एव महागजैः ॥ ६१ ॥
रथानेव रथा यान्तु कुञ्जराः कुञ्जरानपि ।
प्रतियातो हि शकुनिः स्वमनीकमवस्थितः ॥ ६२ ॥
न पुनः सौबलो राजा युद्धमभ्यागमिष्यति ।

'यहाँ रथोंद्वारा भी युद्ध नहीं किया जा सकता। फिर बड़े-बड़े हाथियोंकी तो बात ही क्या है ? रथ रथोंका सामना करनेके लिये जायँ और हाथी हाथियोंका। शकुनि भागकर अपनी सेनामें चला गया। अब फिर राजा शकुनि युद्धमें नहीं आयेगा' ॥ ६१-६२½ ॥

ततस्तु द्रौपदेयाश्च ते च मत्ता महाद्विपाः ॥ ६३ ॥
प्रययुर्यत्र पाञ्चाल्यो धृष्टद्युम्नो महारथः ।

उनकी यह बात सुनकर द्रौपदीके पाँचों पुत्र और वे मतवाले हाथी वहीं चले गये, जहाँ पाञ्चालराजकुमार महारथी धृष्टद्युम्न थे ॥ ६३½ ॥

सहदेवोऽपि कौरव्य रजोमेघे समुत्थिते ॥ ६४ ॥
एकाकी प्रययौ तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ।

कुरुनन्दन ! वहाँ धूलका बादल-सा घिर आया था। उस समय सहदेव भी अकेले ही, जहाँ राजा युधिष्ठिर थे, वहीं चले गये ॥ ६४½ ॥

ततस्तेषु प्रयातेषु शकुनिः सौबलः पुनः ॥ ६५ ॥
पार्श्वतोऽभ्यहनत् क्रुद्धो धृष्टद्युम्नस्य वाहिनीम् ।

उन सबके चले जानेपर सुबलपुत्र शकुनि पुनः कुपित हो पार्श्वभागसे आकर धृष्टद्युम्नकी सेनाका संहार करने लगा॥

तत् पुनस्तुमुलं युद्धं प्राणांस्त्यक्त्वाभ्यवर्तत॥ ६६ ॥
तावकानां परेषां च परस्परवधैषिणाम् ।

फिर तो परस्पर वधकी इच्छावाले आपके और शत्रुपक्षके सैनिकोंमें प्राणोंका मोह छोड़कर भयंकर युद्ध होने लगा।६६½।

ते चान्योन्यमवैक्षन्त तस्मिन् वीरसमागमे ॥ ६७ ॥
योधाः पर्यपतन् राजन् शतशोऽथ सहस्रशः ।

राजन् ! शूरवीरोंके उस संघर्षमें सब ओरसे सैकड़ों-हजारों योद्धा टूट पड़े और वे एक-दूसरेकी ओर देखने लगे॥

असिभिश्छिद्यमानानां शिरसां लोकसंक्षये ॥ ६८ ॥
प्रादुरासीन्महाञ्शब्दस्तालानां पतताभिव ।

उस लोकसंहारकारी संग्राममें तलवारोंसे काटे जाते हुए मस्तक जब पृथ्वीपर गिरते थे, तब उनसे ताड़के फलोंके गिरनेकी-सी धमाकेकी आवाज होती थी ॥ ६८½ ॥

विमुक्तानां शरीराणां छिन्नानां पततां भुवि ॥ ६९ ॥
सायुधानां च बाहूनामूरूणां च विशाम्पते ।
आसीत् कटकटाशब्दः सुमहाँल्लोमहर्षणः ॥ ७० ॥

प्रजानाथ ! छिन्न-भिन्न होकर धरतीपर गिरनेवाले कवच-शून्य शरीरों, आयुधोंसहित भुजाओं और जाँघोंका अत्यन्त भयंकर एवं रोमाञ्चकारी कट-कट शब्द सुनायी पड़ता था॥

निघ्नन्तो निशितैः शस्त्रैर्भ्रातॄन् पुत्रान् सखीनपि ।
योधाः परिपतन्ति स्म यथामिषकृते खगाः ॥ ७१ ॥

जैसे पक्षी मांसके लिये एक-दूसरेपर झपटते हैं, उसी प्रकार वहाँ योद्धा अपने तीखे शस्त्रोंद्वारा भाइयों, मित्रों और पुत्रोंका भी संहार करते हुए एक दूसरेपर टूटे पड़ते थे॥

अन्योन्यं प्रतिसंरब्धाः समासाद्य परस्परम् ।
अहं पूर्वमहं पूर्वमिति न्यघ्नन् सहस्रशः ॥ ७२ ॥

दोनों पक्षोंके योद्धा एक दूसरेसे भिड़कर परस्पर अत्यन्त कुपित हो 'पहले मैं, पहले मैं' ऐसा कहते हुए सहस्रों सैनिकोंका वध करने लगे ॥ ७२ ॥

संघातेनासनभ्रष्टैरश्वारोहैर्गतासुभिः ।
हयाः परिपतन्ति स्म शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ७३ ॥

शत्रुओंके आघातसे प्राणशून्य होकर आसनसे भ्रष्ट हुए अश्वारोहियोंके साथ सैकड़ों और हजारों घोड़े धराशायी होने लगे ॥ ७३ ॥

स्फुरतां प्रतिपिष्टानामश्वानां शीघ्रगामिनाम् ।
स्तनतां च मनुष्याणां सन्नद्धानां विशाम्पते ॥ ७४ ॥
शक्त्यृष्टिप्रासशब्दश्च तुमुलः समपद्यत ।
भिन्दतां परमर्माणि राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ ७५ ॥

प्रजापालक नरेश ! आपकी खोटी सलाहके अनुसार बहुत-से शीघ्रगामी अश्व गिरकर छटपटा रहे थे। कितने ही पिस गये थे और बहुत-से कवचधारी मनुष्य गर्जना करते हुए शत्रुओंके मर्म विदीर्ण कर रहे थे। उन सबके शक्ति, ऋष्टि और प्रासोंका भयंकर शब्द वहाँ गूँजने लगा था॥

श्रमाभिभूताः संरब्धाः श्रान्तवाहाः पिपासवः ।
विक्षताश्च शितैः शस्त्रैरभ्यवर्तन्त तावकाः ॥ ७६ ॥

आपके सैनिक परिश्रमसे थक गये थे, क्रोधमें भरे हुए थे, उनके वाहन भी थकावटसे चूर-चूर हो रहे थे और वे सब-के-सब प्याससे पीड़ित थे। उनके सारे अङ्ग तीक्ष्ण शस्त्रोंसे क्षत-विक्षत हो गये थे ॥ ७६ ॥

मत्ता रुधिरगन्धेन बहवोऽत्र विचेतसः ।
जघ्नुः परान् स्वकांश्चैव प्राप्तान् प्राप्ताननन्तरान् ॥७७॥

वहाँ बहते हुए रक्तकी गन्धसे मतवाले हो बहुत-से सैनिक विवेक-शक्ति खो बैठे थे और बारी-बारीसे अपने पास आये

हुए शत्रुपक्षके तथा अपने पक्षके सैनिकोंका भी वध कर डालते थे ॥ ७७ ॥

बहवश्च गतप्राणाः क्षत्रिया जयगृद्धिनः ।
भूमावभ्यपतन् राजन् शरवृष्टिभिरावृताः ॥ ७८ ॥

राजन्! बहुत-से विजयाभिलाषी क्षत्रिय बाणोंकी वर्षासे आच्छादित हो प्राणोंका परित्याग करके पृथ्वीपर पड़े थे ॥

वृकगृध्रशृगालानां तुमुले मोदनेऽहनि ।
आसीद् बलक्षयो घोरस्तव पुत्रस्य पश्यतः ॥ ७९ ॥

भेड़ियों, गीधों और सियारोंका आनन्द बढ़ानेवाले उस भयंकर दिनमें आपके पुत्रकी आँखोंके सामने कौरवसेनाका घोर संहार हुआ ॥ ७९ ॥

नराश्वकायैः संछन्ना भूमिरासीद् विशाम्पते ।
रुधिरोदकचित्रा च भीरूणां भयवर्धिनी ॥ ८० ॥

प्रजानाथ! वह रणभूमि मनुष्यों और घोड़ोंकी लाशोंसे पट गयी थी तथा पानीकी तरह बहाये जाते हुए रक्तसे विचित्र शोभा धारण करके कायरोंका भय बढ़ा रही थी ॥

असिभिः पट्टिशैः शूलैस्तक्षमाणाः पुनः पुनः ।
तावकाः पाण्डवेयाश्च न न्यवर्तन्त भारत ॥ ८१ ॥

भारत! खड्गों, पट्टिशों और शूलोंसे एक-दूसरेको बारंबार घायल करते हुए आपके और पाण्डवोंके योद्धा युद्धसे पीछे नहीं हटते थे ॥ ८१ ॥

प्रहरन्तो यथाशक्ति यावत् प्राणस्य धारणम् ।
योधाः परिपतन्ति स्म वमन्तो रुधिरं व्रणैः ॥ ८२ ॥

जबतक प्राण रहते, तबतक यथाशक्ति प्रहार करते हुए योद्धा अन्ततोगत्वा अपने घावोंसे रक्त बहाते हुए धराशायी हो जाते थे ॥ ८२ ॥

शिरो गृहीत्वा केशेषु कबन्धः स्म प्रदृश्यते ।
उद्यम्य च शितं खड्गं रुधिरेण परिप्लुतम् ॥ ८३ ॥

वहाँ कोई-कोई कबन्ध (धड़) ऐसा दिखायी दिया, जो एक हाथमें शत्रुके कटे हुए मस्तकको केशसहित पकड़े हुए और दूसरे हाथमें खूनसे रँगी हुई तीखी तलवार उठाये खड़ा था॥

तथोत्थितेषु बहुषु कबन्धेषु नराधिप ।
तथा रुधिरगन्धेन योधाः कश्मलमाविशन् ॥ ८४ ॥

नरेश्वर! फिर उस तरहके बहुत-से कबन्ध उठे दिखायी देने लगे तथा रुधिरकी गन्धसे प्रायः सभी योद्धाओंपर मोह छा गया था ॥ ८४ ॥

मन्दीभूते ततः शब्दे पाण्डवानां महद् बलम् ।
अल्पावशिष्टैस्तुरगैरभ्यवर्तत सौबलः ॥ ८५ ॥

तत्पश्चात् जब उस युद्धका कोलाहल कुछ कम हुआ, तब सुबलपुत्र शकुनि थोड़े-से बचे हुए घुड़सवारोंके साथ पुनः पाण्डवोंकी विशाल सेनापर टूट पड़ा ॥ ८५ ॥

ततोऽभ्यधावंस्त्वरिताः पाण्डवा जयगृद्धिनः ।
पदातयश्च नागाश्च सादिनश्चोद्यतायुधाः ॥ ८६ ॥
कोष्ठकीकृत्य चाप्येनं परिक्षिप्य च सर्वशः ।
शस्त्रैर्नानाविधैर्जघ्नुर्युद्धपारं तितीर्षवः ॥ ८७ ॥

तब विजयाभिलाषी पाण्डवोंने भी तुरंत उसपर धावा कर दिया। पाण्डव युद्धसे पार होना चाहते थे; अतः उनके पैदल, हाथीसवार और घुड़सवार सभी हथियार उठाये आगे बढ़े तथा शकुनिको सब ओरसे घेरकर उसे कोष्ठबद्ध करके नाना प्रकारके शस्त्रोंद्वारा घायल करने लगे ॥८६-८७॥

त्वदीयास्तांस्तु सम्प्रेक्ष्य सर्वतः समभिद्रुतान् ।
रथाश्वपत्तिद्विरदाः पाण्डवानभिदुद्रुवुः ॥ ८८ ॥

पाण्डवसैनिकोंको सब ओरसे आक्रमण करते देख आपके रथी, घुड़सवार, पैदल और हाथीसवार भी पाण्डवोंपर टूट पड़े॥

केचित् पदातयः पद्भिर्मुष्टिभिश्च परस्परम् ।
निजघ्नुः समरे शूराः क्षीणशस्त्रास्ततोऽपतन् ॥ ८९ ॥

कुछ शूरवीर पैदल योद्धा समराङ्गणमें पैदलोंके साथ भिड़ गये और अस्त्र-शस्त्रोंके क्षीण हो जानेपर एक दूसरेको मुक्कोंसे मारने लगे। इस प्रकार लड़ते-लड़ते वे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ८९ ॥

रथेभ्यो रथिनः पेतुर्द्विपेभ्यो हस्तिसादिनः ।
विमानेभ्यो दिवो भ्रष्टाः सिद्धाः पुण्यक्षयादिव ॥ ९० ॥

जैसे सिद्ध पुरुष पुण्यक्षय होनेपर स्वर्गलोकके विमानोंसे नीचे गिर जाते हैं, उसी प्रकार वहाँ रथी रथोंसे और हाथी-सवार हाथियोंसे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ९० ॥

एवमन्योन्यमायत्ता योधा जघ्नुर्महाहवे ।
पितॄन् भ्रातॄन् वयस्यांश्च पुत्रानपि तथा परे ॥ ९१ ॥

इस प्रकार उस महायुद्धमें दूसरे-दूसरे योद्धा परस्पर विजयके लिये प्रयत्नशील हो पिता, भाई, मित्र और पुत्रोंका भी वध करने लगे ॥ ९१ ॥

एवमासीदमर्यादं युद्धं भरतसत्तम ।
प्रासासिबाणकलिले वर्तमाने सुदारुणे ॥ ९२ ॥

भरतश्रेष्ठ! प्रास, खड्ग और बाणोंसे व्याप्त हुए उस अत्यन्त भयंकर रणक्षेत्रमें इस प्रकार मर्यादाशून्य युद्ध हो रहा था ॥ ९२ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें संकुलयुद्धविषयक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णके सम्मुख अर्जुनद्वारा दुर्योधनके दुराग्रहकी निन्दा और रथियोंकी सेनाका संहार

संजय उवाच

तस्मिञ्शब्दे मृदौ जाते पाण्डवैर्निहते बले ।
अश्वैः सप्तशतैः शिष्टैरुपावर्तत सौबलः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! जब पाण्डव-योद्धाओंने

अधिकांश सेनाका संहार कर डाला और युद्धका कोलाहल कम हो गया, तब सुबलपुत्र शकुनि शेष बचे हुए सात सौ घुड़सवारोंके साथ कौरव सेनाके समीप चला गया ॥ १ ॥

स यात्वा वाहिनीं तूर्णमब्रवीत् त्वरयन् युधि।
युद्ध्यध्वमिति संहृष्टाः पुनः पुनररिंदमाः ॥ २ ॥
अपृच्छत् क्षत्रियांस्तत्र क नु राजा महाबलः।

वह तुरंत कौरव-सेनामें पहुँचकर सबको युद्धके लिये शीघ्रता करनेकी प्रेरणा देता हुआ बोला—'शत्रुओंका दमन करनेवाले वीरो ! तुम हर्ष और उत्साहके साथ युद्ध करो।' ऐसा कहकर उसने वहाँ बारम्बार क्षत्रियोंसे पूछा—'महाबली राजा दुर्योधन कहाँ है ?' ॥ २½ ॥

शकुनेस्तद् वचः श्रुत्वा तमूचुर्भरतर्षभ ॥ ३ ॥
असौ तिष्ठति कौरव्यो रणमध्ये महाबलः।
यत्रैतत् सुमहच्छत्रं पूर्णचन्द्रसमप्रभम् ॥ ४ ॥
यत्र ते सतनुत्राणा रथास्तिष्ठन्ति दंशिताः।

भरतश्रेष्ठ ! शकुनिकी वह बात सुनकर उन क्षत्रियोंने उसे यह उत्तर दिया—'प्रभो ! महाबली कुरुराज रणक्षेत्रके मध्यभागमें वहाँ खड़े हैं, जहाँ यह पूर्ण चन्द्रमाके समान कान्तिमान् विशाल छत्र तना हुआ है तथा जहाँ वे शरीर-रक्षक आवरणों एवं कवचोंसे सुसज्जित रथ खड़े हैं ॥ ३-४½ ॥

यत्रैष तुमुलः शब्दः पर्जन्यनिनदोपमः ॥ ५ ॥
तत्र गच्छ द्रुतं राजंस्ततो द्रक्ष्यसि कौरवम्।

'राजन् ! जहाँ यह मेघोंकी गम्भीर गर्जनाके समान भयानक शब्द गूँज रहा है, वहीं शीघ्रतापूर्वक चले जाइये, वहाँ आप कुरुराजका दर्शन कर सकेंगे' ॥ ५½ ॥

एवमुक्तस्तु तैर्योधैः शकुनिः सौबलस्तदा ॥ ६ ॥
प्रययौ तत्र यत्रासौ पुत्रस्तव नराधिप।
सर्वतः संवृतो वीरैः समरे चित्रयोधिभिः ॥ ७ ॥

नरेश्वर ! तब उन योद्धाओंके ऐसा कहनेपर सुबलपुत्र शकुनि वहीं गया, जहाँ आपका पुत्र दुर्योधन समराङ्गणमें विचित्र युद्ध करनेवाले वीरोंद्वारा सब ओरसे घिरा हुआ खड़ा था ॥ ६-७ ॥

ततो दुर्योधनं दृष्ट्वा रथानीके व्यवस्थितम्।
स रथांस्तावकान् सर्वान् हर्षयञ्शकुनिस्ततः ॥ ८ ॥
दुर्योधनमिदं वाक्यं हृष्टरूपो विशाम्पते।
कृतकार्यमिवात्मानं मन्यमानोऽब्रवीन्नृपम् ॥ ९ ॥

प्रजानाथ ! तदनन्तर दुर्योधनको रथसेनामें खड़ा देख आपके सम्पूर्ण रथियोंका हर्ष बढ़ाता हुआ शकुनि अपनेको कृतार्थ-सा मानकर बड़े हर्षके साथ राजा दुर्योधनसे इस प्रकार बोला—॥

जहि राजन् रथानीकमश्वाः सर्वे जिता मया।
नात्यक्त्वा जीवितं संख्ये शक्यो जेतुं युधिष्ठिरः ॥ १० ॥

'राजन् ! शत्रुकी रथसेनाका नाश कीजिये। समस्त घुड़सवारोंको मैंने जीत लिया है। राजा युधिष्ठिर अपने प्राणोंका परित्याग किये बिना जीते नहीं जा सकते ॥ १० ॥

हते तस्मिन् रथानीके पाण्डवेनाभिपालिते।
गजानेतान् हनिष्यामः पदातींश्चेतरांस्तथा ॥ ११ ॥

'पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके द्वारा सुरक्षित इस रथ-सेनाका संहार हो जानेपर हम इन हाथीसवारों, पैदलों और घुड़सवारोंका भी वध कर डालेंगे' ॥ ११ ॥

श्रुत्वा तु वचनं तस्य तावका जयगृद्धिनः।
जवेनाभ्यपतन् हृष्टाः पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ १२ ॥

विजयाभिलाषी शकुनिकी यह बात सुनकर आपके सैनिक अत्यन्त प्रसन्न हो बड़े वेगसे पाण्डव-सेनापर टूट पड़े॥

सर्वे विवृततूणीराः प्रगृहीतशरासनाः।
शरासनानि धुन्वानाः सिंहनादान् प्रणेदिरे ॥ १३ ॥

सबके तरकसोंके मुँह खुल गये, सबने हाथमें धनुष ले लिये और सभी धनुष हिलाते हुए जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे ॥ १३ ॥

ततो ज्यातलनिर्घोषः पुनरासीद् विशाम्पते।
प्रादुरासीच्छराणां च सुमुक्तानां सुदारुणः ॥ १४ ॥

प्रजानाथ ! तदनन्तर फिर प्रत्यञ्चाकी टङ्कार और अच्छी तरह छोड़े हुए बाणोंकी भयानक सनसनाहट प्रकट होने लगी॥

तान् समीपगतान् दृष्ट्वा जवेनोद्यतकार्मुकान्।
उवाच देवकीपुत्रं कुन्तीपुत्रो धनंजयः ॥ १५ ॥

उन सबको बड़े वेगसे धनुष उठाये पास आया देखकर कुन्तीकुमार अर्जुनने देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा—॥ १५ ॥

चोदयाश्वानसम्भ्रान्तः प्रविशैतद् बलार्णवम्।
अन्तमद्य गमिष्यामि शत्रूणां निशितैः शरैः ॥ १६ ॥
अष्टादश दिनान्यद्य युद्धस्यास्य जनार्दन।
वर्तमानस्य महतः समासाद्य परस्परम् ॥ १७ ॥

'जनार्दन ! आप स्वस्थचित्त होकर इन घोड़ोंको हाँकिये और इस सैन्यसागरमें प्रवेश कीजिये। आज मैं तीखे बाणोंसे शत्रुओंका अन्त कर डालूँगा। परस्पर भिड़कर इस महान् संग्रामके आरम्भ हुए आज अठारह दिन हो गये ॥ १६-१७ ॥

अनन्तकल्पा ध्वजिनी भूत्वा ह्येषां महात्मनाम्।
क्षयमद्य गता युद्धे पश्य दैवं यथाविधम् ॥ १८ ॥

'इन महामनस्वी कौरवोंके पास अपार सेना थी; परंतु युद्धमें इस समयतक प्रायः नष्ट हो गयी। देखिये, प्रारब्धका कैसा खेल है ? ॥ १८ ॥

समुद्रकल्पं च बलं धार्तराष्ट्रस्य माधव।
अस्मानासाद्य संजातं गोष्पदोपममच्युत ॥ १९ ॥

'माधव ! अच्युत ! दुर्योधनकी समुद्र-जैसी अनन्त सेना हमलोगोंसे टक्कर लेकर आज गायकी खुरीके समान हो गयी है ॥ १९ ॥

हते भीष्मे तु संदध्याच्छिवं स्यादिह माधव।
न च तत् कृतवान् मूढो धार्तराष्ट्रः सुबालिशः ॥ २० ॥

'माधव ! यदि भीष्मके मारे जानेपर दुर्योधन सन्धि कर लेता तो यहाँ सबका कल्याण होता; परंतु उस अज्ञानी मूर्खने वैसा नहीं किया ॥ २० ॥

उक्तं भीष्मेण यद् वाक्यं हितं तथ्यं च माधव ।
तथापि नासौ श्रुतवान् वीतबुद्धिः सुयोधनः ॥ २१ ॥

'मधुकुलभूषण ! भीष्मजीने जो सच्ची और हितकर बात बतायी थी, उसे भी उस बुद्धिहीन दुर्योधनने नहीं माना॥

तस्मिंस्तु तुमुले भीष्मे प्रच्युते धरणीतले ।
न जाने कारणं किं तु येन युद्धमवर्तत ॥ २२ ॥

'तदनन्तर घमासान युद्ध आरम्भ हुआ और उसमें भीष्मजी पृथ्वीपर मार गिराये गये । फिर भी न जाने क्या कारण था, जिससे युद्ध चालू ही रह गया ॥ २२ ॥

मूढांस्तु सर्वथा मन्ये धार्तराष्ट्रान् सुबालिशान् ।
पतिते शान्तनोः पुत्रे येऽकार्षुः संयुगं पुनः ॥ २३ ॥

'मैं धृतराष्ट्रके सभी पुत्रोंको सर्वथा मूर्ख और नादान समझता हूँ, जिन्होंने शान्तनुनन्दन भीष्मजीके धराशायी होनेपर भी पुनः युद्ध जारी रक्खा ॥ २३ ॥

अनन्तरं च निहते द्रोणे ब्रह्मविदां वरे ।
राधेये च विकर्णे च नैवाशाम्यत वैशसम् ॥ २४ ॥

'तत्पश्चात् वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य, राधापुत्र कर्ण और विकर्ण मारे गये तो भी यह मार-काट बंद नहीं हुई ॥

अल्पावशिष्टे सैन्येऽस्मिन् सूतपुत्रे च पातिते ।
सपुत्रे वै नरव्याघ्रे नैवाशाम्यत वैशसम् ॥ २५ ॥

'पुत्रसहित नरश्रेष्ठ सूतपुत्रके मार गिराये जानेपर जब कौरवसेना थोड़ी-सी ही बच रही थी तो भी यह युद्धकी आग नहीं बुझी ॥ २५ ॥

श्रुतायुषि हते वीरे जलसन्धे च पौरवे ।
श्रुतायुधे च नृपतौ नैवाशाम्यत वैशसम् ॥ २६ ॥

'श्रुतायु, वीर जलसन्ध पौरव तथा राजा श्रुतायुधके मारे जानेपर भी यह संहार बंद नहीं हुआ ॥ २६ ॥

भूरिश्रवसि शल्ये च शाल्वे चैव जनार्दन ।
आवन्त्येषु च वीरेषु नैवाशाम्यत वैशसम् ॥ २७॥

'जनार्दन ! भूरिश्रवा, शल्य, शाल्व तथा अवन्ति देशके वीर मारे गये तो भी यह युद्धकी ज्वाला शान्त न हो सकी ॥

जयद्रथे च निहते राक्षसे चाप्यलायुधे ।
बाह्लिके सोमदत्ते च नैवाशाम्यत वैशसम् ॥ २८ ॥

'जयद्रथ, बाह्लिक, सोमदत्त तथा राक्षस अलायुध—ये सभी परलोकवासी हो गये तो भी यह युद्धकी प्यास न बुझ सकी॥

भगदत्ते हते शूरे काम्बोजे च सुदारुणे ।
दुःशासने च निहते नैवाशाम्यत वैशसम् ॥ २९॥

'भगदत्त, शूरवीर काम्बोजराज सुदक्षिण तथा अत्यन्त दारुण दुःशासनके मारे जानेपर भी कौरवोंकी युद्ध-पिपासा शान्त नहीं हुई ॥ २९ ॥

दृष्ट्वा विनिहताञ्शूरान् पृथङ्माण्डलिकान् नृपान् ।
बलिनश्च रणे कृष्ण नैवाशाम्यत वैशसम् ॥ ३०॥

'श्रीकृष्ण ! विभिन्न मण्डलोंके स्वामी शूरवीर बलवान् नरेशोंको रणभूमिमें मारा गया देखकर भी यह युद्धकी आग बुझ न सकी ॥ ३० ॥

अक्षौहिणीपतीन् दृष्ट्वा भीमसेननिपातितान् ।
मोहाद् वा यदि वा लोभान्नैवाशाम्यत वैशसम् ॥ ३१ ॥

'भीमसेनके द्वारा धराशायी किये गये अक्षौहिणीपतियोंको देखकर भी मोहवश अथवा लोभके कारण युद्ध बंद न हो सका ॥ ३१ ॥

को नु राजकुले जातः कौरवेयो विशेषतः ।
निरर्थकं महद् वैरं कुर्यादन्यः सुयोधनात् ॥ ३२ ॥

'राजाके कुलमें उत्पन्न होकर विशेषतः कुरुकुलकी संतान होकर दुर्योधनके सिवा दूसरा कौन ऐसा है, जो व्यर्थ ही (अपने बन्धुओंके साथ) महान् वैर बाँधे ॥ ३२ ॥

गुणतोऽभ्यधिकाञ्ज्ञात्वा बलतः शौर्यतोऽपि वा ।
अमूढः को नु युद्ध्येत जानन् प्राज्ञो हिताहितम् ॥ ३३ ॥

'दूसरोंको गुणसे, बलसे अथवा शौर्यसे भी अपनी अपेक्षा महान् जानकर भी अपने हित और अहितको समझनेवाला मूढ़ताशून्य कौन ऐसा बुद्धिमान् पुरुष होगा ? जो उनके साथ युद्ध करेगा ॥ ३३ ॥

यत्र तस्य मनो ह्यासीत् त्वयोक्तस्य हितं वचः ।
प्रशमे पाण्डवैः सार्धं सोऽन्यस्य शृणुयात् कथम् ॥३४॥

'आपके द्वारा हितकारक वचन कहे जानेपर भी जिसका पाण्डवोंके साथ संधि करनेका मन नहीं हुआ, वह दूसरेकी बात कैसे सुन सकता है ? ॥ ३४ ॥

येन शान्तनवो वीरो द्रोणो विदुर एव च ।
प्रत्याख्याताः शमस्यार्थे किं नु तस्याद्य भेषजम् ॥ ३५ ॥

'जिसने संधिके विषयमें वीर शान्तनुनन्दन भीष्म, द्रोणाचार्य और विदुरजीकी भी बात माननेसे इन्कार कर दी, उसके लिये अब कौन-सी दवा है ?॥ ३५ ॥

मौर्ख्याद् येन पिता वृद्धः प्रत्याख्यातो जनार्दन ।
तथा माता हितं वाक्यं भाषमाणा हितैषिणी ॥ ३६ ॥
प्रत्याख्याता ह्यसत्कृत्य स कस्मै रोचयेद् वचः ।

'जनार्दन ! जिसने मूर्खतावश अपने वृद्ध पिताकी भी बात नहीं मानी और हितकी बात बतानेवाली अपनी हितैषिणी माताका भी अपमान करके उसकी आज्ञा माननेसे इन्कार कर दिया, उसे दूसरे किसीकी बात क्यों रुचेगी ? ॥ ३६½ ॥

कुलान्तकरणो व्यक्तं जात एष जनार्दन ॥ ३७ ॥
तथास्य दृश्यते चेष्टा नीतिश्चैव विशाम्पते ।

'जनार्दन ! निश्चय ही यह अपने कुलका विनाश करनेवाला पैदा हुआ है। प्रजानाथ ! इसकी नीति और चेष्टा ऐसी ही दिखायी देती है ॥ ३७½ ॥

नैष दास्यति नो राज्यमिति मे मतिरच्युत ॥ ३८ ॥
उक्तोऽहं बहुशस्तात विदुरेण महात्मना ।
न जीवन् दास्यते भागं धार्तराष्ट्रस्तु मानद ॥ ३९ ॥

'अच्युत ! मैं समझता हूँ, यह अब भी हमें अपना राज्य नहीं देगा । तात ! महात्मा विदुरने मुझसे अनेक बार कहा है कि 'मानद ! दुर्योधन जीते-जी राज्यका भाग नहीं लौटायेगा ॥ ३८-३९ ॥

यावत् प्राणा धरिष्यन्ति धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः।
तावद् युष्मास्वपापेषु प्रचरिष्यति पापकम् ॥ ४० ॥

'दुर्बुद्धि दुर्योधनके प्राण जबतक शरीरमें स्थित रहेंगे, तबतक तुम निष्पाप बन्धुओंपर भी वह पापपूर्ण बर्ताव ही करता रहेगा ॥ ४० ॥

न च युक्तोऽन्यथा जेतुमृते युद्धेन माधव।
इत्यब्रवीत् सदा मां हि विदुरः सत्यदर्शनः ॥ ४१ ॥

'माधव ! युद्धके सिवा और किसी उपायसे दुर्योधनको जीतना सम्भव नहीं है।' यह बात सत्यदर्शी विदुरजी सदासे ही मुझसे कहते आ रहे हैं ॥ ४१ ॥

तत् सर्वमद्य जानामि व्यवसायं दुरात्मनः।
यदुक्तं वचनं तेन विदुरेण महात्मना ॥ ४२ ॥

'महात्मा विदुरने जो बात कही है, उसके अनुसार मैं उस दुरात्माके सम्पूर्ण निश्चयको आज जानता हूँ ॥ ४२ ॥

यो हि श्रुत्वा वचः पथ्यं जामदग्न्याद् यथातथम्।
अवामन्यत दुर्बुद्धिर्ध्रुवं नाशमुखे स्थितः ॥ ४३ ॥

'जिस दुर्बुद्धिने यमदग्निनन्दन परशुरामजीके मुखसे यथार्थ एवं हितकारक वचन सुनकर भी उसकी अवहेलना कर दी, वह निश्चय ही विनाशके मुखमें स्थित है ॥ ४३ ॥

उक्तं हि बहुशः सिद्धैर्जातमात्रे सुयोधने।
एनं प्राप्य दुरात्मानं क्षयं क्षत्रं गमिष्यति ॥ ४४ ॥

'दुर्योधनके जन्म लेते ही सिद्ध पुरुषोंने बारंबार कहा था कि 'इस दुरात्माको पाकर क्षत्रियजातिका विनाश हो जायगा'॥

तदिदं वचनं तेषां निरुक्तं वै जनार्दन।
क्षयं याता हि राजानो दुर्योधनकृते भृशम् ॥ ४५ ॥

'जनार्दन ! उनकी वह बात यथार्थ हो गयी; क्योंकि दुर्योधनके कारण बहुत-से राजा नष्ट हो गये ॥ ४५ ॥

सोऽद्य सर्वान् रणे योधान् निहनिष्यामि माधव।
क्षत्रियेषु हतेष्वाशु शून्ये च शिबिरे कृते ॥ ४६ ॥
वधाय चात्मनोऽस्माभिः संयुगं रोचयिष्यति।
तदन्तं हि भवेद् वैरमनुमानेन माधव ॥ ४७ ॥

'माधव ! आज मैं रणभूमिमें शत्रुपक्षके समस्त योद्धाओंको मार गिराऊँगा। इन क्षत्रियोंका शीघ्र ही संहार हो जानेपर जब सारा शिबिर सूना हो जायगा, तब वह अपने वधके लिये हमलोगोंके साथ जूझना पसंद करेगा। माधव ! मेरे अनुमानसे उसका वध होनेपर ही इस वैरका अन्त होगा ॥

एवं पश्यामि वार्ष्णेय चिन्तयन् प्रज्ञया स्वया।
विदुरस्य च वाक्येन चेष्टया च दुरात्मनः ॥ ४८ ॥

'वृष्णिनन्दन ! मैं अपनी बुद्धिसे, विदुरजीके वाक्यसे और दुरात्मा दुर्योधनकी चेष्टासे भी सोच-विचारकर ऐसा ही होता देखता हूँ ॥ ४८ ॥

तस्माद् याहि चमूं वीर यावद्धन्मि शितैः शरैः।
दुर्योधनं महाबाहो वाहिनीं चास्य संयुगे ॥ ४९ ॥

'अतः वीर ! महाबाहो ! आप कौरव-सेनाकी ओर चलिये, जिससे मैं पैने बाणोंद्वारा युद्धस्थलमें दुर्योधन और उसकी सेनाका संहार करूँ ॥ ४९ ॥

क्षेममद्य करिष्यामि धर्मराजस्य माधव।
हत्वैतद् दुर्बलं सैन्यं धार्तराष्ट्रस्य पश्यतः ॥ ५० ॥

'माधव ! आज मैं दुर्योधनके देखते-देखते इस दुर्बल सेनाका नाश करके धर्मराजका कल्याण करूँगा' ॥ ५० ॥

संजय उवाच

अभीषुहस्तो दाशार्हस्तथोक्तः सव्यसाचिना।
तद् बलौघममित्राणामभीतः प्राविशद् बलात् ॥ ५१ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! सव्यसाची अर्जुनके ऐसा कहनेपर घोड़ोंकी बागडोर हाथमें लिये दशार्हकुलनन्दन श्रीकृष्णने निर्भय हो शत्रुओंके उस सैन्य-सागरमें बलपूर्वक प्रवेश किया॥

कुन्तखड्गशरैर्घोरं शक्तिकण्टकसंकुलम्।
गदापरिघपन्थानं रथनागमहाद्रुमम् ॥ ५२ ॥
हयपत्तिलताकीर्णं गाहमानो महायशाः।
व्यचरत्तत्र गोविन्दो रथेनातिपताकिना ॥ ५३ ॥

वह सेना एक वनके समान थी। वह वन कुन्त, खड्ग और बाणोंसे अत्यन्त भयंकर प्रतीत होता था, शक्तिरूपी काँटोंसे भरा हुआ था, गदा और परिघ उसमें जानेके मार्ग थे, रथ और हाथी उसमें रहनेवाले बड़े-बड़े वृक्ष थे, घोड़े और पैदलरूपी लताओंसे वह व्याप्त हो रहा था, महायशस्वी भगवान् श्रीकृष्ण ऊँची पताकावाले रथके द्वारा उस सैन्यवनमें प्रवेश करके सब ओर विचरने लगे ॥ ५२-५३ ॥

ते हयाः पाण्डुरा राजन् वहन्तोऽर्जुनमाहवे।
दिक्षु सर्वास्वदृश्यन्त दाशार्हेण प्रचोदिताः ॥ ५४ ॥

राजन् ! श्रीकृष्णके द्वारा हाँके गये वे सफेद घोड़े युद्धस्थलमें अर्जुनको ढोते हुए सम्पूर्ण दिशाओंमें दिखायी पड़ते थे ॥

ततः प्रायाद् रथेनाजौ सव्यसाची परंतपः।
किरञ्शरशतांस्तीक्ष्णान् वारिधारा घनो यथा॥ ५५ ॥
प्रादुरासीन्महाञ्शब्दः शराणां नतपर्वणाम्।

फिर तो जैसे बादल पानीकी धारा बरसाता है, उसी प्रकार शत्रुओंको संताप देनेवाले अर्जुन युद्धस्थलमें सैकड़ों पैने बाणोंकी वर्षा करते हुए रथके द्वारा आगे बढ़े। उस समय झुकी हुई गाँठवाले बाणोंका महान् शब्द प्रकट होने लगा॥

इषुभिश्छाद्यमानानां समरे सव्यसाचिना ॥ ५६ ॥
असज्जंस्तनुत्रेषु शरौघाः प्रापतन् भुवि।

सव्यसाची अर्जुनद्वारा समरभूमिमें बाणोंसे आच्छादित होनेवाले सैनिकोंके कवचोंपर उनके बाण अटकते नहीं थे। वे चोट करके पृथ्वीपर गिर जाते थे ॥ ५६½ ॥

इन्द्राशनिसमस्पर्शा गाण्डीवप्रेषिताः शराः ॥ ५७ ॥
नरान् नागान् समाहत्य हयांश्चापि विशाम्पते।
अपतन्त रणे बाणाः पतङ्गा इव घोषिणः ॥ ५८ ॥

प्रजानाथ ! इन्द्रके वज्रकी भाँति कठोर स्पर्शवाले बाण गाण्डीवसे प्रेरित हो मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंका भी संहार करके शब्द करनेवाले टिड्डीदलोंके समान रणभूमिमें गिर पड़ते थे॥

आसीत् सर्वमवच्छन्नं गाण्डीवप्रेषितैः शरैः।
न प्राज्ञायन्त समरे दिशो वा प्रदिशोऽपि वा ॥ ५९ ॥

गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा उस रणभूमिकी सारी वस्तुएँ आच्छादित हो गयी थीं। दिशाओं अथवा विदिशाओंका भी ज्ञान नहीं हो पाता था ॥ ५९ ॥

सर्वमासीज्जगत् पूर्णं पार्थनामाङ्कितैः शरैः।
रुक्मपुङ्खैस्तैलधौतैः कर्मारपरिमार्जितैः ॥ ६० ॥

अर्जुनके नामसे अंकित, तेलके धोये और कारीगरके साफ किये सुवर्णमय पंखवाले बाणोंद्वारा वहाँका सारा जगत् व्याप्त हो रहा था ॥ ६० ॥

ते दह्यमानाः पार्थेन पावकेनेव कुञ्जराः।
पार्थं न प्रजहुर्घोरा वध्यमानाः शितैः शरैः ॥ ६१ ॥

दावानलके आगसे जलनेवाले हाथियोंके समान पार्थके पैने बाणोंकी मार खाकर दग्ध होते हुए वे घोर कौरव-योद्धा अर्जुनको छोड़कर हटते नहीं थे ॥ ६१ ॥

शरचापधरः पार्थः प्रज्वलन्निव भास्करः।
ददाह समरे योधान् कक्षमग्निरिव ज्वलन् ॥ ६२ ॥

जैसे जलती हुई आग घास-फूसके ढेरको जला देती है, उसी प्रकार सूर्यके समान प्रकाशित होनेवाले धनुष-बाणधारी अर्जुनने समराङ्गणमें आपके योद्धाओंको दग्ध कर दिया ॥

यथा वनान्ते वनपैर्विसृष्टः
कक्षं दहेत् कृष्णगतिः सुघोषः।
भूरिद्रुमं शुष्कलतावितानं
भृशं समृद्धो ज्वलनः प्रतापी ॥ ६३ ॥
एवं स नाराचगणप्रतापी
शरार्चिरुच्चावचतिग्मतेजाः ।
ददाह सर्वां तव पुत्रसेना-
ममृष्यमाणस्तरसा तरस्वी ॥ ६४ ॥

जैसे वनचरोंद्वारा वनके भीतर लगायी हुई आग धीरे-धीरे बढ़कर प्रज्वलित एवं महान् तापसे युक्त हो घास-फूसके ढेरको, बहुसंख्यक वृक्षोंको और सूखी हुई लतावल्लरियोंको भी जलाकर भस्म कर देती है, उसी प्रकार नाराचसमूहोंद्वारा ताप देनेवाले, बाणरूपी ज्वालाओंसे युक्त, वेगवान्, प्रचण्ड तेजस्वी और अमर्षमें भरे हुए अर्जुनने समराङ्गणमें आपके पुत्रकी सारी रथसेनाको शीघ्रतापूर्वक भस्म कर डाला।६३-६४।

तस्येषवः प्राणहराः सुमुक्ता
नासज्जन् वै वर्मसु रुक्मपुङ्खाः।
न च द्वितीयं प्रमुमोच बाणं
नरे हये वा परमद्विपे वा ॥ ६५ ॥

उनके अच्छी तरह छोड़े हुए सुवर्णमय पंखवाले प्राणान्तकारी बाण कवचोंपर नहीं अटकते थे। उन्हें छेदकर भीतर घुस जाते थे। वे मनुष्य, घोड़े अथवा विशालकाय हाथीपर भी दूसरा बाण नहीं छोड़ते थे (एक ही बाणसे उसका काम तमाम कर देते थे) ॥ ६५ ॥

अनेकरूपाकृतिभिर्हि बाणै-
र्महारथानीकमनुप्रविश्य ।
स एवैकस्तव पुत्रस्य सेनां
जघान दैत्यानिव वज्रपाणिः ॥ ६६ ॥

जैसे वज्रधारी इन्द्र दैत्योंका संहार कर डालते हैं, उसी प्रकार एकमात्र अर्जुनने ही रथियोंकी विशाल सेनामें प्रवेश करके अनेक रूप-रंगवाले बाणोंद्वारा आपके पुत्रकी सेनाका विनाश कर दिया ॥ ६६ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें संकुलयुद्धविषयक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

अर्जुन और भीमसेनद्वारा कौरवोंकी रथसेना एवं गजसेनाका संहार, अश्वत्थामा आदिके द्वारा दुर्योधनकी खोज, कौरवसेनाका पलायन तथा सात्यकिद्वारा संजयका पकड़ा जाना

संजय उवाच

पश्यतां यतमानानां शूराणामनिवर्तिनाम्।
संकल्पमकरोन्मोघं गाण्डीवेन धनंजयः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! यद्यपि कौरवयोद्धा युद्धसे पीछे न हटनेवाले शूरवीर थे और विजयके लिये पूरा प्रयत्न कर रहे थे तो भी उनके देखते-देखते अर्जुनने गाण्डीव धनुषसे उनके संकल्पको व्यर्थ कर दिया ॥ १ ॥

इन्द्राशनिसमस्पर्शानविषह्यान् महौजसः।
विसृजन् दृश्यते बाणान् धारा मुञ्चन्निवाम्बुदः॥ २ ॥

जैसे बादल पानीकी धारा गिराता है, उसी प्रकार वे बाणोंकी वर्षा करते दिखायी देते थे। उन बाणोंका स्पर्श इन्द्रके वज्रकी भाँति कठोर था। वे बाण असह्य एवं महान् शक्तिशाली थे ॥ २ ॥

तत् सैन्यं भरतश्रेष्ठ वध्यमानं किरीटिना।
सम्प्रदुद्राव संग्रामात् तव पुत्रस्य पश्यतः ॥ ३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! किरीटधारी अर्जुनकी मार खाकर वह बची हुई सेना आपके पुत्रके देखते-देखते रणभूमिसे भाग चली ॥

पितॄन् भ्रातॄन् परित्यज्य वयस्यानपि चापरे।
हतधुर्या रथाः केचिद्धतसूतास्तथा परे ॥ ४ ॥

कुछ लोग अपने पिता और भाइयोंको छोड़कर भागे तो दूसरे लोग मित्रोंको। कितने ही रथोंके घोड़े मारे गये थे और कितनोंके सारथि ॥ ४ ॥

भग्नाक्षयुगचक्रेषाः केचिदासन् विशाम्पते।
अन्येषां सायकाः क्षीणास्तथान्ये बाणपीडिताः॥ ५ ॥

प्रजानाथ ! किन्हींके रथोंके जूए, धुरे, पहिये और हरसे भी टूट गये थे, दूसरे योद्धाओंके बाण नष्ट हो गये और अन्य योद्धा अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित हो गये थे ॥ ५ ॥

अक्षता युगपत् केचित् प्राद्रवन् भयपीडिताः ।
केचित् पुत्रानुपादाय हतभूयिष्ठबान्धवाः ॥ ६ ॥

कुछ लोग घायल न होनेपर भी भयसे पीड़ित हो एक साथ ही भागने लगे और कुछ लोग अधिकांश बन्धु-बान्धवोंके मारे जानेपर पुत्रोंको साथ लेकर भागे ॥ ६ ॥

विचुक्रुशुः पितॄंस्त्वन्ये सहायानपरे पुनः ।
बान्धवांश्च नरव्याघ्र भ्रातॄन् सम्बन्धिनस्तथा ॥ ७ ॥
दुद्रुवुः केचिदुत्सृज्य तत्र तत्र विशाम्पते ।
बहवोऽत्र भृशं विद्धा मुह्यमाना महारथाः ॥ ८ ॥

नरव्याघ्र ! कोई पिताको पुकारते थे, कोई सहायकोंको । प्रजानाथ ! कुछ लोग अपने भाई-बन्धुओं और सगे-सम्बन्धियोंको जहाँ-के-तहाँ छोड़कर भाग गये । बहुत-से महारथी पार्थके बाणोंसे अत्यन्त घायल हो मूर्च्छित हो रहे थे ॥७-८॥

निःश्वसन्ति स्म दृश्यन्ते पार्थबाणहता नराः ।
तानन्ये रथमारोप्य ह्याश्वास्य च मुहूर्तकम् ॥ ९ ॥
विश्रान्ताश्च वितृष्णाश्च पुनर्युद्धाय जग्मिरे ।

अर्जुनके बाणोंसे आहत हो कितने ही मनुष्य रणभूमिमें ही पड़े-पड़े उच्छ्वास लेते दिखायी देते थे । उन्हें दूसरे लोग अपने रथपर बिठाकर घड़ी-दो-घड़ी आश्वासन दे स्वयं भी विश्राम करके प्यास बुझाकर पुनः युद्धके लिये जाते थे ॥

तानपास्य गताः केचित् पुनरेव युयुत्सवः ॥ १० ॥
कुर्वन्तस्तव पुत्रस्य शासनं युद्धदुर्मदाः ।

रणभूमिमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले कितने ही युद्धाभिलाषी योद्धा उन घायलोंको वैसे ही छोड़कर आपके पुत्रकी आज्ञाका पालन करते हुए पुनः युद्धके लिये चल देते थे ॥ १०½ ॥

पानीयमपरे पीत्वा पर्याश्वास्य च वाहनम् ॥ ११ ॥
वर्माणि च समारोप्य केचिद् भरतसत्तम ।
समाश्वास्यापरे भ्रातॄन् निक्षिप्य शिविरेऽपि च ॥ १२ ॥
पुत्रानन्ये पितॄनन्ये पुनर्युद्धमरोचयन् ।

भरतश्रेष्ठ ! दूसरे लोग स्वयं पानी पीकर घोड़ोंकी भी थकावट दूर करते । उसके बाद कवच धारण करके लड़नेके लिये जाते थे । अन्य बहुत-से सैनिक अपने घायल बन्धुओं, पुत्रों और पिताओंको आश्वासन दे उन्हें शिविरमें रख आते । उसके बाद युद्धमें मन लगाते थे ॥ ११-१२½ ॥

सज्जयित्वा रथान् केचिद् यथामुख्यं विशाम्पते ॥ १३ ॥
आप्लुत्य पाण्डवानीकं पुनर्युद्धमरोचयन् ।

प्रजानाथ ! कुछ लोग अपने रथको रणसामग्रीसे सुसज्जित करके पाण्डव-सेनापर चढ़ आते और अपनी प्रधानताके अनुसार किसी श्रेष्ठ वीरके साथ जूझना पसंद करते थे ॥

ते शूराः किङ्किणीजालैः समाच्छन्ना बभासिरे ॥ १४ ॥
त्रैलोक्यविजये युक्ता यथा दैतेयदानवाः ।

वे शूरवीर कौरव-सैनिक रथमें लगे हुए किंकिणीसमूहसे आच्छादित हो तीनों लोकोंपर विजय पानेके लिये उद्यत हुए दैत्यों और दानवोंके समान सुशोभित होते थे ॥ १४½ ॥

आगम्य सहसा केचिद् रथैः स्वर्णविभूषितैः ॥ १५ ॥
पाण्डवानामनीकेषु धृष्टद्युम्नमयोधयन् ।

कुछ लोग अपने सुवर्णभूषित रथोंके द्वारा सहसा आकर पाण्डवसेनाओंमें धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध करने लगे ॥ १५½ ॥

धृष्टद्युम्नोऽपि पाञ्चाल्यः शिखण्डी च महारथः ॥ १६ ॥
नाकुलिस्तु शतानीको रथानीकमयोधयन् ।

पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्न, महारथी शिखण्डी और नकुलपुत्र शतानीक—ये आपकी रथसेनाके साथ युद्ध कर रहे थे ॥ १६½ ॥

पाञ्चाल्यस्तु ततः क्रुद्धः सैन्येन महताऽऽवृतः ॥ १७ ॥
अभ्यद्रवत् सुसंक्रुद्धस्तावकान् हन्तुमुद्यतः ।

तदनन्तर आपके सैनिकोंका वध करनेके लिये उद्यत हो विशाल सेनासे घिरे हुए धृष्टद्युम्नने अत्यन्त क्रोधपूर्वक आक्रमण किया ॥ १७½ ॥

ततस्त्वापततस्तस्य तव पुत्रो जनाधिप ॥ १८ ॥
बाणसंघाननेकान् वै प्रेषयामास भारत ।

नरेश्वर ! भरतनन्दन ! उस समय आपके पुत्रने आक्रमण करनेवाले धृष्टद्युम्नपर बहुत-से बाणसमूहोंका प्रहार किया ॥

धृष्टद्युम्नस्ततो राजंस्तव पुत्रेण धन्विना ॥ १९ ॥
नाराचैरर्धनाराचैर्बहुभिः क्षिप्रकारिभिः ।
वत्सदन्तैश्च बाणैश्च कर्मारपरिमार्जितैः ॥ २० ॥
अश्वांश्च चतुरो हत्वा बाह्वोरुरसि चार्पितः ।

राजन् ! आपके धनुर्धर पुत्रने बहुत-से नाराच, अर्धनाराच, शीघ्रकारी वत्सदन्त और कारीगरद्वारा साफ किये हुए बाणोंसे धृष्टद्युम्नके चारों घोड़ोंको मारकर उनकी दोनों भुजाओं और छातीमें भी चोट पहुँचायी ॥ १९-२०½ ॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासस्तोत्रार्दित इव द्विपः ॥ २१ ॥
तस्याश्वांश्चतुरो बाणैः प्रेषयामास मृत्यवे ।
सारथेश्चास्य भल्लेन शिरः कायादपाहरत् ॥ २२ ॥

दुर्योधनके प्रहारसे अत्यन्त घायल हुए महाधनुर्धर धृष्टद्युम्न अङ्कुशसे पीड़ित हुए हाथीके समान कुपित हो उठे और उन्होंने अपने बाणोंद्वारा उसके चारों घोड़ोंको मौतके हवाले कर दिया तथा एक भल्लसे उसके सारथिका भी सिर धड़से काट लिया ॥ २१-२२ ॥

ततो दुर्योधनो राजा पृष्ठमारुह्य वाजिनः ।
अपाक्रामद्धतरथो नातिदूरमरिंदमः ॥ २३ ॥

इस प्रकार रथके नष्ट हो जानेपर शत्रुदमन राजा दुर्योधन एक घोड़ेकी पीठपर सवार हो वहाँसे कुछ दूर हट गया ॥

दृष्ट्वा तु हतविक्रान्तं स्वमनीकं महाबलः ।
तव पुत्रो महाराज प्रययौ यत्र सौबलः ॥ २४ ॥

महाराज ! अपनी सेनाका पराक्रम नष्ट हुआ देख आपका महाबली पुत्र दुर्योधन वहीं चला गया, जहाँ सुबलपुत्र शकुनि खड़ा था ॥ २४ ॥

ततो रथेषु भग्नेषु त्रिसाहस्रा महाद्विपाः ।
पाण्डवान् रथिनः सर्वान् समन्तात् पर्यवारयन् ॥ २५ ॥

रथसेनाके भंग हो जानेपर तीन हजार विशालकाय गज-

राजोंने समस्त पाण्डवरथियोंको चारों ओरसे घेर लिया ॥

ते वृताः समरे पञ्च गजानीकेन भारत।
अशोभन्त महाराज ग्रहा व्याप्ता घनैरिव ॥ २६ ॥

भरतनन्दन ! महाराज ! समराङ्गणमें गजसेनासे घिरे हुए पाँचों पाण्डव मेघोंसे आवृत हुए पाँच ग्रहोंके समान शोभा पाते थे ॥ २६ ॥

ततोऽर्जुनो महाराज लब्धलक्ष्यो महाभुजः।
विनिर्ययौ रथेनैव श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ॥ २७ ॥

राजेन्द्र ! तब भगवान् श्रीकृष्ण जिनके सारथि हैं, वे श्वेतवाहन महाबाहु अर्जुन अपने बाणोंका लक्ष्य पाकर रथके द्वारा आगे बढ़े ॥ २७ ॥

तैः समन्तात् परिवृतः कुञ्जरैः पर्वतोपमैः।
नाराचैर्विमलैस्तीक्ष्णैर्गजानीकमयोधयत् ॥ २८ ॥

उन्हें चारों ओरसे पर्वताकार हाथियोंने घेर रक्खा था। वे तीखी धारवाले निर्मल नाराचोंद्वारा उस गजसेनाके साथ युद्ध करने लगे ॥ २८ ॥

तत्रैकबाणनिहतानपश्याम महागजान्।
पतितान् पात्यमानांश्च निर्भिन्नान् सव्यसाचिना॥ २९ ॥

वहाँ हमने देखा कि सव्यसाची अर्जुनके एक ही बाणकी चोट खाकर बड़े-बड़े हाथियोंके शरीर विदीर्ण होकर गिर गये हैं और लगातार गिराये जा रहे हैं ॥ २९ ॥

भीमसेनस्तु तान् दृष्ट्वा नागान् मत्तगजोपमः।
करेणादाय महतीं गदामभ्यपतद् बली ॥ ३० ॥
अथाप्लुत्य रथात् तूर्णं दण्डपाणिरिवान्तकः।

मतवाले हाथीके समान पराक्रमी बलवान् भीमसेन उन गजराजोंको आते देख तुरंत ही रथसे कूदकर हाथमें विशाल गदा लिये दण्डधारी यमराजके समान उनपर टूट पड़े।३०½।

तमुद्यतगदं दृष्ट्वा पाण्डवानां महारथम् ॥ ३१ ॥
वित्रेसुस्तावकाः सैन्याः शकृन्मूत्रं च सुस्रुवुः।

पाण्डव महारथी भीमसेनको गदा उठाये देख आपके सैनिक भयसे थर्रा उठे और मल-मूत्र करने लगे ॥ ३१½ ॥

आविग्नं च बलं सर्वं गदाहस्ते वृकोदरे ॥ ३२ ॥
गदया भीमसेनेन भिन्नकुम्भान् रजस्वलान्।
धावमानानपश्याम कुञ्जरान् पर्वतोपमान् ॥ ३३ ॥

भीमसेनके गदा हाथमें लेते ही सारी कौरवसेना उद्विग्न हो उठी। हमने देखा, भीमसेनकी गदासे उन धूलिधूसर पर्वताकार हाथियोंके कुम्भस्थल फट गये हैं और वे इधर-उधर भाग रहे हैं ॥ ३२-३३ ॥

प्राद्रवन् कुञ्जरास्ते तु भीमसेनगदाहताः।
पेतुरार्तस्वरं कृत्वा छिन्नपक्षा इवाद्रयः ॥ ३४ ॥

भीमसेनकी गदासे घायल हो वे हाथी भाग चले और आर्तनाद करके पंख कटे हुए पर्वतोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ३४ ॥

प्रभिन्नकुम्भांस्तु बहून् द्रवमाणानितस्ततः।
पतमानांश्च सम्प्रेक्ष्य वित्रेसुस्तव सैनिकाः ॥ ३५ ॥

कुम्भस्थल फट जानेके कारण इधर-उधर भागते और गिरते हुए बहुत-से हाथियोंको देखकर आपके सैनिक संत्रस्त हो उठे ॥ ३५ ॥

युधिष्ठिरोऽपि संक्रुद्धो माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ।
गार्ध्रपत्रैः शितैर्बाणैर्निन्युर्वै यमसादनम् ॥ ३६ ॥

युधिष्ठिर तथा माद्रीकुमार पाण्डुपुत्र नकुल-सहदेव भी अत्यन्त कुपित हो गीधकी पाँखोंसे युक्त पैने बाणोंद्वारा उन हाथियोंको यमलोक भेजने लगे ॥ ३६ ॥

धृष्टद्युम्नस्तु समरे पराजित्य नराधिपम्।
अपक्रान्ते तव सुते हयपृष्ठं समाश्रिते ॥ ३७ ॥
दृष्ट्वा च पाण्डवान् सर्वान् कुञ्जरैः परिवारितान्।
धृष्टद्युम्नो महाराज सहसा समुपाद्रवत् ॥ ३८ ॥
पुत्रः पाञ्चालराजस्य जिघांसुः कुञ्जरान् ययौ।

उधर धृष्टद्युम्नने समराङ्गणमें राजा दुर्योधनको पराजित कर दिया था। महाराज ! जब आपका पुत्र घोड़ेकी पीठपर सवार हो वहाँसे भाग गया, तब समस्त पाण्डवोंको हाथियोंसे घिरा हुआ देखकर धृष्टद्युम्नने सहसा उस गजसेनापर धावा किया। पाञ्चालराजके पुत्र धृष्टद्युम्न उन हाथियोंको मार डालनेके लिये वहाँसे चल दिये ॥ ३७-३८½ ॥

अदृष्ट्वा तु रथानीके दुर्योधनमरिंदमम् ॥ ३९ ॥
अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः।
अपृच्छन् क्षत्रियांस्तत्र क्व नु दुर्योधनो गतः ॥ ४० ॥

इधर रथसेनामें शत्रुदमन दुर्योधनको न देखकर अश्वत्थामा, कृपाचार्य और सात्वतवंशी कृतवर्माने समस्त क्षत्रियोंसे पूछा—'राजा दुर्योधन कहाँ चले गये ?' ॥३९-४०॥

तेऽपश्यमाना राजानं वर्तमाने जनक्षये।
मन्वाना निहतं तत्र तव पुत्रं महारथाः ॥ ४१ ॥
विवर्णवदना भूत्वा पर्यपृच्छन्त ते सुतम्।

वर्तमान जनसंहारमें राजाको न देखकर वे महारथी आपके पुत्रको मारा गया मान बैठे और मुँह उदास करके सबसे आपके पुत्रका पता पूछने लगे ॥ ४१½ ॥

आहुः केचिद्धते सूते प्रयातो यत्र सौबलः ॥ ४२ ॥
हित्वा पाञ्चालराजस्य तदनीकं दुरुत्सहम्।

कुछ लोगोंने कहा—'सारथिके मारे जानेपर पाञ्चालराजकी उस दुःसह सेनाको त्यागकर राजा दुर्योधन वहीं गये हैं, जहाँ शकुनि हैं' ॥ ४२½ ॥

अपरे त्वब्रुवंस्तत्र क्षत्रिया भृशविक्षताः ॥ ४३ ॥
दुर्योधनेन किं कार्यं द्रक्ष्यध्वं यदि जीवति।
युद्ध्यध्वं सहिताः सर्वे किं वो राजा करिष्यति ॥ ४४ ॥

दूसरे अत्यन्त घायल हुए क्षत्रिय वहाँ इस प्रकार कहने लगे—'अरे ! दुर्योधनसे यहाँ क्या काम है ? यदि वे जीवित होंगे तो तुम सब लोग उन्हें देख ही लोगे। इस समय तो सब लोग एक साथ होकर केवल युद्ध करो। राजा तुम्हारी क्या (सहायता) करेंगे' ॥ ४३-४४ ॥

ते क्षत्रियाः क्षतैर्गात्रैर्हतभूयिष्ठवाहनाः।

शरैः सम्पीड्यमानास्तु नातिव्यक्तमथाब्रुवन् ॥ ४५ ॥
इदं सर्वं बलं हन्मो येन स्म परिवारिताः ।
एते सर्वे गजान् हत्वा उपयान्ति स्म पाण्डवाः ॥ ४६ ॥

वहाँ जो क्षत्रिय युद्ध कर रहे थे, उनके अधिकांश वाहन नष्ट हो गये थे । शरीर क्षत-विक्षत हो रहे थे । वे बाणोंसे पीड़ित होकर कुछ अस्पष्ट वाणीमें बोले—'हमलोग जिससे घिरे हैं, इस सारी सेनाको मार डालें । ये सारे पाण्डव गज-सेनाका संहार करके हमारे समीप चले आ रहे हैं' ॥४५-४६॥

श्रुत्वा तु वचनं तेषामश्वत्थामा महाबलः ।
भित्त्वा पाञ्चालराजस्य तदनीकं दुरुत्सहम् ॥ ४७ ॥
कृपश्च कृतवर्मा च प्रययौ यत्र सौबलः ।
रथानीकं परित्यज्य शूराः सुदृढधन्विनः ॥ ४८ ॥

उनकी बात सुनकर महाबली अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा—ये सभी दृढ़ धनुर्धर शूरवीर पाञ्चालराजकी उस दुःसह सेनाका व्यूह तोड़कर, रथसेनाका परित्याग करके जहाँ शकुनि था, वहीं जा पहुँचे ॥ ४७-४८ ॥

ततस्तेषु प्रयातेषु धृष्टद्युम्नपुरस्कृताः ।
आययुः पाण्डवा राजन् विनिघ्नन्तः स्म तावकम् ॥ ४९ ॥

राजन् ! उन सबके आगे बढ़ जानेपर धृष्टद्युम्न आदि पाण्डव आपकी सेनाका संहार करते हुए वहाँ आ पहुँचे ॥

दृष्ट्वा तु तानापततः सम्प्रहृष्टान् महारथान् ।
पराक्रान्तास्ततो वीरा निराशा जीविते तदा ॥ ५० ॥

हर्ष और उत्साहमें भरे हुए उन महारथियोंको आक्रमण करते देख आपके पराक्रमी वीर उस समय जीवनसे निराश हो गये ॥ ५० ॥

विवर्णमुखभूयिष्ठमभवत् तावकं बलम् ।
परिक्षीणायुधान् दृष्ट्वा तानहं परिवारितान् ॥ ५१ ॥
राजन् बलेन द्व्यङ्गेन त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ।
आत्मना पञ्चमोऽयुद्ध्यं पाञ्चालस्य बलेन ह ॥ ५२ ॥

आपकी सेनाके अधिकांश योद्धाओंका मुख उदास हो गया । उन सबके आयुध नष्ट हो गये थे और वे चारों ओरसे घिर गये थे । राजन् ! उन सबकी वैसी अवस्था देख मैं जीवनका मोह छोड़कर अन्य चार महारथियोंको साथ ले हाथी और घोड़े दो अङ्गोंवाली सेनासे मिलकर धृष्टद्युम्नकी सेनाके साथ युद्ध करने लगा ॥ ५१-५२ ॥

तस्मिन् देशे व्यवस्थाय यत्र शारद्वतः स्थितः ।
सम्प्रद्रुता वयं पञ्च किरीटिशरपीडिताः ॥ ५३ ॥
धृष्टद्युम्नं महारौद्रं तत्र नोऽभूद् रणो महान् ।
जितास्तेन वयं सर्वे व्यपयाम रणात् ततः ॥ ५४ ॥

मैं उसी स्थानमें स्थित होकर युद्ध कर रहा था, जहाँ कृपाचार्य मौजूद थे; परंतु किरीटधारी अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित होकर हम पाँचों वहाँसे भागकर महाभयंकर धृष्टद्युम्नके पास जा पहुँचे । वहाँ उनके साथ हमलोगोंका बड़ा भारी युद्ध हुआ । उन्होंने हम सबको परास्त कर दिया । तब हम वहाँसे भी भाग निकले ॥ ५३-५४ ॥

अथापश्यं सात्यकिं तमुपायान्तं महारथम् ।
रथैश्चतुःशतैर्वीरो मामभ्यद्रवदाहवे ॥ ५५ ॥

इतनेहीमें मैंने महारथी सात्यकिको अपने पास आते देखा । वीर सात्यकिने युद्धस्थलमें चार सौ रथियोंके साथ मुझपर धावा किया ॥ ५५ ॥

धृष्टद्युम्नादहं मुक्तः कथंचिच्छ्रान्तवाहनात् ।
पतितो माधवानीकं दुष्कृती नरकं यथा ॥ ५६ ॥

थके हुए वाहनोंवाले धृष्टद्युम्नसे किसी प्रकार छूटा तो मैं सात्यकिकी सेनामें आ फँसा; जैसे कोई पापी नरकमें गिर गया हो ॥ ५६ ॥

तत्र युद्धमभूद् घोरं मुहूर्तमतिदारुणम् ।
सात्यकिस्तु महाबाहुर्मम हत्वा परिच्छदम् ॥ ५७ ॥
जीवग्राहमगृह्णान्मां मूर्छितं पतितं भुवि ।

वहाँ दो घड़ीतक बड़ा भयंकर एवं घोर युद्ध हुआ । महाबाहु सात्यकिने मेरी सारी युद्धसामग्री नष्ट कर दी और जब मैं मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा, तब मुझे जीवित ही पकड़ लिया ॥ ५७½ ॥

ततो मुहूर्तादिव तद् गजानीकमवध्यत ॥ ५८ ॥
गदया भीमसेनेन नाराचैरर्जुनेन च ।

तदनन्तर दो ही घड़ीमें भीमसेनने गदासे और अर्जुनने नाराचोंसे उस गजसेनाका संहार कर डाला ॥ ५८½ ॥

अभिपिष्टैर्महानागैः समन्तात् पर्वतोपमैः ॥ ५९ ॥
नातिप्रसिद्धेव गतिः पाण्डवानामजायत ।

चारों ओर पर्वताकार विशालकाय हाथी पड़े थे, जो भीमसेन और अर्जुनके आघातोंसे पिस गये थे । उनके कारण पाण्डवोंका आगे बढ़ना अत्यन्त दुष्कर हो गया था ॥५९½॥

रथमार्गं ततश्चक्रे भीमसेनो महाबलः ॥ ६० ॥
पाण्डवानां महाराज व्यपाकर्षन्महागजान् ।

महाराज ! तब महाबली भीमसेनने बड़े-बड़े हाथियोंको खींचकर हटाया और पाण्डवोंके लिये रथ जानेका मार्ग बनाया॥

अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ॥ ६१ ॥
अपश्यन्तो रथानीके दुर्योधनमरिंदमम् ।
राजानं मृगयामासुस्तव पुत्रं महारथम् ॥ ६२ ॥

इधर अश्वत्थामा, कृपाचार्य और सात्वतवंशी कृतवर्मा-ये रथसेनामें आपके महारथी पुत्र शत्रुदमन राजा दुर्योधनको न देखकर उसकी खोज करने लगे ॥ ६१-६२ ॥

परित्यज्य च पाञ्चाल्यं प्रयाता यत्र सौबलः ।
राज्ञोऽदर्शनसंविग्ना वर्तमाने जनक्षये ॥ ६३ ॥

वे धृष्टद्युम्नका सामना करना छोड़कर जहाँ शकुनि था, वहाँ चले गये । वर्तमान नरसंहारमें राजा दुर्योधनको न देखनेके कारण वे उद्विग्न हो उठे थे ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि दुर्योधनापयाने पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें दुर्योधनका पलायनविषयक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः

भीमसेनके द्वारा धृतराष्ट्रके ग्यारह पुत्रोंका और बहुत-सी चतुरङ्गिणी सेनाका वध

संजय उवाच

गजानीके हते तस्मिन् पाण्डुपुत्रेण भारत।
वध्यमाने बले चैव भीमसेनेन संयुगे ॥ १ ॥
चरन्तं च तथा दृष्ट्वा भीमसेनमरिंदमम्।
दण्डहस्तं यथा क्रुद्धमन्तकं प्राणहारिणम् ॥ २ ॥
समेत्य समरे राजन् हतशेषाः सुतास्तव।
अदृश्यमाने कौरव्ये पुत्रे दुर्योधने तव ॥ ३ ॥
सोदर्याः सहिता भूत्वा भीमसेनमुपाद्रवन्।

संजय कहते हैं—राजन्! भरतनन्दन! पाण्डुपुत्र भीमसेनके द्वारा आपकी गजसेना तथा दूसरी सेनाका भी संहार हो जानेपर जब आपका पुत्र कुरुवंशी दुर्योधन कहीं दिखायी नहीं दिया, तब मरनेसे बचे हुए आपके सभी पुत्र एक साथ हो गये और समराङ्गणमें दण्डधारी, प्राणान्तकारी यमराजके समान कुपित हुए शत्रुदमन भीमसेनको विचरते देख सब मिलकर उनपर टूट पड़े ॥ १–३½ ॥

दुर्मर्षणः श्रुतान्तश्च जैत्रो भूरिबलो रविः ॥ ४ ॥
जयत्सेनः सुजातश्च तथा दुर्विषहोऽरिहा।
दुर्विमोचननामा च दुष्प्रधर्षस्तथैव च ॥ ५ ॥
श्रुतर्वा च महाबाहुः सर्वे युद्धविशारदाः।
इत्येते सहिता भूत्वा तव पुत्राः समन्ततः ॥ ६ ॥
भीमसेनमभिद्रुत्य रुरुधुः सर्वतोदिशम्।

दुर्मर्षण, श्रुतान्त (चित्राङ्ग), जैत्र, भूरिबल (भीमबल), रवि, जयत्सेन, सुजात, दुर्विषह (दुर्विगाह), शत्रुनाशक दुर्विमोचन, दुष्प्रधर्ष (दुष्प्रधर्षण) और महाबाहु श्रुतर्वा—ये सभी आपके युद्धविशारद पुत्र एक साथ हो सब ओरसे भीमसेनपर धावा करके उनकी सम्पूर्ण दिशाओंको रोककर खड़े हो गये ॥ ४–६½ ॥

ततो भीमो महाराज स्वरथं पुनरास्थितः ॥ ७ ॥
मुमोच निशितान् बाणान् पुत्राणां तव मर्मसु।

महाराज! तब भीम पुनः अपने रथपर आरूढ़ हो आपके पुत्रोंके मर्मस्थानोंमें तीखे बाणोंका प्रहार करने लगे ॥

ते कीर्यमाणा भीमेन पुत्रास्तव महारणे ॥ ८ ॥
भीमसेनमपाकर्षन् प्रवणादिव कुञ्जरम्।

उस महासमरमें जब भीमसेन आपके पुत्रोंपर बाणोंका प्रहार करने लगे, तब वे भीमसेनको उसी प्रकार दूरतक खींच ले गये, जैसे शिकारी नीचे स्थानसे हाथीको खींचते हैं॥

ततः क्रुद्धो रणे भीमः शिरो दुर्मर्षणस्य ह ॥ ९ ॥
क्षुरप्रेण प्रमथ्याशु पातयामास भूतले।

तब रणभूमिमें क्रुद्ध हुए भीमसेनने एक क्षुरप्रसे दुर्मर्षणका मस्तक शीघ्रतापूर्वक पृथ्वीपर काट गिराया ॥ ९½ ॥

ततोऽपरेण भल्लेन सर्वावरणभेदिना ॥ १० ॥
श्रुतान्तमवधीद् भीमस्तव पुत्रं महारथः।

तत्पश्चात् समस्त आवरणोंका भेदन करनेवाले दूसरे भल्लके द्वारा महारथी भीमसेनने आपके पुत्र श्रुतान्तका अन्त कर दिया ॥ १०½ ॥

जयत्सेनं ततो विद्ध्वा नाराचेन हसन्निव ॥ ११ ॥
पातयामास कौरव्यं रथोपस्थादरिंदमः।

फिर हँसते-हँसते उन शत्रुदमन वीरने कुरुवंशी जयत्सेनको नाराचसे घायल करके उसे रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया ॥ ११½ ॥

स पपात रथाद् राजन् भूमौ तूर्णं ममार च ॥ १२ ॥
श्रुतर्वा तु ततो भीमं क्रुद्धो विव्याध मारिष।
शतेन गृध्रवाजानां शराणां नतपर्वणाम् ॥ १३ ॥

राजन्! जयत्सेन रथसे पृथ्वीपर गिरा और तुरंत मर गया। मान्यवर नरेश! तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए श्रुतर्वाने गीधकी पाँख और झुकी हुई गाँठवाले सौ बाणोंसे भीमसेनको बींध डाला ॥ १२-१३ ॥

ततः क्रुद्धो रणे भीमो जैत्रं भूरिबलं रविम्।
त्रीनेतांस्त्रिभिरानर्च्छद् विषाग्निप्रतिमैः शरैः ॥ १४ ॥

यह देख भीमसेन क्रोधसे जल उठे और उन्होंने रणभूमिमें विष और अग्निके समान भयंकर तीन बाणोंद्वारा जैत्र, भूरिबल और रवि—इन तीनोंपर प्रहार किया ॥ १४ ॥

ते हता न्यपतन् भूमौ स्यन्दनेभ्यो महारथाः।
वसन्ते पुष्पशबला निकृत्ता इव किंशुकाः ॥ १५ ॥

उन बाणोंद्वारा मारे गये वे तीनों महारथी वसन्त ऋतुमे कटे हुए पुष्पयुक्त पलाशके वृक्षोंकी भाँति रथोंसे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १५ ॥

ततोऽपरेण भल्लेन तीक्ष्णेन च परंतपः।
दुर्विमोचनमाहत्य प्रेषयामास मृत्यवे ॥ १६ ॥

इसके बाद शत्रुओंको संताप देनेवाले भीमसेनने दूसरे तीखे भल्लसे दुर्विमोचनको मारकर मृत्युके लोकमें भेज दिया॥

स हतः प्रापतद् भूमौ स्वरथाद् रथिनां वरः।
गिरेस्तु कूटजो भग्नो मारुतेनेव पादपः ॥ १७ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ दुर्विमोचन उस भल्लकी चोट खाकर अपने रथसे भूमिपर गिर पड़ा, मानो पर्वतके शिखरपर उत्पन्न हुआ वृक्ष वायुके वेगसे टूटकर धराशायी हो गया हो॥

दुष्प्रधर्षं ततश्चैव सुजातं च सुतं तव।
एकैकं न्यहनत् संख्ये द्वाभ्यां द्वाभ्यां चमूमुखे॥ १८ ॥

तदनन्तर भीमसेनने आपके पुत्र दुष्प्रधर्ष और सुजातको रणक्षेत्रमें सेनाके मुहानेपर दो-दो बाणोंसे मार गिराया ॥ १८ ॥

तौ शिलीमुखविद्धाङ्गौ पेततू रथसत्तमौ।
ततः पतन्तं समरे अभिवीक्ष्य सुतं तव ॥ १९ ॥
भल्लेन पातयामास भीमो दुर्विषहं रणे।
स पपात हतो वाहात् पश्यतां सर्वधन्विनाम् ॥ २० ॥

वे दोनों महारथी वीर बाणोंसे सारा शरीर बिंध जानेके कारण रणभूमिमें गिर पड़े। तत्पश्चात् आपके पुत्र दुर्विषहको संग्राममें चढ़ाई करते देख भीमसेनने एक भल्लसे मार गिराया। उस भल्लकी चोट खाकर दुर्विषह सम्पूर्ण धनुर्धरोंके देखते-देखते रथसे नीचे जा गिरा ॥ १९-२० ॥

दृष्ट्वा तु निहतान् भ्रातॄन् बहूनेकेन संयुगे।
अमर्षवशमापन्नः श्रुतर्वा भीममभ्ययात् ॥ २१ ॥

युद्धस्थलमें एकमात्र भीमके द्वारा अपने बहुत-से भाइयोंको मारा गया देख श्रुतर्वा अमर्षके वशीभूत हो भीमसेनका सामना करनेके लिये आ पहुँचा ॥ २१ ॥

विक्षिपन् सुमहच्चापं कार्तस्वरविभूषितम्।
विसृजन् सायकांश्चैव विषाग्निप्रतिमान् बहून् ॥ २२ ॥

वह अपने सुवर्णभूषित विशाल धनुषको खींचकर उसके द्वारा विष और अग्निके समान भयंकर बहुतेरे बाणोंकी वर्षा कर रहा था ॥ २२ ॥

स तु राजन् धनुश्छित्त्वा पाण्डवस्य महामृधे।
अथैनं छिन्नधन्वानं विंशत्या समवाकिरत् ॥ २३ ॥

राजन्! उसने उस महासमरमें पाण्डुपुत्रके धनुषको काटकर कटे हुए धनुषवाले भीमसेनको बीस बाणोंसे घायल कर दिया ॥ २३ ॥

ततोऽन्यद् धनुरादाय भीमसेनो महाबलः।
अवाकिरत् तव सुतं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २४ ॥

तब महाबली भीमसेन दूसरा धनुष लेकर आपके पुत्रपर बाणोंकी वर्षा करने लगे और बोले—'खड़ा रह, खड़ा रह'॥

महदासीत् तयोर्युद्धं चित्ररूपं भयानकम्।
यादृशं समरे पूर्वं जम्भवासवयोर्युधि ॥ २५ ॥

उस समय उन दोनोंमें विचित्र, भयानक और महान् युद्ध होने लगा। पूर्वकालमें रणक्षेत्रमें जम्भ और इन्द्रका जैसा युद्ध हुआ था, वैसा ही उन दोनोंका भी हुआ ॥२५॥

तयोस्तत्र शितैर्मुक्तैर्यमदण्डनिभैः शरैः।
समाच्छन्ना धरा सर्वा खं दिशो विदिशस्तथा॥ २६ ॥

उन दोनोंके छोड़े हुए यमदण्डके समान तीखे बाणोंसे सारी पृथ्वी, आकाश, दिशाएँ और विदिशाएँ आच्छादित हो गयीं ॥ २६ ॥

ततः श्रुतर्वा संक्रुद्धो धनुरादाय सायकैः।
भीमसेनं रणे राजन् बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ २७ ॥

राजन्! तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए श्रुतर्वाने धनुष लेकर अपने बाणोंसे रणभूमिमें भीमसेनकी दोनों भुजाओं और छातीमें प्रहार किया ॥ २७ ॥

सोऽतिविद्धो महाराज तव पुत्रेण धन्विना।
भीमः संचुक्षुभे क्रुद्धः पर्वणीव महोदधिः ॥ २८ ॥

महाराज! आपके धनुर्धर पुत्रद्वारा अत्यन्त घायल कर दिये जानेपर भीमसेनका क्रोध भड़क उठा और वे पूर्णिमाके दिन उमड़ते हुए महासागरके समान बहुत ही क्षुब्ध हो उठे॥

ततो भीमो रुषाविष्टः पुत्रस्य तव मारिष।
सारथिं चतुरश्चाश्वाञ्शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ २९ ॥

आर्य! फिर रोषसे आविष्ट हुए भीमसेनने अपने बाणोंद्वारा आपके पुत्रके सारथि और चारों घोड़ोंको यमलोक पहुँचा दिया ॥ २९ ॥

विरथं तं समालक्ष्य विशिखैर्लोमवाहिभिः।
अवाकिरदमेयात्मा दर्शयन् पाणिलाघवम् ॥ ३० ॥

अमेय आत्मबलसे सम्पन्न भीमसेन श्रुतर्वाको रथहीन हुआ देख अपने हाथोंकी फुर्ती दिखाते हुए उसके ऊपर पक्षियोंके पंखसे युक्त होकर उड़नेवाले बाणोंकी वर्षा करने लगे॥

श्रुतर्वा विरथो राजन्नाददे खड्गचर्मणी।
अथास्याददतः खड्गं शतचन्द्रं च भानुमत् ॥ ३१ ॥
क्षुरप्रेण शिरः कायात् पातयामास पाण्डवः।

राजन्! रथहीन हुए श्रुतर्वाने अपने हाथोंमें ढाल और तलवार ले ली। वह सौ चन्द्राकार चिह्नोंसे युक्त ढाल तथा अपनी प्रभासे चमकती हुई तलवार ले ही रहा था कि पाण्डुपुत्र भीमसेनने एक क्षुरप्रद्वारा उसके मस्तकको धड़से काट गिराया ॥ ३१½ ॥

छिन्नोत्तमाङ्गस्य ततः क्षुरप्रेण महात्मना ॥ ३२ ॥
पपात कायः स रथाद् वसुधामनुनादयन्।

महामनस्वी भीमसेनके क्षुरप्रसे मस्तक कट जानेपर उसका धड़ वसुधाको प्रतिध्वनित करता हुआ रथसे नीचे गिर पड़ा ॥ ३२½ ॥

तस्मिन् निपतिते वीरे तावका भयमोहिताः ॥ ३३ ॥
अभ्यद्रवन्त संग्रामे भीमसेनं युयुत्सवः।

उस वीरके गिरते ही आपके सैनिक भयसे व्याकुल होनेपर भी संग्राममें जूझनेकी इच्छासे भीमसेनकी ओर दौड़े ॥

तानापतत एवाशु हतशेषाद् बलार्णवात् ॥ ३४ ॥
दंशितान् प्रतिजग्राह भीमसेनः प्रतापवान्।

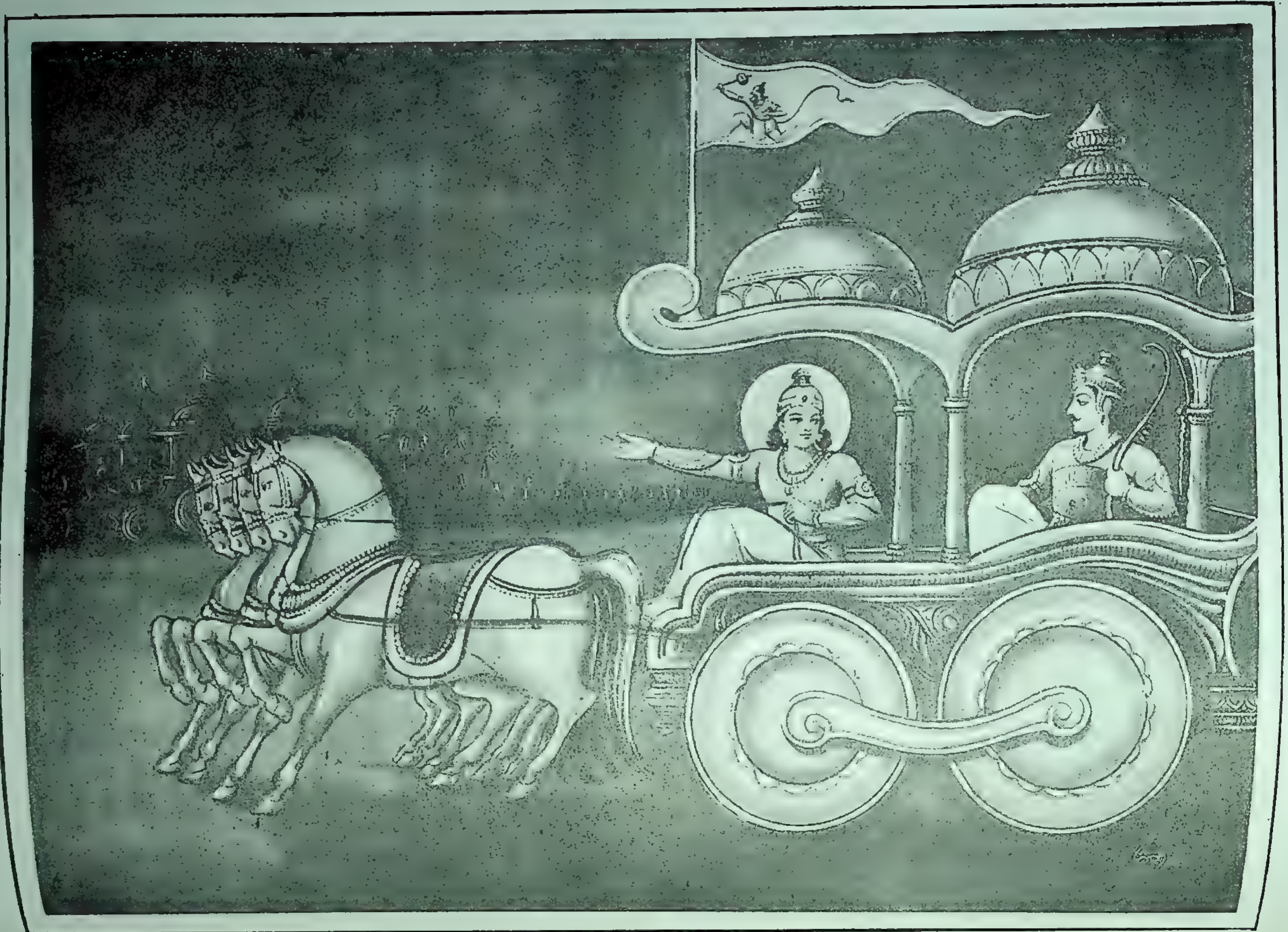
मरनेसे बचे हुए सैन्य-समूहसे निकलकर शीघ्रतापूर्वक अपने ऊपर आक्रमण करते हुए उन कवचधारी योद्धाओंको प्रतापी भीमसेनने आगे बढ़नेसे रोक दिया ॥ ३४½ ॥

ते तु तं वै समासाद्य परिवव्रुः समन्ततः ॥ ३५ ॥
ततस्तु संवृतो भीमस्तावकान् निशितैः शरैः।
पीडयामास तान् सर्वान् सहस्राक्ष इवासुरान् ॥ ३६ ॥

वे योद्धा भीमसेनके पास पहुँचकर उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये। तब जैसे इन्द्र असुरोंको नष्ट करते हैं, उसी प्रकार घिरे हुए भीमसेनने पैने बाणोंद्वारा आपके उन समस्त सैनिकोंको पीड़ित करना आरम्भ किया ॥ ३५-३६ ॥

ततः पञ्चशतान् हत्वा सवरूथान् महारथान्।
जघान कुञ्जरानीकं पुनः सप्तशतं युधि ॥ ३७ ॥
हत्वा शतसहस्राणि पत्तीनां परमेषुभिः।
वाजिनां च शतान्यष्टौ पाण्डवः स्म विराजते ॥ ३८ ॥

तदनन्तर भीमसेनने आवरणोंसहित पाँच सौ विशाल रथोंका संहार करके युद्धमें सात सौ हाथियोंकी सेनाको पुनः मार गिराया। फिर उत्तम बाणोंद्वारा एक लाख पैदलों और सवारों



श्रीकृष्ण दुर्योधनकी ओर संकेत करते हुए उसे मारनेके लिये अर्जुनको प्रेरित कर रहे हैं

सहित आठ सौ घोड़ोंका वध करके पाण्डव भीमसेन विजयश्री-से सुशोभित होने लगे ॥ ३७-३८ ॥

भीमसेनस्तु कौन्तेयो हत्वा युद्धे सुतांस्तव ।
मेने कृतार्थमात्मानं सफलं जन्म च प्रभो ॥ ३९ ॥

प्रभो ! इस प्रकार कुन्तीपुत्र भीमसेनने युद्धमें आपके पुत्रोंका विनाश करके अपने आपको कृतार्थ और जन्मको सफल हुआ समझा ॥ ३९ ॥

तं तथा युद्ध्यमानं च विनिघ्नन्तं च तावकान् ।
ईक्षितुं नोत्सहन्ते स्म तव सैन्या नराधिप ॥ ४० ॥

नरेश्वर ! इस तरह युद्ध और आपके पुत्रोंका वध करते हुए भीमसेनको आपके सैनिक देखनेका भी साहस नहीं कर पाते थे ॥ ४० ॥

विद्राव्य च कुरून् सर्वांस्तांश्च हत्वा पदानुगान् ।
दोर्भ्यां शब्दं ततश्चक्रे त्रासयानो महाद्विपान् ॥ ४१ ॥

समस्त कौरवोंको भगाकर और उनके अनुगामी सैनिकोंका संहार करके भीमसेनने बड़े-बड़े हाथियोंको डराते हुए अपनी दोनों भुजाओंद्वारा ताल ठोंकनेका शब्द किया ॥ ४१ ॥

हतभूयिष्ठयोधा तु तव सेना विशाम्पते ।
किंचिच्छेषा महाराज कृपणं समपद्यत ॥ ४२ ॥

प्रजानाथ ! महाराज ! आपकी सेनाके अधिकांश योद्धा मारे गये और बहुत थोड़े सैनिक शेष रह गये; अतः वह सेना अत्यन्त दीन हो गयी थी ॥ ४२ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि एकादशधार्तराष्ट्रवधे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें धृतराष्ट्रके ग्यारह पुत्रोंका वधविषयक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण और अर्जुनकी बातचीत, अर्जुनद्वारा सत्यकर्मा, सत्येषु तथा पैंतालीस पुत्रों और सेनासहित सुशर्माका वध तथा भीमके द्वारा धृतराष्ट्रपुत्र सुदर्शनका अन्त

संजय उवाच

दुर्योधनो महाराज सुदर्शश्चापि ते सुतः ।
हतशेषौ तदा संख्ये वाजिमध्ये व्यवस्थितौ ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! उस समय आपके पुत्र दुर्योधन और सुदर्शन ये—दो ही बच गये थे। दोनों ही घुड़सवारोंके बीचमें खड़े थे ॥ १ ॥

ततो दुर्योधनं दृष्ट्वा वाजिमध्ये व्यवस्थितम् ।
उवाच देवकीपुत्रः कुन्तीपुत्रं धनंजयम् ॥ २ ॥

तदनन्तर दुर्योधनको घुड़सवारोंके बीचमें खड़ा देख देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने कुन्तीकुमार अर्जुनसे इस प्रकार कहा—॥ २ ॥

शत्रवो हतभूयिष्ठा ज्ञातयः परिपालिताः ।
गृहीत्वा संजयं चासौ निवृत्तः शिनिपुङ्गवः ॥ ३ ॥
परिश्रान्तश्च नकुलः सहदेवश्च भारत ।
योधयित्वा रणे पापान् धार्तराष्ट्रान् सहानुगान्॥ ४ ॥

'भरतनन्दन ! शत्रुओंके अधिकांश योद्धा मारे गये और अपने कुटुम्बी जनोंकी रक्षा हुई । उधर देखो, वे शिनिप्रवर सात्यकि संजयको कैद करके उसे साथ लिये लौटे आ रहे हैं। रणभूमिमें सेवकोंसहित धृतराष्ट्रके पापी पुत्रोंसे युद्ध करके दोनों भाई नकुल और सहदेव भी बहुत थक गये हैं ॥३-४॥

दुर्योधनमभित्यज्य त्रय एते व्यवस्थिताः ।
कृपश्च कृतवर्मा च द्रौणिश्चैव महारथः ॥ ५ ॥

'उधर कृपाचार्य, कृतवर्मा और महारथी अश्वत्थामा—ये तीनों युद्धभूमिमें दुर्योधनको छोड़कर कहीं अन्यत्र स्थित हैं॥

असौ तिष्ठति पाञ्चाल्यः श्रिया परमया युतः ।
दुर्योधनबलं हत्वा सह सर्वैः प्रभद्रकैः ॥ ६ ॥

'इधर, सम्पूर्ण प्रभद्रकोंसहित दुर्योधनकी सेनाका संहार करके पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न अपनी सुन्दर कान्तिसे सुशोभित हो रहे हैं ॥ ६ ॥

असौ दुर्योधनः पार्थ वाजिमध्ये व्यवस्थितः ।
छत्रेण ध्रियमाणेन प्रेक्षमाणो मुहुर्मुहुः ॥ ७ ॥

'पार्थ ! वह रहा दुर्योधन, जो छत्र धारण किये घुड़सवारोंके बीचमें खड़ा है और बारंबार इधर ही देख रहा है ॥

प्रतिव्यूह्य बलं सर्वं रणमध्ये व्यवस्थितः ।
एनं हत्वा शितैर्बाणैः कृतकृत्यो भविष्यसि ॥ ८ ॥

'वह अपनी सारी सेनाका व्यूह बनाकर युद्धभूमिमें खड़ा है । तुम इसे पैने बाणोंसे मारकर कृतकृत्य हो जाओगे ॥८॥

गजानीकं हतं दृष्ट्वा त्वां च प्राप्तमरिंदम ।
यावन्न विद्रवन्त्येते तावज्जहि सुयोधनम् ॥ ९ ॥

'शत्रुदमन ! गजसेनाका वध और तुम्हारा आगमन हुआ देख ये कौरव-योद्धा जबतक भाग नहीं जाते तभीतक दुर्योधनको मार डालो ॥ ९ ॥

यातु कश्चित्तु पाञ्चाल्यं क्षिप्रमागम्यतामिति ।
परिश्रान्तबलस्तात नैष मुच्येत किल्बिषी ॥ १० ॥

'अपने दलका कोई पुरुष पाञ्चालराज धृष्टद्युम्नके पास जाय और कहे कि 'आप शीघ्रतापूर्वक चलें ।' तात ! यह पापात्मा दुर्योधन अब बच नहीं सकता, क्योंकि इसकी सारी सेना थक गयी है ॥ १० ॥

हत्वा तव बलं सर्वं संग्रामे धृतराष्ट्रजः ।
जितान् पाण्डुसुतान् मत्वा रूपं धारयते महत्॥ ११ ॥

'दुर्योधन समझता है कि 'संग्रामभूमिमें तुम्हारी सारी सेनाका संहार करके पाण्डवोंको पराजित कर दूँगा ।' इसीलिये वह अत्यन्त उग्र रूप धारण कर रहा है ॥ ११ ॥

निहतं स्वबलं दृष्ट्वा पीडितं चापि पाण्डवैः ।
ध्रुवमेष्यति संग्रामे वधायैवात्मनो नृपः ॥ १२ ॥

'परंतु अपनी सेनाको पाण्डवोंद्वारा पीड़ित एवं मारी गयी देख राजा दुर्योधन निश्चय ही अपने विनाशके लिये ही युद्धस्थलमें पदार्पण करेगा' ॥ १२ ॥

एवमुक्तः फाल्गुनस्तु कृष्णं वचनमब्रवीत्।
धृतराष्ट्रसुताः सर्वे हता भीमेन माधव ॥ १३ ॥
यावेतावास्थितौ कृष्ण तावद्य न भविष्यतः।

भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर अर्जुन उनसे इस प्रकार बोले—'माधव ! धृतराष्ट्रके प्रायः सभी पुत्र भीमसेनके हाथसे मारे गये हैं। श्रीकृष्ण ! ये जो दो पुत्र खड़े हैं, इनका भी आज अन्त हो जायगा ॥ १३½ ॥

हतो भीष्मो हतो द्रोणः कर्णो वैकर्तनो हतः ॥ १४ ॥
मद्रराजो हतः शल्यो हतः कृष्ण जयद्रथः।

'श्रीकृष्ण ! भीष्म मारे जा चुके, द्रोणका भी अन्त हो गया, वैकर्तन कर्ण भी मार डाला गया, मद्रराज शल्यका भी वध हो गया और जयद्रथ भी यमलोक पहुँच गया ॥ १४½ ॥

हयाः पञ्चशताः शिष्टाः शकुनेः सौबलस्य च ॥ १५ ॥
रथानां तु शते शिष्टे द्वे एव तु जनार्दन।
दन्तिनां च शतं साग्रं त्रिसाहस्राः पदातयः ॥ १६ ॥

'सुबलपुत्र शकुनिके पास पाँच सौ घुड़सवारोंकी सेना अभी शेष है। जनार्दन ! उसके पास दो सौ रथ, सौसे कुछ अधिक हाथी और तीन हजार पैदल सैनिक भी शेष रह गये हैं ॥ १५-१६ ॥

अश्वत्थामा कृपश्चैव त्रिगर्ताधिपतिस्तथा।
उलूकः शकुनिश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ॥ १७ ॥
एतद् बलमभूच्छेषं धार्तराष्ट्रस्य माधव।

'माधव ! दुर्योधनकी सेनामें अश्वत्थामा, कृपाचार्य, त्रिगर्तराज सुशर्मा, उलूक, शकुनि और सात्वतवंशी कृतवर्मा—ये थोड़े-से ही वीर सैनिक शेष रह गये हैं ॥ १७½ ॥

मोक्षो न नूनं कालात् तु विद्यते भुवि कस्यचित्॥ १८ ॥
तथा विनिहते सैन्ये पश्य दुर्योधनं स्थितम्।
अद्याह्ना हि महाराजो हतामित्रो भविष्यति ॥ १९ ॥

'निश्चय ही इस पृथ्वीपर किसीको भी कालसे छुटकारा नहीं मिलता, तभी तो इस प्रकार अपनी सेनाका संहार होनेपर भी दुर्योधन युद्धके लिये खड़ा है, उसे देखिये। आजके दिन महाराज युधिष्ठिर शत्रुहीन हो जायँगे ॥ १८-१९ ॥

न हि मे मोक्ष्यते कश्चित् परेषामिह चिन्तये।
ये त्वद्य समरं कृष्ण न हास्यन्ति मदोत्कटाः ॥ २० ॥
तान् वै सर्वान् हनिष्यामि यद्यपि स्युर्न मानुषाः।

'श्रीकृष्ण ! मैं सोचता हूँ कि आज शत्रुदलका कोई भी योद्धा यहाँ मेरे हाथसे बचकर नहीं जा सकेगा। जो मदोन्मत्त वीर आज युद्ध छोड़कर भाग नहीं जायँगे, उन सबको, वे मनुष्य न होकर देवता या दैत्य ही क्यों न हों, मैं मार डालूँगा ॥ २०½ ॥

अद्य युद्धे सुसंक्रुद्धो दीर्घं राज्ञः प्रजागरम् ॥ २१ ॥
अपनेष्यामि गान्धारं घातयित्वा शितैः शरैः।

'आज मैं अत्यन्त कुपित हो गान्धारराज शकुनिको पैने बाणोंसे मरवाकर राजा युधिष्ठिरके दीर्घकालीन जागरणरूपी रोगको दूर कर दूँगा ॥ २१½ ॥

निकृत्या वै दुराचारो यानि रत्नानि सौबलः ॥ २२ ॥
सभायामहरद् द्यूते पुनस्तान्याहराम्यहम्।

'दुराचारी सुबलपुत्र शकुनिने द्यूतसभामें छल करके जिन रत्नोंको हर लिया था, उन सबको मैं वापस ले लूँगा ॥

अद्य ता अपि रोत्स्यन्ति सर्वा नागपुरे स्त्रियः॥ २३ ॥
श्रुत्वा पतींश्च पुत्रांश्च पाण्डवैर्निहतान् युधि।

'आज हस्तिनापुरकी वे सारी स्त्रियाँ भी युद्धमें पाण्डवोंके हाथसे अपने पतियों और पुत्रोंको मारा गया सुनकर फूट-फूटकर रोयेंगी ॥ २३½ ॥

समाप्तमद्य वै कर्म सर्वं कृष्ण भविष्यति ॥ २४ ॥
अद्य दुर्योधनो दीप्तां श्रियं प्राणांश्च मोक्ष्यति।

'श्रीकृष्ण ! आज हमलोगोंका सारा कार्य समाप्त हो जायगा। आज दुर्योधन अपनी उज्ज्वल राजलक्ष्मी और प्राणोंको भी खो बैठेगा ॥ २४½ ॥

नापयाति भयात् कृष्ण संग्रामाद् यदि चेन्मम॥ २५ ॥
निहतं विद्धि वार्ष्णेय धार्तराष्ट्रं सुबालिशम्।

'वृष्णिनन्दन श्रीकृष्ण ! यदि वह मेरे भयसे युद्धसे भाग न जाय, तो मेरेद्वारा उस मूढ़ दुर्योधनको आप मारा गया ही समझें ॥ २५½ ॥

मम ह्येतदशक्तं वै वाजिवृन्दमरिंदम ॥ २६ ॥
सोढुं ज्यातलनिर्घोषं याहि यावन्निहन्म्यहम्।

'शत्रुदमन ! यह घुड़सवारोंकी सेना मेरे गाण्डीव धनुषकी टङ्कारको नहीं सह सकेगी। आप घोड़े बढ़ाइये, मैं अभी इन सबको मारे डालता हूँ' ॥ २६½ ॥

एवमुक्तस्तु दाशार्हः पाण्डवेन यशस्विना ॥ २७ ॥
अचोदयद्धयान् राजन् दुर्योधनबलं प्रति।

राजन् ! यशस्वी पाण्डुपुत्र अर्जुनके ऐसा कहनेपर दशार्हकुलनन्दन श्रीकृष्णने दुर्योधनकी सेनाकी ओर घोड़े बढ़ा दिये ॥ २७½ ॥

तदनीकमभिप्रेक्ष्य त्रयः सज्जा महारथाः ॥ २८ ॥
भीमसेनोऽर्जुनश्चैव सहदेवश्च मारिष।
प्रययुः सिंहनादेन दुर्योधनजिघांसया ॥ २९ ॥

मान्यवर ! उस सेनाको देखकर तीन महारथी भीमसेन, अर्जुन और सहदेव युद्ध-सामग्रीसे सुसज्जित हो दुर्योधनके वधकी इच्छासे सिंहनाद करते हुए आगे बढ़े ॥ २८-२९ ॥

तान् प्रेक्ष्य सहितान् सर्वाञ्जवेनोद्यतकार्मुकान्।
सौबलोऽभ्यद्रवद् युद्धे पाण्डवानाततायिनः ॥ ३० ॥

उन सबको बड़े वेगसे धनुष उठाये एक साथ आक्रमण करते देख सुबलपुत्र शकुनि रणभूमिमें आततायी पाण्डवोंकी ओर दौड़ा ॥ ३० ॥

सुदर्शनस्तव सुतो भीमसेनं समभ्ययात्।
सुशर्मा शकुनिश्चैव युयुधाते किरीटिना ॥ ३१ ॥

आपका पुत्र सुदर्शन भीमका सामना करने लगा। सुशर्मा और शकुनिने किरीटधारी अर्जुनके साथ युद्ध छेड़ दिया॥

सहदेवं तव सुतो हयपृष्ठगतोऽभ्ययात्।
ततो हि यत्नतः क्षिप्रं तव पुत्रो जनाधिप॥ ३२॥
प्रासेन सहदेवस्य शिरसि प्राहरद् भृशम्।

नरेश्वर! घोड़ेकी पीठपर बैठा हुआ आपका पुत्र दुर्योधन सहदेवके सामने आया। उसने बड़े यत्नसे सहदेवके मस्तकपर शीघ्रतापूर्वक प्रासका प्रहार किया॥ ३२½॥

सोपाविशद् रथोपस्थे तव पुत्रेण ताडितः॥ ३३॥
रुधिराप्लुतसर्वाङ्ग आशीविष इव श्वसन्।

आपके पुत्रद्वारा ताडित होकर सहदेव फुफकारते हुए विषधर सर्पके समान लंबी साँस खींचते हुए रथके पिछले भागमें बैठ गये। उनका सारा शरीर लहू-लुहान हो गया॥ ३३½॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां सहदेवो विशाम्पते॥ ३४॥
दुर्योधनं शरैस्तीक्ष्णैः संक्रुद्धः समवाकिरत्।

प्रजानाथ! थोड़ी देरमें सचेत होनेपर क्रोधमें भरे हुए सहदेव दुर्योधनपर पैने बाणोंकी वर्षा करने लगे॥ ३४½॥

पार्थोऽपि युधि विक्रम्य कुन्तीपुत्रो धनंजयः॥ ३५॥
शूराणामश्वपृष्ठेभ्यः शिरांसि निचकर्त ह।

कुन्तीपुत्र अर्जुनने भी युद्धमें पराक्रम करके घोड़ोंकी पीठोंसे शूरवीरोंके मस्तक काट गिराये॥ ३५½॥

तदनीकं तदा पार्थो व्यधमद् बहुभिः शरैः॥ ३६॥
पातयित्वा हयान् सर्वांस्त्रिगर्तानां रथान् ययौ।

पार्थने अपने बहुसंख्यक बाणोंद्वारा घुड़सवारोंकी उस सेनाको छिन्न-भिन्न कर डाला तथा समस्त घोड़ोंको धराशायी करके त्रिगर्तदेशीय रथियोंपर चढ़ाई कर दी॥ ३६½॥

ततस्ते सहिता भूत्वा त्रिगर्तानां महारथाः॥ ३७॥
अर्जुनं वासुदेवं च शरवर्षैरवाकिरन्।

तब वे त्रिगर्तदेशीय महारथी एक साथ होकर अर्जुन और श्रीकृष्णको अपने बाणोंकी वर्षासे आच्छादित करने लगे॥

सत्यकर्माणमाक्षिप्य क्षुरप्रेण महायशाः॥ ३८॥
ततोऽस्य स्यन्दनस्येषां चिच्छिदे पाण्डुनन्दनः।
शिलाशितेन च विभो क्षुरप्रेण महायशाः॥ ३९॥
शिरश्चिच्छेद सहसा तप्तकुण्डलभूषणम्।

प्रभो! उस समय महायशस्वी पाण्डुनन्दन अर्जुनने क्षुरप्रद्वारा सत्यकर्मापर प्रहार करके उसके रथकी ईषा (हरसा) काट डाली। तत्पश्चात् उन महायशस्वी वीरने शिलापर तेज किये हुए क्षुरप्रद्वारा उसके तपाये हुए सुवर्णके कुण्डलोंसे विभूषित मस्तकको सहसा काट लिया॥ ३८-३९½॥

सत्येषुमथ चादत्त योधानां मिषतां ततः॥ ४०॥
यथा सिंहो वने राजन् मृगं परिबुभुक्षितः।

राजन्! जैसे वनमें भूखा सिंह किसी मृगको दबोच लेता है, उसी प्रकार अर्जुनने समस्त योद्धाओंके देखते-देखते सत्येषुके भी प्राण हर लिये॥ ४०½॥

तं निहत्य ततः पार्थः सुशर्माणं त्रिभिः शरैः॥ ४१॥
विद्ध्वा तानहनत् सर्वान् रथान् रुक्मविभूषितान्।

सत्येषुका वध करके अर्जुनने सुशर्माको तीन बाणोंसे घायल कर दिया और उन समस्त स्वर्णभूषित रथोंका विध्वंस कर डाला॥ ४१½॥

ततः प्रायात् त्वरन् पार्थो दीर्घकालं सुसंवृतम्॥ ४२॥
मुञ्चन् क्रोधविषं तीक्ष्णं प्रस्थलाधिपतिं प्रति।

तत्पश्चात् पार्थ अपने दीर्घकालसे संचित किये हुए तीखे क्रोधरूपी विषको प्रस्थलेश्वर सुशर्मापर छोड़नेके लिये तीव्र गतिसे आगे बढ़े॥ ४२½॥

तमर्जुनः पृषत्कानां शतेन भरतर्षभ॥ ४३॥
पूरयित्वा ततो वाहान् प्राहरत् तस्य धन्विनः।

भरतश्रेष्ठ! अर्जुनने सौ बाणोंद्वारा उसे आच्छादित करके उस धनुर्धर वीरके घोड़ोंपर घातक प्रहार किया॥ ४३½॥

ततः शरं समादाय यमदण्डोपमं तदा॥ ४४॥
सुशर्माणं समुद्दिश्य चिक्षेपाशु हसन्निव।

इसके बाद यमदण्डके समान भयंकर बाण हाथमें लेकर सुशर्माको लक्ष्य करके हँसते हुए-से शीघ्र ही छोड़ दिया॥

स शरः प्रेषितस्तेन क्रोधदीप्तेन धन्विना॥ ४५॥
सुशर्माणं समासाद्य बिभेद हृदयं रणे।

क्रोधसे तमतमाये हुए धनुर्धर अर्जुनके द्वारा चलाये गये उस बाणने सुशर्मापर चोट करके उसकी छाती छेद डाली॥

स गतासुर्महाराज पपात धरणीतले॥ ४६॥
नन्दयन् पाण्डवान् सर्वान् व्यथयंश्चापि तावकान्।

महाराज! सुशर्मा आपके पुत्रोंको व्यथित और समस्त पाण्डवोंको आनन्दित करता हुआ प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ४६½॥

सुशर्माणं रणे हत्वा पुत्रानस्य महारथान्॥ ४७॥
सप्त चाष्टौ च त्रिंशच्च सायकैरनयत् क्षयम्।

रणभूमिमें सुशर्माका वध करके अर्जुनने अपने बाणोंद्वारा उसके पैंतालीस महारथी पुत्रोंको भी यमलोक पहुँचा दिया॥

ततोऽस्य निशितैर्बाणैः सर्वान् हत्वा पदानुगान्॥ ४८॥
अभ्यगाद् भारतीं सेनां हतशेषां महारथः।

तदनन्तर पैने बाणोंद्वारा उसके सारे सेवकोंका संहार करके महारथी अर्जुनने मरनेसे बची हुई कौरवी सेनापर आक्रमण किया॥

भीमस्तु समरे क्रुद्धः पुत्रं तव जनाधिप॥ ४९॥
सुदर्शनमदृश्यं तं शरैश्चक्रे हसन्निव।
ततोऽस्य प्रहसन् क्रुद्धः शिरः कायादपाहरत्॥ ५०॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन स हतः प्रापतद् भुवि।

जनेश्वर! दूसरी ओर कुपित हुए भीमसेनने हँसते-हँसते बाणोंकी वर्षा करके सुदर्शनको ढक दिया। फिर क्रोधपूर्वक अट्टहास करते हुए उन्होंने उसके मस्तकको तीखे क्षुरप्रद्वारा धड़से काट लिया। सुदर्शन मरकर पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ४९-५०½॥

तस्मिंस्तु निहते वीरे ततस्तस्य पदानुगाः॥ ५१॥
परिवव्रू रणे भीमं किरन्तो विविधाञ्शरान्।

उस वीरके मारे जानेपर उसके सेवकोंने नाना प्रकारके

बाणोंकी वर्षा करते हुए रणभूमिमें भीमसेनको सब ओरसे घेर लिया ॥ ५१½ ॥

ततस्तु निशितैर्बाणैस्तवानीकं वृकोदरः ॥ ५२ ॥
इन्द्राशनिसमस्पर्शैः समन्तात् पर्यवाकिरत् ।

तत्पश्चात् भीमसेनने इन्द्रके वज्रकी भाँति कठोर स्पर्शवाले तीखे बाणोंद्वारा आपकी सेनाको चारों ओरसे ढक दिया॥

ततः क्षणेन तद् भीमो न्यहनद् भरतर्षभ ॥ ५३ ॥
तेषु तूत्साद्यमानेषु सेनाध्यक्षा महारथाः ।
भीमसेनं समासाद्य ततोऽयुद्ध्यन्त भारत ॥ ५४ ॥

भरतश्रेष्ठ ! इसके बाद भीमसेनने क्षणभरमें आपकी सेनाका संहार कर डाला । भारत ! जब उन कौरव-सैनिकोंका संहार होने लगा, तब महारथी सेनापतिगण भीमसेनपर आक्रमण करके उनके साथ युद्ध करने लगे ॥ ५३-५४ ॥

स तान् सर्वाञ्शरैर्घोरैरवाकिरत पाण्डवः ।
तथैव तावका राजन् पाण्डवेयान् महारथान् ॥ ५५ ॥
शरवर्षेण महता समन्तात् पर्यवारयन् ।

राजन् ! पाण्डुपुत्र भीमने उन सबपर भयंकर बाणोंकी वृष्टि की । इसी प्रकार आपके सैनिकोंने भी बड़ी भारी बाण-वर्षा करके पाण्डव महारथियोंको सब ओरसे आच्छादित कर दिया ॥ ५५½ ॥

व्याकुलं तदभूत् सर्वं पाण्डवानां परैः सह ॥ ५६ ॥
तावकानां च समरे पाण्डवेयैर्युयुत्सताम् ।

शत्रुओंके साथ जूझनेवाले पाण्डवोंका और पाण्डवोंके साथ युद्धकी इच्छा रखनेवाले आपके सैनिकोंका सारा सैन्यदल समराङ्गणमें परस्पर मिलकर एक-सा हो गया ॥ ५६½ ॥

तत्र योधास्तदा पेतुः परस्परसमाहताः ।
उभयोः सेनयो राजन् संशोचन्तः स्म बान्धवान्॥ ५७ ॥

राजन् ! उस समय वहाँ एक-दूसरेकी मार खाकर दोनों दलोंके योद्धा अपने भाई-बन्धुओंके लिये शोक करते हुए धराशायी हो जाते थे ॥ ५७ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि सुशर्मवधे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें सुशर्माका वधविषयक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

सहदेवके द्वारा उलूक और शकुनिका वध एवं बची हुई सेनासहित दुर्योधनका पलायन

संजय उवाच

तस्मिन् प्रवृत्ते संग्रामे गजवाजिनरक्षये ।
शकुनिः सौबलो राजन् सहदेवं समभ्ययात् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! हाथी-घोड़ों और मनुष्योंका संहार करनेवाले उस युद्धका आरम्भ होनेपर सुबलपुत्र शकुनिने सहदेवपर धावा किया ॥ १ ॥

ततोऽस्यापततस्तूर्णं सहदेवः प्रतापवान् ।
शरौघान् प्रेषयामास पतङ्गानिव शीघ्रगान् ॥ २ ॥

तब प्रतापी सहदेवने भी अपने ऊपर आक्रमण करनेवाले शकुनिपर तुरंत ही बहुत-से शीघ्रगामी बाणसमूहोंकी वर्षा आरम्भ कर दी, जो आकाशमें टिड्डीदलोंके समान छा रहे थे॥

उलूकश्च रणे भीमं विव्याध दशभिः शरैः ।
शकुनिश्च महाराज भीमं विद्ध्वा त्रिभिः शरैः ॥ ३ ॥
सायकानां नवत्या वै सहदेवमवाकिरत् ।

महाराज ! शकुनिके साथ उलूक भी था, उसने भीमसेनको दस बाणोंसे बींध डाला । फिर शकुनिने भी तीन बाणोंसे भीमको घायल करके नब्बे बाणोंसे सहदेवको ढक दिया ॥

ते शूराः समरे राजन् समासाद्य परस्परम् ॥ ४ ॥
विव्यधुर्निशितैर्बाणैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ।
स्वर्णपुङ्खैः शिलाधौतैराकर्णप्रहितैः शरैः ॥ ५ ॥

राजन् ! वे शूरवीर समराङ्गणमें एक-दूसरेसे टक्कर लेकर कङ्क और मोरके-से पङ्खवाले तीखे बाणोंद्वारा परस्पर आघात-प्रत्याघात करने लगे । उनके वे बाण सुनहरी पाँखोंसे सुशोभित, शिलापर साफ किये हुए और कानोंतक खींचकर छोड़े गये थे ॥ ४-५ ॥

तेषां चापभुजोत्सृष्टा शरवृष्टिर्विशाम्पते ।
आच्छादयद् दिशः सर्वा धारा इव पयोमुचः ॥ ६ ॥

प्रजानाथ ! उन वीरोंके धनुष और बाहुबलसे छोड़े गये बाणोंकी उस वर्षाने सम्पूर्ण दिशाओंको उसी प्रकार आच्छादित कर दिया, जैसे मेघकी जलधारा सारी दिशाओंको ढक देती है ॥ ६ ॥

ततः क्रुद्धो रणे भीमः सहदेवश्च भारत ।
चेरतुः कदनं संख्ये कुर्वन्तौ सुमहाबलौ ॥ ७ ॥

भारत ! तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए भीमसेन और सहदेव दोनों महाबली वीर युद्धस्थलमें भीषण संहार मचाते हुए विचरने लगे ॥ ७ ॥

ताभ्यां शरशतैश्छन्नं तद् बलं तव भारत ।
सान्धकारमिवाकाशमभवत् तत्र तत्र ह ॥ ८ ॥

भरतनन्दन ! उन दोनोंके सैकड़ों बाणोंसे ढकी हुई आपकी सेना जहाँ-तहाँ अन्धकारपूर्ण आकाशके समान प्रतीत होती थी ॥ ८ ॥

अश्वैर्विपरिधावद्भिः शरच्छन्नैर्विशाम्पते ।
तत्र तत्र वृतो मार्गो विकर्षद्भिर्हतान् बहून् ॥ ९ ॥

प्रजानाथ ! बाणोंसे ढके हुए भागते घोड़ोंने, जो बहुत-से मरे हुए वीरोंको अपने साथ इधर-उधर खींचे लिये जाते थे, यत्र-तत्र जानेका मार्ग अवरुद्ध कर दिया ॥ ९ ॥

निहतानां हयानां च सहैव हयसादिभिः ।
वर्मभिर्विनिकृत्तैश्च प्रासैश्छिन्नैश्च मारिष ॥ १० ॥
ऋष्टिभिः शक्तिभिश्चैव सासिप्रासपरश्वधैः ।
संछन्ना पृथिवी जज्ञे कुसुमैः शबला इव ॥ ११ ॥

मान्यवर नरेश ! घुड़सवारोंसहित मारे गये घोड़ोंके शरीरों, कटे हुए कवचों, टूक-टूक हुए प्रासों, ऋष्टियों, शक्तियों, खड्गों, भालों और फरसोंसे ढकी हुई पृथ्वी बहुरंगी फलोंसे आच्छादित हो चितकबरी हुई-सी जान पड़ती थी ॥

योधास्तत्र महाराज समासाद्य परस्परम् ।
व्यचरन्त रणे क्रुद्धा विनिघ्नन्तः परस्परम् ॥ १२ ॥

महाराज ! वहाँ रणभूमिमें कुपित हुए योद्धा एक-दूसरेसे भिड़कर परस्पर चोट करते हुए घूम रहे थे ॥ १२ ॥

उद्वृत्तनयनै रोषात् संदष्टौष्ठपुटैर्मुखैः ।
सकुण्डलैर्मही च्छन्ना पद्मकिञ्जल्कसंनिभैः ॥ १३ ॥

कमलकेसरकी-सी कान्तिवाले कुण्डलमण्डित कटे हुए मस्तकोंसे यह पृथ्वी ढक गयी थी । उनकी आँखें घूर रही थीं और उन्होंने रोषके कारण अपने ओठोंको दाँतोंसे दबा रक्खा था ॥ १३ ॥

भुजैश्छिन्नैर्महाराज नागराजकरोपमैः ।
साङ्गदैः सतनुत्रैश्च सासिप्रासपरश्वधैः ॥ १४ ॥
कबन्धैरुत्थितैश्छिन्नैर्नृत्यद्भिश्चापरैर्युधि ।
क्रव्यादगणसंछन्ना घोराभूत् पृथिवी विभो ॥ १५ ॥

महाराज ! अङ्गद, कवच, खड्ग, प्रास और फरसोंसहित कटी हुई हाथीकी सूँड़के समान भुजाओं, छिन्न-भिन्न एवं खड़े होकर नाचते हुए कबन्धों तथा अन्य लोगोंसे भरी और मांस-भक्षी जीव-जन्तुओंसे आच्छादित हुई यह पृथ्वी बड़ी भयंकर प्रतीत होती थी ॥ १४-१५ ॥

अल्पावशिष्टे सैन्ये तु कौरवेयान् महाहवे ।
प्रहृष्टाः पाण्डवा भूत्वा निन्यिरे यमसादनम् ॥ १६ ॥

इस प्रकार उस महासमरमें जब कौरवोंके पास बहुत थोड़ी सेना शेष रह गयी, तब हर्ष और उत्साहमें भरकर पाण्डव वीर उन सबको यमलोक पहुँचाने लगे ॥ १६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे शूरः सौबलेयः प्रतापवान् ।
प्रासेन सहदेवस्य शिरसि प्राहरद् भृशम् ॥ १७ ॥

इसी समय प्रतापी वीर सुबलपुत्र शकुनिने अपने प्राससे सहदेवके मस्तकपर गहरी चोट पहुँचायी ॥ १७ ॥

स विह्वलो महाराज रथोपस्थ उपाविशत् ।
सहदेवं तथा दृष्ट्वा भीमसेनः प्रतापवान् ॥ १८ ॥
सर्वसैन्यानि संक्रुद्धो वारयामास भारत ।
निर्बिभेद च नाराचैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १९ ॥

महाराज ! उस चोटसे व्याकुल होकर सहदेव रथकी बैठकमें धम्मसे बैठ गये । उनकी वैसी अवस्था देख प्रतापी भीमसेन अत्यन्त कुपित हो उठे । भारत ! उन्होंने आपकी सारी सेनाओंको आगे बढ़नेसे रोक दिया तथा सैकड़ों और हजारों नाराचोंकी वर्षा करके उन सबको विदीर्ण कर डाला॥

विनिर्भिद्याकरोच्चैव सिंहनादमरिंदमः ।
तेन शब्देन वित्रस्ताः सर्वे सहयवारणाः ॥ २० ॥
प्राद्रवन् सहसा भीताः शकुनेश्च पदानुगाः ।

शत्रुदमन भीमसेनने शत्रुसेनाको विदीर्ण करके बड़े जोर-से सिंहनाद किया । उनकी उस गर्जनासे भयभीत हो शकुनि-के पीछे चलनेवाले सारे सैनिक घोड़े और हाथियोंसहित सहसा भाग खड़े हुए ॥ २०½ ॥

प्रभग्नानथ तान् दृष्ट्वा राजा दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ २१ ॥
निवर्तध्वमधर्मज्ञा युध्यध्वं किं सृतेन वः ।
इह कीर्तिं समाधाय प्रेत्य लोकान् समश्नुते ॥ २२ ॥
प्राणाञ्जहाति यो धीरो युद्धे पृष्ठमदर्शयन् ।

उन सबको भागते देख राजा दुर्योधनने इस प्रकार कहा—'अरे पापियो ! लौट आओ और युद्ध करो । भागनेसे तुम्हें क्या लाभ होगा ? जो धीर वीर रणभूमिमें पीठ न दिखा-कर प्राणोंका परित्याग करता है, वह इस लोकमें अपनी कीर्ति स्थापित करके मृत्युके पश्चात् उत्तम लोकोंमें सुख भोगता है' ॥

एवमुक्तास्तु ते राज्ञा सौबलस्य पदानुगाः ॥ २३ ॥
पाण्डवानभ्यवर्तन्त मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ।

राजा दुर्योधनके ऐसा कहनेपर सुबलपुत्र शकुनिके पीछे चलनेवाले सैनिक 'अब हमें मृत्यु ही युद्धसे लौटा सकती है' ऐसा संकल्प लेकर पुनः पाण्डवोंपर टूट पड़े ॥ २३½ ॥

द्रवद्भिस्तत्र राजेन्द्र कृतः शब्दोऽतिदारुणः ॥ २४ ॥
क्षुब्धसागरसंकाशाः क्षुभिताः सर्वतोऽभवन् ।

राजेन्द्र ! वहाँ धावा करते समय उन सैनिकोंने बड़ा भयंकर कोलाहल मचाया । वे विक्षुब्ध समुद्रके समान क्षोभमें भरकर सब ओर छा गये ॥ २४½ ॥

तांस्तथा पुरतो दृष्ट्वा सौबलस्य पदानुगान् ॥ २५ ॥
प्रत्युद्ययुर्महाराज पाण्डवा विजयोद्यताः ।

महाराज ! शकुनिके सेवकोंको इस प्रकार सामने आया देख विजयके लिये उद्यत हुए पाण्डव वीर आगे बढ़े ॥

प्रत्याश्वस्य च दुर्धर्षः सहदेवो विशाम्पते ॥ २६ ॥
शकुनिं दशभिर्विद्ध्वा हयांश्चास्य त्रिभिः शरैः ।
धनुश्चिच्छेद च शरैः सौबलस्य हसन्निव ॥ २७ ॥

प्रजानाथ ! इतनेहीमें स्वस्थ होकर दुर्धर्ष वीर सहदेवने हँसते हुए-से दस बाणोंसे शकुनिको बींध डाला और तीन बाणोंसे उसके घोड़ोंको मारकर हँसते हुए-से अनेक बाणोंद्वारा सुबलपुत्रके धनुषको भी टूक-टूक कर डाला ॥ २६-२७ ॥

अथान्यद् धनुरादाय शकुनिर्युद्धदुर्मदः ।
विव्याध नकुलं षष्ट्या भीमसेनं च सप्तभिः ॥ २८ ॥

तदनन्तर दूसरा धनुष हाथमें लेकर रणदुर्मद शकुनिने नकुलको साठ और भीमसेनको सात बाणोंसे घायल कर दिया॥

उलूकोऽपि महाराज भीमं विव्याध सप्तभिः ।
सहदेवं च सप्तत्या परीप्सन् पितरं रणे ॥ २९ ॥

महाराज ! रणभूमिमें पिताकी रक्षा करते हुए उलूकने भीमसेनको सात और सहदेवको सत्तर बाणोंसे क्षत-विक्षत कर दिया ॥ २९ ॥

तं भीमसेनः समरे विव्याध नवभिः शरैः ।
शकुनिं च चतुःषष्ट्या पार्श्वस्थांश्च त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ३० ॥

तब भीमसेनने समराङ्गणमें नौ बाणोंसे उलूकको, चौंसठ

बाणोंसे शकुनिको और तीन-तीन बाणोंसे उसके पार्श्वरक्षकोंको भी घायल कर दिया ॥ ३० ॥

ते हन्यमाना भीमेन नाराचैस्तैलपायितैः ।
सहदेवं रणे क्रुद्धाश्छादयञ्शरवृष्टिभिः ॥ ३१ ॥
पर्वतं वारिधाराभिः सविद्युत इवाम्बुदाः ।

भीमसेनके नाराचोंको तेल पिलाया गया था । उनके द्वारा भीमसेनके हाथसे मार खाये हुए शत्रु-सैनिकोंने रणभूमिमें कुपित होकर सहदेवको अपने बाणोंकी वर्षासे ढक दिया, मानो बिजलीसहित मेघोंने जलकी धाराओंसे पर्वतको आच्छादित कर दिया हो ॥ ३१½ ॥

ततोऽस्यापततः शूरः सहदेवः प्रतापवान् ॥ ३२ ॥
उलूकस्य महाराज भल्लेनापाहरच्छिरः ।

महाराज ! तब प्रतापी शूरवीर सहदेवने एक भल्ल मारकर अपने ऊपर आक्रमण करनेवाले उलूकका मस्तक काट डाला ॥ ३२½ ॥

स जगाम रथाद् भूमिं सहदेवेन पातितः ॥ ३३ ॥
रुधिराप्लुतसर्वाङ्गो नन्दयन् पाण्डवान् युधि ।

सहदेवके हाथसे मारा गया उलूक युद्धमें पाण्डवोंको आनन्दित करता हुआ रथसे पृथ्वीपर गिर पड़ा । उस समय उसके सारे अङ्ग खूनसे लथपथ हो गये थे ॥ ३३½ ॥

पुत्रं तु निहतं दृष्ट्वा शकुनिस्तत्र भारत ॥ ३४ ॥
साश्रुकण्ठो विनिःश्वस्य क्षत्तुर्वाक्यमनुस्मरन् ।
चिन्तयित्वा मुहूर्तं स बाष्पपूर्णेक्षणः श्वसन् ॥ ३५ ॥

भारत ! अपने पुत्रको मारा गया देख वहाँ शकुनिका गला भर आया । वह लंबी साँस खींचकर विदुरजीकी बातोंको याद करने लगा । अपनी आँखोंमें आँसू भरकर उच्छ्वास लेता हुआ दो घड़ीतक चिन्तामें डूबा रहा ॥ ३४-३५ ॥

सहदेवं समासाद्य त्रिभिर्विव्याध सायकैः ।
तानपास्य शरान् मुक्ताञ्शरसंघैः प्रतापवान् ॥ ३६ ॥
सहदेवो महाराज धनुश्चिच्छेद संयुगे ।

महाराज ! इसके बाद सहदेवके पास जाकर उसने तीन बाणोंद्वारा उनपर प्रहार किया । उसके छोड़े हुए उन बाणोंका अपने शरसमूहोंसे निवारण करके प्रतापी सहदेवने युद्धस्थलमें उसका धनुष काट डाला ॥ ३६½ ॥

छिन्ने धनुषि राजेन्द्र शकुनिः सौबलस्तदा ॥ ३७ ॥
प्रगृह्य विपुलं खड्गं सहदेवाय प्राहिणोत् ।

राजेन्द्र ! धनुष कट जानेपर उस समय सुबलपुत्र शकुनिने एक विशाल खड्ग लेकर उसे सहदेवपर दे मारा ॥ ३७½ ॥

तमापतन्तं सहसा घोररूपं विशाम्पते ॥ ३८ ॥
द्विधा चिच्छेद समरे सौबलस्य हसन्निव ।

प्रजानाथ ! शकुनिके उस घोर खड्गको सहसा आते देख समराङ्गणमें सहदेवने हँसते हुए-से उसके दो टुकड़े कर डाले ॥

असिं दृष्ट्वा तथा च्छिन्नं प्रगृह्य महतीं गदाम् ॥ ३९ ॥
प्राहिणोत् सहदेवाय सा मोघा न्यपतद् भुवि ।

उस खड्गको कटा हुआ देख शकुनिने सहदेवपर एक विशाल गदा चलायी; परंतु वह विफल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ३९½ ॥

ततः शक्तिं महाघोरां कालरात्रिमिवोद्यताम् ॥ ४० ॥
प्रेषयामास संक्रुद्धः पाण्डवं प्रति सौबलः ।

यह देख सुबलपुत्र क्रोधसे जल उठा । अबकी बार उसने उठी हुई कालरात्रिके समान एक महाभयंकर शक्ति सहदेवको लक्ष्य करके चलायी ॥ ४०½ ॥

तामापतन्तीं सहसा शरैः कनकभूषणैः ॥ ४१ ॥
त्रिधा चिच्छेद समरे सहदेवो हसन्निव ।

अपने ऊपर आती हुई उस शक्तिको सुवर्णभूषित बाणोंद्वारा मारकर सहदेवने समराङ्गणमें हँसते हुए-से सहसा उसके तीन टुकड़े कर डाले ॥ ४१½ ॥

सा पपात त्रिधा च्छिन्ना भूमौ कनकभूषणा ॥ ४२ ॥
शीर्यमाणा यथा दीप्ता गगनाद् वै शतह्रदा ।

तीन टुकड़ोंमें कटी हुई वह सुवर्णभूषित शक्ति आकाशसे गिरनेवाली चमकीली बिजलीके समान पृथ्वीपर बिखर गयी ॥

शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा सौबलं च भयार्दितम् ॥ ४३ ॥
दुद्रुवुस्तावकाः सर्वे भये जाते ससौबलाः ।

उस शक्तिको नष्ट हुई देख और सुबलपुत्र शकुनिको भी भयसे पीड़ित जान आपके सभी सैनिक भयभीत हो शकुनिसहित वहाँसे भाग खड़े हुए ॥ ४३½ ॥

अथोत्क्रुष्टं महच्चासीत् पाण्डवैर्जितकाशिभिः ॥ ४४ ॥
धार्तराष्ट्रास्ततः सर्वे प्रायशो विमुखाभवन् ।

उस समय विजयसे उल्लसित होनेवाले पाण्डवोंने बड़े जोरसे सिंहनाद किया । इससे आपके सभी सैनिक प्रायः युद्धसे विमुख हो गये ॥ ४४½ ॥

तान् वै विमनसो दृष्ट्वा माद्रीपुत्रः प्रतापवान् ॥ ४५ ॥
शरैरनेकसाहस्रैर्वारयामास संयुगे ।

उन सबको युद्धसे उदासीन देख प्रतापी माद्रीकुमार सहदेवने अनेक सहस्र बाणोंकी वर्षा करके उन्हें युद्धस्थलमें ही रोक दिया ॥ ४५½ ॥

ततो गान्धारकैर्गुप्तं पुष्टैरश्वैर्जये धृतम् ॥ ४६ ॥
आससाद रणे यान्तं सहदेवोऽथ सौबलम् ।

इसके बाद गान्धारदेशके हृष्टपुष्ट घोड़ों और घुड़सवारोंसे सुरक्षित तथा विजयके लिये दृढ़संकल्प होकर रणभूमिमें जाते हुए सुबलपुत्र शकुनिपर सहदेवने आक्रमण किया ॥

स्वमंशमवशिष्टं तं संस्मृत्य शकुनिं नृप ॥ ४७ ॥
रथेन काञ्चनाङ्गेन सहदेवः समभ्ययात् ।

नरेश्वर ! शकुनिको अपना अवशिष्ट भाग मानकर सहदेवने सुवर्णमय अङ्गोंवाले रथके द्वारा उसका पीछा किया ॥

अधिज्यं बलवत् कृत्वा व्याक्षिपन् सुमहद् धनुः ॥ ४८ ॥
स सौबलमभिद्रुत्य गार्ध्रपत्रैः शिलाशितैः ।
भृशमभ्यहनत् क्रुद्धस्तोत्त्रैरिव महाद्विपम् ॥ ४९ ॥

उन्होंने एक विशाल धनुषपर बलपूर्वक प्रत्यञ्चा चढ़ाकर शिलापर तेज किये हुए गीधके पंखोंवाले बाणोंद्वारा शकुनिपर

आक्रमण किया और जैसे किसी विशाल गजराजको अङ्कुशोंसे मारा जाय; उसी प्रकार कुपित हो उसको गहरी चोट पहुँचायी॥

उवाच चैनं मेधावी विगृह्य स्मारयन्निव।
क्षत्रधर्मे स्थिरो भूत्वा युध्यस्व पुरुषो भव ॥ ५० ॥
यत् तदा हृष्यसे मूढ ग्लहन्नक्षैः सभातले।
फलमद्य प्रपश्यस्व कर्मणस्तस्य दुर्मते ॥ ५१ ॥

बुद्धिमान् सहदेवने उसपर आक्रमण करके कुछ याद दिलाते हुए-से इस प्रकार कहा—'ओ मूढ़! क्षत्रियधर्ममें स्थित होकर युद्ध कर और पुरुष बन। खोटी बुद्धिवाले शकुनि! तू सभामें पासे फेंककर जूआ खेलते समय जो उस दिन बहुत खुश हो रहा था, आज उस दुष्कर्मका महान् फल प्राप्त कर ले ॥ ५०-५१ ॥

निहतास्ते दुरात्मानो येऽस्मानवहसन् पुरा।
दुर्योधनः कुलाङ्गारः शिष्टस्त्वं चास्य मातुलः ॥ ५२ ॥
अद्य ते निहनिष्यामि क्षुरेणोन्मथितं शिरः।
वृक्षात् फलमिवाविद्धं लगुडेन प्रमाथिना ॥ ५३ ॥

'जिन दुरात्माओंने पूर्वकालमें हमलोगोंकी हँसी उड़ायी थी, वे सब मारे गये। अब केवल कुलाङ्गार दुर्योधन और उसका मामा तू—ये दो ही बच गये हैं। जैसे मथ डालनेवाले डंडेसे मारकर पेड़से फल तोड़ लिया जाता है, उसी प्रकार आज मैं क्षुरके द्वारा तेरा मस्तक काटकर तुझे मौतके हवाले कर दूँगा' ॥ ५२-५३ ॥

एवमुक्त्वा महाराज सहदेवो महाबलः।
संक्रुद्धो रणशार्दूलो वेगेनाभिजगाम तम् ॥ ५४ ॥

महाराज! ऐसा कहकर रणक्षेत्रमें सिंहके समान पराक्रम दिखानेवाले महाबली सहदेवने अत्यन्त कुपित हो बड़े वेगसे उसपर आक्रमण किया ॥ ५४ ॥

अभिगम्य सुदुर्धर्षः सहदेवो युधां पतिः।
विकृष्य बलवच्चापं क्रोधेन प्रज्वलन्निव ॥ ५५ ॥
शकुनिं दशभिर्विद्ध्वा चतुर्भिश्चास्य वाजिनः।
छत्रं ध्वजं धनुश्चास्य छित्त्वा सिंह इवानदत् ॥ ५६ ॥

योद्धाओंमें श्रेष्ठ सहदेव अत्यन्त दुर्जय वीर हैं। उन्होंने क्रोधसे जलते हुए-से पास जाकर अपने धनुषको बलपूर्वक खींचा और दस बाणोंसे शकुनिको घायल करके चार बाणोंसे उसके घोड़ोंको भी बींध डाला। तत्पश्चात् उसके छत्र, ध्वज और धनुषको भी काटकर सिंहके समान गर्जना की॥५५-५६॥

छिन्नध्वजधनुश्छत्रः सहदेवेन सौबलः।
कृतो विद्धश्च बहुभिः सर्वमर्मसु सायकैः ॥ ५७ ॥

सहदेवने शकुनिके ध्वज, छत्र और धनुषको काट देनेके पश्चात् उसके सम्पूर्ण मर्मस्थानोंमें बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी॥

ततो भूयो महाराज सहदेवः प्रतापवान्।
शकुनेः प्रेषयामास शरवृष्टिं दुरासदाम् ॥ ५८ ॥

महाराज! तत्पश्चात् प्रतापी सहदेवने पुनः शकुनिपर दुर्जय बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ ५८ ॥

ततस्तु क्रुद्धः सुबलस्य पुत्रो
माद्रीसुतं सहदेवं विमर्दे।
प्रासेन जाम्बूनदभूषणेन
जिघांसुरेकोऽभिपपात शीघ्रम् ॥ ५९ ॥

इससे सुबलपुत्र शकुनिको बड़ा क्रोध हुआ। उसने उस संग्राममें माद्रीकुमार सहदेवको सुवर्णभूषित प्रासके द्वारा मार डालनेकी इच्छासे अकेले ही उनपर तीव्र गतिसे आक्रमण किया॥

माद्रीसुतस्तस्य समुद्यतं तं
प्रासं सुवृत्तौ च भुजौ रणाग्रे।
भल्लैस्त्रिभिर्युगपत् संचकर्त
ननाद चोच्चैस्तरसाऽऽजिमध्ये ॥ ६० ॥

माद्रीकुमारने शकुनिके उस उठे हुए प्रासको और उसकी दोनों सुन्दर गोल-गोल भुजाओंको भी युद्धके मुहानेपर तीन भल्लोंद्वारा एक साथ ही काट डाला और युद्धस्थलमें उच्चस्वरसे वेगपूर्वक गर्जना की ॥ ६० ॥

तस्याशुकारी सुसमाहितेन
सुवर्णपुङ्खेन दृढायसेन।
भल्लेन सर्वावरणातिगेन
शिरः शरीरात् प्रममाथ भूयः ॥ ६१ ॥

तत्पश्चात् शीघ्रता करनेवाले सहदेवने अच्छी तरह संधान करके छोड़े गये सुवर्णमय पंखवाले लोहेके बने हुए सुदृढ़ भल्लके द्वारा, जो समस्त आवरणोंको छेद डालनेवाला था, शकुनिके मस्तकको पुनः धड़से काट गिराया ॥ ६१ ॥

शरेण कार्तस्वरभूषितेन
दिवाकराभेण सुसंहितेन।
हृतोत्तमाङ्गो युधि पाण्डवेन
पपात भूमौ सुबलस्य पुत्रः ॥ ६२ ॥

वह सुवर्णभूषित बाण सूर्यके समान तेजस्वी तथा अच्छी तरह संधान करके चलाया गया था। उसके द्वारा पाण्डुकुमार सहदेवने युद्धस्थलमें जब सुबलपुत्र शकुनिका मस्तक काट डाला, तब वह प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा॥

स तच्छिरो वेगवता शरेण
सुवर्णपुङ्खेन शिलाशितेन।
प्रावेरयत् कुपितः पाण्डुपुत्रो
यत्तत् कुरूणामनयस्य मूलम् ॥ ६३ ॥

क्रोधमें भरे हुए पाण्डुपुत्र सहदेवने शिलापर तेज किये हुए और सुवर्णमय पंखवाले वेगवान् बाणसे शकुनिके उस मस्तकको काट गिराया, जो कौरवोंके अन्यायका मूल कारण था॥

भुजौ सुवृत्तौ प्रचकर्त वीरः
पश्चात् कबन्धं रुधिरावसिक्तम्।
विस्पन्दमानं निपपात घोरं
रथोत्तमात् पार्थिव पार्थिवस्य ॥ ६४ ॥

राजन्! वीर सहदेवने जब उसकी गोल-गोल सुन्दर दोनों भुजाएँ काट दीं, उसके पश्चात् राजा शकुनिका भयंकर धड़ लहूलुहान होकर श्रेष्ठ रथसे नीचे गिर पड़ा और छटपटाने लगा॥

हृतोत्तमाङ्गं शकुनिं समीक्ष्य
भूमौ शयानं रुधिरार्द्रगात्रम्।

योधास्त्वदीया भयनष्टसत्त्वा
दिशः प्रजग्मुः प्रगृहीतशस्त्राः ॥ ६५ ॥

शकुनिको मस्तकसे रहित एवं खूनसे लथपथ होकर पृथ्वीपर पड़ा देख आपके योद्धा भयके कारण अपना धैर्य खो बैठे और हथियार लिये हुए सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गये ॥

प्रविद्रुताः शुष्कमुखा विसंज्ञा
गाण्डीवघोषेण समाहताश्च ।
भयार्दिता भग्नरथाश्वनागाः
पदातयश्चैव सधार्तराष्ट्राः ॥ ६६ ॥

उनके मुख सूख गये थे । उनकी चेतना लुप्त-सी हो रही थी । वे गाण्डीवकी टंकारसे मृतप्राय हो रहे थे; उनके रथ, घोड़े और हाथी नष्ट हो गये थे; अतः वे भयसे पीड़ित हो आपके पुत्र दुर्योधनसहित पैदल ही भाग चले ॥ ६६ ॥

ततो रथाच्छकुनिं पातयित्वा
मुदान्विता भारत पाण्डवेयाः ।
शङ्खान् प्रदध्मुः समरेऽतिहृष्टाः
सकेशवाः सैनिकान् हर्षयन्तः ॥ ६७ ॥

भरतनन्दन ! रथसे शकुनिको गिराकर समराङ्गणमें श्रीकृष्णसहित समस्त पाण्डव अत्यन्त हर्षमें भरकर सैनिकोंका हर्ष बढ़ाते हुए प्रसन्नतापूर्वक शङ्खनाद करने लगे ॥ ६७ ॥

तं चापि सर्वे प्रतिपूजयन्तो
हृष्टा ब्रुवाणाः सहदेवमाजौ ।
दिष्ट्या हतो नैकृतिको महात्मा
सहात्मजो वीर रणे त्वयेति ॥ ६८ ॥

सहदेवको देखकर युद्धक्षेत्रमें सब लोग उनकी पूजा (प्रशंसा) करते हुए इस प्रकार कहने लगे—'वीर ! बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुमने रणभूमिमें कपटद्यूतके विधायक महामना शकुनिको पुत्रसहित मार डाला है' ॥ ६८ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शकुन्युलूकवधेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें शकुनि और उलूकका वधविषयक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २८ ॥

(हृदप्रवेशपर्व)

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

बची हुई समस्त कौरवसेनाका वध, संजयका कैदसे छूटना, दुर्योधनका सरोवरमें प्रवेश तथा युयुत्सुका राजमहिलाओंके साथ हस्तिनापुरमें जाना

संजय उवाच

ततः क्रुद्धा महाराज सौबलस्य पदानुगाः ।
त्यक्त्वा जीवितमाक्रन्दे पाण्डवान् पर्यवारयन् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! तदनन्तर शकुनिके अनुचर क्रोधमें भर गये और प्राणोंका मोह छोड़कर उन्होंने उस महासमरमें पाण्डवोंको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १ ॥

तानर्जुनः प्रत्यगृह्णात् सहदेवजये धृतः ।
भीमसेनश्च तेजस्वी क्रुद्धाशीविषदर्शनः ॥ २ ॥

उस समय सहदेवकी विजयको सुरक्षित रखनेका दृढ़ निश्चय लेकर अर्जुनने उन समस्त सैनिकोंको आगे बढ़नेसे रोका । उनके साथ तेजस्वी भीमसेन भी थे, जो कुपित हुए विषधर सर्पके समान दिखायी देते थे ॥ २ ॥

शक्त्यृष्टिप्रासहस्तानां सहदेवं जिघांसताम् ।
संकल्पमकरोन्मोघं गाण्डीवेन धनंजयः ॥ ३ ॥

सहदेवको मारनेकी इच्छासे शक्ति, ऋष्टि और प्रास हाथमें लेकर आक्रमण करनेवाले उन समस्त योद्धाओंका संकल्प अर्जुनने गाण्डीव धनुषके द्वारा व्यर्थ कर दिया ॥ ३ ॥

संगृहीतायुधान् बाहून् योधानामभिधावताम् ।
भल्लैश्चिच्छेद बीभत्सुः शिरांस्यपि हयानपि ॥ ४ ॥

सहदेवपर धावा करनेवाले उन योद्धाओंकी अस्त्र-शस्त्र-युक्त भुजाओं, मस्तकों और उनके घोड़ोंको भी अर्जुनने भल्लोंसे काट गिराया ॥ ४ ॥

ते हयाः प्रत्यपद्यन्त वसुधां विगतासवः ।
चरता लोकवीरेण प्रहताः सव्यसाचिना ॥ ५ ॥

रणभूमिमें विचरते हुए विश्वविख्यात वीर सव्यसाची अर्जुनके द्वारा मारे गये वे घोड़े और घुड़सवार प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ५ ॥

ततो दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा स्वबलसंक्षयम् ।
हतशेषान् समानीय क्रुद्धो रथगणान् बहून् ॥ ६ ॥
कुञ्जरांश्च हयांश्चैव पादातांश्च समन्ततः ।
उवाच सहितान् सर्वान् धार्तराष्ट्र इदं वचः ॥ ७ ॥

अपनी सेनाका इस प्रकार संहार होता देख राजा दुर्योधनको बड़ा क्रोध हुआ । उसने मरनेसे बचे हुए बहुत-से रथियों, हाथीसवारों, घुड़सवारों और पैदलोंको सब ओरसे एकत्र करके उन सबसे इस प्रकार कहा—॥ ६-७ ॥

समासाद्य रणे सर्वान् पाण्डवान् ससुहृद्गणान् ।
पाञ्चाल्यं चापि सबलं हत्वा शीघ्रं न्यवर्तत ॥ ८ ॥

'वीरो ! तुम सब लोग रणभूमिमें समस्त पाण्डवों तथा उनके मित्रोंसे भिड़कर उन्हें मार डालो और पाञ्चालराज धृष्टद्युम्नका भी सेनासहित संहार करके शीघ्र लौट आओ' ॥

तस्य ते शिरसा गृह्य वचनं युद्धदुर्मदाः ।
अभ्युद्ययू रणे पार्थांस्तव पुत्रस्य शासनात् ॥ ९ ॥

राजन् ! आपके पुत्रकी आज्ञासे उसके उस वचनको शिरोधार्य करके वे रणदुर्मद योद्धा युद्धके लिये आगे बढ़े ॥

तानभ्यापततः शीघ्रं हतशेषान् महारणे ।
शरैराशीविषाकारैः पाण्डवाः समवाकिरन् ॥ १० ॥

उस महासमरमें शीघ्रतापूर्वक आक्रमण करनेवाले मरनेसे बचे हुए उन सैनिकोंपर समस्त पाण्डवोंने विषधर सर्पके समान आकारवाले बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी ॥ १० ॥

तत् सैन्यं भरतश्रेष्ठ मुहूर्तेन महात्मभिः।
अवध्यत रणं प्राप्य त्रातारं नाभ्यविन्दत ॥ ११ ॥
प्रतिष्ठमानं तु भयान्नावतिष्ठति दंशितम्।

भरतश्रेष्ठ ! वह सेना युद्धस्थलमें आकर महात्मा पाण्डवोंद्वारा दो ही घड़ीमें मार डाली गयी। उस समय उसे कोई भी अपना रक्षक नहीं मिला। वह युद्धके लिये कवच बाँधकर प्रस्थित तो हुई, किंतु भयके मारे वहाँ टिक न सकी ॥ ११½ ॥

अश्वैर्विपरिधावद्भिः सैन्येन रजसा वृते ॥ १२ ॥
न प्राज्ञायन्त समरे दिशः सप्रदिशस्तथा।

चारों ओर दौड़ते हुए घोड़ों तथा सेनाके द्वारा उड़ायी हुई धूलसे वहाँका सारा प्रदेश छा गया था। अतः समरभूमिमें दिशाओं तथा विदिशाओंका कुछ पता नहीं चलता था॥ १२½॥

ततस्तु पाण्डवानीकान्निःसृत्य बहवो जनाः ॥ १३ ॥
अभ्यघ्नंस्तावकान् युद्धे मुहूर्तादिव भारत।
ततो निःशेषमभवत् तत् सैन्यं तव भारत ॥ १४ ॥

भारत ! पाण्डवसेनासे बहुत-से सैनिकोंने निकलकर युद्धमें एक ही मुहूर्तके भीतर आपके सम्पूर्ण योद्धाओंका संहार कर डाला। भरतनन्दन ! उस समय आपकी वह सेना सर्वथा नष्ट हो गयी। उसमेंसे एक भी योद्धा बच न सका ॥

अक्षौहिण्यः समेतास्तु तव पुत्रस्य भारत।
एकादश हता युद्धे ताः प्रभो पाण्डुसृञ्जयैः ॥ १५ ॥

प्रभो ! भरतवंशी नरेश ! आपके पुत्रके पास ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ थीं; परंतु युद्धमें पाण्डवों और संजयोंने उन सबका विनाश कर डाला ॥ १५ ॥

तेषु राजसहस्रेषु तावकेषु महात्मसु।
एको दुर्योधनो राजन्नदृश्यत भृशं क्षतः ॥ १६ ॥

राजन् ! आपके दलके उन सहस्रों महामनस्वी राजाओंमें एकमात्र दुर्योधन ही उस समय दिखायी देता था; परंतु वह भी बहुत घायल हो चुका था ॥ १६ ॥

ततो वीक्ष्य दिशः सर्वा दृष्ट्वा शून्यां च मेदिनीम्।
विहीनः सर्वयोधैश्च पाण्डवान् वीक्ष्य संयुगे ॥ १७ ॥
मुदितान् सर्वतः सिद्धान् नर्दमानान् समन्ततः।
बाणशब्दरवांश्चैव श्रुत्वा तेषां महात्मनाम् ॥ १८ ॥
दुर्योधनो महाराज कश्मलेनाभिसंवृतः।
अपयाने मनश्चक्रे विहीनबलवाहनः ॥ १९ ॥

उस समय उसे सम्पूर्ण दिशाएँ और सारी पृथ्वी सूनी दिखायी दी। वह अपने समस्त योद्धाओंसे हीन हो चुका था। महाराज ! दुर्योधनने युद्धस्थलमें पाण्डवोंको सर्वथा प्रसन्न, सफलमनोरथ और सब ओरसे सिंहनाद करते देख तथा उन महामनस्वी वीरोंके बाणोंकी सनसनाहट सुनकर शोकसे संतप्त हो वहाँसे भाग जानेका विचार किया। उसके पास न तो सेना थी और न कोई सवारी ही ॥ १७–१९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

निहते मामके सैन्ये निःशेषे शिबिरे कृते।
पाण्डवानां बले सूत किं नु शेषमभूत् तदा ॥ २० ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—सूत ! जब मेरी सेना मार डाली गयी और सारी छावनी सूनी कर दी गयी, उस समय पाण्डवोंकी सेनामें कितने सैनिक शेष रह गये थे ? ॥ २० ॥

एतन्मे पृच्छतो ब्रूहि कुशलो ह्यसि संजय।
यच्च दुर्योधनो मन्दः कृतवांस्तनयो मम ॥ २१ ॥
बलक्षयं तथा दृष्ट्वा स एकः पृथिवीपतिः।

संजय ! मैं यह बात पूछ रहा हूँ, तुम मुझे बताओ; क्योंकि यह सब बतानेमें तुम कुशल हो। अपनी सेनाका संहार हुआ देखकर अकेले बचे हुए मेरे मूर्ख पुत्र राजा दुर्योधनने क्या किया ? ॥ २१½ ॥

संजय उवाच

रथानां द्वे सहस्रे तु सप्त नागशतानि च ॥ २२ ॥
पञ्च चाश्वसहस्राणि पत्तीनां च शतं शताः।
एतच्छेषमभूद् राजन् पाण्डवानां महद् बलम् ॥ २३ ॥

संजयने कहा—राजन् ! पाण्डवोंकी विशाल सेनामेंसे केवल दो हजार रथ, सात सौ हाथी, पाँच हजार घोड़े और दस हजार पैदल बच गये थे ॥ २२-२३ ॥

परिगृह्य हि यद् युद्धे धृष्टद्युम्नो व्यवस्थितः।
एकाकी भरतश्रेष्ठ ततो दुर्योधनो नृपः ॥ २४ ॥

इन सबको साथ लेकर सेनापति धृष्टद्युम्न युद्धभूमिमें खड़े थे। उधर राजा दुर्योधन अकेला हो गया था ॥ २४ ॥

नापश्यत् समरे कंचित् सहायं रथिनां वरः।
नर्दमानान् परान् दृष्ट्वा स्वबलस्य च संक्षयम् ॥ २५ ॥
तथा दृष्ट्वा महाराज एकः स पृथिवीपतिः।
हतं स्वहयमुत्सृज्य प्राङ्मुखः प्राद्रवद् भयात् ॥ २६ ॥

महाराज ! रथियोंमें श्रेष्ठ दुर्योधनने जब समरभूमिमें अपने किसी सहायकको न देखकर शत्रुओंको गर्जते देखा और अपनी सेनाके विनाशपर दृष्टिपात किया, तब वह अकेला भूपाल अपने मरे हुए घोड़ेको वहीं छोड़कर भयके मारे पूर्व दिशाकी ओर भाग चला ॥ २५-२६ ॥

एकादशचमूभर्ता पुत्रो दुर्योधनस्तव।
गदामादाय तेजस्वी पदातिः प्रस्थितो ह्रदम् ॥ २७ ॥

जो किसी समय ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका सेनापति था, वही आपका तेजस्वी पुत्र दुर्योधन अब गदा लेकर पैदल ही सरोवरकी ओर भागा जा रहा था ॥ २७ ॥

नातिदूरं ततो गत्वा पद्भ्यामेव नराधिपः।
सस्मार वचनं क्षत्तुर्धर्मशीलस्य धीमतः ॥ २८ ॥

अपने पैरोंसे ही थोड़ी ही दूर जानेके पश्चात् राजा दुर्योधनको धर्मशील बुद्धिमान् विदुरजीकी कही हुई बातें याद आने लगीं ॥ २८ ॥

इदं नूनं महाप्राज्ञो विदुरो दृष्टवान् पुरा।
महद् वैशसमस्माकं क्षत्रियाणां च संयुगे ॥ २९ ॥

वह मन-ही-मन सोचने लगा कि हमारा और इन क्षत्रियोंका जो महान् संहार हुआ है, इसे महाज्ञानी विदुरजीने अवश्य पहले ही देख और समझ लिया था ॥ २९ ॥

एवं विचिन्तयानस्तु प्रविविक्षुर्ह्रदं नृपः।
दुःखसंतप्तहृदयो दृष्ट्वा राजन् बलक्षयम् ॥ ३० ॥

राजन्! अपनी सेनाका संहार देखकर इस प्रकार चिन्ता करते हुए राजा दुर्योधनका हृदय दुःख और शोकसे संतप्त हो उठा था। उसने सरोवरमें प्रवेश करनेका विचार किया ॥

पाण्डवास्तु महाराज धृष्टद्युम्नपुरोगमाः।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धास्तव राजन् बलं प्रति ॥ ३१ ॥
शक्त्यृष्टिप्रासहस्तानां बलानामभिगर्जताम्।
संकल्पमकरोन्मोघं गाण्डीवेन धनंजयः ॥ ३२ ॥

महाराज! धृष्टद्युम्न आदि पाण्डवोंने अत्यन्त कुपित होकर आपकी सेनापर धावा किया था तथा शक्ति, ऋष्टि और प्रास हाथमें लेकर गर्जना करनेवाले आपके योद्धाओंका सारा संकल्प अर्जुनने अपने गाण्डीव धनुषसे व्यर्थ कर दिया था ॥

तान् हत्वा निशितैर्बाणैः सामात्यान् सह बन्धुभिः।
रथे श्वेतहये तिष्ठन्नर्जुनो बह्वशोभत ॥ ३३ ॥

अपने पैने बाणोंसे बन्धुओं और मन्त्रियोंसहित उन योद्धाओंका संहार करके श्वेत घोड़ोंवाले रथपर स्थित हुए अर्जुनकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ३३ ॥

सुबलस्य हते पुत्रे सवाजिरथकुञ्जरे।
महावनमिव छिन्नमभवत् तावकं बलम् ॥ ३४ ॥

घोड़े, रथ और हाथियोंसहित सुबलपुत्रके मारे जानेपर आपकी सेना कटे हुए विशाल वनके समान प्रतीत होती थी ॥

अनेकशतसाहस्रे बले दुर्योधनस्य ह।
नान्यो महारथो राजन् जीवमानो व्यदृश्यत ॥ ३५ ॥
द्रोणपुत्रादृते वीरात् तथैव कृतवर्मणः।
कृपाच्च गौतमाद् राजन् पार्थिवाच्च तवात्मजात् ॥ ३६ ॥

राजन्! दुर्योधनकी कई लाख सेनामेंसे द्रोणपुत्र वीर अश्वत्थामा, कृतवर्मा, गौतमवंशी कृपाचार्य तथा आपके पुत्र राजा दुर्योधनके अतिरिक्त दूसरा कोई महारथी जीवित नहीं दिखायी देता था ॥ ३५-३६ ॥

धृष्टद्युम्नस्तु मां दृष्ट्वा हसन् सात्यकिमब्रवीत्।
किमनेन गृहीतेन नानेनार्थोऽस्ति जीवता ॥ ३७ ॥

उस समय मुझे कैदमें पड़ा हुआ देखकर हँसते हुए धृष्टद्युम्नने सात्यकिसे कहा—'इसको कैद करके क्या करना है? इसके जीवित रहनेसे अपना कोई लाभ नहीं है' ॥ ३७ ॥

धृष्टद्युम्नवचः श्रुत्वा शिनेर्नप्ता महारथः।
उद्यम्य निशितं खड्गं हन्तुं मामुद्यतस्तदा ॥ ३८ ॥

धृष्टद्युम्नकी बात सुनकर शिनिपौत्र महारथी सात्यकि तीखी तलवार उठाकर उसी क्षण मुझे मार डालनेके लिये उद्यत हो गये ॥ ३८ ॥

तमागम्य महाप्राज्ञः कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत्।
मुच्यतां संजयो जीवन्न हन्तव्यः कथंचन ॥ ३९ ॥

उस समय महाज्ञानी श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी सहसा आकर बोले—'संजयको जीवित छोड़ दो। यह किसी प्रकार वधके योग्य नहीं है' ॥ ३९ ॥

द्वैपायनवचः श्रुत्वा शिनेर्नप्ता कृताञ्जलिः।
ततो मामब्रवीन्मुक्त्वा स्वस्ति संजय साधय ॥ ४० ॥

हाथ जोड़े हुए शिनिपौत्र सात्यकिने व्यासजीकी वह बात सुनकर मुझे कैदसे मुक्त करके कहा—'संजय! तुम्हारा कल्याण हो। जाओ, अपना अभीष्ट साधन करो' ॥ ४० ॥

अनुज्ञातस्त्वहं तेन न्यस्तवर्मा निरायुधः।
प्रातिष्ठं येन नगरं सायाह्ने रुधिरोक्षितः ॥ ४१ ॥

उनके इस प्रकार आज्ञा देनेपर मैंने कवच उतार दिया और अस्त्र-शस्त्रोंसे रहित हो सायंकालके समय नगरकी ओर प्रस्थित हुआ। उस समय मेरा सारा शरीर रक्तसे भीगा हुआ था ॥

क्रोशमात्रमपक्रान्तं गदापाणिमवस्थितम्।
एकं दुर्योधनं राजन्नपश्यं भृशविक्षतम् ॥ ४२ ॥

राजन्! एक कोस आनेपर मैंने भागे हुए दुर्योधनको गदा हाथमें लिये अकेला खड़ा देखा। उसके शरीरपर बहुत-से घाव हो गये थे ॥ ४२ ॥

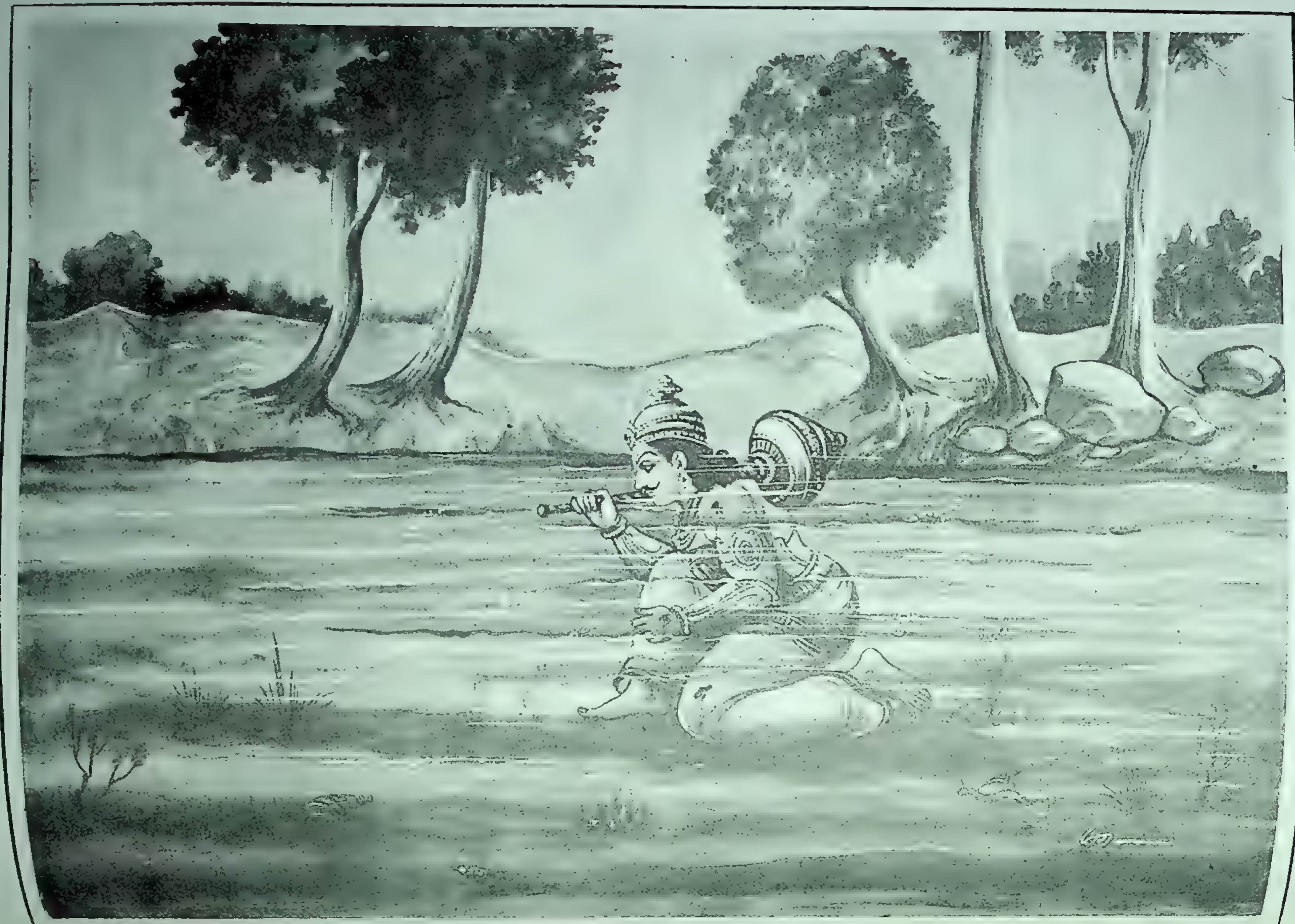
स तु मामश्रुपूर्णाक्षो नाशक्नोदभिवीक्षितुम्।
उपप्रैक्षत मां दृष्ट्वा तथा दीनमवस्थितम् ॥ ४३ ॥

मुझपर दृष्टि पड़ते ही उसके नेत्रोंमें आँसू भर आये। वह अच्छी तरह मेरी ओर देख न सका। मैं उस समय दीन भावसे खड़ा था। वह मेरी उस अवस्थापर दृष्टिपात करता रहा ॥ ४३ ॥

तं चाहमपि शोचन्तं दृष्ट्वैकाकिनमाहवे।
मुहूर्तं नाशकं वक्तुमतिदुःखपरिप्लुतः ॥ ४४ ॥

मैं भी युद्धक्षेत्रमें अकेले शोकमग्न हुए दुर्योधनको देखकर अत्यन्त दुःखशोकमें डूब गया और दो घड़ीतक कोई बात मुँहसे न निकाल सका ॥ ४४ ॥

(यस्य मूर्धाभिषिक्तानां सहस्रं मणिमौलिनाम्।
आहृत्य च करं सर्वे स्वस्य वै वशमागतम् ॥
चतुःसागरपर्यन्ता पृथिवी रत्नभूषिता।
कर्णेनैकेन यस्यार्थे करमाहारिता पुरा ॥
यस्याज्ञा परराष्ट्रेषु कर्णेनैव प्रसारिता।
नाभवद् यस्य शस्त्रेषु खेदो राज्ञः प्रशासतः ॥
आसीनो हास्तिनपुरे क्षेमं राज्यमकण्टकम्।
अन्वपालयदैश्वर्यात् कुबेरमपि नास्मरत् ॥
भवनाद् भवनं राजन् प्रयातुः पृथिवीपते।
देवालयप्रवेशे च पन्था यस्य हिरण्मयः ॥
आरुह्यैरावतप्रख्यं नागमिन्द्रसमो बली।
विभूत्या सुमहत्या यः प्रयाति पृथिवीपतिः ॥
तं भृशक्षतमिन्द्राभं पद्भ्यामेव धरातले।
तिष्ठन्तमेकं दृष्ट्वा तु ममाभूत् क्लेश उत्तमः ॥
तस्य चैवंविधस्यास्य जगन्नाथस्य भूपतेः।
विपद्मतिमाभूद् या बलीयान् विधिरेव हि ॥)



विश्रामके लिये सरोवरमें छिपे हुए दुर्योधन

मस्तकपर मुकुट धारण करनेवाले सहस्रों मूर्धाभिषिक्त नरेश जिसके लिये भेंट लाकर देते थे और वे सब-के-सब जिसकी अधीनता स्वीकार कर चुके थे, पूर्वकालमें एकमात्र वीर कर्णने जिसके लिये चारों समुद्रोंतक फैली हुई इस रत्न-भूषित पृथ्वीसे कर वसूल किया था, कर्णने ही दूसरे राष्ट्रोंमें जिसकी आज्ञाका प्रसार किया था, जिस राजाको राज्य-शासन करते समय कभी हथियार उठानेका कष्ट नहीं सहन करना पड़ा था, जो हस्तिनापुरमें ही रहकर अपने कल्याणमय निष्कण्टक राज्यका निरन्तर पालन करता था, जिसने अपने ऐश्वर्यसे कुबेरको भी भुला दिया था, राजन् ! पृथ्वीनाथ ! एक घरसे दूसरे घरमें जाने अथवा देवालयमें प्रवेश करनेके हेतु जिसके लिये सुवर्णमय मार्ग बनाया गया था, जो इन्द्रके समान बलवान् भूपाल ऐरावतके समान कान्तिमान् गजराजपर आरूढ़ हो महान् ऐश्वर्यके साथ यात्रा करता था, उसी इन्द्र-तुल्य तेजस्वी राजा दुर्योधनको अत्यन्त घायल हो पाँव-पयादे ही पृथ्वीपर अकेला खड़ा देख मुझे महान् क्लेश हुआ। ऐसे प्रतापी और सम्पूर्ण जगत्के स्वामी इस भूपालको जो अनुपम विपत्ति प्राप्त हुई, उसे देखकर कहना पड़ता है कि 'विधाता ही सबसे बड़ा बलवान् है' ॥

ततोऽस्मै तदहं सर्वमुक्तवान् ग्रहणं तदा।
द्वैपायनप्रसादाच्च जीवतो मोक्षमाहवे ॥ ४५ ॥

तत्पश्चात् मैंने युद्धमें अपने पकड़े जाने और व्यासजीकी कृपासे जीवित छूटनेका सारा समाचार उससे कह सुनाया ॥

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा प्रतिलभ्य च चेतनाम्।
भ्रातॄंश्च सर्वसैन्यानि पर्यपृच्छत मां ततः ॥ ४६ ॥

उसने दो घड़ीतक कुछ सोच-विचारकर सचेत होनेपर मुझसे अपने भाइयों तथा सम्पूर्ण सेनाओंका समाचार पूछा ॥

तस्मै तदहमाचक्षे सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान्।
भ्रातॄंश्च निहतान् सर्वान् सैन्यं च विनिपातितम् ॥ ४७ ॥
त्रयः किल रथाः शिष्टास्तावकानां नराधिप।
इति प्रस्थानकाले मां कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ ४८ ॥

मैंने भी जो कुछ आँखों देखा था, वह सब कुछ उसे इस प्रकार बताया—'नरेश्वर ! तुम्हारे सारे भाई मार डाले गये और समस्त सेनाका भी संहार हो गया। रणभूमिसे प्रस्थान करते समय व्यासजीने मुझसे कहा था कि 'तुम्हारे पक्षमें तीन ही महारथी बच गये हैं' ॥ ४७-४८ ॥

स दीर्घमिव निःश्वस्य प्रत्यवेक्ष्य पुनः पुनः।
असौ मां पाणिना स्पृष्ट्वा पुत्रस्ते पर्यभाषत ॥ ४९ ॥
त्वदन्यो नेह संग्रामे कश्चिज्जीवति संजय।
द्वितीयं नेह पश्यामि ससहायाश्च पाण्डवाः ॥ ५० ॥

यह सुनकर आपके पुत्रने लंबी साँस खींचकर बारंबार मेरी ओर देखा और हाथसे मेरा स्पर्श करके इस प्रकार कहा—'संजय ! इस संग्राममें तुम्हारे सिवा दूसरा कोई मेरा आत्मीय जन सम्भवतः जीवित नहीं है; क्योंकि मैं यहाँ दूसरे किसी स्वजनको देख नहीं रहा हूँ। उधर पाण्डव अपने सहायकोंसे सम्पन्न हैं ॥ ४९-५० ॥

ब्रूयाः संजय राजानं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम्।
दुर्योधनस्तव सुतः प्रविष्टो ह्रदमित्युत ॥ ५१ ॥
सुहृद्भिस्तादृशैर्हीनः पुत्रैर्भ्रातृभिरेव च।
पाण्डवैश्च हृते राज्ये को नु जीवेत मादृशः ॥ ५२ ॥
आचक्षीथाः सर्वमिदं मां च मुक्तं महाहवात्।
अस्मिंस्तोयह्रदे गुप्तं जीवन्तं भृशविक्षतम् ॥ ५३ ॥

'संजय ! तुम प्रज्ञाचक्षु ऐश्वर्यशाली महाराजसे कहना कि 'आपका पुत्र दुर्योधन वैसे पराक्रमी सुहृदों, पुत्रों और भ्राताओंसे हीन होकर सरोवरमें प्रवेश कर गया है। जब पाण्डवोंने मेरा राज्य हर लिया, तब इस दयनीय-दशामें मेरे-जैसा कौन पुरुष जीवन धारण कर सकता है ?' संजय ! तुम ये सारी बातें कहना और यह भी बताना कि 'दुर्योधन उस महासंग्रामसे जीवित बचकर पानीसे भरे हुए इस सरोवरमें छिपा है और उसका सारा शरीर अत्यन्त घायल हो गया है'' ॥ ५१-५३ ॥

एवमुक्त्वा महाराज प्राविशत् तं महाह्रदम्।
अस्तम्भयत तोयं च मायया मनुजाधिपः ॥ ५४ ॥

महाराज ! ऐसा कहकर राजा दुर्योधनने उस महान् सरोवरमें प्रवेश किया और मायासे उसका पानी बाँध दिया ॥

तस्मिन् ह्रदं प्रविष्टे तु त्रीन् रथान् श्रान्तवाहनान्।
अपश्यं सहितानेकस्तं देशं समुपेयुषः ॥ ५५ ॥

जब दुर्योधन सरोवरमें समा गया, उसके बाद अकेले खड़े हुए मैंने अपने पक्षके तीन महारथियोंको वहाँ उपस्थित देखा, जो एक साथ उस स्थानपर आ पहुँचे थे। उन तीनों-के घोड़े थक गये थे ॥ ५५ ॥

कृपं शारद्वतं वीरं द्रौणिं च रथिनां वरम्।
भोजं च कृतवर्माणं सहिताञ्शरविक्षतान् ॥ ५६ ॥

उनके नाम इस प्रकार हैं—शरद्वान्के पुत्र वीर कृपाचार्य, रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणकुमार अश्वत्थामा तथा भोजवंशी कृतवर्मा। ये सब लोग एक साथ थे और बाणोंसे क्षत-विक्षत हो रहे थे ॥ ५६ ॥

ते सर्वे मामभिप्रेक्ष्य तूर्णमश्वानचोदयन्।
उपायाय तु मामूचुर्दिष्ट्या जीवसि संजय ॥ ५७ ॥

मुझे देखते ही उन तीनोंने शीघ्रतापूर्वक अपने घोड़े बढ़ाये और निकट आकर मुझसे कहा—'संजय ! सौभाग्यकी बात है कि तुम जीवित हो' ॥ ५७ ॥

अपृच्छंश्चैव मां सर्वे पुत्रं तव जनाधिपम्।
कच्चिद् दुर्योधनो राजा स नो जीवति संजय ॥ ५८ ॥

फिर उन सबने आपके पुत्र राजा दुर्योधनका समाचार पूछा—'संजय ! क्या हमारे राजा दुर्योधन जीवित हैं?' ॥५८॥

आख्यातवानहं तेभ्यस्तदा कुशलिनं नृपम्।
तच्चैव सर्वमाचक्षं यन्मां दुर्योधनोऽब्रवीत् ॥ ५९ ॥
ह्रदं चैवाहमाचक्षं यं प्रविष्टो नराधिपः।

तब मैंने उन लोगोंसे दुर्योधनका कुशल-समाचार बताया तथा दुर्योधनने मुझे जो संदेश दिया था, वह भी सब उनसे

कह सुनाया और जिस सरोवरमें वह घुसा था, उसका भी पता बता दिया ॥ ५९½ ॥

अश्वत्थामा तु तद् राजन् निशम्य वचनं मम ॥ ६० ॥
तं ह्रदं विपुलं प्रेक्ष्य करुणं पर्यदेवयत् ।
अहो धिक् स न जानाति जीवतोऽस्मान् नराधिपः॥६१॥
पर्याप्ता हि वयं तेन सह योधयितुं परान् ।

राजन्! मेरी बात सुनकर अश्वत्थामाने उस विशाल सरोवरकी ओर देखा और करुण विलाप करते हुए कहा—'अहो! धिक्कार है, राजा दुर्योधन नहीं जानते हैं कि हम सब जीवित हैं। उनके साथ रहकर हमलोग शत्रुओंसे जूझनेके लिये पर्याप्त हैं' ॥ ६०-६१½ ॥

ते तु तत्र चिरं कालं विलप्य च महारथाः ॥ ६२ ॥
प्राद्रवन् रथिनां श्रेष्ठा दृष्ट्वा पाण्डुसुतान् रणे ।

तत्पश्चात् वे महारथी दीर्घकाल तक वहाँ विलाप करते रहे। फिर रणभूमिमें पाण्डवोंको आते देख वे रथियोंमें श्रेष्ठ तीनों वीर वहाँसे भाग निकले ॥ ६२½ ॥

ते तु मां रथमारोप्य कृपस्य सुपरिष्कृतम् ॥ ६३ ॥
सेनानिवेशमाजग्मुर्हतशेषास्त्रयो रथाः ।
तत्र गुल्माः परित्रस्ताः सूर्ये चास्तमिते सति ॥ ६४ ॥
सर्वे विचुक्रुशुः श्रुत्वा पुत्राणां तव संक्षयम् ।

मरनेसे बचे हुए वे तीनों रथी मुझे भी कृपाचार्यके सुसज्जित रथपर बिठाकर छावनीतक ले आये। सूर्य अस्ताचलपर जा चुके थे। वहाँ छावनीके पहरेदार भयसे घबराये हुए थे। आपके पुत्रोंके विनाशका समाचार सुनकर वे सभी फूट-फूटकर रोने लगे ॥ ६३-६४½ ॥

ततो वृद्धा महाराज योषितां रक्षिणो नराः ॥ ६५ ॥
राजदारानुपादाय प्रययुर्नगरं प्रति ।

महाराज! तदनन्तर स्त्रियोंकी रक्षामें नियुक्त हुए वृद्ध पुरुषोंने राजकुलकी महिलाओंको साथ लेकर नगरकी ओर प्रस्थान करनेकी तैयारी की ॥ ६५½ ॥

तत्र विक्रोशमानानां रुदतीनां च सर्वशः ॥ ६६ ॥
प्रादुरासीन्महाञ्शब्दः श्रुत्वा तद् बलसंक्षयम्।
ततस्ता योषितो राजन् क्रन्दन्त्यो वै मुहुर्मुहुः ॥ ६७ ॥
कुरर्य इव शब्देन नादयन्त्यो महीतलम् ।

उस समय वहाँ अपने पतियोंको पुकारती और रोती-बिलखती हुई राजमहिलाओंका महान् आर्तनाद सब ओर गूँज उठा। राजन्! अपनी सेना और पतियोंके संहारका समाचार सुनकर वे राजकुलकी युवतियाँ अपने आर्तनादसे भूतलको प्रतिध्वनित करती हुई बारंबार कुररीकी भाँति विलाप करने लगीं ॥ ६६-६७½ ॥

आजघ्नुः करजैश्चापि पाणिभिश्च शिरांस्युत ॥ ६८ ॥
लुलुचुश्च तदा केशान् क्रोशन्त्यस्तत्र तत्र ह ।
हाहाकारविनादिन्यो विनिघ्नन्त्य उरांसि च ॥ ६९ ॥
शोचन्त्यस्तत्र रुरुदुः क्रन्दमाना विशाम्पते ।

वे जहाँ-तहाँ हाहाकार करती हुई अपने ऊपर नखोंसे आघात करने, हाथोंसे सिर और छाती पीटने तथा केश नोचने लगीं। प्रजानाथ! शोकमें डूबकर पतिको पुकारती हुई वे रानियाँ करुण स्वरसे क्रन्दन करने लगीं ॥६८-६९½॥

ततो दुर्योधनामात्याः साश्रुकण्ठा भृशातुराः ॥ ७० ॥
राजदारानुपादाय प्रययुर्नगरं प्रति ।

इससे दुर्योधनके मन्त्रियोंका गला भर आया और वे अत्यन्त व्याकुल हो राजमहिलाओंको साथ ले नगरकी ओर चल दिये ॥ ७०½ ॥

वेत्रव्यासक्तहस्ताश्च द्वाराध्यक्षा विशाम्पते ॥ ७१ ॥
शयनीयानि शुभ्राणि स्पर्ध्यास्तरणवन्ति च ।
समादाय ययुस्तूर्णं नगरं दाररक्षिणः ॥ ७२ ॥

प्रजानाथ! उनके साथ हाथोंमें बेंतकी छड़ी लिये द्वारपाल भी चल रहे थे। रानियोंकी रक्षामें नियुक्त हुए सेवक शुभ्र एवं बहुमूल्य बिछौने लेकर शीघ्रतापूर्वक नगरकी ओर चलने लगे ॥ ७१-७२ ॥

आस्थायाश्वतरीयुक्तान् स्यन्दनानपरे पुनः ।
स्वान् स्वान् दारानुपादाय प्रययुर्नगरं प्रति ॥ ७३ ॥

अन्य बहुत-से राजकीय पुरुष खचरियोंसे जुते हुए रथोंपर आरूढ़ हो अपनी-अपनी रक्षामें स्थित स्त्रियोंको लेकर नगरकी ओर यात्रा करने लगे ॥ ७३ ॥

अदृष्टपूर्वा या नार्यो भास्करेणापि वेश्मसु ।
ददृशुस्ता महाराज जना याताः पुरं प्रति ॥ ७४ ॥

महाराज! जिन राजमहिलाओंको महलोंमें रहते समय पहले सूर्यदेवने भी नहीं देखा होगा, उन्हें ही नगरकी ओर जाते हुए साधारण लोग भी देख रहे थे ॥ ७४ ॥

ताः स्त्रियो भरतश्रेष्ठ सौकुमार्यसमन्विताः ।
प्रययुर्नगरं तूर्णं हतस्वजनबान्धवाः ॥ ७५ ॥

भरतश्रेष्ठ! जिनके स्वजन और बान्धव मारे गये थे, वे सुकुमारी स्त्रियाँ तीव्र गतिसे नगरकी ओर जा रही थीं ॥७५॥

आगोपालाविपालेभ्यो द्रवन्तो नगरं प्रति ।
ययुर्मनुष्याः सम्भ्रान्ता भीमसेनभयार्दिताः ॥ ७६ ॥

उस समय भीमसेनके भयसे पीड़ित हो सभी मनुष्य गायों और भेड़ोंके चरवाहे तक घबराकर नगरकी ओर भाग रहे थे ॥ ७६ ॥

अपि चैषां भयं तीव्रं पार्थेभ्योऽभूत् सुदारुणम् ।
प्रेक्षमाणास्तदान्योन्यमाधावन्नगरं प्रति ॥ ७७ ॥

उन्हें कुन्तीके पुत्रोंसे दारुण एवं तीव्र भय प्राप्त हुआ था। वे एक दूसरेकी ओर देखते हुए नगरकी ओर भागने लगे॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने विद्रवे भृशदारुणे ।
युयुत्सुः शोकसम्मूढः प्राप्तकालमचिन्तयत् ॥ ७८ ॥

जब इस प्रकार अति भयंकर भगदड़ मची हुई थी, उस समय युयुत्सु शोकसे मूर्छित हो मन-ही-मन समयोचित कर्तव्यका विचार करने लगा—॥ ७८ ॥

जितो दुर्योधनः संख्ये पाण्डवैर्भीमविक्रमैः ।
एकादशचमूभर्ता भ्रातरश्चास्य सूदिताः ॥ ७९ ॥

'भयंकर पराक्रमी पाण्डवोंने ग्यारह अक्षौहिणीसेनाके स्वामी राजा दुर्योधनको युद्धमें परास्त कर दिया और उसके भाइयोंको भी मार डाला ॥ ७९ ॥

हताश्च कुरवः सर्वे भीष्मद्रोणपुरःसराः ।
अहमेको विमुक्तस्तु भाग्ययोगाद् यदृच्छया ॥ ८० ॥

'भीष्म और द्रोणाचार्य जिनके अगुआ थे, वे समस्त कौरव मारे गये। अकस्मात् भाग्य-योगसे अकेला मैं ही बच गया हूँ ॥ ८० ॥

विद्रुतानि च सर्वाणि शिबिराणि समन्ततः ।
इतस्ततः पलायन्ते हतनाथा हतौजसः ॥ ८१ ॥

'सारे शिबिरके लोग सब ओर भाग गये। स्वामीके मारे जानेसे हतोत्साह होकर सभी सेवक इधर-उधर पलायन कर रहे हैं ॥ ८१ ॥

अदृष्टपूर्वा दुःखार्ता भयव्याकुललोचनाः ।
हरिणा इव वित्रस्ता वीक्षमाणा दिशो दश ॥ ८२ ॥
दुर्योधनस्य सचिवा ये केचिदवशेषिताः ।
राजदारानुपादाय प्रययुर्नगरं प्रति ॥ ८३ ॥

'उन सबकी ऐसी अवस्था हो गयी है, जैसी पहले कभी नहीं देखी गयी। सभी दुःखसे आतुर हैं और सबके नेत्र भयसे व्याकुल हो उठे हैं। सभी लोग भयभीत मृगोंके समान दसों दिशाओंकी ओर देख रहे हैं। दुर्योधनके मन्त्रियोंमेंसे जो कोई बच गये हैं, वे राजमहिलाओंको साथ लेकर नगरकी ओर जा रहे हैं ॥ ८२-८३ ॥

प्राप्तकालमहं मन्ये प्रवेशं तैः सह प्रभुम् ।
युधिष्ठिरमनुज्ञाप्य वासुदेवं तथैव च ॥ ८४ ॥

'मैं राजा युधिष्ठिर और वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णकी आज्ञा लेकर उन मन्त्रियोंके साथ ही नगरमें प्रवेश करूँ, यही मुझे समयोचित कर्तव्य जान पड़ता है' ॥ ८४ ॥

एतमर्थं महाबाहुरुभयोः स न्यवेदयत् ।
तस्य प्रीतोऽभवद् राजा नित्यं करुणवेदिता ॥ ८५ ॥
परिष्वज्य महाबाहुर्वैश्यापुत्रं व्यसर्जयत् ।

ऐसा सोचकर महाबाहु युयुत्सुने उन दोनोंके सामने अपना विचार प्रकट किया। उसकी बात सुनकर निरन्तर करुणाका अनुभव करनेवाले महाबाहु राजा युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने वैश्यकुमारीके पुत्र युयुत्सुको छातीसे लगाकर बिदा कर दिया ॥ ८५½ ॥

ततः स रथमास्थाय द्रुतमश्वानचोदयत् ॥ ८६ ॥
संवाहयितवांश्चापि राजदारान् पुरं प्रति ।

तत्पश्चात् उसने रथपर बैठकर तुरंत ही अपने घोड़े बढ़ाये और राजकुलकी स्त्रियोंको राजधानीमें पहुँचा दिया ॥

तैश्चैव सहितः क्षिप्रमस्तं गच्छति भास्करे ॥ ८७ ॥
प्रविष्टो हास्तिनपुरं बाष्पकण्ठोऽश्रुलोचनः ।

सूर्यके अस्त होते-होते नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए उसने उन सबके साथ हस्तिनापुरमें प्रवेश किया। उस समय उसका गला भर आया था ॥ ८७½ ॥

अपश्यत महाप्राज्ञं विदुरं साश्रुलोचनम् ॥ ८८ ॥
राज्ञः समीपान्निष्क्रान्तं शोकोपहतचेतसम् ।

राजन्! वहाँ उसने आपके पाससे निकले हुए महाज्ञानी विदुरजीका दर्शन किया, जिनके नेत्रोंमें आँसू भरे हुए थे और मन शोकमें डूबा हुआ था ॥ ८८½ ॥

तमब्रवीत् सत्यधृतिः प्रणतं त्वग्रतः स्थितम् ॥ ८९ ॥
दिष्ट्या कुरुक्षये वृत्ते अस्मिंस्त्वं पुत्र जीवसि ।
विना राज्ञः प्रवेशाद् वै किमसि त्वमिहागतः ॥ ९० ॥
एतद् वै कारणं सर्वं विस्तरेण निवेदय ।

सत्यपरायण विदुरने प्रणाम करके सामने खड़े हुए युयुत्सुसे कहा—'बेटा! बड़े सौभाग्यकी बात है कि कौरवोंके इस विकट संहारमें भी तुम जीवित बच गये हो; परंतु राजा युधिष्ठिरके हस्तिनापुरमें प्रवेश करनेसे पहले ही तुम यहाँ कैसे चले आये? यह सारा कारण मुझे विस्तारपूर्वक बताओ' ॥

युयुत्सुरुवाच

निहते शकुनौ तत्र सज्ञातिसुतबान्धवे ॥ ९१ ॥
हतशेषपरीवारो राजा दुर्योधनस्ततः ।
स्वकं स हयमुत्सृज्य प्राङ्मुखः प्राद्रवद् भयात् ॥९२॥

युयुत्सुने कहा—चाचाजी! जाति, भाई और पुत्रसहित शकुनिके मारे जानेपर जिसके शेष परिवार नष्ट हो गये थे, वह राजा दुर्योधन अपने घोड़ेको युद्धभूमिमें ही छोड़कर भयके मारे पूर्व दिशाकी ओर भाग गया ॥ ९१-९२ ॥

अपक्रान्ते तु नृपतौ स्कन्धावारनिवेशनात् ।
भयव्याकुलितं सर्वं प्राद्रवन्नगरं प्रति ॥ ९३ ॥

राजाके छावनीसे दूर भाग जानेपर सब लोग भयसे व्याकुल हो राजधानीकी ओर भाग चले ॥ ९३ ॥

ततो राज्ञः कलत्राणि भ्रातॄणां चास्य सर्वतः ।
वाहनेषु समारोप्य अध्यक्षाः प्राद्रवन् भयात् ॥ ९४ ॥

तब राजा तथा उनके भाइयोंकी पत्नियोंको सब ओरसे सवारियोंपर बिठाकर अन्तःपुरके अध्यक्ष भी भयके मारे भाग खड़े हुए ॥ ९४ ॥

ततोऽहं समनुज्ञाप्य राजानं सहकेशवम् ।
प्रविष्टो हास्तिनपुरं रक्षँल्लोकान् प्रधावितान् ॥ ९५ ॥

तदनन्तर मैं भगवान् श्रीकृष्ण और राजा युधिष्ठिरकी आज्ञा लेकर भागे हुए लोगोंकी रक्षाके लिये हस्तिनापुरमें चला आया हूँ ॥ ९५ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं वैश्यापुत्रेण भाषितम् ।
प्राप्तकालमिति ज्ञात्वा विदुरः सर्वधर्मवित् ॥ ९६ ॥
अपूजयदमेयात्मा युयुत्सुं वाक्यमब्रवीत् ।
प्राप्तकालमिदं सर्वं ब्रुवता भरतक्षये ॥ ९७ ॥
रक्षितः कुलधर्मश्च सानुक्रोशतया त्वया ।

वैश्यापुत्र युयुत्सुकी कही हुई यह बात सुनकर और इसे समयोचित जानकर सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता तथा अमेय आत्मबलसे सम्पन्न विदुरजीने युयुत्सुकी भूरि-भूरि प्रशंसा की एवं इस प्रकार कहा—'भरतवंशियोंके इस विनाशके समय जो यह समयोचित कर्तव्य प्राप्त था, वह सब बताकर अपनी दयालुता-

के कारण तुमने कुल-धर्मकी रक्षा की है ॥ ९६-९७½ ॥

दिष्ट्या त्वामिह संग्रामादस्माद् वीरक्षयात् पुरम् ॥९८॥
समागतमपश्याम ह्यंशुमन्तमिव प्रजाः ।

'वीरोंका विनाश करनेवाले इस संग्रामसे बचकर तुम कुशलपूर्वक नगरमें लौट आये—इस अवस्थामें हमने तुम्हें उसी प्रकार देखा है, जैसे रात्रिके अन्तमें प्रजा भगवान् भास्करका दर्शन करती है ॥ ९८½ ॥

अन्धस्य नृपतेर्यष्टिर्लुब्धस्यादीर्घदर्शिनः ॥ ९९ ॥
बहुशो याच्यमानस्य दैवोपहतचेतसः ।
त्वमेको व्यसनार्तस्य ध्रियसे पुत्र सर्वथा ॥१००॥

'लोभी, अदूरदर्शी और अन्धे राजाके लिये तुम लाठीके सहारे हो । मैंने उनसे युद्ध रोकनेके लिये बारंबार याचना की थी, परंतु दैवसे उनकी बुद्धि मारी गयी थी; इसलिये उन्होंने मेरी बात नहीं सुनी । आज वे संकटसे पीड़ित हैं, बेटा ! इस अवस्थामें एकमात्र तुम्हीं उन्हें सहारा देनेके लिये जीवित हो ॥ ९९-१०० ॥

अद्य त्वमिह विश्रान्तः श्वोऽभिगन्ता युधिष्ठिरम् ।
एतावदुक्त्वा वचनं विदुरः साश्रुलोचनः ॥१०१॥
युयुत्सुं समनुप्राप्य प्रविवेश नृपक्षयम् ।
पौरजानपदैर्दुःखाद्धाहेति भृशनादितम् ॥१०२॥

'आज यहीं विश्राम करो । कल सबेरे युधिष्ठिरके पास चले जाना' ऐसा कहकर नेत्रोंमें आँसू भरे विदुरजीने युयुत्सुको साथ लेकर राजमहलमें प्रवेश किया । वह भवन नगर और जनपदके लोगोंद्वारा दुःखपूर्वक किये जानेवाले हाहाकार एवं भयंकर आर्तनादसे गूँज उठा था ॥ १०१-१०२ ॥

निरानन्दं गतश्रीकं हृतारामभिवाशयम् ।
शून्यरूपमपध्वस्तं दुःखाद् दुःखतरोऽभवत् ॥१०३॥

वहाँ न तो आनन्द था और न वैभवजनित शोभा ही दृष्टिगोचर होती थी । वह राजभवन उस जलाशयके समान जनशून्य और विध्वस्त-सा जान पड़ता था, जिसके तटका उद्यान नष्ट हो गया हो । वहाँ पहुँचकर विदुरजी दुःखसे अत्यन्त खिन्न हो गये ॥ १०३ ॥

विदुरः सर्वधर्मज्ञो विक्लवेनान्तरात्मना ।
विवेश नगरे राजन् निःशश्वास शनैः शनैः ॥१०४॥

राजन् ! सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता विदुरजीने व्याकुल अन्तःकरणसे नगरमें प्रवेश किया और धीरे-धीरे वे लंबी साँस खींचने लगे ॥ १०४ ॥

युयुत्सुरपि तां रात्रिं स्वगृहे न्यवसत् तदा ।
वन्द्यमानः स्वकैश्चापि नाभ्यनन्दत् सुदुःखितः ।
चिन्तयानः क्षयं तीव्रं भरतानां परस्परम् ॥१०५॥

युयुत्सु भी उस रातमें अपने घरपर ही रहे । उनके मनमें अत्यन्त दुःख था, इसलिये वे स्वजनोंद्वारा वन्दित होनेपर भी प्रसन्न नहीं हुए । इस पारस्परिक युद्धसे भरतवंशियोंका जो घोर संहार हुआ था, उसीकी चिन्तामें वे निमग्न होगये थे॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि ह्रदप्रवेशपर्वणि एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत ह्रदप्रवेशपर्वमें उन्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २९ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ८ श्लोक मिलाकर कुल ११३ श्लोक हैं)

(गदापर्व)

त्रिंशोऽध्यायः

अश्वत्थामा, कृतवर्मा और कृपाचार्यका सरोवरपर जाकर दुर्योधनसे युद्ध करनेके विषयमें बातचीत करना, व्याधोंसे दुर्योधनका पता पाकर युधिष्ठिरका सेनासहित सरोवरपर जाना और कृपाचार्य आदिका दूर हट जाना

धृतराष्ट्र उवाच

हतेषु सर्वसैन्येषु पाण्डुपुत्रै रणाजिरे ।
मम सैन्यावशिष्टास्ते किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! जब पाण्डुके पुत्रोंने समराङ्गणमें समस्त सेनाओंका संहार कर डाला, तब मेरी सेनाके शेष वीरोंने क्या किया ? ॥ १ ॥

कृतवर्मा कृपश्चैव द्रोणपुत्रश्च वीर्यवान् ।
दुर्योधनश्च मन्दात्मा राजा किमकरोत् तदा ॥ २ ॥

कृतवर्मा, कृपाचार्य, पराक्रमी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा तथा मन्दबुद्धि राजा दुर्योधनने उस समय क्या किया ? ॥ २ ॥

संजय उवाच

सम्प्राद्रवत्सु दारेषु क्षत्रियाणां महात्मनाम् ।
विद्रुते शिबिरे शून्ये भृशोद्विग्नास्त्रयो रथाः ॥ ३ ॥

संजयने कहा—राजन् ! जब महामनस्वी क्षत्रिय राजाओंकी पत्नियाँ भाग चलीं और सब लोगोंके पलायन करनेसे सारा शिविर सूना हो गया, उस समय पूर्वोक्त तीनों रथी अत्यन्त उद्विग्न हो गये ॥ ३ ॥

निशम्य पाण्डुपुत्राणां तदा वै जयिनां स्वनम् ।
विद्रुतं शिबिरं दृष्ट्वा सायाह्ने राजगृद्धिनः ॥ ४ ॥
स्थानं नारोचयंस्तत्र ततस्ते ह्रदमभ्ययुः ।

सायंकालमें विजयी पाण्डवोंकी गर्जना सुनकर और अपने सारे शिबिरके लोगोंको भागा हुआ देखकर राजा दुर्योधनको चाहनेवाले उन तीनों महारथियोंको वहाँ ठहरना अच्छा न लगा; इसलिये वे उसी सरोवरके तटपर गये ॥ ४½ ॥

युधिष्ठिरोऽपि धर्मात्मा भ्रातृभिः सहितो रणे ॥ ५ ॥
हृष्टः पर्यचरद् राजन् दुर्योधनवधेप्सया ।

राजन्! इधर धर्मात्मा युधिष्ठिर भी रणभूमिमें दुर्योधनके वधकी इच्छासे बड़े हर्षके साथ भाइयोंसहित विचर रहे थे ॥

मार्गमाणास्तु संक्रुद्धास्तव पुत्रं जयैषिणः ॥ ६ ॥
यत्नतोऽन्वेषमाणास्ते नैवापश्यञ्जनाधिपम् ।

विजयके अभिलाषी पाण्डव अत्यन्त कुपित होकर आपके पुत्रका पता लगाने लगे; परंतु यत्नपूर्वक खोज करनेपर भी उन्हें राजा दुर्योधन कहीं दिखायी नहीं दिया ॥ ६½ ॥

स हि तीव्रेण वेगेन गदापाणिरपाक्रमत् ॥ ७ ॥
तं ह्रदं प्राविशच्चापि विष्टभ्यापः स्वमायया ।

वह हाथमें गदा लेकर तीव्र वेगसे भागा और अपनी मायासे जलको स्तम्भित करके उस सरोवरके भीतर जा घुसा ॥

यदा तु पाण्डवाः सर्वे सुपरिश्रान्तवाहनाः ॥ ८ ॥
ततः स्वशिबिरं प्राप्य व्यतिष्ठन्त ससैनिकाः ।

दुर्योधनकी खोज करते-करते जब पाण्डवोंके वाहन बहुत थक गये, तब सभी पाण्डव सैनिकोंसहित अपने शिबिरमें आकर ठहर गये ॥ ८½ ॥

ततः कृपश्च द्रौणिश्च कृतवर्मा च सात्वतः ॥ ९ ॥
संनिविष्टेषु पार्थेषु प्रयातास्तं ह्रदं शनैः ।

तदनन्तर जब कुन्तीके सभी पुत्र शिबिरमें विश्राम करने लगे, तब कृपाचार्य, अश्वत्थामा और सात्वतवंशी कृतवर्मा धीरे-धीरे उस सरोवरके तटपर जा पहुँचे ॥ ९½ ॥

ते तं ह्रदं समासाद्य यत्र शेते जनाधिपः ॥ १० ॥
अभ्यभाषन्त दुर्धर्षं राजानं सुप्तमम्भसि ।
राजन्नुत्तिष्ठ युद्ध्यस्व सहास्माभिर्युधिष्ठिरम् ॥ ११ ॥
जित्वा वा पृथिवीं भुङ्क्ष्व हतो वा स्वर्गमाप्नुहि ।

जिसमें राजा दुर्योधन सो रहा था, उस सरोवरके समीप पहुँचकर, वे जलमें सोये हुए उस दुर्धर्ष नरेशसे इस प्रकार बोले—'राजन्! उठो और हमारे साथ चलकर युधिष्ठिरसे युद्ध करो। विजयी होकर पृथ्वीका राज्य भोगो अथवा मारे जाकर स्वर्गलोक प्राप्त करो ॥ १०-११½ ॥

तेषामपि बलं सर्वं हतं दुर्योधन त्वया ॥ १२ ॥
प्रतिविद्धाश्च भूयिष्ठं ये शिष्टास्तत्र सैनिकाः ।
न ते वेगं विषहितुं शक्तास्तव विशाम्पते ॥ १३ ॥
अस्माभिरपि गुप्तस्य तस्मादुत्तिष्ठ भारत ।

'प्रजानाथ दुर्योधन! भरतनन्दन! तुमने भी तो पाण्डवोंकी सारी सेनाका संहार कर डाला है। वहाँ जो सैनिक शेष रह गये हैं, वे भी बहुत घायल हो चुके हैं; अतः जब तुम हमारेद्वारा सुरक्षित होकर उनपर आक्रमण करोगे तो वे तुम्हारा वेग नहीं सह सकेंगे; इसलिये तुम युद्धके लिये उठो' ॥

दुर्योधन उवाच

दिष्ट्या पश्यामि वो मुक्तानीदृशात् पुरुषक्षयात् ॥ १४ ॥
पाण्डुकौरवसम्मर्दाज्जीवमानान् नरर्षभान् ।

दुर्योधन बोला—मैं ऐसे जनसंहारकारी पाण्डव-कौरव-संग्रामसे आप सभी नरश्रेष्ठ वीरोंको जीवित बचा हुआ देख रहा हूँ, यह बड़े सौभाग्यकी बात है ॥ १४½ ॥

विजेष्यामो वयं सर्वे विश्रान्ता विगतक्लमाः ॥ १५ ॥
भवन्तश्च परिश्रान्ता वयं च भृशविक्षताः ।
उदीर्णं च बलं तेषां तेन युद्धं न रोचये ॥ १६ ॥

हम सब लोग विश्राम करके अपनी थकावट दूर कर लें तो अवश्य विजयी होंगे। आप लोग भी बहुत थके हुए हैं और हम भी अत्यन्त घायल हो चुके हैं। उधर पाण्डवोंका बल बढ़ा हुआ है; इसलिये इस समय मेरी युद्ध करनेकी रुचि नहीं हो रही है ॥ १५-१६ ॥

न त्वेतदद्भुतं वीरा यद् वो महदिदं मनः ।
अस्मासु च परा भक्तिर्न तु कालः पराक्रमे ॥ १७ ॥

वीरो! आपके मनमें जो युद्धके लिये महान् उत्साह बना हुआ है, यह कोई अद्भुत बात नहीं है। आपलोगोंका मुझपर महान् प्रेम भी है, तथापि यह पराक्रम प्रकट करनेका समय नहीं है ॥ १७ ॥

विश्रम्यैकां निशामद्य भवद्भिः सहितो रणे ।
प्रतियोत्स्याम्यहं शत्रूञ्श्वो न मेऽस्त्यत्र संशयः ॥ १८ ॥

आज एक रात विश्राम करके कल सबेरे रणभूमिमें आप लोगोंके साथ रहकर मैं शत्रुओंके साथ युद्ध करूँगा, इसमें संशय नहीं है ॥ १८ ॥

संजय उवाच

एवमुक्तोऽब्रवीद् द्रौणी राजानं युद्धदुर्मदम् ।
उत्तिष्ठ राजन् भद्रं ते विजेष्यामो वयं परान् ॥ १९ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! दुर्योधनके ऐसा कहनेपर द्रोणकुमारने उस रणदुर्मद राजासे इस प्रकार कहा—'महाराज! उठो, तुम्हारा कल्याण हो। हम शत्रुओंपर विजय प्राप्त करेंगे ॥

इष्टापूर्तेन दानेन सत्येन च जपेन च ।
शपे राजन् यथा ह्यद्य निहनिष्यामि सोमकान् ॥ २० ॥

'राजन्! मैं अपने इष्टापूर्त कर्म, दान, सत्य और जपकी शपथ खाकर कहता हूँ कि आज सोमकोंका संहार कर डालूँगा ॥

मा स्म यज्ञकृतां प्रीतिमाप्नुयां सज्जनोचिताम् ।
यदीमां रजनीं व्युष्टां न हि हन्मि परान् रणे ॥ २१ ॥

'यदि यह रात बीतते ही प्रातःकाल रणभूमिमें शत्रुओंको न मार डालूँ तो मुझे सज्जन पुरुषोंके योग्य और यज्ञकर्ताओंको प्राप्त होनेवाली प्रसन्नता न प्राप्त हो ॥ २१ ॥

नाहत्वा सर्वपञ्चालान् विमोक्ष्ये कवचं विभो ।
इति सत्यं ब्रवीम्येतत्तन्मे शृणु जनाधिप ॥ २२ ॥

'प्रभो! नरेश्वर! मैं समस्त पाञ्चालोंका संहार किये बिना अपना कवच नहीं उतारूँगा, यह तुमसे सच्ची बात कहता हूँ। मेरे इस कथनको तुम ध्यानसे सुनो' ॥ २२ ॥

तेषु सम्भाषमाणेषु व्याधास्तं देशमाययुः।
मांसभारपरिश्रान्ताः पानीयार्थं यदृच्छया ॥ २३ ॥

वे इस प्रकार बात कर ही रहे थे कि मांसके भारसे थके हुए बहुत-से व्याध उस स्थानपर पानी पीनेके लिये अकस्मात् आ पहुँचे ॥ २३ ॥

ते तत्र धिष्ठितास्तेषां सर्वं तद् वचनं रहः।
दुर्योधनवचश्चैव शुश्रुवुः संगता मिथः ॥ २४ ॥

उन्होंने वहाँ खड़े होकर उनकी एकान्तमें होनेवाली सारी बातें सुन लीं। परस्पर मिले हुए उन व्याधोंने दुर्योधनकी भी बात सुनी ॥ २४ ॥

तेऽपि सर्वे महेष्वासा अयुद्धार्थिनि कौरवे।
निर्बन्धं परमं चक्रुस्तदा वै युद्धकाङ्क्षिणः ॥ २५ ॥

कुरुराज दुर्योधन युद्ध नहीं चाहता था तो भी युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले वे सभी महाधनुर्धर योद्धा उससे युद्ध छेड़नेके लिये बड़ा आग्रह कर रहे थे ॥ २५ ॥

तांस्तथा समुदीक्ष्याथ कौरवाणां महारथान्।
अयुद्धमनसं चैव राजानं स्थितमम्भसि ॥ २६ ॥
तेषां श्रुत्वा च संवादं राज्ञश्च सलिले सतः।
व्याधाभ्यजानन् राजेन्द्र सलिलस्थं सुयोधनम् ॥ २७ ॥

राजन्! उन कौरवमहारथियोंकी वैसी मनोवृत्ति जानकर जलमें ठहरे हुए राजा दुर्योधनके मनमें युद्धका उत्साह न देखकर और सलिलनिवासी नरेशके साथ उन तीनोंका संवाद सुनकर व्याध यह समझ गये कि 'दुर्योधन इसी सरोवरके जलमें छिपा हुआ है' ॥ २६-२७ ॥

ते पूर्वं पाण्डुपुत्रेण पृष्टा ह्यासन् सुतं तव।
यदृच्छोपगतास्तत्र राजानं परिमार्गता ॥ २८ ॥

पहले राजा दुर्योधनकी खोज करते हुए पाण्डुकुमार युधिष्ठिरने दैववश अपने पास पहुँचे हुए उन व्याधोंसे आपके पुत्रका पता पूछा था ॥ २८ ॥

ततस्ते पाण्डुपुत्रस्य स्मृत्वा तद् भाषितं तदा।
अन्योन्यमब्रुवन् राजन् मृगव्याधाः शनैरिव ॥ २९ ॥

राजन्! उस समय पाण्डुपुत्रकी कही हुई बात याद करके वे व्याध आपसमें धीरे-धीरे बोले—॥ २९ ॥

दुर्योधनं ख्यापयामो धनं दास्यति पाण्डवः।
सुव्यक्तमिह नः ख्यातो ह्रदे दुर्योधनो नृपः ॥ ३० ॥

'यदि हम दुर्योधनका पता बता दें तो पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर हमें धन देंगे। हमें तो यहाँ यह स्पष्टरूपसे ज्ञात हो गया कि राजा दुर्योधन इसी सरोवरमें छिपा हुआ है ॥ ३० ॥

तस्माद् गच्छामहे सर्वे यत्र राजा युधिष्ठिरः।
आख्यातुं सलिले सुप्तं दुर्योधनममर्षणम् ॥ ३१ ॥

अतः जलमें सोये हुए अमर्षशील दुर्योधनका पता बतानेके लिये हम सब लोग उस स्थानपर चलें, जहाँ राजा युधिष्ठिर मौजूद हैं ॥ ३१ ॥

धृतराष्ट्रात्मजं तस्मै भीमसेनाय धीमते।
शयानं सलिले सर्वे कथयामो धनुर्भृते ॥ ३२ ॥

'बुद्धिमान् धनुर्धर भीमसेनको हम सब यह बता दें कि धृतराष्ट्रका पुत्र दुर्योधन जलमें सो रहा है ॥ ३२ ॥

स नो दास्यति सुप्रीतो धनानि बहुलान्युत।
किं नो मांसेन शुष्केण परिक्लिष्टेन शोषिणा ॥ ३३ ॥

'इससे अत्यन्त प्रसन्न होकर वे हमें बहुत धन देंगे। फिर हमें शरीरका रक्त सुखा देनेवाले इस सूखे मांसको ढोकर व्यर्थ कष्ट उठानेकी क्या आवश्यकता है?' ॥ ३३ ॥

एवमुक्त्वा तु ते व्याधाः सम्प्रहृष्टा धनार्थिनः।
मांसभारानुपादाय प्रययुः शिबिरं प्रति ॥ ३४ ॥

इस प्रकार परस्पर वार्तालाप करके धनकी अभिलाषा रखनेवाले वे व्याध बड़े प्रसन्न हुए और मांसके बोझ उठाकर पाण्डव-शिविरकी ओर चल दिये ॥ ३४ ॥

पाण्डवापि महाराज लब्धलक्ष्याः प्रहारिणः।
अपश्यमानाः समरे दुर्योधनमवस्थितम् ॥ ३५ ॥
निकृतेस्तस्य पापस्य ते पारं गमनेप्सवः।
चारान् सम्प्रेषयामासुः समन्तात् तद्रणाजिरे ॥ ३६ ॥

महाराज! प्रहार करनेमें कुशल पाण्डवोंने अपना लक्ष्य सिद्ध कर लिया था; उन्होंने दुर्योधनको समराङ्गणमें खड़ा न देख उस पापीके किये हुए छल-कपटका बदला चुकाकर वैरके पार जानेकी इच्छासे उस संग्रामभूमिमें चारों ओर गुप्तचर भेज रक्खे थे ॥ ३५-३६ ॥

आगम्य तु ततः सर्वे नष्टं दुर्योधनं नृपम्।
न्यवेदयन्त सहिता धर्मराजस्य सैनिकाः ॥ ३७ ॥

धर्मराजके उन सभी गुप्तचर सैनिकोंने एक साथ लौटकर यह निवेदन किया कि 'राजा दुर्योधन लापता हो गया है' ॥ ३७ ॥

तेषां तद् वचनं श्रुत्वा चाराणां भरतर्षभ।
चिन्तामभ्यगमत् तीव्रां निःशश्वास च पार्थिवः ॥ ३८ ॥

भरतश्रेष्ठ! उन गुप्तचरोंकी बात सुनकर राजा युधिष्ठिर घोर चिन्तामें पड़ गये और लंबी साँस खींचने लगे ॥ ३८ ॥

अथ स्थितानां पाण्डूनां दीनानां भरतर्षभ।
तस्माद् देशादपक्रम्य त्वरिता लुब्धका विभो ॥ ३९ ॥
आजग्मुः शिबिरं हृष्टा दृष्ट्वा दुर्योधनं नृपम्।
वार्यमाणाः प्रविष्टाश्च भीमसेनस्य पश्यतः ॥ ४० ॥

भरतभूषण! नरेश! तदनन्तर जब पाण्डव खिन्न होकर बैठे हुए थे, उसी समय वे व्याध राजा दुर्योधनको अपनी आँखों देखकर तुरंत ही उस स्थानसे हट गये और बड़े हर्षके साथ पाण्डव-शिविरमें जा पहुँचे। द्वारपालोंके रोकनेपर भी वे भीमसेनके देखते-देखते भीतर घुस गये ॥ ३९-४० ॥

ते तु पाण्डवमासाद्य भीमसेनं महाबलम्।
तस्मै तत् सर्वमाचख्युर्यद् वृत्तं यच्च वै श्रुतम् ॥ ४१ ॥

महाबली पाण्डुपुत्र भीमसेनके पास जाकर उन्होंने सरोवरके तटपर जो कुछ हुआ था और जो कुछ सुननेमें आया था, वह सब कह सुनाया ॥ ४१ ॥

ततो वृकोदरो राजन् दत्त्वा तेषां धनं बहु।

धर्मराजाय तत् सर्वमाचचक्षे परंतपः ॥ ४२ ॥

राजन् ! तब शत्रुओंको संताप देनेवाले भीमने उन व्याधोंको बहुत धन देकर धर्मराजसे सारा समाचार कहा ॥४२॥

असौ दुर्योधनो राजन् विज्ञातो मम लुब्धकैः ।
संस्तभ्य सलिलं शेते यस्यार्थे परितप्यसे ॥ ४३ ॥

वे बोले—'धर्मराज ! मेरे व्याधोंने राजा दुर्योधनका पता लगा लिया है । आप जिसके लिये संतप्त हैं, वह मायासे पानी बाँधकर सरोवरमें सो रहा है' ॥ ४३ ॥

तद् वचो भीमसेनस्य प्रियं श्रुत्वा विशाम्पते ।
अजातशत्रुः कौन्तेयो हृष्टोऽभूत् सह सोदरैः ॥ ४४ ॥

प्रजानाथ ! भीमसेनका वह प्रिय वचन सुनकर अजातशत्रु कुन्तीकुमार युधिष्ठिर अपने भाइयोंके साथ बड़े प्रसन्न हुए॥

तं च श्रुत्वा महेष्वासं प्रविष्टं सलिलह्रदे ।
क्षिप्रमेव ततोऽगच्छन् पुरस्कृत्य जनार्दनम् ॥ ४५ ॥

महाधनुर्धर दुर्योधनको पानीसे भरे सरोवरमें घुसा सुनकर राजा युधिष्ठिर भगवान् श्रीकृष्णको आगे करके शीघ्र ही वहाँसे चल दिये ॥ ४५ ॥

ततः किलकिलाशब्दः प्रादुरासीद् विशाम्पते ।
पाण्डवानां प्रहृष्टानां पञ्चालानां च सर्वशः ॥ ४६ ॥

प्रजानाथ ! फिर तो हर्षमें भरे हुए पाण्डव और पाञ्चालोंकी किलकिलाहटका शब्द सब ओर गूँजने लगा ॥ ४६ ॥

सिंहनादांस्ततश्चक्रुः क्ष्वेडांश्च भरतर्षभ ।
त्वरिताः क्षत्रिया राजञ्जग्मुर्द्वैपायनं ह्रदम् ॥ ४७ ॥

भरतभूषण नरेश ! वे सभी क्षत्रिय सिंहनाद एवं गर्जना करने लगे तथा तुरंत ही द्वैपायन नामक सरोवरके पास जा पहुँचे ॥ ४७ ॥

ज्ञातः पापो धार्तराष्ट्रो दृष्टश्चेत्यसकृद्रणे ।
प्राक्रोशन् सोमकास्तत्र हृष्टरूपाः समन्ततः ॥ ४८ ॥

हर्षमें भरे हुए सोमक वीर रणभूमिमें सब ओर पुकार-पुकारकर कहने लगे 'धृतराष्ट्रके पापी पुत्रका पता लग गया और उसे देख लिया गया' ॥ ४८ ॥

तेषामाशु प्रयातानां रथानां तत्र वेगिनाम् ।
बभूव तुमुलः शब्दो दिविस्पृक् पृथिवीपते ॥ ४९ ॥

पृथ्वीनाथ ! वहाँ शीघ्रतापूर्वक यात्रा करनेवाले उनके वेगशाली रथोंका घोर घर्घर शब्द आकाशमें व्याप्त हो गया॥

दुर्योधनं परीप्सन्तस्तत्र तत्र युधिष्ठिरम् ।
अन्वयुस्त्वरितास्ते वै राजानं श्रान्तवाहनाः ॥ ५० ॥
अर्जुनो भीमसेनश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यः शिखण्डी चापराजितः ॥ ५१ ॥
उत्तमौजा युधामन्युः सात्यकिश्च महारथः ।
पञ्चालानां च ये शिष्टा द्रौपदेयाश्च भारत ॥ ५२ ॥
हयाश्च सर्वे नागाश्च शतशश्च पदातयः ।

भारत ! उस समय अर्जुन, भीमसेन, माद्रीकुमार पाण्डुपुत्र नकुल-सहदेव, पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न, अपराजित वीर शिखण्डी, उत्तमौजा, युधामन्यु, महारथी सात्यकि, द्रौपदीके पाँचों पुत्र तथा पाञ्चालोंमेंसे जो जीवित बच गये थे, वे वीर दुर्योधनको पकड़नेकी इच्छासे अपने वाहनोंके थके होनेपर भी बड़ी उतावलीके साथ राजा युधिष्ठिरके पीछे-पीछे गये । उनके साथ सभी घुड़सवार, हाथीसवार और सैकड़ों पैदल सैनिक भी थे ॥ ५०—५२½ ॥

ततः प्राप्तो महाराज धर्मराजः प्रतापवान् ॥ ५३ ॥
द्वैपायनं ह्रदं घोरं यत्र दुर्योधनोऽभवत् ।

महाराज ! तत्पश्चात् प्रतापी धर्मराज युधिष्ठिर उस भयंकर द्वैपायनह्रदके तटपर जा पहुँचे, जिसके भीतर दुर्योधन छिपा हुआ था ॥ ५३½ ॥

शीतामलजलं हृद्यं द्वितीयमिव सागरम् ॥ ५४ ॥
मायया सलिलं स्तभ्य यत्राभूत् ते स्थितः सुतः ।
अत्यद्भुतेन विधिना दैवयोगेन भारत ॥ ५५ ॥

उसका जल शीतल और निर्मल था । वह देखनेमें मनोरम और दूसरे समुद्रके समान विशाल था । भारत ! उसीके भीतर मायाद्वारा जलको स्तम्भित करके दैवयोग एवं अद्भुत विधिसे आपका पुत्र विश्राम कर रहा था ॥ ५४-५५ ॥

सलिलान्तर्गतः शेते दुर्दर्शः कस्यचित् प्रभो ।
मानुषस्य मनुष्येन्द्र गदाहस्तो जनाधिपः ॥ ५६ ॥

प्रभो ! नरेन्द्र ! हाथमें गदा लिये राजा दुर्योधन जलके भीतर सोया था । उस समय किसी भी मनुष्यके लिये उसको देखना कठिन था ॥ ५६ ॥

ततो दुर्योधनो राजा सलिलान्तर्गतो वसन् ।
शुश्रुवे तुमुलं शब्दं जलदोपमनिःस्वनम् ॥ ५७ ॥

तदनन्तर पानीके भीतर बैठे हुए राजा दुर्योधनने मेघकी गर्जनाके समान भयंकर शब्द सुना ॥ ५७ ॥

युधिष्ठिरश्च राजेन्द्र तं ह्रदं सह सोदरैः ।
आजगाम महाराज तव पुत्रवधाय वै ॥ ५८ ॥

राजेन्द्र ! महाराज ! आपके पुत्रका वध करनेके लिये राजा युधिष्ठिर अपने भाइयोंके साथ उस सरोवरके तटपर आ पहुँचे ॥ ५८ ॥

महता शङ्खनादेन रथनेमिस्वनेन च ।
ऊर्ध्वं धुन्वन् महारेणुं कम्पयंश्चापि मेदिनीम् ॥ ५९ ॥
यौधिष्ठिरस्य सैन्यस्य श्रुत्वा शब्दं महारथाः ।
कृतवर्मा कृपो द्रौणी राजानमिदमब्रुवन् ॥ ६० ॥

वे महान् शङ्खनाद तथा रथके पहियोंकी घर्घराहटसे पृथ्वीको कँपाते और धूलका महान् ढेर ऊपर उड़ाते हुए वहाँ आये थे । युधिष्ठिरकी सेनाका कोलाहल सुनकर कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा तीनों महारथी राजा दुर्योधनसे इस प्रकार बोले—॥ ५९-६० ॥

इमे ह्यायान्ति संहृष्टाः पाण्डवा जितकाशिनः ।
अपयास्यामहे तावदनुजानातु नो भवान् ॥ ६१ ॥

'ये विजयसे उल्लसित होनेवाले पाण्डव बड़े हर्षमें भर-

कर इधर ही आ रहे हैं। अतः हमलोग यहाँसे हट जायँगे। इसके लिये तुम हमें आज्ञा प्रदान करो' ॥ ६१ ॥

दुर्योधनस्तु तच्छ्रुत्वा तेषां तत्र तरस्विनाम्।
तथेत्युक्त्वा ह्रदं तं वै माययास्तम्भयत् प्रभो ॥ ६२ ॥

प्रभो! उन वेगशाली वीरोंकी वह बात सुनकर दुर्योधनने 'तथास्तु' कहकर उस सरोवरके जलको पुनः मायाद्वारा स्तम्भित कर दिया ॥ ६२ ॥

ते त्वनुज्ञाप्य राजानं भृशं शोकपरायणाः।
जग्मुर्दूरे महाराज कृपप्रभृतयो रथाः ॥ ६३ ॥

महाराज! राजाकी आज्ञा लेकर अत्यन्त शोकमें डूबे हुए कृपाचार्य आदि महारथी वहाँसे दूर चले गये ॥ ६३ ॥

ते गत्वा दूरमध्वानं न्यग्रोधं प्रेक्ष्य मारिष।
न्यविशन्त भृशं श्रान्ताश्चिन्तयन्तो नृपं प्रति ॥ ६४ ॥

मान्यवर! दूरके मार्गपर जाकर उन्हें एक बरगदका वृक्ष दिखायी दिया। वे अत्यन्त थके होनेके कारण राजा दुर्योधनके विषयमें चिन्ता करते हुए उसीके नीचे बैठ गये॥

विष्टभ्य सलिलं सुप्तो धार्तराष्ट्रो महाबलः।
पाण्डवाश्चापि सम्प्राप्तास्तं देशं युद्धमीप्सवः ॥ ६५ ॥

इधर महाबली धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन पानी बाँधकर सो गया। इतनेहीमें युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले पाण्डव भी वहाँ आ पहुँचे ॥ ६५ ॥

कथं नु युद्धं भविता कथं राजा भविष्यति।
कथं नु पाण्डवा राजन् प्रतिपत्स्यन्ति कौरवम् ॥ ६६ ॥
इत्येवं चिन्तयानास्तु रथेभ्योऽश्वान् विमुच्यते।
तत्रासांचक्रिरे राजन् कृपप्रभृतयो रथाः ॥ ६७ ॥

राजन्! उधर कृपाचार्य आदि महारथी रथोंसे घोड़ोंको खोलकर यह सोचने लगे कि 'अब युद्ध किस तरह होगा? राजा दुर्योधनकी क्या दशा होगी और पाण्डव किस प्रकार कुरुराज दुर्योधनका पता पायेंगे' ऐसी चिन्ता करते हुए वे वहाँ बैठकर आराम करने लगे ॥ ६६-६७ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

पाण्डवोंका द्वैपायनसरोवरपर जाना, वहाँ युधिष्ठिर और श्रीकृष्णकी बातचीत तथा तालाबमें छिपे हुए दुर्योधनके साथ युधिष्ठिरका संवाद

संजय उवाच

ततस्तेष्वपयातेषु रथेषु त्रिषु पाण्डवाः।
ते ह्रदं प्रत्यपद्यन्त यत्र दुर्योधनोऽभवत् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! उन तीनों रथियोंके हट जानेपर पाण्डव उस सरोवरके तटपर आये, जिसमें दुर्योधन छिपा हुआ था ॥ १ ॥

आसाद्य च कुरुश्रेष्ठ तदा द्वैपायनं ह्रदम्।
स्तम्भितं धार्तराष्ट्रेण दृष्ट्वा तं सलिलाशयम् ॥ २ ॥
वासुदेवमिदं वाक्यमब्रवीत् कुरुनन्दनः।
पश्येमां धार्तराष्ट्रेण मायामप्सु प्रयोजिताम् ॥ ३ ॥

कुरुश्रेष्ठ! द्वैपायन-कुण्डपर पहुँचकर युधिष्ठिरने देखा कि दुर्योधनने इस जलाशयके जलको स्तम्भित कर दिया है। यह देखकर कुरुनन्दन युधिष्ठिरने भगवान् वासुदेवसे इस प्रकार कहा—'प्रभो! देखिये तो सही, दुर्योधनने जलके भीतर इस मायाका कैसा प्रयोग किया है? ॥ २-३ ॥

विष्टभ्य सलिलं शेते नास्य मानुषतो भयम्।
दैवीं मायामिमां कृत्वा सलिलान्तर्गतो ह्ययम् ॥ ४ ॥

'यह पानीको रोककर सो रहा है। इसे यहाँ मनुष्यसे किसी प्रकारका भय नहीं है; क्योंकि यह इस दैवी मायाका प्रयोग करके जलके भीतर निवास करता है ॥ ४ ॥

निकृत्या निकृतिप्रज्ञो न मे जीवन् विमोक्ष्यते।
यद्यस्य समरे साह्यं कुरुते वज्रभृत् स्वयम् ॥ ५ ॥
तथाप्येनं हतं युद्धे लोका द्रक्ष्यन्ति माधव।

'माधव! यद्यपि यह छल-कपटकी विद्यामें बड़ा चतुर है, तथापि कपट करके मेरे हाथसे जीवित नहीं छूट सकता। यदि समराङ्गणमें साक्षात् वज्रधारी इन्द्र इसकी सहायता करें तो भी युद्धमें इसे सब लोग मरा हुआ ही देखेंगे' ॥ ५½ ॥

वासुदेव उवाच

मायाविन इमां मायां मायया जहि भारत ॥ ६ ॥
मायावी मायया वध्यः सत्यमेतद् युधिष्ठिर।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—भारत! मायावी दुर्योधनकी इस मायाको आप मायाद्वारा ही नष्ट कर डालिये! युधिष्ठिर! मायावीका वध मायासे ही करना चाहिये, यह नीति है ॥ ६½ ॥

क्रियाभ्युपायैर्बहुभिर्मायामप्सु प्रयोज्य च ॥ ७ ॥
जहि त्वं भरतश्रेष्ठ मायात्मानं सुयोधनम्।

भरतश्रेष्ठ! आप बहुत-से रचनात्मक उपायोंद्वारा जलमें मायाका प्रयोग करके मायामय दुर्योधनका वध कीजिये ॥

क्रियाभ्युपायैरिन्द्रेण निहता दैत्यदानवाः ॥ ८ ॥
क्रियाभ्युपायैर्बहुभिर्बलिर्बद्धो महात्मना।
क्रियाभ्युपायैर्बहुभिर्हिरण्याक्षो महासुरः ॥ ९ ॥

रचनात्मक उपायोंसे ही इन्द्रने बहुत-से दैत्य और दानवोंका संहार किया; नाना प्रकारके रचनात्मक उपायोंसे ही महात्मा श्रीहरिने बलिको बाँधा और बहुसंख्यक रचनात्मक उपायोंसे ही उन्होंने महान् असुर हिरण्याक्षका वध किया था ॥ ८-९ ॥

हिरण्यकशिपुश्चैव क्रिययैव निषूदितौ।
वृत्रश्च निहतो राजन् क्रिययैव न संशयः ॥ १० ॥

क्रियात्मक प्रयत्नके द्वारा ही भगवान्ने हिरण्यकशिपुको भी मारा था। राजन्! वृत्रासुरका वध भी क्रियात्मक उपायसे ही हुआ था, इसमें संशय नहीं है ॥ १० ॥

तथा पौलस्त्यतनयो रावणो नाम राक्षसः।
रामेण निहतो राजन् सानुबन्धः सहानुगः ॥ ११ ॥
क्रियया योगमास्थाय तथा त्वमपि विक्रम।

राजन्! पुलस्त्यकुमार विश्रवाका पुत्र रावणनामक राक्षस श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा क्रियात्मक उपाय और युक्ति-कौशलके सहारे ही सम्बन्धियों और सेवकोंसहित मारा गया, उसी प्रकार आप भी पराक्रम प्रकट करें ॥ ११½ ॥

क्रियाभ्युपायैर्निहतौ मया राजन् पुरातनौ ॥ १२ ॥
तारकश्च महादैत्यो विप्रचित्तिश्च वीर्यवान्।

नरेश्वर! पूर्वकालके महादैत्य तारक और पराक्रमी विप्रचित्तिको मैंने क्रियात्मक उपायोंसे ही मारा था ॥ १२½ ॥

वातापिरिल्वलश्चैव त्रिशिराश्च तथा विभो ॥ १३ ॥
सुन्दोपसुन्दावसुरौ क्रिययैव निषूदितौ।
क्रियाभ्युपायैरिन्द्रेण त्रिदिवं भुज्यते विभो ॥ १४ ॥

प्रभो! वातापि, इल्वल, त्रिशिरा तथा सुन्द-उपसुन्द नामक असुर भी कार्यकौशलसे ही मारे गये हैं। क्रियात्मक उपायोंसे ही इन्द्र स्वर्गका राज्य भोगते हैं ॥ १३-१४ ॥

क्रिया बलवती राजन् नान्यत् किंचिद् युधिष्ठिर।
दैत्याश्च दानवाश्चैव राक्षसाः पार्थिवास्तथा ॥ १५ ॥
क्रियाभ्युपायैर्निहताः क्रियां तस्मात् समाचर।

राजन्! कार्यकौशल ही बलवान् है, दूसरी कोई वस्तु नहीं। युधिष्ठिर! दैत्य, दानव, राक्षस तथा बहुत-से भूपाल क्रियात्मक उपायोंसे ही मारे गये हैं; अतः आप भी क्रियात्मक उपायका ही आश्रय लें ॥ १५½ ॥

संजय उवाच

इत्युक्तो वासुदेवेन पाण्डवः संशितव्रतः ॥ १६ ॥
जलस्थं तं महाराज तव पुत्रं महाबलम्।
अभ्यभाषत कौन्तेयः प्रहसन्निव भारत ॥ १७ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! भरतनन्दन! भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर उत्तम एवं कठोर व्रतका पालन करनेवाले पाण्डुकुमार कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने जलमें स्थित हुए आपके महाबली पुत्रसे हँसते हुए-से कहा—॥ १६-१७ ॥

सुयोधन किमर्थोऽयमारम्भोऽप्सु कृतस्त्वया।
सर्वं क्षत्रं घातयित्वा स्वकुलं च विशाम्पते ॥ १८ ॥
जलाशयं प्रविष्टोऽद्य वाञ्छञ्जीवितमात्मनः।
उत्तिष्ठ राजन् युध्यस्व सहास्माभिः सुयोधन ॥ १९ ॥

'प्रजानाथ सुयोधन! तुमने किस लिये पानीमें यह अनुष्ठान आरम्भ किया है। सम्पूर्ण क्षत्रियों तथा अपने कुलका संहार कराकर आज अपनी जान बचानेकी इच्छासे तुम जलाशयमें घुसे बैठे हो। राजा सुयोधन! उठो और हम लोगोंके साथ युद्ध करो ॥ १८-१९ ॥

स ते दर्पो नरश्रेष्ठ स च मानः क्व ते गतः।
यस्त्वं संस्तभ्य सलिलं भीतो राजन् व्यवस्थितः॥ २० ॥

'राजन्! नरश्रेष्ठ! तुम्हारा वह पहलेका दर्प और अभिमान कहाँ चला गया, जो डरके मारे जलका स्तम्भन करके यहाँ छिपे हुए हो? ॥ २० ॥

सर्वे त्वां शूर इत्येवं जना जल्पन्ति संसदि।
व्यर्थं तद् भवतो मन्ये शौर्यं सलिलशायिनः ॥ २१ ॥

'सभामें सब लोग तुम्हें शूरवीर कहा करते हैं। जब तुम भयभीत होकर पानीमें सो रहे हो, तब तुम्हारे उस तथा-कथित शौर्यको मैं व्यर्थ समझता हूँ ॥ २१ ॥

उत्तिष्ठ राजन् युध्यस्व क्षत्रियोऽसि कुलोद्भवः।
कौरवेयो विशेषेण कुलं जन्म च संस्मर ॥ २२ ॥

'राजन्! उठो, युद्ध करो; क्योंकि तुम कुलीन क्षत्रिय हो, विशेषतः कुरुकुलकी संतान हो अपने कुल और जन्म-का स्मरण तो करो ॥ २२ ॥

स कथं कौरवे वंशे प्रशंसञ्जन्म चात्मनः।
युद्धाद् भीतस्ततस्तोयं प्रविश्य प्रतितिष्ठसि ॥ २३ ॥

'तुम तो कौरववंशमें उत्पन्न होनेके कारण अपने जन्मकी प्रशंसा करते थे। फिर आज युद्धसे डरकर पानीके भीतर कैसे घुसे बैठे हो? ॥ २३ ॥

अयुद्धमव्यवस्थानं नैष धर्मः सनातनः।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यं रणे राजन् पलायनम् ॥ २४ ॥

'नरेश्वर! युद्ध न करना अथवा युद्धमें स्थिर न रहकर वहाँसे पीठ दिखाकर भागना यह सनातन धर्म नहीं है। नीच पुरुष ही ऐसे कुमार्गका आश्रय लेते हैं। इससे स्वर्गकी प्राप्ति नहीं होती ॥ २४ ॥

कथं पारमगत्वा हि युद्धे त्वं वै जिजीविषुः।
इमान् निपतितान् दृष्ट्वा पुत्रान् भ्रातॄन् पितॄंस्तथा॥ २५॥
सम्बन्धिनो वयस्यांश्च मातुलान् बान्धवांस्तथा।
घातयित्वा कथं तात ह्रदे तिष्ठसि साम्प्रतम् ॥ २६ ॥

'युद्धसे पार पाये बिना ही तुम्हें जीवित रहनेकी इच्छा कैसे हो गयी? तात! रणभूमिमें गिरे हुए इन पुत्रों, भाइयों और चाचे-ताउओंको देखकर सम्बन्धियों, मित्रों, मामाओं और बन्धु-बान्धवोंका वध कराकर इस समय तालाबमें क्यों छिपे बैठे हो? ॥ २५-२६ ॥

शूरमानी न शूरस्त्वं मृषा वदसि भारत।

शूरोऽहमिति दुर्बुद्धे सर्वलोकस्य शृण्वतः ॥ २७ ॥

'तुम अपनेको शूर तो मानते हो, परंतु शूर हो नहीं। भरतवंशके खोटी बुद्धिवाले नरेश ! तुम सब लोगोंके सुनते हुए व्यर्थ ही कहा करते हो कि 'मैं शूरवीर हूँ' ॥ २७ ॥

न हि शूराः पलायन्ते शत्रून् दृष्ट्वा कथञ्चन ।
ब्रूहि वा त्वं यया वृत्त्या शूर त्यजसि संगरम् ॥ २८ ॥

'जो वास्तवमें शूरवीर हैं, वे शत्रुओंको देखकर किसी तरह भागते नहीं हैं। अपनेको शूर कहनेवाले सुयोधन ! बताओ तो सही, तुम किस वृत्तिका आश्रय लेकर युद्ध छोड़ रहे हो ॥ २८ ॥

स त्वमुत्तिष्ठ युध्यस्व विनीय भयमात्मनः ।
घातयित्वा सर्वसैन्यं भ्रातॄंश्चैव सुयोधन ॥ २९ ॥
नेदानीं जीविते बुद्धिः कार्या धर्मचिकीर्षया ।
क्षत्रधर्ममुपाश्रित्य त्वद्विधेन सुयोधन ॥ ३० ॥

'अतः तुम अपना भय दूर करके उठो और युद्ध करो। सुयोधन ! भाइयों तथा सम्पूर्ण सेनाको मरवाकर क्षत्रिय-धर्मका आश्रय लिये हुए तुम्हारे-जैसे पुरुषको धर्मसम्पादनकी इच्छासे इस समय केवल अपनी जान बचानेका विचार नहीं करना चाहिये ॥ २९-३० ॥

यत् तु कर्णमुपाश्रित्य शकुनिं चापि सौबलम् ।
अमर्त्य इव सम्मोहात् त्वमात्मानं न बुद्धवान्॥ ३१ ॥
तत् पापं सुमहत् कृत्वा प्रतियुद्ध्यस्व भारत ।
कथं हि त्वद्विधो मोहाद् रोचयेत पलायनम् ॥ ३२ ॥

'तुम जो कर्ण और सुबलपुत्र शकुनिका सहारा लेकर मोहवश अपने आपको अजर-अमर-सा मान बैठे थे, अपनेको मनुष्य समझते ही नहीं थे, वह महान् पाप करके अब युद्ध क्यों नहीं करते ? भारत ! उठो, हमारे साथ युद्ध करो। तुम्हारे-जैसा वीर पुरुष मोहवश पीठ दिखाकर भागना कैसे पसंद करेगा ? ॥ ३१-३२ ॥

क्व ते तत् पौरुषं यातं क्व च मानः सुयोधन ।
क्व च विक्रान्तता याता क्व च विस्फूर्जितं महत्॥ ३३ ॥
क्व ते कृतास्त्रता याता किञ्च शेषे जलाशये ।
स त्वमुत्तिष्ठ युध्यस्व क्षत्रधर्मेण भारत ॥ ३४ ॥

'सुयोधन ! तुम्हारा वह पौरुष कहाँ चला गया ? कहाँ है वह तुम्हारा अभिमान ? कहाँ गया पराक्रम ? कहाँ है वह महान् गर्जन-तर्जन ? और कहाँ गया वह अस्त्रविद्याका ज्ञान ? इस समय इस तालाबमें तुम्हें कैसे नींद आ रही है ? भारत ! उठो और क्षत्रियधर्मके अनुसार युद्ध करो ॥ ३३-३४ ॥

अस्मांस्तु वा पराजित्य प्रशाधि पृथिवीमिमाम् ।
अथवा निहतोऽस्माभिर्भूमौ स्वप्स्यसि भारत ॥ ३५ ॥

'भरतनन्दन ! हम सब लोगोंको परास्त करके इस पृथ्वीका शासन करो अथवा हमारे हाथों मारे जाकर सदाके लिये रणभूमिमें सो जाओ ॥ ३५ ॥

एष ते परमो धर्मः सृष्टो धात्रा महात्मना ।
तं कुरुष्व यथातथ्यं राजा भव महारथ ॥ ३६ ॥

'भगवान् ब्रह्माने तुम्हारे लिये यही उत्तम धर्म बनाया है। उस धर्मका यथार्थरूपसे पालन करो। महारथी वीर ! वास्तवमें राजा बनो (राजोचित पराक्रम प्रकट करो)' ॥३६॥

संजय उवाच

एवमुक्तो महाराज धर्मपुत्रेण धीमता ।
सलिलस्थस्तव सुत इदं वचनमब्रवीत् ॥ ३७ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! बुद्धिमान् धर्मपुत्र युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर जलके भीतर स्थित हुए तुम्हारे पुत्रने यह बात कही ॥ ३७ ॥

दुर्योधन उवाच

नैतच्चित्रं महाराज यद् भीः प्राणिनमाविशेत् ।
न च प्राणभयाद् भीतो व्यपयातोऽस्मि भारत॥ ३८ ॥

दुर्योधन बोला—महाराज ! किसी भी प्राणीके मनमें भय समा जाय, यह आश्चर्यकी बात नहीं है; परंतु भरतनन्दन ! मैं प्राणोंके भयसे भागकर यहाँ नहीं आया हूँ ॥३८॥

अरथश्चानिषङ्गी च निहतः पार्ष्णिसारथिः ।
एकश्चाप्यगणः संख्ये प्रत्याश्वासमरोचयम् ॥ ३९ ॥

मेरे पास न तो रथ है और न तरकस। मेरे पार्श्वरक्षक भी मारे जा चुके हैं। मेरी सेना नष्ट हो गयी और मैं युद्धस्थलमें अकेला रह गया था; इस दशामें मुझे कुछ देरतक विश्राम करनेकी इच्छा हुई ॥ ३९ ॥

न प्राणहेतोर्न भयान्न विषादाद् विशाम्पते ।
इदमम्भः प्रविष्टोऽस्मि श्रमात् त्विदमनुष्ठितम् ॥ ४० ॥

प्रजानाथ ! मैं न तो प्राणोंकी रक्षाके लिये, न किसी भयसे और न विषादके ही कारण इस जलमें आ घुसा हूँ। केवल थक जानेके कारण मैंने ऐसा किया है ॥ ४० ॥

त्वं चाश्वसिहि कौन्तेय ये चाप्यनुगतास्तव ।
अहमुत्थाय वः सर्वान् प्रतियोत्स्यामि संयुगे ॥ ४१ ॥

कुन्तीकुमार ! तुम भी कुछ देरतक विश्राम कर लो। तुम्हारे अनुगामी सेवक भी सुस्ता लें। फिर मैं उठकर समराङ्गणमें तुम सब लोगोंके साथ युद्ध करूँगा ॥ ४१ ॥

युधिष्ठिर उवाच

आश्वस्ता एव सर्वे स्म चिरं त्वां मृगयामहे ।
तदिदानीं समुत्तिष्ठ युध्यस्वेह सुयोधन ॥ ४२ ॥

युधिष्ठिरने कहा—सुयोधन ! हम सब लोग तो सुस्ता ही चुके हैं और बहुत देरसे तुम्हें खोज रहे हैं; इसलिये अब तुम उठो और यहीं युद्ध करो ॥ ४२ ॥

हत्वा वा समरे पार्थान् स्फीतं राज्यमवाप्नुहि ।
निहतो वा रणेऽस्माभिर्वीरलोकमवाप्स्यसि ॥ ४३ ॥

संग्राममें समस्त पाण्डवोंको मारकर समृद्धिशाली राज्य

प्राप्त करो अथवा रणभूमिमें हमारे हाथों मारे जाकर वीरोंको मिलने योग्य पुण्यलोकोंमें चले जाओ ॥ ४३ ॥

दुर्योधन उवाच

यदर्थं राज्यमिच्छामि कुरूणां कुरुनन्दन।
त इमे निहताः सर्वे भ्रातरो मे जनेश्वर ॥ ४४ ॥
क्षीणरत्नां च पृथिवीं हतक्षत्रियपुङ्गवाम्।
न ह्युत्सहाम्यहं भोक्तुं विधवामिव योषितम् ॥ ४५ ॥

दुर्योधन बोला—कुरुनन्दन नरेश्वर ! मैं जिनके लिये कौरवोंका राज्य चाहता था, वे मेरे सभी भाई मारे जा चुके हैं। भूमण्डलके सभी क्षत्रियशिरोमणियोंका संहार हो गया है। यहाँके सभी रत्न नष्ट हो गये हैं; अतः विधवा स्त्रीके समान श्रीहीन हुई इस पृथ्वीका उपभोग करनेके लिये मेरे मनमें तनिक भी उत्साह नहीं है ॥ ४४-४५ ॥

अद्यापि त्वहमाशंसे त्वां विजेतुं युधिष्ठिर।
भङ्क्त्वा पाञ्चालपाण्डूनामुत्साहं भरतर्षभ ॥ ४६ ॥

भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिर ! मैं आज भी पाञ्चालों और पाण्डवोंका उत्साह भङ्ग करके तुम्हें जीतनेका हौसला रखता हूँ ॥

न त्विदानीमहं मन्ये कार्यं युद्धेन कर्हिचित्।
द्रोणे कर्णे च संशान्ते निहते च पितामहे ॥ ४७ ॥

किंतु जब द्रोण और कर्ण शान्त हो गये तथा पितामह भीष्म मार डाले गये तो अब मेरी रायमें कभी भी इस युद्धकी कोई आवश्यकता नहीं रही ॥ ४७ ॥

अस्त्विदानीमियं राजन् केवला पृथिवी तव।
असहायो हि को राजा राज्यमिच्छेत् प्रशासितुम् ॥४८॥

राजन् ! अब यह सूनी पृथ्वी तुम्हारी ही रहे। कौन राजा सहायकोंसे रहित होकर राज्य-शासनकी इच्छा करेगा ? ॥

सुहृदस्तादृशान् हित्वा पुत्रान् भ्रातॄन् पितॄनपि।
भवद्भिश्च हृते राज्ये को नु जीवेत मादृशः ॥ ४९ ॥

वैसे हितैषी सुहृदों, पुत्रों, भाइयों और पिताओंको छोड़कर तुमलोगोंके द्वारा राज्यका अपहरण हो जानेपर कौन मेरे-जैसा पुरुष जीवित रहेगा ? ॥ ४९ ॥

अहं वनं गमिष्यामि ह्यजिनैः प्रतिवासितः।
रतिर्हि नास्ति मे राज्ये हतपक्षस्य भारत ॥ ५० ॥

भरतनन्दन ! मैं मृगचर्म धारण करके वनमें चला जाऊँगा। अपने पक्षके लोगोंके मारे जानेसे अब इस राज्यमें मेरा तनिक भी अनुराग नहीं है ॥ ५० ॥

हतबान्धवभूयिष्ठा हताश्वा हतकुञ्जरा।
एषा ते पृथिवी राजन् भुङ्क्ष्वैनां विगतज्वरः ॥ ५१ ॥

राजन् ! यह पृथ्वी, जहाँ मेरे अधिक-से-अधिक भाई-बन्धु, घोड़े और हाथी मारे गये हैं, अब तुम्हारे ही अधिकारमें रहे। तुम निश्चिन्त होकर इसका उपभोग करो ॥ ५१ ॥

वनमेव गमिष्यामि वसानो मृगचर्मणी।
न हि मे निर्जनस्यास्ति जीवितेऽद्य स्पृहा विभो ॥ ५२ ॥

प्रभो ! मैं तो दो मृगछाला धारण करके वनमें ही चला जाऊँगा, जब मेरे स्वजन ही नहीं रहे, तब मुझे भी इस जीवनको सुरक्षित रखनेकी इच्छा नहीं है ॥ ५२ ॥

गच्छ त्वं भुङ्क्ष्व राजेन्द्र पृथिवीं निहतेश्वराम्।
हतयोधां नष्टरत्नां क्षीणवृत्तिर्यथासुखम् ॥ ५३ ॥

राजेन्द्र ! जाओ, जिसके स्वामीका नाश हो गया है, योद्धा मारे गये हैं और सारे रत्न नष्ट हो गये हैं, उस पृथ्वीका आनन्दपूर्वक उपभोग करो; क्योंकि तुम्हारी जीविका क्षीण हो गयी थी ॥ ५३ ॥

संजय उवाच

दुर्योधनं तव सुतं सलिलस्थं महायशाः।
श्रुत्वा तु करुणं वाक्यमभाषत युधिष्ठिरः ॥ ५४ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! महायशस्वी युधिष्ठिरने वह करुणायुक्त वचन सुनकर पानीमें स्थित हुए आपके पुत्र दुर्योधनसे इस प्रकार कहा ॥ ५४ ॥

युधिष्ठिर उवाच

आर्तप्रलापान्मा तात सलिलस्थः प्रभाषिथाः।
नैतन्मनसि मे राजन् वाशितं शकुनेरिव ॥ ५५ ॥

युधिष्ठिर बोले—नरेश्वर ! तुम जलमें स्थित होकर आर्त पुरुषोंके समान प्रलाप न करो। तात ! चिड़ियोंके चहचहानेके समान तुम्हारी यह बात मेरे मनमें कोई अर्थ नहीं रखती है ॥

यदि वापि समर्थः स्यास्त्वं दानाय सुयोधन।
नाहमिच्छेयमवनिं त्वया दत्तां प्रशासितुम् ॥ ५६ ॥

सुयोधन ! यदि तुम इसे देनेमें समर्थ होते तो भी मैं तुम्हारी दी हुई इस पृथ्वीपर शासन करनेकी इच्छा नहीं रखता ॥ ५६ ॥

अधर्मेण न गृह्णीयां त्वया दत्तां महीमिमाम्।
न हि धर्मः स्मृतो राजन् क्षत्रियस्य प्रतिग्रहः ॥ ५७ ॥

राजन् ! तुम्हारी दी हुई इस भूमिको मैं अधर्मपूर्वक नहीं ले सकता; क्षत्रियके लिये दान लेना धर्म नहीं बताया गया है॥

त्वया दत्तां न चेच्छेयं पृथिवीमखिलामहम्।
त्वां तु युद्धे विनिर्जित्य भोक्तास्मि वसुधामिमाम्॥ ५८॥

तुम्हारे देनेपर इस सम्पूर्ण पृथ्वीको भी मैं नहीं लेना चाहता। तुम्हें युद्धमें परास्त करके ही इस वसुधाका उपभोग करूँगा ॥ ५८ ॥

अनीश्वरश्च पृथिवीं कथं त्वं दातुमिच्छसि।
त्वयेयं पृथिवी राजन् किन्न दत्ता तदैव हि ॥ ५९ ॥
धर्मतो याचमानानां प्रशमार्थं कुलस्य नः।

अब तो तुम स्वयं ही इस पृथ्वीके स्वामी नहीं रहे; फिर इसका दान कैसे करना चाहते हो ? राजन् ! जब हम लोग कुलमें शान्ति बनाये रखनेके लिये पहले धर्मके अनुसार अपना ही राज्य माँग रहे थे, उसी समय तुमने हमें यह पृथ्वी क्यों नहीं दे दी ॥ ५९½ ॥

वार्ष्णेयं प्रथमं राजन् प्रत्याख्याय महाबलम् ॥ ६० ॥
किमिदानीं ददासि त्वं को हि ते चित्तविभ्रमः।

नरेश्वर ! पहले महाबली भगवान् श्रीकृष्णको हमारे लिये

राज्य देनेसे इन्कार करके इस समय क्यों दे रहे हो ? तुम्हारे चित्तमें यह कैसा भ्रम छा रहा है ? ॥ ६०½ ॥

अभियुक्तस्तु को राजा दातुमिच्छेद्धि मेदिनीम्॥ ६१ ॥
न त्वमद्य महीं दातुमीशः कौरवनन्दन ।
आच्छेत्तुं वा बलाद् राजन् स कथं दातुमिच्छसि॥ ६२॥

जो शत्रुओंसे आक्रान्त हो, ऐसा कौन राजा किसीको भूमि देनेकी इच्छा करेगा ? कौरवनन्दन नरेश ! अब न तो तुम किसीको पृथ्वी दे सकते हो और न बलपूर्वक उसे छीन ही सकते हो। ऐसी दशामें तुम्हें भूमि देनेकी इच्छा कैसे हो गयी?॥

मां तु निर्जित्य संग्रामे पालयेमां वसुन्धराम् ।
सूच्यग्रेणापि यद् भूमेरपि भ्रियेत भारत ॥ ६३ ॥
तन्मात्रमपि तन्मह्यं न ददाति पुरा भवान् ।
स कथं पृथिवीमेतां प्रददासि विशाम्पते ॥ ६४ ॥

मुझे संग्राममें जीतकर इस पृथ्वीका पालन करो । भारत! पहले तो तुम सूईकी नोकसे जितना छिद सके, भूमिका उतना-सा भाग भी मुझे नहीं दे रहे थे । प्रजानाथ ! फिर आज यह सारी पृथ्वी कैसे दे रहे हो ? ॥ ६३-६४ ॥

सूच्यग्रं नात्यजः पूर्वं स कथं त्यजसि क्षितिम् ।
एवमैश्वर्यमासाद्य प्रशास्य पृथिवीमिमाम् ॥ ६५ ॥
को हि मूढो व्यवस्येत शत्रोर्दातुं वसुन्धराम् ।

पहले तो तुम सूईकी नोक बराबर भी भूमि नहीं छोड़ रहे थे, अब सारी पृथ्वी कैसे त्याग रहे हो ? इस प्रकार ऐश्वर्य पाकर इस वसुधाका शासन करके कौन मूर्ख शत्रुके हाथमें अपनी भूमि देना चाहेगा ? ॥ ६५½ ॥

त्वं तु केवलमौर्ख्येण विमूढो नावबुध्यसे ॥ ६६ ॥
पृथिवीं दातुकामोऽपि जीवितेन विमोक्ष्यसे ।

तुम तो केवल मूर्खतावश विवेक खो बैठे हो; इसीलिये यह नहीं समझते कि आज भूमि देनेकी इच्छा करनेपर भी तुम्हें अपने जीवनसे हाथ धोना पड़ेगा ॥ ६६½ ॥

अस्मान् वा त्वं पराजित्य प्रशाधि पृथिवीमिमाम्॥ ६७॥
अथवा निहतोऽस्माभिर्व्रज लोकाननुत्तमान् ।

या तो हमलोगोंको परास्त करके तुम्हीं इस पृथ्वीका शासन करो या हमारे हाथों मारे जाकर परम उत्तम लोकोंमें चले जाओ ॥ ६७½ ॥

आवयोर्जीवतो राजन् मयि च त्वयि च ध्रुवम् ॥ ६८ ॥
संशयः सर्वभूतानां विजये नौ भविष्यति ।

राजन् ! मेरे और तुम्हारे दोनोंके जीते-जी हमारी विजयके विषयमें समस्त प्राणियोंको संदेह बना रहेगा ॥ ६८½ ॥

जीवितं तव दुष्प्रज्ञ मयि सम्प्रति वर्तते ॥ ६९ ॥
जीवयेयमहं कामं न तु त्वं जीवितुं क्षमः ।

दुर्मते ! इस समय तुम्हारा जीवन मेरे हाथमें है । मैं इच्छानुसार तुम्हें जीवनदान दे सकता हूँ; परंतु तुम स्वेच्छापूर्वक जीवित रहनेमें समर्थ नहीं हो ॥ ६९½ ॥

दहने हि कृतो यत्नस्त्वयास्मासु विशेषतः ॥ ७० ॥
आशीविषैर्विषैश्चापि जले चापि प्रवेशनैः ।
त्वया विनिकृता राजन् राज्यस्य हरणेन च ॥ ७१ ॥
अप्रियाणां च वचनैर्द्रौपद्याः कर्षणेन च ।
एतस्मात् कारणात् पाप जीवितं ते न विद्यते ॥ ७२ ॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ युध्यस्व युद्धे श्रेयो भविष्यति ।

याद है न, तुमने हमलोगोंको जला डालनेके लिये विशेष प्रयत्न किया था । भीमको विषधर सर्पोंसे डसवाया, विष खिलाकर उन्हें पानीमें डुबाया, हमलोगोंका राज्य छीनकर हमें अपने कपटजालका शिकार बनाया, द्रौपदीको कटु वचन सुनाये और उसके केश खींचे । पापी ! इन सब कारणोंसे तुम्हारा जीवन नष्ट-सा हो चुका है । उठो-उठो, युद्ध करो; इसीसे तुम्हारा कल्याण होगा ॥ ७०–७२½ ॥

एवं तु विविधा वाचो जययुक्ताः पुनः पुनः ।
कीर्तयन्ति स्म ते वीरास्तत्र तत्र जनाधिप ॥ ७३ ॥

नरेश्वर ! वे विजयी वीर पाण्डव इस प्रकार वहाँ बारम्बार नाना प्रकारकी बातें कहने लगे ॥ ७३ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि सुयोधनयुधिष्ठिरसंवादे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें दुर्योधन-युधिष्ठिरसंवादविषयक इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

युधिष्ठिरके कहनेसे दुर्योधनका तालाबसे बाहर होकर किसी एक पाण्डवके साथ गदायुद्धके लिये तैयार होना

धृतराष्ट्र उवाच

एवं संतर्ज्यमानस्तु मम पुत्रो महीपतिः ।
प्रकृत्या मन्युमान् वीरः कथमासीत् परंतपः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! शत्रुओंको संताप देनेवाला मेरा वीर पुत्र राजा दुर्योधन स्वभावसे ही क्रोधी था । जब युधिष्ठिरने उसे इस प्रकार फटकारा, तब उसकी कैसी दशा हुई ? ॥ १ ॥

न हि संतर्जना तेन श्रुतपूर्वा कथञ्चन ।
राजभावेन मान्यश्च सर्वलोकस्य सोऽभवत् ॥ २ ॥

उसने पहले कभी किसी तरह ऐसी फटकार नहीं सुनी थी; क्योंकि राजा होनेके कारण वह सब लोगोंके सम्मानका पात्र था ॥ २ ॥

यस्यातपत्रच्छायापि स्वका भानोस्तथा प्रभा ।
खेदायैवाभिमानित्वात् सहेत् सैवं कथं गिरः ॥ ३ ॥

अभिमानी होनेके कारण जिसके मनमें अपने छत्रकी छाया और सूर्यकी प्रभा भी खेद ही उत्पन्न करती थी, वह ऐसी कठोर बातें कैसे सह सकता था ? ॥ ३ ॥

इयं च पृथिवी सर्वा सम्लेच्छाटविका भृशम्।
प्रसादाद् ध्रियते यस्य प्रत्यक्षं तव संजय ॥ ४ ॥

संजय! तुमने तो प्रत्यक्ष ही देखा था कि म्लेच्छों तथा जंगली जातियोंसहित यह सारी पृथ्वी दुर्योधनकी कृपासे ही जीवन धारण करती थी ॥ ४ ॥

स तथा तर्ज्यमानस्तु पाण्डुपुत्रैर्विशेषतः।
विहीनश्च स्वकैर्भृत्यैर्निर्जने चावृतो भृशम् ॥ ५ ॥
स श्रुत्वा कटुका वाचो जययुक्ताः पुनः पुनः।
किमब्रवीत् पाण्डवेयांस्तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ६ ॥

इस समय वह अपने सेवकोंसे हीन हो चुका था और एकान्त स्थानमें घिर गया था। उस दशामें विशेषतः पाण्डवोंने जब उसे वैसी कड़ी फटकार सुनायी, तब शत्रुओंके विजयसे युक्त उन कटुवचनोंको बारंबार सुनकर दुर्योधनने पाण्डवोंसे क्या कहा? यह मुझे बताओ ॥ ५-६ ॥

संजय उवाच

तर्ज्यमानस्तदा राजन्नुदकस्थस्तवात्मजः।
युधिष्ठिरेण राजेन्द्र भ्रातृभिः सहितेन ह ॥ ७ ॥
श्रुत्वा स कटुका वाचो विषमस्थो नराधिपः।
दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य सलिलस्थः पुनः पुनः ॥ ८ ॥
सलिलान्तर्गतो राजा धुन्वन् हस्तौ पुनः पुनः।
मनश्चकार युद्धाय राजानं चाभ्यभाषत ॥ ९ ॥

संजयने कहा—राजाधिराज! राजन्! उस समय भाइयोंसहित युधिष्ठिरने जब इस प्रकार फटकारा, तब जलमें खड़े हुए आपके पुत्रने उन कठोर वचनोंको सुनकर गरम-गरम लंबी साँस छोड़ी। राजा दुर्योधन विषम परिस्थितिमें पड़ गया था और पानीमें स्थित था; इसलिये बारंबार उच्छ्वास लेता रहा। उसने जलके भीतर ही अनेक बार दोनों हाथ हिलाकर मन-ही मन युद्धका निश्चय किया और राजा युधिष्ठिरसे इस प्रकार कहा—॥ ७—९ ॥

यूयं ससुहृदः पार्थाः सर्वे सरथवाहनाः।
अहमेकः परिद्यूनो विरथो हतवाहनः ॥ १० ॥

'तुम सभी पाण्डव अपने हितैषी मित्रोंको साथ लेकर आये हो। तुम्हारे रथ और वाहन भी मौजूद हैं। मैं अकेला थका-मादा, रथहीन और वाहनशून्य हूँ ॥ १० ॥

आत्तशस्त्रै रथोपेतैर्बहुभिः परिवारितः।
कथमेकः पदातिः सन्नशस्त्रो योद्धुमुत्सहे ॥ ११ ॥

'तुम्हारी संख्या अधिक है। तुमने रथपर बैठकर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लेकर मुझे घेर रक्खा है। फिर तुम्हारे साथ मैं अकेला पैदल और अस्त्र-शस्त्रोंसे रहित होकर कैसे युद्ध कर सकता हूँ? ॥ ११ ॥

एकैकेन तु मां यूयं योधयध्वं युधिष्ठिर।
न ह्येको बहुभिर्वीरैर्न्याय्यो योधयितुं युधि ॥ १२ ॥

'युधिष्ठिर! तुमलोग एक-एक करके मुझसे युद्ध करो। युद्धमें बहुत-से वीरोंके साथ किसी एकको लड़नेके लिये विवश करना न्यायोचित नहीं है ॥ १२ ॥

विशेषतो विकवचः श्रान्तश्चापत्समाश्रितः।
भृशं विक्षतगात्रश्च श्रान्तवाहनसैनिकः ॥ १३ ॥

'विशेषतः उस दशामें जिसके शरीरपर कवच नहीं हो, जो थका-माँदा, आपत्तिमें पड़ा और अत्यन्त घायल हो तथा जिसके वाहन और सैनिक भी थक गये हों, उसे युद्धके लिये विवश करना न्यायसंगत नहीं है ॥ १३ ॥

न मे त्वत्तो भयं राजन् न च पार्थाद् वृकोदरात्।
फाल्गुनाद् वासुदेवाद् वा पाञ्चालेभ्योऽथवा पुनः ॥ १४ ॥
यमाभ्यां युयुधानाद् वा ये चान्ये तव सैनिकाः।
एकः सर्वानहं क्रुद्धो वारयिष्ये युधि स्थितः ॥ १५ ॥

'राजन्! मुझे न तो तुमसे, न कुन्तीके बेटे भीमसेनसे, न अर्जुनसे, न श्रीकृष्णसे अथवा पाञ्चालोंसे ही कोई भय है। नकुल-सहदेव, सात्यकि तथा अन्य जो-जो तुम्हारे सैनिक हैं, उनसे भी मैं नहीं डरता। युद्धमें क्रोधपूर्वक स्थित होनेपर मैं अकेला ही तुम सब लोगोंको आगे बढ़नेसे रोक दूँगा ॥

धर्ममूला सतां कीर्तिर्मनुष्याणां जनाधिप।
धर्मं चैवेह कीर्तिं च पालयन् प्रब्रवीम्यहम् ॥ १६ ॥

'नरेश्वर! साधु पुरुषोंकी कीर्तिका मूल कारण धर्म ही है। मैं यहाँ उस धर्म और कीर्तिका पालन करता हुआ ही यह बात कह रहा हूँ ॥ १६ ॥

अहमुत्थाय सर्वान् वै प्रतियोत्स्यामि संयुगे।
अनुगम्यागतान् सर्वानृतून् संवत्सरो यथा ॥ १७ ॥

'मैं उठकर रणभूमिमें एक-एक करके आये हुए तुम सब लोगोंके साथ युद्ध करूँगा, ठीक उसी तरह, जैसे संवत्सर बारी-बारीसे आये हुए सम्पूर्ण ऋतुओंको ग्रहण करता है ॥ १७ ॥

अद्य वः सरथान् साश्वानशस्त्रो विरथोऽपि सन्।
नक्षत्राणीव सर्वाणि सविता रात्रिसंक्षये ॥ १८ ॥
तेजसा नाशयिष्यामि स्थिरीभवत पाण्डवाः।

'पाण्डवो! स्थिर होकर खड़े रहो। आज मैं अस्त्र-शस्त्र एवं रथसे हीन होकर भी घोड़ों और रथोंपर चढ़कर आये हुए तुम सब लोगोंको उसी तरह अपने तेजसे नष्ट कर दूँगा, जैसे रात्रिके अन्तमें सूर्यदेव सम्पूर्ण नक्षत्रोंको अपने तेजसे अदृश्य कर देते हैं ॥ १८½ ॥

अद्यानृण्यं गमिष्यामि क्षत्रियाणां यशस्विनाम् ॥ १९ ॥
बाह्लीकद्रोणभीष्माणां कर्णस्य च महात्मनः।
जयद्रथस्य शूरस्य भगदत्तस्य चोभयोः ॥ २० ॥
मद्रराजस्य शल्यस्य भूरिश्रवस एव च।
पुत्राणां भरतश्रेष्ठ शकुनेः सौबलस्य च ॥ २१ ॥
मित्राणां सुहृदां चैव बान्धवानां तथैव च।
आनृण्यमद्य गच्छामि हत्वा त्वां भ्रातृभिः सह ॥ २२ ॥
एतावदुक्त्वा वचनं विरराम जनाधिपः।

'भरतश्रेष्ठ! आज मैं भाइयोंसहित तुम्हारा वध करके उन यशस्वी क्षत्रियोंके ऋणसे उऋण हो जाऊँगा। बाह्लीक, द्रोण, भीष्म, महामना कर्ण, शूरवीर जयद्रथ, भगदत्त, मद्रराज-

शल्य, भूरिश्रवा, सुबलकुमार शकुनि तथा पुत्रों, मित्रों, सुहृदों एवं बन्धु-बान्धवोंके ऋणसे भी उऋण हो जाऊँगा।' राजा दुर्योधन इतना कहकर चुप हो गया॥ १९-२२½॥

युधिष्ठिर उवाच

दिष्ट्या त्वमपि जानीषे क्षत्रधर्मं सुयोधन॥ २३॥
दिष्ट्या ते वर्तते बुद्धिर्युद्धायैव महाभुज।
दिष्ट्या शूरोऽसि कौरव्य दिष्ट्या जानासि संगरम्॥

युधिष्ठिर बोले—सुयोधन! सौभाग्यकी बात है कि तुम भी क्षत्रिय-धर्मको जानते हो। महाबाहो! यह जानकर प्रसन्नता हुई कि अभी तुम्हारा विचार युद्ध करनेका ही है। कुरुनन्दन! तुम शूरवीर हो और युद्ध करना जानते हो—यह हर्ष और सौभाग्यकी बात है॥ २३-२४॥

यस्त्वमेको हि नः सर्वान् संगरे योद्धुमिच्छसि।
एक एकेन संगम्य यत् ते सम्मतमायुधम्॥ २५॥
तत् त्वमादाय युध्यस्व प्रेक्षकास्ते वयं स्थिताः।

तुम रणभूमिमें अकेले ही एक-एकके साथ भिड़कर हम सब लोगोंसे युद्ध करना चाहते हो तो ऐसा ही सही। जो हथियार तुम्हें पसंद हो, उसीको लेकर हमलोगोंमेंसे एक-एकके साथ युद्ध करो। हम सब लोग दर्शक बनकर खड़े रहेंगे॥

स्वयमिष्टं च ते कामं वीर भूयो ददाम्यहम्॥ २६॥
हत्वैकं भवतो राज्यं हतो वा स्वर्गमाप्नुहि।

वीर! मैं स्वयं ही पुनः तुम्हें यह अभीष्ट वर देता हूँ कि 'हममेंसे एकका भी वध कर देनेपर सारा राज्य तुम्हारा हो जायगा अथवा यदि तुम्हीं मारे गये तो स्वर्गलोक प्राप्त करोगे।'

दुर्योधन उवाच

एकश्चेद् योद्धुमाक्रन्दे शूरोऽद्य मम दीयताम्॥ २७॥
आयुधानामियं चापि वृता त्वत्सम्मते गदा।

दुर्योधन बोला—राजन्! यदि ऐसी बात है तो इस महासमरमें मेरे साथ लड़नेके लिये आज किसी भी एक शूरवीरको दे दो और तुम्हारी सम्मतिके अनुसार हथियारोंमें मैंने एकमात्र इस गदाका ही वरण किया है॥ २७½॥

हन्त्वैकं भवतामेकः शक्यं मां योऽभिमन्यते॥ २८॥
पदातिर्गदया संख्ये स युध्यतु मया सह।

मैं हर्षके साथ कह रहा हूँ कि 'तुममेंसे कोई भी एक वीर जो मुझ अकेलेको जीत सकनेका अभिमान रखता हो, वह रणभूमिमें पैदल ही गदाद्वारा मेरे साथ युद्ध करे'॥ २८½॥

वृत्तानि रथयुद्धानि विचित्राणि पदे पदे॥ २९॥
इदमेकं गदायुद्धं भवत्वद्याद्भुतं महत्।

रथके विचित्र युद्ध तो पग-पगपर हुए हैं। आज यह एक अत्यन्त अद्भुत गदायुद्ध भी हो जाय॥ २९½॥

अस्त्राणामपि पर्यायं कर्तुमिच्छन्ति मानवाः॥ ३०॥
युद्धानामपि पर्यायो भवत्वनुमते तव।

मनुष्य बारी-बारीसे एक-एक अस्त्रका प्रयोग करना चाहते हैं; परंतु आज तुम्हारी अनुमतिसे युद्ध भी क्रमशः एक-एक योद्धाके साथ ही हो॥ ३०½॥

गदया त्वां महाबाहो विजेष्यामि सहानुजम्॥ ३१॥
पञ्चालान् सृंजयांश्चैव ये चान्ये तव सैनिकाः।
न हि मे सम्भ्रमो जातु शक्रादपि युधिष्ठिर॥ ३२॥

महाबाहो! मैं गदाके द्वारा भाइयोंसहित तुमको, पाञ्चालों और सृञ्जयोंको तथा जो तुम्हारे दूसरे सैनिक हैं, उनको भी जीत लूँगा। युधिष्ठिर! मुझे इन्द्रसे भी कभी घबराहट नहीं होती॥ ३१-३२॥

युधिष्ठिर उवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गान्धारे मां योधय सुयोधन।
एक एकेन संगम्य संयुगे गदया बली॥ ३३॥
पुरुषो भव गान्धारे युध्यस्व सुसमाहितः।
अद्य ते जीवितं नास्ति यदीन्द्रोऽपि तवाश्रयः॥ ३४॥

युधिष्ठिर बोले—गान्धारीनन्दन! सुयोधन! उठो-उठो और मेरे साथ युद्ध करो। बलवान् तो तुम हो ही। युद्धमें गदाके द्वारा अकेले किसी एक वीरके साथ ही भिड़कर अपने पुरुषत्वका परिचय दो। एकाग्रचित्त होकर युद्ध करो। यदि इन्द्र भी तुम्हारे आश्रयदाता हो जायँ तो भी आज तुम्हारे प्राण नहीं बच सकते॥ ३३-३४॥

संजय उवाच

एतत् स नरशार्दूलो नामृष्यत तवात्मजः।
सलिलान्तर्गतः श्वभ्रे महानाग इव श्वसन्॥ ३५॥

संजय कहते हैं—राजन्! युधिष्ठिरके इस कथनको जलमें स्थित हुआ आपका पुत्र पुरुषसिंह दुर्योधन नहीं सह सका। वह बिलमें बैठे हुए विशाल सर्पके समान लंबी साँस खींचने लगा॥ ३५॥

तथासौ वाक्प्रतोदेन तुद्यमानः पुनः पुनः।
वचो न ममृषे राजन्नुत्तमाश्वः कशामिव॥ ३६॥

राजन्! जैसे अच्छा घोड़ा कोड़ेकी मार नहीं सह सकता है, उसी प्रकार वचनरूपी चाबुकसे बारंबार पीड़ित किया जाता हुआ दुर्योधन युधिष्ठिरकी उस बातको सहन न कर सका॥

संक्षोभ्य सलिलं वेगाद् गदामादाय वीर्यवान्।
अद्रिसारमयीं गुर्वीं काञ्चनाङ्गदभूषणाम्॥ ३७॥
अन्तर्जलात् समुत्तस्थौ नागेन्द्र इव निःश्वसन्।

वह पराक्रमी वीर बड़े वेगसे सोनेके अङ्गदसे विभूषित एवं लोहेकी बनी हुई भारी गदा हाथमें लेकर पानीको चीरता हुआ उसके भीतरसे उठ खड़ा हुआ और सर्पराजके समान लंबी साँस खींचने लगा॥ ३७½॥

स भित्त्वा स्तम्भितं तोयं स्कन्धे कृत्वाऽऽयसीं गदाम्॥
उदतिष्ठत पुत्रस्ते प्रतपन् रश्मिवानिव।

कंधेपर लोहेकी गदा रखकर बँधे हुए जलका भेदन करके आपका वह पुत्र प्रतापी सूर्यके समान ऊपर उठा॥ ३८½॥

ततः शैक्यायसीं गुर्वीं जातरूपपरिष्कृताम्॥ ३९॥
गदां परामृशद् धीमान् धार्तराष्ट्रो महाबलः।

इसके बाद महाबली बुद्धिमान् दुर्योधनने लोहेकी बनी हुई वह सुवर्णभूषित भारी गदा हाथमें ली ॥ ३९½ ॥

गदाहस्तं तु तं दृष्ट्वा सश्रृङ्गमिव पर्वतम् ॥ ४० ॥
प्रजानामिव संक्रुद्धं शूलपाणिमिव स्थितम् ।

हाथमें गदा लिये हुए दुर्योधनको पाण्डवोंने इस प्रकार देखा, मानो कोई शृङ्गयुक्त पर्वत हो अथवा प्रजापर कुपित होकर हाथमें त्रिशूल लिये हुए रुद्रदेव खड़े हों ॥ ४०½ ॥

सगदो भारतो भाति प्रतपन् भास्करो यथा ॥ ४१ ॥
तमुत्तीर्णं महाबाहुं गदाहस्तमरिंदमम् ।
मेनिरे सर्वभूतानि दण्डपाणिमिवान्तकम् ॥ ४२ ॥

वह गदाधारी भरतवंशी वीर तपते हुए सूर्यके समान प्रकाशित हो रहा था। शत्रुओंका दमन करनेवाले महाबाहु दुर्योधनको हाथमें गदा लिये जलसे निकला हुआ देख समस्त प्राणी ऐसा मानने लगे, मानो दण्डधारी यमराज प्रकट हो गये हों ॥ ४१-४२ ॥

वज्रहस्तं यथा शक्रं शूलहस्तं यथा हरम् ।
ददृशुः सर्वपञ्चालाः पुत्रं तव जनाधिप ॥ ४३ ॥

नरेश्वर ! सम्पूर्ण पाञ्चालोंने आपके पुत्रको वज्रधारी इन्द्र और त्रिशूलधारी रुद्रके समान देखा ॥ ४३ ॥

तमुत्तीर्णं तु सम्प्रेक्ष्य समहृष्यन्त सर्वशः ।
पञ्चालाः पाण्डवेयाश्च तेऽन्योन्यस्य तलान् ददुः ॥ ४४ ॥

उसे जलसे बाहर निकला देख समस्त पाञ्चाल और पाण्डव हर्षसे खिल उठे और एक-दूसरेसे हाथ मिलाने लगे ॥

अवहासं तु तं मत्वा पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
उद्वृत्य नयने क्रुद्धो दिधक्षुरिव पाण्डवान् ॥ ४५ ॥

महाराज ! उनके इस हाथ मिलनेको दुर्योधनने अपना उपहास समझा; अतः क्रोधपूर्वक आँखें घुमाकर पाण्डवोंकी ओर इस प्रकार देखा, मानो उन्हें जलाकर भस्म कर देना चाहता हो ॥ ४५ ॥

त्रिशिखां भ्रुकुटीं कृत्वा संदष्टदशनच्छदः ।
प्रत्युवाच ततस्तान् वै पाण्डवान् सहकेशवान् ॥ ४६ ॥

उसने अपनी भौंहोंको तीन जगहसे टेढ़ी करके दाँतोंसे ओठको दबाया और श्रीकृष्णसहित पाण्डवोंसे इस प्रकार कहा ॥

दुर्योधन उवाच

अस्यावहासस्य फलं प्रतिभोक्ष्यथ पाण्डवाः ।
गमिष्यथ हताः सद्यः सपञ्चाला यमक्षयम् ॥ ४७ ॥

दुर्योधन बोला—पाञ्चालो और पाण्डवो ! इस उपहासका फल तुम्हें अभी भोगना पड़ेगा; मेरे हाथसे मारे जाकर तुम तत्काल यमलोकमें पहुँच जाओगे ॥ ४७ ॥

संजय उवाच

उत्थितश्च जलात् तस्मात् पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अतिष्ठत गदापाणी रुधिरेण समुक्षितः ॥ ४८ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! आपका पुत्र दुर्योधन उस जलसे निकलकर हाथमें गदा लिये खड़ा हो गया। वह रक्तसे भीगा हुआ था ॥ ४८ ॥

तस्य शोणितदिग्धस्य सलिलेन समुक्षितम् ।
शरीरं स्म तदा भाति स्रवन्निव महीधरः ॥ ४९ ॥

उस समय खूनसे लथपथ हुए दुर्योधनका शरीर पानीसे भीगकर जलका स्रोत बहानेवाले पर्वतके समान प्रतीत होता था॥

तमुद्यतगदं वीरं मेनिरे तत्र पाण्डवाः ।
वैवस्वतमिव क्रुद्धं शूलपाणिमिव स्थितम् ॥ ५० ॥

वहाँ हाथमें गदा उठाये हुए वीर दुर्योधनको पाण्डवोंने क्रोधमें भरे हुए यमराज तथा हाथमें त्रिशूल लेकर खड़े हुए रुद्रके समान समझा ॥ ५० ॥

स मेघनिनदो हर्षान्नर्दन्निव च गोवृषः ।
आजुहाव ततः पार्थान् गदया युधि वीर्यवान् ॥ ५१ ॥

उस पराक्रमी वीरने हँकड़ते हुए साँड़के समान मेघके तुल्य गम्भीर गर्जना करते हुए बड़े हर्षके साथ गदायुद्धके लिये पाण्डवोंको ललकारा ॥ ५१ ॥

दुर्योधन उवाच

एकैकेन च मां यूयमासीदत युधिष्ठिर ।
न ह्येको बहुभिर्न्याय्यो वीरो योधयितुं युधि ॥ ५२ ॥

दुर्योधन बोला—युधिष्ठिर ! तुमलोग एक-एक करके मेरे साथ युद्धके लिये आते जाओ। रणभूमिमें किसी एक वीरको बहुसंख्यक वीरोंके साथ युद्धके लिये विवश करना न्यायसंगत नहीं है ॥ ५२ ॥

न्यस्तवर्मा विशेषेण श्रान्तश्चाप्सु परिप्लुतः ।
भृशं विक्षतगात्रश्च हतवाहनसैनिकः ॥ ५३ ॥

विशेषतः उस वीरको जिसने अपना कवच उतार दिया हो, जो थककर जलमें गोता लगाकर विश्राम कर रहा हो, जिसके सारे अङ्ग अत्यन्त घायल हो गये हों तथा जिसके वाहन और सैनिक मार डाले गये हों, किसी समूहके साथ युद्धके लिये बाध्य करना कदापि उचित नहीं है ॥ ५३ ॥

अवश्यमेव योद्धव्यं सर्वैरेव मया सह ।
युक्तं त्वयुक्तमित्येतद् वेत्सि त्वं चैव सर्वदा ॥ ५४ ॥

मुझे तो तुम सब लोगोंके साथ अवश्य युद्ध करना है; परंतु इसमें क्या उचित है और क्या अनुचित; इसे तुम सदा अच्छी तरह जानते हो ॥ ५४ ॥

युधिष्ठिर उवाच

मा भूदियं तव प्रज्ञा कथमेवं सुयोधन ।
यदाभिमन्युं बहवो जघ्नुर्युधि महारथाः ॥ ५५ ॥

युधिष्ठिरने कहा—सुयोधन ! जब तुम बहुत-से महारथियोंने मिलकर युद्धमें अभिमन्युको मारा था, उस समय तुम्हारे मनमें ऐसा विचार क्यों नहीं उत्पन्न हुआ ?॥ ५५ ॥

क्षत्रधर्मं भृशं क्रूरं निरपेक्षं सुनिर्घृणम् ।
अन्यथा तु कथं हन्युरभिमन्युं तथा गतम् ॥ ५६ ॥
सर्वे भवन्तो धर्मज्ञाः सर्वे शूरास्तनुत्यजः ।

वास्तवमें क्षत्रिय-धर्म बड़ा ही क्रूर, किसीकी भी अपेक्षा

न रखनेवाला तथा अत्यन्त निर्दय है; अन्यथा तुम सब लोग धर्मज्ञ, शूरवीर तथा युद्धमें शरीरका विसर्जन करनेको उद्यत रहनेवाले होकर भी उस असहाय-अवस्थामें अभिमन्युका वध कैसे कर सकते थे ? ॥ ५६½ ॥

न्यायेन युध्यतां प्रोक्ता शक्रलोकगतिः परा ॥ ५७ ॥
यद्येकस्तु न हन्तव्यो बहुभिर्धर्म एव तु ।
तदाभिमन्युं बहवो निजघ्नुस्त्वन्मते कथम् ॥ ५८ ॥

न्यायपूर्वक युद्ध करनेवाले वीरोंके लिये परम उत्तम इन्द्रलोककी प्राप्ति बतलायी गयी है। 'बहुत-से योद्धा मिलकर किसी एक वीरको न मारें' यदि यही धर्म है तो तुम्हारी सम्मतिसे अनेक महारथियोंने अभिमन्युका वध कैसे किया ?॥

सर्वो विमृशते जन्तुः कृच्छ्रस्थो धर्मदर्शनम् ।
पदस्थः पिहितं द्वारं परलोकस्य पश्यति ॥ ५९ ॥

प्रायः सभी प्राणी जब स्वयं संकटमें पड़ जाते हैं तो अपनी रक्षाके लिये धर्मशास्त्रकी दुहाई देने लगते हैं और जब अपने उच्च पदपर प्रतिष्ठित होते हैं, उस समय उन्हें परलोकका दरवाजा बंद दिखायी देता है ॥ ५९ ॥

आमुञ्च कवचं वीर मूर्धजान् यमयस्व च ।
यच्चान्यदपि ते नास्ति तदप्यादत्स्व भारत ॥ ६० ॥

वीर भरतनन्दन ! तुम कवच धारण कर लो, अपने केशोंको अच्छी तरह बाँध लो तथा युद्धकी और कोई आवश्यक सामग्री जो तुम्हारे पास न हो, उसे भी ले लो ॥

इममेकं च ते कामं वीर भूयो ददाम्यहम् ।
पञ्चानां पाण्डवेयानां येन त्वं योद्धुमिच्छसि ॥ ६१ ॥
तं हत्वा वै भवान् राजा हतो वा स्वर्गमाप्नुहि ।
ऋते च जीविताद् वीर युद्धे किं कर्म ते प्रियम् ॥ ६२ ॥

वीर ! मैं पुनः तुम्हें एक अभीष्ट वर देता हूँ—'पाँचों पाण्डवोंमेंसे जिसके साथ युद्ध करना चाहो, उस एकका ही वध कर देनेपर तुम राजा हो सकते हो अथवा यदि स्वयं मारे गये तो स्वर्गलोक प्राप्त कर लोगे। शूरवीर ! बताओ, युद्धमें जीवनकी रक्षाके सिवा तुम्हारा और कौन-सा प्रिय कार्य हम कर सकते हैं ? ॥ ६१-६२ ॥

संजय उवाच

ततस्तव सुतो राजन् वर्म जग्राह काञ्चनम् ।
विचित्रं च शिरस्त्राणं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ॥ ६३ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर आपके पुत्रने सुवर्णमय कवच तथा स्वर्णजटित विचित्र शिरस्त्राण धारण किया॥

सोऽवबद्धशिरस्त्राणः शुभकाञ्चनवर्मभृत् ।
रराज राजन् पुत्रस्ते काञ्चनः शैलराडिव ॥ ६४ ॥

महाराज ! शिरस्त्राण बाँधकर सुन्दर सुवर्णमय कवच धारण करके आपका पुत्र स्वर्णमय गिरिराज मेरुके समान शोभा पाने लगा ॥ ६४ ॥

संनद्धः सगदो राजन् सज्जः संग्राममूर्धनि ।
अब्रवीत् पाण्डवान् सर्वान् पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ ६५ ॥

नरेश्वर ! युद्धके मुहानेपर सुसज्जित हो कवच बाँधे और गदा हाथमें लिये आपके पुत्र दुर्योधनने समस्त पाण्डवोंसे कहा—॥

भ्रातॄणां भवतामेको युध्यतां गदया मया ।
सहदेवेन वा योत्स्ये भीमेन नकुलेन वा ॥ ६६ ॥
अथवा फाल्गुनेनाद्य त्वया वा भरतर्षभ ।

'भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारे भाइयोंमेंसे कोई एक मेरे साथ गदाद्वारा युद्ध करे। मैं सहदेव, नकुल, भीमसेन, अर्जुन अथवा स्वयं तुमसे भी युद्ध कर सकता हूँ ॥ ६६½ ॥

योत्स्येऽहं संगरं प्राप्य विजेष्ये च रणाजिरे ॥ ६७ ॥
अहमद्य गमिष्यामि वैरस्यान्तं सुदुर्गमम् ।
गदया पुरुषव्याघ्र हेमपट्टनिबद्धया ॥ ६८ ॥

'रणक्षेत्रमें पहुँचकर मैं तुममेंसे किसी एकके साथ युद्ध करूँगा और मेरा विश्वास है कि समराङ्गणमें विजय पाऊँगा। पुरुषसिंह ! आज मैं सुवर्णपत्रजटित गदाके द्वारा वैरके उस पार पहुँच जाऊँगा, जहाँ जाना किसीके लिये भी अत्यन्त कठिन है ॥ ६७-६८ ॥

गदायुद्धे न मे कश्चित् सदृशोऽस्तीति चिन्तये ।
गदया वो हनिष्यामि सर्वानेव समागतान् ॥ ६९ ॥

'मैं इस बातको सदा याद रखता हूँ कि 'गदायुद्धमें मेरी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है।' गदाके द्वारा सामने आनेपर मैं तुम सभी लोगोंको मार डालूँगा ॥ ६९ ॥

न मे समर्थाः सर्वे वै योद्धुं न्यायेन केचन ।
न युक्तमात्मना वक्तुमेवं गर्वोद्धतं वचः ।
अथवा सफलं ह्येतत् करिष्ये भवतां पुरः ॥ ७० ॥

'तुम सभी लोग अथवा तुममेंसे कोई भी मेरे साथ न्यायपूर्वक युद्ध करनेमें समर्थ नहीं हो। मुझे स्वयं ही अपने विषयमें इस प्रकार गर्वसे उद्धत वचन नहीं कहना चाहिये, तथापि कहना पड़ा है अथवा कहनेकी क्या आवश्यकता ? मैं तुम्हारे सामने ही यह सब सफल कर दिखाऊँगा ॥ ७० ॥

अस्मिन् मुहूर्ते सत्यं वा मिथ्या वैतद् भविष्यति ।
गृह्णातु च गदां यो वै योत्स्यतेऽद्य मया सह ॥ ७१ ॥

'मेरा वचन सत्य है या मिथ्या, यह इसी मुहूर्तमें स्पष्ट हो जायगा। आज मेरे साथ जो भी युद्ध करनेको उद्यत हो, वह गदा उठावे' ॥ ७१ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि युधिष्ठिरदुर्योधनसंवादे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें युधिष्ठिर और दुर्योधनका संवादविषयक बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥३२॥



मित्रावरुण के आश्रम में बलरामजी की देवर्षि नारदजी से भेंट

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको फटकारना, भीमसेनकी प्रशंसा तथा भीम और दुर्योधनमें वाग्युद्ध

संजय उवाच

एवं दुर्योधने राजन् गर्जमाने मुहुर्मुहुः।
युधिष्ठिरस्य संक्रुद्धो वासुदेवोऽब्रवीदिदम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! जब यों कहकर दुर्योधन बारंबार गर्जना करने लगा, उस समय भगवान् श्रीकृष्ण अत्यन्त कुपित होकर युधिष्ठिरसे बोले—॥ १ ॥

यदि नाम ह्ययं युद्धे वरयेत् त्वां युधिष्ठिर।
अर्जुनं नकुलं चैव सहदेवमथापि वा ॥ २ ॥

'युधिष्ठिर! यदि यह दुर्योधन युद्धमें तुमको, अर्जुनको अथवा नकुल या सहदेवको ही युद्धके लिये वरण कर ले, तब क्या होगा? ॥ २ ॥

किमिदं साहसं राजंस्त्वया व्याहृतमीदृशम्।
एकमेव निहत्याजौ भव राजा कुरुष्विति ॥ ३ ॥

'राजन्! आपने क्यों ऐसी दुःसाहस पूर्ण बात कह डाली कि 'तुम हममेंसे एकको ही मारकर कौरवोंका राजा हो जाओ'॥

न समर्थानहं मन्ये गदाहस्तस्य संयुगे।
एतेन हि कृता योग्या वर्षाणीह त्रयोदश ॥ ४ ॥
आयसे पुरुषे राजन् भीमसेनजिघांसया।

'मैं नहीं मानता कि आपलोग युद्धमें गदाधारी दुर्योधन-का सामना करनेमें समर्थ हैं। राजन्! इसने भीमसेनका वध करनेकी इच्छासे उनकी लोहेकी मूर्तिके साथ तेरह वर्षों-तक गदायुद्धका अभ्यास किया है ॥ ४½ ॥

कथं नाम भवेत् कार्यमस्माभिर्भरतर्षभ ॥ ५ ॥
साहसं कृतवांस्त्वं तु ह्यनुक्रोशान्नृपोत्तम।

'भरतभूषण! अब हमलोग अपना कार्य कैसे सिद्ध कर सकते हैं? नृपश्रेष्ठ! आपने दयावश यह दुःसाहसपूर्ण कार्य कर डाला है ॥ ५½ ॥

नान्यमस्यानुपश्यामि प्रतियोद्धारमाहवे ॥ ६ ॥
ऋते वृकोदरात् पार्थात् स च नातिकृतश्रमः।

'मैं कुन्तीपुत्र भीमसेनके सिवा, दूसरे किसीको ऐसा नहीं देखता, जो गदायुद्धमें दुर्योधनका सामना कर सके, परंतु भीमसेनने भी अधिक परिश्रम नहीं किया है ॥ ६½ ॥

तदिदं द्यूतमारब्धं पुनरेव यथा पुरा ॥ ७ ॥
विषमं शकुनेश्चैव तव चैव विशाम्पते।

'इस समय आपने पहलेके समान ही पुनः यह जूएका खेल आरम्भ कर दिया है। प्रजानाथ! आपका यह जूआ शकुनिके जूएसे कहीं अधिक भयंकर है ॥ ७½ ॥

बली भीमः समर्थश्च कृती राजा सुयोधनः ॥ ८ ॥
बलवान् वा कृती वेति कृती राजन् विशिष्यते।

'राजन्! माना कि भीमसेन बलवान् और समर्थ हैं, परंतु राजा दुर्योधनने अभ्यास अधिक किया है। एक ओर बलवान् हो और दूसरी ओर युद्धका अभ्यासी, तो उनमें युद्धका अभ्यास करनेवाला ही बड़ा माना जाता है ॥ ८½ ॥

सोऽयं राजंस्त्वया शत्रुः समे पथि निवेशितः ॥ ९ ॥
न्यस्तश्चात्मा सुविषमे कृच्छ्रमापादिता वयम्।

'अतः महाराज! आपने अपने शत्रुको समान मार्गपर ला दिया है। अपने आपको तो भारी सङ्कटमें फँसाया ही है, हमलोगोंको भी भारी कठिनाईमें डाल दिया है ॥ ९½ ॥

को नु सर्वान् विनिर्जित्य शत्रूनेकेन वैरिणा ॥ १० ॥
कृच्छ्रप्राप्तेन च तथा हारयेद् राज्यमागतम्।
पणित्वा चैकपाणेन रोचयेदेवमाहवम् ॥ ११ ॥

'भला कौन ऐसा होगा, जो सब शत्रुओंको जीत लेनेके बाद जब एक ही बाकी रह जाय और वह भी सङ्कटमें पड़ा हो तो उसके साथ अपने हाथमें आये हुए राज्यको दाँवपर लगाकर हार जाय और इस प्रकार एकके साथ युद्ध करनेकी शर्त रखकर लड़ना पसंद करे? ॥ १०-११ ॥

न हि पश्यामि तं लोके योऽद्य दुर्योधनं रणे।
गदाहस्तं विजेतुं वै शक्तः स्यादमरोऽपि हि ॥ १२ ॥

'मैं संसारमें किसी भी शूरवीरको, वह देवता ही क्यों न हो, ऐसा नहीं देखता, जो आज रणभूमिमें गदाधारी दुर्योधन-को परास्त करनेमें समर्थ हो ॥ १२ ॥

न त्वं भीमो न नकुलः सहदेवोऽथ फाल्गुनः।
जेतुं न्यायेन शक्तो वै कृती राजा सुयोधनः ॥ १३ ॥

'आप, भीमसेन, नकुल, सहदेव अथवा अर्जुन—कोई भी न्यायपूर्वक युद्ध करके दुर्योधनपर विजय नहीं पा सकते; क्योंकि राजा सुयोधनने गदायुद्धका अधिक अभ्यास किया है॥

स कथं वदसे शत्रुं युध्यस्व गदयेति हि।
एकं च नो निहत्याजौ भव राजेति भारत ॥ १४ ॥

'भारत! जब ऐसी अवस्था है, तब आपने अपने शत्रुसे कैसे यह कह दिया कि 'तुम गदाद्वारा युद्ध करो और हममें-से किसी एकको मारकर राजा हो जाओ' ॥ १४ ॥

वृकोदरं समासाद्य संशयो वै जये हि नः।
न्यायतो युध्यमानानां कृती ह्येष महाबलः ॥ १५ ॥

'भीमसेनपर युद्धका भार रक्खा जाय तो भी हमें विजय मिलनेमें संदेह है; क्योंकि न्यायपूर्वक युद्ध करनेवाले योद्धाओंमें महाबली सुयोधनका अभ्यास सबसे अधिक है।१५।

एकं वास्मान् निहत्य त्वं भव राजेति वै पुनः।
नूनं न राज्यभागेषा पाण्डोः कुन्त्याश्च संततिः॥ १६ ॥
अत्यन्तवनवासाय सृष्टा भैक्ष्याय वा पुनः।

'फिर भी आपने बारंबार कहा है कि 'तुम हमलोगोंमेंसे एकको भी मारकर राजा हो जाओ।' निश्चय ही राजा पाण्डु और कुन्तीदेवीकी संतान राज्य भोगनेकी अधिकारिणी नहीं है। विधाताने इसे अनन्त कालतक वनवास करने अथवा भीख माँगनेके लिये ही पैदा किया है' ॥ १६½ ॥

भीमसेन उवाच

मधुसूदन मा कार्षीर्विषादं यदुनन्दन ॥ १७ ॥
अद्य पारं गमिष्यामि वैरस्य भृशदुर्गमम् ।

यह सुनकर भीमसेन बोले—मधुसूदन ! आप विषाद न करें । यदुनन्दन ! मैं आज वैरकी उस अन्तिम सीमापर पहुँच जाऊँगा, जहाँ जाना दूसरोंके लिये अत्यन्त कठिन है ॥ १७½ ॥

अहं सुयोधनं संख्ये हनिष्यामि न संशयः ॥ १८ ॥
विजयो वै ध्रुवः कृष्ण धर्मराजस्य दृश्यते ।

श्रीकृष्ण ! इसमें तनिक भी संशय नहीं है कि मैं युद्धमें सुयोधनको मार डालूँगा । मुझे तो धर्मराजकी निश्चय ही विजय दिखायी देती है ॥ १८½ ॥

अध्यर्धेन गुणेनेयं गदा गुरुतरी मम ॥ १९ ॥
न तथा धार्तराष्ट्रस्य मा कार्षीर्माधव व्यथाम् ।
अहमेनं हि गदया संयुगे योद्धुमुत्सहे ॥ २० ॥

मेरी यह गदा दुर्योधनकी गदासे डेढ़गुनी भारी है । ऐसी दुर्योधनकी गदा नहीं है; अतः माधव ! आप व्यथित न हों । मैं समराङ्गणमें इस गदाद्वारा इससे भिड़नेका उत्साह रखता हूँ ॥ १९-२० ॥

भवन्तः प्रेक्षकाः सर्वे मम सन्तु जनार्दन ।
सामरानपि लोकांस्त्रीन् नानाशस्त्रधरान् युधि ॥२१॥
योधयेयं रणे कृष्ण किमुताद्य सुयोधनम् ।

जनार्दन ! आप सब लोग दर्शक बनकर मेरा युद्ध देखते रहें । श्रीकृष्ण ! मैं रणक्षेत्रमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण करनेवाले देवताओंसहित तीनों लोकोंके साथ युद्ध कर सकता हूँ; फिर इस सुयोधनकी तो बात ही क्या है ? ॥

संजय उवाच

तथा सम्भाषमाणं तु वासुदेवो वृकोदरम् ॥ २२ ॥
हृष्टः सम्पूजयामास वचनं चेदमब्रवीत् ।

संजय कहते हैं—महाराज ! भीमसेनने जब ऐसी बात कही, तब भगवान् श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न होकर उनकी प्रशंसा करने लगे और इस प्रकार बोले—॥ २२½ ॥

त्वामाश्रित्य महाबाहो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ २३ ॥
निहतारिः स्वकां दीप्तां श्रियं प्राप्तो न संशयः ।
त्वया विनिहताः सर्वे धृतराष्ट्रसुता रणे ॥ २४ ॥

'महाबाहो ! इसमें संदेह नहीं कि धर्मराज युधिष्ठिरने तुम्हारा आश्रय लेकर ही शत्रुओंका संहार करके पुनः अपनी उज्ज्वल राज्यलक्ष्मीको प्राप्त कर लिया है । धृतराष्ट्रके सभी पुत्र तुम्हारे ही हाथसे युद्धमें मारे गये हैं ॥ २३-२४ ॥

राजानो राजपुत्राश्च नागाश्च विनिपातिताः ।
कलिङ्गा मागधाः प्राच्या गान्धाराः कुरवस्तथा ॥२५॥
त्वामासाद्य महायुद्धे निहताः पाण्डुनन्दन ।

'तुमने कितने ही राजाओं, राजकुमारों और गजराजोंको मार गिराया है । पाण्डुनन्दन ! कलिङ्ग, मगध, प्राच्य, गान्धार और कुरुदेशके योद्धा भी इस महायुद्धमें तुम्हारे सामने आकर कालके गालमें चले गये हैं ॥ २५½ ॥

हत्वा दुर्योधनं चापि प्रयच्छोर्वीं ससागराम् ॥ २६ ॥
धर्मराजाय कौन्तेय यथा विष्णुः शचीपतेः ।

'कुन्तीकुमार ! जैसे भगवान् विष्णुने शचीपति इन्द्रको त्रिलोकीका राज्य प्रदान किया था, उसी प्रकार तुम भी दुर्योधनका वध करके समुद्रोंसहित यह सारी पृथ्वी धर्मराज युधिष्ठिरको समर्पित कर दो ॥ २६½ ॥

त्वां च प्राप्य रणे पापो धार्तराष्ट्रो विनङ्क्ष्यति ॥ २७॥
त्वमस्य सक्थिनी भङ्क्त्वा प्रतिज्ञां पालयिष्यसि ।

'अवश्य ही रणभूमिमें तुमसे टक्कर लेकर पापी दुर्योधन नष्ट हो जायगा और तुम उसकी दोनों जाँघें तोड़कर अपनी प्रतिज्ञाका पालन करोगे ॥ २७½ ॥

यत्नेन तु सदा पार्थ योद्धव्यो धृतराष्ट्रजः ॥ २८ ॥
कृती च बलवांश्चैव युद्धशौण्डश्च नित्यदा ।

'किंतु पार्थ ! तुम्हें दुर्योधनके साथ सदा प्रयत्नपूर्वक युद्ध करना चाहिये; क्योंकि वह अभ्यासकुशल, बलवान् और युद्धकी कलामें निरन्तर चतुर है' ॥ २८½ ॥

ततस्तु सात्यकी राजन् पूजयामास पाण्डवम् ॥ २९ ॥
पञ्चालाः पाण्डवेयाश्च धर्मराजपुरोगमाः ।
तद् वचो भीमसेनस्य सर्व एवाभ्यपूजयन् ॥ ३० ॥

राजन् ! तदनन्तर सात्यकिने पाण्डुपुत्र भीमसेनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की । धर्मराज आदि पाण्डव तथा पाञ्चाल सभीने भीमसेनके उस वचनका बड़ा आदर किया॥२९-३०॥

ततो भीमबलो भीमो युधिष्ठिरमथाब्रवीत् ।
सृंजयैः सह तिष्ठन्तं तपन्तमिव भास्करम् ॥ ३१ ॥

तदनन्तर भयंकर बलशाली भीमसेनने सृंजयोंके साथ खड़े हुए तपते सूर्यके समान तेजस्वी युधिष्ठिरसे कहा—॥३१॥

अहमेतेन संगम्य संयुगे योद्धुमुत्सहे ।
न हि शक्तो रणे जेतुं मामेष पुरुषाधमः ॥ ३२ ॥

'भैया ! मैं रणभूमिमें इस दुर्योधनके साथ भिड़कर लड़नेका उत्साह रखता हूँ । यह नराधम मुझे युद्धमें परास्त नहीं कर सकता ॥ ३२ ॥

अद्य क्रोधं विमोक्ष्यामि निहितं हृदये भृशम् ।
सुयोधने धार्तराष्ट्रे खाण्डवेऽग्निमिवार्जुनः ॥ ३३ ॥

'मेरे हृदयमें दीर्घकालसे जो अत्यन्त क्रोध संचित है, उसे आज मैं धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनपर उसी प्रकार छोड़ूँगा, जैसे अर्जुनने खाण्डव वनमें अग्निदेवको छोड़ा था ॥ ३३ ॥

शल्यमद्योद्धरिष्यामि तव पाण्डव हृच्छयम् ।
निहत्य गदया पापमद्य राजन् सुखी भव ॥ ३४ ॥

'पाण्डुनन्दन ! नरेश ! आज मैं गदाद्वारा पापी दुर्योधनका वध करके आपके हृदयका काँटा निकाल दूँगा; अतः आप सुखी होइये ॥ ३४ ॥

अद्य कीर्तिमयीं मालां प्रतिमोक्ष्ये तवानघ ।
प्राणाञ्छ्रियं च राज्यं च मोक्ष्यतेऽद्य सुयोधनः ॥ ३५ ॥

'अनघ ! आज आपके गलेमें मैं कीर्तिमयी माला

पहनाऊँगा तथा आज यह दुर्योधन अपने राज्यलक्ष्मी और प्राणोंका परित्याग करेगा ॥ ३५ ॥

राजा च धृतराष्ट्रोऽद्य श्रुत्वा पुत्रं मया हतम्।
स्मरिष्यत्यशुभं कर्म यत् तच्छकुनिबुद्धिजम् ॥ ३६ ॥

'आज मेरे हाथसे पुत्रको मारा गया सुनकर राजा धृतराष्ट्र शकुनिकी सलाहसे किये हुए अपने अशुभ कर्मोंको याद करेंगे' ॥ ३६ ॥

इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठो गदामुद्यम्य वीर्यवान्।
उदतिष्ठत युद्धाय शक्रो वृत्रमिवाह्वयन् ॥ ३७ ॥

ऐसा कहकर भरतवंशी वीरोंमें श्रेष्ठ पराक्रमी भीमसेन गदा उठाकर युद्धके लिये उठ खड़े हुए और जैसे इन्द्रने वृत्रासुरको ललकारा था, उसी प्रकार उन्होंने दुर्योधनका आह्वान किया ॥ ३७ ॥

तदाह्वानममृष्यन् वै तव पुत्रोऽतिवीर्यवान्।
प्रत्युपस्थित एवाशु मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ३८ ॥

महाराज! उस समय आपका अत्यन्त पराक्रमी पुत्र दुर्योधन भीमसेनकी उस ललकारको न सह सका। वह तुरंत ही उनका सामना करनेके लिये उपस्थित हो गया, मानो एक मतवाला हाथी दूसरे मदोन्मत्त गजराजसे भिड़नेको उद्यत हो गया हो ॥ ३८ ॥

गदाहस्तं तव सुतं युद्धाय समुपस्थितम्।
ददृशुः पाण्डवाः सर्वे कैलासमिव शृङ्गिणम् ॥ ३९ ॥

हाथमें गदा लेकर युद्धके लिये उपस्थित हुए आपके पुत्रको समस्त पाण्डवोंने शृङ्गधारी कैलासपर्वतके समान देखा॥

तमेकाकिनमासाद्य धार्तराष्ट्रं महाबलम्।
वियूथमिव मातङ्गं समहृष्यन्त पाण्डवाः ॥ ४० ॥

जैसे कोई मतवाला हाथी अपने यूथसे बिछुड़ गया हो, उसी प्रकार अकेले आये हुए आपके महाबली पुत्र दुर्योधनको पाकर समस्त पाण्डव हर्षसे खिल उठे ॥ ४० ॥

न सम्भ्रमो न च भयं न च ग्लानिर्न च व्यथा।
आसीद् दुर्योधनस्यापि स्थितः सिंह इवाहवे ॥ ४१ ॥

उस समय दुर्योधनके मनमें न घबराहट थी, न भय। न ग्लानि थी, न व्यथा। वह युद्धस्थलमें सिंहके समान निर्भय खड़ा था ॥ ४१ ॥

समुद्यतगदं दृष्ट्वा कैलासमिव शृङ्गिणम्।
भीमसेनस्तदा राजन् दुर्योधनमथाब्रवीत् ॥ ४२ ॥

राजन्! शृङ्गधारी कैलासपर्वतके समान गदा उठाये दुर्योधनको देखकर भीमसेनने उससे कहा— ॥ ४२ ॥

राज्ञापि धृतराष्ट्रेण त्वया चास्मासु यत् कृतम्।
स्मर तद् दुष्कृतं कर्म यद् भूतं वारणावते ॥ ४३ ॥

'दुर्योधन! तूने तथा राजा धृतराष्ट्रने भी हमलोगोंपर जो-जो अत्याचार किया था और वारणावत नगरमें जो कुछ हुआ था, उन सारे पापकर्मोंको याद कर ले ॥ ४३ ॥

द्रौपदी च परिक्लिष्टा सभामध्ये रजस्वला।
द्यूते यद् विजितो राजा शकुनेर्बुद्धिनिश्चयात् ॥ ४४ ॥

यानि चान्यानि दुष्टात्मन् पापानि कृतवानसि।
अनागःसु च पार्थेषु तस्य पश्य महत् फलम् ॥ ४५ ॥

'दुरात्मन्! तूने भरी सभामें रजस्वला द्रौपदीको क्लेश पहुँचाया, शकुनिकी सलाह लेकर राजा युधिष्ठिरको कपटपूर्वक जूएमें हराया तथा निरपराध कुन्तीपुत्रोंपर दूसरे-दूसरे जो पाप एवं अत्याचार किये थे, उन सबका महान् अशुभ फल आज तू अपनी आँखों देख ले ॥ ४४-४५ ॥

त्वत्कृते निहतः शेते शरतल्पे महायशाः।
गाङ्गेयो भरतश्रेष्ठः सर्वेषां नः पितामहः ॥ ४६ ॥

'तेरे ही कारण हम सब लोगोंके पितामह महायशस्वी गङ्गानन्दन भरतश्रेष्ठ भीष्मजी आज शरशय्यापर पड़े हुए हैं॥

हतो द्रोणश्च कर्णश्च हतः शल्यः प्रतापवान्।
वैरस्य चादिकर्तासौ शकुनिर्निहतो रणे ॥ ४७ ॥

'तेरी ही करतूतोंसे आचार्य द्रोण, कर्ण, प्रतापी शल्य तथा वैरका आदि स्रष्टा वह शकुनि—ये सभी रणभूमिमें मारे गये हैं ॥ ४७ ॥

भ्रातरस्ते हताः शूराः पुत्राश्च सहसैनिकाः।
राजानश्च हताः शूराः समरेष्वनिवर्तिनः ॥ ४८ ॥

'तेरे भाई, शूरवीर पुत्र, सैनिक तथा युद्धमें पीठ न दिखानेवाले अन्य बहुत-से शौर्यसम्पन्न नरेश भी मृत्युके अधीन हो गये हैं ॥ ४८ ॥

एते चान्ये च निहता बहवः क्षत्रियर्षभाः।
प्रातिकामी तथा पापो द्रौपद्याः क्लेशकृद्धतः ॥ ४९ ॥

'ये तथा दूसरे बहुसंख्यक क्षत्रियशिरोमणि वीर मार डाले गये हैं। द्रौपदीको क्लेश पहुँचानेवाले पापी प्रातिकामीका भी वध हो चुका है ॥ ४९ ॥

अवशिष्टस्त्वमेवैकः कुलघ्नोऽधमपूरुषः।
त्वामप्यद्य हनिष्यामि गदया नात्र संशयः ॥ ५० ॥

'अब इस वंशका नाश करनेवाला नराधम एकमात्र तू ही बच गया है। आज इस गदासे तुझे भी मार डालूँगा; इसमें संशय नहीं है ॥ ५० ॥

अद्य तेऽहं रणे दर्पं सर्वं नाशयिता नृप।
राज्याशां विपुलां राजन् पाण्डवेषु च दुष्कृतम् ॥ ५१ ॥

'नरेश्वर! आज रणभूमिमें मैं तेरा सारा घमंड चूर्ण कर दूँगा। राजन्! तेरे मनमें राज्य पानेकी जो बड़ी भारी लालसा है, उसका तथा पाण्डवोंपर तेरे द्वारा किये जानेवाले अत्याचारोंका भी अन्त कर डालूँगा' ॥ ५१ ॥

दुर्योधन उवाच

किं कत्थितेन बहुना युद्ध्यस्वाद्य मया सह।
अद्य तेऽहं विनेष्यामि युद्धश्रद्धां वृकोदर ॥ ५२ ॥

दुर्योधन बोला—वृकोदर! बहुत बढ़-बढ़कर बातें बनानेसे क्या लाभ? आज मेरे साथ भिड़ तो सही। मैं युद्धका तेरा सारा हौसला मिटा दूँगा ॥ ५२ ॥

किं न पश्यसि मां पाप गदायुद्धे व्यवस्थितम्।
हिमवच्छिखराकारां प्रगृह्य महतीं गदाम् ॥ ५३ ॥

पापी ! क्या तू देखता नहीं कि मैं हिमालयके शिखरकी भाँति विशाल गदा हाथमें लेकर युद्धके लिये खड़ा हूँ॥

गदिनं कोऽद्य मां पाप हन्तुमुत्सहते रिपुः।
न्यायतो युद्ध्यमानश्च देवेष्वपि पुरन्दरः॥ ५४॥

ओ पापी ! आज कौन ऐसा शत्रु है, जो मेरे हाथमें गदा रहते हुए भी मुझे मार सके। न्यायपूर्वक युद्ध करते हुए देवताओंके राजा इन्द्र भी मुझे परास्त नहीं कर सकते॥

मा वृथा गर्ज कौन्तेय शारदाभ्रमिवाजलम्।
दर्शयस्व बलं युद्धे यावत् तत् तेऽद्य विद्यते॥ ५५॥

कुन्तीपुत्र ! शरद् ऋतुके निर्जल मेघकी भाँति व्यर्थ गर्जना न कर। आज तेरे पास जितना बल हो, वह सब युद्धमें दिखा॥ ५५॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा पाण्डवाः सहसृंजयाः।
सर्वे सम्पूजयामासुस्तद्वचो विजिगीषवः॥ ५६॥

दुर्योधनका यह वचन सुनकर विजयकी इच्छा रखनेवाले समस्त पाण्डवों और संजयोंने भी उसकी बड़ी सराहना की॥

उन्मत्तमिव मातङ्गं तलशब्देन मानवाः।
भूयः संहर्षयामासू राजन् दुर्योधनं नृपम्॥ ५७॥

राजन् ! जैसे मतवाले हाथीको मनुष्य ताली बजाकर कुपित कर देते हैं, उसी प्रकार उन्होंने बारंबार ताल ठोककर राजा दुर्योधनके युद्धविषयक हर्ष और उत्साहको बढ़ाया॥

बृंहन्ति कुञ्जरास्तत्र हया ह्रेषन्ति चासकृत्।
शस्त्राणि सम्प्रदीप्यन्ते पाण्डवानां जयैषिणाम्॥५८॥

उस समय वहाँ विजयाभिलाषी पाण्डवोंके हाथी बारंबार चिग्घाड़ने और घोड़े हिनहिनाने लगे। साथ ही उनके अस्त्र-शस्त्र दीप्तिसे प्रकाशित हो उठे॥ ५८॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि भीमसेनदुर्योधनसंवादे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें भीमसेन और दुर्योधनका संवादविषयक तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३३॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

बलरामजीका आगमन और स्वागत तथा भीमसेन और दुर्योधनके युद्धका आरम्भ

संजय उवाच

तस्मिन् युद्धे महाराज सुसंवृत्ते सुदारुणे।
उपविष्टेषु सर्वेषु पाण्डवेषु महात्मसु॥ १॥
ततस्तालध्वजो रामस्तयोर्युद्ध उपस्थिते।
श्रुत्वा तच्छिष्ययो राजन्नाजगाम हलायुधः॥ २॥

संजय कहते हैं—महाराज ! वह अत्यन्त भयंकर युद्ध जब आरम्भ होने लगा और समस्त महात्मा पाण्डव उसे देखनेके लिये बैठ गये, उस समय अपने दोनों शिष्योंका संग्राम उपस्थित होनेपर उसका समाचार सुन तालचिह्नित ध्वजवाले हलधारी बलरामजी वहाँ आ पहुँचे॥ १-२॥

तं दृष्ट्वा परमप्रीताः पाण्डवाः सहकेशवाः।
उपगम्योपसंगृह्य विधिवत् प्रत्यपूजयन्॥ ३॥

उन्हें देखकर श्रीकृष्णसहित पाण्डव बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने निकट जाकर उनका चरणस्पर्श किया और विधिपूर्वक उनकी पूजा की॥ ३॥

पूजयित्वा ततः पश्चादिदं वचनमब्रुवन्।
शिष्ययोः कौशलं युद्धे पश्य रामेति पार्थिव॥ ४॥

राजन् ! पूजनके पश्चात् उन्होंने इस प्रकार कहा—'बलरामजी ! अपने दोनों शिष्योंका युद्धकौशल देखिये'॥

अब्रवीच्च तदा रामो दृष्ट्वा कृष्णं सपाण्डवम्।
दुर्योधनं च कौरव्यं गदापाणिमवस्थितम्॥ ५॥
चत्वारिंशदहान्यद्य द्वे च मे निःसृतस्य वै।
पुष्येण सम्प्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः॥ ६॥
शिष्ययोर्वै गदायुद्धं द्रष्टुकामोऽस्मि माधव।

उस समय बलरामजीने श्रीकृष्ण, पाण्डव तथा हाथमें गदा लेकर खड़े हुए कुरुवंशी दुर्योधनकी ओर देखकर कहा—'माधव ! तीर्थयात्राके लिये निकले हुए आज मुझे बयालीस दिन हो गये। पुष्य नक्षत्रमें चला था और श्रवण नक्षत्रमें पुनः वापस आया हूँ। मैं अपने दोनों शिष्योंका गदायुद्ध देखना चाहता हूँ'॥ ५-६½॥

ततस्तदा गदाहस्तौ दुर्योधनवृकोदरौ॥ ७॥
युद्धभूमिं गतौ वीरावुभावेव रराजतुः।

तदनन्तर गदा हाथमें लेकर दुर्योधन और भीमसेन युद्धभूमिमें उतरे। वे दोनों ही वीर वहाँ बड़ी शोभा पा रहे थे॥

ततो युधिष्ठिरो राजा परिष्वज्य हलायुधम्॥ ८॥
स्वागतं कुशलं चास्मै पर्यपृच्छद् यथातथम्।

उस समय राजा युधिष्ठिरने बलरामजीको हृदयसे लगाकर उनका स्वागत किया और यथोचितरूपसे उनका कुशल-समाचार पूछा॥ ८½॥

कृष्णौ चापि महेष्वासावभिवाद्य हलायुधम्॥ ९॥
सस्वजाते परिप्रीतौ प्रीयमाणौ यशस्विनौ।

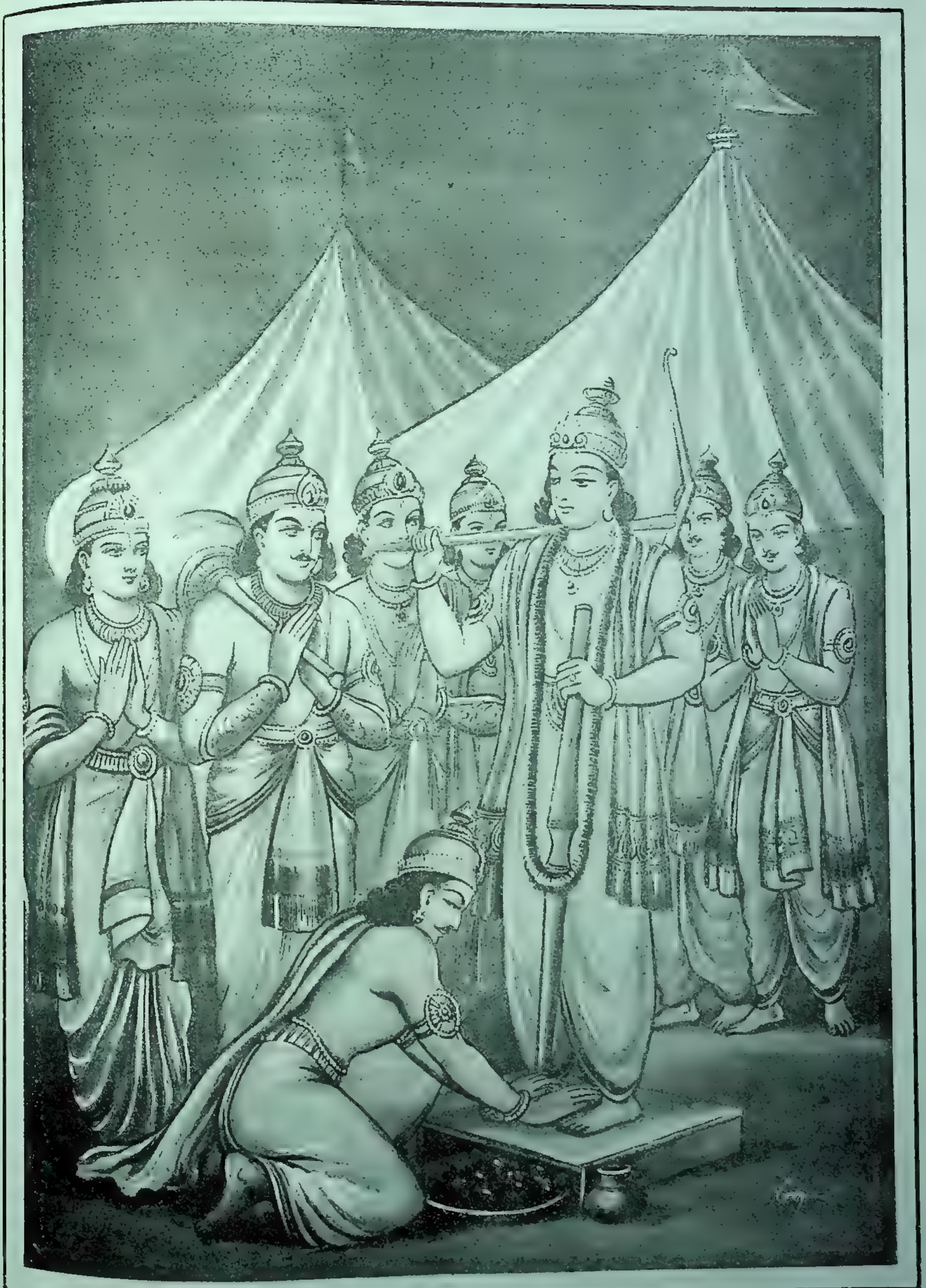
यशस्वी महाधनुर्धर श्रीकृष्ण और अर्जुन भी बलरामजीको प्रणाम करके अत्यन्त प्रसन्न हो प्रेमपूर्वक उनके हृदयसे लग गये॥ ९½॥

माद्रीपुत्रौ तथा शूरौ द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः॥ १०॥
अभिवाद्य स्थिता राजन् रौहिणेयं महाबलम्।

राजन् ! माद्रीके दोनों शूरवीर पुत्र नकुल-सहदेव और द्रौपदीके पाँचों पुत्र भी रोहिणीनन्दन महाबली बलरामजीको प्रणाम करके उनके पास विनीतभावसे खड़े हो गये॥१०½॥

भीमसेनोऽथ बलवान् पुत्रस्तव जनाधिप॥ ११॥
तथैव चोद्यतगदौ पूजयामासतुर्बलम्।

नरेश्वर ! भीमसेन और आपका बलवान् पुत्र दुर्योधन इन दोनोंने गदाको ऊँचे उठाकर बलरामजीके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया॥ ११½॥



पाण्डवोंद्वारा बलरामजीकी पूजा

स्वागतेन च ते तत्र प्रतिपूज्य समन्ततः ॥ १२ ॥
पश्य युद्धं महाबाहो इति ते राममब्रुवन् ।
एवमूचुर्महात्मानं रौहिणेयं नराधिपाः ॥ १३ ॥

वे सब नरेश सब ओरसे स्वागतपूर्वक समादर करके वहाँ महात्मा रोहिणीपुत्र बलरामजीसे बोले—'महाबाहो ! युद्ध देखिये' ॥ १२-१३ ॥

परिष्वज्य तदा रामः पाण्डवान् सहसृञ्जयान् ।
अपृच्छत् कुशलं सर्वान् पार्थिवांश्चामितौजसः ॥ १४ ॥

उस समय बलरामजीने पाण्डवों, सृंजयों तथा अमित बलशाली सम्पूर्ण भूपालोंको हृदयसे लगाकर उनका कुशल-मङ्गल पूछा ॥ १४ ॥

तथैव ते समासाद्य पप्रच्छुस्तमनामयम् ।
प्रत्यभ्यर्च्य हली सर्वान् क्षत्रियांश्च महात्मनः ॥ १५ ॥
कृत्वा कुशलसंयुक्तां संविदं च यथावयः ।
जनार्दनं सात्यकिं च प्रेम्णा स परिषस्वजे ॥ १६ ॥

उसी प्रकार वे राजा भी उनसे मिलकर उनके आरोग्यका समाचार पूछने लगे । हलधरने सम्पूर्ण महामनस्वी क्षत्रियोंका समादर करके अवस्थाके अनुसार क्रमशः उनसे कुशल-मङ्गल-की जिज्ञासा की और श्रीकृष्ण तथा सात्यकिको प्रेमपूर्वक छाती-से लगा लिया ॥ १५-१६ ॥

मूर्ध्नि चैतावुपाघ्राय कुशलं पर्यपृच्छत ।
तौ च तं विधिवद् राजन् पूजयामासतुर्गुरुम् ॥ १७ ॥
ब्रह्माणमिव देवेशमिन्द्रोपेन्द्रौ मुदान्वितौ ।

राजन् ! इन दोनोंका मस्तक सूँघकर उन्होंने कुशल-समाचार पूछा और उन दोनोंने भी अपने गुरुजन बलरामजी-का विधिपूर्वक पूजन किया । ठीक उसी तरह, जैसे इन्द्र और उपेन्द्रने प्रसन्नतापूर्वक देवेश्वर ब्रह्माजीकी पूजा की थी ॥

ततोऽब्रवीद् धर्मसुतो रौहिणेयमरिंदमम् ॥ १८ ॥
इदं भ्रात्रोर्महायुद्धं पश्य रामेति भारत ।

भारत ! तत्पश्चात् धर्मपुत्र युधिष्ठिरने शत्रुदमन रोहिणी-कुमारसे कहा—'बलरामजी ! दोनों भाइयोंका यह महान् युद्ध देखिये' ॥ १८½ ॥

तेषां मध्ये महाबाहुः श्रीमान् केशवपूर्वजः ॥ १९ ॥
न्यविशत् परमप्रीतः पूज्यमानो महारथैः ।

उनके ऐसा कहनेपर श्रीकृष्णके बड़े भ्राता महाबाहु बलवान् श्रीराम उन महारथियोंसे पूजित हो उनके बीचमें अत्यन्त प्रसन्न होकर बैठे ॥ १९½ ॥

स बभौ राजमध्यस्थो नीलवासाः सितप्रभः ॥ २० ॥
दिवीव नक्षत्रगणैः परिकीर्णो निशाकरः ।

राजाओंके मध्यभागमें बैठे हुए नीलाम्बरधारी गौर-कान्ति बलरामजी आकाशमें नक्षत्रोंसे घिरे हुए चन्द्रमाके समान शोभा पा रहे थे ॥ २०½ ॥

ततस्तयोः संनिपातस्तुमुलो लोमहर्षणः ॥ २१ ॥
आसीदन्तकरो राजन् वैरस्य तव पुत्रयोः ॥ २२ ॥

राजन् ! तदनन्तर आपके उन दोनों पुत्रोंमें वैरका अन्त कर देनेवाला भयंकर एवं रोमाञ्चकारी संग्राम होने लगा ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवागमने चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलरामजीका आगमनविषयक चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

बलदेवजीकी तीर्थयात्रा तथा प्रभास-क्षेत्रके प्रभावका वर्णनके प्रसंगमें चन्द्रमाके शापमोचनकी कथा

जनमेजय उवाच

पूर्वमेव यदा रामस्तस्मिन् युद्ध उपस्थिते ।
आमन्त्र्य केशवं यातो वृष्णिभिः सहितः प्रभुः ॥ १ ॥
साहाय्यं धार्तराष्ट्रस्य न च कर्तास्मि केशव ।
न चैव पाण्डुपुत्राणां गमिष्यामि यथागतम् ॥ २ ॥

जनमेजयने कहा—ब्रह्मन् ! जब महाभारतयुद्ध आरम्भ होनेका समय निकट आ गया, उस समय युद्ध प्रारम्भ होनेसे पहले ही भगवान् बलराम श्रीकृष्णकी सम्मति ले, अन्य वृष्णि-वंशियोंके साथ तीर्थयात्राके लिये चले गये और जाते समय यह कह गये कि 'केशव ! मैं न तो धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनकी सहायता करूँगा और न पाण्डवोंकी ही' ॥ १-२ ॥

एवमुक्त्वा तदा रामो यातः क्षत्रनिबर्हणः ।
तस्य चागमनं भूयो ब्रह्मञ्शंसितुमर्हसि ॥ ३ ॥

विप्रवर ! उन दिनों ऐसी बात कहकर जब क्षत्रिय-संहारक बलरामजी चले गये, तब उनका पुनः आगमन कैसे हुआ, यह बतानेकी कृपा करें ॥ ३ ॥

आख्याहि मे विस्तरशः कथं राम उपस्थितः ।
कथं च दृष्टवान् युद्धं कुशलो ह्यसि सत्तम ॥ ४ ॥

साधुशिरोमणे ! आप कथा कहनेमें कुशल हैं; अतः मुझे विस्तारपूर्वक बताइये कि बलरामजी कैसे वहाँ उपस्थित हुए और किस प्रकार उन्होंने युद्ध देखा ? ॥ ४ ॥

वैशम्पायन उवाच

उपप्लव्ये निविष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु ।
प्रेषितो धृतराष्ट्रस्य समीपं मधुसूदनः ॥ ५ ॥
शमं प्रति महाबाहो हितार्थं सर्वदेहिनाम् ।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! जिन दिनों महा-मनस्वी पाण्डव उपप्लव्य नामक स्थानमें छावनी डालकर ठहरे हुए थे, उन्हीं दिनोंकी बात है । महाबाहो ! पाण्डवोंने समस्त प्राणियोंके हितके लिये सन्धिके उद्देश्यसे भगवान् श्री-कृष्णको धृतराष्ट्रके पास भेजा ॥ ५½ ॥

स गत्वा हास्तिनपुरं धृतराष्ट्रं समेत्य च ॥ ६ ॥
उक्तवान् वचनं तथ्यं हितं चैव विशेषतः ।

भगवान्ने हस्तिनापुर जाकर धृतराष्ट्रसे भेंट की और उनसे सबके लिये विशेष हितकारक एवं यथार्थ बातें कहीं ॥

न च तत् कृतवान् राजा यथा ख्यातं हि तत् पुरा॥ ७ ॥
अनवाप्य शमं तत्र कृष्णः पुरुषसत्तमः।
आगच्छत महाबाहुरुपप्लव्यं जनाधिप ॥ ८ ॥

नरेश्वर ! किंतु राजा धृतराष्ट्रने भगवान्का कहना नहीं माना । यह सब बात पहले यथार्थरूपसे बतायी गयी है। महाबाहु पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ संधि करानेमें सफलता न मिलनेपर पुनः उपप्लव्यमें ही लौट आये ॥७-८॥

ततः प्रत्यागतः कृष्णो धार्तराष्ट्रविसर्जितः।
अक्रियायां नरव्याघ्र पाण्डवानिदमब्रवीत् ॥ ९ ॥

नरव्याघ्र ! कार्य न होनेपर धृतराष्ट्रसे विदा ले वहाँसे लौटे हुए श्रीकृष्णने पाण्डवोंसे इस प्रकार कहा—॥ ९ ॥

न कुर्वन्ति वचो मह्यं कुरवः कालनोदिताः।
निर्गच्छध्वं पाण्डवेयाः पुष्येण सहिता मया ॥ १० ॥

'कौरव कालके अधीन हो रहे हैं, इसलिये वे मेरा कहना नहीं मानते हैं। पाण्डवो ! अब तुमलोग मेरे साथ पुष्य नक्षत्रमें युद्धके लिये निकल पड़ो' ॥ १० ॥

ततो विभज्यमानेषु बलेषु बलिनां वरः।
प्रोवाच भ्रातरं कृष्णं रौहिणेयो महामनाः ॥ ११ ॥

इसके बाद जब सेनाका बटवारा होने लगा, तब बलवानोंमें श्रेष्ठ महामना बलदेवजीने अपने भाई श्रीकृष्णसे कहा—॥

तेषामपि महाबाहो साहाय्यं मधुसूदन।
क्रियतामिति तत् कृष्णो नास्य चक्रे वचस्तदा ॥ १२ ॥

'महाबाहु मधुसूदन ! उनकौरवोंकी भी सहायता करना।' परंतु श्रीकृष्णने उस समय उनकी यह बात नहीं मानी' ॥

ततो मन्युपरीतात्मा जगाम यदुनन्दनः।
तीर्थयात्रां हलधरः सरस्वत्यां महायशाः॥ १३ ॥

इससे मन-ही-मन कुपित और खिन्न होकर महायशस्वी यदुनन्दन हलधर सरस्वतीके तटपर तीर्थयात्राके लिये चल दिये॥

मैत्रनक्षत्रयोगे स्म सहितः सर्वयादवैः।
आश्रयामास भोजस्तु दुर्योधनमरिंदमः ॥ १४ ॥

इसके बाद शत्रुओंका दमन करनेवाले कृतवर्माने सम्पूर्ण यादवोंके साथ अनुराधानक्षत्रमें दुर्योधनका पक्ष ग्रहण किया॥

युयुधानेन सहितो वासुदेवस्तु पाण्डवान्।
रौहिणेये गते शूरे पुष्येण मधुसूदनः ॥ १५ ॥
पाण्डवेयान् पुरस्कृत्य ययावभिमुखः कुरून्।

सात्यकिसहित भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंका पक्ष लिया। रोहिणीनन्दन शूरवीर बलरामजीके चले जानेपर मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंको आगे करके पुष्यनक्षत्रमें कुरुक्षेत्रकी ओर प्रस्थान किया ॥ १५½ ॥

गच्छन्नेव पथिस्थस्तु रामः प्रेष्यानुवाच ह ॥ १६ ॥
सम्भारांस्तीर्थयात्रायां सर्वोपकरणानि च।
आनयध्वं द्वारकायामग्नीन् वै याजकांस्तथा ॥ १७ ॥

यात्रा करते हुए बलरामजीने स्वयं मार्गमें ही रहकर अपने सेवकोंसे कहा—'तुमलोग शीघ्र ही द्वारका जाकर वहाँसे तीर्थयात्रामें काम आनेवाली सब सामग्री, समस्त आवश्यक उपकरण, अग्निहोत्रकी अग्नि तथा पुरोहितोंको ले आओ॥

सुवर्णं रजतं चैव धेनूर्वासांसि वाजिनः।
कुञ्जरांश्च रथांश्चैव खरोष्ट्रं वाहनानि च ॥ १८ ॥
क्षिप्रमानीयतां सर्वं तीर्थहेतोः परिच्छदम्।

'सोना, चाँदी, दूध देनेवाली गायें, वस्त्र, घोड़े, हाथी, रथ, गदहा और ऊँट आदि वाहन एवं तीर्थोपयोगी सब सामान शीघ्र ले आओ ॥ १८½ ॥

प्रतिस्रोतः सरस्वत्या गच्छध्वं शीघ्रगामिनः ॥ १९ ॥
ऋत्विजश्चानयध्वं वै शतशश्च द्विजर्षभान्।

'शीघ्रगामी सेवको ! तुम सरस्वतीके स्रोतकी ओर चलो और सैकड़ों श्रेष्ठ ब्राह्मणों तथा ऋत्विजोंको ले आओ' ॥१९½॥

एवं संदिश्य तु प्रेष्यान् बलदेवो महाबलः ॥ २० ॥
तीर्थयात्रां ययौ राजन् कुरूणां वैशसे तदा।
सरस्वतीं प्रतिस्रोतः समन्तादभिजग्मिवान् ॥ २१ ॥
ऋत्विग्भिश्च सुहृद्भिश्च तथान्यैर्द्विजसत्तमैः।
रथैर्गजैस्तथाश्वैश्च प्रेष्यैश्च भरतर्षभ ॥ २२ ॥
गोखरोष्ट्रप्रयुक्तैश्च यानैश्च बहुभिर्वृतः।

राजन् ! महाबली बलदेवजीने सेवकोंको ऐसी आज्ञा देकर उस समय कुरुक्षेत्रमें ही तीर्थयात्रा आरम्भ कर दी। भरतश्रेष्ठ ! वे सरस्वतीके स्रोतकी ओर चलकर उसके दोनों तटोंपर गये। उनके साथ ऋत्विज, सुहृद्, अन्यान्य श्रेष्ठ ब्राह्मण, रथ, हाथी, घोड़े और सेवक भी थे। बैल, गदहा और ऊँटोंसे जुते हुए बहुसंख्यक रथोंसे बलरामजी घिरे हुए थे॥

श्रान्तानां क्लान्तवपुषां शिशूनां विपुलायुषाम् ॥ २३ ॥
देशे देशे तु देयानि दानानि विविधानि च।
अर्चायै चार्थिनां राजन् क्लृप्तानि बहुशस्तथा॥ २४ ॥

राजन् ! उस समय उन्होंने देश-देशमें थके-माँदे रोगी, बालक और वृद्धोंका सत्कार करनेके लिये नाना प्रकारकी देने योग्य वस्तुएँ प्रचुर मात्रामें तैयार करा रक्खी थीं ॥२३-२४॥

तानि यानीह देशेषु प्रतीक्षन्ति स्म भारत।
बुभुक्षितानामर्थाय क्लृप्तमन्नं समन्ततः ॥ २५ ॥

भारत ! विभिन्न देशोंमें लोग जिन वस्तुओंकी इच्छा रखते थे, उन्हें वे ही दी जाती थीं। भूखोंको भोजन करानेके लिये सर्वत्र अन्नका प्रबन्ध किया गया था ॥ २५ ॥

यो यो यत्र द्विजो भोज्यं भोक्तुं कामयते तदा।
तस्य तस्य तु तत्रैवमुपजह्रुस्तदा नृप ॥ २६ ॥

नरेश्वर ! जिस किसी देशमें जो-जो ब्राह्मण जब कभी भोजनकी इच्छा प्रकट करता, बलरामजीके सेवक उसे वहीं तत्काल खाने-पीनेकी वस्तुएँ अर्पित करते थे ॥ २६ ॥

तत्र तत्र स्थिता राजन् रौहिणेयस्य शासनात्।
भक्ष्यपेयस्य कुर्वन्ति राशींस्तत्र समन्ततः ॥ २७ ॥

राजन् ! रोहिणीकुमार बलरामजीकी आज्ञासे उनके सेवक विभिन्न तीर्थस्थानोंमें खाने-पीनेकी वस्तुओंके ढेर लगाये रखते थे ॥ २७ ॥

वासांसि च महार्हाणि पर्यङ्कास्तरणानि च।

पूजार्थं तत्र क्लृप्तानि विप्राणां सुखमिच्छताम्॥ २८ ॥

सुख चाहनेवाले ब्राह्मणोंके सत्कारके लिये बहुमूल्य वस्त्र, पलंग और बिछौने तैयार रक्खे जाते थे ॥ २८ ॥

यत्र यः स्वपते विप्रो यो वा जागर्ति भारत ।
तत्र तत्र तु तस्यैव सर्वं क्लृप्तमदृश्यत ॥ २९ ॥

भारत ! जो ब्राह्मण जहाँ भी सोता या जागता था, वहाँ-वहाँ उसके लिये सारी आवश्यक वस्तुएँ सदा प्रस्तुत दिखायी देती थीं ॥ २९ ॥

यथासुखं जनः सर्वो याति तिष्ठति वै तदा ।
यातुकामस्य यानानि पानानि तृषितस्य च ॥ ३० ॥
बुभुक्षितस्य चान्नानि स्वादूनि भरतर्षभ ।
उपजह्रुर्नरास्तत्र वस्त्राण्याभरणानि च ॥ ३१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! इस यात्रामें सब लोग सुखपूर्वक चलते और विश्राम करते थे । यात्रीकी इच्छा हो तो उसे सवारियाँ दी जाती थीं, प्यासेको पानी और भूखेको स्वादिष्ट अन्न दिये जाते थे । साथ ही वहाँ बलरामजीके सेवक वस्त्र और आभूषण भी भेंट करते थे ॥ ३०-३१ ॥

स पन्थाः प्रबभौ राजन् सर्वस्यैव सुखावहः ।
स्वर्गोपमस्तदा वीर नराणां तत्र गच्छताम् ।
नित्यप्रमुदितोपेतः स्वादुभक्ष्यः शुभान्वितः ॥ ३२ ॥

वीर नरेश ! वहाँ यात्रा करनेवाले सब लोगोंको वह मार्ग स्वर्गके समान सुखदायक प्रतीत होता था । उस मार्गमें सदा आनन्द रहता, स्वादिष्ट भोजन मिलता और शुभकी ही प्राप्ति होती थी ॥ ३२ ॥

विपण्यापणपण्यानां नानाजनशतैर्वृतः ।
नानाद्रुमलतोपेतो नानारत्नविभूषितः ॥ ३३ ॥

उस पथपर खरीदने-वेचनेकी वस्तुओंका बाजार भी साथ-साथ चलता था, जिसमें नाना प्रकारके सैकड़ों मनुष्य भरे रहते थे । वह हाट भाँति-भाँतिके वृक्षों और लताओंसे सुशोभित तथा अनेकानेक रत्नोंसे विभूषित दिखायी देता था॥

ततो महात्मा नियमे स्थितात्मा
पुण्येषु तीर्थेषु वसूनि राजन् ।
ददौ द्विजेभ्यः क्रतुदक्षिणाश्च
यदुप्रवीरो हलभृत् प्रतीतः ॥ ३४ ॥

राजन् ! यदुकुलके प्रमुख वीर हलधारी महात्मा बलराम नियमपूर्वक रहकर प्रसन्नताके साथ पुण्यतीर्थोंमें ब्राह्मणोंको धन और यज्ञकी दक्षिणाएँ देते थे ॥ ३४ ॥

दोग्ध्रीश्च धेनूश्च सहस्रशो वै
सुवाससः काञ्चनबद्धशृङ्गीः ।
हयांश्च नानाविधदेशजातान्
यानानि दासांश्च शुभान् द्विजेभ्यः॥ ३५ ॥
रत्नानि मुक्तामणिविद्रुमं चा-
प्यग्र्यं सुवर्णं रजतं सुशुद्धम् ।
अयस्मयं ताम्रमयं च भाण्डं
ददौ द्विजातिप्रवरेषु रामः ॥ ३६ ॥

बलरामने श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको सहस्रों दूध देनेवाली गौएँ दान कीं, जिन्हें सुन्दर वस्त्रोंसे सुसज्जित करके उनके सींगोंमें सोनेके पत्र जड़े गये थे । साथ ही उन्होंने अनेक देशोंमें उत्पन्न घोड़े, रथ और सुन्दर वेश-भूषावाले दास भी ब्राह्मणोंकी सेवामें अर्पित किये । इतना ही नहीं, बलरामने भाँति-भाँतिके रत्न, मोती, मणि, मूँगा, उत्तम सुवर्ण, विशुद्ध चाँदी तथा लोहे और ताँबेके बर्तन भी बाँटे थे ॥ ३५-३६ ॥

एवं स वित्तं प्रददौ महात्मा
सरस्वतीतीर्थवरेषु भूरि ।
ययौ क्रमेणाप्रतिमप्रभाव-
स्ततः कुरुक्षेत्रमुदारवृत्तिः ॥ ३७ ॥

इस प्रकार उदार वृत्तिवाले अनुपम प्रभावशाली महात्मा बलरामने सरस्वतीके श्रेष्ठ तीर्थोंमें बहुत धन दान किया और क्रमशः यात्रा करते हुए वे कुरुक्षेत्रमें आये ॥ ३७ ॥

जनमेजय उवाच

सारस्वतानां तीर्थानां गुणोत्पत्तिं वदस्व मे ।
फलं च द्विपदां श्रेष्ठ कर्मनिर्वृत्तिमेव च ॥ ३८ ॥
यथाक्रमेण भगवंस्तीर्थानामनुपूर्वशः ।
ब्रह्मन् ब्रह्मविदां श्रेष्ठ परं कौतूहलं हि मे ॥ ३९ ॥

जनमेजय बोले—ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ और मनुष्योंमें उत्तम ब्राह्मणदेव ! अब आप मुझे सरस्वती-तटवर्ती तीर्थोंके गुण, प्रभाव और उत्पत्तिकी कथा सुनाइये । भगवन् ! क्रमशः उन तीर्थोंके सेवनका फल और जिस कर्मसे वहाँ सिद्धि प्राप्त होती है, उसका अनुष्ठान भी बताइये; मेरे मनमें यह सब सुननेके लिये बड़ी उत्कण्ठा हो रही है ॥ ३८-३९ ॥

वैशम्पायन उवाच

तीर्थानां च फलं राजन् गुणोत्पत्तिं च सर्वशः ।
मयोच्यमानं वै पुण्यं शृणु राजेन्द्र कृत्स्नशः ॥ ४० ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजेन्द्र ! मैं तुम्हें तीर्थोंके गुण, प्रभाव, उत्पत्ति तथा उनके सेवनका पुण्य-फल बता रहा हूँ । वह सब तुम ध्यानसे सुनो ॥ ४० ॥

पूर्वं महाराज यदुप्रवीर
ऋत्विक्सुहृद्विप्रगणैश्च सार्धम् ।
पुण्यं प्रभासं समुपाजगाम
यत्रोडुराड् यक्ष्मणा क्लिश्यमानः॥ ४१ ॥
विमुक्तशापः पुनराप्य तेजः
सर्वं जगद् भासयते नरेन्द्र ।
एवं तु तीर्थप्रवरं पृथिव्यां
प्रभासनात् तस्य ततः प्रभासः ॥ ४२ ॥

महाराज ! यदुकुलके प्रमुख वीर बलरामजी सबसे पहले ऋत्विजों, सुहृदों और ब्राह्मणोंके साथ पुण्यमय प्रभासक्षेत्रमें गये, जहाँ राजयक्ष्मासे कष्ट पाते हुए चन्द्रमाको शापसे छुटकारा मिला था । नरेन्द्र ! वे वहीं पुनः अपना तेज प्राप्त करके सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करते हैं । इस प्रकार चन्द्रमाको प्रभासित करनेके कारण ही वह प्रधान तीर्थ इस पृथ्वीपर प्रभास नामसे विख्यात हुआ ॥ ४१-४२ ॥

जनमेजय उवाच

कथं तु भगवन् सोमो यक्ष्मणा समगृह्यत ।
कथं च तीर्थप्रवरे तस्मिंश्चन्द्रो न्यमज्जत ॥ ४३ ॥

जनमेजयने पूछा—भगवन् ! चन्द्रमा कैसे राजयक्ष्मासे ग्रस्त हो गये और उस उत्तम तीर्थमें किस प्रकार उन्होंने स्नान किया ? ॥ ४३ ॥

कथमाप्लुत्य तस्मिंस्तु पुनराप्यायितः शशी ।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व विस्तरेण महामुने ॥ ४४ ॥

महामुने ! उस तीर्थमें गोता लगाकर चन्द्रमा पुनः किस प्रकार हृष्ट-पुष्ट हुए ? यह सब प्रसंग मुझे विस्तारपूर्वक बताइये॥

वैशम्पायन उवाच

दक्षस्य तनयास्तात प्रादुरासन् विशाम्पते ।
स सप्तविंशतिं कन्या दक्षः सोमाय वै ददौ ॥ ४५ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—तात ! प्रजानाथ ! प्रजापति दक्षके बहुत-सी संतानें उत्पन्न हुई थीं । उनमेंसे अपनी सत्ताईस कन्याओंका विवाह उन्होंने चन्द्रमाके साथ कर दिया था ॥ ४५ ॥

नक्षत्रयोगनिरताः संख्यानार्थं च ताभवन् ।
पत्न्यो वै तस्य राजेन्द्र सोमस्य शुभकर्मणः ॥ ४६ ॥

राजेन्द्र ! शुभ कर्म करनेवाले सोमकी वे पत्नियाँ समयकी गणनाके लिये नक्षत्रोंसे सम्बन्ध रखनेके कारण उसी नामसे विख्यात हुईं ॥ ४६ ॥

तास्तु सर्वा विशालाक्ष्यो रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
अत्यरिच्यत तासां तु रोहिणी रूपसम्पदा ॥ ४७ ॥

वे सब-की-सब विशाल नेत्रोंसे सुशोभित होती थीं । इस भूतलपर उनके रूपकी समानता करनेवाली कोई स्त्री नहीं थी । उनमें भी रोहिणी अपने रूप-वैभवकी दृष्टिसे सबकी अपेक्षा बढ़ी-चढ़ी थी ॥ ४७ ॥

ततस्तस्यां स भगवान् प्रीतिं चक्रे निशाकरः ।
सास्य हृद्या बभूवाथ तस्मात् तां बुभुजे सदा ॥ ४८ ॥

इसलिये भगवान् चन्द्रमा उससे अधिक प्रेम करने लगे, वही उनकी हृदयवल्लभा हुई; अतः वे सदा उसीका उपभोग करते थे ॥ ४८ ॥

पुरा हि सोमो राजेन्द्र रोहिण्यामवसत् परम् ।
ततस्ताः कुपिताः सर्वा नक्षत्राख्या महात्मनः ॥ ४९ ॥

राजेन्द्र ! पूर्वकालमें चन्द्रमा सदा रोहिणीके ही समीप रहते थे; अतः नक्षत्रनामसे प्रसिद्ध हुई महात्मा सोमकी वे सारी पत्नियाँ उनपर कुपित हो उठीं ॥ ४९ ॥

ता गत्वा पितरं प्राहुः प्रजापतिमतन्द्रिताः ।
सोमो वसति नास्मासु रोहिणीं भजते सदा ॥ ५० ॥

और आलस्य छोड़कर अपने पिताके पास जाकर बोलीं—'प्रभो ! चन्द्रमा हमारे पास नहीं आते । वे सदा रोहिणीका ही सेवन करते हैं ॥ ५० ॥

ता वयं सहिताः सर्वास्त्वत्सकाशे प्रजेश्वर ।
वत्स्यामो नियताहारास्तपश्चरणतत्पराः ॥ ५१ ॥

'अतः प्रजेश्वर ! हम सब बहिनें एक साथ नियमित आहार करके तपस्यामें संलग्न हो आपके ही पास रहेंगी' ॥

श्रुत्वा तासां तु वचनं दक्षः सोममथाब्रवीत् ।
समं वर्तस्व भार्यासु मा त्वाधर्मो महान् स्पृशेत्॥५२॥

उनकी यह बात सुनकर प्रजापति दक्षने चन्द्रमासे कहा—'सोम ! तुम अपनी सभी पत्नियोंके साथ समानतापूर्ण बर्ताव करो, जिससे तुम्हें महान् पाप न लगे' ॥ ५२ ॥

तास्तु सर्वाब्रवीद् दक्षो गच्छध्वं शशिनोऽन्तिकम् ।
समं वत्स्यति सर्वासु चन्द्रमा मम शासनात् ॥ ५३ ॥

फिर दक्षने उन सभी कन्याओंसे कहा—'अब तुमलोग चन्द्रमाके पास ही जाओ । वे मेरी आज्ञासे तुम सब लोगोंके प्रति समान भाव रक्खेंगे' ॥ ५३ ॥

विसृष्टास्तास्तथा जग्मुः शीतांशुभवनं तदा ।
तथापि सोमो भगवान् पुनरेव महीपते ॥ ५४ ॥
रोहिणीं निवसत्येव प्रीयमाणो मुहुर्मुहुः ।

पृथ्वीनाथ ! पिताके बिदा करनेपर वे पुनः चन्द्रमाके घरमें लौट गयीं, तथापि भगवान् सोम फिर रोहिणीके पास ही अधिकाधिक प्रेमपूर्वक रहने लगे ॥ ५४½ ॥

ततस्ताः सहिताः सर्वा भूयः पितरमब्रुवन् ॥ ५५ ॥
तव शुश्रूषणे युक्ता वत्स्यामो हि तवान्तिके ।
सोमो वसति नास्मासु नाकरोद् वचनं तव ॥ ५६ ॥

तब वे सब कन्याएँ पुनः एक साथ अपने पिताके पास जाकर बोलीं—'हम सब लोग आपकी सेवामें तत्पर रहकर आपके ही समीप रहेंगी । चन्द्रमा हमारे साथ नहीं रहते । उन्होंने आपकी बात नहीं मानी' ॥ ५५-५६ ॥

तासां तद् वचनं श्रुत्वा दक्षः सोममथाब्रवीत् ।
समं वर्तस्व भार्यासु मा त्वां शप्स्ये विरोचन ॥ ५७ ॥

उनकी बात सुनकर दक्षने पुनः सोमसे कहा—'प्रकाशमान चन्द्रदेव ! तुम अपनी सभी पत्नियोंके साथ समान बर्ताव करो, नहीं तो तुम्हे शाप दे दूँगा' ॥ ५७ ॥

अनादृत्य तु तद् वाक्यं दक्षस्य भगवाञ्शशी ।
रोहिण्या सार्धमवसत् ततस्ताः कुपिताः पुनः ॥ ५८ ॥
गत्वा च पितरं प्राहुः प्रणम्य शिरसा तदा ।
सोमो वसति नास्मासु तस्मान्नः शरणं भव ॥ ५९ ॥

दक्षके इतना कहनेपर भी भगवान् चन्द्रमा उनकी बातकी अवहेलना करके केवल रोहिणीके ही साथ रहने लगे । यह देख दूसरी स्त्रियाँ पुनः क्रोधसे जल उठीं और पिताके पास जा उनके चरणोंमें मस्तक नवाकर प्रणाम करनेके अनन्तर बोलीं—'भगवन् ! सोम हमारे पास नहीं रहते । अतः आप हमें शरण दें ॥ ५८-५९ ॥

रोहिण्यामेव भगवान् सदा वसति चन्द्रमाः ।
न त्वद्वचो गणयति नास्मासु स्नेहमिच्छति ॥ ६० ॥
तस्मान्नस्त्राहि सर्वा वै यथा नः सोम आविशेत् ।

'भगवान् चन्द्रमा सदा रोहिणीके ही समीप रहते हैं । वे आपकी बातको कुछ गिनते ही नहीं हैं । हमलोगोंपर स्नेह

रखना नहीं चाहते हैं; अतः आप हम सब लोगोंकी रक्षा करें, जिससे चन्द्रमा हमारे साथ भी सम्बन्ध रक्खें' ॥ ६०½ ॥

तच्छ्रुत्वा भगवान् क्रुद्धो यक्ष्माणं पृथिवीपते ॥ ६१ ॥
ससर्ज रोषात् सोमाय स चोडुपतिमाविशत् ।

पृथ्वीनाथ ! यह सुनकर भगवान् दक्ष कुपित हो उठे । उन्होंने चन्द्रमाके लिये रोषपूर्वक राजयक्ष्माकी सृष्टि की । वह चन्द्रमाके भीतर प्रविष्ट हो गया ॥ ६१½ ॥

स यक्ष्मणाभिभूतात्माक्षीयताहरहः शशी ॥ ६२ ॥
यत्नं चाप्यकरोद् राजन् मोक्षार्थं तस्य यक्ष्मणः ।

यक्ष्मासे शरीर ग्रस्त हो जानेके कारण चन्द्रमा प्रतिदिन क्षीण होने लगे । राजन् ! उस यक्ष्मासे छूटनेके लिये उन्होंने बड़ा यत्न किया ॥ ६२½ ॥

इष्ट्वेष्टिभिर्महाराज विविधाभिर्निशाकरः ॥ ६३ ॥
न चामुच्यत शापाद् वै क्षयं चैवाभ्यगच्छत ।

महाराज ! नाना प्रकारके यज्ञ-यागोंका अनुष्ठान करके भी चन्द्रमा उस शापसे मुक्त न हो सके और धीरे-धीरे क्षीण होते चले गये ॥ ६३½ ॥

क्षीयमाणे ततः सोमे ओषध्यो न प्रजज्ञिरे ॥ ६४ ॥
निरास्वादरसाः सर्वा हतवीर्याश्च सर्वशः ।

चन्द्रमाके क्षीण होनेसे अन्न आदि ओषधियाँ उत्पन्न नहीं होती थीं । उन सबके स्वाद, रस और प्रभाव नष्ट हो गये ॥

ओषधीनां क्षये जाते प्राणिनामपि संक्षयः ॥ ६५ ॥
कृशाश्चासन् प्रजाः सर्वाः क्षीयमाणे निशाकरे ।

ओषधियोंके क्षीण होनेसे समस्त प्राणियोंका भी क्षय होने लगा । इस प्रकार चन्द्रमाके क्षयके साथ-साथ सारी प्रजा अत्यन्त दुर्बल हो गयी ॥ ६५½ ॥

ततो देवाः समागम्य सोममूचुर्महीपते ॥ ६६ ॥
किमिदं भवतो रूपमीदृशं न प्रकाशते ।
कारणं ब्रूहि नः सर्वं येनेदं ते महद् भयम् ॥ ६७ ॥
श्रुत्वा तु वचनं त्वत्तो विधास्यामस्ततो वयम् ।

पृथ्वीनाथ ! उस समय देवताओंने चन्द्रमासे मिलकर पूछा—'आपका रूप ऐसा कैसे हो गया ? यह प्रकाशित क्यों नहीं होता है ? हमलोगोंसे सारा कारण बताइये, जिससे आपको महान् भय प्राप्त हुआ । आपकी बात सुनकर हमलोग इस संकटके निवारणका कोई उपाय करेंगे' ॥ ६६-६७½ ॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच सर्वांस्ताञ्शशलक्षणः ॥ ६८ ॥
शापस्य लक्षणं चैव यक्ष्माणं च तथाऽऽत्मनः ।

उनके इस प्रकार पूछनेपर चन्द्रमाने उन सबको उत्तर देते हुए अपनेको प्राप्त हुए शापके कारण राजयक्ष्माकी उत्पत्ति बतलायी ॥ ६८½ ॥

देवास्तथा वचः श्रुत्वा गत्वा दक्षमथाब्रुवन् ॥ ६९ ॥
प्रसीद भगवन् सोमे शापोऽयं विनिवर्त्यताम् ।

उनका वचन सुनकर देवता दक्षके पास जाकर बोले—'भगवन् ! आप चन्द्रमापर प्रसन्न होइये और यह शाप हटा लीजिये ॥ ६९½ ॥

असौ हि चन्द्रमाः क्षीणः किंचिच्छेषो हि लक्ष्यते ॥ ७० ॥
क्षयाच्चैवास्य देवेश प्रजाश्चैव गताः क्षयम् ।
वीरुदोषधयश्चैव बीजानि विविधानि च ॥ ७१ ॥

'चन्द्रमा क्षीण हो चुके हैं और उनका कुछ ही अंश शेष दिखायी देता है । देवेश्वर ! उनके क्षयसे लता, वीरुत्, ओषधियाँ भाँति-भाँतिके बीज और सम्पूर्ण प्रजा भी क्षीण हो गयी है ॥

तेषां क्षये क्षयोऽस्माकं विनास्माभिर्जगच्च किम् ।
इति ज्ञात्वा लोकगुरो प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ७२ ॥

'उन सबके क्षीण होनेपर हमारा भी क्षय हो जायगा । फिर हमारे बिना संसार कैसे रह सकता है ? लोकगुरो ! ऐसा जानकर आपको चन्द्रदेवपर अवश्य कृपा करनी चाहिये' ॥

एवमुक्तस्ततो देवान् प्राह वाक्यं प्रजापतिः ।
नैतच्छक्यं मम वचो व्यावर्तयितुमन्यथा ॥ ७३ ॥
हेतुना तु महाभागा निवर्तिष्यति केनचित् ।

उनके ऐसा कहनेपर प्रजापति दक्ष देवताओंसे इस प्रकार बोले—'महाभाग देवगण ! मेरी बात पलटी नहीं जा सकती । किसी विशेष कारणसे वह स्वतः निवृत्त हो जायगी ॥ ७३½ ॥

समं वर्ततु सर्वासु शशी भार्यासु नित्यशः ॥ ७४ ॥
सरस्वत्या वरे तीर्थे उन्मज्जञ्शशलक्षणः ।
पुनर्वर्धिष्यते देवास्तद् वै सत्यं वचो मम ॥ ७५ ॥

'यदि चन्द्रमा अपनी सभी पत्नियोंके प्रति सदा समान बर्ताव करें और सरस्वतीके श्रेष्ठ तीर्थमें गोता लगायें तो वे पुनः बढ़कर पुष्ट हो जायँगे । देवताओ ! मेरी यह बात अवश्य सच होगी ॥ ७४-७५ ॥

मासार्धं च क्षयं सोमो नित्यमेव गमिष्यति ।
मासार्धं तु सदा वृद्धिं सत्यमेतद् वचो मम ॥ ७६ ॥

'सोम आधे मासतक प्रतिदिन क्षीण होंगे और आधे मासतक निरन्तर बढ़ते रहेंगे । मेरी यह बात अवश्य सत्य होगी ॥ ७६ ॥

समुद्रं पश्चिमं गत्वा सरस्वत्यब्धिसङ्गमम् ।
आराधयतु देवेशं ततः कान्तिमवाप्स्यति ॥ ७७ ॥

'पश्चिमी समुद्रके तटपर जहाँ सरस्वती और समुद्रका सङ्गम हुआ है, वहाँ जाकर चन्द्रमा देवेश्वर महादेवजीकी आराधना करें तो पुनः ये अपनी कान्ति प्राप्त कर लेंगे' ॥ ७७ ॥

सरस्वतीं ततः सोमः स जगामर्षिशासनात् ।
प्रभासं प्रथमं तीर्थं सरस्वत्या जगाम ह ॥ ७८ ॥

ऋषि (दक्ष प्रजापति) के इस आदेशसे सोम सरस्वतीके प्रथम तीर्थ प्रभासक्षेत्रमें गये ॥ ७८ ॥

अमावास्यां महातेजास्तत्रोन्मज्जन् महाद्युतिः ।
लोकान् प्रभासयामास शीतांशुत्वमवाप च ॥ ७९ ॥

महातेजस्वी महाकान्तिमान् चन्द्रमाने अमावास्याको उस तीर्थमें गोता लगाया । इससे उन्हें शीतल किरणें प्राप्त हुईं और वे सम्पूर्ण जगत्‌को प्रकाशित करने लगे ॥ ७९ ॥

देवास्तु सर्वे राजेन्द्र प्रभासं प्राप्य पुष्कलम् ।
सोमेन सहिता भूत्वा दक्षस्य प्रमुखेऽभवन् ॥ ८० ॥

राजेन्द्र ! फिर सम्पूर्ण देवता सोमके साथ महान् प्रकाश प्राप्त करके पुनः दक्षप्रजापतिके सामने उपस्थित हुए ॥ ८० ॥

ततः प्रजापतिः सर्वा विससर्जाथ देवताः ।
सोमं च भगवान् प्रीतो भूयो वचनमब्रवीत् ॥ ८१ ॥

तब भगवान् प्रजापतिने समस्त देवताओंको विदा कर दिया और सोमसे पुनः प्रसन्नतापूर्वक कहा—॥ ८१ ॥

मावमंस्थाः स्त्रियः पुत्र मा च विप्रान् कदाचन ।
गच्छ युक्तः सदा भूत्वा कुरु वै शासनं मम ॥ ८२ ॥

'बेटा ! अपनी स्त्रियों तथा ब्राह्मणोंकी कभी अवहेलना न करना । जाओ, सदा सावधान रहकर मेरी आज्ञाका पालन करते रहो' ॥ ८२ ॥

स विसृष्टो महाराज जगामाथ स्वमालयम् ।
प्रजाश्च मुदिता भूत्वा पुनस्तस्थुर्यथा पुरा ॥ ८३ ॥

महाराज ! ऐसा कहकर प्रजापतिने उन्हें विदा कर दिया । चन्द्रमा अपने स्थानको चले गये और सारी प्रजा पूर्ववत् प्रसन्न रहने लगी ॥ ८३ ॥

एवं ते सर्वमाख्यातं यथा शप्तो निशाकरः ।
प्रभासं च यथा तीर्थं तीर्थानां प्रवरं महत् ॥ ८४ ॥

इस प्रकार चन्द्रमाको जैसे शाप प्राप्त हुआ था और महान् प्रभासतीर्थ जिस प्रकार सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ माना गया, वह सारा प्रसङ्ग मैंने तुमसे कह सुनाया ॥ ८४ ॥

अमावास्यां महाराज नित्यशः शशलक्षणः ।
स्नात्वा ह्याप्यायते श्रीमान् प्रभासे तीर्थ उत्तमे ॥ ८५ ॥

महाराज ! चन्द्रमा उत्तम प्रभासतीर्थमें प्रत्येक अमावास्याको स्नान करके कान्तिमान् एवं पुष्ट होते हैं ॥ ८५ ॥

अतश्चैतत् प्रजानन्ति प्रभासमिति भूमिप ।
प्रभां हि परमां लेभे तस्मिन्नुन्मज्ज्य चन्द्रमाः ॥ ८६ ॥

भूमिपाल ! इसीलिये सब लोग इसे प्रभासतीर्थके नामसे जानते हैं; क्योंकि उसमें गोता लगाकर चन्द्रमाने उत्कृष्ट प्रभा प्राप्त की थी ॥ ८६ ॥

ततस्तु चमसोद्भेदमच्युतस्त्वगमद् बली ।
चमसोद्भेद इत्येवं यं जनाः कथयन्त्युत ॥ ८७ ॥

तदनन्तर भगवान् बलराम चमसोद्भेद नामक तीर्थमें गये । उस तीर्थको सब लोग चमसोद्भेदके नामसे ही पुकारते हैं ॥

तत्र दत्त्वा च दानानि विशिष्टानि हलायुधः ।
उषित्वा रजनीमेकां स्नात्वा च विधिवत्तदा ॥ ८८ ॥
उदपानमथागच्छत्त्वरावान् केशवाग्रजः ।
आद्यं स्वस्त्ययनं चैव यत्रावाप्य महत् फलम् ॥ ८९ ॥
स्निग्धत्वादोषधीनां च भूमेश्च जनमेजय ।
जानन्ति सिद्धा राजेन्द्र नष्टामपि सरस्वतीम् ॥ ९० ॥

श्रीकृष्णके बड़े भाई हलधारी बलरामने वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके उत्तम दान दे एक रात रहकर बड़ी उतावलीके साथ वहाँसे उदपानतीर्थको प्रस्थान किया, जो मङ्गलकारी आदि तीर्थ है । राजेन्द्र जनमेजय ! उदपान वह तीर्थ है, जहाँ उपस्थित होने मात्रसे महान् फलकी प्राप्ति होती है । सिद्ध पुरुष वहाँ ओषधियों (वृक्षों और लताओं) की स्निग्धता और भूमिकी आर्द्रता देखकर अदृश्य हुई सरस्वतीको भी जान लेते हैं ॥ ८८—९० ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां प्रभासोत्पत्तिकथने पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसङ्गमें प्रभासतीर्थका वर्णनविषयक पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

उदपानतीर्थकी उत्पत्तिकी तथा त्रित मुनिके कूपमें गिरने, वहाँ यज्ञ करने और अपने भाइयोंको शाप देनेकी कथा

वैशम्पायन उवाच

तस्मान्नदीगतं चापि ह्युदपानं यशस्विनः ।
त्रितस्य च महाराज जगामाथ हलायुधः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज ! उस चमसोद्भेद-तीर्थसे चलकर बलरामजी यशस्वी त्रितमुनिके उदपान तीर्थमें गये, जो सरस्वती नदीके जलमें स्थित है ॥ १ ॥

तत्र दत्त्वा बहु द्रव्यं पूजयित्वा तथा द्विजान् ।
उपस्पृश्य च तत्रैव प्रहृष्टो मुसलायुधः ॥ २ ॥

मुसलधारी बलरामजीने वहाँ जलका स्पर्श, आचमन एवं स्नान करके बहुत-सा द्रव्य दान करनेके पश्चात् ब्राह्मणोंका पूजन किया । फिर वे बहुत प्रसन्न हुए ॥ २ ॥

तत्र धर्मपरो भूत्वा त्रितः स सुमहातपाः ।
कूपे च वसता तेन सोमः पीतो महात्मना ॥ ३ ॥

वहाँ महातपस्वी त्रितमुनि धर्मपरायण होकर रहते थे । उन महात्माने कुएँमें रहकर ही सोमपान किया था ॥ ३ ॥

तत्र चैनं समुत्सृज्य भ्रातरौ जग्मतुर्गृहान् ।
ततस्तौ वै शशापाथ त्रितो ब्राह्मणसत्तमः ॥ ४ ॥

उनके दो भाई उस कुएँमें ही उन्हें छोड़कर घरको चले गये थे । इससे ब्राह्मणश्रेष्ठ त्रितने दोनोंको शाप दे दिया था ॥ ४ ॥

जनमेजय उवाच

उदपानं कथं ब्रह्मन् कथं च सुमहातपाः ।
पतितः किं च संत्यक्तो भ्रातृभ्यां द्विजसत्तम ॥ ५ ॥
कूपे कथं च हित्वैनं भ्रातरौ जग्मतुर्गृहान् ।
कथं च याजयामास पपौ सोमं च वै कथम् ॥ ६ ॥
एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मञ्श्रोतव्यं यदि मन्यसे ।

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन् ! उदपान तीर्थ कैसे हुआ ? वे महातपस्वी त्रितमुनि उसमें कैसे गिर पड़े और द्विजश्रेष्ठ ! उनके दोनों भाइयोंने उन्हें क्यों वहीं छोड़ दिया था ? क्या कारण था, जिससे वे दोनों भाई उन्हें कुएँमें ही त्यागकर घर चले गये थे ? वहाँ रहकर उन्होंने यज्ञ और सोमपान कैसे किया ? ब्रह्मन् ! यदि यह प्रसङ्ग मेरे सुनने योग्य समझें तो अवश्य मुझे बतावें ॥ ५-६½ ॥

वैशम्पायन उवाच

आसन् पूर्वयुगे राजन् मुनयो भ्रातरस्त्रयः ॥ ७ ॥
एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चादित्यसंनिभाः ।
सर्वे प्रजापतिसमाः प्रजावन्तस्तथैव च ॥ ८ ॥
ब्रह्मलोकजितः सर्वे तपसा ब्रह्मवादिनः ।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! पहले युगमें तीन सहोदर भाई रहते थे । वे तीनों ही मुनि थे । उनके नाम थे एकत, द्वित और त्रित । वे सभी महर्षि सूर्यके समान तेजस्वी, प्रजापतिके समान संतानवान् और ब्रह्मवादी थे । उन्होंने तपस्याद्वारा ब्रह्मलोकपर विजय प्राप्त की थी ।७-८½।

तेषां तु तपसा प्रीतो नियमेन दमेन च ॥ ९ ॥
अभवद् गौतमो नित्यं पिता धर्मरतः सदा ।

उनकी तपस्या, नियम और इन्द्रियनिग्रहसे उनके धर्मपरायण पिता गौतम सदा ही प्रसन्न रहा करते थे ॥ ९½ ॥

स तु दीर्घेण कालेन तेषां प्रीतिमवाप्य च ॥ १० ॥
जगाम भगवान् स्थानमनुरूपमिवात्मनः ।

उन पुत्रोंकी त्याग-तपस्यासे संतुष्ट रहते हुए वे पूजनीय महात्मा गौतम दीर्घकालके पश्चात् अपने अनुरूप स्थान (स्वर्गलोक) में चले गये ॥ १०½ ॥

राजानस्तस्य ये ह्यासन् याज्या राजन् महात्मनः॥११॥
ते सर्वे स्वर्गते तस्मिंस्तस्य पुत्रानपूजयन् ।

राजन् ! उन महात्मा गौतमके यजमान जो राजा लोग थे, वे सब उनके स्वर्गवासी हो जानेपर उनके पुत्रोंका ही आदर-सत्कार करने लगे ॥ ११½ ॥

तेषां तु कर्मणा राजंस्तथा चाध्ययनेन च ॥ १२ ॥
त्रितः स श्रेष्ठतां प्राप यथैवास्य पिता तथा ।

नरेश्वर ! उन तीनोंमें भी अपने शुभ कर्म और स्वाध्यायके द्वारा महर्षि त्रितने सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया । जैसे उनके पिता सम्मानित थे, वैसे ही वे भी हो गये ॥ १२½ ॥

तथा सर्वे महाभागा मुनयः पुण्यलक्षणाः ॥ १३ ॥
अपूजयन् महाभागं यथास्य पितरं तथा ।

महान् सौभाग्यशाली और पुण्यात्मा सभी महर्षि भी महाभाग त्रितका उनके पिताके तुल्य ही सम्मान करते थे ॥

कदाचिद्धि ततो राजन् भ्रातरावेकतद्वितौ ॥ १४ ॥
यज्ञार्थं चक्रतुश्चिन्तां तथा वित्तार्थमेव च ।
तयोर्बुद्धिः समभवत् त्रितं गृह्य परंतप ॥ १५ ॥
याज्यान् सर्वानुपादाय प्रतिगृह्य पशूंस्ततः ।
सोमं पास्यामहे हृष्टाः प्राप्य यज्ञं महाफलम् ॥ १६ ॥

राजन् ! एक दिनकी बात है, उनके दोनों भाई एकत और द्वित यज्ञ और धनके लिये चिन्ता करने लगे । शत्रुओंको संताप देनेवाले नरेश ! उनके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि हमलोग त्रितको साथ लेकर यजमानोंका यज्ञ करावें और दक्षिणाके रूपमें बहुत-से पशु प्राप्त करके महान् फलदायक यज्ञका अनुष्ठान करें और उसीमें प्रसन्नतापूर्वक सोमरसका पान करें ॥ १४–१६ ॥

चक्रुश्चैवं तथा राजन् भ्रातरस्त्रय एव च ।
तथा ते तु परिक्रम्य याज्यान् सर्वान् पशून् प्रति॥१७॥
याजयित्वा ततो याज्याँल्लब्ध्वा तु सुबहून् पशून् ।
याज्येन कर्मणा तेन प्रतिगृह्य विधानतः ॥ १८ ॥
प्राचीं दिशं महात्मान आजग्मुस्ते महर्षयः ।

राजन् ! ऐसा विचार करके उन तीनों भाइयोंने वही किया । वे सभी यजमानोंके यहाँ पशुओंकी प्राप्तिके उद्देश्यसे गये और उनसे विधिपूर्वक यज्ञ करवाकर उस याज्यकर्मके द्वारा उन्होंने बहुतेरे पशु प्राप्त कर लिये । तत्पश्चात् वे महात्मा महर्षि पूर्वदिशाकी ओर चल दिये ॥ १७-१८½ ॥

त्रितस्तेषां महाराज पुरस्ताद् याति हृष्टवत् ॥ १९ ॥
एकतश्च द्वितश्चैव पृष्ठतः कालयन् पशून् ।

महाराज ! उनमें त्रित मुनि तो प्रसन्नतापूर्वक आगे-आगे चलते थे और एकत तथा द्वित पीछे रहकर पशुओंको हाँकते जाते थे ॥ १९½ ॥

तयोश्चिन्ता समभवद् दृष्ट्वा पशुगणं महत् ॥ २० ॥
कथं च स्युरिमा गाव आवाभ्यां हि विना त्रितम् ।

पशुओंके उस महान् समुदायको देखकर एकत और द्वितके मनमें यह चिन्ता समायी कि किस उपायसे ये गौएँ त्रितको न मिलकर हम दोनोंके ही पास रह जायँ ॥ २०½ ॥

तावन्योन्यं समाभाष्य एकतश्च द्वितश्च ह ॥ २१ ॥
यदूचतुर्मिथः पापौ तन्निबोध जनेश्वर ।

जनेश्वर ! उन एकत और द्वित दोनों पापियोंने एक दूसरेसे सलाह करके परस्पर जो कुछ कहा, वह बताता हूँ, सुनो ॥ २१½ ॥

त्रितो यज्ञेषु कुशलस्त्रितो वेदेषु निष्ठितः ॥ २२ ॥
अन्यास्तु बहुला गावस्त्रितः समुपलप्स्यते ।
तदावां सहितौ भूत्वा गाः प्रकाल्य व्रजावहे ॥ २३ ॥
त्रितोऽपि गच्छतां काममावाभ्यां वै विना कृतः ।

'त्रित यज्ञ करानेमें कुशल हैं, त्रित वेदोंके परिनिष्ठित विद्वान् हैं, अतः वे और बहुत-सी गौएँ प्राप्त कर लेंगे । इस समय हम दोनों एक साथ होकर इन गौओंको हाँक ले चलें और त्रित हमसे अलग होकर जहाँ इच्छा हो वहाँ चले जायँ'॥

तेषामागच्छतां रात्रौ पथिस्थानां वृकोऽभवत् ॥ २४ ॥
तत्र कूपोऽविदूरेऽभूत् सरस्वत्यास्तटे महान् ।

रात्रिका समय था और वे तीनों भाई रास्ता पकड़े चले आ रहे थे । उनके मार्गमें एक भेड़िया खड़ा था । वहाँ पास ही सरस्वतीके तटपर एक बहुत बड़ा कुआँ था ॥ २४½ ॥

अथ त्रितो वृकं दृष्ट्वा पथि तिष्ठन्तमग्रतः ॥ २५ ॥
तद्भयादपसर्पन् वै तस्मिन् कूपे पपात ह ।
अगाधे सुमहाघोरे सर्वभूतभयंकरे ॥ २६ ॥

त्रित अपने आगे रास्तेमें खड़े हुए भेड़ियेको देखकर उसके भयसे भागने लगे । भागते-भागते वे समस्त प्राणियोंके लिये भयंकर उस महाघोर अगाध कूपमें गिर पड़े ॥ २५-२६ ॥

त्रितस्ततो महाराज कूपस्थो मुनिसत्तमः ।
आर्तनादं ततश्चक्रे तौ तु शुश्रुवतुर्मुनी ॥ २७ ॥

महाराज ! कुएँमें पहुँचनेपर मुनिश्रेष्ठ त्रितने बड़े जोरसे आर्तनाद किया, जिसे उन दोनों मुनियोंने सुना ॥ २७ ॥

तं ज्ञात्वा पतितं कूपे भ्रातरावेकतद्वितौ ।
वृकत्रासाच्च लोभाच्च समुत्सृज्य प्रजग्मतुः ॥ २८ ॥

अपने भाईको कुएँमें गिरा हुआ जानकर भी दोनों भाई एकत और द्वित भेड़ियेके भय और लोभसे उन्हें वहीं छोड़कर चल दिये ॥ २८ ॥

भ्रातृभ्यां पशुलुब्धाभ्यामुत्सृष्टः स महातपाः ।
उदपाने तदा राजन् निर्जले पांसुसंवृते ॥ २९ ॥

राजन् ! पशुओंके लोभमें आकर उन दोनों भाइयोंने उस समय उन महातपस्वी त्रितको धूलिसे भरे हुए उस निर्जल कूपमें ही छोड़ दिया ॥ २९ ॥

त्रित आत्मानमालक्ष्य कूपे वीरुत्तृणावृते ।
निमग्नं भरतश्रेष्ठ नरके दुष्कृती यथा ॥ ३० ॥
स बुद्ध्यागणयत् प्राज्ञो मृत्योर्भीतो ह्यसोमपः ।
सोमः कथं तु पातव्य इहस्थेन मया भवेत् ॥ ३१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! जैसे पापी मनुष्य अपने-आपको नरकमें डूबा हुआ देखता है, उसी प्रकार तृण, वीरुध और लताओंसे व्याप्त हुए उस कुएँमें अपने आपको गिरा देख मृत्युसे डरे और सोमपानसे वञ्चित हुए विद्वान् त्रित अपनी बुद्धिसे सोचने लगे कि 'मैं इस कुएँमें रहकर कैसे सोमरसका पान कर सकता हूँ ?' ॥ ३०-३१ ॥

स एवमभिनिश्चित्य तस्मिन् कूपे महातपाः ।
ददर्श वीरुधं तत्र लम्बमानां यदृच्छया ॥ ३२ ॥

इस प्रकार विचार करते-करते महातपस्वी त्रितने उस कुएँमें एक लता देखी, जो दैवयोगसे वहाँ फैली हुई थी ॥

पांसुग्रस्ते ततः कूपे विचिन्त्य सलिलं मुनिः ।
अग्नीन् संकल्पयामास होतॄनात्मानमेव च ॥ ३३ ॥

मुनिने उस बालूभरे कूपमें जलकी भावना करके उसीमें संकल्पद्वारा अग्निकी स्थापना की और होता आदिके स्थानपर अपने आपको ही प्रतिष्ठित किया ॥ ३३ ॥

ततस्तां वीरुधं सोमं संकल्प्य सुमहातपाः ।
ऋचो यजूंषि सामानि मनसा चिन्तयन् मुनिः ॥ ३४ ॥
ग्रावाणः शर्कराः कृत्वा प्रचक्रेऽभिषवं नृप ।
आज्यं च सलिलं चक्रे भागांश्च त्रिदिवौकसाम् ॥ ३५ ॥
सोमस्याभिषवं कृत्वा चकार विपुलं ध्वनिम् ।

तत्पश्चात् उन महातपस्वी त्रितने उस फैली हुई लतामें सोमकी भावना करके मन-ही-मन ऋग्, यजु और सामका चिन्तन किया । नरेश्वर ! इसके बाद कंकड़ या बालू-कणोंमें सिल और लोढ़ेकी भावना करके उसपर पीसकर लतासे सोमरस निकाला । फिर जलमें घीका संकल्प करके उन्होंने देवताओंके भाग नियत किये और सोमरस तैयार करके उसकी आहुति देते हुए वेद-मन्त्रोंकी गम्भीर ध्वनि की ॥ ३४-३५½ ॥

स चाविशद् दिवं राजन् पुनः शब्दस्त्रितस्य वै ॥ ३६ ॥
समवाप्य च तं यज्ञं यथोक्तं ब्रह्मवादिभिः ।

राजन् ! ब्रह्मवादियोंने जैसा बताया है, उसके अनुसार ही उस यज्ञका सम्पादन करके की हुई त्रितकी वह वेदध्वनि स्वर्गलोक तक गूँज उठी ॥ ३६½ ॥

वर्तमाने महायज्ञे त्रितस्य सुमहात्मनः ॥ ३७ ॥
आविग्नं त्रिदिवं सर्वं कारणं च न बुद्ध्यते ।

महात्मा त्रितका वह महान् यज्ञ जब चालू हुआ, उस समय सारा स्वर्गलोक उद्विग्न हो उठा, परंतु किसीको इसका कोई कारण नहीं जान पड़ा ॥ ३७½ ॥

ततः सुतुमुलं शब्दं शुश्रावाथ बृहस्पतिः ॥ ३८ ॥
श्रुत्वा चैवाब्रवीत् सर्वान् देवान् देवपुरोहितः ।
त्रितस्य वर्तते यज्ञस्तत्र गच्छामहे सुराः ॥ ३९ ॥

तब देवपुरोहित बृहस्पतिजीने वेदमन्त्रोंके उस तुमुलनादको सुनकर देवताओंसे कहा—'देवगण ! त्रित मुनिका यज्ञ हो रहा है, वहाँ हमलोगोंको चलना चाहिये ॥ ३८-३९ ॥

स हि क्रुद्धः सृजेदन्यान् देवानपि महातपाः ।

'वे महान् तपस्वी हैं । यदि हम नहीं चलेंगे तो वे कुपित होकर दूसरे देवताओंकी सृष्टि कर लेंगे' ॥ ३९½ ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य सहिताः सर्वदेवताः ॥ ४० ॥
प्रययुस्तत्र यत्रासौ त्रितयज्ञः प्रवर्तते ।

बृहस्पतिजीका यह वचन सुनकर सब देवता एक साथ हो उस स्थानपर गये, जहाँ त्रितमुनिका यज्ञ हो रहा था ॥

ते तत्र गत्वा विबुधास्तं कूपं यत्र स त्रितः ॥ ४१ ॥
ददृशुस्तं महात्मानं दीक्षितं यज्ञकर्मसु ।
दृष्ट्वा चैनं महात्मानं श्रिया परमया युतम् ॥ ४२ ॥
ऊचुश्चैनं महाभागं प्राप्ता भागार्थिनो वयम् ।

वहाँ पहुँचकर देवताओंने उस कूपको देखा, जिसमें त्रित मौजूद थे । साथ ही उन्होंने यज्ञमें दीक्षित हुए महात्मा त्रितमुनिका भी दर्शन किया । वे बड़े तेजस्वी दिखायी दे रहे थे । उन महाभाग मुनिका दर्शन करके देवताओंने उनसे कहा—'हमलोग यज्ञमें अपना भाग लेनेके लिये आये हैं' ॥

अथाब्रवीदृषिर्देवान् पश्यध्वं मा दिवौकसः ॥ ४३ ॥
अस्मिन् प्रतिभये कूपे निमग्नं नष्टचेतसम् ।

उस समय महर्षिने उनसे कहा—'देवताओ ! देखो, मैं किस दशामें पड़ा हूँ । इस भयानक कूपमें गिरकर अपनी सुधबुध खो बैठा हूँ' ॥ ४३½ ॥

ततस्त्रितो महाराज भागांस्तेषां यथाविधि ॥ ४४ ॥
मन्त्रयुक्तान् समददत् ते च प्रीतास्तदाभवन् ।

महाराज ! तदनन्तर त्रितने देवताओंको विधिपूर्वक मन्त्रोच्चारण करते हुए उनके भाग समर्पित किये। इससे वे उस समय बड़े प्रसन्न हुए ॥ ४४½ ॥

ततो यथाविधि प्राप्तान् भागान् प्राप्य दिवौकसः॥ ४५॥
प्रीतात्मानो ददुस्तस्मै वरान् यान् मनसेच्छति।

विधिपूर्वक प्राप्त हुए उन भागोंको ग्रहण करके प्रसन्नचित्त हुए देवताओंने उन्हें मनोवाञ्छित वर प्रदान किया ॥

स तु वव्रे वरं देवांस्त्रातुमर्हथ मामितः॥ ४६॥
यश्चेहोपस्पृशेत् कूपे स सोमपगतिं लभेत्।

मुनिने देवताओंसे वर माँगते हुए कहा—'मुझे इस कूपसे आपलोग बचावें तथा जो मनुष्य इसमें आचमन करे, उसे यज्ञमें सोमपान करनेवालोंकी गति प्राप्त हो' ॥ ४६½ ॥

तत्र चोर्मिमती राजन्नुत्पपात सरस्वती॥ ४७॥
तयोत्क्षिप्तः समुत्तस्थौ पूजयंस्त्रिदिवौकसः।

राजन्! मुनिके इतना कहते ही कुएँमें तरङ्गमालाओंसे सुशोभित सरस्वती लहरा उठी। उसने अपने जलके वेगसे मुनिको ऊपर उठा दिया और वे बाहर निकल आये। फिर उन्होंने देवताओंका पूजन किया ॥ ४७½ ॥

तथेति चोक्त्वा विबुधा जग्मू राजन् यथागताः॥ ४८॥
त्रितश्चाभ्यागमत् प्रीतः स्वमेव निलयं तदा।

नरेश्वर! मुनिके माँगे हुए वरके विषयमें 'तथास्तु' कहकर सब देवता जैसे आये थे, वैसे ही चले गये। फिर त्रित भी प्रसन्नतापूर्वक अपने घरको ही लौट गये ॥ ४८½ ॥

क्रुद्धस्तु स समासाद्य तावृषी भ्रातरौ तदा॥ ४९॥
उवाच परुषं वाक्यं शशाप च महातपाः।
पशुलुब्धौ युवां यस्मान्मामुत्सृज्य प्रधावितौ॥ ५०॥
तस्माद् वृकाकृती रौद्रौ दंष्ट्रिणावभितश्चरौ।
भवितारौ मया शप्तौ पापेनानेन कर्मणा॥ ५१॥
प्रसवश्चैव युवयोर्गोलाङ्गूलर्क्षवानराः।

उन महातपस्वीने कुपित हो अपने उन दोनों ऋषि भाइयोंके पास पहुँचकर कठोर वाणीमें शाप देते हुए कहा—'तुम दोनों पशुओंके लोभमें फँसकर मुझे छोड़कर भाग आये। इसलिये इसी पापकर्मके कारण मेरे शापसे तुम दोनों भाई महाभयंकर भेड़ियेका शरीर धारण करके दाँढ़ोंसे युक्त हो इधर-उधर भटकते फिरोगे। तुम दोनोंकी संतानके रूपमें गोलाङ्गूल, रीछ और वानर आदि पशुओंकी उत्पत्ति होगी' ॥

इत्युक्तेन तदा तेन क्षणादेव विशाम्पते॥ ५२॥
तथाभूतावदृश्येतां वचनात् सत्यवादिनः।

प्रजानाथ! उनके इतना कहते ही वे दोनों भाई उस सत्यवादीके वचनसे उसी क्षण भेड़ियेकी शकलमें दिखायी देने लगे ॥ ५२½ ॥

तत्राप्यमितविक्रान्तः स्पृष्ट्वा तोयं हलायुधः॥ ५३॥
दत्त्वा च विविधान् दायान् पूजयित्वा च वै द्विजान्।

अमित पराक्रमी बलरामजीने उस तीर्थमें भी जलका स्पर्श किया और ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें नाना प्रकारके धन प्रदान किये ॥ ५३½ ॥

उदपानं च तं वीक्ष्य प्रशस्य च पुनः पुनः॥ ५४॥
नदीगतमदीनात्मा प्राप्तो विनशनं तदा॥ ५५॥

उदार चित्तवाले बलरामजी सरस्वती नदीके अन्तर्गत उदपानतीर्थका दर्शन करके उसकी बारंबार स्तुति-प्रशंसा करते हुए वहाँसे विनशन तीर्थमें चले गये ॥ ५४-५५ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां त्रिताख्याने षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसङ्गमें त्रितका उपाख्यानविषयक छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

विनशन, सुभूमिक, गन्धर्व, गर्गस्रोत, शङ्ख, द्वैतवन तथा नैमिषेय आदि तीर्थोंमें होते हुए बलभद्रजीका सप्त सारस्वततीर्थमें प्रवेश

वैशम्पायन उवाच

ततो विनशनं राजन् जगामाथ हलायुधः।
शूद्राभीरान् प्रति द्वेषाद् यत्र नष्टा सरस्वती॥ १॥
तस्मात् तु ऋषयो नित्यं प्राहुर्विनशनेति च।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! उदपानतीर्थसे चलकर हलधारी बलराम विनशनतीर्थमें आये, जहाँ (दुष्कर्मपरायण) शूद्रों और आभीरोंके प्रति द्वेष होनेसे सरस्वती नदी विनष्ट (अदृश्य) हो गयी है। इसीलिये ऋषिगण उसे सदा विनशनतीर्थ कहते हैं ॥ १½ ॥

तत्राप्युपस्पृश्य बलः सरस्वत्यां महाबलः॥ २॥
सुभूमिकं ततोऽगच्छत् सरस्वत्यास्तटे वरे।

महाबली बलराम वहाँ भी सरस्वतीमें आचमन और स्नान करके उसके सुन्दर तटपर स्थित हुए 'सुभूमिक' तीर्थमें गये॥

तत्र चाप्सरसः शुभ्रा नित्यकालमतन्द्रिताः॥ ३॥
क्रीडाभिर्विमलाभिश्च क्रीडन्ति विमलाननाः।

उस तीर्थमें गौरवर्ण तथा निर्मल मुखवाली सुन्दरी अप्सराएँ आलस्य त्यागकर सदा नाना प्रकारकी विमल क्रीडाओंद्वारा मनोरञ्जन करती हैं ॥ ३½ ॥

तत्र देवाः सगन्धर्वा मासि मासि जनेश्वर॥ ४॥
अभिगच्छन्ति तत् तीर्थं पुण्यं ब्राह्मणसेवितम्।

जनेश्वर! वहाँ उस ब्राह्मणसेवित पुण्यतीर्थमें गन्धर्वोंसहित देवता भी प्रतिमास आया करते हैं ॥ ४½ ॥

तत्रादृश्यन्त गन्धर्वास्तथैवाप्सरसां गणाः॥ ५॥
समेत्य सहिता राजन् यथाप्राप्तं यथासुखम्।

राजन्! गन्धर्वगण और अप्सराएँ एक साथ मिलकर वहाँ आती और सुखपूर्वक विचरण करती दिखायी देती हैं ॥

तत्र मोदन्ति देवाश्च पितरश्च सवीरुधः ॥ ६ ॥
पुण्यैः पुष्पैः सदा दिव्यैः कीर्यमाणाः पुनः पुनः ।

वहाँ देवता और पितर लता-वेलोंके साथ आमोदित होते हैं, उनके ऊपर सदा पवित्र एवं दिव्य पुष्पोंकी वर्षा बारंबार होती रहती है ॥ ६½ ॥

आक्रीडभूमिः सा राजंस्तासामप्सरसां शुभा ॥ ७ ॥
सुभूमिकेति विख्याता सरस्वत्यास्तटे वरे ।

राजन्! सरस्वतीके सुन्दर तटपर वह उन अप्सराओंकी मङ्गलमयी क्रीडाभूमि है, इसलिये वह स्थान सुभूमिक नामसे विख्यात है ॥ ७½ ॥

तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च वसु विप्राय माधवः ॥ ८ ॥
श्रुत्वा गीतं च तद् दिव्यं वादित्राणां च निःस्वनम् ।
छायाश्च विपुला दृष्ट्वा देवगन्धर्वरक्षसाम् ॥ ९ ॥
गन्धर्वाणां ततस्तीर्थमागच्छद् रोहिणीसुतः ।

बलरामजीने वहाँ स्नान करके ब्राह्मणोंको धन दान किया और दिव्य गीत एवं दिव्य वाद्योंकी ध्वनि सुनकर देवताओं, गन्धर्वों तथा राक्षसोंकी बहुत-सी मूर्तियोंका दर्शन किया। तत्पश्चात् रोहिणीनन्दन बलराम गन्धर्वतीर्थमें गये ॥८-९½॥

विश्वावसुमुखास्तत्र गन्धर्वास्तपसान्विताः ॥ १० ॥
नृत्यवादित्रगीतं च कुर्वन्ति सुमनोरमम् ।

वहाँ तपस्यामें लगे हुए विश्वावसु आदि गन्धर्व अत्यन्त मनोरम नृत्य, वाद्य और गीतका आयोजन करते रहते हैं ॥

तत्र दत्त्वा हलधरो विप्रेभ्यो विविधं वसु ॥ ११ ॥
अजाविकं गोखरोष्ट्रं सुवर्णं रजतं तथा ।
भोजयित्वा द्विजान् कामैः संतर्प्य च महाधनैः ॥१२॥
प्रययौ सहितो विप्रैः स्तूयमानश्च माधवः ।

हलधरने वहाँ भी ब्राह्मणोंको भेड़, बकरी, गाय, गदहा, ऊँट और सोना-चाँदी आदि नाना प्रकारके धन देकर उन्हें इच्छानुसार भोजन कराया तथा प्रचुर धनसे संतुष्ट करके ब्राह्मणोंके साथ ही वहाँसे प्रस्थान किया। उस समय ब्राह्मण लोग बलरामजीकी बड़ी स्तुति करते थे ॥ ११-१२½ ॥

तस्माद् गन्धर्वतीर्थाच्च महाबाहुररिंदमः ॥ १३ ॥
गर्गस्रोतो महातीर्थमाजगामैककुण्डली ।

उस गन्धर्वतीर्थसे चलकर एक कानमें कुण्डल धारण करनेवाले शत्रुदमन महाबाहु बलराम गर्गस्रोत नामक महातीर्थमें आये ॥ १३½ ॥

तत्र गर्गेण वृद्धेन तपसा भावितात्मना ॥ १४ ॥
कालज्ञानगतिश्चैव ज्योतिषां च व्यतिक्रमः ।
उत्पाता दारुणाश्चैव शुभाश्च जनमेजय ॥ १५ ॥
सरस्वत्याः शुभे तीर्थे विदिता वै महात्मना ।
तस्य नाम्ना च तत् तीर्थं गर्गस्रोत इति स्मृतम् ॥ १६ ॥

जनमेजय! वहाँ तपस्यासे पवित्र अन्तःकरणवाले महात्मा वृद्ध गर्गने सरस्वतीके उस शुभ तीर्थमें कालका ज्ञान, कालकी गति, ग्रहों और नक्षत्रोंके उलट-फेर, दारुण उत्पात तथा शुभ लक्षण—इन सभी बातोंकी जानकारी प्राप्त कर ली थी। उन्हींके नामसे वह तीर्थ गर्गस्रोत कहलाता है।१४-१६।

तत्र गर्गं महाभागमृषयः सुव्रता नृप ।
उपासांचक्रिरे नित्यं कालज्ञानं प्रति प्रभो ॥ १७ ॥

सामर्थ्यशाली नरेश्वर! वहाँ उत्तम व्रतका पालन करनेवाले ऋषियोंने कालज्ञानके लिये सदा महाभाग गर्गमुनिकी उपासना (सेवा) की थी ॥ १७ ॥

तत्र गत्वा महाराज बलः श्वेतानुलेपनः ।
विधिवद्धि धनं दत्त्वा मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ १८ ॥
उच्चावचांस्तथा भक्ष्यान् विप्रेभ्यो विप्रदाय सः ।
नीलवासास्तदागच्छच्छङ्खतीर्थं महायशाः ॥ १९ ॥

महाराज! वहाँ जाकर श्वेतचन्दनचर्चित, नीलाम्बरधारी महायशस्वी बलरामजी विशुद्ध अन्तःकरणवाले महर्षियोंको विधिपूर्वक धन देकर ब्राह्मणोंको नाना प्रकारके भक्ष्य-भोज्य पदार्थ समर्पित करके वहाँसे शङ्खतीर्थमें चले गये॥

तत्रापश्यन्महाशङ्खं महामेरुमिवोच्छ्रितम् ।
श्वेतपर्वतसंकाशमृषिसंघैर्निषेवितम् ॥ २० ॥
सरस्वत्यास्तटे जातं नगं तालध्वजो बली ।

वहाँ तालचिह्नित ध्वजावाले बलवान् बलरामने महाशङ्ख नामक एक वृक्ष देखा, जो महान् मेरुपर्वतके समान ऊँचा और श्वेताचलके समान उज्ज्वल था। उसके नीचे ऋषियोंके समूह निवास करते थे। वह वृक्ष सरस्वतीके तटपर ही उत्पन्न हुआ था ॥ २०½ ॥

यक्षा विद्याधराश्चैव राक्षसाश्चामितौजसः ॥ २१ ॥
पिशाचाश्चामितबला यत्र सिद्धाः सहस्रशः ।

उस वृक्षके आस-पास यक्ष, विद्याधर, अमित तेजस्वी राक्षस, अनन्त बलशाली पिशाच तथा सिद्धगण सहस्रोंकी संख्यामें निवास करते थे ॥ २१½ ॥

ते सर्वे ह्यशनं त्यक्त्वा फलं तस्य वनस्पतेः ॥ २२ ॥
व्रतैश्च नियमैश्चैव काले काले स्म भुञ्जते ।

वे सब-के-सब अन्न छोड़कर व्रत और नियमोंका पालन करते हुए समय-समयपर उस वृक्षका ही फल खाया करते थे॥

प्राप्तैश्च नियमैस्तैस्तैर्विचरन्तः पृथक् पृथक् ॥ २३ ॥
अदृश्यमाना मनुजैर्व्यचरन् पुरुषर्षभ ।
एवं ख्यातो नरव्याघ्र लोकेऽस्मिन् स वनस्पतिः॥ २४॥

पुरुषश्रेष्ठ! वे उन स्वीकृत नियमोंके अनुसार पृथक्-पृथक् विचरते हुए मनुष्योंसे अदृश्य रहकर घूमते थे। नरव्याघ्र! इस प्रकार वह वनस्पति इस विश्वमें विख्यात था॥

ततस्तीर्थं सरस्वत्याः पावनं लोकविश्रुतम् ।
तस्मिंश्च यदुशार्दूलो दत्त्वा तीर्थे पयस्विनीः ॥ २५ ॥
ताम्रायसानि भाण्डानि वस्त्राणि विविधानि च ।
पूजयित्वा द्विजांश्चैव पूजितश्च तपोधनैः ॥ २६ ॥

वह वृक्ष सरस्वतीका लोकविख्यात पावन तीर्थ है। यदुश्रेष्ठ बलराम उस तीर्थमें दूध देनेवाली गौओंका दान करके

ताँबे और लोहेके बर्तन तथा नाना प्रकारके वस्त्र भी ब्राह्मणोंको दिये। ब्राह्मणोंका पूजन करके वे स्वयं भी तपस्वी मुनियोंद्वारा पूजित हुए ॥ २५-२६ ॥

पुण्यं द्वैतवनं राजन्नाजगाम हलायुधः।
तत्र गत्वा मुनीन् दृष्ट्वा नानावेषधरान् बलः ॥ २७ ॥
आप्लुत्य सलिले चापि पूजयामास वै द्विजान्।

राजन्! वहाँसे हलधर बलभद्रजी पवित्र द्वैतवनमें आये और वहाँके नाना वेशधारी मुनियोंका दर्शन करके जलमें गोता लगाकर उन्होंने ब्राह्मणोंका पूजन किया ॥ २७½ ॥

तथैव दत्त्वा विप्रेभ्यः परिभोगान् सुपुष्कलान् ॥ २८ ॥
ततः प्रायाद् बलो राजन् दक्षिणेन सरस्वतीम्।

राजन्! इसी प्रकार विप्रवृन्दको प्रचुर भोगसामग्री अर्पित करके फिर बलरामजी सरस्वतीके दक्षिण तटपर होकर यात्रा करने लगे ॥ २८½ ॥

गत्वा चैवं महाबाहुर्नातिदूरे महायशाः ॥ २९ ॥
धर्मात्मा नागधन्वानं तीर्थमागमदच्युतः।
यत्र पन्नगराजस्य वासुकेः संनिवेशनम् ॥ ३० ॥
महाद्युतेर्महाराज बहुभिः पन्नगैर्वृतम्।
ऋषीणां हि सहस्राणि तत्र नित्यं चतुर्दश ॥ ३१ ॥

महाराज! इस प्रकार थोड़ी ही दूर जाकर महाबाहु, महायशस्वी धर्मात्मा भगवान् बलराम नागधन्वा नामक तीर्थमें पहुँच गये, जहाँ महातेजस्वी नागराज वासुकिका बहुसंख्यक सर्पोंसे घिरा हुआ निवासस्थान है। वहाँ सदा चौदह हजार ऋषि निवास करते हैं ॥ २९-३१ ॥

यत्र देवाः समागम्य वासुकिं पन्नगोत्तमम्।
सर्वपन्नगराजानमभ्यषिञ्चन् यथाविधि ॥ ३२ ॥

वहीं देवताओंने आकर सर्पोंमें श्रेष्ठ वासुकिको समस्त सर्पोंके राजाके पदपर विधिपूर्वक अभिषिक्त किया था ॥ ३२ ॥

पन्नगेभ्यो भयं तत्र विद्यते न स्म पौरव।
तत्रापि विधिवद् दत्त्वा विप्रेभ्यो रत्नसंचयान् ॥ ३३ ॥
प्रायात् प्राचीं दिशं तत्र तत्र तीर्थान्यनेकशः।
सहस्रशतसंख्यानि प्रथितानि पदे पदे ॥ ३४ ॥

पौरव! वहाँ किसीको सर्पोंसे भय नहीं होता। उस तीर्थमें भी बलरामजी ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक ढेर-के-ढेर रत्न देकर पूर्वदिशाकी ओर चल दिये, जहाँ पग-पगपर अनेक प्रकारके प्रसिद्ध तीर्थ प्रकट हुए हैं। उनकी संख्या लगभग एक लाख है ॥ ३३-३४ ॥

आप्लुत्य तत्र तीर्थेषु यथोक्तं तत्र चर्षिभिः।
कृत्वोपवासनियमं दत्त्वा दानानि सर्वशः ॥ ३५ ॥
अभिवाद्य मुनींस्तान् वै तत्र तीर्थनिवासिनः।
उद्दिष्टमार्गः प्रययौ यत्र भूयः सरस्वती ॥ ३६ ॥
प्राङ्मुखं वै निववृते वृष्टिर्वातहता यथा।

उन तीर्थोंमें स्नान करके उन्होंने ऋषियोंके बताये अनुसार व्रत-उपवास आदि नियमोंका पालन किया। फिर सब प्रकारके दान करके तीर्थनिवासी मुनियोंको मस्तक नवाकर उनके बताये हुए मार्गसे वे पुनः उस स्थानकी ओर चल दिये, जहाँ सरस्वती हवाकी मारी हुई वर्षाके समान पुनः पूर्व दिशाकी ओर लौट पड़ी हैं ॥ ३५-३६½ ॥

ऋषीणां नैमिषेयाणामवेक्षार्थं महात्मनाम् ॥ ३७ ॥
निवृत्तां तां सरिच्छ्रेष्ठां तत्र दृष्ट्वा तु लाङ्गली।
बभूव विस्मितो राजन् बलः श्वेतानुलेपनः ॥ ३८ ॥

राजन्! नैमिषारण्यनिवासी महात्मा मुनियोंके दर्शनके लिये पूर्व दिशाकी ओर लौटी हुई सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वतीका दर्शन करके श्वेत-चन्दनचर्चित हलधारी बलराम आश्चर्यचकित हो उठे ॥ ३७-३८ ॥

जनमेजय उवाच

कस्मात् सरस्वती ब्रह्मन् निवृत्ता प्राङ्मुखी भवत्।
व्याख्यातमेतदिच्छामि सर्वमध्वर्युसत्तम ॥ ३९ ॥
कस्मिंश्चित् कारणे तत्र विस्मितो यदुनन्दनः।
निवृत्ता हेतुना केन कथमेव सरिद्वरा ॥ ४० ॥

जनमेजयने पूछा—यजुर्वेदके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ विप्रवर! मैं आपके मुँहसे यह सुनना चाहता हूँ कि सरस्वती नदी किस कारणसे पीछे लौटकर पूर्वाभिमुख बहने लगी? क्या कारण था कि वहाँ यदुनन्दन बलरामजीको भी आश्चर्य हुआ? सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती किस कारणसे और किस प्रकार पूर्व दिशाकी ओर लौटी थीं? ॥ ३९-४० ॥

वैशम्पायन उवाच

पूर्वं कृतयुगे राजन् नैमिषेयास्तपस्विनः।
वर्तमाने सुविपुले सत्रे द्वादशवार्षिके ॥ ४१ ॥
ऋषयो बहवो राजंस्तत् सत्रमभिपेदिरे।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! पूर्वकालके सत्ययुगकी बात है, वहाँ बारह वर्षोंमें पूर्ण होनेवाले एक महान् यज्ञका अनुष्ठान आरम्भ किया गया था। उस सत्रमें नैमिषारण्यनिवासी तपस्वी मुनि तथा अन्य बहुत-से ऋषि पधारे थे ॥

उषित्वा च महाभागास्तस्मिन् सत्रे यथाविधि ॥ ४२ ॥
निवृत्ते नैमिषेये वै सत्रे द्वादशवार्षिके।
आजग्मुर्ऋषयस्तत्र बहवस्तीर्थकारणात् ॥ ४३ ॥

नैमिषारण्यवासियोंके उस द्वादशवर्षीय यज्ञमें वे महाभाग ऋषि दीर्घकालतक रहे। जब वह यज्ञ समाप्त हो गया तब बहुत-से महर्षि तीर्थसेवनके लिये वहाँ आये ॥ ४२-४३ ॥

ऋषीणां बहुलत्वात्तु सरस्वत्या विशाम्पते।
तीर्थानि नगरायन्ते कूले वै दक्षिणे तदा ॥ ४४ ॥

प्रजानाथ! ऋषियोंकी संख्या अधिक होनेके कारण सरस्वतीके दक्षिण तटपर जितने तीर्थ थे, वे सभी नगरोंके समान प्रतीत होने लगे ॥ ४४ ॥

समन्तपञ्चकं यावत्तावत्ते द्विजसत्तमाः।
तीर्थलोभान्नरव्याघ्र नद्यास्तीरं समाश्रिताः ॥ ४५ ॥

पुरुषसिंह! तीर्थसेवनके लोभसे वे ब्रह्मर्षिगण समन्तपञ्चक तीर्थतक सरस्वती नदीके तटपर ठहर गये ॥ ४५ ॥

जुह्वतां तत्र तेषां तु मुनीनां भावितात्मनाम्।

स्वाध्यायेनातिमहता बभूवुः पूरिता दिशः ॥ ४६ ॥

वहाँ होम करते हुए पवित्रात्मा मुनियोंके अत्यन्त गम्भीर स्वरसे किये जानेवाले स्वाध्यायके शब्दसे सम्पूर्ण दिशाएँ गूँज उठी थीं ॥ ४६ ॥

अग्निहोत्रैस्ततस्तेषां क्रियमाणैर्महात्मनाम् ।
अशोभत सरिच्छ्रेष्ठा दीप्यमानैः समन्ततः ॥ ४७ ॥

चारों ओर प्रकाशित हुए उन महात्माओंद्वारा किये जानेवाले यज्ञसे सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वतीकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ ४७ ॥

वालखिल्या महाराज अश्मकुट्टाश्च तापसाः ।
दन्तोलूखलिनश्चान्ये प्रसंख्यानास्तथा परे ॥ ४८ ॥
वायुभक्षा जलाहाराः पर्णभक्षाश्च तापसाः ।
नानानियमयुक्ताश्च तथा स्थण्डिलशायिनः ॥ ४९ ॥
आसन् वै मुनयस्तत्र सरस्वत्याः समीपतः ।
शोभयन्तः सरिच्छ्रेष्ठां गङ्गामिव दिवौकसः ॥ ५० ॥

महाराज ! सरस्वतीके उस निकटवर्ती तटपर सुप्रसिद्ध तपस्वी वालखिल्य, अश्मकुट्ट[1], दन्तोलूखली[2], प्रसंख्यान[3], हवा पीकर रहनेवाले, जलपानपर ही निर्वाह करनेवाले, पत्तोंका ही आहार करनेवाले, भाँति-भाँतिके नियमोंमें संलग्न तथा वेदीपर शयन करनेवाले तपस्वी-मुनि विराजमान थे । वे सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वतीकी उसी प्रकार शोभा बढ़ा रहे थे, जैसे देवतालोग गङ्गाजीकी ॥ ४८-५० ॥

शतशश्च समापेतुर्ऋषयः सत्रयाजिनः ।
तेऽवकाशं न ददृशुः सरस्वत्या महाव्रताः ॥ ५१ ॥

सत्रयागमें सम्मिलित हुए सैकड़ों महान् व्रतधारी ऋषि वहाँ आये थे; परंतु उन्होंने सरस्वतीके तटपर अपने रहनेके लिये स्थान नहीं देखा ॥ ५१ ॥

ततो यज्ञोपवीतैस्ते तत्तीर्थं निर्ममाय वै ।
जुहुवुश्चाग्निहोत्रांश्च चक्रुश्च विविधाः क्रियाः ॥ ५२ ॥

तब उन्होंने यज्ञोपवीतसे उस तीर्थका निर्माण करके वहाँ अग्निहोत्र-सम्बन्धी आहुतियाँ दीं और नाना प्रकारके कर्मोंका अनुष्ठान किया ॥ ५२ ॥

ततस्तमृषिसंघातं निराशं चिन्तयान्वितम् ।
दर्शयामास राजेन्द्र तेषामर्थे सरस्वती ॥ ५३ ॥

राजेन्द्र ! उस समय उस ऋषि-समूहको निराश और चिन्तित जान सरस्वतीने उनकी अभीष्ट-सिद्धिके लिये उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया ॥ ५३ ॥

ततः कुञ्जान् बहून् कृत्वा संनिवृत्ता सरस्वती ।
ऋषीणां पुण्यतपसां कारुण्याज्जनमेजय ॥ ५४ ॥

जनमेजय ! तत्पश्चात् बहुत-से कुञ्जोंका निर्माण करती हुई सरस्वती पीछे लौट पड़ीं; क्योंकि उन पुण्यतपस्वी ऋषियोंपर उनके हृदयमें करुणाका संचार हो आया था ॥ ५४ ॥

ततो निवृत्य राजेन्द्र तेषामर्थे सरस्वती ।
भूयः प्रतीच्यभिमुखी प्रसुस्राव सरिद्वरा ॥ ५५ ॥

राजेन्द्र ! उनके लिये लौटकर सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती पुनः पश्चिमकी ओर मुड़कर बहने लगीं ॥ ५५ ॥

अमोघागमनं कृत्वा तेषां भूयो व्रजाम्यहम् ।
इत्यद्भुतं महच्चक्रे तदा राजन् महानदी ॥ ५६ ॥

राजन् ! उस महानदीने यह सोच लिया था कि मैं इन ऋषियोंके आगमनको सफल बनाकर पुनः पश्चिम मार्गसे ही लौट जाऊँगी । यह सोचकर ही उसने वह महान् अद्भुत कर्म किया ॥ ५६ ॥

एवं स कुञ्जो राजन् वै नैमिषीय इति स्मृतः ।
कुरुश्रेष्ठ कुरुक्षेत्रे कुरुष्व महतीं क्रियाम् ॥ ५७ ॥

नरेश्वर ! इस प्रकार वह कुञ्ज नैमिषीय नामसे प्रसिद्ध हुआ । कुरुश्रेष्ठ ! तुम भी कुरुक्षेत्रमें महान् कर्म करो ॥

तत्र कुञ्जान् बहून् दृष्ट्वा निवृत्तां च सरस्वतीम् ।
बभूव विस्मयस्तत्र रामस्याथ महात्मनः ॥ ५८ ॥

वहाँ बहुत-से कुञ्जों तथा लौटी हुई सरस्वतीका दर्शन करके महात्मा बलरामजीको बड़ा विस्मय हुआ ॥ ५८ ॥

उपस्पृश्य तु तत्रापि विधिवद् यदुनन्दनः ।
दत्त्वा दायान् द्विजातिभ्यो भाण्डानि विविधानि च ॥ ५९ ॥
भक्ष्यं भोज्यं च विविधं ब्राह्मणेभ्यः प्रदाय च ।
ततः प्रायाद् बलो राजन् पूज्यमानो द्विजातिभिः ॥ ६० ॥

यदुनन्दन बलरामने वहाँ विधिपूर्वक स्नान और आचमन करके ब्राह्मणोंको धन और भाँति-भाँतिके बर्तन दान किये । राजन् ! फिर उन्हें नाना प्रकारके भक्ष्य-भोज्य पदार्थ देकर द्विजातियोंद्वारा पूजित होते हुए बलरामजी वहाँसे चल दिये ॥

सरस्वतीतीर्थवरं नानाद्विजगणायुतम् ।
बदरेङ्गुदकाश्मर्यप्लक्षाश्वत्थविभीतकैः ॥ ६१ ॥
कङ्कोलैश्च पलाशैश्च करीरैः पीलुभिस्तथा ।
सरस्वतीतीरुहैस्तरुभिर्विविधैस्तथा ॥ ६२ ॥
करूषकवरैश्चैव बिल्वैराम्रातकैस्तथा ।
अतिमुक्तकषण्डैश्च पारिजातैश्च शोभितम् ॥ ६३ ॥
कदलीवनभूयिष्ठं दृष्टिकान्तं मनोहरम् ।
वाय्वम्बुफलपर्णादैर्दन्तोलूखलिकैरपि ॥ ६४ ॥
तथाश्मकुट्टैर्वानेयैर्मुनिभिर्बहुभिर्वृतम् ।
स्वाध्यायघोषसंघुष्टं मृगयूथशताकुलम् ॥ ६५ ॥
अहिंस्रैर्धर्मपरमैर्नृभिरत्यर्थसेवितम् ।
सप्तसारस्वतं तीर्थमाजगाम हलायुधः ॥ ६६ ॥
यत्र मङ्कणकः सिद्धस्तपस्तेपे महामुनिः ॥ ६७ ॥

तदनन्तर हलायुध बलदेवजी सप्तसारस्वत नामक तीर्थमें आये, जो सरस्वतीके तीर्थोंमें सबसे श्रेष्ठ है । वहाँ अनेकानेक ब्राह्मणोंके समुदाय निवास करते थे । बेर, इंगुद, काश्मर्य (गम्भारी), पाकर, पीपल, बहेड़े, कङ्कोल, पलाश, करीर, पीलु, करूष, बिल्व, अमड़ा, अतिमुक्त, पारिजात तथा

---

१. पत्थरसे फोड़े हुए फलका भोजन करनेवाले ।

२. दाँतसे ही ओखलीका काम लेनेवाले अर्थात् ओखलीमें कूटकर नहीं, दाँतोंसे ही चबाकर खानेवाले ।

३. गिने हुए फल खानेवाले ।

सरस्वतीके तटपर उगे हुए अन्य नाना प्रकारके वृक्षोंसे सुशोभित वह तीर्थ देखनेमें कमनीय और मनको मोह लेनेवाला है। वहाँ केलेके बहुत-से बगीचे हैं। उस तीर्थमें वायु, जल, फल और पत्ते चबाकर रहनेवाले, दाँतोंसे ही ओखलीका काम लेनेवाले और पत्थरसे फोड़े हुए फल खानेवाले बहुतेरे वानप्रस्थ मुनि भरे हुए थे। वहाँ वेदोंके स्वाध्यायकी गम्भीर ध्वनि गूँज रही थी। मृगोंके सैकड़ों यूथ सब ओर फैले हुए थे। हिंसारहित धर्मपरायण मनुष्य उस तीर्थका अधिक सेवन करते थे। वहीं सिद्ध महामुनि मङ्कणकने बड़ी भारी तपस्या की थी ॥ ६१-६७ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसंगमें सारस्वतोपाख्यानविषयक सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३७ ॥

अष्टात्रिंशोऽध्यायः

सप्तसारस्वत तीर्थकी उत्पत्ति, महिमा और मङ्कणक मुनिका चरित्र

जनमेजय उवाच

सप्तसारस्वतं कस्मात् कश्च मङ्कणको मुनिः।
कथं सिद्धः स भगवान् कश्चास्य नियमोऽभवत् ॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—विप्रवर! सप्तसारस्वत तीर्थकी उत्पत्ति किस हेतुसे हुई? पूजनीय मङ्कणक मुनि कौन थे? कैसे उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई और उनका नियम क्या था? ॥ १ ॥

कस्य वंशे समुत्पन्नः किं चाधीतं द्विजोत्तम।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विधिवद् द्विजसत्तम ॥ २ ॥

द्विजश्रेष्ठ! वे किसके वंशमें उत्पन्न हुए थे और उन्होंने किस शास्त्रका अध्ययन किया था? यह सब मैं विधिपूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥ २ ॥

वैशम्पायन उवाच

राजन् सप्त सरस्वत्यो याभिर्व्याप्तमिदं जगत्।
आहूता बलवद्भिर्हि तत्र तत्र सरस्वती ॥ ३ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! सरस्वती नामकी सात नदियाँ और हैं, जो इस सारे जगत्में फैली हुई हैं। तपोबलसम्पन्न महात्माओंने जहाँ-जहाँ सरस्वतीका आवाहन किया है, वहाँ-वहाँ वे गयी हैं ॥ ३ ॥

सुप्रभा काञ्चनाक्षी च विशाला च मनोरमा।
सरस्वती चौघवती सुरेणुर्विमलोदका ॥ ४ ॥

उन सबके नाम इस प्रकार हैं—सुप्रभा, काञ्चनाक्षी, विशाला, मनोरमा, सरस्वती, ओघवती, सुरेणु और विमलोदका ॥

पितामहस्य महतो वर्तमाने महामखे।
वितते यज्ञवाटे च संसिद्धेषु द्विजातिषु ॥ ५ ॥
पुण्याहघोषैर्विमलैर्वेदानां निनदैस्तथा।
देवेषु चैव व्यग्रेषु तस्मिन् यज्ञविधौ तदा ॥ ६ ॥

एक समयकी बात है, पुष्करतीर्थमें महात्मा ब्रह्माजीका एक महान् यज्ञ हो रहा था। उनकी विस्तृत यज्ञशालामें सिद्ध ब्राह्मण विराजमान थे। पुण्याहवाचनके निर्दोष घोष तथा वेदमन्त्रोंकी ध्वनिसे सारा यज्ञमण्डप गूँज रहा था और सम्पूर्ण देवता उस यज्ञ-कर्मके सम्पादनमें व्यस्त थे ॥

तत्र चैव महाराज दीक्षिते प्रपितामहे।
यजतस्तस्य सत्रेण सर्वकामसमृद्धिना ॥ ७ ॥

महाराज! साक्षात् ब्रह्माजीने उस यज्ञकी दीक्षा ली थी। उनके यज्ञ करते समय सबकी समस्त इच्छाएँ उस यज्ञद्वारा परिपूर्ण होती थीं ॥ ७ ॥

मनसा चिन्तिता ह्यर्था धर्मार्थकुशलैस्तदा।
उपतिष्ठन्ति राजेन्द्र द्विजातींस्तत्र तत्र ह ॥ ८ ॥

राजेन्द्र! धर्म और अर्थमें कुशल मनुष्य मनमें जिन पदार्थोंका चिन्तन करते थे, वे उनके पास वहाँ तत्काल उपस्थित हो जाते थे ॥ ८ ॥

जगुश्च तत्र गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
वादित्राणि च दिव्यानि वादयामासुरञ्जसा ॥ ९ ॥

उस यज्ञमें गन्धर्व गीत गाते और अप्सराएँ नृत्य करती थीं। वहाँ दिव्य बाजे बजाये जा रहे थे ॥ ९ ॥

तस्य यज्ञस्य सम्पत्त्या तुतुषुर्देवता अपि।
विस्मयं परमं जग्मुः किमु मानुषयोनयः ॥ १० ॥

उस यज्ञके वैभवसे देवता भी संतुष्ट थे और अत्यन्त आश्चर्यमें निमग्न हो रहे थे; फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है? ॥

वर्तमाने तथा यज्ञे पुष्करस्थे पितामहे।
अब्रुवन्नृषयो राजन्नायं यज्ञो महागुणः ॥ ११ ॥
न दृश्यते सरिच्छ्रेष्ठा यस्मादिह सरस्वती।

राजन्! इस प्रकार जब पितामह ब्रह्मा पुष्करमें रहकर यज्ञ कर रहे थे, उस समय ऋषियोंने उनसे कहा—'भगवन्! आपका यह यज्ञ अभी महान् गुणसे सम्पन्न नहीं है; क्योंकि यहाँ सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती नहीं दिखायी देती हैं' ॥ ११½ ॥

तच्छ्रुत्वा भगवान् प्रीतः सस्माराथ सरस्वतीम् ॥ १२ ॥
पितामहेन यजता आहूता पुष्करेषु वै।

यह सुनकर भगवान् ब्रह्माने प्रसन्नतापूर्वक सरस्वती देवीकी आराधना करके पुष्करमें यज्ञ करते समय उनका आवाहन किया ॥

सुप्रभा नाम राजेन्द्र नाम्ना तत्र सरस्वती ॥ १३ ॥
तां दृष्ट्वा मुनयस्तुष्टास्त्वरायुक्तां सरस्वतीम्।
पितामहं मानयन्तीं क्रतुं ते बहु मेनिरे ॥ १४ ॥

राजेन्द्र! तब वहाँ सरस्वती सुप्रभा नामसे प्रकट हुई। बड़ी उतावलीके साथ आकर ब्रह्माजीका सम्मान करती हुई सरस्वतीका दर्शन करके ऋषिगण बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने उस यज्ञको बहुत सम्मान दिया ॥ १३-१४ ॥

एवमेषा सरिच्छ्रेष्ठा पुष्करेषु सरस्वती।

पितामहार्थं सम्भूता तुष्ट्यर्थं च मनीषिणाम् ॥ १५ ॥

इस प्रकार सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती पुष्करतीर्थमें ब्रह्माजी तथा मनीषी महात्माओंके संतोषके लिये प्रकट हुई ॥

नैमिषे मुनयो राजन् समागम्य समासते ।
तत्र चित्राः कथा ह्यासन् वेदं प्रति जनेश्वर ॥ १६ ॥

राजन् ! जनेश्वर ! नैमिषारण्यमें बहुत-से मुनि आकर रहते थे। वहाँ वेदके विषयमें विचित्र कथा-वार्ता होती रहती थी ॥

यत्र ते मुनयो ह्यासन् नानास्वाध्यायवेदिनः ।
ते समागम्य मुनयः सस्मरुर्वै सरस्वतीम् ॥ १७ ॥

जहाँ वे नाना प्रकारके स्वाध्यायोंका ज्ञान रखनेवाले मुनि रहते थे, वहीं उन्होंने परस्पर मिलकर सरस्वती देवीका स्मरण किया ॥ १७ ॥

सा तु ध्याता महाराज ऋषिभिः सत्रयाजिभिः ।
समागतानां राजेन्द्र साहाय्यार्थं महात्मनाम् ॥ १८ ॥
आजगाम महाभागा तत्र पुण्या सरस्वती ।

महाराज ! राजाधिराज ! उन सत्रयाजी (ज्ञानयज्ञ करनेवाले) ऋषियोंके ध्यान लगानेपर महाभागा पुण्यसलिला सरस्वतीदेवी उन समागत महात्माओंकी सहायताके लिये वहाँ आयीं ॥ १८½ ॥

नैमिषे काञ्चनाक्षी तु मुनीनां सत्रयाजिनाम् ॥ १९ ॥
आगता सरितां श्रेष्ठा तत्र भारत पूजिता ।

भारत ! नैमिषारण्य तीर्थमें उन सत्रयाजी मुनियोंके समक्ष आयी हुई सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती काञ्चनाक्षी नामसे सम्मानित हुई ॥ १९½ ॥

गयस्य यजमानस्य गयेष्वेव महाक्रतुम् ॥ २० ॥
आहूता सरितां श्रेष्ठा गययज्ञे सरस्वती ।
विशालां तु गयस्याहुर्ऋषयः संशितव्रताः ॥ २१ ॥

राजा गय गयदेशमें ही एक महान् यज्ञका अनुष्ठान कर रहे थे। उनके यज्ञमें भी सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वतीका आवाहन किया गया था। कठोर व्रतका पालन करनेवाले महर्षि गयके यज्ञमें आयी हुई सरस्वतीको विशाला कहते हैं ॥ २०-२१ ॥

सरित् सा हिमवत्पार्श्वात् प्रस्रुता शीघ्रगामिनी ।
औद्दालकेस्तथा यज्ञे यजतस्तस्य भारत ॥ २२ ॥

भरतनन्दन ! यज्ञपरायण उद्दालक ऋषिके यज्ञमें भी सरस्वतीका आवाहन किया गया। वे शीघ्रगामिनी सरस्वती हिमालयसे निकलकर उस यज्ञमें आयी थीं ॥ २२ ॥

समेते सर्वतः स्फीते मुनीनां मण्डले तदा ।
उत्तरे कोसलाभागे पुण्ये राजन् महात्मना ॥ २३ ॥
उद्दालकेन यजता पूर्वं ध्याता सरस्वती ।
आजगाम सरिच्छ्रेष्ठा तं देशं मुनिकारणात् ॥ २४ ॥

राजन् ! उन दिनों समृद्धिशाली एवं पुण्यमय उत्तर कोसल प्रान्तमें सब ओरसे मुनिमण्डली एकत्र हुई थी। उसमें यज्ञ करते हुए महात्मा उद्दालकने पूर्वकालमें सरस्वती देवीका ध्यान किया। तब मुनिका कार्य सिद्ध करनेके लिये सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती उस देशमें आयीं ॥ २३-२४ ॥

पूज्यमाना मुनिगणैर्वल्कलाजिनसंवृतैः ।
मनोरमेति विख्याता सा हि तैर्मनसा कृता ॥ २५ ॥

वहाँ वल्कल और मृगचर्मधारी मुनियोंसे पूजित होनेवाली सरस्वतीका नाम हुआ मनोरमा; क्योंकि उन्होंने मनके द्वारा उनका चिन्तन किया था ॥ २५ ॥

सुरेणुर्ऋषभे द्वीपे पुण्ये राजर्षिसेविते ।
कुरोश्च यजमानस्य कुरुक्षेत्रे महात्मनः ॥ २६ ॥
आजगाम महाभागा सरिच्छ्रेष्ठा सरस्वती ।

राजर्षियोंसे सेवित पुण्यमय ऋषभद्वीप तथा कुरुक्षेत्रमें जब महात्मा राजा कुरु यज्ञ कर रहे थे, उस समय सरिताओंमें श्रेष्ठ महाभागा सरस्वती वहाँ आयी थीं; उनका नाम हुआ सुरेणु ॥ २६½ ॥

ओघवत्यपि राजेन्द्र वसिष्ठेन महात्मना ॥ २७ ॥
समाहूता कुरुक्षेत्रे दिव्यतोया सरस्वती ।
दक्षेण यजता चापि गङ्गाद्वारे सरस्वती ॥ २८ ॥
सुरेणुरिति विख्याता प्रस्रुता शीघ्रगामिनी ।

गङ्गाद्वारमें यज्ञ करते समय दक्षप्रजापतिने जब सरस्वतीका स्मरण किया था, उस समय भी शीघ्रगामिनी सरस्वती वहाँ बहती हुई सुरेणु नामसे ही विख्यात हुई। राजेन्द्र ! इसी प्रकार महात्मा वसिष्ठने भी कुरुक्षेत्रमें दिव्यसलिला सरस्वतीका आवाहन किया था, जो ओघवतीके नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ २७-२८½ ॥

विमलोदा भगवती ब्रह्मणा यजता पुनः ॥ २९ ॥
समाहूता ययौ तत्र पुण्ये हैमवते गिरौ ।

ब्रह्माजीने एक बार फिर पुण्यमय हिमालयपर्वतपर यज्ञ किया था। उस समय उनके आवाहन करनेपर भगवती सरस्वतीने विमलोदका नामसे प्रसिद्ध होकर वहाँ पदार्पण किया था ॥ २९½ ॥

एकीभूतास्ततस्तास्तु तस्मिंस्तीर्थे समागताः ॥ ३० ॥
सप्तसारस्वतं तीर्थं ततस्तु प्रथितं भुवि ।

फिर ये सातों सरस्वतियाँ एकत्र होकर उस तीर्थमें आयी थीं, इसीलिये इस भूतलपर 'सप्तसारस्वत तीर्थके नामसे उसकी प्रसिद्धि हुई ॥ ३०½ ॥

इति सप्तसरस्वत्यो नामतः परिकीर्तिताः ॥ ३१ ॥
सप्तसारस्वतं चैव तीर्थं पुण्यं तथा स्मृतम् ।

इस प्रकार सात सरस्वती नदियोंका नामोल्लेखपूर्वक वर्णन किया गया है। इन्हींसे सप्तसारस्वत नामक परम पुण्यमय तीर्थका प्रादुर्भाव बताया गया है ॥ ३१½ ॥

शृणु मङ्कणकस्यापि कौमारब्रह्मचारिणः ॥ ३२ ॥
आपगामवगाढस्य राजन् प्रक्रीडितं महत् ।

राजन् ! कुमारावस्थासे ही ब्रह्मचर्यव्रतका पालन तथा प्रतिदिन सरस्वती नदीमें स्नान करनेवाले मङ्कणक मुनिका महान् लीलामय चरित्र सुनो ॥ ३२½ ॥

दृष्ट्वा यदृच्छया तत्र स्त्रियमम्भसि भारत ॥ ३३ ॥
जायन्तीं रुचिरापाङ्गीं दिग्वाससमनिन्दिताम् ।

सरस्वत्यां महाराज चस्कन्दे वीर्यमम्भसि ॥ ३४ ॥

भरतनन्दन ! महाराज ! एक समयकी बात है, कोई सुन्दर नेत्रोंवाली अनिन्द्य सुन्दरी रमणी सरस्वतीके जलमें नंगी नहा रही थी । दैवयोगसे मङ्कणक मुनिकी दृष्टि उसपर पड़ गयी और उनका वीर्य स्खलित होकर जलमें गिर पड़ा ॥

तद् रेतः स तु जग्राह कलशे वै महातपाः ।
सप्तधा प्रविभागं तु कलशस्थं जगाम ह ॥ ३५ ॥

महातपस्वी मुनिने उस वीर्यको एक कलशमें ले लिया । कलशमें स्थित होनेपर वह वीर्य सात भागोंमें विभक्त हो गया ॥

तत्रर्षयः सप्त जाता जज्ञिरे मरुतां गणाः ।
वायुवेगो वायुबलो वायुहा वायुमण्डलः ॥ ३६ ॥
वायुज्वालो वायुरेता वायुचक्रश्च वीर्यवान् ।
एवमेते समुत्पन्ना मरुतां जनयिष्णवः ॥ ३७ ॥

उस कलशमें सात ऋषि उत्पन्न हुए, जो मूलभूत मरुद्गण थे । उनके नाम इस प्रकार हैं—वायुवेग, वायुबल, वायुहा, वायुमण्डल, वायुज्वाल, वायुरेता और शक्तिशाली वायुचक्र । ये उन्चास मरुद्गणोंके जन्मदाता 'मरुत्' उत्पन्न हुए थे* ॥

इदमत्यद्भुतं राजञ्शृणवाश्चर्यतरं भुवि ।
महर्षेश्चरितं यादृक् त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ ३८ ॥

राजन् ! महर्षि मङ्कणकका यह तीनों लोकोंमें विख्यात अद्भुत चरित्र जैसा सुना गया है, इसे तुम भी श्रवण करो । वह अत्यन्त आश्चर्यजनक है ॥ ३८ ॥

पुरा मङ्कणकः सिद्धः कुशाग्रेणेति नः श्रुतम् ।
क्षतः किल करे राजंस्तस्य शाकरसोऽस्रवत् ॥ ३९ ॥

नरेश्वर ! हमारे सुननेमें आया है कि पहले कभी सिद्ध मङ्कणक मुनिका हाथ किसी कुशके अग्रभागसे छिद गया था, उससे रक्तके स्थानपर शाकका रस चूने लगा था ॥३९॥

स वै शाकरसं दृष्ट्वा हर्षाविष्टः प्रनृत्तवान् ।
ततस्तस्मिन् प्रनृत्ते वै स्थावरं जङ्गमं च यत् ॥ ४० ॥
प्रनृत्तमुभयं वीर तेजसा तस्य मोहितम् ।

वह शाकका रस देखकर मुनि हर्षके आवेशसे मतवाले हो नृत्य करने लगे । वीर ! उनके नृत्यमें प्रवृत्त होते ही स्थावर और जङ्गम दोनों प्रकारके प्राणी उनके तेजसे मोहित होकर नाचने लगे ॥ ४०½ ॥

ब्रह्मादिभिः सुरै राजन्नृषिभिश्च तपोधनैः ॥ ४१ ॥
विज्ञप्तो वै महादेव ऋषेरर्थे नराधिप ।
नायं नृत्येद् यथा देव तथा त्वं कर्तुमर्हसि ॥ ४२ ॥

राजन् ! नरेश्वर ! तब ब्रह्मा आदि देवताओं तथा तपोधन महर्षियोंने ऋषिके विषयमें महादेवजीसे निवेदन किया—'देव ! आप ऐसा कोई उपाय करें, जिससे ये मुनि नृत्य न करें' ॥ ४१-४२ ॥

ततो देवो मुनिं दृष्ट्वा हर्षाविष्टमतीव ह ।
सुराणां हितकामार्थं महादेवोऽभ्यभाषत ॥ ४३ ॥

मुनिको हर्षके आवेशसे अत्यन्त मतवाला हुआ देख महादेवजीने (ब्राह्मणका रूप धारण करके) देवताओंके हितके लिये उनसे इस प्रकार कहा—॥ ४३ ॥

भो भो ब्राह्मण धर्मज्ञ किमर्थं नृत्यते भवान् ।
हर्षस्थानं किमर्थं च तवेदमधिकं मुने ॥ ४४ ॥
तपस्विनो धर्मपथे स्थितस्य द्विजसत्तम ।

'धर्मज्ञ ब्राह्मण ! आप किसलिये नृत्य कर रहे हैं ? मुने ! आपके लिये अधिक हर्षका कौन-सा कारण उपस्थित हो गया है ? द्विजश्रेष्ठ ! आप तो तपस्वी हैं, सदा धर्मके मार्गपर स्थित रहते हैं, फिर आप क्यों हर्षसे उन्मत्त हो रहे हैं?' ॥

ऋषिरुवाच

किं न पश्यसि मे ब्रह्मन् कराच्छाकरसं स्रुतम् ॥ ४५ ॥
यं दृष्ट्वा सम्प्रनृत्तो वै हर्षेण महता विभो ।

ऋषिने कहा—ब्रह्मन् ! क्या आप नहीं देखते कि मेरे हाथसे शाकका रस चू रहा है । प्रभो ! उसीको देखकर मैं महान् हर्षसे नाचने लगा हूँ ॥ ४५½ ॥

तं प्रहस्याब्रवीद् देवो मुनिं रागेण मोहितम् ॥ ४६ ॥
अहं न विस्मयं विप्र गच्छामीति प्रपश्य माम् ।

यह सुनकर महादेवजी ठठाकर हँस पड़े और उन आसक्तिसे मोहित हुए मुनिसे बोले—'विप्रवर ! मुझे तो यह देखकर विस्मय नहीं हो रहा है । मेरी ओर देखो' ॥४६½॥

एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठं महादेवेन धीमता ॥ ४७ ॥
अङ्गुल्यग्रेण राजेन्द्र स्वङ्गुष्ठस्ताडितोऽभवत् ।
ततो भस्म क्षताद् राजन् निर्गतं हिमसंनिभम् ॥ ४८ ॥

राजेन्द्र ! मुनिश्रेष्ठ मङ्कणकसे ऐसा कहकर बुद्धिमान् महादेवजीने अपनी अङ्गुलिके अग्रभागसे अँगूठेमें घाव कर दिया । उस घावसे बर्फके समान सफेद भस्म झड़ने लगा ॥

तद् दृष्ट्वा व्रीडितो राजन् स मुनिः पादयोर्गतः ।
मेने देवं महादेवमिदं चोवाच विस्मितः ॥ ४९ ॥

राजन् ! यह देखकर मुनि लजा गये और महादेवजीके चरणोंमें गिर पड़े । उन्होंने महादेवजीको पहचान लिया और विस्मित होकर कहा—॥ ४९ ॥

नान्यं देवादहं मन्ये रुद्रात् परतरं महत् ।
सुरासुरस्य जगतो गतिस्त्वमसि शूलधृत् ॥ ५० ॥

'भगवन् ! मैं रुद्रदेवके सिवा दूसरे किसी देवताको परम महान् नहीं मानता । आप ही देवताओं तथा असुरों-सहित सम्पूर्ण जगत्‌के आश्रयभूत त्रिशूलधारी महादेव हैं ॥

त्वया सृष्टमिदं विश्वं वदन्तीह मनीषिणः ।
त्वामेव सर्वं व्रजति पुनरेव युगक्षये ॥ ५१ ॥

'मनीषी पुरुष कहते हैं कि आपने ही इस सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि की है । प्रलयके समय यह सारा जगत् आपमें ही विलीन हो जाता है ॥ ५१ ॥

देवैरपि न शक्यस्त्वं परिज्ञातुं कुतो मया ।

* इन्हीं ऋषियोंकी तपस्यासे कल्पान्तरमें दितिके गर्भसे उन्चास मरुद्गणोंका आविर्भाव हुआ । ये ही दितिके उदरमें एक गर्भके रूपमें प्रकट हुए, फिर इन्द्रके वज्रसे कटकर उन्चास अमर शरीरोंके रूपमें उत्पन्न हुए—ऐसा समझना चाहिये ।

त्वयि सर्वेस्स दृश्यन्ते भावा ये जगति स्थिताः ॥ ५२ ॥

'सम्पूर्ण देवता भी आपको यथार्थरूपसे नहीं जान सकते, फिर मैं कैसे जान सकूँगा ? संसारमें जो-जो पदार्थ स्थित हैं, वे सब आपमें देखे जाते हैं ॥ ५२ ॥

त्वामुपासन्त वरदं देवा ब्रह्मादयोऽनघ ।
सर्वस्त्वमसि देवानां कर्ता कारयिता च ह ॥ ५३ ॥
त्वत्प्रसादात् सुराः सर्वे मोदन्तीहाकुतोभयाः ।

'अनघ ! ब्रह्मा आदि देवता आप वरदायक प्रभुकी ही उपासना करते हैं। आप सर्वस्वरूप हैं। देवताओंके कर्ता और कारयिता भी आप ही हैं। आपके प्रसादसे ही सम्पूर्ण देवता यहाँ निर्भय हो आनन्दका अनुभव करते हैं ॥ ५३½ ॥

(त्वं प्रभुः परमैश्वर्यादधिकं भासि शङ्कर ।
त्वयि ब्रह्मा च शक्रश्च लोकान् संधार्य तिष्ठतः॥

'शङ्कर ! आप सबके प्रभु हैं। अपने उत्कृष्ट ऐश्वर्यसे आपकी अधिक शोभा हो रही है। ब्रह्मा और इन्द्र सम्पूर्ण लोकोंको धारण करके आपमें ही स्थित हैं ॥

त्वन्मूलं च जगत् सर्वं त्वदन्तं हि महेश्वर ।
त्वया हि वितता लोकाः सप्तेमे सर्वसम्भव ॥

'महेश्वर ! सम्पूर्ण जगत्के मूलकारण आप ही हैं। इसका अन्त भी आपमें ही होता है। सबकी उत्पत्तिके हेतुभूत परमेश्वर ! ये सातों लोक आपसे ही उत्पन्न होकर ब्रह्माण्डमें फैले हुए हैं ॥

सर्वथा सर्वभूतेश त्वामेवार्चन्ति देवताः ।
त्वन्मयं हि जगत् सर्वं भूतं स्थावरजङ्गमम् ॥

'सर्वभूतेश्वर ! देवता सब प्रकारसे आपकी ही पूजा-अर्चा करते हैं। सम्पूर्ण विश्व तथा चराचर भूतोंके उपादान कारण भी आप ही हैं ॥

स्वर्गं च परमं स्थानं नृणामभ्युदयार्थिनाम् ।
ददासि कर्मिणां कर्म भावयन् ध्यानयोगतः ॥

'आप ही अभ्युदयकी इच्छा रखनेवाले सत्कर्मपरायण मनुष्योंको ध्यानयोगसे उनके कर्मोंका विचार करके उत्तम पद—स्वर्गलोक प्रदान करते हैं ॥

न वृथास्ति महादेव प्रसादस्ते महेश्वर ।
यस्मात् त्वयोपकरणात् करोमि कमलेक्षण ॥
प्रपद्ये शरणं शम्भुं सर्वदा सर्वतः स्थितम् ।)

'महादेव ! महेश्वर ! कमलनयन ! आपका कृपाप्रसाद कभी व्यर्थ नहीं होता ! आपकी दी हुई सामग्रीसे ही मैं कार्य कर पाता हूँ, अतः सर्वदा सब ओर स्थित हुए सर्वव्यापी आप भगवान् शङ्करकी मैं शरणमें आता हूँ' ॥

एवं स्तुत्वा महादेवं स ऋषिः प्रणतोऽभवत् ॥ ५४ ॥
यदिदं चापलं देव कृतमेतत् स्मयादिकम् ।
ततः प्रसादयामि त्वां तपो मे न क्षरेदिति ॥ ५५ ॥

इस प्रकार महादेवजीकी स्तुति करके वे महर्षि नतमस्तक हो गये और इस प्रकार बोले—'देव ! मैंने जो यह अहंकार आदि प्रकट करनेकी चपलता की है, उसके लिये क्षमा माँगते हुए आपसे प्रसन्न होनेकी मैं प्रार्थना करता हूँ। मेरी तपस्या नष्ट न हो' ॥ ५४-५५ ॥

ततो देवः प्रीतमनास्तमृषिं पुनरब्रवीत् ।
तपस्ते वर्धतां विप्र मत्प्रसादात् सहस्रधा ॥ ५६ ॥
आश्रमे चेह वत्स्यामि त्वया सार्धमहं सदा ।
सप्तसारस्वते चास्मिन् यो मामर्चिष्यते नरः ॥ ५७ ॥
न तस्य दुर्लभं किञ्चिद् भवितेह परत्र वा ।
सारस्वतं च ते लोकं गमिष्यन्ति न संशयः ॥ ५८ ॥

यह सुनकर महादेवजीका मन प्रसन्न हो गया। वे उन महर्षिसे पुनः बोले—'विप्रवर ! मेरे प्रसादसे तुम्हारी तपस्या सहस्रगुनी बढ़ जाय। मैं इस आश्रममें सदा तुम्हारे साथ निवास करूँगा। जो इस सप्तसारस्वत तीर्थमें मेरी पूजा करेगा, उसके लिये इहलोक या परलोकमें कुछ भी दुर्लभ न होगा। वे सारस्वत लोकमें जायँगे—इसमें संशय नहीं है'॥

एतन्मङ्कणकस्यापि चरितं भूरितेजसः ।
स हि पुत्रः सुकन्यायामुत्पन्नो मातरिश्वना ॥ ५९ ॥

यह महातेजस्वी मङ्कणक मुनिका चरित्र बताया गया है। वे वायुके औरस पुत्र थे। वायुदेवताने सुकन्याके गर्भसे उन्हें उत्पन्न किया था ॥ ५९ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्यानेऽष्टात्रिंशोऽध्यायः॥ ३८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसंगमें सारस्वतोपाख्यानविषयक अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ५½ श्लोक मिलाकर कुल ६४½ श्लोक हैं)

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

औशनस एवं कपालमोचन तीर्थकी माहात्म्यकथा तथा रुषङ्गुके आश्रम पृथूदक तीर्थकी महिमा

वैशम्पायन उवाच

उषित्वा तत्र रामस्तु सम्पूज्याश्रमवासिनः ।
तथा मङ्कणके प्रीतिं शुभां चक्रे हलायुधः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! उस सप्तसारस्वत तीर्थमें रहकर हलधर बलरामजीने आश्रमवासी ऋषियोंका पूजन किया और मङ्कणक मुनिपर अपनी उत्तम प्रीतिका परिचय दिया॥

दत्त्वा दानं द्विजातिभ्यो रजनीं तामुपोष्य च ।
पूजितो मुनिसङ्घैश्च प्रातरुत्थाय लाङ्गली ॥ २ ॥
अनुज्ञाप्य मुनीन् सर्वान् स्पृष्ट्वा तोयं च भारत ।
प्रययौ त्वरितो रामस्तीर्थहेतोर्महाबलः ॥ ३ ॥

भरतनन्दन ! वहाँ ब्राह्मणोंको दान दे उस रात्रिमें निवास करनेके पश्चात् प्रातःकाल उठकर मुनिमण्डलीसे सम्मानित हो महाबली लाङ्गलधारी बलरामने पुनः तीर्थके जलमें स्नान किया और सम्पूर्ण ऋषि-मुनियोंकी आज्ञा ले

अन्य तीर्थोंमें जानेके लिये वहाँसे शीघ्रतापूर्वक प्रस्थान कर दिया ॥ २-३ ॥

ततस्त्वौशनसं तीर्थमाजगाम हलायुधः ।
कपालमोचनं नाम यत्र मुक्तो महामुनिः ॥ ४ ॥
महता शिरसा राजन् ग्रस्तजङ्घो महोदरः ।
राक्षसस्य महाराज रामक्षिप्तस्य वै पुरा ॥ ५ ॥

तदनन्तर हलधारी बलराम औशनस तीर्थमें आये, जिसका दूसरा नाम कपालमोचन तीर्थ भी है । महाराज ! पूर्वकालमें भगवान् श्रीरामने एक राक्षसको मारकर उसे दूर फेंक दिया था । उसका विशाल सिर महामुनि महोदरकी जाँघमें चपक गया था । वे महामुनि इस तीर्थमें स्नान करनेपर उस कपालसे मुक्त हुए थे ॥ ४-५ ॥

तत्र पूर्वं तपस्तप्तं काव्येन सुमहात्मना ।
यत्रास्य नीतिरखिला प्रादुर्भूता महात्मनः ॥ ६ ॥

महात्मा शुक्राचार्यने वहीं पहले तप किया था, जिससे उनके हृदयमें सम्पूर्ण नीति-विद्या स्फुरित हुई थी ॥ ६ ॥

यत्रस्थश्चिन्तयामास दैत्यदानवविग्रहम् ।
तत् प्राप्य च बलो राजंस्तीर्थप्रवरमुत्तमम् ॥ ७ ॥
विधिवद् वै ददौ वित्तं ब्राह्मणानां महात्मनाम् ।

वहीं रहकर उन्होंने दैत्यों अथवा दानवोंके युद्धके विषयमें विचार किया था । राजन् ! उस श्रेष्ठ तीर्थमें पहुँचकर बलरामजीने महात्मा ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक धनका दान दिया था ॥ ७½ ॥

जनमेजय उवाच

कपालमोचनं ब्रह्मन् कथं यत्र महामुनिः ॥ ८ ॥
मुक्तः कथं चास्य शिरो लग्नं केन च हेतुना ।

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन् ! उस तीर्थका नाम कपालमोचन कैसे हुआ, जहाँ महामुनि महोदरको छुटकारा मिला था ? उनकी जाँघमें वह सिर कैसे और किस कारणसे चिपक गया था ? ॥ ८½ ॥

वैशम्पायन उवाच

पुरा वै दण्डकारण्ये राघवेण महात्मना ॥ ९ ॥
वसता राजशार्दूल राक्षसान् शमयिष्यता ।
जनस्थाने शिरश्छिन्नं राक्षसस्य दुरात्मनः ॥ १० ॥
क्षुरेण शितधारेण उत्पपात महावने ।
महोदरस्य तल्लग्नं जंघायां वै यदृच्छया ॥ ११ ॥
वने विचरतो राजन्नस्थि भित्त्वास्फुरत् तदा ।

वैशम्पायनजीने कहा—नृपश्रेष्ठ ! पूर्वकालकी बात है, रघुकुलतिलक महात्मा श्रीरामचन्द्रजीने दण्डकारण्यमें रहते समय जब राक्षसोंके संहारका विचार किया, तब तीखी धारवाले क्षुरसे जनस्थानमें उस दुरात्मा राक्षसका मस्तक काट दिया । वह कटा हुआ मस्तक उस महान् वनमें ऊपरको उछला और दैवयोगसे वनमें विचरते हुए महोदर मुनिकी जाँघमें जा लगा । नरेश्वर ! उस समय उनकी हड्डी छेदकर वह भीतर तक घुस गया ॥ ९-११½ ॥

स तेन लग्नेन तदा द्विजातिर्न शशाक ह ॥ १२ ॥
अभिगन्तुं महाप्राज्ञस्तीर्थान्यायतनानि च ।

उस मस्तकके चिपक जानेसे वे महाबुद्धिमान् ब्राह्मण किसी तीर्थ या देवालयमें सुगमतापूर्वक आ-जा नहीं सकते थे ॥

स पूतिना विस्रवता वेदनार्तो महामुनिः ॥ १३ ॥
जगाम सर्वतीर्थानि पृथिव्यां चेति नः श्रुतम् ।

उस मस्तकसे दुर्गन्धयुक्त पीब बहती रहती थी और महामुनि महोदर वेदनासे पीड़ित हो गये थे । हमने सुना है कि मुनिने किसी तरह भूमण्डलके सभी तीर्थोंकी यात्रा की ॥

स गत्वा सरितः सर्वाः समुद्रांश्च महातपाः ॥ १४ ॥
कथयामास तत् सर्वमृषीणां भावितात्मनाम् ।
आप्लुत्य सर्वतीर्थेषु न च मोक्षमवाप्तवान् ॥ १५ ॥

उन महातपस्वी महर्षिने सम्पूर्ण सरिताओं और समुद्रोंकी यात्रा करके वहाँ रहनेवाले पवित्रात्मा मुनियोंसे वह सब वृत्तान्त कह सुनाया । सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करके भी वे उस कपालसे छुटकारा न पा सके ॥ १४-१५ ॥

स तु शुश्राव विप्रेन्द्र मुनीनां वचनं महत् ।
सरस्वत्यास्तीर्थवरं ख्यातमौशनसं तदा ॥ १६ ॥
सर्वपापप्रशमनं सिद्धिक्षेत्रमनुत्तमम् ।

विप्रवर ! उन्होंने मुनियोंके मुखसे यह महत्त्वपूर्ण बात सुनी कि 'सरस्वतीका श्रेष्ठ तीर्थ जो औशनस नामसे विख्यात है, सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाला तथा परम उत्तम सिद्धि-क्षेत्र है' ॥ १६½ ॥

स तु गत्वा ततस्तत्र तीर्थमौशनसं द्विजः ॥ १७ ॥
तत औशनसे तीर्थे तस्योपस्पृशतस्तदा ।
तच्छिरश्चरणं मुक्त्वा पपातान्तर्जले तदा ॥ १८ ॥

तदनन्तर वे ब्रह्मर्षि वहाँ औशनस तीर्थमें गये और उसके जलसे आचमन एवं स्नान किया । उसी समय वह कपाल उनके चरण (जाँघ) को छोड़कर पानीके भीतर गिर पड़ा ॥

विमुक्तस्तेन शिरसा परं सुखमवाप ह ।
स चाप्यन्तर्जले मूर्धा जगामादर्शनं विभो ॥ १९ ॥

प्रभो ! उस मस्तक या कपालसे मुक्त होनेपर महोदर मुनिको बड़ा सुख मिला । साथ ही वह मस्तक भी (जो उनकी जाँघसे छूटकर गिरा था) पानीके भीतर अदृश्य हो गया ॥

ततः स विशिरा राजन् पूतात्मा वीतकल्मषः ।
आजगामाश्रमं प्रीतः कृतकृत्यो महोदरः ॥ २० ॥

राजन् ! उस कपालसे मुक्त हो निष्पाप एवं पवित्र अन्तःकरणवाले महोदर मुनि कृतकृत्य हो प्रसन्नतापूर्वक अपने आश्रमपर लौट आये ॥ २० ॥

सोऽथ गत्वाऽऽश्रमं पुण्यं विप्रमुक्तो महातपाः ।
कथयामास तत् सर्वमृषीणां भावितात्मनाम् ॥ २१ ॥

संकटसे मुक्त हुए उन महातपस्वी मुनिने अपने पवित्र आश्रमपर जाकर वहाँ रहनेवाले पवित्रात्मा ऋषियोंसे अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ २१ ॥

ते श्रुत्वा वचनं तस्य ततस्तीर्थस्य मानद ।

कपालमोचनमिति नाम चक्रुः समागताः ॥ २२ ॥

मानद ! तदनन्तर वहाँ आये हुए महर्षियोंने महोदर मुनिकी बात सुनकर उस तीर्थका नाम कपालमोचन रख दिया ॥

स चापि तीर्थप्रवरं पुनर्गत्वा महानृषिः ।
पीत्वा पयः सुविपुलं सिद्धिमायात् तदा मुनिः ॥२३॥

इसके बाद महर्षि महोदर पुनः उस श्रेष्ठ तीर्थमें गये और वहाँका प्रचुर जल पीकर उत्तम सिद्धिको प्राप्त हुए ॥

तत्र दत्त्वा बहून् दायान् विप्रान् सम्पूज्य माधवः ।
जगाम वृष्णिप्रवरो रुषङ्गोराश्रमं तदा ॥ २४ ॥

वृष्णिवंशावतंस बलरामजीने वहाँ ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें बहुत धनका दान किया । इसके बाद वे रुषङ्गु मुनिके आश्रमपर गये ॥ २४ ॥

यत्र तप्तं तपो घोरमार्ष्टिषेणेन भारत ।
ब्राह्मण्यं लब्धवांस्तत्र विश्वामित्रो महामुनिः ॥ २५ ॥

भरतनन्दन ! वहीं आर्ष्टिषेण मुनिने घोर तपस्या की थी और वहीं महामुनि विश्वामित्रने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था ॥

सर्वकामसमृद्धं च तदाश्रमपदं महत् ।
मुनिभिर्ब्राह्मणैश्चैव सेवितं सर्वदा विभो ॥ २६ ॥

प्रभो ! वह महान् आश्रम सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तुओंसे सम्पन्न है । वहाँ बहुत-से मुनि और ब्राह्मण सदा निवास करते हैं ॥ २६ ॥

ततो हलधरः श्रीमान् ब्राह्मणैः परिवारितः ।
जगाम तत्र राजेन्द्र रुषङ्गुस्तनुमत्यजत् ॥ २७ ॥

राजेन्द्र ! तत्पश्चात् श्रीमान् हलधर ब्राह्मणोंसे घिरकर उस स्थानपर गये, जहाँ रुषङ्गुने अपना शरीर छोड़ा था ॥

रुषङ्गुर्ब्राह्मणो वृद्धस्तपोनित्यश्च भारत ।
देहन्यासे कृतमना विचिन्त्य बहुधा तदा ॥ २८ ॥
ततः सर्वानुपादाय तनयान् वै महातपाः ।
रुषङ्गुरब्रवीत् तत्र नयध्वं मां पृथूदकम् ॥ २९ ॥

भारत ! बूढ़े ब्राह्मण रुषङ्गु सदा तपस्यामें संलग्न रहते थे । एक समय उन महातपस्वी रुषङ्गु मुनिने शरीर त्याग देनेका विचार करके बहुत कुछ सोचकर अपने सभी पुत्रोंको बुलाया और उनसे कहा—'मुझे पृथूदक तीर्थमें ले चलो' ॥

विज्ञायातीतवयसं रुषङ्गुं ते तपोधनाः ।
तं च तीर्थमुपानिन्युः सरस्वत्यास्तपोधनम् ॥ ३० ॥

उन तपस्वी पुत्रोंने तपोधन रुषङ्गुको अत्यन्त वृद्ध जानकर उन्हें सरस्वतीके उस उत्तम तीर्थमें पहुँचा दिया ॥३०॥

स तैः पुत्रैस्तदा धीमानानीतो वै सरस्वतीम् ।
पुण्यां तीर्थशतोपेतां विप्रसङ्घैर्निषेविताम् ॥ ३१ ॥
स तत्र विधिना राजन्नाप्लुत्य सुमहातपाः ।
ज्ञात्वा तीर्थगुणांश्चैव प्राहेदमृषिसत्तमः ॥ ३२ ॥
सुप्रीतः पुरुषव्याघ्र सर्वान् पुत्रानुपासतः ।

राजन् ! नरव्याघ्र ! वे पुत्र जब उन बुद्धिमान् मुनिको ब्राह्मणसमूहोंसे सेवित तथा सैकड़ों तीर्थोंसे सुशोभित पुण्यसलिला सरस्वतीके तटपर ले आये, तब वे महातपस्वी महर्षि वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके तीर्थके गुणोंको जानकर अपने पास बैठे हुए सभी पुत्रोंसे प्रसन्नतापूर्वक बोले—॥३१-३२½॥

सरस्वत्युत्तरे तीरे यस्त्यजेदात्मनस्तनुम् ॥ ३३ ॥
पृथूदके जप्यपरो नैनं श्वोमरणं तपेत् ।

'जो सरस्वतीके उत्तर तटपर पृथूदक तीर्थमें जप करते हुए अपने शरीरका परित्याग करता है, उसे भविष्यमें पुनः मृत्युका कष्ट नहीं भोगना पड़ता' ॥ ३३½ ॥

तत्राप्लुत्य स धर्मात्मा उपस्पृश्य हलायुधः ॥ ३४ ॥
दत्त्वा चैव बहून् दायान् विप्राणां विप्रवत्सलः ।

धर्मात्मा विप्रवत्सल हलधर बलरामजीने उस तीर्थमें स्नान करके ब्राह्मणोंको बहुत धनका दान किया ॥ ३४½ ॥

ससर्ज यत्र भगवाँल्लोकाँल्लोकपितामहः ॥ ३५ ॥
यत्रार्ष्टिषेणः कौरव्य ब्राह्मण्यं संशितव्रतः ।
तपसा महता राजन् प्राप्तवानृषिसत्तमः ॥ ३६ ॥
सिन्धुद्वीपश्च राजर्षिर्देवापिश्च महातपाः ।
ब्राह्मण्यं लब्धवान् यत्र विश्वामित्रस्तथा मुनिः ॥ ३७ ॥
महातपस्वी भगवानुग्रतेजा महायशाः ।
तत्राजगाम बलवान् बलभद्रः प्रतापवान् ॥ ३८ ॥

कुरुवंशी नरेश ! तत्पश्चात् बलवान् एवं प्रतापी बलभद्रजी उस तीर्थमें आ गये, जहाँ लोकपितामह भगवान् ब्रह्माने सृष्टि की थी, जहाँ कठोर व्रतका पालन करनेवाले मुनिश्रेष्ठ आर्ष्टिषेणने बड़ी भारी तपस्या करके ब्राह्मणत्व पाया था तथा जहाँ राजर्षि सिन्धुद्वीप, महान् तपस्वी देवापि और महायशस्वी, उग्रतेजस्वी एवं महातपस्वी भगवान् विश्वामित्र मुनिने भी ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था ॥ ३५–३८ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसङ्गमें सारस्वतोपाख्यानविषयक उन्तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

आर्ष्टिषेण एवं विश्वामित्रकी तपस्या तथा वरप्राप्ति

जनमेजय उवाच

कथमार्ष्टिषेणो भगवान् विपुलं तप्तवांस्तपः ।
सिन्धुद्वीपः कथं चापि ब्राह्मण्यं लब्धवांस्तदा ॥ १ ॥
देवापिश्च कथं ब्रह्मन् विश्वामित्रश्च सत्तम ।
तन्ममाचक्ष्व भगवन् परं कौतूहलं हि मे ॥ २ ॥

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन् ! मुनिश्रेष्ठ ! पूज्य आर्ष्टिषेण

ने वहाँ किस प्रकार बड़ी भारी तपस्या की थी तथा सिन्धुद्वीप, देवापि और विश्वामित्रजीने किस तरह ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था ? भगवन् ! यह सब मुझे बताइये। इसे जाननेके लिये मेरे मनमें बड़ी भारी उत्सुकता है ॥ १-२ ॥

वैशम्पायन उवाच

पुरा कृतयुगे राजन्नार्ष्टिषेणो द्विजोत्तमः ।
वसन् गुरुकुले नित्यं नित्यमध्ययने रतः ॥ ३ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! प्राचीन कालकी सत्ययुगकी बात है, द्विजश्रेष्ठ आर्ष्टिषेण सदा गुरुकुलमें निवास करते हुए निरन्तर वेद-शास्त्रोंके अध्ययनमें लगे रहते थे ॥३॥

तस्य राजन् गुरुकुले वसतो नित्यमेव च ।
समाप्तिं नागमद् विद्या नापि वेदा विशाम्पते ॥ ४ ॥

प्रजानाथ ! नरेश्वर ! गुरुकुलमें सर्वदा रहते हुए भी न तो उनकी विद्या समाप्त हुई और न वे सम्पूर्ण वेद ही पढ़ सके॥

स निर्विण्णस्ततो राजंस्तपस्तेपे महातपाः ।
ततो वै तपसा तेन प्राप्य वेदाननुत्तमान् ॥ ५ ॥
स विद्वान् वेदयुक्तश्च सिद्धश्चाप्यृषिसत्तमः ।
तत्र तीर्थे वरान् प्रादात् त्रीनेव सुमहातपाः ॥ ६ ॥

नरेश्वर ! इससे महातपस्वी आर्ष्टिषेण खिन्न एवं विरक्त हो उठे, फिर उन्होंने सरस्वतीके उसी तीर्थमें जाकर बड़ी भारी तपस्या की । उस तपके प्रभावसे उत्तम वेदोंका ज्ञान प्राप्त करके वे ऋषिश्रेष्ठ विद्वान् वेदज्ञ और सिद्ध हो गये । तदनन्तर उन महातपस्वीने उस तीर्थको तीन वर प्रदान किये—॥

अस्मिंस्तीर्थे महानद्या अद्यप्रभृति मानवः ।
आप्लुतो वाजिमेधस्य फलं प्राप्स्यति पुष्कलम् ॥ ७ ॥
अद्यप्रभृति नैवात्र भयं व्यालाद् भविष्यति ।
अपि चाल्पेन कालेन फलं प्राप्स्यति पुष्कलम् ॥ ८ ॥

'आजसे जो मनुष्य महानदी सरस्वतीके इस तीर्थमें स्नान करेगा, उसे अश्वमेध यज्ञका सम्पूर्ण फल प्राप्त होगा । आजसे इस तीर्थमें किसीको सर्पसे भय नहीं होगा । थोड़े समय तक ही इस तीर्थके सेवनसे मनुष्यको बहुत अधिक फल प्राप्त होगा' ॥ ७-८ ॥

एवमुक्त्वा महातेजा जगाम त्रिदिवं मुनिः ।
एवं सिद्धः स भगवानार्ष्टिषेणः प्रतापवान् ॥ ९ ॥

ऐसा कहकर वे महातेजस्वी मुनि स्वर्गलोकको चले गये । इस प्रकार पूजनीय एवं प्रतापी आर्ष्टिषेण ऋषि उस तीर्थमें सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं ॥ ९ ॥

तस्मिन्नेव तदा तीर्थे सिन्धुद्वीपः प्रतापवान् ।
देवापिश्च महाराज ब्राह्मण्यं प्रापतुर्महत् ॥ १० ॥

महाराज ! उन्हीं दिनों उसी तीर्थमें प्रतापी सिन्धुद्वीप तथा देवापिने वहाँ तप करके महान् ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था॥

तथा च कौशिकस्तात तपोनित्यो जितेन्द्रियः ।
तपसा वै सुतप्तेन ब्राह्मणत्वमवाप्तवान् ॥ ११ ॥

तात ! कुशिकवंशी विश्वामित्र भी वहीं निरन्तर इन्द्रिय-संयमपूर्वक तपस्या करते थे । उस भारी तपस्याके प्रभावसे उन्हें ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति हुई ॥ ११ ॥

गाधिर्नाम महानासीत् क्षत्रियः प्रथितो भुवि ।
तस्य पुत्रोऽभवद् राजन् विश्वामित्रः प्रतापवान् ॥१२॥

राजन् ! पहले इस भूतलपर गाधिनामसे विख्यात महान् क्षत्रिय राजा राज्य करते थे । प्रतापी विश्वामित्र उन्हींके पुत्र थे ॥ १२ ॥

स राजा कौशिकस्तात महायोग्यभवत् किल ।
स पुत्रमभिषिच्याथ विश्वामित्रं महातपाः ॥ १३ ॥
देहन्यासे मनश्चक्रे तमूचुः प्रणताः प्रजाः ।
न गन्तव्यं महाप्राज्ञ त्राहि चास्मान् महाभयात् ॥ १४ ॥

तात ! लोग कहते हैं कि कुशिकवंशी राजा गाधि महान् योगी और बड़े भारी तपस्वी थे । उन्होंने अपने पुत्र विश्वामित्रको राज्यपर अभिषिक्त करके शरीरको त्याग देनेका विचार किया। तब सारी प्रजा उनसे नतमस्तक होकर बोली— 'महाबुद्धिमान् नरेश ! आप कहीं न जायँ, यहीं रहकर हमारी इस जगत्के महान् भयसे रक्षा करते रहें' ॥१३-१४॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच ततो गाधिः प्रजास्ततः ।
विश्वस्य जगतो गोप्ता भविष्यति सुतो मम ॥ १५ ॥

उनके ऐसा कहनेपर गाधिने सम्पूर्ण प्रजाओंसे कहा— 'मेरा पुत्र सम्पूर्ण जगत्की रक्षा करनेवाला होगा (अतः तुम्हें भयभीत नहीं होना चाहिये)' ॥ १५ ॥

इत्युक्त्वा तु ततो गाधिर्विश्वामित्रं निवेश्य च ।
जगाम त्रिदिवं राजन् विश्वामित्रोऽभवन्नृपः ॥ १६ ॥

राजन् ! यों कहकर राजा गाधि विश्वामित्रको राजसिंहासनपर बिठाकर स्वर्गलोकको चले गये । तत्पश्चात् विश्वामित्र राजा हुए ॥ १६ ॥

न स शक्नोति पृथिवीं यत्नवानपि रक्षितुम् ।
ततः शुश्राव राजा स राक्षसेभ्यो महाभयम् ॥ १७ ॥

वे प्रयत्नशील होनेपर भी सम्पूर्ण भूमण्डलकी रक्षा नहीं कर पाते थे। एक दिन राजा विश्वामित्रने सुना कि 'प्रजाको राक्षसोंसे महान् भय प्राप्त हुआ है' ॥ १७ ॥

निर्ययौ नगराच्चापि चतुरङ्गबलान्वितः ।
स गत्वा दूरमध्वानं वसिष्ठाश्रममभ्ययात् ॥ १८ ॥

तब वे चतुरंगिणी सेना लेकर नगरसे निकल पड़े और दूर तकका रास्ता तय करके वसिष्ठके आश्रमके पास जा पहुँचे॥

तस्य ते सैनिका राजंश्चक्रुस्तत्रानयान् बहून् ।
ततस्तु भगवान् विप्रो वसिष्ठोऽऽश्रममभ्ययात् ॥ १९॥

राजन् ! उनके उन सैनिकोंने वहाँ बहुत-से अन्याय एवं अत्याचार किये । तदनन्तर पूज्य ब्रह्मर्षि वसिष्ठ कहींसे अपने आश्रमपर आये ॥ १९ ॥

ददृशेऽथ ततः सर्वं भज्यमानं महावनम् ।
तस्य क्रुद्धो महाराज वसिष्ठो मुनिसत्तमः ॥ २० ॥

आकर उन्होंने देखा कि वह सारा विशाल वन उजाड़ होता जा रहा है । महाराज ! यह देखकर मुनिवर वसिष्ठ राजा विश्वामित्रपर कुपित हो उठे ॥ २० ॥

सृजस्व शबरान् घोरानिति स्वां गामुवाच ह ।
तथोक्ता सासृजद् धेनुः पुरुषान् घोरदर्शनान् ॥ २१ ॥

फिर उन्होंने अपनी गौ नन्दिनीसे कहा—'तुम भयंकर भील जातिके सैनिकोंकी सृष्टि करो' । उनके इस प्रकार आज्ञा देनेपर उनकी होमधेनुने ऐसे पुरुषोंको उत्पन्न किया, जो देखनेमें बड़े भयानक थे ॥ २१ ॥

ते तु तद्बलमासाद्य बभञ्जुः सर्वतोदिशम् ।
तच्छ्रुत्वा विद्रुतं सैन्यं विश्वामित्रस्तु गाधिजः ॥ २२ ॥
तपः परं मन्यमानस्तपस्येव मनो दधे ।

उन्होंने विश्वामित्रकी सेनापर आक्रमण करके उनके सैनिकोंको सम्पूर्ण दिशाओंमें मार भगाया । गाधिनन्दन विश्वामित्रने जब यह सुना कि मेरी सेना भाग गयी तो तपको ही अधिक प्रबल मानकर तपस्यामें ही मन लगाया ॥२२½॥

सोऽस्मिंस्तीर्थवरे राजन् सरस्वत्याः समाहितः ॥ २३ ॥
नियमैश्चोपवासैश्च कर्षयन् देहमात्मनः ।

राजन् ! उन्होंने सरस्वतीके उस श्रेष्ठ तीर्थमें चित्तको एकाग्र करके नियमों और उपवासोंके द्वारा अपने शरीरको सुखाना आरम्भ किया ॥ २३½ ॥

जलाहारो वायुभक्षः पर्णाहारश्च सोऽभवत् ॥ २४ ॥
तथा स्थण्डिलशायी च ये चान्ये नियमाः पृथक् ।

वे कभी जल पीकर रहते, कभी वायुको ही आहार बनाते और कभी पत्ते चबाकर रहते थे । सदा भूमिकी वेदी बनाकर उसपर सोते और तपस्यासम्बन्धी जो अन्य सारे नियम हैं, उनका भी पृथक्-पृथक् पालन करते थे ॥ २४½ ॥

असकृत्तस्य देवास्तु व्रतविघ्नं प्रचक्रिरे ॥ २५ ॥
न चास्य नियमाद् बुद्धिरपयाति महात्मनः ।

देवताओंने उनके व्रतमें बारंबार विघ्न डाला; परंतु उन महात्माकी बुद्धि कभी नियमसे विचलित नहीं होती थी॥

ततः परेण यत्नेन तप्त्वा बहुविधं तपः ॥ २६ ॥
तेजसा भास्कराकारो गाधिजः समपद्यत ।

तदनन्तर महान् प्रयत्नके द्वारा नाना प्रकारकी तपस्या करके गाधिनन्दन विश्वामित्र अपने तेजसे सूर्यके समान प्रकाशित होने लगे ॥ २६½ ॥

तपसा तु तथा युक्तं विश्वामित्रं पितामहः ॥ २७ ॥
अमन्यत महातेजा वरदो वरमस्य तत् ।

विश्वामित्रको ऐसी तपस्यासे युक्त देख महातेजस्वी एवं वरदायक ब्रह्माजीने उन्हें वर देनेका विचार किया ॥२७½॥

स तु वव्रे वरं राजन् स्यामहं ब्राह्मणस्त्विति ॥ २८ ॥
तथेति चाब्रवीद् ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ।

राजन् ! तब उन्होंने यह वर माँगा कि 'मैं ब्राह्मण हो जाऊँ ।' सम्पूर्ण लोकोंके पितामह ब्रह्माजीने उन्हें 'तथास्तु' कहकर वह वर दे दिया ॥ २८½ ॥

स लब्ध्वा तपसोग्रेण ब्राह्मणत्वं महायशाः ॥ २९ ॥
विचचार महीं कृत्स्नां कृतकामः सुरोपमः ।

उस उग्र तपस्याके द्वारा ब्राह्मणत्व पाकर सफलमनोरथ हुए महायशस्वी विश्वामित्र देवताके समान समस्त भूमण्डलमें विचरने लगे ॥ २९½ ॥

तस्मिंस्तीर्थवरे रामः प्रदाय विविधं वसु ॥ ३० ॥
पयस्विनीस्तथा धेनूर्यानानि शयनानि च ।
अथ वस्त्राण्यलङ्कारं भक्ष्यं पेयं च शोभनम् ॥ ३१ ॥
अददान्मुदितो राजन् पूजयित्वा द्विजोत्तमान् ।
ययौ राजंस्ततो रामो बकस्याश्रममन्तिकात् ।
यत्र तेपे तपस्तीव्रं दाल्भ्यो बक इति श्रुतिः ॥ ३२ ॥

राजन् ! बलरामजीने उस श्रेष्ठ तीर्थमें उत्तम ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें दूध देनेवाली गौएँ, वाहन, शय्या, वस्त्र, अलङ्कार तथा खाने-पीनेके सुन्दर पदार्थ प्रसन्नतापूर्वक दिये । फिर वहाँसे वे बकके आश्रमके निकट गये, जहाँ दल्भपुत्र बकने तीव्र तपस्या की थी ॥ ३०–३२ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसङ्गमें सारस्वतोपाख्यानविषयक चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

अवाकीर्ण और ययात तीर्थकी महिमाके प्रसङ्गमें दाल्भ्यकी कथा और ययातिके यज्ञका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

ब्रह्मयोनेरवाकीर्णं जगाम यदुनन्दनः ।
यत्र दाल्भ्यो बको राजन्नाश्रमस्थो महातपाः ॥ १ ॥
जुहाव धृतराष्ट्रस्य राष्ट्रं वैचित्रवीर्यिणः ।
तपसा घोररूपेण कर्षयन् देहमात्मनः ॥ २ ॥
क्रोधेन महताऽऽविष्टो धर्मात्मा वै प्रतापवान् ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति करानेवाले उस तीर्थसे प्रस्थित होकर यदुनन्दन बलरामजी 'अवाकीर्ण' तीर्थमें गये, जहाँ आश्रममें रहते हुए महातपस्वी धर्मात्मा एवं प्रतापी दल्भपुत्र बकने महान् क्रोधमें भरकर घोर तपस्याद्वारा अपने शरीरको सुखाते हुए विचित्रवीर्य-कुमार राजा धृतराष्ट्रके राष्ट्रका होम कर दिया था ॥ १-२½ ॥

पुरा हि नैमिषीयाणां सत्रे द्वादशवार्षिके ॥ ३ ॥
वृत्ते विश्वजितोऽन्ते वै पञ्चालानृषयोऽगमन् ।
तत्रेश्वरमयाचन्त दक्षिणार्थं मनस्विनः ॥ ४ ॥

पूर्वकालमें नैमिषारण्यनिवासी ऋषियोंने बारह वर्षोंतक चालू रहनेवाले एक सत्रका आरम्भ किया था । जब वह पूरा हो गया, तब वे सब ऋषि विश्वजित् नामक यज्ञके अन्तमें पाञ्चाल देशमें गये । वहाँ जाकर उन मनस्वी मुनियोंने उस देशके राजासे दक्षिणाके लिये धनकी याचना की ॥ ३-४ ॥

(तत्र ते लेभिरे राजन् पञ्चालेभ्यो महर्षयः)
बलान्वितान् वत्सतरान् निर्व्याधीनेकविंशतिम् ।
तानब्रवीद् बको दाल्भ्यो विभजध्वं पशूनिति ॥ ५ ॥
पशूनेतानहं त्यक्त्वा भिक्षिष्ये राजसत्तमम् ।

राजन् ! वहाँ महर्षियोंने पाञ्चालोंसे इक्कीस बलवान् और नीरोग बछड़े प्राप्त किये । तब उनमेंसे दल्भपुत्र बकने अन्य सब ऋषियोंसे कहा—'आपलोग इन पशुओंको बाँट लें । मैं इन्हें छोड़कर किसी श्रेष्ठ राजासे दूसरे पशु माँग लूँगा'॥

एवमुक्त्वा ततो राजन्नृषीन् सर्वान् प्रतापवान्॥
जगाम धृतराष्ट्रस्य भवनं ब्राह्मणोत्तमः ।

नरेश्वर ! उन सब ऋषियोंसे ऐसा कहकर वे प्रतापी उत्तम ब्राह्मण राजा धृतराष्ट्रके घरपर गये ॥ ६½ ॥

स समीपगतो भूत्वा धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ॥ ७ ॥
अयाचत पशून् दाल्भ्यः स चैनं रुषितोऽब्रवीत् ।
यदृच्छया मृता दृष्ट्वा गास्तदा नृपसत्तमः ॥ ८ ॥
एतान् पशून् नय क्षिप्रं ब्रह्मबन्धो यदीच्छसि ।

निकट जाकर दाल्भ्यने कौरवनरेश धृतराष्ट्रसे पशुओंकी याचना की । यह सुनकर नृपश्रेष्ठ धृतराष्ट्र कुपित हो उठे । उनके यहाँ कुछ गौएँ दैवेच्छासे मर गयी थीं । उन्हींको लक्ष्य करके राजाने क्रोधपूर्वक कहा—'ब्रह्मबन्धो ! यदि पशु चाहते हो तो इन मरे हुए पशुओंको ही शीघ्र ले जाओ' ॥

ऋषिस्तथा वचः श्रुत्वा चिन्तयामास धर्मवित्॥ ९ ॥
अहो बत नृशंसं वै वाक्यमुक्तोऽस्मि संसदि ।

उनकी वैसी बात सुनकर धर्मज्ञ ऋषिने चिन्तामग्न होकर सोचा—'अहो ! बड़े खेदकी बात है कि इस राजाने भरी सभामें मुझसे ऐसा कठोर वचन कहा है' ॥ ९½ ॥

चिन्तयित्वा मुहूर्तेन रोषाविष्टो द्विजोत्तमः ॥ १० ॥
मतिं चक्रे विनाशाय धृतराष्ट्रस्य भूपतेः ।

दो घड़ीतक इस प्रकार चिन्ता करके रोषमें भरे हुए द्विजश्रेष्ठ दाल्भ्यने राजा धृतराष्ट्रके विनाशका विचार किया ॥

स तूत्कृत्य मृतानां वै मांसानि मुनिसत्तमः ॥ ११ ॥
जुहाव धृतराष्ट्रस्य राष्ट्रं नरपतेः पुरा ।

वे मुनिश्रेष्ठ उन मृत पशुओंके ही मांस काट-काटकर उनके द्वारा राजा धृतराष्ट्रके राष्ट्रकी ही आहुति देने लगे ॥

अवाकीर्णे सरस्वत्यास्तीर्थे प्रज्वाल्य पावकम् ॥ १२ ॥
बको दाल्भ्यो महाराज नियमं परमं स्थितः ।
स तैरेव जुहावास्य राष्ट्रं मांसैर्महातपाः ॥ १३ ॥

महाराज ! सरस्वतीके अवाकीर्ण तीर्थमें अग्नि प्रज्वलित करके महातपस्वी दल्भपुत्र बक उत्तम नियमका आश्रय ले उन मृत पशुओंके मांसोंद्वारा ही उनके राष्ट्रका हवन करने लगे॥

तस्मिंस्तु विधिवत् सत्रे सम्प्रवृत्ते सुदारुणे ।
अक्षीयत ततो राष्ट्रं धृतराष्ट्रस्य पार्थिव ॥ १४ ॥

राजन् ! वह भयंकर यज्ञ जब विधिपूर्वक आरम्भ हुआ, तबसे धृतराष्ट्रका राष्ट्र क्षीण होने लगा ॥ १४ ॥

ततः प्रक्षीयमाणं तद् राज्यं तस्य महीपतेः ।
छिद्यमानं यथानन्तं वनं परशुना विभो ॥ १५ ॥
बभूवापद्गतं तच्च व्यवकीर्णमचेतनम् ।

प्रभो ! जैसे बड़ा भारी वन कुल्हाड़ीसे काटा जा रहा हो, उसी प्रकार उस राजाका राज्य क्षीण होता हुआ भारी आफतमें फँस गया; वह संकटग्रस्त होकर अचेत हो गया ॥

दृष्ट्वा तथावकीर्णं तु राष्ट्रं स मनुजाधिपः ॥ १६ ॥
बभूव दुर्मना राजंश्चिन्तयामास च प्रभुः ।
मोक्षार्थमकरोद् यत्नं ब्राह्मणैः सहितः पुरा ॥ १७ ॥

राजन् ! अपने राष्ट्रको इस प्रकार सङ्कटमग्न हुआ देख वे नरेश मन-ही-मन बहुत दुखी हुए और गहरी चिन्तामें डूब गये । फिर ब्राह्मणोंके साथ अपने देशको सङ्कटसे बचानेका प्रयत्न करने लगे ॥ १६-१७ ॥

न च श्रेयोऽध्यगच्छत्तु क्षीयते राष्ट्रमेव च ।
यदा स पार्थिवः खिन्नस्ते च विप्रास्तदानघ ॥ १८ ॥

अनघ ! जब किसी प्रकार भी वे भूपाल अपने राष्ट्रका कल्याण साधन न कर सके और वह दिन-प्रतिदिन क्षीण होता ही चला गया, तब राजा और उन ब्राह्मणोंको बड़ा खेद हुआ ॥ १८ ॥

यदा चापि न शक्नोति राष्ट्रं मोक्षयितुं नृप ।
अथ वै प्राश्निकांस्तत्र पप्रच्छ जनमेजय ॥ १९ ॥

नरेश्वर जनमेजय ! जब धृतराष्ट्र अपने राष्ट्रको उस विपत्तिसे छुटकारा दिलानेमें समर्थ न हो सके, तब उन्होंने प्राश्निकों (प्रश्न पूछनेपर भूत, वर्तमान और भविष्यकी बातें बतानेवालों) को बुलाकर उनसे इसका कारण पूछा ॥

ततो वै प्राश्निकाः प्राहुः पशोर्विप्रकृतस्त्वया ।
मांसैरभिजुहोतीदं तव राष्ट्रं मुनिर्बकः ॥ २० ॥

तब उन प्राश्निकोंने कहा—'आपने पशुके लिये याचना करनेवाले बक मुनिका तिरस्कार किया है; इसलिये वे मृत पशुओंके मांसोंद्वारा आपके इस राष्ट्रका विनाश करनेकी इच्छासे होम कर रहे हैं ॥ २० ॥

तेन ते हूयमानस्य राष्ट्रस्यास्य क्षयो महान् ।
तस्यैतत् तपसः कर्म येन तेऽद्य लयो महान् ॥ २१ ॥

'उनके द्वारा आपके राष्ट्रकी आहुति दी जा रही है; इसलिये इसका महान् विनाश हो रहा है । यह सब उनकी तपस्याका प्रभाव है, जिससे आपके इस देशका इस समय महान् विलय होने लगा है ॥ २१ ॥

अपां कुञ्जे सरस्वत्यास्तं प्रसादय पार्थिव ।
सरस्वतीं ततो गत्वा स राजा बकमब्रवीत् ॥ २२ ॥

'भूपाल ! सरस्वतीके कुञ्जमें जलके समीप वे मुनि विराजमान हैं, आप उन्हें प्रसन्न कीजिये ।' तब राजाने सरस्वतीके तटपर जाकर बक मुनिसे इस प्रकार कहा ॥ २२ ॥

निपत्य शिरसा भूमौ प्राञ्जलिर्भरतर्षभ ।
प्रसादये त्वां भगवन्नपराधं क्षमस्व मे ॥ २३ ॥
मम दीनस्य लुब्धस्य मौर्ख्येण हतचेतसः ।
त्वं गतिस्त्वं च मे नाथः प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ २४ ॥

भरतश्रेष्ठ ! वे पृथ्वीपर माथा टेक हाथ जोड़कर बोले— 'भगवन् ! मैं आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ । आप मुझ दीन, लोभी और मूर्खतासे हतबुद्धि हुए अपराधीके अपराधको क्षमा कर दें । आप ही मेरी गति हैं । आप ही मेरे रक्षक हैं । आप मुझपर अवश्य कृपा करें' ॥ २३-२४ ॥

तं तथा विलपन्तं तु शोकोपहतचेतसम् ।
दृष्ट्वा तस्य कृपा जज्ञे राष्ट्रं तस्य व्यमोचयत् ॥ २५ ॥

राजा धृतराष्ट्रको इस प्रकार शोकसे अचेत होकर विलाप करते देख उनके मनमें दया आ गयी और उन्होंने राजाके राज्यको सङ्कटसे मुक्त कर दिया ॥ २५ ॥

ऋषिः प्रसन्नस्तस्याभूत् संरम्भं च विहाय सः ।
मोक्षार्थं तस्य राज्यस्य जुहाव पुनराहुतिम् ॥ २६ ॥

ऋषि क्रोध छोड़कर राजापर प्रसन्न हुए और पुनः उनके राज्यको सङ्कटसे बचानेके लिये आहुति देने लगे ॥२६॥

मोक्षयित्वा ततो राष्ट्रं प्रतिगृह्य पशून् बहून् ।
हृष्टात्मा नैमिषारण्यं जगाम पुनरेव सः ॥ २७ ॥

इस प्रकार राज्यको विपत्तिसे छुड़ाकर राजासे बहुत-से पशु ले प्रसन्नचित्त हुए महर्षि दाल्भ्य पुनः नैमिषारण्यको ही चले गये ॥ २७ ॥

धृतराष्ट्रोऽपि धर्मात्मा स्वस्थचेता महामनाः ।
स्वमेव नगरं राजन् प्रतिपेदे महर्द्धिमत् ॥ २८ ॥

राजन् ! फिर महामनस्वी धर्मात्मा धृतराष्ट्र भी स्वस्थचित्त हो अपने समृद्धिशाली नगरको ही लौट आये ॥२८॥

तत्र तीर्थे महाराज बृहस्पतिरुदारधीः ।
असुराणामभावाय भवाय च दिवौकसाम् ॥ २९ ॥
मांसैरभिजुहावेष्टिमक्षीयन्त ततोऽसुराः ।
दैवतैरपि सम्भग्ना जितकाशिभिराहवे ॥ ३० ॥

महाराज ! उसी तीर्थमें उदारबुद्धि बृहस्पतिजीने असुरोंके विनाश और देवताओंकी उन्नतिके लिये मांसोंद्वारा आभिचारिक यज्ञका अनुष्ठान किया था । इससे वे असुर क्षीण हो गये और युद्धमें विजयसे सुशोभित होनेवाले देवताओंने उन्हें मार भगाया ॥ २९-३० ॥

तत्रापि विधिवद् दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यो महायशाः ।
वाजिनः कुञ्जरांश्चैव रथांश्चाश्वतरीयुतान् ॥ ३१ ॥
रत्नानि च महार्हाणि धनं धान्यं च पुष्कलम् ।
ययौ तीर्थं महाबाहुर्यायातं पृथिवीपते ॥ ३२ ॥

पृथ्वीनाथ ! महायशस्वी महाबाहु बलरामजी उस तीर्थमें भी ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक हाथी, घोड़े, खचरियोंसे जुते हुए रथ, बहुमूल्य रत्न तथा प्रचुर धन-धान्यका दान करके वहाँसे यायात तीर्थमें गये ॥ ३१-३२ ॥

तत्र यज्ञे ययातेश्च महाराज सरस्वती ।
सर्पिः पयश्च सुस्राव नाहुषस्य महात्मनः ॥ ३३ ॥

महाराज ! वहाँ पूर्वकालमें नहुषनन्दन महात्मा ययातिने यज्ञ किया था, जिसमें सरस्वतीने उनके लिये दूध और घीका स्रोत बहाया था ॥ ३३ ॥

तत्रेष्ट्वा पुरुषव्याघ्रो ययातिः पृथिवीपतिः ।
अक्रामदूर्ध्वं मुदितो लेभे लोकांश्च पुष्कलान् ॥ ३४ ॥

पुरुषसिंह भूपाल ययाति वहाँ यज्ञ करके प्रसन्नतापूर्वक ऊर्ध्वलोकमें चले गये और वहाँ उन्हें बहुत-से पुण्यलोक प्राप्त हुए॥

पुनस्तत्र च राज्ञस्तु ययातेर्यजतः प्रभोः ।
औदार्यं परमं कृत्वा भक्तिं चात्मनि शाश्वतीम् ॥३५॥
ददौ कामान् ब्राह्मणेभ्यो यान् यान् यो मनसेच्छति ।

शक्तिशाली राजा ययाति जब वहाँ यज्ञ कर रहे थे, उस समय उनकी उत्कृष्ट उदारताको दृष्टिमें रखकर और अपने प्रति उनकी सनातन भक्ति देख सरस्वतीने उस यज्ञमें आये हुए ब्राह्मणोंको, जिसने अपने मनसे जिन-जिन भोगोंको चाहा, वे सभी मनोवाञ्छित भोग प्रदान किये ॥ ३५½ ॥

यो यत्र स्थित एवेह आहूतो यज्ञसंस्तरे ॥ ३६ ॥
तस्य तस्य सरिच्छ्रेष्ठा गृहादिशयनादिकम् ।
षड्रसं भोजनं चैव दानं नानाविधं तथा ॥ ३७ ॥

राजाके यज्ञमण्डपमें बुलाकर आया हुआ जो ब्राह्मण जहाँ कहीं ठहर गया, वहीं उसके लिये सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वतीने पृथक्-पृथक् गृह, शय्या, आसन, षड्रस भोजन तथा नाना प्रकारके दानकी व्यवस्था की ॥ ३६-३७ ॥

ते मन्यमाना राज्ञस्तु सम्प्रदानमनुत्तमम् ।
राजानं तुष्टुवुः प्रीता दत्त्वा चैवाशिषः शुभाः ॥ ३८ ॥

उन ब्राह्मणोंने यह समझकर कि राजाने ही वह उत्तम दान दिया है, अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा ययातिको शुभाशीर्वाद दे उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ ३८ ॥

तत्र देवाः सगन्धर्वाः प्रीता यज्ञस्य सम्पदा ।
विस्मिता मानुषाश्चासन् दृष्ट्वा तां यज्ञसम्पदम् ॥ ३९ ॥

उस यज्ञकी सम्पत्तिसे देवता और गन्धर्व भी बड़े प्रसन्न हुए थे । मनुष्योंको तो वह यज्ञ-वैभव देखकर महान् आश्चर्य हुआ था ॥ ३९ ॥

ततस्तालकेतुर्महाधर्मकेतु-
र्महात्मा कृतात्मा महादाननित्यः ।
वसिष्ठापवाहं महाभीमवेगं
धृतात्मा जितात्मा समभ्याजगाम ॥ ४० ॥

तदनन्तर महान् धर्म ही जिनकी ध्वजा है और जिनकी पताकापर ताड़का चिह्न सुशोभित है, वे महात्मा, कृतात्मा, धृतात्मा तथा जितात्मा बलरामजी, जो प्रतिदिन बड़े-बड़े दान किया करते थे, वहाँसे वसिष्ठापवाह नामक तीर्थमें गये, जहाँ सरस्वतीका वेग बड़ा भयङ्कर है ॥ ४० ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसङ्गमें सारस्वतोपाख्यानविषयक इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४१ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ४०½ श्लोक हैं)

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

वसिष्ठापवाह तीर्थकी उत्पत्तिके प्रसङ्गमें विश्वामित्रका क्रोध और वसिष्ठजीकी सहनशीलता

जनमेजय उवाच

वसिष्ठस्यापवाहोऽसौ भीमवेगः कथं नु सः।
किमर्थं च सरिच्छ्रेष्ठा तमृषिं प्रत्यवाहयत्॥ १॥
कथमस्याभवद् वैरं कारणं किं च तत् प्रभो।
शंस पृष्टो महाप्राज्ञ न हि तृप्यामि ते वचः॥ २॥

जनमेजयने पूछा—प्रभो! वसिष्ठापवाह तीर्थमें सरस्वतीके जलका भयंकर वेग कैसे हुआ? सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वतीने उन महर्षिको किस लिये बहाया? उनके साथ उसका वैर कैसे हुआ? उस वैरका कारण क्या है? महामते! मैंने जो पूछा है, वह बताइये। मैं आपके वचनोंको सुनते-सुनते तृप्त नहीं होता हूँ॥ १-२॥

वैशम्पायन उवाच

विश्वामित्रस्य विप्रर्षेर्वसिष्ठस्य च भारत।
भृशं वैरमभूद् राजंस्तपःस्पर्धाकृतं महत्॥ ३॥

वैशम्पायनजीने कहा—भारत! तपस्यामें होड़ लग जानेके कारण विश्वामित्र तथा ब्रह्मर्षि वसिष्ठमें बड़ा भारी वैर हो गया था॥ ३॥

आश्रमो वै वसिष्ठस्य स्थाणुतीर्थेऽभवन्महान्।
पूर्वतः पार्श्वतश्चासीद् विश्वामित्रस्य धीमतः॥ ४॥

सरस्वतीके स्थाणुतीर्थमें पूर्वतटपर वसिष्ठका बहुत बड़ा आश्रम था और पश्चिम तटपर बुद्धिमान् विश्वामित्र मुनिका आश्रम बना हुआ था॥ ४॥

यत्र स्थाणुर्महाराज तप्तवान् परमं तपः।
तत्रास्य कर्म तद् घोरं प्रवदन्ति मनीषिणः॥ ५॥

महाराज! जहाँ भगवान् स्थाणुने बड़ी भारी तपस्या की थी, वहाँ मनीषी पुरुष उनके घोर तपका वर्णन करते हैं॥ ५॥

यत्रेष्ट्वा भगवान् स्थाणुः पूजयित्वा सरस्वतीम्।
स्थापयामास तत् तीर्थं स्थाणुतीर्थमिति प्रभो॥ ६॥

प्रभो! जहाँ भगवान् स्थाणु (शिव) ने सरस्वतीका पूजन और यज्ञ करके तीर्थकी स्थापना की थी, वहाँ वह तीर्थ स्थाणुतीर्थके नामसे विख्यात हुआ॥ ६॥

तत्र तीर्थे सुराः स्कन्दमभ्यषिञ्चन्नराधिप।
सैनापत्येन महता सुरारिविनिबर्हणम्॥ ७॥

नरेश्वर! उसी तीर्थमें देवताओंने देवशत्रुओंका विनाश करनेवाले स्कन्दको महान् सेनापतिके पदपर अभिषिक्त किया था।

तस्मिन् सारस्वते तीर्थे विश्वामित्रो महामुनिः।
वसिष्ठं चालयामास तपसोग्रेण तच्छृणु॥ ८॥

उसी सारस्वत तीर्थमें महामुनि विश्वामित्रने अपनी उग्र तपस्यासे वसिष्ठमुनिको विचलित कर दिया था। वह प्रसंग सुनाता हूँ, सुनो॥ ८॥

विश्वामित्रवसिष्ठौ तावहन्यहनि भारत।
स्पर्धां तपःकृतां तीव्रां चक्रतुस्तौ तपोधनौ॥ ९॥

भारत! विश्वामित्र और वसिष्ठ दोनों ही तपस्याके धनी थे, वे प्रतिदिन होड़ लगाकर अत्यन्त कठोर तप किया करते थे॥ ९॥

तत्राप्यधिकसंतापो विश्वामित्रो महामुनिः।
दृष्ट्वा तेजो वसिष्ठस्य चिन्तामभिजगाम ह॥ १०॥

उनमें भी महामुनि विश्वामित्रको ही अधिक संताप होता था, वे वसिष्ठका तेज देखकर चिन्तामग्न हो गये थे॥ १०॥

तस्य बुद्धिरियं ह्यासीद् धर्मनित्यस्य भारत।
इयं सरस्वती तूर्णं मत्समीपं तपोधनम्॥ ११॥
आनयिष्यति वेगेन वसिष्ठं तपतां वरम्।
इहागतं द्विजश्रेष्ठं हनिष्यामि न संशयः॥ १२॥

भरतनन्दन! सदा धर्ममें तत्पर रहनेवाले विश्वामित्र मुनिके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि यह सरस्वती तपोधन वसिष्ठको अपने जलके वेगसे तुरंत ही मेरे समीप ला देगी और यहाँ आ जानेपर तपस्वी मुनियोंमें श्रेष्ठ विप्रवर वसिष्ठका मैं वध कर डालूँगा; इसमें संशय नहीं है॥ ११-१२॥

एवं निश्चित्य भगवान् विश्वामित्रो महामुनिः।
सस्मार सरितां श्रेष्ठां क्रोधसंरक्तलोचनः॥ १३॥

ऐसा निश्चय करके पूज्य महामुनि विश्वामित्रके नेत्र क्रोधसे रक्त-वर्ण हो गये। उन्होंने सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वतीका स्मरण किया॥ १३॥

सा ध्याता मुनिना तेन व्याकुलत्वं जगाम ह।
जज्ञे चैनं महावीर्यं महाकोपं च भाविनी॥ १४॥

उन मुनिके चिन्तन करनेपर विचारशीला सरस्वती व्याकुल हो उठी। उसे ज्ञात हो गया कि ये महान् शक्तिशाली महर्षि इस समय बड़े भारी क्रोधसे भरे हुए हैं॥ १४॥

तत एनं वेपमाना विवर्णा प्राञ्जलिस्तदा।
उपतस्थे मुनिवरं विश्वामित्रं सरस्वती॥ १५॥

इससे सरस्वतीकी कान्ति फीकी पड़ गयी और वह हाथ जोड़ थर-थर काँपती हुई मुनिवर विश्वामित्रकी सेवामें उपस्थित हुई॥ १५॥

हतवीरा यथा नारी साभवद् दुःखिता भृशम्।
ब्रूहि किं करवाणीति प्रोवाच मुनिसत्तमम्॥ १६॥

जिसका पति मारा गया हो उस विधवा नारीके समान वह अत्यन्त दुखी हो गयी और उन मुनिश्रेष्ठसे बोली—'प्रभो! बताइये, मैं आपकी किस आज्ञाका पालन करूँ?'॥

तामुवाच मुनिः क्रुद्धो वसिष्ठं शीघ्रमानय।
यावदेनं निहन्म्यद्य तच्छ्रुत्वा व्यथिता नदी॥ १७॥

तब कुपित हुए मुनिने उससे कहा—'वसिष्ठको शीघ्र यहाँ बहाकर ले आओ, जिससे आज मैं इनका वध कर डालूँ।' यह सुनकर सरस्वती नदी व्यथित हो उठी॥ १७॥

प्राञ्जलिं तु ततः कृत्वा पुण्डरीकनिभेक्षणा।

प्राकम्पत भृशं भीता वायुनेवाहता लता ॥ १८ ॥

वह कमलनयना अबला हाथ जोड़कर वायुके झकोरेसे हिलायी गयी लताके समान अत्यन्त भयभीत हो जोर-जोरसे काँपने लगी ॥ १८ ॥

तथारूपां तु तां दृष्ट्वा मुनिराह महानदीम् ।
अविचारं वसिष्ठं त्वमानयस्वान्तिकं मम ॥ १९ ॥

उसकी ऐसी अवस्था देखकर मुनिने उस महानदीसे कहा—'तुम बिना कोई विचार किये वसिष्ठको मेरे पास ले आओ' ॥

सा तस्य वचनं श्रुत्वा ज्ञात्वा पापं चिकीर्षितम् ।
वसिष्ठस्य प्रभावं च जानन्त्यप्रतिमं भुवि ॥ २० ॥
साभिगम्य वसिष्ठं च इदमर्थमचोदयत् ।
यदुक्ता सरितां श्रेष्ठा विश्वामित्रेण धीमता ॥ २१ ॥

विश्वामित्रकी बात सुनकर और उनकी पापपूर्ण चेष्टा जानकर वसिष्ठके भूतलपर विख्यात अनुपम प्रभावको जानती हुई उस नदीने उनके पास जाकर बुद्धिमान् विश्वामित्रने जो कुछ कहा था, वह सब उनसे कह सुनाया ॥ २०-२१ ॥

उभयोः शापयोर्भीता वेपमाना पुनः पुनः ।
चिन्तयित्वा महाशापमृषिवित्रासिता भृशम् ॥ २२ ॥

वह दोनोंके शापसे भयभीत हो बारंबार काँप रही थी। महान् शापका चिन्तन करके विश्वामित्र ऋषिके डरसे बहुत डर गयी थी ॥ २२ ॥

तां कृशां च विवर्णां च दृष्ट्वा चिन्तासमन्विताम् ।
उवाच राजन् धर्मात्मा वसिष्ठो द्विपदां वरः ॥ २३ ॥

राजन्! उसे दुर्बल, उदास और चिन्तामग्न देख मनुष्योंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा वसिष्ठने कहा ॥ २३ ॥

वसिष्ठ उवाच

पाह्यात्मानं सरिच्छ्रेष्ठे वह मां शीघ्रगामिनी ।
विश्वामित्रः शपेद्धि त्वां मा कृथास्त्वं विचारणाम् ॥ २४ ॥

वसिष्ठ बोले—सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती! तुम शीघ्र गतिसे प्रवाहित होकर मुझे बहा ले चलो और अपनी रक्षा करो, अन्यथा विश्वामित्र तुम्हें शाप दे देंगे; इसलिये तुम कोई दूसरा विचार मनमें न लाओ ॥ २४ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा कृपाशीलस्य सा सरित् ।
चिन्तयामास कौरव्य किं कृत्वा सुकृतं भवेत् ॥ २५ ॥

कुरुनन्दन! उन कृपाशील महर्षिका वह वचन सुनकर सरस्वती सोचने लगी, 'क्या करनेसे शुभ होगा?' ॥ २५ ॥

तस्याश्चिन्ता समुत्पन्ना वसिष्ठो मय्यतीव हि ।
कृतवान् हि दयां नित्यं तस्य कार्यं हितं मया ॥ २६ ॥

उसके मनमें यह विचार उठा कि 'वसिष्ठने मुझपर बड़ी भारी दया की है। अतः सदा मुझे इनका हित साधन करना चाहिये' ॥ २६ ॥

अथ कूले स्वके राजन् जपन्तमृषिसत्तमम् ।
जुह्वानं कौशिकं प्रेक्ष्य सरस्वत्यभ्यचिन्तयत् ॥ २७ ॥
इदमन्तरमित्येवं ततः सा सरितां वरा ।
कूलापहारमकरोत् स्वेन वेगेन सा सरित् ॥ २८ ॥

राजन्! तदनन्तर ऋषिश्रेष्ठ विश्वामित्रको अपने तटपर जप और होम करते देख सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वतीने सोचा, यही अच्छा अवसर है, फिर तो उस नदीने पूर्वतटको तोड़कर उसे अपने वेगसे बहाना आरम्भ किया ॥ २७-२८ ॥

तेन कूलापहारेण मैत्रावरुणिरौह्यत ।
उह्यमानः स तुष्टाव तदा राजन् सरस्वतीम् ॥ २९ ॥

उस बहते हुए किनारेके साथ मित्रावरुणके पुत्र वसिष्ठजी भी बहने लगे। राजन्! बहते समय वसिष्ठजी सरस्वतीकी स्तुति करने लगे—॥ २९ ॥

पितामहस्य सरसः प्रवृत्तासि सरस्वति ।
व्याप्तं चेदं जगत् सर्वं तवैवाम्भोभिरुत्तमैः ॥ ३० ॥

'सरस्वती! तुम पितामह ब्रह्माजीके सरोवरसे प्रकट हुई हो, इसीलिये तुम्हारा नाम सरस्वती है। तुम्हारे उत्तम जलसे ही यह सारा जगत् व्याप्त है ॥ ३० ॥

त्वमेवाकाशगा देवि मेघेषु सृजसे पयः ।
सर्वाश्चापस्त्वमेवेति त्वत्तो वयमधीमहि ॥ ३१ ॥

'देवि! तुम्हीं आकाशमें जाकर मेघोंमें जलकी सृष्टि करती हो, तुम्हीं सम्पूर्ण जल हो; तुमसे ही हम ऋषिगण वेदोंका अध्ययन करते हैं ॥ ३१ ॥

पुष्टिर्द्युतिस्तथा कीर्तिः सिद्धिर्बुद्धिरुमा तथा ।
त्वमेव वाणी स्वाहा त्वं तवायत्तमिदं जगत् ॥ ३२ ॥
त्वमेव सर्वभूतेषु वससीह चतुर्विधा ।

'तुम्हीं पुष्टि, कीर्ति, द्युति, सिद्धि, बुद्धि, उमा, वाणी और स्वाहा हो। यह सारा जगत् तुम्हारे अधीन है। तुम्हीं समस्त प्राणियोंमें चार* प्रकारके रूप धारण करके निवास करती हो' ॥ ३२½ ॥

एवं सरस्वती राजन् स्तूयमाना महर्षिणा ॥ ३३ ॥
वेगेनोवाह तं विप्रं विश्वामित्राश्रमं प्रति ।
न्यवेदयत चाभीक्ष्णं विश्वामित्राय तं मुनिम् ॥ ३४ ॥

राजन्! महर्षिके मुखसे इस प्रकार स्तुति सुनती हुई सरस्वतीने उन ब्रह्मर्षिको अपने वेगद्वारा विश्वामित्रके आश्रमपर पहुँचा दिया और विश्वामित्रसे बारंबार निवेदन किया कि 'वसिष्ठ मुनि उपस्थित हैं' ॥ ३३-३४ ॥

तमानीतं सरस्वत्या दृष्ट्वा कोपसमन्वितः ।
अथान्वेषत् प्रहरणं वसिष्ठान्तकरं तदा ॥ ३५ ॥

सरस्वतीद्वारा लाये हुए वसिष्ठको देखकर विश्वामित्र कुपित हो उठे और उनके जीवनका अन्त कर देनेके लिये कोई हथियार ढूँढ़ने लगे ॥ ३५ ॥

तं तु क्रुद्धमभिप्रेक्ष्य ब्रह्मवध्याभयान्नदी ।
अपोवाह वसिष्ठं तु प्राचीं दिशमतन्द्रिता ॥ ३६ ॥
उभयोः कुर्वती वाक्यं वञ्चयित्वा च गाधिजम् ।

उन्हें कुपित देख सरस्वती नदी ब्रह्महत्याके भयसे आलस्य छोड़ दोनोंकी आज्ञाका पालन करती हुई विश्वामित्रको धोखा देकर वसिष्ठ मुनिको पुनः पूर्व दिशाकी ओर बहा ले गयी ॥

---

* परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी—यह चार प्रकारकी वाणी ही सरस्वतीका चतुर्विध रूप है।

ततोऽपवाहितं दृष्ट्वा वसिष्ठमृषिसत्तमम् ॥ ३७ ॥
अब्रवीद् दुःखसंक्रुद्धो विश्वामित्रो ह्यमर्षणः ।
यस्मान्मां त्वं सरिच्छ्रेष्ठे वञ्चयित्वा पुनर्गता ॥ ३८ ॥
शोणितं वह कल्याणि रक्षोग्रामणिसम्मतम् ।

मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठको पुनः अपनेसे दूर बहाया गया देख अमर्षशील विश्वामित्र दुःखसे अत्यन्त कुपित हो बोले—'सरिताओंमें श्रेष्ठ कल्याणमयी सरस्वती ! तुम मुझे धोखा देकर फिर चली गयी, इसलिये अब जलकी जगह रक्त बहाओ, जो राक्षसोंके समूहको अधिक प्रिय है ॥ ३७-३८½ ॥

ततः सरस्वती शप्ता विश्वामित्रेण धीमता ॥ ३९ ॥
अवहच्छोणितोन्मिश्रं तोयं संवत्सरं तदा ।

बुद्धिमान् विश्वामित्रके इस प्रकार शाप देनेपर सरस्वती नदी एक सालतक रक्तमिश्रित जल बहाती रही ॥ ३९½ ॥

अथर्षयश्च देवाश्च गन्धर्वाप्सरसस्तदा ॥ ४० ॥
सरस्वतीं तथा दृष्ट्वा बभूवुर्भृशदुःखिताः ।

तदनन्तर ऋषि, देवता, गन्धर्व और अप्सरा सरस्वतीको उस अवस्थामें देखकर अत्यन्त दुखी हो गये ॥ ४०½ ॥

एवं वसिष्ठापवाहो लोके ख्यातो जनाधिप ॥ ४१ ॥
आगच्छच्च पुनर्मार्गं स्वमेव सरितां वरा ॥ ४२ ॥

नरेश्वर ! इस प्रकार वह स्थान जगत्में वसिष्ठापवाहके नामसे विख्यात हुआ । वसिष्ठजीको बहानेके पश्चात् सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती फिर अपने पूर्व मार्गपर ही बहने लग गयी ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसंगमें सारस्वतोपाख्यानविषयक बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

ऋषियोंके प्रयत्नसे सरस्वतीके शापकी निवृत्ति, जलकी शुद्धि तथा अरुणासङ्गममें स्नान करनेसे राक्षसों और इन्द्रका संकटमोचन

वैशम्पायन उवाच

सा शप्ता तेन क्रुद्धेन विश्वामित्रेण धीमता ।
तस्मिंस्तीर्थवरे शुभ्रे शोणितं समुपावहत् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! कुपित हुए बुद्धिमान् विश्वामित्रने जब सरस्वती नदीको शाप दे दिया, तब वह नदी उस उज्ज्वल एवं श्रेष्ठ तीर्थमें रक्तकी धारा बहाने लगी ॥ १ ॥

अथाजग्मुस्ततो राजन् राक्षसास्तत्र भारत ।
तत्र ते शोणितं सर्वे पिबन्तः सुखमासते ॥ २ ॥

भारत ! तदनन्तर वहाँ बहुत-से राक्षस आ पहुँचे । वे सब-के-सब उस रक्तको पीते हुए वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे ॥

तृप्ताश्च सुभृशं तेन सुखिता विगतज्वराः ।
नृत्यन्तश्च हसन्तश्च यथा स्वर्गजितस्तथा ॥ ३ ॥

उस रक्तसे अत्यन्त तृप्त, सुखी और निश्चिन्त हो वे राक्षस वहाँ नाचने और हँसने लगे, मानो उन्होंने स्वर्गलोकको जीत लिया हो ॥ ३ ॥

कस्यचित् त्वथ कालस्य ऋषयः सुतपोधनाः ।
तीर्थयात्रां समाजग्मुः सरस्वत्यां महीपते ॥ ४ ॥

पृथ्वीनाथ ! कुछ कालके पश्चात् बहुत-से तपोधन मुनि सरस्वतीके तटपर तीर्थयात्राके लिये पधारे ॥ ४ ॥

तेषु सर्वेषु तीर्थेषु स्वाप्लुत्य मुनिपुङ्गवाः ।
प्राप्य प्रीतिं परां चापि तपोलुब्धा विशारदाः ॥ ५ ॥
प्रययुर्हि ततो राजन् येन तीर्थमसृग्वहम् ।

पूर्वोक्त सभी तीर्थोंमें गोता लगाकर वे तपस्याके लोभी विज्ञ मुनिवर पूर्ण प्रसन्न हो उसी ओर गये, जिधर रक्तकी धारा बहानेवाला पूर्वोक्त तीर्थ था ॥ ५½ ॥

अथागम्य महाभागास्तत् तीर्थं दारुणं तदा ॥ ६ ॥
दृष्ट्वा तोयं सरस्वत्याः शोणितेन परिप्लुतम् ।
पीयमानं च रक्षोभिर्बहुभिर्नृपसत्तम ॥ ७ ॥

नृपश्रेष्ठ ! वहाँ आकर उन महाभाग मुनियोंने देखा कि उस तीर्थकी दारुण दशा हो गयी है, वहाँ सरस्वतीका जल रक्तसे ओतप्रोत है और बहुत-से राक्षस उसका पान कर रहे हैं ॥

तान् दृष्ट्वा राक्षसान् राजन् मुनयः संशितव्रताः ।
परित्राणे सरस्वत्याः परं यत्नं प्रचक्रिरे ॥ ८ ॥

राजन् ! उन राक्षसोंको देखकर कठोर व्रतका पालन करनेवाले मुनियोंने सरस्वतीके उस तीर्थकी रक्षाके लिये महान् प्रयत्न किया ॥ ८ ॥

ते तु सर्वे महाभागाः समागम्य महाव्रताः ।
आहूय सरितां श्रेष्ठामिदं वचनमब्रुवन् ॥ ९ ॥

उन सभी महान् व्रतधारी महाभाग ऋषियोंने मिलकर सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वतीको बुलाकर पूछा—॥ ९ ॥

कारणं ब्रूहि कल्याणि किमर्थं ते ह्रदो ह्ययम् ।
एवमाकुलतां यातः श्रुत्वा ध्यास्यामहे वयम् ॥ १० ॥

'कल्याणि ! तुम्हारा यह कुण्ड इस प्रकार रक्तसे मिश्रित क्यों हो गया ? इसका क्या कारण है ? बताओ । उसे सुनकर हमलोग कोई उपाय सोचेंगे' ॥ १० ॥

ततः सा सर्वमाचष्ट यथावृत्तं प्रवेपती ।
दुःखितामथ तां दृष्ट्वा ऊचुस्ते वै तपोधनाः ॥ ११ ॥

तब काँपती हुई सरस्वतीने सारा वृत्तान्त यथार्थ रूपसे कह सुनाया । उसे दुखी देख वे तपोधन महर्षि उससे बोले—॥

कारणं श्रुतमस्माभिः शापश्चैव श्रुतोऽनघे ।
करिष्यन्ति तु यत् प्राप्तं सर्व एव तपोधनाः ॥ १२ ॥

'निष्पाप सरस्वती ! हमने शाप और उसका कारण सुन

लिया । ये सभी तपोधन इस विषयमें समयोचित कर्तव्यका पालन करेंगे' ॥ १२ ॥

एवमुक्त्वा सरिच्छ्रेष्ठामूचुस्तेऽथ परस्परम् ।
विमोचयामहे सर्वे शापादेतां सरस्वतीम् ॥ १३ ॥

सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वतीसे ऐसा कहकर वे आपसमें बोले—'हम सब लोग मिलकर इस सरस्वतीको शापसे छुटकारा दिलावें' ॥ १३ ॥

ते सर्वे ब्राह्मणा राजंस्तपोभिर्नियमैस्तथा ।
उपवासैश्च विविधैर्यमैः कष्टव्रतैस्तथा ॥ १४ ॥
आराध्य पशुभर्तारं महादेवं जगत्पतिम् ।
तां देवीं मोक्षयामासुः सरिच्छ्रेष्ठां सरस्वतीम् ॥ १५ ॥

राजन् ! उन सभी ब्राह्मणोंने तप, नियम, उपवास, नाना प्रकारके संयम तथा कष्टसाध्य व्रतोंके द्वारा पशुपति विश्वनाथ महादेवजीकी आराधना करके सरिताओंमें श्रेष्ठ उस सरस्वती देवीको शापसे छुटकारा दिलाया ॥ १४-१५ ॥

तेषां तु सा प्रभावेण प्रकृतिस्था सरस्वती ।
प्रसन्नसलिला जज्ञे यथापूर्वं तथैव हि ॥ १६ ॥

उनके प्रभावसे सरस्वती प्रकृतिस्थ हुई, उसका जल पूर्ववत् स्वच्छ हो गया ॥ १६ ॥

निर्मुक्ता च सरिच्छ्रेष्ठा विबभौ सा यथा पुरा ।
दृष्ट्वा तोयं सरस्वत्या मुनिभिस्तैस्तथा कृतम् ॥ १७ ॥
तानेव शरणं जग्मू राक्षसाः क्षुधितास्तथा ।

शापमुक्त हुई सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती पहलेकी भाँति शोभा पाने लगी । उन मुनियोंके द्वारा सरस्वतीका जल वैसा शुद्ध कर दिया गया—यह देखकर वे भूखे हुए राक्षस उन्हीं महर्षियोंकी शरणमें गये ॥ १७½ ॥

कृत्वाञ्जलिं ततो राजन् राक्षसाः क्षुधयार्दिताः ॥ १८ ॥
ऊचुस्तान् वै मुनीन् सर्वान् कृपायुक्तान् पुनः पुनः ।
वयं च क्षुधिताश्चैव धर्माद्धीनाश्च शाश्वतात् ॥ १९ ॥

राजन् ! तदनन्तर वे भूखसे पीड़ित हुए राक्षस उन सभी कृपालु मुनियोंसे बारंबार हाथ जोड़कर कहने लगे—'महात्माओ ! हम भूखे हैं । सनातन धर्मसे भ्रष्ट हो गये हैं ॥

न च नः कामकारोऽयं यद् वयं पापकारिणः ।
युष्माकं चाप्रसादेन दुष्कृतेन च कर्मणा ॥ २० ॥
यत् पापं वर्धतेऽस्माकं ततः स्मो ब्रह्मराक्षसाः ।

'हमलोग जो पापाचार करते हैं, यह हमारा स्वेच्छाचार नहीं है । आप-जैसे महात्माओंकी हमलोगोंपर कभी कृपा नहीं हुई और हम सदा दुष्कर्म ही करते चले आये । इससे हमारे पापकी निरन्तर वृद्धि होती रहती है और हम ब्रह्मराक्षस हो गये हैं ॥ २०½ ॥

योषितां चैव पापेन योनिदोषकृतेन च ॥ २१ ॥
एवं हि वैश्यशूद्राणां क्षत्रियाणां तथैव च ।
ये ब्राह्मणान् प्रद्विषन्ति ते भवन्तीह राक्षसाः ॥ २२ ॥

'स्त्रियाँ अपने योनिदोषजनित पाप (व्यभिचार) से राक्षसी हो जाती हैं । इसी प्रकार क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंमेंसे जो लोग ब्राह्मणोंसे द्वेष करते हैं, वे भी इस जगत्में राक्षस होते हैं ॥ २१-२२ ॥

आचार्यमृत्विजं चैव गुरुं वृद्धजनं तथा ।
प्राणिनो येऽवमन्यन्ते ते भवन्तीह राक्षसाः ॥ २३ ॥

'जो प्राणधारी मानव आचार्य, ऋत्विज, गुरु और वृद्ध पुरुषोंका अपमान करते हैं, वे भी यहाँ राक्षस होते हैं ॥२३॥

तत् कुरुध्वमिहास्माकं तारणं द्विजसत्तमाः ।
शक्ता भवन्तः सर्वेषां लोकानामपि तारणे ॥ २४ ॥

'अतः विप्रवरो ! आप यहाँ हमारा उद्धार करें, क्योंकि आपलोग सम्पूर्ण लोकोंका उद्धार करनेमें समर्थ हैं' ॥ २४ ॥

तेषां तु वचनं श्रुत्वा तुष्टुवुस्तां महानदीम् ।
मोक्षार्थं रक्षसां तेषामूचुः प्रयतमानसाः ॥ २५ ॥

उन राक्षसोंका वचन सुनकर एकाग्रचित्त महर्षियोंने उनकी मुक्तिके लिये महानदी सरस्वतीका स्तवन किया और इस प्रकार कहा—॥ २५ ॥

क्षुतं कीटावपन्नं च यच्चोच्छिष्टाचितं भवेत् ।
सकेशमवधूतं च रुदितोपहतं च यत् ॥ २६ ॥
श्वभिः संसृष्टमन्नं च भागोऽसौ रक्षसामिह ।
तस्माज्ज्ञात्वा सदा विद्वानेतान् यत्नाद् विवर्जयेत् ॥२७॥
राक्षसान्नमसौ भुङ्क्ते यो भुङ्क्ते ह्यन्नमीदृशम् ।

'जिस अन्नपर थूक पड़ गयी हो, जिसमें कीड़े पड़े हों, जो जूठा हो, जिसमें बाल गिरा हो, जो तिरस्कारपूर्वक प्राप्त हुआ हो, जो अश्रुपातसे दूषित हो गया हो तथा जिसे कुत्तेने छू दिया हो, वह सारा अन्न इस जगत्में राक्षसोंका भाग है । अतः विद्वान् पुरुष सदा समझ-बूझकर इन सब प्रकारके अन्नोंका प्रयत्नपूर्वक परित्याग करे । जो ऐसे अन्नको खाता है, वह मानो राक्षसोंका अन्न खाता है' ॥ २६-२७½ ॥

शोधयित्वा ततस्तीर्थमृषयस्ते तपोधनाः ॥ २८ ॥
मोक्षार्थं राक्षसानां च नदीं तां प्रत्यचोदयन् ।

तदनन्तर उन तपोधन महर्षियोंने उस तीर्थकी शुद्धि करके उन राक्षसोंकी मुक्तिके लिये सरस्वती नदीसे अनुरोध किया ॥

महर्षीणां मतं ज्ञात्वा ततः सा सरितां वरा ॥ २९ ॥
अरुणामानयामास स्वां तनूं पुरुषर्षभ ।
तस्यां ते राक्षसाः स्नात्वा तनूस्त्यक्त्वा दिवं गताः ॥३०॥
अरुणायां महाराज ब्रह्मवध्यापहा हि सा ।

नरश्रेष्ठ ! महर्षियोंका यह मत जानकर सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती अपनी ही स्वरूपभूता अरुणाको ले आयी । महाराज ! उस अरुणामें स्नान करके वे राक्षस अपना शरीर छोड़कर स्वर्गलोकमें चले गये; क्योंकि वह ब्रह्महत्याका निवारण करनेवाली है ॥

एतमर्थमभिज्ञाय देवराजः शतक्रतुः ॥ ३१ ॥
तस्मिंस्तीर्थे वरे स्नात्वा विमुक्तः पाप्मना किल ।

राजन् ! कहते हैं, इस बातको जानकर देवराज इन्द्र उसी श्रेष्ठ तीर्थमें स्नान करके ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हुए थे ॥

जनमेजय उवाच

किमर्थं भगवान् शक्रो ब्रह्मवध्यामवाप्तवान् ॥ ३२ ॥

कथमस्मिंश्च तीर्थे वै आप्लुत्याकल्मषोऽभवत् ।

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन् ! भगवान् इन्द्रको ब्रह्महत्याका पाप कैसे लगा तथा वे किस प्रकार इस तीर्थमें स्नान करके पाप मुक्त हुए थे ? ॥ ३२½ ॥

वैशम्पायन उवाच

शृणुष्वैतदुपाख्यानं यथावृत्तं जनेश्वर ॥ ३३ ॥
यथा बिभेद समयं नमुचेर्वासवः पुरा ।

वैशम्पायनजीने कहा—जनेश्वर ! पूर्वकालमें इन्द्रने नमुचिके साथ अपनी की हुई प्रतिज्ञाको जिस प्रकार तोड़ डाला था, वह सारी कथा जैसे घटित हुई थी, तुम यथार्थरूपसे सुनो ॥ ३३½ ॥

नमुचिर्वासवाद् भीतः सूर्यरश्मिं समाविशत् ॥ ३४ ॥
तेनेन्द्रः सख्यमकरोत् समयं चेदमब्रवीत् ।
न चार्द्रेण न शुष्केण न रात्रौ नापि चाहनि ॥ ३५ ॥
वधिष्याम्यसुरश्रेष्ठ सखे सत्येन ते शपे ।

पहलेकी बात है, नमुचि इन्द्रके भयसे डरकर सूर्यकी किरणोंमें समा गया था । तब इन्द्रने उसके साथ मित्रता कर ली और यह प्रतिज्ञा की 'असुरश्रेष्ठ ! मैं न तो तुम्हें गीले हथियारसे मारूँगा न सूखेसे । न दिनमें मारूँगा न रातमें । सखे ! मैं सत्यकी सौगन्ध खाकर यह बात तुमसे कहता हूँ' ॥

एवं स कृत्वा समयं दृष्ट्वा नीहारमीश्वरः ॥ ३६ ॥
चिच्छेदास्य शिरो राजन्नपां फेनेन वासवः ।

राजन् ! इस प्रकार प्रतिज्ञा करके भी देवराज इन्द्रने चारों ओर कुहासा छाया हुआ देख पानीके फेनसे नमुचिका सिर काट लिया ॥ ३६½ ॥

तच्छिरो नमुचेश्छिन्नं पृष्ठतः शक्रमन्वियात् ॥ ३७ ॥
भो भो मित्रघ्न पापेति ब्रुवाणं शक्रमन्तिकात् ।

नमुचिका वह कटा हुआ मस्तक इन्द्रके पीछे लग गया । वह उनके पास जाकर बारंबार कहने लगा, 'ओ मित्रघाती पापात्मा इन्द्र ! तू कहाँ जाता है ?' ॥ ३७½ ॥

एवं स शिरसा तेन चोद्यमानः पुनः पुनः ॥ ३८ ॥
पितामहाय संतप्त एतमर्थं न्यवेदयत् ।

इस प्रकार उस मस्तकके द्वारा बारंबार पूर्वोक्त बात पूछी जानेपर अत्यन्त संतप्त हुए इन्द्रने ब्रह्माजीसे यह सारा समाचार निवेदन किया ॥ ३८½ ॥

तमब्रवील्लोकगुरुररुणायां यथाविधि ॥ ३९ ॥
इष्ट्वोपस्पृश देवेन्द्र तीर्थे पापभयापहे ।

तब लोकगुरु ब्रह्माने उनसे कहा—'देवेन्द्र ! अरुणा तीर्थ पाप-भयको दूर करनेवाला है । तुम वहाँ विधिपूर्वक यज्ञ करके अरुणाके जलमें स्नान करो ॥ ३९½ ॥

एषा पुण्यजला शक्र कृता मुनिभिरेव तु ॥ ४० ॥
निगूढमस्यागमनमिहासीत् पूर्वमेव तु ।
ततोऽभ्येत्यारुणां देवीं प्लावयामास वारिणा ॥ ४१ ॥

'शक्र ! महर्षियोंने इस अरुणाके जलको परम पवित्र बना दिया है । इस तीर्थमें पहले ही गुप्तरूपसे उसका आगमन हो चुका था, फिर सरस्वतीने निकट आकर अरुणादेवीको अपने जलसे आप्लावित कर दिया ॥ ४०-४१ ॥

सरस्वत्यारुणायाश्च पुण्योऽयं संगमो महान् ।
इह त्वं यज देवेन्द्र दद दानान्यनेकशः ॥ ४२ ॥
अत्राप्लुत्य सुघोरात् त्वं पातकाद् विप्रमोक्ष्यसे ।

'देवेन्द्र ! सरस्वती और अरुणाका यह संगम महान् पुण्यदायक तीर्थ है । तुम यहाँ यज्ञ करो और अनेक प्रकारके दान दो । फिर उसमें स्नान करके तुम भयानक पातकसे मुक्त हो जाओगे' ॥ ४२½ ॥

इत्युक्तः स सरस्वत्याः कुञ्जे वै जनमेजय ॥ ४३ ॥
इष्ट्वा यथावद् बलभिदरुणायामुपास्पृशत् ।
स मुक्तः पाप्मना तेन ब्रह्मवध्याकृतेन च ॥ ४४ ॥
जगाम संहृष्टमनास्त्रिदिवं त्रिदशेश्वरः ।

जनमेजय ! उनके ऐसा कहनेपर इन्द्रने सरस्वतीके कुञ्जमें विधिपूर्वक यज्ञ करके अरुणामें स्नान किया । फिर ब्रह्महत्याजनित पापसे मुक्त हो देवराज इन्द्र हर्षोत्फुल्ल हृदयसे स्वर्गलोकमें चले गये ॥ ४३-४४½ ॥

शिरस्तच्चापि नमुचेस्तत्रैवाप्लुत्य भारत ।
लोकान् कामदुघान् प्राप्तमक्षयान् राजसत्तम ॥ ४५ ॥

भारत ! नृपश्रेष्ठ ! नमुचिका वह मस्तक भी उसी तीर्थमें गोता लगाकर मनोवाञ्छित फल देनेवाले अक्षय लोकोंमें चला गया ॥ ४५ ॥

वैशम्पायन उवाच

तत्राप्युपस्पृश्य बलो महात्मा
दत्त्वा च दानानि पृथग्विधानि ।
अवाप्य धर्मं परमार्थकर्मा
जगाम सोमस्य महत् सुतीर्थम् ॥ ४६ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! पारमार्थिक कार्य करनेवाले महात्मा बलरामजी उस तीर्थमें भी स्नान करके नाना प्रकारकी वस्तुओंका दान करके धर्मका फल पाकर सोमके महान् एवं उत्तम तीर्थमें गये ॥ ४६ ॥

यत्रायजद् राजसूयेन सोमः
साक्षात् पुरा विधिवत् पार्थिवेन्द्रः ।
अत्रिर्धीमान् विप्रमुख्यो बभूव
होता यस्मिन् क्रतुमुख्ये महात्मा ॥ ४७ ॥

जहाँ पूर्वकालमें साक्षात् राजाधिराज सोमने विधिपूर्वक राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया था । उस श्रेष्ठ यज्ञमें बुद्धिमान् विप्रवर महात्मा अत्रिने होताका कार्य किया था ॥ ४७ ॥

यस्यान्तेऽभूत् सुमहद् दानवानां
दैतेयानां राक्षसानां च देवैः ।
यस्मिन् युद्धं तारकाख्यं सुतीव्रं
यत्र स्कन्दस्तारकाख्यं जघान ॥ ४८ ॥

उस यज्ञके अन्तमें देवताओंके साथ दानवों, दैत्यों तथा राक्षसोंका महान् एवं भयंकर तारकामय संग्राम हुआ था, जिसमें स्कन्दने तारकासुरका वध किया था ॥ ४८ ॥

सैनापत्यं लब्धवान् देवतानां
महासेनो यत्र दैत्यान्तकर्ता ।
साक्षाच्चैवं न्यवसत् कार्तिकेयः
सदा कुमारो यत्र स प्लक्षराजः ॥ ४९ ॥

उसीमें दैत्यविनाशक महासेन कार्तिकेयने देवताओंका सेनापतित्व ग्रहण किया था। जहाँ वह पाकड़का श्रेष्ठ वृक्ष है, वहाँ साक्षात् कुमार कार्तिकेय इस तीर्थमें सदा निवास करते हैं ॥ ४९ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसंगमें सारस्वतोपाख्यान विषयक तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

कुमार कार्तिकेयका प्राकट्य और उनके अभिषेककी तैयारी

जनमेजय उवाच

सरस्वत्याः प्रभावोऽयमुक्तस्ते द्विजसत्तम ।
कुमारस्याभिषेकं तु ब्रह्मन् व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥

जनमेजयने कहा—द्विजश्रेष्ठ ! आपने सरस्वतीका यह प्रभाव बताया है। ब्रह्मन् ! अब कुमार कार्तिकेयके अभिषेकका वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

यस्मिन् देशे च काले च यथा च वदतां वर ।
यैश्चाभिषिक्तो भगवान् विधिना येन च प्रभुः ॥ २ ॥

वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! किस देश और कालमें किन लोगोंने किस विधिसे किस प्रकार शक्तिशाली भगवान् स्कन्दका अभिषेक किया ? ॥ २ ॥

स्कन्दो यथा च दैत्यानामकरोत् कदनं महत् ।
तथा मे सर्वमाचक्ष्व परं कौतूहलं हि मे ॥ ३ ॥

स्कन्दने जिस प्रकार दैत्योंका महान् संहार किया हो, वह सब उसी तरह मुझे बताइये; क्योंकि मेरे मनमें इसे सुननेके लिये बड़ा कौतूहल हो रहा है ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच

कुरुवंशस्य सदृशं कौतूहलमिदं तव ।
हर्षमुत्पादयत्येव वचो मे जनमेजय ॥ ४ ॥

वैशम्पायनजी बोले—जनमेजय ! तुम्हारा यह कौतूहल कुरुवंशके योग्य ही है। तुम्हारा वचन मेरे मनमें बड़ा भारी हर्ष उत्पन्न कर रहा है ॥ ४ ॥

हन्त ते कथयिष्यामि शृण्वानस्य नराधिप ।
अभिषेकं कुमारस्य प्रभावं च महात्मनः ॥ ५ ॥

नरेश्वर ! तुम ध्यान देकर सुन रहे हो, इसलिये मैं तुमसे प्रसन्नतापूर्वक महात्मा कुमार कार्तिकेयके अभिषेक और प्रभावका वर्णन करता हूँ ॥ ५ ॥

तेजो माहेश्वरं स्कन्नमग्नौ प्रपतितं पुरा ।
तत् सर्वभक्षो भगवान् नाशकद् दग्धुमक्षयम् ॥ ६ ॥

पूर्वकालकी बात है, भगवान् शिवका तेजोमय वीर्य अग्निमें गिर पड़ा। भगवान् अग्नि सर्वभक्षी हैं तो भी उस अक्षय वीर्यको वे भस्म न कर सके ॥ ६ ॥

तेनासीदतितेजस्वी दीप्तिमान् हव्यवाहनः ।
न चैव धारयामास गर्भं तेजोमयं तदा ॥ ७ ॥
स गङ्गामभिसंगम्य नियोगाद् ब्रह्मणः प्रभुः ।
गर्भमाहितवान् दिव्यं भास्करोपमतेजसम् ॥ ८ ॥

उस वीर्यके कारण अग्निदेव दीप्तिमान्, तेजस्वी तथा शक्तिसम्पन्न होकर भी कष्टका अनुभव करने लगे। वे उस समय उस तेजोमय गर्भको जब धारण न कर सके, तब ब्रह्माजीकी आज्ञासे उन भगवान् अग्निदेवने सूर्यके समान तेजस्वी उस दिव्य गर्भको गङ्गाजीमें डाल दिया ॥ ७-८ ॥

अथ गङ्गापि तं गर्भमसहन्ती विधारणे ।
उत्ससर्ज गिरौ रम्ये हिमवत्यमरार्चिते ॥ ९ ॥

तदनन्तर गङ्गाने भी उस गर्भको धारण करनेमें असमर्थ होकर उसे देवपूजित सुरम्य हिमालय पर्वतके शिखरपर सरकण्डोंमें छोड़ दिया ॥ ९॥

स तत्र ववृधे लोकानावृत्य ज्वलनात्मजः ।
ददृशुर्ज्वलनाकारं तं गर्भमथ कृत्तिकाः ॥ १० ॥
शरस्तम्बे महात्मानमनलात्मजमीश्वरम् ।
ममायमिति ताः सर्वाः पुत्रार्थिन्योऽभिचुक्रुशुः ॥ ११ ॥

अग्निका वह पुत्र अपने तेजसे सम्पूर्ण लोकोंको व्याप्त करके वहाँ बढ़ने लगा। सरकण्डोंके समूहमें अग्निके समान प्रकाशित होते हुए उस सर्वसमर्थ महात्मा अग्निपुत्रको, जो नवजात शिशुके रूपमें उपस्थित था, छहों कृत्तिकाओंने देखा। उसे देखते ही पुत्रकी अभिलाषा रखनेवाली वे सभी कृत्तिकाएँ पुकार-पुकारकर कहने लगीं 'यह मेरा पुत्र है' ॥ १०-११ ॥

तासां विदित्वा भावं तं मातॄणां भगवान् प्रभुः ।
प्रस्नुतानां पयः षड्भिर्वदनैरपिबत् तदा ॥ १२ ॥

उन माताओंके उस वात्सल्यभावको जानकर प्रभावशाली भगवान् स्कन्द छः मुख प्रकट करके उनके स्तनोंसे झरते हुए दूधको पीने लगे ॥ १२ ॥

तं प्रभावं समालक्ष्य तस्य बालस्य कृत्तिकाः ।
परं विस्मयमापन्ना देव्यो दिव्यवपुर्धराः ॥ १३ ॥

वे दिव्य रूपधारिणी छहों कृत्तिका देवियाँ उस बालकका वह प्रभाव देखकर अत्यन्त आश्चर्यसे चकित हो उठीं ॥

यत्रोत्सृष्टः स भगवान् गङ्गया गिरिमूर्धनि ।
स शैलः काञ्चनः सर्वः सम्बभौ कुरुसत्तम ॥ १४ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! गङ्गाजीने पर्वतके जिस शिखरपर स्कन्दको छोड़ा था, वह सारा-का-सारा सुवर्णमय हो गया ॥ १४ ॥

वर्धता चैव गर्भेण पृथिवी तेन रञ्जिता ।
अतश्च सर्वे संवृत्ता गिरयः काञ्चनाकराः ॥ १५ ॥

उस बढ़ते हुए शिशुने वहाँकी भूमिको रंजित (प्रकाशित)

कर दिया था । इसलिये वहाँके सभी पर्वत सोनेकी खान बन गये ॥ १५ ॥

कुमारः सुमहावीर्यः कार्तिकेय इति स्मृतः ।
गाङ्गेयः पूर्वमभवन्महायोगबलान्वितः ॥ १६ ॥

वह महान् शक्तिशाली कुमार कार्तिकेयके नामसे विख्यात हुआ । वह महान् योगबलसे सम्पन्न बालक पहले गङ्गाजीका पुत्र था ॥ १६ ॥

शमेन तपसा चैव वीर्येण च समन्वितः ।
ववृधेऽतीव राजेन्द्र चन्द्रवत् प्रियदर्शनः ॥ १७ ॥

राजेन्द्र ! शम, तपस्या और पराक्रमसे युक्त वह कुमार अत्यन्त वेगसे बढ़ने लगा । वह देखनेमें चन्द्रमाके समान प्रिय लगता था ॥ १७ ॥

स तस्मिन् काञ्चने दिव्ये शरस्तम्बे श्रिया वृतः ।
स्तूयमानः सदा शेते गन्धर्वैर्मुनिभिस्तथा ॥ १८ ॥

उस दिव्य सुवर्णमय प्रदेशमें सरकण्डोंके समूहपर स्थित हुआ वह कान्तिमान् बालक निरन्तर गन्धर्वों एवं मुनियोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनता हुआ सो रहा था ॥ १८ ॥

तथैतमन्वनृत्यन्त देवकन्याः सहस्रशः ।
दिव्यवादित्रनृत्यज्ञाः स्तुवन्त्यश्चारुदर्शनाः ॥ १९ ॥

तदनन्तर दिव्य वाद्य और नृत्यकी कला जाननेवाली सहस्रों सुन्दरी देवकन्याएँ उस कुमारकी स्तुति करती हुई उसके समीप नृत्य करने लगीं ॥ १९ ॥

अन्वास्ते च नदी देवं गङ्गा वै सरितां वरा ।
दधार पृथिवी चैनं बिभ्रती रूपमुत्तमम् ॥ २० ॥

सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गा भी उस दिव्य बालकके पास आ बैठीं । पृथ्वीदेवीने उत्तम रूप धारण करके उसे अपने अङ्कमें धारण किया ॥ २० ॥

जातकर्मादिकास्तत्र क्रियाश्चक्रे बृहस्पतिः ।
वेदश्चैनं चतुर्मूर्तिरुपतस्थे कृताञ्जलिः ॥ २१ ॥

बृहस्पतिजीने वहाँ उस बालकके जातकर्म आदि संस्कार किये और चार स्वरूपोंमें अभिव्यक्त होनेवाला वेद हाथ जोड़कर उसकी सेवामें उपस्थित हुआ ॥ २१ ॥

धनुर्वेदश्चतुष्पादः शस्त्रग्रामः ससंग्रहः ।
तत्रैनं समुपातिष्ठत् साक्षाद् वाणी च केवला ॥ २२ ॥

चारों चरणोंसे युक्त धनुर्वेद, संग्रहसहित शस्त्र-समूह तथा केवल साक्षात् वाणी—ये सभी कुमारकी सेवामें उपस्थित हुए॥

स ददर्श महावीर्यं देवदेवमुमापतिम् ।
शैलपुत्र्या समासीनं भूतसंघशतैर्वृतम् ॥ २३ ॥

कुमारने देखा कि सैकड़ों भूतसङ्घोंसे घिरे हुए महापराक्रमी देवाधिदेव उमापति गिरिराजनन्दिनी उमाके साथ पास ही बैठे हुए हैं ॥ २३ ॥

निकाया भूतसंघानां परमाद्भुतदर्शनाः ।
विकृता विकृताकारा विकृताभरणध्वजाः ॥ २४ ॥

उनके साथ आये हुए भूतसङ्घोंके शरीर देखनेमें बड़े ही अद्भुत, विकृत और विकराल थे । उनके आभूषण और ध्वज भी बड़े विकट थे ॥ २४ ॥

व्याघ्रसिंहर्क्षवदना बिडालमकराननाः ।
वृषदंशमुखाश्चान्ये गजोष्ट्रवदनास्तथा ॥ २५ ॥
उलूकवदनाः केचिद् गृध्रगोमायुदर्शनाः ।
क्रौञ्चपारावतनिभैर्वदनै राङ्कवैरपि ॥ २६ ॥

उनमेंसे किन्हींके मुँह बाघ और सिंहके समान थे तो किन्हींके रीछ, बिल्ली और मगरके समान । कितनोंके मुख वन-बिलावोंके तुल्य थे । कितने ही हाथी, ऊँट और उल्लूके समान मुखवाले थे । बहुत-से गीधों और गीदड़ोंके समान दिखायी देते थे । किन्हीं-किन्हींके मुख क्रौञ्च पक्षी, कबूतर और रङ्कु मृगके समान थे ॥ २५-२६ ॥

श्वाविच्छल्यकगोधानामजैडकगवां तथा ।
सदृशानि वपूंष्यन्ते तत्र तत्र व्यधारयन् ॥ २७ ॥

बहुतेरे भूत जहाँ-तहाँ हिंसक जन्तु, साही, गोह, बकरी, भेड़ और गायोंके समान शरीर धारण करते थे ॥ २७ ॥

केचिच्छैलाम्बुदप्रख्याश्चक्रोद्यतगदायुधाः ।
केचिदञ्जनपुञ्जाभाः केचिच्छ्वेताचलप्रभाः ॥ २८ ॥

कितने ही मेघों और पर्वतोंके समान जान पड़ते थे । उन्होंने अपने हाथोंमें चक्र और गदा आदि आयुध ले रक्खे थे । कोई अंजन-पुञ्जके समान काले और कोई श्वेत गिरिके समान गौर कान्तिसे सुशोभित होते थे ॥ २८ ॥

सप्त मातृगणाश्चैव समाजग्मुर्विशाम्पते ।
साध्या विश्वेऽथ मरुतो वसवः पितरस्तथा ॥ २९ ॥
रुद्रादित्यास्तथा सिद्धा भुजगा दानवाः खगाः ।
ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् सपुत्रः सह विष्णुना ॥ ३० ॥
शक्रस्तथाभ्ययाद् द्रष्टुं कुमारवरमच्युतम् ।

प्रजानाथ ! वहाँ सात मातृकाएँ[1] आ गयी थीं । साध्य, विश्व, मरुद्गण, वसुगण, पितर, रुद्र, आदित्य, सिद्ध, भुजङ्ग, दानव, पक्षी, पुत्रसहित स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा, श्रीविष्णु तथा इन्द्र अपने नियमोंसे च्युत न होनेवाले उस श्रेष्ठ कुमारको देखनेके लिये पधारे थे ॥ २९-३०½ ॥

नारदप्रमुखाश्चापि देवगन्धर्वसत्तमाः ॥ ३१ ॥
देवर्षयश्च सिद्धाश्च बृहस्पतिपुरोगमाः ।
पितरो जगतः श्रेष्ठा देवानामपि देवताः ॥ ३२ ॥
तेऽपि तत्र समाजग्मुर्यामा धामाश्च सर्वशः ।

देवताओं और गन्धर्वोंमें श्रेष्ठ नारद आदि देवर्षि, बृहस्पति आदि सिद्ध, सम्पूर्ण जगत्से श्रेष्ठ तथा देवताओंके भी देवता पितृ-गण, सम्पूर्ण यामगण और धामगण भी वहाँ आये थे ॥ ३१-३२½ ॥

स तु बालोऽपि बलवान् महायोगबलान्वितः ॥३३॥
अभ्याजगाम देवेशं शूलहस्तं पिनाकिनम् ।

बालक होनेपर भी बलशाली एवं महान् योगबलसे सम्पन्न कुमार त्रिशूल और पिनाक धारण करनेवाले देवेश्वर भगवान् शिवकी ओर चले ॥ ३३½ ॥

तमाव्रजन्तमालक्ष्य शिवस्यासीन्मनोगतम् ॥ ३४ ॥
युगपच्छैलपुत्र्याश्च गङ्गायाः पावकस्य च ।

---

१. ब्राह्मी, माहेश्वरी, वैष्णवी, कौमारी, इन्द्राणी, वाराही तथा चामुण्डा—ये सात मातृकाएँ हैं ।

कं नु पूर्वमयं बालो गौरवादभ्युपैष्यति ॥ ३५ ॥
अपि मामिति सर्वेषां तेषामासीन्मनोगतम् ।

उन्हें आते देख एक ही समय भगवान् शङ्कर, गिरिराजनन्दिनी उमा, गङ्गा और अग्निदेवके मनमें यह संकल्प उठा कि देखें यह बालक पिता-माताका गौरव प्रदान करनेके लिये पहले किसके पास जाता है ? क्या यह मेरे पास आयेगा ? यह प्रश्न उन सबके मनमें उठा ॥ ३४-३५½ ॥

तेषामेतमभिप्रायं चतुर्णामुपलक्ष्य सः ॥ ३६ ॥
युगपद् योगमास्थाय ससर्ज विविधास्तनूः ।

तब उन सबके अभिप्रायको लक्ष्य करके कुमारने एक ही साथ योगबलका आश्रय ले अपने अनेक शरीर बना लिये ॥

ततोऽभवच्चतुर्मूर्तिः क्षणेन भगवान् प्रभुः ॥ ३७ ॥
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठतः ।

तदनन्तर प्रभावशाली भगवान् स्कन्द क्षणभरमें चार रूपोंमें प्रकट हो गये । पीछे जो उनकी मूर्तियाँ प्रकट हुईं, उनका नाम क्रमशः शाख, विशाख और नैगमेय हुआ ॥

एवं स कृत्वा ह्यात्मानं चतुर्धा भगवान् प्रभुः ॥ ३८ ॥
यतो रुद्रस्ततः स्कन्दो जगामाद्भुतदर्शनः ।
विशाखस्तु ययौ येन देवी गिरिवरात्मजा ॥ ३९ ॥

इस प्रकार अपने आपको चार स्वरूपोंमें प्रकट करके अद्भुत दिखायी देनेवाले प्रभावशाली भगवान् स्कन्द जहाँ रुद्र थे, उधर ही गये । विशाख उस ओर चल दिये, जिस ओर गिरिराजनन्दिनी उमा देवी बैठी थीं ॥ ३८-३९ ॥

शाखो ययौ स भगवान् वायुमूर्तिर्विभावसुम् ।
नैगमेयोऽगमद् गङ्गां कुमारः पावकप्रभः ॥ ४० ॥

वायुमूर्ति भगवान् शाख अग्निके पास और अग्नितुल्य तेजस्वी नैगमेय गङ्गाजीके निकट गये ॥ ४० ॥

सर्वे भासुरदेहास्ते चत्वारः समरूपिणः ।
तान् समभ्ययुरव्यग्रास्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ४१ ॥

उन चारोंके रूप एक समान थे । उन सबके शरीर तेजसे उद्भासित हो रहे थे । वे चारों कुमार उन चारोंके पास एक साथ जा पहुँचे । वह एक अद्भुत-सा कार्य हुआ ॥ ४१ ॥

हाहाकारो महानासीद् देवदानवरक्षसाम् ।
तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यमद्भुतं लोमहर्षणम् ॥ ४२ ॥

वह महान् आश्चर्यमय, अद्भुत तथा रोमाञ्चकारी घटना देखकर देवताओं, दानवों तथा राक्षसोंमें महान् हाहाकार मच गया ॥ ४२ ॥

ततो रुद्रश्च देवी च पावकश्च पितामहम् ।
गङ्गया सहिताः सर्वे प्रणिपेतुर्जगत्पतिम् ॥ ४३ ॥

तदनन्तर भगवान् रुद्र, देवी पार्वती, अग्निदेव तथा गङ्गाजी—इन सबने एक साथ लोकनाथ ब्रह्माजीको प्रणाम किया ॥

प्रणिपत्य ततस्ते तु विधिवद् राजपुङ्गव ।
इदमूचुर्वचो राजन् कार्तिकेयप्रियेप्सया ॥ ४४ ॥

राजन् ! नृपश्रेष्ठ ! विधिपूर्वक प्रणाम करके वे सब कार्तिकेयका प्रिय करनेकी इच्छासे यह वचन बोले— ॥ ४४ ॥

अस्य बालस्य भगवन्नाधिपत्यं यथेप्सितम् ।
अस्मत्प्रियार्थं देवेश सदृशं दातुमर्हसि ॥ ४५ ॥

'देवेश्वर ! भगवन् ! आप हमलोगोंका प्रिय करनेके लिये इस बालकको यथायोग्य मनकी इच्छाके अनुरूप कोई आधिपत्य प्रदान कीजिये' ॥ ४५ ॥

ततः स भगवान् धीमान् सर्वलोकपितामहः ।
मनसा चिन्तयामास किमयं लभतामिति ॥ ४६ ॥

तदनन्तर सर्वलोकपितामह बुद्धिमान् भगवान् ब्रह्माने मन-ही-मन चिन्तन किया कि 'यह बालक कौन-सा आधिपत्य ग्रहण करे' ॥ ४६ ॥

ऐश्वर्याणि च सर्वाणि देवगन्धर्वरक्षसाम् ।
भूतयक्षविहङ्गानां पन्नगानां च सर्वशः ॥ ४७ ॥
पूर्वमेवादिदेशासौ निकायेषु महात्मनाम् ।
समर्थं च तमैश्वर्ये महामतिरमन्यत ॥ ४८ ॥

महामति ब्रह्माने जगत्के भिन्न-भिन्न पदार्थोंके ऊपर देवता, गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, भूत, नाग और पक्षियोंका आधिपत्य पहलेसे ही निर्धारित कर रक्खा था । साथ ही वे कुमारको भी आधिपत्य करनेमें समर्थ मानते थे ॥ ४७-४८ ॥

ततो मुहूर्तं स ध्यात्वा देवानां श्रेयसि स्थितः ।
सैनापत्यं ददौ तस्मै सर्वभूतेषु भारत ॥ ४९ ॥

भरतनन्दन ! तदनन्तर देवगणोंके मङ्गल सम्पादनमें तत्पर हुए ब्रह्माने दो घड़ी तक चिन्तन करनेके पश्चात् सब प्राणियोंमें श्रेष्ठ कार्तिकेयको सम्पूर्ण देवताओंका सेनापति पद प्रदान किया ॥ ४९ ॥

सर्वदेवनिकायानां ये राजानः परिश्रुताः ।
तान् सर्वान् व्यादिदेशास्मै सर्वभूतपितामहः ॥ ५० ॥

जो सम्पूर्ण देवसमूहोंके राजारूपमें विख्यात थे, उन सबको सर्वभूतपितामह ब्रह्माने कुमारके अधीन रहनेका आदेश दिया ॥ ५० ॥

ततः कुमारमादाय देवा ब्रह्मपुरोगमाः ।
अभिषेकार्थमाजग्मुः शैलेन्द्रं सहितास्ततः ॥ ५१ ॥
पुण्यां हैमवतीं देवीं सरिच्छ्रेष्ठां सरस्वतीम् ।
समन्तपञ्चके या वै त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥ ५२ ॥

तब ब्रह्मा आदि देवता अभिषेकके लिये कुमारको लेकर एक साथ गिरिराज हिमालयपर वहाँसे निकली हुई सरिताओंमें श्रेष्ठ पुण्यसलिला सरस्वती देवीके तटपर गये, जो समन्तपञ्चक तीर्थमें प्रवाहित होकर तीनों लोकोंमें विख्यात है ॥

तत्र तीरे सरस्वत्याः पुण्ये सर्वगुणान्विते ।
निषेदुर्देवगन्धर्वाः सर्वे सम्पूर्णमानसाः ॥ ५३ ॥

वहाँ वे सभी देवता और गन्धर्व पूर्ण मनोरथ हो सरस्वतीके सर्वगुणसम्पन्न पावन तटपर विराजमान हुए ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने कुमाराभिषेकोपक्रमे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्रा और सारस्वतोपाख्यानके प्रसङ्गमें कुमारके अभिषेककी तैयारीविषयक चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

स्कन्दका अभिषेक और उनके महापार्षदोंके नाम, रूप आदिका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

ततोऽभिषेकसम्भारान् सर्वान् सम्भृत्य शास्त्रतः।
बृहस्पतिः समिद्धेऽग्नौ जुहावाग्निं यथाविधि ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर बृहस्पतिजीने सम्पूर्ण अभिषेकसामग्रीका संग्रह करके शास्त्रीय पद्धतिसे प्रज्वलित की हुई अग्निमें विधिपूर्वक होम किया ॥ १ ॥

ततो हिमवता दत्ते मणिप्रवरशोभिते।
दिव्यरत्नाचिते पुण्ये निषण्णं परमासने ॥ २ ॥
सर्वमङ्गलसम्भारैर्विधिमन्त्रपुरस्कृतम्।
आभिषेचनिकं द्रव्यं गृहीत्वा देवतागणाः ॥ ३ ॥

तत्पश्चात् हिमवान्‌के दिये हुए उत्तम मणियोंसे सुशोभित तथा दिव्य रत्नोंसे जटित पवित्र सिंहासनपर कुमार कार्तिकेय विराजमान हुए। उस समय उनके पास सम्पूर्ण माङ्गलिक उपकरणोंके साथ विधि एवं मन्त्रोच्चारणपूर्वक अभिषेक-द्रव्य लेकर समस्त देवता वहाँ पधारे ॥ २-३ ॥

इन्द्राविष्णू महावीर्यौ सूर्याचन्द्रमसौ तथा।
धाता चैव विधाता च तथा चैवानिलानलौ ॥ ४ ॥
पूष्णा भगेनार्यम्णा च अंशेन च विवस्वता।
रुद्रश्च सहितो धीमान् मित्रेण वरुणेन च ॥ ५ ॥
रुद्रैर्वसुभिरादित्यैरश्विभ्यां च वृतः प्रभुः।

महापराक्रमी इन्द्र और विष्णु, सूर्य और चन्द्रमा, धाता और विधाता, वायु और अग्नि, पूषा, भग, अर्यमा, अंश, विवस्वान्, मित्र और वरुणके साथ बुद्धिमान् रुद्रदेव, एकादश रुद्रगण, आठ वसु, बारह आदित्य और दोनों अश्विनीकुमार—ये सब-के-सब प्रभावशाली कुमार कार्तिकेयको घेरकर खड़े हुए ॥ ४-५½ ॥

विश्वेदेवैर्मरुद्भिश्च साध्यैश्च पितृभिः सह ॥ ६ ॥
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च यक्षराक्षसपन्नगैः।
देवर्षिभिरसंख्यातैस्तथा ब्रह्मर्षिभिस्तथा ॥ ७ ॥
वैखानसैर्वालखिल्यैर्वाय्वाहारैर्मरीचिपैः।
भृगुभिश्चाङ्गिरोभिश्च यतिभिश्च महात्मभिः ॥ ८ ॥
सर्पैर्विद्याधरैः पुण्यैर्योगसिद्धैस्तथा वृतः।

विश्वेदेव, मरुद्गण, साध्यगण, पितृगण, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, नाग, असंख्य देवर्षि, ब्रह्मर्षि, वनवासी मुनि, वालखिल्य, वायु पीकर रहनेवाले ऋषि, सूर्यकी किरणोंका पान करनेवाले मुनि, भृगु और अङ्गिराके वंशमें उत्पन्न महर्षि, महात्मा यतिगण, सर्प, विद्याधर तथा पुण्यात्मा योगसिद्ध मुनि भी कार्तिकेयको घेरकर खड़े हुए ॥ ६-८½ ॥

पितामहः पुलस्त्यश्च पुलहश्च महातपाः ॥ ९ ॥
अङ्गिराः कश्यपोऽत्रिश्च मरीचिर्भृगुरेव च।
क्रतुर्हरः प्रचेताश्च मनुर्दक्षस्तथैव च ॥ १० ॥
ऋतवश्च ग्रहाश्चैव ज्योतींषि च विशाम्पते।
मूर्तिमत्यश्च सरितो वेदाश्चैव सनातनाः ॥ ११ ॥
समुद्राश्च ह्रदाश्चैव तीर्थानि विविधानि च।
पृथिवी द्यौर्दिशश्चैव पादपाश्च जनाधिप ॥ १२ ॥
अदितिर्देवमाता च ह्रीः श्रीः स्वाहा सरस्वती।
उमा शची सिनीवाली तथा चानुमतिः कुहूः ॥ १३ ॥
राका च धिषणा चैव पत्न्यश्चान्या दिवौकसाम्।
हिमवांश्चैव विन्ध्यश्च मेरुश्चानेकशृङ्गवान् ॥ १४ ॥
ऐरावतः सानुचरः कलाः काष्ठास्तथैव च।
मासार्धमासा ऋतवस्तथा रात्र्यहनी नृप ॥ १५ ॥
उच्चैःश्रवा हयश्रेष्ठो नागराजश्च वासुकिः।
अरुणो गरुडश्चैव वृक्षाश्चौषधिभिः सह ॥ १६ ॥
धर्मश्च भगवान् देवः समाजग्मुर्हि सङ्गताः।
कालो यमश्च मृत्युश्च यमस्यानुचराश्च ये ॥ १७ ॥

प्रजानाथ! ब्रह्माजी, पुलस्त्य, महातपस्वी पुलह, अङ्गिरा, कश्यप, अत्रि, मरीचि, भृगु, क्रतु, हर, वरुण, मनु, दक्ष, ऋतु, ग्रह, नक्षत्र, मूर्तिमती सरिताएँ, मूर्तिमान् सनातन वेद, समुद्र, सरोवर, नाना प्रकारके तीर्थ, पृथिवी, द्युलोक, दिशा, वृक्ष, देवमाता अदिति, ह्री, श्री, स्वाहा, सरस्वती, उमा, शची, सिनीवाली, अनुमति, कुहू, राका, धिषणा, देवताओंकी अन्यान्य पत्नियाँ, हिमवान्, विन्ध्य, अनेक शिखरोंसे सुशोभित मेरुगिरि, अनुचरोंसहित ऐरावत, कला, काष्ठा, मास, पक्ष, ऋतु, रात्रि, दिन, अश्वोंमें श्रेष्ठ उच्चैःश्रवा, नागराज वासुकि, अरुण, गरुड़, ओषधियों-सहित वृक्ष, भगवान् धर्मदेव, काल, यम, मृत्यु तथा यमके अनुचर—ये सब-के-सब वहाँ एक साथ पधारे थे ॥ ९–१७ ॥

बहुलत्वाच्च नोक्ता ये विविधा देवतागणाः।
ते कुमाराभिषेकार्थं समाजग्मुस्ततस्ततः ॥ १८ ॥

संख्यामें अधिक होनेके कारण जिनके नाम यहाँ नहीं बताये गये हैं, वे सभी नाना प्रकारके देवता कुमार कार्तिकेयका अभिषेक करनेके लिये इधर-उधरसे वहाँ आ पहुँचे थे ॥

जगृहुस्ते तदा राजन् सर्व एव दिवौकसः।
आभिषेचनिकं भाण्डं मङ्गलानि च सर्वशः ॥ १९ ॥

राजन्! उस समय उन सभी देवताओंने अभिषेकके पात्र और सब प्रकारके माङ्गलिक द्रव्य हाथोंमें ले रक्खे थे॥

दिव्यसम्भारसंयुक्तैः कलशैः काञ्चनैर्नृप।
सरस्वतीभिः पुण्याभिर्दिव्यतोयाभिरेव तु ॥ २० ॥
अभ्यषिञ्चन् कुमारं वै सम्प्रहृष्टा दिवौकसः।
सेनापतिं महात्मानमसुराणां भयंकरम् ॥ २१ ॥

नरेश्वर! हर्षसे उत्फुल्ल देवता पवित्र एवं दिव्य जलवाली सातों सरस्वती नदियोंके जलसे भरे हुए, दिव्य सामग्रियोंसे सम्पन्न, सुवर्णमय कलशोंद्वारा असुर-भयंकर महामनस्वी कुमार कार्तिकेयका सेनापतिके पदपर अभिषेक करने लगे ॥

पुरा यथा महाराज वरुणं वै जलेश्वरम् ।
तथाभ्यषिञ्चद् भगवान् सर्वलोकपितामहः ॥ २२ ॥
कश्यपश्च महातेजा ये चान्ये लोककीर्तिताः ।

महाराज ! जैसे पूर्वकालमें जलके स्वामी वरुणका अभिषेक किया गया था, उसी प्रकार सर्वलोकपितामह भगवान् ब्रह्मा, महातेजस्वी कश्यप तथा दूसरे विश्वविख्यात महर्षियोंने कार्तिकेयका अभिषेक किया ॥ २२½ ॥

तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतो बलिनो वातरंहसः ॥ २३ ॥
कामवीर्यधरान् सिद्धान् महापारिषदान् प्रभुः ।
नन्दिसेनं लोहिताक्षं घण्टाकर्णं च सम्मतम् ॥ २४ ॥
चतुर्थमस्यानुचरं ख्यातं कुमुदमालिनम् ।

उस समय भगवान् ब्रह्माने संतुष्ट होकर कार्तिकेयको वायुके समान वेगशाली, इच्छानुसार शक्तिधारी, बलवान् और सिद्ध चार महान् अनुचर प्रदान किये, जिनमें पहला नन्दिसेन, दूसरा लोहिताक्ष, तीसरा परम प्रिय घंटाकर्ण और उनका चौथा अनुचर कुमुदमालीके नामसे विख्यात था ॥ २३-२४½ ॥

तत्र स्थाणुर्महातेजा महापारिषदं प्रभुः ॥ २५ ॥
मायाशतधरं कामं कामवीर्यं बलान्वितम् ।
ददौ स्कन्दाय राजेन्द्र सुरारिविनिबर्हणम् ॥ २६ ॥

राजेन्द्र ! फिर वहाँ महातेजस्वी भगवान् शङ्करने स्कन्दको एक महान् असुर समर्पित किया, जो सैकड़ों मायाओंको धारण करनेवाला, इच्छानुसार बल-पराक्रमसे सम्पन्न तथा दैत्योंका संहार करनेमें समर्थ था ॥ २५-२६ ॥

स हि देवासुरे युद्धे दैत्यानां भीमकर्मणाम् ।
जघान दोर्भ्यां संक्रुद्धः प्रयुतानि चतुर्दश ॥ २७ ॥

उसने देवासुरसंग्राममें अत्यन्त कुपित होकर भयानक कर्म करनेवाले चौदह प्रयुत[१] दैत्योंका केवल अपनी दोनों भुजाओंसे वध कर डाला था ॥ २७ ॥

तथा देवा ददुस्तस्मै सेनां नैर्ऋतसंकुलाम् ।
देवशत्रुक्षयकरीमजय्यां विष्णुरूपिणीम् ॥ २८ ॥

इसी प्रकार देवताओंने उन्हें देव-शत्रुओंका विनाश करनेवाली, अजेय एवं विष्णुरूपिणी सेना प्रदान की, जो नैर्ऋतोंसे भरी हुई थी ॥ २८ ॥

जयशब्दं तथा चक्रुर्देवाः सर्वे सवासवाः ।
गन्धर्वा यक्षरक्षांसि मुनयः पितरस्तथा ॥ २९ ॥

उस समय इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओं, गन्धर्वों, यक्षों, राक्षसों, मुनियों तथा पितरोंने जय-जयकार किया ॥ २९ ॥

ततः प्रादादनुचरौ यमः कालोपमावुभौ ।
उन्माथश्च प्रमाथश्च महावीर्यौ महाद्युती ॥ ३० ॥

तत्पश्चात् यमराजने उन्हें दो अनुचर प्रदान किये, जिनके नाम थे उन्माथ और प्रमाथ । वे दोनों कालके समान महापराक्रमी और महातेजस्वी थे ॥ ३० ॥

सुभ्राजो भास्वरश्चैव यौ तौ सूर्यानुयायिनौ ।
तौ सूर्यः कार्तिकेयाय ददौ प्रीतः प्रतापवान् ॥ ३१ ॥

सुभ्राज और भास्वर—जो सूर्यके अनुचर थे, उन्हें प्रतापी सूर्यने प्रसन्न होकर कार्तिकेयकी सेवामें दे दिया ॥ ३१ ॥

कैलासशृङ्गसंकाशौ श्वेतमाल्यानुलेपनौ ।
सोमोऽप्यनुचरौ प्रादान्मणिं सुमणिमेव च ॥ ३२ ॥

चन्द्रमाने भी कैलास-शिखरके समान श्वेतवर्णवाले तथा श्वेत माला और श्वेत चन्दन धारण करनेवाले दो अनुचर प्रदान किये, जिनके नाम थे मणि और सुमणि ॥ ३२ ॥

ज्वालाजिह्वं तथा ज्योतिरात्मजाय हुताशनः ।
ददावनुचरौ शूरौ परसैन्यप्रमाथिनौ ॥ ३३ ॥

अग्निदेवने भी अपने पुत्र स्कन्दको ज्वालाजिह्व तथा ज्योति नामक दो शूर सेवक प्रदान किये, जो शत्रुसेनाको मथ डालनेवाले थे ॥ ३३ ॥

परिघं च वटं चैव भीमं च सुमहाबलम् ।
दहतिं दहनं चैव प्रचण्डौ वीर्यसम्मतौ ॥ ३४ ॥
अंशोऽप्यनुचरान् पञ्च ददौ स्कन्दाय धीमते ।

अंशने भी बुद्धिमान् स्कन्दको पाँच अनुचर प्रदान किये, जिनके नाम इस प्रकार हैं—परिघ, वट, महाबली भीम तथा दहति और दहन । इनमेंसे दहति और दहन बड़े प्रचण्ड तथा बल-पराक्रमकी दृष्टिसे सम्मानित थे ॥ ३४½ ॥

उत्क्रोशं पञ्चकं चैव वज्रदण्डधरावुभौ ॥ ३५ ॥
ददावनलपुत्राय वासवः परवीरहा ।
तौ हि शत्रून् महेन्द्रस्य जघ्नतुः समरे बहून् ॥ ३६ ॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले इन्द्रने अग्निकुमार स्कन्दको उत्क्रोश और पञ्चक नामक दो अनुचर प्रदान किये । वे दोनों क्रमशः वज्र और दण्ड धारण करनेवाले थे । उन दोनोंने समराङ्गणमें इन्द्रके बहुत-से शत्रुओंका संहार कर डाला था ॥

चक्रं विक्रमकं चैव संक्रमं च महाबलम् ।
स्कन्दाय त्रीननुचरान् ददौ विष्णुर्महायशाः ॥ ३७ ॥

महायशस्वी भगवान् विष्णुने स्कन्दको चक्र, विक्रम और महाबली संक्रम—ये तीन अनुचर दिये ॥ ३७ ॥

वर्धनं नन्दनं चैव सर्वविद्याविशारदौ ।
स्कन्दाय ददतुः प्रीतावश्विनौ भिषजां वरौ ॥ ३८ ॥

सम्पूर्ण विद्याओंमें प्रवीण चिकित्सकचूड़ामणि अश्विनीकुमारोंने प्रसन्न होकर स्कन्दको वर्धन और नन्दन नामक दो सेवक दिये ॥ ३८ ॥

कुन्दं च कुसुमं चैव कुमुदं च महायशाः ।
डम्बराडम्बरौ चैव ददौ धाता महात्मने ॥ ३९ ॥

महायशस्वी धाताने महात्मा स्कन्दको कुन्द, कुसुम, कुमुद, डम्बर और आडम्बर—ये पाँच सेवक प्रदान किये ॥

चक्रानुचक्रौ बलिनौ मेघचक्रौ बलोत्कटौ ।
ददौ त्वष्टा महामायौ स्कन्दायानुचरावुभौ ॥ ४० ॥

प्रजापति त्वष्टाने बलवान्, बलोन्मत्त, महामायावी और मेघचक्रधारी चक्र और अनुचक्र नामक दो अनुचर स्कन्दकी सेवामें उपस्थित किये ॥ ४० ॥

सुव्रतं सत्यसंधं च ददौ मित्रो महात्मने ।

---

१. एक प्रयुत दस लाखके बराबर होता है ।

कुमाराय महात्मानौ तपोविद्याधरौ प्रभुः ॥ ४१ ॥
सुदर्शनीयौ वरदौ त्रिषु लोकेषु विश्रुतौ ।

भगवान् मित्रने महात्मा कुमारको सुव्रत और सत्यसंध नामक दो सेवक प्रदान किये । वे दोनों ही तप और विद्या धारण करनेवाले तथा महामनस्वी थे । इतना ही नहीं, वे देखनेमें बड़े ही सुन्दर, वर देनेमें समर्थ तथा तीनों लोकोंमें विख्यात थे ॥ ४१½ ॥

सुव्रतं च महात्मानं शुभकर्माणमेव च ॥ ४२ ॥
कार्तिकेयाय सम्प्रादाद् विधाता लोकविश्रुतौ ।

विधाताने कार्तिकेयको महामना सुव्रत और सुकर्मा—ये दो लोक-विख्यात सेवक प्रदान किये ॥ ४२½ ॥

पाणीतकं कालिकं च महामायाविनावुभौ ॥ ४३ ॥
पूषा च पार्षदौ प्रादात् कार्तिकेयाय भारत ।

भरतनन्दन ! पूषाने कार्तिकेयको पाणीतक और कालिक नामक दो पार्षद प्रदान किये । वे दोनों ही बड़े भारी मायावी थे॥

बलं चातिबलं चैव महावक्त्रौ महाबलौ ॥ ४४ ॥
प्रददौ कार्तिकेयाय वायुर्भरतसत्तम ।

भरतश्रेष्ठ ! वायु देवताने कृत्तिकाकुमारको महान् बलशाली एवं विशाल मुखवाले बल और अतिबल नामक दो सेवक प्रदान किये ॥ ४४½ ॥

यमं चातियमं चैव तिमिवक्त्रौ महाबलौ ॥ ४५ ॥
प्रददौ कार्तिकेयाय वरुणः सत्यसङ्गरः ।

सत्यप्रतिज्ञ वरुणने कृत्तिकानन्दन स्कन्दको यम और अतियम नामक दो महाबली पार्षद दिये, जिनके मुख तिमि नामक महामत्स्यके समान थे ॥ ४५½ ॥

सुवर्चसं महात्मानं तथैवाप्यतिवर्चसम् ॥ ४६ ॥
हिमवान् प्रददौ राजन् हुताशनसुताय वै ।

राजन् ! हिमवान्ने अग्निकुमारको महामना सुवर्चा और अतिवर्चा नामक दो पार्षद प्रदान किये ॥ ४६½ ॥

काञ्चनं च महात्मानं मेघमालिनमेव च ॥ ४७ ॥
ददावनुचरो मेरुरग्निपुत्राय भारत ।

भारत ! मेरुने अग्निपुत्र स्कन्दको महामना काञ्चन और मेघमाली नामक दो अनुचर अर्पित किये ॥ ४७½ ॥

स्थिरं चातिस्थिरं चैव मेरुरेवापरौ ददौ ॥ ४८ ॥
महात्मा त्वग्निपुत्राय महाबलपराक्रमौ ।

महामना मेरुने ही अग्निपुत्र कार्तिकेयको स्थिर और अतिस्थिर नामक दो पार्षद और दिये । वे दोनों महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न थे ॥ ४८½ ॥

उच्छ्रृङ्गं चातिश्रृङ्गं च महापाषाणयोधिनौ ॥ ४९ ॥
प्रददावग्निपुत्राय विन्ध्यः पारिषदावुभौ ।

विन्ध्य पर्वतने भी अग्निकुमारको दो पार्षद प्रदान किये, जिनके नाम थे उच्छृङ्ग और अतिशृङ्ग । वे दोनों ही बड़े-बड़े पत्थरोंकी चट्टानोंद्वारा युद्ध करनेमें कुशल थे ॥ ४९½ ॥

संग्रहं विग्रहं चैव समुद्रोऽपि गदाधरौ ॥ ५० ॥
प्रददावग्निपुत्राय महापारिषदावुभौ ।

समुद्रने भी अग्निपुत्रको दो गदाधारी महापार्षद दिये, जिनके नाम थे—संग्रह और विग्रह ॥ ५०½ ॥

उन्मादं शङ्कुकर्णं च पुष्पदन्तं तथैव च ॥ ५१ ॥
प्रददावग्निपुत्राय पार्वती शुभदर्शना ।

शुभदर्शना पार्वती देवीने अग्निपुत्रको तीन पार्षद दिये—उन्माद, शङ्कुकर्ण तथा पुष्पदन्त ॥ ५१½ ॥

जयं महाजयं चैव नागौ ज्वलनसूनवे ॥ ५२ ॥
प्रददौ पुरुषव्याघ्र वासुकिः पन्नगेश्वरः ।

पुरुषसिंह ! नागराज वासुकिने अग्निकुमारको पार्षदरूपसे जय और महाजय नामक दो नाग भेंट किये ॥ ५२½ ॥

एवं साध्याश्च रुद्राश्च वसवः पितरस्तथा ॥ ५३ ॥
सागराः सरितश्चैव गिरयश्च महाबलाः ।
ददुः सेनागणाध्यक्षान् शूलपट्टिशधारिणः ॥ ५४ ॥
दिव्यप्रहरणोपेतान् नानावेषविभूषितान् ।

इस प्रकार साध्य, रुद्र, वसु, पितृगण, समुद्र, सरिताओं और महाबली पर्वतोंने उन्हें विभिन्न सेनापति अर्पित किये, जो शूल, पट्टिश और नाना प्रकारके दिव्य आयुध धारण किये हुए थे । वे सब-के-सब भाँति-भाँतिकी वेश-भूषासे विभूषित थे ॥ ५३-५४½ ॥

शृणु नामानि चाप्येषां येऽन्ये स्कन्दस्य सैनिकाः॥ ५५ ॥
विविधायुधसम्पन्नाश्चित्राभरणभूषिताः ।

स्कन्दके जो नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न और विचित्र आभूषणोंसे विभूषित अन्य सैनिक थे, उनके नाम सुनो ॥

शङ्कुकर्णो निकुम्भश्च पद्मः कुमुद एव च ॥ ५६ ॥
अनन्तो द्वादशभुजस्तथा कृष्णोपकृष्णकौ ।
घ्राणश्रवाः कपिस्कन्धः काञ्चनाक्षो जलन्धमः ॥ ५७ ॥
अक्षः संतर्जनो राजन् कुनदीकस्तमोऽन्तकृत् ।
एकाक्षो द्वादशाक्षश्च तथैवैकजटः प्रभुः ॥ ५८ ॥
सहस्रबाहुर्विकटो व्याघ्राक्षः क्षितिकम्पनः ।
पुण्यनामा सुनामा च सुचक्रः प्रियदर्शनः ॥ ५९ ॥
परिश्रुतः कोकनदः प्रियमाल्यानुलेपनः ।
अजोदरो गजशिराः स्कन्धाक्षः शतलोचनः ॥ ६० ॥
ज्वालाजिह्वः करालाक्षः शितिकेशो जटी हरिः।
परिश्रुतः कोकनदः कृष्णकेशो जटाधरः ॥ ६१ ॥
चतुर्दंष्ट्रोऽष्टजिह्वश्च मेघनादः पृथुश्रवाः ।
विद्युताक्षो धनुर्वक्त्रो जाठरो मारुताशनः ॥ ६२ ॥
उदाराक्षो रथाक्षश्च वज्रनाभो वसुप्रभः ।
समुद्रवेगो राजेन्द्र शैलकम्पी तथैव च ॥ ६३ ॥
वृषो मेषः प्रवाहश्च तथा नन्दोपनन्दकौ ।
धूम्रः श्वेतः कलिङ्गश्च सिद्धार्थो वरदस्तथा ॥ ६४ ॥
प्रियकश्चैव नन्दश्च गोनन्दश्च प्रतापवान् ।
आनन्दश्च प्रमोदश्च स्वस्तिको ध्रुवकस्तथा ॥ ६५ ॥
क्षेमवाहः सुवाहश्च सिद्धपात्रश्च भारत ।
गोव्रजः कनकापीडो महापारिषदेश्वरः ॥ ६६ ॥
गायनो हसनश्चैव बाणः खड्गश्च वीर्यवान् ।

वैताली गतिताली च तथा कथकवातिकौ ॥ ६७ ॥
हंसजः पङ्कदिग्धाङ्गः समुद्रोन्मादनश्च ह ।
रणोत्कटः प्रहासश्च श्वेतसिद्धश्च नन्दनः ॥ ६८ ॥
कालकण्ठः प्रभासश्च तथा कुम्भाण्डकोदरः ।
कालकक्षः सितश्चैव भूतानां मथनस्तथा ॥ ६९ ॥
यज्ञवाहः सुवाहश्च देवयाजी च सोमपः ।
मज्जानश्च महातेजाः क्रथक्राथौ च भारत ॥ ७० ॥
तुहरश्च तुहारश्च चित्रदेवश्च वीर्यवान् ।
मधुरः सुप्रसादश्च किरीटी च महाबलः ॥ ७१ ॥
वत्सलो मधुवर्णश्च कलशोदर एव च ।
धर्मदो मन्मथकरः सूचीवक्त्रश्च वीर्यवान् ॥ ७२ ॥
श्वेतवक्त्रः सुवक्त्रश्च चारुवक्त्रश्च पाण्डुरः ।
दण्डबाहुः सुबाहुश्च रजः कोकिलकस्तथा ॥ ७३ ॥
अचलः कनकाक्षश्च बालानामपि यः प्रभुः ।
संचारकः कोकनदो गृध्रपत्रश्च जम्बुकः ॥ ७४ ॥
लोहाजवक्त्रो जवनः कुम्भवक्त्रश्च कुम्भकः ।
स्वर्णग्रीवश्च कृष्णौजा हंसवक्त्रश्च चन्द्रभः ॥ ७५ ॥
पाणिकूर्चश्च शम्बूकः पञ्चवक्त्रश्च शिक्षकः ।
चाषवक्त्रश्च जम्बूकः शाकवक्त्रश्च कुञ्जलः ॥ ७६ ॥

शङ्कुकर्ण, निकुम्भ, पद्म, कुमुद, अनन्त, द्वादशभुज, कृष्ण, उपकृष्ण, घ्राणश्रवा, कपिस्कन्ध, काञ्चनाक्ष, जलन्धम, अक्ष, संतर्जन, कुनदीक, तमोऽन्तकृत्, एकाक्ष, द्वादशाक्ष, एकजट, प्रभु, सहस्रबाहु, विकट, व्याघ्राक्ष, क्षितिकम्पन, पुण्यनामा, सुनामा, सुचक्र, प्रियदर्शन, परिश्रुत, कोकनद, प्रियमाल्यानुलेपन, अजोदर, गजशिरा, स्कन्धाक्ष, शतलोचन, ज्वालाजिह्व, करालाक्ष, शितिकेश, जटी, हरि, परिश्रुत, कोकनद, कृष्णकेश, जटाधर, चतुर्दंष्ट्र, अष्टजिह्व, मेघनाद, पृथुश्रवा, विद्युताक्ष, धनुर्वक्त्र, जाठर, मारुताशन, उदाराक्ष, रथाक्ष, वज्रनाभ, वसुप्रभ, समुद्रवेग, शैलकम्पी, वृष, मेष, प्रवाह, नन्द, उपनन्द, धूम्र, श्वेत, कलिङ्ग, सिद्धार्थ, वरद, प्रियक, नन्द, प्रतापी गोनन्द, आनन्द, प्रमोद, स्वस्तिक, ध्रुवक, क्षेमवाह, सुवाह, सिद्धपात्र, गोव्रज, कनकापीड, महापरिषदेश्वर, गायन, हसन, बाण, पराक्रमी खड्ग, वैताली, गतिताली, कथक, वातिक, हंसज, पङ्कदिग्धाङ्ग, समुद्रोन्मादन, रणोत्कट, प्रहास, श्वेतसिद्ध, नन्दन, कालकण्ठ, प्रभास, कुम्भाण्डकोदर, कालकक्ष, सित, भूतमथन, यज्ञवाह, सुवाह, देवयाजी, सोमप, मज्जान, महातेजा, क्रथ, क्राथ, तुहर, तुहार, पराक्रमी चित्रदेव, मधुर, सुप्रसाद, किरीटी, महाबल, वत्सल, मधुवर्ण, कलशोदर, धर्मद, मन्मथकर, शक्तिशाली सूचीवक्त्र, श्वेतवक्त्र, सुवक्त्र, चारुवक्त्र, पाण्डुर, दण्डबाहु, सुबाहु, रज, कोकिलक, अचल, कनकाक्ष, बालस्वामी, संचारक, कोकनद, गृध्रपत्र, जम्बुक, लोहवक्त्र, अजवक्त्र, जवन, कुम्भवक्त्र, कुम्भक, स्वर्णग्रीव, कृष्णौजा, हंसवक्त्र, चन्द्रभ, पाणिकूर्च, शम्बूक, पञ्चवक्त्र, शिक्षक, चापवक्त्र, जम्बूक, शाकवक्त्र और कुञ्जल ॥ ५६—७६ ॥

योगयुक्ता महात्मानः सततं ब्राह्मणप्रियाः ।
पैतामहा महात्मानो महापारिषदाश्च ये ॥ ७७ ॥
यौवनस्थाश्च बालाश्च वृद्धाश्च जनमेजय ।
सहस्रशः पारिषदाः कुमारमवतस्थिरे ॥ ७८ ॥

जनमेजय ! ये सब पार्षद योगयुक्त, महामना तथा निरन्तर ब्राह्मणोंसे प्रेम रखनेवाले हैं । इनके सिवा, पितामह ब्रह्माजीके दिये हुए जो महामना महापार्षद हैं, वे तथा दूसरे बालक, तरुण एवं वृद्ध सहस्रों पार्षद कुमारकी सेवामें उपस्थित हुए॥

वक्त्रैर्नानाविधैर्ये तु शृणु ताञ्जनमेजय ।
कूर्मकुक्कुटवक्त्राश्च शशोलूकमुखास्तथा ॥ ७९ ॥
खरोष्ट्रवदनाश्चान्ये वराहवदनास्तथा ।

जनमेजय ! उन सबके नाना प्रकारके मुख थे । किनके कैसे मुख थे ? यह बताता हूँ, सुनो । कुछ पार्षदोंके मुख कछुओं और मुर्गोंके समान थे, कितनोंके मुख खरगोश, उल्लू, गदहा, ऊँट और सूअरके समान थे ॥ ७९½ ॥

मार्जारशशवक्त्राश्च दीर्घवक्त्राश्च भारत ॥ ८० ॥
नकुलोलूकवक्त्राश्च काकवक्त्रास्तथा परे ।
आखुबभ्रुकवक्त्राश्च मयूरवदनास्तथा ॥ ८१ ॥

भारत ! बहुतोंके मुख बिल्ली और खरगोशके समान थे । किन्हींके मुख बहुत बड़े थे और किन्हींके नेवले, उल्लू, कौए, चूहे, बभ्रु तथा मयूरके मुखोंके समान थे ॥८०-८१॥

मत्स्यमेषाननाश्चान्ये अजाविमहिषाननाः ।
ऋक्षशार्दूलवक्त्राश्च द्वीपिसिंहाननास्तथा ॥ ८२ ॥

किन्हीं-किन्हींके मुख मछली, मेढे, बकरी, भेड़, भैंसे, रीछ, व्याघ्र, भेड़िये तथा सिंहोंके समान थे ॥ ८२ ॥

भीमा गजाननाश्चैव तथा नक्रमुखाश्च ये ।
गरुडाननाः कङ्कमुखा वृककाकमुखास्तथा ॥ ८३ ॥

किन्हींके मुख हाथीके समान थे, इसलिये वे बड़े भयानक जान पड़ते थे । कुछ पार्षदोंके मुख मगर, गरुड़, कङ्क, भेड़ियों और कौओंके समान जान पड़ते थे ॥ ८३ ॥

गोखरोष्ट्रमुखाश्चान्ये वृषदंशमुखास्तथा ।
महाजठरपादाङ्गास्तारकाक्षाश्च भारत ॥ ८४ ॥

भारत ! कुछ पार्षद गाय, गदहा, ऊँट और वनबिलावके समान मुख धारण करते थे । किन्हींके पेट, पैर और दूसरे दूसरे अङ्ग भी विशाल थे । उनकी आँखें तारोंके समान चमकती थीं ॥ ८४ ॥

पारावतमुखाश्चान्ये तथा वृषमुखाः परे ।
कोकिलाभाननाश्चान्ये श्येनतित्तिरिकाननाः ॥ ८५ ॥

कुछ पार्षदोंके मुख कबूतर, बैल, कोयल, बाज और तीतरोंके समान थे ॥ ८५ ॥

कृकलासमुखाश्चैव विरजोऽम्बरधारिणः ।
व्यालवक्त्राः शूलमुखाश्चण्डवक्त्राः शुभाननाः ॥ ८६ ॥

किन्हीं-किन्हींके मुख गिरगिटके समान जान पड़ते थे । कुछ बहुत ही श्वेत वस्त्र धारण करते थे । किन्हींके मुख सर्पोंके समान थे तो किन्हींके शूलके समान । किन्हींके मुखसे

अत्यन्त क्रोध टपकता था और किन्हींके मुखपर सौम्यभाव छा रहा था ॥ ८६ ॥

आशीविषाश्चीरधरा गोनासावदनास्तथा।
स्थूलोदराः कृशाङ्गाश्च स्थूलाङ्गाश्च कृशोदराः ॥ ८७ ॥

कुछ विषधर सर्पोंके समान जान पड़ते थे। कोई चीर धारण करते थे और किन्हीं-किन्हींके मुख गायके नथुनोंके समान प्रतीत होते थे। किन्हींके पेट बहुत मोटे थे और किन्हींके अत्यन्त कृश। कोई शरीरसे बहुत दुबले-पतले थे तो कोई महास्थूलकाय दिखायी देते थे ॥ ८७ ॥

ह्रस्वग्रीवा महाकर्णा नानाव्यालविभूषणाः।
गजेन्द्रचर्मवसनास्तथा कृष्णाजिनाम्बराः ॥ ८८ ॥

किन्हींकी गर्दन छोटी और कान बड़े-बड़े थे। नाना प्रकारके सर्पोंको उन्होंने आभूषणके रूपमें धारण कर रक्खा था। कोई अपने शरीरमें हाथीकी खाल लपेटे हुए थे तो कोई काला मृगछाला धारण करते थे ॥ ८८ ॥

स्कन्धेमुखा महाराज तथाप्युदरतोमुखाः।
पृष्ठेमुखा हनुमुखास्तथा जङ्घामुखा अपि ॥ ८९ ॥

महाराज ! किन्हींके मुख कंधोंपर थे तो किन्हींके पेटमें। कोई पीठमें, कोई दाढ़ीमें और कोई जाँघोंमें ही मुख धारण करते थे ॥ ८९ ॥

पार्श्वाननाश्च बहवो नानादेशमुखास्तथा।
तथा कीटपतङ्गानां सदृशास्या गणेश्वराः ॥ ९० ॥

बहुत-से ऐसे भी थे, जिनके मुख पार्श्वभागमें स्थित थे। शरीरके विभिन्न प्रदेशोंमें मुख धारण करनेवाले पार्षदोंकी संख्या भी कम नहीं थी। भिन्न-भिन्न गणोंके अधिपति कीट-पतङ्गोंके समान मुख धारण करते थे ॥ ९० ॥

नानाव्यालमुखाश्चान्ये बहुबाहुशिरोधराः।
नानावृक्षभुजाः केचित् कटिशीर्षास्तथा परे ॥ ९१ ॥

किन्हींके अनेक और सर्पाकार मुख थे। किन्हीं-किन्हींके बहुत-सी भुजाएँ और गर्दनें थीं। किन्हींकी बहुसंख्यक भुजाएँ नाना प्रकारके वृक्षोंके समान जान पड़ती थीं। किन्हीं-किन्हींके मस्तक उनके कटि-प्रदेशमें ही दिखायी देते थे ॥ ९१ ॥

भुजङ्गभोगवदना नानागुल्मनिवासिनः।
चीरसंवृतगात्राश्च नानाकनकवाससः ॥ ९२ ॥

किन्हींके सर्पाकार मुख थे। कोई नाना प्रकारके गुल्मों और लताओंसे अपनेको आच्छादित किये हुए थे। कोई चीर वस्त्रसे ही अपनेको ढके हुए थे और कोई नाना प्रकारके सुनहरे वस्त्र धारण करते थे ॥ ९२ ॥

नानावेषधराश्चैव नानामाल्यानुलेपनाः।
नानावस्त्रधराश्चैव चर्मवासस एव च ॥ ९३ ॥

वे नाना प्रकारके वेश, भाँति-भाँतिकी माला और चन्दन तथा अनेक प्रकारके वस्त्र धारण करते थे। कोई-कोई चमड़ेका ही वस्त्र पहनते थे ॥ ९३ ॥

उष्णीषिणो मुकुटिनः सुग्रीवाश्च सुवर्चसः।
किरीटिनः पञ्चशिखास्तथा काञ्चनमूर्धजाः ॥ ९४ ॥

किन्हींके मस्तकपर पगड़ी थी तो किन्हींके सिरपर मुकुट शोभा पाते थे। किन्हींकी गर्दन और अङ्गकान्ति बड़ी ही सुन्दर थी। कोई किरीट धारण करते और कोई सिरपर पाँच शिखाएँ रखते थे। किन्हींके सिरके बाल सुनहरे रंगके थे ॥

त्रिशिखा द्विशिखाश्चैव तथा सप्तशिखाः परे।
शिखण्डिनो मुकुटिनो मुण्डाश्च जटिलास्तथा ॥ ९५ ॥

कोई दो, कोई तीन और कोई सात शिखाएँ रखते थे। कोई माथेपर मोरपंख और कोई मुकुट धारण करते थे। कोई मूँड़ मुड़ाये और कोई जटा बढ़ाये हुए थे ॥ ९५ ॥

चित्रमालाधराः केचित् केचिद् रोमाननास्तथा।
विग्रहैकरसा नित्यमजेयाः सुरसत्तमैः ॥ ९६ ॥

कोई विचित्र माला धारण किये हुए थे और किन्हींके मुखपर बहुत-से रोयें जमे हुए थे। उन सबको लड़ाई-झगड़ेमें ही रस आता था। वे सदा श्रेष्ठ देवताओंके लिये भी अजेय थे ॥

कृष्णा निर्मांसवक्त्राश्च दीर्घपृष्ठास्तनूदराः।
स्थूलपृष्ठा ह्रस्वपृष्ठाः प्रलम्बोदरमेहनाः ॥ ९७ ॥

कोई काले थे, किन्हींके मुखपर मांसरहित हड्डियोंका ढाँचा मात्र था। किन्हींकी पीठ बहुत बड़ी थी और पेट भीतरको धँसा हुआ था। किन्हींकी पीठ मोटी और किन्हींकी छोटी थी। किन्हींके पेट और मूत्रेन्द्रिय दोनों बड़े थे ॥ ९७ ॥

महाभुजा ह्रस्वभुजा ह्रस्वगात्राश्च वामनाः।
कुब्जाश्च ह्रस्वजङ्घाश्च हस्तिकर्णशिरोधराः ॥ ९८ ॥

किन्हींकी भुजाएँ विशाल थीं तो किन्हींकी बहुत छोटी। कोई छोटे-छोटे अङ्गोंवाले और बौने थे। कोई कुबड़े थे तो किन्हीं-किन्हींकी जाँघें बहुत छोटी थीं। कोई हाथीके समान कान और गर्दन धारण करते थे ॥ ९८ ॥

हस्तिनासाः कूर्मनासा वृकनासास्तथा परे।
दीर्घोच्छ्वासा दीर्घजङ्घा विकराला ह्यधोमुखाः ॥ ९९ ॥

किन्हींकी नाक हाथी-जैसी, किन्हींकी कछुओंके समान और किन्हींकी भेड़ियों-जैसी थी। कोई लंबी साँस लेते थे। किन्हींकी जाँघें बहुत बड़ी थीं। किन्हींका मुख नीचेकी ओर था और वे विकराल दिखायी देते थे ॥ ९९ ॥

महादंष्ट्रा ह्रस्वदंष्ट्राश्चतुर्दंष्ट्रास्तथा परे।
वारणेन्द्रनिभाश्चान्ये भीमा राजन् सहस्रशः ॥ १०० ॥

किन्हींकी दाढ़ें बड़ी, किन्हींकी छोटी और किन्हींकी चार थीं। राजन् ! दूसरे भी सहस्रों पार्षद गजराजके समान विशालकाय एवं भयंकर थे ॥ १०० ॥

सुविभक्तशरीराश्च दीप्तिमन्तः स्वलंकृताः।
पिङ्गाक्षाः शङ्कुकर्णाश्च रक्तनासाश्च भारत ॥ १०१ ॥

उनके शरीरके सभी अङ्ग सुन्दर विभागपूर्वक देखे जाते थे। वे दीप्तिमान् तथा वस्त्राभूषणोंसे विभूषित थे। भारत ! उनके नेत्र पिंगलवर्णके थे, कान शङ्कुके समान जान पड़ते थे और नासिका लाल रंगकी थी ॥ १०१ ॥

पृथुदंष्ट्रा महादंष्ट्राः स्थूलौष्ठा हरिमूर्धजाः।
नानापादौष्ठदंष्ट्राश्च नानाहस्तशिरोधराः ॥ १०२ ॥

किन्हींकी दाढ़ें बड़ी और किन्हींकी मोटी थीं । किन्हींके ओठ मोटे और सिरके बाल नीले थे । किन्हींके पैर, ओठ, दाढ़ें, हाथ और गर्दनें नाना प्रकारकी और अनेक थीं ॥ १०२ ॥

नानाचर्मभिराच्छन्ना नानाभाषाश्च भारत ।
कुशला देशभाषासु जल्पन्तोऽन्योन्यमीश्वराः ॥ १०३ ॥

भारत ! कुछ लोग नाना प्रकारके चर्ममय वस्त्रोंसे आच्छादित, नाना प्रकारकी भाषाएँ बोलनेवाले, देशकी सभी भाषाओंमें कुशल एवं परस्पर बातचीत करनेमें समर्थ थे ॥

हृष्टाः परिपतन्ति स्म महापारिषदास्तथा ।
दीर्घग्रीवा दीर्घनखा दीर्घपादशिरोभुजाः ॥ १०४ ॥

वे महापार्षदगण हर्षमें भरकर चारों ओरसे दौड़े चले आ रहे थे । उनकी ग्रीवा, मस्तक, हाथ, पैर और नख सभी बड़े-बड़े थे ॥ १०४ ॥

पिङ्गाक्षा नीलकण्ठाश्च लम्बकर्णाश्च भारत ।
वृकोदरनिभाश्चैव केचिदञ्जनसंनिभाः ॥ १०५ ॥

भरतनन्दन ! उनकी आँखें भूरी थीं, कण्ठमें नीले रङ्गका चिह्न था और कान लंबे-लंबे थे । किन्हींका रङ्ग भेड़ियोंके उदरके समान था तो कोई काजलके समान काले थे ॥ १०५ ॥

श्वेताक्षा लोहितग्रीवाः पिङ्गाक्षाश्च तथा परे ।
कल्माषा बहवो राजंश्चित्रवर्णाश्च भारत ॥ १०६ ॥

किन्हींकी आँखें सफेद और गर्दन लाल थीं । कुछ लोगोंके नेत्र पिङ्गल वर्णके थे । भरतवंशी नरेश ! बहुत-से पार्षद विचित्र वर्णवाले और चितकबरे थे ॥ १०६ ॥

चामरापीडकनिभाः श्वेतलोहितराजयः ।
नानावर्णाः सवर्णाश्च मयूरसदृशप्रभाः ॥ १०७ ॥

कितने ही पार्षदोंके शरीरका रङ्ग चँवर तथा फूलोंके मुकुट-सा सफेद था । कुछ लोगोंके अङ्गोंमें श्वेत और लाल रङ्गोंकी पङ्क्तियाँ दिखायी देती थीं । कुछ पार्षद एक दूसरे-से भिन्न रङ्गके थे और बहुत-से समान रङ्गवाले भी थे । किन्हीं-किन्हींकी कान्ति मोरोंके समान थी ॥ १०७ ॥

पुनः प्रहरणान्येषां कीर्त्यमानानि मे शृणु ।
शेषैः कृतः पारिषदैरायुधानां परिग्रहः ॥ १०८ ॥

अब शेष पार्षदोंने जिन आयुधोंको ग्रहण किया था, उनके नाम बता रहा हूँ, सुनो ॥ १०८ ॥

पाशोद्यतकराः केचिद् व्यादितास्याः खराननाः ।
पृष्ठाक्षा नीलकण्ठाश्च तथा परिघबाहवः ॥ १०९ ॥

कुछ पार्षद हाथोंमें पाश लिये हुए थे, कोई मुँह बाये खड़े थे, किन्हींके मुख गदहोंके समान थे, कितनोंकी आँखें पृष्ठभागमें थीं और कितनोंके कण्ठोंमें नील रङ्गका चिह्न था । बहुत-से पार्षदोंकी भुजाएँ ही परिघके समान थीं ॥ १०९ ॥

शतघ्नीचक्रहस्ताश्च तथा मुसलपाणयः ।
असिमुद्गरहस्ताश्च दण्डहस्ताश्च भारत ॥ ११० ॥

भरतनन्दन ! किन्हींके हाथोंमें शतघ्नी थी तो किन्हींके चक्र । कोई हाथमें मुसल लिये हुए थे तो कोई तलवार, मुद्गर और डंडे लेकर खड़े थे ॥ ११० ॥

गदाभुशुण्डिहस्ताश्च तथा तोमरपाणयः ।
आयुधैर्विविधैर्घोरैर्महात्मानो महाजवाः ॥ १११ ॥

किन्हींके हाथोंमें गदा, तोमर और भुशुण्डि शोभा पा रहे थे । वे महावेगशाली महामनस्वी पार्षद नाना प्रकारके भयंकर अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न थे ॥ १११ ॥

महाबला महावेगा महापारिषदास्तथा ।
अभिषेकं कुमारस्य दृष्ट्वा हृष्टा रणप्रियाः ॥ ११२ ॥

उनका बल और वेग महान् था । वे युद्धप्रेमी महापार्षदगण कुमारका अभिषेक देखकर बड़े प्रसन्न हुए ॥ ११२ ॥

घण्टाजालपिनद्धाङ्गा ननृतुस्ते महौजसः ।
एते चान्ये च बहवो महापारिषदा नृप ॥ ११३ ॥
उपतस्थुर्महात्मानं कार्तिकेयं यशस्विनम् ।

वे अपने अङ्गोंमें छोटी-छोटी घंटियोंसे युक्त जालीदार वस्त्र पहने हुए थे । उनमें महान् ओज भरा था । नरेश्वर ! वे हर्षमें भरकर नृत्य कर रहे थे । ये तथा और भी बहुत-से महापार्षदगण यशस्वी महात्मा कार्तिकेयकी सेवामें उपस्थित हुए थे ॥ ११३½ ॥

दिव्याश्चाप्यान्तरिक्षाश्च पार्थिवाश्चानिलोपमाः ॥ ११४ ॥
व्यादिष्टा दैवतैः शूराः स्कन्दस्यानुचराभवन् ।

देवताओंकी आज्ञा पाकर देवलोक, अन्तरिक्षलोक तथा भूलोकके वायुतुल्य वेगशाली शूरवीर पार्षद स्कन्दके अनुचर हुए थे ॥ ११४½ ॥

तादृशानां सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
अभिषिक्तं महात्मानं परिवार्योपतस्थिरे ॥ ११५ ॥

ऐसे-ऐसे सहस्रों, लाखों और अरबों पार्षद अभिषेकके पश्चात् महात्मा स्कन्दको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलरामतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने स्कन्दाभिषेके पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलरामजीकी तीर्थयात्रा और सारस्वतोपाख्यानके प्रसङ्गमें स्कन्दका अभिषेकविषयक पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

मातृकाओंका परिचय तथा स्कन्ददेवकी रणयात्रा और उनके द्वारा तारकासुर, महिषासुर आदि दैत्योंका सेनासहित संहार

वैशम्पायन उवाच

शृणु मातृगणान् राजन् कुमारानुचरानिमान् ।
कीर्त्यमानान् मया वीर सपत्नगणसूदनान् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—वीर नरेश ! अब मैं उन

मातृकाओंके नाम बता रहा हूँ, जो शत्रुओंका संहार करनेवाली तथा कुमार कार्तिकेयकी अनुचरी हैं ॥ १ ॥

यशस्विनीनां मातॄणां शृणु नामानि भारत ।
याभिर्व्याप्तास्त्रयो लोकाः कल्याणीभिश्च भागशः ॥ २ ॥

भरतनन्दन ! तुम उन यशस्वी मातृकाओंके नाम सुनो, जिन कल्याणकारिणी देवियोंने विभागपूर्वक तीनों लोकोंको व्याप्त कर रक्खा है ॥ २ ॥

प्रभावती विशालाक्षी पालिता गोस्तनी तथा ।
श्रीमती बहुला चैव तथैव बहुपुत्रिका ॥ ३ ॥
अप्सु जाता च गोपाली बृहदम्बालिका तथा ।
जयावती मालतिका ध्रुवरत्ना भयंकरी ॥ ४ ॥
वसुदामा च दामा च विशोका नन्दिनी तथा ।
एकचूडा महाचूडा चक्रनेमिश्च भारत ॥ ५ ॥
उत्तेजनी जयत्सेना कमलाक्ष्यथ शोभना ।
शत्रुंजया तथा चैव क्रोधना शलभी खरी ॥ ६ ॥
माधवी शुभवक्त्रा च तीर्थनेमिश्च भारत ।
गीतप्रिया च कल्याणी रुद्ररोमामिताशना ॥ ७ ॥
मेघस्वना भोगवती सुभ्रूश्च कनकावती ।
अलाताक्षी वीर्यवती विद्युज्जिह्वा च भारत ॥ ८ ॥
पद्मावती सुनक्षत्रा कन्दरा बहुयोजना ।
संतानिका च कौरव्य कमला च महाबला ॥ ९ ॥
सुदामा बहुदामा च सुप्रभा च यशस्विनी ।
नृत्यप्रिया च राजेन्द्र शतोलूखलमेखला ॥ १० ॥
शतघण्टा शतानन्दा भगनन्दा च भाविनी ।
वपुष्मती चन्द्रसीता भद्रकाली च भारत ॥ ११ ॥
ऋक्षाम्बिका निष्कुटिका वामा चत्वरवासिनी ।
सुमङ्गला स्वस्तिमती बुद्धिकामा जयप्रिया ॥ १२ ॥
धनदा सुप्रसादा च भवदा च जलेश्वरी ।
एडी भेडी समेडी च वेतालजननी तथा ॥ १३ ॥
कण्डूतिः कालिका चैव देवमित्रा च भारत ।
वसुश्रीः कोटरा चैव चित्रसेना तथाचला ॥ १४ ॥
कुक्कुटिका शङ्खलिका तथा शकुनिका नृप ।
कुण्डारिका कौकुलिका कुम्भिकाथ शतोदरी ॥ १५ ॥
उत्क्राथिनी जलेला च महावेगा च कङ्कणा ।
मनोजवा कण्टकिनी प्रघसा पूतना तथा ॥ १६ ॥
केशयन्त्री त्रुटिर्वामा क्रोशनाथ तडित्प्रभा ।
मन्दोदरी च मुण्डी च कोटरा मेघवाहिनी ॥ १७ ॥
सुभगा लम्बनी लम्बा ताम्रचूडा विकाशिनी ।
ऊर्ध्ववेणीधरा चैव पिङ्गाक्षी लोहमेखला ॥ १८ ॥
पृथुवस्त्रा मधुलिका मधुकुम्भा तथैव च ।
पक्षालिका मत्कुलिका जरायुर्जर्जरानना ॥ १९ ॥
ख्याता दहदहा चैव तथा धमधमा नृप ।
खण्डखण्डा च राजेन्द्र पूषणा मणिकुट्टिका ॥ २० ॥
अमोघा चैव कौरव्य तथा लम्बपयोधरा ।
वेणुवीणाधरा चैव पिङ्गाक्षी लोहमेखला ॥ २१ ॥
शशोलूकमुखी कृष्णा खरजङ्घा महाजवा ।
शिशुमारमुखी श्वेता लोहिताक्षी विभीषणा ॥ २२ ॥
जटालिका कामचरी दीर्घजिह्वा बलोत्कटा ।
कालेहिका वामनिका मुकुटा चैव भारत ॥ २३ ॥
लोहिताक्षी महाकाया हरिपिण्डा च भूमिप ।
एकत्वचा सुकुसुमा कृष्णकर्णी च भारत ॥ २४ ॥
क्षुरकर्णी चतुष्कर्णी कर्णप्रावरणा तथा ।
चतुष्पथनिकेता च गोकर्णी महिषानना ॥ २५ ॥
खरकर्णी महाकर्णी भेरीस्वनमहास्वना ।
शङ्खकुम्भश्रवाश्चैव भगदा च महाबला ॥ २६ ॥
गणा च सुगणा चैव तथाभीत्यथ कामदा ।
चतुष्पथरता चैव भूतितीर्थान्यगोचरी ॥ २७ ॥
पशुदा वित्तदा चैव सुखदा च महायशाः ।
पयोदा गोमहिषदा सुविशाला च भारत ॥ २८ ॥
प्रतिष्ठा सुप्रतिष्ठा च रोचमाना सुरोचना ।
नौकर्णी मुखकर्णी च विशिरा मन्थिनी तथा ॥ २९ ॥
एकचन्द्रा मेघकर्णा मेघमाला विरोचना ।

कुरुवंशी ! भरतकुलनन्दन ! राजेन्द्र ! वे नाम इस प्रकार हैं—प्रभावती, विशालाक्षी, पालिता, गोस्तनी, श्रीमती, बहुला, बहुपुत्रिका, अप्सु जाता, गोपाली, बृहदम्बालिका, जयावती, मालतिका, ध्रुवरत्ना, भयंकरी, वसुदामा, दामा, विशोका, नन्दिनी, एकचूडा, महाचूडा, चक्रनेमि, उत्तेजनी, जयत्सेना, कमलाक्षी, शोभना, शत्रुंजया, क्रोधना, शलभी, खरी, माधवी, शुभवक्त्रा, तीर्थनेमि, गीतप्रिया, कल्याणी, रुद्ररोमा, अमिताशना, मेघस्वना, भोगवती, सुभ्रू, कनकावती, अलाताक्षी, वीर्यवती, विद्युज्जिह्वा, पद्मावती, सुनक्षत्रा, कन्दरा, बहुयोजना, संतानिका, कमला, महाबला, सुदामा, बहुदामा, सुप्रभा, यशस्विनी, नृत्यप्रिया, शतोलूखलमेखला, शतघण्टा, शतानन्दा, भगनन्दा, भाविनी, वपुष्मती, चन्द्रसीता, भद्रकाली, ऋक्षाम्बिका, निष्कुटिका, वामा, चत्वरवासिनी, सुमङ्गला, स्वस्तिमती, बुद्धिकामा, जयप्रिया, धनदा, सुप्रसादा, भवदा, जलेश्वरी, एडी, भेडी, समेडी, वेतालजननी, कण्डूतिकालिका, देवमित्रा, वसुश्री, कोटरा, चित्रसेना, अचला, कुक्कुटिका, शङ्खलिका, शकुनिका, कुण्डारिका, कौकुलिका, कुम्भिका, शतोदरी, उत्क्राथिनी, जलेला, महावेगा, कङ्कणा, मनोजवा, कण्टकिनी, प्रघसा, पूतना, केशयन्त्री, त्रुटि, वामा, क्रोशना, तडित्प्रभा, मन्दोदरी, मुण्डी, कोटरा, मेघवाहिनी, सुभगा, लम्बिनी, लम्बा, ताम्रचूडा, विकाशिनी, ऊर्ध्ववेणीधरा, पिङ्गाक्षी, लोहमेखला, पृथुवस्त्रा, मधुलिका, मधुकुम्भा, पक्षालिका, मत्कुलिका, जरायु, जर्जरानना, ख्याता, दहदहा, धमधमा, खण्डखण्डा, पूषणा, मणिकुट्टिका, अमोघा, लम्बपयोधरा, वेणुवीणाधरा, पिङ्गाक्षी, लोहमेखला, शशोलूकमुखी, कृष्णा, खरजंघा, महाजवा, शिशुमारमुखी, श्वेता, लोहिताक्षी, विभीषणा, जटालिका, कामचरी, दीर्घजिह्वा, बलोत्कटा,

कालेहिका, वामनिका, मुकुटा, लोहिताक्षी, महाकाया, हरिपिण्डा, एकत्वचा, सुकुसुमा, कृष्णकर्णी, क्षुरकर्णी, चतुष्कर्णी, कर्णप्रावरणा, चतुष्पथनिकेता, गोकर्णी, महिषानना, खरकर्णी, महाकर्णी, भेरीस्वना, महास्वना, शङ्खश्रवा, कुम्भश्रवा, भगदा, महाबला, गणा, सुगणा, अभीति, कामदा, चतुष्पथरता, भूतितीर्था, अन्यगोचरी, पशुदा, वित्तदा, सुखदा, महायशा, पयोदा, गोदा, महिषदा, सुविशाला, प्रतिष्ठा, सुप्रतिष्ठा, रोचमाना, सुरोचना, नौकर्णी, मुखकर्णी, विशिरा, मन्थिनी, एकचन्द्रा, मेघकर्णा, मेघमाला और विरोचना ॥ ३—२९३ ॥

एताश्चान्याश्च बहवो मातरो भरतर्षभ ॥ ३० ॥
कार्तिकेयानुयायिन्यो नानारूपाः सहस्रशः ।

भरतश्रेष्ठ ! ये तथा और भी नाना रूपधारिणी बहुत-सी सहस्रों मातृकाएँ हैं, जो कुमार कार्तिकेयका अनुसरण करती हैं॥

दीर्घनख्यो दीर्घदन्त्यो दीर्घतुण्ड्यश्च भारत ॥ ३१ ॥
सबला मधुराश्चैव यौवनस्थाः स्वलंकृताः ।
माहात्म्येन च संयुक्ताः कामरूपधरास्तथा ॥ ३२ ॥

भरतनन्दन ! इनके नख, दाँत और मुख सभी विशाल हैं। ये सबला, मधुरा (सुन्दरी), युवावस्थासे सम्पन्न तथा वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हैं। इनकी बड़ी महिमा है। ये अपनी इच्छाके अनुसार रूप धारण करनेवाली हैं ॥ ३१-३२॥

निर्मांसगात्र्यः श्वेताश्च तथा काञ्चनसंनिभाः ।
कृष्णमेघनिभाश्चान्या धूम्राश्च भरतर्षभ ॥ ३३ ॥

इनमेंसे कुछ मातृकाओंके शरीर केवल हड्डियोंके ढाँचे हैं। उनमें मांसका पता नहीं है। कुछ श्वेत वर्णकी हैं और कितनोंकी ही अङ्गकान्ति सुवर्णके समान है। भरतश्रेष्ठ ! कुछ मातृकाएँ कृष्णमेघके समान काली तथा कुछ धूम्रवर्णकी हैं॥

अरुणाभा महाभोगा दीर्घकेश्यः सिताम्बराः ।
ऊर्ध्ववेणीधराश्चैव पिङ्गाक्ष्यो लम्बमेखलाः ॥ ३४ ॥

कितनोंकी कान्ति अरुण वर्णकी है। वे सभी महान् भोगोंसे सम्पन्न हैं। उनके केश बड़े-बड़े और वस्त्र उज्ज्वल हैं। वे ऊपरकी ओर वेणी धारण करनेवाली, भूरी आँखोंसे सुशोभित तथा लम्बी मेखलासे अलंकृत हैं ॥ ३४ ॥

लम्बोदर्यो लम्बकर्णास्तथा लम्बपयोधराः ।
ताम्राक्ष्यस्ताम्रवर्णाश्च हर्यक्ष्यश्च तथा पराः ॥ ३५ ॥

उनमेंसे किन्हींके उदर, किन्हींके कान तथा किन्हींके दोनों स्तन लंबे हैं। कितनोंकी आँखें ताँबेके समान लाल रङ्गकी हैं। कुछ मातृकाओंके शरीरकी कान्ति भी ताम्रवर्णकी है। बहुतोंकी आँखें काले रङ्गकी हैं ॥ ३५ ॥

वरदाः कामचारिण्यो नित्यं प्रमुदितास्तथा ।
याम्या रौद्रास्तथा सौम्याः कौबेर्योऽथ महाबलाः ॥३६॥
वारुण्योऽथ च माहेन्द्र्यस्तथाऽऽग्नेय्यः परंतप ।
वायव्यश्चाथ कौमार्यो ब्राह्म्यश्च भरतर्षभ ॥ ३७ ॥
वैष्णव्यश्च तथा सौर्यो वाराह्यश्च महाबलाः ।
रूपेणाप्सरसां तुल्या मनोहार्यो मनोरमाः ॥ ३८ ॥

वे वर देनेमें समर्थ, अपनी इच्छाके अनुसार चलनेवाली और सदा आनन्दमें निमग्न रहनेवाली हैं। शत्रुओंको संताप देनेवाले भरतश्रेष्ठ ! उन मातृकाओंमेंसे कुछ यमकी शक्तियाँ हैं, कुछ रुद्रकी। कुछ सोमकी शक्तियाँ हैं और कुछ कुबेरकी। वे सबकी सब महान् बलसे सम्पन्न हैं। इसी तरह कुछ वरुणकी, कुछ देवराज इन्द्रकी, कुछ अग्नि, वायु, कुमार, ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य तथा भगवान् वराहकी महाबलशालिनी शक्तियाँ हैं, जो रूपमें अप्सराओंके समान मनोहारिणी और मनोरमा हैं ॥ ३६–३८ ॥

परपुष्टोपमा वाक्ये तथर्द्ध्या धनदोपमाः ।
शक्रवीर्योपमा युद्धे दीप्त्या वह्निसमास्तथा ॥ ३९ ॥

वे मीठी वाणी बोलनेमें कोयल और धनसमृद्धिमें कुबेरके समान हैं। युद्धमें इन्द्रके सदृश पराक्रम प्रकट करनेवाली तथा अग्निके समान तेजस्विनी हैं ॥ ३९ ॥

शत्रूणां विग्रहे नित्यं भयदास्ता भवन्त्युत ।
कामरूपधराश्चैव जवे वायुसमास्तथा ॥ ४० ॥

युद्ध छिड़ जानेपर वे सदा शत्रुओंके लिये भयदायिनी होती हैं। वे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली तथा वायुके समान वेगशालिनी हैं ॥ ४० ॥

अचिन्त्यबलवीर्याश्च तथाचिन्त्यपराक्रमाः ।
वृक्षचत्वरवासिन्यश्चतुष्पथनिकेतनाः ॥ ४१ ॥

उनके बल, वीर्य और पराक्रम अचिन्त्य हैं। वे वृक्षों, चबूतरों और चौराहोंपर निवास करती हैं ॥ ४१ ॥

गुहाश्मशानवासिन्यः शैलप्रस्रवणालयाः ।
नानाभरणधारिण्यो नानामाल्याम्बरास्तथा ॥ ४२ ॥

गुफाएँ, श्मशान, पर्वत और झरने भी उनके निवासस्थान हैं। वे नाना प्रकारके आभूषण, पुष्पहार और वस्त्र धारण करती हैं ॥ ४२ ॥

नानाविचित्रवेषाश्च नानाभाषास्तथैव च ।
एते चान्ये च बहवो गणाः शत्रुभयंकराः ॥ ४३ ॥
अनुजग्मुर्महात्मानं त्रिदशेन्द्रस्य सम्मते ।

उनके वेश नाना प्रकारके और विचित्र हैं। वे अनेक प्रकारकी भाषाएँ बोलती हैं। ये तथा और भी बहुत-से शत्रुओंको भयभीत करनेवाले गण देवेन्द्रकी सम्मतिसे महात्मा स्कन्दका अनुसरण करने लगे ॥ ४३३ ॥

ततः शक्त्यस्त्रमदद् भगवान् पाकशासनः ॥ ४४ ॥
गुहाय राजशार्दूल विनाशाय सुरद्विषाम् ।
महास्वनां महाघण्टां द्योतमानां सितप्रभाम् ॥ ४५ ॥

नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर भगवान् पाकशासनने देवद्रोहियोंके विनाशके लिये कुमार कार्तिकेयको शक्ति नामक अस्त्र प्रदान किया। साथ ही उन्होंने बड़े जोरसे आवाज करनेवाला एक विशाल घंटा भी दिया, जो अपनी उज्ज्वल प्रभासे प्रकाशित हो रहा था ॥ ४४-४५ ॥

अरुणादित्यवर्णां च पताकां भरतर्षभ ।
ददौ पशुपतिस्तस्मै सर्वभूतमहाचमूम् ॥ ४६ ॥

भरतश्रेष्ठ ! भगवान् पशुपतिने उन्हें अरुण और सूर्यके समान प्रकाशमान एक पताका और अपने सम्पूर्ण भूतगणोंकी विशाल सेना भी प्रदान की ॥ ४६ ॥

उग्रां नानाप्रहरणां तपोवीर्यबलान्विताम् ।
अजेयां स्वगणैर्युक्तां नाम्ना सेनां धनंजयाम् ॥ ४७॥
रुद्रतुल्यबलैर्युक्तां योधानामयुतैस्त्रिभिः ।
न सा विजानाति रणात् कदाचिद् विनिवर्तितुम् ॥ ४८॥

वह भयंकर सेना धनंजय नामसे विख्यात थी । उसमें सभी सैनिक नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्र, तपस्या, बल और पराक्रमसे सम्पन्न थे । रुद्रके समान बलशाली तीस हजार रुद्रगणोंसे युक्त वह सेना शत्रुओंके लिये अजेय थी । वह कभी भी युद्धसे पीछे हटना जानती ही नहीं थी ॥ ४७-४८ ॥

विष्णुर्ददौ वैजयन्तीं मालां बलविवर्धिनीम् ।
उमा ददौ विरजसी वाससी रविसप्रभे ॥ ४९ ॥

भगवान् विष्णुने कुमारको बल बढ़ानेवाली वैजयन्ती माला दी और उमाने सूर्यके समान चमकीले दो निर्मल वस्त्र प्रदान किये ॥ ४९ ॥

गङ्गा कमण्डलुं दिव्यममृतोद्भवमुत्तमम् ।
ददौ प्रीत्या कुमाराय दण्डं चैव बृहस्पतिः ॥ ५० ॥

गङ्गाने कुमारको प्रसन्नतापूर्वक एक दिव्य और उत्तम कमण्डलु दिया, जो अमृत प्रकट करनेवाला था । बृहस्पतिजीने दण्ड प्रदान किया ॥ ५० ॥

गरुडो दयितं पुत्रं मयूरं चित्रबर्हिणम् ।
अरुणस्ताम्रचूडं च प्रददौ चरणायुधम् ॥ ५१ ॥

गरुडने विचित्र पङ्खोंसे सुशोभित अपना प्रिय पुत्र मयूर भेंट किया । अरुणने लाल शिखावाले अपने पुत्र ताम्रचूड (मुर्गा) को समर्पित किया, जिसका पैर ही आयुध था ॥ ५१ ॥

नागं तु वरुणो राजा बलवीर्यसमन्वितम् ।
कृष्णाजिनं ततो ब्रह्मा ब्रह्मण्याय ददौ प्रभुः ॥ ५२ ॥
समरेषु जयं चैव प्रददौ लोकभावनः ।

राजा वरुणने बल और वीर्यसे सम्पन्न एक नाग भेंट किया और लोकस्रष्टा भगवान् ब्रह्माने ब्राह्मणहितैषी कुमारको काला मृगचर्म तथा युद्धमें विजयका आशीर्वाद प्रदान किया॥

सैनापत्यमनुप्राप्य स्कन्दो देवगणस्य ह ॥ ५३ ॥
शुशुभे ज्वलितोऽर्चिष्मान् द्वितीय इव पावकः ।

देवताओंका सेनापतित्व पाकर तेजस्वी स्कन्द अपने तेजसे प्रज्वलित हो दूसरे अग्निदेवके समान सुशोभित होने लगे॥

ततः पारिषदैश्चैव मातृभिश्च समन्वितः ॥ ५४ ॥
ययौ दैत्यविनाशाय ह्लादयन् सुरपुङ्गवान् ।

तदनन्तर अपने पार्षदों तथा मातृकागणोंके साथ कुमार कार्तिकेयने देवेश्वरोंको आनन्द प्रदान करते हुए दैत्योंके विनाशके लिये प्रस्थान किया ॥ ५४½ ॥

सा सेना नैर्ऋती भीमा सघण्टोच्छ्रितकेतना ॥ ५५ ॥
सभेरीशङ्खमुरजा सायुधा सपताकिनी ।
शारदी द्यौरिवाभाति ज्योतिर्भिरिव शोभिता ॥ ५६ ॥

नैर्ऋतों (भूतगणों) की वह भयंकर सेना घंटा, भेरी, शङ्ख और मृदङ्गकी ध्वनिसे गूँज रही थी । उसकी ऊँचे उठी हुई पताकाएँ फहरा रही थीं । अस्त्र-शस्त्रों और पताकाओंसे सम्पन्न वह विशाल वाहिनी नक्षत्रोंसे सुशोभित शरत् कालके आकाशकी भाँति शोभा पा रही थी ॥५५-५६॥

ततो देवनिकायास्ते नानाभूतगणास्तथा ।
वादयामासुरव्यग्रा भेरीः शङ्खांश्च पुष्कलान् ॥ ५७ ॥
पटहाञ्झर्झरांश्चैव क्रकचान् गोविषाणकान्।
आडम्बरान् गोमुखांश्च डिण्डिमांश्च महास्वनान् ॥५८॥

तदनन्तर वे देवसमूह तथा नाना प्रकारके भूतगण शान्त-चित्त हो भेरी, बहुत-से शङ्ख, पटह, झाँझ, क्रकच, गोशृङ्ग, आडम्बर, गोमुख और भारी आवाज करनेवाले नगाड़े बजाने लगे ॥ ५७-५८ ॥

तुष्टुवुस्ते कुमारं तु सर्वे देवाः सवासवाः ।
जगुश्च देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ५९ ॥

फिर इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता कुमारकी स्तुति करने लगे । देव-गन्धर्व गाने और अप्सराएँ नाचने लगीं ॥ ५९ ॥

ततः प्रीतो महासेनस्त्रिदशेभ्यो वरं ददौ ।
रिपून् हन्तास्मि समरे ये वो वधचिकीर्षवः ॥ ६० ॥

इससे प्रसन्न होकर कुमार महासेनने देवताओंको यह वर दिया कि 'जो आपलोगोंका वध करना चाहते हैं, आपके उन समस्त शत्रुओंका मैं समराङ्गणमें संहार कर डालूँगा' ॥

प्रतिगृह्य वरं देवास्तस्माद् विबुधसत्तमात् ।
प्रीतात्मानो महात्मानो मेनिरे निहतान् रिपून् ॥ ६१ ॥

उन सुरश्रेष्ठ कुमारसे वह वर पाकर महामनस्वी देवता बड़े प्रसन्न हुए और अपने शत्रुओंको मरा हुआ ही मानने लगे॥

सर्वेषां भूतसंघानां हर्षान्नादः समुत्थितः ।
अपूरयत लोकांस्त्रीन् वरे दत्ते महात्मना ॥ ६२ ॥

महात्मा कुमारके वर देनेपर सम्पूर्ण भूत-समुदायोंने जो हर्षनाद किया, वह तीनों लोकोंमें गूँज उठा ॥ ६२ ॥

स निर्ययौ महासेनो महत्या सेनया वृतः ।
वधाय युधि दैत्यानां रक्षार्थं च दिवौकसाम् ॥ ६३ ॥

तत्पश्चात् विशाल सेनासे घिरे हुए स्वामी महासेन युद्धमें दैत्योंका वध और देवताओंकी रक्षा करनेके लिये आगे बढ़े॥

व्यवसायो जयो धर्मः सिद्धिर्लक्ष्मीर्धृतिः स्मृतिः ।
महासेनस्य सैन्यानामग्रे जग्मुर्नराधिप ॥ ६४ ॥

नरेश्वर ! उस समय व्यवसाय (दृढ़ निश्चय), विजय, धर्म, सिद्धि, लक्ष्मी, धृति और स्मृति—ये सब-के-सब महासेनके सैनिकोंके आगे-आगे चलने लगे ॥ ६४ ॥

स तया भीमया देवः शूलमुद्गरहस्तया ।
ज्वलितालातधारिण्या चित्राभरणवर्मया ॥ ६५ ॥
गदामुसलनाराचशक्तितोमरहस्तया ।
दृप्तसिंहनिनादिन्या विनद्य प्रययौ गुहः ॥ ६६ ॥

वह सेना बड़ी भयंकर थी । उसने हाथोंमें शूल, मुद्गर,

जलते हुए काठ, गदा, मुसल, नाराच, शक्ति और तोमर धारण कर रक्खे थे। सारी सेना विचित्र आभूषणों और कवचोंसे सुसज्जित थी तथा दर्पयुक्त सिंहके समान दहाड़ रही थी, उस सेनाके साथ सिंहनाद करके कुमार कार्तिकेय युद्धके लिये प्रस्थित हुए ॥ ६५-६६ ॥

तं दृष्ट्वा सर्वदैतेया राक्षसा दानवास्तथा।
व्यद्रवन्त दिशः सर्वा भयोद्विग्नाः समन्ततः॥ ६७ ॥

उन्हें देखकर सम्पूर्ण दैत्य, दानव और राक्षस भयसे उद्विग्न हो सारी दिशाओंमें सब ओर भाग गये ॥ ६७ ॥

अभ्यद्रवन्त देवास्तान् विविधायुधपाणयः।
दृष्ट्वा च स ततः क्रुद्धः स्कन्दस्तेजोबलान्वितः॥ ६८ ॥
शक्त्यस्त्रं भगवान् भीमं पुनः पुनरवाकिरत्।
आदधच्चात्मनस्तेजो हविषेद्ध इवानलः॥ ६९ ॥

देवता अपने हाथोंमें नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्र ले उन दैत्योंका पीछा करने लगे। यह सब देखकर तेज और बलसे सम्पन्न भगवान् स्कन्द कुपित हो उठे और शक्ति नामक भयानक अस्त्रका बारंबार प्रयोग करने लगे। उन्होंने उसमें अपना तेज स्थापित कर दिया था और वे उस समय घीसे प्रज्वलित हुई अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥६८-६९॥

अभ्यस्यमाने शक्त्यस्त्रे स्कन्देनामिततेजसा।
उल्काज्वाला महाराज पपात वसुधातले॥ ७० ॥

महाराज ! अमित तेजस्वी स्कन्दके द्वारा शक्तिका बारंबार प्रयोग होनेसे पृथ्वीपर प्रज्वलित उल्का गिरने लगी॥

संह्लादयन्तश्च तथा निर्घाताश्चापतन् क्षितौ।
यथान्तकालसमये सुघोराः स्युस्तथा नृप॥ ७१ ॥

नरेश्वर ! जैसे प्रलयके समय अत्यन्त भयंकर वज्र भारी गड़गड़ाहटके साथ पृथ्वीपर गिरने लगते हैं, उसी प्रकार उस समय भी भीषण गर्जनाके साथ वज्रपात होने लगा॥७१॥

क्षिप्ता ह्येका यदा शक्तिः सुघोरानलसूनुना।
ततः कोट्यो विनिष्पेतुः शक्तीनां भरतर्षभ॥ ७२ ॥

भरतश्रेष्ठ ! अग्निकुमारने जब एक बार अत्यन्त भयंकर शक्ति छोड़ी, तब उससे करोड़ों शक्तियाँ प्रकट होकर गिरने लगीं ॥ ७२ ॥

ततः प्रीतो महासेनो जघान भगवान् प्रभुः।
दैत्येन्द्रं तारकं नाम महाबलपराक्रमम्॥ ७३ ॥
वृतं दैत्यायुतैर्वीरैर्बलिभिर्दशभिर्नृप।

इससे प्रभावशाली भगवान् महासेन बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने महान् बल एवं पराक्रमसे सम्पन्न उस दैत्यराज तारकको मार गिराया, जो एक लाख बलवान् एवं वीर दैत्यों-से घिरा हुआ था ॥ ७३½ ॥

महिषं चाष्टभिः पद्मैर्वृतं संख्ये निजघ्निवान्॥ ७४ ॥
त्रिपादं चायुतशतैर्जघान दशभिर्वृतम्।
ह्रदोदरं निखर्वैश्च वृतं दशभिरीश्वरः॥ ७५ ॥
जघानानुचरैः सार्धं विविधायुधपाणिभिः।

साथ ही उन्होंने युद्धस्थलमें आठ पद्म दैत्योंसे घिरे हुए महिषासुरको, दस लाख असुरोंसे सुरक्षित त्रिपादको और दस निखर्व दैत्य-योद्धाओंसे घिरे हुए ह्रदोदरको भी नाना प्रकारके आयुधधारी अनुचरोंसहित वध कर डाला॥७४-७५½॥

तथाकुर्वन्त विपुलं नादं वध्यत्सु शत्रुषु॥ ७६ ॥
कुमारानुचरा राजन् पूरयन्तो दिशो दश।
ननृतुश्च ववल्गुश्च जहसुश्च मुदान्विताः॥ ७७ ॥

राजन् ! जब शत्रु मारे जाने लगे, उस समय कुमारके अनुचर दसों दिशाओंको गुँजाते हुए बड़े जोर-जोरसे गर्जना करने लगे। इतना ही नहीं, वे आनन्दमग्न होकर नाचने, कूदने तथा जोर-जोरसे हँसने भी लगे ॥ ७६-७७ ॥

शक्त्यस्त्रस्य तु राजेन्द्र ततोऽर्चिर्भिः समन्ततः।
त्रैलोक्यं त्रासितं सर्वं जृम्भमाणाभिरेव च॥ ७८ ॥

राजेन्द्र ! उस शक्तिनामक अस्त्रकी सब ओर फैलती हुई ज्वालाओंसे सारी त्रिलोकी थर्रा उठी ॥ ७८ ॥

दग्धाः सहस्रशो दैत्या नादैः स्कन्दस्य चापरे।
पताकयावधूताश्च हताः केचित् सुरद्विषः॥ ७९ ॥

सहस्रों दैत्य उस शक्तिकी आगमें जलकर भस्म हो गये। कितने ही स्कन्दके सिंहनादोंसे ही डरकर अपने प्राण खो बैठे तथा कुछ देवद्रोही उनकी पताकासे ही कम्पित होकर मर गये ॥ ७९ ॥

केचिद् घण्टारवत्रस्ता निषेदुर्वसुधातले।
केचित् प्रहरणैश्छिन्ना विनिष्पेतुर्गतायुषः॥ ८० ॥

कुछ दैत्य उनके घंटानादसे संत्रस्त होकर धरतीपर बैठ गये और कुछ उनके आयुधोंसे छिन्न-भिन्न हो गतायु होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ८० ॥

एवं सुरद्विषोऽनेकान् बलवानाततायिनः।
जघान समरे वीरः कार्तिकेयो महाबलः॥ ८१ ॥

इस प्रकार महाबली शक्तिशाली वीर कार्तिकेयने समराङ्गणमें अनेक आततायी देवद्रोहियोंका संहार कर डाला॥

बाणो नामाथ दैतेयो बलेः पुत्रो महाबलः।
क्रौञ्चं पर्वतमाश्रित्य देवसंघानबाधत॥ ८२ ॥

राजा बलिका महाबली पुत्र बाणासुर क्रौञ्च पर्वतका आश्रय लेकर देवसमूहोंको कष्ट पहुँचाया करता था ॥ ८२ ॥

तमभ्ययान्महासेनः सुरशत्रुमुदारधीः।
स कार्तिकेयस्य भयात् क्रौञ्चं शरणमीयिवान्॥ ८३ ॥

उदारबुद्धि महासेनने उस दैत्यपर भी आक्रमण किया। तब वह कार्तिकेयके भयसे क्रौञ्च पर्वतकी शरणमें जा छिपा॥

ततः क्रौञ्चं महामन्युः क्रौञ्चनादनिनादितम्।
शक्त्या बिभेद भगवान् कार्तिकेयोऽग्निदत्तया॥ ८४ ॥

इससे भगवान् कार्तिकेयको महान् क्रोध हुआ। उन्होंने अग्निकी दी हुई शक्तिसे क्रौञ्च पक्षियोंके कोलाहलसे गूँजते हुए क्रौञ्चपर्वतको विदीर्ण कर डाला ॥ ८४ ॥

स शालस्कन्धशबलं त्रस्तवानरवारणम्।
प्रोड्डीनोद्भ्रान्तविहगं विनिष्पतितपन्नगम्॥ ८५ ॥
गोलाङ्गूलर्क्षसंघैश्च द्रवद्भिरनुनादितम्।

कुरङ्गमविनिर्घोषनिनादितवनान्तरम् ॥ ८६ ॥
विनिष्पतद्भिः शरभैः सिंहैश्च सहसा द्रुतैः ।
शोच्यामपि दशां प्राप्तो रराजेव स पर्वतः ॥ ८७ ॥

क्रौञ्च पर्वत शालवृक्षके तनोंसे भरा हुआ था। वहाँके वानर और हाथी संत्रस्त हो उठे थे, पक्षी भयसे व्याकुल होकर उड़ चले थे, सर्प धराशायी हो गये थे, गोलाङ्गूल जातिके वानरों और रीछोंके समुदाय भाग रहे थे तथा उनके चीत्कारसे वह पर्वत गूँज उठा था, हरिणोंके आर्तनादसे उस पर्वतका वनप्रान्त प्रतिध्वनित हो रहा था, गुफासे निकलकर सहसा भागनेवाले सिंहों और शरभोंके कारण वह पर्वत बड़ी शोचनीय दशामें पड़ गया था तो भी वह सुशोभित-सा ही हो रहा था ॥ ८५–८७ ॥

विद्याधराः समुत्पेतुस्तस्य शृङ्गनिवासिनः ।
किन्नराश्च समुद्विग्नाः शक्तिपातरवोद्धताः ॥ ८८ ॥

उस पर्वतके शिखरपर निवास करनेवाले विद्याधर और किन्नर शक्तिके आघातजनित शब्दसे उद्विग्न होकर आकाशमें उड़ गये ॥ ८८ ॥

ततो दैत्या विनिष्पेतुः शतशोऽथ सहस्रशः ।
प्रदीप्तात् पर्वतश्रेष्ठाद् विचित्राभरणस्रजः ॥ ८९ ॥

तत्पश्चात् उस जलते हुए श्रेष्ठ पर्वतसे विचित्र आभूषण और माला धारण करनेवाले सैकड़ों और हजारों दैत्य निकल पड़े॥

तान् निजघ्नुरतिक्रम्य कुमारानुचरा मृधे ।
स चैव भगवान् क्रुद्धो दैत्येन्द्रस्य सुतं तदा ॥ ९० ॥
सहानुजं जघानाशु वृत्रं देवपतिर्यथा ।

कुमारके पार्षदोंने युद्धमें आक्रमण करके उन सब दैत्योंको मार गिराया। साथ ही भगवान् कार्तिकेयने कुपित होकर वृत्रासुरको मारनेवाले देवराज इन्द्रके समान दैत्यराजके उस पुत्रको उसके छोटे भाईसहित शीघ्र ही मार डाला ॥

बिभेद क्रौञ्चं शक्त्या च पावकिः परवीरहा ॥ ९१ ॥
बहुधा चैकधा चैव कृत्वाऽऽत्मानं महाबलः ।

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले महाबली अग्निपुत्र कार्तिकेयने अपने आपको एक और अनेक रूपोंमें प्रकट करके शक्तिद्वारा क्रौञ्च पर्वतको विदीर्ण कर डाला ॥ ९१½ ॥

शक्तिः क्षिप्ता रणे तस्य पाणिमेति पुनः पुनः ॥ ९२ ॥
एवंप्रभावो भगवांस्ततो भूयश्च पावकिः ।
शौर्याद्विगुणयोगेन तेजसा यशसा श्रिया ॥ ९३ ॥
क्रौञ्चस्तेन विनिर्भिन्नो दैत्याश्च शतशो हताः ।

रणभूमिमें बार-बार चलायी हुई उनकी शक्ति शत्रुका संहार करके पुनः उनके हाथमें लौट आती थी। अग्निपुत्र कार्तिकेयका ऐसा ही प्रभाव है, बल्कि इससे भी बढ़कर है। वे शौर्यकी अपेक्षा उत्तरोत्तर दुगुने तेज, यश और श्रीसे सम्पन्न हैं। उन्होंने क्रौञ्च पर्वतको विदीर्ण करके सैकड़ों दैत्यों-को मार गिराया ॥ ९२-९३½ ॥

ततः स भगवान् देवो निहत्य विबुधद्विषः ॥ ९४ ॥
सभाज्यमानो विबुधैः परं हर्षमवाप ह ।

तदनन्तर भगवान् स्कन्ददेव देवशत्रुओंका संहार करके देवताओंसे सेवित हो अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ ९४½ ॥

ततो दुन्दुभयो राजन् नेदुः शङ्खाश्च भारत ॥ ९५ ॥
मुमुचुर्देवयोषाश्च पुष्पवर्षमनुत्तमम् ।
योगिनामीश्वरं देवं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ९६ ॥

भरतवंशी नरेश ! तत्पश्चात् दुन्दुभियाँ बज उठीं, शङ्खोंकी ध्वनि होने लगी, सैकड़ों और हजारों देवाङ्गनाएँ योगीश्वर स्कन्ददेवपर उत्तम फूलोंकी वर्षा करने लगीं ॥

दिव्यगन्धमुपादाय ववौ पुण्यश्च मारुतः ।
गन्धर्वास्तुष्टुवुश्चैनं यज्वानश्च महर्षयः ॥ ९७ ॥

दिव्य फूलोंकी सुगन्ध लेकर पवित्र वायु चलने लगी। गन्धर्व और यज्ञपरायण महर्षि उनकी स्तुति करने लगे॥९७॥

केचिदेनं व्यवस्यन्ति पितामहसुतं प्रभुम् ।
सनत्कुमारं सर्वेषां ब्रह्मयोनिं तमग्रजम् ॥ ९८ ॥

कोई उनके विषयमें यह निश्चय करने लगे कि 'ये ब्रह्माजीके पुत्र, सबके अग्रज एवं ब्रह्मयोनि सनत्कुमार हैं' ॥

केचिन्महेश्वरसुतं केचित् पुत्रं विभावसोः ।
उमायाः कृत्तिकानां च गङ्गायाश्च वदन्त्युत ॥ ९९ ॥

कोई उन्हें महादेवजीका, कोई अग्निका, कोई पार्वतीका, कोई कृत्तिकाओंका और कोई गङ्गाजीका पुत्र बताने लगे ॥

एकधा च द्विधा चैव चतुर्धा च महाबलम् ।
योगिनामीश्वरं देवं शतशोऽथ सहस्रशः ॥१००॥

उन महाबली योगेश्वर स्कन्ददेवको लोग एक, दो, चार, सौ तथा सहस्रों रूपोंमें देखते और जानते हैं ॥१००॥

एतत् ते कथितं राजन् कार्तिकेयाभिषेचनम् ।
शृणु चैव सरस्वत्यास्तीर्थवर्यस्य पुण्यताम् ॥१०१॥

राजन् ! यह मैंने तुम्हें कार्तिकेयके अभिषेकका प्रसङ्ग सुनाया है। अब तुम सरस्वतीके उस श्रेष्ठ तीर्थकी पावनता-का वर्णन सुनो ॥ १०१ ॥

बभूव तीर्थप्रवरं हतेषु सुरशत्रुषु ।
कुमारेण महाराज त्रिविष्टपमिवापरम् ॥ १०२॥

महाराज ! कुमार कार्तिकेयके द्वारा देवशत्रुओंके मारे जानेपर वह श्रेष्ठ तीर्थ दूसरे स्वर्गके समान सुखदायक हो गया॥

ऐश्वर्याणि च तत्रस्थो ददावीशः पृथक् पृथक् ।
ददौ नैर्ऋतमुख्येभ्यस्त्रैलोक्यं पावकात्मजः ॥१०३॥

वहीं रहकर स्वामी स्कन्दने पृथक्-पृथक् ऐश्वर्य प्रदान किये। अग्निकुमारने अपनी सेनाके मुख्य मुख्य अधिकारियों-को तीनों लोक सौंप दिये ॥ १०३ ॥

एवं स भगवांस्तस्मिंस्तीर्थे दैत्यकुलान्तकः ।
अभिषिक्तो महाराज देवसेनापतिः सुरैः ॥१०४॥

महाराज ! इस प्रकार दैत्यकुलविनाशक देवसेनापति भगवान् स्कन्दका उस तीर्थमें देवताओंद्वारा अभिषेक किया गया ॥ १०४ ॥

तैजसं नाम तत् तीर्थं यत्र पूर्वमपां पतिः ।
अभिषिक्तः सुरगणैर्वरुणो भरतर्षभ ॥१०५॥

भरतश्रेष्ठ ! वह तैजस नामका तीर्थ है, जहाँ पहले जलके स्वामी वरुणदेवका देवताओंद्वारा अभिषेक किया गया था ॥

अस्मिंस्तीर्थवरे स्नात्वा स्कन्दं चाभ्यर्च्य लाङ्गली ।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ रुक्मं वासांस्याभरणानि च ॥१०६॥

उस श्रेष्ठ तीर्थमें हलधारी बलरामने स्नान करके स्कन्द देवका पूजन किया और ब्राह्मणोंको सुवर्ण, वस्त्र एवं आभूषण दिये ॥ १०६ ॥

उषित्वा रजनीं तत्र माधवः परवीरहा ।
पूज्य तीर्थवरं तच्च स्पृष्ट्वा तोयं च लाङ्गली ॥१०७॥
हृष्टः प्रीतमनाश्चैव ह्यभवन्माधवोत्तमः ।

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले मधुवंशी हलधर वहाँ रात-भर रहे और उस श्रेष्ठ तीर्थका पूजन एवं उसके जलमें स्नान करके हर्षसे खिल उठे । उन यदुश्रेष्ठ बलरामका मन वहाँ प्रसन्न हो गया था ॥ १०७½ ॥

एतत् ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
यथाभिषिक्तो भगवान् स्कन्दो देवैः समागतैः ॥१०८॥
(सेनानीश्च कृतो राजन् बाल एव महाबलः ।)

राजन् ! तुम मुझसे जो कुछ पूछ रहे थे, वह सब प्रसङ्ग मैंने तुम्हें कह सुनाया । समागत देवताओंद्वारा किस प्रकार भगवान् स्कन्दका अभिषेक हुआ और किस प्रकार बाल्यावस्थामें ही वे महाबली कुमार सेनापति बना दिये गये, यह सब कुछ बता दिया गया ॥ १०८ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने तारकवधे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्रा एवं सारस्वतोपाख्यानके प्रसङ्गमें तारकासुरका वधविषयक छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४६ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल १०८½ श्लोक हैं)

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

वरुणका अभिषेक तथा अग्नितीर्थ, ब्रह्मयोनि और कुबेरतीर्थकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग

जनमेजय उवाच

अत्यद्भुतमिदं ब्रह्मन् श्रुतवानस्मि तत्त्वतः ।
अभिषेकं कुमारस्य विस्तरेण यथाविधि ॥ १ ॥

जनमेजयने कहा—ब्रह्मन् ! आज मैंने आपके मुखसे कुमारके विधिपूर्वक अभिषेकका यह अद्भुत वृत्तान्त यथार्थरूपसे और विस्तारपूर्वक सुना है ॥ १ ॥

यच्छ्रुत्वा पूतमात्मानं विजानामि तपोधन ।
प्रहृष्टानि च रोमाणि प्रसन्नं च मनो मम ॥ २ ॥

तपोधन ! उसे सुनकर मैं अपने आपको पवित्र हुआ समझता हूँ । हर्षसे मेरे रोयें खड़े हो गये हैं और मेरा मन प्रसन्नतासे भर गया है ॥ २ ॥

अभिषेकं कुमारस्य दैत्यानां च वधं तथा ।
श्रुत्वा मे परमा प्रीतिर्भूयः कौतूहलं हि मे ॥ ३ ॥

कुमारके अभिषेक और उनके द्वारा दैत्योंके वधका वृत्तान्त सुनकर मुझे बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ है और पुनः मेरे मनमें इस विषयको सुननेकी उत्कण्ठा जाग्रत् हो गयी है ॥

अपां पतिः कथं ह्यस्मिन्नभिषिक्तः पुरा सुरैः ।
तन्मे ब्रूहि महाप्राज्ञ कुशलो ह्यसि सत्तम ॥ ४ ॥

साधुशिरोमणे ! महाप्राज्ञ ! इस तीर्थमें देवताओंने पहले जलके स्वामी वरुणका अभिषेक किस प्रकार किया था, यह सब मुझे बताइये; क्योंकि आप प्रवचन करनेमें कुशल हैं ॥

वैशम्पायन उवाच

शृणु राजन्निदं चित्रं पूर्वकल्पे यथातथम् ।
आदौ कृतयुगे राजन् वर्तमाने यथाविधि ॥ ५ ॥
वरुणं देवताः सर्वा समेत्येदमथाब्रुवन् ।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! इस विचित्र प्रसङ्गको यथार्थरूपसे सुनो । पूर्वकल्पकी बात है, जब आदि कृतयुग चल रहा था, उस समय सम्पूर्ण देवताओंने वरुणके पास जाकर इस प्रकार कहा—॥ ५½ ॥

यथास्मान् सुरराट् छक्रो भयेभ्यः पाति सर्वदा ॥ ६ ॥
तथा त्वमपि सर्वासां सरितां वै पतिर्भव ।

'जैसे देवराज इन्द्र सदा भयसे हमलोगोंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप भी समस्त सरिताओंके अधिपति हो जाइये (और हमारी रक्षा कीजिये) ॥ ६½ ॥

वासश्च ते सदा देव सागरे मकरालये ॥ ७ ॥
समुद्रोऽयं तव वशे भविष्यति नदीपतिः ।
सोमेन सार्धं च तव हानिवृद्धी भविष्यतः ॥ ८ ॥

'देव ! मकरालय समुद्रमें आपका सदा निवासस्थान होगा और यह नदीपति समुद्र सदा आपके वशमें रहेगा । चन्द्रमाके साथ आपकी भी हानि और वृद्धि होगी' ॥ ७-८ ॥

एवमस्त्विति तान् देवान् वरुणो वाक्यमब्रवीत् ।
समागम्य ततः सर्वे वरुणं सागरालयम् ॥ ९ ॥
अपां पतिं प्रचक्रुर्हि विधिदृष्टेन कर्मणा ।

तब वरुणने उन देवताओंसे कहा—'एवमस्तु' । इस प्रकार उनकी अनुमति पाकर सब देवता इकट्ठे होकर उन्होंने समुद्रनिवासी वरुणको शास्त्रीय विधिके अनुसार जलका राजा बना दिया ॥ ९½ ॥

अभिषिच्य ततो देवा वरुणं यादसां पतिम् ॥ १० ॥
जग्मुः स्वान्येव स्थानानि पूजयित्वा जलेश्वरम् ।

जलजन्तुओंके स्वामी जलेश्वर वरुणका अभिषेक और पूजन करके सम्पूर्ण देवता अपने-अपने स्थानको ही चले गये ॥ ११ ॥

अभिषिक्तस्ततो देवैर्वरुणोऽपि महायशाः ॥ ११ ॥
सरितः सागरांश्चैव नदांश्चापि सरांसि च ।
पालयामास विधिना यथा देवाञ्छतक्रतुः ॥ १२ ॥

देवताओंद्वारा अभिषिक्त होकर महायशस्वी वरुण देवगणोंकी रक्षा करनेवाले इन्द्रके समान सरिताओं, सागरों, नदों और सरोवरोंका भी विधिपूर्वक पालन करने लगे ॥

ततस्तत्राप्युपस्पृश्य दत्त्वा च विविधं वसु ।
अग्नितीर्थं महाप्राज्ञो जगामाथ प्रलम्बहा ॥ १३ ॥

प्रलम्बासुरका वध करनेवाले महाज्ञानी बलरामजी उस तीर्थमें स्नान और भाँति-भाँतिके धनका दान करके अग्नितीर्थमें गये ॥ १३ ॥

नष्टो न दृश्यते यत्र शमीगर्भे हुताशनः ।
लोकालोकविनाशे च प्रादुर्भूते तदानघ ॥ १४ ॥
उपतस्थुः सुरा यत्र सर्वलोकपितामहम् ।
अग्निः प्रणष्टो भगवान् कारणं च न विद्महे ॥ १५ ॥
सर्वभूतक्षयो मा भूत् सम्पादय विभोऽनलम् ।

निष्पाप नरेश ! जब शमीके गर्भमें छिप जानेके कारण कहीं अग्निदेवका दर्शन नहीं हो रहा था और सम्पूर्ण जगत्‌के प्रकाश अथवा दृष्टिशक्तिके विनाशकी घड़ी उपस्थित हो गयी, तब सब देवता सर्वलोकपितामह ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित हुए और बोले—'प्रभो ! भगवान् अग्निदेव अदृश्य हो गये हैं। इसका क्या कारण है, यह हमारी समझमें नहीं आता । सम्पूर्ण भूतोंका विनाश न हो जाय, इसके लिये अग्निदेवको प्रकट कीजिये' ॥ १४-१५½ ॥

जनमेजय उवाच

किमर्थं भगवानग्निः प्रणष्टो लोकभावनः ॥ १६ ॥
विज्ञातश्च कथं देवैस्तन्ममाचक्ष्व तत्त्वतः ।

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन् ! लोकभावन भगवान् अग्नि क्यों अदृश्य हो गये थे और देवताओंने कैसे उनका पता लगाया ? यह यथार्थरूपसे बताइये ॥ १६½ ॥

वैशम्पायन उवाच

भृगोः शापाद् भृशं भीतो जातवेदाः प्रतापवान् ॥ १७ ॥
शमीगर्भमथासाद्य ननाश भगवांस्ततः ।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! एक समयकी बात है कि प्रतापी भगवान् अग्निदेव महर्षि भृगुके शापसे अत्यन्त भयभीत हो शमीके भीतर जाकर अदृश्य हो गये ॥ १७½ ॥

प्रणष्टे तु तदा वह्नौ देवाः सर्वे सवासवाः ॥ १८ ॥
अन्वैषन्त तदा नष्टं ज्वलनं भृशदुःखिताः ।

उस समय अग्निदेवके दिखायी न देनेपर इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता बहुत दुखी हो उनकी खोज करने लगे ।१८½।

ततोऽग्नितीर्थमासाद्य शमीगर्भस्थमेव हि ॥ १९ ॥
ददृशुर्ज्वलनं तत्र वसमानं यथाविधि ।

तत्पश्चात् अग्नितीर्थमें आकर देवताओंने अग्निको शमीके गर्भमें विधिपूर्वक निवास करते देखा ॥ १९½ ॥

देवाः सर्वे नरव्याघ्र बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ २० ॥
ज्वलनं तं समासाद्य प्रीताभूवन् सवासवाः ।

नरव्याघ्र ! इन्द्रसहित सब देवता बृहस्पतिको आगे करके अग्निदेवके समीप आये और उन्हें देखकर बड़े प्रसन्न हुए ॥ २०½ ॥

पुनर्यथागतं जग्मुः सर्वभक्षश्च सोऽभवत् ॥ २१ ॥
भृगोः शापान्महाभाग यदुक्तं ब्रह्मवादिना ।

महाभाग ! फिर वे जैसे आये थे, वैसे लौट गये और अग्निदेव महर्षि भृगुके शापसे सर्वभक्षी हो गये । उन ब्रह्मवादी मुनिने जैसा कहा था, वैसा ही हुआ ॥ २१½ ॥

तत्राप्याप्लुत्य मतिमान् ब्रह्मयोनिं जगाम ह ॥ २२ ॥
ससर्ज भगवान् यत्र सर्वलोकपितामहः ।

उस तीर्थमें गोता लगाकर बुद्धिमान् बलरामजी ब्रह्मयोनि तीर्थमें गये, जहाँ सर्वलोकपितामह ब्रह्माने सृष्टि की थी॥

तत्राप्लुत्य ततो ब्रह्मा सह देवैः प्रभुः पुरा ॥ २३ ॥
ससर्ज तीर्थानि तथा देवतानां यथाविधि ।

पूर्वकालमें देवताओंसहित भगवान् ब्रह्माने वहाँ स्नान करके विधिपूर्वक देवतीर्थोंकी रचना की थी ॥ २३½ ॥

तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च वसूनि विविधानि च ॥ २४ ॥
कौबेरं प्रययौ तीर्थं तत्र तप्त्वा महत्तपः ।
धनाधिपत्यं सम्प्राप्तो राजन्नैलविलः प्रभुः ॥ २५ ॥

राजन् ! उस तीर्थमें स्नान और नाना प्रकारके धनका दान करके बलरामजी कुबेर-तीर्थमें गये, जहाँ बड़ी भारी तपस्या करके भगवान् कुबेरने धनाध्यक्षका पद प्राप्त किया था ॥

तत्रस्थमेव तं राजन् धनानि निधयस्तथा ।
उपतस्थुर्नरश्रेष्ठ तत् तीर्थं लाङ्गली बलः ॥ २६ ॥
गत्वा स्नात्वा च विधिवद् ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ ।

नरेश्वर ! वहीं उनके पास धन और निधियाँ पहुँच गयी थीं । नरश्रेष्ठ ! हलधारी बलरामने उस तीर्थमें जाकर स्नानके पश्चात् ब्राह्मणोंके लिये विधिपूर्वक धनका दान किया ॥२६½॥

ददृशे तत्र तत् स्थानं कौबेरे काननोत्तमे ॥ २७ ॥
पुरा यत्र तपस्तप्तं विपुलं सुमहात्मना ।
यक्षराज्ञा कुबेरेण वरा लब्धाश्च पुष्कलाः ॥ २८ ॥

तत्पश्चात् उन्होंने वहाँके एक उत्तम वनमें कुबेरके उस स्थानका दर्शन किया, जहाँ पूर्वकालमें महात्मा यक्षराज कुबेरने बड़ी भारी तपस्या की और बहुत-से वर प्राप्त किये॥२७-२८॥

धनाधिपत्यं सख्यं च रुद्रेणामिततेजसा ।
सुरत्वं लोकपालत्वं पुत्रं च नलकूबरम् ॥ २९ ॥
यत्र लेभे महाबाहो धनाधिपतिरञ्जसा ।

महाबाहो ! धनपति कुबेरने वहाँ अमिततेजस्वी रुद्रके साथ मित्रता, धनका स्वामित्व, देवत्व, लोकपालत्व और नलकूबर नामक पुत्र अनायास ही प्राप्त कर लिये ॥ २९½ ॥

अभिषिक्तश्च तत्रैव समागम्य मरुद्गणैः ॥ ३० ॥
वाहनं चास्य तद् दत्तं हंसयुक्तं मनोजवम् ।
विमानं पुष्पकं दिव्यं नैर्ऋतैश्वर्यमेव च ॥ ३१ ॥

वहीं आकर देवताओंने उनका अभिषेक किया तथा उनके लिये हंसोंसे जुता हुआ और मनके समान वेगशाली वाहन दिव्य पुष्पक विमान दिया । साथ ही उन्हें यक्षोंका राजा बना दिया ॥ ३०-३१ ॥

तत्राप्लुत्य बलो राजन् दत्त्वा दायांश्च पुष्कलान् ।

जगाम त्वरितो रामस्तीर्थं श्वेतानुलेपनः ॥ ३२ ॥
निषेवितं सर्वसत्त्वैर्नाम्ना बदरपाचनम् ।
नानर्तुकवनोपेतं सदापुष्पफलं शुभम् ॥ ३३ ॥

राजन्! उस तीर्थमें स्नान और प्रचुर दान करके श्वेत चन्दनधारी बलरामजी शीघ्रतापूर्वक बदरपाचन नामक शुभ तीर्थमें गये, जो सब प्रकारके जीव-जन्तुओंसे सेवित, नाना ऋतुओंकी शोभासे सम्पन्न वनस्थलियोंसे युक्त तथा निरन्तर फूलों और फलोंसे भरा रहनेवाला था ॥ ३२-३३ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्रा और सारस्वतोपाख्यानविषयक सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

बदरपाचन-तीर्थकी महिमाके प्रसङ्गमें श्रुतावती और अरुन्धतीके तपकी कथा

वैशम्पायन उवाच

ततस्तीर्थवरं रामो ययौ बदरपाचनम् ।
तपस्विसिद्धचरितं यत्र कन्या धृतव्रता ॥ १ ॥
भरद्वाजस्य दुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
श्रुतावती नाम विभो कुमारी ब्रह्मचारिणी ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! पहले कहा गया है कि वहाँसे बलरामजी बदरपाचन नामक श्रेष्ठ तीर्थमें गये, जहाँ तपस्वी और सिद्ध पुरुष विचरण करते हैं तथा जहाँ पूर्वकालमें उत्तम व्रत धारण करनेवाली भरद्वाजकी ब्रह्मचारिणी पुत्री कुमारी कन्या श्रुतावती, जिसके रूप और सौन्दर्यकी भूमण्डलमें कहीं तुलना नहीं थी, निवास करती थी ॥ १-२ ॥

तपश्चचार सात्युग्रं नियमैर्बहुभिर्वृता ।
भर्ता मे देवराजः स्यादिति निश्चित्य भामिनी ॥ ३ ॥

वह भामिनी बहुत-से नियमोंको धारण करके वहाँ अत्यन्त उग्र तपस्या कर रही थी। उसने अपनी तपस्याका यही उद्देश्य निश्चित कर लिया था कि देवराज इन्द्र मेरे पति हों ॥ ३ ॥

समास्तस्या व्यतिक्रान्ता बह्व्यः कुरुकुलोद्वह ।
चरन्त्या नियमांस्तांस्तान् स्त्रीभिस्तीव्रान् सुदुश्चरान् ॥ ४ ॥

कुरुकुलभूषण! स्त्रियोंके लिये जिनका पालन अत्यन्त दुष्कर और दुःसह है, उन-उन कठोर नियमोंका पालन करती हुई श्रुतावतीके वहाँ अनेक वर्ष व्यतीत हो गये ॥ ४ ॥

तस्यास्तु तेन वृत्तेन तपसा च विशाम्पते ।
भक्त्या च भगवान् प्रीतः परया पाकशासनः ॥ ५ ॥

प्रजानाथ! उसके उस आचरण, तपस्या तथा पराभक्तिसे भगवान् पाकशासन (इन्द्र) बड़े प्रसन्न हुए ॥ ५ ॥

आजगामाश्रमं तस्यास्त्रिदशाधिपतिः प्रभुः ।
आस्थाय रूपं विप्रर्षेर्वसिष्ठस्य महात्मनः ॥ ६ ॥

वे शक्तिशाली देवराज ब्रह्मर्षि महात्मा वसिष्ठका रूप धारण करके उसके आश्रमपर आये ॥ ६ ॥

सा तं दृष्ट्वोग्रतपसं वसिष्ठं तपतां वरम् ।
आचारैर्मुनिभिर्दृष्टैः पूजयामास भारत ॥ ७ ॥

भरतनन्दन! उसने तपस्वी मुनियोंमें श्रेष्ठ और उग्र तपस्यापरायण वसिष्ठको देखकर मुनिजनोचित आचारोंद्वारा उनका पूजन किया ॥ ७ ॥

उवाच नियमज्ञा च कल्याणी सा प्रियंवदा ।
भगवन् मुनिशार्दूल किमाज्ञापयसि प्रभो ॥ ८ ॥
सर्वमद्य यथाशक्ति तव दास्यामि सुव्रत ।
शक्रभक्त्या च ते पाणिं न दास्यामि कथंचन ॥ ९ ॥

फिर नियमोंका ज्ञान रखनेवाली और मधुर एवं प्रिय वचन बोलनेवाली कल्याणमयी श्रुतावतीने इस प्रकार कहा—'भगवन्! मुनिश्रेष्ठ! प्रभो! मेरे लिये क्या आज्ञा है? सुव्रत! आज मैं यथाशक्ति आपको सब कुछ दूँगी; परंतु इन्द्रके प्रति अनुराग रखनेके कारण अपना हाथ आपको किसी प्रकार नहीं दे सकूँगी ॥ ८-९ ॥

व्रतैश्च नियमैश्चैव तपसा च तपोधन ।
शक्रस्तोषयितव्यो वै मया त्रिभुवनेश्वरः ॥ १० ॥

'तपोधन! मुझे अपने व्रतों, नियमों तथा तपस्याद्वारा त्रिभुवनसम्राट् भगवान् इन्द्रको ही संतुष्ट करना है' ॥ १० ॥

इत्युक्तो भगवान् देवः स्मयन्निव निरीक्ष्य ताम् ।
उवाच नियमं ज्ञात्वा सांत्वयन्निव भारत ॥ ११ ॥

भारत! श्रुतावतीके ऐसा कहनेपर भगवान् इन्द्रने मुस्कराते हुए-से उसकी ओर देखा और उसके नियमको जानकर उसे सान्त्वना देते हुए-से कहा— ॥ ११ ॥

उग्रं तपश्चरसि वै विदिता मेऽसि सुव्रते ।
यदर्थमयमारम्भस्तव कल्याणि हृद्गतः ॥ १२ ॥
तच्च सर्वं यथाभूतं भविष्यति वरानने ।

'सुव्रते! मैं जानता हूँ तुम बड़ी उग्र तपस्या कर रही हो। कल्याणि! सुमुखि! जिस उद्देश्यसे तुमने यह अनुष्ठान आरम्भ किया है और तुम्हारे हृदयमें जो संकल्प है, वह सब यथार्थरूपसे सफल होगा ॥ १२½ ॥

तपसा लभ्यते सर्वं यथाभूतं भविष्यति ॥ १३ ॥
यथा स्थानानि दिव्यानि विबुधानां शुभानने ।
तपसा तानि प्राप्याणि तपोमूलं महत् सुखम् ॥ १४ ॥

'शुभानने! तपस्यासे सब कुछ प्राप्त होता है। तुम्हारा मनोरथ भी यथावत् रूपसे सिद्ध होगा। देवताओंके जो दिव्य स्थान हैं, वे तपस्यासे प्राप्त होनेवाले हैं। महान् सुखका मूल कारण तपस्या ही है ॥ १३-१४ ॥

इति कृत्वा तपो घोरं देहं संन्यस्य मानवाः ।
देवत्वं यान्ति कल्याणि शृणुष्वैकं वचो मम ॥ १५ ॥

'कल्याणि! इस उद्देश्यसे मनुष्य घोर तपस्या करके अपने शरीरको त्यागकर देवत्व प्राप्त कर लेते हैं। अच्छा, अब तुम मेरी एक बात सुनो ॥ १५ ॥

पञ्च चैतानि सुभगे बदराणि शुभव्रते।
पचेत्युक्त्वा तु भगवाञ्जगाम बलसूदनः ॥ १६ ॥
आमन्त्र्य तां तु कल्याणीं ततो जप्यं जजाप सः।
अविदूरे ततस्तस्मादाश्रमात् तीर्थमुत्तमम् ॥ १७ ॥

'सुभगे ! शुभव्रते ! ये पाँच बेरके फल हैं। तुम इन्हें पका दो।' ऐसा कहकर भगवान् इन्द्र कल्याणी श्रुतावतीसे पूछकर उस आश्रमसे थोड़ी ही दूरपर स्थित उत्तम तीर्थमें गये और वहाँ स्नान करके जप करने लगे ॥ १६-१७ ॥

इन्द्रतीर्थेति विख्यातं त्रिषु लोकेषु मानद।
तस्या जिज्ञासनार्थं स भगवान् पाकशासनः ॥ १८ ॥
बदराणामपचनं चकार विबुधाधिपः।

मानद ! वह तीर्थ तीनों लोकोंमें इन्द्र-तीर्थके नामसे विख्यात है। देवराज भगवान् पाकशासनने उस कन्याके मनोभावकी परीक्षा लेनेके लिये उन बेरके फलोंको पकने नहीं दिया ॥

ततः प्रतप्ता सा राजन् वाग्यता विगतक्लमा ॥ १९ ॥
तत्परा शुचिसंवीता पावके समधिश्रयत्।
अपचद् राजशार्दूल बदराणि महाव्रता ॥ २० ॥

राजन् ! तदनन्तर शौचाचारसे सम्पन्न उस तपस्विनीने थकावटसे रहित हो मौनभावसे उन फलोंको आगपर चढ़ा दिया। नृपश्रेष्ठ ! फिर वह महाव्रता कुमारी बड़ी तत्परताके साथ उन बेरके फलोंको पकाने लगी ॥ १९-२० ॥

तस्याः पचन्त्याः सुमहान् कालोऽगात् पुरुषर्षभ।
न च स्म तान्यपच्यन्त दिनं च क्षयमभ्यगात् ॥ २१ ॥

पुरुषप्रवर ! उन फलोंको पकाते हुए उसका बहुत समय व्यतीत हो गया, परंतु वे फल पक न सके। इतनेमें ही दिन समाप्त हो गया ॥ २१ ॥

हुताशनेन दग्धश्च यस्तस्याः काष्ठसंचयः।
अकाष्ठमग्निं सा दृष्ट्वा स्वशरीरमथादहत् ॥ २२ ॥

उसने जो ईंधन जमा कर रक्खे थे, वे सब आगमें जल गये। तब अग्निको ईंधनरहित देख उसने अपने शरीरको जलाना आरम्भ किया ॥ २२ ॥

पादौ प्रक्षिप्य सा पूर्वं पावके चारुदर्शना।
दग्धौ दग्धौ पुनः पादावुपावर्तयतानघ ॥ २३ ॥

निष्पाप नरेश ! मनोहर दिखायी देनेवाली उस कन्याने पहले अपने दोनों पैर आगमें डाल दिये। वे ज्यों-ज्यों जलने लगे, त्यों-ही त्यों वह उन्हें आगके भीतर बढ़ाती गयी ॥ २३ ॥

चरणौ दह्यमानौ च नाचिन्तयदनिन्दिता।
कुर्वाणा दुष्करं कर्म महर्षिप्रियकाम्यया ॥ २४ ॥

उस साध्वीने अपने जलते हुए चरणोंकी कुछ भी परवा नहीं की। वह महर्षिका प्रिय करनेकी इच्छासे दुष्कर कार्य कर रही थी ॥ २४ ॥

न वैमनस्यं तस्यास्तु मुखभेदोऽथवाभवत्।
शरीरमग्निनाऽऽदीप्य जलमध्ये यथा स्थिता ॥ २५ ॥

उसके मनमें तनिक भी उदासी नहीं आयी। मुखकी कान्तिमें भी कोई अन्तर नहीं पड़ा। वह अपने शरीरको आगमें जलाकर भी ऐसी प्रसन्न थी, मानो जलके भीतर खड़ी हो ॥

तच्चास्या वचनं नित्यमवर्तद्धृदि भारत।
सर्वथा बदराण्येव पक्तव्यानीति कन्यका ॥ २६ ॥

भारत ! उसके मनमें निरन्तर इसी बातका चिन्तन होता रहता था कि 'इन बेरके फलोंको हर तरहसे पकाना है' ॥ २६ ॥

सा तन्मनसि कृत्वैव महर्षेर्वचनं शुभा।
अपचद् बदराण्येव न चापच्यन्त भारत ॥ २७ ॥

भरतनन्दन ! महर्षिके वचनको मनमें रखकर वह शुभलक्षणा कन्या उन बेरोंको पकाती ही रही, परंतु वे पक न सके ॥ २७ ॥

तस्यास्तु चरणौ वह्निर्ददाह भगवान् स्वयम्।
न च तस्या मनोदुःखं स्वल्पमप्यभवत् तदा ॥ २८ ॥

भगवान् अग्निने स्वयं ही उसके दोनों पैरोंको जला दिया, तथापि उस समय उसके मनमें थोड़ा-सा भी दुःख नहीं हुआ ॥

अथ तत् कर्म दृष्ट्वास्याः प्रीतस्त्रिभुवनेश्वरः।
ततः संदर्शयामास कन्यायै रूपमात्मनः ॥ २९ ॥

उसका यह कर्म देखकर त्रिभुवनके स्वामी इन्द्र बड़े प्रसन्न हुए। फिर उन्होंने उस कन्याको अपना यथार्थ रूप दिखाया ॥ २९ ॥

उवाच च सुरश्रेष्ठस्तां कन्यां सुदृढव्रताम्।
प्रीतोऽस्मि ते शुभे भक्त्या तपसा नियमेन च ॥ ३० ॥
तस्माद् योऽभिमतः कामः स ते सम्पत्स्यते शुभे।
देहं त्यक्त्वा महाभागे त्रिदिवे मयि वत्स्यसि ॥ ३१ ॥

इसके बाद सुरश्रेष्ठ इन्द्रने दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाली उस कन्यासे इस प्रकार कहा—'शुभे ! मैं तुम्हारी तपस्या, नियमपालन और भक्तिसे बहुत संतुष्ट हूँ। अतः कल्याणि ! तुम्हारे मनमें जो अभीष्ट मनोरथ है, वह पूर्ण होगा। महाभागे ! तुम इस शरीरका परित्याग करके स्वर्गलोकमें मेरे पास रहोगी ॥ ३०-३१ ॥

इदं च ते तीर्थवरं स्थिरं लोके भविष्यति।
सर्वपापापहं सुभ्रु नाम्ना बदरपाचनम् ॥ ३२ ॥

'सुभ्रु ! तुम्हारा यह श्रेष्ठ तीर्थ इस जगत्में सुस्थिर होगा, बदरपाचन नामसे प्रसिद्ध होकर सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला होगा ॥ ३२ ॥

विख्यातं त्रिषु लोकेषु ब्रह्मर्षिभिरभिप्लुतम्।
अस्मिन् खलु महाभागे शुभे तीर्थवरेऽनघे ॥ ३३ ॥
त्यक्त्वा सप्तर्षयो जग्मुर्हिमवन्तमरुन्धतीम्।

'यह तीनों लोकोंमें विख्यात है। बहुत-से ब्रह्मर्षियोंने इसमें स्नान किया है। पापरहित महाभागे ! एक समय सप्तर्षिगण इस मङ्गलमय श्रेष्ठ तीर्थमें अरुन्धतीको छोड़कर हिमालय पर्वतपर गये थे ॥ ३३½ ॥

ततस्ते वै महाभागा गत्वा तत्र सुसंशिताः ॥ ३४ ॥
वृत्त्यर्थं फलमूलानि समाहर्तुं ययुः किल।

'वहाँ पहुँचकर कठोर व्रतका पालन करनेवाले वे महाभाग महर्षि जीवन-निर्वाहके निमित्त फल-मूल लानेके लिये वनमें गये ॥

तेषां वृत्त्यर्थिनां तत्र वसतां हिमवद्वने ॥ ३५ ॥
अनावृष्टिरनुप्राप्ता तदा द्वादशवार्षिकी ।

'जीविकाकी इच्छासे जब वे हिमालयके वनमें निवास करते थे, उन्हीं दिनों बारह वर्षोंतक इस देशमें वर्षा ही नहीं हुई ॥

ते कृत्वा चाश्रमं तत्र न्यवसन्त तपस्विनः ॥ ३६ ॥
अरुन्धत्यपि कल्याणी तपोनित्याभवत् तदा ।

'वे तपस्वी मुनि वहीं आश्रम बनाकर रहने लगे । उस समय कल्याणी अरुन्धती भी प्रतिदिन तपस्यामें ही लगी रही॥

अरुन्धतीं ततो दृष्ट्वा तीव्रं नियममास्थिताम् ॥ ३७ ॥
अथागमत् त्रिनयनः सुप्रीतो वरदस्तदा ।

'अरुन्धतीको कठोर नियमका आश्रय लेकर तपस्या करती देख त्रिनेत्रधारी वरदायक भगवान् शंकर बड़े प्रसन्न हुए ॥

ब्राह्मं रूपं ततः कृत्वा महादेवो महायशाः ॥ ३८ ॥
तामभ्येत्याब्रवीद् देवो भिक्षामिच्छाम्यहं शुभे ।

'फिर वे महायशस्वी महादेवजी ब्राह्मणका रूप धारण करके उनके पास गये और बोले—'शुभे ! मैं भिक्षा चाहता हूँ'॥

प्रत्युवाच ततः सा तं ब्राह्मणं चारुदर्शना ॥ ३९ ॥
क्षीणोऽन्नसंचयो विप्र बदराणीह भक्षय ।

'तब परम सुन्दरी अरुन्धतीने उन ब्राह्मण देवतासे कहा—'विप्रवर ! अन्नका संग्रह तो समाप्त हो गया । अब यहाँ ये बेर हैं, इन्हींको खाइये' ॥ ३९½ ॥

ततोऽब्रवीन्महादेवः पचस्वैतानि सुव्रते ॥ ४० ॥
इत्युक्ता सापचत् तानि ब्राह्मणप्रियकाम्यया ।
अधिश्रित्य समिद्धेऽग्नौ बदराणि यशस्विनी ॥ ४१ ॥

'तब महादेवजीने कहा—'सुव्रते ! इन बेरोंको पका दो।' उनके इस प्रकार आदेश देनेपर यशस्विनी अरुन्धतीने ब्राह्मण-का प्रिय करनेकी इच्छासे उन बेरोंको प्रज्वलित अग्निपर रखकर पकाना आरम्भ किया ॥ ४०-४१ ॥

दिव्या मनोरमाः पुण्याः कथाः शुश्राव सा तदा।
अतीता सा त्वनावृष्टिर्घोरा द्वादशवार्षिकी ॥ ४२ ॥
अनश्नन्त्याः पचन्त्याश्च शृण्वन्त्याश्च कथाः शुभाः।
दिनोपमः स तस्याथ कालोऽतीतः सुदारुणः॥ ४३ ॥

'उस समय उसे परम पवित्र मनोहर एवं दिव्य कथाएँ सुनायी देने लगीं । वह बिना खाये ही बेर पकाती और मङ्गल-मयी कथाएँ सुनती रही । इतनेमें ही बारह वर्षोंकी वह भयंकर अनावृष्टि समाप्त हो गयी । वह अत्यन्त दारुण समय उसके लिये एक दिनके समान व्यतीत हो गया ॥ ४२-४३ ॥

ततस्तु मुनयः प्राप्ताः फलान्यादाय पर्वतात् ।
ततः स भगवान् प्रीतः प्रोवाचारुन्धतीं ततः ॥ ४४ ॥
उपसर्पस्व धर्मज्ञे यथापूर्वमिमानृषीन् ।
प्रीतोऽस्मि तव धर्मज्ञे तपसा नियमेन च ॥ ४५ ॥

'तदनन्तर सप्तर्षिगण हिमालय पर्वतसे फल लेकर वहाँ आये । उस समय भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर अरुन्धतीसे कहा—'धर्मज्ञे ! अब तुम पहलेके समान इन ऋषियोंके पास जाओ ! धर्मको जाननेवाली देवि ! मैं तुम्हारी तपस्या और नियमसे बहुत प्रसन्न हूँ' ॥ ४४-४५ ॥

ततः संदर्शयामास स्वरूपं भगवान् हरः ।
ततोऽब्रवीत् तदा तेभ्यस्तस्याश्च चरितं महत् ॥ ४६ ॥

'ऐसा कहकर भगवान् शंकरने अपने स्वरूपका दर्शन कराया और उन सप्तर्षियोंसे अरुन्धतीके महान् चरित्रका वर्णन किया ॥ ४६ ॥

भवद्भिर्हिमवत्पृष्ठे यत् तपः समुपार्जितम् ।
अस्याश्च यत् तपो विप्रा न समं तन्मतं मम ॥ ४७ ॥

'वे बोले—'विप्रवरो ! आपलोगोंने हिमालयके शिखरपर रहकर जो तपस्या की है और अरुन्धतीने यहीं रहकर जो तप किया है, इन दोनोंमें कोई समानता नहीं है (अरुन्धतीका ही तप श्रेष्ठ है) ॥ ४७ ॥

अनया हि तपस्विन्या तपस्तप्तं सुदुश्चरम् ।
अनश्नन्त्या पचन्त्या च समा द्वादश पारिताः ॥ ४८ ॥

'इस तपस्विनीने बिना कुछ खाये-पीये बेर पकाते हुए बारह वर्ष बिता दिये हैं । इस प्रकार इसने दुष्कर तपका उपार्जन कर लिया है' ॥ ४८ ॥

ततः प्रोवाच भगवांस्तामेवारुन्धतीं पुनः ।
वरं वृणीष्व कल्याणि यत् तेऽभिलषितं हृदि ॥ ४९ ॥

'इसके बाद भगवान् शंकरने पुनः अरुन्धतीसे कहा—'कल्याणि ! तुम्हारे मनमें जो अभिलाषा हो, उसके अनुसार कोई वर माँग लो' ॥ ४९ ॥

साब्रवीत् पृथुताम्राक्षी देवं सप्तर्षिसंसदि ।
भगवान् यदि मे प्रीतस्तीर्थं स्यादिदमद्भुतम् ॥ ५० ॥
सिद्धदेवर्षिदयितं नाम्ना बदरपाचनम् ।

'तब विशाल एवं अरुण नेत्रोंवाली अरुन्धतीने सप्तर्षियों-की सभामें महादेवजीसे कहा—'भगवान् यदि मुझपर प्रसन्न हैं तो यह स्थान बदरपाचन नामसे प्रसिद्ध होकर सिद्धों और देवर्षियोंका प्रिय एवं अद्भुत तीर्थ हो जाय ॥ ५०½ ॥

तथास्मिन् देवदेवेश त्रिरात्रमुषितः शुचिः ॥ ५१ ॥
प्राप्नुयादुपवासेन फलं द्वादशवार्षिकम् ।

'देवदेवेश्वर ! इस तीर्थमें तीन राततक पवित्र भावसे रहकर वास करनेसे मनुष्यको बारह वर्षोंके उपवासका फल प्राप्त हो' ॥ ५१½ ॥

एवमस्त्विति तां देवः प्रत्युवाच तपस्विनीम् ॥ ५२ ॥
सप्तर्षिभिः स्तुतो देवस्ततो लोकं ययौ तदा ।

'तब महादेवजीने उस तपस्विनीसे कहा—'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) । फिर सप्तर्षियोंने उनकी स्तुति की । तत्पश्चात् महादेवजी अपने लोकमें चले गये ॥ ५२½ ॥

ऋषयो विस्मयं जग्मुस्तां दृष्ट्वा चाप्यरुन्धतीम् ॥ ५३ ॥
अश्रान्तां चाविवर्णां च क्षुत्पिपासासमायुताम् ।

'अरुन्धती भूख-प्याससे युक्त होनेपर भी न तो थकी थी और न उसकी अङ्गकान्ति ही फीकी पड़ी थी । उसे देखकर ऋषियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ५३½ ॥

एवं सिद्धिः परा प्राप्ता अरुन्धत्या विशुद्धया ॥ ५४ ॥

यथा त्वया महाभागे मदर्थं संशितव्रते ।
विशेषो हि त्वया भद्रे व्रते ह्यस्मिन् समर्पितः ॥ ५५ ॥

'कठोर व्रतका पालन करनेवाली महाभागे ! इस प्रकार विशुद्धहृदया अरुन्धती देवीने यहाँ परम सिद्धि प्राप्त की थी, जैसी कि तुमने मेरे लिये तप करके सिद्धि पायी है। भद्रे ! तुमने इस व्रतमें विशेष आत्मसमर्पण किया है।५४-५५।

तथा चेदं ददाम्यद्य नियमेन सुतोषितः ।
विशेषं तव कल्याणि प्रयच्छामि वरं वरे ॥ ५६ ॥

'सती कल्याणि ! मैं तुम्हारे नियमसे संतुष्ट होकर यह विशेष वर प्रदान करता हूँ ॥ ५६ ॥

अरुन्धत्या वरस्तस्या यो दत्तो वै महात्मना ।
तस्य चाहं प्रभावेण तव कल्याणि तेजसा ॥ ५७ ॥
प्रवक्ष्यामि परं भूयो वरमत्र यथाविधि ।

'कल्याणि ! महात्मा भगवान् शंकरने अरुन्धती देवीको जो वर दिया था, तुम्हारे तेज और प्रभावसे मैं उससे भी बढ़कर उत्तम वर देता हूँ ॥ ५७½ ॥

यस्त्वेकां रजनीं तीर्थे वत्स्यते सुसमाहितः ॥ ५८ ॥
स स्नात्वा प्राप्स्यते लोकान् देहन्यासात् सुदुर्लभान् ।

'जो इस तीर्थमें एकाग्रचित्त होकर एक रात निवास करेगा, वह यहाँ स्नान करके देह-त्यागके पश्चात् उन पुण्यलोकोंमें जायगा, जो दूसरोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ हैं' ॥ ५८½ ॥

इत्युक्त्वा भगवान् देवः सहस्राक्षः प्रतापवान् ॥ ५९ ॥
श्रुतावतीं ततः पुण्यां जगाम त्रिदिवं पुनः ।

पुण्यमयी श्रुतावतीसे ऐसा कहकर सहस्र नेत्रधारी प्रतापी भगवान् इन्द्रदेव पुनः स्वर्गलोकमें चले गये ॥ ५९½ ॥

गते वज्रधरे राजंस्तत्र वर्षं पपात ह ॥ ६० ॥
पुष्पाणां भरतश्रेष्ठ दिव्यानां पुण्यगन्धिनाम् ।
देवदुन्दुभयश्चापि नेदुस्तत्र महास्वनाः ॥ ६१ ॥

राजन् ! भरतश्रेष्ठ ! वज्रधारी इन्द्रके चले जानेपर वहाँ पवित्र सुगन्धवाले दिव्य पुष्पोंकी वर्षा होने लगी और महान् शब्द करनेवाली देवदुन्दुभियाँ बज उठीं ॥ ६०-६१ ॥

मारुतश्च ववौ पुण्यः पुण्यगन्धो विशाम्पते ।
उत्सृज्य तु शुभा देहं जगामास्य च भार्यताम् ॥ ६२ ॥
तपसोग्रेण तं लब्ध्वा तेन रेमे सहाच्युत ।

प्रजानाथ ! पावन सुगंधसे युक्त पवित्र वायु चलने लगी। शुभलक्षणा श्रुतावती अपने शरीरको त्यागकर इन्द्रकी भार्या हो गयी। अच्युत ! वह अपनी उग्र तपस्यासे इन्द्रको पाकर उनके साथ रमण करने लगी ॥ ६२½ ॥

जनमेजय उवाच

का तस्या भगवन् माता क्व संवृद्धा च शोभना ।
श्रोतुमिच्छाम्यहं विप्र परं कौतूहलं हि मे ॥ ६३ ॥

जनमेजयने पूछा—भगवन् ! शोभामयी श्रुतावतीकी माता कौन थी और वह कहाँ पली थी? यह मैं सुनना चाहता हूँ। विप्रवर! इसके लिये मेरे मनमें बड़ी उत्कण्ठा हो रही है॥

वैशम्पायन उवाच

भरद्वाजस्य विप्रर्षेः स्कन्नं रेतो महात्मनः ॥ ६४ ॥
दृष्ट्वाप्सरसमायान्तीं घृताचीं पृथुलोचनाम् ।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! एक दिन विशाल नेत्रोंवाली घृताची अप्सरा कहींसे आ रही थी। उसे देखकर महात्मा महर्षि भरद्वाजका वीर्य स्खलित हो गया ॥ ६४½ ॥

स तु जग्राह तद्रेतः करेण जपतां वरः ॥ ६५ ॥
तदापतत् पर्णपुटे तत्र सा समभवत् सुता ।

जप करनेवालोंमें श्रेष्ठ ऋषिने उस वीर्यको अपने हाथमें ले लिया, परंतु वह तत्काल ही एक पत्तेके दोनेमें गिर पड़ा। वहीं वह कन्या प्रकट हो गयी ॥ ६५½ ॥

तस्यास्तु जातकर्मादि कृत्वा सर्वं तपोधनः ॥ ६६ ॥
नाम चास्याः स कृतवान् भरद्वाजो महामुनिः ।
श्रुतावतीति धर्मात्मा देवर्षिगणसंसदि ।
स्वे च तामाश्रमे न्यस्य जगाम हिमवद्वनम् ॥ ६७ ॥

तपस्याके धनी धर्मात्मा महामुनि भरद्वाजने उसके जातकर्म आदि सब संस्कार करके देवर्षियोंकी सभामें उसका नाम श्रुतावती रख दिया। फिर वे उस कन्याको अपने आश्रममें रखकर हिमालयके जंगलमें चले गये थे ॥ ६६-६७ ॥

तत्राप्युपस्पृश्य महानुभावो
वसूनि दत्त्वा च महाद्विजेभ्यः ।
जगाम तीर्थं सुसमाहितात्मा
शक्रस्य वृष्णिप्रवरस्तदानीम् ॥ ६८ ॥

वृष्णिवंशावतंस महानुभाव बलरामजी उस तीर्थमें भी स्नान और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको धनका दान करके उस समय एकाग्रचित्त हो वहाँसे इन्द्र-तीर्थमें चले गये ॥ ६८ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने बदरपाचनतीर्थकथने अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्रा और सारस्वतोपाख्यानके प्रसंगमें बदरपाचन तीर्थका वर्णनविषयक अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

इन्द्रतीर्थ, रामतीर्थ, यमुनातीर्थ और आदित्यतीर्थकी महिमा

वैशम्पायन उवाच

इन्द्रतीर्थं ततो गत्वा यदूनां प्रवरो बलः ।
विप्रेभ्यो धनरत्नानि ददौ स्नात्वा यथाविधि ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! वहाँसे इन्द्रतीर्थमें जाकर स्नान करके यदुकुलतिलक बलरामजीने ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक धन और रत्नोंका दान किया ॥ १ ॥

तत्र ह्यमरराजोऽसावीजे क्रतुशतेन च ।
बृहस्पतेश्च देवेशः प्रददौ विपुलं धनम् ॥ २ ॥

उस तीर्थमें देवेश्वर देवराज इन्द्रने सौ यज्ञोंका अनुष्ठान किया था और बृहस्पतिजीको प्रचुर धन दिया था ॥ २ ॥

निरर्गलान् सजारूथ्यान् सर्वान् विविधदक्षिणान् ।
आजहार क्रतूंस्तत्र यथोक्तान् वेदपारगैः ॥ ३ ॥

नाना प्रकारकी दक्षिणाओंसे युक्त एवं पुष्ट उन सभी शास्त्रोक्त यज्ञोंको इन्द्रने वेदोंके पारंगत विद्वान् ब्राह्मणोंके साथ बिना किसी विघ्न-बाधाके वहाँ पूर्ण कर लिया ॥ ३ ॥

तान् क्रतून् भरतश्रेष्ठ शतकृत्वो महाद्युतिः ।
पूरयामास विधिवत् ततः ख्यातः शतक्रतुः ॥ ४ ॥

भरतश्रेष्ठ ! महातेजस्वी इन्द्रने उन यज्ञोंको सौ बार विधिपूर्वक पूर्ण किया, इसलिये इन्द्र शतक्रतु नामसे विख्यात हो गये ॥

तस्य नाम्ना च तत् तीर्थं शिवं पुण्यं सनातनम् ।
इन्द्रतीर्थमिति ख्यातं सर्वपापप्रमोचनम् ॥ ५ ॥

उन्हींके नामसे वह सर्वपापापहारी, कल्याणकारी एवं सनातन पुण्य तीर्थ 'इन्द्रतीर्थ' कहलाने लगा ॥ ५ ॥

उपस्पृश्य च तत्रापि विधिवन्मुसलायुधः ।
ब्राह्मणान् पूजयित्वा च सदाच्छादनभोजनैः ॥ ६ ॥
शुभं तीर्थवरं तस्माद् रामतीर्थं जगाम ह ।

मुसलधारी बलरामजी वहाँ भी विधिपूर्वक स्नान तथा उत्तम भोजन-वस्त्रद्वारा ब्राह्मणोंका पूजन करके वहाँसे शुभ तीर्थप्रवर रामतीर्थमें चले गये ॥ ६½ ॥

यत्र रामो महाभागो भार्गवः सुमहातपाः ॥ ७ ॥
असकृत् पृथिवीं जित्वा हतक्षत्रियपुङ्गवाम् ।
उपाध्यायं पुरस्कृत्य कश्यपं मुनिसत्तमम् ॥ ८ ॥
अयजद् वाजपेयेन सोऽश्वमेधशतेन च ।
प्रददौ दक्षिणां चैव पृथिवीं वै ससागराम् ॥ ९ ॥

जहाँ महातपस्वी भृगुवंशी महाभाग परशुरामजीने बारंबार क्षत्रियनरेशोंका संहार करके इस पृथ्वीको जीतनेके पश्चात् मुनिश्रेष्ठ कश्यपको आचार्यरूपसे आगे रखकर वाजपेय तथा एक सौ अश्वमेध यज्ञद्वारा भगवान्का पूजन किया और दक्षिणारूपमें समुद्रोंसहित यह सारी पृथ्वी दे दी ॥ ७–९ ॥

दत्त्वा च दानं विविधं नानारत्नसमन्वितम् ।
सगोहस्तिकदासीकं साजाविं गतवान् वनम् ॥ १० ॥

नाना प्रकारके रत्न, गौ, हाथी, दास, दासी और भेड़-बकरोंसहित अनेक प्रकारके दान देकर वे वनमें चले गये ॥

पुण्ये तीर्थवरे तत्र देवब्रह्मर्षिसेविते ।
मुनींश्चैवाभिवाद्याथ यमुनातीर्थमागमत् ॥ ११ ॥
यत्रानयामास तदा राजसूयं महीपते ।
पुत्रोऽदितेर्महाभागो वरुणो वै सितप्रभः ॥ १२ ॥

पृथ्वीनाथ ! देवताओं और ब्रह्मर्षियोंसे सेवित उस उत्तम पुण्यमय तीर्थमें मुनियोंको प्रणाम करके बलरामजी यमुनातीर्थमें आये, जहाँ अदितिके महाभाग पुत्र गौरकान्ति वरुणजीने राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया था ॥ ११-१२ ॥

तत्र निर्जित्य संग्रामे मानुषान् देवतास्तथा ।
वरं क्रतुं समाजह्रे वरुणः परवीरहा ॥ १३ ॥

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले वरुणने संग्राममें मनुष्यों और देवताओंको जीतकर उस श्रेष्ठ यज्ञका आयोजन किया था ॥

तस्मिन् क्रतुवरे वृत्ते संग्रामः समजायत ।
देवानां दानवानां च त्रैलोक्यस्य भयावहः ॥ १४ ॥

राजन् ! वह श्रेष्ठ यज्ञ समाप्त होनेपर देवताओं और दानवोंमें घोर संग्राम हुआ था, जो तीनों लोकोंके लिये भयंकर था ॥ १४ ॥

राजसूये क्रतुश्रेष्ठे निवृत्ते जनमेजय ।
जायते सुमहाघोरः संग्रामः क्षत्रियान् प्रति ॥ १५ ॥

जनमेजय ! क्रतुश्रेष्ठ राजसूयका अनुष्ठान पूर्ण हो जानेपर उस देशके क्षत्रियोंमें महाभयंकर संग्राम हुआ करता है ॥

तत्रापि लाङ्गली देव ऋषीनभ्यर्च्य पूजया ।
इतरेभ्योऽप्यदाद् दानमर्थिभ्यः कामदो विभुः ॥ १६ ॥

सबकी इच्छा पूर्ण करनेवाले भगवान् हलधरने उस तीर्थमें भी स्नान एवं ऋषियोंका पूजन करके अन्य याचकोंको भी धन दान किया ॥ १६ ॥

वनमाली ततो हृष्टः स्तूयमानो महर्षिभिः ।
तस्मादादित्यतीर्थं च जगाम कमलेक्षणः ॥ १७ ॥

तदनन्तर महर्षियोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनकर प्रसन्न हुए वनमालाधारी कमलनयन बलराम वहाँसे आदित्यतीर्थमें गये ॥ १७ ॥

यत्रेष्ट्वा भगवाञ्ज्योतिर्भास्करो राजसत्तम ।
ज्योतिषामाधिपत्यं च प्रभावं चाभ्यपद्यत ॥ १८ ॥

नृपश्रेष्ठ ! वहीं यज्ञ करके ज्योतिर्मय भगवान् भास्करने ज्योतियोंका आधिपत्य एवं प्रभुत्व प्राप्त किया था ॥ १८ ॥

तस्या नद्यास्तु तीरे वै सर्वे देवाः सवासवाः ।
विश्वेदेवाः समरुतो गन्धर्वाप्सरसश्च ह ॥ १९ ॥
द्वैपायनः शुकश्चैव कृष्णश्च मधुसूदनः ।
यक्षाश्च राक्षसाश्चैव पिशाचाश्च विशाम्पते ॥ २० ॥
एते चान्ये च बहवो योगसिद्धाः सहस्रशः ।

प्रजानाथ ! उसी नदीके तटपर इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता, विश्वेदेव, मरुद्गण, गन्धर्व, अप्सराएँ, द्वैपायन व्यास, शुकदेव, मधुसूदन श्रीकृष्ण, यक्ष, राक्षस एवं पिशाच—ये तथा और भी बहुत-से पुरुष सहस्रोंकी संख्यामें योगसिद्ध हो गये हैं ॥

तस्मिंस्तीर्थे सरस्वत्याः शिवे पुण्ये परंतप ॥ २१ ॥
तत्र हत्वा पुरा विष्णुरसुरौ मधुकैटभौ ।
आप्लुत्य भरतश्रेष्ठ तीर्थप्रवर उत्तमे ॥ २२ ॥
द्वैपायनश्च धर्मात्मा तत्रैवाप्लुत्य भारत ।
सम्प्राप्य परमं योगं सिद्धिं च परमां गतः ॥ २३ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले भरतश्रेष्ठ ! सरस्वतीके उस परम उत्तम कल्याणकारी पुण्यतीर्थमें पहले मधु और कैटभ नामक असुरोंका वध करके भगवान् विष्णुने स्नान किया था। भारत ! इसी प्रकार धर्मात्मा द्वैपायन व्यासने भी उसी तीर्थमें

गोता लगाया था। इससे उन्होंने परम योगको पाकर उत्तम सिद्धि प्राप्त कर ली ॥ २१–२३ ॥

असितो देवलश्चैव तस्मिन्नेव महातपाः।
परमं योगमास्थाय ऋषिर्योगमवाप्तवान् ॥ २४ ॥

महातपस्वी असित देवल ऋषिने उसी तीर्थमें परम योगका आश्रय ले योगसिद्धि पायी थी ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसंगमें सारस्वतोपाख्यानविषयक उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ४९ ॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

आदित्यतीर्थकी महिमाके प्रसङ्गमें असित देवल तथा जैगीषव्य मुनिका चरित्र

वैशम्पायन उवाच

तस्मिन्नेव तु धर्मात्मा वसति स्म तपोधनः।
गार्हस्थ्यं धर्ममास्थाय ह्यसितो देवलः पुरा ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! प्राचीन कालकी बात है, उसी तीर्थमें तपस्याके धनी धर्मात्मा असित देवल मुनि गृहस्थधर्मका आश्रय लेकर निवास करते थे ॥ १ ॥

धर्मनित्यः शुचिर्दान्तो न्यस्तदण्डो महातपाः।
कर्मणा मनसा वाचा समः सर्वेषु जन्तुषु ॥ २ ॥

वे सदा धर्मपरायण, पवित्र, जितेन्द्रिय, किसीको भी दण्ड न देनेवाले, महातपस्वी तथा मन, वाणी और क्रियाद्वारा सभी जीवोंके प्रति समान भाव रखनेवाले थे ॥ २ ॥

अक्रोधनो महाराज तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः।
प्रियाप्रिये तुल्यवृत्तिर्यमवत्समदर्शनः ॥ ३ ॥

महाराज ! उनमें क्रोध नहीं था। वे अपनी निन्दा और स्तुतिको समान समझते थे। प्रिय और अप्रियकी प्राप्तिमें उनकी चित्तवृत्ति एक-सी रहती थी। वे यमराजकी भाँति सबके प्रति सम दृष्टि रखते थे ॥ ३ ॥

काञ्चने लोष्टभावे च समदर्शी महातपाः।
देवानपूजयन्नित्यमतिथींश्च द्विजैः सह ॥ ४ ॥

सोना हो या मिट्टीका ढेला, महातपस्वी देवल दोनोंको समान दृष्टिसे देखते थे और प्रतिदिन देवताओं तथा ब्राह्मणोंसहित अतिथियोंका पूजन एवं आदर-सत्कार करते थे ॥ ४ ॥

ब्रह्मचर्यरतो नित्यं सदा धर्मपरायणः।
ततोऽभ्येत्य महाभाग योगमास्थाय भिक्षुकः ॥ ५ ॥
जैगीषव्यो मुनिर्धीमांस्तस्मिंस्तीर्थे समाहितः।

वे मुनि सदा ब्रह्मचर्यपालनमें तत्पर रहते थे। उन्हें सब समय धर्मका ही सबसे बड़ा सहारा था। महाभाग ! एक दिन बुद्धिमान् जैगीषव्य मुनि जो संन्यासी थे, योगका आश्रय लेकर उस तीर्थमें आये और एकाग्रचित्त होकर वहाँ रहने लगे ॥ ५½ ॥

देवलस्याश्रमे राजन्न्यवसत् स महाद्युतिः ॥ ६ ॥
योगनित्यो महाराज सिद्धिं प्राप्तो महातपाः।

राजन् ! महाराज ! वे महातेजस्वी और महातपस्वी जैगीषव्य सदा योगपरायण रहकर सिद्धि प्राप्त कर चुके थे तथा देवलके ही आश्रममें रहते थे ॥ ६½ ॥

तं तत्र वसमानं तु जैगीषव्यं महामुनिम् ॥ ७ ॥
देवलो दर्शयन्नेव नैवायुञ्जत धर्मतः।
एवं तयोर्महाराज दीर्घकालो व्यतिक्रमत् ॥ ८ ॥

यद्यपि महामुनि जैगीषव्य उस आश्रममें ही रहते थे तथापि देवल मुनि उन्हें दिखाकर धर्मतः योग-साधना नहीं करते थे। इस तरह दोनोंको वहाँ रहते हुए बहुत समय बीत गया ॥ ७-८ ॥

जैगीषव्यं मुनिवरं न ददर्शाथ देवलः।
आहारकाले मतिमान् परिव्राड् जनमेजय ॥ ९ ॥
उपातिष्ठत धर्मज्ञो भैक्षकाले स देवलम्।

जनमेजय ! तदनन्तर कुछ कालतक ऐसा हुआ कि देवल मुनिवर जैगीषव्यको हर समय नहीं देख पाते थे। धर्मके ज्ञाता बुद्धिमान् संन्यासी जैगीषव्य केवल भोजन या भिक्षा लेनेके समय देवलके पास आते थे ॥ ९½ ॥

स दृष्ट्वा भिक्षुरूपेण प्राप्तं तत्र महामुनिम् ॥ १० ॥
गौरवं परमं चक्रे प्रीतिं च विपुलां तथा।
देवलस्तु यथाशक्ति पूजयामास भारत ॥ ११ ॥
ऋषिदृष्टेन विधिना समा बह्वीः समाहितः।

भारत ! संन्यासीके रूपमें वहाँ आये हुए महामुनि जैगीषव्यको देखकर देवल उनके प्रति अत्यन्त गौरव और महान् प्रेम प्रकट करते तथा यथाशक्ति शास्त्रीय विधिसे एकाग्रचित्त हो उनका पूजन (आदर-सत्कार) किया करते थे। बहुत वर्षोंतक उन्होंने ऐसा ही किया ॥ १०-११½ ॥

कदाचित् तस्य नृपते देवलस्य महात्मनः ॥ १२ ॥
चिन्ता सुमहती जाता मुनिं दृष्ट्वा महाद्युतिम्।

नरेश्वर ! एक दिन महातेजस्वी जैगीषव्य मुनिको देखकर महात्मा देवलके मनमें बड़ी भारी चिन्ता हुई ॥ १२½ ॥

समास्तु समतिक्रान्ता बह्व्यः पूजयतो मम ॥ १३ ॥
न चायमलसो भिक्षुरभ्यभाषत किंचन।

उन्होंने सोचा, 'इनकी पूजा करते हुए मुझे बहुत वर्ष बीत गये; परंतु ये आलसी भिक्षु आजतक एक बात भी नहीं बोले' ॥ १३½ ॥

एवं विगणयन्नेव स जगाम महोदधिम् ॥ १४ ॥
अन्तरिक्षचरः श्रीमान् कलशं गृह्य देवलः।

यही सोचते हुए श्रीमान् देवलमुनि कलश हाथमें लेकर आकाशमार्गसे समुद्र तटकी ओर चल दिये ॥ १४½ ॥

गच्छन्नेव स धर्मात्मा समुद्रं सरितां पतिम् ॥ १५ ॥

जैगीषव्यं ततोऽपश्यद् गतं प्रागेव भारत।

भारत ! नदीपति समुद्रके पास पहुँचते ही धर्मात्मा देवलने देखा कि जैगीषव्य वहाँ पहलेसे ही गये हैं ॥ १५½ ॥

ततः सविस्मयश्चिन्तां जगामाथामितप्रभः ॥ १६ ॥
कथं भिक्षुरयं प्राप्तः समुद्रे स्नात एव च।
इत्येवं चिन्तयामास महर्षिरसितस्तदा ॥ १७ ॥

तब तो अमित तेजस्वी महर्षि असित देवलको चिन्ताके साथ-साथ आश्चर्य भी हुआ। वे सोचने लगे, 'ये भिक्षु यहाँ पहले ही कैसे आ पहुँचे ? इन्होंने तो समुद्रमें स्नानका कार्य भी पूर्ण कर लिया' ॥ १६-१७ ॥

स्नात्वा समुद्रे विधिवच्छुचिर्जप्यं जजाप सः।
कृतजप्याह्निकः श्रीमानाश्रमं च जगाम ह ॥ १८ ॥
कलशं जलपूर्णं वै गृहीत्वा जनमेजय।

जनमेजय ! फिर उन्होंने समुद्रमें विधिपूर्वक स्नान करके पवित्र हो जपने योग्य मन्त्रका जप किया। जप आदि नित्य कर्म पूर्ण करके श्रीमान् देवल जलसे भरा हुआ कलश लेकर अपने आश्रमपर आये ॥ १८½ ॥

ततः स प्रविशन्नेव स्वमाश्रमपदं मुनिः ॥ १९ ॥
आसीनमाश्रमे तत्र जैगीषव्यमपश्यत।
न व्याहरति चैवैनं जैगीषव्यः कथंचन ॥ २० ॥
काष्ठभूतोऽऽश्रमपदे वसति स महातपाः।

आश्रममें प्रवेश करते ही देवल मुनिने वहाँ बैठे हुए जैगीषव्यको देखा, परंतु जैगीषव्यने उस समय भी किसी तरह उनसे बात नहीं की। वे महातपस्वी मुनि आश्रमपर काष्ठमौन होकर बैठे हुए थे ॥ १९-२०½ ॥

तं दृष्ट्वा चाप्लुतं तोये सागरे सागरोपमम् ॥ २१ ॥
प्रविष्टमाश्रमं चापि पूर्वमेव ददर्श सः।
असितो देवलो राजंश्चिन्तयामास बुद्धिमान् ॥ २२ ॥

राजन् ! समुद्रके समान अत्यन्त प्रभावशाली मुनिको समुद्रके जलमें स्नान करके अपनेसे पहले ही आश्रममें प्रविष्ट हुआ देख बुद्धिमान् असित देवलको पुनः बड़ी चिन्ता हुई ॥

दृष्ट्वा प्रभावं तपसो जैगीषव्यस्य योगजम्।
चिन्तयामास राजेन्द्र तदा स मुनिसत्तमः ॥ २३ ॥
मया दृष्टः समुद्रे च आश्रमे च कथं त्वयम्।

राजेन्द्र ! जैगीषव्यकी तपस्याका वह योगजनित प्रभाव देखकर ये मुनिश्रेष्ठ देवल फिर सोचने लगे—'मैंने इन्हें अभी-अभी समुद्रतट पर देखा है, फिर ये आश्रममें कैसे उपस्थित हैं ?' ॥ २३½ ॥

एवं विगणयन्नेव स मुनिर्मन्त्रपारगः ॥ २४ ॥
उत्पपाताश्रमात् तस्मादन्तरिक्षं विशाम्पते।
जिज्ञासार्थं तदा भिक्षोर्जैगीषव्यस्य देवलः ॥ २५ ॥

प्रजानाथ ! ऐसा विचार करते हुए वे मन्त्रशास्त्रके पारंगत विद्वान् मुनि उस आश्रमसे आकाशकी ओर उड़ चले। उस समय भिक्षु जैगीषव्यकी परीक्षा लेनेके लिये उन्होंने ऐसा किया ॥ २४-२५ ॥

सोऽन्तरिक्षचरान् सिद्धान् समपश्यत् समाहितान्।
जैगीषव्यं च तैः सिद्धैः पूज्यमानमपश्यत ॥ २६ ॥

ऊपर जाकर उन्होंने बहुत-से अन्तरिक्षचारी एकाग्र-चित्तवाले सिद्धोंको देखा। साथ ही उन सिद्धोंके द्वारा पूजे जाते हुए जैगीषव्य मुनिका भी उन्हें दर्शन हुआ ॥

ततोऽसितः सुसंरब्धो व्यवसायी दृढव्रतः।
अपश्यद् वै दिवं यान्तं जैगीषव्यं स देवलः ॥ २७ ॥

तदनन्तर दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करनेवाले दृढ़-निश्चयी असित देवल मुनि रोषावेशमें भर गये। फिर उन्होंने जैगीषव्यको स्वर्गलोकमें जाते देखा ॥ २७ ॥

तस्मात् तु पितृलोकं तं व्रजन्तं सोऽन्वपश्यत।
पितृलोकाच्च तं यान्तं याम्यं लोकमपश्यत ॥ २८ ॥

स्वर्गलोकसे उन्हें पितृलोकमें और पितृलोकसे यमलोकमें जाते देखा ॥ २८ ॥

तस्मादपि समुत्पत्य सोमलोकमभिप्लुतम्।
व्रजन्तमन्वपश्यत् स जैगीषव्यं महामुनिम् ॥ २९ ॥

वहाँसे भी ऊपर उठकर महामुनि जैगीषव्य जलमय चन्द्रलोकमें जाते दिखायी दिये ॥ २९ ॥

लोकान् समुत्पतन्तं तु शुभानेकान्तयाजिनाम्।
ततोऽग्निहोत्रिणां लोकांस्ततश्चाप्युत्पपात ह ॥ ३० ॥

फिर वे एकान्ततः यज्ञ करनेवाले पुरुषोंके उत्तम लोकोंकी ओर उड़ते दिखायी दिये। वहाँसे वे अग्निहोत्रियोंके लोकोंमें गये ॥ ३० ॥

दर्शं च पौर्णमासं च ये यजन्ति तपोधनाः।
तेभ्यः स ददृशे धीमाँल्लोकेभ्यः पशुयाजिनाम् ॥ ३१ ॥

उन लोकोंसे ऊपर उठकर वे बुद्धिमान् मुनि उन तपोधनोंके लोकमें गये, जो दर्श और पौर्णमास यज्ञ करते हैं। वहाँसे वे पशुयाग करनेवालोंके लोकोंमें जाते दिखायी दिये ॥

व्रजन्तं लोकममलमपश्यद् देवपूजितम्।
चातुर्मास्यैर्बहुविधैर्यजन्ते ये तपोधनाः ॥ ३२ ॥

जो तपस्वी नाना प्रकारके चातुर्मास यज्ञ करते हैं, उनके निर्मल लोकोंमें जाते हुए जैगीषव्यको देवल मुनिने देखा। वे वहाँ देवताओंसे पूजित हो रहे थे ॥ ३२ ॥

तेषां स्थानं ततो यातं तथाग्निष्टोमयाजिनाम्।
अग्निष्टुतेन च तथा ये यजन्ति तपोधनाः ॥ ३३ ॥
तत् स्थानमनुसम्प्राप्तमन्वपश्यत देवलः।

वहाँसे अग्निष्टोमयाजी तथा अग्निष्टुत् यज्ञके द्वारा यज्ञ करनेवाले तपोधनोंके लोकमें पहुँचे हुए जैगीषव्यको देवल मुनिने देखा ॥ ३३½ ॥

वाजपेयं क्रतुवरं तथा बहुसुवर्णकम् ॥ ३४ ॥
आहरन्ति महाप्राज्ञास्तेषां लोकेष्वपश्यत।

जो महाप्राज्ञ पुरुष बहुत-सी सुवर्णमयी दक्षिणाओंसे युक्त क्रतुश्रेष्ठ वाजपेय यज्ञका अनुष्ठान करते हैं, उनके लोकोंमें भी उन्होंने जैगीषव्यका दर्शन किया ॥ ३४½ ॥

यजन्ते राजसूयेन पुण्डरीकेण चैव ये ॥ ३५ ॥

तेषां लोकेष्वपश्यच्च जैगीषव्यं स देवलः ।

जो राजसूय और पुण्डरीक यज्ञके द्वारा यजन करते हैं, उनके लोकोंमें भी देवलने जैगीषव्यको देखा ॥ ३५½ ॥

अश्वमेधं क्रतुवरं नरमेधं तथैव च ॥ ३६ ॥
आहरन्ति नरश्रेष्ठास्तेषां लोकेष्वपश्यत ।

जो नरश्रेष्ठ क्रतुओंमें उत्तम अश्वमेध तथा नरमेधका अनुष्ठान करते हैं, उनके लोकोंमें भी उनका दर्शन किया ॥

सर्वमेधं च दुष्प्रापं तथा सौत्रामणिं च ये ॥ ३७ ॥
तेषां लोकेष्वपश्यच्च जैगीषव्यं स देवलः ।

जो लोग दुर्लभ सर्वमेध तथा सौत्रामणि यज्ञ करते हैं, उनके लोकोंमें भी देवलने जैगीषव्यको देखा ॥ ३७½ ॥

द्वादशाहैश्च सत्रैश्च यजन्ते विविधैर्नृप ॥ ३८ ॥
तेषां लोकेष्वपश्यच्च जैगीषव्यं स देवलः ।

नरेश्वर ! जो नाना प्रकारके द्वादशाह यज्ञोंका अनुष्ठान करते हैं, उनके लोकोंमें भी देवलने जैगीषव्यका दर्शन किया॥

मैत्रावरुणयोर्लोकानादित्यानां तथैव च ॥ ३९ ॥
सलोकतामनुप्राप्तमपश्यत ततोऽसितः ।

तत्पश्चात् असितने मित्र, वरुण और आदित्योंके लोकोंमें पहुँचे हुए जैगीषव्यको देखा ॥ ३९½ ॥

रुद्राणां च वसूनां च स्थानं यच्च बृहस्पतेः ॥ ४० ॥
तानि सर्वाण्यतीतानि समपश्यत् ततोऽसितः ।

तदनन्तर रुद्र, वसु और बृहस्पतिके जो स्थान हैं, उन सबको लाँघकर ऊपर उठे हुए जैगीषव्यका असित देवलने दर्शन किया ॥ ४०½ ॥

आरुह्य च गवां लोकं प्रयातो ब्रह्मसत्रिणाम् ॥ ४१ ॥
लोकानपश्यद् गच्छन्तं जैगीषव्यं ततोऽसितः ।

इसके बाद असितने गौओंके लोकमें जाकर जैगीषव्यको ब्रह्मसत्र करनेवालोंके लोकोंमें जाते देखा ॥ ४१½ ॥

त्रीँल्लोकानपरान् विप्रमुत्पतन्तं स्वतेजसा ॥ ४२ ॥
पतिव्रतानां लोकांश्च व्रजन्तं सोऽन्वपश्यत ।

तत्पश्चात् देवलने देखा कि विप्रवर जैगीषव्य मुनि अपने तेजसे ऊपर-ऊपरके तीन लोकोंको लाँघकर पतिव्रताओंके लोकमें जा रहे हैं ॥ ४२½ ॥

ततो मुनिवरं भूयो जैगीषव्यमथासितः ॥ ४३ ॥
नान्वपश्यत लोकस्थमन्तर्हितमरिंदम ।

शत्रुओंका दमन करनेवाले नरेश ! इसके बाद असितने मुनिवर जैगीषव्यको पुनः किसी लोकमें स्थित नहीं देखा । वे अदृश्य हो गये थे ॥ ४३½ ॥

सोऽचिन्तयन्महाभागो जैगीषव्यस्य देवलः ॥ ४४ ॥
प्रभावं सुव्रतत्वं च सिद्धिं योगस्य चातुलाम् ।

तत्पश्चात् महाभाग देवलने जैगीषव्यके प्रभाव, उत्तम व्रत और अनुपम योगसिद्धिके विषयमें विचार किया ॥

असितोऽपृच्छत तदा सिद्धाँल्लोकेषु सत्तमान्॥ ४५ ॥
प्रयतः प्राञ्जलिर्भूत्वा धीरस्तान् ब्रह्मसत्रिणः ।
जैगीषव्यं न पश्यामि तं शंसध्वं महौजसम् ॥ ४६ ॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे ।

इसके बाद धैर्यवान् असितने उन लोकोंमें रहनेवाले ब्रह्मयाजी सिद्धों और साधु पुरुषोंसे हाथ जोड़कर विनीतभावसे पूछा—'महात्माओ ! मैं महातेजस्वी जैगीषव्यको अब देख नहीं रहा हूँ । आप उनका पता बतावें । मैं उनके विषयमें सुनना चाहता हूँ । इसके लिये मेरे मनमें बड़ी उत्कण्ठा है'॥

सिद्धा ऊचुः

शृणु देवल भूतार्थं शंसतां नो दृढव्रत ॥ ४७ ॥
जैगीषव्यः स वै लोकं शाश्वतं ब्रह्मणो गतः ।

सिद्धोंने कहा—दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाले देवल ! सुनो । हम तुम्हें वह बात बता रहे हैं, जो हो चुकी है । जैगीषव्य मुनि सनातन ब्रह्मलोकमें जा पहुँचे हैं ॥

वैशम्पायन उवाच

स श्रुत्वा वचनं तेषां सिद्धानां ब्रह्मसत्रिणाम्॥ ४८ ॥
असितो देवलस्तूर्णमुत्पपात पपात च ।
ततः सिद्धास्त ऊचुर्हि देवलं पुनरेव ह ॥ ४९ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! उन ब्रह्मयाजी सिद्धोंकी बात सुनकर देवलमुनि तुरंत ऊपरकी ओर उछले, परंतु नीचे गिर पड़े । तब उन सिद्धोंने पुनः देवलसे कहा—॥

न देवलगतिस्तत्र तव गन्तुं तपोधन ।
ब्रह्मणः सदने विप्र जैगीषव्यो यदाप्तवान् ॥ ५० ॥

'तपोधन देवल ! विप्रवर ! जहाँ जैगीषव्य गये हैं, उस ब्रह्मलोकमें जानेकी शक्ति तुममें नहीं है' ॥ ५० ॥

वैशम्पायन उवाच

तेषां तद् वचनं श्रुत्वा सिद्धानां देवलः पुनः ।
आनुपूर्व्येण लोकांस्तान् सर्वानवततार ह ॥ ५१ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! उन सिद्धोंकी बात सुनकर देवलमुनि पुनः क्रमशः उन सभी लोकोंमें होते हुए नीचे उतर आये ॥ ५१ ॥

स्वमाश्रमपदं पुण्यमाजगाम पतत्रिवत् ।
प्रविशन्नेव चापश्यज्जैगीषव्यं स देवलः ॥ ५२ ॥

पक्षीकी तरह उड़ते हुए वे अपने पुण्यमय आश्रमपर आ पहुँचे । आश्रमके भीतर प्रवेश करते ही देवलने जैगीषव्य मुनिको वहाँ बैठा देखा ॥ ५२ ॥

ततो बुद्ध्या व्यगणयद् देवलो धर्मयुक्तया ।
दृष्ट्वा प्रभावं तपसो जैगीषव्यस्य योगजम् ॥ ५३ ॥

तब देवलने जैगीषव्यकी तपस्याका वह योगजनित प्रभाव देखकर धर्मयुक्त बुद्धिसे उसपर विचार किया ॥ ५३ ॥

ततोऽब्रवीन्महात्मानं जैगीषव्यं स देवलः ।
विनयावनतो राजन्नुपसर्प्य महामुनिम् ॥ ५४ ॥

राजन् ! इसके बाद महामुनि महात्मा जैगीषव्यके पास जाकर देवलने विनीतभावसे कहा—॥ ५४ ॥

मोक्षधर्मं समास्थातुमिच्छेयं भगवन्नहम् ।
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा उपदेशं चकार सः ॥ ५५ ॥

विधिं च योगस्य परं कार्याकार्यस्य शास्त्रतः ।
संन्यासकृतबुद्धिं तं ततो दृष्ट्वा महातपाः ॥ ५६ ॥
सर्वाश्चास्य क्रियाश्चक्रे विधिदृष्टेन कर्मणा ।

'भगवन्! मैं मोक्षधर्मका आश्रय लेना चाहता हूँ।' उनकी यह बात सुनकर महातपस्वी जैगीषव्यने उनका संन्यास लेनेका विचार जानकर उन्हें ज्ञानका उपदेश किया। साथ ही योगकी उत्तम विधि बताकर शास्त्रके अनुसार कर्तव्य-अकर्तव्यका भी उपदेश दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने शास्त्रीय विधिके अनुसार उनके संन्यासग्रहणसम्बन्धी समस्त कार्य (दीक्षा और संस्कार आदि) किये ॥ ५५-५६½ ॥

संन्यासकृतबुद्धिं तं भूतानि पितृभिः सह ॥ ५७ ॥
ततो दृष्ट्वा प्ररुरुदुः कोऽस्मान् संविभजिष्यति ।

उनका संन्यास लेनेका विचार जानकर पितरोंसहित समस्त प्राणी यह कहते हुए रोने लगे 'कि अब हमें कौन विभागपूर्वक अन्नदान करेगा' ॥ ५७½ ॥

देवलस्तु वचः श्रुत्वा भूतानां करुणं तथा ॥ ५८ ॥
दिशो दश व्याहरतां मोक्षं त्यक्तुं मनो दधे ।

दसों दिशाओंमें विलाप करते हुए उन प्राणियोंका करुणा-युक्त वचन सुनकर देवलने मोक्षधर्म (संन्यास) को त्याग देनेका विचार किया ॥ ५८½ ॥

ततस्तु फलमूलानि पवित्राणि च भारत ॥ ५९ ॥
पुष्पाण्योषधयश्चैव रोरूयन्ति सहस्रशः ।
पुनर्नो देवलः क्षुद्रो नूनं छेत्स्यति दुर्मतिः ॥ ६० ॥
अभयं सर्वभूतेभ्यो यो दत्त्वा नावबुध्यते ।

भारत! यह देख फल-मूल, पवित्री (कुश), पुष्प और ओषधियाँ—ये सहस्रों पदार्थ यह कहकर बारंबार रोने लगे कि 'यह खोटी बुद्धिवाला क्षुद्र देवल निश्चय ही फिर हमारा उच्छेद करेगा। तभी तो यह सम्पूर्ण भूतोंको अभयदान देकर भी अब अपनी प्रतिज्ञाको स्मरण नहीं करता है' ॥ ५९-६०½ ॥

ततो भूयो व्यगणयत् स्वबुद्ध्या मुनिसत्तमः ॥ ६१ ॥
मोक्षे गार्हस्थ्यधर्मे वा किं नु श्रेयस्करं भवेत् ।

तब मुनिश्रेष्ठ देवल पुनः अपनी बुद्धिसे विचार करने लगे, मोक्ष और गार्हस्थ्यधर्म इनमेंसे कौन-सा मेरे लिये श्रेयस्कर होगा ॥ ६१½ ॥

इति निश्चित्य मनसा देवलो राजसत्तम ॥ ६२ ॥
त्यक्त्वा गार्हस्थ्यधर्मं स मोक्षधर्ममरोचयत् ।

नृपश्रेष्ठ! देवलने मन-ही-मन इस बातपर निश्चित विचार करके गार्हस्थ्यधर्मको त्यागकर अपने लिये मोक्षधर्मको पसंद किया ॥ ६२½ ॥

एवमादीनि संचिन्त्य देवलो निश्चयात् ततः ॥ ६३ ॥
प्राप्तवान् परमां सिद्धिं परं योगं च भारत ।

भारत! इन सब बातोंको सोच-विचारकर देवलने जो संन्यास लेनेका ही निश्चय किया, उससे उन्होंने परमसिद्धि और उत्तम योगको प्राप्त कर लिया ॥ ६३½ ॥

ततो देवाः समागम्य बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ ६४ ॥
जैगीषव्ये तपश्चास्य प्रशंसन्ति तपस्विनः ।

तब बृहस्पति आदि सब देवता और तपस्वी वहाँ आकर जैगीषव्य मुनिके तपकी प्रशंसा करने लगे ॥ ६४½ ॥

अथाब्रवीदृषिवरो देवान् वै नारदस्तथा ॥ ६५ ॥
जैगीषव्ये तपो नास्ति विस्मापयति योऽसितम् ।

तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ नारदने देवताओंसे कहा—'जैगीषव्यमें तपस्या नहीं है; क्योंकि ये असित मुनिको अपना प्रभाव दिखाकर आश्चर्यमें डाल रहे हैं' ॥ ६५½ ॥

तमेवंवादिनं धीरं प्रत्यूचुस्ते दिवौकसः ॥ ६६ ॥
नैवमित्येव शंसन्तो जैगीषव्यं महामुनिम् ।
नातः परतरं किंचित् तुल्यमस्ति प्रभावतः ॥ ६७ ॥
तेजसस्तपसश्चास्य योगस्य च महात्मनः ।

ऐसा कहनेवाले ज्ञानी नारदमुनिको देवताओंने महामुनि जैगीषव्यकी प्रशंसा करते हुए इस प्रकार उत्तर दिया—'आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये; क्योंकि प्रभाव, तेज, तपस्या और योगकी दृष्टिसे इन महात्मासे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है' ॥ ६६-६७½ ॥

एवं प्रभावो धर्मात्मा जैगीषव्यस्तथासितः ।
तयोरिदं स्थानवरं तीर्थं चैव महात्मनोः ॥ ६८ ॥

धर्मात्मा जैगीषव्य तथा असितमुनिका ऐसा ही प्रभाव था। उन दोनों महात्माओंका यह श्रेष्ठ स्थान ही तीर्थ है ॥

तत्राप्युपस्पृश्य ततो महात्मा
दत्त्वा च वित्तं हलभृद् द्विजेभ्यः ।
अवाप्य धर्मं परमार्थकर्मा
जगाम सोमस्य महत् सुतीर्थम् ॥ ६९ ॥

पारमार्थिक कर्म करनेवाले महात्मा हलधर वहाँ भी स्नान करके ब्राह्मणोंको धन-दान दे धर्मका फल पाकर सोमके महान् एवं उत्तम तीर्थमें गये ॥ ६९ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसंगमें सारस्वतोपाख्यानविषयक पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सारस्वततीर्थकी महिमाके प्रसंगमें दधीच ऋषि और सारस्वत मुनिके चरित्रका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

यत्रेजिवानुडुपती राजसूयेन भारत ।
तस्मिंस्तीर्थे महानासीत् संग्रामस्तारकामयः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—भरतनन्दन! वही सोमतीर्थ है, जहाँ नक्षत्रोंके स्वामी चन्द्रमाने राजसूय यज्ञ किया था। उसी तीर्थमें महान् तारकामय संग्राम हुआ था ॥ १ ॥

तत्राप्युपस्पृश्य बले दत्त्वा दानानि चात्मवान् ।
सारस्वतस्य धर्मात्मा मुनेस्तीर्थं जगाम ह ॥ २ ॥

धर्मात्मा एवं मनस्वी बलरामजी उस तीर्थमें भी स्नान एवं दान करके सारस्वत मुनिके तीर्थमें गये ॥ २ ॥

तत्र द्वादशवार्षिक्यामनावृष्ट्यां द्विजोत्तमान् ।
वेदानध्यापयामास पुरा सारस्वतो मुनिः ॥ ३ ॥

प्राचीनकालमें जब बारह वर्षोंतक अनावृष्टि हो गयी थी, सारस्वत मुनिने वहीं उत्तम ब्राह्मणोंको वेदाध्ययन कराया था॥

जनमेजय उवाच

कथं द्वादशवार्षिक्यामनावृष्ट्यां द्विजोत्तमान् ।
ऋषीनध्यापयामास पुरा सारस्वतो मुनिः ॥ ४ ॥

जनमेजयने पूछा—मुने ! प्राचीन कालमें सारस्वत मुनिने बारह वर्षोंकी अनावृष्टिके समय उत्तम ब्राह्मणोंको किस प्रकार वेदोंका अध्ययन कराया था ? ॥ ४ ॥

वैशम्पायन उवाच

आसीत् पूर्वं महाराज मुनिर्धीमान् महातपाः ।
दधीच इति विख्यातो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥ ५ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—महाराज ! पूर्वकालमें एक बुद्धिमान् महातपस्वी मुनि रहते थे, जो ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय थे । उनका नाम था दधीच ॥ ५ ॥

तस्यातितपसः शक्रो बिभेति सततं विभो ।
न स लोभयितुं शक्यः फलैर्बहुविधैरपि ॥ ६ ॥

प्रभो ! उनकी भारी तपस्यासे इन्द्र सदा डरते रहते थे । नाना प्रकारके फलोंका प्रलोभन देनेपर भी उन्हें लुभाया नहीं जा सकता था ॥ ६ ॥

प्रलोभनार्थं तस्याथ प्राहिणोत् पाकशासनः ।
दिव्यामप्सरसं पुण्यां दर्शनीयामलम्बुषाम् ॥ ७ ॥

तब इन्द्रने मुनिको लुभानेके लिये एक पवित्र दर्शनीय एवं दिव्य अप्सरा भेजी, जिसका नाम था अलम्बुषा ॥ ७ ॥

तस्य तर्पयतो देवान् सरस्वत्यां महात्मनः ।
समीपतो महाराज सोपातिष्ठत भाविनी ॥ ८ ॥

महाराज ! एक दिन, जब महात्मा दधीच सरस्वती नदीमें देवताओंका तर्पण कर रहे थे, वह माननीय अप्सरा उनके पास जाकर खड़ी हो गयी ॥ ८ ॥

तां दिव्यवपुषं दृष्ट्वा तस्यर्षेर्भावितात्मनः ।
रेतः स्कन्नं सरस्वत्यां तत् सा जग्राह निम्नगा॥ ९ ॥

उस दिव्यरूपधारिणी अप्सराको देखकर उन विशुद्ध अन्तःकरणवाले महर्षिका वीर्य सरस्वतीके जलमें गिर पड़ा । उस वीर्यको सरस्वती नदीने स्वयं ग्रहण कर लिया ॥ ९ ॥

कुक्षौ चाप्यदधाद्धृष्टा तद् रेतः पुरुषर्षभ ।
सा दधार च तं गर्भं पुत्रहेतोर्महानदी ॥ १० ॥

पुरुषप्रवर ! उस महानदीने हर्षमें भरकर पुत्रके लिये उस वीर्यको अपनी कुक्षिमें रख लिया और इस प्रकार वह गर्भवती हो गयी ॥ १० ॥

सुषुवे चापि समये पुत्रं सा सरितां वरा ।
जगाम पुत्रमादाय तमृषिं प्रति च प्रभो ॥ ११ ॥

प्रभो ! समय आनेपर सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वतीने एक पुत्रको जन्म दिया और उसे लेकर वह ऋषिके पास गयी ॥

ऋषिसंसदि तं दृष्ट्वा सा नदी मुनिसत्तमम् ।
ततः प्रोवाच राजेन्द्र ददती पुत्रमस्य तम् ॥ १२ ॥

राजेन्द्र ! ऋषियोंकी सभामें बैठे हुए मुनिश्रेष्ठ दधीचको देखकर उन्हें उनका वह पुत्र सौंपती हुई सरस्वती नदी इस प्रकार बोली—॥ १२ ॥

ब्रह्मर्षे तव पुत्रोऽयं त्वद्भक्त्या धारितो मया ।
दृष्ट्वा तेऽप्सरसं रेतो यत् स्कन्नं प्रागलम्बुषाम्॥ १३ ॥
तत् कुक्षिणा वै ब्रह्मर्षे त्वद्भक्त्या धृतवत्यहम् ।
न विनाशमिदं गच्छेत् त्वत्तेज इति निश्चयात्॥ १४ ॥
प्रतिगृह्णीष्व पुत्रं स्वं मया दत्तमनिन्दितम् ।

'ब्रह्मर्षे ! यह आपका पुत्र है । इसे आपके प्रति भक्ति होनेके कारण मैंने अपने गर्भमें धारण किया था । ब्रह्मर्षे ! पहले अलम्बुषा नामक अप्सराको देखकर जो आपका वीर्य स्खलित हुआ था, उसे आपके प्रति भक्ति होनेके कारण मैंने अपने गर्भमें धारण कर लिया था; क्योंकि मेरे मनमें यह विचार हुआ था कि आपका यह तेज नष्ट न होने पावे । अतः आप मेरे दिये हुए अपने इस अनिन्दनीय पुत्रको ग्रहण कीजिये' ॥ १३-१४½ ॥

इत्युक्तः प्रतिजग्राह प्रीतिं चावाप पुष्कलाम् ॥ १५ ॥
स्वसुतं चाप्यजिघ्रत् तं मूर्ध्नि प्रेम्णा द्विजोत्तमः ।
परिष्वज्य चिरं कालं तदा भरतसत्तम ॥ १६ ॥
सरस्वत्यै वरं प्रादात् प्रीयमाणो महामुनिः ।
विश्वेदेवाः सपितरो गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥ १७ ॥
तृप्तिं यास्यन्ति सुभगे तर्प्यमाणास्तवाम्भसा ।

उसके ऐसा कहनेपर मुनिने उस पुत्रको ग्रहण कर लिया और वे बड़े प्रसन्न हुए । भरतभूषण ! उन द्विजश्रेष्ठने बड़े प्रेमसे अपने उस पुत्रका मस्तक सूँघा और दीर्घकालतक छाती-से लगाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए महामुनिने सरस्वतीको वर दिया—'सुभगे ! तुम्हारे जलसे तर्पण करनेपर विश्वेदेव, पितृगण तथा गन्धर्वों और अप्सराओंके समुदाय सभी तृप्ति-लाभ करेंगे' ॥ १५–१७½ ॥

इत्युक्त्वा स तु तुष्टाव वचोभिर्वै महानदीम् ॥ १८ ॥
प्रीतः परमहृष्टात्मा यथावच्छृणु पार्थिव ।

राजन् ! ऐसा कहकर अत्यन्त हर्षोत्फुल्ल हृदयसे मुनिने प्रेमपूर्वक उत्तम वाणीद्वारा सरस्वती देवीका स्तवन किया । उस स्तुतिको तुम यथार्थरूपसे सुनो ॥ १८½ ॥

प्रसूतासि महाभागे सरसो ब्रह्मणः पुरा ॥ १९ ॥
जानन्ति त्वां सरिच्छ्रेष्ठे मुनयः संशितव्रताः ।
मम प्रियकरी चापि सततं प्रियदर्शने ॥ २० ॥
तस्मात् सारस्वतः पुत्रो महांस्ते वरवर्णिनि ।
तवैव नाम्ना प्रथितः पुत्रस्ते लोकभावनः ॥ २१ ॥

'महाभागे ! तुम पूर्वकालमें ब्रह्माजीके सरोवरसे प्रकट हुई

हो । सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती ! कठोर व्रतका पालन करनेवाले मुनि तुम्हारी महिमाको जानते हैं । प्रियदर्शने ! तुम सदा मेरा भी प्रिय करती रही हो; अतः वरवर्णिनि ! तुम्हारा यह लोकभावन महान् पुत्र तुम्हारे ही नामपर 'सारस्वत' कहलायेगा ॥

सारस्वत इति ख्यातो भविष्यति महातपाः ।
एष द्वादशवार्षिक्यामनावृष्ट्यां द्विजर्षभान् ॥ २२ ॥
सारस्वतो महाभागे वेदानध्यापयिष्यति ।

'यह सारस्वत नामसे विख्यात महातपस्वी होगा । महाभागे ! इस संसारमें बारह वर्षोंतक जब वर्षा बंद हो जायगी, उस समय यह सारस्वत ही श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको वेद पढ़ायेगा ॥ २२½ ॥

पुण्याभ्यश्च सरिद्भ्यस्त्वं सदा पुण्यतमा शुभे॥ २३ ॥
भविष्यसि महाभागे मत्प्रसादात् सरस्वति ।

'शुभे ! महासौभाग्यशालिनी सरस्वति ! तुम मेरे प्रसादसे अन्य पवित्र सरिताओंकी अपेक्षा सदा ही अधिक पवित्र बनी रहोगी' ॥ २३½ ॥

एवं सा संस्तुतानेन वरं लब्ध्वा महानदी ॥ २४ ॥
पुत्रमादाय मुदिता जगाम भरतर्षभ ।

भरतश्रेष्ठ ! इस प्रकार उनके द्वारा प्रशंसित हो वर पाकर वह महानदी पुत्रको लेकर प्रसन्नतापूर्वक चली गयी ॥

एतस्मिन्नेव काले तु विरोधे देवदानवैः ॥ २५ ॥
शक्रः प्रहरणान्वेषी लोकांस्त्रीन् विचचार ह ।

इसी समय देवताओं और दानवोंमें विरोध होनेपर इन्द्र अस्त्र-शस्त्रोंकी खोजके लिये तीनों लोकोंमें विचरण करने लगे॥

न चोपलेभे भगवाञ्छक्रः प्रहरणं तदा ॥ २६ ॥
यद्वै तेषां भवेद् योग्यं वधाय विबुधद्विषाम् ।

परंतु भगवान् शक्र उस समय ऐसा कोई हथियार न पा सके, जो उन देवद्रोहियोंके वधके लिये उपयोगी हो सके ॥

ततोऽब्रवीत् सुराञ्शक्रो न मे शक्या महासुराः॥ २७ ॥
ऋतेऽस्थिभिर्दधीचस्य निहन्तुं त्रिदशद्विषः ।

तदनन्तर इन्द्रने देवताओंसे कहा—'दधीच मुनिकी अस्थियोंके सिवा और किसी अस्त्र-शस्त्रसे मेरे द्वारा देवद्रोही महान् असुर नहीं मारे जा सकते ॥ २७½ ॥

तस्माद् गत्वा ऋषिश्रेष्ठो याच्यतां सुरसत्तमाः॥ २८ ॥
दधीचास्थीनि देहीति तैर्वधिष्यामहे रिपून् ।

'अतः सुरश्रेष्ठगण ! तुमलोग जाकर मुनिवर दधीचसे याचना करो कि आप अपनी हड्डियाँ हमें दे दें । हम उन्हींके द्वारा अपने शत्रुओंका वध करेंगे' ॥ २८½ ॥

स च तैर्याचितोऽस्थीनि यत्नादृषिवरस्तदा ॥ २९ ॥
प्राणत्यागं कुरुश्रेष्ठ चकारैवाविचारयन् ।
स लोकानक्षयान् प्राप्तो देवप्रियकरस्तदा ॥ ३० ॥

कुरुश्रेष्ठ ! देवताओंके द्वारा प्रयत्नपूर्वक अस्थियोंके लिये याचना की जानेपर मुनिवर दधीचने बिना कोई विचार किये अपने प्राणोंका परित्याग कर दिया । उस समय देवताओंका प्रिय करनेके कारण वे अक्षय लोकोंमें चले गये ॥ २९-३० ॥

तस्यास्थिभिरथो शक्रः सम्प्रहृष्टमनास्तदा ।
कारयामास दिव्यानि नानाप्रहरणानि च ॥ ३१ ॥
गदावज्राणि चक्राणि गुरून् दण्डांश्च पुष्कलान् ।

तब इन्द्रने प्रसन्नचित्त होकर दधीचकी हड्डियोंसे गदा, वज्र, चक्र और बहुसंख्यक भारी दण्ड आदि नाना प्रकारके दिव्य आयुध तैयार कराये ॥ ३१½ ॥

स हि तीव्रेण तपसा सम्भृतः परमर्षिणा ॥ ३२ ॥
प्रजापतिसुतेनाथ भृगुणा लोकभावनः ।
अतिकायः स तेजस्वी लोकसारो विनिर्मितः ॥ ३३ ॥

ब्रह्माजीके पुत्र महर्षि भृगुने तीव्र तपस्यासे भरे हुए लोकमङ्गलकारी विशालकाय एवं तेजस्वी दधीचको उत्पन्न किया था । ऐसा जान पड़ता था, मानो सम्पूर्ण जगत्‌के सारतत्त्वसे उनका निर्माण किया गया हो ॥ ३२-३३ ॥

जज्ञे शैलगुरुः प्रांशुर्महिम्ना प्रथितः प्रभुः ।
नित्यमुद्विजते चास्य तेजसः पाकशासनः ॥ ३४ ॥

वे पर्वतके समान भारी और ऊँचे थे । अपनी महत्ताके लिये वे सामर्थ्यशाली मुनि सर्वत्र विख्यात थे । पाकशासन इन्द्र उनके तेजसे सदा उद्विग्न रहते थे ॥ ३४ ॥

तेन वज्रेण भगवान् मन्त्रयुक्तेन भारत ।
भृशं क्रोधविसृष्टेन ब्रह्मतेजोद्भवेन च ॥ ३५ ॥
दैत्यदानववीराणां जघान नवतीर्नव ।

भरतनन्दन ! ब्रह्मतेजसे प्रकट हुए उस वज्रको मन्त्रोच्चारणके साथ अत्यन्त क्रोधपूर्वक छोड़कर भगवान् इन्द्रने आठ सौ दस दैत्य-दानव वीरोंका वध कर डाला ॥ ३५½ ॥

अथ काले व्यतिक्रान्ते महत्यतिभयंकरे ॥ ३६ ॥
अनावृष्टिरनुप्राप्ता राजन् द्वादशवार्षिकी ।

राजन् ! तदनन्तर सुदीर्घ काल व्यतीत होनेपर जगत्‌में बारह वर्षोंतक स्थिर रहनेवाली अत्यन्त भयंकर अनावृष्टि प्राप्त हुई ॥ ३६½ ॥

तस्यां द्वादशवार्षिक्यामनावृष्ट्यां महर्षयः ॥ ३७ ॥
वृत्त्यर्थं प्राद्रवन् राजन् क्षुधार्ताः सर्वतोदिशम् ।

नरेश्वर ! बारह वर्षोंकी उस अनावृष्टिमें सब महर्षि भूखसे पीड़ित हो जीविकाके लिये सम्पूर्ण दिशाओंमें दौड़ने लगे ॥

दिग्भ्यस्तान् प्रद्रुतान् दृष्ट्वा मुनिः सारस्वतस्तदा ॥ ३८ ॥
गमनाय मतिं चक्रे तं प्रोवाच सरस्वती ।

सम्पूर्ण दिशाओंसे भागकर इधर-उधर जाते हुए उन महर्षियोंको देखकर सारस्वत मुनिने भी वहाँसे अन्यत्र जानेका विचार किया । तब सरस्वतीदेवीने उनसे कहा ॥ ३८½ ॥

न गन्तव्यमितः पुत्र तवाहारमहं सदा ॥ ३९ ॥
दास्यामि मत्स्यप्रवरानुष्यतामिह भारत ।

भरतनन्दन ! सरस्वती इस प्रकार बोलीं—'बेटा ! तुम्हें यहाँसे कहीं नहीं जाना चाहिये । मैं सदा तुम्हें भोजनके लिये उत्तमोत्तम मछलियाँ दूँगी; अतः तुम यहीं रहो' ॥ ३९½ ॥

इत्युक्तस्तर्पयामास स पितॄन् देवतास्तथा ॥ ४० ॥
आहारमकरोन्नित्यं प्राणान् वेदांश्च धारयन् ।

सरस्वतीके ऐसा कहनेपर सारस्वत मुनि वहीं रहकर देवताओं और पितरोंको तृप्त करने लगे । वे प्रतिदिन भोजन करते और अपने प्राणों तथा वेदोंकी रक्षा करते थे ॥४०½॥

अथ तस्यामनावृष्ट्यामतीतायां महर्षयः ॥ ४१ ॥
अन्योन्यं परिपप्रच्छुः पुनः स्वाध्यायकारणात् ।

जब बारह वर्षोंकी वह अनावृष्टि प्रायः बीत गयी, तब महर्षि पुनः स्वाध्यायके लिये एक-दूसरेसे पूछने लगे ॥४१½॥

तेषां क्षुधापरीतानां नष्टा वेदाभिधावताम् ॥ ४२ ॥
सर्वेषामेव राजेन्द्र न कश्चित् प्रतिभानवान् ।

राजेन्द्र ! उस समय भूखसे पीड़ित होकर इधर-उधर दौड़नेवाले सभी महर्षि वेद भूल गये थे । कोई भी ऐसा प्रतिभाशाली नहीं था, जिसे वेदोंका स्मरण रह गया हो ॥

अथ कश्चिदृषिस्तेषां सारस्वतमुपेयिवान् ॥ ४३ ॥
कुर्वाणं संशितात्मानं स्वाध्यायमृषिसत्तमम् ।

तदनन्तर उनमेंसे कोई ऋषि प्रतिदिन स्वाध्याय करनेवाले शुद्धात्मा मुनिवर सारस्वतके पास आये ॥ ४३½ ॥

स गत्वाऽऽचष्ट तेभ्यश्च सारस्वतमतिप्रभम् ॥ ४४ ॥
स्वाध्यायममरप्रख्यं कुर्वाणं विजने वने ।

फिर वहाँसे जाकर उन्होंने सब महर्षियोंको बताया कि 'देवताओंके समान अत्यन्त कान्तिमान् एक सारस्वत मुनि हैं, जो निर्जन वनमें रहकर सदा स्वाध्याय करते हैं' ॥ ४४½ ॥

ततः सर्वे समाजग्मुस्तत्र राजन् महर्षयः ॥ ४५ ॥
सारस्वतं मुनिश्रेष्ठमिदमूचुः समागताः ।
अस्मानध्यापयस्वेति तानुवाच ततो मुनिः ॥ ४६ ॥
शिष्यत्वमुपगच्छध्वं विधिवद्धि ममेत्युत ।

राजन् ! यह सुनकर वे सब महर्षि वहाँ आये और आकर मुनिश्रेष्ठ सारस्वतसे इस प्रकार बोले—'मुने ! आप हम लोगोंको वेद पढ़ाइये ।' तब सारस्वतने उनसे कहा—'आपलोग विधिपूर्वक मेरी शिष्यता ग्रहण करें' ॥ ४५-४६½ ॥

तत्राब्रुवन् मुनिगणा बालस्त्वमसि पुत्रक ॥ ४७ ॥
स तानाह न मे धर्मो नश्येदिति पुनर्मुनीन् ।
यो ह्यधर्मेण वै ब्रूयाद् गृह्णीयाद् योऽप्यधर्मतः ॥ ४८ ॥
हीयेतां तावुभौ क्षिप्रं स्यातां वा वैरिणावुभौ ।

तब वहाँ उन मुनियोंने कहा—'बेटा ! तुम तो अभी बालक हो' (हम तुम्हारे शिष्य कैसे हो सकते हैं ?) तब सारस्वतने पुनः उन मुनियोंसे कहा—'मेरा धर्म नष्ट न हो, इसलिये मैं आपलोगोंको शिष्य बनाना चाहता हूँ; क्योंकि जो अधर्मपूर्वक वेदोंका प्रवचन करता है तथा जो अधर्मपूर्वक उन वेदमन्त्रोंको ग्रहण करता है, वे दोनों शीघ्र ही हीनावस्थाको प्राप्त होते हैं अथवा दोनों एक-दूसरेके वैरी हो जाते हैं ॥

न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः ॥ ४९ ॥
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान् ।

'न बहुत वर्षोंकी अवस्था होनेसे, न बाल पकनेसे, न धनसे और न अधिक भाई-बन्धुओंसे कोई बड़ा होता है । ऋषियोंने हमारे लिये यही धर्म निश्चित किया है कि हममेंसे जो वेदोंका प्रवचन कर सके, वही महान् है' ॥ ४९½ ॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य मुनयस्ते विधानतः ॥ ५० ॥
तस्माद् वेदाननुप्राप्य पुनर्धर्मं प्रचक्रिरे ।

सारस्वतकी यह बात सुनकर वे मुनि उनसे विधिपूर्वक वेदोंका उपदेश पाकर पुनः धर्मका अनुष्ठान करने लगे ॥

षष्टिर्मुनिसहस्राणि शिष्यत्वं प्रतिपेदिरे ॥ ५१ ॥
सारस्वतस्य विप्रर्षेर्वेदस्वाध्यायकारणात् ।

साठ हजार मुनियोंने स्वाध्यायके निमित्त ब्रह्मर्षि सारस्वतकी शिष्यता ग्रहण की थी ॥ ५१½ ॥

मुष्टिं मुष्टिं ततः सर्वे दर्भाणां ते ह्युपाहरन् ।
तस्यासनार्थं विप्रर्षेर्बालस्यापि वशे स्थिताः ॥ ५२ ॥

वे ब्रह्मर्षि यद्यपि बालक थे तो भी वे सभी बड़े-बड़े महर्षि उनकी आज्ञाके अधीन रहकर उनके आसनके लिये एक-एक मुट्ठी कुश ले आया करते थे ॥ ५२ ॥

तत्रापि दत्त्वा वसु रौहिणेयो
महाबलः केशवपूर्वजोऽथ ।
जगाम तीर्थं मुदितः क्रमेण
ख्यातं महद् वृद्धकन्या स्म यत्र ॥ ५३ ॥

श्रीकृष्णके बड़े भाई महाबली रोहिणीनन्दन बलरामजी वहाँ भी स्नान और धन दान करके प्रसन्नतापूर्वक क्रमशः सब तीर्थोंमें विचरते हुए उस विख्यात महातीर्थमें गये, जहाँ कभी वृद्धा कुमारी कन्या निवास करती थी ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसंगमें सारस्वतोपाख्यानविषयक इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

वृद्ध कन्याका चरित्र, शृङ्गवान्‌के साथ उसका विवाह और स्वर्गगमन तथा उस तीर्थका माहात्म्य

जनमेजय उवाच

कथं कुमारी भगवंस्तपोयुक्ता ह्यभूत् पुरा ।
किमर्थं च तपस्तेपे को वास्या नियमोऽभवत् ॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—भगवन् ! पूर्वकालमें वह कुमारी तपस्यामें क्यों संलग्न हुई ? उसने किसलिये तपस्या की और उसका कौन-सा नियम था ? ॥ १ ॥

सुदुष्करमिदं ब्रह्मंस्त्वत्तः श्रुतमनुत्तमम् ।
आख्याहि तत्त्वमखिलं यथा तपसि सा स्थिता ॥ २ ॥

ब्रह्मन् ! मैंने आपके मुखसे यह अत्यन्त उत्तम तथा परम दुष्कर तपकी बात सुनी है । आप सारा वृत्तान्त यथार्थ

रूपसे बताइये; वह कन्या क्यों तपस्यामें प्रवृत्त हुई थी ? ॥

वैशम्पायन उवाच

ऋषिरासीन्महावीर्यः कुणिर्गर्गो महायशाः।
स तप्त्वा विपुलं राजंस्तपो वै तपतां वरः ॥ ३ ॥
मनसाथ सुतां सुभ्रूं समुत्पादितवान् विभुः।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! प्राचीन कालमें एक महान् शक्तिशाली और महायशस्वी कुणिर्गर्ग नामक ऋषि रहते थे। तपस्या करनेवालोंमें श्रेष्ठ उन महर्षिने बड़ा भारी तप करके अपने मनसे एक सुन्दरी कन्या उत्पन्न की ॥३½॥

तां च दृष्ट्वा मुनिः प्रीतः कुणिर्गर्गो महायशाः ॥ ४ ॥
जगाम त्रिदिवं राजन् संत्यज्येह कलेवरम्।

नरेश्वर ! उसे देखकर महायशस्वी मुनि कुणिर्गर्ग बड़े प्रसन्न हुए और कुछ कालके पश्चात् अपना यह शरीर छोड़कर स्वर्गलोकमें चले गये ॥ ४½ ॥

सुभ्रूः सा ह्यथ कल्याणी पुण्डरीकनिभेक्षणा ॥ ५ ॥
महता तपसोग्रेण कृत्वाऽऽश्रममनिन्दिता।
उपवासैः पूजयन्ती पितॄन् देवांश्च सा पुरा ॥ ६ ॥

तदनन्तर कमलके समान सुन्दर नेत्रोंवाली वह कल्याणमयी सती साध्वी सुन्दरी कन्या पूर्वकालमें अपने लिये आश्रम बनाकर बड़ी कठोर तपस्या तथा उपवासके साथ-साथ देवताओं और पितरोंका पूजन करती हुई वहाँ रहने लगी ॥ ५-६ ॥

तस्यास्तु तपसोग्रेण महान् कालोऽत्यगान्नृप।
सा पित्रा दीयमानापि तत्र नैच्छदनिन्दिता ॥ ७ ॥
आत्मनः सदृशं सा तु भर्तारं नान्वपश्यत।

राजन् ! उग्र तपस्या करते हुए उसका बहुत समय व्यतीत हो गया। पिताने अपने जीवनकालमें उसका किसीके साथ ब्याह कर देनेका प्रयत्न किया; परंतु उस अनिन्द्य सुन्दरीने विवाहकी इच्छा नहीं की। उसे अपने योग्य कोई वर ही नहीं दिखायी देता था ॥ ७½ ॥

ततः सा तपसोग्रेण पीडयित्वाऽऽत्मनस्तनुम् ॥ ८ ॥
पितृदेवार्चनरता बभूव विजने वने।

तब वह उग्र तपस्याके द्वारा अपने शरीरको पीड़ा देकर निर्जन वनमें पितरों तथा देवताओंके पूजनमें तत्पर हो गयी ॥

साऽऽत्मानं मन्यमानापि कृतकृत्यं श्रमान्विता ॥ ९ ॥
वार्धकेन च राजेन्द्र तपसा चैव कर्शिता।

राजेन्द्र ! परिश्रमसे थक जानेपर भी वह अपने आपको कृतार्थ मानती रही। धीरे-धीरे बुढ़ापा और तपस्याने उसे दुर्बल बना दिया ॥ ९½ ॥

सा नाशकद् यदा गन्तुं पदात् पदमपि स्वयम् ॥ १० ॥
चकार गमने बुद्धिं परलोकाय वै तदा।

जब वह स्वयं एक पग भी चलनेमें असमर्थ हो गयी, तब उसने परलोकमें जानेका विचार किया ॥ १०½ ॥

मोक्तुकामां तु तां दृष्ट्वा शरीरं नारदोऽब्रवीत् ॥ ११ ॥
असंस्कृतायाः कन्यायाः कुतो लोकास्तवानघे।
एवं तु श्रुतमस्माभिर्देवलोके महाव्रते ॥ १२ ॥
तपः परमकं प्राप्तं न तु लोकास्त्वया जिताः।

उसकी देहत्यागकी इच्छा देख देवर्षि नारदने उससे कहा—'महान् व्रतका पालन करनेवाली निष्पाप नारी ! तुम्हारा तो अभी विवाहसंस्कार भी नहीं हुआ, तुम तो अभी कन्या हो। फिर तुम्हें पुण्यलोक कैसे प्राप्त हो सकते हैं ? तुम्हारे सम्बन्धमें ऐसी बात मैंने देवलोकमें सुनी है। तुमने तपस्या तो बहुत बड़ी की है; परंतु पुण्यलोकोंपर अधिकार नहीं प्राप्त किया है' ॥ ११-१२½ ॥

तन्नारदवचः श्रुत्वा साब्रवीदृषिसंसदि ॥ १३ ॥
तपसोऽर्धं प्रयच्छामि पाणिग्राहस्य सत्तम।

नारदजीकी यह बात सुनकर वह ऋषियोंकी सभामें उपस्थित होकर बोली—'साधुशिरोमणे ! आपमेंसे जो कोई मेरा पाणिग्रहण करेगा, उसे मैं अपनी तपस्याका आधा भाग दे दूँगी' ॥ १३½ ॥

इत्युक्ते चास्या जग्राह पाणिं गालवसम्भवः ॥ १४ ॥
ऋषिः प्राक् शृङ्गवान्नाम समयं चेममब्रवीत्।
समयेन तवाद्याहं पाणिं स्प्रक्ष्यामि शोभने ॥ १५ ॥
यद्येकरात्रं वस्तव्यं त्वया सह मयेति ह।

उसके ऐसा कहनेपर सबसे पहले गालवके पुत्र शृङ्गवान् ऋषिने उसका पाणिग्रहण करनेकी इच्छा प्रकट की और सबसे पहले उसके सामने यह शर्त रक्खी—'शोभने ! मैं एक शर्तके साथ आज तुम्हारा पाणिग्रहण करूँगा। विवाहके बाद तुम्हें एक रात मेरे साथ रहना होगा। यदि यह स्वीकार हो तो मैं तैयार हूँ' ॥ १४-१५½ ॥

तथेति सा प्रतिश्रुत्य तस्मै पाणिं ददौ तदा ॥ १६ ॥
यथादृष्टेन विधिना हुत्वा चाग्निं विधानतः।
चक्रे च पाणिग्रहणं तस्योद्वाहं च गालविः ॥ १७ ॥

तब 'बहुत अच्छा' कहकर उसने मुनिके हाथमें अपना हाथ दे दिया। फिर गालव-पुत्रने शास्त्रोक्त रीतिसे विधिपूर्वक अग्निमें हवन करके उसका पाणिग्रहण और विवाह-संस्कार किया॥

सा रात्रावभवद् राजंस्तरुणी वरवर्णिनी।
दिव्याभरणवस्त्रा च दिव्यगन्धानुलेपना ॥ १८ ॥

राजन् ! रात्रिमें वह दिव्य वस्त्राभूषणोंसे विभूषित और दिव्य गन्धयुक्त अङ्गरागसे अलंकृत परम सुन्दरी तरुणी हो गयी ॥ १८ ॥

तां दृष्ट्वा गालविः प्रीतो दीपयन्तीमिव श्रिया।
उवास च क्षपामेकां प्रभाते साब्रवीच्च तम् ॥ १९ ॥

उसे अपनी कान्तिसे सब ओर प्रकाश फैलाती देख गालव-कुमार बड़े प्रसन्न हुए और उसके साथ एक रात निवास किया। सबेरा होते ही वह मुनिसे बोली—॥ १९ ॥

यस्त्वया समयो विप्र कृतो मे तपतां वर।
तेनोषितास्मि भद्रं ते स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम् ॥ २० ॥

'तपस्वी मुनियोंमें श्रेष्ठ ब्रह्मर्षे ! आपने जो शर्त की थी, उसके अनुसार मैं आपके साथ रह चुकी। आपका मङ्गल हो, कल्याण हो। अब आज्ञा दीजिये, मैं जाती हूँ' ॥ २० ॥

सा निर्गताब्रवीद् भूयो योऽस्मिंस्तीर्थे समाहितः।
वसते रजनीमेकां तर्पयित्वा दिवौकसः ॥ २१ ॥
चत्वारिंशतमष्टौ च द्वौ चाष्टौ सम्यगाचरेत्।
यो ब्रह्मचर्यं वर्षाणि फलं तस्य लभेत सः ॥ २२ ॥

यों कहकर वह वहाँसे चल दी। जाते-जाते उसने फिर कहा—'जो अपने चित्तको एकाग्र कर इस तीर्थमें स्नान और देवताओंका तर्पण करके एक रात निवास करेगा, उसे अट्ठावन वर्षोंतक विधिपूर्वक ब्रह्मचर्य पालन करनेका फल प्राप्त होगा' ॥ २१-२२ ॥

एवमुक्त्वा ततः साध्वी देहं त्यक्त्वा दिवं गता।
ऋषिरप्यभवद् दीनस्तस्या रूपं विचिन्तयन् ॥ २३ ॥

ऐसा कहकर वह साध्वी तपस्विनी देह त्यागकर स्वर्गलोकमें चली गयी और मुनि उसके दिव्यरूपका चिन्तन करते हुए बहुत दुखी हो गये ॥ २३ ॥

समयेन तपोऽर्धं च कृच्छ्रात् प्रतिगृहीतवान्।
साधयित्वा तदाऽऽत्मानं तस्याः स गतिमन्वियात् ॥
दुःखितो भरतश्रेष्ठ तस्या रूपबलात्कृतः।

उन्होंने शर्तके अनुसार उसकी तपस्याका आधा भाग बड़े कष्टसे स्वीकार किया। फिर वे भी अपने शरीरका परित्याग करके उसीके पथपर चले गये। भरतश्रेष्ठ! वे उसके रूपपर बलात् आकृष्ट होकर अत्यन्त दुखी हो गये थे ॥ २४½ ॥

एतत्ते वृद्धकन्याया व्याख्यातं चरितं महत् ॥ २५ ॥
तथैव ब्रह्मचर्यं च स्वर्गस्य च गतिः शुभा।

यह मैंने तुमसे वृद्ध कन्याके महान् चरित्र, ब्रह्मचर्यपालन तथा स्वर्गलोककी प्राप्तिरूप सद्गतिका वर्णन किया ॥

तत्रस्थश्चापि शुश्राव हतं शल्यं हलायुधः ॥ २६ ॥
तत्रापि दत्त्वा दानानि द्विजातिभ्यः परंतपः।
शुशोच शल्यं संग्रामे निहतं पाण्डवैस्तदा ॥ २७ ॥
समन्तपञ्चकद्वारात् ततो निष्क्रम्य माधवः।
पप्रच्छर्षिगणान् रामः कुरुक्षेत्रस्य यत् फलम् ॥ २८ ॥

वहीं रहकर शत्रुओंको संताप देनेवाले बलरामजीने शल्यके मारे जानेका समाचार सुना था। वहाँ भी मधुवंशी बलरामने ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके दान दे समन्तपञ्चक द्वारसे निकलकर ऋषियोंसे कुरुक्षेत्रके सेवनका फल पूछा॥

ते पृष्टा यदुसिंहेन कुरुक्षेत्रफलं विभो।
समाचख्युर्महात्मानस्तस्मै सर्वं यथातथम् ॥ २९ ॥

प्रभो! उस यदुसिंहके द्वारा कुरुक्षेत्रके फलके विषयमें पूछे जानेपर वहाँ रहनेवाले महात्माओंने उन्हें सब कुछ यथावत् रूपसे बताया ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसंगमें सारस्वतोपाख्यानविषयक बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ऋषियोंद्वारा कुरुक्षेत्रकी सीमा और महिमाका वर्णन

ऋषय ऊचुः

प्रजापतेरुत्तरवेदिरुच्यते
सनातनं राम समन्तपञ्चकम्।
समीजिरे यत्र पुरा दिवौकसो
वरेण सत्रेण महावरप्रदाः ॥ १ ॥

ऋषियोंने कहा—बलरामजी! समन्तपञ्चक क्षेत्र सनातन तीर्थ है। इसे प्रजापतिकी उत्तरवेदी कहते हैं। वहाँ प्राचीनकालमें महान् वरदायक देवताओंने बहुत बड़े यज्ञका अनुष्ठान किया था ॥ १ ॥

पुरा च राजर्षिवरेण धीमता
बहूनि वर्षाण्यमितेन तेजसा।
प्रकृष्टमेतत् कुरुणा महात्मना
ततः कुरुक्षेत्रमितीह पप्रथे ॥ २ ॥

पहले अमित तेजस्वी बुद्धिमान् राजर्षिप्रवर महात्मा कुरुने इस क्षेत्रको बहुत वर्षोंतक जोता था, इसलिये इस जगत्में इसका नाम कुरुक्षेत्र प्रसिद्ध हो गया ॥ २ ॥

राम उवाच

किमर्थं कुरुणा कृष्टं क्षेत्रमेतन्महात्मना।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कथ्यमानं तपोधनाः ॥ ३ ॥

बलरामजीने पूछा—तपोधनो! महात्मा कुरुने इस क्षेत्रको किसलिये जोता था? मैं आपलोगोंके मुखसे यह कथा सुनना चाहता हूँ ॥ ३ ॥

ऋषय ऊचुः

पुरा किल कुरुं राम कर्षन्तं सततोत्थितम्।
अभ्येत्य शक्रस्त्रिदिवात् पर्यपृच्छत कारणम् ॥ ४ ॥

ऋषि बोले—राम! सुना जाता है कि पूर्वकालमें सदा प्रत्येक शुभ कार्यके लिये उद्यत रहनेवाले कुरु जब इस क्षेत्रको जोत रहे थे, उस समय इन्द्रने स्वर्गसे आकर इसका कारण पूछा ॥ ४ ॥

इन्द्र उवाच

किमिदं वर्तते राजन् प्रयत्नेन परेण च।
राजर्षे किमभिप्रेतं येनेयं कृष्यते क्षितिः ॥ ५ ॥

इन्द्रने प्रश्न किया—राजन्! यह महान् प्रयत्नके साथ क्या हो रहा है? राजर्षे! आप क्या चाहते हैं, जिसके कारण यह भूमि जोत रहे हैं? ॥ ५ ॥

कुरुरुवाच

इह ये पुरुषाः क्षेत्रे मरिष्यन्ति शतक्रतो।
ते गमिष्यन्ति सुकृताँल्लोकान् पापविवर्जितान् ॥ ६ ॥

कुरुने कहा—शतक्रतो ! जो मनुष्य इस क्षेत्रमें मरेंगे, वे पुण्यात्माओंके पापरहित लोकोंमें जायँगे ॥ ६ ॥

अवहस्य ततः शक्रो जगाम त्रिदिवं पुनः ।
राजर्षिरप्यनिर्विण्णः कर्षत्येव वसुंधराम् ॥ ७ ॥

तब इन्द्र उनका उपहास करके स्वर्गलोकमें चले गये । राजर्षि कुरु उस कार्यसे उदासीन न होकर वहाँकी भूमि जोतते ही रहे ॥ ७ ॥

आगम्यागम्य चैवैनं भूयोभूयोऽवहस्य च ।
शतक्रतुरनिर्विण्णं पृष्ट्वा पृष्ट्वा जगाम ह ॥ ८ ॥

शतक्रतु इन्द्र अपने कार्यसे विरत न होनेवाले कुरुके पास बारंबार आते और उनसे पूछ-पूछकर प्रत्येक बार उनकी हँसी उड़ाकर स्वर्गलोकमें चले जाते थे ॥ ८ ॥

यदा तु तपसोग्रेण चकर्ष वसुधां नृपः ।
ततः शक्रोऽब्रवीद् देवान् राजर्षेर्यच्चिकीर्षितम् ॥ ९ ॥

जब राजा कुरु कठोर तपस्यापूर्वक पृथ्वीको जोतते ही रह गये, तब इन्द्रने देवताओंसे राजर्षि कुरुकी वह चेष्टा बतायी ॥ ९ ॥

एतच्छ्रुत्वाब्रुवन् देवाः सहस्राक्षमिदं वचः ।
वरेण च्छन्द्यतां शक्र राजर्षिर्यदि शक्यते ॥१०॥

यह सुनकर देवताओंने सहस्रनेत्रधारी इन्द्रसे कहा—'शक्र ! यदि सम्भव हो तो राजर्षि कुरुको वर देकर अपने अनुकूल किया जाय ॥ १० ॥

यदि ह्यत्र प्रमीता वै स्वर्गं गच्छन्ति मानवाः ।
अस्माननिष्ट्वा क्रतुभिर्भागो नो न भविष्यति ॥११॥

'यदि यहाँ मरे हुए मानव यज्ञोंद्वारा हमारा पूजन किये बिना ही स्वर्गलोकमें चले जायँगे, तब तो हमलोगोंका भाग सर्वथा नष्ट हो जायगा' ॥ ११ ॥

आगम्य च ततः शक्रस्तदा राजर्षिमब्रवीत् ।
अलं खेदेन भवतः क्रियतां वचनं मम ॥ १२ ॥
मानवा ये निराहारा देहं त्यक्ष्यन्त्यतन्द्रिताः ।
युधि वा निहताः सम्यगपि तिर्यग्गता नृप ॥ १३ ॥
ते स्वर्गभाजो राजेन्द्र भविष्यन्ति महामते ।

तब इन्द्रने वहाँसे आकर राजर्षि कुरुसे कहा—'नरेश्वर ! आप व्यर्थ कष्ट क्यों उठाते हैं ? मेरी बात मान लीजिये । महामते ! राजेन्द्र ! जो मनुष्य और पशु-पक्षी यहाँ निराहार रहकर देह त्याग करेंगे अथवा युद्धमें मारे जायँगे, वे स्वर्गलोकके भागी होंगे' ॥ १२-१३½ ॥

तथास्त्विति ततो राजा कुरुः शक्रमुवाच ह ॥ १४ ॥
ततस्तमभ्यनुज्ञाप्य प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
जगाम त्रिदिवं भूयः क्षिप्रं बलनिषूदनः ॥ १५ ॥

तब राजा कुरुने इन्द्रसे कहा—'देवराज ! ऐसा ही हो' तदनन्तर कुरुसे विदा ले बलसूदन इन्द्र फिर शीघ्र ही प्रसन्न चित्तसे स्वर्गलोकमें चले गये ॥ १४-१५ ॥

एवमेतद् यदुश्रेष्ठ कृष्टं राजर्षिणा पुरा ।
शक्रेण चाभ्यनुज्ञातं ब्रह्माद्यैश्च सुरैस्तथा ॥ १६ ॥

यदुश्रेष्ठ ! इस प्रकार प्राचीनकालमें राजर्षि कुरुने इस क्षेत्रको जोता और इन्द्र तथा ब्रह्मा आदि देवताओंने इसे वर देकर अनुगृहीत किया ॥ १६ ॥

नातः परतरं पुण्यं भूमेः स्थानं भविष्यति ।
इह तप्स्यन्ति ये केचित्तपः परमकं नराः ॥ १७ ॥
देहत्यागेन ते सर्वे यास्यन्ति ब्रह्मणः क्षयम् ।

भूतलका कोई भी स्थान इससे बढ़कर पुण्यदायक नहीं होगा । जो मनुष्य यहाँ रहकर बड़ी भारी तपस्या करेंगे, वे सब लोग देहत्यागके पश्चात् ब्रह्मलोकमें जायँगे ॥ १७½ ॥

ये पुनः पुण्यभाजो वै दानं दास्यन्ति मानवाः ॥ १८ ॥
तेषां सहस्रगुणितं भविष्यत्यचिरेण वै ।

जो पुण्यात्मा मानव वहाँ दान देंगे, उनका वह दान शीघ्र ही सहस्रगुना हो जायगा ॥ १८½ ॥

ये चेह नित्यं मनुजा निवत्स्यन्ति शुभैषिणः ॥ १९ ॥
यमस्य विषयं ते तु न द्रक्ष्यन्ति कदाचन ।

जो मानव शुभकी इच्छा रखकर यहाँ नित्य निवास करेंगे, उन्हें कभी यमका राज्य नहीं देखना पड़ेगा ॥१९½॥

यक्ष्यन्ति ये च क्रतुभिर्महद्भिर्मनुजेश्वराः ॥ २० ॥
तेषां त्रिविष्टपे वासो यावद्भूमिर्धरिष्यति ।

जो नरेश्वर यहाँ बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान करेंगे, वे जबतक यह पृथ्वी रहेगी, तबतक स्वर्गलोकमें निवास करेंगे ॥ २०½ ॥

अपि चात्र स्वयं शक्रो जगौ गाथां सुराधिपः ॥ २१ ॥
कुरुक्षेत्रनिबद्धां वै तां शृणुष्व हलायुध ।

हलायुध ! स्वयं देवराज इन्द्रने कुरुक्षेत्रके सम्बन्धमें यहाँ जो गाथा गायी है, उसे आप सुनिये ॥ २१½ ॥

पांसवोऽपि कुरुक्षेत्राद् वायुना समुदीरिताः ।
अपि दुष्कृतकर्माणं नयन्ति परमां गतिम् ॥ २२ ॥

'कुरुक्षेत्रसे वायुद्वारा उड़ायी हुई धूलियाँ भी यदि ऊपर पड़ जायँ तो वे पापी मनुष्यको भी परम पदकी प्राप्ति कराती हैं ॥ २२ ॥

सुरर्षभा ब्राह्मणसत्तमाश्च
तथा नृगाद्या नरदेवमुख्याः ।
इष्ट्वा महार्हैः क्रतुभिर्नृसिंहाः
संत्यज्य देहान् सुगतिं प्रपन्नाः ॥ २३ ॥

'श्रेष्ठ देवताओ ! यहाँ ब्राह्मणशिरोमणि तथा नृग आदि मुख्य-मुख्य पुरुषसिंह नरेश महान् यज्ञोंका अनुष्ठान करके देहत्यागके पश्चात् उत्तम गतिको प्राप्त हुए हैं ॥२३॥

तरन्तुकारन्तुकयोर्यदन्तरं
रामह्रदानां च मचक्रुकस्य च ।
एतत् कुरुक्षेत्रसमन्तपञ्चकं
प्रजापतेरुत्तरवेदिरुच्यते ॥ २४ ॥

'तरन्तुक, अरन्तुक, रामह्रद (परशुराम कुण्ड) तथा मचक्रुक—इनके बीचका जो भूभाग है, यही समन्तपञ्चक एवं कुरुक्षेत्र है । इसे प्रजापतिकी उत्तरवेदी कहते हैं ॥ ४ ॥

शिवं महापुण्यमिदं दिवौकसां
सुसम्मतं सर्वगुणैः समन्वितम् ।
अतश्च सर्वे निहता नृपा रणे
यास्यन्ति पुण्यां गतिमक्षयां सदा ॥ २५ ॥

'यह महान् पुण्यप्रद, कल्याणकारी, देवताओंका प्रिय एवं सर्वगुणसम्पन्न तीर्थ है। अतः यहाँ रणभूमिमें मारे गये सम्पूर्ण नरेश सदा पुण्यमयी अक्षय गति प्राप्त करेंगे' ॥ २५ ॥

इत्युवाच स्वयं शक्रः सह ब्रह्मादिभिस्तदा ।
तच्चानुमोदितं सर्वं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः ॥ २६ ॥

ब्रह्मा आदि देवताओंसहित साक्षात् इन्द्रने ऐसी बातें कही थीं तथा ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजीने इन सारी बातोंका अनुमोदन किया था ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने कुरुक्षेत्रकथने त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्रा और सारस्वतोपाख्यानके प्रसङ्गमें कुरुक्षेत्रकी महिमाका वर्णनविषयक तिरपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५३ ॥

चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

प्लक्षप्रस्रवण आदि तीर्थों तथा सरस्वतीकी महिमा एवं नारदजीसे कौरवोंके विनाश और भीम तथा दुर्योधनके युद्धका समाचार सुनकर बलरामजीका उसे देखनेके लिये जाना

वैशम्पायन उवाच

कुरुक्षेत्रं ततो दृष्ट्वा दत्त्वा दायांश्च सात्वतः ।
आश्रमं सुमहद् दिव्यमगमज्जनमेजय ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! सात्वतवंशी बलरामजी कुरुक्षेत्रका दर्शन कर वहाँ बहुत-सा धन दान करके उस स्थानसे एक महान् एवं दिव्य आश्रममें गये ॥ १ ॥

मधूकाम्रवणोपेतं प्लक्षन्यग्रोधसंकुलम् ।
चिरबिल्वयुतं पुण्यं पनसार्जुनसंकुलम् ॥ २ ॥
तं दृष्ट्वा यादवश्रेष्ठः प्रवरं पुण्यलक्षणम् ।
पप्रच्छ तानृषीन् सर्वान् कस्याश्रमवरस्त्वयम् ॥ ३ ॥

महुआ और आमके वन उस आश्रमकी शोभा बढ़ा रहे थे। पाकड़ और बरगदके वृक्ष वहाँ अपनी छाया फैला रहे थे। चिलबिल, कटहल और अर्जुन (समूह)के पेड़ चारों ओर भरे हुए थे। पुण्यदायक लक्षणोंसे युक्त उस पुण्यमय श्रेष्ठ आश्रमका दर्शन करके यादवश्रेष्ठ बलरामजीने उन समस्त ऋषियोंसे पूछा कि 'यह सुन्दर आश्रम किसका है ?' ॥ २-३ ॥

ते तु सर्वे महात्मानमूचू राजन् हलायुधम् ।
शृणु विस्तरशो राम यस्यायं पूर्वमाश्रमः ॥ ४ ॥

राजन् ! तब वे सभी ऋषि महात्मा हलधरसे बोले— 'बलरामजी ! पहले यह आश्रम जिसके अधिकारमें था, उसकी कथा विस्तारपूर्वक सुनिये—॥ ४ ॥

अत्र विष्णुः पुरा देवस्तप्तवांस्तप उत्तमम् ।
अत्रास्य विधिवद् यज्ञाः सर्वे वृत्ताः सनातनाः ॥ ५ ॥

'प्राचीनकालमें यहाँ भगवान् विष्णुने उत्तम तपस्या की है, यहीं उनके सभी सनातन यज्ञ विधिपूर्वक सम्पन्न हुए हैं ॥

अत्रैव ब्राह्मणी सिद्धा कौमारब्रह्मचारिणी ।
योगयुक्ता दिवं याता तपःसिद्धा तपस्विनी ॥ ६ ॥

'यहीं कुमारावस्थासे ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाली एक सिद्ध ब्राह्मणी रहती थी, जो तपःसिद्ध तपस्विनी थी। वह योगयुक्त होकर स्वर्गलोकमें चली गयी ॥ ६ ॥

बभूव श्रीमती राजञ्शाण्डिल्यस्य महात्मनः ।
सुता धृतव्रता साध्वी नियता ब्रह्मचारिणी ॥ ७ ॥

'राजन् ! नियमपूर्वक व्रतधारण और ब्रह्मचर्यपालन करनेवाली वह तेजस्विनी साध्वी महात्मा शाण्डिल्यकी सुपुत्री थी ॥ ७ ॥

सा तु तप्त्वा तपो घोरं दुश्चरं स्त्रीजनेन ह ।
गता स्वर्गं महाभागा देवब्राह्मणपूजिता ॥ ८ ॥

'स्त्रियोंके लिये जो अत्यन्त दुष्कर था, ऐसा घोर तप करके देवताओं और ब्राह्मणोंद्वारा सम्मानित हुई वह महान् सौभाग्यशालिनी देवी स्वर्गलोकको चली गयी थी' ॥ ८ ॥

श्रुत्वा ऋषीणां वचनमाश्रमं तं जगाम ह ।
ऋषींस्तानभिवाद्याथ पार्श्वे हिमवतोऽच्युतः ॥ ९ ॥
संध्याकार्याणि सर्वाणि निर्वर्त्यारुरुहेऽचलम् ।

ऋषियोंका वचन सुनकर अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले बलरामजी उस आश्रममें गये । वहाँ हिमालयके पार्श्वभागमें उन ऋषियोंको प्रणाम करके संध्या-वन्दन आदि सब कार्य करनेके अनन्तर वे हिमालयपर चढ़ने लगे ॥ ९½ ॥

नातिदूरं ततो गत्वा नगं तालध्वजो बली ॥ १० ॥
पुण्यं तीर्थवरं दृष्ट्वा विस्मयं परमं गतः ।
प्रभावं च सरस्वत्याः प्लक्षप्रस्रवणं बलः ॥ ११ ॥

जिनकी ध्वजापर तालका चिह्न सुशोभित होता है, वे बलरामजी उस पर्वतपर थोड़ी ही दूर गये थे कि उनकी दृष्टि एक पुण्यमय उत्तम तीर्थपर पड़ी। वह सरस्वतीकी उत्पत्तिका स्थान प्लक्षप्रस्रवण नामक तीर्थ था। उसका दर्शन करके बलरामजीको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ १०-११ ॥

सम्प्राप्तः कारपवनं प्रवरं तीर्थमुत्तमम् ।
हलायुधस्तत्र चापि दत्त्वा दानं महाबलः ॥ १२ ॥
आप्लुतः सलिले पुण्ये सुशीते विमले शुचौ ।
संतर्पयामास पितॄन् देवांश्च रणदुर्मदः ॥ १३ ॥
तत्रोष्यैकां तु रजनीं यतिभिर्ब्राह्मणैः सह ।
मित्रावरुणयोः पुण्यं जगामाश्रममच्युतः ॥ १४ ॥

फिर वे कारपवन नामक उत्तम तीर्थमें गये। महाबली

हलधरने वहाँके निर्मल, पवित्र और अत्यन्त शीतल पुण्यदायक जलमें गोता लगाकर ब्राह्मणोंको दान दे देवताओं और पितरोंका तर्पण किया। तत्पश्चात् रणदुर्मद बलरामजी यतियों और ब्राह्मणोंके साथ वहाँ एक रात रहकर मित्रावरुणके पवित्र आश्रमपर गये ॥ १२–१४ ॥

इन्द्रोऽग्निरर्यमा चैव यत्र प्राक् प्रीतिमाप्नुवन्।
तं देशं कारपवनाद् यमुनायां जगाम ह ॥ १५ ॥
स्नात्वा तत्र च धर्मात्मा परां प्रीतिमवाप्य च।
ऋषिभिश्चैव सिद्धैश्च सहितो वै महाबलः ॥ १६ ॥
उपविष्टः कथाः शुभ्राः शुश्राव यदुपुङ्गवः।

जहाँ पूर्वकालमें इन्द्र, अग्नि और अर्यमाने बड़ी प्रसन्नता प्राप्त की थी, वह स्थान यमुनाके तटपर है। कारपवनसे उस तीर्थमें जाकर महाबली धर्मात्मा बलरामने स्नान करके बड़ा हर्ष प्राप्त किया। फिर वे यदुपुङ्गव बलभद्र ऋषियों और सिद्धोंके साथ बैठकर उत्तम कथाएँ सुनने लगे ॥ १५-१६½ ॥

तथा तु तिष्ठतां तेषां नारदो भगवानृषिः ॥ १७ ॥
आजगामाथ तं देशं यत्र रामो व्यवस्थितः।

इस प्रकार वे लोग वहीं ठहरे हुए थे, तबतक देवर्षि भगवान् नारद भी उनके पास उसी स्थानपर आ पहुँचे, जहाँ बलरामजी विराजमान थे ॥ १७½ ॥

जटामण्डलसंवीतः स्वर्णचीरो महातपाः ॥ १८ ॥
हेमदण्डधरो राजन् कमण्डलुधरस्तथा।
कच्छपीं सुखशब्दां तां गृह्य वीणां मनोरमाम् ॥ १९ ॥

राजन्! महातपस्वी नारद जटामण्डलसे मण्डित हो सुनहरा चीर धारण किये हुए थे। उन्होंने कमण्डलु, सोनेका दण्ड तथा सुखदायक शब्द करनेवाली कच्छपी नामक मनोरम वीणा भी ले रक्खी थी ॥ १८-१९ ॥

नृत्ये गीते च कुशलो देवब्राह्मणपूजितः।
प्रकर्ता कलहानां च नित्यं च कलहप्रियः ॥ २० ॥

वे नृत्य-गीतमें कुशल, देवताओं तथा ब्राह्मणोंसे सम्मानित, कलह करानेवाले तथा सदैव कलहके प्रेमी हैं ॥ २० ॥

तं देशमगमद् यत्र श्रीमान् रामो व्यवस्थितः।
प्रत्युत्थाय च तं सम्यक् पूजयित्वा यतव्रतम् ॥ २१ ॥
देवर्षिं पर्यपृच्छत् स यथा वृत्तं कुरून् प्रति।

वे उस स्थानपर गये, जहाँ तेजस्वी बलराम बैठे हुए थे। उन्होंने उठकर नियम और व्रतका पालन करनेवाले देवर्षिका भलीभाँति पूजन करके उनसे कौरवोंका समाचार पूछा ॥ २१½ ॥

ततोऽस्याकथयद् राजन् नारदः सर्वधर्मवित् ॥ २२ ॥
सर्वमेतद् यथावृत्तमतीव कुरुसंक्षयम्।

राजन्! तब सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता नारदजीने उनसे यह सारा वृत्तान्त यथार्थरूपसे बता दिया कि कुरुकुलका अत्यन्त संहार हो गया है ॥ २२½ ॥

ततोऽब्रवीद् रौहिणेयो नारदं दीनया गिरा ॥ २३ ॥
किमवस्थं तु तत् क्षत्रं ये तु तत्राभवन् नृपाः।
श्रुतमेतन्मया पूर्वं सर्वमेव तपोधन ॥ २४ ॥
विस्तरश्रवणे जातं कौतूहलमतीव मे।

तब रोहिणीनन्दन बलरामने दीनवाणीमें नारदजीसे पूछा—'तपोधन! जो राजा लोग वहाँ उपस्थित हुए थे, उन सब क्षत्रियोंकी क्या अवस्था हुई है, यह सब तो मैंने पहले ही सुन लिया था। इस समय कुछ विशेष और विस्तृत समाचार जाननेके लिये मेरे मनमें अत्यन्त उत्सुकता हुई है' ॥ २३-२४½ ॥

नारद उवाच

पूर्वमेव हतो भीष्मो द्रोणः सिन्धुपतिस्तथा ॥ २५ ॥
हतो वैकर्तनः कर्णः पुत्राश्चास्य महारथाः।
भूरिश्रवा रौहिणेय मद्रराजश्च वीर्यवान् ॥ २६ ॥

नारदजीने कहा—रोहिणीनन्दन! भीष्मजी तो पहले ही मारे गये। फिर सिंधुराज जयद्रथ, द्रोण, वैकर्तन कर्ण तथा उसके महारथी पुत्र भी मारे गये हैं। भूरिश्रवा तथा पराक्रमी मद्रराज शल्य भी मार डाले गये ॥ २५-२६ ॥

एते चान्ये च बहवस्तत्र तत्र महाबलाः।
प्रियान् प्राणान् परित्यज्य जयार्थं कौरवस्य वै ॥ २७ ॥
राजानो राजपुत्राश्च समरेष्वनिवर्तिनः।

ये तथा और भी बहुत-से महाबली राजा और राजकुमार जो युद्धसे पीछे हटनेवाले नहीं थे, कुरुराज दुर्योधनकी विजयके लिये अपने प्यारे प्राणोंका परित्याग करके स्वर्गलोकमें चले गये हैं ॥ २७½ ॥

अहतांस्तु महाबाहो शृणु मे तत्र माधव ॥ २८ ॥
धार्तराष्ट्रबले शेषास्त्रयः समितिमर्दनाः।
कृपश्च कृतवर्मा च द्रोणपुत्रश्च वीर्यवान् ॥ २९ ॥

महाबाहु माधव! जो वहाँ नहीं मारे गये हैं, उनके नाम भी मुझसे सुन लो। दुर्योधनकी सेनामें कृपाचार्य, कृतवर्मा और पराक्रमी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा—ये शत्रुदलका मर्दन करनेवाले तीन ही वीर शेष रह गये हैं ॥ २८-२९ ॥

तेऽपि वै विद्रुता राम दिशो दश भयात् तदा।
दुर्योधने हते शल्ये विद्रुतेषु कृपादिषु ॥ ३० ॥
ह्रदं द्वैपायनं नाम विवेश भृशदुःखितः।

परंतु बलरामजी! जब शल्य मारे गये, तब ये तीनों भी भयके मारे सम्पूर्ण दिशाओंमें पलायन कर गये थे। शल्यके मारे जाने और कृप आदिके भाग जानेपर दुर्योधन बहुत दुखी हुआ और भागकर द्वैपायनसरोवरमें जा छिपा ॥ ३०½ ॥

शयानं धार्तराष्ट्रं तु सलिले स्तम्भिते तदा ॥ ३१ ॥
पाण्डवाः सह कृष्णेन वाग्भिरुग्राभिरार्दयन्।

जब दुर्योधन जलको स्तम्भित करके उसके भीतर सो रहा था, उस समय पाण्डवलोग भगवान् श्रीकृष्णके साथ वहाँ आ पहुँचे और अपनी कठोर बातोंसे उसे कष्ट पहुँचाने लगे ॥ ३१½ ॥

स तुद्यमानो बलवान् वाग्भी राम समन्ततः ॥ ३२ ॥
उत्थितः स ह्रदाद् वीरः प्रगृह्य महतीं गदाम्।

बलराम ! जब सब ओरसे कड़वी बातोंद्वारा उसे व्यथित किया जाने लगा, तब वह बलवान् वीर विशाल गदा हाथमें लेकर सरोवरसे उठ खड़ा हुआ ॥ ३२½ ॥

स चाप्युपगतो योद्धुं भीमेन सह साम्प्रतम् ॥ ३३ ॥
भविष्यति तयोरद्य युद्धं राम सुदारुणम् ।
यदि कौतूहलं तेऽस्ति व्रज माधव मा चिरम् ।
पश्य युद्धं महाघोरं शिष्ययोर्यदि मन्यसे ॥ ३४ ॥

इस समय वह भीमके साथ युद्ध करनेके लिये उनके पास जा पहुँचा है । राम ! आज उन दोनोंमें बड़ा भयंकर युद्ध होगा, माधव ! यदि तुम्हारे मनमें भी उसे देखनेका कौतूहल हो तो शीघ्र जाओ । यदि ठीक समझो तो अपने दोनों शिष्योंका वह महाभयंकर युद्ध अपनी आँखोंसे देख लो ॥ ३३-३४ ॥

वैशम्पायन उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा तानभ्यर्च्य द्विजर्षभान् ।
सर्वान् विसर्जयामास ये तेनाभ्यागताः सह ॥ ३५ ॥
गम्यतां द्वारकां चेति सोऽन्वशादनुयायिनः ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! नारदजीकी बात सुनकर बलरामजीने अपने साथ आये हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें विदा कर दिया और सेवकोंको आज्ञा दे दी कि तुम लोग द्वारका चले जाओ ॥ ३५½ ॥

सोऽवतीर्याचलश्रेष्ठात् प्लक्षप्रस्रवणाच्छुभात् ॥ ३६ ॥
ततः प्रीतमना रामः श्रुत्वा तीर्थफलं महत् ।
विप्राणां संनिधौ श्लोकमगायदिममच्युतः ॥ ३७ ॥

फिर वे प्लक्षप्रस्रवण नामक शुभ पर्वतशिखरसे नीचे उतर आये और तीर्थ-सेवनका महान् फल सुनकर प्रसन्नचित्त हो अच्युत बलरामने ब्राह्मणोंके समीप इस श्लोकका गान किया—॥ ३६-३७ ॥

सरस्वतीवाससमा कुतो रतिः
सरस्वतीवाससमाः कुतो गुणाः ।
सरस्वतीं प्राप्य दिवं गता जनाः
सदा स्मरिष्यन्ति नदीं सरस्वतीम् ॥ ३८ ॥

'सरस्वती नदीके तटपर निवास करनेमें जो सुख और आनन्द है, वह अन्यत्र कहाँसे मिल सकता है ! सरस्वती-तटपर निवास करनेमें जो गुण हैं, वे अन्यत्र कहाँ हैं ! सरस्वतीका सेवन करके स्वर्गलोकमें पहुँचे हुए मनुष्य सदा सरस्वती नदीका स्मरण करते रहेंगे ॥ ३८ ॥

सरस्वती सर्वनदीषु पुण्या
सरस्वती लोकशुभावहा सदा ।
सरस्वतीं प्राप्य जनाः सुदुष्कृतं
सदा न शोचन्ति परत्र चेह च ॥ ३९ ॥

'सरस्वती सब नदियोंमें पवित्र है । सरस्वती सदा सम्पूर्ण जगत्का कल्याण करनेवाली है । सरस्वतीको पाकर मनुष्य इहलोक और परलोकमें कभी पापोंके लिये शोक नहीं करते हैं' ॥ ३९ ॥

ततो मुहुर्मुहुः प्रीत्या प्रेक्षमाणः सरस्वतीम् ।
हयैर्युक्तं रथं शुभ्रमातिष्ठत परंतपः ॥ ४० ॥

तदनन्तर शत्रुओंको संताप देनेवाले बलरामजी बारंबार प्रेमपूर्वक सरस्वती नदीकी ओर देखते हुए घोड़ोंसे जुते उज्ज्वल रथपर आरूढ़ हुए ॥ ४० ॥

स शीघ्रगामिना तेन रथेन यदुपुङ्गवः ।
दिदृक्षुरभिसम्प्राप्तः शिष्ययुद्धमुपस्थितम् ॥ ४१ ॥

उसी शीघ्रगामी रथके द्वारा तत्काल उपस्थित हुए दोनों शिष्योंका युद्ध देखनेके लिये यदुपुङ्गव बलरामजी उनके पास जा पहुँचे ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसंगमें सारस्वतोपाख्यानविषयक चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

बलरामजीकी सलाहसे सबका कुरुक्षेत्रके समन्तपञ्चक तीर्थमें जाना और वहाँ भीम तथा दुर्योधनमें गदायुद्धकी तैयारी

वैशम्पायन उवाच

एवं तदभवद् युद्धं तुमुलं जनमेजय ।
यत्र दुःखान्वितो राजा धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! इस प्रकार वह तुमुल युद्ध हुआ, जिसके विषयमें अत्यन्त दुखी हुए राजा धृतराष्ट्रने इस तरह प्रश्न किया ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

रामं संनिहितं दृष्ट्वा गदायुद्ध उपस्थिते ।
मम पुत्रः कथं भीमं प्रत्ययुध्यत संजय ॥ २ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! गदायुद्ध उपस्थित होनेपर बलरामजीको निकट आया देख मेरे पुत्रने भीमसेनके साथ किस प्रकार युद्ध किया ? ॥ २ ॥

संजय उवाच

रामसांनिध्यमासाद्य पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
युद्धकामो महाबाहुः समहृष्यत वीर्यवान् ॥ ३ ॥

संजयने कहा—राजन् ! बलरामजीको निकट पाकर युद्धकी इच्छा रखनेवाला आपका शक्तिशाली पुत्र महाबाहु दुर्योधन बड़ा प्रसन्न हुआ ॥ ३ ॥

दृष्ट्वा लाङ्गलिनं राजा प्रत्युत्थाय च भारत ।
प्रीत्या परमया युक्तः समभ्यर्च्य यथाविधि ॥ ४ ॥

आसनं च ददौ तस्मै पर्यपृच्छदनामयम् ।

भरतनन्दन ! हलधरको देखते ही राजा युधिष्ठिर उठकर खड़े हो गये और बड़े प्रेमसे विधिपूर्वक उनकी पूजा करके उन्हें बैठनेके लिये उन्होंने आसन दिया तथा उनके स्वास्थ्यका समाचार पूछा ॥ ४½ ॥

ततो युधिष्ठिरं रामो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ५ ॥
मधुरं धर्मसंयुक्तं शूराणां हितमेव च ।

तब बलरामने युधिष्ठिरसे मधुर वाणीमें शूरवीरोंके लिये हितकर धर्मयुक्त वचन कहा—॥ ५½ ॥

मया श्रुतं कथयतामृषीणां राजसत्तम ॥ ६ ॥
कुरुक्षेत्रं परं पुण्यं पावनं स्वर्ग्यमेव च ।
दैवतैर्ऋषिभिर्जुष्टं ब्राह्मणैश्च महात्मभिः ॥ ७ ॥

'नृपश्रेष्ठ ! मैंने माहात्म्य-कथा कहनेवाले ऋषियोंके मुखसे यह सुना है कि कुरुक्षेत्र परम पावन पुण्यमय तीर्थ है। वह स्वर्ग प्रदान करनेवाला है। देवता, ऋषि तथा महात्मा ब्राह्मण सदा उसका सेवन करते हैं ॥ ६-७ ॥

तत्र वै योत्स्यमाना ये देहं त्यक्ष्यन्ति मानवाः ।
तेषां स्वर्गे ध्रुवो वासः शक्रेण सह मारिष ॥ ८ ॥

'माननीय नरेश ! जो मानव वहाँ युद्ध करते हुए अपने शरीरका त्याग करेंगे, उनका निश्चय ही स्वर्गलोकमें इन्द्रके साथ निवास होगा ॥ ८ ॥

तस्मात् समन्तपञ्चकमितो याम द्रुतं नृप ।
प्रथितोत्तरवेदी सा देवलोके प्रजापतेः ॥ ९ ॥
तस्मिन् महापुण्यतमे त्रैलोक्यस्य सनातने ।
संग्रामे निधनं प्राप्य ध्रुवं स्वर्गे भविष्यति ॥ १० ॥

'अतः नरेश्वर ! हम सब लोग यहाँसे शीघ्र ही समन्तपञ्चक तीर्थमें चलें। वह भूमि देवलोकमें प्रजापतिकी उत्तरवेदीके नामसे प्रसिद्ध है। त्रिलोकीके उस परम पुण्यतम सनातन तीर्थमें युद्ध करके मृत्युको प्राप्त हुआ मनुष्य निश्चय ही स्वर्गलोकमें जायगा' ॥ ९-१० ॥

तथेत्युक्त्वा महाराज कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
समन्तपञ्चकं वीरः प्रायादभिमुखः प्रभुः ॥ ११ ॥
ततो दुर्योधनो राजा प्रगृह्य महतीं गदाम् ।
पद्भ्याममर्षी द्युतिमानगच्छत् पाण्डवैः सह ॥ १२ ॥

महाराज ! तब 'बहुत अच्छा', कहकर वीर राजा कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर समन्तपञ्चक तीर्थकी ओर चल दिये। उस समय अमर्षमें भरा हुआ तेजस्वी राजा दुर्योधन हाथमें विशाल गदा लेकर पाण्डवोंके साथ पैदल ही चला।११-१२।

तथाऽऽयान्तं गदाहस्तं वर्मणा चापि दंशितम् ।
अन्तरिक्षचरा देवाः साधु साध्वित्यपूजयन् ॥ १३ ॥

गदा हाथमें लिये कवच धारण किये दुर्योधनको इस प्रकार आते देख आकाशमें विचरनेवाले देवता साधु-साधु कहकर उसकी प्रशंसा करने लगे ॥ १३ ॥

वातिकाश्चारणा ये तु दृष्ट्वा ते हर्षमागताः ।
स पाण्डवैः परिवृतः कुरुराजस्तवात्मजः ॥ १४ ॥
मत्तस्येव गजेन्द्रस्य गतिमास्थाय सोऽव्रजत् ।

वातिक और चारण भी उसे देखकर हर्षसे खिल उठे। पाण्डवोंसे घिरा हुआ आपका पुत्र कुरुराज दुर्योधन मतवाले गजराजकी-सी गतिका आश्रय लेकर चल रहा था ॥ १४½ ॥

ततः शङ्खनिनादेन भेरीणां च महास्वनैः ॥ १५ ॥
सिंहनादैश्च शूराणां दिशः सर्वाः प्रपूरिताः ।

उस समय शङ्खोंकी ध्वनि, रणभेरियोंके गम्भीर घोष और शूरवीरोंके सिंहनादोंसे सम्पूर्ण दिशाएँ गूँज उठीं।१५½।

ततस्ते तु कुरुक्षेत्रं प्राप्ता नरवरोत्तमाः ॥ १६ ॥
प्रतीच्यभिमुखं देशं यथोद्दिष्टं सुतेन ते ।
दक्षिणेन सरस्वत्याः स्वयनं तीर्थमुत्तमम् ॥ १७ ॥
तस्मिन् देशे त्वनिरिणे ते तु युद्धमरोचयन् ।

तदनन्तर वे सभी श्रेष्ठ नरवीर आपके पुत्रके साथ पश्चिमाभिमुख चलकर पूर्वोक्त कुरुक्षेत्रमें आ पहुँचे। वह उत्तम तीर्थ सरस्वतीके दक्षिण तटपर स्थित एवं सद्गतिकी प्राप्ति करानेवाला था। वहाँ कहीं ऊसर भूमि नहीं थी। उसी स्थानमें आकर सबने युद्ध करना पसंद किया।१६-१७½।

ततो भीमो महाकोटिं गदां गृह्याथ वर्मभृत् ॥ १८ ॥
बिभ्रद्रूपं महाराज सदृशं हि गरुत्मतः ।

फिर तो भीमसेन कवच पहनकर बहुत बड़ी नोकवाली गदा हाथमें ले गरुडका-सा रूप धारण करके युद्धके लिये तैयार हो गये ॥ १८½ ॥

अवबद्धशिरस्त्राणः संख्ये काञ्चनवर्मभृत् ॥ १९ ॥
रराज राजन् पुत्रस्ते काञ्चनः शैलराडिव ।

तत्पश्चात् दुर्योधन भी सिरपर टोप लगाये सोनेका कवच बाँधे भीमके साथ युद्धके लिये डट गया। राजन् ! उस समय आपका पुत्र सुवर्णमय गिरिराज मेरुके समान शोभा पा रहा था ॥ १९½ ॥

वर्मभ्यां संयतौ वीरौ भीमदुर्योधनावुभौ ॥ २० ॥
संयुगे च प्रकाशेते संरब्धाविव कुञ्जरौ ।

कवच बाँधे हुए दोनों वीर भीमसेन और दुर्योधन युद्धभूमिमें कुपित हुए दो मतवाले हाथियोंके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ २०½ ॥

रणमण्डलमध्यस्थौ भ्रातरौ तौ नरर्षभौ ॥ २१ ॥
अशोभेतां महाराज चन्द्रसूर्याविवोदितौ ।

महाराज ! रणमण्डलके बीचमें खड़े हुए ये दोनों नरश्रेष्ठ भ्राता उदित हुए चन्द्रमा और सूर्यके समान शोभा पा रहे थे ॥ २१½ ॥

तावन्योन्यं निरीक्षेतां क्रुद्धाविव महाद्विपौ ॥ २२ ॥
दहन्तौ लोचनै राजन् परस्परवधैषिणौ ।

राजन् ! क्रोधमें भरे हुए दो गजराजोंके समान एक दूसरेके वधकी इच्छा रखनेवाले वे दोनों वीर परस्पर इस प्रकार देखने लगे, मानो नेत्रोंद्वारा एक दूसरेको भस्म कर डालेंगे ॥ २२½ ॥

सम्प्रहृष्टमना राजन् गदामादाय कौरवः ॥ २३ ॥

सृक्किणी संलिहन् राजन् क्रोधरक्तेक्षणः श्वसन्।
ततो दुर्योधनो राजन् गदामादाय वीर्यवान् ॥ २४ ॥
भीमसेनमभिप्रेक्ष्य गजो गजमिवाह्वयत्।

नरेश्वर ! तदनन्तर शक्तिशाली कुरुवंशी राजा दुर्योधन प्रसन्नचित्त हो गदा हाथमें ले क्रोधसे लाल आँखें करके गलफरोंको चाटता और लंबी साँसें खींचता हुआ भीमसेनकी ओर देखकर उसी प्रकार ललकारने लगा, जैसे एक हाथी दूसरे हाथीको पुकार रहा हो ॥ २३-२४½ ॥

अद्रिसारमयीं भीमस्तथैवादाय वीर्यवान् ॥ २५ ॥
आह्वयामास नृपतिं सिंहं सिंहो यथा वने।

उसी प्रकार पराक्रमी भीमसेनने लोहेकी गदा लेकर राजा दुर्योधनको ललकारा, मानो वनमें एक सिंह दूसरे सिंहको पुकार रहा हो ॥ २५½ ॥

तावुद्यतगदापाणी दुर्योधनवृकोदरौ ॥ २६ ॥
संयुगे च प्रकाशेतां गिरी सशिखराविव।

दुर्योधन और भीमसेन दोनोंकी गदाएँ ऊपरको उठी थीं। उस समय रणभूमिमें वे दोनों शिखरयुक्त दो पर्वतोंके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ २६½ ॥

तावुभौ समतिक्रुद्धावुभौ भीमपराक्रमौ ॥ २७ ॥
उभौ शिष्यौ गदायुद्धे रौहिणेयस्य धीमतः।

दोनों ही अत्यन्त क्रोधमें भरे थे। दोनों भयंकर पराक्रम प्रकट करनेवाले थे और दोनों ही गदायुद्धमें बुद्धिमान् रोहिणीनन्दन बलरामजीके शिष्य थे ॥ २७½ ॥

उभौ सदृशकर्माणौ यमवासवयोरिव ॥ २८ ॥
तथा सदृशकर्माणौ वरुणस्य महाबलौ।
वासुदेवस्य रामस्य तथा वैश्रवणस्य च ॥ २९ ॥
सदृशौ तौ महाराज मधुकैटभयोर्युधि।
उभौ सदृशकर्माणौ तथा सुन्दोपसुन्दयोः ॥ ३० ॥
रामरावणयोश्चैव वालिसुग्रीवयोस्तथा।
तथैव कालस्य समौ मृत्योश्चैव परंतपौ ॥ ३१ ॥

महाराज ! शत्रुओंको संताप देनेवाले वे दोनों महाबली वीर यमराज, इन्द्र, वरुण, श्रीकृष्ण, बलराम, कुबेर, मधु, कैटभ, सुन्द, उपसुन्द, राम, रावण तथा बाली और सुग्रीवके समान पराक्रम दिखानेवाले थे तथा काल एवं मृत्युके समान जान पड़ते थे ॥ २८–३१ ॥

अन्योन्यमभिधावन्तौ मत्ताविव महाद्विपौ।
वासितासंगमे दृप्तौ शरदीव मदोत्कटौ ॥ ३२ ॥
उभौ क्रोधविषं दीप्तं वमन्तावुरगाविव।
अन्योन्यमभिसंरब्धौ प्रेक्षमाणावरिंदमौ ॥ ३३ ॥

जैसे शरद् ऋतुमें मैथुनकी इच्छावाली हथिनीसे समागम करनेके लिये दो मतवाले हाथी मदोन्मत्त होकर एक दूसरेपर धावा करते हों, उसी प्रकार अपने बलका गर्व रखनेवाले वे दोनों वीर एक दूसरेसे टक्कर लेनेको उद्यत थे। शत्रुओंका दमन करनेवाले वे दोनों योद्धा दो सर्पोंके समान प्रज्वलित क्रोधरूपी विषका वमन करते हुए एक दूसरेको रोषपूर्वक देख रहे थे ॥ ३२-३३ ॥

उभौ भरतशार्दूलौ विक्रमेण समन्वितौ।
सिंहाविव दुराधर्षौ गदायुद्धविशारदौ ॥ ३४ ॥

भरतवंशके वे विक्रमशाली सिंह दो जंगली सिंहोंके समान दुर्जय थे और दोनों ही गदायुद्धके विशेषज्ञ माने जाते थे ॥ ३४ ॥

नखदंष्ट्रायुधौ वीरौ व्याघ्राविव दुरुत्सहौ।
प्रजासंहरणे क्षुब्धौ समुद्राविव दुस्तरौ ॥ ३५ ॥
लोहिताङ्गाविव क्रुद्धौ प्रतपन्तौ महारथौ।

पञ्जों और दाढ़ोंसे प्रहार करनेवाले दो व्याघ्रोंके समान उन दोनों वीरोंका वेग शत्रुओंके लिये दुःसह था। प्रलयकालमें विक्षुब्ध हुए दो समुद्रोंके समान उन्हें पार करना कठिन था। वे दोनों महारथी क्रोधमें भरे हुए दो मङ्गल ग्रहोंके समान एक दूसरेको ताप दे रहे थे ॥ ३५½ ॥

पूर्वपश्चिमजौ मेघौ प्रेक्षमाणावरिंदमौ ॥ ३६ ॥
गर्जमानौ सुविषमं क्षरन्तौ प्रावृषीव हि।

जैसे वर्षा ऋतुमें पूर्व और पश्चिम दिशाओंमें स्थित दो वृष्टिकारक मेघ भयंकर गर्जना कर रहे हों, उसी प्रकार शत्रुओंका दमन करनेवाले वे दोनों वीर एक दूसरेको देखते हुए भयानक सिंहनाद कर रहे थे ॥ ३६½ ॥

रश्मियुक्तौ महात्मानौ दीप्तिमन्तौ महाबलौ ॥ ३७ ॥
ददृशाते कुरुश्रेष्ठौ कालसूर्याविवोदितौ।

महामनस्वी महाबली कुरुश्रेष्ठ दुर्योधन और भीमसेन प्रखर किरणोंसे युक्त, प्रलयकालमें उगे हुए दो दीप्तिशाली सूर्योंके समान दृष्टिगोचर हो रहे थे ॥ ३७½ ॥

व्याघ्राविव सुसंरब्धौ गर्जन्ताविव तोयदौ ॥ ३८ ॥
जहृषाते महाबाहू सिंहकेसरिणाविव।

रोषमें भरे हुए दो व्याघ्रों, गरजते हुए दो मेघों और दहाड़ते हुए दो सिंहोंके समान वे दोनों महाबाहु वीर हर्षोत्फुल्ल हो रहे थे ॥ ३८½ ॥

गजाविव सुसंरब्धौ ज्वलिताविव पावकौ ॥ ३९ ॥
ददृशाते महात्मानौ सशृङ्गाविव पर्वतौ।

वे दोनों महामनस्वी योद्धा परस्पर कुपित हुए दो हाथियों, प्रज्वलित हुई दो अग्नियों और शिखरयुक्त दो पर्वतोंके समान दिखायी देते थे ॥ ३९½ ॥

रोषात् प्रस्फुरमाणोष्ठौ निरीक्षन्तौ परस्परम् ॥ ४० ॥
तौ समेतौ महात्मानौ गदाहस्तौ नरोत्तमौ।

उन दोनोंके ओठ रोषसे फड़क रहे थे। वे दोनों नरश्रेष्ठ एक दूसरेपर दृष्टिपात करते हुए हाथमें गदा ले परस्पर भिड़नेके लिये उद्यत थे ॥ ४०½ ॥

उभौ परमसंहृष्टावुभौ परमसम्मतौ ॥ ४१ ॥
सदश्वाविव हेषन्तौ बृंहन्ताविव कुञ्जरौ।
वृषभाविव गर्जन्तौ दुर्योधनवृकोदरौ ॥ ४२ ॥
दैत्याविव बलोन्मत्तौ रेजतुस्तौ नरोत्तमौ।

दोनों अत्यन्त हर्ष और उत्साहमें भरे थे। दोनों ही बड़े सम्मानित वीर थे। मनुष्योंमें श्रेष्ठ वे दुर्योधन और भीमसेन

हींसते हुए दो अच्छे घोड़ों, चिग्घाड़ते हुए दो गजराजों और हँकड़ते हुए दो साँड़ों तथा बलसे उन्मत्त हुए दो दैत्योंके समान शोभा पाते थे ॥ ४१-४२½ ॥

ततो दुर्योधनो राजन्निदमाह युधिष्ठिरम् ॥ ४३ ॥
भ्रातृभिः सहितं चैव कृष्णेन च महात्मना ।
रामेणामितवीर्येण वाक्यं शौटीर्यसम्भ्रमम् ॥ ४४ ॥
केकयैः सृञ्जयैर्दृप्तं पञ्चालैश्च महात्मभिः ।

राजन् ! तदनन्तर दुर्योधनने अमितपराक्रमी बलराम, महात्मा श्रीकृष्ण, महामनस्वी पाञ्चाल, संजय, केकयगण तथा अपने भाइयोंके साथ खड़े हुए अभिमानी युधिष्ठिरसे इस प्रकार गर्वयुक्त वचन कहा—॥ ४३-४४½ ॥

इदं व्यवसितं युद्धं मम भीमस्य चोभयोः ॥ ४५ ॥
उपोपविष्टाः पश्यध्वं सहितैर्नृपपुङ्गवैः ।

'वीरो ! मेरा और भीमसेनका जो यह युद्ध निश्चित हुआ है, इसे आपलोग सभी श्रेष्ठ नरेशोंके साथ निकट बैठकर देखिये' ॥ ४५½ ॥

श्रुत्वा दुर्योधनवचः प्रत्यपद्यन्त तत्तथा ॥ ४६ ॥
ततः समुपविष्टं तत् सुमहद्राजमण्डलम् ।
विराजमानं ददृशे दिवीवादित्यमण्डलम् ॥ ४७ ॥
तेषां मध्ये महाबाहुः श्रीमान् केशवपूर्वजः ।
उपविष्टो महाराज पूज्यमानः समन्ततः ॥ ४८ ॥
शुशुभे राजमध्यस्थो नीलवासाः सितप्रभः ।
नक्षत्रैरिव सम्पूर्णो वृतो निशि निशाकरः ॥ ४९ ॥

दुर्योधनकी यह बात सुनकर सब लोगोंने उसे स्वीकार कर लिया, फिर तो राजाओंका वह विशाल समूह वहाँ सब ओर बैठ गया । नरेशोंकी वह मण्डली आकाशमें सूर्यमण्डलके समान दिखायी दे रही थी । उन सबके बीचमें भगवान् श्रीकृष्णके बड़े भ्राता तेजस्वी महाबाहु बलरामजी विराजमान हुए । महाराज ! सब ओरसे सम्मानित होते हुए नीलाम्बरधारी, गौरकान्ति बलभद्रजी राजाओंके बीचमें वैसे ही शोभा पा रहे थे, जैसे रात्रिमें नक्षत्रोंसे घिरे हुए पूर्ण चन्द्रमा सुशोभित होते हैं ॥ ४६–४९ ॥

तौ तथा तु महाराज गदाहस्तौ सुदुःसहौ ।
अन्योन्यं वाग्भिरुग्राभिस्तक्षमाणौ व्यवस्थितौ॥ ५० ॥

महाराज ! हाथमें गदा लिये वे दोनों दुःसह वीर एक दूसरेको अपने कठोर वचनोंद्वारा पीड़ा देते हुए खड़े थे ॥ ५० ॥

अप्रियाणि ततोऽन्योन्यमुक्त्वा तौ कुरुसत्तमौ ।
उदीक्षन्तौ स्थितौ तत्र वृत्रशक्रौ यथाऽऽहवे ॥ ५१ ॥

परस्पर कटु वचनोंका प्रयोग करके वे दोनों कुरुकुलके श्रेष्ठतम वीर वहाँ युद्धस्थलमें वृत्रासुर और इन्द्रके समान एक दूसरेको देखते हुए युद्धके लिये डटे रहे ॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि युद्धारम्भे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें युद्धका आरम्भविषयक पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

दुर्योधनके लिये अपशकुन, भीमसेनका उत्साह तथा भीम और दुर्योधनमें वाग्युद्धके पश्चात् गदायुद्धका आरम्भ

वैशम्पायन उवाच

ततो वाग्युद्धमभवत् तुमुलं जनमेजय ।
यत्र दुःखान्वितो राजा धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर भीमसेन और दुर्योधनमें भयंकर वाग्युद्ध होने लगा । इस प्रसङ्गको सुनकर राजा धृतराष्ट्र बहुत दुखी हुए और संजयसे इस प्रकार बोले—॥ १ ॥

धिगस्तु खलु मानुष्यं यस्य निष्ठेयमीदृशी ।
एकादशचमूभर्ता यत्र पुत्रो ममानघ ॥ २ ॥
आज्ञाप्य सर्वान् नृपतीन् भुक्त्वा चेमां वसुंधराम् ।
गदामादाय वेगेन पदातिः प्रस्थितो रणे ॥ ३ ॥

'निष्पाप संजय ! जिसका परिणाम ऐसा दुःखद होता है, उस मानव-जन्मको धिक्कार है ! मेरा पुत्र एक दिन ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओंका स्वामी था । उसने सब राजाओंपर हुक्म चलाया और सारी पृथ्वीका अकेले उपभोग किया; किंतु अन्तमें उसकी यह दशा हुई कि गदा हाथमें लेकर उसे वेगपूर्वक पैदल ही युद्धमें जाना पड़ा ॥ २-३ ॥

भूत्वा हि जगतो नाथो ह्यनाथ इव मे सुतः ।
गदामुद्यम्य यो याति किमन्यद् भागधेयतः ॥ ४ ॥

'जो मेरा पुत्र सम्पूर्ण जगत्का नाथ था, वही अनाथकी भाँति गदा हाथमें लेकर युद्धस्थलमें पैदल जा रहा था। इसे भाग्यके सिवा और क्या कहा जा सकता है ? ॥ ४ ॥

अहो दुःखं महत् प्राप्तं पुत्रेण मम संजय ।
एवमुक्त्वा स दुःखार्तो विरराम जनाधिपः ॥ ५ ॥

'संजय ! हाय ! मेरे पुत्रने बड़ा भारी दुःख उठाया।' ऐसा कहकर राजा धृतराष्ट्र दुःखसे पीड़ित हो चुप हो रहे॥

संजय उवाच

स मेघनिनदो हर्षान्निनदन्निव गोवृषः ।
आजुहाव तदा पार्थं युद्धाय युधि वीर्यवान् ॥ ६ ॥

संजयने कहा—महाराज ! उस समय रणभूमिमें मेघके समान गम्भीर गर्जना करनेवाले पराक्रमी दुर्योधनने हर्षमें भरकर जोर-जोरसे शब्द करनेवाले साँड़की भाँति सिंहनाद करके कुन्तीपुत्र भीमसेनको युद्धके लिये ललकारा ॥ ६ ॥

भीममाह्वयमाने तु कुरुराजे महात्मनि ।

प्रादुरासन् सुघोराणि रूपाणि विविधान्युत ॥ ७ ॥

महामनस्वी कुरुराज दुर्योधन जब भीमसेनका आह्वान करने लगा, उस समय नाना प्रकारके भयंकर अपशकुन प्रकट हुए ॥ ७ ॥

ववुर्वाताः सनिर्घाताः पांशुवर्षं पपात च ।
बभूवुश्च दिशः सर्वास्तिमिरेण समावृताः ॥ ८ ॥
महास्वनाः सनिर्घातास्तुमुला लोमहर्षणाः ।
पेतुस्तथोल्काः शतशः स्फोटयन्त्यो नभस्तलात् ॥ ९ ॥
राहुश्चाग्रसदादित्यमपर्वणि विशाम्पते ।
चकम्पे च महाकम्पं पृथिवी सवनद्रुमा ॥ १० ॥

बिजलीकी गड़गड़ाहटके साथ प्रचण्ड वायु चलने लगी, सब ओर धूलिकी वर्षा होने लगी, सम्पूर्ण दिशाएँ अन्धकारसे आच्छन्न हो गयीं, आकाशसे महान् शब्द तथा वज्रकी-सी गड़गड़ाहटके साथ रोंगटे खड़े कर देनेवाली सैकड़ों भयंकर उल्काएँ भूतलको विदीर्ण करती हुई गिरने लगीं। प्रजानाथ! अमावास्याके बिना ही राहुने सूर्यको ग्रस लिया, वन और वृक्षोंसहित सारी पृथ्वी जोर-जोरसे काँपने लगी ॥ ८–१० ॥

रूक्षाश्च वाताः प्रववुर्नीचैः शर्करकर्षिणः ।
गिरीणां शिखराण्येव न्यपतन्त महीतले ॥ ११ ॥

नीचे धूल और कंकड़की वर्षा करती हुई रूखी हवा चलने लगी। पर्वतोंके शिखर टूट-टूटकर पृथ्वीपर गिरने लगे ॥ ११ ॥

मृगा बहुविधाकाराः सम्पतन्ति दिशो दश ।
दीप्ताः शिवाश्चाप्यनदन् घोररूपाः सुदारुणाः ॥ १२ ॥

नाना प्रकारकी आकृतिवाले मृग दसों दिशाओंमें दौड़ लगाने लगे। अत्यन्त भयंकर एवं घोररूप धारण करनेवाली सियारिनें जिनका मुख अग्निसे प्रज्वलित हो रहा था, अमङ्गलसूचक बोली बोल रही थीं ॥ १२ ॥

निर्घाताश्च महाघोरा बभूवुर्लोमहर्षणाः ।
दीप्तायां दिशि राजेन्द्र मृगाश्चाशुभवेदिनः ॥ १३ ॥

राजेन्द्र! अत्यन्त भयंकर और रोमाञ्चकारी शब्द प्रकट हो रहे थे, दिशाएँ मानो जल रही थीं और मृग किसी भावी अमङ्गलकी सूचना दे रहे थे ॥ १३ ॥

उदपानगताश्चापो व्यवर्धन्त समन्ततः ।
अशरीरा महानादाः श्रूयन्ते स्म तदा नृप ॥ १४ ॥

नरेश्वर! कुओंके जल सब ओरसे अपने आप बढ़ने लगे और बिना शरीरके ही जोर-जोरसे गर्जनाएँ सुनायी दे रही थीं ॥ १४ ॥

एवमादीनि दृष्ट्वाथ निमित्तानि वृकोदरः ।
उवाच भ्रातरं ज्येष्ठं धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ १५ ॥

इस प्रकार बहुत-से अपशकुन देखकर भीमसेन अपने ज्येष्ठ भ्राता धर्मराज युधिष्ठिरसे बोले—॥ १५ ॥

नैष शक्तो रणे जेतुं मन्दात्मा मां सुयोधनः ।
अद्य क्रोधं विमोक्ष्यामि निगूढं हृदये चिरम् ॥ १६ ॥
सुयोधने कौरवेन्द्रे खाण्डवेऽग्निमिवार्जुनः ।
शल्यमद्योद्धरिष्यामि तव पाण्डव हृच्छयम् ॥ १७ ॥

'भैया! यह मन्दबुद्धि दुर्योधन रणभूमिमें मुझे किसी प्रकार परास्त नहीं कर सकता। आज मैं अपने हृदयमें चिरकालसे छिपाये हुए क्रोधको कौरवराज दुर्योधनपर उसी प्रकार छोड़ूँगा, जैसे अर्जुनने खाण्डववनमें अग्निको छोड़ा था। पाण्डुनन्दन! आज आपके हृदयका काँटा मैं निकाल दूँगा ॥ १६-१७ ॥

निहत्य गदया पापमिमं कुरुकुलाधमम् ।
अद्य कीर्तिमयीं मालां प्रतिमोक्ष्याम्यहं त्वयि ॥ १८ ॥

'मैं अपनी गदासे इस कुरुकुलाधम पापीको मारकर आज आपको कीर्तिमयी माला पहनाऊँगा ॥ १८ ॥

हत्वेमं पापकर्माणं गदया रणमूर्धनि ।
अद्यास्य शतधा देहं भिनद्मि गदयानया ॥ १९ ॥

'युद्धके मुहानेपर गदाके आघातसे इस पापीका वध करके आज इसी गदासे इसके शरीरके सौ-सौ टुकड़े कर डालूँगा ॥ १९ ॥

नायं प्रवेष्टा नगरं पुनर्वारणसाह्वयम् ।
सर्पोत्सर्गस्य शयने विषदानस्य भोजने ॥ २० ॥
प्रमाणकोट्यां पातस्य दाहस्य जतुवेश्मनि ।
सभायामवहासस्य सर्वस्वहरणस्य च ॥ २१ ॥
वर्षमज्ञातवासस्य वनवासस्य चानघ ।
अद्यान्तमेषां दुःखानां गन्ताहं भरतर्षभ ॥ २२ ॥

'अब फिर कभी यह हस्तिनापुरमें प्रवेश नहीं करेगा। भरतश्रेष्ठ! इसने जो मेरी शय्यापर साँप छोड़ा था, भोजनमें विष दिया था, प्रमाणकोटिके जलमें मुझे गिराया था, लाक्षागृहमें जलानेकी चेष्टा की थी, भरी सभामें मेरा उपहास किया था, सर्वस्व हर लिया था तथा बारह वर्षोंतक वनवास और एक वर्षतक अज्ञातवासके लिये विवश किया था; इसके द्वारा प्राप्त हुए मैं इन सभी दुःखोंका अन्त कर डालूँगा ॥ २०–२२ ॥

एकाह्ना विनिहत्येमं भविष्याम्यात्मनोऽनृणः ।
अद्यायुर्धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेरकृतात्मनः ॥ २३ ॥
समाप्तं भरतश्रेष्ठ मातापित्रोश्च दर्शनम् ।

'आज एक दिनमें इसका वध करके मैं अपने आपसे उऋण हो जाऊँगा। भरतभूषण! आज दुर्बुद्धि एवं अजितात्मा धृतराष्ट्रपुत्रकी आयु समाप्त हो गयी है। इसे मातापिताके दर्शनका अवसर भी अब नहीं मिलनेवाला है। २३½।

अद्य सौख्यं तु राजेन्द्र कुरुराजस्य दुर्मतेः ॥ २४ ॥
समाप्तं च महाराज नारीणां दर्शनं पुनः ।

'राजेन्द्र! महाराज! आज खोटी बुद्धिवाले कुरुराज दुर्योधनका सारा सुख समाप्त हो गया। अब इसके लिये पुनः अपनी स्त्रियोंको देखना और उनसे मिलना असम्भव है ॥ २४½ ॥

अद्यायं कुरुराजस्य शान्तनोः कुलपांसनः ॥ २५ ॥
प्राणाञ्छ्रियं च राज्यं च त्यक्त्वा शेष्यति भूतले ।

'कुरुराज शान्तनुके कुलका यह जीता-जागता कलंक

आज अपने प्राण, लक्ष्मी तथा राज्यको छोड़कर सदाके लिये पृथ्वीपर सो जायगा ॥ २५½ ॥

राजा च धृतराष्ट्रोऽद्य श्रुत्वा पुत्रं निपातितम् ॥ २६ ॥
स्मरिष्यत्यशुभं कर्म यत्तच्छकुनिबुद्धिजम् ।

'आज राजा धृतराष्ट्र अपने इस पुत्रको मारा गया सुनकर अपने उन अशुभ कर्मोंको याद करेंगे, जिन्हें उन्होंने शकुनिकी सलाहके अनुसार किया था' ॥ २६½ ॥

इत्युक्त्वा राजशार्दूल गदामादाय वीर्यवान् ॥ २७ ॥
अभ्यतिष्ठत युद्धाय शक्रो वृत्रमिवाह्वयन् ।

नृपश्रेष्ठ ! ऐसा कहकर पराक्रमी भीमसेन हाथमें गदा ले युद्धके लिये खड़े हो गये और जैसे इन्द्रने वृत्रासुरको ललकारा था, उसी प्रकार वे दुर्योधनका आह्वान करने लगे ॥ २७½ ॥

तमुद्यतगदं दृष्ट्वा कैलासमिव शृङ्गिणम् ॥ २८ ॥
भीमसेनः पुनः क्रुद्धो दुर्योधनमुवाच ह ।

शिखरयुक्त कैलास पर्वतके समान गदा उठाये दुर्योधनको खड़ा देख भीमसेन पुनः कुपित हो उससे इस प्रकार बोले—॥ २८½ ॥

राज्ञश्च धृतराष्ट्रस्य तथा त्वमपि चात्मनः ॥ २९ ॥
स्मर तद् दुष्कृतं कर्म यद् वृत्तं वारणावते ।

'दुर्योधन ! वारणावत नगरमें जो कुछ हुआ था, राजा धृतराष्ट्रके और अपने भी उस कुकर्मको तू याद कर ले'॥२९½॥

द्रौपदी च परिक्लिष्टा सभामध्ये रजस्वला ॥ ३० ॥
द्यूते न वञ्चितो राजा यत् त्वया सौबलेन च ।
वने दुःखं च यत् प्राप्तमस्माभिस्त्वत्कृतं महत् ॥ ३१ ॥
विराटनगरे चैव योन्यन्तरगतैरिव ।
तत् सर्वं पातयाम्यद्य दिष्ट्या दृष्टोऽसि दुर्मते ॥ ३२ ॥

'तूने भरी सभामें जो रजस्वला द्रौपदीको अपमानित करके उसे क्लेश पहुँचाया था, सुबलपुत्र शकुनिके द्वारा जूएमें जो राजा युधिष्ठिरको ठग लिया था, तुम्हारे कारण हम सब लोगोंने जो वनमें महान् दुःख उठाया था और विराटनगरमें जो हमें दूसरी योनिमें गये हुए प्राणियोंके समान रहना पड़ा था; इन सब कष्टोंके कारण मेरे मनमें जो क्रोध संचित है, वह सब-का-सब आज तुझपर डाल दूँगा। दुर्मते ! सौभाग्यसे आज तू मुझे दीख गया है ॥ ३०–३२ ॥

त्वत्कृतेऽसौ हतः शेते शरतल्पे प्रतापवान् ।
गाङ्गेयो रथिनां श्रेष्ठो निहतो याज्ञसेनिना ॥ ३३ ॥

'तेरे ही कारण रथियोंमें श्रेष्ठ प्रतापी गङ्गानन्दन भीष्म द्रुपदकुमार शिखण्डीके हाथसे मारे जाकर बाणशय्यापर सो रहे हैं ॥ ३३ ॥

हतो द्रोणश्च कर्णश्च तथा शल्यः प्रतापवान् ।
वैराग्नेरादिकर्तासौ शकुनिः सौबलो हतः ॥ ३४ ॥

'द्रोणाचार्य, कर्ण और प्रतापी शल्य मारे गये तथा इस वैरकी आगको प्रज्वलित करनेमें जिसका सबसे पहला हाथ था, वह सुबलपुत्र शकुनि भी मार डाला गया ॥ ३४ ॥

प्रातिकामी तथा पापो द्रौपद्याः क्लेशकृद्धतः ।
भ्रातरस्ते हताः सर्वे शूरा विक्रान्तयोधिनः ॥ ३५ ॥

'द्रौपदीको क्लेश देनेवाला पापात्मा प्रातिकामी भी मारा गया। साथ ही जो पराक्रमपूर्वक युद्ध करनेवाले थे, वे तेरे सभी शूरवीर भाई भी मारे जा चुके हैं ॥

एते चान्ये च बहवो निहतास्त्वत्कृते नृपाः ।
त्वामद्य निहनिष्यामि गदया नात्र संशयः ॥ ३६ ॥

'ये तथा और भी बहुत-से नरेश तेरे लिये युद्धमें मारे गये हैं। आज तुझे भी गदासे मार गिराऊँगा, इसमें संशय नहीं है' ॥ ३६ ॥

इत्येवमुच्चै राजेन्द्र भाषमाणं वृकोदरम् ।
उवाच गतभी राजन् पुत्रस्ते सत्यविक्रमः ॥ ३७ ॥

राजेन्द्र ! इस प्रकार उच्च स्वरसे बोलनेवाले भीमसेनसे आपके सत्यपराक्रमी पुत्रने निर्भय होकर कहा—॥ ३७ ॥

किं कत्थनेन बहुना युध्यस्व त्वं वृकोदर ।
अद्य तेऽहं विनेष्यामि युद्धश्रद्धां कुलाधम ॥ ३८ ॥

'वृकोदर ! बहुत बढ़-बढ़कर बातें बनानेसे क्या लाभ? तू मेरे साथ संग्राम कर ले। कुलाधम ! आज मैं तेरा युद्धका हौसला मिटा दूँगा ॥ ३८ ॥

न हि दुर्योधनः क्षुद्र केनचित् त्वद्विधेन वै ।
शक्यस्त्रासयितुं वाचा यथान्यः प्राकृतो नरः ॥ ३९ ॥

'ओ नीच ! तेरे-जैसा कोई भी मनुष्य अन्य प्राकृत पुरुषके समान दुर्योधनको वाणीद्वारा नहीं डरा सकता ॥३९॥

चिरकालेप्सितं दिष्ट्या हृदयस्थमिदं मम ।
त्वया सह गदायुद्धं त्रिदशैरुपपादितम् ॥ ४० ॥

'सौभाग्यकी बात है कि मेरे हृदयमें दीर्घकालसे जो तेरे साथ गदायुद्ध करनेकी अभिलाषा थी, उसे देवताओंने पूर्ण कर दिया ॥ ४० ॥

किं वाचा बहुनोक्तेन कत्थितेन च दुर्मते ।
वाणी सम्पद्यतामेषा कर्मणा मा चिरं कृथाः ॥ ४१ ॥

'दुर्बुद्धे ! वाणीद्वारा बहुत शेखी बघारनेसे क्या होगा? तू जो कुछ कहता है, उसे शीघ्र ही कार्यरूपमें परिणत कर' ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा सर्व एवाभ्यपूजयन् ।
राजानः सोमकाश्चैव ये तत्रासन् समागताः ॥ ४२ ॥

दुर्योधनकी यह बात सुनकर वहाँ आये हुए समस्त राजाओं तथा सोमकोंने उसकी बड़ी सराहना की ॥ ४२ ॥

ततः सम्पूजितः सर्वैः सम्प्रहृष्टतनूरुहः ।
भूयो धीरां मतिं चक्रे युद्धाय कुरुनन्दनः ॥ ४३ ॥

तदनन्तर सबसे सम्मानित हो कुरुनन्दन दुर्योधनने युद्धके लिये धीर बुद्धिका आश्रय लिया। उस समय उसके शरीरमें रोमाञ्च हो आया था ॥ ४३ ॥

उन्मत्तमिव मातङ्गं तलशब्दैर्नराधिपाः ।
भूयः संहर्षयांचक्रुर्दुर्योधनममर्षणम् ॥ ४४ ॥

इसके बाद जैसे लोग ताली बजाकर मतवाले हाथीको कुपित कर देते हैं, उसी प्रकार राजाओंने ताली पीटकर



दुर्योधन और भीमका गदायुद्ध

अमर्षशील दुर्योधनको पुनः हर्ष और उत्साहसे भर दिया ॥

तं महात्मा महात्मानं गदामुद्यम्य पाण्डवः।
अभिदुद्राव वेगेन धार्तराष्ट्रं वृकोदरः ॥ ४५ ॥

महामनस्वी पाण्डुपुत्र भीमसेनने गदा उठाकर आपके महामना पुत्र दुर्योधनपर बड़े वेगसे आक्रमण किया ॥ ४५ ॥

बृंहन्ति कुञ्जरास्तत्र हया हेषन्ति चासकृत्।
शस्त्राणि चाप्यदीप्यन्त पाण्डवानां जयैषिणाम् ॥ ४६ ॥

उस समय हाथी बारंबार चिग्घाड़ने और घोड़े हिनहिनाने लगे । साथ ही विजयाभिलाषी पाण्डवोंके अस्त्र-शस्त्र चमक उठे ॥ ४६ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि गदायुद्धारम्भे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें गदायुद्धका आरम्भविषयक छप्पनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भीमसेन और दुर्योधनका गदायुद्ध

संजय उवाच

ततो दुर्योधनो दृष्ट्वा भीमसेनं तथागतम्।
प्रत्युद्ययावदीनात्मा वेगेन महता नदन् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर उदारहृदय दुर्योधनने भीमसेनको इस प्रकार आक्रमण करते देख स्वयं भी गर्जना करते हुए बड़े वेगसे आगे बढ़कर उनका सामना किया ॥

समापेततुरन्योन्यं शृङ्गिणौ वृषभाविव।
महानिर्घातघोषश्च प्रहाराणामजायत ॥ २ ॥

वे दोनों बड़े-बड़े सींगवाले दो साँड़ोंके समान एक-दूसरेसे भिड़ गये । उनके प्रहारोंकी आवाज महान् वज्रपातके समान भयंकर जान पड़ती थी ॥ २ ॥

अभवच्च तयोर्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम्।
जिगीषतोर्यथान्योन्यमिन्द्रप्रह्लादयोरिव ॥ ३ ॥

एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छा रखनेवाले उन दोनोंमें इन्द्र और प्रह्लादके समान भयंकर एवं रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा ॥ ३ ॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गौ गदाहस्तौ मनस्विनौ।
ददृशाते महात्मानौ पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ४ ॥

उनके सारे अङ्ग खूनसे लथपथ हो गये थे । हाथमें गदा लिये वे दोनों महामना मनस्वी वीर फूले हुए दो पलाश-वृक्षोंके समान दिखायी देते थे ॥ ४ ॥

तथा तस्मिन् महायुद्धे वर्तमाने सुदारुणे।
खद्योतसंघैरिव खं दर्शनीयं व्यरोचत ॥ ५ ॥

उस अत्यन्त भयंकर महायुद्धके चालू होनेपर गदाओंके आघातसे आगकी चिनगारियाँ छूटने लगीं । वे आकाशमें जुगनुओंके दलके समान जान पड़ती थीं और उनसे वहाँके आकाशकी दर्शनीय शोभा हो रही थी ॥ ५ ॥

तथा तस्मिन् वर्तमाने संकुले तुमुले भृशम्।
उभावपि परिश्रान्तौ युध्यमानावरिंदमौ ॥ ६ ॥

इस प्रकार चलते हुए उस अत्यन्त भयंकर घमासान युद्धमें लड़ते-लड़ते वे दोनों शत्रुदमन वीर बहुत थक गये ॥

तौ मुहूर्तं समाश्वस्य पुनरेव परंतपौ।
सम्प्रहारयतां चित्रे सम्प्रगृह्य गदे शुभे ॥ ७ ॥

फिर उन दोनोंने दो घड़ीतक विश्राम किया । इसके बाद शत्रुओंको संताप देनेवाले वे दोनों योद्धा फिर विचित्र एवं सुन्दर गदाएँ हाथमें लेकर एक-दूसरेपर प्रहार करने लगे ॥

तौ तु दृष्ट्वा महावीर्यौ समाश्वस्तौ नरर्षभौ।
बलिनौ वारणौ यद्वद् वाशितार्थे मदोत्कटौ ॥ ८ ॥
समानवीर्यौ सम्प्रेक्ष्य प्रगृहीतगदावुभौ।
विस्मयं परमं जग्मुर्देवगन्धर्वमानवाः ॥ ९ ॥

उन समान बलशाली महापराक्रमी नरश्रेष्ठ वीरोंने विश्राम करके पुनः हाथमें गदा ले ली और मैथुनकी इच्छावाली हथिनीके लिये लड़नेवाले दो बलवान् एवं मदोन्मत्त गजराजोंके समान पुनः युद्ध आरम्भ कर दिया है, यह देखकर देवता, गन्धर्व और मनुष्य सभी अत्यन्त आश्चर्यसे चकित हो उठे ॥ ८-९ ॥

प्रगृहीतगदौ दृष्ट्वा दुर्योधनवृकोदरौ।
संशयः सर्वभूतानां विजये समपद्यत ॥ १० ॥

दुर्योधन और भीमसेनको पुनः गदा उठाये देख उनमेंसे किसी एककी विजयके सम्बन्धमें समस्त प्राणियोंके हृदयमें संशय उत्पन्न हो गया ॥ १० ॥

समागम्य ततो भूयो भ्रातरौ बलिनां वरौ।
अन्योन्यस्यान्तरप्रेप्सू प्रचक्रातेऽन्तरं प्रति ॥ ११ ॥

बलवानोंमें श्रेष्ठ उन दोनों भाइयोंमें जब पुनः भिड़न्त हुई तो दोनों ही दोनोंके चूकनेका अवसर देखते हुए पैंतरे बदलने लगे ॥ ११ ॥

यमदण्डोपमां गुर्वीमिन्द्राशनिमिवोद्यताम्।
ददृशुः प्रेक्षका राजन् रौद्रीं विशसनीं गदाम् ॥ १२ ॥
आविद्धयतो गदां तस्य भीमसेनस्य संयुगे।
शब्दः सुतुमुलो घोरो मुहूर्तं समपद्यत ॥ १३ ॥

राजन् ! उस समय युद्धस्थलमें जब भीमसेन अपनी गदा घुमाने लगे, तब दर्शकोंने देखा, उनकी भारी गदा यमदण्डके समान भयंकर है । वह इन्द्रके वज्रके समान ऊपर उठी हुई है और शत्रुको छिन्न-भिन्न कर डालनेमें समर्थ है । गदा घुमाते समय उसकी घोर एवं भयानक आवाज वहाँ दो घड़ीतक गूँजती रही ॥ १२-१३ ॥

आविद्धयन्तमरिं प्रेक्ष्य धार्तराष्ट्रोऽथ पाण्डवम्।
गदामतुलवेगां तां विस्मितः सम्बभूव ह ॥ १४ ॥

आपका पुत्र दुर्योधन अपने शत्रु पाण्डुकुमार भीमसेनको वह अनुपम वेगशालिनी गदा घुमाते देख आश्चर्यमें पड़ गया ॥

चरंश्च विविधान् मार्गान् मण्डलानि च भारत।
अशोभत तदा वीरो भूय एव वृकोदरः॥ १५॥

भरतनन्दन! वीर भीमसेन भाँति-भाँतिके मार्गों और मण्डलोंका प्रदर्शन करते हुए पुनः बड़ी शोभा पाने लगे॥

तौ परस्परमासाद्य यत्तावन्योन्यरक्षणे।
मार्जाराविव भक्षार्थे ततक्षाते मुहुर्मुहुः॥ १६॥

वे दोनों परस्पर भिड़कर एक दूसरेसे अपनी रक्षाके लिये प्रयत्नशील हो रोटीके टुकड़ोंके लिये लड़नेवाले दो बिलावोंके समान बारंबार आघात-प्रतिघात कर रहे थे॥ १६॥

अचरद् भीमसेनस्तु मार्गान् बहुविधांस्तथा।
मण्डलानि विचित्राणि गतप्रत्यागतानि च॥ १७॥

उस समय भीमसेन नाना प्रकारके मार्ग और विचित्र मण्डल दिखाने लगे। वे कभी शत्रुके सम्मुख आगे बढ़ते और कभी उसका सामना करते हुए ही पीछे हट आते थे॥

अस्त्रयन्त्राणि चित्राणि स्थानानि विविधानि च।
परिमोक्षं प्रहाराणां वर्जनं परिधावनम्॥ १८॥

विचित्र अस्त्र-यन्त्रों और भाँति-भाँतिके स्थानोंका प्रदर्शन करते हुए वे दोनों शत्रुके प्रहारोंसे अपनेको बचाते, विपक्षीके प्रहारको व्यर्थ कर देते और दायें-बायें दौड़ लगाते थे॥१८॥

अभिद्रवणमाक्षेपमवस्थानं सविग्रहम्।
परिवर्तनसंवर्तमवप्लुतमुपप्लुतम्॥ १९॥
उपन्यस्तमपन्यस्तं गदायुद्धविशारदौ।
एवं तौ विचरन्तौ तु परस्परमविध्यताम्॥ २०॥

कभी वेगसे एक-दूसरेके सामने जाते, कभी विरोधीको गिरानेकी चेष्टा करते, कभी स्थिरभावसे खड़े होते, कभी गिरे हुए शत्रुके उठनेपर पुनः उसके साथ युद्ध करते, कभी विरोधीपर प्रहार करनेके लिये चक्कर काटते, कभी शत्रुके बढ़ावको रोक देते, कभी विपक्षीके प्रहारको विफल करनेके लिये झुककर निकल जाते, कभी उछलते-कूदते, कभी निकट आकर गदाका प्रहार करते और कभी लौटकर पीछेकी ओर किये हुए हाथसे शत्रुपर आघात करते थे। दोनों ही गदा-युद्धके विशेषज्ञ थे और इस प्रकार पैंतरे बदलते हुए एक-दूसरेपर चोट करते थे॥ १९-२०॥

वञ्चयानौ पुनश्चैव चेरतुः कुरुसत्तमौ।
विक्रीडन्तौ सुबलिनौ मण्डलानि विचेरतुः॥ २१॥

कुरुकुलके वे दोनों श्रेष्ठ और बलवान् वीर विपक्षीको चकमा देते हुए बारंबार युद्धके खेल दिखाते तथा पैंतरे बदलते थे॥ २१॥

तौ दर्शयन्तौ समरे युद्धक्रीडां समन्ततः।
गदाभ्यां सहसान्योन्यमाजघ्नतुररिंदमौ॥ २२॥

समराङ्गणमें सब ओर युद्धकी क्रीडाका प्रदर्शन करते हुए उन दोनों शत्रुदमन वीरोंने सहसा अपनी गदाओंद्वारा एक-दूसरेपर प्रहार किया॥ २२॥

परस्परं समासाद्य दंष्ट्राभ्यां द्विरदौ यथा।
अशोभेतां महाराज शोणितेन परिप्लुतौ॥ २३॥

महाराज! जैसे दो हाथी अपने दाँतोंसे परस्पर प्रहार करके लहू-लुहान हो जाते हैं, उसी प्रकार वे दोनों एक-दूसरेपर चोट करके खूनसे भीगकर शोभा पाने लगे॥ २३॥

एवं तदभवद् युद्धं घोररूपं परंतप।
परिवृत्तेऽहनि क्रूरं वृत्रवासवयोरिव॥ २४॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले नरेश! इस प्रकार दिनकी समाप्तिके समय उन दोनों वीरोंमें वृत्रासुर और इन्द्रके समान क्रूरतापूर्ण एवं भयंकर युद्ध होने लगा॥ २४॥

गदाहस्तौ ततस्तौ तु मण्डलावस्थितौ बली।
दक्षिणं मण्डलं राजन् धार्तराष्ट्रोऽभ्यवर्तत॥ २५॥
सव्यं तु मण्डलं तत्र भीमसेनोऽभ्यवर्तत।

राजन्! दोनों ही हाथमें गदा लेकर मण्डलाकार युद्ध-स्थलमें खड़े थे। उनमेंसे बलवान् दुर्योधन दक्षिण मण्डलमें खड़ा था और भीमसेन बायें मण्डलमें॥ २५½॥

तथा तु चरतस्तस्य भीमस्य रणमूर्धनि॥ २६॥
दुर्योधनो महाराज पार्श्वदेशेऽभ्यताडयत्।

महाराज! युद्धके मुहानेपर वाममण्डलमें विचरते हुए भीमसेनकी पसलीमें दुर्योधनने गदा मारी॥ २६½॥

आहतस्तु ततो भीमः पुत्रेण तव भारत॥ २७॥
आविद्धयत गदां गुर्वीं प्रहारं तमचिन्तयन्।

भरतनन्दन! आपके पुत्रद्वारा आहत किये गये भीमसेन उस प्रहारको कुछ भी न गिनते हुए अपनी भारी गदा घुमाने लगे॥ २७½॥

इन्द्राशनिसमां घोरां यमदण्डमिवोद्यताम्॥ २८॥
ददृशुस्ते महाराज भीमसेनस्य तां गदाम्।

राजेन्द्र! दर्शकोंने भीमसेनकी उस भयंकर गदाको इन्द्रके वज्र और यमराजके दण्डके समान उठी हुई देखा॥

आविध्यन्तं गदां दृष्ट्वा भीमसेनं तवात्मजः॥ २९॥
समुद्यम्य गदां घोरां प्रत्यविध्यत् परंतपः।

शत्रुओंको संताप देनेवाले आपके पुत्र दुर्योधनने भीमसेनको गदा घुमाते देख अपनी भयंकर गदा उठाकर उनकी गदापर दे मारी॥ २९½॥

गदामारुतवेगेन तव पुत्रस्य भारत॥ ३०॥
शब्द आसीत् सुतुमुलस्तेजश्च समजायत।

भारत! आपके पुत्रकी वायुतुल्य गदाके वेगसे उस गदाके टकरानेपर बड़े जोरका शब्द हुआ और दोनों गदाओंसे आगकी चिनगारियाँ छूटने लगीं॥ ३०½॥

स चरन् विविधान् मार्गान् मण्डलानि च भागशः॥ ३१॥
समशोभत तेजस्वी भूयो भीमात् सुयोधनः।

नाना प्रकारके मार्गों और भिन्न-भिन्न मण्डलोंसे विचरते हुए तेजस्वी दुर्योधनकी उस समय भीमसेनसे अधिक शोभा हुई॥

आविद्धा सर्ववेगेन भीमेन महती गदा॥ ३२॥
सधूमं सार्चिषं चाग्निं मुमोचोग्रमहास्वना।

भीमसेनके द्वारा सम्पूर्ण वेगसे घुमायी गयी वह विशाल गदा उस समय भयंकर शब्द करती हुई धूम और ज्वालाओं-सहित आग प्रकट करने लगी॥ ३२½॥

आधूतां भीमसेनेन गदां दृष्ट्वा सुयोधनः ॥ ३३ ॥
अद्रिसारमयीं गुर्वीमाविध्यन् बह्वशोभत ।

भीमसेनके द्वारा घुमायी गयी उस गदाको देखकर दुर्योधन भी अपनी लोहमयी भारी गदाको घुमाता हुआ अधिक शोभा पाने लगा ॥ ३३½ ॥

गदामारुतवेगं हि दृष्ट्वा तस्य महात्मनः ॥ ३४ ॥
भयं विवेश पाण्डूंस्तु सर्वानेव ससोमकान् ।

उस महामनस्वी वीरकी वायुतुल्य गदाके वेगको देखकर सोमकोंसहित समस्त पाण्डवोंके मनमें भय समा गया ॥

तौ दर्शयन्तौ समरे युद्धक्रीडां समन्ततः ॥ ३५ ॥
गदाभ्यां सहसान्योन्यमाजघ्नतुररिंदमौ ।

समराङ्गणमें सब ओर युद्धकी क्रीडाका प्रदर्शन करते उन दोनों शत्रुदमन वीरोंने सहसा अपनी गदाओंद्वारा एक-दूसरेपर प्रहार किया ॥ ३५½ ॥

तौ परस्परमासाद्य दंष्ट्राभ्यां द्विरदौ यथा ॥ ३६ ॥
अशोभेतां महाराज शोणितेन परिप्लुतौ ।

महाराज ! जैसे दो हाथी अपने दाँतोंसे परस्पर प्रहार करके लहू-लुहान हो जाते हैं, उसी प्रकार वे दोनों एक-दूसरेपर चोट करके खूनसे लथपथ हो अद्भुत शोभा पाने लगे ॥

एवं तदभवद् युद्धं घोररूपमसंवृतम् ॥ ३७ ॥
परिवृत्तेऽहनि क्रूरं वृत्रवासवयोरिव ।

इस प्रकार दिनकी समाप्तिके समय, उन दोनों वीरोंमें प्रकटरूपमें वृत्रासुर और इन्द्रके समान क्रूरतापूर्ण एवं भयंकर युद्ध होने लगा ॥ ३७½ ॥

दृष्ट्वा व्यवस्थितं भीमं तव पुत्रो महाबलः ॥ ३८ ॥
चरंश्चित्रतरान् मार्गान् कौन्तेयमभिदुद्रुवे ।

तदनन्तर विचित्र मार्गोंसे विचरते हुए आपके महाबली पुत्रने कुन्तीकुमार भीमसेनको खड़ा देख उनपर सहसा आक्रमण किया ॥ ३८½ ॥

तस्य भीमो महावेगां जाम्बूनदपरिष्कृताम् ॥ ३९ ॥
अतिक्रुद्धस्य क्रुद्धस्तु ताडयामास तां गदाम् ।

यह देख क्रोधमें भरे भीमसेनने अत्यन्त कुपित हुए दुर्योधनकी सुवर्णजटित उस महावेगशालिनी गदापर ही अपनी गदासे आघात किया ॥ ३९½ ॥

सविस्फुलिङ्गो निर्ह्रादस्तयोस्तत्राभिघातजः ॥ ४० ॥
प्रादुरासीन्महाराज सृष्टयोर्वज्रयोरिव

महाराज ! उन दोनों गदाओंके टकरानेसे भयंकर शब्द हुआ और आगकी चिनगारियाँ छूटने लगीं । उस समय ऐसा जान पड़ा, मानो दोनों ओरसे छोड़े गये दो वज्र परस्पर टकरा गये हों ॥ ४०½ ॥

वेगवत्या तया तत्र भीमसेनप्रमुक्तया ॥ ४१ ॥
निपतन्त्या महाराज पृथिवी समकम्पत ।

राजेन्द्र ! भीमसेनकी छोड़ी हुई उस वेगवती गदाके गिरनेसे धरती डोलने लगी ॥ ४१½ ॥

तां नामृष्यत कौरव्यो गदां प्रतिहतां रणे ॥ ४२ ॥
मत्तो द्विप इव क्रुद्धः प्रतिकुञ्जरदर्शनात् ।

जैसे क्रोधमें भरा हुआ मतवाला हाथी अपने प्रतिद्वन्द्वी गजराजको देखकर सहन नहीं कर पाता, उसी प्रकार रणभूमिमें अपनी गदाको प्रतिहत हुई देख कुरुवंशी दुर्योधन नहीं सह सका ॥ ४२½ ॥

स सव्यं मण्डलं राजा उद्भ्राम्य कृतनिश्चयः ॥ ४३ ॥
आजघ्ने मूर्ध्नि कौन्तेयं गदया भीमवेगया ।

तत्पश्चात् राजा दुर्योधनने अपने मनमें दृढ़ निश्चय लेकर बायें मण्डलसे चक्कर लगाते हुए अपनी भयंकर वेगशाली गदासे कुन्तीकुमार भीमसेनके मस्तकपर प्रहार किया ॥४३½॥

तया त्वभिहतो भीमः पुत्रेण तव पाण्डवः ॥ ४४ ॥
नाकम्पत महाराज तदद्भुतमिवाभवत् ।

महाराज ! आपके पुत्रके आघातसे पीड़ित होनेपर भी पाण्डुपुत्र भीमसेन विचलित नहीं हुए । वह अद्भुत-सी बात हुई ॥ ४४½ ॥

आश्चर्यं चापि तद् राजन् सर्वसैन्यान्यपूजयन् ॥ ४५ ॥
यद् गदाभिहतो भीमो नाकम्पत पदात् पदम् ।

राजन् ! गदाकी चोट खाकर भी जो भीमसेन एक पग भी इधर-उधर नहीं हुए, वह महान् आश्चर्यकी बात थी, जिसकी सभी सैनिकोंने भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ ४५½ ॥

ततो गुरुतरां दीप्तां गदां हेमपरिष्कृताम् ॥ ४६ ॥
दुर्योधनाय व्यसृजद् भीमो भीमपराक्रमः ।

तदनन्तर भयंकर पराक्रमी भीमसेनने दुर्योधनपर अपनी सुवर्णजटित तेजस्विनी एवं बड़ी भारी गदा छोड़ी ॥४६½॥

तं प्रहारमसम्भ्रान्तो लाघवेन महाबलः ॥ ४७ ॥
मोघं दुर्योधनश्चक्रे तत्राभूद् विस्मयो महान् ।

परंतु महाबली दुर्योधनको इससे तनिक भी घबराहट नहीं हुई । उसने फुर्तीसे इधर-उधर होकर उस प्रहारको व्यर्थ कर दिया । यह देख वहाँ सब लोगोंको महान् आश्चर्य हुआ॥

सा तु मोघा गदा राजन् पतन्ती भीमचोदिता ॥ ४८ ॥
चालयामास पृथिवीं महानिर्घातनिःस्वना ।

राजन् ! भीमसेनकी चलायी हुई वह गदा जब व्यर्थ होकर गिरने लगी, उस समय उसने वज्रपातके समान महान् शब्द प्रकट करके पृथ्वीको हिला दिया ॥ ४८½ ॥

आस्थाय कौशिकान् मार्गानुत्पतन् स पुनः पुनः॥ ४९ ॥
गदानिपातं प्रज्ञाय भीमसेनं च वञ्चितम् ।
वञ्चयित्वा तदा भीमं गदया कुरुसत्तमः ॥ ५० ॥
ताडयामास संक्रुद्धो वक्षोदेशे महाबलः ।

जब राजा दुर्योधनने देखा कि भीमसेनकी गदा नीचे गिर गयी और उनका वार खाली गया, तब क्रोधमें भरे हुए महाबली कुरुश्रेष्ठ दुर्योधनने कौशिक मार्गोंका आश्रय ले बार-बार उछलकर भीमसेनको धोखा देकर उनकी छातीमें गदा मारी ॥ ४९-५०½ ॥

गदया निहतो भीमो मुह्यमानो महारणे ॥ ५१ ॥
नाभ्यमन्यत कर्तव्यं पुत्रेणाभ्याहतस्तव ।

उस महासमरमें आपके पुत्रकी गदाकी चोट खाकर भीमसेन मूर्च्छित-से हो गये और एक क्षणतक उन्हें अपने कर्तव्यका ज्ञानतक न रहा ॥ ५१½ ॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने राजन् सोमकपाण्डवाः ॥ ५२ ॥
भृशोपहतसंकल्पा न हृष्टमनसोऽभवन् ।

राजन् ! जब भीमसेनकी ऐसी अवस्था हो गयी, उस समय सोमक और पाण्डव बहुत ही खिन्न और उदास हो गये । उनकी विजयकी आशा नष्ट हो गयी ॥ ५२½ ॥

स तु तेन प्रहारेण मातङ्ग इव रोषितः ॥ ५३ ॥
हस्तिवद्धस्तिसंकाशमभिदुद्राव ते सुतम् ।

उस प्रहारसे भीमसेन मतवाले हाथीकी भाँति कुपित हो उठे और जैसे एक गजराज दूसरे गजराजपर धावा करता है, उसी प्रकार उन्होंने आपके पुत्रपर आक्रमण किया ॥५३½॥

ततस्तु तरसा भीमो गदया तनयं तव ॥ ५४ ॥
अभिदुद्राव वेगेन सिंहो वनगजं यथा ।

जैसे सिंह जंगली हाथीपर झपटता है, उसी प्रकार भीमसेन गदा लेकर बड़े वेगसे आपके पुत्रकी ओर दौड़े ॥५४½॥

उपसृत्य तु राजानं गदामोक्षविशारदः ॥ ५५ ॥
आविध्यत गदां राजन् समुद्दिश्य सुतं तव ।
अताडयद् भीमसेनः पार्श्वे दुर्योधनं तदा ॥ ५६ ॥

राजन् ! गदाका प्रहार करनेमें कुशल भीमसेनने आपके पुत्र राजा दुर्योधनके निकट पहुँचकर गदा घुमायी और उसे मार डालनेके उद्देश्यसे उसकी पसलीमें आघात किया ॥

स विह्वलः प्रहारेण जानुभ्यामगमन्महीम् ।
तस्मिन् कुरुकुलश्रेष्ठे जानुभ्यामवनीं गते ॥ ५७ ॥
उदतिष्ठत् ततो नादः सृंजयानां जगत्पते ।

राजन् ! उस प्रहारसे व्याकुल हो आपका पुत्र पृथ्वीपर घुटने टेककर बैठ गया । उस कुरुकुलके श्रेष्ठ वीर दुर्योधनके घुटने टेक देनेपर सृंजयोंने बड़े जोरसे हर्षध्वनि की ॥५७½॥

तेषां तु निनदं श्रुत्वा सृंजयानां नरर्षभः ॥ ५८ ॥
अमर्षाद् भरतश्रेष्ठ पुत्रस्ते समकुप्यत ।
उत्थाय तु महाबाहुर्महानाग इव श्वसन् ॥ ५९ ॥
दिधक्षन्निव नेत्राभ्यां भीमसेनमवैक्षत ।

भरतश्रेष्ठ ! उन सृंजयोंका वह सिंहनाद सुनकर पुरुषप्रवर आपका महाबाहु पुत्र दुर्योधन अमर्षसे कुपित हो उठा और खड़ा होकर महान् सर्पके समान फुंकार करने लगा । उसने दोनों आँखोंसे भीमसेनकी ओर इस प्रकार देखा, मानो उन्हें भस्म कर डालना चाहता हो ॥ ५८-५९½ ॥

ततः स भरतश्रेष्ठो गदापाणिरभिद्रवन् ॥ ६० ॥
प्रमथिष्यन्निव शिरो भीमसेनस्य संयुगे ।

भरतवंशका वह श्रेष्ठ वीर हाथमें गदा लेकर युद्धस्थलमें भीमसेनका मस्तक कुचल डालनेके लिये उनकी ओर दौड़ा ॥

स महात्मा महात्मानं भीमं भीमपराक्रमः ॥ ६१ ॥
अताडयच्छङ्खदेशे न चचालाचलोपमः ।

पास पहुँचकर उस भयंकर पराक्रमी महामनस्वी वीरने महामना भीमसेनके ललाटपर गदासे आघात किया, परंतु भीमसेन पर्वतके समान अविचलभावसे खड़े रह गये, तनिक भी विचलित नहीं हुए ॥ ६१½ ॥

स भूयः शुशुभे पार्थस्ताडितो गदया रणे ।
उद्भिन्नरुधिरो राजन् प्रभिन्न इव कुञ्जरः ॥ ६२ ॥

राजन् ! रणभूमिमें उस गदाकी चोट खाकर भीमसेनके मस्तकसे रक्तकी धारा बह चली और वे मदकी धारा बहानेवाले गजराजके समान अधिक शोभा पाने लगे ॥ ६२ ॥

ततो गदां वीरहणीमयोमयीं
प्रगृह्य वज्राशनितुल्यनिःस्वनाम् ।
अताडयच्छत्रुममित्रकर्षणो
बलेन विक्रम्य धनंजयाग्रजः ॥ ६३ ॥

तदनन्तर अर्जुनके बड़े भाई शत्रुसूदन भीमसेनने बलपूर्वक पराक्रम प्रकट करके वज्र और अशनिके तुल्य महान् शब्द करनेवाली वीरविनाशिनी लोहमयी गदा हाथमें लेकर उसके द्वारा अपने शत्रुपर प्रहार किया ॥ ६३ ॥

स भीमसेनाभिहतस्तवात्मजः
पपात संकम्पितदेहबन्धनः ।
सुपुष्पितो मारुतवेगताडितो
वने यथा शाल इवावघूर्णितः ॥ ६४ ॥

भीमसेनके उस प्रहारसे आहत होकर आपके पुत्रके शरीरकी नस-नस ढीली हो गयी और वह वायुके वेगसे प्रताड़ित हो झोंके खानेवाले विकसित शालवृक्षकी भाँति काँपता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ६४ ॥

ततः प्रणेदुर्जहृषुश्च पाण्डवाः
समीक्ष्य पुत्रं पतितं क्षितौ तव ।
ततः सुतस्ते प्रतिलभ्य चेतनां
समुत्पपात द्विरदो यथा ह्रदात् ॥ ६५ ॥

आपके पुत्रको पृथ्वीपर पड़ा देख पाण्डव हर्षमें भरकर सिंहनाद करने लगे । इतनेहीमें आपका पुत्र होशमें आ गया और सरोवरसे निकले हुए हाथीके समान उछलकर खड़ा हो गया ॥ ६५ ॥

स पार्थिवो नित्यममर्षितस्तदा
महारथः शिक्षितवत् परिभ्रमन् ।
अताडयत् पाण्डवमग्रतः स्थितं
स विह्वलाङ्गो जगतीमुपास्पृशत् ॥ ६६ ॥

सदा अमर्षमें भरे रहनेवाले महारथी राजा दुर्योधनने एक शिक्षित योद्धाकी भाँति विचरते हुए अपने सामने खड़े भीमसेनपर पुनः गदाका प्रहार किया । उसकी चोट खाकर भीमसेनका सारा शरीर शिथिल हो गया और उन्होंने धरती थाम ली ॥

स सिंहनादं विननाद कौरवो
निपात्य भूमौ युधि भीममोजसा ।
बिभेद चैवाशनितुल्यमोजसा
गदानिपातेन शरीररक्षणम् ॥ ६७ ॥

भीमसेनको युद्धस्थलमें बलपूर्वक भूमिपर गिराकर कुरुराज दुर्योधन सिंहके समान दहाड़ने लगा । उसने सारी शक्ति

लगाकर चलायी हुई गदाके आघातसे भीमसेनके वज्रतुल्य कवचका भेदन कर दिया था ॥ ६७ ॥

ततोऽन्तरिक्षे निनदो महानभूद्
दिवौकसामप्सरसां च नेदुषाम् ।
पपात चोच्चैरमरप्रवेरितं
विचित्रपुष्पोत्करवर्षमुत्तमम् ॥ ६८ ॥

उस समय आकाशमें हर्षध्वनि करनेवाले देवताओं और अप्सराओंका महान् कोलाहल गूँज उठा। साथ ही देवताओं-द्वारा बहुत ऊँचेसे की हुई विचित्र पुष्पसमूहोंकी वहाँ अच्छी वर्षा होने लगी ॥ ६८ ॥

ततः परानाविशदुत्तमं भयं
समीक्ष्य भूमौ पतितं नरोत्तमम् ।
अहीयमानं च बलेन कौरवं
निशाम्य भेदं सुदृढस्य वर्मणः ॥ ६९ ॥

राजन् ! तदनन्तर यह देखकर कि भीमसेनका सुदृढ़ कवच छिन्न-भिन्न हो गया, नरश्रेष्ठ भीम धराशायी हो गये और कुरुराज दुर्योधनका बल क्षीण नहीं हो रहा है, शत्रुओंके मनमें बड़ा भारी भय समा गया ॥ ६९ ॥

ततो मुहूर्तादुपलभ्य चेतनां
प्रमृज्य वक्त्रं रुधिराक्तमात्मनः ।
धृतिं समालम्ब्य विवृत्य लोचने
बलेन संस्तभ्य वृकोदरः स्थितः ॥ ७० ॥

तत्पश्चात् दो घड़ीमें सचेत हो भीमसेन खूनसे भीगे हुए अपने मुँहको पोंछते हुए उठे और बलपूर्वक अपनेको सँभालकर धैर्यका आश्रय ले आँख खोलकर देखते हुए पुनः युद्धके लिये खड़े हो गये ॥ ७० ॥

(ततो यमौ यमसदृशौ पराक्रमे
सपार्षतः शिनितनयश्च वीर्यवान् ।
समाह्वयन्नहमित्यभित्वरं-
स्तवात्मजं समभियजुर्जयैषिणः ॥

उस समय यमराजके सदृश पराक्रमी नकुल और सहदेव, धृष्टद्युम्न तथा पराक्रमी शिनिपौत्र सात्यकि—ये सब-के-सब विजयके अभिलाषी हो 'मैं लड़ूँगा, मैं लड़ूँगा' ऐसा कहकर बड़ी उतावलीके साथ आपके पुत्रको ललकारने और उसपर आक्रमण करने लगे ॥

निगृह्य तान् पुनरपि पाण्डवो बली
तवात्मजं स्वयमभिगम्य कालवत् ।
चचार च व्यपगतखेदवेपथुः
सुरेश्वरो नमुचिमिवोत्तमं रणे ॥)

परंतु बलवान् पाण्डुपुत्र भीमने उन सबको रोककर स्वयं ही आपके पुत्रपर पुनः कालके समान आक्रमण किया और खेद एवं कम्पसे रहित होकर वे रणभूमिमें उसी प्रकार विचरने लगे, जैसे देवराज इन्द्र श्रेष्ठ दैत्य नमुचिपर आक्रमण करके युद्धस्थलमें विचरण करते थे ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि गदायुद्धे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें गदायुद्धविषयक सत्तावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५७ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके २ श्लोक मिलाकर कुल ७२ श्लोक हैं)

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण और अर्जुनकी बातचीत तथा अर्जुनके संकेतके अनुसार भीमसेनका गदासे दुर्योधनकी जाँघें तोड़कर उसे धराशायी करना एवं भीषण उत्पातोंका प्रकट होना

संजय उवाच

समुदीर्णं ततो दृष्ट्वा संग्रामं कुरुमुख्ययोः ।
अथाब्रवीदर्जुनस्तु वासुदेवं यशस्विनम् ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! कुरुकुलके उन दोनों प्रमुख वीरोंके उस संग्रामको उत्तरोत्तर बढ़ता देख अर्जुनने यशस्वी भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा—॥ १ ॥

अनयोर्वीरयोर्युद्धे को ज्यायान् भवतो मतः ।
कस्य वा को गुणो भूयानेतद् वद जनार्दन ॥ २ ॥

'जनार्दन ! आपकी रायमें इन दोनों वीरोंमेंसे इस युद्धस्थलमें कौन बड़ा है अथवा किसमें कौन-सा गुण अधिक है ? यह मुझे बताइये' ॥ २ ॥

वासुदेव उवाच

उपदेशोऽनयोस्तुल्यो भीमस्तु बलवत्तरः ।
कृती यत्नपरस्त्वेष धार्तराष्ट्रो वृकोदरात् ॥ ३ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—अर्जुन ! इन दोनोंको शिक्षा तो एक-सी मिली है; परंतु भीमसेन बलमें अधिक हैं और यह दुर्योधन उनकी अपेक्षा अभ्यास और प्रयत्नमें बढ़ा-चढ़ा है ॥ ३ ॥

भीमसेनस्तु धर्मेण युद्ध्यमानो न जेष्यति ।
अन्यायेन तु युध्यन् वै हन्यादेव सुयोधनम् ॥ ४ ॥

यदि भीमसेन धर्मपूर्वक युद्ध करते रहे तो कदापि नहीं जीतेंगे और अन्यायपूर्वक युद्ध करनेपर निश्चय ही दुर्योधनका वध कर डालेंगे ॥ ४ ॥

मायया निर्जिता देवैरसुरा इति नः श्रुतम् ।
विरोचनस्तु शक्रेण मायया निर्जितः स वै ॥ ५ ॥

हमने सुना है कि देवताओंने पूर्वकालमें मायासे ही असुरोंपर विजय पायी थी और इन्द्रने मायासे ही विरोचनको परास्त किया था ॥ ५ ॥

मायया चाक्षिपत् तेजो वृत्रस्य बलसूदनः ।
तस्मान्मायामयं भीम आतिष्ठतु पराक्रमम् ॥ ६ ॥

बलसूदन इन्द्रने मायासे वृत्रासुरके तेजको नष्ट कर दिया था, इसलिये भीमसेन भी यहाँ मायामय पराक्रमका ही आश्रय लें ॥ ६ ॥

प्रतिज्ञातं च भीमेन द्यूतकाले धनंजय।
ऊरू भेत्स्यामि ते संख्ये गदयेति सुयोधनम् ॥ ७ ॥

धनंजय ! जूएके समय भीमने प्रतिज्ञा करते हुए दुर्योधनसे यह कहा था कि 'मैं युद्धमें गदा मारकर तेरी दोनों जाँघें तोड़ डालूँगा' ॥ ७ ॥

सोऽयं प्रतिज्ञां तां चापि पालयत्वरिकर्षणः।
मायाविनं तु राजानं माययैव निकृन्ततु ॥ ८ ॥

अतः शत्रुसूदन भीमसेन अपनी उस प्रतिज्ञाका पालन करें और मायावी राजा दुर्योधनको मायासे ही नष्ट कर डालें॥

यद्येष बलमास्थाय न्यायेन प्रहरिष्यति।
विषमस्थस्ततो राजा भविष्यति युधिष्ठिरः ॥ ९ ॥

यदि ये बलका सहारा लेकर न्यायपूर्वक प्रहार करेंगे, तब राजा युधिष्ठिर पुनः बड़ी विषम परिस्थितिमें पड़ जायँगे ॥

पुनरेव तु वक्ष्यामि पाण्डवेय निबोध मे।
धर्मराजापराधेन भयं नः पुनरागतम् ॥ १० ॥

पाण्डुनन्दन ! मैं पुनः यह बात कहे देता हूँ, तुम उसे ध्यान देकर सुनो। धर्मराजके अपराधसे हमलोगोंपर फिर भय आ पहुँचा है ॥ १० ॥

कृत्वा हि सुमहत् कर्म हत्वा भीष्ममुखान् कुरून्।
जयः प्राप्तो यशः प्राग्र्यं वैरं च प्रतियातितम् ॥ ११ ॥
तदेवं विजयः प्राप्तः पुनः संशयितः कृतः।

महान् प्रयास करके भीष्म आदि कौरवोंको मारकर विजय एवं श्रेष्ठ यशकी प्राप्ति की गयी और वैरका पूरा-पूरा बदला चुकाया गया था। इस प्रकार जो विजय प्राप्त हुई थी, उसे उन्होंने फिर संशयमें डाल दिया है ॥ ११½ ॥

अबुद्धिरेषा महती धर्मराजस्य पाण्डव ॥ १२ ॥
यदेकविजये युद्धं पणितं घोरमीदृशम्।

पाण्डुनन्दन ! एककी ही हार-जीतसे सबकी हार-जीतकी शर्त लगाकर जो इन्होंने इस भयंकर युद्धको जूएका दाँव बना डाला, यह धर्मराजकी बड़ी भारी नासमझी है॥ १२½ ॥

सुयोधनः कृती वीर एकायनगतस्तथा ॥ १३ ॥
अपि चोशनसा गीतः श्रूयतेऽयं पुरातनः।
श्लोकस्तत्त्वार्थसहितस्तन्मे निगदतः शृणु ॥ १४ ॥

दुर्योधन युद्धकी कला जानता है, वीर है और एक निश्चयपर डटा हुआ है। इस विषयमें शुक्राचार्यका कहा हुआ यह एक प्राचीन श्लोक सुननेमें आता है, जो नीति-शास्त्रके तात्त्विक अर्थसे भरा हुआ है, उसे सुना रहा हूँ, मेरे कहनेसे वह श्लोक सुनो ॥ १३-१४ ॥

पुनरावर्तमानानां भग्नानां जीवितैषिणाम्।
भेतव्यमरिशेषाणामेकायनगता हिते ॥ १५ ॥

'मरनेसे बचे हुए शत्रुगण यदि युद्धमें जान बचानेकी इच्छासे भाग गये हों और पुनः युद्धके लिये लौटने लगे हों तो उनसे डरते रहना चाहिये; क्योंकि वे एक निश्चयपर पहुँचे हुए होते हैं (उस समय वे मृत्युसे भी नहीं डरते हैं)'॥

साहसोत्पतितानां च निराशानां च जीविते।
न शक्यमग्रतः स्थातुं शक्रेणापि धनंजय ॥ १६ ॥

धनंजय ! जो जीवनकी आशा छोड़कर साहसपूर्वक युद्धमें कूद पड़े हों, उनके सामने इन्द्र भी नहीं ठहर सकते॥

सुयोधनमिमं भग्नं हतसैन्यं ह्रदं गतम्।
पराजितं वनप्रेप्सुं निराशं राज्यलम्भने ॥ १७ ॥
को न्वेष संयुगे प्राज्ञः पुनर्द्वन्द्वे समाह्वयेत्।

इस दुर्योधनकी सेना मारी गयी थी। यह परास्त हो गया था और अब राज्य पानेसे निराश हो वनमें चला जाना चाहता था; इसीलिये भागकर पोखरेमें छिपा था, ऐसे हताश शत्रुको कौन बुद्धिमान् पुरुष समराङ्गणमें द्वन्द्व-युद्धके लिये आमन्त्रित करेगा ? ॥ १७½ ॥

अपि नो निर्जितं राज्यं न हरेत सुयोधनः ॥ १८ ॥
यस्त्रयोदशवर्षाणि गदया कृतनिश्रमः।
चरत्यूर्ध्वं च तिर्यक् च भीमसेनजिघांसया ॥ १९ ॥

कहीं ऐसा न हो कि हमारे जीते हुए राज्यको दुर्योधन फिर हड़प ले। उसने तेरह वर्षोंतक गदाद्वारा युद्ध करनेका निरन्तर श्रम एवं अभ्यास किया है। देखो, यह भीमसेनके वधकी इच्छासे इधर-उधर और ऊपरकी ओर विचर रहा है॥

एनं चेन्न महाबाहुरन्यायेन हनिष्यति।
एष वः कौरवो राजा धार्तराष्ट्रो भविष्यति ॥ २० ॥

यदि महाबाहु भीमसेन इसे अन्यायपूर्वक नहीं मारेंगे तो यह धृतराष्ट्रका पुत्र दुर्योधन ही आपका तथा समस्त कुरुकुल-का राजा होगा ॥ २० ॥

धनंजयस्तु श्रुत्वैतत् केशवस्य महात्मनः।
प्रेक्षतो भीमसेनस्य सव्यमूरुमताडयत् ॥ २१ ॥

महात्मा भगवान् केशवका यह वचन सुनकर अर्जुनने भीमसेनके देखते हुए अपनी बायीं जाँघको ठोंका ॥ २१ ॥

गृह्य संज्ञां ततो भीमो गदया व्यचरद् रणे।
मण्डलानि विचित्राणि यमकानीतराणि च ॥ २२ ॥

इससे संकेत पाकर भीमसेन रणभूमिमें गदाद्वारा यमक तथा अन्य प्रकारके विचित्र मण्डल दिखाते हुए विचरने लगे॥

दक्षिणं मण्डलं सव्यं गोमूत्रकमथापि च।
व्यचरत् पाण्डवो राजन्नरिं सम्मोहयन्निव ॥ २३ ॥

राजन् ! पाण्डुपुत्र भीमसेन आपके शत्रुको मोहित करते हुए-से दक्षिण, वाम और गोमूत्रक मण्डलसे विचरने लगे॥

तथैव तव पुत्रोऽपि गदामार्गविशारदः।
व्यचरल्लघु चित्रं च भीमसेनजिघांसया ॥ २४ ॥

इसी प्रकार गदायुद्धकी प्रणालीका विशेषज्ञ आपका पुत्र भी भीमसेनके वधकी इच्छासे शीघ्रतापूर्वक विचित्र पैंतरे देता हुआ विचरने लगा ॥ २४ ॥

आधुन्वन्तौ गदे घोरे चन्दनागरुरूषिते।
वैरस्यान्तं परीप्सन्तौ रणे क्रुद्धाविवान्तकौ ॥ २५ ॥

वैरका अन्त करनेकी इच्छावाले वे दोनों वीर रणभूमिमें चन्दन और अगुरुसे चर्चित भयंकर गदाएँ घुमाते हुए कुपित कालके समान प्रतीत होते थे ॥ २५ ॥

अन्योन्यं तौ जिघांसन्तौ प्रवीरौ पुरुषर्षभौ।
युयुधाते गरुत्मन्तौ यथा नागामिषैषिणौ ॥ २६ ॥

जैसे दो गरुड किसी सर्पके मांसको पानेकी इच्छासे परस्पर लड़ रहे हों, उसी प्रकार एक दूसरेके वधकी इच्छावाले वे दोनों पुरुषप्रवर प्रमुख वीर भीमसेन और दुर्योधन आपसमें जूझ रहे थे ॥ २६ ॥

मण्डलानि विचित्राणि चरतोर्नृपभीमयोः।
गदासम्पातजास्तत्र प्रजज्ञुः पावकार्चिषः ॥ २७ ॥

विचित्र मण्डलों (पैंतरों) से विचरते हुए राजा दुर्योधन और भीमसेनकी गदाओंके टकरानेसे वहाँ आगकी लपटें प्रकट होने लगीं ॥ २७ ॥

समं प्रहरतोस्तत्र शूरयोर्बलिनोर्मृधे।
क्षुब्धयोर्वायुना राजन् द्वयोरिव समुद्रयोः ॥ २८ ॥
तयोः प्रहरतोस्तुल्यं मत्तकुञ्जरयोरिव।
गदानिर्घातसंह्रादः प्रहाराणामजायत ॥ २९ ॥

राजन्! जैसे वायुसे विक्षुब्ध हुए दो समुद्र एक दूसरेसे टकरा रहे हों अथवा दो मतवाले हाथी परस्पर चोट कर रहे हों, उसी प्रकार वहाँ एक दूसरेपर समान रूपसे प्रहार करनेवाले दोनों बलवान् वीरोंके परस्पर चोट करनेपर गदाओंके टकरानेकी आवाज वज्रकी कड़कके समान प्रकट होती थी॥

तस्मिंस्तदा सम्प्रहारे दारुणे संकुले भृशम्।
उभावपि परिश्रान्तौ युध्यमानावरिंदमौ ॥ ३० ॥

उस समय उस अत्यन्त भयंकर घमासान युद्धमें शत्रुओंका दमन करनेवाले वे दोनों वीर परस्पर युद्ध करते हुए बहुत थक गये ॥ ३० ॥

तौ मुहूर्तं समाश्वस्य पुनरेव परंतप।
अभ्यहारयतां क्रुद्धौ प्रगृह्य महती गदे ॥ ३१ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले नरेश! तब दोनों दो घड़ीतक विश्राम करके पुनः विशाल गदाएँ हाथमें लेकर क्रोधपूर्वक एक दूसरेपर प्रहार करने लगे ॥ ३१ ॥

तयोः समभवद् युद्धं घोररूपमसंवृतम्।
गदानिपातै राजेन्द्र तक्षतोर्वै परस्परम् ॥ ३२ ॥

राजेन्द्र! गदाकी चोटसे एक दूसरेको घायल करते हुए उन दोनोंमें खुले तौरपर घोर युद्ध हो रहा था ॥ ३२ ॥

समरे प्रद्रुतौ तौ तु वृषभाक्षौ तरस्विनौ।
अन्योन्यं जघ्नतुर्वीरौ पङ्कस्थौ महिषाविव ॥ ३३ ॥

बैलके समान विशाल नेत्रोंवाले वे दोनों वेगशाली वीर समराङ्गणमें परस्पर धावा करके कीचड़में खड़े हुए दो भैंसोंके समान एक दूसरेपर चोट करते थे ॥ ३३ ॥

जर्जरीकृतसर्वाङ्गौ रुधिरेणाभिसम्प्लुतौ।
ददृशाते हिमवति पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ३४ ॥

उन दोनोंके सारे अङ्ग गदाके-प्रहारसे जर्जर हो गये थे और दोनों ही खूनसे लथपथ हो गये थे। उस दशामें वे हिमालयपर खिले हुए दो पलाश वृक्षोंके समान दिखायी देते थे ॥ ३४ ॥

दुर्योधनस्तु पार्थेन विवरे सम्प्रदर्शिते।
ईषदुन्मिषमाणस्तु सहसा प्रससार ह ॥ ३५ ॥

जब अर्जुनने छिद्रकी ओर संकेत किया, तब कनखियोंसे उसे देखकर दुर्योधन सहसा भीमसेनकी ओर बढ़ा ॥ ३५ ॥

तमभ्याशगतं प्राज्ञो रणे प्रेक्ष्य वृकोदरः।
अवाक्षिपद् गदां तस्मिन् वेगेन महता बली ॥ ३६ ॥

रणभूमिमें उसे निकट आया देख बुद्धिमान् एवं बलवान् भीमने उसपर बड़े वेगसे गदा चलायी ॥ ३६ ॥

आक्षिपन्तं तु तं दृष्ट्वा पुत्रस्तव विशाम्पते।
अवासर्पत्ततः स्थानात् सा मोघा न्यपतद् भुवि ॥ ३७ ॥

प्रजानाथ! उन्हें गदा चलाते देख आपका पुत्र सहसा उस स्थानसे हट गया और वह गदा व्यर्थ होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ३७ ॥

मोक्षयित्वा प्रहारं तं सुतस्तव सुसम्भ्रमात्।
भीमसेनं च गदया प्राहरत् कुरुसत्तम ॥ ३८ ॥

कुरुश्रेष्ठ! उस प्रहारसे अपनेको बचाकर आपके पुत्रने भीमसेनपर बड़े वेगसे गदाद्वारा आघात किया ॥ ३८ ॥

तस्य विस्यन्दमानेन रुधिरेणामितौजसः।
प्रहारगुरुपाताच्च मूर्छेव समजायत ॥ ३९ ॥

उसकी चोटसे अमिततेजस्वी भीमके शरीरसे रक्तकी धारा बह चली। साथ ही उस प्रहारके गहरे आघातसे उन्हें मूर्छा-सी आ गयी ॥ ३९ ॥

दुर्योधनो न तं वेद पीडितं पाण्डवं रणे।
धारयामास भीमोऽपि शरीरमतिपीडितम् ॥ ४० ॥

उस समय दुर्योधन यह न जान सका कि रणभूमिमें पाण्डुपुत्र भीमसेन अधिक पीड़ित हो गये हैं। यद्यपि उनके शरीरमें अत्यन्त वेदना हो रही थी तो भी भीमसेन उसे सँभाले रहे ॥ ४० ॥

अमन्यत स्थितं ह्येनं प्रहरिष्यन्तमाहवे।
अतो न प्राहरत् तस्मै पुनरेव तवात्मजः ॥ ४१ ॥

उसने यही समझा कि रणक्षेत्रमें भीमसेन अब मुझपर प्रहार करनेके लिये खड़े हैं; अतः बचनेकी ही चेष्टामें संलग्न होकर आपके पुत्रने पुनः उनपर प्रहार नहीं किया ॥ ४१ ॥

ततो मुहूर्तमाश्वस्य दुर्योधनमुपस्थितम्।
वेगेनाभ्यपतद् राजन् भीमसेनः प्रतापवान् ॥ ४२ ॥

राजन्! तदनन्तर दो घड़ी सुस्ताकर प्रतापी भीमसेनने निकट आये हुए दुर्योधनपर बड़े वेगसे आक्रमण किया॥४२॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य संरब्धममितौजसम्।
मोघमस्य प्रहारं तं चिकीर्षुर्भरतर्षभ ॥ ४३ ॥

भरतश्रेष्ठ! अमिततेजस्वी भीमको रोषपूर्वक धावा करते देख आपके पुत्रने उनके उस प्रहारको व्यर्थ कर देनेकी इच्छा की ॥ ४३ ॥

अवस्थाने मतिं कृत्वा पुत्रस्तव महामनाः।
इयेषोत्पतितुं राजञ्छलयिष्यन् वृकोदरम् ॥ ४४ ॥

राजन्! भीमसेनको छलनेके लिये आपके महामनस्वी

पुत्रने पहले वहाँ स्थिरतापूर्वक खड़े रहनेका विचार करके फिर उछलकर दूर हट जानेकी इच्छा की ॥ ४४ ॥

अबुद्‌ध्यद् भीमसेनस्तु राज्ञस्तस्य चिकीर्षितम् ।
अथास्य समभिद्रुत्य समुत्क्रुश्य च सिंहवत् ॥ ४५ ॥
सृत्या वञ्चयतो राजन् पुनरेवोत्पतिष्यतः ।
ऊरुभ्यां प्राहिणोद् राजन् गदां वेगेन पाण्डवः ॥ ४६ ॥

भीमसेन समझ गये कि राजा दुर्योधन क्या करना चाहता है। अतः पैंतरेसे छलने और ऊपर उछलनेकी इच्छा-वाले दुर्योधनके ऊपर आक्रमण करके भीमसेनने सिंहके समान गर्जना की और उसकी जाँघोंपर बड़े वेगसे गदा चलायी ॥

सा वज्रनिष्पेषसमा प्रहिता भीमकर्मणा ।
ऊरू दुर्योधनस्याथ बभञ्ज प्रियदर्शनौ ॥ ४७ ॥

भयंकर कर्म करनेवाले भीमसेनके द्वारा चलायी हुई वह गदा वज्रपातके समान गिरी और दुर्योधनकी सुन्दर दिखायी देनेवाली जाँघोंको उसने तोड़ दिया ॥ ४७ ॥

स पपात नरव्याघ्रो वसुधामनुनादयन् ।
भग्नोरुर्भीमसेनेन पुत्रस्तव महीपते ॥ ४८ ॥

पृथ्वीनाथ ! इस प्रकार जब भीमसेनने उसकी जाँघें तोड़ डालीं, तब आपका पुत्र पुरुषसिंह दुर्योधन पृथ्वीको प्रतिध्वनित करता हुआ गिर पड़ा ॥ ४८ ॥

ववुर्वाताः सनिर्घाताः पांशुवर्षं पपात च ।
चचाल पृथिवी चापि सवृक्षक्षुपपर्वता ॥ ४९ ॥
तस्मिन् निपतिते वीरे पत्यौ सर्वमहीक्षिताम् ।

फिर तो समस्त भूपालोंके स्वामी वीर राजा दुर्योधनके धराशायी होनेपर वहाँ बिजलीकी गड़गड़ाहटके साथ प्रचण्ड हवा चलने लगी, धूलिकी वर्षा होने लगी और वृक्षों, वनों एवं पर्वतोंसहित सारी पृथ्वी काँपने लगी ॥ ४९½ ॥

महास्वना पुनर्दीप्ता सनिर्घाता भयंकरी ॥ ५० ॥
पपात चोल्का महती पतिते पृथिवीपतौ ।

पृथ्वीपति दुर्योधनके गिर जानेपर आकाशसे पुनः महान् शब्द और बिजलीकी कड़कके साथ प्रज्वलित, भयंकर एवं विशाल उल्का भूमिपर गिरी ॥ ५०½ ॥

तथा शोणितवर्षं च पांशुवर्षं च भारत ॥ ५१ ॥
ववर्ष मघवांस्तत्र तव पुत्रे निपातिते ।

भरतनन्दन ! आपके पुत्रके धराशायी हो जानेपर इन्द्रने वहाँ रक्त और धूलिकी वर्षा की ॥ ५१½ ॥

यक्षाणां राक्षसानां च पिशाचानां तथैव च ॥ ५२ ॥
अन्तरिक्षे महानादः श्रूयते भरतर्षभ ।

भरतश्रेष्ठ ! उस समय आकाशमें यक्षों, राक्षसों तथा पिशाचोंका महान् कोलाहल सुनायी देने लगा ॥ ५२½ ॥

तेन शब्देन घोरेण मृगाणामथ पक्षिणाम् ॥ ५३ ॥
जज्ञे घोरतरः शब्दो बहूनां सर्वतोदिशम् ।

उस घोर शब्दके साथ बहुत-से पशुओं और पक्षियोंकी भयानक आवाज भी सम्पूर्ण दिशाओंमें गूँज उठी ॥ ५३½ ॥

ये तत्र वाजिनः शेषा गजाश्च मनुजैः सह ॥ ५४ ॥
मुमुचुस्ते महानादं तव पुत्रे निपातिते ।

वहाँ जो घोड़े, हाथी और मनुष्य शेष रह गये थे, वे सभी आपके पुत्रके मारे जानेपर महान् कोलाहल करने लगे॥

भेरीशङ्खमृदङ्गानामभवच्च स्वनो महान् ॥ ५५ ॥
अन्तर्भूमिगतश्चैव तव पुत्रे निपातिते ।

राजन् ! जब आपका पुत्र मार गिराया गया, उस समय इस भूतलपर भेरी, शङ्खों और मृदङ्गोंका गम्भीर घोष होने लगा ॥ ५५½ ॥

बहुपादैर्बहुभुजैः कबन्धैर्घोरदर्शनैः ॥ ५६ ॥
नृत्यद्भिर्भयदैर्व्याप्ता दिशस्तत्राभवन् नृप ।

नरेश्वर ! वहाँ सम्पूर्ण दिशाओंमें नाचते हुए अनेक पैर और अनेक बाँहवाले घोर एवं भयंकर कबन्ध व्याप्त हो रहे थे ॥ ५६½ ॥

ध्वजवन्तोऽस्त्रवन्तश्च शस्त्रवन्तस्तथैव च ॥ ५७ ॥
प्राकम्पन्त ततो राजंस्तव पुत्रे निपातिते ।

राजन् ! आपके पुत्रके धराशायी हो जानेपर वहाँ अस्त्र-शस्त्र और ध्वजावाले सभी वीर काँपने लगे ॥ ५७½ ॥

ह्रदाः कूपाश्च रुधिरमुद्वेमुर्नृपसत्तम ॥ ५८ ॥
नद्यश्च सुमहावेगाः प्रतिस्रोतोवहाभवन् ।

नृपश्रेष्ठ ! तालाबों और कूपोंमें रक्तका उफान आने लगा और महान् वेगशालिनी नदियाँ उल्टी अपने उद्गमकी ओर बहने लगीं ॥ ५८½ ॥

पुंलिङ्गा इव नार्यस्तु स्त्रीलिङ्गाः पुरुषाभवन् ॥ ५९ ॥
दुर्योधने तदा राजन् पतिते तनये तव ।

राजन् ! आपके पुत्र दुर्योधनके धराशायी होनेपर स्त्रियोंमें पुरुषत्व और पुरुषोंमें स्त्रीत्वके सूचक लक्षण प्रकट होने लगे॥

दृष्ट्वा तानद्भुतोत्पातान् पञ्चालाः पाण्डवैः सह ॥ ६० ॥
आविग्नमनसः सर्वे बभूवुर्भरतर्षभ ।

भरतश्रेष्ठ ! उन अद्भुत उत्पातोंको देखकर पाण्डवों-सहित समस्त पाञ्चाल मन-ही-मन अत्यन्त उद्विग्न हो उठे ॥

ययुर्देवा यथाकामं गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥ ६१ ॥
कथयन्तोऽद्भुतं युद्धं सुतयोस्तव भारत ।

भारत ! तदनन्तर देवता, गन्धर्व और अप्सराओंके समूह आपके दोनों पुत्रोंके अद्भुत युद्धकी चर्चा करते हुए अपने अभीष्ट स्थानको चले गये ॥ ६१½ ॥

तथैव सिद्धा राजेन्द्र तथा वातिकचारणाः ।
नरसिंहौ प्रशंसन्तौ विप्रजग्मुर्यथागतम् ॥ ६२ ॥

राजेन्द्र ! उसी प्रकार सिद्ध, वातिक (वायुचारी) और चारण उन दोनों पुरुषसिंहोंकी प्रशंसा करते हुए जैसे आये थे, वैसे चले गये ॥ ६२ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि दुर्योधनवधेऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें दुर्योधनका वधविषयक अट्ठावनवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

भीमसेनके द्वारा दुर्योधनका तिरस्कार, युधिष्ठिरका भीमसेनको समझाकर अन्यायसे रोकना और दुर्योधनको सान्त्वना देते हुए खेद प्रकट करना

संजय उवाच

तं पातितं ततो दृष्ट्वा महाशालमिवोद्गतम्।
प्रहृष्टमनसः सर्वे ददृशुस्तत्र पाण्डवाः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! दुर्योधनको ऊँचे एवं विशाल शालवृक्षके समान गिराया गया देख समस्त पाण्डव मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए और निकट जाकर उसे देखने लगे ॥ १ ॥

उन्मत्तमिव मातङ्गं सिंहेन विनिपातितम्।
ददृशुर्हृष्टरोमाणः सर्वे ते चापि सोमकाः ॥ २ ॥

समस्त सोमकोंने भी सिंहके द्वारा गिराये गये मदमत्त गजराजके समान जब दुर्योधनको धराशायी हुआ देखा तो हर्षसे उनके अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया ॥ २ ॥

ततो दुर्योधनं हत्वा भीमसेनः प्रतापवान्।
पातितं कौरवेन्द्रं तमुपगम्येदमब्रवीत् ॥ ३ ॥

इस प्रकार दुर्योधनका वध करके प्रतापी भीमसेन उस गिराये गये कौरवराजके पास जाकर बोले—॥ ३ ॥

गौर्गौरिति पुरा मन्द द्रौपदीमेकवाससम्।
यत् सभायां हसन्नस्मांस्तदा वदसि दुर्मते ॥ ४ ॥
तस्यावहासस्य फलमद्य त्वं समवाप्नुहि।

'खोटी बुद्धिवाले मूर्ख! तूने पहले मुझे 'बैल, बैल' कहकर और एक वस्त्रधारिणी रजस्वला द्रौपदीको सभामें लाकर जो हमलोगोंका उपहास किया था तथा हम सबके प्रति कटुवचन सुनाये थे, उस उपहासका फल आज तू प्राप्त कर ले' ॥ ४½ ॥

एवमुक्त्वा स वामेन पदा मौलिमुपास्पृशत् ॥ ५ ॥
शिरश्च राजसिंहस्य पादेन समलोडयत्।

ऐसा कहकर भीमसेनने अपने बायें पैरसे उसके मुकुटको ठुकराया और उस राजसिंहके मस्तकपर भी पैरसे ठोकर मारा ५½

तथैव क्रोधसंरक्तो भीमः परबलार्दनः ॥ ६ ॥
पुनरेवाब्रवीद् वाक्यं यत् तच्छृणु नराधिप।

नरेश्वर! इसी प्रकार शत्रुसेनाका संहार करनेवाले भीमसेनने क्रोधसे लाल आँखें करके फिर जो बात कही, उसे भी सुन लीजिये ॥ ६½ ॥

येऽस्मान् पुरोपनृत्यन्त मूढा गौरिति गौरिति ॥ ७ ॥
तान् वयं प्रतिनृत्यामः पुनर्गौरिति गौरिति।

जिन मूर्खोंने पहले हमें 'बैल-बैल' कहकर नृत्य किया था, आज उन्हें 'बैल-बैल' कहकर उस अपमानका बदला लेते हुए हम भी प्रसन्नतासे नाच रहे हैं ॥ ७½ ॥

नास्माकं निकृतिर्वह्निर्नाक्षद्यूतं न वञ्चना।
स्वबाहुबलमाश्रित्य प्रबाधामो वयं रिपून् ॥ ८ ॥

छल-कपट करना, घरमें आग लगाना, जूआ खेलना अथवा ठगी करना हमारा काम नहीं है। हम तो अपने बाहुबलका भरोसा करके शत्रुओंको संताप देते हैं ॥ ८ ॥

सोऽवाप्य वैरस्य परस्य पारं
वृकोदरः प्राह शनैः प्रहस्य।
युधिष्ठिरं केशवसृंजयांश्च
धनंजयं माद्रवतीसुतौ च ॥ ९ ॥

इस प्रकार भारी वैरसे पार होकर भीमसेन धीरे-धीरे हँसते हुए युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण, संजयगण, अर्जुन तथा माद्रीकुमार नकुल-सहदेवसे बोले—॥ ९ ॥

रजस्वलां द्रौपदीमानयन् ये
ये चाप्यकुर्वन्त सदस्यवस्त्राम्।
तान् पश्यध्वं पाण्डवैर्धार्तराष्ट्रान्
रणे हतांस्तपसा याज्ञसेन्याः ॥ १० ॥

'जिन लोगोंने रजस्वला द्रौपदीको सभामें बुलाया, जिन्होंने उसे भरी सभामें नंगी करनेका प्रयत्न किया, उन्हीं धृतराष्ट्रपुत्रोंको द्रौपदीकी तपस्यासे पाण्डवोंने रणभूमिमें मार गिराया, यह सब लोग देख लो ॥ १० ॥

ये नः पुरा षण्ढतिलानवोचन्
क्रूरा राज्ञो धृतराष्ट्रस्य पुत्राः।
ते नो हताः सगणाः सानुबन्धाः
कामं स्वर्गं नरकं वा पतामः ॥ ११ ॥

'राजा धृतराष्ट्रके जिन क्रूर पुत्रोंने पहले हमें थोथे तिलोंके समान नपुंसक कहा था, वे अपने सेवकों और सम्बन्धियोंसहित हमारे हाथसे मार डाले गये। अब हम भले ही स्वर्गमें जायँ या नरकमें गिरें, इसकी चिन्ता नहीं है' ॥ ११ ॥

पुनश्च राज्ञः पतितस्य भूमौ
स तां गदां स्कन्धगतां प्रगृह्य।
वामेन पादेन शिरः प्रमृद्य
दुर्योधनं नैकृतिकं न्यवोचत् ॥ १२ ॥

यों कहकर भीमसेनने पृथ्वीपर पड़े हुए राजा दुर्योधनके कंधेसे लगी हुई उसकी गदा ले ली और बायें पैरसे उसका सिर कुचलकर उसे छलिया और कपटी कहा ॥ १२ ॥

हृष्टेन राजन् कुरुसत्तमस्य
क्षुद्रात्मना भीमसेनेन पादम्।
दृष्ट्वा कृतं मूर्धनि नाभ्यनन्दन्
धर्मात्मानः सोमकानां प्रबर्हाः ॥ १३ ॥

राजन्! क्षुद्र बुद्धिवाले भीमसेनने हर्षमें भरकर जो कुरुश्रेष्ठ राजा दुर्योधनके मस्तकपर पैर रक्खा, उनके इस कार्यको देखकर सोमकोंमें जो श्रेष्ठ एवं धर्मात्मा पुरुष थे, वे प्रसन्न नहीं हुए और न उन्होंने उनके इस कुकृत्यका अभिनन्दन ही किया ॥ १३ ॥

तव पुत्रं तथा हत्वा कत्थमानं वृकोदरम्।

नृत्यमानं च बहुशो धर्मराजोऽब्रवीदिदम् ॥ १४ ॥

आपके पुत्रको मारकर बहुत बढ़-बढ़कर बातें बनाते और बारंबार नाचते-कूदते हुए भीमसेनसे धर्मराज युधिष्ठिरने इस प्रकार कहा—॥ १४ ॥

गतोऽसि वैरस्यानृण्यं प्रतिज्ञा पूरिता त्वया।
शुभेनाथाशुभेनैव कर्मणा विरमाधुना ॥ १५ ॥

'भीम ! तुम वैरसे उऋण हुए। तुमने शुभ या अशुभ कर्मसे अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर ली। अब तो इस कार्यसे विरत हो जाओ ॥ १५ ॥

मा शिरोऽस्य पदा मार्दीर्मा धर्मस्तेऽतिगो भवेत्।
राजा ज्ञातिर्हतश्चायं नैतन्न्याय्यं तवानघ ॥ १६ ॥

'तुम इसके मस्तकको पैरसे न ठुकराओ। तुम्हारे द्वारा धर्मका उल्लङ्घन नहीं होना चाहिये। अनघ! दुर्योधन राजा और हमारा भाई-बन्धु है; यह मार डाला गया, अब तुम्हें इसके साथ ऐसा बर्ताव करना उचित नहीं है ॥ १६ ॥

एकादशचमूनाथं कुरूणामधिपं तथा।
मा स्प्राक्षीर्भीम पादेन राजानं ज्ञातिमेव च ॥ १७ ॥

'भीम! ग्यारह अक्षौहिणी सेनाके स्वामी तथा अपने ही बान्धव कुरुराज राजा दुर्योधनको पैरसे न ठुकराओ ॥ १७ ॥

हतबन्धुर्हतामात्यो भ्रष्टसैन्यो हतो मृधे।
सर्वाकारेण शोच्योऽयं नावहास्योऽयमीश्वरः ॥ १८ ॥

'इसके भाई और मन्त्री मारे गये, सेना नष्ट-भ्रष्ट हो गयी और यह स्वयं भी युद्धमें मारा गया। ऐसी दशामें राजा दुर्योधन सर्वथा शोकके योग्य है, उपहासका, पात्र नहीं है ॥ १८ ॥

विध्वस्तोऽयं हतामात्यो हतभ्राता हतप्रजः।
उत्सन्नपिण्डो भ्राता च नैतन्न्याय्यं कृतं त्वया ॥ १९ ॥

'इसका सर्वथा विध्वंस हो गया इसके मन्त्री, भाई और पुत्र भी मार डाले गये। अब इसे पिण्ड देनेवाला भी कोई नहीं रह गया है। इसके सिवा यह हमारा ही भाई है। तुमने इसके साथ यह न्यायोचित बर्ताव नहीं किया है ॥ १९ ॥

धार्मिको भीमसेनोऽसावित्याहुस्त्वां पुरा जनाः।
स कस्माद् भीमसेन त्वं राजानमधितिष्ठसि ॥ २० ॥

'तुम्हारे विषयमें लोग पहले कहा करते थे कि भीमसेन बड़े धर्मात्मा हैं। भीम! वही तुम आज राजा दुर्योधनको क्यों पैरसे ठुकराते हो?' ॥ २० ॥

इत्युक्त्वा भीमसेनं तु साश्रुकण्ठो युधिष्ठिरः।
उपसृत्याब्रवीद् दीनो दुर्योधनमरिंदमम् ॥ २१ ॥

भीमसेनसे ऐसा कहकर राजा युधिष्ठिर दीनभावसे शत्रुदमन दुर्योधनके पास गये और अश्रुगद्गद कण्ठसे इस प्रकार बोले—॥ २१ ॥

तात मन्युर्न ते कार्यो नात्मा शोच्यस्त्वया तथा।
नूनं पूर्वकृतं कर्म सुघोरमनुभूयते ॥ २२ ॥

'तात! तुम्हें खेद या क्रोध नहीं करना चाहिये। साथ ही अपने लिये शोक करना भी उचित नहीं है। निश्चय ही सब लोग अपने पहलेके किये हुए अत्यन्त भयंकर कर्मोंका ही परिणाम भोगते हैं ॥ २२ ॥

धात्रोपदिष्टं विषमं नूनं फलमसंस्कृतम्।
यद् वयं त्वां जिघांसामस्त्वं चास्मान् कुरुसत्तम ॥ २३ ॥

'कुरुश्रेष्ठ! इस समय जो हमलोग तुम्हें और तुम हमें मार डालना चाहते थे, यह अवश्य ही विधाताका दिया हुआ हमारे ही अशुद्ध कर्मोंका विषम फल है ॥ २३ ॥

आत्मनो ह्यपराधेन महद् व्यसनमीदृशम्।
प्राप्तवानसि यल्लोभान्मदाद् बाल्याच्च भारत ॥ २४ ॥

'भरतनन्दन! तुमने लोभ, मद और अविवेकके कारण अपने ही अपराधसे ऐसा भारी संकट प्राप्त किया है ॥ २४ ॥

घातयित्वा वयस्यांश्च भ्रातॄनथ पितॄंस्तथा।
पुत्रान् पौत्रांस्तथा चान्यांस्ततोऽसि निधनं गतः ॥ २५ ॥

'तुम अपने मित्रों, भाइयों, पितृतुल्य पुरुषों, पुत्रों और पौत्रोंका वध कराकर फिर स्वयं भी मारे गये ॥ २५ ॥

तवापराधादस्माभिर्भ्रातरस्ते निपातिताः।
निहता ज्ञातयश्चापि दिष्टं मन्ये दुरत्ययम् ॥ २६ ॥

'तुम्हारे अपराधसे ही हमलोगोंने तुम्हारे भाइयोंको मार गिराया और कुटुम्बीजनोंका वध किया है, मैं इसे दैवका दुर्लङ्घ्य विधान ही मानता हूँ ॥ २६ ॥

आत्मा न शोचनीयस्ते श्लाघ्यो मृत्युस्तवानघ।
वयमेवाधुना शोच्याः सर्वावस्थासु कौरव ॥ २७ ॥
कृपणं वर्तयिष्यामस्तैर्हीना बन्धुभिः प्रियैः।

'अनघ! तुम्हें अपने लिये शोक नहीं करना चाहिये, तुम्हारी प्रशंसनीय मृत्यु हो रही है। कुरुराज! अब तो सभी अवस्थाओंमें इस समय हमलोग ही शोचनीय हो गये हैं; क्योंकि उन प्रिय बन्धु-बान्धवोंसे रहित होकर हमें दीनतापूर्ण जीवन व्यतीत करना पड़ेगा ॥ २७½ ॥

भ्रातॄणां चैव पुत्राणां तथा वै शोकविह्वलाः ॥ २८ ॥
कथं द्रक्ष्यामि विधवा वधूः शोकपरिप्लुताः।

'भला, मैं भाइयों और पुत्रोंकी उन शोकविह्वल और दुःखमें डूबी हुई विधवा बहुओंको कैसे देख सकूँगा ॥ २८½ ॥

त्वमेकः सुस्थितो राजन् स्वर्गे ते निलयो ध्रुवः ॥ २९ ॥
वयं नरकसंज्ञं वै दुःखं प्राप्स्याम दारुणम्।

'राजन्! तुम अकेले सुखी हो। निश्चय ही स्वर्गमें तुम्हें स्थान प्राप्त होगा और हमें यहाँ नरकतुल्य दारुण दुःख भोगना पड़ेगा ॥ २९½ ॥

स्नुषाश्च प्रस्नुषाश्चैव धृतराष्ट्रस्य विह्वलाः।
गर्हयिष्यन्ति नो नूनं विधवाः शोककर्शिताः ॥ ३० ॥

'धृतराष्ट्रकी वे शोकातुर एवं व्याकुल विधवा पुत्रवधुएँ और पौत्रवधुएँ भी निश्चय ही हमलोगोंकी निन्दा करेंगी' ॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा सुदुःखार्तो निशश्वास स पार्थिवः।

विललाप चिरं चापि धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३१ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! ऐसा कहकर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर अत्यन्त दुःखसे आतुर हो लंबी साँस छोड़ते हुए बहुत देरतक विलाप करते रहे ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि युधिष्ठिरविलापे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें युधिष्ठिरका विलापविषयक उनसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५९ ॥

षष्टितमोऽध्यायः

क्रोधमें भरे हुए बलरामको श्रीकृष्णका समझाना और युधिष्ठिरके साथ श्रीकृष्णकी तथा भीमसेनकी बातचीत

धृतराष्ट्र उवाच

अधर्मेण हतं दृष्ट्वा राजानं माधवोत्तमः ।
किमब्रवीत् तदा सूत बलदेवो महाबलः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—सूत ! उस समय राजा दुर्योधनको अधर्मपूर्वक मारा गया देख महाबली मधुकुलशिरोमणि बलदेवजीने क्या कहा था ? ॥ १ ॥

गदायुद्धविशेषज्ञो गदायुद्धविशारदः ।
कृतवान् रौहिणेयो यत् तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ २ ॥

संजय ! गदायुद्धके विशेषज्ञ तथा उसकी कलामें कुशल रोहिणीनन्दन बलरामजीने वहाँ जो कुछ किया हो, वह मुझे बताओ ॥ २ ॥

संजय उवाच

शिरस्यभिहतं दृष्ट्वा भीमसेनेन ते सुतम् ।
रामः प्रहरतां श्रेष्ठश्चुक्रोध बलवद्बली ॥ ३ ॥

संजयने कहा—राजन् ! भीमसेनके द्वारा आपके पुत्रके मस्तक पर पैरका प्रहार हुआ देख योद्धाओंमें श्रेष्ठ बलवान् बलरामको बड़ा क्रोध हुआ ॥ ३ ॥

ततो मध्ये नरेन्द्राणामूर्ध्वबाहुर्हलायुधः ।
कुर्वन्नार्तस्वरं घोरं धिग् धिग् भीमेत्युवाच ह ॥ ४ ॥

फिर वहाँ राजाओंकी मण्डलीमें अपनी दोनों बाँहें ऊपर उठाकर हलधर बलरामने भयंकर आर्तनाद करते हुए कहा—'भीमसेन ! तुम्हें धिक्कार है ! धिक्कार है !! ॥ ४ ॥

अहो धिग् यदधो नाभेः प्रहृतं धर्मविग्रहे ।
नैतद् दृष्टं गदायुद्धे कृतवान् यद् वृकोदरः ॥ ५ ॥

'अहो ! इस धर्मयुद्धमें नाभिसे नीचे जो प्रहार किया गया है और जिसे भीमसेनने स्वयं किया है, यह गदायुद्धमें कभी नहीं देखा गया ॥ ५ ॥

अधो नाभ्या न हन्तव्यमिति शास्त्रस्य निश्चयः ।
अयं त्वशास्त्रविन्मूढः स्वच्छन्दात् सम्प्रवर्तते ॥ ६ ॥

'नाभिसे नीचे आघात नहीं करना चाहिये । यह गदायुद्धके विषयमें शास्त्रका सिद्धान्त है । परंतु यह शास्त्रज्ञानसे शून्य मूर्ख भीमसेन यहाँ स्वेच्छाचार कर रहा है' ॥ ६ ॥

तस्य तत् तद् ब्रुवाणस्य रोषः समभवन्महान् ।
ततो राजानमालोक्य रोषसंरक्तलोचनः ॥ ७ ॥

ये सब बातें कहते हुए बलदेवजीका रोष बहुत बढ़ गया । फिर राजा दुर्योधनकी ओर दृष्टिपात करके उनकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं ॥ ७ ॥

बलदेवो महाराज ततो वचनमब्रवीत् ।
न चैष पतितः कृष्ण केवलं मत्समोऽसमः ॥ ८ ॥
आश्रितस्य तु दौर्बल्यादाश्रयः परिभत्स्यते ।

महाराज ! फिर बलदेवजीने कहा—'श्रीकृष्ण ! राजा दुर्योधन मेरे समान बलवान् था । गदायुद्धमें उसकी समानता करनेवाला कोई नहीं था । यहाँ अन्याय करके केवल दुर्योधन ही नहीं गिराया गया है, (मेरा भी अपमान किया गया है) शरणागतकी दुर्बलताके कारण शरण देनेवालेका तिरस्कार किया जा रहा है' ॥ ८½ ॥

ततो लाङ्गलमुद्यम्य भीममभ्यद्रवद् बली ॥ ९ ॥
तस्योर्ध्वबाहोः सदृशं रूपमासीन्महात्मनः ।
बहुधातुविचित्रस्य श्वेतस्येव महागिरेः ॥ १० ॥

ऐसा कहकर महाबली बलराम अपना हल उठाकर भीमसेनकी ओर दौड़े । उस समय अपनी भुजाएँ ऊपर उठाये हुए महात्मा बलरामजीका रूप अनेक धातुओंके कारण विचित्र शोभा पानेवाले महान् श्वेतपर्वतके समान जान पड़ता था ॥ ९-१० ॥

(भ्रातृभिः सहितो भीमः सार्जुनैरस्त्रकोविदैः ।
न विव्यथे महाराज दृष्ट्वा हलधरं बली ॥)

महाराज ! हलधरको आक्रमण करते देख अर्जुनसहित अस्त्रवेत्ता भाइयोंके साथ खड़े हुए बलवान् भीमसेन तनिक भी व्यथित नहीं हुए ॥

तमुत्पतन्तं जग्राह केशवो विनयान्वितः ।
बाहुभ्यां पीनवृत्ताभ्यां प्रयत्नाद् बलवद्बली ॥ ११ ॥

उस समय विनयशील, बलवान् श्रीकृष्णने आक्रमण करते हुए बलरामजीको अपनी मोटी एवं गोल-गोल भुजाओंद्वारा बड़े प्रयत्नसे पकड़ा ॥ ११ ॥

सितासितौ यदुवरौ शुशुभातेऽधिकं तदा ।
(संगताविव राजेन्द्र कैलासाञ्जनपर्वतौ ॥)
नभोगतौ यथा राजंश्चन्द्रसूर्यौ दिनक्षये ॥ १२ ॥

राजेन्द्र ! वे श्याम-गौर यदुकुलतिलक दोनों भाई परस्पर मिले हुए कैलास और कज्जल पर्वतोंके समान शोभा पा रहे थे । राजन् ! संध्याकालके आकाशमें जैसे चन्द्रमा और सूर्य उदित हुए हों, वैसे ही उस रणक्षेत्रमें वे दोनों भाई सुशोभित हो रहे थे ॥ १२ ॥

उवाच चैनं संरब्धं शमयन्निव केशवः ।
आत्मवृद्धिर्मित्रवृद्धिर्मित्रमित्रोदयस्तथा ॥ १३ ॥

विपरीतं द्विषत्स्वेतत् षड्विधा वृद्धिरात्मनः ।

उस समय श्रीकृष्णने रोषसे भरे हुए बलरामजीको शान्त करते हुए-से कहा—'भैया ! अपनी उन्नति छः प्रकारकी होती है—अपनी वृद्धि, मित्रकी वृद्धि और मित्रके मित्रकी वृद्धि । तथा शत्रुपक्षमें इसके विपरीत स्थिति अर्थात् शत्रुकी हानि, शत्रुके मित्रकी हानि तथा शत्रुके मित्रके मित्रकी हानि ॥ १३½ ॥

आत्मन्यपि च मित्रे च विपरीतं यदा भवेत् ॥ १४ ॥
तदा विद्यान्मनोग्लानिमाशु शान्तिकरो भवेत् ।

'अपनी और अपने मित्रकी यदि इसके विपरीत परिस्थिति हो तो मन-ही-मन ग्लानिका अनुभव करना चाहिये और मित्रोंकी उस हानिके निवारणके लिये शीघ्र प्रयत्नशील होना चाहिये ॥ १४½ ॥

अस्माकं सहजं मित्रं पाण्डवाः शुद्धपौरुषाः ॥ १५ ॥
स्वकाः पितृष्वसुः पुत्रास्ते परैर्निकृता भृशम् ।

'शुद्ध पुरुषार्थका आश्रय लेनेवाले पाण्डव हमारे सहज मित्र हैं । बुआके पुत्र होनेके कारण सर्वथा अपने हैं । शत्रुओंने इनके साथ बहुत छल-कपट किया था ॥ १५½ ॥

प्रतिज्ञापालनं धर्मः क्षत्रियस्येह वेद्म्यहम् ॥ १६ ॥
सुयोधनस्य गदया भङ्क्तास्म्यूरू महाहवे ।
इति पूर्वं प्रतिज्ञातं भीमेन हि सभातले ॥ १७ ॥

'मैं समझता हूँ कि इस जगत्‌में अपनी प्रतिज्ञाका पालन करना क्षत्रियके लिये धर्म ही है । पहले सभामें भीमसेनने यह प्रतिज्ञा की थी कि 'मैं महायुद्धमें अपनी गदासे दुर्योधनकी दोनों जाँघें तोड़ डालूँगा' ॥ १६-१७ ॥

मैत्रेयेणाभिशप्तश्च पूर्वमेव महर्षिणा ।
ऊरू ते भेत्स्यते भीमो गदयेति परंतप ॥ १८ ॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाले बलरामजी ! महर्षि मैत्रेयने भी दुर्योधनको पहलेसे ही यह शाप दे रक्खा था कि 'भीमसेन अपनी गदासे तेरी दोनों जाँघें तोड़ डालेंगे' ॥ १८ ॥

अतो दोषं न पश्यामि मा क्रुद्धस्त्वं प्रलम्बहन् ।
यौनैः स्वैः सुखहार्दैश्च सम्बन्धः सह पाण्डवैः ॥ १९ ॥
तेषां वृद्ध्या हि वृद्धिर्नो मा क्रुधः पुरुषर्षभ ।

'अतः प्रलम्बहन्ता बलभद्रजी ! मैं इसमें भीमसेनका कोई दोष नहीं देखता; इसलिये आप क्रोध न कीजिये । हमारा पाण्डवोंके साथ यौन-सम्बन्ध तो है ही । परस्पर सुख देनेवाले सौहार्दसे भी हमलोग बँधे हुए हैं । पुरुषप्रवर ! इन पाण्डवोंकी वृद्धिसे हमारी भी वृद्धि है, अतः आप क्रोध न करें' ॥ १९½ ॥

वासुदेववचः श्रुत्वा सीरभृत् प्राह धर्मवित् ॥ २० ॥
धर्मः सुचरितः सद्भिः स च द्वाभ्यां नियच्छति ।

श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर धर्मज्ञ हलधरने इस प्रकार कहा—'श्रीकृष्ण ! श्रेष्ठ पुरुषोंने धर्मका अच्छी तरह आचरण किया है; किंतु वह अर्थ और काम—इन दो वस्तुओंसे संकुचित हो जाता है ॥ २०½ ॥

अर्थश्चात्यर्थलुब्धस्य कामश्चातिप्रसङ्गिणः ॥ २१ ॥
धर्मार्थौ धर्मकामौ च कामार्थौ चाप्यपीडयन् ।
धर्मार्थकामान् योऽभ्येति सोऽत्यन्तं सुखमश्नुते ॥ २२ ॥

'अत्यन्त लोभीका अर्थ और अधिक आसक्ति रखनेवालेका काम—ये दोनों ही धर्मको हानि पहुँचाते हैं ! जो मनुष्य कामसे धर्म और अर्थको, अर्थसे धर्म और कामको तथा धर्मसे अर्थ और कामको हानि न पहुँचाकर धर्म, अर्थ और काम तीनोंका यथोचित रूपसे सेवन करता है, वह अत्यन्त सुखका भागी होता है ॥ २१-२२ ॥

तदिदं व्याकुलं सर्वं कृतं धर्मस्य पीडनात् ।
भीमसेनेन गोविन्द कामं त्वं तु यथाऽऽत्थ माम् ॥ २३ ॥

'गोविन्द ! भीमसेनने (अर्थके लोभसे) धर्मको हानि पहुँचाकर इन सबको विकृत कर डाला है । तुम मुझसे जिस प्रकार इस कार्यको धर्मसंगत बता रहे हो वह सब तुम्हारी मनमानी कल्पना है' ॥ २३ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

अरोषणो हि धर्मात्मा सततं धर्मवत्सलः ।
भवान् प्रख्यायते लोके तस्मात् संशाम्य मा क्रुधः ॥ २४ ॥

श्रीकृष्णने कहा—भैया ! आप संसारमें क्रोधरहित, धर्मात्मा और निरन्तर धर्मपर अनुग्रह रखनेवाले सत्पुरुषके रूपमें विख्यात हैं; अतः शान्त हो जाइये, क्रोध न कीजिये ॥

प्राप्तं कलियुगं विद्धि प्रतिज्ञां पाण्डवस्य च ।
आनृण्यं यातु वैरस्य प्रतिज्ञायाश्च पाण्डवः ॥ २५ ॥

समझ लीजिये कि कलियुग आ गया । पाण्डुपुत्र भीमसेनकी प्रतिज्ञापर भी ध्यान दीजिये । आज पाण्डुकुमार भीम वैर और प्रतिज्ञाके ऋणसे मुक्त हो जायँ ॥ २५ ॥

(गतः पुरुषशार्दूलो हत्वा नैकृतिकं रणे ।
अधर्मो विद्यते नात्र यद् भीमो हतवान् रिपुम् ॥

पुरुषसिंह भीम रणभूमिमें कपटी दुर्योधनको मारकर चले गये । उन्होंने जो अपने शत्रुका वध किया है, इसमें कोई अधर्म नहीं है ॥

युद्ध्यन्तं समरे वीरं कुरुवृष्णियशस्करम् ।
अनेन कर्णः संदिष्टः पृष्ठतो धनुराच्छिनत् ॥

इसी दुर्योधनने कर्णको आज्ञा दी थी, जिससे उसने कुरु और वृष्णि दोनों कुलोंके सुयशकी वृद्धि करनेवाले, युद्धपरायण, वीर अभिमन्युके धनुषको समराङ्गणमें पीछेसे आकर काट दिया था ॥

ततः सच्छिन्नधन्वानं विरथं पौरुषे स्थितम् ।
व्यायुधीकृत्य हतवान् सौभद्रमपलायिनम् ॥

इस प्रकार धनुष कट जाने और रथसे हीन हो जानेपर भी जो पुरुषार्थमें ही तत्पर था, रणभूमिमें पीठ न दिखानेवाले उस सुभद्राकुमार अभिमन्युको इसने निहत्था करके मार डाला था ॥

जन्मप्रभृतिलुब्धश्च पापश्चैव दुरात्मवान् ।

निहतो भीमसेनेन दुर्बुद्धिः कुलपांसनः ॥

यह दुरात्मा, दुर्बुद्धि एवं पापी दुर्योधन जन्मसे ही लोभी तथा कुरुकुलका कलंक रहा है, जो भीमसेनके हाथसे मारा गया है॥

प्रतिज्ञां भीमसेनस्य त्रयोदशसमार्जिताम् ।
किमर्थं नाभिजानाति युद्धयमानोऽपि विश्रुताम्॥

भीमसेनकी प्रतिज्ञा तेरह वर्षोंसे चल रही थी और सर्वत्र प्रसिद्ध हो चुकी थी। युद्ध करते समय दुर्योधनने उसे याद क्यों नहीं रक्खा ? ॥

ऊर्ध्वमुत्क्रम्य वेगेन जिघांसन्तं वृकोदरः ।
बभञ्ज गदया चोरू न स्थाने न च मण्डले ॥)

यह वेगसे ऊपर उछलकर भीमसेनको मार डालना चाहता था। उस अवस्थामें भीमने अपनी गदासे इसकी दोनों जाँघें तोड़ डाली थीं। उस समय न तो यह किसी स्थानमें था और न मण्डलमें ही ॥

संजय उवाच

धर्मच्छलमपि श्रुत्वा केशवात् स विशाम्पते ।
नैव प्रीतमना रामो वचनं प्राह संसदि ॥ २६ ॥

संजय कहते हैं—प्रजानाथ ! भगवान् श्रीकृष्णसे यह छलरूप धर्मका विवेचन सुनकर बलदेवजीके मनको संतोष नहीं हुआ। उन्होंने भरी सभामें कहा—॥ २६ ॥

हत्वाधर्मेण राजानं धर्मात्मानं सुयोधनम ।
जिह्मयोधीति लोकेऽस्मिन् ख्यातिं यास्यति पाण्डवः ॥

'धर्मात्मा राजा दुर्योधनको अधर्मपूर्वक मारकर पाण्डुपुत्र भीमसेन इस संसारमें कपटपूर्ण युद्ध करनेवाले योद्धाके रूपमें विख्यात होंगे ॥ २७ ॥

दुर्योधनोऽपि धर्मात्मा गतिं यास्यति शाश्वतीम्।
ऋजुयोधी हतो राजा धार्तराष्ट्रो नराधिपः ॥ २८ ॥

'धृतराष्ट्रपुत्र धर्मात्मा राजा दुर्योधन सरलतासे युद्ध कर रहा था, उस अवस्थामें मारा गया है; अतः वह सनातन सद्गतिको प्राप्त होगा ॥ २८ ॥

युद्धदीक्षां प्रविश्याजौ रणयज्ञं वितत्य च ।
हुत्वाऽऽत्मानममित्राग्नौ प्राप चावभृथं यशः ॥ २९ ॥

'युद्धकी दीक्षा ले संग्रामभूमिमें प्रविष्ट हो रणयज्ञका विस्तार करके शत्रुरूपी प्रज्वलित अग्निमें अपने शरीरकी आहुति दे दुर्योधनने सुयशरूपी अवभृथ-स्नानका शुभ अवसर प्राप्त किया है' ॥ २९ ॥

इत्युक्त्वा रथमास्थाय रौहिणेयः प्रतापवान् ।
श्वेताभ्रशिखराकारः प्रययौ द्वारकां प्रति ॥ ३० ॥

यह कहकर प्रतापी रोहिणीनन्दन बलरामजी, जो श्वेत बादलोंके अग्रभागकी भाँति गौर-कान्तिसे सुशोभित हो रहे थे, रथपर आरूढ़ हो द्वारकाकी ओर चल दिये ॥३०॥

पञ्चालाश्च सवार्ष्णेयाः पाण्डवाश्च विशाम्पते ।
रामे द्वारावतीं याते नातिप्रमनसोऽभवन् ॥ ३१ ॥

प्रजानाथ ! बलरामजीके इस प्रकार द्वारका चले जानेपर पाञ्चाल, वृष्णिवंशी तथा पाण्डव वीर उदास हो गये। उनके मनमें अधिक उत्साह नहीं रह गया ॥ ३१ ॥

ततो युधिष्ठिरं दीनं चिन्तापरमधोमुखम् ।
शोकोपहतसंकल्पं वासुदेवोऽब्रवीदिदम् ॥ ३२ ॥

उस समय युधिष्ठिर बहुत दुखी थे। वे नीचे मुख किये चिन्तामें डूब गये थे। शोकसे उनका मनोरथ भङ्ग हो गया था। उस अवस्थामें उनसे भगवान् श्रीकृष्ण बोले ॥

वासुदेव उवाच

धर्मराज किमर्थं त्वमधर्ममनुमन्यसे ।
हतबन्धोर्यदेतस्य पतितस्य विचेतसः ॥ ३३ ॥
दुर्योधनस्य भीमेन मृद्यमानं शिरः पदा ।
उपप्रेक्षसि कस्मात् त्वं धर्मज्ञः सन्नराधिप ॥ ३४ ॥

श्रीकृष्णने पूछा—धर्मराज ! आप चुप होकर अधर्मका अनुमोदन क्यों कर रहे हैं ? नरेश्वर दुर्योधनके भाई और सहायक मारे जा चुके हैं। यह पृथ्वीपर गिरकर अचेत हो रहा है। ऐसी दशामें भीमसेन इसके मस्तकको पैरसे कुचल रहे हैं। आप धर्मज्ञ होकर समीपसे ही यह सब कैसे देख रहे हैं ॥

युधिष्ठिर उवाच

न ममैतत् प्रियं कृष्ण यद् राजानं वृकोदरः ।
पदा मूर्ध्न्यस्पृशत् क्रोधान्न च हृष्ये कुलक्षये ॥ ३५ ॥

युधिष्ठिरने कहा—श्रीकृष्ण ! भीमसेनने क्रोधमें भरकर जो राजा दुर्योधनके मस्तकको पैरोंसे ठुकराया है, यह मुझे भी अच्छा नहीं लगा। अपने कुलका संहार हो जानेसे मैं प्रसन्न नहीं हूँ ॥ ३५ ॥

निकृत्या निकृता नित्यं धृतराष्ट्रसुतैर्वयम् ।
बहूनि परुषाण्युक्त्वा वनं प्रस्थापिताः स्म ह ॥ ३६ ॥

परंतु क्या करूँ, धृतराष्ट्रके पुत्रोंने सदा ही हमें अपने कपट-जालका शिकार बनाया और बहुत-से कटुवचन सुनाकर वनमें भेज दिया ॥ ३६ ॥

भीमसेनस्य तद् दुःखमतीव हृदि वर्तते ।
इति संचिन्त्य वार्ष्णेय मयैतत् समुपेक्षितम् ॥ ३७ ॥

वृष्णिनन्दन ! भीमसेनके हृदयमें इन सब बातोंके लिये बड़ा दुःख था। यही सोचकर मैंने उनके इस कार्यकी उपेक्षा की है ॥ ३७ ॥

तस्माद्धत्वाकृतप्रज्ञं लुब्धं कामवशानुगम् ।
लभतां पाण्डवः कामं धर्मेऽधर्मे च वा कृते ॥ ३८ ॥

इसलिये मैंने विचार किया कि कामके वशीभूत हुए लोभी और अजितात्मा दुर्योधनको मारकर धर्म या अधर्म करके पाण्डुपुत्र भीम अपनी इच्छा पूरी कर लें ॥ ३८ ॥

संजय उवाच

इत्युक्ते धर्मराजेन वासुदेवोऽब्रवीदिदम् ।
काममस्त्वेतदिति वै कृच्छ्राद् यदुकुलोद्वहः ॥ ३९ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! धर्मराजके ऐसा कहनेपर यदुकुलश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णने बड़े कष्टसे यह कहा कि 'अच्छा, ऐसा ही सही' ॥ ३९ ॥

इत्युक्तो वासुदेवेन भीमप्रियहितैषिणा ।
अन्वमोदत तत् सर्वं यद् भीमेन कृतं युधि ॥ ४० ॥

भीमसेनका प्रिय और हित चाहनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण-के ऐसा कहनेपर युधिष्ठिरने भीमसेनके द्वारा युद्धस्थलमें जो कुछ किया गया था, उस सबका अनुमोदन किया ॥ ४० ॥

(अर्जुनोऽपि महाबाहुरप्रीतेनान्तरात्मना ।
नोवाच वचनं किंचित् भ्रातरं साध्वसाधु वा ॥)

महाबाहु अर्जुन भी अप्रसन्न-चित्तसे अपने भाईके प्रति भला बुरा कुछ नहीं बोले ॥

भीमसेनोऽपि हत्वाऽऽजौ तव पुत्रममर्षणः ।
अभिवाद्याग्रतः स्थित्वा सम्प्रहृष्टः कृताञ्जलिः ॥ ४१ ॥

अमर्षशील भीमसेन युद्धस्थलमें आपके पुत्रका वध करके बड़े प्रसन्न हुए और युधिष्ठिरको प्रणाम करके उनके आगे हाथ जोड़कर खड़े हो गये ॥ ४१ ॥

प्रोवाच सुमहातेजा धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
हर्षादुत्फुल्लनयनो जितकाशी विशाम्पते ॥ ४२ ॥

प्रजानाथ ! उस समय महातेजस्वी भीमसेन विजयश्रीसे प्रकाशित हो रहे थे । उनके नेत्र हर्षसे खिल उठे थे, उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिरसे कहा—॥ ४२ ॥

तवाद्य पृथिवी सर्वा क्षेमा निहतकण्टका ।
तां प्रशाधि महाराज स्वधर्ममनुपालय ॥ ४३ ॥

'महाराज ! आज यह सारी पृथ्वी आपकी हो गयी, इसके काँटे नष्ट कर दिये गये, अतः यह मङ्गलमयी हो गयी है । आप इसका शासन तथा अपने धर्मका पालन कीजिये ॥

यस्तु कर्तास्य वैरस्य निकृत्या निकृतिप्रियः ।
सोऽयं विनिहतः शेते पृथिव्यां पृथिवीपते ॥ ४४ ॥

'पृथ्वीनाथ ! जिसे छल और कपट ही प्रिय था तथा जिसने कपटसे ही इस वैरकी नींव डाली थी, वही यह दुर्योधन आज मारा जाकर पृथ्वीपर सो रहा है ॥ ४४ ॥

दुःशासनप्रभृतयः सर्वे ते चोग्रवादिनः ।
राधेयः शकुनिश्चैव हताश्च तव शत्रवः ॥ ४५ ॥

'वे भयङ्कर कटुवचन बोलनेवाले दुःशासन आदि धृतराष्ट्रपुत्र तथा कर्ण और शकुनि आदि आपके सभी शत्रु मार डाले गये ॥ ४५ ॥

सेयं रत्नसमाकीर्णा मही सवनपर्वता ।
उपावृत्ता महाराज त्वामद्य निहतद्विषम् ॥ ४६ ॥

'महाराज ! आपके शत्रु नष्ट हो गये । आज यह रत्नोंसे भरी हुई वन और पर्वतोंसहित सारी पृथ्वी आपकी सेवामें प्रस्तुत है' ॥ ४६ ॥

युधिष्ठिर उवाच

गतो वैरस्य निधनं हतो राजा सुयोधनः ।
कृष्णस्य मतमास्थाय विजितेयं वसुन्धरा ॥ ४७ ॥

युधिष्ठिर बोले—भीमसेन ! सौभाग्यकी बात है कि तुमने वैरका अन्त कर दिया, राजा दुर्योधन मारा गया और श्रीकृष्णके मतका आश्रय लेकर हमने यह सारी पृथ्वी जीत ली ॥ ४७ ॥

दिष्ट्या गतस्त्वमानृण्यं मातुः कोपस्य चोभयोः ।
दिष्ट्या जयति दुर्धर्ष दिष्ट्या शत्रुर्निपातितः ॥ ४८ ॥

सौभाग्यसे तुम माता तथा क्रोध दोनोंके ऋणसे उऋण हो गये । दुर्धर्ष वीर ! भाग्यवश तुम विजयी हुए और सौभाग्यसे ही तुमने अपने शत्रुको मार गिराया ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवसान्त्वने षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें श्रीकृष्णका बलदेवजीको सान्त्वना देना विषयक साठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ८½ श्लोक मिलाकर कुल ५६½ श्लोक हैं)

एकषष्टितमोऽध्यायः

पाण्डव-सैनिकोंद्वारा भीमकी स्तुति, श्रीकृष्णका दुर्योधनपर आक्षेप, दुर्योधनका उत्तर तथा श्रीकृष्णके द्वारा पाण्डवोंका समाधान एवं शङ्खध्वनि

धृतराष्ट्र उवाच

हतं दुर्योधनं दृष्ट्वा भीमसेनेन संयुगे ।
पाण्डवाः सृञ्जयाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! रणभूमिमें भीमसेनके द्वारा दुर्योधनको मारा गया देख पाण्डवों तथा सृंजयोंने क्या किया? ॥

संजय उवाच

हतं दुर्योधनं दृष्ट्वा भीमसेनेन संयुगे ।
सिंहेनेव महाराज मत्तं वनगजं यथा ॥ २ ॥
प्रहृष्टमनसस्तत्र कृष्णेन सह पाण्डवाः ।

संजयने कहा—महाराज ! जैसे कोई मतवाला जंगली हाथी सिंहके द्वारा मारा गया हो, उसी प्रकार दुर्योधन-को भीमसेनके हाथसे रणभूमिमें मारा गया देख श्रीकृष्ण-सहित पाण्डव मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए ॥ २½ ॥

पञ्चाला सृञ्जयाश्चैव निहते कुरुनन्दने ॥ ३ ॥
आविद्ध्यन्नुत्तरीयाणि सिंहनादांश्च नेदिरे ।
नैतान् हर्षसमाविष्टानियं सेहे वसुंधरा ॥ ४ ॥

कुरुनन्दन दुर्योधनके मारे जानेपर पाञ्चाल और सृंजय तो अपने दुपट्टे उछालने और सिंहनाद करने लगे । हर्षमें भरे हुए इन पाण्डव वीरोंका भार यह पृथ्वी सहन नहीं कर पाती थी ॥ ३-४ ॥

धनूंष्यन्ये व्याक्षिपन्त ज्याश्चाप्यन्ये तथाक्षिपन् ।
दध्मुरन्ये महाशङ्खानन्ये जघ्नुश्च दुन्दुभीन् ॥ ५ ॥

किसीने धनुष टंकारा, किसीने प्रत्यञ्चा खींची, कुछ लोग बड़े-बड़े शङ्ख बजाने लगे और दूसरे बहुत-से सैनिक डंके पीटने लगे ॥ ५ ॥

चिक्रीडुश्च तथैवान्ये जहसुश्च तवाहिताः ।
अब्रुवंश्चासकृद् वीरा भीमसेनमिदं वचः ॥ ६ ॥

आपके बहुत-से शत्रु भाँति-भाँतिके खेल खेलने और

हास-परिहास करने लगे। कितने ही वीर भीमसेनके पास जाकर इस प्रकार कहने लगे—॥ ६ ॥

दुष्करं भवता कर्म रणेऽद्य सुमहत् कृतम्।
कौरवेन्द्रं रणे हत्वा गदयातिकृतश्रमम्॥ ७ ॥

'कौरवराज दुर्योधनने गदायुद्धमें बड़ा भारी परिश्रम किया था। आज रणभूमिमें उसका वध करके आपने महान् एवं दुष्कर पराक्रम कर दिखाया है॥ ७॥

इन्द्रेणेव हि वृत्रस्य वधं परमसंयुगे।
त्वया कृतममन्यन्त शत्रोर्वधमिमं जनाः॥ ८ ॥

'जैसे महासमरमें इन्द्रने वृत्रासुरका वध किया था, आपके द्वारा किया हुआ यह शत्रुका संहार भी उसी कोटिका है—ऐसा सब लोग समझने लगे हैं॥ ८॥

चरन्तं विविधान् मार्गान् मण्डलानि च सर्वशः।
दुर्योधनमिमं शूरं कोऽन्यो हन्याद् वृकोदरात्॥ ९ ॥

'भला, नाना प्रकारके पैंतरे बदलते और सब तरहकी मण्डलाकार गतियोंसे चलते हुए इस शूरवीर दुर्योधनको भीमसेनके सिवा दूसरा कौन मार सकता था ?॥ ९॥

वैरस्य च गतः पारं त्वमिहान्यैः सुदुर्गमम्।
अशक्यमेतदन्येन सम्पादयितुमीदृशम्॥ १० ॥

'आप वैरके समुद्रसे पार हो गये, जहाँ पहुँचना दूसरे लोगोंके लिये अत्यन्त कठिन है। दूसरे किसीके लिये ऐसा पराक्रम कर दिखाना सर्वथा असम्भव है॥ १०॥

कुञ्जरेणेव मत्तेन वीर संग्राममूर्धनि।
दुर्योधनशिरो दिष्ट्या पादेन मृदितं त्वया॥ ११ ॥

'वीर! मतवाले गजराजकी भाँति आपने युद्धके मुहानेपर अपने पैरसे दुर्योधनके मस्तकको कुचल दिया है, यह बड़े सौभाग्यकी बात है॥ ११॥

सिंहेन महिषस्येव कृत्वा सङ्गरमुत्तमम्।
दुःशासनस्य रुधिरं दिष्ट्या पीतं त्वयानघ॥ १२ ॥

'अनघ! जैसे सिंहने भैंसेका खून पी लिया हो, उसी प्रकार आपने महान् युद्ध ठानकर दुःशासनके रक्तका पान किया है, यह भी सौभाग्यकी ही बात है॥ १२॥

ये विप्रकुर्वन् राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम्।
मूर्ध्नि तेषां कृतः पादो दिष्ट्या ते स्वेन कर्मणा॥ १३ ॥

'जिन लोगोंने धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरका अपराध किया था, उन सबके मस्तकपर आपने अपने पराक्रमद्वारा पैर रख दिया, यह कितने हर्षका विषय है॥ १३॥

अमित्राणामधिष्ठानाद् वधाद् दुर्योधनस्य च।
भीम दिष्ट्या पृथिव्यां ते प्रथितं सुमहद् यशः॥ १४ ॥

'भीम! शत्रुओंपर अपना प्रभुत्व स्थापित करने और दुर्योधनको मार डालनेसे भाग्यवश इस भूमण्डलमें आपका महान् यश फैल गया है॥ १४॥

एवं नूनं हते वृत्रे शक्रं नन्दन्ति वन्दिनः।
तथा त्वां निहतामित्रं वयं नन्दाम भारत॥ १५ ॥

'भारत! निश्चय ही वृत्रासुरके मारे जानेपर वन्दीजनोंने जिस प्रकार इन्द्रका अभिनन्दन किया था, उसी प्रकार हम शत्रुओंका वध करनेवाले आपका अभिनन्दन करते हैं॥ १५॥

दुर्योधनवधे यानि रोमाणि हृषितानि नः।
अद्यापि न विकृष्यन्ते तानि तद् विद्धि भारत॥ १६ ॥

'भरतनन्दन! दुर्योधनके वधके समय हमारे शरीरमें जो रोंगटे खड़े हुए थे, वे अब भी ज्यों-के-त्यों हैं, गिर नहीं रहे हैं। इन्हें आप देख लें'॥ १६॥

इत्यब्रुवन् भीमसेनं वातिकास्तत्र सङ्गताः।
तान् हृष्टान् पुरुषव्याघ्रान् पञ्चालान् पाण्डवैः सह॥ १७॥
ब्रुवतोऽसदृशं तत्र प्रोवाच मधुसूदनः।

प्रशंसा करनेवाले वीरगण वहाँ एकत्र होकर भीमसेनसे उपर्युक्त बातें कह रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णने जब देखा कि पुरुषसिंह पाञ्चाल और पाण्डव अयोग्य बातें कह रहे हैं, तब वे वहाँ उन सबसे बोले—॥ १७½॥

न न्याय्यं निहतं शत्रुं भूयो हन्तुं नराधिपाः॥ १८ ॥
असकृद् वाग्भिरुग्राभिर्निहतो ह्येष मन्दधीः।

'नरेश्वरो! मरे हुए शत्रुको पुनः मारना उचित नहीं है। तुमलोगोंने इस मन्दबुद्धि दुर्योधनको बारंबार कठोर वचनोंद्वारा घायल किया है॥ १८½॥

तदैवैष हतः पापो यदैव निरपत्रपः॥ १९ ॥
लुब्धः पापसहायश्च सुहृदां शासनातिगः।

'यह निर्लज्ज पापी तो उसी समय मर चुका था जब लोभमें फँसा और पापियोंको अपना सहायक बनाकर सुहृदोंके शासनसे दूर रहने लगा॥ १९½॥

बहुशो विदुरद्रोणकृपगाङ्गेयसृंजयैः॥ २० ॥
पाण्डुभ्यः प्रार्थ्यमानोऽपि पित्र्यमंशं न दत्तवान्।

'विदुर, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, भीष्म तथा सृंजयोंके बारंबार प्रार्थना करनेपर भी इसने पाण्डवोंको उनका पैतृक भाग नहीं दिया॥ २०½॥

नैष योग्योऽद्य मित्रं वा शत्रुर्वा पुरुषाधमः॥ २१ ॥
किमनेनातिभुग्नेन वाग्भिः काष्ठसधर्मणा।
रथेष्वारोहत क्षिप्रं गच्छामो वसुधाधिपाः॥ २२ ॥
दिष्ट्या हतोऽयं पापात्मा सामात्यज्ञातिबान्धवः।

'यह नराधम अब किसी योग्य नहीं है। न यह किसीका मित्र है और न शत्रु। राजाओ! यह तो सूखे काठके समान कठोर है। इसे कटुवचनोंद्वारा अधिक झुकानेकी चेष्टा करनेसे क्या लाभ? अब शीघ्र अपने रथोंपर बैठो। हम सब लोग छावनीकी ओर चलें। सौभाग्यसे यह पापात्मा अपने मन्त्री, कुटुम्ब और भाई-बन्धुओंसहित मार डाला गया।'

इति श्रुत्वा त्वधिक्षेपं कृष्णाद् दुर्योधनो नृपः॥ २३ ॥
अमर्षवशमापन्न उदतिष्ठद् विशाम्पते।
स्फिग्देशेनोपविष्टः स दोर्भ्यां विष्टभ्य मेदिनीम्॥ २४ ॥

प्रजानाथ! श्रीकृष्णके मुखसे यह आक्षेपयुक्त वचन सुन राजा दुर्योधन अमर्षके वशीभूत होकर उठा और दोनों हाथ पृथ्वीपर टेककर चूतड़के सहारे बैठ गया॥ २३-२४॥

दृष्टिं भ्रूसङ्कटां कृत्वा वासुदेवे न्यपातयत्।
अर्धोन्नतशरीरस्य रूपमासीन्नृपस्य तु ॥ २५ ॥
क्रुद्धस्याशीविषस्येव च्छिन्नपुच्छस्य भारत।

तत्पश्चात् उसने श्रीकृष्णकी ओर भौंहें टेढ़ी करके देखा, उसका आधा शरीर उठा हुआ था। उस समय राजा दुर्योधनका रूप उस कुपित विषधरके समान जान पड़ता था, जो पूँछ कट जानेके कारण अपने आधे शरीरको ही उठाकर देख रहा हो ॥ २५½ ॥

प्राणान्तकरिणीं घोरां वेदनामप्यचिन्तयन् ॥ २६ ॥
दुर्योधनो वासुदेवं वाग्भिरुग्राभिरार्दयत्।

उसे प्राणोंका अन्त कर देनेवाली भयंकर वेदना हो रही थी, तो भी उसकी चिन्ता न करते हुए दुर्योधनने अपने कठोर वचनोंद्वारा वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णको पीड़ा देना प्रारम्भ किया—॥ २६½ ॥

कंसदासस्य दायाद न ते लज्जास्त्यनेन वै ॥ २७ ॥
अधर्मेण गदायुद्धे यदहं विनिपातितः।

'ओ कंसके दासके बेटे ! मैं जो गदायुद्धमें अधर्मसे मारा गया हूँ, इस कुकृत्यके कारण क्या तुम्हें लज्जा नहीं आती है ? ॥ २७½ ॥

ऊरू भिन्धीति भीमस्य स्मृतिं मिथ्या प्रयच्छता॥ २८ ॥
किं न विज्ञातमेतन्मे यदर्जुनमवोचथाः।

'भीमसेनको मेरी जाँघें तोड़ डालनेका मिथ्या स्मरण दिलाते हुए तुमने अर्जुनसे जो कुछ कहा था, क्या वह मुझे ज्ञात नहीं है ? ॥ २८½ ॥

घातयित्वा महीपालानृजुयुद्धान् सहस्रशः ॥ २९ ॥
जिह्मैरुपायैर्बहुभिर्न ते लज्जा न ते घृणा।

'सरलतासे धर्मानुकूल युद्ध करनेवाले सहस्रों भूमिपालोंको बहुत-से कुटिल उपायोंद्वारा मरवाकर न तुम्हें लज्जा आती है और न इस बुरे कर्मसे घृणा ही होती है ॥ २९½ ॥

अहन्यहनि शूराणां कुर्वाणः कदनं महत् ॥ ३० ॥
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य घातितस्ते पितामहः।

'जो प्रतिदिन शूरवीरोंका भारी संहार मचा रहे थे, उन पितामह भीष्मका तुमने शिखण्डीको आगे रखकर वध कराया ॥ ३०½ ॥

अश्वत्थाम्नः सनामानं हत्वा नागं सुदुर्मते ॥ ३१ ॥
आचार्यो न्यासितः शस्त्रं किं तन्न विदितं मया।

'दुर्मते ! अश्वत्थामाके सदृश नामवाले एक हाथीको मारकर तुमलोगोंने द्रोणाचार्यके हाथसे शस्त्र नीचे डलवा दिया था, क्या वह मुझे ज्ञात नहीं है ? ॥ ३१½ ॥

स चानेन नृशंसेन धृष्टद्युम्नेन वीर्यवान् ॥ ३२ ॥
पात्यमानस्त्वया दृष्टो न चैनं त्वमवारयः।

'इस नृशंस धृष्टद्युम्नने पराक्रमी आचार्यको उस अवस्थामें मार गिराया, जिसे तुमने अपनी आँखों देखा; किंतु मना नहीं कि ॥ ३२½ ॥

व[illegible]र्थे पाण्डुपुत्रस्य याचितां शक्तिमेव च ॥ ३३ ॥
घटोत्कचे व्यंसयतः कस्त्वत्तः पापकृत्तमः।

'पाण्डुपुत्र अर्जुनके वधके लिये माँगी हुई इन्द्रकी शक्तिको तुमने घटोत्कचपर छुड़वा दिया। तुमसे बढ़कर महापापी कौन हो सकता है ? ॥ ३३½ ॥

छिन्नहस्तः प्रायगतस्तथा भूरिश्रवा बली ॥ ३४ ॥
त्वयाभिसृष्टेन हतः शैनेयेन महात्मना।

'बलवान् भूरिश्रवाका हाथ कट गया था और वे आमरण अनशनका व्रत लेकर बैठे हुए थे। उस दशामें तुमसे ही प्रेरित होकर महामना सात्यकिने उनका वध किया॥

कुर्वाणश्चोत्तमं कर्म कर्णः पार्थजिगीषया ॥ ३५ ॥
व्यंसनेनाश्वसेनस्य पन्नगेन्द्रस्य वै पुनः।
पुनश्च पतिते चक्रे व्यसनार्तः पराजितः ॥ ३६ ॥
पातितः समरे कर्णश्चक्रव्यग्रोऽग्रणीर्नृणाम्।

'मनुष्योंमें अग्रगण्य कर्ण अर्जुनको जीतनेकी इच्छासे उत्तम पराक्रम कर रहा था। उस समय नागराज अश्वसेनको जो कर्णके बाणके साथ अर्जुनके वधके लिये जा रहा था, तुमने अपने प्रयत्नसे विफल कर दिया। फिर जब कर्णके रथका पहिया गड्ढेमें गिर गया और वह उसे उठानेमें व्यग्रतापूर्वक संलग्न हुआ, उस समय उसे संकटसे पीड़ित एवं पराजित जानकर तुमलोगोंने मार गिराया॥ ३५–३६½ ॥

यदि मां चापि कर्णं च भीष्मद्रोणौ च संयुतौ॥ ३७ ॥
ऋजुना प्रतियुध्येथा न ते स्याद् विजयो ध्रुवम्।

'यदि मेरे, कर्णके तथा भीष्म और द्रोणाचार्यके साथ मायारहित सरलभावसे तुम युद्ध करते तो निश्चय ही तुम्हारे पक्षकी विजय नहीं होती ॥ ३७½ ॥

त्वया पुनरनार्येण जिह्ममार्गेण पार्थिवाः ॥ ३८ ॥
स्वधर्ममनुतिष्ठन्तो वयं चान्ये च घातिताः।

'परंतु तुम-जैसे अनार्यने कुटिल मार्गका आश्रय लेकर स्वधर्म-पालनमें लगे हुए हमलोगोंका तथा दूसरे राजाओंका भी वध करवाया है' ॥ ३८½ ॥

वासुदेव उवाच

हतस्त्वमसि गान्धारे सभ्रातृसुतबान्धवः ॥ ३९ ॥
सगणः ससुहृच्चैव पापं मार्गमनुष्ठितः।
तवैव दुष्कृतैर्वीरौ भीष्मद्रोणौ निपातितौ ॥ ४० ॥
कर्णश्च निहतः संख्ये तव शीलानुवर्तकः।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—गान्धारीनन्दन ! तुमने पापके रास्तेपर पैर रक्खा था; इसीलिये तुम भाई, पुत्र, बान्धव, सेवक और सुहृद्गणोंसहित मारे गये हो। वीर भीष्म और द्रोणाचार्य तुम्हारे दुष्कर्मोंसे ही मारे गये हैं। कर्ण भी तुम्हारे स्वभावका ही अनुसरण करनेवाला था; इसलिये युद्धमें मारा गया ॥ ३९-४०½ ॥

याच्यमानं मया मूढ पित्र्यमंशं न दित्ससि ॥ ४१ ॥
पाण्डवेभ्यः स्वराज्यं च लोभाच्छकुनिनिश्चयात्।

ओ मूर्ख ! तुम शकुनिकी सलाह मानकर मेरे माँगनेपर भी पाण्डवोंको उनकी पैतृकसम्पत्ति, उनका अपना राज्य लोभवश नहीं देना चाहते थे ॥ ४१½ ॥

विषं ते भीमसेनाय दत्तं सर्वे च पाण्डवाः ॥ ४२ ॥
प्रदीपिता जतुगृहे मात्रा सह सुदुर्मते ।
सभायां याज्ञसेनी च कृष्टा द्यूते रजस्वला ॥ ४३ ॥
तदैव तावद् दुष्टात्मन् वध्यस्त्वं निरपत्रप ।

सुदुर्मते ! तुमने जब भीमसेनको विष दिया, समस्त पाण्डवोंको उनकी माताके साथ लाक्षागृहमें जला डालनेका प्रयत्न किया और निर्लज्ज ! दुष्टात्मन् ! द्यूतक्रीड़ाके समय भरी सभामें रजस्वला द्रौपदीको जब तुमलोग घसीट लाये, तभी तुम वधके योग्य हो गये थे ॥ ४२-४३½ ॥

अनक्षज्ञं च धर्मज्ञं सौबलेनाक्षवेदिना ॥ ४४ ॥
निकृत्या यत् पराजैषीस्तस्मादसि हतो रणे ।

तुमने द्यूतक्रीड़ाके जानकार सुबलपुत्र शकुनिके द्वारा उस कलाको न जाननेवाले धर्मज्ञ युधिष्ठिरको, जो छलसे पराजित किया था, उसी पापसे तुम रणभूमिमें मारे गये हो ॥४४½॥

जयद्रथेन पापेन यत् कृष्णा क्लेशिता वने ॥ ४५ ॥
यातेषु मृगयां चैव तृणविन्दोरथाश्रमम् ।
अभिमन्युश्च यद् बाल एको बहुभिराहवे ॥ ४६ ॥
त्वद्दोषैर्निहतः पाप तस्मादसि हतो रणे ।

जब पाण्डव शिकारके लिये तृणविन्दुके आश्रमपर चले गये थे, उस समय पापी जयद्रथने वनके भीतर द्रौपदीको जो क्लेश पहुँचाया और पापात्मन् ! तुम्हारे ही अपराधसे बहुत-से योद्धाओंने मिलकर युद्धस्थलमें जो अकेले बालक अभिमन्यु-का वध किया था, इन्हीं सब कारणोंसे आज तुम भी रण-भूमिमें मारे गये हो ॥ ४५-४६½ ॥

(कुर्वाणं कर्म समरे पाण्डवानर्थकाङ्क्षिणम् ।
यच्छिखण्ड्यवधीद् भीष्मं मित्रार्थे न व्यतिक्रमः॥

भीष्म पाण्डवोंके अनर्थकी इच्छा रखकर समरभूमिमें पराक्रम प्रकट कर रहे थे । उस समय अपने मित्रोंके हितके लिये शिखण्डीने जो उनका वध किया है, वह कोई दोष या अपराधकी बात नहीं है ॥

स्वधर्मं पृष्ठतः कृत्वा आचार्यस्त्वत्प्रियेप्सया ।
पार्षतेन हतः संख्ये वर्तमानोऽसतां पथि ॥

आचार्य द्रोण तुम्हारा प्रिय करनेकी इच्छासे अपने धर्म-को पीछे करके असाधु पुरुषोंके मार्गपर चल रहे थे; अतः युद्धस्थलमें धृष्टद्युम्नने उनका वध किया है ॥

प्रतिज्ञामात्मनः सत्यां चिकीर्षन् समरे रिपुम् ।
हतवान् सात्वतो विद्वान् सौमदत्तिं महारथम्॥

विद्वान् सात्वतवंशी सात्यकिने अपनी सच्ची प्रतिज्ञाका पालन करनेकी इच्छासे समराङ्गणमें अपने शत्रु महारथी भूरिश्रवाका वध किया था ॥

अर्जुनः समरे राजन् युध्यमानः कदाचन ।
निन्दितं पुरुषव्याघ्रः करोति न कथंचन ॥

राजन् ! समरभूमिमें युद्ध करते हुए पुरुषसिंह अर्जुन कभी किसी प्रकार भी कोई निन्दित कार्य नहीं करते हैं ! ॥

लब्ध्वापि बहुशश्छिद्रं वीरवृत्तमनुस्मरन् ।
न जघान रणे कर्णं मैवं वोचः सुदुर्मते ॥

दुर्मते ! अर्जुनने वीरोचित सदाचारका विचार करके बहुत-से छिद्र (प्रहार करनेके अवसर) पाकर भी युद्धमें कर्णका वध नहीं किया है; अतः तुम उनके विषयमें ऐसी बात न कहो ॥

देवानां मतमाज्ञाय तेषां प्रियहितेप्सया ।
नार्जुनस्य महानागं मया व्यंसितमस्त्रजम् ॥

देवताओंका मत जानकर उनका प्रिय और हित करनेकी इच्छासे मैंने अर्जुनपर महानागास्त्रका प्रहार नहीं होने दिया। उसे विफल कर दिया ॥

त्वं च भीष्मश्च कर्णश्च द्रोणो द्रौणिस्तथा कृपः ।
विराटनगरे तस्य आनृशंस्याच्च जीविताः ॥

तुम, भीष्म, कर्ण, द्रोण, अश्वत्थामा तथा कृपाचार्य विराटनगरमें अर्जुनकी दयालुतासे ही जीवित बच गये ॥

स्मर पार्थस्य विक्रान्तं गन्धर्वेषु कृतं तदा ।
अधर्मः कोऽत्र गान्धारे पाण्डवैर्यत् कृतं त्वयि॥

याद करो; अर्जुनके उस पराक्रमको; जो उन्होंने तुम्हारे लिये उन दिनों गन्धर्वोंपर प्रकट किया था । गान्धारीनन्दन ! पाण्डवोंने यहाँ तुम्हारे साथ जो बर्ताव किया है, उसमें कौन-सा अधर्म है ॥

स्वबाहुबलमास्थाय स्वधर्मेण परंतपाः ।
जितवन्तो रणे वीरा पापोऽसि निधनं गतः ॥)

शत्रुओंको संताप देनेवाले वीर पाण्डवोंने अपने बाहुबल-का आश्रय लेकर क्षत्रिय-धर्मके अनुसार विजय पायी है । तुम पापी हो, इसीलिये मारे गये हो ॥

यान्यकार्याणि चास्माकं कृतानीति प्रभाषसे ॥ ४७ ॥
वैगुण्येन तवात्यर्थं सर्वं हि तदनुष्ठितम् ।

तुम जिन्हें हमारे किये हुए अनुचित कार्य बता रहे हो, वे सब तुम्हारे महान् दोषसे ही किये गये हैं ॥ ४७½ ॥

बृहस्पतेरुशनसो नोपदेशः श्रुतस्त्वया ॥ ४८ ॥
वृद्धा नोपासिताश्चैव हितं वाक्यं न ते श्रुतम् ।

तुमने बृहस्पति और शुक्राचार्यके नीतिसम्बन्धी उपदेश-को नहीं सुना है, बड़े-बूढ़ोंकी उपासना नहीं की है और उनके हितकर वचन भी नहीं सुने हैं ॥ ४८½ ॥

लोभेनातिबलेन त्वं तृष्णया च वशीकृतः ॥ ४९ ॥
कृतवानस्यकार्याणि विपाकस्तस्य भुज्यताम् ।

तुमने अत्यन्त प्रबल लोभ और तृष्णाके वशीभूत होकर न करने योग्य कार्य किये हैं; अतः उनका परिणाम अब तुम्हीं भोगो ॥ ४९½ ॥

दुर्योधन उवाच

अधीतं विधिवद् दत्तं भूः प्रशास्ता ससागरा ॥ ५० ॥
मूर्ध्नि स्थितममित्राणां को नु स्वन्ततरो मया ।

दुर्योधनने कहा—मैंने विधिपूर्वक अध्ययन किया, दान दिये, समुद्रोंसहित पृथ्वीका शासन किया और शत्रुओंके मस्तकपर पैर रखकर मैं खड़ा रहा। मेरे समान उत्तम अन्त (परिणाम) किसका हुआ है ? ॥ ५०½ ॥

यदिष्टं क्षत्रबन्धूनां स्वधर्ममनुपश्यताम् ॥ ५१ ॥
तदिदं निधनं प्राप्तं को नु स्वन्ततरो मया ।

अपने धर्मपर दृष्टि रखनेवाले क्षत्रिय-बन्धुओंको जो अभीष्ट है, वही यह मृत्यु मुझे प्राप्त हुई है; अतः मुझसे अच्छा अन्त और किसका हुआ है ? ॥ ५१½ ॥

देवार्हा मानुषा भोगाः प्राप्ता असुलभा नृपैः ॥ ५२ ॥
ऐश्वर्यं चोत्तमं प्राप्तं को नु स्वन्ततरो मया ।

जो दूसरे राजाओंके लिये दुर्लभ हैं, वे देवताओंको ही सुलभ होनेवाले मानवभोग मुझे प्राप्त हुए हैं। मैंने उत्तम ऐश्वर्य पा लिया है; अतः मुझसे उत्कृष्ट अन्त और किसका हुआ है ?॥ ५२½ ॥

ससुहृत् सानुगश्चैव स्वर्गं गन्ताहमच्युत ॥ ५३ ॥
यूयं निहतसंकल्पाः शोचन्तो वर्तयिष्यथ ।

अच्युत ! मैं सुहृदों और सेवकोंसहित स्वर्गलोकमें जाऊँगा और तुमलोग भग्नमनोरथ होकर शोचनीय जीवन बिताते रहोगे ॥ ५३½ ॥

(न मे विषादो भीमेन पादेन शिर आहतम् ।
काका वा कङ्कगृध्रा वा निधास्यन्ति पदं क्षणात् ॥)

भीमसेनने अपने पैरसे जो मेरे सिरपर आघात किया है, इसके लिये मुझे कोई खेद नहीं है; क्योंकि अभी क्षणभरके बाद कौए, कङ्क अथवा गृध्र भी तो इस शरीरपर अपना पैर रक्खेंगे ॥

संजय उवाच

अस्य वाक्यस्य निधने कुरुराजस्य धीमतः ॥ ५४ ॥
अपतत् सुमहद् वर्षं पुष्पाणां पुण्यगन्धिनाम् ।

संजय कहते हैं—राजन् ! बुद्धिमान् कुरुराज दुर्योधनकी यह बात पूरी होते ही उसके ऊपर पवित्र सुगंधवाले पुष्पोंकी बड़ी भारी वर्षा होने लगी ॥ ५४½ ॥

अवादयन्त गन्धर्वा वादित्रं सुमनोहरम् ॥ ५५ ॥
जगुश्चाप्सरसो राज्ञो यशःसम्बद्धमेव च ।

गन्धर्वगण अत्यन्त मनोहर बाजे बजाने लगे और अप्सराएँ राजा दुर्योधनके सुयशसम्बन्धी गीत गाने लगीं॥५५½

सिद्धाश्च मुमुचुर्वाचः साधु साध्विति पार्थिव ॥ ५६ ॥
ववौ च सुरभिर्वायुः पुण्यगन्धो मृदुः सुखः ।
व्यराजंश्च दिशः सर्वा नभो वैदूर्यसंनिभम् ॥ ५७ ॥

राजन् ! उस समय सिद्धगण बोल उठे—'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' । फिर पवित्र गन्धवाली मनोहर, मृदुल एवं सुखदायक हवा चलने लगी। सारी दिशाओंमें प्रकाश छा गया और आकाश नीलमके समान चमक उठा ॥ ५६-५७॥

अत्यद्भुतानि ते दृष्ट्वा वासुदेवपुरोगमाः ।
दुर्योधनस्य पूजां तु दृष्ट्वा व्रीडामुपागमन् ॥ ५८॥

श्रीकृष्ण आदि सब लोग ये अद्भुत बातें और दुर्योधनकी यह पूजा देखकर बहुत लज्जित हुए ॥ ५८ ॥

हतांश्चाधर्मतः श्रुत्वा शोकार्ताः शुशुचुर्हि ते ।
भीष्मं द्रोणं तथा कर्णं भूरिश्रवसमेव च ॥ ५९ ॥

भीष्म, द्रोण, कर्ण और भूरिश्रवाको अधर्मपूर्वक मारा गया सुनकर सब लोग शोकसे व्याकुल हो खेद प्रकट करने लगे ॥ ५९ ॥

तांस्तु चिन्तापरान् दृष्ट्वा पाण्डवान् दीनचेतसः ।
प्रोवाचेदं वचः कृष्णो मेघदुन्दुभिनिस्वनः ॥ ६० ॥

पाण्डवोंको दीनचित्त एवं चिन्तामग्न देख मेघ और दुन्दुभिके समान गम्भीर घोष करनेवाले श्रीकृष्णने इस प्रकार कहा—॥ ६० ॥

नैष शक्योऽतिशीघ्रास्त्रस्ते च सर्वे महारथाः ।
ऋजुयुद्धेन विक्रान्ता हन्तुं युष्माभिराहवे ॥ ६१ ॥

'यह दुर्योधन अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलानेवाला था, अतः इसे कोई जीत नहीं सकता था और वे भीष्म, द्रोण आदि महारथी भी बड़े पराक्रमी थे। उन्हें धर्मानुकूल सरलतापूर्वक युद्धके द्वारा आपलोग नहीं मार सकते थे ॥ ६१ ॥

नैष शक्यः कदाचित् तु हन्तुं धर्मेण पार्थिवः ।
ते वा भीष्ममुखाः सर्वे महेष्वासा महारथाः ॥ ६२ ॥

'यह राजा दुर्योधन अथवा वे भीष्म आदि सभी महाधनुर्धर महारथी कभी धर्मयुद्धके द्वारा नहीं मारे जा सकते थे ॥ ६२ ॥

मयानेकैरुपायैस्तु मायायोगेन चासकृत् ।
हतास्ते सर्व एवाजौ भवतां हितमिच्छता ॥ ६३ ॥

'आपलोगोंका हित चाहते हुए मैंने ही बारंबार मायाका प्रयोग करके अनेक उपायोंसे युद्धस्थलमें उन सबका वध किया ॥ ६३ ॥

यदि नैवंविधं जातु कुर्यां जिह्ममहं रणे ।
कुतो वो विजयो भूयः कुतो राज्यं कुतो धनम्॥ ६४ ॥

'यदि कदाचित् युद्धमें मैं इस प्रकार कपटपूर्ण कार्य नहीं करता तो फिर तुम्हें विजय कैसे प्राप्त होती, राज्य कैसे हाथमें आता और धन कैसे मिल सकता था ? ॥ ६४ ॥

ते हि सर्वे महात्मानश्चत्वारोऽतिरथा भुवि ।
न शक्या धर्मतो हन्तुं लोकपालैरपि स्वयम् ॥ ६५ ॥

'भीष्म, द्रोण, कर्ण और भूरिश्रवा—ये चारों महामना इस भूतलपर अतिरथीके रूपमें विख्यात थे। साक्षात् लोकपाल भी धर्मयुद्ध करके उन सबको नहीं मार सकते थे ॥६५॥

तथैवायं गदापाणिर्धार्तराष्ट्रो गतक्लमः ।
न शक्यो धर्मतो हन्तुं कालेनापीह दण्डिना ॥ ६६ ॥

'यह गदाधारी धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन भी युद्धसे थकता नहीं था, इसे दण्डधारी काल भी धर्मानुकूल युद्धके द्वारा नहीं मार सकता था ॥ ६६ ॥

न च वो हृदि कर्तव्यं यदयं घातितो रिपुः ।
मिथ्यावध्यास्तथोपायैर्बहवः शत्रवोऽधिकाः ॥ ६७ ॥

'इस प्रकार जो यह शत्रु मारा गया है इसके लिये तुम्हें अपने मनमें विचार नहीं करना चाहिये ? बहुतेरे अधिक शक्तिशाली शत्रु नाना प्रकारके उपायों और कूटनीतिके प्रयोगोंद्वारा मारनेके योग्य होते हैं ॥ ६७ ॥

पूर्वैरनुगतो मार्गो देवैरसुरघातिभिः।
सद्भिश्चानुगतः पन्थाः स सर्वैरनुगम्यते ॥ ६८ ॥

'असुरोंका विनाश करनेवाले पूर्ववर्ती देवताओंने इस मार्गका आश्रय लिया है। श्रेष्ठ पुरुष जिस मार्गसे चले हैं, उसका सभी लोग अनुसरण करते हैं ॥ ६८ ॥

कृतकृत्याश्च सायाह्ने निवासं रोचयामहे।
साश्वनागरथाः सर्वे विश्रमामो नराधिपाः ॥ ६९ ॥

'अब हमलोगोंका कार्य पूरा हो गया, अतः सायंकालके समय विश्राम करनेकी इच्छा हो रही है। राजाओ! हम सब लोग घोड़े, हाथी एवं रथसहित विश्राम करें' ॥ ६९ ॥

वासुदेववचः श्रुत्वा तदानीं पाण्डवैः सह।
पञ्चाला भृशसंहृष्टा विनेदुः सिंहसंघवत् ॥ ७० ॥

भगवान् श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर उस समय पाण्डवों-सहित समस्त पाञ्चाल अत्यन्त प्रसन्न हुए और सिंहसमुदाय-के समान दहाड़ने लगे ॥ ७० ॥

ततः प्राध्मापयञ्शङ्खान् पाञ्चजन्यं च माधवः।
हृष्टा दुर्योधनं दृष्ट्वा निहतं पुरुषर्षभ ॥ ७१ ॥

पुरुषप्रवर! तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण तथा अन्य लोग दुर्योधनको मारा गया देख हर्षमें भरकर अपने-अपने शङ्ख बजाने लगे। श्रीकृष्णने पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया ॥ ७१ ॥

(देवदत्तं प्रहृष्टात्मा शङ्खप्रवरमर्जुनः।
अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः।

प्रसन्नचित्त अर्जुनने देवदत्त नामक श्रेष्ठ शङ्खकी ध्वनि की। कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरने अनन्तविजय तथा भयंकर कर्म करनेवाले भीमसेनने पौण्ड्र नामक महान् शङ्ख बजाया ॥

नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥
धृष्टद्युम्नस्तथा जैत्रं सात्यकिर्नन्दिवर्धनम्।
तेषां नादेन महता शङ्खानां भरतर्षभ ॥
आपुपूरे नभः सर्वं पृथिवी च चचाल ह ॥

नकुल और सहदेवने क्रमशः सुघोष और मणिपुष्पक नामक शङ्ख बजाये। धृष्टद्युम्नने जैत्र और सात्यकिने नन्दि-वर्धन नामक शङ्खकी ध्वनि फैलायी। भरतश्रेष्ठ! उन महान् शङ्खोंके शब्दसे सारा आकाश भर गया और धरती डोलने लगी ॥

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः।
पाण्डुसैन्येष्ववाद्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥
अस्तुवन् पाण्डवानन्ये गीर्भिश्च स्तुतिमङ्गलैः।)

तत्पश्चात् पाण्डवसेनाओंमें शङ्ख, भेरी, पणव, आनक और गोमुख आदि बाजे बजाये जाने लगे। उन सबकी मिली-जुली आवाज बड़ी भयानक जान पड़ती थी। उस समय अन्य बहुत-से मनुष्य स्तुति एवं मङ्गलमय वचनोंद्वारा पाण्डवोंका स्तवन करने लगे ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि कृष्णपाण्डवदुर्योधनसंवादे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें श्रीकृष्ण, पाण्डव और दुर्योधनका संवादविषयक इकसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६१ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके १५ श्लोक मिलाकर कुल ८६ श्लोक हैं)

द्विषष्टितमोऽध्यायः

पाण्डवोंका कौरव शिबिरमें पहुँचना, अर्जुनके रथका दग्ध होना और पाण्डवोंका भगवान् श्रीकृष्णको हस्तिनापुर भेजना

संजय उवाच

ततस्ते प्रययुः सर्वे निवासाय महीक्षितः।
शङ्खान् प्रध्मापयन्तो वै हृष्टाः परिघबाहवः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर परिघके समान मोटी भुजाओंवाले सब नरेश अपना-अपना शङ्ख बजाते हुए शिबिरमें विश्राम करनेके लिये प्रसन्नतापूर्वक चल दिये ॥ १ ॥

पाण्डवान् गच्छतश्चापि शिबिरं नो विशाम्पते।
महेष्वासोऽन्वगात् पश्चाद् युयुत्सुः सात्यकिस्तथा ॥ २ ॥
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपदेयाश्च सर्वशः।
सर्वे चान्ये महेष्वासाः प्रययुः शिबिराण्युत ॥ ३ ॥

प्रजानाथ! हमारे शिबिरकी ओर जाते हुए पाण्डवोंके पीछे-पीछे महाधनुर्धर युयुत्सु, सात्यकि, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रौपदीके सभी पुत्र तथा अन्य सब धनुर्धर योद्धा भी उन शिबिरोंमें गये ॥ २-३ ॥

ततस्ते प्राविशन् पार्था हतत्विट्कं हतेश्वरम्।
दुर्योधनस्य शिबिरं रङ्गवद्विसृते जने ॥ ४ ॥
गतोत्सवं पुरमिव हतनागमिव ह्रदम्।
स्त्रीवर्षवरभूयिष्ठं वृद्धामात्यैरधिष्ठितम् ॥ ५ ॥

तत्पश्चात् कुन्तीके पुत्रोंने पहले दुर्योधनके शिबिरमें प्रवेश किया। जैसे दर्शकोंके चले जानेपर सूना रङ्गमण्डप शोभाहीन दिखायी देता है, उसी प्रकार जिसका स्वामी मारा गया था, वह शिबिर उत्सवशून्य नगर और नागरहित सरोवरके समान श्रीहीन जान पड़ता था। वहाँ रहनेवाले लोगोंमें अधिकांश स्त्रियाँ और नपुंसक थे तथा बूढ़े मन्त्री

अधिष्ठाता बनकर उस शिबिरका संरक्षण कर रहे थे ॥४-५॥

तत्रैतान् पर्युपातिष्ठन् दुर्योधनपुरःसराः ।
कृताञ्जलिपुटा राजन् काषायमलिनाम्बराः ॥ ६ ॥

राजन् ! वहाँ दुर्योधनके आगे-आगे चलनेवाले सेवक-गण मलिन भगवा वस्त्र-पहनकर हाथ जोड़े हुए इन पाण्डवोंके समक्ष उपस्थित हुए ॥ ६ ॥

शिबिरं समनुप्राप्य कुरुराजस्य पाण्डवाः ।
अवतेरुर्महाराज रथेभ्यो रथसत्तमाः ॥ ७ ॥

महाराज ! कुरुराजके शिबिरमें पहुँचकर रथियोंमें श्रेष्ठ पाण्डव अपने रथोंसे नीचे उतरे ॥ ७ ॥

ततो गाण्डीवधन्वानमभ्यभाषत केशवः ।
स्थितः प्रियहिते नित्यमतीव भरतर्षभ ॥ ८ ॥
अवरोपय गाण्डीवमक्षयौ च महेषुधी ।
अथाहमवरोक्ष्यामि पश्चाद् भरतसत्तम ॥ ९ ॥
स्वयं चैवावरोह त्वमेतच्छ्रेयस्तवानघ ।

भरतश्रेष्ठ ! तत्पश्चात् सदा अर्जुनके प्रिय एवं हितमें तत्पर रहनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने गाण्डीवधारी अर्जुनसे कहा—'भरतवंशशिरोमणे ! तुम गाण्डीव धनुषको और इन दोनों बाणोंसे भरे हुए अक्षय तरकसोंको उतार लो । फिर स्वयं भी उतर जाओ ! इसके बाद मैं उतरूँगा ! अनघ ! ऐसा करनेमें ही तुम्हारी भलाई है' ॥ ८-९½ ॥

तच्चाकरोत् तथा वीरः पाण्डुपुत्रो धनंजयः ॥ १० ॥
अथ पश्चात् ततः कृष्णो रश्मीनुत्सृज्य वाजिनाम् ।
अवारोहत मेधावी रथाद् गाण्डीवधन्वनः ॥ ११ ॥

वीर पाण्डुपुत्र अर्जुनने वह सब वैसे ही किया । तदनन्तर परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्ण घोड़ोंकी बागडोर छोड़कर गाण्डीवधारी अर्जुनके रथसे स्वयं भी उतर पड़े ॥ १०-११ ॥

अथावतीर्णे भूतानामीश्वरे सुमहात्मनि ।
कपिरन्तर्दधे दिव्यो ध्वजो गाण्डीवधन्वनः ॥ १२ ॥

समस्त प्राणियोंके ईश्वर परमात्मा श्रीकृष्णके उतरते ही गाण्डीवधारी अर्जुनका ध्वजस्वरूप दिव्य वानर उस रथसे अन्तर्धान हो गया ॥ १२॥

स दग्धो द्रोणकर्णाभ्यां दिव्यैरस्त्रैर्महारथः ।
अथादीप्तोऽग्निना ह्याशु प्रजज्वाल महीपते ॥ १३ ॥

पृथ्वीनाथ ! इसके बाद अर्जुनका वह विशाल रथ, जो द्रोण और कर्णके दिव्यास्त्रोंद्वारा दग्धप्राय हो गया था, तुरंत ही आगसे प्रज्वलित हो उठा ॥ १३ ॥

सोपासङ्गः सरश्मिश्च साश्वः सयुगबन्धुरः ।
भस्मीभूतोऽपतद् भूमौ रथो गाण्डीवधन्वनः ॥ १४ ॥

गाण्डीवधारीका वह रथ उपासङ्ग, बागडोर, जूआ, बन्धुरकाष्ठ और घोड़ोंसहित भस्म होकर भूमिपर गिर पड़ा ॥

तं तथा भस्मभूतं तु दृष्ट्वा पाण्डुसुताः प्रभो ।
अभवन् विस्मिता राजन्नर्जुनश्चेदमब्रवीत् ॥ १५ ॥
कृताञ्जलिः सप्रणयं प्रणिपत्याभिवाद्य ह ।
गोविन्द कस्माद् भगवन् रथो दग्धोऽयमग्निना ॥ १६ ॥
किमेतन्महदाश्चर्यमभवद् यदुनन्दन ।
तन्मे ब्रूहि महाबाहो श्रोतव्यं यदि मन्यसे ॥ १७ ॥

प्रभो ! नरेश्वर ! उस रथको भस्मीभूत हुआ देख समस्त पाण्डव आश्चर्यचकित हो उठे और अर्जुनने भी हाथ जोड़कर भगवान्के चरणोंमें बारंबार प्रणाम करके प्रेमपूर्वक पूछा—'गोविन्द ! यह रथ अकस्मात् कैसे आगसे जल गया? भगवन् ! यदुनन्दन ! यह कैसी महान् आश्चर्यकी बात हो गयी ? महाबाहो ! यदि आप सुनने योग्य समझें तो इसका रहस्य मुझे बतावें' ॥ १५–१७ ॥

वासुदेव उवाच

अस्त्रैर्बहुविधैर्दग्धः पूर्वमेवायमर्जुन ।
मदधिष्ठितत्वात् समरे न विशीर्णः परंतप ॥ १८ ॥

श्रीकृष्णने कहा—शत्रुओंको संताप देनेवाले अर्जुन ! यह रथ नाना प्रकारके अस्त्रोंद्वारा पहले ही दग्ध हो चुका था; परंतु मेरे बैठे रहनेके कारण समराङ्गणमें भस्म होकर गिर न सका ॥ १८ ॥

इदानीं तु विशीर्णोऽयं दग्धो ब्रह्मास्त्रतेजसा ।
मया विमुक्तः कौन्तेय त्वय्यद्य कृतकर्मणि ॥ १९ ॥

कुन्तीनन्दन ! आज जब तुम अपना अभीष्ट कार्य पूर्ण कर चुके हो, तब मैंने इसे छोड़ दिया है; इसलिये पहलेसे ही ब्रह्मास्त्रके तेजसे दग्ध हुआ यह रथ इस समय बिखरकर गिर पड़ा है ॥ १९ ॥

ईषदुत्स्मयमानस्तु भगवान् केशवोऽरिहा ।
परिष्वज्य च राजानं युधिष्ठिरमभाषत ॥ २० ॥

इसके बाद शत्रुओंका संहार करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने किञ्चित् मुस्कराते हुए वहाँ राजा युधिष्ठिरको हृदयसे लगाकर कहा—॥ २० ॥

दिष्ट्या जयसि कौन्तेय दिष्ट्या ते शत्रवो जिताः ।
दिष्ट्या गाण्डीवधन्वा च भीमसेनश्च पाण्डवः ॥ २१ ॥
त्वं चापि कुशली राजन् माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
मुक्ता वीरक्षयादस्मात् संग्रामान्निहतद्विषः ॥ २२ ॥

'कुन्तीनन्दन ! सौभाग्यसे आपकी विजय हुई और सारे शत्रु परास्त हो गये । राजन् ! गाण्डीवधारी अर्जुन, पाण्डुकुमार भीमसेन, आप और माद्रीपुत्र पाण्डुनन्दन नकुल-सहदेव—ये सब-के-सब सकुशल हैं तथा जहाँ वीरोंका विनाश हुआ और तुम्हारे सारे शत्रु कालके गालमें चले गये, उस घोर संग्रामसे तुमलोग जीवित बच गये, यह बड़े सौभाग्यकी बात है ॥ २१-२२ ॥



युद्धके अन्तमें अर्जुनके रथका दाह

क्षिप्रमुत्तरकालानि कुरु कार्याणि भारत।
उपायातमुपप्लव्यं सह गाण्डीवधन्वना ॥ २३ ॥
आनीय मधुपर्कं मां यत् पुरा त्वमवोचथाः।
एष भ्राता सखा चैव तव कृष्ण धनंजयः ॥ २४ ॥
रक्षितव्यो महाबाहो सर्वास्वापत्स्विति प्रभो।

'भरतनन्दन ! अब आगे समयानुसार जो कार्य प्राप्त हो उसे शीघ्र कर डालिये। पहले गाण्डीवधारी अर्जुनके साथ जब मैं उपप्लव्य नगरमें आया था, उस समय मेरे लिये मधुपर्क अर्पित करके आपने मुझसे यह बात कही थी कि 'श्रीकृष्ण ! यह अर्जुन तुम्हारा भाई और सखा है। प्रभो ! महाबाहो ! तुम्हें इसकी सब आपत्तियोंसे रक्षा करनी चाहिये' २३-२४½

तव चैव ब्रुवाणस्य तथेत्येवाहमब्रुवम् ॥ २५ ॥
स सव्यसाची गुप्तस्ते विजयी च जनेश्वर।
भ्रातृभिः सह राजेन्द्र शूरः सत्यपराक्रमः ॥ २६ ॥
मुक्तो वीरक्षयादस्मात् संग्रामाल्लोमहर्षणात्।

'आपने जब ऐसा कहा, तब मैंने 'तथास्तु' कहकर वह आज्ञा स्वीकार कर ली थी। जनेश्वर ! राजेन्द्र ! आपका वह शूरवीर, सत्यपराक्रमी भाई सव्यसाची अर्जुन मेरे द्वारा सुरक्षित रहकर विजयी हुआ है तथा वीरोंका विनाश करनेवाले इस रोमाञ्चकारी संग्रामसे भाइयोंसहित जीवित बच गया है' ॥ २५-२६½ ॥

एवमुक्तस्तु कृष्णेन धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ २७ ॥
हृष्टरोमा महाराज प्रत्युवाच जनार्दनम्।

महाराज ! श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर धर्मराज युधिष्ठिरके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। वे उनसे इस प्रकार बोले॥२७½॥

युधिष्ठिर उवाच

प्रमुक्तं द्रोणकर्णाभ्यां ब्रह्मास्त्रमरिमर्दन ॥ २८ ॥
कस्त्वदन्यः सहेत् साक्षादपि वज्री पुरंदरः।

युधिष्ठिरने कहा—शत्रुमर्दन श्रीकृष्ण ! द्रोणाचार्य और कर्णने जिस ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया था, उसे आपके सिवा दूसरा कौन सह सकता था। साक्षात् वज्रधारी इन्द्र भी उसका आघात नहीं सह सकते थे ॥ २८½ ॥

भवतस्तु प्रसादेन संशप्तकगणा जिताः ॥ २९ ॥
महारणगतः पार्थो यच्च नासीत् पराङ्मुखः।

आपकी ही कृपासे संशप्तकगण परास्त हुए हैं और कुन्तीकुमार अर्जुनने उस महासमरमें जो कभी पीठ नहीं दिखायी है, वह भी आपके ही अनुग्रहका फल है ॥ २९½ ॥

तथैव च महाबाहो पर्यायैर्बहुभिर्मया ॥ ३० ॥
कर्मणामनुसंतानं तेजसश्च गतीः शुभाः।

महाबाहो ! आपके द्वारा अनेकों बार हमारे कार्योंकी सिद्धि हुई है और हमें तेजके शुभ परिणाम प्राप्त हुए हैं ॥ ३०½ ॥

उपप्लव्ये महर्षिर्मे कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ॥ ३१ ॥
यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः।

उपप्लव्य नगरमें महर्षि श्रीकृष्ण द्वैपायनने मुझसे कहा था कि 'जहाँ धर्म है, वहाँ श्रीकृष्ण हैं और जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहीं विजय है' ॥ ३१½ ॥

इत्येवमुक्ते ते वीराः शिबिरं तव भारत ॥ ३२ ॥
प्रविश्य प्रत्यपद्यन्त कोशरत्नर्धिसंचयान्।

भारत ! युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर पाण्डव वीरोंने आपके शिबिरमें प्रवेश करके खजाना, रत्नोंकी ढेरी तथा भण्डार-घरपर अधिकार कर लिया ॥ ३२½ ॥

रजतं जातरूपं च मणीनथ च मौक्तिकान् ॥ ३३ ॥
भूषणान्यथ मुख्यानि कम्बलान्यजिनानि च।
दासीदासमसंख्येयं राज्योपकरणानि च ॥ ३४ ॥

चाँदी, सोना, मोती, मणि, अच्छे-अच्छे आभूषण, कम्बल (कालीन), मृगचर्म, असंख्य दास-दासी तथा राज्यके बहुत-से सामान उनके हाथ लगे ॥ ३३-३४ ॥

ते प्राप्य धनमक्षय्यं त्वदीयं भरतर्षभ।
उदक्रोशन्महाभागा नरेन्द्र विजितारयः ॥ ३५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! नरेश्वर ! आपके धनका अक्षय भण्डार पाकर शत्रुविजयी महाभाग पाण्डव जोर-जोरसे हर्षध्वनि करने लगे ॥ ३५ ॥

ते तु वीराः समाश्वस्य वाहनान्यवमुच्य च।
अतिष्ठन्त मुहुः सर्वे पाण्डवाः सात्यकिस्तथा ॥ ३६ ॥

वे सारे वीर अपने वाहनोंको खोलकर वहीं विश्राम करने लगे। समस्त पाण्डव और सात्यकि वहाँ एक साथ बैठे हुए थे ॥ ३६ ॥

अथाब्रवीन्महाराज वासुदेवो महायशाः।
अस्माभिर्मङ्गलार्थाय वस्तव्यं शिबिराद् बहिः ॥ ३७ ॥

महाराज ! तदनन्तर महायशस्वी वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने कहा—'आजकी रातमें हमलोगोंको अपने मङ्गलके लिये शिबिरसे बाहर ही रहना चाहिये' ॥ ३७ ॥

तथेत्युक्त्वा हि ते सर्वे पाण्डवाः सात्यकिस्तथा।
वासुदेवेन सहिता मङ्गलार्थं बहिर्ययुः ॥ ३८ ॥

तब 'बहुत अच्छा' कहकर समस्त पाण्डव और सात्यकि श्रीकृष्णके साथ अपने मङ्गलके लिये छावनीसे बाहर चले गये ॥ ३८ ॥

ते समासाद्य सरितं पुण्यामोघवतीं नृप।
न्यवसन्नथ तां रात्रिं पाण्डवा हतशत्रवः ॥ ३९ ॥

नरेश्वर ! जिनके शत्रु मारे गये थे, उन पाण्डवोंने उस रातमें पुण्यसलिला ओघवती नदीके तटपर जाकर निवास किया ॥ ३९ ॥

युधिष्ठिरस्ततो राजा प्राप्तकालमचिन्तयत्।
तत्र ते गमनं प्राप्तं रोचते तव माधव ॥ ४० ॥
गान्धार्याः क्रोधदीप्तायाः प्रशमार्थमरिंदम।

तब राजा युधिष्ठिरने वहाँ समयोचित कार्यका विचार किया और कहा—'शत्रुदमन माधव! एक बार क्रोधसे जलती हुई गान्धारी देवीको शान्त करनेके लिये आपका हस्तिनापुरमें जाना उचित जान पड़ता है ॥ ४०½ ॥

हेतुकारणयुक्तैश्च वाक्यैः कालसमीरितैः ॥ ४१ ॥
क्षिप्रमेव महाभाग गान्धारीं प्रशमिष्यसि।
पितामहश्च भगवान् व्यासस्तत्र भविष्यति ॥ ४२ ॥

'महाभाग! आप युक्ति और कारणोंसहित समयोचित बातें कहकर गान्धारी देवीको शीघ्र ही शान्त कर सकेंगे। हमारे पितामह भगवान् व्यास भी इस समय वहीं होंगे' ४१-४२

वैशम्पायन उवाच

ततः सम्प्रेषयामासुर्यादवं नागसाह्वयम्।
स च प्रायाज्जवेनाशु वासुदेवः प्रतापवान् ॥ ४३ ॥
दारुकं रथमारोप्य येन राजाम्बिकासुतः।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! ऐसा कहकर पाण्डवोंने यदुकुलतिलक भगवान् श्रीकृष्णको हस्तिनापुर भेजा। प्रतापी वासुदेव दारुकको रथपर बिठाकर स्वयं भी बैठे और जहाँ अम्बिकानन्दन राजा धृतराष्ट्र थे, वहाँ पहुँचनेके लिये बड़े वेगसे चले ॥ ४३½ ॥

तमूचुः सम्प्रयास्यन्तं शैब्यसुग्रीववाहनम् ॥ ४४ ॥
प्रत्याश्वासय गान्धारीं हतपुत्रां यशस्विनीम्।

शैब्य और सुग्रीव नामक अश्व जिनके वाहन हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णके जाते समय पाण्डवोंने फिर उनसे कहा—'प्रभो! यशस्विनी गान्धारी देवीके पुत्र मारे गये हैं; अतः आप उस दुखिया माताको धीरज बँधावें' ॥ ४४½ ॥

स प्रायात् पाण्डवैरुक्तस्तत् पुरं सात्वतां वरः ॥
आससाद ततः क्षिप्रं गान्धारीं निहतात्मजाम्॥ ४५ ॥

पाण्डवोंके ऐसा कहनेपर सात्वतवंशके श्रेष्ठ पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण जिनके पुत्र मारे गये थे, उन गान्धारी देवीके पास हस्तिनापुरमें शीघ्र जा पहुँचे ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि वासुदेवप्रेषणे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें पाण्डवोंका भगवान् श्रीकृष्णको हस्तिनापुर भेजनाविषयक बासठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

युधिष्ठिरकी प्रेरणासे श्रीकृष्णका हस्तिनापुरमें जाकर धृतराष्ट्र और गान्धारीको आश्वासन दे पुनः पाण्डवोंके पास लौट आना

जनमेजय उवाच

किमर्थं द्विजशार्दूल धर्मराजो युधिष्ठिरः।
गान्धार्याः प्रेषयामास वासुदेवं परंतपम् ॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! धर्मराज युधिष्ठिरने शत्रुसंतापी भगवान् श्रीकृष्णको गान्धारी देवीके पास किसलिये भेजा? ॥ १ ॥

यदा पूर्वं गतः कृष्णः शमार्थं कौरवान् प्रति।
न च तं लब्धवान् कामं ततो युद्धमभूदिदम्॥ २ ॥

जब पूर्वकालमें श्रीकृष्ण संधि करानेके लिये कौरवोंके पास गये थे, उस समय तो उन्हें उनका अभीष्ट मनोरथ प्राप्त ही नहीं हुआ, जिससे यह युद्ध उपस्थित हुआ ॥ २ ॥

निहतेषु तु योधेषु हते दुर्योधने तदा।
पृथिव्यां पाण्डवेयस्य निःसपत्ने कृते युधि ॥ ३ ॥
विद्रुते शिबिरे शून्ये प्राप्ते यशसि चोत्तमे।
किं नु तत् कारणं ब्रह्मन् येन कृष्णो गतः पुनः॥ ४ ॥

ब्रह्मन्! जब युद्धमें सारे योद्धा मारे गये, दुर्योधनका भी अन्त हो गया, भूमण्डलमें पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके शत्रुओंका सर्वथा अभाव हो गया, कौरवदलके लोग शिबिरको सूना करके भाग गये और पाण्डवोंको उत्तम यशकी प्राप्ति हो गयी, तब कौन-सा ऐसा कारण आ गया, जिससे श्रीकृष्ण पुनः हस्तिनापुरमें गये? ॥ ३-४ ॥

न चैतत् कारणं ब्रह्मन्नल्पं विप्रतिभाति मे।
यत्रागमदमेयात्मा स्वयमेव जनार्दनः ॥ ५ ॥

विप्रवर! मुझे इसका कोई छोटा-मोटा कारण नहीं जान पड़ता, जिससे अप्रमेयस्वरूप साक्षात् भगवान् जनार्दनको ही जाना पड़ा ॥ ५ ॥

तत्त्वतो वै समाचक्ष्व सर्वमध्वर्युसत्तम।
यच्चात्र कारणं ब्रह्मन् कार्यस्यास्य विनिश्चये ॥ ६ ॥

यजुर्वेदीय विद्वानोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणदेव! इस कार्यका निश्चय करनेमें जो भी कारण हो, वह सब यथार्थरूपसे मुझे बताइये॥ ६ ॥

वैशम्पायन उवाच

त्वद्युक्तोऽयमनुप्रश्नो यन्मां पृच्छसि पार्थिव।
तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि यथावद् भरतर्षभ ॥ ७ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—भरतकुलभूषण नरेश! तुमने

जो प्रश्न किया है, वह सर्वथा उचित है। तुम मुझसे जो कुछ पूछ रहे हो, वह सब मैं तुझे यथार्थरूपसे बताऊँगा ॥ ७ ॥

हतं दुर्योधनं दृष्ट्वा भीमसेनेन संयुगे।
व्युत्क्रम्य समयं राजन् धार्तराष्ट्रं महाबलम् ॥ ८ ॥
अन्यायेन हतं दृष्ट्वा गदायुद्धेन भारत।
युधिष्ठिरं महाराज महद् भयमथाविशत् ॥ ९ ॥

राजन्! भरतवंशी महाराज! धृतराष्ट्रपुत्र महाबली दुर्योधनको भीमसेनने युद्धमें उसके नियमका उल्लङ्घन करके मारा है। वह गदायुद्धके द्वारा अन्यायपूर्वक मारा गया है। इन सब बातोंपर दृष्टिपात करके युधिष्ठिरके मनमें बड़ा भारी भय समा गया ॥ ८-९ ॥

चिन्तयानो महाभागां गान्धारीं तपसान्विताम्।
घोरेण तपसा युक्तां त्रैलोक्यमपि सा दहेत् ॥ १० ॥

वे घोर तपस्यासे युक्त महाभागा तपस्विनी गान्धारीदेवीका चिन्तन करने लगे। उन्होंने सोचा 'गान्धारी देवी कुपित होनेपर तीनों लोकोंको जलाकर भस्म कर सकती हैं' ॥ १० ॥

तस्य चिन्तयमानस्य बुद्धिः समभवत् तदा।
गान्धार्याः क्रोधदीप्तायाः पूर्वं प्रशमनं भवेत् ॥ ११ ॥

इस प्रकार चिन्ता करते हुए राजा युधिष्ठिरके हृदयमें उस समय यह विचार हुआ कि पहले क्रोधसे जलती हुई गान्धारी देवीको शान्त कर देना चाहिये ॥ ११ ॥

सा हि पुत्रवधं श्रुत्वा कृतमस्माभिरीदृशम्।
मानसेनाग्निना क्रुद्धा भस्मसान्नः करिष्यति ॥ १२ ॥

वे हमलोगोंके द्वारा इस तरह पुत्रका वध किया गया सुनकर कुपित हो अपने संकल्पजनित अग्निसे हमें भस्म कर डालेंगी ॥ १२ ॥

कथं दुःखमिदं तीव्रं गान्धारी सा सहिष्यति।
श्रुत्वा विनिहतं पुत्रं छलेनाजिह्मयोधिनम् ॥ १३ ॥

उनका पुत्र सरलतासे युद्ध कर रहा था; परंतु छलसे मारा गया। यह सुनकर गान्धारी देवी इस तीव्र दुःखको कैसे सह सकेंगी? ॥ १३ ॥

एवं विचिन्त्य बहुधा भयशोकसमन्वितः।
वासुदेवमिदं वाक्यं धर्मराजोऽभ्यभाषत ॥ १४ ॥

इस तरह अनेक प्रकारसे विचार करके धर्मराज युधिष्ठिर भय और शोकमें डूब गये और वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णसे बोले—॥ १४ ॥

तव प्रसादाद् गोविन्द राज्यं निहतकण्टकम्।
अप्राप्यं मनसापीदं प्राप्तमस्माभिरच्युत ॥ १५ ॥

'गोविन्द! अच्युत! जिसे मनके द्वारा भी प्राप्त करना असम्भव था, वही यह अकण्टक राज्य हमें आपकी कृपासे प्राप्त हो गया ॥ १५ ॥

प्रत्यक्षं मे महाबाहो संग्रामे लोमहर्षणे।
विमर्दः सुमहान् प्राप्तस्त्वया यादवनन्दन ॥ १६ ॥

'यादवनन्दन! महाबाहो! इस रोमाञ्चकारी संग्राममें जो महान् विनाश प्राप्त हुआ था, वह सब आपने प्रत्यक्ष देखा था ॥ १६ ॥

त्वया देवासुरे युद्धे वधार्थममरद्विषाम्।
यथा साह्यं पुरा दत्तं हताश्च विबुधद्विषः ॥ १७ ॥
साह्यं तथा महाबाहो दत्तमस्माकमच्युत।
सारथ्येन च वार्ष्णेय भवता हि धृता वयम् ॥ १८ ॥

'पूर्वकालमें देवासुर-संग्रामके अवसरपर जैसे आपने देवद्रोही दैत्योंके वधके लिये देवताओंकी सहायता की थी, जिससे वे सारे देवशत्रु मारे गये, महाबाहु अच्युत! उसी प्रकार इस युद्धमें आपने हमें सहायता प्रदान की है। वृष्णिनन्दन! आपने सारथिका कार्य करके हमलोगोंको बचा लिया। १७-१८।

यदि न त्वं भवेर्नाथः फाल्गुनस्य महारणे।
कथं शक्यो रणे जेतुं भवेदेष बलार्णवः ॥ १९ ॥

'यदि आप इस महासमरमें अर्जुनके स्वामी और सहायक न होते तो युद्धमें इस कौरव-सेनारूपी समुद्रपर विजय पाना कैसे सम्भव हो सकता था? ॥ १९ ॥

गदाप्रहारा विपुलाः परिघैश्चापि ताडनम्।
शक्तिभिर्भिन्दिपालैश्च तोमरैः सपरश्वधैः ॥ २० ॥
अस्मत्कृते त्वया कृष्ण वाचः सुपरुषाः श्रुताः।
शस्त्राणां च निपाता वै वज्रस्पर्शोपमा रणे ॥ २१ ॥

'श्रीकृष्ण! आपने हमलोगोंके लिये गदाओंके बहुत-से आघात सहे, परिघोंकी मार खायी; शक्ति, भिन्दिपाल, तोमर और फरसोंकी चोटें सहन कीं तथा बहुत-सी कठोर बातें सुनीं। आपके ऊपर रणभूमिमें ऐसे-ऐसे शस्त्रोंके प्रहार हुए, जिनका स्पर्श वज्रके तुल्य था ॥ २०-२१ ॥

ते च ते सफला जाता हते दुर्योधनेऽच्युत।
तत् सर्वं न यथा नश्येत् पुनः कृष्ण तथा कुरु ॥ २२ ॥

'अच्युत! दुर्योधनके मारे जानेपर वे सारे आघात सफल हो गये। श्रीकृष्ण! अब ऐसा कीजिये, जिससे वह सारा किया-कराया कार्य फिर नष्ट न हो जाय ॥ २२ ॥

संदेहदोलां प्राप्तं नश्चेतः कृष्ण जये सति।
गान्धार्या हि महाबाहो क्रोधं बुद्ध्यस्व माधव ॥ २३ ॥

श्रीकृष्ण! आज विजय हो जानेपर भी हमारा मन संदेहके झूलापर झूल रहा है। महाबाहु माधव! आप गान्धारी देवीके क्रोधपर तो ध्यान दीजिये ॥ २३ ॥

सा हि नित्यं महाभागा तपसोग्रेण कर्शिता।
पुत्रपौत्रवधं श्रुत्वा ध्रुवं नः सम्प्रधक्ष्यति ॥ २४ ॥

'महाभागा गान्धारी प्रतिदिन उग्र तपस्यासे अपने शरीरको दुर्बल करती जा रही हैं। वे पुत्रों और पौत्रोंका वध

हुआ सुनकर निश्चय ही हमें जला डालेंगी ॥ २४ ॥

तस्याः प्रसादनं वीर प्राप्तकालं मतं मम ।
कश्च तां क्रोधताम्राक्षीं पुत्रव्यसनकर्शिताम् ॥ २५ ॥
वीक्षितुं पुरुषः शक्तस्त्वामृते पुरुषोत्तम ।

'वीर ! अब उन्हें प्रसन्न करनेका कार्य ही मुझे समयोचित जान पड़ता है । पुरुषोत्तम ! आपके सिवा दूसरा कौन ऐसा पुरुष है, जो पुत्रोंके शोकसे दुर्बल हो क्रोधसे लाल आँखें करके बैठी हुई गान्धारी देवीकी ओर आँख उठाकर देख सके ॥ २५½ ॥

तत्र मे गमनं प्राप्तं रोचते तव माधव ॥ २६ ॥
गान्धार्याः क्रोधदीप्तायाः प्रशमार्थमरिंदम ।

'शत्रुओंका दमन करनेवाले माधव ! इस समय क्रोधसे जलती हुई गान्धारी देवीको शान्त करनेके लिये आपका वहाँ जाना ही मुझे उचित जान पड़ता है ॥ २६½ ॥

त्वं हि कर्ता विकर्ता च लोकानां प्रभवाप्ययः ॥ २७ ॥
हेतुकारणसंयुक्तैर्वाक्यैः कालसमीरितैः ।
क्षिप्रमेव महाबाहो गान्धारीं शमयिष्यसि ॥ २८ ॥

'महाबाहो ! आप सम्पूर्ण लोकोंके स्रष्टा और संहारक हैं। आप ही सबकी उत्पत्ति और प्रलयके स्थान हैं। आप युक्ति और कारणोंसे संयुक्त समयोचित वचनोंद्वारा गान्धारी देवीको शीघ्र ही शान्त कर देंगे ॥ २७-२८ ॥

पितामहश्च भगवान् कृष्णस्तत्र भविष्यति ।
सर्वथा ते महाबाहो गान्धार्याः क्रोधनाशनम् ॥ २९ ॥
कर्तव्यं सात्वतां श्रेष्ठ पाण्डवानां हितार्थिना ।

'हमारे पितामह श्रीकृष्णद्वैपायन भगवान् व्यास भी वहीं होंगे । महाबाहो ! सात्वतवंशके श्रेष्ठ पुरुष ! आप पाण्डवोंके हितैषी हैं । आपको सब प्रकारसे गान्धारी देवीके क्रोधको शान्त कर देना चाहिये' ॥ २९½ ॥

धर्मराजस्य वचनं श्रुत्वा यदुकुलोद्वहः ॥ ३० ॥
आमन्त्र्य दारुकं प्राह रथः सज्जो विधीयताम् ।

धर्मराजकी यह बात सुनकर यदुकुलतिलक श्रीकृष्णने दारुकको बुलाकर कहा--'रथ तैयार करो' ॥ ३०½ ॥

केशवस्य वचः श्रुत्वा त्वरमाणोऽथ दारुकः ॥ ३१ ॥
न्यवेदयद् रथं सज्जं केशवाय महात्मने ।

केशवका यह आदेश सुनकर दारुकने बड़ी उतावलीके साथ रथको सुसज्जित किया और उन महात्माको इसकी सूचना दी ॥ ३१½ ॥

तं रथं यादवश्रेष्ठः समारुह्य परंतपः ॥ ३२ ॥
जगाम हास्तिनपुरं त्वरितः केशवो विभुः ।

शत्रुओंको संताप देनेवाले यादवश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण तुरंत ही उस रथपर आरूढ़ हो हस्तिनापुरकी ओर चल दिये॥

ततः प्रायान्महाराज माधवो भगवान् रथी ॥ ३३ ॥
नागसाह्वयमासाद्य प्रविवेश च वीर्यवान् ।

महाराज ! पराक्रमी भगवान् माधव उस रथपर बैठकर हस्तिनापुरमें जा पहुँचे । वहाँ पहुँचकर उन्होंने नगरमें प्रवेश किया ॥ ३३½ ॥

प्रविश्य नगरं वीरो रथघोषेण नादयन् ॥ ३४ ॥
विदितो धृतराष्ट्रस्य सोऽवतीर्य रथोत्तमात् ।
अभ्यगच्छददीनात्मा धृतराष्ट्रनिवेशनम् ॥ ३५ ॥

नगरमें प्रविष्ट होकर वीर श्रीकृष्ण अपने रथके गम्भीर घोषसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करने लगे । धृतराष्ट्रको उनके आगमनकी सूचना दी गयी और वे अपने उत्तम रथसे उतरकर मनमें दीनता न लाते हुए धृतराष्ट्रके महलमें गये ॥

पूर्वं चाभिगतं तत्र सोऽपश्यदृषिसत्तमम् ।
पादौ प्रपीड्य कृष्णस्य राज्ञश्चापि जनार्दनः ॥ ३६ ॥
अभ्यवादयदव्यग्रो गान्धारीं चापि केशवः ।

वहाँ उन्होंने मुनिश्रेष्ठ व्यासजीको पहलेसे ही उपस्थित देखा । व्यास तथा राजा धृतराष्ट्र दोनोंके चरण दबाकर जनार्दन श्रीकृष्णने बिना किसी व्यग्रताके गान्धारी देवीको प्रणाम किया ॥ ३६½ ॥

ततस्तु यादवश्रेष्ठो धृतराष्ट्रमधोक्षजः ॥ ३७ ॥
पाणिमालम्ब्य राजेन्द्र सुस्वरं प्ररुरोद ह ।

राजेन्द्र ! तदनन्तर यादवश्रेष्ठ श्रीकृष्ण धृतराष्ट्रका हाथ अपने हाथमें लेकर उन्मुक्त स्वरसे फूट-फूटकर रोने लगे ॥

स मुहूर्तादिवोत्सृज्य बाष्पं शोकसमुद्भवम् ॥ ३८ ॥
प्रक्षाल्य वारिणा नेत्रे ह्याचम्य च यथाविधि ।
उवाच प्रस्तुतं वाक्यं धृतराष्ट्रमरिंदमः ॥ ३९ ॥
न तेऽस्त्यविदितं किंचिद् वृद्धस्य तव भारत ।
कालस्य च यथावृत्तं तत् ते सुविदितं प्रभो ॥ ४० ॥

उन्होने दो घड़ीतक शोकके आँसू बहाकर शुद्ध जलसे नेत्र धोये और विधिपूर्वक आचमन किया । तत्पश्चात् शत्रुदमन श्रीकृष्णने राजा धृतराष्ट्रसे प्रस्तुत वचन कहा--'भारत! आप वृद्ध पुरुष हैं; अतः कालके द्वारा जो कुछ भी संघटित हुआ और हो रहा है, वह कुछ भी आपसे अज्ञात नहीं है । प्रभो ! आपको सब कुछ अच्छी तरह विदित है ॥३८-४०॥

यतितं पाण्डवैः सर्वैस्तव चित्तानुरोधिभिः ।
कथं कुलक्षयो न स्यात्तथा क्षत्रस्य भारत ॥ ४१ ॥

'भारत ! समस्त पाण्डव सदासे ही आपकी इच्छाके अनुसार बर्ताव करनेवाले हैं । उन्होंने बहुत प्रयत्न किया कि किसी तरह हमारे कुलका तथा क्षत्रियसमूहका विनाश न हो ॥ ४१ ॥

भ्रातृभिः समयं कृत्वा क्षान्तवान् धर्मवत्सलः ।
द्यूतच्छलजितैः शुद्धैर्वनवासो ह्युपागतः ॥ ४२

'धर्मवत्सल युधिष्ठिरने अपने भाइयोंके साथ नियत समयकी प्रतीक्षा करते हुए सारा कष्ट चुपचाप सहन किया था। पाण्डव शुद्ध भावसे आपके पास आये थे तो भी उन्हें कपटपूर्वक जूएमें हराकर वनवास दिया गया ॥ ४२ ॥

अज्ञातवासचर्या च नानावेषसमावृतैः ।
अन्ये च बहवः क्लेशात् त्वशक्तैरिव सर्वदा ॥ ४३ ॥

'उन्होंने नाना प्रकारके वेशोंमें अपनेको छिपाकर अज्ञातवासका कष्ट भोगा। इसके सिवा और भी बहुत-से क्लेश उन्हें असमर्थ पुरुषोंके समान सदा सहन करने पड़े हैं ॥४३॥

मया च स्वयमागम्य युद्धकाल उपस्थिते ।
सर्वलोकस्य सांनिध्ये ग्रामांस्त्वं पञ्च याचितः ॥ ४४ ॥

'जब युद्धका अवसर उपस्थित हुआ, उस समय मैंने स्वयं आकर शान्ति स्थापित करनेके लिये सब लोगोंके सामने आपसे केवल पाँच गाँव माँगे थे ॥ ४४ ॥

त्वया कालोपसृष्टेन लोभतो नापवर्जिताः ।
तवापराधान्नृपते सर्वं क्षत्रं क्षयं गतम् ॥ ४५ ॥

'परंतु कालसे प्रेरित हो आपने लोभवश वे पाँच गाँव भी नहीं दिये। नरेश्वर ! आपके अपराधसे समस्त क्षत्रियोंका विनाश हो गया ॥ ४५ ॥

भीष्मेण सोमदत्तेन बाह्लीकेन कृपेण च ।
द्रोणेन च सपुत्रेण विदुरेण च धीमता ॥ ४६ ॥
याचितस्त्वं शमं नित्यं न च तत् कृतवानसि ।

'भीष्म, सोमदत्त, बाह्लीक, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और बुद्धिमान् विदुरजीने भी सदा आपसे शान्तिके लिये याचना की थी; परंतु आपने वह कार्य नहीं किया ॥

कालोपहतचित्ता हि सर्वे मुह्यन्ति भारत ॥ ४७ ॥
यथा मूढो भवान् पूर्वमस्मिन्नर्थे समुद्यते ।
किमन्यत् कालयोगाद्धि दिष्टमेव परायणम् ॥ ४८ ॥

'भारत ! जिनका चित्त कालके प्रभावसे दूषित हो जाता है, वे सब लोग मोहमें पड़ जाते हैं। जैसे कि पहले युद्धकी तैयारीके समय आपकी भी बुद्धि मोहित हो गयी थी। इसे कालयोगके सिवा और क्या कहा जा सकता है ? भाग्य ही सबसे बड़ा आश्रय है ॥ ४७-४८ ॥

मा च दोषान् महाप्राज्ञ पाण्डवेषु निवेशय ।
अल्पोऽप्यतिक्रमो नास्ति पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ ४९ ॥
धर्मतो न्यायतश्चैव स्नेहतश्च परंतप ।

'महाप्राज्ञ ! आप पाण्डवोंपर दोषारोपण न कीजियेगा। परंतप ! धर्म, न्याय और स्नेहकी दृष्टिसे महात्मा पाण्डवोंका इसमें थोड़ा-सा भी अपराध नहीं है ॥ ४९½ ॥

एतत् सर्वं तु विज्ञाय ह्यात्मदोषकृतं फलम् ॥ ५० ॥
असूयां पाण्डुपुत्रेषु न भवान् कर्तुमर्हति ।

'यह सब अपने ही अपराधोंका फल है, ऐसा जानकर आपको पाण्डवोंके प्रति दोषदृष्टि नहीं करनी चाहिये ॥५०½॥

कुलं वंशश्च पिण्डाश्च यच्च पुत्रकृतं फलम् ॥ ५१ ॥
गान्धार्यास्तव वै नाथ पाण्डवेषु प्रतिष्ठितम् ।

'अब तो आपका कुल और वंश पाण्डवोंसे ही चलनेवाला है। नाथ ! आपको और गान्धारी देवीको पिण्डा-पानी तथा पुत्रसे प्राप्त होनेवाला सारा फल पाण्डवोंसे ही मिलनेवाला है। उन्हींपर यह सब कुछ अवलम्बित है ॥ ५१½ ॥

त्वं चैव कुरुशार्दूल गान्धारी च यशस्विनी ॥ ५२ ॥
मा शुचो नरशार्दूल पाण्डवान् प्रति किल्बिषम् ।

'कुरुप्रवर ! पुरुषसिंह ! आप और यशस्वी गान्धारीदेवी कभी पाण्डवोंकी बुराई करनेकी बात न सोचें ॥५२½॥

एतत् सर्वमनुध्याय आत्मनश्च व्यतिक्रमम् ॥ ५३ ॥
शिवेन पाण्डवान् पाहि नमस्ते भरतर्षभ ।

'भरतश्रेष्ठ ! इन सब बातों तथा अपने अपराधोंका चिन्तन करके आप पाण्डवोंके प्रति कल्याण-भावना रखते हुए उनकी रक्षा करें। आपको नमस्कार है ॥ ५३½ ॥

जानासि च महाबाहो धर्मराजस्य या त्वयि ॥ ५४ ॥
भक्तिर्भरतशार्दूल स्नेहश्चापि स्वभावतः ।

'महाबाहो ! भरतवंशके सिंह ! आप जानते हैं कि धर्मराज युधिष्ठिरके मनमें आपके प्रति कितनी भक्ति और कितना स्वाभाविक स्नेह है ॥ ५४½ ॥

एतच्च कदनं कृत्वा शत्रूणामपकारिणाम् ॥ ५५ ॥
दह्यते स दिवा रात्रौ न च शर्माधिगच्छति ।

'अपने अपराधी शत्रुओंका ही यह संहार करके वे दिन-रात शोककी आगमें जलते हैं, कभी चैन नहीं पाते हैं ॥

त्वां चैव नरशार्दूल गान्धारीं च यशस्विनीम् ॥ ५६ ॥
स शोचन् नरशार्दूलः शान्तिं नैवाधिगच्छति ।

'पुरुषसिंह ! आप और यशस्विनी गान्धारी देवीके लिये निरन्तर शोक करते हुए नरश्रेष्ठ युधिष्ठिरको शान्ति नहीं मिल रही है ॥ ५६½ ॥

ह्रिया च परयाऽऽविष्टो भवन्तं नाधिगच्छति ॥ ५७ ॥
पुत्रशोकाभिसंतप्तं बुद्धिव्याकुलितेन्द्रियम् ।

'आप पुत्रशोकसे सर्वथा संतप्त हैं। आपकी बुद्धि और इन्द्रियाँ शोकसे व्याकुल हैं। ऐसी दशामें वे अत्यन्त लज्जित होनेके कारण आपके सामने नहीं आ रहे हैं' ॥ ५७½ ॥

एवमुक्त्वा महाराज धृतराष्ट्रं यदूत्तमः ॥ ५८ ॥
उवाच परमं वाक्यं गान्धारीं शोककर्शिताम् ।

महाराज ! यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्ण राजा धृतराष्ट्रसे ऐसा कहकर शोकसे दुर्बल हुई गान्धारी देवीसे यह उत्तम वचन बोले— ॥

सौबलेयि निबोध त्वं यत् त्वां वक्ष्यामि तच्छृणु ॥ ५९ ॥
त्वत्समा नास्ति लोकेऽस्मिन्नद्य सीमन्तिनी शुभे ।

'सुबलनन्दिनि ! मैं तुमसे जो कुछ कहता हूँ, उसे ध्यान

देकर सुनो और समझो । शुभे ! इस संसारमें तुम्हारी-जैसी तपोबल-सम्पन्न स्त्री दूसरी कोई नहीं है ॥ ५९½ ॥

जानासि च यथा राज्ञि सभायां मम संनिधौ ॥ ६० ॥
धर्मार्थसहितं वाक्यमुभयोः पक्षयोर्हितम् ।
उक्तवत्यसि कल्याणि न च ते तनयैः कृतम् ॥ ६१ ॥

'रानी ! तुम्हें याद होगा, उस दिन सभामें मेरे सामने ही तुमने दोनों पक्षोंका हित करनेवाला धर्म और अर्थयुक्त वचन कहा था, किंतु कल्याणि ! तुम्हारे पुत्रोंने उसे नहीं माना ॥ ६०-६१ ॥

दुर्योधनस्त्वया चोक्तो जयार्थी परुषं वचः ।
शृणु मूढ वचो मह्यं यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ६२ ॥

'तुमने विजयकी अभिलाषा रखनेवाले दुर्योधनको सम्बोधित करके उससे बड़ी रुखाईके साथ कहा था—'ओ मूढ ! मेरी बात सुन ले, जहाँ धर्म होता है, उसी पक्षकी जीत होती है' ॥ ६२ ॥

तदिदं समनुप्राप्तं तव वाक्यं नृपात्मजे ।
एवं विदित्वा कल्याणि मा स्म शोके मनः कृथाः॥ ६३ ॥

'कल्याणमयी राजकुमारी ! तुम्हारी वही बात आज सत्य हुई है, ऐसा समझकर तुम मनमें शोक न करो ॥ ६३ ॥

पाण्डवानां विनाशाय मा ते बुद्धिः कदाचन ।
शक्ता चासि महाभागे पृथिवीं सचराचराम् ॥ ६४ ॥
चक्षुषा क्रोधदीप्तेन निर्दग्धुं तपसो बलात् ।

'पाण्डवोंके विनाशका विचार तुम्हारे मनमें कभी नहीं आना चाहिये । महाभागे ! तुम अपनी तपस्याके बलसे क्रोध-भरी दृष्टिद्वारा चराचर प्राणियोंसहित समूची पृथ्वीको भस्म कर डालनेकी शक्ति रखती हो' ॥ ६४½ ॥

वासुदेववचः श्रुत्वा गान्धारी वाक्यमब्रवीत् ॥ ६५ ॥
एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि केशव ।
आधिभिर्दह्यमानाया मतिः संचलिता मम ॥ ६६ ॥
सा मे व्यवस्थिता श्रुत्वा तव वाक्यं जनार्दन ।

भगवान् श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर गान्धारीने कहा—'महाबाहु केशव ! तुम जैसा कहते हो, वह बिल्कुल ठीक है । अबतक मेरे मनमें बड़ी व्यथाएँ थीं और उन व्यथाओंकी आगसे दग्ध होनेके कारण मेरी बुद्धि विचलित हो गयी थी (अतः मैं पाण्डवोंके अनिष्टकी बात सोचने लगी थी); परंतु जनार्दन ! इस समय तुम्हारी बात सुनकर मेरी बुद्धि स्थिर हो गयी है—क्रोधका आवेश उतर गया है ॥ ६५–६६½ ॥

राज्ञस्त्वन्धस्य वृद्धस्य हतपुत्रस्य केशव ॥ ६७ ॥
त्वं गतिः सहितैर्वीरैः पाण्डवैर्द्विपदां वर ।

'मनुष्योंमें श्रेष्ठ केशव ! ये राजा अन्धे और बूढ़े हैं तथा इनके सभी पुत्र मारे गये हैं । अब समस्त वीर पाण्डवोंके साथ तुम्हीं इनके आश्रयदाता हो' ॥ ६७½ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं मुखं प्रच्छाद्य वाससा ॥ ६८ ॥
पुत्रशोकाभिसंतप्ता गान्धारी प्ररुरोद ह ।

इतनी बात कहकर पुत्रशोकसे संतप्त हुई गान्धारी देवी अपने मुखको आँचलसे ढककर फूट-फूटकर रोने लगीं ॥

तत एनां महाबाहुः केशवः शोककर्शिताम् ॥ ६९ ॥
हेतुकारणसंयुक्तैर्वाक्यैराश्वासयत् प्रभुः ।

तब महाबाहु भगवान् केशवने शोकसे दुर्बल हुई गान्धारीको कितने ही कारण बताकर युक्तियुक्त वचनोंद्वारा आश्वासन दिया—धीरज बँधाया ॥ ६९½ ॥

समाश्वास्य च गान्धारीं धृतराष्ट्रं च माधवः ॥ ७० ॥
द्रौणिसंकल्पितं भावमवबुद्ध्यत केशवः ।

गान्धारी और धृतराष्ट्रको सान्त्वना दे माधव श्रीकृष्णने अश्वत्थामाके मनमें जो भीषण संकल्प हुआ था, उसका स्मरण किया ॥ ७०½ ॥

ततस्त्वरित उत्थाय पादौ मूर्ध्ना प्रणम्य च ॥ ७१ ॥
द्वैपायनस्य राजेन्द्र ततः कौरवमब्रवीत् ।
आपृच्छे त्वां कुरुश्रेष्ठ मा च शोके मनः कृथाः॥ ७२ ॥
द्रौणेः पापोऽस्त्यभिप्रायस्तेनास्मि सहसोत्थितः।
पाण्डवानां वधे रात्रौ बुद्धिस्तेन प्रदर्शिता ॥ ७३ ॥

राजेन्द्र ! तदनन्तर वे सहसा उठकर खड़े हो गये और व्यासजीके चरणोंमें मस्तक झुकाकर प्रणाम करके कुरुवंशी धृतराष्ट्रसे बोले—'कुरुश्रेष्ठ ! अब मैं आपसे जानेकी आज्ञा चाहता हूँ । अब आप अपने मनको शोकमग्न न कीजिये । द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके मनमें पापपूर्ण संकल्प उदित हुआ है । इसीलिये मैं सहसा उठ गया हूँ । उसने रातको सोते समय पाण्डवोंके वधका विचार किया है' ॥ ७१–७३ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं गान्धार्या सहितोऽब्रवीत् ।
धृतराष्ट्रो महाबाहुः केशवं केशिसूदनम् ॥ ७४ ॥
शीघ्रं गच्छ महाबाहो पाण्डवान् परिपालय ।
भूयस्त्वया समेष्यामि क्षिप्रमेव जनार्दन ॥ ७५ ॥

यह सुनकर गान्धारीसहित महाबाहु धृतराष्ट्रने केशिहन्ता केशवसे कहा—'महाबाहु जनार्दन ! आप शीघ्र जाइये और पाण्डवोंकी रक्षा कीजिये । मैं पुनः शीघ्र ही आपसे मिलूँगा' ॥

प्रायात् ततस्तु त्वरितो दारुकेण सहाच्युतः ।
वासुदेवे गते राजन् धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ॥ ७६ ॥
आश्वासयदमेयात्मा व्यासो लोकनमस्कृतः ।

तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण दारुकके साथ वहाँसे शीघ्र चल दिये । राजन् ! श्रीकृष्णके चले जानेपर अप्रमेयस्वरूप विश्ववन्दित भगवान् व्यासने राजा धृतराष्ट्रको सान्त्वना दी ॥

वासुदेवोऽपि धर्मात्मा कृतकृत्यो जगाम ह ॥ ७७ ॥
शिबिरं हास्तिनपुराद् दिदृक्षुः पाण्डवान् नृप ।

नरेश्वर ! इधर धर्मात्मा वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण कृतकृत्य हो हस्तिनापुरसे पाण्डवोंको देखनेके लिये शिबिरमें लौट आये॥

आगम्य शिबिरं रात्रौ सोऽभ्यगच्छत पाण्डवान् ।
तच्च तेभ्यः समाख्याय सहितस्तैः समाहितः ॥ ७८ ॥

शिबिरमें आकर रातमें वे पाण्डवोंसे मिले और उनसे सारा समाचार कहकर उन्हींके साथ सावधान होकर रहे ॥ ७८ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि धृतराष्ट्रगान्धारीसमाश्वासने त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें धृतराष्ट्र और गान्धारीका श्रीकृष्णको आश्वासन देना विषयक तिरसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

दुर्योधनका संजयके सम्मुख विलाप और वाहकोंद्वारा अपने साथियोंको संदेश भेजना

धृतराष्ट्र उवाच

अधिष्ठितः पदा मूर्ध्नि भग्नसक्थो महीं गतः ।
शौटीर्यमानी पुत्रो मे किमभाषत संजय ॥ १ ॥
अत्यर्थं कोपनो राजा जातवैरश्च पाण्डुषु ।
व्यसनं परमं प्राप्तः किमाह परमाहवे ॥ २ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय ! जब जाँघें टूट जानेके कारण मेरा पुत्र पृथ्वीपर गिर पड़ा और भीमसेनने उसके मस्तकपर पैर रख दिया, तब उसने क्या कहा ? उसे अपने बलपर बड़ा अभिमान था । राजा दुर्योधन अत्यन्त क्रोधी तथा पाण्डवोंसे वैर रखनेवाला था । उस युद्धभूमिमें जब वह बड़ी भारी विपत्तिमें फँस गया, तब क्या बोला ?॥१-२॥

संजय उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यथावृत्तं नराधिप ।
राज्ञा यदुक्तं भग्नेन तस्मिन् व्यसन आगते ॥ ३ ॥

संजयने कहा—राजन् ! सुनिये । नरेश्वर ! उस भारी संकटमें पड़ जानेपर टूटी जाँघवाले राजा दुर्योधनने जो कुछ कहा था, वह सब वृत्तान्त यथार्थरूपसे बता रहा हूँ॥

भग्नसक्थो नृपो राजन् पांसुना सोऽवगुण्ठितः ।
यमयन् मूर्धजांस्तत्र वीक्ष्य चैव दिशो दश ॥ ४ ॥
केशान् नियम्य यत्नेन निःश्वसन्नुरगो यथा ।
संरम्भाश्रुपरीताभ्यां नेत्राभ्यामभिवीक्ष्य माम् ॥ ५ ॥
बाहू धरण्यां निष्पिष्य सुदुर्मत्त इव द्विपः ।
प्रकीर्णान् मूर्धजान् धुन्वन् दन्तैर्दन्तानुपस्पृशन्॥ ६ ॥
गर्हयन् पाण्डवं ज्येष्ठं निःश्वस्येदमथाब्रवीत् ।

राजन् ! जब कौरव-नरेशकी जाँघें टूट गयीं, तब वह धरतीपर गिरकर धूलमें सन गया । फिर बिखरे हुए बालोंको समेटता हुआ वहाँ दसों दिशाओंकी ओर देखने लगा । बड़े प्रयत्नसे अपने बालोंको बाँधकर सर्पके समान फुफकारते हुए उसने रोष और आँसुओंसे भरे हुए नेत्रोंद्वारा मेरी ओर देखा । इसके बाद दोनों भुजाओंको पृथ्वीपर रगड़कर मदोन्मत्त गजराजके समान अपने बिखरे केशोंको हिलाता, दाँतोंसे दाँतोंको पीसता तथा ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिरकी निन्दा करता हुआ, वह उच्छ्वास ले इस प्रकार बोला—॥ ४–६½ ॥

भीष्मे शान्तनवे नाथे कर्णे शस्त्रभृतां वरे ॥ ७ ॥
गौतमे शकुनौ चापि द्रोणे चास्त्रभृतां वरे ।
अश्वत्थाम्नि तथा शल्ये शूरे च कृतवर्मणि ॥ ८ ॥
इमामवस्थां प्राप्तोऽस्मि कालो हि दुरतिक्रमः ।

'शान्तनुनन्दन भीष्म, अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कर्ण, कृपाचार्य, शकुनि, अस्त्रधारियोंमें सर्वश्रेष्ठ द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, शूरवीर शल्य तथा कृतवर्मा मेरे रक्षक थे तो भी मैं इस दशाको आ पहुँचा । निश्चय ही कालका उल्लङ्घन करना किसीके लिये भी अत्यन्त कठिन है ॥ ७–८½ ॥

एकादशचमूभर्ता सोऽहमेतां दशां गतः ॥ ९ ॥
कालं प्राप्य महाबाहो न कश्चिदतिवर्तते ।

'महाबाहो ! मैं एक दिन ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका स्वामी था; परंतु आज इस दशामें आ पड़ा हूँ । वास्तवमें कालको पाकर कोई उसका उल्लङ्घन नहीं कर सकता ॥

आख्यातव्यं मदीयानां येऽस्मिञ्जीवन्ति संयुगे ॥ १० ॥
यथाहं भीमसेनेन व्युत्क्रम्य समयं हतः ।

'मेरे पक्षके वीरोंमेंसे जो लोग इस युद्धमें जीवित बच गये हों, उन्हें यह बताना कि भीमसेनने किस तरह गदायुद्धके नियमका उल्लङ्घन करके मुझे मारा ॥ १०½ ॥

बहूनि सुनृशंसानि कृतानि खलु पाण्डवैः ॥ ११ ॥
भूरिश्रवसि कर्णे च भीष्मे द्रोणे च श्रीमति ।

'पाण्डवोंने भूरिश्रवा, कर्ण, भीष्म तथा श्रीमान् द्रोणाचार्यके प्रति बहुत-से नृशंस कार्य किये हैं ॥ ११½ ॥

इदं चाकीर्तिजं कर्म नृशंसैः पाण्डवैः कृतम् ॥ १२ ॥
येन ते सत्सु निर्वेदं गमिष्यन्ति हि मे मतिः ।

'उन क्रूरकर्मा पाण्डवोंने यह भी अपनी अकीर्ति फैलानेवाला कर्म ही किया है, जिससे वे साधु पुरुषोंकी सभामें पश्चात्ताप करेंगे; ऐसा मेरा विश्वास है ॥ १२½ ॥

का प्रीतिः सत्त्वयुक्तस्य कृत्वोपधिकृतं जयम् ॥ १३ ॥

को वा समयभेत्तारं बुधः सम्मन्तुमर्हति ।

'छलसे विजय पाकर किसी सत्त्वगुणी या शक्तिशाली पुरुषको क्या प्रसन्नता होगी ? अथवा जो युद्धके नियमको भंग कर देता है, उसका सम्मान कौन विद्वान् कर सकता है?॥

अधर्मेण जयं लब्ध्वा को नु हृष्येत पण्डितः ॥ १४ ॥
यथा संहृष्यते पापः पाण्डुपुत्रो वृकोदरः ।

'अधर्मसे विजय प्राप्त करके किस बुद्धिमान् पुरुषको हर्ष होगा ? जैसा कि पापी पाण्डुपुत्र भीमसेनको हो रहा है॥

किन्नु चित्रमितस्त्वद्य भग्नसक्थस्य यन्मम ॥ १५ ॥
क्रुद्धेन भीमसेनेन पादेन मृदितं शिरः ।

'आज जब मेरी जाँघें टूट गयी हैं; ऐसी दशामें कुपित हुए भीमसेनने मेरे मस्तकको जो पैरसे ठुकराया है, इससे बढ़कर आश्चर्यकी बात और क्या हो सकती है ?॥ १५½ ॥

प्रतपन्तं श्रिया जुष्टं वर्तमानं च बन्धुषु ॥ १६ ॥
एवं कुर्यान्नरो यो हि स वै संजय पूजितः ।

'संजय ! जो अपने तेजसे तप रहा हो, राजलक्ष्मीसे सेवित हो और अपने सहायक बन्धुओंके बीचमें विद्यमान हो, ऐसे शत्रुके साथ जो उक्त बर्ताव करे, वही वीर पुरुष सम्मानित होता है (मरे हुएको मारनेमें क्या बड़ाई है) ॥

अभिज्ञौ युद्धधर्मस्य मम माता पिता च मे ॥ १७ ॥
तौ हि संजय दुःखार्तौ विज्ञाप्यौ वचनाद्धि मे ।
इष्टं भृत्या भृताः सम्यग् भूः प्रशास्ता ससागरा॥ १८ ॥

'मेरे माता-पिता युद्धधर्मके ज्ञाता हैं। वे दोनों मेरी मृत्युका समाचार सुनकर दुःखसे आतुर हो जायँगे। तुम मेरे कहनेसे उन्हें यह संदेश देना कि मैंने यज्ञ किये, जो भरण-पोषण करने योग्य थे, उनका पालन किया और समुद्रपर्यन्त पृथ्वीका अच्छी तरह शासन किया॥ १७-१८ ॥

मूर्ध्नि स्थितममित्राणां जीवतामेव संजय ।
दत्ता दाया यथाशक्ति मित्राणां च प्रियं कृतम् ॥ १९ ॥
अमित्रा बाधिताः सर्वे को नु स्वन्ततरो मया ।

'संजय ! मैंने जीवित शत्रुओंके ही मस्तकपर पैर रक्खा। यथाशक्ति धनका दान और मित्रोंका प्रिय किया। साथ ही सम्पूर्ण शत्रुओंको सदा ही क्लेश पहुँचाया। संसारमें कौन ऐसा पुरुष है, जिसका अन्त मेरे समान सुन्दर हुआ हो ?॥

मानिता बान्धवाः सर्वे वश्यः सम्पूजितो जनः ॥ २० ॥
त्रितयं सेवितं सर्वं को नु स्वन्ततरो मया ।

'मैंने सभी बन्धु-बान्धवोंको सम्मान दिया। अपनी आज्ञाके अधीन रहनेवाले लोगोंका सत्कार किया और धर्म, अर्थ एवं काम सबका सेवन कर लिया। मेरे समान सुन्दर अन्त किसका हुआ होगा ?॥ २०½ ॥

आज्ञप्तं नृपमुख्येषु मानः प्राप्तः सुदुर्लभः ॥ २१ ॥
आजानेयैस्तथा यातं को नु स्वन्ततरो मया ।

'बड़े-बड़े राजाओंपर हुक्म चलाया, अत्यन्त दुर्लभ सम्मान प्राप्त किया तथा आजानेय (अरबी) घोड़ोंपर सवारी की, मुझसे अच्छा अन्त और किसका हुआ होगा ?॥ २१½ ॥

यातानि पराराष्ट्राणि नृपा भुक्ताश्च दासवत् ॥ २२ ॥
प्रियेभ्यः प्रकृतं साधु को नु स्वन्ततरो मया ।

'दूसरे राष्ट्रोंपर आक्रमण किया और कितने ही राजाओंसे दासकी भाँति सेवाएँ लीं। जो अपने प्रिय व्यक्ति थे, उनकी सदा ही भलाई की। फिर मुझसे अच्छा अन्त किसका हुआ होगा ? ॥ २२½ ॥

अधीतं विधिवद् दत्तं प्राप्तमायुर्निरामयम् ॥ २३ ॥
स्वधर्मेण जिता लोकाः को नु स्वन्ततरो मया ।
दिष्ट्या नाहं जितः संख्ये परान् प्रेष्यवदाश्रितः॥ २४ ॥
दिष्ट्या मे विपुला लक्ष्मीर्मृते त्वन्यगता विभो ।

'विधिवत् वेदोंका स्वाध्याय किया, नाना प्रकारके दान दिये और रोगरहित आयु प्राप्त की। इसके सिवा, मैंने अपने धर्मके द्वारा पुण्यलोकोंपर विजय पायी है। फिर मेरे समान अच्छा अन्त और किसका हुआ होगा ? सौभाग्यकी बात है कि मैं न तो युद्धमें कभी पराजित हुआ और न दासकी भाँति कभी शत्रुओंकी शरण ली। सौभाग्यसे मेरे अधिकारमें विशाल राजलक्ष्मी रही है, जो मेरे मरनेके बाद ही दूसरेके हाथमें गयी है ॥ २३-२४½ ॥

यदिष्टं क्षत्रबन्धूनां स्वधर्ममनुतिष्ठताम् ॥ २५ ॥
निधनं तन्मया प्राप्तं को नु स्वन्ततरो मया ।

'अपने धर्मका पालन करनेवाले क्षत्रिय-बन्धुओंको जो अभीष्ट है, वैसी ही मृत्यु मुझे प्राप्त हुई है; अतः मुझसे अच्छा अन्त और किसका हुआ होगा ? ॥ २५½ ॥

दिष्ट्या नाहं परावृत्तो वैरात् प्राकृतवज्जितः ॥ २६ ॥
दिष्ट्या न विमतिं कांचिद् भजित्वा तु पराजितः ।

'हर्षकी बात है कि मैं युद्धमें पीठ दिखाकर भागा नहीं। निम्नश्रेणीके मनुष्यकी भाँति हार मानकर वैरसे कभी पीछे नहीं हटा तथा कभी किसी दुर्विचारका आश्रय लेकर पराजित नहीं हुआ—यह भी मेरे लिये गौरवकी ही बात है॥ २६½ ॥

सुप्तं वाथ प्रमत्तं वा यथा हन्याद् विषेण वा ॥ २७ ॥
एवं व्युत्क्रान्तधर्मेण व्युत्क्रम्य समयं हतः ।

'जैसे कोई सोये अथवा पागल हुए मनुष्यको मार दे या धोखेसे जहर देकर किसीकी हत्या कर डाले, उसी प्रकार धर्मका उल्लङ्घन करनेवाले पापी भीमसेनने गदायुद्धकी मर्यादाका उल्लङ्घन करके मुझे मारा है ॥ २७½ ॥

अश्वत्थामा महाभागः कृतवर्मा च सात्वतः ॥ २८ ॥
कृपः शारद्वतश्चैव वक्तव्या वचनान्मम ।

'महाभाग अश्वत्थामा, सात्वतवंशी कृतवर्मा तथा शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य—इन सबको मेरी यह बात सुना देना॥

अधर्मेण प्रवृत्तानां पाण्डवानामनेकशः ॥ २९ ॥
विश्वासं समयघ्नानां न यूयं गन्तुमर्हथ ।

'पाण्डवोंने अधर्ममें प्रवृत्त होकर अनेकों बार युद्धकी मर्यादा तोड़ी है; अतः आपलोग कभी उनका विश्वास न करें' ॥

वार्तिकांश्चाब्रवीद् राजा पुत्रस्ते सत्यविक्रमः ॥ ३० ॥
अधर्माद् भीमसेनेन निहतोऽहं यथा रणे ।
सोऽहं द्रोणं स्वर्गगतं कर्णशल्यावुभौ तथा ॥ ३१ ॥
वृषसेनं महावीर्यं शकुनिं चापि सौबलम् ।
जलसंधं महावीर्यं भगदत्तं च पार्थिवम् ॥ ३२ ॥
सोमदत्तं महेष्वासं सैन्धवं च जयद्रथम् ।
दुःशासनपुरोगांश्च भ्रातॄनात्मसमांस्तथा ॥ ३३ ॥
दौःशासनिं च विक्रान्तं लक्ष्मणं चात्मजावुभौ ।
एतांश्चान्यांश्च सुबहून् मदीयांश्च सहस्रशः ॥ ३४ ॥
पृष्ठतोऽनुगमिष्यामि सार्थहीनो यथाध्वगः ।

इसके बाद आपके सत्यपराक्रमी पुत्र राजा दुर्योधनने संदेशवाहक दूतोंसे इस प्रकार कहा—'भीमसेनने रणभूमिमें अधर्मसे मेरा वध किया है । अब मैं स्वर्गमें गये हुए द्रोणाचार्य, कर्ण, शल्य, महापराक्रमी वृषसेन, सुबलपुत्र शकुनि, महाबली जलसन्ध, राजा भगदत्त, महाधनुर्धर सोमदत्त, सिंधुराज जयद्रथ, अपने ही समान पराक्रमी दुःशासन आदि बन्धुगण, विक्रमशाली दुःशासनकुमार और अपने पुत्र लक्ष्मण—इन सबके तथा और भी जो बहुत-से मेरे पक्षके सहस्रों योद्धा मारे गये हैं, उन सबके पीछे मैं स्वर्गमें जाऊँगा । मेरी दशा उस पथिकके समान है, जो अपने साथियोंसे बिछुड़ गया हो ॥ ३०—३४½ ॥

कथं भ्रातॄन् हतांश्श्रुत्वा भर्तारं च स्वसा मम ॥ ३५ ॥
रोरूयमाणा दुःखार्ता दुःशला सा भविष्यति ।

'हाय ! अपने भाइयों और पतिकी मृत्युका समाचार सुनकर दुःखसे आतुर हो अत्यन्त रोदन करती हुई मेरी बहिन दुःशलाकी क्या दशा होगी ! ॥ ३५½ ॥

स्नुषाभिः प्रस्नुषाभिश्च वृद्धो राजा पिता मम ॥ ३६ ॥
गान्धारीसहितश्चैव कां गतिं प्रतिपत्स्यति ।

'पुत्रों और पौत्रोंकी बिलखती हुई बहुओंके साथ मेरे बूढ़े पिता राजा धृतराष्ट्र माता गान्धारीसहित किस अवस्थाको पहुँच जायँगे ? ॥ ३६½ ॥

नूनं लक्ष्मणमातापि हतपुत्रा हतेश्वरा ॥ ३७ ॥
विनाशं यास्यति क्षिप्रं कल्याणी पृथुलोचना ।

'निश्चय ही जिसके पति और पुत्र मारे गये हैं, वह कल्याणमयी विशाललोचना लक्ष्मणकी माता भी सारा समाचार सुनकर तुरंत ही प्राण दे देगी ॥ ३७½ ॥

यदि जानाति चार्वाकः परिव्राड् वाग्विशारदः ॥ ३८ ॥
करिष्यति महाभागो ध्रुवं चापचितिं मम ।

'संन्यासीके वेषमें सब ओर घूमनेवाले प्रवचनकुशल चार्वाक[1] को यदि मेरी दशा ज्ञात हो जायगी तो वे महाभाग निश्चय ही मेरे वैरका बदला लेंगे ॥ ३८½ ॥

समन्तपञ्चके पुण्ये त्रिषु लोकेषु विश्रुते ॥ ३९ ॥
अहं निधनमासाद्य लोकान् प्राप्स्यामि शाश्वतान् ।

'तीनों लोकोंमें विख्यात पुण्यमय समन्तपञ्चकक्षेत्रमें मृत्युको प्राप्त होकर अब मैं सनातन लोकोंमें जाऊँगा' ॥ ३९½ ॥

ततो जनसहस्राणि बाष्पपूर्णानि मारिष ॥ ४० ॥
प्रलापं नृपतेः श्रुत्वा व्यद्रवन्त दिशो दश ।

मान्यवर ! राजा दुर्योधनका यह विलाप सुनकर हजारों मनुष्योंकी आँखोंमें आँसू भर आये और वे दसों दिशाओंमें भाग चले ॥ ४०½ ॥

ससागरवना घोरा पृथिवी सचराचरा ॥ ४१ ॥
चचालाथ सनिर्ह्रादा दिशश्चैवाविलाभवन् ।

उस समय समुद्र, वन और चराचर प्राणियोंसहित यह पृथ्वी भयानक रूपसे हिलने लगी । सब ओर वज्रकी-सी गर्जना होने लगी और सारी दिशाएँ मलिन हो गयीं ॥ ४१½ ॥

ते द्रोणपुत्रमासाद्य यथावृत्तं न्यवेदयन् ॥ ४२ ॥
व्यवहारं गदायुद्धे पार्थिवस्य च पातनम् ।
तदाख्याय ततः सर्वे द्रोणपुत्रस्य भारत ॥
(वार्तिका दुःखसंतप्ताः शोकोपहतचेतसः ।)
ध्यात्वा च सुचिरं कालं जग्मुरार्ता यथागतम् ॥ ४३ ॥

उन संदेशवाहकोंने आकर द्रोणपुत्र अश्वत्थामासे यथावत् समाचार कह सुनाया । भारत ! गदायुद्धमें भीमसेनका जैसा व्यवहार हुआ तथा राजाको जिस प्रकार धराशायी किया गया, वह सारा वृत्तान्त द्रोणपुत्रको बताकर दुःखसे संतप्त हो वे बहुत देरतक चिन्तामें डूबे रहे । फिर शोकसे व्याकुल-चित्त एवं आर्त होकर जैसे आये थे, वैसे चले गये ॥ ४२-४३ ॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि दुर्योधनविलापे चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें दुर्योधनका विलापविषयक चौसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६४ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ४३½ श्लोक हैं)

---

[1] आचार्य नीलकण्ठकी सम्मतिके अनुसार चार्वाक संन्यासी मुनिके वेषमें विचरनेवाला एक नास्तिक राक्षस था ।

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

दुर्योधनकी दशा देखकर अश्वत्थामाका विषाद, प्रतिज्ञा और सेनापतिके पदपर अभिषेक

संजय उवाच

वार्तिकाणां सकाशात् तु श्रुत्वा दुर्योधनं हतम् ।
हतशिष्टास्ततो राजन् कौरवाणां महारथाः ॥ १ ॥
विनिर्भिन्नाः शितैर्बाणैर्गदातोमरशक्तिभिः ।
अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ॥ २ ॥
त्वरिता जवनैरश्वैरायोधनमुपागमन् ।

संजय कहते हैं—राजन् ! संदेशवाहकोंके मुखसे दुर्योधनके मारे जानेका समाचार सुनकर मरनेसे बचे हुए कौरव महारथी अश्वत्थामा, कृपाचार्य और सात्वतवंशी कृतवर्मा—जो स्वयं भी तीखे बाण, गदा, तोमर और शक्तियोंके प्रहारसे विशेष घायल हो चुके थे, तेज चलनेवाले घोड़ोंसे जुते हुए रथपर सवार हो तुरंत ही युद्धभूमिमें आये॥

तत्रापश्यन् महात्मानं धार्तराष्ट्रं निपातितम् ॥ ३ ॥
प्रभग्नं वायुवेगेन महाशालं यथा वने ।
भूमौ विचेष्टमानं तं रुधिरेण समुक्षितम् ॥ ४ ॥
महागजमिवारण्ये व्याधेन विनिपातितम् ।
विवर्तमानं बहुशो रुधिरौघपरिप्लुतम् ॥ ५ ॥

वहाँ आकर उन्होंने देखा कि महामनस्वी धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन मार गिराया गया है, मानो वनमें कोई विशाल शालवृक्ष वायुके वेगसे टूटकर धराशायी हो गया हो। खूनसे लथपथ हो दुर्योधन पृथ्वीपर पड़ा छटपटा रहा था, मानो जंगलमें किसी व्याधेने बहुत बड़े हाथीको मार गिराया हो। रक्तकी धारामें डूबा हुआ वह बारंबार करवटें बदल रहा था॥

यदृच्छया निपतितं चक्रमादित्यगोचरम् ।
महावातसमुत्थेन संशुष्कमिव सागरम् ॥ ६ ॥
पूर्णचन्द्रमिव व्योम्नि तुषारावृतमण्डलम् ।
रेणुध्वस्तं दीर्घभुजं मातङ्गमिव विक्रमे ॥ ७ ॥

जैसे दैवेच्छासे सूर्यका चक्र गिर पड़ा हो, बहुत बड़ी आँधी चलनेसे समुद्र सूख गया हो, आकाशमें पूर्ण चन्द्रमण्डलपर कुहरा छा गया हो, वही दशा उस समय दुर्योधनकी हुई थी। मतवाले हाथीके समान पराक्रमी और विशाल भुजाओंवाला वह वीर धूलमें सन गया था ॥ ६-७ ॥

वृतं भूतगणैर्घोरैः क्रव्यादैश्च समन्ततः ।
यथा धनं लिप्समानैर्भृत्यैर्नृपतिसत्तमम् ॥ ८ ॥

जैसे धन चाहनेवाले भृत्यगण किसी श्रेष्ठ राजाको घेरे रहते हैं, उसी प्रकार भयंकर मांसभक्षी भूतोंने चारों ओरसे उसे घेर रक्खा था ॥ ८ ॥

भ्रुकुटीकृतवक्त्रान्तं क्रोधादुद्वृत्तचक्षुषम् ।
सामर्षं तं नरव्याघ्रं व्याघ्रं निपतितं यथा ॥ ९ ॥

उसके मुँहपर भौंहें तनी हुई थीं, आँखें क्रोधसे चढ़ी हुई थीं और गिरे हुए व्याघ्रके समान वह नरश्रेष्ठ वीर अमर्षमें भरा हुआ दिखायी देता था ॥ ९ ॥

ते तं दृष्ट्वा महेष्वासं भूतले पतितं नृपम् ।
मोहमभ्यागमन् सर्वे कृपप्रभृतयो रथाः ॥ १० ॥

महाधनुर्धर राजा दुर्योधनको पृथ्वीपर पड़ा हुआ देख कृपाचार्य आदि सभी महारथी मोहके वशीभूत हो गये॥१०॥

अवतीर्य रथेभ्यश्च प्राद्रवन् राजसंनिधौ ।
दुर्योधनं च सम्प्रेक्ष्य सर्वे भूमावुपाविशन् ॥ ११ ॥

वे अपने रथोंसे उतरकर राजाके पास दौड़े गये और दुर्योधनको देखकर सब लोग उसके पास ही जमीनपर बैठ गये ॥ ११ ॥

ततो द्रौणिर्महाराज बाष्पपूर्णेक्षणः श्वसन् ।
उवाच भरतश्रेष्ठं सर्वलोकेश्वरेश्वरम् ॥ १२ ॥

महाराज ! उस समय अश्वत्थामाकी आँखोंमें आँसू भर आये। वह सिसकता हुआ सम्पूर्ण जगत्के राजाधिराज भरतश्रेष्ठ दुर्योधनसे इस प्रकार बोला—॥ १२ ॥

न नूनं विद्यते सत्यं मानुषे किंचिदेव हि ।
यत्र त्वं पुरुषव्याघ्र शेषे पांसुषु रूषितः ॥ १३ ॥

'पुरुषसिंह ! निश्चय ही इस मनुष्यलोकमें कुछ भी सत्य नहीं है, सभी नाशवान् है, जहाँ तुम्हारे-जैसा राजा धूलमें सना हुआ लोट रहा है ॥ १३ ॥

भूत्वा हि नृपतिः पूर्वं समाज्ञाप्य च मेदिनीम् ।
कथमेकोऽद्य राजेन्द्र तिष्ठसे निर्जने वने ॥ १४ ॥

'राजेन्द्र ! तुम पहले सम्पूर्ण जगत्के मनुष्योंपर आधिपत्य रखकर सारे भूमण्डलपर हुक्म चलाते थे। वही तुम आज अकेले इस निर्जन वनमें कैसे पड़े हुए हो ?॥१४॥

दुःशासनं न पश्यामि नापि कर्णं महारथम् ।
नापि तान् सुहृदः सर्वान् किमिदं भरतर्षभ ॥ १५ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! न तो मैं दुःशासनको देखता हूँ और न महारथी कर्णको। अन्य सब सुहृदोंका भी मुझे दर्शन नहीं हो रहा है, यह क्या बात है ? ॥ १५ ॥

दुःखं नूनं कृतान्तस्य गतिं ज्ञातुं कथंचन ।
लोकानां च भवान् यत्र शेषे पांसुषु रूषितः॥ १६ ॥

'निश्चय ही काल और लोकोंकी गतिको जानना किसी प्रकार भी कठिन ही है, जिसके अधीन होकर आप धूलमें सने हुए पड़े हैं ॥ १६ ॥

एष मूर्धाभिषिक्तानामग्रे गत्वा परंतपः।
सतृणं ग्रसते पांसुं पश्य कालस्य पर्ययम् ॥ १७ ॥

'अहो ! ये मूर्धाभिषिक्त राजाओंके आगे चलनेवाले शत्रुसंतापी महाराज दुर्योधन तिनकोंसहित धूल फाँक रहे हैं। यह कालका उलट-फेर तो देखो ॥ १७ ॥

क्व ते तदमलं छत्रं व्यजनं क्व च पार्थिव।
सा च ते महती सेना क्व गता पार्थिवोत्तम ॥ १८ ॥

'नृपश्रेष्ठ ! महाराज ! कहाँ है आपका वह निर्मल छत्र, कहाँ है व्यजन और कहाँ गयी आपकी वह विशालसेना? ॥

दुर्विज्ञेया गतिर्नूनं कार्याणां कारणान्तरे।
यद् वै लोकगुरुर्भूत्वा भवानेतां दशां गतः ॥ १९ ॥

'किस कारणसे कौन-सा कार्य होगा, इसको समझ लेना निश्चय ही बहुत कठिन है; क्योंकि सम्पूर्ण जगत्के आदरणीय नरेश होकर भी आज तुम इस दशाको पहुँच गये ॥ १९ ॥

अध्रुवा सर्वमर्त्येषु श्रीरुपालक्ष्यते भृशम्।
भवतो व्यसनं दृष्ट्वा शक्रविस्पर्धिनो भृशम् ॥ २० ॥

'तुम तो अपनी साम्राज्य-लक्ष्मीके द्वारा इन्द्रकी समानता करनेवाले थे। आज तुमपर भी यह संकट आया हुआ देख-कर निश्चय हो गया कि किसी भी मनुष्यकी सम्पत्ति सदा स्थिर नहीं देखी जा सकती' ॥ २० ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा दुःखितस्य विशेषतः।
उवाच राजन् पुत्रस्ते प्राप्तकालमिदं वचः ॥ २१ ॥
विमृज्य नेत्रे पाणिभ्यां शोकजं बाष्पमुत्सृजन्।
कृपादीन् स तदा वीरान् सर्वानेव नराधिपः ॥ २२ ॥

राजन् ! अत्यन्त दुखी हुए अश्वत्थामाकी वह बात सुनकर आपके पुत्र राजा दुर्योधनके नेत्रोंसे शोकके आँसू बहने लगे। उसने दोनों हाथोंसे नेत्रोंको पोंछा और कृपाचार्य आदि समस्त वीरोंसे यह समयोचित वचन कहा—॥२१-२२॥

ईदृशो लोकधर्मोऽयं धात्रा निर्दिष्ट उच्यते।
विनाशः सर्वभूतानां कालपर्यायमागतः ॥ २३ ॥

'मित्रो ! इस मर्त्यलोकका ऐसा ही धर्म (नियम) है। विधाताने ही इसका निर्देश किया है, ऐसा कहा जाता है; इसलिये कालक्रमसे एक-न-एक दिन सम्पूर्ण प्राणियोंके विनाश-की घड़ी आ ही जाती है ॥ २३ ॥

सोऽयं मां समनुप्राप्तः प्रत्यक्षं भवतां हि यः।
पृथिवीं पालयित्वाहमेतां निष्ठामुपागतः ॥ २४ ॥

'वही यह विनाशका समय अब मुझे भी प्राप्त हुआ है, जिसे आपलोग प्रत्यक्ष देख रहे हैं। एक दिन मैं सारी पृथ्वीका पालन करता था और आज इस अवस्थाको पहुँच गया हूँ ॥ २४ ॥

दिष्ट्या नाहं परावृत्तो युद्धे कस्यांचिदापदि।
दिष्ट्याहं निहतः पापैश्छलेनैव विशेषतः ॥ २५ ॥

'तो भी मुझे इस बातकी खुशी है कि कैसी ही आपत्ति क्यों न आयी, मैं युद्धमें कभी पीछे नहीं हटा। पापियोंने मुझे मारा भी तो छलसे ॥ २५ ॥

उत्साहश्च कृतो नित्यं मया दिष्ट्या युयुत्सता।
दिष्ट्या चास्मिन् हतो युद्धे निहतज्ञातिबान्धवः॥ २६ ॥

'सौभाग्यवश मैंने रणभूमिमें जूझनेकी इच्छा रखकर सदा ही उत्साह दिखाया है और भाई-बन्धुओंके मारे जानेपर स्वयं भी युद्धमें ही प्राण-त्याग कर रहा हूँ, इससे मुझे विशेष संतोष है ॥ २६ ॥

दिष्ट्या च वोऽहं पश्यामि मुक्तानस्माज्जनक्षयात्।
स्वस्तियुक्तांश्च कल्यांश्च तन्मे प्रियमनुत्तमम् ॥ २७ ॥

'सौभाग्यकी बात है कि मैं आपलोगोंको इस नरसंहार-से मुक्त देख रहा हूँ। साथ ही आपलोग सकुशल एवं कुछ करनेमें समर्थ हैं—यह मेरे लिये और भी उत्तम एवं प्रसन्नता-की बात है ॥ २७ ॥

मा भवन्तोऽत्र तप्यन्तां सौहृदान्निधनेन मे।
यदि वेदाः प्रमाणं वो जिता लोका मयाक्षयाः ॥ २८ ॥

'आपलोगोंका मुझपर स्वाभाविक स्नेह है, इसलिये मेरी मृत्युसे यहाँ आपलोगोंको जो दुःख और संताप हो रहा है, वह नहीं होना चाहिये। यदि आपकी दृष्टिमें वेद-शास्त्र प्रामाणिक हैं तो मैंने अक्षय लोकोंपर अधिकार प्राप्त कर लिया ॥ २८ ॥

मन्यमानः प्रभावं च कृष्णस्यामिततेजसः।
तेन न च्यावितश्चाहं क्षत्रधर्मात् स्वनुष्ठितात् ॥ २९ ॥
स मया समनुप्राप्तो नास्मि शोच्यः कथंचन।

'मैं अमित तेजस्वी श्रीकृष्णके अद्भुत प्रभावको मानता हुआ भी कभी उनकी प्रेरणासे अच्छी तरह पालन किये हुए क्षत्रियधर्मसे विचलित नहीं हुआ। मैंने उस धर्मका फल प्राप्त किया है; अतः किसी प्रकार भी मैं शोकके योग्य नहीं हूँ ॥

कृतं भवद्भिः सदृशमनुरूपमिवात्मनः ॥ ३० ॥
यतितं विजये नित्यं दैवं तु दुरतिक्रमम्।

'आपलोगोंने अपने स्वरूपके अनुरूप योग्य पराक्रम प्रकट किया और सदा मुझे विजय दिलानेकी ही चेष्टा की; तथापि दैवके विधानका उल्लङ्घन करना किसीके लिये भी सर्वथा कठिन है' ॥ ३०½ ॥

एतावदुक्त्वा वचनं बाष्पव्याकुललोचनः ॥ ३१ ॥
तूष्णीं बभूव राजेन्द्र रुजासौ विह्वलो भृशम्।

राजेन्द्र ! इतना कहते-कहते दुर्योधनकी आँखें आँसुओंसे भर आयीं और वह वेदनासे अत्यन्त व्याकुल होकर चुप हो गया—उससे कुछ बोला नहीं गया ॥ ३१½ ॥

तथा दृष्ट्वा तु राजानं बाष्पशोकसमन्वितम् ॥ ३२ ॥
द्रौणिः क्रोधेन जज्वाल यथा वह्निर्जगत्क्षये।

राजा दुर्योधनको शोकके आँसू बहाते देख अश्वत्थामा प्रलयकालकी अग्निके समान क्रोधसे प्रज्वलित हो उठा ॥

स च क्रोधसमाविष्टः पाणौ पाणिं निपीड्य च॥ ३३ ॥
बाष्पविह्वलया वाचा राजानमिदमब्रवीत्।

रोषके आवेशमें भरकर उसने हाथपर हाथ दबाया और अश्रुगद्गद वाणीद्वारा उसने राजा दुर्योधनसे इस प्रकार कहा—॥ ३३½ ॥

पिता मे निहतः क्षुद्रैः सुनृशंसेन कर्मणा ॥ ३४ ॥
न तथा तेन तप्यामि यथा राजंस्त्वयाद्य वै।

'राजन्! नीच पाण्डवोंने अत्यन्त क्रूरतापूर्ण कर्मके द्वारा मेरे पिताका वध किया था; परंतु उसके कारण भी मैं उतना संतप्त नहीं हूँ, जैसा कि आज तुम्हारे वधके कारण मुझे कष्ट हो रहा है ॥ ३४½ ॥

शृणु चेदं वचो मह्यं सत्येन वदतः प्रभो ॥ ३५ ॥
इष्टापूर्तेन दानेन धर्मेण सुकृतेन च।
अद्याहं सर्वपञ्चालान् वासुदेवस्य पश्यतः ॥ ३६ ॥
सर्वोपायैर्हि नेष्यामि प्रेतराजनिवेशनम्।
अनुज्ञां तु महाराज भवान् मे दातुमर्हति ॥ ३७ ॥

'प्रभो! मैं सत्यकी शपथ खाकर जो कह रहा हूँ, मेरी इस बातको सुनो। मैं अपने इष्ट, आपूर्त, दान, धर्म तथा अन्य शुभ कर्मोंकी शपथ खाकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज श्रीकृष्णके देखते-देखते सम्पूर्ण पाञ्चालोंको सभी उपायोंद्वारा यमराजके लोकमें भेज दूँगा। महाराज! इसके लिये तुम मुझे आज्ञा दे दो' ॥ ३५—३७ ॥

इति श्रुत्वा तु वचनं द्रोणपुत्रस्य कौरवः।
मनसः प्रीतिजननं कृपं वचनमब्रवीत् ॥ ३८ ॥
आचार्य शीघ्रं कलशं जलपूर्णं समानय।

द्रोणपुत्रका यह मनको प्रसन्न करनेवाला वचन सुनकर कुरुराज दुर्योधनने कृपाचार्यसे कहा—'आचार्य! आप शीघ्र ही जलसे भरा हुआ कलश ले आइये' ॥ ३८½ ॥

स तद् वचनमाज्ञाय राज्ञो ब्राह्मणसत्तमः ॥ ३९ ॥
कलशं पूर्णमादाय राज्ञोऽन्तिकमुपागमत्।

राजाकी वह बात मानकर ब्राह्मणशिरोमणि कृपाचार्य जलसे भरा हुआ कलश ले उसके समीप आये ॥ ३९½ ॥

तमब्रवीन्महाराज पुत्रस्तव विशाम्पते ॥ ४० ॥
ममाज्ञया द्विजश्रेष्ठ द्रोणपुत्रोऽभिषिच्यताम्।
सैनापत्येन भद्रं ते मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥ ४१ ॥

महाराज! प्रजानाथ! तब आपके पुत्रने उनसे कहा—'द्विजश्रेष्ठ! आपका कल्याण हो। यदि आप मेरा प्रिय करना चाहते हैं तो मेरी आज्ञासे द्रोणपुत्रका सेनापतिके पद-पर अभिषेक कीजिये ॥ ४०-४१ ॥

राज्ञो नियोगाद् योद्धव्यं ब्राह्मणेन विशेषतः।
वर्तता क्षत्रधर्मेण ह्येवं धर्मविदो विदुः ॥ ४२ ॥

'ब्राह्मणको विशेषतः राजाकी आज्ञासे क्षत्रिय-धर्मके अनुसार बर्ताव करते हुए युद्ध करना चाहिये—ऐसा धर्मज्ञ पुरुष मानते हैं' ॥ ४२ ॥

राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा कृपः शारद्वतस्तथा।
द्रौणिं राज्ञो नियोगेन सैनापत्येऽभ्यषेचयत् ॥ ४३ ॥

राजाकी वह बात सुनकर शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्यने उसकी आज्ञाके अनुसार अश्वत्थामाका सेनापतिके पदपर अभिषेक किया ॥ ४३ ॥

सोऽभिषिक्तो महाराज परिष्वज्य नृपोत्तमम्।
प्रययौ सिंहनादेन दिशः सर्वा विनादयन् ॥ ४४ ॥

महाराज! अभिषेक हो जानेपर अश्वत्थामाने नृपश्रेष्ठ दुर्योधनको हृदयसे लगाया और अपने सिंहनादसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करते हुए वहाँसे प्रस्थान किया ॥

दुर्योधनोऽपि राजेन्द्र शोणितेन परिप्लुतः।
तां निशां प्रतिपेदेऽथ सर्वभूतभयावहाम् ॥ ४५ ॥

राजेन्द्र! खूनमें डूबे हुए दुर्योधनने भी सम्पूर्ण भूतोंके मनमें भय उत्पन्न करनेवाली वह रात वहीं व्यतीत की ॥

अपक्रम्य तु ते तूर्णं तस्मादायोधनान्नृप।
शोकसंविग्नमनसश्चिन्ताध्यानपराभवन् ॥ ४६ ॥

नरेश्वर! शोकसे व्याकुलचित्त हुए वे तीनों महारथी उस युद्धभूमिसे तुरंत ही दूर हट गये और चिन्ता एवं कर्तव्यके विचारमें निमग्न हो गये ॥ ४६ ॥

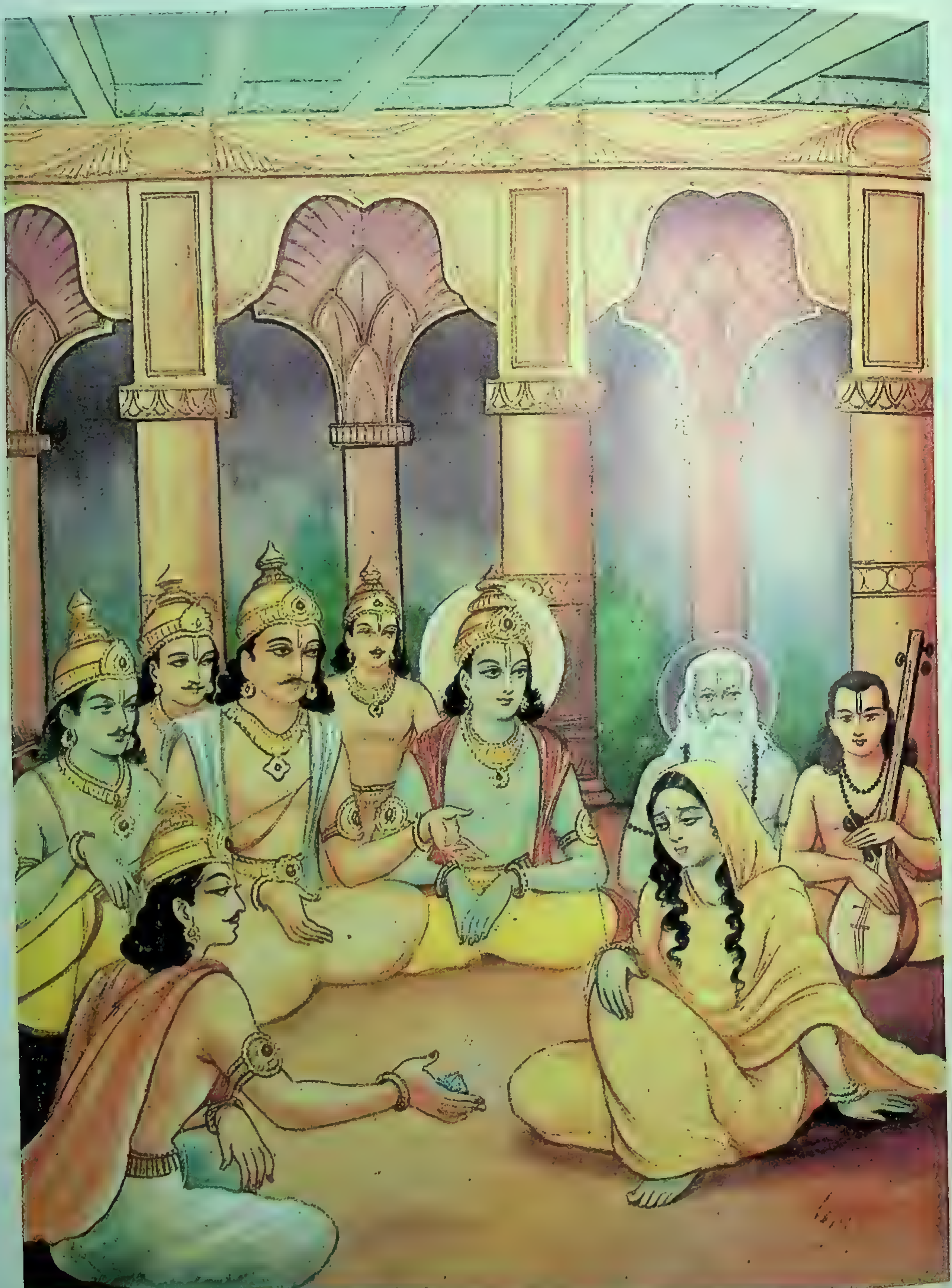
इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि अश्वत्थामसैनापत्याभिषेके पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें अश्वत्थामाका सेनापतिके पदपर अभिषेकविषयक पैंसठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ६५ ॥

॥ शल्यपर्व सम्पूर्णम् ॥

	अनुष्टुप्	बड़े श्लोक	बड़े श्लोकोंको अनुष्टुप् माननेपर	कुल
उत्तर भारतीय पाठसे लिये गये	३५३१	(११५)	१५८=	३६८९=
दक्षिण भारतीय पाठसे लिये गये	४२	(५)	६॥।=	४८॥।=
				३७३८

शल्यपर्वकी कुल श्लोकसंख्या



भीमसेन अश्वत्थामा से प्राप्त हुई मणि द्रौपदी को दे रहे हैं

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमहाभारतम्

सौप्तिकपर्व

प्रथमोऽध्यायः

तीनों महारथियोंका एक वनमें विश्राम, कौओंपर उल्लूका आक्रमण देख अश्वत्थामाके मनमें क्रूर संकल्पका उदय तथा अपने दोनों साथियोंसे उसका सलाह पूछना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

अन्तर्यामी नारायण भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और उनकी लीलाओंका संकलन करनेवाले महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय (महाभारत) का पाठ करना चाहिये ॥

संजय उवाच

ततस्ते सहिता वीराः प्रयाता दक्षिणामुखाः ।
उपास्तमनवेलायां शिबिराभ्याशमागताः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन् ! दुर्योधनकी आज्ञाके अनुसार कृपाचार्यके द्वारा अश्वत्थामाका सेनापतिके पदपर अभिषेक हो जानेके अनन्तर वे तीनों वीर अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा एक साथ दक्षिण दिशाकी ओर चले और सूर्यास्तके समय सेनाकी छावनीके निकट जा पहुँचे ॥ १ ॥

विमुच्य वाहांस्त्वरिता भीता समभवंस्तदा ।
गहनं देशमासाद्य प्रच्छन्ना न्यविशन्त ते ॥ २ ॥

शत्रुओंको पता न लग जाय, इस भयसे वे सब-के-सब डरे हुए थे, अतः बड़ी उतावलीके साथ वनके गहन प्रदेशमें जाकर उन्होंने घोड़ोंको खोल दिया और छिपकर एक स्थानपर वे जा बैठे ॥ २ ॥

सेनानिवेशमभितो नातिदूरमवस्थिताः ।
निकृत्ता निशितैः शस्त्रैः समन्तात् क्षतविक्षताः ॥ ३ ॥

जहाँ सेनाकी छावनी थी, उस स्थानके पास थोड़ी ही दूरपर वे तीनों विश्राम करने लगे। उनके शरीर तीखे शस्त्रोंके आघातसे घायल हो गये थे । वे सब ओरसे क्षत-विक्षत हो रहे थे ॥ ३ ॥

दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य पाण्डवानेव चिन्तयन् ।
श्रुत्वा च निनदं घोरं पाण्डवानां जयैषिणाम् ॥ ४ ॥
अनुसारभयाद् भीताः प्राङ्मुखाः प्राद्रवन् पुनः।

वे गरम-गरम लंबी साँस खींचते हुए पाण्डवोंकी ही चिन्ता करने लगे । इतनेहीमें विजयाभिलाषी पाण्डवोंकी भयंकर गर्जना सुनकर उन्हें यह भय हुआ कि पाण्डव कहीं हमारा पीछा न करने लगें; अतः वे पुनः घोड़ोंको रथमें जोतकर पूर्व दिशाकी ओर भाग चले ॥ ४½ ॥

ते मुहूर्तात् ततो गत्वा श्रान्तवाहाः पिपासिताः॥ ५ ॥
नामृष्यन्त महेष्वासाः क्रोधामर्षवशं गताः ।
राज्ञो वधेन संतप्ता मुहूर्तं समवस्थिताः ॥ ६ ॥

दो ही घड़ीमें उस स्थानसे कुछ दूर जाकर क्रोध और अमर्षके वशीभूत हुए वे महाधनुर्धर योद्धा प्याससे पीड़ित हो गये । उनके घोड़े भी थक गये । उनके लिये यह अवस्था असह्य हो उठी थी। वे राजा दुर्योधनके मारे जानेसे बहुत दुखी हो एक मुहूर्ततक वहाँ चुपचाप खड़े रहे ॥ ५-६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

अश्रद्धेयमिदं कर्म कृतं भीमेन संजय ।
यत् स नागायुतप्राणः पुत्रो मम निपातितः ॥ ७ ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! मेरे पुत्र दुर्योधनमें दस हजार हाथियोंका बल था तो भी उसे भीमसेनने मार गिराया। उनके द्वारा जो यह कार्य किया गया है, इसपर सहसा विश्वास नहीं होता ॥ ७ ॥

अवध्यः सर्वभूतानां वज्रसंहननो युवा ।
पाण्डवैः समरे पुत्रो निहतो मम संजय ॥ ८ ॥

संजय ! मेरा पुत्र नवयुवक था । उसका शरीर वज्रके समान कठोर था और इसीलिये वह सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये अवध्य था, तथापि पाण्डवोंने समराङ्गणमें उसका वध कर डाला ॥ ८ ॥

न दिष्टमभ्यतिक्रान्तुं शक्यं गावल्गणे नरैः ।
यत् समेत्य रणे पार्थैः पुत्रो मम निपातितः ॥ ९ ॥

गवल्गणकुमार ! कुन्तीके पुत्रोंने मिलकर रणभूमिमें जो मेरे पुत्रको धराशायी कर दिया है, इससे जान पड़ता है कि कोई भी मनुष्य दैवके विधानका उल्लङ्घन नहीं कर सकता॥

अद्रिसारमयं नूनं हृदयं मम संजय ।

हतं पुत्रशतं श्रुत्वा यन्न दीर्णं सहस्रधा ॥ १० ॥

संजय ! निश्चय ही मेरा हृदय पत्थरके सारतत्त्वका बना हुआ है, जो अपने सौ पुत्रोंके मारे जानेका समाचार सुनकर भी इसके सहस्रों टुकड़े नहीं हो गये ॥ १० ॥

कथं हि वृद्धमिथुनं हतपुत्रं भविष्यति ।
न ह्यहं पाण्डवेयस्य विषये वस्तुमुत्सहे ॥ ११ ॥

हाय ! अब हम दोनों बूढ़े पति-पत्नी अपने पुत्रोंके मारे जानेसे कैसे जीवित रहेंगे ? मैं पाण्डुकुमार युधिष्ठिरके राज्यमें नहीं रह सकता ॥ ११ ॥

कथं राज्ञः पिता भूत्वा स्वयं राजा च संजय ।
प्रेष्यभूतः प्रवर्तेयं पाण्डवेयस्य शासनात् ॥ १२ ॥

संजय ! मैं राजाका पिता और स्वयं भी राजा ही था । अब पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरकी आज्ञाके अधीन हो दासकी भाँति कैसे जीवननिर्वाह करूँगा ? ॥ १२ ॥

आज्ञाप्य पृथिवीं सर्वां स्थित्वा मूर्ध्नि च संजय ।
कथमद्य भविष्यामि प्रेष्यभूतो दुरन्तकृत् ॥ १३ ॥

संजय ! पहले समस्त भूमण्डलपर मेरी आज्ञा चलती थी और मैं सबका शिरमौर था; ऐसा होकर अब मैं दूसरोंका दास बनकर कैसे रहूँगा । मैंने स्वयं ही अपने जीवनकी अन्तिम अवस्थाको दुःखमय बना दिया है ! ॥ १३ ॥

कथं भीमस्य वाक्यानि श्रोतुं शक्ष्यामि संजय ।
येन पुत्रशतं पूर्णमेकेन निहतं मम ॥ १४ ॥

ओह ! जिसने अकेले ही मेरे पूरे-के-पूरे सौ पुत्रोंका वध कर डाला, उस भीमसेनकी बातोंको मैं कैसे सुन सकूँगा ?

कृतं सत्यं वचस्तस्य विदुरस्य महात्मनः ।
अकुर्वता वचस्तेन मम पुत्रेण संजय ॥ १५ ॥

संजय ! मेरे पुत्रने मेरी बात न मानकर महात्मा विदुरके कहे हुए वचनको सत्य कर दिखाया ॥ १५ ॥

अधर्मेण हते तात पुत्रे दुर्योधने मम ।
कृतवर्मा कृपो द्रौणिः किमकुर्वत संजय ॥ १६ ॥

तात संजय ! अब यह बताओ कि मेरे पुत्र दुर्योधनके अधर्मपूर्वक मारे जानेपर कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामाने क्या किया ? ॥ १६ ॥

संजय उवाच

गत्वा तु तावका राजन् नातिदूरमवस्थिताः ।
अपश्यन्त वनं घोरं नानाद्रुमलतावृतम् ॥ १७ ॥

संजयने कहा—राजन् ! आपके पक्षके वे तीनों वीर वहाँसे थोड़ी ही दूरपर जाकर खड़े हो गये । वहाँ उन्होंने नाना प्रकारके वृक्षों और लताओंसे भरा हुआ एक भयंकर वन देखा ॥ १७ ॥

ते मुहूर्तं तु विश्रम्य लब्धतोयैर्हयोत्तमैः ।
सूर्यास्तमनवेलायां समासेदुर्महद् वनम् ॥ १८ ॥
नानामृगगणैर्जुष्टं नानापक्षिगणावृतम् ।
नानाद्रुमलताच्छन्नं नानाव्यालनिषेवितम् ॥ १९ ॥

उस स्थानपर थोड़ी देरतक ठहरकर उन सब लोगोंने अपने उत्तम घोड़ोंको पानी पिलाया और सूर्यास्त होते-होते वे उस विशाल वनमें जा पहुँचे, जहाँ अनेक प्रकारके मृग और भाँति-भाँतिके पक्षी निवास करते थे, तरह-तरहके वृक्षों और लताओंने उस वनको व्याप्त कर रक्खा था और अनेक जातिके सर्प उसका सेवन करते थे ॥ १८-१९ ॥

नानातोयैः समाकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम् ।
पद्मिनीशतसंछन्नं नीलोत्पलसमायुतम् ॥ २० ॥

उसमें जहाँ-तहाँ अनेक प्रकारके जलाशय थे, भाँति-भाँतिके पुष्प उस वनकी शोभा बढ़ा रहे थे, शत-शत रक्त कमल और असंख्य नीलकमल वहाँके जलाशयोंमें सब ओर छा रहे थे ॥ २० ॥

प्रविश्य तद् वनं घोरं वीक्षमाणाः समन्ततः ।
शाखासहस्रसंछन्नं न्यग्रोधं ददृशुस्ततः ॥ २१ ॥

उस भयंकर वनमें प्रवेश करके सब ओर दृष्टि डालनेपर उन्हें सहस्रों शाखाओंसे आच्छादित एक बरगदका वृक्ष दिखायी दिया ॥ २१ ॥

उपेत्य तु तदा राजन् न्यग्रोधं ते महारथाः ।
ददृशुर्द्विपदां श्रेष्ठाः श्रेष्ठं तं वै वनस्पतिम् ॥ २२ ॥

राजन् ! मनुष्योंमें श्रेष्ठ उन महारथियोंने पास जाकर उस उत्तम वनस्पति (बरगद) को देखा ॥ २२ ॥

तेऽवतीर्य रथेभ्यश्च विप्रमुच्य च वाजिनः ।
उपस्पृश्य यथान्यायं संध्यामन्वासत प्रभो ॥ २३ ॥

प्रभो ! वहाँ रथोंसे उतरकर उन तीनोंने अपने घोड़ोंको खोल दिया और यथोचितरूपसे स्नान आदि करके संध्योपासना की ॥ २३ ॥

ततोऽस्तं पर्वतश्रेष्ठमनुप्राप्ते दिवाकरे ।
सर्वस्य जगतो धात्री शर्वरी समपद्यत ॥ २४ ॥

तदनन्तर सूर्यदेवके पर्वतश्रेष्ठ अस्ताचलपर पहुँच जानेपर धायकी भाँति सम्पूर्ण जगत्‌को अपनी गोदमें विश्राम देनेवाली रात्रिदेवीका सर्वत्र आधिपत्य हो गया ॥ २४ ॥

ग्रहनक्षत्रताराभिः सम्पूर्णाभिरलंकृतम् ।
नभोंऽशुकमिवाभाति प्रेक्षणीयं समन्ततः ॥ २५ ॥

सम्पूर्ण ग्रहों, नक्षत्रों और ताराओंसे अलंकृत हुआ आकाश जरीकी साड़ीके समान सब ओरसे देखनेयोग्य प्रतीत होता था ॥ २५ ॥

इच्छया ते प्रवल्गन्ति ये सत्त्वा रात्रिचारिणः ।
दिवाचराश्च ये सत्त्वास्ते निद्रावशमागताः ॥ २६ ॥

रात्रिमें विचरनेवाले प्राणी अपनी इच्छाके अनुसार उछल-कूद मचाने लगे और जो दिनमें विचरनेवाले जीव-जन्तु थे, वे निद्राके अधीन हो गये ॥ २६ ॥

रात्रिंचराणां सत्त्वानां निर्घोषोऽभूत् सुदारुणः ।
क्रव्यादाश्च प्रमुदिता घोरा प्राप्ता च शर्वरी ॥ २७ ॥

रात्रिमें घूमने-फिरनेवाले जीवोंका अत्यन्त भयंकर शब्द प्रकट होने लगा । मांसभक्षी प्राणी प्रसन्न हो गये और वह भयंकर रात्रि सब ओर व्याप्त हो गयी ॥ २७ ॥

तस्मिन् रात्रिमुखे घोरे दुःखशोकसमन्विताः ।
कृतवर्मा कृपो द्रौणिरुपोपविविशुः समम् ॥ २८ ॥

रात्रिका प्रथम प्रहर बीत रहा था । उस भयंकर वेलामें दुःख और शोकसे संतप्त हुए कृतवर्मा, कृपाचार्य तथा अश्वत्थामा एक साथ ही आस-पास बैठ गये ॥ २८ ॥

तत्रोपविष्टाः शोचन्तो न्यग्रोधस्य समीपतः ।
तमेवार्थमतिक्रान्तं कुरुपाण्डवयोः क्षयम् ॥ २९ ॥
निद्रया च परीताङ्गा निषेदुर्धरणीतले ।
श्रमेण सुदृढं युक्ता विक्षता विविधैः शरैः ॥ ३० ॥

वटवृक्षके समीप बैठकर कौरवों तथा पाण्डवयोद्धाओंके उसी विनाशकी बीती हुई बातके लिये शोक करते हुए वे तीनों वीर निद्रासे सारे अंग शिथिल हो जानेके कारण पृथ्वीपर लेट गये । उस समय वे भारी थकावटसे चूर-चूर हो रहे थे और नाना प्रकारके बाणोंसे उनके सारे अंग क्षत-विक्षत हो गये थे ॥

ततो निद्रावशं प्राप्तौ कृपभोजौ महारथौ ।
सुखोचितावदुःखार्हौ निषण्णौ धरणीतले ॥ ३१ ॥

तदनन्तर कृपाचार्य और कृतवर्मा—इन दोनों महारथियोंको गाढ़ी नींद आ गयी । वे सुख भोगनेके योग्य थे, दुःख पानेके योग्य कदापि नहीं थे, तो भी धरतीपर ही सो गये थे ॥ ३१ ॥

तौ तु सुप्तौ महाराज श्रमशोकसमन्वितौ ।
महार्हशयनोपेतौ भूमावेव ह्यनाथवत् ॥ ३२ ॥
क्रोधामर्षवशं प्राप्तो द्रोणपुत्रस्तु भारत ।
न वै स्म स जगामाथ निद्रां सर्प इव श्वसन् ॥ ३३ ॥

महाराज ! बहुमूल्य शय्या एवं सुखसामग्रीसे सम्पन्न होनेपर भी उन दोनों वीरोंको परिश्रम और शोकसे पीड़ित हो अनाथकी भाँति पृथ्वीपर ही पड़ा देख द्रोणपुत्र अश्वत्थामा क्रोध और अमर्षके वशीभूत हो गया । भारत ! उस समय उसे नींद नहीं आयी । वह सर्पके समान लंबी साँस खींचता रहा ॥

न लेभे स तु निद्रां वै दह्यमानो हि मन्युना ।
वीक्षाञ्चक्रे महाबाहुस्तद् वनं घोरदर्शनम् ॥ ३४ ॥

क्रोधसे जलते रहनेके कारण नींद उसके पास फटकने नहीं पाती थी । उस महाबाहु वीरने भयंकर दिखायी देनेवाले उस वनकी ओर बारंबार दृष्टिपात किया ॥ ३४ ॥

वीक्षमाणो वनोद्देशं नानासत्त्वैर्निषेवितम् ।
अपश्यत महाबाहुर्न्यग्रोधं वायसैर्युतम् ॥ ३५ ॥

नाना प्रकारके जीव-जन्तुओंसे सेवित वनस्थलीका निरीक्षण करते हुए महाबाहु अश्वत्थामाने कौओंसे भरे हुए वटवृक्षपर दृष्टिपात किया ॥ ३५ ॥

तत्र काकसहस्राणि तां निशां पर्यणामयन् ।
सुखं स्वपन्ति कौरव्य पृथक् पृथगुपाश्रयाः ॥ ३६ ॥

कुरुनन्दन ! उस वृक्षपर सहस्रों कौए रातमें बसेरा ले रहे थे । वे पृथक्-पृथक् घोंसलोंका आश्रय लेकर सुखकी नींद सो रहे थे ॥ ३६ ॥

सुप्तेषु तेषु काकेषु विस्रब्धेषु समन्ततः ।
सोऽपश्यत् सहसा यान्तमुलूकं घोरदर्शनम् ॥ ३७ ॥

उन कौओंके सब ओर निर्भय होकर सो जानेपर अश्वत्थामाने देखा कि सहसा एक भयानक उल्लू उधर आ निकला ॥

महास्वनं महाकायं हर्यक्षं बभ्रुपिङ्गलम् ।
सुदीर्घघोणानखरं सुपर्णमिव वेगितम् ॥ ३८ ॥

उसकी बोली बड़ी भयंकर थी । डील-डौल भी बड़ा था । आँखें काले रंगकी थीं, उसका शरीर भूरा और पिङ्गलवर्णका था । उसकी चोंच और पंजे बहुत बड़े थे और वह गरुड़के समान वेगशाली जान पड़ता था ॥ ३८ ॥

सोऽथ शब्दं मृदुं कृत्वा लीयमान इवाण्डजः ।
न्यग्रोधस्य ततः शाखां प्रार्थयामास भारत ॥ ३९ ॥

भरतनन्दन ! वह पक्षी कोमल बोली बोलकर छिपता हुआ-सा बरगदकी उस शाखापर आनेकी इच्छा करने लगा ॥

संनिपत्य तु शाखायां न्यग्रोधस्य विहङ्गमः ।
सुप्ताञ्जघान सुबहून् वायसान् वायसान्तकः ॥ ४० ॥

कौओंके लिये कालरूपधारी उस विहङ्गमने वटवृक्षकी उस शाखापर बड़े वेगसे आक्रमण किया और सोये हुए बहुत-से कौओंको मार डाला ॥ ४० ॥

केषांचिदच्छिनत् पक्षाञ्शिरांसि च चकर्त ह ।
चरणांश्चैव केषांचिद् बभञ्ज चरणायुधः ॥ ४१ ॥

उसने अपने पंजोंसे ही अस्त्रका काम लेकर किन्हीं कौओंके पंख नोच डाले, किन्हींके सिर काट लिये और किन्हींके पैर तोड़ डाले ॥ ४१ ॥

क्षणेनाहन् स बलवान् येऽस्य दृष्टिपथे स्थिताः ।
तेषां शरीरावयवैः शरीरैश्च विशाम्पते ॥ ४२ ॥
न्यग्रोधमण्डलं सर्वं संछन्नं सर्वतोऽभवत् ।

प्रजानाथ ! उस बलवान् उल्लूने, जो-जो कौए उसकी दृष्टिमें आ गये, उन सबको क्षणभरमें मार डाला । इससे वह सारा वटवृक्ष कौओंके शरीरों तथा उनके विभिन्न अवयवोंद्वारा सब ओरसे आच्छादित हो गया ॥ ४२½ ॥

तांस्तु हत्वा ततः काकान् कौशिको मुदितोऽभवत् ॥
प्रतिकृत्य यथाकामं शत्रूणां शत्रुसूदनः ।

वह शत्रुओंका संहार करनेवाला उलूक उन कौओंका वध करके अपने शत्रुओंसे इच्छानुसार भरपूर बदला लेकर बहुत प्रसन्न हुआ ॥ ४३½ ॥

तद् दृष्ट्वा सोपधं कर्म कौशिकेन कृतं निशि ॥ ४४ ॥
तद्भावकृतसंकल्पो द्रौणिरेकोऽन्वचिन्तयत् ।

रात्रिमें उल्लूके द्वारा किये गये उस कपटपूर्ण क्रूर कर्मको देखकर स्वयं भी वैसा ही करनेका संकल्प लेकर अश्वत्थामा अकेला ही विचार करने लगा— ॥ ४४½ ॥

उपदेशः कृतोऽनेन पक्षिणा मम संयुगे ॥ ४५ ॥
शत्रूणां क्षपणे युक्तः प्राप्तः कालश्च मे मतः ।

'इस पक्षीने युद्धमें क्या करना चाहिये, इसका उपदेश मुझे दे दिया । मैं समझता हूँ कि मेरे लिये इसी प्रकार शत्रुओंके संहार करनेका समय प्राप्त हुआ है ॥ ४५½ ॥

नाद्य शक्या मया हन्तुं पाण्डवा जितकाशिनः ॥ ४६ ॥
बलवन्तः कृतोत्साहाः प्राप्तलक्ष्याः प्रहारिणः ।

'पाण्डव इस समय विजयसे उल्लसित हो रहे हैं । वे बलवान्, उत्साही और प्रहार करनेमें कुशल हैं । उन्हें अपना लक्ष्य प्राप्त हो गया है । ऐसी अवस्थामें आज मैं अपनी शक्तिसे उनका वध नहीं कर सकता ॥ ४६½ ॥

राज्ञः सकाशात् तेषां तु प्रतिज्ञातो वधो मया ॥ ४७ ॥
पतङ्गाग्निसमां वृत्तिमास्थायात्मविनाशिनीम् ।
न्यायतो युध्यमानस्य प्राणत्यागो न संशयः ॥ ४८ ॥

'इधर मैंने राजा दुर्योधनके समीप पाण्डवोंके वधकी प्रतिज्ञा कर ली है । परंतु यह कार्य वैसा ही है, जैसा पतिंगोंका आगमें कूद पड़ना । मैंने जिस वृत्तिका आश्रय लेकर पूर्वोक्त प्रतिज्ञा की है, वह मेरा ही विनाश करनेवाली है । इसमें संदेह नहीं कि यदि मैं न्यायके अनुसार युद्ध करूँगा तो मुझे अपने प्राणोंका परित्याग करना पड़ेगा ॥ ४७-४८ ॥

छद्मना च भवेत् सिद्धिः शत्रूणां च क्षयो महान् ।
तत्र संशयितादर्थाद् योऽर्थो निःसंशयो भवेत् ॥ ४९ ॥
तं जना बहु मन्यन्ते ये च शास्त्रविशारदाः ।

'यदि छलसे काम लूँ तो अवश्य मेरे अभीष्ट मनोरथकी सिद्धि हो सकती है । शत्रुओंका महान् संहार भी तभी सम्भव होगा । जहाँ सिद्धि मिलनेमें संदेह हो, उसकी अपेक्षा उस उपायका अवलम्बन करना उत्तम है, जिसमें संशयके लिये स्थान न हो । साधारण लोग तथा शास्त्रज्ञ पुरुष भी उसीका अधिक आदर करते हैं ॥ ४९½ ॥

यच्चाप्यत्र भवेद् वाच्यं गर्हितं लोकनिन्दितम् ॥ ५० ॥
कर्तव्यं तन्मनुष्येण क्षत्रधर्मेण वर्तता ।

'इस लोकमें जिस कार्यको गर्हणीय समझा जाता हो, जिसकी सब लोग भरपेट निन्दा करते हों, वह भी क्षत्रिय-धर्मके अनुसार बर्ताव करनेवाले मनुष्यके लिये कर्तव्य माना गया है ॥ ५०½ ॥

निन्दितानि च सर्वाणि कुत्सितानि पदे पदे ॥ ५१ ॥
सोपधानि कृतान्येव पाण्डवैरकृतात्मभिः ।

'अपवित्र अन्तःकरणवाले पाण्डवोंने भी तो पद-पदपर ऐसे कार्य किये हैं, जो सब-के-सब निन्दा और घृणाके योग्य रहे हैं । उनके द्वारा भी अनेक कपटपूर्ण कर्म किये ही गये हैं ॥

अस्मिन्नर्थे पुरा गीताः श्रूयन्ते धर्मचिन्तकैः ॥ ५२ ॥
श्लोका न्यायमवेक्षद्भिस्तत्त्वार्थास्तत्त्वदर्शिभिः ।

'इस विषयमें न्यायपर दृष्टि रखनेवाले धर्मचिन्तक एवं तत्त्वदर्शी पुरुषोंने प्राचीन कालमें ऐसे श्लोकोंका गान किया है, जो तात्त्विक अर्थका प्रतिपादन करनेवाले हैं । वे श्लोक इस प्रकार सुने जाते हैं—॥ ५२½ ॥

परिश्रान्ते विदीर्णे वा भुञ्जाने वापि शत्रुभिः ॥ ५३ ॥
प्रस्थाने वा प्रवेशे वा प्रहर्तव्यं रिपोर्बलम् ।

''शत्रुओंकी सेना यदि बहुत थक गयी हो, तितर-बितर हो गयी हो, भोजन कर रही हो, कहीं जा रही हो अथवा किसी स्थानविशेषमें प्रवेश कर रही हो तो भी विपक्षियोंको उसपर प्रहार करना ही चाहिये ॥ ५३½ ॥

निद्रार्तमर्धरात्रे च तथा नष्टप्रणायकम् ॥ ५४ ॥
भिन्नयोधं बलं यच्च द्विधा युक्तं च यद् भवेत् ।

''जो सेना आधी रातके समय नींदमें अचेत पड़ी हो, जिसका नायक नष्ट हो गया हो, जिसके योद्धाओंमें फूट हो गयी हो और जो दुविधेमें पड़ गयी हो, उसपर भी शत्रुको अवश्य प्रहार करना चाहिये'' ॥ ५४½ ॥

इत्येवं निश्चयं चक्रे सुप्तानां निशि मारणे ॥ ५५ ॥
पाण्डूनां सह पञ्चालैर्द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ।

इस प्रकार विचार करके प्रतापी द्रोणपुत्रने रातको सोते समय पाञ्चालोंसहित पाण्डवोंको मार डालनेका निश्चय किया ॥

स क्रूरां मतिमास्थाय विनिश्चित्य मुहुर्मुहुः ॥ ५६ ॥
सुप्तौ प्राबोधयत् तौ तु मातुलं भोजमेव च ।

क्रूरतापूर्ण बुद्धिका आश्रय ले बारंबार उपर्युक्त निश्चय करके अश्वत्थामाने सोये हुए अपने मामा कृपाचार्यको तथा भोजवंशी कृतवर्माको भी जगाया ॥ ५६½ ॥

तौ प्रबुद्धौ महात्मानौ कृपभोजौ महाबलौ ॥ ५७ ॥
नोत्तरं प्रतिपद्येतां तत्र युक्तं ह्रिया वृतौ ।

जागनेपर महामनस्वी महाबली कृपाचार्य और कृतवर्माने जब अश्वत्थामाका निश्चय सुना, तब वे लज्जासे गड़ गये और उन्हें कोई उचित उत्तर नहीं सूझा ॥ ५७½ ॥

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा बाष्पविह्वलमब्रवीत् ॥ ५८ ॥
हतो दुर्योधनो राजा एकवीरो महाबलः ।
यस्यार्थे वैरमस्माभिरासक्तं पाण्डवैः सह ॥ ५९ ॥

तब अश्वत्थामा दो घड़ीतक चिन्तामग्न रहकर अश्रु-गद्गद वाणीमें इस प्रकार बोला—'संसारका अद्वितीय वीर महाबली राजा दुर्योधन मारा गया, जिसके लिये हमलोगोंने पाण्डवोंके साथ वैर बाँध रक्खा था ॥ ५८-५९ ॥

एकाकी बहुभिः क्षुद्रैराहवे शुद्धविक्रमः ।
पातितो भीमसेनेन एकादशचमूपतिः ॥ ६० ॥

'जो किसी दिन ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओंका स्वामी था, वह राजा दुर्योधन विशुद्ध पराक्रमका परिचय देता हुआ अकेला युद्ध कर रहा था; किंतु बहुत-से नीच पुरुषोंने मिलकर युद्धस्थलमें उसे भीमसेनके द्वारा धराशायी करा दिया ॥

वृकोदरेण क्षुद्रेण सुनृशंसमिदं कृतम् ।
मूर्धाभिषिक्तस्य शिरः पादेन परिमृद्नता ॥ ६१ ॥

'एक मूर्धाभिषिक्त सम्राट्के मस्तकपर लात मारते हुए नीच भीमसेनने यह बड़ा ही क्रूरतापूर्ण कार्य कर डाला है ॥

विनर्दन्ति च पञ्चालाः क्ष्वेलन्ति च हसन्ति च ।
धमन्ति शङ्खाञ्शतशो हृष्टा घ्नन्ति च दुन्दुभीन् ॥ ६२ ॥

'पाञ्चालयोद्धा हर्षमें भरकर सिंहनाद करते, हल्ला मचाते, हँसते, सैकड़ों शङ्ख बजाते और डंके पीटते हैं ॥ ६२ ॥

वादित्रघोषस्तुमुलो विमिश्रः शङ्खनिःस्वनैः ।
अनिलेनेरितो घोरो दिशः पूरयतीव ह ॥ ६३ ॥

'शङ्खध्वनिसे मिला हुआ नाना प्रकारके वाद्योंका गम्भीर एवं भयंकर घोष वायुसे प्रेरित हो सम्पूर्ण दिशाओंको भरता-सा जान पड़ता है ॥ ६३ ॥

अश्वानां हेषमाणानां गजानां चैव बृंहताम् ।
सिंहनादश्च शूराणां श्रूयते सुमहानयम् ॥ ६४ ॥

'हींसते हुए घोड़ों और चिग्घाड़ते हुए हाथियोंकी आवाजके साथ शूरवीरोंका यह महान् सिंहनाद सुनायी दे रहा है ॥

दिशं प्राचीं समाश्रित्य हृष्टानां गच्छतां भृशम् ।
रथनेमिस्वनाश्चैव श्रूयन्ते लोमहर्षणाः ॥ ६५ ॥

'हर्षमें भरकर पूर्व दिशाकी ओर वेगपूर्वक जाते हुए पाण्डव-योद्धाओंके रथोंके पहियोंके ये रोमाञ्चकारी शब्द कानोंमें पड़ रहे हैं ॥ ६५ ॥

पाण्डवैर्धार्तराष्ट्राणां यदिदं कदनं कृतम् ।
वयमेव त्रयः शिष्टा अस्मिन् महति वैशसे ॥ ६६ ॥

'हाय ! पाण्डवोंने धृतराष्ट्रके पुत्रों और सैनिकोंका जो यह विनाश किया है, इस महान् संहारसे हम तीन ही बच पाये हैं ॥ ६६ ॥

केचिन्नागशतप्राणाः केचित् सर्वास्त्रकोविदाः ।
निहताः पाण्डवेयैस्ते मन्ये कालस्य पर्ययम् ॥ ६७ ॥

'कितने ही वीर सौ-सौ हाथियोंके बराबर बलशाली थे और कितने ही सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंकी संचालन-कलामें कुशल थे; किंतु पाण्डवोंने उन सबको मार गिराया । मैं इसे समयका ही फेर समझता हूँ ॥ ६७ ॥

एवमेतेन भाव्यं हि नूनं कार्येण तत्त्वतः ।
यथा ह्यस्येदृशी निष्ठा कृतकार्येऽपि दुष्करे ॥ ६८ ॥

'निश्चय ही इस कार्यसे ठीक ऐसा ही परिणाम होनेवाला था । हमलोगोंके द्वारा अत्यन्त दुष्कर कार्य किया गया तो भी इस युद्धका अन्तिम फल इस रूपमें प्रकट हुआ ॥६८॥

भवतोस्तु यदि प्रज्ञा न मोहादपनीयते ।
व्यापन्नेऽस्मिन् महत्यर्थे यन्नः श्रेयस्तदुच्यताम् ॥६९॥

'यदि आप दोनोंकी बुद्धि मोहसे नष्ट न हो गयी हो तो इस महान् संकटके समय अपने बिगड़े हुए कार्यको बनानेके उद्देश्यसे हमारे लिये क्या करना श्रेष्ठ होगा ? यह बताइये' ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि द्रौणिमन्त्रणायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वमें अश्वत्थामाकी मन्त्रणाविषयक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

कृपाचार्यका अश्वत्थामाको दैवकी प्रबलता बताते हुए कर्तव्यके विषयमें सत्पुरुषोंसे सलाह लेनेकी प्रेरणा देना

कृप उवाच

श्रुतं ते वचनं सर्वं यद् यदुक्तं त्वया विभो ।
ममापि तु वचः किंचिच्छृणुष्वाद्य महाभुज ॥ १ ॥

तब कृपाचार्यने कहा—शक्तिशाली महाबाहो ! तुमने जो-जो बात कही है, वह सब मैंने सुन ली । अब कुछ मेरी भी बात सुनो ॥ १ ॥

आबद्धा मानुषाः सर्वे निबद्धाः कर्मणोर्द्वयोः ।
दैवे पुरुषकारे च परं ताभ्यां न विद्यते ॥ २ ॥

सभी मनुष्य प्रारब्ध और पुरुषार्थ दो प्रकारके कर्मोंसे बँधे हुए हैं । इन दोके सिवा दूसरा कुछ नहीं है ॥ २ ॥

न हि दैवेन सिध्यन्ति कार्याण्येकेन सत्तम ।
न चापि कर्मणैकेन द्वाभ्यां सिद्धस्तु योगतः ॥ ३ ॥

सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामन् ! केवल दैव या प्रारब्धसे अथवा अकेले पुरुषार्थसे भी कार्योंकी सिद्धि नहीं होती है । दोनोंके संयोगसे ही सिद्धि प्राप्त होती है ॥ ३ ॥

ताभ्यामुभाभ्यां सर्वार्था निबद्धा अधमोत्तमाः ।
प्रवृत्ताश्चैव दृश्यन्ते निवृत्ताश्चैव सर्वशः ॥ ४ ॥

उन दोनोंसे ही उत्तम-अधम सभी कार्य बँधे हुए हैं । उन्हींसे प्रवृत्ति और निवृत्ति-सम्बन्धी कार्य होते देखे जाते हैं ॥ ४ ॥

पर्जन्यः पर्वते वर्षन् किन्नु साधयते फलम् ।
कृष्टे क्षेत्रे तथा वर्षन् किन्न साधयते फलम् ॥ ५ ॥

बादल पर्वतपर वर्षा करके किस फलकी सिद्धि करता है ? वही यदि जोते हुए खेतमें वर्षा करे तो वह कौन-सा फल नहीं उत्पन्न कर सकता ? ॥ ५ ॥

उत्थानं चाप्यदैवस्य ह्यनुत्थानं च दैवतम् ।
व्यर्थं भवति सर्वत्र पूर्वस्तत्र विनिश्चयः ॥ ६ ॥

दैवरहित पुरुषका पुरुषार्थ व्यर्थ है और पुरुषार्थशून्य दैव भी व्यर्थ हो जाता है । सर्वत्र ये दो ही पक्ष उठाये जाते हैं । इन दोनोंमें पहला पक्ष ही सिद्धान्तभूत एवं श्रेष्ठ है (अर्थात् दैवके सहयोगके बिना पुरुषार्थ नहीं काम देता है)॥

सुवृष्टे च यथा देवे सम्यक् क्षेत्रे च कर्षिते ।
बीजं महागुणं भूयात् तथा सिद्धिर्हि मानुषी ॥ ७ ॥

जैसे मेघने अच्छी तरह वर्षा की हो और खेतको भी भलीभाँति जोता गया हो, तब उसमें बोया हुआ बीज अधिक लाभदायक हो सकता है । इसी प्रकार मनुष्योंकी सारी सिद्धि दैव और पुरुषार्थके सहयोगपर ही अवलम्बित है ॥ ७ ॥

तयोर्दैवं विनिश्चित्य स्वयं चैव प्रवर्तते ।
प्राज्ञाः पुरुषकारेषु वर्तन्ते दाक्ष्यमाश्रिताः ॥ ८ ॥

इन दोनोंमें दैव बलवान् है । वह स्वयं ही निश्चय करके पुरुषार्थकी अपेक्षा किये बिना ही फल-साधनमें प्रवृत्त हो जाता है, तथापि विद्वान् पुरुष कुशलताका आश्रय ले पुरुषार्थमें ही प्रवृत्त होते हैं ॥ ८ ॥

ताभ्यां सर्वे हि कार्यार्था मनुष्याणां नरर्षभ ।
विचेष्टन्तः स्म दृश्यन्ते निवृत्तास्तु तथैव च ॥ ९ ॥

नरश्रेष्ठ ! मनुष्योंके प्रवृत्ति और निवृत्ति-सम्बन्धी सारे कार्य दैव और पुरुषार्थ दोनोंसे ही सिद्ध होते देखे जाते हैं ॥

कृतः पुरुषकारश्च सोऽपि दैवेन सिध्यति ।
तथास्य कर्मणः कर्तुरभिनिर्वर्तते फलम् ॥१०॥

किया हुआ पुरुषार्थ भी दैवके सहयोगसे ही सफल होता है तथा दैवकी अनुकूलतासे ही कर्ताको उसके कर्मका फल प्राप्त होता है ॥ १० ॥

उत्थानं च मनुष्याणां दक्षाणां दैववर्जितम् ।
अफलं दृश्यते लोके सम्यगप्युपपादितम् ॥११॥

चतुर मनुष्योंद्वारा अच्छी तरह सम्पादित किया हुआ पुरुषार्थ भी यदि दैवके सहयोगसे वञ्चित है तो वह संसारमें निष्फल होता दिखायी देता है ॥ ११ ॥

तत्रालसा मनुष्याणां ये भवन्त्यमनस्विनः ।
उत्थानं ते विगर्हन्ति प्राज्ञानां तन्न रोचते ॥१२॥

मनुष्योंमें जो आलसी और मनपर काबू न रखनेवाले होते हैं, वे पुरुषार्थकी निन्दा करते हैं । परंतु विद्वानोंको यह बात अच्छी नहीं लगती॥ १२ ॥

प्रायशो हि कृतं कर्म नाफलं दृश्यते भुवि ।
अकृत्वा च पुनर्दुःखं कर्म पश्येन्महाफलम् ॥१३॥

प्रायः किया हुआ कर्म इस भूतलपर कभी निष्फल होता नहीं देखा जाता है; परंतु कर्म न करनेसे दुःखकी प्राप्ति ही देखनेमें आती है; अतः कर्मको महान् फलदायक समझना चाहिये ॥ १३ ॥

चेष्टामकुर्वँल्लभते यदि किंचिद् यदृच्छया ।
यो वा न लभते कृत्वा दुर्दर्शौ तावुभावपि ॥१४॥

यदि कोई पुरुषार्थ न करके दैवेच्छासे ही कुछ पा जाता है अथवा जो पुरुषार्थ करके भी कुछ नहीं पाता, इन दोनों प्रकारके मनुष्योंका मिलना बहुत कठिन है ॥ १४ ॥

शक्नोति जीवितुं दक्षो नालसः सुखमेधते ।
दृश्यन्ते जीवलोकेऽस्मिन् दक्षाः प्रायो हितैषिणः॥१५॥

पुरुषार्थमें लगा हुआ दक्ष पुरुष सुखसे जीवन-निर्वाह कर सकता है; परंतु आलसी मनुष्य कभी सुखी नहीं होता है। इस जीव-जगत्‌में प्रायः तत्परतापूर्वक कर्म करनेवाले ही अपना हित साधन करते देखे जाते हैं ॥ १५ ॥

यदि दक्षः समारम्भात् कर्मणो नाश्नुते फलम् ।
नास्य वाच्यं भवेत् किंचिल्लब्धव्यं वाधिगच्छति।१६।

यदि कार्य-दक्ष मनुष्य कर्मका आरम्भ करके भी उसका कोई फल नहीं पाता है तो उसके लिये उसकी कोई निन्दा नहीं की जाती अथवा वह अपने प्राप्तव्य लक्ष्यको पा ही लेता है ॥ १६ ॥

अकृत्वा कर्म यो लोके फलं विन्दति धिष्ठितः ।
स तु वक्तव्यतां याति द्वेष्यो भवति भूयशः ॥ १७ ॥

परंतु जो इस जगत्‌में कोई काम न करके बैठा-बैठा फल भोगता है; वह प्रायः निन्दित होता है और दूसरोंके द्वेषका पात्र बन जाता है ॥ १७ ॥

एवमेतदनादृत्य वर्तते यस्त्वतोऽन्यथा ।
स करोत्यात्मनोऽनर्थानेष बुद्धिमतां नयः ॥ १८ ॥

इस प्रकार जो पुरुष इस मतका अनादर करके इसके विपरीत बर्ताव करता है अर्थात् जो दैव और पुरुषार्थ दोनोंके सहयोगको न मानकर केवल एकके भरोसे ही बैठा रहता है, वह अपना ही अनर्थ करता है, यही बुद्धिमानोंकी नीति है ॥ १८ ॥

हीनं पुरुषकारेण यदि दैवेन वा पुनः ।
कारणाभ्यामथैताभ्यामुत्थानमफलं भवेत् ॥ १९ ॥

पुरुषार्थहीन दैव अथवा दैवहीन पुरुषार्थ—इन दो ही कारणोंसे मनुष्यका उद्योग निष्फल होता है ॥ १९ ॥

हीनं पुरुषकारेण कर्म त्विह न सिद्ध्यति ।
दैवतेभ्यो नमस्कृत्य यस्त्वर्थान् सम्यगीहते ॥ २० ॥
दक्षो दाक्षिण्यसम्पन्नो न स मोघैर्विहन्यते ।

पुरुषार्थके बिना तो यहाँ कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता । जो दैवको मस्तक झुकाकर सभी कार्योंके लिये भलीभाँति चेष्टा करता है, वह दक्ष एवं उदार पुरुष असफलताओंका शिकार नहीं होता ॥ २०½ ॥

सम्यगीहा पुनरियं यो वृद्धानुपसेवते ॥ २१ ॥
आपृच्छति च यच्छ्रेयः करोति च हितं वचः ।

यह भलीभाँति चेष्टा उसीकी मानी जाती है जो बड़े-बूढ़ोंकी सेवा करता है, उनसे अपने कल्याणकी बात पूछता है और उनके बताये हुए हितकारक वचनोंका पालन करता है ॥ २१½ ॥

उत्थायोत्थाय हि सदा प्रष्टव्या वृद्धसम्मताः ॥ २२ ॥
ते स्म योगे परं मूलं तन्मूला सिद्धिरुच्यते ।

प्रतिदिन सबेरे उठ-उठकर वृद्धजनोंद्वारा सम्मानित पुरुषोंसे अपने हितकी बात पूछनी चाहिये; क्योंकि वे अप्राप्तकी प्राप्ति करानेवाले उपायके मुख्य हेतु हैं । उनका बताया हुआ वह उपाय ही सिद्धिका मूल कारण कहा जाता है ॥ २२½ ॥

वृद्धानां वचनं श्रुत्वा योऽभ्युत्थानं प्रयोजयेत् ॥ २३ ॥
उत्थानस्य फलं सम्यक् तदा स लभतेऽचिरात्।

जो वृद्ध पुरुषोंका वचन सुनकर उसके अनुसार कार्य आरम्भ करता है, वह उस कार्यका उत्तम फल शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है ॥ २३½ ॥

रागात् क्रोधाद् भयाल्लोभाद् योऽर्थानीहति मानवः॥२४॥
अनीशश्चावमानी च स शीघ्रं भ्रश्यते श्रियः ।

अपने मनको वशमें न रखते हुए दूसरोंकी अवहेलना करनेवाला जो मानव राग, क्रोध, भय और लोभसे किसी कार्यकी सिद्धिके लिये चेष्टा करता है, वह बहुत जल्दी अपने ऐश्वर्यसे भ्रष्ट हो जाता है ॥ २४½ ॥

सोऽयं दुर्योधनेनार्थो लुब्धेनादीर्घदर्शिना ॥ २५ ॥

असमर्थ्यं समारब्धो मूढत्वादविचिन्तितः ।
हितबुद्धीननादृत्य सम्मन्त्र्यासाधुभिः सह ॥ २६ ॥
वार्यमाणोऽकरोद् वैरं पाण्डवैर्गुणवत्तरैः ।

दुर्योधन लोभी और अदूरदर्शी था। उसने मूर्खतावश न तो किसीका समर्थन प्राप्त किया और न स्वयं ही अधिक सोच-विचार किया। उसने अपना हित चाहनेवाले लोगोंका अनादर करके दुष्टोंके साथ सलाह की और सबके मना करनेपर भी अधिक गुणवान् पाण्डवोंके साथ वैर बाँध लिया ॥ २५-२६½ ॥

पूर्वमप्यतिदुःशीलो न धैर्यं कर्तुमर्हति ॥ २७ ॥
तपत्यर्थे विपन्ने हि मित्राणां न कृतं वचः ।

पहले भी वह बड़े दुष्ट स्वभावका था। धैर्य रखना तो वह जानता ही नहीं था। उसने मित्रोंकी बात नहीं मानी; इसलिये अब काम बिगड़ जानेपर पश्चात्ताप करता है ।२७½।

अनुवर्तामहे यत्तु तं वयं पापपूरुषम् ॥ २८ ॥
अस्मानप्यनयस्तस्मात् प्राप्तोऽयं दारुणो महान् ।

हमलोग जो उस पापीका अनुसरण करते हैं, इसीलिये हमें भी यह अत्यन्त दारुण अनर्थ प्राप्त हुआ है ॥ २८½ ॥

अनेन तु ममाद्यापि व्यसनेनोपतापिता ॥ २९ ॥
बुद्धिश्चिन्तयते किंचित् स्वं श्रेयो नावबुद्ध्यते ।

इस संकटसे सर्वथा संतप्त होनेके कारण मेरी बुद्धि आज बहुत सोचने-विचारनेपर भी अपने लिये किसी हितकर कार्यका निर्णय नहीं कर पाती है ॥ २९½ ॥

मुह्यता तु मनुष्येण प्रष्टव्याः सुहृदो जनाः ॥ ३० ॥
तत्रास्य बुद्धिर्विनयस्तत्र श्रेयश्च पश्यति ।

जब मनुष्य मोहके वशीभूत हो हिताहितका निर्णय करनेमें असमर्थ हो जाय, तब उसे अपने सुहृदोंसे सलाह लेनी चाहिये। वहीं उसे बुद्धि और विनयकी प्राप्ति हो सकती है और वहीं उसे अपने हितका साधन भी दिखायी देता है ३०½

ततोऽस्य मूलं कार्याणां बुद्ध्या निश्चित्य वै बुधाः॥३१॥
तेऽत्र पृष्टा यथा ब्रूयुस्तत् कर्तव्यं तथा भवेत् ।

पूछनेपर वे विद्वान् हितैषी अपनी बुद्धिसे उसके कार्योंके मूल कारणका निश्चय करके जैसी सलाह दें, वैसा ही उसे करना चाहिये ॥ ३१½ ॥

ते वयं धृतराष्ट्रं च गान्धारीं च समेत्य ह ॥ ३२ ॥
उपपृच्छामहे गत्वा विदुरं च महामतिम् ।

अतः हमलोग राजा धृतराष्ट्र, गान्धारी देवी तथा परम बुद्धिमान् विदुरजीके पास चलकर पूछें ॥ ३२½ ॥

ते पृष्टास्तु वदेयुर्यच्छ्रेयो नः समनन्तरम् ॥ ३३ ॥
तदस्माभिः पुनः कार्यमिति मे नैष्ठिकी मतिः ।

हमारे पूछनेपर वे लोग अब हमारे लिये जो श्रेयस्कर कार्य बतावें, वही हमें करना चाहिये; मेरी बुद्धिका तो यही दृढ़ निश्चय है ॥ ३३½ ॥

अनारम्भात् तु कार्याणां नार्थः सम्पद्यते क्वचित्॥३४॥
कृते पुरुषकारे तु येषां कार्यं न सिद्ध्यति ।
दैवेनोपहतास्ते तु नात्र कार्या विचारणा ॥ ३५ ॥

कार्यको आरम्भ न करनेसे कहीं कोई भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है; परंतु पुरुषार्थ करनेपर भी जिनका कार्य सिद्ध नहीं होता है, वे निश्चय ही दैवके मारे हुए हैं। इसमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये ॥ ३४-३५ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि द्रौणिकृपसंवादे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वमें अश्वत्थामा और कृपाचार्यका संवादविषयक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

अश्वत्थामाका कृपाचार्य और कृतवर्माको उत्तर देते हुए उन्हें अपना क्रूरतापूर्ण निश्चय बताना

संजय उवाच

कृपस्य वचनं श्रुत्वा धर्मार्थसहितं शुभम् ।
अश्वत्थामा महाराज दुःखशोकसमन्वितः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—महाराज! कृपाचार्यका वचन धर्म और अर्थसे युक्त तथा मङ्गलकारी था। उसे सुनकर अश्वत्थामा दुःख और शोकमें डूब गया ॥ १ ॥

दह्यमानस्तु शोकेन प्रदीप्तेनाग्निना यथा ।
क्रूरं मनस्ततः कृत्वा तावुभौ प्रत्यभाषत ॥ २ ॥

उसके हृदयमें शोककी आग प्रज्वलित हो उठी। वह उससे जलने लगा और अपने मनको कठोर बनाकर कृपाचार्य और कृतवर्मा दोनोंसे बोला— ॥ २ ॥

पुरुषे पुरुषे बुद्धिर्या या भवति शोभना ।
तुष्यन्ति च पृथक् सर्वे प्रज्ञया ते स्वया स्वया ॥ ३ ॥

'मामाजी! प्रत्येक मनुष्यमें जो पृथक्-पृथक् बुद्धि होती है, वही उसे सुन्दर जान पड़ती है। अपनी-अपनी उसी बुद्धिसे वे सब लोग अलग-अलग संतुष्ट रहते हैं ॥ ३ ॥

सर्वो हि मन्यते लोक आत्मानं बुद्धिमत्तरम् ।
सर्वस्यात्मा बहुमतः सर्वात्मानं प्रशंसति ॥ ४ ॥

'सभी लोग अपने आपको अधिक बुद्धिमान् समझते हैं। सबको अपनी ही बुद्धि अधिक महत्त्वपूर्ण जान पड़ती है और सब लोग अपनी ही बुद्धिकी प्रशंसा करते हैं ॥ ४ ॥

सर्वस्य हि स्वका प्रज्ञा साधुवादे प्रतिष्ठिता ।
परबुद्धिं च निन्दन्ति स्वां प्रशंसन्ति चासकृत् ॥ ५ ॥

'सबकी दृष्टिमें अपनी ही बुद्धि धन्यवाद पानेके योग्य ऊँचे पदपर प्रतिष्ठित जान पड़ती है। सब लोग दूसरोंकी बुद्धिकी निन्दा और अपनी बुद्धिकी बारंबार सराहना करते हैं ॥ ५ ॥

कारणान्तरयोगेन योगे येषां समागतिः ।

अन्योन्येन च तुष्यन्ति बहु मन्यन्ति चासकृत् ॥ ६ ॥

'यदि किन्हीं दूसरे कारणोंके संयोगसे एक समुदायमें जिनके-जिनके विचार परस्पर मिल जाते हैं, वे एक दूसरेसे संतुष्ट होते हैं और बारंबार एक दूसरेके प्रति अधिक सम्मान प्रकट करते हैं ॥ ६ ॥

तस्यैव तु मनुष्यस्य सा सा बुद्धिस्तदा तदा ।
कालयोगे विपर्यासं प्राप्यान्योन्यं विपद्यते ॥ ७ ॥

'किंतु समयके फेरसे उसी मनुष्यकी वही-वही बुद्धि विपरीत होकर परस्पर विरुद्ध हो जाती है ॥ ७ ॥

विचित्रत्वात् तु चित्तानां मनुष्याणां विशेषतः ।
चित्तवैक्लव्यमासाद्य सा सा बुद्धिः प्रजायते ॥ ८ ॥

'सभी प्राणियोंके विशेषतः मनुष्योंके चित्त एक दूसरेसे विलक्षण तथा भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं; अतः विभिन्न घटनाओंके कारण जो चित्तमें व्याकुलता होती है, उसका आश्रय लेकर भिन्न-भिन्न प्रकारकी बुद्धि पैदा हो जाती है ॥

यथा हि वैद्यः कुशलो ज्ञात्वा व्याधिं यथाविधि ।
भैषज्यं कुरुते योगात् प्रशमार्थमिति प्रभो ॥ ९ ॥
एवं कार्यस्य योगार्थं बुद्धिं कुर्वन्ति मानवाः ।
प्रज्ञया हि स्वया युक्तास्तां च निन्दन्ति मानवाः ॥ १० ॥

'प्रभो! जैसे कुशल वैद्य विधिपूर्वक रोगकी जानकारी प्राप्त करके उसकी शान्तिके लिये योग्यतानुसार औषध प्रदान करता है, इसी प्रकार मनुष्य कार्यकी सिद्धिके लिये अपनी विवेकशक्तिसे विचार करके किसी निश्चयात्मक बुद्धिका आश्रय लेते हैं; परंतु दूसरे लोग उसकी निन्दा करने लगते हैं ९-१०

अन्यया यौवने मर्त्यो बुद्ध्या भवति मोहितः ।
मध्येऽन्यया जरायां तु सोऽन्यां रोचयते मतिम् ॥ ११ ॥

'मनुष्य जवानीमें किसी और ही प्रकारकी बुद्धिसे मोहित होता है, मध्यम अवस्थामें दूसरी ही बुद्धिसे वह प्रभावित होता है; किंतु वृद्धावस्थामें उसे अन्य प्रकारकी ही बुद्धि अच्छी लगने लगती है ॥ ११ ॥

व्यसनं वा महाघोरं समृद्धिं चापि तादृशीम् ।
अवाप्य पुरुषो भोज कुरुते बुद्धिवैकृतम् ॥ १२ ॥

'भोज[1]! मनुष्य जब किसी अत्यन्त घोर संकटमें पड़ जाता है अथवा उसे किसी महान् ऐश्वर्यकी प्राप्ति हो जाती है, तब उस संकट और समृद्धिको पाकर उसकी बुद्धिमें क्रमशः शोक एवं हर्षरूपी विकार उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १२ ॥

एकस्मिन्नेव पुरुषे सा सा बुद्धिस्तदा तदा ।
भवत्यकृतधर्मत्वात् सा तस्यैव न रोचते ॥ १३ ॥

'उस विकारके कारण एक ही पुरुषमें उसी समय भिन्न-भिन्न प्रकारकी बुद्धि (विचारधारा) उत्पन्न हो जाती है; परंतु अवसरके अनुरूप न होनेपर उसकी अपनी ही बुद्धि उसीके लिये अरुचिकर हो जाती है ॥ १३ ॥

निश्चित्य तु यथाप्रज्ञं यां मतिं साधु पश्यति ।
तया प्रकुरुते भावं सा तस्योद्योगकारिका ॥ १४ ॥

'मनुष्य अपने विवेकके अनुसार किसी निश्चयपर पहुँचकर जिस बुद्धिको अच्छा समझता है, उसीके द्वारा कार्य-सिद्धिकी चेष्टा करता है। वही बुद्धि उसके उद्योगको सफल बनानेवाली होती है ॥ १४ ॥

सर्वो हि पुरुषो भोज साध्वेतदिति निश्चितः ।
कर्तुमारभते प्रीतो मारणादिषु कर्मसु ॥ १५ ॥

'कृतवर्मन्! सभी मनुष्य 'यह अच्छा कार्य है' ऐसा निश्चय करके प्रसन्नतापूर्वक कार्य आरम्भ करते हैं और हिंसा आदि कर्मोंमें भी लग जाते हैं ॥ १५ ॥

सर्वे हि बुद्धिमाज्ञाय प्रज्ञां वापि स्वकां नराः ।
चेष्टन्ते विविधां चेष्टां हितमित्येव जानते ॥ १६ ॥

'सब लोग अपनी ही बुद्धि अथवा विवेकका आश्रय लेकर तरह-तरहकी चेष्टाएँ करते हैं और उन्हें अपने लिये हितकर ही समझते हैं ॥ १६ ॥

उपजाता व्यसनजा येयमद्य मतिर्मम ।
युवयोस्तां प्रवक्ष्यामि मम शोकविनाशिनीम् ॥ १७ ॥

'आज संकटमें पड़नेसे मेरे अंदर जो बुद्धि पैदा हुई है, उसे मैं आप दोनोंको बता रहा हूँ। वह मेरे शोकका विनाश करनेवाली है ॥ १७ ॥

प्रजापतिः प्रजाः सृष्ट्वा कर्म तासु विधाय च ।
वर्णे वर्णे समाधत्ते ह्येकैकं गुणभाग् गुणम् ॥ १८ ॥

'गुणवान् प्रजापति ब्रह्माजी प्रजाओंकी सृष्टि करके उनके लिये कर्मका विधान करते हैं और प्रत्येक वर्णमें एक-एक विशेष गुणकी स्थापना कर देते हैं ॥ १८ ॥

ब्राह्मणे वेदमग्र्यं तु क्षत्रिये तेज उत्तमम् ।
दाक्ष्यं वैश्ये च शूद्रे च सर्ववर्णानुकूलताम् ॥ १९ ॥

'वे ब्राह्मणमें सर्वोत्तम वेद, क्षत्रियमें उत्तम तेज, वैश्यमें व्यापारकुशलता तथा शूद्रमें सब वर्णोंके अनुकूल चलनेकी वृत्तिको स्थापित कर देते हैं ॥ १९ ॥

अदान्तो ब्राह्मणोऽसाधुर्निस्तेजाः क्षत्रियोऽधमः ।
अदक्षो निन्द्यते वैश्यः शूद्रश्च प्रतिकूलवान् ॥ २० ॥

'मन और इन्द्रियोंको वशमें न रखनेवाला ब्राह्मण अच्छा नहीं माना जाता। तेजोहीन क्षत्रिय अधम समझा जाता है, जो व्यापारमें कुशल नहीं है, उस वैश्यकी निन्दा की जाती है और अन्य वर्णोंके प्रतिकूल चलनेवाले शूद्रको भी निन्दनीय माना जाता है ॥ २० ॥

सोऽस्मि जातः कुले श्रेष्ठे ब्राह्मणानां सुपूजिते ।
मन्दभाग्यतयास्म्येतं क्षत्रधर्ममनुष्ठितः ॥ २१ ॥

'मैं ब्राह्मणोंके परम सम्मानित श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ, तथापि दुर्भाग्यके कारण इस क्षत्रिय-धर्मका अनुष्ठान करता हूँ ॥ २१ ॥

क्षत्रधर्मं विदित्वाहं यदि ब्राह्मण्यमाश्रितः ।
प्रकुर्यां सुमहत् कर्म न मे तत् साधुसम्मतम् ॥ २२ ॥

'यदि क्षत्रियके धर्मको जानकर भी मैं ब्राह्मणत्वका सहारा लेकर कोई दूसरा महान् कर्म करने लगूँ तो सत्पुरुषोंके

[1] १. भोजका अर्थ है भोजवंशी कृतवर्मा ।

समाजमें मेरे उस कार्यका सम्मान नहीं होगा ॥ २२ ॥

धारयंश्च धनुर्दिव्यं दिव्यान्यस्त्राणि चाहवे ।
पितरं निहतं दृष्ट्वा किं नु वक्ष्यामि संसदि ॥२३ ॥

'मैं दिव्य धनुष और दिव्य अस्त्रोंको धारण करता हूँ तो भी युद्धमें अपने पिताको अन्यायपूर्वक मारा गया देखकर यदि उसका बदला न लूँ तो वीरोंकी सभामें क्या कहूँगा ? ॥

सोऽहमद्य यथाकामं क्षत्रधर्ममुपास्य तम् ।
गन्तास्मि पदवीं राज्ञः पितुश्चापि महात्मनः ॥ २४ ॥

'अतः आज मैं अपनी रुचिके अनुसार उस क्षत्रियधर्मका सहारा लेकर अपने महात्मा पिता तथा राजा दुर्योधनके पथका अनुसरण करूँगा ॥ २४ ॥

अद्य स्वप्स्यन्ति पञ्चाला विश्वस्ता जितकाशिनः।
विमुक्तयुग्यकवचा हर्षेण च समन्विताः ॥ २५ ॥
जयं मत्वाऽऽत्मनश्चैव श्रान्ता व्यायामकर्शिताः।

'आज अपनी जीत हुई जान विजयसे सुशोभित होनेवाले पाञ्चाल योद्धा बड़े हर्षमें भरकर कवच उतार, जूओंमें जुते हुए घोड़ोंको खोलकर बेखटके सो रहे होंगे। वे थके तो होंगे ही, विशेष परिश्रमके कारण चूर-चूर हो गये होंगे २५½

तेषां निशि प्रसुप्तानां सुस्थानां शिबिरे स्वके ॥ २६ ॥
अवस्कन्दं करिष्यामि शिबिरस्याद्य दुष्करम् ।

'रातमें सुस्थिर चित्तसे सोये हुए उन पाञ्चालोंके अपने ही शिबिरमें घुसकर मैं उन सबका संहार कर डालूँगा। समूचे शिबिरका ऐसा विनाश करूँगा जो दूसरोंके लिये दुष्कर है ॥ २६½ ॥

तानवस्कन्द्य शिबिरे प्रेतभूतविचेतसः ॥ २७ ॥
सूदयिष्यामि विक्रम्य मघवानिव दानवान् ।

'जैसे इन्द्र दानवोंपर आक्रमण करते हैं, उसी प्रकार मैं भी शिबिरमें मुर्दोंके समान अचेत पड़े हुए पाञ्चालोंकी छातीपर चढ़कर उन्हें पराक्रमपूर्वक मार डालूँगा ॥ २७½ ॥

अद्य तान् सहितान् सर्वान् धृष्टद्युम्नपुरोगमान् ॥२८॥
सूदयिष्यामि विक्रम्य कक्षं दीप्त इवानलः ।
निहत्य चैव पञ्चालान् शान्तिं लब्धास्मि सत्तम॥२९॥

'साधुशिरोमणे ! जैसे जलती हुई आग सूखे जंगल या तिनकोंकी राशिको जला डालती है, उसी प्रकार आज मैं एक साथ सोये हुए धृष्टद्युम्न आदि समस्त पाञ्चालोंपर आक्रमण करके उन्हें मौतके घाट उतार दूँगा। उनका संहार कर लेनेपर ही मुझे शान्ति मिलेगी ॥ २८-२९ ॥

पञ्चालेषु भविष्यामि सूदयन्नद्य संयुगे ।
पिनाकपाणिः संक्रुद्धः स्वयं रुद्रः पशुष्विव ॥ ३० ॥

'जैसे प्रलयके समय क्रोधमें भरे हुए साक्षात् पिनाकधारी रुद्र समस्त पशुओं (प्राणियों) पर आक्रमण करते हैं, उसी प्रकार आज युद्धमें मैं पाञ्चालोंका विनाश करता हुआ उनके लिये कालरूप हो जाऊँगा ॥ ३० ॥

अद्याहं सर्वपञ्चालान् निहत्य च निकृत्य च ।
अर्दयिष्यामि संहृष्टो रणे पाण्डुसुतांस्तथा ॥ ३१ ॥

'आज मैं रणभूमिमें समस्त पाञ्चालोंको मारकर उनके टुकड़े-टुकड़े करके हर्ष और उत्साहसे सम्पन्न हो पाण्डवोंको भी कुचल डालूँगा ॥ ३१ ॥

अद्याहं सर्वपञ्चालैः कृत्वा भूमिं शरीरिणीम् ।
प्रहृत्यैकैकशस्तेषु भविष्याम्यनृणः पितुः ॥ ३२ ॥

'आज समस्त पाञ्चालोंके शरीरोंसे रणभूमिको शरीरधारिणी बनाकर एक-एक पाञ्चालपर भरपूर प्रहार करके मैं अपने पिताके ऋणसे मुक्त हो जाऊँगा ॥ ३२ ॥

दुर्योधनस्य कर्णस्य भीष्मसैन्धवयोरपि ।
गमयिष्यामि पञ्चालान् पदवीमद्य दुर्गमाम् ॥ ३३ ॥

'आज पाञ्चालोंको दुर्योधन, कर्ण, भीष्म तथा जयद्रथके दुर्गम मार्गपर भेजकर छोड़ूँगा ॥ ३३ ॥

अद्य पाञ्चालराजस्य धृष्टद्युम्नस्य वै निशि।
नचिरात् प्रमथिष्यामि पशोरिव शिरो बलात्॥ ३४ ॥

'आज रातमें मैं शीघ्र ही पाञ्चालराज धृष्टद्युम्नके सिरको पशुके मस्तककी भाँति बलपूर्वक मरोड़ डालूँगा ॥ ३४ ॥

अद्य पाञ्चालपाण्डूनां शयितानात्मजान् निशि ।
खड्गेन निशितेनाजौ प्रमथिष्यामि गौतम ॥ ३५ ॥

'गौतम ! आज रातके युद्धमें सोये हुए पाञ्चालों और पाण्डवोंके पुत्रोंको भी मैं अपनी तीखी तलवारसे टूक-टूक कर दूँगा ॥ ३५ ॥

अद्य पाञ्चालसेनां तां निहत्य निशि सौप्तिके ।
कृतकृत्यः सुखी चैव भविष्यामि महामते ॥ ३६ ॥

'महामते ! आज रातको सोते समय उस पाञ्चालसेनाका वध करके मैं कृतकृत्य एवं सुखी हो जाऊँगा' ॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि द्रौणिमन्त्रणायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वमें अश्वत्थामाकी मन्त्रणाविषयक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

कृपाचार्यका कल प्रातःकाल युद्ध करनेकी सलाह देना और अश्वत्थामाका इसी रात्रिमें सोते हुओंको मारनेका आग्रह प्रकट करना

कृप उवाच

दिष्ट्या ते प्रतिकर्तव्ये मतिर्जातेयमच्युत ।
न त्वां वारयितुं शक्तो वज्रपाणिरपि स्वयम् ॥ १ ॥

कृपाचार्य बोले—तात ! तुम अपनी टेकसे टलनेवाले नहीं हो, सौभाग्यकी बात है कि तुम्हारे मनमें बदला लेनेका दृढ़ विचार उत्पन्न हुआ। तुम्हें साक्षात् वज्रधारी

इन्द्र भी इस कार्यसे रोक नहीं सकते ॥ १ ॥

अनुयास्यावहे त्वां तु प्रभाते सहितावुभौ।
अद्य रात्रौ विश्रमस्व विमुक्तकवचध्वजः ॥ २ ॥

आज रातमें कवच और ध्वजा खोलकर विश्राम करो। कल सबेरे हम दोनों एक साथ होकर तुम्हारे पीछे-पीछे चलेंगे ॥२॥

अहं त्वामनुयास्यामि कृतवर्मा च सात्वतः।
परानभिमुखं यान्तं रथावास्थाय दंशितौ ॥ ३ ॥

जब तुम शत्रुओंका सामना करनेके लिये आगे बढ़ोगे, उस समय मैं और सात्वतवंशी कृतवर्मा दोनों ही कवच धारण करके रथोंपर आरूढ़ हो तुम्हारे साथ चलेंगे ॥ ३ ॥

आवाभ्यां सहितः शत्रूञ्श्वो निहन्ता समागमे।
विक्रम्य रथिनां श्रेष्ठ पञ्चालान् सपदानुगान्॥ ४ ॥

रथियोंमें श्रेष्ठ वीर ! कल सबेरेके संग्राममें हम दोनोंके साथ रहकर तुम अपने शत्रु पाञ्चालों और उनके सेवकोंको बलपूर्वक मार डालना ॥ ४ ॥

शक्तस्त्वमसि विक्रम्य विश्रमस्व निशामिमाम्।
चिरं ते जाग्रतस्तात स्वप तावन्निशामिमाम् ॥ ५ ॥

तात ! तुम पराक्रम दिखाकर शत्रुओंका वध करनेमें समर्थ हो, अतः इस रातमें विश्राम कर लो। तुम्हें जागते हुए बहुत देर हो गयी है, अब इस रातमें सो लो ॥ ५ ॥

विश्रान्तश्च विनिद्रश्च स्वस्थचित्तश्च मानद।
समेत्य समरे शत्रून् वधिष्यसि न संशयः ॥ ६ ॥

मानद ! थकावट दूर करके नींद पूरी कर लेनेसे तुम्हारा चित्त स्वस्थ हो जायगा। फिर तुम समरभूमिमें जाकर शत्रुओं-का वध कर सकोगे, इसमें संशय नहीं है ॥ ६ ॥

न हि त्वां रथिनां श्रेष्ठं प्रगृहीतवरायुधम्।
जेतुमुत्सहते शश्वदपि देवेषु वासवः ॥ ७ ॥

तुम रथियोंमें श्रेष्ठ हो, तुमने अपने हाथमें उत्तम आयुध ले रक्खा है। तुम्हें देवताओंके राजा इन्द्र भी कभी जीतनेका साहस नहीं कर सकते हैं ॥ ७ ॥

कृपेण सहितं यान्तं गुप्तं च कृतवर्मणा।
को द्रौणिं युधि संरब्धं योधयेदपि देवराट् ॥ ८ ॥

जब कृतवर्मासे सुरक्षित हो द्रोणपुत्र अश्वत्थामा मुझ कृपाचार्यके साथ कुपित होकर युद्धके लिये प्रस्थान करेगा, उस समय कौन वीर, वह देवराज इन्द्र ही क्यों न हो, उसका सामना कर सकता है ? ॥ ८ ॥

ते वयं निशि विश्रान्ता विनिद्रा विगतज्वराः।
प्रभातायां रजन्यां वै निहनिष्याम शात्रवान् ॥ ९ ॥

अतः हमलोग रातमें विश्राम करके निद्रारहित और विगतज्वर हो प्रातःकाल अपने शत्रुओंका संहार करेंगे ॥९॥

तव ह्यस्त्राणि दिव्यानि मम चैव न संशयः।
सात्वतोऽपि महेष्वासो नित्यं युद्धेषु कोविदः ॥१०॥

इसमें संशय नहीं कि तुम्हारे और मेरे पास भी दिव्यास्त्र हैं तथा महाधनुर्धर कृतवर्मा भी युद्ध करनेकी कलामें सदा ही कुशल हैं ॥ १० ॥

ते वयं सहितास्तात सर्वाञ्शत्रून् समागतान्।
प्रसह्य समरे हत्वा प्रीतिं प्राप्स्याम पुष्कलाम् ॥ ११ ॥

तात ! हम सब लोग एक साथ होकर समराङ्गणमें सामने आये हुए समस्त शत्रुओंका संहार करके अत्यन्त हर्ष-का अनुभव करेंगे ॥ ११ ॥

विश्रमस्व त्वमव्यग्रः स्वप चेमां निशां सुखम्।
अहं च कृतवर्मा च त्वां प्रयान्तं नरोत्तमम् ॥ १२ ॥
अनुयास्याव सहितौ धन्विनौ परतापनौ।
रथिनं त्वरया यान्तं रथमास्थाय दंशितौ ॥ १३ ॥

तुम व्यग्रता छोड़कर विश्राम करो और इस रातमें सुखपूर्वक सो लो। कल सबेरे युद्धके लिये प्रस्थान करते समय तुम-जैसे नरश्रेष्ठ वीरके पीछे शत्रुओंको संताप देनेवाले हम और कृतवर्मा धनुष लेकर एक साथ चलेंगे। बड़ी उतावलीके साथ आगे बढ़ते हुए रथी अश्वत्थामाके साथ हम दोनों भी कवच धारण करके रथपर आरूढ़ हो यात्रा करेंगे ॥ १२-१३ ॥

स गत्वा शिबिरं तेषां नाम विश्राव्य चाहवे।
ततः कर्तासि शत्रूणां युध्यतां कदनं महत् ॥ १४ ॥

उस अवस्थामें शत्रुओंके शिबिरमें जाकर युद्धके लिये अपने नामकी घोषणा करके सामने आकर जूझते हुए उन शत्रुओंका बड़ा भारी संहार मचा देना ॥ १४ ॥

कृत्वा च कदनं तेषां प्रभाते विमलेऽहनि।
विहरस्व यथा शक्रः सूदयित्वा महासुरान् ॥ १५ ॥

जैसे इन्द्र बड़े-बड़े असुरोंका विनाश करके सुखपूर्वक विचरते हैं, उसी प्रकार तुम भी कल प्रातःकाल निर्मल दिन निकल आनेपर उन शत्रुओंका विनाश करके इच्छानुसार विहार करो ॥ १५ ॥

त्वं हि शक्तो रणे जेतुं पञ्चालानां वरूथिनीम्।
दैत्यसेनामिव क्रुद्धः सर्वदानवसूदनः ॥ १६ ॥

जैसे सम्पूर्ण दानवोंका संहार करनेवाले इन्द्र कुपित होनेपर दैत्योंकी सेनाको जीत लेते हैं, उसी प्रकार तुम भी रणभूमिमें पाञ्चालोंकी विशाल वाहिनीपर विजय पानेमें समर्थ हो ॥ १६ ॥

मया त्वां सहितं संख्ये गुप्तं च कृतवर्मणा।
न सहेत विभुः साक्षाद् वज्रपाणिरपि स्वयम् ॥ १७ ॥

युद्धस्थलमें जब तुम मेरे साथ खड़े होओगे और कृत-वर्मा तुम्हारी रक्षामें लगे होंगे, उस समय हाथमें वज्र लिये हुए साक्षात् देवसम्राट् इन्द्र भी तुम्हारा वेग नहीं सह सकेंगे ॥ १७ ॥

न चाहं समरे तात कृतवर्मा न चैव हि।
अनिर्जित्य रणे पाण्डून् न च यास्यामि कर्हिचित्॥ १८ ॥

तात ! समराङ्गणमें मैं और कृतवर्मा पाण्डवोंको परास्त किये बिना कभी पीछे नहीं हटेंगे ॥ १८ ॥

हत्वा च समरे क्रुद्धान् पञ्चालान् पाण्डुभिः सह।
निवर्तिष्यामहे सर्वे हता वा स्वर्गगा वयम् ॥ १९ ॥

समराङ्गणमें कुपित हुए पाञ्चालोंको पाण्डवोंसहित मारकर ही हम सब लोग पीछे हटेंगे अथवा स्वयं ही मारे जाकर स्वर्गलोककी राह लेंगे ॥ १९ ॥

सर्वोपायैः सहायास्ते प्रभाते वयमाहवे।
सत्यमेतन्महाबाहो प्रब्रवीमि तवानघ ॥ २० ॥

निष्पाप महाबाहु वीर ! कल प्रातःकाल हमलोग सभी उपायोंसे युद्धमें तुम्हारे सहायक होंगे। मैं तुमसे यह सच्ची बात कह रहा हूँ ॥ २० ॥

एवमुक्तस्ततो द्रौणिर्मातुलेन हितं वचः।
अब्रवीन्मातुलं राजन् क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ २१ ॥

राजन् ! मामाके इस प्रकार हितकारक वचन कहनेपर द्रोणकुमार अश्वत्थामाने क्रोधसे लाल आँखें करके उनसे कहा—॥ २१ ॥

आतुरस्य कुतो निद्रा नरस्यामर्षितस्य च।
अर्थांश्चिन्तयतश्चापि कामयानस्य वा पुनः।
तदिदं समनुप्राप्तं पश्य मेऽद्य चतुष्टयम् ॥ २२ ॥

'मामाजी ! जो मनुष्य शोकसे आतुर हो, अमर्षसे भरा हुआ हो, नाना प्रकारके कार्योंकी चिन्ता कर रहा हो अथवा किसी कामनामें आसक्त हो, उसे नींद कैसे आ सकती है ? देखिये, ये चारों बातें आज मेरे ऊपर एक साथ आ पड़ी हैं ॥ २२ ॥

यस्य भागश्चतुर्थो मे स्वप्नमह्नाय नाशयेत्।
किं नाम दुःखं लोकेऽस्मिन् पितुर्वधमनुस्मरन्॥ २३ ॥
हृदयं निर्दहन्मेऽद्य रात्र्यहानि न शाम्यति।

'इन चारोंका एक चौथाई भाग जो क्रोध है, वही मेरी निद्राको तत्काल नष्ट किये देता है। अपने पिताके वधकी घटनाका बारंबार स्मरण करके इस संसारमें कौन-सा ऐसा दुःख है, जिसका मुझे अनुभव न होता हो। वह दुःखकी आग रात-दिन मेरे हृदयको जलाती हुई अबतक बुझ नहीं पा रही है ॥ २३½ ॥

यथा च निहतः पापैः पिता मम विशेषतः ॥ २४ ॥
प्रत्यक्षमपि ते सर्वं तन्मे मर्माणि कृन्तति।
कथं हि मादृशो लोके मुहूर्तमपि जीवति ॥ २५ ॥

'इन पापियोंने विशेषतः मेरे पिताजीको जिस प्रकार मारा था, वह सब आपने प्रत्यक्ष देखा है। वह घटना मेरे मर्मस्थानोंको छेदे डालती है। ऐसी अवस्थामें मेरे-जैसा वीर इस जगत्में दो घड़ी भी कैसे जीवित रह सकता है ? ॥ २४-२५॥

द्रोणो हतेति यद् वाचः पञ्चालानां शृणोम्यहम्।
धृष्टद्युम्नमहत्वा तु नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ २६ ॥

'द्रोणाचार्य धृष्टद्युम्नके हाथसे मारे गये' यह बात जब मैं पाञ्चालोंके मुखसे सुनता आ रहा हूँ, तब धृष्टद्युम्नका वध किये बिना जीवित नहीं रह सकता ॥ २६ ॥

स मे पितुर्वधाद् वध्यः पञ्चाला ये च संगताः।
विलापो भग्नसक्थस्य यस्तु राज्ञो मया श्रुतः॥ २७ ॥
स पुनर्हृदयं कस्य क्रूरस्यापि न निर्दहेत्।

'धृष्टद्युम्न तो पिताजीका वध करनेके कारण मेरा वध्य होगा और उसके सङ्गी-साथी जो पाञ्चाल हैं, वे भी उसका साथ देनेके कारण मारे जायँगे। इधर, जिसकी जाँघें तोड़ डाली गयी हैं, उस राजा दुर्योधनका जो विलाप मैंने अपने कानों सुना है, वह किस क्रूर मनुष्यके भी हृदयको शोक-दग्ध नहीं कर देगा ? ॥ २७½ ॥

कस्य ह्यकरुणस्यापि नेत्राभ्यामश्रु नाव्रजेत् ॥ २८ ॥
नृपतेर्भग्नसक्थस्य श्रुत्वा तादृग् वचः पुनः।

'टूटी जाँघवाले राजा दुर्योधनकी वैसी बात पुनः सुनकर किस निष्ठुरके भी नेत्रोंसे आँसू नहीं बह चलेगा ? ॥ २८½॥

यश्चायं मित्रपक्षो मे मयि जीवति निर्जितः ॥ २९ ॥
शोकं मे वर्धयत्येष वारिवेग इवार्णवम्।
एकाग्रमनसो मेऽद्य कुतो निद्रा कुतः सुखम् ॥ ३० ॥

'मेरे जीते-जी जो यह मेरा मित्र-पक्ष परास्त हो गया, वह मेरे शोककी उसी प्रकार वृद्धि कर रहा है, जैसे जलका वेग समुद्रको बढ़ा देता है। आज मेरा मन एक ही कार्यकी ओर लगा हुआ है, फिर मुझे नींद कैसे आ सकती है और मुझे सुख भी कैसे मिल सकता है ? ॥ २९-३० ॥

वासुदेवार्जुनाभ्यां च तानहं परिरक्षितान्।
अविषह्यतमान् मन्ये महेन्द्रेणापि सत्तम ॥ ३१ ॥

'सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ मामाजी ! पाण्डव और पाञ्चाल जब श्रीकृष्ण और अर्जुनसे सुरक्षित हों, उस दशामें मैं उन्हें देवराज इन्द्रके लिये भी अत्यन्त असह्य एवं अजेय मानता हूँ ॥३१॥

न चापि शक्तः संयन्तुं कोपमेतं समुत्थितम्।
तं न पश्यामि लोकेऽस्मिन् यो मां कोपान्निवर्तयेत्॥३२॥

'इस समय जो क्रोध उत्पन्न हुआ है, इसे मैं स्वयं भी रोक नहीं सकता। इस संसारमें किसी भी ऐसे पुरुषको नहीं देख रहा हूँ, जो मुझे क्रोधसे दूर हटा दे ॥ ३२ ॥

तथैव निश्चिता बुद्धिरेषा साधु मता मम।
वार्तिकैः कथ्यमानस्तु मित्राणां मे पराभवः ॥ ३३ ॥
पाण्डवानां च विजयो हृदयं दहतीव मे।

'इसी प्रकार मैंने जो अपनी बुद्धिमें शत्रुओंके संहारका यह दृढ़ निश्चय कर लिया है, यही मुझे अच्छा प्रतीत होता है। जब संदेशवाहक दूत मेरे मित्रोंकी पराजय और पाण्डवोंकी विजयका समाचार कहने लगते हैं, तब वह मेरे हृदयको दग्ध-सा कर देता है ॥ ३३½ ॥

अहं तु कदनं कृत्वा शत्रूणामद्य सौप्तिके।
ततो विश्रमिता चैव स्वप्ता च विगतज्वरः ॥ ३४ ॥

'मैं तो आज सोते समय शत्रुओंका संहार करके निश्चिन्त होनेपर ही विश्राम करूँगा और नींद लूँगा' ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि द्रौणिमन्त्रणायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वमें अश्वत्थामाकी मन्त्रणाविषयक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

अश्वत्थामा और कृपाचार्यका संवाद तथा तीनोंका पाण्डवोंके शिबिरकी ओर प्रस्थान

कृप उवाच

शुश्रूषुरपि दुर्मेधाः पुरुषोऽनियतेन्द्रियः।
नालं वेदयितुं कृत्स्नौ धर्मार्थाविति मे मतिः॥ १॥

कृपाचार्य बोले—अश्वत्थामन्! मेरा विचार है कि जिस मनुष्यकी बुद्धि दुर्भावनासे युक्त है तथा जिसने अपनी इन्द्रियोंको काबूमें नहीं रखा है, वह धर्म और अर्थकी बातोंको सुननेकी इच्छा रखनेपर भी उन्हें पूर्णरूपसे समझ नहीं सकता॥ १॥

तथैव तावन्मेधावी विनयं यो न शिक्षते।
न च किंचन जानाति सोऽपि धर्मार्थनिश्चयम्॥ २॥

इसी प्रकार मेधावी होनेपर भी जो मनुष्य विनय नहीं सीखता, वह भी धर्म और अर्थके निर्णयको थोड़ा भी नहीं समझ पाता है॥ २॥

चिरं ह्यपि जडः शूरः पण्डितं पर्युपास्य हि।
न स धर्मान् विजानाति दर्वी सूपरसानिव॥ ३॥

जिसकी बुद्धिपर जडता छा रही हो, वह शूरवीर योद्धा दीर्घकालतक विद्वान्की सेवामें रहनेपर भी धर्मोंका रहस्य नहीं जान पाता। ठीक उसी तरह, जैसे करछुल दालमें डूबी रहनेपर भी उसके स्वादको नहीं जानती है॥ ३॥

मुहूर्तमपि तं प्राज्ञः पण्डितं पर्युपास्य हि।
क्षिप्रं धर्मान् विजानाति जिह्वा सूपरसानिव॥ ४॥

जैसे जिह्वा दालके स्वादको जानती है, उसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुष यदि दो घड़ी भी विवेकशीलकी सेवामें रहे तो वह शीघ्र ही धर्मोंका रहस्य जान लेता है॥ ४॥

शुश्रूषुस्त्वेव मेधावी पुरुषो नियतेन्द्रियः।
जानीयादागमान् सर्वान् ग्राह्यं च न विरोधयेत्॥ ५॥

अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला मेधावी पुरुष यदि विद्वानोंकी सेवामें रहे और उनसे कुछ सुननेकी इच्छा रक्खे तो वह सम्पूर्ण शास्त्रोंको समझ लेता है तथा ग्रहण करने योग्य वस्तुका विरोध नहीं करता॥ ५॥

अनेयस्त्ववमानी यो दुरात्मा पापपूरुषः।
दिष्टमुत्सृज्य कल्याणं करोति बहुपापकम्॥ ६॥

परंतु जिसे सन्मार्गपर नहीं ले जाया जा सकता, जो दूसरोंकी अवहेलना करनेवाला है तथा जिसका अन्तःकरण दूषित है, यह पापात्मा पुरुष बताये हुए कल्याणकारी पथको छोड़कर बहुत-से पापकर्म करने लगता है॥ ६॥

नाथवन्तं तु सुहृदः प्रतिषेधन्ति पातकात्।
निवर्तते तु लक्ष्मीवान् नालक्ष्मीवान् निवर्तते॥ ७॥

जो सनाथ है, उसे उसके हितैषी सुहृद् पापकर्मोंसे रोकते हैं, जो भाग्यवान् है—जिसके भाग्यमें सुख भोगना बदा है, वह मना करनेपर उस पापकर्मसे रुक जाता है; परंतु जो भाग्यहीन है, वह उस दुष्कर्मसे नहीं निवृत्त होता है॥ ७॥

यथा ह्युच्चावचैर्वाक्यैः क्षिप्तचित्तो नियम्यते।
तथैव सुहृदा शक्यो न शक्यस्त्ववसीदति॥ ८॥

जैसे मनुष्य विक्षिप्त चित्तवाले पागलको नाना प्रकारके ऊँच-नीच वचनोंद्वारा समझा-बुझाकर या डरा-धमकाकर काबूमें लाते हैं, उसी प्रकार सुहृद्गण भी अपने स्वजनको समझा-बुझाकर और डाँट-डपटकर वशमें रखनेकी चेष्टा करते हैं। जो वशमें आ जाता है, वह तो सुखी होता है और जो किसी तरह काबूमें नहीं आ सकता, वह दुःख भोगता है॥ ८॥

तथैव सुहृदं प्राज्ञं कुर्वाणं कर्म पापकम्।
प्राज्ञाः सम्प्रतिषेधन्ति यथाशक्ति पुनः पुनः॥ ९॥

इसी तरह विद्वान् पुरुष पापकर्ममें प्रवृत्त होनेवाले अपने बुद्धिमान् सुहृद्को भी यथाशक्ति बारंबार मना करते हैं॥ ९॥

स कल्याणे मनः कृत्वा नियम्यात्मानमात्मना।
कुरु मे वचनं तात येन पश्चान्न तप्यसे॥ १०॥

तात! तुम भी स्वयं ही अपने मनको काबूमें करके उसे कल्याणसाधनमें लगाकर मेरी बात मानो, जिससे तुम्हें पश्चात्ताप न करना पड़े॥ १०॥

न वधः पूज्यते लोके सुप्तानामिह धर्मतः।
तथैवापास्तशस्त्राणां विमुक्तरथवाजिनाम्॥ ११॥
ये च ब्रूयुस्तवास्मीति ये च स्युः शरणागताः।
विमुक्तमूर्धजा ये च ये चापि हतवाहनाः॥ १२॥

जो सोये हुए हों, जिन्होंने अस्त्र-शस्त्र रख दिये हों, रथ और घोड़े खोल दिये हों, 'जो मैं आपका ही हूँ' ऐसा कह रहे हों, जो शरणमें आ गये हों, जिनके बाल खुले हुए हों तथा जिनके वाहन नष्ट हो गये हों, इस लोकमें ऐसे लोगोंका वध करना धर्मकी दृष्टिसे अच्छा नहीं समझा जाता ११-१२

अद्य स्वप्स्यन्ति पञ्चाला विमुक्तकवचा विभो।
विश्वस्ता रजनीं सर्वे प्रेता इव विचेतसः॥ १३॥
यस्तेषां तदवस्थानां द्रुह्येत पुरुषोऽनृजुः।
व्यक्तं स नरके मज्जेदगाधे विपुलेऽप्लवे॥ १४॥

प्रभो! आज रातमें समस्त पाञ्चाल कवच उतारकर निश्चिन्त हो मुर्दोंके समान अचेत सो रहे होंगे। उस अवस्थामें जो क्रूर मनुष्य उनके साथ द्रोह करेगा, वह निश्चय ही नौकारहित अगाध एवं विशाल नरकके समुद्रमें डूब जायगा॥ १३-१४॥

सर्वास्त्रविदुषां लोके श्रेष्ठस्त्वमसि विश्रुतः।
न च ते जातु लोकेऽस्मिन् सुसूक्ष्ममपि किल्बिषम्॥

संसारके सम्पूर्ण अस्त्रवेत्ताओंमें तुम श्रेष्ठ हो। तुम्हारी सर्वत्र ख्याति है। इस जगत्में अबतक कभी तुम्हारा छोटे-से-छोटा दोष भी देखनेमें नहीं आया है॥ १५॥

त्वं पुनः सूर्यसंकाशः श्वोभूत उदिते रवौ।
प्रकाशे सर्वभूतानां विजेता युधि शात्रवान्॥ १६॥

कल सबेरे सूर्योदय होनेपर तुम सूर्यके समान प्रकाशित हो उजालेमें युद्ध छेड़कर समस्त प्राणियोंके सामने पुनः शत्रुओंपर विजय प्राप्त करना॥ १६॥

असम्भावितरूपं हि त्वयि कर्म विगर्हितम्।
शुक्ले रक्तमिव न्यस्तं भवेदिति मतिर्मम॥ १७॥

जैसे सफेद वस्त्रमें लाल रंगका धब्बा लग जाय, उस प्रकार तुममें निन्दित कर्मका होना सम्भावनासे परेकी बात है, ऐसा मेरा विश्वास है॥ १७॥

अश्वत्थामोवाच

एवमेव यथाऽऽत्थ त्वं मातुलेह न संशयः।
तैस्तु पूर्वमयं सेतुः शतधा विदलीकृतः॥ १८॥

अश्वत्थामा बोला—मामाजी! आप जैसा कहते हैं, निःसंदेह वही ठीक है; परंतु पाण्डवोंने ही पहले इस धर्म-मर्यादाके सैकड़ों टुकड़े कर डाले हैं॥ १८॥

प्रत्यक्षं भूमिपालानां भवतां चापि संनिधौ।
न्यस्तशस्त्रो मम पिता धृष्टद्युम्नेन पातितः॥ १९॥

धृष्टद्युम्नने समस्त राजाओंके सामने और आपलोगोंके निकट ही मेरे उस पिताको मार गिराया, जिन्होंने अस्त्र-शस्त्र रख दिये थे॥ १९॥

कर्णश्च पतिते चक्रे रथस्य रथिनां वरः।
उत्तमे व्यसने मग्नो हतो गाण्डीवधन्वना॥ २०॥

रथियोंमें श्रेष्ठ कर्णको भी गाण्डीवधारी अर्जुनने उस अवस्थामें मारा था, जब कि उनके रथका पहिया गड्ढेमें गिरकर फँस गया था और इसीलिये वे भारी संकटमें पड़े हुए थे॥ २०॥

तथा शान्तनवो भीष्मो न्यस्तशस्त्रो निरायुधः।
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य हतो गाण्डीवधन्वना॥ २१॥

इसी प्रकार शान्तनुनन्दन भीष्म जब हथियार डालकर अस्त्रहीन हो गये, उस अवस्थामें शिखण्डीको आगे करके गाण्डीवधारी धनंजयने उनका वध किया था॥ २१॥

भूरिश्रवा महेष्वासस्तथा प्रायगतो रणे।
क्रोशतां भूमिपालानां युयुधानेन पातितः॥ २२॥

महाधनुर्धर भूरिश्रवा तो रणभूमिमें अनशन व्रत लेकर बैठ गये थे। उस अवस्थामें समस्त भूमिपाल चिल्ला-चिल्लाकर रोकते ही रह गये; परंतु सात्यकिने उन्हें मार गिराया॥ २२॥

दुर्योधनश्च भीमेन समेत्य गदया रणे।
पश्यतां भूमिपालानामधर्मेण निपातितः॥ २३॥

भीमसेनने भी सम्पूर्ण राजाओंके देखते-देखते रणभूमिमें गदायुद्ध करते समय दुर्योधनको अधर्मपूर्वक गिराया था॥

एकाकी बहुभिस्तत्र परिवार्य महारथैः।
अधर्मेण नरव्याघ्रो भीमसेनेन पातितः॥ २४॥

नरश्रेष्ठ राजा दुर्योधन अकेला था और बहुत-से महारथियोंने उसे वहाँ घेर रक्खा था, उस दशामें भीमसेनने उसको धराशायी किया है॥ २४॥

विलापो भग्नसक्थस्य यो मे राज्ञः परिश्रुतः।
वार्तिकाणां कथयतां स मे मर्माणि कृन्तति॥ २५॥

टूटी जाँघोंवाले राजा दुर्योधनका जो विलाप मैंने सुना है और संदेशवाहक दूतोंके मुखसे जो समाचार मुझे ज्ञात हुआ है, वह सब मेरे मर्मस्थानोंको विदीर्ण किये देता है॥ २५॥

एवं चाधार्मिकाः पापाः पञ्चाला भिन्नसेतवः।
तानेवं भिन्नमर्यादान् किं भवान् न निगर्हति॥ २६॥

इस प्रकार वे सब-के-सब पापी और अधार्मिक हैं। पाञ्चालोंने भी धर्मकी मर्यादा तोड़ डाली है। इस तरह मर्यादा भङ्ग करनेवाले उन पाण्डवों और पाञ्चालोंकी आप निन्दा क्यों नहीं करते हैं?॥ २६॥

पितृहन्तॄनहं हत्वा पञ्चालान् निशि सौप्तिके।
कामं कीटः पतङ्गो वा जन्म प्राप्य भवामि वै॥ २७॥

पिताकी हत्या करनेवाले पाञ्चालोंका रातको सोते समय वध करके मैं भले ही दूसरे जन्ममें कीट या पतङ्ग हो जाऊँ, सब कुछ स्वीकार है॥ २७॥

त्वरे चाहमनेनाद्य यदिदं मे चिकीर्षितम्।
तस्य मे त्वरमाणस्य कुतो निद्रा कुतः सुखम्॥ २८॥

इस समय मैं जो कुछ करना चाहता हूँ, उसीको पूर्ण करनेके उद्देश्यसे उतावला हो रहा हूँ। इतनी उतावलीमें रहते हुए मुझे नींद कहाँ और सुख कहाँ?॥ २८॥

न स जातः पुमाँल्लोके कश्चिन्न स भविष्यति।
यो मे व्यावर्तयेदेतां वधे तेषां कृतां मतिम्॥ २९॥

इस संसारमें ऐसा कोई पुरुष न तो पैदा हुआ है और न होगा ही, जो उन पाञ्चालोंके वधके लिये किये गये मेरे इस दृढ़ निश्चयको पलट दे॥ २९॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा महाराज द्रोणपुत्रः प्रतापवान्।
एकान्ते योजयित्वाश्वान् प्रायादभिमुखः परान्॥ ३०॥

संजय कहते हैं—महाराज! ऐसा कहकर प्रतापी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा एकान्तमें घोड़ोंको जोतकर शत्रुओंकी ओर चल दिया॥ ३०॥

तमब्रूतां महात्मानौ भोजशारद्वतावुभौ।
किमर्थं स्यन्दनो युक्तः किं च कार्यं चिकीर्षितम्॥ ३१॥

उस समय भोजवंशी कृतवर्मा और शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य दोनों महामनस्वी वीरोंने उससे कहा—'अश्वत्थामन्! तुमने किस लिये रथको जोता है? तुम इस समय कौन-सा कार्य करना चाहते हो?॥ ३१॥

एकसार्थप्रयातौ स्वस्त्वया सह नरर्षभ।
समदुःखसुखौ चापि नावां शङ्कितुमर्हसि॥ ३२॥

'नरश्रेष्ठ! हम दोनों एक साथ तुम्हारी सहायताके लिये चले हैं। तुम्हारे दुःख-सुखमें हमारा समान भाग होगा, तुम्हें हम दोनोंपर संदेह नहीं करना चाहिये'॥ ३२॥

अश्वत्थामा तु संक्रुद्धः पितुर्वधमनुस्मरन्।
ताभ्यां तथ्यं तथाऽऽचख्यौ यदस्यात्मचिकीर्षितम्॥

उस समय अश्वत्थामा पिताके वधका स्मरण करके रोषसे आगबबूला हो रहा था। उसके मनमें जो कुछ करनेकी इच्छा थी, वह सब उसने उन दोनोंसे ठीक-ठीक कह सुनाया॥ ३३॥

हत्वा शतसहस्राणि योधानां निशितैः शरैः।
न्यस्तशस्त्रो मम पिता धृष्टद्युम्नेन पातितः॥ ३४॥

वह बोला—'मेरे पिता अपने तीखे बाणोंसे लाखों योद्धाओंका वध करके जब अस्त्र-शस्त्र नीचे डाल चुके थे, उस अवस्थामें धृष्टद्युम्नने उन्हें मारा है॥ ३४॥

तं तथैव हनिष्यामि न्यस्तधर्माणमद्य वै।
पुत्रं पाञ्चालराजस्य पापं पापेन कर्मणा॥ ३५॥

'अतः धर्मका परित्याग करनेवाले उस पापी पाञ्चाल-राजकुमारको भी मैं उसी प्रकार पापकर्मद्वारा ही मार डालूँगा॥

कथं च निहतः पापः पाञ्चाल्यः पशुवन्मया।
शस्त्रेण विजिताँल्लोकान् नाप्नुयादिति मे मतिः॥३६॥

'मेरा ऐसा निश्चय है कि मेरे हाथसे पशुकी भाँति मारे गये पापी पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नको किसी तरह भी अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा मिलनेवाले पुण्यलोकोंकी प्राप्ति न हो!! ३६॥

क्षिप्रं संनद्धकवचौ सखड्गावात्तकार्मुकौ।
मामास्थाय प्रतीक्षेतां रथवर्यौ परंतपौ॥ ३७॥

'आप दोनों रथियोंमें श्रेष्ठ और शत्रुओंको संताप देनेवाले वीर हैं। शीघ्र ही कवच बाँधकर खड्ग और धनुष लेकर रथपर बैठ जाइये तथा मेरी प्रतीक्षा कीजिये'॥३७॥

इत्युक्त्वा रथमास्थाय प्रायादभिमुखः परान्।
तमन्वगात् कृपो राजन् कृतवर्मा च सात्वतः॥ ३८॥

राजन्! ऐसा कहकर अश्वत्थामा रथपर आरूढ़ हो शत्रुओंकी ओर चल दिया। कृपाचार्य और सात्वतवंशी कृतवर्मा भी उसीके मार्गका अनुसरण करने लगे॥ ३८॥

ते प्रयाता व्यरोचन्त परानभिमुखास्त्रयः।
हूयमाना यथा यज्ञे समिद्धा हव्यवाहनाः॥ ३९॥

शत्रुओंकी ओर जाते समय वे तीनों तेजस्वी वीर यज्ञमें आहुति पाकर प्रज्वलित हुए तीन अग्नियोंकी भाँति प्रकाशित हो रहे थे॥ ३९॥

ययुश्च शिबिरं तेषां सम्प्रसुप्तजनं विभो।
द्वारदेशं तु सम्प्राप्य द्रौणिस्तस्थौ महारथः॥ ४०॥

प्रभो! वे तीनों पाण्डवों और पाञ्चालोंके उस शिबिरके पास गये, जहाँ सब लोग सो गये थे। शिबिरके द्वारपर पहुँचकर महारथी अश्वत्थामा खड़ा हो गया॥ ४०॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि द्रौणिगमने पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वमें अश्वत्थामाका प्रयाणविषयक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५॥

षष्ठोऽध्यायः

अश्वत्थामाका शिबिर-द्वारपर एक अद्भुत पुरुषको देखकर उसपर अस्त्रोंका प्रहार करना और अस्त्रोंके अभावमें चिन्तित हो भगवान् शिवकी शरणमें जाना

धृतराष्ट्र उवाच

द्वारदेशे ततो द्रौणिमवस्थितमवेक्ष्य तौ।
अकुर्वातां भोजकृपौ किं संजय वदस्व मे॥ १॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! अश्वत्थामाको शिबिरके द्वारपर खड़ा देख कृतवर्मा और कृपाचार्यने क्या किया? यह मुझे बताओ॥ १॥

संजय उवाच

कृतवर्माणमामन्त्र्य कृपं च स महारथः।
द्रौणिर्मन्युपरीतात्मा शिबिरद्वारमागमत्॥ २॥

संजयने कहा—राजन्! कृतवर्मा और कृपाचार्यको आमन्त्रित करके महारथी अश्वत्थामा क्रोधपूर्ण हृदयसे शिबिरके द्वारपर आया॥ २॥

तत्र भूतं महाकायं चन्द्रार्कसदृशद्युतिम्।
सोऽपश्यद् द्वारमाश्रित्य तिष्ठन्तं लोमहर्षणम्॥ ३॥
वसानं चर्म वैयाघ्रं महारुधिरविस्रवम्।
कृष्णाजिनोत्तरासङ्गं नागयज्ञोपवीतिनम्॥ ४॥
बाहुभिः स्वायतैः पीनैर्नानाप्रहरणोद्यतैः।
बद्धाङ्गदमहासर्पं ज्वालामालाकुलाननम्॥ ५॥
दंष्ट्राकरालवदनं व्यादितास्यं भयानकम्।
नयनानां सहस्रैश्च विचित्रैरभिभूषितम्॥ ६॥

वहाँ उसने चन्द्रमा और सूर्यके समान तेजस्वी एक विशालकाय अद्भुत प्राणीको देखा, जो द्वार रोककर खड़ा था, उसे देखते ही रोंगटे खड़े हो जाते थे। उस महापुरुषने व्याघ्रका ऐसा चर्म धारण कर रक्खा था, जिससे बहुत अधिक रक्त चू रहा था, वह काले मृगचर्मकी चादर ओढ़े और सर्पोंका यज्ञोपवीत पहने हुए था। उसकी विशाल और मोटी भुजाएँ नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये प्रहार करनेको उद्यत जान पड़ती थीं। उनमें बाजूबंदोंके स्थानमें बड़े-बड़े सर्प बँधे हुए थे तथा उसका मुख आगकी लपटोंसे व्याप्त दिखायी देता था। उसने मुँह फैला रक्खा था, जो दाढ़ोंके कारण विकराल जान पड़ता था। वह भयानक पुरुष सहस्रों विचित्र नेत्रोंसे सुशोभित था॥ ३-६॥

नैव तस्य वपुः शक्यं प्रवक्तुं वेष एव च।
सर्वथा तु तदालक्ष्य स्फुटेयुरपि पर्वताः॥ ७॥

उसके शरीर और वेषका वर्णन नहीं किया जा सकता। सर्वथा उसे देख लेनेपर पर्वत भी भयके मारे विदीर्ण हो सकते थे॥ ७॥

तस्यास्यान्नासिकाभ्यां च श्रवणाभ्यां च सर्वशः।
तेभ्यश्चाक्षिसहस्रेभ्यः प्रादुरासन् महार्चिषः ॥ ८ ॥

उसके मुखसे, दोनों नासिकाओंसे, कानोंसे और हजारों नेत्रोंसे भी सब ओर आगकी बड़ी-बड़ी लपटें निकल रही थीं॥

तथा तेजोमरीचिभ्यः शङ्खचक्रगदाधराः।
प्रादुरासन् हृषीकेशाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ९ ॥

उसके तेजकी किरणोंसे शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले सैकड़ों, हजारों विष्णु प्रकट हो रहे थे ॥ ९ ॥

तदत्यद्भुतमालोक्य भूतं लोकभयंकरम्।
द्रौणिरव्यथितो दिव्यैरस्त्रवर्षैरवाकिरत् ॥ १० ॥

सम्पूर्ण जगत्को भयभीत करनेवाले उस अद्भुत प्राणीको देखकर द्रोणकुमार अश्वत्थामा भयभीत नहीं हुआ, अपितु उसके ऊपर दिव्य अस्त्रोंकी वर्षा करने लगा ॥ १० ॥

द्रौणिमुक्ताञ्छरांस्तांस्तु तद् भूतं महदग्रसत्।
उदधेरिव वार्योघान् पावको वडवामुखः ॥ ११ ॥

परंतु जैसे बडवानल समुद्रकी जलराशिको पी जाता है, उसी प्रकार उस महाभूतने अश्वत्थामाके छोड़े हुए सारे बाणोंको अपना ग्रास बना लिया ॥ ११ ॥

अग्रसत् तांस्तथाभूतं द्रौणिना प्रहिताञ्शरान्।
अश्वत्थामा तु सम्प्रेक्ष्य शरौघांस्तान् निरर्थकान्॥१२॥
रथशक्तिं मुमोचासौ दीप्तामग्निशिखामिव।

अश्वत्थामाने जो-जो बाण छोड़े, उन सबको वह महाभूत निगल गया। अपने बाण-समूहोंको व्यर्थ हुआ देख अश्वत्थामाने प्रज्वलित अग्निशिखाके समान देदीप्यमान रथशक्ति छोड़ी ॥ १२½ ॥

सा तमाहत्य दीप्ताग्रा रथशक्तिरदीर्यत ॥ १३ ॥
युगान्ते सूर्यमाहत्य महोल्केव दिवश्च्युता।

उसका अग्रभाग तेजसे प्रकाशित हो रहा था। वह रथशक्ति उस महापुरुषसे टकराकर उसी प्रकार विदीर्ण हो गयी, जैसे प्रलयकालमें आकाशसे गिरी हुई बड़ी भारी उल्का सूर्यसे टकराकर नष्ट हो जाती है ॥ १३½ ॥

अथ हेमत्सरुं दिव्यं खड्गमाकाशवर्चसम् ॥ १४ ॥
कोशात् समुद्ववर्हाशु बिलाद् दीप्तमिवोरगम्।

तब अश्वत्थामाने सोनेकी मूँठसे सुशोभित तथा आकाशके समान निर्मल कान्तिवाली अपनी दिव्य तलवार तुरंत ही म्यानसे बाहर निकाली, मानो प्रज्वलित सर्पको बिलसे बाहर निकाला गया हो ॥ १४½ ॥

ततः खड्गवरं धीमान् भूताय प्राहिणोत् तदा ॥ १५ ॥
स तदासाद्य भूतं वै बिलं नकुलवद् ययौ।

फिर बुद्धिमान् द्रोणपुत्रने वह अच्छी-सी तलवार तत्काल ही उस महाभूतपर चला दी; परंतु वह उसके शरीरमें लगकर उसी तरह बिलीन हो गयी, जैसे कोई नेवला बिलमें घुस गया हो ॥ १५½ ॥

ततः स कुपितो द्रौणिरिन्द्रकेतुनिभां गदाम् ॥ १६ ॥
ज्वलन्तीं प्राहिणोत् तस्मै भूतं तामपि चाग्रसत्।

तदनन्तर कुपित हुए अश्वत्थामाने उसके ऊपर अपनी इन्द्रध्वजके समान प्रकाशित होनेवाली गदा चलायी; परंतु वह भूत उसे भी लील गया ॥ १६½ ॥

ततः सर्वायुधाभावे वीक्षमाणस्ततस्ततः ॥ १७ ॥
अपश्यत् कृतमाकाशमनाकाशं जनार्दनैः।

इस प्रकार जब उसके सारे अस्त्र-शस्त्र समाप्त हो गये, तब वह इधर-उधर देखने लगा। उस समय उसे सारा आकाश असंख्य विष्णुओंसे भरा दिखायी दिया ॥ १७½ ॥

तदद्भुततमं दृष्ट्वा द्रोणपुत्रो निरायुधः ॥ १८ ॥
अब्रवीदतिसंतप्तः कृपवाक्यमनुस्मरन्।

अस्त्रहीन अश्वत्थामा यह अत्यन्त अद्भुत दृश्य देखकर कृपाचार्यके वचनोंका बारंबार स्मरण करता हुआ अत्यन्त संतप्त हो उठा और मन-ही-मन इस प्रकार कहने लगा—॥

ब्रुवतामप्रियं पथ्यं सुहृदां न शृणोति यः ॥ १९ ॥
स शोचत्यापदं प्राप्य यथाहमतिवर्त्य तौ।

'जो पुरुष अप्रिय किंतु हितकर वचन बोलनेवाले अपने सुहृदोंकी सीख नहीं सुनता है, वह विपत्तिमें पड़कर उसी तरह शोक करता है, जैसे मैं अपने उन दोनों सुहृदोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके कष्ट पा रहा हूँ ॥ १९½ ॥

शास्त्रदृष्टानविद्वान् यः समतीत्य जिघांसति ॥ २० ॥
स पथः प्रच्युतो धर्मात् कुपथे प्रतिहन्यते।

'जो मूर्ख शास्त्रदर्शी पुरुषोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके दूसरोंकी हिंसा करना चाहता है, वह धर्ममार्गसे भ्रष्ट हो कुमार्गमें पड़कर स्वयं ही मारा जाता है ॥ २०½ ॥

गोब्राह्मणनृपस्त्रीषु सख्युर्मातुर्गुरोस्तथा ॥ २१ ॥
हीनप्राणजडान्धेषु सुप्तभीतोत्थितेषु च।
मत्तोन्मत्तप्रमत्तेषु न शस्त्राणि च पातयेत् ॥ २२ ॥

'गौ, ब्राह्मण, राजा, स्त्री, मित्र, माता, गुरु, दुर्बल, जड, अन्धे, सोये हुए, डरे हुए, मतवाले, उन्मत्त और असावधान पुरुषोंपर मनुष्य शस्त्र न चलाये ॥ २१-२२ ॥

इत्येवं गुरुभिः पूर्वमुपदिष्टं नृणां सदा।
सोऽहमुत्क्रम्य पन्थानं शास्त्रदिष्टं सनातनम् ॥ २३ ॥
अमार्गेणैवमारभ्य घोरामापदमागतः।

'इस प्रकार गुरुजनोंने पहले-से ही सब लोगोंको सदाके लिये यह शिक्षा दे रक्खी है। परंतु मैं उस शास्त्रोक्त सनातन मार्गका उल्लङ्घन करके बिना रास्तेके ही चलकर इस प्रकार अनुचित कर्मका आरम्भ करके भयंकर आपत्तिमें पड़ गया हूँ ॥ २३½ ॥

तां चापदं घोरतरां प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ २४ ॥
यदुद्यम्य महत् कृत्यं भयादपि निवर्तते।
अशक्तश्चैव तत् कर्तुं कर्म शक्तिबलादिह ॥ २५ ॥

'मनीषी पुरुष उसीको अत्यन्त भयंकर आपत्ति बताते हैं, जब कि मनुष्य किसी महान् कार्यका आरम्भ करके भयके कारण भी उससे पीछे हट जाता है और शक्ति-बलसे यहाँ उस कर्मको करनेमें असमर्थ हो जाता है ॥ २४-२५ ॥

न हि दैवाद् गरीयो वै मानुषं कर्म कथ्यते ।
मानुष्यं कुर्वतः कर्म यदि दैवान्न सिध्यति ॥ २६ ॥
स पथः प्रच्युतो धर्माद् विपदं प्रतिपद्यते ।

'मानव-कर्म (पुरुषार्थ) को दैवसे बढ़कर नहीं बताया गया है। पुरुषार्थ करते समय यदि दैववश सिद्धि नहीं प्राप्त हुई तो मनुष्य धर्ममार्गसे भ्रष्ट होकर विपत्तिमें फँस जाता है॥

प्रतिज्ञानं ह्यविज्ञानं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ २७ ॥
यदारभ्य क्रियां काञ्चिद् भयादिह निवर्तते ।

'यदि मनुष्य किसी कार्यको आरम्भ करके यहाँ भयके कारण उससे निवृत्त हो जाता है तो ज्ञानी पुरुष उसकी उस कार्यको करनेकी प्रतिज्ञाको अज्ञान या मूर्खता बताते हैं ॥

तदिदं दुष्प्रणीतेन भयं मां समुपस्थितम् ॥ २८ ॥
न हि द्रोणसुतः संख्ये निवर्तेत कथंचन ।
इदं च सुमहद् भूतं दैवदण्डमिवोद्यतम् ॥ २९ ॥

'इस समय अपने ही दुष्कर्मके कारण मुझपर यह भय आ पहुँचा है। द्रोणाचार्यका पुत्र किसी प्रकार भी युद्धसे पीछे नहीं हट सकता; परंतु क्या करूँ, यह महाभूत मेरे मार्गमें विघ्न डालनेके लिये दैवदण्डके समान उठ खड़ा हुआ है ॥ २८-२९ ॥

न चैतदभिजानामि चिन्तयन्नपि सर्वथा ।
ध्रुवं येयमधर्मे मे प्रवृत्ता कलुषा मतिः ॥ ३० ॥
तस्याः फलमिदं घोरं प्रतिघाताय कल्पते ।
तदिदं दैवविहितं मम संख्ये निवर्तनम् ॥ ३१ ॥

'मैं सब प्रकारसे सोचने-विचारनेपर भी नहीं समझ पाता कि यह कौन है ? निश्चय ही जो मेरी यह कलुषित बुद्धि अधर्ममें प्रवृत्त हुई है, उसीका विघात करनेके लिये यह भयंकर परिणाम सामने आया है, अतः आज युद्धसे मेरा पीछे हटना दैवके विधानसे ही सम्भव हुआ है ।३०-३१।

नान्यत्र दैवादुद्यन्तुमिह शक्यं कथंचन ।
सोऽहमद्य महादेवं प्रपद्ये शरणं विभुम् ॥ ३२ ॥
दैवदण्डमिमं घोरं स हि मे नाशयिष्यति ।

'दैवकी अनुकूलताके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है, जिससे किसी प्रकार फिर यहाँ युद्धविषयक उद्योग किया जा सके; इसलिये आज मैं सर्वव्यापी भगवान् महादेवजीकी शरण लेता हूँ। वे ही मेरे सामने आये हुए इस भयानक दैवदण्डका नाश करेंगे ॥ ३२½ ॥

कपर्दिनं देवदेवमुमापतिमनामयम् ॥ ३३ ॥
कपालमालिनं रुद्रं भगनेत्रहरं हरम् ।
स हि देवोऽत्यगाद् देवांस्तपसा विक्रमेण च ।
तस्माच्छरणमभ्येमि गिरिशं शूलपाणिनम् ॥ ३४ ॥

'भगवान् शङ्कर तपस्या और पराक्रममें सब देवताओंसे बढ़कर हैं; अतः मैं उन्हीं रोग-शोकसे रहित, जटाजूटधारी, देवताओंके भी देवता, भगवती उमाके प्राणवल्लभ, कपाल-मालाधारी, भगनेत्र-विनाशक, पापहारी, त्रिशूलधारी एवं पर्वतपर शयन करनेवाले रुद्रदेवकी शरणमें जाता हूँ'।३३-३४।

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि द्रौणिचिन्तायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वमें अश्वत्थामाकी चिन्ताविषयक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

अश्वत्थामाद्वारा शिवकी स्तुति, उसके सामने एक अग्निवेदी तथा भूतगणोंका प्राकट्य और उसका आत्मसमर्पण करके भगवान् शिवसे खड्ग प्राप्त करना

संजय उवाच

एवं संचिन्तयित्वा तु द्रोणपुत्रो विशाम्पते ।
अवतीर्य रथोपस्थाद् देवेशं प्रणतः स्थितः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—प्रजानाथ ! ऐसा सोचकर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा रथकी बैठकसे उतर पड़ा और देवेश्वर महादेवजी-को प्रणाम करके खड़ा हो इस प्रकार स्तुति करने लगा ॥१॥

द्रौणिरुवाच

उग्रं स्थाणुं शिवं रुद्रं शर्वमीशानमीश्वरम् ।
गिरिशं वरदं देवं भवभावनमीश्वरम् ॥ २ ॥
शितिकण्ठमजं शुक्रं दक्षक्रतुहरं हरम् ।
विश्वरूपं विरूपाक्षं बहुरूपमुमापतिम् ॥ ३ ॥
श्मशानवासिनं दृप्तं महागणपतिं विभुम् ।
खट्वाङ्गधारिणं रुद्रं जटिलं ब्रह्मचारिणम् ॥ ४ ॥
मनसा सुविशुद्धेन दुष्करेणाल्पचेतसा ।
सोऽहमात्मोपहारेण यक्ष्ये त्रिपुरघातिनम् ॥ ५ ॥

अश्वत्थामा बोला—प्रभो ! आप उग्र, स्थाणु, शिव, रुद्र, शर्व, ईशान, ईश्वर और गिरिश आदि नामोंसे प्रसिद्ध वरदायक देवता तथा सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न करनेवाले परमेश्वर हैं। आपके कण्ठमें नील चिह्न है। आप अजन्मा एवं शुद्धात्मा हैं। आपने ही दक्षके यज्ञका विनाश किया है। आप ही संहारकारी हर, विश्वरूप, भयानक नेत्रोंवाले, अनेक रूपधारी तथा उमादेवीके प्राणनाथ हैं । आप श्मशानमें निवास करते हैं। आपको अपनी शक्तिपर गर्व है। आप अपने महान् गणोंके अधिपति, सर्वव्यापी तथा खट्वाङ्गधारी हैं, उपासकोंका दुःख दूर करनेवाले रुद्र हैं, मस्तकपर जटा धारण करनेवाले ब्रह्मचारी हैं। आपने त्रिपुरासुरका विनाश किया है। मैं विशुद्ध हृदयसे अपने आपकी बलि देकर, जो मन्दमति मानवोंके लिये अति दुष्कर है, आपका यजन करूँगा॥

स्तुतं स्तुत्यं स्तूयमानममोघं कृत्तिवाससम् ।
विलोहितं नीलकण्ठमसह्यं दुर्निवारणम् ॥ ६ ॥
शुक्रं ब्रह्मसृजं ब्रह्म ब्रह्मचारिणमेव च ।
व्रतवन्तं तपोनिष्ठमनन्तं तपतां गतिम् ॥ ७ ॥
बहुरूपं गणाध्यक्षं त्र्यक्षं पारिषदप्रियम् ।

धनाध्यक्षेक्षितमुखं गौरीहृदयवल्लभम् ॥ ८ ॥
कुमारपितरं पिङ्गं गोवृषोत्तमवाहनम् ।
तनुवाससमत्युग्रमुमाभूषणतत्परम् ॥ ९ ॥
परं परेभ्यः परमं परं यस्मान्न विद्यते ।
इष्वस्त्रोत्तमभर्तारं दिगन्तं देशरक्षिणम् ॥ १० ॥
हिरण्यकवचं देवं चन्द्रमौलिविभूषणम् ।
प्रपद्ये शरणं देवं परमेण समाधिना ॥ ११ ॥

पूर्वकालमें आपकी स्तुति की गयी है, भविष्यमें भी आप स्तुतिके योग्य बने रहेंगे और वर्तमानकालमें भी आपकी स्तुति की जाती है। आपका कोई भी संकल्प या प्रयत्न व्यर्थ नहीं होता। आप व्याघ्र-चर्ममय वस्त्र धारण करते हैं, लोहितवर्ण और नीलकण्ठ हैं। आपके वेगको सहन करना असम्भव है और आपको रोकना सर्वथा कठिन है। आप शुद्धस्वरूप ब्रह्म हैं। आपने ही ब्रह्माजीकी सृष्टि की है। आप ब्रह्मचारी, व्रतधारी तथा तपोनिष्ठ हैं, आपका कहीं अन्त नहीं है। आप तपस्वी जनोंके आश्रय, बहुत-से रूप धारण करनेवाले तथा गणपति हैं। आपके तीन नेत्र हैं। अपने पार्षदोंको आप बहुत प्रिय हैं। धनाध्यक्ष कुबेर सदा आपका मुख निहारा करते हैं। आप गौराङ्गिनी गिरिराजनन्दिनीके हृदय-वल्लभ हैं। कुमार कार्तिकेयके पिता भी आप ही हैं। आपका वर्ण पिङ्गल है। वृषभ आपका श्रेष्ठ वाहन है। आप अत्यन्त सूक्ष्म वस्त्र धारण करनेवाले और अत्यन्त उग्र हैं। उमा देवीको विभूषित करनेमें तत्पर रहते हैं। ब्रह्मा आदि देवताओंसे श्रेष्ठ और परात्पर हैं। आपसे श्रेष्ठ दूसरा कोई नहीं है। आप उत्तम धनुष धारण करनेवाले, दिगन्तव्यापी तथा सब देशोंके रक्षक हैं। आपके श्रीअङ्गोंमें सुवर्णमय कवच शोभा पाता है। आपका स्वरूप दिव्य है तथा आप चन्द्रमय मुकुटसे विभूषित होते हैं। मैं अपने चित्तको पूर्णतः एकाग्र करके आप परमेश्वरकी शरणमें आता हूँ ॥ ६–११ ॥

इमां चेदापदं घोरां तराम्यद्य सुदुष्कराम् ।
सर्वभूतोपहारेण यक्ष्येऽहं शुचिना शुचिम् ॥ १२ ॥

यदि मैं आज इस अत्यन्त दुष्कर और भयंकर विपत्तिसे पार पा जाऊँ तो मैं सर्वभूतमय पवित्र उपहार समर्पित करके आप परम पावन परमेश्वरकी पूजा करूँगा ॥ १२ ॥

इति तस्य व्यवसितं ज्ञात्वा योगात् सुकर्मणः ।
पुरस्तात् काञ्चनी वेदी प्रादुरासीन्महात्मनः ॥ १३ ॥

इस प्रकार अश्वत्थामाका दृढ़ निश्चय जानकर उसके शुभकर्मके योगसे उस महामनस्वी वीरके आगे एक सुवर्णमयी वेदी प्रकट हुई ॥ १३ ॥

तस्यां वेद्यां तदा राजंश्चित्रभानुरजायत ।
स दिशो विदिशः खं च ज्वालाभिरिव पूरयन्॥ १४ ॥

राजन्! उस वेदीपर तत्काल ही अग्निदेव प्रकट हो गये, जो अपनी ज्वालाओंसे सम्पूर्ण दिशाओं-विदिशाओं और आकाशको परिपूर्ण-सा कर रहे थे ॥ १४ ॥

दीप्तास्यनयनाश्चात्र नैकपादशिरोभुजाः ।
रत्नचित्राङ्गदधराः समुद्यतकरास्तथा ॥ १५ ॥
द्वीपशैलप्रतीकाशाः प्रादुरासन् महागणाः ।

वहाँ बहुत-से महान् गण प्रकट हो गये, जो द्वीपवर्ती पर्वतोंके समान बहुत ऊँचे कदके थे। उनके मुख और नेत्र दीप्तिसे दमक रहे थे। उन गणोंके पैर, मस्तक और भुजाएँ अनेक थीं। वे अपनी बाहोंमें रत्न-निर्मित विचित्र अङ्गद धारण किये हुए थे। उन सबने अपने हाथ ऊपर उठा रक्खे थे ॥ १५½ ॥

श्ववराहोष्ट्ररूपाश्च हयगोमायुगोमुखाः ॥ १६ ॥
ऋक्षमार्जारवदना व्याघ्रद्वीपिमुखास्तथा ।
काकवक्त्राः प्लवमुखाः शुकवक्त्रास्तथैव च ॥ १७ ॥
महाजगरवक्त्राश्च हंसवक्त्राः सितप्रभाः ।
दार्वाघाटमुखाश्चापि चाषवक्त्राश्च भारत ॥ १८ ॥

उनके रूप कुत्ते, सूअर और ऊँटोंके समान थे; मुँह घोड़ों, गीदड़ों और गाय-बैलोंके समान जान पड़ते थे। किन्हींके मुख रीछोंके समान थे तो किन्हींके बिलावोंके समान। कोई बाघोंके समान मुँहवाले थे तो कोई चीतोंके। कितने ही गणोंके मुख कौओं, वानरों, तोतों, बड़े-बड़े अजगरों और हंसोंके समान थे। भारत! कितनोंकी कान्ति भी हंसोंके समान सफेद थी, कितने ही गणोंके मुख कठफोरवा पक्षी और नीलकण्ठके समान थे ॥ १६–१८ ॥

कूर्मनक्रमुखाश्चैव शिशुमारमुखास्तथा ।
महामकरवक्त्राश्च तिमिवक्त्रास्तथैव च ॥ १९ ॥
हरिवक्त्राः क्रौञ्चमुखाः कपोतेभमुखास्तथा ।
पारावतमुखाश्चैव मद्गुवक्त्रास्तथैव च ॥ २० ॥

इसी प्रकार बहुत-से गण कछुए, नाके, सूँस, बड़े-बड़े मगर, तिमि नामक मत्स्य, मोर, क्रौञ्च (कुरर), कबूतर, हाथी, परेवा तथा मद्गु नामक जलपक्षीके समान मुखवाले थे ॥ १९-२० ॥

पाणिकर्णाः सहस्राक्षास्तथैव च महोदराः ।
निर्मांसाः काकवक्त्राश्च श्येनवक्त्राश्च भारत ॥ २१ ॥
तथैवाशिरसो राजन्नृक्षवक्त्राश्च भारत ।
प्रदीप्तनेत्रजिह्वाश्च ज्वालावर्णास्तथैव च ॥ २२ ॥

किन्हींके हाथोंमें ही कान थे। कितने ही हजार-हजार नेत्र और लंबे पेटवाले थे। कितनोंके शरीर मांसरहित, हड्डियोंके ढाँचे मात्र थे। भरतनन्दन! कोई कौओंके समान मुखवाले थे तो कोई बाजके समान। राजन्! किन्हीं-किन्हींके तो सिर ही नहीं थे। भारत! कोई-कोई भालूके समान मुखवाले थे। उन सबके नेत्र और जिह्वाएँ तेजसे प्रज्वलित हो रही थीं। अङ्गोंकी कान्ति आगकी ज्वालाके समान जान पड़ती थी ॥ २१-२२ ॥

ज्वालाकेशाश्च राजेन्द्र ज्वलद्रोमचतुर्भुजाः ।
मेषवक्त्रास्तथैवान्ये तथा छागमुखा नृप ॥ २३ ॥

राजेन्द्र! उनके केश भी अग्नि-शिखाके समान प्रतीत होते थे। उनका रोम-रोम प्रज्वलित हो रहा था। उन सबके

चार भुजाएँ थीं। नरेश्वर! कितने ही गणोंके मुख भेड़ों और बकरोंके समान थे ॥ २३ ॥

शङ्खाभाः शङ्खवक्त्राश्च शङ्खवर्णास्तथैव च।
शङ्खमालापरिकराः शङ्खध्वनिसमस्वनाः ॥ २४ ॥

कितनोंके मुख, वर्ण और कान्ति शङ्खके सदृश थे। वे शङ्खकी मालाओंसे अलङ्कृत थे और उनके मुखसे शङ्खध्वनिके समान ही शब्द प्रकट होते थे ॥ २४ ॥

जटाधराः पञ्चशिखास्तथा मुण्डाः कृशोदराः।
चतुर्दंष्ट्राश्चतुर्जिह्वाः शङ्कुकर्णाः किरीटिनः ॥ २५ ॥

कोई समूचे सिरपर जटा धारण करते थे, कोई पाँच शिखाएँ रखते थे और कितने ही मूड़ मुड़ाये रहते थे। बहुतोंके उदर अत्यन्त कृश थे, कितनोंके चार दाढ़ें और चार जिह्वाएँ थीं। किन्हींके कान खूँटीके समान जान पड़ते थे और कितने ही पार्षद अपने मस्तकपर किरीट धारण करते थे ॥ २५ ॥

मौञ्जीधराश्च राजेन्द्र तथा कुञ्चितमूर्धजाः।
उष्णीषिणो मुकुटिनश्चारुवक्त्राः स्वलङ्कृताः ॥ २६ ॥

राजेन्द्र! कोई मूँजकी मेखला पहने हुए थे, किन्हींके सिरके बाल घुँघराले दिखायी देते थे, कोई पगड़ी धारण किये हुए थे तो कोई मुकुट। कितनोंके मुख बड़े ही मनोहर थे। कितने ही सुन्दर आभूषणोंसे विभूषित थे ॥ २६ ॥

पद्मोत्पलापीडधरास्तथा मुकुटधारिणः।
माहात्म्येन च संयुक्ताः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २७ ॥

कोई अपने मस्तकपर कमलों और कुमुदोंका किरीट धारण करते थे। बहुतोंने विशुद्ध मुकुट धारण कर रक्खा था। वे भूतगण सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें थे और सभी अद्भुत माहात्म्यसे सम्पन्न थे ॥ २७ ॥

शतघ्नीवज्रहस्ताश्च तथा मुसलपाणयः।
भुशुण्डीपाशहस्ताश्च दण्डहस्ताश्च भारत ॥ २८ ॥

भारत! उनके हाथोंमें शतघ्नी, वज्र, मूसल, भुशुण्डी, पाश और दण्ड शोभा पाते थे ॥ २८ ॥

पृष्ठेषु बद्धेषुधयश्चित्रबाणोत्कटास्तथा।
सध्वजाः सपताकाश्च सघण्टाः सपरश्वधाः ॥ २९ ॥

उनकी पीठोंपर तरकस बँधे थे। वे विचित्र बाण लिये युद्धके लिये उन्मत्त जान पड़ते थे। उनके पास ध्वजा, पताका, घंटे और फरसे मौजूद थे ॥ २९ ॥

महापाशोद्यतकरास्तथा लगुडपाणयः।
स्थूणाहस्ताः खड्गहस्ताः सर्पोच्छ्रितकिरीटिनः॥ ३० ॥

उन्होंने अपने हाथोंमें बड़े-बड़े पाश उठा रक्खे थे, कितनोंके हाथोंमें डंडे, खम्भे और खड्ग शोभा पाते थे तथा कितनोंके मस्तकपर सर्पोंके उन्नत किरीट सुशोभित होते थे ॥

महासर्पाङ्गदधराश्चित्राभरणधारिणः।
रजोध्वस्ताः पङ्कदिग्धाः सर्वे शुक्लाम्बरस्रजः ॥ ३१ ॥

कितनोंने बाजूबंदोंके स्थानमें बड़े-बड़े सर्प धारण कर रक्खे थे। कितने ही विचित्र आभूषणोंसे विभूषित थे, बहुतोंके शरीर धूलि-धूसर हो रहे थे। कितने ही अपने अङ्गोंमें कीचड़ लपेटे हुए थे। उन सबने श्वेत वस्त्र और श्वेत फूलोंकी माला धारण कर रक्खी थी ॥ ३१ ॥

नीलाङ्गाः पिङ्गलाङ्गाश्च मुण्डवक्त्रास्तथैव च।
भेरीशङ्खमृदङ्गांश्च झर्झरानकगोमुखान् ॥ ३२ ॥
अवादयन् पारिषदाः प्रहृष्टाः कनकप्रभाः।
गायमानास्तथैवान्ये नृत्यमानास्तथा परे ॥ ३३ ॥

कितनोंके अङ्ग नील और पिङ्गलवर्णके थे। कितनोंने अपने मस्तकके बाल मुँड़वा दिये। कितने ही सुनहरी प्रभासे प्रकाशित हो रहे थे। वे सभी पार्षद हर्षसे उत्फुल्ल हो भेरी, शङ्ख, मृदङ्ग, झाँझ, ढोल और गोमुख बजा रहे थे। कितने ही गीत गा रहे थे और दूसरे बहुत-से पार्षद नाच रहे थे ॥

लङ्घयन्तः प्लवन्तश्च वल्गन्तश्च महारथाः।
धावन्तो जवना मुण्डाः पवनोद्धूतमूर्धजाः ॥ ३४ ॥

वे महारथी भूतगण उछलते, कूदते और लाँघते हुए बड़े वेगसे दौड़ रहे थे। उनमेंसे कितने तो माथ मुँड़ाये हुए थे और कितनोंके सिरके बाल हवाके झोंकेसे ऊपरकी ओर उठ गये थे ॥ ३४ ॥

मत्ता इव महानागा विनदन्तो मुहुर्मुहुः।
सुभीमा घोररूपाश्च शूलपट्टिशपाणयः ॥ ३५ ॥

वे मतवाले गजराजोंके समान बारंबार गर्जना करते थे। उनके हाथोंमें शूल और पट्टिश दिखायी देते थे। वे घोर रूपधारी और भयंकर थे ॥ ३५ ॥

नानाविरागवसनाश्चित्रमाल्यानुलेपनाः।
रत्नचित्राङ्गदधराः समुद्यतकरास्तथा ॥ ३६ ॥

उनके वस्त्र नाना प्रकारके रंगोंमें रँगे हुए थे। वे विचित्र माला और चन्दनसे अलङ्कृत थे। उन्होंने रत्ननिर्मित विचित्र अङ्गद धारण कर रक्खे थे और उन सबके हाथ ऊपरकी ओर उठे हुए थे ॥ ३६ ॥

हन्तारो द्विषतां शूराः प्रसह्यासह्यविक्रमाः।
पातारोऽसृग्वसौघानां मांसान्त्रकृतभोजनाः ॥ ३७ ॥

वे शूरवीर पार्षद हठपूर्वक शत्रुओंका वध करनेमें समर्थ थे। उनका पराक्रम असह्य था। वे रक्त और वसा पीते तथा आँत और मांस खाते थे ॥ ३७ ॥

चूडालाः कर्णिकाराश्च प्रहृष्टाः पिठरोदराः।
अतिह्रस्वातिदीर्घाश्च प्रलम्बाश्चातिभैरवाः ॥ ३८ ॥

कितनोंके मस्तकपर शिखाएँ थीं। कितने ही कनेरके फूल धारण करते थे। बहुतेरे पार्षद अत्यन्त हर्षसे खिल उठे थे। कितनोंके पेट बटलोई या कड़ाहीके समान जान पड़ते थे। कोई बहुत नाटे, कोई बहुत मोटे, कोई बहुत लंबे और कोई अत्यन्त भयंकर थे ॥ ३८ ॥

विकटाः काललम्बोष्ठा बृहच्छेफाण्डपिण्डिकाः।
महार्हनानामुकटा मुण्डाश्च जटिलाः परे ॥ ३९ ॥

कितनोंके आकार बहुत विकट थे, कितनोंके काले-काले और लंबे ओठ लटक रहे थे, किन्हींके लिङ्ग बड़े थे तो किन्हीं-

के अण्डकोष। किन्हींके मस्तकोंपर नाना प्रकारके बहुमूल्य मुकुट शोभा पाते थे, कुछ लोग मथमुंडे थे और कुछ जटाधारी ॥

सार्केन्दुग्रहनक्षत्रां द्यां कुर्युस्ते महीतले।
उत्सहेरंश्च ये हन्तुं भूतग्रामं चतुर्विधम् ॥ ४० ॥

वे सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह और नक्षत्रोंसहित सम्पूर्ण आकाश-मण्डलको पृथ्वीपर गिरा सकते थे और चार प्रकारके समस्त प्राणि-समुदायका संहार करनेमें समर्थ थे ॥ ४० ॥

ये च वीतभया नित्यं हरस्य भ्रुकुटीसहाः।
कामकारकरा नित्यं त्रैलोक्यस्येश्वरेश्वराः ॥ ४१ ॥

वे सदा निर्भय होकर भगवान् शंकरके भ्रूभंगको सहन करनेवाले थे। प्रतिदिन इच्छानुसार कार्य करते और तीनों लोकोंके ईश्वरोंपर भी शासन कर सकते थे ॥ ४१ ॥

नित्यानन्दप्रमुदिता वागीशा वीतमत्सराः।
प्राप्याष्टगुणमैश्वर्यं ये न यास्यन्ति वै स्मयम् ॥ ४२ ॥

वे पार्षद नित्य आनन्दमें मग्न रहते थे, वाणीपर उनका अधिकार था। उनके मनमें किसीके प्रति ईर्ष्या और द्वेष नहीं रह गये थे। वे अणिमा-महिमा आदि आठ प्रकारके ऐश्वर्यको पाकर भी कभी अभिमान नहीं करते थे ॥ ४२ ॥

येषां विस्मयते नित्यं भगवान् कर्मभिर्हरः।
मनोवाक्कर्मभिर्युक्तैर्नित्यमाराधितश्च यैः ॥ ४३ ॥

साक्षात् भगवान् शंकर भी प्रतिदिन उनके कर्मोंको देखकर आश्चर्यचकित हो जाते थे। वे मन, वाणी और क्रियाओं-द्वारा सदा सावधान रहकर महादेवजीकी आराधना करते थे ॥

मनोवाक्कर्मभिर्भक्तान् पाति पुत्रानिवौरसान्।
पिबन्तोऽसृग्वसाश्चान्ये क्रुद्धा ब्रह्मद्विषां सदा ॥ ४४ ॥

मन, वाणी और कर्मसे अपने प्रति भक्ति रखनेवाले उन भक्तोंका भगवान् शिव सदा औरस पुत्रोंकी भाँति पालन करते थे। बहुत-से पार्षद रक्त और वसा पीकर रहते थे। वे ब्रह्मद्रोहियोंपर सदा क्रोध प्रकट करते थे ॥ ४४ ॥

चतुर्विधात्मकं सोमं ये पिबन्ति च सर्वदा।
श्रुतेन ब्रह्मचर्येण तपसा च दमेन च ॥ ४५ ॥
ये समाराध्य शूलाङ्कं भवसायुज्यमागताः।

अन्न, सोमलताका रस, अमृत और चन्द्रमण्डल—ये चार प्रकारके सोम हैं, वे पार्षदगण इनका सदा पान करते हैं। उन्होंने वेदोंके स्वाध्याय, ब्रह्मचर्यपालन, तपस्या और इन्द्रिय-संयमके द्वारा त्रिशूल-चिह्नित भगवान् शिवकी आराधना करके उनका सायुज्य प्राप्त कर लिया है ॥ ४५½ ॥

यैरात्मभूतैर्भगवान् पार्वत्या च महेश्वरः ॥ ४६ ॥
महाभूतगणैर्भुङ्क्ते भूतभव्यभवत्प्रभुः।

वे महाभूतगण भगवान् शिवके आत्मस्वरूप हैं, उनके तथा पार्वतीदेवीके साथ भूत, वर्तमान और भविष्यके स्वामी महेश्वर यज्ञ-भाग ग्रहण करते हैं ॥ ४६½ ॥

नानावादित्रहसितक्ष्वेडितोत्क्रुष्टगर्जितैः ॥ ४७ ॥
संत्रासयन्तस्ते विश्वमश्वत्थामानमभ्ययुः।

भगवान् शिवके वे पार्षद नाना प्रकारके बाजे बजाने, हँसने, सिंहनाद करने, ललकारने तथा गर्जने आदिके द्वारा सम्पूर्ण विश्वको भयभीत करते हुए अश्वत्थामाके पास आये ॥

संस्तुवन्तो महादेवं भाः कुर्वाणाः सुवर्चसः ॥ ४८ ॥
विवर्धयिषवो द्रौणेर्महिमानं महात्मनः।
जिज्ञासमानास्तत्तेजः सौप्तिकं च दिदृक्षवः ॥ ४९ ॥
भीमोग्रपरिघालातशूलपट्टिशपाणयः।
घोररूपाः समाजग्मुर्भूतसङ्घाः समन्ततः ॥ ५० ॥

भूतोंके वे समूह बड़े भयंकर और तेजस्वी थे तथा सब ओर अपनी प्रभा फैला रहे थे। अश्वत्थामामें कितना तेज है, इस बातको वे जानना चाहते थे और सोते समय जो महान् संहार होनेवाला था, उसे भी देखनेकी इच्छा रखते थे। साथ ही महामनस्वी द्रोणकुमारकी महिमा बढ़ाना चाहते थे; इसीलिये महादेवजीकी स्तुति करते हुए वे चारों ओरसे वहाँ आ पहुँचे। उनके हाथोंमें अत्यन्त भयंकर परिघ, जलते लुआठे, त्रिशूल और पट्टिश शोभा पा रहे थे ॥ ४८—५० ॥

जनयेयुर्भयं ये स्म त्रैलोक्यस्यापि दर्शनात्।
तान् प्रेक्षमाणोऽपि व्यथां न चकार महाबलः॥ ५१ ॥

भगवान् भूतनाथके वे गण दर्शन देनेमात्रसे तीनों लोकोंके मनमें भय उत्पन्न कर सकते थे, तथापि महाबली अश्वत्थामा उन्हें देखकर तनिक भी व्यथित नहीं हुआ ॥

अथ द्रौणिर्धनुष्पाणिर्बद्धगोधाङ्गुलित्रवान्।
स्वयमेवात्मनात्मानमुपहारमुपाहरत् ॥ ५२ ॥

तदनन्तर हाथमें धनुष लिये और गोहके चर्मके बने दस्ताने पहने हुए द्रोणकुमारने स्वयं ही अपने आपको भगवान् शिवके चरणोंमें भेंट चढ़ा दिया ॥ ५२ ॥

धनूंषि समिधस्तत्र पवित्राणि शिताः शराः।
हविरात्मवतश्चात्मा तस्मिन् भारत कर्मणि ॥ ५३ ॥

भारत! उस आत्म-समर्पणरूपी यज्ञकर्ममें आत्मबलसम्पन्न अश्वत्थामाका धनुष ही समिधा, तीखे बाण ही कुशा और शरीर ही हविष्यरूपमें प्रस्तुत हुए ॥ ५३ ॥

ततः सौम्येन मन्त्रेण द्रोणपुत्रः प्रतापवान्।
उपहारं महामन्युरथात्मानमुपाहरत् ॥ ५४ ॥

फिर महाक्रोधी प्रतापी द्रोणपुत्रने सोमदेवता-सम्बन्धी मन्त्र[१]-के द्वारा अपने शरीरको ही उपहारके रूपमें अर्पित कर दिया ॥

तं रुद्रं रौद्रकर्माणं रौद्रैः कर्मभिरच्युतम्।
अभिष्टुत्य महात्मानमित्युवाच कृताञ्जलिः ॥ ५५ ॥

भयंकर कर्म करनेवाले तथा अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले महात्मा रुद्रदेवकी रौद्रकर्मोंद्वारा ही स्तुति करके अश्वत्थामा हाथ जोड़कर इस प्रकार बोला ॥ ५५ ॥

द्रौणिरुवाच

इममात्मानमद्याहं जातमाङ्गिरसे कुले।
स्वग्नौ जुहोमि भगवन् प्रतिगृह्णीष्व मां बलिम् ॥ ५६ ॥

अश्वत्थामाने कहा—भगवन्! आज मैं आङ्गिरस

१. वह मन्त्र इस प्रकार है—'आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्। भवा वाजस्य संगथे।'

कुलमें उत्पन्न हुए अपने शरीरकी प्रज्वलित अग्निमें आहुति देता हूँ। आप मुझे हविष्यरूपमें ग्रहण कीजिये ॥ ५६ ॥

भवद्भक्त्या महादेव परमेण समाधिना।
अस्यामापदि विश्वात्मन्नुपाकुर्मि तवाग्रतः ॥ ५७ ॥

विश्वात्मन्! महादेव! इस आपत्तिके समय आपके प्रति भक्तिभावसे अपने चित्तको पूर्ण एकाग्र करके आपके समक्ष यह भेंट समर्पित करता हूँ (आप इसे स्वीकार करें)॥५७॥

त्वयि सर्वाणि भूतानि सर्वभूतेषु चासि वै।
गुणानां हि प्रधानानामेकत्वं त्वयि तिष्ठति ॥ ५८ ॥

प्रभो! सम्पूर्ण भूत आपमें स्थित हैं और आप सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित हैं। आपमें ही मुख्य-मुख्य गुणोंकी एकता होती है ॥ ५८ ॥

सर्वभूताश्रय विभो हविर्भूतमवस्थितम्।
प्रतिगृहाण मां देव यद्यशक्याः परे मया ॥ ५९ ॥

विभो! आप सम्पूर्ण भूतोंके आश्रय हैं। देव! यदि शत्रुओंका मेरे द्वारा पराभव नहीं हो सकता तो आप हविष्यरूपमें सामने खड़े हुए मुझ अश्वत्थामाको स्वीकार कीजिये ॥

इत्युक्त्वा द्रौणिरास्थाय तां वेदीं दीप्तपावकाम्।
संत्यज्यात्मानमारुह्य कृष्णवर्त्मन्युपाविशत्॥ ६० ॥

ऐसा कहकर द्रोणकुमार अश्वत्थामा प्रज्वलित अग्निसे प्रकाशित हुई उस वेदीपर चढ़ गया और प्राणोंका मोह छोड़कर आगके बीचमें बैठ गया ॥ ६०॥

तमूर्ध्वबाहुं निश्चेष्टं दृष्ट्वा हविरुपस्थितम्।
अब्रवीद् भगवान् साक्षान्महादेवो हसन्निव ॥ ६१ ॥

उसे हविष्यरूपसे दोनों बाँहें ऊपर उठाये निश्चेष्ट भावसे बैठे देख साक्षात् भगवान् महादेवने हँसते हुए-से कहा—॥

सत्यशौचार्जवत्यागैस्तपसा नियमेन च।
क्षान्त्या भक्त्या च धृत्या च बुद्ध्या च वचसा तथा ॥
यथावदहमाराद्धः कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा।
तस्मादिष्टतमः कृष्णादन्यो मम न विद्यते ॥ ६३ ॥

'अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीकृष्णने सत्य, शौच, सरलता, त्याग, तपस्या, नियम, क्षमा, भक्ति, धैर्य, बुद्धि और वाणीके द्वारा मेरी यथोचित आराधना की है; अतः श्रीकृष्णसे बढ़कर दूसरा कोई मुझे परम प्रिय नहीं है॥

कुर्वता तात सम्मानं त्वां च जिज्ञासता मया।
पञ्चालाः सहसा गुप्ता मायाश्च बहुशः कृता ॥ ६४ ॥

'तात! उन्हींका सम्मान और तुम्हारी परीक्षा करनेके लिये मैंने पाञ्चालोंकी सहसा रक्षा की है और बारंबार मायाओंका प्रयोग किया है ॥ ६४ ॥

कृतस्तस्यैव सम्मानः पञ्चालान् रक्षता मया।
अभिभूतास्तु कालेन नैषामद्यास्ति जीवितम् ॥ ६५ ॥

'पाञ्चालोंकी रक्षा करके मैंने श्रीकृष्णका ही सम्मान किया है; परंतु अब वे कालसे पराजित हो गये हैं, अब इनका जीवन शेष नहीं है' ॥ ६५ ॥

एवमुक्त्वा महात्मानं भगवानात्मनस्तनुम्।
आविवेश ददौ चास्मै विमलं खड्गमुत्तमम् ॥ ६६ ॥

महामना अश्वत्थामासे ऐसा कहकर भगवान् शिवने अपने स्वरूपभूत उसके शरीरमें प्रवेश किया और उसे एक निर्मल एवं उत्तम खड्ग प्रदान किया ॥ ६६ ॥

अथाविष्टो भगवता भूयो जज्वाल तेजसा।
वेगवांश्चाभवद् युद्धे देवसृष्टेन तेजसा ॥ ६७ ॥

भगवान्का आवेश हो जानेपर अश्वत्थामा पुनः अत्यन्त तेजसे प्रज्वलित हो उठा। उस देवप्रदत्त तेजसे सम्पन्न हो वह युद्धमें और भी वेगशाली हो गया ॥ ६७ ॥

तमदृश्यानि भूतानि रक्षांसि च समाद्रवन्।
अभितः शत्रुशिबिरं यान्तं साक्षादिवेश्वरम् ॥ ६८ ॥

साक्षात् महादेवजीके समान शत्रुशिबिरकी ओर जाते हुए अश्वत्थामाके साथ-साथ बहुत-से अदृश्य भूत और राक्षस भी दौड़े गये ॥ ६८ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिक पर्वणि द्रौणिकृतशिवार्चने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वमें द्रोणपुत्रद्वारा की हुई भगवान् शिवकी पूजाविषयक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

अश्वत्थामाके द्वारा रात्रिमें सोये हुए पाञ्चाल आदि समस्त वीरोंका संहार तथा फाटकसे निकलकर भागते हुए योद्धाओंका कृतवर्मा और कृपाचार्य द्वारा वध

धृतराष्ट्र उवाच

तथा प्रयाते शिबिरं द्रोणपुत्रे महारथे।
कच्चित् कृपश्च भोजश्च भयार्तौ न व्यवर्तताम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! जब महारथी द्रोणपुत्र इस प्रकार शिबिरकी ओर चला, तब कृपाचार्य और कृतवर्मा भयसे पीड़ित हो लौट तो नहीं गये? ॥ १ ॥

कच्चिन्न वारितौ क्षुद्रै रक्षिभिर्नोपलक्षितौ।
असह्यमिति मन्वानौ न निवृत्तौ महारथौ ॥ २ ॥
कच्चिदुन्मथ्य शिबिरं हत्वा सोमकपाण्डवान्।
(कृता प्रतिज्ञा सफला कच्चित् संजय सा निशि॥)

कहीं नीच द्वार-रक्षकोंने उन्हें रोक तो नहीं दिया? किसीने उन्हें देखा तो नहीं? कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि वे दोनों महारथी इस कार्यको असह्य मानकर लौट गये हों? संजय! क्या उस शिबिरको मथकर सोमकों और पाण्डवोंकी हत्या करके रातमें अश्वत्थामाने अपनी प्रतिज्ञा सफल कर ली? ॥

दुर्योधनस्य पदवीं गतौ परमिकां रणे ॥ ३ ॥
पञ्चालैर्निहतौ वीरौ कच्चिन्नास्वपतां क्षितौ।
कच्चित् ताभ्यां कृतं कर्म तन्ममाचक्ष्व संजय ॥ ४ ॥

वे दोनों वीर पाञ्चालोंके द्वारा मारे जाकर धरतीपर सदाके लिये सो तो नहीं गये ? रणभूमिमें मरकर दुर्योधनके ही उत्तम मार्गपर चले तो नहीं गये ? क्या उन दोनोंने भी वहाँ कोई पराक्रम किया ? संजय ! ये सब बातें मुझे बताओ॥

सजय उवाच

तस्मिन् प्रयाते शिविरं द्रोणपुत्रे महात्मनि ।
कृपश्च कृतवर्मा च शिबिरद्वार्यतिष्ठताम् ॥ ५ ॥

संजयने कहा—राजन् ! महामनस्वी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा जब शिविरके भीतर जाने लगा, उस समय कृपाचार्य और कृतवर्मा भी उसके दरवाजेपर जा खड़े हुए ॥ ५ ॥

अश्वत्थामा तु तौ दृष्ट्वा यत्नवन्तौ महारथौ ।
प्रहृष्टः शनकै राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥

महाराज ! उन दोनों महारथियोंको अपना साथ देनेके लिये प्रयत्नशील देख अश्वत्थामाको बड़ी प्रसन्नता हुई । उसने उनसे धीरेसे इस प्रकार कहा—॥ ६ ॥

यत्तौ भवन्तौ पर्याप्तौ सर्वक्षत्रस्य नाशने ।
किं पुनर्योधशेषस्य प्रसुप्तस्य विशेषतः ॥ ७ ॥

'यदि आप दोनों सावधान होकर चेष्टा करें तो सम्पूर्ण क्षत्रियोंका विनाश करनेके लिये पर्याप्त हैं । फिर इन बचे-खुचे और विशेषतः सोये हुए योद्धाओंको मारना कौन बड़ी बात है ? ॥ ७ ॥

अहं प्रवेक्ष्ये शिविरं चरिष्यामि च कालवत् ।
यथा न कश्चिदपि वा जीवन् मुच्येत मानवः ॥ ८ ॥
तथा भवद्भ्यां कार्यं स्यादिति मे निश्चिता मतिः ।

'मैं तो इस शिविरके भीतर घुस जाऊँगा और वहाँ कालके समान विचरूँगा । आपलोग ऐसा करें जिससे कोई भी मनुष्य आप दोनोंके हाथसे जीवित न बच सके, यही मेरा दृढ़ विचार है' ॥ ८½ ॥

इत्युक्त्वा प्राविशद् द्रौणिः पार्थानां शिविरं महत् ॥ ९ ॥
अद्वारेणाभ्यवस्कन्द्य विहाय भयमात्मनः ।

ऐसा कहकर द्रोणकुमार पाण्डवोंके विशाल शिविरमें बिना दरवाजेके ही कूदकर घुस गया । उसने अपने जीवनका भय छोड़ दिया था ॥ ९½ ॥

स प्रविश्य महाबाहुरुद्देशज्ञश्च तस्य ह ॥ १० ॥
धृष्टद्युम्नस्य निलयं शनकैरभ्युपागमत् ।

वह महाबाहु वीर शिविरके प्रत्येक स्थानसे परिचित था, अतः धीरे-धीरे धृष्टद्युम्नके खेमेमें जा पहुँचा ॥ १०½ ॥

ते तु कृत्वा महत् कर्म श्रान्ताश्च बलवद् रणे ॥ ११ ॥
प्रसुप्ताश्चैव विश्वस्ताः स्वसैन्यपरिवारिताः ।

वहाँ वे पाञ्चाल वीर रणभूमिमें महान् पराक्रम करके बहुत थक गये थे और अपने सैनिकोंसे घिरे हुए निश्चिन्त सो रहे थे ॥ ११½ ॥

अथ प्रविश्य तद् वेश्म धृष्टद्युम्नस्य भारत ॥ १२ ॥
पाञ्चाल्यं शयने द्रौणिरपश्यत् सुप्तमन्तिकात् ।
क्षौमावदाते महति स्पर्ध्यास्तरणसंवृते ॥ १३ ॥
माल्यप्रवरसंयुक्ते धूपैश्चूर्णैश्च वासिते ।

भरतनन्दन ! धृष्टद्युम्नके उस डेरेमें प्रवेश करके द्रोणकुमारने देखा कि पाञ्चालराजकुमार पास ही बहुमूल्य बिछौनोंसे युक्त तथा रेशमी चादरसे ढकी हुई एक विशाल शय्यापर सो रहा है । वह शय्या श्रेष्ठ मालाओंसे सुसज्जित तथा धूप एवं चन्दन चूर्णसे सुवासित थी ॥ १२-१३½ ॥

तं शयानं महात्मानं विश्रब्धमकुतोभयम् ॥ १४ ॥
प्राबोधयत पादेन शयनस्थं महीपते ।

भूपाल ! अश्वत्थामाने निश्चिन्त एवं निर्भय होकर शय्यापर सोये हुए महामनस्वी धृष्टद्युम्नको पैरसे ठोकर मारकर जगाया ॥ १४½ ॥

सम्बुध्य चरणस्पर्शादुत्थाय रणदुर्मदः ॥ १५ ॥
अभ्यजानादमेयात्मा द्रोणपुत्रं महारथम् ।

अमेय आत्मबलसे सम्पन्न रणदुर्मद धृष्टद्युम्न उसके पैर लगते ही जाग उठा और जागते ही उसने महारथी द्रोणपुत्रको पहचान लिया ॥ १५½ ॥

तमुत्पतन्तं शयनादश्वत्थामा महाबलः ॥ १६ ॥
केशेष्वालभ्य पाणिभ्यां निष्पिपेष महीतले ।

अब वह शय्यासे उठनेकी चेष्टा करने लगा । इतनेहीमें महाबली अश्वत्थामाने दोनों हाथसे उसके बाल पकड़कर पृथ्वीपर पटक दिया और वहाँ अच्छी तरह रगड़ा ॥ १६½ ॥

सबलं तेन निष्पिष्टः साध्वसेन च भारत ॥ १७ ॥
निद्रया चैव पाञ्चाल्यो नाशकच्चेष्टितुं तदा ।

भारत ! धृष्टद्युम्न भय और निद्रासे दबा हुआ था । उस अवस्थामें जब अश्वत्थामाने उसे जोरसे पटककर रगड़ना आरम्भ किया, तब उससे कोई भी चेष्टा करते न बना ॥

तमाक्रम्य पदा राजन् कण्ठे चोरसि चोभयोः ॥ १८ ॥
नदन्तं विस्फुरन्तं च पशुमारममारयत् ।

राजन् ! उसने पैरसे उसकी छाती और गला दोनोंको दबा दिया और उसे पशुकी तरह मारना आरम्भ किया । वह बेचारा चीखता और छटपटाता रह गया ॥ १८½ ॥

तुदन्नखैस्तु स द्रौणिं नातिव्यक्तमुदाहरत् ॥ १९ ॥
आचार्यपुत्र शस्त्रेण जहि मां मा चिरं कृथाः ।
त्वत्कृते सुकृताँल्लोकान् गच्छेयं द्विपदां वर ॥ २० ॥

उसने अपने नखोंसे द्रोणकुमारको बकोटते हुए अस्पष्ट वाणीमें कहा—'मनुष्योंमें श्रेष्ठ आचार्यपुत्र ! अब देरी न करो । मुझे किसी शस्त्रसे मार डालो, जिससे तुम्हारे कारण मैं पुण्यलोकोंमें जा सकूँ' ॥ १९-२० ॥

एवमुक्त्वा तु वचनं विरराम परंतपः ।
सुतः पाञ्चालराजस्य आक्रान्तो बलिना भृशम् ॥ २१ ॥

ऐसा कहकर बलवान् शत्रुके द्वारा बड़े जोरसे दबाया हुआ शत्रुसंतापी पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्न चुप हो गया ॥

तस्याव्यक्तां तु तां वाचं संश्रुत्य द्रौणिरब्रवीत् ।
आचार्यघातिनां लोका न सन्ति कुलपांसन ॥ २२ ॥
तस्माच्छस्त्रेण निधनं न त्वमर्हसि दुर्मते ।

उसकी उस अस्पष्ट वाणीको सुनकर द्रोणपुत्रने कहा—'रे कुलकलंक ! अपने आचार्यकी हत्या करनेवाले लोगोंके लिये पुण्यलोक नहीं है; अतः दुर्मते ! तू शस्त्रके द्वारा मारे जानेके योग्य नहीं है' ॥ २२½ ॥

एवं ब्रुवाणस्तं वीरं सिंहो मत्तमिव द्विपम् ॥ २३ ॥
मर्मस्वभ्यवधीत् क्रुद्धः पादाष्ठीलैः सुदारुणैः ।

उस वीरसे ऐसा कहते हुए क्रोधी अश्वत्थामाने मतवाले हाथीपर चोट करनेवाले सिंहके समान अपनी अत्यन्त भयंकर एड़ियोंसे उसके मर्मस्थानोंपर प्रहार किया ॥ २३½ ॥

तस्य वीरस्य शब्देन मार्यमाणस्य वेश्मनि ॥ २४ ॥
अबुध्यन्त महाराज स्त्रियो ये चास्य रक्षिणः ।

महाराज ! उस समय मारे जाते हुए वीर धृष्टद्युम्नके आर्तनादसे उस शिविरकी स्त्रियाँ तथा सारे रक्षक जाग उठे॥

ते दृष्ट्वा धर्षयन्तं तमतिमानुषविक्रमम् ॥ २५ ॥
भूतमेवाध्यवस्यन्तो न स्म प्रव्याहरन् भयात् ।

उन्होंने उस अलौकिक पराक्रमी पुरुषको धृष्टद्युम्नपर प्रहार करते देख उसे कोई भूत ही समझा; इसीलिये भयके मारे वे कुछ बोल न सके ॥ २५½ ॥

तं तु तेनाभ्युपायेन गमयित्वा यमक्षयम् ॥ २६ ॥
अध्यतिष्ठत तेजस्वी रथं प्राप्य सुदर्शनम् ।
स तस्य भवनाद् राजन् निष्क्रम्यानादयन् दिशः॥२७॥
रथेन शिबिरं प्रायाज्जिघांसुर्द्विषतो बली ।

राजन् ! इस उपायसे धृष्टद्युम्नको यमलोक भेजकर तेजस्वी अश्वत्थामा उसके खेमेसे बाहर निकला और सुन्दर दिखायी देनेवाले अपने रथके पास आकर उसपर सवार हो गया । इसके बाद वह बलवान् वीर अन्य शत्रुओंको मार डालनेकी इच्छा रखकर अपनी गर्जनासे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करता हुआ रथके द्वारा प्रत्येक शिविरपर आक्रमण करने लगा ॥ २६-२७½ ॥

अपक्रान्ते ततस्तस्मिन् द्रोणपुत्रे महारथे ॥ २८ ॥
सहितै रक्षिभिः सर्वैः प्राणेदुर्योषितस्तदा ।

महारथी द्रोणपुत्रके वहाँसे हट जानेपर एकत्र हुए सम्पूर्ण रक्षकोंसहित धृष्टद्युम्नकी रानियाँ फूट-फूटकर रोने लगीं ॥

राजानं निहतं दृष्ट्वा भृशं शोकपरायणाः ॥ २९ ॥
व्याक्रोशन् क्षत्रियाः सर्वे धृष्टद्युम्नस्य भारत ।

भरतनन्दन ! अपने राजाको मारा गया देख धृष्टद्युम्नकी सेनाके सारे क्षत्रिय अत्यन्त शोकमें मग्न हो आर्तस्वरसे विलाप करने लगे ॥ २९½ ॥

तासां तु तेन शब्देन समीपे क्षत्रियर्षभाः ॥ ३० ॥
क्षिप्रं च समनह्यन्त किमेतदिति चाब्रुवन् ।

स्त्रियोंके रोनेकी आवाज सुनकर आसपासके सारे क्षत्रिय-शिरोमणि वीर तुरंत कवच बाँधकर तैयार हो गये और बोले—'अरे ! यह क्या हुआ ?' ॥ ३०½ ॥

स्त्रियस्तु राजन् वित्रस्ता भारद्वाजं निरीक्ष्य ताः॥ ३१ ॥
अब्रुवन् दीनकण्ठेन क्षिप्रमाद्रवतेति वै ।
राक्षसो वा मनुष्यो वा नैनं जानीमहे वयम् ॥ ३२ ॥
हत्वा पाञ्चालराजानं रथमारुह्य तिष्ठति ।

राजन् ! वे सारी स्त्रियाँ अश्वत्थामाको देखकर बहुत डर गयी थीं; अतः दीन कण्ठसे बोलीं—'अरे ! जल्दी दौड़ो ! जल्दी दौड़ो ! हमारी समझमें नहीं आता कि यह कोई राक्षस है या मनुष्य । देखो, यह पाञ्चालराजकी हत्या करके रथपर चढ़कर खड़ा है' ॥ ३१-३२½ ॥

ततस्ते योधमुख्याश्च सहसा पर्यवारयन् ॥ ३३ ॥
स तानापततः सर्वान् रुद्रास्त्रेण व्यपोथयत् ।

तब उन श्रेष्ठ योद्धाओंने सहसा पहुँचकर अश्वत्थामाको चारों ओरसे घेर लिया; परंतु अश्वत्थामाने पास आते ही उन सबको रुद्रास्त्रसे मार गिराया ॥ ३३½ ॥

धृष्टद्युम्नं च हत्वा स तांश्चैवास्य पदानुगान् ॥ ३४ ॥
अपश्यच्छयने सुप्तमुत्तमौजसमन्तिके ।

इस प्रकार धृष्टद्युम्न और उसके सेवकोंका वध करके अश्वत्थामाने निकटके ही खेमेमें पलंगपर सोये हुए उत्तमौजाको देखा ॥ ३४½ ॥

तमप्याक्रम्य पादेन कण्ठे चोरसि तेजसा ॥ ३५ ॥
तथैव मारयामास विनर्दन्तमरिंदमम् ।

फिर तो शत्रुदमन उत्तमौजाके भी कण्ठ और छातीको बलपूर्वक पैरसे दबाकर उसने उसी प्रकार पशुकी तरह मार डाला । वह बेचारा भी चीखता-चिल्लाता रह गया था ॥

युधामन्युश्च सम्प्राप्तो मत्वा तं रक्षसा हतम् ॥ ३६ ॥
गदामुद्यम्य वेगेन हृदि द्रौणिमताडयत् ।

उत्तमौजाको राक्षसद्वारा मारा गया समझकर युधामन्यु भी वहाँ आ पहुँचा । उसने बड़े वेगसे गदा उठाकर अश्वत्थामाकी छातीमें प्रहार किया ॥ ३६½ ॥

तमभिद्रुत्य जग्राह क्षितौ चैनमपातयत् ॥ ३७ ॥
विस्फुरन्तं च पशुवत् तथैवैनममारयत् ।

अश्वत्थामाने झपटकर उसे पकड़ लिया और पृथ्वीपर दे मारा । वह उसके चंगुलसे छूटनेके लिये बहुतेरा हाथ-पैर मारता रहा; किंतु अश्वत्थामाने उसे भी पशुकी तरह गला घोंटकर मार डाला ॥ ३७½ ॥

तथा स वीरो हत्वा तं ततोऽन्यान् समुपाद्रवत् ॥३८॥
संसुप्तानेव राजेन्द्र तत्र तत्र महारथान् ।
स्फुरतो वेपमानांश्च शमितेव पशून् मखे ॥ ३९ ॥

राजेन्द्र ! इस प्रकार युधामन्युका वध करके वीर अश्वत्थामाने अन्य महारथियोंपर भी वहाँ सोते समय ही आक्रमण किया । वे सब भयसे काँपने और छटपटाने लगे। परंतु जैसे हिंसाप्रधान यज्ञमें वधके लिये नियुक्त हुआ पुरुष पशुओंको मार डालता है, उसी प्रकार उसने भी उन्हें मार डाला ॥ ३८-३९ ॥

ततो निस्त्रिंशमादाय जघानान्यान् पृथक् पृथक् ।
भागशो विचरन् मार्गानसियुद्धविशारदः ॥ ४० ॥

तदनन्तर तलवारसे युद्ध करनेमें कुशल अश्वत्थामाने

हाथमें खड्ग लेकर प्रत्येक भागमें विभिन्न मार्गोंसे विचरते हुए वहाँ बारी-बारीसे अन्य वीरोंका भी वध कर डाला ॥ ४० ॥

तथैव गुल्मे सम्प्रेक्ष्य शयानान् मध्यगौल्मिकान् ।
श्रान्तान् व्यस्तायुधान् सर्वान् क्षणेनैव व्यपोथयत् ॥

इसी प्रकार खेमेमें मध्य श्रेणीके रक्षक सैनिक भी थककर सो रहे थे । उनके अस्त्र-शस्त्र अस्त-व्यस्त होकर पड़े थे। उन सबको उस अवस्थामें देखकर अश्वत्थामाने क्षणभरमें मार डाला ॥ ४१ ॥

योधानश्वान् द्विपांश्चैव प्राच्छिनत् स वरासिना ।
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गः कालसृष्ट इवान्तकः ॥ ४२॥

उसने अपनी अच्छी तलवारसे योद्धाओं, घोड़ों और हाथियोंके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले । उसके सारे अङ्ग खूनसे लथपथ हो रहे थे, वह कालप्रेरित यमराजके समान जान पड़ता था ॥ ४२ ॥

विस्फुरद्भिश्च तैर्द्रौणिर्निस्त्रिंशस्योद्यमेन च ।
आक्षेपणेन चैवासेस्त्रिधा रक्तोक्षितोऽभवत् ॥ ४३ ॥

मारे जानेवाले योद्धाओंका हाथ-पैर हिलाना, उन्हें मारनेके लिये तलवारको उठाना तथा उसके द्वारा सब ओर प्रहार करना—इन तीन कारणोंसे द्रोणपुत्र अश्वत्थामा खूनसे नहा गया था ॥ ४३ ॥

तस्य लोहितरक्तस्य दीप्तखड्गस्य युध्यतः ।
अमानुष इवाकारो बभौ परमभीषणः ॥ ४४ ॥

वह खूनसे रँग गया था । जूझते हुए उस वीरकी तलवार चमक रही थी । उस समय उसका आकार मानवेतर प्राणीके समान अत्यन्त भयंकर प्रतीत होता था ॥ ४४ ॥

ये त्वजाग्रन्त कौरव्य तेऽपि शब्देन मोहिताः ।
निरीक्ष्यमाणा अन्योन्यं दृष्ट्वा दृष्ट्वा प्रविव्यथुः ॥ ४५ ॥

कुरुनन्दन ! जो जाग रहे थे, वे भी उस कोलाहलसे किंकर्तव्यविमूढ हो गये थे । परस्पर देखे जाते हुए वे सभी सैनिक अश्वत्थामाको देख-देखकर व्यथित हो रहे थे ॥

तद् रूपं तस्य ते दृष्ट्वा क्षत्रियाः शत्रुकर्षिणः ।
राक्षसं मन्यमानास्तं नयनानि न्यमीलयन् ॥ ४६ ॥

वे शत्रुसूदन क्षत्रिय अश्वत्थामाका वह रूप देख उसे राक्षस समझकर आँखें मूँद लेते थे ॥ ४६ ॥

स घोररूपो व्यचरत् कालवच्छिबिरे ततः ।
अपश्यद् द्रौपदीपुत्रानवशिष्टांश्च सोमकान् ॥ ४७ ॥

वह भयानक रूपधारी द्रोणकुमार सारे शिविरमें कालके समान विचरने लगा । उसने द्रौपदीके पाँचों पुत्रों और मरनेसे बचे हुए सोमकोंको देखा ॥ ४७ ॥

तेन शब्देन वित्रस्ता धनुर्हस्ता महारथाः ।
धृष्टद्युम्नं हतं श्रुत्वा द्रौपदेया विशाम्पते ॥ ४८ ॥

प्रजानाथ ! धृष्टद्युम्नको मारा गया सुनकर द्रौपदीके पाँचों महारथी पुत्र उस शब्दसे भयभीत हो हाथमें धनुष लिये आगे बढ़े ॥ ४८ ॥

अवाकिरञ्शरव्रातैर्भारद्वाजमभीतवत् ।
ततस्तेन निनादेन सम्प्रबुद्धाः प्रभद्रकाः ॥ ४९ ॥
शिलीमुखैः शिखण्डी च द्रोणपुत्रं समार्दयन् ।

उन्होंने निर्भयसे होकर अश्वत्थामापर बाणसमूहोंकी वर्षा आरम्भ कर दी । तदनन्तर वह कोलाहल सुनकर वीर प्रभद्रकगण जाग उठे । शिखण्डी भी उनके साथ हो लिया । उन सबने द्रोणपुत्रको पीड़ा देना आरम्भ किया ४९½

भारद्वाजः स तान् दृष्ट्वा शरवर्षाणि वर्षतः ॥ ५० ॥
ननाद बलवन्नादं जिघांसुस्तान् महारथान् ।

उन महारथियोंको बाणोंकी वर्षा करते देख अश्वत्थामा उन्हें मार डालनेकी इच्छासे जोर-जोरसे गर्जना करने लगा ॥ ५०½ ॥

ततः परमसंक्रुद्धः पितुर्वधमनुस्मरन् ॥ ५१ ॥
अवरुह्य रथोपस्थात् त्वरमाणोऽभिदुद्रुवे ।
सहस्रचन्द्रविमलं गृहीत्वा चर्म संयुगे ॥ ५२ ॥
खड्गं च विमलं दिव्यं जातरूपपरिष्कृतम् ।

तदनन्तर पिताके वधका स्मरण करके वह अत्यन्त कुपित हो उठा और रथकी बैठकसे उतरकर सहस्रों चन्द्राकार चिह्नोंसे युक्त चमकीली ढाल और सुवर्णभूषित दिव्य एवं निर्मल खड्ग लेकर युद्धमें बड़ी उतावलीके साथ उनकी ओर दौड़ा ॥ ५१-५२½ ॥

द्रौपदेयानभिद्रुत्य खड्गेन व्यधमद् बली ॥ ५३ ॥
ततः स नरशार्दूलः प्रतिविन्ध्यं महाहवे ।
कुक्षिदेशेऽवधीद् राजन् स हतो न्यपतद् भुवि॥ ५४ ॥

उस बलवान् वीरने द्रौपदीके पुत्रोंपर आक्रमण करके उन्हें खड्गसे छिन्न-भिन्न कर दिया । राजन् ! उस समय पुरुषसिंह अश्वत्थामाने उस महासमरमें प्रतिविन्ध्यको उसकी कोखमें तलवार भोंककर मार डाला । वह मरकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ५३-५४ ॥

प्रासेन विद्ध्वा द्रौणिं तु सुतसोमः प्रतापवान् ।
पुनश्चासिं समुद्यम्य द्रोणपुत्रमुपाद्रवत् ॥ ५५ ॥

तत्पश्चात् प्रतापी सुतसोमने द्रोणकुमारको पहले प्राससे घायल करके फिर तलवार उठाकर उसपर धावा किया ॥

सुतसोमस्य सासिं तं बाहुं छित्त्वा नरर्षभ ।
पुनरप्याहनत् पार्श्वे स भिन्नहृदयोऽपतत् ॥ ५६ ॥

नरश्रेष्ठ ! तब अश्वत्थामाने तलवारसहित सुतसोमकी बाँह काटकर पुनः उसकी पसलीमें आघात किया । इससे उसकी छाती फट गयी और वह धराशायी हो गया ॥ ५६ ॥

नाकुलिस्तु शतानीको रथचक्रेण वीर्यवान् ।
दोर्भ्यामुत्क्षिप्य वेगेन वक्षस्येनमताडयत् ॥ ५७ ॥

इसके बाद नकुलके पराक्रमी पुत्र शतानीकने अपनी दोनों भुजाओंसे रथचक्रको उठाकर उसके द्वारा बड़े वेगसे अश्वत्थामाकी छातीपर प्रहार किया ॥ ५७ ॥

अताडयच्छतानीकं मुक्तचक्रं द्विजस्तु सः ।
स विह्वलो ययौ भूमिं ततोऽस्यापाहरच्छिरः ॥ ५८ ॥

शतानीकने जब चक्र चला दिया, तब ब्राह्मण अश्व-

त्थामाने भी उसपर गहरा आघात किया । इससे व्याकुल होकर वह पृथ्वीपर गिर पड़ा । इतनेहीमें अश्वत्थामाने उसका सिर काट लिया ॥ ५८ ॥

श्रुतकर्मा तु परिघं गृहीत्वा समताडयत् ।
अभिद्रुत्य ययौ द्रौणिं सव्ये सफलके भृशम् ॥ ५९ ॥

अब श्रुतकर्मा परिघ लेकर अश्वत्थामाकी ओर दौड़ा । उसने उसके ढालयुक्त बायें हाथमें भारी चोट पहुँचायी ॥

स तु तं श्रुतकर्माणमास्ये जघ्ने वरासिना ।
स हतो न्यपतद् भूमौ विमूढो विकृताननः ॥ ६० ॥

अश्वत्थामाने अपनी तेज तलवारसे श्रुतकर्माके मुखपर आघात किया । वह चोट खाकर बेहोश हो पृथ्वीपर गिर पड़ा । उस समय उसका मुख विकृत हो गया था ॥ ६० ॥

तेन शब्देन वीरस्तु श्रुतकीर्तिर्महारथः ।
अश्वत्थामानमासाद्य शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ६१ ॥

वह कोलाहल सुनकर वीर महारथी श्रुतकीर्ति अश्वत्थामाके पास आकर उसके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ६१ ॥

तस्यापि शरवर्षाणि चर्मणा प्रतिवार्य सः ।
सकुण्डलं शिरः कायाद् भ्राजमानमुपाहरत् ॥ ६२ ॥

उसकी बाण-वर्षाको ढालसे रोककर अश्वत्थामाने उसके कुण्डलमण्डित तेजस्वी मस्तकको धड़से अलग कर दिया ६२

ततो भीष्मनिहन्ता तं सह सर्वैः प्रभद्रकैः ।
अहनत् सर्वतो वीरं नानाप्रहरणैर्बली ॥ ६३ ॥
शिलीमुखेन चान्येन भ्रुवोर्मध्ये समार्पयत् ।

तदनन्तर समस्त प्रभद्रकोंसहित बलवान् भीष्महन्ता शिखण्डी नाना प्रकारके अस्त्रोंद्वारा अश्वत्थामापर सब ओरसे प्रहार करने लगा तथा एक दूसरे बाणसे उसने उसकी दोनों भौंहोंके बीचमें आघात किया ॥ ६३½ ॥

स तु क्रोधसमाविष्टो द्रोणपुत्रो महाबलः ॥ ६४ ॥
शिखण्डिनं समासाद्य द्विधा चिच्छेद सोऽसिना ।

तब महाबली द्रोणपुत्रने क्रोधके आवेशमें आकर शिखण्डीके पास जा अपनी तलवारसे उसके दो टुकड़े कर डाले ॥ ६४½ ॥

शिखण्डिनं ततो हत्वा क्रोधाविष्टः परंतपः ॥ ६५ ॥
प्रभद्रकगणान् सर्वानभिदुद्राव वेगवान् ।
यच्च शिष्टं विराटस्य बलं तु भृशमाद्रवत् ॥ ६६ ॥

क्रोधसे भरे हुए शत्रुसंतापी अश्वत्थामाने इस प्रकार शिखण्डीका वध करके समस्त प्रभद्रकोंपर बड़े वेगसे धावा किया । साथ ही, राजा विराटकी जो सेना शेष थी, उसपर भी जोरसे चढ़ाई कर दी ॥ ६५-६६ ॥

द्रुपदस्य च पुत्राणां पौत्राणां सुहृदामपि ।
चकार कदनं घोरं दृष्ट्वा दृष्ट्वा महाबलः ॥ ६७ ॥

उस महाबली वीरने द्रुपदके पुत्रों, पौत्रों और सुहृदोंको ढूँढ़-ढूँढ़कर उनका घोर संहार मचा दिया ॥ ६७ ॥

अन्यानन्यांश्च पुरुषानभिसृत्याभिसृत्य च ।
न्यकृन्तदसिना द्रौणिरसिमार्गविशारदः ॥ ६८ ॥

तलवारके पैंतरोंमें कुशल द्रोणपुत्रने दूसरे-दूसरे पुरुषोंके भी निकट जाकर तलवारसे ही उनके टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ६८ ॥

कालीं रक्तास्यनयनां रक्तमाल्यानुलेपनाम् ।
रक्ताम्बरधरामेकां पाशहस्तां कुटुम्बिनीम् ॥ ६९ ॥
ददृशुः कालरात्रिं ते गायमानामवस्थिताम् ।
नराश्वकुञ्जरान् पाशैर्बद्ध्वा घोरैः प्रतस्थुषीम् ॥ ७० ॥

उस समय पाण्डव-पक्षके योद्धाओंने मूर्तिमती कालरात्रिको देखा, जिसके शरीरका रंग काला था, मुख और नेत्र लाल थे । वह लाल फूलोंकी माला पहने और लाल चन्दन लगाये हुए थी । उसने लाल रंगकी ही साड़ी पहन रक्खी थी । वह अपने ढंगकी अकेली थी और हाथमें पाश लिये हुए थी । उसकी सखियोंका समुदाय भी उसके साथ था । वह गीत गाती हुई खड़ी थी और भयंकर पाशोंद्वारा मनुष्यों, घोड़ों एवं हाथियोंको बाँधकर लिये जाती थी ॥ ६९-७० ॥

वहन्तीं विविधान् प्रेतान् पाशबद्धान् विमूर्धजान् ।
तथैव च सदा राजन् न्यस्तशस्त्रान् महारथान् ॥ ७१ ॥
स्वप्ने सुप्तान्नयन्तीं तां रात्रिष्वन्यासु मारिष ।
ददृशुर्योधमुख्यास्ते घ्नन्तं द्रौणिं च सर्वदा ॥ ७२ ॥

माननीय नरेश ! मुख्य-मुख्य योद्धा अन्य रात्रियोंमें भी सपनेमें उस कालरात्रिको देखते थे । राजन् ! वह सदा नाना प्रकारके केशरहित प्रेतोंको अपने पाशोंमें बाँधकर लिये जाती दिखायी देती थी, इसी प्रकार हथियार डालकर सोये हुए महारथियोंको भी लिये जाती हुई स्वप्नमें दृष्टिगोचर होती थी । वे योद्धा सबका संहार करते हुए द्रोणकुमारको भी सदा सपनोंमें देखा करते थे ॥ ७१-७२ ॥

यतः प्रभृति संग्रामः कुरुपाण्डवसेनयोः ।
ततः प्रभृति तां कन्यामपश्यन् द्रौणिमेव च ॥ ७३ ॥
तांस्तु दैवहतान् पूर्वं पश्चाद् द्रौणिर्व्यपातयत् ।
त्रासयन् सर्वभूतानि विनदन् भैरवान् रवान् ॥ ७४ ॥

जबसे कौरव-पाण्डव सेनाओंका संग्राम आरम्भ हुआ था, तभीसे वे योद्धा कन्यारूपिणी कालरात्रिको और कालरूपधारी अश्वत्थामाको भी देखा करते थे । पहलेसे ही दैवके मारे हुए उन वीरोंका द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने पीछे वध किया था । वह अश्वत्थामा भयानक स्वरसे गर्जना करके समस्त प्राणियोंको भयभीत कर रहा था ॥ ७३-७४ ॥

तदनुस्मृत्य ते वीरा दर्शनं पूर्वकालिकम् ।
इदं तदित्यमन्यन्त दैवेनोपनिपीडिताः ॥ ७५ ॥

वे दैवपीडित वीरगण पूर्वकालके देखे हुए सपनेको याद करके ऐसा मानने लगे कि 'यह वही स्वप्न इस रूपमें सत्य हो रहा है' ॥ ७५ ॥

ततस्तेन निनादेन प्रत्यबुद्ध्यन्त धन्विनः ।
शिबिरे पाण्डवेयानां शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ७६ ॥

तदनन्तर अश्वत्थामाके उस सिंहनादसे पाण्डवोंके शिबिरमें सैकड़ों और हजारों धनुर्धर वीर जाग उठे ॥ ७६ ॥

सोऽच्छिनत् कस्यचित् पादौ जघनं चैव कस्यचित्।
कांश्चिद् बिभेद पार्श्वेषु कालसृष्ट इवान्तकः॥ ७७॥

उस समय कालप्रेरित यमराजके समान उसने किसीके पैर काट लिये, किसीकी कमर टूक-टूक कर दी और किन्हींकी पसलियोंमें तलवार भोंककर उन्हें चीर डाला॥ ७७॥

अत्युग्रप्रतिपिष्टैश्च नदद्भिश्च भृशोत्कटैः।
गजाश्वमथितैश्चान्यैर्मही कीर्णाभवत् प्रभो॥ ७८॥

वे सब-के-सब बड़े भयानक रूपसे कुचल दिये गये थे, अतः उन्मत्त-से होकर जोर-जोरसे चीखते और चिल्लाते थे। इसी प्रकार छूटे हुए घोड़ों और हाथियोंने भी अन्य बहुत-से योद्धाओंको कुचल दिया था। प्रभो! उन सबकी लाशोंसे धरती पट गयी थी॥ ७८॥

क्रोशतां किमिदं कोऽयं कः शब्दः किं नु किं कृतम्।
एवं तेषां तथा द्रौणिरन्तकः समपद्यत॥ ७९॥

घायल वीर चिल्ला चिल्लाकर कहते थे कि 'यह क्या है? यह कौन है? यह कैसा कोलाहल हो रहा है? यह क्या कर डाला?' इस प्रकार चीखते हुए उन सब योद्धाओंके लिये द्रोणकुमार अश्वत्थामा काल बन गया था॥ ७९॥

अपेतशस्त्रसन्नाहान् सन्नद्धान् पाण्डुसृंजयान्।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय द्रौणिः प्रहरतां वरः॥ ८०॥

पाण्डवों और सृंजयोंमेंसे जिन्होंने अस्त्र-शस्त्र और कवच उतार दिये थे तथा जिन लोगोंने पुनः कवच बाँध लिये थे, उन सबको प्रहार करनेवाले योद्धाओंमें श्रेष्ठ द्रोणपुत्रने मृत्युके लोकमें भेज दिया॥ ८०॥

ततस्तच्छब्दवित्रस्ता उत्पतन्तो भयातुराः।
निद्रान्धा नष्टसंज्ञाश्च तत्र तत्र निलिल्यिरे॥ ८१॥

जो लोग नींदके कारण अंधे और अचेत-से हो रहे थे, वे उसके शब्दसे चौंककर उछल पड़े; किंतु पुनः भयसे व्याकुल हो जहाँ-तहाँ छिप गये॥ ८१॥

ऊरुस्तम्भगृहीताश्च कश्मलाभिहतौजसः।
विनदन्तो भृशं त्रस्ताः समासीदन् परस्परम्॥ ८२॥

उनकी जाँघें अकड़ गयी थीं। मोहवश उनका बल और उत्साह मारा गया था। वे भयभीत हो जोर-जोरसे चीखते हुए एक दूसरेसे लिपट जाते थे॥ ८२॥

ततो रथं पुनर्द्रौणिरास्थितो भीमनिःस्वनम्।
धनुष्पाणिः शरैरन्यान् प्रैषयद् वै यमक्षयम्॥ ८३॥

इसके बाद द्रोणकुमार अश्वत्थामा पुनः भयानक शब्द करनेवाले अपने रथपर सवार हुआ और हाथमें धनुष ले बाणोंद्वारा दूसरे योद्धाओंको यमलोक भेजने लगा॥ ८३॥

पुनरुत्पततश्चापि दूरादपि नरोत्तमान्।
शूरान् सम्पततश्चान्यान् कालरात्र्यै न्यवेदयत्॥ ८४॥

अश्वत्थामा पुनः उछलने और अपने ऊपर आक्रमण करनेवाले दूसरे-दूसरे नरश्रेष्ठ शूरवीरोंको दूरसे भी मारकर कालरात्रिके हवाले कर देता था॥ ८४॥

तथैव स्यन्दनाग्रेण प्रमथन् स विधावति।
शरवर्षैश्च विविधैरवर्षच्छात्रवांस्ततः॥ ८५॥

वह अपने रथके अग्रभागसे शत्रुओंको कुचलता हुआ सब ओर दौड़ लगाता और नाना प्रकारके बाणोंकी वर्षासे शत्रुसैनिकोंको घायल करता था॥ ८५॥

पुनश्च सुविचित्रेण शतचन्द्रेण चर्मणा।
तेन चाकाशवर्णेन तथाचरत सोऽसिना॥ ८६॥

फिर वह सौ चन्द्राकार चिह्नोंसे युक्त विचित्र ढाल और आकाशके रंगवाली चमचमाती तलवार लेकर सब ओर विचरने लगा॥ ८६॥

तथा च शिबिरं तेषां द्रौणिराहवदुर्मदः।
व्यक्षोभयत राजेन्द्र महाह्रदमिव द्विपः॥ ८७॥

राजेन्द्र! रणदुर्मद द्रोणकुमारने उन शत्रुओंके शिबिरको उसी प्रकार मथ डाला, जैसे कोई गजराज किसी विशाल सरोवरको विक्षुब्ध कर डालता है॥ ८७॥

उत्पेतुस्तेन शब्देन योधा राजन् विचेतसः।
निद्रार्ताश्च भयार्ताश्च व्यधावन्त ततस्ततः॥ ८८॥

राजन्! उस मार-काटके कोलाहलसे निद्रामें अचेत पड़े हुए योद्धा चौंककर उछल पड़ते और भयसे व्याकुल हो इधर-उधर भागने लगते थे॥ ८८॥

विस्वरं चुक्रुशुश्चान्ये बह्वबद्धं तथा वदन्।
न च स्म प्रत्यपद्यन्त शस्त्राणि वसनानि च॥ ८९॥

कितने ही योद्धा गला फाड़-फाड़कर चिल्लाते और बहुत-सी उटपटाँग बातें बकने लगते थे। वे अपने अस्त्र-शस्त्र तथा वस्त्रोंको भी नहीं ढूँढ़ पाते थे॥ ८९॥

विमुक्तकेशाश्चाप्यन्ये नाभ्यजानन् परस्परम्।
उत्पतन्तोऽपतञ्श्रान्ताः केचित् तत्राभ्रमंस्तदा॥ ९०॥

दूसरे बहुत-से योद्धा बाल बिखेरे हुए भागते थे। उस दशामें वे एक दूसरेको पहचान नहीं पाते थे। कोई उछलते हुए भागते और थककर गिर जाते थे तथा कोई उसी स्थानपर चक्कर काटते रहते थे॥ ९०॥

पुरीषमसृजन् केचित् केचिन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः।
बन्धनानि च राजेन्द्र संछिद्य तुरगा द्विपाः॥ ९१॥
समं पर्यपतंश्चान्ये कुर्वन्तो महदाकुलम्।

कितने ही मलत्याग करने लगे। कितनोंके पेशाब झड़ने लगे। राजेन्द्र! दूसरे बहुत से घोड़े और हाथी बन्धन तोड़-कर एक साथ ही सब ओर दौड़ने और लोगोंको अत्यन्त व्याकुल करने लगे॥ ९१½॥

तत्र केचिन्नरा भीता व्यलीयन्त महीतले॥ ९२॥
तथैव तान् निपतितानपिंषन् गजवाजिनः।

कितने ही योद्धा भयभीत हो पृथ्वीपर छिपे पड़े थे। उन्हें उसी अवस्थामें भागते हुए घोड़ों और हाथियोंने अपने पैरोंसे कुचल दिया॥ ९२½॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने रक्षांसि पुरुषर्षभ॥ ९३॥
हृष्टानि व्यनदन्नुच्चैर्मुदा भरतसत्तम।

पुरुषप्रवर! भरतश्रेष्ठ! इस प्रकार जब वह मारकाट

मची हुई थी, उस समय हर्षमें भरे हुए राक्षस बड़े जोर-जोरसे गर्जना करते थे ॥ ९३½ ॥

स शब्दः पूरितो राजन् भूतसंघैर्मुदायुतैः ॥ ९४ ॥
अपूरयद् दिशः सर्वा दिवं चातिमहान् स्वनः ।

राजन्! आनन्दमग्न हुए भूतसमुदायोंके द्वारा किया हुआ वह महान् कोलाहल सम्पूर्ण दिशाओं तथा आकाशमें गूँज उठा ॥ ९४½ ॥

तेषामार्तरवं श्रुत्वा वित्रस्ता गजवाजिनः ॥ ९५ ॥
मुक्ताः पर्यपतन् राजन् मृद्नन्तः शिबिरे जनम् ।

राजन्! मारे जानेवाले योद्धाओंका आर्तनाद सुनकर हाथी और घोड़े भयसे थर्रा उठे और बन्धनमुक्त हो शिबिरमें रहनेवाले लोगोंको रौंदते हुए चारों ओर दौड़ लगाने लगे ॥ ९५½ ॥

तैस्तत्र परिधावद्भिश्चरणोदीरितं रजः ॥ ९६ ॥
अकरोच्छिबिरे तेषां रजन्यां द्विगुणं तमः ।

उन दौड़ते हुए घोड़ों और हाथियोंने अपने पैरोंसे जो धूल उड़ायी थी, उसने पाण्डवोंके शिबिरमें रात्रिके अन्धकारको दुगुना कर दिया ॥ ९६½ ॥

तस्मिंस्तमसि संजाते प्रमूढाः सर्वतो जनाः ॥ ९७ ॥
नाजानन् पितरः पुत्रान् भ्रातॄन् भ्रातर एव च ।

वह घोर अन्धकार फैल जानेपर वहाँ सब लोगोंपर मोह छा गया। उस समय पिता पुत्रोंको और भाई भाइयोंको नहीं पहचान पाते थे ॥ ९७½ ॥

गजा गजानतिक्रम्य निर्मनुष्या हया हयान् ॥ ९८ ॥
अताडयंस्तथाभञ्जंस्तथामृद्नंश्च भारत ।

भारत! हाथी हाथियोंपर और बिना सवारके घोड़े घोड़ोंपर आक्रमण करके एक दूसरेपर चोट करने लगे। उन्होंने अङ्ग-भंग करके एक दूसरेको रौंद डाला ॥ ९८½ ॥

ते भग्नाः प्रपतन्ति स्म निघ्नन्तश्च परस्परम् ॥ ९९ ॥
न्यपातयंस्तथा चान्यान् पातयित्वा तदापिषन् ।

परस्पर आघात करते हुए वे हाथी, घोड़े स्वयं भी घायल होकर गिर जाते थे तथा दूसरोंको भी गिरा देते और गिराकर उनका कचूमर निकाल देते थे ॥ ९९½ ॥

विचेतसः सनिद्राश्च तमसा चावृता नराः ॥ १०० ॥
जग्मुः स्वानेव तत्राथ कालेनैव प्रचोदिताः ।

कितने ही मनुष्य निद्रामें अचेत पड़े थे और घोर अन्धकारसे घिर गये थे। वे सहसा उठकर कालसे प्रेरित हो आत्मीय जनोंका ही वध करने लगे ॥ १००½ ॥

त्यक्त्वा द्वाराणि च द्वाःस्थास्तथा गुल्मानि गौल्मिकाः ॥
प्राद्रवन्त यथाशक्ति कांदिशीका विचेतसः ।

द्वारपाल दरवाजोंको और तम्बूकी रक्षा करनेवाले सैनिक तम्बुओंको छोड़कर यथाशक्ति भागने लगे। वे सब-के-सब अपनी सुध-बुध खो बैठे थे और यह भी नहीं जानते थे कि 'उन्हें किस दिशामें भागकर जाना है' ॥ १०१½ ॥

विप्रणष्टाश्च तेऽन्योन्यं नाजानन्त तथा विभो ॥ १०२ ॥
क्रोशन्तस्तात पुत्रेति दैवोपहतचेतसः ।

प्रभो! वे भागे हुए सैनिक एक दूसरेको पहचान नहीं पाते थे। दैववश उनकी बुद्धि मारी गयी थी। वे 'हा तात! हा पुत्र!' कहकर अपने स्वजनोंको पुकार रहे थे ॥ १०२½ ॥

पलायतां दिशस्तेषां स्वानप्युत्सृज्य बान्धवान् ॥ १०३ ॥
गोत्रनामभिरन्योन्यमाक्रन्दन्त ततो जनाः ।
हाहाकारं च कुर्वाणाः पृथिव्यां शेरते परे ॥ १०४ ॥

अपने सगे सम्बन्धियोंको भी छोड़कर सम्पूर्ण दिशाओंमें भागते हुए योद्धाओंके नाम और गोत्रको पुकार-पुकारकर लोग परस्पर बुला रहे थे। कितने ही मनुष्य हाहाकार करते हुए धरतीपर पड़ गये थे ॥ १०३-१०४ ॥

तान् बुद्ध्वा रणमत्तोऽसौ द्रोणपुत्रो व्यपोथयत् ।
तत्रापरे वध्यमाना मुहुर्मुहुरचेतसः ॥ १०५ ॥
शिबिरान् निष्पतन्ति स्म क्षत्रिया भयपीडिताः ।

युद्धके लिये उन्मत्त हुआ द्रोणपुत्र अश्वत्थामा उन सबको पहचान-पहचानकर मार गिराता था। बारंबार उसकी मार खाते हुए दूसरे बहुत-से क्षत्रिय भयसे पीड़ित और अचेत हो शिबिरसे बाहर निकलने लगे ॥ १०५½ ॥

तांस्तु निष्पतितांस्त्रस्तान् शिबिराज्जीवितैषिणः ॥ १०६ ॥
कृतवर्मा कृपश्चैव द्वारदेशे निजघ्नतुः ।

प्राण बचानेकी इच्छासे भयभीत हो शिबिरसे निकले हुए उन क्षत्रियोंको कृतवर्मा और कृपाचार्यने दरवाजेपर ही मार डाला ॥ १०६½ ॥

विस्रस्तयन्त्रकवचान् मुक्तकेशान् कृताञ्जलीन् ॥ १०७ ॥
वेपमानान् क्षितौ भीतान् नैव कांश्चिदमुञ्चताम् ।
नामुच्यत तयोः कश्चिन्निष्क्रान्तः शिबिराद् बहिः ॥

उनके यन्त्र और कवच गिर गये थे। वे बाल खोले, हाथ जोड़े, भयभीत हो थरथर काँपते हुए पृथ्वीपर खड़े थे, किंतु उन दोनोंने उनमेंसे किसीको भी जीवित नहीं छोड़ा। शिबिरसे निकला हुआ कोई भी क्षत्रिय उन दोनोंके हाथसे जीवित नहीं छूट सका ॥ १०७ १०८ ॥

कृपश्चैव महाराज हार्दिक्यश्चैव दुर्मतिः ।
भूयश्चैव चिकीर्षन्तौ द्रोणपुत्रस्य तौ प्रियम् ॥ १०९ ॥
त्रिषु देशेषु ददतुः शिबिरस्य हुताशनम् ।

महाराज! कृपाचार्य तथा दुर्बुद्धि कृतवर्मा दोनों ही द्रोणपुत्र अश्वत्थामाका अधिक-से-अधिक प्रिय करना चाहते थे; अतः उन्होंने उस शिबिरमें तीन ओरसे आग लगा दी ॥ १०९½ ॥

ततः प्रकाशे शिबिरे खड्गेन पितृनन्दनः ॥ ११० ॥
अश्वत्थामा महाराज व्यचरत् कृतहस्तवत् ।

महाराज! उससे सारे शिबिरमें उजाला हो गया और उस उजालेमें पिताको आनन्दित करनेवाला अश्वत्थामा हाथमें खड्ग लिये एक सिद्धहस्त योद्धाकी भाँति बेखटके विचरने लगा ॥ ११०½ ॥

कांश्चिदापततो वीरानपरांश्चैव धावतः ॥ १११ ॥

व्ययोजयत खड्गेन प्राणैर्द्विजवरोत्तमः ।

उस समय कुछ वीर क्षत्रिय आक्रमण कर रहे थे और दूसरे पीठ दिखाकर भागे जा रहे थे। ब्राह्मणशिरोमणि अश्वत्थामाने उन दोनों ही प्रकारके योद्धाओंको तलवारसे मारकर प्राणहीन कर दिया ॥ १११½ ॥

कांश्चिद् योधान् स खड्गेन मध्ये संछिद्य वीर्यवान् ॥११२॥
अपातयद् द्रोणपुत्रः संरब्धस्तिलकाण्डवत् ।

क्रोधसे भरे हुए शक्तिशाली द्रोणपुत्रने कुछ योद्धाओंको तिलके डंठलोंकी भाँति बीचसे ही तलवारसे काट गिराया ॥

निनदद्भिर्भृशायस्तैर्नराश्वद्विरदोत्तमैः ॥११३॥
पतितैरभवत् कीर्णा मेदिनी भरतर्षभ ।

भरतश्रेष्ठ ! अत्यन्त घायल हो पृथ्वीपर गिरकर चिल्लाते हुए मनुष्यों, घोड़ों और बड़े-बड़े हाथियोंसे वहाँकी भूमि ढँक गयी थी ॥ ११३½ ॥

मानुषाणां सहस्रेषु हतेषु पतितेषु च ॥११४॥
उदतिष्ठन् कबन्धानि बहून्युत्थाय चापतन् ।

सहस्रों मनुष्य मारे जाकर पृथ्वीपर पड़े थे। उनमेंसे बहुतेरे कबन्ध (धड़) उठकर खड़े हो जाते और पुनः गिर पड़ते थे ॥ ११४½ ॥

सायुधान् साङ्गदान् बाहून् विचकर्त शिरांसि च॥११५॥
हस्तिहस्तोपमानूरून् हस्तान् पादांश्च भारत ।

भारत ! उसने आयुधों और भुजबंदोंसहित बहुत-सी भुजाओं तथा मस्तकोंको काट डाला। हाथीकी सूँडके समान दिखायी देनेवाली जाँघों, हाथों और पैरोंके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ११५½ ॥

पृष्ठच्छिन्नान् पार्श्वच्छिन्नाञ्छिरश्छिन्नांस्तथा परान्११६
स महात्माकरोद् द्रौणिः कांश्चिच्चापि पराङ्मुखान् ।

महामनस्वी द्रोणकुमारने किन्हींकी पीठ काट डाली, किन्हींकी पसलियाँ उड़ा दीं, किन्हींके सिर उतार लिये तथा कितनोंको उसने मार भगाया ॥ ११६½ ॥

मध्यदेशे नरानन्यांश्चिच्छेदान्यांश्च कर्णतः ॥११७॥
अंसदेशे निहत्यान्यान् काये प्रावेशयच्छिरः ।

बहुत-से मनुष्योंको अश्वत्थामाने कटिभागसे ही काट डाला और कितनोंको कर्णहीन कर दिया। दूसरे-दूसरे योद्धाओंके कंधेपर चोट करके उनके सिरको धड़में घुसेड़ दिया ॥ ११७½ ॥

एवं विचरतस्तस्य निघ्नतः सुबहून् नरान् ॥११८॥
तमसा रजनी घोरा बभौ दारुणदर्शना ।

इस प्रकार अनेकों मनुष्योंका संहार करता हुआ वह शिविरमें विचरण करने लगा। उस समय दारुण दिखायी देनेवाली वह रात्रि अन्धकारके कारण और भी घोर तथा भयानक प्रतीत होती थी ॥ ११८½ ॥

किंचित्प्राणैश्च पुरुषैर्हतैश्चान्यैः सहस्रशः ॥११९॥
बहुना च गजाश्वेन भूरभूद् भीमदर्शना ।

मरे और अधमरे सहस्रों मनुष्यों और बहुसंख्यक हाथी-घोड़ोंसे पटी हुई भूमि बड़ी डरावनी दिखायी देती थी ॥

यक्षरक्षःसमाकीर्णे रथाश्वद्विपदारुणे ॥१२०॥
क्रुद्धेन द्रोणपुत्रेण संछन्नाः प्रापतन् भुवि ।

यक्षों तथा राक्षसोंसे भरे हुए एवं रथों, घोड़ों और हाथियोंसे भयंकर दिखायी देनेवाले रणक्षेत्रमें कुपित हुए द्रोणपुत्रके हाथोंसे कटकर कितने ही क्षत्रिय पृथ्वीपर पड़े थे॥

भ्रातॄनन्ये पितॄनन्ये पुत्रानन्ये विचुक्रुशुः ॥१२१॥
केचिदूचुर्न तत् क्रुद्धैर्धार्तराष्ट्रैः कृतं रणे ।
यत् कृतं नः प्रसुप्तानां रक्षोभिः क्रूरकर्मभिः ॥१२२॥

कुछ लोग भाइयोंको, कुछ पिताओंको और दूसरे लोग पुत्रोंको पुकार रहे थे। कुछ लोग कहने लगे—'भाइयो ! रोषमें भरे हुए धृतराष्ट्रके पुत्रोंने भी रणभूमिमें हमारी वैसी दुर्गति नहीं की थी, जो आज इन क्रूरकर्मा राक्षसोंने हम सोये हुए लोगोंकी कर डाली है ॥ १२१-१२२ ॥

असांनिध्याद्धि पार्थानामिदं नः कदनं कृतम् ।
न चासुरैर्न गन्धर्वैर्न च यक्षैर्न च राक्षसैः ॥१२३॥
शक्यो विजेतुं कौन्तेयो गोप्ता यस्य जनार्दनः ।
ब्रह्मण्यः सत्यवाग् दान्तः सर्वभूतानुकम्पकः ॥१२४॥

'आज कुन्तीके पुत्र हमारे पास नहीं हैं, इसीलिये हमलोगोंका यह संहार किया गया है। कुन्तीपुत्र अर्जुनको तो असुर, गन्धर्व, यक्ष तथा राक्षस कोई भी नहीं जीत सकते; क्योंकि साक्षात् श्रीकृष्ण उनके रक्षक हैं। वे ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी, जितेन्द्रिय तथा सम्पूर्ण भूतोंपर दया करनेवाले हैं॥

न च सुप्तं प्रमत्तं वा न्यस्तशस्त्रं कृताञ्जलिम् ।
धावन्तं मुक्तकेशं वा हन्ति पार्थो धनंजयः ॥१२५॥

'कुन्तीनन्दन अर्जुन सोये हुए, असावधान, शस्त्रहीन, हाथ जोड़े हुए, भागते हुए अथवा बाल खोलकर दीनता दिखाते हुए मनुष्यको कभी नहीं मारते हैं ॥ १२५ ॥

तदिदं नः कृतं घोरं रक्षोभिः क्रूरकर्मभिः ।
इति लालप्यमानाः स्म शेरते बहवो जनाः ॥१२६॥

'आज क्रूरकर्मा राक्षसोंद्वारा हमारी यह भयंकर दुर्दशा की गयी है।' इस प्रकार विलाप करते हुए बहुत-से मनुष्य रणभूमिमें सो रहे थे ॥ १२६ ॥

स्तनतां च मनुष्याणामपरेषां च कूजताम् ।
ततो मुहूर्तात् प्राशाम्यत् स शब्दस्तुमुलो महान्॥१२७॥

तदनन्तर दो ही घड़ीमें कराहते और विलाप करते हुए मनुष्योंका वह भयंकर कोलाहल शान्त हो गया ॥ १२७ ॥

शोणितव्यतिषिक्तायां वसुधायां च भूमिप ।
तद्रजस्तुमुलं घोरं क्षणेनान्तरधीयत ॥१२८॥

राजन् ! खूनसे भीगी हुई पृथ्वीपर गिरकर वह भयानक धूल क्षणभरमें अदृश्य हो गयी ॥ १२८ ॥

स चेष्टमानानुद्विग्नान् निरुत्साहान् सहस्रशः।

न्यपातयन्नरान् क्रुद्धः पशून् पशुपतिर्यथा ॥१२९॥

जैसे प्रलयके समय क्रोधमें भरे हुए पशुपति रुद्र समस्त पशुओं (प्राणियों) का संहार कर डालते हैं, उसी प्रकार कुपित हुए अश्वत्थामाने ऐसे सहस्रों मनुष्योंको भी मार डाला, जो किसी प्रकार प्राण बचानेके प्रयत्नमें लगे हुए थे, एकदम घबराये हुए थे और सारा उत्साह खो बैठे थे ॥१२९॥

अन्योन्यं सम्परिष्वज्य शयानान् द्रवतोऽपरान् ।
संलीनान् युद्ध्यमानांश्च सर्वान् द्रौणिरपोथयत्॥१३०॥

कुछ लोग एक दूसरेसे लिपटकर सो रहे थे, दूसरे भाग रहे थे, तीसरे छिप गये थे और चौथी श्रेणीके लोग जूझ रहे थे, उन सबको द्रोणकुमारने वहाँ मार गिराया ॥

दह्यमाना हुताशेन वध्यमानाश्च तेन ते ।
परस्परं तदा योधा अनयन् यमसादनम् ॥१३१॥

एक ओर लोग आगसे जल रहे थे और दूसरी ओर अश्वत्थामाके हाथसे मारे जाते थे, ऐसी दशामें वे सब योद्धा स्वयं ही एक दूसरेको यमलोक भेजने लगे ॥ १३१ ॥

तस्या रजन्यास्त्वर्धेन पाण्डवानां महद् बलम् ।
गमयामास राजेन्द्र द्रौणिर्यमनिवेशनम् ॥१३२॥

राजेन्द्र ! उस रातका आधा भाग बीतते-बीतते द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने पाण्डवोंकी उस विशाल सेनाको यमराजके घर भेज दिया ॥ १३२ ॥

निशाचराणां सत्त्वानां रात्रिः सा हर्षवर्धिनी ।
आसीन्नरगजाश्वानां रौद्री क्षयकरी भृशम् ॥१३३॥

वह भयानक रात्रि निशाचर प्राणियोंका हर्ष बढ़ानेवाली थी और मनुष्यों, घोड़ों तथा हाथियोंके लिये अत्यन्त विनाशकारिणी सिद्ध हुई ॥ १३३ ॥

तत्रादृश्यन्त रक्षांसि पिशाचाश्च पृथग्विधाः ।
खादन्तो नरमांसानि पिबन्तः शोणितानि च ॥१३४॥

वहाँ नाना प्रकारकी आकृतिवाले बहुत-से राक्षस और पिशाच मनुष्योंके मांस खाते और खून पीते दिखायी देते थे॥

करालाः पिङ्गलाश्चैव शैलदन्ता रजस्वलाः ।
जटिला दीर्घशङ्खाश्च पञ्चपादा महोदराः ॥१३५॥

वे बड़े ही विकराल और पिङ्गल वर्णके थे । उनके दाँत पहाड़ों-जैसे जान पड़ते थे । वे सारे अङ्गोंमें धूल लपेटे और सिरपर जटा रखाये हुए थे । उनके माथेकी हड्डी बहुत बड़ी थी । उनके पाँच-पाँच पैर और बड़े-बड़े पेट थे ॥ १३५ ॥

पश्चादङ्गुलयो रूक्षा विरूपा भैरवस्वनाः ।
घण्टाजालावसक्ताश्च नीलकण्ठा विभीषणाः ॥१३६॥
सपुत्रदाराः सक्रूराः सुदुर्दर्शाः सुनिर्घृणाः ।
विविधानि च रूपाणि तत्रादृश्यन्त रक्षसाम् ॥१३७॥

उनकी अङ्गुलियाँ पीछेकी ओर थीं । वे रूखे, कुरूप और भयंकर गर्जना करनेवाले थे । बहुतोंने घंटोंकी मालाएँ पहन रक्खी थीं । उनके गलेमें नील चिह्न था । वे बड़े भयानक दिखायी देते थे । उनके स्त्री और पुत्र भी साथ ही थे । वे अत्यन्त क्रूर और निर्दय थे । उनकी ओर देखना भी बहुत कठिन था । वहाँ उन राक्षसोंके भाँति-भाँतिके रूप दृष्टिगोचर हो रहे थे ॥ १३६-१३७ ॥

पीत्वा च शोणितं हृष्टाः प्रानृत्यन् गणशोऽपरे ।
इदं परमिदं मेध्यमिदं स्वाद्विति चाब्रुवन् ॥१३८॥

कोई रक्त पीकर हर्षसे खिल उठे थे । दूसरे अलग-अलग झुंड बनाकर नाच रहे थे । वे आपसमें कहते थे— 'यह उत्तम है, यह पवित्र है और यह बहुत स्वादिष्ट है' ॥

मेदोमज्जास्थिरक्तानां वसानां च भृशाशिताः ।
परमांसानि खादन्तः क्रव्यादा मांसजीविनः ॥१३९॥

मेदा, मज्जा, हड्डी, रक्त और चर्बीका विशेष आहार करनेवाले मांसजीवी राक्षस एवं हिंसक जन्तु दूसरोंके मांस खा रहे थे ॥ १३९ ॥

वसाश्चैवापरे पीत्वा पर्यधावन् विकुक्षिकाः ।
नानावक्त्रास्तथा रौद्राः क्रव्यादाः पिशिताशनाः॥१४०॥

दूसरे कुक्षिरहित राक्षस चर्बियोंका पान करके चारों ओर दौड़ लगा रहे थे । कच्चा मांस खानेवाले उन भयंकर राक्षसोंके अनेक मुख थे ॥ १४० ॥

अयुतानि च तत्रासन् प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
रक्षसां घोररूपाणां महतां क्रूरकर्मणाम् ॥१४१॥
मुदितानां वितृप्तानां तस्मिन् महति वैशसे ।
समेतानि बहून्यासन् भूतानि च जनाधिप ॥१४२॥

वहाँ उस महान् जनसंहारमें तृप्त और आनन्दित हुए क्रूर कर्म करनेवाले घोर रूपधारी महाकाय राक्षसोंके कई दल थे । किसी दलमें दस हजार, किसीमें एक लाख और किसीमें एक अर्बुद (दस लाख) राक्षस थे । नरेश्वर ! वहाँ और भी बहुत-से मांसभक्षी प्राणी एकत्र हो गये थे ॥

प्रत्यूषकाले शिबिरात् प्रतिगन्तुमियेष सः ।
नृशोणितावसिक्तस्य द्रौणेरासीदसित्सरुः ॥१४३॥
पाणिना सह संश्लिष्ट एकीभूत इव प्रभो ।

प्रातःकाल पौ फटते ही अश्वत्थामाने शिविरसे बाहर निकल जानेका विचार किया । प्रभो ! उस समय नररक्तसे नहाये हुए अश्वत्थामाके हाथसे सटकर उसकी तलवारकी मूँठ ऐसी जान पड़ती थी, मानो वह उससे अभिन्न हो ॥

दुर्गमां पदवीं गत्वा विरराज जनक्षये ॥१४४॥
युगान्ते सर्वभूतानि भस्म कृत्वेव पावकः ।

जैसे प्रलयकालमें आग सम्पूर्ण प्राणियोंको भस्म करके प्रकाशित होती है, उसी प्रकार वह नरसंहार हो जानेपर अपने दुर्गम लक्ष्यतक पहुँचकर अश्वत्थामा अधिक शोभा पाने लगा ॥ १४४½ ॥

यथाप्रतिज्ञं तत् कर्म कृत्वा द्रौणायनिः प्रभो ॥१४५॥
दुर्गमां पदवीं गच्छन् पितुरासीद् गतज्वरः ।

नरेश्वर ! अपने पिताके दुर्गम पथपर चलता हुआ द्रोणकुमार अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार सारा कार्य पूर्ण करके शोक और चिन्तासे रहित हो गया ॥ १४५½ ॥

यथैव संसुप्तजने शिबिरे प्राविशन्निशि ॥१४६॥

तथैव हत्वा निःशब्दे निश्चक्राम नरर्षभः।

जिस प्रकार रातके समय सबके सो जानेपर शान्त शिविरमें उसने प्रवेश किया था, उसी प्रकार वह नरश्रेष्ठ वीर सबको मारकर कोलाहलशून्य हुए शिविरसे बाहर निकला ॥

निष्क्रम्य शिबिरात् तस्मात् ताभ्यां संगम्य वीर्यवान् ॥
आचख्यौ कर्म तत् सर्वं हृष्टः संहर्षयन् विभो।

प्रभो! उस शिबिरसे निकलकर शक्तिशाली अश्वत्थामा उन दोनोंसे मिला और स्वयं हर्षमग्न हो उन दोनोंका हर्ष बढ़ाते हुए उसने अपना किया हुआ सारा कर्म उनसे कह सुनाया ॥ १४७½ ॥

तावथाचख्यतुस्तस्मै प्रियं प्रियकरौ तदा ॥१४८॥
पञ्चालान् सृञ्जयांश्चैव विनिकृत्तान् सहस्रशः।

अश्वत्थामाका प्रिय करनेवाले उन दोनों वीरोंने भी उस समय उससे यह प्रिय समाचार निवेदन किया कि हम दोनोंने भी सहस्रों पाञ्चालों और सृंजयोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले हैं ॥

प्रीत्या चोच्चैरुदक्रोशंस्तथैवास्फोटयंस्तलान् ॥१४९॥
एवंविधा हि सा रात्रिः सोमकानां जनक्षये।
प्रसुप्तानां प्रमत्तानामासीत् सुभृशदारुणा ॥१५०॥

फिर तो वे तीनों प्रसन्नताके मारे उच्चस्वरसे गर्जने और ताल ठोकने लगे। इस प्रकार वह रात्रि उस जन-संहारकी वेलामें असावधान होकर सोये हुए सोमकोंके लिये अत्यन्त भयंकर सिद्ध हुई ॥ १४९-१५० ॥

असंशयं हि कालस्य पर्यायो दुरतिक्रमः।
तादृशा निहता यत्र कृत्वास्माकं जनक्षयम् ॥१५१॥

राजन्! इसमें संशय नहीं कि कालकी गतिका उल्लङ्घन करना अत्यन्त कठिन है। जहाँ हमारे पक्षके लोगोंका संहार करके विजयको प्राप्त हुए वैसे-वैसे वीर मार डाले गये ॥

धृतराष्ट्र उवाच

प्रागेव सुमहत् कर्म द्रौणिरेतन्महारथः।
नाकरोदीदृशं कस्मान्मत्पुत्रविजये धृतः ॥१५२॥

राजा धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! अश्वत्थामा तो मेरे पुत्रको विजय दिलानेका दृढ़ निश्चय कर चुका था। फिर उस महारथी वीरने पहले ही ऐसा महान् पराक्रम क्यों नहीं किया?॥

अथ कस्माद्धते क्षुद्रं कर्मेदं कृतवानसौ।
द्रोणपुत्रो महात्मा स तन्मे शंसितुमर्हसि ॥१५३॥

जब दुर्योधन मार डाला गया, तब उस महामनस्वी द्रोणपुत्रने ऐसा नीच कर्म क्यों किया? यह सब मुझे बताओ ॥

संजय उवाच

तेषां नूनं भयात्रासौ कृतवान् कुरुनन्दन।
असांनिध्याद्धि पार्थानां केशवस्य च धीमतः ॥१५४॥
सात्यकेश्चापि कर्मेदं द्रोणपुत्रेण साधितम्।

संजयने कहा—कुरुनन्दन! अश्वत्थामाको पाण्डव, श्रीकृष्ण और सात्यकिसे सदा भय बना रहता था; इसीलिये पहले उसने ऐसा नहीं किया। इस समय कुन्तीके पुत्र, बुद्धिमान् श्रीकृष्ण तथा सात्यकिके दूर चले जानेसे अश्वत्थामाने अपना यह कार्य सिद्ध कर लिया ॥ १५४½ ॥

को हि तेषां समक्षं तान् हन्यादपि मरुत्पतिः ॥१५५॥
एतदीदृशकं वृत्तं राजन् सुप्तजने विभो।

उन पाण्डव आदिके समक्ष कौन उन्हें मार सकता था? साक्षात् देवराज इन्द्र भी उस दशामें उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते थे। प्रभो! नरेश्वर! उस रात्रिमें सब लोगोंके सो जानेपर यह इस प्रकारकी घटना घटित हुई ॥ १५५½ ॥

ततो जनक्षयं कृत्वा पाण्डवानां महात्ययम् ॥१५६॥
दिष्ट्या दिष्ट्येव चान्योन्यं समेत्योचुर्महारथाः।

उस समय पाण्डवोंके लिये महान् विनाशकारी जनसंहार करके वे तीनों महारथी जब परस्पर मिले, तब आपसमें कहने लगे—'बड़े सौभाग्यसे यह कार्य सिद्ध हुआ है' ॥

पर्यष्वजत् ततो द्रौणिस्ताभ्यां सम्प्रतिनन्दितः ॥१५७॥
इदं हर्षात् तु सुमहदाददे वाक्यमुत्तमम्।

तदनन्तर उन दोनोंका अभिनन्दन स्वीकार करके द्रोणपुत्रने उन्हें हृदयसे लगाया और बड़े हर्षसे यह महत्त्वपूर्ण उत्तम वचन मुँहसे निकाला—॥ १५७½ ॥

पञ्चाला निहताः सर्वे द्रौपदेयाश्च सर्वशः ॥१५८॥
सोमका मत्स्यशेषाश्च सर्वे विनिहता मया।

'सारे पाञ्चाल, द्रौपदीके सभी पुत्र, सोमकवंशी क्षत्रिय तथा मत्स्य देशके अवशिष्ट सैनिक ये सभी मेरे हाथसे मारे गये॥

इदानीं कृतकृत्याः स्म याम तत्रैव मा चिरम्।
यदि जीवति नो राजा तस्मै शंसमहे वयम् ॥१५९॥

'इस समय हम कृतकृत्य हो गये। अब हमें शीघ्र वहीं चलना चाहिये। यदि हमारे राजा दुर्योधन जीवित हों तो हम उन्हें भी यह समाचार कह सुनावें' ॥ १५९ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि रात्रियुद्धे पाञ्चालादिवधेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वमें रात्रियुद्धके प्रसङ्गमें पाञ्चाल आदिका वधविषयक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल १५९½ श्लोक हैं)

नवमोऽध्यायः

दुर्योधनकी दशा देखकर कृपाचार्य और अश्वत्थामाका विलाप तथा उनके मुखसे पाञ्चालोंके वधका वृत्तान्त जानकर दुर्योधनका प्रसन्न होकर प्राणत्याग करना

संजय उवाच

ते हत्वा सर्वपञ्चालान् द्रौपदेयांश्च सर्वशः।
आगच्छन् सहितास्तत्र यत्र दुर्योधनो हतः ॥ १ ॥

संजय कहते हैं—राजन्! वे तीनों महारथी समस्त पाञ्चालों और द्रौपदीके सभी पुत्रोंका वध करके एक साथ उस स्थानमें आये, जहाँ राजा दुर्योधन मारा गया था ॥१॥

गत्वा चैनमपश्यन्त किञ्चित्प्राणं जनाधिपम् ।
ततो रथेभ्यः प्रस्कन्द्य परिवव्रुस्तवात्मजम् ॥ २ ॥

वहाँ जाकर उन्होंने राजा दुर्योधनको देखा, उसकी कुछ-कुछ साँस चल रही थी। फिर वे रथोंसे कूद पड़े और आपके पुत्रके पास जा उसे सब ओरसे घेरकर बैठ गये ॥

तं भग्नसक्थं राजेन्द्र कृच्छ्रप्राणमचेतसम् ।
वमन्तं रुधिरं वक्त्रादपश्यन् वसुधातले ॥ ३ ॥
वृतं समन्ताद् बहुभिः श्वापदैर्घोरदर्शनैः ।
शालावृकगणैश्चैव भक्षयिष्यद्भिरन्तिकात् ॥ ४ ॥
निवारयन्तं कृच्छ्रात्ताञ्श्वापदांश्च चिखादिषून् ।
विचेष्टमानं मह्यां च सुभृशं गाढवेदनम् ॥ ५ ॥

राजेन्द्र ! उन्होंने देखा कि राजाकी जाँघें टूट गयी हैं। ये बड़े कष्टसे प्राण धारण करते हैं। इनकी चेतना लुप्त-सी हो गयी है और ये अपने मुँहसे पृथ्वीपर खून उगल रहे हैं। इन्हें चट कर जानेके लिये बहुत-से भयंकर दिखायी देनेवाले हिंसक जीव और कुत्ते चारों ओरसे घेरकर आसपास ही खड़े हैं। ये अपनेको खा जानेकी इच्छा रखनेवाले उन हिंसक जन्तुओंको बड़ी कठिनाईसे रोकते हैं। इन्हें बड़ी भारी पीड़ा हो रही है, जिसके कारण ये पृथ्वीपर पड़े-पड़े छटपटा रहे हैं ॥

तं शयानं तथा दृष्ट्वा भूमौ सुरुधिरोक्षितम् ।
हतशिष्टास्त्रयो वीराः शोकार्ताः पर्यवारयन् ॥ ६ ॥
अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः ।

दुर्योधनको इस प्रकार खूनसे लथपथ हो पृथ्वीपर पड़ा देख मरनेसे बचे हुए वे तीनों वीर अश्वत्थामा, कृपाचार्य और सात्वतवंशी कृतवर्मा शोकसे व्याकुल हो उसे तीन ओरसे घेरकर बैठ गये ॥ ६½ ॥

तैस्त्रिभिः शोणितादिग्धैर्निःश्वसद्भिर्महारथैः ॥ ७ ॥
शुशुभे स वृतो राजा वेदी त्रिभिरिवाग्निभिः ।

वे तीनों महारथी वीर खूनसे रँग गये थे और लंबी साँसें खींच रहे थे। उनसे घिरा हुआ राजा दुर्योधन तीन अग्नियोंसे घिरी हुई वेदीके समान सुशोभित हो रहा था ॥

ते तं शयानं सम्प्रेक्ष्य राजानमतथोचितम् ॥ ८ ॥
अविषह्येन दुःखेन ततस्ते रुरुदुस्त्रयः ।

राजाको इस प्रकार अयोग्य अवस्थामें सोया देख वे तीनों असह्य दुःखसे पीड़ित हो रोने लगे ॥ ८½ ॥

ततस्तु रुधिरं हस्तैर्मुखान्निर्मृज्य तस्य हि ।
रणे राज्ञः शयानस्य कृपणं पर्यदेवयन् ॥ ९ ॥

तत्पश्चात् रणभूमिमें सोये हुए राजा दुर्योधनके मुखसे बहते हुए रक्तको हाथोंसे पोंछकर वे तीनों दीन वाणीमें विलाप करने लगे ॥ ९ ॥

कृप उवाच

न दैवस्यातिभारोऽस्ति यदयं रुधिरोक्षितः ।
एकादशचमूभर्ता शेते दुर्योधनो हतः ॥ १० ॥

कृपाचार्य बोले—हाय ! विधाताके लिये कुछ भी करना कठिन नहीं है। जो कभी ग्यारह अक्षौहिणी सेनाके स्वामी थे, वे ही ये राजा दुर्योधन यहाँ मारे जाकर खूनसे लथपथ हुए पड़े हैं ॥ १० ॥

पश्य चामीकराभस्य चामीकरविभूषिताम् ।
गदां गदाप्रियस्येमां समीपे पतितां भुवि ॥ ११ ॥

देखो, सुवर्णके समान कान्तिवाले इन गदाप्रेमी नरेशके समीप यह सुवर्णभूषित गदा पृथ्वीपर पड़ी है ॥ ११ ॥

इयमेनं गदा शूरं न जहाति रणे रणे ।
स्वर्गायापि व्रजन्तं हि न जहाति यशस्विनम् ॥ १२ ॥

यह गदा इन शूरवीर भूपालका साथ किसी भी युद्धमें नहीं छोड़ती थी और आज स्वर्गलोकमें जाते समय भी यशस्वी नरेशका साथ नहीं छोड़ रही है ॥ १२ ॥

पश्येमां सह वीरेण जाम्बूनदविभूषिताम् ।
शयानां शयने हर्म्ये भार्यां प्रीतिमतीमिव ॥ १३ ॥

देखो, यह सुवर्णभूषित गदा इन वीर भूपालके साथ रणशय्यापर उसी प्रकार सो रही है, जैसे महलमें प्रेम रखनेवाली पत्नी इनके साथ सोया करती थी ॥ १३ ॥

योऽयं मूर्धाभिषिक्तानामग्रे यातः परंतपः ।
स हतो ग्रसते पांसून् पश्य कालस्य पर्ययम् ॥ १४ ॥

जो ये शत्रुसंतापी नरेश सभी मूर्धाभिषिक्त राजाओंके आगे चला करते थे, वे ही आज मारे जाकर धरतीपर पड़े-पड़े धूल फाँक रहे हैं। यह समयका उलट-फेर तो देखो ॥

येनाजौ निहता भूमावशेरत पुरा द्विषः ।
स भूमौ निहतः शेते कुरुराजः परैरयम् ॥ १५ ॥

पूर्वकालमें जिनके द्वारा युद्धमें मारे गये शत्रु भूमिपर सोया करते थे, वे ही ये कुरुराज आज शत्रुओंद्वारा स्वयं मारे जाकर भूमिपर शयन करते हैं ॥ १५ ॥

भयान्नमन्ति राजानो यस्य स्म शतसंघशः ।
स वीरशयने शेते क्रव्याद्भिः परिवारितः ॥ १६ ॥

जिनके आगे सैकड़ों राजा भयसे सिर झुकाते थे, वे ही आज हिंसक जन्तुओंसे घिरे हुए वीर-शय्यापर सो रहे हैं ॥

उपासत द्विजाः पूर्वमर्थहेतोर्यमीश्वरम् ।
उपासते च तं ह्यद्य क्रव्यादा मांसहेतवः ॥ १७ ॥

पहले बहुत-से ब्राह्मण धनकी प्राप्तिके लिये जिन नरेशके पास बैठे रहते थे, उन्हींके समीप आज मांसके लिये मांसाहारी जन्तु बैठे हुए हैं ॥ १७ ॥

संजय उवाच

तं शयानं कुरुश्रेष्ठं ततो भरतसत्तम ।
अश्वत्थामा समालोक्य करुणं पर्यदेवयत् ॥ १८ ॥

संजय कहते हैं—भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर कुरुकुल-भूषण दुर्योधनको रणशय्यापर पड़ा देख अश्वत्थामा इस प्रकार करुण विलाप करने लगा— ॥ १८ ॥

आहुस्त्वां राजशार्दूल मुख्यं सर्वधनुष्मताम् ।
धनाध्यक्षोपमं युद्धे शिष्यं संकर्षणस्य च ॥ १९ ॥
कथं विवरमद्राक्षीद् भीमसेनस्तवानघ ।
बलिनं कृतिनं नित्यं स च पापात्मवान् नृप ॥ २० ॥

'निष्पाप राजसिंह ! आपको समस्त धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ कहा जाता था। आप गदायुद्धमें धनाध्यक्ष कुबेरकी समानता करनेवाले तथा साक्षात् संकर्षणके शिष्य थे तो भी भीमसेनने कैसे आपपर प्रहार करनेका अवसर पा लिया ? नरेश्वर ! आप तो सदासे ही बलवान् और गदायुद्धके विद्वान् रहे हैं। फिर उस पापात्माने कैसे आपको मार दिया ? ॥१९-२०॥

कालो नूनं महाराज लोकेऽस्मिन् बलवत्तरः।
पश्यामो निहतं त्वां च भीमसेनेन संयुगे ॥ २१ ॥

'महाराज ! निश्चय ही इस संसारमें समय महाबलवान् है, तभी तो युद्धस्थलमें हम आपको भीमसेनके द्वारा मारा गया देखते हैं ॥ २१ ॥

कथं त्वां सर्वधर्मज्ञं क्षुद्रः पापो वृकोदरः।
निकृत्या हतवान् मन्दो नूनं कालो दुरत्ययः ॥ २२ ॥

'आप तो सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता थे। आपको उस मूर्ख, नीच और पापी भीमसेनने किस तरह धोखेसे मार डाला ? अवश्य ही कालका उल्लङ्घन करना सर्वथा कठिन है ॥२२॥

धर्मयुद्धे ह्यधर्मेण समाहूयौजसा मृधे।
गदया भीमसेनेन निर्भग्ने सक्थिनी तव ॥ २३ ॥

'भीमसेनने आपको धर्मयुद्धके लिये बुलाकर रणभूमिमें अधर्मके बलसे गदाद्वारा आपकी दोनों जाँघें तोड़ डालीं ॥

अधर्मेण हतस्याजौ मृद्यमानं पदा शिरः।
य उपेक्षितवान् क्षुद्रं धिक् कृष्णं धिग् युधिष्ठिरम् ॥ २४ ॥

'एक तो आप रणभूमिमें अधर्मपूर्वक मारे गये। दूसरे भीमसेनने आपके मस्तकपर लात मारी। इतनेपर भी जिन्होंने उस नीचकी उपेक्षा की, उसे कोई दण्ड नहीं दिया, उन श्रीकृष्ण और युधिष्ठिरको धिक्कार है ! ॥ २४ ॥

युद्धेष्वपवदिष्यन्ति योधा नूनं वृकोदरम्।
यावत् स्थास्यन्ति भूतानि निकृत्या ह्यसि पातितः॥२५॥

'आप धोखेसे गिराये गये हैं, अतः इस संसारमें जबतक प्राणियोंकी स्थिति रहेगी, तबतक सभी युद्धोंमें सम्पूर्ण योद्धा भीमसेनकी निन्दा ही करेंगे ॥ २५ ॥

ननु रामोऽब्रवीद् राजंस्त्वां सदा यदुनन्दनः।
दुर्योधनसमो नास्ति गदया इति वीर्यवान् ॥ २६ ॥

'राजन् ! पराक्रमी यदुनन्दन बलरामजी आपके विषयमें सदा कहा करते थे कि 'गदायुद्धकी शिक्षामें दुर्योधनकी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है' ॥ २६ ॥

श्लाघते त्वां हि वार्ष्णेयो राजसंसत्सु भारत।
स शिष्यो मम कौरव्यो गदायुद्ध इति प्रभो ॥ २७ ॥

'प्रभो ! भरतनन्दन ! वे वृष्णिकुलभूषण बलराम राजाओं-की सभामें सदा आपकी प्रशंसा करते हुए कहते थे कि 'कुरुराज दुर्योधन गदायुद्धमें मेरा शिष्य है' ॥ २७ ॥

यां गतिं क्षत्रियस्याहुः प्रशस्तां परमर्षयः।
हतस्याभिमुखस्याजौ प्राप्तस्त्वमसि तां गतिम्॥ २८॥

'महर्षियोंने युद्धमें शत्रुका सामना करते हुए मारे जानेवाले क्षत्रियके लिये जो उत्तम गति बतायी है, आपने वही गति प्राप्त की है ॥ २८ ॥

दुर्योधन न शोचामि त्वामहं पुरुषर्षभ।
हतपुत्रौ तु शोचामि गान्धारीं पितरं च ते ॥ २९ ॥

'पुरुषश्रेष्ठ राजा दुर्योधन ! मैं तुम्हारे लिये शोक नहीं करता। मुझे तो माता गान्धारी और आपके पिता धृतराष्ट्रके लिये शोक हो रहा है, जिनके सभी पुत्र मार डाले गये हैं ॥

भिक्षुकौ विचरिष्येते शोचन्तौ पृथिवीमिमाम्।
धिगस्तु कृष्णं वार्ष्णेयमर्जुनं चापि दुर्मतिम् ॥ ३० ॥
धर्मज्ञमानिनौ यौ त्वां वध्यमानमुपेक्षताम्।

'अब वे बेचारे शोकमग्न हो भिखारी बनकर इस भूतल-पर भीख माँगते फिरेंगे। उस वृष्णिवंशी श्रीकृष्ण और खोटी बुद्धिवाले अर्जुनको भी धिक्कार है, जिन्होंने अपनेको धर्मज्ञ मानते हुए भी आपके अन्यायपूर्वक वधकी उपेक्षा की ॥

पाण्डवाश्चापि ते सर्वे किं वक्ष्यन्ति नराधिप ॥ ३१ ॥
कथं दुर्योधनोऽस्माभिर्हत इत्यनपत्रपाः।

'नरेश्वर ! क्या वे समस्त पाण्डव भी निर्लज्ज होकर लोगों-के सामने कह सकेंगे कि 'हमने दुर्योधनको किस प्रकार मारा था ?' ॥ ३१½ ॥

धन्यस्त्वमसि गान्धारे यस्त्वमायोधने हतः ॥ ३२ ॥
प्रायशोऽभिमुखः शत्रून् धर्मेण पुरुषर्षभ।

'पुरुषप्रवर गान्धारीनन्दन ! आप धन्य हैं, क्योंकि युद्धमें प्रायः धर्मपूर्वक शत्रुओंका सामना करते हुए मारे गये हैं ॥

हतपुत्रा हि गान्धारी निहतज्ञातिबान्धवा ॥ ३३ ॥
प्रज्ञाचक्षुश्च दुर्धर्षः कां गतिं प्रतिपत्स्यते।

'जिनके सभी पुत्र, कुटुम्बी और भाई-बन्धु मारे जा चुके हैं, वे माता गान्धारी तथा प्रज्ञाचक्षु दुर्जय राजा धृतराष्ट्र अब किस दशाको प्राप्त होंगे ? ॥ ३३½ ॥

धिगस्तु कृतवर्माणं मां कृपं च महारथम् ॥ ३४ ॥
ये वयं न गताः स्वर्गं त्वां पुरस्कृत्य पार्थिवम्।

'मुझको, कृतवर्माको तथा महारथी कृपाचार्यको भी धिक्कार है कि हम आप-जैसे महाराजको आगे करके स्वर्गलोकमें नहीं गये ॥ ३४½ ॥

दातारं सर्वकामानां रक्षितारं प्रजाहितम् ॥ ३५ ॥
यद् वयं नानुगच्छाम त्वां धिगस्मान् नराधमान्।

'आप हमें सम्पूर्ण मनोवाञ्छित पदार्थ देते रहे और प्रजा-के हितकी रक्षा करते रहे। फिर भी हमलोग जो आपका अनुसरण नहीं कर रहे हैं, इसके लिये हम-जैसे नराधमोंको धिक्कार है ! ॥ ३५½ ॥

कृपस्य तव वीर्येण मम चैव पितुश्च मे ॥ ३६ ॥
सभृत्यानां नरव्याघ्र रत्नवन्ति गृहाणि च।

'नरश्रेष्ठ ! आपके ही बल-पराक्रमसे सेवकोंसहित कृपाचार्यको, मुझको तथा मेरे पिताजीको रत्नोंसे भरे हुए भव्य भवन प्राप्त हुए थे ॥ ३६½ ॥

तव प्रसादादस्माभिः समित्रैः सह बान्धवैः ॥ ३७ ॥
अवाप्ताः क्रतवो मुख्या बहवो भूरिदक्षिणाः।

'आपके ही प्रसादसे मित्रों और बन्धु-बान्धवोंसहित हम

लोगोंने प्रचुर दक्षिणाओंसे सम्पन्न अनेक मुख्य-मुख्य यज्ञोंका अनुष्ठान किया है ॥ ३७½ ॥

कुतश्चापीदृशं पापाः प्रवर्तिष्यामहे वयम् ॥ ३८ ॥
यादृशेन पुरस्कृत्य त्वं गतः सर्वपार्थिवान् ।

'महाराज ! आप जिस भावसे समस्त राजाओंको आगे करके स्वर्ग सिधार रहे हैं, हम पापी ऐसा भाव कहाँसे ला सकेंगे ?॥ ३८½ ॥

वयमेव त्रयो राजन् गच्छन्तं परमां गतिम् ॥ ३९ ॥
यद् वै त्वां नानुगच्छामस्तेन धक्ष्यामहे वयम् ।
तत् स्वर्गहीना हीनार्थाः स्मरन्तः सुकृतस्य ते ॥ ४० ॥

'राजन् ! परम गतिको जाते समय आपके पीछे-पीछे जो हम तीनों भी नहीं चल रहे हैं, इसके कारण हम स्वर्ग और अर्थ दोनोंसे वञ्चित हो आपके सुकृतोंका स्मरण करते हुए दिन-रात शोकाग्निमें जलते रहेंगे ॥ ३९-४० ॥

किं नाम तद् भवेत् कर्म येन त्वां न व्रजाम वै ।
दुःखं नूनं कुरुश्रेष्ठ चरिष्याम महीमिमाम् ॥ ४१ ॥

'कुरुश्रेष्ठ ! न जाने वह कौन-सा कर्म है, जिससे विवश होकर हम आपके साथ नहीं चल रहे हैं । निश्चय ही इस पृथ्वीपर हमें निरन्तर दुःख भोगना पड़ेगा ॥ ४१ ॥

हीनानां नस्त्वया राजन् कुतः शान्तिः कुतः सुखम् ।
गत्वैव तु महाराज समेत्य च महारथान् ॥४२॥
यथाज्येष्ठं यथाश्रेष्ठं पूजयेर्वचनान्मम ।

'महाराज ! आपसे बिछुड़ जानेपर हमें शान्ति और सुख कैसे मिल सकते हैं ? राजन् ! स्वर्गमें जाकर सब महारथियोंसे मिलनेपर आप मेरी ओरसे बड़े-छोटेके क्रमसे उन सबका आदर-सत्कार करें ॥ ४२½ ॥

आचार्यं पूजयित्वा च केतुं सर्वधनुष्मताम् ॥ ४३ ॥
हतं मयाद्य शंसेथा धृष्टद्युम्नं नराधिप ।

'नरेश्वर ! फिर सम्पूर्ण धनुर्धरोंके ध्वजस्वरूप आचार्यका पूजन करके उनसे कह दें कि 'आज अश्वत्थामाके द्वारा धृष्टद्युम्न मार डाला गया' ॥ ४३½ ॥

परिष्वजेथा राजानं बाह्लिकं सुमहारथम् ॥ ४४ ॥
सैन्धवं सोमदत्तं च भूरिश्रवसमेव च ।

'महारथी राजा बाह्लिक, सिन्धुराज जयद्रथ, सोमदत्त तथा भूरिश्रवाका भी आप मेरी ओरसे आलिङ्गन करें ॥ ४४½ ॥

तथा पूर्वगतानन्यान् स्वर्गे पार्थिवसत्तमान् ॥ ४५ ॥
अस्मद्वाक्यात् परिष्वज्य सम्पृच्छेस्त्वमनामयम्॥४६॥

'दूसरे-दूसरे भी जो नृपश्रेष्ठ पहलेसे ही स्वर्गलोकमें जा पहुँचे हैं, उन सबको मेरे कथनानुसार हृदयसे लगाकर उनकी कुशल पूछें' ॥ ४५-४६ ॥

संजय उवाच

इत्येवमुक्त्वा राजानं भग्नसक्थमचेतनम् ।
अश्वत्थामा समुद्वीक्ष्य पुनर्वचनमब्रवीत् ॥ ४७ ॥

संजय कहते हैं—महाराज ! जिसकी जाँघें टूट गयी थीं, उस अचेत पड़े हुए राजा दुर्योधनसे ऐसा कहकर अश्वत्थामाने पुनः उसकी ओर देखा और इस प्रकार कहा—॥

दुर्योधन जीवसि त्वं वाक्यं श्रोत्रसुखं शृणु ।
सप्त पाण्डवतः शेषा धार्तराष्ट्रास्त्रयो वयम् ॥ ४८ ॥

'राजा दुर्योधन ! यदि आप जीवित हों तो यह कानोंको सुख देनेवाली बात सुनें । पाण्डवपक्षमें केवल सात और कौरवपक्षमें सिर्फ हम तीन ही व्यक्ति बच गये हैं ॥ ४८ ॥

ते चैव भ्रातरः पञ्च वासुदेवोऽथ सात्यकिः ।
अहं च कृतवर्मा च कृपः शारद्वतस्तथा ॥ ४९ ॥

'उधर तो पाँचों भाई पाण्डव, श्रीकृष्ण और सात्यकि बचे हैं और इधर मैं, कृतवर्मा तथा शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य शेष रह गये हैं ॥ ४९ ॥

द्रौपदेया हताः सर्वे धृष्टद्युम्नस्य चात्मजाः ।
पञ्चाला निहताः सर्वे मत्स्यशेषं च भारत ॥ ५० ॥

'भरतनन्दन ! द्रौपदी तथा धृष्टद्युम्नके सभी पुत्र मारे गये, समस्त पाञ्चालोंका संहार कर दिया गया और मत्स्य देशकी अवशिष्ट सेना भी समाप्त हो गयी ॥ ५० ॥

कृते प्रतिकृतं पश्य हतपुत्रा हि पाण्डवाः ।
सौप्तिके शिबिरं तेषां हतं सनरवाहनम् ॥ ५१ ॥

'राजन् ! देखिये, शत्रुओंकी करनीका कैसा बदला चुकाया गया ? पाण्डवोंके भी सारे पुत्र मार डाले गये । रातमें सोते समय मनुष्यों और वाहनोंसहित उनके सारे शिबिरका नाश कर दिया गया ॥ ५१ ॥

मया च पापकर्मासौ धृष्टद्युम्नो महीपते ।
प्रविश्य शिबिरं रात्रौ पशुमारेण मारितः ॥ ५२ ॥

'भूपाल ! मैंने स्वयं रातके समय शिबिरमें घुसकर पापाचारी धृष्टद्युम्नको पशुओंकी तरह गला घोंट-घोंटकर मार डाला है' ॥ ५२ ॥

दुर्योधनस्तु तां वाचं निशम्य मनसः प्रियाम् ।
प्रतिलभ्य पुनश्चेत इदं वचनमब्रवीत् ॥ ५३ ॥

यह मनको प्रिय लगनेवाली बात सुनकर दुर्योधनको पुनः होश आ गया और वह इस प्रकार बोला—॥ ५३ ॥

न मेऽकरोत् तद् गाङ्गेयो न कर्णो न च ते पिता ।
यत् त्वया कृपभोजाभ्यां सहितेनाद्य मे कृतम् ॥ ५४ ॥

'मित्रवर ! आज आचार्य कृप और कृतवर्माके साथ तुमने जो कार्य कर दिखाया है, उसे न गङ्गानन्दन भीष्म, न कर्ण और न तुम्हारे पिताजी ही कर सके थे ॥ ५४ ॥

स च सेनापतिः क्षुद्रो हतः सार्धं शिखण्डिना ।
तेन मन्ये मघवता सममात्मानमद्य वै ॥ ५५ ॥

'शिखण्डीसहित वह नीच सेनापति धृष्टद्युम्न मार डाला गया, इससे आज निश्चय ही मैं अपनेको इन्द्रके समान समझता हूँ ॥ ५५ ॥

स्वस्ति प्राप्नुत भद्रं वः स्वर्गे नः संगमः पुनः ।
इत्येवमुक्त्वा तूष्णीं स कुरुराजो महामनाः ॥ ५६ ॥
प्राणानुपासृजद् वीरः सुहृदां दुःखमुत्सृजन् ।
अपाक्रामद् दिवं पुण्यां शरीरं क्षितिमाविशत् ॥ ५७ ॥

'तुम सब लोगोंका कल्याण हो। तुम्हें सुख प्राप्त हो। अब स्वर्गमें ही हमलोगोंका पुनर्मिलन होगा।' ऐसा कहकर महामनस्वी वीर कुरुराज दुर्योधन चुप हो गया और अपने सुहृदोंके लिये दुःख छोड़कर उसने अपने प्राण त्याग दिये। वह स्वयं तो पुण्यधाम स्वर्गलोकमें चला गया; किंतु उसका पार्थिव शरीर इस पृथ्वीपर ही पड़ा रह गया ॥ ५६-५७ ॥

एवं ते निधनं यातः पुत्रो दुर्योधनो नृप।
अग्रे यात्वा रणे शूरः पश्चाद् विनिहतः परैः ॥ ५८ ॥

नरेश्वर! इस प्रकार आपका पुत्र दुर्योधन मृत्युको प्राप्त हुआ। वह समराङ्गणमें सबसे पहले गया था और सबसे पीछे शत्रुओंद्वारा मारा गया ॥ ५८ ॥

तथैव ते परिष्वक्ताः परिष्वज्य च ते नृपम्।
पुनः पुनः प्रेक्षमाणाः स्वकानारुरुहू रथान् ॥ ५९ ॥

मरनेसे पहले दुर्योधनने तीनों वीरोंको गले लगाया और उन तीनोंने भी राजाको हृदयसे लगाकर विदा दी, फिर वे बारंबार उसकी ओर देखते हुए अपने-अपने रथोंपर सवार हो गये ॥ ५९ ॥

इत्येवं द्रोणपुत्रस्य निशम्य करुणां गिरम्।
प्रत्यूषकाले शोकार्तः प्राद्रवन्ननगरं प्रति ॥ ६० ॥

इस प्रकार द्रोणपुत्रके मुखसे वह करुणाजनक समाचार सुनकर मैं शोकसे व्याकुल हो उठा और प्रातःकाल नगरकी ओर दौड़ा चला आया ॥ ६० ॥

एवमेष क्षयो वृत्तः कुरुपाण्डवसेनयोः।
घोरो विशसनो रौद्रो राजन् दुर्मन्त्रिते तव ॥ ६१ ॥

राजन्! इस प्रकार आपकी कुमन्त्रणाके अनुसार कौरवों तथा पाण्डवोंकी सेनाओंका यह घोर एवं भयंकर विनाशकार्य सम्पन्न हुआ है ॥ ६१ ॥

तव पुत्रे गते स्वर्गं शोकार्तस्य ममानघ।
ऋषिदत्तं प्रणष्टं तद् दिव्यदर्शित्वमद्य वै ॥ ६२ ॥

निष्पाप नरेश! आपके पुत्रके स्वर्गलोकमें चले जानेसे मैं शोकसे आतुर हो गया हूँ और महर्षि व्यासजीकी दी हुई मेरी वह दिव्य दृष्टि भी अब नष्ट हो गयी है ॥ ६२ ॥

वैशम्पायन उवाच

इति श्रुत्वा स नृपतिः पुत्रस्य निधनं तदा।
निःश्वस्य दीर्घमुष्णं च ततश्चिन्तापरोऽभवत् ॥ ६३ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार अपने पुत्रकी मृत्युका समाचार सुनकर राजा धृतराष्ट्र गरम-गरम लंबी साँस खींचकर गहरी चिन्तामें डूब गये ॥ ६३ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि दुर्योधनप्राणत्यागे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वमें दुर्योधनका प्राणत्यागविषयक नवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९ ॥

(ऐषीकपर्व)

दशमोऽध्यायः

धृष्टद्युम्नके सारथिके मुखसे पुत्रों और पाञ्चालोंके वधका वृत्तान्त सुनकर युधिष्ठिरका विलाप, द्रौपदीको बुलानेके लिये नकुलको भेजना, सुहृदोंके साथ शिविरमें जाना तथा मारे हुए पुत्रादिको देखकर भाईसहित शोकातुर होना

वैशम्पायन उवाच

तस्यां राज्यां व्यतीतायां धृष्टद्युम्नस्य सारथिः।
शशंस धर्मराजाय सौप्तिके कदनं कृतम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! वह रात व्यतीत होनेपर धृष्टद्युम्नके सारथिने रातको सोते समय जो संहार किया गया था, उसका समाचार धर्मराज युधिष्ठिरसे कह सुनाया ॥ १ ॥

सूत उवाच

द्रौपदेया हता राजन् द्रुपदस्यात्मजैः सह।
प्रमत्ता निशि विश्वस्ताः स्वपन्तः शिबिरे स्वके ॥ २ ॥

सारथि बोला—राजन्! द्रुपदके पुत्रोंसहित द्रौपदी देवीके भी सारे पुत्र मारे गये। वे रातको अपने शिविरमें निश्चिन्त एवं असावधान होकर सो रहे थे ॥ २ ॥

कृतवर्मणा नृशंसेन गौतमेन कृपेण च।
अश्वत्थाम्ना च पापेन हतं वः शिबिरं निशि ॥ ३ ॥

उसी समय क्रूर कृतवर्मा, गौतमवंशी कृपाचार्य तथा पापी अश्वत्थामाने आक्रमण करके आपके सारे शिविरका विनाश कर डाला ॥ ३ ॥

एतैर्नरगजाश्वानां प्रासशक्तिपरश्वधैः।
सहस्राणि निकृन्तद्भिर्निःशेषं ते बलं कृतम् ॥ ४ ॥

इन तीनोंने प्रास, शक्ति और फरसोंद्वारा सहस्रों मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंको काट-काटकर आपकी सारी सेनाको समाप्त कर दिया है ॥ ४ ॥

छिद्यमानस्य महतो वनस्येव परश्वधैः।
शुश्रुवे सुमहाञ्छब्दो बलस्य तव भारत ॥ ५ ॥

भारत! जैसे फरसोंसे विशाल जङ्गल काटा जा रहा हो, उसी प्रकार उनके द्वारा छिन्न-भिन्न की जाती हुई आपकी विशाल वाहिनीका महान् आर्तनाद सुनायी पड़ता था ॥ ५ ॥

अहमेकोऽवशिष्टस्तु तस्मात् सैन्यान्महामते।
मुक्तः कथंचिद् धर्मात्मन् व्यग्राच्च कृतवर्मणः ॥ ६ ॥

महामते! धर्मात्मन्! उस विशाल सेनासे अकेला मैं ही किसी प्रकार बचकर निकल आया हूँ। कृतवर्मा दूसरोंको

मारनेमें लगा हुआ था; इसीलिये मैं उस सङ्कटसे मुक्त हो सका हूँ ॥ ६ ॥

तच्छ्रुत्वा वाक्यमशिवं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
पपात मह्यां दुर्धर्षः पुत्रशोकसमन्वितः ॥ ७ ॥

वह अमङ्गलमय वचन सुनकर दुर्धर्ष राजा कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर पुत्रशोकसे संतप्त हो पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ७ ॥

पतन्तं तमतिक्रम्य परिजग्राह सात्यकिः।
भीमसेनोऽर्जुनश्चैव माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ ८ ॥

गिरते समय आगे बढ़कर सात्यकिने उन्हें थाम लिया। भीमसेन, अर्जुन तथा माद्रीकुमार नकुल-सहदेवने भी उन्हें पकड़ लिया ॥ ८ ॥

लब्धचेतास्तु कौन्तेयः शोकविह्वलया गिरा।
जित्वा शत्रूञ्जितः पश्चात् पर्यदेवयदार्तवत् ॥ ९ ॥

फिर होशमें आनेपर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर शोकाकुल वाणीद्वारा आर्तकी भाँति विलाप करने लगे—'हाय ! मैं शत्रुओंको पहले जीतकर पीछे पराजित हो गया ॥ ९ ॥

दुर्विदा गतिरर्थानामपि ये दिव्यचक्षुषः।
जीयमाना जयन्त्यन्ये जयमाना वयं जिताः ॥ १० ॥

'जो लोग दिव्य दृष्टिसे सम्पन्न हैं, उनके लिये भी पदार्थोंकी गतिको समझना अत्यन्त दुष्कर है। हाय ! दूसरे लोग तो हारकर जीतते हैं; किंतु हमलोग जीतकर हार गये हैं ! ॥ १० ॥

हत्वा भ्रातृन् वयस्यांश्च पितॄन् पुत्रान् सुहृद्गणान्।
बन्धूनमात्यान् पौत्रांश्च जित्वा सर्वाञ्जिता वयम् ॥ ११ ॥

'हमने भाइयों, समवयस्क मित्रों, पितृतुल्य पुरुषों, पुत्रों, सुहृद्गणों, बन्धुओं, मन्त्रियों तथा पौत्रोंकी हत्या करके उन सबको जीतकर विजय प्राप्त की थी; परंतु अब शत्रुओंद्वारा हम ही पराजित हो गये ॥ ११ ॥

अनर्थो ह्यर्थसंकाशस्तथानर्थोऽर्थदर्शनः।
जयोऽयमजयाकारो जयस्तस्मात् पराजयः ॥ १२ ॥

'कभी-कभी अनर्थ भी अर्थ-सा हो जाता है और अर्थके रूपमें दिखायी देनेवाली वस्तु भी अनर्थके रूपमें परिणत हो जाती है, इसी प्रकार हमारी यह विजय भी पराजयका ही रूप धारण करके आयी थी, इसलिये जय भी पराजय बन गयी ॥ १२ ॥

यज्जित्वा तप्यते पश्चादापन्न इव दुर्मतिः।
कथं मन्येत विजयं ततो जिततरः परैः ॥ १३ ॥

'दुर्बुद्धि मनुष्य यदि विजय-लाभके पश्चात् विपत्तिमें पड़े हुए पुरुषकी भाँति अनुताप करता है तो वह अपनी उस जीतको जीत कैसे मान सकता है ? क्योंकि उस दशामें तो वह शत्रुओंद्वारा पूर्णतः पराजित हो चुका है ॥ १३ ॥

येषामर्थाय पापं स्याद् विजयस्य सुहृद्वधैः।
निर्जितैरप्रमत्तैर्हि विजिता जितकाशिनः ॥ १४ ॥

'जिन्हें विजयके लिये सुहृदोंके वधका पाप करना पड़ता है, वे एक बार विजयलक्ष्मीसे उल्लसित भले ही हो जायँ, अन्तमें पराजित होकर सतत सावधान रहनेवाले शत्रुओंके हाथसे उन्हें पराजित होना ही पड़ता है ॥ १४ ॥

कर्णिनालीकदंष्ट्रस्य खड्गजिह्वस्य संयुगे।
चापव्यात्तस्य रौद्रस्य ज्यातलस्वननादिनः ॥ १५ ॥
क्रुद्धस्य नरसिंहस्य संग्रामेष्वपलायिनः।
ये व्यमुञ्चन्त कर्णस्य प्रमादात् त इमे हताः ॥ १६ ॥

'क्रोधमें भरा हुआ कर्ण मनुष्योंमें सिंहके समान था। कर्णि और नालीक नामक बाण उसकी दाढ़ें तथा युद्धमें उठी हुई तलवार उसकी जिह्वा थी। धनुषका खींचना ही उसका मुँह फैलाना था। प्रत्यञ्चाकी टङ्कार ही उसके लिये दहाड़नेके समान थी। युद्धोंमें कभी पीठ न दिखानेवाले उस भयंकर पुरुषसिंहके हाथसे जो जीवित छूट गये, वे ही ये मेरे सगे-सम्बन्धी अपनी असावधानीके कारण मार डाले गये हैं ॥ १५-१६ ॥

रथह्रदं शरवर्षोर्मिमन्तं
रत्नाचितं वाहनवाजियुक्तम्।
शक्त्यृष्टिमीनध्वजनागनक्रं
शरासनावर्तमहेषुफेनम् ॥ १७ ॥
संग्रामचन्द्रोदयवेगवेलं
द्रोणार्णवं ज्यातलनेमिघोषम्।
ये तेरुरुच्चावचशस्त्रनौभि-
स्ते राजपुत्रा निहताः प्रमादात् ॥ १८ ॥

'द्रोणाचार्य महासागरके समान थे, रथ ही पानीका कुण्ड था, बाणोंकी वर्षा ही लहरोंके समान ऊपर उठती थी, रत्नमय आभूषण ही उस द्रोणरूपी समुद्रके रत्न थे, रथके घोड़े ही समुद्री घोड़ोंके समान जान पड़ते थे, शक्ति और ऋष्टि मत्स्यके समान तथा ध्वज नाग एवं मगरके तुल्य थे, धनुष ही भँवर तथा बड़े-बड़े बाण ही फेन थे, संग्राम ही चन्द्रोदय बनकर उस समुद्रके वेगको चरम सीमातक पहुँचा देता था, प्रत्यञ्चा और पहियोंकी ध्वनि ही उस महासागरकी गर्जना थी; ऐसे द्रोणरूपी सागरको जो छोटे बड़े नाना प्रकारके शस्त्रोंकी नौका बनाकर पार गये, वे ही राजकुमार असावधानीसे मार डाले गये

न हि प्रमादात् परमस्ति कश्चिद्
वधो नराणामिह जीवलोके।
प्रमत्तमर्था हि नरं समन्तात्
त्यजन्त्यनर्थाश्च समाविशन्ति ॥ १९ ॥

'प्रमादसे बढ़कर इस संसारमें मनुष्योंके लिये दूसरी कोई मृत्यु नहीं। प्रमादी मनुष्यको सारे अर्थ सब ओरसे त्याग देते हैं और अनर्थ बिना बुलाये ही उसके पास चले आते हैं ॥ १९ ॥

ध्वजोत्तमाग्रोच्छ्रितधूमकेतुं
शरार्चिषं कोपमहासमीरम्।
महाधनुर्ज्यातलनेमिघोषं
तनुत्रनानाविधशस्त्रहोमम् ॥ २० ॥
महाचमूकक्षदवाभिपन्नं
महाहवे भीष्ममयाग्निदाहम्।
ये सेहुरात्तायुधतीक्ष्णवेगं
ते राजपुत्रा निहताः प्रमादात् ॥ २१ ॥

'महासमरमें भीष्मरूपी अग्नि जब पाण्डव-सेनाको जला रही थी, उस समय ऊँची ध्वजाओंके शिखरपर फहराती हुई पताका ही धूमके समान जान पड़ती थी, बाणवर्षा ही आगकी लपटें थीं, क्रोध ही प्रचण्ड वायु बनकर उस ज्वालाको बढ़ा रहा था, विशाल धनुषकी प्रत्यञ्चा, हथेली और रथके पहियोंका शब्द ही मानो उस अग्निदाहसे उठनेवाली चट-चट ध्वनि था, कवच और नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र उस आगकी आहुति बन रहे थे, विशाल सेनारूपी सूखे जङ्गलमें दावानलके समान वह आग लगी थी, हाथमें लिये हुए अस्त्र-शस्त्र ही उस अग्निके प्रचण्ड वेग थे, ऐसे अग्निदाहके कष्टको जिन्होंने सह लिया, वे ही राजपुत्र प्रमादवश मारे गये ॥ २०-२१॥

न हि प्रमत्तेन नरेण शक्यं
विद्या तपः श्रीर्विपुलं यशो वा ।
पश्याप्रमादेन निहत्य शत्रून्
सर्वान् महेन्द्रं सुखमेधमानम् ॥ २२ ॥

'प्रमादी मनुष्य कभी विद्या, तप, वैभव अथवा महान् यश नहीं प्राप्त कर सकता । देखो, देवराज इन्द्र प्रमाद छोड़ देनेके ही कारण अपने सारे शत्रुओंका संहार करके सुखपूर्वक उन्नति कर रहे हैं ॥ २२ ॥

इन्द्रोपमान् पार्थिवपुत्रपौत्रान्
पश्याविशेषेण हतान् प्रमादात् ।
तीर्त्वा समुद्रं वणिजः समृद्धा
मग्नाः कुनद्यामिव हेलमानाः ॥ २३ ॥

'देखो, प्रमादके ही कारण ये इन्द्रके समान पराक्रमी, राजाओंके पुत्र और पौत्र सामान्य रूपसे मार डाले गये, जैसे समृद्धिशाली व्यापारी समुद्रको पार करके प्रमादवश अवहेलना करनेके कारण छोटी-सी नदीमें डूब गये हों ॥ २३ ॥

अमर्षितैर्ये निहताः शयाना
निःसंशयं ते त्रिदिवं प्रपन्नाः ।
कृष्णां तु शोचामि कथं नु साध्वी
शोकार्णवे साद्य विनङ्क्ष्यतीति ॥ २४ ॥

'शत्रुओंने अमर्षके वशीभूत होकर जिन्हें सोते समय ही मार डाला है वे तो निःसंदेह स्वर्गलोकमें पहुँच गये हैं । मुझे तो उस सती साध्वी कृष्णाके लिये चिन्ता हो रही है जो आज शोकके समुद्रमें डूबकर नष्ट हो जानेकी स्थितिमें पहुँच गयी है ॥ २४ ॥

भ्रातॄंश्च पुत्रांश्च हतान् निशम्य
पाञ्चालराजं पितरं च वृद्धम् ।
ध्रुवं विसंज्ञा पतिता पृथिव्यां
सा शोष्यते शोककृशाङ्गयष्टिः ॥ २५ ॥

'एक तो पहलेसे ही शोकके कारण क्षीण होकर उसकी देह सूखी लकड़ीके समान हो गयी है ! दूसरे फिर जब वह अपने भाइयों, पुत्रों तथा बूढ़े पिता पाञ्चालराज द्रुपदकी मृत्युका समाचार सुनेगी तब और भी सूख जायगी तथा अवश्य ही अचेत होकर पृथ्वीपर गिर पड़ेगी ॥ २५ ॥

तच्छोकजं दुःखमपारयन्ती
कथं भविष्यत्युचिता सुखानाम् ।
पुत्रक्षयभ्रातृवधप्रणुन्ना
प्रदह्यमानेन हुताशनेन ॥ २६ ॥

'जो सदा सुख भोगनेके ही योग्य है, वह उस शोकजनित दुःखको न सह सकनेके कारण न जाने कैसी दशाको पहुँच जायगी ? पुत्रों और भाइयोंके विनाशसे व्यथित हो उसके हृदयमें जो शोककी आग जल उठेगी, उससे उसकी बड़ी शोचनीय दशा हो जायगी' ॥ २६ ॥

इत्येवमार्तः परिदेवयन् स
राजा कुरूणां नकुलं बभाषे ।
गच्छानयैनामिह मन्दभाग्यां
समातृपक्षामिति राजपुत्रीम् ॥ २७ ॥

इस प्रकार आर्तस्वरसे विलाप करते हुए कुरुराज युधिष्ठिरने नकुलसे कहा—'भाई ! जाओ, मन्दभागिनी राजकुमारी द्रौपदीको उसके मातृपक्षकी स्त्रियोंके साथ यहाँ लिया लाओ' ॥

माद्रीसुतस्तत् परिगृह्य वाक्यं
धर्मेण धर्मप्रतिमस्य राज्ञः ।
ययौ रथेनालयमाशु देव्याः
पाञ्चालराजस्य च यत्र दाराः ॥ २८ ॥

माद्रीकुमार नकुलने धर्माचरणके द्वारा साक्षात् धर्मराजकी समानता करनेवाले राजा युधिष्ठिरकी आज्ञा शिरोधार्य करके रथके द्वारा तुरंत ही महारानी द्रौपदीके उस भवनकी ओर प्रस्थान किया, जहाँ पाञ्चालराजके घरकी भी महिलाएँ रहती थीं ॥ २८ ॥

प्रस्थाप्य माद्रीसुतमाजमीढः
शोकार्दितस्तैः सहितः सुहृद्भिः ।
रोरूयमाणः प्रययौ सुताना-
मायोधनं भूतगणानुकीर्णम् ॥ २९ ॥

माद्रीकुमारको वहाँ भेजकर अजमीढ़कुलनन्दन युधिष्ठिर शोकाकुल हो उन सभी सुहृदोंके साथ बारंबार रोते हुए पुत्रोंके उस युद्धस्थलमें गये, जो भूतगणोंसे भरा हुआ था ॥

स तत् प्रविश्याशिवमुग्ररूपं
ददर्श पुत्रान् सुहृदः सखींश्च ।
भूमौ शयानान् रुधिरार्द्रगात्रान्
विभिन्नदेहान् प्रहृतोत्तमाङ्गान् ॥ ३० ॥

उस भयङ्कर एवं अमङ्गलमय स्थानमें प्रवेश करके उन्होंने अपने पुत्रों, सुहृदों और सखाओंको देखा, जो खूनसे लथपथ होकर पृथ्वीपर पड़े थे । उनके शरीर छिन्न-भिन्न हो गये थे और मस्तक कट गये थे ॥ ३० ॥

स तांस्तु दृष्ट्वा भृशमार्तरूपो
युधिष्ठिरो धर्मभृतां वरिष्ठः ।
उच्चैः प्रचुक्रोश च कौरवाग्र्यः
पपात चोर्व्यां सगणो विसंज्ञः ॥ ३१ ॥

उन्हें देखकर कुरुकुलशिरोमणि तथा धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर अत्यन्त दुखी हो गये और उच्चस्वरसे फूट-फूटकर रोने लगे। धीरे-धीरे उनकी संज्ञा लुप्त हो गयी और वे अपने साथियोंसहित पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ३१॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि ऐषीकपर्वणि युधिष्ठिरशिबिरप्रवेशे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वके अन्तर्गत ऐषीकपर्वमें युधिष्ठिरका शिबिरमें प्रवेशविषयक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०॥

एकादशोऽध्यायः

युधिष्ठिरका शोकमें व्याकुल होना, द्रौपदीका विलाप तथा द्रोणकुमारके वधके लिये आग्रह, भीमसेनका अश्वत्थामाको मारनेके लिये प्रस्थान

वैशम्पायन उवाच

स दृष्ट्वा निहतान् संख्ये पुत्रान् पौत्रान् सखींस्तथा।
महादुःखपरीतात्मा बभूव जनमेजय॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! अपने पुत्रों, पौत्रों और मित्रोंको युद्धमें मारा गया देख राजा युधिष्ठिरका हृदय महान् दुःखसे संतप्त हो उठा॥ १॥

ततस्तस्य महाञ्शोकः प्रादुरासीन्महात्मनः।
स्मरतः पुत्रपौत्राणां भ्रातॄणां स्वजनस्य ह॥ २॥

उस समय पुत्रों, पौत्रों, भाइयों और स्वजनोंका स्मरण करके उन महात्माके मनमें महान् शोक प्रकट हुआ॥ २॥

तमश्रुपरिपूर्णाक्षं वेपमानमचेतसम्।
सुहृदो भृशसंविग्नाः सान्त्वयाञ्चक्रिरे तदा॥ ३॥

उनकी आँखें आँसुओंसे भर आयीं, शरीर काँपने लगा और चेतना लुप्त होने लगी। उनकी ऐसी अवस्था देख उनके सुहृद् अत्यन्त व्याकुल हो उस समय उन्हें सान्त्वना देने लगे॥ ३॥

ततस्तस्मिन् क्षणे काल्यो रथेनादित्यवर्चसा।
नकुलः कृष्णया सार्धमुपायात् परमार्तया॥ ४॥

इसी समय सामर्थ्यशाली नकुल सूर्यके समान तेजस्वी रथके द्वारा शोकसे अत्यन्त पीड़ित हुई कृष्णाको साथ लेकर वहाँ आ पहुँचे॥ ४॥

उपप्लव्यं गता सा तु श्रुत्वा सुमहदप्रियम्।
तदा विनाशं सर्वेषां पुत्राणां व्यथिताभवत्॥ ५॥

उस समय द्रौपदी उपप्लव्य नगरमें गयी हुई थी, वहाँ अपने सारे पुत्रोंके मारे जानेका अत्यन्त अप्रिय समाचार सुनकर वह व्यथित हो उठी थी॥ ५॥

कम्पमानेव कदली वातेनाभिसमीरिता।
कृष्णा राजानमासाद्य शोकार्ता न्यपतद् भुवि॥ ६॥

राजा युधिष्ठिरके पास पहुँचकर शोकसे व्याकुल हुई कृष्णा हवासे हिलायी गयी कदलीके समान कम्पित हो पृथ्वीपर गिर पड़ी॥ ६॥

बभूव वदनं तस्याः सहसा शोककर्षितम्।
फुल्लपद्मपलाशाक्ष्यास्तमोग्रस्त इवांशुमान्॥ ७॥

प्रफुल्ल कमलके समान विशाल एवं मनोहर नेत्रोंवाली द्रौपदीका मुख सहसा शोकसे पीड़ित हो राहुके द्वारा ग्रस्त हुए सूर्यके समान तेजोहीन हो गया॥ ७॥

ततस्तां पतितां दृष्ट्वा संरम्भी सत्यविक्रमः।
बाहुभ्यां परिजग्राह समुत्पत्य वृकोदरः॥ ८॥
सा समाश्वासिता तेन भीमसेनेन भामिनी।

उसे गिरी हुई देख क्रोधमें भरे हुए सत्यपराक्रमी भीमसेनने उछलकर दोनों बाँहोंसे उसको उठा लिया और उस मानिनी पत्नीको धीरज बँधाया॥ ८½॥

रुदती पाण्डवं कृष्णा सा हि भारतमब्रवीत्॥ ९॥
दिष्ट्या राजन्नवाप्येमामखिलां भोक्ष्यसे महीम्।
आत्मजान् क्षत्रधर्मेण सम्प्रदाय यमाय वै॥ १०॥

उस समय रोती हुई कृष्णाने भरतनन्दन पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरसे कहा—'राजन्! सौभाग्यकी बात है कि आप क्षत्रिय-धर्मके अनुसार अपने पुत्रोंको यमराजकी भेंट चढ़ाकर यह सारी पृथ्वी पा गये और अब इसका उपभोग करेंगे॥ ९-१०॥

दिष्ट्या त्वं कुशली पार्थ मत्तमातङ्गगामिनीम्।
अवाप्य पृथिवीं कृत्स्नां सौभद्रं न स्मरिष्यसि॥ ११॥

'कुन्तीनन्दन! सौभाग्यसे ही आपने कुशलपूर्वक रहकर इस मत्त-मातङ्गगामिनी सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य प्राप्त कर लिया, अब तो आपको सुभद्राकुमार अभिमन्युकी भी याद नहीं आयेगी॥ ११॥

आत्मजान् क्षत्रधर्मेण श्रुत्वा शूरान् निपातितान्।
उपप्लव्ये मया सार्धं दिष्ट्या त्वं न स्मरिष्यसि॥ १२॥

'अपने वीर पुत्रोंको क्षत्रिय-धर्मके अनुसार मारा गया सुनकर भी आप उपप्लव्यनगरमें मेरे साथ रहते हुए उन्हें सर्वथा भूल जायँगे; यह भी भाग्यकी ही बात है॥ १२॥

प्रसुप्तानां वधं श्रुत्वा द्रौणिना पापकर्मणा।
शोकस्तपति मां पार्थ हुताशन इवाश्रयम्॥ १३॥

'पार्थ! पापाचारी द्रोणपुत्रके द्वारा मेरे सोये हुए पुत्रोंका वध किया गया, यह सुनकर शोक मुझे उसी प्रकार संतप्त कर रहा है, जैसे आग अपने आधारभूत काष्ठको ही जला डालती है॥ १३॥

तस्य पापकृतो द्रौणेर्न चेदद्य त्वया रणे।
ह्रियते सानुबन्धस्य युधि विक्रम्य जीवितम्॥ १४॥
इहैव प्रायमासिष्ये तन्निबोधत पाण्डवाः।
न चेत् फलमवाप्नोति द्रौणिः पापस्य कर्मणः॥ १५॥

'यदि आज आप रणभूमिमें पराक्रम प्रकट करके सगे-सम्बन्धियोंसहित पापाचारी द्रोणकुमारके प्राण नहीं हर लेते

हैं तो मैं यहीं अनशन करके अपने जीवनका अन्त कर दूँगी। पाण्डवो ! आप सब लोग इस बातको कान खोलकर सुन लें। यदि अश्वत्थामा अपने पापकर्मका फल नहीं पा लेता है तो मैं अवश्य प्राण त्याग दूँगी' ॥ १४-१५ ॥

एवमुक्त्वा ततः कृष्णा पाण्डवं प्रत्युपाविशत्।
युधिष्ठिरं याज्ञसेनी धर्मराजं यशस्विनी ॥ १६ ॥

ऐसा कहकर यशस्विनी द्रुपदकुमारी कृष्णा पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके सामने ही अनशनके लिये बैठ गयी ॥ १६ ॥

दृष्ट्वोपविष्टां राजर्षिः पाण्डवो महिषीं प्रियाम्।
प्रत्युवाच स धर्मात्मा द्रौपदीं चारुदर्शनाम् ॥ १७ ॥

अपनी प्रिय महारानी परम सुन्दरी द्रौपदीको उपवासके लिये बैठी देख धर्मात्मा राजर्षि युधिष्ठिरने उससे कहा—॥

धर्म्यं धर्मेण धर्मज्ञे प्राप्तास्ते निधनं शुभे।
पुत्रास्ते भ्रातरश्चैव तान् न शोचितुमर्हसि ॥ १८ ॥

'शुभे ! तुम धर्मको जाननेवाली हो। तुम्हारे पुत्रों और भाइयोंने धर्मपूर्वक युद्ध करके धर्मानुकूल मृत्यु प्राप्त की है; अतः तुम्हें उनके लिये शोक नहीं करना चाहिये ॥ १८ ॥

स कल्याणि वनं दुर्गं दूरं द्रौणिरितो गतः।
तस्य त्वं पातनं संख्ये कथं ज्ञास्यसि शोभने ॥ १९ ॥

'कल्याणि ! द्रोणकुमार तो यहाँसे भागकर दुर्गम वनमें चला गया है। शोभने ! यदि उसे युद्धमें मार गिराया जाय तो भी तुम्हें इसका विश्वास कैसे होगा ?' ॥१९ ॥

द्रौपद्युवाच

द्रोणपुत्रस्य सहजो मणिः शिरसि मे श्रुतः।
निहत्य संख्ये तं पापं पश्येयं मणिमाहृतम् ॥ २० ॥
राजञ्शिरसि ते कृत्वा जीवेयमिति मे मतिः।

द्रौपदी बोली—महाराज ! मैंने सुना है कि द्रोणपुत्रके मस्तकमें एक मणि है जो उसके जन्मके साथ ही पैदा हुई है। उस पापीको युद्धमें मारकर यदि वह मणि ला दी जायगी तो मैं उसे देख लूँगी राजन् ! उस मणिको आपके सिरपर धारण कराकर ही मैं जीवन धारण कर सकूँगी; ऐसा मेरा दृढ़ निश्चय है २०½

इत्युक्त्वा पाण्डवं कृष्णा राजानं चारुदर्शना ॥ २१ ॥
भीमसेनमथागत्य परमं वाक्यमब्रवीत्।
त्रातुमर्हसि मां भीम क्षत्रधर्ममनुस्मरन् ॥ २२ ॥

पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरसे ऐसा कहकर सुन्दरी कृष्णा भीमसेनके पास आयी और यह उत्तम वचन बोली—'प्रिय भीम ! आप क्षत्रिय-धर्मका स्मरण करके मेरे जीवनकी रक्षा कर सकते हैं ॥ २१-२२ ॥

जहि तं पापकर्माणं शम्बरं मघवानिव।
न हि ते विक्रमे तुल्यः पुमानस्तीह कश्चन ॥ २३ ॥

'वीर ! जैसे इन्द्रने शम्बरासुरको मारा था, उसी प्रकार आप भी उस पापकर्मी अश्वत्थामाका वध करें। इस संसारमें कोई भी पुरुष पराक्रममें आपकी समानता करनेवाला नहीं है ॥ २३ ॥

श्रुतं तत् सर्वलोकेषु परमव्यसने यथा।
द्वीपोऽभूस्त्वं हि पार्थानां नगरे वारणावते ॥ २४ ॥

'यह बात सम्पूर्ण जगत्में प्रसिद्ध है कि वारणावतनगरमें जब कुन्तीके पुत्रोंपर भारी सङ्कट पड़ा था, तब आप ही द्वीपके समान उनके रक्षक हुए थे ॥ २४ ॥

हिडिम्बदर्शने चैव तथा त्वमभवो गतिः।
तथा विराटनगरे कीचकेन भृशार्दिताम् ॥ २५ ॥
मामप्युद्धृतवान् कृच्छ्रात् पौलोमीं मघवानिव।

'इसी प्रकार हिडिम्बासुरसे भेंट होनेपर भी आप ही उनके आश्रयदाता हुए। विराटनगरमें जब कीचकने मुझे बहुत तंग कर दिया, तब उस महान् संकटसे आपने मेरा भी उसी तरह उद्धार किया, जैसे इन्द्रने शचीका किया था ॥ २५½ ॥

यथैतान्यकृथाः पार्थ महाकर्माणि वै पुरा ॥ २६ ॥
तथा द्रौणिममित्रघ्न विनिहत्य सुखी भव।

'शत्रुसूदन पार्थ ! जैसे पूर्वकालमें ये महान् कर्म आपने किये थे, उसी प्रकार इस द्रोणपुत्रको भी मारकर सुखी हो जाइये' ॥ २६½ ॥

तस्या बहुविधं दुःखान्निशम्य परिदेवितम् ॥ २७ ॥
नामर्षयत कौन्तेयो भीमसेनो महाबलः।

दुःखके कारण द्रौपदीका यह भाँति-भाँतिका विलाप सुनकर महाबली कुन्तीकुमार भीमसेन इसे सहन न कर सके ॥ २७½ ॥

स काञ्चनविचित्राङ्गमारुरोह महारथम् ॥ २८ ॥
आदाय रुचिरं चित्रं समार्गणगुणं धनुः।
नकुलं सारथिं कृत्वा द्रोणपुत्रवधे धृतः ॥ २९ ॥
विस्फार्य सशरं चापं तूर्णमश्वानचोदयत्।

वे द्रोणपुत्रके वधका निश्चय करके सुवर्णभूषित विचित्र अङ्गोंवाले रथपर आरूढ़ हुए। उन्होंने बाण और प्रत्यञ्चासहित एक सुन्दर एवं विचित्र धनुष हाथमें लेकर नकुलको सारथि बनाया तथा बाणसहित धनुषको फैलाकर तुरंत ही घोड़ोंको हँकवाया ॥ २८-२९½ ॥

ते हयाः पुरुषव्याघ्र चोदिता वातरंहसः ॥ ३० ॥
वेगेन त्वरिता जग्मुर्हरयः शीघ्रगामिनः।

पुरुषसिंह नरेश ! नकुलके द्वारा हाँके गये वे वायुके समान वेगवाले शीघ्रगामी घोड़े बड़ी उतावलीके साथ तीव्र गतिसे चल दिये ॥ ३०½ ॥

शिबिरात् स्वाद् गृहीत्वा स रथस्य पदमच्युतः॥ ३१ ॥
(द्रोणपुत्रगतेनाशु ययौ मार्गेण भारत।)

भरतनन्दन ! छावनीसे बाहर निकलकर अपनी टेकसे न टलनेवाले भीमसेन अश्वत्थामाके रथका चिह्न देखते हुए उसी मार्गसे शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़े, जिससे द्रोणपुत्र अश्वत्थामा गया था ॥ ३१ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि ऐषीकपर्वणि द्रौणिवधार्थं भीमसेनगमने एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वके अन्तर्गत ऐषीकपर्वमें अश्वत्थामाके वधके लिये भीमसेनका प्रस्थानविषयक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ३१½ श्लोक हैं)

द्वादशोऽध्यायः

श्रीकृष्णका अश्वत्थामाकी चपलता एवं क्रूरताके प्रसङ्गमें सुदर्शनचक्र माँगनेकी बात सुनाते हुए उससे भीमसेनकी रक्षाके लिये प्रयत्न करनेका आदेश देना

वैशम्पायन उवाच

तस्मिन् प्रयाते दुर्धर्षे यदूनामृषभस्ततः।
अब्रवीत् पुण्डरीकाक्षः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! दुर्धर्ष वीर भीमसेनके चले जानेपर यदुकुलतिलक कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरसे कहा—॥ १॥

एष पाण्डव ते भ्राता पुत्रशोकपरायणः।
जिघांसुर्द्रौणिमाक्रन्दे एक एवाभिधावति॥ २॥

'पाण्डुनन्दन! ये आपके भाई भीमसेन पुत्रशोकमें मग्न होकर युद्धमें द्रोणकुमारके वधकी इच्छासे अकेले ही उसपर धावा कर रहे हैं॥ २॥

भीमः प्रियस्ते सर्वेभ्यो भ्रातृभ्यो भरतर्षभ।
तं कृच्छ्रगतमद्य त्वं कस्मान्नाभ्युपपद्यसे॥ ३॥

'भरतश्रेष्ठ! भीमसेन आपको समस्त भाइयोंसे अधिक प्रिय हैं; किंतु आज वे संकटमें पड़ गये हैं। फिर आप उनकी सहायताके लिये जाते क्यों नहीं हैं?॥ ३॥

यत् तदाचष्ट पुत्राय द्रोणः परपुरञ्जयः।
अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम दहेत पृथिवीमपि॥ ४॥

'शत्रुओंकी नगरीपर विजय पानेवाले द्रोणाचार्यने अपने पुत्रको जिस ब्रह्मशिर नामक अस्त्रका उपदेश दिया है, वह समस्त भूमण्डलको भी दग्ध कर सकता है॥ ४॥

तन्महात्मा महाभागः केतुः सर्वधनुष्मताम्।
प्रत्यपादयदाचार्यः प्रीयमाणो धनंजयम्॥ ५॥

'सम्पूर्ण धनुर्धरोंके सिरमौर महाभाग महात्मा द्रोणाचार्यने प्रसन्न होकर वह अस्त्र पहले अर्जुनको दिया था॥ ५॥

तं पुत्रोऽप्येक एवैनमन्वयाचदमर्षणः।
ततः प्रोवाच पुत्राय नातिहृष्टमना इव॥ ६॥

'अश्वत्थामा इसे सहन न कर सका। वह उनका एकलौता पुत्र था; अतः उसने भी अपने पितासे उसी अस्त्रके लिये प्रार्थना की। तब आचार्यने अपने पुत्रको उस अस्त्रका उपदेश कर दिया; किंतु इससे उनका मन अधिक प्रसन्न नहीं था॥ ६॥

विदितं चापलं ह्यासीदात्मजस्य दुरात्मनः।
सर्वधर्मविदाचार्यः सोऽन्वशात् स्वसुतं ततः॥ ७॥

'उन्हें अपने दुरात्मा पुत्रकी चपलता ज्ञात थी; अतः सब धर्मोंके ज्ञाता आचार्यने अपने पुत्रको इस प्रकार शिक्षा दी॥ ७॥

परमापद्गतेनापि न स्म तात त्वया रणे।
इदमस्त्रं प्रयोक्तव्यं मानुषेषु विशेषतः॥ ८॥

''बेटा! बड़ी-से-बड़ी आपत्तिमें पड़नेपर भी तुम्हें रणभूमिमें विशेषतः मनुष्योंपर इस अस्त्रका प्रयोग नहीं करना चाहिये'॥ ८॥

इत्युक्तवान् गुरुः पुत्रं द्रोणः पश्चादथोक्तवान्।
न त्वं जातु सतां मार्गे स्थातेति पुरुषर्षभ॥ ९॥

'नरश्रेष्ठ! अपने पुत्रसे ऐसा कहकर गुरु द्रोण पुनः उससे बोले—'बेटा! मुझे संदेह है कि तुम कभी सत्पुरुषोंके मार्गपर स्थिर नहीं रहोगे'॥ ९॥

स तदाज्ञाय दुष्टात्मा पितुर्वचनमप्रियम्।
निराशः सर्वकल्याणैः शोकात् पर्यचरन्महीम्॥ १०॥

'पिताके इस अप्रिय वचनको सुन और समझकर दुष्टात्मा द्रोणपुत्र सब प्रकारके कल्याणकी आशा छोड़ बैठा और बड़े शोकसे पृथ्वीपर विचरने लगा॥ १०॥

ततस्तदा कुरुश्रेष्ठ वनस्थे त्वयि भारत।
अवसद् द्वारकामेत्य वृष्णिभिः परमार्चितः॥ ११॥

'भरतनन्दन! कुरुश्रेष्ठ! तदनन्तर जब तुम वनमें रहते थे, उन्हीं दिनों अश्वत्थामा द्वारकामें आकर रहने लगा। वहाँ वृष्णिवंशियोंने उसका बड़ा सत्कार किया॥ ११॥

स कदाचित् समुद्रान्ते वसन् द्वारवतीमनु।
एक एकं समागम्य मामुवाच हसन्निव॥ १२॥

'एक दिन द्वारकामें समुद्रके तटपर रहते समय उसने अकेले ही मुझ अकेलेके पास आकर हँसते हुए-से कहा—॥

यत् तदुग्रं तपः कृष्ण चरन् सत्यपराक्रमः।
अगस्त्याद् भारताचार्यः प्रत्यपद्यत मे पिता॥ १३॥
अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम देवगन्धर्वपूजितम्।
तदद्य मयि दाशार्ह यथा पितरि मे तथा॥ १४॥
अस्मत्तस्तदुपादाय दिव्यमस्त्रं यदूत्तम।
ममाप्यस्त्रं प्रयच्छ त्वं चक्रं रिपुहणं रणे॥ १५॥

''दशार्हनन्दन! श्रीकृष्ण! भरतवंशके आचार्य मेरे सत्यपराक्रमी पिताने उग्र तपस्या करके महर्षि अगस्त्यसे जो ब्रह्मास्त्र प्राप्त किया था, वह देवताओं और गन्धर्वोंद्वारा सम्मानित अस्त्र इस समय जैसा मेरे पिताके पास है, वैसा ही मेरे पास भी है; अतः यदुश्रेष्ठ! आप मुझसे वह दिव्य अस्त्र लेकर रणभूमिमें शत्रुओंका नाश करनेवाला अपना चक्रनामक अस्त्र मुझे दे दीजिये'॥ १३—१५॥

स राजन् प्रीयमाणेन मयाप्युक्तः कृताञ्जलिः।
याचमानः प्रयत्नेन मत्तोऽस्त्रं भरतर्षभ॥ १६॥

'भरतश्रेष्ठ! वह हाथ जोड़कर बड़े प्रयत्नके द्वारा मुझसे अस्त्रकी याचना कर रहा था, तब मैंने भी प्रसन्नतापूर्वक ही उससे कहा—॥ १६॥

देवदानवगन्धर्वमनुष्यपतगोरगाः ।
न समा मम वीर्यस्य शतांशेनापि पिण्डिताः ॥ १७ ॥

"ब्रह्मन्! देवता, दानव, गन्धर्व, मनुष्य, पक्षी और नाग—ये सब मिलकर मेरे पराक्रमके सौवें अंशकी भी समानता नहीं कर सकते ॥ १७ ॥

इदं धनुरियं शक्तिरिदं चक्रमियं गदा ।
यद्यदिच्छसि चेदस्त्रं मत्तस्तत् तद् ददामि ते ॥ १८ ॥

"यह मेरा धनुष है, यह शक्ति है, यह चक्र है और यह गदा है। तुम जो-जो अस्त्र मुझसे लेना चाहते हो, वही वह तुम्हें दिये देता हूँ ॥ १८ ॥

यच्छक्नोषि समुद्यन्तुं प्रयोक्तुमपि वा रणे ।
तद् गृहाण विनास्त्रेण यन्मे दातुमभीप्सति ॥ १९ ॥

"तुम मुझे जो अस्त्र देना चाहते हो, उसे दिये बिना ही रणभूमिमें मेरे जिस आयुधको उठा अथवा चला सको, उसे ही ले लो' ॥ १९ ॥

स सुनाभं सहस्रारं वज्रनाभमयस्मयम् ।
वव्रे चक्रं महाभागो मत्तः स्पर्धन्मया सह ॥ २० ॥

'तब उस महाभागने मेरे साथ स्पर्धा रखते हुए मुझसे मेरा वह लोहमय चक्र माँगा, जिसकी सुन्दर नाभिमें वज्र लगा हुआ है तथा जो एक सहस्र अरोंसे सुशोभित होता है ! ॥

गृहाण चक्रमित्युक्तो मया तु तदनन्तरम् ।
जग्राहोत्पत्य सहसा चक्रं सव्येन पाणिना ॥ २१ ॥

'मैंने भी कह दिया—'ले लो चक्र,' मेरे इतना कहते ही उसने सहसा उछलकर बायें हाथसे चक्रको पकड़ लिया ।२१।

न चैनमशकत् स्थानात् संचालयितुमप्युत ।
अथैनं दक्षिणेनापि ग्रहीतुमुपचक्रमे ॥ २२ ॥

'परंतु वह उसे अपनी जगहसे हिला भी न सका। तब उसने उसे दाहिने हाथसे उठानेका प्रयत्न आरम्भ किया ॥

सर्वयत्नबलेनापि गृह्णन्नेवमिदं ततः ।
ततः सर्वबलेनापि यदैनं न शशाक ह ॥ २३ ॥
उद्यन्तुं वा चालयितुं द्रौणिः परमदुर्मनाः ।
कृत्वा यत्नं परिश्रान्तः स न्यवर्तत भारत ॥ २४ ॥

'सारा प्रयत्न और सारी शक्ति लगाकर भी जब उसे पकड़कर उठा अथवा हिला न सका, तब द्रोणकुमार मन-ही-मन बहुत दुखी हो गया। भारत! यत्न करके थक जानेपर वह उसे लेनेकी चेष्टासे निवृत्त हो गया ॥ २३-२४ ॥

निवृत्तमनसं तस्मादभिप्रायाद् विचेतसम् ।
अहमामन्त्र्य संविग्नमश्वत्थामानमब्रुवम् ॥ २५ ॥

'जब उस संकल्पसे उसका मन हट गया और वह दुःखसे अचेत एवं उद्विग्न हो गया, तब मैंने अश्वत्थामाको बुलाकर पूछा - ॥ २५ ॥

यः सदैव मनुष्येषु प्रमाणं परमं गतः ।
गाण्डीवधन्वा श्वेताश्वः कपिप्रवरकेतनः ॥ २६ ॥
यः साक्षाद् देवदेवेशं शितिकण्ठमुमापतिम् ।
द्वन्द्वयुद्धे पराजिष्णुस्तोषयामास शङ्करम् ॥ २७ ॥
यस्मात् प्रियतरो नास्ति ममान्यः पुरुषो भुवि ।
नादेयं यस्य मे किञ्चिदपि दाराः सुतास्तथा ॥ २८ ॥
तेनापि सुहृदा ब्रह्मन् पार्थेनाक्लिष्टकर्मणा ।
नोक्तपूर्वमिदं वाक्यं यत् त्वं मामभिभाषसे ॥ २९ ॥

"ब्रह्मन्! जो मनुष्य समाजमें सदा ही परम प्रामाणिक समझे जाते हैं, जिनके पास गाण्डीव धनुष और श्वेत घोड़े हैं, जिनकी ध्वजापर श्रेष्ठ वानर विराजमान होता है, जिन्होंने द्वन्द्वयुद्धमें साक्षात् देवदेवेश्वर नीलकण्ठ उमावल्लभ भगवान् शङ्करको पराजित करनेका साहस करके उन्हें संतुष्ट किया था, इस भूमण्डलमें मुझे जिनसे बढ़कर परम प्रिय दूसरा कोई मनुष्य नहीं है, जिनके लिये मेरे पास स्त्री, पुत्र आदि कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जो देने योग्य न हो, अनायास ही महान् कर्म करनेवाले मेरे उस प्रिय सुहृद् कुन्तीकुमार अर्जुनने भी पहले कभी ऐसी बात नहीं कही थी, जो आज तुम मुझसे कह रहे हो ॥ २६—२९ ॥

ब्रह्मचर्यं महद् घोरं तीर्त्वा द्वादशवार्षिकम् ।
हिमवत्पार्श्वमास्थाय यो मया तपसार्जितः ॥ ३० ॥
समानव्रतचारिण्यां रुक्मिण्यां योऽन्वजायत ।
सनत्कुमारस्तेजस्वी प्रद्युम्नो नाम मे सुतः ॥ ३१ ॥
तेनाप्येतन्महद् दिव्यं चक्रमप्रतिमं रणे ।
न प्रार्थितमभून्मूढ यदिदं प्रार्थितं त्वया ॥ ३२ ॥

"मूढ ब्राह्मण! मैंने बारह वर्षोंतक अत्यन्त घोर ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करके हिमालयकी घाटीमें रहकर बड़ी भारी तपस्याके द्वारा जिसे प्राप्त किया था, मेरे समान व्रतका पालन करनेवाली रुक्मिणीदेवीके गर्भसे जिसका जन्म हुआ है, जिसके रूपमें साक्षात् तेजस्वी सनत्कुमारने ही मेरे यहाँ अवतार लिया है, वह प्रद्युम्न मेरा प्रिय पुत्र है। परंतु रणभूमिमें जिसकी कहीं तुलना नहीं है, मेरे इस परम दिव्य चक्रको कभी उस प्रद्युम्नने भी नहीं माँगा था, जिसकी आज तुमने माँग की है ॥ ३०—३२ ॥

रामेणातिबलेनैतन्नोक्तपूर्वं कदाचन ।
न गदेन न साम्बेन यदिदं प्रार्थितं त्वया ॥ ३३ ॥

"अत्यन्त बलशाली बलरामजीने भी पहले कभी ऐसी बात नहीं कही है। जिसे तुमने माँगा है, उसे गद और साम्बने भी कभी लेनेकी इच्छा नहीं की ॥ ३३ ॥

द्वारकावासिभिश्चान्यैर्वृष्ण्यन्धकमहारथैः ।
नोक्तपूर्वमिदं जातु यदिदं प्रार्थितं त्वया ॥ ३४ ॥

"द्वारकामें निवास करनेवाले जो अन्य वृष्णि तथा अन्धकवंशके महारथी हैं, उन्होंने भी कभी मेरे सामने ऐसा प्रस्ताव नहीं किया था, जैसा कि तुमने इस चक्रको माँगते हुए किया है ॥ ३४ ॥

भारताचार्यपुत्रस्त्वं मानितः सर्वयादवैः ।
चक्रेण रथिनां श्रेष्ठ कं नु तात युयुत्ससे ॥ ३५ ॥

"तात! रथियोंमें श्रेष्ठ! तुम तो भरतकुलके आचार्यके

पुत्र हो। सम्पूर्ण यादवोंने तुम्हारा बड़ा सम्मान किया है। फिर बताओ तो सही, इस चक्रके द्वारा तुम किसके साथ युद्ध करना चाहते हो ?' ॥ ३५ ॥

एवमुक्तो मया द्रौणिर्मामिदं प्रत्युवाच ह।
प्रयुज्य भवते पूजां योत्स्ये कृष्ण त्वया सह ॥ ३६ ॥
प्रार्थितं ते मया चक्रं देवदानवपूजितम्।
अजेयः स्यामिति विभो सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ३७ ॥

'जब मैंने इस तरह पूछा, तब द्रोणकुमारने मुझे इस प्रकार उत्तर दिया—'श्रीकृष्ण ! मैं आपकी पूजा करके फिर आपके ही साथ युद्ध करूँगा। प्रभो ! मैं यह सच कहता हूँ कि मैंने इस देव-दानवपूजित चक्रको आपसे इसीलिये माँगा था कि इसे पाकर अजेय हो जाऊँ ॥ ३६-३७ ॥

त्वत्तोऽहं दुर्लभं काममनवाप्यैव केशव।
प्रतियास्यामि गोविन्द शिवेनाभिवदस्व माम् ॥ ३८ ॥

''किंतु केशव ! अब मैं अपनी इस दुर्लभ कामनाको आपसे प्राप्त किये बिना ही लौट जाऊँगा। गोविन्द ! आप मुझसे केवल इतना कह दें कि 'तेरा कल्याण हो' ॥ ३८ ॥

एतत् सुभीमं भीमानामृषभेण त्वया धृतम्।
चक्रमप्रतिचक्रेण भुवि नान्योऽभिपद्यते ॥ ३९ ॥

''यह चक्र अत्यन्त भयंकर है और आप भी भयानक वीरोंके शिरोमणि हैं। आपके किसी विरोधीके पास ऐसा चक्र नहीं है। आपने ही इसे धारण कर रक्खा है। इस भूतलपर दूसरा कोई पुरुष इसे नहीं उठा सकता' ॥ ३९ ॥

एतावदुक्त्वा द्रौणिर्मां युग्यानश्वान् धनानि च।
आदायोपययौ काले रत्नानि विविधानि च ॥ ४० ॥

'मुझसे इतना ही कहकर द्रोणकुमार अश्वत्थामा रथमें जोतने योग्य घोड़े, धन तथा नाना प्रकारके रत्न लेकर वहाँसे यथासमय लौट गया ॥ ४० ॥

स संरम्भी दुरात्मा च चपलः क्रूर एव च।
वेद चास्त्रं ब्रह्मशिरस्तस्माद् रक्ष्यो वृकोदरः ॥ ४१ ॥

'वह क्रोधी, दुष्टात्मा, चपल और क्रूर है। साथ ही उसे ब्रह्मास्त्रका भी ज्ञान है; अतः उससे भीमसेनकी रक्षा करनी चाहिये' ॥ ४१ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि ऐषीकपर्वणि युधिष्ठिरकृष्णसंवादे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वके अन्तर्गत ऐषीकपर्वमें युधिष्ठिर और श्रीकृष्णका संवादविषयक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण, अर्जुन और युधिष्ठिरका भीमसेनके पीछे जाना, भीमका गङ्गातटपर पहुँचकर अश्वत्थामाको ललकारना और अश्वत्थामाके द्वारा ब्रह्मास्त्रका प्रयोग

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा युधां श्रेष्ठः सर्वयादवनन्दनः।
सर्वायुधवरोपेतमारुरोह रथोत्तमम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! सम्पूर्ण यादवकुलको आनन्दित करनेवाले योद्धाओंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण ऐसा कहकर समस्त श्रेष्ठ आयुधोंसे सम्पन्न उत्तम रथपर आरूढ़ हुए ॥ १ ॥

युक्तं परमकाम्बोजैस्तुरगैर्हेममालिभिः।
आदित्योदयवर्णस्य धुरं रथवरस्य तु ॥ २ ॥
दक्षिणामवहच्छैब्यः सुग्रीवः सव्यतोऽभवत्।
पार्ष्णिवाहौ तु तस्यास्तां मेघपुष्पबलाहकौ ॥ ३ ॥

उसमें सोनेकी माला पहने हुए अच्छी जातिके काबुली घोड़े जुते हुए थे। उस श्रेष्ठ रथकी कान्ति उदयकालीन सूर्यके समान अरुण थी। उसकी दाहिनी धुराका बोझ शैब्य ढो रहा था और बायींका सुग्रीव। उन दोनोंके पार्श्वभागमें क्रमशः मेघपुष्प और बलाहक जुते हुए थे ॥ २-३ ॥

विश्वकर्मकृता दिव्या रत्नधातुविभूषिता।
उच्छ्रितेव रथे माया ध्वजयष्टिरदृश्यत ॥ ४ ॥

उस रथपर विश्वकर्माद्वारा निर्मित तथा रत्नमय धातुओंसे विभूषित दिव्य ध्वजा दिखायी दे रही थी, जो ऊँचे उठी हुई मायाके समान प्रतीत होती थी ॥ ४ ॥

वैनतेयः स्थितस्तस्यां प्रभामण्डलरश्मिवान्।
तस्य सत्यवतः केतुर्भुजगारिरदृश्यत ॥ ५ ॥

उस ध्वजापर प्रभापुञ्ज एवं किरणोंसे सुशोभित विनतानन्दन गरुड़ विराज रहे थे। सर्पोंके शत्रु गरुड़ सत्यवान् श्रीकृष्णके रथकी पताकाके रूपमें दृष्टिगोचर हो रहे थे ॥५॥

अथारोहद्धृषीकेशः केतुः सर्वधनुष्मताम्।
अर्जुनः सत्यकर्मा च कुरुराजो युधिष्ठिरः ॥ ६ ॥

सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण पहले उस रथपर सवार हुए। तत्पश्चात् सत्यपराक्रमी अर्जुन तथा कुरुराज युधिष्ठिर उस रथपर बैठे ॥ ६ ॥

अशोभेतां महात्मानौ दाशार्हमभितः स्थितौ।
रथस्थं शार्ङ्गधन्वानमश्विनाविव वासवम् ॥ ७ ॥

वे दोनों महात्मा पाण्डव रथपर स्थित हुए शार्ङ्ग धनुषधारी दशार्हकुलनन्दन श्रीकृष्णके समीप विराजमान हो इन्द्रके पास बैठे हुए दोनों अश्विनीकुमारोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥ ७ ॥

तावुपारोप्य दाशार्हः स्यन्दनं लोकपूजितम्।
प्रतोदेन जवोपेतान् परमाश्वानचोदयत् ॥ ८ ॥

उन दोनों भाइयोंको उस लोकपूजित रथपर चढ़ाकर दशार्हवंशी श्रीकृष्णने वेगशाली उत्तम अश्वोंको चाबुकसे हाँका।

ते हयाः सहसोत्पेतुर्गृहीत्वा स्यन्दनोत्तमम्।
आस्थितं पाण्डवेयाभ्यां यदूनामृषभेण च ॥ ९ ॥

वे घोड़े दोनों पाण्डवों तथा यदुकुलतिलक श्रीकृष्णकी सवारीमें आये हुए उस उत्तम रथको लेकर सहसा उड़ चले॥

वहतां शार्ङ्गधन्वानमश्वानां शीघ्रगामिनाम्।
प्रादुरासीन्महाञ्शब्दः पक्षिणां पततामिव ॥ १० ॥

शार्ङ्गधन्वा श्रीकृष्णकी सवारी ढोते हुए उन शीघ्रगामी अश्वोंका महान् शब्द उड़ते हुए पक्षियोंके समान प्रकट हो रहा था ॥ १० ॥

ते समार्च्छन्नरव्याघ्राः क्षणेन भरतर्षभ।
भीमसेनं महेष्वासं समनुद्रुत्य वेगिताः ॥ ११ ॥

भरतश्रेष्ठ ! वे तीनों नरश्रेष्ठ बड़े वेगसे पीछे-पीछे दौड़कर क्षणभरमें महाधनुर्धर भीमसेनके पास जा पहुँचे ॥ ११ ॥

क्रोधदीप्तं तु कौन्तेयं द्विषदर्थे समुद्यतम्।
नाशक्नुवन् वारयितुं समेत्यापि महारथाः ॥ १२ ॥

इस समय कुन्तीकुमार भीमसेन क्रोधसे प्रज्वलित हो शत्रुका संहार करनेके लिये तुले हुए थे। इसलिये वे तीनों महारथी उनसे मिलकर भी उन्हें रोक न सके ॥ १२ ॥

स तेषां प्रेक्षतामेव श्रीमतां दृढधन्विनाम्।
ययौ भागीरथीतीरं हरिभिर्भृशवेगितैः ॥ १३ ॥
यत्र स्म श्रूयते द्रौणिः पुत्रहन्ता महात्मनाम्।

उन सुदृढ धनुर्धर तेजस्वी वीरोंके देखते-देखते वे अत्यन्त वेगशाली घोड़ोंके द्वारा भागीरथीके तटपर जा पहुँचे, जहाँ उन महात्मा पाण्डवोंके पुत्रोंका वध करनेवाला अश्वत्थामा बैठा सुना गया था ॥ १३½ ॥

स ददर्श महात्मानमुदकान्ते यशस्विनम् ॥ १४ ॥
कृष्णद्वैपायनं व्यासमासीनमृषिभिः सह।
तं चैव क्रूरकर्माणं घृताक्तं कुशचीरिणम् ॥ १५ ॥
रजसा ध्वस्तमासीनं ददर्श द्रौणिमन्तिके।

वहाँ जाकर उन्होंने गङ्गाजीके जलके किनारे परम यशस्वी महात्मा श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यासको अनेकों महर्षियोंके साथ बैठे देखा। उनके पास ही वह क्रूरकर्मा द्रोणपुत्र भी बैठा दिखायी दिया। उसने अपने शरीरमें घी लगाकर कुशका चीर पहन रक्खा था। उसके सारे अङ्गोंपर धूल छा रही थी ॥ १४-१५½ ॥

तमभ्यधावत् कौन्तेयः प्रगृह्य सशरं धनुः ॥ १६ ॥
भीमसेनो महाबाहुस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्।

कुन्तीकुमार महाबाहु भीमसेन बाणसहित धनुष लिये उसकी ओर दौड़े और बोले—'अरे ! खड़ा रह, खड़ा रह'॥

स दृष्ट्वा भीमधन्वानं प्रगृहीतशरासनम् ॥ १७ ॥
भ्रातरौ पृष्ठतश्चास्य जनार्दनरथे स्थितौ।
व्यथितात्माभवद् द्रौणिः प्राप्तं चेदममन्यत ॥ १८ ॥

अश्वत्थामाने देखा कि भयंकर धनुर्धर भीमसेन हाथमें धनुष लिये आ रहे हैं। उनके पीछे श्रीकृष्णके रथपर बैठे हुए दो भाई और हैं। यह सब देखकर द्रोणकुमारके हृदयमें बड़ी व्यथा हुई। उस घबराहटमें उसने यही करना उचित समझा ॥ १७-१८ ॥

स तद् दिव्यमदीनात्मा परमास्त्रमचिन्तयत्।
जग्राह च स चैषीकां द्रौणिः सव्येन पाणिना ॥ १९ ॥

उदारहृदय अश्वत्थामाने उस दिव्य एवं उत्तम अस्त्रका चिन्तन किया। साथ ही बायें हाथसे एक सींक उठा ली ॥

स तामापदमासाद्य दिव्यमस्त्रमुदैरयत्।
अमृष्यमाणस्ताञ्छूरान् दिव्यायुधधरान् स्थितान्॥२०॥
अपाण्डवायेति रुषा व्यसृजद् दारुणं वचः।

दिव्य आयुध धारण करके खड़े हुए उन शूरवीरोंका आना वह सहन न कर सका। उस आपत्तिमें पड़कर उसने रोषपूर्वक दिव्यास्त्रका प्रयोग किया और मुखसे कठोर वचन निकाला कि 'यह अस्त्र समस्त पाण्डवोंका विनाश कर डाले'॥

इत्युक्त्वा राजशार्दूल द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ॥ २१ ॥
सर्वलोकप्रमोहार्थं तदस्त्रं प्रमुमोच ह।

नृपश्रेष्ठ ! ऐसा कहकर प्रतापी द्रोणपुत्रने सम्पूर्ण लोकोंको मोहमें डालनेके लिये वह अस्त्र छोड़ दिया ॥ २१½ ॥

ततस्तस्यामिषीकायां पावकः समजायत।
प्रधक्ष्यन्निव लोकांस्त्रीन् कालान्तकयमोपमः ॥ २२ ॥

तदनन्तर उस सींकमें काल, अन्तक और यमराजके समान भयंकर आग प्रकट हो गयी। उस समय ऐसा जान पड़ा कि वह अग्नि तीनों लोकोंको जलाकर भस्म कर डालेगी ॥ २२ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि ऐषीकपर्वणि ब्रह्मशिरोऽस्त्रत्यागे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वके अन्तर्गत ऐषीकपर्वमें अश्वत्थामाके द्वारा ब्रह्मास्त्रका प्रयोगविषयक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

अश्वत्थामाके अस्त्रका निवारण करनेके लिये अर्जुनके द्वारा ब्रह्मास्त्रका प्रयोग एवं वेदव्यासजी और देवर्षि नारदका प्रकट होना

वैशम्पायन उवाच

इङ्गितेनैव दाशार्हस्तमभिप्रायमादितः।
द्रौणेर्बुद्ध्वा महाबाहुरर्जुनं प्रत्यभाषत ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! दशार्हनन्दन महाबाहु भगवान् श्रीकृष्ण अश्वत्थामाकी चेष्टासे ही उसके मनका भाव पहले ही ताड़ गये थे। उन्होंने अर्जुनसे कहा—॥

अर्जुनार्जुन यद्दिव्यमस्त्रं ते हृदि वर्तते ।
द्रोणोपदिष्टं तस्यायं कालः सम्प्रति पाण्डव ॥ २ ॥

'अर्जुन ! अर्जुन ! पाण्डुनन्दन ! आचार्य द्रोणका उपदेश किया हुआ जो दिव्य अस्त्र तुम्हारे हृदयमें विद्यमान है, उसके प्रयोगका अब यह समय आ गया है ॥ २ ॥

भ्रातृणामात्मनश्चैव परित्राणाय भारत ।
विसृजैतत् त्वमप्याजावस्त्रमस्त्रनिवारणम् ॥ ३ ॥

'भरतनन्दन ! भाइयोंकी और अपनी रक्षाके लिये तुम भी युद्धमें इस ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करो । अश्वत्थामाके अस्त्रका निवारण इसीके द्वारा हो सकता है' ॥ ३ ॥

केशवेनैवमुक्तोऽथ पाण्डवः परवीरहा ।
अवातरद् रथात् तूर्णं प्रगृह्य सशरं धनुः ॥ ४ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले पाण्डुपुत्र अर्जुन धनुष-बाण हाथमें लेकर तुरंत ही रथसे नीचे उतर गये ॥ ४ ॥

पूर्वमाचार्यपुत्राय ततोऽनन्तरमात्मने ।
भ्रातृभ्यश्चैव सर्वेभ्यः स्वस्तीत्युक्त्वा परंतपः ॥ ५ ॥
देवताभ्यो नमस्कृत्य गुरुभ्यश्चैव सर्वशः ।
उत्ससर्ज शिवं ध्यायन्नस्त्रमस्त्रेण शाम्यताम् ॥ ६ ॥

शत्रुओंको संताप देनेवाले अर्जुनने सबसे पहले यह कहा कि 'आचार्यपुत्रका कल्याण हो' । तत्पश्चात् अपने और सम्पूर्ण भाइयोंके लिये मङ्गल-कामना करके उन्होंने देवताओं और सभी गुरुजनोंको नमस्कार किया । इसके बाद 'इस ब्रह्मास्त्रसे शत्रुका ब्रह्मास्त्र शान्त हो जाय' ऐसा संकल्प करके सबके कल्याणकी भावना करते हुए अपना दिव्य अस्त्र छोड़ दिया ॥ ५-६ ॥

ततस्तदस्त्रं सहसा सृष्टं गाण्डीवधन्वना ।
प्रजज्वाल महार्चिष्मद् युगान्तानलसंनिभम् ॥ ७ ॥

गाण्डीवधारी अर्जुनके द्वारा छोड़ा गया वह ब्रह्मास्त्र सहसा प्रज्वलित हो उठा । उससे प्रलयाग्निके समान बड़ी-बड़ी लपटें उठने लगीं ॥ ७ ॥

तथैव द्रोणपुत्रस्य तदस्त्रं तिग्मतेजसः ।
प्रजज्वाल महाज्वालं तेजोमण्डलसंवृतम् ॥ ८ ॥

इसी प्रकार प्रचण्ड तेजस्वी द्रोणपुत्रका वह अस्त्र भी तेजोमण्डलसे घिरकर बड़ी-बड़ी ज्वालाओंके साथ जलने लगा॥

निर्घाता बहवश्चासन् पेतुरुल्काः सहस्रशः ।
महद् भयं च भूतानां सर्वेषां समजायत ॥ ९ ॥

उस समय बारंबार वज्रपातके समान शब्द होने लगे, आकाशसे सहस्रों उल्काएँ टूट-टूटकर गिरने लगीं और समस्त प्राणियोंपर महान् भय छा गया ॥ ९ ॥

सशब्दमभवद् व्योम ज्वालामालाकुलं भृशम् ।
चचाल च मही कृत्स्ना सपर्वतवनद्रुमा ॥ १० ॥

सारा आकाश आगकी प्रचण्ड ज्वालाओंसे व्याप्त हो उठा और वहाँ जोर-जोरसे शब्द होने लगा । पर्वत, वन और वृक्षोंसहित सारी पृथ्वी हिलने लगी ॥ १० ॥

ते त्वस्त्रतेजसी लोकांस्तापयन्ती व्यवस्थिते ।
महर्षी सहितौ तत्र दर्शयामासतुस्तदा ॥ ११ ॥
नारदः सर्वभूतात्मा भरतानां पितामहः ।

उन दोनों अस्त्रोंके तेज समस्त लोकोंको संतप्त करते हुए वहाँ स्थित हो गये । उस समय वहाँ सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा नारद तथा भरतवंशके पितामह व्यास इन दो महर्षियोंने एक साथ दर्शन दिया ॥ ११½ ॥

उभौ शमयितुं वीरौ भारद्वाजधनंजयौ ॥ १२ ॥
तौ मुनी सर्वधर्मज्ञौ सर्वभूतहितैषिणौ ।
दीप्तयोरस्त्रयोर्मध्ये स्थितौ परमतेजसौ ॥ १३ ॥

सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता तथा समस्त प्राणियोंके हितैषी वे दोनों परम तेजस्वी मुनि अश्वत्थामा और अर्जुन—इन दोनों वीरोंको शान्त करनेके लिये इनके प्रज्वलित अस्त्रोंके बीचमें खड़े हो गये ॥ १२-१३ ॥

तदन्तरमथाधृष्यावुपगम्य यशस्विनौ ।
आस्तामृषिवरौ तत्र ज्वलिताविव पावकौ ॥ १४ ॥

उन अस्त्रोंके बीचमें आकर वे दुर्धर्ष एवं यशस्वी महर्षि-प्रवर दो प्रज्वलित अग्नियोंके समान वहाँ स्थित हो गये ॥

प्राणभृद्भिरनाधृष्यौ देवदानवसम्मतौ ।
अस्त्रतेजः शमयितुं लोकानां हितकाम्यया ॥ १५ ॥

कोई भी प्राणी उन दोनोंका तिरस्कार नहीं कर सकता था । देवता और दानव दोनों ही उनका सम्मान करते थे । वे समस्त लोकोंके हितकी कामनासे उन अस्त्रोंके तेजको शान्त करानेके लिये वहाँ आये थे ॥ १५ ॥

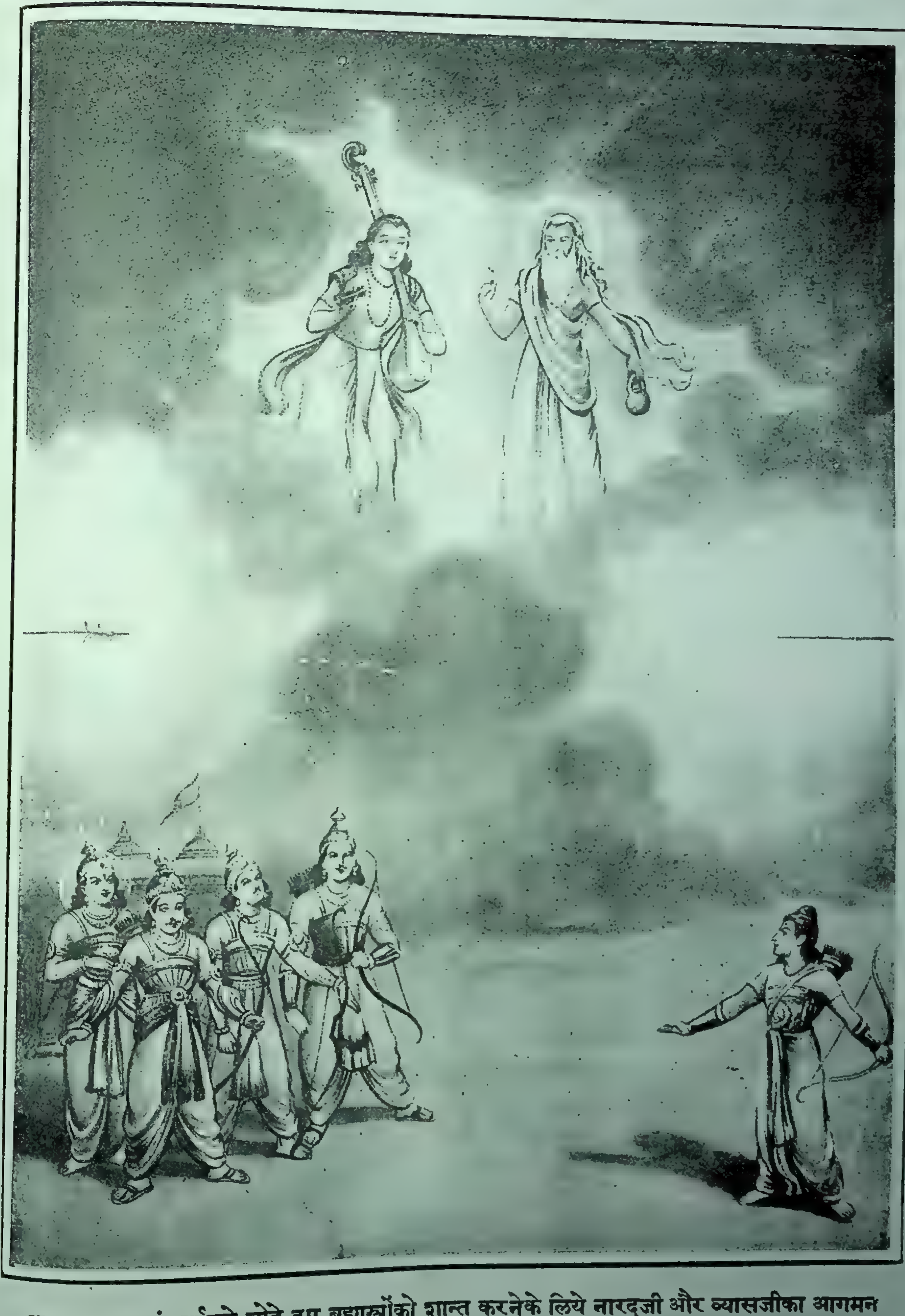
ऋषी ऊचतुः

नानाशस्त्रविदः पूर्वे येऽप्यतीता महारथाः ।
नैतदस्त्रं मनुष्येषु तैः प्रयुक्तं कथंचन ।
किमिदं साहसं वीरौ कृतवन्तौ महात्ययम् ॥ १६ ॥

उन दोनों ऋषियोंने उन दोनों वीरोंसे कहा—'वीरो ! पूर्वकालमें भी जो बहुत-से महारथी हो चुके हैं, वे नाना प्रकारके शस्त्रोंके जानकार थे, परंतु उन्होंने किसी प्रकार भी मनुष्योंपर इस अस्त्रका प्रयोग नहीं किया था । तुम दोनोंने यह महान् विनाशकारी दुःसाहस क्यों किया है ?॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि ऐषीकपर्वणि अर्जुनास्त्रत्यागे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वके अन्तर्गत ऐषीकपर्वमें अर्जुनके द्वारा ब्रह्मास्त्रका प्रयोगविषयक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४ ॥



अश्वत्थामा एवं अर्जुनके छोड़े हुए ब्रह्मास्त्रोंको शान्त करनेके लिये नारदजी और व्यासजीका आगमन

पञ्चदशोऽध्यायः

वेदव्यासजीकी आज्ञासे अर्जुनके द्वारा अपने अस्त्रका उपसंहार तथा अश्वत्थामाका अपनी मणि देकर पाण्डवोंके गर्भोंपर दिव्यास्त्र छोड़ना

वैशम्पायन उवाच

दृष्ट्वैव नरशार्दूल तावग्निसमतेजसौ।
गाण्डीवधन्वा संचिन्त्य प्राप्तकालं महारथः।
संजहार शरं दिव्यं त्वरमाणो धनंजयः॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—नरश्रेष्ठ! उन अग्निके समान तेजस्वी दोनों महर्षियोंको देखते ही गाण्डीवधारी महारथी अर्जुनने समयोचित कर्तव्यका विचार करके बड़ी फुर्तीसे अपने दिव्यास्त्रका उपसंहार आरम्भ किया॥ १॥

उवाच भरतश्रेष्ठ तावृषी प्राञ्जलिस्तदा।
प्रमुक्तमस्त्रमस्त्रेण शाम्यतामिति वै मया॥ २॥
संहृते परमास्त्रेऽस्मिन् सर्वानस्मानशेषतः।
पापकर्मा ध्रुवं द्रौणिः प्रधक्ष्यत्यस्त्रतेजसा॥ ३॥

भरतश्रेष्ठ! उस समय उन्होंने हाथ जोड़कर उन दोनों महर्षियोंसे कहा—'मुनिवरो! मैंने तो इसी उद्देश्यसे यह अस्त्र छोड़ा था कि इसके द्वारा शत्रुका छोड़ा हुआ ब्रह्मास्त्र शान्त हो जाय। अब इस उत्तम अस्त्रको लौटा लेनेपर पापाचारी अश्वत्थामा अपने अस्त्रके तेजसे अवश्य ही हम सब लोगोंको भस्म कर डालेगा॥ २-३॥

यदत्र हितमस्माकं लोकानां चैव सर्वथा।
भवन्तौ देवसंकाशौ तथा सम्मन्तुमर्हतः॥ ४॥

'आप दोनों देवताके तुल्य हैं; अतः इस समय जैसा करनेसे हमारा और सब लोगोंका सर्वथा हित हो, उसीके लिये आप हमें सलाह दें'॥ ४॥

इत्युक्त्वा संजहारास्त्रं पुनरेवं धनंजयः।
संहारो दुष्करस्तस्य देवैरपि हि संयुगे॥ ५॥
विसृष्टस्य रणे तस्य परमास्त्रस्य संग्रहे।
अशक्तः पाण्डवादन्यः साक्षादपि शतक्रतुः॥ ६॥

ऐसा कहकर अर्जुनने पुनः उस अस्त्रको पीछे लौटा लिया। युद्धमें उसे लौटा लेना देवताओंके लिये भी दुष्कर था। संग्राममें एक बार उस दिव्य अस्त्रको छोड़ देनेपर पुनः उसे लौटा लेनेमें पाण्डुपुत्र अर्जुनके सिवा साक्षात् इन्द्र भी समर्थ नहीं थे॥ ५-६॥

ब्रह्मतेजोद्भवं तद्धि विसृष्टमकृतात्मना।
न शक्यमावर्तयितुं ब्रह्मचारिव्रतादृते॥ ७॥

वह अस्त्र ब्रह्मतेजसे प्रकट हुआ था। यदि अजितेन्द्रिय पुरुषके द्वारा इसका प्रयोग किया गया हो तो उसके लिये इसे पुनः लौटाना असम्भव है; क्योंकि ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन किये बिना कोई इसे लौटा नहीं सकता॥ ७॥

अचीर्णब्रह्मचर्यो यः सृष्ट्वा वर्तयते पुनः।
तदस्त्रं सानुबन्धस्य मूर्धानं तस्य कृन्तति॥ ८॥

जिसने ब्रह्मचर्यका पालन नहीं किया हो, वह पुरुष यदि उसका एक बार प्रयोग करके उसे फिर लौटानेका प्रयत्न करे तो वह अस्त्र सगे-सम्बन्धियोंसहित उसका सिर काट लेता था॥ ८॥

ब्रह्मचारी व्रती चापि दुरवापमवाप्य तत्।
परमव्यसनार्तोऽपि नार्जुनोऽस्त्रं व्यमुञ्चत॥ ९॥

अर्जुनने ब्रह्मचारी तथा व्रतधारी रहकर ही उस दुर्लभ अस्त्रको प्राप्त किया था। वे बड़े-से-बड़े सङ्कटमें पड़नेपर भी कभी उस अस्त्रका प्रयोग नहीं करते थे॥ ९॥

सत्यव्रतधरः शूरो ब्रह्मचारी च पाण्डवः।
गुरुवर्ती च तेनास्त्रं संजहारार्जुनः पुनः॥ १०॥

सत्यव्रतधारी, ब्रह्मचारी, शूरवीर पाण्डव अर्जुन गुरुकी आज्ञाका पालन करनेवाले थे; इसलिये उन्होंने फिर उस अस्त्रको लौटा लिया॥ १०॥

द्रौणिरप्यथ सम्प्रेक्ष्य तावृषी पुरतः स्थितौ।
न शशाक पुनर्घोरमस्त्रं संहर्तुमोजसा॥ ११॥

अश्वत्थामाने भी जब उन ऋषियोंको अपने सामने खड़ा देखा तो उस घोर अस्त्रको बलपूर्वक लौटा लेनेका प्रयत्न किया, किंतु वह उसमें सफल न हो सका॥ ११॥

अशक्तः प्रतिसंहारे परमास्त्रस्य संयुगे।
द्रौणिर्दीनमना राजन् द्वैपायनमभाषत॥ १२॥

राजन्! युद्धमें उस दिव्य अस्त्रका उपसंहार करनेमें समर्थ न होनेके कारण द्रोणकुमार मन-ही-मन बहुत दुखी हुआ और व्यासजीसे इस प्रकार बोला—॥ १२॥

उत्तमव्यसनार्तेन प्राणत्राणमभीप्सुना।
मयैतदस्त्रमुत्सृष्टं भीमसेनभयान्मुने॥ १३॥

'मुने! मैंने भीमसेनके भयसे भारी संकटमें पड़कर अपने प्राणोंको बचानेके लिये ही यह अस्त्र छोड़ा था॥ १३॥

अधर्मश्च कृतोऽनेन धार्तराष्ट्रं जिघांसता।
मिथ्याचारेण भगवन् भीमसेनेन संयुगे॥ १४॥

'भगवन्! दुर्योधनके वधकी इच्छासे इस भीमसेनने संग्रामभूमिमें मिथ्याचारका आश्रय लेकर महान् अधर्म किया था॥ १४॥

अतः सृष्टमिदं ब्रह्मन् मयास्त्रमकृतात्मना।
तस्य भूयोऽद्य संहारं कर्तुं नाहमिहोत्सहे॥ १५॥

'ब्रह्मन्! यद्यपि मैं जितेन्द्रिय नहीं हूँ, तथापि मैंने इस अस्त्रका प्रयोग कर दिया है। अब पुनः इसे लौटा लेनेकी शक्ति मुझमें नहीं है॥ १५॥

विसृष्टं हि मया दिव्यमेतदस्त्रं दुरासदम्।
अपाण्डवायेति मुने वह्नितेजोऽनुमन्त्र्य वै॥ १६॥

'मुने ! मैंने इस दुर्जय दिव्यास्त्रको अग्निके तेजसे युक्त एवं अभिमन्त्रित करके इस उद्देश्यसे छोड़ा था कि पाण्डवों-का नामो-निशान मिट जाय ॥ १६ ॥

तदिदं पाण्डवेयानामन्तकायाभिसंहितम् ।
अद्य पाण्डुसुतान् सर्वान् जीविताद् भ्रंशयिष्यति ॥ १७॥

'पाण्डवोंके विनाशका संकल्प लेकर छोड़ा गया यह दिव्यास्त्र आज समस्त पाण्डुपुत्रोंको जीवनशून्य कर देगा ॥

कृतं पापमिदं ब्रह्मन् रोषाविष्टेन चेतसा ।
वधमाशास्य पार्थानां मयास्त्रं सृजता रणे ॥ १८ ॥

'ब्रह्मन् ! मैंने मनमें रोष भरकर रणभूमिमें कुन्तीपुत्रोंके वधकी इच्छासे इस अस्त्रका प्रयोग करके अवश्य ही बड़ा भारी पाप किया है' ॥ १८ ॥

व्यास उवाच

अस्त्रं ब्रह्मशिरस्तात विद्वान् पार्थो धनंजयः ।
उत्सृष्टवान्न रोषेण न नाशाय तवाहवे ॥ १९ ॥

व्यासजीने कहा—तात ! कुन्तीपुत्र धनंजय भी तो इस ब्रह्मास्त्रके ज्ञाता हैं; किंतु उन्होंने रोषमें भरकर युद्धमें तुम्हें मारनेके लिये उसे नहीं छोड़ा है ॥ १९ ॥

अस्त्रमस्त्रेण तु रणे तव संशमयिष्यता ।
विसृष्टमर्जुनेनेदं पुनश्च प्रतिसंहृतम् ॥ २० ॥

देखो, रणभूमिमें अपने अस्त्रद्वारा तुम्हारे अस्त्रको शान्त करनेके उद्देश्यसे ही अर्जुनने उसका प्रयोग किया था और अब पुनः उसे लौटा लिया है ॥ २० ॥

ब्रह्मास्त्रमप्यवाप्यैतदुपदेशात् पितुस्तव ।
क्षत्रधर्मान्महाबाहुर्नाकम्पत धनंजयः ॥ २१ ॥

इस ब्रह्मास्त्रको पाकर भी महाबाहु अर्जुन तुम्हारे पिताजी-का उपदेश मानकर कभी क्षात्रधर्मसे विचलित नहीं हुए हैं ॥

एवं धृतिमतः साधोः सर्वास्त्रविदुषः सतः ।
सभ्रातृबन्धोः कस्मात् त्वं वधमस्य चिकीर्षसि॥ २२ ॥

ये ऐसे धैर्यवान्, साधु, सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञाता तथा सत्पुरुष हैं, तथापि तुम भाई-बन्धुओंसहित इनका वध करनेकी इच्छा क्यों रखते हो ? ॥ २२ ॥

अस्त्रं ब्रह्मशिरो यत्र परमास्त्रेण वध्यते ।
समा द्वादश पर्जन्यस्तद्राष्ट्रं नाभिवर्षति ॥ २३ ॥

जिस देशमें एक ब्रह्मास्त्रको दूसरे उत्कृष्ट अस्त्रसे दबा दिया जाता है, उस राष्ट्रमें बारह वर्षोंतक वर्षा नहीं होती है॥

एतदर्थं महाबाहुः शक्तिमानपि पाण्डवः ।
न विहन्त्येतदस्त्रं तु प्रजाहितचिकीर्षया ॥ २४ ॥

इसीलिये प्रजावर्गके हितकी इच्छासे महाबाहु अर्जुन शक्तिशाली होते हुए भी तुम्हारे इस अस्त्रको नष्ट नहीं कर रहे हैं॥

पाण्डवास्त्वं च राष्ट्रं च सदा संरक्ष्यमेव हि ।
तस्मात् संहर दिव्यं त्वमस्त्रमेतन्महाभुज ॥ २५ ॥

महाबाहो ! तुम्हें पाण्डवोंकी, अपनी और इस राष्ट्रकी भी सदा रक्षा ही करनी चाहिये; इसलिये तुम अपने इस दिव्यास्त्रको लौटा लो ॥ २५ ॥

अरोषस्तव चैवास्तु पार्थाः सन्तु निरामयाः ।
न ह्यधर्मेण राजर्षिः पाण्डवो जेतुमिच्छति ॥ २६ ॥

तुम्हारा रोष शान्त हो और पाण्डव भी स्वस्थ रहें। पाण्डुपुत्र राजर्षि युधिष्ठिर किसीको भी अधर्मसे नहीं जीतना चाहते हैं ॥ २६ ॥

मणिं चैव प्रयच्छाद्य यस्ते शिरसि तिष्ठति ।
एतदादाय ते प्राणान् प्रतिदास्यन्ति पाण्डवाः ॥ २७ ॥

तुम्हारे सिरमें जो मणि है, इसे आज इन्हें दे दो। इस मणिको ही लेकर पाण्डव बदलेमें तुम्हें प्राणदान देंगे ॥२७॥

द्रौणिरुवाच

पाण्डवैर्यानि रत्नानि यच्चान्यत् कौरवैर्धनम् ।
अवाप्तमिह तेभ्योऽयं मणिर्मम विशिष्यते ॥ २८ ॥

अश्वत्थामा बोला—पाण्डवोंने अबतक जो-जो रत्न प्राप्त किये हैं तथा कौरवोंने भी यहाँ जो धन पाया है, मेरी यह मणि उन सबसे अधिक मूल्यवान् है ॥ २८ ॥

यमाबध्य भयं नास्ति शस्त्रव्याधिक्षुधाश्रयम् ।
देवेभ्यो दानवेभ्यो वा नागेभ्यो वा कथंचन ॥ २९ ॥

इसे बाँध लेनेपर शस्त्र, व्याधि, क्षुधा, देवता, दानव अथवा नाग किसीसे भी किसी तरहका भय नहीं रहता ॥

न च रक्षोगणभयं न तस्करभयं तथा ।
एवंवीर्यो मणिरयं न मे त्याज्यः कथंचन ॥ ३० ॥

न राक्षसोंका भय रहता है न चोरोंका। मेरी इस मणि-का ऐसा अद्भुत प्रभाव है। इसलिये मुझे इसका त्याग तो किसी प्रकार भी नहीं करना चाहिये ॥ ३० ॥

यत्तु मे भगवानाह तन्मे कार्यमनन्तरम् ।
अयं मणिरयं चाहमीषिका तु पतिष्यति ॥ ३१ ॥
गर्भेषु पाण्डवेयानाममोघं चैतदुत्तमम् ।
न च शक्तोऽस्मि भगवन् संहर्तुं पुनरुद्यतम् ॥ ३२ ॥

परंतु आप पूज्यपाद महर्षि मुझे जो आज्ञा देते हैं उसी-का अब मुझे पालन करना है, अतः यह रही मणि और यह रहा मैं। किंतु यह दिव्यास्त्रसे अभिमन्त्रित की हुई सींक तो पाण्डवोंके गर्भस्थ शिशुओंपर गिरेगी ही; क्योंकि यह उत्तम अस्त्र अमोघ है । भगवन् ! इस उठे हुए अस्त्रको मैं पुनः लौटा लेनेमें असमर्थ हूँ ॥ ३१-३२ ॥

एतदस्त्रमतश्चैव गर्भेषु विसृजाम्यहम् ।
न च वाक्यं भगवतो न करिष्ये महामुने ॥ ३३ ॥

महामुने ! अतः यह अस्त्र मैं पाण्डवोंके गर्भोंपर ही छोड़ रहा हूँ। आपकी आज्ञाका मैं कदापि उल्लङ्घन नहीं करूँगा॥

व्यास उवाच

एवं कुरु न चान्या तु बुद्धिः कार्या त्वयानघ ।
गर्भेषु पाण्डवेयानां विसृज्यैतदुपारम ॥ ३४ ॥

व्यासजीने कहा—अनघ ! अच्छा, ऐसा ही करो। अब अपने मनमें दूसरा कोई विचार न लाना। इस अस्त्रको पाण्डवोंके गर्भोंपर ही छोड़कर शान्त हो जाओ ॥ ३४ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततः परममस्त्रं तु द्रौणिरुद्यतमाहवे।
द्वैपायनवचः श्रुत्वा गर्भेषु प्रमुमोच ह ॥ ३५ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! व्यासजीका यह वचन सुनकर द्रोणकुमारने युद्धमें उठे हुए उस दिव्यास्त्रको पाण्डवोंके गर्भोंपर ही छोड़ दिया ॥ ३५ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि ऐषीकपर्वणि ब्रह्मशिरोऽस्त्रस्य पाण्डवेयगर्भप्रवेशने पञ्चदशोऽध्यायः १५ ॥ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वके अन्तर्गत ऐषीकपर्वमें ब्रह्मास्त्रका पाण्डवोंके गर्भमें प्रवेशविषयक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१५॥

षोडशोऽध्यायः

श्रीकृष्णसे शाप पाकर अश्वत्थामाका वनको प्रस्थान तथा पाण्डवोंका मणि देकर द्रौपदीको शान्त करना

वैशम्पायन उवाच

तदाज्ञाय हृषीकेशो विसृष्टं पापकर्मणा।
हृष्यमाण इदं वाक्यं द्रौणिं प्रत्यब्रवीत्तदा ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! पापी अश्वत्थामाने अपना अस्त्र पाण्डवोंके गर्भपर छोड़ दिया, यह जानकर भगवान् श्रीकृष्णको बड़ी प्रसन्नता हुई। उस समय उन्होंने द्रोणपुत्रसे इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

विराटस्य सुतां पूर्वं स्नुषां गाण्डीवधन्वनः।
उपप्लव्यगतां दृष्ट्वा व्रतवान् ब्राह्मणोऽब्रवीत् ॥ २ ॥

'पहलेकी बात है, राजा विराटकी कन्या और गाण्डीवधारी अर्जुनकी पुत्रवधू जब उपप्लव्यनगरमें रहती थी, उस समय किसी व्रतवान् ब्राह्मणने उसे देखकर कहा—॥

परिक्षीणेषु कुरुषु पुत्रस्तव भविष्यति।
एतदस्य परिक्षित्त्वं गर्भस्थस्य भविष्यति ॥ ३ ॥

'बेटी! जब कौरववंश परिक्षीण हो जायगा, तब तुम्हें एक पुत्र प्राप्त होगा और इसीलिये उस गर्भस्थ शिशुका नाम परिक्षित् होगा' ॥ ३ ॥

तस्य तद् वचनं साधोः सत्यमेतद् भविष्यति।
परिक्षिद् भविता ह्येषां पुनर्वंशकरः सुतः ॥ ४ ॥

'उस साधु ब्राह्मणका वह वचन सत्य होगा। उत्तराका पुत्र परिक्षित् ही पुनः पाण्डववंशका प्रवर्तक होगा!' ॥ ४ ॥

एवं ब्रुवाणं गोविन्दं सात्वतां प्रवरं तदा।
द्रौणिः परमसंरब्धः प्रत्युवाचेदमुत्तरम् ॥ ५ ॥

सात्वतवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण जब इस प्रकार कह रहे थे, उस समय द्रोणकुमार अश्वत्थामा अत्यन्त कुपित हो उठा और उन्हें उत्तर देता हुआ बोला—॥ ५ ॥

नैतदेवं यथाऽऽत्थ त्वं पक्षपातेन केशव।
वचनं पुण्डरीकाक्ष न च मद्वाक्यमन्यथा ॥ ६ ॥

'कमलनयन केशव! तुम पाण्डवोंका पक्षपात करते हुए इस समय जैसी बात कह गये हो, वह कभी हो नहीं सकती। मेरा वचन झूठा नहीं होगा ॥ ६ ॥

पतिष्यति तदस्त्रं हि गर्भे तस्या मयोद्यतम्।
विराटदुहितुः कृष्ण यं त्वं रक्षितुमिच्छसि ॥ ७ ॥

'श्रीकृष्ण! मेरे द्वारा चलाया गया वह अस्त्र विराटपुत्री उत्तराके गर्भपर ही, जिसकी तुम रक्षा करना चाहते हो, गिरेगा' ॥ ७ ॥

श्रीभगवानुवाच

अमोघः परमास्त्रस्य पातस्तस्य भविष्यति।
स तु गर्भो मृतो जातो दीर्घमायुरवाप्स्यति ॥ ८ ॥

श्रीभगवान् बोले—द्रोणकुमार! उस दिव्य अस्त्रका प्रहार तो अमोघ ही होगा। उत्तराका वह गर्भ मरा हुआ ही पैदा होगा; फिर उसे लंबी आयु प्राप्त हो जायगी ॥ ८ ॥

त्वां तु कापुरुषं पापं विदुः सर्वे मनीषिणः।
असकृत्पापकर्माणं बालजीवितघातकम् ॥ ९ ॥
तस्मात्त्वमस्य पापस्य कर्मणः फलमाप्नुहि।
त्रीणि वर्षसहस्राणि चरिष्यसि महीमिमाम् ॥ १० ॥
अप्राप्नुवन् क्वचित् काञ्चित् संविदं जातु केनचित्।
निर्जनानसहायस्त्वं देशान् प्रविचरिष्यसि ॥ ११ ॥

परंतु तुझे सभी मनीषी पुरुष कायर, पापी, बारंबार पापकर्म करनेवाला और बाल-हत्यारा समझते हैं। इसलिये तू इस पाप-कर्मका फल प्राप्त कर ले। आजसे तीन हजार वर्षोंतक तू इस पृथ्वीपर भटकता फिरेगा। तुझे कभी कहीं और किसीके साथ भी बातचीत करनेका सुख नहीं मिल सकेगा। तू अकेला ही निर्जन-स्थानोंमें घूमता रहेगा ९—११

भवित्री न हि ते क्षुद्र जनमध्येषु संस्थितिः।
पूयशोणितगन्धी च दुर्गकान्तारसंश्रयः ॥ १२ ॥
विचरिष्यसि पापात्मन् सर्वव्याधिसमन्वितः।

ओ नीच! तू जनसमुदायमें नहीं ठहर सकेगा। तेरे शरीरसे पीब और लोहूकी दुर्गन्ध निकलती रहेगी; अतः तुझे दुर्गम स्थानोंका ही आश्रय लेना पड़ेगा। पापात्मन्! तू सभी रोगोंसे पीड़ित होकर इधर-उधर भटकेगा ॥ १२½ ॥

वयः प्राप्य परिक्षित् तु वेदव्रतमवाप्य च ॥ १३ ॥
कृपाच्छारद्वताच्छूरः सर्वास्त्राण्युपपत्स्यते।

परिक्षित् तो दीर्घ आयु प्राप्त करके ब्रह्मचर्यपालन एवं वेदाध्ययनका व्रत धारण करेगा और वह शूरवीर बालक शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्यसे ही सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करेगा ॥ १३½ ॥

विदित्वा परमास्त्राणि क्षत्रधर्मव्रते स्थितः ॥ १४ ॥
षष्टिं वर्षाणि धर्मात्मा वसुधां पालयिष्यति।

इस प्रकार उत्तम अस्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करके क्षत्रिय-धर्ममें स्थित हो साठ वर्षोंतक इस पृथ्वीका पालन करेगा १४½

इतश्चोर्ध्वं महाबाहुः कुरुराजो भविष्यति ॥ १५ ॥
परिक्षिन्नाम नृपतिर्मिषतस्ते सुदुर्मते ।

दुर्मते ! इसके बाद तेरे देखते-देखते महाबाहु कुरुराज परिक्षित् ही इस भूमण्डलका सम्राट् होगा ॥ १५½ ॥

अहं तं जीवयिष्यामि दग्धं शस्त्राग्नितेजसा ।
पश्य मे तपसो वीर्यं सत्यस्य च नराधम ॥ १६ ॥

नराधम ! तेरी शस्त्राग्निके तेजसे दग्ध हुए उस बालकको मैं जीवित कर दूँगा । उस समय तू मेरे तप और सत्यका प्रभाव देख लेना ॥ १६ ॥

व्यास उवाच

यस्मादनादृत्य कृतं त्वयास्मान् कर्म दारुणम् ।
ब्राह्मणस्य सतश्चैव यस्मात् ते वृत्तमीदृशम् ॥ १७ ॥
तस्माद् यद् देवकीपुत्र उक्तवानुत्तमं वचः ।
असंशयं ते तद् भावि क्षत्रधर्मस्त्वयाऽऽश्रितः ॥ १८ ॥

व्यासजीने कहा—द्रोणकुमार ! तूने हमलोगोंका अनादर करके यह भयंकर कर्म किया है, ब्राह्मण होनेपर भी तेरा आचार ऐसा गिर गया है और तूने क्षत्रियधर्मको अपना लिया है; इसलिये देवकीनन्दन श्रीकृष्णने जो उत्तम बात कही है, वह सब तेरे लिये होकर ही रहेगी, इसमें संशय नहीं है ॥ १७-१८ ॥

अश्वत्थामोवाच

सहैव भवता ब्रह्मन् स्थास्यामि पुरुषेष्विह ।
सत्यवागस्तु भगवानयं च पुरुषोत्तमः ॥ १९ ॥

अश्वत्थामा बोला—ब्रह्मन् ! अब मैं मनुष्योंमें केवल आपके ही साथ रहूँगा । इन भगवान् पुरुषोत्तमकी बात सत्य हो ॥ १९ ॥

वैशम्पायन उवाच

प्रदायाथ मणिं द्रौणिः पाण्डवानां महात्मनाम् ।
जगाम विमनास्तेषां सर्वेषां पश्यतां वनम् ॥ २० ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! इसके बाद महात्मा पाण्डवोंको मणि देकर द्रोणकुमार अश्वत्थामा उदास मनसे उन सबके देखते-देखते वनमें चला गया ॥ २० ॥

पाण्डवाश्चापि गोविन्दं पुरस्कृत्य हतद्विषः ।
कृष्णद्वैपायनं चैव नारदं च महामुनिम् ॥ २१ ॥
द्रोणपुत्रस्य सहजं मणिमादाय सत्वराः ।
द्रौपदीमभ्यधावन्त प्रायोपेतां मनस्विनीम् ॥ २२ ॥

इधर जिनके शत्रु मारे गये थे, वे पाण्डव भी भगवान् श्रीकृष्ण, श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास तथा महामुनि नारदजीको आगे करके द्रोणपुत्रके साथ ही उत्पन्न हुई मणि लिये आमरण अनशनका निश्चय किये बैठी हुई मनस्विनी द्रौपदीके पास पहुँचनेके लिये शीघ्रतापूर्वक चले ॥ २१-२२ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततस्ते पुरुषव्याघ्राः सदश्वैरनिलोपमैः ।
अभ्ययुः सहदाशार्हाः शिबिरं पुनरेव हि ॥ २३ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण-सहित वे पुरुषसिंह पाण्डव वहाँसे वायुके समान वेगशाली उत्तम घोड़ोंद्वारा पुनः अपने शिबिरमें आ पहुँचे ॥ २३ ॥

अवतीर्य रथेभ्यस्तु त्वरमाणा महारथाः ।
ददृशुर्द्रौपदीं कृष्णामार्तामार्ततराः स्वयम् ॥ २४ ॥

वहाँ रथोंसे उतरकर वे महारथी वीर बड़ी उतावलीके साथ आकर शोकपीड़ित द्रुपदकुमारी कृष्णासे मिले । वे स्वयं भी शोकसे अत्यन्त व्याकुल हो रहे थे ॥ २४ ॥

तामुपेत्य निरानन्दां दुःखशोकसमन्विताम् ।
परिवार्य व्यतिष्ठन्त पाण्डवाः सहकेशवाः ॥ २५ ॥

दुःख-शोकमें डूबी हुई आनन्दशून्य द्रौपदीके पास पहुँचकर श्रीकृष्णसहित पाण्डव उसे चारों ओरसे घेरकर बैठ गये ॥ २५ ॥

ततो राज्ञाभ्यनुज्ञातो भीमसेनो महाबलः ।
प्रददौ तं मणिं दिव्यं वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २६ ॥

तब राजाकी आज्ञा पाकर महाबली भीमसेनने वह दिव्य मणि द्रौपदीके हाथमें दे दी और इस प्रकार कहा— ॥ २६ ॥

अयं भद्रे तव मणिः पुत्रहन्तुर्जितः स ते ।
उत्तिष्ठ शोकमुत्सृज्य क्षात्रधर्ममनुस्मर ॥ २७ ॥

'भद्रे ! यह तुम्हारे पुत्रोंका वध करनेवाले अश्वत्थामाकी मणि है । तुम्हारे उस शत्रुको हमने जीत लिया । अब शोक छोड़कर उठो और क्षत्रिय-धर्मका स्मरण करो ॥ २७ ॥

प्रयाणे वासुदेवस्य शमार्थमसितेक्षणे ।
यान्युक्तानि त्वया भीरु वाक्यानि मधुघातिनि॥ २८ ॥

'कजरारे नेत्रोंवाली भोली-भाली कृष्णे ! जब मधुसूदन श्रीकृष्ण कौरवोंके पास संधि करानेके लिये जा रहे थे, उस समय तुमने इनसे जो बातें कही थीं, उन्हें याद तो करो ॥

नैव मे पतयः सन्ति न पुत्रा भ्रातरो न च ।
न वै त्वमिति गोविन्द शममिच्छति राजनि ॥ २९ ॥
उक्तवत्यसि तीव्राणि वाक्यानि पुरुषोत्तमम् ।
क्षत्रधर्मानुरूपाणि तानि संस्मर्तुमर्हसि ॥ ३० ॥

'जब राजा युधिष्ठिर शान्तिके लिये संधि कर लेना चाहते थे, उस समय तुमने पुरुषोत्तम श्रीकृष्णसे बड़े कठोर वचन कहे थे—'गोविन्द ! (मेरे अपमानको भुलाकर शत्रुओंके साथ संधि की जा रही है, इसलिये मैं समझती हूँ कि) न मेरे पति हैं, न पुत्र हैं, न भाई हैं और न तुम्हीं हो' । क्षत्रिय-धर्मके अनुसार कहे गये उन वचनोंको तुम्हें आज स्मरण करना चाहिये ॥ २९-३० ॥

हतो दुर्योधनः पापो राज्यस्य परिपन्थिकः ।
दुःशासनस्य रुधिरं पीतं विस्फुरतो मया ॥ ३१ ॥
वैरस्य गतमानृण्यं न स्म वाच्या विवक्षताम् ।
जित्वा मुक्तो द्रोणपुत्रो ब्राह्मण्याद् गौरवेण च ॥ ३२ ॥

'हमारे राज्यका लुटेरा पापी दुर्योधन भाग गया और छटपटाते हुए दुःशासनका रक्त भी मैंने पी लिया। वैरका भरपूर बदला चुका लिया गया। अब कुछ कहनेकी इच्छावाले लोग हमलोगोंकी निन्दा नहीं कर सकते। हमने द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको जीतकर केवल ब्राह्मण और गुरुपुत्र होनेके कारण ही उसे जीवित छोड़ दिया है ॥ ३१-३२ ॥

यशोऽस्य पतितं देवि शरीरं त्ववशेषितम्।
वियोजितश्च मणिना भ्रंशितश्चायुधं भुवि ॥ ३३ ॥

'देवि! उसका सारा यश धूलमें मिल गया। केवल शरीर शेष रह गया है। उसकी मणि भी छीन ली गयी और उससे पृथ्वीपर हथियार डलवा दिया गया है' ॥ ३३ ॥

द्रौपद्युवाच

केवलानृण्यमाप्तास्मि गुरुपुत्रो गुरुर्मम।
शिरस्येतं मणिं राजा प्रतिबध्नातु भारत ॥ ३४ ॥

द्रौपदी बोली—भरतनन्दन! गुरुपुत्र तो मेरे लिये भी गुरुके ही समान हैं। मैं तो केवल पुत्रोंके वधका प्रतिशोध लेना चाहती थी, वह पा गयी। अब महाराज इस मणिको अपने मस्तकपर धारण करें ॥ ३४ ॥

तं गृहीत्वा ततो राजा शिरस्येवाकरोत् तदा।
गुरोरुच्छिष्टमित्येव द्रौपद्या वचनादपि ॥ ३५ ॥

तब राजा युधिष्ठिरने वह मणि लेकर द्रौपदीके कथनानुसार उसे अपने मस्तकपर ही धारण कर लिया। उन्होंने उस मणिको गुरुका प्रसाद ही समझा ॥ ३५ ॥

ततो दिव्यं मणिवरं शिरसा धारयन् प्रभुः।
शुशुभे स तदा राजा सचन्द्र इव पर्वतः ॥ ३६ ॥

उस दिव्य एवं उत्तम मणिको मस्तकपर धारण करके शक्तिशाली राजा युधिष्ठिर चन्द्रोदयकी शोभासे युक्त उदयाचलके समान सुशोभित हुए ॥ ३६ ॥

उत्तस्थौ पुत्रशोकार्ता ततः कृष्णा मनस्विनी।
कृष्णं चापि महाबाहुः परिपप्रच्छ धर्मराट् ॥ ३७ ॥

तब पुत्रशोकसे पीड़ित हुई मनस्विनी कृष्णा अनशन छोड़कर उठ गयी और महाबाहु धर्मराजने भगवान् श्रीकृष्णसे एक बात पूछी ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि ऐषीकपर्वणि द्रौपदीसान्त्वनायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वके अन्तर्गत ऐषीकपर्वमें द्रौपदीकी सान्त्वनाविषयक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

अपने समस्त पुत्रों और सैनिकोंके मारे जानेके विषयमें युधिष्ठिरका श्रीकृष्णसे पूछना और उत्तरमें श्रीकृष्णके द्वारा महादेवजीकी महिमाका प्रतिपादन

वैशम्पायन उवाच

हतेषु सर्वसैन्येषु सौप्तिके तै रथैस्त्रिभिः।
शोचन् युधिष्ठिरो राजा दाशार्हमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! रातको सोते समय उन तीन महारथियोंने पाण्डवोंकी सारी सेनाओंका जो संहार कर डाला था, उसके लिये शोक करते हुए राजा युधिष्ठिरने दशार्हनन्दन भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा— ॥ १ ॥

कथं नु कृष्ण पापेन क्षुद्रेणाकृतकर्मणा।
द्रौणिना निहताः सर्वे मम पुत्रा महारथाः ॥ २ ॥

'श्रीकृष्ण! नीच एवं पापात्मा द्रोणकुमारने कोई विशेष तप या पुण्यकर्म भी तो नहीं किया था, जिससे उसमें अलौकिक शक्ति आ जाती। फिर उसने मेरे सभी महारथी पुत्रोंका वध कैसे कर डाला? ॥ २ ॥

तथा कृतास्त्रविक्रान्ताः सहस्रशतयोधिनः।
द्रुपदस्यात्मजाश्चैव द्रोणपुत्रेण पातिताः ॥ ३ ॥

'द्रुपदके पुत्र तो अस्त्र-विद्याके पूरे पण्डित, पराक्रमी तथा लाखों योद्धाओंके साथ युद्ध करनेमें समर्थ थे तो भी द्रोणपुत्रने उन्हें मार गिराया, यह कितने आश्चर्यकी बात है? ॥ ३ ॥

यस्य द्रोणो महेष्वासो न प्रादादाहवे मुखम्।
निजघ्ने रथिनां श्रेष्ठं धृष्टद्युम्नं कथं नु सः ॥ ४ ॥

'महाधनुर्धर द्रोणाचार्य युद्धमें जिसके सामने मुँह नहीं दिखाते थे, उसी रथियोंमें श्रेष्ठ धृष्टद्युम्नको अश्वत्थामाने कैसे मार डाला? ॥ ४ ॥

किं नु तेन कृतं कर्म तथायुक्तं नरर्षभ।
यदेकः समरे सर्वानवधीन्नो गुरोः सुतः ॥ ५ ॥

'नरश्रेष्ठ! आचार्यपुत्रने ऐसा कौन-सा उपयुक्त कर्म किया था, जिससे उसने अकेले ही समराङ्गणमें हमारे सभी सैनिकोंका वध कर डाला' ॥ ५ ॥

श्रीभगवानुवाच

नूनं स देवदेवानामीश्वरेश्वरमव्ययम्।
जगाम शरणं द्रौणिरेकस्तेनावधीद् बहून् ॥ ६ ॥

श्रीभगवान् बोले—राजन्! निश्चय ही अश्वत्थामाने ईश्वरोंके भी ईश्वर देवाधिदेव अविनाशी भगवान् शिवकी शरण ली थी, इसीलिये उसने अकेले ही बहुत-से वीरोंका विनाश कर डाला ॥ ६ ॥

प्रसन्नो हि महादेवो दद्यादमरतामपि।
वीर्यं च गिरिशो दद्याद् येनेन्द्रमपि शातयेत् ॥ ७ ॥

पर्वतपर शयन करनेवाले महादेवजी तो प्रसन्न होनेपर अमरत्व भी दे सकते हैं। वे उपासकको इतनी शक्ति दे देते हैं, जिससे वह इन्द्रको भी नष्ट कर सकता है ॥ ७ ॥

वेदाहं हि महादेवं तत्त्वेन भरतर्षभ।
यानि चास्य पुराणानि कर्माणि विविधानि च॥ ८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! मैं महादेवजीको यथार्थरूपसे जानता हूँ। उनके जो नाना प्रकारके प्राचीन कर्म हैं, उनसे भी मैं पूर्ण परिचित हूँ ॥ ८ ॥

आदिरेष हि भूतानां मध्यमन्तश्च भारत।
विचेष्टते जगच्चेदं सर्वमस्यैव कर्मणा ॥ ९ ॥

भरतनन्दन ! ये भगवान् शिव सम्पूर्ण भूतोंके आदि, मध्य और अन्त हैं। उन्हींके प्रभावसे यह सारा जगत् भाँति-भाँतिकी चेष्टाएँ करता है ॥ ९ ॥

एवं सिसृक्षुर्भूतानि ददर्श प्रथमं विभुः।
पितामहोऽब्रवीच्चैनं भूतानि सृज मा चिरम् ॥ १० ॥

प्रभावशाली ब्रह्माजीने प्राणियोंकी सृष्टि करनेकी इच्छासे सबसे पहले महादेवजीको ही देखा था। तब पितामह ब्रह्माने उनसे कहा—'प्रभो ! आप अविलम्ब सम्पूर्ण भूतोंकी सृष्टि कीजिये' ॥ १० ॥

हरिकेशस्तथेत्युक्त्वा भूतानां दोषदर्शिवान्।
दीर्घकालं तपस्तेपे मग्नोऽम्भसि महातपाः ॥ ११ ॥

यह सुन महादेवजी 'तथास्तु' कहकर भूतगणोंके नाना प्रकारके दोष देख जलमें मग्न हो गये और महान् तपका आश्रय ले दीर्घकालतक तपस्या करते रहे ॥ ११ ॥

सुमहान्तं ततः कालं प्रतीक्ष्यैनं पितामहः।
स्रष्टारं सर्वभूतानां ससर्ज मनसा परम् ॥ १२ ॥

इधर पितामह ब्रह्माने सुदीर्घकालतक उनकी प्रतीक्षा करके अपने मानसिक संकल्पसे दूसरे सर्वभूतस्रष्टाको उत्पन्न किया ॥ १२ ॥

सोऽब्रवीत् पितरं दृष्ट्वा गिरिशं सुप्तमम्भसि।
यदि मे नाग्रजोऽस्त्यन्यस्ततः स्रक्ष्याम्यहं प्रजाः॥ १३ ॥

उस विराट् पुरुष या स्रष्टाने महादेवजीको जलमें सोया देख अपने पिता ब्रह्माजीसे कहा—'यदि दूसरा कोई मुझसे ज्येष्ठ न हो तो मैं प्रजाकी सृष्टि करूँगा' ॥ १३ ॥

तमब्रवीत् पिता नास्ति त्वदन्यः पुरुषोऽग्रजः।
स्थाणुरेष जले मग्नो विस्रब्धः कुरु वै कृतम् ॥ १४ ॥

यह सुनकर पिता ब्रह्माने स्रष्टासे कहा—'तुम्हारे सिवा दूसरा कोई अग्रज पुरुष नहीं है। ये स्थाणु (शिव) हैं भी तो पानीमें डूबे हुए हैं; अतः तुम निश्चिन्त होकर सृष्टिका कार्य आरम्भ करो' ॥ १४ ॥

भूतान्यन्वसृजत् सप्त दक्षादींस्तु प्रजापतीन्।
यैरिमं व्यकरोत् सर्वं भूतग्रामं चतुर्विधम् ॥ १५ ॥

तब स्रष्टाने सात प्रकारके प्राणियों और दक्ष आदि प्रजापतियोंको उत्पन्न किया, जिनके द्वारा उन्होंने इस चार प्रकारके समस्त प्राणिसमुदायका विस्तार किया ॥ १५ ॥

ताः सृष्टमात्राः क्षुधिताः प्रजाः सर्वाः प्रजापतिम्।
बिभक्षयिषवो राजन् सहसा प्राद्रवंस्तदा ॥ १६ ॥

राजन् ! सृष्टि होते ही समस्त प्रजा भूखसे पीड़ित हो प्रजापतिको ही खा जानेकी इच्छासे सहसा उनके पास दौड़ी गयी ॥ १६ ॥

स भक्ष्यमाणस्त्राणार्थी पितामहमुपाद्रवत्।
आभ्यो मां भगवांस्त्रातु वृत्तिरासां विधीयताम्॥ १७ ॥

जब प्रजा प्रजापतिको अपना आहार बनानेके लिये उद्यत हुई, तब वे आत्मरक्षाके लिये बड़े वेगसे भागकर पितामह ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित हुए और बोले—'भगवन् ! आप मुझे इन प्रजाओंसे बचाइये और इनके लिये कोई जीविका-वृत्ति नियत कर दीजिये' ॥ १७ ॥

ततस्ताभ्यो ददावन्नमोषधीः स्थावराणि च।
जङ्गमानि च भूतानि दुर्बलानि बलीयसाम् ॥ १८ ॥

तब ब्रह्माजीने उन प्रजाओंको अन्न और ओषधि आदि स्थावर वस्तुएँ जीवन-निर्वाहके लिये दीं और अत्यन्त बलवान् हिंसक जन्तुओंके लिये दुर्बल जङ्गम प्राणियोंको ही आहार निश्चित कर दिया ॥ १८ ॥

विहितान्नाः प्रजास्तास्तु जग्मुः सृष्टा यथागतम्।
ततो ववृधिरे राजन् प्रीतिमत्यः स्वयोनिषु ॥ १९ ॥

जिनकी सृष्टि हुई थी, उनके लिये जब भोजनकी व्यवस्था कर दी गयी, तब वे प्रजावर्गके लोग जैसे आये थे, वैसे लौट गये। राजन् ! तदनन्तर सारी प्रजा अपनी ही योनियोंमें प्रसन्नतापूर्वक रहती हुई उत्तरोत्तर बढ़ने लगी॥१९॥

भूतग्रामे विवृद्धे तु तुष्टे लोकगुरावपि।
उदतिष्ठज्जलाज्ज्येष्ठः प्रजाश्चेमा ददर्श सः ॥ २० ॥

जब प्राणिसमुदायकी भलीभाँति वृद्धि हो गयी और लोक-गुरु ब्रह्मा भी संतुष्ट हो गये, तब वे ज्येष्ठ पुरुष शिव जलसे बाहर निकले। निकलनेपर उन्होंने इन समस्त प्रजाओंको देखा ॥ २० ॥

बहुरूपाः प्रजाः सृष्टा विवृद्धाश्च स्वतेजसा।
चुक्रोध भगवान् रुद्रो लिङ्गं स्वं चाप्यविध्यत॥ २१ ॥

अनेक रूपवाली प्रजाकी सृष्टि हो गयी और वह अपने ही तेजसे भलीभाँति बढ़ भी गयी। यह देखकर भगवान् रुद्र कुपित हो उठे और उन्होंने अपना लिङ्ग काटकर फेंक दिया ॥ २१ ॥

तत् प्रविद्धं तथा भूमौ तथैव प्रत्यतिष्ठत।
तमुवाचाव्ययो ब्रह्मा वचोभिः शमयन्निव ॥ २२ ॥

इस प्रकार भूमिपर डाला गया वह लिङ्ग उसी रूपमें प्रतिष्ठित हो गया। तब अविनाशी ब्रह्माने अपने वचनोंद्वारा उन्हें शान्त करते हुए-से कहा—॥ २२ ॥

किं कृतं सलिले शर्व चिरकालस्थितेन ते।
किमर्थं चेदमुत्पाद्य लिङ्गं भूमौ प्रवेशितम् ॥ २३ ॥

'रुद्रदेव ! आपने दीर्घकालतक जलमें स्थित रहकर कौन-सा कार्य किया है ? और इस लिङ्गको उत्पन्न करके किसलिये पृथ्वीपर डाल दिया है ?' ॥ २३ ॥

सोऽब्रवीज्जातसंरम्भस्तथा लोकगुरुर्गुरुम् ।
प्रजाः सृष्टाः परेणेमाः किं करिष्याम्यनेन वै ॥ २४ ॥

यह प्रश्न सुनकर कुपित हुए जगद्गुरु शिवने ब्रह्माजीसे कहा—'प्रजाकी सृष्टि तो दूसरेने कर डाली; फिर इस लिङ्गको रखकर मैं क्या करूँगा ॥ २४ ॥

तपसाधिगतं चान्नं प्रजार्थं मे पितामह ।
ओषध्यः परिवर्तेरन् यथैवं सततं प्रजाः ॥ २५ ॥

'पितामह ! मैंने जलमें तपस्या करके प्रजाके लिये अन्न प्राप्त किया है; वे अन्नरूप ओषधियाँ प्रजाओंके ही समान निरन्तर विभिन्न अवस्थाओंमें परिणत होती रहेंगी' ॥ २५ ॥

एवमुक्त्वा स सक्रोधो जगाम विमना भवः ।
गिरेर्मुञ्जवतः पादं तपस्तप्तुं महातपाः ॥ २६ ॥

ऐसा कहकर क्रोधमें भरे हुए महातपस्वी महादेवजी उदास मनसे मुञ्जवान् पर्वतकी घाटीपर तपस्या करनेके लिये चले गये ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि ऐषीकपर्वणि युधिष्ठिरकृष्णसंवादे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वके अन्तर्गत ऐषीकपर्वमें युधिष्ठिर और श्रीकृष्णका संवादविषयक सतरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

महादेवजीके कोपसे देवता, यज्ञ और जगत्की दुरवस्था तथा उनके प्रसादसे सबका स्वस्थ होना

श्रीभगवानुवाच

ततो देवयुगेऽतीते देवा वै समकल्पयन् ।
यज्ञं वेदप्रमाणेन विधिवद् यष्टुमीप्सवः ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले—तदनन्तर सत्ययुग बीत जानेपर देवताओंने विधिपूर्वक भगवान्का यजन करनेकी इच्छासे वैदिक प्रमाणके अनुसार यज्ञकी कल्पना की ॥ १ ॥

कल्पयामासुरथ ते साधनानि हवींषि च ।
भागार्हा देवताश्चैव यज्ञियं द्रव्यमेव च ॥ २ ॥

तत्पश्चात् उन्होंने यज्ञके साधनों, हविष्यों, यज्ञभागके अधिकारी देवताओं और यज्ञोपयोगी द्रव्योंकी कल्पना की ॥ २ ॥

ता वै रुद्रमजानन्त्यो याथातथ्येन देवताः ।
नाकल्पयन्त देवस्य स्थाणोर्भागं नराधिप ॥ ३ ॥

नरेश्वर ! उस समय देवता भगवान् रुद्रको यथार्थरूपसे नहीं जानते थे; इसलिये उन्होंने 'स्थाणु' नामधारी भगवान् शिवके भागकी कल्पना नहीं की ॥ ३ ॥

सोऽकल्प्यमाने भागे तु कृत्तिवासा मखेऽमरैः ।
ततः साधनमन्विच्छन् धनुरादौ ससर्ज ह ॥ ४ ॥

जब देवताओंने यज्ञमें उनका कोई भाग नियत नहीं किया, तब व्याघ्रचर्मधारी भगवान् शिवने उनके दमनके लिये साधन जुटानेकी इच्छा रखकर सबसे पहले धनुषकी सृष्टि की।

लोकयज्ञः क्रियायज्ञो गृहयज्ञः सनातनः ।
पञ्चभूतनृयज्ञश्च जज्ञे सर्वमिदं जगत् ॥ ५ ॥

लोकयज्ञ, क्रियायज्ञ, सनातन गृहयज्ञ, पञ्चभूतयज्ञ और मनुष्ययज्ञ—ये पाँच प्रकारके यज्ञ हैं। इन्हींसे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है ॥ ५ ॥

लोकयज्ञैर्नृयज्ञैश्च कपर्दी विदधे धनुः ।
धनुः सृष्टमभूत् तस्य पञ्चकिष्कुप्रमाणतः ॥ ६ ॥

मस्तकपर जटाजूट धारण करनेवाले भगवान् शिवने लोकयज्ञ और मनुष्ययज्ञोंसे एक धनुषका निर्माण किया। उनका वह धनुष पाँच हाथ लंबा बनाया गया था ॥ ६ ॥

वषट्कारोऽभवज्ज्या तु धनुषस्तस्य भारत ।
यज्ञाङ्गानि च चत्वारि तस्य संनहनेऽभवन् ॥ ७ ॥

भरतनन्दन ! वषट्कार उस धनुषकी प्रत्यञ्चा था। यज्ञके चारों अङ्ग स्नान, दान, होम और जप उन भगवान् शिवके लिये कवच हो गये ॥ ७ ॥

ततः क्रुद्धो महादेवस्तदुपादाय कार्मुकम् ।
आजगामाथ तत्रैव यत्र देवाः समीजिरे ॥ ८ ॥

तदनन्तर कुपित हुए महादेवजी उस धनुषको लेकर उसी स्थानपर आये, जहाँ देवतालोग यज्ञ कर रहे थे ॥८॥

तमात्तकार्मुकं दृष्ट्वा ब्रह्मचारिणमव्ययम् ।
विव्यथे पृथिवी देवी पर्वताश्च चकम्पिरे ॥ ९ ॥

उन ब्रह्मचारी एवं अविनाशी रुद्रको हाथमें धनुष उठाये देख पृथ्वीदेवीको बड़ी व्यथा हुई और पर्वत भी काँपने लगे ॥ ९ ॥

न ववौ पवनश्चैव नाग्निर्जज्वाल वैधितः ।
व्यभ्रमच्चापि संविग्नं दिवि नक्षत्रमण्डलम् ॥ १० ॥

हवाकी गति रुक गयी, आग समिधा और घी आदिसे जलानेकी चेष्टा की जानेपर भी प्रज्वलित नहीं होती थी और आकाशमें नक्षत्रोंका समूह उद्विग्न होकर घूमने लगा ॥१०॥

न बभौ भास्करश्चापि सोमः श्रीमुक्तमण्डलः ।
तिमिरेणाकुलं सर्वमाकाशं चाभवद् वृतम् ॥ ११ ॥

सूर्य भी पूर्णतः प्रकाशित नहीं हो रहे थे, चन्द्रमण्डल भी श्रीहीन हो गया था तथा सारा आकाश अन्धकारसे व्याप्त हो रहा था ॥ ११ ॥

अभिभूतास्ततो देवा विषयान्न प्रजज्ञिरे ।
न प्रत्यभाच्च यज्ञः स देवतास्त्रेसिरे तथा ॥ १२ ॥

उससे अभिभूत होकर देवता किसी विषयको पहचान नहीं पाते थे, वह यज्ञ भी अच्छी तरह प्रतीत नहीं होता था। इससे सारे देवता भयसे थर्रा उठे ॥ १२ ॥

ततः स यज्ञं विव्याध रौद्रेण हृदि पत्रिणा ।
अपक्रान्तस्ततो यज्ञो मृगो भूत्वा सपावकः ॥ १३ ॥

तदनन्तर रुद्रदेवने भयंकर बाणके द्वारा उस यज्ञके हृदयमें आघात किया। तब अग्निसहित यज्ञ मृगका रूप धारण करके वहाँसे भाग निकला ॥ १३ ॥

स तु तेनैव रूपेण दिवं प्राप्य व्यराजत।
अन्वीयमानो रुद्रेण युधिष्ठिर नभस्तले ॥ १४ ॥

वह उसी रूपसे आकाशमें पहुँचकर (मृगशिरा नक्षत्रके रूपमें) प्रकाशित होने लगा। युधिष्ठिर ! आकाशमण्डलमें रुद्रदेव उस दशामें भी (आर्द्रा नक्षत्रके रूपमें) उसके पीछे लगे रहते हैं ॥ १४ ॥

अपक्रान्ते ततो यज्ञे संज्ञा न प्रत्यभात् सुरान्।
नष्टसंज्ञेषु देवेषु न प्राज्ञायत किंचन ॥ १५ ॥

यज्ञके वहाँसे हट जानेपर देवताओंकी चेतना लुप्त-सी हो गयी। चेतना लुप्त होनेसे देवताओंको कुछ भी प्रतीत नहीं होता था ॥ १५ ॥

त्र्यम्बकः सवितुर्बाहू भगस्य नयने तथा।
पूष्णश्च दशनान् क्रुद्धो धनुष्कोट्या व्यशातयत्॥ १६ ॥

उस समय कुपित हुए त्रिनेत्रधारी भगवान् शिवने अपने धनुषकी कोटिसे सविताकी दोनों बाँहें काट डालीं, भगकी आँखें फोड़ दीं और पूषाके सारे दाँत तोड़ डाले ॥ १६ ॥

प्राद्रवन्त ततो देवा यज्ञाङ्गानि च सर्वशः।
केचित् तत्रैव घूर्णन्तो गतासव इवाभवन् ॥ १७ ॥

तदनन्तर सम्पूर्ण देवता और यज्ञके सारे अङ्ग वहाँसे पलायन कर गये। कुछ वहीं चक्कर काटते हुए प्राणहीन-से हो गये ॥ १७ ॥

स तु विद्राव्य तत् सर्वं शितिकण्ठोऽवहस्य च।
अवष्टभ्य धनुष्कोटिं रुरोध विबुधांस्ततः ॥ १८ ॥

वह सब कुछ दूर हटाकर भगवान् नीलकण्ठने देवताओंका उपहास करते हुए धनुषकी कोटिका सहारा ले उन सबको रोक दिया ॥ १८ ॥

ततो वागमरैरुक्ता ज्यां तस्य धनुषोऽच्छिनत्।
अथ तत् सहसा राजंश्छिन्नज्यं व्यस्फुरद् धनुः॥ १९ ॥

तत्पश्चात् देवताओंद्वारा प्रेरित हुई वाणीने महादेवजीके धनुषकी प्रत्यञ्चा काट डाली। राजन्! सहसा प्रत्यञ्चा कट जानेपर वह धनुष उछलकर गिर पड़ा ॥ १९ ॥

ततो विधनुषं देवा देवश्रेष्ठमुपागमन्।
शरणं सह यज्ञेन प्रसादं चाकरोत् प्रभुः ॥ २० ॥

तब देवता यज्ञको साथ लेकर धनुषरहित देवश्रेष्ठ महादेवजीकी शरणमें गये। उस समय भगवान् शिवने उन सबपर कृपा की ॥ २० ॥

ततः प्रसन्नो भगवान् स्थाप्य कोपं जलाशये।
स जलं पावको भूत्वा शोषयत्यनिशं प्रभो ॥ २१ ॥

इसके बाद प्रसन्न हुए भगवान्ने अपने क्रोधको समुद्रमें स्थापित कर दिया। प्रभो ! वह क्रोध बडवानल बनकर निरन्तर उसके जलको सोखता रहता है ॥ २१ ॥

भगस्य नयने चैव बाहू च सवितुस्तथा।
प्रादात् पूष्णश्च दशनान् पुनर्यज्ञांश्च पाण्डव ॥ २२ ॥

पाण्डुनन्दन ! फिर भगवान् शिवने भगको आँखें, सविताको दोनों बाँहें, पूषाको दाँत और देवताओंको यज्ञ प्रदान किये॥

ततः सुस्थमिदं सर्वं बभूव पुनरेव हि।
सर्वाणि च हवींष्यस्य देवा भागमकल्पयन् ॥ २३ ॥

तदनन्तर यह सारा जगत् पुनः सुस्थिर हो गया। देवताओंने सारे हविष्योंमेंसे महादेवजीके लिये भाग नियत किया॥

तस्मिन् क्रुद्धेऽभवत् सर्वमसुस्थं भुवनं प्रभो।
प्रसन्ने च पुनः सुस्थं प्रसन्नोऽस्य च वीर्यवान्॥ २४ ॥

राजन् ! भगवान् शङ्करके कुपित होनेपर सारा जगत् डाँवाडोल हो गया था और उनके प्रसन्न होनेपर वह पुनः सुस्थिर हो गया। वे ही शक्तिशाली भगवान् शिव अश्वत्थामापर प्रसन्न हो गये थे ॥ २४ ॥

ततस्ते निहताः सर्वे तव पुत्रा महारथाः।
अन्ये च बहवः शूराः पाञ्चालस्य पदानुगाः ॥ २५ ॥

इसीलिये उसने आपके सभी महारथी पुत्रों तथा पाञ्चालराजका अनुसरण करनेवाले अन्य बहुत-से शूरवीरोंका वध किया है ॥ २५ ॥

न तन्मनसि कर्तव्यं न च तद् द्रौणिना कृतम्।
महादेवप्रसादेन कुरु कार्यमनन्तरम् ॥ २६ ॥

अतः इस बातको आप मनमें न लावें। अश्वत्थामाने यह कार्य अपने बलसे नहीं, महादेवजीकी कृपासे सम्पन्न किया है। अब आप आगे जो कुछ करना हो, वही कीजिये॥

इति श्रीमहाभारते सौप्तिकपर्वणि ऐषीकपर्वणि अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सौप्तिकपर्वके अन्तर्गत ऐषीकपर्वमें अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

॥ सौप्तिकपर्व सम्पूर्णम् ॥

	अनुष्टुप्	बड़े श्लोक	बड़े श्लोकोंको अनुष्टुप् माननेपर	कुल
उत्तर भारतीय पाठसे लिये गये	७९०॥	(१४)	१९।	८०९॥।
दक्षिण भारतीय पाठसे लिये गये	१	...	...	१
सौप्तिकपर्वकी कुल श्लोकसंख्या				८१०॥।

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमहाभारतम्

स्त्रीपर्व

(जलप्रदानिकपर्व)

प्रथमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका विलाप और संजयका उनको सान्त्वना देना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उनकी लीलाओं-का संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय (महाभारत) का पाठ करना चाहिये ॥

जनमेजय उवाच

हते दुर्योधने चैव हते सैन्ये च सर्वशः ।
धृतराष्ट्रो महाराज श्रुत्वा किमकरोन्मुने ॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—मुने ! दुर्योधन और उसकी सारी सेनाका संहार हो जानेपर महाराज धृतराष्ट्रने जब इस समाचारको सुना तो क्या किया ? ॥ १ ॥

तथैव कौरवो राजा धर्मपुत्रो महामनाः ।
कृपप्रभृतयश्चैव किमकुर्वत ते त्रयः ॥ २ ॥

इसी प्रकार कुरुवंशी राजा महामनस्वी धर्मपुत्र युधिष्ठिरने तथा कृपाचार्य आदि तीनों महारथियोंने भी इसके बाद क्या किया ? ॥ २ ॥

अश्वत्थाम्नः श्रुतं कर्म शापादन्योन्यकारितात् ।
वृत्तान्तमुत्तरं ब्रूहि यदभाषत संजयः ॥ ३ ॥

अश्वत्थामाको श्रीकृष्णसे और पाण्डवोंको अश्वत्थामासे जो परस्पर शाप प्राप्त हुए थे, वहाँतक मैंने अश्वत्थामाकी करतूत सुन ली । अब उसके बादका वृत्तान्त बताइये कि संजयने धृतराष्ट्रसे क्या कहा ? ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच

हते पुत्रशते दीनं छिन्नशाखमिव द्रुमम् ।
पुत्रशोकाभिसंतप्तं धृतराष्ट्रं महीपतिम् ॥ ४ ॥

वैशम्पायनजी बोले—राजन् ! अपने सौ पुत्रोंके मारे जानेपर राजा धृतराष्ट्रकी दशा वैसी ही दयनीय हो गयी, जैसे समस्त शाखाओंके कट जानेपर वृक्षकी हो जाती है । वे पुत्रोंके शोकसे संतप्त हो उठे ॥ ४ ॥

ध्यानमूकत्वमापन्नं चिन्तया समभिप्लुतम् ।
अभिगम्य महाराज संजयो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५ ॥

महाराज ! उन्हीं पुत्रोंका ध्यान करते-करते वे मौन हो गये, चिन्तामें डूब गये । उस अवस्थामें उनके पास जाकर संजयने इस प्रकार कहा—॥ ५ ॥

किं शोचसि महाराज नास्ति शोके सहायता ।
अक्षौहिण्यो हताश्चाष्टौ दश चैव विशाम्पते ॥ ६ ॥

'महाराज ! आप क्यों शोक कर रहे हैं ? इस शोकमें जो आपकी सहायता कर सके, आपका दुःख बँटा ले, ऐसा भी तो कोई नहीं बच गया है । प्रजानाथ ! इस युद्धमें अठारह अक्षौहिणी सेनाएँ मारी गयी हैं ॥ ६ ॥

निर्जनेयं वसुमती शून्या सम्प्रति केवला ।
नानादिग्भ्यः समागम्य नानादेश्या नराधिपाः॥ ७ ॥
सहैव तव पुत्रेण सर्वे वै निधनं गताः ।

'इस समय यह पृथ्वी निर्जन होकर केवल सूनी-सी दिखायी देती है । नाना देशोंके नरेश विभिन्न दिशाओंसे आकर आपके पुत्रके साथ ही सब-के-सब कालके गालमें चले गये हैं ॥ ७½ ॥

पितॄणां पुत्रपौत्राणां ज्ञातीनां सुहृदां तथा ।
गुरूणां चानुपूर्व्येण प्रेतकार्याणि कारय ॥ ८ ॥

'राजन् ! अब आप क्रमशः अपने चाचा, ताऊ, पुत्र, पौत्र, भाई-बन्धु, सुहृद् तथा गुरुजनोंके प्रेतकार्य सम्पन्न कराइये' ॥

वैशम्पायन उवाच

तच्छ्रुत्वा करुणं वाक्यं पुत्रपौत्रवधार्दितः ।
पपात भुवि दुर्धर्षो वाताहत इव द्रुमः ॥ ९ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—नरेश्वर ! संजयकी यह करुणाजनक बात सुनकर बेटों और पोतोंके वधसे व्याकुल हुए दुर्जय राजा धृतराष्ट्र आँधीके उखाड़े हुए वृक्षकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

हतपुत्रो हतामात्यो हतसर्वसुहृज्जनः ।
दुःखं नूनं भविष्यामि विचरन् पृथिवीमिमाम् ॥ १० ॥

धृतराष्ट्र बोले—संजय ! मेरे पुत्र, मन्त्री और समस्त सुहृद् मारे गये। अब तो अवश्य ही मैं इस पृथ्वीपर भटकता हुआ केवल दुःख-ही-दुःख भोगूँगा ॥ १० ॥

किं नु बन्धुविहीनस्य जीवितेन ममाद्य वै ।
लूनपक्षस्य इव मे जराजीर्णस्य पक्षिणः ॥ ११ ॥

जिसकी पाँखें काट ली गयी हों, उस जराजीर्ण पक्षीके समान बन्धु-बान्धवोंसे हीन हुए मुझ वृद्धको अब इस जीवनसे क्या प्रयोजन है ? ॥ ११ ॥

हृतराज्यो हतबन्धुर्हतचक्षुश्च वै तथा ।
न भ्राजिष्ये महाप्राज्ञ क्षीणरश्मिरिवांशुमान् ॥ १२ ॥

महामते ! मेरा राज्य छिन गया, बन्धु-बान्धव मारे गये और आँखें तो पहलेसे ही नष्ट हो चुकी थीं । अब मैं क्षीण किरणोंवाले सूर्यके समान इस जगत्में प्रकाशित नहीं होऊँगा॥

न कृतं सुहृदां वाक्यं जामदग्न्यस्य जल्पतः ।
नारदस्य च देवर्षेः कृष्णद्वैपायनस्य च ॥ १३ ॥

मैंने सुहृदोंकी बात नहीं मानी, जमदग्निनन्दन परशुराम, देवर्षि नारद तथा श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास सबने हितकी बात बतायी थी, पर मैंने किसीकी नहीं सुनी ॥ १३ ॥

सभामध्ये तु कृष्णेन यच्छ्रेयोऽभिहितं मम ।
अलं वैरेण ते राजन् पुत्रः संगृह्यतामिति ॥ १४ ॥
तच्च वाक्यमकृत्वाहं भृशं तप्यामि दुर्मतिः ।

श्रीकृष्णने सारी सभाके बीचमें मेरे भलेके लिये कहा था—'राजन् ! वैर बढ़ानेसे आपको क्या लाभ है ? अपने पुत्रोंको रोकिये ।' उनकी उस बातको न मानकर आज मैं अत्यन्त संतप्त हो रहा हूँ । मेरी बुद्धि बिगड़ गयी थी॥१४½॥

न हि श्रोतास्मि भीष्मस्य धर्मयुक्तं प्रभाषितम्॥ १५ ॥
दुर्योधनस्य च तथा वृषभस्येव नर्दतः ।

हाय ! अब मैं भीष्मजीकी धर्मयुक्त बात नहीं सुन सकूँगा । साँड़के समान गर्जनेवाले दुर्योधनके वीरोचित वचन भी अब मेरे कानोंमें नहीं पड़ सकेंगे ॥ १५½ ॥

दुःशासनवधं श्रुत्वा कर्णस्य च विपर्ययम् ॥ १६ ॥
द्रोणसूर्योपरागं च हृदयं मे विदीर्यते ।

दुःशासन मारा गया, कर्णका विनाश हो गया और द्रोणरूपी सूर्यपर भी ग्रहण लग गया, यह सब सुनकर मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है ॥ १६½ ॥

न स्मराम्यात्मनः किंचित् पुरा संजय दुष्कृतम्॥ १७ ॥
यस्येदं फलमद्येह मया मूढेन भुज्यते ।

संजय ! इस जन्ममें पहले कभी अपना किया हुआ कोई ऐसा पाप मुझे नहीं याद आ रहा है, जिसका मुझ मूढ़को आज यहाँ यह फल भोगना पड़ रहा है ॥ १७½ ॥

नूनं व्यपकृतं किंचिन्मया पूर्वेषु जन्मसु ॥ १८ ॥
येन मां दुःखभागेषु धाता कर्मसु युक्तवान् ।

अवश्य ही मैंने पूर्वजन्मोंमें कोई ऐसा महान् पाप किया है, जिससे विधाताने मुझे इन दुःखमय कर्मोंमें नियुक्त कर दिया है ॥ १८½ ॥

परिणामश्च वयसः सर्वबन्धुक्षयश्च मे ॥ १९ ॥
सुहृन्मित्रविनाशश्च दैवयोगादुपागतः ।
कोऽन्योऽस्ति दुःखिततरो मत्तोऽन्यो हि पुमान् भुवि॥

अब मेरा बुढ़ापा आ गया, सारे बन्धु-बान्धवोंका विनाश हो गया और दैववश मेरे सुहृदों तथा मित्रोंका भी अन्त हो गया । भला, इस भूमण्डलमें अब मुझसे बढ़कर महान् दुखी दूसरा कौन होगा ? ॥ १९-२० ॥

तन्मामद्यैव पश्यन्तु पाण्डवाः संशितव्रताः ।
विवृतं ब्रह्मलोकस्य दीर्घमध्वानमास्थितम् ॥ २१ ॥

इसलिये कठोर व्रतका पालन करनेवाले पाण्डवलोग मुझे आज ही ब्रह्मलोकके खुले हुए विशाल मार्गपर आगे बढ़ते देखें ॥ २१ ॥

वैशम्पायन उवाच

तस्य लालप्यमानस्य बहुशोकं वितन्वतः ।
शोकापहं नरेन्द्रस्य संजयो वाक्यमब्रवीत् ॥ २२ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार राजा धृतराष्ट्र जब बहुत शोक प्रकट करते हुए बारंबार विलाप करने लगे, तब संजयने उनके शोकका निवारण करनेके लिये यह बात कही—॥ २२ ॥

शोकं राजन् व्यपनुद श्रुतास्ते वेदनिश्चयाः ।
शास्त्रागमाश्च विविधा वृद्धेभ्यो नृपसत्तम ॥ २३ ॥
सृंजये पुत्रशोकार्ते यदूचुर्मुनयः पुरा ।

'नृपश्रेष्ठ राजन् ! आपने बड़े-बूढ़ोंके मुखसे वे वेदोंके सिद्धान्त, नाना प्रकारके शास्त्र एवं आगम सुने हैं, जिन्हें पूर्वकालमें मुनियोंने राजा सृंजयको पुत्रशोकसे पीड़ित होनेपर सुनाया था, अतः आप शोक त्याग दीजिये ॥ २३½ ॥

यथा यौवनजं दर्पमास्थिते तं सुते नृप ॥ २४ ॥
न त्वया सुहृदां वाक्यं ब्रुवतामवधारितम् ।

'नरेश्वर ! जब आपका पुत्र दुर्योधन जवानीके घमंडमें आकर मनमाना बर्ताव करने लगा, तब आपने हितकी बात बतानेवाले सुहृदोंके कथनपर ध्यान नहीं दिया ॥ २४½ ॥

स्वार्थश्च न कृतः कश्चिल्लुब्धेन फलगृद्धिना ॥ २५ ॥
असिनैवैकधारेण स्वबुद्ध्या तु विचेष्टितम् ।
प्रायशोऽवृत्तसम्पन्नाः सततं पर्युपासिताः ॥ २६ ॥

उसके मनमें लोभ था और वह राज्यका सारा लाभ स्वयं ही भोगना चाहता था, इसलिये उसने दूसरे किसीको अपने स्वार्थका सहायक या साझीदार नहीं बनाया । एक ओर धारवाली तलवारके समान अपनी ही बुद्धिसे सदा काम लिया । प्रायः जो अनाचारी मनुष्य थे, उन्हींका निरन्तर साथ किया ॥ २५-२६ ॥

यस्य दुःशासनो मन्त्री राधेयश्च दुरात्मवान् ।
शकुनिश्चैव दुष्टात्मा चित्रसेनश्च दुर्मतिः ॥ २७ ॥
शल्यश्च येन वै सर्वं शल्यभूतं कृतं जगत् ।

'दुःशासन, दुरात्मा राधापुत्र कर्ण, दुष्टात्मा शकुनि, दुर्बुद्धि चित्रसेन तथा जिन्होंने सारे जगत्को शल्यमय (कण्टकाकीर्ण) बना दिया था, वे शल्य—ये ही लोग दुर्योधनके मन्त्री थे॥

कुरुवृद्धस्य भीष्मस्य गान्धार्या विदुरस्य च ॥ २८ ॥
द्रोणस्य च महाराज कृपस्य च शरद्वतः।
कृष्णस्य च महाबाहो नारदस्य च धीमतः ॥ २९ ॥
ऋषीणां च तथान्येषां व्यासस्यामिततेजसः।
न कृतं तेन वचनं तव पुत्रेण भारत ॥ ३० ॥

'महाराज! महाबाहो! भरतनन्दन! कुरुकुलके ज्ञानवृद्ध पुरुष भीष्म, गान्धारी, विदुर, द्रोणाचार्य, शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य, श्रीकृष्ण, बुद्धिमान् देवर्षि नारद, अमिततेजस्वी वेदव्यास तथा अन्य महर्षियोंकी भी बातें आपके पुत्रने नहीं मानीं ॥ २८–३० ॥

न धर्मः सत्कृतः कश्चिन्नित्यं युद्धमभीप्सता।
अल्पबुद्धिरहंकारी नित्यं युद्धमिति ब्रुवन्।
क्रूरो दुर्मर्षणो नित्यमसंतुष्टश्च वीर्यवान् ॥ ३१ ॥

'वह सदा युद्धकी ही इच्छा रखता था; इसलिये उसने कभी किसी धर्मका आदरपूर्वक अनुष्ठान नहीं किया। वह मन्दबुद्धि और अहङ्कारी था; अतः नित्य युद्ध-युद्ध ही चिल्लाया करता था। उसके हृदयमें क्रूरता भरी थी। वह सदा अमर्षमें भरा रहनेवाला, पराक्रमी और असंतोषी था (इसीलिये उसकी दुर्गति हुई है) ॥ ३१ ॥

श्रुतवानसि मेधावी सत्यवांश्चैव नित्यदा।
न मुह्यन्तीदृशाः सन्तो बुद्धिमन्तो भवादृशाः ॥ ३२ ॥

'आप तो शास्त्रोंके विद्वान्, मेधावी और सदा सत्यमें तत्पर रहनेवाले हैं। आप-जैसे बुद्धिमान् एवं साधु पुरुष मोहके वशीभूत नहीं होते हैं ॥ ३२ ॥

न धर्मः सत्कृतः कश्चित् तव पुत्रेण मारिष।
क्षपिताः क्षत्रियाः सर्वे शत्रूणां वर्धितं यशः ॥ ३३ ॥

'मान्यवर नरेश! आपके उस पुत्रने किसी भी धर्मका सत्कार नहीं किया। उसने सारे क्षत्रियोंका संहार करा डाला और शत्रुओंका यश बढ़ाया ॥ ३३ ॥

मध्यस्थो हि त्वमप्यासीर्न क्षमं किञ्चिदुक्तवान्।
दुर्धरेण त्वया भारस्तुलया न समं धृतः ॥ ३४ ॥

'आप भी मध्यस्थ बनकर बैठे रहे, उसे कोई उचित सलाह नहीं दी। आप दुर्धर्ष वीर थे—आपकी बात कोई टाल नहीं सकता था, तो भी आपने दोनों ओरके बोझेको समभावसे तराजूपर रखकर नहीं तौला ॥ ३४ ॥

आदावेव मनुष्येण वर्तितव्यं यथाक्षमम्।
यथा नातीतमर्थं वै पश्चात्तापेन युज्यते ॥ ३५ ॥

'मनुष्यको पहले ही यथायोग्य बर्ताव करना चाहिये, जिससे आगे चलकर उसे बीती हुई बातके लिये पश्चात्ताप न करना पड़े ॥ ३५ ॥

पुत्रगृद्ध्या त्वया राजन् प्रियं तस्य चिकीर्षितम्।
पश्चात्तापमिमं प्राप्तो न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ३६ ॥

'राजन्! आपने पुत्रके प्रति आसक्ति रखनेके कारण सदा उसीका प्रिय करना चाहा, इसीलिये इस समय आपको यह पश्चात्तापका अवसर प्राप्त हुआ है; अतः अब आप शोक न करें ॥ ३६ ॥

मधु यः केवलं दृष्ट्वा प्रपातं नानुपश्यति।
स भ्रष्टो मधुलोभेन शोचत्येवं यथा भवान् ॥ ३७ ॥

'जो केवल ऊँचे स्थानपर लगे हुए मधुको देखकर वहाँसे गिरनेकी सम्भावनाकी ओरसे आँख बंद कर लेता है, वह उस मधुके लालचसे नीचे गिरकर इसी तरह शोक करता है, जैसे आप कर रहे हैं ॥ ३७ ॥

अर्थान्न शोचन् प्राप्नोति न शोचन् विन्दते फलम्।
न शोचञ्छ्रियमाप्नोति न शोचन् विन्दते परम् ॥ ३८ ॥

'शोक करनेवाला मनुष्य अपने अभीष्ट पदार्थोंको नहीं पाता है, शोकपरायण पुरुष किसी फलको नहीं हस्तगत कर पाता है। शोक करनेवालेको न तो लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है और न उसे परमात्मा ही मिलता है ॥ ३८ ॥

स्वयमुत्पादयित्वाग्निं वस्त्रेण परिवेष्टयन्।
दह्यमानो मनस्तापं भजते न स पण्डितः ॥ ३९ ॥

'जो मनुष्य स्वयं आग जलाकर उसे कपड़ेमें लपेट लेता है और जलनेपर मन-ही-मन संतापका अनुभव करता है, वह बुद्धिमान् नहीं कहा जा सकता है ॥ ३९ ॥

त्वयैव ससुतेनायं वाक्यवायुसमीरितः।
लोभाज्येन च संसिक्तो ज्वलितः पार्थपावकः ॥ ४० ॥

'पुत्रसहित आपने ही अपने लोभरूपी घीसे सींचकर और वचनरूपी वायुसे प्रेरित करके पार्थरूपी अग्निको प्रज्वलित किया था ॥ ४० ॥

तस्मिन् समिद्धे पतिताः शलभा इव ते सुताः।
तान् वै शराग्निनिर्दग्धान्न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ४१ ॥

'उसी प्रज्वलित अग्निमें आपके सारे पुत्र पतङ्गोंके समान पड़ गये हैं। बाणोंकी आगमें जलकर भस्म हुए उन पुत्रोंके लिये आपको शोक नहीं करना चाहिये ॥ ४१ ॥

यच्चाश्रुपातात् कलिलं वदनं वहसे नृप।
अशास्त्रदृष्टमेतद्धि न प्रशंसन्ति पण्डिताः ॥ ४२ ॥

'नरेश्वर! आप जो आँसुओंकी धारासे भीगा हुआ मुँह लिये फिरते हैं, यह अशास्त्रीय कार्य है। विद्वान् पुरुष इसकी प्रशंसा नहीं करते हैं ॥ ४२ ॥

विस्फुलिङ्गा इव ह्येतान् दहन्ति किल मानवान्।
जहीहि मन्युं बुद्ध्या वै धारयात्मानमात्मना ॥ ४३ ॥

'ये शोकके आँसू आगकी चिनगारियोंके समान इन मनुष्योंको निःसंदेह जलाया करते हैं; अतः आप शोक छोड़िये और बुद्धिके द्वारा अपने मनको स्वयं ही सुस्थिर कीजिये' ॥ ४३ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमाश्वासितस्तेन संजयेन महात्मना।
विदुरो भूय एवाह बुद्धिपूर्वं परंतप ॥ ४४ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—शत्रुओंको संताप देनेवाले जनमेजय ! महात्मा संजयने जब इस प्रकार राजा धृतराष्ट्रको आश्वासन दिया, तब विदुरजीने भी पुनः सान्त्वना देते हुए उनसे यह विचारपूर्ण वचन कहा ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि धृतराष्ट्रविशोककरणे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिकपर्वमें धृतराष्ट्रके शोकका निवारणविषयक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

विदुरजीका राजा धृतराष्ट्रको समझाकर उनको शोकका त्याग करनेके लिये कहना

वैशम्पायन उवाच

ततोऽमृतसमैर्वाक्यैर्ह्लादयन् पुरुषर्षभम् ।
वैचित्रवीर्यं विदुरो यदुवाच निबोध तत् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर विदुरजीने पुरुषप्रवर धृतराष्ट्रको अपने अमृतसमान मधुर वचनोंद्वारा आह्लाद प्रदान करते हुए वहाँ जो कुछ कहा, उसे सुनो ॥ १ ॥

विदुर उवाच

उत्तिष्ठ राजन् किं शेषे धारयात्मानमात्मना ।
एषा वै सर्वसत्त्वानां लोकेश्वर परा गतिः ॥ २ ॥

विदुरजी बोले—राजन् ! आप धरतीपर क्यों पड़े हैं ? उठकर बैठ जाइये और बुद्धिके द्वारा अपने मनको स्थिर कीजिये । लोकेश्वर ! समस्त प्राणियोंकी यही अन्तिम गति है ॥ २ ॥

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम् ॥ ३ ॥

सारे संग्रहोंका अन्त उनके क्षयमें ही है । भौतिक उन्नतियोंका अन्त पतनमें ही है । सारे संयोगोंका अन्त वियोगमें ही है । इसी प्रकार सम्पूर्ण जीवनका अन्त मृत्युमें ही होनेवाला है ॥ ३ ॥

यदा शूरं च भीरुं च यमः कर्षति भारत ।
तत् किं न योत्स्यन्ति हि ते क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभ ॥ ४ ॥

भरतनन्दन ! क्षत्रियशिरोमणे ! जब शूरवीर और डरपोक दोनोंको ही यमराज खींच ले जाते हैं, तब वे क्षत्रियलोग युद्ध क्यों न करते ? ॥ ४ ॥

अयुध्यमानो म्रियते युध्यमानश्च जीवति ।
कालं प्राप्य महाराज न कश्चिदतिवर्तते ॥ ५ ॥

महाराज ! जो युद्ध नहीं करता, वह भी मर जाता है और जो संग्राममें जूझता है, वह भी जीवित बच जाता है । कालको पाकर कोई भी उसका उल्लङ्घन नहीं कर सकता ॥

अभावादीनि भूतानि भावमध्यानि भारत ।
अभावनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ ६ ॥

जितने प्राणी हैं, वे जन्मसे पहले यहाँ व्यक्त नहीं थे । वे बीचमें ही व्यक्त होकर दिखायी देते हैं और अन्तमें पुनः उनका अभाव (अव्यक्तरूपसे अवस्थान) हो जायगा । ऐसी अवस्थामें उनके लिये रोने-धोनेकी क्या आवश्यकता है? ॥

न शोचन् मृतमन्वेति न शोचन् म्रियते नरः ।
एवं सांसिद्धिके लोके किमर्थमनुशोचसि ॥ ७ ॥

शोक करनेवाला मनुष्य न तो मरनेवालेके साथ जा सकता है और न मर ही सकता है । जब लोककी ऐसी ही स्वाभाविक स्थिति है, तब आप किसलिये शोक कर रहे हैं? ॥

कालः कर्षति भूतानि सर्वाणि विविधान्युत ।
न कालस्य प्रियः कश्चिन्न द्वेष्यः कुरुसत्तम ॥ ८ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! काल नाना प्रकारके समस्त प्राणियोंको खींच लेता है । कालको न तो कोई प्रिय है और न उसके द्वेषका ही पात्र है ॥ ८ ॥

यथा वायुस्तृणाग्राणि संवर्तयति सर्वशः ।
तथा कालवशं यान्ति भूतानि भरतर्षभ ॥ ९ ॥

भरतश्रेष्ठ ! जैसे हवा तिनकोंको सब ओर उड़ाती और डालती रहती है, उसी प्रकार समस्त प्राणी कालके अधीन होकर आते-जाते हैं ॥ ९ ॥

एकसार्थप्रयातानां सर्वेषां तत्र गामिनाम् ।
यस्य कालः प्रयात्यग्रे तत्र का परिदेवना ॥ १० ॥

जो एक साथ संसारकी यात्रामें आये हैं, उन सबको एक दिन वहीं (परलोकमें) जाना है । उनमेंसे जिसका काल पहले उपस्थित हो गया, वह आगे चला जाता है । ऐसी दशामें किसीके लिये शोक क्या करना है ? ॥ १० ॥

न चाप्येतान् हतान् युद्धे राजञ्शोचितुमर्हसि ।
प्रमाणं यदि शास्त्राणि गतास्ते परमां गतिम् ॥ ११ ॥

राजन् ! युद्धमें मारे गये इन वीरोंके लिये तो आपको शोक करना ही नहीं चाहिये । यदि आप शास्त्रोंका प्रमाण मानते हैं तो वे निश्चय ही परम गतिको प्राप्त हुए हैं ॥ ११ ॥

सर्वे स्वाध्यायवन्तो हि सर्वे च चरितव्रताः ।
सर्वे चाभिमुखाः क्षीणास्तत्र का परिदेवना ॥ १२ ॥

वे सभी वीर वेदोंका स्वाध्याय करनेवाले थे । सबने ब्रह्मचर्यव्रतका पालन किया था तथा वे सभी युद्धमें शत्रुका सामना करते हुए वीरगतिको प्राप्त हुए हैं; अतः उनके लिये शोक करनेकी क्या बात है ? ॥ १२ ॥

अदर्शनादापतिताः पुनश्चादर्शनं गताः ।
नैते तव न तेषां त्वं तत्र का परिदेवना ॥ १३ ॥

ये अदृश्य जगत्से आये थे और पुनः अदृश्य जगत्में ही चले गये हैं । ये न तो आपके थे और न आप ही इनके हैं । फिर यहाँ शोक करनेका क्या कारण है ? ॥ १३ ॥

हतोऽपि लभते स्वर्गं हत्वा च लभते यशः ।
उभयं नो बहुगुणं नास्ति निष्फलता रणे ॥ १४ ॥

युद्धमें जो मारा जाता है, वह स्वर्गलोक प्राप्त कर लेता है और जो शत्रुको मारता है, उसे यशकी प्राप्ति होती है । ये दोनों ही अवस्थाएँ हमलोगोंके लिये बहुत लाभदायक हैं । युद्धमें निष्फलता तो है ही नहीं ॥ १४ ॥

तेषां कामदुघाँल्लोकानिन्द्रः संकल्पयिष्यति ।
इन्द्रस्यातिथयो ह्येते भवन्ति भरतर्षभ ॥ १५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! इन्द्र उन वीरोंके लिये इच्छानुसार भोग प्रदान करनेवाले लोकोंकी व्यवस्था करेंगे । वे सब-के-सब इन्द्रके अतिथि होंगे ॥ १५ ॥

न यज्ञैर्दक्षिणावद्भिर्न तपोभिर्न विद्यया ।
स्वर्गं यान्ति तथा मर्त्या यथा शूरा रणे हताः ॥ १६ ॥

युद्धमें मारे गये शूरवीर जितनी सुगमतासे स्वर्गलोकमें जाते हैं, उतनी सुविधासे मनुष्य प्रचुर दक्षिणावाले यज्ञ, तपस्या और विद्याद्वारा भी नहीं जा सकते ॥ १६ ॥

शरीराग्निषु शूराणां जुहुवुस्ते शराहुतीः ।
हूयमानाञ्शरांश्चैव सेहुस्तेजस्विनो मिथः ॥ १७ ॥

शूरवीरोंके शरीररूपी अग्नियोंमें उन्होंने बाणोंकी आहुतियाँ दी हैं और उन तेजस्वी वीरोंने एक दूसरेकी शरीराग्नियोंमें होम किये जानेवाले बाणोंको सहन किया है ॥१७॥

एवं राजंस्तवाचक्षे स्वर्ग्यं पन्थानमुत्तमम् ।
न युद्धादधिकं किंचित् क्षत्रियस्येह विद्यते ॥ १८ ॥

राजन् ! इसलिये मैं आपसे कहता हूँ कि क्षत्रियके लिये इस जगत्में धर्मयुद्धसे बढ़कर दूसरा कोई स्वर्ग-प्राप्तिका उत्तम मार्ग नहीं है ॥ १८ ॥

क्षत्रियास्ते महात्मानः शूराः समितिशोभनाः ।
आशिषः परमाः प्राप्ता न शोच्याः सर्व एव हि ॥ १९ ॥

वे महामनस्वी वीर क्षत्रिय युद्धमें शोभा पानेवाले थे, अतः उन्होंने अपनी कामनाओंके अनुरूप उत्तम लोक प्राप्त किये हैं । उन सबके लिये शोक करना तो किसी प्रकार उचित ही नहीं है ॥ १९ ॥

आत्मानमात्मनाऽऽश्वास्य मा शुचः पुरुषर्षभ ।
नाद्य शोकाभिभूतस्त्वं कायमुत्स्रष्टुमर्हसि ॥ २० ॥

पुरुषप्रवर ! आप स्वयं ही अपने मनको सान्त्वना देकर शोकका परित्याग कीजिये । आज शोकसे व्याकुल होकर आपको अपने शरीरका त्याग नहीं करना चाहिये ॥

मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च ।
संसारेष्वनुभूतानि कस्य ते कस्य वा वयम् ॥ २१ ॥

हमलोगोंने बारंबार संसारमें जन्म लेकर सहस्रों माता-पिता तथा सैकड़ों स्त्री-पुत्रोंके सुखका अनुभव किया है; परंतु आज वे किसके हैं अथवा हम उनमेंसे किसके हैं ?॥ २१ ॥

शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च ।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम् ॥ २२ ॥

शोकके हजारों स्थान हैं और भयके भी सैकड़ों स्थान हैं। वे प्रतिदिन मूढ़ मनुष्यपर ही अपना प्रभाव डालते हैं, विद्वान् पुरुषपर नहीं ॥ २२ ॥

न कालस्य प्रियः कश्चिन्न द्वेष्यः कुरुसत्तम ।
न मध्यस्थः क्वचित्कालः सर्वं कालः प्रकर्षति ॥ २३ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! कालका न किसीसे प्रेम है और न किसीसे द्वेष, उसका कहीं उदासीन भाव भी नहीं है । काल सभीको अपने पास खींच लेता है ॥ २३ ॥

कालः पचति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ।
कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥ २४ ॥

काल ही प्राणियोंको पकाता है, काल ही प्रजाओंका संहार करता है और काल ही सबके सो जानेपर भी जागता रहता है। कालका उल्लङ्घन करना बहुत ही कठिन है ॥ २४ ॥

अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं द्रव्यसंचयः ।
आरोग्यं प्रियसंवासो गृध्येदेषु न पण्डितः ॥ २५ ॥

रूप, जवानी, जीवन, धनका संग्रह, आरोग्य तथा प्रिय जनोंका एक साथ निवास---ये सभी अनित्य हैं, अतः विद्वान् पुरुष इनमें कभी आसक्त न हो ॥ २५ ॥

न जानपदिकं दुःखमेकः शोचितुमर्हसि ।
अप्यभावेन युज्येत तच्चास्य न निवर्तते ॥ २६ ॥

जो दुःख सारे देशपर पड़ा है, उसके लिये अकेले आपको ही शोक करना उचित नहीं है । शोक करते-करते कोई मर जाय तो भी उसका वह शोक दूर नहीं होता है ॥ २६ ॥

अशोचन् प्रतिकुर्वीत यदि पश्येत् पराक्रमम् ।
भैषज्यमेतद् दुःखस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत् ॥ २७ ॥
चिन्त्यमानं हि न व्येति भूयश्चापि प्रवर्धते ।

यदि अपनेमें पराक्रम देखे तो शोक न करते हुए शोकके कारणका निवारण करनेकी चेष्टा करे । दुःखको दूर करनेके लिये सबसे अच्छी दवा यही है कि उसका चिन्तन छोड़ दिया जाय, चिन्तन करनेसे दुःख कम नहीं होता बल्कि और भी बढ़ जाता है ॥ २७½ ॥

अनिष्टसम्प्रयोगाच्च विप्रयोगात् प्रियस्य च ॥ २८ ॥
मानुषा मानसैर्दुःखैर्दह्यन्ते चाल्पबुद्धयः ।

मन्दबुद्धि मनुष्य ही अप्रिय वस्तुका संयोग और प्रिय वस्तुका वियोग होनेपर मानसिक दुःखोंसे दग्ध होने लगते हैं ॥ २८½ ॥

नार्थो न धर्मो न सुखं यदेतदनुशोचसि ॥ २९ ॥
न च नापैति कार्यार्थात्त्रिवर्गाच्चैव हीयते ।

जो आप यह शोक कर रहे हैं, यह न अर्थका साधक है, न धर्मका और न सुखका ही । इसके द्वारा मनुष्य अपने कर्तव्य-पथसे तो भ्रष्ट होता ही है, धर्म, अर्थ और कामरूप त्रिवर्गसे भी वञ्चित हो जाता है ॥ २९½ ॥

अन्यामन्यां धनावस्थां प्राप्य वैशेषिकीं नराः ॥ ३० ॥
असंतुष्टाः प्रमुह्यन्ति संतोषं यान्ति पण्डिताः ।

धनकी भिन्न-भिन्न अवस्थाविशेषको पाकर असंतोषी मनुष्य तो मोहित हो जाते हैं; परंतु विद्वान् पुरुष सदा संतुष्ट ही रहते हैं ॥ ३०½ ॥

प्रज्ञया मानसं दुःखं हन्याच्छारीरमौषधैः ।
एतद् विज्ञानसामर्थ्यं न बालैः समतामियात् ॥ ३१ ॥

मनुष्यको चाहिये कि वह मानसिक दुःखको बुद्धि एवं विचारद्वारा और शारीरिक कष्टको ओषधियोंद्वारा दूर करे, यही विज्ञानकी शक्ति है। उसे बालकोंके समान अविवेकपूर्ण बर्ताव नहीं करना चाहिये ॥ ३१ ॥

शयानं चानुशेते हि तिष्ठन्तं चानुतिष्ठति ।
अनुधावति धावन्तं कर्म पूर्वकृतं नरम् ॥ ३२ ॥

मनुष्यका पूर्वकृत कर्म उसके सोनेपर साथ ही सोता है, उठनेपर साथ ही उठता है और दौड़नेपर भी साथ-ही-साथ दौड़ता है ॥ ३२ ॥

यस्यां यस्यामवस्थायां यत् करोति शुभाशुभम् ।
तस्यां तस्यामवस्थायां तत्फलं समुपाश्नुते ॥ ३३ ॥

मनुष्य जिस-जिस अवस्थामें जो-जो शुभ या अशुभ कर्म करता है, उसी-उसी अवस्थामें उसका फल भी पा लेता है ॥

येन येन शरीरेण यद्यत् कर्म करोति यः ।
तेन तेन शरीरेण तत्फलं समुपाश्नुते ॥ ३४ ॥

जो जिस-जिस शरीरसे जो-जो कर्म करता है, दूसरे जन्ममें वह उसी-उसी शरीरसे उसका फल भोगता है ॥ ३४ ॥

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।
आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी कृतस्यापकृतस्य च ॥ ३५ ॥

मनुष्य आप ही अपना बन्धु है, आप ही अपना शत्रु है और आप ही अपने शुभ या अशुभ कर्मका साक्षी है ॥ ३५ ॥

शुभेन कर्मणा सौख्यं दुःखं पापेन कर्मणा ।
कृतं भवति सर्वत्र नाकृतं विद्यते क्वचित् ॥ ३६ ॥

शुभ कर्मसे सुख मिलता है और पापकर्मसे दुःख, सर्वत्र किये हुए कर्मका ही फल प्राप्त होता है, कहीं भी बिना कियेका नहीं॥

न हि ज्ञानविरुद्धेषु बह्वपायेषु कर्मसु ।
मूलघातिषु सज्जन्ते बुद्धिमन्तो भवद्विधाः ॥ ३७ ॥

आप-जैसे बुद्धिमान् पुरुष अनेक विनाशकारी दोषोंसे युक्त तथा मूलभूत शरीरका भी नाश करनेवाले बुद्धिविरुद्ध कर्मोंमें नहीं आसक्त होते हैं ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि धृतराष्ट्रविशोककरणे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिकपर्वमें धृतराष्ट्रके शोकका निवारणविषयक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

विदुरजीका शरीरकी अनित्यता बताते हुए धृतराष्ट्रको शोक त्यागनेके लिये कहना

धृतराष्ट्र उवाच

सुभाषितैर्महाप्राज्ञ शोकोऽयं विगतो मम ।
भूय एव तु वाक्यानि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—परम बुद्धिमान् विदुर ! तुम्हारा उत्तम भाषण सुनकर मेरा यह शोक दूर हो गया, तथापि तुम्हारे इन तात्त्विक वचनोंको मैं अभी और सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥

अनिष्टानां च संसर्गादिष्टानां च विसर्जनात् ।
कथं हि मानसैर्दुःखैः प्रमुच्यन्ते तु पण्डिताः ॥ २ ॥

विद्वान् पुरुष अनिष्टके संयोग और इष्टके वियोगसे होनेवाले मानसिक दुःखोंसे किस प्रकार छुटकारा पाते हैं ? ॥

विदुर उवाच

यतो यतो मनो दुःखात् सुखाद् वा विप्रमुच्यते।
ततस्ततो नियम्यैतच्छान्तिं विन्देत वै बुधः ॥ ३ ॥

विदुरजीने कहा—महाराज ! विद्वान् पुरुषको चाहिये कि जिन-जिन साधनोंमें लगनेसे मन दुःख अथवा सुखसे मुक्त होता हो, उन्हींमें इसे नियमपूर्वक लगाकर शान्ति प्राप्त करे॥

अशाश्वतमिदं सर्वं चिन्त्यमानं नरर्षभ ।
कदलीसंनिभो लोकः सारो ह्यस्य न विद्यते ॥ ४ ॥

नरश्रेष्ठ ! विचार करनेपर यह सारा जगत् अनित्य ही जान पड़ता है। सम्पूर्ण विश्व केलेके समान सारहीन है; इसमें सार कुछ भी नहीं है ॥ ४॥

यदा प्राज्ञाश्च मूढाश्च धनवन्तोऽथ निर्धनाः ।
सर्वे पितृवनं प्राप्य स्वपन्ति विगतज्वराः ॥ ५ ॥
निर्मांसैरस्थिभूयिष्ठैर्गात्रैः स्नायुनिबन्धनैः ।
किं विशेषं प्रपश्यन्ति तत्र तेषां परे जनाः ॥ ६ ॥
येन प्रत्यवगच्छेयुः कुलरूपविशेषणम् ।
कस्मादन्योन्यमिच्छन्ति विप्रलब्धधियो नराः ॥ ७ ॥

जब विद्वान्-मूर्ख, धनवान् और निर्धन सभी श्मशान-भूमिमें जाकर निश्चिन्त सो जाते हैं, उस समय उनके मांस-रहित, नाड़ियोंसे बँधे हुए तथा अस्थिबहुल अङ्गोंको देखकर क्या दूसरे लोग वहाँ उनमें कोई ऐसा अन्तर देख पाते हैं, जिससे वे उनके कुल और रूपकी विशेषताको समझ सकें; फिर भी वे मनुष्य एक दूसरेको क्यों चाहते हैं ? इसलिये कि उनकी बुद्धि ठगी गयी है ॥ ५–७ ॥

गृहाणीव हि मर्त्यानामाहुर्देहानि पण्डिताः ।
कालेन विनियुज्यन्ते सत्त्वमेकं तु शाश्वतम् ॥ ८ ॥

पण्डितलोग मरणधर्मा प्राणियोंके शरीरोंको घरके तुल्य बतलाते हैं; क्योंकि सारे शरीर समयपर नष्ट हो जाते हैं, किंतु उसके भीतर जो एकमात्र सत्त्वस्वरूप आत्मा है, वह नित्य है ॥ ८ ॥

यथा जीर्णमजीर्णं वा वस्त्रं त्यक्त्वा तु पूरुषः ।
अन्यद् रोचयते वस्त्रमेवं देहाः शरीरिणाम् ॥ ९ ॥

जैसे मनुष्य नये अथवा पुराने वस्त्रको उतारकर दूसरे नूतन वस्त्रको पहननेकी रुचि रखता है, उसी प्रकार देहधारियों-के शरीर उनके द्वारा समय-समयपर त्यागे और ग्रहण किये जाते हैं ॥ ९ ॥

वैचित्रवीर्य प्राप्यं हि दुःखं वा यदि वा सुखम् ।
प्राप्नुवन्तीह भूतानि स्वकृतेनैव कर्मणा ॥ १० ॥

विचित्रवीर्यनन्दन ! यदि दुःख या सुख प्राप्त होनेवाला है तो प्राणी उसे अपने किये हुए कर्मके अनुसार ही पाते हैं ॥

कर्मणा प्राप्यते स्वर्गः सुखं दुःखं च भारत ।
ततो वहति तं भारमवशः स्ववशोऽपि वा ॥ ११ ॥

भरतनन्दन ! कर्मके अनुसार ही परलोकमें स्वर्ग या नरक तथा इहलोकमें सुख और दुःख प्राप्त होते हैं; फिर मनुष्य सुख या दुःखके उस भारको स्वाधीन या पराधीन होकर ढोता रहता है ॥ ११ ॥

यथा च मृन्मयं भाण्डं चक्रारूढं विपद्यते ।
किंचित् प्रक्रियमाणं वा कृतमात्रमथापि वा ॥ १२ ॥
छिन्नं वाप्यवरोप्यन्तमवतीर्णमथापि वा ।
आर्द्रं वाप्यथवा शुष्कं पच्यमानमथापि वा ॥ १३ ॥
उत्तार्यमाणमापाकादुद्धृतं चापि भारत ।
अथवा परिभुज्यन्तमेवं देहाः शरीरिणाम् ॥ १४ ॥

जैसे मिट्टीका बर्तन बनाये जानेके समय कभी चाकपर चढ़ाते ही नष्ट हो जाता है, कभी कुछ-कुछ बननेपर, कभी पूरा बन जानेपर, कभी सूतसे काट देनेपर, कभी चाकसे उतारते समय, कभी उतर जानेपर, कभी गीली या सूखी अवस्थामें, कभी पकाये जाते समय, कभी आवाँसे उतारते समय, कभी पाकस्थानसे उठाकर ले जाते समय अथवा कभी उसे उपयोगमें लाते समय फूट जाता है; ऐसी ही दशा देह-धारियोंके शरीरोंकी भी होती है ॥ १२–१४ ॥

गर्भस्थो वा प्रसूतो वाप्यथ वा दिवसान्तरः ।
अर्धमासगतो वापि मासमात्रगतोऽपि वा ॥ १५ ॥
संवत्सरगतो वापि द्विसंवत्सर एव वा ।
यौवनस्थोऽथ मध्यस्थो वृद्धो वापि विपद्यते ॥ १६ ॥

कोई गर्भमें रहते समय, कोई पैदा हो जानेपर, कोई कई दिनोंका होनेपर, कोई पंद्रह दिनका, कोई एक मासका तथा कोई एक या दो सालका होनेपर, कोई युवावस्थामें, कोई मध्यावस्थामें अथवा कोई वृद्धावस्थामें पहुँचनेपर मृत्युको प्राप्त हो जाता है ॥ १५-१६ ॥

प्राक्कर्मभिस्तु भूतानि भवन्ति न भवन्ति च ।
एवं सांसिद्धिके लोके किमर्थमनुतप्यसे ॥ १७ ॥

प्राणी पूर्वजन्मके कर्मोंके अनुसार ही इस जगत्में रहते और नहीं रहते हैं । जब लोककी ऐसी ही स्वाभाविक स्थिति है, तब आप किसलिये शोक कर रहे हैं ? ॥ १७ ॥

यथा तु सलिलं राजन् क्रीडार्थमनुसंतरत् ।
उन्मज्जेच्च निमज्जेच्च किंचित् सत्त्वं नराधिप ॥ १८ ॥
एवं संसारगहने उन्मज्जननिमज्जने ।
कर्मभोगेन बध्यन्ते क्लिश्यन्ते चाल्पबुद्धयः ॥ १९ ॥

राजन् ! नरेश्वर ! जैसे क्रीडाके लिये पानीमें तैरता हुआ कोई प्राणी कभी डूबता है और कभी ऊपर आ जाता है, इसी प्रकार इस अगाध संसार-समुद्रमें जीवोंका डूबना और उतराना (मरना और जन्म लेना) लगा रहता है, मन्दबुद्धि मनुष्य ही यहाँ कर्मभोगसे बँधते और कष्ट पाते हैं ॥ १८-१९ ॥

ये तु प्राज्ञाः स्थिताः सत्त्वे संसारेऽस्मिन् हितैषिणः ।
समागमज्ञा भूतानां ते यान्ति परमां गतिम् ॥ २० ॥

जो बुद्धिमान् मानव इस संसारमें सत्त्वगुणसे युक्त, सबका हित चाहनेवाले और प्राणियोंके समागमको कर्मानुसार समझनेवाले हैं, वे परम गतिको प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि धृतराष्ट्रविशोककरणे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिकपर्वमें धृतराष्ट्रके शोकका निवारणविषयक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः

दुःखमय संसारके गहन स्वरूपका वर्णन और उससे छूटनेका उपाय

धृतराष्ट्र उवाच

कथं संसारगहनं विज्ञेयं वदतां वर ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं तत्त्वमाख्याहि पृच्छतः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—वक्ताओंमें श्रेष्ठ विदुर ! इस गहन संसारके स्वरूपका ज्ञान कैसे हो ? यह मैं सुनना चाहता हूँ । मेरे प्रश्नके अनुसार तुम इस विषयका यथार्थरूपसे वर्णन करो ॥

विदुर उवाच

जन्मप्रभृति भूतानां क्रिया सर्वोपलक्ष्यते ।
पूर्वमेवेह कलिले वसते किंचिदन्तरम् ॥ २ ॥
ततः स पञ्चमेऽतीते मासे वासमकल्पयत् ।
ततः सर्वाङ्गसम्पूर्णो गर्भो वै स तु जायते ॥ ३ ॥

विदुरजीने कहा—महाराज ! जब गर्भाशयमें वीर्य और रजका संयोग होता है तभीसे जीवोंकी गर्भवृद्धिरूप सारी क्रिया शास्त्रके अनुसार देखी जाती हैं ।* आरम्भमें जीव

* 'एकरात्रोषितं कलिलं भवति पञ्चरात्राद् बुद्बुदः' एक रातमें रज और वीर्य मिलकर 'कलिल' रूप होते हैं और पाँच रातमें 'बुद्बुद' के आकारमें परिणत हो जाते है। इत्यादि शास्त्रवचनोंके अनुसार गर्भके बढ़ने आदिकी सारी क्रिया ज्ञात होती है ।

कलिल (वीर्य और रजके संयोग) के रूपमें रहता है, फिर कुछ दिन बाद पाँचवाँ महीना बीतनेपर वह चैतन्यरूपसे प्रकट होकर पिण्डमें निवास करने लगता है। इसके बाद वह गर्भस्थ पिण्ड सर्वाङ्गपूर्ण हो जाता है ॥ २-३ ॥

अमेध्यमध्ये वसति मांसशोणितलेपने ।
ततस्तु वायुवेगेन ऊर्ध्वपादो ह्यधःशिराः ॥ ४ ॥

इस समय उसे मांस और रुधिरसे लिपे हुए अत्यन्त अपवित्र गर्भाशयमें रहना पड़ता है। फिर वायुके वेगसे उसके पैर ऊपरकी ओर हो जाते हैं और सिर नीचेकी ओर ॥ ४ ॥

योनिद्वारमुपागम्य बहून् क्लेशान् समृच्छति ।
योनिसम्पीडनाच्चैव पूर्वकर्मभिरन्वितः ॥ ५ ॥
तस्मान्मुक्तः स संसारादन्यान् पश्यत्युपद्रवान् ।
ग्रहास्तमनुगच्छन्ति सारमेया इवामिषम् ॥ ६ ॥

इस स्थितिमें योनिद्वारके समीप आ जानेसे उसे बड़े दुःख सहने पड़ते हैं। फिर पूर्व कर्मोंसे संयुक्त हुआ वह जीव योनिमार्गसे पीड़ित हो उससे छुटकारा पाकर बाहर आ जाता है और संसारमें आकर अन्यान्य प्रकारके उपद्रवोंका सामना करता है। जैसे कुत्ते मांसकी ओर झपटते हैं, उसी प्रकार बालग्रह उस शिशुके पीछे लगे रहते हैं ॥ ५-६ ॥

ततः प्राप्तोत्तरे काले व्याधयश्चापि तं तथा ।
उपसर्पन्ति जीवन्तं बध्यमानं स्वकर्मभिः ॥ ७ ॥

तदनन्तर ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है, त्यों-ही-त्यों अपने कर्मोंसे बँधे हुए उस जीवको जीवित अवस्थामें नयी-नयी व्याधियाँ प्राप्त होने लगती हैं ॥ ७ ॥

तं बद्धमिन्द्रियैः पाशैः संगस्वादुभिरावृतम् ।
व्यसनान्यपि वर्तन्ते विविधानि नराधिप ॥ ८ ॥

नरेश्वर ! फिर आसक्तिके कारण जिनमें रसकी प्रतीति होती है, उन विषयोंसे घिरे और इन्द्रियरूपी पाशोंसे बँधे हुए उस संसारी जीवको नाना प्रकारके सङ्कट घेर लेते हैं ॥ ८ ॥

बध्यमानश्च तैर्भूयो नैव तृप्तिमुपैति सः ।
तदा नावैति चैवायं प्रकुर्वन् साध्वसाधु वा ॥ ९ ॥

उनसे बँध जानेपर पुनः इसे कभी तृप्ति ही नहीं होती है। उस अवस्थामें वह भले-बुरे कर्म करता हुआ भी उनके विषयमें कुछ समझ नहीं पाता ॥ ९ ॥

तथैव परिरक्षन्ति ये ध्यानपरिनिष्ठिताः ।
अयं न बुध्यते तावद् यमलोकमथागतम् ॥ १० ॥

जो लोग भगवान्के ध्यानमें लगे रहनेवाले हैं, वे ही शास्त्रके अनुसार चलकर अपनी रक्षा कर पाते हैं। साधारण जीव तो अपने सामने आये हुए यमलोकको भी नहीं समझ पाता है ॥ १० ॥

यमदूतैर्विकृष्यंश्च मृत्युं कालेन गच्छति ।
वाग्घीनस्य च यन्मात्रमिष्टानिष्टं कृतं मुखे ।
भूय एवात्मनाऽऽत्मानं बध्यमानमुपेक्षते ॥ ११ ॥

तदनन्तर कालसे प्रेरित हो यमदूत उसे शरीरसे बाहर खींच लेते हैं और वह मृत्युको प्राप्त हो जाता है। उस समय उसमें बोलनेकी भी शक्ति नहीं रहती। उसके जितने भी शुभ या अशुभ कर्म हैं वे सामने प्रकट होते हैं। उनके अनुसार पुनः अपने आपको देहबन्धनमें बँधता हुआ देखकर भी वह उपेक्षा कर देता है—अपने उद्धारका प्रयत्न नहीं करता ११

अहो विनिकृतो लोको लोभेन च वशीकृतः ।
लोभक्रोधभयोन्मत्तो नात्मानमवबुध्यते ॥ १२ ॥

अहो ! लोभके वशीभूत होकर यह सारा संसार ठगा जा रहा है। लोभ, क्रोध और भयसे यह इतना पागल हो गया है कि अपने आपको भी नहीं जानता ॥ १२ ॥

कुलीनत्वे च रमते दुष्कुलीनान् विकुत्सयन् ।
धनदर्पेण दृप्तश्च दरिद्रान् परिकुत्सयन् ॥ १३ ॥

जो लोग हीन कुलमें उत्पन्न हुए हैं, उनकी निन्दा करता हुआ कुलीन मनुष्य अपनी कुलीनतामें ही मस्त रहता है और धनी धनके घमंडसे चूर होकर दरिद्रोंके प्रति अपनी घृणा प्रकट करता है ॥ १३ ॥

मूर्खानिति परानाह नात्मानं समवेक्षते ।
दोषान् क्षिपति चान्येषां नात्मानं शास्तुमिच्छति॥१४॥

वह दूसरोंको तो मूर्ख बताता है, पर अपनी ओर कभी नहीं देखता। दूसरोंके दोषोंके लिये उनपर आक्षेप करता है, परंतु उन्हीं दोषोंसे स्वयंको बचानेके लिये अपने मनको काबूमें नहीं रखना चाहता ॥ १४ ॥

यदा प्राज्ञाश्च मूर्खाश्च धनवन्तश्च निर्धनाः ।
कुलीनाश्चाकुलीनाश्च मानिनोऽथाप्यमानिनः ॥ १५ ॥
सर्वे पितृवनं प्राप्ताः स्वपन्ति विगतत्वचः ।
निर्मांसैरस्थिभूयिष्ठैर्गात्रैः स्नायुनिबन्धनैः ॥ १६ ॥
विशेषं न प्रपश्यन्ति तत्र तेषां परे जनाः ।
येन प्रत्यवगच्छेयुः कुलरूपविशेषणम् ॥ १७ ॥

जब ज्ञानी और मूर्ख, धनवान् और निर्धन, कुलीन और अकुलीन तथा मानी और मानरहित सभी मरघटमें जाकर सो जाते हैं, उनकी चमड़ी भी नष्ट हो जाती है और नाड़ियोंसे बँधे हुए मांसरहित हड्डियोंके ढेररूप उनके नग्न शरीर सामने आते हैं, तब वहाँ खड़े हुए दूसरे लोग उनमें कोई ऐसा अन्तर नहीं देख पाते हैं, जिससे एककी अपेक्षा दूसरेके कुल और रूपकी विशेषताको जान सकें ॥१५-१७॥

यदा सर्वे समं न्यस्ताः स्वपन्ति धरणीतले ।
कस्मादन्योन्यमिच्छन्ति प्रलब्धुमिह दुर्बुधाः ॥ १८ ॥

जब मरनेके बाद श्मशानमें डाल दिये जानेपर सभी लोग समानरूपसे पृथ्वीकी गोदमें सोते हैं, तब वे मूर्ख मानव इस संसारमें क्यों एक दूसरेको ठगनेकी इच्छा करते हैं ? ॥ १८॥

प्रत्यक्षं च परोक्षं च यो निशम्य श्रुतिं त्विमाम् ।
अध्रुवे जीवलोकेऽस्मिन् यो धर्ममनुपालयन् ।
जन्मप्रभृति वर्तेत प्राप्नुयात् परमां गतिम् ॥ १९ ॥

इस क्षणभङ्गुर जगत्में जो पुरुष इस वेदोक्त उपदेशको साक्षात् जानकर या किसीके द्वारा सुनकर जन्मसे ही निरन्तर

धर्मका पालन करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है ॥ १९ ॥

एवं सर्वं विदित्वा वै यस्तत्त्वमनुवर्तते।
स प्रमोक्षाय लभते पन्थानं मनुजेश्वर ॥ २० ॥

नरेश्वर ! जो इस प्रकार सब कुछ जानकर तत्त्वका अनुसरण करता है, वह मोक्ष तक पहुँचनेके लिये मार्ग प्राप्त कर लेता है ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि धृतराष्ट्रविशोककरणे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिकपर्वमें धृतराष्ट्रके शोकका निवारणविषयक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

गहन वनके दृष्टान्तसे संसारके भयंकर स्वरूपका वर्णन

धृतराष्ट्र उवाच

यदिदं धर्मगहनं बुद्ध्या समनुगम्यते।
तद्धि विस्तरतः सर्वं बुद्धिमार्गं प्रशंस मे ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—विदुर ! यह जो धर्मका गूढ़ स्वरूप है, वह बुद्धिसे ही जाना जाता है; अतः तुम मुझसे सम्पूर्ण बुद्धिमार्गका विस्तारपूर्वक वर्णन करो ॥ १ ॥

विदुर उवाच

अत्र ते वर्तयिष्यामि नमस्कृत्वा स्वयंभुवे।
यथा संसारगहनं वदन्ति परमर्षयः ॥ २ ॥

विदुरजीने कहा—राजन् ! मैं भगवान् स्वयम्भूको नमस्कार करके संसाररूप गहन वनके उस स्वरूपका वर्णन करता हूँ, जिसका निरूपण बड़े-बड़े महर्षि करते हैं ॥ २ ॥

कश्चिन्महति कान्तारे वर्तमानो द्विजः किल।
महद् दुर्गमनुप्राप्तो वनं क्रव्यादसंकुलम् ॥ ३ ॥

कहते हैं कि किसी विशाल दुर्गम वनमें कोई ब्राह्मण यात्रा कर रहा था। वह वनके अत्यन्त दुर्गम प्रदेशमें जा पहुँचा, जो हिंसक जन्तुओंसे भरा हुआ था ॥ ३ ॥

सिंहव्याघ्रगजर्क्षौघैरतिघोरं महास्वनैः।
पिशितादैरतिभयैर्महोग्राकृतिभिस्तथा ॥ ४ ॥
समन्तात् संपरिक्षिप्तं यत् स दृष्ट्वा त्रसेद् यमः।

जोर-जोरसे गर्जना करनेवाले सिंह, व्याघ्र, हाथी और रीछोंके समुदायोंने उस स्थानको अत्यन्त भयानक बना दिया था। भीषण आकारवाले अत्यन्त भयंकर मांसभक्षी प्राणियोंने उस वनप्रान्तको चारों ओरसे घेरकर ऐसा बना दिया था, जिसे देखकर यमराज भी भयसे थर्रा उठे ॥ ४½ ॥

तदस्य दृष्ट्वा हृदयमुद्वेगमगमत् परम् ॥ ५ ॥
अभ्युच्छ्रयश्च रोम्णां वै विक्रियाश्च परंतप।

शत्रुदमन नरेश ! वह स्थान देखकर ब्राह्मणका हृदय अत्यन्त उद्विग्न हो उठा। उसे रोमाञ्च हो आया और मनमें अन्य प्रकारके भी विकार उत्पन्न होने लगे ॥ ५½ ॥

स तद् वनं व्यनुसरन् सम्प्रधावन्नितस्ततः ॥ ६ ॥
वीक्षमाणो दिशः सर्वाः शरणं क्व भवेदिति।

वह उस वनका अनुसरण करता इधर-उधर दौड़ता तथा सम्पूर्ण दिशाओंमें ढूँढ़ता फिरता था कि कहीं मुझे शरण मिले ॥ ६½ ॥

स तेषां छिद्रमन्विच्छन् प्रद्रुतो भयपीडितः ॥ ७ ॥
न च निर्याति वै दूरं न वा तैर्विप्रमोच्यते।

वह उन हिंसक जन्तुओंका छिद्र देखता हुआ भयसे पीड़ित हो भागने लगा; परंतु न तो वहाँसे दूर निकल पाता था और न वे ही उसका पीछा छोड़ते थे ॥ ७½ ॥

अथापश्यद् वनं घोरं समन्ताद् वागुरावृतम् ॥ ८ ॥
बाहुभ्यां सम्परिक्षिप्तं स्त्रिया परमघोरया।

इतनेहीमें उसने देखा कि वह भयानक वन चारों ओरसे जालसे घिरा हुआ है और एक बड़ी भयानक स्त्रीने अपनी दोनों भुजाओंसे उसको आवेष्टित कर रक्खा है ॥ ८½ ॥

पञ्चशीर्षधरैर्नागैः शैलैरिव समुन्नतैः ॥ ९ ॥
नभःस्पृशैर्महावृक्षैः परिक्षिप्तं महावनम्।

पर्वतोंके समान ऊँचे और पाँच सिरवाले नागों तथा बड़े-बड़े गगनचुम्बी वृक्षोंसे वह विशाल वन व्याप्त हो रहा है ॥ ९½ ॥

वनमध्ये च तत्राभूदुदपानः समावृतः ॥ १० ॥
वल्लीभिस्तृणछन्नाभिर्दृढाभिरभिसंवृतः ।

उस वनके भीतर एक कुआँ था, जो घासोंसे ढकी हुई सुदृढ़ लताओंके द्वारा सब ओरसे आच्छादित हो गया था १०½

पपात स द्विजस्तत्र निगूढे सलिलाशये ॥ ११ ॥
विलग्नश्चाभवत् तस्मिन् लतासंतानसंकुले।

वह ब्राह्मण उस छिपे हुए कुएँमें गिर पड़ा; परंतु लता-वेलोंसे व्याप्त होनेके कारण वह उसमें फँसकर नीचे नहीं गिरा, ऊपर ही लटका रह गया ॥ ११½ ॥

पनसस्य यथा जातं वृन्तबद्धं महाफलम् ॥ १२ ॥
स तथा लम्बते तत्र ह्यूर्ध्वपादो ह्यधःशिराः।

जैसे कटहलका विशाल फल वृन्तमें बँधा हुआ लटकता रहता है, उसी प्रकार वह ब्राह्मण ऊपरको पैर और नीचेको सिर किये उस कुएँमें लटक गया ॥ १२½ ॥

अथ तत्रापि चान्योऽस्य भूयो जात उपद्रवः ॥ १३ ॥
कूपमध्ये महानागमपश्यत महाबलम्।
कूपवीनाहवेलायामपश्यत महागजम् ॥ १४ ॥
षड्वक्त्रं कृष्णशुक्लं च द्विषट्कपदचारिणम्।

वहाँ भी उसके सामने पुनः दूसरा उपद्रव खड़ा हो गया। उसने कूपके भीतर एक महाबली महानाग बैठा हुआ देखा तथा कुएँके ऊपरी तटपर उसके मुखबन्धके पास एक विशाल हाथीको खड़ा देखा, जिसके छः मुँह थे। वह सफेद और काले रंगका था तथा बारह पैरोंसे चला करता था १३-१४½

क्रमेण परिसर्पन्तं वल्लीवृक्षसमावृतम् ॥ १५ ॥
तस्य चापि प्रशाखासु वृक्षशाखावलम्बिनः ।
नानारूपा मधुकरा घोररूपा भयावहाः ॥ १६ ॥
आसते मधु संवृत्य पूर्वमेव निकेतजाः ।

वह लताओं तथा वृक्षोंसे घिरे हुए उस कूपमें क्रमशः बढ़ा आ रहा था। वह ब्राह्मण, जिस वृक्षकी शाखापर लटका था, उसकी छोटी-छोटी टहनियोंपर पहलेसे ही मधुके छत्तोंसे पैदा हुई अनेक रूपवाली, घोर एवं भयंकर मधुमक्खियाँ मधुको घेरकर बैठी हुई थीं ॥ १५-१६½ ॥

भूयो भूयः समीहन्ते मधूनि भरतर्षभ ॥ १७ ॥
स्वादनीयानि भूतानां यैर्बालो विप्रकृष्यते ।

भरतश्रेष्ठ ! समस्त प्राणियोंको स्वादिष्ठ प्रतीत होनेवाले उस मधुको, जिसपर बालक आकृष्ट हो जाते हैं, वे मक्खियाँ बारंबार पीना चाहती थीं ॥ १७½ ॥

तेषां मधूनां बहुधा धारा प्रस्रवते तदा ॥ १८ ॥
आलम्बमानः स पुमान् धारां पिबति सर्वदा ।

उस समय उस मधुकी अनेक धाराएँ वहाँ झर रही थीं और वह लटका हुआ पुरुष निरन्तर उस मधुधाराको पी रहा था ॥ १८½ ॥

न चास्य तृष्णा विरता पिबमानस्य संकटे ॥ १९ ॥
अभीप्सति तदा नित्यमतृप्तः स पुनः पुनः ।

यद्यपि वह संकटमें था तो भी उस मधुको पीते-पीते उसकी तृष्णा शान्त नहीं होती थी। वह सदा अतृप्त रहकर ही बारंबार उसे पीनेकी इच्छा रखता था ॥ १९½ ॥

न चास्य जीविते राजन् निर्वेदः समजायत ॥ २० ॥
तत्रैव च मनुष्यस्य जीविताशा प्रतिष्ठिता ।

राजन् ! उसे अपने उस संकटपूर्ण जीवनसे वैराग्य नहीं हुआ है। उस मनुष्यके मनमें वहीं उसी दशासे जीवित रहकर मधु पीते रहनेकी आशा जड़ जमाये हुए है ॥ २०½ ॥

कृष्णाः श्वेताश्च तं वृक्षं कुट्टयन्ति च मूषिकाः ॥ २१ ॥
व्यालैश्च वनदुर्गान्ते स्त्रिया च परमोग्रया ।
कूपाधस्ताच्च नागेन वीनाहे कुञ्जरेण च ॥ २२ ॥
वृक्षप्रपाताच्च भयं मूषिकेभ्यश्च पञ्चमम् ।
मधुलोभान्मधुकरैः षष्ठमाहुर्महद् भयम् ॥ २३ ॥

जिस वृक्षके सहारे वह लटका हुआ है, उसे काले और सफेद चूहे निरन्तर काट रहे हैं। पहले तो उसे वनके दुर्गम प्रदेशके भीतर ही अनेक सर्पोंसे भय है, दूसरा भय सीमापर खड़ी हुई उस भयंकर स्त्रीसे है, तीसरा कुँएके नीचे बैठे हुए नागसे है, चौथा कुँएके मुखबन्धके पास खड़े हुए हाथीसे है और पाँचवाँ भय चूहोंके काट देनेपर उस वृक्षसे गिर जानेका है। इनके सिवा, मधुके लोभसे मधुमक्खियोंकी ओरसे जो उसको महान् भय प्राप्त होनेवाला है, वह छठा भय बताया गया है ॥ २१—२३ ॥

एवं स वसते तत्र क्षिप्तः संसारसागरे ।
न चैव जीविताशायां निर्वेदमुपगच्छति ॥ २४ ॥

इस प्रकार संसार-सागरमें गिरा हुआ वह मनुष्य इतने भयोंसे घिरकर वहाँ निवास करता है तो भी उसे जीवनकी आशा बनी हुई है और उसके मनमें वैराग्य नहीं उत्पन्न होता है ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि धृतराष्ट्रविशोककरणे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिकपर्वमें धृतराष्ट्रके शोकका निवारणविषयक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

संसाररूपी वनके रूपकका स्पष्टीकरण

धृतराष्ट्र उवाच

अहो खलु महद् दुःखं कृच्छ्रवासश्च तस्य ह ।
कथं तस्य रतिस्तत्र तुष्टिर्वा वदतां वर ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले—वक्ताओंमें श्रेष्ठ विदुर ! यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है ! उस ब्राह्मणको तो महान् दुःख प्राप्त हुआ था। वह बड़े कष्टसे वहाँ रह रहा था तो भी वहाँ कैसे उसका मन लगता था और कैसे उसे संतोष होता था ? ॥ १ ॥

स देशः क्व नु यत्रासौ वसते धर्मसंकटे ।
कथं वा स विमुच्येत नरस्तस्मान्महाभयात् ॥ २ ॥

कहाँ है वह देश, जहाँ बेचारा ब्राह्मण ऐसे धर्मसङ्कटमें रहता है ? उस महान् भयसे उसका छुटकारा किस प्रकार हो सकता है ? ॥ २ ॥

एतन्मे सर्वमाचक्ष्व साधु चेष्टामहे तदा ।
कृपा मे महती जाता तस्याभ्युद्धरणेन हि ॥ ३ ॥

यह सब मुझे बताओ; फिर हम सब लोग उसे वहाँसे निकालनेकी पूरी चेष्टा करेंगे। उसके उद्धारके लिये मुझे बड़ी दया आ रही है ॥ ३ ॥

विदुर उवाच

उपमानमिदं राजन् मोक्षविद्भिरुदाहृतम् ।
सुकृतं विन्दते येन परलोकेषु मानवः ॥ ४ ॥

विदुरजीने कहा—राजन् ! मोक्षतत्त्वके विद्वानोंद्वारा बताया गया यह एक दृष्टान्त है, जिसे समझकर वैराग्य धारण करनेसे मनुष्य परलोकमें पुण्यका फल पाता है ॥ ४ ॥

उच्यते यत् तु कान्तारं महासंसार एव सः ।
वनं दुर्गं हि यच्चैतत् संसारगहनं हि तत् ॥ ५ ॥

जिसे दुर्गम स्थान बताया गया है, वह महासंसार ही है और जो यह दुर्गम वन कहा गया है, यह संसारका ही गहन स्वरूप है ॥ ५ ॥

ये च ते कथिता व्याला व्याधयस्ते प्रकीर्तिताः ।
या सा नारी बृहत्काया अध्यतिष्ठत तत्र वै ॥ ६ ॥

तामाहुस्तु जरां प्राज्ञा रूपवर्णविनाशिनीम्।

जो सर्प कहे गये हैं, वे नाना प्रकारके रोग हैं। उस वनकी सीमापर जो विशालकाय नारी खड़ी थी, उसे विद्वान् पुरुष रूप और कान्तिका विनाश करनेवाली वृद्धावस्था बताते हैं॥ ६½॥

यस्तत्र कूपो नृपते स तु देहः शरीरिणाम्॥ ७॥
यस्तत्र वसतेऽधस्तान्महाहिः काल एव सः।
अन्तकः सर्वभूतानां देहिनां सर्वहार्यसौ॥ ८॥

नरेश्वर! उस वनमें जो कुआँ कहा गया है, वह देहधारियोंका शरीर है। उसमें नीचे जो विशाल नाग रहता है, वह काल ही है। वही सम्पूर्ण प्राणियोंका अन्त करनेवाला और देहधारियोंका सर्वस्व हर लेनेवाला है॥ ७-८॥

कूपमध्ये च या जाता वल्ली यत्र स मानवः।
प्रताने लम्बते लग्नो जीविताशा शरीरिणाम्॥ ९॥

कुँएके मध्यभागमें जो लता उत्पन्न हुई बतायी गयी है, जिसको पकड़कर वह मनुष्य लटक रहा है, वह देहधारियोंके जीवनकी आशा ही है॥ ९॥

स यस्तु कूपवीनाहे तं वृक्षं परिसर्पति।
षड्वक्त्रः कुञ्जरो राजन् स तु संवत्सरः स्मृतः॥ १०॥

राजन्! जो कुएँके मुखबन्धके समीप छः मुखोंवाला हाथी उस वृक्षकी ओर बढ़ रहा है, उसे संवत्सर माना गया है॥ १०॥

मुखानि ऋतवो मासाः पादा द्वादश कीर्तिताः।
ये तु वृक्षं निकृन्तन्ति मूषिकाः सततोत्थिताः॥ ११॥
रात्र्यहानि तु तान्याहुर्भूतानां परिचिन्तकाः।

छः ऋतुएँ ही उसके छः मुख हैं और बारह महीने ही बारह पैर बताये गये हैं। जो चूहे सदा उद्यत रहकर उस वृक्षको काटते हैं, उन चूहोंको विचारशील विद्वान् प्राणियोंके दिन और रात बताते हैं॥ ११½॥

ये ते मधुकरास्तत्र कामास्ते परिकीर्तिताः॥ १२॥
यास्तु ता बहुशो धाराः स्रवन्ति मधुनिस्रवम्।
तांस्तु कामरसान् विद्याद् यत्र मज्जन्ति मानवाः॥ १३॥

और जो-जो वहाँ मधुमक्खियाँ कही गयी हैं, वे सब कामनाएँ हैं। जो बहुत-सी धाराएँ मधुके झरने झरती रहती हैं, उन्हें कामरस जानना चाहिये, जहाँ सभी मानव डूब जाते हैं॥ १२-१३॥

एवं संसारचक्रस्य परिवृत्तिं विदुर्बुधाः।
येन संसारचक्रस्य पाशांश्छिन्दन्ति वै बुधाः॥ १४॥

विद्वान् पुरुष इस प्रकार संसारचक्रकी गतिको जानते हैं; इसीलिये वे वैराग्यरूपी शस्त्रसे इसके सारे बन्धनोंको काट देते हैं॥ १४॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि धृतराष्ट्रविशोककरणे षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिकपर्वमें धृतराष्ट्रके शोकका निवारणविषयक छठा अध्याय पूरा हुआ॥ ६॥

सप्तमोऽध्यायः

संसारचक्रका वर्णन और रथके रूपकसे संयम और ज्ञान आदिको मुक्तिका उपाय बताना

धृतराष्ट्र उवाच

अहोऽभिहितमाख्यानं भवता तत्त्वदर्शिना।
भूय एव तु मे हर्षः श्रुत्वा वागमृतं तव॥ १॥

धृतराष्ट्रने कहा—विदुर! तुमने अद्भुत आख्यान सुनाया। वास्तवमें तुम तत्त्वदर्शी हो। पुनः तुम्हारी अमृतमयी वाणी सुनकर मुझे बड़ा हर्ष होगा॥ १॥

विदुर उवाच

शृणु भूयः प्रवक्ष्यामि मार्गस्यैतस्य विस्तरम्।
यच्छ्रुत्वा विप्रमुच्यन्ते संसारेभ्यो विचक्षणाः॥ २॥

विदुरजीने कहा—राजन्! सुनिये। मैं पुनः विस्तारपूर्वक इस मार्गका वर्णन करता हूँ, जिसे सुनकर बुद्धिमान् पुरुष संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं॥ २॥

यथा तु पुरुषो राजन् दीर्घमध्वानमास्थितः।
क्वचित् क्वचिच्छ्रमाच्छ्रान्तः कुरुते वासमेव वा॥ ३॥
एवं संसारपर्याये गर्भवासेषु भारत।
कुर्वन्ति दुर्बुधा वासं मुच्यन्ते तत्र पण्डिताः॥ ४॥

नरेश्वर! जिस प्रकार किसी लंबे रास्तेपर चलनेवाला पुरुष परिश्रमसे थककर बीचमें कहीं-कहीं विश्रामके लिये ठहर जाता है, उसी प्रकार इस संसारयात्रामें चलते हुए अज्ञानी पुरुष विश्रामके लिये गर्भवास किया करते हैं। भारत! किंतु विद्वान् पुरुष इस संसारसे मुक्त हो जाते हैं॥ ३-४॥

तस्मादध्वानमेवैतमाहुः शास्त्रविदो जनाः।
यत्तु संसारगहनं वनमाहुर्मनीषिणः॥ ५॥

इसीलिये शास्त्रज्ञ पुरुषोंने गर्भवासको मार्गका ही रूपक दिया है और गहन संसारको मनीषी पुरुष वन कहा करते हैं॥ ५॥

सोऽयं लोकसमावर्तो मर्त्यानां भरतर्षभ।
चराणां स्थावराणां च न गृध्येत् तत्र पण्डितः॥ ६॥

भरतश्रेष्ठ! यही मनुष्यों तथा स्थावर-जङ्गम प्राणियोंका संसारचक्र है। विवेकी पुरुषको इसमें आसक्त नहीं होना चाहिये॥ ६॥

शारीरा मानसाश्चैव मर्त्यानां ये तु व्याधयः।
प्रत्यक्षाश्च परोक्षाश्च ते व्यालाः कथिता बुधैः॥ ७॥

मनुष्योंकी जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष शारीरिक और मानसिक व्याधियाँ हैं, उन्हींको विद्वानोंने सर्प एवं हिंसक जीव बताया है॥ ७॥

क्लिश्यमानाश्च तैर्नित्यं वार्यमाणाश्च भारत।

स्वकर्मभिर्महाव्यालैर्नोद्विजन्त्यल्पबुद्धयः ॥ ८ ॥

भरतनन्दन ! अपने कर्मरूपी इन महान् हिंसक जन्तुओंसे सदा सताये तथा रोके जानेपर भी मन्दबुद्धि मानव संसारसे उद्विग्न या विरक्त नहीं होते हैं ॥ ८ ॥

अथापि तैर्विमुच्येत व्याधिभिः पुरुषो नृप।
आवृणोत्येव तं पश्चाज्जरा रूपविनाशिनी ॥ ९ ॥
शब्दरूपरसस्पर्शैर्गन्धैश्च विविधैरपि।
मज्जमांसमहापङ्के निरालम्बे समन्ततः ॥ १० ॥

नरेश्वर ! यदि शब्द, स्पर्श, रूप, रस और नाना प्रकारकी गन्धोंसे युक्त, मज्जा और मांसरूपी बड़ी भारी कीचड़से भरे हुए एवं सब ओरसे अवलम्बशून्य इस शरीररूपी कूपमें रहनेवाला मनुष्य इन व्याधियोंसे किसी तरह मुक्त हो जाय तो भी अन्तमें रूप-सौन्दर्यका विनाश करनेवाली वृद्धावस्था तो उसे घेर ही लेती है ॥ ९-१० ॥

संवत्सराश्च मासाश्च पक्षाहोरात्रसंधयः।
क्रमेणास्योपयुञ्जन्ति रूपमायुस्तथैव च ॥ ११ ॥
एते कालस्य निधयो नैताञ्जानन्ति दुर्बुधाः।
धात्राभिलिखितान्याहुः सर्वभूतानि कर्मणा ॥ १२ ॥

वर्ष, मास, पक्ष, दिन-रात और संध्याएँ क्रमशः इसके रूप और आयुका शोषण करती ही रहती हैं। ये सब कालके प्रतिनिधि हैं। मूढ़ मनुष्य इन्हें इस रूपमें नहीं जानते हैं। श्रेष्ठ पुरुषोंका कथन है कि विधाताने सम्पूर्ण भूतोंके ललाटमें कर्मके अनुसार रेखा खींच दी है (प्रारब्धके अनुसार उनकी आयु और सुख-दुःखके भोग नियत कर दिये हैं) ११-१२

रथः शरीरं भूतानां सत्त्वमाहुस्तु सारथिम्।
इन्द्रियाणि हयानाहुः कर्मबुद्धिस्तु रश्मयः ॥ १३ ॥
तेषां हयानां यो वेगं धावतामनुधावति।
स तु संसारचक्रेऽस्मिंश्चक्रवत् परिवर्तते ॥ १४ ॥

विद्वान् पुरुष कहते हैं कि प्राणियोंका शरीर रथके समान है, सत्त्व (सत्त्वगुणप्रधान बुद्धि) सारथि है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं और मन लगाम है। जो पुरुष स्वेच्छापूर्वक दौड़ते हुए उन घोड़ोंके वेगका अनुसरण करता है, वह तो इस संसारचक्रमें पहियेके समान घूमता रहता है ॥ १३-१४ ॥

यस्तान् संयमते बुद्ध्या संयतो न निवर्तते।
ये तु संसारचक्रेऽस्मिंश्चक्रवत् परिवर्तिते ॥ १५ ॥
भ्रममाणा न मुह्यन्ति संसारे न भ्रमन्ति ते।

किंतु जो संयमशील होकर बुद्धिके द्वारा उन इन्द्रियरूपी अश्वोंको काबूमें रखते हैं, वे फिर इस संसारमें नहीं लौटते। जो लोग चक्रकी भाँति घूमनेवाले इस संसारचक्रमें घूमते हुए भी मोहके वशीभूत नहीं होते हैं, उन्हें फिर संसारमें नहीं भटकना पड़ता ॥ १५½ ॥

संसारे भ्रमतां राजन् दुःखमेतद्धि जायते ॥ १६ ॥
तस्मादस्य निवृत्त्यर्थं यत्नमेवाचरेद् बुधः।
उपेक्षा नात्र कर्तव्या शतशाखः प्रवर्धते ॥ १७ ॥

राजन् ! संसारमें भटकनेवालोंको यह दुःख प्राप्त होता ही है; अतः विज्ञ पुरुषको इस संसारबन्धनकी निवृत्तिके लिये अवश्य यत्न करना चाहिये। इस विषयमें कदापि उपेक्षा नहीं करनी चाहिये; नहीं तो यह संसार सैकड़ों शाखाओंमें फैलकर बहुत बड़ा हो जाता है ॥ १६-१७ ॥

यतेन्द्रियो नरो राजन् क्रोधलोभनिराकृतः।
संतुष्टः सत्यवादी यः स शान्तिमधिगच्छति ॥ १८ ॥

राजन् ! जो मनुष्य जितेन्द्रिय, क्रोध और लोभसे शून्य, संतोषी तथा सत्यवादी होता है, उसे शान्ति प्राप्त होती है ॥

याम्यमाहू रथं ह्येनं मुह्यन्ते येन दुर्बुधाः।
स चैतत् प्राप्नुयाद् राजन् यत् त्वं प्राप्तो नराधिप ॥ १९ ॥

नरेश्वर ! इस संसारको याम्य (यमलोककी प्राप्ति करानेवाला) रथ कहते हैं, जिससे मूर्ख मनुष्य मोहित हो जाते हैं। राजन् ! जो दुःख आपको प्राप्त हुआ है, वही प्रत्येक अज्ञानी पुरुषको उपलब्ध होता है ॥ १९ ॥

अनुतर्षुलमेवैतद् दुःखं भवति मारिष।
राज्यनाशं सुहृन्नाशं सुतनाशं च भारत ॥ २० ॥

माननीय भारत ! जिसकी तृष्णा बढ़ी हुई है, उसीको राज्य, सुहृद् और पुत्रोंका नाशरूपी यह महान् दुःख प्राप्त होता है ॥ २० ॥

साधुः परमदुःखानां दुःखभैषज्यमाचरेत्।
ज्ञानौषधमवाप्येह दूरपारं महौषधम्।
छिन्द्याद् दुःखमहाव्याधिं नरः संयतमानसः ॥ २१ ॥

साधु पुरुषको चाहिये कि वह अपने मनको वशमें करके ज्ञानरूपी महान् ओषधि प्राप्त करे, जो परम दुर्लभ है। उससे अपने बड़े-से-बड़े दुःखोंकी चिकित्सा करे। उस ज्ञानरूपी ओषधिसे दुःखरूपी महान् व्याधिका नाश कर डाले २१

न विक्रमो न चाप्यर्थो न मित्रं न सुहृज्जनः।
तथोन्मोचयते दुःखाद् यथाऽऽत्मा स्थिरसंयमः ॥

पराक्रम, धन, मित्र और सुहृद् भी उस तरह दुःखसे छुटकारा नहीं दिला सकते, जैसा कि दृढ़तापूर्वक संयममें रहनेवाला अपना मन दिला सकता है ॥ २२ ॥

तस्मान्मैत्रं समास्थाय शीलमापद्य भारत।
दमस्त्यागोऽप्रमादश्च ते त्रयो ब्रह्मणो हयाः ॥ २३ ॥
शीलरश्मिसमायुक्तः स्थितो यो मानसे रथे।
त्यक्त्वा मृत्युभयं राजन् ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥ २४ ॥

भरतनन्दन ! इसलिये सर्वत्र मैत्रीभाव रखते हुए शील प्राप्त करना चाहिये। दम, त्याग और अप्रमाद—ये तीन परमात्माके धाममें ले जानेवाले घोड़े हैं। जो मनुष्य शीलरूपी लगामको पकड़कर इन तीनों घोड़ोंसे जुते हुए मनरूपी रथपर सवार होता है, वह मृत्युका भय छोड़कर ब्रह्मलोकमें चला जाता है ॥ २३-२४ ॥

अभयं सर्वभूतेभ्यो यो ददाति महीपते।
स गच्छति परं स्थानं विष्णोः पदमनामयम् ॥ २५ ॥

भूपाल ! जो सम्पूर्ण प्राणियोंको अभयदान देता है, वह

भगवान् विष्णुके अविनाशी परमधाममें चला जाता है ॥२५॥

न तत् क्रतुसहस्रेण नोपवासैश्च नित्यशः ।
अभयस्य च दानेन यत् फलं प्राप्नुयान्नरः ॥ २६ ॥

अभयदानसे मनुष्य जिस फलको पाता है, वह उसे सहस्रों यज्ञ और नित्यप्रति उपवास करनेसे भी नहीं मिल सकता है ॥ २६ ॥

न ह्यात्मनः प्रियतरं किंचिद् भूतेषु निश्चितम् ।
अनिष्टं सर्वभूतानां मरणं नाम भारत ॥ २७ ॥
तस्मात् सर्वेषु भूतेषु दया कार्या विपश्चिता ।

भारत ! यह बात निश्चितरूपसे कही जा सकती है कि प्राणियोंको अपने आत्मासे अधिक प्रिय कोई भी वस्तु नहीं है; इसीलिये मरना किसी भी प्राणीको अच्छा नहीं लगता; अतः विद्वान् पुरुषको सभी प्राणियोंपर दया करनी चाहिये ॥ २७½ ॥

नानामोहसमायुक्ता बुद्धिजालेन संवृताः ॥ २८ ॥
असूक्ष्मदृष्टयो मन्दा भ्राम्यन्ते तत्र तत्र ह ।

जो मूढ़ नाना प्रकारके मोहमें डूबे हुए हैं, जिन्हें बुद्धिके जालने बाँध रक्खा है और जिनकी दृष्टि स्थूल है, वे भिन्न-भिन्न योनियोंमें भटकते रहते हैं ॥ २८½ ॥

सुसूक्ष्मदृष्टयो राजन् व्रजन्ति ब्रह्म शाश्वतम् ॥ २९ ॥
(एवं ज्ञात्वा महाप्राज्ञ स तेषामौर्ध्वदैहिकम् ।
कर्तुमर्हति तेनैव फलं प्राप्स्यति वै भवान् ॥)

राजन् ! महाप्राज्ञ ! सूक्ष्मदर्शी ज्ञानी पुरुष सनातन ब्रह्मको प्राप्त होते हैं, ऐसा जानकर आप अपने मरे हुए सगे-सम्बन्धियोंका और्ध्वदैहिक संस्कार कीजिये । इसीसे आपको उत्तम फलकी प्राप्ति होगी ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि धृतराष्ट्रविशोककरणे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिकपर्वमें धृतराष्ट्रके शोकका निवारणविषयक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ३० श्लोक हैं)

अष्टमोऽध्यायः

व्यासजीका संहारको अवश्यम्भावी बताकर धृतराष्ट्रको समझाना

वैशम्पायन उवाच

विदुरस्य तु तद् वाक्यं निशम्य कुरुसत्तमः ।
पुत्रशोकाभिसंतप्तः पपात भुवि मूर्छितः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! विदुरजीके ये वचन सुनकर कुरुश्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्र पुत्रशोकसे संतप्त एवं मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १ ॥

तं तथा पतितं भूमौ निःसंज्ञं प्रेक्ष्य बान्धवाः ।
कृष्णद्वैपायनश्चैव क्षत्ता च विदुरस्तथा ॥ २ ॥
संजयः सुहृदश्चान्ये द्वाःस्था ये चास्य सम्मताः ।
जलेन सुखशीतेन तालवृन्तैश्च भारत ॥ ३ ॥
पस्पृशुश्च करैर्गात्रं वीजमानाश्च यत्नतः ।
अन्वासन् सुचिरं कालं धृतराष्ट्रं तथागतम् ॥ ४ ॥

उन्हें इस प्रकार अचेत होकर भूमिपर गिरा देख सभी भाई-बन्धु, व्यासजी, विदुर, संजय, सुहृद्गण तथा जो विश्वसनीय द्वारपाल थे, वे सभी शीतल जलके छींटे देकर ताड़के पङ्खोंसे हवा करने और उनके शरीरपर हाथ फेरने लगे । उस बेहोशीकी अवस्थामें वे बड़े यत्नके साथ धृतराष्ट्रको होशमें लानेके लिये देरतक आवश्यक उपचार करते रहे ॥

अथ दीर्घस्य कालस्य लब्धसंज्ञो महीपतिः ।
विललाप चिरं कालं पुत्राधिभिरभिप्लुतः ॥ ५ ॥

तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् राजा धृतराष्ट्रको चेत हुआ और वे पुत्रोंकी चिन्तामें डूबकर बड़ी देरतक विलाप करते रहे ॥ ५ ॥

धिगस्तु खलु मानुष्यं मानुषेषु परिग्रहे ।
यतो मूलानि दुःखानि सम्भवन्ति मुहुर्मुहुः ॥ ६ ॥

वे बोले—'इस मनुष्यजन्मको धिक्कार है ! इसमें भी विवाह आदि करके परिवार बढ़ाना तो और भी बुरा है; क्योंकि उसीके कारण बारंबार नाना प्रकारके दुःख प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

पुत्रनाशेऽर्थनाशे च ज्ञातिसम्बन्धिनामथ ।
प्राप्यते सुमहद् दुःखं विषाग्निप्रतिमं विभो ॥ ७ ॥

'प्रभो ! पुत्र, धन, कुटुम्ब और सम्बन्धियोंका नाश होनेपर तो विष पीने और आगमें जलनेके समान बड़ा भारी दुःख भोगना पड़ता है ॥ ७ ॥

येन दह्यन्ति गात्राणि येन प्रज्ञा विनश्यति ।
येनाभिभूतः पुरुषो मरणं बहु मन्यते ॥ ८ ॥

'उस दुःखसे सारा शरीर जलने लगता है, बुद्धि नष्ट हो जाती है और उस असह्य शोकसे पीड़ित हुआ पुरुष जीनेकी अपेक्षा मर जाना अधिक अच्छा समझता है ॥ ८ ॥

तदिदं व्यसनं प्राप्तं मया भाग्यविपर्ययात् ।
तस्यान्तं नाधिगच्छामि ऋते प्राणविमोक्षणात् ॥ ९ ॥

'आज भाग्यके फेरसे वही यह स्वजनोंके विनाशका महान् दुःख मुझे प्राप्त हुआ है । अब प्राण त्याग देनेके सिवा और किसी उपायद्वारा मैं इस दुःखसे पार नहीं पा सकता ॥ ९ ॥

तथैवाहं करिष्यामि अद्यैव द्विजसत्तम ।
इत्युक्त्वा तु महात्मानं पितरं ब्रह्मवित्तमम् ॥ १० ॥
धृतराष्ट्रोऽभवन्मूढः स शोकं परमं गतः ।
अभूच्च तूर्णीं राजासौ ध्यायमानो महीपते ॥ ११ ॥

'द्विजश्रेष्ठ ! इसलिये आज ही मैं अपने प्राणोंका परित्याग कर दूँगा ।' अपने ब्रह्मवेत्ता पिता महात्मा व्यासजीसे ऐसा कहकर राजा धृतराष्ट्र अत्यन्त शोकमें डूब गये और सुध-बुध खो बैठे । राजन् ! पुत्रोंका ही चिन्तन करते हुए वे बूढ़े नरेश वहाँ मौन होकर बैठे रह गये ॥ १०-११ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा कृष्णद्वैपायनः प्रभुः ।
पुत्रशोकाभिसंतप्तं पुत्रं वचनमब्रवीत् ॥ १२ ॥

उनकी बात सुनकर शक्तिशाली महात्मा श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास पुत्रशोकसे संतप्त हुए अपने बेटेसे इस प्रकार बोले—॥

व्यास उवाच

धृतराष्ट्र महाबाहो यत् त्वां वक्ष्यामि तच्छृणु ।
श्रुतवानसि मेधावी धर्मार्थकुशलः प्रभो ॥ १३ ॥

व्यासजीने कहा—महाबाहु धृतराष्ट्र ! मैं तुमसे जो कुछ कहता हूँ, उसे ध्यान देकर सुनो । प्रभो ! तुम वेद-शास्त्रोंके ज्ञानसे सम्पन्न, मेधावी तथा धर्म और अर्थके साधन-में कुशल हो ॥ १३ ॥

न तेऽस्त्यविदितं किंचिद् वेदितव्यं परंतप ।
अनित्यतां हि मर्त्यानां विजानासि न संशयः ॥ १४ ॥

शत्रुसंतापी नरेश ! जानने योग्य जो कोई भी तत्त्व है, वह तुमसे अज्ञात नहीं है । तुम मानव-जीवनकी अनित्यताको अच्छी तरह जानते हो, इसमें संशय नहीं है ॥ १४ ॥

अध्रुवे जीवलोके च स्थाने वा शाश्वते सति ।
जीविते मरणान्ते च कस्माच्छोचसि भारत ॥ १५ ॥

भरतनन्दन ! जब जीव-जगत् अनित्य है, सनातन परम पद नित्य है और इस जीवनका अन्त मृत्युमें ही है, तब तुम इसके लिये शोक क्यों करते हो ? ॥ १५ ॥

प्रत्यक्षं तव राजेन्द्र वैरस्यास्य समुद्भवः ।
पुत्रं ते कारणं कृत्वा कालयोगेन कारितः ॥ १६ ॥

राजेन्द्र ! तुम्हारे पुत्रको निमित्त बनाकर कालकी प्रेरणा-से इस वैरकी उत्पत्ति तो तुम्हारे सामने ही हुई थी ॥ १६ ॥

अवश्यं भवितव्ये च कुरूणां वैशसे नृप ।
कस्माच्छोचसि ताञ्शूरान् गतान् परमिकां गतिम् ॥

नरेश्वर ! जब कौरवोंका यह विनाश अवश्यम्भावी था, तब परम गतिको प्राप्त हुए उन शूरवीरोंके लिये तुम क्यों शोक कर रहे हो ? ॥ १७ ॥

जानता च महाबाहो विदुरेण महात्मना ।
यतितं सर्वयत्नेन शमं प्रति जनेश्वर ॥ १८ ॥

महाबाहु नरेश्वर ! महात्मा विदुर इस भावी परिणामको जानते थे, इसीलिये इन्होंने सारी शक्ति लगाकर संधिके लिये प्रयत्न किया था ॥ १८ ॥

न च दैवकृतो मार्गः शक्यो भूतेन केनचित् ।
घटतापि चिरं कालं नियन्तुमिति मे मतिः ॥ १९ ॥

मेरा तो ऐसा विश्वास है कि दीर्घ कालतक प्रयत्न करके भी कोई प्राणी दैवके विधानको रोक नहीं सकता ॥ १९ ॥

देवतानां हि यत् कार्यं मया प्रत्यक्षतः श्रुतम् ।
तत् तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि यथा स्थैर्यं भवेत् तव ॥ २० ॥

देवताओंका जो कार्य मैंने प्रत्यक्ष अपने कानोंसे सुना है, वह तुम्हें बता रहा हूँ, जिससे तुम्हारा मन स्थिर हो सके॥

पुराहं त्वरितो यातः सभामैन्द्रीं जितक्लमः ।
अपश्यं तत्र च तदा समवेतान् दिवौकसः ॥ २१ ॥

पूर्वकालकी बात है, एक बार मैं यहाँसे शीघ्रतापूर्वक इन्द्रकी सभामें गया । वहाँ जानेपर भी मुझे कोई थकावट नहीं हुई; क्योंकि मैं इन सबपर विजय पा चुका हूँ । वहाँ उस समय मैंने देखा कि इन्द्रकी सभामें सम्पूर्ण देवता एकत्र हुए हैं ॥ २१ ॥

नारदप्रमुखाश्चापि सर्वे देवर्षयोऽनघ ।
तत्र चापि मया दृष्टा पृथिवी पृथिवीपते ॥ २२ ॥
कार्यार्थमुपसम्प्राप्ता देवतानां समीपतः ।

अनघ ! वहाँ नारद आदि समस्त देवर्षि भी उपस्थित थे । पृथ्वीनाथ ! मैंने वहीं इस पृथ्वीको भी देखा, जो किसी कार्यके लिये देवताओंके पास गयी थी ॥ २२½ ॥

उपगम्य तदा धात्री देवानाह समागतान् ॥ २३ ॥
यत् कार्यं मम युष्माभिर्ब्रह्मणः सदने तदा ।
प्रतिज्ञातं महाभागास्तच्छीघ्रं संविधीयताम् ॥ २४ ॥

उस समय विश्वधारिणी पृथ्वीने वहाँ एकत्र हुए देवताओं-के पास जाकर कहा—'महाभाग देवताओ ! आपलोगोंने उस दिन ब्रह्माजीकी सभामें मेरे जिस कार्यको सिद्ध करनेकी प्रतिज्ञा की थी, उसे शीघ्र पूर्ण कीजिये' ॥ २३-२४ ॥

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा विष्णुर्लोकनमस्कृतः ।
उवाच वाक्यं प्रहसन् पृथिवीं देवसंसदि ॥ २५ ॥
धृतराष्ट्रस्य पुत्राणां यस्तु ज्येष्ठः शतस्य वै ।
दुर्योधन इति ख्यातः स ते कार्यं करिष्यति ॥ २६ ॥
तं च प्राप्य महीपालं कृतकृत्या भविष्यसि ।

उसकी बात सुनकर विश्ववन्दित भगवान् विष्णुने देव-सभामें पृथ्वीकी ओर देखकर हँसते हुए कहा—'शुभे ! धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमें जो सबसे बड़ा और दुर्योधननामसे विख्यात है, वही तेरा कार्य सिद्ध करेगा । उसे राजाके रूपमें पाकर तू कृतार्थ हो जायगी ॥ २५-२६½ ॥

तस्यार्थे पृथिवीपालाः कुरुक्षेत्रं समागताः ॥ २७ ॥
अन्योन्यं घातयिष्यन्ति दृढैः शस्त्रैः प्रहारिणः ।

'उसके लिये सारे भूपाल कुरुक्षेत्रमें एकत्र होंगे और सुदृढ़ शस्त्रोंद्वारा परस्पर प्रहार करके एक दूसरेका वध कर डालेंगे ॥ २७½ ॥

ततस्ते भविता देवि भारस्य युधि नाशनम् ॥ २८ ॥
गच्छ शीघ्रं स्वकं स्थानं लोकान् धारय शोभने ।

'देवि ! इस प्रकार उस युद्धमें तेरे भारका नाश हो जायगा । शोभने ! अब तू शीघ्र अपने स्थानपर जा और समस्त लोकोंको पूर्ववत् धारण कर' ॥ २८½ ॥

य एष ते सुतो राजन् लोकसंहारकारणात् ॥ २९ ॥
कलेरंशः समुत्पन्नो गान्धार्या जठरे नृप ।
अमर्षी चपलश्चापि क्रोधनो दुष्प्रसाधनः ॥ ३० ॥

राजन् ! नरेश्वर ! यह जो तुम्हारा पुत्र दुर्योधन था, वह सारे जगत्का संहार करनेके लिये कलिका मूर्तिमान् अंश ही गान्धारीके पेटसे पैदा हुआ था । वह अमर्षशील, क्रोधी, चञ्चल और कूटनीतिसे काम लेनेवाला था ॥ २९-३० ॥

दैवयोगात् समुत्पन्ना भ्रातरश्चास्य तादृशाः।
शकुनिर्मातुलश्चैव कर्णश्च परमः सखा ॥ ३१ ॥

दैवयोगसे उसके भाई भी वैसे ही उत्पन्न हुए। मामा शकुनि और परम मित्र कर्ण भी उसी विचारके मिल गये ॥

समुत्पन्ना विनाशार्थं पृथिव्यां सहिता नृपाः।
यादृशो जायते राजा तादृशोऽस्य जनो भवेत् ॥ ३२ ॥

ये सब नरेश शत्रुओंका विनाश करनेके लिये ही एक साथ इस भूमण्डलपर उत्पन्न हुए थे। जैसा राजा होता है, वैसे ही उसके स्वजन और सेवक भी होते हैं ॥ ३२ ॥

अधर्मो धर्मतां याति स्वामी चेद् धार्मिको भवेत्।
स्वामिनो गुणदोषाभ्यां भृत्याः स्युर्नात्र संशयः॥ ३३ ॥

यदि स्वामी धार्मिक हो तो अधर्मी सेवक भी धार्मिक बन जाते हैं। सेवक स्वामीके ही गुण-दोषोंसे युक्त होते हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ ३३ ॥

दुष्टं राजानमासाद्य गतास्ते तनया नृप।
एतमर्थं महाबाहो नारदो वेद तत्त्ववित् ॥ ३४ ॥

महाबाहु नरेश्वर! दुष्ट राजाको पाकर तुम्हारे सभी पुत्र उसीके साथ नष्ट हो गये। इस बातको तत्त्ववेत्ता नारदजी जानते हैं ॥ ३४ ॥

आत्मापराधात् पुत्रास्ते विनष्टाः पृथिवीपते।
मा ताञ्शोचस्व राजेन्द्र न हि शोकेऽस्ति कारणम् ॥

पृथ्वीनाथ! आपके पुत्र अपने ही अपराधसे विनाशको प्राप्त हुए हैं। राजेन्द्र! उनके लिये शोक न करो; क्योंकि शोकके लिये कोई उपयुक्त कारण नहीं है ॥ ३५ ॥

न हि ते पाण्डवाः स्वल्पमपराध्यन्ति भारत।
पुत्रास्तव दुरात्मानो यैरियं घातिता मही ॥ ३६ ॥

भारत! पाण्डवोंने तुम्हारा थोड़ा-सा भी अपराध नहीं किया है। तुम्हारे पुत्र ही दुष्ट थे, जिन्होंने इस भूमण्डलका नाश करा दिया ॥ ३६ ॥

नारदेन च भद्रं ते पूर्वमेव न संशयः।
युधिष्ठिरस्य समितौ राजसूये निवेदितम् ॥ ३७ ॥
पाण्डवाः कौरवाः सर्वे समासाद्य परस्परम्।
न भविष्यन्ति कौन्तेय यत् ते कृत्यं तदाचर ॥ ३८ ॥

राजन्! तुम्हारा कल्याण हो। राजसूय यज्ञके समय देवर्षि नारदने राजा युधिष्ठिरकी सभामें निःसंदेह पहले ही यह बात बता दी थी कि कौरव और पाण्डव सभी आपसमें लड़कर नष्ट हो जायँगे; अतः कुन्तीनन्दन! तुम्हारे लिये जो आवश्यक कर्तव्य हो, उसे करो ॥ ३७-३८ ॥

नारदस्य वचः श्रुत्वा तदाशोचन्त पाण्डवाः।
एवं ते सर्वमाख्यातं देवगुह्यं सनातनम् ॥ ३९ ॥
कथं ते शोकनाशः स्यात् प्राणेषु च दया प्रभो।
स्नेहश्च पाण्डुपुत्रेषु ज्ञात्वा दैवकृतं विधिम् ॥ ४० ॥

प्रभो! नारदजीकी वह बात सुनकर उस समय पाण्डव बहुत चिन्तित हो गये थे। इस प्रकार मैंने तुमसे देवताओं-का यह सारा सनातन रहस्य बताया है, जिससे किसी तरह तुम्हारे शोकका नाश हो। तुम अपने प्राणोंपर दया कर सको और देवताओंका विधान समझकर पाण्डुके पुत्रोंपर भी तुम्हारा स्नेह बना रहे ॥ ३९-४० ॥

एष चार्थो महाबाहो पूर्वमेव मया श्रुतः।
कथितो धर्मराजस्य राजसूये क्रतूत्तमे ॥ ४१ ॥

महाबाहो! यह बात मैंने बहुत पहले ही सुन रक्खी थी और क्रतुश्रेष्ठ राजसूयमें धर्मराज युधिष्ठिरको बता भी दी थी॥

यतितं धर्मपुत्रेण मया गुह्ये निवेदिते।
अविग्रहे कौरवाणां दैवं तु बलवत्तरम् ॥ ४२ ॥

मेरेद्वारा उस गुप्त रहस्यके बता दिये जानेपर धर्मपुत्र युधिष्ठिरने बहुत प्रयत्न किया कि कौरवोंमें परस्पर कलह न हो; परंतु दैवका विधान बड़ा प्रबल होता है ॥ ४२ ॥

अनतिक्रमणीयो हि विधी राजन् कथंचन।
कृतान्तस्य तु भूतेन स्थावरेण चरेण च ॥ ४३ ॥

राजन्! दैव अथवा कालके विधानको चराचर प्राणियोंमें-से कोई भी किसी तरह लाँघ नहीं सकता ॥ ४३ ॥

भवान् धर्मपरो यत्र बुद्धिश्रेष्ठश्च भारत।
मुह्यते प्राणिनां ज्ञात्वा गतिं चागतिमेव च ॥ ४४ ॥

भरतनन्दन! तुम धर्मपरायण और बुद्धिमें श्रेष्ठ हो। तुम्हें प्राणियोंके आवागमनका रहस्य भी ज्ञात है, तो भी क्यों मोहके वशीभूत हो रहे हो? ॥ ४४ ॥

त्वां तु शोकेन संतप्तं मुह्यमानं मुहुर्मुहुः।
ज्ञात्वा युधिष्ठिरो राजा प्राणानपि परित्यजेत् ॥ ४५ ॥

तुम्हें बारंबार शोकसे संतप्त और मोहित होते जानकर राजा युधिष्ठिर अपने प्राणोंका भी परित्याग कर देंगे ॥४५॥

कृपालुर्नित्यशो वीरस्तिर्यग्योनिगतेष्वपि।
स कथं त्वयि राजेन्द्र कृपां नैव करिष्यति ॥ ४६ ॥

राजेन्द्र! वीर युधिष्ठिर पशु-पक्षी आदि योनिके प्राणियों-पर भी सदा दयाभाव बनाये रखते हैं; फिर तुमपर वे कैसे दया नहीं करेंगे? ॥ ४६ ॥

मम चैव नियोगेन विधेश्चाप्यनिवर्तनात्।
पाण्डवानां च कारुण्यात् प्राणान् धारय भारत ॥४७॥

अतः भारत! मेरी आज्ञा मानकर, विधाताका विधान टल नहीं सकता, ऐसा समझकर तथा पाण्डवोंपर करुणा करके तुम अपने प्राण धारण करो ॥ ४७ ॥

एवं ते वर्तमानस्य लोके कीर्तिर्भविष्यति।
धर्मार्थः सुमहांस्तात तप्तं स्याच्च तपश्चिरात् ॥ ४८ ॥

तात! ऐसा बर्ताव करनेसे संसारमें तुम्हारी कीर्ति बढ़ेगी, महान् धर्म और अर्थकी सिद्धि होगी तथा दीर्घ कालतक तपस्या करनेका तुम्हें फल प्राप्त होगा ॥ ४८ ॥

पुत्रशोकं समुत्पन्नं हुताशं ज्वलितं यथा।
प्रज्ञाम्भसा महाभाग निर्वापय सदा सदा ॥ ४९ ॥

महाभाग! प्रज्वलित आगके समान जो तुम्हें यह पुत्र-शोक प्राप्त हुआ है, इसे विचाररूपी जलके द्वारा सदाके लिये बुझा दो ॥ ४९ ॥

वैशम्पायन उवाच

तच्छ्रुत्वा तस्य वचनं व्यासस्यामिततेजसः।
मुहूर्तं समनुध्यायन् धृतराष्ट्रोऽभ्यभाषत ॥ ५० ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! अमिततेजस्वी व्यासजीका यह वचन सुनकर राजा धृतराष्ट्र दो घड़ीतक कुछ सोच-विचार करते रहे; फिर इस प्रकार बोले—॥ ५० ॥

महता शोकजालेन प्रणुन्नोऽस्मि द्विजोत्तम।
नात्मानमवबुध्यामि मुह्यमानो मुहुर्मुहुः ॥ ५१ ॥

'विप्रवर! मुझे महान् शोकजालने सब ओरसे जकड़ रक्खा है। मैं अपने आपको ही नहीं समझ पा रहा हूँ। मुझे बारंबार मूर्छा आ जाती है ॥ ५१ ॥

इदं तु वचनं श्रुत्वा तव देवनियोगजम्।
धारयिष्याम्यहं प्राणान् घटिष्ये न तु शोचितुम् ॥ ५२ ॥

'अब आपका यह वचन सुनकर कि सब कुछ देवताओंकी प्रेरणासे हुआ है, मैं अपने प्राण धारण करूँगा और यथाशक्ति इस बातके लिये भी प्रयत्न करूँगा कि मुझे शोक न हो'॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं व्यासः सत्यवतीसुतः।
धृतराष्ट्रस्य राजेन्द्र तत्रैवान्तरधीयत ॥ ५३ ॥

राजेन्द्र! धृतराष्ट्रका यह वचन सुनकर सत्यवतीनन्दन व्यास वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ ५३ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि धृतराष्ट्रविशोककरणे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिकपर्वमें धृतराष्ट्रके शोकका निवारणविषयक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका शोकातुर हो जाना और विदुरजीका उन्हें पुनः शोकनिवारणके लिये उपदेश

जनमेजय उवाच

गते भगवति व्यासे धृतराष्ट्रो महीपतिः।
किमचेष्टत विप्रर्षे तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—विप्रर्षे! भगवान् व्यासके चले जानेपर राजा धृतराष्ट्रने क्या किया? यह मुझे विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा करें ॥ १ ॥

तथैव कौरवो राजा धर्मपुत्रो महामनाः।
कृपप्रभृतयश्चैव किमकुर्वत ते त्रयः ॥ २ ॥

इसी प्रकार कुरुवंशी राजा महामनस्वी धर्मपुत्र युधिष्ठिरने तथा कृप आदि तीनों महारथियोंने क्या किया? ॥ २ ॥

अश्वत्थाम्नः श्रुतं कर्म शापश्चान्योन्यकारितः।
वृत्तान्तमुत्तरं ब्रूहि यदभाषत संजयः ॥ ३ ॥

अश्वत्थामाका कर्म तो मैंने सुन लिया, परस्पर जो शाप दिये गये, उनका हाल भी मालूम हो गया। अब आगेका वृत्तान्त बताइये, जिसे संजयने धृतराष्ट्रको सुनाया हो ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच

हते दुर्योधने चैव हते सैन्ये च सर्वशः।
संजयो विगतप्रज्ञो धृतराष्ट्रमुपस्थितः ॥ ४ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! दुर्योधन तथा उसकी सारी सेनाओंके मारे जानेपर संजयकी दिव्य दृष्टि चली गयी और वह धृतराष्ट्रकी सभामें उपस्थित हुआ ॥ ४ ॥

संजय उवाच

आगम्य नानादेशेभ्यो नानाजनपदेश्वराः।
पितृलोकं गता राजन् सर्वे तव सुतैः सह ॥ ५ ॥

संजय बोला—राजन्! नाना जनपदोंके स्वामी विभिन्न देशोंसे आकर सब-के-सब आपके पुत्रोंके साथ पितृलोकके पथिक बन गये ॥ ५ ॥

याच्यमानेन सततं तव पुत्रेण भारत।
घातिता पृथिवी सर्वा वैरस्यान्तं विधित्सता ॥ ६ ॥

भारत! आपके पुत्रसे सब लोगोंने सदा शान्तिके लिये याचना की, तो भी उसने वैरका अन्त करनेकी इच्छासे सारे भूमण्डलका विनाश करा दिया ॥ ६ ॥

पुत्राणामथ पौत्राणां पितॄणां च महीपते।
आनुपूर्व्येण सर्वेषां प्रेतकार्याणि कारय ॥ ७ ॥

महाराज! अब आप क्रमशः अपने ताऊ, चाचा, पुत्र और पौत्रोंका मृतकसम्बन्धी कर्म करवाइये ॥ ७ ॥

वैशम्पायन उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं घोरं संजयस्य महीपतिः।
गतासुरिव निश्चेष्टो न्यपतत् पृथिवीतले ॥ ८ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! संजयका यह घोर वचन सुनकर राजा धृतराष्ट्र प्राणशून्यकी भाँति निश्चेष्ट हो पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ८ ॥

तं शयानमुपागम्य पृथिव्यां पृथिवीपतिम्।
विदुरः सर्वधर्मज्ञ इदं वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥

पृथ्वीपति धृतराष्ट्रको पृथ्वीपर सोया देख सब धर्मोंके ज्ञाता विदुरजी उनके पास आये और इस प्रकार बोले—॥ ९ ॥

उत्तिष्ठ राजन् किं शेषे मा शुचो भरतर्षभ।
एषा वै सर्वसत्त्वानां लोकेश्वर परा गतिः ॥ १० ॥

'राजन्! उठिये, क्यों सो रहे हैं? भरतश्रेष्ठ! शोक न कीजिये। लोकनाथ! समस्त प्राणियोंकी यही अन्तिम गति है॥

अभावादीनि भूतानि भावमध्यानि भारत।
अभावनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ ११ ॥

'भरतनन्दन! सभी प्राणी जन्मसे पहले अव्यक्त थे, बीचमें व्यक्त हुए और अन्तमें मृत्युके बाद फिर अव्यक्त ही हो जायँगे, ऐसी दशामें उनके लिये शोक करनेकी क्या बात है? ॥ ११ ॥

न शोचन् मृतमन्वेति न शोचन् म्रियते नरः।
एवं सांसिद्धिके लोके किमर्थमनुशोचसि ॥ १२ ॥

'शोक करनेवाला मनुष्य न तो मरे हुएके साथ जाता है और न स्वयं ही मरता है। जब लोककी यही स्वाभाविक स्थिति है, तब आप किस लिये बारंबार शोक कर रहे हैं ?॥

अयुध्यमानो म्रियते युद्ध्यमानस्तु जीवति।
कालं प्राप्य महाराज न कश्चिदतिवर्तते॥ १३॥

'महाराज! जो युद्ध नहीं करता, वह भी मरता है और युद्ध करनेवाला भी जीवित बच जाता है। कालको पाकर कोई भी उसका उल्लङ्घन नहीं कर सकता॥ १३॥

कालः कर्षति भूतानि सर्वाणि विविधानि च।
न कालस्य प्रियः कश्चिन्न द्वेष्यः कुरुसत्तम॥ १४॥

'काल सभी विविध प्राणियोंको खींचता है। कुरुश्रेष्ठ! कालके लिये न तो कोई प्रिय है और न कोई द्वेषका पात्र ही॥ १४॥

यथा वायुस्तृणाग्राणि संवर्तयति सर्वतः।
तथा कालवशं यान्ति भूतानि भरतर्षभ॥ १५॥

'भरतश्रेष्ठ! जैसे वायु तिनकोंको सब ओर उड़ाती और गिराती रहती है, उसी प्रकार सारे प्राणी कालके अधीन होकर आते-जाते रहते हैं॥ १५॥

एकसार्थप्रयातानां सर्वेषां तत्र गामिनाम्।
यस्य कालः प्रयात्यग्रे तत्र का परिदेवना॥ १६॥

'एक साथ आये हुए सभी प्राणियोंको एक दिन वहीं जाना है। जिसका काल आ गया, वह पहले चला जाता है; फिर उसके लिये व्यर्थ शोक क्यों?॥ १६॥

यांश्चापि निहतान् युद्धे राजंस्त्वमनुशोचसि।
न शोच्या हि महात्मानः सर्वे ते त्रिदिवं गताः॥ १७॥

'राजन्! जो लोग युद्धमें मारे गये हैं और जिनके लिये आप बारंबार शोक कर रहे हैं, वे महामनस्वी वीर शोक करनेके योग्य नहीं हैं, वे सब-के-सब स्वर्गलोकमें चले गये॥

न यज्ञैर्दक्षिणावद्भिर्न तपोभिर्न विद्यया।
तथा स्वर्गमुपायान्ति यथा शूरास्तनुत्यजः॥ १८॥

'अपने शरीरका त्याग करनेवाले शूरवीर जिस तरह स्वर्गमें जाते हैं, उस तरह दक्षिणावाले यज्ञों, तपस्याओं तथा विद्यासे भी कोई नहीं जा सकता॥ १८॥

सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे सुचरितव्रताः।
सर्वे चाभिमुखाः क्षीणास्तत्र का परिदेवना॥ १९॥

'वे सभी वीर वेदवेत्ता और अच्छी तरह ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनेवाले थे। ये सब-के-सब शत्रुओंका सामना करते हुए मारे गये थे; अतः उनके लिये शोक करनेकी क्या आवश्यकता है?॥ १९॥

शरीराग्निषु शूराणां जुहुवुस्ते शराहुतीः।
हूयमानाञ्शरांश्चैव सेहुरुत्तमपूरुषाः॥ २०॥

'उन श्रेष्ठ पुरुषोंने शूरवीरोंके शरीररूपी अग्नियोंमें बाणरूपी हविष्यकी आहुतियाँ दी थीं और अपने शरीरमें जिनका हवन किया गया था, उन बाणोंका आघात सहन किया था॥ २०॥

एवं राजंस्तवाचक्षे स्वर्ग्यं पन्थानमुत्तमम्।
न युद्धादधिकं किंचित् क्षत्रियस्येह विद्यते॥ २१॥

'राजन्! मैं तुम्हें स्वर्ग-प्राप्तिका सबसे उत्तम मार्ग बता रहा हूँ। इस जगत्में क्षत्रियके लिये युद्धसे बढ़कर स्वर्ग-साधक दूसरा कोई उपाय नहीं है॥ २१॥

क्षत्रियास्ते महात्मानः शूराः समितिशोभनाः।
आशिषं परमां प्राप्ता न शोच्याः सर्व एव हि॥ २२॥

'वे सभी महामनस्वी क्षत्रिय वीर युद्धमें शोभा पानेवाले थे। वे उत्तम भोगोंसे सम्पन्न पुण्यलोकोंमें जा पहुँचे हैं, अतः उन सबके लिये शोक नहीं करना चाहिये॥ २२॥

आत्मनाऽऽत्मानमाश्वास्य मा शुचः पुरुषर्षभ।
नाद्य शोकाभिभूतस्त्वं कार्यमुत्स्रष्टुमर्हसि॥ २३॥

'पुरुषप्रवर! आप स्वयं ही अपने मनको आश्वासन देकर शोकको त्याग दीजिये। आज शोकसे व्याकुल होकर आपको अपने कर्तव्य कर्मका त्याग नहीं करना चाहिये'॥ २३॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि विदुरवाक्ये नवमोऽध्यायः॥ ९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिकपर्वमें विदुरजीका वाक्यविषयक नवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९॥

दशमोऽध्यायः

स्त्रियों और प्रजाके लोगोंके सहित राजा धृतराष्ट्रका रणभूमिमें जानेके लिये नगरसे बाहर निकलना

वैशम्पायन उवाच

विदुरस्य तु तद् वाक्यं श्रुत्वा तु पुरुषर्षभः।
युज्यतां यानमित्युक्त्वा पुनर्वचनमब्रवीत्॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! विदुरकी यह बात सुनकर पुरुषश्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्रने रथ जोतनेकी आज्ञा देकर पुनः इस प्रकार कहा॥ १॥

धृतराष्ट्र उवाच

शीघ्रमानय गान्धारीं सर्वाश्च भरतस्त्रियः।
वधूं कुन्तीमुपादाय याश्चान्यास्तत्र योषितः॥ २॥

धृतराष्ट्र बोले—गान्धारीको तथा भरतवंशी अन्य सब स्त्रियोंको शीघ्र ले आओ तथा वधू कुन्तीको साथ लेकर वहाँ जो दूसरी स्त्रियाँ हों, उन्हें भी बुला लो॥ २॥

एवमुक्त्वा स धर्मात्मा विदुरं धर्मवित्तमम्।
शोकविप्रहतज्ञानो यानमेवान्वपद्यत॥ ३॥

परम धर्मज्ञ विदुरजीसे ऐसा कहकर शोकसे जिनकी ज्ञानशक्ति नष्ट-सी हो गयी थी, वे धर्मात्मा राजा धृतराष्ट्र रथपर सवार हुए॥ ३॥

गान्धारी पुत्रशोकार्ता भर्तुर्वचननोदिता।
सह कुन्त्या यतो राजा सह स्त्रीभिरुपाद्रवत्॥ ४॥

गान्धारी पुत्रशोकसे पीड़ित हो रही थीं, पतिकी आज्ञा

पाकर वे कुन्ती तथा अन्य स्त्रियोंके साथ जहाँ राजा धृतराष्ट्र थे, वहाँ आयीं ॥ ४ ॥

ताः समासाद्य राजानं भृशं शोकसमन्विताः ।
आमन्त्र्यान्योन्यमीयुः स्म भृशमुच्चुक्रुशुस्ततः ॥ ५ ॥

वहाँ राजाके पास पहुँचकर अत्यन्त शोकमें डूबी हुई वे सारी स्त्रियाँ एक दूसरीको पुकार-पुकारकर परस्पर गलेसे लग गयीं और जोर-जोरसे फूट-फूटकर रोने लगीं ॥ ५ ॥

ताः समाश्वासयत् क्षत्ता ताभ्यश्चार्ततरः स्वयम् ।
अश्रुकण्ठीः समारोप्य ततोऽसौ निर्ययौ पुरात् ॥ ६ ॥

विदुरजीने उन सब स्त्रियोंको आश्वासन दिया। वे स्वयं भी उनसे अधिक आर्त हो गये थे। आँसुओंसे गद्गद कण्ठ हुई उन सबको रथपर चढ़ाकर वे नगरसे बाहर निकले ॥ ६ ॥

ततः प्रणादः संजज्ञे सर्वेषु कुरुवेश्मसु ।
आकुमारं पुरं सर्वमभवच्छोककर्षितम् ॥ ७ ॥

तदनन्तर कौरवोंके सभी घरोंमें बड़ा भारी आर्तनाद होने लगा। बूढ़ोंसे लेकर बच्चोंतक सारा नगर शोकसे व्याकुल हो उठा ॥ ७ ॥

अदृष्टपूर्वा या नार्यः पुरा देवगणैरपि ।
पृथग्जनेन दृश्यन्ते तास्तदा निहतेश्वराः ॥ ८ ॥

जिन स्त्रियोंको पहले कभी देवताओंने भी नहीं देखा था, उन्हींको उस समय पतियोंके मारे जानेपर साधारण लोग देख रहे थे ॥ ८ ॥

प्रकीर्य केशान् सुशुभान् भूषणान्यवमुच्य च ।
एकवस्त्रधरा नार्यः परिपेतुरनाथवत् ॥ ९ ॥

वे नारियाँ अपने सुन्दर केश बिखराये सारे आभूषण उतारकर एक ही वस्त्र धारण किये अनाथकी भाँति रणभूमिकी ओर जा रही थीं ॥ ९ ॥

श्वेतपर्वतरूपेभ्यो गृहेभ्यस्तास्त्वपाक्रमन् ।
गुहाभ्य इव शैलानां पृषत्यो हतयूथपाः ॥ १० ॥

कौरवोंके घर श्वेत पर्वतके समान जान पड़ते थे। उनसे जब वे स्त्रियाँ बाहर निकलीं, उस समय जिनका यूथपति मारा गया हो, पर्वतोंकी गुफासे निकली हुई उन चितकबरी हरिणियोंके समान दिखायी देने लगीं ॥ १० ॥

तान्युदीर्णानि नारीणां तदा वृन्दान्यनेकशः ।
शोकार्तान्यद्रवन् राजन् किशोरीणामिवाङ्गने ॥ ११ ॥

राजन्! राजभवनके विशाल आँगनमें एकत्र हुई उन किशोरी स्त्रियोंके अनेक समुदाय शोकसे पीड़ित होकर रणभूमिकी ओर उसी प्रकार चले, जैसे बछेड़ियाँ शिक्षाभूमिपर लायी जाती हैं ॥

प्रगृह्य बाहून् क्रोशन्त्यः पुत्रान् भ्रातॄन् पितॄनपि ।
दर्शयन्तीव ता ह स्म युगान्ते लोकसंक्षयम् ॥ १२ ॥

एक दूसरीके हाथ पकड़कर पुत्रों, भाइयों और पिताओंके नाम ले-लेकर रोती हुई वे कुरुकुलकी नारियाँ प्रलयकालमें लोक-संहारका दृश्य दिखाती हुई-सी जान पड़ती थीं ॥ १२ ॥

विलपन्त्यो रुदत्यश्च धावमानास्ततस्ततः ।
शोकेनोपहतज्ञानाः कर्तव्यं न प्रजज्ञिरे ॥ १३ ॥

शोकसे उनकी ज्ञानशक्ति लुप्त-सी हो गयी थी। वे रोती और विलाप करती हुई इधर-उधर दौड़ रही थीं। उन्हें कोई कर्तव्य नहीं सूझ रहा था ॥ १३ ॥

व्रीडां जग्मुः पुरा याः स्म सखीनामपि योषितः ।
ता एकवस्त्रा निर्लज्जाः श्वश्रूणां पुरतोऽभवन् ॥ १४ ॥

जो युवतियाँ पहले सखियोंके सामने आनेमें भी लजाती थीं, वे ही उस दिन लाज छोड़कर एक वस्त्र धारण किये अपनी सासुओंके सामने उपस्थित हो गयी थीं ॥ १४ ॥

परस्परं सुसूक्ष्मेषु शोकेष्वाश्वासयंस्तदा ।
ताः शोकविह्वला राजन्नवैक्षन्त परस्परम् ॥ १५ ॥

राजन्! जो नारियाँ छोटे-से-छोटे शोकमें भी एक दूसरीके पास जाकर आश्वासन दिया करती थीं, वे ही शोकसे व्याकुल हो परस्पर दृष्टिपात मात्र कर रही थीं ॥ १५ ॥

ताभिः परिवृतो राजा रुदतीभिः सहस्रशः ।
निर्ययौ नगराद् दीनस्तूर्णमायोधनं प्रति ॥ १६ ॥

उन रोती हुई सहस्रों स्त्रियोंसे घिरे हुए दुखी राजा धृतराष्ट्र नगरसे युद्धस्थलमें जानेके लिये तुरंत निकल पड़े ॥

शिल्पिनो वणिजो वैश्याः सर्वकर्मोपजीविनः ।
ते पार्थिवं पुरस्कृत्य निर्ययुर्नगराद् बहिः ॥ १७ ॥

कारीगर, व्यापारी वैश्य तथा सब प्रकारके कर्मोंसे जीवन-निर्वाह करनेवाले लोग राजाको आगे करके नगरसे बाहर निकले ॥ १७ ॥

तासां विक्रोशमानानामार्तानां कुरुसंक्षये ।
प्रादुरासीन्महाञ्शब्दो व्यथयन् भुवनान्युत ॥ १८ ॥

कौरवोंका संहार हो जानेपर आर्तभावसे रोती और विलपती हुई उन नारियोंका महान् आर्तनाद सम्पूर्ण लोकोंको व्यथित करता हुआ प्रकट होने लगा ॥ १८ ॥

युगान्तकाले सम्प्राप्ते भूतानां दह्यतामिव ।
अभावः स्यादयं प्राप्त इति भूतानि मेनिरे ॥ १९ ॥

प्रलयकाल आनेपर दग्ध होते हुए प्राणियोंके चीखने-चिल्लानेके समान उन स्त्रियोंके रोनेका वह महान् शब्द गूँज रहा था। सब प्राणी ऐसा समझने लगे कि यह संहारकाल आ पहुँचा है ॥ १९ ॥

भृशमुद्विग्नमनसस्ते पौराः कुरुसंक्षये ।
प्राक्रोशन्त महाराज स्वनुरक्तास्तदा भृशम् ॥ २० ॥

महाराज! कुरुकुलका संहार हो जानेसे अत्यन्त उद्विग्न-चित्त हुए पुरवासी जो राजवंशके साथ पूर्ण अनुराग रखते थे, जोर-जोरसे रोने लगे ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि धृतराष्ट्रनिर्गमने दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिकपर्वमें धृतराष्ट्रका नगरसे निकलनाविषयक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

राजा धृतराष्ट्रसे कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृतवर्माकी भेंट और कृपाचार्यका कौरव-पाण्डवोंकी सेनाके विनाशकी सूचना देना

वैशम्पायन उवाच

क्रोशमात्रं ततो गत्वा ददृशुस्तान् महारथान्।
शारद्वतं कृपं द्रौणिं कृतवर्माणमेव च ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! वे सब लोग हस्तिनापुरसे एक ही कोसकी दूरीपर पहुँचे होंगे कि उन्हें शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्य, द्रोणकुमार अश्वत्थामा और कृतवर्मा —ये तीनों महारथी दिखायी दिये ॥ १ ॥

ते तु दृष्ट्वैव राजानं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम्।
अश्रुकण्ठा विनिःश्वस्य रुदन्तमिदमब्रुवन् ॥ २ ॥

रोते हुए ऐश्वर्यशाली प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्रको देखते ही आँसुओंसे उनका गला भर आया और वे इस प्रकार बोले—॥

पुत्रस्तव महाराज कृत्वा कर्म सुदुष्करम्।
गतः सानुचरो राजञ्शक्रलोकं महीपते ॥ ३ ॥

'पृथ्वीनाथ महाराज ! आपका पुत्र अत्यन्त दुष्कर कर्म करके अपने सेवकोंसहित इन्द्रलोकमें जा पहुँचा है ॥ ३ ॥

दुर्योधनबलान्मुक्ता वयमेव त्रयो रथाः।
सर्वमन्यत् परिक्षीणं सैन्यं ते भरतर्षभ ॥ ४ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! दुर्योधनकी सेनासे केवल हम तीन रथी ही जीवित बचे हैं। आपकी अन्य सारी सेना नष्ट हो गयी' ॥४॥

इत्येवमुक्त्वा राजानं कृपः शारद्वतस्ततः।
गान्धारीं पुत्रशोकार्तामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥

राजा धृतराष्ट्रसे ऐसा कहकर शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्य पुत्रशोकसे पीड़ित हुई गान्धारीसे इस प्रकार बोले—॥ ५ ॥

अभीता युद्ध्यमानास्ते घ्नन्तः शत्रुगणान् बहून्।
वीरकर्माणि कुर्वाणाः पुत्रास्ते निधनं गताः ॥ ६ ॥

'देवि ! आपके सभी पुत्र निर्भय होकर जूझते और बहुसंख्यक शत्रुओंका संहार करते हुए वीरोचित कर्म करके वीरगतिको प्राप्त हुए हैं ॥ ६ ॥

ध्रुवं सम्प्राप्य लोकांस्ते निर्मलाञ्शस्त्रनिर्जितान्।
भास्वरं देहमास्थाय विहरन्त्यमरा इव ॥ ७ ॥

'निश्चय ही वे शस्त्रोंद्वारा जीते हुए निर्मल लोकोंमें पहुँचकर तेजस्वी शरीर धारण करके वहाँ देवताओंके समान विहार करते होंगे ॥ ७ ॥

न हि कश्चिद्धि शूराणां युद्ध्यमानः पराङ्मुखः।
शस्त्रेण निधनं प्राप्तो न च कश्चित् कृताञ्जलिः॥ ८ ॥

'उन शूरवीरोंमेंसे कोई भी युद्ध करते समय पीठ नहीं दिखा सका है। किसीने भी शत्रुके सामने हाथ नहीं जोड़े हैं। सभी शस्त्रके द्वारा मारे गये हैं ॥ ८ ॥

एवं तां क्षत्रियस्याहुः पुराणाः परमां गतिम्।
शस्त्रेण निधनं संख्ये तन्न शोचितुमर्हसि ॥ ९ ॥

'इस प्रकार युद्धमें जो शस्त्रद्वारा मृत्यु होती है, उसे प्राचीन महर्षि क्षत्रियके लिये उत्तम गति बताते हैं; अतः उनके लिये आपको शोक नहीं करना चाहिये ॥ ९ ॥

न चापि शत्रवस्तेषामृद्ध्यन्ते राज्ञि पाण्डवाः।
शृणु यत् कृतमस्माभिरश्वत्थामपुरोगमैः ॥ १० ॥

'महारानी ! उनके शत्रु पाण्डव भी विशेष लाभमें नहीं हैं। अश्वत्थामाको आगे करके हमने जो कुछ किया है, उसे सुनिये ॥ १० ॥

अधर्मेण हतं श्रुत्वा भीमसेनेन ते सुतम्।
सुप्तं शिबिरमासाद्य पाण्डूनां कदनं कृतम् ॥ ११ ॥

'भीमसेनने आपके पुत्रको अधर्मसे मारा है, यह सुनकर हमलोग भी पाण्डवोंके सोते हुए शिविरमें जा पहुँचे और पाण्डववीरोंका संहार कर डाला ॥ ११ ॥

पञ्चाला निहताः सर्वे धृष्टद्युम्नपुरोगमाः।
द्रुपदस्यात्मजाश्चैव द्रौपदेयाश्च पातिताः ॥ १२ ॥

'द्रुपदके पुत्र धृष्टद्युम्न आदि सारे पाञ्चाल मार डाले गये और द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंको भी हमने मार गिराया ॥ १२ ॥

तथा विशसनं कृत्वा पुत्रशत्रुगणस्य ते।
प्राद्रवाम रणे स्थातुं न हि शक्यामहे त्रयः ॥ १३ ॥

'इस प्रकार आपके पुत्रके शत्रुओंका रणभूमिमें संहार करके हम तीनों भागे जा रहे हैं। अब यहाँ ठहर नहीं सकते॥

ते हि शूरा महेष्वासाः क्षिप्रमेष्यन्ति पाण्डवाः।
अमर्षवशमापन्ना वैरं प्रतिजिहीर्षवः ॥ १४ ॥

'क्योंकि अमर्षमें भरे हुए वे महाधनुर्धर वीर पाण्डव वैरका बदला लेनेकी इच्छासे शीघ्र यहाँ आयेंगे ॥ १४ ॥

ते हतानात्मजाञ्श्रुत्वाप्रमत्ताः पुरुषर्षभाः।
निरीक्षन्तः पदं शूराः क्षिप्रमेव यशस्विनि ॥ १५ ॥

'यशस्विनि ! अपने पुत्रोंके मारे जानेका समाचार सुनकर सदा सावधान रहनेवाले पुरुषप्रवर पाण्डव हमारा चरणचिह्न देखते हुए शीघ्र ही हमलोगोंका पीछा करेंगे ॥ १५ ॥

तेषां तु कदनं कृत्वा संस्थातुं नोत्सहामहे।
अनुजानीहि नो राज्ञि मा च शोके मनः कृथाः ॥ १६ ॥

'रानीजी ! उनके पुत्रों और सम्बन्धियोंका विनाश करके हम यहाँ ठहर नहीं सकते; अतः हमें जानेकी आज्ञा दीजिये और आप भी अपने मनसे शोकको निकाल दीजिये ॥ १६ ॥

राजंस्त्वमनुजानीहि धैर्यमातिष्ठ चोत्तमम्।
दिष्टान्तं पश्य चापि त्वं क्षात्रं धर्मं च केवलम् ॥ १७ ॥

(फिर वे धृतराष्ट्रसे बोले—) 'राजन् ! आप भी हमें जानेकी आज्ञा प्रदान करें और महान् धैर्यका आश्रय लें, केवल क्षात्रधर्मपर दृष्टि रखकर इतना ही देखें कि उनकी मृत्यु कैसे हुई है ?' ॥ १७ ॥

इत्येवमुक्त्वा राजानं कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम्।
कृपश्च कृतवर्मा च द्रोणपुत्रश्च भारत ॥ १८ ॥
अवेक्षमाणा राजानं धृतराष्ट्रं मनीषिणम्।

गङ्गामनु महाराज तूर्णमश्वानचोदयन् ॥ १९ ॥

भारत ! राजासे ऐसा कहकर उनकी प्रदक्षिणा करके कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामाने मनीषी राजा धृतराष्ट्रकी ओर देखते हुए तुरंत ही गङ्गातटकी ओर अपने घोड़े हाँक दिये ॥ १८-१९ ॥

अपक्रम्य तु ते राजन् सर्वे एव महारथाः ।
आमन्त्र्यान्योन्यमुद्विग्नास्त्रिधा ते प्रययुस्तदा ॥ २० ॥

राजन् ! वहाँसे हटकर वे सभी महारथी उद्विग्न हो एक दूसरेसे विदा ले तीन मार्गोंपर चल दिये ॥ २० ॥

जगाम हास्तिनपुरं कृपः शारद्वतस्तदा ।
स्वमेव राष्ट्रं हार्दिक्यो द्रौणिर्व्यासाश्रमं ययौ ॥ २१ ॥

शरद्वान्‌के पुत्र कृपाचार्य तो हस्तिनापुर चले गये, कृतवर्मा अपने ही देशकी ओर चल दिया और द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने व्यास-आश्रमकी राह ली ॥ २१ ॥

एवं ते प्रययुर्वीरा वीक्षमाणाः परस्परम् ।
भयार्ताः पाण्डुपुत्राणामागस्कृत्वा महात्मनाम् ॥ २२ ॥

महात्मा पाण्डवोंका अपराध करके भयसे पीडित हुए वे तीनों वीर इस प्रकार एक दूसरेकी ओर देखते हुए वहाँसे खिसक गये ॥ २२ ॥

समेत्य वीरा राजानं तदा त्वनुदिते रवौ ।
विप्रजग्मुर्महात्मानो यथेच्छकमरिंदमाः ॥ २३ ॥

राजा धृतराष्ट्रसे मिलकर शत्रुओंका दमन करनेवाले वे तीनों महामनस्वी वीर सूर्योदयसे पहले ही अपने अभीष्ट स्थानोंकी ओर चल पड़े ॥ २३ ॥

समासाद्याथ वै द्रौणिं पाण्डुपुत्रा महारथाः ।
व्यजयंस्ते रणे राजन् विक्रम्य तदनन्तरम् ॥ २४ ॥

राजन् ! तदनन्तर महारथी पाण्डवोंने द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके पास पहुँचकर उसे बलपूर्वक युद्धमें पराजित किया ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि कृपद्रौणिभोजदर्शने एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिकपर्वमें कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृतवर्माका दर्शनविषयक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

पाण्डवोंका धृतराष्ट्रसे मिलना, धृतराष्ट्रके द्वारा भीमकी लोहमयी प्रतिमाका भङ्ग होना और शोक करनेपर श्रीकृष्णका उन्हें समझाना

वैशम्पायन उवाच

हतेषु सर्वसैन्येषु धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
शुश्रुवे पितरं वृद्धं निर्यान्तं गजसाह्वयात् ॥ १ ॥
सोऽभ्ययात् पुत्रशोकार्तः पुत्रशोकपरिप्लुतम् ।
शोचमानं महाराज भ्रातृभिः सहितस्तदा ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज जनमेजय ! समस्त सेनाओंका संहार हो जानेपर धर्मराज युधिष्ठिरने जब सुना कि हमारे बूढ़े ताऊ संग्राममें मरे हुए वीरोंका अन्त्येष्टिकर्म करानेके लिये हस्तिनापुरसे चल दिये हैं, तब वे स्वयं पुत्रशोकसे आतुर हो पुत्रोंके ही शोकमें डूबकर चिन्तामग्न हुए राजा धृतराष्ट्रके पास अपने सब भाइयोंके साथ गये ॥ १-२ ॥

अन्वीयमानो वीरेण दाशार्हेण महात्मना ।
युयुधानेन च तथा तथैव च युयुत्सुना ॥ ३ ॥

उस समय दशार्हकुलनन्दन वीर महात्मा श्रीकृष्ण, सात्यकि और युयुत्सु भी उनके पीछे-पीछे गये ॥ ३ ॥

तमन्वगात् सुदुःखार्ता द्रौपदी शोककर्शिता ।
सह पाञ्चालयोषिद्भिर्यास्तत्रासन् समागताः ॥ ४ ॥

अत्यन्त दुःखसे आतुर और शोकसे दुबली हुई द्रौपदीने भी वहाँ आयी हुई पाञ्चाल-महिलाओंके साथ उनका अनुसरण किया ॥ ४ ॥

स गङ्गामनु वृन्दानि स्त्रीणां भरतसत्तम ।
कुररीणामिवार्तानां क्रोशन्तीनां ददर्श ह ॥ ५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! गङ्गातटपर पहुँचकर युधिष्ठिरने कुररीकी तरह आर्तस्वरसे विलाप करती हुई स्त्रियोंके कई दल देखे ॥ ५ ॥

ताभिः परिवृतो राजा क्रोशन्तीभिः सहस्रशः ।
ऊर्ध्वबाहुभिरार्ताभी रुदतीभिः प्रियाप्रियैः ॥ ६ ॥

वहाँ पाण्डवोंके प्रिय और अप्रिय जनोंके लिये हाथ उठाकर आर्तस्वरसे रोती और करुण क्रन्दन करती हुई सहस्रों महिलाओंने राजा युधिष्ठिरको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ६ ॥

क्व नु धर्मज्ञता राज्ञः क्व नु साद्यानृशंसता ।
यच्चावधीत् पितॄन् भ्रातॄन् गुरुपुत्रान् सखीनपि ॥ ७ ॥

वे बोलीं—'अहो ! राजाकी वह धर्मज्ञता और दयालुता कहाँ चली गयी कि इन्होंने ताऊ, चाचा, भाई, गुरुपुत्रों और मित्रोंका भी वध कर डाला ॥ ७ ॥

घातयित्वा कथं द्रोणं भीष्मं चापि पितामहम् ।
मनस्तेऽभून्महाबाहो हत्वा चापि जयद्रथम् ॥ ८ ॥

'महाबाहो ! द्रोणाचार्य, पितामह भीष्म और जयद्रथका भी वध करके आपके मनकी कैसी अवस्था हुई ? ॥ ८ ॥

किं नु राज्येन ते कार्यं पितॄन् भ्रातॄनपश्यतः ।
अभिमन्युं च दुर्धर्षं द्रौपदेयांश्च भारत ॥ ९ ॥

'भरतवंशी नरेश ! अपने ताऊ, चाचा और भाइयोंको, दुर्जय वीर अभिमन्युको तथा द्रौपदीके सभी पुत्रोंको न देखनेपर इस राज्यसे आपका क्या प्रयोजन है ?' ॥ ९ ॥

अतीत्य ता महाबाहुः क्रोशन्तीः कुररीरिव ।
ववन्दे पितरं ज्येष्ठं धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ १० ॥

धर्मराज महाबाहु युधिष्ठिरने कुररीकी भाँति क्रन्दन करती हुई उन स्त्रियोंके घेरेको लाँघकर अपने ताऊ धृतराष्ट्रको प्रणाम किया ॥ १० ॥

ततोऽभिवाद्य पितरं धर्मेणामित्रकर्षणाः ।
न्यवेदयन्त नामानि पाण्डवास्तेऽपि सर्वशः ॥ ११ ॥

तत्पश्चात् सभी शत्रुसूदन पाण्डवोंने धर्मानुसार ताऊको प्रणाम करके अपने नाम बताये ॥ ११ ॥

तमात्मजान्तकरणं पिता पुत्रवधार्दितः ।
अप्रीयमाणः शोकार्तः पाण्डवं परिषस्वजे ॥ १२ ॥

पुत्रवधसे पीड़ित हुए पिताने शोकसे व्याकुल हो अपने पुत्रोंका अन्त करनेवाले पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको हृदयसे लगाया; परंतु उस समय उनका मन प्रसन्न नहीं था ॥ १२ ॥

धर्मराजं परिष्वज्य सान्त्वयित्वा च भारत ।
दुष्टात्मा भीममन्वैच्छद् दिधक्षुरिव पावकः ॥ १३ ॥

भरतनन्दन ! धर्मराजको हृदयसे लगाकर उन्हें सान्त्वना दे धृतराष्ट्र भीमको इस प्रकार खोजने लगे, मानो आग बनकर उन्हें जला डालना चाहते हों। उस समय उनके मनमें दुर्भावना जाग उठी थी ॥ १३ ॥

स कोपपावकस्तस्य शोकवायुसमीरितः ।
भीमसेनमयं दावं दिधक्षुरिव दृश्यते ॥ १४ ॥

शोकरूपी वायुसे बढ़ी हुई उनकी क्रोधमयी अग्नि ऐसी दिखायी दे रही थी, मानो वह भीमसेनरूपी वनको जलाकर भस्म कर देना चाहती हो ॥ १४ ॥

तस्य संकल्पमाज्ञाय भीमं प्रत्यशुभं हरिः ।
भीममाक्षिप्य पाणिभ्यां प्रददौ भीममायसम् ॥ १५ ॥

भीमसेनके प्रति उनके अशुभ संकल्पको जानकर श्रीकृष्णने भीमसेनको झटका देकर हटा दिया और दोनों हाथोंसे उनकी लोहमयी मूर्ति धृतराष्ट्रके सामने कर दी ॥ १५ ॥

प्रागेव तु महाबुद्धिर्बुद्ध्वा तस्येङ्गितं हरिः ।
संविधानं महाप्राज्ञस्तत्र चक्रे जनार्दनः ॥ १६ ॥

महाज्ञानी और परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्णको पहलेसे ही उनका अभिप्राय ज्ञात हो गया था, इसलिये उन्होंने वहाँ यह व्यवस्था कर ली थी ॥ १६ ॥

तं गृहीत्वैव पाणिभ्यां भीमसेनमयस्मयम् ।
बभञ्ज बलवान् राजा मन्यमानो वृकोदरम् ॥ १७ ॥

बलवान् राजा धृतराष्ट्रने उस लोहमय भीमसेनको ही असली भीम समझा और उसे दोनों बाँहोंसे दबाकर तोड़ डाला ॥ १७ ॥

नागायुतबलप्राणः स राजा भीममायसम् ।
भङ्क्त्वा विमथितोरस्कः सुस्राव रुधिरं मुखात् ॥ १८ ॥

राजा धृतराष्ट्रमें दस हजार हाथियोंका बल था तो भी भीमकी लोहमयी प्रतिमाको तोड़कर उनकी छाती व्यथित हो गयी और मुँहसे खून निकलने लगा ॥ १८ ॥

ततः पपात मेदिन्यां तथैव रुधिरोक्षितः ।
प्रपुष्पिताग्रशिखरः पारिजात इव द्रुमः ॥ १९ ॥

वे उसी अवस्थामें खूनसे भीगकर पृथ्वीपर गिर पड़े, मानो ऊपरकी डालीपर खिले हुए लाल फूलोंसे सुशोभित पारिजातका वृक्ष धराशायी हो गया हो ॥ १९ ॥

प्रत्यगृह्णाच्च तं विद्वान् सूतो गावल्गणिस्तदा ।
मैवमित्यब्रवीच्चैनं शमयन् सान्त्वयन्निव ॥ २० ॥

उस समय उनके विद्वान् सारथि गवल्गणपुत्र संजयने उन्हें पकड़कर उठाया और समझा-बुझाकर शान्त करते हुए कहा—'आपको ऐसा नहीं करना चाहिये' ॥ २० ॥

स तु कोपं समुत्सृज्य गतमन्युर्महामनाः ।
हा हा भीमेति चुक्रोश नृपः शोकसमन्वितः ॥ २१ ॥

जब रोषका आवेश दूर हो गया, तब वे महामना नरेश क्रोध छोड़कर शोकमें डूब गये और 'हा भीम ! हा भीम !' कहते हुए विलाप करने लगे ॥ २१ ॥

तं विदित्वा गतक्रोधं भीमसेनवधार्दितम् ।
वासुदेवो वरः पुंसामिदं वचनमब्रवीत् ॥ २२ ॥

उन्हें भीमसेनके वधकी आशङ्कासे पीड़ित और क्रोधशून्य हुआ जान पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने इस प्रकार कहा—॥

मा शुचो धृतराष्ट्र त्वं नैष भीमस्त्वया हतः ।
आयसी प्रतिमा ह्येषा त्वया निष्पातिता विभो ॥ २३ ॥

'महाराज धृतराष्ट्र ! आप शोक न करें। ये भीम आपके हाथसे नहीं मारे गये हैं। प्रभो ! यह तो लोहेकी एक प्रतिमा थी, जिसे आपने चूर-चूर कर डाला ॥ २३ ॥

त्वां क्रोधवशमापन्नं विदित्वा भरतर्षभ ।
मयापकृष्टः कौन्तेयो मृत्योर्दंष्ट्रान्तरं गतः ॥ २४ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! आपको क्रोधके वशीभूत हुआ जान मैंने मृत्युकी दाढ़ोंमें फँसे हुए कुन्तीकुमार भीमसेनको पीछे खींच लिया था ॥ २४ ॥

न हि ते राजशार्दूल बले तुल्योऽस्ति कश्चन ।
कः सहेत महाबाहो बाह्वोर्विग्रहणं नरः ॥ २५ ॥

'राजसिंह ! बलमें आपकी समानता करनेवाला कोई नहीं है। महाबाहो ! आपकी दोनों भुजाओंकी पकड़ कौन मनुष्य सह सकता है ? ॥ २५ ॥

यथान्तकमनुप्राप्य जीवन् कश्चिन्न मुच्यते ।
एवं बाह्वन्तरं प्राप्य तव जीवेन्न कश्चन ॥ २६ ॥

'जैसे यमराजके पास पहुँचकर कोई भी जीवित नहीं छूट सकता, उसी प्रकार आपकी भुजाओंके बीचमें पड़ जानेपर किसीके प्राण नहीं बच सकते ॥ २६ ॥

तस्मात् पुत्रेण या तेऽसौ प्रतिमा कारिताऽऽयसी ।
भीमस्य सेयं कौरव्य तवैवोपहृता मया ॥ २७ ॥

'कुरुनन्दन ! इसलिये आपके पुत्रने जो भीमसेनकी लोहमयी प्रतिमा बनवा रक्खी थी, वही मैंने आपको भेंट कर दी ॥ २७ ॥

पुत्रशोकाभिसंतप्तं धर्मादपकृतं मनः ।
तव राजेन्द्र तेन त्वं भीमसेनं जिघांससि ॥ २८ ॥

'राजेन्द्र ! आपका मन पुत्रशोकसे संतप्त हो धर्मसे विचलित हो गया है; इसीलिये आप भीमसेनको मार डालना चाहते हैं ॥ २८ ॥

न त्वेतत् ते क्षमं राजन् हन्यास्त्वं यद् वृकोदरम् ।

न हि पुत्रा महाराज जीवेयुस्ते कथंचन ॥ २९ ॥

'राजन्! आपके लिये यह कदापि उचित न होगा कि आप भीमका वध करें। महाराज! (भीमसेन न मारते तो भी) आपके पुत्र किसी तरह जीवित नहीं रह सकते थे (क्योंकि उनकी आयु पूरी हो चुकी थी) ॥ २९ ॥

तस्माद् यत् कृतमस्माभिर्मन्यमानैः शमं प्रति।
अनुमन्यस्व तत् सर्वं मा च शोके मनः कृथाः ॥ ३० ॥

'अतः हमलोगोंने सर्वत्र शान्ति स्थापित करनेके उद्देश्यसे जो कुछ किया है, उन सब बातोंका आप भी अनुमोदन करें। मनको व्यर्थ शोकमें न डालें' ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि आयसभीमभङ्गे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिकपर्वमें भीमसेनकी लोहमयी प्रतिमाका भंग होनाविषयक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीकृष्णका धृतराष्ट्रको फटकारकर उनका क्रोध शान्त करना और धृतराष्ट्रका पाण्डवोंको हृदयसे लगाना

वैशम्पायन उवाच

तत एनमुपातिष्ठञ्छौचार्थं परिचारकाः।
कृतशौचं पुनश्चैनं प्रोवाच मधुसूदनः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर सेवकगण शौच-सम्बन्धी कार्य सम्पन्न करानेके लिये राजा धृतराष्ट्रकी सेवामें उपस्थित हुए। जब वे शौचकृत्य पूर्ण कर चुके, तब भगवान् मधुसूदनने फिर उनसे कहा— ॥ १ ॥

राजन्नधीता वेदास्ते शास्त्राणि विविधानि च।
श्रुतानि च पुराणानि राजधर्माश्च केवलाः ॥ २ ॥

'राजन्! आपने वेदों और नाना प्रकारके शास्त्रोंका अध्ययन किया है। सभी पुराणों और केवल राजधर्मोंका भी श्रवण किया है ॥ २ ॥

एवं विद्वान् महाप्राज्ञः समर्थः सन् बलाबले।
आत्मापराधात् कस्मात् त्वं कुरुषे कोपमीदृशम् ॥ ३ ॥

'ऐसे विद्वान्, परम बुद्धिमान् और बलाबलका निर्णय करनेमें समर्थ होकर भी अपने ही अपराधसे होनेवाले इस विनाशको देखकर आप ऐसा क्रोध क्यों कर रहे हैं? ॥ ३ ॥

उक्तवांस्त्वां तदैवाहं भीष्मद्रोणौ च भारत।
विदुरः संजयश्चैव वाक्यं राजन् न तत् कृथाः ॥ ४ ॥

'भरतनन्दन! मैंने तो उसी समय आपसे यह बात कह दी थी, भीष्म, द्रोणाचार्य, विदुर और संजयने भी आपको समझाया था। राजन्! परंतु आपने किसीकी बात नहीं मानी ॥

स वार्यमाणो नास्माकमकार्षीर्वचनं तदा।
पाण्डवानधिकाञ्जानन् बले शौर्ये च कौरव ॥ ५ ॥

'कुरुनन्दन! हमलोगोंने आपको बहुत रोका; परंतु आपने बल और शौर्यमें पाण्डवोंको बढ़ा-चढ़ा जानकर भी हमारा कहना नहीं माना ॥ ५ ॥

राजा हि यः स्थिरप्रज्ञः स्वयं दोषानवेक्षते।
देशकालविभागं च परं श्रेयः स विन्दति ॥ ६ ॥

'जिसकी बुद्धि स्थिर है, ऐसा जो राजा स्वयं दोषोंको देखता और देश-कालके विभागको समझता है, वह परम कल्याणका भागी होता है ॥ ६ ॥

उच्यमानस्तु यः श्रेयो गृह्णीते नो हिताहिते।
आपदः समनुप्राप्य स शोचत्यनये स्थितः ॥ ७ ॥

'जो हितकी बात बतानेपर भी हिताहितकी बातको नहीं समझ पाता, वह अन्यायका आश्रय ले बड़ी भारी विपत्तिमें पड़कर शोक करता है ॥ ७ ॥

ततोऽन्यवृत्तमात्मानं समवेक्षस्व भारत।
राजंस्त्वं ह्यविधेयात्मा दुर्योधनवशे स्थितः ॥ ८ ॥

'भरतनन्दन! आप अपनी ओर तो देखिये। आपका बर्ताव सदा ही न्यायके विपरीत रहा है। राजन्! आप अपने मनको वशमें न करके सदा दुर्योधनके अधीन रहे हैं ॥

आत्मापराधादापन्नस्तत् किं भीमं जिघांससि।
तस्मात् संयच्छ कोपं त्वं स्वमनुस्मर दुष्कृतम् ॥ ९ ॥

'अपने ही अपराधसे विपत्तिमें पड़कर आप भीमसेनको क्यों मार डालना चाहते हैं? इसलिये क्रोधको रोकिये और अपने दुष्कर्मोंको याद कीजिये ॥ ९ ॥

यस्तु तां स्पर्धया क्षुद्रः पाञ्चालीमानयत् सभाम्।
स हतो भीमसेनेन वैरं प्रतिजिहीर्षता ॥ १० ॥

'जिस नीच दुर्योधनने मनमें जलन रखनेके कारण पाञ्चालराजकुमारी कृष्णाको भरी सभामें बुलाकर अपमानित किया, उसे वैरका बदला लेनेकी इच्छासे भीमसेनने मार डाला ॥ १० ॥

आत्मनोऽतिक्रमं पश्य पुत्रस्य च दुरात्मनः।
यदनागसि पाण्डूनां परित्यागस्त्वया कृतः ॥ ११ ॥

'आप अपने और दुरात्मा पुत्र दुर्योधनके उस अत्याचारपर तो दृष्टि डालिये, जब कि बिना किसी अपराधके ही आपने पाण्डवोंका परित्याग कर दिया था' ॥ ११ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तः स कृष्णेन सर्वं सत्यं जनाधिप।
उवाच देवकीपुत्रं धृतराष्ट्रो महीपतिः ॥ १२ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं— नरेश्वर! जब इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने सब सच्ची-सच्ची बातें कह डालीं, तब पृथ्वीपति धृतराष्ट्रने देवकीनन्दन श्रीकृष्णसे कहा— ॥ १२ ॥

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि माधव।
पुत्रस्नेहस्तु बलवान् धैर्यान्मां समचालयत् ॥ १३ ॥

'महाबाहु! माधव! आप जैसा कह रहे हैं, ठीक ऐसी ही बात है; परंतु पुत्रका स्नेह प्रबल होता है, जिसने मुझे धैर्यसे विचलित कर दिया था ॥ १३ ॥

दिष्ट्या तु पुरुषव्याघ्रो बलवान् सत्यविक्रमः।
त्वद्गुप्तो नागमत् कृष्ण भीमो बाह्वन्तरं मम ॥ १४ ॥



व्यासजी गान्धारीको समझा रहे हैं

'श्रीकृष्ण ! सौभाग्यकी बात है कि आपसे सुरक्षित होकर बलवान् सत्यपराक्रमी पुरुषसिंह भीमसेन मेरी दोनों भुजाओंके बीचमें नहीं आये॥ १४ ॥

इदानीं त्वहमव्यग्रो गतमन्युर्गतज्वरः।
मध्यमं पाण्डवं वीरं द्रष्टुमिच्छामि माधव ॥ १५ ॥

'माधव ! अब इस समय मैं शान्त हूँ। मेरा क्रोध उतर गया है और चिन्ता भी दूर हो गयी है; अतः मैं मध्यम पाण्डव वीर अर्जुनको देखना चाहता हूँ ॥ १५ ॥

हतेषु पार्थिवेन्द्रेषु पुत्रेषु निहतेषु च।
पाण्डुपुत्रेषु वै शर्म प्रीतिश्चाप्यवतिष्ठते ॥ १६ ॥

'समस्त राजाओं तथा अपने पुत्रोंके मारे जानेपर अब मेरा प्रेम और हितचिन्तन पाण्डुके इन पुत्रोंपर ही आश्रित है'॥

ततः स भीमं च धनंजयं च
माद्र्याश्च पुत्रौ पुरुषप्रवीरौ।
पस्पर्श गात्रैः प्ररुदन् सुगात्रा-
नाश्वास्य कल्याणमुवाच चैतान्॥ १७ ॥

तदनन्तर रोते हुए धृतराष्ट्रने सुन्दर शरीरवाले भीमसेन, अर्जुन तथा माद्रीके दोनों पुत्र नरवीर नकुल-सहदेवको अपने अङ्गोंसे लगाया और उन्हें सान्त्वना देकर कहा—'तुम्हारा कल्याण हो' ॥ १७ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि धृतराष्ट्रकोपविमोचने पाण्डवपरिष्वङ्गो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिकपर्वमें 'धृतराष्ट्रका क्रोध छोड़कर पाण्डवोंको हृदयसे लगाना' नामक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

पाण्डवोंको शाप देनेके लिये उद्यत हुई गान्धारीको व्यासजीका समझाना

वैशम्पायन उवाच

धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातास्ततस्ते कुरुपाण्डवाः।
अभ्ययुर्भ्रातरः सर्वे गान्धारीं सह केशवाः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर धृतराष्ट्रकी आज्ञा लेकर वे कुरुवंशी पाण्डव सभी भाई भगवान् श्रीकृष्णके साथ गान्धारीके पास गये ॥ १ ॥

ततो ज्ञात्वा हतामित्रं युधिष्ठिरमुपागतम्।
गान्धारी पुत्रशोकार्ता शप्तुमैच्छदनिन्दिता ॥ २ ॥

पुत्रशोकसे पीड़ित हुई गान्धारीको जब यह मालूम हुआ कि युधिष्ठिर अपने शत्रुओंका संहार करके मेरे पास आये हैं, तब उन सती-साध्वी देवीने उन्हें शाप देनेकी इच्छा की ॥२॥

तस्याः पापमभिप्रायं विदित्वा पाण्डवान् प्रति।
ऋषिः सत्यवतीपुत्रः प्रागेव समबुध्यत ॥ ३ ॥
स गङ्गायामुपस्पृश्य पुण्यगन्धि पयः शुचि।
तं देशमुपसम्पेदे परमर्षिर्मनोजवः ॥ ४ ॥

पाण्डवोंके प्रति गान्धारीके मनमें पापपूर्ण संकल्प है, इस बातको सत्यवतीनन्दन महर्षि व्यास पहले ही जान गये थे। उनके उस अभिप्रायको जानकर वे मनके समान वेगशाली महर्षि गङ्गाजीके पवित्र एवं सुगन्धित जलसे आचमन करके शीघ्र ही उस स्थानपर आ पहुँचे ॥ ३-४ ॥

दिव्येन चक्षुषा पश्यन् मनसा तद्गतेन च।
सर्वप्राणभृतां भावं स तत्र समबुध्यत ॥ ५ ॥

वे दिव्य दृष्टिसे तथा अपने मनको समस्त प्राणियोंके साथ एकाग्र करके उनके आन्तरिक भावको समझ लेते थे ॥ ५ ॥

स स्नुषामब्रवीत् काले कल्यवादी महातपाः।
शापकालमवाक्षिप्य शमकालमुदीरयन् ॥ ६ ॥

अतः हितकी बात बतानेवाले वे महातपस्वी व्यास समय-पर अपनी पुत्रवधूके पास जा पहुँचे और शापका अवसर हटाकर शान्तिका अवसर उपस्थित करते हुए इस प्रकार बोले—॥ ६ ॥

न कोपः पाण्डवे कार्यो गान्धारि शममाप्नुहि।
वचो निगृह्यतामेतच्छृणु चेदं वचो मम ॥ ७ ॥

'गान्धारराजकुमारी ! शान्त हो जाओ। तुम्हें पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरपर क्रोध नहीं करना चाहिये। अभी-अभी जो बात मुँहसे निकालना चाहती हो, उसे रोक लो और मेरी यह बात सुनो ॥ ७ ॥

उक्तास्यष्टादशाहानि पुत्रेण जयमिच्छता।
शिवमाशास्व मे मातर्युध्यमानस्य शत्रुभिः ॥ ८ ॥

'गत अठारह दिनोंमें विजयकी अभिलाषा रखनेवाला तुम्हारा पुत्र प्रतिदिन तुमसे जाकर कहता था कि 'माँ ! मैं शत्रुओंके साथ युद्ध करने जा रहा हूँ। तुम मेरे कल्याणके लिये आशीर्वाद दो' ॥ ८ ॥

सा तथा याच्यमाना त्वं काले काले जयैषिणा।
उक्तवत्यसि गान्धारि यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ९ ॥

'इस प्रकार जब विजयाभिलाषी दुर्योधन समय-समयपर तुमसे प्रार्थना करता था, तब तुम सदा यही उत्तर देती थीं कि 'जहाँ धर्म है, वहीं विजय है' ॥ ९ ॥

न चाप्यतीतां गान्धारि वाचं ते वितथामहम्।
स्मरामि भाषमाणायास्तथा प्रणिहिता ह्यसि ॥ १० ॥

'गान्धारी ! तुमने बातचीतके प्रसङ्गमें भी पहले कभी झूठ कहा हो, ऐसा मुझे स्मरण नहीं है तथा तुम सदा प्राणियोंके हितमें तत्पर रहती आयी हो ॥ १० ॥

विग्रहे तुमुले राज्ञां गत्वा पारमसंशयम्।
जितं पाण्डुसुतैर्युद्धे नूनं धर्मस्ततोऽधिकः ॥ ११ ॥

'राजाओंके इस घोर संग्राममें पार होकर पाण्डवोंने जो युद्धमें विजय पायी है, इससे निःसंदेह यह बात सिद्ध हो गयी कि 'धर्मका बल सबसे अधिक है' ॥ ११ ॥

क्षमाशीला पुरा भूत्वा साद्य न क्षमसे कथम्।
अधर्मं जहि धर्मज्ञे यतो धर्मस्ततो जयः ॥ १२ ॥

'धर्मज्ञे ! तुम तो पहले बड़ी क्षमाशील थी। अब क्यों नहीं क्षमा करती हो ? अधर्म छोड़ो, क्योंकि जहाँ धर्म है, वहीं विजय है ॥ १२ ॥

स्वं च धर्मं परिस्मृत्य वाचं चोक्तां मनस्विनि।
कोपं संयच्छ गान्धारि मैवं भूः सत्यवादिनि ॥ १३ ॥

'मनस्विनी गान्धारी ! अपने धर्म तथा कही हुई बातका स्मरण करके क्रोधको रोको। सत्यवादिनि ! अब फिर तुम्हारा ऐसा बर्ताव नहीं होना चाहिये' ॥ १३ ॥

गान्धार्युवाच

भगवन्नाभ्यसूयामि नैतानिच्छामि नश्यतः।
पुत्रशोकेन तु बलान्मनो विह्वलतीव मे ॥ १४ ॥

गान्धारी बोली—भगवन् ! मैं पाण्डवोंके प्रति कोई दुर्भाव नहीं रखती और न इनका विनाश ही चाहती हूँ; परंतु क्या करूँ ? पुत्रोंके शोकसे मेरा मन हठात् व्याकुल-सा हो जाता है ॥ १४ ॥

यथैव कुन्त्या कौन्तेया रक्षितव्यास्तथा मया।
तथैव धृतराष्ट्रेण रक्षितव्या यथा त्वया ॥ १५ ॥

कुन्तीके ये बेटे जिस प्रकार कुन्तीके द्वारा रक्षणीय हैं, उसी प्रकार मुझे भी इनकी रक्षा करनी चाहिये। जैसे आप इनकी रक्षा चाहते हैं, उसी प्रकार महाराज धृतराष्ट्रका भी कर्तव्य है कि इनकी रक्षा करें ॥ १५ ॥

दुर्योधनापराधेन शकुनेः सौबलस्य च।
कर्णदुःशासनाभ्यां च कृतोऽयं कुरुसंक्षयः ॥ १६ ॥

कुरुकुलका यह संहार तो दुर्योधन, मेरे भाई शकुनि, कर्ण तथा दुःशासनके अपराधसे ही हुआ है ॥ १६ ॥

नापराध्यति बीभत्सुर्न च पार्थो वृकोदरः।
नकुलः सहदेवश्च नैव जातु युधिष्ठिरः ॥ १७ ॥

इसमें न तो अर्जुनका अपराध है और न कुन्तीपुत्र भीमसेनका। नकुल-सहदेव और युधिष्ठिरको भी कभी इसके लिये दोष नहीं दिया जा सकता ॥ १७ ॥

युध्यमाना हि कौरव्याः कृन्तमानाः परस्परम्।
निहताः सहिताश्चान्यैस्तत्र नास्त्यप्रियं मम ॥ १८ ॥

कौरव आपसमें ही जूझकर मारकाट मचाते हुए अपने दूसरे साथियोंके साथ मारे गये हैं; अतः इसमें मुझे अप्रिय लगनेवाली कोई बात नहीं है ॥ १८ ॥

किं तु कर्माकरोद् भीमो वासुदेवस्य पश्यतः।
दुर्योधनं समाहूय गदायुद्धे महामनाः ॥ १९ ॥
शिक्षयाभ्यधिकं ज्ञात्वा चरन्तं बहुधा रणे।
अधो नाभ्याः प्रहृतवांस्तन्मे कोपमवर्धयत् ॥ २० ॥

परंतु महामना भीमसेनने गदायुद्धके लिये दुर्योधनको बुलाकर श्रीकृष्णके देखते-देखते उसके प्रति जो बर्ताव किया है, वह मुझे अच्छा नहीं लगा। वह रणभूमिमें अनेक प्रकारके पैंतरे दिखाता हुआ विचर रहा था; अतः शिक्षामें उसे अपनेसे अधिक जान भीमने जो उसकी नाभिसे नीचे प्रहार किया, इनके इसी बर्तावने मेरे क्रोधको बढ़ा दिया है १९-२०

कथं नु धर्मं धर्मज्ञैः समुद्दिष्टं महात्मभिः।
त्यजेयुराहवे शूराः प्राणहेतोः कथंचन ॥ २१ ॥

धर्मज्ञ महात्माओंने गदायुद्धके लिये जिस धर्मका प्रतिपादन किया है, उसे शूरवीर योद्धा रणभूमिमें किसी तरह अपने प्राण बचानेके लिये कैसे त्याग सकते हैं ? ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि गान्धारीसान्त्वनायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिकपर्वमें गान्धारीकी सान्त्वनाविषयक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

भीमसेनका गान्धारीको अपनी सफाई देते हुए उनसे क्षमा माँगना, युधिष्ठिरका अपना अपराध स्वीकार करना, गान्धारीके दृष्टिपातसे युधिष्ठिरके पैरोंके नखोंका काला पड़ जाना, अर्जुनका भयभीत होकर श्रीकृष्णके पीछे छिप जाना, पाण्डवोंका अपनी मातासे मिलना, द्रौपदीका विलाप, कुन्तीका आश्वासन तथा गान्धारीका उन दोनोंको धीरज बँधाना

वैशम्पायन उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या भीमसेनोऽथ भीतवत्।
गान्धारीं प्रत्युवाचेदं वचः सानुनयं तदा ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! गान्धारीकी यह बात सुनकर भीमसेनने डरे हुएकी भाँति विनयपूर्वक उनकी बातका उत्तर देते हुए कहा—॥ १ ॥

अधर्मो यदि वा धर्मस्त्रासात् तत्र मया कृतः।
आत्मानं त्रातुकामेन तन्मे त्वं क्षन्तुमर्हसि ॥ २ ॥

'माताजी ! यह अधर्म हो या धर्म; मैंने दुर्योधनसे डरकर अपने प्राण बचानेके लिये ही वहाँ ऐसा किया था; अतः आप मेरे उस अपराधको क्षमा कर दें ॥ २ ॥

न हि युद्धेन पुत्रस्ते धर्म्येण स महाबलः।
शक्यः केनचिदुद्यन्तुमतो विषममाचरम् ॥ ३ ॥

'आपके उस महाबली पुत्रको कोई भी धर्मानुकूल युद्ध करके मारनेका साहस नहीं कर सकता था; अतः मैंने विषमतापूर्ण बर्ताव किया ॥ ३ ॥

अधर्मेण जितः पूर्वं तेन चापि युधिष्ठिरः।
निकृताश्च सदैव स्म ततो विषममाचरम् ॥ ४ ॥

'पहले उसने भी अधर्मसे ही राजा युधिष्ठिरको जीता था और हमलोगोंके साथ सदा ही धोखा किया था, इसलिये मैंने भी उसके साथ विषम बर्ताव किया ॥ ४ ॥

सैन्यस्यैकोऽवशिष्टोऽयं गदायुद्धेन वीर्यवान् ।
मां हत्वा न हरेद् राज्यमिति वै तत् कृतं मया॥ ५ ॥

'कौरवसेनाका एकमात्र बचा हुआ यह पराक्रमी वीर गदायुद्धके द्वारा मुझे मारकर पुनः सारा राज्य हर न ले, इसी आशङ्कासे मैंने वह अयोग्य बर्ताव किया था ॥ ५ ॥

राजपुत्रीं च पाञ्चालीमेकवस्त्रां रजस्वलाम् ।
भवत्या विदितं सर्वमुक्तवान् यत् सुतस्तव ॥ ६ ॥

'राजकुमारी द्रौपदीसे, जो एक वस्त्र धारण किये रजस्वला-अवस्थामें थी, आपके पुत्रने जो कुछ कहा था, वह सब आप जानती हैं ॥ ६ ॥

सुयोधनमसंगृह्य न शक्या भूः ससागरा ।
केवला भोक्तुमस्माभिरतश्चैतत् कृतं मया ॥ ७ ॥

'दुर्योधनका संहार किये बिना हमलोग निष्कण्टक पृथ्वीका राज्य नहीं भोग सकते थे, इसलिये मैंने यह अयोग्य कार्य किया ॥ ७ ॥

तथाप्यप्रियमस्माकं पुत्रस्ते समुपाचरत् ।
द्रौपद्या यत् सभामध्ये सव्यमूरुमदर्शयत् ॥ ८ ॥

'आपके पुत्रने तो हम सब लोगोंका इससे भी बढ़कर अप्रिय किया था कि उसने भरी सभामें द्रौपदीको अपनी बाँयीं जाँघ दिखायी ॥ ८ ॥

तदैव वध्यः सोऽस्माकं दुराचारश्च ते सुतः ।
धर्मराजाज्ञया चैव स्थिताः स्म समये तदा ॥ ९ ॥

'आपके उस दुराचारी पुत्रको तो हमें उसी समय मार डालना चाहिये था; परंतु धर्मराजकी आज्ञासे हमलोग समयके बन्धनमें बँधकर चुप रह गये ॥ ९ ॥

वैरमुद्दीपितं राज्ञि पुत्रेण तव तन्महत् ।
क्लेशिताश्च वने नित्यं तत एतत् कृतं मया ॥ १० ॥

'रानी ! आपके पुत्रने उस महान् वैरकी आगको और भी प्रज्वलित कर दिया और हमें वनमें भेजकर सदा क्लेश पहुँचाया; इसीलिये हमने उसके साथ ऐसा व्यवहार किया है ॥

वैरस्यास्य गताः पारं हत्वा दुर्योधनं रणे ।
राज्यं युधिष्ठिरः प्राप्तो वयं च गतमन्यवः ॥ ११ ॥

'रणभूमिमें दुर्योधनका वध करके हमलोग इस वैरसे पार हो गये । राजा युधिष्ठिरको राज्य मिल गया और हमलोगोंका क्रोध शान्त हो गया' ॥ ११ ॥

गान्धार्युवाच

न तस्यैष वधस्तात यत् प्रशंससि मे सुतम् ।
कृतवांश्चापि तत् सर्वं यदिदं भाषसे मयि ॥ १२ ॥

गान्धारी बोलीं—तात ! तुम मेरे पुत्रकी इतनी प्रशंसा कर रहे हो; इसलिये यह उसका वध नहीं हुआ (वह अपने यशोमय शरीरसे अमर है) और मेरे सामने तुम जो कुछ कह रहे हो, वह सारा अपराध दुर्योधनने अवश्य किया है ॥१२॥

हताश्वे नकुले यत्तु वृषसेनेन भारत ।
अपिबः शोणितं संख्ये दुःशासनशरीरजम् ॥ १३ ॥
सद्भिर्विगर्हितं घोरमनार्यजनसेवितम् ।
क्रूरं कर्माकृथास्तस्मात्तदयुक्तं वृकोदर ॥ १४ ॥

भारत ! परंतु वृषसेनने जब नकुलके घोड़ोंको मारकर उसे रथहीन कर दिया था, उस समय तुमने युद्धमें दुःशासनको मारकर जो उसका खून पी लिया, वह सत्पुरुषोंद्वारा निन्दित और नीच पुरुषोंद्वारा सेवित घोर क्रूरतापूर्ण कर्म है। वृकोदर ! तुमने वही क्रूर कार्य किया है, इसलिये तुम्हारे द्वारा अत्यन्त अयोग्य कर्म बन गया है ॥ १३-१४ ॥

भीमसेन उवाच

अन्यस्यापि न पातव्यं रुधिरं किं पुनः स्वकम् ।
यथैवात्मा तथा भ्राता विशेषो नास्ति कश्चन ॥ १५ ॥

भीमसेन बोले—माताजी ! दूसरेका भी खून नहीं पीना चाहिये; फिर अपना ही खून कोई कैसे पी सकता है ? जैसे अपना शरीर है, वैसे ही भाईका शरीर है । अपनेमें और भाईमें कोई अन्तर नहीं है ॥ १५ ॥

रुधिरं न व्यतिक्रामद् दन्तोष्ठं मेऽम्ब मा शुचः ।
वैवस्वतस्तु तद् वेद हस्तौ मे रुधिरोक्षितौ ॥ १६ ॥

माँ ! आप शोक न करें । वह खून मेरे दाँतों और ओठोंको लाँघकर आगे नहीं जा सका था । इस बातको सूर्य-पुत्र यमराज जानते हैं कि केवल मेरे दोनों हाथ ही रक्तमें सने हुए थे ॥ १६ ॥

हताश्वं नकुलं दृष्ट्वा वृषसेनेन संयुगे ।
भ्रातॄणां सम्प्रहृष्टानां त्रासः संजनितो मया ॥ १७ ॥

युद्धमें वृषसेनके द्वारा नकुलके घोड़ोंको मारा गया देख जो दुःशासनके सभी भाई हर्षसे उल्लसित हो उठे थे, उनके मनमें वैसा करके मैंने केवल त्रास उत्पन्न किया था ॥

केशपक्षपरामर्शे द्रौपद्या द्यूतकारिते ।
क्रोधाद् यदब्रवं चाहं तच्च मे हृदि वर्तते ॥ १८ ॥

द्यूतक्रीडाके समय जब द्रौपदीका केश खींचा गया, उस समय क्रोधमें भरकर मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, उसकी याद हमारे हृदयमें बराबर बनी रहती थी ॥ १८ ॥

क्षत्रधर्माच्च्युतो राज्ञि भवेयं शाश्वतीः समाः ।
प्रतिज्ञां तामनिस्तीर्य ततस्तत् कृतवानहम् ॥ १९ ॥

रानीजी ! यदि मैं उस प्रतिज्ञाको पूर्ण न करता तो सदाके लिये क्षत्रिय-धर्मसे गिर जाता, इसलिये मैंने यह काम किया था ॥ १९ ॥

न मामर्हसि गान्धारि दोषेण परिशङ्कितुम् ।
अनिगृह्य पुरा पुत्रानस्मास्वनपकारिषु ।
अधुना किं नु दोषेण परिशङ्कितुमर्हसि ॥ २० ॥

माता गान्धारी ! आपको मुझमें दोषकी आशङ्का नहीं करनी चाहिये । पहले जब हमलोगोंने कोई अपराध नहीं किया था, उस समय हमपर अत्याचार करनेवाले अपने पुत्रोंको तो आपने रोका नहीं; फिर इस समय आप क्यों मुझपर दोषारोपण करती हैं ? ॥ २० ॥

गान्धार्युवाच

वृद्धस्यास्य शतं पुत्रान् निघ्नंस्त्वमपराजितः ।
कस्मान्नाशेषयः कंचिद् येनाल्पमपराधितम् ॥ २१ ॥

गान्धारी बोलीं—बेटा ! तुम अपराजित वीर हो। तुमने इन बूढ़े महाराजके सौ पुत्रोंको मारते समय किसी एकको भी, जिसने बहुत थोड़ा अपराध किया था, क्यों नहीं जीवित छोड़ दिया ? ॥ २१ ॥

संतानमावयोस्तात वृद्धयोर्हृतराज्ययोः।
कथमन्धद्वयस्यास्य यष्टिरेका न वर्जिता ॥ २२ ॥

तात ! हम दोनों बूढ़े हुए। हमारा राज्य भी तुमने छीन लिया। ऐसी दशामें हमारी एक ही संतानको—हम दो अन्धोंके लिये एक ही लाठीके सहारेको तुमने क्यों नहीं जीवित छोड़ दिया ? ॥ २२ ॥

शेषे ह्यवस्थिते तात पुत्राणामन्तके त्वयि।
न मे दुःखं भवेदेतद् यदि त्वं धर्ममाचरेः ॥ २३ ॥

तात ! तुम मेरे सारे पुत्रोंके लिये यमराज बन गये। यदि तुम धर्मका आचरण करते और मेरा एक पुत्र भी शेष रह जाता तो मुझे इतना दुःख नहीं होता ॥ २३ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा तु गान्धारी युधिष्ठिरमपृच्छत।
क्व स राजेति सक्रोधा पुत्रपौत्रवधार्दिता ॥ २४ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! भीमसेनसे ऐसा कहकर अपने पुत्रों और पौत्रोंके वधसे पीड़ित हुई गान्धारीने कुपित होकर पूछा—'कहाँ है वह राजा युधिष्ठिर ?' ॥ २४ ॥

तमभ्यगच्छद् राजेन्द्रो वेपमानः कृताञ्जलिः।
युधिष्ठिरस्त्विदं तत्र मधुरं वाक्यमब्रवीत् ॥ २५ ॥
पुत्रहन्ता नृशंसोऽहं तव देवि युधिष्ठिरः।
शापार्हः पृथिवीनाशे हेतुभूतः शपस्व माम् ॥ २६ ॥

यह सुनकर महाराज युधिष्ठिर काँपते हुए हाथ जोड़े उनके सामने आये और बड़ी मीठी वाणीमें बोले—'देवि ! आपके पुत्रोंका संहार करनेवाला क्रूरकर्मा युधिष्ठिर मैं हूँ। पृथ्वीभरके राजाओंका नाश करानेमें मैं ही हेतु हूँ, इसलिये शापके योग्य हूँ। आप मुझे शाप दे दीजिये ॥ २५-२६ ॥

न हि मे जीवितेनार्थो न राज्येन धनेन वा।
तादृशान् सुहृदो हत्वा मूढस्यास्य सुहृद्द्रुहः ॥ २७ ॥

'मैं अपने सुहृदोंका द्रोही और अविवेकी हूँ। वैसे-वैसे श्रेष्ठ सुहृदोंका वध करके अब मुझे जीवन, राज्य अथवा धनसे कोई प्रयोजन नहीं है' ॥ २७ ॥

तमेवंवादिनं भीतं संनिकर्षगतं तदा।
नोवाच किंचिद् गान्धारी निःश्वासपरमा भृशम् ॥ २८ ॥

जब निकट आकर डरे हुए राजा युधिष्ठिरने, ऐसी बातें कहीं, तब गान्धारी देवी जोर-जोरसे साँस खींचती हुई सिसकने लगीं। वे मुँहसे कुछ बोल न सकीं ॥ २८ ॥

तस्यावनतदेहस्य पादयोर्निपतिष्यतः।
युधिष्ठिरस्य नृपतेर्धर्मज्ञा दीर्घदर्शिनी ॥ २९ ॥
अंगुल्यग्राणि ददृशे देवी पट्टान्तरेण सा।
ततः स कुनखीभूतो दर्शनीयनखो नृपः ॥ ३० ॥

राजा युधिष्ठिर शरीरको झुकाकर गान्धारीके चरणोंपर गिर जाना चाहते थे। इतनेहीमें धर्मको जाननेवाली दूरदर्शिनी देवी गान्धारीने पट्टीके भीतरसे ही राजा युधिष्ठिरके पैरोंकी अङ्गुलियोंके अग्रभाग देख लिये। इतनेहीसे राजाके नख काले पड़ गये। इसके पहले उनके नख बड़े ही सुन्दर और दर्शनीय थे ॥ २९-३० ॥

तं दृष्ट्वा चार्जुनोऽगच्छद् वासुदेवस्य पृष्ठतः।
एवं संचेष्टमानांस्तानितश्चेतश्च भारत ॥ ३१ ॥
गान्धारी विगतक्रोधा सान्त्वयामास मातृवत्।

उनकी यह अवस्था देख अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णके पीछे जाकर छिप गये। भारत ! उन्हें इस प्रकार इधर-उधर छिपनेकी चेष्टा करते देख गान्धारीका क्रोध उतर गया और उन्होंने उन सबको स्नेहमयी माताके समान सान्त्वना दी॥

तया ते समनुज्ञाता मातरं वीरमातरम् ॥ ३२ ॥
अभ्यगच्छन्त सहिताः पृथां पृथुलवक्षसः।

फिर उनकी आज्ञा ले चौड़ी छातीवाले सभी पाण्डव एक साथ वीरजननी माता कुन्तीके पास गये ॥ ३२½ ॥

चिरस्य दृष्ट्वा पुत्रान् सा पुत्राधिभिरभिप्लुता ॥ ३३ ॥
बाष्पमाहारयद् देवी वस्त्रेणावृत्य वै मुखम्।

कुन्तीदेवी दीर्घकालके बाद अपने पुत्रोंको देखकर उनके कष्टोंका स्मरण करके करुणामें डूब गयीं और अञ्चलसे मुँह ढककर आँसू बहाने लगीं ॥ ३३½ ॥

ततो बाष्पं समुत्सृज्य सह पुत्रैस्तदा पृथा ॥ ३४ ॥
अपश्यदेताञ्शस्त्रौघैर्बहुधा क्षतविक्षतान्।

पुत्रोंसहित आँसू बहाकर उन्होंने उनके शरीरोंपर बारंबार दृष्टिपात किया; वे सभी अस्त्र-शस्त्रोंकी चोटसे घायल हो रहे थे ॥ ३४½ ॥

सा तानेकैकशः पुत्रान् संस्पृशन्ती पुनः पुनः ॥ ३५ ॥
अन्वशोचत दुःखार्ता द्रौपदीं च हतात्मजाम्।
रुदतीमथ पाञ्चालीं ददर्श पतितां भुवि ॥ ३६ ॥

बारी-बारीसे पुत्रोंके शरीरपर बारंबार हाथ फेरती हुई कुन्ती दुःखसे आतुर हो उस द्रौपदीके लिये शोक करने लगीं, जिसके सभी पुत्र मारे गये थे। इतनेमें ही उन्होंने देखा कि द्रौपदी पास ही पृथ्वीपर गिरकर रो रही है ॥ ३५-३६ ॥

द्रौपद्युवाच

आर्ये पौत्राः क्व ते सर्वे सौभद्रसहिता गताः।
न त्वां तेऽद्याभिगच्छन्ति चिरं दृष्ट्वा तपस्विनीम् ॥ ३७ ॥
किं नु राज्येन वै कार्यं विहीनायाः सुतैर्मम।

द्रौपदी बोली—आर्ये ! अभिमन्युसहित वे आपके सभी पौत्र कहाँ चले गये ? वे दीर्घकालके बाद आयी हुई आज आप तपस्विनी देवीको देखकर आपके निकट क्यों नहीं आ रहे हैं ? अपने पुत्रोंसे हीन होकर अब इस राज्यसे हमें क्या कार्य है ? ॥ ३७½ ॥

तां समाश्वासयामास पृथा पृथुललोचना ॥ ३८ ॥
उत्थाप्य याज्ञसेनीं तु रुदतीं शोककर्शिताम्।
तयैव सहिता चापि पुत्रैरनुगता नृप ॥ ३९ ॥
अभ्यगच्छत गान्धारीमार्तामार्ततरा स्वयम्।

नरेश्वर ! विशाल नेत्रोंवाली कुन्तीने शोकसे कातर हो रोती हुई द्रुपदकुमारीको उठाकर धीरज बँधाया और उसके साथ ही वे स्वयं भी अत्यन्त आर्त होकर शोकाकुल गान्धारीके पास गयीं। उस समय उनके पुत्र पाण्डव भी उनके पीछे-पीछे गये ॥ ३८-३९½ ॥

वैशम्पायन उवाच

तामुवाचाथ गान्धारी सह वध्वा यशस्विनीम् ॥ ४० ॥
मैवं पुत्रीति शोकार्ता पश्य मामपि दुःखिताम् ।
मन्ये लोकविनाशोऽयं कालपर्यायनोदितः ॥ ४१ ॥
अवश्यभावी सम्प्राप्तः स्वभावाल्लोमहर्षणः ।
इदं तत् समनुप्राप्तं विदुरस्य वचो महत् ॥ ४२ ॥
असिद्धानुनये कृष्णे यदुवाच महामतिः ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! गान्धारीने बहू द्रौपदी और यशस्विनी कुन्तीसे कहा—'बेटी ! इस प्रकार शोकसे व्याकुल न होओ। देखो, मैं भी तो दुःखमें डूबी हुई हूँ। मैं समझती हूँ, समयके उलट-फेरसे प्रेरित होकर यह सम्पूर्ण जगत्का विनाश हुआ है, जो स्वभावसे ही रोमाञ्चकारी है। यह काण्ड अवश्यम्भावी था, इसीलिये प्राप्त हुआ है। जब संधि करानेके विषयमें श्रीकृष्णकी अनुनय-विनय सफल नहीं हुई, उस समय परम बुद्धिमान् विदुरजीने जो महत्त्वपूर्ण बात कही थी, उसीके अनुसार यह सब कुछ सामने आया है ॥ ४०-४२½ ॥

तस्मिन्नपरिहार्येऽर्थे व्यतीते च विशेषतः ॥ ४३ ॥
मा शुचो न हि शोच्यास्ते संग्रामे निधनं गताः ।
यथैवाहं तथैव त्वं को नावाश्वासयिष्यति ।
ममैव ह्यपराधेन कुलमग्र्यं विनाशितम् ॥ ४४ ॥

'जब यह विनाश किसी तरह टल नहीं सकता था, विशेषतः जब सब कुछ होकर समाप्त हो गया, तो अब तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। वे सभी वीर संग्राममें मारे गये हैं, अतः शोक करनेके योग्य नहीं हैं। आज जैसी मैं हूँ, वैसी ही तुम भी हो। हम दोनोंको कौन धीरज बँधायेगा ? मेरे ही अपराधसे इस श्रेष्ठ कुलका संहार हुआ है' ॥ ४३-४४ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि जलप्रदानिकपर्वणि पृथापुत्रदर्शने पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत जलप्रदानिकपर्वमें कुन्तीको अपने पुत्रोंका दर्शनविषयक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५ ॥

(स्त्रीविलापपर्व)

षोडशोऽध्यायः

वेदव्यासजीके वरदानसे दिव्य दृष्टिसम्पन्न हुई गान्धारीका युद्धस्थलमें मारे गये योद्धाओं तथा रोती हुई बहुओंको देखकर श्रीकृष्णके सम्मुख विलाप

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा तु गान्धारी कुरूणामवकर्तनम् ।
अपश्यत्तत्र तिष्ठन्ती सर्वं दिव्येन चक्षुषा ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! ऐसा कहकर गान्धारी देवीने वहीं खड़ी रहकर अपनी दिव्य दृष्टिसे कौरवोंका वह सारा विनाशस्थल देखा ॥ १ ॥

पतिव्रता महाभागा समानव्रतचारिणी ।
उग्रेण तपसा युक्ता सततं सत्यवादिनी ॥ २ ॥

गान्धारी बड़ी ही पतिव्रता, परम सौभाग्यवती, पतिके समान व्रतका पालन करनेवाली, उग्र तपस्यासे युक्त तथा सदा सत्य बोलनेवाली थीं ॥ २ ॥

वरदानेन कृष्णस्य महर्षेः पुण्यकर्मणः ।
दिव्यज्ञानबलोपेता विविधं पर्यदेवयत् ॥ ३ ॥

पुण्यात्मा महर्षि व्यासके वरदानसे वे दिव्य ज्ञान-बलसे सम्पन्न हो गयी थीं; अतः रणभूमिका दृश्य देखकर अनेक प्रकारसे विलाप करने लगीं ॥ ३ ॥

ददर्श सा बुद्धिमती दूरादपि यथान्तिके ।
रणाजिरं नृवीराणामद्भुतं लोमहर्षणम् ॥ ४ ॥

बुद्धिमती गान्धारीने नरवीरोंके उस अद्भुत एवं रोमाञ्चकारी समराङ्गणको दूरसे भी उसी तरह देखा, जैसे निकटसे देखा जाता है ॥ ४ ॥

अस्थिकेशवसाकीर्णं शोणितौघपरिप्लुतम् ।
शरीरैर्बहुसाहस्रैर्विनिकीर्णं समन्ततः ॥ ५ ॥

वह रणक्षेत्र हड्डियों, केशों और चर्बियोंसे भरा था, रक्तके प्रवाहसे आप्लावित हो रहा था, कई हजार लाशें वहाँ चारों ओर बिखरी हुई थीं ॥ ५ ॥

गजाश्वरथयोधानामावृतं रुधिराविलैः ।
शरीरैरशिरस्कैश्च विदेहैश्च शिरोगणैः ॥ ६ ॥

हाथीसवार, घुड़सवार तथा रथी योद्धाओंके रक्तसे मलिन हुए बिना सिरके अगणित धड़ और बिना धड़के असंख्य मस्तक उस रणभूमिको ढँके हुए थे ॥ ६ ॥

गजाश्वनरनारीणां निःस्वनैरभिसंवृतम् ।
शृगालबककाकोलकङ्ककाकनिषेवितम् ॥ ७ ॥

हाथियों, घोड़ों, मनुष्यों और स्त्रियोंके आर्तनादसे वह सारा युद्धस्थल गूँज रहा था। सियार, बगुले, काले कौए, कङ्क और काक उस भूमिका सेवन करते थे ॥ ७ ॥

रक्षसां पुरुषादानां मोदनं कुरराकुलम् ।
अशिवाभिः शिवाभिश्च नादितं गृध्रसेवितम् ॥ ८ ॥

वह स्थान नरभक्षी राक्षसोंको आनन्द दे रहा था। वहाँ सब ओर कुरर पक्षी छा रहे थे। अमङ्गलमयी गीदड़ियाँ अपनी बोली बोल रही थीं, गीध सब ओर बैठे हुए थे ॥ ८ ॥

ततो व्यासाभ्यनुज्ञातो धृतराष्ट्रो महीपतिः ।

पाण्डुपुत्राश्च ते सर्वे युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ ९ ॥

उस समय भगवान् व्यासकी आज्ञा पाकर राजा धृतराष्ट्र तथा युधिष्ठिर आदि समस्त पाण्डव रणभूमिकी ओर चले ॥

वासुदेवं पुरस्कृत्य हतबन्धुं च पार्थिवम् ।
कुरुस्त्रियः समासाद्य जग्मुरायोधनं प्रति ॥ १० ॥

जिनके बन्धु-बान्धव मारे गये थे, उन राजा धृतराष्ट्र तथा भगवान् श्रीकृष्णको आगे करके कुरुकुलकी स्त्रियोंको साथ ले वे सब लोग युद्धस्थलमें गये ॥ १० ॥

समासाद्य कुरुक्षेत्रं ताः स्त्रियो निहतेश्वराः ।
अपश्यन्त हतांस्तत्र पुत्रान् भ्रातृन् पितृन् पतीन् ॥ ११ ॥
क्रव्यादैर्भक्ष्यमाणान् वै गोमायुबलवायसैः ।
भूतैः पिशाचै रक्षोभिर्विविधैश्च निशाचरैः ॥ १२ ॥

कुरुक्षेत्रमें पहुँचकर उन अनाथ स्त्रियोंने वहाँ मारे गये अपने पुत्रों, भाइयों, पिताओं तथा पतियोंके शरीरोंको देखा, जिन्हें मांस-भक्षी जीव-जन्तु, गीदड़समूह, कौए, भूत, पिशाच, राक्षस और नाना प्रकारके निशाचर नोच-नोचकर खा रहे थे॥

रुद्राक्रीडनिभं दृष्ट्वा तदा विशसनं स्त्रियः ।
महार्हेभ्योऽथ यानेभ्यो विक्रोशन्त्यो निपेतिरे ॥ १३ ॥

रुद्रकी क्रीडास्थलीके समान उस रणभूमिको देखकर वे स्त्रियाँ अपने बहुमूल्य रथोंसे क्रन्दन करती हुई नीचे गिर पड़ीं ॥ १३ ॥

अदृष्टपूर्वं पश्यन्त्यो दुःखार्ता भरतस्त्रियः ।
शरीरेष्वस्खलन्नन्याः पतन्त्यश्चापरा भुवि ॥ १४ ॥

जिसे कभी देखा नहीं था, उस अद्भुत रणक्षेत्रको देखकर भरतकुलकी कुछ स्त्रियाँ दुःखसे आतुर हो लाशोंपर गिर पड़ीं और दूसरी बहुत-सी स्त्रियाँ धरतीपर गिर गयीं ॥

श्रान्तानां चाप्यनाथानां नासीत् काचन चेतना ।
पाञ्चालकुरुयोषाणां कृपणं तदभून्महत् ॥ १५ ॥

उन थकी-माँदी और अनाथ हुई पाञ्चालों तथा कौरवोंकी स्त्रियोंको वहाँ चेत नहीं रह गया था । उन सबकी बड़ी दयनीय दशा हो गयी थी ॥ १५ ॥

दुःखोपहतचित्ताभिः समन्तादनुनादितम् ।
दृष्ट्वाऽऽयोधनमत्युग्रं धर्मज्ञा सुबलात्मजा ॥ १६ ॥
ततः सा पुण्डरीकाक्षमामन्त्र्य पुरुषोत्तमम् ।
कुरूणां वैशसं दृष्ट्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥ १७ ॥

दुःखसे व्याकुलचित्त हुई युवतियोंके करुण-क्रन्दनसे वह अत्यन्त भयंकर युद्धस्थल सब ओरसे गूँज उठा । यह देखकर धर्मको जाननेवाली सुबलपुत्री गान्धारीने कमलनयन श्रीकृष्णको सम्बोधित करके कौरवोंके उस विनाशपर दृष्टिपात करते हुए कहा—॥ १६-१७ ॥

पश्यैताः पुण्डरीकाक्ष स्नुषा मे निहतेश्वराः ।
प्रकीर्णकेशाः क्रोशन्तीः कुररीरिव माधव ॥ १८ ॥

'कमलनयन माधव ! मेरी इन विधवा पुत्रवधुओंकी ओर देखो, जो केश बिखराये कुररीकी भाँति विलाप कर रही हैं ॥ १८ ॥

अमूस्त्वभिसमागम्य स्मरन्त्यो भर्तृजान् गुणान् ।
पृथगेवाभ्यधावन्त्यः पुत्रान् भ्रातृन् पितृन् पतीन् ॥ १९ ॥

'वे अपने पतियोंके गुणोंका स्मरण करती हुई उनकी लाशोंके पास जा रही हैं और पतियों, भाइयों, पिताओं तथा पुत्रोंके शरीरोंकी ओर पृथक्-पृथक् दौड़ रही हैं ॥ १९ ॥

वीरसूभिर्महाराज हतपुत्राभिरावृतम् ।
क्वचिच्च वीरपत्नीभिर्हतवीराभिराकृतम् ॥ २० ॥

'महाराज ! कहीं तो जिनके पुत्र मारे गये हैं उन वीर-प्रसविनी माताओंसे और कहीं जिनके पति वीरगतिको प्राप्त हो गये हैं, उन वीरपत्नियोंसे यह युद्धस्थल घिर गया है ॥

शोभितं पुरुषव्याघ्रैः कर्णभीष्माभिमन्युभिः ।
द्रोणद्रुपदशल्यैश्च ज्वलद्भिरिव पावकैः ॥ २१ ॥

'पुरुषसिंह कर्ण, भीष्म, अभिमन्यु, द्रोण, द्रुपद और शल्य-जैसे वीरोंसे, जो प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी थे, यह रणभूमि सुशोभित है ॥ २१ ॥

काञ्चनैः कवचैर्निष्कैर्मणिभिश्च महात्मनाम् ।
अङ्गदैर्हस्तकेयूरैः स्रग्भिश्च समलङ्कृतम् ॥ २२ ॥

'उन महामनस्वी वीरोंके सुवर्णमय कवचों, निष्कों, मणियों, अङ्गदों, केयूरों और हारोंसे समराङ्गण विभूषित दिखायी देता है ॥ २२ ॥

वीरबाहुविसृष्टाभिः शक्तिभिः परिघैरपि ।
खड्गैश्च विविधैस्तीक्ष्णैः सशरैश्च शरासनैः ॥ २३ ॥
क्रव्यादसंघैर्मुदितैस्तिष्ठद्भिः सहितैः क्वचित् ।
क्वचिदाक्रीडमानैश्च शयानैश्चापरैः क्वचित् ॥ २४ ॥
एतदेवंविधं वीर सम्पश्यायोधनं विभो ।
पश्यमाना हि दह्यामि शोकेनाहं जनार्दन ॥ २५ ॥

'कहीं वीरोंकी भुजाओंसे छोड़ी गयी शक्तियाँ पड़ी हैं, कहीं परिघ, नाना प्रकारके तीखे खड्ग और बाणसहित धनुष गिरे हुए हैं । कहीं झुंड-के-झुंड मांसभक्षी जीव-जन्तु आनन्दमग्न होकर एक साथ खड़े हैं, कहीं वे खेल रहे हैं और कहीं दूसरे-दूसरे जन्तु सोये पड़े हैं । वीर ! प्रभो ! इस प्रकार इन सबसे भरे हुए युद्धस्थलको देखो । जनार्दन ! मैं तो इसे देखकर शोकसे दग्ध हुई जाती हूँ ॥ २३–२५ ॥

पञ्चालानां कुरूणां च विनाशे मधुसूदन ।
पञ्चानामपि भूतानामहं वधमचिन्तयम् ॥ २६ ॥

'मधुसूदन ! इन पाञ्चाल और कौरव वीरोंके मारे जानेसे तो मेरे मनमें यह धारणा हो रही है कि पाँचों भूतोंका ही विनाश हो गया ॥ २६ ॥

तान् सुपर्णाश्च गृध्राश्च कर्षयन्त्यसृगुक्षिताः ।
विगृह्य चरणैर्गृध्रा भक्षयन्ति सहस्रशः ॥ २७ ॥

'उन वीरोंको खूनसे भीगे हुए गरुड़ और गीध इधर-उधर खींच रहे हैं । सहस्रों गीध उनके पैर पकड़-पकड़कर खा रहे हैं ॥ २७ ॥

जयद्रथस्य कर्णस्य तथैव द्रोणभीष्मयोः ।
अभिमन्योर्विनाशं च कश्चिन्तयितुमर्हति ॥ २८ ॥

'इस युद्धमें जयद्रथ, कर्ण, द्रोणाचार्य, भीष्म और अभिमन्यु-जैसे वीरोंका विनाश हो जायगा, यह कौन सोच सकता था ? ॥ २८ ॥

अवध्यकल्पान् निहतान् गतसत्त्वानचेतसः।
गृध्रकङ्कवटश्येनश्वशृगालादनीकृतान् ॥ २९ ॥

'जो अवध्य समझे जाते थे, वे भी मारे गये और अचेत एवं प्राणशून्य होकर यहाँ पड़े हैं। गीध, कंक, बटेर, बाज, कुत्ते और सियार उन्हें अपना आहार बना रहे हैं ॥ २९ ॥

अमर्षवशमापन्नान् दुर्योधनवशे स्थितान्।
पश्येमान् पुरुषव्याघ्रान् संशान्तान् पावकानिव॥ ३० ॥

'दुर्योधनके अधीन रहकर अमर्षके वशीभूत हो ये पुरुषसिंह वीरगण बुझी हुई आगके समान शान्त हो गये हैं। इनकी ओर दृष्टिपात तो करो ॥ ३० ॥

शयाना ये पुरा सर्वे मृदूनि शयनानि च।
विपन्नास्तेऽद्य वसुधां विवृतामधिशेरते ॥ ३१ ॥

'जो लोग पहले कोमल बिछौनोंपर सोया करते थे, वे सभी आज मरकर नंगी भूमिपर सो रहे हैं ॥ ३१ ॥

बन्दिभिः सततं काले स्तुवद्भिरभिनन्दिताः।
शिवानामशिवा घोराः शृण्वन्ति विविधा गिरः॥ ३२ ॥

'जिन्हें सदा ही समय-समयपर स्तुति करनेवाले बन्दीजन अपने वचनोंद्वारा आनन्दित करते थे, वे ही अब सियारिनोंकी अमङ्गलसूचक भाँति-भाँतिकी बोलियाँ सुन रहे हैं ॥ ३२ ॥

ये पुरा शेरते वीराः शयनेषु यशस्विनः।
चन्दनागुरुदिग्धाङ्गास्तेऽद्य पांसुषु शेरते ॥ ३३ ॥

'जो यशस्वी वीर पहले अपने अङ्गोंमें चन्दन और अगुरुचूर्णसे चर्चित हो सुखदायिनी शय्याओंपर सोते थे, वे ही आज धूलमें लोट रहे हैं ॥ ३३ ॥

तेषामाभरणान्येते गृध्रगोमायुवायसाः।
आक्षिपन्ति शिवा घोरा विनदन्त्यः पुनः पुनः॥ ३४ ॥

'उनके आभूषणोंको ये गीध, गीदड़, कौए और भयानक गीदड़ियाँ बारंबार चिल्लाती हुई इधर-उधर फेंकती हैं॥३४॥

बाणान् विनिशितान् पीतान् निस्त्रिंशान् विमला गदाः।
युद्धाभिमानिनः सर्वे जीवन्त इव बिभ्रति ॥ ३५ ॥

'ये सभी युद्धाभिमानी वीर जीवित पुरुषोंकी भाँति इस समय भी तीखे बाण, पानीदार तलवार और चमकीली गदाएँ हाथोंमें लिये हुए हैं ॥ ३५ ॥

सुरूपवर्णा बहवः क्रव्यादैरवघट्टिताः।
ऋषभप्रतिरूपाश्च शेरते हरितस्रजः ॥ ३६ ॥

'सुन्दर रूप और कान्तिवाले, साँड़ोंके समान हृष्ट-पुष्ट तथा हरे रंगके हार पहने हुए बहुत-से योद्धा यहाँ सोये पड़े हैं और मांसभक्षी जन्तु इन्हें उलट-पलट रहे हैं ॥ ३६ ॥

अपरे पुनरालिङ्ग्य गदाः परिघबाहवः।
शेरतेऽभिमुखाः शूरा दयिता इव योषितः ॥ ३७ ॥

'परिघके समान मोटी बाँहोंवाले दूसरे शूरवीर प्रेयसी युवतियोंकी भाँति गदाओंका आलिङ्गन करके सम्मुख सो रहे हैं॥

बिभ्रतः कवचान्यन्ये विमलान्यायुधानि च।
न धर्षयन्ति क्रव्यादा जीवन्तीति जनार्दन ॥ ३८ ॥

'जनार्दन ! बहुत-से योद्धा चमकीले कवच और आयुध धारण किये हुए हैं, जिससे उन्हें जीवित समझकर मांसभक्षी जन्तु उनपर आक्रमण नहीं करते हैं ॥ ३८ ॥

क्रव्यादैः कृष्यमाणानामपरेषां महात्मनाम्।
शातकौम्भ्यः स्रजश्चित्रा विप्रकीर्णाः समन्ततः॥ ३९ ॥

'दूसरे महामनस्वी वीरोंको मांसाहारी जीव इधर-उधर खींच रहे हैं, जिससे सोनेकी बनी हुई उनकी विचित्र मालाएँ सब ओर बिखर गयी हैं ॥ ३९ ॥

एते गोमायवो भीमा निहतानां यशस्विनाम्।
कण्ठान्तरगतान् हारानाक्षिपन्ति सहस्रशः ॥ ४० ॥

'यहाँ मारे गये यशस्वी वीरोंके कण्ठमें पड़े हुए हारोंको ये सहस्रों भयानक गीदड़ खींचते और झटकते हैं ॥ ४० ॥

सर्वेष्वपररात्रेषु याननन्दन्त बन्दिनः।
स्तुतिभिश्च परार्ध्याभिरुपचारैश्च शिक्षिताः ॥ ४१ ॥
तानिमाः परिदेवन्ति दुःखार्ताः परमाङ्गनाः।
कृपणं वृष्णिशार्दूल दुःखशोकार्दिता भृशम् ॥ ४२ ॥

'वृष्णिसिंह ! प्रायः प्रत्येक रात्रिके पिछले पहरमें सुशिक्षित बन्दीजन उत्तम स्तुतियों और उपचारोंद्वारा जिन्हें आनन्दित करते थे, उन्हींके पास आज ये दुःख और शोकसे अत्यन्त पीड़ित हुई सुन्दरी युवतियाँ करुण विलाप कर रही हैं ॥

रक्तोत्पलवनानीव विभान्ति रुचिराणि च।
मुखानि परमस्त्रीणां परिशुष्काणि केशव ॥ ४३ ॥

'केशव ! इन सुन्दरियोंके सूखे हुए सुन्दर मुख लाल कमलोंके समूहकी भाँति शोभा पा रहे हैं ॥ ४३ ॥

रुदितादु विरता ह्येता ध्यायन्त्यः सपरिच्छदाः।
कुरुस्त्रियोऽभिगच्छन्ति तेन तेनैव दुःखिताः ॥ ४४ ॥

'ये कुरुकुलकी स्त्रियाँ रोना बंद करके स्वजनोंका चिन्तन करती हुई परिजनोंसहित उन्हींकी खोजमें जाती और दुखी होकर उन-उन व्यक्तियोंसे मिल रही हैं ॥ ४४ ॥

एतान्यादित्यवर्णानि तपनीयनिभानि च।
रोषरोदनताम्राणि वक्त्राणि कुरुयोषिताम् ॥ ४५ ॥

'कौरववंशकी युवतियोंके ये सूर्य और सुवर्णके समान कान्तिमान् मुख रोष और रोदनसे ताम्रवर्णके हो गये हैं॥४५॥

श्यामानां वरवर्णानां गौरीणामेकवाससाम्।
दुर्योधनवरस्त्रीणां पश्य वृन्दानि केशव ॥ ४६ ॥

'केशव ! सुन्दर कान्तिसे सम्पन्न, एकवस्त्रधारिणी तथा श्याम गौरवर्णवाली दुर्योधनकी इन सुन्दरी स्त्रियोंकी टोलियोंको देखो ॥ ४६ ॥

आसामपरिपूर्णार्थं निशम्य परिदेवितम्।
इतरेतरसंक्रन्दान्न विजानन्ति योषितः ॥ ४७ ॥

'एक दूसरीकी रोदन-ध्वनिसे मिल जानेके कारण इनके विलापका अर्थ पूर्णरूपसे समझमें नहीं आता, उसे सुनकर अन्य स्त्रियाँ भी कुछ नहीं समझ पाती हैं ॥ ४७ ॥

एता दीर्घमिवोच्छ्वस्य विक्रुश्य च विलप्य च ।
विस्पन्दमाना दुःखेन वीरा जहति जीवितम् ॥ ४८ ॥

'ये वीर वनिताएँ लंबी साँस खींचकर स्वजनोंको पुकार-पुकारकर करुण विलाप करके दुःखसे छटपटाती हुई अपने प्राण त्याग देना चाहती हैं ॥ ४८ ॥

बह्व्यो दृष्ट्वा शरीराणि क्रोशन्ति विलपन्ति च ।
पाणिभिश्चापरा घ्नन्ति शिरांसि मृदुपाणयः ॥ ४९ ॥

'बहुत-सी स्त्रियाँ स्वजनोंकी लाशोंको देखकर रोती, चिल्लाती और विलाप करती हैं। कितनी ही कोमल हाथोंवाली कामिनियाँ अपने हाथोंसे सिर पीट रही हैं ॥ ४९ ॥

शिरोभिः पतितैर्हस्तैः सर्वाङ्गैर्यूथशः कृतैः ।
इतरेतरसम्पृक्तैराकीर्णा भाति मेदिनी ॥ ५० ॥

'कटकर गिरे हुए मस्तकों, हाथों और सम्पूर्ण अङ्गोंके ढेर लगे हैं। वे सभी एकके ऊपर एक करके पड़े हैं। उनसे यहाँकी सारी पृथ्वी ढँकी हुई जान पड़ती है ॥ ५० ॥

विशिरस्कानथो कायान् दृष्ट्वा ह्येताननिन्दितान् ।
मुह्यन्त्यनुगता नार्यो विदेहानि शिरांसि च ॥ ५१ ॥

'इन बिना मस्तकके सुन्दर धड़ों और बिना धड़के मस्तकोंको देख-देखकर ये अनुगामिनी स्त्रियाँ मूर्छित-सी हो रही हैं ॥ ५१ ॥

शिरः कायेन संधाय प्रेक्षमाणा विचेतसः ।
अपश्यन्त्योऽपरं तत्र नेदमस्येति दुःखिताः ॥ ५२ ॥

'कितनी ही अचेत-सी होकर स्वजनोंकी खोज करनेवाली स्त्रियाँ एक मस्तकको निकटवर्ती धड़के साथ जोड़ करके देखती हैं और जब वह मस्तक उससे नहीं जुड़ता तथा दूसरा कोई मस्तक वहाँ देखनेमें नहीं आता तो वे दुखी होकर कहने लगती हैं कि यह तो उनका सिर नहीं है ॥ ५२ ॥

बाहूरुचरणानन्यान् विशिखोन्मथितान् पृथक् ।
संदधत्योऽसुखाविष्टा मूर्च्छन्त्येताः पुनः पुनः ॥ ५३ ॥

'बाणोंसे कट-कटकर अलग हुई बाँहों, जाँघों और पैरोंको जोड़ती हुई ये दुखी अबलाएँ बारंबार मूर्छित हो जाती हैं ॥

उत्कृत्तशिरसश्चान्यान् विजग्धान् मृगपक्षिभिः ।
दृष्ट्वा काश्चिन्न जानन्ति भर्तॄन् भरतयोषितः ॥ ५४ ॥

'कितनी ही लाशोंके सिर कटकर गायब हो गये हैं, कितनोंको मांसभक्षी पशुओं और पक्षियोंने खा डाला है; अतः उनको देखकर भी ये हमारे ही पति हैं, इस रूपमें भरतकुलकी स्त्रियाँ पहचान नहीं पाती हैं ॥ ५४ ॥

पाणिभिश्चापरा घ्नन्ति शिरांसि मधुसूदन ।
प्रेक्ष्य भ्रातॄन् पितॄन् पुत्रान् पतींश्च निहतान् परैः ॥५५॥

'मधुसूदन ! देखो, बहुत-सी स्त्रियाँ शत्रुओंद्वारा मारे गये भाइयों, पिताओं, पुत्रों और पतियोंको देखकर अपने हाथोंसे सिर पीट रही हैं ॥ ५५ ॥

बाहुभिश्च सखड्गैश्च शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
अगम्यकल्पा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ॥ ५६ ॥

'खड्गयुक्त भुजाओं और कुण्डलोंसहित मस्तकोंसे ढँकी हुई इस पृथ्वीपर चलना-फिरना असम्भव हो गया है। यहाँ मांस और रक्तकी कीच जम गयी है ॥ ५६ ॥

न दुःखेषूचिताः पूर्वं दुःखं गाहन्त्यनिन्दिताः ।
भ्रातृभिः पतिभिः पुत्रैरुपाकीर्णा वसुंधरा ॥ ५७ ॥

'ये सती साध्वी सुन्दरी स्त्रियाँ पहले कभी ऐसे दुःखमें नहीं पड़ी थीं; किंतु आज दुःखके समुद्रमें डूब रही हैं। यह सारी पृथ्वी इनके भाइयों, पतियों और पुत्रोंसे ढँक गयी है ॥ ५७ ॥

यूथानीव किशोरीणां सुकेशीनां जनार्दन ।
स्नुषाणां धृतराष्ट्रस्य पश्य वृन्दान्यनेकशः ॥ ५८ ॥

'जनार्दन ! देखो, महाराज धृतराष्ट्रकी सुन्दर केशोंवाली पुत्रवधुओंकी ये कई टोलियाँ, बछेड़ियोंके झुंडके समान दिखायी दे रही हैं ॥ ५८ ॥

इतो दुःखतरं किं नु केशव प्रतिभाति मे ।
यदिमाः कुर्वते सर्वा रवमुच्चावचं स्त्रियः ॥ ५९ ॥

'केशव ! मेरे लिये इससे बढ़कर महान् दुःख और क्या होगा कि ये सारी बहुएँ यहाँ आकर अनेक प्रकारसे आर्तनाद कर रही हैं ॥ ५९ ॥

नूनमाचरितं पापं मया पूर्वेषु जन्मसु ।
या पश्यामि हतान् पुत्रान् पौत्रान् भ्रातॄंश्च माधव ॥६०॥

'माधव ! निश्चय ही मैंने पूर्वजन्मोंमें कोई बड़ा भारी पाप किया है, जिससे आज अपने पुत्रों, पौत्रों और भाइयोंको यहाँ मारा गया देख रही हूँ' ॥ ६० ॥

एवमार्ता विलपती समाभाष्य जनार्दनम् ।
गान्धारी पुत्रशोकार्ता ददर्श निहतं सुतम् ॥ ६१ ॥

भगवान् श्रीकृष्णको सम्बोधित करके पुत्रशोकसे व्याकुल हो इस प्रकार आर्तविलाप करती हुई गान्धारीने युद्धमें मारे गये अपने पुत्र दुर्योधनको देखा ॥ ६१ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि आयोधनदर्शने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत स्त्रीविलापपर्वमें युद्धदर्शनविषयक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

दुर्योधन तथा उसके पास रोती हुई पुत्रवधूको देखकर गान्धारीका श्रीकृष्णके सम्मुख विलाप

वैशम्पायन उवाच

दुर्योधनं हतं दृष्ट्वा गान्धारी शोककर्शिता ।
सहसा न्यपतद् भूमौ छिन्नेव कदली वने ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! दुर्योधनको मारा गया देखकर शोकसे पीड़ित हुई गान्धारी वनमें कटे हुए केलेके वृक्षकी तरह सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ीं ॥ १ ॥

सा तु लब्ध्वा पुनः संज्ञां विक्रुश्य च विलप्य च।
दुर्योधनमभिप्रेक्ष्य शयानं रुधिरोक्षितम् ॥ २ ॥
परिष्वज्य च गान्धारी कृपणं पर्यदेवयत्।
हा हा पुत्रेति शोकार्ता विललापाकुलेन्द्रिया ॥ ३ ॥

पुनः होशमें आनेपर अपने पुत्रको पुकार-पुकारकर वे विलाप करने लगीं। दुर्योधनको खूनसे लथपथ होकर सोया देख उसे हृदयसे लगाकर गान्धारी दीन होकर रोने लगीं। उनकी सारी इन्द्रियाँ व्याकुल हो उठी थीं। वे शोकसे आतुर हो 'हा पुत्र! हा पुत्र!' कहकर विलाप करने लगीं ॥ २-३ ॥

सुगूढजत्रुविपुलं हारनिष्कविभूषितम्।
वारिणा नेत्रजेनोरः सिंचन्ती शोकतापिता ॥ ४ ॥

दुर्योधनके गलेकी विशाल हड्डी मांससे छिपी हुई थी। उसने गलेमें हार और निष्क पहन रक्खे थे। उन आभूषणोंसे विभूषित बेटेके वक्षःस्थलको आँसुओंसे सींचती हुई गान्धारी शोकाग्निसे संतप्त हो रही थीं ॥ ४ ॥

समीपस्थं हृषीकेशमिदं वचनमब्रवीत्।
उपस्थितेऽस्मिन् संग्रामे ज्ञातीनां संक्षये विभो॥ ५ ॥
मामयं प्राह वार्ष्णेय प्राञ्जलिर्नृपसत्तमः।
अस्मिन् ज्ञातिसमुद्धर्षे जयमम्बा ब्रवीतु मे ॥ ६ ॥

वे पास ही खड़े हुए श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहने लगीं— 'वृष्णिनन्दन! प्रभो! भाई-बन्धुओंका विनाश करनेवाला जब यह भीषण संग्राम उपस्थित हुआ था, उस समय इस नृपश्रेष्ठ दुर्योधनने मुझसे हाथ जोड़कर कहा—'माताजी! कुटुम्बीजनोंके इस संग्राममें आप मुझे मेरी विजयके लिये आशीर्वाद दें' ॥ ५-६ ॥

इत्युक्ते जानती सर्वमहं स्वव्यसनागमम्।
अब्रवं पुरुषव्याघ्र यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ७ ॥

'पुरुषसिंह श्रीकृष्ण! उसके ऐसा कहनेपर मैं यह सब जानती थी कि मुझपर बड़ा भारी संकट आनेवाला है, तथापि मैंने उससे यही कहा—'जहाँ धर्म है, वहीं विजय है' ॥ ७ ॥

यथा च युध्यमानस्त्वं न वै मुह्यसि पुत्रक।
ध्रुवं शस्त्रजिताँल्लोकान् प्राप्स्यस्यमरवत् प्रभो॥ ८ ॥

''बेटा! शक्तिशाली पुत्र! यदि तुम युद्ध करते हुए धर्मसे मोहित न होओगे तो निश्चय ही देवताओंके समान शस्त्रोंद्वारा जीते हुए लोकोंको प्राप्त कर लोगे' ॥ ८ ॥

इत्येवमब्रवं पूर्वं नैनं शोचामि वै प्रभो।
धृतराष्ट्रं तु शोचामि कृपणं हतबान्धवम् ॥ ९ ॥

'प्रभो! यह बात मैंने पहले ही कह दी थी; इसलिये मुझे इस दुर्योधनके लिये शोक नहीं हो रहा है। मैं तो इन दीन राजा धृतराष्ट्रके लिये शोकमग्न हो रही हूँ, जिनके सारे भाई-बन्धु मार डाले गये ॥ ९ ॥

अमर्षणं युधां श्रेष्ठं कृतास्त्रं युद्धदुर्मदम्।
शयानं वीरशयने पश्य माधव मे सुतम् ॥ १० ॥

'माधव! अमर्षशील, योद्धाओंमें श्रेष्ठ, अस्त्रविद्याके ज्ञाता, रणदुर्मद तथा वीरशय्यापर सोये हुए मेरे इस पुत्रको देखो तो सही ॥ १० ॥

योऽयं मूर्धाभिषिक्तानामग्रे याति परंतपः।
सोऽयं पांसुषु शेतेऽद्य पश्य कालस्य पर्ययम्॥ ११ ॥

'शत्रुओंको संताप देनेवाला जो दुर्योधन मूर्धाभिषिक्त राजाओंके आगे-आगे चलता था, वही आज यह धूलमें लोट रहा है। कालके इस उलट-फेरको तो देखो ॥ ११ ॥

ध्रुवं दुर्योधनो वीरो गतिं न सुलभां गतः।
तथा ह्यभिमुखः शेते शयने वीरसेविते ॥ १२ ॥

'निश्चय ही वीर दुर्योधन उस उत्तम गतिको प्राप्त हुआ है, जो सबके लिये सुलभ नहीं है; क्योंकि यह वीरसेवित शय्यापर सामने मुहँ किये सो रहा है ॥ १२ ॥

यं पुरा पर्युपासीना रमयन्ति वरस्त्रियः।
तं वीरशयने सुप्तं रमयन्त्यशिवाः शिवाः ॥ १३ ॥

'पूर्वकालमें जिसके पास बैठकर सुन्दरी स्त्रियाँ उसका मनोरंजन करती थीं, वीरशय्यापर सोये हुए आज उसी वीरका ये अमङ्गलकारिणी गीदड़ियाँ मन-बहलाव करती हैं ॥

यं पुरा पर्युपासीना रमयन्ति महीक्षितः।
महीतलस्थं निहतं गृध्रास्तं पर्युपासते ॥ १४ ॥

'जिसके पास पहले राजा लोग बैठकर उसे आनन्द प्रदान करते थे, आज मरकर धरतीपर पड़े हुए उसी वीरके पास गीध बैठे हुए हैं ॥ १४ ॥

यं पुरा व्यजनै रम्यैरुपवीजन्ति योषितः।
तमद्य पक्षव्यजनैरुपवीजन्ति पक्षिणः ॥ १५ ॥

'पहले जिसके पास खड़ी होकर युवतियाँ सुन्दर पंखे झला करती थीं, आज उसीको पक्षीगण अपनी पाँखोंसे हवा करते हैं ॥ १५ ॥

एष शेते महाबाहुर्बलवान् सत्यविक्रमः।
सिंहेनेव द्विपः संख्ये भीमसेनेन पातितः ॥ १६ ॥

'यह महाबाहु सत्यपराक्रमी बलवान् वीर दुर्योधन भीमसेनके द्वारा गिराया जाकर युद्धस्थलमें सिंहके मारे हुए गजराजके समान सो रहा है ॥ १६ ॥

पश्य दुर्योधनं कृष्ण शयानं रुधिरोक्षितम्।
निहतं भीमसेनेन गदां सम्मृज्य भारतम् ॥ १७ ॥

'श्रीकृष्ण! भीमसेनकी चोट खाकर खूनसे लथपथ हो गदा लिये धरतीपर सोये हुए दुर्योधनको अपनी आँखसे देख लो ॥ १७ ॥

अक्षौहिणीर्महाबाहुर्दश चैकां च केशव।
आनयद् यः पुरा संख्ये सोऽनयान्निधनं गतः॥ १८ ॥

'केशव! जिस महाबाहु वीरने पहले ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओंको जुटा लिया था, वही अपनी अनीतिके कारण युद्धमें मार डाला गया ॥ १८ ॥

एष दुर्योधनः शेते महेष्वासो महाबलः।
शार्दूल इव सिंहेन भीमसेनेन पातितः ॥ १९ ॥

'सिंहके मारे हुए दूसरे सिंहके समान भीमसेनके हाथों

मारा गया यह महाबली महाधनुर्धर दुर्योधन सो रहा है ॥ १९ ॥

विदुरं ह्यवमत्यैष पितरं चैव मन्दभाक्।
बालो वृद्धावमानेन मन्दो मृत्युवशं गतः ॥ २० ॥

'यह मूर्ख और अभागा बालक विदुर तथा अपने पिताका अपमान करके बड़े-बूढ़ोंकी अवहेलनाके पापसे ही कालके गालमें चला गया है ॥ २० ॥

निःसपत्ना मही यस्य त्रयोदश समाः स्थिता।
स शेते निहतो भूमौ पुत्रो मे पृथिवीपतिः ॥ २१ ॥

'यह सारी पृथ्वी तेरह वर्षोंतक निष्कण्टक भावसे जिसके अधिकारमें रही है, वही मेरा पुत्र पृथ्वीपति दुर्योधन आज मारा जाकर पृथ्वीपर पड़ा है ॥ २१ ॥

अपश्यं कृष्ण पृथिवीं धार्तराष्ट्रानुशासिताम्।
पूर्णां हस्तिगवाश्वैश्च वार्ष्णेय न तु तच्चिरम् ॥ २२ ॥

'वृष्णिनन्दन श्रीकृष्ण! मैंने दुर्योधनद्वारा शासित हुई इस पृथ्वीको हाथी, घोड़े और गौओंसे भरी-पूरी देखा था; किंतु वह राज्य चिरस्थायी न रह सका ॥ २२ ॥

तामेवाद्य महाबाहो पश्याम्यन्यानुशासिताम्।
हीनां हस्तिगवाश्वेन किं नु जीवामि माधव ॥ २३ ॥

'महाबाहु माधव! आज उसी पृथ्वीको मैं देखती हूँ कि वह दूसरेके शासनमें जाकर हाथी, घोड़े और गाय-बैलोंसे हीन हो गयी है; फिर मैं किस लिये जीवन धारण करूँ? २३

इदं कष्टतरं पश्य पुत्रस्यापि वधान्मम।
यदिमाः पर्युपासन्ते हताञ्शूरान् रणे स्त्रियः ॥ २४ ॥

'मेरे लिये पुत्रके वधसे भी अधिक कष्ट देनेवाली बात यह है कि ये स्त्रियाँ रणभूमिमें मारे गये अपने शूरवीर पतियोंके पास बैठी रो रही हैं। इनकी दयनीय दशा तो देखो ॥

प्रकीर्णकेशां सुश्रोणीं दुर्योधनशुभाङ्कगाम्।
रुक्मवेदीनिभां पश्य कृष्ण लक्ष्मणमातरम् ॥ २५ ॥

'श्रीकृष्ण! सुवर्णकी वेदीके समान तेजस्विनी तथा सुन्दर कटि-प्रदेशवाली उस लक्ष्मणकी माताको तो देखो, जो दुर्योधनके शुभ-अङ्कमें स्थित हो केश खोले रो रही है ॥ २५ ॥

नूनमेषा पुरा बाला जीवमाने महीभुजे।
भुजावाश्रित्य रमते सुभुजस्य मनस्विनी ॥ २६ ॥

'पहले जब राजा दुर्योधन जीवित था, तब निश्चय ही यह मनस्विनी बाला सुन्दर बाँहोंवाले अपने वीर पतिकी दोनों भुजाओंका आश्रय लेकर इसी तरह उसके साथ सानन्द क्रीड़ा करती रही होगी ॥ २६ ॥

कथं तु शतधा नेदं हृदयं मम दीर्यते।
पश्यन्त्या निहतं पुत्रं पुत्रेण सहितं रणे ॥ २७ ॥

'रणभूमिमें वही मेरा पुत्र अपने पुत्रके साथ ही मार डाला गया है, इसे इस अवस्थामें देखकर मेरे इस हृदयके सैकड़ों टुकड़े क्यों नहीं हो जाते? ॥ २७ ॥

पुत्रं रुधिरसंसिक्तमुपजिघ्रत्यनिन्दिता।
दुर्योधनं तु वामोरूः पाणिना परिमार्जती ॥ २८ ॥

'सुन्दर जाँघोंवाली मेरी सती साध्वी पुत्रवधू कभी खूनसे भीगे हुए अपने पुत्र लक्ष्मणका मुँह सूँघती है तो कभी पति दुर्योधनका शरीर अपने हाथसे पोंछती है ॥ २८ ॥

किं नु शोचति भर्तारं पुत्रं चैषा मनस्विनी।
तथा ह्यवस्थिता भाति पुत्रं चाप्यभिवीक्ष्य सा ॥ २९ ॥
स्वशिरः पञ्चशाखाभ्यामभिहत्यायतेक्षणा।
पतत्युरसि वीरस्य कुरुराजस्य माधव ॥ ३० ॥

'पता नहीं, यह मनस्विनी बहू पुत्रके लिये शोक करती है या पतिके लिये? कुछ ऐसी ही अवस्थामें वह जान पड़ती है। माधव! वह देखो, वह विशाललोचना वधू पुत्रकी ओर देखकर दोनों हाथोंसे सिर पीटती हुई अपने वीर पति कुरुराजकी छातीपर गिर पड़ी है ॥ २९-३० ॥

पुण्डरीकनिभा भाति पुण्डरीकान्तरप्रभा।
मुखं विमृज्य पुत्रस्य भर्तुश्चैव तपस्विनी ॥ ३१ ॥

'कमल-पुष्पके भीतरी भागकी-सी मनोहर कान्तिवाली मेरी तपस्विनी पुत्रवधू जो प्रफुल्ल कमलके समान सुशोभित हो रही है, कभी अपने पुत्रका मुँह पोंछती है तो कभी अपने पतिका ॥ ३१ ॥

यदि सत्यागमाः सन्ति यदि वै श्रुतयस्तथा।
ध्रुवं लोकानवाप्तोऽयं नृपो बाहुबलार्जितान् ॥ ३२ ॥

'श्रीकृष्ण! यदि वेद-शास्त्र सत्य हैं तो मेरा पुत्र यह राजा दुर्योधन निश्चय ही अपने बाहुबलसे प्राप्त हुए पुण्यमय लोकोंमें गया है' ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि दुर्योधनदर्शने सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत स्त्रीविलापपर्वमें दुर्योधनका दर्शनविषयक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

अपने अन्य पुत्रों तथा दुःशासनको देखकर गान्धारीका श्रीकृष्णके सम्मुख विलाप

गान्धार्युवाच

पश्य माधव पुत्रान्मे शतसंख्याञ्जितक्लमान्।
गदया भीमसेनेन भूयिष्ठं निहतान् रणे ॥ १ ॥

गान्धारी बोलीं—माधव! जो परिश्रमको जीत चुके थे, उन मेरे सौ पुत्रोंको देखो, जिन्हें रणभूमिमें प्रायः भीमसेनने अपनी गदासे मार डाला है ॥ १ ॥

इदं दुःखतरं मेऽद्य यदिमा मुक्तमूर्धजाः।
हतपुत्रा रणे बालाः परिधावन्ति मे स्नुषाः ॥ २ ॥

सबसे अधिक दुःख मुझे आज यह देखकर हो रहा है कि ये मेरी बालवधुएँ, जिनके पुत्र भी मारे जा चुके हैं, रणभूमिमें केश खोले चारों ओर अपने स्वजनोंकी खोजमें दौड़ रही हैं ॥ २ ॥

प्रासादतलचारिण्यश्चरणैर्भूषणान्वितैः ।
आपन्ना यत् स्पृशन्तीमां रुधिरार्द्रां वसुन्धराम् ॥ ३ ॥

ये महलकी अट्टालिकाओंमें आभूषणभूषित चरणोंद्वारा विचरण करनेवाली थीं; परंतु आज विपत्तिकी मारी हुई ये इस खूनसे भीगी हुई वसुधाका स्पर्श कर रही हैं ॥ ३ ॥

कृच्छ्रादुत्सारयन्ति स्म गृध्रगोमायुवायसान् ।
दुःखेनार्ता विघूर्णन्त्यो मत्ता इव चरन्त्युत ॥ ४ ॥

ये दुःखसे आतुर हो पगली स्त्रियोंके समान झूमती हुई सब ओर विचरती हैं तथा बड़ी कठिनाईसे गीधों, गीदड़ों और कौओंको लाशोंके पाससे दूर हटा रही हैं ॥ ४ ॥

एषान्या त्वनवद्याङ्गी करसम्मितमध्यमा ।
घोरमायोधनं दृष्ट्वा निपतत्यतिदुःखिता ॥ ५ ॥

यह पतली कमरवाली सर्वाङ्गसुन्दरी दूसरी वधू युद्धस्थलका भयानक दृश्य देखकर अत्यन्त दुखी हो पृथ्वीपर गिर पड़ती है ॥ ५ ॥

दृष्ट्वा मे पार्थिवसुतामेतां लक्ष्मणमातरम् ।
राजपुत्रीं महाबाहो मनो न ह्युपशाम्यति ॥ ६ ॥

महाबाहो ! यह लक्ष्मणकी माता एक भूमिपालकी बेटी है, इस राजकुमारीकी दशा देखकर मेरा मन किसी तरह शान्त नहीं होता है ॥ ६ ॥

भ्रातॄंश्चान्याः पितॄंश्चान्याः पुत्रांश्च निहतान् भुवि ।
दृष्ट्वा परिपतन्त्येताः प्रगृह्य सुमहाभुजान् ॥ ७ ॥

कुछ स्त्रियाँ रणभूमिमें मारे गये अपने भाइयोंको, कुछ पिताओंको और कुछ पुत्रोंको देखकर उन महाबाहु वीरोंको पकड़ लेती और वहीं गिर पड़ती हैं ॥ ७ ॥

मध्यमानां तु नारीणां वृद्धानां चापराजित ।
आक्रन्दं हतबन्धूनां दारुणे वैशसे शृणु ॥ ८ ॥

अपराजित वीर ! इस दारुण संग्राममें जिनके बन्धु-बान्धव मारे गये हैं, उन अधेड़ और बूढ़ी स्त्रियोंका यह करुणाजनक क्रन्दन सुनो ॥ ८ ॥

रथनीडानि देहांश्च हतानां गजवाजिनाम् ।
आश्रित्य श्रममोहार्ताः स्थिताः पश्य महाभुज ॥ ९ ॥

महाबाहो ! देखो, ये स्त्रियाँ परिश्रम और मोहसे पीड़ित हो टूटे हुए रथोंकी बैठकों तथा मारे गये हाथी-घोड़ोंकी लाशोंका सहारा लेकर खड़ी हैं ॥ ९ ॥

अन्यां चापहृतं कायाच्चारुकुण्डलमुन्नसम् ।
स्वस्य बन्धोः शिरः कृष्ण गृहीत्वा पश्य तिष्ठतीम् ॥ १० ॥

श्रीकृष्ण ! देखो, वह दूसरी स्त्री किसी आत्मीय जनके मनोहर कुण्डलोंसे सुशोभित और ऊँची नासिकावाले कटे हुए मस्तकको लेकर खड़ी है ॥ १० ॥

पूर्वजातिकृतं पापं मन्ये नाल्पमिवानघ ।
एताभिर्निरवद्याभिर्मया चैवाल्पमेधया ॥ ११ ॥
यदिदं धर्मराजेन पातितं नो जनार्दन ।
न हि नाशोऽस्ति वार्ष्णेय कर्मणोः शुभपापयोः ॥ १२ ॥

अनघ ! मैं समझती हूँ कि इन अनिन्द्य सुन्दरी अबलाओंने तथा मन्द बुद्धिवाली मैंने भी पूर्वजन्मोंमें कोई बड़ा भारी पाप किया है, जिसके फलस्वरूप धर्मराजने हमलोगोंको बड़ी भारी विपत्तिमें डाल दिया है । जनार्दन ! वृष्णिनन्दन ! जान पड़ता है कि किये हुए पुण्य और पापकर्मोंका उनके फलका उपभोग किये बिना नाश नहीं होता है ॥ ११-१२ ॥

प्रत्यग्रवयसः पश्य दर्शनीयकुचाननाः ।
कुलेषु जाता ह्रीमत्यः कृष्णपक्ष्माक्षिमूर्धजाः ॥ १३ ॥
हंसगद्गदभाषिण्यो दुःखशोकप्रमोहिताः ।
सारस्य इव वाशन्त्यः पतिताः पश्य माधव ॥ १४ ॥

माधव ! देखो, इन महिलाओंकी नयी अवस्था है । इनके वक्षःस्थल और मुख दर्शनीय हैं । इनकी आँखोंकी बरौनियाँ और सिरके केश काले हैं । ये सब-की-सब कुलीन और सलज्ज हैं । ये हंसके समान गद्गद स्वरमें बोलती हैं; परंतु आज दुःख और शोकसे मोहित हो चहचहाती सारसियोंके समान रोती-बिलखती हुई पृथ्वीपर गिर पड़ी हैं ॥ १३-१४ ॥

फुल्लपद्मप्रकाशानि पुण्डरीकाक्ष योषिताम् ।
अनवद्यानि वक्त्राणि तापयत्येष रश्मिवान् ॥ १५ ॥

कमलनयन ! खिले हुए कमलके समान प्रकाशित होनेवाले युवतियोंके इन सुन्दर मुखोंको ये सूर्यदेव संतप्त कर रहे हैं ॥ १५ ॥

ईर्षुणां मम पुत्राणां वासुदेवावरोधनम् ।
मत्तमातङ्गदर्पाणां पश्यन्त्यद्य पृथग्जनाः ॥ १६ ॥

वासुदेव ! मतवाले हाथीके समान घमंडमें चूर रहनेवाले मेरे ईर्ष्यालु पुत्रोंकी इन रानियोंको आज साधारण लोग देख रहे हैं ॥ १६ ॥

शतचन्द्राणि चर्माणि ध्वजांश्चादित्यवर्चसः ।
रौक्माणि चैव वर्माणि निष्कानपि च काञ्चनान् ॥ १७ ॥
शीर्षत्राणानि चैतानि पुत्राणां मे महीतले ।
पश्य दीप्तानि गोविन्द पावकान् सुहुतानिव ॥ १८ ॥

गोविन्द ! देखो, मेरे पुत्रोंकी ये सौ चन्द्राकार चिह्नोंसे सुशोभित ढालें, सूर्यके समान तेजस्विनी ध्वजाएँ, सुवर्णमय कवच, सोनेके निष्क तथा शिरस्त्राण घीकी उत्तम आहुति पाकर प्रज्वलित हुई अग्नियोंके समान पृथ्वीपर देदीप्यमान हो रहे हैं ॥ १७-१८ ॥

एष दुःशासनः शेते शूरेणामित्रघातिना ।
पीतशोणितसर्वाङ्गो युधि भीमेन पातितः ॥ १९ ॥

शत्रुघाती शूरवीर भीमसेनने युद्धमें जिसे मार गिराया तथा जिसके सारे अङ्गोंका रक्त पी लिया, वही यह दुःशासन यहाँ सो रहा है ॥ १९ ॥

गदया भीमसेनेन पश्य माधव मे सुतम् ।
द्यूतक्लेशाननुस्मृत्य द्रौपदीनोदितेन च ॥ २० ॥

माधव ! देखो, द्यूतक्रीडाके समय पाये हुए क्लेशोंको स्मरण करके द्रौपदीसे प्रेरित हुए भीमसेनने मेरे इस पुत्रको गदासे मार डाला है ॥ २० ॥

उक्ता ह्यनेन पाञ्चाली सभायां द्यूतनिर्जिता ।

प्रियं चिकीर्षता भ्रातुः कर्णस्य च जनार्दन ॥ २१ ॥
सहैव सहदेवेन नकुलेनार्जुनेन च ।
दासीभूतासि पाञ्चालि क्षिप्रं प्रविश नो गृहान् ॥ २२ ॥

जनार्दन ! इसने अपने भाई और कर्णका प्रिय करनेकी इच्छासे सभामें जूएसे जीती गयी द्रौपदीके प्रति कहा था कि 'पाञ्चालि ! तू नकुल-सहदेव तथा अर्जुनके साथ ही हमारी दासी हो गयी; अतः शीघ्र ही हमारे घरोंमें प्रवेश कर' २१-२२

ततोऽहमब्रवं कृष्ण तदा दुर्योधनं नृपम् ।
मृत्युपाशपरिक्षिप्तं शकुनिं पुत्र वर्जय ॥ २३ ॥
निबोधैनं सुदुर्बुद्धिं मातुलं कलहप्रियम् ।
क्षिप्रमेनं परित्यज्य पुत्र शाम्यस्व पाण्डवैः ॥ २४ ॥
न बुद्ध्यसे त्वं दुर्बुद्धे भीमसेनममर्षणम् ।
वाङ्नाराचैस्तुदंस्तीक्ष्णैरुल्काभिरिव कुञ्जरम् ॥ २५ ॥

श्रीकृष्ण ! उस समय मैं राजा दुर्योधनसे बोली— 'बेटा ! शकुनि मौतके फँदेमें फँसा हुआ है । तुम इसका साथ छोड़ दो । पुत्र ! तुम अपने इस खोटी बुद्धिवाले मामाको कलहप्रिय समझो और शीघ्र ही इसका परित्याग करके पाण्डवोंके साथ संधि कर लो । दुर्बुद्धे ! तुम नहीं जानते कि भीमसेन कितने अमर्षशील हैं । तभी जलती लकड़ीसे हाथीको मारनेके समान तुम अपने तीखे वाग्बाणोंसे उन्हें पीड़ा दे रहे हो' ॥ २३—२५ ॥

तानेव रहसि क्रुद्धो वाक्शल्यानवधारयन् ।
उत्ससर्ज विषं तेषु सर्पो गोवृषभेष्विव ॥ २६ ॥

इस प्रकार एकान्तमें मैंने उन सबको डाँटा था । श्रीकृष्ण ! उन्हीं वाग्बाणोंको याद करके क्रोधी भीमसेनने मेरे पुत्रोंपर उसी प्रकार क्रोधरूपी विष छोड़ा है, जैसे सर्प गाय-बैलोंको डँसकर उनमें अपने विषका संचार कर देता है ॥ २६ ॥

एष दुःशासनः शेते विक्षिप्य विपुलौ भुजौ ।
निहतो भीमसेनेन सिंहेनेव महागजः ॥ २७ ॥

सिंहके मारे हुए विशाल हाथीके समान भीमसेनका मारा हुआ यह दुःशासन दोनों विशाल हाथ फैलाये रणभूमिमें पड़ा हुआ है ॥ २७ ॥

अत्यर्थमकरोद् रौद्रं भीमसेनोऽत्यमर्षणः ।
दुःशासनस्य यत् क्रुद्धोऽपिबच्छोणितमाहवे ॥ २८ ॥

अत्यन्त अमर्षमें भरे हुए भीमसेनने युद्धस्थलमें क्रुद्ध होकर जो दुःशासनका रक्त पी लिया, यह बड़ा भयानक कर्म किया है ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि गान्धारीवाक्येऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत स्त्रीविलापपर्वमें गान्धारीवाक्यविषयक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

विकर्ण, दुर्मुख, चित्रसेन, विविंशति तथा दुःसहको देखकर गान्धारीका श्रीकृष्णके सम्मुख विलाप

गान्धार्युवाच

एष माधव पुत्रो मे विकर्णः प्राज्ञसम्मतः ।
भूमौ विनिहतः शेते भीमेन शतधा कृतः ॥ १ ॥

गान्धारी बोलीं—माधव ! यह मेरा पुत्र विकर्ण, जो विद्वानोंद्वारा सम्मानित होता था, भूमिपर मरा पड़ा है । भीमसेनने इसके भी सौ-सौ टुकड़े कर डाले हैं ॥ १ ॥

गजमध्ये हतः शेते विकर्णो मधुसूदन ।
नीलमेघपरिक्षिप्तः शरदीव निशाकरः ॥ २ ॥

मधुसूदन ! जैसे शरत्कालमें काले मेघोंकी घटासे घिरा हुआ चन्द्रमा शोभा पा रहा हो, उसी प्रकार भीमद्वारा मारा गया विकर्ण हाथियोंकी सेनाके बीचमें सो रहा है ॥ २ ॥

अस्य चापग्रहेणैव पाणिः कृतकिणो महान् ।
कथञ्चिच्छिद्यते गृध्रैरत्तुकामैस्तलत्रवान् ॥ ३ ॥

बराबर धनुष लिये रहनेसे इसकी विशाल हथेलीमें घट्ठा पड़ गया है । इसके हाथमें इस समय भी दस्ताना बँधा हुआ है; इसलिये इसे खानेकी इच्छावाले गीध बड़ी कठिनाईसे किसी-किसी तरह काट पाते हैं ॥ ३ ॥

अस्य भार्याऽऽमिषप्रेप्सून् गृध्रकाकांस्तपस्विनी ।
वारयत्यनिशं बाला न च शक्नोति माधव ॥ ४ ॥

माधव ! उसकी तपस्विनी पत्नी जो अभी बालिका है, मांसलोलुप गीधों और कौओंको हटानेकी निरन्तर चेष्टा करती है; परंतु सफल नहीं हो पाती है ॥ ४ ॥

युवा वृन्दारकः शूरो विकर्णः पुरुषर्षभ ।
सुखोषितः सुखार्हश्च शेते पांसुषु माधव ॥ ५ ॥

पुरुषप्रवर माधव ! विकर्ण नवयुवक, देवताके समान कान्तिमान्, शूरवीर, सुखमें पला हुआ तथा सुख भोगनेके ही योग्य था; परंतु आज धूलमें लोट रहा है ॥ ५ ॥

कर्णिनालीकनाराचैर्भिन्नमर्माणमाहवे ।
अद्यापि न जहात्येनं लक्ष्मीर्भरतसत्तमम् ॥ ६ ॥

युद्धमें कर्णी, नालीक और नाराचोंके प्रहारसे इसके मर्मस्थल विदीर्ण हो गये हैं तो भी इस भरतभूषण वीरको अभीतक लक्ष्मी (अङ्गकान्ति) छोड़ नहीं रही है ॥ ६ ॥

एष संग्रामशूरेण प्रतिज्ञां पालयिष्यता ।
दुर्मुखोऽभिमुखः शेते हतोऽरिगणहा रणे ॥ ७ ॥

जो शत्रुसमूहोंका संहार करनेवाला था, वह दुर्मुख प्रतिज्ञा पालन करनेवाले संग्राम-शूर भीमसेनके हाथों मारा जाकर समरमें सम्मुख सो रहा है ॥ ७ ॥

तस्यैतद् वदनं कृष्ण श्वापदैरर्धभक्षितम् ।
विभात्यभ्यधिकं तात सप्तम्यामिव चन्द्रमाः ॥ ८ ॥

तात श्रीकृष्ण ! इसका यह मुख हिंसक जन्तुओंद्वारा आधा खा लिया गया है, इसलिये सप्तमीके चन्द्रमाकी भाँति सुशोभित हो रहा है ॥ ८ ॥

शूरस्य हि रणे कृष्ण पश्याननमथेदृशम्।
स कथं निहतोऽमित्रैः पांसून् ग्रसति मे सुतः॥ ९॥

श्रीकृष्ण! देखो, मेरे इस रणशूर पुत्रका मुख कैसा तेजस्वी है? पता नहीं, मेरा यह वीर पुत्र किस तरह शत्रुओंके हाथसे मारा जाकर धूल फाँक रहा है?॥ ९॥

यस्याहवमुखे सौम्य स्थाता नैवोपपद्यते।
स कथं दुर्मुखोऽमित्रैर्हतो विबुधलोकजित्॥ १०॥

सौम्य! युद्धके मुहानेपर जिसके सामने कोई ठहर नहीं पाता था, उस देवलोकविजयी दुर्मुखको शत्रुओंने कैसे मार डाला?॥ १०॥

चित्रसेनं हतं भूमौ शयानं मधुसूदन।
धार्तराष्ट्रमिमं पश्य प्रतिमानं धनुष्मताम्॥ ११॥

मधुसूदन! देखो, जो धनुर्धरोंका आदर्श था, वही यह धृतराष्ट्रका पुत्र चित्रसेन मारा जाकर पृथ्वीपर पड़ा हुआ है॥

तं चित्रमाल्याभरणं युवत्यः शोककर्शिताः।
क्रव्यादसंघैः सहिता रुदत्यः पर्युपासते॥ १२॥

विचित्र माला और आभूषण धारण करनेवाले उस चित्रसेनको घेरकर शोकसे कातर हो रोती हुई युवतियाँ हिंसक जन्तुओंके साथ उसके पास बैठी हैं॥ १२॥

स्त्रीणां रुदितनिर्घोषः श्वापदानां च गर्जितम्।
चित्ररूपमिदं कृष्ण विचित्रं प्रतिभाति मे॥ १३॥

श्रीकृष्ण! एक ओर स्त्रियोंके रोनेकी आवाज है तो दूसरी ओर हिंसक जन्तुओंकी गर्जना हो रही है। यह अद्भुत दृश्य मुझे विचित्र प्रतीत होता है॥ १३॥

युवा वृन्दारको नित्यं प्रवरस्त्रीनिषेवितः।
विविंशतिरसौ शेते ध्वस्तः पांसुषु माधव॥ १४॥

माधव! देखो, वह देवतुल्य नवयुवक विविंशति, जिसकी सुन्दरी स्त्रियाँ सदा सेवा किया करती थीं, आज विध्वस्त होकर धूलमें पड़ा है॥ १४॥

शरसंकृत्तवर्माणं वीरं विशसने हतम्।
परिवार्यासते गृध्राः पश्य कृष्ण विविंशतिम्॥ १५॥

श्रीकृष्ण! देखो, बाणोंसे इसका कवच छिन्न-भिन्न हो गया है। युद्धमें मारे गये इस वीर विविंशतिको गीध चारों ओरसे घेरकर बैठे हैं॥ १५॥

प्रविश्य समरे शूरः पाण्डवानामनीकिनीम्।
स वीरशयने शेते पुनः सत्पुरुषोचिते॥ १६॥

जो शूरवीर समराङ्गणमें पाण्डवोंकी सेनाके भीतर घुसकर लोहा लेता था, वही आज सत्पुरुषोचित वीरशय्यापर शयन कर रहा है॥ १६॥

स्मितोपपन्नं सुनसं सुभ्रु ताराधिपोपमम्।
अतीव शुभ्रं वदनं कृष्ण पश्य विविंशतेः॥ १७॥

श्रीकृष्ण! देखो, विविंशतिका मुख अत्यन्त उज्ज्वल है, इसके अधरोंपर मुस्कराहट खेल रही है, नासिका मनोहर और भौंहें सुन्दर हैं। यह मुख चन्द्रमाके समान शोभा पा रहा है॥ १७॥

एनं हि पर्युपासन्ते बहुधा वरयोषितः।
क्रीडन्तमिव गन्धर्वं देवकन्याः सहस्रशः॥ १८॥

जैसे क्रीडा करते हुए गन्धर्वके साथ सहस्रों देवकन्याएँ होती हैं, उसी प्रकार इस विविंशतिकी सेवामें बहुत-सी सुन्दरी स्त्रियाँ रहा करती थीं॥ १८॥

हन्तारं परसैन्यानां शूरं समितिशोभनम्।
निबर्हणममित्राणां दुःसहं विषहेत कः॥ १९॥

शत्रुकी सेनाओंका संहार करनेमें समर्थ तथा युद्धमें शोभा पानेवाले शूरवीर शत्रुसूदन दुःसहका वेग कौन सह सकता था?॥ १९॥

दुःसहस्यैतदाभाति शरीरं संवृतं शरैः।
गिरिरात्मगतैः फुल्लैः कर्णिकारैरिवाचितः॥ २०॥

उसी दुःसहका यह शरीर बाणोंसे खचाखच भरा हुआ है, जो अपने ऊपर खिले हुए कनेरके फूलोंसे व्याप्त पर्वतके समान सुशोभित होता है॥ २०॥

शातकौम्भ्या स्रजा भाति कवचेन च भास्वता।
अग्निनेव गिरिः श्वेतो गतासुरपि दुःसहः॥ २१॥

यद्यपि दुःसहके प्राण चले गये हैं तो भी वह सोनेकी माला और तेजस्वी कवचसे सुशोभित हो अग्नियुक्त श्वेत पर्वतके समान जान पड़ता है॥ २१॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि गान्धारीवाक्ये एकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत स्त्रीविलापपर्वमें गान्धारीवाक्यविषयक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९॥

विंशोऽध्यायः

गान्धारीद्वारा श्रीकृष्णके प्रति उत्तरा और विराटकुलकी स्त्रियोंके शोक एवं विलापका वर्णन

गान्धार्युवाच

अध्यर्धगुणमाहुर्यं बले शौर्ये च केशव।
पित्रा त्वया च दाशार्ह दृप्तं सिंहमिवोत्कटम्॥ १॥
यो बिभेद चमूमेको मम पुत्रस्य दुर्भिदाम्।
स भूत्वा मृत्युरन्येषां स्वयं मृत्युवशं गतः॥ २॥

गान्धारी बोलीं—दशार्हनन्दन केशव! जिसे बल और शौर्यमें अपने पितासे तथा तुमसे भी डेढ़ गुना बताया जाता था, जो प्रचण्ड सिंहके समान अभिमानमें भरा रहता था, जिसने अकेले ही मेरे पुत्रके दुर्भेद्य व्यूहको तोड़ डाला था, वही अभिमन्यु दूसरोंकी मृत्यु बनकर स्वयं भी मृत्युके अधीन हो गया॥ १-२॥

तस्योपलक्षये कृष्ण कार्ष्णेरमिततेजसः।
अभिमन्योर्हतस्यापि प्रभा नैवोपशाम्यति॥ ३॥

श्रीकृष्ण! मैं देख रही हूँ कि मारे जानेपर भी अमित

तेजस्वी अर्जुनपुत्र अभिमन्युकी कान्ति अभी बुझ नहीं पा रही है ॥ ३ ॥

एषा विराटदुहिता स्नुषा गाण्डीवधन्वनः ।
आर्ता बालं पतिं वीरं दृष्ट्वा शोचत्यनिन्दिता ॥ ४ ॥

यह राजा विराटकी पुत्री और गाण्डीवधारी अर्जुनकी पुत्रवधू सती साध्वी उत्तरा अपने बालक पति वीर अभिमन्युको मरा देख आर्त होकर शोक प्रकट कर रही है ॥ ४ ॥

तमेषा हि समागम्य भार्या भर्तारमन्तिके ।
विराटदुहिता कृष्ण पाणिना परिमार्जति ॥ ५ ॥

श्रीकृष्ण ! यह विराटकी पुत्री और अभिमन्युकी पत्नी उत्तरा अपने पतिके निकट जा उसके शरीरपर हाथ फेर रही है॥

तस्य वक्त्रमुपाघ्राय सौभद्रस्य मनस्विनी ।
विबुद्धकमलाकारं कम्बुवृत्तशिरोधरम् ॥ ६ ॥
काम्यरूपवती चैषा परिष्वजति भामिनी ।
लज्जमाना पुरा चैनं माध्वीकमदमूर्च्छिता ॥ ७ ॥

सुभद्राकुमारका मुख प्रफुल्ल कमलके समान शोभा पाता है। उसकी ग्रीवा शङ्खके समान और गोल है। कमनीय रूप-सौन्दर्यसे सुशोभित माननीय एवं मनस्विनी उत्तरा पतिके मुखारविन्दको सूँघकर उसे गलेसे लगा रही है। पहले भी यह इसी प्रकार मधुके मदसे अचेत हो सलज्ज भावसे उसका आलिङ्गन करती रही होगी ॥ ६-७ ॥

तस्य क्षतजसंदिग्धं जातरूपपरिष्कृतम् ।
विमुच्य कवचं कृष्ण शरीरमभिवीक्षते ॥ ८ ॥

श्रीकृष्ण ! अभिमन्युका सुवर्ण-भूषित कवच खूनसे रँग गया है। बालिका उत्तरा उस कवचको खोलकर पतिके शरीरको देख रही है ॥ ८ ॥

अवेक्षमाणा तं बाला कृष्ण त्वामभिभाषते ।
अयं ते पुण्डरीकाक्ष सदृशाक्षो निपातितः ॥ ९ ॥

उसे देखती हुई वह बाला तुमसे पुकारकर कहती है, 'कमलनयन ! आपके भानजेके नेत्र भी आपके ही समान थे। ये रणभूमिमें मार गिराये गये हैं ॥ ९ ॥

बले वीर्ये च सदृशस्तेजसा चैव तेऽनघ ।
रूपेण च तथात्यर्थं शेते भुवि निपातितः ॥ १० ॥

'अनघ ! जो बल, वीर्य, तेज और रूपमें सर्वथा आपके समान थे, वे ही सुभद्राकुमार शत्रुओंद्वारा मारे जाकर पृथ्वीपर सो रहे हैं' ॥ १० ॥

अत्यन्तं सुकुमारस्य राङ्कवाजिनशायिनः ।
कच्चिदद्य शरीरं ते भूमौ न परितप्यते ॥ ११ ॥

(श्रीकृष्ण ! अब उत्तरा अपने पतिको सम्बोधित करके कहती है) 'प्रियतम ! आपका शरीर तो अत्यन्त सुकुमार है। आप रङ्कुमृगके चर्मसे बने हुए सुकोमल बिछौनेपर सोया करते थे। क्या आज इस तरह पृथ्वीपर पड़े रहनेसे आपके शरीरको कष्ट नहीं होता है ? ॥ ११ ॥

मातङ्गभुजवर्ष्माणौ ज्याक्षेपकठिनत्वचौ ।
काञ्चनाङ्गदिनौ शेते निक्षिप्य विपुलौ भुजौ ॥ १२ ॥

'जो हाथीकी सूँड़के समान बड़ी हैं, निरन्तर प्रत्यञ्चा खींचनेके कारण रगड़से जिनकी त्वचा कठोर हो गयी है तथा जो सोनेके बाजूबन्द धारण करते हैं, उन विशाल भुजाओंको फैलाकर आप सो रहे हैं ॥ १२ ॥

व्यायम्य बहुधा नूनं सुखसुप्तः श्रमादिव ।
एवं विलपतीमार्तां न हि मामभिभाषसे ॥ १३ ॥

'निश्चय ही बहुत परिश्रम करके मानो थक जानेके कारण आप सुखकी नींद ले रहे हों। मैं इस तरह आर्त होकर विलाप करती हूँ, किंतु आप मुझसे बोलतेतक नहीं हैं॥

न स्मराम्यपराधं ते किं मां न प्रतिभाषसे ।
ननु मां त्वं पुरा दूरादभिवीक्ष्याभिभाषसे ॥ १४ ॥

'मैंने कोई अपराध किया हो, ऐसा तो मुझे स्मरण नहीं है, फिर क्या कारण है कि आप मुझसे नहीं बोलते हैं। पहले तो आप मुझे दूरसे भी देख लेनेपर बोले बिना नहीं रहते थे॥

आर्यामार्य सुभद्रां त्वमिमांश्च त्रिदशोपमान् ।
पितॄन् मां चैव दुःखार्तां विहाय क्व गमिष्यसि ॥ १५ ॥

'आर्य ! आप माता सुभद्राको, इन देवताओंके समान ताऊ, पिता और चाचाओंको तथा मुझ दुःखातुरा पत्नीको छोड़कर कहाँ जायँगे ?' ॥ १५ ॥

तस्य शोणितदिग्धान् वै केशानुद्यम्य पाणिना ।
उत्सङ्गे वक्त्रमाधाय जीवन्तमिव पृच्छति ॥ १६ ॥

जनार्दन ! देखो, अभिमन्युके सिरको गोदीमें रखकर उत्तरा उसके खूनसे सने हुए केशोंको हाथसे उठा-उठाकर सुलझाती है और मानो वह जी रहा हो, इस प्रकार उससे पूछती है ॥ १६ ॥

स्वस्रीयं वासुदेवस्य पुत्रं गाण्डीवधन्वनः ।
कथं त्वां रणमध्यस्थं जघ्नुरेते महारथाः ॥ १७ ॥

'प्राणनाथ ! आप वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके भानजे और गाण्डीवधारी अर्जुनके पुत्र थे। रणभूमिके मध्यभागमें खड़े हुए आपको इन महारथियोंने कैसे मार डाला ?॥ १७ ॥

धिगस्तु क्रूरकर्तॄंस्तान् कृपकर्णजयद्रथान् ।
द्रोणद्रौणायनी चोभौ यैरहं विधवा कृता ॥ १८ ॥

'उन क्रूरकर्मा कृपाचार्य, कर्ण और जयद्रथको धिक्कार है, द्रोणाचार्य और उनके पुत्रको भी धिक्कार है ! जिन्होंने मुझे इसी उम्रमें विधवा बना दिया ॥ १८ ॥

रथर्षभाणां सर्वेषां कथमासीत् तदा मनः ।
बालं त्वां परिवार्यैकं मम दुःखाय जघ्नुषाम् ॥ १९ ॥

'आप बालक थे और अकेले युद्ध कर रहे थे तो भी मुझे दुःख देनेके लिये जिन लोगोंने मिलकर आपको मारा था, उन समस्त श्रेष्ठ महारथियोंके मनकी उस समय क्या दशा हुई थी?॥ १९ ॥

कथं नु पाण्डवानां च पञ्चालानां तु पश्यताम् ।
त्वं वीर निधनं प्राप्तो नाथवान् सन्ननाथवत् ॥ २० ॥

'वीर ! आप पाण्डवों और पाञ्चालोंके देखते-देखते सनाथ होते हुए भी अनाथकी भाँति कैसे मारे गये ?॥ २० ॥

दृष्ट्वा बहुभिराक्रन्दे निहतं त्वां पिता तव।
वीरः पुरुषशार्दूलः कथं जीवति पाण्डवः ॥ २१ ॥

'आपको युद्धस्थलमें बहुत-से महारथियोंद्वारा मारा गया देख आपके पिता पुरुषसिंह वीर पाण्डव अर्जुन कैसे जी रहे हैं ? ॥ २१ ॥

न राज्यलाभो विपुलः शत्रूणां च पराभवः।
प्रीतिं धास्यति पार्थानां त्वामृते पुष्करेक्षण ॥ २२ ॥

'कमलनयन ! प्राणेश्वर ! पाण्डवोंको जो यह विशाल राज्य मिल गया है, उन्होंने शत्रुओंको जो पराजित कर दिया है, यह सब कुछ आपके बिना उन्हें प्रसन्न नहीं कर सकेगा ॥

तव शस्त्रजिताँल्लोकान् धर्मेण च दमेन च।
क्षिप्रमन्वागमिष्यामि तत्र मां प्रतिपालय ॥ २३ ॥

'आर्यपुत्र ! आपके शस्त्रोंद्वारा जीते हुए पुण्यलोकोंमें मैं भी धर्म और इन्द्रिय-संयमके बलसे शीघ्र ही आऊँगी। आप वहाँ मेरी राह देखिये ॥ २३ ॥

दुर्मरं पुनरप्राप्ते काले भवति केनचित्।
यदहं त्वां रणे दृष्ट्वा हतं जीवामि दुर्भगा ॥ २४ ॥

'जान पड़ता है कि मृत्युकाल आये बिना किसीका भी मरना अत्यन्त कठिन है, तभी तो मैं अभागिनी आपको युद्धमें मारा गया देखकर भी अबतक जी रही हूँ ॥ २४ ॥

कामिदानीं नरव्याघ्र श्लक्ष्णया स्मितया गिरा।
पितृलोके समेत्यान्यां मामिवामन्त्रयिष्यसि ॥ २५ ॥

'नरश्रेष्ठ ! आप पितृलोकमें जाकर इस समय मेरी ही तरह दूसरी किस स्त्रीको मन्द मुस्कानके साथ मीठी वाणीद्वारा बुलायेंगे ? ॥ २५ ॥

नूनमप्सरसां स्वर्गे मनांसि प्रमथिष्यसि।
परमेण च रूपेण गिरा च स्मितपूर्वया ॥ २६ ॥

'निश्चय ही स्वर्गमें जाकर आप अपने सुन्दर रूप और मन्द मुस्कानयुक्त मधुर वाणीके द्वारा वहाँकी अप्सराओंके मनको मथ डालेंगे ॥ २६ ॥

प्राप्य पुण्यकृताँल्लोकानप्सरोभिः समेयिवान्।
सौभद्र विहरन् काले स्मरेथाः सुकृतानि मे ॥ २७ ॥

'सुभद्रानन्दन ! आप पुण्यात्माओंके लोकोंमें जाकर अप्सराओंके साथ मिलकर विहार करते समय मेरे शुभ कर्मोंका भी स्मरण कीजियेगा ॥ २७ ॥

एतावानिह संवासो विहितस्ते मया सह।
षण्मासान् सप्तमे मासि त्वं वीर निधनं गतः ॥ २८ ॥

'वीर ! इस लोकमें तो मेरे साथ आपका कुल छः महीनोंतक ही सहवास रहा है। सातवें महीनेमें ही आप वीरगतिको प्राप्त हो गये' ॥ २८ ॥

इत्युक्तवचनामेतामपकर्षन्ति दुःखिताम्।
उत्तरां मोघसंकल्पां मत्स्यराजकुलस्त्रियः ॥ २९ ॥

इस तरहकी बातें कहकर दुःखमें डूबी हुई इस उत्तराको जिसका सारा संकल्प मिट्टीमें मिल गया है, मत्स्यराज विराटके कुलकी स्त्रियाँ खींचकर दूर ले जा रही हैं ॥ २९ ॥

उत्तरामपकृष्यैनामार्तामार्ततराः स्वयम्।
विराटं निहतं दृष्ट्वा क्रोशन्ति विलपन्ति च ॥ ३० ॥

शोकसे आतुर हुई उत्तराको खींचकर अत्यन्त आर्त हुई वे स्त्रियाँ राजा विराटको मारा गया देख स्वयं भी चीखने और विलाप करने लगी हैं ॥ ३० ॥

द्रोणास्त्रशरसंकृत्तं शयानं रुधिरोक्षितम्।
विराटं वितुदन्त्येते गृध्रगोमायुवायसाः ॥ ३१ ॥

द्रोणाचार्यके बाणोंसे छिन्न-भिन्न हो खूनसे लथपथ होकर रणभूमिमें पड़े हुए राजा विराटको ये गीध, गीदड़ और कौए नोच रहे हैं ॥ ३१ ॥

वितुद्यमानं विहगैर्विराटमसितेक्षणाः।
न शक्नुवन्ति विहगान् निवारयितुमातुराः ॥ ३२ ॥

विराटको उन विहङ्गोंद्वारा नोचे जाते देख कजरारी आँखोंवाली उनकी रानियाँ आतुर हो-होकर उन्हें हटानेकी चेष्टा करती हैं, पर हटा नहीं पाती हैं ॥ ३२ ॥

आसामातपतप्तानामायासेन च योषिताम्।
श्रमेण च विवर्णानां वक्त्राणां विप्लुतं वपुः ॥ ३३ ॥

इन युवतियोंके मुखारविन्द धूपसे तप गये हैं, आयास और परिश्रमसे उनके रंग फीके पड़ गये हैं ॥ ३३ ॥

उत्तरं चाभिमन्युं च काम्बोजं च सुदक्षिणम्।
शिशूनेतान् हतान् पश्य लक्ष्मणं च सुदर्शनम् ॥ ३४ ॥
आयोधनशिरोमध्ये शयानं पश्य माधव ॥ ३५ ॥

माधव ! उत्तर, अभिमन्यु, काम्बोजनिवासी सुदक्षिण और सुन्दर दिखायी देनेवाले लक्ष्मण—ये सभी बालक थे। इन मारे गये बालकोंको देखो। युद्धके मुहानेपर सोये हुए परम सुन्दर कुमार लक्ष्मणपर भी दृष्टिपात करो ॥ ३४-३५ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि गान्धारीवाक्ये विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत स्त्रीविलापपर्वमें गान्धारीवाक्यविषयक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः

गान्धारीके द्वारा कर्णको देखकर उसके शौर्य तथा उसकी स्त्रीके विलापका श्रीकृष्णके सम्मुख वर्णन

गान्धार्युवाच

एष वैकर्तनः शेते महेष्वासो महारथः।
ज्वलितानलवत् संख्ये संशान्तः पार्थतेजसा ॥ १ ॥

गान्धारी बोलीं—श्रीकृष्ण ! देखो, यह महाधनुर्धर महारथी वैकर्तन कर्ण कुन्तीकुमार अर्जुनके तेजसे बुझी हुई प्रज्वलित आगके समान युद्धस्थलमें शान्त होकर सो रहा है ॥

पश्य वैकर्तनं कर्णं निहत्यातिरथान् बहून्।
शोणितौघपरीताङ्गं शयानं पतितं भुवि ॥ २ ॥

माधव ! देखो, वैकर्तन कर्ण बहुत-से अतिरथी वीरोंका संहार करके स्वयं भी खूनसे लथपथ होकर पृथ्वीपर सोया पड़ा है ॥ २ ॥

अमर्षी दीर्घरोषश्च महेष्वासो महाबलः ।
रणे विनिहतः शेते शूरो गाण्डीवधन्वना ॥ ३ ॥

शूरवीर कर्ण महान् बलवान् और महाधनुर्धर था। यह दीर्घकालतक रोषमें भरा रहनेवाला और अमर्षशील था, परंतु गाण्डीवधारी अर्जुनके हाथसे मारा जाकर यह वीर रणभूमिमें सो गया है ॥ ३ ॥

यं स्म पाण्डवसंत्रासान्मम पुत्रा महारथाः ।
प्रायुध्यन्त पुरस्कृत्य मातङ्गा इव यूथपम् ॥ ४ ॥
शार्दूलमिव सिंहेन समरे सव्यसाचिना ।
मातङ्गमिव मत्तेन मातङ्गेन निपातितम् ॥ ५ ॥

पाण्डुपुत्र अर्जुनके डरसे मेरे महारथी पुत्र जिसे आगे करके यूथपतिको आगे रखकर लड़नेवाले हाथियोंके समान पाण्डवसेनाके साथ युद्ध करते थे, उसी वीरको सव्यसाची अर्जुनने समराङ्गणमें उसी तरह मार डाला है, जैसे एक सिंहने दूसरे सिंहको तथा एक मतवाले हाथीने दूसरे मदोन्मत्त गजराजको मार गिराया हो ॥ ४-५ ॥

समेताः पुरुषव्याघ्र निहतं शूरमाहवे ।
प्रकीर्णमूर्धजाः पत्न्यो रुदत्यः पर्युपासते ॥ ६ ॥

पुरुषसिंह ! रणभूमिमें मारे गये इस शूरवीरके पास आकर इसकी पत्नियाँ सिरके बाल बिखेरे बैठी हुई रो रही हैं ॥

उद्विग्नः सततं यस्माद् धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
त्रयोदश समा निद्रां चिन्तयन् नाध्यगच्छत ॥ ७ ॥
अनाधृष्यः परैर्युद्धे शत्रुभिर्मघवानिव ।
युगान्ताग्निरिवार्चिष्मान् हिमवानिव निश्चलः ॥ ८ ॥
स भूत्वा शरणं वीरो धार्तराष्ट्रस्य माधव ।
भूमौ विनिहतः शेते वातभग्न इव द्रुमः ॥ ९ ॥

माधव ! जिससे निरन्तर उद्विग्न रहनेके कारण धर्मराज युधिष्ठिरको चिन्ताके मारे तेरह वर्षोंतक नींद नहीं आयी, जो युद्धस्थलमें इन्द्रके समान शत्रुओंके लिये अजेय था, प्रलयङ्कर अग्निके समान तेजस्वी और हिमालयके समान निश्चल था, वही वीर कर्ण धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनके लिये शरणदाता हो मारा जाकर आँधीसे टूटकर पड़े हुए वृक्षके समान धराशायी हो गया है ॥ ७-९ ॥

पश्य कर्णस्य पत्नीं त्वं वृषसेनस्य मातरम् ।
लालप्यमानां करुणं रुदतीं पतितां भुवि ॥ १० ॥

देखो, कर्णकी पत्नी एवं वृषसेनकी माता पृथ्वीपर गिरकर रोती हुई कैसा करुणाजनक विलाप कर रही है ! ॥ १० ॥

आचार्यशापोऽनुगतो ध्रुवं त्वां
यदग्रसच्चक्रमिदं धरित्री ।
ततः शरेणापहृतं शिरस्ते
धनंजयेनाहवशोभिना युधि ॥ ११ ॥

'प्राणनाथ ! निश्चय ही तुमपर आचार्यका दिया हुआ शाप लागू हो गया, जिससे इस पृथ्वीने तुम्हारे रथके पहियेको ग्रस लिया, तभी युद्धमें शोभा पानेवाले अर्जुनने रणभूमिमें अपने बाणसे तुम्हारा सिर काट लिया' ॥ ११ ॥

हाहा धिगेषा पतिता विसंज्ञा
समीक्ष्य जाम्बूनदबद्धकक्षम् ।
कर्णं महाबाहुमदीनसत्त्वं
सुषेणमाता रुदती भृशार्ता ॥ १२ ॥

हाय ! हाय ! मुझे धिक्कार है। सुवर्ण-कवचधारी उदार हृदय महाबाहु कर्णको इस अवस्थामें देखकर अत्यन्त आतुर हो रोती हुई सुषेणकी माता मूर्छित होकर गिर पड़ी ॥

अल्पावशेषोऽपि कृतो महात्मा
शरीरभक्षैः परिभक्षयद्भिः ।
द्रष्टुं न नः प्रीतिकरः शशीव
कृष्णस्य पक्षस्य चतुर्दशाहे ॥ १३ ॥

मानव-शरीरका भक्षण करनेवाले जन्तुओंने खा-खाकर महामना कर्णके शरीरको थोड़ा-सा ही शेष रहने दिया है। उसका यह अल्पावशेष शरीर कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके चन्द्रमाकी भाँति देखनेपर हमलोगोंको प्रसन्नता नहीं प्रदान करता है ॥ १३ ॥

सा वर्तमाना पतिता पृथिव्या-
मुत्थाय दीना पुनरेव चैषा ।
कर्णस्य वक्त्रं परिजिघ्रमाणा
रोरूयते पुत्रवधाभितप्ता ॥ १४ ॥

वह बेचारी कर्णकी पत्नी पृथ्वीपर गिरकर उठी और उठकर पुनः गिर पड़ी। कर्णका मुख सूँघती हुई यह नारी अपने पुत्रके वधसे संतप्त हो फूट-फूटकर रो रही है ॥ १४ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि कर्णदर्शनो नामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत स्त्रीविलापपर्वमें कर्णका दर्शनविषयक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

अपनी-अपनी स्त्रियोंसे घिरे हुए अवन्ती-नरेश और जयद्रथको देखकर तथा दुःशलापर दृष्टिपात करके गान्धारीका श्रीकृष्णके सम्मुख विलाप

गान्धार्युवाच

आवन्त्यं भीमसेनेन भक्षयन्ति निपातितम् ।
गृध्रगोमायवः शूरं बहुबन्धुमबन्धुवत् ॥ १ ॥

गान्धारी बोलीं—भीमसेनने जिसे मार गिराया था,

वह शूरवीर अवन्तीनरेश बहुतेरे बन्धु-बान्धवोंसे सम्पन्न था; परंतु आज उसे बन्धुहीनकी भाँति गीध और गीदड़ नोच-नोचकर खा रहे हैं ॥ १ ॥

तं पश्य कदनं कृत्वा शूराणां मधुसूदन।
शयानं वीरशयने रुधिरेण समुक्षितम् ॥ २ ॥

मधुसूदन ! देखो, अनेकों शूरवीरोंका संहार करके वह खूनसे लथपथ हो वीरशय्यापर सो रहा है ॥ २ ॥

तं शृगालाश्च कङ्काश्च क्रव्यादाश्च पृथग्विधाः।
तेन तेन विकर्षन्ति पश्य कालस्य पर्ययम् ॥ ३ ॥

उसे सियार, कङ्क और नाना प्रकारके मांसभक्षी जीवजन्तु इधर-उधर खींच रहे हैं। यह समयका उलट-फेर तो देखो ॥

शयानं वीरशयने शूरमाक्रन्दकारिणम्।
आवन्त्यमभितो नार्यो रुदत्यः पर्युपासते ॥ ४ ॥

भयानक मार-काट मचानेवाले इस शूरवीर अवन्तीनरेशको वीरशय्यापर सोया हुआ देख उसकी स्त्रियाँ रोती हुई उसे सब ओरसे घेरकर बैठी हैं ॥ ४ ॥

प्रातिपेयं महेष्वासं हतं भल्लेन बाह्लिकम्।
प्रसुप्तमिव शार्दूलं पश्य कृष्ण मनस्विनम् ॥ ५ ॥

श्रीकृष्ण ! देखो, महाधनुर्धर प्रतीपनन्दन मनस्वी बाह्लिक भल्लसे मारे जाकर सोये हुए सिंहके समान पड़े हैं ॥ ५ ॥

अतीव मुखवर्णोऽस्य निहतस्यापि शोभते।
सोमस्येवाभिपूर्णस्य पौर्णमास्यां समुद्यतः ॥ ६ ॥

रणभूमिमें मारे जानेपर भी पूर्णमासीको उगते हुए पूर्ण चन्द्रमाकी भाँति इनके मुखकी कान्ति अत्यन्त प्रकाशित हो रही है ॥

पुत्रशोकाभितप्तेन प्रतिज्ञां चाभिरक्षता।
पाकशासनिना संख्ये वार्धक्षत्रिर्निपातितः ॥ ७ ॥
एकादश चमूर्भित्त्वा रक्ष्यमाणं महात्मना।
सत्यं चिकीर्षता पश्य हतमेनं जयद्रथम् ॥ ८ ॥

श्रीकृष्ण ! पुत्रशोकसे संतप्त हो अपनी की हुई प्रतिज्ञाका पालन करते हुए इन्द्रकुमार अर्जुनने युद्धस्थलमें वृद्धक्षत्रके पुत्र जयद्रथको मार गिराया है। यद्यपि उसकी रक्षाकी पूरी व्यवस्था की गयी थी, तब भी अपनी प्रतिज्ञाको सत्य कर दिखाने की इच्छावाले महात्मा अर्जुनने ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओंका भेदन करके जिसे मार डाला था, वही यह जयद्रथ यहाँ पड़ा है। इसे देखो ॥ ७-८ ॥

सिन्धुसौवीरभर्तारं दर्पपूर्णं मनस्विनम्।
भक्षयन्ति शिवा गृध्रा जनार्दन जयद्रथम् ॥ ९ ॥

जनार्दन ! सिन्धु और सौवीर देशके स्वामी अभिमानी और मनस्वी जयद्रथको गीध और सियार नोच-नोचकर खा रहे हैं।

संरक्ष्यमाणं भार्याभिरनुरक्ताभिरच्युत।
भीषयन्त्यो विकर्षन्ति गहनं निम्नमन्तिकात् ॥ १० ॥

अच्युत ! इसमें अनुराग रखनेवाली इसकी पत्नियाँ यद्यपि रक्षामें लगी हुई हैं, तथापि गीदड़ियाँ उन्हें डरवाकर जयद्रथकी लाशको उनके निकटसे गहरे गड्ढेकी ओर खींचे लिये जा रही हैं ॥ १० ॥

तमेताः पर्युपासन्ते रक्ष्यमाणं महाभुजम्।
सिन्धुसौवीरभर्तारं काम्बोजयवनस्त्रियः ॥ ११ ॥

ये काम्बोज और यवनदेशकी स्त्रियाँ सिन्धु और सौवीरदेशके स्वामी महाबाहु जयद्रथको चारों ओरसे घेरकर बैठी हैं और वह उन्हींके द्वारा सुरक्षित हो रहा है ॥ ११ ॥

यदा कृष्णामुपादाय प्राद्रवत् केकयैः सह।
तदैव वध्यः पाण्डूनां जनार्दन जयद्रथः ॥ १२ ॥
दुःशलां मानयद्भिस्तु तदा मुक्तो जयद्रथः।
कथमद्य न तां कृष्ण मानयन्ति स्म ते पुनः ॥ १३ ॥

जनार्दन ! जिस दिन जयद्रथ द्रौपदीको हरकर केकयोंके साथ भागा था, उसी दिन यह पाण्डवोंके द्वारा वध्य हो गया था; परंतु उस समय दुःशलाका सम्मान करते हुए उन्होंने जयद्रथको जीवित छोड़ दिया था ! श्रीकृष्ण ! उन्हीं पाण्डवोंने आज फिर क्यों नहीं उसका सम्मान किया ? ॥ १२-१३ ॥

सैषा मम सुता बाला विलपन्ती च दुःखिता।
आत्मना हन्ति चात्मानमाक्रोशन्ती च पाण्डवान् ॥ १४ ॥

देखो, वहीं मेरी यह बेटी दुःशला जो अभी बालिका है, किस तरह दुखी हो-होकर विलाप कर रही है ! और पाण्डवोंको कोसती हुई स्वयं ही अपनी छाती पीट रही है ! ॥ १४ ॥

किं नु दुःखतरं कृष्ण परं मम भविष्यति।
यत् सुता विधवा बाला स्नुषाश्च निहतेश्वराः ॥ १५ ॥

श्रीकृष्ण ! मेरे लिये इससे बढ़कर महान् दुःखकी बात और क्या होगी कि यह छोटी अवस्थाकी मेरी बेटी विधवा हो गयी तथा मेरी सारी पुत्रवधुएँ भी अनाथा हो गयीं ॥ १५ ॥

हा हा धिग् दुःशलां पश्य वीतशोकभयामिव।
शिरो भर्तुरनासाद्य धावमानामितस्ततः ॥ १६ ॥

हाय ! हाय, धिक्कार है ! देखो, देखो दुःशला शोक और भयसे रहित-सी होकर अपने पतिका मस्तक न पानेके कारण इधर-उधर दौड़ रही है ॥ १६ ॥

वारयामास यः सर्वान् पाण्डवान् पुत्रगृद्धिनः।
स हत्वा विपुलाः सेनाः स्वयं मृत्युवशं गतः ॥ १७ ॥

जिस वीरने अपने पुत्रको बचानेकी इच्छावाले समस्त पाण्डवोंको अकेले रोक दिया था, वही कितनी ही सेनाओंका संहार करके स्वयं मृत्युके अधीन हो गया ॥ १७ ॥

तं मत्तमिव मातङ्गं वीरं परमदुर्जयम्।
परिवार्य रुदन्त्येताः स्त्रियश्चन्द्रोपमाननाः ॥ १८ ॥

मतवाले हाथीके समान उस परम दुर्जय वीरको सब ओरसे घेरकर ये चन्द्रमुखी रमणियाँ रो रही हैं ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि गान्धारीवाक्ये द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत स्त्रीविलापपर्वमें गान्धारीका वाक्यविषयक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

शल्य, भगदत्त, भीष्म और द्रोणको देखकर श्रीकृष्णके सम्मुख गान्धारीका विलाप

गान्धार्युवाच

एष शल्यो हतः शेते साक्षान्नकुलमातुलः।
धर्मज्ञेन हतस्तात धर्मराजेन संयुगे ॥ १ ॥

गान्धारी बोलीं—तात! देखो, ये नकुलके सगे मामा शल्य मरे पड़े हैं। इन्हें धर्मके ज्ञाता धर्मराज युधिष्ठिरने युद्धमें मारा है ॥ १ ॥

यस्त्वया स्पर्धते नित्यं सर्वत्र पुरुषर्षभ।
स एष निहतः शेते मद्रराजो महाबलः ॥ २ ॥

पुरुषोत्तम! जो सदा और सर्वत्र तुम्हारे साथ होड़ लगाये रहते थे, वे ही ये महाबली मद्रराज शल्य यहाँ मारे जाकर चिरनिद्रामें सो रहे हैं ॥ २ ॥

येन संगृह्णता तात रथमाधिरथेर्युधि।
जयार्थं पाण्डुपुत्राणां तथा तेजोवधः कृतः ॥ ३ ॥

तात! ये वे ही शल्य हैं, जिन्होंने युद्धमें सूतपुत्र कर्णके रथकी बागडोर सँभालते समय पाण्डवोंकी विजयके लिये उसके तेज और उत्साहको नष्ट किया था ॥ ३ ॥

अहो धिक्पश्य शल्यस्य पूर्णचन्द्रसुदर्शनम्।
मुखं पद्मपलाशाक्षं काकैरादष्टमव्रणम् ॥ ४ ॥

अहो! धिक्कार है। देखो न, शल्यके पूर्ण चन्द्रमाकी भाँति दर्शनीय तथा कमलदलके सदृश नेत्रोंवाले व्रणरहित मुखको कौओंने कुछ-कुछ काट दिया है ॥ ४ ॥

अस्य चामीकराभस्य तप्तकाञ्चनसप्रभा।
आस्याद् विनिःसृता जिह्वा भक्ष्यते कृष्ण पक्षिभिः ॥ ५ ॥

श्रीकृष्ण! सुवर्णके समान कान्तिमान् शल्यके मुखसे तपाये हुए सोनेके समान कान्तिवाली जीभ बाहर निकल आयी है और पक्षी उसे नोच-नोचकर खा रहे हैं ॥ ५ ॥

युधिष्ठिरेण निहतं शल्यं समितिशोभनम्।
रुदत्यः पर्युपासन्ते मद्रराजं कुलाङ्गनाः ॥ ६ ॥

युधिष्ठिरके द्वारा मारे गये तथा युद्धमें शोभा पानेवाले मद्रराज शल्यको ये कुलाङ्गनाएँ चारों ओरसे घेरकर बैठी हैं और रो रही हैं ॥ ६ ॥

एताः सुसूक्ष्मवसना मद्रराजं नरर्षभम्।
क्रोशन्त्योऽथ समासाद्य क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् ॥ ७ ॥

अत्यन्त महीन वस्त्र पहने हुए ये क्षत्राणियाँ क्षत्रिय-शिरोमणि नरश्रेष्ठ मद्रराजके पास आकर कैसा करुण क्रन्दन कर रही हैं ॥ ७ ॥

शल्यं निपतितं नार्यः परिवार्याभितः स्थिताः।
वासिता गृष्टयः पङ्के परिमग्नमिव द्विपम् ॥ ८ ॥

रणभूमिमें गिरे हुए राजा शल्यको उनकी स्त्रियाँ उसी तरह सब ओरसे घेरे हुए हैं, जैसे एक बारकी ब्यायी हुई हथिनियाँ कीचड़में फँसे हुए गजराजको घेरकर खड़ी हों ॥ ८ ॥

शल्यं शरणदं शूरं पश्येमं वृष्णिनन्दन।
शयानं वीरशयने शरैर्विशकलीकृतम् ॥ ९ ॥

वृष्णिनन्दन! देखो, ये दूसरोंको शरण देनेवाले शूरवीर शल्य बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर वीरशय्यापर सो रहे हैं ॥ ९ ॥

एष शैलालयो राजा भगदत्तः प्रतापवान्।
गजाङ्कुशधरः श्रीमाञ्शेते भुवि निपातितः ॥ १० ॥

ये पर्वतीय, तेजस्वी एवं प्रतापी राजा भगदत्त हाथमें हाथीका अङ्कुश लिये पृथ्वीपर सो रहे हैं। इन्हें अर्जुनने मार गिराया था ॥

यस्य रुक्ममयी माला शिरस्येषा विराजते।
श्वापदैर्भक्ष्यमाणस्य शोभयन्तीव मूर्धजान् ॥ ११ ॥

इन्हें हिंसक जीव-जन्तु खा रहे हैं। इनके सिरपर यह सोनेकी माला विराज रही है, जो केशोंकी शोभा बढ़ाती-सी जान पड़ती है ॥ ११ ॥

एतेन किल पार्थस्य युद्धमासीत् सुदारुणम्।
रोमहर्षणमत्युग्रं शक्रस्य त्वहिना यथा ॥ १२ ॥

जैसे वृत्रासुरके साथ इन्द्रका अत्यन्त भयङ्कर संग्राम हुआ था, उसी प्रकार इन भगदत्तके साथ कुन्तीकुमार अर्जुनका अत्यन्त दारुण एवं रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ था ॥ १२ ॥

योधयित्वा महाबाहुरेष पार्थं धनंजयम्।
संशयं गमयित्वा च कुन्तीपुत्रेण पातितः ॥ १३ ॥

उन महाबाहुने कुन्तीकुमार धनंजयके साथ युद्ध करके उन्हें संशयमें डाल दिया था; परंतु अन्तमें ये उन कुन्तीकुमारके ही हाथसे मारे गये ॥ १३ ॥

यस्य नास्ति समो लोके शौर्ये वीर्ये च कश्चन।
स एष निहतः शेते भीष्मो भीष्मकृताहवे ॥ १४ ॥

संसारमें शौर्य और बलमें जिनकी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है, वे ही ये युद्धमें भयङ्कर कर्म करनेवाले भीष्मजी घायल हो बाणशय्यापर सो रहे हैं ॥ १४ ॥

पश्य शान्तनवं कृष्ण शयानं सूर्यवर्चसम्।
युगान्त इव कालेन पतितं सूर्यमम्बरात् ॥ १५ ॥

श्रीकृष्ण! देखो, ये सूर्यके समान तेजस्वी शान्तनुनन्दन भीष्म कैसे सो रहे हैं, ऐसा जान पड़ता है, मानो प्रलयकालमें कालसे प्रेरित हो सूर्यदेव आकाशसे भूमिपर गिर पड़े हैं ॥ १५ ॥

एष तप्त्वा रणे शत्रूञ्शस्त्रतापेन वीर्यवान्।
नरसूर्योऽस्तमभ्येति सूर्योऽस्तमिव केशव ॥ १६ ॥

केशव! जैसे सूर्य सारे जगत्‌को ताप देकर अस्ताचलको चले जाते हैं, उसी तरह ये पराक्रमी मानवसूर्य रणभूमिमें अपने शस्त्रोंके प्रतापसे शत्रुओंको संतप्त करके अस्त हो रहे हैं ॥ १६ ॥

शरतल्पगतं भीष्ममूर्ध्वरेतसमच्युतम्।
शयानं वीरशयने पश्य शूरनिषेविते ॥ १७ ॥

जो ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी रहकर कभी मर्यादासे च्युत नहीं हुए हैं, उन भीष्मको शूरसेवित वीरोचित शयन बाणशय्यापर सोते हुए देख लो ॥ १७ ॥

कर्णिनालीकनाराचैरास्तीर्य शयनोत्तमम् ।
आविश्य शेते भगवान् स्कन्दः शरवणं यथा ॥ १८ ॥

जैसे भगवान् स्कन्द सरकण्डोंके समूहपर सोये थे, उसी प्रकार ये भीष्मजी कर्णी, नालीक और नाराच आदि बाणोंकी उत्तम शय्या बिछाकर उसीका आश्रय ले सो रहे हैं ॥ १८ ॥

अतूलपूर्णं गाङ्गेयस्त्रिभिर्बाणैः समन्वितम् ।
उपधायोपधानाग्र्यं दत्तं गाण्डीवधन्वना ॥ १९ ॥

इन गङ्गानन्दन भीष्मने रुई भरा हुआ तकिया नहीं लिया है। इन्होंने तो गाण्डीवधारी अर्जुनके दिये हुए तीन बाणोंद्वारा निर्मित श्रेष्ठ उपधान (तकिये) को ही स्वीकार किया है ॥ १९ ॥

पालयानः पितुः शास्त्रमूर्ध्वरेता महायशाः ।
एष शान्तनवः शेते माधवाप्रतिमो युधि ॥ २० ॥

माधव ! पिताकी आज्ञाका पालन करते हुए महायशस्वी नैष्ठिक ब्रह्मचारी ये शान्तनुनन्दन भीष्म जिनकी युद्धमें कहीं तुलना नहीं है, यहाँ सो रहे हैं ॥ २० ॥

धर्मात्मा तात सर्वज्ञः पारावर्येण निर्णये ।
अमर्त्य इव मर्त्यः सन्नेष प्राणानधारयत् ॥ २१ ॥

तात ! ये धर्मात्मा और सर्वज्ञ हैं। परलोक और इहलोकसम्बन्धी ज्ञानद्वारा सभी आध्यात्मिक प्रश्नोंका निर्णय करनेमें समर्थ हैं तथा मनुष्य होनेपर भी देवताके तुल्य हैं; इन्होंने अभीतक अपने प्राण धारण कर रक्खे हैं ॥ २१ ॥

नास्ति युद्धे कृती कश्चिन्न विद्वान् न पराक्रमी।
यत्र शान्तनवो भीष्मः शेतेऽद्य निहतः शरैः ॥ २२ ॥

जब ये शान्तनुनन्दन भीष्म भी आज शत्रुओंके बाणोंसे मारे जाकर सो रहे हैं तो यही कहना पड़ता है कि 'युद्धमें न कोई कुशल है, न विद्वान् है और न पराक्रमी ही है' ॥ २२ ॥

स्वयमेतेन शूरेण पृच्छ्यमानेन पाण्डवैः ।
धर्मज्ञेनाहवे मृत्युरादिष्टः सत्यवादिना ॥ २३ ॥

पाण्डवोंके पूछनेपर इन धर्मज्ञ एवं सत्यवादी शूरवीरने स्वयं ही अपनी मृत्युका उपाय बता दिया था ॥ २३ ॥

प्रणष्टः कुरुवंशश्च पुनर्येन समुद्धृतः ।
स गतः कुरुभिः सार्धं महाबुद्धिः पराभवम् ॥ २४ ॥

जिन्होंने नष्ट हुए कुरुवंशका पुनः उद्धार किया था, वे ही परम बुद्धिमान् भीष्म इन कौरवोंके साथ परास्त हो गये॥

धर्मेषु कुरवः कं नु परिप्रक्ष्यन्ति माधव ।
गते देवव्रते स्वर्गं देवकल्पे नरर्षभे ॥ २५ ॥

माधव ! इन देवतुल्य नरश्रेष्ठ देवव्रतके स्वर्गलोकमें चले जानेपर अब कौरव किसके पास जाकर धर्मविषयक प्रश्न करेंगे ॥ २५ ॥

अर्जुनस्य विनेतारमाचार्यं सात्यकेस्तथा ।
तं पश्य पतितं द्रोणं कुरूणां गुरुमुत्तमम् ॥ २६ ॥

जो अर्जुनके शिक्षक, सात्यकिके आचार्य तथा कौरवोंके श्रेष्ठ गुरु थे, वे द्रोणाचार्य रणभूमिमें गिरे हुए हैं, उन्हें भी देख लो ॥ २६ ॥

अस्त्रं चतुर्विधं वेद यथैव त्रिदशेश्वरः ।
भार्गवो वा महावीर्यस्तथा द्रोणोऽपि माधव ॥ २७ ॥

माधव ! जैसे देवराज इन्द्र अथवा महापराक्रमी परशुरामजी चार प्रकारकी अस्त्रविद्याको जानते हैं, उसी प्रकार द्रोणाचार्य भी जानते थे ॥ २७ ॥

यस्य प्रसादाद् बीभत्सुः पाण्डवः कर्म दुष्करम् ।
चकार स हतः शेते नैनमस्त्राण्यपालयन् ॥ २८ ॥

जिनके प्रसादसे पाण्डुनन्दन अर्जुनने दुष्कर कर्म किया है, वे ही आचार्य यहाँ मरे पड़े हैं । उन अस्त्रोंने इनकी रक्षा नहीं की ॥ २८ ॥

यं पुरोधाय कुरव आह्वयन्ति स्म पाण्डवान् ।
सोऽयं शस्त्रभृतां श्रेष्ठो द्रोणः शस्त्रैः परिक्षतः ॥ २९ ॥

जिनको आगे रखकर कौरव पाण्डवोंको ललकारा करते थे, वे ही शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य शस्त्रोंसे क्षत-विक्षत हो गये हैं ॥ २९ ॥

यस्य निर्दहतः सेनां गतिरग्नेरिवाभवत् ।
स भूमौ निहतः शेते शान्तार्चिरिव पावकः ॥ ३० ॥

शत्रुओंकी सेनाको दग्ध करते समय जिनकी गति अग्निके समान होती थी, वे ही बुझी हुई लपटोंवाली आगके समान मरकर पृथ्वीपर पड़े हैं ॥ ३० ॥

धनुर्मुष्टिरशीर्णश्च हस्तावापश्च माधव ।
द्रोणस्य निहतस्याजौ दृश्यते जीवतो यथा ॥ ३१ ॥

माधव ! युद्धमें मारे जानेपर भी द्रोणाचार्यके धनुषके साथ जुड़ी हुई मुट्ठी ढीली नहीं हुई है। दस्ताना भी ज्यों-का-त्यों दिखायी देता है, मानो वह जीवित पुरुषके हाथमें हो ॥

वेदा यस्माच्च चत्वारः सर्वाण्यस्त्राणि केशव ।
अनपेतानि वै शूराद् यथैवादौ प्रजापतेः ॥ ३२ ॥
वन्दनार्हाविमौ तस्य बन्दिभिर्वन्दितौ शुभौ ।
गोमायवो विकर्षन्ति पादौ शिष्यशतार्चितौ ॥ ३३ ॥

केशव ! जैसे पूर्वकालसे ही प्रजापति ब्रह्मासे वेद कभी अलग नहीं हुए, उसी प्रकार जिन शूरवीर द्रोणसे चारों वेद और सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र कभी दूर नहीं हुए, उन्हींके बन्दीजनोंद्वारा वन्दित इन दोनों सुन्दर एवं वन्दनीय चरणारविन्दोंको जिनकी सैकड़ों शिष्य पूजा कर चुके हैं, गीदड़ घसीट रहे हैं ॥ ३२-३३ ॥

द्रोणं द्रुपदपुत्रेण निहतं मधुसूदन ।
कृपी कृपणमन्वास्ते दुःखोपहतचेतना ॥ ३४ ॥

मधुसूदन! द्रुपदपुत्रके द्वारा मारे गये द्रोणाचार्यके पास उनकी पत्नी कृपी बड़े दीनभावसे बैठी है। दुःखसे उसकी चेतना लुप्त-सी हो गयी है ॥ ३४ ॥

तां पश्य रुदतीमार्तां मुक्तकेशीमधोमुखीम् ।
हतं पतिमुपासन्तीं द्रोणं शस्त्रभृतां वरम् ॥ ३५ ॥

देखो, कृपी केश खोले नीचे मुँह किये रोती हुई अपने मारे गये पति शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यकी उपासना कर रही है ॥ ३५ ॥

बाणैर्भिन्नतनुत्राणं धृष्टद्युम्नेन केशव ।
उपास्ते वै मृधे द्रोणं जटिला ब्रह्मचारिणी ॥ ३६ ॥

केशव! धृष्टद्युम्नने अपने बाणोंसे जिन आचार्य द्रोणका कवच छिन्न-भिन्न कर दिया है, उन्हींके पास युद्धस्थलमें वह जटाधारिणी ब्रह्मचारिणी कृपी बैठी हुई है ॥ ३६ ॥

प्रेतकृत्यं च यतते कृपी कृपणमातुरा ।
हतस्य समरे भर्तुः सुकुमारी यशस्विनी ॥ ३७ ॥

शोकसे दीन और आतुर हुई यशस्विनी सुकुमारी कृपी समरमें मारे गये पतिदेवका प्रेतकर्म करनेकी चेष्टा कर रही है ॥

अग्नीनाधाय विधिवच्चितां प्रज्वाल्य सर्वतः ।
द्रोणमाधाय गायन्ति त्रीणि सामानि सामगाः ॥ ३८ ॥

विधिपूर्वक अग्निकी स्थापना करके चिताको सब ओरसे प्रज्वलित कर दिया गया है और उसपर द्रोणाचार्यके शरीरको रखकर सामगान करनेवाले ब्राह्मण त्रिविध सामका गान करते हैं ॥ ३८ ॥

कुर्वन्ति च चितामेते जटिला ब्रह्मचारिणः ।
धनुर्भिः शक्तिभिश्चैव रथनीडैश्च माधव ॥ ३९ ॥
शरैश्च विविधैरन्यैर्धक्ष्यते भूरितेजसम् ।
इति द्रोणं समाधाय शंसन्ति च रुदन्ति च ॥ ४० ॥
सामभिस्त्रिभिरन्तस्थैरनुशंसन्ति चापरे ।

माधव! इन जटाधारी ब्रह्मचारियोंने धनुष, शक्ति, रथकी बैठक और नाना प्रकारके बाण तथा अन्य आवश्यक वस्तुओंसे उस चिताका निर्माण किया है। वे उसीपर महातेजस्वी द्रोणको जलाना चाहते थे; इसलिये द्रोणको चितापर रखकर वे वेदमन्त्र पढ़ते और रोते हैं, कुछ लोग अन्त समयमें उपयोगी त्रिविध सामोंका गान करते हैं ॥ ३९-४०½ ॥

अग्नावग्निं समाधाय द्रोणं हुत्वा हुताशने ॥ ४१ ॥
गच्छन्त्यभिमुखा गङ्गां द्रोणशिष्या द्विजातयः ।
अपसव्यां चितिं कृत्वा पुरस्कृत्य कृपीं च ते ॥ ४२ ॥

चिताकी अग्निमें अग्निहोत्रसहित द्रोणाचार्यको रखकर उनकी आहुति दे उन्हींके शिष्य द्विजातिगण कृपीको आगे और चिताको दायें करके गङ्गाजीके तटकी ओर जा रहे हैं ॥ ४१-४२ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि गान्धारीवचने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत स्त्रीविलापपर्वमें गान्धारीवचनविषयक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

भूरिश्रवाके पास उसकी पत्नियोंका विलाप, उन सबको तथा शकुनिको देखकर गान्धारीका श्रीकृष्णके सम्मुख शोकोद्गार

गान्धार्युवाच

सोमदत्तसुतं पश्य युयुधानेन पातितम् ।
वितुद्यमानं विहगैर्बहुभिर्माधवान्तिके ॥ १ ॥

गान्धारी बोलीं—माधव! देखो, सात्यकिने जिन्हें मार गिराया था, वे ही ये सोमदत्तके पुत्र भूरिश्रवा पास ही दिखायी दे रहे हैं। इन्हें बहुत-से पक्षी चोंच मार-मारकर नोच रहे हैं ॥ १ ॥

पुत्रशोकाभिसंतप्तः सोमदत्तो जनार्दन ।
युयुधानं महेष्वासं गर्हयन्निव दृश्यते ॥ २ ॥

जनार्दन! उधर पुत्रशोकसे संतप्त होकर मरे हुए सोमदत्त महाधनुर्धर सात्यकिकी निन्दा करते हुए-से दिखायी दे रहे हैं ॥ २ ॥

असौ हि भूरिश्रवसो माता शोकपरिप्लुता ।
आश्वासयति भर्तारं सोमदत्तमनिन्दिता ॥ ३ ॥

उधर वे शोकमें डूबी हुई भूरिश्रवाकी सती साध्वी माता अपने पतिको मानो आश्वासन देती हुई कहती हैं— ॥ ३ ॥

दिष्ट्या नैनं महाराज दारुणं भरतक्षयम् ।
कुरुसंक्रन्दनं घोरं युगान्तमनुपश्यसि ॥ ४ ॥

'महाराज! सौभाग्यसे आपको यह भरतवंशियोंका दारुण विनाश, घोर प्रलयके समान कुरुकुलका महासंहार देखनेका अवसर नहीं मिला है ॥ ४ ॥

दिष्ट्या यूपध्वजं पुत्रं वीरं भूरिसहस्रदम् ।
अनेकक्रतुयज्वानं निहतं नानुपश्यसि ॥ ५ ॥

'जिसकी ध्वजामें यूपका चिह्न था, जो सहस्रों स्वर्णमुद्राओंकी भूरि-भूरि दक्षिणा दिया करता था और जिसने अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान पूरा कर लिया था, उस वीर पुत्र भूरिश्रवाकी मृत्युका कष्ट सौभाग्यसे आप नहीं देख रहे हैं ॥

दिष्ट्या स्नुषाणामाक्रन्दे घोरं विलपितं बहु ।

न शृणोषि महाराज सारसीनामिवार्णवे ॥ ६ ॥

'महाराज ! समुद्रतटपर चीत्कार करनेवाली सारसियोंके समान इस युद्धस्थलमें आप अपने इन पुत्रवधुओंका अत्यन्त भयानक विलाप नहीं सुन रहे हैं, यह भाग्यकी ही बात है ॥

एकवस्त्रार्धसंवीताः प्रकीर्णासितमूर्धजाः ।
स्नुषास्ते परिधावन्ति हतापत्या हतेश्वराः ॥ ७ ॥

'आपकी पुत्रवधुएँ एक वस्त्र अथवा आधे वस्त्रसे ही शरीरको ढँककर अपनी काली-काली लटें छिटकाये इस युद्ध-भूमिमें चारों ओर दौड़ रही हैं। इन सबके पुत्र और पति भी मारे जा चुके हैं ॥ ७ ॥

श्वापदैर्भक्ष्यमाणं त्वमहो दिष्ट्या न पश्यसि ।
छिन्नबाहुं नरव्याघ्रमर्जुनेन निपातितम् ॥ ८ ॥
शलं विनिहतं संख्ये भूरिश्रवसमेव च ।
स्नुषाश्च विविधाः सर्वा दिष्ट्या नाद्येह पश्यसि॥ ९ ॥

'अहो ! आपका बड़ा भाग्य है कि अर्जुनने जिसकी एक बाँह काट ली थी और सात्यकिने जिसे मार गिराया था, युद्धमें मारे गये उस भूरिश्रवा और शलको आप हिंसक-जन्तुओंका आहार बनते नहीं देखते हैं तथा इन सब अनेक प्रकारके रूप रंगवाली पुत्रवधुओंको भी आज यहाँ रणभूमिमें भटकती हुई नहीं देख रहे हैं ॥ ८-९ ॥

दिष्ट्या तत् काञ्चनं छत्रं यूपकेतोर्महात्मनः ।
विनिकीर्णं रथोपस्थे सौमदत्तेर्न पश्यसि ॥ १० ॥

'सौभाग्यसे अपने महामनस्वी पुत्र यूपध्वज भूरिश्रवाके रथ-पर खण्डित होकर गिरे हुए उसके सुवर्णमय छत्रको आप नहीं देख पा रहे हैं' ॥ १० ॥

अमूस्तु भूरिश्रवसो भार्याः सात्यकिना हतम् ।
परिवार्यानुशोचन्ति भर्तारमसितेक्षणाः ॥ ११ ॥

श्रीकृष्ण ! भूरिश्रवाकी कजरारे नेत्रोंवाली वे पत्नियाँ सात्यकिद्वारा मारे गये अपने पतिको सब ओरसे घेरकर बार-बार शोकसे पीड़ित हो रही हैं ॥ ११ ॥

एता विलप्य करुणं भर्तृशोकेन कर्शिताः ।
पतन्त्यभिमुखा भूमौ कृपणं बत केशव ॥ १२ ॥

केशव ! पतिशोकसे पीड़ित हुई ये अबलाएँ करुणा-जनक विलाप करके पतिके सामने अत्यन्त दुःखसे पछाड़ खा-खाकर गिर रही हैं ॥ १२ ॥

बीभत्सुरतिबीभत्सं कर्मेदमकरोत् कथम् ।
प्रमत्तस्य यदच्छैत्सीद् बाहुं शूरस्य यज्वनः ॥ १३ ॥

वे कहती हैं—'अर्जुनने यह अत्यन्त घृणित कर्म कैसे किया ? कि दूसरेके साथ युद्धमें लगे रहकर उनकी ओरसे असावधान हुए आप-जैसे यज्ञपरायण शूरवीरकी बाँह काट डाली ॥ १३ ॥

ततः पापतरं कर्म कृतवानपि सात्यकिः ।
यस्मात् प्रायोपविष्टस्य प्राहार्षीत् संशितात्मनः॥ १४ ॥

'उनसे भी बढ़कर घोर पापकर्म सात्यकिने किया है; क्योंकि उन्होंने आमरण अनशनके लिये बैठे हुए एक शुद्धात्मा साधुपुरुषके ऊपर खड्गका प्रहार किया है ॥ १४ ॥

एको द्वाभ्यां हतः शेषे त्वमधर्मेण धार्मिक ।
किं नु वक्ष्यति वै सत्सु गोष्ठीषु च सभासु च ॥ १५ ॥
अपुण्यमयशस्यं च कर्मेदं सात्यकिः स्वयम् ।
इति यूपध्वजस्यैताः स्त्रियः क्रोशन्ति माधव ॥ १६ ॥

'धर्मात्मा महापुरुष ! तुम अकेले दो महारथियोंद्वारा अधर्मपूर्वक मारे जाकर रणभूमिमें सो रहे हो। भला, सात्यकि साधु पुरुषोंकी सभाओं और बैठकोंमें अपने लिये कलङ्कका टीका लगानेवाले इस पापकर्मका वर्णन स्वयं अपने ही मुखसे किस प्रकार करेंगे ?' माधव ! इस प्रकार यूपध्वज-की ये स्त्रियाँ सात्यकिको कोस रही हैं ॥ १५-१६ ॥

भार्या यूपध्वजस्यैषा करसम्मितमध्यमा ।
कृत्वोत्सङ्गे भुजं भर्तुः कृपणं परिदेवति ॥ १७ ॥

श्रीकृष्ण ! देखो, यूपध्वजकी यह पतली कमरवाली भार्या पतिकी कटी हुई बाँहको गोदमें लेकर बड़े दीनभावसे विलाप कर रही है ॥ १७ ॥

अयं स हन्ता शूराणां मित्राणामभयप्रदः ।
प्रदाता गोसहस्राणां क्षत्रियान्तकरः करः ॥ १८ ॥

वह कहती है—'हाय ! यह वही हाथ है, जिसने युद्धमें अनेक शूरवीरोंका वध, मित्रोंको अभयदान, सहस्रों गोदान तथा क्षत्रियोंका संहार किया है ॥ १८ ॥

अयं स रसनोत्कर्षी पीनस्तनविमर्दनः ।
नाभ्यूरुजघनस्पर्शी नीवीविस्रंसनः करः ॥ १९ ॥

'यह वही हाथ है, जो हमारी करधनीको खींच लेता, उभरे हुए स्तनोंका मर्दन करता, नाभि, ऊरु और जघन प्रदेशको छूता और नीवीका बन्धन सरका दिया करता था ॥

वासुदेवस्य सांनिध्ये पार्थेनाक्लिष्टकर्मणा ।
युध्यतः समरेऽन्येन प्रमत्तस्य निपातितः ॥ २० ॥

'जब मेरे पति समराङ्गणमें दूसरेके साथ युद्धमें संलग्न हो अर्जुनकी ओरसे असावधान थे, उस समय भगवान् श्री-कृष्णके निकट अनायास ही महान् कर्म करनेवाले अर्जुनने इस हाथको काट गिराया था ॥ २० ॥

किं नु वक्ष्यसि संसत्सु कथासु च जनार्दन ।
अर्जुनस्य महत् कर्म स्वयं वा स किरीटभृत् ॥ २१ ॥

'जनार्दन ! तुम सत्पुरुषोंकी सभाओंमें, बातचीतके प्रसङ्गमें अर्जुनके महान् कर्मका किस तरह वर्णन करोगे ?

अथवा स्वयं किरीटधारी अर्जुन ही कैसे इस जघन्य कार्यकी चर्चा करेंगे !' ॥ २१ ॥

इत्येवं गर्हयित्वैषा तूष्णीमास्ते वराङ्गना ।
तामेतामनुशोचन्ति सपत्न्यः स्वामिव स्नुषाम् ॥ २२ ॥

इस तरह अर्जुनकी निन्दा करके यह सुन्दरी चुप हो गयी है । इसकी बड़ी सौतें इसके लिये उसी प्रकार शोक प्रकट कर रही हैं, जैसे सास अपनी बहूके लिये किया करती है २२

गान्धारराजः शकुनिर्बलवान् सत्यविक्रमः ।
निहतः सहदेवेन भागिनेयेन मातुलः ॥ २३ ॥

यह गान्धारदेशका राजा महाबली सत्यपराक्रमी शकुनि पड़ा हुआ है । इसे सहदेवने मारा है । भानजेने मामाके प्राण लिये हैं ॥ २३ ॥

यः पुरा हेमदण्डाभ्यां व्यजनाभ्यां स्म वीज्यते ।
स एष पक्षिभिः पक्षैः शयान उपवीज्यते ॥ २४ ॥

पहले सोनेके डंडोंसे विभूषित दो-दो व्यजनोंद्वारा जिसको हवा की जाती थी, वही शकुनि आज धरतीपर सो रहा है और पक्षी अपनी पाँखोंसे इसको हवा करते हैं ॥ २४ ॥

यः स्वरूपाणि कुरुते शतशोऽथ सहस्रशः ।
तस्य मायाविनो माया दग्धाः पाण्डवतेजसा ॥ २५ ॥

जो अपने सैकड़ों और हजारों रूप बना लिया करता था, उस मायावीकी सारी मायाएँ पाण्डुपुत्र सहदेवके तेजसे दग्ध हो गयीं ॥ २५ ॥

मायया निकृतिप्रज्ञो जितवान् यो युधिष्ठिरम् ।
सभायां विपुलं राज्य स पुनर्जीवितं जितः ॥ २६ ॥

जो छलविद्याका पण्डित था, जिसने द्यूतसभामें मायाद्वारा युधिष्ठिर तथा उनके विशाल राज्यको जीत लिया था, वही फिर अपना जीवन भी हार गया ॥ २६ ॥

शकुन्ताः शकुनिं कृष्ण समन्तात् पर्युपासते ।
कैतवं मम पुत्राणां विनाशायोपशिक्षितम् ॥ २७ ॥

श्रीकृष्ण ! आज शकुनि (पक्षी) ही इस शकुनिकी चारों ओरसे उपासना करते हैं । इसने मेरे पुत्रोंके विनाशके लिये ही द्यूतविद्या अथवा धूर्तविद्या सीखी थी ॥ २७ ॥

एतेनैतन्महद् वैरं प्रसक्तं पाण्डवैः सह ।
वधाय मम पुत्राणामात्मनः सगणस्य च ॥ २८ ॥

इसीने सगे-सम्बन्धियोंसहित अपने और मेरे पुत्रोंके वधके लिये पाण्डवोंके साथ महान् वैरकी नींव डाली थी ॥२८॥

यथैव मम पुत्राणां लोकाः शस्त्रजिताः प्रभो ।
एवमस्यापि दुर्बुद्धेर्लोकाः शस्त्रेण वै जिताः ॥ २९ ॥

प्रभो ! जैसे मेरे पुत्रोंको शस्त्रोंद्वारा जीते हुए पुण्यलोक प्राप्त हुए हैं, उसी प्रकार इस दुर्बुद्धि शकुनिको भी शस्त्रद्वारा जीते हुए उत्तम लोक प्राप्त होंगे ॥ २९ ॥

कथं न्व नायं तत्रापि पुत्रान्मे भ्रातृभिः सह ।
विरोधयेदृजुप्रज्ञाननृजुर्मधुसूदन ॥ ३० ॥

मधुसूदन ! मेरे पुत्र सरल बुद्धिके हैं । मुझे भय है कि उन पुण्यलोकोंमें पहुँचकर यह शकुनि फिर किसी प्रकार उन सब भाइयोंमें परस्पर विरोध न उत्पन्न कर दे ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि गान्धारीवाक्ये चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत स्त्रीविलापपर्वमें गान्धारीवाक्यविषयक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

अन्यान्य वीरोंको मरा हुआ देखकर गान्धारीका शोकातुर होकर विलाप करना और क्रोधपूर्वक श्रीकृष्णको यदुवंशविनाशविषयक शाप देना

गान्धार्युवाच

काम्बोजं पश्य दुर्धर्षं काम्बोजास्तरणोचितम् ।
शयानमृषभस्कन्धं हतं पांसुषु माधव ॥ १ ॥

गान्धारी बोलीं—माधव ! जो काबुलके बने हुए मुलायम बिछौनोंपर सोनेके योग्य है, वह बैलके समान हृष्ट-पुष्ट कंधोंवाला दुर्जय वीर काम्बोजराज सुदक्षिण मरकर धूलमें पड़ा हुआ है ॥ १ ॥

यस्य क्षतजसंदिग्धौ बाहू चन्दनभूषितौ ।
अवेक्ष्य करुणं भार्या विलपत्यतिदुःखिता ॥ २ ॥

उसकी चन्दनचर्चित भुजाओंको रक्तमें सनी हुई देख उसकी पत्नी अत्यन्त दुखी हो करुणाजनक विलाप कर रही है ॥ २ ॥

इमौ तौ परिघप्रख्यौ बाहू शुभतलाङ्गुली ।
ययोर्विवरमापन्नां न रतिर्मां पुराजहात् ॥ ३ ॥
कां गतिं तु गमिष्यामि त्वया हीना जनेश्वर ।

वह कहती है—'प्राणनाथ ! सुन्दर हथेली और अङ्गुलियोंसे युक्त तथा परिघके समान मोटी ये वे ही दोनों भुजाएँ हैं, जिनके भीतर आप मुझे अङ्कमें भर लेते थे और उस अवस्थामें मुझे जो प्रसन्नता प्राप्त होती थी, उसने पहले कभी मेरा साथ नहीं छोड़ा था । जनेश्वर ! अब आपके बिना मेरी क्या गति होगी ?' ॥ ३½ ॥

हतबन्धुरनाथा च वेपन्ती मधुरस्वरा ॥ ४ ॥
आतपे क्लाम्यमानानां विविधानामिव स्रजाम् ।
क्लान्तानामपि नारीणां श्रीर्जहाति न वै तनूः ॥ ५ ॥

श्रीकृष्ण ! अपने जीवनबन्धुके मारे जानेसे अनाथ हुई यह रानी काँपती हुई मधुरस्वरसे विलाप कर रही है। घामसे मुरझाती हुई नाना प्रकारकी पुष्पमालाओंके समान ये राजरानियाँ धूपसे तप गयी हैं, तो भी इनके शरीरोंको सौन्दर्य-श्री छोड़ नहीं रही है ॥ ४-५ ॥

शयानमभितः शूरं कालिङ्गं मधुसूदन ।
पश्य दीप्ताङ्गदयुगप्रतिनद्धमहाभुजम् ॥ ६ ॥

मधुसूदन ! देखो, पास ही वह शूरवीर कलिङ्गराज सो रहा है, जिसकी दोनों विशाल भुजाओंमें चमकीले अङ्गद (बाजूबन्द) बँधे हुए हैं ॥ ६ ॥

मागधानामधिपतिं जयत्सेनं जनार्दन ।
आवार्य सर्वतः पत्न्यः प्ररुदत्यः सुविह्वलाः ॥ ७ ॥

जनार्दन ! उधर मगधराज जयत्सेन पड़ा है, जिसे चारों ओरसे घेरकर उसकी पत्नियाँ अत्यन्त व्याकुल हो फूट-फूटकर रो रही हैं ॥ ७ ॥

आसामायतनेत्राणां सुस्वराणां जनार्दन ।
मनःश्रुतिहरो नादो मनो मोहयतीव मे ॥ ८ ॥

श्रीकृष्ण ! मधुर स्वरवाली इन विशाललोचना रानियोंका मन और कानोंको मोह लेनेवाला आर्तनाद मेरे मनको मूर्छित-सा किये देता है ॥ ८ ॥

प्रकीर्णवस्त्राभरणा रुदत्यः शोककर्शिताः ।
स्वास्तीर्णशयनोपेता मागध्यः शेरते भुवि ॥ ९ ॥

इनके वस्त्र और आभूषण अस्त-व्यस्त हो रहे हैं। सुन्दर बिछौनोंसे युक्त शय्याओंपर शयन करनेके योग्य ये मगधदेशकी रानियाँ शोकसे व्याकुल हो रोती हुई भूमिपर लोट रही हैं॥

कोसलानामधिपतिं राजपुत्रं बृहद्बलम् ।
भर्तारं परिवार्यैताः पृथक् प्ररुदिताः स्त्रियः ॥ १० ॥

अपने पति कोसलनरेश राजकुमार बृहद्बलको भी चारों ओरसे घेरकर उनकी रानियाँ अलग-अलग रो रही हैं ॥१०॥

अस्य गात्रगतान् बाणान् कार्ष्णिबाहुबलार्पितान् ।
उद्धरन्त्यसुखाविष्टा मूर्छमानाः पुनः पुनः ॥ ११ ॥

अभिमन्युके बाहुबलसे प्रेरित होकर कोसलनरेशके अङ्गोंमें धँसे हुए बाणोंको ये रानियाँ अत्यन्त दुखी होकर निकालती हैं और बारंबार मूर्छित हो जाती हैं ॥ ११ ॥

आसां सर्वानवद्यानामातपेन परिश्रमात् ।
प्रम्लाननलिनाभानि भान्ति वक्त्राणि माधव ॥ १२ ॥

माधव ! इन सर्वाङ्गसुन्दरी राजमहिलाओंके सुन्दर मुख धूप और परिश्रमके कारण मुरझाये हुए कमलोंके समान प्रतीत होते हैं ॥ १२ ॥

द्रोणेन निहताः शूराः शेरते रुचिराङ्गदाः ।
धृष्टद्युम्नसुताः सर्वे शिशवो हेममालिनः ॥ १३ ॥

ये द्रोणाचार्यके मारे हुए धृष्टद्युम्नके सभी छोटे-छोटे शूरवीर बालक सो रहे हैं। इनकी भुजाओंमें सुन्दर अङ्गद और गलेमें सोनेके हार शोभा पाते हैं ॥ १३ ॥

रथाग्न्यगारं चापार्चिःशरशक्तिगदेन्धनम् ।
द्रोणमासाद्य निर्दग्धाः शलभा इव पावकम् ॥ १४ ॥

द्रोणाचार्य प्रज्वलित अग्निके समान थे, उनका रथ ही अग्निशाला था, धनुष ही उस अग्निकी लपट था, बाण, शक्ति और गदाएँ समिधाका काम दे रही थीं, धृष्टद्युम्नके पुत्र पतङ्गोंके समान उस द्रोणरूपी अग्निमें जलकर भस्म हो गये ॥ १४ ॥

तथैव निहताः शूराः शेरते रुचिराङ्गदाः ।
द्रोणेनाभिमुखाः सर्वे भ्रातरः पञ्च केकयाः ॥ १५ ॥

इसी प्रकार सुन्दर अङ्गदोंसे विभूषित पाँचों शूरवीर भाई केकय राजकुमार समराङ्गणमें सम्मुख होकर जूझ रहे थे। वे सब-के-सब आचार्य द्रोणके हाथसे मारे जाकर सो रहे हैं ॥

तप्तकाञ्चनवर्माणस्तालध्वजरथव्रजाः ।
भासयन्ति महीं भासा ज्वलिता इव पावकाः ॥ १६ ॥

इन सबके कवच तपाये हुए सुवर्णके बने हैं और इनके रथ-समूह तालचिह्नित ध्वजाओंसे सुशोभित हैं। ये राजकुमार अपनी प्रभासे प्रज्वलित अग्निके समान भूतलको प्रकाशित कर रहे हैं ॥ १६ ॥

द्रोणेन द्रुपदं संख्ये पश्य माधव पातितम् ।
महाद्विपमिवारण्ये सिंहेन महता हतम् ॥ १७ ॥

माधव ! देखो, युद्धस्थलमें द्रोणाचार्यने जिन्हें मार गिराया था, वे राजा द्रुपद सो रहे हैं, मानो किसी वनमें विशाल सिंहके द्वारा कोई महान् गजराज मारा गया हो १७

पाञ्चालराज्ञो विमलं पुण्डरीकाक्ष पाण्डुरम् ।
आतपत्रं समाभाति शरदीव निशाकरः ॥ १८ ॥

कमलनयन ! पाञ्चालराजका वह निर्मल श्वेत छत्र शरत्कालके चन्द्रमाकी भाँति सुशोभित हो रहा है ॥ १८ ॥

एतास्तु द्रुपदं वृद्धं स्नुषा भार्याश्च दुःखिताः ।
दग्ध्वा गच्छन्ति पाञ्चाल्यं राजानमपसव्यतः ॥ १९ ॥

इन बूढ़े पाञ्चालराज द्रुपदको इनकी दुखी रानियाँ और पुत्रवधुएँ चितामें जलाकर इनकी प्रदक्षिणा करके जा रही हैं ॥ १९ ॥

धृष्टकेतुं महात्मानं चेदिपुङ्गवमङ्गनाः ।
द्रोणेन निहतं शूरं हरन्ति हृतचेतसः ॥ २० ॥

चेदिराज महामना शूरवीर धृष्टकेतुको जो द्रोणाचार्यके हाथसे मारा गया है, उसकी रानियाँ अचेत-सी होकर दाह-संस्कारके लिये ले जा रही हैं ॥ २० ॥

द्रोणास्त्रमभिहत्यैष विमर्दे मधुसूदन ।
महेष्वासो हतः शेते नद्या हत इव द्रुमः ॥ २१ ॥

मधुसूदन ! यह महाधनुर्धर वीर संग्राममें द्रोणाचार्यके अस्त्र-शस्त्रोंका नाश करके नदीके वेगसे कटे हुए वृक्षके समान मरकर धराशायी हो गया ॥ २१ ॥

एष चेदिपतिः शूरो धृष्टकेतुर्महारथः ।
शेते विनिहतः संख्ये हत्वा शत्रून् सहस्रशः ॥ २२ ॥

यह चेदिराज शूरवीर महारथी धृष्टकेतु सहस्रों शत्रुओंको मारकर मारा गया और रणशय्यापर सदाके लिये सो गया ॥ २२ ॥

वितुद्यमानं विहगैस्तं भार्याः पर्युपासिताः ।
चेदिराजं हृषीकेश हतं सबलबान्धवम् ॥ २३ ॥

हृषीकेश ! सेना और बन्धुओंसहित मारे गये इस चेदिराजको पक्षी चोंच मार रहे हैं और उसकी स्त्रियाँ उसे चारों ओरसे घेरकर बैठी हैं ॥ २३ ॥

दाशार्हीपुत्रजं वीरं शयानं सत्यविक्रमम् ।
आरोप्याङ्के रुदन्त्येताश्चेदिराजवराङ्गनाः ॥ २४ ॥

दशार्हकुलकी कन्या (श्रुतश्रवा)के पुत्र शिशुपालका यह सत्यपराक्रमी वीर पुत्र रणभूमिमें सो रहा है और इसे अङ्कमें लेकर ये चेदिराजकी सुन्दरी रानियाँ रो रही हैं ॥ २४ ॥

अस्य पुत्रं हृषीकेश सुवक्त्रं चारुकुण्डलम् ।
द्रोणेन समरे पश्य निकृत्तं बहुधा शरैः ॥ २५ ॥

हृषीकेश ! देखो तो सही, इस धृष्टकेतुके सुन्दर मुख और मनोहर कुण्डलोंवाले पुत्रको द्रोणाचार्यने समराङ्गणमें अपने बाणोंद्वारा मारकर उसके अनेक टुकड़े कर डाले हैं ॥

पितरं नूनमाजिस्थं युद्ध्यमानं परैः सह ।
नाजहात् पितरं वीरमद्यापि मधुसूदन ॥ २६ ॥

मधुसूदन ! रणभूमिमें स्थित होकर शत्रुओंके साथ जूझनेवाले अपने पिताका साथ इसने कभी नहीं छोड़ा था, आज युद्धके बाद भी वह पिताको नहीं छोड़ सका है ॥ २६ ॥

एवं ममापि पुत्रस्य पुत्रः पितरमन्वगात् ।
दुर्योधनं महाबाहो लक्ष्मणः परवीरहा ॥ २७ ॥

महाबाहो ! इसी प्रकार मेरे पुत्रके पुत्र शत्रुवीरहन्ता लक्ष्मणने भी अपने पिता दुर्योधनका अनुसरण किया है ॥ २७ ॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ पतितौ पश्य माधव ।
हिमान्ते पुष्पितौ शालौ मरुता गलिताविव ॥ २८ ॥

माधव ! जैसे ग्रीष्म ऋतुमें हवाके वेगसे दो खिले हुए शाल वृक्ष गिर गये हों, उसी प्रकार अवन्तीदेशके दोनों वीर राजपुत्र विन्द और अनुविन्द धराशायी हो गये हैं, इनपर दृष्टिपात करो ॥ २८ ॥

काञ्चनाङ्गदवर्माणौ बाणखड्गधनुर्धरौ ।
ऋषभप्रतिरूपाक्षौ शयानौ विमलस्रजौ ॥ २९ ॥

इन दोनोंने सोनेके कवच धारण किये हैं, बाण, खड्ग और धनुष लिये हैं तथा बैलके समान बड़ी-बड़ी आँखोंवाले ये दोनों वीर चमकीले हार पहने हुए सो रहे हैं ॥ २९ ॥

अवध्याः पाण्डवाः कृष्ण सर्व एव त्वया सह ।
ये मुक्ता द्रोणभीष्माभ्यां कर्णाद् वैकर्तनात् कृपात् ॥ ३० ॥
दुर्योधनाद् द्रोणसुतात् सैन्धवाच्च जयद्रथात् ।
सोमदत्ताद् विकर्णाच्च शूराच्च कृतवर्मणः ॥ ३१ ॥

श्रीकृष्ण ! तुम्हारे साथ ही ये समस्त पाण्डव अवध्य जान पड़ते हैं, जो कि द्रोण, भीष्म, वैकर्तन कर्ण, कृपाचार्य, दुर्योधन, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, सिंधुराज जयद्रथ, सोमदत्त, विकर्ण और शूरवीर कृतवर्माके हाथसे जीवित बच गये हैं ॥ ३०-३१ ॥

ये हन्युः शस्त्रवेगेन देवानपि नरर्षभाः ।
त इमे निहताः संख्ये पश्य कालस्य पर्ययम् ॥ ३२ ॥

जो नरश्रेष्ठ अपने शस्त्रके वेगसे देवताओंको भी नष्ट कर सकते थे, वे ही ये युद्धमें मार डाले गये हैं; यह कालका उलट-फेर तो देखो ॥ ३२ ॥

नातिभारोऽस्ति दैवस्य ध्रुवं माधव कश्चन ।
यदिमे निहताः शूराः क्षत्रियैः क्षत्रियर्षभाः ॥ ३३ ॥

माधव ! निश्चय ही दैवके लिये कोई भी कार्य अधिक कठिन नहीं है; क्योंकि उसने क्षत्रियोंद्वारा ही इन शूरवीर क्षत्रियशिरोमणियोंका संहार कर डाला है ॥ ३३ ॥

तदैव निहताः कृष्ण मम पुत्रास्तरस्विनः ।
यदैवाकृतकामस्त्वमुपप्लव्यं गतः पुनः ॥ ३४ ॥

श्रीकृष्ण ! मेरे वेगशाली पुत्र तो उसी दिन मार डाले गये; जब कि तुम अपूर्णमनोरथ होकर पुनः उपप्लव्यको लौट गये थे ॥ ३४ ॥

शान्तनोश्चैव पुत्रेण प्राज्ञेन विदुरेण च ।
तदैवोक्तास्मि मा स्नेहं कुरुष्वात्मसुतेष्विति ॥ ३५ ॥

मुझे तो शान्तनुनन्दन भीष्म तथा ज्ञानी विदुरने उसी दिन कह दिया था 'कि अब तुम अपने पुत्रोंपर स्नेह न करो' ॥ ३५ ॥

तयोर्हि दर्शनं नैतन्मिथ्या भवितुमर्हति ।
अचिरेणैव मे पुत्रा भस्मीभूता जनार्दन ॥ ३६ ॥

जनार्दन ! उन दोनोंकी यह दृष्टि मिथ्या नहीं हो सकती थी; अतः थोड़े ही समयमें मेरे सारे पुत्र युद्धकी आगमें जलकर भस्म हो गये ॥ ३६ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्त्वा न्यपतद् भूमौ गान्धारी शोकमूर्छिता ।
दुःखोपहतविज्ञाना धैर्यमुत्सृज्य भारत ॥ ३७ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—भारत ! ऐसा कहकर शोकसे मूर्छित हुई गान्धारी धैर्य छोड़कर पृथ्वीपर गिर पड़ीं, दुःखसे उनकी विवेकशक्ति नष्ट हो गयी ॥ ३७ ॥

ततः कोपपरीताङ्गी पुत्रशोकपरिप्लुता ।
जगाम शौरिं दोषेण गान्धारी व्यथितेन्द्रिया ॥ ३८ ॥

तदनन्तर उनके सारे अङ्गोंमें क्रोध व्याप्त हो गया । पुत्रशोकमें डूब जानेके कारण उनकी सारी इन्द्रियाँ व्याकुल हो उठीं । उस समय गान्धारीने सारा दोष श्रीकृष्णके ही माथे मढ़ दिया ॥ ३८ ॥

गान्धार्युवाच

पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च दग्धाः कृष्ण परस्परम् ।
उपेक्षिता विनश्यन्तस्त्वया कस्माज्जनार्दन ॥ ३९ ॥

गान्धारीने कहा—श्रीकृष्ण ! जनार्दन ! पाण्डव और धृतराष्ट्रके पुत्र आपसमें लड़कर भस्म हो गये । तुमने इन्हें नष्ट होते देखकर भी इनकी उपेक्षा कैसे कर दी ? ३९

शक्तेन बहुभृत्येन विपुले तिष्ठता बले ।
उभयत्र समर्थेन श्रुतवाक्येन चैव ह ॥ ४० ॥
इच्छतोपेक्षितो नाशः कुरूणां मधुसूदन ।
यस्मात् त्वया महाबाहो फलं तस्मादवाप्नुहि ॥ ४१ ॥

महाबाहु मधुसूदन ! तुम शक्तिशाली थे । तुम्हारे पास बहुत-से सेवक और सैनिक थे । तुम महान् बलमें प्रतिष्ठित थे । दोनों पक्षोंसे अपनी बात मनवा लेनेकी सामर्थ्य तुममें मौजूद थी । तुमने वेद-शास्त्रों और महात्माओंकी बातें सुनी और जानी थीं । यह सब होते हुए भी तुमने स्वेच्छासे कुरु-कुलके नाशकी उपेक्षा की—जान-बूझकर इस वंशका विनाश होने दिया । यह तुम्हारा महान् दोष है, अतः तुम इसका फल प्राप्त करो ॥ ४०-४१ ॥

पतिशुश्रूषया यन्मे तपः किंचिदुपार्जितम् ।
तेन त्वां दुरवापेन शप्स्ये चक्रगदाधर ॥ ४२ ॥

चक्र और गदा धारण करनेवाले केशव ! मैंने पतिकी सेवासे जो कुछ भी तप प्राप्त किया है, उस दुर्लभ तपोबलसे तुम्हें शाप दे रही हूँ ॥ ४२ ॥

यस्मात् परस्परं घ्नन्तो ज्ञातयः कुरुपाण्डवाः ।
उपेक्षितास्ते गोविन्द तस्माज्ज्ञातीन् वधिष्यसि ॥ ४३ ॥

गोविन्द ! तुमने आपसमें मार-काट मचाते हुए कुटुम्बी कौरवों और पाण्डवोंकी उपेक्षा की है; इसलिये तुम अपने भाई-बन्धुओंका भी विनाश कर डालोगे ॥ ४३ ॥

त्वमप्युपस्थिते वर्षे षट्त्रिंशे मधुसूदन ।
हतज्ञातिर्हतामात्यो हतपुत्रो वनेचरः ॥ ४४ ॥
अनाथवदविज्ञातो लोकेष्वनभिलक्षितः ।
कुत्सितेनाभ्युपायेन निधनं समवाप्स्यसि ॥ ४५ ॥

मधुसूदन ! आजसे छत्तीसवाँ वर्ष उपस्थित होनेपर तुम्हारे कुटुम्बी, मन्त्री और पुत्र सभी आपसमें लड़कर मर जायँगे । तुम सबसे अपरिचित और लोगोंकी आँखोंसे ओझल होकर अनाथके समान वनमें विचरोगे और किसी निन्दित उपायसे मृत्युको प्राप्त होओगे ॥ ४४-४५ ॥

तवाप्येवं हतसुता निहतज्ञातिबान्धवाः ।
स्त्रियः परिपतिष्यन्ति यथैता भरतस्त्रियः ॥ ४६ ॥

इन भरतवंशकी स्त्रियोंके समान तुम्हारे कुलकी स्त्रियाँ भी पुत्रों तथा भाई-बन्धुओंके मारे जानेपर इसी तरह सगे-सम्बन्धियोंकी लाशोंपर गिरेंगी ॥ ४६ ॥

वैशम्पायन उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं घोरं वासुदेवो महामनाः ।
उवाच देवीं गान्धारीमीषदभ्युत्स्मयन्निव ॥ ४७ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! वह घोर वचन सुनकर महामनस्वी वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने कुछ मुस्कराते हुए-से गान्धारीदेवीसे कहा—॥ ४७ ॥

जानेऽहमेतदप्येवं चीर्णं चरसि क्षत्रिये ।
दैवादेव विनश्यन्ति वृष्णयो नात्र संशयः ॥ ४८ ॥

'क्षत्राणी ! मैं जानता हूँ, यह ऐसा ही होनेवाला है । तुम तो किये हुएको ही कर रही हो । इसमें संदेह नहीं कि वृष्णिवंशके यादव दैवसे ही नष्ट होंगे ॥ ४८ ॥

संहर्ता वृष्णिचक्रस्य नान्यो मद् विद्यते शुभे ।
अवध्यास्ते नरैरन्यैरपि वा देवदानवैः ॥ ४९ ॥
परस्परकृतं नाशमतः प्राप्स्यन्ति यादवाः ।

'शुभे ! वृष्णिकुलका संहार करनेवाला मेरे सिवा दूसरा कोई नहीं है । यादव दूसरे मनुष्यों तथा देवताओं और दानवोंके लिये भी अवध्य हैं; अतः आपसमें ही लड़कर नष्ट होंगे' ॥ ४९½ ॥

इत्युक्तवति दाशार्हे पाण्डवास्त्रस्तचेतसः ।
बभूवुर्भृशसंविग्ना निराशाश्चापि जीविते ॥ ५० ॥

श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर पाण्डव मन-ही-मन भयभीत हो उठे । उन्हें बड़ा उद्वेग हुआ । वे सब-के-सब अपने जीवनसे निराश हो गये ॥ ५० ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि स्त्रीविलापपर्वणि गान्धारीशापदाने पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत स्त्रीविलापपर्वमें गान्धारीका शापदानविषयक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥२५॥

(श्राद्धपर्व)

षड्विंशोऽध्यायः

प्राप्त अनुस्मृति विद्या और दिव्य दृष्टिके प्रभावसे युधिष्ठिरका महाभारतयुद्धमें मारे गये लोगोंकी संख्या और गतिका वर्णन तथा युधिष्ठिरकी आज्ञासे सबका दाह-संस्कार

श्रीभगवानुवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गान्धारि मा च शोके मनः कृथाः ।
तवैव ह्यपराधेन कुरवो निधनं गताः ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले—गान्धारी ! उठो, उठो । शोकमें मनको न डुबाओ । तुम्हारे ही अपराधसे कौरवोंका विनाश हुआ है ॥ १ ॥

यत् त्वं पुत्रं दुरात्मानमीर्षुमत्यन्तमानिनम् ।
दुर्योधनं पुरस्कृत्य दुष्कृतं साधु मन्यसे ॥ २ ॥
निष्ठुरं वैरपुरुषं वृद्धानां शासनातिगम् ।
कथमात्मकृतं दोषं मय्याधातुमिहेच्छसि ॥ ३ ॥

तुम्हारा पुत्र दुर्योधन दुरात्मा, दूसरोंसे ईर्ष्या एवं जलन रखनेवाला और अत्यन्त अभिमानी था । दुष्कर्मपरायण, निष्ठुर, वैरका मूर्तिमान् स्वरूप और बड़े-बूढ़ोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाला था । तुमने उसको अगुआ बनाकर जो अपराध किया है, उसे क्या तुम अच्छा समझती हो ? अपने ही किये हुए दोषको यहाँ मुझपर कैसे लादना चाहती हो ? ॥

मृतं वा यदि वा नष्टं योऽतीतमनुशोचति ।
दुःखेन लभते दुःखं द्वावनर्थौ प्रपद्यते ॥ ४ ॥

यदि कोई मनुष्य किसी मरे हुए सम्बन्धी, नष्ट हुई वस्तु अथवा बीती हुई बातके लिये शोक करता है तो वह एक दुःखसे दूसरे दुःखका भागी होता है, इस प्रकार वह दो अनर्थोंको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

तपोर्थीयं ब्राह्मणी धत्त गर्भं
गौर्वोढारं धावितारं तुरङ्गी ।
शूद्रा दासं पशुपालं च वैश्या
वधार्थीयं त्वद्विधा राजपुत्री ॥ ५ ॥

ब्राह्मणी तपके लिये, गाय बोझ ढोनेके लिये, घोड़ी वेगसे दौड़नेके लिये, शूद्रा सेवाके लिये, वैश्यकन्या पशु-पालन करनेके लिये और तुम-जैसी राजपुत्री युद्धमें लड़कर मरनेके लिये पुत्र पैदा करती है ॥ ५ ॥

वैशम्पायन उवाच

तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य पुनरुक्तं वचोऽप्रियम् ।
तूष्णीं बभूव गान्धारी शोकव्याकुललोचना ॥ ६ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! श्रीकृष्णका दुबारा कहा हुआ वह अप्रिय वचन सुनकर गान्धारी चुप हो गयी । उसके नेत्र शोकसे व्याकुल हो उठे थे ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्रस्तु राजर्षिर्निगृह्याबुद्धिजं तमः ।
पर्यपृच्छत धर्मज्ञो धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ ७ ॥

उस समय धर्मज्ञ राजर्षि धृतराष्ट्रने अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाले शोक और मोहको रोककर धर्मराज युधिष्ठिरसे पूछा—॥

जीवतां परिमाणज्ञः सैन्यानामसि पाण्डव ।
हतानां यदि जानीषे परिमाणं वदस्व मे ॥ ८ ॥

'पाण्डुनन्दन ! तुम जीवित सैनिकोंकी संख्याके जानकार तो हो ही । यदि मरे हुओंकी संख्या जानते हो तो मुझे बताओ॥

युधिष्ठिर उवाच

दशायुतानामयुतं सहस्राणि च विंशतिः ।
कोट्यः षष्टिश्च षट् चैव ह्यस्मिन् राजन् मृधे हताः॥९॥

युधिष्ठिर बोले—राजन् ! इस युद्धमें एक अरब, छाछठ करोड़, बीस हजार योद्धा मारे गये हैं ॥ ९ ॥

अलक्षितानां वीराणां सहस्राणि चतुर्दश ।
दश चान्यानि राजेन्द्र शतं षष्टिश्च पञ्च च ॥ १० ॥

राजेन्द्र ! इनके अतिरिक्त चौबीस हजार एक सौ पैंसठ सैनिक लापता हैं ॥ १० ॥

धृतराष्ट्र उवाच

युधिष्ठिर गतिं कां ते गताः पुरुषसत्तम ।
आचक्ष्व मे महाबाहो सर्वज्ञो ह्यसि मे मतः ॥ ११ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—पुरुषप्रवर ! महाबाहु युधिष्ठिर ! तुम तो मुझे सर्वज्ञ जान पड़ते हो; अतः यह तो बताओ कि 'वे मरे हुए सैनिक किस गतिको प्राप्त हुए हैं ?' ॥ ११ ॥

युधिष्ठिर उवाच

यैर्हुतानि शरीराणि हृष्टैः परमसंयुगे ।
देवराजसमाँल्लोकान् गतास्ते सत्यविक्रमाः ॥ १२ ॥

युधिष्ठिरने कहा—जिन लोगोंने इस महासमरमें बड़े हर्ष और उत्साहके साथ अपने शरीरोंकी आहुति दी है, वे सत्यपराक्रमी वीर देवराज इन्द्रके समान लोकोंमें गये हैं ॥

ये त्वहृष्टेन मनसा मर्तव्यमिति भारत ।
युध्यमाना हताः संख्ये गन्धर्वैः सह संगताः ॥ १३ ॥

भारत ! जो अप्रसन्न मनसे मरनेका निश्चय करके रण-क्षेत्रमें जूझते हुए मारे गये हैं, वे गन्धर्वोंके साथ जा मिले हैं॥

ये च संग्रामभूमिष्ठा याचमानाः पराङ्मुखाः ।
शस्त्रेण निधनं प्राप्ता गतास्ते गुह्यकान् प्रति ॥ १४ ॥

जो संग्राम-भूमिमें खड़े हो प्राणोंकी भीख माँगते हुए

युद्धसे विमुख हो गये थे; उनमेंसे जो लोग शस्त्रद्वारा मारे गये हैं, वे गुह्यकलोकोंमें गये हैं ॥ १४ ॥

पात्यमानाः परैर्यें तु हीयमाना निरायुधाः ।
ह्रीनिषेवा महात्मानः परानभिमुखा रणे ॥ १५ ॥
छिद्यमानाः शितैः शस्त्रैः क्षत्रधर्मपरायणाः ।
गतास्ते ब्रह्मसदनं न मेऽत्रास्ति विचारणा ॥ १६ ॥

जिन महामनस्वी पुरुषोंको शत्रुओंने गिरा दिया था, जिनके पास युद्ध करनेका कोई साधन नहीं रह गया था, जो शस्त्रहीन हो गये थे और उस अवस्थामें भी लज्जाशील होनेके कारण जो रणभूमिमें निरन्तर शत्रुओंका सामना करते हुए ही तीखे अस्त्र-शस्त्रोंसे कट गये, वे क्षत्रियधर्मपरायण पुरुष ब्रह्मलोकमें गये हैं, इस विषयमें मेरा कोई दूसरा विचार नहीं है ॥ १५-१६ ॥

ये त्वत्र निहता राजन्नन्तरायोधनं प्रति ।
यथाकथंचित् पुरुषास्ते गतास्तूत्तरान् कुरून् ॥ १७ ॥

राजन् ! इनके सिवा, जो लोग इस युद्धकी सीमाके भीतर रहकर जिस किसी भी प्रकारसे मार डाले गये हैं, वे उत्तर कुरुदेशमें जन्म धारण करेंगे ॥ १७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

केन ज्ञानबलेनैवं पुत्र पश्यसि सिद्धवत् ।
तन्मे वद महाबाहो श्रोतव्यं यदि वै मया ॥ १८ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—बेटा ! किस ज्ञानबलसे तुम इस तरह सिद्ध पुरुषोंके समान सब कुछ प्रत्यक्ष देख रहे हो । महाबाहो ! यदि मेरे सुनने योग्य हो तो बताओ ॥ १८ ॥

युधिष्ठिर उवाच

निदेशाद् भवतः पूर्वं वने विचरता मया ।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन सम्प्राप्तोऽयमनुग्रहः ॥ १९ ॥

युधिष्ठिर बोले—महाराज ! पहले आपकी आज्ञासे जब मैं वनमें विचरता था, उन्हीं दिनों तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे मुझे एक महात्माका इस रूपमें अनुग्रह प्राप्त हुआ ॥ १९ ॥

देवर्षिर्लोमशो दृष्टस्ततः प्राप्तोऽस्म्यनुस्मृतिम् ।
दिव्यं चक्षुरपि प्राप्तं ज्ञानयोगेन वै पुरा ॥ २० ॥

तीर्थयात्राके समय देवर्षि लोमशका दर्शन हुआ था । उन्हींसे मैंने यह अनुस्मृतिविद्या प्राप्त की थी । इसके सिवा, पूर्वकालमें ज्ञानयोगके प्रभावसे मुझे दिव्यदृष्टि भी प्राप्त हो गयी थी ॥ २० ॥

धृतराष्ट्र उवाच

अनाथानां जनानां च सनाथानां च भारत ।
कच्चित् तेषां शरीराणि धक्ष्यसे विधिपूर्वकम् ॥ २१ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—भारत ! यहाँ जो अनाथ और सनाथ योद्धा मरे पड़े हैं, क्या तुम उनके शरीरोंका विधिपूर्वक दाह-संस्कार करा दोगे ? ॥ २१ ॥

न येषामस्ति संस्कर्ता न च येऽत्राहिताग्नयः ।
वयं च कस्य कुर्याम बहुत्वात् तात कर्मणाम् ॥ २२ ॥

जिनका कोई संस्कार करनेवाला नहीं है तथा जो अग्निहोत्री नहीं रहे हैं, उनका भी प्रेतकर्म तो करना ही होगा, तात ! यहाँ तो बहुतोंके अन्त्येष्टि-कर्म करने हैं, हम किस-किसका करें ? ॥ २२ ॥

यान् सुपर्णाश्च गृध्राश्च विकर्षन्ति यतस्ततः ।
तेषां तु कर्मणा लोका भविष्यन्ति युधिष्ठिर ॥ २३ ॥

युधिष्ठिर ! जिनकी लाशोंको गरुड़ और गीध इधर-उधर घसीट रहे हैं, उन्हें तो श्राद्धकर्मसे ही शुभलोक प्राप्त होंगे ? ॥ २३ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तो महाराज कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
आदिदेश सुधर्माणं धौम्यं सूतं च संजयम् ॥ २४ ॥
विदुरं च महाबुद्धिं युयुत्सुं चैव कौरवम् ।
इन्द्रसेनमुखांश्चैव भृत्यान् सूतांश्च सर्वशः ॥ २५ ॥
भवन्तः कारयन्त्वेषां प्रेतकार्याण्यशेषतः ।
यथा चानाथवत् किंचिच्छरीरं न विनश्यति ॥ २६ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज ! राजा धृतराष्ट्रके ऐसा कहनेपर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने सुधर्मा, धौम्य, सारथि संजय, परम बुद्धिमान् विदुर, कुरुवंशी युयुत्सु तथा इन्द्रसेन आदि सेवकों एवं सम्पूर्ण सूतोंको यह आज्ञा दी कि 'आपलोग इन सबके प्रेतकार्य सम्पन्न करावें । ऐसा न हो कि कोई भी लाश अनाथके समान नष्ट हो जाय' ॥ २४–२६ ॥

शासनाद् धर्मराजस्य क्षत्ता सूतश्च संजयः ।
सुधर्मा धौम्यसहित इन्द्रसेनादयस्तथा ॥ २७ ॥
चन्दनागुरुकाष्ठानि तथा कालीयकान्युत ।
घृतं तैलं च गन्धांश्च क्षौमाणि वसनानि च ॥ २८ ॥
समाहृत्य महार्हाणि दारूणां चैव संचयान् ।
रथांश्च मृदितांस्तत्र नानाप्रहरणानि च ॥ २९ ॥
चिताः कृत्वा प्रयत्नेन यथामुख्यान् नराधिपान् ।
दाहयामासुरव्यग्राः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥ ३० ॥

धर्मराजके आदेशसे विदुरजी, सारथि संजय, सुधर्मा, धौम्य तथा इन्द्रसेन आदिने चन्दन और अगरकी लकड़ी कालीयक, घी, तेल, सुगन्धित पदार्थ और बहुमूल्य रेशमी वस्त्र आदि वस्तुएँ एकत्र कीं, लकड़ियोंका संग्रह किया, टूटे हुए रथों तथा नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंको भी एकत्र कर लिया । फिर उन सबके द्वारा प्रयत्नपूर्वक कई चिताएँ बनाकर जेठे-छोटेके क्रमसे सभी राजाओंका शास्त्रीय विधिके अनुसार उन्होंने शान्तभावसे दाह-संस्कार सम्पन्न कराया ॥ २७-३० ॥

दुर्योधनं च राजानं भ्रातृंश्चास्य महारथान् ।
शल्यं शलं च राजानं भूरिश्रवसमेव च ॥ ३१ ॥
जयद्रथं च राजानमभिमन्युं च भारत ।
दौःशासनिं लक्ष्मणं च धृष्टकेतुं च पार्थिवम् ॥ ३२ ॥
बृहन्तं सोमदत्तं च सृंजयांश्च शताधिकान् ।
राजानं क्षेमधन्वानं विराटद्रुपदौ तथा ॥ ३३ ॥
शिखण्डिनं च पाञ्चाल्यं धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ।
युधामन्युं च विक्रान्तमुत्तमौजसमेव च ॥ ३४ ॥
कौसल्यं द्रौपदेयांश्च शकुनिं चापि सौबलम् ।
अचलं वृषकं चैव भगदत्तं च पार्थिवम् ॥ ३५ ॥
कर्णं वैकर्तनं चैव सहपुत्रममर्षणम् ।
केकयांश्च महेष्वासांस्त्रिगर्तांश्च महारथान् ॥ ३६ ॥
घटोत्कचं राक्षसेन्द्रं बकभ्रातरमेव च ।
अलम्बुषं राक्षसेन्द्रं जलसन्धं च पार्थिवम् ॥ ३७ ॥
एतांश्चान्यांश्च सुबहून् पार्थिवांश्च सहस्रशः ।
घृतधाराहुतैर्दीप्तैः पावकैः समदाहयन् ॥ ३८ ॥

राजा दुर्योधन, उनके निन्यानबे महारथी भाई, राजा शल्य, शल, भूरिश्रवा, राजा जयद्रथ, अभिमन्यु, दुःशासन-पुत्र, लक्ष्मण, राजा धृष्टकेतु, बृहन्त, सोमदत्त, सौसे भी अधिक सृंजय वीर, राजा क्षेमधन्वा, विराट, द्रुपद, शिखण्डी, पाञ्चालदेशीय द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, युधामन्यु, पराक्रमी उत्त-मौजा, कोसलराज बृहद्बल, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, सुबलपुत्र शकुनि, अचल, वृषक, राजा भगदत्त, पुत्रोंसहित अमर्ष-शील वैकर्तन कर्ण, महाधनुर्धर पाँचों केकयराजकुमार, महारथी त्रिगर्त, राक्षसराज घटोत्कच, बकके भाई राक्षस-प्रवर अलम्बुष और राजा जलसंध—इनका तथा अन्य बहुतेरे सहस्रों भूपालोंका घीकी धारासे प्रज्वलित हुई अग्नियोंद्वारा उन लोगोंने दाह-कर्म कराया ॥ ३१—३८ ॥

पितृमेधाश्च केषांचित् प्रावर्तन्त महात्मनाम् ।
सामभिश्चाप्यगायन्त तेऽन्वशोचन्त चापरैः ॥ ३९ ॥

किन्हीं महामनस्वी वीरोंके लिये पितृमेध (श्राद्ध) भी आरम्भ कर दिये गये । कुछ लोगोंने वहाँ सामगान किया तथा कितने ही मनुष्योंने वहाँ मरे हुए विभिन्न जनोंके लिये महान् शोक प्रकट किया ॥ ३९ ॥

साम्नामृचां च नादेन स्त्रीणां च रुदितस्वनैः ।
कश्मलं सर्वभूतानां निशायां समपद्यत ॥ ४० ॥

सामवेदीय मन्त्रों तथा ऋचाओंके घोष और स्त्रियोंके रोनेकी आवाजसे वहाँ रातमें सभी प्राणियोंको बड़ा कष्ट हुआ ॥

ते विधूमाः प्रदीप्ताश्च दीप्यमानाश्च पावकाः ।
नभसीवान्वदृश्यन्त ग्रहास्तन्वभ्रसंवृताः ॥ ४१ ॥

उस समय स्वल्प धूमयुक्त, प्रज्वलित तथा जलायी जाती हुई चिताकी अग्नियाँ आकाशमें सूक्ष्म बादलोंसे ढँके हुए ग्रहोंके समान दिखायी देती थीं ॥ ४१ ॥

ये चाप्यनाथास्तत्रासन् नानादेशसमागताः ।
तांश्च सर्वान् समानाय्य राशीन् कृत्वा सहस्रशः ॥४२॥
चित्वा दारुभिरव्यग्रैः प्रभूतैः स्नेहपाचितैः ।
दाहयामास तान् सर्वान् विदुरो राजशासनात् ॥ ४३ ॥

इसके बाद वहाँ अनेक देशोंसे आये हुए जो अनाथ लोग मारे गये, उन सबकी लाशोंको मँगवाकर उनके सहस्रों ढेर लगाये । फिर घी-तेलमें भिगोयी हुई बहुत-सी लकड़ियों-द्वारा स्थिर चित्तवाले लोगोंसे चिता बनाकर उन सबको विदुरजीने राजाकी आज्ञाके अनुसार दग्ध करवा दिया ॥

कारयित्वा क्रियास्तेषां कुरुराजो युधिष्ठिरः ।
धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य गङ्गामभिमुखोऽगमत् ॥ ४४ ॥

इस प्रकार उन सबका दाहकर्म कराकर कुरुराज युधिष्ठिर धृतराष्ट्रको आगे करके गङ्गाजीकी ओर चले गये ॥ ४४ ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि श्राद्धपर्वणि कुरूणामौर्ध्वदेहिके षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत श्राद्धपर्वमें कौरवोंका और्ध्वदैहिक संस्कारविषयक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥२६॥

सप्तविंशोऽध्यायः

सभी स्त्री-पुरुषोंका अपने मरे हुए सम्बन्धियोंको जलाञ्जलि देना, कुन्तीका अपने गर्भसे कर्णके जन्म होनेका रहस्य प्रकट करना तथा युधिष्ठिरका कर्णके लिये शोक प्रकट करते हुए उनका प्रेतकृत्य सम्पन्न करना और स्त्रियोंके मनमें रहस्यकी बात न छिपनेका शाप देना

वैशम्पायन उवाच

ते समासाद्य गङ्गां तु शिवां पुण्यजलोचिताम् ।
ह्रदिनीं च प्रसन्नां च महारूपां महावनाम् ॥ १ ॥
भूषणान्युत्तरीयाणि वेष्टनान्यवमुच्य च ।
ततः पितॄणां भ्रातॄणां पौत्राणां स्वजनस्य च ॥ २ ॥
पुत्राणामार्यकाणां च पतीनां च कुरुस्त्रियः ।
उदकं चक्रिरे सर्वा रुदत्यो भृशदुःखिताः ॥ ३ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! वे युधिष्ठिर आदि सब लोग कल्याणमयी, पुण्यसलिला, अनेक जलकुण्डोंसे सुशोभित, स्वच्छ, विशाल रूपधारिणी तथा तटप्रदेशमें



युद्धमें काम आये हुए वीरोंको उनके सम्बन्धियोंद्वारा जलदान

महान् वनवाली गङ्गाजीके तटपर आकर अपने सारे आभूषण, दुपट्टे तथा पगड़ी आदि उतार डाले और पिताओं, भाइयों, पुत्रों, पौत्रों, स्वजनों तथा आर्य वीरोंके लिये जलाञ्जलि प्रदान की। अत्यन्त दुःखसे रोती हुई कुरुकुलकी सभी स्त्रियोंने भी अपने पिता आदिके साथ-साथ पतियोंके लिये जल अर्पण किये॥

सुहृदां चापि धर्मज्ञाः प्रचक्रुः सलिलक्रियाः।
उदके क्रियमाणे तु वीराणां वीरपत्निभिः ॥ ४ ॥
सूपतीर्था भवद्गङ्गा भूयो विप्रससार च।

धर्मज्ञ पुरुषोंने अपने हितैषी सुहृदोंके लिये भी जलाञ्जलि देनेका कार्य सम्पन्न किया। वीरोंकी पत्नियोंद्वारा जब उन वीरोंके लिये जलाञ्जलि दी जा रही थी, उस समय गङ्गाजीके जलमें उतरनेके लिये बड़ा सुन्दर मार्ग बन गया और गङ्गाका पाट अधिक चौड़ा हो गया ॥ ४½ ॥

तन्महोदधिसंकाशं निरानन्दमनुत्सवम् ॥ ५ ॥
वीरपत्नीभिराकीर्णं गङ्गातीरमशोभत।

महासागरके समान विशाल वह गङ्गातट आनन्द और उत्सवसे शून्य होनेपर भी उन वीर-पत्नियोंसे व्याप्त होनेके कारण बड़ी शोभा पाने लगा ॥ ५½ ॥

ततः कुन्ती महाराज सहसा शोककर्शिता ॥ ६ ॥
रुदती मन्दया वाचा पुत्रान् वचनमब्रवीत्।

महाराज! तदनन्तर कुन्तीदेवी सहसा शोकसे कातर हो रोती हुई मन्द वाणीमें अपने पुत्रोंसे बोलीं—॥ ६½ ॥

यः स वीरो महेष्वासो रथयूथपयूथपः ॥ ७ ॥
अर्जुनेन जितः संख्ये वीरलक्षणलक्षितः।
यं सूतपुत्रं मन्यध्वं राधेयमिति पाण्डवाः ॥ ८ ॥
यो व्यराजच्च भूमध्ये दिवाकर इव प्रभुः।
प्रत्ययुध्यत वः सर्वान् पुरा यः सपदानुगान् ॥ ९ ॥
दुर्योधनबलं सर्वं यः प्रकर्षन् व्यरोचत।
यस्य नास्ति समो वीर्ये पृथिव्यामपि पार्थिवः ॥ १० ॥
योऽवृणीत यशः शूरः प्राणैरपि सदा भुवि।
कर्णस्य सत्यसंधस्य संग्रामेष्वपलायिनः ॥ ११ ॥
कुरुध्वमुदकं तस्य भ्रातुरक्लिष्टकर्मणः।
स हि वः पूर्वजो भ्राता भास्करान्मय्यजायत ॥ १२ ॥
कुण्डली कवची शूरो दिवाकरसमप्रभः।

'पाण्डवो! जो महाधनुर्धर वीर रथ-यूथपतियोंका भी यूथपति तथा वीरोचित शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न था, जिसे युद्धमें अर्जुनने परास्त किया है तथा जिसे तुमलोग सूतपुत्र एवं राधापुत्रके रूपमें मानते-जानते हो, जो सेनाके मध्यभागमें भगवान् सूर्यके समान प्रकाशित होता था, जिसने पहले सेवकोंसहित तुम सब लोगोंका अच्छी तरह सामना किया था, जो दुर्योधनकी सारी सेनाको अपने पीछे खींचता हुआ बड़ी शोभा पाता था, बल और पराक्रममें जिसकी समानता करनेवाला इस भूतलपर दूसरा कोई राजा नहीं है, जिस शूरवीरने अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर भी भूमण्डलमें सदा यशका ही उपार्जन किया है, संग्राममें कभी पीठ न दिखानेवाले और अनायास ही महान् कर्म करनेवाले अपने उस सत्यप्रतिज्ञ भ्राता कर्णके लिये भी तुमलोग जल-दान करो। वह तुमलोगोंका बड़ा भाई था। भगवान् सूर्यके अंशसे वह वीर मेरे ही गर्भसे उत्पन्न हुआ था। जन्मके साथ ही उस शूरवीरके शरीरमें कवच और कुण्डल शोभा पाते थे। वह सूर्यदेवके समान ही तेजस्वी था ॥ ७—१२½ ॥

श्रुत्वा तु पाण्डवाः सर्वे मातुर्वचनमप्रियम् ॥ १३ ॥
कर्णमेवानुशोचन्तो भूयः क्लान्ततराभवन्।

माताका यह अप्रिय वचन सुनकर समस्त पाण्डव कर्णके लिये ही बारंबार शोक करते हुए अत्यन्त कष्टमें पड़ गये ॥

ततः स पुरुषव्याघ्रः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १४ ॥
उवाच मातरं वीरो निःश्वसन्निव पन्नगः।

तदनन्तर पुरुषसिंह वीर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर सर्पके समान लंबी साँस खींचते हुए अपनी मातासे बोले—॥ १४½ ॥

यः शरोर्मिर्ध्वजावर्तो महाभुजमहाग्रहः ॥ १५ ॥
तलशब्दानुनदितो महारथमहाह्रदः।
यस्येषुपातमासाद्य नान्यस्तिष्ठेद् धनंजयात् ॥ १६ ॥
कथं पुत्रो भवत्याः स देवगर्भः पुराभवत्।

'माँ! जो बड़े-बड़े महारथियोंको डुबो देनेके लिये अत्यन्त गहरे जलाशयके समान थे, बाण ही जिनकी लहर, ध्वजा भँवर, बड़ी-बड़ी भुजाएँ महान् ग्राह और हथेलीका शब्द ही गम्भीर गर्जन था, जिनके बाणोंके गिरनेकी सीमामें आकर अर्जुनके सिवा दूसरा कोई वीर नहीं टिक सकता था, वे सूर्यकुमार तेजस्वी कर्ण पूर्वकालमें आपके पुत्र कैसे हुए!॥

यस्य बाहुप्रतापेन तापिताः सर्वतो वयम् ॥ १७ ॥
तमग्निमिव वस्त्रेण कथं छादितवत्यसि।

'जिनकी भुजाओंके प्रतापसे हम सब ओरसे संतप्त रहते थे, कपड़ेमें ढकी हुई आगके समान उन्हें अबतक आपने कैसे छिपा रक्खा था? ॥ १७½ ॥

यस्य बाहुबलं नित्यं धार्तराष्ट्रैरुपासितम् ॥ १८ ॥
उपासितं यथास्माभिर्बलं गाण्डीवधन्वनः।

'धृतराष्ट्रके पुत्रोंने सदा उन्हींके बाहुबलका भरोसा कर रक्खा था, जैसे कि हमलोगोंने गाण्डीवधारी अर्जुनके बलका आश्रय लिया था ॥ १८½ ॥

भूमिपानां च सर्वेषां बलं बलवतां वरः ॥ १९ ॥
नान्यः कुन्तीसुतात् कर्णादगृह्णाद् रथिनां रथी।

'कुन्तीपुत्र कर्णके सिवा दूसरा कोई रथी ऐसा बड़ा बलवान् नहीं हुआ है, जिसने समस्त राजाओंकी सेनाको रोक दिया हो॥

स नः प्रथमजो भ्राता सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ २० ॥
असूत तं भवत्यग्रे कथमद्भुतविक्रमम् ।

'वे समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कर्ण क्या सचमुच हमारे बड़े भाई थे ? आपने पहले उन अद्भुत पराक्रमी वीरको कैसे उत्पन्न किया था ? ॥ २०½ ॥

अहो भवत्या मन्त्रस्य गूहनेन वयं हताः ॥ २१ ॥
निधनेन हि कर्णस्य पीडितास्तु सबान्धवाः ।

'अहो ! आपने इस गूढ़ रहस्यको छिपाकर हमलोगोंको मार डाला । कर्णकी मृत्युसे भाइयोंसहित हमें बड़ी पीड़ा हो रही है ॥ २१½ ॥

अभिमन्योर्विनाशेन द्रौपदेयवधेन च ॥ २२ ॥
पञ्चालानां विनाशेन कुरूणां पतनेन च ।
ततः शतगुणं दुःखमिदं मामस्पृशद् भृशम् ॥ २३ ॥

'अभिमन्यु, द्रौपदीके पुत्र और पाञ्चालोंके विनाशसे तथा कुरुकुलके इस पतनसे हमें जितना दुःख हुआ था, उससे सौ गुना यह दुःख इस समय मुझे अत्यन्त व्यथित कर रहा है ॥ २२-२३ ॥

कर्णमेवानुशोचामि दह्याम्यग्नाविवाहितः ।
नेह स्म किंचिदप्राप्यं भवेदपि दिवि स्थितम् ॥ २४ ॥
न चेदं वैशसं घोरं कौरवान्तकरं भवेत् ।

'अब तो मैं केवल कर्णके ही शोकमें डूब गया हूँ और इस तरह जल रहा हूँ, मानो मुझे किसीने जलती आगमें रख दिया हो । यदि पहले ही यह बात मुझे मालूम हो गयी होती तो कर्णको पाकर हमारे लिये इस जगत्में कोई स्वर्गीय वस्तु भी अलभ्य नहीं होती तथा कुरुकुलका अन्त कर देनेवाला यह घोर संग्राम भी नहीं हुआ होता' ॥ २४½ ॥

एवं विलप्य बहुलं धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ २५ ॥
व्यरुदच्छनकै राजंश्चकारास्योदकं प्रभुः ।
ततो विनेदुः सहसा स्त्रियस्ताः खलु सर्वशः ॥ २६ ॥
अभितो याः स्थितास्तत्र तस्मिन्नुदककर्मणि ।

राजन् ! इस प्रकार बहुत विलाप करके धर्मराज युधिष्ठिर फूट-फूटकर रोने लगे । रोते-ही-रोते उन्होंने धीरे-धीरे कर्णके लिये जलदान किया । यह सब सुनकर वहाँ एकत्र हुई सारी स्त्रियाँ, जो वहाँ जलाञ्जलि देनेके लिये सब ओर खड़ी थीं, सहसा जोर-जोरसे रोने लगीं ॥ २५-२६½ ॥

तत आनाययामास कर्णस्य सपरिच्छदाः ॥ २७ ॥
स्त्रियः कुरुपतिर्धीमान् भ्रातुः प्रेम्णा युधिष्ठिरः ।
स ताभिः सह धर्मात्मा प्रेतकृत्यमनन्तरम् ॥ २८ ॥
चकार विधिवद् धीमान् धर्मराजो युधिष्ठिरः ।

तदनन्तर बुद्धिमान् कुरुराज युधिष्ठिरने भाईके प्रेमसे कर्णकी स्त्रियोंको परिवारसहित बुलवा लिया और उन सबके साथ रहकर उन धर्मात्मा बुद्धिमान् धर्मराज युधिष्ठिरने विधिपूर्वक कर्णका प्रेतकृत्य सम्पन्न किया ॥ २७-२८½ ॥

पापेनासौ मया श्रेष्ठो भ्राता ज्ञातिर्निपातितः ।
अतो मनसि यद् गुह्यं स्त्रीणां तन्न भविष्यति ॥ २९ ॥

तदनन्तर वे बोले—'मुझ पापीने इस रहस्यको न जाननेके कारण अपने बड़े भाईको मरवा दिया; अतः आजसे स्त्रियोंके मनमें कोई गुप्त रहस्य नहीं छिपा रह सकेगा' ॥ २९ ॥

इत्युक्त्वा स तु गङ्गाया उत्तताराकुलेन्द्रियः ।
भ्रातृभिः सहितः सर्वैर्गङ्गातीरमुपेयिवान् ॥ ३० ॥

ऐसा कहकर व्याकुल इन्द्रियोंवाले राजा युधिष्ठिर गङ्गाजीके जलसे निकले और समस्त भाइयोंके साथ तटपर आये ॥

इति श्रीमहाभारते स्त्रीपर्वणि श्राद्धपर्वणि कर्णगूढजत्वकथने सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्त्रीपर्वके अन्तर्गत श्राद्धपर्वमें कर्णके जन्मके गूढ़ रहस्यका कथनविषयक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २७ ॥

स्त्रीपर्व सम्पूर्णम्

	अनुष्टुप्	बड़े श्लोक	बड़े श्लोकोंको अनुष्टुप् माननेपर	कुल
उत्तर भारतीय पाठसे लिये गये	८२२	(५)	६॥।=	८२८॥।=
दक्षिण भारतीय पाठसे लिये गये	१	...	...	१
स्त्रीपर्वकी कुल श्लोकसंख्या				८२९॥।=

मिलनेका पता
गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस
(गोरखपुर)